श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

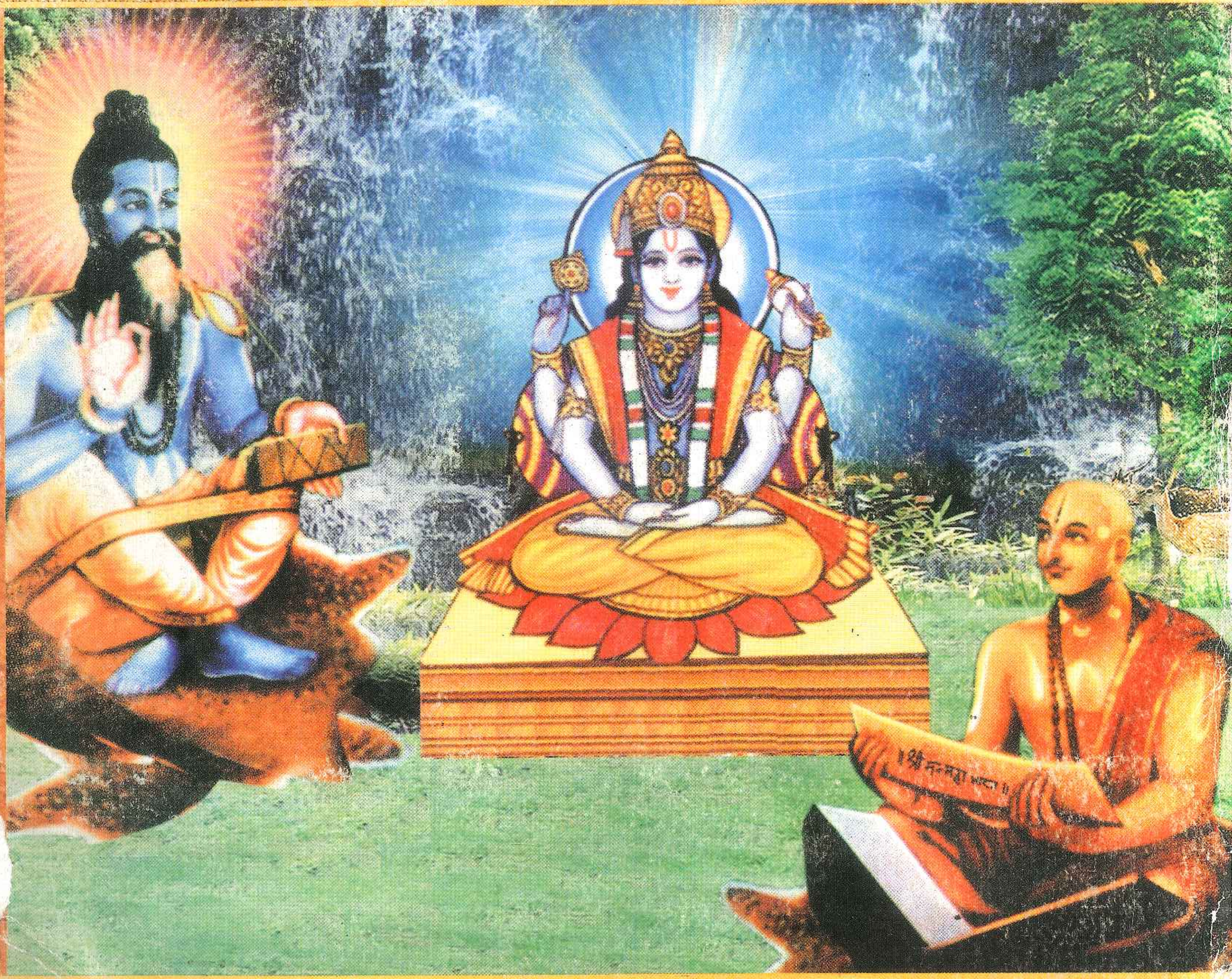

प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्कन्धाः भाषानुवादः

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण

वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री विजयध्वज टीकानुसारी

श्री मद्भागवत महापुराणम्

प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्कंधाः

(भाषानुवादः)

लेखक

श्री श्री विद्यावल्लभतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

सम्पादन एवं संशोधन

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

प्रकाशक

श्री मध्व तत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

श्री अखिल भारतीय पेजावर स्वामी अभिवंदन समिति

श्रीमद्भागवत महापुराणम्

लेखक-

श्री 1008 श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी

प्रकाशक

श्री मध्व तत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान

श्री मध्व मठ 63, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद, 211006

फोन:- 0532 - 2504587

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

द्वितीय मुद्रण 1000 प्रतियाँ

16-2-2011

मूल्य - 100 रुपये

अक्षर विन्यास

श्री प्राणेश कुमार शुक्ल

मुद्रक -

श्री वैष्णव प्रेस

मोरी, दारागंज, इलाहाबाद

श्री राम श्री

अनुग्रह संदेश

श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य मूल महासंस्थान श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी उडुपि

हमारे विशेष अभिमान पात्र **श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी** ने किया आठ शास्त्र ग्रंथों का हिन्दी भाषाअनुवाद को देखकर हमे सन्तोष हुआ है। श्री स्वामी जी अपने पूर्वाश्रम में अनेक वर्षो से सामजिक सेवा में रचनात्मक कार्यों को किये हैं। हमारे साथ अकाल, भूकम्प, बाढ़ इत्यादि कामों में सम्पूर्ण समर्पण भाव से काम किए हैं। अब अपने अस्सी वर्ष के समय में आठ शास्त्र ग्रन्थों का अनुवाद और प्रकाशन का स्तुत्य काम अपने हाथ में लिए हैं। मध्व तत्वज्ञान को अभ्यास करने के जिज्ञासुओं को अनुकूल होने वाली एक विशिष्ट सेवा किए हैं।

वे अपने सत्तर वर्ष की आयु में कन्नड़ भाषियों के अनुग्रह रूप में अनेक शास्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किए थे। अब प्रयाग में रहकर मध्व सिद्धान्त का प्रसार कार्य करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा मध्व तत्वज्ञान को हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचार करने का महान कार्य कर रहे हैं।

श्री कृष्ण, श्री वेद व्यास जी, अस्मदुपास्य श्री रामविट्ठल जी इनको विशेष अनुग्रह करते हुए इनकी सेवा विस्तार रूप से सारी जनता को मिले यही हमारा आशीर्वाद है।

इति नारायण स्मरण

श्री श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी महाराज
पेजावर मठ उडुपि

अनुग्रह संदेश
श्री राम श्री

श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य मूल महा संस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी, उडुपी

आठ सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरू मध्वाचार्य जी ने मध्व सिद्धान्त का प्रचार प्रसार बहुत पैमाने से आरम्भ किया। इस प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए उडुपी में आठ पीठ और उत्तर कर्नाटक में एक पीठ की स्थापना किए। श्री जयतीर्थ मुनि, श्री श्रीपाद राज स्वामी, श्री व्यासराजमहामुनि, श्री वादिराजयोगी, श्री रघूत्तम स्वामी जी, श्री राघवेन्द्र तीर्थ जी इत्यादि महामहिमों ने उस सिद्धान्त को और विकसित किए। इसके बारे में यह श्लोक प्रसिद्ध है।

व्यासेन व्युप्तबीजः श्रृतिभुवि भगवत्पाद लब्धांकुरश्रीः।
प्रत्यैरीषत् प्रभिन्नोंऽजनिजयमुनिना सम्यगुद्भिन्न शाखाः।।
मौनीशव्यासराजात् उदित किसलयः पुष्पितोयं जयीन्द्रात्।
अद्य श्री राघवेन्द्रात् विलसति फलितो मध्व सिद्धान्तशाखे।।

हमारे दीक्षा शिक्षा गुरु युगपुरुष श्री श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी उत्तर भारत में श्री मध्व तत्वज्ञान को प्रसार करने हेतु **बीस वर्ष** पहले श्री प्रयाग क्षेत्र में श्री मध्व पीठ की स्थापना की है। उन दिनों से प्रयाग का हमारा मठ मध्वसिद्धान्त का प्रसार करता आ रहा है।

इस वर्ष श्री पेजावर मठ के पूज्य श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ श्री पाद जी का अस्सीवाँ वर्ष है। स्वीकृत मध्व सिद्धान्त का प्रसार करने हेतु इस वर्ष में हमने अपने मठ से आठ मध्व शास्त्र ग्रन्थों का प्रकाशन करने का व्रत ग्रहण किया है। हमारे प्रिय शिष्य प्रयाग पीठाधिपति श्री विद्यात्म तीर्थ जी **आठ ग्रन्थों को हिन्दी में अनुवाद किए हैं।** हम आशा रखते हैं कि सद्भक्त लोग इन ग्रन्थों का उपयोग करके साधक बनें, भगवान के प्रिय बनें।

हमारे शिष्य **श्री विद्यात्म तीर्थ जी** को भी अस्सी वर्ष हो गये हैं। इस शुभ अवसर पर वे आठ शास्त्रग्रन्थ अनुवाद कर अपने आयु को सार्थक बनाए हैं। हम अपने आराध्य श्री सीतारामांजनेय स्वामी से प्रार्थना करते हैं कि उनके हाथ से ऐसे कार्य और हों, उसका उपयोग सद्भक्तों के लिए सन्तोष कारक हों।

इति नारायण स्मरण

उडुपी

कार्तिक शुक्ल एकादशी

विकृति नाम संवत्सर

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी

श्री राम श्री

इस ग्रन्थ का आर्थिक भार का वहन

अखिल भारत माध्वमण्डल

श्री पूर्ण प्रज्ञविद्या पीठ

कत्रिगुप्पामुख्यरास्ता

बेंगलूर

ने किया है।

हम उनके कृतज्ञ हैं
प्रकाशक

प्राक्कथन

पूर्वपीठाधीश्वर श्री 1008 श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी के भागवत के पहले तीन स्कन्ध के अनुवाद में प्रकाशित प्राक्कथन को यहाँ उद्धृत किया गया है।

यह सृष्टि अज्ञान का कार्य नही है, प्रयोजन रहित भी नही है, जीवों को अपनी अपनी गति प्राप्त करने के लिए सर्वशक्तिमान श्री हरि ने सत्य भूत जगत को सृष्ट किया है। जीव को प्राप्त होने वाले देह में मनुष्य देह साधन के लिए अति उत्तम है। सृष्टिकर्ता परब्रह्मपरमात्मा को जानकर उनको प्राप्त करने वाली बुद्धि भी इसी देह में है। ऐसे जन्म को सफल न करते हुए केवल आहार निद्रादि के लिए ही उपयोग करने वाला एवं इसके मूल्य को न जानने वाला मूढ़ है। ऐहिक सम्पत्ति को कितना ही क्यों न प्राप्त करें उसको अपने साथ नही ले जा सकता है। स्वर्गादि सुख के लिए कर्म करने वाला **''क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति''** इस प्रमाणानुसार पुनः दुःख के लिए सिद्ध होना ही पड़ता है इसलिए शाश्वत सुख, मोक्ष के लिए कारण होने वाले कर्मो को करने वाला ही बुद्धिमान है। इसके मर्म को जानना प्रत्येक मुमुक्ष का कर्तव्य है। इस मर्म को बतलाकर हमें श्री हरि के निकट ले जाने वाले शास्त्रों में से श्रीमद्भागवत भी एक है।

यह श्रीमद्भागवत पुराण ग्रन्थ जैसा दिखाई देने पर भी इसमें शास्त्रार्थ का गहन विषय होने से यह एक शास्त्र ही है। इसमें श्री हरि का सर्वोत्तमत्व लक्ष्मी बह्मदि समस्त चेतन समुदाय का अस्वतन्त्रत्व श्री हरि और उनके भक्तों की महिमा भागवत धर्माचरण इत्यादि विषय हैं जो श्री हरि को यथार्थज्ञान प्राप्त करने में अतिशय सुविधा जनक है। प्रायोप्रवेश के लिए बैठे मुमुक्षुराजा परीक्षित ने शुकदेव जी से इस कथामृत का पान करके श्री हरि के चरण कमल को प्राप्त हुए। इसलिए प्रत्येक सज्जीव को अवश्य पढ़ने जानने तथा जीवन में उतारने योग्य ग्रन्थ है।

विभिन्न सम्प्रदायों ने अपने मतानुसार इस पुराण का अर्थ किया है और तदनुसार इसमें पाठ प्रभेद भी हैं, इस पर भी वैष्णव सिद्धान्त के प्रवर्तक जगद्गुरु श्रीमध्वाचार्य से रचित भागवत तात्पर्य निर्णयानुसार ही अर्थ करना चाहिए। किन्तु अपार्थ न करें। श्रीमदाचार्य जी महाभारत की कथा की भाँति इसकी व्याख्या न करके श्लोकों के शब्दार्थ को प्रमाणपूर्वक बतलाएँ हैं। इसलिए यह ग्रन्थ अपने कल्याणार्थ अवश्य पठनीय है। इस एक ग्रन्थ को आमूलाग्र अध्ययन करने वाला प्रमेयों को यथार्थ रूप से जान सकता है और किसी पुराण की मोहक कथाओं से मोहित नहीं हो सकता है। जिससे श्री हरि सन्तुष्ट होते हैं।

कलियुग में इस समय श्रीमद्भागवत् को यथार्थ रूप से जानने की इच्छा वाले अनेक अधिकरी चेतन

हैं किन्तु काल की दुष्ट गति से पूर्ण आयुष्य को जीविका के लिए ही व्यतीत कर देते हैं और अपनी वृत्ति के लिए अन्य भाषा के अभ्यास में आसक्त हुए इनको गुरुकुलवास करके संस्कृत का अध्ययन करने के लिए अवकाश प्राप्त होना दुस्तर हो गया है। इसलिए ऐसे सज्जीवों को ज्ञान प्राप्त कराने में सहायता करना भी एक प्रकार से श्री हरि , वायु की सेवा जानकर इस श्रीमद्भागवत परमहंससंहिता की विजयध्वजी टीकानुसार कथा का संक्षेप और सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद किया गया है।

श्रीमद्भागवत् का अब तक विजयध्वजी टीकानुसार कथानुवाद हिन्दी में नहीं हुआ है। इसलिए हिन्दी भाषा प्रेमियों के आग्रह से उनको यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने हेतु इस ग्रन्थ का विजयध्वजी टीकानुसार सरल हिन्दी में संक्षेप कथानुवाद किया गया है।

''भक्तया भागवतं शास्त्रं'' के अनुसार भागवत का यथार्थ ज्ञान होने के लिए स्वरूपत: भगवद्भक्त होना चाहिए।

''धनंजये हाटक सम्परीक्षा
महाहवे योध सुमम्परीक्षा
विपत्तिकाले गृहणी परीक्षा
विद्यावतां भागवते परीक्षा''

इसके अनुसार कैसा भी पण्डित क्यों न हो अपनी विद्वता से रहस्य अर्थ को समझ नहीं सकता है। ऐसे जटिल प्रमेय, गूढ़, अर्थ वाले शास्त्ररूप इस पुण्यग्रन्थ को वैष्णवों के लिए हिन्दी में प्रकाशित किया जा रहा है।

संसार दु:ख से संतप्त जीवों के लिए श्रीमद्भागवत अमृत है भवरोग के लिए दिव्य औषधि है, तथा इसमें बताया गया भागवत धर्माचरण एक पथ्य है, कालसर्प से डसे हुये मुमुक्षु के लिए मृतसंजीवनी है, दरिद्रों के लिए चिन्तामणि है।

आशा है कि सज्जीव इस ग्रन्थ का अध्ययन श्रवण मनन एवं भागवत धर्माचरण करके अपना जीवन सार्थक करेंगे।

श्री विद्यावल्लभतीर्थ स्वामी जी
मध्वमठ, प्रयाग

प्रस्तावना

हमारे गुरु जी पूर्व प्रयाग पीठाधिपति श्री 1008 श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी लगभग दस वर्ष पूर्व भागवत के पहले तीन स्कन्धों का अनुवाद कर प्रकाशित किए थे। उनका महानिर्वाण आकस्मिक रीति से होने के कारण वह कार्य वहीं अवरुद्ध हो गया था।

हमारे दीक्षा गुरु उडुपि श्री पलिमारु मठ के पीठाधिपति जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महराज जी ने उस अवरुद्ध कार्य का पुनरारम्भ करने का आदेश दिया। मैं अल्प शक्ति और अल्प ज्ञान वाला हूँ। किन्तु अपने गुरुवर्य की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मैं यह कार्य कर रहा हूँ।

विद्यावतां भागवते परीक्षा यह पूर्णतः सत्य है। श्री गुरु जी का अनुग्रह ही मुझसे यह कार्य करवा रहा है। दक्षिण भारत में जन्म लेने के कारण मुझे अच्छी हिन्दी नही आती। पण्डित न होने के कारण शास्त्र का गहन और विस्तृत ज्ञान प्राप्त नही है। केवल गुरु का अनुग्रह ही मुझे प्रेरणा दे रहा है। पाठकों द्वारा निर्दिष्ट त्रुटियों को अगले अंक में सुधारने का प्रयास करेंगे।

दस वर्ष पूर्व प्रकाशित इस ग्रन्थ की प्रतियाँ समाप्त हो गयी थी उसका पुनर्मुद्रण करना था, आर्थिक भार वहन कर नही सकते थे। इसलिए इसका पुनर्मुद्रण नही कर पा रहे थे। बेंगलूर के अखिल भारत मध्व महा मण्डल वालों के द्वारा इसका पूर्ण भार वहन करने के कारण हम इसको प्रकाशित कर सके इसके लिए हम उनके आभारी हैं। मुम्बई के उद्योगपति श्रीमती अरुणाचार्य और इलाहाबाद के श्री अनन्त प्रसाद श्रीवास्तव, श्री गिरधारी लाल मिश्र, श्री सुरेन्द्र कुमार जायसवाल, श्री ईश्वर शरण श्रीवास्तव, श्री लालप्रताप सिंह जी के अनुदान को कृतज्ञता से याद करते हैं। पिछले बार के मुद्रण के समय शीघ्रता के कारण कई मुद्रण दोष तथा कई व्याकरण दोष रह गये थे। इन सबको सुधार कर इसको सर्वांग सुन्दर बनाना था। इसमें सहयोग दिये अपने शिष्य वर्ग को हम आशिर्वाद देते हैं। अक्षर संयोजक श्री प्राणेश शुक्ल और सुन्दर, सकालिक मुद्रण के लिए श्री वैष्णव प्रेस परिवार का मंगल चाहते हैं।

पूज्य पेजावर स्वामी जी **श्री 1008 श्री विश्वेश तीर्थ स्वामी जी** के अस्सी वर्ष के सम्बन्ध में इस ग्रन्थ को प्रकाशित करते हुए हम अपने को धन्य मानते हैं और चाहते हैं कि पूज्य स्वामी जी पूर्णायुष्य को पाते हुए हम पर अनुग्रह करते रहें।

इति शम्

उडुपि
विकृति सं0 माघ
शुक्ल पक्ष त्रयोदशी
16-02-2010

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज

निवेदन

पश्चिम समुद्र के तट पर द्वारका से पधारे हुए, रुक्मिणी देवी से पूजित श्री कृष्ण जी की प्रतिमा को जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य जी ने उडुपि में आठ सौ वर्षों से पूर्व में प्रतिष्ठित किया। जगद्गुरु मध्वाचार्य तीन मत प्रवर्तक आचार्यों में माने जाते हैं। ज्ञानयुक्त भक्ति के बिना शाश्वत सुख (मोक्ष) नही मिलेगा; भगवान सर्वशक्त, सर्वाधार, सर्वोत्तम हैं, जीव भगवान का दास है; यह विश्व नश्वर है किन्तु प्रवाहतः सत्य है; इस विश्व में रहने वाले प्रत्येक जीव परस्पर भिन्न हैं; अल्प शक्ति, अल्पवीर्य और अल्प ज्ञान वाला जीव कदापि भगवान नही बनता ये विचार मध्वतत्वज्ञान का सार है।

जगद्गुरु मध्वाचार्य जी श्री कृष्ण मठ में भगवान की पूजा अर्चा करने और मध्व सिद्धान्त के प्रचार प्रसार हेतु अष्ठ मठों की स्थापना की। वे आठ मठ के अधिपति सदियों से अपने इस कर्तव्य को निभाते आ रहे हैं। आज के इन पीठाधिपतियों में पेजावर मठ के श्री विश्वेश तीर्थ स्वामी जी सबसे श्रेष्ठ और वरिष्ठ हैं।

बालक वेन्कट राम अपनी आठ वर्ष की आयु में सन्यास लेकर विश्वेश तीर्थ बने और पेजावर मठ के पीठाधिपति होकर भगवान श्री कृष्ण की पूजा प्रम्परागत पर्याय व्यवस्था अविरत और अखण्ड भक्ति युक्त होकर करते आये हैं। मध्व शास्त्र में अगाध पांडित्य वाले आप शत - शत पण्डित मंडलियों को शिक्षित किए हैं। वेद, उपनिषद्, पुराण आदि अनेक शास्त्र ग्रन्थों के भाष्य, टीका, व्याख्यान आपने संस्कृत और कन्नड भाषा में रचना की है। नदियों में बाढ़, माँ भूमि के विघातक कम्पन, सुनामी और अकाल के आघातों से दुःखित, दीन, दलित, दरिद्रों के लिए आपका सहाय हस्त सबसे पहले सरकार से भी पहले और पर्याप्त मात्रा में मिल चुका है।

पूज्य पेजावर स्वामी जी अब अपनी आयु के अस्सी वर्ष में गुजर रहे हैं। इनमें से वे अपने बहत्तर सुनहरे वर्षों को सन्यास में, ज्ञान प्रसार में, भगवत् पूजा में और नानाजन शुश्रूषा में बिताये हैं। एक ऐसे क्रियाशील सन्त रूपी सज्जीव को अभिवन्दन करना, मान वन्दन करना, अपने के लिए श्रेयस्कर है।

जिस मध्व तत्वज्ञान के प्रचार प्रसार के लिए पूज्य पेजावर स्वामी जी ने अपना जीवन समर्पित किया, जीव और भगवान के बीच में सुन्दर सेतु बन्ध निर्माण करने का प्रयास किया उसी कार्य में एक छोटी सी गिलहरी का काम करने के लिए हम कार्यक्षेत्र में उतरे हैं। उनके अस्सी वर्ष के उन पद चिन्हों को अनुसरण करते हुए आठ मध्वशास्त्र ग्रन्थों को इस वर्ष विमोचन करने का सकंल्प हम किए हैं। वह कार्यक्रम इस प्रकार है।

क्र0	ग्रन्थ का नाम	स्थान	समय
1.	श्री भागवत पंचम और षष्ठ स्कन्ध	उडुपि	12-12-2010
2.	रामायण पात्र चित्रण	हुब्बली	13-12-2010

3.	श्री भागवत प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्कन्ध	प्रयाग	16-02-2011
4.	भागवत सप्तम स्कन्ध	वाराणसी	31 मार्च 2011
5.	भागवत अष्टम, नवम स्कन्ध	अयोध्या	अप्रैल 2011
6.	श्री कृष्णामृत महार्णव	तिजारा जिला अलवर, राजस्थान	29 अप्रैल 2011
7.	प्रातस्संकल्प गद्य	जलन्धर, पंजाब	जून 2011
8.	ब्रह्मसूत्र भाष्य	दिल्ली	जुलाई 2011

इन सारे ग्रन्थों को प्रयाग पीठाधिपति श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी ने संस्कृत से हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है।

इन ग्रन्थों का प्रयोजन सद भक्तों को मिले। इन ग्रन्थों को आप लोग अपने के लिए खरीदें अपने बन्धु बान्धवों को उपहार में दें। ऐसे करते हुए मध्वसिद्धान्त प्रसार के इस सेतु बन्ध कार्य मे यथाशक्ति सहयोग दें यही अभ्यर्थना।

सज्जन सेवा में

अखिल भारतीय श्री पेजावर स्वामी जी अभिवन्दन समिति

गौरव अध्यक्ष

डॉ कुटुम्ब शास्त्री

कुलपति डॉ0 सम्पूर्णानन्द वि. वि. वाराणसी

परामर्श दाता

मान्यवर अशोक सिंघल

अन्तर राष्ट्रीय अध्यक्ष वि. हिं. प.

स्वामी श्री सीतावल्लभ जी मध्वमठ बड़ा अखाड़ा

मैहर (म. प्र.)

बाल सन्तमहान शरण देवाचार्य जी, नेपाल

श्री स्वामी ललित मोहन ओझा प्रेम पीठ मध्वमठ

तिजारा जिला अलवर, राजस्थान

डॉ. व्हि. आर पंचमुखि मंत्रालय

डॉ. व्ही. एनं पाडुरंगी, जयपुर

डॉ. श्रीनिवास वरखेड़ि, हैदराबाद

कार्याध्यक्ष

श्री के. एन. सिंह पूर्व जिला न्यायाधीश

उपाध्यक्ष

श्री सर्वोत्तमन्, चेन्नै

श्रीमती अरुणा आचार्य, मुम्बई

श्री ध्रुव खेरा, जलन्धर, पंजाब

डॉ0 रवि नागपुर

श्री परीक्षित भराठे, भुसावल

प्रधान सचिव

श्री गिरधारी लाल मिश्र, इलाहाबाद

श्री मानसिंह (एड्वोकेट), इलाहाबाद

कोषाध्यक्ष

श्री रमेश अग्रवाल, इलाहाबाद

कार्यालय सचिव

श्री अनिल त्रिपाठी, इलाहाबाद

श्री बालाजी

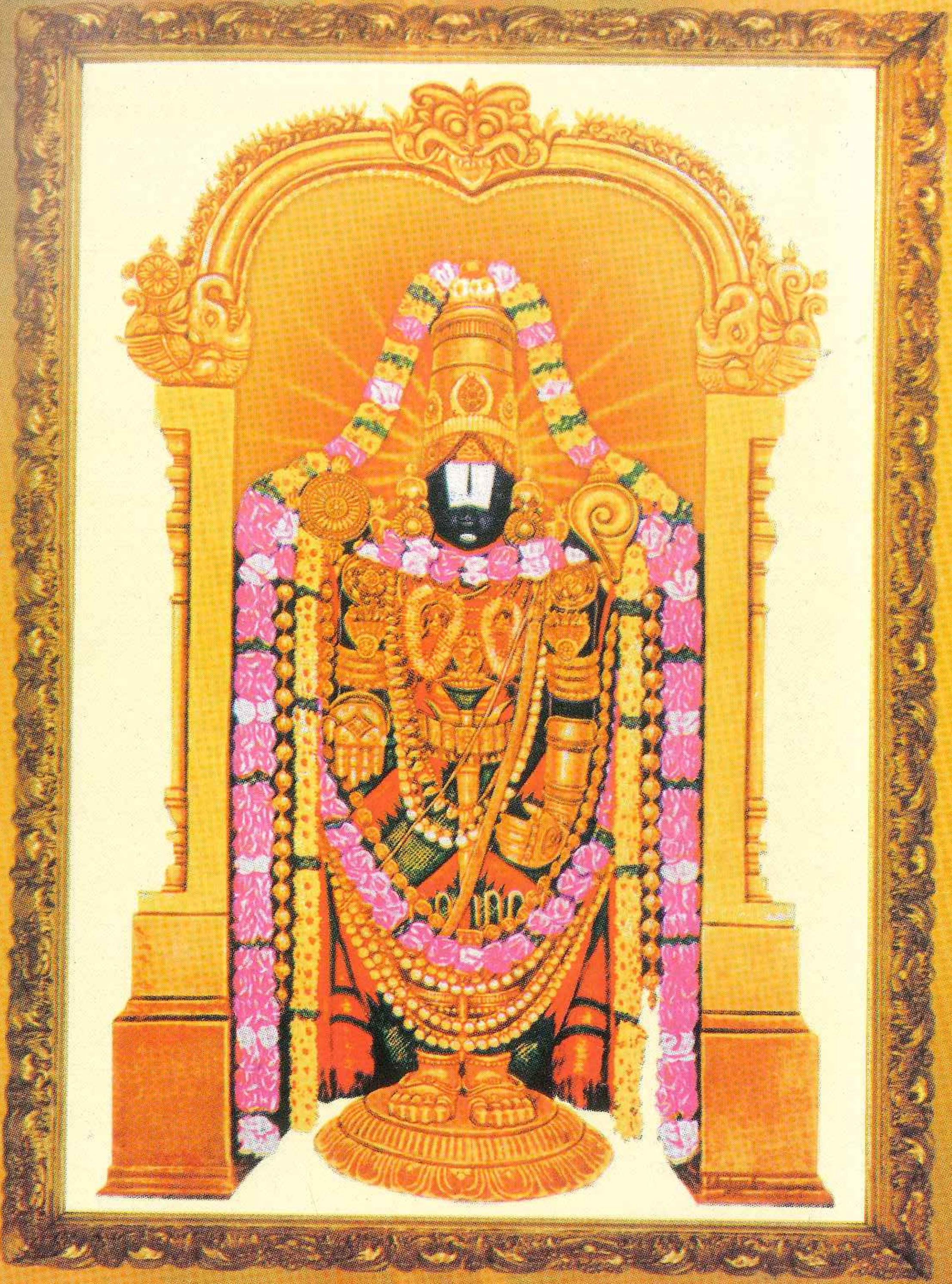

हमारे कुल देव विश्व के एकमेव बड़ा देव
श्री वेंकटेश्वर बालाजी के श्री चरणों में
यह ग्रन्थ समर्पित है

श्रीमद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मुलमहासंस्थान पलिमारु श्री हृषीकेश शाखा पीठ के प्रधान देव

श्री सीता समेत श्री राम भगवान

संकट मोचन श्री पंचमुखी हनुमान

कपिमुखमपि पूर्वं दक्षिणे नारसिंहम् ।
गरुड़मुखमपि पश्चात् उत्तरे सूकरास्यम् ।
ह्यवदनमतोर्ध्वं चिन्तयेद् वायुसूनुम् ।
सकलदुरितहरं रामदूतं नमामि ।।

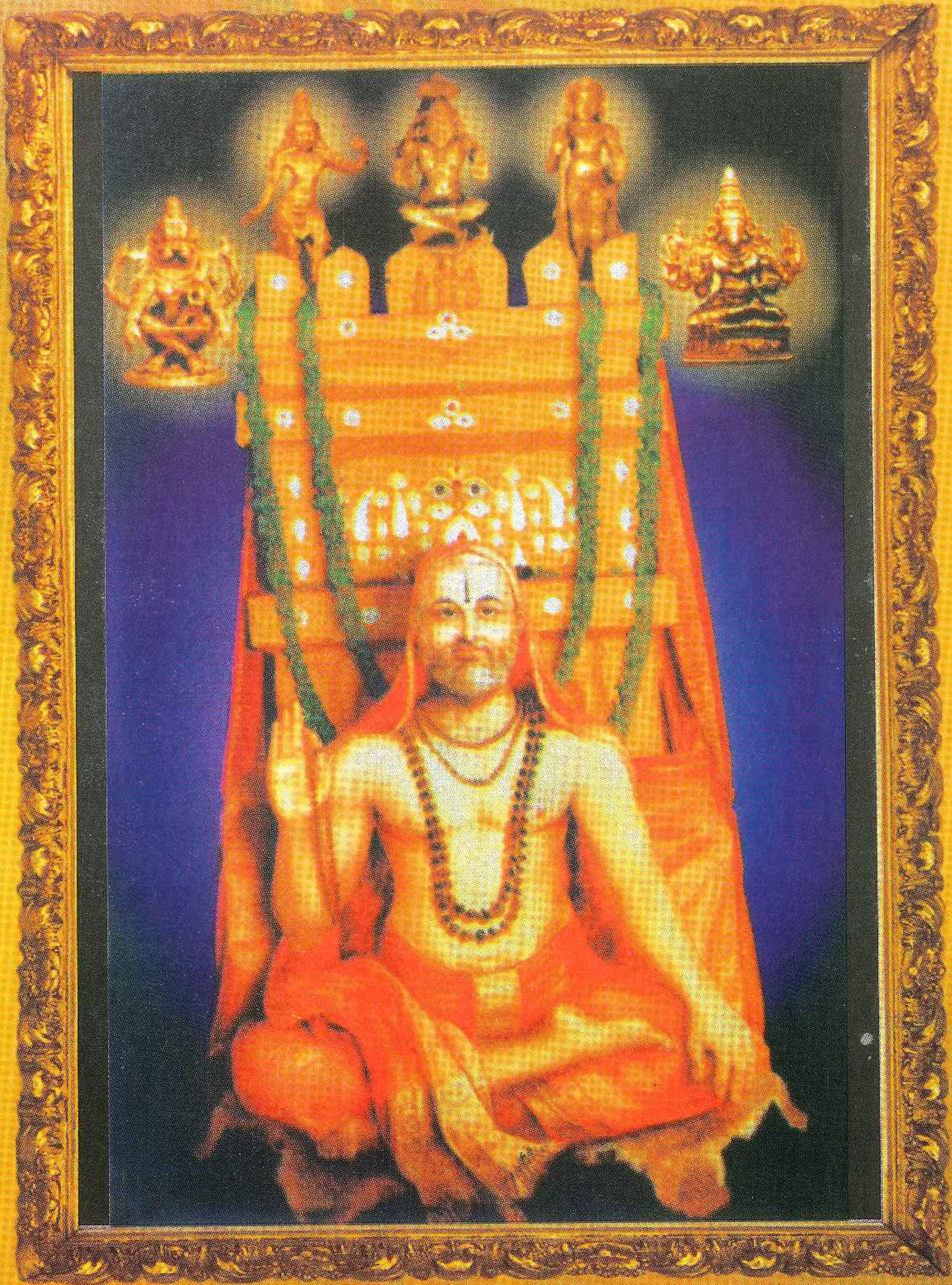

अपेक्षितप्रद मन्त्रालय के श्री राघवेन्द्र स्वामी जी

पूज्याय राघवेन्द्राय सत्यधर्मरताय च।
भजतां कल्पवृक्षाय नमतां कामधेनवे।।

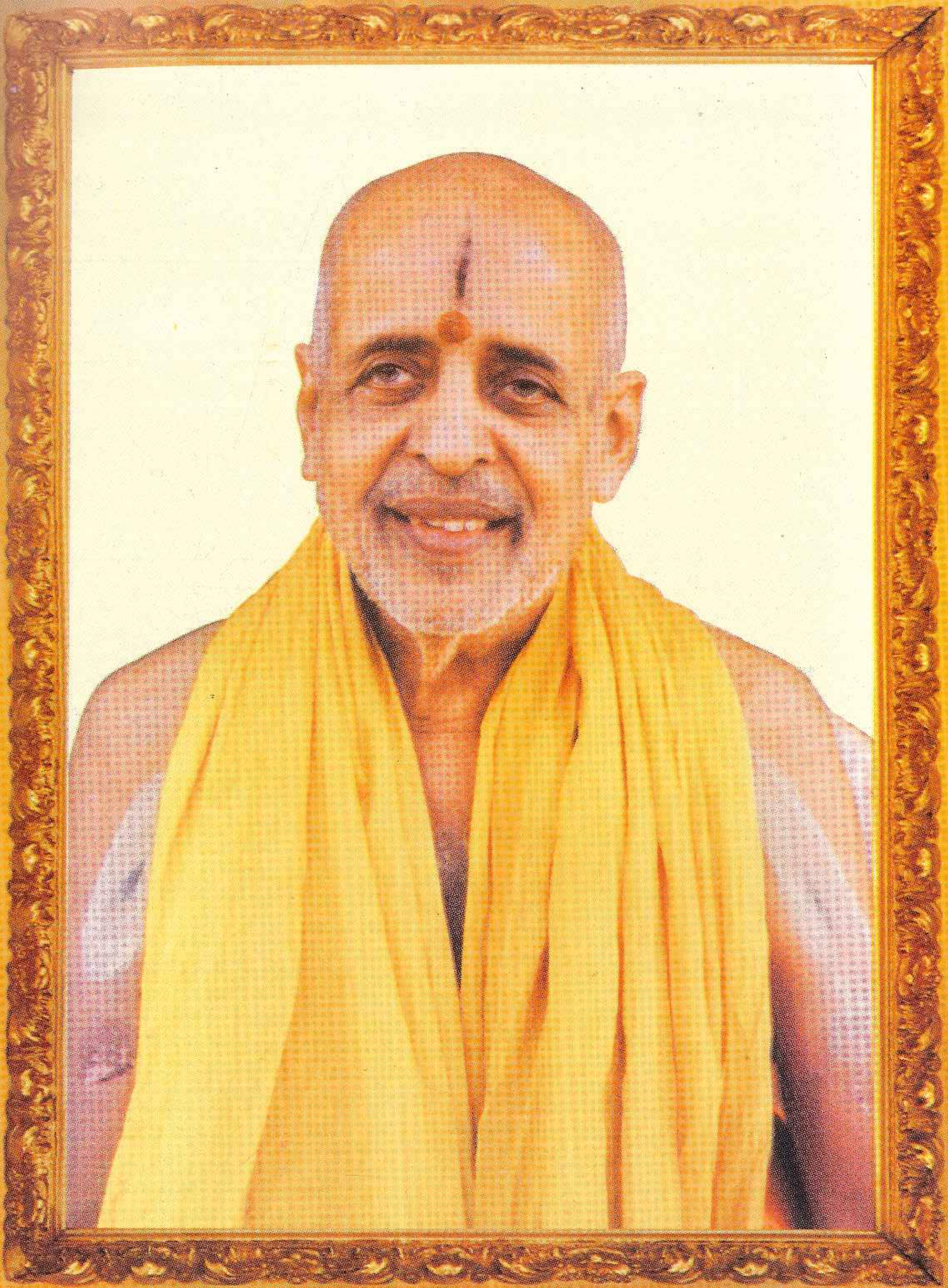

सर्वमान श्री १००८ श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी

ब्रह्मचर्य हरि प्रीति सुविद्या वादशालिनः ।
इष्टदान कष्टहर्तॄन्‌ः विद्यामान्यान् मुनीन्नुमः ॥

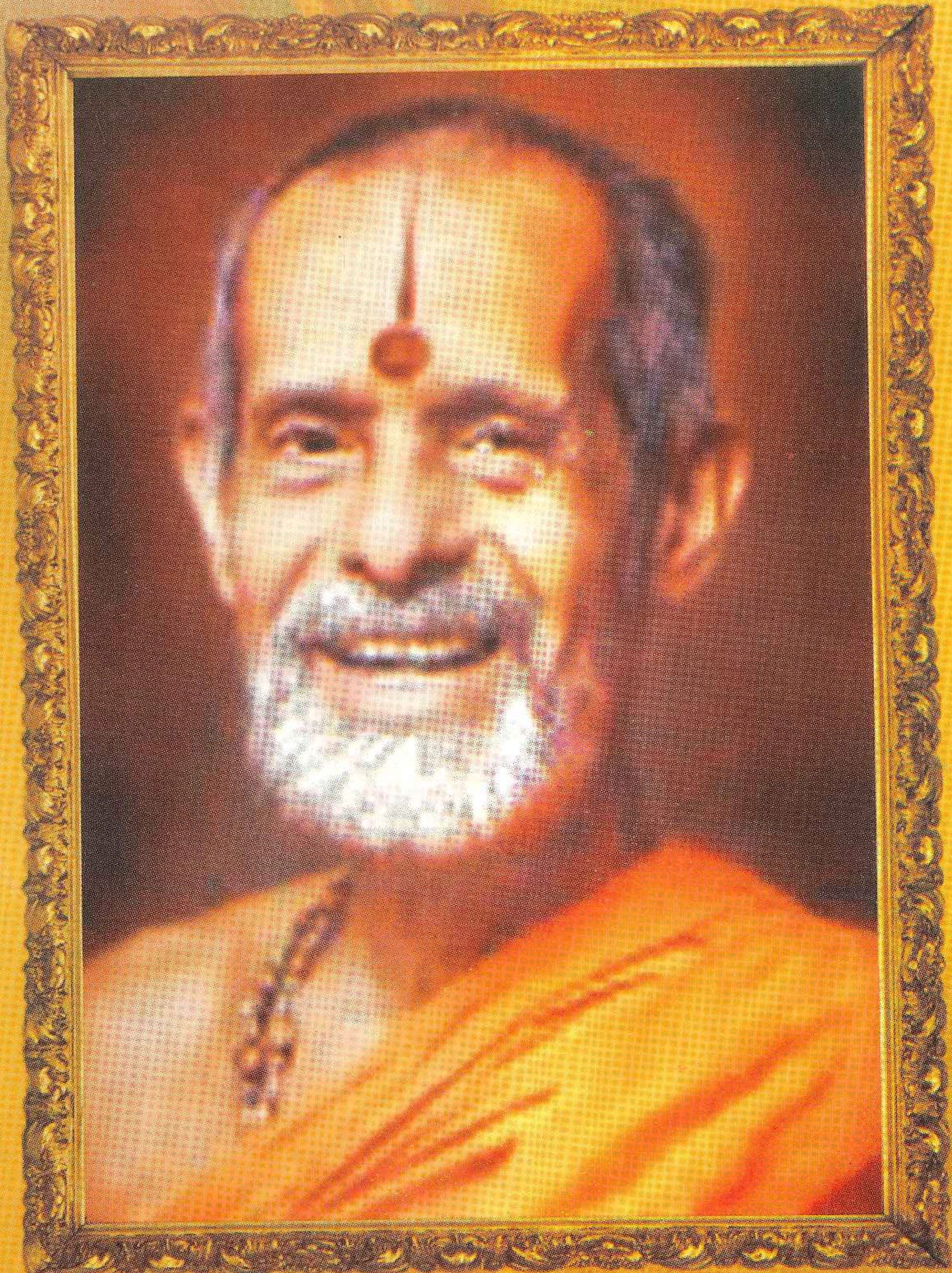

श्रीमद् जगद्गुरुमध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधीश
श्री १००८ श्री विश्वेशतीर्थ जी महाराज

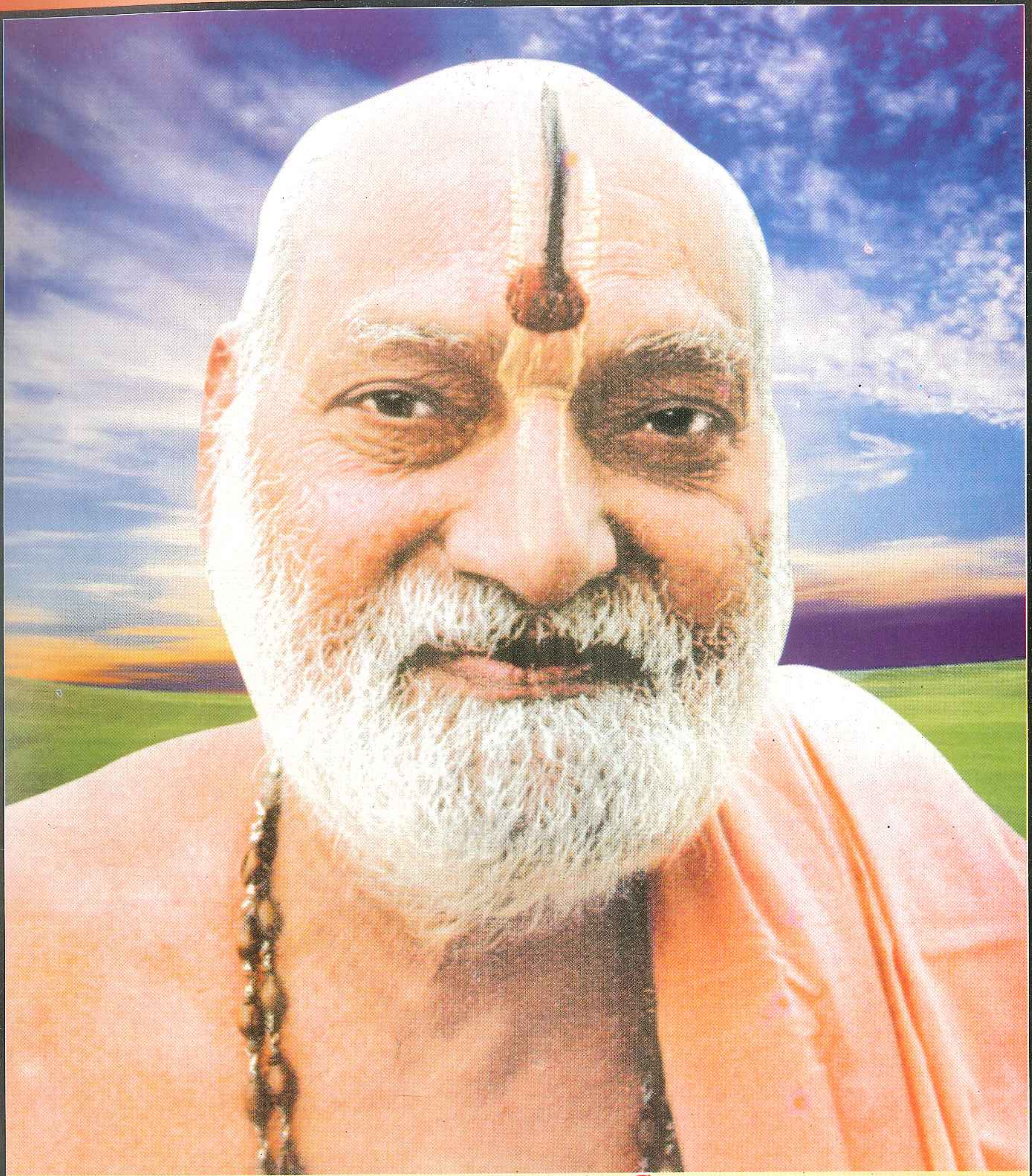

ग्रन्थ कर्ता

मध्व मठ प्रयाग के पूर्व पीठाधीश्वर

श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी

विद्यामान्याननुसृत्य सुविद्याप्रसरणं मुदा।
प्रयागे अकरोन्नित्यं विद्यावल्लभ गुरुं भजे।।

हमारे प्रकाशन को आर्थिक सहयोग देने वाले

1.	**श्रीमती अरुणा आचार्य** उद्योगपति, मुम्बई	15000.00
2.	**श्री अनन्त प्रसाद श्रीवास्तव** (निवृत्त सहायक निबंधक) उच्च न्यायालय, इला0	5000.00
3.	**श्री गिरिधारी लाल मिश्र** (सम्पादक सर्वमूल)	5000.00
4.	**श्री सुरेन्द्र कुमार जायसवाल** एडवोकेट, फाफामऊ, इलाहाबाद	5000.00
5.	**श्री ईश्वर शरण श्रीवास्तव**	5000.00
6.	**श्री लाल प्रताप सिंह**	5000.00
7.	**श्री रामचन्द्र सिंह** (निवृत्त लेखाधिकारी) ए.जी., यू.पी.	5000.00

हम इनके कृतज्ञ हैं।
प्रकाशक

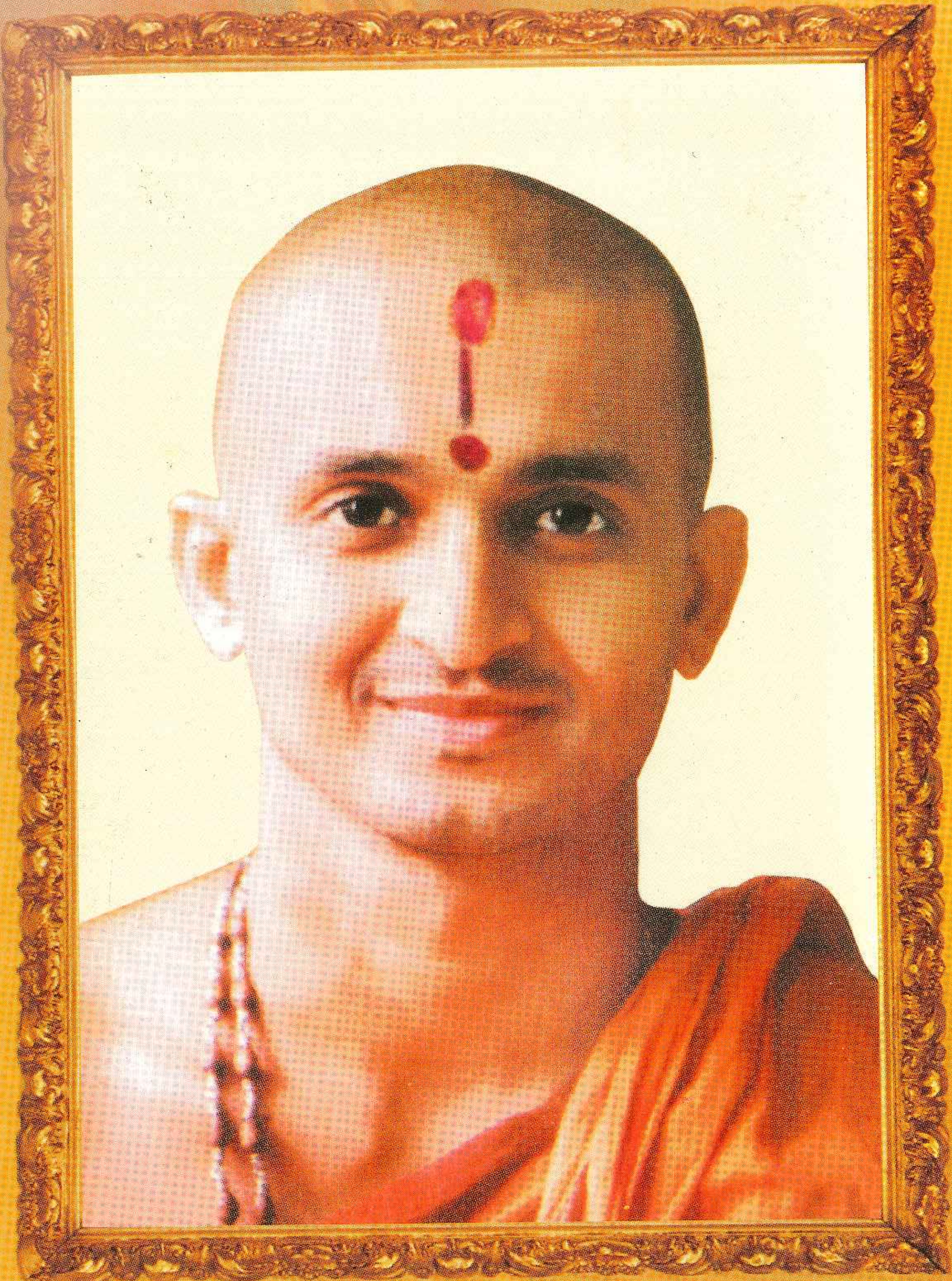

हमारे स्वरूपोद्धारक एवं दीक्षा गुरु

श्रीमद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधीश

श्री 1008 विद्याधीश स्वामी जी महाराज

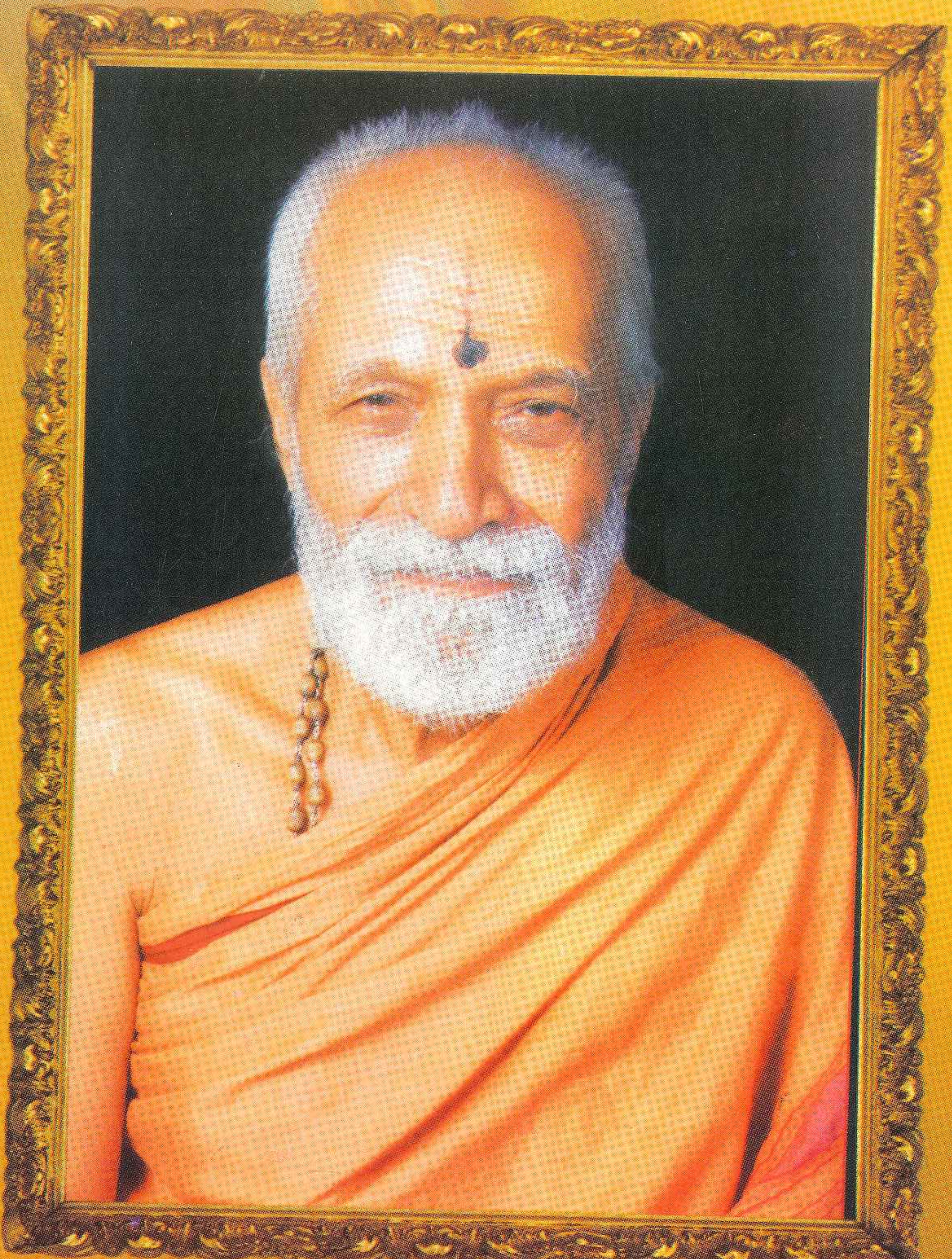

प्रयागपीठाधिपति

श्री १००८ श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी महाराज

श्री राम श्री

श्री मद्भागवत महापुराणम्

प्रथम स्कन्धः

प्रथम स्कन्ध का विषय सूची

क्र0	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	अध्याय एक	श्रीसूतजी से शौनकादि ऋषियों का छः प्रश्न	1-6
2.	अध्याय दो	एकाग्रचित्त से भगवद कथा का श्रवण और कीर्तन ही कलियुग से छुटकारा पाने का एक मात्र साधन	7-12
3.	अध्याय तीन	भगवान के पुरुष आदि अवतार और उनका संक्षिप्त चरित्र	13-20
4.	अध्याय चार	वेदव्यास जी का असन्तोष	21-25
5.	अध्याय पॉच	नारद जी से मन की अतृप्ति के लिए कारण सम्बन्धी प्रश्न और नारद जी का उत्तर एवं उनका पूर्व अनुभव	26-33
6.	अध्याय छः	नारद जी के पूर्व जन्म का वृत्तान्त	34-38
7.	अध्याय सात	अश्वत्थामा द्वारा द्रोपदी के पुत्रों का मारा जाना और शिशु संहार के पूर्व देखे हुए स्वप्न का वर्णन	39-45
8	अध्याय आठ	गर्भ मे परीक्षित् की रक्षा तथा कुन्ती के द्वारा श्री कृष्णि की स्तुति	46-51
9.	अध्याय नौ	धर्मराजा के दुःख परिहार के लिए भीष्म के पास जाना भीष्म का उपदेश तथा उनका देह-त्याग	52-58
10.	अध्याय दस	श्री कृष्ण का द्वारका - गमन	59-65
11.	अध्याय ग्यारह	परीक्षित का जन्म ब्राह्मणों द्वारा परीक्षित के भविष्य का कथन तथा धर्म राजा का अश्वमेध यज्ञ	66-68
12.	अध्याय बारह	विदुर के उपदेशानुसार धृतराष्ट्, गान्धारी और कुन्ती का हिमालय जाना	69-74
13.	अध्याय तेरह	अपशकुन देखकर युधिष्ठिर का शंका करना और अर्जुन का द्वारका से लौटना	75-77
14.	अध्याय चौदह	कृष्ण के वियोग से अर्जुन की व्यथा	78-80
15.	अध्याय पन्द्रह	श्री कृष्ण के अवतार की समाप्ति, कलियुग का आरम्भ जानकर परीक्षित को राज्य देकर पाण्डवों का स्वर्ग सिधारना	81-82
16.	अध्याय सोलह	परीक्षित की दिग्विजय तथा धर्म और पृथ्वी का संवाद	83-86
17.	अध्याय सत्रह	महाराज परीक्षित् द्वारा कलि का दमन	87-90
18.	अध्याय अट्ठरह	राजा परीक्षित् को शृंगी ऋषि का शाप	91-95
19.	अध्याय उन्नीस	पश्चात्ताप से गंगातट पर राजा परीक्षित् का प्रायोपवेश के लिए बैठना तथा ऋषियों का आगमन	96-97
20.	अध्याय बीस	शुकदेव का आगमन, उनका स्वागत तथा पूजा और परीक्षित् द्वारा मृत्यु के समय करने योग्य कर्मो के सम्बन्ध मे	98-99

य सूची

	पृष्ठ संख्या
।	1-6
कीर्तन	
साधन	7-12
ा संक्षिप्त चरित्र	13-20
	21-25
ा सम्बन्धी प्रश्न	
नुभव	26-33
	34-38
जाना और शिशु	
	39-45
ा श्री कृष्णि की	
	46-51
ं पास जाना भीष्म	
	52-58
	59-65
ं भविष्य का	
	66-68
और कुन्ती	
	69-74
रना और अर्जुन	
	75-77
	78-80
ुग का आरम्भ	
का स्वर्ग सिधारना	81-82
वी का संवाद	83-86
	87-90
	91-95
का प्रायोपवेश	
।	96-97
था पूजा और	
कर्मों के सम्बन्ध मे	98-99

अध्याय - 1
श्री
श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
प्रथम स्कन्धः
अथ प्रथमोऽध्यायः

रुद्रादि देवता कलि के प्रभाव से उत्पन्न पाप को दूर करने के लिए भक्ति पूर्वक परमात्मा से प्रार्थना ० वर्षों तक तप करके शुद्ध हुई सत्यवती देवी में पराशर ऋषी से व्यास जी के नाम से भगवान प्रकट स जी ने दैत्यों के प्रभाव से और ऋषियों के शाप से नष्ट हुए वेद रूपी कल्पवृक्ष का पुनः उद्धार किया। मन्द बुद्धि वाले तथा कम आयु वाले लोगों पर करुणा कर व्यास जी ने वेदों का विभाजन किया। वेद र्णय करने वाले ब्रह्मसूत्रों की रचना किया। जिनको वेद में अधिकार नहीं है ऐसे सज्जीवों को मोक्ष के हेतु अठारह पुराणों की रचना किया। इन पुराणों में प्रसिद्ध तथा ब्रह्मसूत्रों के व्याख्यान रूप त् महापुराण है। इसमें बारह स्कन्ध हैं तथा अठारह हजार ग्रन्थात्मक हैं। (बत्तीस अक्षर का एक)। इस भागवत् पुराण की रचना करने की इच्छा से यद्यपि स्वयं विघ्न रहित होने पर भी ज्ञानी जनों आरम्भ में मंगलाचरण अवश्य करना चाहिए ऐसा उपदेश करने के उद्देश्य से तथा अध्ययन करने याण के लिए रमा ब्रह्मादि समस्त देवताओं के इष्ट देवता श्रीमन्नारायण का, व्यास रूपी भगवान यतः) इस श्लोक में स्मरण करते हैं।

दि जीव जड़ात्मक दिखाई देने वाले इस जगत की यथा योग्य सृष्टि, स्थिति, लय, नियमन करने न, अज्ञान, बन्ध और मोक्ष को देने वाले श्रीमन्नारायण ही हैं। वेदों के तात्पर्य से लक्ष्मी ब्रह्मादियों के वय व्यतिरेक अनुमानों से भी श्रीमन्नारायण ही इस जगत के कर्ता होना सिद्ध होता है। उनको जगत दार्थों का सम्पूर्ण ज्ञान है वे सर्वज्ञ हैं। लक्ष्मी ब्रह्मादि समस्त जगत के लिए स्वामी है। विष्णु का अन्य नहीं है। श्री विष्णु ने ही प्रेम से ब्रह्माजी को वेदों का उपदेश किया। इनके अनुग्रह के बिना ब्रह्मादि वान को भली भाँति नहीं जान सकते हैं।

से दूसरे दिया को जलाने की भाँति भगवान विष्णु ने अपने मूलरूप से अनन्त रूपों को व्यक्त किया

से प्रतिबिम्म दिखलाई पड़ता है ऐसा ही स्वरूप उपाधि देह में भगवान का प्रतिबिम्ब ही जीव है। से मिट्टी से घड़ा बनाता है वैसे ही श्री हरि जड़ प्रकृति से जड़रूप जगत की सृष्टि करते हैं। इन तीन ष्टि सत्य है न कि मिथ्या। इससे श्री विष्णु को कोई प्रयोजन नहीं है। ऐसा कहने से सृष्टि व्यर्थ नहीं योजन के लिए ही इस प्रकार की सृष्टि भगवान करते हैं। करुणासागर भगवान के लिए सृष्टि की

रचना करना उनका स्वभाव हैं। भगवान अपनी महिमा से ही सदा समस्त दोषों से रहित तथा नित्य मुक्त है। दुःख रहित हैं, परमानन्द स्वरूप हैं। इन सब विशेषणों से **विशिष्ट** होने से ही श्री हरि समस्त कल्याण गुण परिपूर्ण हैं। समस्त जगत के पालक हैं तथा समस्त जगत से विलक्षण (भिन्न) हैं। इस प्रकार से इस भागवत ग्रन्थ के द्वारा भगवान का ध्यान करें। ।1। ।

इस प्रथम श्लोक में समस्त पुराणों का सार बतलाया गया है। केवल मंगलाचरण के निमित्त नारायण का स्मरण नहीं किया गया है किन्तु इस भागवत के लिए श्रीमन्नारायण ही विषय हैं। सर्वोत्तम परमात्मा के ज्ञान को उत्पन्न करने वाले परम भागवत धर्म इसमें कहे गये हैं। जो सज्जीव इन धर्मों को जानना चाहते हैं उन्हें अपने से उत्तम में मात्सर्य रहित होना चाहिए। श्री हरि को सर्वोत्तम तथा सर्वकर्ता जानने से वे मोक्ष देते हैं इतना ही नहीं किंतु आध्यात्मिक, अधिदैविक, आधिभौतिक, समस्त दुःख समूल नष्ट हो जाते हैं! सर्वज्ञ व्यास रूपी परमात्मा ने नारद जी की प्रार्थना पर मनुष्यों पर अनुग्रह करने की इच्छा से श्रीमद्भागवत ग्रन्थ की रचना की। यह भागवत, श्रवण करने में आनन्ददायक और बहुअर्थ गर्भित है। इसीलिए इसको **''श्रीमद् भागवत''** कहते हैं। इस भागवत पुराण को 'श्रीमद्' विशेषण देने से अन्य पुराणों से इसका श्रेष्ठ होना सिद्ध होता है। बादरायण कहे हैं कि-

राजंते तावदन्यानि पुराणानि सतांगणे।
यावन्न दृश्यते साक्षाच्छीमद्भागवतं परं।

भागवत पुराण की रचना से पूर्व अन्य पुराण प्रकाशमान थे। इस भागवत् में स्वर्गादि नश्वर फल को देने वाले धर्मों के विषय में तथा अर्थ और काम के विषय में कहने का कोई प्रयोजन नहीं है। इस ग्रन्थ में भगवान का अपरोक्ष ज्ञान उत्पन्न करके उनके प्रसाद से शाश्वत मोक्ष को प्रदान करने वाले भगवद् भक्तों के भक्ति आदि निवृत्त धर्मों को अमुख्य रूप से प्रतिपादन किया गया है। इसमें मुख्य रूप से समस्त कालों में दोषरहित, गुण पूर्ण, काल, देश तथा गुणों से अपरिच्छिन्न (अनन्त) श्री मन्नारायण ही प्रतिपादित हैं।

''प्रोज्झित कैतवः'' और **''परमः''** ऐसे दो विशेषण देकर फलेच्छारहित निष्काम कर्म और भगवदर्पण बुद्धि से किया हुआ धर्म ही निवृत्त धर्म होना बतलाया गया है।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्। ।गीता। ।

(तत्क्षणात् और सद्यः यह अधिकारी भेद को बतलाते हैं।)

गुरुमुख के द्वारा इस शास्त्र में बतलाए गए धर्मों को भली भाँति जानकर गुरु तथा अपने से उत्तम जनों की और सर्वोत्तम श्री हरि की सेवा करने में कुशल, योग्य सज्जीव, को इस भागवत का अवश्य अध्ययन करना चाहिए। ऐसा करने पर श्री हरि उनके हृदय कमल में **आ** विराजते हैं। भगवान में भक्ति दृढ़ होती जाती है। ऐसी दृढ़ भक्ति के वश में होकर भगवान उनके हृदयकमल को छोड़कर नहीं जाते हैं। तत्क्षणात् और सद्यः यह अधिकारी भेद को बतलाते हैं। जो निरन्तर श्रवणादि करते हैं उनके लिए **''तत्क्षणात्''** अविलम्ब दर्शन देते हैं। जो अभी साधन सामग्री इकट्ठा करने में रत हैं उनको अन्य पुराणों के द्वारा जो दर्शन होता है उससे भी **''सद्यः''** शीघ्र इस भागवत पुराण के श्रवण करने से भगवान दर्शन देते हैं। इस प्रकार इस भागवत के लिए अधिकारी कौन है? श्रवण और

अध्ययन करने वालों को इससे क्या प्रयोजन है? इस ग्रन्थ में मुख्य विषय क्या है? इन सब को जानकर अधिकारी विषय, फल, और संबंध स्मरण करते हुए इस ग्रन्थ का अध्ययन अथवा श्रवण आरम्भ करने वाले को श्री हरि महा फल देते हैं।।2।।

अधिकारी, विषय और प्रयोजन जानने पर भी अविलम्ब अध्ययन आरम्भ करने के लिए उस कार्य की प्रशंसा और उस कार्य को अवश्य करने का विधान यह दोनों सहायक होते हैं। इसलिए वेद व्यास जी श्रीमद्भागवत की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि इस ग्रंथ का श्रवण और अभ्यास अवश्य करना चाहिए। देवलोक में वाँछित फल को देने वाला एक वृक्ष है जिसे कल्पवृक्ष कहते हैं। भक्तों से वांछित पुरुषार्थों का वर्णन करने से वेद भी कल्पवृक्ष कहलाते हैं। सज्जीवों का उद्धार करने के लिए वेदव्यास जी द्वारा वेद रूपी कल्पवृक्ष के गिराया गया पक्व फल श्रीमद्भागवत है। इस भागवत् को श्री शुकदेव और सूत आदि पौराणिक ने मोक्ष के साधन रूप से तथा वेदों के व्याख्यान रूप से निरूपण किया है। जैसे तोता वह फल को खाने से वह अमृतमय होता है वैसे ही अमृतरस से युक्त यह भागवत श्रेष्ठ है। इस भागवत का जन्मजन्मों में लिंग शरीर भंग होने तक ही नहीं प्रत्युत मोक्ष में भी इसका पुनः पुनः आदर के साथ श्रवण और अभ्यास करने का विधान है। ऐसे अभ्यास करने वाले सज्जीवों द्वारा आनन्द का अनुभव करना तो अद्भुत है। ऐसे भक्तों को देखने से वेद व्यास जी अत्यन्त संतुष्ट होते हैं यही भागवत श्रवण का फल है। वेदव्यास जी साक्षात् नारायण होने से उनका सन्तोष जीवों को समस्त पुरुषार्थ देने वाला है इसलिए समस्त सज्जीवों को इस ग्रंथ का श्रवण और मनन करना चाहिए।।3।।

निमिष नामक ऋषियों के तप करने से और निमिष ऋषियों के सेवन योग्य फल देने वाले वृक्षों से भरा हुआ होने से वह क्षेत्र नैमिषारण्य के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ पर नृसिह भगवान आदि देवता निवास करते हैं। ऐसे महान पवित्र क्षेत्र में शुनकऋषि के पुत्र त्रिकालज्ञ तथा वेद मंत्रों के द्रष्टा शौनक इत्यादि ऋषियोंने वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति के लिए तथा श्री विष्णु दर्शनार्थ आवश्यक पुराण धर्मों को जानने के लिए तथा सज्जनों की रक्षा के लिए एक सहस्र वर्ष तक किए जाने वाले सत्रयाग आरम्भ किए थे। भागवत कहना आरम्भ करके वेद व्यास जी सत्र याग की कथा कहने से सिद्ध होता है कि भगवान का तत्व ज्ञान ही मोक्ष का साधन है किंतु, यज्ञ यागादि कर्म नहीं।।4।।

एक दिन प्रातः काल में यज्ञ में दीक्षित ऋषिगण औपासनादि नित्य कर्म करने के बाद विनीत होकर बैठे हुए थे। उस समय उन्होंने संयोग वश सूत को अपने पास आते हुए देखा। उनकी योग्यतानुसार आदर सत्कार किये। सूत जी सुख से आसन पर बैठे सर्वज्ञ होने पर भी संसार में साधन करने वाले सज्जीवों पर अत्यन्त कृपा से उपकार करने के हेतु से शौनकादि ऋषियों ने सूत जी से प्रश्न किए। ("तु") शब्द से स्पष्ट किया गया है कि संसार के लोगों पर दया करके प्रश्न किया। वे नहीं जानते थे और जानने के लिए प्रश्न किया ऐसा नहीं।।5।।

बादरायण सर्वज्ञ तथा श्री मन्नारयण के अवतार हैं। वे समस्त तत्वों के वेत्ता हैं। वादरायण की कृपा से शुकदेव तथा अन्य ऋषिगण अपने-अपने योग्यतानुसार तत्व को जानते हैं।) हे सूत! आप भगवद्भक्त हैं आप बादरायण से रचित भारत आदि इतिहास को, और पुराण तथा उप पुराणों को जानते हैं इतना ही नहीं याज्ञवल्क्य इत्यादियों के द्वारा रचित धर्म शास्त्रों को भी जानते हैं। बादरायण और ब्रह्मादि अपरोक्ष ज्ञानियों के अनुग्रह से अपनी योग्यतानुसार वेदों के अतिरिक्त समस्त पौरुषेय ग्रन्थों का अध्ययन और व्याख्यान किए हैं। इसलिए हम

जो प्रश्न करते हैं उसका ठीक-ठीक उत्तर देने की सामर्थ्य आप में है।।6-7।।

गुरु अपने भक्तियुक्त शिष्य को रहस्यमय तत्व को छिपाए बिना बतलाते हैं। आप समस्त पुराणों को जानते हैं उन पुराणों में मुमुक्षुओं के कल्याणार्थ जो मुख्य साधन होना आप उपक्रमादि तात्पर्यलिंगों द्वारा निष्पक्षपात दृष्टि से निर्णय किए हैं, उसी को हमें बतलाने की कृपा करें।।8-9।।

इस कलियुग में लोग बड़े आलसी, अल्पायु मन्दबुद्धि और विविध प्रकार के रोग-शोक से पीड़ित रहते हैं। उनमें कर्म करने की शक्ति नहीं होती है। अत्यल्प पुण्यवान होने से उनके साधन में विघ्न ही अधिक है इतना ही नहीं कुष्टादि रोगों से पीड़ित रहते हैं। रागादि दोषों से उनके मन भरे रहते हैं। एक दो को छोड़कर सभी इस प्रकार के दुःखों के कारण श्रेय साधनों से दूर हैं। शास्त्र तो अर्थशास्त्र इत्यादि अनेक प्रकार के हैं। शिव सर्वोत्तमत्व, शक्ति सर्वोत्तमत्व मतमतांतर को मानने वाले अनेक वाद अपनी अपनी बुद्धि से श्रेय साधनों को बतलाए हैं। इसी प्रकार कर्म भी अनेकानेक बतलाए हैं। हर एक के कष्ट साध्य होने से उनका आचरण करना कठिन हैं। शक्ति हीन जनों से इन सब का श्रवण करना, इन सब पर विचार करना तथा यही उत्तम साधन हैं ऐसा निर्णय करना इतना सुलभ नहीं हैं। सूत जाति में जन्म लेने पर भी आप इन दोषों से रहित हैं। आप समस्त शास्त्रों का अध्ययन भी किए हैं मोक्ष के लिए जो कारण है और जो कल्याण का साधन है और जिसके श्रवण करने से परमात्मा अविलम्ब प्रसन्न होकर मोक्ष प्रदान करने की कृपा करते हैं और जिसका श्रवण मुमुक्षुओं का मन निर्मल करके मोक्ष का कारण बनता है ऐसे उत्तम साधन को लोक कल्याणार्थ हमें बताइए ।।10-11।।

हे सूत जी! आप श्री हरि के कृष्णावतार को जानते हैं वह पंचरात्रागम के अनुसार कर्म करने वाले यादवों के पालक के रूप में जन्म लिए हैं। वसुदेव और देवकी से प्रकट हुए।।2।।

कौन से ऐसे विशेष कार्य करने के लिए श्री हरि ने अवतार लिया। उनका अवतार सदा समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए ही तो है। ऐसे श्रेष्ठ भगवान श्री कृष्ण जी का चरित्र श्रवण करने को हम उत्सुक हैं उसका वर्णन कीजिए।।13।।

मुक्ति योग्य जीव भगवद्भक्तों की सेवा आदि शारीरिक अभ्यास से तथा अध्ययन पाठ प्रवचनादि रूप वाचिक अभ्यास करके तद्द्वारा ध्यान इत्यादि मानसिक अभ्यास से अर्थानुसंधान पूर्वक श्री हरि के नामोच्चारण करने पर इस भयंकर जनन मरण रूप संसार से अविलम्ब छुटकारा पाता है। क्योंकि अहंकार के द्वारा जीवों को बन्धन में डालने वाले रुद्रादि देवता श्री हरि के भय से कार्य करते हैं।।14।।

विष्णुपाद से उत्पन्न गंगा जी की स्नानपानादि से जो सेवा करते हैं वे उनको पवित्र करती हैं। परन्तु वह साक्षात् तत्व का उपदेश नहीं कर सकती हैं। वह अपने स्नान करने से उत्पन्न पुण्य के फल रूप में योग्य जींवों को गुरु के द्वारा उपदेश कराने में मार्ग प्रशस्त करती हैं तथा उन्हे ज्ञान द्वारा पवित्र कर देती हैं। भगवद्भक्त तो स्वयं उपदेश करने में सक्षम होने से शीघ्र ही पवित्र कर देते हैं। भगवद्भक्तों की सेवा ही जब पवित्र करने वाली है तब भगवान का नाम स्मरण पवित्र करने वाला हैं इसमें क्या संशय है।।15।।

कलि के निमित्त से होने वाले सम्पूर्ण दोषों को परमात्मा का चरित्र नाश कर देता है। ब्रह्मादि देवता जिन भगवान के उत्तम कार्यों का सदा स्मरण करते रहते हैं ऐसे भगवान की महिमा का वर्णन करने वाले चरित्र को मन

की शुद्धि चाहने वाला कौन योग्यजीव श्रवण नहीं करेगा? सभी श्रवण करेंगे।।16।।

श्री हरि द्वारा अपने मूलरूप से वासुदेवादि चतुर्व्यूह रूपों को, नारायणादि पंचरूपों को, मत्स्यादि दशरूपों को, केशवादि दामोदर तक बारह रूपों को, केशवादि कृष्णान्त चौबीस रूपों को कृष्णादि शतरूपों को, विश्वादि सहस्त्र रूपों को, परादि अनन्त रूपों को धारण करके, किए गए चरित्रों का ब्रह्मादि अपरोक्ष ज्ञानी सदा भक्तिपूर्वक गान करते हैं। कृष्णादि श्री हरि के चरित्र दोष रहित तथा मोक्षादि पुरुषार्थ को देने वाले हैं। श्रद्धापूर्वक, हम उन सब का श्रवण करना चाहते हैं। उन्हें बतलाने की कृपा करें। भगवान के चरित्र को श्रद्धापूर्वक श्रवण करने से कलि के निमित्त से होने वाले समस्त दोष दूर होते हैं। हे ज्ञानी सूत! सर्व स्वतंत्र श्री हरि अपनी स्वरूप भूत इच्छा से जिस प्रलय जल में विहारादि क्रीडा किए हैं ऐसे मोक्ष देने वाली क्रीडाओं का हमें विस्तार से निरूपण करें।

स्वैरं-श्री हरि ने मूल रूप से अथवा अवतार रूप से जो कार्य किये हैं उसके लिए उनकी इच्छा ही कारण है, अन्य किसी से अधीन होकर नहीं। परमात्मा को, जड़ अंतःकरण नहीं है तब इच्छा कैसे होगी? परमात्मा को स्वरूप भूत इच्छा है। इसको "आत्ममायया" से बतलाये हैं। माया शब्द का अर्थ इच्छा है। इसके लिए स्कन्द पुराण का प्रमाण-

महामायेत्यविद्येति नियतिर्मोहिनीति च।
प्रकृतिर्वासनेत्येवं तवेच्छानंत! कथ्यते।

श्री हरि की इच्छा स्वरूप भूत है। इसके लिए "**विष्णु संहिता**" का प्रमाण -

इच्छाशक्तिर्ज्ञानशक्तिः क्रियाशकिरितित्रिधा। शक्ति शक्तिमतोश्चापि न भेदः कश्चनेष्यते।।17-18।।

भगवान श्री हरि का चरित्र श्रवण करने पर किसी अन्य को तृप्ति हो सकती है। परन्तु हमें अनेक बार कथा श्रवण करने पर भी तृप्ति नहीं है। परमात्मा की कथा रस का आस्वादन करने वाले सज्जीवों के लिए प्रत्येक शब्द, प्रत्येक वाक्य, प्रत्येक श्लोक अत्यन्त मधुर हैं। भगवान की कथा में जीवों को अन्धन्तमस से उद्धार करने की सामर्थ्य है। उनके चरित्र में कोई दोष नहीं है इसलिए पुनः पुनः श्रवण करने के लिए हमें अधिक उत्साह है। षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न श्री हरि का महात्म्य सामान्य जन नहीं जान सकते हैं। भगवान अपने अवतारों में अप्राकृत देह से ही व्यक्त होते हैं परन्तु भ्रम से मनुष्यों जैसी प्राकृत देह दिखाई पड़ती है। इस प्रकार उपासना करने वालों को समस्त ऐहिक और आमुष्मिक पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं। ऐसे अप्राकृत देह वाले विशिष्ट तथा ब्रह्म रुद्रादियों के नियामक भगवान कृष्णावतार में बलराम के साथ अनेक पराक्रम किये हैं। वे मनुष्यों से सम्भव नहीं हैं। उन समस्त पराक्रमों को हमें कृपा करके विस्तार से कहिए।।19, 20।।

यह नैमिषारण्य विष्णु और विष्णु के भक्तों के सन्निधान से वैष्णव क्षेत्र कहलाता है। इस कलियुग का राजा कलि है उसका प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है इसलिए हम अन्य कर्मों को त्यागकर इस वैष्णव क्षेत्र में दीर्घकाल तक किए जाने वाले सत्रयाग में दीक्षित हुए हैं। इसलिए हमें श्री हरि की कथा श्रवण करने के लिए पर्याप्त समय है।।21।।

मुमुक्षुओं के सत्वगुण से उत्पन्न होने वाले ज्ञान, भक्ति वैराग्य इत्यादि का कलियुग नाश करता है। इस कलि की पीड़ा से छुटकारा पाना इतना सुलभ नहीं है। कलि की बाधा से सम्पूर्ण छुटकारा पाने की इच्छा है। यही हमारा दृढ़संकल्प है। समुद्र को पार करने के लिए चतुर नाविकों की आवश्यकता होती है इसी प्रकार हमको कलि

की पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए आप जैसे विद्वान और तत्वदर्शी नाविक की आवश्यकता थी। भाग्यवश आप का दर्शन हुआ।।22।।

इस समय कृष्ण भगवान मूल रूप में मिलकर अव्यक्त हुए हैं। जब तक थे वे धर्म कार्य किया करते थे। ब्रह्मज्ञानियों के लिए हितकर भी थे। उनके अव्यक्त होने के पश्चात् धर्म की रक्षा करने वाला कोई न होने से धर्म अनाथ हुआ है। अब वह धर्म रक्षा के लिए किस का आश्रय लेगा। अर्थात् धर्म की रक्षा कैसे होगी?
अतः (1) मुख्य श्रेय साधन कौन-सा है? (2) बिम्बरूपी परमात्मा को कैसे जान सकते हैं। (3) कृष्णावतार के चरित्र क्या हैं? (4) मूलरूपी भगवान का क्या कार्य है? (5) अन्यान्य अवतारों में श्री हरि ने जो पराक्रम दिखाये हैं उनका क्या रहस्य है? (6) अब भविष्य में धर्म की रक्षा कैसे होगी? इस प्रकार के छः प्रश्न शौनकादि ऋषियों ने सूत जी से पूछा -

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे प्रथमोऽध्यायः।।

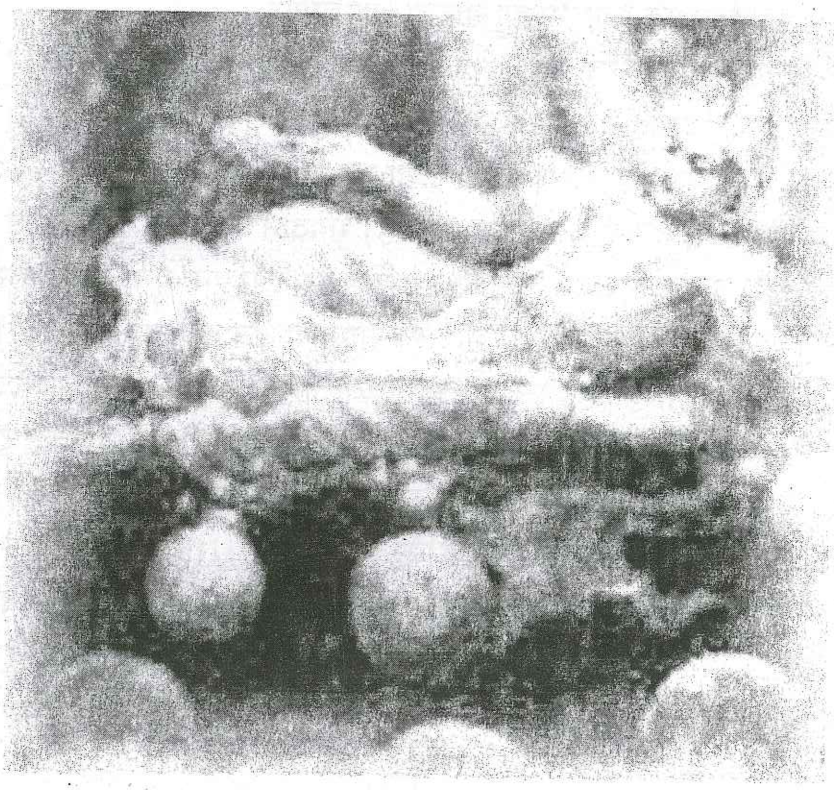

अध्याय - 2
अथ द्वितीयोऽध्यायः

इस प्रकार के श्रेयस साधन के छः प्रश्नों से रोम हर्षण ऋषि के पुत्र सूत ने संतुष्ट होकर कहा कि आप के प्रश्न भगवद् विषयक होने से अत्यन्त उत्तम हैं। उनके प्रश्नों के उत्तर में सूत जी ने श्री मद्भागवत की कथा कहना आरम्भ किया।।1।।

सूत जी ने कहा - शुकदेव जी को देहाभिमान न होने से उनकी देह रहने पर भी न रहे वैसा है। वे अभिमान रहित और विरक्त होकर सन्यास आश्रम स्वीकार करने के लिए अकेले वन को चले गये। तब उनके वियोग जनित क्लेश को सहने में असमर्थता का प्रदर्शन करते हुए वेद व्यास जी ने पुत्र!पुत्र! ऐसा कहकर पुकारा! रमा, ब्रह्मादियों के नियामक परमात्मा ही वेद व्यास के रूप से अवतार करने पर भी मनुष्य देह जैसे दिखाई देने वाला अप्राकृत देह विशिष्ट वेदव्यास जी मनुष्य के रूप में अवतार लेने से मनुष्य के जैसे ही चेष्टा करने का नियम होने से पामर जनों के जैसा नटना किए हैं। परन्तु भगवान को अधैर्य कहा है! पुत्र प्राप्ति के लिए तप किए वैसा बतलाना, अधैर्यादि का प्रदर्शन करना, दैत्य जनों के मोहनार्थ है, यथार्थ नहीं है। परमात्मा नित्य तृप्त और पूर्णानंद हैं। वेदव्यास जी के पुकारने पर प्रत्येक वृक्षों में से **ओं** की प्रतिध्वनि शुकदेव जीने दिया कि मेरे विरह से आप दुःखित न हों। इस प्रकार शुकदेव जी ने सर्वत्र वास करने की सूचना दिया। शुकदेव जी अहंकार तत्व के अभिमानी रुद्र देवता के अवतार हैं इसलिए उनका प्राणियों के हृदय में रहना स्वाभाविक है। शुकदेव जी ने ही सूत को परब्रह्म का ज्ञान दिया। परब्रह्म स्वतंत्र है, गुणपूर्ण है उनकी सामर्थ्य किसी अन्य के अधीन नहीं है। समस्त वेदों का मुख्य तात्पर्य उन भगवान में है। उनके चरित्र का श्रवण करना समस्त मुमुक्षुओं के लिए आनन्ददायक है। वह सब के देह में दीपक जैसे प्रकाशमान हैं। इस संसार में अज्ञान से, अंधों जैसे भ्रमण करने वाले जीवों के लिए संसार सागर से छुटकारा पाने के लिए उनका अनुग्रह अत्यावश्यक है। इसलिए ऐसे जीवों पर करुणा से श्री शुकदेवजी ने समस्त पुराणों में रहस्य रूप से प्रतिपादित श्री विष्णु का इस भागवत में वर्णन किया है। श्री मद्भागवत समस्त वेदों का सार है। समस्त पुराणों का आलोडन करने से श्री विष्णु ही सर्वोत्तम हैं ऐसा सिद्ध होता है। इस शरीर से आरम्भ करके परमात्मा तक के समस्त तत्वों का प्रतिपादन किया गया है। संसारी जीव जो अपने अज्ञान को दूर करना चाहते हैं वह इस भागवत पुराण का अध्ययन अवश्य करें। जीवों पर करुणा से ही शुकदेव जी ने इस पुराण को जगत् में मुनिगणों को उपदेश करके प्रकाश में लाए हैं। ऐसे शुकदेव जी जो वेदव्यास जी के पुत्र हैं उनको नमस्कार करता हूँ।।2,3।।

सूत जी ने ग्रन्थारम्भ में भागवत से प्रतिपाद्य श्री मन्नारायण, भागवत ग्रन्थ के रचयिता श्री वेद व्यास, भाग्य की अभिमानिनी रमादेवी, साधन कराने वालों में श्रेष्ठ वायु देवता, विद्याभिमानिनी सरस्वती देवी, वायु देवता के पश्चात् साधन कराने वाले शेष देवता इन सब की स्तुति किया। तत्पश्चात् श्री मद्भागवत आरम्भ किए।।4।।

हे शौनकादि ऋषियों आप श्रीकृष्ण भगवान के मूलरूप और उनके अन्य अवतार रूपों के चरित्र के विषय में प्रश्न किये हैं। यह सज्जीवो के लिए मोक्ष देने वाला तथा कल्याणकारी है।।5।।

इस प्रकार श्री कृष्ण के विषय में किये गये प्रश्नों से मन प्रसन्न होता है। जिसका मन प्रसन्न होता है उससे भगवान भी प्रसन्न होते हैं। मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म यही है कि जिससे प्रत्यक्ष दिखाई न देने वाले नारायण में अहैतुकी भक्ति जागृत हो (केवल परमात्मा के अनुग्रह ही चाहे)।।6।।

सर्वत्र व्याप्त भगवान में समस्त जगत् आश्रय किया हुआ है। मुमुक्षु द्वारा इस भगवान में भक्ति करने से उसको विषय वैराग्य और अकार वाच्य श्रीविष्णु का तत्वज्ञान उत्पन्न होगा। श्री कृष्ण भगवान की भक्ति करते ही वैराग्य और ज्ञान उत्पन्न होता है।।7।।

इस प्रकार भक्ति, वैराग्य को उत्पन्न करके तद्द्वारा अपरोक्ष ज्ञान के लिए साधन होती है। नित्य और नैमित्तिक धर्माचरण में भक्ति योग ही परमसाधन है। नित्य नैमित्तिक कर्माचरण, परमात्मा की कथा श्रवण करने में आसक्ति उत्पन्न करना चाहिए। सदाचार सम्पन्न पुरुष द्वारा देश और काल के अनुसार जिन कर्मों का विधान किया गया है उनका सम्यक् आचरण कर्म कहलाता है। जो कोई धर्माचरण भगवान में भक्ति नहीं उत्पन्न करता है वह कर्म केवल श्रममात्र ही है।।8।।

जिस पुरुष को परमात्मा का ज्ञान नहीं है उसके द्वारा कोई महत् पुण्य करने पर भी अन्त में व्यर्थ होगा। इसलिए परमात्मा का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। जो धर्म मोक्ष के लिए किया जाता है, उससे धन की प्राप्ति नहीं हो सकती और हो भी तो वह उस धर्म का फल नहीं हो सकता। उसी तरह धर्म का फल काम नहीं है। काम का फल इन्द्रिय की प्रसन्नता नहीं है। यदि काम जीवन निर्वाह के लिए है सब का सार यह निकला कि विषय सुखानुभव जीवन के लिए, जीवन अर्थ के लिए, अर्थ धर्म के लिए और वह धर्म मोक्ष की प्राप्ति के लिए होना चाहिए। यही भगवद् भक्तों के जीवन का रहस्य है। जो तत्व ज्ञानी नहीं है उसके कर्म के लिए भगवद्भक्ति सफल नहीं हो सकती। भगवद् अर्पण बुद्धि से किए हुए कर्म फलदायक होते हैं। भगवद् अर्पण बुद्धि से न किए हुए कर्म से ऐहिक और आमुष्मिक फल नहीं प्राप्त हो सकता है। इसलिए तत्वज्ञान आवश्यक है।।9,10।।

तत्व अर्थात् सम और अधिक रहित ज्ञानस्वरूप है। तत्त्व वेत्ता इसी को तत्व कहते हैं। इस ज्ञानात्मक वस्तु को ही शास्त्र में ब्रह्म परमात्मा भगवान कहते हैं।।11।।

ब्रह्म अर्थात् समस्त देश और काल में समस्त कल्याण गुणों से पूर्ण, परमात्मा अर्थात् समस्त जीवों में अन्तर्यामी रूप से रहने वाला भगवान, अर्थात् ऐश्वर्य इत्यादि गुण वाला, इस ज्ञानात्मक वस्तु का आनन्द ही देह है। यह वस्तु केवल स्वयं आनन्द स्वरूप ही नहीं अन्य को भी आनन्द का अनुभव कराने वाला हैं। यह लोक-विलक्षण तथा आश्चर्यजनक है। विषय संबंध से हमारा ज्ञान उत्पन्न होता है और वह नाश भी होता है। परन्तु परमात्मा के ज्ञान के लिए विषय की अपेक्षा नहीं है उनका ज्ञान विषय निरपेक्ष है और वह ज्ञान अनादि तथा नित्य है। उस ज्ञान की उत्पत्ति तथा नाश नहीं है। ऐसे ज्ञान स्वरूप को ही तत्व तथा ब्रह्म कहते हैं। यह तत्त्व, भूत, वर्तमान तथा भविष्य में शाश्वत एक प्रकार रहने वाला है। ज्ञान स्वरूप उस परब्रह्म को प्रकृति का संबंध नहीं है। यह परब्रह्म वस्तु परमात्मा इत्यादि अनन्त वैदिक पदों से वाच्य है। इसलिए वह सगुण है। अतः वह समस्त जगत

का कर्ता, सर्वनियामक है। ज्ञानी जन शास्त्र में बतलाए गए मार्ग से श्रद्धा तथा अस्तिक्य बुद्धि से वेदान्त शास्त्र का श्रवण करके तद्द्वारा उत्पन्न दृढ़तत्त्वज्ञान से विषयों से विरक्त होकर परमात्मा में भक्ति करने से उस परमात्मा का अपने हृदय में दर्शन करते हैं।।12।।

धर्म भी वर्ण और आश्रम के अनुसार अलग-अलग है। वर्ण और आश्रम वालों को अपने उचित धर्म का पालन करना चाहिए। इस प्रकार धर्मो का आचरण करने से श्री हरि प्रसन्न होते हैं।।13।।

श्री कृष्ण भगवान की कथा का जो प्रश्न किए हैं वह परमधर्म है। परमपूज्य तथा यादवों के पति श्री कृष्ण भगवान की कथा को एकाग्र चित्त से श्रवण करना चाहिए। उसी का कीर्तन करते रहें। उनके गुणों का ध्यान करते रहना चाहिए। यज्ञ यागादि समस्त कर्मों के द्वारा उन्हीं की पूजा करना चाहिए। इस प्रकार भगवद् कथा श्रवण में ही समय व्यतीत करें न कि व्यर्थ समय बिताएँ।।14।।

जिन्हें परमात्मा में ही मन को लीन करने की सामर्थ्य है, परमात्मा के गुणों का ध्यान करने का ही जिनका स्वभाव है, ऐसे अपरोक्ष ज्ञानी कर्म के बन्धन से पूर्ण रूप से छुटकारा पाते हैं। इस प्रकार जीव के अनादि कर्म बन्धन से छुटकारा दिलाने के लिए निर्निमित्त बन्धु परमात्मा की कथा श्रवण करने में प्रत्येक मुक्ति योग्य जीव को आसक्त होना चाहिए।।15।।

इस प्रकार की आसक्ति परमात्मा की स्वरूप जिज्ञासा से उत्पन्न होती है। यह जिज्ञासा वेदादिशास्त्रों में प्रामाण्य और आस्तिक्य बुद्धि होने से उत्पन्न होती है। आस्तिक्य बुद्धि भी अपने से उत्तम महात्माओं की सेवा से उत्पन्न होती है। अपने से उत्तम महात्माओं की सेवा की भावना गंगादि पुण्य तीर्थ के स्नान से उमड़ कर आती है। इसलिए गंगादि तीर्थों का, भागवत आदि सद्शास्त्रों का समस्त सज्जीवों को अवश्य सेवन करना चाहिए।।16,17।।

इस प्रकार परमात्मा की कथा श्रवण करने में आसक्ति उत्पन्न होने के पश्चात् योग्य जीव परमात्मा के महात्म्य को श्रवण करते ही रहते हैं। श्री कृष्ण भगवान के महात्म्य का श्रवण तथा कीर्तन स्वयं तो पवित्र है ही वह श्रवण तथा कीर्तन करने वालों को भी पवित्र कर देता है, तथा भगवान उनके हृदय में प्रकाशमान होते हैं।।18।।

उनके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। जीव का जब तक लिंग देह है तब तक अशुभ की सम्भावना है ही। किन्तु कथा श्रवणादि के द्वारा अधिकतर पाप नष्ट प्राय हो जाते हैं। इस प्रकार पाप नष्ट होने पर भगवद्भक्तों की सेवा से और भगवद् प्रीत्यर्थ कर्म करने से दोषरहित भगवान में निश्चल भक्ति उपन्न होती है।।19।।

इस प्रकार तीर्थ यात्रादि धर्मकार्य, महात्माओं की सेवा के लिए कारण बनकर भगवान में भक्ति उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार भगवान में निश्चल भक्ति उत्पन्न होने पर रजोगुण और तमोगुण के द्वारा मन में असद् विषयक काम, लोभ आदि अरिषड्वर्ग उत्पन्न नहीं होते हैं।।20।।

इस प्रकार दुर्भावनाओं से दूर हुआ सज्जनों का मन बल और ज्ञान से पूर्ण श्री हरि में आसक्त हो जाता है। श्री हरि को छोड़कर किसी अन्य का चिन्तन नहीं करता है। ऐसा निर्मल मन ही श्री हरि का सर्वदा चिन्तन करने में समर्थ होता है। यही अपरोक्ष ज्ञान का कारण है। इस प्रकार भगवान में आसक्त हुआ पुरुष विषयों में कभी भी आसक्त नहीं होता है। इसी को वैराग्य कहते हैं। इस प्रकार भक्ति पूर्वक सदा हरि स्मरण करने वाले तथा प्रसन्न चित्त वाले जीव को उसकी योग्यतानुसार बिम्बरूपी परमात्मा का अपरोक्ष ज्ञान होता है। जो कोई भी उपरोक्त

साधनों का आचरण नहीं करता है, उसको भगवान का अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता है। जीव हृदय कमल कर्णिका के मध्य में रहने वाले विम्बरूपी श्री हरि का जब दर्शन करता है तब अविलम्ब जड़ मन के साथ लिंग देह अपने कार्य करने में असमर्थ होकर निर्वीर्य हो जाता है। लिंग शरीर जब निर्वीर्य होता है तब परमात्मा के विषय में जितने संशय हैं वे स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं। अपरोक्ष ज्ञानी के संचित पाप नष्ट हो जाते हैं और अनिष्ट पुण्य भी नष्ट हो जाते हैं। भविष्य में क्रियमाण पाप का लेप नहीं होता है। ।21, 22। ।

प्रारब्धकर्म मात्र रह जाता है। प्रारब्ध कर्म भोग कर ही नष्ट होता है। प्रारब्ध कर्म तब नष्ट होगा जब लिंग देह भंग होता है। तभी सम्पूर्ण दुःख नष्ट होंगे और आनन्द का अनुभव होगा। आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति तथा शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है। यही मोक्ष है, यही परम पुरुषार्थ है। अतः ब्रह्मादि ज्ञानीजन ही नहीं अपितु मुक्त जीव भी निर्मल मन से सर्वत्र व्याप्त, प्रकाशमान, समस्त ऐश्वर्य गुणपूर्ण श्री हरि में भक्ति करते हैं। अन्य देवताओं में उनके योग्यता तारतम्य तथा विष्णु के परिवार वाले जानकर भक्ति करते हैं। इस प्रकार मुक्त और अमुक्त जीव परमात्मा की भक्ति पूर्वक सेवा करते हैं। ।23। ।

श्री हरि अप्राकृत हैं अर्थात् सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण का बंधन उनको नहीं है। इन प्रकृति के तीन गुणों के लिए श्री देवी, भू देवी, और दुर्गा देवी अभिमानिनी हैं। यह तीनों रूप महा लक्ष्मी के ही हैं। प्रकृति के ये तीनों गुण जगत के रूप में परिणत होते हैं अर्थात् जगत के लिए उपादान कारण हैं। इस जगत की सृष्टि, स्थिति, संहार करने के लिए भी हरि ही ब्रह्मा, विष्णु और ईश्वर (शंकर) के तीन रूप धारण करते हैं। ब्रह्म नामक श्री हरि चतुर्मुख ब्रह्मा में प्रवेश करके सृष्टि करते हैं, ईश्वर नामक श्री हरि ईश्वर में प्रवेश करके संहार कार्य करते हैं। विष्णु रूप से साक्षात् भगवान इस जगत का पालन, पोषण करते हैं। रजोगुण को सृष्टि के लिए तमोगुण को संहार के लिए तथा सत्त्वगुण को पालन पोषण के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार यह तीनों गुण विष्णु के अधीन हैं और श्री विष्णु को आश्रय किए हुए हैं। इस त्रिगुणात्मक जगत में रहने वाले जीवों के मध्य में जो जीव सात्विक और मुक्ति योग्य और देव स्वभाव वाला है ऐसे सात्विक जीवों को ही ज्ञान, भक्ति, वैराग्यादि जैसे मोक्ष के साधन प्राप्त होते हैं। राजस और तामस जीवों तथा दैत्यों को यह कभी प्राप्त नहीं हो सकते हैं। ।24। ।

सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण यह तीनों प्रकृति के ही गुण होने पर भी सत्वगुण ही मनुष्यों के कल्याण का कारण है। सात्विक जीव ही उत्तम है और ब्रह्म विद्या के लिए अधिकारी हैं। पृथ्वी से वृक्ष (काष्ठ) उत्पन्न होता है पृथ्वी का ही धूम बादल बनकर वर्षा होती है। पृथ्वी के काष्ठ से उत्पन्न अग्निसमस्त वस्तुओं को प्रकाशित करती है। ये तीनों पृथ्वी से ही संबंध रखने वाले हैं। इस पर भी इन तीनों में से, वृक्ष से भी धूम बादल बनकर वर्षा होने से श्रेष्ठ है। धूम से भी समस्त पुरुषार्थ के लिए अग्नि उत्तम साधन है। ऐसे यज्ञ यागादि करने वाले ज्ञानी जन बतलाते हैं। ऐसे ही सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण प्रकृति के ही होने पर भी तमोगुण से रजोगुण उत्तम है तथा रजोगुण से सत्वगुण उत्तम है। इस सत्वगुण से ही ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है। परमात्मा के अपरोक्ष ज्ञान के लिए सत्वगुण ही कारण है इसलिए सार्त्विक जीव ही ब्रह्मज्ञान के अधिकारी हैं। इससे सूचित होता है कि तामस जीव तमोयोग्य है। राजस जीव नरक योग्य हैं तथा सात्विक जीव ही मोक्ष के योग्य हैं। यही तीन प्रकार के जीव हैं। ।25। ।

सात्विक स्वभाव वाले ब्रह्मादिज्ञानी जन इन्द्रियातीत श्री हरि की ही सेवा करते हैं। वही उत्तमाधिकारी हैं।

इसलिए प्रकृति के इन तीन गुणों में से सत्वगुण ही मोक्ष के लिए कारण है। तमोगुण और रजोगुण मोक्ष के लिए कारण नहीं है।।26।।

ब्रह्मादि परम सात्विक ज्ञानीजन पहले श्री हरि की ही सेवा किए हैं। इसलिए असूयादि दोष जिनमें नहीं है और जो इस दुस्तर संसार से मुक्त होना चाहते हैं ऐसे सात्विक जीव घोर रूप वाले तथा राजस, तामसफल देने वाले रुद्रादि देवताओं को छोड़कर सुख से पूर्ण तथा सुखात्मक शरीर वाले श्री हरि के मूर्तियों की सेवा करते हैं तथा भविष्य में भी करते रहेंगे। भविष्य में आने वाले सात्विक जीव भी श्री हरि की सेवा करेंगे। राजस और तामस स्वभाव वाले, (निर्दुष्ट श्री हरि की सेवा करने वाले प्रजेश्वर इत्यादियों की सेवा करते हैं) सम्पत्ति चाहने वाले जीव प्रजेश्वर की, ऐश्वर्य और अधिकार को चाहने वाले रुद्रादि भूतपतियों की, सन्तान को चाहने वाले पितरों की सेवा करते हैं। केवल ऐहिक फल को ही चाहने वाले जीव राजस और तामस स्वभाव वाले होते हैं।।28।।

समस्त वेद शास्त्रों के तात्पर्य का विमर्श करने पर नारायण का ही समस्त जीवों से सेव्य होना जान पड़ता है। वेदादि समस्त सद्शास्त्रों में भी श्री मन्नारायण को गुणपूर्ण होने से सर्वोत्तम कहा गया है। समस्त यज्ञ श्री विष्णु को उद्देश्य करके उन्हीं के प्रीत्यर्थ करना चाहिए। किसी अन्य को उद्देश्य करना नहीं। यम नियम इत्यादि अष्टांग योग भी श्री हरि के ध्यान करने के लिए ही हैं न कि अणिमादि सिद्धियों के लिए। हमसे किए जाने वाले श्रुति, स्मृति विहित कर्म सन्ध्यावन्दनादि को श्री हरि को ही उद्देश्य करके करना चाहिए। किसी अन्य को उद्देश्य करके नहीं। उपनिषदों से जनित ज्ञान, देवताओं के तारतम्य का ज्ञान, श्री विष्णु को जानने के लिए ही है। कृच्छ चान्द्रायणादि तप श्री हरि के प्रीत्यर्थ ही हैं। दान करना, सरोवर बनाना कुवाँ खुदवाना बाग बगीचा लगाना इत्यादि धर्म कार्य भी श्री हरि के ही प्रीत्यर्थ कहे गए हैं। इतना ही नहीं कर्म के फलरूप में प्राप्त होने वाले सत्यलोक, तथा अन्य लोक और मोक्ष भी श्री हरि से ही प्राप्त होने वाले हैं, इसलिए श्री हरि ही सर्वोत्तम हैं और सब से सेव्य हैं।।29,30।।

श्री हरि का सर्वोत्तम होना संकेत मात्र नहीं है। वे ही समस्त शास्त्रों के मुख्य विषय और ब्रह्मादि सात्विक जीवों के इष्ट देवता भी हैं। यही श्रीमन्नारायण हैं जो प्राकृत गुण रहित हैं। सबके लिए मुख्य कारण हैं, सर्वत्र व्याप्त हैं। श्री हरि अपनी स्वरूप भूत इच्छा से कार्य कारणात्मक जड़ प्रकृति (सत्व, रजस्तमो गुणात्मक) को उपादान कारण बनाकर दिखाई देने वाले सत्य जगत की सृष्टि किए हैं इसलिए वे सर्वोत्तम हैं।।31।।

सृष्टि ही नहीं प्रत्युत इस जगत का नियमन भी वे ही करते हैं। जड़ प्रकृति के परिणाम भूत, पंचभूत, भौतिक देह और इन्द्रियों में भगवान प्रवेश करके उनको शक्ति देते हैं। जिनको शास्त्रज्ञान नहीं है उनके लिए भगवान प्राकृत गुणबद्ध जीव जैसा दिखाई देते हैं। भगवान के सर्वत्र परिपूर्ण होने से उन्हें कभी भी जीव भाव प्राप्त नहीं हो सकता है। जीव तो अनेक प्रकार के कर्मों के फल को भोगता है और अज्ञानी है। परन्तु भगवान सर्वत्र विद्यामन होन से परिपूर्ण हैं इसलिए श्री हरि ही सर्व नियामक हैं अन्य सभी उनसे नियम्य हैं।।32।।

भिन्न-भिन्न पदार्थों में भगवान नियामक रूप से अन्तर्यामी हैं उनके रूपों में परस्पर भेद नहीं है। अनेक काष्ठों में अग्नि रहती है। काष्ठों के घर्षण करने से प्रकट होती है। काष्ठ भिन्न होने पर भी उसमें रहने वाली अग्नि (अभिमानी देवता) एक ही है। वैसे ही भिन्न वस्तुओं में श्री हरि के प्रवेश करने से बहुरूप वाले होने पर भी उनके उन रूपों में कोई भेद नहीं है।।33।।

अद्वय श्री हरि में स्वगत भेद नहीं है। ''**नेह नानास्ति किंचन**'' इस श्रुति से यह अर्थ स्पष्ट होता है। जीवों के देहों में वास करने पर भी भगवान को जीव जैसे दुःख का अनुभव नहीं है। पृथिव्यादि पंचभूत, गन्धादि पंच तन्मात्रा, श्रोत्रादि दस इन्द्रिय तथा मन, इन तत्वों में प्रवेश किए श्री हरि ही देह कानिर्माण करते हैं। प्राणियों के देहो में प्रवेश करने के बाद भी वे असंग ही रहते हैं। इस प्रकार देह में रहकर इन इन्द्रियों के विषयों में से श्रेष्ठ तथा स्वात्मक शुभ विषयों का ही अनुभव करते हैं। असार और अशुभ विषयों का भोग उनको नहीं है। श्रुति में "अनश्नन्" जो कहा गया है उसका यही अर्थ है। शुभ विषयों का भोग भोगने से उनमें कोई विकार नहीं है। विषय जन्य आनन्द का ही अनुभव करते हैं।।34।।

सृष्टि कर्ता श्री हरि सज्जनों की रक्षा करते हैं। समय-समय पर देवता, पशु, पक्षी और मनुष्यादियों के रूप से अवतार लेते हैं और स्तम्भ इत्यादि स्थानों में व्यक्त होते हैं। जिन-जिन वर्णों में अवतार लेते हैं उन्हीं वर्णों के अनुसार कर्म करके सज्जनों की रक्षा करते हैं। भगवान के अवतार को उनके किसी कर्म के फलरूप में नहीं समझना चाहिए क्योंकि वे कर्मबद्ध नहीं हैं। उनके समस्त अवतार क्रीडारूप हैं तथा वे अपनी इच्छा से अवतार लेते हैं। इसलिए श्री हरि सर्वोत्तम हैं तथा सब से भजनीय हैं।।35।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः।।

अध्याय - 3
अथ तृतीयोऽध्यायः

श्री हरि के अवतार की लीलाओं का वर्णन करने के लिए शौनक ऋषि ने सूत से प्रश्न किया था जिसको संक्षेप में द्वितीय अध्याय के अन्त में वर्णन किया। अब उसी को विस्तार से बतलाते हैं।

परमात्मा के समस्त रूप अनादि और नित्य हैं। उनमें किसी प्रकार का कोई विकार नहीं है। समस्त रूप प्राकृत देह रहित हैं। प्रकृति की नियामक श्री लक्ष्मी देवी सदा श्री हरि की सेवा करती हैं। तब श्री हरि प्रकृति के बन्धन में कैसे होंगे। उनके समस्त रूप अप्राकृत हैं। उनके रूपों का जन्म या नाश नहीं है। जन्म अर्थात् व्यक्त होना, नाश होना अर्थात् अदृश्य या अव्यक्त होना है। समस्त रूप ज्ञानन्दात्मक हैं। इन रूपों का भगवान से भेद नहीं हैं। रूपों में परस्पर भेद नहीं है। इन रूपों में रहने वाला प्रत्येक अवयव परिपूर्ण है। परमात्मा के गुणधर्म और क्रिया उनसे भिन नहीं है। इस प्रकार श्री हरि स्वगत भेद रहित हैं। इसके लिए श्रुति और पुराण प्रमाण हैं। इसके विरुद्ध जो चिन्तन करते हैं उनको महान् अनर्थ होता है। ऐसे श्रुति में कहा गया है। श्री हरि में अणुत्व और महत्व इत्यादि विरुद्ध धर्मों का रहना कोई आश्चर्य नहीं है। उनमें कोई दोष नहीं है। दोष रहे तो उनके ऐश्वर्य में भंग होता है। इसलिए उनका ऐश्वर्य दोषों से दूर है। इस प्रकार भगवान निर्दुष्ट और गुणपूर्ण हैं। ऐसे परिपूर्ण श्री हरि प्रलय काल में जगत का संहार करके अपने उदर में रखकर श्री देवी से अलिंगित होकर योग निद्रा में रहते हैं। भगवान की इच्छा से ही प्रलय का अन्धकार उन्हें आच्छादित किये रहता है। पुनः सृष्टि करने की इच्छा से श्रीमन्नारायण ने आवृत अन्धकार का नाश करके स्वयं को व्यक्त किया।।1।।

यही उनका रूप का स्वीकार करना है इस रूप को परमपुरुष रूप कहते हैं। इस रूप में भगवान अपने उदर में महत्तत्व इत्यादि तत्वों के सूक्ष्मांश को रखते हैं। किन्तु उसका देह महत्तत्वादि से निर्मित नहीं है। इस देह में पंचभूत, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय तथा मन मिलकर सोलह इन्द्रिय हैं। प्राणादि षोडश कलाओं के लिए आश्रय बनगया है।। इस रूप से श्री हरि सृष्टि के आदि में व्यक्त हुए। उन्होंने ही महदादि तत्वों की सृष्टि करके उन तत्वों के द्वारा ब्रह्माण्ड की सृष्टि किया। उस ब्रह्माण्ड में स्वयं प्रवेश किया। तत्पश्चात् जल में शेषशायी होकर शयन किय। उनके नाभि से लोकात्मक पद्म को सृष्ट किया इसका नाम पद्मकल्प है। इस कारण श्री हरि पद्मनाभ कहलाते हैं। भगवान ने शयन किया इससे किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि भगवान ने थकावट से शयन किया। वे अपनी इच्छा से शेषशायी हुए। उनकी तो योगनिद्रा है। भगवान का अपने सामर्थ्य को प्रकट न करना ही निद्रा है। ऐसे परमात्मा के नाभिकमल से चतुर्मुख ब्रह्माउत्पन्न हुए। वे प्रजेश्वर कहलाने वाले दक्ष इत्यादियों के स्वामी नियामक हैं। इतना ही नहीं श्री हरि के सृष्टि कार्य में (जीवों में से) प्रधान अंग बने हैं।।2।।

भगवान ब्रह्माण्ड में विराट पुरुष के रूप में अवतार लिये उन्होंने अपने पादतल से लेकर शिरपर्यन्त अवयवों के द्वारा पाताल इत्यादि चौदह लोकों की सृष्टि किया, जिन-जिन अवयवों से जिन-जिन लोकों की

सृष्टि किया उन लोकों के वही अवयव आधार हैं, उनका अवयव ही जगत रूप हुआ ऐसा ज्ञानीजन नहीं कहते हैं। ब्रह्माण्ड के बाहर का पुरुषरूप, ब्रह्माण्ड के भीतर का पद्मनाभरूप और विराट रूप यह तीनों विशुद्ध हैं, इनमें कोई दोष नहीं है। ज्ञान तथा बलस्वरूप हैं इसलिए सर्वोत्कृष्ट है। यह रूप अविद्या से कल्पित हैं जगत में और उन रूपों में भेद नहीं है, वह रूप ही जगत रूप में दिखाई पड़ते हैं यह प्रमाण विरुद्ध हैं। **"निरनिष्टो निरवद्यः"** यह श्रुति भगवान में कोई दोष न होना स्पष्ट रूप से घोषणा करती है, तब भगवान के रूप अविद्या ग्रस्त दोष से परिपूर्ण जगत रूप में होना प्रमाण के लिए सम्मत कैसे होगा।।3।।

ब्रह्मादि चेतन ज्ञानी हैं, उन्हें अज्ञान नहीं है, इसलिए वे उत्तमाधिकारी हैं वे परमात्मा के इन रूपों को अपरोक्ष से देखते हैं। परमात्मा के प्रत्येक रूप आश्चर्य जनक हैं। हजारों करण, जंघा वाहु और मुखों से अद्भुत, हजारों मस्तक, श्रवण, नेत्र तथा नासिका से युक्त तथा हजारों मुकुट, वस्त्र और कुण्डलों से शोभित इस रूप को योगीजन अपनी ज्ञान दृष्टि से देखते हैं। इसलिए यह रूप कल्पित नहीं हैं।।4।।

इन तीन रूपों में से क्षीर समुद्रशायी पद्मनाभ रूप मत्स्य कूर्मादि अनेक अवतारों के लिए कारण है अर्थात् इसी रूप से समस्त अवतार व्यक्त होते हैं। उन अवतारों का कार्य समाप्त होने पर वे समस्त रूप इसी में ऐक्य हो जाते हैं। यह रूप नाश रहित हैं। श्वेतद्वीप, अनन्तासन, वैकुण्ठ इन स्थानों में रहने वाले नारायण, वासुदेव तथा वैकुण्ठादि रूप इसी रूप से व्यक्त होते हैं और इसी रूप में ऐक्य होते हैं। श्वेतद्वीप में रहने वाले स्वरूपांश से राम कृष्णादि रूप व्यक्त होते हैं और वही ऐक्य होते हैं। इस पद्मनाभ रूप के सामर्थ्य के एक देश से इस जगत की सृष्टि हुई है। चराचर पदार्थ, देवता, पशु, पक्षी और मनुष्यादि प्राणियों की सृष्टि इस रूप के किंचित सामर्थ्य से हुई है।।5।।

इस रूप से व्यक्त हुआ प्रथम अवतार कुमार अवतार है। सदा कुमार अवस्था में रहने से इसका यही नाम है। ब्रह्मचर्य व्रत से रहकर इस रूप से श्री हरि ने ब्रह्मा जी को वेदों का उपदेश किया था। सनकादियों में से एक सनत्कुमार नाम वाले ब्रह्मा के मानस पुत्र और योगी हैं। वे इसी रूप से योग विद्या सीखकर ब्रह्मचारी बने रुद्र देवता भी रुद्र पद पाने के लिए इसी रूप से योग विद्या सीखे। भगवान परिपूर्ण होने पर भी लोक शिक्षार्थ इस रूप से अप्रतिहत ब्रह्मचर्य का पालन किए।।6।।

द्वितीय अवतार वराह अवतार है इस अवतार के अवयवों द्वारा यज्ञ सामग्री की सृष्टि होने से इनको यज्ञेश कहते हैं। इनका आकार वराह का होने पर भी वह अप्राकृत हैं। इस रूप से श्री हरि रसातल में रहने वाली पृथ्वी को ऊपर लाए। यह जगत के कल्याण के लिए है किन्तु और अन्य उद्देश्य से नहीं।।7।।

तीसरा अवतार इतरा देवी से व्यक्त हुआ महिदास रूप है। इस रूप से नारद जी को पंचरात्र का उपदेश दिए। पंचरात्र में कहे हुए कर्मों का आचरण करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। देवर्षि नारद श्री हरि के अवतार नहीं हैं।।8।।

चौथा अवतार नर नारायण अवतार है। यह धर्म से श्री हरि व्यक्त हुए। इसमें से नरावतार श्री हरि का आवेश अवतार है। शेष देवता नर बनकर जन्म लिये। उनमें श्री हरि अपने स्वरूप अंश से प्रवेश किए। इसलिए श्री हरि का अवतार कहा गया है। नारायण अवतार तो श्री हरि का ही अवतार है। वे इन दो रूपों से तप किए।।9।।

अध्याय - 3

पाँचवा अवतार कपिल अवतार है। इस रूप को वासुदेव भी कहते हैं। ब्रह्मादि देवताओं का नियामक कपिल रूपी श्री हरि ने अपने आसुरि नामक सच्छिष्य, ब्रह्मादि देवता तथा भृगु इत्यादि ऋषियों को वेदार्थ से पूर्ण, सांख्य शास्त्र का उपदेश किये। समयवश नष्ट हुए इस शास्त्र को पुनः उपदेश किये। यहाँ पर प्रसिद्ध साँख्य दर्शन, कपिल नामक ऋषि और उनका आसुरि नामक दुष्ट शिष्य का आशय नहीं है। यह प्रसिद्ध साँख्य दर्शन वेद विरुद्ध है उसमें पूरा कुतर्क ही है, इसलिए वह कपिल, वह साँख्य शास्त्र तथा वह आसुरि अलग ही है। कपिल रूपी श्री हरि जिन्होंने सांख्य शास्त्र का उपदेश किया है वह शास्त्र अलग है। समान नाम होने से कोई धोखा न खाए।।10।।

छठा अवतार दत्तात्रेय का अवतार है। वे अत्रि ऋषि के पुत्र होकर अवतार किये हैं। उन्होने अलर्क और प्रह्लाद को आन्वीक्षि की तत्व विद्या का उपदेश किये।।11।।

सातवाँ अवतार यज्ञ नामक भगवान है। रुची प्रजेश्वर और आकूति से श्री हरि यज्ञ नाम से व्यक्त हुए। स्वायंभू मन्वन्तर में यज्ञ नामक श्री हरि ही इन्द्र बनकर देव लोक में शासन किये।।12।।

आठवाँ अवतार ऋषभावतार है। विद्वानों को सब आश्रमों में श्रेष्ठ परहंस मार्ग दिखलाने के लिए नाभि की स्त्री मेरुदेवी में ऋषभ देव नाम से व्यक्त हुए।।13।।

पृथु नामक चक्रवर्ती में आविष्ट श्री हरि पृथु नाम का नवाँ अवतार हैं, यह अंशावतार है। गोरूप में रहने वाली पृथ्वी से समस्त पदार्थों को क्षीर के रूप में प्राप्त करके प्रजाओं को दिया।।14।।

दसवाँ अवतार मत्स्यावतार है। चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में प्रलय काल में मत्स्यरूप को धारण करके पृथ्वी को नाव बनाकर उसके द्वारा सत्यव्रत राजा की रक्षा किये।।15।।

ग्यारवाँ अवतार कूर्मावतार है। देवता और असुर मिलकर जब समुद्र मन्थन कर रहे थे इस समय मन्दराचल पर्वत को डूबने से बचाने के लिए कूर्मावतार किये।।16।।

बारहवाँ धनवन्तरि अवतार है। इस अवतार में श्री हरि अमृत कलश को लिए हुए समुद्र से व्यक्त हुए, तब दैत्य अमृत पान करने के लिए उसको छीन लिए। दैत्यों के दुष्ट स्वभाव को बतलाने के लिए श्री हरि ने कलश को अपने हाथ से छोड़ दिया तब श्री हरि ने तेरहवाँ स्त्री रूप मोहिनी अवतार लिये। मोहिनी रूप धारण करके दैत्यों को मोहित करते हुए अपने भक्त देवताओं को अमृत पान कराया। यह मोहिनी रूप परमात्मा का वास्तविक रूप है माया रूप नही है।।17।।

चौदवाँ अवतार नरसिंह अवतार है। इस अवतार में हिरण्यकश्यप का संहार किये।।18।।

पन्द्रहवाँ अवतार वामनावतार है। बलि चक्रवर्ती से तीन पाद भूमि की याचना करके स्वर्गादि लोक को इन्द्र को दे दिये।।19।।

सोलहवाँ अवतार परशुराम अवतार है। इस अवतार में इक्कीस बार दुष्ट क्षत्रियों का संहार किया।।20।।

सतरह्वाँ अवतार वेद व्यास जी का अवतार है। पराशर ऋषि तथा सत्यवती से प्रकट होकर वेदों का विभाजन किये।।21।।

अठारहवाँ अवतार भगवान राम का है। इस अवतार में समुद्र में सेतु का निर्माण किये।।22।।

उन्नीसवाँ और बीसवाँ अवतार बलराम तथा श्री कृष्ण का है। बलराम शेष का अवतार है उनमें भगवान का

आवेश मात्र है, श्री कृष्ण तो साक्षात् अवतार हैं।।23।।

इक्कीसवाँ अवतार कलियुग के सन्धिकाल में कीकट नाम के प्रदेश में बुद्ध के नाम से अवतार किये।।24।।

बाइसवाँ अवतार कलियुग और कृतयुग के सन्धि काल में कल्कि अवतार है। इस अवतार में चोर और डकैतों जैसे रहने वाले राजाओं का संहार करेंगे तथा पुनः धर्म की स्थापना करेंगे। इस अवतार में श्री हरि विष्णु यश नामक ब्राह्मण से कल्कि रूप से व्यक्त होंगे और पुनः धर्म की स्थापना करेंगे।।25।।

भगवान के अवतार तो अनगिनत हैं उनकी गिनती करना असम्भव है।।26।।

ऋषि मुनिगण, देवता, मनु के पुत्र, प्रजेन्श्वर ये सब भगवान के भिन्नांश (प्रतिबिम्बांश) हैं।।27।।

कौमार रूप से आरम्भ करके कल्कि तक कहे गए उपरोक्त अवतार मूलरूपी श्री हरि के स्वरूपांश हैं। अर्थात् प्रतिबिम्बांश के जैसे भिन्न नहीं हैं। श्यामवर्ण विशिष्ट शेषशायी मूलरूपी पद्मनाभ स्वयं भगवान हैं। इस प्रकार के रूपों के द्वारा श्री हरि ने दैत्यों से पीड़ित जगत को और सज्जीवों को, उन-उन काल में उनकी पीड़ा को दूर करके उनकी रक्षा करते हुए सुख से रखते हैं। विष्णु एक होते हुऐ भी वे अपने अघटित घटक ऐश्वर्य के बल से योगियों को बहुरूप होकर दिखाई पड़ते हैं। ऋषि आदि जीव प्रतिबिम्बांश हैं। परमात्मा के वाराह आदि रूप स्वरूपांश हैं। इसके लिए ब्रह्मवैवर्त पुराण का प्रमाण वाक्य इस प्रकार है।

जीवास्तत्प्रतिबिम्बांशा वराहाद्याः स्वयं हरिः।
दृश्यते बहुधा विष्णुरैश्वर्यादिक एव तु।।

अर्थ - समस्त जीव परमात्मा के प्रतिबिम्बांश हैं। वराह आदि रूप साक्षात् परमात्मा हैं। यह उनके स्वरूपांश है। एक ही विष्णु अघटित घटक ऐश्वर्य बल से बहुरूप होकर योगियों को दिखाई पड़ते हैं।

परमात्मा के अवतारों में कृष्णावतार ही केवल विशेष नहीं है। "कृष्ण कहने से मूलरूपी वासुदेव ही है। **"कृष्णो मुक्तैरिज्यते वीतमो है"** इस प्रमाण से मूलरूप का नाम कृष्ण जानना चाहिए।।28।।

श्री हरि अव्याहत षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न हैं उनके अवतारों के रहस्य को जानकर भक्तिपूर्वक प्रातः सायं दोनों समय जो जीव स्मरण करता है, वह दुःख से भरे इस संसार से पूर्ण रूप से छुटकारा पाकर अपने स्वरूपानन्द का अनुभव करता है - मुक्त होता है।।29।।

आँखों से दिखाई देने वाला ब्रह्माण्ड (जड़ जगत) महत्तत्व अहंकार तत्व इत्यादि प्राकृत पदार्थों के द्वारा श्री हरि से निर्मित हुआ है। इस जगत के लिए श्री हरि का स्वरूप देह ही आश्रय है। वह सर्वत्र व्याप्त होकर इसका आधार बना है। श्री हरि ज्ञान स्वरूप तथा अप्राकृत रूप वाले हैं। इसलिए यह ब्रह्माण्ड उनका प्रतिमा रूप है किन्तु स्वरूप नहीं। ऐसा होने पर भी इस जड़ जगत को परमात्मा का स्वरूप कहना केवल भ्रम है। आकाश में बादल चलते रहते हैं। उन्हीं को आकाश मानना क्या यह भ्रम नहीं है। इसी प्रकार से बादलों के चलने से आकाश चलता है ऐसा समझना भी भ्रान्ति है। वायु में धूलि के कण देखकर वायु को भी रूप है ऐसा जानना भी भ्रान्ति है। इन दृष्टान्तों में कहे गए बादल और धूलि के कण सत्य वस्तु हैं मिथ्या नहीं हैं। इस पर भी इनको आकाश और वायु में अज्ञानी लोग आरोप करते हैं। इसी प्रकार से सत्यभूत इस जगत को ही हरि का स्वरूप देह समझकर शास्त्रज्ञान रहित लोग आरोप करते हैं। इसी प्रकार से जनन और मरण जो जड़ के धर्म हैं उनको श्री हरि के स्वरूप देह में

आरोप करते हैं। ऐसा आरोप करने वाले शास्त्र ज्ञान से शून्य हैं। इसलिए आरोपित रूप प्रतिमारूप है। इस प्रकार परमात्मा के स्वरूप (1) रूप, (2) प्रतिबिम्ब रूप और (3) प्रतिमारूप ऐसे तीन रूप होते हैं पद्म पुराण में इसका आधार है। जीव प्रतिबिम्बरूप और जड़ प्रतिमारूप है। पद्म पुराण का प्रमाण वाक्य इस प्रकार है -

नारायणवराद्याद्याः परमं रूपमीशितुः।
जैवं तु प्रतिबिम्बाख्यं जड़मारोपितं हरेः।।
एवं हरि त्रिविधं तस्य रूपं विष्णोर्महात्मनः।। पाद्मे

अर्थ-नारायण वराहादि रूप परमात्मा के अप्राकृतरूप तथा स्वरूपरूप है। जीव प्रतिबिम्ब रूप है। जड़ प्रतिमारूप है। इस प्रकार महामहिमा वाले श्री विष्णु के तीन रूप हैं।

अज्ञानी जन ज्ञानात्मक देह वाले श्री हरि में जड़ देह का और उसके धर्म जनन मरण को आरोपित करते हैं। स्कन्द -

पुराण के वाक्य से यह स्पष्ट होता है -

अविज्ञाय परं देहमानन्दात्मानमव्ययं।
आरोपयन्ति जनिमत्पंचभूतात्मकं जड़म्।

अर्थ-अप्राकृत ज्ञानात्मक परमात्मा के रूप को अज्ञानी अविवेकी जन पंचभूत, जनन मरण से युक्त, जड़ को श्री हरि के देह में आरोपित करते हैं।।30,31।।

भगवान श्री हरि के स्वरूपरूप और प्रतिमारूप से भिन्न प्रतिबिम्बरूप ही जीव हैं। यह जीव अति सूक्ष्म (अणु) है। जीव प्रकृति का परिणाम नहीं है। जीवों का वास्तविक स्वरूप जैसा है वैसा संसार अवस्था में व्यक्त नहीं होता है। प्रकृति के सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण अनादि काल से जीवों को आवृत किए हुए हैं। इस प्रकार का आवरण होने से जीव परमात्मा की उपासना नहीं कर सकते हैं। इसी लिए भगवान का साक्षात्कार भी नहीं होता है। भगवान का साक्षात्कार न होने से जनन मरण के चक्कर में फँसे हुए हैं। यह समस्त जीव समुदाय भगवान के प्रतिबिम्ब हैं। समस्त जीव सदा के लिए श्री हरि के अधीन हैं और उनसे भिन्न हैं।।32।।

ब्रह्मज्ञान के द्वारा इस अनादि काल के बन्धन से छुटकारा पाना चाहिए। जीव ब्रह्मज्ञान के बिना कर्म मात्र से इस संसार बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता है। भगवान का स्वरूप ज्ञानानन्दात्मक होने से उनको स्थूल अथवा सूक्ष्म शरीर का आवरण नहीं है अर्थात् श्री हरि नित्यमुक्त हैं। लिंग शरीर आदि प्राकृत शरीर से रहित हैं। इस प्रकार भगवान को न जानने से जीव को शरीर बंधक है, यही भगवान के साक्षात्कार के लिए प्रतिबंधक भी है। भगवान की इच्छा से ही जीव को शरीर का बंधन हैं। उसी भगवान की इच्छा से ही जीव इस संसार से मुक्त होंते हैं। इस प्रकार का ज्ञान ही ब्रह्मज्ञान है और यही जीव को संसार से मुक्त कराने वाला है। जीव और ब्रह्म एक नहीं हैं। अर्थात् जीव और ब्रह्म में एक्य नहीं है।।33।।

इस प्रकार से जीव को ब्रह्मज्ञान के द्वारा भगवान का साक्षात्कार होता है, तब जानना चाहिए कि भगवान का उत्तम प्रसाद हुआ है। तब भगवान जीव को संसार में रखकर दुःख नहीं देंगे। इस पर भी प्रारब्ध कर्म समाप्त होने तक परम मोक्ष प्राप्त नहीं होता। प्रारब्ध कर्म के समाप्ति पर परममोक्ष को पाकर स्वरूप भूत आनन्द का

अनुभव करता है। इन दो प्रकार के मोक्ष में पहला कर्मक्षय मुक्ति कहलाती है। शुकदेव इत्यादि ब्रह्मज्ञानी इस मोक्ष को प्राप्त किए हैं। इनके प्रारब्ध कर्म शेष रहने से परम मोक्ष को प्राप्त नहीं किये हैं। बन्धक प्रकृति के लिए तथा मोचक ज्ञान के लिए दुर्गा देवी अभिमानी हैं। मुक्तावस्था में भी जीवों में तारतम्य रहता ही है। इसलिए तारतम्य में निचले श्रेणी के जीव अपने से उत्तम जीवों की सेवा और आदर करते हैं।।34।।

श्री हरि अन्य किसी के अधीन नहीं हैं। वे किसी फल को उद्देश्य करके कोई कार्य नहीं करते हैं। इसलिए शास्त्रों में उनको अकर्ता कहा गया है। सब के हृदय में नियामक रूप से रहते हैं। वे चेतन समुदाय से अत्यन्त विलक्षण तथा अजन्मा हैं। भगवान अपने सामर्थ्य से ही अनेक अवतार लेते हैं और असंभव कार्य करते हैं। उनके अवतार और कार्य सभी सत्य हैं। कभी भी भ्राँति या कल्पित नहीं है। वेदादि शास्त्रों में इस विषय को स्पष्ट न करते हुए गुप्तरूप में समझाया गया है। इसलिए अज्ञानी लोग यथार्थ रूप से नहीं जान सकते हैं। भगवान सब के हृदय में नियामक रूप से रहकर उनके योग्यतानुसार प्रेरणा करने से अज्ञानी जन यथार्थ रूप से नहीं जानते हैं। भगवान के अवतार और उनके कार्य का प्रयोजन जीवों को मुक्त करना ही है। भगवान के इन चरित्रों का श्रवण और कीर्तन करके जीवों को मुक्त करने के लिए भगवान ऐसी लीलाएँ करते हैं।।35।।

इस प्रकार भगवान की लीलाएँ मोक्ष का कारण होने से वे व्यर्थ नहीं हैं। इसलिए उनको सत्यकाम कहते हैं। भगवान इस जगत की सृष्टि, स्थिति और संहार करने पर भी इस क्रिया के फल में आसक्त नहीं हैं। इस कारण से वह अकर्ता कहलाते हैं। इसके लिए पद्म पुराण का प्रमाम वाक्य इस प्रकार है।

अप्रयत्नात् स्वतन्त्रत्वात् फलानां च विवर्जनात्।
क्रियायाश्च स्वरूपत्वात् अकर्तेति च तं विदुः।।
कर्तृत्वं भ्रान्तिजं प्राहुरतस्तत्त्व (प्राहुरतत्तत्व) विदो जनाः।
ऐश्वर्यजं तु कर्तृत्वं काम्यत्वं त्तत्ववेदिनः ।। पाद्मे

अर्थ- अनायास कर्म करने से, स्वतंत्र होने से, फलेच्छा रहित होकर कर्म करने से, क्रियास्वरूप होने से, श्री हरि को अकर्त्ता कहते हैं। उनको भलीभाँति न जानने वाले लोग कर्तृत्व को भ्रांति कल्पित कहते हैं। परन्तु उनको यथार्थ रूप से जानने वाले कर्तृत्व को ऐश्वर्य से सम्भव होना जानते हैं।

भगवान समस्त इन्द्रियों और उनके विषयों के नियामक हैं। समस्त जीवों के देह में रहकर शुभ वस्तुओं के सार का अनुभव करते हैं। असार वस्तुओं का, कभी भी अनुभव नहीं करते हैं। इसलिए वे अभोक्ता कहलाते हैं। अशुभ वस्तुओं का भोग उनको नहीं है क्योंकि वे स्वतंत्र हैं। तब ऐसे सामर्थ्य वाले श्री हरि, दुःख का अनुभव करने वाला जीव कैसे बनेंगे? यह कभी नहीं हो सकता है।।36।।

भगवान ने बहुत ही कुशलता से सृष्टि किया है। सज्जनों के कल्याण के लिए मोक्ष देते हैं। मन से स्मरण करने के लिए अनेक रूपों को, वाणी से उच्चारण करने के लिए अनेक नामों को उनके उनके योग्यतानुसार विस्तृत किए हैं। मिथ्या ज्ञानी, जीव ब्रह्म को एक मानने वाले ऐक्यवादी और अल्पज्ञान वाले जन इसको जान नहीं सकते हैं। ऐसे अज्ञानी बार-बार जनम मरण के बंधन में रहते हैं। भरत नाट्य में कहे गए अभिनय विशेष को न जानने वाला, नट के अभिनय को जैसे नहीं जानता है वैसे ही वेद सम्प्रदाय को न जानने वाला अज्ञानी परमात्मा के कार्यों

के अभिप्राय को, और फल को नहीं जान सकता है।

अपने स्वार्थ के लिए कार्य न करने वाले, पूर्णानन्द, शुभफलों का अनुभव करने वाले श्री हरि के कार्य को मुक्तियोग्य जीव ही यथार्थ रूप से जान सकते हैं। वह भी अपनी-अपनी योग्यतानुसार ही न कि अधिक। करुणासागर श्री हरि अपने चरित्रों को अपने भक्तों को उनकी योग्यतानुसार समझाकर उन पर अनुग्रह करते हैं।।37।।

वही भक्त उन चक्रपाणि परमात्मा के स्वरूप को जान पाता है जो निरन्तर निष्काम भक्ति करता है। इस प्रकार निरन्तर भक्ति के साथ भगवान की सेवा करता है, तब परमात्मा उनके हृदय कमल में व्यक्त होता है। ऐसे अभिव्यक्त हुए श्री हरि के चरण कमलों का आस्वादन करते हुए उसी में मग्न होता है। ऐसा भक्त ही चक्रधारी श्रीमन्नारायण के स्वरूप को और उनको प्राप्त करने का मार्ग जान सकता है। श्री हरि के चरित्र तो अनन्त हैं। वह परिपूर्ण हैं। जगत की सृष्टि करके उसकी रक्षा आदि कार्य करते हैं। ऐसे श्री हरि को कोई भी पूर्ण रूप से जान नहीं सकते हैं। परन्तु उपरोक्त भक्तजन अपनी-अपनी योग्यतानुसार किंचित मात्र जानते हैं। **''हृदि व्यक्तं तु यद्रूपं हरेर्गन्धः स उच्यते''** गन्ध अर्थात् उनके भक्त्यानुसार हृदय में व्यक्त हुआ भगवद् रूप है।।38।।

भगवान सब प्रकार से हमारे स्वामी हैं। हम उनके भृत्य और सेवक हैं। इस प्रकार की उपासना को "आत्मभाव" कहते हैं। आत्म भाव से भगवान की उपासना करने से पुनः इस भयंकर संसार का बंधन न होगा। रुद्रादि देवता भी संसार के बंधन में हैं तब अन्य जीवों के लिए क्या कहना है। भगवान समस्त जगत के स्वामी हैं सबके अन्तर्यामी और नियामक हैं। इस भावना से सेवा करने वाले शौनकादि ऋषिगण धन्य हैं आप कृत कृत्य हैं। इसलिए भगवान की कथा श्रवण करने के भक्तिमार्ग में आसक्त हैं।।39।।

यहाँ से पूरे अध्याय तक **''धर्म किसके शरण में गया''** इस प्रश्न का उत्तर देते हैं। अब मैं आप लोगों को जो कहना चाहता हूँ वह श्रीमद्भागवत पुराण है। यह मेरी कल्पना नहीं है। अनादि श्री हरि का प्रतिपादन करने से ही इस को पुराण कहते हैं। वेदों से प्रतिपादित श्री हरि का वर्णन करने से यह वेद के समान है। इसमें कहे गए समस्त चरित्र श्री हरि के ही हैं। उनमें कोई दोष नहीं है। ऐसे भागवत पुराण को सर्वज्ञ श्री हरि ही वेदव्यास रूप से मुक्ति योग्य जीवों के मोक्ष रूप फल की प्राप्ति के लिए रचना किये हैं।।40।।

इस पुराण के प्रवचन से ज्ञान, भक्ति, वैराग्य दृढ़ होते हैं। समस्त वेद और इतिहासों में प्रतिपादित अत्युत्तम तत्वों को इसमें संग्रह किया गया है। ऐसे उत्तम पुराण को वेदव्यास जी अपने पुत्र श्री शुकदेव जी को बतलाए हैं। शुकदेव कोई साधारण नहीं हैं। मन पर विजय प्राप्त करके भगवान को प्राप्त करने वालों में श्रेष्ठ हैं। ऐसे उत्तम अधिकारी होने से ही इस महापुराण का श्री वेद व्यास जी ने उन्हें उपदेश किया है।।41।।

परीक्षित नामक चक्रवर्ती शापग्रस्त होकर अपने मरण पर्यन्त अनशन व्रत से गंगा नदी के मध्य में बैठे हुए परम ज्ञानी ऋषियों को आमंत्रित करके उनके मध्य में विचार विमर्श करते हुए बैठे थे। उस समय श्री शुकदेव जी वहाँ आकर इस पुराण को श्रवण कराए। उनके अनुग्रह से मैं भी उस सभा में उपस्थित था। मैंने भी वहाँ उचित स्थान में बैठकर ब्रह्मज्ञानी परीक्षित् राजा को सुनाये गये श्रीमद्भागवत महापुराण को श्रवण किया। गुरुमुख से अभ्यास किये हुए महापुराण को अपनी बुद्धि के अनुसार श्रवण कराने के लिए सिद्ध हूँ। इस प्रकार अत्यन्त प्रमाण भूत इस पुराण का सावधानी से श्रवण कीजिए।।42,43,44।।

श्री कृष्ण भगवान के अदृश्य होकर बैकुण्ठ धाम जाने के पश्चात् धर्म किस के शरण में गया ऐसा आप का प्रश्न है। धर्म श्री कृष्ण के ही दूसरे रूप श्री वेदव्यास जी के शरण में गया। अर्थात् श्री वेदव्यास जी ने सज्जीवों को धर्म का उपदेश करने के लिए श्री मद्भागवत् और सद्शास्त्र की रचना की।।45।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे तृतीयोऽध्यायः।।

ा का
ं को

अध्याय - 4
अथ चतुर्थोऽध्यायः

बहुत दिनों तक यज्ञ करने वाले मुनियों के मध्य कथा कहते हुए सूत जी की प्रशंसा करके वृद्ध तथा मुनियों में प्रधान ऋग्वेदी शौनक जी बोले।।1।।

शौनक ऋषियों ने कहा-हे सूत, पौराणिक श्री शुकदेव जी जो पवित्र कथा कहे थे वह कथा आप कृपा करके हमे कहिये।।2।।

भागवत-कथा कहने वाले और सुनने वाले को पवित्र करने वाली है। किस युग में, किस स्थान में सर्वज्ञ वेद व्यासजी ने यह अठारह हजार ग्रन्थ रूप संहिता को किसलिए रचना किया, तथा इस भागवत की रचना करने के लिए उनसे किसने प्रार्थना किया?।।3।।

आप ने कहा कि शुकदेव जी ने परीक्षित राजा को श्रीमद्भागवत की कथा को जो श्रवण कराया, वह असम्भव सा जान पड़ता है क्योंकि वेद व्यास जी के पुत्र श्री शुकदेव जी सर्वत्र रहने वाले परमात्मा को जानते हैं वह समदर्शी भी हैं, अपने पराए ऐसी भेद बुद्धि से रहित वे चेतनाचेतन समस्त जगत् को भगवान के अधीन होना जानते हैं। सर्वोत्तम परमात्मा का वे मन में ध्यान करने वाले हैं। उनमें अज्ञानादि दोष नहीं है। इतने गुणों से युक्त वे महायोगी हैं। इतना रहने पर भी वे अपने को ऐसे ढंग से रखते थे कि अज्ञानीजन ये ही नहीं समझ पाते थे कि यह श्री शुकदेव जी हैं। उनको देखकर अज्ञानियों को ऐसा भ्रम होता था कि यह कोई उन्मत्त, बावले तथा मूर्ख हैं।।4।।

शुकदेव हस्तिनापुर में आने पर भी वहाँ पागल, गूँगा और अज्ञानी जैसे घूमते थे। इस वेष में रहने वाले शुकदेव जी को जानना इतना सुलभ नहीं था। तब हस्तिनापुर में रहने वालों ने शुकदेव जी को कैसे पहचाना?।।5।।

पाण्डुवंश में उत्पन्न राजा परीक्षित का शुकदेव जी के साथ कैसे वार्तालाप हुआ, जिससे यह भागवत कथा प्रवृत्त हुई। ऐसे ज्ञानी शुकदेव जी को पाण्डवों के वंश में उत्पन्न हुए परीक्षित् राजा के साथ वार्तालाप की क्या आवश्यकता थी। हमें इन दोनों का सम्भाषण असंभव सा प्रतीत होता है।।6।।

क्योंकि गृहस्थों के गृहों में उनके आश्रमों को पवित्र करते हुए महामुनि शुकदेव जी गाय दुही जाने के समय तक ही ठहरते थे। ऐसे विरक्त शुकदेव जी कहीं भी अधिक समय तक ठहरने वाले नहीं थे। तब भागवत जैसे महाग्रन्थ को सुनाने के लिए इतने समय तक एक स्थान पर कैसे रहे? यह असंभव सा प्रतीत होता है।।7।।

भगवान का चरित्र भगवद्भक्तों के चरित्र के साथ मिला हुआ रहता है। हमने सुना है कि राजा परीक्षित् को ब्रह्मास्त्र से गर्भ में ही समाप्त हो जाना चाहिए था किन्तु श्री हरि के अनुग्रह से माता के गर्भ से जीवित जन्म लिए। उन का जन्म ही अति आश्चर्यजनक है। जब वह राज्य कर रहे थे तब कलि पुरुष ने प्रवेश करने का प्रयत्न किया परन्तु महापराक्रमी राजा परीक्षित् ने कलि को प्रवेश करने नहीं दिया यह कार्य भी आश्चर्यजनक है। ऐसे महा महिमा से युक्त उनकी कथा को विस्तार से श्रवण करने के लिए हम उत्सुक हैं। इसलिए आश्चर्य जनक उनके जन्म

और कार्य को हमें बतलाए।।8।।

ऐसे चक्रवर्ती राजा को राज्य सम्पत्ति को तृण के समान समझकर वैराग्य से प्रायोप्रवेश करने के लिए कोई महत्तर कारण होना चाहिए। अल्प कारण से कोई भी ऐसी उत्तम सम्पत्ति को नहीं त्यागते हैं। इसलिए कृपा करके उनके वैराग्य का जो कारण हो उसे स्पष्ट रूप से समझाइए।।9।।

हे सूत जी! राजा परीक्षित कोई सामान्य नही हैं। मण्डलाधिपति और प्रत्येक उनको चक्रवर्ती जानकर अपने कल्याण के लिए धन (कर) देकर राजा परीक्षित् के चरण रखने की चौकी को प्रणाम किया करते थे। ऐसे पराक्रमी और धैर्यशाली वह राजा परीक्षित् अपने प्राण के साथ राज्यलक्ष्मी को त्यागने के लिए क्यों सिद्ध हुए। चक्रवर्ती को सम्पत्ति को त्यागना उतना सुलभ नहीं है। हमें तो यह विषय आश्चर्य जनक प्रतीत होता है।।10।।

श्री हरि में ही आसक्त भगवद्भक्त स्वार्थ के लिए जीवित नहीं रहते हैं किन्तु उनका जीवन सज्जनों के सुख समृद्धि तथा ऐश्वर्य के लिए ही है। विरक्त लोगों का पूरा जीवन ही ऐसा है तब परीक्षित् राजा परोपकार के लिए अपनी धन-सम्पत्ति तथा अपनी देह का उपयोग न करते हुए उन सबको क्यों त्याग दिया? विरक्त होने पर भी परोपकार दृष्टि से उन्हें अपने राज्य का कार्य निर्वाह करना चाहिए था? इन सब सन्देहों का समाधान कृपा करके कीजिए।।11।।

हम तो दीर्घ कालीन सत्र याग में दीक्षित हैं। श्री हरि और उनके भक्तों की कथा श्रवण करने के सिवाय अन्य कोई कार्य नहीं है। इन सब प्रश्नों का कृपा करके उत्तर दीजिए। आप पुराण के विषयों को जानते हैं ऐसे आप के लिए इन प्रश्नों का उत्तर देना कठिन नहीं है।।12।।

सूत जी ने कहा-कृत युग, त्रेता युग, द्वापर युग तथा कलियुग इन चार युगों में से तीसरे युग द्वापर के अन्त में वसु की तनया सत्यवती और पराशर से भगवान अपने स्वरूपांश से प्रकट हुए। वे ही वेदव्यास जी के नाम से प्रसिद्ध हुए।।13।।

एक बार सरस्वती नदी के जल में स्नान करके तथा संध्या वंदनादि कर्म समाप्त करके सूर्योदय के समय एकान्त में अकेले बैठे थे। यह सब उनके लिए आवश्यक नहीं है। इस पर भी लोक शिक्षार्थ ऐसा नित्यकर्म किया करते थे। इतने में सूर्योदय हो गया।।14।।

भूत और भविष्य के ज्ञाता व्यास रूपी श्री हरि ने भूलोक में बहुवेग वाले कालद्वारा किए गए युग के धर्मों के सांकर्य को देखा।।15।।

पंचभूतों से उत्पन्न शरीर आदि समस्त पदार्थों में काल महिमा से धर्म संकर से सामर्थ्य कम हो गया था। इससे संसारी जीव शास्त्र के तात्पर्य को न जान कर परलोक की भावना को त्याग कर आस्तिक्य बुद्धि त्याग कर नास्तिक हो रहे थे। सामर्थ्य रहित पदार्थों का उपयोग करके वे भी सत्वहीन होते आए थे। उनकी धारण शक्ति ही नष्ट होकर गलत युक्तियों को ढूँढ़ रहे थे। इसके साथ-साथ वह अल्पायु हो गए। इस प्रकार मोक्ष के साधनीभूत सम्पत्ति से शून्य होकर केवल पुनः-पुनः जन्म लेते हुए संसार के साधनी भूत सम्पत्ति से युक्त थे। सर्वज्ञ वेद व्यास रूपी श्री हरि ने इन सबको देखकर समस्त आश्रम और वर्ण वालों को धर्माचरण में अनुकूल होने और उनका आचरण करने वाले जीवों को हितकर मार्ग कौन-सा है ऐसा विचार किए। इस प्रकार बहुत समय तक विचार करके

कल्याण मार्ग को जाना सर्वज्ञ श्री हरि व्यासादि अवतारों में विचार किए वैसा बतलाए हैं। दुष्टजनों को मोहित करने के लिये सर्वज्ञ श्री हरि अज्ञ जैसे, सर्वशक्त, होते हुये अशक्त जैसे नटना करते हैं। इसलिए वेदव्यास जी विचार किए अर्थात् विचार किए जैसे नटना किए।।16,17।।

इसके लिए प्रमाण निम्न प्रकार हैं-

नित्यज्ञानस्य चिद्दृष्टिर्लोकदृष्टिव्यपेक्षया।
सर्वज्ञोऽप्यज्ञवद्देव: सर्वशक्तिरशक्तवत्।
प्रत्यापयति लोकानां अज्ञानं मोहनाय च। (कौर्मे)

ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु और उद्गाता इन चारों के करने योग्य वैदिक कर्म निरन्तर होते रहें। यह कर्म हरि स्मरण पूर्वक करने पर कर्म करने वालों को पवित्र बनाकर ज्ञान के कारण बनते हैं। इसलिए वेदव्यास जी ने एक वेद के चार भाग किये। सभी कर्मों को हर कोई नहीं कर सकते हैं, इसलिए धर्म की रक्षा के लिए उनकी उनकी योग्यतानुसार वेद और कर्मो का विभाग किये।।18।।

मूल वेद तो समुद्र जैसे अपार है। पहले ही से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ऐसे चार महावेद थे। कलियुग के लोगों से इनका भी अध्ययन करना अशक्य था इसलिए महावेदों से उसी नाम से उपवेदों का विभाजन किये। वेदार्थ को जानने के लिए वेद के ही समान इतिहास और पुराणों की रचना किये। वे पाँचवा वेद माने जाते हैं।।19।।

वेद व्यास जी से रचित होने पर भी भारत और पुराणादि वेद के समान प्रमाण ग्रन्थ है। महर्षि पैल ऋग्वेद के, जैमिनी सामवेद के, और वैशम्पायन यजुर्वेद के अभ्यासी हुए। अथर्ववेद के ज्ञाता सुमन्तु मुनि हुए। इतिहास पुराण के ज्ञाता मेरे पिता रोम हर्षण हुए। उन ऋषियों ने भी अपने अपने वेद के अनेक विभाग किए। कुछ समय बाद वे वेद शिष्य, प्रशिष्य और उनके शिष्यों द्वारा अनेक शाखाओं में विभक्त हो गए तथा वे शाखाएँ उन्हीं ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हुई।।20,21, 22।।

इन ऋषियों ने स्वतंत्र होकर इन शाखाओं का विभाजन नहीं किया। इसके श्री हरि वेदव्यास जी ही कारण हैं। मुक्ति योग्य जीव भविष्य में काल के प्रभाव से अल्पज्ञ होंगे, उनसे विस्तृत वेद का अध्ययन और उसमें कहे गए कर्मों का अनुष्ठान असाध्य होगा। उनका साधन करना कठिन होगा। अतः सज्जीवों के कल्याणार्थ वेद व्यास जीने ही अपने शिष्य, प्रशिष्यों के द्वारा वेदों का शाखोपशाख में विभाजन किया। जिससे अल्प बुद्धि वालों को भी उन शाखाओं का अध्ययन तथा उसी के अनुसार कर्मानुष्ठान करके सद्गति प्राप्त करने में सुविधा हुई। इस प्रकार वेद के विभाग के लिए कारण होने से श्री हरि वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध हुए।।23।।

स्त्री, शूद्र और धर्मबंधु अर्थात्, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्यों में से आचारहीन पुरुषों को वेद सुनने का अधिकार नहीं है। उनका हित साधन करने तथा ज्ञान रहित लोगों का कल्याण करने के लिए वेद व्यास जी ने दया करके महाभारत इतिहास रचा। जिसमें सब वेदों का तात्पर्य आया है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित है कि इतिहास और पुराणादि की रचना केवल वेद के अनधिकारियों के लिए ही नहीं अपितु **''इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्''** इस वचनानुसार वेद के अधिकारियों ब्राह्मणदि के

लिए भी वेदार्थ को यथार्थ रूप से जानने के लिए किया गया है। इस प्रकार वेद के अधिकारी और वेद के अनधिकारी दोनों महाभारत और पुराणों को भलीभाँति जाने बिना मुक्त नहीं हो सकते हैं।।24।।

इसका प्रमाण निम्न प्रकार है।

भारतं ब्राह्मणादीनां वेदार्थ परिवित्तये।
त एव वेदास्त्वन्येषां नर्ते तत्कस्यचित् सुखम्- (स्कान्दे)

इस प्रकार अपने अवतार कार्य को किंचित् शेष रखकर वेद व्यास रूपी श्री हरि ने दुष्ट जनों को मोहित करने के लिए सामान्य पुरुषों के जैसे नटना करते आए हैं। हे शौनक ऋषि! सज्जनों को मोक्ष के लिए साधन बतलाना ही श्री हरि का कार्य है। वेदव्यास रूप से वेद विभाग, भारत, पुराणों की रचना करने पर भी उनके मन को तृप्ति नहीं हुई।।25।।

इतना कार्य करने पर भी और भी ग्रन्थ की रचना करने की आवश्यकता जानकर सब प्रकार से तृप्त नहीं हुए। वेदव्यास जी समस्त धर्मों के ज्ञाता हैं। उनको दिखाई न देने वाली अतिन्द्रिय वस्तु नहीं है। इस प्रकार परिपूर्ण श्री हरि सामान्य जनों के जैसे अपने मन में अतृप्ति और उस अतृप्ति के लिए क्या कारण है विचार किए वैसा बतलाए। सरस्वती नदी के तट पर जन रहित एकान्त और शुद्ध स्थान में बैठकर सामान्य लोगों के जैसे व्यासरूपी भगवान विचार किए।।26।।

शिष्ट और महापुरुष जो करते हैं उसका अनुसरण सामान्य जन करते हैं। वेद में कहे गए समस्त व्रतों का आचरण करके बतलाया हूँ। वेद का अध्ययन करके अर्थ को जानकर अनुष्ठान भी किया हूँ। सर्वज्ञ होने पर भी गुरु द्वारा अध्ययन करके संसार को मार्ग दर्शन किया हूँ। गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि ऐसे तीन अग्नियों की सेवा करके यज्ञ यागादि कर्मों का आचरण किया हूँ। गुरु की आज्ञा पाकर उसी के अनुसार आचरण किया हूँ। वेदों का विभाजन करके अल्प बुद्धि वालों को भी अध्ययन करने के योग्य बनाया हूँ। उन वेदों का सम्प्रदायानुसार अर्थ जानने के लिए महाभारत पुराणों की रचना किया हूँ। महाभारत में वेद के अधिकारी ब्राह्मणादि वर्ण वालों के लिए और अनधिकारी स्त्री, शूद्र तथा अनाचारी त्रिवर्ण वालों के लिए भी श्रेयस् साधन के लिए धर्म को विस्तार रूप से बतलाया हूँ। महाभारत में कोई विषय ऐसा नहीं है जो न कहा गया हो।।27,28।।

समस्त धर्मों को आचरण करके उन-उन अधिकारियों को बतलाना ही मेरे अवतार का कार्य है। यह सब कर चुका हूँ इस पर भी मेरे देहात्मक आत्मा को सभी कार्य समाप्त हुआ ऐसी तृप्ति नहीं है। मेरा रूप स्वाभाविक सर्वत्र व्याप्त है। समस्त वेदों का अध्ययन करके ब्रह्मवर्चस को प्राप्त करने में मेरे समान अन्य कोई श्रेष्ठ नहीं है। ऐसा रहने पर भी मेरा अवतार कार्य पूर्ण हुआ ऐसा प्रतीत नहीं होता है। ऐसा भास होता है कि कोई कार्य शेष रह गया है। इस श्लोक में **''दैह्य''** शब्द का अर्थ देह में रहने वाला जीव परक, और **''आत्मना असम्पन्न''** का ब्रह्म के साथ ऐक्य प्राप्त हुआ ऐसा अर्थ नहीं करना चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित प्रमाण है-

तस्य सर्वावतारेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन।
देहदेहिविभेदश्च न परे विद्यते क्वचित्।
सर्वेऽवतारा व्याप्ताश्च सर्वे सूक्ष्माश्च तत्त्वतः

ऐश्वर्ययोगाद्भगवान् क्रीडत्येवं (महासंहितायाम्) जनार्दनः।।

अर्थ-परमात्मा के अवतारों में भेद न होना, देह और देही में भेद न होना, समस्त अवतार व्याप्त और सूक्ष्म होना कहा गया है। यह महा सामर्थ्य ऐश्वर्यवान् श्री हरि के लिए क्रीडा है। इसलिए अवतार रूप वेदव्यास जी के रूप में कोई दोष नहीं देखना चाहिए।।29।।

इस अवतार में करने योग्य और कौन-सा कार्य मैंने छोड़ दिया है। सब कुछ तो किया हूँ-प्रायः यह तो नहीं छोड़ दिया हूँ? मेरी अतृप्ति के लिए यही कारण हो सकता है। मैंने महाभारत में भगवान और भगवद्भक्तों के धर्मों को पर्याप्त रूप से कह दिया है। इस पर भी भारत बहुत कठिन अर्थ वाला है। अल्प बुद्धि वाले अधिकारी चेतन इसके प्रमेयों को जान नहीं सकते हैं। समस्त अधिकारियों की योग्यतानुसार अन्य ग्रन्थ की रचना आवश्यक है यही मेरे अतृप्ति का कारण है। ऐसा वेदव्यास रूपी श्री हरि ने सोचा।।30।।

भागवत ग्रन्थ की रचना करना ही मन की तृप्ति का कारण होना जानकर भी वेदव्यास रूपी श्री हरि ने विचार किया कि महापुरुष अन्य दूसरों से प्रेरित होकर ही अपने कार्य में प्रवृत्त होते हैं ऐसा लोक में देखा गया है। नारद जी को अतिशय कीर्ति प्राप्त होने के लिए भक्तवत्सल होने से नारद जी के आगमन की ही प्रतीक्षा करते रहे।।31।।

परमात्मा की इच्छानुसार ही सब कार्य होते हैं। नारद जी के लिए भी प्रेरक वे ही हैं। श्री हरि से प्रेरित होकर नारद जी वेद व्यास जी के आश्रम पर आ गए। आए हुए नारद जी को पहचानना वेद व्यास जी को कोई कठिन नहीं है। श्री हरि ने नारद जी को पहचाना। उठकर उनका स्वागत किये। नारद जी कोई सामान्य नहीं है वे देवर्षि कहलाते हैं। वे अपने से योग्यता तारतम्य में नीचे के देवताओं से सदा वंदित हैं। अपने से उत्तमवालों के कृपापात्र हैं। ऐसे नारद जी का वेद व्यास जी ने शास्त्रनियमानुसार सत्कार किया। हे शौनक! इस प्रकार सरस्वती नदी के तट के आश्रम में रहने वाले वेदव्यास जी ने नारद जी के प्रार्थना के अनुसार भगवान और भगवद्भक्तों के धर्मों का वर्णन करने वाला भागवत संहिता की रचना की।।32।।

।।इति श्री मद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्दे चतुर्थोऽध्यायः।।

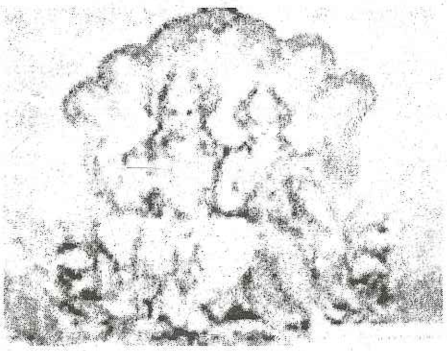

अध्याय - 5
अथ पंचमोऽध्यायः

सूत जी कहते हैं-व्यास रूपी श्री हरि ने नारद जी का अर्घ्यपाद्यादि के द्वारा सत्कार किया। नारद जी आसन में सुख से बैठ गए। देवता कहलाने वाले नारद जी अपने कार्यों से ऋषि भी कहलाते हैं। इस प्रकार वह देवर्षि कहलाते हैं। वे सदा अपने हाथ में "महती" नामक वीणा को धारण करके श्री हरि के गुणों का गान करते रहते हैं। बैठते समय भी उनके हाथ में वीणा थी उन्हीं के निकट वेद व्यास जी भी बैठ गए।

सूत जी ने कहा-मनुष्य रूप से अवतार किये हुये भगवान मनुष्य धर्म का ही आचरण करते हैं। यह रहस्य श्री हरि के अनुग्रह के मुख्य पात्र नारद जानते हैं। सदा तृप्त रहने वाले भगवान को अतृप्त जैसे बैठे देखकर देवर्षि नारद ने मंदमंद मुस्कुराते हुए विनय और भक्ति के साथ श्री हरि से कुशल प्रश्न किया।।1।।

श्री हरि का स्वतंत्र और परिपूर्ण होने से नित्य कुशल होना वे जानते थे। इस पर भी श्री हरि की इच्छा का अनुसरण करना भक्तों की इच्छा है। वेदव्यास जी के मनुष्य जैसा आचरण दिखाने से नारद जी ने भी मनुष्यों के जैसे उनसे कुशल प्रश्न किया। आप अनन्त ऐश्वर्य के लिए एक मात्र आश्रय हैं। पराशर ऋषि के पुत्र के रूप में अवतार किए हुए हे श्री हरि! आप के शरीर और आत्मा में कोई भेद नहीं है। इसलिए आपके मन और आत्मा में भेद नहीं है। आप का अवतार लेना अर्थात् आप का अभिव्यक्त होना है। निर्दिष्ट कार्य के लिए अभिव्यक्त होते हैं। आप के स्वतंत्र होने से उन कार्यों को करने में कोई बाधा भी नहीं है। आप से रचित महाभारत ग्रन्थ धर्मादि सकल पुरुषार्थ से परिपूर्ण है। वह शब्द से और अर्थ से महान होने से महाभारत कहलाता है। समस्त शास्त्रों के प्रमेय इसमें प्रतिपादित किए गए हैं। लोगों को जानने योग्य समस्त विषय इसमें हैं।।2,3।।

उस महाभारत में सुख से परिपूर्ण जगत् से विलक्षण लय कार्य में अमुख्य कर्ता रुद्र के लिए उद्भव स्थान, देश, काल और गुणों से अपरिच्छिन्न उस परब्रह्म वस्तु को सर्वोत्तम होना भलीभाँति विचार किए हैं। तथापि अपने अवतार के प्रयोजन का पूर्ण न होना बतलाते हुए अतृप्त जैसे बैठे हैं। आप सर्वज्ञ होने पर भी मानव जैसा वेदाध्ययन किए हैं। गुरु परम्परा से आए हुए वेद समस्त कालों में रहने से सनातन कहलाते हैं। वे वेद प्रत्येक शब्द से परब्रह्म का प्रतिपादन करने से शब्दब्रह्म कहलाते हैं। आपने समस्त वेदों के अर्थ का निर्णय करने के लिए ब्रह्मसूत्रों की रचना की है। आप ज्ञान कार्य को तो पूर्ण किए ही हैं तब शेष क्या है? इस पर भी अवतार कार्य को पूर्ण न होना आप जगत को बतला रहे हैं। इस प्रकार नारद जी ने कहा।।4।।

वेदव्यास जी स्वयं अपरिमित ज्ञान स्वरूप होने पर भी दुष्टजनों को मोहित करने के लिए अज्ञ जैसे प्रश्न किए हैं। हे नारद! आपने जैसा कहा है मेरा अवतार कार्य पूर्ण होना जान सकते हैं इस पर भी मेरे मन को तृप्ति नहीं है। इसके लिए क्या कारण है? आप ब्रह्मा जी के शरीर से उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्मा जी के प्रिय पुत्र हैं। परमात्मा में ही मन को स्थिर करके उनकी आराधना करने वाले हैं। आप जैसे अगाध ज्ञान वाले से ही मैं प्रश्न करता हूँ। मेरी अतृप्ति

का क्या कारण है?।।5।।

यह कारण अतिसूक्ष्म होने से अन्य लोग इसको नहीं जान सकते हैं। आप अपनी बुद्धि से इसको जान सकते हैं इसलिए मैं आप से पूछ रहा हूँ। आप श्री हरि की आराधना करके उनके अनुग्रह के पात्र हैं। श्री हरि कोई स्वतंत्र साधन के बिना ही अपने संकल्प मात्र से जगत की सृष्टि करने वाले, रक्षा करने वाले तथा संहार करने वाले हैं। फिर भी उनमें आसक्त नहीं होते हैं। जीवों के कर्मों का फल देने वाले भी वे ही हैं। अतः वे मुक्त और अमुक्तों के लिए नियामक हैं। ऐसे श्री हरि की आप ने उपासना करके उनका साक्षात्कार किया है। श्री हरि के अनुग्रह के पात्र होने से आप समस्त विषयों को जानते ही हैं। मेरी अतृप्ति के लिए जो कारण है वह आप जानते ही हैं।।6।।

आप अबाध गति से तीनों लोकों में सूर्य की भाँति संचार करते हैं। शरीर में संचार करने वाले प्राण वायु की भाँति आप सब के मन के विचार को जानते हैं। मैं तो सर्वोत्तम परब्रह्म को जानता हूँ, उस परब्रह्म का प्रतिपादन करने वाले अपरब्रह्म के नाम से प्रसिद्ध वेद को भलीभाँति जानता हूँ। वेदोक्त धर्मों का अनुष्ठान करके कृतकृत्य हुआ हूँ। मुझे तृप्त होने के लिए क्या करना चाहिए बतलाइये। ऐसे प्रश्न करने से यह नहीं समझना चाहिए कि श्री हरि अज्ञानी हैं और अशक्त हैं। नारद जी का ज्ञान तो चुल्लू भर पानी जैसा अल्प है। श्री हरि का ज्ञान समुद्र जैसा अपार है। सर्वज्ञ होने पर भी परमात्मा अज्ञानी जैसा बतलाते हैं। सर्व शक्तिमान होने पर भी अशक्त जैसे दिखाते हैं। इसी को सत्य समझकर दुष्ट जीवों को मिथ्या ज्ञान होता है। सज्जीव तो इसको केवल नटना समझकर यथार्थ ज्ञान को प्राप्त कर मुक्त होते हैं।।7।।

दुष्टजनों के मोहनार्थ कहे हुए श्री हरि के वचनों के अभिप्राय को जानकर नारद जी भी इसी प्रकार से बोले हे व्यास महर्षि! आप ने महाभारत आदिशास्त्रों में श्री हरि की महिमा का वर्णन किया है परन्तु महाभारत में समाधि, दर्शन और गुह्य ऐसी तीन भाषाओं का उपयोग किया है। इन तीनों भाषाओं का जानना अल्प बुद्धिवालों को साध्य नहीं है। मन्दाधिकारी को समझने योग्य श्री हरि की महिमा का वर्णन करने वाला आपने कोई शास्त्र नहीं रचा है। वही आप की अतृप्ति का कारण है। इसलिए ऐसे शास्त्र की अब आप रचना कीजिए।।8।।

वेदव्यास जी! आप तो सर्वज्ञों में उत्तम हैं। श्रेष्ठ मुनिगण आप का आश्रय करते हैं। आप का महाभारत आदि ग्रन्थों में श्री हरि की महिमा का वर्णन करने पर भी श्री हरि की महिमा अनन्त होने से आप को तृप्ति नहीं हुई है। सज्जीव श्री हरि की महिमा को ही जानना चाहते हैं। जिसके जानने से मोक्ष रूप महाफल की प्राप्ति होती है। श्री हरि की महिमा बतलाने वाले एक और ग्रन्थ की रचना न करने से आप का कार्य पूर्ण न हुए वैसा दिखाई देना सहज है।।9।।

मन्दाधिकारी अज्ञान से श्री हरि की महिमा का वर्णन करने वाले ग्रन्थों को छोड़कर अलंकारादि शास्त्रों का अध्ययन करते हैं और उसी में अपना कल्याण मानते हैं। परन्तु ज्ञानीजन ऐसे शास्त्रों को ऐहिक जीवन के लिए ही उपयुक्त मानते हैं उनसे कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता है। ऐसे शास्त्रों में ज्ञानीजन प्रवृत्त नहीं होते हैं। ब्रह्मा के मानस पुत्र सनकादि परमहंस भी ऐसे शास्त्रों में प्रवृत्त नहीं होते हैं। मानस सरोवर में बिहार करने वाले हंस पक्षी क्या कभी काक तीर्थ में स्नान करना चाहेंगे।।10।।

परमात्मा की महिमा का वर्णन करने वाले वाक्यों की रचना ही विशिष्ट ग्रन्थ की रचना है। ऐसे ग्रन्थों का

ही शुकदेव इत्यादि ज्ञानी जन श्रवण करते हैं, दूसरों को श्रवण कराते हैं, कोई श्रोता न होने पर भी स्वयं उसका गान करते हैं। भगवान की महिमा का वर्णन करने से ही उस ग्रन्थ का इतना महत्व है। भगवान की महिमा तो सज्जीवों के पाप को दूर करके मोक्ष मार्ग में साधन कराकर मोक्षरूप फल को देता है। ऐसे ग्रन्थ में प्रत्येक श्लोक में अपशब्द हो सकते हैं, व्याकरण के ज्ञानी उसको देखकर घृणा कर सकते हैं, प्रत्येक श्लोक शब्दालंकार, अर्थालंकार के बिना सामान्य वाक्य जैसा हो सकता है इस पर भी काल, देश और गुणों से अन्तरहित श्री हरि की महिमा को बतलाने वाला वह ग्रन्थ ही श्रेष्ठ है वही शास्त्र है। **''भक्त्यर्थ भगवन्महिमो कितः''** इस वचनानुसार भगवान के महात्म्य ज्ञान से भक्ति उत्पन्न होगी उसके द्वारा मोक्ष को प्राप्त करना हैं।।11।।

जिसमें भगवान की महिमा का वर्णन नहीं है ऐसे शास्त्र की रचना व्यर्थ है। श्री हरि में निरन्तर मन को स्थिर न करने से और उसमें निरन्तर भक्ति न करने से श्री हरि का परोक्ष ज्ञान भी मोक्ष का कारण नहीं होता है। वह ज्ञान, वैराग्य से युक्त ही क्यों न हो और वेदार्थ से भी युक्त क्यों न हो इस पर भी हरि भक्ति से रहित हो तो मोक्ष का कारण नहीं हो सकता है। जब ज्ञान की ही यह दशा है तब निष्काम कर्म जो अमुख्य साधन है यदि वह हरिभक्ति रहित हो तो क्या मोक्ष का कारण हो सकता है? निष्काम कर्म को भक्तिपूर्वक श्री हरि में समर्पित करने पर वह मोक्ष का साधन होगा। सकाम कर्म भक्ति रहित हो तो मोक्ष का कारण नहीं होता है, इसको कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। अतः भगवन्माहात्म्य ज्ञान और निष्काम कर्म से मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। जब ऐसा है तो भक्ति और भक्ति को उत्पन्न करने वाली भगवन् महिमा का वर्णन करने वाले शास्त्र की रचना क्यों करना चाहिए ऐसी शंका उचित नहीं है। भक्ति से ही अपरोक्ष ज्ञान होता है **''यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः तस्यैष आत्मा विवृणते तनूं त्वा''** भगवान जिस किसी को भक्तत्वेन स्वीकार करते हैं उसी को श्री हरि मिलते हैं। भगवान अपने अप्राकृत देह को व्यक्त करके उस को दिखाते हैं ऐसा श्रुतियों में कहा गया है। इसलिए भक्ति के बिना श्री हरि का साक्षात्कार नहीं हो सकता है।।12।।

हे वेदव्यास जी! आप परम पूज्य हैं अपरिमित भाग्य वाले हैं धन की आशा से कभी असत्य बोलने वाले नहीं है। आप यथार्थ ज्ञान वाले होने से आप का ज्ञान कभी भी बाधित नहीं होता। जिस विषय को आप कहना चाहते हैं उसका यथार्थ ज्ञान आप को है। आप भी विष्णु के साक्षात् अवतार होने से आप में प्रमाद इन्द्रियों का असामर्थ्य इत्यादि दोष के लिए कोई अवकाश नहीं है। आप निर्दुःख आनन्दमय श्री हरि हैं। आप जैसे देखे हैं वैसे विषय को बतलाने का निश्चय किए हैं इसलिए वंचना करने की भावना नहीं है। मोक्ष के लिए जो साधन है उन्हीं को कहने का आप का व्रत है। इस प्रकार आप्त पुरुष के समस्त लक्षण आप में होने से आप जिस शास्त्र को कहते हैं वह आप्त वाक्य होने से दोषरहित होगा और प्रमाण होगा। मन्दाधिकारियों को ध्यान में रखकर आप श्री हरि की महिमा को वर्णन करने वाली समाधि भाषा में श्री मद्‌भागवत जो विष्णु महात्म्य का प्रतिपादक है उसकी रचना कीजिए। तभी आप के अवतार का कार्य पूर्ण होगा और आपके मन को तृप्ति होगी। जैसे महाभारत में दर्शन भाषा और गुह्य भाषा का उपयोग किए हैं इसमें ऐसी भाषा का प्रयोग न करने के लिए प्रार्थना करता हूँ। ऐसे ग्रन्थ का समस्त सज्जीव अध्ययन और श्रवण करके संसार बंधन से मुक्त होकर स्वरूप आनन्द का अनुभव कर सकते हैं।।13।।

श्री हरि की महिमा का वर्णन करने वाले शास्त्र की रचना न करके केवल धर्मादि विषयों को बतलाने वाले शास्त्र की रचना करना अनर्थकारक है और उसका कोई प्रयोजन भी नहीं है। धर्मादि वर्णन करने वाले शास्त्रों में प्रवृत्ति धर्म से स्वर्गादिफल कहे जाते हैं। स्वर्गादि का सुख भी अल्प और अनित्य है। इस तत्व को न जानकर मूर्ख उन्हीं को सुख का कारण मानकर राग से उसमें प्रवृत्त होते हैं। ऐसे लोगों का मन चंचल होकर किसी विषय में स्थिर नहीं होता है। जैसे पवन से ताडित नौका कहीं स्थिर नहीं हो पाती। वैसे ही इन लोगों का मन कहीं भी स्थिर नहीं हो पाता। सांख्य और वैशेषिक आदि दर्शनों के ऋषि अपने-अपने दर्शनों में विरुद्ध **''प्रधान''** आदि नामों को **''त्रिगुणत्व''** आदि रूपों को बतलाए हैं। इन ऋषियों द्वारा बतलाए हुए मोक्ष साधन परस्पर विरुद्ध होने से अज्ञानी जन संशयग्रस्त होते हैं। कभी भी निश्चिय ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकते। जैसे साहित्य आदि शास्त्र मोक्ष का साधन नहीं है वैसे ही यह परस्पर विरुद्ध दर्शन निश्चित रूप से मोक्ष के साधन को नहीं बतला सकते हैं। इसलिए श्री हरि की महिमा का वर्णन करने वाले श्री मद्भागवत की रचना कीजिए।।14।।

प्रायः लोग दूसरों के उपदेश के बिना ही काम्य कर्म में प्रवृत्त हो जाते हैं। उनका यह धर्म प्रवृत्ति धर्म कहलाता है। ऐसे लोगों को उद्देश्य करके पुनः प्रवृत्ति धर्म का उपदेश करना उचित नहीं है, निन्दनीय है। जैसे कि गढ़े में गिरे हुए व्यक्ति को पत्थर मारना हेय और निन्दनीय है वैसे ही पहले ही अपमार्ग में जाने वाले को पुनः उसी में जाने के लिए प्रेरित करना अन्याय है। प्रवृत्ति मार्ग को हेय जानकर निवृत्त धर्म में आसक्त हुए शुकदेव आदि महापुरुषों के वाक्यों को प्रमाण मानने वाले लोगों को प्रवृत्ति मार्ग में जाने वालों को समझाना चाहिए। दुष्टमार्ग में जाने वाले को उस मार्ग को छुड़ाकर उनकी रक्षा करना दयावान सज्जीवों का धर्म है। इसलिए प्रवृत्ति धर्म को बतलाने वाले शास्त्र की रचना करना महा अनर्थ का कारण है। उसी में विश्वास करके अनुष्ठान करने वालों को नरकादि अनर्थ होंगे।।15।।

इसलिए श्री हरि की महिमा का वर्णन करने वाली श्रीमद्भागवत की रचना कीजिए तभी आप के मन को तृप्ति होगी। समाधि भाषा में लिखे हुए ग्रन्थों को पढ़ने वाले अधिकारी नहीं हैं ऐसा न समझे, सात्विक प्रकृति के जीव देश काल और गुणों से व्याप्त श्री हरि के अनुग्रह से मोक्ष सुख प्राप्त करते हैं। यह जीव सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण ऐसे प्रकृति के गुणों के अधीन होकर इस संसार में भ्रमण करते रहने से सब भूल जाता है। श्री हरि की इच्छा से वह श्री हरि को जानने के कार्य में आसक्त नहीं हुआ है। यदि ऐसा जीव निवृत्ति धर्म का अनुष्ठान करें तो उसके फलरूप में श्री हरि के अनुग्रह को प्राप्त करते हैं। इस विषय को जानने वाला सज्जीव आप के इस भागवत् ग्रन्थ से निवृत्त धर्म का उपदेश करके उस जीव को पुरुषार्थ प्राप्त करने के योग्य बनाएगा। विवेकी जीव ब्रह्मसूत्र के दूसरे अध्याय के दूसरे पाद में बतलाए हुए युक्तियों का मनन करके साँख्यादि दर्शनकारों का मत दूषित होने से उनका अनाप्त होना, प्रमादादि दोष रहित वेदव्यास रूपी श्री हरि को आप्ततम होना जानकर इन्द्रियजय रहित, विषयासक्त जीव निवृत्ति धर्म का आचरण करके श्री हरि के अनुग्रह के पात्र होकर स्वरूप सुख को प्राप्त होता है ऐसा जानता है। ऐसे अधिकारी जीव ही आप के श्रीमद्भागवत का अध्ययन करके जान सकते हैं।।16।।

श्री हरि स्मरण रहित धर्माचरण को संकोच करके अथवा त्याग कर निवृत्तिधर्म के द्वारा श्री हरि के चरण कमल की सेवा करते रहने पर यदि उसको भगवान का साक्षात्कार भी न हो तो उसका कभी भी अकल्याण नहीं

होता है। अगले जन्मों में पुनः निवृत्ति धर्माचरण करते हुए श्री हरि के अनुग्रह का पात्र होकर उसको भगवान का साक्षात्कार होता है। इसलिए हरिभक्ति में संकोच करके स्वधर्म करने से भी प्रवृत्तिधर्म को संकोच करके श्री हरि में भक्ति करना ही श्रेयस्कर है।।17।।

दुःख रहित स्वरूपभूत आनन्द का अनुभव करना ही मोक्ष है। यह श्री हरि के परम अनुग्रह से ही प्राप्त हो सकता है। श्री हरि के परमानुग्रह के लिए निवृत्ति धर्म ही मुख्य साधन है। अतः बुद्धिमान पुरुष निवृत्ति धर्मरूप साधन सम्पत्ति के लिए प्रयत्न करें, न कि ऐहिक सम्पत्ति को देने वाले प्रवृत्ति धर्म में प्रवृत्त हों। प्रवृत्ति धर्म में आसक्त हुआ स्वर्ग और भूलोक में संचार करते हुए नित्यसुख मोक्ष को प्राप्त नहीं करता है। निवृत्ति धर्मानुष्ठान करने वालों को स्वरूप सुखात्मक मोक्ष काल क्रम से अनेक जन्मों के साधन के फलस्वरूप काल रूपी तथा जगत विलक्षण श्री हरि के अनुग्रह से मिलता ही है। पापियों के लिए जैसे दुःख की प्राप्ति होती है वैसे ही मुक्ति योग्य जीव जो निवृत्ति धर्म का आचरण करते हैं उन्हें दुःख रहित सुख मिलता ही है। लौकिक सुख के लिए प्रयत्न न करे क्योंकि काल क्रम से वह किसी विशेष प्रयत्न के बिना प्राप्त होता ही है। प्रयत्न तो नित्य स्वरूप सुख के लिए ही करें।।18।।

श्री हरि के सेवा करने वाले जीवों और श्री हरि की सेवा न करने वाले जीवों के फल में महान् अन्तर है। श्री हरि का भक्त किसी काल अथवा किसी निमित्त से दुःख का अनुभव नहीं करता है। **''न हि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति''** श्री हरि के पाद कमल का आस्वादन करने वाला मुक्तियोग्य जीव कभी भी श्री हरि के पद सेवा को नहीं त्यागता और न त्यागने की इच्छा ही करता है।।19।।

ऐसे भक्त के ध्यान में प्रकाशमान होने वाले श्री हरि दिखाई देने वाले जगत के जैसे सत्य हैं। किन्तु वे जगत स्वरूप नही हैं वह जगत से भिन्न हैं। उन श्री हरि से इस जगत की सृष्टि हुई है, रक्षित है तथा लय भी उन्ही के द्वारा होता है। वह हरि सर्वज्ञ, स्वतंत्र सर्वशक्त और सर्वस्वामी हैं। उनमें समस्त शुभ गुण परिपूर्ण हैं। श्री हरि से भिन्न रहने वाले लक्ष्मी, ब्रह्मादि समस्त चेतन सर्वज्ञ नहीं हैं, अस्वतंत्र हैं। इसलिए श्री हरि का जगत से भिन्न होना अनुभव सिद्ध है। श्री हरि के अवतारभूत आप भी इसको जानते हैं। इसलिए श्री हरि में और जगत में ऐक्य कहना प्रमाण विरुद्ध है। आप का ज्ञान अपरिमित है मेरा ज्ञान तो अल्प है। श्रुतियों के यथार्थ अर्थ को बतलाने वाले और श्री हरि की महिमा का वर्णन करने वाले श्री मद्भागवत् ग्रन्थ की रचना करके सज्जनों का उद्धार कीजिए।।20।।

हे वेदव्यास जी! आप को जननादि दोष नही है। सब के स्वामी श्री हरि ही उत्तमकर्ता हैं। वह सर्वोत्तम हैं। आप उनके अवतार हैं। सज्जीवों पर अनुग्रह करके उनको मोक्ष का साधन बतलाना ही आप के अवतार का प्रयोजन है। इसे तो मुझे कहना नहीं है आप जानते हैं। इसलिए आप अपने महा महिमा से युक्त चरित्र को ही इस ग्रन्थ में वर्णन कीजिए। उस महात्म्य का मनन करके सज्जीव मोक्ष आदि समस्त पुरुषार्थ को प्राप्त कर सकें।।21।।

सज्जीव अपनी अपनी योग्यतानुसार शरीर को दंड देकर तप कर सकते हैं, शास्त्र श्रवण कर सकते हैं, उत्तम प्रकार से यज्ञ यागादि कर्म कर सकते हैं, वेद इत्यादि समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर सकते हैं। अनेक विषयों को जानते भी होंगे और अनेक लोगों को समझा भी सकते हैं। परन्तु यह सब तब सार्थक होंगे जब अपरोक्ष ज्ञान उत्पन्न करके शाश्वत फल रूप मोक्ष के लिए कारण हो। यह तब साध्य होगा जब ये समस्त कर्म श्री हरि के गुणगान पूर्वक किया जाय। इसलिए सज्जीवों को भगवद्स्मरण के लिए श्री हरि के गुणों का वर्णन करने वाले श्री

मद्भागवत शास्त्र की रचना कीजिए।।22।।

नारद जी का वृत्तान्त- श्री हरि के गुणों के वर्णन रूप कथा श्रवण करने से मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं इस विषय में मै अपने ही चरित्र का वर्णन करता हूँ। मैं पहले ब्रह्मकल्प में वेद से प्रतिपाद्य श्री हरि का चिन्तन करने वाले मुनियों की दासी का पुत्र था। वह अन्य दासियों की भाँति सामान्य दासी नहीं थी। उनमें हरिभक्ति इत्यादि विशेष गुण थे। वेद से प्रतिपाद्य श्री हरि का सदा विचार करने वाले ज्ञानियों की दासी थी। वर्षा ऋतु तथा शरद ऋतु में चार महीने के लिए एक ही स्थान में निवास करने वाले यतियों की सेवा करने के लिए बाल्य में ही मैं नियुक्त हो गया था।।23।।

उस समय भी मैं इन्द्रियों को वश में करके चंचलता छोड़ और खेलों को त्यागकर उन महात्माओं की आज्ञा में रहता और मित संभाषण करता था। इससे मेरे ऊपर उन महापुरुषों ने बड़ी दया की।।24।।

वे अपरोक्ष ज्ञानी थे। उनको यथार्थ ज्ञान था। समस्त जगत को श्री हरि के अधीन जानते थे। वह ब्राह्मण यति प्रसाद पाने के पश्चात् उनके उच्छिष्ट पत्तलों को मैं उठाता था और उस स्थान को गोमय से शुद्ध करता था। उनके भोजन के पश्चात् जूठा पत्तलों में बचा हुआ जूठन को दिन में एक बार उनकी आज्ञा से भोजन करता था। वे यति एक ही बार भोजन करते थे इसलिए मैं भी उनका अनुसरण करते हुए एक ही बार भोजन करता था। इससे (उच्छिष्ट भोजन से) मेरे समस्त पाप नष्ट हो गए। इस शुद्ध आहार के सेवन करने से मेरा मन भी शुद्ध हो गया तथा रागादि दोष दूर हो गये। इस प्रकार उनका अनुसरण करते हुए जीवन यापन करने से, विषयों में वैराग्य, भगवद् कथा श्रवण में रुचि उत्पन्न हुई। एक क्षण के लिए भी इन साधनों को नहीं छोड़ता था। अब भी भगवभक्तों की सेवा करने वाले समस्त सज्जीवों को मोक्ष मार्ग के साधनों में आसक्ति उत्पन्न होती है।।25।।

वे महापुरुष नित्य श्री हरि के मनोहर चरित्र भक्ति के साथ गाते थे। उनकी अनुमति से मैं भी उनको सुनता था। हे वेदव्यास जी! इस प्रकार श्रद्धापूर्वक तीनों समय श्री हरि की कथा का श्रवण करते हुए मुझे भी मनन करने का अभ्यास हुआ और श्री हरि के ध्यान रूप उपासना को आरम्भ किया।।26।।

निरन्तर हरिस्मरण रूप भगवान की उपासना से श्री हरि का सर्वोत्तम होना और स्वतंत्र होना, दृढ़ होता गाया। यह भी समझ लिया कि मुझमें विम्ब रूप से रहने वाले परिपूर्ण श्री हरि ही इस जगत की सृष्टि, स्थिति और संहार करने वाले हैं। इसलिए यह समस्त जगत उनके (श्री हरि के) अधीन है।।27।।

ऐसा विवेक ज्ञान भी मुझे श्री हरि के अनुग्रह करने की इच्छा से ही हुआ। यह अस्वतंत्र जगत और स्वतंत्र श्री हरि एक ही नहीं हैं। यह जगत श्री हरि में भ्रम से कल्पित भी नहीं है। इन विषयों को महामहिमा वाले यति गण भक्तिपूर्वक कहते थे। वे अपने योग्यतानुसार समस्त विषयों को जानने वाले थे। वर्षा ऋतु और शरद ऋतु में त्रिकाल में मैं भक्ति पूर्वक श्री हरि के चरित्र का श्रवण करता था। श्री हरि का चरित्र दोष रहित और शुद्ध है। निरन्तर श्रवण करने से श्री हरि के अपरोक्ष ज्ञान के लिए कारणी भूत हरि के सर्वोत्तमत्व ज्ञान पूर्वक सुदृढ़ स्नेह मुझमें उत्पन्न हुआ। यही भक्ति है। तब विषयों में आसक्ति अन्यथा ज्ञान इत्यादि दोष नष्ट हुए। इस प्रकार भक्ति और उपासना एक दूसरे के कारण हैं।।28।।

श्री हरि के महात्म्य को श्रवण करने पर भी सद्गुरू के उपदेश के बिना उसका कोई उपयोग नहीं है। केवल

कथा श्रवण से उत्पन्न ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं है। इस विषय को जानने वाले वे योगी मुझ पर अनुग्रह किए। उन्होंने समझा कि यह बालक होने पर भी ब्रह्मज्ञान के उपदेश के लिए अधिकारी है। वे चातुर्मास्य समाप्त करके अन्यत्र प्रस्थान करते समय मुझे बुलाकर अनुग्रह पूर्वक प्रसन्न मन से अति गूढ़ रहस्य रूप भगवान के ज्ञान का उपदेश किए। इस ज्ञान को श्री हरि ने ब्रह्मा जी को उपदेश किया था। ऐसे ज्ञान को कृपा से मुझे उपदेश किए।।29,30।।

उनके उपदेश से मैंने जगज्जन्मादि कर्त्ता परमपूज्य श्री हरि के सामर्थ्य को अपनी योग्यतानुसार जाना। इसी ज्ञान से ही समस्तज्ञानी पुनरावृत्ति रहित श्री हरि के बैकुण्ठ लोक को प्राप्त कर स्वरूपानन्द का शाश्वत रूप से अनुभव करते हैं। ऐसे ज्ञान के बिना अन्य ज्ञान से कभी मोक्ष की प्राप्ति न होगी।।31।।

ऐसा ज्ञान ही संसार निवृत्ति के लिए श्रेष्ठ औषधि है। संसार में आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक ताप ही अधिक हैं। संसार अर्थात् तापत्रयात्मक है। इससे छुटकारा पाने की इच्छा किस मुमुक्षु को न होगी? इसलिए मुमुक्षु सज्जनों पर अनुग्रह करके उपरोक्त ज्ञान को बतलाने वाले शास्त्र की ही रचना कीजिए। यह ज्ञान उत्पन्न होने के लिए वेदोक्त कर्मानुष्ठान की आवश्यकता है। समस्त कर्मों को परिपूर्ण, नियामक तथा सर्वोत्तम श्री हरि में समर्पण करना चाहिए तभी अन्तःकरण शुद्ध होकर विषय वैराग्य उत्पन्न होगा। जिससे श्री हरि में अतिशय भक्ति होगी उससे अपरोक्षज्ञान उत्पन्न होगा। अपरोक्ष ज्ञान ही श्री हरि के प्रसन्न होने का लक्षण है। भगवान के अत्यर्थ प्रसाद से ही संसार की निवृत्ति है। अतः ब्रह्मार्पण बुद्धि से किया हुआ कर्म निवृत्ति कर्म, कहलाता है और यही संसार की औषधि है।।32।।

कर्म तो बंधक है वह कर्म मोचक कैसे होगा ऐसी शंका न करें। क्योंकि जिस पदार्थ से रोग उत्पन्न होता है, वही पदार्थ रोग दूर नहीं कर सकता। किन्तु दूसरे पदार्थ से मिलकर वही पदार्थ रोग को दूर कर देता है। इसी प्रकार सब कर्म मनुष्यों के जन्म मरण के कारण हैं और उन्ही को परब्रह्म में अर्पण करने से अनेक जन्म में किए हुए पाप कर्म को नाश करके जन्म मरण की निवृत्ति करने में समर्थ होते हैं।।33,34।।

इस कर्म-भूमि में जीव कर्म किए बिना नहीं रह सकता है। समस्त कर्मों को भगवद् अर्पण बुद्धि से करने से श्री हरि प्रसन्न होंगे। भगवान के संतुष्ट होने पर ही वही कर्म परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञान को उत्पन्न करेगा। इस प्रकार भगवान का ज्ञान निवृत्ति कर्म के अधीन है। इसी अभिप्राय से **''कर्मणा ज्ञानमातनोति'' ज्ञानेनामृती भवति'** वाक्य है। अमृत (मोक्ष) के लिए कारण होने से अमृत कहलाता है यही निवृत्ति कर्म।।35।।

ज्ञानी जन यज्ञ यागादि कर्म करते समय सदा श्री हरि का स्मरण करते हैं **''स्मर्तव्यः सततं विष्णुः विस्मर्तव्यो न जातुचित''** कर्म के आरम्भ में, मध्य में और कर्म की समाप्ति पर भक्तिपूर्वक श्री हरिस्मरण करना है। उनके कल्याण गुणों का सदा मनन करते हैं। इन गुणों को बतलाने वाले उनके नामों का उच्चारण करते हैं। इसलिए पुरोहित के साथ यजमान को भी हरिस्मरण उच्चारण करने का अभ्यास करना है।।36।।

''हे श्री हरि! आप समस्त गुण पूर्ण हैं ओं मंत्र से प्रतिपाद्य हैं। जगत में सर्वत्र वास करने से आप का नाम वासुदेव है। सर्वत्र प्रकाशमान होने से देव कहलाते हैं। बल और ज्ञान के स्वरूप हैं। दैत्यों को दण्डित करना आप का स्वभाव है। जगत की सृष्टि आदि कार्य आप के क्रीडारूप हैं वह आप के आयास के कारण नहीं बनते हैं। अत्यन्त प्रकाशमान होने से प्रद्युम्न नाम से प्रसिद्ध हैं। अति उत्कृष्ट होने से उत् कहलाते हैं, ऐसे वासुदेव,

प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण आप का सदाकाल स्मरण करता हूँ, नमस्कार करता हूँ।'' इस प्रकार भगवद्स्मरण पूर्वक वैदिक कर्मों का आचरण करना चाहिए तभी श्री हरि उससे संतुष्ट होकर परोक्ष ज्ञान तदनन्तर अपरोक्षज्ञान को देंगे। इस ज्ञान पूर्वक कर्म करने वाले पुरोहित को श्री हरि का अनुग्रह होकर शास्त्र में निस्सीम ज्ञान उत्पन्न होगा। उनके योग्यतानुसार सर्वज्ञत्व प्राप्त होगा। मुमुक्षुओं को श्री हरि के ज्ञान का उपदेश करने का सामर्थ्य उनको होगा। इसलिए विष्णुभक्त पुरोहित द्वारा विष्णुभक्त यजमान जो कर्म विष्णु को उद्देश्य करके करता है वही कर्म सत्कर्म है। यही मोक्ष के कारणी भूत ज्ञान को उत्पन्न करता है।।37,38।।

निवृत्ति कर्म से ज्ञान उत्पन्न होता है उसके लिए मैं ही साक्षी हूँ। इस जगत का नियमन करने वाले ब्रह्म रुद्रादियों के लिए श्री हरि नियामक हैं। उस श्री हरि के प्रीत्यर्थ मैं अपने वर्णानुसार धर्म का आचरण करता रहा। श्री हरि की कथा श्रवण और धर्म में आसक्त रहा। इस प्रकार निष्काम रूप से किए हुए कर्म को श्री हरि स्वीकार करके मुझे ज्ञान प्रदान किए तब मुझे ज्ञान हुआ कि श्री हरि ही नियामकों में श्रेष्ठ हैं-स्वतंत्र नियामक हैं। श्री हरि के सर्वोत्तमत्व ज्ञान से उनमें निश्चल भक्ति उत्पन्न हुई। यही मुझे श्री हरि के अपरोक्ष ज्ञान का कारण बना।।39।।

हे वेदव्यास जी! आप परिपूर्ण हैं, सर्व नियामक हैं, आप को कोई नया प्रयोजन प्राप्त होने को नहीं हैं। इस पर भी आप सज्जनों पर अनुग्रह करने के लिए अवतार लिए हैं। सज्जनों को यथार्थ ज्ञान का उपदेश करना ही आप के अवतार का प्रयोजन है। जो सज्जीव ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं उनको ज्ञान प्राप्त होने के लिए श्री मद्भागवत शास्त्र की रचना कीजिए। उस ग्रंथ में श्री हरि का महात्म्य और श्री हरि की कीर्ति का ऐसा वर्णन कीजिये कि उस विषय में कोई शंका न रह जाय। आप श्री हरि के स्वरूप हैं आप ही अपनी कीर्ति को भली भाँति समझाने में समर्थ हैं। आप का यह ग्रन्थ रचना संसार के तापत्रय से पीड़ित मुक्ति योग्य जीवों के लिए मोक्ष का कारण होगा। अन्य किसी ग्रन्थ की रचना से इस प्रकार का प्रयोजन नहीं हो सकता है और आप के मन की अतृप्ति भी दूर नहीं हो सकती है। इसलिए श्री मद्भागवत की रचना ही आप के अवतार का शेष कार्य है। इस कार्य को करने में आप समर्थ हैं। यही मेरी प्रार्थना है।।40।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे पंचमोऽध्यायः।।

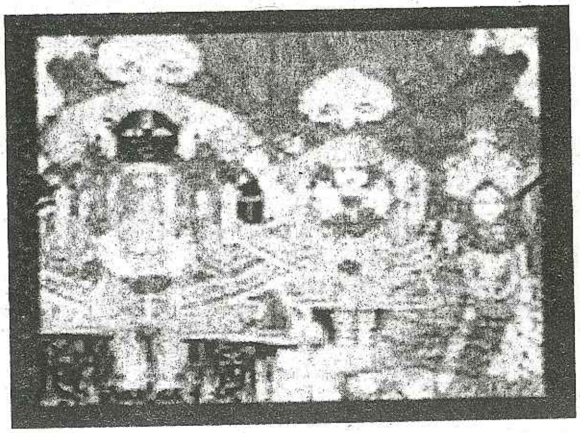

अध्याय - 6
अथ षष्ठोऽध्यायः

सूत जी ने कथा को आगे सुनाते हुए ब्रह्मज्ञानी शौनक ऋषियों से कहा कि हे शौनक! वेदव्यास जी का नारद जी पर अधिक अनुग्रह है। उनकी इच्छा है कि नारद जी का यश इस जगत में फैले। इसलिए व्यास जी सर्वज्ञ होने पर भी नारद जी के जन्म वृतान्त को न जानने वालों के जैसे पूँछे और जान लिये पूर्व कल्प में नारद जी का जन्म कौन सा था और उस जन्म में क्या किया इसको जाना। उनके जन्म के अन्य वृतान्त को लोगों को बतलाने की इच्छा से वेद व्यास जी ने पुनः नारद जी से प्रश्न किया।।1।।

वेद व्यास जी ने कहा-हे नारद! चातुर्मास्य समाप्त करके ज्ञानी यती जाते समय में आप को विशिष्ट ज्ञान का उपदेश किए। योग्य जीवों को ज्ञान भिक्षा देना सद्जीवों का स्वभाव है। वे तो आप को ज्ञान का उपदेश करके चले गए तब आप बाल्यावस्था में थे। क्या आप उन यतियों के साथ चले गए अथवा अपनी माता के साथ ब्राह्मणों के घर में रह गए? वहाँ कितने दिन तक रहे। हे ब्रह्मपुत्र! आप ने अपने शेष जीवन को कैसे व्यतीत किया? आप के जीवन की क्या वृत्ति थी। जब मरण काल प्राप्त हुआ तब आप ने देह को कैसे त्यागा।।2,3।।

यह काल सब को भुलाने वाला है, और पूर्व का कोई वृतान्त स्मरण में नहीं रहता है, तब आप को पूर्व ब्रह्म कल्प की कथा का स्मरण रहना आश्चर्य की बात है। इसलिए हे नारद! आप के आश्चर्य जनक अगले वृतान्त को जानना चाहता हूँ।।4।।

नारद जी ने कहा-हे वेदव्यास जी! आप सर्वज्ञ हैं। आप के न जानने की कोई वस्तु नहीं है। केवल मेरी कीर्ति को प्रकाश में लाने के लिए ही आप प्रश्न कर रहे हैं। मुझे ज्ञानोपदेश करने वाले यती लोग जब चले गए तब उस बाल्यकाल में मैंने क्या किया, तो सुनिए। जब वह चले गए उस समय मैं छोटा बालक था। मैं उनके साथ नहीं गया।।5।।

अपनी माता को मैं ही एक बालक था, इससे स्त्री तथा मूढ़ दासी माता ने अनन्य गति होकर मुझ में ही स्नेह किया था। वह मेरा कल्याण चाहती थी, पर परवश थी। इससे कुछ करने में समर्थ नहीं हुई। क्योंकि कठपुतली की तरह समस्त संसार ईश्वर के अधीन है। उन श्री हरि की इच्छा के विरुद्ध कोई नहीं जा सकता है।।6,7।।

मैं अपनी माता के साथ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणों के घर में ही वास करता रहा। मेरी माता भी यही चाहती थीं। उनकी इच्छानुसार रहना मेरा कर्तव्य था। उस समय मैं केवल पाँच वर्ष का था। मुझे दिशा, देश और काल का भी ज्ञान नहीं था। ऐसे में अपनी माता के साथ रहता था।।8।।

एक दिन रात में गऊ दुहने के लिए घर से निकली हुई मेरी माता को उनके पैर से दबकर श्री हरि से प्रेरित सांप ने काट लिया। मेरी माता ने इहलोक की यात्रा समाप्त किया। मैंने पुत्र होने के नाते माता की अन्य क्रियाओं को सम्पन्न किया।।9।।

मुझे माता का जो एक बन्धन था वह भी छूट गया। श्री हरि के भक्त बन्धनों को कम करना ही चाहते हैं। श्री हरि भी अपने भक्तों पर अनुग्रह करके उनकी इच्छा के अनुसार अभिमान का कारण होने वाली वस्तुओं को उनसे दूर करते जाते हैं। **"यस्यानुग्रहमिच्छामि तस्य वित्तं हराम्यहम्"** माता की मृत्यु को तो मैंने भगवान का अनुग्रह ही समझा। अब ब्राह्मण के घर को छोड़कर उत्तर दिशा को चला।।10।।

मेरे साथ कोई नहीं था में अकेले ही जाता रहा। मार्ग में जाते हुए बड़े समृद्ध देश, राजधानी, गाँव, गोकुल रत्नादिकों के उत्पत्ति स्थान वाले ग्राम, किसानों के ग्राम, बड़े-बड़े जंगल, पर्वत, शुद्ध जल से भरे हुए सरोवर इत्यादि देखते हुए आगे गया तथा एक बड़े भंयकर और भारी जंगल को देखा।।11,12,13,14।।

मेरी इन्द्रियाँ तथा शरीर थक गये थे। प्यास तथा भूख सता रही थी। इसलिए मैंने नदी के कुण्ड में स्नान करके नित्यकर्म किया और जल पीकर थकावट दूर किया।।15।।

उस मानव हीन जंगल में एक पीपल वृक्ष के नीचे बैठकर उन ब्रह्मज्ञानियों ने जैसे उपदेश किया था उसके अनुसार हृदयकमल के मध्य में बिम्बरूपी श्री हरि का मन में ध्यान करने लगा।।16।।

श्री हरि ही जीव के स्वप्न, सुषुप्ति और जागृत अवस्थाओं के लिए प्रेरक हैं। जागृत अवस्था में जीव जिन वस्तुओं को देखता है उनका संस्कार मन में रहता है। इन संस्कारों को उपादान कारण बनाकर जागृत अवस्था में देखे हुए हाथी, घोड़ा इत्यादि पदार्थों के सदृश पदार्थ का निर्माण करके बतलाते हैं इसको स्वप्नावस्था कहते हैं। समस्त इन्द्रिय उपरम हो जाते हैं। जागृत अवस्था में और स्वप्नावस्था में देखे हुए किसी विषय का ज्ञान नहीं रहता है इसको सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। पदार्थों का नाम, रूप ज्ञान, क्रिया ज्ञान जब रहता है वह जागृत अवस्था है। इन तीनों अवस्थाओं के लिए श्री हरि ही नियामक हैं। जिस प्रकार मिट्टी परिणत होकर घड़ा का रूप लेती है वैसे श्री हरि जगत रूप में परिणत नहीं होते हैं। जगत के लिए प्रकृति उपादान कारण है और श्री हरि निमित्त कारण हैं। वे जगत से विलक्षण तथा भिन्न हैं। वे ज्ञान स्वरूप हैं। उनको समीचीन ज्ञान है। उनमें प्रकृति और प्राकृत मिश्रण नहीं है, वे दोष रहित हैं। वे सर्वोत्तम हैं। उन्ही को तूर्या (तुरीय) ब्रह्म कहते हैं। इस प्रकार मुझे परम हंसों ने उपदेश किया था। इसी प्रकार मैंने ध्यान किया।।17।।

उनका रूप आश्चर्य जनक है। वे ज्ञानात्मक चेतनों की रक्षा करते हैं। वे ज्ञान प्रदान करते हैं। जो ज्ञानी हैं उसके ज्ञान का विस्तार करते हैं। गुरु के द्वारा ज्ञान का उपदेश करते हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा जो सृष्टि करते हैं उनसे भी उत्तम हैं। ऐश्वर्यादि समस्त गुणों से पूर्ण हैं। सर्वत्र व्याप्त हैं। उन श्री हरि को जागृत अवस्था, स्वप्नावस्था सुषुप्ति अवस्था तथा जनन-मरण नहीं है।।18।।

शाश्वत (सदा) एक प्रकार रहने वाले हैं। श्री हरि ही सृष्टि के आदि में अर्थात् प्रलय काल में एक ही प्रधान रूप से थे। जीवों में प्रवृत्ति उत्पन्न करने के लिए भगवान ने पुनः सृष्टि करने की इच्छा किया। सृष्टि करते हुए और अनादि पदार्थों में अन्तर्यामी होकर तथा अवतारादि रूपों द्वारा विहार करने की इच्छा किये तब अपने अनन्त रूपों की सृष्टि किये। अपने उदर में रहने वाले अनन्त जीव समुदाय को प्राकृत देह का संबंध कराकर उनकी सृष्टि किये।

इस प्रकार ब्रह्माजी से लेकर परमाणु पर्यन्त सृष्टि करके उनमें अपने रूपों को प्रवेश करके उनके

स्वभावों को प्रेरिरत करते हुए वे विहार करते हैं। पुनः प्रलय काल में इन सब का संहार करके वह एक ही रहते हैं। तब पुनः जीवों में प्रवृत्ति उत्पन्न करने में उदासीन रहते हैं। श्री हरि समस्त जगत के लिए कारण हैं। वह अपने सृष्टि कार्य में प्रकृति इत्यादि को कारण बनाकर उनका उपयोग किए हैं। किन्तु उनके बिना सृष्टि नहीं कर सकते हैं ऐसा नहीं समझना चाहिए। भगवान, सृष्टि, स्थिति संहार नियमन ज्ञान, अज्ञान, बन्ध और मोक्ष के लिए मुख्यकर्ता हैं।।19।।

इस प्रकार उन परमहंस सन्यासियों ने मुझे उपदेश किया था। उसी प्रकार से मैंने भगवान के चरण कमलों का ध्यान किया। मेरे मन में भक्ति उमड़ आई। परमानन्द का अनुभव किया। इसके फलस्वरूप आँसू निकले। ऐसे एकाग्र चित्त ध्यान करने से श्री हरि मेरे हृदय में व्यक्त हुए।।20।।

उस अप्राकृत रूप को देख कर मुझे श्री हरि में अधिक भक्ति हुई तब मैं आनन्द महासागर में डूब गया। श्री हरि सर्वोत्तम हैं, मैंने जान लिया कि उनके समान अथवा उनसे अधिक कोई नहीं है।।21।।

उनका रूप मनमोहक था। देखने मात्र से सुखदायी थी। उस रूप को देखते देखते रहा जब वह अदृश्य हो गया तब मुझे जैसे मुक्त हुआ जीव को अपनी मुक्ति को खो जाने से दुःख होता है वैसे दुःख हुआ। मैं ध्यान से जाग उठा।।22।।

उस रूप कों देखने की इच्छा से अपने हृदय में रहने वाले श्री हरि में मन स्थिर किया परन्तु देख नहीं सका और अतृप्त एवं आतुर सा हो गया। इस पर भी मुझे श्री हरि दिखाई नहीं दिए।।23।।

वेद वाक्य अनादि और अनन्त होने पर भी श्री हरि के गुणों को सम्पूर्ण रूप से कह नहीं सकते हैं। ऐसी महिमा वाले श्री हरि मेरा शोक दूर करते हुये अदृश्य होकर ही गम्भीर और मधुर वचन कहे। उनके वचन अर्थ गर्भित थे। उनके वचन से मेरे मन का दुःख दूर हुआ।।24।।

पाप फल को अनुभव करके पाप से जो विमुक्त हुए हैं वह ही साधन सम्पत्ति को प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे योगी जन को मैंने देखा है। जिनको अभी पाप के फल का अनुभव करना है वे उत्तम कुल में जन्म नहीं लेते हैं। उनको उत्तम ज्ञान भी नहीं रहता है। वे ध्यानादि का भलीभाँति अभ्यास नहीं कर सकते हैं। ऐसे कुयोगी को मुझे देखने के लिए अधिक परिश्रम करना होगा। तुम भू लोक में शूद्र योनि में जन्म लिए हो। इस जन्म में तुम मुझे नहीं देख सकते हो।।25।।

तुम्हें एक बार अपना अप्राकृत रूप दिखलाया है। जिस किसी को मुझे देखने की उत्कट इच्छा है वही मेरा भक्त है। वह अपने मन में रहने वाले समस्त प्राकृत इच्छाओं को त्याग देता है। उसको मेरे दर्शन के अतिरिक्त अन्य कोई इच्छा नहीं रहती है।।26।।

तुम बहुकाल तक मेरे भक्त परमहंसों की दृढ़ भक्ति से सेवा किए हो जिसके फलस्वरूप मैंने तुम्हें दृढ़ ज्ञान और भक्ति प्रदान की है। संस्कार रहित अतएव इस दोष युक्त शूद्र देह को त्याग दो। भविष्य में ब्रह्माजी के पुत्र होकर जन्म लोगे। उस जन्म में मेरे परम भक्त होगे। तुम्हें जो मेरा दृढ़ ज्ञान है वह कभी नाश नहीं होगा। सृष्टि काल और प्रलय काल में जातिस्मरण (पूर्व जन्म का स्मरण) नष्ट होता है। परन्तु मेरे अनुग्रह से इन कालों में भी तुम्हारा जातिस्मरण नहीं नष्ट होगा।।27,28।।

श्री हरि इतना कहकर मौन हो गए उनका स्वभाव ही नियमन करने का है और सब को अपने-अपने साधन में प्रवृत्त कराना है। उन श्री हरि को जड़ शरीर नहीं है। वे रुद्रादि देवताओं से भी भिन्न हैं। आकाश की भाँति सर्वत्र व्याप्त हैं। ऐसे सर्वोत्तम श्री हरि मुझ जैसे अल्प में कृपा करके इस प्रकार जो अनुग्रह किए हैं वह तो श्री हरि की महिमा ही है। सर्वोत्तम उन श्री महा विष्णु को सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।।29।।

श्री हरि अनन्त हैं, उनका चरित्र भी अनन्त हैं। उनके चरित्र का रहस्य उपदेश द्वारा ही जाना जा सकता है। उनका स्मरण करते रहेंगे तो मोक्ष का कारण होता है। उनके नाम और क्रियाओं का सदा स्मरण करते रहना चाहिए। लज्जा छोड़कर अनन्त भगवान के गुप्त नामों को गाते तथा उनके कल्याणकारी चरित्रों का स्मरण करते हुए मैंने समस्त पृथ्वी की परिक्रमा की और प्रसन्न मन होकर काल की प्रतीक्षा करता हुआ मद तथा मत्सर सेर हित हो गया लौकिक विषयों में वैराग्य दृढ़ हुआ। जो श्री हरि के भक्त नहीं हैं उनका संग त्याग दिया। मन को भगवान में स्थिर करने से और संसार से असंग होने से मन निर्मल हुआ। मेरे समक्ष एकाएक बिजली की चमक के समान मृत्यु आ उपस्थित हुई।।30,31।।

गुरु के उपदेशानुसार निर्दुष्ट श्री हरि का ध्यान करता रहा। मेरे मन में उनका रूप स्थित हुआ। मेरा प्रारब्ध कर्म समाप्त हुआ था और **पंचभौतिक** शरीर भी नष्ट हो गया।।32।।

शूद्र देह त्यागकर में उस कल्प के अन्त में ब्रह्मा जी के देह में प्रवेश किया। कल्प के अन्त में श्री हरि ने समस्त जगत का संहार करके उसे अपने उदर में रखकर प्रलय जल में शेषशायी हुए। तब ब्रह्मा जी श्री हरि के उदर में प्रवेश करने की इच्छा किए। उनके देह में प्रवेश करने वाले श्वास के साथ मैं ने भी प्रवेश किया।।33।।

सहस्र युग के बाद ब्रह्माजी श्री हरि के उदर से बाहर आए और श्री हरि की आज्ञा से जगत की सृष्टि करने लगे। तब मैंने उनकी जंघा से इस जन्म को पाया। मरीचि, अत्रि इत्यादि ऋषि ब्रह्मा जी के प्राण से उत्पन्न हुए।।34।।

श्री हरि के अनुग्रह से मैं सर्वत्र भ्रमण करता हूँ। मुझे कोई रोक नहीं है और मैं अखण्ड ब्रह्मचारी हूँ। तीनों लोकों में अन्दर बाहर मैं भ्रमण करता हूँ।।35।।

यह मेरी महती वीणा श्री हरि की प्रदान की हुई है। इसको देवदत्त भी कहते हैं। यह **स रे ग म प ध नि** ऐसे सप्त स्वरात्मक वेद से अलंकृत हैं। इन स्वरों के आरोहण अवरोहण क्रम से बजाता हूँ। मैं श्री हरि की कथा ही कहता हूँ। लोको में संचार करते समय श्री हरि की कथा ही बजाते रहता हूँ।।36।।

श्री हरि के चरण में उत्तम तीर्थ गंगा जी हैं। उनके पवित्र चरित्र को भक्ति से गान करते हुए मेरे मन में वे प्रवेश करते हैं। उनकी कीर्ति कर्णों को प्रिय लगती है। वे बुलाए वैसा मेरे अन्तःकरण में दिखलाई पड़ते हैं। यही उनका परमानुग्रह है यदि वे अनुग्रह न करते तो अव्यक्त स्वभाव वाले उनको कौन देख सकते हैं।।37।।

विषय सुख को भोगने के लिए ही लोग पुनः पुनः इच्छा करते हैं। उनका मन इसके लिए अति कुतूहल से युक्त रहता है। ऐसे अधिकारी चेतन पुनः पुनः जनन मरण के संसार महा सागर में पड़े रहते हैं। यदि वे इस संसार सागर को पार करना चाहते हैं तो उन्हें श्री हरि के चरित्रों के वर्णन रूप नाव का आश्रय करना चाहिए। इसके सिवाय अन्य कोई साधन न होना साक्षी आदि प्रमाणों से सिद्ध हुआ है।।38।।

अष्टांग योग का अभ्यास करके मन को श्री हरि में स्थिर करने के लिये पुनः पुनः प्रयत्न करने पर भी

लौकिक विषयों की कामना और लोभ से मन चंचल होकर श्री हरि में स्थिर नहीं हो सकता है। परन्तु श्री हरि की कथा श्रवण करते, उनकी सेवा करते रहने से काम और लोभ नष्ट होकर मन उन जीवों की योग्यतानुसार श्री हरि में संपूर्ण रूप से आसक्त हो सकता है। इसलिए यम नियमादि योगानुष्ठान से श्री हरि के चरित्र का श्रवण करना उत्तम है। ।39। ।

हे वेदव्यास जी! आप में अज्ञानादि दोष नहीं है। आप इन सब को जानते ही हैं। इस पर भी आप ने मुझ पर कृपा करके मेरे पूर्व जन्म के विषय में पूछा सो सब मैंने कह सुनाया। ।40। ।

सूत जी ने कहा-इस प्रकार वसु की कन्या सत्यवती के पुत्र व्यास जी से संभाषण कर और उनसे आज्ञा लेकर वीणा बजाते हुए परोपकारी नारद मुनि चले गए। वे श्री हरि की इच्छा से संचार करते हैं। उनका जाना या आना किसी की इच्छा से नहीं है। जितेन्द्रिय वे वीणा पर श्री विष्णु का यशोगान गाते हुए आकाश मार्ग से चले गए। ।41। ।

देवर्षि नारद जी धन्य हैं। शूद्र योनिमें जन्म लेने पर भी ऐसे उत्तम पद को प्राप्त किए हैं यह आश्चर्य जनक है। यह जगत संसार दुःख से तप्त हुआ है। ऐसे दुःख से सन्तप्त जगत को मोक्षादि पुरुषार्थ के योग्य बनाकर आनन्द प्रदान करने के लिए ही यह ऋषि श्रेष्ठ शारंग धनुर्धारी श्री हरि के चरित्र का गान करते हैं। श्रोत्रेन्द्रिय को प्रिय वचनों को वीणा से बजाते हैं तब कहना ही क्या है इसलिए ज्ञान को प्रदान करने वाले उनका नाम **'नारद'** सार्थक है। ।42। ।

। ।इति श्री मद् भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे षष्ठोऽध्यायः। ।

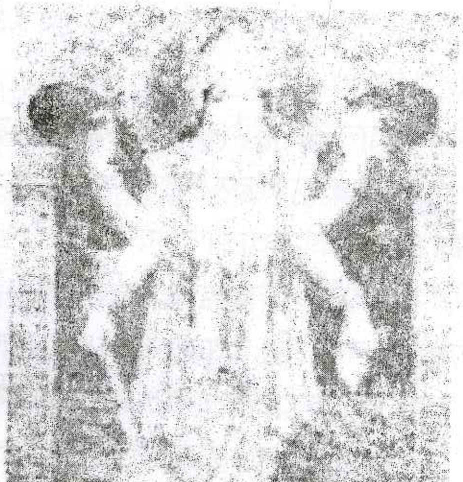

अध्याय - 7
अथ सप्तमोऽध्यायः

शौनक जी ने कहा-हे सूत! परमपूज्य त्रिकाल ज्ञानी तथा सर्व समर्थ वेदव्यास जी अपने मन में जो विषय था उसी को नारद जी से जान लिए वैसा बतलाया। जो सर्वज्ञ है उन्हें क्या जानना है इस पर भी लोक के अनुसार वे जो किए हैं वह युक्त ही है। नारद जी के चले जाने पर भगवान वेदव्यास जी ने क्या किया?।।1।।

सूत जी ने कहा-ब्रह्म नदी नाम से प्रसिद्ध सरस्वती के पश्चिम तट पर शम्यप्रास नाम से प्रसिद्ध ऋषियों के ब्रह्म विचार को बढ़ाने वाला एक आश्रम है। वहाँ यज्ञ यागादि करने से अधिक फल की प्राप्ति होती है। ऋषि गण उस आश्रम में वास करते थे। इस आश्रम में चारों ओर से बेर के वृक्ष थे।।2।।

इनके फल का ही सेवन करके ऋषिगण तप करते थे। यह वदरिकाश्रम ही वेद व्यास जी का आश्रम है। अपने आश्रम में बैठकर वेद व्यास जी आचमन करके एकाग्रचित्त से विचारमग्न हो गए। भूत, वर्तमान और भविष्य में आने वाले अनन्त करोड़ों ब्रह्माण्डों के भीतर और बाहर कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जिसको वेदव्यास जी नहीं जानते हैं। पदार्थ का सामान्य ज्ञान ही नहीं अपितु उसका विशेष ज्ञान भी उनको है। जब ऐसा है तो उन्हें विचार करने का क्या कारण है? अयोग्य जीव उनको असर्वज्ञ जानकर उपासना करके अन्धतमस को जाते हैं। अयोग्य जीवों को साधना भी श्री हरि ही कराते हैं। इस लिए इस प्रकार विचार किए जैसे बतलाया।।3।।

वेदव्यास जी ने तब श्री हरि को और श्री हरि के अधीन बन्धक शक्ति अर्थात् उनकी इच्छा रूप माया को जाना। अधिकारी चेतन, एकाग्रचित्त से ध्यान करने पर प्रकृति और पुरुष को अलग-अलग देख सकते हैं। इसको बतलाने के लिए ही श्री वेदव्यास जी विचार किए वैसे बतलाए। एकाग्र भक्ति से मन में ध्यान करने वालों के हृदय में श्री हरि प्रकाशमान होते हैं। वे देश काल और गुणों से परिपूर्ण हैं। उनके अधीन रहने वाली बन्धक शक्ति ही जीवों को मोहित करती है। सत्व, रजस्तम गुणात्मक प्रकृति से जीव भिन्न है। इस पर भी प्रकृति और प्रकृति के कार्यभूत इस देह और अपने को यह जीव भ्रम से एक ही समझता है। इसलिए जन्म मरण रूप इस संसार को प्राप्त हुआ है।।4,5।।

यह बन्धक शक्ति श्री हरि के अधीन होने से उनके अनुग्रह के बिना जीव इस बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता है। भगवान के अतिशय अनुग्रह से अपरोक्ष ज्ञान होता है। भगवान में अतिशय भक्ति ही अपरोक्ष ज्ञान का कारण है। इसलिए श्री हरि में जो भक्ति करते हैं वे इस संसार से मुक्त होते हैं। इसको योग्य जीव नहीं जानते हैं ऐसे योग्य जीवों को भक्तियोग को समझाने के लिए ही वेद व्यास जी ने श्री मद्भागवत शास्त्र की रचना किया है। यदि इस भागवत का नित्य प्रति श्रवण करते रहें तो श्री हरि के अनुग्रह से सर्वोत्तम श्री हरि में अतिशय भक्ति उत्पन्न होगी। ऐसी भक्ति ही जीवों के शोक मोह और संसार के भय को सम्पूर्ण रूप से नाश कर सकती है। ऐसे शास्त्र की रचना करने में श्री हरि ही समर्थ हैं। इसलिए वेदव्यास रूप से इसकी रचना किया है।।6,7।।

उन व्यासमुनि ने श्री मद्भागवत संहिता बनाया और शुद्ध करके फलेच्छा रहित भगवद् प्रीत्यर्थ कर्म करने वाले, श्री हरि के गुणों का ही सदा मनन करने वाले भूत, भविष्य, वर्तमान कालों को जानने वाले तथा भागवत धर्म से युक्त निवृत्ति मार्ग में लगे हुए अपने पुत्र श्री शुकदेव जी को अध्ययन कराये।।8।।

शौनक जी ने कहा-हे सूत जी! शुकदेव जी श्री हरि में ही मन स्थित करके सन्तोष से रहने वाले हैं। अपनी योग्यतानुसार सर्व विषयों को जानते हैं। मौन व्रत का आचरण करते हैं। सबसे बढ़कर शिष्य बनाने और अन्य कार्यों में उदासीन रहने वाले, इनका समस्त कर्म श्री हरि के प्रीत्यर्थ ही है। ऐसे महापुरुष शुकदेव मुनि ने किस पुरुषार्थ के लिए भागवत जैसे बड़ी संहिता का अध्ययन किया?।।9।।

सूत जी ने कहा-क्रोध तथा अहंकार से रहित आत्मज्ञानी मुनिजन विष्णु की फलेच्छा रहित निष्काम भक्ति करते हैं। उनको लौकिक विषय की कोई इच्छा नहीं रहती है। श्री हरि के गुणों का मनन करना ही उनका स्वभाव है। इसलिए किसी प्रयोजन की इच्छा न रखते हुए श्री हरि की भक्ति करते हैं। जिन्हें अपरोक्ष ज्ञान नहीं है ऐसे भक्त ही इस प्रकार रहते हैं तब अनेक जन्मों में साधन करके श्री हरि का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त किए हुए शुकदेव इत्यादि श्री हरि में भक्ति किए बिना कैसे रहेंगे? मुक्त जीव ही श्री हरि की सेवा करते हैं ऐसे गुणपूर्ण श्री हरि हैं। तब अमुक्त जीव ऐसे गुणपूर्ण श्री हरि की उपासना किए बिना कैसे रह सकते हैं।।10।।

परम पूज्य वेद व्यास जी के पुत्र शुकदेव जी विष्णु के चरित्रों से तथा गुणों से आकृष्ट होकर भगवन् महिमा को प्रतिपादन करने वाले इस श्री मद्भागवत का स्वयं नित्यप्रति अध्ययन किए तथा अन्य भक्तों को अध्ययन कराए।।11।।

श्री मद्भागवत विष्णु भक्तों के लिए अत्यन्त प्रिय शास्त्र है। किस युग में इस शास्त्र की रचना हुई इसको बतलाया गया। अब मैं राजर्षि परीक्षित का जन्म, कर्म, मुक्ति और पाण्डु के पुत्रों के महा प्रस्थान का वृत्तान्त कहता हूँ। जिससे श्री कृष्ण की महिमा स्पष्ट होती जायेगी।।12।।

जब महाभारत के युद्ध में कौरव और पाण्डव वंश के वीर वीरगति को प्राप्त हुए और भीमसेन ने अपनी गदा से धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन की जंघाएँ तोड़ डाली।।13।।

तब अश्वत्थामा ने द्रौपदी के सोते हुए पुत्रों के मस्तक को दुर्योधन की प्रसन्नता के लिए काट डाला। परन्तु स्वयं अश्वत्थामा को यह उचित नहीं था। क्योंकि ऐसे निन्दित कर्म की विद्वान लोग निन्दा करते हैं। ऐसे निन्दनीय कर्म अश्वत्थामा ने कर दिया। अपने पुत्रों की मृत्यु सुनकर उनकी माता द्रौपदी बहुत विकल हुई और आंसुओं भरे नेत्रों वाली द्रौपदी रोने लगी।।14,15।।

द्रौपदी परशुक्लत्रय में से एक भारती देवी का अवतार हैं। उनको दुःख नहीं है। तामस जीवों को मोहित करने के लिए द्रौपदी को दुखित दिखाया गया है। पाण्डवों का वंश निर्मूल करने की अपने निन्दित स्वामी की इच्छा को सत्य करने के लिए अश्वत्थामा ने जो हीन कार्य किया था उसका परिणाम वह नहीं जानता था ऐसा नहीं। उसके मन में जो भावनाएँ छिपी हुई थीं उसको स्वप्न में देखा था। अश्वत्थामा ने इस प्रकार की हिंसा करने के पूर्व ही उसको स्वप्न रूप में देखा था। उसने स्वप्न में द्रौपदी को रोते हुए देखा। तब अर्जुन द्रौपदी के पास आए और समझाते हुए कहे-हे भद्रे! उस आततायी तथा अधम ब्राह्मण अश्वत्थामा का मस्तक मैं अपने गाण्डीव धनुष द्वारा

चलाए हुए बाणों से काट कर तुम्हारे चरणों पर रखूँगा। तुम दुःख मत करो।।16।।

ऐसी सान्त्वना देकर श्री कृष्ण के साथ रथ पर बैठकर अर्जुन अपने गुरुपुत्र अश्वत्थामा के पीछे गए।।17।।

अर्जुन को दूर से अपनी ओर आते देखकर बालघाती अश्वत्थामा कम्पित हृदय हो प्राण बचाने की इच्छा से रथ पर चढ़कर जहाँ तक जा सका वहाँ तक भागा।।18।।

जब उसके घोड़े थक गए और द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने अपना कोई रक्षक नहीं देखा, तब उसने ब्रह्मास्त्र को अपना रक्षक जाना।।19।।

जल से आचमन तथा ध्यान करके ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। यद्यपि वह उसको लौटाना नहीं जानता था तथापि प्राण संकट प्राप्त होने पर उसने उस अस्त्र का प्रयोग कर ही दिया। किस प्रयोजन के लिए यह अस्त्र छोड़ रहा हूँ नहीं जानता था प्रयोग करते समय संकल्प भी नहीं किया।।20।।

इस अस्त्र से भयंकर तेज सभी दिशाओं में फैल गया इसको देखकर अर्जुन को आश्चर्य हुआ।।21।।

सर्वज्ञ श्री कृष्ण से कहा-सर्वदा आनन्द स्वरूपी, भक्तों के दुःखों को निर्मूल करने की सामर्थ्य वाले हे श्री हरि आप महामहिमा से युक्त हैं। भय उत्पन्न करने वाले इस संसार से भक्तों को अभय प्रदान करने वाले हैं। संसार के ताप से सज्जीव संतप्त होते हैं। उनको उससे छुटकारा दिलाने की सामर्थ्य वाले आप एक ही हैं।।22।।

आप सब के आदि हैं। सब प्रकार के पापों को जलाकर भस्म करने वाले हैं। सर्वत्र व्याप्त श्री कृष्ण भगवान आप ही हैं। मुख्यरूप से ऐश्वर्य वान आप ही हैं अन्य कोई नहीं है। जड़ प्रकृति की अभिमानिनी चेतन प्रकृति कहलाने वाली रमा देवी से आप उत्तम हैं। आप की स्वरूप ज्ञान शक्ति ने आप की बंधक शक्ति को आप में कार्यकारी न हुए वैसा की है। इसलिए आप को प्रकृति और प्राकृत का बंधन नहीं है। आप अपने स्वरूप ज्ञान से ही प्रकाशमान हैं। आप की बंधक शक्ति से यह जीव मोहित हुए हैं। उनमें से मुक्ति योग्य जीवों को बंधन से निवृत्त करने की आप इच्छा करते हैं। उसके लिए अन्य किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है। आप अपने भक्तों को धर्म अर्थ काम और मोक्ष चार प्रकार के पुरुषार्थों को देने की इच्छा से अवतार करते हैं।।23,24।।

आप के अवतार स्मरण कीर्तन प्रणाम करने वाले सज्जनों को मोक्ष देने में समर्थ हैं। इस कृष्णावतार को भूभार हरण करने की इच्छा से किए हैं। अन्य अवतारों के वैसे यह अवतार भी आप के एकान्त भक्तों के उपासना का कारण है। पुनः पुनः करने से यह उपासना आप के भक्तों को मोक्ष देने वाली है। आप के अवतार को मोक्ष देने का सामर्थ्य है। ऐसे अवतार को भक्तों के ऐहिक दुःख को दूर करने की सामर्थ्य क्या नहीं है?।।25।।

हे देव-देव! यह अत्यन्त भयंकर तेज असहनीय है। सर्वत्र व्याप्त होकर आ रहा है। यह कौन-सा तेज है, कहाँ से आ रहा है मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ। कृपा करके बताइये-ऐसी प्रार्थना किया।।26।।

तब कृष्ण ने कहा-हे अर्जुन! तुम्हारे गुरु द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र ही यह तेज है, अन्य कुछ नहीं। वह इसका प्रयोग जानता है किन्तु इसका उपसंहार करना नहीं जानता है फिर भी प्रयोग कर दिया है। इससे पता चलता है कि उसके प्राण बचाने के लिए कोई रास्ता नहीं है। यदि उसको प्राण का भय न होता तो कभी इसका प्रयोग नही करता। तुमसे घबराकर किसी प्रकार से प्राण बचाने के लिए इसका प्रयोग किया है।।27।।

कोई सामान्य अस्त्र इस अस्त्र के तेज को निर्वीर्य नहीं कर सकता है। इसके प्रति और एक ब्रह्मास्त्र का

प्रयोग करना चाहिए। अपने पुत्र को इस ब्रह्मास्त्र की विद्या को न बतलाने वाले द्रोणाचार्य जी तुम को बतलाए हैं। तुम इस विद्या को पूर्ण जानते हो। इस अस्त्र का तेज क्षण क्षण में अधिक होता जा रहा है। तुम भी इसके प्रति ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके, अपने अस्त्र के तेज से उसके तेज को दूर कर दो। तुम्हारी विद्या के लिए आज ही प्रयोजन प्राप्त हुआ है।।28।।

इस प्रकार अपने अभिप्राय को सूचित किये। वीर शत्रु को शत्रु पक्ष के वीरों को संहार करने में प्रसिद्ध हुए अर्जुन श्री हरि के वचनों के अभिप्राय को समझे। शीघ्र ही शुद्ध जल से आचमन करके श्री कृष्ण को-सकल विद्याधिपति को-प्रदक्षिणा किया। अश्वत्थामा द्वारा प्रयोग किए गए ब्रह्मास्त्र के प्रति दूसरे ब्रह्मास्त्र को अपने धनुष में संधान किए हुए बाण में अनुसंधान किया।।29।।

बाण के रूप से निकले हुए यह दोनों ब्रह्मास्त्र एक दूसरे से घर्षण करते हुए द्युलोक, भूलोक और आकाश में व्याप्त हुए। सूर्याग्नि की भाँति परस्पर स्पर्धा से अधिक होते गये। इस प्रकार के दोनों अस्त्र के तेज से तीनों लोक संतप्त होने लगे। कभी भी न देखे हुए ऐसे अतिशय तेज को देखकर प्रजा ने इसको प्रलय काल की अग्नि समझा और जान लिया कि समस्त लोक इससे जल जायेंगे।।30,31।।

इन दोनों अस्त्रों के परिणाम को देखते हुए अर्जुन ने इस उत्पात से प्रजा को और लोगों को होने वाली पीड़ा को जान लिया। इसलिए श्री हरि की इच्छा से उन दोनों अस्त्रों का स्वयं उपसंहार करके उस भयंकर तेज को समाप्त किया।।32।।

शीघ्र ही अश्वत्थामा जहाँ पर था वहाँ पर वेग से गए। छोटे बालकों को क्रूरता से मार डाला था। इसलिये उसको देखते ही अर्जुन की आँखें लाल हो गईं। सहन नहीं हो सका। द्रोणाचार्य जी की मृत्यु के पश्चात् उनकी पत्नी गौतमी इस पुत्र के लिए ही जीवित थी। ऐसे गुरुपत्नी के एक ही पुत्र होने पर भी उसकी परवाह न करते हुए यज्ञ पशु के जैसा रस्सी से बाँध लिया।।33।।

उसको गुरुपुत्र न मानकर शत्रु की दृष्टि से उसको देखा। रस्सी से बँधे हुए अश्वत्थामा को शिविर में जहाँ द्रौपदी थी वहाँ खींचकर ले जाना चाहा। उसको देखकर श्री कृष्ण स्वयं कुपित हुए जैसे नटना करते हुए अर्थगर्भित बचनों को कहे।।34।।

श्री कृष्ण ने कहा-हे अर्जुन! यह ब्राह्मण होने पर भी नीच है। इसने जो किया है वह निन्दनीय है। निरपराधी छोटे बालकों का संहार किया है। वह भी रात्रि के समय जब वह सो गए थे। ऐसे नीच को जीवित मत छोड़ो। युद्ध में शत्रु को मारना धर्म होने पर भी धर्म को जानने वाला धर्म को नहीं त्यागता है। मद्यपान करके जो मदोन्मत्त है, बुद्धि भ्रष्ट होकर जो स्मरणहीन है, भूत से आविष्ट होकर जो पागल हो गया हो, स्वयं विवेकशून्य हो, गाढ़ निद्रा में हो, प्रपंच को न जानने वाला छोटा बालक हो, बाल्य, यौवन, वार्धिक्य इन तीनों अवस्थाओं में अपनी जीविका के लिए दूसरे का आश्रय किया हो और स्वयं जीविका चलाने की योग्यता नहीं हो, अपने प्राण की रक्षा के लिए किसी की शरण में आया हो, रथ आदि युद्ध सामग्री के बिना खाली हाथ हो, युद्ध को देखकर घबड़ा कर प्राण बचाकर भागने वाला, इन सबका संहार नहीं करना चाहिए। इसके विरुद्ध कार्य कोई करता है वह युद्धवीर नहीं किन्तु पातकी है। वह दूसरों के प्राणों को निकालकर अपने प्राण की रक्षा करने वाला स्वार्थी है। उसमें थोड़ी सी भी

दया नहीं है। उसको तो इन्द्रियों को तृप्त करने में ही आसक्ति है। ऐसा पातकी अपने ही कृत्यों के फलस्वरूप नरक यात्रा को भोगता है। ऐसे पुरुष का संहार करने से उसके किए हुए कर्मों का यहाँ पर ही दण्ड मिलने से नरक यातना से बच जाता है। यह उसके लिए ठीक ही है। ।35,36,37।।

हे अर्जुन! इतना ही नहीं मेरे सुनते हुए तुमने द्रौपदी को वचन दिया है **"हे प्रिये! तुम्हारे बच्चों को जिसने संहार किया है, उसका सिर तुम्हारे सामने लाकर रखूँगा।"** तुम्हे इस प्रतिज्ञा का तो पालन करना है न? ऐसी प्रतिज्ञा का पूरा करना तुम्हारे लिए कष्टदायक है। यह अत्यन्त नीच और पापी है। बिना दया के संहार कर दो। जिस ब्राह्मण वंश में जन्म लिया है उसमें कलंक लगा दिया है। इसने जो कर्म किया है वह उसके स्वामी को प्रिय होने पर भी लोक दृष्टि से वह निन्दनीय है ऐसे नीच को जीवित नहीं रखना चाहिए ।।38,39।।

हे शौनक जी! श्री कृष्ण के इस प्रकार के वचनों का अभिप्राय अर्जुन ने नहीं समझा है ऐसा नहीं। विवेकी अर्जुन धर्म की कितना रक्षा करता है इसको जानने के लिए ही भगवान ने इस प्रकार के वचन कहे थे। अश्वत्थामा का संहार करने का उनका अभिप्राय नहीं था। अर्जुन महापुरुष है। उसका मन कभी भी अधर्म में नहीं जायेगा। सनातन धर्म के नियामक श्री कृष्ण कभी भी धर्म के विरुद्ध ब्राह्मण की हत्या स्वीकार नहीं करने वाले हैं। इसके अतिरिक्त बालकों का संहारक अश्वत्थामा गुरु द्रोणाचार्य का पुत्र है। इस प्रकार इन तीन कारणों से अर्जुन ने अश्वत्थामा का संहार नहीं करना चाहा।।40।।

अर्जुन के लिए श्री कृष्ण अत्यन्त प्रिय हैं। उसी को अपने रथ के सारथी के रूप में पाने का भाग्य था। इसलिए भगवान की इच्छानुसार अश्वत्थामा को शिविर पर लाए। बालकों के लिए दुःखित हुए द्रौपदी को अश्वत्थामा को सौंप दिया।।41।।

यज्ञ पशु के जैसा अश्वत्थामा बँधा हुआ था। अपने से किए हुए कर्म को यह अतिनिन्दीय है यह जानकर लज्जा से सिर झुकाए हुए था। द्रौपदी अपने बच्चों का संहार किये हुए और अपना अपकार किये हुए उसको घूर कर देखी। उनका स्वभाव अत्यन्त मृदु है उनका शील सब से स्तुति करने योग्य है। गुरु पुत्र की इस अवस्था को देखकर उनको दया उमड़ आई। उनके अपकार को भूल गई। गुरुपुत्र को नमस्कार किया ।।42।।

गुरुपुत्र को इस प्रकार बाँधकर शिविर तक खींचकर लाना साध्वी स्त्री को सहन नहीं हुआ उसने तुरन्त कहा कि ब्राह्मण को छोड़ दो, छोड़ दो।।43।।

अन्य वर्ण वालों के लिए ब्राह्मण गुरु है। इस पर भी इनका पिता आप का विद्याभ्यास कराया हुआ गुरु हैं। ऐसे गुरु का पुत्र यह गुरु की भाँति मुख्य गुरू है। समस्त रहस्यों से युक्त धनुर्वेद का अध्ययन इनके पिता के अनुग्रह से हुआ है। सभी प्रकार के अस्त्रों को, उनका छोड़ना, उनका उपसंहार करना द्रोणाचार्य के अनुग्रह से ही आप सीखे हैं। आप क्षत्रिय हैं, आप को धनुर्विद्या सिखाने वाले पूज्य द्रोणाचार्य जी इस रूप में हैं ऐसा कहना अनुपयुक्त न होगा। **"आत्मा वै पुत्रनामासि"** इस श्रुति से पिता के गुण पुत्र में संक्रमण कर जाते हैं। पिता के लिए पुत्र अत्यन्त अभिमानास्पद वस्तु होने से पुत्र को ही पिता कहकर भावना करना उचित है। इसलिए द्रोणाचार्य जी इस रूप में हैं ऐसा समझकर इनको छोड़ दीजिए। शास्त्र से सिद्ध है कि पत्नी पति की अर्धांगिनी है। द्रोणाचार्य की अर्धांगिनी कहलाने वाली कृपि देवी पति के साथ सहगमन न करके अभी जीवित हैं। ऐसे वीर बालक को जन्म देने

से अपने पुत्र में रहने वाली ममता से वह अपना देह नही त्यागी हैं। उनके जीवित रहते हुए उनके पुत्र की हिंसाकर के उनको दुःख नहीं देना चाहिए। यह शास्त्र सम्मत है कि जैसे गुरु में भक्ति करते हैं उसी प्रकार गुरु पत्नी में भी भक्ति करें इसलिए गुरु पत्नी की भक्ति से इसको दण्ड दिए बिना ही छोड़ दीजिए।।44,45।।

हे पार्थ! गुरु में गुरु पत्नी में गुरु पुत्र में कैसे व्यवहार करना चाहिए आप जानते हैं। आप से मुझे क्या कहना है। आप भगवान के अनुग्रह के पात्र हैं भाग्यशाली हैं। अश्वत्थामा के दुःख से उसकी माता दुःखी न होवे। यदि वह साध्वी स्त्री कुपित हो जाय तो उनके दुःख को कारण हुआ हमारा वंश का कल्याण न होगा। इसमें संशय नहीं है। गुरु का वंश सदा पूज्य है। नमस्कार के योग्य गुरुकुल को प्रतीकार करना श्रेयस्कर नहीं है।।46।।

आप धर्मज्ञ हैं। इसलिए इस वंश के विषय में अनिष्ट न करें। इस महापुरुष की माता कृपि देवी गौतम वंश में जन्म ली हैं। पति को देवताभाव से सेवा करने वाली पतिव्रता हैं। जैसे मैं अपने पुत्रों को खोकर दुःखी हूँ ऐसा वह दुःखी न होवें। उनके आँखों से आँसू न बहे उनका रोना मुझे सर्वथा इष्ट नहीं है।।47।।

ब्रह्मकुल को कुपित न करना चाहिए। आप लोगों को राजा समझ कर ब्राह्मण वंश को कभी दुःख न देना चाहिए। धर्म को भली भाँति न जानने वाले राजा इस प्रकार ब्रह्मकुल से द्रोह करते हैं। ब्राह्मण वंश को दुःख होने पर उसके लिए कारण होने वाले राजा का वंश परिवार और अनुबंधी बच नहीं सकते हैं। अविलम्ब समूल नाश हो जाते हैं। इसलिए हमारे वंश के कल्याण की दृष्टि से इस ब्राह्मण को छोड़ दीजिए।।48।।

शौनकादि ऋषियों! द्रौपदी के इन वचनों को सुनकर धर्मराजा प्रसन्न हुए। वे वचन धर्म विरुद्ध नहीं थे और न्यायानुसार थे इन वचनों में द्रौपदी की दया भरी हुई थी। उसने अपने खुले हृदय से इन वचनों को कहा था। कोई कपट नहीं था। शास्त्र से सम्मत यह वचन शत्रु मित्र भावना से दूर थे।।49।।

नकुल, सहदेव, सात्यकि, अर्जुन, और पूज्य श्री कृष्ण सभी इसको स्वीकार किए। उनके अनुयायी और वहाँ रहने वाली स्त्रियाँ प्रसन्न हुए।।50।।

परन्तु भीमसेन इन वचनों से सम्मत नहीं थे। सत्कुल में जन्म लिया हुआ अश्वत्थामा से इस प्रकार का निन्दनीय कर्म करना उनको सहन नहीं था। कुपित होकर यह गुरु पुत्र का किया हुआ कर्म उसके स्वामी के इष्ट को पूर्ण नहीं करेगा। उसका भी इष्ट इससे सिद्ध नहीं होगा। छोटे बालकों को सोते समय में जो संहार किया उसके लिए भी इससे कोई प्रयोजन नहीं है। इसलिए यह हत्या केवल हत्या ही है। इस प्रकार इसका (अश्वत्थामा का) संहार करने में हमें कोई पाप नहीं लगेगा। और उसको भी नरकादि अनर्थ न होगा वह उसके लिए श्रेयस्कर है। इसलिए इस पातकी का संहार करना ही ठीक है-ऐसा कहा।।51।।

अर्जुन को क्या करना चाहिए समझ में नहीं आया। द्रौपदी की इच्छानुसार गुरु पुत्र को दण्ड दिए बिना छोड़ दिया जाय? भीमसेन के वचनानुसार ब्राह्मण को योग्य दण्ड देना है? श्री कृष्ण ने भीमसेन के तथा द्रौपदी के भी वचनों को सुना तथा हँसते हुए अर्जुन की ओर देखा! हे अर्जुन! **''ब्राह्मण नीच होने पर भी उसका संहार नहीं करना है, पातकी, आततायी को कोई विचार किए बिना संहार करना चाहिए यह दोनों धर्म मेरे से ही उपदेश किए हुए हैं। मनु आदि धर्मशास्त्रकार भी उनके अन्तर्यामी मेरे वचनों को लिख रखे हैं। मैं भी अनादि वेदों के अनुसार ही शासन किया हूँ। उसका पालन करना तुम्हारा कर्तव्य है।''** इस प्रकार श्री कृष्ण ने भावगर्भित वचनों

से पार्थ को संकेत किया।। 52,53।।

"हे अर्जुन! तुम अपने प्रिया को समाधान करते हुए जो प्रतिज्ञा किए हो उसको सत्य करो। तुम जो करते हो वह भीमसेन को, द्रौपदी को और मुझे भी प्रिय हो वही धर्म है। इस प्रकार श्री हरि ने कहा।।54।।

सूक्ष्म धर्म के जानने वाले अर्जुन को श्री हरि के अभिप्राय को जानने में अधिक समय नहीं लगा। उसी समय श्री हरि की इच्छानुसार अश्वत्थामा के सिर में रहने वाली मणि को बालों समेत निकाल लिया। वह जन्म से उसके सिर में था।।55।।

छोटे बालकों का संहार करने से अश्वत्थामा तेजोहीन हो गया था। अब उसके तेज के लिए कारणी भूत मणि भी चली गयी। उसका मुख अलक्ष्मी के लिए आश्रयस्थान बना। बँधे हुए अश्वत्थामा को रस्सी से खोलकर अर्जुन ने जैसे शव को बाहर डालते हैं वैसे बाहर डाल दिया।।56।।

ब्राह्मण नीच कर्म करके पतित होता है तो उसे रस्सी से बाँधना, उसके सर्वस्व का अपहरण करना, वह जिस स्थान में वास करता है उस स्थान से उसको भगा देना, यही शास्त्र विहित वध का प्रतिनिधि वध है। किन्तु उसको कभी भी आँख, कान इत्यादि देह संबंधी दण्ड नहीं देना चाहिए।।57।।

इस प्रकार की शिक्षा (दण्ड) को अश्वत्थामा ने स्वप्न में देखा था। किन्तु वास्तव में उसको जो दण्ड मिला वह भीमसेन से है। महाभारत के ऐषीक पर्व में जो कहा गया है वह वास्तविक है। भागवत के इस अध्याय का विषय उसका देखा हुआ स्वप्न है। इसलिए परस्पर कोई विरोध न होना स्कन्द पुराण के वचन से जान सकते हैं।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे सप्तमोऽध्यायः।।

अध्याय - 8
अथ अष्टमोऽध्यायः

पाण्डुराजा के पाँचों पुत्र अपने बच्चों की मृत्यु हो जाने पर पुत्र शोक से पीड़ित थे। द्रौपदी भी दुःखित थी। वे सभी द्रौपदी के साथ युद्ध भूमि पर आकर मरे हुए अपने लोगों को देखे। मरे हुए बन्धुओं के लिए चिता तैयार करके विधि विधानपूर्वक उनका संस्कार किये। ।1। ।

पहले ही द्रौपदी परमात्मा के चरणों पर पड़कर रोती हुई कही थी। श्री हरि ने उसके प्रति उनको समाधान करते हुए **''तुम्हारा पति भीमसेन थोड़े ही समय में आपके अपमान के जो कारण हुए हैं, उनका संहार करेगा और युद्ध भूमि में पड़े हुए उनको, आपको बतलाऊँआ''** ऐसा वचन दिया था। उसी प्रकार से अब द्रौपदी को मरे हुए लोगों को बतलते आए। ।2। ।

''हे द्रौपदी आप अपने शत्रु दुर्योधन आदि की स्त्रियों को देखो। वे दिखाने वाले विलख-विलख कर रो रही हैं। वह अपने सिर के बालों को बिखेरे हुए हैं। भीमसेन के गदा प्रहार से उनके पतियों के विशाल वक्षस्थल, जंघा आदि चूर-चूर हो गये हैं। ऐसी दुरवस्था में रहने वाले अपने पतियों का आलिंगन करके दुःख करने वाली उनकी परिस्थिति को तो देखो।'' ऐसा श्री कृष्ण ने कहा। ।3। ।

पाण्डव लोग युद्ध में मरे हुए अपने बन्धुओं को तर्पण देने के लिए उनकी स्त्रियों को, द्रौपदी को, श्रीकृष्ण परमात्मा के साथ लेकर गंगा के तट पर आए। ।4। ।

गंगा जी के पवित्र जल से ही तर्पण देने का निश्चय किया। उनके नाम लेकर सभी लोगों ने अपने संबंधियों का तर्पण किया। उनका दुःख उमड़ आया और वह सब बहुत रोये। गंगाजल परमात्मा के चरण-कमल से निकल कर उनके पादरज से पवित्रतम हुआ है। ऐसे पवित्र जल में अनुसंधानपूर्वक सभी स्नान किए। ।5। ।

उस रणभूमि के शिविर में कुरुवंश का राजा धृतराष्ट्र, आसन पर बैठा था। उसका भाई संजय निकट बैठा बातचीत कर रहा था। गान्धारी भी अपने सौ पुत्रों को खोकर पुत्र शोक से सन्तप्त थी। कुन्ती और द्रौपदी अपने पुत्रों के लिए दुःख कर रही थीं। श्रीकृष्ण ने मुनियों के साथ उस स्थान पर आकर पुत्रों के मृत्यु पर दुःख करने वाले उन सबों को शान्त्वना देते हुए कहा कि **''कोई प्राणी मृत्यु से बच नहीं सकता है। इस प्रपंच में मृत्यु का कोई प्रतिकार नहीं है। एक न एक दिन सभी को मृत्यु पाना है।''** ।।6,7।।

दुर्योधनादि दुष्टजनों ने द्रौपदी के केश को पकड़ करके खींचने से अपनी आयु को क्षीण कर लिया। श्रीहरि ने उन दुष्टों का पाण्डवों के द्वारा संहार कराया। जिसके शत्रु ही पैदा नहीं हुए हैं ऐसे धर्मराजा के राज्य को दुर्योधनादि ने कपट से अपहरण किया था, ऐसे राज्य को श्री हरि ने पुनः धर्मराजा को प्राप्त कराया। ।8। ।

उत्तम प्रकार के तीन अवश्यमेध याग को धर्मराज के द्वारा श्रीहरि ने कराया। पवित्र तथा भीमसेन के संबंधी उस धर्मराजा के यश को सभी दिशाओं में विस्तृत किये। पूर्वकाल में वामनरूप से बलि चक्रवर्ती के

सौवाँ याग को रोककर इन्द्र की '**शतक्रतु**' की कीर्ति सर्वत्र फैलाया। आज कृष्ण रूप से धर्मराजा का यश सर्वत्र फैलाया।।9।।

इस प्रकार से धर्मराज आदि की सहायता करने से वेदव्यास आदि ऋषियों ने श्री हरि का सत्कार करके स्तुति किया। श्री कृष्ण ने भी उनका यथायोग्य सत्कार किया। पाण्डुराजा के पुत्रों के पास आकर श्री कृष्ण ने द्वारका जाने के लिए अनुमति चाहा। हे शौनक! श्री कृष्ण सात्यकि और उद्धव के साथ आकर रथ में बैठे। द्वारका जाने का निश्चय किया। उसी समय में भयभीत होकर उत्तरा पुकारती हुई श्री कृष्ण के पास आई। उसको श्री कृष्ण ने देखा।।10,11।।

"इस भूलोक में एक दूसरे की मृत्यु बनकर व्यवहार करते हैं। हे देव! स्वाभाविक रूप से आप योग सिद्धि को प्राप्त करके महायोगी बने हैं। ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी आप सर्वस्वामी हैं। जगत का पालन करने वाले आप ही हैं। आपके सिवाय भय का परिहार करने वाला कोई नहीं है। मेरी रक्षा करो। रक्षा करो। हे सर्व नियामक! आग स्वरूप का एक वाण मेरी देह का नाश करने के लिए मेरी ओर आ रहा है। हे महास्वामिन्! यदि वह चाहे तो मुझे जला देने दो परन्तु मेरे गर्भ का नाश न होवे।" इस प्रकार उत्तरा शरणागत हुई।।12,13।।

उनके सभी वचनों को श्री हरि ने सुना। उनको भक्तों में बहुत वात्सल्य है। उत्तरा की रक्षा किए बिना क्या रहेंगे? उस वाण का प्रयोग अश्वत्थामा ने ही किया था। पृथ्वी पर पाण्डव या उनकी सन्तति शेष न रहने के उद्देश्य से प्रयोग किया था। कृष्ण ने इसको नहीं जाना ऐसा नहीं।।14।।

अस्त्र से घबड़ा कर उत्तरा जब आ रही थी तभी पाँचों पाण्डवों ने अपनी ओर आते हुए प्रकाशमान अलग-अलग वाणों को देखा तब इसके प्रति उन प्रत्येक ने अपने-अपने अस्त्रों को निकाला।।15।।

पाण्डवों के मन में श्री हरि को छोड़कर अन्य विषयों का चिन्तन नहीं था। उनका देह भी श्री हरि की सेवा के लिए ही था। इस प्रकार श्री हरि को ही सर्वस्वामी मानकर उपासना करने वाले उनको श्री कृष्ण ने भक्त होने से अपना ही मान लिया था। उन पर आया हुआ यह संकट देखा। अपने सुदर्शन चक्र का प्रयोग करके उस ब्रह्मास्त्र से उनकी रक्षा किया।।16।।

श्री हरि सब के हृदय में रहकर प्रेरणा करते हुए नियामक रूप से रहते हैं। वही सबके कर्मों को स्वीकार करके उसका फल देने वाले स्वामी हैं। योगाभ्यास से प्राप्त होने वाली अणिमादि सिद्धियाँ उनमें स्वाभाविक रूप से हैं। उन्होंने कुरु सन्तति को नाश न होने के लिए उत्तरा के गर्भ को अपने सामर्थ्य से ढककर ब्रह्मास्त्र से बचाया।।17।।

भृगु ऋषि वंश में श्रेष्ठ हे शौनक! ब्रह्मसिरो अस्त्र कभी भी व्यर्थ न होने वाला है। जिस उद्देश्य के लिए उसका प्रयोग करते हैं, उसका फल वह दे ही देता है और उसका कोई भी प्रतीकार नहीं कर सकते हैं। ऐसा होने पर भी विष्णु तेज के सामने वह कुछ भी नहीं कर सकता है। श्री कृष्ण के सामर्थ्य से वह अस्त्र वहीं निर्वीर्य हो गया।।18।।

श्री हरि की इच्छा के सामने किसी का कुछ भी नहीं चल सकता है। उनकी इच्छा देदीप्यमान रहती है। वह अपनी इच्छा से ही ब्रह्मादि सकल जगत की सृष्टि, रक्षा और अन्त में संहार करते हैं। उनको जनन-मरण नहीं है। ऐसे नाश रहित वह सब प्रकार के आश्चर्य के लिए उत्पन्न होने का स्थान है। इसलिए अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र को

निर्वीर्य करके उत्तरा के गर्भ की रक्षा करने का विषय कोई आश्चर्य जनक नहीं है।।19।।

ब्रह्मास्त्र से पाण्डव मुक्त हुए, उत्तरा के गर्भ की रक्षा हुई, कुन्ती के आनन्द की सीमा न रही। उस साध्वी शिरोमणि ने श्री कृष्ण भगवान के निर्निमित्त उपकारों के लिए अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना चाहा। संकट से पार हुए अपने पुत्रों को द्रौपदी को साथ लेकर श्री कृष्ण के रथ के निकट आई और प्रयाण के लिए सिद्ध हुए श्री कृष्ण से कहा।।20।।

आप षड्गुणों से पूर्ण होने से पुरुष कहलाते हैं। ब्रह्मा भी आपके अधीन हैं। जड़ प्रकृति का नियमन करने वाली चेतन प्रकृति, अर्थात् लक्ष्मी जी भी आप के अधीन हैं। ये कोई आप को पूर्णरूप से नहीं जानते हैं। इसलिए आप अलक्ष्य कहलाते हैं। समस्त पदार्थों के भीतर और बाहर व्याप्त हैं। प्रलय काल में सब का लय होता है, परन्तु आप अविनाशी और नित्य रहने वाले हैं। ऐसे आप को मैं नमस्कार करती हूँ।।21।।

समस्त जीवों पर दो आवरण हैं। एक स्वगुणाच्छादिका दूसरा परमाच्छादिका। स्वगुणाच्छादिका आवरण से जीव अपने गुणों को जान नहीं सकता है। इन दोनों आवरणों के उस पार आप रहते हैं। आप की इच्छारूप माया के यह दो आवरण होने से आप छिपे हुए हैं। समस्त इन्द्रियों को अपने अधीन रखने वाले हे अधोक्षज! मरण स्वभाव वाली और मूढ़ मैं आप को कैसे जान सकती हूँ।।22।।

योग्यतानुसार सर्वज्ञ, सनकादियों के भक्ति के आप विषय हैं। सनकादि अविद्या, काम, कर्म, इत्यादि मन के दोषों से मुक्त हैं। उनका मन निर्मल होने से ही आपका मनन करने योग्य हैं। ऐहिक विषयों से विरक्त होकर सन्यास धर्म में आसक्त हैं। ऐसे योगियों के भक्ति योग के लिए आप मुख्य विषय हैं। वे जैसे आपका दर्शन करते हैं वैसे दोषों से पूर्ण हम स्त्रियाँ आपको कैसे देख सकती हैं। स्त्रियों के योग्यता में तारतम्य होने से अपनी-अपनी योग्यतानुसार देख सकती हैं। इससे किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि स्त्रियों को भगवान की उपासना, भगवान का ज्ञान और मोक्ष है ही नहीं। स्त्रियाँ भगवान की जो स्तुति करती हैं वही अपरोक्ष ज्ञान (दर्शन) के लिए पर्याप्त है। वही उनके लिए मोक्ष का साधन है। इसलिए श्री हरि की स्तुति करना हमारा कर्त्तव्य है। हे देवदेव! आप हमारे अज्ञान को नाश करने वाले हैं। आप बलिष्ठ होने से दैत्यों का संहार किए हैं। वही आप की स्वाभाविक लीला है। देवकी के पुत्र आप देवकी कहलाने वाली लक्ष्मी देवी को सन्तोष प्रदान करने के स्वभाव वाले हैं। नन्दगोप के पुत्र नन्दगोप नामक राजा के दुष्ट (कुष्ट) रोग का आपने नाश किया है। आप वेदों के द्वारा जाने जाते हैं। आपको नमस्कार है।।23,24।।

कमल को तिरस्कार करने वाले और नाभि में कमल वाले आप पद्ममाला से अलंकृत हैं। आप के नेत्र कमल दल की भाँति विशाल हैं। आपका चरण, कमल की रेखा से अंकित है। ऐसे सुन्दर मूर्ति को नमस्कार है।।25।।

हे श्री हरि! आप समस्त इन्द्रियों के नियामक हैं। कंस, जिसका हिंसा करना ही स्वभाव है उसने इन्द्रियसुख में आसक्त होकर अपनी भगिनी देवकी को बहुकाल तक कारागार में रखा। ऐसे कंस का संहार करके आपने अपनी माता देवकी का दुःख दूर किया। ऐसे आप ने मुझ पर और मेरे पुत्रों पर बार-बार आने वाली विपत्तियों से रक्षा किया। आप समर्थ हैं। हमारे स्वामी हैं।।26।।

सब दुःखों को दूर करने वाले हे श्री हरि! हम पर जो विपत्ति आए वह एक नहीं दो नहीं। पहले तो भीमसेन को कालकूट विष देकर दुर्योधन ने मार डालने का प्रयास किया तब आप ने ही हमारी रक्षा किया था। तत्पश्चात् लाख के गृह की प्रज्ज्वलित अग्नि में हमारी आहुति देना चाहा। तब भी आपने उससे हमारी रक्षा किया। अरण्य में मनुष्यों का भक्षण करने वाले हिडिम्ब, बक, किर्मीर इत्यादि राक्षस हमें नाश करना चाहते थे। वह विपत्ति भी आप के द्वारा दूर हुई। इतना करने पर भी दुर्योधनादि तृप्त न होकर सभा के मध्य में द्रौपदी का केश कर्षण इत्यादि निन्दनीय कार्य किए। तब भी आप ही ने उस दुःख से हमें पार किया। द्यूत में कपट से धर्मराजा को हराकर दुर्योधनादियों ने हमें वन में भेजा। उस वनवास में भी आपने हमारी रक्षा किया। तत्पश्चात् सुई के बराबर भी भूमि न देकर युद्ध में संहार करने के लिए हमारे शत्रु बड़ा युद्ध किये। तब युद्ध में महारथियों के अस्त्र से आपने हमारी रक्षा की। अभी-अभी अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्रों से हमारी तथा हमारे सन्तति की आपने रक्षा किया है। इतने जो महोपकार आप ने किए हैं, तब आपको छोड़कर और किसकी शरण में जाँय। आपका विस्मरण करने वाली सम्पत्ति से आपका दर्शन कराने वाली विपत्ति ही श्रेष्ठ है। हे जगतपालक! संसार में हमें सदा विपत्ति ही देते रहें क्योंकि वह आपका दर्शन करायेगी। आप का दर्शन हमें जननमरण रहित मोक्ष को देने वाला है। इसलिए हमें ऐसी विपत्ति ही आती रहे।।27,28।।

आप ही हमें समस्त आपत्तियों से बार-बार रक्षा किये हैं। आपको जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाएं नहीं हैं। आपके शरण में जो आते हैं उनको भी यह अवस्थाएँ नही आती हैं। उत्तम कुल में जन्म, ऐश्वर्य, शास्त्र और लक्ष्मी से जिस का गर्व बढ़ा रहता है, ऐसा पुरुष भक्तों को दर्शन देने वाले आपका नाम लेने के भी योग्य नहीं होता दर्शन तो बहुत दूर है। भक्त ही आप के सर्वस्व धन हैं। आप सुख से पूर्ण होने से शान्त कहलाते हैं। निरन्तर सुख देने वाले मोक्ष के स्वामी आपको नमस्कार है।।29,30।।

आपको आदि अन्त नहीं है। सब के चेष्टक मुख्य प्राण के उत्पत्ति, लय को देने वाले स्वामी आप ही हैं। ईश्वरों को भी प्रेरित करने वाले सर्वेश्वर आप हैं। समस्त जगत से भिन्न हैं। आप अपने लोगों में तथा अन्य में उनकी योग्यतानुसार व्यवहार करते हैं। जगत का संहार करने वाले आप ही हैं। कौरवों और पाण्डवों के बीच परस्पर कलह के लिए मैं आप को ही कारण मानती हूँ।।31।।

हे स्वामिन्! आप के लिए जीवों की योग्यता से अधिक प्रीति पात्र कोई नहीं है। उन जीवों की योग्यता से अधिक द्वेष के विषय भी कोई नहीं है। अर्थात् उन जीवों के योग्यतानुसार ही स्नेह और द्वेष करते हैं। इस पर भी असुर स्वभाव वाले आप को विपरीत समझते हैं। अर्जुनादि से किए हुए पुण्य को दुर्योधनादि से किए हुए द्वेष को वे जानते नहीं हैं। संसारी जन योग्यता से बढ़कर प्रेम कर सकते हैं। द्वेष भी कर सकते हैं। परन्तु ऐसा वैषम्य आप में नहीं है। हे भगवन्! मनुष्य जैसे लीला करने वाले आप के इष्ट कार्य को आपके अनुग्रह के बिना कोई मनुष्य जान नहीं सकता है।।32।।

सर्वान्तर्यामी हे श्री हरि! आप जन्म रहित हैं। आप समस्त कार्य श्रम के बिना करने वाले हैं। कोई फल की इच्छा आप को नहीं है। आप पशु, मनुष्य तथा जल जन्तुओं में अवतार करके उनके स्वभाव के अनुसार कार्य करके दिखलाये हैं। यह सब आप की विडम्बना है, अन्य कुछ नहीं है।।33।।

आप आदि अन्त रहित हैं। आपने जब दही के पात्र आदि तोड़ने का अपराध किया और यशोदा ने नित्यमुक्त आप को बांधने के लिए रस्सी संभाली तब आंसुओं से भरे अंजन युक्त नेत्रों से शोभित मुख को नीचे करके भय की भावना से खड़े रहे। सब को भयभीत करने वाली दुर्गादिवी भी आपको देखकर भयभीत होती हैं। ऐसा होने पर भी आप भयभीत हुए वैसा जो बतलाए वह मुझे मोहित करता है। आपकी बालकों की सी लीला मुझे ही नहीं ज्ञानियों को भी मोहित करती है।।34।।

जन्म रहित होने पर भी आप का यदुवंश में जन्म यदुराजा के यश के लिए ही हुआ है, ऐसा कोई कहते हैं। जैसे कि मलय पर्वत के यश के लिए ही उस पर चन्दन का जन्म होता है।।35।।

कितने लोग कहते हैं कि अजन्मा आप का वसुदेव जी की पत्नी देवकी की कोख से जन्म उनके प्रार्थना करने पर तथा संसार के कल्याणार्थ और दैत्यों के संहार करने के लिए हुआ है।।36।।

कोई यह कहते हैं कि अतिशय भार से पीड़ित समुद्र में स्थित नौका के समान पृथ्वी का भार उतारने के लिए ब्रह्माजी की प्रार्थना पर आप अवतार लिए हैं।।37।।

कुछ लोगों का कथन है, कि अज्ञान, काम और कर्म से दुःखित लोगों के मोक्षार्थ उनके सुनने तथा स्मरण करने योग्य चरित्र करने की इच्छा से ही संसार में आपका अवतार होता है।।38।।

जो मनुष्य निरन्तर आप का चरित्र सुनते, गाते, कहते तथा स्मरण करते हैं और जो दूसरों द्वारा कहे आप के चरित्र से आनंदित होते हैं, वे श्रेष्ठ भक्त ही जन्म मरण की बाधा शान्त करने वाले आप के चरणारविन्द का दर्शन शीघ्र ही करते हैं। आपका चरण कमल इस संसार प्रवाह को पूर्ण रूप से सुखा देता है, यही आपके नाम और कर्म के स्मरण करने का फल है।।39।।

हे प्रभो ! हम राजाओं का संहार करके महा अपराध किए हैं। हम आपके किंकर हैं। आप के स्वीकार करने के पश्चात् जो शेष रह जाता है उसी अन्न को पाकर जीवित रहने वाले हमें आप द्वारका जाने को निमित्त बना कर छोड़ कर जा रहे हैं।।40।।

आप स्वतंत्र हैं, आप अपनी इच्छानुसार करने वाले हैं। आप अपने भृत्यों (दास) के कल्याणार्थ कार्य करने वाले हैं। आप के चरण कमल के सिवाय अन्य कोई गति नहीं है। अपने लोगों से भी अधिक आप हमारे हित करने वाले हैं। इसलिए आप का वियोग हम सहन नहीं कर सकते हैं। इन्द्रियाँ अपने स्वामी के साथ रहने से जैसे अपनी शक्ति को व्यक्त करती हैं वैसे ही हमें जब आप का दर्शन होता है, तभी पाण्डव, यादव कहलाते हैं। यदि आप का दर्शन न हो तो उस समय नाम, यश, बल तथा रूप हम दोनों (पाण्डव, यादव) को नहीं होता है।।41।।

हे गदाधर ! जब आप आते जाते रहते हैं, आप के चरणों की ध्वज आदि असाधारण चिह्न से हमारी राजधानी अत्यन्त शोभायमान रहती है। यदि आप द्वारका चले जायेंगे तो इस राजधानी में कोई तेज नहीं रहेगा। इतना ही नहीं जब आप व्यक्त होकर रहते हैं, तो उस समय में आपके चरण चिह्नों से यह पृथ्वी शोभायमान रहती है। वैसे आपके, अव्यक्त होकर वैकुण्ठ प्रवेश करने के बाद इस भूमि को वह शोभा कहाँ से? हमें ही नहीं किन्तु आपका द्वारकागमन देश के लिए ही दुःखकारक है। आपके सन्निधान से यह देश सुभिक्ष और समृद्ध है। औषधियाँ पकी हुई बालियों (दानों) से युक्त हैं। लताएं पक्व फलों से पूर्ण हैं। आपके अनुग्रहपूर्ण दृष्टि से वन,

पर्वत नदियाँ और समुद्र अभिवृद्धि को प्राप्त किये हैं।।42,43।।

मैं भी यही प्रार्थना करती हूँ, हे विश्वनियामक! हे विश्वव्यापी! अनेक रूपों को धारण करने वाले ! मुझे पाण्डवों में और यादवों में अपने पुत्र और स्नेहित होने से अतिशय अभिमान है। वे आप के भक्त हैं। मैं उनको भगवद्भक्त जान कर स्नेह नहीं करती हूँ। यदि ऐसा स्नेह करती होती तो शास्त्र सम्मत होकर मोक्ष का कारण होता। मैं उनमें पुत्र और मित्र भाव से जो प्रेम करती हूँ, उसको काट दो। भगवद्भक्त होने के नाते उनमें स्नेह हो ऐसी कृपा करो।।44।।

केवल विषय वैराग्य को देना ही नहीं किन्तु आप में निरन्तर प्रेम बना रहे ऐसी कृपा करें। आप आनन्द के नाथ हैं आप को छोड़कर अन्य में अतिशय भक्ति न हो ऐसी कृपा करें। जैसे गंगा नदी का जलप्रवाह वेग से समुद्र की ओर जाकर समुद्र में मिल जाता है, वैसे ही मेरी सम्पूर्ण रति (स्नेह) आप में ही हो।।45।।

हे श्री कृष्ण ! आप नीलवर्ण विशिष्ट हैं। अर्जुन के सखा यादवों में उत्तम, मेघ जैसे बरसता है, वैसे ही आप भक्तों के इच्छाओं की पूर्ति करते हैं। आप भूमि के द्रोही राज सन्तति रूप बाँस को जलाने वाली दावाग्नि हैं। आपके पराक्रम की देवता भक्ति से स्तुति करते हैं। आप समस्त वेदों से प्रतिपाद्य हैं। गो, ब्रह्मज्ञानी, देवता, इन सबके दुःख को दूर करने के लिए ही आप अवतार लिए हैं। समस्त योगसिद्धियों के लिए आप नियामक हैं। लक्ष्मी आदि समस्त प्रपंच को उनके-उनके योग्यतानुसार उपदेश करने वाले आप गुरु हैं। हे पूज्य श्री हरि! आप को नमस्कार है। ऐसी कुन्ती देवी ने भक्ति से स्तुति की।।46।।

हे शौनक ! कुन्ती देवी ने अपने अव्यक्त, मधुर शब्दों से श्री कृष्ण की महिमा का इस प्रकार से गान किया। वैकुण्ठपति श्री हरि उनके भक्तियुक्त स्तोत्र से प्रसन्न होकर मन्द-मन्द मुसकाने लगे। अपने स्वरूप शक्ति से पुनः कुन्ती को मोहित किया।।47।।

जैसा आप कहती हैं वैसा ही हो इस प्रकार अनुग्रह करके द्रौपदी आदि स्त्रियों के पास जाकर द्वारका जाने के विषय को बतलाये। गंगा तीर से निकल कर हस्तिनापुरी में प्रवेश किया। धर्मराजा ने द्वारका जाने को सिद्ध हुए श्री कृष्ण भगवान को भक्ति के साथ रोक लिया ! श्री कृष्ण वहीं रहने लगे।।48।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः।।

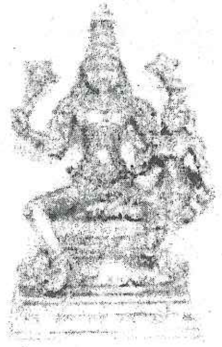

अध्याय - 9
अथ नवमोऽध्यायः

स्वरूपानन्द का अनुभव रूप मोक्ष सभी पुरुषार्थों में उत्तम है वह भी भगवान् के अपरोक्ष ज्ञान से उत्पन्न हुआ श्री हरि के प्रसाद से ही प्राप्त होना इस अध्याय में बतलाते हैं। धर्मराजा अपने स्नेही जनों के संहार का स्मरण करते हुए दुःख कर रहे थे। विश्व नियामक श्री हरि की चेष्टा को जानने वाले वेदव्यास ऋषि गण तथा आश्चर्यकारक कार्य करने वाले श्री कृष्ण ने भी अनेक इतिहासों को बतलाकर धर्मराजा को समझाया इस पर भी उनकी भ्रान्ति दूर नहीं हुई। हे शौनक ! धर्म राजा का मन तो अभिमान रूपी मोह के अधीन हो चुका था। इसलिए उनका मन पामर मनुष्यों के जैसे यह धर्म है यह अधर्म है ऐसे विवेक को प्राप्त होने की स्थिति में नहीं था। धर्म में आसक्त हुए उन्होंने श्री हरि से विमुख हुए दुष्ट और उनको संबंधियों का संहार करना धर्म है ऐसा नहीं समझा। स्नेह और मोह के वशीभूत हुये उनको धर्म, अधर्म जैसे प्रतीत होना कोई आश्चर्य नहीं है।।1,2।।

दुःखित धर्म राजा ने कहा, "मेरे हृदय में रहने वाले दुष्ट अज्ञान को तो देखिए। यह मेरा देह श्वान और श्रृगाल का आहार है और कुछ नहीं। ऐसे देह के लिए मैंने अनेक अक्षौहिणी सेना का संहार कराया। क्या यह आश्चर्य नहीं है।।3।।

अभिमन्यु, द्रोणादि ब्राह्मण, द्रुपद आदि स्नेहित धन की आशा से मित्र बन कर नष्ट हुए। अनेक सेना भूरिश्रवा, दुर्योधन आदि भाई, भीष्माचार्य आदि गुरु, इन सब के विषय में मैंने द्रोह किया है। ऐसे पाप करने वाले मुझको लाखों वर्षों तक नरक से छुटकारा नहीं मिल सकता है।।4।।

प्रजा का पालन करने वाले राजा द्वारा युद्ध में शत्रुओं का संहार करना धर्म है, अधर्म नहीं। युद्ध में एक पदाति का संहार करने वाला चातुर्मास्य याग के फल को प्राप्त होता है, ऐसे वेद वचन है। इस पर भी इन वाक्यों से मेरी भ्रान्ति दूर होकर मुझे यथार्थ ज्ञान उत्पन्न नहीं हो रहा है। मैंने जो युद्ध किया है, वह मुझे पापकारी ही प्रतीत हो रहा है।।5।।

मेरे लिए जो देह त्याग दिए हैं, और मेरे द्वारा जिनका संहार हुआ है, उनकी पत्नियाँ और माताएँ कितने आँसू बहाती होंगी। स्त्रियों के प्रति किया हुआ द्रोह मुझे आश्रय किया हुआ है। इस हिंसा कृत्य से प्राप्त हुए पाप को अश्वमेधादि अन्य हिंसा कृत्य से भी दूर नहीं कर सकता हूँ। कीचड़ से भरे हुए पदार्थ को शुद्ध करने के लिए कीचड़ के जल से क्या धो सकते हैं? मद्य से दूषित द्रव्य को मद्य से क्या शुद्ध कर सकते हैं? ऐसे ही मेरे द्वारा किया हुआ (प्राणी), हत्या, क्या पशु हत्या से युक्त यज्ञों से दूर हो सकता है? कभी भी नहीं दूर हो सकता है।" इस प्रकार दुःख किया।।6,7।।

ज्ञान पक्ष का आश्रय करके धर्म राजा ने इस प्रकार कहा। ब्रह्मार्पण बुद्धि से यज्ञ तो शास्त्रों में कर्त्तव्य कहा गया है। कर्म से ज्ञान विस्तृत होता है। इससे कर्माचरण निन्दनीय नहीं है। इस प्रकार प्रजाओं के प्रति द्रोह किया

हूँ। जानकर अत्यन्त भयभीत होकर समस्त धर्मों को जानने की इच्छा किया। इसके लिए युद्धभूमि की ओर गया। कुरुक्षेत्र के एक स्थान में भीष्माचार्य शरशय्या में शयन करते हुए श्री हरि का स्मरण कर रहे थे। उसी स्थान पर धर्म राजा आये।।8।।

उनके भाई लोग, अलंकृत रथों पर बैठ कर अपने भाई के पीछे-पीछे आए। वेद व्यास, धौम्य आदि ऋषिगण उस स्थान पर आए।।9।।

हे शौनक! त्रिकाल ज्ञानी श्री हरि अर्जुन के साथ रथ पर बैठकर चले।।10।।

परिवार के साथ पाण्डव लोग श्री कृष्ण के साथ जहाँ पर भीष्म थे वहाँ आकर उनका दर्शन किये। पृथ्वी पर पड़े हुए भीष्म स्वर्ग लोक से नीचे आए हुए देवता के जैसे प्रकाशमान थे। सभी उनको भक्ति से प्रणाम किये।।11।।

तब वहाँ पर ज्ञानी नारद आदि देवर्षि, वेदव्यास आदि ब्रह्मर्षि, विश्वामित्र आदि राजर्षि भी भीष्माचार्य के दर्शन के लिए आए।।12।।

पर्वत, नारद, धौम्य, पूज्य वादरायण, वृहदश्व, भरद्वाज, शिष्यों से युक्त परशुराम, वसिष्ठ, इन्द्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, सुदर्शन, शुकदेव जी आदि अनेक शुद्ध ऋषिगण कश्यप, अंगिरस आदि सभी अपने शिष्यों के साथ वहाँ आए।।13,14,15।।

अष्ट वसुओं में उत्तम एवं श्री हरि के अनुग्रह के पात्र भीष्माचार्य जी अपने अन्तिम काल में आए हुए इन सब का मन से तथा वचन से सत्कार किये। वे आपद्धर्म और संपद्धर्म को जानने वाले थे। जिस काल में जिस देश में धर्म नामक श्री हरि की जैसी सेवा करनी चाहिए वे जानते थे। कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि पर थे। शरतल्प पर लेटे हुए थे। उठकर सत्कार कैसे कर सकते हैं। इसलिए लेटे हुए ही आये हुए सब की मन और वचन से सत्कार किये और नमस्कार किये।।16।।

अपने हृदयकमल की कर्णिका के मध्य में जिस भगवान की उपासना करते थे, वह स्वयं श्री हरि को सामने निकट बैठे हुए देखा। जगत के स्वामी सामान्य लोगों के जैसे बैठे हुए थे। भीष्माचार्य उनकी सामर्थ्य को जानते थे। श्रीकृष्ण अपनी इच्छा से ही भक्तों का उद्धार करने के लिए वसुदेव जी के घर में व्यक्त हुए थे। ऐसे करुणामय स्वामी का भीष्माचार्य ने देश कालानुसार सत्कार किया।।17।।

पाण्डव निकट आकर बैठे। भीष्माचार्य में उनका विश्वास और प्रेम था। इसलिए सिर झुकाकार विनय भाव से बैठे हुए थे। उनको देखकर भीष्माचार्य का प्रेम उमड़ आया। आँखें आँसू से भरी थीं, देख न सके। फिर भी उनकी ओर देखकर भीष्म ने कहा।।18।।

हे धर्मनन्दन युधिष्ठिर! आप श्री अच्युत का ही आश्रय किए हैं। ब्राह्मणों के जैसे आप भी अपने धर्म में रत हैं। फिर भी आप दुःख के साथ जीवन जो व्यतीत किए हैं, उससे मेरा मन बहुत दुःखी है। यह तो बड़ा अन्याय हुआ आश्चर्य में भी आश्चर्य है। परन्तु आप लोक दृष्टि से दुःखियों के जैसे दिखाई दिए। आप को दुःख कहाँ है? भू-भार को हरण करने के लिए अवतार किए हुए श्री हरि के आप अंगभूत हैं। आप को नित्य सुख ही है दुःख नहीं है।।19।।

अतिरथ पाण्डु के मर जाने पर छोटे पुत्रों वाली वधू कुन्ती ने तुम लोगों के लिए बहुत क्लेश झेले हैं। पुत्रों के न होने से, पुत्रों के अधिक होने से जैसे माता दुःखित रहती है, वैसे उसने भी बहुत कष्ट झेलकर आपकी रक्षा किया

है।।20।।

छोटे बच्चों को बड़ा करना कोई सहज कार्य नहीं है। आप करुणा के पात्र हैं, इस पर भी आपके साथ अप्रिय कार्य ही होते रहे इसके लिए कोई मुख्य कारण नहीं है। आप के प्रारब्ध कर्म नियामक कालरूपी श्री हरि ही मुख्य कारण हैं। जैसे मेघ वायु के अधीन होकर जाते हैं, वैसे ही जड़ और चेतन समस्त प्रपंच श्री हरि के अधीन है। ऐसे सबका नियामक श्री हरि समस्त गुणपूर्ण होने से काल कहलाते हैं।।21।।

उन्हीं से सब कार्य होते हैं, जहाँ पर धर्मपुत्र राजा हों, गदा हाथ में लिए भीमसेन हों, अस्त्र लिए अर्जुन तथा उनका गाण्डीव धनुष हो और मित्र श्री कृष्ण हों वहाँ भी विपत्ति? श्री कृष्ण ही आपके अनिमित्त बन्धु होने पर भी वहाँ काल रूप बनकर प्रारब्ध कर्मानुसार विपत्ति को ला दिए हैं।।22।।

हे धर्मराज! ये श्री हरि कृपा करने वाले हैं, कोई पुरुष नहीं जान सकता है। ज्ञानी पुरुष भी इस विषय में विचार करते हुए कि **''यह ऐसा ही है''** ऐसा कोई नहीं बता सकते हैं। सब के प्रारब्ध कर्मानुसार फल देने वाले श्री हरि का सुहृद होने पर भी विपत्ति के लिए कारण होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसलिए समस्त जगत श्री हरि के अधीन जानो। श्रुति और स्मृति श्रीहरि की आज्ञारूप हैं। भगवान के द्वेषी और उनके अनुबंन्धियों का संहार करना तथा सज्जनों का पालन पोषण करना क्षत्रियों के लिए विहित धर्म है। ऐसे विहित कर्म करने के पश्चात् आप उसको अधर्म समझ रहे हैं, इस भावना को त्याग दो। भरतकुल में उत्तम जन्म लिए हो, समर्थ हो तुम्हीं अपनी प्रजा के पालन करने वाले हो। इसलिए श्री हरि की सेवा जानकर प्रजाओं का पालन पोषण करो।।23,24।।

श्री हरि हमारी आँखों के सामने हैं वह यदुवंश में अवतार लेकर गुप्त रूप से विचरते हैं, वही साक्षात् नारायण हैं। वह सब के आदि हैं। अज्ञानी उनको यथार्थ रूप से न जानें इसलिए वह अपनी इच्छा से उनको मोहित करते हुए यदुवंशियों में गुप्तरूप से विचरते हैं। वे कालरूपी हैं।।25।।

इनका इस प्रकार का सामर्थ्य जानना उतना सहज नहीं है। यह तो अत्यन्त रहस्य है। इनका गुप्त प्रभाव श्री हरि के अनुग्रह से पूज्य शिवजी अपनी योग्यतानुसार जानते हैं। देवर्षि नारद भी अपनी योग्यतानुसार जानते हैं। कपिल जो श्री हरि के साक्षात् अवतार हैं वे पूर्ण रूप से जानते हैं।।26।।

जिन श्री कृष्ण जी को तुम प्रिय मित्र, अत्यन्त उपकारी और मामा के पुत्र मानते हो और जिनको तुमने विश्वासवश दूत, सारथी तथा मंत्री बनाया है, ऐसे श्री कृष्ण की महिमा को रुद्रादि उत्तम देवता जानते हैं।।27।।

श्री हरि सबके अन्तर्यामी हैं। माता, पिता, भाई अन्य बन्धुओं में रहकर उनको बन्धु बनाया है। इसलिए वही मुख्य बन्धु हैं, माता-पिता इत्यादि समस्त बन्धु रूप नहीं हैं। पदार्थों के वास्तविक योग्यता को जानकर वैसे ही प्रेरणा करने वाले हैं। उनके समान अथवा उनसे अधिक कोई नहीं है। इनको प्राकृत देह न होने से अहंकार भाव भी नहीं है। इसलिए उनमें रागद्वेषादि कोई दोष नहीं है। इस कारण वे सर्वोत्तम हैं। सारथी इत्यादि नीच कार्य में उनको नियुक्त करने पर भी कहीं कभी भी उनमें मेरे विषय में विषम भाव नहीं हुआ। अनेक स्वभाव वाले जीवों में ही मति वैषम्य देखा गया है, परन्तु श्री हरि में नहीं।।28।।

जीव विषम बुद्धि होने पर भी यदि वह एकान्त भक्त है तो श्री हरि उन पर करुणा करते हैं। हे भूपति! अपने भक्तों पर उनकी दया तो देखिए कि प्राणों को छोड़ने समय, मुझ पर अनुग्रह करने के लिए अप्रार्थित श्री हरि ने

आकर दर्शन दिया है। इससे बढ़कर और क्या दृष्टान्त हो सकता है। हमसे रक्षित और पोषित पुत्र इत्यादि जब हम मरणशय्या में होते हैं, तो वे विमुख हो जाते हैं। सर्वस्वामी श्री हरि ऐसे विमुख न होते हुए हम जैसे भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए आए हैं। यह तो करुणा ही है और अन्य क्या कारण हो सकता है।।29।।

इन श्री कृष्ण जी में भक्तिपूर्वक मन लगाकर वचन से उन्हीं का नाम जपता हुआ भौतिक शरीर को त्यागने वाला योगी अविद्या, काम और कर्म से मुक्त हो जाता है। तब मृत्यु के समय में श्री हरि को देखने वाले मुझे मोक्ष नहीं तो और क्या? हे धर्म राजा! उनके प्रीति के लिए जो कारण है ज्ञान वैराग्य भक्ति वही धर्म है और जो अविद्या-काम-कर्म अप्रिय है वही अधर्म है। इस दृष्टि से तुम्हारा यह राज्यभार संभालना धर्म ही है, इसको कभी भी अधर्म मत सोचो। शान्त चित्त होकर राज्य करो।।30।

उत्तरायण काल आते ही देह त्यागने की इच्छा है तब तक आप यहीं रहकर दर्शन देने का अनुग्रह कीजिए। यही मेरी प्रार्थना है। ऐसा भीष्माचार्य जी ने श्री कृष्ण से प्रार्थना किया।।31।

हे शौनक! भीष्माचार्य जी के उपरोक्त वचनों को सुनकर धर्मराजा ने शरतल्प पर शयन किए हुए भीष्माचार्य जी से विविध धर्मों को बतलाने के लिए प्रार्थना किया। वहाँ पर ऋषिगण भी श्रवण करते हुए बैठे थे।।32।

हे शौनक! भीष्माचार्य धर्मो का यथार्थ स्वरूप जानते हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों का, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यासियों के लिए विहित धर्मों का, अनेक तरह से तथा इतिहास के द्वारा विस्तार से बताया। वैराग्य से किए जाने वाले निवृत्ति धर्म और फल की इच्छा से किए जाने वाले प्रवृत्ति धर्मों का स्वरूप बतलाया। उन्होंने अलग-अलग दान, धर्म, राजधर्म, और मोक्ष धर्मों को कहा। स्त्री धर्म, और श्री हरि के जगतसृष्टि आदि धर्मों का वर्णन किया। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ऐसे चार पुरुषार्थ और उनके साधनों को संक्षेप तथा विस्तार से समझाया। धर्मराजा तारतम्य में भीष्माचार्य से उत्तम हैं, इसलिए धर्मराजा को उपदेश करते समय में भीष्माचार्य को यश देने के लिए श्री हरि ने विशेष रूप से आविष्ट होकर उपदेश किया, ऐसा जानना चाहिए। इसके लिए भक्तवात्सल्य ही कारण है।।33,34,35।।

योगसिद्धि को प्राप्त किए हुए वे अपने भौतिक देह को अपनी इच्छा से त्यागने की सामर्थ्य रखते हैं। भीष्माचार्य को भी यह सामर्थ्य था। उत्तरायण काल में उनको अपने देह को त्यागने की इच्छा थी। श्री हरि के अनुग्रह विशेष से विस्तार रूप से धर्म का उपदेश करने वाले भीष्माचार्य को सम्मत उत्तरायण काल आया। मरण काल में उत्तरायण काल होने से उनको अतिशय सुख का कारण हुआ। उत्तरायण काल में न त्याग कर दक्षिणायन काल में शरीर त्यागने से मोक्ष के लिए कोई हानि नहीं है। मोक्ष तो साधन पर निर्भर होता है न कि काल पर।।36।।

भीष्माचार्य जी को तारतम्य में अपने से नीचे (अवर) के मुक्ति योग्य सहस्त्रों जीवों को उपदेश देकर अपने साथ मोक्ष में ले जाने की सामर्थ्य है। उत्तरायण काल आते ही उन्होंने अपने नेत्रों को खोला। श्री हरि के अनुग्रह से उनको विशेष ज्ञान आया। आँखों को आधा बन्द करके जिस विषय में बातचीत कर रहे थे उसको रोक दिये। सामने श्री कृष्ण चतुर्भुज और पीताम्बर धारण करके बैठे थे। उन्हीं को नारायण जानकार उन्हीं में विषय संग रहित अपने मन को विशेष रूप से स्थिर किया।।37।।

इस प्रकार की उपासना में फलासक्ति आदि कोई दोष नहीं थे। इस प्रकार की निरन्तर उपासना से उनके

समस्त पाप नष्ट हो गए थे। श्री हरि के दर्शन से शरीर में आयुधों से हुए घाव की पीड़ा नष्ट हो गई थी। नेत्र आदि समस्त इन्द्रियों का कार्य स्वयं ही रुक गया था। उनको किसी प्रकार की भ्रान्ति नहीं थी। श्री हरि की स्तुति करने के लिए वागेन्द्रिय का प्रयोग किया। अन्य कोई वार्तालाप न करते हुए संसार से छुटकारा दिलाकर मोक्ष को प्रदान करने वाले श्री हरि की ही स्तुति करने लगे।।38।।

"श्री हरि सर्वश्रेष्ठ हैं। समस्त शास्त्रों से प्रतिपाद्य हैं। मृत्यु समय में अवश्य मनन करने योग्य हैं। वे परिपूर्ण हैं। निरवधिक ऐश्वर्य वाले हैं। गुणपूर्ण श्री हरि अपने स्वरूपानन्द का सदा अनुभव करते हैं। इस पर भी जीवों का स्वरूपानन्द का अनुभव करने का काल जब निकट होता है तब सृष्टि करने की इच्छा करते हैं। जिसके लिए अनेक अवतार लेते हैं। प्रकृति के संबंध से ही जीवों को संसार का बंधन है। संसार की कारणीभूत प्रकृति ही जगत रूप में परिणत होती है। श्री हरि जड़ प्रकृति में प्रवेश करके उसकी परिणामशक्ति को व्यक्त करके जगत की सृष्टि करते हैं। वही यादवेश्वर होकर यहाँ जन्म लिए हैं। विषयों से इच्छारहित मेरा मन श्री हरि में ही लीन हुआ है।।39।।

श्री हरि का चिदानन्दात्मक देह तीनों लोकों में अधिक सुन्दर है और तीनों लोकों की सृष्टि करने की इच्छा वाला है। उनका रंग श्यामतमाल (पुष्प) के समान नीलवर्ण, उगते हुए सूर्य की किरणों के समान लाल वस्त्र से अलंकृत, अलकावली से ढके आकर्षण मुख कमल वाले ऐसे देह विशिष्ट श्री हरि, अर्जुन के सखा का, मैं दर्शन कर रहा हूँ। रागादि दोषों से रहित मेरा मन ऐसे श्री कृष्ण में आसक्त होकर भक्ति उत्पन्न होवे।।40।।

युद्ध के समय घोड़ों के खुरों की धूलि से धूमिल, पसीना निकले जैसा शोभित मुख, सर्व समर्थ, श्रमरहित श्रीहरि के लिए यह भी एक अलंकार है। मेरे पैने बाणों के द्वारा उनके देह की त्वचा अच्छेद्य और अभेद्य होने पर भी कट कर रक्त बहे वैसा दिखाकर असुरों को मोहित करते हैं। उनका धारण किया हुआ कवच प्रकाशमान है। मेरे बाण उनकी त्वचा काटने में असमर्थ हुए हैं, ऐसे शेषशायी श्री कृष्ण में मेरा मन सदा लीन रहे!!41।।

मित्र अर्जुन के स्नेहित श्री कृष्ण में मेरी भक्ति हो।।42।।

स्वर्ग प्रवेश करने के लिए सिद्ध होकर युद्ध के लिए आए हुए बन्धुओं को देखकर युद्ध करना पाप समझ कर युद्ध से निवृत्त हुए अर्जुन को श्री हरि ने कालोचित उपदेश देकर धर्म को अधर्म समझे हुए उसकी बुद्धि को दूर किया। दुष्ट निग्रह धर्म होना ऐसी बुद्धि उत्पन्न किया। ऐसे सर्वोत्तम के चरण कमलों में मेरी भक्ति बढ़ती रहे।।43।।

श्री कृष्ण अपनी प्रतिज्ञा **"मैं युद्ध में आयुध नहीं उठाऊँगा"** (अस्त्र का प्रयोग नहीं करूँगा ऐसा अर्थ समझना चाहिए) को छोड़कर मेरी प्रतिज्ञा **"मैं आज युद्ध में श्री कृष्ण से आयुध ग्रहण कराऊँगा"** को सत्य करने के लिए रथ से नीचे उतर कर तथा हाथ में रथ का चक्र लिया उस संभ्रम में उनका उत्तरीय वस्त्र कंधे से निकल गया, उसका ध्यान न करते हुए हाथी को मारने के लिए जैसे सिंह सामने आता है वैसे ही मुझे मारने के लिए सामने आए। अग्नि से जलाना इत्यादि महापातक करके आततायी कहलाने वाले कौरवों के अन्न से पुष्ट हुआ मेरा देह है। मैं महारथी हूँ। मेरे बाणों से कवच निकल कर त्वचा कटकर रक्त बहे वैसा जगत को बतलाया। अर्जुन के वचन कि भीष्म को न मारो को न सुनते हुए बलात् मुझे मारने के लिए वेग से आए ऐसे मोक्ष प्रद श्री हरि में मेरी भक्ति अधिक होवे। मेरे स्वरूपानन्द को मुझे अनुभव करने में मुझे सहायक होवें।।44,45।।

युद्ध में जो श्री कृष्ण को सर्वोत्तम श्री हरि जानकर अपने प्राण त्यागे हैं, ऐसे मुक्त योग्य जीव परमात्मा के बैकुण्ठ को पाकर अपने स्वरूप सुख का अनुभव करेंगे। वह श्री हरि ही अर्जुन के रथ की रक्षा करने का भार लिये हैं। हाथ में चाबुक लेकर घोड़ों को दौड़ाते हैं। उन्हें श्रम आदि दोष नहीं है। ऐसे सुन्दर श्री हरि में मरणशय्या में रहने वाले मुझे भक्ति उत्पन्न होवे।।46।।

श्री हरि की उत्तम गति, पवित्र लीला, सुन्दर हास्य तथा प्रेम पूर्वक देखने से अत्यन्त सन्तुष्ट होकर श्री कृष्ण हममें अभिमान करते हैं, ऐसा जानकर उत्कृष्ट मद से अन्ध होकर गोपियाँ अपने सुन्दर गति, हावभाव, सुन्दर हास्य और प्रेम पूर्वक देखने से श्री हरि को पूजा रूप से अर्पण करके श्री हरि के द्वारा किये गये पूतनावध आदि कार्यों को श्रीकृष्म जैसे वेष डालकर नकल करके (अनुकरण करके) बतला कर उनके अनुग्रह से अपने स्वरूपाभिव्यक्ति रूप मोक्ष को प्राप्त हुए। ऐसे श्री कृष्ण में मुझे भक्ति उत्पन्न हो।।47।।

"धर्मराजा के राजसूय याग की सभा प्रसिद्ध ऋषियों से, श्रेष्ठ राजाओं से भरी हुई थी। उस सभा में धर्मराजा ने प्रश्न किया कि अग्रपूजा के योग्य कौन है। तब मैंने ही (भीष्माचार्य) शास्त्र से श्री कृष्ण को ही सर्वोत्तम तथा अग्र पूजा के योग्य होना कहा - ऐसे श्री हरि मेरे स्वामी हैं। मुक्ति योग्य जीवों के द्वारा दर्शन के योग्य हैं, सुन्दर हैं, मरणकाल में विशेष रूप से देखने योग्य हैं। यह मुझ पर करुणा करके मुझे दर्शन दे रहे हैं।।48।।

मैं ही धन्य हूँ, श्री हरि के अनुग्रह से श्री हरि के अवतारों, उनके गुणों और श्री हरि में भेद होने की भ्रान्ति दूर होकर यथार्थ रूप से वस्तुओं को जानने की सामर्थ्य मुझे प्राप्त हुई है। जैसे प्रत्येक के नेत्र का नियामक सूर्य एक ही है, वैसे ही परमात्मा से सृष्टि किए हुए प्रत्येक जीव के हृदय में रहने पर भी वे एक ही हैं। वे नाश रहित तथा जन्म रहित हैं।।49।।

इन्होंने भूमि पर भार हुए दैत्यों की सेना का संहार करके भू-भार को दूर करने के लिए वन में हवा द्वारा बांस के परस्पर घर्षण से जैसे अग्नि उत्पन्न होती है द्यूत रूप अग्नि को जलाकर अक्षय वंश को ही नाश किया। इनकी जो कोई सेवा करते हैं, उनके सभी दुःख दूर होकर इष्टार्थ की सिद्धि होती है। ऐसे श्री हरि का ही मन में ध्यान करते हुए मृत्यु को प्राप्त होने वाली इस भौतिक देह को त्यागता हूँ। इस प्रकार स्तुति करके श्री कृष्ण के अनुग्रह की इच्छा करते हुए मौन हो गए।।50।।

हे शौनक! मन से, वचन से, दृष्टि से, हृदय में रहने वाले श्री हरि को ही देखते हुए बाहर रहने वाले श्री कृष्ण और हृदय में रहने वाले श्री हरि में अभेद चिन्तन किये। श्री हरि ही स्वतंत्र हैं, मैं नहीं हूँ, इस भाव से भीष्माचार्य ने रेचक और पूरक के द्वारा प्राणापान को भीतर रोक कर ब्रह्म नाड़ी द्वारा नाभिचक्र आदि क्रम से उदान वायु को ऊपर ले जाकर शरीर त्याग दिया।।51।।

वहाँ एकत्रित हुए लोग भीष्माचार्य जी को श्री हरि के चरण कमल को प्राप्त होना जानकर जैसे सायंकाल में पक्षी चहचहाना बन्द करके मौन हो जाते हैं, वैसे ही मौन होकर बैठ गये।।52।।

देव गन्धर्व दुन्दुभी बजाए आकाश से पुष्पवृष्टि हुई सभी साधु सज्जन भीष्माचार्य के इस प्रकार के मृत्यु की प्रशंसा की।।53।।

धर्मराजा ने भौतिक देह को त्यागे हुए भीष्माचार्य के शव का संस्कारादि कार्य स्वयं किया और भीमसेन आदि भाइयों से कराया और कुछ समय तक दुखित रहे।।54।।

इस प्रकार दहनादि कार्य के पश्चात् वहीं एकत्रित हुए मननशील ऋषियों ने श्री कृष्ण का ध्यान करते हुए उन्हीं में मन को स्थित करके वेदान्त प्रसिद्ध रहस्यनामों के द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति किये और उनका अनुग्रह प्राप्त करके अपने-अपने आश्रम लौट गए।।55।।

ऋषि के लौटने के पश्चात् धर्मराजा, श्री कृष्ण को अपने साथ लेकर अपने सहोदर तथा बन्धुओं के साथ हस्तिनापुर आये। धृतराष्ट्र को, पुत्रों के दुःख से सन्तप्त गान्धारी को सान्त्वना दिये।।56।।

धृतराष्ट्र ने अपने में राज्यपालन का सामर्थ्य न होने से समर्थ धर्मराजा को राज्यपालन करने को स्वीकार किया। वसुदेव के पुत्र श्री हरि ने उसी का अनुमोदन किया। उन दोनों के आज्ञानुसार वंश परम्परागत राज्य का धर्मशास्त्रानुसार शासन करते हुए धर्मराजा अपनी योग्यतानुसार श्री हरि की सेवा करते रहे।।57।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे नवमोऽध्यायः।।

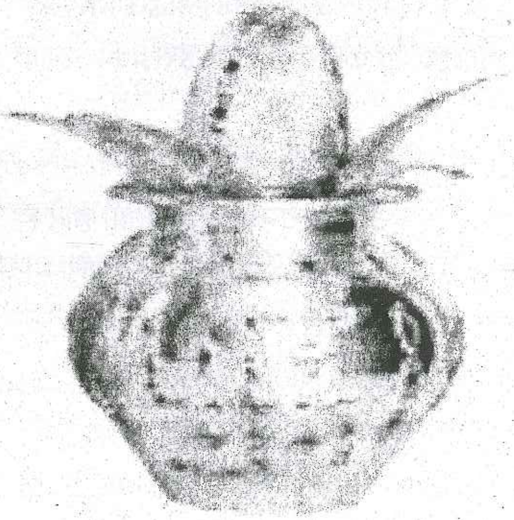

अध्याय - 10
अथ दशमोऽध्यायः

शौनक ने सूतजी से प्रश्न किया-हे सूत जी ! अपना राज्य कहकर कलह किए, अग्नि, से जलाना आदि महानिन्दनीय कार्य करके अत्यन्त नीच कहलाते हुए दुर्योधनादि वीरों को धर्मराजा ने भाइयों के द्वारा संहार कराया। बन्धुओं के मरण से दुःखित होकर खुले मन से विषयों का अनुभव न करते हुए संक्षेप से ही विषय सुख का अनुभव किये। वेदव्यास आदि के वचन का अनादर नहीं करते थे। उनके वचनों में उनको अचल श्रद्धा थी। ऐसे धमिष्ठ धर्मराजा ने राज्य का परिपालन कैसे किया? हस्तिनापुर आने के पश्चात् क्या कार्य किया? इनके साथ श्री कृष्ण ने हस्तिनापुर आकर क्या किया? इसे बतलाने की कृपा करें।।1।।

सूत जी ने कहा-श्री हरि, जन्म-मरण रूप इस संसार का नाश करने वाले हैं। पाण्डवों के शत्रुओं का संहार करना उनके लिए कोई अतिशय कार्य नहीं है। सृष्टि को विस्तृत रूप से बढ़ाने वाले उनको पाण्डवों के वंश को बचाना कोई कष्टकारक नहीं है। जगत की सम्पूर्ण चेष्टाओं के नियामक श्रीहरि को कुरुवंश रूप वन में उत्पन्न हुए अग्नि से सम्पूर्ण नाश हुआ कुरुवंश को परीक्षित् राजा नाम के अंकुर से पुनः जीवित किया। धर्मराजा को प्राप्त होने योग्य राजसिंहासन में बैठाकर सन्तुष्ट हुए। श्रीहरि नित्य तृप्त हैं। उनके लिए यह कोई नई तृप्ति नहीं है। इस पर भी लोक दृष्टि से तृप्त हुआ कहा गया है।।2।।

श्रीहरि ने धर्मराजा के द्वारा अति उत्तम तीन अवश्वमेध यज्ञ करवाया धर्मराज की कीर्ति को सौ अश्वमेघ यज्ञ किए हुए इन्द्र की कीर्ति के जैसे सभी दिशाओं में फैलाया।।3।।

भीष्माचार्य जी का धर्मोपदेश धर्मराजा के मन में स्थिर हो गया। श्रीकृष्ण ने भी समयानुसार अज्ञान को दूर करके यथार्थ ज्ञान को उत्पन्न करने का उपदेश दिया था। वह भी उनके मन में स्थिर रहा। अब उसको तत्वविषय में कोई संशय नहीं रहा। सभी भ्रान्तियाँ दूर हो गई थीं। सब प्रकार से श्रीकृष्ण का ही आश्रय किया। भाई उनके वचनों के विरुद्ध नहीं जाते थे। श्री हरि के अनुग्रह से धर्मराजा ने जैसे इन्द्र स्वर्ग में शासन करते हैं वैसे ही इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाकर युधिष्ठिर शासन करते रहे।।4।।

श्री हरि का आश्रय किए हुए धर्मराजा की इच्छानुसार वर्षा होती थी। प्रजाओं की समस्त इच्छाओं को पृथ्वी पूर्ण करती थी। बड़े थनवाली गायें अपने रहने के स्थान को दूध से सींचती थीं।।5।।

नदियाँ, समुद्र, पर्वत, रत्नों को देते थे। वृक्ष लता, वनस्पति आदि उन-उन ऋतु में अतिशय फल देते थे।।6।।

धर्मराजा के राज्य करते समय अनावृष्टि आदि आधि दैविक ताप, उन्माद आधि आदिभौतिक ताप, शरीर संबंधी कुष्ठ रोगादि, आध्यात्मिक ताप, प्रजाओं को नहीं था। प्रजा सुख से वास करती थी।।7।।

मित्र पाण्डवों का शोक दूर करने और सुभद्रा को प्रसन्न करने के लिए श्री हरि कुछ समय तक हस्तिनापुर

में रहे। सर्वत्र व्याप्त श्री हरि ने द्वारका जाने की इच्छा किया। कुन्ती और धर्मराजा से द्वारका जाने की अनुमति माँगा दोनों ने अनुमति दे दिया। जाने से पूर्व उन दोनों को बड़े होने के नाते प्रणाम किये। अर्जुन आदि ने आकर श्रीकृष्ण को नमस्कार किये तथा प्रगाढ़ आलिंगन किये। सबको सान्त्वना देकर श्री हरि रथ पर चढ़े।।8,9।।

सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती तथा विराट की कन्या उत्तरा, गान्धारी धृतराष्ट्र, युयुत्सु, गौतम, नकुल, सहदेव, भीम, धौम्य और सत्यवती आदि स्त्रियाँ श्री कृष्णजी के वियोग को नहीं सह सकीं सब लोग विकल हो गए।।10,11।।

हे शौनक! ज्ञानी पुरुष श्री हरि में ध्यानासक्त होकर उनके संग से स्त्री, पुत्र, गृह, मठ ऐसे मुक्ति के प्रतिबन्धक विषयों से दूर रहता है। श्री हरि के ध्यान को त्यागना नहीं चाहता। भगवद्भक्त श्री हरि के चरित्र का गान करते हैं वह मन मोहक होता है। विवेकी पुरुष इनको एक बार श्रवण करता है तो उसको छोड़ने की इच्छा नहीं करता है।।12।।

तब दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप, सोना बैठना, और साथ-साथ भोजन करने का अभ्यास हो जाने पर तथा श्री कृष्ण की महिमा को जानने वाले धर्मराजा आदि वियोग को कैसे सह पाते।।13।।

वे सभी श्रीकृष्ण को पलक न मूँदकर विकल नेत्रों से उन्हें देखते हुए अधीर हो रहे थे। उनका रथ जैसे-जैसे दूर होता गया वैसे ही ऊँचे स्थान से उनको देखते रहे। वहाँ से भी जब दिखाई नहीं दिए तब उनके स्नेहपाश से बँधे हुए उनका मन भी श्रीकृष्ण के साथ चला जा रहा था। श्रीकृष्ण को भूलना साध्य नहीं हुआ।।14।।

श्री कृष्ण के अभिमान से स्त्रियों की आँखों में आँसू भर आए। आँसुओं को नेत्रों में ही रोक लिया कि अशुभ न हो।।15।।

प्रस्थान के समय मृदंग, शंख, नगाड़ा, वीणा, पणव, गोमुख, ढोल तथा घण्टा आदि वाद्यों को बजाए।।16।।

प्रेम तथा लज्जापूर्वक हँसकर निहारने वाली कुरुवंशी स्त्रियाँ उन्हें पुनः देखने की इच्छा से मन्दिरों के ऊपर चढ़ गईं और उन्होंने श्रीकृष्णजी के ऊपर भक्ति से चुन कर लाये हुए सुगन्धित पुष्पों की वृष्टि की पूरे मार्ग में उनके ऊपर पुष्पों की वृष्टि होती रही।।17।।

निद्रा जीतकर ईश्वर का तप करके उनको प्रसन्न किये हुए अर्जुन ने सर्वोत्तम श्री हरि को रथ का सारथी बनाने के अपराध का परिहार करने के लिए रत्नदण्डयुक्त तथा मोतियों की झालर से सुशोभित श्रीकृष्ण का श्वेत छत्र भक्ति से पकड़ा।।18।।

श्री कृष्ण से बढ़कर अन्य कोई वस्तु उनको प्रियतम नहीं थी। उद्धव और सात्य की स्वयं भक्ति से श्री हरि के पार्श्व में खड़े होकर अत्यन्त अद्भुत चँवर डाल रहे थे। पूरे मार्ग में स्त्रियों द्वारा किए गए पुष्प वृष्टि से युक्त नियामक श्री हरि प्रकाशमान थे।।19।।

जहाँ तहाँ ब्राह्मणों ने, **"दुष्टों का संहार करो, साधु सन्तों की रक्षा करो, हम पर अनुग्रह करो।"** ऐसी स्तुति किये। यह स्तुति सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण की प्रेरणा करके ब्रह्माण्ड के भीतर सृष्ट्यादि कार्यों में आसक्त हुए श्री हरि के अनुरुप थी और सत्वादि गुणों की प्रवृत्ति में उदासीन होकर ब्रह्माण्ड के बाहर रहने वाले श्री हरि के अनुरूप थी।।20।।

हस्तिनापुर की स्त्रियों का मन श्री हरि में लीन था। श्रीकृष्ण पर पुष्प वृष्टि करते हुए परस्पर सम्भाषण में

श्री हरि की स्तुति करती थी। यह स्तुति वेदाभिमानी देवताओं को प्रिय था और श्रवण करने में भी प्रिय था।।21।।

श्री हरि सर्वोत्तम हैं। सत्व गुण, रजोगुण और तमोगुण अप्रधान हैं। इन गुणों से महत्तत्वादि तत्व सृष्टि होने से पूर्व प्रलय काल में इन त्रिगुणाभिमानी रमा देवी अपने श्री, भू: दुर्गा रूपों से श्री हरि में ही क्रीडा करते हुए सृष्टि आदि कार्यों में उदासीन थे। सर्वत्र तमोरूप प्रकृति आच्छादित थी। इस जगत के कार्यकर्त्ता सम और अधिकरहित नियामकत्व आदि शक्ति से युक्त वह श्री हरि गाढ़ अन्धकार से आच्छादित थे। इसलिए श्री हरि को पुरातन कहते हैं। वही पुराणपुरुष हमारे आँखों को दिखाई देने वाले श्री कृष्ण हैं इन दोनों में कोई भेद नहीं है।।22।।

प्रलय रहित पुरातन कहलाने वाले तथा अप्राकृत गुण और रूप होने से नाम, रूप रहित कहलाने वाले श्री हरि ने प्राकृत रूप और नाम वाले जगत की सृष्टि करने की इच्छा किया। सबके शासक ने सृष्टि करने के लिए लक्ष्मी को प्रेरित किया। उन लक्ष्मी ने जगत की सृष्टि करने की इच्छा किया। परमात्मा से भिन्न जीवों को नियमन करने वाली इच्छा शक्ति ही श्री लक्ष्मी है। यही जड़ प्रकृति की अभिमानी है। पुराण पुरुष की पत्नी है। सृष्टि की इच्छा किए हुए श्री हरि ने इनमें वीर्य स्थापन किया वही यह श्री कृष्ण हैं।।23।।

इस कर्म भूमि में जन्म लेकर प्राणादि पंच वायु को अपने अधीन किए हुए शुद्ध मन वाले ज्ञानीजन भक्ति से अपने स्वरूप अन्तःकरण द्वारा अप्राकृत रूपी श्री हरि का दर्शन करते हैं। ज्ञानियों को दर्शन देने वाले श्री हरि ही यह श्री कृष्ण हैं। हे सखी ! इनकी महिमा को श्रवण मनन करने से अन्तःकरण जैसा शुद्ध होता है वैसा कर्मों के द्वारा नहीं हो सकता।।24।।

सात्विक जीवों को भगवान के विषय में उत्पन्न हुए ज्ञान को वह कभी नाश नहीं करते हैं। हे सखि ! इनकी महिमा को वेदार्थ विचार में आसक्त हुए भगवद्भक्त अनन्त वेदों में सदा वर्णन करते रहते हैं। ये एक ही मुख्य नियामक हैं। जगत की सृष्टि आदि कार्य उनकी क्रीडा है। भगवान परिपूर्ण और पूर्णकाम हैं। सृष्टि आदि कार्य से कोई फल की इच्छा नहीं करते हैं। इसलिए वे असंग हैं। वे यह श्री कृष्ण हैं।।25।।

शास्त्र विरुद्ध हिंसात्मक कार्य में आसक्त होकर जीवन व्यतीत करने वाले असुर स्वभाव के राजाओं की जब अधिकता हो जाती है तब सात्विक जीवों की रक्षा करने तथा उनको मोक्ष देने के लिए श्री हरि समय-समय पर अवतार लेते हैं। वराह अवतार में पृथ्वी का उद्धार करने से उस अवतार को धर्म कहते हैं। कपिलादि रूपों को षड्गुण पूर्ण होने से भग कहते हैं। कल्कि आदि रूप से अज्ञान का नाश करके सत्वगुण को उत्पन्न करके विशेष आनन्द रूप होने से सत्य कहलाते हैं। व्यासादि अवतार ज्ञान प्रवर्तक होने से ऋत् कहलाते हैं। दया और यश परमात्मा के अवतार के नाम हैं। हे सखि ! इस कृष्णावतार में जरासंध आदि असुरों का संहार करके धर्मराजादि देवताओं पर अनुग्रह कर रहे हैं।।26।।

यदुवंश प्रशंसनीय है इसलिए कि श्री कृष्ण ने उस वंश में अवतार लिये हैं। श्री कृष्ण ने मधुवन को अपने चरणों से पवित्र किया है। करूणापूर्ण श्री हरि अत्यद्भुत कार्य किए हैं।।27।।

द्वारका में रहने वाले सदा अपने स्वामी का दर्शन करते हुए आनन्द से रहते हैं ऐसा सौभाग्य देव लोक में रहने वाले देवताओं को भी सुलभ नहीं है। द्वारका की कीर्ति देवलोक की कीर्ति से अधिक हैं। द्वारका जैसे नगर के

होने से पृथ्वी पवित्र हो गई है।।28।।

हे सखि! श्री कृष्ण की स्त्रियों ने व्रत, स्नान तथा हवन आदि से पूर्व जन्मों में ईश्वर का पूजन करके प्रसन्न किये हैं जिससे श्री कृष्ण जी को पति पाकर उनके अधरामृत का नित्य पान कर रही हैं। नहीं तो ऐसा सौभाग्य कहाँ से।।29।।

इन स्त्रियों के लिए ही शिशुपाल आदि को युद्ध में परास्त कर दिया और अपने पराक्रम को ही कन्या शुल्क रूप देकर स्वयम्बर से हरण कर लाये। अष्ट महिषियों के पुण्य का कितना वर्णन करें। हे सखि! नरकासुर का संहार करके उसके कारागृह में रहने वाली सोलह हजार एक सौ स्त्रियों को उनकी इच्छानुसार श्री हरि ने विवाह कर लिया।।30।।

श्री हरि ने अपने अप्राकृत सुन्दर रूप से उनके हृदयों में आनन्द देते हुए उन स्त्रियों के घर से कभी भी नहीं निकलते। यह पूर्व जन्म में अग्नि के पुत्र थे। स्त्री शरीर को प्राप्त करके श्री हरि के अंग संग की इच्छा से दीर्घकाल तक तप करके श्री हरि को प्रसन्न किया है।।31।।

हस्तिनापुरी की स्त्रियाँ परस्पर इस प्रकार का वार्तालाप कर रही थीं। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर श्री हरि अपनी मन्द मुस्कुराहट तथा प्रेमपूर्ण, चितवन से उनका अभिनन्दन करते हुए चले गए।।32।।

धर्मराजा ने स्नेहवश श्री हरि की महिमा को भूलकर राजाओं के आक्रमण करने की शंका से चतुरंगिणी सेना को उनके साथ कर दिया।।33।।

पाण्डव लोग विदुर को आगे करके श्री हरि के साथ बहुत दूर तक गए। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर श्री हरि ने उनको ठहरने के लिए कहा और अपने प्रिय लोगों के साथ द्वारका चले गए।।34।।

श्री हरि ने सामान्य राजाओं के जैसे यात्रा करते हुए, कुरु जांगाल, पांचाल, शूरसेन, यामुन, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र मत्स्य और सारस्वत देशों को लांघकर हे भार्गव! निर्जल देश, अल्पोदक देश तथा सौवीर और अभीर देश को पार करके घोड़ों के थकने से द्वारका के निकट आनर्त देश में प्रवेश किया।।35,36।।

प्रत्येक नगर वाले अपने राजा को आते हुए देखकर पग-पग पर उनका सत्कार किये। अमूल्य वस्तुएँ भेंट में दी। उनके सत्कार का अभिनन्दन करते हुए श्री हरि ने सूर्यास्त समय पश्चिम दिशा में प्रस्थान किया।।37।।

आनर्त देश, सम्पत्ति से समृद्ध था। वे अपने देश में आते ही शत्रुओं से भय न करने के लिए प्रजाओं को बतलाने के लिए उन्होंने अपने पाञ्चजन्य शंख को बजाये।।38।।

दोनों हाथों के मध्य में बजाया जाता हुआ भीतर श्वेत रंग वाला शंख श्री कृष्ण जी के होठों की लाली से लाल होकर बहुत शोभित हुआ, जैसे लाल कमलों के मध्य बोलता हुआ हंस हो। इस प्रकार शंख का शब्द शत्रुभय को ही क्या संसार के भय को भी दूर करने वाला था। इस शब्द को सुनकर प्रजागण उत्साहपूर्वक श्री हरि का स्वागत करने आए।।39,40।।

श्री हरि परिपूर्ण हैं, पूर्णकाम हैं, अपने में ही क्रीडा करते हुए आनन्दित होते हैं। ऐसे पूर्णानन्द श्री हरि को भक्त प्रजा ने भक्ति से नमस्कार करके जगत को ही प्रकाश करने वाले सूर्य को दीप दिखाने की भाँति अपने लाए हुए भेंट को अर्पण किये। जैसे पिता की पुत्र स्तुति करते हैं वैसे ही सब के मित्र तथा रक्षा करने वाले श्री कृष्ण जी के

प्रति प्रेम से प्रसन्नमुख वाले प्रजाजनों ने हर्ष तथा भक्ति से गदगद वचनों से स्तुति किया।।41,42।।

"हे श्री हरि आप सब के स्वामी हैं। आपके चरण कमलों की ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादि समस्त देवता सदा सेवा करते हैं। अत्युत्तम मोक्ष को चाहने वाले सभी मुक्ति योग्य जीव आपके चरणों की ही शरण लेते हैं। काल तो ब्रह्मा को भी जनन मरण ला देता है। जो आपके भक्त नहीं है अन्य देवताओं के भक्त हैं उन पर वे अपना प्रभाव डालते हैं। किन्तु जो आपके चरण कमलों के आश्रित हैं उनको कभी भी सताते नहीं है। तब आपको कैसे सताएँगे ऐसे आपके चरण कमलों को नमस्कार है।।43।।

श्री हरि समस्त जगत को सत्ता प्रदान करने वाले हैं। आपकी सेवा करके हम कृतार्थ हुए हैं। आप हमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्य रूप मोक्ष के साधन सम्पत्ति को प्रदान करें। आप ही हमारे इष्ट देवता हैं। आप हमारे निर्दुष्ट उपदेशक हैं। हमारी इच्छाओं को पूर्ण करने वाली माता भी आप ही हैं। हमारे किसी प्रयत्न के बिना ही आप हमारे निर्निमित्त बन्धु हैं। हम सबके आप स्वामी और रक्षक हैं।।44।।

हे स्वामिन्! बहुजन्मों में किए हुए पुण्य से देवता आपका दर्शन करते हैं। इस पर भी वे अपनी योग्यतानुसार ही आप का दर्शन करते हैं। प्रेम से पूर्ण मुस्कान तथा दृष्टि से अनुग्रह करने वाले आपके रूप का सदा दर्शन करने वाले हम धन्य हैं।।45।।

हे माधव! हे पुण्डरीकाक्ष! जब कभी आप पाण्डवों के यहाँ हस्तिनापुरी तथा वृजवासियों से मिलने के लिए मथुरा अथवा किसी मित्र से मिलने कहीं चले जाते हैं तो सूर्य के न होने से नेत्रों के लिए काल जैसे दीर्घ सा प्रतीत होता है वैसे ही एक क्षण करोड़ वर्षों के समान हो जाता है। आप अच्युत हैं आपको हमारे वियोग का दुःख नहीं है परन्तु हम आपका वियोग सहन नहीं कर सकते हैं।।46।।

इस प्रकार भक्त प्रजाओं की स्तुति को भक्तवत्सल श्री हरि ने सुनते हुए उनकी ओर अनुग्रहपूर्ण दृष्टि से निहारते हुए द्वारका में प्रवेश किया।।47।।

जहाँ मधु, भोज, दाशार्ह, अर्ह और कुरुवंश के बड़े-बड़े वीर यादव उस नगरी की रक्षा करने के लिए नियुक्त थे। वे सब एक दूसरे के ही समान वीर थे। वे उसी तरह द्वारका की रक्षा करते थे जैसे नागगण नागलोक की रक्षा करते हैं। जिस नगरी के बाहर भीतर सब ऋतुओं में फूलने फलने वाले वृक्षों, लताकुंजों, उद्यानों, उपवनों आतमो (बागों) के साथ खिले हुए कमलपुष्पों से भरे बड़े-बड़े सरोवर विद्यमान थे। जिस नगरी के मुख्य द्वार, प्रत्येक घर के दरवाजों और मार्गों में वहाँ के निवासियों ने कौतुकवश विविध प्रकार के तोरण लगा रखे थे। चित्र-विचित्र ढंग की ध्वजा और पताकाएँ फहराई गई थीं, उनकी इतनी अधिकता थी कि जिससे मार्ग में धूप नहीं लगती थी। सारी सड़क पर छाया हो गयी थी। उस नगर की लम्बी चौड़ी सड़कें साफ सुथरी थीं। उनसे कम चौड़े रास्ते और बाजार की गलियाँ सुगंधित जलों से छिड़काव करके विविध प्रकार के फल, पुष्प, अक्षत और दूब के दलों से सजायी गई थीं। द्वारका के प्रत्येक दरवाजे पर भरे हुए कलश रखे थे और मंगल के लिए कटोरों में दही, अक्षत, फल, (नारियल), तथा पूजा के लिए धूप, दीप, गुड़ आदिसामग्री भर-भर कर रखी हुई थी। इस प्रकार अलंकार किए हुए द्वारका नगरी में श्री कृष्ण जी ने प्रवेश किया।।48, 52।।

महामनस्वी वसुदेव, अद्भुत पराक्रमी बलराम, प्रद्युम्न और जाम्बवती के बेटे साम्ब आदि ने जब सुना कि

श्री कृष्ण हस्तिनापुरी से यहाँ आ गए हैं तो अत्यन्त प्रसन्नता से शयन-आसन-भोजन आदि छोड़कर सर्वश्रेष्ठ हाथी और मंगलमयी वस्तुएँ लिए हुए ब्राह्मणों को आगे करके शंख, आदि बाजे बजाते और ब्राह्मणों द्वारा वैदिक मंत्रों का पाठ कराते मारे प्रेम के शीघ्रता से रथों पर सवार होकर चल पड़े। सहस्त्रों वाराङ्गनाएँ अलग भगवान को देखने की उत्सुकतावश विविध प्रकार की सवारियों पर चढ़कर चलीं। कानों में लटकते हुए कुण्डलों से उनके कपोल और मुख की शोभा देखते ही बनती थी।।53, 56।।

नट, नर्तक, गायक, सूत, मागध और बन्दीजन पुनीत चरित्र भगवान श्री कृष्ण चन्द्र के अद्‌भुत चरित्रों को गाते हुए चले।।57।।

जब ये लोग भगवान के समक्ष पहुँचे तो वे उन सभी बन्धुओं और अनुगामी पुरवासियों से बड़े प्रेम के साथ विधिवत मिले और उन्होंने सबका सम्मान किया तथा प्रथम उनकी योग्यतानुसार विनयपूर्वक आलिंगन, हाथ से स्पर्श, मुस्कराहट युक्त अवलोकन आदि उपायों से उन्होंने वहाँ पर गए हुए क्षत्रिय-ब्राह्मणों तक को गद्‌गद् कर दिया और चाण्डाल पर्यन्त जिसने जो वर चाहा सो मिला।।58, 59।।

भगवान श्री कृष्ण चन्द्र गुरुजनों, और सपत्नीक वृद्ध ब्राह्मणों के अशीर्वादात्मक वाक्यों को सुनते हुए अपने अन्य बान्धवों के साथ द्वारिका में प्रवेश किये।।60।।

हे शौनक! जब भगवान द्वारिका के विशाल राजमार्ग से चलने लगे तो उनके देखने की अभिलाषा से वहाँ की स्त्रियाँ अपनी-अपनी अटारियों पर चढ़ गईं।।61।।

यद्यपि वहाँ के निवासी नित्य भगवान का दर्शन करते रहते थे। फिर भी उन शोभाधाम की शोभा को निरख निरख कर उनकी आँखें तृप्त नहीं होती थीं।।62।।

जिनके वक्षस्थल को लक्ष्मी आश्रय किये हैं, जिनके मुख देखने वालों के नेत्रों के लिए अमृत पिलाने का पात्र था, जिनके बाहु का आश्रय करके दिक्पालक वलिष्ठ हुए हैं, जिनके चरण-कमलों को ब्रह्मादि चेतन मुख्य रूप से आश्रय किए हुए हैं ऐसे श्री कृष्ण के रूप को देखकर कौन तृप्त होंगे।।63।।

राजमार्ग में जाते हुए श्वेत छत्र चमर से सुशोभित थे। स्त्रियाँ पुष्प वृष्टि कर रही थीं। पीताम्बर धारण करके वनमाला से अलंकृत होकर आते समय सूर्य, चन्द्र, इन्द्र धनुष और बिजली की चमक से युक्त मेघ की भाँति शोभायमान थे।।64।।

श्री हरि के माता-पिता के घर में प्रवेश करते ही माताओं ने आगे आकर उनका आलिंगन किया। देवकी आदि सात माताओं को श्री हरि ने सिर झुकाकर नमस्कार किया। उन्होंने एक-एक करके श्री हरि को गोद में लेकर आँसुओं से उनका अभिषेक किया।।65,66।।

प्रेम के फलस्वरूप उनके स्तनों से दूध बह रहा था। संकोच से उनका मन विवश हो गया। माता-पिता से मिलकर श्री हरि ने चेतनों से वांछित सभी विषयों से परिपूर्ण तथा सर्वोत्तम अपने राजमहल में प्रवेश किया।।57।।

वह राजमहल वज्र, वैदूर्य आदि नौरत्नों से अलंकृत था। श्री हरि की सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियों के लिए महल निर्माण हुआ था। प्रवास से आए हुए अपने पति को दूर से देखकर स्त्रियाँ अपने आसान से उठकर खड़ी हो गईं।।68।।

उनका मन सन्तोष से भर गया। प्रेम से हँसने लगीं। स्त्रियों ने अपनी दृष्टि और मन से अपने पति श्री हरि का आलिंगन किया। काम परवश होकर लज्जा से उनकी आँखों से आँसू की बूँदें टपक पड़ीं। प्रयत्न करने पर भी आँसुओं को रोक नहीं सकीं।।69।।

श्री हरि एकान्त में सदा उनके पार्श्व में ही रहते थे। इस पर भी श्री हरि के चरण कमल उनके लिए क्षण-क्षण में नवीन दिखाई पड़ते थे। सबके सम्पत्ति की चंचलता का कारण होने वाली लक्ष्मी जिनके चरण कमल को नहीं छोड़ती और सदा सेवा करती रहती हैं ऐसे श्री हरि के चरण कमलों की सेवा से कौन स्त्री तृप्त होकर त्याग सकती है?।।70।।

इस प्रकार पृथ्वी के भारभूत अगणित अक्षौहिणियों सेना से युक्त तथा वलिष्ट असुरों को संहार करने के लिए कौरव-पाण्डवों में द्वेष उत्पन्न करके उनके पक्षधरों को आपस में ही लड़ाकर उनको उसी प्रकार संहार करा दिया, जैसे वायु दो बाँसों को रगड़कर उनमें आग पैदा करके उनको जला डालती है।।71।।

अपनी इच्छा से इस मनुष्य लोक में जन्म लिए (व्यक्त हुए) श्री हरि ने प्राकृत लोगों जैसे स्त्री रत्न के मध्य में रहकर सबको सन्तुष्ट किया।।72।।

श्री हरि ने स्त्रीजित लोगों का अनुकरण करके बतलाया है किन्तु वह कभी भी स्त्रियों से जित नहीं हुए। जिन अलंकृत स्त्रियों के हाव भाव निष्कपट सुन्दर मुस्कान से मन्मथ मोहित होकर अपने कुसुम धनुष को त्याग दिये। ऐसी ास्त्रियाँ भी अपनी चेष्टाओं से श्री हरि के मन में विकार उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हुई।।73।।

इस पर भी लोग अपने वैसे ही श्री हरि को जानकर असंगों को संगी और स्त्रीजित समझे। इससे भी और क्या अज्ञान हो सकता है। इसलिए वे अज्ञानी कहलाते हैं।।74।।

ज्ञानीलोग उनको आश्रय किए हुए सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण से संबंध न रखने से ईश्वर कहलाते हैं, ऐसा समझकर प्रकृति से वद्ध न होना जानते हैं। प्राकृत ज्ञानियों की श्री हरि विषयक बुद्धि प्रकृतिगुणों से वद्ध नहीं होती है। तब क्या श्री हरि वद्ध हो सकते हैं। ज्ञानियों की बुद्धि जब प्रकृति के गुणों से बद्ध नहीं है तब श्री हरि प्रकृति के गुणों से कैसे बद्ध हो सकते हैं।।75।।

इन्द्रिय लोलुप शास्त्र ज्ञान शून्य, राजस और तामस स्वभाव वाले चेतन श्री हरि को अनन्तगुण परिपूर्ण प्रमाणों से सिद्ध होने पर भी उन प्रमाणों को न जानकर अपनी बुद्धि के अनुसार श्री हरि भृत्य के जैसे रहने वाला, स्त्रीजित ऐसे समझते आए हैं। किन्तु आप्तकाम श्री हरि कभी भी स्त्रीजित नहीं हैं।।76।।

।।इति श्री मद्‌भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे दशमोऽध्यायः।।

अध्याय - 11
अथ एकादशोऽध्याय ः

इस अध्याय में वैराग्य तथा श्री हरि द्वारा भक्तों में की जाने वाली करूणा का वर्णन किया गया है। **शौनक जी कहते हैं!** हे सूत जी! जैसे अभी आपने बतलाया कि ब्रह्मास्त्र से घबरा कर उत्तरा भागती हुई श्री हरि की शरण में गई। अश्वत्थामाचार्य के ब्रह्मास्त्र से उसका गर्भ नष्ट होना और समर्थ श्री कृष्ण से पुनः जीवित होना आपने बतलाया।।1।।

ऐसे जीवित हुआ जीव को तो श्री हरि को सर्वोत्तम जानने वाला भक्त ही होना चाहिए। ऐसे भगवद्भक्त का जन्म और कर्म हमें बतलाइये। उस भक्त को कैसे देह त्यागना पड़ा? देह त्यागने के पश्चात् कौन से लोक को प्राप्त हुआ?।।2।।

शुकदेव ने ही उस भक्त को भगवान की महिमा को विस्तार से बतलाया ऐसा हमने सुना है। यह सब सुनकर हमें जानने की श्रद्धा हुई हैं। ऐसे रहस्य विषय को हम जैसे श्रद्धालुओं को यदि कहने योग्य हो तो कृपा करके बतलाइये।।3।।

सूत जी ने कहा- हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! विषय सुख और उनको अनुभव करने की इच्छा मुमुक्षु को अप्रिय और कड़ुई होती है। श्री हरि की चरण सेवा अत्यन्त प्रिय और मधुर होती है। भगवद्भक्त धर्मराजा समस्तविषयों की आशा त्याग कर श्री हरि की सेवा रूप से राज्य का कार्य करते थे और पिता की भाँति प्रजा की रक्षा करते थे।।4।।

यद्यपि उनके पास अतुलित धनराशि थीं, बड़े-बड़े यज्ञ करके स्वर्गलोक की प्राप्ति का अधिकार भी उनको मिल ही चुका था, राजरानी द्रौपदी थी, चार-चार वीर भाई थे, समस्त जम्बू द्वीप पर प्रभुता थी और स्वर्ग में फैला हुआ यश था। किन्तु हे शौनक! एकमात्र नारायण के ध्यान में आसक्त उन धर्म राजा ने इन सम्पत्तियों को कोई पुरुषार्थ नहीं समझा जैसे कि भूखे मनुष्य को हार-वीणादि वाहन से तृप्ति नहीं होती वैसे ही मुमुक्षु धर्मराजा को अन्त में दुःख को ही उत्पन्न करने वाले ऐहिक सुख सन्तुष्ट नहीं कर सके। इस प्रकार का अतिशय वैराग्य मोक्ष में अतिशय सुख देने वाला होता है।।5,6।।

हे शौनक! जब महाराज परीक्षित् अपनी माता के गर्भ में थे और ब्रह्मास्त्र के तेज से जले जा रहे थे, तभी उन्होंने लोक विलक्षण वाले एक पुरुष को देखा।।7।।

दोष रहित यह पुरुष उस शिशु के अंगूठे बराबर था। प्रकाशमान स्वर्ण किरीट धारण किया था। उसकी आयु सोलह वर्ष की दिखाई पड़ती थी। श्याम शरीर था और उस पर पीताम्बर शोभायमान हो रहा था। उसके कान्तियुक्त और लम्बे-लम्बे चार बाहु थे तपाये हुए स्वर्ण के कुण्डल कानों में झूल रहे थे। उसकी रक्त जैसी लाल-लाल आँखें थीं। वह अपने हाथ में आकाश से गिरते हुए नक्षत्र जैसे प्रकाशमान गदा लिए उसे घुमाता हुआ उनके चारों ओर चक्कर लगा रहा था। उनके देखते-देखते उस वीर पुरुष ने अपनी गदा से ब्रह्मास्त्र जनित तेज को ऐसे

शान्त कर दिया जैसे सूर्य कुहरे को नष्ट कर देता है। समीप में देखा हुआ वह पुरुष कौन है वह शिशु जान नहीं सका।।8,9,10।।

अनन्तरूपी, धर्मरक्षक, सर्वसमर्थ, षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न सब प्रकार के पापों को दूर करने वाला श्री हरि उस ब्रह्मास्त्र से शिशु की रक्षा करते हुए दसवें महीने के आरम्भ में उस शिशु के देखते-देखते गर्भ में ही अदृश हो गये।।11।।

तदनन्तर जब सभी ग्रह अनुकूल और शुभफल के सूचक थे और शुभ मुहूर्त था तब कान्तियुक्त दूसरे पाण्डुराजा के जैसे वह शिशु गर्भ से बाहर आया। इनके जन्म से पाण्डुराजा का वंश फिर से आगे बढ़ा।।12।।

भगवद्भक्त पौत्र के जन्म लेने से धर्मराजा को तृप्ति हुई। धौम्याचार्य, कृपाचार्य इत्यादि को बुलाकर पुण्याहवाचन कराकर उस शिशु का जात कर्म किया।।13।।

शास्त्रज्ञानी, पात्रापात्र विवेकी उस धर्मराजा ने उस शिशु के जन्म के पवित्रकाल में श्री हरि के प्रीत्यर्थ उत्तम ब्राह्मणों को सुवर्ण, गौ, भूमि, गाय, हाथी, घोड़े तथा मिष्ठान का दान किया।।14।।

ब्राह्मणों के सामने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़े खड़ा रहा। संतुष्ट हुए ब्राह्मणों ने कहा-"**कुरुवंश में श्रेष्ठ हे धर्मराजा! आपका यह कुरुवंश अदृष्ट से नाश हुआ था परन्तु सर्व समर्थ श्री हरि ने आप पर अनुग्रह करके उस शिशु को जीवित कर दिया है। विष्णु से (रात) दिए जाने से यह शिशु विष्णुरात के नाम से ही लोक में प्रसिद्ध होगा। यह श्रेष्ठ भगवद्भक्त होगा इसमें कोई संशय नहीं है।**" इस प्रकार कहा।।15,16,17।।

इस बालक का भविष्य और विस्तार से जानने की इच्छा से धर्मराजा ने कहा-"हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! हमारे वंश में अत्यन्त पवित्रकीर्ति वाले सर्वोत्तम श्री हरि में अतिशय भक्ति वाले तथा ज्ञानी अनेक राजा जन्म लिए हैं। ऐसे उत्तम वंश में जन्म लिया हुआ यह बालक अपने गुणों से सज्जनों के द्वारा स्तुत्य होकर पूर्वजों के पथ का अनुसरण करते हुए क्या वह भी यश को प्राप्त करेगा? इस प्रकार प्रश्न किया।।18।।

तब ब्राह्माणों ने कहा-हे धर्मराजा! यह बालक वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु की भाँति प्रजा की रक्षा करेगा, ब्राह्मण भक्त, दशरथ के पुत्र रामचन्द्र जैसा सत्यप्रतिज्ञ होगा।।19।।

उशीनर राजा के पुत्र शिवि की तरह दानशील और शरणागत-प्रतिपालक, दुष्यन्त के पुत्र भरत की तरह यज्ञ याग करके अपने वंश की कीति को और भी बढ़ाएगा।।20।।

धनुर्विद्या में कुशल यह बालक कार्तवीर्य और आपके भाई इन दोनों अर्जुनों के समान होगा। यह अग्नि के समान तेजस्वी तथा दुर्धर्ष और समुद्र के समान दुस्तर होगा।।21।।

यह सिंह के समान बलवान, हिमवान की तरह सज्जनों का सेव्य, पृथ्वी के समान क्षमावान् तथा माता-पिता के समान सहनशील होगा।।22।।

उनकी योग्यतानुसार फल देने में ब्रह्मा के समान, प्रसन्न होकर उपकार करने में शिव के समान, लक्ष्मी को आश्रय देने वाले श्री हरि जैसे सबका आश्रय दाता होगा।।23।।

सज्जनों के गुणों से पूर्ण यह बालक कृष्ण और अर्जुन के पथ का अनुगामी होगा। रन्तिदेव जैसा उदार, ययाति जैसा धार्मिक होगा।।24।।

यह धैर्य में बलि के समान, प्रहलाद जैसा श्री हरि में शुद्ध भक्ति करने वाला होगा। अनेक अश्वमेध यज्ञ करेगा, गुरुजनों की भक्ति से सेवा करेगा।।25।।

राजर्षि कहलाने वाले सत्पुत्रों को (जनमेजय आदि को) उत्पन्न करेगा और विरुद्ध मार्ग में चलने वालों को कठोर दण्ड देगा। गोरूप धारिणी पृथ्वी तथा वृषभरूप धारी धर्म को सताने वाले शूद्र रूपधारी कलि को निग्रह करके उसका दमन करेगा।।26।।

ब्राह्मण पुत्र के शाप से प्रेरित तक्षक सर्प के डसने से मृत्यु को प्राप्त होगा।।27।।

हे धर्मराजा ! वेदव्यास जी के पुत्र शुकदेव जी के द्वारा जीव और परब्रह्म का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके इस भौतिक शरीर को गंगा में त्याग कर स्वरूपानन्द का अनुभव करने वाले मोक्ष को प्राप्त करने के लिए वैकुण्ठ लोक को प्राप्त होगा।।28।।

इस प्रकार जातक शास्त्र के निपुण ब्राह्मण धर्मराज युधिष्ठिर को बालक का भविष्य बताकर उनके द्वारा पूजित होकर वे अपने-अपने घर को चले गए।।29।।

इस प्रकार वह बालक सर्प का दर्शन होगा ऐसा सदा चिन्तन करते हुए जो लोग उनके पास आते थे उन सबके विषय में यह सोचता था कि वेष बदलकर तक्षक तो नहीं आया है इस प्रकार परीक्षा करता रहा। इसलिए वह **''परीक्षित्''** करके लोक में प्रसिद्ध हुआ।।30।।

युधिष्ठिर आदि गुरुजनों द्वारा पालित वह राजपुत्र इस तरह दिन प्रतिदिन शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगा।।31।।

महाभारत युद्ध में भीष्मादि स्वजनों के संहार में मुझे पाप लगा है ऐसा संशय करके धर्म को अधर्म जान कर उससे आए हुए पाप को दूर करने के लिए धर्मराजा ने अश्वमेध यज्ञ करने की इच्छा किया। उसके लिए अधिक धन की आवश्यता थी। परन्तु धन को किस प्रकार से प्राप्त करना चाहिए यह समझ में नहीं आया। बचे हुए राजाओं के द्वारा कर और प्रजाओं से शिक्षा शुल्क प्राप्त करके धन को संचित करना चाहिए था। परन्तु धर्मराजा ने इस को उचित नहीं समझा इसलिए यह विचार करने लगे।।32।।

धर्मराजा के अभिप्राय को उनके भाइयों ने जान लिया। जब यह धन किस प्रकार से इकट्ठा करना चाहिए ऐसा विचार कर रहे थे, उसी समय वेदव्यास जी आए और उन्होंने बताया कि हिमालय में उत्तर दिशा में मरुत राजादि यज्ञ करके बचे हुए धनराशि को वहीं पर छोड़ दिए हैं। उसको आप लोग लाइए। इसी प्रकार से भीमादि उत्तर दिशा से अतिशय धनराशि ले आए।।33।।

इस धन से धर्मराजा ने यज्ञ की सामग्रियों को इकट्ठा किया। तीन गुनाफल देने वाले अश्वमेघ यज्ञ को श्री हरि की सेवा रूप में किया।।34।।

यज्ञ के लिए द्वारका से श्री कृष्ण आए हुए थे। श्री कृष्ण ने धर्मराजा के यज्ञ को पुरोहितों के द्वारा उत्तम प्रकार से कराया। श्री कृष्ण जी धर्मराजा के स्नेह से उनकी प्रार्थनानुसार कुछ दिन हस्तिनापुर में ही रहे।।35।।

धर्मराजा को तथा द्रौपदी और अन्य को द्वारका जाकर आता हूँ कहकर अर्जुन तथा यादवों के साथ वहाँ चले गए।।36।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे एकादशोऽध्यायः।।

अध्याय - 12
अथ द्वादशोऽध्यायः

शब्द स्पर्शादि विषयों में आसक्त होना संसार का कारण है। उनमें वैराग्य मोक्ष का कारण है इसलिए मुमुक्षु को चाहिए कि स्वयं अथवा अन्य से प्रेरित होकर वैराग्य को प्राप्त करना चाहिए। इस विषय को इस अध्याय में बतलाते हैं। वैराग्य दृढ़ होने के लिए अन्तःकरण की शुद्धि चाहिए। अन्तःकरण की शुद्धि तो सत्कर्मानुष्ठान, तीर्थादि के द्वारा होती है। अब आरम्भ में विदुर का तीर्थ यात्रा से हस्तिनापुरी को वापस आना बतलाते हैं। **सूत जी कहते हैं**-हे शौनक! तीर्थ यात्रा के लिए गए हुए विदुर मध्यमार्ग में मैत्रेय जी से जीव, ब्रह्म के तत्व को जानकर तृप्त होकर हस्तिनापुरी को वापस आए।।1।।

विषयासक्ति संसार का कारण है। विषय वैराग्य मोक्ष का कारण है। इसलिए मुमुक्ष को चाहिए कि स्वयं अथवा अन्य से प्रेरित होकर वैराग्य को प्राप्त करें। जिसके लिए अन्तःकरण की शुद्धि चाहिए। जो कर्मानुष्ठान और पुण्यतीर्थ क्षेत्र यात्रा के द्वारा प्राप्त होती है। इसलिए विदुर तीर्थ यात्रा को समाप्त करके धृतराष्ट्र को समझाने के लिए हस्तिनापुरी वापस आए। विदुर ने जो प्रश्न किए थे मैत्रेय ने उन सबका उत्तर दिया था, जिससे विदुर के मन को तृप्ति हुई। जिसके फलस्वरूप श्री हरि में भक्ति उत्पन्न हुई।।2।।

जब विदुर जी हस्तिनापुरी पहुँचे तो हे शौनक! भ्राताओं समेत धर्मराज युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, सूत (संजय), शारद्वत (कृपाचार्य) पृथा (कुन्ती), गान्धारी, सुभद्रा, कृपी तथा अपने परिवार की स्त्रियों और अपने बाल-बच्चों सहित बड़े हर्ष के साथ उनका स्वागत किया। पूर्वकाल में विराट पुरुष के देह में समस्त इन्द्रियाभिमानी देवताओं के वास करने पर भी कोई उपयोग नहीं हुआ। परन्तु मुख्य प्राण के आकार रहने से वे सब देवता मुख्य प्राण का जैसे स्वागत किए वैसे ही यह सब विदुर का स्वागत किए। विधि आलिंगन पूर्वक स्वागत करने के पश्चात् कुछ ने आलिंगन किया और कुछ ने नमस्कार करके सत्कार किया। बन्धुओं के दर्शन के उत्साह से विदुर और बन्धुओं के नेत्रों से प्रेम भरे आँसू निकल पड़े।।3,4,5।।

विदुर आसन पर बैठे, धर्मराजा से सत्कृत हुए विदुर के भोजन के बाद कुछ समय विश्राम करके सुख से आसन पर बैठने के पश्चात् धर्मराजा ने भक्ति और नम्रता से सब के सुनते हुए विदुर से प्रश्न किया।।6,7।।

धर्मराजा ने कहा-जिस तरह की पक्षी अपने बच्चों को पंख में छिपाकर बड़े प्रेम से उनका पालन करता है उसी प्रकार पक्षपात से हमारा पालन करने वाले आप ही हैं। हम सब को माता के साथ विषपान से, लाख के घर की अग्नि से आप ने ही तो हमारी रक्षा किया है। आपके हमारे पास वापस आ जाने से स्पष्ट है कि आप हमें भूले नहीं है।।8।।

तीर्थ यात्रा के निमित्त भूमंडल में भ्रमण करते समय आप ने अपना जीवन यापन कैसे किया, धर्म के लिए देह धारण तो मुख्य है, इसलिए क्या एक समय का ही भोजन करने का व्रत आप ने धारण किया था? गंगादि कौन-कौन से तीर्थों का आपने सेवन किया?।।9।।

मुख्य क्षेत्र कुरुक्षेत्र आदि कौन-कौन से क्षेत्रों का आप ने दर्शन किया? आप जैसे भगवद्भक्त सदा हृदय कमल में श्री हरि का दर्शन करते रहने से सदा पवित्र हैं। आपको पवित्र करने के लिए अन्य तीर्थ की आवश्यकता नहीं है फिर भी आप जैसे साधुजन का तीर्थ यात्रा करना किसी स्वार्थवश नहीं है। अनेक पापी जनों द्वारा अपने पाप को तीर्थों में छोड़ने से अपवित्र हुए तीर्थों को पवित्र करने के लिए आप उनमें स्नानादि करते हैं।।10।।

सबसे पहले यह बताइये कि यादव लोग अपने नगर में सुख से तो हैं? क्या आपने उनको देखा है? आप उनके विषय में कुछ जानते हैं? वे हमारे सखा हैं। जैसे हम श्री कृष्ण को सर्वोत्तम जानकर आराधना करते हैं वैसे ही वे भी आराधना करते हैं इसलिए विष्णु भक्त होने से वे हमारे बन्धु हैं। उनके विषय में हमें जानने की उत्सुकता है।।11।।

इस प्रकार धर्मराजा के प्रश्न करने पर विदुर ने अपनी तीर्थ यात्रा में जो अनुभव हुआ था उसको यथावत् वर्णन किया। छत्तीस वर्ष के पश्चात् यादववंश ब्राह्मण के शाप से नाश होने को उद्धव से सुना था। उसको उन्होंने नहीं कहा।।12।।

क्योंकि यदुवंश का नाश होना असहनीय दुःख है। सुनने में अप्रिय भी है। इसको कहने पर धर्मराजादि सभी सिसक-सिसक कर रोवेंगे। दुःखियों को देखना विदुर से साध्य नहीं है। करूणा से उनका मन मृदु है। इसलिए इस दुःखवार्ता को धर्मराजा से कहना उचित नहीं समझा और कहा भी नहीं। सत्य होने पर भी अप्रिय को नहीं कहना चाहिए ऐसा वचन है।।13।।

श्री कृष्ण के अनुग्रह के पात्र पाण्डवों के द्वारा आदर सत्कार पाकर विदुर कुछ समय के लिए हस्तिनापुर में वास किये।।14।।

अपने भाई धृतराष्ट्र को इतनी आयु होने पर भी अभी तक वैराग्य उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिए धृतराष्ट्र को उपदेश करके वैराग्य उत्पन्न करने के लिए समय ताक रहे थे। ऐसे परोपकारी विदुर से सभी प्रेम करते थे। हे शौनक ! विदुर शूद्र होने के कारण क्या उपदेश कर सकता है? ऐसा संशय न करें। यम धर्म ही विदुर बनकर सौ वर्षों तक शूद्र बने थे, इसलिए सामान्य शूद्रों के लिए जो नियम हैं वह अपरोक्ष ज्ञानी विदुर पर लागू नहीं होगा। पहले माण्डव्य ऋषि ने अपने से उत्तम जीव के साम्य को प्राप्त करने के लिए तप किया तब चोरों के साथ वह भी राजदूतों द्वारा पकड़कर राजा के पास लाया गया। वहाँ राजा के आज्ञानुसार अन्य चोरों के साथ इनको भी शूली पर चढ़ाया गया। शूली पर भी तप करते हुए प्रकाशमान देख रहा राजा ने क्षमायाचना करके उनको छोड़ दिया। कुपित हुए माण्डव्य ऋषि इसका कारण जानने के लिए यम राजा के पास आए। हे धर्मराजा! मुझ निरपराधी को क्या शूली पर चढ़ा सकते हैं? ऐसा प्रश्न किया-यमराजा ने वास्तविक कारण को जानने पर भी उनके शाप से उनके पुण्य को नष्ट करने के लिए अन्य कोई कारण बतलाया। **''हे ऋषि श्रेष्ठ! आप बालक थे तब एक मक्खी को शूल पर चढ़ाया उसी का यह फल है।''** अज्ञान अवस्था में किए हुए पाप का फल बतलाने से ऋषि कुपित हुए। **''तुम शून्द हो जावो''** ऐसा शाप दिया वही यम धर्म के विदुर बनकर जन्म लेने का कारण है इसलिए विदुर का विषय ही पृथक है।।15।।

धर्मराजा को राज्य मिला। वंश को बचाने वाले पौत्र के मुख को भी देखा। महाबलशाली सहोदर उसके आज्ञाकारी हैं इस प्रकार सब कुछ श्री हरि के अनुग्रह से प्राप्त हुआ था। श्री हरि के अनुग्रह से प्राप्त इस धनसम्पत्ति

से धर्मराजा सन्तुष्ट हुये।।16।।

अश्वमेघ यज्ञ के लिए आये हुए श्री कृष्ण ने द्वारका जाने के लिए सब से कहा। जो बन्धु उनके साथ आए थे उनको वापस जाने के लिए कहा। अर्जुन, उद्धव और सात्यकी के साथ रथ पर बैठकर द्वारका चले गए।।17।।

श्री हरि में ही जो आसक्त हुए हैं वह अपने समय के एक क्षण को भी व्यर्थ न हुए वैसा कर सकते हैं। पाण्डव इस प्रकार से अपना समय सार्थक कर लिए हैं। जो श्री हरि से विमुख हैं, स्त्री, पुत्र, गृह, मठ आदि में आसक्त होकर केवल विषयों में ही अतिशय आसक्त और धन संचित करने में आसक्त हुए हैं उनका समय तो ऐसे व्यतीत हो जाता है कि उनको पता ही नहीं चलता। उनका एक क्षण भी सार्थक नहीं होता है।।18।।

इस प्रकार जो समय व्यर्थ बीत रहा था विदुर इसको जानते थे। क्योंकि वे तत्वज्ञानी थे। उन्होंने धृतराष्ट्र को समझाया कि "हे राजन्! शीघ्र ही घर का अभिमान त्याग कर यहाँ से चले जाओ। देखो मरण भय अत्यन्त निकट आ गया है।।19।।

इसको कोई भी, किसी काल में, किसी कारण से दूर नहीं कर सकते हैं। ऐसा काल रूपी श्री हरि हम सब के शरीर का वियोग करने की इच्छा से मृत्यु रूप में आए हुए हैं।।20।।

जो काल से ग्रस्तहुआ है वह अपने अत्यन्त प्रीति-पात्र प्राणों से पृथक हो जाता है तब धन आदि के विषय में क्या कहना है।।21।।

श्री हरि के इच्छा करते ही देह का अन्त हो जाता है। तुम्हारे बन्धु, पिता, सहोदर, स्नेहित और पुत्र सभी चले गए। तुमको वृद्धावस्था भी आ गई है। आयु समाप्त होने को है। इस पर भी तुम दूसरों के घर का आश्रय किए हुए हो। तुम अपने कल्याण के लिए कोई प्रयत्न नहीं कर रहे हो तब मृत्यु के पश्चात् परलोक में तुमको सुख कैसे प्राप्त होगा?।।22।।

ओह! प्राणी को अपने जीवन की आशा कितनी प्रिय होती है!! ओह! यह कैसा अज्ञान है!! भीमसेन से एक सौ पुत्र मारे गए। तुम अपने प्राण धारण के लिए, उसी भीम के फेके हुए रोटी के टुकड़ों को कुत्तों की तरह खाने के लिए पड़े हो। इस पर भी प्राण बच गया तो बस कहते हो।।23।।

आप के पुत्रों ने जिन्हें नष्ट करने के विचार से लाक्षागृह में भेजकर आग में जला डालना चाहा, जिनको विष देने का आयोजन किया, जिनकी स्त्री को अपमानित किया, जिनकी जमीन और धन लूट लिया इतना अपकार करने पर भी पाण्डव तुम्हारा पोषण कर रहे हैं। अपकार के लिए उपकार करने से भी बढ़कर अन्य कोई दण्ड है? लज्जा हीन होकर अन्न से तुमको प्राणों की रक्षा करने से क्या प्रयोजन हैं। इससे तो मृत्यु अच्छी है।।24।।

पुराना वस्त्र जैसे स्वयं ही फटकर नष्ट हो जाता है वैसे ही तुम्हारे न चाहने पर भी तुम्हारे इस बुढ़ापे का शरीर गिर जाएगा। परान्न की आशा त्याग दो और भी जीवित रहने की आशा से कोई प्रयोजन नहीं है। ऐहिक या पारत्रिक कोई प्रयोजन नहीं है। ऐसे देह का अभिमान त्याग दो। स्त्री, पुत्रों का अभिमान स्वयं ही चला जायेगा। ऐसे अभिमान को त्याग कर निर्जन बन में प्रवेश करने वाला ही धीर कहलाता है।।25,26।।

स्वयं अथवा अन्य लोगों से प्रेरित होकर वैराग्य को जो प्राप्त होता है और मन आदि इन्द्रियों को अपने वश में करके हृदय में श्री हरि का ध्यान करते हुए जो घर छोड़ कर जाता है वही उत्तम है।।27।।

इसलिए आज ही तुम उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करो। एकान्त स्थान में रहो। अपनी इच्छानुसार अच्छे

स्थान में रहो। पूर्व काल तो लोगों में रहने वाली भक्ति और वैराग्य आदिगुणों को उत्पन्न करने वाला था परन्तु भविष्य काल लोगों को विषयसुख में आसक्त कराकर उनको नष्ट कर देता है इसलिए अविलम्ब तप के लिए चले जाओ।" इस प्रकार विदुर ने कहा।।28।।

अजमीढ़वंशज धृतराष्ट्र जन्म से अन्धे थे ज्ञान से सब कुछ देखना चाहिए। विदुर के इस वचन का उनके मन में विशेष प्रभाव पड़ा। छोटा भाई होने पर भी ज्ञानी होने से इस लोक और परलोक के श्रेय वचन को कहा था, विदुर से बतलाए हुए मार्ग का उन्होंने अनुसरण किया। अपनों में जो दृढ़ स्नेह पाश था उसको काट कर महल को छोड़कर चले गये।।29।।

धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी और साध्वी कुन्ती उनके साथ गई। हिमालय शान्त प्रदेश है वहाँ पर किसी प्राणी को द्रोह करने का कोई कारण नहीं है। इन्द्रिय जय प्राप्त किए हुए सन्यासियों के लिए तप करने का स्थान है। ऐसी हिमवत पर्वत में प्रवेश करके धृतराष्ट्र ने बदरिकाश्रम में वास किया।।30।।

धर्मराजा ने सन्ध्या वन्दनादि और होम कार्य को समाप्त करके ब्राह्मणों को नमस्कार किया तथा उनको तिल, सुवर्ण, और गौ आदि दान दिया। इसके बाद धृतराष्ट्र जिस घर में रहते थे उस स्थान को नमस्कार करने आया। उस दिन उनके मन में ऐसा आभास हुआ कि धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती अब जीवित नहीं हैं।।31।।

उसी समय धृतराष्ट्र के साथ गया हुआ संजय धृतराष्ट्र की मृत्यु के पश्चात् हस्तिनापुर आकर उनके निवास स्थान में दुःख करते हुए बैठा था। धर्मराजा घबड़ाकर उससे प्रश्न किया - हमारे तात तथा दोनों नेत्रों के अन्धे धृतराष्ट्र जिनके बेटे मार डाले गए हैं वह माता गान्धारी और हमारे चाचा विदुर कहाँ गए?।।32।।

बेटों के मरने से दुःखी, महाराज मुझ मंद बुद्धि पर किसी प्रकार की आशंका करके (मैंने उनके विषय में अपराध किया ऐसी आशंका) वे गंगा में तो नहीं डूब गए।।33।।

हमारे पिता पाण्डु के मृत्यु के पश्चात् हम छोटे बच्चों को बड़े स्नेह से धृतराष्ट्र और गान्धारी ने आए हुए दुःखों से हमारी रक्षा किया है वे दोनों अब कौन से लोक को गए हैं।" इस प्रकार धर्मराजा ने पूछा।।34।।

परन्तु संजय धृतराष्ट्र के वियोग से अत्यधिक दुःखी था। दुःख उमड़कर आ रहा था। दुःख से अत्यन्त पीड़ित किंचित दया से धृतराष्ट्र के देह त्यागने का विषय बतलाना न चाहा और धर्मराजा के प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया। क्योंकि युधिष्ठिरादि पर स्नेह होने के कारण उनको दुःख न हो इसलिए उनके प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया।।35।।

आँखों से बहते हुए आँसुओं को पोंछकर धृतराष्ट्र का ही स्मरण करते हुए "**कुरुवंश के आनन्द को उत्पन्न करने वाले हे धर्मराज! आपके धृतराष्ट्र, कुन्ती, गान्धारी, आपको और मुझे भी छोड़कर चले गए हैं। इन महापुरुषों से मैं वंचित हुआ हूँ। वह परलोक में कहाँ गए मैं नहीं जानता हूँ।**" इस प्रकार बहु कष्ट से संजय ने धर्मराजा को उत्तर दिया।।36,39।।

हे शौनक! इस समय तक वीणा बजाते हुए नारद जी वहाँ आ गए। राजा ने आदर से उनका स्वागत किया, अर्घ्यपाद्य देकर उनको उत्तम आसन पर बैठाया।।39।।

विनय से पूछा- "**हे पूज्य! हमारे माता-पिता इस लोक को त्याग कर कहाँ गए। मैं न जानकार दुःख कर रहा हूँ। तपस्विनी गान्धारी ने पुत्रों को खोकर बहुत दुःख उठाया वह कहाँ है? इस दुःख में डूबे हुए हमको किनारे पहुँचाने वाले केवट जैसे आप हम पर दया किए हैं।**" इस प्रकार धर्मराजा ने कहा।।40।।

तब नारद जी ने कहा-" हे धर्मराजा किसी के लिए भी तुम दुःख न करो, कोई स्वतंत्र नहीं है। सभी श्री हरि के अधीन हैं। वही जीवों को उनके कर्मानुसार एक जगह एकत्रित करते हैं और कर्मफल पूर्ण होने पर अलग कर देते हैं।।41।।

जैसे बैलों की छोटी रस्सी से नाथ कर बड़ी रस्सी से बाँधे रहते हैं वह अपने स्वामी के अधीन होकर बोझा ढो कर उसकी सेवा करते हैं वैसे ही वर्णाश्रम धर्मरूप रस्सी से बँधे हुए जीव वेदादि शास्त्रों में उनके लिए बतलाए हुए विधि के अनुसार आचरण करके उसके द्वारा श्री हरि की सेवा करते है।।42।।

जैसे खेल की सामग्रियों को एक जगह रखना या न रखना खेल खेलने वालों की इच्छा पर है वैसे ही इस जगत में खेल खेलने वाले श्री हरि की इच्छा से ही जीव राशियाँ एकत्रित होती हैं और पृथक होती हैं।।43।।

क्या यह समझते हो कि यह देह नित्य है? यदि नित्य है उसका नाश नहीं है तब तुम्हें दुःख नहीं करने का है। अब उनके देह दिखाई नहीं पड़ते हैं इसलिए अनित्य मानते हो? जो वस्तु अनित्य है एक न एक दिन आँखों से दिखाई नहीं देगी उसके लिए क्यों दुःख करना चाहिए। यदि यह कहते हो कि यह देह नित्य भी है और अनित्य भी है तो यह विरुद्ध है और उचित नहीं है। तुम्हारे दुःख के लिए स्नेह से उत्पन्न मोह ही कारण है। अन्य कोई कारण नहीं है। मैं और मेरेपन की बुद्धि ही मोह है।।44।।

वे अनाथ अरण्य में कैसे जीवित रहेंगे? तुम अज्ञान से अपने को ही उनका रक्षक मान बैठे हो इस अज्ञान को त्याग दो। भगवान ही उनकी रक्षा करते हैं ऐसा जानो और अपने मन के दुःख को दूर करो।।45।।

तुम्हारा यह देह ही पराधीन है। मास, पक्ष, आदि काल से होने वाले आयु, पुण्य पाप रूप अदृष्ट, सत्व, रजस्तमो गुणों के निमित्त और उपादान कारणों से प्राप्त हुआ पँच भूतों का कार्यभूत यह तुम्हारा देह ही तुम्हारे अधीन नहीं है। जिस मेढक को सर्प ने पकड़ रखा हो वह मेढक दूसरे ऐसे ही स्थिति में रहने वाले मेढक को बचा नहीं सकता है वैसे ही एक देह दूसरे देह की स्वतंत्र होकर रक्षा नहीं कर सकती।।46।।

पक्षियाँ मनुष्यों का, तृण आदि पैर वाले प्राणियों का, छोटे मनुष्य बड़े आकार वाले राक्षसों का आहार होना श्री हरि का नियम है इसलिए एक जीव के लिए दूसरा जीव जीवन का कारण है।।47।।

हे धर्मराजन्! श्री हरि से भिन्न यह सम्पूर्ण जगत श्री हरि के अधीन है। श्री हरि ही सबके कर्ता हैं। उनके समान या उनसे अधिक कोई अन्य वस्तु नहीं है। वह स्वयं प्रकाशमान है। ज्ञानियों को वह दिखाई देते हैं। जगत के अन्तर्यामी होकर सुख देते हैं। उनमें और उनके गुणों में भेद नहीं है। तुम उत्तम देवता के अवतार हो। श्री हरि ही अपनी इच्छा से अनेक अवतार किए हैं। उन अवतारों में परस्पर भेद नहीं है ऐसा जानकर श्री हरि के विभूतिरूपों को जानते हुए श्री हरि की सेवा करो।।48।।

सब को अपने वश में रखे हुए सभी प्राणियों के लिए अभिवृद्धि के कारण होने वाले और सब का संहार करने वाले, देवताओं के द्वेषी दैत्यों का संहार करने के लिए देवताओं की प्रार्थना करने पर इस भूमि में यदुवंश में श्री कृष्ण अवतार किए हैं।।49।।

भूमि पर भार हुए दैत्यों का संहार करके अपने अवतार का अधिक कार्य समाप्त किए हैं केवल यदुवंश का नाश होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वह होने पर स्वयं पृथ्वी से अव्यक्त होकर वैकुण्ठ में व्यक्त होंगे। जब तक वह कृष्ण रूप से व्यक्त हैं तब तक आप यहाँ रहिए।।50।।

धृतराष्ट्र ने विदुर, गान्धारी कुन्ती के साथ इस नगर से निकलकर हिमालय पर्वत के दक्षिण में रहने वाले सप्त ऋषियों के आश्रम सप्तस्रोत नामक स्थान में पहुँचे।।51।।

वहाँ पर सप्त ऋषियों के प्रीत्यर्थ गंगा सात विभाग में बहकर आई हैं इसलिए उस आश्रम को सप्तस्रोत कहते हैं।।52।।

वहाँ पर त्रिकाल स्नान करके अग्नि में होम से श्री हरि की सेवा करते हुए केवल जल को आहार रूप से सेवन करके जीवन व्यतीत करते थे। श्री हरि में ही मन स्थिर करके स्थूल नेत्र रहित ये राजा श्री हरि का ही सदा ध्यान करते रहे।।53।।

इस प्रकार अभ्यास करते-करते आसन पर विजय प्राप्त किया। प्राणायाम के द्वारा वायु को रोककर इन्द्रियों को विषयों से हटाकर श्री हरि के निरन्तर ध्यान के द्वारा मन के रजस्तमों दोषों को दूर करके उसी आश्रम में रहे।।54।।

उनका अवसान काल निकट होने पर अपने स्वरूप से आरम्भ करके परतत्त्व तक सभी तत्वों का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करके यह समस्त जगत विज्ञान तत्त्व के अभिमानी ब्रह्मा में लीन होना और उस ब्रह्मा के अपने अन्तर्यामी बिम्ब रूपी श्री हरि में लीन होना और अन्तर्यामी रूप जगत के आधारभूत अपने ही रूप में एकाकी भाव होने का लय चिन्तन करते थे। उनकी समस्त इन्द्रियाँ श्री हरि में आसक्त थीं। उनको आहार सेवा की आवश्यकता नहीं थी मृत्यु के समय प्राकृत गुणों के उद्रेक रहित राजा पत्थर की तरह स्थिर होकर अचल थे।।55,56।।

अपने समस्त जन्मों के कर्मों को श्री हरि को समर्पित करने से उसके तप में विघ्न के लिए कोई कारण नहीं था।।57।।

इस प्रकार लय चिन्तन करते हुए आज से पाँच दिन पूर्व उन्होंने अपने भौतिक देह को त्याग दिया। वह देह से उत्पन्न अग्नि से भस्म हो गए। इस प्रकार देह को त्यागने से मृत्यु काल में उनको तुम्हारे विषय में कोई असमाधान, दुःख अथवा दुःख से गंगाजी में देह त्यागने का प्रसंग ही नहीं था। धृतराष्ट्र का देह पर्णशाला के साथ ही जलते समय गान्धारी ने भी उसी अग्नि में कूदकर अपना देह त्याग दिया। कुन्ती ने भी उसी प्रकार से प्राण त्याग दिया। इस प्रकार देह त्यागने वालों को सद्गति हुई है इसलिए तुम्हें इसके लिए चिन्ता नहीं करना है।।58,59।।

''भविष्य में होने वाले विषय को विदुर जानते थे। भविष्य में धृतराष्ट्र और पाण्डव तथा यादव स्वर्ग यात्रा करेंगे इसको दिव्य ज्ञान से जानकर श्री हरि की सामर्थ्य को स्मरण करने से सन्तोष को तथा बन्धुओं के नाश का स्मरण करने के दुःख को प्राप्त होकर सब कुछ अनित्य है, परमात्मा एक ही मुख्य और नित्य है ऐसा जानकर गंगा आदि तीर्थों तथा भागवत आदि शास्त्रों का सेवन करके वापस आकर वन में धृतराष्ट्र के पास आ गए थे। इससे पूर्व जब तुम धृतराष्ट्र को देखने के लिए वन को गए थे तब तुमसे ऐक्य होना तुम जानते ही हो।'' ऐसा नारद जी ने कहा।।60।।

हे शौनक जी इस प्रकार नारद जी कहकर वीणा बजाते हुए स्वर्ग को चले गए। धर्मराजा भी उनके वचनों को सुनकर अपने दुःख को त्याग कर श्री हरि का स्मरण करते हुए राज्य का पालन करते रहे।।61।।

।।इति श्रीमद् भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे द्वादशोऽध्यायः।।

अध्याय - 13
अथ त्रयोदशोऽध्यायः

यह संसार अनित्य है यह जानने से श्री हरि में उत्तम भक्ति उत्पन्न हो सकती है। इसे इस अध्याय में बतलाते हैं- सूत जी कहते हैं-धर्मराजा द्वारका में रहने वाले अपने बन्धुओं से मिलकर उनका क्षेम समाचार जानने के लिए अर्जुन को द्वारका भेजा था। श्री हरि अपनी इच्छा से ही मनुष्य जैसी चेष्टा करते हैं उनका दर्शन करके उनके अभिप्राय को जानकर आने के लिए कहा था।।1।।

अर्जुन को जाकर कुछ ही दिन हुए थे परन्तु धर्मराजा को वह महीनों जैसे प्रतीत हुआ। हे शौनक! उनको सैकड़ों भय जनक दुर्निमित्त दिखाई दिया।।2।।

उनके देखते-देखते विचित्र ढंग से समय की गतिविधि बदल गयी। लोगों की प्रवृत्ति पाप की ओर झुकने लगी। क्रोध, लोभ, तथा असत्यमय व्यवहार होने लगा। संसारी लोगों के सभी लौकिक और पारलौकिक व्यवहार कपटपूर्ण और स्नेह स्वार्थ से पूर्ण थे। लोग माता-पिता और भाई से लड़ने लगे। पति-पत्नी में भी कलह होने लगा।।3।।

काल पहले से भी विलक्षण होने लगा। अशुभ सूचक निमित्त दिखाई देने लगे। लोग धीरे-धीरे लोभ आदि अधर्म स्वभाव से दुष्ट मार्ग में चलने लगे। यह सब देखकर धर्मराजा ने अपने भाई भीमसेन से कहा।।4।।

"अर्जुन को अपने बन्धुओं तथा भगवान श्री कृष्ण को देखकर आने के लिए द्वारका भेजा था।।5।।

उन्हें गये सात दिन हो गए वह मुझे सात महीनों जैसे दिखाई पड़ता है। तुम्हारा भाई अभी तक नहीं आया क्या कारण होगा? कोई ठीक कारण तो मेरी समझ में नहीं आता।।6।।

नारद जी के बताये अनुसार श्री कृष्ण को अपनी लीला स्थली इस भूमि को छोड़कर अव्यक्त होने का समय निकट आ गया है?।।7।।

श्री कृष्ण ही तो हमारी सम्पत्ति हैं। राज्य, स्त्री, प्राण, वंश, पुत्र, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना और परलोक यह सब उनसे ही प्राप्त हुए हैं।"।।8।।

हे भीमसेन! देखो तो, हमारे समीप आकाश, भूमि, तथा समस्त प्राणियों पर विविध प्रकार के उत्पात दृष्टिगोचर हो रहे हैं।।9।।

मेरी बाई जाँघ, बाई आँख और बाँयी भुजा फड़क रही है। हृदय काँप रहा है इससे ऐसा जान पड़ता है कि शीघ्र ही कोई अमंगल सूचक घटना घटेगी।।10।।

सियारिने मुँह से आग उगलती उगते हुए सूर्य की ओर मुँह करके चिल्ला रही हैं। कुत्ते निर्भीक भाव से मेरे सम्मुख आकर रोया करते हैं।।11।।

हे, भीम! शुभकर गौ, नीलकंठ (भरद्वाज पक्षी) आदि मेरी बाँयी ओर से निकलते हैं और अशुभकर गधे

आदि पशु दाहिनी ओर से निकलते हैं। हे पुरुष श्रेष्ठ! मैं अपने वाहनों (हाथी-घोड़े आदि) को भी रोते देखता हूँ।।12।।

मरणसूचक कपोत (कबूतर), आग में पैर रखते अपने स्वप्न में देखा, उल्लू आदि परस्पर इतना बोलते हैं कि मानों ये अपने अमंगलमय शब्दों से समस्त विश्व को नष्ट कर डालेंगे।।13।।

सूर्य मंडल और दिशाएँ धूमिल दिखाई देती हैं और उनके किनारे अग्निमयी परिधि दीख रही है, वनों और पर्वतों समेत पृथ्वी काँप रही है बिना मेघ के ही घनघोर गर्जन के साथ वज्रपात होता है।।14।।

धूमिमिश्रित वायु बहती हुई अँधेरा कर देती हैं और मेघ वीभत्स (भयंकर) दृश्य उपस्थिति करते हुए रुधिर वर्षा करते हैं।।15।।

सूर्य की प्रभा नष्ट सी हो रही है, ग्रह जैसे आपस में लड़ रहे हैं और पृथ्वी से लेकर आकाश तक आग की लपटें सी दीख पड़ती हैं।।16।।

सभी नदी और तालाब बिना कारण कलुषयुक्त हुए हैं, अग्नि घी से नहीं जल रही है। यह सभी अनिष्ट सूचकों को देखने पर कौन-सा अनिष्ट होगा पता नहीं।।17।।

बछड़े दूध नहीं पीते, गौयें दुहने नहीं देती और आँखों से आँसू बहाती हुई रोती रहती हैं, वृषभ (सांड़) गौओं के झुण्ड में प्रसन्न नहीं दिखते। मन्दिरों में पधराये हुए देवता रोते जैसे दिखाई देते हैं।।18।।

हे भीमसेन! इन देश, ग्राम, नगर, उद्यान, तालाब और आश्रम में कोई कान्ति नहीं है। समृद्धि तथा सुख भी नहीं है। यह सब भविष्य में कौन-से दुःख की सूचना दे रहे हैं नहीं जानता हूँ।।19।।

उन उत्पातों को देखने से समाधिक रहित श्री हरि इस लोक को छोड़कर अदृश्य हो गए हैं ऐसा प्रतीत होता है। भगवान से और उनके भक्तों से रहित इस भूमि का सौभाग्य ही नष्ट हुआ ऐसा है।"।।20।।

सूत जी कहते हैं- "हे शौनक! इन अशुभ सूचनाओं को देखकर भविष्य में होने वाले दुःख के लिए धर्मराजा चिन्ता कर ही रहे थे कि उसी समय अर्जुन द्वारकापुरी से हस्तिनापुरी वापस आ गए।।21।।

भाई को नमस्कार किया और नीचे मुख करके खड़े रहे उनका मुख पहले जैसे नहीं था, आँखों से आँसू निकल रहे थे। ऐसे कान्तिहीन अपने भाई को देखकर धर्मराजा का दुःख उमड़ आया। पहले नारद जी के वचनों का स्मरण करते हुए पूछने लगे।।22,23।।

हे अर्जुन! द्वारकापुरी के निवासी और हमारे सगे संबंधी मधु, भोज, दशार्ह, सात्वत, अन्धक और वृष्णि कुल के सब यादव तो अच्छी तरह से हैं?।।24।।

मेरे माननीय मातामह शूरसेन और अपने भ्राता समेत मेरे मामा वसुदेव तो सकुशल हैं?।।25।।

वसुदेव की पत्नी देवकी और उसकी बहनें तो अच्छी तरह हैं? मेरे मामा की पत्नियाँ तो सानन्द हैं?।।26।।

जिनका दुष्ट पुत्र (कंस) था, वे उग्रसेन और उनके छोटे भाई, देवक, हृदीक और उनके पुत्र कृतवर्मा तथा जयन्त, गद तथा सारण तो सकुशल हैं?।।27।।

भगवान श्री कृष्ण के पुत्र सुषेण, चारुदेष्ण, साम्ब तथा ऋषभ आदि अपनी सन्तानों समेत अच्छे हैं न?।।28।।

इसी तरह भगवान के अनुचार नन्द, श्रुतदेव तथा उद्धव आदि तो अच्छे हैं?।।29।।

श्री कृष्ण चन्द्र तथा बलराम की भुजाओं के आश्रय में रहने वाले सभी द्वारकावासी तो अच्छी तरह हैं? हम लोगों से इतना प्रेम बढ़ाने वाले वे लोग मंगलकामना करते हुए कभी हमारा स्मरण करते हैं?।।30।।

वेदगम्य, ब्राह्मण प्रिय, षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न, भक्त प्रिय श्री कृष्ण द्वारका में मित्रों के साथ सभा मंदिर में सुख से हैं? जो नित्य सुखी हैं ऐसे श्री हरि को सुख नहीं तो और क्या? उनसे लोक को सुख हो रहा है न?।।31।।

बलराम के साथ-साथ भगवान कृष्ण प्रजाओं के कल्याणार्थ उनका पालन उनकी समृद्धि के लिए यदुवंश में अवतार किये हैं।।34।।

उनके भुजदण्डों से ही सुरक्षित यादव द्वारका में मुक्तों के जैसे महानन्द का अनुभव कर रहे हैं। कुबेर के उद्यान वन चैत्ररथ में यक्ष जैसे क्रीडा करते हैं वैसे क्रीडा कर रहे हैं।।35।।

सत्यभामा आदि सोलह सहस्र स्त्रियाँ श्री हरि से सेवा फलस्वरूप स्वर्ग में इन्द्र की पत्नी शची देवी के अनुभव करने के पारिजात आदि सम्पत्ति को युद्ध करके छीनकर लाए हैं न?।।36।।

श्री कृष्ण के बाहुबल से रक्षित यादव भय से रहित होकर देवलोक के सुधर्म नामक सभा को जीत कर द्वारका लाकर उसमें प्रवेश कर रहे हैं न? ऐसे सभी सम्पत्ति के लिए कारण होने वाले श्री हरि सबको सुख दे रहे हैं न?।।37।।

तुम मुझे कान्तिहीन दिखाई पड़ रहे हो, तुम्हारा स्वास्थ्य तो ठीक है न? तुम्हारा किसी ने अपमान तो नहीं किया है? किसी ने तिरस्कार तो नहीं किया? जब कभी जाते थे तो बहुत दिन रहते थे, अब की क्या इतनी जल्दी लौट आए?।।38।।

क्या अपशब्दों से तुम्हारा तिरस्कार किए हैं? अथवा तुमसे कोई बात ही न करके तिरस्कार किए हैं यदि ऐसा तिरस्कार हुआ हो तो क्या वह तुम्हारे दोष से है? अथवा दूसरों के दोष से है? आशा से तुम्हें आश्रय किए हुए याचकों को उनके इष्टार्थ को न देने से क्या तिरस्कृत हुए हो? अथवा देने पर भी वह तृप्त न हो कर क्या उन्होंने तुम्हारा तिरस्कार किया है?।।39।।

शरण में आए हुए ब्राह्मण, गो, वृद्ध, रोगी या स्त्री को तो तुमने रक्षा किए बिना क्या त्याग दिया है? अशरण को शरण देना तो तुम्हारा स्वभाव था।।40।।

तुमने किसी अगम्य स्त्री के साथ क्या गमन किया है? या किसी संस्कार रहित गम्य स्त्री का अनादर पूर्वक समागमन को नहीं किया है? तुम मार्ग में अपने से उत्तम अथवा अधम से क्या परास्त हो गए हो?।।41।।

तुम किसी वृद्ध अथवा बालक को जिसको भोजन कराकर स्वयं भोजन करना चाहिए था त्याग कर पहले क्या, स्वयं भोजन कर लिये हो? या कोई निषिद्ध अथवा अशक्य कर्म किए हो? अथवा एकादशी भोजन, सुवर्ण स्तेय, परस्वत्वापहार इत्यादि हेय कार्य किए हो?।।42।।

यह कोई आप के कान्तिहीन के लिए कारण न होना प्रतीत होता है। अथवा हम लोग अपने परम प्रियतम आत्म बन्धु ऐसे पुरुषोत्तम श्री कृष्ण से तो सदा के लिए वियुक्त नहीं हो गए हैं? यदि इनमें से कोई बात न हुई होती तो तुम इतने कान्तिहीन कभी न दिखाई देते।।44।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः।।

अध्याय - 14
अथ चतुर्दशोऽध्यायः

इस अध्याय में श्री हरि में भक्ति उत्पन्न करने के लिए दुःख का वर्णन करने के निमित्त श्री हरि की महिमा बतलाते हैं। हे शौनक! धर्मराजा ने श्री कृष्ण के स्नेहित अर्जुन से इस प्रकार अनेक विकल्प करके प्रश्न किया। श्री कृष्ण के वियोग से वह बहुत दुःखी थे। शोकाग्नि से उनका मुख मुरझाया हुआ था। उनका हृदय कमल सूख गया था। कान्ति से हीन अर्जुन श्री कृष्ण का ही ध्यान कर रहे थे। वह प्रत्युत्तर नहीं दे सके।।1,2।।

अति कष्ट से उन्होंने अपने दुःख को रोक लिया। आँखों से निकलते हुए आँसुओं को हाथ से पोंछ लिया। श्री कृष्ण उनके सारथी, मित्र, रक्षक तथा हित को चाहने वाले थे। यह सब अर्जुन के स्मरण में आया। गद्गद् कण्ठ हुआ, आँसू भर गए। उस गद्गद् कण्ठ से अर्जुन ने अपने भाई से कहा- "हे महाराज! बन्धु रूपी श्री कृष्ण से मुझे अत्यन्त स्नेह था। उनसे मैं वंचित हुआ हूँ। सर्वत्र व्याप्त उनका वियोग कैसे हो सकता है? अब मुझे जो वियोग हुआ है, वह मनुष्य आकार से है। मेरे सामर्थ्य से सभी देवता आश्चर्य चकित हुए थे। ऐसी सामर्थ्य को श्री हरि अव्यक्त होते समय अपने साथ लेते गए हैं।।3,4,5।।

जिस देह में वायु देवता नहीं हैं वह शव कहलाता है। ऐसी ही श्री हरि का एक क्षण का वियोग भी लोगों के लिए अप्रिय है।।6।।

द्रौपदी के स्वयंम्बर में आए हुए काम से मत्त राजाओं का तेज मैंने श्री कृष्ण के ही आश्रय से अपहार किया था। मत्स्य यंत्र का जो भेदन किया था वह भी उन्हीं के आश्रय से किया था। हमें उन्हीं के अनुग्रह से द्रौपदी मिली थी।।7।।

इन्द्र को युद्ध में हराकर खाण्डव वन को आहुति रूप से अग्नि को दिया था। वह भी उन्हीं की कृपा थी। इसके अतिरिक्त मयदानव की बनाई अद्भुत शिल्पकला युक्त राजसभा, जिसमें जल को स्थल और स्थल को जल का भ्रम उत्पन्न होता था, को भी उन्हीं के अनुग्रह से प्राप्त किया था। जिनके प्रताप से आपके राजसूय यज्ञ में संसार के सभी राजागण उपहार को लेकर आये थे।।8।।

जिनके प्रताप से दस हजार हाथी का बल रखने वाले जरासन्ध को आप के लघु भ्राता भीम ने मारा और उसके कैद में पड़े हुए राजाओं को मुक्त किया। वे भी राजा आपके राजसूय यज्ञ में उपहार को लेकर आए थे।।9।।

उस समय दुष्ट दुःशासन आदि धूर्त आपकी पत्नी द्रौपदी को भरी सभा में अपमानित करने के लिए उसके उन पवित्र केशों को पकड़ कर ले आए थे, जो कि राजसूय यज्ञ में अभिषेक के समय वेदमंत्रों से अभिषिक्त किए गए थे। उस द्रौपदी ने अपने नेत्रों से आँसू बहाते हुए जिन भगवान के चरणों की वन्दना की थी। उन्हीं की कृपा से भीम की गदा से टूटी हुई जँघावाले अपने पतियों को आलिंगन करके अपना केश-पाश खोले रोते हुए वैधव्य भोग रही हैं।।10।।

जिनके प्रताप से मैंने संग्राम भूमि में शूलपाणि शिव को भी विस्मय में डाल दिया और उन्होंने मुझे अपना पाशुपतास्त्र प्रदान किया था। इसके सिवाय और लोकपालों ने भी उन्हीं की कृपा से मुझे अपने अस्त्र-शस्त्र दिए थे और यहाँ तक हुआ कि मैं अपने इसी विनाशशील शरीर से देवराज इन्द्र के भवन तक चला गया और वहाँ मुझे इन्द्र का आधा सिंहासन बैठने के लिए मिला।।11।।

जब मैं स्वर्ग में विचर रहा था, उसी समय गाण्डीव से युक्त मेरे भुजदण्डों को देखकर निवात, कवच शत्रुओं को संहार करने के लिए उद्यत इन्द्र आदि समस्त देवता भगवान कृष्ण चन्द्र की कृपा से ही मुझे आश्रय किए थे। हे युधिष्ठिर! आज वही भगवान मुझे छोड़ कर चले गए।।12।

श्री कृष्ण ही मेरे बन्धु हैं ऐसा मैं अकेला अन्य किसी की सहायता के बिना कुरुकुल रूपी अपार समुद्र को एक रथ पर बैठाकर पार कर गया। शत्रुओं के पास से गोधन को वापस लाया और बड़े-बड़े राजाओं के मस्तक से उनके मणिमय मुकुट उतार लिए, आज उस नारायण से मैं वंचित हो गया।।13।।

सारथी बनकर जिन्होंने भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा शल्य आदि अगणित वीरों से मण्डित सेना के मध्य में मेरा रथ पहुँचा दिया और अपनी दृष्टिमात्र से उन सब वीरों की आयु, उनके मन और उनके तेज को हरण कर लिया। इस प्रकार युद्ध में मैंने जो विजय प्राप्त किया वह भी उन्हीं का अनुग्रह है।।14।।

श्री हरि के बाहुबल से रक्षित होने से ही द्रोण, भीष्म, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, सैन्धव और बह्लिक आदि राजाओं से छोड़े हुए सामर्थ्य वाले अस्त्र मुझे पीड़ा नहीं दे सके। पूर्व में हिरण्यकशिपु से छोड़े हुए अस्त्र जैसे प्रहलाद को सता न सके वैसे ही यह अस्त्र भी मुझे नहीं सताए।।15।।

हे राजाओं में श्रेष्ठ! सर्वज्ञ श्री हरि के अनुग्रह के बिना अन्य को प्राप्त न होने वाले अपने आनन्दमय रूप को युद्धभूमि में मुझे दर्शन कराया। उन्हीं की इच्छा से आवृत्त ज्ञान वाले वायु आदि देवता मुक्ति योग्य होने पर भी अहम मम (मैं, मेरापन) मैं ही स्वतंत्र हूँ इत्यादि जानकर उस सर्वोत्तम रूप को नहीं जान सके हैं। (वायु देवता को इस प्रकार का अज्ञान नहीं है उनसे कम योग्यता वाले देवता इस प्रकार जानते थे) ऐसे मुझे अपने रूप का दर्शन कराया वह श्री हरि की अचिन्त्य कृपा से है।।16।।

मुमुक्षु जन श्री हरि के चरण कमल को मोक्ष के लिए भजते हैं। एक समय युद्ध में मेरे घोड़े थक गए थे। इस कारण मैं रथ से नीचे उतर पड़ा किन्तु उन्हीं भगवान के प्रभाव से खड़े कर्ण आदि वीरों ने मुझे नहीं मारा। भक्तों को अपने को ही देने वाले सर्वनियामक श्री हरि को मैंने सारथी बनाया, मेरी कैसी दुष्ट बुद्धि है।।17।।

हे धर्मराजा! गंभीर और सुन्दर मुस्कान के साथ किए गए भगवान के परिहास वाक्यों तथा समय-समय पर हे अर्जुन! हे पार्थ! हे मित्र! हे कुरुनन्दन! आदि मर्मस्पर्शी सम्बोधनों का स्मरण अभी भी मेरे मन में आता है।।18।।

सोते, बैठते, घूमते, भोजन करते अपने मुँह से अपनी बड़ाई करते समय उन सर्वोत्तम के साथ इस प्रकार का व्यवहार क्या अपराध नहीं है। उत्तमोत्तम को समान समझ कर वंचित हुआ। लेकिन उन महाप्रभु ने मेरे ऐसे अपराधों को उसी तरह सहन कर लिया जैसे मित्र मित्र का और पिता पुत्र का अपराध सह लेता है।।19।।

ब्रह्मादियों से पूज्य उनकी यह महिमा है। हे महाराज! वह मेरे निर्निमित्त बन्धु, सखा और मेरे हृदय श्री कृष्ण मुझे छोड़कर अदृश्य हो गए हैं। मेरा हृदय शून्य सा हो गया है। श्री हरि के अव्यक्त होने के पश्चात् मुझे पूर्व

जैसी सामर्थ्य कहाँ है। श्री हरि की सोलह सहस्र एक सौ स्त्रियों की रक्षा करते हुए मैं आ रहा था तब मुझे अल्प बल वाले ग्वालों ने हरा दिया जैसे कोई पुरुष स्त्री को पराजित कर दे।।20।।

वह पहले का गाण्डीव धनुष अब भी है, वही बाण हैं, वहीं रथ है, और वही घोड़े हैं और मैं वही रथिक हूँ कि जिसके सामने बड़े-बड़े राजागण अपने मस्तक झुका देते थे, किन्तु एक मात्र उन श्री हरि के अदृश्य होने से यह सब उसी तरह निरर्थक हो गए जैसे सस्वर वेद मंत्रों के साथ भस्म में किये हुए होम, चोरी से लाये हुए धन अथवा ऊसर क्षेत्र में बोये गये बीज का कोई प्रयोजन नहीं होता है। भस्म में होम करने पर मंत्रोच्चारण से अल्प फल प्राप्त होता है इसलिए दूसरा उदाहरण दिया गया है। दूसरे उदाहरण में ऐन्द्रजालिक से अपने कुटुम्ब की रक्षा के लिए द्रव्य लाने से उसका ऐहिक जीवन चलाने का फल दिखाई पड़ता है। इसलिए तीसरा उदाहरण दिया गया है कि ऊसर क्षेत्र में कोई बीज उगता नहीं है। वैसे ही श्री कृष्ण के अव्यक्त होने के पश्चात् अर्जुन की सामर्थ्य कोई प्रयोजनकारी नहीं हुई।।21।।

हे राजन्! द्वारका में यादव सुख से हैं न, ऐसे प्रश्न किए हैं न? उनमें चार या पाँच शेष रह गए हैं। ब्राह्मण के शाप से वे बुद्धिहीन होकर मद्यपान से मत्त होकर एक दूसरे को न पहचानते हुये आपस में मुष्टि युद्ध करके नष्ट हो गए।।22,23।।

एक प्राणी का दूसरे प्राणी की उत्पत्ति के लिए कारण होना, एक का दूसरे के लिए नाश का कारण होना, यह सब सर्वनियामक श्री हरि की विशेष चेष्टा है अन्य कुछ नहीं।।24।।

जैसे जल जन्तु बड़े छोटों को निगल कर जीवित रहते हैं वैसे ही दुर्बल को बल वाला निगल जाता है उन वलिष्ठ प्राणियों को उनसे भी अधिक बल वाले निगल जाते हैं वैसे ही एक प्राणी दूसरे प्राणी के विनाश के लिए कारण होता है।।25।।

इस प्रकार बलिष्ठ यादवों के द्वारा बलहीन यादवों का संहार कराकर श्री हरि ने काँटे से काँटा निकालने की तरह यदुकुल का ही नाश कर दिया। दैत्यों का संहार करके भूभार को दूर करके अपने अवतार का कार्य समाप्त किया है। पालन करने वाले श्री हरि द्वारा ही संहार करना विरुद्ध सा प्रतीत होता है इस पर भी उनके कर्मानुसार फल देने वाले श्री हरि को पालन से अथवा संहार से कोई प्रयोजन अथवा हानि न होने से दोनों कार्य समान हैं।।26।।

देश काल और वस्तु के अनुसार श्री हरि के बचनों का स्मरण करके मेरा मन उनकी ओर खिंच जाता है ऐसे श्री हरि के अव्यक्त होने से दुःख कर रहा हूँ।।27।।

ऐसा कहते समय अर्जुन की भक्ति उमड़ आई। श्री हरि के चरण कमलों का स्मरण करते हुए उनका मन सुख से भर गया। पूर्व से और अधिक श्री हरि में उनका मन आसक्त हुआ।।28।।

।।इति श्री मद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः।।

अध्याय - 15
अथ पंचदशोऽध्यायः

अनेक क्षत्रियों के संहार रूप पाप से युक्त होने से अर्जुन की बुद्धि तामस हो गई है। वह निर्मल कैसे होगी! जीवन मुक्तों में अर्जुन एक है। अर्जुन ने अनेक दुष्ट क्षत्रियों का संहार भगवद् अर्पण बुद्धि से किया है इसलिए उसका मन निर्मल होना युक्त ही है। इस विषय को इस अध्याय में बतलाते हैं।

सूत जी कहते हैं-हे शौनक! श्री हरि के चरण कमलों का ध्यान करते हुए अर्जुन की भक्ति और अधिक हुई जिससे उसके मन के राग द्वेषादि दोष समूल नाश होकर समस्त पापों को नष्ट कर दिये। इस प्रकार मन निर्मल होने से परब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान हुआ, दुःख नाश हुआ। परब्रह्म के विषय में मिथ्या ज्ञान अथवा परब्रह्म, जीव से भिन्न होने में कोई संशय उसको नहीं रहा। प्रकृति के सत्वादि गुणों का सम्पर्क छूट गया। उनका लिंग शरीर रहने पर भी न रहे वैसा हुआ। प्रारब्ध कर्म के सिवाय अन्य कर्मों से उनको पुनर्जन्म नहीं होगा। प्रारब्ध कर्म से ही वह स्वधर्म को अधर्म जाना तब श्री हरि ने युद्धभूमि में ब्रह्मविद्या (गीता) का उपदेश किया वह भी प्रारब्ध कर्म के फलस्वरूप काल, कर्म और अज्ञान से विस्मृत हुआ था अब उसको पुनः स्मरण में लाकर मनन किया। श्री हरि के अनुग्रह से कुछ प्रारब्ध कर्म नाश होने पर भी कुछ कर्म का अनुभव करके ही नाश करना पड़ता है। इसलिए अर्जुन को भी कुछ प्रारब्ध कर्म का अनुभव करना ही पड़ा।

अपरोक्ष ज्ञान से प्रारब्ध के सिवाय अन्य कर्म नाश होते हैं। प्रारब्ध कर्म शेष रहता है। सभी प्रारब्धकर्म भगवद्भक्ति से नाश नहीं होते हैं। श्री हरि की अतिशय करूणा से कुछ प्रारब्ध कर्म नाश होते हैं। कुछ को भोग करके ही नाश करना है। इसकी पुष्टि निम्न प्रमाण से होती है-

महता कारणेनैव प्रारब्धान्यपि कानिचित्।
कर्माणि क्षयमायान्ति ब्रह्मदृष्टिमतः क्वचित्।

इसलिए इस श्लोक में "**अशेष**" शब्द का अर्थ नाश होने योग्य समस्त प्रारब्ध कर्म जानना चाहिए।।1,2,3।।

यादवों का नाश, श्री कृष्ण का इस लोक से अव्यक्त होना और वैकुण्ठ लोक में व्यक्त होने को सुनकर धर्मराजा ने स्वर्ग मार्ग में जाने का निश्चय किया। मन को विषय भोगों से हटाकर सदाचार मार्ग को अपनाया।।4।। उत्तम चरित्र वाले मोक्ष को प्रदान करने वाले श्री कृष्ण जब इस भूमि को छोड़ दिए तब अज्ञानी लोगों के लिए पाप का कारण होने वाला कलि सर्वत्र व्याप्त होने लगा।।5।।

कलि धर्मराजा के राज्य में, नगर में, स्त्री आदि में, मन में भी व्याप्त हुआ। ज्ञानी युधिष्ठिर ने जब देखा कि नगर, राष्ट्र, घर-घर तथा प्रत्येक प्राणी के हृदय में लोभ-कपट आदि के रूप में कलि प्रवृत्त हो रहा है, तब स्वर्गारोहण की तैयारी करने लग गए।।6।।

उन्होंने हस्तिनापुर में राजा परीक्षित् को जो उनसे गुणों में कम नहीं था, समुद्र मेखलामयी पृथ्वी के राजसिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया।।7।।

इसके बाद महाराज युधिष्ठिर ने अनिरुद्ध के पुत्र बज्र को मथुरा के राज्य पर अभिषिक्त करके उन्हें

शूरसेन वंश वालों का सम्राट् बना दिया। तदनन्तर सर्वस्व त्यागने एवं सन्यास लेने में समर्थ राजा युधिष्ठिर ने प्रजापति देवताओं में अन्तर्यामी श्री हरि के प्रीत्यर्थ याग किया और तीनों अग्नियों को अपने में समाहित कर लिया।।8।।

वस्त्र, आभरण इत्यादि को त्याग कर मेरा, अपना पन, ममता, मैं ही स्वतंत्र कर्ता हूँ ऐसा अहंकार और समस्त पाप के बन्धन को त्याग कर मृत्यु समय में ध्यान करने योग्य लय चिन्तन करने लगे।।9।।

उन्होंने वागेन्द्रिय अभिमानी उमा देवी को रुद्र देवता में, मनोभिमानी रुद्र देवता को मुख्य प्राण के अवतार प्राण देवता में प्राण देवता को अयान में लय चिन्तन किया, आयन देवता को लक्ष्मी में लय चिन्तन किया। अपने प्राण वायु को व्यान वायु में लय चिन्तन किया।।10।।

उदान, समान को प्राणापान व्यान में, यह पाँचों मूल प्राण में वह मूल प्राण हृदय में रहने वाले विष्णु में, वह विष्णु सर्वत्र व्याप्त विष्णु में लय चिन्तन किया।।11।।

महाराज युधिष्ठिर वल्कल वस्त्र पहिने, भोजन त्यागे, मौन धारण किये, केशों को खोले मूर्ख उन्मत्त अथवा पिशाच के जैसे अपना आकार बनाए हुए किसी की कुछ न सुनते हुए, किसी की इच्छा न करते हुए घर से निकल पड़े।।12।।

वह वापस न आकर देह समाप्त होने तक भ्रमण करते रहने का निश्चय किये। इनके अन्यान्य पूर्वज जिस उत्तर दिशा को गए थे उसी उत्तर दिशा में प्रवेश करके वीर गति को प्राप्त करना चाहा। उस वीर गति को प्राप्त हुए फिर वापस नहीं आते हैं।।13।।

अधर्म का प्रवर्तक कलि पृथ्वी पर प्रजाओं में व्याप्त हुआ था। इसको देखकर धर्मराजा के भाई भी वीर गति को प्राप्त करने का निश्चय किए और धर्मराजा के पीछे-पीछे गए।।14।।

अन्त्य काल में कर्तव्य कर्म को वह जानते थे। श्री हरि को सर्वोत्तम जानकर ध्यान किए। धर्मानुष्ठान करते हुए शब्दादि विषयों को त्याग दिए। श्री हरि के चरण कमल का निरन्तर ध्यान करते रहे।।15।।

इस प्रकार के ध्यान से उनकी श्री हरि में जो भक्ति थी वह और अधिक हुई। उनका अन्तःकरण और शुद्ध हुआ वे सात दिन में भू-प्रदक्षिणा समाप्त करके गन्धमादन पर्वत में रहने वाले वदरिकाश्रम में प्रवेश किए। वहाँ ऐकाग्रमन से श्री हरि का ध्यान करते हुए अपनी देह को त्याग दिया।।16।।

लौकिक विषयों में आसक्त तथा जो भगवद्भक्त नहीं हैं ऐसे लोगों को जो स्थान दुर्लभ है उस स्थान को प्राप्त किए। त्रिगुणात्मक लिंग शरीर में उनको अभिमान नहीं था। जरामरण से रहित अपने मूलरूप को प्राप्त हुए।।17।।

प्रारब्ध कर्म समाप्त होने से उन्होंने देह त्याग दिया किन्तु किसी दोष से देह का अन्त नहीं हुआ। पतियों का शरीराभिमान त्यागने के विषय को जानकर द्रौपदी भी षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न श्री हरि में मन को एकाग्र कर देह त्याग दिया।।18।।

श्री हरि का अव्यक्त होना, पाण्डुपुत्रों को स्वर्गारोहण की अत्यन्त मंगलमयी तथा पवित्र कथा को जो प्राणी श्रद्धा के साथ सुनते हैं उनको श्री हरि में भक्ति अधिक होकर श्री हरि के अनुग्रह से अपरोक्ष ज्ञान होकर मोक्ष की प्राप्ति होती है।।19।।

।।इति श्री मद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे पंचदशोऽध्यायः।।

अध्याय - 16
अथ षोडशोऽध्यायः

पाण्डवों की स्वर्गयात्रा के पश्चात् राजा परीक्षित् राज्य का पालन करते रहे। जातक फल को बतलाने में कुशल ब्राह्मणोत्तमों ने पहले ही जैसा बतलाया था वैसे उत्तम गुणों से राज्य का पालन करते थे। ब्राह्मण श्रेष्ठ कृपाचार्य आदि की सहायता भी उनको थी। विराट के पुत्र उत्तर की कन्या इरावती से विवाह कर लिया जिनसे चार पुत्र हुए। उनमें जनमेजय सबसे बड़ा था।।1,2।।

हे शौनक! गंगा जी के तट पर परीक्षित् राजा ने तीन अश्वमेघ याग करके भरपूर दक्षिणा दिया। कृपाचार्य ही पुरोहित थे। प्रत्यक्ष आकर हविष्य को स्वीकार करके देवताओं ने अनुग्रह किया।।3।।

ऐसे प्रभावशाली राजा समर्थ दिग्विजय करते हुए एक स्थान में कलि को अपने सामर्थ से निग्रह किये। वह शूद्ररूप कलि राजा के वेष में एक गाय और बैल को पैरों से मार रहा था, उसको देखकर राजा ने उसका निग्रह किया।।4।।

शौनक बोले-हे सूत! उस दिग्विजय के समय राजा परीक्षित ने उसे क्यों पकड़ा? राजा का वेष धारण किए हुए वह शूद्र कौन था, जो गौ को लात मार रहा था? यदि कलि निग्रह की कथा में भगवान या भगवान के भक्तों की महिमा ज्ञात हो सकती हो तो आप कहिए। भगवद्भक्तों की कथा श्री विष्णु की महिमा को ही स्पष्ट बतलाती है। विष्णु, वैष्णव कथा को छोड़कर अन्य कथाओं से आयु व्यर्थ हो जाती है। वह तो नरक का मार्ग हैं। ऐसे अमंगल प्रसंगों से मेरा प्रयोजन नहीं है। हम मनुष्य हैं मरण तो होना ही है। जीवित रहने का समय तो अत्यल्प है। अब हमें सद्गति को देने वाला यथार्थ ज्ञान चाहिए। असद् कथा से हमें कोई प्रयोजन नहीं है। यह सत्र याग समाप्त होने तक हम जीवित रहते हैं।।5,6,7।।

इस यज्ञशाला में नरसिंह रूपी श्री हरि का मंत्रपूर्वक आवाहन किए हैं। यज्ञ में संहार किए जाने वाले पशु को छोड़कर अन्य किसी की मृत्यु न होने के लिए नृसिंह भगवान से प्रार्थना किए हैं। जब तक वह यहाँ रहेंगे तब तक किसी की मृत्यु न होगी।।8।।

इस सद्वकाश में सत्कथा श्रवण करने के लिए ही ऋषियों ने सादर आप का स्वागत किया हैं। हमारा अहोभाग्य है। मनुष्य लोक में भी मृत्युभय रहित होकर हम आपसे श्री हरि के कथामृत से परिपूर्ण पुराण का श्रवण कर रहे हैं।।9।।

प्रायः मनुष्य भाग्य हीन होते हैं। वेदादिशास्त्रों को भली भाँति समझने की तीक्ष्ण बुद्धि उनमें नहीं है। इतना ही नहीं वह अल्पायु हैं। इस अल्पायु में रात्रि का समय निद्रा में दिन का समय धनोपार्जन में व्यतीत होकर मोक्ष का साधन न करते हुए व्यतीत होता है। इसलिए हम सब निद्रा और अहंकार को त्याग करके श्री हरि की कथा का श्रवण करने के लिए ही एकत्रित हुए हैं। हम सबके कल्याण के लिए श्री हरि और उनके भक्तों की कथा का श्रवण

कराइये।।10।।

शौनकादि ऋषि एक सहस्र वर्ष में समाप्त होने वाले सत्रयाग का आरम्भ किये हैं। यदि यज्ञ याग से ही मोक्ष की प्राप्ति होती तो भगवान के महात्म्य श्रवण कराने की प्रार्थना न करते वे जानते हैं कि यज्ञ याग रूप कर्म से स्वर्ग आदि उत्तम लोक की प्राप्ति होती है। मोक्ष की प्राप्ति तो भगवान के उत्तम प्रसाद से ही होती है। भगवान का उत्तम प्रसाद भगवान के यथार्थ तत्त्वज्ञान से ही प्राप्त होता है। इसीलिए शौनकादि ऋषियों ने मोक्ष प्राप्ति के लिए भगवान के चरित्र का श्रवण कराने के लिए प्रार्थना किये हैं।

सूत जी ने कहा-जिस समय राजा परीक्षित् कुरु देश की राजधानी हस्तिनापुर में सम्राट् के रूप में निवास कर रहे थे और वह अपने पूर्वजों के आज्ञानुसार राज्य कर रहे थे उस समय उन्होंने सुना कि मेरे राज्य में कलि का प्रवेश हो गया है। यह समाचार उनको प्रिय नहीं लगा। युद्ध प्रिय उन्होंने धनुष हाथ में लिया।।11।।

सुसज्जित रथ पर बैठ गए उस रथ में श्यामवर्ण वाले घोड़े जुते हुए थे सिंह की ध्वजा थी, ऐसे रथ में बैठकर चतुरंगी सेना के साथ दिग्विजय करने के लिए निकल पड़े।।12।।

पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर, इन चारों दिशाओं के समुद्रतट पर विद्यमान भद्राश्व केतुमाल, भारत किम्पुरुष खण्ड और उत्तर कुरु नाम के देशों को विजय करके वहाँ के राजाओं से कर ग्रहण किये।।13।।

मार्ग के सभी देशों में वहाँ वालों के मुख से अपने महामहिम पूर्वज पाण्डवों तथा भगवान कृष्ण का माहात्म्य सुनते जाते थे। वहाँ ही उन्होंने यह वृत्तान्त भी सुना कि अश्वत्थामा अपने ब्रह्मास्त्र से मुझे माता की कोख में ही जला डालना चाहता था, पर भगवान ने बचा लिया। भगवान पर उनके पूर्वज पाण्डवों और यदुवंशियों का कितना गाढ़ स्नेह था इसको भी जान लिये। यह पुनीत कथानक सुनकर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ, और मारे प्रेम के उनके नेत्र विकसित हो गए। वार्ता सुनाने वालों को उन्होंने बहुत सा धन, वस्त्र और हार प्रदान किया।।14,15,16।।

मुक्त और अमुक्त जीवों के द्वारा सेवित श्री हरि का अपने भक्त पाण्डवों का सारथी होना, सभापति बनना, द्वारपालक, स्नेहित, सेवक, होकर रात्रि में निद्रा न करते हुए वीरासन में बैठकर आयुध को लिए हुए प्राण रक्षक होकर, अनुचर, पीछे-पीछे चलने, और स्तुति तथा प्रणाम करने का भी वृत्तान्त सुना। जिससे भगवान कृष्ण के चरणों में उनकी अटल श्रद्धा हो गई।।17।।

हे शौनक! राजा परीक्षित इस प्रकार अपने पूर्वजों के आदेशानुसार राज्य का पालन कर रहे थे। तब निकट में ही एक आश्चर्य जनक घटना घटी उसको भी सुनाता हूँ सुनिए।।18।।

सनातन धर्म वृषभरूप धारण करके अपने चार पैरों में से बचा हुआ सत्य रूप एक पैर से लँगड़ाते हुए घूम रहा था। एक स्थान पर उसे गाय के रूप में पृथ्वी मिली। बच्चे को खोये हुए माता जैसे आँसू बहाती है वैसे ही वह गौ आँसू बहा रही थी। गौ के पास आकर उस वृषभ ने उससे इस प्रकार प्रश्न किया।।19।।

धर्म ने कहा-"कल्याणी! कुशल से तो हो न? तुम्हारा मुख कुछ मलिन हो रहा हैं, तुम श्री हीन हो रही हो। ऐसा लगता है कि तुम्हारे हृदय में कोई दुःख अवश्य है। क्या तुम्हारा कोई संबंधी दूर देश में चला गया है जिसके लिए तुम इतनी चिन्ता कर रही हो।।20।।

तीन पैर टूटकर एक पैर से लँगड़ा कर चलने से क्या तुम दुःखी हो? सम्भव है तुम अपने लिए शोक कर रही

हो कि अब धर्मनाशक राजवेष के शूद्र सदृश लोग तुम्हारे ऊपर शासन करेंगे, इसलिए दुःख कर रही हो। यज्ञ यागादि न करने से देवताओं को हविस न मिलने से क्या तुम्हें दुःख है अथवा उस प्रजा के लिए, जो वर्षा न होने के कारण अकाल एवं दुर्भिक्ष के कारण पीड़ित हो रही है, दुःख कर रही हो।।21।।

हे देवि! स्त्रियों की रक्षा नहीं की जा रही है, नरभक्षक जैसे लोगों से छोटे बालक पीड़ित होने से, वेद निषिद्ध कर्म करने वाले ब्राह्मणों में वेद होने से, राजा लोग ब्रह्मद्वेषी होकर धर्म भ्रष्ट होने से दुःख कर रही हो? क्षत्रियों द्वारा कलि के प्रभाव में आकर राज्य का नाश करने से दुःख कर रही हो? आज की जनता खान, पान, वस्त्र, स्नान और स्त्री सहवास आदि में शास्त्रीय नियमों का पालन न करके स्वेच्छाचार कर रही है। क्या इसके लिए तुम दुःखी हो?।।22,23।।

अथवा हे माता! तुम्हारे भार को हरने के लिए आए हुए नारायण यहाँ से चले गए हैं और जीवों की योग्यतानुसार मोक्षादि फल को देने वाले उनके चरित्र का और क्रियाओं का स्मरण करके अब श्री हरि व्यक्त नहीं हैं इसलिए दुःख कर रही हो।।24।।

तुम दुःख से इतना कृश हो गई हो उस दुःख का क्या कारण है? हे अम्ब! सबसे प्रबल कलिकाल ने तुम्हारा सौभाग्य तो नहीं छीन लिया है?'' ऐसे अनेक प्रश्न किया।।25।।

पृथ्वी ने कहा-हे धर्म! तुम मुझसे जो कुछ पूछ रहे हो। वह सब तुम स्वयं जानते हो! हे धर्म! तप, शौच, दया, सत्य, ऐसे चार पैर जो सुरक्षित थे वह श्री कृष्ण के अनुग्रह से ही थे। अब मेरे मन के दुःख के लिए क्या कारण है बतलाती हूँ।।26।।

श्री हरि अनन्त कल्याण गुण पूर्ण हैं, उनमें और उनके गुणों में भेद नहीं है इसलिए वे गुण कभी भी श्री हरि को छोड़कर नहीं रहते हैं। श्री हरि के एक-एक गुण की उपासना करके योग्य जीव अपनी योग्यानुसार उन गुणों को प्राप्त करके निर्दुष्ट होते हैं। उन श्री हरि में सत्य, शौच, दया, क्षमा, त्याग, सन्तोष, ऋजुस्वभाव, शम, दम, तप, समता, तितिक्षा, उपरति, सर्वत्र श्रवण करने की शक्ति, सर्वज्ञ, विरक्ति, ऐश्वर्य, शौर्य, तेज, बल, स्मृति, स्वतन्त्रता, कौशल, सौन्दर्य, धैर्य, मार्दव, प्रागलभ्य, प्रश्रय (विनय), शील, सहिष्णुता, ओज, भग, गांभीर्य, स्थैर्य, आस्तिक्य, कीर्ति, मान, निरहंकार इत्यादि गुण हैं। उपरोक्त गुणों का श्री हरि में उपासना करने से प्रतिविम्ब रूपी जीव भी अपनी योग्यतानुसार इन गुणों से युक्त होगा।।27,28,29,30।।

गुणों के एकमात्र पात्र और लक्ष्मी के पति अब व्यक्त नहीं हैं और पापी कलि ने मुझे आवृत्त कर लिया है।।31।।

अपने आप को, तुमको, देवताओं, पितरों, ऋषियों, साधुओं, ब्राह्मणादि वर्णों को तथा ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों पर कलि की छाया पड़ती देखकर मैं दुःखी हो रही हूँ।।32।।

जिनकी कृपा दृष्टि को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मादिक देवत शास्त्रानुसार बहुत समय तक श्री ब्रह्मादिक हरि के शरण में जाकर घोर तप किया करते थे और लक्ष्मी जी की भी सेवा करते थे। वह लक्ष्मी भी अपने निवास स्थान कमल को त्यागकर हरि चरणों की सुन्दरता में अनुरक्त होकर, उनकी सेवा में रहा करती थीं ।।33।।

कमल, कुलिश, अंकुश, केतु आदि सुन्दर चिन्हों से अंकित भगवान के जिन चरण कमलों से मुझे त्रिलोकी

की सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति प्राप्त हुई है, जिस पर मैं गर्व करती थी, आज उन नारायण के चरण अब यहाँ नहीं रहे और उनके अभाव में मेरी अब शोभा भी नहीं रही।।34।।

जिन्होंने असुरवंशी राजाओं की सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाओं को मारकर मेरे सिर से बड़े भारी बोझ को उतार दिया और तुमको भी तीन पैरों से हीन देख अपनी सामर्थ्य से तुम्हारा चारों पैर ठीक करते हुए यादवों में सच्चिदानन्द रूप देह से व्यक्त हुए।।35।।

ऐसे पुरुषोत्तम के विरह को कोई भी स्त्री सहन नहीं कर सकती। उन श्री कृष्ण ने अपने प्रेम पूर्ण दृष्टिपात, मनोहर मुस्कान, मधुर वार्तालाप से यदुवंश की स्त्रियों का अभिमान से युक्त स्थैर्य का अपहार किया और जिनके चरणों की रज से सुशोभित होकर मैं पुलकायमान हो गई थीं, उन पुरुषोत्तम नारायम के वियोग को भला कौन स्त्री सह सकती है? कोई स्त्री सहन नहीं कर सकती है।।36।।

जब कुरुक्षेत्र के पूर्व दिशा में बहने वाली सरस्वती नदी के तट पर पृथ्वी और धर्म आपस में इस प्रकार वार्तालाप कर रहे थे, उसी समय राजा परीक्षित् उस स्थान पर जा पहुँचे।।37।।

।।इति श्री मद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे षोडशोऽध्यायः।।

अध्याय - 17
अथ सप्तदशोऽधयायः

कुरुक्षेत्र के पूर्व दिशा में बहने वाली सरस्वती नदी के तट पर राजवेष में दण्डधारी शूद्र को बैल और गौ को मारते हुए राजा परीक्षित् ने देखा।।1।।

वह बैल मृणाल के समान श्वेत वर्ण का था। मारते हुए शूद्र से घबड़ाकर वह बैल गोबर करता जा रहा था। उसको एक ही पैर था। इधर-उधर न जाते हुए वह एक ही स्थान पर काँपते हुए खड़ा था। इस प्रकार कलि से पीड़ित बैल को देखा।।2।।

धर्म कार्यों के लिए दूध इत्यादि के द्वारा सहायता करने वाली गौ को वहीं पर देखा। वह शूद्र वेषधारी गौ को बार-बार पैर से मार रहा था। वह खाने के लिए घास आदि न होने से दुर्बल हो गई थी। बछड़ा उसके पास नहीं था। आँखों से आँसू बह रहे थे। इस दीन स्थिति में राजा परीक्षित् ने उस गाय को देखा।।3।।

स्वर्ण जटित रथ पर चढ़े हुए राजा परीक्षित् ने अपना धनुष चढ़ाकर मेघ के समान गंभीर वाणी से पूछा।।4।।

एक नट की तरह राजा का वेष बनाए हुए कर्म से शूद्र तू कौन है जो मेरे राज्य में आकर इस दुर्बल गौ और बैल को बलात् पीट रहा है।।5।।

कृष्ण परमात्मा अदृश्य हो गए हैं। गाण्डीवधारी अर्जुन भी इस लोक से चले गये हैं। यही सद् अवकाश समझकर एकान्त में गौ और बैल को सता रहे हो। तुम संहार के योग्य हो। तत्पश्चात् राजा परीक्षित् ने बैल की ओर देखते हुए कहा- "मृणाल के समान श्वेत वर्ण और तीन पैरों से रहित वृषभ का रूप धारण करके केवल एक पैर से चलने वाले तुम कोई देवता हो जो इस तरह दुःख झेल कर हम को दुःखी कर रहे हो।।6,7।।

कुरुवंश के राजाओं से रक्षित इस भूखण्ड में एक तुम्हारी ही आँखों से आँसू बहते देख रहा हूँ। अन्य किसी के आँखों से आँसू बहते नहीं दिखाई पड़ रहा है। तुम्हारे यह आँसू मेरे दुःख का कारण है।।8।।

कामधेनु वंश से संबंधित हे वृषभ! अब तुम दुःख मत करो शूद्र का यह भय अब चला गया ऐसे बैल को समाधान करके गौ से कहने लगे-" हे माता तुम कौन हो? रोओ मत, दुष्टों को दण्ड देने वाला मैं हूँ। तुम्हारी मैं रक्षा करता हूँ। कोई भी राजा क्यों न हो उसे अपने राज्य में यह अवश्य देखना चाहिए कि दुष्ट लोग साधुओं की हिंसा न करें। यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसको अपने कर्त्तव्य कर्मों से उदासीन जानो। जो राजा ऐसे राज कार्य में तत्पर नहीं रहता है। उसका यश, आयु, ऐश्वर्य और परलोक गति भी नष्ट हो जाती है।।9,10।।

दुःखियों के दुःख को दूर करना राजा का धर्म है इसलिए दुष्ट और प्राणियों की हिंसा करने वाले इस शूद्र का अभी संहार करता हूँ। **"ऐसा कहकर पुनः बैल की ओर देखते हुए कहा-**"हे वृषभ! तुम्हें चार पैर रहना चाहिए न? तुम्हारे तीन पैरों को किसने काटा है? श्री कृष्ण की आज्ञानुसार श्री कृष्ण के प्रीत्यर्थ हम राज्य कर रहे हैं। इस राज्य में तुम्हारे जैसे दुःख करने वाला कहीं नहीं रहना चाहिए।।11,12।।

निरपराधी सज्जनों के लिए लिए कल्याण हो। तुम मुझे बताओ कि किसने तुम्हारा रूप बिगाड़कर उन पुनीत विचार वाले पाण्डवों के वंश वाले हमें अपकीर्ति दिया है। निरपराध जीवों को दुःख देने वाले सभी जीवों को इस लोक और परलोक में भय रहता ही है और दुष्टों का दमन करने से सज्जनों का भला ही होता है।।13।।

मेरे राज्य में यदि कोई देवता भी किसी निरपराध प्राणी को सता रहा हो तो मैं उसकी अलंकृत भुजा को कटवा डालूँगा और औरों के विषय में क्या कहना है।।14।।

जो अपने धर्म के अनुसार आचरण करते हैं उनकी रक्षा करना राजा का परम धर्म है। जब आपात् काल नहीं रहता है तो अपने धर्म को त्याग कर अन्य मार्ग में चलने वाले दुष्टों को दण्ड देना राजा का परम धर्म है।।15।।

धर्म ने कहा हे राजन्! "आप महाराज पाण्डु के वंशज हैं इस प्रकार दुःखियों को अभयदान देकर शांत्वना देना आप के योग्य ही है क्योंकि आप के पूर्वजों के श्रेष्ठ गुणों ने भगवान श्री कृष्ण को उनका सारथी और दूत आदि बना दिया था।।16।।

हे पुरुष श्रेष्ठ! वेद वाक्यों को देखने से जीव के दुःख के लिए यही कारण है ऐसा कह नहीं सकते हैं। स्थान-स्थान पर अलग-अलग प्रकार के वाक्य होने से निश्चय करना सुलभ नहीं है।।17।।

कोई कहते हैं कि अपने दुःख के लिए स्वयं जीव ही कारण है, इनके वचनों में संदेह अवश्य होता है। प्रकृति और पुरुष यह दोनों भिन्न होने का ज्ञान न होने से दुःख होता है, इस प्रकार कहने वाले सांख्य अन्तःकरण को ही दुःख का कारण बतलाते हैं और कोई अदृष्ट को दुःख का कारण बतलाते हैं और अन्य कोई पाप पुण्य को सुख दुःख का कारण बतलाते हैं। यथार्थ ज्ञान से शून्य चारवाक आदि स्वभाव को ही दुःख का कारण बतलाते हैं।।18।।

कोई प्रकृति को अनन्त और अनिर्वचनीय बतलाकर ऐसी प्रकृति से जीव के ढके होने को दुःख का कारण बताते हैं। सत् असत् और सदसत् भी नहीं कह सकते हैं ऐसे भाव पदार्थ कहलाने वाले अज्ञान से दुःख उत्पन्न होना मायावादी निश्चय किए हैं। हे राजर्षे! अब इनमें से कौन-सा मत श्रुति, स्मृति से सम्मत है आप ही अपनी बुद्धि से विचार करके जानिए।" ऐसा उत्तर दिया।।19।।

सूत जी कहते हैं-हे शौनक! इस प्रकार धर्म के वचनों को सुनकर राजा परीक्षित् ने मन को एकाग्र करके विचार किया और जाना कि धर्म ही वृषभ के रूप में कह रहा है। श्री हरि ही आत्मा, दैव, कर्म, स्वभाव अप्रसिद्ध होने से अनिर्वाच्य हैं ऐसा वेदों में कहा गया है। इसलिए जीवों के कर्मानुसार फल देने वाला श्री हरि को ही जीव को दुःख के लिए कारण होना विमर्श करके जान लिया।

दैव आदि शब्दों से वाच्य श्री हरि ही अपने अधीन कर्म, काल, और प्रकृति के द्वारा अस्वतंत्र जीवों के दुःख के लिए कारण हैं। अन्य कोई कारण नहीं है। कर्म आदि स्वतंत्र होकर दुःख के लिए कारण हैं ऐसा कहना युक्त नहीं है। श्री हरि आदानादि कर्म करने से आत्मा, देवोत्तम होने से दैव, क्रिया विषय होने से सर्वकारण, शक्ति युक्त होने से कर्म, स्वप्रकाश होने से स्वभाव, दुस्तर्क का विषय न होने से, अप्रतर्क, अप्रसिद्ध होने से अनिर्वाच्य कहलाते हैं। इस प्रकार सभी पक्षों में श्री हरि को ही कारण होना बतलाया गया है। इस प्रकार समझा।।20।।

राजा परीक्षित् ने कहा-"हे वृषभ! तुम धर्म को जानते हो धर्म के वचन ही कह रहे हो, इसलिए तुम धर्म ही हो। अज्ञानियों को मोहित करने के लिए वृषभ के रूप में हो। अधर्म करने वालों को जो नरक होता है वह उसके

कहने वालों (चुंगली करने वाले) को भी वही नरक होता है। परन्तु दुष्ट से किये गये अधर्म को बतलाना धर्म ही है। सज्जीव से किये हुए अधर्म को कहने से पाप ही लगता है। इस सूक्ष्म तत्व को जानने से तुम्हारे अपने विरूप होने का कारण न बतलाना भी एक धर्म है अथवा तुम जानते हो तो भी लोग सामान्य जन श्री हरि की इच्छा से ही दुःख का होना नहीं जानते हैं। तुम इसे जानते हुये कह रहे हो कि मैं इस दुःख का कारण नहीं जानता। दुःख का कारण श्री हरि की इच्छा को नहीं जान सकते हैं। इसलिए मैं यह नहीं जानता हूँ ऐसा कह रहे हो।।21,22।।

कृत युग में तुम्हारे तप, शौच, दया, और सत्य ऐसे चार पैर पूर्ण थे। उनमें से तीन क्रमशः अहंकार से तप, स्त्री आदि विषय संगत से शौच और मद से दया नष्ट हुए हैं।।23।।

अब तुम्हारा जो रह गया है सत्य कहलाने वाला एक ही पैर है जिससे तुम लँगड़ाते हुए जीवित हो। असत्य के आश्रय से बढ़ा हुआ यह कलि तुम्हारे उस एक पैर को भी तोड़ डालना चाहता है।।24।।

यह पृथ्वी, जिसके दैत्य भार को भगवान ने स्वयं अवतार करके उतार दिया था, और (भगवान के) पृथ्वी पर संचार करते समय सर्वांगसुन्दरी, दोष रहित, होकर मंगलमयी थी। अब श्री हरि के अव्यक्त होने पर भाग्य हीन जैसे आँसू बहा रही हो। ब्राह्मणों में भक्ति रहित राज वेषधारी शूद्र इस पृथ्वी पर शासन करेंगे इसलिए दुःख कर रही हो।" ।।25,26।।

धर्म और पृथ्वी को इस प्रकार आश्वासन देकर उन महारथी राजा परीक्षित् ने उस अधर्म के मूल कारण कलि को मार डालने केलिए अपना तीक्ष्ण खड्ग उठाया।।27।।

इसको देख कलि भयभीत होकर राजचिन्ह को त्याग कर रक्षा करने के लिए परीक्षित् राजा के चरणों पर पड़ा।।28।।

परीक्षित् बड़े यशस्वी, दीनवत्सल और शरणागत रक्षक थे। उन्होंने तब कलि को अपने पैरों पर पड़े देखा तो कृपा करके उसका संहार नहीं किया अपितु हँसते हुए से उससे कहा।।29।।

"हे कलि पुरुष! जब तुम हाथ जोड़कर शरण में आ गए हो तब अर्जुन के यशस्वी वंश में उत्पन्न हुए किसी भी वीर से तुमको कोई भय नहीं है। परन्तु तुम अधर्म के सहायक हो इसलिए तुम्हें हमारे देह में देश, में किसी कारण से भी नहीं रहना चाहिए। जहाँ तुम रहते हो वहाँ तुम्हारे सभी अधर्म बन्धु निवास करते हैं।।30।।

जब तुम यहाँ के राजाओं के शरीर में वास करोगे तो लोभ, असत्य, चोरी, दुराचार, स्वधर्म त्याग, दरिद्रता, कपट, कलह, दम्भ, और दूसरे पाप बढ़ते ही रहेंगे। यह हमारा राज्य श्री हरि की पूजा के लिए ही है। श्री हरि स्वतंत्र होने से अपनी इच्छा से व्यक्त होते हैं। वह श्री हरि वायु की भाँति समस्त चराचर के जीवों के भीतर और बाहर व्याप्त हैं। जीवों से किए हुए यज्ञों से सन्तुष्ट होकर उनकी इच्छाओं को पूर्ण करते हुए सुख देते हैं। ऐसे ब्रह्मावर्त राष्ट्र में तुम्हें नहीं रहना चाहिए।"।।31,32,33।।

सूत जी कहते हैं-हे शौनक! हाथ में तलवार लिए यमराज के समान भयावने बनकर खड़े परीक्षित् की यह आज्ञा सुनकर कलि ने काँपते हुए प्रार्थना किया।।34।।

कलि बोला-हे सार्वभौम! आप की आज्ञानुसार कहीं भी निवास करने के लिए तत्पर हूँ परन्तु कहीं भी मैं रहूँ वहाँ आप धनुष-बाण धारण किए दिखाई पड़ते हैं। इसलिए आप मुझे बताइए कि मैं कहाँ कहाँ वास करूँ। आप की

आज्ञा का पालन करते हुए मैं वहीं रहूँगा।।35,36।।

इस प्रकार प्रार्थना करने पर राजा परीक्षित् ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार करके उसे द्यूत, मद्यपान, व्यभिचारिणी स्त्री (वेश्यालय) और जहाँ प्राणियों की हिंसा हो ऐसे चार स्थान दिए।।37।।

एक और स्थान देने के लिए उसने प्रार्थना किया-तब उसको रहने के लिए एक स्थान ''**सुवर्ण**'' और दिया। इन पाँच वस्तुओं के सेवन से असत्य, अहंकार, काम, राग और परस्पर वैर बढ़ते हैं।।38।।

राजा परिक्षित् के दिए हुए इन पाँच स्थानों में कलि ने वास किया।।39।।

इसलिए मुमुक्षु जीवों को चाहिए कि इनका कभी भी सेवन न करे। उनमें भी धर्मात्मा राजा लोक रक्षक होने से तथा धर्मोपदेशक होने से कभी भी इनका सेवन न करें।।40।।

परीक्षित् राजा ने इस प्रकार कलि का निग्रह करके धर्म के तीन पैरों को फिर से ठीक कर दिया। भूमि को भी समाधान किया।।41।।

वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करके वन जाते समय धर्मराजा ने परीक्षित् राजा का राज्याभिषेक किया था। उसी सिहांसन पर ज्ञानी परीक्षित् राजा अभी भी विद्यमान हैं। अभिमन्यु का पुत्र राजा परीक्षित् ऐसे महिमा से युक्त हैं। इनके राज्य परिपालन करते समय में आप सत्रयाग कर रहे हैं। ऐसा सूत जी ने कहा।।42,43,44।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्थे सप्तदशोऽध्यायः।।

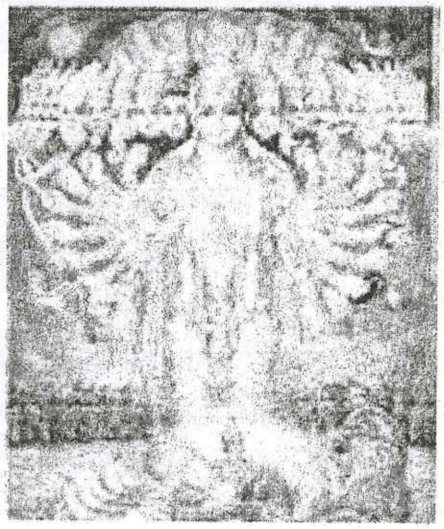

अध्याय - 18
अथ अष्ट दशोऽध्यायः

भगवान में भक्ति उत्पन्न करने के लिए उनकी महिमा का पुनः इस अध्याय में निरूपण करते हैं। इसके लिए परीक्षित् राजा के स्वर्ग प्रयाण की कथा कहना आरम्भ करते हैं।

सूत जी कहते हैं-हे शौनक! द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा के बह्मास्त्र ने उत्तरा के गर्भ को जला दिया। किन्तु अद्भुत चरित्र वाले भगवान श्री कृष्ण ने कृपा से उत्तरा के गर्भ में रहने वाले शिशु की रक्षा किया।।1।।

यही राजा परीक्षित् हैं। इस राजा को किसी कारण से ब्राह्मण का शाप मिला। उस शाप के अनुसार तक्षक सर्प द्वारा राजा को डसना निश्चित हुआ। इस प्रकार मृत्यु का निश्चय होने पर भी वह राजा प्राणभय से विचलित नहीं हुआ।।2।।

राज्य इत्यादि समस्त विषयों में अभिमान को त्याग दिया। वेद व्यास के पुत्र शुकदेव का शिष्य बना। उनके उपदेश से अपने योग्य बिम्बरूपी श्री हरि का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष को प्राप्त हुआ गंगातट पर निर्मित अपनी योगशाला में भौतिक देह को त्याग दिया।।3।।

हे शौनक! इसमें आप कोई आश्चर्य न समझें भगवान की पवित्र कथाओं को प्रेम से सुनने वाले भक्तजन अन्य समय में भी भगवान के चरण कमलों का ही ध्यान करते रहते हैं। इसी से इस समय भी उनको किसी प्रकार की घबड़ाहट नहीं होती। महा प्रलय में सभी प्राकृत देह के नाश हो जाने का जिनको ज्ञान है उनको मृत्यु का भय कहाँ?।।4।।

सप्त द्वीपों पर एक चक्राधिपति राजा परीक्षित् के रहने तक कलि पृथ्वी पर अपना अधिक प्रभाव न डाल सका। राज्य में प्रवेश करने पर भी जो स्थान उसको दिया गया था उन्हीं स्थानों पर छिप कर रहा।।5।।

श्री कृष्ण हरि ने इस पृथ्वी पर व्यक्त हुए अपने रूप को जब अव्यक्त किया उसी दिन से कलि ने पृथ्वी पर प्रवेश किया।।6।।

उसके साथ-साथ सभी अधर्म बढ़ते गए। भ्रमर के समान सारग्राही सम्राट परीक्षित् कलियुग से कोई द्वेष नहीं रखते थे। क्योंकि इसमें यह एक बहुत बड़ा गुण है कि यदि किसी पुनीत कार्य का संकल्प मात्र किया जाय तो वह सिद्ध हो जाता है और पाप तभी सिद्ध होते हैं जब वे मन, वचन शरीर से किए जाँय। केवल संकल्प मात्र से उसका फल नहीं भोगना पड़ता।।7।।

कलि निग्रह के योग्य शूरवीर भी नहीं था। कलि अधीर लोगों के लिए वीर और धैर्यवान पुरुषों के समक्ष स्वयं भयभीत रहता है। वह प्रमादी मनुष्यों को अपने वश में करने के लिए ही सदा सावधान रहता है। ऐसे कायर को क्या निग्रह करें ऐसा जानकर इसके विषय में राजा परीक्षित् उदासीन रहे।।8।।

हे शौनकादि ऋषियों! आप लोगों को मैने भगवान की कथा से युक्त राजा परीक्षित् का पवित्र चरित्र सुनाया।

आप लोगों ने यही प्रश्न किया था। यह एक ही कथा है किन्तु श्री हरि के गुण और कर्मों को बतलाने वाली सभी कथाओं को मुमुक्षु जीवों को अवश्य श्रवण करना ही चाहिए।।9,10।।

ऋषियों ने कहा-हे सूत जी! हमें मृत्यु तो अवश्य प्राप्त होना ही है। हम मनुष्य हैं ऐसे हमारे लिए श्री हरि के पवित्र एवं अमृतमय चरित्र का श्रवण करा रहे हैं। आप लोमहर्षण की पत्नी सुमादेवी के पुत्र होने से **''सौम्य''** अर्थात् मंगलकारक एवं सोमपान के योग्य हैं। आप सौ वर्षों से अधिक जीवित रहें।।11।।

''कर्मणा, ज्ञानमातनोति'' इस श्रुति के अनुसार कर्म से अन्तः करण की शुद्धि और अन्तःकरण की शुद्धि होकर ज्ञान उत्पन्न होता है। हम इस याग में इतना आसक्त हुए हैं कि हमें श्वास लेने का भी अवकाश नहीं है। इस सत्रयाग में श्री हरि की कथा श्रवण करना चाहते हैं। श्री हरि के प्रीत्यर्थ किए जाने वाले इस होम से निकले हुए धूम से हमारे मन इन्द्रिय और शरीर पवित्र हो चुके हैं। आप श्री हरि के चरण कमलों का मधुर मधुपान करा कर तृप्त कर रहे हैं, इसलिए हमारा यह सत्रयाग सफल है।।12।।

दीर्घकाल में किए जाने वाले सत्रयाग के बजाय अल्प काल में किए जाने वाले यज्ञ करने से अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा उत्पन्न हुए ज्ञान से मोक्ष सुलभता से प्राप्त हो सकता है न? इस शंका का समाधान इस श्लोक से करते हैं। श्री हरि में ही आसक्त हुए वैष्णवों की सेवा रूप क्षणमात्र के सहवास की तुलना स्वर्ग और मोक्ष से भी नहीं की जा सकती फिर मनुष्यों के तुच्छ भोगों के विषय में कहना ही क्या है। वैष्णवों का सत्संग सायुज्य रूप मोक्ष को देता है इसलिए वह अत्युत्तम है।।13।।

ब्रह्म, रुद्रादि देवता जो योगेश्वर कहलाते हैं वे प्राकृत गुण रहित श्री हरि के गुणों का अन्त नहीं जानते। ऐसे मुक्तामुक्त नियामक सबसे उत्तम लक्ष्मी के लिए मुख्य आश्रय श्री हरि की कथा को श्रवण करते करते रसानुभव करने वाला भक्त कैसे तृप्त हो सकता है? हमें तो तृप्ति नहीं है।।14।।

हे ज्ञानी सूत जी! आप भाग्यवान् हैं भगवन को ही मुख्यतम जानते हैं। ऐसे आप हमें सर्वोतम, सर्वाश्रय, ब्रह्मादि देवताओं से श्रेष्ठतम, प्रलय काल में अकेले ही रहने वाला मुक्तों का मुख्य आश्रय ऐसे श्री हरि की दोष रहित तथा श्रेष्ठ कथा को कृपा करके सुनाइए।।15।।

श्री हरि की कथा तो अनन्त है। उनमें से परीक्षित् राजा की कथा एक है। यह पवित्र और पुरुषार्थ को देने में समर्थ है। भगवान को प्राप्त करने के लिए मुख्य साधन ज्ञान और भक्ति भलीभाँति प्रतिपदान किया गया है। सर्वत्र व्याप्त श्री हरि का चरित्र भी इस पूर्ण कथा में कहा गया है। इसलिए भगवद्भक्तों का मन इस ओर आकर्षित होता है। उसको श्रवण करने में भगवद्भक्तों का मन इस ओर आकर्षित होता है। उसको श्रवण करने में भगवद्भक्त सन्तोष का अनुभव करते हैं। भगवद् संबंधी इस मनोहर कथा को हमें सुनाइए।।16।।

भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ राजा परीक्षित् ने शुकदेव जी के द्वारा उपदेश किए हुए श्री हरि के चरण कमलों को प्राप्त किया यही मोक्ष है। राजा परीक्षित् जिस कथा के श्रवण करने से मुक्त हुए वही कथा हमें सुनाइए।।17।।

सूत जी कहते हैं-हे शौनक! आप श्री हरि को सर्वोत्तम जानकर उपासना करते हैं। हम तो हीन सूत कुल में जन्म लिए हैं इस पर भी ज्ञानियों की सेवा करके अपने जन्म को सार्थक कर लिये हैं। यह हमारा भाग्य है। भगवद्भक्तों के साथ सत्संग ऐसे कुल में जन्म लेने की व्यथा को दूर कर देता है।।18।।

श्री हरि को अचिन्त्य शक्ति है। देश काल से अपरिछिन्न हैं। अनन्तगुणों से पूर्ण हैं। इसको **''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म''** श्रुति में कहा गया है। लक्ष्मी ब्रह्मादियों का मुक्तों का भी मुख्य आश्रय श्री हरि के नाम का स्मरण करने वालों को मनो व्यथा कहाँ है।।19।।

''लक्ष्मीपति'' यह नाम ही पर्याप्त है। यही श्री हरि को सर्वोत्तम होना बतलाता है। ब्रह्मादि देवता लक्ष्मी जी से कृपा दृष्टि के लिए प्रार्थना करते हैं। स्वरमण श्री हरि लक्ष्मी की अपेक्षा नहीं करते हैं। लक्ष्मी जी ब्रह्मादि देवताओं को छोड़कर श्री हरि के चरण कमलों के रज की ही सेवा करती हैं। गुणों से कोई भी श्री हरि के समान अथवा अधिक नहीं है।।20।।

श्री हरि के चरणों का ब्रह्मा जी ने प्रक्षालन किया श्री हरि के नख से उत्पन्न गंगा रूद्र देवता से सत्कृत होकर चौदह लोकों में तारतम्य में अपने से नीचे (कम) रहने वाले सब को पवित्र करती हैं। ऐसे महामहिमा से युक्त होने से श्री हरि भगवान कहलाते हैं।।21।।

सन्यास आश्रम श्रेष्ठ है जिसमें निषिद्ध हिंसा के लिए अवकाश नहीं है। रुद्र देवता का भी संहार करने की सामर्थ्य वाले सर्वोत्तम श्री हरि में आसक्तहोकर विषय सुख की इच्छा न करना सन्यासियों का धर्म है। ऐसे सन्यासी और भगवद्क्त मन को लौकिक विषयों में आसक्त न करते हुए देहाभिमान आदि को त्याग कर शास्त्र की विमर्शा से उत्पन्न ज्ञान द्वारा भगवान को प्राप्त होते हैं। इसलिए मोक्ष को प्रदान करने वाला श्री हरि सर्वोत्तम हैं।।22।।

इस सर्वोत्तम श्री हरि के गुणों को बतलाने के लिए आप ने मुझसे प्रश्न किया-उनके गुण अनन्त हैं। समस्त गुणों को अथवा एक गुण को पूर्णरूप से जानने वाला कोई नहीं है। भूत वर्तमान और भविष्य काल के ब्रह्मादि ज्ञानी भी अपनी-अपनी योग्यतानुसार आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की भाँति श्री हरि को अपनी शक्ति के अनुसार जानते हैं। मैं भी श्री हरि को जितना जानता हूँ आप को बतलाता हूँ।।23।।

एक दिन राजा परीक्षित् धनुष लेकर वन में शिकार खेलने गए थे हिरणों के पीछे दौड़ते-दौड़ते वे थक गए और उन्हें भूख और प्यास लगी। तब कहीं उन्हें कोई जलाशय नहीं मिला तब वे पास के ही एक ऋषि के आश्रम में प्रवेश किये। उन्होंने देखा कि वहाँ आँखे बन्द करके असंप्रज्ञात समाधि अवस्था में शान्त भाव से एक मुनि आसन पर बैठे हैं।।24,25।।

उनके इन्द्रिय, प्राण और मन श्री हरि में आसक्त थे। वे कुम्भक प्राणायाम में होने से शब्दादि विषयों को ग्रहण नहीं करते थे। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं को पार करके चौथी तुरीय अवस्था में विम्बरूपी श्री हरि का दर्शन कर रहे थे। चलन-बलन रहित निरन्तर दीर्घ समाधि में थे। उनका शरीर बिखरी हुई जटाओं से और कृष्ण मृगचर्म से ढका हुआ था। राजा परीक्षित् ने ऐसी अवस्था में उनसे जल माँगा क्योंकि प्यास से उनका गला सूखा जा रहा था।।26,27।।

ऋषि को वाह्य ज्ञान नहीं था। उन्होंने राजा को बैठने के लिए स्थान, दर्भासन, मधुर वचनों के द्वारा स्वागत अर्घ्यपाद्यादि देकर सत्कार नहीं किया। भूख और प्यास से पीड़ित राजा इसको अपना तिरस्कार समझा और ऋषि पर कुपित हुए।।28।।

हे शौनक जी! वे भूख प्यास से व्याकुल थे इसलिए एकाएक उन्हें ब्राह्मण के प्रति ईर्ष्या और क्रोध हो आया। उनके जीवन में इस प्रकार का यह पहला ही अवसर था।।29।।

वहाँ से लौटते समय उन्होंने क्रोध वश धनुष की नोक से एक मरा सर्प उठाकर ऋषि के गले में डाल दिया और अपनी राजधानी को चले गए।।30।।

नगर को वापस होते हुए राजा रास्ते में विचार करता रहा कि यह ऋषि व्राह्य विषयों से विमुख होकर वास्तव में भगवान के ध्यान में क्या आसक्त हुआ है अथवा इन क्षत्रियों से हमें क्या होने का है? ऐसे उदासीन भाव से समाधिस्थ के जैसे नटना तो नहीं कर रहे थे।।31।।

इधर शमीक ऋषि का पुत्र श्रृंगी कुछ अन्य बालकों के साथ खेल रहा था। बालक होने पर भी वह तेजस्वी था। उसे शापानुग्रह की शक्ति थी। परीक्षित् राजा द्वारा अपने पिता के साथ दुर्व्यवहार करने की और मरा हुआ सर्प उनके गले में डालकर समाधि में रहने वाले पिता को अपवित्र करने की घटना उसने अन्य बालकों से सुना।।32।।

तब वह इस प्रकार कहने लगा-"नरपति कहलाने वाले लोग उच्छिष्ट भोजी कौवों के समान रहने वाले इन क्षत्रिय राजाओं के अधर्म का आज पता चला। कुत्ते द्वारा अपने स्वामी पर ही भूंकने की तरह यजमान को ही डाँटकर द्रोह किए जैसे ब्राह्मणों के घर के द्वार की रखवाली करने वाले यह राजा लोग अपने यजमान ब्राह्मण के साथ ही द्रोह कर रहे हैं। ब्राह्मण के घर को ही नाश करने का प्रयत्न कर रहे हैं क्या यह न्याय है?।।33,34।।

अतएव उन्मार्ग गामियों के शासक भगवान कृष्ण के परमधाम पधार जाने पर इन मर्यादा तोड़ने वालों को आज मैं दण्ड देता हूँ। मेरा तपोबल देखो! ऐसा बालकों से कहकर आँखे लाल किए हुए क्रोध से हाथ में कुशा लेकर आचमन किया और शाप दिया।।35,36।।

"इस तरह मर्यादा का उल्लंघन करने वाले उस कुलांगार राजा को जो मेरे पिता से द्रोह किया है आज के सातवें दिन मेरे शाप द्वारा प्रेरित तक्षक नाग डस लेगा जिसके विष से वह जल जायेगा।।37।।

इस प्रकार शाप देकर वह आश्रम पर लौट आया। पिता के गले में सर्प के देह को देखकर दुःख करते हुए चिल्लाकर रोने लगा।।38।।

तब शमीक ऋषि समाधि से जाग उठे पुत्र का रोदन सुनकर धीरे-धीरे अपनी आँखें खोली तो देखा कि उनके गले में एक मरा सर्प पड़ा है। उसे गले से निकालकर कर बाहर डाल दिया और पुत्र से कहने लगे तूँ क्यों रो रहा है? क्या किसी ने तुम्हारा अपकार किया है? इस प्रकार पूछने पर बालक ने सारा वृत्तान्त कह दिया।।39,40।।

शाप का हाल सुनकर महर्षि शमीक बड़े दुःखी हुए। उन्होंने अपने बेटे के शाप का समर्थन नहीं किया और कहा" अरे अज्ञानी बालक! तूने बड़ा भारी पाप कर डाला एक साधारण से अपराध पर तूने राजा को बहुत बड़ा दण्ड दे डाला।।41।।

राजा के साथ क्या अपराध करना है? तुम्हें बुद्धि नहीं है तुम्हें शाप नहीं देना चाहिए था।।42।।

राजा के दुःसह तेज से सुरक्षित और निर्भय रहकर ही प्रजा अपना कल्याण सम्पादन करती है। राजा के अन्तर्यामी श्री हरि रक्षा न करे तब सर्वत्र चोर अधिक होकर सज्जनों को पीड़ा देंगे। नायक न होने से क्या सेना बच

सकती है?।।43।।

हे बालक! राज्य अराजक होने में क्या हम कारण नहीं बनेंगे। इससे हमारे वंश को ही नाश करने वाला अदृश्य पाप हमें लगता ही है। अब भविष्य में सर्वत्र चोर अधिक होकर पशुओं को मारेंगे, स्त्रियों का अपमान करेंगे, धन सम्पत्ति का अपहार करेंगे।।44।।

राजा के अभाव में शास्त्रोक्त वर्णाश्रम की व्यवस्था नष्ट हो जायेगी और आर्यधर्म लुप्त हो आयेगा। काम वासना के विवश होकर कुत्तों और बन्दरों के समान उच्च और नीच वर्ण वालों में परस्पर भोगादि के द्वारा वर्ण सांकर्य हो जायेगा।।45।।

परीक्षित् राजा तो कोई दुष्ट नहीं है। वह भगवद्भक्त, ज्ञानी और अश्वमेध याग को किया हुआ है। धर्म की रक्षा करने वाला है और प्रसिद्ध चक्रवर्ती है। वह भूख प्यास से पीड़ित होकर हमारे पास आया हुआ था। क्या ऐसे इनको शाप देना चाहिए।।46।।

हे नारायण! बुद्धि न रहने वाला यह बालक निरपराधी सेवक से पाप कर्म किया है। सर्व प्रेरक आप ही इसको क्षमा कीजिए।।47।।

वह राजा आप का भक्त है। इसलिए किसी के द्वारा तिरस्कृत होकर, वंचित होने पर, शाप पाकर, आक्षेप और मारपीट करने पर भी कोई बदला नहीं लेते। यही भगवद्भक्तों का लक्षण है। वह समर्थ होने पर भी प्रतीकार नहीं करते हैं। अशक्तों के लिए क्षमा बल है, समर्थों के लिए क्षमा भूषण है।" इस प्रकार कहते हुए दुःख किया।।48।।

हे शौनक! पुत्र से किए हुए अपराध के लिए ऋषि ने पश्चात्ताप किया। परन्तु अपने से द्रोह करने पर भी उस राजा के विषय में वह अपराध किया है ऐसा मन में भी नहीं लाया।।49।।

तपोबल से वह सब कुछ जानते थे वह राजा को स्वभावतः दुष्ट न जानकर कुपित नहीं हुए। गुण और दोष के लिए जीव ही आश्रय है। सज्जीवों के विषय में कारणान्तर से कोई दोष हो तो साधु महापुरुष उस पर ध्यान नहीं दंते हैं। इसलिए प्रायः भगवद्भक्तगण दूसरों के द्वारा सुख दुःखादि द्वन्द्वों में डाल दिए जाते हैं तब भी वे प्रायः हर्षित अथवा व्यथित नहीं होते हैं।।50।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः।।

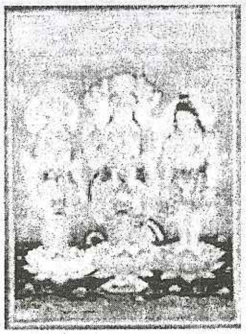

अध्याय - 19
अथ एकोन विंशोऽध्यायः

मोक्ष के साधनों में मुमुक्षु को पहले वैराग्य को अवश्य प्राप्त करना चाहिए। इसको बतलाने के लिए राजा परीक्षित् के सोच विचारों को निमित्त करके इस प्रमेय को इस अध्याय में बतलाते हैं।

सूत जी कहते हैं-राजधानी पहुँचने पर राजा परीक्षित को अपने उस निन्दनीय कर्म के लिए बड़ा पश्चात्ताप हुआ। भगवान की ऐसी ही इच्छा है ऐसा विचार करके अत्यन्त उदास हो गए और सोचने लगे। "मैने निरपराध एवं अपना तेज छिपाए हुए ब्रह्मज्ञानी के साथ अनार्य पुरुषों के समान नीच व्यवहार किया। ऐसा सोचकर दुःख किया।।1।।

इस प्रकार मैंने ब्राह्मण का जो अपमान किया है वह श्री हरि का अपमान करने के समान है। अवश्य ही उन महात्मा के अपमान के फलस्वरूप शीघ्र से शीघ्र मुझपर कोई घोर विपत्ति आयेगी। मैं भी ऐसा ही चाहता हूँ क्योंकि उससे मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो जायेगा और फिर कभी मैं ऐसे दुष्ट कार्य में प्रवृत्त नहीं होऊँगा। किए हुए पाप के लिए प्रायश्चित्त हो जायेगा।।2।।

इस मेरे नीच कार्य से ब्राह्मण की क्रोधाग्नि आज ही मेरे राज्य सेवा और भरे-पूरे कोश को जलाकर भस्म कर दे जिससे फिर कभी मुझ दुष्ट की ब्राह्मण, देवता और गौ के प्रति ऐसी पापबुद्धि न हो।" इस प्रकार राजा परीक्षित् विचार कर रहे थे।।3।।

कि उन्होंने सुना कि ऋषि पुत्र के शाप से तक्षक मुझे डसेगा और मेरी मृत्यु होगी। शीघ्र ही तक्षक से मृत्यु होने से वैराग्य के लिए यह कारण हुआ। जो मुझे शाप दिए हैं वह अच्छा ही हुआ।।4।।

इस लोक में और स्वर्गादि परिलोकों में भी दुःख है ही तथा अनित्य होने से यह हेय (अनिष्ट) हैं। ऐसा विचार करके श्री हरि के चरण कमलों की सेवा ही मोक्ष का कारण जानकर राज्य कोषादि विषयों पर अभिमान त्याग कर गंगा नदी के तट पर मृत्यु पर्यन्त उपवास करने का निश्चय करके बैठ गये।।5।।

जो गंगाजल और तुलसीदल भगवान के चरण रज से मिश्रित होने के कारण सर्वोत्कृष्ट मानी गयी है और जिसकी पुनीत धारा सभी लोक पालों और लोकों को बाहर भीतर सब ओर से पवित्र करती है, मरने को उद्यत भला कौन प्राणी ऐसा होगा, जो उसका सेवन न करना चाहेगा।।6।।

प्रायोपवेश के लिए निश्चय किये हुये परीक्षित् राजा समस्त विषयों का संग त्यागकर ऋषियों के जैसे मौन होकर गंगा नदी के तट पर अनन्य भाव से मोक्ष प्रद श्री हरि के चरणों का ध्यान करते रहे।।7।।

इसके अनन्तर जगत को पवित्र करने वाले बहुत से प्रभावशाली मुनि अपने शिष्यों को साथ लिए तीर्थाटन के निमित्त वहाँ जा पहुँचे ऐसे महानुभाव मुनियों की तीर्थ यात्रा एक निमित्त मात्र है क्योंकि ऐसे सज्जन तो तीर्थों को भी पवित्र करते हैं।।8।।

उस समय वहाँ पर अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इध्मवाह, देवल, मेधातिथि, आर्ष्टिषेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त्य, वेदव्यास, नारद इत्यादि देवर्षि ब्रह्मर्षि, राजर्षि भी वहाँ आकर एकत्रित हुए। राजा परीक्षित् ने उन

सब श्रेष्ठ ऋषियों का सत्कार करके प्रणाम किया।।9,10,11।।

वे सब सुख से आसन पर बैठे। राजा ने पुनः नमस्कार करके हाथ में अर्ध्य लेकर विनय से खड़े होकर कहा।।12।।

"आप जैसे महापुरुषों के अनुग्रह के पात्र होने से मैं आज धन्य हूँ। जो राजाओं का वंश ब्राह्मणों के पादोदक को धारण नहीं करते हैं वह निन्द्य हैं।।13।।

मुझे जो ब्राह्मण का शाप मिला है वह वैराग्य के लिए मुख्य कारण है। विषयों में अभिमान त्याग कर मुक्त और अमुक्त के स्वामी श्री हरि में मन आसक्त हुआ है उसको, भय कहाँ उसको अभय ही सिद्ध है।।14।।

इसलिए प्रायोपवेश (आमरण अनशन) के लिए बैठे हुए मुझे छोड़कर आप लोग न जांय। यह गंगा जी मुझे न छोड़े। ब्राह्मण के शाप से प्रेरित तक्षक को मुझे डसने दो। मेरा मन श्री हरि का ही स्मरण कर रहा है। आप लोग कृपा करके श्री हरि की रसमयी लीलाओं को गायन करें।।15।।

मुझे कोई भी जन्म क्यों न मिले श्री हरि में और उनके भक्तों में आसक्ति और स्नेह बढ़ता रहे। सभी ब्राह्मणों को नमस्कार है। इस प्रकार प्रार्थना किया।।16।।

राजा परीक्षित् अपने राज्य को अपने पुत्र जनमेजय को सौंपकर प्रायोपवेश के लिए निश्चय करके आए थे। वह गंगा के दक्षिण तट पर कुशाओं के सिरे को पूर्वमुख करके स्वयं उत्तरमुख होकर बैठे।।17।।

राजा के चिह्न छत्र, चामरादि को त्याग दिए थे। केयूर, हार, शिरोरत्न, रत्न अंगूठी आदि आभरणों को त्याग दिए थे। हाथ में पवित्र को धारण करके ऋषियों के जैसे मृगछाला धारण किए हुए थे।।18।।

इस प्रकार राजा परीक्षित प्रायोपवेश के लिए बैठे थे-तब देवता उनकी प्रशंसा करके दुन्दुभि बजाते हुए उन पर पुष्प वृष्टि किए।।19।।

वहाँ पर जितने महर्षि एकत्रित थे, उन्होंने भी साधु-साधु कहकर राजा के विचारों का अनुमोदन किया और प्राणिमात्र पर दया दिखाने वाले वे ऋषिजन श्री हरि के गुण प्रकट करने में अनुकूल वचन कहे।।20।।

"हे राजर्षि श्रेष्ठ! श्री हरि के सेवक और अनुयायी आप पाण्डु वंशियों के लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। राज सिंहासन को श्री हरि की सेवा जानकर आप बैठे हैं। आप द्वारा इस भौतिक देह को त्यागकर अजन्मा, परिपूर्ण, विपरीत ज्ञान रहित, नित्य निर्दुःख श्री हरि को प्राप्त होने तक हम यहीं पर रहेंगे" इस प्रकार आश्वासन दिये।।21,22।।

ऋषियों के ये वचन अमृत वृष्टि की तरह हुये। इनके इस आश्वासन से ब्राह्मण के शाप से दुर्मरण का दोष दूर हुआ। तक्षक के डसने पर भी कोई कष्ट न होगा। राजा ने उनके वचनों को सुनकर श्री हरि के चरित्र को ही श्रवण करने की इच्छा से उनको नमस्कार करके कहा-**"सत्यलोक में रहने वाले उत्तम देवताओं की भाँति आप श्री हरि का ही ध्यान करने के स्वभाव वाले हैं। आप सभी भिन्न भिन्न देशों से आए हुए हैं। सज्जनों पर अनुग्रह करने के सिवाय आप को इस लोक में अथवा पर लोक में अन्य कोई प्रयोजन नहीं है। किसे - किसे किस किस काल में क्या करना चाहिए उसको आप जानते हैं। धोखा देने की आप की बुद्धि नहीं है। इसलिए थोड़े ही समय में मरने वाले पुरुष को करने योग्य अनेक कर्तव्य में से अवश्य करने योग्य पुरुषार्थ जनक और निर्मल कर्त्तव्य कौन-सा है उसको विमर्श करके मुझे बतलाने का अनुग्रह करें।"** इस प्रकार प्रार्थना किया।।23,24,25।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः।।

अध्याय - 20
अथ विंशोऽध्यायः

इस अध्याय में ज्ञान आदि से और सज्जनों के सत्संग आदि से समस्त पाप नाश होते हैं। इसका वर्णन किया गया है। उसी समय पृथ्वी पर स्वेच्छा से विचरण करते हुए किसी की कोई अपेक्षा न रखने वाले वेदव्यास जी के पुत्र श्री शुकदेव जी महाराज वहाँ आए। मुख्य प्राण के स्वामी श्री हरि का ही वह दर्शन करते थे। उनको योग सिद्धि होने से काकचंचुपुट से वायु का पान करना वह जानते थे। लक्ष्मी जी की कृपा उन पर होने से सदा उनको किसी की अपेक्षा नहीं थी। भगवद् इच्छा से जो प्राप्त होता है उसी से वह सन्तुष्ट थे। स्वरूपानन्द का अनुभव करने में ही उन्हें तृप्ति थी। समस्त अलंकारों को त्याग कर दिगंवर वेष में थे।।1।।

वह सोलह वर्ष के थे। उनके चरण हाथ जंघा, बाहु, भुजाएँ और कपोल कोमल थे। नेत्र बड़े-बड़े और मनोहर थे, नासिका कुछ ऊँची थी, कान बराबर थे, सुन्दर भौहें थीं, उससे मुख बड़ा ही शोभायमान हो रहा था। उनकी छाती चौड़ी और उभरी हुई थी, नाभि भवंर के समान गहरी तथा उदर बड़ा ही सुन्दर त्रिवली से युक्त था। लम्बी-लम्बी भुजाएँ थीं। मुख पर घुंघराले बाल बिखरे हुए थे। वह श्रेष्ठ देवता के समान तेजस्वी जान पड़ते थे फिर भी वह कौन हैं ऐसा जानने के लिए उनके शरीर पर कोई चिह्न नहीं था। अवधूत वेष में रहने वाले उनको बालक आदि घेरे हुए थे। उनका श्याम रंग था, चित्त को चुराने वाली भरी जवानी थी। वह शरीर की छटा और मधुर मुस्कान से स्त्रियों को मनोहर लगते थे। उनकी सुन्दर मुस्कान सब को मनोहर लगती थी। यद्यपि उन्होंने अपने तेज को छिपा रखा था फिर भी उनके लक्षण जानने वाले ऋषियों ने उन्हें पहचान लिया और वे सब के सब अपने-अपने आसन छोड़कर उनके सम्मान के लिए उठ खड़े हुए। राजा परीक्षित् ने भक्ति से उनकी पूजा किया। इसको देखकर अज्ञानी बालक स्त्रियाँ तथा अन्य लोग जो उनको घेरे हुए थे वापस चले गए। सबके द्वारा सम्मानित होकर शुकाचार्य जी श्रेष्ठ आसन पर विराजमान हुए।।2,3,4,5।।

देवर्षि, ब्रह्मर्षि और राजर्षि समुदाय के बीच में बैठे हुए भक्तों में श्रेष्ठ राजा परीक्षित् ग्रह, नक्षत्र और ताराओं से घिरे हुए चन्द्रमा के समान प्रकाशमान थे ।।6।।

अत्यन्त मेधावी शुकाचार्य जी जब शान्तभाव से आसन पर बैठ गए तब भगवान के परम भक्त परीक्षित् ने उनके समीप आकर चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया फिर खड़े होकर हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उसके पश्चात् बड़े मधुर वाणी से उनसे पूछा।।7।।

राजा परीक्षित् ने कहा-"हे ब्रह्मज्ञानी! आप कृपा करके अतिथिरूप में आकर हमें पवित्र किये हैं, हम क्षत्रिय आज सज्जनों से सेवा लेने में (सम्मान पाने के) योग्य बने हैं जिनके स्मरण मात्र से मानव के गृह (कुटुम्ब) आदि पवित्र होते हैं। ऐसे महापुरुषों के दर्शन, स्पर्शन, पाद पक्षालन और आसन दानादि का अवसर मिलने पर तो कहना ही क्या है ।।8,9।।

हे महायोगिन्! श्री विष्णु के सन्निधान से जैसे दैत्य नाश होते हैं वैसे ही आप के सन्निधान में महापातक भी नाश हो जाते हैं।।10।।

अवश्य ही पाण्डवों के सुहृदय भगवान श्री कृष्ण मुझपर अत्यन्त प्रसन्न हैं। उन्होंने अपने फुफेरे भाइयों की प्रसन्नता के लिए उन्हीं के वंश में उत्पन्न हुए मेरे साथ भी अपनेपन का व्यवहार किया है।।11।।

यदि वे प्रसन्न न हुए होते तो आप जैसे एकान्त वनवासी, परमसिद्ध पुरुष तथा श्रेष्ठ का दर्शन मुझ जैसे मरने को तैयार व्यक्ति को कैसे हो सकता?।।12।।

इसलिए योगियों के उत्तम गुरु, सिद्ध पुरुष आप से इतना ही प्रश्न करता हूँ कि कर्तव्य कर्म तो अनेक हैं परन्तु मरने के लिए उद्यत मुझ जैसे मनुष्य का क्या कर्तव्य है? उसे जो सुनना, जपना, कोई कार्य करना, किसी का स्मरण करना, या भजन करना आदि कर्तव्य हो और जो उचित हो वह आप हमको बताइए और जिसका श्रवण, भजन, स्मरण आदि त्यागना चाहिए वह भी बताने की कृपा करें।।13,14।।

आप का दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है, क्योंकि जितनी देर में एक गाय दुही जाती है उतनी देर भी आप किसी गृहस्थ के घर नहीं ठहरते हैं। ऐसे ज्ञानी आप के आने पर यदि हम आप से उपदेश ग्रहण नहीं करेगें तो हम असुर नहीं तो और क्या? इस प्रकार प्रार्थना किया।।15।।

सूत जी कहते हैं-इस प्रकार बड़ी कोमल वाणी द्वारा पूछने पर गुरु शिष्य के संवाद रूप धर्म को जानने वाले श्री शुक मुनि ने राजा परीक्षित् से मधुर वचनों में उत्तर दिया ।।16।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे विंशोऽध्यायः।।

।।इति प्रथम स्कंधः समाप्तः।।

श्री राम श्री

श्री मद्भागवत महापुराणम्

द्वितीय स्कन्धः

द्वितीय स्कन्ध का विषय सूची

क्र0	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	अध्याय एक	हृदय कमल कर्णिका के मध्य में रहने वाले श्री हरि का सूक्ष्म रुप मे मन को स्थिर करना तथा स्थूल विराट रूप की उपासना	1-4
2.	अध्याय दो	स्थूल रूप की धारणा की सिद्धि के पश्चात् श्री हरि में मन को लगाने का उपदेश तथा उसका फल	5-10
3.	अध्याय तीन	श्री हरि को त्यागकर अन्य देवताओं को उद्देश्य करके किए गए यागों का फल तथा विष्णु भक्ति की श्रेष्ठता	11-13
4.	अध्याय चार	श्री हरि की लीलाओं के विषय में राजा का प्रश्न तथा शुकदेव जी का उत्तर	14-16
5.	अध्याय पॉच	श्री हरि का जगज्जन्मादि कारणत्व तथा ब्रह्मा जी से नारद जी का प्रश्न	17-20
6.	अध्याय छ:	पुरुषसूक्त से भगवान के विराट देह का वर्णन	21-24
7.	अध्याय सात	वराह अवतार एवं श्री हरि के अन्य अवतारों का चरित्र	25-32
8	अध्याय आठ	शुकदेव जी से तत्व विषयक राजा का प्रश्न	33-35
9.	अध्याय नौ	राजा के प्रश्नों का शुकदेव जी द्वारा उत्तर तथा श्री हरि द्वारा ब्रह्मा जी को चतुश्लोकी भागवत का उपदेश प्रकृति और जीव भगवानके अधीन होना	36-40
10.	अध्याय दस	वैराज नामक श्री हरि द्वारा जगत् सृष्टि का वर्णन तथा भागवत के दश लक्षण	41-45

अध्याय - 1
श्री
श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
द्वितीय स्कन्धः

श्री शुक मुनि महाराज परीक्षित से बोले-हे राजन आपका यह प्रश्न कि मृत्यु के लिए तैयार मनुष्य को अन्त समय में क्या सुनना चाहिए, क्या स्मरण करना चाहिए अथवा किसका भजन करना चाहिए यह बहुत ही उत्तम है। इससे आपका ही नहीं किन्तु संसार के सभी प्राणियों का कल्याण होगा। आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्मादि देवता भी ऐसे शंका-समाधान को उत्तम समझते हैं। हे राजेन्द्र! मरणासन्न और जीवित जीवों के लिए श्रवण करने योग्य विषय तो अनेक हैं उनमें से श्री हरि के विषय में श्रवण करना श्रेष्ठ होना आत्मज्ञानी लोग बतलाते हैं।।1।।

परमात्मा को न जानने से संसार का बंधन है। श्रवणादि के बिना संसार बंधन नहीं जा सकता। श्रवण करने के विषयों में श्री हरि ही का उत्तम होना बतलाते हैं। यथार्थ रूप से परमात्मा को न जानने वाले, तारतम्यानुसार जीवों के स्थानमान को न जानने वाले गृहस्थ कुटुम्ब के पालन पोषण में आसक्त होकर पाप परिहार के लिए पंच महायज्ञ करके गृहस्थ धर्म में ही आसक्त हैं। वे अपनी रात्रि को निद्रा और स्त्री भोग में, युवावस्था को विषय भोगों में, दिन को, श्री हरि की आराधना में उपभोग न होने वाले धन संचय में और कुटुम्ब पोषण में व्यर्थ व्यतीत कर देते हैं।।2,3।।

अपने शरीर, अपने पुत्र, अपनी स्त्री घर इत्यादि में रहने वाले अभिमान से मनुष्य दैन्य भाव को प्राप्त हो जाता है। यह उसको मोक्ष मार्ग में आगे बढ़ने नहीं देता है। इससे आत्मनाश होते हुए भी वह उसको नहीं जानता। वह कितना मूर्ख है।।4।।

हे राजन्! इन सब पर विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि मुमुक्षु जीव को निरन्तर श्री हरि की कथा का ही श्रवण, कीर्तन तथा श्री हरि के गुणों का निरन्तर ध्यान अवश्य करना चाहिए।।5।।

श्री हरि कथा के श्रवणादि के बिना, इस जनन मरण रूप संसार से मुक्त नहीं हो सकता है। श्री हरि ही सर्वत्र व्याप्त हैं। सबकी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं। निरतिशय ऐश्वर्य इत्यादि गुणों से परिपूर्ण हैं। इसलिए ब्रह्मादि चेतनों के द्वारा पूजनीय हैं। स्मरण मात्र से संसार के समस्त दुःखों को दूर करने वाले हैं। इनकी कथा के श्रवण करने से अज्ञान दूर होता है। मनन करने से संशय और अन्यथा ज्ञान दूर होता है। तत्पश्चात् ध्यान के द्वारा श्री हरि का साक्षात्कार होता है। समस्त शास्त्रों ने यही निर्णय किया है कि मनुष्य जन्म की सफलता इसी में है कि वह श्रद्धापूर्वक शास्त्रों का श्रवण, मनन करे जिससे अन्तसमय में नारायण का स्मरण हो सके। सांख्य शास्त्र से तत्वज्ञान और योग शास्त्र से साधनानुष्ठान जानकर अपना वर्णाश्रमोचित धर्माचरण करते रहे जिससे अन्त समय में भी नारायण का स्मरण करते हुए, देह त्याग कर सके।।6।।

अपनी-अपनी योग्यतानुसार ज्ञान को प्राप्त करके विधि निषेध को अतिक्रम करके मुक्त हुए जीव भी श्री हरि का ध्यान करते हैं और उनके गुणों के कीर्तन में आनन्द का अनुभव करते हैं। तब जो जीव मुक्त होना चाहते हैं उन्हें तो श्रवणादि करना ही चाहिए ऐसा क्या कहना है अर्थात् अवश्य करना चाहिए।।7।।

हे राजन्! अब मैं जो कहना चाहता हूँ वह भागवत महापुराण है। यह वेदों का व्याख्यान रूप होने से वेदों के समान है। ऐसे पुराण को द्वापर युग में श्री कृष्ण भगवान के अवतार से पूर्व अपने पिता श्री द्वैपायन से मैंने अध्ययन किया है।।8।।

अपने मोक्ष मिलने का निश्चय होने पर भी श्री हरि के गुणों से आकृष्ट होकर भगवान की निर्दुष्ट लीलाओं से परिपूर्ण श्री मदभागवत शास्त्र का अध्ययन किया। हे राजन्! आप भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ हैं। मैं उसी का आप को उपदेश करता हूँ।।9,10।।

इस भागवत में श्रद्धा रख कर जो लोग ध्यान से इसका श्रवण करते हैं उनमें अविलम्ब श्री हरि की निर्मल भक्ति उत्पन्न होती है। संसार के दुःखों को देखकर, विरक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करने की इच्छा वाले योगीजन श्री हरि के नाम का कीर्तन करते ही रहते हैं। इसलिए इस प्रकार का नाम का स्मरण मरण काल में भगवान के स्मृति का कारण बनता है।।11।।

जो विषयासक्त हुआ है ऐसे पुरुष की दीर्घ आयु होने पर भी क्या लाभ है। जो प्राणी पाश्चातापपूर्वक यह सोचकर कि **''मेरी आयु व्यर्थ बीत रही है''**-एक मुहूर्त भी आत्मकल्याण का कोई उपाय करता है तो उसका जीवन सफल हो जाता है। इसलिए मुझे अधिक आयु नहीं है ऐसा दुःख मत करो।।12।।

पूर्व में एक खटवाङ्ग नाम के राजर्षि थे। उनकी सारी आयु बीत गई थी केवल एक मुहूर्त बाकी रह गया था। सो उतने ही समय में वह सब विषयों में अभिमान त्याग कर उस एक मुहूर्त के काल में अनन्य भाव से श्री हरि का आश्रय करके उनका स्मरण करते हुए मुक्त हो गए।।13।।

कुरु वंश में उत्पन्न हुए तो आप को अभी आज से सात दिन की दीर्घकालीन आयु है। इस समय को आप सार्थक कीजिए। श्री मद्भगवत का श्रवण कीजिए। जिससे अन्तकाल में आप को श्री हरि का स्मरण अवश्य होगा।।14।।

प्रत्येक विवेकी पुरुष का यह कर्तव्य है कि जब अन्तकाल आ उपस्थित हो तब वह निर्भय होकर विवेक ज्ञान रूपी असंग शस्त्र से स्त्री पुत्र धन आदि की सभी अभिलाषाओं का बन्धन जड़ सहित काट फेकें।।15।।

घर का अभिमान त्याग कर तथा विरक्त होकर भागवत आदि पवित्र शास्त्रों का श्रवण करते हुए गंगादि पवित्र तीर्थों में स्नान करके भीतर और बाहर के दोषों को दूर करके शुद्ध, दुर्जन संसर्ग रहित स्थान में शास्त्र विहित आसन पर बैठे। रेचक, पूरक कुम्भक इस क्रम से प्राणायाम का अभ्यास करे। मुख्य वायु देवता के अनुग्रह का पात्र बने। अपने मन को वश में रखकर समस्त जगत के निमित्त कारण, गुणों से पूर्ण तथा निर्दुष्ट श्री हरि का ध्यान करे। अकार, उकार, मकार, यह तीन अक्षर परब्रह्म का वर्णन करते हैं। सर्वत्र व्याप्त और सर्वोत्तम श्री हरि ओंकार से प्रतिपाद्य हैं। इस ओंकार का मन में पुनः-पुनः ध्यान करे।।16,17।।

वह बुद्धि को सारथी बनाकर मन के द्वारा ध्यान करें।।16,17।।

वह बुद्धि को सारथी बना कर मन के द्वारा अपनी इन्द्रियों को विषयों की ओर से हटाए और अन्त में मन को

बुद्धि ही के द्वारा वश में करके भगवान में लगावे।।18।।

इसके बाद मन को शान्त करके नारायण के समस्त अवयवों का ध्यान करे। यदि समस्त अवयवों का ध्यान करने में असमर्थ हो तो श्री हरि के चरण इत्यादि एक-एक अवयव का ध्यान करे। इस प्रकार अभ्यास करते हुए समस्त अवयवों का ध्यान करने का सामर्थ्य प्राप्त करके मन को विषयों से हटाकर श्री हरि के पूर्ण रूप का ध्यान करे। तब मन को निरतिशय सुख प्राप्त होगा। उस समय अन्य वाह्य विषयों का स्मरण न करते हुए केवल भगवान का ही स्मरण करे।।19।।

रजोगुण के प्रभाव से मन बाह्य विषयों में आसक्त होता है। तमोगुण के प्रभाव से कर्तव्य और अकर्तव्य को न जानकर मोहित होता है। ऐसे मन को अखण्ड तैल धारा के समान निरन्तर श्री हरि के ध्यान में लगाना चाहिए। इस प्रकार के ध्यान से राग अविद्या इत्यादि मन के दोष दूर होते हैं।।20।।

इस प्रकार मन को श्री हरि में लगाने वाला धीर पुरुष कहलाता है। इस प्रकार निरन्तर ध्यान रूप धारणा से जगत के स्वामी श्री हरि का चिन्तन करने वाले योगी को श्री हरि की भक्ति शीघ्र सिद्ध होती है। जिससे भगवान का अपरोक्ष (साक्षात्कार) ज्ञान और मोक्ष अवश्य प्राप्त होता है।।29।।

राजा ने कहा-हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! अब आप हमको यह बताइए कि (1) भगवान की यह धारणा किस प्रकार की जाती है? (2) कौन से विषय का ध्यान श्रेष्ठ है? (3) किस प्रकार का ध्यान मन के दोषों को दूर करता है?।।22।।

श्री शुकदेव जी कहने लगे हे राजन्! प्राणी पहले आसन जीते! मुख्य वायु के अनुग्रह से श्वास को जीते। विषयों से मन को हटाकर अपने वश में करके ध्यान करे। यह आपके पहले प्रश्न का उत्तर है। दूसरे प्रश्न का उत्तर यह है कि बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके स्थूल प्रतिमा में मन को स्थिर करे।।23।।

भूत, भविष्य और वर्तमान समस्त जड़ चेतनात्मक प्रपंच से युक्त ब्रह्माण्ड स्थूल वस्तुओं से भी अत्यन्त स्थूल है परमात्मा के लिए शिला प्रतिमा के सदृश है। सर्वत्र व्याप्त श्री हरि के लिए यह शरीर है। (यह स्वरूप शरीर नहीं है)।।24।।

श्री हरी की इस देह के पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार और महत्तत्त्व ऐसे सात आवरण हैं। यह कवच के समान बाहर रहने वाले आवरण हैं। नाशवान होने से इन्हें शरीर कहा गया है। इसमें विशेष रूप से प्रकाशमान, व्याप्त, सबसे उत्तम, सबके कर्मों के फल को देने वाले श्री हरि वास करते हैं। इन्हीं का ध्यान करना है और उनके ध्यान से मन के दोष दूर होते हैं।।25।।

ब्रह्माण्ड में रहने वाले पातालादि लोक, परमात्मा की प्रतिमा के अवयव हैं। यह लोक परमात्मा के स्वरूप भूत उन-उन अवयवों से उत्पन्न होकर उन्हीं अवयवों का आश्रय करके रहते हैं। (यह लोक और श्री हरि के स्वरूप भूत चिदानंदात्मक अवयव एक ही नहीं है भगवान के चिदानन्दात्मक अवयव और उन अवयवों से उत्पन्न लोकों में अभेद न समझें। अवयवों से उत्पन्न होना और अवयवों से उत्पन्न लोकों में अभेद न समझें। अवयवों से उत्पन्न होना और अवयवों का आश्रय करके रहने का अभिप्राय यही है कि समस्त लोक और देवता श्री हरि के अधीन हैं।) किन्तु वे भगवान के अवयव नहीं हैं। परमात्मा की स्थूल प्रतिमा के पाद का तलुआ ही पाताल लोक है एड़ियाँ और पंजे रसातल, दोनों गुल्फ भाग महातल लोक, उनके पैर के पिण्डे तलातल लोक।।26।।

विश्वमूर्ति भगवान के दोनों घुटने सुतल लोक, जाँघे वितल और अतल हैं जघन भाग महीतल। हे परीक्षित् उनके सरोवर जैसी गहरी नाभि को ही आकाश कहते हैं।।27।।

उनका उरुस्थल स्वर्ग, ग्रीवा महर्लोक, मुख जनलोक, ललाट तपोलोक और शिर सत्यलोक है।।28।।

इन्द्रादि देवता उनकी भुजा से, दिग्देवता कान से, शब्द श्रवणेन्द्रिय से, नासिका से अश्विनी देवता, गंध घ्राणेन्द्रिय से, अग्नि, मुख से ।।29।।

द्युलोक नेत्रों से, सूर्य चक्षुरेन्द्रिय से, उत्पन्न होकर उन्हीं-उन्हीं अवयवों का आश्रय करके उनके अधीन रहते हैं। दिन, रात्रि भगवान की पलकें है, ब्रह्मलोक उनके भ्रू-विन्यास, हैं जल उनका तालू है, जिन्ह्वा उनका रस है।।30।।

गायत्री इत्यादि छन्दस् उनके वाक्, सूर्य चन्द्र दाढ़ के दाँत हैं, (इनके बहुरूप होने से फिर से कहा गया है), नक्षत्र दाँत हैं, उनकी मुस्कान ही जनमोहक शक्ति है और सृष्टि ही कटाक्ष निक्षेप हैं।।31।।

लज्जा ऊपर का होंठ, लोभ नीचे का होंठ, धर्म स्तन, अधर्म पीठ, गुह्येन्द्रिय, प्रजापति (प्रजेश्वर) उनका वृषण (अण्डकोश) मित्र, पेट समुद्र और पर्वत उनकी हड्डियाँ हैं।।32।।

नदियाँ उन विराट भगवान की नाड़ी हैं। वृक्ष समूह उनको रोम, अन्न वीर्य हैं। वायु श्वास तथा आयु गमन है। सत्व इत्यादि गुणों का प्रवाह ही कर्म है।।33।।

उन विराट नारायण के केश, मेघों के समूह, दोनों संध्यायें वस्त्र, मूल प्रकृति ही उनका हृदय है और चन्द्रमा मन है।।34।।

विज्ञान शक्ति कहलाने वाला ब्रह्म ही इस सर्वस्वामी की बुद्धि है, रुद्र उनका अन्तःकरण, हाथी, घोड़े, ऊँट, उनके नख, समस्त मृग और पशु उनके श्रोणिदेश हैं।।35।।

लौकिक और वैदिक वचन उनका व्यवहार कहलाने वाला शब्द है। वायु देवता उनकी विचार शक्ति है, मनुष्य वास स्थल है, गन्धर्व, विद्याधर चारण, अप्सरा स्त्री यह सब उनके छःहों स्वर हैं और स्मृति हैं। दैत्यों के समुदाय को उत्पन्न करने के वीर्यवाला है।।36।।

ब्राह्मण उनके मुख से क्षत्रिय भुजा से, वैश्य जाँघों से, शूद्र उनके दोनों पैरों से उत्पन्न हुए हैं। देवताओं को दिए जाने वाला स्वाहाकार पितृ को दिए जाने वाला स्वधाकार उनके वीर्य गुण हैं। हविस मध्य देह है, यज्ञ यागादि कर्म ही उपाय हैं।।37।।

इस प्रकार मैंने तुम्हें उस दिव्य विराट पुरुष के शरीर और उनके अवयवों को कह सुनाया। भगवान के इस रूप से भी अधिक स्थूल पदार्थ नहीं हैं। ज्ञानीजन अपने मन से इस परमात्मा के विग्रह का ही ध्यान करते हैं। उसी को मैंने आप से कहा है। इस प्रकार ध्यान करने से मन निर्मल होता है।।38।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे प्रथमोऽध्यायः।।

अध्याय - 2
अथ द्वितीयोऽध्यायः

पहले अध्याय में विराट नामक भगवान के स्थूल रूप में मन को स्थिर करने के लिए कहा गया। इस अध्याय में अपने-अपने हृदय कमल कर्णिका के मध्य में रहने वाले आत्म नामक श्री हरि के रूप का ध्यान करने का उपदेश करके उसके फल को भी बतलाते हैं। कल्प के आरम्भ में श्री हरि ने ब्रह्मा की सृष्टि किया। इस ब्रह्मा को पूर्व कल्प की सृष्टि का स्मरण तिरोभाव हुए वैसे था। उनको श्री हरि का ध्यान करके पुनः स्मरण प्राप्त हुआ। इससे उन्हें सन्तोष हुआ। तत्पश्चात् वह सृष्टि कार्य में आसक्त हुए। उनका ज्ञान सार्थक हुआ। पूर्व काल में जैसा था वैसी सृष्टि किया। इस प्रकार ब्रह्मा जी को फल प्राप्त होने से श्री हरि का ध्यान सफल हुआ।।1।।

मन और वचन के लिए जो विषय नहीं है वह ध्यान के लिए विषय कैसे होगा? इस शंका का उत्तर श्री शुकदेव जी देते हैं। श्री हरि वेद इत्यादि समस्त शब्दों के विषय हैं। भगवान का श्रवण के योग्य होना ज्ञानियों को सम्मत है। श्री हरि स्वतंत्र हैं। ब्रह्मा जी समस्त जगत की सृष्टि करने वाले हैं। श्री हरि उन सब में वास करने वाले हैं। समस्त जगत उनके अधीन है। इसलिए वह गुण परिपूर्ण हैं इसलिए समस्त शब्दों के मुख्य अर्थ हैं। जीव तो श्री हरि से निर्मित इस संसार में अपने से किए हुए कर्मों के फलस्वरूप अनेक योनियों में जन्म लेता है। इन्द्र इत्यादि शब्दों का अर्थ पुरन्दर (देवेन्द्र) इत्यादि समझता है जो युक्त नहीं है। इन्द्र शब्द का अर्थ निरवधिक ऐश्वर्य वाला है। वह निरवधिक ऐश्वर्य इस इन्द्र में कहाँ है। इस इन्द्र का ऐश्वर्य तो अल्प है तथा श्री हरि का दिया हुआ है और श्री हरि के अधीन है। इसलिए निरवधिक परम ऐश्वर्य वाले तो श्री हरि हैं और वही इन्द्र शब्द का मुख्य अर्थ है। इसलिए श्री हरि का ही स्मरण करना चाहिए। अन्य देवताओं को श्री हरि के परिवार का जानकर स्मरण करना चाहिए।।2।।

शब्दार्थ के रहस्य को जानने वाले ज्ञानीजन समस्त शब्दों का श्री हरि मुख्यार्थ होना जानते हैं। इस निश्चय ज्ञान पूर्वक श्री हरि को छोड़कर आपाततः अन्य अर्थ को बतलाने वाले घटादि शब्दों का अर्थ लोक व्यवहार के लिए होना जानना चाहिये। इसलिए श्री हरि में समस्त शब्दों का समन्वय करना चाहिए।।3।।

लौकिक पदार्थों के संचय में अपना समय व्यर्थ न व्यतीत करे। प्रयत्न के बिना ही लोक व्यवहार सिद्ध हो जाता है। शरीर यात्रा तो अन्य प्रकार से भी हो सकती है। यदि यों ही किसी प्रकार से शरीर यात्रा चल सके तो लौकिक पदार्थों के संचय में व्यर्थ समय न व्यतीत करें पृथ्वी जैसी शय्या के रहते और शय्या के लिए परिश्रम क्यों करे? जब भुजाओं से तकिया का काम लिया जा सकता है तो दूसरी तकिया की क्या आवश्यकता? जब कि अंजली विद्यमान है तो और किसी पात्र का क्या प्रयोजन? दसों दिशाओं के रहते अन्य बहुमूल्य वस्त्रों का क्या प्रयोजन है।।4।।

यह सब तो आप जैसे परम योगियों के लिए है। परन्तु जो अभी परम योगी नहीं हैं उनकी शरीर यात्रा कैसे होगी? गृहस्थ जन अपने फटे पुराने वस्त्रों को इस उद्देश्य से अपने घर के बाहर रख देते हैं कि दरिद्र और भिक्षुक

ले लें। तो क्या ऐसे वस्त्र नहीं हैं? भोजन के लिए क्या वृक्षों में फल नहीं हैं? क्या जल के लिए नदियाँ सूख गई हैं? क्या रहने के लिए गुफाए बन्द कर दी गई हैं? गुफाओं में सिंह आदि वन जन्तु होते हैं तो उसमें वास कैसे कर सकते हैं? क्या भगवान अपने शरणागत लोगों की रक्षा नहीं करते? इसलिए ज्ञानी जन धन के मद से मतवाले और ज्ञान शून्य राजा इत्यादि का आश्रय क्यों करते हैं? अर्थात् सर्वथा आश्रय नहीं करते हैं।।5।।

इसलिए मुमुक्षु भगवदिच्छा से प्राप्त वस्तुओं से ही जीवन यात्रा व्यतीत करे। ऐसा योगी श्री हरि के अनुग्रह के पात्र होते हैं। श्री हरि जब प्रसन्न होते हैं तो मन साधक के अधीन हो जाता है। तब उसको ज्ञान होता है कि **"श्री हरि सर्वत्र व्याप्त हैं। देह इत्यादि जो प्रिय वस्तु हैं उससे भी अत्यन्त प्रिय श्री हरि हैं। उनका भजन करने से अविद्या इत्यादि जो संसार के कारण हैं नष्ट हो जाते हैं और दुःख रहित सुखानुभव रूप मोक्ष प्राप्त होता है।"** ऐसे ज्ञानपूर्वक श्री हरि का ध्यान करके आनन्द का अनुभव करते हैं। वह अपने चरम देह (अन्तिम देह) त्यागने के पश्चात् अपनी योग्यतानुसार बिम्ब रूपी श्री हरि का दर्शन करता है। इस निश्चय ज्ञान पूर्वक मुक्ति योग्य जीव श्री हरि का भजन करें जिसको इस प्रकार का निश्चय नहीं है वह असुर स्वभाव वाला है।।6।।

श्री हरि की उपासना उनके गुणानुसंधानपूर्वक करना चाहिए। इसलिए श्री हरि के गुणों का वर्णन करते हुए उपासना को विस्तृत रूप से समझाते हैं; जो कोई इस प्रकार से उपासना नहीं करते हैं। उनको होने वाली हानि भी बतलाते हैं। मुख्य प्राण एक ही होने पर भी प्राण, अपान इत्यादि पाँच रूपों से निद्रा करने वाले जीवों को जागृत रहकर देखते रहते हैं। श्री हरि ही सर्वज्ञ हैं। सब के हृदय में वास करते हैं। आनन्द का अनुभव करते हैं। अपनी इच्छा से ही अवतार लेते हैं। सर्व स्वामी हैं-इस प्रकार श्री हरि के गुणों की उपासना करना चाहिए सबमें श्री हरि सारभूत हैं। आनन्द के लिए आश्रय हैं। मुख्य प्राण से समर्पित कर्मों को फल देने तक रक्षा करके फल को देने वाले भी श्री हरि हैं। उनकी उपासना किसी कारण से भी नहीं त्यागना चाहिए। समस्त मुमुक्षु जीव श्री हरि के सत् चित् आनन्द आत्मा ऐसे चार गुणों की उपासना करते हैं। ऐसी उपासना न करने से अपना अहित करके आत्म हत्या दोष का भागी होता है। नित्य दुःख रूप तमस को प्राप्त होना पड़ता है।।7।।

जिस प्रकार योग्यता के तारतम्यानुसार उपासना का तारतम्य है। उसी प्रकार से अंधतमस की प्राप्ति में भी तारतम्य है। इसी को देवता तारतम्य तथा दैत्य तारतम्य कहते हैं। नरक में वैतरणी नदी है, वह दुःखमय है। उसको कोई पार करके नहीं जा सकते हैं। उपरोक्त प्रकार से जो श्री हरि की उपासना नहीं करते हैं वह इस नदी में पड़े रहते हैं। वे अपने से किए हुए कर्मों के फलस्वरूप दुःख का अनुभव करते हैं। विवेकी पुरुष गुरु द्वारा शास्त्राभ्यास करके दुःख को दूर करने वाले श्री हरि को जान लेते हैं। ऐसे पुरुष को श्री हरि सुख प्रदान करते हैं। ऐसे श्री हरि की उपासना न करते हुए जो अन्य विषयों में आसक्त होता है। वह इस संसार में ही भ्रमण करता रहता है। मोक्ष का मार्ग उसको नहीं मिलता है। ऐसा विवेकशून्य पुरुष मनुष्य नहीं पशु है। वेदों का अध्ययन करके जो यह नहीं जानता है कि श्री हरि ही वेदों का मुख्य विषय हैं वह तो वेद के बोझ को ढोने वाले गधों के समान है। जैसे कि इस प्रमाण से सिद्ध है।

चतुर्वेद्यपि यो विप्रो वासुदेवं न विन्दति।
वेदभारभराक्रान्तः स वै ब्राह्मण गर्दभः।।8।।

जीवों के योग्यता में तारतम्य होने से अधिकारी चेतन भी अनेक प्रकार के हैं। स्थूल रूप की उपासना करने

की योग्यता वाले भगवान के विराट रूप का चिन्तन करते हैं, अन्य अपने-अपने हृदय कमल में रहने वाले श्री हरि की उपासना करते हैं। श्री हरि प्रादेश मात्र परिमित चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा पद्म धारण करके जीवों से किए कर्मों का फल प्रदान करते हुए हृदय गुहा में रहते हैं। ज्ञानीजन श्री हरि का निरन्तर ध्यान द्वारा स्मरण करते हैं।।9।।

उनका प्रसन्न मुख मण्डल है, कमल के सदृश सुन्दर और बड़ी-बड़ी आँखें हैं, कदम्ब के फूल की केसर की नाईं पीत वस्त्र है, कीमती रत्नों का जड़ाऊ सुवर्ण मय आभूषण धारण किया है, वे झलकते हुए सुन्दर किरीट और कुण्डल से शोभायमान हैं।।10।।

योगेश्वर अपने योगशक्ति से विकसित हृदय कमल की कर्णिका में श्री हरि के पाद पल्लवों का ध्यान करके स्थिर किए हैं। उनके हृदय में श्रीवत्सचिन्ह गले में कौस्तुभमणि तथा बैजयन्ती वनमाला (कभी भी न मुरझाने वाले फूलों की वनमाला) से शोभायमान है। उनकी कमर में करधनी, उँगलियों में अंगूठी, पैरों में नूपुर हाथों में कंगन आदि पड़े हैं। चिकने, साफ सुथरे और भौरों जैसे काले केश उनके मुख की शोभा को और भी बढ़ाए दे रहे हैं।।12।।

इनके अतिरिक्त उनकी मन्द-मन्द मुस्कान अलग अपनी निखार दिखा रही है। जब तक मन पूरे अवयवों का एक साथ ध्यान करने में समर्थन न हो तब तक इस प्रकार के परमेश्वर के ध्यान का अभ्यास करते रहे। मन से श्री हरि की मूर्ति को ही देखते रहे। उस मूर्ति में श्री हरि अप्राकृत रूप से रहते हैं ऐसा जानना चाहिए।।13।।

जो श्री हरि के समस्त अंगों का एक साथ ध्यान नहीं कर सकते हैं तो वे चरण से आरम्भ करके मुख तक के एक-एक अवयव का ध्यान करने का अभ्यास करें। अभ्यास बल से जिन-जिन अंगों का ध्यान अनायास आ जाय तो उन-उन अंगों को त्याग कर प्रयत्न पूर्वक अन्य अवयवों का क्रम से अभ्यास करते जायँ। इस प्रकार के ध्यान के अभ्यास से उसकी बुद्धि श्री हरि के सम्पूर्ण रूप का एक साथ ध्यान करने की योग्यता प्राप्त कर लेगी।।14।।

ब्रह्मादि देवता जो उत्तम हैं वह भी श्री हरि से अधम हैं। ऐसे सर्वोत्तम श्री हरि सर्वसाक्षी हैं। वह निर्निमित्त उपकार करने वाले और सर्व नियामक हैं। इस प्रकार के भगवान का महात्म्य ज्ञान पूर्वक स्नेह सतत ध्यान का कारण बनता है। (महात्म्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ़ स्नेह ही भक्ति कहलाती है) इस प्रकार की भक्ति उत्पन्न होने तक नित्य प्रति अपने कर्म के समाप्ति पर नम्रता पूर्वक श्री हरि के विराट रूप का प्रयत्नपूर्वक ध्यान करे।।15।।

ऐसी उपासना से ज्ञान में वृद्धि होती जाती है और भगवान का साक्षात्कार होता है। तब उसको श्री लक्ष्मी ब्रह्मा इत्यादि समस्त तत्वों का यथार्थ ज्ञान होता है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए अपने देह में रहने वाले इन्द्रियाभिमानी देवताओं का लय चिन्तन किस प्रकार करना चाहिए उसे अब बतलाते हैं! ऐसा अपरोक्ष ज्ञानी अपने भौतिक देह को जब त्यागना चाहता है तब स्थिर आसन पर बैठकर अनित्य विषयों में आसक्त न होकर मन को अपने वश में कर ले। मन को विषयों की ओर से समेट ले। प्राणायाम के द्वारा मुख्य प्राण का अनुग्रह प्राप्त करके इन्द्रियाभिमानी दिग्देवतादियों को मनोभिमानी इन्द्र देवता के अधीन होना चिन्तन करे।।16।।

मनोभिमानी इन्द्र को बुद्धि अभिमानी उमा देवी के अधीन, इस उमा देवी को, रुद्र के अधीन और रुद्र को वाणी के अधीन, वाणी को ब्रह्मा के अधीन होना चिन्तन करें। ब्रह्मा लक्ष्मी के अधीन है। लक्ष्मी जीव के अन्तर्यामी श्री हरि के अधीन हैं। उस जीव के अन्तर्यामी श्री हरि को देह के मध्य में रहने वाले श्री हरि के साथ ऐक्य का चिन्तन

करें। उस श्री हरि का सर्वत्र व्याप्त श्री हरि के साथ ऐक्य का चिन्तन करें। इस प्रकार लय चिन्तन करते हुए जो देह को त्याग कर जाता है वह श्री हरि का दर्शन करने के पश्चात् विधि निषेध रूप कर्म बन्धन से छुटकारा पाता है।।17।।

इस प्रकार देह को त्याग कर जाने वाला ज्ञानी सर्वोत्तम विष्णुलोक को प्राप्त होता है। उस लोक में वायु देवता और रुद्र देवता अपना प्रभाव नहीं डाल सकते हैं तो अन्य देवताओं के विषय में क्या कहना है। वहाँ पर प्रकृति के सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, अहंकार तत्व, महत्तत्त्व, तथा सूक्ष्म प्रकृति भी कोई प्रभाव नहीं डाल सकते हैं। अर्थात् बुढ़ापा इत्यादि विकार को उत्पन्न नहीं कर सकते हैं।।18।।

श्री हरि के जैसा वह लोक भी दोष रहित है। संसार दुःख से छुटकारा पाने की इच्छा वाले मुमुक्षु जन श्री हरि को पृथ्वी इत्यादि समस्त जगत से विलक्षण (भिन्न) जान कर उनकी उपासना करते हैं। और अनन्य भक्ति से क्षण-क्षण मन में श्री हरि का चिन्तन करते हैं। ऐसा श्री हरि ही इस लोक का स्वामी है। दुष्ट ऐक्योपासना को त्याग कर नित्य श्री हरि का दर्शन करते हुए अनन्य भक्ति द्वारा भूतकाल में अधिकारी चेतन मुक्त हुए हैं। अब रहने वाले चेतन भी मुक्त होने वाले हैं। भविष्य के कल्पों में आने वाले चेतन भी मुक्त होंगे।।19।।

इस प्रकार स्थिर और सुखासन पर बैठकर देह त्याग का निश्चय करके ज्ञानी अपनी योग्यतानुसार बिम्बापरोक्ष ज्ञान प्राप्त करके अपने व्राह्य अन्तःकरण को (स्वरूप से भिन्न) नष्ट कर देता है। (श्री हरि के दर्शन के प्रभाव से मन की वासनाएँ जल जाती हैं)। इस स्थिति में ज्ञानी अपने पैर की एड़ी से अपान वायु के द्वार को बन्द करके मूलाधार से उदान वायु को ऊपर ले जाकर नाभि, हृदय, वक्षस्थल, तालमूल, भृकुटि के मध्य और शिर ऐसे छः स्थलों में क्रम से ऊपर को जाता है।।20।।

इसके पश्चात् उदान वायु को बन्द करके इन्द्रियों के मार्ग को भी बन्द करके बाह्य सुख की इच्छा त्याग कर श्री हरि का अर्द्धमुहूर्त ध्यान करें। इस मध्य में आने वाली अणिमादि सिद्धियों की ओर ध्यान न देते हुए श्री हरि का ही ध्यान करते हुए शिर का भेदन करके देह से वायु को बाहर निकालें। उत्तम योगियों को ही श्री हरि इस प्रकार की मृत्यु देते हैं।।21,22।।

इस प्रकार देह से जाने वाले योगी के ज्ञान, भक्ति इत्यादि साधन सामग्री पक्वावस्था में हो तो वह ब्रह्मलोक में जाता है। उसको फिर से जनन मरण नहीं है। वह ज्ञान भक्त्यादि साधनों को पूर्ण करने के लिए वहाँ पर ही रहकर ब्रह्म प्रलय के समय में ब्रह्मा जी के साथ मोक्ष को प्राप्त होता है। यदि उसके साधन परिपक्व नहीं हैं तो वह सिद्ध पुरुष के बिहार स्थान महर्लोक, जनोलोक, अथवा तपोलोक को प्राप्त होता है। वहाँ उसको अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अप्रतीकालम्बन योगी जिनके साधन परिपक्व हो चुके हैं वह वैकुण्ठ में अमुक्त स्थान में जाकर श्री हरि को प्राप्त होते हैं। यदि वह प्रतीकालम्बन है तो सत्य लोक को जाकर ब्रह्मा और वायु को प्राप्त होते हैं। यह योगी महर्लोक आदि लोकों में विहार कर सकते हैं। यह लोक केवल अपरोक्ष ज्ञानियों को ही मिल सकते हैं। परन्तु केवल ज्ञान शून्य कर्मठ को नहीं प्राप्त हो सकते हैं। इन लोकों में रहने वाले योगियों के बाह्य इन्द्रिय और मन दग्ध पट के सदृश्य रहते हैं। मुक्त स्थान में जो मोक्ष को प्राप्त कर चुके हैं उनके स्वरूप भूत चिदात्मक इन्द्रियाँ रहती हैं। प्राकृत इन्द्रियाँ नहीं रहती हैं। इस प्रकार के योगीजन सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा उत्क्रमण करके हृदयाकाश से सुषुम्ना प्रकाश की सहायता से बाहर आते हैं। अचिरादि देवताओं को प्राप्त करके वैश्वानर लोक को प्राप्त होते

हैं। वहाँ पर अपने पापों को दूर करके शिंशुमार रूप से रहने वाले श्री हरि के स्थान को जाते हैं।।23,24,25।।

प्राणियों के उदर में रहकर आहार को पचन करने वाला तथा बाह्माण्ड के मध्य में अग्नि लोक में रहने वाला प्रधान अग्नि ही वैश्वानर है। इस मार्ग में देवलोक और पितृ लोक को अपरोक्ष ज्ञानी प्राप्त करते हैं।।26।।

शरीर के दायें भाग में रहने वाला पिंगला नाड़ी से उत्क्रमण करने वाले योगी अहः नाम के देव मार्ग को जाते हैं। देह के बाएँ भाग में रहने वाली इड़ा नाड़ी से उत्क्रमण करने वाले योगी रात्रि नामक पितृ मार्ग में जाते हैं। देह के मध्य में रहने वाली सुषुम्ना नाड़ी से जाने वाले ब्रह्म मार्ग को जाते हैं।।27।।

देवमार्ग का ही एक प्रभेद ब्रह्म मार्ग है। शिंशुमार लोक को प्राप्त होने के पश्चात् श्री हरि की अनुज्ञा प्राप्त करके रागादि दोष से रहित होकर सूक्ष्म रूप से समस्त ब्रह्मज्ञानी वैकुण्ठादि लोकों को प्राप्त होता है। यहाँ पर अपरोक्ष ज्ञानी एक कल्प आयु वाले बिहार करते हैं।।28।।

महर्लोकादि में वास करने वाले ज्ञानी प्रलय काल में संकर्षण के मुख से निकली हुई अग्नि से जलते हुए लोकों को देखकर सनकादियों से शोभित सत्य लोक को जाते हैं। यह लोक ब्रह्माजी के एक कल्प पर्यन्त रहता है। ब्रह्मा जी के साथ ही वह मुक्त होते हैं।।29।।

यह सत्य लोक महर्लोकादि से भी श्रेष्ठ है। इस लोक में न शोक है, न बुढ़ापा (जरावस्था) रहती है, न मृत्यु है, न कोई वेदना सताती है और न किसी प्रकार भय ही यहाँ रहता है। ब्रह्मज्ञान रहित कर्म के फलस्वरूप जन्म मरण को प्राप्त होने वाले अज्ञानियों को होने वाली मन की व्याकुलता यहाँ नहीं है।।30।।

प्रतीकालम्बन और अप्रतीकालम्बन अपरोक्ष ज्ञानी ब्रह्माजी के प्रलयकाल में अपने से जो श्रेष्ठ हैं उनके विम्बरूप में प्रवेश करके गरुड़ मार्ग और शेष मार्ग द्वारा सरस्वती देवी में प्रवेश करते हैं। तत्पश्चात् भौतिक शरीर वाले ब्रह्मा जी में प्रवेश करते हैं। तत्पश्चात् पृथ्वी तत्व के अन्तर्यामी ब्रह्मा और उस ब्रह्मा के अन्तर्यामी श्री हरि को प्राप्त होकर श्री हरि के साथ के अन्तर्यामी श्री हरि के साथ तेजसतत्व में रहने वाले श्री हरि को प्राप्त कर निर्भय होकर वायु तत्व को प्राप्त होते हैं। तत्पश्चात् आकाश तत्व को प्राप्त होते हैं। इन तीन तत्वों में रहने वाले श्री हरि प्राण कहलाते हैं। जड़ तत्व अपने कारण तत्व में लय हो जाते हैं। ब्रह्माजी उन तत्वों में रहने वाले अपने रूप से ऐक्य हो जाते हैं। श्री हरि अपने रूपों के साथ ऐक्य हो जाते हैं। अन्य देवता अपने से उत्तम तत्वों में प्रवेश करते हैं। (उनमें ऐक्य नहीं होते हैं।)।।31।।

अब पंचतन्मात्रायें किस प्रकार लय होते हैं बतलाते हैं। घ्राणेद्रिय में रहने वाले श्री हरि के साथ गंध तन्मात्रा में रहने वाले श्री हरि को प्राप्त होता है। रसनेन्द्रिय में रहने वाले श्री हरि के साथ रस तन्मात्रा में रहने वाले श्री हरि को प्राप्त होता है। चछुरेन्द्रिय में रहने वाले श्री हरि के साथ रूप तन्मात्रा में रहने वाले श्री हरि को प्राप्त होता है। त्वगेन्द्रिय में रहने वाले श्री हरि के साथ स्पर्शतन्मात्रा में रहने वाले श्री हरि को प्राप्त होता है। श्रवणेन्द्रिय में रहने वाले श्री हरि के साथ शब्द में रहने वाले श्री हरि को प्राप्त होता है। यदि उस अपरोक्ष ज्ञानी का साधनपूर्ण हुआ हो तो पुनः सृष्टि में नहीं आता है। जिनके साधन अभी पूर्ण नहीं हुए हैं वह पुनः सृष्टि में आते हैं। ऐसे अपरोक्ष ज्ञानी मुक्त होकर अपने स्वरूपभूत चिदानन्दात्मक देह को प्राप्त करके स्वरूप देह के इन्द्रियों द्वारा उत्तम विषयों को भोग कर श्वेतद्वीप इत्यादि स्थानों में रहते हैं। वे पुनः संसार में नहीं आते हैं। प्रलय में भी उनको पुनरावृत्ति नहीं है।।32।।

मुक्तावस्था का शेष रहे विषय को (31 श्लोक के आगे का विषय) अब बतलाते हैं। पंचभूत, शब्द इत्यादि तन्मात्रा जीव समुदाय, इन्द्रिय तथा इन्द्रियाभिमानी देवताओं के साथ श्री हरि मनस्तत्व में रहने वाले इन्द्र के अन्तर्यामी ब्रह्मा के अन्तर्यामी अपने मानस नामक रूप को प्राप्त होता है। तत्पश्चात् उमा देवी में रहने वाले ब्रह्मान्तर्यामी अपने रूप को प्राप्त करके मति नामक अहंकार तत्व में रहने वाले वाणी अन्तर्यामी ब्रह्मा के अन्तर्यामी अपने रूप को प्राप्त होता है।।33।।

तत्पश्चात् विज्ञान तत्व में रहने वाली वाणी उनके अन्तर्गत ब्रह्मा अन्तर्गत, विज्ञान नामक अपने रूप को प्राप्त होता है। तत्पश्चात् महत्तत्व में रहने वाले ब्रह्मान्तर्यामी अपने रूप को प्राप्त करके उस ब्रह्मा के साथ उमा देवी में रहने वाले आनन्द नामक रूप में जा मिलता है। तत्पश्चात् प्रलयकाल में गुणपूर्ण अपने ही वासुदेव रूप में क्रीडा करता है।।34।।

जीव भी अपनी-अपनी योग्यतानुसार पूर्णता को प्राप्त करके स्वरूपानन्द का अनुभव करते हैं। इस प्रकार अपने विम्ब के द्वारा श्री हरि में जो प्रवेश किए हैं वह फिर सृष्टि में नहीं आते हैं। इसको सायुज्य मोक्ष कहते हैं। समुद्र में प्रवेश करने वाली नदियाँ समुद्र ही न होकर प्रत्येक रहते हैं और बादल बनकर भूमि पर वर्षा करते हैं इससे स्पष्ट होता है कि नदियाँ समुद्र में प्रवेश करती हैं। वह समुद्र ही नहीं हो जाती। वैसे ही सायुज्य मोक्ष में परमात्मा में प्रवेश करते हैं वह परमात्मा नहीं बन जाते।।35।।

अब भागवत् ग्रंथ का अध्ययन करना बतलाते हैं। हे परीक्षित् राजन्! पूर्व में ब्रह्माजी ने श्री हरि की अराधना करके प्रश्न किया था उसके उत्तर में श्री वासुदेव ने इस मार्ग को बतलाया था। वेद में भी यही मार्ग कहे गए हैं। उन्हीं को मैंने आपके प्रश्नों के उत्तर में कहा है। इस संसार में श्रीमद्भागवत् से उत्तम अन्य कोई कल्याण मार्ग नहीं है। इसका अभ्यास करने से श्री हरि में भक्ति उत्पन्न होकर मोक्ष प्राप्त होता है।।36।।

वेदव्यास जी नित्य ज्ञानपूर्ण होने पर भी समस्त वेदों को तीन बार बुद्धि से विचार करके भगवान में भक्ति उत्पन्न करने वाले भागवत ग्रन्थ की रचना किये।।37।।

इस ग्रन्थ के अध्ययन तथा श्रवण करने से श्री हरि का स्वतंत्र होना, अन्य समस्त जीव समुदाय का अस्वतंत्र होना, श्री हरि का सबमें नियामक रूप से रहने का जीवों को ज्ञान होता है। श्री हरि से कहा हुआ यह भागवत वेदमूल और आप्तिमूल है इसलिए अवश्य इसका अभ्यास करना चाहिए।।38।।

श्री हरि ही सर्वोत्तम होने से समस्त देश में समस्त काल में सब प्रकार से मुमुक्षजन को श्री हरि के गुणों का श्रवण करना चाहिए। कीर्तन मनन करना चाहिए। स्मरण करना चाहिए।।39।।

सज्जनों के द्वारा श्री हरि के कथामृत का श्रवण करने वालों का अन्तःकरण शुद्ध होता है। तत्पश्चात् और अधिक भक्ति से श्रावण करते हैं तो वे कथामृत के श्रवण के फलस्वरूप भगवान के निकट जाते हैं-मुक्त हो जाते हैं।।40।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः।।

अध्याय - 3
अथ तृतीयोऽध्यायः

श्री हरि कथा के श्रवण से उत्पन्न भगवद् भक्ति ही समस्त पुरुषार्थ के प्राप्ति का साधन है। अन्य कोई साधन नहीं है। श्री हरि को त्याग कर अन्य देवताओं को उद्देश्य करके किए जाने वाले याग इत्यादि कर्म उन-उन देवताओं के योग्यतानुसार ही फल देते हैं। देवताओं के द्वारा जो फल प्राप्त होता है वह भी श्री हरि के अधीन है। वह देवता फल देने में स्वतंत्र नहीं हैं। देवताओं के अन्तर्यामी भगवान ही स्वतंत्र होकर उन देवताओं की योग्यतानुसार ही फल देते हैं। इस विषय को इस अध्याय में बतलाते हैं।

श्री शुकदेव जी कहते हैं कि हे राजन्! आपने हमसे मरणोन्मुख ज्ञानी को अवश्य किए जाने योग्य उपासना क्रम को पूछा था सो मैंने ज्ञानी मनुष्यों के मरण समय की उपासना कह सुनाया। यही मार्ग ज्ञानियों को सम्मत है।।1।।

इस संसार में प्राणियों के अनेक प्रकार के इष्टार्थ हैं। उन-उन फलों को श्री हरि ही भिन्न-भिन्न देवताओं में रहकर जीवों को स्वयं देते हैं। अब भिन्न-भिन्न फलों को देने वाले यागों का वर्णन करते हैं। जो लोग ब्रह्मवर्चस्वी होना चाहते हों वह वृहस्पति की पूजा करें। जो अपनी इन्द्रियों को निपुण बनाना चाहते हों वह इन्द्र की पूजा करें। जो सन्तति चाहते हों वह प्रजेश्वर की आराधना करें।।2।।

इसी तरह धन सम्पत्ति के इच्छुक श्री लक्ष्मी जी की, तेज की इच्छा वाले सूर्य की, स्वर्ण चाहने वाले अष्टवसुओं की और वीर्य आदि को चाहने वाले रुद्र देवता की आराधना करें।।3।।

अन्नादि को चाहने वाले अदिति की, स्वर्ग के इच्छुक आदित्यों की, राज्य के इच्छुक विश्वेदवेताओं की और साधन करने का इच्छुक साध्यों की पूजा करें।।4।।

लम्बी आयु चाहने वाले अश्विनी देवताओं की, पुष्टि चाहने वाले इला देवी की, जो स्थान भ्रष्ट नहीं होना चाहते वह आकाश और पृथ्वी दोनों की पूजा करें।।5।।

रूप चाहने वाले गन्धर्वो की, स्त्री चाहने वाले उर्वशी अप्सरा की, और सब पर प्रभुत्व चाहने वाले चतुर्मुख ब्रह्मा की पूजा करें।।6।।

यशोर्थी यज्ञ नामक इन्द्र की धनार्थी वरूण की, विद्यार्थी ज्ञान के लिए गिरीश की और दाम्पत्य के इच्छुक उमादेवी की पूजा करें।।7।।

धर्म की अभिलाषा वाले विष्णु भगवान की, सन्तति चाहने वाले पितरों की और ग्रह पीड़ा की पीड़ा को दूर करने के लिए मणिभद्र आदि यक्षों की तथा कान्ति चाहने वाले मरुतों की पूजा करें।।8।।

राज्य प्राप्त करने वाले मनुवों की, किसी को पीड़ा देने के उद्देश्य से अभिचारिक याग करने वाला नैऋत्य दिशा की देवता निऋति की पूजा करें। विषय सुख चाहने वाले चन्द्रमा की जो इच्छा शास्त्र निषिद्ध न हो उसकी

प्राप्ति के लिए पूर्ण श्री हरि की पूजा करें।।9।।

भगवद् प्रसाद के बिना अन्य इच्छा न करने वाला पूर्ण श्री हरि की आराधना करें इन सब की आराधना करते समय में उनके अन्तर्यामी श्री हरि को न भूलें। केवल श्री हरि अनुग्रह की इच्छा करने वाला और उपरोक्त इच्छाओं को जो प्राप्त कर चुका है वह निरन्तर अतिशय भक्ति से सर्वोत्तम श्री हरि की आराधना करें।।10।।

श्री हरि का स्मरण करके इन काम्य कर्मों को करने पर भी श्री हरि अपने भक्तों को सत्संग देकर अपने में दृढ़ भक्ति उत्पन्न करते हैं। यही मोक्ष का मार्ग है।।11।।

सकाम कर्म मोक्ष का साधन कैसे होगा? सज्जनों की सभा में भगवान की कथा होती रहती है। उसके श्रवण करने से अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है तब ऐहिक और आमुष्मिक (पारत्रिक) विषयों में वैराग्य उत्पन्न होता है। इस प्रकार का दृढ़ वैराग्य मोक्ष के लिए साधनीभूत भक्ति को उत्पन्न करता है, अर्थात् श्री हरि में निरतिशय भक्ति को और उनके भक्तों में तारतम्यानुसार भक्ति होती है। ऐसी भक्ति से श्री हरि का अनुग्रह होकर प्राकृत गुणों का कार्यभूत राग द्वैषादि को दूर करने वाला अपरोक्ष ज्ञान होता है। अपरोक्ष ज्ञान होने से भूख प्यास शोक, मोह, राग और द्वेष दूर होकर मन निर्मल होता है जिससे वैराग्य और उस वैराग्य से बिम्बापरोक्ष ज्ञान के लिए कारणीभूत भक्ति उत्पन्न होती है। तब जब कोई श्री हरि के कथामृत का रसास्वादन किया है तो क्या वह हरि कथा में आसक्त न होगा?।।12।।

शौनक जी ने कहा-शुक देव जी के इन वचनों को सुनकर भारत देश में श्रेष्ठ राजा परीक्षित् ने अपरोक्ष ज्ञानी, त्रिकाल ज्ञानी तथा व्यास पुत्र से और क्या प्रश्न किया?।।13।।

हे सूत जी आप ज्ञानी हैं। सज्जनों की सभा में श्री हरि की कथाएँ होती रहती हैं हमें उसे श्रवण करने की इच्छा है कृपा करके बतलाइए।।14।।

महारथी, परम भगवद्भक्त राजा परीक्षित् वाल्यावस्था में खेल खेलते समय श्री हरि के पूजा रूप खेल को ही खेलते थे।।15।।

व्यास के पुत्र तथा कृष्ण भगवान के अद्बितीय भक्त शुक्राचार्य जी उनको मिल गए थे। जहाँ ऐसे सज्जनों का समागम होता है वहाँ ब्रह्मादि जीवोत्तमों से भी गान किए जाने वाले भगवद् गुणों की कथाएँ होती ही रहती हैं। ऐसे इन दोनों के समागम में लौकिक विषयों की चर्चा नहीं होती है। परमात्मा की कथाओं को छोड़कर व्यतीत होने वाला प्रत्येक क्षण व्यर्थ ही है।।16।।

प्रातःकाल के समय उदय होकर और सायंकाल को अस्त होते हुए सूर्य भगवान प्राणियों की आयु हरते रहते हैं। यदि कहो कि बहुकाल जीवित रहना ही मानव जीवन का फल है तो क्या वृक्ष नहीं जीते, लोहार की भाथी क्या साँस नहीं लेती, गाँव के पशु क्या नहीं खाते और मूत्र तथा वीर्य का विसर्जन नहीं करते हैं? इसलिए श्री हरि के कथा श्रवण किए बिना जीवित रहना व्यर्थ है।।17,18।।

जिसके कानों में कभी नारायण की पुनीत कथाओं की ध्वनि नहीं गूँजती उसे कुत्ते, सुअर, ऊँट तथा गधा के समान विवेक शून्य समझना चाहिए। जो कर्णपुट महान् विक्रमशाली नारायण की कथा नहीं सुनते उन्हें कर्णपुट न कहकर पर्वत की गुहा समझना चाहिए। जो जिह्वा भगवान का यश नहीं गाती उसे मेढक की जिह्वा के समान

रहने पर भी न रहने के समान है।।19,20।।

जो मस्तक नारायण के समक्ष न झुके तो किरीट और मुकुट से सुशोभित होते हुए भी उस मस्तक को भारमात्र समझना चाहिए। जो हाथ नारायण की पूजा के लिए आगे न बढ़े तो सोने के कंकण से अलंकृत होने पर भी शव के हाथ जैसा समझना चाहिए।।21।।

जो आँखें नारायण की चल और अचल पुनीत प्रतिमाओं का निरीक्षण नहीं करतीं उन्हें मोरपंखों की आँख के समान व्यर्थ समझना चाहिए। जो पैर भगवान के पवित्र तीर्थों की यात्रा के लिए आगे नहीं बढ़ते उन्हें पैर न समझ कर वृक्ष के समान व्यर्थ समझे।।22।।

जो मनुष्य परमात्मा तथा परमात्मा के भक्तों के चरण की धूलि अपने मस्तक पर नहीं चढ़ाता उसे जीता जागता शव समझना चाहिए। जो मनुष्य श्री हरि के निर्माल्य तुलसी की सुगन्ध को नहीं अनुघ्राण करता वह जीवित रहने पर भी व्यर्थ है।।23।।

भगवान की कथाओं के प्रसंग भगवान के नामोच्चारण का श्रवण करने पर जिनके हृदय में विकार न आए वह पत्थर के समान है। आँखों में आँसू का आना मुख का विकसित होना तथा शरीर का पुलकित होना वह हृदय के द्रवीभूत होने के लक्षण है।।24।।

श्री हरि की कथा का जो श्रवण नहीं करते उनका जीना व्यर्थ है इसलिए हे सूत जी! श्री शुकदेव जी अपनी योग्यतानुसार श्री हरि के विषय में राजा परीक्षित् के प्रश्न के उत्तर में जो बतलाए हैं। उन श्री हरि की कथा हमें सुनाइए। आप भगवद्भक्त हैं हमारा जिस प्रकार से कल्याण हो ऐसी कथा कहने का सामर्थ्य आप में है। इसलिए आप से ही श्री हरि की कथा श्रवण करने की इच्छा है।।25।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे तृतीयोऽध्यायः।।

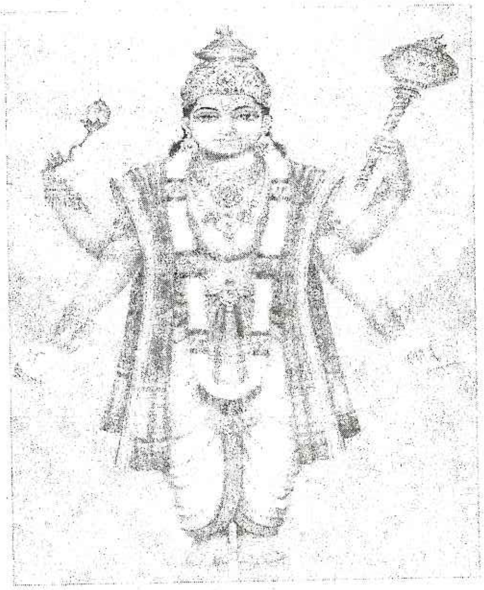

अध्याय - 4
अथ चतुर्थोऽध्यायः

संक्षेप से श्री हरि के चरित्र को श्रवण करने से परीक्षित् राजा ने अतिशय भक्ति से और विशेष रूप से श्रवण करने की इच्छा किया और श्री हरि और उनके भक्तों की लीलाओं के विषय में प्रश्न किया। श्री शुकदेव जी का गुरू, देवताओं को नमस्कार करके राजा के प्रश्नों का उत्तर देने की प्रतिज्ञा करना-इन विषयों को इस अध्याय में बतलाते हैं। इसमें भी पहले श्री शुकाचार्य जी के उपदेश से राजा को उत्पन्न हुए वैराग्य का अनुवाद करते हैं।

सूत जी कहने लगे-हे शौनक! श्री शुक्राचार्य जी के उपदेश से राजा परीक्षित् को, श्री हरि को समस्त गुण पूर्ण होना और स्वतंत्र होने का निश्चय हुआ। शुकदेव जी के उपदेश से राजा को श्री हरि में अतिशय भक्ति हुई।।1।।

जो भगवद्भक्त नहीं हैं उनको अपने शरीर स्त्री, पुत्र घर पशु, धन, भाई बन्धु और राज्य में जो अतिशय ममता सदा रहती है। ऐसी ममता को राजा परीक्षित् ने त्याग दिया। राजा पहले से ही ममता को त्यागे पर उपदेश के पश्चात् और भी ममता को त्याग दिये। श्री हरि को ही स्वामी जानकर जो प्रश्न आप लोगों ने मुझसे किया है वही राजा ने श्री शुकाचार्य जी से किया।।2,3।।

परीक्षित् राजा ने पूछा-आप ब्रह्मज्ञानी हैं, आप श्री हरि में जो भक्ति करते हैं वह दोषरहित है। आप के उपदेश उत्तम हैं क्योंकि जो हमारे साधन हैं और साधन में जो प्रतिबंधक है उनको कैसे दूर करना चाहिए वह भी बतलाते हैं। आप जैसे-जैसे भगवान की दिव्य कथाओं को कहते जाते हैं वैसे-वैसे मेरे हृदय का अज्ञान रूपी अन्धकार नष्ट होता जाता है।।4।।

इसलिए मैं आप से यह पूछ रहा हूँ कि श्री हरि अपनी इच्छा से अपने अधीन प्रकृति के द्वारा सृष्टि करते हैं। अन्य नियामक प्रसिद्ध देवताओं से यह सृष्टि असाध्य है। इसलिए श्री हरि इसकी कैसे सृष्टि करते हैं? तथा पालन और संहार कैसे करते हैं? इस जगत में जीवों को बंधन में कैसे बाँध रखे हैं? अपने अवतार रूपों से कैसे क्रीडा करते हैं? सामान्य रूप से और विशेष रूप से इस जगत में अपेक्षित समस्त कार्यो को कैसे करते हैं? इन सबको मैं पुनः पुनः जानना चाहता हूँ।।5,6।।

अद्भुत कर्म करने वाले उन श्री हरि को पूर्ण रूप से अपरोक्ष ज्ञानी भी नहीं जान सकते हैं। अज्ञानी से तो साध्य ही नहीं है।।7।।

अद्वितीय श्री हरि वासुदेवादि रूपों को धारण करके सृष्टि आदि कार्य करते हैं। इसके लिए वह प्रकृति के सत्व गुण, रजो गुण, और तमो गुणों को एक साथ लेते हैं? अथवा क्रम से लेते हैं? विरुद्ध गुणों को एक साथ ग्रहण करना भी साध्य नहीं है। क्रम से ही ग्रहण करना चाहिए इस विषय में शास्त्र में जो कहा गया है उसे हमें समझाइए।।8।।

आप को सकल शास्त्रों का ज्ञान है। उन शास्त्रों से प्रतिपाद्य सर्वोत्तम श्री हरि का भी ज्ञान है। आप ऐसे

अलौकिक विषय को स्पष्ट समझाने में समर्थ हैं।।9।।

सूत जी कहते है-कि राजा पीरक्षित् श्री हरि के गुणों का वर्णन करने के लिए श्री शुक देव जी से प्रार्थना किये तब शुकदेव जी ने वाक् इत्यादि समस्त इन्द्रियों के प्रेरक हृषीकेश का स्मरण करके उत्तर देना प्रारम्भ किया।।10।।

श्री शुकदेवजी ने कहा-श्री हरि परिपूर्ण हैं। सुखस्वरूप हैं। सत्यभूत इस जगत की सृष्टि, स्थिति और लय को लीलारूप से करते हैं। इसके लिए ज्ञान, इच्छा तथा क्रियात्मक शक्ति उनके स्वरूप भूत हैं। इस श्री हरि को स्थूल इन्द्रियों के द्वारा नहीं देख सकते हैं। अन्तर्यामी होकर सदा के लिए जीव में रहते हैं। ऐसे सर्वोत्तम को नमस्कार है।।11।।

श्री हरि अपने प्रिय सत्कर्म करने वाले भक्तों के पापों को नष्ट कर देते हैं। अधर्म करने वाले असुरों के लिए तो वह दुर्लभ हैं, ऐसे दुष्टों को वह नाश भी कर देते हैं। सन्यास धर्म में रहकर इनकी सेवा करने वाले के मनोवाँछित फलों को प्रदान करते हैं। ऐसे गुणपूर्ण स्वरूप वाले श्री हरि को पुनः-पुनः नमस्कार है।।12।।

सद्शास्त्रों के अनुसार हरि आराधना, अर्चना करने वालों को ज्ञान देकर मुक्त करते हैं। मुक्तियोग्य जीव जिनको अभी ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है। उनको श्री हरि ज्ञान देने वाले हैं। कुशास्त्रों के द्वारा इनकी उपासना करने वाले इनको कभी भी नहीं जान सकते हैं। श्री हरि के समान अथवा उनसे अधिक कोई नहीं है। चिदानन्दरूप अपने आप में रमण करते हैं। ऐसे स्वतंत्र श्री हरि को नमस्कार है।।13।।

भक्ति से जिनके नाम का कीर्तन स्मरण जिनका, दर्शन, जिनकी वन्दना जिनका यश श्रवण और जिनकी पूजा तुरन्त सज्जीवों के पापों को नष्ट कर देती है उन मंगलमयी कीर्तिवाले नारायण को पुनः पुनः नमस्कार है।।14।।

भक्तजन इनकी शरण में जाकर इह लोक और परलोक के सुख में आसक्ति को त्याग कर ज्ञानी होकर श्री हरि का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करके तद्द्वारा मोक्ष को प्राप्त होते हैं।।15।।

तपस्वी, दानी, यशस्वी मन पर विजय प्राप्त किए हुए, और मंत्र रहस्य को जानने वाले सभी अपने अपने कर्मों को श्री हरि को समर्पण करके ही अपरोक्ष ज्ञान को प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त होते हैं ऐसे श्री हरि को नमस्कार है।।16।।

इस श्री हरि के भक्तों का आश्रय करके पाप योनि में जन्म लिए हुए किरात, हूण, आन्ध्र पुलिन्द पुलक, आभीर, कंक, यवन, शक इत्यादि पवित्र हो जाते हैं। तब क्या श्री हरि के आश्रय करके पवित्र नहीं हो सकते हैं। ऐसे महासामर्थ्य वाले श्री हरि के आश्रय करके क्या पवित्र नहीं हो सकते हैं। ऐसे महासामर्थ्य वाले श्री हरि को नमस्कार है।।17।।

श्री हरि मुक्त और अमुक्त जीवों के लिए नियामक हैं। वे धर्म और तप के अनुसार रहने वालों के वश में रहते हैं (इससे भक्त वत्सल होना स्पष्ट होता है) श्री हरि में भक्ति करने वाले ब्रह्मा रुद्रादि देवता सृष्टि इत्यादि कार्यों से उनके लक्षण को जानते हैं। ऐसे सर्वस्वामी प्रसन्न होवें।।18।।

श्री हरि लक्ष्मीपति हैं, यज्ञपति, प्रजाओं के पालक हैं। सबकी बुद्धि के प्रेरक हैं। समस्त लोगों की रक्षा

करने वाले हैं। समस्त पृथ्वी के आधार हैं। अन्धक वृष्णि, सात्वत कहलाने वाले यादवों के रक्षक हैं। सज्जन पालक हम पर प्रसन्न हो।।19।।

इनके चरण कमल के ध्यान से अन्तः करण शुद्ध होकर योग्य जीव श्री हरि के तत्व को जानते हैं, शिष्यों को प्रेम पूर्वक उपदेश करते हैं। ऐसे मुक्तिप्रद भगवान हम पर प्रसन्न होवें।।20।।

सृष्टि के आरम्भ में श्री हरि ने चतुर्मुख ब्रह्मा के हृदय में अन्य समस्त चेतनों से भी उत्तम संस्कार को उत्पन्न किये जिससे उनके चारों मुख से ऋग्वेद इत्यादि चार वेद प्रकट हुए जो नित्य हैं। ऐसे ज्ञानियों को भी ज्ञान देने वाले और उत्तम वागीश्वरी लक्ष्मी के पति श्री हरि हम पर प्रसन्न होंवे। पराशर ऋषिको ज्ञानोपदेश किए हुए तथा सृष्टि आदि दस लक्षणों से युक्त भागवत संहिता पुराण की रचना किए हुए ऋषिश्रेष्ठ वेदव्यास जी, मुझ पर प्रसन्न होवे।।22।।

देह इन्द्रिय इत्यादि को प्रेरणा करने वाले श्री हरि मुझ पर प्रसन्न होवें। इस पुराण के द्वारा सज्जनों के मन में निर्दुष्ट श्री हरि प्रकाशमान हुए। सर्व समर्थ श्री हरि पंचभूतों के द्वारा देहों का निर्माण करके उनमें असंग होकर आत्मा, अन्तरात्मा इत्यादि रूपों से वास करते हैं। इसलिए वह पुरुष कहलाते हैं। ग्यारह इन्द्रिय और पंच महाभूत इस प्रकार सोलह तत्वों में व्याप्त होकर शब्द इत्यादि सोलह विषय के सार को उपभोग करते हैं। दुःख का उपभोग नहीं करते हैं। वे नारायण मेरी वाणी को अलंकृत कर दें अर्थात् मैं जो कुछ कहूँ वह सरल, सरस और भावमय हो। तथा जिससे वे नारायण सन्तुष्ट हों।।23।।

ज्ञानरूप सोमरस का पान करने वाले ब्रह्मादि देवता श्री हरि के मुख कमल से उत्पन्न ज्ञानात्मक मधु का सदा आस्वादन करते रहते हैं। ऐसे जगत् कर्ता वासुदेव को नमस्कार है। उद्धव आदि सज्जीव श्री कृष्ण के मुख का सदा आस्वादन करते रहते हैं। ऐसे जगत् कर्ता वासुदेव को नमस्कार है। उद्धव आदि सज्जीव श्री कृष्ण के मुख कमल से निकले, ज्ञान मधु का पान किए ऐसे कंस संहारक श्रीकृष्ण को नमस्कार है। ब्रह्मा जी के मुख से निकले हुए भागवत पुराण को नारदादि ज्ञानी श्रवण किए हैं ऐसे ब्रह्मा जी को नमस्कार है। वेदव्यास जी नारद जी को यश देने के लिए श्री हरि के भक्त नारद से भागवत को जान लिए ऐसे ब्रह्म पुत्र नारद जी को नमस्कार है। वैश्म्पायन आदि ऋषिगण भारत आदि शास्त्र के रचयिता वेद व्यास जी से इस ग्रन्थ रूप मधु का पान किए ऐसे नारायण के अवतारभूत वेद व्यास जी को नमस्कार है।।24।।

हे परीक्षित् राजा, नारद जी ने ब्रह्मा जी से यही प्रश्न किया था। तब ब्रह्मा जी ने साक्षात् श्री हरि से श्री मद्‌भागवत् का जो उपदेश ग्रहण किया था उसी को नारद जी को सुनाया।।25।।

।। इति श्रीमद्‌भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः।।

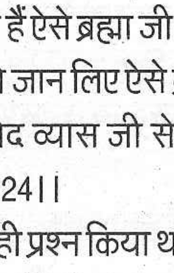

अध्याय - 5
अथ पञ्चमोऽध्यायः

इस अध्याय में ब्रह्मा और नारद जी की कथा के निमित्त से ग्रन्थ के आरम्भ में प्रतिज्ञा किया हुआ जगज्जन्मादि कारण रूप लक्षण केवल श्री विष्णु में ही है। इसका विस्तार से प्रतिपादन करते हैं। नारद जी ब्रह्मा जी से प्रश्न करते हैं।

हे ब्रह्म देव! आप सृष्टि कर्त्ता हैं। सब से पहले आप उत्पन्न हुए हैं। रुद्रादि देवताओं के लिए भी आप देवता हैं। आप को नमस्कार है। श्री हरि को यथार्थ रूप से बतलाने वाले ज्ञान का उपदेश कीजिए।।1।।

यह जगत प्रत्यक्ष दिखाई देता है इसलिए सत्य है यह श्री हरि के आवास करने की प्रतिमा है। श्री हरि इसके लिए मूल (भूमि जैसे) आधार हैं। श्री हरि ने ही इस की सृष्टि किया है। श्री हरि ही (पीठ जैसे) अवान्तर आधार हैं। वही सर्वोत्तम हैं। जगत रक्षक हैं। समस्त जगत उनके अधीन है। ऐसे श्री हरि के तत्व को भली भाँति समझाइये।।2।।

आप यह सब कुछ जानते हैं। आप भूत, भविष्य वर्तमान काल के विषयों के लिए नियामक हैं। हाथ में रखे हुए आँवले के समान आप इस जगत को जानते हैं।।3।।

आप श्री हरिके अनुग्रह के पात्र होने से आप को विशेष ज्ञान है। आप के लिए भी श्री हरि ही आधार हैं। आप से भी उत्तम श्री हरि हैं। वह आप के भी स्वामी हैं। इसलिए आप श्री हरि के विषय में जानते ही हैं। इस पर भी मुझे एक संशय है। आप अपनी इच्छा से अकेले ही चराचर जगत की पंचभूतों के द्वारा सृष्टि करते हैं इसमें आप को कोई आयास नहीं है।।4।।

जैसे मकड़ी तन्तु को बाहर निकालती है वैसे ही आप वस्तुओं की सृष्टि करके पालन करते हैं।।5।।

आप को किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं है। आप से भिन्न इस जगत के लिए कारण वस्तु मुझे यहाँ दिखाई नहीं पड़ती है। आप से ऊपर अथवा समान कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है। शब्द, रूप, गुण वाले स्थूल अथवा सूक्ष्म वस्तुयें आप से ही सृष्टि किए गए हैं। आप से भिन्न किसी से सृष्टि हुई है कहना निन्दित सा दिखाई पड़ता है।।6।।

परन्तु आप एकाग्र मन से अतिशय तप किए हैं इससे मुझे यह जान पड़ता है कि आप को भी सामर्थ्य देने वाला अन्य कोई है। आप का यह कार्य हम सब को संशय ही उत्पन्न करता है। आप सर्वज्ञ हैं इसलिए आप से पूछ रहा हूँ। आप मेरे संशय को दूर कीजिए।।7,8।।

इस प्रकार नारद जी हरि सर्वोत्तमत्व को स्वयं जानने पर भी अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए इस प्रकार प्रश्न किये हैं। ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया- कि हे वत्स! तुम भगवद्भक्त हो। श्री हरि के पराक्रम को बतलाने के लिए ही तुमने प्रश्न किया है। तुम इस विषय को जानने पर भी लोक के उपकार के लिए यह प्रश्न किए हो। तुम्हारा यह प्रश्न उत्तम है।।9।।

मैं अकेला ही सृष्टि करता हूँ ऐसा तुम्हारा वचन क्या मिथ्या नहीं है। हे नारद! इस प्रकार से तुम कहे हो,

मेरे मन को दुःख हुआ है। तुम्हारा यह वचन सही नहीं है। मेरे से उत्तम और नियामक श्री हरि का होना तुम नहीं जानते हो इस लिए ऐसा कहे हो। इस जगत की सृष्टि करने की सामर्थ्य मुझे उनके अनुग्रह से प्राप्त हुआ है। इससे अधिक स्वतंत्र सामर्थ्य मुझे नहीं है।।10।।

श्री हरि अपने सामर्थ्य से इस जगत को प्रकाशित किए हैं। उसी जगत को मैं प्रकाश कर रहा हूँ। जैसे कि ये सूर्य अग्नि, चन्द्र तथा तारे श्री हरि से प्रकाशित होकर प्रकाश देते हैं उनके प्रकाश के लिए वहीं कारण हैं।।11।।

मैं ही स्वतंत्र हूँ ऐसा जानना महा अपराध है। इस पाप को दूर करने के लिए श्री हरि को नमस्कार करना चाहिए। जिनकी इच्छा से मोहित लोग अस्वतंत्र मुझे स्वतंत्र सृष्टि कर्त्ता जानते हैं ऐसे श्री हरि को नमस्कार है। श्री हरि ही मुझसे सृष्टि कर्त्ता जानते हैं ऐसे श्री हरि को नमस्कार है। श्री हरि ही मुझसे सृष्टि कार्य कराते हैं। जैसे राम से छोड़ा हुआ बाण रावण का संहार किया इसमें राम ही मुख्य कर्ता हैं। वैसे ही श्री हरि ही मुख्य कर्ता है। श्री हरि की इच्छा ही मुख्य माया है। प्रकृति अमुख्य माया है। जीवों को बाँधने की शक्ति अमुख्यतम माया है इस प्रकार माया तीन प्रकार की है।।12।।

श्री हरि के सामने ठहरने का धैर्य माया में नहीं है और वह लज्जित होती है। यह माया चित् प्रकृति से अभिमन्यमान "**शैवली**" माया कहलाती है जो जीव स्वरूपाच्छादिका है जिससे पूर्ण मोहित होकर लोग अपने को ही स्वतंत्र समझते हैं इसको नाश करने के लिए श्री हरि का ही ध्यान करना चाहिए।।13।।

पृथ्वी इत्यादि द्रव्य, काल, सात्विक स्वभाव, सुख दुःख का आश्रय जीव इनमें से कोई भी श्री हरि से अधिक नहीं है। यह सब श्री हरि से भिन्न हैं। इनमें कोई भी उनके सदृश भी नहीं है। श्री हरि एक ही जगत कर्त्ता हैं। वेद वाक्यों में जो कहा गया है कि सृष्टि के आदि में ब्रह्म एक ही था उसका अर्थ श्री हरि ही है।।14।।

श्री हरि ही सर्वोत्तम हैं। देवता श्री हरि के अवयवों से उत्पन्न होने से उनसे अवर हैं। लोगों की रक्षा करने वाला श्री हरि ही हैं। यज्ञ यागादि में भी इन्द्रादि देवताओं से भी श्री हरि ही उत्तम तथा पूज्य हैं।।15।।

योगाभ्यास से प्राप्त होने वालों में श्री हरि ही उत्तम हैं। तप के द्वारा जिनकी आराधना की जाती है उनमें श्री हरि ही श्रेष्ठ हैं। ज्ञान द्वारा जानने योग्य वस्तुओं में वही उत्तम हैं। वही सबके लिए मुख्य आश्रय हैं।।16।।

वे ही सब को देखते हैं। वे ही सब के नियामक हैं, निर्विकार हैं, सब के स्वामी हैं। उनके और उनके अधीन श्री लक्ष्मी से प्रेरित होकर उनसे उत्पन्न हुआ मैं इस जगत की सृष्टि करता हूँ।।17।।

हे नारद! आप ने प्रश्न किया था कि गुणों को क्रम से स्वीकार करता है या एक साथ स्वीकार करता है इसका उत्तर इतना ही है श्री हरि प्रकृति के गुणों से परे हैं। प्रकृति के गुण सदा उन श्री हरि के अधीन हैं। मूल सृष्टिकाल में उनको (गुणों को) क्रम से कारण बनाकर सृष्टि स्थिति और संहार करते हैं। दैनन्दिन सृष्टि में एक ही काल में सब को कारण बनाकर तीनों कार्यों को एक ही काल में करते हैं। (ब्रह्म कल्प की पहली सृष्टि मूल सृष्टि कहलाती है, ब्रह्मा जी के दिन कल्प की सृष्टि को दैनन्दिन सृष्टि कहते हैं)।।18।।

यह शरीर तामस अहंकार का कार्य है। मन और ज्ञानेन्द्रिय वैकारिक अहंकार के कार्य हैं। वागेन्द्रिय इत्यादि कर्मेन्द्रिय तैजस अहंकार के कार्य हैं। प्रकृति के गुण इन सब को आश्रय करके रहते हैं। यदि जीव अभिमान रहित हो तो उसे प्रकृति का संबंध नहीं होता है। यह स्वभाव से ज्ञानी है। ऐसे जीवों को श्री हरि प्रकृति के गुणों को निमित्त करके अपनी इच्छा से बाँधते हैं।।19।।

अर्थात् सब जीव कार्य और कारण के लिए स्वयं को ही कर्त्ता जानकर अहंकार वाले होते हैं। ऐसे महा महिमा वाला श्री हरि अधोक्षज हैं। इस पर भी देह इन्द्रिय और मन को यम, नियम आदि साधनों के द्वारा ज्ञान के साधन जो जीव बना लेते हैं उनको अपना स्वरूप दर्शन कराते हैं। यह श्री हरि ही मुक्त जीवों के लिए और मेरे लिए नियामक हैं।।20।।

मेरी आयु (ब्रह्मा की आयु) परकाल "श्री हरि के लिए एक निमिष मात्र है। इस काल के अन्त में लक्ष्मीपति अपनी इच्छा से काल में, जीवों के अदृष्ट में सात्विक, राजस और तामस स्वभाव में, प्रकृति में विशेष रूप से प्रवेश करके उनके शक्ति को व्यक्त करते हैं यह सब अनादि काल से उसके अधीन हैं। अनेक रूपों से बिहार करने के लिए श्री हरि इन सब को सृष्टि करने में उपयोग करते हैं।

यत्रान्यहेत्वभावः स्यात् ईश्वरेच्छादिना बिना।
तादिच्छा हि यदृच्छा स्यात् अतस्तत्र यदृच्छया।।

जहाँ श्री हरि की इच्छा छोड़कर अन्य इच्छा आदि कारण नहीं है वहाँ पर यह इच्छा कहने से ईश्वर की इच्छा ही है।

काल कर्म स्वभावादि नित्ययेशेच्छया सदा।
प्राप्तमेव विशेषेण सृष्ट्यादावुन्नयत्यजः।।
ईशो बह्वीः पुरः सृष्ट्वा तत्रैव बहुरूपताम्।
तत्तन्नियामकतया प्राप्तुं कालाद्युपाददे।।

इन प्रमाणों के द्वारा सृष्टि का मायामय न होने का सिद्ध होता है।।21।।
तब तमोगुण रजोगुण के साथ मिल जाता है। इसको गुण व्यतिकर कहते हैं। काल, प्रकृति, ब्रह्मा जी का अदृष्ट विकार स्वभाव वाली मूल प्रकृति इन सब में श्री हरि प्रवेश करके क्षोभ उत्पन्न किये। जिससे ब्रह्मा जी का शरीर कहलाने वाला महत्तत्व उत्पन्न हुआ।

गुण काल स्वभावेभ्यः ईशेनाधिष्ठितत्वतः।
जगदादिर्महत्तत्त्वमभूत्तस्येच्छया हरेः।।

इन प्रमाणों से उपरोक्त विषय स्पष्ट होता है।।22।।

काल कर्म स्वभाव से विकार होकर सत्व गुण से युक्त रजोगुण से वृद्धि पाकर महत्तत्त्व से अहंकार तत्व उत्पन्न हुआ। यही पंचभूत ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के लिए कारण है। इस अहंकार तत्व के तीन भेद हैं। वैकारिक तैजस और तामस।।23,24।।

अहंकार तत्व रुद्र देवता का शरीर है। रुद्र देवता को पंचभूत, कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मनोभिमानी, दिगभिमानी देवताओं को सृष्टि करने की शक्ति हैं। काल, कर्म और स्वभाव को निमित्त करके श्री हरि ने तामस अहंकार से आकाश की सृष्टि किया।।25।।

इसका गुण शब्द है। आकाश से श्री हरि ने स्पर्श गुण से युक्त वायु की सृष्टि किया।।26।।

इस वायु का आकाश से संबंध होने से शब्द रूप गुण भी इसमें है। इसी वायु को प्राण, ओज, सह और बल कहते हैं। इस वायु से शब्द और स्पर्शगुण युक्त तेज की सृष्टि किया ।।27।।

इस तेज से श्री हरि ने रस, शब्द, स्पर्श और रूप से युक्त जल की सृष्टि किया।।28।।

इस जल से गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द से युक्त पृथ्वी की सृष्टि किया।।29।।

वैकारिक अहंकार के सात्विक भाग से अन्तःकरण कहलाने वाले मन की सृष्टि किया। दिग्देवता वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनी देवता, अग्नि इन्द्र, विष्णु, (उपेन्द्र), मित्र, दक्ष प्रजेश्वर की सृष्टि किया। ये क्रमशः श्रोत, स्पर्श, चक्षु, जिह्वा घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ के ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों के अभिमानी देवताओं की सृष्टि किया।।30।।

तैजस अहंकार से श्री हरि ने दस इन्द्रियों की सृष्टि किया। इसी तैजस अहंकार से ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और इनको शक्ति देने वाली बुद्धि और उसके अभिमानी उमा देवी को तथा कर्म करने की शक्ति देने वाले अहंकारिक प्राण की श्री हरि ने सृष्टि किया।।31।।

यह सब ब्रह्माण्ड के बाहर की सृष्टि है। उपरोक्त तत्वों में से कोई भी ब्रह्माण्ड का निर्माण करने में असमर्थ हुए।।32।।

तब तत्वाभिमानी देवता श्री हरि की स्तुति किये। तब श्री हरि प्रसन्न होकर उन तत्वों में प्रवेश किए और उन तत्वों की शक्ति को प्रेरणा दी तब पंचभूतों के परस्पर संयोग से ब्रह्माण्ड की सृष्टि किया। यही जीवों को संसार रूप भय को उत्पन्न करने वाला है।।33।।

श्री हरि काल, कर्म, स्वभावों में रहकर उनकी शक्ति को देने वाले हैं। इसलिए वह जीवों से भिन्न हैं। एक हजार वर्ष तक जल में रहने वाले ब्रह्माण्ड में प्रवेश करके उपरोक्त तत्वों के साथ वहाँ व्यक्त हुए। उस रूप से समस्त जीवों के प्रधान ब्रह्मा जी की सृष्टि किया।।34।।

इस प्रकार ब्रह्माण्ड की सृष्टि करके व्यक्त हुए श्री हरि को पुरुष कहते हैं। इनके अनन्त उरु, पैर, बाहु, नेत्र, मुख और सिर थे।।35।।

पचास करोड़ योजन विस्तृत इस ब्रह्माण्ड के उतना ही बड़ा देह वाला पूर्णानन्दमय उस पुरुष नामक के उरु इत्यादि अवयवों को आश्रय करके नीचे के सात लोक, और जाँघ के ऊपर के अवयवों को आश्रय करके ऊपर के सात लोकों की सृष्टि होना ज्ञानी लोग कहते हैं।।36।।

उनके मुख से ब्राह्मण वर्ण, बाहुदण्ड से क्षत्रिय वर्ण, दोनों उरुओं से वैश्य वर्ण और दोनों पादों से शूद्र वर्ण उत्पन्न हुए। उस पुरुषनामक श्री हरि के दोनों पादों से भूलोक, नाभि से भुवर्लोक, हृदय से स्वर्ग लोक, और वक्षःस्थल से महर्लोक की रचना हुई। उनकी ग्रीव से जनलोक, नेत्र से तपो लोक और मस्तक से सत्य लोक की रचना हुई।।37,38,39।।

उस परम पुरुष की कटि से अतल लोक, दोनों उरुओं से वितल लोक, दोनों घुटनों से सुतल लोक और जाँघों से तलातल लोक की सृष्टि हुई। दोनों गुल्फों से महातल लोक एड़ियों और पैर के अग्रभाग से रसातल लोक की सृष्टि हुई। इन लोकों की सृष्टि करके उनमें व्याप्त होकर उनके लिए आधार बने। इन सबसे उत्तम होने से इस विराट पुरुष को लोकमय कहकर ज्ञानी लोग उपासना करते हैं।।40,41।।

कुछ अधिकारी लोग पैरों से भूमि पर्यंत, नाभि से अन्तरिक्ष लोक और शिर से स्वर्ग की सृष्टि होना उपासना करते हैं।।42।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः।।

अध्याय - 6
अथ षष्ठोऽध्यायः

यह जगत आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीन प्रकार का है। यह समस्त जगत श्री हरि के अवयवों से ही उत्पन्न हुआ है। उस महापुरुष के मुख से वागेन्द्रिय और उसके अभिमानी देवता अग्नि, इस पुरुष के सप्त धातु से गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती, तृष्टुप, और जगती छन्दस तथा उनके अभिमानी देवता उत्पन्न हुए और उसका आश्रय करके रहते हैं। उनकी जिह्वा से हव्य, कव्य, अमृत कहलाने वाले समस्त अन्न तथा मधुर आदि रसों की उत्पत्ति हुई।।1।।

उनकी घ्राणेन्द्रिय से समस्त प्राणी और मुख्य वायु, गन्ध (सुगन्ध, दुर्गन्ध) और दोनों अश्विनी देवता उत्पन्न हुए।।2।।

उनके नेत्रों में रूप तेज, द्युलोक और चक्षुरिन्द्रिय अभिमानी सूर्य उत्पन्न हुए। उनके कान से दिग्देवता, पवित्र करने वाले तीर्थ अथवा शास्त्र, आकाश और शब्द की उत्पत्ति हुई।।3।।

उनका शरीर श्रेष्ठ वस्तुओं और उनमें रहने वाले बलांश के लिए उत्पत्तिस्थान है और उनके लिए आश्रय भी है। श्री हरि की त्वगेन्द्रिय के लिए स्पर्शरूप गुण के लिए, उसके अभिमानी वायु के लिए, समस्त यज्ञों के लिए उत्पत्तिस्थान है।।4।।

उनके रोम का मूल भाग सब वृक्ष जाति के जनक हुए, जिनसे कि यज्ञ के कार्य सम्पन्न होते हैं। यज्ञ के अतिरिक्त कार्यों के लिए इनके रोम का आन्तरिक भाग और इनके केश मेघ के, उनकी दाढ़ी-मूछ बिजली के, हाथ पैर के नाखून शिला और लोहे के उत्पत्तिस्थान हुए। उनकी बाहु सब का कल्याण करने वाले लोकपालों (ब्राह्मण वैश्य के अतिरिक्त) के जन्मदाता हुए। उन भगवान का पराक्रम भू भुवः स्वतः ये तीन लोक, क्षेम और मोक्ष का आश्रय हुआ।।5,6।।

उन नारायण के चरण सभी कामनाओं और वर के आधार हुए।।7।।

भगवान का शिश्न जल, वीर्य सृष्टि, पर्जन्य, दक्ष प्रजापति और शिश्नेन्द्रिय के लिए सन्तान प्राप्ति के लिए किए जाने वाले सम्भोग से जायमान आनन्द के लिए और गुह्येन्द्रिय के लिए इनका गुह्येन्द्रिय जनक हुआ।।8।।

उनकी गुदा यम, मित्र, मलत्याग, पायुइन्द्रिय के लिए हिंसा, निऋति नामक देवता, मृत्यु और नरक अपानद्वार का उत्पत्तिस्थान हुआ। उन भगवान की पीठ पराजय, अधर्म (पाप) और उनके अभिमानी कलि तथा तमोगुण का आश्रय हुई।।9।।

उनकी नाड़ियां नदियों और नदों की आश्रय हुई और उनकी हड्डियाँ संसार के पर्वतों का आश्रय हुआ। उनका उदर मूल प्रकृति, रस, समुद्र जीव समुदाय और संहार कार्य के लिए उत्पत्ति तथा आश्रय स्थान हुआ। मन के लिए उनका हृदय आश्रय हुआ।।10।।

उन श्री हरि का मध्य देह पुण्यकर्म, धर्माभिमानी धर्म देवता, ब्रह्मा कहलाने वाला मैं, तुम (नारद) सनकादि कुमारों, रुद्र, विज्ञानतत्व और उसके अभिमानिनी सरस्वती देवी इन सब के लिए उत्पत्ति स्थान और आश्रय है।।11।।

मैं तो श्री हरि से नियुक्त होकर सृष्टि करता हूँ। श्री हरि सर्व स्वतंत्र हैं। पुरुष सूक्त में इसी का वर्णन किया गया है। उसी को विस्तार से बताते हैं। हे नारद! मैं, तुम, रुद्र, सनकादि, देवता, असुर, नाग, मृग, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, पशु, पितृगण, सिद्ध विद्याधर, चरण, जल, स्थल और आकाश में संचार करने वाले प्राणी, ग्रह, नक्षत्र, विद्युत तथा मेघ आदि, और अधिक क्या कहूँ हम से लेकर तृण पर्यन्त तथा भूत, भविष्य और वर्तमान समस्त वस्तु श्री हरि के अधीन हैं। वह सर्वत्र व्याप्त हैं। यह समस्त वस्तु समस्त कालों में श्री हरि से भिन्न है।।12,13,14,15।।

श्री हरि सब के हृदय में रहकर अन्दर और बाहर रहने वाली वस्तुओं को देखते हैं। सब को प्रेरणा करने वाले वही हैं और वह प्राण कहलाते हैं।।16।।

इसी प्रकार से श्री हरि ब्रह्माण्ड के अन्दर और बाहर के समस्त पदार्थों को देखते हैं। अमुक्त प्रपंच से श्री हरि भिन्न हैं। श्री हरि मुक्तों से भी भिन्न हैं। नित्यमुक्त लक्ष्मी देवी, अव्यक्ततत्व, महत्तत्व इत्यादि तत्व और उनके अभिमानी देवता ब्रह्मा इत्यादि जीव समुदाय इन सबसे भगवान भिन्न और उत्तम है। अनादि अनन्त काल से भगवान ऐसे ही हैं और भविष्य में अनन्त काल तक ऐसे ही रहेंगे। अनन्त मुक्त समुदाय के सर्वाभीष्ट को प्रदान करने वाले और उनके नियामक हैं।।17।।

उनकी यह महिमा अन्य किसी को नहीं है। कोई भी इनकी महिमा का अतिक्रमण करने वाला नहीं है। जैसे जुगुनू प्रलयाग्नि के भिन्नांश होने से प्रलयाग्नि की महिमा को अतिक्रम नहीं कर सकता है ऐसे ही परमात्मा के भिन्नांश ये जीव समुदाय परमात्मा की महिमा का अतिक्रम नहीं कर सकते हैं। परमात्मा के स्वरूपांश और भिन्नांश ऐसे दो अंश हैं। श्री हरि के मत्स्यादि रूप स्वरूपांश हैं। जीव भिन्नांश है। किंचित सादृश्य होने से अंश कहलाते हैं परन्तु यह भिन्न है। स्वरूपांश तो सम्पूर्ण सादृश्य वाला है। लक्ष्मी और ब्रह्मादि समस्त जीव इनके भिन्नांश होना तत्त्वज्ञानी कहते हैं।।18।।

श्री हरि अपने एक अन्य रूप से अनन्तासन, वैकुण्ठ और श्वेतद्वीप इन तीन स्थानों को धारण किए हैं। इन तीन स्थानों में रहने वाले रूप इनके स्वरूपांश हैं। सज्जीव अपना साधन सम्पूर्ण करके इन लोकों में जाते हैं। यह लोक भूमि आदि तीनों लोकों के बाहर हैं।।19।।

श्री हरि, यज्ञ नाम से इस ब्रह्माण्ड के अन्दर दूसरे रूप से रहते हैं। यह स्थान इन्द्र लोक के निकट है। गृहस्थ लोग इनकी होमादि कर्मों से सेवा करते हैं। ध्रुव लोक इत्यादि लोकों में रहने वाले रूपों की सन्यासी लोग सेवा करते हैं। इन रूप से श्री हरि देवता और मनुष्यों में व्याप्त हैं। ज्ञानी और अज्ञानियों में व्याप्त हैं। समस्त जीवों के लिए श्री हरि आश्रय हैं। इसी प्रकार से मत्स्यादि रूप भी स्वरूपांश हैं और सर्वत्र व्याप्त हैं। श्री हरि अपने से सृष्टि किए हुए ब्रह्माण्ड के भीतर शेषशायी होकर विराट नाम से व्यक्त हुए। इनके नाभि कमल से चतुर्मुख ब्रह्मा ने एक और रूप से जन्म लिया। (पहला जन्म विरिंचि रूप से है)। यह जीव समुदाय के लिए इन्द्रियों के लिए, शब्द

इत्यादि विषयों के लिए और सब के नियामक देवताओं के लिए भी आधार है।।20,21।।

जिस प्रकार सूर्य अपने किरणों से समस्त आकाश में व्याप्त होकर उसको भी अतिक्रम किए हैं वैसे ही ब्रह्माजी ज्ञान, भक्ति इत्यादि गुणों से समस्त जीवों को अतिक्रम किए हैं। हे नारद! श्री हरि के नाभि कमल से ब्रह्मा के नाम से जन्म लिये तब मैंने उनकी पूजा करना चाहा तो कोई पूजा सामग्री न मिली।।22।।

तब ब्रह्माण्ड में व्याप्त श्री हरि अपने अवयवों द्वारा पूजा सामग्रियों की सृष्टि करके स्वयं उनमें व्याप्त हुए। इसलिए उनका अवयव ही मेरी यज्ञ सामग्री बनी। अग्निष्टोम आदि याग, यज्ञ के लिए आवश्यक पशु, अश्वत्थ आदि वृक्ष, कुश, यज्ञ भूमि, बसन्त औषधियाँ आदि काल, सुवर्ण आदि धन, जौ, चावल आदि औषधियाँ घृत आदि स्नेह पदार्थ क्षीर आदि रस पदार्थ, लोहा, मिट्टी, गंगा आदि तीर्थ, ऋक्, यजुस्साम आदि वेद, चातुर्होत्र कर्म देवता और याग के नाम, मंत्र, दक्षिणा, व्रत, देवता, तारतम्य पाठयक्रम, और कर्मक्रम, कल्पसूत्र, मनस्संकल्प सूत्रग्रन्थ, यज्ञ के फल स्वर्गादि लोक, मति, आस्तिक्य बुद्धि पाप प्रायश्चित्त, समर्पण यह समस्त यज्ञ सामग्री मुझे उनसे ही प्राप्त हुई। इस प्रकार यज्ञ की सामग्री मुझे उनसे ही प्राप्त हुई।।23,24,25,26।।

श्री हरि के अनुग्रह से उनके सन्निधान से युक्त प्राप्त सामग्री द्वारा श्री हरि से प्रेरित होकर उनकी आराधना किया।।27।।

मेरे पश्चात् प्रजेश्वर एकाग्रचित्त से व्यक्त और अव्यक्त श्री हरि की यज्ञ के द्वारा सेवा किए।।28।।

तत्पश्चात् बसन्त आदि कालों में मनु, पितृगण, ऋषिगण, देवता, प्रहलाद इत्यादि, दैत्यकुल में उत्पन्न चक्रवर्ति तथा अन्य भगवद्भक्तों ने श्री हरि की यज्ञों द्वारा सेवा किया (यही पुरुष सूक्त का अर्थ है।)।।29।।

श्री हरि प्रकृति के गुणों को उपादान कारण बनाकर जगत की सृष्टि करते हैं। यह सृष्टि श्री हरि में ही आश्रय किया हुआ है।।30।।

श्री हरि की आराधना करने से मुझे यह ज्ञान हुआ। श्री हरि से ही नियुक्त होकर मैं सृष्टि करता हूँ। उन्हीं के अधीन होकर रुद्र संहार करते हैं। सृष्टि, संहार और पालन की शक्तियाँ श्री हरि की ही हैं। ज्ञान, बल और क्रिया शक्तियाँ भी उन्हीं की हैं। ऐसी शक्ति वाले श्री विष्णु ही जगत का पालन करते हैं।।31।।

हे नारद! आप के प्रश्नों का उत्तर मैंने दे दिया। यह व्यक्त और अव्यक्त महत्तत्वादि समस्त जगत श्री हरि के अधीन हैं। मुझे किसी काल में कहीं भी, किसी विषय में भी क्यों न हो स्वातंत्र्य नहीं है। इस प्रकार श्री हरि के अधीन इस जगत को औपचारिक रूप से हरि से अभिन्न होना कहते हैं जिसकी सत्ता जिसके अधीन है उसे उसी नाम से पुकारते हैं जैसे दही बेचने वाले को हे दही इधर आओ कहते हैं।।32।।

श्री हरि के अनुग्रह का पात्र होने से ही मेरी वाणी असत्य (व्यर्थ) नहीं होती। मेरे मुख से असत्य वचन निकलते ही नहीं हैं। मेरे मन में व्यर्थ विचार नहीं आते हैं। मेरी इन्द्रियाँ भी असत् पथ पर नहीं चलतीं। इसका कारण यही है कि मैं भक्तिपूर्वक सदा श्री हरि का हृदय में ध्यान करता हूँ। साधन करने के लिए श्री हरि में भक्ति करके उनका अनुग्रह प्राप्त करना चाहिए।।33।।

समस्त प्रजेश्वरों का पति, वेद से (श्री हरि को छोड़कर) प्रतिरोध तपस्वी श्रेष्ठ कहलाने वाला मैं एकाग्रचित्त से विचार करने से मेरे लिए कारणीभूत श्री हरि को पूर्ण रूप से नहीं जान सकता हूँ उनकी अनन्त महिमा है।।34।।

उनके पाद कमल का जो आश्रय किए हैं वह इस संसार बंधन से छुटकारा पाकर अपने स्वरूपभूत आनन्द का अनुभव करते हैं। अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करते हैं। मंगलदायकों में अत्यन्त मंगलदायक श्री हरि के उन चरणों को मैं प्रणाम करता हूँ। उनकी अनन्त महिमा को वह एक ही जान सकते हैं मैं, अथवा मुख्य वायु उनकी महिमा को पूर्ण रूप से नहीं जान सकते हैं तो अन्य लोग कैसे जान सकते हैं। ऐसे श्री हरि को नमस्कार करता हूँ।।35।।

मेरी भाँति तुम, रुद्र देवता, और अन्य देवता कोई भी पूर्ण रूप से नहीं जान सकते हो। श्री हरि के बंधक शक्ति से हमारी बुद्धि मोहित हुई है। उनके अनुग्रह से ही हम अपनी-अपनी योग्यतानुसार उनको जानते हैं।।36।।

हम, ब्रह्मादि चेतन, श्री हरि के अवतार के चरित्र का गान करते हैं किन्तु पूर्णरूप से उनको जान नहीं सकते हैं। सर्वोत्तम श्री हरि की महिमा ही ऐसी है। जो कुछ हम जानते हैं उनके अनुग्रह से ही जानते हैं।।37।।

वही सबके लिए कारण हैं। वह अजन्मा हैं। वह अपनी इच्छा से प्रति कल्प में मत्स्यादि अवतारों को लेते हैं। असुरों को संहार करके देवताओं की रक्षा करते हैं। असत्शास्त्रों के द्वारा यथार्थ ज्ञान जब नष्ट होता है तब यही श्री हरि वेदान्त शास्त्रों की रचना करके (ब्रह्म सूत्रादि शास्त्र की रचना) अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट करते हैं।।38।।

यह शुद्ध और अद्वितीय हैं। ज्ञान स्वरूप हैं। समस्त जीवों में बिम्बरूप में स्थित हैं। निरतिशय आनन्द पूर्ण हैं। देश, काल, और गुण से पूर्ण हैं। उत्पत्ति और नाश रहित हैं। विकार रहित हैं। इनमें और इनके गुणों से भेद नहीं है। किसी निमित्त से भी उनमें विकार नहीं हो सकता है। ब्रह्मादि ज्ञानीजन भगवान की इस प्रकार से उपासना करके प्रत्यक्ष दर्शन करते और आनंन्दित होते हैं। इस प्रकार श्री हरि को जानने से ही कुतर्क के द्वारा अशुद्ध हुआ जड़ मन भुने हुए बीज के समान निर्वीर्य हो जाता है। तत्पश्चात् संसार के लिए कारण कहाँ है। श्री हरि के तत्व ज्ञान का मुख्य फल ही मोक्ष है। श्री हरि का निर्दुष्ट होना शास्त्रों के द्वारा जानना चाहिए। कुतर्कों के द्वारा जब धर्म नष्ट होता है तब सच्छास्त्रों की रचना करके ज्ञान की स्थापना करते हैं। मत्स्यादि रूप उनके स्वरूपाँश हैं। ज्ञानियों का प्रत्यक्ष ही इसमें प्रमाण हैं।।39,40।।

सर्वोत्तम श्री हरि का पहला अवतार पुरुषावतार है। काल, स्वभाव, प्राण, मूल प्रकृति, मन, पंचभूत ब्रह्माण्ड, सत्वादिगुण, नेत्र इत्यादि इन्द्रिय, मैं (ब्रह्मा), रुद्र, गरुड़, इन्द्र इत्यादि देवता, दक्षादि प्रजेश्वर, आप जैसे परमहंस स्वर्ग, अन्तरिक्ष, मनुष्य, लोकाधिपति, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, उरग, नाग, ऋषि, पितर, सिद्ध भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड-जलजन्तु, मृग, पशु, इत्यादि समस्त स्थावर जंगम यह सब सर्वव्यामी श्री हरि के अधिष्ठान हैं (प्रतिमा) हैं। यह स्वयं उनके स्वरूप नहीं हैं। संसार में जितने भी तेजयुक्त, ओजस्वी, बलवान, सुन्दर, लज्जा, क्षमा विभूतिसम्पन्न समस्त पदार्थ भगवान के आवास स्थान हैं।।41,।42,43,44।।

श्री हरि के अवतारों के स्मरण मात्र से संसार के कारणीभूत कर्म नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मादि ज्ञानीजन सदा इनकी उपासना करते हैं। आप भी उस मधुर रस का पान कीजिए। उनके अवतार तो अनन्त हैं। सब को तो कह नहीं सकते हैं फिर भी कुछ अवतारों के विषय में कहता हूँ।।45।।

।।इति श्री मद्भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे षष्ठोऽध्यायः।।

अध्याय - 7
अथ सप्तमोऽध्यायः

ब्रह्मा जी कहते हैं - यह श्वेत बाराह कल्प है उसमें श्री हरि पहला वाराह अवतार किए। उनका देह सच्चिदानन्दमय है। समस्त याग के सामग्रियों के लिए उत्पत्ति स्थान और उनका आधार है। ब्रह्मादि देवता जब उनकी स्तुति किए तब वह समुद्र में प्रवेश करके रसातल में रहने वाली भूमि को अपनी दाढ़ के दाँतों में रखकर आ रहे थे। हिरण्याक्ष नामक दैत्य ने उनको रोका। तब श्री हरि ने अपनी गदा से उनकी देह को चीरकर उसके कान के नीचे मुष्टि से प्रहार करके उसका संहार कर दिया।।1।।

जब उन्होंने रुचिनामक प्रजापति की पत्नी आकूती के उदर से अवतार लिया तो उनका यज्ञ नाम पड़ा। उस मन्वन्तर में वही स्वर्गाधिपति होकर इन्द्र पद पर रहे। उनकी पत्नी दक्षिणा नामक रमादेवी का रूप है। उनसे तुषित नामक उस मन्वन्तर के देवता उत्पन्न हुए। स्वायंभुव मनु राजा ने ईशावास्य इत्यादि वेद मंत्रों के द्वारा भगवान की स्तुति करके उन्होंने राक्षसों से आए हुए भय को दूर किया। भगवद् अर्पण बुद्धि से किए हुए कर्मों को यज्ञ रूप से स्वीकार करके शुभ फल को देने वाले भी यही हैं। यज्ञाभिमानी इन्द्र पुत्र को जो सम्पत्ति मिली है वह इन्हीं की उपासना से है। संसार के दुःख को दूर करके तथा तीनों लोकों का दुःख दूर करने से इनका नाम हरि है। इनका हरिनाम सार्थक है।।2।।

कर्दम प्रजेश्वर और उनकी धर्म पत्नी देवहूति से श्री हरि ने कपिल नाम से अवतार लिया। इनको नौ सहोदरी थी। कपिल भगवान ने अपनी माता को तत्व सांख्य रूप आत्म विद्या का उपदेश दिया। इस तत्वोपदेश के द्वारा सज्जनों के मन को परिशुद्ध करके उनको अपना लोक प्रदान किया।।3।।

अत्रि ऋषी ने श्री हरि को पुत्र रूप पाने के लिए तप किया, उससे प्रसन्न हो कर श्री हरि उनके पुत्र के रूप में दत्त नाम से अवतार लिए। उनकी सेवा करके कार्तिवीर्य इत्यादि राजा लोग अणिमादि सिद्धि को प्राप्त किए। इन सिद्धियों के द्वारा श्री हरि की सेवा किया। जिससे उनको ऐहिक और पारलौकिक दोनों फल प्राप्त हुए।।4।।

सृष्टि के आदि में इस विचित्र जगत की सृष्टि करने की इच्छा से तप किया। तब हमारी रक्षा के लिए श्री हरि ने विष्णु रूप से अवतार किया। तब तक सनकादियों का जन्म नहीं हुआ था। ज्ञानी जन पूर्व कल्प में अपने हृदय कमल में जो देखे थे वह प्रलय से तिरोहित हुआ। उस विष्णु ने उसी परमात्म विद्या का उपदेश मुझे किया। इस अवतार का मुख्य प्रयोजन जगत की रक्षा करना है।।5।।

दक्ष की पुत्री और यमराज की धर्मपत्नी मूर्ति के गर्भ से भगवान नर और नारायण इन रूपों से अवतार लिए। नर रूप से उसी नाम के यमधर्म राजा के पुत्र में अन्तर्यामी हुए। नारायण ने अपने ज्ञान के महात्म्य को इस जगत को बतलाने के लिए तपस्या किया। उनकी तपस्या को भंग करने के लिए कामदेव द्वारा प्रेषित उर्वशी आदि अप्सराएँ गईं। किन्तु उनकी तपस्या के प्रभाव से उत्पन्न अपने से अधिक सुन्दर स्त्रयों को देखकर वह उनकी

तपस्या नहीं भंग कर सकीं और लज्जित होकर वापस लौट गईं।।6।।

रुद्रादि देवता मन्मथ का दहन तो किए परन्तु अपने क्रोध को नहीं जला सके। यह कोप ही मन में काम के लिए कारण होता है। परन्तु यह क्रोध भी श्री हरि के मन में प्रवेश करने में भयभीत होता है। उनमें काम के लिए कहाँ अवकाश है। तब अप्सराएँ उनके तप को कैसे भंग कर सकती हैं।।7।।

राजा उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव बाल्यावस्था में ही अपनी विमाता (सौतेली माता) के वाग्वाण से विंधकर तपस्या करने के लिए बन को चले गए थे। मार्ग में नारद जी मिले और उनको मंत्र का उपदेश किया। उनके उपदेशानुसार तपस्या करने पर श्री हरि ने प्रसन्न होकर ध्रुव को दर्शन दिया। इस अवतार का नाम वासुदेव है। प्रसन्न हुए वासुदेव ने उस बालक ध्रुव को वह नित्य ध्रुव पद को प्रदान किया जिसकी सप्त ऋषियाँ स्तुति करते हैं।।8।।

वेन नामक राजा शास्त्र विधान को अतिक्रम करके दुष्ट मार्ग पर चले। मुझे उद्देश्य करके यज्ञ करो, मेरे से अन्य कोई परमात्मा नहीं है इस प्रकार सज्जनों की हिंसा करने लगे। पीड़ित ब्राह्मणों के शाप से उसका पौरुष और भाग्य नष्ट हो गया। मृत्यु के पश्चात् उसको नरक होने को सम्भव था। तब ऋषियों ने मृत वेन के देह के दाएँ बाहु का मंथन किया उससे पृथु राजा उत्पन्न हुए। ब्रह्मादि देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर श्री हरि ने जगत की रक्षा करने के लिए इस पृथु राजा में अपने पृथु नामक रूप से प्रवेश किया। भूमि को गो रूप मान कर अमृत इत्यादि द्रवों को जगत की रक्षा के लिए दुहा।।9।।

नाभि राजा की पत्नी मेरु देवी से ऋषभ नाम से अवतार लिया। यह स्वयं अपने आप को आधार है। अत्यन्त सुखात्मक देहेन्द्रिय वाले हैं। इनको बाह्य सुख की अपेक्षा नहीं है। सब में अन्तर्यामी हैं। निर्दुष्ट, गुणपूर्ण, अपने रूप को सदा देखते हैं। योगाभ्यास करने वाले परमहंस से आचरण किए जाने वाले व्रतों का आचरण करके इस लोक को उपदेश किया। परमहंस इस ऋषभ देव का ही आश्रय करके सद्गति को प्राप्त होते हैं।।10।।

हे नारद! जब मैं यज्ञ कर रहा था तब श्री हरि हयग्रीव रूप से व्यक्त हुए। वह किसी रूप से व्यक्त क्यों न हों वह अनन्तगुण और ऐश्वर्य से सम्पन्न रहते हैं। उनका सुन्दर रूप है। समस्त वेदों के विषय हैं। समस्त यज्ञ इन्हीं को उद्देश्य करके किए जाते हैं। समस्त देवताओं में अन्तर्यामी हैं। उनकी नासिका से निकलने वाला श्वास ही श्री हरि के गुणों को वर्णन करने वाले वेद और शास्त्र हैं। यही समस्त विद्याओं का उत्पत्तिस्थान है।।11।।

सृष्टि के आरम्भ में मैं वेदों का उच्चारण कर रहा था तब हयग्रीव नामक असुर ने उन वेदों का अपहार कर लिया था। तब श्री हरि ने मत्स्यरूप का अवतार करके उस असुर का संहार किया और वेदों को लाकर पुनः मुझे दे दिया। दूसरी बार मन्वन्तर के प्रलय में सप्तऋषियों के साथ स्तुति करते समय वैवस्वत मनु को दिखाई दिए। वे मत्स्य भगवान भूरूपनाव के और जगत के समस्त जीवों के आश्रय थे। इस प्रकार मत्स्यावतार से श्री हरि भयंकर प्रलय जल में विहार किये ।।12।।

जब देवता और दानव अमृत के लिए क्षीर समुद्र का मन्थन किए तब मन्दर पर्वत को मथानी बनाये थे। वह भार से डूब गया तब श्री हरि कूर्म देह को धारण करके उस पर्वत को अपनी पीठ पर धारण किये। जब वह विशाल पर्वत उनकी पीठ पर रूका हुआ देवताओं और दैत्यों के हाथों जोरों से घुमाया जा रहा था तो उसकी रगड़ से जैसे

उनके पीठ की खुजली मिट रही थी। इतना ही नहीं देवताओं ने रस्सी बनाए हुए सर्प में और दानवों में भी श्री हरि स्थित होकर मंथन कार्य को पूर्ण किये।।13।।

हिरण्यकशिपु से देवताओं को अत्यन्त भय था। उसको दूर करने के लिए श्री हरि ने नृसिंह रूप से अवतार लिया। उस समय मारे क्रोध के उनकी भृकुटी घूम रही थी और उन का मुख बड़ा ही भीषण दीखता था। दैत्यपति हिरण्यकशिपु गदा लेकर उन पर झपटा ही था कि नृसिंह भगवान ने उसे अपनी जाँघों के बीच दबा लिया और अपने तीखे नखों से उसकी छाती फाड़ डाली।।14।।

किसी समय एक गजराज को एक बलवान ग्राह ने पैर पकड़कर घसीटा। उस समय बहुत व्यथित होकर वह अपनी सूँड़ में एक कमल का पुष्प लेकर करुणापूर्ण वाणी में बोला हे आदि पुरुष! हे समस्त जीवों के स्वामी! हे पवित्र नाम! हे मंगलमय! आप इस संकट से मेरी रक्षा करें। उस शरणार्थी की आर्त वाणी सुनकर सर्वत्र व्याप्त श्री हरि गरुड़ पर बैठे हुए तापस नाम से वहाँ व्यक्त हुए और चक्र से ग्राह का मुख फाड़ हाथों से पकड़कर गजराज का उद्धार किया।।15,16।।

गुणों से सर्वोत्तम श्री हरि देवताओं का भाई बनकर दैत्यों के अहंकार को नाश करने के लिए वामन रूप से अवतार लिये। राजा बलि से तीन पाद पृथ्वी माँगकर तीनों लोक और चौदहों भुवनों को नाप लिया था। इसलिए इनका नाम त्रिविक्रम हुआ। सन्मार्ग पर चलने वाले सेवक पर विजय प्राप्त करने के लिए याचना ही एक उपाय है। इसी को बतलाने के लिए सर्व समर्थ श्री हरि ने ऐसा किया। वामन रूपी होने पर भी तीनों लोकों को नाप लेने से त्रिविक्रम कहलाए। अदिति के पुत्रों में सबसे छोटे थे परन्तु गुणों की दृष्टि से सब से अतिश्रेष्ठ थे। तीन पग के लिए भूमि कम पड़ने पर बलि ने अपना शिर उनके चरणों पर रखकर अपने आप को भी समर्पित कर दिया। इस प्रकार समर्पण करने पर उसे जो इन्द्र पद मिला वह अल्पफल है। श्री हरि के पवित्र चरणोदक को अपने सिर में धारण करने से उनको मोक्ष में आनन्दातिशय ही उत्तम फल है।।17,18।।

हे नारद! आप के अतिशय भक्ति से प्रसन्न हुए श्री हरि ने तुम्हें निमित्त करके सज्जीवों के मोक्ष के लिए कर्म ज्ञान और योग को तथा श्री हरि के यथार्थ ज्ञान को उत्पन्न करने वाले श्रीमद्भागवत का उपदेश किया। यही महिदासावतार है। इस कर्म और ज्ञान को विष्णु भक्त ब्रह्मादि देवता ही जान सकते हैं। अन्य अवैष्णव इसको नहीं जान सकते हैं।।19।।

श्री हरि ने राजराजेश्वर का अवतार करके स्वायंभुव इत्यादि मनुवों के वंश की रक्षा किये। दुष्ट राजाओं का निग्रह किये। धर्म और सत्य में निष्ठा रखकर उस मन्वन्तर के राजाओं में प्रवेश करके सर्वत्र बिना किसी रोक-टोक के अपना शासन चलाये।।20।।

स्वयं श्री हरि ही धन्वन्तरि रूप से अवतार लिये। उनके नाम स्मरण मात्र से ही देह में रहने वाले अनेक रोग दूर हो जाते हैं। इस अवतार के नाम से ही श्री हरि ने यज्ञ में हविर्भाग को स्वीकार किया। इन्होंने ही आयुर्वेद की रचना की।।21।।

क्षत्रिय राजा जब भूपालक होने के बजाय भूकण्टक बने सन्मार्ग को त्याग दिए ब्राह्मणों से द्रोह किये। इसके फल रूप में वे नरक की यातना के अधिकारी बने ऐसे राजाओं को नाश करने के लिए ही श्री हरि ने परशुराम

का अवतार लिया। उन्होंने तीक्ष्ण धार वाले अपने फरसे से इक्कीस बार क्षत्रिय वंश का समूल नाश किया। सबका संहार करने वाले तथा रुद्र देवता का संहार करने वाले श्री हरि पुरुषोत्तम के लिए यह कोई आश्चर्य नहीं है।।22।।

श्री हरि प्राण, श्रद्धा, इत्यादि कलाओं के लिए शक्ति प्रदान करने वाले हैं। पूर्ण आनन्दमय होने से सुन्दर मुखवाले हैं। इक्ष्वाकुवंश में यह अपने स्वरूपांश से रामचन्द्र के रूप में अवतार लिये। इस अवतार में अपने पिता दशरथ की आज्ञा का पालन करने के लिए अपनी पत्नी और भाई के साथ वन में निवास किये। उसी समय उनसे विरोध करके रावण दसशिर होने पर भी उनके हाथों मारा गया। सीता के वियोग को इस संसार को बतलाते हुए क्रोधाग्नि से युक्त उनकी दृष्टि से ही समुद्र का राजा कांप उठा और समुद्र के सभी जल जीव जलने लगे। तब समुद्र राजा ने श्री राम को जो लंका का नाश करने के लिए आए थे उनको मार्ग देकर कृतार्थ हुआ। रावण महापराक्रमी था। इन्द्र का वाहन ऐरावत उसके वक्षस्थल पर अपने दाँतों से जब प्रहार करने गया तब उसके दन्त ही टूट गए। तब दिग्विजयी रावण पराजित देवताओं को देखकर घमंड से फूलकर हँसने लगा। वही रावण सेना के साथ राम से युद्ध किया। श्री राम सीता को वापस ले जाने के लिए आए थे। उनके धनुष की टंकार सुनकर ही उसके प्राण और अहंकार चूर-चूर हो गए। राम के वाणों से उसका संहार हुआ।।24,25।।

श्री हरि कृष्णावतार में अनेक कार्य किए हैं। अन्य कोई ऐसे कार्य नहीं कर सकते हैं। साक्षात् विष्णु ही कृष्ण होने से ऐसे कार्य किए। अन्य लोगों के कर्म तो श्री हरि के अनुग्रह से ही होते हैं। अज्ञानी जन इसको जान नहीं सकते हैं। दैत्यों की सेना से पृथ्वी अत्यन्त पीड़ित हुई। इस भार को दूर करने के लिए श्री हरि अपने स्वरूपांश शुक्ल केश से राम के नाम से बलराम में प्रवेश करके तथा कृष्ण केश से स्वयं कृष्ण रूप से अवतार किया।।26।।

अभी दस दिन पूरे नहीं हुए थे तब पूतना के स्तनपान करके उसके प्राण का ही हरण किया। तीन महीने का शिशु अपने पैर से छकड़ा उलटा कर छकड़ा के रूप में रहने वाले शकटासुर का संहार किया। घुटनों के सहारे रेंगते रेंगते बड़े ऊँचे यमलार्जुन वृक्ष को मध्य में जाकर उनको गिरा दिया। यदि यह श्री हरि न होते तो क्या ऐसे कार्य अन्य कोई कर सकता था।।27।।

गोकुल में रहने वाले गो और गोपालाक यमुना नदी के विषमय जल को पीकर उनकी मृत्यु हो गई थी। तब श्री कृष्ण भगवान ने अपनी कृपापूर्ण दृष्टि से निहारकर पुनः जीवित किया। इस जल को शुद्ध करने के लिए उसमें बिहार किया और कालिय सर्प को वहाँ से निकाल दिया। एकाग्रचित्त से ध्यान करने वाले ब्रह्मादि देवता भी उनकी महिमा को पूर्णरूप से नहीं जान सकते हैं। एक समय दावाग्नि सर्वत्र फैलने लगी। गोकुल में रहने वाले कर्तव्यविमूढ़ होकर अपना नाश होने जा रहा है ऐसा जानने लगे। तब श्री कृष्ण ने बलराम के साथ आकर सब लोगों को आँख मूँदने को कहा और स्वयं दावाग्नि का पान कर लिया।।28,29।।

श्री कृष्ण भगवान की माता उसको बाँधने के लिए कोई भी रस्सी लाने पर उसके बाँधने में पर्याप्त नहीं हो सकीं। इससे स्पष्ट होता है कि उनके सामर्थ्य को कोई नहीं जान सकते हैं। बहुत देर से दूध न पिया हुआ अपने शिशु को यशोदा ने दूध पिलाने के लिए उठाई तब जमुहाई लिए हुए श्री कृष्ण के मुख में चौदह लोकों को देखकर आश्चर्य चकित हुईं।।30।।

नन्दगोप को वरुण पाश के भय से तथा मायासुर के पुत्र से गुफा में छिपा कर रखे हुए गोपालकों की श्री

कृष्ण ने ही रक्षा किया। गोकुल के लोग अविद्या से अपने कल्याण के मार्ग को न जानकर अन्यथा ज्ञान से आवृत हुए थे। जिससे वह संसार के दुःख से पीड़ित थे। उनको ज्ञान प्रदान करके उनसे साधन कराकर वैकुण्ठ लोक में उनको वास कराने वाले श्रीकृष्ण ही हैं।।31।।

एक समय गोपालक इन्द्र को उद्देश्य करके यज्ञ कर रहे थे। यज्ञ करने को रोके जाने से इन्द्र कुपित हुआ और गोकुल को ही नाश करने की इच्छा से निरन्तर घोर वर्षा किया। उस समय केवल सात वर्ष की अवस्था वाले भगवान कृष्ण उन ग्वालवालों और उनके पशुओं को रक्षा करने के लिए गोवर्धन पर्वत को एक कठफुतले की भाँति अपने हाथों से उठा लिया और सात दिनों तक उसी तरह लिए रहे।।32।।

आधी रात के समय जब चन्द्र देव अपने प्रकाश से सारे संसार को गौर वर्ण का चादर ओढ़ा रहे थे उस समय रास क्रीड़ा की इच्छा से सुन्दर पद विन्यास युक्त एवं हृदय स्पर्शी अलाप लेकर गीत गाकर वृज की स्त्रियों को मोहित किया जिससे वह सब उनके पास आ गईं। ऐसी स्त्रियों को शंख चूड़ासुर ने अपहार करके ले जाने पर उसका संहार करके श्री कृष्ण ने उन स्त्रियों की रक्षा किया। यह समस्त कार्य यदि वह श्री विष्णु न होते तो उनकी महिमा से ही हुए हैं ऐसा नहीं कह सकते थे।।33।।

श्री कृष्ण तथा बलराम से संहार किए हुए दैत्य, कौरव और पाण्डवों की सेना में रहने वाले क्षत्रिय, भीमसेन और अर्जुन से संहार किए जाकर अपनी अपनी योग्य गति को प्राप्त हुए। श्री कृष्ण ने ही कई लोगों का स्वयं से संहार किया और अन्य कई को बलराम, भीम, अर्जुन, इत्यादि में रहकर उन उन नामों से श्री हरि ने ही संहार किया। इनसे संहार किए हुए मुक्ति योग्य जीव व्यक्त रूप से रहने वाले श्री हरि के वैकुण्ठ लोक को, उदासीन रहने वाले श्री हरि के अव्यक्त रूप से रहने वाले अनित्य नरक को और द्वेष करने वाले श्री हरि के अव्यक्त रूप से रहने वाले नित्य तमस को प्राप्त किये। यह समस्त लोक श्री हरि के अधीन ही है। इसलिए यह लोक श्री हरि के कहे गए हैं।।34,35।।

बहुत समय बाद कलि के प्रभाव से जब संसार के सज्जीवों की आयु अल्प होकर उनका तत्वज्ञान नष्ट हो चुका था तब वे श्री हरि को प्रतिपादन करने वाले वेदों को भली भाँति न समझ सके। इसको जान कर श्री हरि सज्जनों पर कृपा करके सत्यवती और पराशर से प्रकट हुए। वेदों को विभाजन करके व्यास नाम से प्रसिद्ध हुए।।36।।

मायासुर से निर्मित तीन नगरों में त्रिपुरासुर रहकर तीनों लोकों का नाश करने लगे तब रुद्र ने उनका संहार किया। पुनः वह ब्राह्मणों में जन्म लेकर वेदोक्त यज्ञ यागादि कर्मानुष्ठान करने लगे तब देवता श्री हरि से प्रार्थना किए। श्री हरि ने शिशु वेष को धारण करके असुरों की बुद्धि को मोहित करने के लिए पाषण्ड मत के जैसे वचनों से उनको वंचित किया। दैत्य इनके स्वरूप को न जान सके। देवताओं को इनके वचनों का यथार्थ ज्ञान होने के लिए स्वयं ही प्रशान्त संहिता में व्याख्यान किए हैं। **वेदोऽप्रमाणं** अर्थात् आपाततः वेद प्रमाण न होने का अर्थ होता है पर इसका वास्तविक अर्थ तो वेद श्री हरि के विषय में प्रमाण है। यही बुद्धावतार है।।37।।

कलियुग में सज्जनों के घरों में भी जब श्री नारायण के गुण नहीं गाए जायेंगे, ब्राह्मण नास्तिक मतावलम्बी होंगे, शासन करने वाले धर्म को नष्ट करेंगे, घरों में हव्य कव्य इत्यादि नहीं होंगे ऐसे घोर कलियुग के अन्त में दुष्ट

लोगों का संहार करने के लिए भगवान कल्कि के रूप से अवतार लेंगे। यह सब श्री हरि के स्वरूपावतार हैं।।38।।

इनके अतिरिक्त अन्य जीवों में स्थित होकर श्री हरि अपने सामर्थ्य को व्यक्त करते हैं। यह विभूति रूप हैं। यह अनन्त हैं। सृष्टि काल में मुझमें (ब्रह्मा में) ऋषियों में और प्रजेश्वरों में सन्निहित होकर सृष्टि करते हैं। स्थिति काल में धर्म में यज्ञ यागादियों में चौदह मनुओं में, चौदह इन्द्रों में प्रियव्रत इत्यादि राजाओं में सन्निहित होकर लोकों का पालन पोषण करते हैं। संहार काल में अधर्म में, रुद्र में, क्रोधाविष्ट देवताओं में स्थित होकर लय करते हैं। ये सभी श्री हरि के सन्निधान से युक्त हैं परन्तु श्री हरि के स्वरूप नहीं हैं। यह निम्न प्रमाण से स्पष्ट होता है-

हरीच्छया विभूतिर्यद् ब्रह्मादीनां सदा भवेत्।
इच्छया वा बहुविधः तेषु विष्णुः स्वयं स्थितः।
अतो माया विभूतित्वं तेषां मत्स्यादयः स्वयं।। (अध्यात्मे)।।39।।

श्री हरि की सामर्थ्य इतनी है ऐसा कोई भी गिनकर नहीं कह सकता है। भूमि के परमाणुओं को गिनने में समर्थ आदि कवि ब्रह्माजी भी श्री हरि के सामर्थ्य की गणना करने में असमर्थ हैं। मेरा सत्यलोक नाश होने वाला है ऐसा जानकर और काँपते हुए मुझे देखकर श्री हरि ने अपने सामर्थ्य से सत्य लोक की रक्षा किया। ।।40।। समस्त जीव समुदायों में सबसे अधिक जानने वाला मैं ही हूँ। इस पर भी श्री हरि के सामर्थ्य को मैं पूर्णरूप से नहीं जानता हूँ तो अन्य ऋषि, प्रजेश्वर इत्यादि कितना जान सकते हैं? मुझसे छोटा और अन्य से बड़ा आदिशेष अपने सहस्र मुख से श्री हरि के गुणों का गान करने पर भी अन्त नहीं पा सका। इसी अर्थ को **''विष्णोर्नुकं''** श्रुति में कहा गया है। श्रुति इस प्रकार है-

श्री हरि को ही सर्वस्वामी जानकर सब प्रकार से निष्काम रूप से उनकी सेवा करने वालों को श्री हरि प्रसन्न होकर ज्ञान प्रदान करते हैं। संसार के लिए कारणीभूत अपने शैवली रूप माया (इच्छा रूप आवर्क) को हटाते हैं। ऐसे भगवद्भक्त अपने देह को ही आत्मा नहीं समझते हैं। अपने देह में ममता के कारण उसमें अभिमान नहीं करते हैं। लोगों की योग्यता अनेक प्रकार की होने से श्री हरि का अनुग्रह भी उनकी योग्यतानुसार ही अनेक प्रकार के हैं।।42।।

हे नारद! समस्त जीवों से भी अधिक मैं श्री हरि के सामर्थ्य को जानता हूँ। तुम, रुद्र, प्रह्लाद, शतरुपा देवी, स्वायंभू मनु प्राचीनवर्हि राजा, अंग, ध्रुव, इक्ष्वाकु, पुरुरवा, मुचुकुन्द, विदेह, गाधि, रघु, अम्बरीष, सगर, गय, ययाति, मान्धाता, अलर्क, शतधन्व, रन्तिदेव, देवव्रत, बलि, दिलीप, सौभरि, उदंक, शिबि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर भूरिषेण, विभीषण, हनुमान, उपेन्द्र, दत्त, अर्जुन अरिष्टसेन, विदुर, श्रुतदेव, इत्यादि श्री हरि के अनुग्रह के पात्र हैं, और ज्ञानी हैं।।43,44,45।।

यहाँ पर उपेन्द्र और दत्त यह दोनों श्री हरि के स्वरूप हैं। अज्ञानियों को मोहित करने के लिए इनका नाम अन्य के साथ कहा गया है। पापकर्म से न डरने वाली स्त्रियाँ, शूद्र हूण, शबर इत्यादि (दुष्ट स्वभाव वाले) श्री हरि का ही आश्रय करके उनके शरण में जाते हैं तो उनको (श्री हरि के इच्छा सामर्थ्य को) जान सकते हैं और संसार से मुक्त हो सकते हैं। इतना ही नहीं वृन्दावन में रहने वाले पशु-पक्षी भी अद्भुत जगत में व्याप्त हुए श्री हरि के आश्रय

होकर उनमे भक्ति करते हैं। वे श्री हरि के इच्छा सामर्थ्य को जानते हैं तथा इस संसार से छुटकारा पा जाते हैं तो उनके विषय में क्या कहना? जो भगवान के यश को गाते और मन को सब ओर से समेट कर भगवान में लगाए रहते हैं। इसका भाव यह है कि सभी सज्जीव को अपने उद्धार के लिए श्री हरि के ही शरण में जाना चाहिए।।46।।

श्री हरि सदा एक प्रकार रहने वाले हैं। अतिशय तथा पूर्ण आनन्द वाले हैं। उनके समान और कोई वस्तु नहीं है। इसलिए उनको कोई भय नहीं है। ज्ञान स्वरूप हैं। राग द्वेषादि दोषों से रहित हैं। समस्त जगत में व्याप्त होने पर भी उनमें कोई विकार नहीं है। उनमें वैषम्य तथा निर्दयता इत्यादि दोष नहीं है। दिखाई देने वाले और न दिखाई देने वाले जगत से विलक्षण हैं। उनको प्रपंच में मैं और मेरा का कोई अभिमान नहीं है। वेद भी इनको पूर्ण रूप से बतला नहीं सकते हैं। अविद्या तो इनसे दूर भागती है। तब इनमें अविद्या कहाँ से होगी। उनकी उपासना करने वाले भी अविद्या से दूर हो जाते हैं।।47।।

ऐसे श्री हरि के विषय में श्रवण मनन इत्यादि साधन सम्पत्ति से युक्त भूतकाल के वर्तमान काल के तथा भविष्यत काल के ब्रह्मा जी श्री हरि को निरन्तर सुखी, गुणपूर्ण, दुःखरहित जानकर उपासना करके समस्त जीवों से अधिक उनका दर्शन करते हैं। इन्द्र अमृत प्राप्त करने पर कुवाँ खोदने के साधन को त्याग देता है। जल निकल आने पर खोदने के साधनों की आवश्यकता नहीं है वैसे ही श्री हरि का जो दर्शन करते हैं वे नरक के लिए कारणी भूत संसार को त्याग देते हैं।।48।।

श्री हरि ही शुभ और अशुभ के लिए स्वामी तथा फलदाता हैं। अनादि काल से भगवान के अनुग्रह द्वारा भक्ति के अभिवृद्ध होने के स्वभाव वाले सात्विक जीव ही अपनी अपनी योग्यतानुसार इनका दर्शन करते हैं। ऐसे सार्ात्विक मुमुक्षु, जीव ही श्री हरि के दर्शन के अधिकारी हैं। यह देह पंचभूतों में मिल जाने पर भी उसके अन्दर रहने वाला अभिमानी जीव देह के साथ नाश नहीं होता है इसलिए वह नित्य है। जीव नित्य होने से ही अनेक जन्मों में किए हुए साधन के फलस्वरूप भगवान का दर्शन होना उचित ही है। श्री हरि देह में रहने पर भी उनको देहाभिमान नहीं है। इसलिए जीव की भाँति इस देह के निमित्त से श्री हरि को भी सुख दुःख होते हैं ऐसा नहीं समझना चाहिए।।49।।

हे तात! सृष्टि स्थिति और लय के लिए कारण श्री हरि के विषय में संक्षेप से बतलाया हूँ। कार्य कारण रूप यह समस्त जगत श्री हरि के अधीन और अस्वतंत्र होने से औपचारिक रूप से उनसे भिन्न न होना शास्त्रों में कहा गया है, परन्तु यह जगत परमात्मा से भिन्न है।।50।।

श्री हरि के स्वरूप तथा उनके सन्निधान से युक्त विभूतियों का संग्रह ही भागवत है। सृष्टि के आदि में श्री हरि ने इसी का मुझे उपदेश किया था। मनुष्य लोक में ज्ञान प्रदान करने के लिए श्री हरि व्यास रूप से अवतार लेंगे। तब तुम इसको विस्तृत रूप से वर्णन करने के लिए श्री वेदव्यास जी से प्रार्थना करो।।51।।

इस भागवत के अध्ययन मात्र से ही सर्वस्वामी, सर्वाधार श्री हरि में भक्ति उत्पन्न होवे ऐसे समाधि भाषा में इसको रचना करके शुकदेव जी को उपदेश करके मनुष्य लोक में प्रसार हुए वैसा करने के लिए व्यास रूपी श्री हरि से प्रार्थना करो।।52।।

यम के वसीभूत होकर नाश होने वाली इस शरीर को प्राप्त किए हुए मानव पूर्ण बल, प्राण के स्वामी

मुक्तिप्रद श्री हरि में यदि भक्ति उत्पन्न न हो तब इस शरीर से साधन हुआ ऐसा कभी नहीं समझना चाहिए। मनुष्य जन्म में किए हुए धर्मों से अनित्य स्वर्गसुख प्राप्त होने पर भी वह अल्पफल होने से वह फल ही नहीं है। इसलिए भक्ति उत्पन्न करने वाले भागवत पुराण की रचना करने के लिए व्यास जी से प्रार्थना करो।।53।।

समस्त पापों को दूर करने वाले श्री हरि में यदि भक्ति उत्पन्न न हो तो किए जाने वाले वर्णाश्रम धर्म, दान, तप, विद्या इत्यादियों का कोई प्रयोजन ही न होगा। इनसे श्री हरि में अतिशय भक्ति उत्पन्न होनी चाहिए वही मुख्य फल है। अन्य स्वर्गादि सब अल्पफल हैं। इसलिए भक्ति उत्पन्न करने वाले इस भागवत पुराण की रचना करने के लिए वेद व्यास जी से प्रार्थना करो।।54।।

श्री हरि के महिमा को अर्थात् सृष्टयादि कार्यों का सद्गुरू के मुख से अध्ययन करके शिष्यों को समझाते हुए श्रद्धापूर्वक श्री हरि की महिमा का वर्णन करो। यदि यह शक्य न हो तो जीवित रहने तक श्रवण मनन करते रहें। ऐसे पुरुष और स्त्री का मन कभी भी श्री हरि की बन्धक शक्ति (सांसारिक मोह) से मोहित नहीं होगा। इसलिए वेदव्यास जी से प्रार्थना करो कि भागवत पुराण की रचना ही समस्त सज्जीवों के पुरुषार्थ का कारण है। इस प्रकार की तुम्हारी प्रार्थना सबके साधन का कारण बने।।55।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे सप्तमोऽध्यायः।।

अध्याय - 8
अथ अष्टमोऽध्यायः

राजा परीक्षित् ने श्री शुकमुनि से कहा-हे ब्रह्मज्ञानी शुकदेव जी! श्री हरि तो प्राकृत गुणों से रहित हैं। सर्वत्र प्रधान हैं। ऐसे श्री हरि के गुणों को विस्तृत रूप से वर्णन करने के लिए ब्रह्मा ने नारद जी को आज्ञा किया। अपरोक्ष ज्ञानी नारद ने वेदव्यास जी से प्रार्थना किया इसको जानता हूँ। वे और किन-किन को सुनाये।।1।।

वेदव्यास जी भागवत में जो श्री हरि के चरित्र का वर्णन किए हैं उसे मैं जानना चाहता हूँ। श्री हरि के पराक्रम तो अद्भुत हैं। उनकी कथाएँ योग्य जीवों को मोक्ष देने वाली हैं।।2।।

मेरा मन लौकिक विषयों को त्याग कर श्री हरि के ही गुणों का मनन करते हुए इस देह को त्यागने के लिए श्री हरि की कथा को विस्तार से कहिए।।3।।

परमात्मा की कथा को जो श्रद्धापूर्वक श्रवण मनन करते हैं ऐसे भक्तों के मन में श्री हरि अविलम्ब आ विराजते हैं।।4।।

श्रवण के द्वारा हृदय में प्रवेश किये हुए श्री हरि उस प्राणी के सब पापों को उसी तरह नष्ट कर देते हैं जैसे शरद ऋतु पानी का मैलापन को दूर कर देती है।।5।।

इस तरह जिसके पाप धुल जाते हैं वह फिर कभी भी श्री कृष्ण भगवान के चरण कमलों को नहीं त्यागता है जैसे कोई पथिक परिश्रम से लम्बा रास्ता तय करके घर पहुँच जाने पर उसे नहीं त्यागता। श्री हरि के अनुग्रह से भक्त के दुःख दूर हो जाते हैं।।6।।

हे ब्रह्मज्ञानी! यह जीव तो स्वतः प्रकृति सम्बन्ध से रहित है। अर्थात् अप्राकृत है। ऐसे जीव को प्रकृति का सम्बन्ध कैसे होता है? क्या यह परमात्मा की इच्छा से है अथवा अन्य कोई कर्मादि कारण है? इसको तो आप भलीभाँति जानते हैं। इस जीव को अनित्य प्रकृति का संबंध कैसे होता है मैं जानना चाहता हूँ।।7।।

प्रलय काल में लक्ष्मी के साथ श्री हरि शयन करते हैं। जब उनकी सृष्टि करने की इच्छा होती है। तब वह परमपुरुष के रूप से अवतार लेते हैं। तत्वों की सृष्टि करके उनसे ब्रह्माण्ड की सृष्टि करते हैं। उन तत्वों के साथ ब्रह्माण्ड में प्रवेश करके अण्डोदक में शेषशायी होकर शयन करते हैं। उनके उदर से चौदह लोक वाला कमल उत्पन्न होता है। श्री हरि ही ब्रह्माण्ड के भीतर विराट पुरुष का रूप धारण करके ब्रह्माण्ड में व्याप्त होते हैं। ब्रह्माण्ड के परिमाण का ही विराट रूप का होना शास्त्रों में कहा गया है। यह लोक ही उनके अवयव जैसे दिखाई देते हैं। वे इनसे भिन्न हैं।।8।।

इस शेषशायी से उत्पन्न हुए ब्रह्मा जी अपने से सृष्टि किए हुए समस्त पदार्थों में व्याप्त हैं। अहंकार इत्यादि तत्वों की सृष्टि किसके अनुग्रह से किया? उन तत्वाभिमानी देवताओं को सृष्टि करने के लिए किसने अनुग्रह किया? आप जिस नाभिकमल से आए उस नाभिकमल के रूप को किस प्रकार से देखा?।।9।।

जगत की सृष्टि, स्थिति, लय के लिए कारणीभूत, आश्रय, ब्रह्मादियों का आधारभूत बन्धक शक्ति का नियामक, पुरुषरूपी पद्मनाभ अपने अधीन बन्धक शक्ति को प्रेरित न करते हुए मुक्त जीवों के प्रवर्तक होकर कौन से लोक में व्यक्त रूप से रहते हैं?।।10।।

विराटरूपी श्री हरि के स्वरूप अवयवों से लोक और लोक पालक उत्पन्न हुए हैं। जिनसे विराट पुरुष के ब्रह्माण्ड रूपी प्रतिमा के अवयव बने हैं।।11।।

ऐसे श्री हरि के आश्रय किए हुए ब्रह्मा जी के कल्प, दिनकल्प, मन्वन्तर, वराहकल्प, के परिमाण क्या है? भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल को कैसे जान सकते हैं? इस काल से होने वाले आयु का परिमाण कैसे जान सकते हैं?।।12।।

अत्यल्प काल से आरम्भ करके अनन्त काल तक का काल कैसे जान सकते हैं? कर्म के फल कितने प्रकार के हैं?।।13।।

कर्मसन्तति किसके साथ रहता है? कर्म का कर्ता कौन है? महत्तत्त्वादि और सत्वादि गुणों के अभिमानियों का क्या सामर्थ्य है? इन सबको विस्तार से बताने की कृपा करें।।14।।

पृथ्वी, पाताल, दिक्, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र और द्वीपों का परिमाण क्या है? इनमें निवास करने वाले प्राणियों की उत्पत्ति का क्रम समझाइए।।15।।

ब्रह्माण्ड के भीतर और बाहर व्याप्त हुए श्री हरि का अणुरूप से लेकर महत्तर रूपों का परिमाण बतलाइये। मरीचि इत्यादि पूर्वजों का चरित्र तथा वर्णाश्रम धर्मों को आप से जानना चाहता हूँ।।16।।

श्री हरि के अवतार के चरित्र अत्याश्चर्यजनक हैं। उनका तथा युगों का परिमाण युग धर्म, मनुष्यों के साधारण और विशेष धर्म प्रियव्रत इत्यादि राजाओं का और आपात्काल के धर्मों को, तत्वों की संख्या और उनके लक्षण इन सबके कारणीभूत श्री हरि के स्वरूप को उनकी आराधना करके उनके सन्तुष्ट करने के क्रम को समझाइये।।17,18,19।।

अणिमादि अष्ट सिद्धि, योगियों के लिए शरीर का नाश, ऋग्वेदादि वेद, आयुर्वेदादि उपवेदों को और उनमें बतलाए गए धर्मों को तथा इतिहास और पुराणों की उत्पत्ति के क्रम को इष्टपूर्त और काम्य कर्मों के विधि विधान को बतलाइये।।20,21।।

संसार में रहने वाले जीवों की सृष्टि, धर्मभ्रष्टों का स्वभाव, जीवों का बन्धन और मोक्ष, जीवों का अपने स्वरूप से रहना तारतम्यानुसार आनन्द का अनुभव इन सबको बतलाइये।।22।।

श्री हरि स्वतंत्र हैं। वे अपनी इच्छा से अपने अधीन चित् प्रकृति के द्वारा सृष्टि आदि कार्य से क्रीड़ा करते हैं। उदासीन रहते हैं। इन सब को बतलाइये।।23।।

श्री हरि का ही मनन करने वाले हे शुकदेव जी! इन सब के ज्ञान के लिये ही मैं आप की शरण में आया हूँ। मैने जो प्रश्न किया है या जो नहीं पूछा है उन सब को आप यदि उचित समझते हैं तो उस क्रम से यथार्थ रूप से समझाकर मेरा उद्धार कीजिए।।24।।

हे ब्रह्माजी के पुत्र! तथा जीवोत्तम, ब्रह्माने जिस प्रकार सज्जीवों को शास्त्रार्थ को बतलाकर आप्त हुए हैं

वैसे आप भी हमारे लिए आप्त हैं। मरीचि इत्यादि सब ने ब्रह्मा का ही अनुसरण किया है। उनके वैसे ही आप भी प्रमाण हैं।।25।।

हे ब्राह्मणोत्तम! भोजन न करने पर भी आप के बतलाए हुए श्री हरि की कथामृत को पान करने वाले मेरे प्राणों की शक्ति क्षीण नहीं हुई है। भोजन से भी यह अधिक बलदायक है।।26।।

हे शौनक! राजा के इस प्रकार प्रार्थना करने पर श्री शुकदेव जी को अत्यन्त सन्तोष हुआ।।27।।

तब वे कल्प के आदि में श्री हरि ने जिस भागवत का उपदेश किया था, जो वेद के समान है, उसी को सुनाना आरम्भ किये।।28।।

पाण्डवों में श्रेष्ठ राजा परीक्षित् के सभी प्रश्नों का क्रम से उत्तर देना आरम्भ किया।।29।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे अष्टमोऽध्यायः।।

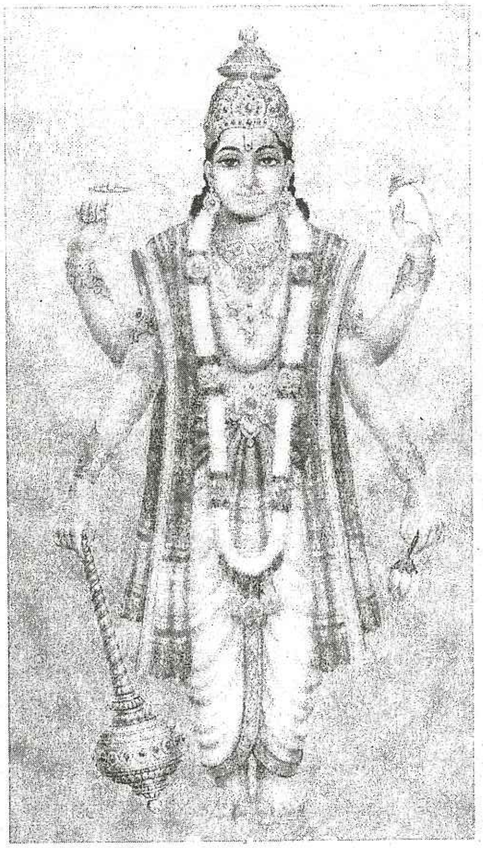

अध्याय - 9
अथ नवमोऽध्याय

परमात्मा के अनुग्रह से चतुर्मुख ब्रह्मा जी को उनके लोक का दर्शन और श्री हरि के स्वरूप का दर्शन, जीव, प्रकृति आदि श्री हरि के अधीन होना इत्यादि श्री हरि की महिमा का वर्णन करने से श्री हरि के अनुग्रह के लिए भक्ति का कारण होना श्री हरि में ऐसी भक्ति को अवश्य करने का इस अध्याय में प्रतिपादन करते हैं।

जीव का अप्राकृत स्वरूप है। उसको प्राकृत देह का संबंध होने के लिए श्री हरि की इच्छा ही मूल कारण है। जैसे भगवान अपनी इच्छा से जीव के संस्कारों को उपादन बनाकर स्वयं पदार्थ का निर्माण करते हैं वैसे ही भगवान अपनी इच्छा से इस जीव को प्राकृत देह का संबंध कराते हैं। जैसे स्वाप्न पदार्थों का निर्माण भगवान की इच्छा के अधीन है वैसे ही इस जीव को प्राकृत देह का संबध भी भगवान की इच्छा के अधीन है। इसलिए भगवान की इच्छा ही मूल कारण है। इसका दूसरा कारण सत्वादि गुणों से युक्त प्रकृति है।।1।।

श्री हरि की इच्छा अनेक प्रकार की है। श्री हरि के इच्छा के अधीन प्रकृति भी अनेक आकार की है। श्री हरि की इच्छा से प्रकृति के कार्यभूत प्राकृत देह में जीव बंधा रहता है। जीव विकार रहित होने पर भी उसको इस देह में अभिमान होने से विकार को प्राप्त हुए जैसे समझकर देव, मानुष इत्यादि रूप में रहने वाले अपने को देवता, मनुष्य समझता हैं। अहंकार और ममकार के द्वारा शरीर को **"मैं"** और शरीर से संबंधित वस्तुओं को **"मेरी"** करके मानने लगता है।।2।।

जीव के अस्वाभाविक बन्धन के प्रकार को बतलाकर उससे कैसे छुटकारा पा सकते हैं उसको बतलाते हैं। उससे छुटकारा पाना ही मोक्ष है। जीव जब वैराग्य इत्यादि साधनों के द्वारा श्री हरि के यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करता है तब अपने निज स्वरूप को जान लेता है। तब भगवान के अनुग्रह से अपने स्वरूपानन्द का अनुभव करता है तथा अविद्या और प्रकृति को पार करके उत्तम स्थिति को प्राप्त होता है। यही मोक्ष है।।3।।

इसी विषय में प्रमाण रूप से वेद व्यास जी ने भागवत पुराण को सुनाया है। उसी को मैं आप के प्रश्नों के उत्तर में सुनाता हूँ। भाक्ति दोष रहित होना चाहिए। ऐसी भक्ति भगवान को प्रिय है। ऐसी भक्ति से भगवान की आराधना करने से भगवान प्रसन्न होते हैं। ब्रह्मा जी की भक्ति से प्रसन्न होकर श्री हरि ने उन्हें अपने स्वरूप का दर्शन कराया।।4।।

समस्त जीवों के गुरु ब्रह्मा नाभिकमल के कर्णिका में बैठकर जगत सृष्टि करने की इच्छा से विचार करने लगे। परन्तु जगत् की सृष्टि में सहायक ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सके।।5।।

तब उनको **"तप"** करके दो बार सुनाई दिया।।6।।

श्री हरि के सिवाय अन्य किसी की जो इच्छा नहीं करते हैं उनके लिए तप ही धन है। इसको सुनकर ब्रह्मा इसको किसने कहा ऐसा दसों दिशाओं में देखे। वहाँ कुछ भी दिखाई नहीं दिया। कमल के नाल में प्रवेश करके देखा

वहाँ भी कुछ दिखाई नहीं दिया। तब उन्होंने यह निर्णय किया कि तप भगवान के लिए प्रीतिकारक है इसलिए भगवान ने तप करने के लिए आज्ञा दिया है। तब तप करने में आसक्त हुए।।7।।

तपस्वियों में श्रेष्ठ ब्रह्मा ने एकाग्र चित्त से ज्ञानरूपी परब्रह्म को उद्देश्य करके ध्यान किया। उन्होंने वायु के वेग को रोक कर वाह्य और आन्तरिक इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किया। सृष्टि के विषय में जानने के लिए एक हजार वर्ष तक तप किया।।8।।

इससे प्रसन्न होकर श्री हरि ने अपने अति उत्तम निवास स्थान श्वेत द्वीप का उनको दर्शन कराया। अपरोक्ष ज्ञानी इस स्थान की प्रशंसा करते हैं। वहाँ पर किसी प्रकार का क्लेश, भय तथा अज्ञान नहीं है।।9।।

सत्व गुण, रजोगुण और तमोगुण वहाँ नहीं हैं। उन गुणों का बन्धन भी वहाँ नहीं है। उनका विकार भी नहीं है। प्रकृति, महत्तत्त्व इत्यादि प्राकृत तत्व उस स्थान में नहीं हैं। सर्वत्र चित् प्रकृति ही व्याप्त है। वहाँ के लोगों पर समय का भी कोई प्रभाव नहीं है। वहाँ भगवान के असाधारण भक्त ब्रह्मादि मुक्त देवता श्री हरि की सेवा करते रहते हैं।।10।।

वहाँ के सब निवासी श्याम वर्ण के हैं। कमल के सदृश उनके सुन्दर नेत्र हैं। वे पीतवस्त्र पहने रहते हैं। उनके मुख की कान्ति बड़ी ही मनोहर है। सबके चार हाथ हैं। सारूप्य मोक्ष को प्राप्त किए हुए मुक्त जीव कानों में कुण्डल धारण किए हुए और सबके मस्तक पर किरीट देदीप्य मान हो रहा है। प्रकाशमान विमानों में विहार करते हैं।।11,12।।

उत्तम स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ विराजमान हैं। लक्ष्मी देवी अपनी विभूति रूपों के साथ स्वयं ही श्री हरि की सेवा कर रही हैं। मुक्त ब्रह्मा इत्यादि भ्रमर और कोयल के रूप में रहकर लक्ष्मी जी की स्तुति कर रहे हैं। लक्ष्मी जी अपने प्रियतम श्री हरि के गुणों का गान करती हुई उनकी सेवा कर रही हैं। ऐसे लोक में मुक्तों का नियामक समस्त सत्कर्मों का फलदाता तथा जगन्नियामक श्री वासुदेव को ब्रह्मा ने देखा।।13,14।।

मुक्त जीव श्री हरि की चारों ओर से अपनी-अपनी योग्यतानुसार सेवा कर रहे थे। सुनन्द, नन्द इत्यादि मुक्त द्वारपालक अपने-अपने कर्तव्य करने में रत थे। श्री हरि के मुख कमल में मन्द मुस्कान थी। भक्तो को अनुग्रह की दृष्टि से देख रहे थे। उनके मस्तक पर किरीट और कानों में कुण्डल तथा उनको चार भुजाएँ थीं। वे पीताम्बर पहने हुए थे। अपनी चारों भुजाओं में चक्रादि आयुधों को धारण किए थे। उनके वक्षस्थल में लक्ष्मी का चिन्ह था। जिससे उनका श्री पति होना स्पष्ट होता था। नारायण एक दिव्य अनन्त आसन में विराजमान थे और उनके चारों ओर उनकी स्वरूप भूत शक्तियाँ विद्यमान थीं। अन्य लोगों में ऐश्वर्यादि नित्य न होने पर भी श्री हरि में नित्य हैं और वह स्वरूपभूत हैं। भगवान वहाँ पर दिखाई देने पर भी परिच्छिन्न नहीं हैं। किन्तु सर्वत्र व्याप्त हैं।।15,16।।

ऐसे नारायण का दर्शन करने से ब्रह्मा जी का आनन्द उमड़ आया, शरीर रोमांचित हो गया, भक्ति उद्रेक से उनके आँखो में आँसू उभर आए। केवल ज्ञानियों से प्राप्त होने वाले श्री हरि को भक्ति से नमस्कार किया।।17,18।।

अपने प्रीति पात्र ब्रह्मा को अपने निकट श्री हरि ने देखा। श्री हरि के इच्छानुसार सृष्टि कार्य के लिए नियुक्त ब्रह्मा जी को इस प्रकार स्तुति करते देखकर भगवान बड़े प्रसन्न हुए और अपने हाथों से उनका स्पर्श करते हुये तथा अपनी मन्द मुस्कुराहट से सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए कहे।।19।।

श्री भगवान ने कहा हे ब्रह्मा! मैं कुयोगियों को कभी प्राप्त नहीं होता हूँ। तुमने सृष्टि की अभिलाषा से बहुत दिनों तक उग्र तपस्या करके मुझे प्रसन्न किया है।।20।।

अब जो चाहते हो वह वर माँगों। मैं वर देने में समर्थ हूँ। आप कोई भी वर माँगों। सभी शुभ कर्मों का अन्तिम फल मेरा दर्शन है।।21।।

''तप'' ऐसा मेरा वचन सुनकर आपने एकान्त में अत्युत्तम मेरे गुणों का तप किया है। उसके फलस्वरूप अब मेरे लोक और मेरा दर्शन किए हो। यह सब तप की महिमा है।।22।।

तब तुम कर्तव्यमूढ़ हो गए थे तब तप करने के लिए मैंने ही तुम्हें कहा था। तप अर्थात् ज्ञान है वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। मैं ज्ञान स्वरूप हूँ।।23।।

ज्ञान से ही जगत की सृष्टि करता हूँ। रक्षा करके संहार करता हूँ। मेरे ज्ञान को पूर्ण रूप से कोई भी नहीं जान सकते हैं यही मेरी महिमा है।।24।।

ब्रह्मा जी ने कहा - हे भगवन! यद्यपि आप प्रधान रूप से सब के हृदय गुफा में साक्षी रूप से रह कर सब के मन की इच्छा जानते हैं। मैं जो कुछ चाहता हूँ उसको भी आप जानते ही हैं।।25।।

इस पर भी आप वर माँगने के लिए आज्ञा किए हैं, माँगना मेरा कर्त्तव्य है, मेरी याचना को पूरा कीजिए। आप के चिदानन्दात्मक तथा अप्राकृत वैराज रूप को और आप की प्रतिमाभूत नवावरण से युक्त ब्रह्माण्ड के रूप को यथार्थ रूप से जानने के लिए अनुग्रह कीजिए।।26।।

जैसे कि मकड़ी अपने उदर से तंतु बाहर निकाल कर जाले का विस्तार करती, उसी में क्रीड़ा करती और जब चाहती है तो जाले को अपने पेट में समेटकर रख लेती है। वैसे ही आप अपनी इच्छा से लक्ष्मी के द्वारा अपने शक्तियों को बतलाते हुए अवतार लेकर इस जगत की सृष्टि स्थिति और लय करते हैं। आप इस सब महिमा को मुझे अपनी योग्यतानुसार जानने के लिए अनुग्रह कीजिए।।27,28।।

हे भगवन्! आपके अनुग्रह से किंचित् आलस्य न करते हुए आप की आज्ञानुसार कार्य करुँगा प्रजाओं की सृष्टि में आसक्त होने पर भी आप के अनुग्रह से उससे बंधा न जाऊँगा। ऐसे अनुग्रह के लिए कारण होने वाले ज्ञान को प्रदान कीजिए।।29।।

जैसे एक राजा अपने आज्ञाकारी मित्र को राज्य का अधिकार देकर उसके द्वारा कार्य कराकर फल देता है। वैसे ही आप मुझे सृष्टि कार्य में अधिकार देकर अनुग्रह किए हैं। मैं पूरी आयु आप की सेवा करता रहूँगा। रुद्रादि जीव राशियों को यह आप का अधिकार है यह आप का भोग है इस प्रकार अनुभव करने योग्य विषयों को विभाग करके दूँगा। आप की आज्ञानुसार सृष्टि करुँगा। आप जगत से विलक्षण हैं। आप से मेरा जन्म हुआ है। मैं ही स्वतंत्र सृष्टि कर्ता हूँ ऐसा अहंकार मुझे न दें। मैं आप की इच्छानुसार जीवों को उनके-उनके योग्य, देवता, मानव, तिर्यक् इत्यादि देहों को देकर सृष्टि करुँगा।।30।।

इस प्रकार ब्रह्मा के प्रार्थना पर श्री हरि ने संक्षेप में भागवत् का उपदेश किया। मैं तुम्हें परम रहस्य का उपदेश करता हूँ। बिम्बरूपी मेरा ज्ञान ही मोक्ष का कारण है इसको विज्ञान कहते हैं। मेरे स्वरूप को उपनिषद् वर्णन करते हैं। मेरा ज्ञान अति रहस्यमय होने के कारण अवश्य जानने योग्य है। इसलिए इस प्रकार के ज्ञान को और

विज्ञान को तुम्हें समझाता हूँ।।31।।

मैं सर्वोत्तम हूँ। समस्त देश काल में व्याप्त हूँ। इसलिए मेरा परिमाण अनन्त है। मेरे अस्तित्व के लिए कोई उपाधि कारण नहीं है। मेरे अवतार अनन्त है। वे सब सच्चिदानन्दात्मक हैं। मेरा प्रत्येक गुण परिपूर्ण और अनन्त है। मेरे कार्यों से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। यही परमात्म तत्व कहलाने वाला मेरा विशिष्ट ज्ञान है। मेरे अनुग्रह से तुम्हें ऐसा ज्ञान उत्पन्न होगा।।32।।

सृष्टि के पूर्व मैं ही स्वतंत्र था। मेरे से भिन्न काल प्रकृति इत्यादि थे परन्तु वह स्वतंत्र नहीं थे। वे सब मेरी इच्छा के अधीन थे। सृष्टि के पश्चात् तुम मैं, और यह समस्त जगत था। उस समय में भी मैं ही स्वतंत्र था। तत्पश्चात् प्रलयकाल में मैं अकेला ही रहा तब भी मैं ही स्वतंत्र था। अन्य सभी सदा मेरे अधीन होने के कारण अस्वतंत्र हैं। मैं आप्तकाम हूँ। इस प्रकृति से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है, और इससे मुझे कोई बाधा भी नहीं है। इस प्रकार वेदों में कहा गया है। अतः प्रकृति, जीव इत्यादि सब मेरी शक्ति के अधीन है। इन सबमें जीव मेरा प्रतिबिम्ब है। प्रकृति इस जीव के लिए बन्धन (ग्लानि) का कारण होने से तमस कहलाती है। यह सत्य है। इसको माया कहते हैं। माया कहने से यह असत्य नहीं है। यह सब सदा मुझमें रहने पर भी इनसे मुझे कोई प्रयोजन और बाधा न होने से यह नहीं ऐसा कहते हैं। प्रकृति सत्य है जीव के ग्लानि के लिए कारण होने से माया कहलाती है। माया कहने से यह इन्द्रजाल नहीं है।

मुख्यतो विष्णुशक्तिर्हि मायाशब्देन भण्यते।
उपचारतस्तु प्रकृतिर्जीवश्चैव हि भण्यते।।

इस प्रमाण से यह अर्थ स्पष्ट होता है। छत्र, चामरधारी इत्यादि के रथ में रहने पर भी जैसे वे रथी नहीं कहलाते हैं वैसे ही जीव, प्रकृति, कर्म, काल, सदा श्री हरि में रहने पर भी जीव से जीवन होने से, प्रकृति से बंधन न होने से कर्म का फल न होने से काल के निमित्त से परिणाम न होने से नहीं है ऐसा कहलाते हैं इसलिए इनके न होने को जो कहा गया है वह औपचारिक है।।33,34।।

आकाश इत्यादि अपने कार्य छोटे बड़े पदार्थों में भीतर और बाहर रहकर प्रविष्ट और अप्रविष्ट कहलाते हैं। वैसे ही मैं भी सर्वत्र व्याप्त होने से प्रविष्ट और अप्रविष्ट कहलाता हूँ।।35।।

जिस देश, काल में वस्तु है उनमें भी मैं व्याप्त हूँ। जहाँ वस्तुएँ नहीं हैं उस देश और काल में भी मेरी व्याप्ति है। इसलिए मेरे सर्वत्र व्याप्त होने का चिन्तन करना चाहिए। मेरा स्वरूप शाश्वत एक प्रकार रहता है। यही मेरा मत है।।36।।

इसका तुम एकाग्रचित्त से भक्ति से उपासना करो। ऐसी उपासना करने से किसी दिन या कल्प में और नाना प्रकार की सृष्टियों में तुम्हें स्वातंत्र्य का अहंकार नहीं होगा और तुम बाँधे न जाओगे। (इसी को चतुःश्लोकी भागवत कहते हैं)।।37।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं-हे राजन्! स्वतंत्र श्री हरि अपनी इच्छा से व्यक्त होते हैं। इच्छा न होने पर अव्यक्त होते हैं। उनको जनन मरण नहीं है। वह जन्म लेने वाले जीवों से विलक्षण हैं। रुद्रादि देवताओं से भी श्रेष्ठ पद में रहने वाले ब्रह्मा को अपने रूप का दर्शन कराकर देखते देखते अदृश्य हो गए।।38।।

ब्रह्मा ही समस्त जीवों में प्रधान हैं। बाह्य इन्द्रियों से न दिखाई देने वाले श्री हरि को हाथ जोड़कर नमस्कार किए और उनकी आज्ञानुसार चराचर जगत की सृष्टि में आसक्त हुए।।39।।

श्री हरि को छोड़कर जगत में धर्म का उपदेश करने वाले ब्रह्मा हैं वही प्रजाओं का पालन करते हैं। जीवों के कल्याण के लिए तथा श्री हरि को सन्तुष्ट करने के लिए पुनः यम नियमों का आचरण किए।।40।।

ब्रह्मा के पुत्रों में से नारद जी अपने पिता ब्रह्मा के विशेष प्रीति पात्र हैं। वे उन्हीं के आचरणों तथा व्रतों का अनुसरण करते हैं। सदा भगवान का मनन करते रहते हैं इसलिए भक्तों में उत्तम भक्त कहकर प्रसिद्ध हुए हैं। समस्त देवताओं के सामर्थ्य के नियामक श्री हरि के सृष्टियादि महिमा को अपने पिता के द्वारा जानने की इच्छा किए। इसके लिए विनय और इन्द्रिय निग्रह द्वारा पिता की सेवा करके उनको सन्तुष्ट किए।।41,42।।

हे राजन्! समस्त जगत के प्रपितामह और अपने पिता ब्रह्मा जी से नारद ने ठीक यही प्रश्न किया था जो तुम आज मुझसे पूछ रहे हो।।43।।

तब परम प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी ने अपने पुत्र को भगवान के मुख से निःसृत और दस लक्षणों से युक्त श्रीमद्भागवत महापुराण कह सुनाया।।44।।

इसके बाद उन नारद जीने सरस्वती नदी के तट पर बैठकर लोक शिक्षणार्थ ध्यान करने वाले असाधारण तेजस्वी व्यास जी को वह कथा सुनायी। जिस प्रकार शिष्य गुरु द्वारा अध्ययन किये हुये पाठ को सुनाते हैं वैसे ही नारद जी ने वेद व्यास जी को सुनाया। वेद व्यास जी ने नारद की कीर्ति को इस संसार में फैलाने के लिए तथा अयोग्य जीवों को मोहित करने के लिए नारद जी के द्वारा भागवत को जान लिया जैसा बतलाया।।45।।

तुम्हारा यही प्रश्न है न कि उस विराट पुरुष से इस जगत की सृष्टि कैसे हुई? मैं तुम्हारे इस प्रश्न का तथा और प्रश्नों का भी उत्तर उसी श्रीमद्भागवत के द्वारा दूँगा।।46।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे नवमोऽध्यायः।।

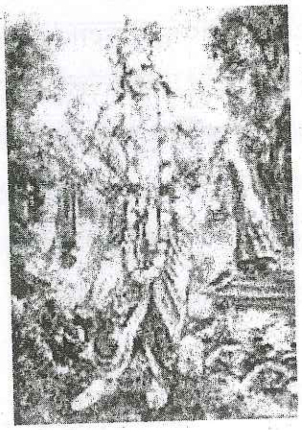

अध्याय - 10
दशमोऽध्यायः

पिछले अध्याय में कहा हैं कि ब्रह्मा जी ने नारद को दस लक्षणों से युक्त श्री मद्भागवत पुराण सुनाया। अब उन्हीं दसों लक्षणों का प्रतिपादन करते हुये कहते हैं। वे ये ही दस लक्षण हैं। सर्ग, विसर्ग, स्थिति, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय। यह सब हरि की महिमा को ही बतलाते हैं। इनमें से आश्रय रूप महिमा को बतलाने के लिए ही पहले के नौ का वर्णन किया गया है।।1,2।।

सृष्टि काल में परब्रह्म परमात्मा से गुण वैषम्य से महत्तत्त्व, अहंकार तत्व, आकाश इत्यादि पंच भूत शब्द इत्यादि तन्मात्रा, श्रोत्र इत्यादि इन्द्रिय और बुद्धि की सृष्टि हुई। इसी को सर्ग कहते हैं। उन ब्रह्माण्ड के भीतर पुरुष नामक श्री हरि ने उपरोक्त तत्वों की पुनः सृष्टि किया। इसको विसर्ग कहते हैं।।3।।

दुष्टों का निग्रह करके शिष्टों (सज्जीवों) की रक्षा करने वाले श्री हरि की विजय को स्थिति अथवा स्थान कहते हैं। उन लोगों के भक्ति के अनुसार उनकी कृपा को पोषण कहते हैं। उन मन्वन्तरों में सज्जनों के लिए जो धारक धर्म हैं वे मन्वन्तर कहलाते हैं। नाना प्रकार के योग्यता वाले जीवों की सृष्टि के लिए कारणी भूत उनके अनादि कर्म और संस्कार ऊति कहलाते हैं।।4।।

नारायण के अवतारों के चरित्र और उनके भक्त ब्रह्मादि के चरित्र अनेक इतिहासों से पूर्ण हैं-ईश कथा कहलाते हैं। समस्त जीवों की स्वरूप भूत योग्यता व्यक्त न होकर श्री हरि के उदर में निद्रावस्था में रहते हैं यह निरोध कहलाता है। जीवों का प्राकृत रूप को त्याग कर अपने स्वरूप भूत चिदानन्दात्मक रूप से आनन्द का अनुभव करना मोक्ष है।।5,6।।

जिससे इस जगत की सृष्टि, स्थिति और लय होते हैं और जिसका यह सब आश्रय किए हैं वह जगत् विलक्षण और परिपूर्ण श्री हरि ही का आश्रय कहलाता है।।7।।

श्री हरि नेत्र इत्यादि देह में रहने वाले इन्द्रियों में प्रेरक रूप से रहने से वह आध्यात्मिक कहलाता है। वही श्री हरि उन तत्वों के अभिमानी देवता सूर्य इत्यादि में रहकर उनको सामर्थ्य प्रदान करते हुए उनके प्रेरक होने से वह आधिदैविक कहलाते हैं। इन तत्वाभिमानी देवताओं से युक्त इन्द्रियों के विषय अर्थात् भौतिक पदार्थों में रहने से वह आधिभौतिक कहलाते हैं।।8।।

जीवों को वस्तुओं का ज्ञान होने के लिए इन्द्रिय, और उनको सामर्थ्य प्रदान करने वाले तत्वाभिमानी देवता और वस्तु यह तीनों अवश्य चाहिए। इनमें से कोई एक न होने से ज्ञान न होगा। इसलिए ज्ञान को प्राप्त करने में जीव स्वतंत्र नहीं है। इन तीनों को जानने वाला और नियमन करने वाला श्री हरि मुक्तों का भी आश्रय होने से स्वतंत्र हैं। लक्ष्मी और मुक्तामुक्त जगत का आधार होने से श्री हरि ही आश्रय कहलाते हैं।।9।।

पुरुष नामक श्री हरि तत्वों के सूक्ष्म रूपों के साथ ब्रह्माण्ड में प्रवेश करके उस के दो भाग किए, उसमें पुनः

पुरुष नाम से प्रकाशमान हुए। तब वह अपने दूसरे रूप से शेषशायी होने की इच्छा करके अपने को आश्रय होने वाले तथा अपने पूजा के साधन होने वाले जल की सृष्टि किया।।10।।

उस जल में एक हजार वर्ष तक वास किये इसलिए उनका नाम नारायण हुआ।।11।।

यह श्री हरि ही अपने अनुग्रह से उपादान कारण प्रकृति, अनादि जीवों का कर्म, काल, जीवों की योग्यता, वस्तुओं का स्वभाव और चेतनों को उपयोग करके सृष्टि करते हैं।।12।।

जल में शयन करने वाले शेषशायी श्री हरि वस्तुओं में नियामक रूप से रहने के लिए बहुरूपों को धारण करने की इच्छा से ब्रह्माण्ड को अपनी इच्छा से तीन प्रकार से सृष्टि किया।।13।।

जीवोत्तम ब्रह्मा के देह को तीन प्रकार से विभक्त किया। ब्रह्माण्ड में अधि दैव, अध्यात्म तथा अधिभूत ऐसे तीन प्रकार के और ब्रह्मा जी के देह में भी ऐसे ही तीन प्रकार से विभाजन किया।।14।।

तत्पश्चात् ब्रह्मा और मुख्य प्राण उनका अनुसरण करते हुए सृष्टि किए। श्री हरि से ओज, सहनशक्ति का इच्छानुसार करने की शक्ति उत्पन्न हुई। इनसे इन्द्रियों के नियामक मुख्य प्राण की ओज सहन शक्ति उत्पन्न हुई। अर्थात् इनसे मुख्य प्राण उत्पन्न हुए।।15।।

मुख्य प्राण ही समस्त इन्द्रियों के लिए स्वामी हैं। इनसे इन्द्रियाभिमानी देवताओं की शक्तियाँ उत्पन्न हुईं। जिस प्रकार राजा के रहने पर उसके सेवक रहते हैं राजा के चले जाने पर उनके साथ सेवक भी चले जाते हैं वैसे ही समस्तजीवों के देह में रहने वाले अन्य इन्द्रियाभिमानी मुख्य प्राण के चेष्टा के अनुसार ऊर्ध्व और अधोमुख चेष्टा करते हैं।।16।।

ऐसे मुख्य प्राण ब्रह्मा जी के देह में प्राण और अपान रूप से चेष्टा करने से उस देह में भूख, प्यास उत्पन्न हुए और उसके अभिमानी देवता भी उत्पन्न हुए। जल पीने की और आहार सेवन करने की इच्छा उत्पन्न होने पर ब्रह्मा के देह में मुख व्यक्त हुआ।।17।।

और उसमें तालु, जिह्वा और जिह्वा से रस और उनके देवता उत्पन्न हुए।।18।।

बोलने की इच्छा करने पर ब्रह्मा जी के देह में वागेन्द्रिय और उनके अभिमानी देवता अग्नि उत्पन्न हुए। शरीर में रहने वाली वायु बाहर न आसकी जिससे कष्ट होने लगा तब श्वासोच्छ्वास में सहायक दो नासिकाए उत्पन्न हुईं। गन्ध इत्यादि ग्रहण करने की इच्छा होने पर ब्रह्मा जी के शरीर में घ्राणेन्द्रिय नासिक्य वायु और उसका विषय गन्ध उत्पन्न हुए।।19,20।।

जब उन्हें देखने की इच्छा हुई तो नेत्र, चक्षुरेन्द्रिय और उनके अभिमानी देवता सूर्य, रूप और प्रकाश की सृष्टि हुई।।21।।

देवता, ऋषि और वेदाभिमानियों के द्वारा किए जाने वाले स्तोत्र को सुनने की इच्छा होने पर कान, दिग्देवता, श्रवणेन्द्रिय और शब्द उत्पन्न हुए।।22।।

जब जगत की वस्तुओं की कोमलता, कठिनता, हल्कापन, भारीपन, गरमी या ठंडक जानने की इच्छा हुई तब त्वचा और त्वगेन्द्रिय अभिमानी देवता व्यक्त हुए और वहाँ रोम और स्पर्श गुण उत्पन्न हुए।।23।।

जब उसे विविध प्रकार के कार्य करने की इच्छा उत्पन्न हुयी तो दो हाथ उसके अभिमानी देवता इन्द्र व कर्म

व्यक्त हुये।।24।।

चलने की इच्छा होने पर पैर उसके अभिमानि यज्ञ नामक जयन्त तथा गमन कर्म उत्पन्न हुए। (उस जयन्त में उपेन्द्र नियामक हैं उसको उद्देश्य करके हविष, होम करके यज्ञ करने से वही मुख्यरूप से यज्ञ नामक हैं।)।।25।।

जब उसे प्रजा (सन्तान प्राप्ति) रूप अमृत सदृश आनन्द प्राप्त करने की इच्छा हुई तब ब्रह्मा की देह में जननेन्द्रिय उसका आश्रय गुह्य तथा रति और उसके अभिमानि मनु उत्पन्न हुए।।26।।

जब सेवन किए हुए अन्न के असार भाग को बाहर निकालने की इच्छा हुई तो ब्रह्मा की देह में गुद द्वार, पायु इन्द्रिय उसके अभिमानी मित्र देवता तथा मल विसर्जन कर्म उत्पन्न हुए। (ब्रह्मा की देह में मल न होने पर भी भविष्य में जीव राशियों की देह में इस कर्म की आवश्यकता होने से ऐसी इच्छा प्रकट किया।)।।27।।

जब एक देह से दूसरे देह के पुरीतन नाड़ी को प्रवेश करने की इच्छा करने से नाभि द्वार व्यक्त हुआ। वैसे ही अपान वायु, मृत्यु देहान्तर प्रवेश रूप कर्म उत्पन्न हुए। (यहाँ भी मरण, अपान वायु अन्य देहों के लिए जानना चाहिए)।।28।।

जब उसे अन्न पान की अभिलाषा हुई तो रक्त उसका आधार पेट अंतड़िया उसकी आधार नाड़ियाँ उदर से होने वाली तृप्ति, नाड़ियों से होने वाली पुष्टि और उनसे नदी, समुद्र उत्पन्न हुए।।29।।

श्री हरि के सृष्टि कर्तृत्व इत्यादि महिमा का ध्यान करने की अभिलाषा होने पर मन का निवासस्थान हृदय, मन और अभिमानी चन्द्र तथा मन के संकल्प काम और उनके अभिमानी अनिरुद्ध उत्पन्न हुए।।30।।

पृथ्वी, जल और अग्नि के विकार भूत त्वक, चर्म माँस, रक्त, मेदस मज्जा और अस्थियाँ ऐसे देह धारक सप्त धातु उत्पन्न हुए आकाश, जल और वायु से जड़ प्राण उत्पन्न हुआ इसके लिए मुख्य प्राण देवता अभिमानी हैं।।31।।

गुणों के विकार भूत वाह्य इन्द्रिय, तामस अहंकार विकार भूत शब्द इत्यादि विषय, वैकारिक अहंकार का विकारभूत मन, महत्तत्त्व का विकार भूत निश्चय ज्ञान को उत्पन्न करने वाली बुद्धि, उस देह में व्यक्त हुए।।32।।

यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मा का स्थूल देह है। पृथ्वी जल, तेज वायु, आकाश, अहंकार तत्व, महत्तत्त्व और प्रकृति इसके ऐसे आठ आवरण हैं। इसी प्रकार से ब्रह्मा का विराट देह भी आवृत हुआ है। इसमें श्री हरि के वास करने से यह सब श्री हरि के प्रतिमारूप हैं।।33।।

श्री हरि का वास्तविक रूप तो इससे विलक्षण है अत्यन्त सूक्ष्म है। अत्यन्त महत्त्व है। इनके अनुग्रह के बिना दिखाई नहीं पड़ता है। उससे भी अधिक महत् अन्य वस्तु नहीं है। इसको आदि मध्य, अन्त नहीं है। सदा एक प्रकार रहने वाला है। रुद्र, सरस्वती, वायु और ब्रह्मा से भी उत्तम है। किसी के वाक् और मन से सम्पूर्ण जान नहीं सकते हैं। उनके अनुग्रह से ही उन उन जीवों के योग्यतानुसार ही अपरोक्ष ज्ञान होता है। यह भगवान का चिदात्मक रूप है।।34।।

श्री हरि का प्रतिमारूप प्राकृत और स्थूल है। उनका चिद्रूप भगवान की इच्छा से भक्तों को दिखाई पड़ता है। इन दोनों को अज्ञानी नहीं ज़ान सकते हैं। जो यथार्थ रूप से शास्त्रार्थ को जानने वाले हैं वे ही इन दोनों को यथार्थ रूप से जान सकते हैं।।35।।

श्री हरि ब्रह्मा के शरीर में स्थित होकर उनका नियमन करते हैं। सभी वेद इन्हीं का गान करते हैं। भीतर बाहर सर्वत्र व्याप्त होने से मुख्य रूप से यही ब्रह्म शब्द से वाच्य हैं शब्द को वाचक और शब्द अर्थ क्रियाओं को वाच्य होने का नियमन करते हैं। यह स्वतंत्र कर्त्ता हैं। कर्म का फल न होने से यह अकर्मा कहलाते हैं। इसलिए यह सर्वोत्तम हैं। ऐसे श्री हरि से सृष्टि किया हुआ यह जगत सत्य है।।36।।

श्री हरि ने प्रजापति, मन, देवता, ऋषि, पितृगण, सिद्ध चरण, गन्धर्व, विद्याधर, गुह्यक, किन्नर, अप्सराएँ, नाग, किंपुरुष मातृगण, राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूत, विनायक, कूष्माण्ड, उन्माद वेताल, यातुधान, स्थावर, जंगम प्राणी, जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज जल, भूमि और आकाश में संचार करने वाले प्राणी तथा इन सब के अवान्तर भेद इन सब की सृष्टि करके, उन शब्दों को वाचक और उनके देह तथा क्रियाओं को वाच्य बनाया है।।37,38,39।।

यह सब जातियाँ विहित, निषिद्ध और मिश्र कर्मों के फल होने से उत्तम, अधम और मध्यम जाति कहलाते हैं।।40।।

देवता, मनुष्य और नरक के योग्य ऐसे तीन प्रकार के जीवों के फल भी तीन प्रकार के हैं, सात्विक सुरगति, राजस मिश्र गति और तामस असुर गति हैं, इनमें भी तामस तामस, तामस राजस, तामस सात्विक। राजस तामस, राजस राजस, राजस सात्विक, सात्विक तामस, सात्विक राजस, और सात्विक सात्विक, ऐसे अवान्तर भेद हैं। सात्विक सात्विक जीवों में गरुड़, शेष, और रुद्र उत्तम हैं। इनसे भी ब्रह्मा और वायु उत्तम हैं।।41।।

जब सात्विक स्वभाव राजस और तामस स्वभाव से तिरस्कृत हो जाता है। तब रक्षक श्री हरि धर्म की स्थापना के लिए मत्स्य कूर्मादि रूपों से अवतार लेते हैं। और सात्विक स्वभाव को स्थापित करके जगत की रक्षा करते हैं।।42।।

संहार काल में यम, अग्नि और रुद्र के अन्तर्यामी श्री हरि ने ब्रह्मा के अन्तर्यामी होकर जो सृष्टि किए हैं उसका ऐसे संहार करते हैं जैसे वायु मेघ को नाश करता है। इसलिए श्री हरि ब्रह्मादि देवताओं से भी उत्तम हैं।।43।।

सर्व ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं। सम्पूर्ण जगत का नियमन करने वाले हैं। वही पुरुषोत्तम हैं। सृष्टि, स्थिति और संहार करने वाले यही हैं। ऐसा वेदों में कहा गया है। ब्रह्मादि ज्ञानी जन परिपूर्ण श्री हरि को समस्त जगत से विलक्षण जानकर उपासना करके उनका दर्शन करते हैं। परिपूर्ण श्री हरि सृष्ट्यादि (सृष्टि आदि) के लिए कर्ता हैं। अवतार लेकर अनेक कार्य करते हैं। यह सभी कार्य सत्य हैं। भगवान के सत्यभूत इन कार्यों को जीवों को बन्धन से मुक्त करने के लिए मुख्यार्थ रूप से वेदों में प्रतिपादन किए गए हैं। श्री हरि अपनी इच्छा से ही अपने स्वरूप भूत कर्तृत्व आदि को व्यक्त करते हैं। इसलिए इनको आविद्यक (अनिर्वचनीय) नहीं जानना चाहिए।।44,45।।

सभी दिन कल्प, ब्रह्म कल्प, के लिए प्राकृत और वैकृत सृष्टि का क्रम समान है। अर्थात् ब्रह्मकल्प के लिए ब्रह्मकल्प और दिन कल्प के लिए दिन कल्प समान हैं। ऐसा जानना चाहिए। इस प्रकार ब्रह्मकल्प मन्वन्तरादि विविध कल्पों से युक्त होना बतलाया हूँ।।46।।

काल का परिमाण कल्पों का लक्षण, अवधि और स्वरूप को आगे यथार्थ रूप से बतलाऊँगा। अब तुम पद् कल्प की बात सुनो। इस प्रकार शुकदेव जी ने राजा परीक्षित् से कहा।।47।।

इतनी कथा सुनकर शौनक ने कहा-हे सूत! जो आपने हम से कहा था कि भगवद्भक्त बिदुर अपने प्रिय और कठिनाई से छोड़े जाने योग्य बन्धुओं को त्यागकर पृथ्वीतल के विविध तीर्थ स्थानों का भ्रमण करते रहे। तब उनसे मैत्रेय का साक्षात्कार कहाँ हो गया। जहाँ इन आध्यात्मिक विषयों पर उनमें बातचीत हुई? अथवा बिदुर के पूछने पर मैत्रेय ने किस तरह उन्हें ज्ञानोपदेश दिया। हे सौम्य! आप मुझे बिदुर का चरित्र बताइए और यह भी कहिए कि उन्होंने अपने बन्धुओं को क्यों त्याग दिया था और त्याग देने पर भी वे फिर उनके पास क्यों वापस आ गए।।48,49,50।।

सूत जी ने कहा-राजा परीक्षित् के पूछने पर महामुनिशुक ने जो उत्तर दिया था सो मैं तुम्हें बताऊँगा। राजा का प्रश्न और आपका प्रश्न एक ही है। उन्होंने जो उत्तर दिया वही उत्तर आपके लिए है। उसको ध्यान से सुनो।।51।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे दशमोऽध्यायः।।

श्री राम श्री

श्री मद्भागवत महापुराणम्

तृतीय स्कन्धः

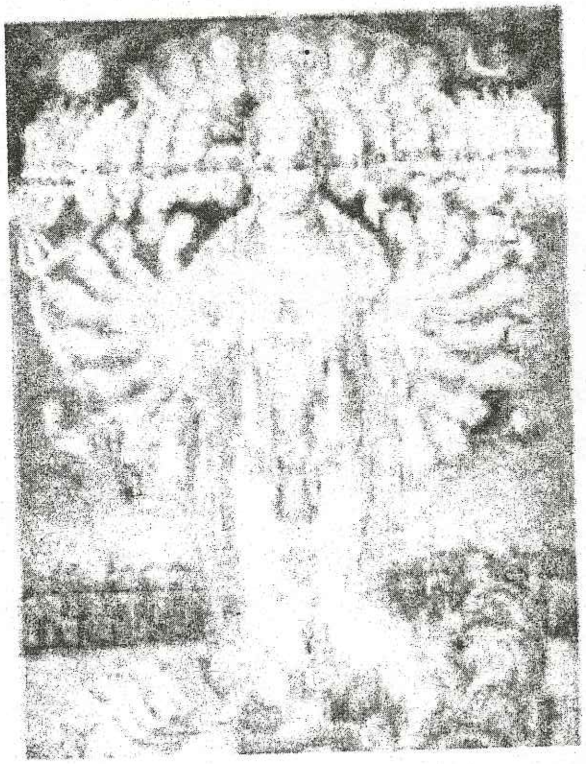

तृतीय स्कन्ध की विषय सूची

क्र0	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	अध्याय एक	उद्धव और विदुर की भेट	1-5
2.	अध्याय दो	कृष्ण के वियोग से दु:खित उद्धव द्वारा विदुर से श्री कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन	6-9
3.	अध्याय तीन	वृन्दावन से मथुरा आना, श्री कृष्ण के द्वारा कंस का वध	10-12
4.	अध्याय चार	भगवान के आदेशानुसार उद्धव जी से विदा होकर विदुर जी मैत्रेय ऋृषि के पास जाना	13-15
5.	अध्याय पॉच	सुख की प्राप्ति और दु:ख की निवृत्ति के साधन के विषय में प्रश्न, मैत्रेय जी का उत्तर देने की प्रतिज्ञा	16-18
6.	अध्याय छ:	महत्तत्वादि की सृष्टि, अभिमानी देवताओं द्वारा भगवान की स्तुति	19-22
7.	अध्याय सात	भगवान का तत्वों मे प्रवेश तथा ब्रह्माण्ड निर्माण की शक्ति की प्राप्ति, भगवान के नियामकत्व का वर्णन	23-26
8	अध्याय आठ	विदुर के प्रश्न, सत्वादि गुण रहित भगवान को गुणमय माता से सम्बन्ध कैसे हुआ?	27-30
9.	अध्याय नौ	नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्मा जी का भय, तप द्वारा भगवान का दर्शन	31-33
10.	अध्याय दस	भगवान द्वारा चतुर्मुख ब्रह्मा जी को वर देना तथा अन्तर्धान होना	34-39
11.	अध्याय ग्यारह	भगवान की आज्ञा से पुन: तप करना प्राकृत वैकृत भेद से नौ प्रकार की सृष्टि में आसक्त होना	40-43
12.	अध्याय बारह	कल्प, युग, आदि का काल परिणाम का वर्णन, द्रव्य परमाणु परिणाम का वर्णन	44-47
13.	अध्याय तेरह	ब्रह्मा जी से सनत्कुमारादि मानसपुत्रों की सृष्टि स्वायम्भुव मुन और शतरूपा की सृष्टि	48-52
14.	अध्याय चौदह	मनुराजा की प्रार्थना, ध्यान में आसक्त ब्रह्मा जी के नासिका से यज्ञ वराह व्यक्त होना, पृथ्वी को ऊपर लाना	53-57
15.	अध्याय पन्द्रह	दिति देवी का गर्भ धारण	58-62
16.	अध्याय सोलह	सनकादियों के द्वारा जय - विजय को शाप	63-69
17.	अध्याय सत्रह	भगवान द्वारा सनकादियों का समाधान तीन जन्मों के पश्चात् पुन: वैकुण्ठ आने का भगवान द्वारा अनुग्रह करना	70-74

18.	अध्याय अट्ठरह	हिरण्यकशिपु हिरिण्याक्ष का जन्म तथा उनका दिग्विजय	75-77
19.	अध्याय उन्नीस	हिरण्याक्ष एवं वराह भगवान का युद्ध	78-80
20.	अध्याय बीस	ब्रह्मा जी की प्रार्थना पर वराह भगवान द्वारा हिरण्याक्ष का वध	81-84
21.	अध्याय ईकीस	स्थावर जंगम सृष्टि के पश्चात् मनुराजा का वंश विस्तार	85-90
22.	अध्याय बाईस	कर्दम जी की तपस्या और भगवान का वरदान कर्दम ऋषि के आश्रम पर मनुराजा का आगमन	91-95
23.	अध्याय तेईस	कर्दम और देवहूति का विवाह	96-99
24.	अध्याय चौबीस	देवहूति की परिचर्या से प्रसन्न कर्दम के द्वारा विमान का निर्माण, दम्पत्ति सुख का अनुभव करना	100-104
25.	अध्याय पच्चीस	कपिल भगवान के अवतर के पश्चात् कर्दम का सन्यास स्वीकार करके वन को जाना	105-109
26.	अध्याय छबीस	माता के प्रश्न से कपिल भगवान द्वारा जीवों के बन्ध मोक्ष, भक्ति योग, श्री हरि में मन को स्थिर करना, भक्ति के लिए अधिकारी और उनके साधनों का वर्णन	110-115
27.	अध्याय सत्ताईस	चौबीस तत्वों की उत्पत्ति और उनके लक्षण	116-122
28.	अध्याय अठ्ठाईस	जीव - परमात्मा और जीव एक ही देह में रहने पर भी परमात्मा को दु:ख का अनुभव न होना, जीव और ईश्वर में भेद - ज्ञान ही संसार से मुक्त होने का साधन	123-127
29.	अध्याय उन्नतीस	अष्टाग्ङ् योग, ध्यान के लिए भगवान का रूप तथा ध्यान का विधान	128-132
30.	अध्याय तीस	अधिकारी तारतम्य से, भक्ति तारतम्य, कालशब्द वाच्य भगवान का महात्म्य	133-138
31.	अध्याय एकतीस	केवल कुटुम्ब में आसक्त हुए जीवों को पाप के फलस्वरूप अधोगति की प्राप्ति	139-142
32.	अध्याय बत्तीस	संसार असार होने से वैराग्य को उत्पन्न करने के लिए गर्भवास आदि में जीवों के द्वारा दुखों का अनुभव करने का वर्णन	143-149
33.	अध्याय तैतीस	भक्ति से अर्चिरादि मार्ग की प्राप्ति कर्मासक्त के लिए धूमादि मार्ग, अर्चिरादि मार्ग से मोक्ष धूमादि मार्ग से स्वर्गादि फल का प्रतिपादन	150-155
34.	अध्याय चौतीस	कपिल भगवान के उपदेश के द्वारा देव हूति को तत्वज्ञान एवं मोक्ष की प्राप्ति, कपिल भगवान का लोक कल्याण के लिए अब भी योग समाधि में रहना	156-159

श्री
श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
तृतीय स्कन्धः
अथ प्रथमोऽध्यायः

मुमुक्षुवों को अपनी-अपनी योग्यतानुसार भगवान का अपरोक्ष ज्ञान होने के लिए प्रधान साधन भक्ति ही है। अन्य सब साधन ऐसी भक्ति उत्पन्न होने के लिए साधन हैं, उसको यहाँ पर बतलाते हैं।

श्री शुकदेव जी ने कहा - हे राजन्! आपने मुझसे जो प्रश्न किया है वैसे ही विदुर ने त्रिकाल ज्ञानी मैत्रेय से प्रश्न किया था। सब प्रकार की सम्पत्तियों से परिपूर्ण अपना घर त्याग कर वन को गए हुए विदुर बैराग्यशाली होने के कारण इन तत्वों को जानने योग्य थे।।1।।

सर्वनियामक श्रीकृष्ण भगवान आपके पूर्वजों के लिए समझौता कराने के लिए गए हुए थे। वह कार्य सिद्ध न होने से हस्तिनावती को छोड़कर पाण्डवों के पास आये। उस समय विदुर तीर्थ यात्रा के लिए चले गए।।2।।

राजा परीक्षित् ने पूछा - हे शुकदेव जी! आप तो समर्थ हैं। त्रिकाल ज्ञानी मैत्रेय के साथ विदुर कौन से तीर्थ में मिले और उन दोनों में संभाषण कब हुआ। हस्तिवपुरी को त्यागकर विदुर के जाने का क्या कारण था।।3।।

भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ वह जो प्रश्न किए हैं वह तो भगवद्भक्तों से जानने योग्य तत्वों से भरा होगा। अन्तःकारण शुद्ध वाले उन विदुर को इससे अधिक बल प्राप्त हुआ होगा। इसलिए इन सबका विस्तार से वर्णन कीजिए।।4।।

सूत जी कहते हैं - हे शौनक! शुकदेव तो परिपूर्ण श्रीहरि को जानते हैं। श्री हरि उनसे प्रसन्न हैं। उनका मन भी प्रसन्न है। वह ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं। राजा परीक्षित ने जो प्रश्न किया था उसका उत्तर देना प्रारम्भ किया।।5।।

शुकदेव जी कहने लगे - धृतराष्ट्र को श्रीहरि का ज्ञान नष्ट हो चुका था। अन्याय मार्ग में रहने वाले अपने पुत्र दुर्योधनादि को धर्म विरुद्ध कार्यों में ही पालन-पोषण कर रहे थे। पाण्डव उसके भाई के पुत्र हैं उनके और कोई बन्धु नहीं थे। उनको लाक्षा भवन में प्रवेश कराकर जलाया।।6।।

धर्मराज की पटरानी द्रौपदी को उसके सिर के बाल को पकड़कर खींचते हुए दुःशासन सभा में लाया। इस नीच कृत्य को धृतराष्ट्र ने नहीं रोका। वह भी तो उसकी बहू ही है।।7।।

धृतराष्ट्र को पुत्र में निषिद्ध स्नेह होने से उसका ज्ञान नष्ट हो चुका था। धर्मराज तो सज्जन है उसको जुए में अधर्म से हराकर दुर्योधन ने उन्हें वन को भेजा। सत्य में निष्ठा वाले वह अपने प्रतिज्ञा के अनुसार अरण्य से वापस आकर अपने राज्य भाग को वापस माँगे। धृतराष्ट्र ने उसको भी नहीं दिया।।8।।

चौथा यह कि श्रीकृष्ण भगवान के वचन को भी नहीं माना। धर्मराज से भेजे हुए सबके गुरु श्री कृष्ण कौरव सभा में समस्त जीवों को मोक्ष आदि पुरुषार्थ को देने वाले वचनों को कहा था उसको न मानने से धृतराष्ट्र का रहा, सहा पुण्य भी नष्ट हो गया।।9।।

समझौता न होने पर श्री कृष्ण भगवान उपप्लाव्य को वापस आए। उस समय धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलाकर अपने कर्त्तव्य कर्म के विषय में विचार किया। तब मंत्रियों में श्रेष्ठ विदुर ने जो कहा वह विदुर ने जो कहा वही नीति के नाम से प्रसिद्ध है।।10।।

उन्होंने कहा उन त्यागी, तुम्हारे असह्य अपराधों को सहने वाले और शत्रुहीन युधिष्ठिर को तुम उनका भाग दे डालो क्योंकि शत्रुओं का संहार करने वाला भीम अर्जुन के साथ धर्मराज के इच्छाओं को पूर्ण करने में सिद्ध है। यह जानते हो कि भीम, दुर्योधनादि का संहार करने में सक्षम है इसलिए उससे घबराए हुए हो।।11।।

मोक्ष को देने वाला श्री हरि धर्मादियों की रक्षा करने का अनुग्रह किये हैं। वह कोई सामान्य पुरुष नहीं हैं। वह अनेक दुष्ट राजाओं को जीतकर यादव श्रेष्ठ पाण्डवों के साथ उपप्लाव में ही रहते हैं। यदि आप उनका राज्य भाग नहीं दोगे तो वह उनका भाग दिलाकर ही रहेंगे।।12।।

तुम अपने पुत्र को वंश का उद्धार करने वाला जानकर पोषणकर रहे हो। वह श्रीहरि का और उनके भक्तों का द्वेषी है तथा उनके विरुद्ध आचरण वाला है। ऐसा पापी आपका पुत्र बनकर आपके घर में रह रहा है। यदि तुम अपने वंश का कल्याण चाहते हो तो उसे शीघ्र ही त्याग दो।।13।।

सज्जनों के समस्त आचरण वाले विदुर के ऐसा कहने पर कर्ण दुःशासन, शकुनी के साथ बैठा दुर्योधन अत्यधिक कुपित हुआ और उसके होंठ फड़कने लगे। धृतराष्ट्र के सामने ही विदुर को धिक्कारते हुए कहा।।14।।

"इस कपटी दासी पुत्र को किसने यहाँ पर बुलाया है? यह जिसके टुकड़ों पर पलता है, उसी के विरुद्ध षडयंत्र रचता हुआ शत्रुओं का साथ देता है। इसकी श्वास भर शेष रखो, इस अभागे को इस देश से निर्वासित कर दिया जाये।"।।15।।

अपने भाई के सम्मुख ही मर्म भेदक वाग्वाण से ताड़ित होने पर भी विदुर को मन में व्यथा नहीं हुई। हँस दिया। ऐसे दुष्ट को भी पुत्र मानकर अभिमान करते हैं यह तो श्रीहरि की बन्धकशक्ति है। प्रतिष्ठित पुरुष का अपमानित होने से पूर्व ही चला जाना अच्छा है। ऐसा सोचकर उन्होंने अपने धनुषबाण को उसके द्वार पर ही रखकर हस्तिनापुरी से चले गए।।16।।

अनन्तरूपी श्रीहरि सज्जीवों को पवित्र करने के लिए अपने चरणों में गंगा को धारण किए हैं। जगह-जगह पुण्य क्षेत्रों में विशेष रूप से रहकर भक्तों पर अनुग्रह कर रहे हैं। ऐसे तीर्थ क्षेत्रों में संचार करके पुण्य को प्राप्त करने का प्रयत्न किया।।17।।

श्रीहरि की प्रतिमा से, पवित्र जल से तथा नित्य परिशुद्ध श्रीहरि के सन्निधान से युक्त अनेक नगर, पवित्र उपवन में संचार किया। श्रीशैल, विंध्याचल, सिंहाचल इत्यादि पर्वतों में, शुद्ध जल वाली गोदावरी आदि नदियों में,

पुष्करादि सरोवरों में श्रीहरि का दर्शन करते हुए विचरने लगे।।18।।

उनके साथ अन्य कोई नहीं था। एकान्त स्थान में वास करते हुए फल, पत्ते इत्यादि का सेवन करते हुए पवित्र तीर्थ में स्नान करते हुए भूमि पर सोते हुए और शरीर का कोई सँवार-श्रृंगार न करते हुए ऐसे वेशभूषा में रहते थे कि उन्हें कोई पहचान नहीं सकता था। विदुर ने जो-जो व्रत किया वह सब श्रीहरि को सन्तुष्ट करने में समर्थ थे।।19।।

इस प्रकार भारत-भूमि में भ्रमण करते हुए कालक्रम से विदुर जी प्रभास क्षेत्र में आए।।20।।

वहाँ पर ही कुछ समय वास किये। वहाँ विदुर को लोगों से पता चला कि जैसे वन में बाँस एक दूसरे से घर्षण करके जल जाते हैं वैसे ही यादव लोग ब्राह्मण के शाप से परस्पर झगड़ा करके नाश होने वाले हैं। विदुर को किंचित खेद हुआ। वहाँ से पश्चिम वाहिनी सरस्वती की ओर गये।।21।।

वहाँ के सरस्वती नदी में तृत, मनु, पृथु, अग्नि, असित, वायु, सुदास, गौ, गुह और श्राद्धदेव के नामों से प्रसिद्ध तीर्थों में स्नान किये। वहाँ के अन्य क्षेत्रों में भ्रमण किये।।22।।

स्थान-स्थान पर ऋषियों तथा देवताओं के द्वारा प्रतिष्ठित किए हुए श्रीहरि की प्रतिमाओं के दर्शन मात्र से लोग पवित्र होते थे।।23।।

इसके अनन्तर सुराष्ट्र, सौवीर, मत्स्य कुरुजांगल देशों में भ्रमण करते हुए यमुना के किनारे पर आए। वहाँ भगवद्भक्त उद्धव को देखा।।24।।

उद्धव को भगवान में अतिशय निष्ठा थी। वृहस्पति आचार्य से शास्त्र का अध्ययन किये थे। सदा श्री कृष्ण का अनुचर होकर वासुदेवानुचर के नाम से प्रसिद्ध थे। ऐसे उद्धव को देखते ही विदुर ने उनका आलिंगन किया और यादवों के क्षेम समाचार का विचार किया।।25।।

हे उद्धव! श्री हरि के नाभिकमल से उत्पन्न हुए ब्रह्मा ने श्रीहरि का स्तोत्र करने पर श्रीहरि ने भूलोक में शूर यादव के घर में अवतार लिया। श्रीकृष्ण भी हरि के अवतार हैं। श्रीहरि के शुक्ल केश के आवेश से युक्त शेषावतार ही बलराम हैं। यह दोनों भूभार का हरण करके प्रजाओं को सुख दे रहे हैं न?।।26।।

वसुदेव तो कुरुवंश वालों के लिए अत्यन्त प्रिय हैं। वह दानशील हैं वह अपने सहोदरी के पतियों को वाँछित वस्तुएँ देकर सन्तुष्ट करके उनके साथ सहोदर के वैसा ही नहीं किन्तु पिता के वैसा व्यवहार किया क्या वह सुखपूर्वक हैं?।।27।।

रुक्मिणी देवी ने संसार के स्त्रियों को ज्ञानियों के अनुग्रह द्वारा अभीष्ट को प्राप्त कर सकते हैं इसको सूचित करने के लिए ब्राह्मणों की आराधना करके श्री कृष्ण से प्रद्युम्न को जन्म दिया। यह प्रद्युम्न पहले जन्म में मन्मथ था। वह महा पराक्रमी है। यादवों के सेनापति हैं, क्या वह सुख से हैं (अन्य स्त्रियों के शिक्षणार्थ ही रुक्मिणी देवी ने ऐसा किया है किन्तु अन्य के अनुग्रह से पुत्र की प्राप्ति हुई ऐसा नहीं है)।।28।।

उग्रसेन, सात्वत, वृष्णि, भोज और दाशार्ह वंशी यादवों के स्वामी महाराज शूरसेन तो अच्छी तरह से है उनके सिंहासन को कंस ने छीन लिया था जिससे उसको बहुत दुःख हुआ था। श्री कृष्ण उसके दुःख को दूर करके

फिर से सिंहासन पर पट्टाभिषेक करा दिय।। ऐसे उग्रसेन क्या सुख से हैं?।।29।।

हे उद्धव! जाम्बवती ने व्रत करके श्री हरि से साम्ब को प्राप्त किया था। यही पूर्व में पार्वती का पुत्र स्कन्द था। यह श्रेष्ठ रथिक और भगवद्भक्त था। क्या वह सुख से हैं?।।30।।

अर्जुन से धनुर्विद्या को सीखकर श्री कृष्ण की सेवा करके, उनके अनुग्रह का पात्र बना था वह सात्यकी क्या सुख से है?।।31।।

अक्रूर को श्री हरि में अत्यधिक भक्ति है। इसलिए उनके मन में कोई अहंकार नहीं है। श्री हरि के चरणों से अंकित रज में लोटने से उसके सारे पाप नष्ट हो चुके हैं। ऐसे श्वफल्क का पुत्र अक्रूर क्या क्षेम से है?।।32।।

तीनों वेद अपने गर्भ में श्री हरि की विभूतियों को और उनके पूजा रूप याग को अर्थ रूप से धारण किये हैं वैसे ही अदिति देवी अपने गर्भ में श्री हरि को धारण की उन्हीं के जैसे देवक की पुत्री देवकी ने श्री हरि को पुत्र रूप में प्राप्त की क्या वह सुख से हैं?।।33।।

अनिरुद्ध यादवों के इष्टार्थ को पूरा करने में कामधेनु के जैसे हैं वह मनोभिमानी हैं। इनमें श्री हरि का अनिरुद्ध रूप का आवेश है। क्या वह सुखपूर्वक हैं।।34।।

श्री हरि की भक्ति पूर्वक सेवा करने वाले कृतवर्म, चारुदेष्ण इत्यादि यादव क्या सुख से है?।।35।।

धर्मराज के राजसूय यज्ञ में श्रीहरि की इच्छा से लाए हुए सम्पत्ति को देखकर दुर्योधन मन ही मन में जल उठा था। ऐसे धर्मराज, श्रीकृष्ण, अर्जुन की सहायता से क्या धर्म की रक्षा कर रहे हैं?।।36।।

जब भीम गदा संभाल कर युद्धभूमि में गदा को घुमाते हुए अपने पाद का प्रहार करते थे तो पृथ्वी काँप उठती थी। ऐसे भीमसेन दुर्योधनादि अपराधियों के अपराध को क्षमा करके क्या उन्होंने बैरभाव को त्याग दिया है?।।37।।

रथियों और सेनापतियों में यशस्वी उन अर्जुन के सब शत्रु समाप्त हो गए, जिन्होंने किरात वेषधारी रुद्र देवता को अपने प्रचण्ड बाणों की वर्षा से प्रसन्न कर दिया था क्या वह प्रसन्न हैं?।।38।।

माद्री के पुत्र नकुल और सहदेव जो कुन्ती पुत्रों से रक्षा किए हुए है तथा जिन्होंने युद्ध में शत्रुओं से अपने राज्य को छीन लिये हैं क्या वह सन्तोष से हैं?।।39।।

पाण्डु राजा कोई सामान्य नहीं हैं। अतिरथ में मुख्य हैं। धनुष के सहायता से ही चारों दिशाओं को जीत लिये थे ऐसे वीर को खोकर कुन्ती अपने पुत्रों के लिए प्राण धारण किए हुए है, यह आश्चर्य है।।40।।

हे सौम्य! मैं तो अब उस पतित धृतराष्ट्र के विषय में दुःखी हूँ कि जिसने मरे हुए महाराज पाण्डु के पुत्रों से शत्रुता ठानकर उनकी मृत आत्मा के साथ द्रोह किया और उसने मेरे सरीखे शुभचिन्तक भ्राता को भी पुत्रों का पक्ष लेकर अपने नगर से निष्कासित कर दिया।।41।।

ऐसे अधोगति की ओर जाने वाले मेरे भ्राता धृतराष्ट्र के लिए दुःख कर रहा हूँ।।42।।

संसारी जीव जो दुःख का अनुभव करते हैं उसको देखकर यह कोई आश्चर्य नहीं है। मानव जैसे नटना करते हुए श्रीहरि व्यक्त रूप से लोगों को दिखाई देते हैं। इन श्रीहरि को प्राप्त करने के लिये निवृत्तमार्ग में आसक्त

हुआ हूँ यह भी उनका अनुग्रह ही है।।43।।

कंस इत्यादियों का भगवान ने संहार किया। वैसे ही कौरवों का भी संहार कर सकते थे अथवा करा सकते थे। किन्तु विद्या, धन और कुलमद से मतवाले बने हुए जो राजे अपनी विशाल सेना का संचालन करते हुए पृथ्वी को कपा रहे थे उनका नाश करके देवताओं का कष्ट दूर करने के अभिप्राय से वे नारायण कौरवों के अपराधों की उपेक्षा कर रहे थे।।44।।

भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए ही श्री हरि अवतार लेते हैं। कंस इत्यादि दुष्ट लोगों का संहार करने के लिए ही श्रीहरि ने अवतार लिया है। यदि ऐसा न होता तो जनन-मरण रहित उनको व्यक्त होने का क्या कारण था? श्रवण-मनन के द्वारा सज्जीव उनके दर्शन करें इसीलिए वह अवतार लेते हैं। अन्य बालकों के भाँति विनोद के लिए वह जन्म नहीं लेते हैं। वह प्राकृत गुणों से रहित हैं। शुक्रशोणित संबंध से उनका देह उत्पन्न होने वाला नहीं है। उनको कोई विधि निषेध नहीं है। इसलिए प्रारब्ध कर्म से देह कैसे मिल सकता है।।45।।

इसलिए उनकी आज्ञानुसार आचरण करने वाले और शरणागत भक्तों के प्रयोजन के लिए ही वह अजन्मा होने पर भी उन्होंने यादव वंश में जन्म लिया है। ऐसे पवित्र चरित्र वाले श्रीहरि का ही वर्णन करें। आप तो मेरे मित्र हैं।।46।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्दे विदुरोद्धव संवादे प्रथमोऽध्यायः।।

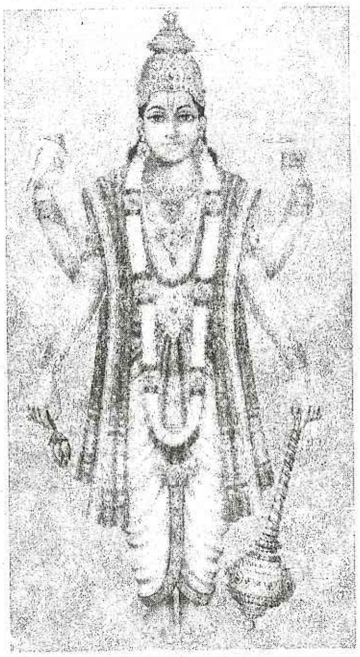

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहते हैं -अपने संबंधी समस्त वस्तुओं से भी अत्यन्त प्रियतम श्रीहरि की कथा सुनाने के लिए जब विदुर ने कहा तो भगवत्भक्त उद्धव श्रीहरि का स्मरण आ जाने तथा कण्ठ रुध जाने से उत्तर देने में असमर्थ हुए।।1।।

क्योंकि पाँच वर्ष की अवस्था में ही एक बार जब माता ने सबेरे के भोजन के लिए उद्धव को बुलाया तो वह उस समय भगवान की पूजा के खेल में होने के कारण भोजन करना पसन्द नहीं किये थे। तब जीवन भर उनकी साक्षात् सेवा में रहकर भला उन नारायण का वृत्तान्त पूंछने पर तुरन्त कैसे उत्तर दे पाते।।2।।

अतिशय भक्ति से वह श्री हरि के चरणरूपी अमृत में डूबकर परमानन्द का अनुभव करने से मुहूर्त काल चुप रहे।।3।।

उनके अवयव रोमांचित हो गए तथा मुँदे हुए नेत्रों से प्रेम के आँसुओं की धारा बहने लगी। उद्धव जी को इस प्रकार प्रेम प्रवाह में डूबे हुए देखकर विदुर जी ने उन्हें कृतकृत्य माना।।4।।

थोड़े समय में असम्प्रज्ञात समाधि से उठकर अपने आँखों को पोंछते हुए वे मन्द हास से विदुर को उत्तर देना आरम्भ किये।।5।।

उद्धव बोले-जब श्री कृष्ण रूपी सूर्य अस्त हो गया। यादव शक्तिहीन और कान्तिहीन हो रहे हैं, ब्राह्मण के शाप से कालसर्प उनको निगल रहा है। ऐसी स्थिति में कुशल प्रश्न के लिए कहाँ अवकाश है।।6।।

सभी जनता भाग्यहीन है, यादव तो अत्यधिक भाग्यहीन हैं। संसार सागर से पार करने वाले श्रीहरि के उनके पास रहने पर भी वह यह नहीं समझे कि ये संसार सागर से पार कराने वाले हैं। जैसे जल में रहने वाली मछलियाँ जल में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा को क्या समझ सकती हैं।।7।।

ब्रह्मादियों से भी उत्तम श्रीहरि को यह लोग सामान्य मनुष्य जो कुछ लोगों के लिए आश्रय है ऐसा एक श्रेष्ठ मानव मात्र समझकर सर्वत्र वास करने वाले इनको केवल यादवों में ही श्रेष्ठ समझते हैं।।8।।

जिनको भगवान में भक्ति नहीं है वे भगवान के बंधक शक्ति के वशीभूत होकर अन्यथा ज्ञानी होकर अज्ञानी असज्जीवों के लिए आश्रय बने हैं। जो मोक्ष के साधन नहीं हैं उनमें आसक्त हैं। ऐसे अन्यथा ज्ञानियों के वाक्यों से भगवद्भक्तों की बुद्धि कभी भ्रमित नहीं होती है।।9।।

उनका मन तो सदा सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीहरि में ही स्थित रहता है। वह श्री हरि ही श्री कृष्ण के रूप से अवतार लेकर अपने देह से भक्तों को आनन्द उत्पन्न करके फिर से अदृश्य होते हैं। ज्ञानीजन उनके चिदानन्द रूप को जानते हैं। अज्ञानियों को उनकी प्रतिमा रूप ही दिखाई पड़ती है। उन दो प्रकार के रूप हैं।।10।।

मानव जैसे लीलाएँ करने के लिए उपयुक्त देह को श्रीहरि अपनी इच्छा से धारण करते हैं। उनका प्रत्येक

अवयव भूषणों को भी भूषित करने वाला है ||11||

धर्मराज के राजसूय यज्ञ में इस देह को देखकर सामान्य लोग यह समझे कि ब्रह्मा की सृष्टि की कुशलता इसी में भरा हुआ है। अथवा लोग यह समझे कि ब्रह्मा जी की सृष्टि करने की कुशलता इस रूप के सामने कुछ नहीं है। अर्थात् निकृष्ट है।।12।।

इसी देह से श्री कृष्ण ने गोकुल में रहने वाली स्त्रियों को मोहित किया उनका प्रेम पूर्ण मन्दहास रास क्रीडा और उस समय की लीलामय उनकी चितवन से उन स्त्रियों में अभिमान (अहंकार) उत्पन्न किया, उनका मन उन्हीं में स्थित थे। उनका मन इनको ही आश्रय किये हुए था। वे अपने घर के कामकाज को भूल बैठी थीं।।13।।

भगवान के भक्त सात्विक जीवों को असुर जब पीड़ा देने लगे तो उसको दूर करने के लिए ब्रह्मा जी के प्रार्थना करने पर श्री हरि व्यक्त हुए। परन्तु उनके कार्य ब्रह्मादियों को भी मोहित करते हैं। अन्य के लिए क्या कहना है।।14।।

वह अजन्मा होने पर वसुदेव की पत्नी के उदर से जन्म लिये वैसा बतलाया (व्यक्त हुआ)। शत्रु (कंस) के भय से ब्रज में आ बसे और काल यवन तथा जरासन्ध आदि के भय से घबराये हुए दिखाकर मथुरा छोड़कर द्वारका को चले गए।।15।।

जब मैं भगवान की उस बात का स्मरण करता हूँ तो मेरा चित्त और भी दुःखी हो जाता है कि जब उन्होंने अपने माता-पिता को प्रणाम करके कहा था-**"हे पिता! हे माता! हम लोग कंस से अत्यन्त भयभीत आप लोगों की अभिलषित सेवा नहीं कर सके सो आप हम पर अनुग्रह कीजिए।"** ऐसे कहे हुए वचन मनमोहक हैं।।16।।

संसार में कौन ऐसा पुरुष है कि जो उनके चरण कमल की धूलि की सुगन्ध पाकर उसे भूल सके और जिनकी फड़कती हुई भृकुटियाँ ही काल बनकर भूमि का भार दूर कर दिये थी।।17।।

यह बात तो आप लोगों ने भी देखी थी कि धर्मराज के राजसूय यज्ञ में शिशुपाल ने श्रीकृष्ण से कितना प्रबल द्वेष किया था। फिर भी उन नारायण ने उसे वह गति दी कि जो योग्य अधिकारी चेतन उपक्रमादि लिंगों द्वारा वेदार्थ को समझकर हरि सर्वोत्तमत्व को जानकर श्रीहरि में निर्दुष्ट भक्ति करके प्राप्त करते हैं। केवल भक्ति से प्राप्त होने वाले श्रीहरि ने असुरावेश के कारण किए हुए द्वेष का फल, अन्धस्तमस को, असुर को दिया और अपने भक्त पर अनुग्रह करके मोक्ष देते हैं। तब इनके सदृश करुणा करने वाले कौन हो सकते हैं? ऐसे श्रीहरि के वियोग को कौन सहन कर सकता है। द्वेष तो निन्दित और हेय है। भक्तिमात्र से ही श्री कृष्ण में प्रवेश हो सकता है। द्वेष से श्री कृष्ण में प्रवेश कैसे हुआ? इस प्रश्न का उत्तर "ननु" से किया गया है। अर्थात् प्रमाण के अनुसार ही निर्णय करना चाहिए।

असुरा अपि ये विष्णुं शंखचक्रधरं रणे।
भक्तिपूर्वमवेक्षन्ते ज्ञेया भागवता इति।
विद्विषन्ति तु ये विष्णुमृषिपुत्रा अपि स्फुटम।
असुरास्तेऽपि विज्ञेया गच्छन्ति च सदा तमः।

इन प्रमाण वचनों से, द्वेष से मोक्ष न होना सिद्ध होता है। इसलिए "**सम्यग् योगेन**" कहकर सिद्धि का साधन बतलाया गया है।

सर्वथा भक्तितो मुक्तिः द्वेषात्तम उदीरितम्।

इस प्रमाण में भी वही कहा गया है। इसलिए द्वेष करने वालों को जहाँ मोक्ष कहा जाता है वहाँ दो जीवों का होना जानना चाहिए।

जीवद्वयसमायोगात् हिरण्यकमुखाः परे।
भक्तिद्वेषयुताश्च स्युर्गतिस्तेषां यथा निजा।
कंसपूतनिकाद्याश्च वान्धवादियुता यतः
जीवद्वयसमायोगात् गतिद्वयजिगीषवः।

इन प्रमाणों से शिशुपाल में जय भक्ति और पूतना (ताड़का) में एक अशुभ जीव और उर्वशी मुक्ति योग्य जीव ऐसे दो जीवों का समावेश जानना चाहिए। जहाँ असुर जीवों को मोक्ष कहा जाता है वहाँ उसके साथ रहने वाले भगवद्भक्त जय और उर्वशी को मोक्ष होना और असुर जीव को अन्धस्तमस की प्राप्ति होना जानना चाहिए।।18।।

दुर्योधन के पक्ष में रहकर कर्ण इत्यादि सार्ात्विक जीव श्रीहरि के मुखारविन्द का दर्शन करके पवित्र होकर श्रीहरि के अनुग्रह से उत्तम गति को प्राप्त किए।।19।।

ऐसे महिमा वाले श्रीहरि के समान थवा उनसे अधिक कोई नहीं है। वही सर्वोत्तम नियामक हैं। आप्तकाम हैं। लोकपालक भी उनके चरणों में अपने मुकुट से नमस्कार करके उनकी पूजा करते हैं।।20।।

सर्वोत्तम श्री कृष्ण ने उग्रसेन को सिंहासन पर बैठाकर उनके सामने हाथ जोड़कर हे देव ! यह बात ऐसी है, ऐसा कहा करते थे जिससे हमारा मन मोहित होता है।।21।।

शिशुओं को मारकर जीवन व्यतीत करने वाली पूतना ने भी कृष्ण को मारने की इच्छा से विष से पूर्ण स्तनपान कराया। परन्तु उसमें आविष्ट उर्वशी पर दया करके उसको सद्गति दिय इनसे बढ़कर क्या अन्य कोई दयालु रक्षक हो सकते हैं?।।22।।

असुर योनि (भगवद्भक्त अथवा देवता से युक्त) में जन्म लेने मात्र से भक्तों के लिए कोई हानि नहीं है। क्योंकि उनसे द्वेष बुद्धि से किए जाने वाले हरि स्मरण भक्ति में परिणित होकर उनको भक्त ही बना देते हैं। इसलिए श्रीहरि चक्र धारण करके गरुड़ पर सवार होकर इनको अपना रूप दर्शन कराकर ज्ञान प्रदान किये। भ्रमर एक कीट को लाकर दीवार में रखता है तब वह कीट भ्रमर से द्वेष करता है। जब वह आहार लाकर देता है तब उससे स्नेह से युक्त होकर उसी का स्मरण करता रहता है और उसके समान रूप को प्राप्त होता है। वैसे ही असुर योनि में जन्म लिये हुए सात्विक जीव द्वेष बुद्धि को त्याग कर श्रीहरि का स्मरण करते हुए भक्ति से युक्त होकर मोक्ष को प्राप्त होते हैं।।23।।

जब कंस ने वसुदेव और देवकी को कारागार में बन्द कर दिया था तो उनको कारागार से मुक्त कराने के लिए तथा पृथ्वी का भार उतारने के लिए ब्रह्मा जी जो प्रार्थना किये थे। उसके अनुसार भगवान ने वसुदेव के पुत्र के

रूप में देवकी के उदर से व्यक्त हुए।।24।।

कंस से घबराये हुए वसुदेव श्रीहरि को नन्द गोकुल में ले जाकर रखा जहाँ पर बलराम के साथ ग्यारह वर्ष तक अपने तेज को छिपाकर रहे।।25।।

वे वहाँ ग्वाल बालों के साथ यमुना तट पर जहाँ विविध भाँति के पक्षी अव्यक्त ध्वनि करते थे, उन वनों और उपवनों में विविध प्रकार के कौतुक किया करते थे।।26।।

ब्रज में बाल-लीला दिखाते हुए वे कभी रोते, कभी हँसते और कभी कुछ भी न जानने वाले सिंह शावक की तरह विहार करते थे। उनकी चेष्टाएँ लोक विलक्षण थीं।।27।।

जब कुछ बड़े हुए तो शोभा आदि सम्पत्तियों की खान स्वरूप वहाँ की गौओं को चराने और वंशी बजा-बजाकर सब ग्वाल वालों को आनन्दित करने लगे। इनकी चेष्टाएँ लोक विलक्षण थीं। उनके रहते हुए गोकुल में सम्पत्ति की कोई कमी नहीं थी। गोकुल तो लक्ष्मी का आवास स्थान बन गया था। गोपालकों के साथ स्वयं भी गौ को चराते हुए अपने वेणुनाद से सबको आनन्दित किये।।28।।

दैत्य तो अपनी इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं, ऐसे दैत्यों को कंस, कृष्ण का संहार करने के लिए भेजता था। कृष्ण तो उन सब को खिलौनों की तरह अनायास संहार कर देते थे।।29।।

कालिया नाग का निग्रह करके यमुना से उसको बाहर निकाल कर जल को विष रहित कर दिया। विष से युक्त जल को पीने से जो मरणासन्न थे उनको जीवित किया।।30।।

अर्जित किए हुए धन का उत्तम कार्य में विनियोग होना चाहिए, इसको बताने के लिए नन्द गोप द्वारा गो पूजा कराकर ब्राह्मणों को दान कराया।।31।।

हे विदुर! एक समय इन्द्र अपना अपमान समझकर कुपित हुए। विवेकशून्य होकर गोकुल को ही नाश करने के लिए वर्षा कराया तब भी कृष्ण ने अनायास गोवर्धन पर्वत को छतरी के समान पकड़कर गोकुलवासियों की रक्षा किया।।32।।

शरद ऋतु की रात्रि में चन्द्रोदय होने पर अपने वेणुगान से ब्रज की स्त्रियों को आलिंगन करते हुए उनके साथ क्रीड़ा करके उनको सन्तुष्ट किया।।33।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः।।

अथ तृतीयोऽध्यायः

उद्धव कहने लगे-इसके अनन्तर अपने माता-पिता की इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए वसुदेव के साथ-साथ वे मथुरा में आए और शत्रुसमुदाय के स्वामी कंस को वेग से ऊँचे सिंहासन से जमीन में खींच लिया और मार डाला।।1।।

तदनन्तर गुरु सान्दीपनी के पास जाकर वेद का अध्ययन किया। वे बुद्धिमान इतने थे कि गुरुजी एक बार जो बात कह देते, वह उनके हृदय में बैठ जाती थी। इस तरह विस्तार के साथ उन्होंने वेद का अध्ययन किया और गुरु के मरे पुत्रों को पंचजन्य नामक दैत्य के उदर में प्रवेश करके मरे हुए गुरु पुत्रों को पुनः जीवित करके गुरु दक्षिणा के रूप में समर्पण किया।।2।।

राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी की शोभा से आकर्षित होकर शिशुपाल आदि जो राजा-विवाह के निमित्त वहाँ आये थे, उनके देखते-देखते उनके गर्व को चूर करके उनके मस्तक पर पैर रखकर रुक्मिणी को हर लाए और गांधर्व रीति से विवाह किया।।3।।

सात बड़े-बड़े बैलों (साँड़) को नाथकर और उनके दमन से वहाँ के सभी राजाओं का मान भंग करते हुए उन्होंने स्वयंवर में लीलादेवी (नग्रजित राजा की पुत्री) को प्राप्त कर लिया। फिर भी लोभवश जो राजा उनसे लड़ने आए उन अज्ञानियों को अपने शस्त्रों से मार गिराया और अपने शरीर में तनिक भी चोट नहीं लगने दी।।4।।

श्री कृष्ण सत्यभामा को प्रसन्न करने के लिए देवलोक से पारिजात वृक्ष को लाए। इसको सहन न करके शची देवी ने इन्द्र को कृष्ण के विरुद्ध युद्ध करने को प्रेरित किया। मरुत्गणों के साथ विवेक शून्य होकर श्रीकृष्ण से विरोध करने पर इन्द्र पराजित होकर चले गए।।5।।

नरकासुर ने जब श्रीकृष्ण का विरोध किया तब चक्रायुध से उसका निग्रह किया। भू देवी की प्रार्थना से नरकासुर के पुत्र को राज गद्दी पर बिठाया और अन्तःपुर में प्रवेश किया।।6।।

नरकासुर से अपहरण की गयी कारागार में बन्द राजकन्यायें श्रीकृष्ण को देखकर प्रसन्न हुईं और हर्ष, लज्जा और अनुराग से प्रेरित होकर उनको अपना पति मान लिया।।7।।

उनकी इच्छा को पूर्ण करने के लिए श्रीकृष्ण ने अनेक रूप धारण करके अनेक भवनों में शुभ मुहूर्त में विधि विधानपूर्वक पाणिग्रहण किया। योगीश्वर श्रीकृष्ण के लिए यह कोई असाध्य नहीं है।।8।।

उन सबसे एक-एक से दस-दस बालक उत्पन्न किए। ये बालक श्री हरि के किंचित् साम्य वाले थे।।9।।

भूभार हरण के लिए अवतार लिए हुए श्रीकृष्ण ने स्वयं अनेक दैत्यों का संहार किया। अपने भक्तों के सामर्थ्य को बतलाने के लिए कालयवन को मुचुकुन्द से तथा जरासन्ध को भीमसेन से संहार करवाया। भक्तों के द्वारा दैत्यों का संहार कराने पर भी भक्तों में रहकर स्वयं श्री हरि ने ही दैत्यों का संहार किया।।10।।

शम्बर, विविद, बाण, मुर, विल्वल, दन्तवक्त्र इत्यादि का संहार होने के पश्चात् कौरवों और पाण्डवों के योद्धाओं को कुरुक्षेत्र में महाभारत युद्ध में संहार कराया।।11,12।।

उस सेना के भार से पृथ्वी काँपती थी। इसके बाद कर्ण, दुःशासन, शकुनि आदि की कुमंत्रणा से नष्ट और नष्ट आयु वाले दुर्योधन तथा उसके साथियों का संहार कराया। दुर्योधन की जाँघ टूट गई थी और वह मरा हुआ रणभूमि में कुत्तों और लोमड़ियों से घिरा हुआ पड़ा था। भीमसेन द्वारा दुर्योधन का संहार होने से भगवान श्रीकृष्ण भीमसेन पर बहुत प्रसन्न हुए।।13।।

इस पर भी अनगिनत यादव पृथ्वी पर थे। ये सज्जीव थे। कलियुग में इनका रहना श्रीकृष्ण को इष्ट नहीं था। यादवों का संहार न होने से पृथ्वी पर भार था। भगवान ने विचार किया कि उनके नष्ट होने का केवल यही एक उपाय है कि मद्यपान करके विवेकशून्य होकर परस्पर झगड़ा करके आपस में एक-दूसरे को मार कर समाप्त हो जायँ। मैं भी समय पाकर स्वयं अदृश्य हो जाऊँ। तत्पश्चात् वह भी न रहेंगे।।14,15।।

इस प्रकार योजना बनाकर राज सिंहासन पर धर्मराज युधिष्ठिर को बैठा दिया। अपने मित्रों एवं सुहृदयों को सन्मार्ग दिखाते हुए आनन्दित करते रहे।।16।।

अभिमन्यु ने उत्तरा के गर्भ में कुरू राजा के वंश का जो अंकुर स्थापित किया था उसे अश्वत्थामा ने उसका नष्ट करने का प्रयास किया था परन्तु श्रीकृष्ण उसकी रक्षा किया।।17।।

धर्मराज से भगवान ने तीन उत्तम अश्वमेध यज्ञ कराए। युधिष्ठिर भगवान कृष्ण की मंत्रणा का अनुसरण करते और अपने भ्राताओं की रक्षा करते हुए सुख से रहने लगे।।18।।

वे नारायण स्वानुभव पूर्ण होने से विषयासक्ति से रहित होकर द्वारका में विषय सुख भोगते रहे।।19।।

स्नेह और मुस्कुराहट मिली चितवन तथा अमृत सदृश मीठी वाणी एवं अपने पुनीत आचरण और अपने शोभाधाम (लक्ष्मी निवास) शरीर से इहलोक और परलोक विशेष कर यादवों को सन्तुष्ट करते हुए रहने लगे। रात्रि के समय में क्षण काल सौहार्द से स्त्रियों में क्रीडा किये।।20,21।।

गृहस्थ आश्रम के धर्माचरण को जगत को बतलाते हुए श्रीकृष्ण ने लोक शिक्षार्थ विषयों से बैराग्य को बतलाया।।22।।

भगवद्भक्त जो श्री हरि का आश्रय किए हैं वे ही श्री हरि की इच्छानुसार प्राप्त होने वाले भी अनित्य विषय सुख में आसक्त नहीं होते हैं तो श्री हरि को विषयासक्ति कहाँ से हो सकती है।।23।।

किसी समय सभी यादव और भोजवंशी बालक द्वारकापुरी में खेल रहे थे। उन लोगों ने मुनियों को क्रुद्ध कर दिया। भगवान का अभिप्राय जानने वाले उन ज्ञानियों ने उन यादवों को परस्पर झगड़ा करके नाश होने का शाप दे दिया।।24।।

इसके कुछ महीने बाद सब यादव दैव से प्रेरित हो खुशी-खुशी अपने-अपने रथों पर सवार होकर प्रभास क्षेत्र में जा पहुँचे।।25।।

एष्यं तु निश्चितं यत्तदतीतत्वेन भण्यते।
चक्रवत् परिवृत्तेर्वा दुष्टानां मोहनाय च। सकान्दे।।

इस प्रमाणानुसार निश्चित रूप में भविष्य में होने वाला है उसको **"हो गया"** (भूतकाल) ऐसा प्रयोग करते हैं। अथवा प्रतिकल्प में ऐसा ही होने से हो गया जैसा कहते हैं। अथवा दुष्ट लोगों को मोहित करने के लिए ऐसा कहा गया है। इसलिए यहाँ पर भूतकाल का प्रयोग किया गया है।।26।।

वहाँ उन्होंने स्नान किया और उसी तीर्थ के जल से पितरों का तर्पण करके ब्राह्मणों को भोजन कराया और बहुत सी गौएँ दान दी। इसके अतिरिक्त उन्होंने बहुत सा सोना, चाँदी, शय्या, कपड़े, मृगचर्म, कम्बल, बहुतेरी सवारियाँ, रथ, हाथी, कन्यायें और जीविका सम्पादन करने योग्य भूमि दान में दी। इसके अनन्तर उन्होंने बहुत स्वादिष्ट अन्न भगवान को सन्तुष्ट करने के लिए समर्पण करके ब्राह्मणों को भोजन कराया और गौवों तथा ब्राह्मणों को पृथ्वी में मस्तक झुकाकर उन वीरों ने प्रणाम किया।।26,27,28।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे विदुरोद्धव संवादे तृतीयोऽध्यायः।।

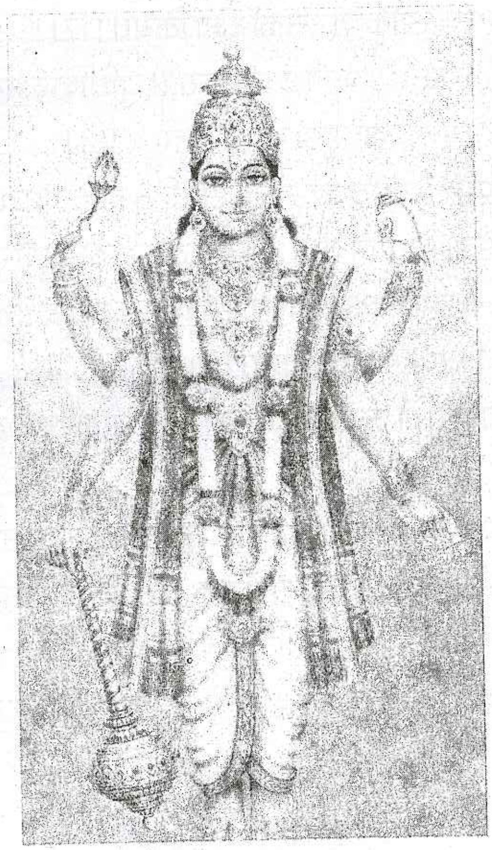

अथ चतुर्थोऽध्यायः

इस प्रकार दान धर्म करने के पश्चात् ब्राह्मणों की आज्ञा से यादवों ने भोजन और मद्यपान किया जिससे वे विवेकशून्य होकर एक दूसरे को अपशब्द का प्रयोग करने लगे और आपस में झगड़ा कर लिए।।1।।

जैसे वन के बाँसों की रगड़ से आग उत्पन्न हो जाती है और सारे वन को जला डालती है उसी तरह शाम होते-होते वे सब लड़कर आपस में नष्ट हो गए।।2।।

श्रीकृष्ण स्वर्गलोक को जाने के छब्बीस वर्ष पूर्व यह सब विचार किए थे। सरस्वती नदी के किनारे पर एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। शरणागतों के दुःख को दूर करने वाले श्रीकृष्ण ने मुझे बुलाया और बदरिकाश्रम जाने के लिए आज्ञा दिया। यह पहला अवसर है कि उन्होंने मुझे बदरिकाश्रम भेजा।।3।।

श्री हरि की मुझे फिर से ज्ञानोपदेश करने की इच्छा है इसे जानकर मैं बदरिकाश्रम से द्वारका आया। श्रीकृष्ण के इस लोक को त्यागकर जाते समय मैं उनके साथ जाना चाहता था। कृष्ण को छोड़कर रहना असाध्य था।।4।।

इसलिए श्रीकृष्ण को ढूँढ़ते हुए गया। मुझे ज्ञानोपदेश करके रक्षा करने वाले, जिसको किसी अन्य के आधार की अपेक्षा नहीं है जो लक्ष्मी के भी आश्रयदाता हैं ऐसे श्रीकृष्ण को सरस्वती नदी के तट पर देखा। वह वहीं अकेले बैठे थे।।5।।

उनके नेत्र प्रशान्त थे। पीताम्बरधारी चतुर्भुज को देखकर मैंने श्री कृष्ण को पहचान लिया। वह तो परिपूर्ण हैं, उनको कर्म का फल कहाँ से। वहाँ वे अपनी बाँई जाँघ पर दाहिना पैर रखकर उस पीपल के नए पेड़ के सहारे बैठे थे। अवतार करते समय जो रूप था पुनः उसी रूप में वे थे।।6,7।।

इसी समय वेदव्यास जी के मित्र मैत्रेय वहाँ आ पहुँचे। वह सिद्ध पुरुष हैं, भगवद्भक्तों में उत्तम हैं। लोक संचार करते हुए श्री हरि की इच्छा से ही वह श्रीकृष्ण के पास आए।।8।।

मोक्ष को प्रदान करने वाले श्री हरि का दर्शन करके हर्षित हुए। विनय से सिर झुकाकर नमस्कार किए। वह भी हरि में ही अनुराग वाले हैं। तब श्री कृष्ण ने मेरी ओर देखा, मुस्कराते हुए उनकी दयापूर्ण दृष्टि से मेरे सारे संसारिक दुःख दूर हुए।।9।।

तब श्रीकृष्ण ने कहा-"हे भक्तोत्तम उद्धव! आपके मन की इच्छा को मैं जानता हूँ। आपकी जिस विषय की इच्छा है वह विषय मेरे भक्तों के बिना अन्य किसी को प्राप्त नहीं हो सकती है। तुम पहले देवताओं के द्वारा ज्ञान सत्र में मेरी पूजा किए हो।।10।।

मुझसे ज्ञानोपदेश प्राप्त करने की तुम्हारी इच्छा थी। उसी ज्ञान को मैं देता हूँ। इस कल्प में यही तुम्हारा अन्तिम जन्म है। विशुद्ध मन से मेरी आराधना करने से ही रहस्य से इस लोक को त्याग कर स्वर्ग को मेरे जाने के समय तुमने मेरा दर्शन किया है। यही मेरा तुम पर अनुग्रह है। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।।11।।

अब तुम्हें जो ज्ञान उपदेश करता हूँ उस ज्ञान को सृष्टि के आदि में मेरी नाभि कमल से उत्पन्न हुए ब्रह्मा को उपदेश किया था। इससे मेरे सर्वोत्तमत्व की महिमा प्रकाशित होती है। ज्ञानीजन इसी को ''**भागवत**'' कहते हैं। इसी का मैं तुम्हें उपदेश करता हूँ।।12।।

श्रीकृष्ण के आदरपूर्वक यह सब कहने से मेरे मन में भक्ति का उद्रेक हुआ। उनके अनुग्रह के पात्र होने से मेरा शरीर रोमांचित हुआ। समस्त दुःख दूर हो गया। हाथ जोड़कर मैं कुछ बोलना चाहता था। किन्तु मेरे मुख से कोई वचन नहीं निकल सका। मैंने जो कुछ कहा वह मैं ही नहीं जानता।।13।।

''हे जगन्नियामक! आपके चरण कमलों का आश्रय किए हुए भक्त को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से कौन-सा पुरुषार्थ अप्राप्त रह जाता है। अर्थात् सब कुछ सुलभ से प्राप्त हो जाता है। सदा आपके चरण कमल की सेवा की ही अपेक्षा करने का स्वभाव वाला मैं इसके सिवाय अन्य कुछ नहीं चाहता।।14।।

आपके कार्य भक्तों की बुद्धि को मोहित करते हैं। आपको कर्मों से कोई अपेक्षा न होने पर भी आप कर्म करते हैं। अजन्मा होकर भी अवतार लेते हैं। सर्वदा निडर रहने वाले आपका जल दुर्ग में आश्रय करना, सबके लिए मृत्यु कहलाने वाले आपका जरासन्ध आदि शत्रुओं के भय से भागना, स्वरमण होते हुए हजारों स्त्रियों से विवाह करना-यह सब लोक-विडम्बना नहीं तो और क्या है।।15।।

आप सदा शुद्ध ज्ञान से परिपूर्ण हैं। आपको प्रमादादिदोष नहीं हैं। ऐसे आप साधारण लोगों के जैसे मुझे मंत्रणा करने के लिए बुलाकर कर्त्तव्यमूढ़ जैसे प्रश्न करने से कौन भक्त मोहित नहीं हो सकता है।।16।।

आपका ज्ञान तो अव्याकृत आकाश के समान आदि अन्त रहित है। ब्रह्मादि देवताओं को उनकी योग्यतानुसार उपदेश किए हैं। उनको जो उपदेश किए हैं। उन सबको क्या मैं ग्रहण कर सकता हूँ? आप हमारी योग्यता को जानते हैं। हमें संसार भय से मुक्त करने के लिए जो ज्ञान अवश्य चाहिए उसका उपदेश कीजिए। इस प्रकार मैंने उनसे निवेदन किया।।17।।

तब उन सर्वेश्वर ने अपने को सर्वोत्तम होना, समस्त जीव समुदाय तारतम्य से विशिष्ट होकर अपने अधीन होना, मुझे उपदेश किये।।18।।

उनके उपदेश से मैं श्री हरि को अनारोपित समाधिक रहित और ज्ञानानन्दादि गुणों का स्वरूप होने का ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद मैंने उनके चरणों को प्रणाम किया, उनकी प्रदक्षिणा की और वियोम से विरहातुर होकर यहाँ चला आया।।19।।

उनके वियोग से दुःखी हूँ परन्तु हे विदुर! इस बीच में आपके दर्शन से किंचित सन्तोष हुआ। अब मैं बदरिकाश्रम जा रहा हूँ।।20।।

वहाँ पर यम धर्म के पुत्र तथा श्री हरि के अवतार नारायण और शेषांश उनके भाई नर, लोक संग्रह के लिए तप कर रहे हैं। ऐसे दीर्घ तथा कठिन तप को अन्य कोई नहीं कर सकते हैं। उनका तप लोक कल्याण के लिए है। ऐसे तपस्वी जहाँ रहते हैं वह आश्रम श्री हरि को अत्यन्त प्रिय है।।21।।

शुकदेव जी कहते हैं-उद्धव के मुख से भविष्य में होने वाले यदुवंश के नाश का वृतान्त सुनकर विदुर को बड़ा विषाद हुआ और वह श्री हरि का स्वतंत्र होना और जीवों का अस्वतंत्र होना जानकर अपने दुःख को शान्त

किये।।22।।

महाभगवद्भक्त उद्धव जाने ही वाले थे तब श्रीकृष्ण के परिवार में मुख्य समझकर विदुर ने उद्धव से कहा-हे उद्धव! भगवान ने उस समय आपको अपने स्वरूप रहस्य प्रकाशित करने वाले जो ज्ञान दिये थे, क्या आप उसे बता सकते हैं।।23,24।।

क्योंकि भगवान के सेवकों का काम ही यही रहता है कि वे योग्य जीव जो भगवद्भक्त हैं उनका प्रयोजन साधन करने के लिए ही विचरते हैं। उद्धव बोले हे विदुर! मुझे ज्ञानोपदेश देते समय त्रिकाल ज्ञानी मैत्रेय भी वहाँ पर थे। श्री हरि ने उनको बुलाकर **''आगे विदुर को इस ज्ञान का उपदेश आपही करें। ऐसी आज्ञा किए। आप उनके पास जाइये आपकी इच्छा पूर्ण होगी। श्री हरि की इच्छा न होने से मैं नहीं बतला सकता हूँ।''** ऐसा उत्तर दिये।।25।।

सूत जी कहते हैं-हे शौनक! विदुर के साथ बातें करते हुए उद्धव ने सर्वत्र व्याप्त श्री हरि का गुणगान करते हुए अमृतमय उस सन्निवेश से अपने दुःख को दूर कर लिया। उस रात्रि में वहीं आनन्द से रहकर प्रातःकाल बदरिकाश्रम की ओर चले गए।।26।।

इस पर राजा परीक्षित ने पूछा हे भगवन्! जबकि बड़े-बड़े महारथी वृष्णि और भोजवंशी यादव वीर आपस में लड़कर मर मिटे और तीनों लोकों के स्वामियों के भी नियामक श्रीकृष्ण को भी भू-लोक से अव्यक्त होना पड़ा तब भला यह उद्धव कैसे बचे रह गए? श्री शुकदेव जी राजा के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहने लगे-श्री हरि की इच्छा कभी व्यर्थ नहीं होती है। ब्राह्मणों के शाप को निमित्त करके श्री कृष्ण ने ही यादवों का संहार करने का विचार किया था। वह इस लोक से अदृश्य होते समय में **''मेरे यहाँ से स्वर्ग लोक को जाने के पश्चात् मेरे ज्ञान को इस लोक में प्रसार करने के लिए उद्धव ही योग्य हैं। वह इस समय में रहने वाले ज्ञानियों में उत्तम हैं। वह अपने गुणों से मुझे वशीभूत कर लिये हैं। इसलिए वही लोगों को उपदेश करते हुए इस लोक में रहें।''** इस प्रकार विचार करके उनको बचाकर रखे है।।27,28,29।।

वेदों से प्रतिपाद्य भगवान के आदेशानुसार उद्धव बदरिकाश्रम में जाकर समाधि लगाकर भगवान की आराधना करने लगे।।30।।

विदुर ने उद्धव के द्वारा श्रीकृष्ण के चरित्र को जान लिये श्रीहरि तो क्रीड़ा के लिए देह धारण किये थे। उनका प्रत्येक कर्म प्रशंसनीय है। श्री हरि ने अपने देह के सदृश भौतिक देह की सृष्टि करके उसको यहाँ छोड़कर अपने चिदानन्दात्मक देह से स्वर्ग को चले गए। यह तो ज्ञानियों के ज्ञान की वृद्धि करने वाला है। अज्ञानी तो इस रहस्य को यथार्थ रूप से नहीं जान सकते हैं। उद्धव के जाने के बाद विदुर श्रीकृष्ण द्वारा अपने ऊपर किए गए अनुग्रह का स्मरण करके रोने लगे।।31,32,33।।

इसके बाद विदुर भी यमुनातट से चल दिए और गंगाजी के तट पर जहाँ कि मैत्रेय रहते थे, जा पहुँचे।।34।।

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे विदुरोद्धव संवादे चतुर्थोऽध्यायः

अथ पंचमोऽध्यायः

श्री शुकदेव जी कहते हैं-हे राजन्! मैत्रेय हरिद्वार में निवास करते थे। उनको अगाध ज्ञान था। कुरुवंश में उत्तम विदुर उनके पास आए। श्री हरि के स्मरण से उनका मन शुद्ध हो चुका था। अपने विनय आदि सद्‌गुणों से मैत्रेय की सेवा करके उनको प्रसन्न किये। प्रसन्न हुए मैत्रेय से विदुर ने कहा।।1।।

कि "संसार में सुख प्राप्त करने के लिए कर्म करते हैं। परन्तु उससे उनको सुख नहीं मिलता है और दुःख की निवृत्ति भी नहीं होती है। इस प्रकार बार-बार दुःख का ही अनुभव करते रहते हैं। इसलिए कर्म को किस प्रकार से करने से वे दुःख रहित सुख स्वरूप मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं? पुनः दुःख रूप संसार में न आए।।2।।

मुक्ति योग्य जीव ज्ञान न होने से, हितोपदेश करने वाले न मिलने से श्री हरि को भूलकर अधर्म ही करते हुए दुःखित हैं। उन पर अनुग्रह करने के लिए ही श्री हरि की चल प्रतिमा कहलाने वाले अपरोक्ष ज्ञानी संसार में विचरते रहते हैं।।3।।

हे साधुवर्य! सज्जनों पर अनुग्रह करना ही आपका ध्येय हैं। किस प्रकार श्री हरि की आराधना करने से श्री हरि भक्ति से परिशुद्ध हुए हृदय में निवास करते हैं? अपने सर्वत्र व्याप्त होने को बतलाने वाले सम्प्रदाय परम्परा से प्राप्त हुए ज्ञान को प्रदान करते हैं। वही ज्ञान सुखानुभव रूप मोक्ष के लिए साधन होने से उसका उपदेश करके अनुग्रह कीजिए।।4।।

श्री हरि स्वतंत्र हैं तीनों लोकों के मुख्याधिपति हैं। उनके अवतारों तथा कार्यों का वर्णन कीजिए। परिपूर्ण तथा निरीह भाव वाले श्री हरि आदि में इस जगत की कैसी सृष्टि किये? धर्म की स्थापना करके कैसे उसका पालन करते हैं।।5।।

प्रलयकाल में कैसे सबको अपने उदर में रखकर सृष्टि आदि कर्मों से निवृत होकर शयन करते हैं? वह एक ही इस अनेक प्रकार के जगत में अन्तर्यामी होकर तथा उसमें प्रवेश करके अनेक रूपों से कैसे सबका नियमन करते हैं।।6।।

अन्यान्य अवतारों में श्री हरि देव, ब्राह्मण और गौ की रक्षा के लिए क्या-क्या कार्य करते हैं? उनकी कीर्ति तो दोष रहित है। उनका चरित्र अमृत के सदृश स्वादिष्ट है। उसका कितना भी श्रवण करें तृप्ति नहीं होती है ।।7।।

लोकपतियों के भी लोकपति श्री हरि ने महत्तत्व इत्यादि तत्वों से ब्रह्माण्ड के बाहर के आवरण तथा ब्रह्माण्ड के अन्दर के लोकों का तथा उन लोकपालक देवताओं की कैसे सृष्टि किया? इन लोकों में देवता, मनुष्य इत्यादि प्राणियों को उनके साधन के लिए प्रमाणों के द्वारा जो साधन नियत किया गया है उसको बताने की कृपा करें।।8।।

श्री हरि के लिए अन्य कोई कारण नही है। उन्होंने ही ब्रह्मा की सृष्टि किया। श्री हरि ने देह, स्वभाव,

अदृष्ट, आकार-नामों से एक-दूसरे का भेद जो किए हैं उनका भी वर्णन कीजिए।।9।।

भगवान के ज्ञान के लिए जो उपयुक्त है उसी का ही श्रवण करना चाहिए था सृष्टि आदि कार्यों का श्रवण करना युक्त ही है परन्तु मनुष्य आदि भेद से युक्त ज्ञान से क्या प्रयोजन है? ऐसी शंका होने पर वह ज्ञान भी भगवान के ज्ञान के लिए उपयुक्त होने से श्रवण करना युक्त होना बतलाते हैं। श्री वेदव्यास जी के मुखारविन्द से अनेक बार ब्रह्मादि देवताओं और मनुष्यों के चरित्र का श्रवणकिया है उन सब की महिमा तो श्री हरि की ही महिमा का अवलम्बन किया हुआ है, इसलिए वे भी भगवान की महिमा का ही प्रतिपादन करते हैं, ऐसा उनका तात्पर्य समझने पर ही उनका श्रवण करने से आनन्द उत्पन्न होता है। उस चरितामृत का कितना भी पान किया जाय तृप्ति नहीं है। ऐसा उत्तम ग्रन्थ यह भारत है।।10।।

सत्र याग में सूत इत्यादि ज्ञानी इसका यश गाए हैं इसके श्रवण करने से श्री हरि भक्तों के मन में स्थित होकर संसार भय के कारण होने वाले लौकिक विषयाभिमान को दूर कर देते हैं। श्री हरि की महिमा का प्रतिपादन करने वाले इस भारत का श्रवण करके किस भक्त का मन तृप्त हो सकता है?।।11।।

जो मोक्ष सुख का अनुवाद करता है ऐसे शास्त्रों का अभ्यास करना चाहिए। यहा भारत तो ग्राम्य लोगों को सुख उत्पन्न करने वाली कथाओं का कथन करता है। वह पुरुषार्थ के लिए उपयुक्त नहीं है। इस शंका का समाधान अब इस श्लोक में करते हैं। हमारे स्नेहित और सर्वज्ञ वेदव्यास जी श्री हरि के गुणगान करने की इच्छा से ही भारत की रचना किये हैं। इसके अभ्यास से योग्य जीवों की बुद्धि विषय सुख को त्यागकर श्री हरि महिमा को जानने में ही आसक्त होती है।।12।।

ऐसे श्रद्धावानों का मन श्री हरि की कथा में अधिक से अधिक आसक्त होकर लौकिक विषयों को नश्वर और हेय जानकर उनसे विरक्त होता है। इससे भक्ति उत्पन्न होती ह।।13।।

भक्तिपूर्वक किये हुए उपासना से श्री हरि का अपरोक्ष ज्ञान होता है। श्री हरि के दर्शन से समस्त दुःख दूर होकर स्वरूपानन्दानुभव रूप मोक्ष प्राप्त होता है।।14।।

जो विषयासक्त रहते हैं वह श्री हरि की कथाओं से विमुख रहते हैं उनको देखने पर मुझे करुणा आती है। वह जो कहते हैं वह श्री हरि को सम्मत नहीं है। उनका ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं है। वे जिन विषयों का स्मरण करते हैं वह विषय इनको संसार से पार नहीं करा सकते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन ही व्यर्थ है इसलिए श्री हरि में आसक्त होकर अपनी आयु को सार्थक बनाना चाहिए। इस श्लोक में "**अनुशोचे**" आत्मने पद का प्रयोग करने से आत्मा शोक के लिए आश्रय होना सत्य है, मिथ्या नहीं है।।15।।

इसलिए हे मैत्रेय! कथाओं में सारभूत श्री हरि की ही कथा को कहिए वही मोक्ष देने वाली है। जिस प्रकार भ्रमर पुष्पों के रस का संग्रह करता है वैसे ही आप भारतादि शास्त्रों से श्री हरि के पवित्र चरित्र का संग्रह करके बतलाइए। दुःखी जनों के लिए आप अनिमित्त बन्धु हैं। हम दुःखी लोगों के कल्याण के लिए श्री हरि के चरित्र को बतलाइए।।16।।

श्री हरि ने सृष्टि करने की इच्छा की। प्रकृति के सामर्थ्य को कार्य करने योग्य बनाकर जगत की सृष्टि,

स्थिति और संहार करने के लिए वासुदेवादि रूपों से व्यक्त हुये। वे ब्रह्मा रूद्रादि देवताओं के नियामक हैं। इन देवताओं से जो कार्य नहीं हो सकता था उन कार्यों को किए हैं। ऐसे कार्यों को मुझे बताइये।।17।।

श्री शुकदेव जी ने कहा-हे परीक्षित् राजन्! योग्य जीवों के कल्याण के लिए विदुर ने जो प्रश्न किया तो उससे मैत्रेय प्रसन्न होकर उत्तर देना आरम्भ किए।

मैत्रेय जी कहत तेहैं- हे विदुर! आप साधु स्वभाव के हैं लोगों पर अनुग्रह करने के लिए ही ऐसा प्रश्न किए हैं। इससे श्री हरि का ही स्मरण करने वाले मेरी और आपकी कीर्ति लोक में शाश्वत रूप से रहेगी।।17,18।।

श्री हरि में आप की जो अनन्य भक्ति है वह कोई आश्चर्य नहीं है। आप वेद व्यास जी के अनुग्रह से ही जन्म लिए हो।।19।।

धर्माधर्म से प्रजा का नियमन करने वाले यम धर्म ही आप हैं। माण्डव्य ऋषि के शाप से आप शूद्र योनि में जन्म लिए हैं। वेदव्यास जी के अनुग्रह से विचित्रवीर्य के उपभोग के योग्य शूद्र स्त्री से आपने जन्म लिया है। तुम भगवद्भक्तों और भगवान के लिए प्रिय हो।।20।।

इसलिए इस लोक से अव्यक्त होने वाले श्री कृष्ण भगवान आपको ज्ञानोपदेश देने के लिए मुझे आज्ञा दिये हैं।।21।।

अब मैं आपको क्रम से श्रीहरि की लीलाओं को बतलाता हूँ जो श्री हरि के सामर्थ्य को बतलाते हैं। जगत की सृष्टि, स्थिति और लय उनकी लीलाओं के प्रयोजन हैं।।22।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पंचमोऽध्यायः

अथ षष्टोऽध्यायः

मैत्रेय जी कहते हैं-प्रत्यक्ष से सिद्ध तथा सत्यभूत इस प्रपंच के सृष्टि से पूर्व समस्त जीवों के स्वामी श्री हरि अकेले थे। वे सबके कर्मों का फल देने वाले हैं। जीवों के प्रयोजन के लिए सृष्टि करने की इच्छा करके अपने अधीन रहने वाले सामग्रियों का उपयोग करके सृष्टयादि करते हैं। उनके समान और उनसे अधिक कोई नहीं है, वही स्वतंत्र है। प्रलयकाल में भी थे। इन्हीं का ज्ञानी जन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं।।1।।

श्री हरि की भार्या श्री लक्ष्मी देवी उस प्रलयकाल में बाहर नहीं दिखाई देती थी। श्री हरि आँखों को बन्द नहीं किये थे। अपने को छोड़कर अन्य विषयों में आसक्त नहीं थे। सबको देखने वाले सर्वस्वामी समस्त कार्यों के कारण में लीन होने से सारे विश्व को कार्यरूप में न होने का जान लिये। जीव समुदाय जो नित्य हैं वह श्री हरि के अधीन और शक्तिहीन होने से रहने पर भी न रहे वैसा है।।2।।

हे विदुर! तुम भाग्यशाली, मुक्ति योग्य हो। श्री हरि ने जड़ प्रकृति और उसके अभिमानी चेतन प्रकृति लक्ष्मी जी से सत्यभूत इस जगत का निर्माण किया। कार्य कारणों में व्याप्त हुई तथा श्री हरि से भिन्न शक्ति कहलाने वाली लक्ष्मी और महत्तत्व इत्यादि कार्य कारण रूप जड़ प्रकृति भी माया कहलाती है। सर्व प्रधान श्री हरि मय कहलाते हैं। उनके संबंधी होने से माया नाम अन्वर्थक है।।3।।

श्री हरि को नपुंसक रूप नहीं है। उनका वीर्य जगत् की सृष्टि करने में सामर्थ्य रखता है। ऐसा मूलरूपी नारायण ने पुरुष कहलाने वाले वासुदेव रूप को व्यक्त किया, त्रिगुणाभिमानी जीवों के अदृष्ट फल को देने वाले काल रूप से प्रेरित होकर सृष्टि करने की इच्छा रखने वाली लक्ष्मी में अपने वीर्य को रखा। सत्वरजस्तमो गुणात्मक प्रकृति में परिणाम होने के सामर्थ्य को व्यक्त किया।।4।।

पुरुष नामक श्री हरि समस्त जीव राशियों के अदृष्ट के साक्षी हैं। इनसे प्रेरित होकर जड़ प्रकृति से महत्तत्व उत्पन्न हुआ। यही ब्रह्मा का शरीर है। अव्यक्त तत्त्वाभिमानिनी रमा देवी से ब्रह्मा की सृष्टि हुई।।5।।

ब्रह्मा का देह महत्तत्व है। इस महत्तत्व में छिपे हुऐ प्रपंच को वे व्यक्त करते हैं। वह (ब्रह्मा) विज्ञान स्वरूप हैं। अज्ञान और अन्धकार को दूर करने वाले हैं। सृष्टि के पूर्व में भी इनके ज्ञान का नाश नहीं हुआ था। यही जीव के अभिमानी हैं। गुणों का नियमन करते हैं। कर्म फल के लिए कारणीभूत काल के भी अभिमानी हैं।।6।।

प्रपंच की सृष्टि करने की इच्छा से महत्तत्व में परिणाम उत्पन्न किए। महत्तत्व से अहंकार तत्व उत्पन्न हुआ। यही शरीर इन्द्रिय और मन के लिए मूल कारण है। इसी से पंचभूत उत्पन्न हुए। ब्रह्मा से अहंकार तत्व के अभिमानी, गरुड़, शेष, रुद्र की सृष्टि हुई। आगे भी इसी प्रकार जड़ से जड़ की सृष्टि अभिमानी देवताओं से अभिमानी चेतन का उत्पन्न होना समझना चाहिए।।7।।

यह अहंकार तत्व वैकारिक, तैजस और तामस ऐसे तीन प्रकार का है। वैकारिक अहंकार से मनस्तत्व

और उनके अभिमानी इन्द्र और काम उत्पन्न हुए।।8।।

इतना ही नहीं किन्तु इन्द्रियाभिमानी कहलाने वाले वैकारिक देवताओं की सृष्टि हुई। तैजस अहंकार से वाक् इत्यादि कर्मेन्द्रिय तथा श्रोत्र इत्यादि ज्ञानेन्द्रिय उत्पन्न हुए।।9।।

तामस अहंकार से शब्दादि तन्मात्रा उत्पन्न हुए। शब्द से आकाश उत्पन्न हुआ। यह श्री हरि को बतलाने वाला प्रमाण है।।10।।

काल, प्रकृति और ब्रह्मा के योग से तथा श्री हरि के अनुग्रह से तामस अहंकार से युक्त आकाश से स्पर्शतन्मात्रा उम्पन्न हुआ। उस स्पर्श से वायु सृष्टि हुयी।।11।।

वायु से रूप तन्मात्रा और तेजस तत्व की सृष्टि हुई।।12।।

तेजस तत्व से रस तन्मात्रा और उसका कार्य जल की सृष्टि हुई।।13।।

इसी प्रकार से जल से गन्ध तन्मात्रा उसका कार्य जल की सृष्टि हुई।।14।।

इसी प्रकार से जल से गन्ध तन्मात्रा उसका कार्य पृथ्वी की सृष्टि हुई।।15।।

इन आकाश आदि भूतों में से जो-जो भूत बाद में उत्पन्न हुए हैं उनमें क्रमशः अपने पूर्व, पूर्व भूतों के गुण भी अनुगत समझना चाहिए अर्थात् आकाश में शब्द वायु में शब्द और स्पर्श, तेज में शब्द, स्पर्श और रूप, जल में शब्द, स्पर्श, रूप, और रस, पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, गुणों का होना जानना चाहिए।।16।।

इस प्रकार सृष्टि हुए तत्वों के अभिमानी देवता श्री हरि के भिन्नांश हैं। इनको काल, प्रकृति और जीवाभिमानी ब्रह्मा से देह प्राप्त हुआ है। इनमें परस्पर भेद है। वे स्वयं स्वतंत्र होकर ब्रह्माण्ड की रचना करने में समर्थ नहीं हुए। तब वे हाथ जोड़कर भक्ति से श्री हरि की स्तुति करना आरम्भ किए।।17।।

"हे देव! आपके चरणारविन्द का आश्रय करने वालों को ओप ताप-त्रय पीड़ा नहीं देते हैं। धूप के ताप को दूर करने वाला आक पत्र धूपकाल का ही ताप दूर कर सकता है किन्तु आप के चरणारविन्द संसार के दुःख को सदा के लिए दूर कर देते हैं। इसलिए ज्ञानीजन आपके चरण कमलों का ही आश्रय करके जनन-मरण से छुटकारा पाकर मोक्ष को प्राप्त होते हैं।।18।।

हे श्री हरि! हे जगन्नियामक! संसार बन्धन से मुक्त होने के लिए समस्त जीवों के लिए आपके चरणाबिन्द ही एक उपाय है। अन्यथा मुक्त नहीं हो सकते हैं। इसलिए हम अपनी योग्यतानुसार आपकी विद्या (ज्ञान) का आश्रय किए हुए हैं।

ब्रह्मविद्या हरेच्छाया तदंशो हि सुरेष्वपि।
सर्वविद्याश्रयः प्रोक्तः प्रधानांशश्चतुर्मुखः।। ब्राह्मे।

इस प्रमाण से जीवोत्तम चतुर्मुख ब्रह्मा समस्त ब्रह्म विद्या के समर्थ हैं, अन्य देवता तारतम्य से अपनी-अपनी योग्यतानुसार ब्रह्मविद्या के योग्य हैं। इसके पूर्व शलोक में श्री हरि के चरणरविन्द सुख के लिए कारण बतलाकर इस शलोक में श्री हरि के चरणों की सेवा न करने से ब्रह्म ज्ञान न होने से सुख का न होना बतलाया गया है।।19।।

ज्ञानीजन अपने मुख कमलों के द्वारा निकलने वाले वेद वाक्यों से एकान्त में रहकर आपको ढूँढ़ते हैं। आप का ज्ञान समस्त पापों को दूर करने वाला है।।20।।

आपके चरणों को प्राप्त करने के लिए श्रद्धा चाहिए। शास्त्र का श्रवण करना चाहिए। वैराग्य के द्वारा बलिष्ठ हुआ ज्ञान होना चाहिए। ऐसे ज्ञानपूर्वक भक्ति से मन निर्मल होता है। तब मन में आपके रूप को स्थिर करके आपका दर्शन कर सकते हैं ।।21।।

आप के अवतार स्वार्थ के लिए नहीं है। जगत् की सृष्टि, स्थिति, और लय के लिए हैं। आपके स्मरण मात्र से मुक्तियोग्य जीव संसार भय से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त होते हैं।।22।।

जिन पुरुषों का देह गेह तथा उनसे संबंध रखने वाले अन्य तुच्छ पदार्थों में अहंता, ममता का दुराग्रह है वे देह में रहने वाले आपको कभी नहीं जान सकते हैं। उनकी इन्द्रियाँ लौकिक विषयों में आसक्त होकर आप को देखने की सामर्थ्य रखने वाले अन्तःकरण को कुंठित कर देती हैं।।23।।

इसलिए लक्ष्मी, ब्रह्मादियों के द्वारा स्तुति किए जाने वाले तथा सर्वोत्तम नियामक आपका निकट में रहने पर भी आपका दर्शन नहीं कर सकते हैं। समस्त कर्मों को भगवद् अर्पण बुद्धि से करने वाले विरक्तसन्यासी ही आपका दर्शन कर सकते हैं।।24।।

हे देव! आप की कथा रूप अमृत के पान करने से भक्ति में वृद्धि होती है। जिससे अन्तःकरण शुद्ध होता है इससे वैराग्य दृढ़ होकर आपका अपरोक्ष ज्ञान होता है। जिसके फलस्वरूप दोष रहित आपके वैकुण्ठ लोक में जाकर आपको प्राप्त होते हैं।।25।।

इनके अतिरिक्त बहुत से लोग यम नियम इत्यादि योगाभ्यास में आसक्त होकर आपमें ही चित्त को एकाग्र करके आपके अनुग्रह से बन्धक शक्ति के अभिमानी प्रकृति को जीत लेते हैं। यह अन्य साधनों से साध्य नहीं है। ऐसे अपरोक्ष ज्ञानी आपको प्राप्त होते हैं। किन्तु इनको इसमें अधिक परिश्रम करना पड़ता है। परन्तु आपकी कथा श्रवण करने वालों को श्रम कहाँ है-सुख ही होता है। बन्धक शक्ति पर विजय प्राप्त करना हो तो श्री हरि के अनुग्रह से ही साध्य है। अन्य कोई मार्ग नहीं है जिसके लिए यह प्रमाण है-

वायोश्च प्रकृतेर्विष्णोर्जयो भक्त्यैव नान्यथा।। 26।। (दत्तात्रेय योगे)

आपने प्रपंच की सृष्टि करने की इच्छा से काल, माया और अंशों से हमारी सृष्टि किया है। अब हम परस्पर संबंध रहित हो गए हैं। इसलिए आपका क्रीडा स्थान ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने में असमर्थ हो गए हैं।।27।।

हम भक्ति पूर्वक आपकी पूजा करना चाहते हैं। ब्रह्माण्ड का निर्माण करके उसमें रहकर आपके विषय का ज्ञान, आपके उद्देश्य से किए जाने वाले कर्म ही हम आपको समर्पण करते हैं। इसलिए हम अपने अपने कार्य में आसक्त होने के लिए आपका अनुग्रह चाहते हैं। हमारी प्रेरणा के बिना प्रवृत्त होने में असमर्थ इन लोगों को भी इस ब्रह्माण्ड में रहकर अपने-अपने साधन करने के लिए अनुग्रह करें और इसके लिए ब्रह्माण्ड की रचना करे।।28।।

हम समस्त देवताओं के लिए आप ही पिता हैं, आप विकार रहित पुराण पुरुष हैं। कोई ऐसा विषय नहीं है

जिसे आप नहीं जानते हैं। आप अजन्मा हैं। ऐसे आपने सत्वादि गुण और कर्मों के लिए कारणीभूत आप नी चित् प्रकृति में (भार्या में) वीर्य का स्थापना किया है।।29।।

इस प्रकृति से ही ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने के लिए हम तत्वाभिमानियों की सृष्टि हुई है। इसलिए अब हमें क्या करना चाहिए। आप स्वतंत्र और सर्वशक्तिमान हैं। हम अस्वतंत्र और अशक्त हैं इसलिए हमें आप मार्ग दर्शन कीजिए। आप के अनुग्रह से ही हम ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने में समर्थ होंगे।।30।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे षष्ठोऽध्यायः

अथ सप्तमोऽध्यायः

इस अध्याय में **"तदनन्यत्वं आरम्भण शब्दादिभ्यः"** इस ब्रह्मसूत्र के अधिकरण के अर्थ को ही बतलाते हैं। मैत्रेय कहते हैं-हे विदुर! श्री हरि सर्व नियामक और सर्वशक्तिमान हैं। तत्वाभिमानी देवताओं की शक्ति उनके अधीन है। संबंध रहित तत्वाभिमानियों की स्तुति को सुनकर श्री हरि ने तत्वों में प्रवेश करने की इच्छा किया। काल नामक अपने अधीन शक्ति कहलाने वाली लक्ष्मी के साथ महत्तत्वादि तेईस तत्वों में प्रवेश किया।

शब्दाद्या नभ आद्याश्च मनोयुक्तेन्द्रियाणि च।

अहंकारो महांश्चैव त्रयोविंशतिकोगणः तत्वनिर्णये।

इस प्रमाण में तेईस तत्वों को बताया गया है। चौबीसवाँ तत्व ही प्रकृति है। इनमें श्री हरि ने प्रवेश किया। इनमें प्रवेश किया हुआ श्री हरि पच्चीसवाँ तत्व है। यदि यहाँ पर जड़ांश को ही लेने पर पच्चीसवाँ तत्व जीव होता है। लक्ष्मी से युक्त श्री हरि छब्बीसवाँ तत्व, लक्ष्मी को यदि पृथक कहेंगे तो श्री हरि सत्ताइसवाँ तत्व होगा। यह सब **"उठक्रमः"** शब्द से सूचित किया गया है। तंत्र शब्द का अर्थ साधन है, इसके लिए प्रमाण-

"तनुते येन कार्यं यत्तन्त्रं साधनमुच्यते"।

श्री हरि लक्ष्मी के साथ तत्वों में प्रवेश किये। इसके लिए प्रमाण

त्रयोविंशति तत्त्वानि प्राविशद्रमया सह।

कालाख्यया स्वयं विष्णुः शक्यत्वाच्छक्तिरुपया।। इति च

प्रवेश करने से श्री हरि कारागृहवास जैसे अस्वतंत्र नहीं होते हैं। प्रवेश भी स्वातंत्र्य से ही है जिसको ईश्वर, शब्द से सूचित किया गया है। श्री हरि से भिन्न कोई स्वतंत्र साधन न होना इस ब्रह्म सूत्र के अधिकरण में बतलाया गया है।।1,2।।

उनकी शक्तियों को व्यक्त करना ही प्रवेश करने का प्रयोजन है। प्रलयकाल में सुप्त हुए सृष्टि के कारणीभूत अदृष्ट को कार्योन्मुख किया। विश्लिष्ट हुये तत्व समुदाय को अंशो के साथ मिलाया।।3।।

इस प्रकार श्री, के प्रवेश करके प्रेरित करने से यह तत्व समुदाय अपने कार्य में आसक्त हुए। पुरुष नामक ब्रह्माण्ड की सृष्टि किए।।4।।

इस प्रकार तत्वों में विकार होकर ब्रह्माण्ड के निर्माण के पश्चात् उस ब्रह्माण्ड में चराचर जगत् उत्पन्न हुआ।।5।।

ज्ञानानन्द रूपी श्री हरि समस्त जीवों के साथ उस ब्रह्माण्ड में प्रवेश किये। इनका पुरुष नाम है। ब्रह्माण्ड के भीतर जल में एक सहस्त्र वर्ष (देवमान) तक शेषशायी होकर वास किये।।6।।

यह श्री हरि सर्वदा ब्रह्मादि देवताओं से भी अत्यधिक शक्ति वाले हैं। जीव समुदाय के सुख दुःख के लिए

साधनीभूत अदृष्ट इनका अनुसरण करता है। प्रकृति इनकी शक्ति है। यही तत्वों के अन्तर्यामी हैं। शेषशायी श्री हरि अपनी इच्छा से ब्रह्मा के देह की सृष्टि करके उनमें प्रवेश किये। उनके अवयवों के लिए नियामक होकर एक, तीन, दस रूप धारण किये।।7।।

यह श्री हरि ही समस्त प्राणियों के नियामक हैं। यह पुरुष रूप उनका स्वरूपांश है। यही श्री हरि का पहला अवतार है। इन्हीं को आश्रय करके समस्त प्राणी रहते हैं।।8।।

विशेष प्रकाश वाले इनको विराट कहते हैं। मुख्य चेष्टक होने से इनको प्राण कहते हैं। ब्रह्मा के अन्तर्यामी श्री हरि ही अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत, ऐसे तीन रूप वाले हैं। दस रूप वाले हुये। ब्रह्मा जी के हृदय में रहकर एक रूपी कहलाये।।9।।

श्री हरि इन्द्रियगोचर नहीं हैं। तत्वाभिमानी देवताओं के प्रार्थनानुसार ब्रह्मा जी के अंतर्यामी श्री हरि ने ब्रह्मा जी के देह में उनके आश्रय स्थान को बनाया।।10।।

इन स्थानों को मैं बताता हूँ सुनो।।11।।

शरीर के अवयवों में से प्रधान मुख प्रकट हुआ। लोक पालक अग्नि अपने अंशभूत वागेन्द्रिय के साथ मुख का आश्रय किया। इससे ब्रह्मा के शरीर में रहने वाला श्री हरि बोलने लगा।।12।।

जब उस विराट पुरुष के तालू उत्पन्न हुआ तो वरुण देव अपने जिह्वारूपी अंश के साथ उसमें आ विराजे। इस जिह्वेन्द्रिय के द्वारा श्री हरि रस को ग्रहण करते हैं।।13।।

जब श्री हरि के दो नासिकाएँ उत्पन्न हुईं तो उनमें दोनों अश्विनी देवता अपने अंश घ्रॉणेन्द्रिय के साथ प्रवेश किए। इससे श्री हरि गंध को ग्रहण करते हैं।।14।।

जब श्री हरि की आँखें उत्पन्न हुईं तो त्वष्टा नामक सूर्य अपने अंश चक्षुरिन्द्रिय के साथ प्रवेश किये। जिससे श्री हरि रूप को ग्रहण करते हैं।।15।।

जब उसके शरीर में त्वगिन्द्रिय उत्पन्न हुई तो वायव्य कोणाधिपति वायु स्पर्शेन्द्रिय के साथ प्रवेश किया जिससे श्री हरि स्पर्श को ग्रहण करते हैं।।16।।

जब श्री हरि के कान उत्पन्न हुए तो दिग्देवता श्रोत्रेन्द्रिय अंश के साथ प्रवेश किये जिससे श्री हरि शब्द को ग्रहण करते हैं।।17।।

जब श्री हरि से त्वगेन्द्रिय व्यक्त हुआ तो औषध्याभिमानी देवता अपने अंश रोमों के साथ प्रवेश किए इससे श्री हरि खुजली आदि का अनुभव करते हैं।।18।।

उस देह में गुह्येन्द्रिय व्यक्त हुआ तो दक्ष प्रजेश्वर ने गुह्येन्द्रिय अंश के साथ उसमें प्रवेश किया जिससे सम्भोग से उत्पन्न होने वाले आनन्द का अनुभव हुआ।।19।।

व्यक्त हुआ गुदेन्द्रिय में लोक पालक मित्र पायु इन्द्रिय अंश के साथ प्रवेश किया जिससे मलत्याग का मार्ग बना।।20।।

उस देह में व्यक्त हुए हाथों में इन्द्रदेवता हस्तेन्द्रिय अंश के साथ प्रवेश किये जिससे देह के अन्तर्यामी श्री हरि ने ग्रहण और त्याग इत्यादि व्यापार को आरम्भ किया।।21।।

इसी प्रकार से जब देह में पाद व्यक्त हुए तो लोकपाल विष्णु (जयन्त) ने पादेन्द्रिय अंश के साथ प्रवेश किया इससे चलने फिरने की क्रिया उत्पन्न हुई।।22।।

चन्द्र ने मन के अंश के साथ हृदय में प्रवेश किया जिससे श्री हरि में संकल्प विकल्प रूप क्रिया उत्पन्न हुई।।23।।

इस देह में मनोवाहक नाड़ी व्यक्त हुई। वृहस्पति ने बुद्धि अंश के साथ उसमें प्रवेश किया। इस बुद्धि के द्वारा निश्चय ज्ञान उत्पन्न हुआ।।24।।

इस शरीर में व्यक्त हुए अहंकार नामक नाड़ी में रुद्र देवता ने अभिमान के साथ प्रवेश किया जिससे यह मेरा कर्तव्य है ऐसा भाव उत्पन्न हुआ।।25।।

इस देह में व्यक्त हुए सत्व नामक नाड़ी में ब्रह्मा ने अपने चित्तअंश के साथ प्रवेश किया इससे विज्ञान उत्पन्न हुआ।।26।।

इस विराट देह के मस्तक से द्यु लोक, पाद से भू लोक, नाभि से आकाश उत्पन्न हुए। इन लोकों में प्राकृत गुणों का कार्यभूत सुख, कर्म, प्रमाद उत्पन्न हुए। इन लोकों में देवता, असुर, मनुष्य, रुद्र के पार्षद इत्यादि समस्त जीव समुदाय निवास किए।।27।।

सत्वगुण से देवता स्वर्ग को, रजोगुण से मनुष्य भू लोक को, तमोगुण से भूतादि अन्तरिक्ष का आश्रय किए।।28,29।।

मुख से ब्राह्मण जाति और उनके अभिमानी उत्पन्न हुए। ब्राह्मण श्री हरि में आसक्त होने से अन्य तीन वर्ण वालों के लिए गुरु माने गए।।30।।

बाहुओं से ब्राह्मणों के अनुयायी क्षत्रिय जन्म लिए। वे अपने पराक्रम से प्रजां को शत्रुओं से रक्षा करने के काम में लगे।।31।।

ऊरु से वैश्य उत्पन्न हुए। इन्होंने अपने व्यवहार कौशल से संसार के समस्त मनुष्यों की जीविका का सम्पादन किया तथा पशु-पालन में आसक्त हुए।।32।।

श्री हरि के चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए। सेवाकर्म ही इनके लिए साधन है। नारायण इनके सेवा कार्य से बहुत प्रसन्न होते हैं।।33।।

ब्राह्मण जाति के अभिमानी भृगु ऋषि हैं। क्षत्रिय जाति के लिए मनु, वैश्य जाति के लिए वास्तु देवता और शूद्र जाति के लिए कृति अभिमानी है। ये सब श्री हरि से उत्पन्न होकर उन वर्णों की रक्षा करने लगे। जिन-जिन वृत्तियों के साथ जो वर्ण उत्पन्न हुए वे अपने अन्तःकरण की शुद्धि के लिए श्रद्धा के साथ अपने पिता, गुरु, इष्ट देवता तथा सर्व स्वामी श्री हरि की अपने-अपने कर्मों के द्वारा आराधना करने लगे। इसी से श्री हरि सन्तुष्ट होते हैं।।34।।

हे विदुर! श्री हरि समस्त देवताओं से श्रेष्ठ हैं, सबके लिए मूलकारण हैं और सर्वत्र व्याप्त हैं इसलिए इनको दैव, कर्म और आत्मा कहते हैं। ये पूर्वकाल के वर्तमान काल के और भविष्यत्काल के ब्रह्माण्डों की सृष्टि करने के सामर्थ्य वाले हैं। इनके निरवधिक सामर्थ्य को कोई भी अपने पूर्ण आयुष्य में कहकर समाप्त नहीं कर सकता है।।35।।

इस पर भी मैं जितना जानता हूँ और जो मैंने सुना है वह मैं आपको सुनाता हूँ।।36।।

श्री हरि के चरित्र को कहने से वागेन्द्रिय सार्थक और शुद्ध होता है। वागेन्द्रिय का मुख्य प्रयोजन तो श्री हरि के गुणों का गान करना ही है। कानों के रहने से उनके कथा रूपी अमृत का भक्ति पूर्वक श्रवण करना ही प्रयोजन है।।37।।

इसी प्रकार के अन्य इन्द्रियों के विषय में भी जानना चाहिए। जब ब्रह्मा जी ने श्री हरि के महात्म्य को कह सुनाया तो यह कैसे कह सकते हैं कि कोई भी श्री हरि के महिमा का वर्णन नहीं कर सकते हैं इसके उत्तर में कहते हैं कि समस्त शास्त्रों के जानने के सामर्थ्य वाले जीवोत्तम ब्रह्मा ने शम दमादि साधनों के द्वारा एक हजार वर्ष के पश्चात् श्री हरि के महात्म्य को कोई भी ज्ञानी सम्पूर्ण रूप से जान नहीं सकता है। अन्य सब को तत्व का उपदेश करने वाले ब्रह्मा ही जब पूर्ण रूप से नहीं जानते हैं तो अन्य लोगों के लिए क्या कहना है।।38।।

समस्त वेदों की अभिमानिनी रमा देवी के श्री हरि के गुणों का निरन्तर गान करने पर भी अन्त को न पहुँच कर जानने वाले कुछ ही गुणों का गान करती रहती हैं। तब रुद्र, शेष, गरुड़ और अन्य देवताओं से भगवान के गुणों को कहकर समाप्त करना क्या साध्य है? ऐसे निरवधिक तथा पूर्ण महिमा वाले श्री हरि को नमस्कार है।।39।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे सप्तमोऽध्यायः।।

अथ अष्टमोऽध्यायः

इस अध्याय में भगवान जीव के साथ इस शरीर में रहने पर भी जीव को जो दुःखादि होते हैं वह भगवान को न होना बतलाते हैं। इस विषय में विदुर द्वारा किए हुए प्रश्नों का भी उत्तर देते हैं।

श्री शुकदेव जी कहते हैं-इस प्रकार कहते हुये और मैत्रेय को प्रसन्न करते हुए वेद व्यास के अनुग्रह से उत्पन्न हुए ज्ञानी विदुर बड़ी कोमल वाणी में बोले।।1।।

हे ब्रह्मज्ञानी! श्री हरि तो ज्ञानस्वरूप हैं। प्राकृत गुणों से रहित हैं। निर्विकार हैं। ऐसे भगवान को सत्वादि गुणों के निमित से किए जाने वाले सृष्टिकार्य कैसे युक्त होगा।।2।।

क्रीडा के लिए सृष्टि करते हैं यह भी नहीं कह सकते हैं। क्रीडा से जिसको सुख होता है वह अपूर्ण होता है। क्रीडा की इच्छा होने के लिए बेजारी होना चाहिए अथवा उनके समान अन्य कोई होना चाहिए। श्री हरि जो सदा के लिए तृप्त हैं। उनके समान अन्य कोई भी नहीं है। इसलिए क्रीडा की इच्छा भी नहीं हो सकती है। तब कैसे कहते हैं कि क्रीडा के लिए सृष्टि करते हैं?।।3।।

इसके अतिरिक्त श्री हरि अपने अधीन प्रकृति के रजोगुण को निमित्त करके सृष्टि करते हैं। सत्व गुण को निमित्त करके पालन करते हैं तथा तमोगुण को निमित्त करके संहार करते रहते हैं। इससे प्रतीत होता है कि श्री हरि को सत्वादि गुणों का संबंध है। इसका रहस्य हमें समझाने की कृपा करें।।4।।

श्री हरि ज्ञानस्वरूप हैं। उनका ज्ञान देश के निमित्त से, काल के निमित्त से, जागृति स्वप्न आदि अवस्था निमित्त से अथवा अन्य किसी निमित्त से नष्ट होने वाला नहीं है। ऐसे श्री हरि को प्रकृति का संबंध कैसे हो सकता है। यह तो युक्ति विरुद्ध है परन्तु सत्वादि गुणों का संबंध होना ज्ञात होता है इसलिए मुझे सन्देह होता है।।5।।

भगवान ज्ञान स्वरूप हैं उनका ज्ञान किसी देश, काल, अवस्था में नष्ट होने वाला नहीं है। ऐसे श्री हरि को प्रकृति का संबंध कैसे हो सकता है? ऐसे ऐश्वर्य से युक्त श्री हरि अकेले ही इस देह में रहते हैं। इस दुःखमय शरीर में अभिमानी जीव भी रहता है। यह जीव ऐश्वर्य से रहित है, देह और कर्मानुसार यह दुःखी है। ऐश्वर्य से युक्त श्री हरि को यह दुःख होना सम्भव नहीं है।।6।।

इस पर भी वह दुःखी जैसे प्रतीत होते हैं। मुझे निश्चय ज्ञान न होने से ऐसे संकट में मेरा मन फँसा हुआ है और दुःखी है। आप समर्थ हैं। आप मेरे मन के मोह को दूर कीजिए।।7।।

श्री शुक देव जी कहते हैं-मैत्रेय अहंकार रहित हैं। जिज्ञासु विदुर के किए हुए प्रश्न से सन्तुष्ट हुए। परमात्मा का ध्यान करते हुए मन्द मन्द मुस्कुराते हुए उत्तर देना आरम्भ किये।।8।।

मैत्रेय जी ने कहा-हे विदुर! श्री हरि तो सर्वदा समस्त ऐश्वर्य से युक्त हैं। वह नित्य मुक्त हैं। उनको प्रकृति का बंधन कहाँ। वह कृपण (दैन्य) हैं। वह प्रकृति के बन्धन में हैं इस प्रकार से कहना शास्त्र विरुद्ध है। इसलिए वह पाकृति के बन्धन में नहीं हैं ऐसा कहना ही युक्त है।।9।।

यही तो उनकी महिमा है। जीव तो प्रकृति के बन्धन में है। स्वप्न में वह अपने सिर को ही काटे वैसे तथा स्वयं अपने कन्धे पर ही चढ़े वैसा देखते हैं। जीव के वासनाओं को उपादान कारण बनाकर भगवान अपनी इच्छा से स्वप्न पदार्थ की सृष्टि करते हैं। केवल उसी समय पर ही दिखाई देने पर भी वह वस्तु सत्य है। केवल जागृत अवस्था की वस्तु समझना भ्रम है। वाह्य वस्तु तो अलग है। स्वप्न वस्तु वासनामय है।।10।।

संस्कार से उत्पन्न स्वप्न का दृष्टान्त स्पष्ट न होने से दूसरा दृष्टान्त देते हैं। जल में चन्द्र के प्रतिबिम्ब में ही कम्पन हुए वैसा दिखाई पड़ता है। कम्पन तो जल में हैं परन्तु चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब में रहे वैसा दिखाई देता है। वह भ्रम से है। जनन और मरण यह देह के धर्म हैं, आत्मा के नहीं परन्तु ईश्वर की इच्छा से तत्वज्ञान न होने के कारण भ्रम से मैं जन्म लिया, मैं मर गया ऐसा समझते हैं। यही भ्रम जीव के लिए संसार बन्धन का कारण है। यह संसार बन्धन सत्य है।।11।।

श्री हरि में निष्काम भक्ति करने से श्री हरि का अनुग्रह होगा। श्री हरि का प्रसाद ही जीव को बन्धन से मुक्त कर देता है। जिस प्रकार गरुड़ के ध्यान से सत्यभूत विष नाश होता है वैसे ही श्री हरि के ज्ञान से सत्यभूत संसार बंधन नाश होता है। श्री हरि के स्वतंत्र होने का ज्ञान न होने से मैं ही स्वतंत्र कर्ता हूँ ऐसी अभिमान रूप भ्रान्ति उत्पन्न हुई है। वह ईश्वर के ज्ञान से दूर होना युक्त ही है।।12।।

श्री हरि का अपरोक्ष ज्ञान होने पर स्वरूप भूत आनन्द का अनुभव रूप मोक्ष प्राप्त होता है। जैसे गाढ़ निंद्रा में कोई क्लेश आदि नहीं रहते है वैसे ही मोक्ष में भी कोई क्लेश नहीं है।।13।।

ऐसे मोक्ष को प्राप्त करने का सरल साधन श्री हरि के गुणगान करने वाले भागवत् आदि सद्शास्त्रों का श्रवण, मनन और व्याख्यान तथा उपासना (ध्यान) है। श्रवण से मनन, मनन से व्याख्यान, व्याख्यान से उपासना (ध्यान) श्रेष्ठ है। अन्य कोई उपाय नहीं है।।14।।

विदुर जी ने कहा-हे भगवन्! आपके श्रेष्ठ वचनों से मेरा अन्यथा ज्ञान तथा अज्ञान दूर हुआ। इस पर भी मन में संशय है ही।।15।।

आप अपरोक्ष ज्ञानी हैं। मेरे संशय को आप दूर कर सकते हैं। कर्मानुसार यह देह मिला है। यह देह ही आत्मा है ऐसा ज्ञान अभी दूर नहीं हुआ है। इस जगत् के लिए मूल कारण श्री हरि का ज्ञान नहीं है ऐसा नहीं इन दोनों के मध्य में मेरा मन संशय ग्रस्त हुआ है।।16।।

निद्रा में जैसे दुःख नहीं होता है वैसे ही अविवेकी पुरुष दुःख रहित होता है। सर्वोत्तम श्री हरि को जानने वाला मुक्त पुरुष के जैसा क्लेश रहित रहता है। इन दोनों के मध्य में रहने वाला स्वप्न को देखने वाला जैसा क्लेश का अनुभव करता है ऐसा ही क्लेश का भागी होता है। मेरी स्थिति भी ऐसी ही है।।17।।

यदि तुम संशय युक्त हो तो जब तक संशय दूर न होगा तब तक मोक्ष न होगा। जिनको तत्वज्ञान में संशय है वह नरक भागी होंगे। ऐसा शास्त्र का वचन है। इसलिए मैं भी आपकी चरण सेवा करके आपके उपदेश से देह में दिखाई देने वाले अहंकार ममकार भ्रान्ति से होने पर भी जीव के स्वरूप को विचार करते हुये इसका कोई प्रयोजन नहीं है ऐसा निश्चय करके उभय विषयक संशय ज्ञान को दूर करके मोक्ष के लिए कारणीभूत ज्ञान को प्राप्त करुँगा। (ज्ञानी होते हुए भी विदुर ने मैत्रेय से श्रवण करने के लिए अज्ञानी जैसी अपनी स्थिति बतलाया)। विदुर को

तत्त्वज्ञान होने पर भी तत्त्वज्ञान न हुए वैसा कहे हैं कोई यह न समझे कि शूद्र जाति में जन्म लिए हुए को तत्त्वज्ञान ही नहीं है।

द्रोणद्रौणि (अश्वत्थामा) कृपाः पार्था भीष्मो विदुर सज्जयौ।

ये चान्ये तत्र देवांशाः सम्यक् तत्त्वापरोक्षिणः। -स्कान्दे

इस प्रमाणानुसार विदुर को भी तत्त्वपरोक्ष है ही तब विदुर ने झूठ क्यों कहा क्या यह दोष नहीं है। जितना प्रश्न किया जाता है उतना ही उत्तर देना चाहिए। जो पूछा नहीं गया है उसको नहीं कहना चाहिए। ऐसा नियम होने से पूछे बिना ही कहते हैं उसको दूर करने के लिए कहा हुआ झूठ एक गुण ही है।

आत्मनस्तु गुणाभावं वदतो नत्वसत्यता।

अपृष्टस्य दमार्थं च गुणायैव भवत्यरपि। इति व्यास स्मृतेः

इस प्रमाण से इस प्रकार का झूठ कहना भी गुण का होना स्पष्ट होता है।।18।।

आप जैसे भगवद् भक्तों की चरण सेवा से श्री हरि में उत्कृष्ट भक्ति उत्पन्न होती है और आनन्द की वृद्धि होती है।।19।।

पूर्व में किए हुए पुण्य से ही आप जैसे महात्माओं की सेवा प्राप्त होती है। जो पुण्य नहीं किए हैं उनको ऐसा अवसर नहीं मिलता है। स्वल्प तप वाले लोगों को नारायण के पथ का प्रदर्शन करने वाले सन्तों की सेवा का अवसर बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है, जिनके सन्निधान में जनन-मरण रूप संसार से छुटकारा दिलाने वाले देव भगवान का गुणगान होता रहता है। भगवान से जो विमुख हैं उन्हें भगवद् कथा प्रिय नहीं होती है इसलिए श्री हरि की कथा कहने वाले सज्जनों में वे नहीं आते हैं। इसलिए महात्माओं की सेवा उन्हें प्राप्त नहीं हो सकती है।।20।।

आरम्भ में श्री हरि ने षोडश विकारों से युक्त महत्तत्वादि की सृष्टि करके उनसे ब्रह्माण्ड की और उस ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा की सृष्टि किया और उनमें प्रवेश किया।।21।।

वेदों में कहा गया है कि ब्रह्मा के अन्तर्यामी श्री हरि के अनन्त अवयव हैं। आदि पुरुष हैं। समस्त लोक इन्हीं का आश्रय किए हुए है।।22।।

उन्हीं का आश्रय करके प्राण वायु, इन्द्रिय, इन्द्रियों के विषय और उनके देवता तथा दस प्राण विद्यमान हैं। आप पहले ही बता चुके हैं कि उनसे ब्राह्मणादि वर्ण उत्पन्न हुए हैं। अब आप कृपा करके उस श्री हरि के विभूति रूपों को और उन वर्णों के विभूति रूपों को समझाइए।।23।।

इन वर्णों में पुत्र, पौत्र, नाती तथा गोत्रज आदि विविध प्रजाएँ विद्यमान हैं और उन्हीं के द्वारा यह संसार भरा हुआ है।।24।।

प्रजापतियों के भी पति उन ब्रह्मा के अन्तर्यामी श्री हरि ने किन प्रजापतियों की सृष्टि किया। सर्ग, अनुसर्ग मनुओं और मन्वन्तराधि पतियो को बनाया।।25।।

हे मित्रा के आत्मज मैत्रेय जी! आप हमें उनके वंशो और उनमें होने वाले पुरुषों के कार्यों को बताइए। भूलोक के ऊपर और नीचे रहने वाले लोकों का भी परिणाम बताइए।।26।।

तिर्यक, मनुष्य, देवता, सर्प, पक्षी तथा जरायुज, स्वेदज अण्डज, और उद्भिज इन प्राणियों की सृष्टि को भी विस्तार से बताइये।।27।।

भगवान अपने अवतारों में जैसे सृष्टि, स्थिति और संहार करते हों आप हमको उनका उदार पराक्रम सुनाइये। इन सब विषयों से भी श्री हरि के चरित्र को विस्तार से समझाइए।।28।।

उनके रूप, शील और स्वभाव के अनुसार वर्ण तथा आश्रमों का विभाग, ज्ञानियों के जन्म, कर्म और वेदों के विभागों का वर्णन करिए।।29।।

यज्ञ के विषय में भगवान से स्थापित मोक्ष के कारणीभूत ज्ञान शास्त्र को, पाषण्ड मत के उत्पत्ति का क्रम उनके प्रभेद प्रतिलोम (उत्तम वर्ण की कन्या से निम्न वर्ण वाले के साथ विवाह) का वर्णन तथा गुण और कर्मों के अनुसार जीवों को प्राप्त होने वाली गति को आप बतलाइए।।30,31।।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साधन जिनमें परस्पर विरोध न हो उन्हें और वाणिज्य व्यवसाय, अर्थ शास्त्र तथा राजनीति एवं शास्त्र प्रतिपादित धर्म भी बताइए।।32।।

श्राद्ध विधि, पितरों की सृष्टि क्रम, नवग्रह, अश्विन्यादि नक्षत्र, ध्रुव ताराओं के विषय में बताइए।।33।।

काल के अवयव, धर्म कार्य के फल, प्रवास, आपातकाल, इत्यादि में अनुसरण करने योग्य धर्मो को, अधिक क्या कहूँ धर्म संस्थापक श्री हरि को प्रसन्न करने के लिए जो धर्म हों उन सब को बताइए।।34,35।।

भक्तवत्सल गुरुजन अपने प्रिय शिष्य को, अपने पुत्रों को बिना पूछे भी उनके हित की बात बतला दिया करते हैं।।36।।

तत्वों का लय किस प्रकार से होता है? उस प्रलयकाल में कौन सुप्तावस्था में रहते हैं? उस समय में भी कौन श्री हरि की उपासना करते हैं? श्री हरि के अवतारों में स्वरूप अवतार और आवेश अवतार को बतलाइए। प्रत्येक जीवों की भिन्नता, मुक्त जीवों का स्वरूप को कृपा करके बताइए।।37।।

गुरु शिष्य इन दोनों को प्रयोजनकारी तथा मोक्ष रूप फल प्रदान करने वाला वेदान्त ज्ञान को एवं उस ज्ञान को प्राप्त करने वाले ज्ञानियों के द्वारा बतलाए हुए साधन को भी बतलाइए।।38।।

बिना किसी साधन के अपने आप मनुष्य के हृदय में ज्ञान, वैराग्य और भक्ति कैसे जाग जाती है। योग्य चेतनों में साधन के बिना ज्ञान, भक्ति वैराग्य नहीं हो सकते हैं। मैं तो श्री हरि के कर्मों को जानना चाहता हूँ इसलिए ऐसा प्रश्न कर रहा हूँ। अविद्या के कारण भलीभाँति ज्ञान न होने से मैं अन्धा हूँ। आप मेरे मित्र हैं इसका उत्तर देकर मुझे मार्ग दर्शन कीजिए।।39,40।।

श्री हरि के ज्ञान को दान करने से ज्ञानियों को वेदाध्ययन, यज्ञ, तप, दानादि धर्म कार्यों से भी अधिक पुण्य की प्राप्ति होती है।।41।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं-इस प्रकार पुराण के विषयों को जानने के लिए विदुर ने जो प्रश्न किया था उससे मैत्रेय को बड़ी प्रसन्नता हुई और हँसकर उत्तर देना आरम्भ किया।।42।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे अष्टमोऽध्यायः।।

अथ नवमोऽध्यायः

मैत्रेय कहने लगे-यह कुरु वंश धन्य है कि जिसमें श्री हरि के सर्वोत्तमत्व को जानने वाले आप जैसे भगवद्भक्त जन्म लिए हैं। उस वंश की जो सेवा नहीं करते हैं वह भाग्यहीन हैं। तुम सदा भगवान के गुणानुवाद सुन सुनकर उसे सदा नवीन करते रहते हो।।1।।

तुम्हारी इस सराहनीय श्रद्धा से बहुत ही प्रभावित हुआ हूँ और थोड़े से सुख की आशा से महान क्लेशों को झेलने वाले संसारीजन के दुःख दूर करने के लिए मैं तुम्हें श्रीमद्भागवत महापुराण की कथा सुनाऊँगा। जिसे भगवान श्री कृष्ण तुम्हें सुनाने के लिए मुझे आज्ञा किए हैं और अब तुम उपदेश करने के लिए प्रार्थना कर रहे हो। इसलिए मैं आपके प्रश्नों के उत्तर में श्रीमद्भागवत् महापुराण को ही कहता हूँ। साक्षात् शेष देवता इस श्रीमद् भागवत पुराण को सनत् कुमारादि ज्ञानियों को सुनाए हैं आप्तिमूल होने से यह पुराण प्रमाण है।।2।।

एक बार सनत् कुमारादि ज्ञानीजनों ने शेष देवता से सर्वोत्तम श्री हरि के तत्वों को जानने की इच्छा किया तब वो पाताल लोक में आए। वहाँ पर परमवैष्णव तथा ज्ञानी और अपने से भी पूर्व उत्पन्न हुए शेष देवता को देखा।।3।।

स्वतंत्र, सर्वाधार आनन्दमय, वासुदेव की भक्ति से उपासना करते हुए शेष देवता भगवद्भक्त देवताओं में अनुग्रह की दृष्टि से ध्यान में मूँदे हुए नेत्रों को किंचित् खोलकर कृपा दृष्टि से देखते थे।

"उन्मीलयन्तं" कहने से नाक के नोक पर दृष्टि रखकर अन्य दिशाओं को न देखते हुए ध्यान करने को कहा गया है, इस पर भी नमस्कार करने वालों पर अनुग्रह करने के लिए केवल उस समय में नेत्रों को खोल सकते हैं।।4।।

उत्तम वर को प्राप्त करने की इच्छा से नाग कन्यायें देव-गंगा में स्नान करके शेष देवता के चरण कमल में नमस्कार करके, विविध प्रकार की सामग्रियों से पूजा करके उनके अनुग्रह को प्राप्त कर रही थीं।।5।।

शेष देवता के सहस्र फणों में रहने वाले किरीट के श्रेष्ठ रत्नों का प्रकाश चारों ओर फैला हुआ था।।6।।

शेष देवता की महिमा को जानने वाले इन ज्ञानियों को भक्ति उमड़ आई और गद्गद कंठ होकर स्तुति करने लगे। दण्डवत् प्रमाण करके प्रश्न किए। केवल भगवद् प्रिय निष्काम कर्मों में आसक्त सनतकुमारों को शेष देवता ने भागवत् का उपदेश किया। सनतकुमारों ने भगवान को सन्तुष्ट करने के लिए व्रतों का आचरण करने वाले सांख्यायन को सुनाया।।7।।

परमहंसों में श्रेष्ठ सांख्यायनों ने पराशर ऋषि को और वृहस्पति को सुनाया।।8।।

पुलस्त्य के वचनानुसार पराशर ऋषी ने इस उत्तम पुराण का मुझे उपदेश किया। हे विदुर! तुम सदा श्री हरि के प्रीत्यर्थ ही कर्म किया करते हो। भक्त और श्रद्धावान् हो इसलिए तुम्हें इस पुराण का उपदेश करता हूँ। यहाँ

पर भगवत् कार्य करने वाले और भगवत् प्रिय व्रत का अनुष्ठान करने का जो उल्लेख किया गया है इसका मुख्य तात्पर्य यह है कि ऐसे योग्य चेतन ही इस कथा के श्रवण करने के अधिकारी हैं।।9।।

श्री हरि को कोई क्लेश नहीं है। वे भक्तों के उद्धार के लिए ही अवतार लेते हैं। ऐसे श्री हरि सृष्टि कार्य में आसक्त न होकर अपने में ही आनन्द का अनुभव करते हुए मुक्त शेषशायी होकर निन्द्रा न होने पर भी योगनिद्रा में आसक्त होकर आँखें मूँद लिये थे। उस समय यह सारा प्रपंच उनके उदर में था। इसलिए कहते हैं कि जल में डूबा हुआ था।।10।।

श्री हरि की शक्ति कुण्ठित नहीं थी। अग्नि जैसे अपने दाहक शक्ति को छिपाकर काष्ठ में रहता है वैसे ही श्री हरि समस्त सूक्ष्म रूप जगत् को अपने शरीर में छिपा कर प्रलय काल रूप अपनी शक्ति को व्यक्त किये थे।।11।।

उस काल के लिए अभिमानी अपनी भार्या रमा देवी को प्रेरित करके सुख प्रदान कर रहे थे। इस प्रकार प्रलय जल में शयन कर रहे थे। ऐसा एक हजार चतुर्युग बीत गए। तत्पश्चात् सृष्टि काल रूप अपनी शक्ति को प्रेरित किया तब वह सृष्टि करने के लिए जीवों के अदृष्ट को निमित्त करके अपने उदर में रहने वाले त्रिविध जीव समुदाय को देखा। उन जीवों को उनकी गति प्रदान करने के लिए सृष्टि करने की इच्छा किये। श्री हरि की प्रलय शक्ति में और सृष्टि शक्ति में कोई भेद नहीं है।।12।।

उनके न जानने की कोई वस्तु नहीं है। सूक्ष्म भूतों को इन्द्रियों को और जीवों को प्रत्यक्ष देखते हैं। जब वह सृष्टि करने की इच्छा किए तब उनके उदर में रहने वाला जलभूत पृथ्वी भूत के साथ मिलकर वायु से घनी भाव को प्राप्त हुआ और उनकी नाभि से बाहर निकला।।13।।

वह कमल की कली के वैसा था। उसके लिए भी श्री हरि ही कारण हैं। उसके प्रकाश से प्रलय जल प्रकाशित हुआ।।14।।

जीवों के भाग्य को जगाने वाले श्री हरि की प्रेरणा से सृष्टि काल रूप शक्ति द्वारा वह कमल चौदह लोकों के समान विकसित हुआ। उस लोक पद्म में श्री हरि ने अपने अन्य रूप से प्रवेश किया। स्वतंत्र यह रूप स्वयं भू कहलाता है। इससे ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए। इसलिए उनका नाम स्वयंभूः हुआ। पद्म में रहने वाले श्री हरि से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए। इसके लिए- **''पद्मसंस्थाद्धरेस्तत्र ब्रह्माऽजनि चतुर्मुखः''** यह वाक्य ही प्रमाण है। इससे स्पष्ट हुआ कि ब्रह्मा स्वयं ही पद्म से उत्पन्न हुए यह जानना युक्त नहीं है। पद्म में रहने वाले श्री हरि से ही उनका जन्म हुआ। इसलिए जहाँ कहीं पद्म से उत्पन्न होना कहा जाता है वहाँ पद्म में रहने वाले श्री हरि से ही जन्म होने का अर्थ करना चाहिए।।15।।

लक्ष्मी नारायण को छोड़कर यह ब्रह्मा समस्त वेदों से प्रतिपाद्य हैं। उस कमल से उत्पन्न हुए ब्रह्मा ने कमल की कणिका में बैठकर चारों ओर देखा। चारों दिशाओं में चार मुख होने से चतुर्मुख कहलाये।।16।।

उनको अपने सिवाय अन्य कोई भी दिखलाई नहीं दिया।।17।।

उस प्रलय कालीन वायु के झोकों में उठती हुई ऊँची-ऊँची तरंगों में अपने कारणीभूत कमल मात्र दिखाई

देता था। अपने विषय में जान नहीं सके और अपने कारणीभूत श्री हरि को भी नहीं देखा। (इस प्रकार जो अज्ञान का प्रदर्शन किए हैं उससे वह स्वयं श्री हरि न होना बतलाते हैं।) उन्होंने जो अज्ञान का प्रदर्शन किया वह अन्य जीवों के जैसे उनके स्वरूप से संबंधित नहीं है। जिनको यथार्थ ज्ञान नहीं है वह ब्रह्मा जी में इनकी कल्पना करते हैं।।18,19।।

तब वे अपने मन में विचार किए कि इस कमल में बैठा हुआ मैं कौन हूँ? और यह कमल कहाँ से उत्पन्न हुआ? कोई न कोई विलक्षण वस्तु इसके लिए कारण है। जिसका यह कमल आश्रय किए हुए है। वह वस्तु तो परब्रह्म से अन्य कोई नहीं है। इस प्रकार विचार करने लगे। तब वह उस वस्तु को देखने के लिए कमल की नाल के द्वारा जल में प्रवेश किए। वहाँ ढूढ़ते पर कुछ नहीं मिला। उनके अनुग्रह के बिना कैसे देख सकता हूँ। ढूँढ़ते ढूँढ़ते मनुष्य मान के सौ वर्ष व्यतीत हो गए।।20।।

सौ वर्ष तक ढूढ़ने पर सर्वोत्तम वस्तु को नहीं पा सके। वापस उसी कमल पर आए और उसी पर बैठकर तप किए। कमल कणिका ही उनके लिए आसन था। श्वास निरोध करके एकाग्र होकर असंप्रज्ञात समाधि में आसक्त हुए।।21।।

सौ वर्ष तक ढूढ़ने पर जिस श्री हरि को नहीं पा सके थे। उस श्री हरि को ब्रह्मा जी ने अपने हृदय में देखा। श्री हरि उन पर अनुग्रह करके उनके हृदय में प्रकाशमान हुए। वही ब्रह्मा जी के इष्ट देव हैं। हजार फण वाले शेष देवता के देह रूप शय्या में पुरुष रूप से अप्राकृत श्री हरि को देखा उनका मन्दहास लोगों के दुःख को दूर करने वाला था। प्रकाशमान कुण्डलादि आभूषणों से अलंकृत था। उनका देह समस्त जगत के लिए आश्रय था। उनके किरीट के रत्न चारों ओर के पानी में प्रकाशमान थे। उनके चारों ओर मुक्त हुए देवता बैठे हुए थे। इस प्रकार के महिमा से युक्त श्री हरि को ब्रह्मा ने देखा। मुक्त जीवों से घिरे हुए और अभक्तों से प्राप्त करना असाध्य कहने से ब्रह्मा जी ने जिसको देखा वह नित्य मुक्त, प्राकृत गुण रहित श्री हरि ही हैं। किन्तु अमुक्त तथा प्राकृत गुण युक्त जीव का न होना बतलाया गया है।।22,23,24,25,26,27,28,29,30।।

ब्रह्मा जी ने जब श्री हरि को देखा तब श्री हरि के नाभि कमल से उत्पन्न अपने को प्रलय जल को, वायु और आकाश को देखा मुक्त सूर्य इत्यादि देवताओं का तथा सृष्टि रहित नित्य पदार्थों को भी देखा। सृष्टयादि कार्य न करने वाले श्री हरि का दर्शन ही निर्गुण ब्रह्म का दर्शन है। इससे अन्य कोई निर्गुण वस्तु नहीं है।।31।।

रजोगुण का कार्य भूत सृष्टि में आसक्त ब्रह्मा ने जीवों को उनके कर्मानुसार देह देने की इच्छा किया। जिसके लिए आवश्यक कुछ ही पदार्थों को देखकर श्री हरि की अनुग्रह के लिए उनकी स्तुति करने लगे।।33।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे नवमोऽध्यायः।।

अथ दशमोऽध्यायः

ब्रह्मा जी ने कहा-हे श्री हरि! बहुकाल तक तप करने के फलस्वरूप आपका दर्शन हुआ है। इससे लोगों का यह कहना कि भगवान अज्ञेय हैं यह सत्य नहीं है। यह लोग तो अपने पाप से आपको नहीं देख सकते हैं। श्री हरि स्वामी हैं और हम उनके भृत्य हैं ऐसा ज्ञान उनको नहीं है। आप से भिन्न जीव और जड़ात्मक प्रपंच है ही। परन्तु यह स्वतंत्र नहीं है। यह जगत् आपके अधीन है। आप प्राकृत तत्वों में अन्तर्यामी होकर बहु रूपों में प्रकाशमान है, तथा उन रूपों में परस्पर भेद नहीं है। श्री हरि के दिखाई न देने से अपने से भिन्न कोई वस्तु न होना ही कारण न समझे, श्री हरि से भिन्न लक्ष्मी, ब्रह्मा आदि जगत् है परन्तु यह अस्वतंत्रता आदि दोषों से युक्त है। **''द्रव्यं कर्म च कालश्च''** यह श्रुति इन सब का होना और श्री हरि के अधीन होना बतलाती है। दोष से युक्त जगत् निर्दृष्ट श्री हरि को पूर्ण रूप से जान नहीं सकता है। इस पर भी भक्ति इत्यादि सामग्रियों के द्वारा योग्यतानुसार श्री हरि का अपरोक्ष ज्ञान होता ही है। श्री हरि के अनेक रूप होने पर भी उनके रूपों में भेद नहीं है। केवल स्थान भेद से भेद जैसा प्रतीत होता है। इसके लिए प्रमाण

एकोऽपि स्थाननानात्वान्नानेव हरिरीर्यते।
सर्वान्तर्यामिणस्तस्य न भेदो विद्यते क्व चित् ।।1।। ब्रह्मवैवर्ते

आप एक ही निर्दुष्ट हैं। आप ज्ञान स्वरूप हैं। आप प्राकृत गुणों के संबंध से रहित हैं। मैं जिस रूप का दर्शन कर रहा हूँ यही रूप मत्स्यादि रूपों के लिए कारण है। सज्जनों पर अनुग्रह करने के लिए ही आप इन रूपों को व्यक्त करते हैं। यह अनन्त रूप अनादि काल से हैं। आपके इस नाभि कमल से ही मेरा आविर्भाव हुआ है।।2।।

आनन्दमय निर्विकार तथा सर्व समर्थ आपका यह रूप निर्गुण रूप कहलाता है। इसी से जगत् की सृष्टि करते हैं। उनकी कोई सृष्टि नहीं है। सबके कारण होने वाले आपका रूप समस्त जगत से विलक्षण है। भूत और इन्द्रियों में व्याप्त है।।3।।

आपके अनुग्रह से ही मैंने आपके इस रूप का दर्शन किया है। आपके इस मंगलमय रूप को आप के सभी भक्त देखते हैं। तमोयोग्य दैत्य जो विषयासक्त हैं वह आपकी भक्ति से सेवा नहीं करते हैं। इसलिए वे इस रूप का दर्शन नहीं पा सकते हैं।।4।।

जो सज्जीव आपका दर्शन अपने हृदय में करने के योग्य हैं वे शास्त्र में बतलाए हुए मार्ग से आपके गुणों का श्रवण करके ध्यान करते हैं वे आपके इस रूप को हृदय में देखते हैं। भक्ति से बद्ध होकर आप उनके हृदय कमल में ही वास करते हैं। **''उत्तमानां तु पादेन सर्वं रूपं तु कथ्यते''** इस प्रमाणानुसार पाद अर्थात् चरण शब्द से श्री हरि का रूप ही जानना चाहिए। **''हृदि व्यक्तं तु यद्रूपं हरेर्गन्धः स उच्यते''** इस प्रमाण से गन्ध अर्थात् व्यक्त हुआ रूप है। गन्ध शब्द से लेश का अर्थ करके श्री हरि के रूपों में भेद नहीं कहना चाहिए। गन्ध, गन्धवाले पदार्थ को भेद न

होने से श्री हरि के रूपों में भी भेद न होना सूचित किया गया है। इस श्लोक में श्री हरि को प्रसन्न करने के लिए भक्ति ही प्रधान साधन होना बतलाया गया है।।5।।

जब तक समस्त भय को दूर करने वाले आपके चरणों की सेवा नहीं करते हैं तब तक लौकिक विषयों का भय रहता ही है ।।6।।

समस्त दुःखों के लिए मूल कारण ममकार है। वह दूर नहीं होता है। आपकी कथा समस्त अमंगलों को दूर करती है। जो तमोयोग्य हैं वे अपने मन को कभी भी अपकी ओर नहीं आने देते हैं। इसलिए उनकी इन्द्रियाँ आपकी कथा से विमुख हैं। उनका मन दुराशाओं से भरा रहता है। वे अत्यल्प सुख के लिए जन्म जन्मों में पापकर्म करते हुए अन्त में नित्य तमस को ही प्राप्त होते हैं वे आपको कैसे जान सकते हैं अर्थात् कभी भी नहीं जान सकते हैं।।7।।

मुक्ति योग्य जीव भी आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक तापों को भोगते हुए विषयाभिलाषा क्रोध आदि के वशीभूत होकर बारम्बार दुःख को ही भोगते रहते हैं। विषय-वैराग्य और उस वैराग्य द्वारा आपका ज्ञान और आपका अनुग्रह प्राप्त न करने वाले लोगों को देखकर मेरा मन बड़ा खिन्न होता है।।8।।

जीवों में तीन प्रकार के जीव हैं। पहला मुक्ति योग्य, दूसरा नित्य संसारी जीव, तीसरा तमोयोग्य। इनमें से मुक्ति योग्य जीवों को संसार की निवृत्ति कब होती है। इसको बतलाते हैं। समस्त इन्द्रियों से होने वाले कर्म (ध्यान, श्रवण आदि) ईश्वर की ही इच्छा शक्ति से होते हैं ऐसा ज्ञान होने पर आपका दर्शन करते हैं तब आत्यन्तिक प्रयोजन (मुख्य प्रयोजन) रहित होने पर भी धर्म आदि कार्यो के लिए प्रयोजनकारी इस दुःखदायी संसार की निवृत्ति होती है। आपके अपरोक्ष ज्ञान से मुक्त हुए जीव मोक्ष में भी आपकी अधीनता को नहीं भूलते हैं। यह भी जानते हैं कि मुक्तावस्था में जितने कर्म होते हैं वह आपकी इच्छा से ही होते हैं। इस श्लोक में जो माया शब्द है उसका अर्थ अनिर्वचनीय अविद्या नहीं है किन्तु माया शब्द का अर्थ श्री हरि की इच्छा अथवा शक्ति, लक्ष्मी, शैवली कहलाने वाली बन्धक शक्ति और जड़ प्रकृति है। सन्दर्भ के अनुसार इसका अर्थ करना चाहिए।।9।।

अब नित्य संसारी जीव इस संसार में कैसे भ्रमण करते रहते हैं उसे बतलाते हैं। नित्य संसारी जीव ज्ञानियों के वंश में जन्म लेने पर भी आपकी महिमा को न जानते हुए अज्ञान में डूबे रहते हैं। उनकी इन्द्रियां लौकिक विषयों में आसक्त रहती हैं। अनेक प्रकार की आशाएँ उनके मन में भरी रहती हैं। इसलिए उनकी निद्रा क्षण-क्षण में भंग होती रहती है। भूः स्वर्ग और नरकों में भ्रमण करते हुए दुःख से मिश्रित सुख को भोगते रहते हैं। इनको दुःख रहित सुख कैसे प्राप्त हो सकता है?।।10।।

इस श्लोक में अपरोक्ष ज्ञान के लिए साधन बतलाते हैं। हे पुरुषोत्तम आप मुक्ति योग्य जीवों को सद्गुरु की प्राप्ति कराते है, उनके द्वारा शास्त्रार्थ का ज्ञान कराते हैं। इस प्रकार अपनी महिमा का ज्ञान कराकर अपने प्रति भक्ति को उत्पन्न कराते हैं। इस भक्ति के द्वारा उनके मन को शुद्ध करते हैं। इस प्रकार शुद्ध हुए अन्तःकरण और वाह्य इन्द्रियों से उनके योग्यतानुसार उनके इष्ट और शुद्ध अपनी मूर्ति उपासना करने के लिए प्रेरित करते हैं। जिस आकार की उपासना करते हैं। उस मंगलमय आकार को व्यक्त करते हैं।।11।।

इस श्लोक में सकाम उपासना को मोक्ष का विरोधी होने से उसका निषेध किया गया है। आप जीवों के लिए अनिमित्त बन्धु हैं आप एक ही सब में अन्तर्यामी हैं। उन जीवों की स्वरूप भूत योग्यता को व्यक्त कराकर उन पर अनुग्रह करते हैं। इस प्रकार सब में रहने पर भी आपको दुःख का संबंध नहीं है। इसलिए देवता सब प्राणियों पर दया करते हैं। ऐसी भावना दुष्ट जीवों में नहीं आती है। देवताओं के द्वारा इस प्रकार आराधना करने पर आप उन पर अनुग्रह करके मोक्ष देते हैं। परन्तु आपकी आराधना निष्काम रूप से होनी चाहिए सकाम आराधना से आप कभी मोक्ष नहीं देते हैं।।12।।

केवल निष्काम कर्म ही भगवान के अनुग्रह के लिए कारण नहीं हैं। किन्तु वह निष्काम कर्म श्री हरि को समर्पित होना चाहिए। मुक्तियोग्य चेतनों से किए जाने वाले यज्ञ, दान, तप और व्रतों का आचरण इत्यादि धर्म कार्य आपको समर्पित न होने पर वह आपके अनुग्रह का कारण नहीं होता है। सकाम पुरुष चाहे बड़े से बड़ा यज्ञ करें, दान दें, उग्र तप करें और कठिन व्रत का पालन करें परन्तु उन्हें मोक्ष रूप फल प्राप्त नहीं होता है। सकाम कर्म करने वालों को आपका प्रसाद नहीं होता है। गुरु में, देवताओं में रहकर साधना के अनुसार अल्प फल देने पर भी मोक्ष रूप फल नहीं देते हैं।।13।।

इस श्लोक में इस संसार से छुटकारा पाने के लिए श्रीहरि के गुणों की उपासना करने के लिए कहा गया है। आप अप्राकृत और ज्ञान स्वरूप हैं। आपकी चेष्टाएँ इस जगत की सृष्टि, स्थिति और लय के लिए कारण हैं। आप को छः प्रकार के भेद मोह (अन्यथा ज्ञान नहीं है) नहीं है। छः प्रकार के भेद मोह इस प्रकार हैं। **1.** श्री हरि को अपूर्ण जानना। **2.** श्री हरि का अन्य नियामक होना। **3.** श्री हरि और उनके अवतारों में भेद। **4.** जीव को स्वतंत्र नियामक जानना। **5.** श्री हरि का जीव भाव को प्राप्त होना, जीव का ब्रह्मत्व को प्राप्त होना। **6.** जीव, ईश्वर और जड़ में भेद न होना। इस प्रकार के भेद मोह कभी भी श्री हरि को नहीं हैं। श्री हरि के अनुग्रह से ही अन्य चेतनों का यह मोह क्रमशः दूर होता है। जिस प्रकार श्री हरि को भेद मोह न होना कहा गया है उसी प्रकार से उनके अनुग्रह से उनके भक्तों को भी भेद मोह नहीं होता है। आप एक ही मुख्य ईश्वर हैं। आपको कभी भी माया का आवरण नहीं है। आप में कोई विकार नहीं है। आप अजन्मा हैं। ऐसे आपका जो कोई पुरुष अभ्यास बल से और भक्ति से और आपके अनुग्रह से मरण काल में स्मरण करता है ऐसे चेतन अपने जन्म जन्मों के पापों को नष्ट करके काल क्रम से आपको प्राप्त होते हैं।।14,15।।

हे देव! आप अनन्तासन, श्वेतद्वीप और वैकुण्ठ में व्यक्त रूप से रहते हैं। आप मुख्य हैं, आप के लिए कोई अन्य कारण नहीं है। ऐसे आप विष्णु रूप से सृष्टि का पालन करते हैं और मुझमें ब्रह्म नामक रूप से अंतर्यामी होकर सृष्टि के लिए कारण हैं। रुद्र में ईश्वर नामक रूप से अन्तर्यामी होकर लय के लिए कारण हैं। सृष्टि किए जाने वाले अनेक प्रकार की वस्तुओं में अनेक रूपों से व्यक्त हुए हैं। इसलिए आप जगत वृक्ष के आश्रय हैं। आपको नमस्कार है।।16।।

लोग तो निषिद्ध कर्मों में आसक्त हैं। आपके आज्ञारूप श्रुति और स्मृतियों में कहे गए विहित कर्मों में उनकी

आसक्ति नहीं है। ऐसे लोगों की आयु व्यर्थ है। मैं जिस स्थान में रहता हूँ वह समस्त जीवों से पूजनीय है। यह सत्य लोक मेरे सौ वर्षों तक रहेगा। ऐसे स्थान में रहने वाला मैं भी आपसे भयभीत हूँ। मोक्ष में आनन्द अतिशय की प्राप्ति के लिए पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा से आपके गुणों के उपासना रूप तप किया ऐसा काल के अन्तर्यामी आपके लिए नमस्कार है।।17,18।।

तिर्यग् योनि ज्ञान शून्य होने में कारण है। ऐसे योनियों में अवतार लेने पर भी श्री हरि ज्ञानानन्द से पूर्ण है। अन्य से असाध्य कार्यों को करते हुए क्रीड़ा करते हैं। इसलिए उनका अनुग्रह हो तो ज्ञान सुलभ हो सकता है। इस पर भी दुष्ट जीव श्री हरि अज्ञेय हैं उनको कोई नहीं जान सकते हैं ऐसा दुराग्रह करते हैं। इस अभिप्राय से श्री हरि की स्तुति करते हैं। आप अपनी इच्छा से धर्म की रक्षा करने के लिए तिर्यग् योनि में, मनुष्यों में, देवताओं में अवतार लेकर अपने बनाए हुए धर्म सेतु की मर्यादा का पालन करते हैं तिर्यग् योनि में अवतार लेने पर भी जब ज्ञान का लोप नहीं है तो अन्य अवतारों में क्या कहना है। ऐसे सर्वोत्तम श्री हरि को नमस्कार है।।19।।

आप अपनी इच्छासे ही धर्म की रक्षा के लिए अवतार लेते हैं। किसी अवतार में भी आपके ज्ञान को लोप नहीं है। सदा आनन्द का अनुभव करते रहते हैं। आपको अविद्या का संबंध नहीं है। प्रलयकाल में जीवों को अपने उदर में रखकर शेष पर शयन करते हैं। योग्य जीवों की आनन्द की अभिवृद्धि करने के लिए ही सृष्टि करते हैं।।20।।

आपकी नाभि कमल से ही मैं व्यक्त हुआ हूँ। रुद्र भी आपके उदर में हैं। आप हम पर अनुग्रह करके इस जगत की सृष्टि संहार कार्य में सहकारी बनाए हैं। ऐसे आपको नमस्कार है।।21।।

हे देव देव! आप समस्त जीवों के लिए निर्निमित्त सखा हैं। भक्तवत्सल हैं। मुझे ज्ञान प्रदान कीजिए, आप के अनुग्रह से पहले के वैसे ही जगत की सृष्टि करूँगा।।22।।

आप हयग्रीव आदि अवतार लेकर गुणों का प्रकाश किए हैं। अपनी भार्या रमादेवी के साथ अनेक पराक्रमों को बतलाए हैं। आपके उन पराक्रमों का स्मरण करते रहने से पाप दूर हो जाते हैं। इसलिए सृष्टि कार्य में आसक्त होने पर भी मेरा मन आप में ही आसक्त रहे ऐसा अनुग्रह कीजिए।।23।।

अनन्तानन्त शक्ति वाले आपकी नाभि कमल से विशिष्ट ज्ञान से मैं उत्पन्न हुआ हूँ। विविध रूप वाला यह जगत् आपकी प्रतिमा है ऐसे जगत की सृष्टि करने वाले मुझे आपका सर्वोत्तमत्व ज्ञान क्षीण न होवे।।24।।

आप करुणा समुद्र हैं। मेरा यह सृष्टि कार्य सुगम होने के लिए अनुग्रह कीजिए। इस तरह सृष्टिकार्य करते समय जगत का कल्याण करने के लिए परमदया सम्पन्न बनकर आप बड़े प्रेम के साथ मुस्कराते और अपने नेत्रों को थोड़ा विकसित करते हुए अपनी शेष शय्या से ही उठकर समय-समय पर मीठी वाणी बोलते हुए मेरा खेद दूर करते रहिएगा।।25।।

ब्रह्मा ने श्री हरि को देखकर उपरोक्त प्रकार से अपने मन और वाणी की योग्यतानुसार श्री हरि की स्तुति किया। इससे उनको तृप्ति नहीं हुई।।26।।

तब श्री हरि ने ब्रह्मा जी के मन की इच्छा को जान लिया कि वह चाहते हैं कि लोगों की सृष्टि करने के लिए और अधिक ज्ञान को चाहते हैं। उनके ज्ञान संकट को दूर करने के लिए अर्थ पूर्ण वचनों द्वारा ब्रह्मा जी को शात्वना दिया।।27,28।।

भगवान ने कहा-हे ब्रह्मन्! खिन्न मत होवें। सृष्टि कार्य में प्रवृत्त हो जाओ। मैंने पहले ही जो तप करने के लिए कहा था। वही सबके लिए सहायक है।।29।।

मेरे से प्रेरित होकर ही तुम मेरी प्रार्थना कर रहे हो। पुनः मेरा ध्यान करो। मुझमें भक्ति करो। इस ध्यान और भक्ति से संतुष्ट हुए मेरे अनुग्रह से समस्त लोगों को तुम अपने हृदय में ही स्पष्ट रूप से देखोगे।।30।।

तब तुम अपने हृदय के मध्य में समस्त गुण पूर्ण मुझे भी देखोगे। मुझमें समस्त जगत को देखोगे।।31।।

अग्नि जैसे काष्ठ में रहने पर भी उससे संबंध रहित होकर रहता है। मैं सब में व्याप्त होने पर भी सम्पर्क रहित हूँ। ऐसे मुझे अपने हृदय कमल में देखने पर जीव और ईश्वर एक ही होने का अज्ञान और उससे उत्पन्न संसार दुःख दूर हो जाता है। यही विशेष ज्ञान कहलाता है।।32।।

इस देह में देह से भिन्न जीव रहता है। इस जीव को भौतिक इन्द्रिय और भौतिक गुण नहीं है। उस जीव के निकट ही मैं रहता हूँ। इस प्रकार मेरा दर्शन करने पर ही मोक्ष को प्राप्त होता है और स्वरूपानन्द का अनुभव करता है। देह को ही जीवात्मा न समझे। देह से भिन्न जीवात्मा हृदय में रहता है। उस जीव को शक्ति प्रदान करते हुए बिम्ब रूपी श्री हरि रहते हैं। उनके चरणों की सेवा करते हुए यह जीव रहता है। ऐसा जानने पर ही मोक्ष का मार्ग सुलभ होगा और श्री हरि का दर्शन करने के पश्चात् मुक्त होगा।।33।।

जीवों के कर्म अनेक प्रकार के हैं। उनके कर्मानुसार उनकी सृष्टि करते हुए तुम्हें मेरी विस्मृति नहीं होगी। मैंने तुम पर श्रेष्ठ अनुग्रह किया है।।34।।

सबके पूर्वज तथा ज्ञानी तुम्हें रजोगुण कभी भी बाधक नहीं होगा। सामान्य लोगों को तो मेरी विस्मृति हो सकती है। परन्तु रजोगुण से तुम्हें मेरी विस्मृति नहीं हो सकती है।।35।।

इसलिए सृष्टि करते समय तुम्हारा मन मुझमें ही आसक्त रहेगा। मैं ही भूतेन्द्रिय प्राकृत गुण तथा मन और बुद्धि को नियमन करने वाला हूँ। यह यथार्थ ज्ञान है। तुम्हें ऐसा यथार्थ ज्ञान है।।36।।

जितना तुम समझे हो उतना अन्य जीव मुझे नहीं समझ सकते हैं। मुझे देखने की इच्छा तुम्हे मैंने ही दिया है। कमलनाल में प्रवेश करके मुझे खोजते रहे थे, सो मैंने अपने अप्राकृत स्वरूप का बाहर दर्शन कराया है।।37।।

मेरी महिमा से परिपूर्ण जो स्तुति किए हो और ध्यान में तुम्हें जो आसक्ति है यह सब मेरे अनुग्रह से है।।38।।

जीवों की सृष्टि कार्य में यश प्राप्त करने के लिए तुमने गुणपूर्ण तथा प्राकृत गुणरहित मेरी स्तुति किया है इससे मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो।।39।।

तुम जो स्तुति किए हो उस स्तुति के द्वारा मेरी सेवा करने वालों पर मैं प्रसन्न होता हूँ तो मैं तुमसे कैसे प्रसन्न

नहीं होऊँगा।।40।।

मैं सबकी इच्छाओं को पूर्ण करने की सामर्थ्य वाला हूँ इसलिए हर एक के अपनी योग्यतानुसार इच्छा करने पर मैं प्रसन्न रहता हूँ। दान, धर्म, यज्ञ-व्रत, योग तथा मन की एकाग्रता से भक्त जन मेरी प्रसन्नता प्राप्त करना चाहते हैं। यही उनको मोक्ष में आनन्द देने वाली है। यही तत्वज्ञानियों का मत है।।41।।

जो मेरी प्रसन्नता चाहते हैं उनके लिए भक्ति ही मुख्य साधन है। मैं ही सबका अन्तर्यामी हूँ। भक्तों के लिए समस्त वस्तुओं से भी अत्यन्त प्रिय हूँ। जीव भी जो अपने देह से प्रेम करता है वह भी मेरी इच्छा से है। इसलिए मैं ही सबसे प्रियतम हूँ। ऐसे मुझमें भक्ति करो।।42।।

हे ब्रह्मन्! मुझे छोड़कर वेदों से तुम प्रतिपाद्य हो? तुम्हारी इस देह की सृष्टि मैंने ही किया है। मेरे उदर में निद्रावस्था में जो जीव हैं उनकी पूर्ववत सृष्टि करो। इसके लिए तुम्ही अधिकारी हो।।43।।

मैत्रेय कहते हैं-जगत के मुख्य सृष्टिकर्ता, लक्ष्मी ब्रह्मादि देवताओं के नियामक श्री हरि का ब्रह्मा जी मन में जिस रूप का ध्यान कर रहे थे उस रूप को व्यक्त किया और पुनः अदृश्य हो गए।।44।।

।।इति श्रीमद् भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे दशमोऽध्यायः।।

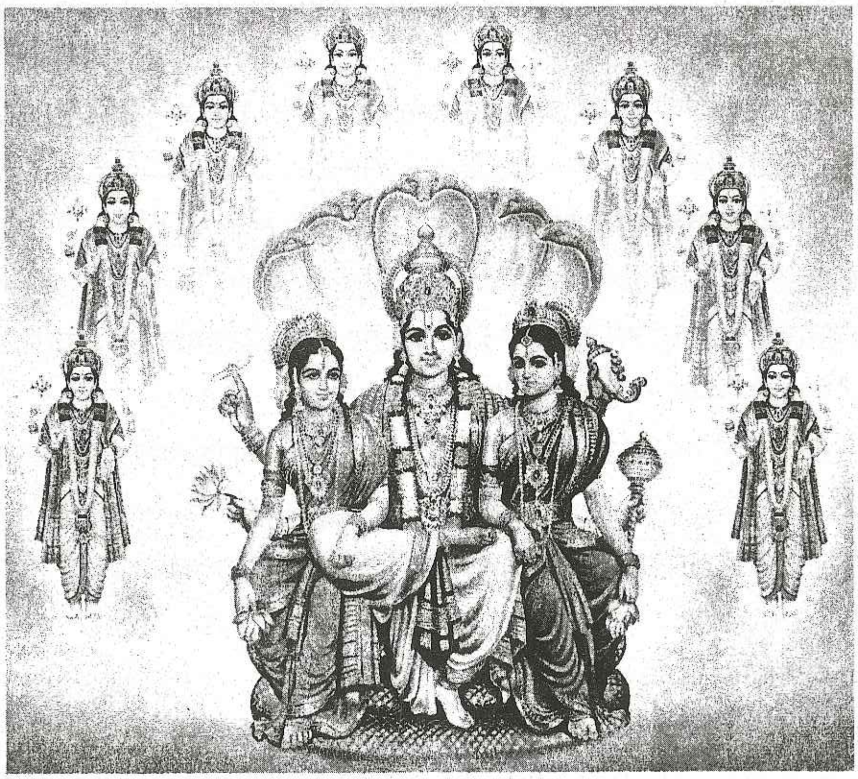

अथ एकादशोऽध्यायः

विदुर ने कहा-हे मैत्रेय! अब आप हमको यह बताइए कि जब भगवान ब्रह्मा जी को समझाकर अन्तर्धान हो गए तो उन समर्थ ब्रह्मा ने अपने देह और मन से कितने प्रकार की सृष्टि की।।1।।

मेरे प्रश्नों का क्रमशः उत्तर देकर संशयों को दूर कीजिए।।2।।

सूत जी ने कहा-हे शौनक! इस प्रकार के मैत्रेय से विदुर के प्रश्न करने पर वे सन्तुष्ट होकर विदुर के मन में रहने वाले सभी प्रश्नों का उत्तर देना आरम्भ किए।।3।।

मैत्रेय जी ने कहा-हे विदुर! श्री हरि के वचनानुसार ब्रह्मा ने देवमान से सहस्र वर्ष तक श्री हरि में मन को स्थिर करके तप किया।।4।।

इसके अनन्तर ब्रह्मा जिस कमल के ऊपर बैठे थे, उसे तथा जल को भी प्रलय की वायु के वेग से कांपते देखा।।5।।

ऐसी दशा में अपने तप से और श्री हरि की उपासना से अपने ज्ञान तथा बल को बढ़ाकर उन्होंने जल के साथ-साथ उस वायु को भी पी लिया।।6।।

आकाश जैसे उस बड़े कमल को देखकर उसमें लोकों की (प्रलय काल में श्री हरि के उदर में लीन हुए) पुनः सृष्टि करने की इच्छा किया।।7।।

श्री हरि से प्रेरित होकर वह कमल में प्रवेश किए और उसको भू लोक अन्तरिक्ष, स्वर्ग और चौदह लोकों में विभाजन किया।।8।।

संक्षेप रूप से प्रपंच का विभाजन इतना ही है। विभाजन करने की सामर्थ्य को ब्रह्मा ने श्री हरि के प्रीत्यर्थ किए हुए सत्कर्मों के फल रूप में प्राप्त किया था।।9।।

विदुर जी ने कहा- हे मैत्रेय! जो आप उन अद्भुत कर्म करने वाले नारायण का काल रूप को बतला रहे थे। उसी को विशद् रूप से बताइए।।10।।

मैत्रेय कहने लगे-काल स्वरूप को जानने से पूर्व इनको जानना आवश्यक है। श्री हरि ने प्रलय काल में प्राकृत गुणों को देखा। उनमें विशेष रूप से विकार उत्पन्न करने की इच्छा किया। श्री हरि को कोई विकार नहीं है। वह किसी का भी आश्रय नहीं किये हैं। गुणपूर्ण श्री हरि ने सत्वगुण को स्वीकार करने के लिए अपने विष्णु रूप को, रजोगुण को स्वीकार करने के लिए ब्रह्मा नामक अपने रूप को, तमोगुण को स्वीकार करने के लिए रुद्र नामक अपने रूप को व्यक्त किया।।11।।

ब्रह्मा रूप से ब्रह्मा में प्रवेश करके जगत को जाना और उसकी रक्षा किया। विष्णु रूप से उनके उनके अधिकार में व्यवस्थित करके रक्षा किए। सर्वसंहारक अपने रुद्र रूप से रुद्र में प्रवेश करके संहार किया। चतुर्मुख

ब्रह्मा जी की सृष्टि करके श्री हरि चतुर्मुख होकर स्वयं उनमें प्रवेश करके ब्रह्मा कहलाये और सृष्टि के लिए रजोगुण को स्वीकार किये। अन्य किसी रूप में प्रवेश किए बिना ही स्वयं विष्णु के नाम से रक्षा करने के लिए सत्व गुण को स्वीकार किये। पंच मुख वाले ईश्वर (रुद्र) की सृष्टि करके पांच मुखवाला होकर श्री हरि ईश्वर (रुद्र) में ईश्वर नाम से प्रवेश किये। संहार के लिए तमोगुण को स्वीकार किया इसके लिए प्रमाण :-

अथत्रयी वाव प्रकृतिः सत्वं रजस्तम इति। तां नारायणः पर्यपश्यत्यनन्य प्रतिष्ठः, तं वा एनमाहुः पुरुष इति। पूर्णो ह्येष भवति। स त्रेधा वभूवैषां गुणानामुपादानाय, विष्णुर्वाव सत्वस्य, रजसो ब्रह्मोशो नाम तमसः, स आविवेश ब्रह्मा ब्रह्माण चतुर्मुखं, ईश ईशानं पञ्चमुखं यो वा ईश ईशानमाविवेश तं काल इत्याचक्षते काल इत्याचक्षते (सौकरायणश्रुतिः)।।12।।

यह जगत सृष्टि काल में जैसे प्रयोजन कार्यकारी था वैसे ही प्रलयकाल में भी था। आगे भी रहेगा। इस जगत की सृष्टि प्राकृत (ब्रह्माण्ड के बाहर) और वैकृत (ब्रह्माण्ड के अन्दर) ऐसे दो प्रकार की है। यह दोनों प्रकार की सृष्टि नौ प्रकार की है। इसलिए यह जगत सत्य है। मिथ्या नहीं है।।13।।

इस सत्यभूत जगत का नाश काल, द्रव्य और गुणों के निमित्त से होता है। इसलिए यह तीन प्रकार कहा गया है। श्री हरि से पहले महत्तत्व की सृष्टि हुई इसको गुण वैषम्य कहते हैं। यही ब्रह्मा का शरीर है।।14।।

दूसरा अहंकार तत्व की सृष्टि है। यही रुद्र देवता का देह है। इस अहंकार तत्व से आकाश, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और उनके अंभिमानी देवताओं की सृष्टि हुई। आकाश इत्यादि की सृष्टि तीसरी सृष्टि है जो शब्द इत्यादि तन्मात्राओं का स्वरूप होने से उनकी शक्ति से युक्त है।।15।।

ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की सृष्टि चौथी सृष्टि है। वैकारिक अहंकार से उत्पन्न हुए देवताओं की सृष्टि पाँचवी है।।16।।

छठवीं अविद्या की सृष्टि है। इसकी सृष्टि करते समय ब्रह्मा ने अपने मन को श्री हरि में स्थित किया जिससे उनका (ब्रह्मा जी) कोई अनिष्ट न हो। अविद्या तमस, मोह, महामोह, तामिस्र और अंधतामिस्र ऐसे पाँच प्रकार की है। यह जो छः प्रकार की सृष्टि बतलाया यह ब्रह्माण्ड के बाहर की है। अब ब्रह्माण्ड के भीतर की जो सृष्टि होती है उसका विस्तार सुनो।।17।।

इस प्राकृत और वैकृत सृष्टि को श्रवण करने से मोक्ष रूप फल की प्राप्ति होती है। श्री हरि के अनुग्रह को प्राप्त करने से ब्रह्मा को सृष्टि कार्य करने में कोई परिश्रम नहीं हुआ। स्थावर प्राणियों की सृष्टि सातवीं सृष्टि है।।18।।

सातवीं मुख्य सृष्टि में छः प्रकार के वृक्षों की उत्पत्ति होती है, जैसे वनस्पति (बिना फूल के फल देने वाले वृक्ष जैसे गूलर आदि) लता (किसी के सहारे ऊपर चढ़ने वाली) त्वक्सार (जिनके छिलके में ही तत्व रहता है जैसे बॉस वेत आदि) वीरुध (यह भी लता ही के सदृश्य होती है किन्तु इसे ऊपर लसने सहारा देने की आवश्यकता नहीं पड़ती जैसे जूही आदि) और द्रुम (जो फूलने के बाद फले जैसे आम आदि) यह नीचे से ऊपर की ओर बढ़ते हैं (इनमें

प्रायः ज्ञान शक्ति प्रकट नहीं रहती) यह भीतर ही भीतर केवल स्पर्श का अनुभव करते हैं। इनको काटने से अथवा पृथ्वी से उखाड़कर फेकने से सूख जाते हैं। यह ऊपर बढ़ने से, परोपकार के लिए ही रहने से स्रोत कहलाते हैं।।19।।

तिर्य्ग् योनि की सृष्टि आठवीं सृष्टि हैं। इसमें मुख्य अठ्ठाइस प्रकार की हैं। इनमें विवेक नहीं रहता है। अहंता और ममता का अभिमान अधिक रहता है। यह केवल आहार निद्रा को जानते हैं। इनको शास्त्रज्ञान नहीं है। इनका भूचर जलचर, और खेचर ऐसे विभाजन कर सकते हैं। इनमें अविद्या (कार्याकार्य का विवेक ज्ञान शून्य) भूरितमस (शरीर में अहंता ममता का अभिमान भरा रहता है) घ्राणज्ञ (नाक से सूँघकर समझने वाले) हृदि वेदी (हृदय में ज्ञान वाले, शास्त्रीय ज्ञान शून्य) यह स्थावर और तिर्यग् दोनों योनियों के लिए समान है।।20।।

गौ, बकरी, भैंस, हिरन, गवय, रुरु (मृगाविशेष), भेड़ा, भेड़ी और ऊँट यह नौ प्रकार के पशु दो खुर वाले होते हैं।।21।।

गधा, घोड़ा, खच्चर, गौर, शरभ और चमरी, ये छः पशु एक खुर वाले होते हैं। हे विदुर! अब मैं तुम्हें पाँच नख वाले पशु बताता हूँ सुनो।।22।।

कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, विलाव, खरहा, शल्लक (स्याही) सिंह, बन्दर, हाथी, कछुवा, गोह और मगर आदि तथा कंक (कड़ाकुल), गिद्ध, बटेर, बाज, मास, भालू, मोर, हंस, सारस, चकवा, कौआ और उल्लू आदि पशु पक्षी पंचनख हैं। (ऊपर गिनाए मगर आदि जन्तु और कंक आदि पक्षी सब मिलाकर अट्ठाइस प्रकार के तिर्यक् योनि के जन्तु होते हैं। सृष्टि किए हुए उन आकार के प्राणियों को और सृष्टिकर्ता को स्मरण करके मनन करने वाला फिर से सृष्टि में नहीं आता है। शास्त्र में प्रसिद्ध विषयों को स्मरण करने के लिए और अप्रसिद्धों को बतलाने के लिए ऐसे दो प्रकार के विषयों का वर्णन करते हैं। इसके लिए-

प्रमाण दत्तदाकार संयुक्तान्सृज्यान्स्रष्टारमेव च।
यः सदा संस्मरेद्योगी न स भूयोऽभिजायते। -स्कान्दे
उच्यते सुप्रसिद्धं च स्मरणार्थं च कुत्रचित्।
अप्रसिद्धं ज्ञापनार्थे द्विधा शास्त्रवचः स्मृतं। षाडुण्ये।।23,24।।

अधोगति को प्राप्त होने वाले अर्वाक् स्रोत कहलाते हैं। उनमें नियत रूप से अधोगति को प्राप्त होने वाले असुर हैं। उत्तम गति के लिए प्रयत्न न करके अधोगति को प्राप्त होने वाले मनुष्य हैं। मनुष्यों में रजोगुण अधिक है। यह सदा कोई न कोई कर्म करते ही रहते हैं। अन्यथा (मिथ्या) ज्ञान वाले असुर हैं। इनको सभी विषयों में अन्यथा ज्ञान होता है। अन्यथा ज्ञान ही असुरों का लक्षण हैं। यह दुःख को ही सुख समझते हैं।।25।।

मनुष्यों में यथार्थ ज्ञान और अयथार्थ ऐसे दो प्रकार के ज्ञान हैं। देवताओं को तो यथार्थ ज्ञान ही होता है। इनको ब्रह्माण्ड के बाहर पहले सृष्टि करके तत्पश्चात् ब्रह्माण्ड के भीतर इनकी सृष्टि होने से इनकी सृष्टि प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकार की है।।26।।

देव सृष्टि आठ प्रकार की है। जैसे देव, पितर, असुर, गंधर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, चारण, भूत, प्रेत पिशाच, सिद्ध विद्याधर, तथा किन्नर आदि। देवता सृष्टि को मिलाकर ब्रह्मा जी ने इस प्रकार की सृष्टि किया।।27,28।।

श्री हरि ही मुख्य रूप से सृष्टिकर्ता हैं। उनके अनुग्रह से ब्रह्मा सृष्टिकर्ता कहलाते हैं। मुक्तियोग्य जीव इस सृष्टि को जानकर उपासना करते हैं। उनको पुनः जन्म नहीं है। वह मुक्त होते हैं।

हे विदुर! अब मै मन्वन्तर और उसमें जन्म लेने वाले जीवों के वंश का वर्णन करता हूँ। श्री हरि ने जीवों के उद्धार के लिए कल्प के आरम्भ में इस प्रकार से सृष्टि किया। रजोगुण के मध्य में रहने पर भी उनको उसका लेप नहीं है। (श्री हरि गुणाधीन भी नहीं हैं तथा गुण के अभिमानी भी नहीं हैं)। उनकी इच्छा व्यर्थ नहीं है। उनकी सृष्टि करने वाला अन्य कोई नहीं है। स्वतंत्र भगवान प्रकृति को उपादान कारण बनाकर देवताओं की देह की सृष्टि करके उन सबके लिए अपने नियामक रूपों को व्यक्त करते हैं। सृष्टि स्थिति और लय कार्य एक के बाद एक चक्राकार रूप में होते ही रहते हैं। भगवान भी इसी प्रकार से इच्छा करते हैं। इनमें कौन-सा पहले होता है कौन वाद में होता है कह नहीं सकते हैं। नदी में जो भँवर घूमता है उसका आरम्भ कौन सा और अन्त कौन-सा है। इस कल्प में जिस नाम के जिस रूप के देवता, असुरों की सृष्टि होती है अगले कल्प में भी उसी नाम के इसी रूप के देवता, असुरों की सृष्टि होती है। अगले कल्प में भी उसी नाम के इसी रूप के इनकी सृष्टि होती है। किन्तु उन-उन अधिकारों में आने वाले जीव दूसरे होते हैं। पहले कल्प में योग्य जीवों को उत्तम गति वाला बनाया था। वही श्री हरि योग्य अन्य जीवों को उन अधिकारों में नियुक्त करते हैं। श्री हरि अपने अनेक रूपों को व्यक्त किये इसके लिए प्रमाण-

सृष्टवा देवादि देहान्स आत्मानं बहुधाऽकरोत्।
तन्नियन्तृतयात्मानं प्रकृतिं देह भेदतः।।

एक ही कर्म कैसे होगा इस शंका का निम्न प्रमाण से समाधान करते हैं-

कर्ता च करणं चैव कर्म चैव स्वयं हरिः।
आत्मनो बहुधाभावे प्रकृतेस्तु स्वतंत्रतः।।29,30,31।।

इस कल्प में ब्रह्मा, वायु, इन्द्र इत्यादि नाम और रूप के देवता हैं। वैसे ही अगले कल्प में भी रहेंगे परन्तु उन-उन पद पर आने वाले जीव भिन्न होंगे। पहले के जीव मुक्त होने पर भी दूसरे जीव उस पद पर आकर उसी नाम और रूप से कार्य करते हैं। प्रत्येक दिन कल्प, में चौदह मन्वन्तर होते हैं। उन-उन मन्वन्तरों में जिस नाम और रूप से कार्य करते हैं। अगले दिन कल्प के उन मन्वन्तरों में उसी नाम और रूप के देवताओं की सृष्टि होती है।।31।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे एकादशोऽध्यायः।।

अथ द्वादशोऽध्यायः

मैत्रेय जी ने कहा-हे विदुर! काल रूपी श्री हरि के लक्षण बतलाने के लिए आपने पूछा। काल अति सूक्ष्म है अनन्त है। प्रपंच में रहने वाले वस्तुओं का अतिसूक्ष्म भाग परमाणु कहलाता है। इसमें भी अनेक भाग हैं। उसमें रहने वाले सूक्ष्म भाग को न जानकर भ्रम से मनुष्य उसी को परमाणु कहते हैं।।1।।

सत्य शब्द से वाच्य श्री हरि सर्वत्र व्याप्त हैं। उसका यह रूप अन्य वस्तुओं में अधिष्ठित नहीं है। श्री हरि देश, काल, गुणों से अन्त रहित हैं। उनके सभी रूप इसी प्रकार के हैं। इस पर भी उसके कुछ रूपों को अल्प प्रदेश में रहने वाले कहते हैं। श्री हरि को अचिन्त्याद्भुत महिमा वाला होने से व्याप्त और अव्याप्त दोनों बतलाते हैं। अतः अणु में रहने वाले श्री हरि के रूप को और सर्वत्र व्याप्त रूप में कोई भेद नहीं है। उसके सर्वत्र व्याप्त रूप को नारायण, ब्रह्म, शून्य इत्यादि शब्दों से कहते हैं। इससे बड़ी वस्तु और कोई नहीं है। वही श्री हरि जगत् की सृष्टि के लिए परम पुरुष का रूप धारण किये। यह रूप नारायण से भी व्याप्ति में छोटा कहलाता है। जगत में व्याप्त वासुदेव रूप तीसरा है। जगत् में प्रवेश किया हुआ चौथा रूप ही विष्णु रूप है। **दंशानंत्य** में अंतर होने पर भी काल और गुणों से परिच्छेद नहीं है।।2।।

जैसे परमाणु में स्थूल सूक्ष्म होता है वैसे ही काल में भी परमाणु और परम महत् काल होते हैं। **इसको शास्त्र से, साक्षी, प्रत्यक्ष** और **अनुमान** से ज्ञानी जानते हैं। श्री हरि अव्यक्त होकर समस्त कालों में अन्तर्यामी हैं, और उसी नाम से उनको कहते हैं। उन-उन काल में जगत की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं। लक्ष्मी, ब्रह्मादि देवता भी अपने अपने व्याप्ति के अनुसार काल के अवयवों में अन्तर्यामी रहते हैं। परन्तु परम महत् काल के अन्तर्यामी तो श्री हरि ही हैं।।3।।

सूक्ष्म काल को परमाणु काल कहते हैं। परम महत् पदार्थ के लक्षण से युक्त काल को परम महत् काल कहते हैं। इनके अन्तर्यामी श्री हरि के रूपों का भी यही नाम है।।4।।

दो परमाणु मिलकर एक द्व्यणुक कहलाता है। तीन द्व्यणुक को त्रिणुक कहते हैं। यह काल सामान्य लोगों को प्रत्यक्ष से दिखाई पड़ता है। तीन त्र्यणुकों के काल को **'त्रुटि'** कहते हैं और तीन त्रुटियों का काल **'वेध'** कहलाता है। तीन वेध के काल को **'लव'** कहते हैं।।5।।

तीन लव का एक **'निमेष'**, तीन निमेष का एक **'क्षण'**, पाँच क्षण की एक **'काष्ठा'** और पन्द्रह काष्ठाओं का एक **'लघु'** होता है।।6।।

पन्द्रह लघुओं की एक **'नाडिका'** (घटी) होती है। दो (घटी) नाडियों का एक **'मुहुर्त'** और दिन रात्रि के प्रमाणानुसार छः या सात घटियों का एक प्रहर होता है।।7।।

छपल ताम्र का इस प्रकार का एक पात्र बनावे, जिसमें प्रस्थ भर पानी आ सकें। उस पात्र की पेंदी से बीचो

बीच एक ऐसा छेद करे, जिसमें एक मासे सोने की चार अंगुल लम्बी सलाई जा सके। उस पात्र को जल में छोड़ दिया जाय। उस छेद से जितनी देर में एक प्रस्थ पानी भर जाय, उतने समय को नाड़ी (घड़ी या दण्ड) कहते हैं।।8।।

आठयाम (प्रहर) का एक दिन और रात होती है। अर्थात् चार प्रहर का दिन और चार पहर की रात। ऐसे पन्द्रह दिन-रातों का एक पक्ष होता है। जिसके शुक्ल और कृष्ण दो भेद होते हैं।।9।।

दो पक्षों का एक मास होता है। इस तरह मनुष्यों का एक महीना पितरों के एक दिन-रात के समान होता है। दो महीनों की एक ऋतु होती है। तीन ऋतुओं का एक **'अयन'** होता है। वह अयन दो प्रकार का होता है-उत्तरायण और दक्षिणायन।।10।।

दो अयन (एक वर्ष) देवताओं के एक दिन रात के समान होता है। बारह महीनों का एक वर्ष होता है। मनुष्यों की परम आयु सौ वर्ष की मानी गई है।।11।।

ग्रह (चन्द्र, शनि आदि) नक्षत्र (अश्विनी, भरणी आदि) और तारा (ध्रुव आदि) के मण्डल में रहते हुए, समस्त जीवों के पुण्य पाप कर्मों को देखते हुए और सदा संचार करते हुए, श्री हरि परमाणु से लेकर संवत्सर पर्यन्त इस प्रपंच का बारम्बार चक्कर लगाते रहते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मुख्य रूप से काल शब्द से वाच्य श्री हरि ही हैं।।12।।

हे विदुर ! संवत्सर भी पाँच प्रकार के होते हैं-(सौरमान) संवत्सर, परिवत्सर इडावत्सर, (चान्द्रमान) अनुवत्सर और वत्सर। इन कालों में नियामक रूप से रहने से श्री हरि की संवत्सर परिवत्सर अनुवत्सर तथा वत्सर कहलाते हैं।।13।।

श्री हरि इन कालों में रहकर अपनी इच्छानुसार और अपने सामर्थ्य से उन वस्तुओं के स्वभाव को अनेक प्रकार से प्रकट करते हैं। और सृष्टि कार्य को सज्जीवों के मोक्ष के लिए करते हैं। प्राणियों में तारतम्य ज्ञान को देने वाले श्री हरि सूर्य में स्थित होकर वेग से संचार करते हैं। ऐसे पंच संवत्सर के अन्तर्यामी श्री हरि की पूजा रूप से प्रत्येक कर्म करें तब हमारा जन्म सार्थक होगा।।15।।

इस पर विदुर जी ने कहा-देवताओं, पितरों और मनुष्यों की पूर्ण आयु आपने बतायी। अब हमको महलोक आदि में रहने वाले ज्ञानियों की स्थिति को बतलाने की कृपा करें।।16।।

हे मैत्रेय-आप पूज्य और ज्ञानी हैं। ज्ञानीजन अपनी योग सिद्धि से सब जान लेते हैं। इसलिए काल के अन्तर्यामी श्री हरि के विषय में आप जानते ही हैं। कृपा करके आप बतलाइए।।17।।

मैत्रेय ने कहा-हे विदुर! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग हैं। देवताओं के बारह हजार वर्षों में युगसंध्या और सध्यांश सहित ये चारों युग बीत जाते हैं।।18।।

देवताओं के चार हजार वर्ष का सत्ययुग होता है। इस सत्ययुग के आदि और अन्त का संध्याकाल चार-चार सौ वर्ष का होता है। देवताओं के तीन हजार वर्षों का त्रेता युग होता है। उसके आदि अन्त की संध्या (संधि) समय तीन-तीन सौ वर्ष का होता है। देवताओं के दो हजार वर्षों का द्वापर युग होता है। उसके आदि अन्त का समय दो सौ वर्षों का होता है। देवताओं के एक हजार वर्ष का कलियुग होता है। उसके आदि अन्त का संध्या (संधि) समय

एक सौ वर्ष का होता है।।19।।

उन-उन युग के लिए जो धर्म बतलाए गए हैं। वह उन्हीं काल में पूर्ण रूप से रहते हैं। इसलिए काल के ज्ञानी उस काल को उन युग के नाम से पुकारते हैं।।20।।

तप, सत्य, दया और सुचित्व ये धर्म के चार चरण हैं। कृतयुग में यह चारों चरण रहकर धर्म पूर्ण रूप से रहता है। युग धर्म के अनुसार प्रत्येक युग में धर्म के एक एक चरण कम होते जाते हैं।।21।।

त्रेता युग में एक चरण अधर्म और तीन चरण धर्म, द्वापर में दो चरण अधर्म और दो चरण धर्म, कलियुग में तीन चरण अधर्म और एक चरण धर्म। ऐसे चार युग का एक हजार बार बीतने पर ब्रह्मा का एक दिन उतना ही समय रात्रि का ऐसा उनका एक दिन होता है।।22।।

रात्रि में निद्रा करते समय जैसे कोई कार्य नहीं करते हैं, ऐसे ही ब्रह्मा रात्रि में सृष्टि कार्य नहीं करते हैं। दिन में लोकों की सृष्टि होती है। ब्रह्मा जी के एक दिन में चौदह मनु राज्य करते हैं।।23।।

इन चौदह मनुओं में प्रत्येक मनु का कार्यकाल इकहत्तर महायुग से अधिक अठारह लाख पचास हजार वर्ष का होता है। प्रत्येक मन्वन्तर में मनु, मनु के वंशज राजे, सप्तर्षि, देवराज इन्द्र और उनके अनुयायी गन्धर्व ये सब अलग अलग नाम के होते हैं। इस प्रकार एक के बाद एक मन्वन्तर होते जाते हैं।।24।।

तीनों लोकों में ब्रह्मा जी के प्रतिदिन के सृजन कार्य में यही क्रम चालू रहता है और उनकी इस सृष्टि में प्राणी अपने-अपने कर्म के अनुसार तिर्य्क मनुष्य पितर तथा देवताओं की योनि में जन्म लेते हैं।।25।।

उन मन्वन्तरों में श्री हरि अवतार लेकर अपने सामर्थ्य को प्रकट करते हैं। मनुओं के साथ जगत की रक्षा करते हैं।।26।।

दिन समाप्त होने पर रात्रि आने पर श्री हरि अपने सामर्थ्य को छिपाकर शेष पर शयन करते हैं। ब्रह्मा भी उनमें प्रवेश करके सृष्टि कार्य को रोक देते हैं।।27।।

तब सूर्य चन्द्र कोई दिखाई नहीं पड़ते हैं।।28।।

भू लोक, भुवर्लोक और स्वर्ग लोक शेष देवता के मुख से निकले हुए अग्नि से जल जाते हैं। इसका ताप महर्लोक तक पहुँचता है। महर्लो लोक में रहने वाले ऋभु आदि देवता महर्लो लोक को छोड़कर जन लोक को चलते जाते हैं।।29।।

तब हवा वेग से चलने लगती है। सातों समुद्र की ऊँछी-ऊँची तरंगे निकलकर तीनों लोकों को डुबो देती हैं।।30।।

इस दिन प्रलय के जल में श्री हरि शेषशायी हो जाते हैं। योगनिद्रा आसक्त होकर आँख बन्द कर लेते हैं। जन लोक से लेकर अन्य लोकों में रहने वाले जीव श्री हरि की स्तुति करते रहते हैं।।31।।

हे विदुर! इस प्रकार ब्रह्मा जी का एक दिन बीत जाता है। ऐसे तीन सौ इकसठ दिन का एक वर्ष है। ऐसे सौ वर्ष की आयु ब्रह्मा की है।।32।।

इनके आयु के अर्ध को परार्ध कहते हैं। अब पहला परार्ध तो बीत गया है। दूसरा परार्ध प्रारम्भ हुआ है।।33।।

पहले परार्ध के आरम्भ में ब्रह्म कल्प हुआ। उसमें ब्रह्मा ही पहले उत्पन्न हुए। इन्हीं की, वेद स्तुति करते हैं।।34।।

उस परार्ध के अन्त में पाद्म कल्प समाप्त हुआ। इस कल्प में श्री हरि के नाभि से कमल उत्पन्न हुआ और उसमें चतुर्मुख ब्रह्मा व्यक्त हुए।।35।।

हे विदुर! इस समय जो कल्प चल रहा है वह दूसरे परार्ध का आरम्भ का बतलाया जाता है। यह वराह कल्प नाम से विख्यात है इसमें भगवान ने वराह रूप से अवतार लिया था।।36।।

यह पर काल (दो परार्ध काल) अनन्त गुण वाले, आदि रहित और जगत स्वामी श्री हरि का औपचारिक निमेष माना जाता है।।37।।

कालाभिमानी श्री लक्ष्मी देवी जो ब्रह्मादि देवताओं पर अपना प्रभाव डालती हैं। वह भी परिपूर्ण श्री हरि पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं डाल सकती हैं। श्री हरि सर्वोत्तम हैं।।38।।

यह ब्रह्माण्ड पचास करोड़ योजन विस्तार का है। इसके अन्दर दस इन्द्रिय पंचभूत और मन ऐसें सोलह तत्व हैं। इसके बाहर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्व और प्रकृति का आवरण है। आवरण सहित यह ब्रह्माण्ड श्री हरि के देह में अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ जैसे दिखाई पड़ता है। श्री हरि के रूप अनन्त होने से उसमें रहने वाला ब्रह्माण्ड भी अनन्त दिखाई पड़ता है। यहाँ पर अनेक ब्रह्माण्डों का होना कहा गया है। वह दो प्रकार से अनेक कहला सकते हैं-

1. श्री हरि के रूप अनेक हैं प्रत्येक रूप में रहने से, एक-एक रोम कूप में रहने से, श्री हरि ने अपने सामर्थ्य से एक ही ब्रह्माण्ड को अपने रूपों में अलग अलग धारण करने से एक ही वर्तमान ब्रह्माण्ड अनेक हो सकता है, स्वतः अनेक नहीं है।

2. भूतकाल के ब्रह्माण्ड भविष्य में आने वाले ब्रह्माण्ड असंख्य होने से अनेक हैं।

शरीराणां बहुत्वेन अतीतनागतैस्तथा।
अस्यैव देवकायेषु प्रतिप्रति च दर्शनात्।
विष्णु सामर्थ्य तो डण्डानां बहुत्वं नान्यथा भवेत्।। ब्रह्मतेर्क
एकमण्डं बहुत्वेन प्रत्येकं रोम कूपगम्।
ब्रह्माऽपश्यत्तथात्मानं हरेस्तेषु पृथक् पृथक्। ब्रह्माण्डे।।39,40।।

इस प्रकार ब्रह्माण्ड का आश्रय श्री हरि ही अत्यन्त महत् और अत्यन्त सूक्ष्म भी हैं। यह ब्रह्माण्ड उनका आवास स्थान है। ऐसे श्री हरि में सर्वोत्तमत्वेन भक्ति करके मोक्ष को प्राप्त करना चाहिए। इसलिए उनके सर्वोत्तमत्व ज्ञान को सब प्रकार से प्राप्त करना चाहिए।।41।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे द्वादशोऽध्यायः।।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

मैत्रेय जी ने कहा-हे विदुर! अब तक श्री हरि की कालरूप महिमा बतलाया। अब तक ब्रह्मा ने जिन वस्तुओं की सृष्टि किया उसको बतलाया हूँ।।1।।

पहले अज्ञान, विपरीत ज्ञान (मोह) उसमें आग्रह (महामोह), क्रोध (तामिस्र) और मरण (अन्ध तामिस्र) ऐसे पाँच अज्ञान की वृत्तियों की सृष्टि किया।।2।।

यह सब पाप के कारण होने से ब्रह्मा को इनसे तृप्ति नहीं हुई। वे पुनः श्री हरि का ध्यान किये तब शुद्ध मन से अन्य पदार्थों की सृष्टि किये।।3।।

सनक, सनन्द, सत्सुजात और सनत्कुमारों की सृष्टि किये यह सब सन्यासी और ब्रह्मचारी है।।4।।

इसको जानते हुए भी ब्रह्मा ने प्रजाओं की सृष्टि के लिए उनको आज्ञा दिया। निवृत्ति धर्म में आसक्त हुए यह भगवद् भक्त उस कार्य को न करना चाहे।।5।।

आज्ञा के उल्लंघन करने से ब्रह्मा जी कुपित हुए उन्होंने क्रोध को रोकने का प्रयत्न किया।।6।।

तब उनके भौहों के मध्य भाग से एक 'नील लोहित' के रूप का बालक प्रकट हो गया। इसलिए उनको **'सद्योजात'** नील लोहित कहते हैं।।7।।

इन्द्रादि देवताओं से पहले ही इस बालक ने जन्म लिया और जन्म लेते ही रोने लगा और कहा कि-हे ब्रह्म! आप मेरा नामकरण करिए और मेरे रहने का स्थान बताइए।।8।।

तब ब्रह्मा जी ने कहा-हे बालक तुम मत रोओ। तुम जो चाहते हो उसको करता हूँ।।9।।

हे बालक तुम देवताओं में उत्तम हो। तुम्हारे रोदन करने से तुम्हें **'रुद्र'** के नाम से बुलाते हैं।।10।।

हृदय, इन्द्रियाँ, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र और तप तुम्हारे स्थान हैं।।11।।

मन्यु, मनु, महानास, महाशिव, ऋतुध्वज, अग्निवी, भव काल, वामदेव और धृतव्रत यह आप के नाम हैं।।12।।

धी, वृत्ति, अशलोमा, नियुत्सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती सुधा तथा दीक्षा ये तुम्हारी पत्नियाँ हैं।।13।।

तुम इन स्त्रियों, उपरोक्त स्थान और नामों को स्वीकार करके इनके द्वारा प्रजाओं की सृष्टि करो अन्यथा तुम प्रजापति नहीं कहलावोगे।।14।।

रुद्र देवता स्वभाव से सात्विक हैं। बलशाली हैं। अपने पिता ब्रह्मा जी के आज्ञानुसार अपने जैसे ही उग्र अनेक रुद्र गणों की सृष्टि किये।।15।।

रुद्र के द्वारा उत्पन्न अगणित रुद्र गण जब चारों ओर से संसार को ही भक्षण करने लगे, तब ब्रह्मा जी को संशय हुआ और उन्होंने रुद्र से कहा।।16।।

हे सुर श्रेष्ठ! इस प्रकार की सृष्टि न करो ये तो अपने भयंकर दृष्टि नेत्रों से मुझे और मेरी सृष्टि को जैसे भस्म किये दे रहे हैं।।17।।

श्री हरि का स्मरण न करते हुए सृष्टि करने से ऐसी प्रजा उत्पन्न हुई है। अब तुम समस्त प्रजा को सुख देने के लिये तप करो। तप किए बिना पहले जैसे सृष्टि करना साध्य नहीं है। तप करने से श्री हरि के अनुग्रह को प्राप्त करके पूर्ववत् जगत् की सृष्टि कर सकते हो।।18।।

श्री हरि समस्त ज्योतियों से विलक्षण हैं। ऐश्वर्यादि गुण ही उनका देह है। वाह्य इन्द्रियों से दिखाई देने वाले नहीं है। सबके हृदय गुहा में निवास करते हैं। स्वतंत्र होने से वही मुख्य तत्व कहलाते हैं। योग्य जीव तप के द्वारा ही ऐसे श्री हरि को प्राप्त कर सकते हैं। श्री हरि के निमित्त तप से प्राप्त अनुग्रह से ज्ञान प्राप्त करके भली भाँति सृष्टि करोगे।

भगवान कहने से निराकार न होना कहा गया है तो फिर क्यों नहीं दिखाई देना चाहिए? इसके उत्तर में अधोक्षज कहा गया है तो फिर क्या शशि विषाण (खरगोश के सींग) के वैसा न रहने वाला वस्तु है क्या? इसके उत्तर में सर्वभूत गुहावासी कहा गया है। तो क्या जीव के वैसा अतत्व (अमुख्यतत्व) है? इसके उत्तर में अंजसा कहा गया है। अंजसा पद का अर्थ तत्व है (अमरदि निघंटु)।।19।।

इस प्रकार ब्रह्मा जी की आज्ञा को शिरोधार्य करके रुद्र देवता ने उनकी परिक्रमा की और उनकी अनुमति लेकर तपस्या करने के लिए जल में प्रवेश किये।।20।।

इसके पश्चात् ब्रह्मा जी सृष्टि करने के लिए विचार करने लगे। श्री हरि ने सृष्टि करने की शक्ति उन्हें दिया। रजोगुण से मिश्रित सत्व गुण की शक्ति से युक्त उनके देह के अवयवों से दस प्रजेश्वर उत्पन्न हुए।।21।।

उनके गोद से नारद, अंगुष्ठ से दक्ष, प्राण से वशिष्ठ, त्वचा से भृगु, हाथ से क्रतु, नाभि से पुलह, कान से पुलस्त्य, मुख से आरिस, नेत्रों से अत्रि, और मन से मरीचि उत्पन्न हुए। (इस सृष्टि में पहले सनकादि का जन्म हुआ परन्तु वे रुद्र देवता से उत्तम नहीं हैं। रुद्र देवता की पत्नी पार्वती से भी योग्यता में कम हैं। आदि सृष्टि में ही उत्तमों के क्रम से सृष्टि होती है। उसके पश्चात् की सृष्टि में इस क्रम में अन्तर भी हो सकता है। इससे तारतम्य में कोई भंग नहीं है। यह भागवत शास्त्र समस्त तत्वों का निर्णय करके बतलाता है। ऐसे शास्त्र में तारतम्य के अनुसार न रहने वाली सृष्टि को कहा गया है जो दुष्ट लोगों के मोहनार्थ है। सज्जीवों को तत्व को ही समझाता है। सज्जीवों को तत्त्व को समझाना और दुष्ट जीवों को मोहित करना यह दोनों शास्त्र तात्पर्यार्थ हैं। यह दोनों महापुरुषों के लिए प्रिय है। सृष्टि अनेक प्रकार की है। सृष्टि में आने वाली जीव राशियाँ भी अनेक प्रकार की हैं। इसलिए निर्णय करके बतलाने वाले अन्य ग्रन्थ के अनुसार इस शास्त्र का तात्पर्य जानना चाहिए। काल से, बल से, ज्ञान, आनन्द आदि समस्त गुणों से विष्णु ही सर्वोत्तम हैं। लक्ष्मी जी अनन्तांश से विष्णु से कम हैं परन्तु काल और देश से समान हैं। ब्रह्मा जी अनेकांश से (करोड़ों गुणों से) लक्ष्मी से कम हैं, ब्रह्मा जी और मुख्य वायु दोनों समान हैं। मुख्य वायु ही ब्रह्मा के पद पर आयेंगे। पद के निमित्त से तथा ब्रह्मा जी के दस वर्ष के पश्चात् सृष्टि होने से काल गणना से भी किंचित् न्यून हैं। (इसलिए मोक्ष में साम्य जानना चाहिए इस कारण से भी स्वरूप में न्यूनता न होने

से दोनों में तारतम्य भाव नहीं है।) इन दोनों की पत्नियाँ सरस्वती, भारती देवी दस अंश से कम हैं। मुख्य वायु की सृष्टि होने के एक वर्ष पश्चात् इनकी सृष्टि हुई है। सृष्टि में कितने समय के पश्चात् उत्पन्न होते हैं। लय में उतना ही काल पूर्व देह त्यागते हैं। सरस्वती और भारती देवियों से गरुड़ और शेष दस गुणों से कम हैं। देवमान से सहस्र वर्षों के पश्चात् इनकी सृष्टि हुई है। जैसे ब्रह्मा वायु के लिए कहा गया है वैसे ही शेष और रुद्र के लिए भी साम्य जानना चाहिए। इनकी पत्नियाँ सौपर्णी, वारुणी और पार्वती देवी पतियों से दस अंश से कम हैं। इसके पश्चात् इन्द्रादि देवताओं की सृष्टि है। इस प्रकार सृष्टि में तथा मोक्ष में तारतम्य है। यदि इसके विरुद्ध कहा गया है तो वह दुष्ट लोगों के मोहनार्थ जानना चाहिए। आदि सृष्टि में तारतम्य के अनुसार ही सृष्टि होती है तत्पश्चात् होने वाली सृष्टि में पहले या पश्चात् हो सकता है। यह रूपान्तर के विषय होने से तारतम्य भंग नहीं होता है। यहाँ पर सनकादियों की सृष्टि जो पहले कही गयी है वह उमादेवी से कम है। इन सबके लिए भागवत् तात्पर्य में श्रीमदाचार्य जी प्रमाण बतलाए हैं।)।।22,23,24।।

ब्रह्मा के दाहिने स्तन से धर्म देवता, पीठ से अधर्म देवता, इस अधर्म देवता से सबको भय उत्पन्न करने वाला मृत्यु देवता उत्पन्न हुए। यमधर्म राजा के घर में स्वयं श्री हरि नर नारायण रूप से अवतार किये। इनमें नारायण स्वयं श्री हरि हैं। (नरावतार में श्री हरि का आवेश है।)।।25।।

ब्रह्मा जी के हृदय से कामाभिमानी, भौंहों से क्रोधाभिमानी, निचले होंठ से लोभाभिमानी, मुख से वाक् अभिमानी, गुह्येन्द्रिय से समुद्राभिमानी, पायु से दुःखाभिमानी निऋति उत्पन्न हुए।।26।।

अधर्म देवता ही सबके मरण के कारण होने वाले मृत्यु का आश्रय है। दुःख इत्यादि पाप के फल के लिए निऋति आश्रय है। ब्रह्मा के शरीर की छाया से देवहूति के पति कर्दम उत्पन्न हुए। इस प्रकार ब्रह्मा के अवयवों से तथा मन से सब जगत की सृष्टि हुई।।27।।

श्री हरि के महिमा को जानने वाले ज्ञानी जनों में असुरों को मोहित करना चाहिए, इस नियमानुसार ब्रह्मा ने कामुक के जैसे बिडम्बना किये। ब्रह्मा ने मनुष्य संबंधी वचनों के अभिमानी देवता की इच्छा किये। ऐसा सुनने में आया है। यह तो केवल वार्ता ही है सत्य नहीं है।।28।।

इस प्रकार जो कामना बतलाए वह असुर लोगों को मोहित करने के लिए है। इसको जानकर मरीचि इत्यादि उनके पुत्रों ने कहा कि हमारे पिता का मन अधर्म की ओर प्रवृत्त हो रहा है।।29।।

काम पर विजय प्राप्त करने वाले ही अपनी इच्छा का निग्रह न करते हुए अपनी पुत्री की ही इच्छा करने वाला अधर्म है, ऐसे अधर्म को आप से पूर्व और किसी ने नहीं किया। आगे भी कोई ऐसा नहीं करेंगे।।30।।

आप ही ऐसा कर रहे हैं। कैसे भी तेजस्वी क्यों न हो ऐसे कार्य से उसे कीर्ति नहीं मिलती है। इसमें भी आप तो जगद्गुरु हैं। आप जैसे करते हैं वैसा दूसरे भी अनुसरण करते हैं और इसी से उनका कल्याण होता है।।31।।

आप पूज्य हैं आपको नमस्कार है। श्री हरि में छिपी हुई जगत् की सृष्टि करके व्यक्त किए हैं। धर्म की रक्षा करने योग्य आप ही हैं। इस प्रकार स्तुति किये।।32।।

इस प्रकार अपने पुत्र प्रजेश्वरों की स्तुति सुनकर ब्रह्मा जी लज्जित हुए ऐसा बताया और मनुष्य संबंधी

वागभिमानी देवता को त्याग दिये।।33।।

इसको दिशाओं में वास करने वालों ने स्वीकार किया। इस लौकिक वाग् देवी से लोक व्यवहार कर सकते हैं। परन्तु श्री हरि का ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता है। श्री हरि के ज्ञान के लिए यह प्रतिबन्धक है। इसलिए यह नरकादि अनर्थ का ही कारण है। एक बार ब्रह्मा जी विचार किए कि श्री हरि के उदर में रहने वाले कर्म से युक्त जीवों की सृष्टि कैसे करूँ।।34।।

तब ब्रह्मा के चारों मुख से वेद व्यक्त हुए। वेदाभिमानी यज्ञ यागादि कर्म, शास्त्र, सत्य, दया, तप, शौच, यह धर्म के चार चरण, चारों आश्रम और उनके अभिमानियों की भी सृष्टि हुई।।35।।

विदुर जी ने कहा-हे तपोधन मैत्रेय! ब्रह्मा तो जगत् की सृष्टि करने वाले जीवों में श्रेष्ठ हैं। उनके मुखों से वेदों की सृष्टि होना आपने बतलाया। कृपा करके बतलाइए कि उनके किस मुख से किस वस्तु की उत्पत्ति हुई।।36।।

मैत्रेय जी ने कहा-हे विदुर जी! ब्रह्मा के पूर्व मुख से ऋग्वेद, दक्षिण मुख से यजुर्वेद, पश्चिम मुख से सामवेद, और उत्तर मुख से अथर्वेद व्यक्त हुए। ऋग्वेद के **'शस्त्र'** मंत्रो को यजुर्वेद के **'इज्या'** मंत्रो को, सामवेद के **'स्तुति'** और **'स्तोम'** मंत्रो को अथर्वण वेद के **'प्रायश्चित'** मंत्रो को उद्धृत किए।।37।।

आयुर्वेद, धनुर्वेद, नाट्यशास्त्र और शिल्प शास की सृष्टि किया।।38।।

भविष्य में वेदव्यास जी से रचित होने वाले भारत इत्यादि और मार्कण्डेय इत्यादि ऋषियों द्वारा रचित होने वाले पुराणों को छोड़कर अन्य इतिहास पुराणों को मूलरूपी श्री हरि से जो श्रवण किए थे। उन सबका अपने मुखों के द्वारा रचना की।।39।।

पूर्व मुख से **'षोडशी' 'उक्थ'** यज्ञों को, दक्षिणमुख से **'पुरीष' 'अग्निष्टुति'** पश्चिम मुख से **'आप्तोर्याम'** अतिरात्र, उत्तर मुख से **'गोसव' 'वाजपेय'** यागों की सृष्टि किया।।40।।

तप, शौच, दया और सत्य धर्म के ये चार पाद क्रमशः पूर्वादि मुखों से सृष्टि किया। तब ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास वृत्तियों समेत चार आश्रमों को भी उत्पन्न किये।।41।।

इसके पश्चात् उन्होंने अपने पूर्व मुख से चार प्रकार का ब्रह्मचर्य व्रत जैसे सावित्र (गुरु कुल में अध्ययन के लिए बारह वर्ष तक वास करना) पाजापत्य (ऋतु काल में एक पत्नी के साथ रहना) ब्राह्म (विवाह होने तक अध्ययन करने का) वृहत् (आजन्म पालन किया जाने वाले ब्रह्मचर्य व्रत) और दक्षिण मुख से चार प्रकार की गृहस्थ वृत्तियाँ वार्ता (घर-घर से भिक्षा लेकर जीविका चलाना) असंचय (उन-उन दिन में प्राप्त हुआ इसी दिन व्यय (खर्च) कर के जीविका चलाना) शालीन (एक वर्ष के लिए अपनी जीविका के लिए धान्य का संग्रह करना) शिलोंछ चक्की में बचा हुआ आटा को लाना तथा खलिहान के पश्चात् वहाँ गिरे हुए अन्न को चुनकर लाना और उसी से जीविका चलाना)। ये वृत्तिएँ उत्पन्न हुई।।42।।

इसी प्रकार पश्चिम मुख से वानप्रस्थ आश्रम की सृष्टि किया। जिसके यह भेद हैं-वैखानस (कन्द मूल से जीविका चलाना), वालखिल्य (सभी प्रकार के आहार स्वीकार करके जीविका चलाने वाले) औदुम्बर (केवल फलों से जीविका चलाने वाले) फेनप (बछड़े के दूध पीते समय उसके मुख से निकलने वाले फेन से जीविका चलाना) इसी

प्रकार उत्तर मुख से सन्यास आश्रमों की सृष्टि किया। उनके भेद हैं कुटीचक, बहोदक, हंस, और परमहंस। कुटीचक (घर में ही पुत्र आदि के दिए हुए अन्नों से तृप्त रहने वाले) बहोदक (प्रात, मध्याह्न एवं सायंकाल के स्नान का नियम न करते हुए यहा भी तीर्थ मिला वहाँ स्नान कर लिये यह त्रिदण्डी होते हैं। हंस (एक दण्ड और यज्ञोपवीत धारण करने वाले), परमहंस (एक दण्ड धारण करने वाले यज्ञोपवीत रहित तथा हिंसा आदि अहित कार्य न करने वाले)।।43।।

इसी प्रकार ब्रह्मा जी के पूर्व मुख से वेद विद्या, दक्षिण मुख से वेदानुसार श्री हरि से निर्मित तर्क विद्या, पश्चिम मुख से राजाओं की दण्ड विद्या और उत्तर मुख से वैश्य आदि जीविका चलाने वाले व्यापार कृषि आदि शास्त्र। इसी प्रकार से ओंकार भूः, भुवः स्वः प्रणव सहित व्याहृति की सृष्टि किया। ब्रह्मा के रोम से "**उष्णिक**" त्वचा से "**गायत्री**", माँस से "**त्रिष्टुद**" स्नायु से "**अनुष्टुप्**", अस्थि से "**जगती**", मज्जा से "**पाँक्त**", प्राण से "**वृहती**" नाम के छन्दों की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार से ब्रह्मा जी के चैतन्य (जीव) से '**क**' से '**म**' तक स्पर्श वर्ण, देह से स्वर वर्ण '**अ, आ**' आदि उनके इन्द्रियों से उष्ण वर्ण '**श, ष, स, ह**'। और उनके बल से अन्तस्थवर्ण '**यरलव**' उत्पन्न हुए।।44,45,46।।

इस प्रकार श्री हरि के अनुग्रह से परिपूर्ण होकर नाना प्रकार की सृष्टि करने के सामर्थ्य को प्राप्त किए हुए ब्रह्मा ने दूसरे प्रकार की सृष्टि करने का विचार किया।।48।।

मरीचि इत्यादि ऋषियों में सृष्टि करने की सामर्थ्य होने पर भी उनकी सृष्टि का अधिक विस्तार नहीं हुआ। इसको देखकर ब्रह्मा ने अधिक रूप से सृष्टि का विस्तार करने के लिए विचार किया।।49।।

यह तो बड़ा आश्चर्य है सदा सृष्टि कार्य में आसक्त होने पर भी प्रजाओं की सृष्टि अधिक नहीं हो रही है।।50।।

श्री हरि के अनुग्रह के बिना इस कार्य को पूरा नहीं कर सकते हैं। इस प्रकार विचार करके श्री हरि के ही अनुग्रह का विचार करते हुए ब्रह्मा का रूप दो भाग हो गया।।51।।

दो प्रकार के शरीर उत्पन्न हुए। एक पुरुष और एक स्त्री। पुरुष रूप जो था वह चक्रवर्ती स्वयांभुव मनु राजा था।।52।।

स्त्री रूप में जो आई थी वह मनुराजा की स्त्री सतरूपा देवी थी। यह दोनों दम्पति बने। तब से मैथुन कर्म से प्रजाओं की उत्पत्ति आरम्भ हुई। सृष्टि का अतिशय विस्तार हुआ।।53।।

मनुराजा व शतरूपा देवी से प्रियव्रत, उत्तानपाद ऐसे दो पुत्र और आकूति, देवहूति और प्रसूति ऐसी तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं।।54।।

आकूति का रुचि प्रजेश्वर से देवहूति का कर्दम से और प्रसूति का दक्ष से विवाह हुआ। इन कन्याओं की सन्तान से सारा जगत् भर गया।।55।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः।।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

श्री शुकदेव जी कहते हैं-हे राजन्! महर्षि मैत्रेय के मुख से इस परम पुनीत कथा को सुनकर भगवान कृष्ण की कथा के रसिक विदुर ने पूछा।।1।।

विदुर जी ने कहा-हे महामुनि मैत्रेय! ब्रह्मा के पुत्र सम्राट स्वायं भुव मनु ने प्रिय पत्नी शतरूपा को पाकर फिर क्या किया।।2।।

आप हमें सर्व प्रथम उन राजर्षि और भगवद्‌भक्त राजा स्वायं भुव मनु का चरित्र सुनाइए क्योंकि उनका चरित्र सुनने में मेरी अपार श्रद्धा है।।3।।

मुमुक्षु जन बहुकाल तक परिश्रम करके शास्त्रों का श्रवण करते हैं। श्री हरि के गुणों का श्रवण करना और श्री हरि को अपने हृदय मे देखने वाले भगवद्भक्तों की कथा श्रवण करना ही इसका प्रयोजन है। बड़े-बड़े विद्वान भी इसकी सराहना करते हैं।।4।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं-विनीत भगवद् भक्ति विदुर की बातें सुनकर मैत्रेय मुनि गदगद् हो गए। भगवान की कथा के प्रति उमंड़ पड़ा और शरीर में रोमांच हो आया। ऐसी विह्वल दशा में वे कहे।।5।।

मैत्रेय जी कहे-अपनी पत्नी के साथ स्वायंभुव मनु का जन्म होने के पश्चात् मनु राजा ने हाथ जोड़कर भक्ति से ब्रह्मा को नमस्कार किया और कहा।।6।।

हे ब्रह्मन्! आप सब प्राणियों के जन्मदाता और वृत्ति देने वाले पिता हैं। हमें आपकी अवश्य सेवा करनी ही चाहिए। किस प्रकार से आपकी सेवा करें?।।7।।

हमारा कार्य इस संसार में कीर्ति को और परलोक में सद्‌गति को देने वाला होना चाहिए। हमारे नित्य और नैमित्तिक कर्म भगवद् आराधना रूप होवें। ऐसे कर्मों के लिए हमें आज्ञा कीजिए। आपको नमस्कार है। इस प्रकार प्रार्थना किया तब ब्रह्मा जी ने कहा-हे प्रिय पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो। मैं इसलिए तुम पर प्रसन्न हूँ कि तुमने निष्कपट भाव से मुझसे आज्ञा माँगी है और अपने आपको मेरे हाथों सौंप दिया है।।9।।

हे पुत्र! सन्तान का एक मात्र कर्तव्य है कि वह बड़ी नम्रता और लगन के साथ अपने पिता की आज्ञा का पालन करे।।10।।

अब तुम इस शतरूपा से अपने ही सदृश गुणवान् सन्तान उत्पन्न करके धर्म पूर्वक पृथ्वी की रक्षा करो और यज्ञों द्वारा सर्वोत्तम श्री हरि की आराधना करते रहो।।11।।

प्रजा की रक्षा ही मेरी सबसे बड़ी सेवा होगी और तुम्हारे इस कार्य से श्री हरि भी प्रसन्न हो जायेंगे।।12।।

हर एक को चाहिए कि अपने कर्मों के द्वारा श्री हरि को प्रसन्न करे। यदि ऐसा न हो तो वह कर्म परिश्रम मात्र होगा। उसका कोई प्रयोजन न होगा। श्री हरि को ही तिरस्कार करने पर यश कैसे मिलेगा।।13।।

मनु राजा ने कहा-''हे ब्रह्म देव! आप हमारे मन के दोषों को दूर करने वाले हैं। आप समर्थ हैं। आप की आज्ञानुसार ही हम चलते हैं। परन्तु और मेरी प्रजाओं के निवास के लिए स्थान की व्यवस्था कीजिए।।14।।

प्राणियों के लिए रहने योग्य भूमि तो प्रलय के जल में डूब गई है। उसको ऊपर लाने का प्रयत्न करना है। इस प्रकार प्रार्थना किये।।15।।

तब ब्रह्मा सामान्य लोगों के जैसे विचार करने लगे कि पृथ्वी तो जल में डूब गई है इसको ऊपर कैसे लाया जाय। ब्रह्मा तो सर्वज्ञ हैं उनके न जानने का कोई विषय नहीं है।।16।।

पूर्व में ही मैंने जल को सुखाकर भूमि को ऊपर रखा था। इस पर भी जल उमड़कर आया। पृथ्वी को डुबो दिया है।।17।।

देवता, असुर, पितृगण, मनुष्य, पशु, पक्षी, सर्प, पर्वत, इत्यादि सब प्रकार के उत्तम अधम प्राणियों के सृष्टि करने से प्रजाओं के भार से यह भूमि जल में डूब गई। हम लोग सृष्टि कार्य में नियुक्त हैं। अतः इसके लिए हमको क्या करना चाहिए।।18,19।।

अब तो, जिनके संकल्प मात्र से मैं व्यक्त हुआ हूँ वे सर्वशक्तिमान् श्री हरि ही यह कार्य पूरा करें। इस प्रकार ब्रह्मा के विचार करते समय उनके नासा छिद्र से अकस्मात् अँगूठे के बराबर आकार का एक वराह शिशु निकला।और वहाँ रहने वाले मरीचि इत्यादि ब्राह्मण, स्वायंभुव मनु राजा, सनत् कुमार, ब्रह्मा इन सबके देखते देखते आकाश में रहने वाला यह शिशु हाथी के जैसे बड़ा हो गया। सबको आश्चर्य हुआ।।20,21,22।।

इस रूप को देखकर ब्रह्मा जी ने कहा कि हमारे सामने रहने वाला यह दिव्य सूकर कौन होगा? अब क्या करना चाहिए ऐसा जब मैं विचार कर रहा था? उस समय यह प्राणी मेरी नासिका से बाहर आया है।।23।।

तब तो यह अँगूठे के बराबर था अब एक ही क्षण में बड़े पहाड़ के जैसा बड़ा हो गया है। यह वराह तो सर्वोत्तम यज्ञ वराह रूपी श्री हरि ही हैं।।24।।

इस प्रकार विमर्श करते समय में एक बड़े पहाड़ के आकार के यज्ञ वराह रूपी श्री हरि गर्जना किये।।25।।

इस गर्जना से सभी दिशाओं को प्रतिध्वनित करके ब्रह्मा और श्रेष्ठ ब्राह्मणों को हर्ष से भर दिया।।26।।

श्री हरि ही अपनी इच्छा से इस रूप को व्यक्त किए हैं। उनकी गर्जना ने सबके मन के सन्देह को दूर किया। जन लोक, तपोलोक, सत्य लोक के निवासियों ने अपनी रक्षा के लिए आए हुए श्री हरि की वेद मंत्रो से स्तुति करना आरम्भ किया।।27।।

समस्त वेदों से प्रतिपाद्य श्री हरि ने वेद वाक्यों को सुनकर उन्हें आनन्द उत्पन्न करने के लिए पुनः गर्जना किये। मदभरित हाथी के जैसे क्रीड़ा करते हुए प्रलय जल में प्रवेश किये।।28।।

जल में प्रवेश करते समय पूँछ को ऊपर उठाकर आकाश में वेग से आ रहे थे। उनके शरीर का रोम कठोर हो रहा था। उनके दोनों दाँत उज्जवल थे। अपने खुरों के आघात से जैसे वे आकाश मण्डल के बादलों को छितरा रहे थे। अपने प्रकाशमान नेत्रों से चारों ओर देखे। अपनी नाक से पृथ्वी में रहने के स्थान को सूँघते हुए खोज रहे थे।

अपनी स्तुति करने वालों की ओर कृपा दृष्टि से देखते हुए जल में प्रवेश किये।।29,30।।

वज्र के समान देह से श्री हरि के अत्यन्त वेग के साथ जल में प्रवेश करने से ऐसा जान पड़ा कि मानों उस समुद्र का पेट फट गया है और जल के हिलोरों का जो कोलाहल उठा, उससे मालूम पड़ा कि मानों वह अपना तरंग रूपी हाथ उठाकर चिल्ला रहा है कि हे यज्ञेश्वर! मेरी रक्षा करो मुझे बचाओ।।31।।

समस्त वेदों से प्रतिपाद्य श्री हरि अपने खुरों से जल को चीरते हुए पाताल में चले गए और वहाँ पर उस भूमि को देखा जिसे श्री हरि ने प्रलय काल में योग निद्रा में शयन करते समय समस्त प्राणियों की आधार भूता पृथ्वी को जल पर लाकर रखा था।।32।।

अब पुनः उस पृथ्वी को अपने दोनों दाँतों से उठाकर रसातल से ऊपर आ रहे थे अब आदि हिरण्याक्ष दैत्य गदा को लेकर इस वराह पर आक्रमण किया। तब वराह रूपी श्री हरि कुपित होकर जैसे सिंह लीला से हाथी का संहार करता है वैसे ही आदि हिरण्याक्ष दैत्य का जल में ही संहार कर दिये।।33।।

उसके शरीर से निकले हुए रुधिर से भगवान का गण्डस्थल और मुख लाल हो गया। उस समय वे ऐसे लग रहे थे जैसे कोई बड़ा भारी हाथी गेरू की धरती खोद कर खड़ा हो।।34।।

यहाँ वराह रूपी श्री हरि से जिस हिरण्याक्ष का वध हुआ वह ब्रह्मा जी से उत्पन्न हुआ आदि हिरण्याक्ष है जिसको आदि वराह रूपी श्री हरि ने अपने दाँतों से संहार किया। दूसरा हिरण्याक्ष जो कश्यप ऋषि से उत्पन्न हुआ उसे वराह रूपी श्री हरि ने आयुध से कान के नीचे मारकर संहार किया। दोनों वराह रूपों में भूमि को ऊपर लाकर स्थापित किया गया है। पहले बार तो पृथ्वी जल में स्वयं डूब गई थी जिसको ऊपर लाते समय श्री हरि ने आदिदैत्य हिरण्याक्ष का वध किया था। दूसरी बार जब जय-विजय के शाप वश असुर योनि में जन्म लिए तब हिरण्याक्ष ने उनमें प्रवेश किया। इस हिरण्याक्ष ने पृथ्वी को जल में डुबोया। उस पृथ्वी को ऊपर लाते समय श्री हरि ने वराह रूप से उसके कान के नीचे मार कर संहार किया इसके लिए प्रमाण निम्न प्रकार है-

ब्रह्मजस्तु हिरण्याक्षः प्रथमं दंष्ट्रया हतः।
स एव पार्षदाविष्टो द्वितीयः कर्णताडनात्।
पूर्वो लयोदके मग्नां द्वितीयं तेन मज्जिताम्।
भुवमुद्धरतैवासौ हरिणा क्रोडमूर्तिना।-ब्रह्माण्डे

विदुर के प्रश्न के उत्तर में एक ही हिरण्याक्ष का संहार करना प्रतीत होता है इसको अलग अलग न बताने के लिए दो कारण हैं। दुष्टों के मोहनार्थ और शिष्ट देवताओं को सन्तोष उत्पन्न करने के लिए। परन्तु यहाँ यह न समझना चाहिए कि ग्रंथकर्ता श्री वेद व्यास जी को अज्ञान है वह तो सर्वज्ञ हैं उनको अज्ञान कहाँ। केवल दुष्ट जनों के मोहनार्थ ही इस प्रकार बताया गया है।

नील वर्ण के वराह रूपी श्री हरि को अपने शुक्ल वर्ण के दांत से भूमि को उठाकर लाते हुए ब्रह्मादि देवताओं ने देखा और वेद मंत्रों से उनकी स्तुति किया।।35।।

हे देव! आप पर कोई विजय नहीं प्राप्त कर सकता हैं। याग इत्यादि सत्कार्यों द्वारा सेवा करने योग्य हैं।

यह तुम्हारा वराह आकार तो अप्राकृत है। अपने देह में लगे हुए जल को देह को हिलाकर गिरा देते हैं। आपके एक-एक रोम कूप में समुद्र छिपे हुए हैं। आपने किसी कारण विशेष से जो यह सूकर रूप लिया है ऐसे आपको नमस्कार है।।36।।

आप के इस रूप को पापी लोग नहीं देख सकते हैं। पुण्यवानों को आप सुगमता से दिखाई पड़ते हैं। आप का यह देह यज्ञ के समस्त सामग्रियों के लिए आश्रय होने से यज्ञात्मक कहलाता है। यज्ञ नाम से प्रसिद्ध हुए विष्णु, ही आप हैं। आपके त्वचा में वेद, रोम में कुश, नेत्र में घी, पादों में चतुर्होत्र नामक यज्ञ।।37।।

मुख में स्रुक्, नासिका में स्रुवा, उदर में इडापात्र, कानों में चमस, मुख में प्रशित्र यज्ञ पात्र और हविस् जिह्वा में सोमरस, आपका जो चबाना है वही अग्नि होत्र है।।38।।

आप का बार-बार अवतार लेना यज्ञदीक्षा है। आपकी ग्रीवा में उपसद हैं। दातों में प्रायणी और उदयनीय इष्टि है। जिह्वा में प्रवर्ग्य इष्टि है। आपके सिर में संकल्प, प्राण में सभ्य और अवसभ्य, अग्निचिति इत्यादि सात चयन हैं।।39।।

आपके वीर्य में सोमरस, आपकी अवस्थिति त्रिसवन है। देह की सप्त धातुओं में अग्निष्टोमादि याग, शरीर की सन्धियों में सब प्रकार के सत्र याग, आपकी इच्छा में समस्त यज्ञ हैं। आपके शरीर के बन्धन (जोड़) में ही इष्टियाँ हैं। ऐसे यज्ञमूर्ति के लिए नमस्कार है।।40।।

समस्त मंत्रों में, देवताओं में, और द्रव्य में रहकर उनको सत्ता प्रदान करते हैं, इसलिए आप मंत्र देवता कहलाते हैं। समस्त संकल्प और क्रियाएँ आपसे ही होती हैं और उन सबमें आप व्याप्त हैं। आपके अनुग्रह से ही वैराग्य और भक्ति उत्पन्न होते हैं। उन-उन जीवों के योग्यतानुसार ज्ञान प्रदान करने वाले गुरु आपही हैं। आपको नमस्कार है।।41।।

आपके दाँतों के अग्रभाग में स्थित पर्वतों युक्त पृथ्वी ऐसी लगती है, जैसे जल से निकलते हुए किसी मतवाले हाथी के दाँतों पर पत्र युक्त कमल रखा हो, वैसे भूमि को श्री हरि ने अनायास धारण किया है।।42।।

सभी पर्वत के शिखरों पर बादलों के समान आपका यह वेद प्रतिपाद्य देह के दाँतों पर ही यह पृथ्वी प्रकाशमान है।।43।।

आप इस जगत के समस्त प्राणियों के पिता हैं। जगन्माता और आपकी पत्नी इस भूमि को प्रजाओं के लिए जल पर स्थापित कीजिए। जैसे अरिणी में अग्नि है वैसे ही इस भूमि में आपका तेज भरा हुआ है। आप और आपके साथ रहने वाली भूमि को नमस्कार है।।44।।

पाताल में रहने वाली भूमि को ऊपर लाए हैं आपके सिवाय इस कार्य को करने में अन्य कोई समर्थ नहीं है। परन्तु आप के लिए यह कोई आश्चर्यजनक नहीं है।।45।।

आप अपनी इच्छा से ही इस विचित्र जगत की सृष्टि करने में समर्थ हैं। आपके कार्य अन्य लोगों के लिए अत्यन्त आश्चर्यकारक हैं। हे प्रभो! वेद से प्रतिपाद्य आपके इस अप्राकृत शरीर को जल हिलाते हैं तो आपके बालों

से झरती हुई शीतल जल की बूँदे हमारे ऊपर पड़ती हैं। उन बूँदों से स्नान करने से हम तथा जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक के वासी अपने को पवित्र मान रहे हैं।।46।।

श्री हरि का पराक्रम अपार है। उनके कर्म परिमित होना जो समझते हैं वह बुद्धिहीन हैं उनको नरक ही फल है। हे श्री हरि! आप की बन्धक शक्ति से हम बुद्धिहीन होकर तत्वज्ञान रहित हो गए हैं। आप हमें ज्ञान देकर सुखमय वैकुण्ठ लोक प्रदान करें।।47।।

मैत्रेय जी बोले कि इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी देवता श्री हरि की स्तुति किये। जगत की रक्षा करने वाले श्री हरि प्रलयोदक के ऊपर पृथिवी को स्थापित किये।।48।।

सब ओर से भक्त श्री हरि को घेरे हुए थे। उनकी रक्षा करना ही श्री हरि का कार्य है। बिना किसी श्रम के रसातल से लायी हुई भूमि को जल पर रखकर श्री वराह भगवान अन्तर्ध्यान हो गए।।49।।

श्री हरि भक्तों को संसार दुःख से दूर रखना चाहते हैं। उनका सामर्थ्य श्लाघनीय है। उनकी यह कथा मोक्ष को देने वाली है और श्रवण करने वालों की इच्छाओं को पूर्ण करने वाली है। श्री हरि के सर्वोत्तमत्व को कोई हानि न आए वैसी इस कथा को भक्ति से जो सुनाता अथवा सुनता है वह जनन-मरण से छुटकारा पाता है। श्री हरि शीघ्र ही प्रसन्न होकर उनके मन में प्रकाशमान होते हैं।।50।।

श्री हरि के प्रसन्न होने पर कुछ भी दुर्लभ नहीं है। स्वर्गादि फल अनित्य होने से उनसे कोई प्रयोजन नहीं है। श्री हरि भक्तों के हृदय गुहा में पुरुष नाम से विम्बरूप से रहते हैं। सर्वोत्तम भक्ति से, उनकी सेवा करने वाले भक्तो से प्रसन्न होकर उनसे साधन कराकर स्वयं (प्रयत्न के बिना) शाश्वत अपने लोक को प्रदान करते हैं।।51।।

भूतकाल के, वर्तमान काल के और भविष्यकाल की कथाओं में श्री हरि का कथामृत सारभूत है। संसार के दुःख को दूर करके मोक्ष को देने वाले हैं। ऐसी कथा को भक्ति से श्रवण करके तृप्त होने वाला मनुष्य पुरुषार्थसार मोक्षादि फल के लिए सारभूत को जानने वाला है। वह इस कथा श्रवण में विरक्त नहीं होता है। यदि विरक्त हो तो पशु ही है और कोई अन्य नहीं है।।52।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः।।

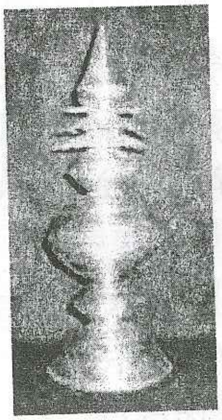

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

रुद्रादि देवता श्री हरि के आज्ञानुसार ही कार्य करते हैं इसलिए वे उनके अधीन हैं। श्री हरि के चरित्र के समान अन्य कुछ भी नहीं है। वह ही स्वातंत्र्य इत्यादि गुणों के लिए मुख्य आश्रय हैं। मुमुक्षु को चाहिए कि अपने मन को श्री हरि में ही आसक्त करें। इस अध्याय में इसी विषय को बताते हैं। मैत्रेय जी से वराहरूपी श्री हरि की कथा को श्रवण करने पर भी श्री हरि की कथा में अलं बुद्धि न होकर विदुर रूप से श्री हरि के चरित्र को श्रवण करने के लिए प्रश्न किया। इस प्रकार शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहाः-

शुकदेव जी कहते हैं- हे राजन्! मैत्रेय जी के मुख से वराहरूपी श्री हरि की कथा को सुनकर भी विदुर जी को पूर्ण तृप्ति नहीं हुई। अतः उन्होंने श्री हरि को हाथ जोड़कर फिर मैत्रेय जी से पूछा।।1।।

विदुर जी ने कहा-हे मुनिवर! आप जैसे बतलाए कि श्री हरि भूमि को ऊपर लाए वही श्री हरि ने दूसरे रूप से दितिदेवी के पुत्र हिरण्याक्ष का संहार करना सुने हैं। इस रूप में भी श्री हरि ने भूमि को अनायास अपने दाँतों से ऊपर लाते समय हिरण्याक्ष के साथ युद्ध करना सुना है। उसने क्या अपराध किया था कि श्री हरि ने उसके साथ युद्ध किया।।2,3।।

मैत्रेय जी ने कहा-हे विदुर! तुम्हारा प्रश्न बड़ा ही सुन्दर है क्योंकि तुम श्री हरि के चरित्र को सुनकर आनन्दित होते हो। श्री हरि की कथा संसारी जीवों के मृत्यु को दूर करने वाली है। यह सज्जनों के लिए सम्मत है।।4।।

क्योंकि राजा उत्तान पाद के पुत्र ध्रुव ने बाल्यकाल में ही नारद मुनि के मुख से सुनी हुई भगवद्कथा के प्रताप से मृत्यु के माथे पर पैर रखकर ध्रुव लोक को प्राप्त कर लिया था।।5।।

ऐसे श्री हरि की कथा के विषय में तुमने प्रश्न किया है, बहुत सन्तोष है। इस विषय में पूर्व के एक इतिहास को सुनाता हूँ। देवताओं द्वारा ब्रह्माजी से प्रश्न करने पर उन्होंने जो बताया था उस कथा को मैं तुम्हें सुनाता हूँ।।6।।

हे विदुर! एक दिन सन्ध्या काल में दक्ष की पुत्री दिति देवी को सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा हुई। मन्मथ से पीड़ित होकर वह अपने पति कश्यप के पास आई।।7।।

उस समय वह यजुर्वेदमंत्रों के द्वारा अग्नि में होम करके सूर्य अस्त होते समय वही अग्नि के पास ध्यानासक्त होकर बैठे थे।।8।।

दिति देवी ने कहा-'हे ब्रह्मज्ञानी पति देव! धनुष धारण किये हुये मन्मथ से असमर्थ हूँ मुझे पीड़ित कर रहा है, हाथी कदली के वृक्ष को जैसे हिला देता है वैसे ही मेरी स्थिति हो गई है।।9।।

अतएव अपनी पुत्रवती सौतों की सुख समृद्धि को देखकर मन ही मन जलती हुई मुझ नारी पर आप कृपा

करें आपका कल्याण हो।।10।।

पति के द्वारा सन्तान प्राप्त किए हुए स्त्रियों का यश सर्वत्र फैलता है। आपके जैसे गुणवान् पुत्र उत्पन्न होने पर और क्या चाहिए।।11।।

पहले हमारे पिता ने हम सबको बुलाकर हमसे पूछा था कि आपको कौन सा वर चाहिए। हम सबने आपकी ही इच्छा किया था।।12।।

हमारे पिता को दौहित्र को देखने की अधिक अभिलाषा है। हमारी तेरह वहनों की आपसे शादी हुई है।।13।।

आप सुन्दर और मंगलमय हैं। इसलिए मेरी इच्छा को पूर्ण कीजिए। आप जैसे महात्माओं की शरण में आने पर मेरी इच्छा कैसे व्यर्थ हो सकती है।।14।।

मैत्रेय जी कहते हैं-हे विदुर! श्री हरि की इच्छा को जानकर आनन्दित होने वाले कश्यप ने दीन बनकर आई हुई दिति को कामातुर जानकर शान्त्वना देते हुए कहा।।15।।

हे भीरू! सन्तान न होने से तुम घबड़ाओ नहीं। तुम्हें जो प्रिय है उसके करने को मैं तैयार हूँ। पत्नी से ही पति को धर्म, अर्थ और काम सिद्ध होते हैं। तब कौन ऐसा पति है जो पत्नी की इच्छा को पूरा न करता हो।।16।।

गृहस्थ पुरुष गुणवती पत्नी की ही सहायता से ब्रह्मचर्य आदि आश्रमियों को अन्नादि से सहायता देकर इस दुःखपूर्ण संसार सागर से पार उतर जाते हैं। जैसे लोग नौकादि साधनों द्वारा समुद्र को पार कर जाते हैं।।17।।

मुमुक्षु पुरुष अपनी पत्नी को अर्धांगिनी मानते हैं और उसी पर गृहस्थी का सारा कार्य सौंपकर निश्चित होकर अपने साधन में आसक्त हो जाते हैं।।18।।

अन्य आश्रमी लोग इन्द्रिय रूपी शत्रुओं को जीतने में समर्थ नहीं होते, किन्तु गृहस्थाश्रमी अपनी गृहणी के सहारे उन इन्द्रियों को इस तरह परास्त कर देता हैं जैसे किले का अधिपति राजा शत्रुओं को मार भगाता है।।19।।

हे गृहेश्वरी! आपके गुणों से मोहित हम आपका अनुकरण नहीं कर सकते हैं। चाहे जीवन भर उद्योग क्यों न करते रहें। मैं ही नहीं गुणवान् भी अपनी पत्नी का अनुकरण नहीं कर सकते हैं।।20।।

इस पर भी मैं सन्तान की इच्छा को पूर्ण कर देता हूँ परन्तु यह समय उपयुक्त नहीं है। इस समय ऐसा करने से सज्जीव हमारी निन्दा करेंगे। इस वास्ते तुम क्षणभर ठहर जाओ।।21।।

यह सन्ध्या काल महाघोर समय है। जहाँ कहीं भी देखो भयंकर भूत दिखाई पड़ते हैं।।22।।

यह काल रुद्रदेवता के परिवार के भूतगणों के संचार का समय है। इस समय में रुद्रदेवता भूतगणों के साथ नन्दी पर बैठ कर संचार करते रहते हैं।।23।।

उनकी जटाःश्मशान से उड़ी धूल से सनी रहती है। उनकी देह में भस्म रमी रहती है। उनका शरीर चाँदी के जैसा शुक्लवर्ण का है। वे तुम्हारे देवर है। (सती देवी का पति)। वे अपने तीनों नेत्रों से हम सब को देख रहे हैं।।24।।

इस प्रकार वह पिशाच के जैसा संचार करते हुए इस काल में गर्भ धारण करने वालों के गर्भ को नष्ट करने को सिद्ध हैं। यह तो श्री हरि की आज्ञा है। श्री हरि के लिए कोई अपना अथवा पराया नहीं है। न वे किसी से विशेष

प्रेम करते हैं न किसी से द्वेष भगवान की इच्छा से हम लोग अनेकानेक व्रतों के द्वारा उनकी आराधना करके उस सम्पत्ति को प्राप्त करना चाहते हैं कि जिसे उन्होंने निर्माल्य समझकर दूर फेंक दिया है अर्थात् तिरस्कार कर दिया है।।25।।

अज्ञानरूप दोष से हम उनको नहीं देख सकते हैं। इस दोष को दूर करने के लिए ज्ञानी जन श्री हरि के निर्दृष्ट चरित्र का श्रवण मननादि करते हैं। श्री हरि के समान अथवा उनसे अधिक कोई नहीं है। इन्द्रादि देवताओं के लिए जो आश्रय हैं वह रुद्र देवता भी श्री हरि के अधीन हैं। उनकी आज्ञानुसार ही पिशाचों जैसे आचरण करते हैं।।26।।

असुर जन कुत्ते के भोजन रूप अपने देह को ही आत्मा (जीवात्मा) जानकर उसका स्रक् चंदनादि से अलंकार करके आनन्दित होते हैं।।27।।

उन लोगों को श्री हरि की विडंबना का ज्ञान नहीं होता है। वे उनकी निन्दा करते हैं। उनमें दोष को देखने वाले अन्धस्तमस को जाते हैं। ब्रह्मादि देवता उस श्री हरि की आज्ञा से उन्हीं के बनाए हुए धर्म के नियमों का पालन करते आते हैं। इस प्रपंच के लिए वही स्वतंत्र निमित्त कारण हैं। उनको कर्म का फल नहीं है। वह तो लौकिक जनों के जैसा आचरण करके दिखाते हैं ।।28।।

ऐसा कश्यप ने कहा-पति के ऐसा कहने पर भी दिति का काम कम नहीं हुआ। काम से पीड़ित वह स्त्री लज्जा को त्याग कर कश्यप के उत्तरीय वस्त्र को पकड़ कर खींची।।29।।

इस निषिद्ध कार्य में पत्नी के दुराग्रह को देखकर यह सब श्री हरि की इच्छा है कहकर अदृष्ट नियामक श्री हरि को नमस्कार करके दिति के साथ एकान्त में रमण किया।।30।।

तत्पश्चात् शुद्ध होकर आचमन किया, मौन से प्राणायाम पूर्वक गायत्री प्रतिपाद्य श्री हरि का जप किया।।31।।

दिति भी इस पाप कर्म से लज्जित हुई। वह महर्षि कश्यप के पास गई और मुख नीचा करके कहने लगी।।32।।

हे ब्रह्मज्ञानी! मैं आपके वचन का पालन न करते हुए, भूतपति रुद्र देवता के साथ अपराध किया है। आप मुझ पर अनुग्रह करें कि वह मेरे गर्भ का नाश न करें।।33।।

रुद्र देवता तो अपराधों को दूर करने वाले हैं। इन्द्रादि देवताओं से श्रेष्ठ हैं। सबका संहार करने वाले हैं। भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं। श्री हरि के गुणों का मनन करते हुए भगवद् भक्तों को क्षमा करने वाले हैं। कोप से भगवद् द्वेषिया को दण्ड देने वाले हैं। जिनमें गुण है उन पर अनुग्रह करते हैं जिनमें दोष है उनका निग्रह करते हैं। उन जीवों के योग्यतानुसार ही फल देने वाले हैं। सदा श्री हरि के नाम स्मरण से ही सन्तुष्ट रहते हैं। मैं उनको नमस्कार करती हूँ ।।34।

हमारी बहिन सती के पति और महान् दयालु श्री शिवजी मेरे पर प्रसन्न हों स्त्रियों पर तो निर्दयी किरात् भी दया करते हैं तब भला वे क्यों न दया करेंगे। वे भय रहित हैं। मेरे इस भय को दूर करके मुझ पर अनुग्रह करें ऐसी

प्रार्थना की।।35।।

मैत्रेय जी कहते हैं-संध्या कर्म से निवृत्त होकर कश्यप ने दिति की ओर देखा भय से वह काँप रही थी।।36।।

संसार की स्त्रियों के जैसे वह भी अपने गर्भ की रक्षा के लिए प्रार्थना कर रही थी। इस पर कश्यप ने कहा- 'हे अमंगलमयी! गर्भधारण के समय एक तो तुम्हारा मन अपवित्र था, दूसरे वह संध्या का समय था फिर मेरी आज्ञा का तुमने उल्लंघन किया और रुद्र आदि देवताओं का अपमान किया है। इसलिए ओ अभागिन्! तेरे जो दो पुत्र होने वाले हैं, वे दोनों ही बड़े अधम होंगे। वे अपनी दुष्टता से तीनों लोकों और लोक पालकों को बार-बार पीड़ा देंगे।।37,38।

वे निरपराध और दीन हीन प्राणियों को और उसमें भी स्त्रियों को निग्रह करेंगे। तथा महात्माओं को क्षुब्ध करेंगे। उस समय सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले श्री हरि उन पर कुपित होंगे, अवतार लेकर उन दोनों को इस तरह मार डालेंगे जैसे इन्द्र वज्र द्वारा पर्वतों को छिन्न-भिन्न कर देते हैं।।39,40।।

भयभीत दिति ने कहा-हे पति देव! यदि सुदर्शनधारी साक्षात् श्री हरि के हाथों उनका वध हो तो ठीक है। किन्तु किसी क्रुद्ध ब्राह्मण के शाप से उनकी मृत्यु न हो।।41।।

क्योंकि ब्राह्मण के शाप से मरे हुए प्राणी पर नरकवासी जीव भी दया नहीं करते। वह जिस किसी योनि में भी जाते हैं ब्रह्मशाप उसके साथ लगा रहता है।।42।।

कश्यप जी ने कहा-हे दिति! तुम अपने किए हुए दुष्टकर्म का पश्चात्ताप कर रही हो। तुम अपने दोष को जान गई हो। श्री हरि में तुम्हारी श्रद्धा है। रुद्र में और मुझमें भी आदर है। इसलिए तुम्हारे एक पुत्र के चार पुत्रों में से एक ऐसा होगा जिसका सत्पुरुष भी मान करेंगे, जिसके पवित्र यश को भक्तजन भगवान के गुणों के साथ गायेंगे। पुत्र से पिता को सद्गति होना कहा गया है। (यहाँ पर दिए हुए कारणों से हिरण्यकशिपु में रहने वाले भक्त जय को सद्गति हुई परन्तु दैत्य को नहीं) केवल पुत्र से ही सद्गति नहीं होती है, वह पुत्र भगवद्भक्तों से द्वेषरहित तथा भागवत गुणों से युक्त होना चाहिए इसी को बतलाने के लिए प्रहलाद के गुणों को बतलाया गया है। श्री हरि से संहार होने पर योग्यजीव को सद्गति होती है। इसके लिए प्रमाण-

विष्णु हस्तवधाल्लोको भक्तस्यान्यस्य न कवचित्।

तथाप्यसुरमोहाय न विविक्तं क्वचित्क्व चित्। स्कान्दे।।43,44।।

तुम्हारा पुत्र बनकर जन्म लेने वाला सज्जीव दुष्टजीव के सहवास से दुष्ट होने पर भी स्वरूप से योग्य (सज्जीव) जीव होगा। तुम्हारे उस पौत्र के प्रभाव से तुम्हारा पुत्र सद्गति को प्राप्त होगा। यहाँ पर सुवर्ण का दृष्टान्त देने से हिरण्यकशिपु में एक सद्गति के योग्य भगवद्भक्ति से युक्त चेतन का होना और दूसरा दुर्गति के योग्य भगवान में द्वेष करने वाला चेतन का होना बतलाया गया है। पुत्र योग्य चेतन के लिए ही सद्गति का कारण होता है दुष्ट के लिए नहीं। इसके विरुद्ध जो कुछ कहा गया है वह दुष्ट जीवों के मोहनार्थ जानना चाहिए। पुत्रों से योग्य

के लिए ही सद्गति होती है अयोग्य के लिए नहीं। इसके लिए प्रमाण-

स्वतः सद्गति योग्यस्य पुत्रादिर्हेतुता भवेत्।
योग्यताऽनादिभक्तिः स्यात् अयोग्यस्य कुतो गतिः। ब्रह्मतर्के।।45।।

अयोग्य जीव अन्धस्तमस को प्राप्त होगा। तुम्हारा पौत्र भगवद्भक्तों में वैर अथवा द्वेषरहित होगा। सज्जन उसी के जैसे भागवत धर्मों का आचरण करने की इच्छा करेंगे। वह तुम्हारा पौत्र श्री हरि को सर्वोत्तम जानकर उपासना करके उनके अनुग्रह का पात्र होगा। श्री हरि के प्रसन्न होने पर समस्त जगत प्रसन्न होगा, वह समस्त जगत में व्याप्त हैं, उनका ज्ञान सदा एक प्रकार रहता है।।46।।

तुम्हारा पौत्र, असाधारण भगवद्भक्त, प्रभावशाली, श्री हरि के सर्वोत्तमत्व को दृढ़रूप से जानने वाला, भगवद्भक्तों में पूज्य होगा। दिन प्रतिदिन भक्ति बढ़ती जायेगी। भक्ति के साथ हृदय में श्री हरि का ही ध्यान करते हुए श्री हरि से भिन्न इस जगत को अनित्य और असार समझकर त्याग देगा।।47।।

वह वैराग्य से विषयों में अनासक्त होगा वह शक्तिवान और गुणों को भंडार होगा। सज्जनों को सुखी देखकर प्रसन्न और दुःखी देखर दुःखित होगा। संसार में उसका कोई शत्रु न रहेगा। वह सज्जीवों के दुःख को ऐसे हरण करेगा जैसे ग्रीष्म ऋतु की गर्मी को चन्द्रमा हर लेता है।।48।।

हे दिति! वह तुम्हारा पौत्र श्री हरि का साक्षात् दर्शन करेगा। श्री हरि सब रूपों में दोष रहित हैं। सुन्दर हैं, उनका देह आभूषणों को भी अलंकृत करने वाला है। लक्ष्मी भी उनके सौन्दर्य से मोहित हुई हैं। ऐसे श्री हरि को साक्षात् दर्शन करने वाला आपका पौत्र धन्य है। ऐसे शुभवचन कहे।।49।।

मैत्रेय जी कहते हैं- हे विदुर! अपने पति के मुख से पुत्रों का भगवान के हाथों मरण (उनमें रहने वाले योग्य जीव को सद्गति) तथा पौत्र के भगवद्भक्त होने की बात सुनकर दिति बहुत प्रसन्न हुई।।50।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे दिति कश्यप संवादे पञ्चदशोऽध्यायः।।

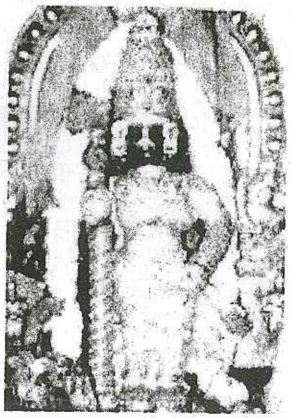

अथ षोडशोऽध्यायः

मैत्रेय जी ने कहा-हे विदुर! दिति को श्री हरि के द्वारा अपने पुत्रों का संहार होने की शंका प्रबल होती गई। उसने दूसरों के तेज का नाश करने वाले कश्यप जी के तेज (वीर्य) को सौ वर्षों तक अपने उदर में ही रखा।।1।।

लोकों में अन्धकार छा गया। इन्द्रादि लोकपालक इसको दूर करने में असमर्थ रहे। तब वे ब्रह्मा जी के पास जाकर सब ओर व्याप्त हुए अन्धकार का निवेदन किये।।2।।

देवताओं ने कहा-हे भगवन्! इस अन्धकार का कारण आप ही समझ सकते हैं। हम लोग तो इससे बड़े ही भयभीत हो रहे हैं। आप इस का रहस्य जानते ही हैं।।3।।

आप ही जगत की रक्षा करने वाले हैं। लोक पालकों में आप श्रेष्ठ हैं। आप भूतकाल में और भविष्यत्‌काल में रहने वाले सब प्राणियों के मन में रहने वाले भाव को समझते हैं। आप सभी उत्तम और अधम प्राणियों के मनोगत भावों को भली भाँति जानते हैं। आपका यह विशिष्ट ज्ञान कभी नाश नहीं होता है।।4।।

श्री हरि के अनुग्रह से आप इस समस्त जगत को जानते हैं। श्री हरि की आज्ञा से रजस आदि गुणों का संबंध होने पर भी आपके ज्ञान में यह प्रतिबन्धक नहीं है।।5।।

इस विचित्र ब्रह्माण्ड की सृष्टि किए हैं। आपका ज्ञान अगाध है। आप अव्यक्त श्री हरि के पुत्र हैं इस बारे में आप पर श्री हरि का अतिशय अनुग्रह है। आप समस्त जीवों को देह देकर सृष्टि करने वाले हैं। श्री हरि का ही निरन्तर ध्यान करने वाले हैं। आप समस्त जगत को धारण किए हैं। समस्त जीवों से आप उत्तम हैं (आप जीवोत्तम हैं)। महत्वादि कार्यकारण इस प्रपंच में सर्वत्र व्याप्त हैं। मुक्त और अमुक्त जीवों को आपही सुख प्रदान करने वाले हैं। अष्टांग सिद्धि को प्राप्त करके श्वास, इन्द्रिय और मन पर विजय प्राप्त करके श्री हरि को ही सर्वोत्तम जानकर उपासना करने वाले भगवद्‌भक्तों पर आप प्रसन्न होते हैं। जिन पर आप प्रसन्न होते हैं ऐसे भक्तों को पराभव कहाँ है? वेद वाक्यों के अनुसार आचरण करने वालों को आपही श्री हरि की इच्छानुसार योग्य फल देते हैं।।6,7।।

विधि - निषेध रूप वेद वाक्यों से कर्म करने वाले जीव अपने-अपने कर्म के अनुसार सुख दुःख का अनुभव करते हैं। तब ब्रह्मा से प्रजाओं को क्या प्रयोजन है। इसके उत्तर में इस श्लोक से स्पष्ट करते हैं कि वे सब ब्रह्मा के अधीन हैं। उसके अनुसार आराधना करने वालों को योग्य फल को श्री हरि के अनुग्रह से ही ब्रह्मा जी देते हैं इसलिए उनको जीवोत्तम कहते हैं। रस्सी से बँधे हुए बैलों की भाँति आपकी वेद वाणी से जकड़ी हुई सारी प्रजा आपकी अधीनता में नियमपूर्वक कर्मानुष्ठान करके पूजा रूप में समर्पण करते हैं। समस्त जीवों में आप जीवोत्तम हैं। आप को नमस्कार है।।8।।

दिति देवी के गर्भ से उत्पन्न हुए अन्धकार से हमें अपना कर्म करना साध्य नहीं है। आपही हमारा कल्याण कीजिए। हम शरणागतों की ओर अपनी अपार दया दृष्टि से निहारिए।।9।।

कश्यप ने अपने तेज को दिति देवी में रखा है। आग जिस प्रकार ईंधन में पड़कर बढ़ती रहती है उसी प्रकार कश्यप जी के वीर्य से स्थापित हुए यह दिति का गर्भ समस्त दिशाओं को अन्धकारमय करता हुआ क्रमशः बढ़ रहा है। कृपया आप इसको दूर कीजिए।।10।।

मैत्रेय जी ने कहा-हे विदुर! देवताओं की प्रार्थना सुनकर वेदों से प्रतिपाद्य ब्रह्माजी मुस्कराए और उन्हें अपनी मधुर वाणी से आनन्दित करते हुए कहने लगे।।11।।

हे देवताओं! आपसे पूर्व मैने अपने मन से सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सन्तसुजात ऐसे चार कुमारों की सृष्टि किया है। वे लोकों की आसक्ति त्याग कर (लौकिक विषयों में आसक्ति त्यागकर) समस्त लोकों में आकाश मार्ग से विचरण करने लगे।।12।।

एक दिन वे निर्दृष्ट श्री हरि के वैकुण्ठ लोक को गए।।13।।

इस लोक को नमस्कार न करने वाला कोई नहीं है। प्रतिनित्य भगवान को सन्तुष्ट करने के लिए भगवद् अर्पण बुद्धि से धर्म कार्य को करके श्री हरि की आराधना करने वाले इस लोक को प्राप्त होते हैं।।14।।

वहाँ रहने वाले श्री हरि के रूप के सदृश्य रूप से रहते हैं। सर्वोत्तम श्री हरि सबका आश्रय हैं। अनन्तानन्त रूप वाले हैं। समस्त वेद उनके अनन्त गुणों का गान करते हैं। ऐसे श्री हरि रजस्तमो गुण को त्याग कर शुद्ध सत्व गुण को स्वीकार करके अपने भक्तों की रक्षा करते हुए वहाँ व्यक्त होकर रहते हैं।।15।।

बैकुण्ठ धाम में नैःश्रेयस नामक एक अत्यन्त मनोहर वन है जिसमें सबकी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले वृक्ष लगे हुए हैं। जो स्वयं हर समय छहों ऋतुओं की शोभा से सम्पन्न रहते हैं।।16।।

बैकुण्ठ में मुक्त स्थान, अमुक्त स्थान ऐसे दो भाग हैं। अमुक्त, मुक्त स्थान में जा नहीं सकते हैं। वे अपने साधन को पूरा करके कर्मक्षय के लिए वहाँ प्रतीक्षा करते रहते हैं।।17।।

वे उस वन में जल के किनारे उगे हुए वासन्ती लता के पुष्पों की सुगन्धि को लाने वाली हवा से मुग्ध रहते हैं। कभी-कभी अपनी स्त्रियों के साथ विमान में बैठकर श्री हरि के चरित्र का गान करते रहते हैं। परमात्मा का चरित्र तो संसारी जीवों के पापों को नाश करने वाला है। वहाँ रहने वाले तिर्यग जन्तु, स्थावर भी ज्ञान द्वारा श्री हरि को प्रसन्न करके उसके फल रूप बैकुण्ठ को प्राप्त हुए रहते हैं। इसलिए वहाँ पर रहने वाले भौरे भी श्री हरि के पूजा काल को जानकर उनके चरित्र को सप्तस्वर से गान करते हैं। तब वहाँ के कबूतर, कोयल, सारस, चकवा, पपीहा, आदि पक्षी भी उच्च स्वर से श्री हरि के गुणों का गान करते हैं। तब मुक्त हुए भक्त विविध प्रकार के पुष्पों और तुलसी दल से श्री हरि की पूजा करते हैं। श्री हरि उन सबमें से विशेष रूप से तुलसी दल को हाथ में लेकर आघ्राण करते हुए अनुग्रह करके आभरण रूप से धारण करते हैं। तब अन्य पुष्पाभिमानी जीव (देवता) असूया न करते हुए तुलसी तो अधिक तपस्या करके श्री हरि को प्रसन्न कर ली है। इस प्रकार उनकी तपस्या की प्रसंशा करते हैं।।18,19।।

बैकुण्ठ लोक में जहाँ कहीं देखते हैं वहाँ आकाश में पद्मराग, इन्द्रनील आदिरत्नों से अलंकृत स्वर्ण विमान भरे रहते हैं, उनमें संचार करने वाले मुक्त जीव श्री हरि के चरण वन्दना से ही तृप्त हैं। उनके साथ मन्दहास करने

वाली सुन्दर स्त्रियों के हाव भाव और विलास से इन पुरुषों का मन कलुषित नहीं होता है।।20।

यह श्री हरि का ही स्मरण करते रहते हैं। अधिक क्या कहना है। सारे संसार में अत्यन्त सुन्दरी लक्ष्मी देवी हैं उनको जनन मरण दोष नहीं है। उनके अनुग्रह को प्राप्त करने के लिए हम ब्रह्मादि देवता उनकी उपासना करते हैं। ऐसी लक्ष्मी देवी नारायण के उस भव्य भवन में अपने पाँवों के नुपुर को झनकाती और हाथ के लीला कमल को डोलाती फिरती हैं। उस समय दीवालों में लगी स्फटिक पर उनकी परछायी पड़ने से ऐसा ज्ञात होता है कि मानो लक्ष्मी जी धूल उड़ा रही हैं।।21।।

यह लक्ष्मी देवी अपने करोड़ों दासियों के साथ अपने कमल के वन में जाकर वहाँ तुलसी दलों से श्री हरि की पूजा करती हैं। तब वहाँ के निर्मल जल से भरे हुए सरोवरों में जिनमें मूँगे के घाट बने हुए हैं अपना सुन्दर और उन्नत नासिका से सुभोभित मुखारविन्द देखकर **''यह भगवान का चुम्बन किया हुआ है''** यूँ जानकर उसे बड़ा सौभाग्यशाली समझती हैं। (श्री हरि की ये क्रीडाएँ लक्ष्मी जी के सन्तोष के लिए ही हैं।)।।22।।

स्वर्ग इत्यादि लोकों को असुर भी प्राप्त हो सकते हैं परन्तु बैकुण्ठ को नहीं जा सकते हैं। इसलिए समस्त लोकों से अधिक महिमा वाला बैकुण्ठ लोक है। श्री हरि सबके पापों को दूर करने वाले हैं। इस पर भी असुर स्वभाव वाले जीव उनके चरित्र का गान न करते हुए यथार्थ ज्ञान को नाश करने वाले लौकिक दुष्ट रति वर्णन सुनते और मनन करते रहते हैं। ऐसे अभागे लोग बैकुण्ठ को प्राप्त नहीं होते हैं। वे दुष्ट कथाओं का श्रवण और मनन करने से अंधन्तमस को जाते हैं। इससे वह छुटकारा नहीं पा सकते हैं। उस अन्धन्तमस में उनको आश्रय देने वाला कोई नहीं है।।23।।

जो लोग उस मानव योनि को जिसे देवता भी चाहते हैं जिसमें तत्वज्ञान, सदाचार आदि प्राप्त करने की सुविधा रहती है। उस मनुष्य योनि को पाकर भी धर्माचरण करके तत्वज्ञान को प्राप्त करना था परन्तु श्री हरि की आराधना नहीं करते हैं। उनके ज्ञान का उपदेश भी नहीं करते हैं। इन अयोग्य जीवों को श्री हरि की बन्धक शक्ति ही मोहित करती है।।24।।

बैकुण्ठ में आने वाले जीवों की साधना ही और है। वे देवदेवोत्तम (सर्वोत्तम) श्री हरि का जन्म जन्मों में निरन्तर सेवा करते हैं। वे यमलोक नहीं जायेंगे। उनके आचार-विचार को सीखने के लिए सभी इच्छा करते हैं। वे सर्वस्वामी श्री हरि के पवित्र चरित्र को परस्पर कहने सुनने में आसक्त रहते हैं तथा नेत्रों से अश्रुधाराएँ प्रवाहित होने लगती हैं और सारा शरीर पुलकायमान होकर उसी में आनन्द का अनुभव करते हैं। यही लोग समस्त लोकों से उत्तम बैकुण्ठ लोक को प्राप्त होते हैं।।25।।

यह बैकुण्ठ लोक समस्त जीवों से वंदनीय है। वहाँ पर श्रेष्ठ देवताओं के निवास स्थान के विमान अनेक रंगों से प्रकाशमान हैं। वहाँ पर ही मुक्तामुक्त नियामक श्री हरि व्यक्त होकर रहते हैं। इससे पूर्व में न देखे हुए बैकुण्ठ लोक सनकादि ऋषियों ने श्री हरि के उपासना बल से प्राप्त होने से आनन्दित हुए।।26।।

यह चारों कुमार समानवयस्क के थे। वे बैकुण्ठ लोक के छः ड्योढ़ी के महाद्वार को पार करके चले गए।

वहाँ उनको कोई नहीं रोका। सातवीं ड्योढ़ी के महाद्वार पर द्वारपालक जय - विजय ने उन्हें देखा।।27।।

वे द्वारपालक हाथ में गदा धारण किए हुए थे। अमूल्य आभरण और किरीट से अलंकृत थे। वे श्यामवर्ण वाले चतुर्भुज और वनमाला धारण किए थे। अन्दर जाने वाले और अन्दर से बाहर आने वालों के विषय में पूछ-ताछ करने वाले जैसे दिखाई पड़ते थे।।28।।

सनकादि ऋषियों ने उनके देखते-देखते उनसे पूछे बिना ही सातवें महाद्वार में प्रवेश किया।।29।।

वे छः महाद्वारों को पार करके आए हुए थे। वे सर्वत्र अन्तर्यामी श्री हरि को ही देखने वाले थे। इसलिए उनको अन्य किसी की इच्छा नहीं थी। कहीं भी उनको कोई नहीं रोकते थे। उनको किसी का भय नहीं था। वे वृद्ध होने पर भी पाँच वर्ष के जैसे दिखाई पड़ते थे। दिगम्बर थे। वे श्री हरि के स्वरूप को भलीभाँति जानते थे। वे किसी रोक-टोक के योग्य न होने पर भी जय - विजय ने इनको अपने हाथ के दण्ड से रोका।।30।।

उनके प्रभाव की ओर द्वारपालक ने ध्यान नहीं दिया। जय - विजय को श्री हरि के विरुद्ध आचरण वाले होने के लिए ब्रह्माजी का सर्वाधिक शाप था। वह कृष्णावतार तक था। इसलिए द्वारपालकों ने सनकादिक को रोका था। सनकादि पूज्यतम हैं अन्य देवताओं के समक्ष श्री हरि के द्वारपालकों ने उन्हें रोका वह तो अतिशय प्रियश्री हरि के दर्शन के लिए आए थे। उनकी इस इच्छा में विघ्नडालने से उनको क्रोध आया। आँखे लाल हो गईं।।31।।

तब सनकादि ऋषियों ने कहा-इस बैकुण्ठ में आने के लिए श्री हरि की अतिशय सेवा किए रहना चाहिए। श्री हरि के भक्तों को एक ही प्रकार से देखना चाहिए। परन्तु वैषम्य नहीं होना चाहिए। ऐसा करना तामस बुद्धि है। उसके लिए यहाँ अवकाश नहीं है। श्री हरि अत्यन्त शान्तिमूर्ति हैं। आनन्द पूर्ण और परिपूर्ण हैं। उन्हें किसी से भी द्वेष नहीं है। वह अन्तर्यामी हैं। उनका कोई भी प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। वह अप्राकृत रूपी हैं। उनको कोई पीड़ा नहीं दे सकते हैं। इसलिएं किसी के विषय में संशय करने के लिए अवकाश नहीं है।।32।।

मुक्त और अमुक्तों में श्री हरि अन्तर्यामी हैं और अन्तर्यामी रूपों में कोई भेद नहीं है। महाकाश, घटाकाश की भाँति अन्तर्यामी भगवद् रूप और व्याप्त बाह्य रूप एक ही हैं। यह ज्ञानियों का मत है। आप देवताओं के जैसे दिखाई देने पर भी क्या आप इन भगवद् रूपों में भेद समझते हैं? श्री हरि को अन्य से भय है ऐसे आपके ज्ञान को हम क्या कहें।।33।।

भगवद्रूपों में भेद का चिन्तन करने वाला अंधंतमस के योग्य है। आप कपट बुद्धि वाले हैं। आप जो इस प्रकार जानते हैं वह हमें युक्त सा दिखाई नहीं पड़ता है। इस अपराध के लिए आप श्री हरि से द्वेष करने वाले तीन देह को प्राप्त हो। अर्थात् तीन बार असुर देहों में जन्म लेने का शाप दिया।।34।।

ब्रह्म शाप किन्ही अस्त्रों के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है। जय - विजय जो सज्जीव थे वे इस भयंकर शाप को सुनकर भयभीत हुए। वे दोनों अधिकार भाव से उन कुमारों के चरणों पर पड़कर कहने लगे।।35।।

हे तपस्वियों! हमारे अपराध से भी अधिक दण्ड आप दिए हैं। यदि हम ब्रह्मादि देवताओं का तिरस्कार भी किए हों तो उसका भी दण्ड होवे वैसा है। आपके शाप के अनुसार हम अपने अंशों से असुर देह को प्राप्त होवें।

परन्तु बैकुण्ठ में रहने वाले हमारे अंश को भगवान के यथार्थ स्मरण को नष्ट करने वाला अज्ञान उत्पन्न न होवे ऐसा आप अनुग्रह कीजिए-ऐसी हमारी प्रार्थना है।।36।।

मननशील परम हंस मुनिजन श्री हरि के पाद कमल को ढूँढ़ते रहते हैं। उधर भक्तवत्सल भगवान को जैसे ही मालूम हुआ कि मेरे अनुचरों ने उन महापुरुषों का अपमान कर दिया है तो लक्ष्मी के साथ-साथ मुक्त स्थान से सप्तद्वार पर सनकादियों के पास (श्री चरणों से चलकर) आए।।37।।

श्री हरि ने कोई वाहन का उपयोग नहीं किया। भक्तजन एकाग्रचित्त से ध्यान करने वाले अपने सच्चिदानन्द के समक्ष प्रकट हुए। सनकादियों का क्रोध दूर हुआ। श्री हरि के वैभव का दर्शन करके वे परवश हो गए। उस समय प्रभु के दोनों ओर राजहंस के पंखों के समान दो श्वेत चंवर डुलाए जा रहे थे। उनकी शीतल वायु से उनके श्वेत छत्र में लगी हुई मोतियों की झालर हिलती हुई ऐसी शोभा दे रही थी मानों चन्द्रमा की किरणों से अमृत की बूँदे झर रही हैं।।38।।

प्रसन्न मुख, आकर्षणीय तेजः पुंज युक्त उनका देह था। वे अपनी स्नेहमयी चितवन से भक्तों के हृदय में स्पर्श सुख प्रदान कर रहे थे। विशाल उनके वक्षः स्थल में श्रीवत्स रूप में स्पर्श सुख प्रदान कर रहे थे। विशाल उनके वक्षः स्थल में श्रीवत्स रूप में लक्ष्मी देवी विराजमान थीं। ब्रह्मा जी उनके कण्ठ में कौस्तुभमणि रूप से सेवा कर रहे थे।।39।।

उनका विशाल नितम्ब प्रदेश पीताम्बर से सुशोभित था। पीताम्बर के ऊपर करधनी धारण किए थे। उनके गले में वैजयन्ती वनमाला पड़ी हुई थी, जिसकी सुगन्ध से मुग्ध होकर भौरे गुज्जार कर रहे थे। उनकी कलाई में सुन्दर कंगन पड़े थे। वे अपने बाएँ हाथ को गरुड़ के कन्धे पर रखे थे और दाएँ हाथ से नीलकलम लिए हुए हिला रहे थे।।40।।

अपनी चमक से उनके कपोल बिजली को भी तिरस्कृत करने वाले मकराकृत कुण्डलों की शोभा बढ़ा रहे थे। उन्नत नासिका, सुन्दर मुख, रत्नमय किरीट, दोनों भुजाओं के बीच कंधे पर बहुमूल्य हार और वक्ष स्थल में कौस्तुभ मणि अलग विराजमान थी।।41।।

यह रूप अनादि नित्य और अपरिमित है। भक्तजनों को अपने मन में अपरोक्ष से देखने वाला रूप यही है। अधिक क्या कहें यह अत्यन्त सुन्दर रूप है। ब्रह्मा रुद्रादि देवताओं को उनके भक्ति के फलस्वरूप में श्री हरि ने इस रूप को दिखाया था। श्री हरि के इस सच्चिदानन्द रूप को कितना देखने पर भी सनकादि को तृप्ति नहीं हुई। वे सन्तोष से श्री हरि को दण्डवत प्रमाण किये।।42।।

श्री हरि के इस रूप को वे सदा अपने हृदय में देखते थे। इस पर भी अब श्री हरि के चरणारविन्द मकरन्द से मिली हुई तुलसी मंजरी के गन्ध से सुवासित वायु ने नासिका रन्ध्र के द्वारा अन्दर प्रवेश करने पर वे अपने शरीर को संभाल न सके उनका मन विकसित हुआ।।43।।

सनकादि ऋषियों ने जिनका कद छोटा था वे श्री हरि के बड़े (ऊँचा) वाह्य रूप को अपने मुख को ऊपर

उठाकर श्री हरी के मन्द हास युक्त मुख को देखा। वे अपने को धन्य मानकर मुख नीचे करके रक्त मणि के सदृश देदीप्यमान उनके चरणों को देखे और अपने हृदयस्थ श्री हरि को वाह्य देखे हुए श्री हरि में अभेद ज्ञानकर श्रीहरि की उपासना किए।।44।।

सद्गति को प्राप्त करने वाले मुमुक्षु जन श्री हरि की उपासना ज्ञान और भक्ति से करते हैं। श्री हरि को परिपूर्ण जानते हैं। श्री हरि के गुण स्वरूपभूत हैं। ऐसे गुण अन्य किसी में दिखाई देना सम्भव नहीं है।।45।।

ऐसे सर्वोत्तम रूप को देखकर कुमारों ने कहा-हे अनन्त ! यद्यपि आप अन्तर्यामी रूप से दुष्ट चित्त पुरुषों के हृदय में भी स्थित रहते हैं तथापि उनकी दृष्टि से ओझल ही रहते हैं। किन्तु अनन्त महिमा वाले आप आज हमारे नेत्रों के सामने साक्षात् विराजमान् हैं। हमारे पिता ब्रह्मा जी ने आपके जिन लक्षणों का उपदेश किया था और जिस रूप से हमारे मन में व्यक्त होते रहे हैं उसी रूप से आज बाहर विराजमान हैं।।46।।

अब आप सत्व गुण से लोकों को आनन्दित कर रहे हैं। आपकी महिमा को जानने वाले वीतराग और ज्ञानी जन दृढ़भक्ति से उपासना करके आपको हृदय में देखते हैं।।47।।

हम समझते हैं कि वही परमात्मा आप हैं। मोक्ष की अपेक्षा करके मोक्ष में जो आनन्द का अनुभव करते हैं उस आनन्द को मुख्य न जानकर आपके एकान्त भक्त आपके चरणारविन्द की सेवा में ही आसक्त हैं। इनको मोक्ष में इस सेवा के फल में आनन्द अतिशय (पूर्ण) की प्राप्ति होती है। ऐसे एकान्त भक्तों को आपकी इच्छा से नष्ट होने वाले तथा भय से युक्त ब्रह्मादि पदों की आशा नहीं होती है ऐसा क्या कहना है।

भक्तों में एकान्त भक्त और मुमुक्षु दो प्रकार हैं। मुमुक्षु मोक्ष की इच्छा से भगवान की आराधना करते हैं। एकान्त भक्त तो श्री हरि के गुणों से मोहित होकर उन्हीं में आसक्त रहते हैं। उनको मोक्ष की भी इच्छा नहीं रहती है। ऐसे एकान्त भक्तों को अपरोक्ष ज्ञान के पश्चात् किए जाने वाले भगवद् उपासना से योग्यतानुसार अपरोक्ष प्राप्त करके उनको स्वरूपानन्द सम्पूर्ण अभिव्यक्त होता है। इसी को आनन्दोद्रेक कहते हैं। अन्य मुमुक्षुओं को भक्ति ज्ञान उतना परिपक्व न होने से भगवान का अपरोक्ष ज्ञान होते ही उसके (भक्ति ज्ञान के) अनुसार आनन्द अभिव्यक्त होता है। इसी को आत्यन्तिक प्रसाद कहते हैं। कर्म से प्राप्त होने वाला भगवद् प्रसाद अधम प्रसाद है। श्रवण, मनन से मध्यम प्रसाद, अपरोक्ष ज्ञान से प्राप्त होने वाला प्रसाद उत्तम प्रसाद है। इस पर भी एकान्त भक्त इसको विशिष्ट प्रसाद के रूप में नहीं मानते हैं। इस प्रकार मोक्ष में भी बहुप्रकार (तारतम्य) होने से उन जीवों में भी तारतम्य है। मोक्ष में भी भेद होने से वह भेद पारमार्थिक है। ऐसे मोक्ष को देने वाले श्री हरि एक ही हैं। उन श्री हरि में कोई भेद नहीं है। मोक्ष देने वाले अनेकों को स्वीकार करने पर परस्पर वैषम्य से नाश होना पड़ेगा और अनेक प्रमाणों से विरोध भी होगा।।48।।

वे तो आपके परिशुद्ध कीर्ति तथा कथामृत के आस्वादन को ही जानते हैं। वे अधिक प्रयोजन प्राप्त करने मे कुशल हैं। इसीलिए वे आपके चरणों का ही आश्रय किए हुए हैं। हे भगवन्! यदि हमारा चित्त भौरों की जैसे आपके चरण कमलों में ही रमण करता रहे। हमारी वाणी तुलसी के समान आपके चरणों में ही सुशोभित हो और हमारे

कान आपके सुयश सुधा से परिपूर्ण रहें तो हम पशु आदि नीच योनियों में दुःख से क्लेश पाने में पीछे नहीं हटेंगे। श्री हरि के परम भक्त कितने कितने कठिन दुःख का अनुभव करते हैं उतना ही मोक्ष में उन्हें आनन्द की वृद्धि होती है क्योंकि दुःख का अनुभव करने के समय में उनकी भक्ति श्री हरि में और अधिक होती है। इस अभिप्राय से उन्होंने दुःख के लिए ही प्रार्थना किया।

यावत्परमभक्तेस्तु भुज्यते दुःख मुल्वणम्।
तावन्मुक्तौ सुखोद्रेकस्तत्र चेद्भक्तिवर्धनम्।।49।।

इस प्रकार की भक्ति रहे तो सर्वत्र आनन्दपूर्ण रहता है। आप हमारे अपराध की गणना न करके आप अपरोक्ष से अनुग्रह कीजिए। आपकी कीर्ति परिपूर्ण है। आपके अनुग्रह से इस सच्चिदानन्द रूप का दर्शन करके हमारे नेत्र सुख का अनुभव करके तृप्त हुए हैं। इस प्रकार हम पर आप अनुग्रह किए हैं हम आपको भक्ति के साथ प्रणाम करते हैं। भक्तों को ही आप अपने रूप व्यक्त करते हैं दुष्टों को कभी नहीं दर्शन देते हैं इस प्रकार स्तुति किये। नेत्रों को तृप्ति हुई कहने से यह सूचित किया गया है कि अन्तर्दर्शन से वाह्य दर्शन अधिक स्पष्ट होता है।।50।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे षोडशोऽध्यायः।।

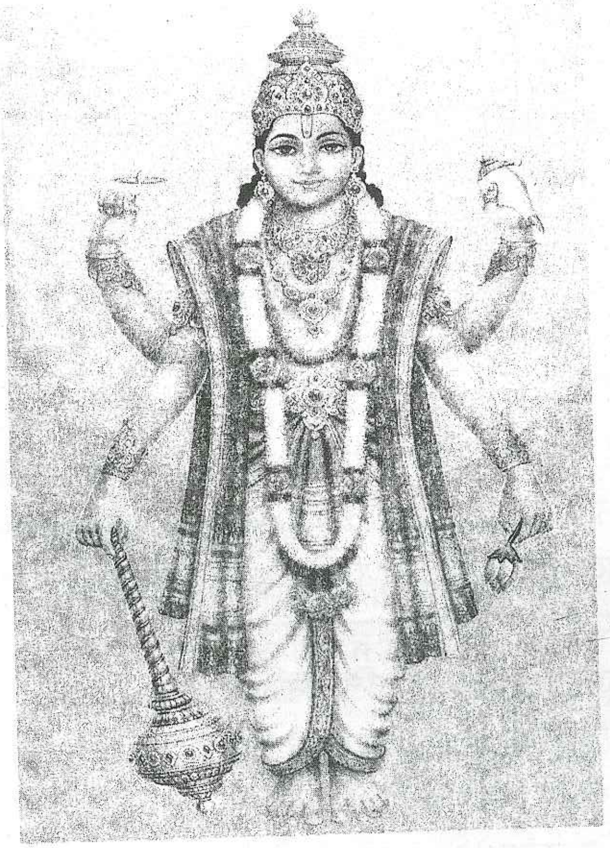

अथ सप्तदशोऽध्यायः

परिहार न किए जाने वाले संकट में भक्ति से श्री हरि से ही प्रार्थना करना चाहिए। इस विषय को इस अध्याय में प्रतिपादित करते हैं। उसमें भी आरम्भ में भगवान भक्त पराधीन होना बतलाते हैं:-

ब्रह्माजी ने कहा-सर्वत्र व्याप्त होने पर भी बैकुण्ठ निवासी श्री हरि भगवद् भक्त सनकादियों के स्तुति से प्रसन्न हुए।।1।।

उनसे श्री हरि ने कहा-"जय - विजय मेरे द्वारपालकों में मुख्य पार्षद हैं। उन्होंने मेरी परवाह न करके बहुत बड़ा अपराध किया है।।2।।

आप मेरी सेवा करने वाले भगवद्भक्त हैं। अतः इस प्रकार मेरी ही अवज्ञा करने के कारण आपने उन्हें जो दण्ड दिया है वह मुझे भी सम्मत है।।3।।

देवताओं का तिरस्कार करना युक्त नहीं है। मेरे भक्त सबके लिए अत्यन्त पूजनीय देवता हैं। वे मुझे सदा के लिए अपना स्वामी जानकर स्मरण करते हैं। परिवार वालों से किया हुआ अपराध यजमान से किए वैसा ही है।।4।।

इसलिए उनसे किया हुआ अपराध मेरे से ही किया हुआ वैसा है। आप प्रसन्न होवें। भृत्य जब अपराध करता है तब लोग यजमान का नाम लेकर ही निन्दा करते हैं। यह निन्दा यजमान की कीर्ति को नाश करती है। शरीर में उत्पन्न हुए कुष्ठ रोग चर्म के सौन्दर्य को ही नष्ट कर देता है।।5।।

मेरी शुद्ध और पवित्र कीर्ति मोक्ष को देने वाली है। ऐसी कीर्ति का श्रवण करने से चाण्डाल भी परिशुद्ध हो जाता है। मेरी ऐसी पवित्र कीर्ति के लिए आपही कारण है। (यह प्रशंसा के लिए कहा गया है) ब्राह्मणों का चरण-रज अति पवित्र है। (यह प्रशंसा के लिए कहा गया है।) ब्राह्मणों का चरन-रज अति पवित्र है। मेरा नाम संकीर्तन भक्तों के समस्त पापों को दूर करता है। मैं स्व रमण हूँ अन्य की मुझे अपेक्षा नहीं है। ऐसा होने पर भी अत्यन्त भक्त लक्ष्मी देवी क्षणमात्र के लिए छोड़े बिना भी मेरी सेवा करती हैं। इस लक्ष्मी देवी के अनुग्रह के लिए ब्रह्मादि देवता भी तपस्या करते हैं। मैं सर्वोत्तम होने पर भी ब्रह्म ज्ञानियों के प्रतिकूल में कोई कार्य नहीं करता हूँ। यदि मेरी भुजा भी ऐसी विपरीत कार्य करे तो मैं उसको काट डालूँगा। (गुण परिपूर्ण और स्वतः तृप्त श्री हरि भक्तों से मुझे कीर्ति प्राप्त हुई है ऐसा कहना क्या युक्त है। यदि ऐसा हो तो वह अपूर्ण होगा। इसके लिए उत्तर उतना ही होगा कि सर्वोत्तम तथा गुण पूर्ण श्री हरि ने ब्राह्मणों की पूज्यत्व को बतलाने के लिए उनके द्वारा मैं गुणों को प्राप्त किया हूँ और उनसे वरों को भी प्राप्त करता हूँ। यह सब अयोग्य लोगों को मोहित करने के लिए है।) इस विषय में प्रमाण-

सर्वोत्तमोऽपि भगवान्विप्रादेः पूजनाय च।
गुणलब्धिं ततो ब्रूते नित्यपूर्णगुणोऽपि सन्।।

ब्रूयुश्चान्ये क्वचित्तत्तु तदुक्तेरनुसारतः।
उपादत्ते वरांश्चापि लोकानां मोहनाय च।।6,7।।

अत्युत्तम यज्ञों में घी से तर चरुपुरोडाश आदि हव्य का हवन करने पर मैं उतना तृप्त नहीं होता जितना मुझमें आसक्त और कर्मफल के रूप में मुझसे दिए हुए से तृप्त ब्रह्मज्ञानी मेरा स्मरण करते हुए भोजन करते हैं उनके प्रत्येक निवाले से तृप्त होता हूँ।।8।।

ब्रह्मा जी द्वारा मेरे चरणों का धोया हुआ जल देव गंगा कहलाई। चन्द्र शेखर इत्यादि लोक पालकों को और लोकों के लोगों को स्नान मात्र से पवित्र कर रहा है। ऐसा मैं अपनी इच्छा (स्वरूप भूत) से अनेक अवतार लेता हूँ। सब अवतारों में ब्रह्माणों के चरणरज को अपने मस्तक में धारण करता हूँ। परन्तु कभी भी ब्राह्मणों का तिरस्कार नहीं किया। अपना पादोदक सबको पवित्र करता है ऐसा श्री हरि के कहने से अपने से ब्राह्मण उत्तम हैं यह वचन असुर जनों के मोहनार्थ हैं। **''किरी टैः''** इस बहुवचन से कोई भी अवतार में वह ब्रह्मणों का तिरस्कार न करने का सूचित किया गया है। ब्राह्मणों का पाद रज श्री हरि का धारण करना केवल ब्राह्मणों के सम्मान के लिए है।।9।।

भगवद् भक्त ब्राह्मण मेरी चल प्रतिमा हैं। रक्षा हीन प्राणियों का अथवा मेरे चल प्रतिमा का जो कोई तिरस्कार करता है वह अन्धा है। पाप से उनकी दृष्टि ज्ञान नष्ट हो चुकी है। वह कुपित होकर ऐसा करते हैं। मेरे से नियुक्त अपराधियों को दण्ड देने वाला यम उनको बिना दण्ड दिए नहीं रहेगा। उनके ऐसे दुष्टों के नेत्र को गिद्ध नोचते हैं।।10।।

परन्तु जो ब्रह्मज्ञानी कुपित होने पर भी, आक्षेप करने पर भी, उनको मेरे अधिक सन्निधान से युक्त जान कर पूजा करते हैं और अनुराग से बच्चों के बुलाए जैसे प्रेम से उनको सम्बोधित करते है। ऐसे हसन्मुख वाले भक्तों के मैं सदा वशीभूत रहता हूँ।।11।।

मैं ब्राह्मणों का प्रिय हूँ ऐसा जानकर भी वह बिना कुछ विचार किए आपको रोकने से असुर योनि को प्राप्त होना युक्त है। इस पर भी आपके शाप के अनुसार कितना भी समय बीत जाय असुर योनि से छुटकारा नहीं है। इसलिए वह अधिक समय का विलम्ब न होकर पुनः मेरे पास आने दो। यही मेरा उन पर अनुग्रह है। यह आपको भी सम्मत होना मैं समझता हूँ।।12।।

श्री हरि के ये वचन सरस्वती नदी की भाँति सबके अभीष्ट को देने वाले थे। ऋषियों को प्रिय भी था। अर्थगर्भित इन वचनों को सुनकर कुपित हुए ऋषियों का मन शान्त हुआ।।13।।

भगवान की वाणी छोटी थी (शब्द कम थे) अर्थ से अगाध और गंभीर था। श्री हरि के वचनों को आश्चर्य से सुनते रहे। परन्तु वे ऋषि श्री हरि के अभिप्राय को समझने में असमर्थ रहे।।14।।

श्री हरि की महिमा को वह जानते नहीं है ऐसा नही समस्त आश्चर्य से भरा हुआ ब्रह्म पद को श्री हरि ने अपनी इच्छामात्र से सृष्टि किया। ऐसे श्री हरि अनुग्रह से दर्शन देने से उनके शरीर में रोमांच हो आया। सदा श्री हरि में ही मन को स्थित करके आनन्द का अनुभव करने वाले वे भक्ति से हाथ जोड़कर विनय पूर्वक कहे।।15।।

हे देव! हम आपके अभिप्राय को समझ नहीं सकते हैं। आप सर्वस्वामी हैं। आप कह रहे हैं कि आप जो दण्ड दिए हैं वह मुझे सम्मत है और मैं इन पर अनुग्रह किया हूँ इन वचनों का अभिप्राय क्या है?।।16।।

हे प्रभो! देवता और ब्राह्मणों के लिए आप कुल देवता है। ऐसे आपके लिए क्या ब्राह्मण उत्तम देवता नहीं है? इस प्रकार आप मोहित करना चाहते हैं तो हम मोहित नहीं होंगे। आपके वचन तो केवल ब्राह्मणों की प्रशंसा परक है।।17।।

वर्ण और आश्रम के धर्म सनातन होने पर भी आपसे ही रक्षित हैं। उनकी जब हानि होती है तब आप अवतार लेकर उनकी रक्षा करते हैं। आप सर्वाधारक हैं। आपही धर्म पद के मुख्य अर्थ हैं। आप निर्विकार हैं और नित्य फल को देने वाले हैं इसलिए आप सत्कर्मों के फल कहलाते हैं।।18।।

वायु देवता भी आपको सम्पूर्ण रूप से जान नहीं सकते हैं। इस पर भी आप उन-उन जीवों के योग्यतानुसार ही उनके ज्ञान का विषय होते हैं। निष्काम भाव से केवल आपके प्रीत्यर्थ कर्म करने वाले भक्त आपके अनुग्रह से इन जनन-मरण रूप संसार में सम्पूर्ण रूप से मुक्त होते हैं। ऐसे आपके लिए दूसरे के अनुग्रह की क्या आवश्यकता है?।।19।।

ब्रह्मादि देवता लक्ष्मी देवी के चरण रज को अपने मस्तक में धारण करके भक्ति, ज्ञानादि पुरुषार्थ के लिए उनकी सेवा करते हैं। विभूति कहलाने वाली लक्ष्मी देवी, वक्ष स्थल में रहने पर भी भक्तजनों द्वारा जो तुलसी की माला आपके चरणों में अर्पण किए हैं उस स्थान को प्राप्त करने के लिए स्पर्धा से आपकी सेवा कर रही है।।20।।

जैसे लक्ष्मी आपकी सेवा करती हैं वैसा अन्य से साध्य नहीं है। इस पर भी आप उनको उत्तम भक्त के रूप में ही आदर करते हैं। परन्तु कामुक के जैसा कामना से आदर नहीं करते हैं। जैसे भक्ति अधिक होती है वैसे आप अधिक प्रसन्न होते हैं। ऐसा रहने पर भी क्या आप को ब्राह्मणों के चरण-रज से श्रीवत्स चिन्ह मिला है? समस्त सौभाग्य के लिए आप आश्रय हैं। क्या आपको इससे सौभाग्य प्राप्त हुआ? नहीं, कभी नहीं। शास्त्र में श्री हरि का सर्वोत्तम होना, लक्ष्मी, ब्रह्मा आदि समस्त चेतन तारतम्य से श्री हरि की सेवा करते हैं ऐसा कहा गया है। जब यह शास्त्र से सिद्ध होगा तभी भगवान का वचन केवल ब्राह्मणों की प्रशंसा के लिए है ऐसा निश्चिय कर सकते हैं इसके लिए क्या प्रमाण हैं? इसके लिए प्रमाण इस प्रकार है-

हरिभक्तिर्हरेः, प्रीतिर्ज्ञानानन्दादयो गुणाः।
अधिकारे च मुक्तौ च ब्रह्मवाव्योश्च तत्स्त्रियोः।
शेषवीन्द्रहराणां च तत्स्त्रीणां वासवादिनाम्।
यथाक्रमं तु विज्ञेया भूमौ कारणतोऽन्यथा।
देहस्य लक्षणं चैव भूमावप्यन्यथा भवेत्।
ब्रह्मादिषु क्रमेणैव नित्यं स्याद्देहलक्षणम्।
श्रियोऽधिका गुणाः सर्वे सर्वेभ्यो नियमेन तु।
उक्ताश्चैवाप्यनुक्ताश्च ततो विष्णोर्न संशयः। तत्त्वनिर्णये।

संसार अवस्था में, मुक्तावस्था में भी ब्रह्मादियों में भक्ति, ज्ञान्, आदि गुण तारतम्य से रहते हैं और देह लक्षण भी उसी प्रकार से रहते हैं। गरुड़ आदि देवताओं के अवतार में यह व्यत्यास हो सकते हैं। लक्ष्मी जी में इन सबसे अधिक गुण हैं इनसे भी परमात्मा में निरवधिक हैं।।21।।

इस पर भी आप ब्राह्मणों की प्रशंसा किए हैं। हे देव! आप कृत, त्रेता और द्वापर युगों में अवतार लेने वाले हैं। भक्तों को ज्ञान प्रदान करने में ही आसक्त हुए आप कपिल रूप से रज, तामस गुणों को दूर करके सत्व गुण की ही वृद्धि किए हैं। आपही सर्वधारक हैं। अनन्त आसन, श्वेत द्वीप और बैकुण्ठ में व्यक्त रूप से रहते हैं। इन तीन रूपों से समस्त प्रपंच को ब्राह्मण और देवताओं के प्रयोजन के लिए रक्षा करते हैं। इस सृष्टि के लिए और कोई अन्य प्रयोजन नहीं है।।22।।

परम ऐश्वर्य से सम्पन्न हे श्री हरि! यदि आप मंगल, मधुर वचनों से ब्राह्मण कुल का सत्कार करके उनकी रक्षा न किए होते तो आपके द्वारा प्रचलित की हुई जगत का कल्याण करने वाला तत्व ज्ञान का मार्ग तथा शिष्टाचार लुप्त हो जाता। क्योंकि लोक तो श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण को ही प्रमाण रूप से ग्रहण करता है।।23।।

हे देव! आप तो सज्जीवों को सुख देने वाले हैं। मोक्ष इत्यादि देने वाले हैं। मोक्ष के लिए प्रतिबंधक अज्ञान आदि को आप अपने सामर्थ्य से ही दूर करते हैं। ऐसे आपको धर्म का नाश होना कभी भी प्रिय नहीं है। अधर्म का निषेध करना ही आपको इष्ट है। तीनों लोकों के स्वामी होने पर भी आप ब्राह्मणों को नमस्कार करने से आपके प्रताप में कुछ भी न्यूनता नहीं आती। यह सब आपके लिये क्रीड़ामात्र है।।24।।

हे महास्वामिन्! आप इन जय विजय को दण्ड दीजिए अथवा इनको यहीं रहने दीजिए। आप जो करेंगे वह हमें सम्मत है। स्वरूप से यह निरपराधी हैं। उनमें दोष देखने वाले हमको जो दण्ड चाहे दीजिए हमको अंगीकार होगा।।25।।

उन ऋषियों की बात सुनकर शान्त्वना देते हुए नारायण जी ने कहा-हे ब्राह्मण! ये जय और विजय असुर देह को प्राप्त होकर उस देह में द्वेष करने वाले जीव के साथ रहने पर भी एकाग्र चित्त से मुझमें भक्ति करते हुए पुनः शीघ्र ही मेरे पास आ जायेंगे। आपने जो शाप दिया है वह मेरा ही शाप जैसा समझिए।।26।।

ब्रह्मा जी कहते हैं-इसके बाद उन मुनियों में नारायण का वह नयनाभिराभ और तेजस्वी रूप तथा उनका वह दिव्य बैकुण्ठ लोक देखकर उनकी परिक्रमा की, भगवान को प्रणाम किया और उनसे अनुमति माँगी। तदनन्तर नारायण का गुणगान करते हुए वहाँ से वापस चले गये।।27,28।।

श्री हरि ने जय विजय से कहा कि "अब आप जाइए। आप घबराइए नहीं। आपका कल्याण होगा। ब्राह्मणों के शाप से आपको छुड़ाने की सामर्थ होने पर भी मैं ऐसा नहीं करूँगा। मैं नहीं चाहता कि ब्राह्मणों का तेज निरर्थक हो।।29।।

आपका दूसरा अपराध यह है कि जब मैं योगनिद्रा में आसक्त था तब लक्ष्मी जी अन्दर प्रवेश करने के लिए आईं उनको आप लोगों ने रोक दिया। लक्ष्मी जी ने मुझे इस विषय में बतलाया था।।30।।

आप पर मैं एक अनुग्रह करता हूँ। द्वेष करने वाले असुर जीव के साथ एक ही देह में रहने पर भी आपकी भक्ति बनी रहेगी। उस भक्ति से आप ब्राह्मणों के तिरस्कार रूप अपराध से मुक्त होकर शुद्ध हो जावोगे और थोड़े ही समय में मेरे पास आ जावोगे। यहाँ पर संरंभ योग इस पाद का अर्थ श्री हरि को प्राप्त करने में हरि द्वेष भी एक उपाय है ऐसा न करें। भक्ति ही श्री हरि को प्राप्त करने का एक उपाय है। हिरण्याक्ष आदि असुरों से आविष्ट हुए जय विजयों को भक्ति का होना प्रमाण से सिद्ध है। दो जीवों के आवेश वाले हिरण्याक्ष आदि भक्त भी थे द्वेषी भी थे। भक्ति से जय विजय परिशुद्ध हुए। उनमें आविष्ट हुए ब्रह्मा के पुत्र राक्षस तमस को प्राप्त हुए। कलि, वाण, इत्यादि में जीवद्वय का आवेश नहीं है वह केवल द्वेष करके अंधंत्तमस को प्राप्त हुए। इसके लिए प्रमाण-

अन्तर्भक्ता वहिर्वैरा हिरण्याद्या हरेर्मताः।
तत्र भक्तयाऽभवन्पूता द्वेष आवेशकान् गतः।।
ब्रह्मजा असुरा ये तु विष्णोः पार्षदतां गताः
बाणा (कल्या) द्याश्च हरेर्द्वेषमन्तः कृत्वा तमोगताः। मूर्तिभेदे

इससे स्पष्ट होता है कि द्वेष नीच फल को देने वाला है और भक्ति ने ही ब्रह्म शाप को दूर करके श्री हरि के सामीप्य को प्राप्त कराया।।31।।

इस प्रकार आज्ञा देकर नारायण विमान पुञ्ज से विभूषित और सर्वोत्कृष्ट शोभायुक्त अपने भवन में गए।।32।।

जय और विजय देवता होने पर भी ब्राह्मण के शाप का अतिक्रमण करने की स्थिति में नहीं थे। बैकुण्ठ लोक से निकल गए। उनका अहंकार सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो गया था। उनके मुख में तेज नहीं था।।33।।

ब्रह्माजी कहते हैं-'हे पुत्रो (देवताओं)! जिस समय नारायण के वे दोनों सेवक बैकुण्ठ धाम से गिरने लगे, उस समय विमानों पर बैठे हुए देवताओं में हाहाकार मच गया।।34।।

वे ही दोनों (जय-विजय) भगवान के प्रधान सेवक इस समय कश्यप के तेजोमय वीर्य द्वारा दिति के गर्भ में आ गए हैं।।35।।

असुर देह में प्रवेश किए हुए उन्हीं दोनों के तेज से आप लोगों का तेज दब गया है। बाद में श्री हरि इसका प्रतिकार करेंगे।।36।।

श्री हरि ही इस जगत की सृष्टि, स्थिति और नाश के लिए मुख्य कारण हैं। वह क्या करेंगे हम लोग समझ नहीं सकते हैं। हमारे पद उन्हीं के अधीन हैं। वह हमारे रक्षक हैं। वही हम लोगों का कल्याण करेंगे। इस विषय में हमारे विशेष विचार करने से कोई लाभ नहीं है।।39।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः।।

अथ अष्टादशोऽध्यायः

अन्य किसी से संहार न किए जाने वाले हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष को संहार करने का श्री हरि के अतिशय महिमा को जानने से श्री हरि में भक्ति अवश्य करना चाहिए। इसलिए इन दो अध्यायों में श्री हरि की महिमा का प्रतिपादन करते हैं।

मैत्रेय जी विदुर से कहते हैं-देवताओं ने जब इस प्रकार ब्रह्मा जी की बातें सुनी तो अपने सामर्थ्य के दब जाने के कारण जानकर उनकी शंका निवृत्त हो गई और वे सब फिर स्वर्गलोक को लौट आए।।1।।

उधर दिति ने अपने पति कश्यप के मुख से जब भावी पुत्रों के विषय में सुना कि श्री हरि उनका संहार करेंगे। तो उसके मन में भय उत्पन्न हुआ। श्री हरि मेरे पुत्रों का संहार करेंगे ऐसी शंका दिति देवी को बनी रही। सौ वर्षों के पश्चात् उस साध्वी के गर्भ से यमज (जुड़वें) पुत्र उत्पन्न हुए।।2।।

उनके जन्म लेने के समय स्वर्ग, आकाश और भू-लोक में संसार को व्याकुल करने वाले अनेकों उत्पात हुए।।3।।

जहाँ तहाँ पृथ्वी और पर्वत काँपने लगे। सब दिशाओं में दाह होने लगा। जगह-जगह उल्कापात होने लगा, बिजली गिरने लगी और आकाश में अनिष्ट सूचक धूमकेतु दिखाई देने लगे।।4।।

बार-बार साँय-साँय करती और बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ती हुई बड़ी विकट वायु चलने लगी और धूल भरे बवंडर चलने लगे।।5।।

चारों ओर घटाएँ घिर आईं। बिजली चमकने लगी। नक्षत्र आदि नहीं दिखाई देते थे। अन्धकार छा गया और रास्ता दिखाई नहीं देता था।।6।।

समुद्र जैसे क्रुद्ध होकर ऊँची-ऊँची तरंगे उछालने लगा। नदियाँ उमड़ आईं जिससे कुएँ और बावली छिप गए और कमल दल मुरझा गए।।7।।

इसी प्रकार के अनेक उत्पात होने लगे।।8।।से ।।14।।

इनका कारण कोई नहीं जान सका, लोग घबड़ा गए कि जगत का ही लय हो जायेगा। सनकादि तो यह सब जानते ही थे इसलिए उनको कोई घबराहट नहीं हुई।।15।।

हिरण्यकशिपु और हरिण्याक्ष यह दोनों दैत्य अपने पौरुष को बतलाते हुए पहाड़ के समान बढ़ने लगे।।16।।

अन्त में वे इतने बढ़ गए कि उनके सुनहरे किरीट आकाश को छूने लगे। उनका शरीर इतना मोटा हो गया कि दिशाएँ भरी हुई जान पड़ने लगीं। चलते समय उनका एक-एक पैर पड़ता तो पृथ्वी काँपने लगती थी।।17।।

उन दोनों यमज (जुड़वा पुत्रों) पुत्रों में जो पहले पैदा हुआ महर्षि कश्यप ने उसका नाम हरिण्यकशिपु और

दूसरे पुत्र का हिरण्याक्ष नाम रखा। (जय में हिरण्यकशिपु का आवेश और विजय में हिरण्याक्ष का आवेश था)।।18।।

हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा जी का तप किया। किसी से भी अपनी मृत्यु न होने का वर प्राप्त करके तीनों लोकों को अपने अधीन कर लिया।।19।।

हिरण्याक्ष अपने भाई के इच्छा का अनुसरण करते हुए उसका प्रीतिपात्र बना था। उसको युद्ध करने की बड़ी इच्छा थी। हाथ में गदा लिए हुए शत्रुओं को ढूढ़ँते हुए स्वर्ग लोक को गया।।20।।

जैसे वह चलता था उसके पैरों के स्वर्णाभूषण शब्द करते थे। उसके गर्दन में फूलों का हार था। कन्धे पर गदा विराजमान थी। उसको डराने वाला कोई वीर नहीं था। इसको देखकर देवता ऐसे छिप जाते थे जैसे गरुड़ को देखकर सर्प छिप जाते हैं।।21,22।।

देवता विजयशाली होने पर भी हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु को ब्रह्मा का वर प्राप्त होने से उन्हे उनसे हार मानना पड़ा। अपने सामर्थ्य से घबड़ाकर देवतागण छिप जाने का हिरण्याक्ष ने जानकर यह समझा कि देवताओं में पौरुष नहीं है। तब वह जोर-जोर से सिंहनाद किया।।23।।

वे दैत्य वहाँ से निकल कर क्रीडा के लिए जैसे हाथी जल में प्रवेश करता है वैसे ही गहरे समुद्र में प्रवेश किया।।24।।

उसके प्रवेश करने पर जल में रहने वाले प्राणी मत्स्य, कच्छप आदि जल जन्तु जीव घबड़ा गए। उन्हे न मारने पर भी उसके सामर्थ्य से घबड़ाकर दूर-दूर भाग गए।।25।।

उसके श्वास से निकली हुई वायु के झोकें से जल की ऊँची-ऊँची तरंगें उठती थीं। ऐसे ही अनेक वर्षों तक समुद्र में क्रीड़ा करते हुए वरुण की राजधानी विभावरी पुरी में आया। अपनी गदा से प्रहार किया।।26।।

वरुण को देखकर उस दैत्य ने अंहकार से उपहास करते हुए एक हाथ से म्लेच्छ जातियों के जैसे प्रणाम किया और कहा-हे अधिराज! आप यह राजमहल छोड़कर युद्ध के लिए मैदान में आ जाइए।।27।।

हे वरुण! तुम लोकपाल, जल के प्रभु और वीरों का गर्व चूर्ण करने वाले असाधारण वीर हो। तुमने अपने प्रचण्ड बाहुबल से सब लोकों के दैत्यों और दानवों को परास्त करके राजसूय यज्ञ भी कर लिया है।।28।।

इस प्रकार गर्व भरे वचन सुनकर यद्यपि वरुण देव को क्रोध आ गया था, फिर भी अपनी विवेक शक्ति से क्रोध को दबाकर उस दैत्य से उन्होंने कहा-"हे दैत्यराज! अब तो हम शक्तिहीन होकर युद्ध से उपरत हो गए हैं।।29।।

श्री हरि की शरण में ही गए हैं। समस्त जगत से भिन्न और उत्तम श्री हरि के सिवाय हमें और कोई ऐसा दिखता भी नहीं जो तुम जैसे रणकुशल वीर को युद्ध में सन्तुष्ट कर सके।।30।।

हे दैत्यराज! तुम उन्हीं के पास जाओ। सज्जनों पर अनुग्रह करने के लिए और तुम्हारे जैसे दुष्टों का संहार करने के लिए अनेक रूप धारण किए हैं। अब वह वराह रूप धारण किए हैं। थोड़े ही समय में तुम उनके साथ युद्ध करके उनसे संहार किए जावोगे और युद्ध भूमि में पड़े हुए तुम्हें चारों ओर कुत्ते घेर लेंगे।" इस प्रकार वरुण देवता

ने उत्तर दिया। श्री हरि को दैत्यों का संहार करने के लिए ही अवतार लेना कहा गया है। मृगरूपी वराह के साथ राक्षस हिरण्याक्ष का समागम कैसे साध्य हो सकता है? इस शंका का समाधान निम्नलिखित प्रमाणों से किया गया है। देवता स्वाभाविक जयशील होते हैं। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु देवताओं पर कैसे विजय प्राप्त किए? इसका समाधान भी प्रमाण वाक्यों से किया गया है। देवताओं पर प्रजेश्वरों पर विजय प्राप्त करना वर के बिना साध्य नहीं है। देवताओं पर विजय प्राप्त करने का वर जिस देह से संबंधित है उसी देह में रहने तक ही सीमित हैं। अन्य देह को प्राप्त करने के पश्चात् उस वर का कोई प्रयोजन नहीं होगा।

न देवानां प्रजापनां विजेता वरतो विना।
बलेन विद्यया वापि न समस्तत्पतीन् बिना।
वरोऽपि ताहशो यावच्छरीरं, नान्यदेहगः। तत्त्वनिर्णये।।31।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः।।

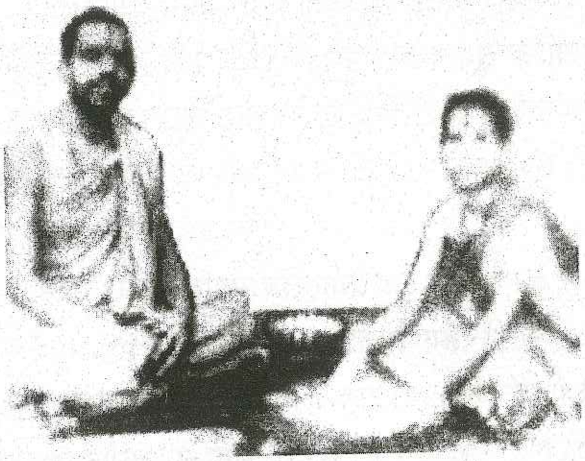

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

मैत्रेय जी ने कहा-हे विदुर! वरुण के उन वचनों का दैत्य ने अर्थ जान लिया। अपनी मृत्यु की कोई परवाह नहीं किया। श्री हरि के साथ युद्ध करने के लिए कहा है। इसके अतिरिक्त नारद जी से श्री हरि का वराह रूप धारण करना और उनके रहने के स्थान को भी जान लिये था। दैत्य अपनी आँखें बन्द करके शीघ्र पानी में उतरा और रसातल में पहुँचा।।1।।

वहाँ पर वराह रूपी श्री हरि अनायास अपने दाँतों पर पृथ्वी को रखकर ऊपर आ रहे थे। उनकी आँखें लाल तथा चमकीली थीं। किसी से भी न जीते जाने वाले इस भूधर को देखकर दैत्य खिलखिलाकर हंसा और बोला-यह तो जल में और भूमि पर संचार करने वाला मृग है।।2।।

हे मूढ़ ! पृथ्वी को छोड़ दो इसको विश्वविधाता ने हम रसातल वासियों को अर्पित किया है। तुम्हारा इस पृथ्वी से कोई कल्याण नहीं होगा। जब मुझे दिखाई पड़े हो तो बचोगे कहाँ से।।3।।

देवताओं में तुम अधम हो इसलिए सूकर का रूप धारण किए हो। हमारे शत्रु (देवता) रक्षा करने के लिए क्या आपकी शरण में आए हैं? तुम छिपकर ही दैत्यों को जीत लेते हो और उनका संहार करते हो। कपट ही तुम्हारा बल है। पुरुषार्थ तो तुझमें है ही नहीं। तुम अपने नाश को न जानने वाले मूढ़ हो। तुम्हारा संहार करके मैं अपने बन्धुओं का शोक दूर करूँगा।।4।।

मेरे हाथ की गदा तुम्हारे सिर को चूरचूर कर देगी, तब आपकी पूजा करने वाले ऋषि और देवतागण आश्रय रहित हो जायेंगे। जब आश्रय ही नहीं रहेगा तो कैसे बच सकते हैं?।।5।।

ऐसे हिरण्याक्ष ने वराह रूपी श्री हरि से कहा। यह तो हिरण्याक्ष दैत्य के वचन हैं, परन्तु उसी देह में रहने वाले विजय नामक द्वारपालक श्री हरि का भक्त होने से **"हे देव! आप सज्जनों के ज्ञान के विषय हैं। भक्तों को दर्शन देने वाले हैं। आप परिपूर्ण हैं। आप ज्ञान के विषय हैं। ब्रह्मादि देवता आपसे अवर (तारतम्य में निम्न श्रेणी के) हैं। आपही सर्वोत्तम हैं। हम भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए सूकर रूप को धारण किए हैं। हम पर अनुग्रह करें और पृथ्वी को जल पर रखें। इसको ब्रह्मा जी ने मनुष्यों के लिए दिया है। इससे देवताओं को स्वर्ग के जैसा सुख नहीं होता। हमारे कल्याण के लिए ही आप आए हैं। हमारे शत्रु दैत्यों ने आपको घेर लिया है। आपको दैत्यों का संहार करना कोई कष्ट नहीं है। केवल इच्छा मात्र से ही उनका संहार करते हैं। आप इन्द्रियों को दिखाई देने वाले नहीं हैं। आप सर्वोत्तम हैं। स्वरूप इच्छा ही आपका बल है। आपके समान कोई पुरुष नहीं है। एकाग्रचित्त से ध्यान करने वाले भक्तों के मन में व्यक्त होते हैं। भक्ति द्वारा मैं आपको अपने वश में लेकर इस संसार दुःख से सम्पूर्ण रूप से छुटकारा पा जाऊँगा।"** इस प्रकार स्तुति कर रहा था।

हिरण्याक्ष के वचनों से श्री हरि के मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सूकर रूप श्री हरि अपने लम्बे दाँतों पर पृथ्वी उठाए हुए जल के भीतर से ऐसे निकल आए, जैसे ग्राह की चोट खाकर हथिनी सहित गजराज।।6।।

उस दैत्य ने जल से निकल कर बाहर जाते हुए शूकर रूप भगवान का पीछा किया और कहने लगा- लज्जाहीन दुष्ट के लिए न करने का कौन-सा कार्य है अर्थात् कोई नहीं है, वे सब कुछ कर सकते हैं। श्री हरि तो दैत्य के देखते-देखते जल के ऊपर पृथ्वी स्थापित कर दिये। ब्रह्मा जी ने स्तुति किया।।7,8।।

देवताओं ने पुष्प वृष्टि किया। उनकी ओर आते हुए दैत्य को देखा। वह दैत्य पुनः पुनः कटु वचन सुना रहा था। श्री हरि के क्रोध को कोई सहन नहीं कर सकता हैं। श्री हरि ने दैत्य की ओर देखकर हंसते हुए कहा।।9।।

तुम्हारा कथन सत्य है। हम लोग जंगली हैं और जंगल में रहकर तुम जैसे ग्राम सिंह (कुत्तों) को खोजा करते हैं। ओ पापी! तेरे जैसे मरने को उद्यत दुष्टों के असम्बद्ध प्रलाप पर वीर लोग ध्यान नहीं देते।।10।।

इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारी गदा की मार से हम लोग भाग खड़े हुए। इस प्रकार असमर्थ होते हुए भी हम तुम्हारे समक्ष खड़े हैं। बलवान शत्रु से बैर मोल लेकर भला कोई भाग कर कहाँ बचेगा?।।11।।

इसलिए अब तुम मुझे मारकर अपने सजातियों का शोकाश्रु पोंछ दो। जो अपनी की हुई प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता, उसे संसार मूर्ख समझता है।।12।।

इस प्रकार भगवान के धिक्कारने और मखौल करने पर हिरण्याक्ष इस तरह क्रुद्ध हुआ जैसे विषधर सर्प।।13।।

मारे क्रोध के उसकी सब इन्द्रियां क्षुभित हो गयीं और आवेश में आकर उसने भगवान पर गदा का प्रहार कर दिय।।।14।।

उसने भगवान के वक्षः स्थल पर गदा चलायी थी, जिसे जरा सा तिरछे होकर उन्होंने उसके प्रहार को निष्फल कर दिया।।15।।

अब वह बार-बार गदा घुमाने लगा तब श्री हरि कुपित जैसे होकर वेग से उसकी ओर झपटे।।16।।

श्री हरि के गदा के प्रहार से दैत्य के अवयव शिथिल पड़ गए। देह से रक्त बह रहा था। वराहरूपी हरि का अप्राकृत देह होने पर भी दैत्य के गदा से अपनी देह में रक्त बहे वैसा दिखाकर मोहित किये।।17,18।।

उन दोनों का युद्ध आपस में लड़ने वाले दो साँड़ के समान था। एक दूसरे को जीतने की इच्छा से बड़ा भयंकर युद्ध हुआ।।19।।

सर्वोत्तम श्री हरि ने अपनी इच्छा से वराहरूप को धारण किया था उनके अवयवों में यज्ञ और उसके साधन थे। हिरण्याक्ष और वराहरूपी श्री हरि के युद्ध को देखने के लिए ब्रह्मा जी ऋषियों के साथ आए।।20।।

श्री हरि से प्रार्थना करना अपना कर्त्तव्य जानकर आए थे। अनेक कल्पों में साधन किए हुए मुक्ति योग्य जीवों को अपने उपदेश के द्वारा परमात्मा के पास ले जाने वाले उन्हें परमात्मा के सामर्थ्य का ज्ञान नहीं था ऐसा नहीं दैत्य तो सामान्य लोगों की दृष्टि में युद्ध कुशल, निर्भय, अजेय था। इसलिए वे सामान्य लोगों की भाँति श्री हरि से

प्रार्थना किए।।21।।

"हे देव ! यह दैत्य आपके शरणागत भक्तों, देवताओं और ब्राह्मणों का अपराधी है। यह उन्हें भय देता हैं, मारता है। मैंने आपकी इच्छानुसार इसे वरदान दे दिया था, जिससे उद्धत होकर वह अपने समान किसी के न मिलने पर युद्ध के लिए किसी वीर की खोज में सभी लोकों में घूम रहा है।।22,23।।

इसलिए इस गर्वीले निरंकुश और कपटी और कृष्ण सर्प के विषजैसा लोक के लिए भयंकर के साथ आप बच्चों की तरह खिलवाड़ न करें।।24।।

संध्या समय पाकर यह और भी बलवान न हो जाय, इसके पहले ही इसका संहार कीजिए। ब्रह्मा जी ने "**अच्युत**" कहकर सम्बोधन करने से श्री हरि समस्त रूपों में अनन्त होने पर भी, घाव न होने पर भी घाव हुए वैसा, सम कोई न होने पर भी सम के जैसा, जित न होने पर भी वह जीते गए वैसा, ज्ञानी होने पर भी अज्ञानी जैसा बतलाते हैं। ब्रह्मादि देवता उनकी इच्छानुसार उन्हीं का अनुसरण करके कहते हैं, और करते हैं। इसके लिए प्रमाण निम्नलिखित है-

अक्षतः क्षतवद्विष्णुरसमः समवत्तथा।
अजितो जितवच्चैव ज्ञोऽज्ञवच्च प्रकाशयेत्।
सर्वरूपेष्वनन्तोऽपि ब्रह्माद्याश्चैव तन्मतेः।
अनुसारितया ब्रूयुः कुर्युश्च न स दुःखभाक् - ब्रह्माण्डे।।25।।

आपको कभी दुःख नहीं है। आने वाला संध्या समय तो संसार को ही निगलने वाला होने से भयंकर है। आप सर्वस्वामी हैं, आप ही देवताओं को विजयश्री प्रदान करें। अब मध्याह्न होने से अभिजित योग होने से विशिष्ट मुहूर्त है। आप ही रक्षक हैं, ऐसी उपासना करने वाले देवताओं का कल्याण कीजिए। इस शत्रु पर अन्य कोई विजय प्राप्त नहीं कर सकते हैं। आप शीघ्र ही इसका संहार कीजिए। आपही इसके लिए मृत्यु हैं। वह स्वयं ही आपके पास आया हुआ है। युद्ध में आप अपने पराक्रम से इसका संहार करके संसार को सुखी करें। ऐसी प्रार्थना किए।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः।।

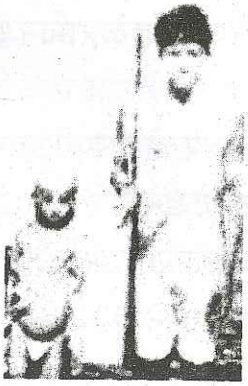

अथ विंशोऽध्यायः

मैत्रेय जी ने कहा-हे विदुर जी! ब्रह्मा जी के यह कपट रहित और प्रिय वचन को सुनकर भगवान मुस्कुराये और अपने प्रेमपूर्ण कटाक्ष के द्वारा उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।।1।।

फिर उन्होंने झपट कर अपने सामने निर्भय विचरते हुए शत्रु की दाढ़ पर गदा से प्रहार किया।।2।।

श्री हरि से फेंके हुए गदे को दैत्य ने अपनी गदा से रोक लिया। तब वह अग्नि के जैसे प्रकाशमान होकर नीचे पृथ्वी पर गिरा।।3।।

यह तो बड़ा आश्चर्य है कि अवसर मिलने पर भी हिरण्याक्ष ने अपना पराक्रम नहीं दिखाया। वराह ने भगवान के हाथ में आयुध न होने से किसी प्रकार की पीड़ा नहीं दिया। शत्रु के पास आयुध न होने पर उसको नहीं मारना चाहिए। ऐसे युद्ध धर्म की रक्षा के लिए उसने ऐसा किया।।4।।

श्री हरि से फेंका हुआ गदा नीचे गिरने पर लोगों में हाहाकार मच गया। दैत्य के इस समय में प्रहार न करने से भगवान ने उसका सम्मान करते हुए नीचे गिरे हुए गदा को न उठाकर सुदर्शन चक्र का स्मरण किया।।5।।

शीघ्र ही चक्र आ गया। चक्र को लीलारूप से फिराकर दैत्य की ओर फेंकने ही वाले थे। तब आकाश से देवताओं ने कहा कि हे देव! इसका संहार कीजिए।।6।।

यह वचन दैत्य ने भी सुना। उसके सामने श्री हरि चक्र को घुमाते हुए खड़े थे। उसको देखने पर दैत्य को द्वेष और अधिक हुआ और क्रोध से सांस लेते हुए होंठ को दाँतों से काटने लगा।।7।।

इसके बाद अपनी लाल-लाल आँखों से जैसे जलता हुआ **"अब तुम मर जावोगे।"** यह कहकर गदा से भगवान पर प्रहार कर दिया।।8।।

यज्ञ वराह ने अति वेग से और अनायास ही अपने बाएँ पैर से गदा को पीछे हटा दिया। इसे शत्रु देखता रहा तब श्री हरि ने कहा हे दैत्य! आयुध को ग्रहण करो और युद्ध के लिए आओ। दैत्य ने गदा से श्री हरि को मारा और सिंहनाद किया।।9,10।।

वह गदा श्री हरि की ओर वेग से आ रहा था। वराह भगवान ने खड़े होकर अनायास ही जिस प्रकार गरुड़ सर्प को पकड़ता है उस गदा को पकड़ लिया।।11।।

तब उसने समझा कि मेरा पराक्रम नष्ट हो गया। उसका घमण्ड चूर हो गया। गदा को ले लो। श्री हरि के गदा देने पर भी उसको नहीं लिया।।12।।

किन्तु जिस प्रकार कोई ब्राह्मण के ऊपर निष्फल अभिचार (मारणादि प्रयोग) करे वैसे ही उसने यज्ञ वराह पर प्रहार करने के लिए एक प्रज्वलित अग्नि के समान लपलपाता हुआ एक त्रिशूल लिया और उन पर प्रहार किया।।13।।

श्री हरि ने उसको रोकने में समर्थ होने पर भी अपने चक्रायुध से चूर-चूर कर दिया।।14।।

श्री हरि के इस चक्र की महिमा को देखकर दैत्य का क्रोध और भी बढ़ गया। भयंकर गर्जना करते हुए श्री हरि की ओर झपट कर विशाल और श्री लक्ष्मी के वास स्थान श्री हरि के वक्षः स्थल में मुक्का से प्रहार किया। शीघ्र ही लोगों की दृष्टि से अदृश्य हो गया।।15।।

दैत्य के इस प्रहार से श्री हरि हिले भी नहीं जैसे हाथी को कोई फूल की माला से मारे और उसे न मालूम पड़े।।16।।

दैत्य ने श्री हरि पर अनेक प्रकार की माया का प्रयोग किया। स्वरूपभूत अणिमा और महिमा आदि सब महात्म्य के लिए श्री हरि स्वामी हैं। उससे उनको क्या भय है। परन्तु अन्य लोग भयभीत हुए और समझने लगे कि अब संसार का प्रलय होने वाला है।।17।।

भयानक आँधी चलने लगी। धूर - गुबार से सब दिशाएँ भर गईं और पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े उड़ - उड़ कर गिरने लगे। आकाश में भयानक घटा घिर आयी। जिसमें सभी नक्षत्र छिप गए और उन घन घटा से पीव, केश, रक्त, विष्ठा, मूत्र और हड्डियों की वर्षा होने लगी।।18,19।।

बड़े पहाड़ अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर रणांगण में उतर आए और केश खोले हुए नंगी राक्षसियाँ हाथ में त्रिशूल लिए इधर-उधर दौड़ती दीखने लगीं।।20।।

यक्ष राक्षस पैदल घोड़े, रथ हाथी और हिंसक, चतुरंग सेना के द्वारा मन को दुःख देने वाले वचन सुनाई देने लगे।।21।।

क्षण भर में श्री हरि ने अपने सुदर्शन चक्र द्वारा वह आसुरी माया नष्ट कर दी।।22।।

श्री हरि के चक्र का प्रयोग करते ही हिरण्याक्ष की माता दिति देवी का हृदय कांप उठा। कश्यप के वचन का स्मरण हो आया। स्तन से रक्त बहने लगा।।23।।

दैत्य ने जब देखा कि उसकी माया सब नष्ट हो गई है तब उसने द्वन्द्व युद्ध करके श्री हरि को मारने की इच्छा किया। पुनः श्री हरि के निकट आकर श्री हरि को अपनी दोनों बाहों में कर लिया। परन्तु भगवान उसकी बाहु के बाहर ही रहे।।24।।

बज्र के समान अपनी मुष्टियों से वराह भगवान को मारने लगा। इन्द्र ने जैसे वृत्तासुर को मारा था वैसे ही भगवान ने हिरण्याक्ष के कनपटी में हाथ से प्रहार किया।।25।।

जिससे उसका शरीर घूमने लगा। उसके नेत्र बाहर निकल आए तथा हाथ पैर और बाल छिन्नभिन्न हो गए और वह निष्प्राण होकर आँधी से उखड़े हुए विशाल वृक्ष के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा।।26।।

उस कराल दाढ़ों वाले दैत्य को दाँतों से ओंठ चबाते पृथ्वी पर पड़ा देख, वहाँ युद्ध देखने के लिए आए हुए ब्रह्मादि देवता उसकी प्रशंसा करने लगे कि 'अहो! ऐसी अलभ्य मृत्यु किसको मिल सकती है।।27।।

संसार के लिए कारणीभूत लिंग देह से छुटकारा पाने की इच्छा से भक्त जन एकाग्रचित्त से श्री हरि का

ध्यान करते हैं। ऐसे मोक्ष को प्रदान करने वाले श्री हरि के पाद के (हाथ और पाद में अभेद होने से) प्रहार से यह विजय दैत्य के साथ रहने पर भी श्री हरि के मुख कमल को भक्ति से देखते हुए देह त्याग किया है। श्री हरि के अवयवों में परस्पर एक दूसरे में भेद नहीं है। कोई अवयव का कार्य किसी भी अवयव से कर सकते हैं। इसलिए हाथ और पाद में भेद नहीं है, इसको बतलाने के लिए ही **"पदाहतः"** कहा गया है। श्री हरि के मुख को देखते हुए प्राण त्यागने से अधिक पुण्य तो भक्त विजय को ही है, परन्तु उस देह में आविष्ट असुर को नहीं है।।28।।

जय और विजय दोनों श्री हरि के द्वारपालक हैं, ब्राह्मण के शाप से दैत्य के देह में प्रवेश किए हैं और कुछ जन्मों में साधन करके वैकुण्ठ के मुक्तस्थान में प्रवेश करेंगे।।29।।

इसके पश्चात् वे देवता वराह भगवान् की स्तुति करते हुए कहे 'हे प्रभो! आपका यह रूप सम्पूर्ण यज्ञ सम्प्रदायों के लिए प्रवर्तक है। आप लोकों की रक्षा करने के लिए अप्राकृत रूपों को धारण करते हैं। यह दैत्य लोकों को कष्ट देने वाला था। इसका आपने संहार किया। अब आपके चरणों की भक्ति के प्रभाव से हमें भी सुख शान्ति मिल गई।"।।30।।

मैत्रेय जी कहते हैं- हे विदुर जी! इस प्रकार उस महापराक्रमी दैत्य को जो किसी अन्य से परास्त होने वाला नहीं था उसका संहार किया। देवताओं ने भगवान् की स्तुति किया। तत्पश्चात् आदि वराह रूप से अपने वैकुण्ठ लोक में व्यक्त हो गए। उस लोक में आनन्द ही आनन्द है। दुःख नहीं है। ऐसे पराक्रम वाले हिरण्याक्ष को श्री हरि ने भीषण संग्राम में खिलौने की भाँति वध कर डाला। श्री हरि के इस वराह अवतार का चरित्र जैसा श्रवण किया था वैसे ही तुम्हें सुनाया हूँ, जिससे श्री हरि के सर्वोत्तमत्व का ज्ञान होता है।।32।।

श्री शुक देव जी कहते हैं- हे राजन्! श्री हरि के सर्वोत्तमत्व का प्रतिपादन करने वाली कथा को मैत्रेय जी से श्रवण करके विदुर अत्यन्त आनन्दित हुए।।33।।

कीर्तिशाली भगवद्भक्तों की कथा श्रवण करके आनन्दित हुए।।33।।

कीर्तिशाली भगवद्भक्तों की कथा श्रवण करके आनन्दित होते हैं, तो श्री हरि की कथा श्रवण करने से क्या आनन्दित नहीं होंगे?।।34।।

जिस समय ग्राह के पकड़ने पर गजराज प्रभु के चरणों का ध्यान करने लगा और उसकी हथनियाँ छुड़ाने में असमर्थ होकर दुःख से चिग्घाड़ने लगीं। तब गजेन्द्र के श्री हरि का ध्यान करने से श्री हरि ने उसको मृत्यु से बचाया।।35।।

श्री हरि को सर्वोत्तम जानकर भजन करने वाले मुक्ति योग्य जीवों से श्री हरि सहज ही प्रसन्न हो जाते हैं। किन्तु दुष्ट पुरुषों के लिए दुर्लभ हैं। ऐसे श्री हरि का कृतज्ञ पुरुष स्मरण किए बिना नहीं रहेगा।।36।।

पृथ्वी का उद्धार करने के लिए वराह रूप धारण करने वाले श्री हरि हिरण्याक्ष वध नामक परम अद्भुद लीला को जो पुरुष सुनता, गाता, अथवा अनुमोदन करता है, वह ब्रह्म हत्या (ऐक्य ज्ञान जन्य) घोर पाप से भी सहज में ही छूट जाता है।।37।।

यह चरित्र अत्यन्त पुण्यप्रद, परमपवित्र, धन और यश की प्राप्ति कराने वाला, आयुवर्धक और कामनाओं की पूर्ति करने वाला तथा इन्द्रियों की शक्ति बढ़ाने वाला और युद्ध में शक्ति को बढ़ाने वाला है। इस कथा को भक्ति से श्रवण करने से मनन आदि करने की शक्ति उत्पन्न होती है। श्री हरि के अनुग्रह से अपरोक्ष ज्ञान के पश्चात् लिंग शरीर को त्याग कर श्री हरि की प्राप्ति होती है, और शाश्वत सुख का अनुभव करता है।।38।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे विंशोऽध्यायः।।

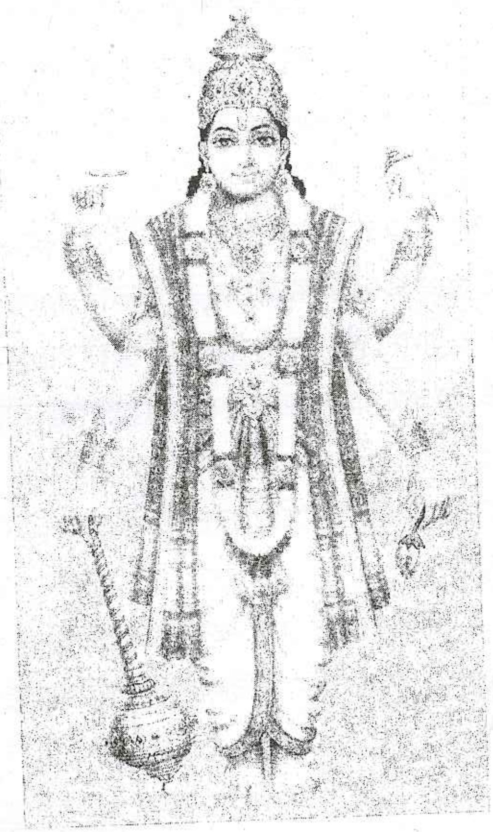

अथ एक विंशोऽध्यायः

परीक्षित् राजा ने कहा-हे शुक देव जी! इससे पहले आप बतलाए थे कि श्री हरि से स्थापित इस भूमि में रहकर राजा मनु ने भविष्य में उत्पन्न होने वाले प्राणियों के वर्ण, आश्रम और उनके भेदों के लिए किन-किन साधनों का आश्रय किया।।1।।

महा भगवद्भक्त विदुर श्रीकृष्ण के एकान्त स्नेहित थे। श्रीकृष्ण से अपराध करने वाले अपने भाई धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्र दुर्योधनादि को त्याग दिये थे।।2।।

वेद व्यास जी के अनुग्रह से उत्पन्न हुए, वे महिमा में वेद व्यास जी से किसी प्रकार कम नहीं थे। (यह लौकिक दृष्टि से कहा गया है)। वे सब प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के आश्रित और कृष्ण भक्तों के अनुगामी थे।।3।।

तीर्थ यात्रा से पाप रहित होकर हरिद्वार में मैत्रेय से मिले। तब वे उन तत्त्ववेत्ता से क्या-क्या प्रश्न किए? उन दोनों के सत्संग में निर्दृष्ट श्री हरि के कथाओं के सिवाय अन्य कुछ न होगा। वह कथाएँ श्री हरि से संबंधित होने से गंगा जल के समान सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाली होंगी।।4।।

श्री हरि के चरित्र व कर्म कीर्तन करने के योग्य होते हैं। भला ऐसा कौन रसिक होगा जो श्री हरि के लीलामृत का पान करते-करते तृप्त हो जाय।।5।।

सूत जी ने शौनकादि से कहा-हे शौनक! परीक्षित् राजा के प्रश्न करने पर शुकदेव जी अपनी समस्त इन्द्रियों को श्री हरि को समर्पित करके राजा परीक्षित् से कहे कि सुनो।।6।।

शुकदेव जी ने कहा-हे राजन्! श्री हरि ने अपनी इच्छा से ही वराह रूप को धारण किया। रसातल से पृथ्वी को ऊपर लाये। अनायास हिरण्याक्ष का संहार किया। इन कथाओं को मैत्रेय जी से सुनकर विदुर को महान् सन्तोष हुआ।।7।।

पुनः उन्होंने मैत्रेय जी से कहा-हे ब्राह्मन्! ब्रह्मा ने तो सृष्टि के लिए प्रजेश्वरों की सृष्टि किया। इस सृष्टि के पश्चात् क्या किया?।।8।।

आप तो श्री हरि और अन्य तत्त्वों को यथार्थ रूप से जानते हैं। कृपया हमें बतलाइए ब्रह्मा जी के ब्राह्मण सन्तति वाले मरीचि आदि और स्वायंभू आदि क्षत्रिय सन्तति वाले ब्रह्मा जी की आज्ञा से सृष्टि की वृद्धि किस प्रकार किये।।9।।

स्त्रियों के साथ रहते हुए सृष्टि की या अकेले ही? वे एक साथ मिलकर सृष्टि कार्य करते थे या अलग रहकर? प्रायशः सभी मिलकर ही किए होंगे।"।।10।।

मैत्रेय जी ने कहा-हे विदुर! जीव अनन्त हैं। उनके अदृष्ट भी अनन्त हैं। इसका अनुमान नहीं किया जा

सकता है। किन्तु उनके नियामक श्री हरि उसको जानते हैं। श्री हरि तर्कशक्ति के परे हैं। सृष्टि के कालानुसार जीवों को सृष्टि करने की इच्छा से शैया रूप से रहने वाली लक्ष्मी को जड़ प्रकृति के अभिमानिनी को सृष्टि करने के लिए प्रेरित किये। गुणत्रय में प्रवेश करके उसमें क्षोभ (परिणाम होने का सामर्थ्य) उत्पन्न किये। इस प्रकार गुणत्रय से महत्तत्त्व, उसके अभिमानी ब्रह्मा, वायु, सरस्वती और भारती उत्पन्न हुए।।11।।

महत्त्वत्व के तीनों गुणों में रजोगुण हैं, इसलिए यह रजोगुण प्रधान कहलाता है श्री हरि की इच्छा से इसमें भी विकार उत्पन्न हुआ जिसे वैकारिक तैजस और तामस ऐसे तीन प्रकार के अहंकार तत्त्व और उनके अभिमानी गरुड़, शेष, रुद्र और उनकी पत्नियाँ सौपर्णि, वारुणी, पार्वती उत्पन्न हुईं। वैकारिक अहंकार से मन और उनके अभिमानी अनिरुद्ध और चन्द्र उत्पन्न हुए। तैजस अहंकार से श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, त्वक, रसन्, वाक्, पाणि, पाद, वायु, उपस्थ ऐसे दस इन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। तामस अहंकार से आकाश इत्यादि पंचभूत और उनके अभिमानी उत्पन्न हुए। सृष्टि में जो पहले उत्पन्न होते हैं, वह उत्तम हैं। लय में जो पहले लीन होते हैं, वह लघु (कम) हैं। इस प्रकार सृष्टि और लय में देवताओं का तारतम्य स्पष्ट होता है। पुनः पुनः सृष्टि और लय के बतलाने से तारतम्य का ज्ञान आवश्यक होना शास्त्र का तात्पर्य है। अवान्तर सृष्टि का वर्णन करना भी इसी को स्पष्ट करने के लिए है। सूक्ष्म सृष्टि में तारतम्य के अनुसार ही सृष्टि होती है। स्थूल सृष्टि में इसमें व्यत्यास (अन्तर) हो सकता है। यह क्रम नियत रूप से सृष्टि, ज्ञान, आदिगुण और मुक्तों में भी दिखाई पड़ता है। सूक्ष्म सृष्टि में क्रम में अन्तर दिखाई पड़ने पर उसको असुरों के मोहनार्थ समझना चाहिए। इसके लिए प्रमाण-

सृष्टौ लये तारतम्यं देवानां ज्ञायते स्फुटम्।
तारतम्यपरिज्ञाने महातात्पर्यमिष्यते। -वामने
अहमः शेषविन्द्रौ च रुद्रेन्दौ कामतत् स्त्रियः।
मनसस्त्वनिरुद्धश्च चन्द्रश्चान्ये यथोदितम्।
एवं क्रमो व्यत्ययस्तु सूक्ष्मस्थूलविभेदतः।
सृष्टौ गुणे च ज्ञानादौ मुक्तिस्थेवाप्ययं क्रमः।
नियमेन, अन्यथोक्तिस्तु मोहायासुरजन्मनाम्। - वाराहे।।12।।

किन्तु वे तत्व अलग-अलग रहकर भौतिक ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने में असमर्थ रहे।।13।।

तब श्री हरि ने अनुग्रह किया और उनके चेष्टकरूप अनुग्रह से इन सबने मिलकर सुवर्णमय ब्रह्माण्ड की सृष्टि किया। उस ब्रह्माण्ड में श्री हरि अव्यक्त रूप से रहते हैं। श्री हरि से व्याप्त हुआ यह ब्रह्माण्ड जल में एक हजार वर्ष तक रहा। इस ब्रह्माण्ड के अन्दर रहने वाले जल में श्री हरि लक्ष्मी जी के साथ एक हजार वर्ष (देवमान) तक अव्यक्त होकर रहे।।14।।

काल नियामक ब्रह्मा उनके उदर में थे। उस श्री हरि के नाभि से सहस्र सूर्य के कान्ति से भी अधिक प्रकाश वाला एक क़मल उत्पन्न हुआ।।15।।

वही कमल समस्त जीव समुदाय का आश्रय है। इसलिए समस्त जीवों में प्रधान ब्रह्मा उससे उत्पन्न हुए। जल में शयन करने वाले नारायण ने एक अंश से ब्रह्मा में प्रवेश किया। इस प्रकार ब्रह्मा में परमात्मा का सामर्थ्य भर गया। जिसके द्वारा पूर्व कल्प में जैसा था वैसे ही उस कमल से चौदह लोकों की सृष्टि किये।।16।।

ब्रह्मा जी ने जिन वस्तुओं की सृष्टि करने की इच्छा की उन वस्तुओं के स्वभाव को व्यक्त करने के लिए उसके योग्य बाह्य देह को धारण करके ब्रह्मा सृष्टि करते रहे। उन देहों को छोड़कर उन-उन वस्तुओं को दे दिये। ब्रह्मा पहले अपनी छाया नामक देह को धारण किये जिससे तामिस्र इत्यादि पांच प्रकार की अविद्या की सृष्टि किये।।17।।

वह छाया देह तो केवल अन्धकार का था। उसको रात्रि भी कहते हैं। इस देह से यक्ष राक्षसों की सृष्टि करके ब्रह्मा ने उस देह को त्याग दिया। वह देह भूख और प्यास का कारण था। यक्ष, राक्षस जो उत्पन्न हुए थे। उन्होंने रात्रि को अपने लिए ले लिया।।18।।

वे भूख प्यास से पीड़ित हुए। भूख और प्यास से पीड़ित होकर इनको मत बचाओं, इनको खा लो ऐसा कहते हुए ब्रह्मा को निगलने के लिए दौड़े।।19।।

ब्रह्मा को कोई दुःख नहीं है। इस पर भी अन्य को मोहित करने के लिए दुःखित जैसे बतलाए। मुझे मत खाओ, मुझे बचाओ। आप मेरी प्रजा हैं। यक्ष और राक्षस मेरी सन्तान हैं। क्या कोई पिता को मार डालते हैं?।।20।।

ऐसा कहकर उन्हें समझाया। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने प्रभा नामक प्रकाशमान देह को धारण किया। उस देह से देवताओं की सृष्टि किया। देवता सभी क्रीड़ादि गुण वाले हैं। विद्या कहलाने वाली इस दूसरी देह को भी ब्रह्मा ने त्याग दिया। तब देवता लोग उस देह को ले लिये। उसको दिन भी कहते हैं।।21।।

इसलिए दिन में देवकार्य और रात्रि में राक्षस कार्य का प्रचलन हुआ। ब्रह्मा जी साधन के लिए विरुद्ध जघन नामक (स्त्री) देह को धारण किये। इससे अत्यन्त विषयासक्त असुरों की सृष्टि किये। अत्यन्त विषयासक्त यह असुर ब्रह्मा जी को ही मैथुन कार्य के लिये इच्छा किए।।22।।

ब्रह्मा जी हंस पड़े और जान लिए कि असुरों को लज्जा नहीं है। अपने पीछे भागकर आते हुए असुरों पर कुपित हुए। अन्य को मोहित करने के लिए घबराए वैसा भागने लगे।।23।।

वरप्रद श्री विष्णु के शरण में गए।।24।।

जो उनकी शरण में जाता है उसका दुःख तो वह दूर करते ही हैं। उनकी जो-जो जैसे-जैसे उपासना करते हैं। वैसे-वैसे ही उनकी योग्यतानुसार दर्शन देते हैं। भक्तों पर यही उनका अनुग्रह हैं। ब्रह्मा ने श्री हरि से निवेदन किया-हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिए। आपकी आज्ञानुसार प्रजा की सृष्टि किया। सृष्टि किए हुए प्रजाओं में से पापी असुर विषय सुख के लिए मेरा ही पीछा कर रहे हैं।।25।।

आप ही भक्तों के दुःख को दूर करने वाले हैं। अपने अभक्तों को क्लेश देने वाले आप ही है। ऐसी दीनता से प्रार्थना किया।।26।।

सर्वज्ञ श्री हरि ब्रह्मा जी के सामर्थ्य को जानते हैं। समर्थ होने पर भी अपने कष्ट को स्वयं दूर न करके उनके आश्रय में आने से उन पर और भी प्रेम बढ़ा। लोगों को मोहित करने के लिए इस प्रकार का आचरण करने को श्री हरि जानते हैं। इसलिए उन्होंने कहा कि **''जो देह साधन के लिए अनुकूल नहीं है, उसको त्याग दो। इससे क्या प्रयोजन हैं। आपको देह तो है ही।''** श्री हरि का ज्ञान किसी अन्य के अधीन नहीं है श्री हरि अपने सर्वोत्तमत्व को सदा जानते हैं। श्री हरि के वचन को सुनकर ब्रह्मा ने उस जघन देह को त्याग दिया।

जानन्नपि समर्थोऽपि क्वचिद्ब्रह्मा हरेः प्रियम्।

ज्ञात्वा करोति कर्माणि ह्यज्ञवच्चाप्यशक्तवत्।।

इस प्रमाणानुसार ब्रह्मा जी ने जो किया वह विडम्बना मात्र है। यह श्री हरि के प्रीत्यर्थ है। भक्त अपने आपत्ति को दूर करने में समर्थ होने पर भी आपत्ति आने पर श्री हरि के शरण में जाने से श्री हरि प्रसन्न होते हैं। ऐसा भागवत् धर्म यहाँ बताया गया है।।27।।

असुर स्त्री रूप के देह को देखकर मोहित हुए। उसके चरण कमल के पायजेव झंकृत हो रहे थे। उसकी आँखे मतवाली हो रही थीं और कमर करधनी की लड़ी से सुशोभित सजीली साड़ी से ढकी हुई थी।।28।।

उसके उभरे हुए स्तन इस प्रकार एक दूसरे से सटे हुए थे कि उनके बीच में कोई अन्तर ही नहीं रह गया था। उसकी नासिका और दन्तावली बड़ी ही सुघड़ थी तथा वह मधुर-मधुर मुस्कराती हुई असुरों की ओर हाव-भावपूर्ण दृष्टि से देख रही थी।।29।।

वह नीली-नीली अलकावली से सुशोभित सुकुमारी मानों लज्जा के मारे अपने अंचल में ही सिमटी जाती थी। हे विदुर जी! उस सुन्दरी को देखकर सबके सब असुर मोहित हो गए।।30।।

अहो! इसका कैसा विचित्र रूप, कैसा अलौकिक धैर्य और कैसी युवा अवस्था है। देखो, हम कामपीड़ितों के बीच में यह कैसी बेपरवाह सी विचर रही है।।31।।

इस प्रकार उन कुबुद्धि दैत्यों ने स्त्री रूपिणी संध्या के विषय में तरह-तरह के तर्क-वितर्क करके फिर उसका बहुत आदर करते हुए प्रेम पूर्वक पूछे।।32।।

हे सुन्दरी! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो? भामिनी! यहाँ तुम्हारे आने का क्या प्रयोजन है? तुम अपना अद्भुत रूप दिखाकर हम अभागों को क्यों तरसा रही हो।।33।।

अबले, तुम कोई भी क्यों न हो, हमें तुम्हारा दर्शन हुआ। यह बड़े सौभाग्य की बात है। तुम अपनी गेंद उछाल-उछाल कर तो हम दर्शकों के मन को मथे डालती हो।।34।।

सुन्दरी! जब तुम उछलती हुई गेंद पर अपने हथेली की थपकी मारती हो, तब तुम्हारा कटि प्रदेश स्थूल स्तनों के भार से थक सा जाता है और तुम्हारी निर्मल दृष्टि से भी थकावट झलकने लगती है। अहो! तुम्हारा केशपास कैसा सुन्दर है।।35।।

इस प्रकार स्त्री रूप से प्रकट हुई उस सायंकालीन संध्या ने उन्हें अत्यन्त कामासक्त कर दिया और उन

मूढ़ों ने उसे कोई रमणीरत्न समझकर ग्रहण कर लिया।।36।।

ब्रह्मा जी ने हंसकर कान्ति नामक दूसरा देह धारण किया। इस देह से ब्रह्मा ने गन्धर्व और अप्सराओं की सृष्टि किया। कान्तियुक्त उस देह को ज्योत्सना कहते हैं।।37।।

चाँदनी जैसे रहने वाले उस देह को त्यागने पर विश्वास इत्यादि गन्धर्व प्रेम से उस देह को स्वीकार किए।।38।।

तब ब्रह्मा जी ने जृम्भण रूप देह से भूत पिशाचों की सृष्टि किया जो नंगे-धड़ंगे और केश खोले हुए थे। इनको देखकर ब्रह्मा जी ने आँख मूंद लिया।।39।।

इस देह से लोगों में अति निद्रा तथा इन्द्रियों में शिथिलता की उत्पत्ति हुई। इस देह में रहने वालों से भूत पिशाचादि अपनी चेष्टा कराते हैं। ज्ञानी लोग उसको पागल कहते हैं।।40।।

ऐसे जृम्भण देह को ब्रह्मा जी ने त्याग दिया। इसको भूत पिशाचों ने ग्रहण कर लिया। ब्रह्मा ने सारभूत अन्न जानकर परोक्ष रूप देह से साध्यगणों तथा पितरों की सृष्टि किया। इसलिए पितरों को अन्न के पिण्डदान से तृप्ति होती है।।41।।

ब्रह्मा जी से त्यागा हुआ उस परोक्ष देह को साध्य और पितृगणों ने ग्रहण कर लिया। अब भी ज्ञानी लोग बलि हरण में अन्न देते हैं।।42।।

तिरोधान नामक अन्य देह को ब्रह्मा जी ने धारण किया जिसे अन्तर्धान भी कहते हैं। यह देह रहने पर भी यह आँखों को दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए यह अन्य देहों से भी आश्चर्य कारक है। इस देह से सिद्धों और विद्याधरों की सृष्टि की तथा इस देह को त्याग कर उन्हीं को दे दिया। जिसे उन लोगों ने अंगीकार कर लिया।।43।।

ब्रह्मा ने अपने देह की मन से पूजा करते हुए दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को देखते हुए रूप नामक अपने देह से किन्नर और किम्पुरुषों की सृष्टि किया।।44।।

ब्रह्मा ने उस देह को त्याग दिया जिसे किन्नर और किम्पुरुषों ने ग्रहण कर लिया। यह किन्नर और किम्पुरुषों ने प्रातःकाल में स्त्री पुरुष मिथुन भाव से ब्रह्मा जी के चरित्र का गान करते हुए संचार करते रहे।।45।।

अपने द्वारा की हुई सृष्टि में पर्याप्त वृद्धि होते न देखकर बृह्मा जी कुपित हुए और सर्पाकार देह में शयन करते हुए विचार किए और अपने सर्पाकार देह को त्याग दिये।।46।।

उस देह से बाल झड़कर गिरे जिससे विष से रहित सर्प की सृष्टि हुई। वेग से रेंगने (चलने) वाले और लम्बे देह तथा बड़े फणों वाले सर्पो की उत्पत्ति हुई।।47।।

अन्त में ब्रह्मा जी ने देखा कि बाह्य देह से जो करने को था वह हो गया। प्रजाओं की वृद्धि के लिए मनु की सृष्टि किये।।48,49।।

उनको अपना बाह्य देह दे दिया। तब पहले से ही सृष्टि में आये हुए देवताओं को सन्तोष हुआ और उन्होंने ब्रह्मा से कहा-"हे सृष्टिकर्त्ता! आपने मनुओं की जो सृष्टि किया वह बहुत ही अच्छा है। इनसे भविष्य में यागादि

क्रिया प्रचलित होगी। यह लोग हमारे और आपके लिए द्रव्य त्याग कर होम करेंगे। जिससे आपके साथ हम भी हविर्भाग को स्वीकार करेंगे।।50।।

इस प्रकार इनसे हमारा उपकार होगा। हम भी उनकी सहायता करेंगे।"इस प्रकार प्रशंसा किए। तप और ज्ञान से युक्त ब्रह्मा ने समाधि (एकाग्रता) से युक्त योग रूप देह से इसके पूर्व ही ऋषियों की सृष्टि किया था। यह ऋषिगण, देवता और असुरों के लिए सम्मत थे। अपनी तप, विद्या, वैराग्य, एकाग्रता इत्यादि को ऋषियों में प्रत्येक को एक-एक देकर अनुग्रह किये। सभी स्थानों में ब्रह्मा के अन्तर्यामी नारायण ही सृष्टिकर्ता हैं अन्य कोई नहीं है। इसको बतलाने के लिये ही नारायण में ऋषीकेश नाम का प्रयोग किया गया है। यहाँ प्रश्न कर सकते हैं कि ऋषिकेश और ब्रह्मा दोनों एक ही हैं, इसको बतलाने के लिए ही ऐसा कहा गया है? ऐक्य बतलाने के लिए ऐसा नहीं कहा गया है, क्योंकि पहले दैत्यों की पीड़ा को दूर करने के लिए ब्रह्मा विष्णु के शरण में गए इसलिए ब्रह्मा और विष्णु एक नहीं हैं। अतः यहाँ पर अन्तर्यामी श्री हरि का ही अर्थ करना चाहिए। श्री हरि का नाम अन्य देवताओं के लिए यदि कहा गया हो तब ऐसे स्थान में अन्तर्यामी हरि को ही जानना चाहिए। स्वतंत्र होने से सर्वोत्तम श्री हरि के लिए कभी-कभी नीचे के देवताओं के कार्य को कहते हैं। एक स्थान पर बैठे रहने पर भी राजा के अधीन सेना की विजय या पराजय के लिए राजा को ही कहते हैं।

यत्रापि तु हरेर्नाम तदन्यत्र पुज्यते।
तदान्तरहरेस्तत्र गृहीतिर्नान्यथा भवेत्।
स्वातन्त्रयादवरत्वं च परस्यापि प्रयुज्यते।
स्थितस्यापि यथा राज्ञः स्वानां जयपराजयो। - पाद्ये।

इन प्रमाणानुसार अन्तर्यामी का ही अर्थ करना चाहिए।।52,53।।

ब्रह्मा जी ने जो सृष्टि किया उस सब सृष्टि के लिए उनके अन्तर्यामी श्री हरि ही मुख्यकर्त्ता हैं। ऐसा जानना चाहिए।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः।।

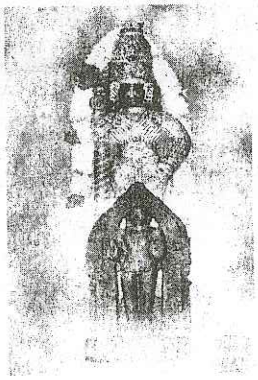

अथ द्वविंशोऽध्यायः

विदुर जी ने पूछा-"हे मैत्रेय जी! आप पूज्य हैं। स्वायंभुव मनु का वंश अत्यन्त उत्तम होना ज्ञानियों से माना गया है। जिसमें मैथुन धर्म के द्वारा प्रजा की वृद्धि हुई। अब आप मुझे उसकी कथा सुनाइए।।1।।

उन मनु राजा के प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र थे। सप्तद्वीप वाले इस पृथ्वी का धर्मपूर्वक पालन किये थे। उनकी कथा भी बताइए। पहले आपने बताया कि मनु राजा की पुत्री देवहूति कर्दम प्रजेश्वर की पत्नी है। महायोगी कर्दम ने यमादि सभी योग लक्षणों वाली देवहूति से कितनी सन्तानों की उत्पत्ति की। मैं उन सबको जानना चाहता हूँ कृपया बताइए।।2,3,4।।

इसी प्रकार रुचि प्रजेश्वर और दक्ष प्रजापति ने मनु की कन्याओं का पाणिग्रहण करके उनसे किस प्रकार क्या-क्या सन्ताने उत्पत्ति की यह सब चरित्र भी मुझे सुनाइए।।5।।

मैत्रेय जी ने कहा-"हे विदुर! ब्रह्मा जी ने कर्दम की सृष्टि करके उनको आज्ञा दी कि तुम सन्तान की उत्पत्ति करो तो उन्होंने दस हजार वर्ष तक सरस्वती नदी के तट पर तपस्या की।।6।।

एकाग्र चित्त से भक्तिपूर्वक वैदिक और तांत्रिक उपायों द्वारा शरणागत वरदायक श्री हरि की आराधना किये। यह कृत युग में हुआ।।7।।

वेदों के द्वारा जानने योग्य गुण परिपूर्ण पुण्डरीकाक्ष श्री हरि कर्दम की तपस्या से प्रसन्न हुए और अपने अप्राकृत आकार का दर्शन दिये।।8।।

श्री हरि दोषरहित हैं। सूर्य के जैसे प्रकाशमान थे। कमल की माला धारण किए थे। उनका सुन्दर कमल मुख था। उत्तम पीताम्बर धारण किए थे।।9।।

किरीट, कुण्डल शंख, चक्र और गदा धारण किए थे। उनके एक हाथ में क्रीड़ा के लिए श्वेत कमल सुशोभित था। उनकी मधुर मुस्कान भरी चितवन चित्त को चुराए लेती थी।।10।।

श्री हरि गरुड़ के कन्धे पर अपना चरण रखे हुए थे। उनके वक्षः स्थल में लक्ष्मी और कण्ठ में कौस्तुभमणि विराजमान थे। इस प्रकार श्री हरि आकाश में थे। ऐसे श्री हरि को देखकर कर्दम को सन्तोष हुआ। अपनी इच्छापूर्ण हुई जानकर भूमि पर साष्टांग प्रणाम किये। श्री हरि का स्मरण करते हुए हाथ जोड़कर श्री हरि की स्तुति किये।।11,12।।

"समस्त वेदों से प्रतिपाद्य श्री हरि पूर्ण ज्ञान और बल वाले आप मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिए हैं। अब तक मेरे नेत्र इत्यादि इन्द्रिय आपकी जो सेवा किए हैं वह सार्थक हुई। योगाभ्यास करने वाले और सिद्ध लोग सदा आपका ही ध्यान करते हुए अनेक जन्मों में आपके साक्षात्कार (दर्शन) की इच्छा करते हैं। मुझे तो आपका साक्षात्कार प्राप्त

हुआ। यह आपका अनुग्रह है। मेरा प्रयत्न इसके लिए निमित्त नहीं है। आप करुणामय हैं।।13।।

आपकी बन्धक शक्ति से जिनका ज्ञान नष्ट हो चुका है वे तनिक से विषय सुख के लिए संसार सागर के लिए नौका सदृश आपके चरण कमलों की आराधना करते हैं। इस प्रकार का अल्प विषय का सुख नीच योनि श्वान, सूकर आदि योनियों में भी बहुत सुलभ है। यहाँ पर कष्ट का अनुभव करने वाले सूकर आदि जन्मों को निरय शब्द से कहा गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ऐसे ग्राम्य सुख भी श्री हरि के अनुग्रह से प्राप्त होते हैं, तब राज्य इत्यादि विषयों के सुख क्या आपके अनुग्रह के बिना प्राप्त हो सकते हैं?।।14।।

मैं भी एक विषय कामना वाला हूँ। मैं अपने अनुरूप स्वभाव तथा अर्थ, धर्म एवं काम की प्राप्ति कराने वाली स्त्री पाने की इच्छा से कल्पवृक्ष की नाई सब कामनाएँ पूर्ण करने वाले आपके चरण कमलों की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।।15।।

हे स्वामिन्! आप दोष रहित हैं। ब्रह्मादियों के भी नियामक हैं। प्रजापालक आपके वचनरूपी वेद की डोरी से जीव समुदाय पशु की भाँति बंधा हुआ है। स्वर्गादि की इच्छा करके आपकी पूजा रूप में याग करते हैं। ऐसे लोगों में मैं भी एक हूँ। संसार दुःख को दूर करने वाले काल के अन्तर्यामी आपका मैं भी यज्ञ यागादि के द्वारा पूजा आराधना करता हूँ। विवाह के पश्चात् भी सेवा करूँगा। (पूजा और आराधना भगवदर्पण बुद्धि से करने पर भक्ति के लिए कारण होता है। इस अभिप्राय से कहते हैं।)।।16।।

इस जड़ देह और इसमें रहने वाले इन्द्रियों को आपको समर्पित करके आपके चरण कमलों की छाया में दुःख को दूर करके आश्रय करने वाले लोग जैसे नवजनित गऊ का दूध सुखदायक होता है, वैसे ही आपका गुणगान करते हुए देह यात्रा को चलाते हैं।।17।।

इसके फलस्वरूप वह जनन-मरण से छुटकारा पाते हैं। तब वे आपके काल चक्र के प्रभाव में न आकर कालातीत कहलाते हैं, नित्य सुख का अनुभव करते हैं। आपके कालचक्र की धुरी कभी घिसने वाली नहीं है। उसके तेरह (अधिक मास के साथ) मास ही अरे हैं। तीन सौ साठ दिन ही उसके जोड़े हैं। छः ऋतु उस चक्र की नेमि है। तीन चातुर्मास्य ही उसके आधारभूत नाभि हैं, ऐसा आपके वेगवान् कालचक्र जगत की आयु का छेदन करते हुए घूमते रहते हैं। पुनः पुनः आने से यह चक्र कहलाते हैं। किन्तु आपके मुक्त भक्तों की आयु को नाप नहीं सकते हैं।।18।।

इसलिए मैं भी संसार से मुक्त होने की इच्छा से निवृत्तिमार्ग का अनुसरण करुँगा। हे देव! आप एक ही समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं। आप उदर में समस्त जगत को धारण किए हैं। जगत की सृष्टि करने की इच्छा से आपके अपने अधीन चित् प्रकृति और जड़ प्रकृति को उपयोग करके समस्त जगत की सृष्टि करते हैं। आप अपने स्वरूप सामर्थ्य से मत्स्यादि रूपों से इस जगत् की रक्षा करते हैं। तत्पश्चात् मकड़ी की भाँति इन सबको आप अपने उदर में रखकर शयन करते हैं। यह सब आपके लिए लीला मात्र हैं।।19।।

आपही ब्रह्मादियों के नियामक हैं। ब्रह्माण्ड ही आपका प्रतिमा रूप है। किन्तु आपका स्वरूप नहीं है।

आपका स्वरूप सच्चिदानन्दात्मक है। इस प्रकार का भेदज्ञान ही मोक्ष का कारण है। अभेदज्ञान दुःख का कारण है। यदि भगवान का स्वरूप अप्राकृत है, तो कर्दम ने इस रूप को कैसे देखा? आप ध्यान करने वाले भक्तों पर अनुग्रह करके इस रूप का दर्शन कराते हैं। आपके अनुग्रह के बिना इस रूप का ही ध्यान किया था। इसीलिए उनको अप्राकृत रूप का दर्शन मिला। श्री हरि स्वामी हैं और जीव उनके भृत्य हैं, यही ज्ञान मोक्ष का साधन है।।20।।

आपको देह निमिक फल नहीं है तथा आपको विषयानुभव जन्य सुख भी नहीं है। आप अपनी इच्छा से लोक व्यवहार के लिए आवश्यक साधनों की सृष्टि किये हैं। लक्ष्मी आदि सभी आपके चरणों में प्रणाम करती हैं। अल्प भक्त ही क्यों न हो आप उन पर दया किए बिना नहीं रहते हैं। इसके लिए मैं ही साक्षी हूँ। अल्प साधन वाले मेरे अभीष्ट को पूरा करने के लिए आप मुझे दर्शन दिए हैं।" ऐसी स्तुति किया।।21।।

श्री मैत्रेय जी कहते हैं-कर्दम ने निष्कपट भाव से इस प्रकार भक्ति से प्रणाम किया, तब गरुड़ के कंधे पर विराजमान श्री हरि अमृतमयी वाणी से कहने लगे।।22।।

श्री भगवान् ने कहा-"हे ऋषिवर्य! जिसके लिए तुमने आत्म संयमादि के द्वारा मेरी भक्तिपूर्वक आराधना की है। तुम्हारे हृदय के उस भाव को जानकर मैंने पहले ही तुम्हारी इष्ट सिद्धि के लिए स्वायंभुव मनु को प्रेरित किया हूँ।।23।।

तुम सब प्रजेश्वरों में उत्तम हो। मेरी सेवा कभी व्यर्थ नहीं होती है। उसमें भी तुम जैसे भक्तों द्वारा मनः पूर्वक की हुई सेवा क्या व्यर्थ हो सकती है?।।24।।

मरीच्यादि प्रजेश्वरों की रक्षा करने वाले स्वायंभुव मनु ब्रह्मावर्त में रहकर सात समुद्र वाली सारी पृथ्वी का शासन करते हैं। वे परम धर्मज्ञ महाराज महारानी सतरूपा के साथ तुमसे मिलने के लिए परसों यहाँ आवेंगे।।25,26।।

वह राजा अपनी औरस पुत्री को जो अपने अनुरूप वर की खोज में है, उसके योग्य पति समझकर उसे आपको अर्पण करेंगे।।27।।

हे ब्रह्मण! विगत दस हजार वर्षों में तुम्हारा अन्तःकरण बहुत एकाग्र रहा है अतएव! वह राज कन्या तुम्हें शीघ्र वर कर तुम्हारी समुचित सेवा करेगी।।28।।

आपसे गर्भ धारण करके नौ कन्याओं को जन्म देगी। मैं जैसे कहता हूँ, यदि उसी प्रकार से करोगे तो उन नौ कन्याओं को मरीचि आदि नौ ज्ञानी लोग विवाह करके उनसे सन्तान उत्पन्न करेंगे।।29।।

तुम भी मेरी आज्ञा का भली-भाँति पालन करने से शुद्धचित्त होकर गृहस्थ धर्म को भक्ति पूर्वक अनुष्ठान करके, सब कर्मों का फल मुझको अर्पण करके मुझे ही प्राप्त होवोगे।।30।।

गृहस्थ धर्म से निवृत्त होकर सब प्राणियों में दया करते हुए अभय प्रदान करने वाले सन्यास आश्रम को ग्रहण करो। मैं समस्त जगत को धारण किये हूँ। मैं समस्त जगत में व्याप्त हूँ। समस्त जगत से भिन्न हूँ। इस प्रकार

जानकर आत्मज्ञानी होकर मेरी ही शरण में आओ। इससे तुम्हें मेरा अपरोक्ष ज्ञान होगा। यहाँ पर श्री हरि का आधार होना और जीवों को उनका आश्रय करके रहना कहा गया है। इस प्रकार के ज्ञान से श्री हरि का प्राप्त होना बतलाया गया है, इसलिए इससे स्पष्ट होता है कि भेदज्ञान ही मोक्ष का साधन है, और यही सन्यास आश्रम के अनुष्ठान का फल है।।31।।

इतना ही नहीं तुम पर एक और अनुग्रह करता हूँ। एक अंश से तुम्हारे वीर्य में प्रवेश करके देवहूति के गर्भ से अभिव्यक्त होकर तत्वसंख्यान नामक "**सांख्यशास्त्र**" रचूँगा।।32।।

श्री हरि का चिन्तन करने वाले कर्दम ऋषि को इन्द्रियों के द्वारा दिखाई दिये। श्री हरि कर्दम ऋषि को प्रत्यक्ष दर्शन देकर उनको समाधान करके सरस्वती नदी के बिन्दु सरोवर से अपने लोक को लौट गए।।33।।

ब्रह्मादि देवता भक्ति पूर्वक उनकी स्तुति कर रहे थे। सनकादि उनका ध्यान करते रहे। वे कर्दम जी के देखते-देखते अपने लोक को सिधार गए। उस समय गरुड़ जी के पंखों से उत्तम सामवेद की विशेष ऋचाएँ निकल रही थीं, उन्हें वे सुनते जाते थे।।34।।

हे विदुर जी! शुक्ल रूपी श्री हरि के चले जाने पर कर्दम जो त्रिकाल ज्ञानी थे, वे श्री हरि की आज्ञानुसार उनके बतलाए हुए काल की प्रतीक्षा करते हुए बिन्दु सरोवर क्षेत्र में ही रहे।।35।।

हे विदुर! भगवान् का वचन क्या असत्य हो सकता है? जो समय बताए थे उसके अनुसार मनु भी महारानी शतरुपा के साथ स्वर्ण रथ पर सवार होकर तथा उस पर अपनी कन्या को भी साथ लेकर पृथ्वी पर विचरते हुए महर्षि कर्दम के आश्रम पर पहुँचे।।36,37।।

सरस्वती के जल से भरा हुआ यह बिन्दुसरोवर वह स्थान है जहाँ अपने शरणागत भक्त कर्दम के प्रति उत्पन्न हुई अत्यन्त करुणा के वशीभूत हुए भगवान के नेत्रों से हर्ष के आँसुओं की बूँदे गिरी थीं। यह तीर्थ बड़ा पवित्र है।. सभी महर्षियों से स्नानादि से सेवित है।।38,39।।

उससे मोक्षमार्ग में साधन करते हैं। वह क्षेत्र अश्वत्थ आदि वृक्ष, मनोहर लताओं से घिरा है। विविध भाँति की बोली बोलने वाले तथा पवित्र पक्षी निवास करते हैं। सभी ऋतुओं के फल और पुष्परूपी सम्पत्ति से सम्पन्न था।।40।।

वह विविध मतवाले पक्षियों से सेवित, मत्त भ्रमरो से गुञ्जायमान, आनन्द भरे मयूररूपी नटों के नाट्य से सुशोभित एवं मत्त कोकिल की कुहू कुहू करके मानों एक दूसरे को बुला रहे थे।।41।।

कदम्ब, चम्पक, अशोक, करंज, बकुल, असन कुन्द, मन्दार, कुटज एवं साल के पौधों से वह अतिशय शोभायमान था।।42।।

वहाँ कारण्डव, (जल कौए) बत्तक, आदि जलचारी पक्षी, हंस, कुरर पक्षी, जल कुक्कुट, सारस, चक्रवाक तथा चकोर आदि पंछी नाना प्रकार की मनोहर बोली बोल रहे थे।।43।।

हरिण, शूकर, स्याही, नीलगाय, हाथी, लंगूर, सिंह, वानर, नकुल एवं कस्तूरी मृग आदि वन्य पशुओं से

वह आश्रम भरा हुआ था।।44।।

मनु राजा ऐसे उत्तम तीर्थ में अपने परिवार के साथ आए। आश्रम में प्रवेश करके निकट जाने पर कर्दम ऋषि को देखा। कर्दम ऋषि होम आदि समाप्त करके श्री हरि का मनन करते हुए बैठे थे।।45।।

उनका देह तप के प्रभाव से परम तेजस्वी दिखाई पड़ता था और भगवान की प्रेमभरी चितवन के दर्शन एवं उनके द्वारा उच्चरित कर्णामृत रूपी मधुर वचनों के सुनने से वह बहुत दुर्बल नहीं दीखते थे।।46।।

उनका शरीर लम्बा था, नेत्र कमल दल की भाँति विशाल और सुन्दर थे। उनके सिर पर जटाएँ सुशोभित थीं और वे कमर में चीरवस्त्र पहने थे। देखने में वे ऐसे जान पड़ते थे जैसे बिना सान पर चढ़ा मूल्यवान मणि मलिन दीखता है।।47।।

राजा ने अन्दर प्रवेश किया और कर्दम को भक्ति से प्रणाम किया। कर्दम ने भी राजा का स्वागत सत्कार किया।।48।।

राजा विनम्रता से बैठे रहे। कर्दम के मन में तो श्री हरि की आज्ञा का ही स्मरण था। कर्दम ने मधुर वचनों से राजा को सन्तुष्ट करते हुए कहा।।49।।

हे राजन्! आप का राज्य में विचरण करना, सज्जनों की रक्षा तथा दुष्टों का संहार करने के लिए है। आप में भगवान की सात्विक पालन शक्ति है। जैसे दर्पण में मुख दिखाई पड़ता है वैसे ही यह सात्विक पालन शक्ति आपमें व्यक्त रूप में दिखाई देती है। आपका इस प्रकार का संचार करना सार्थक है।।50।।

आपमें श्री हरि सन्निहित होने से उन-उन समयानुसार सूर्य के जैसे प्रकाशक, चन्द्र के समान आह्लादक, इन्द्र के जैसे ऐश्वर्य प्रद, वायु के जैसे श्रेष्ठ, दुष्ट लोगों में यम के समान करुणारहित, धर्म के जैसे पुण्य पाप का विमर्शक, अग्नि जैसे अन्य लोगों से अदृश्य है। ऐसे आपके लिए नमस्कार है।।51।।

यदि आप इस प्रकार से संचार करते हुए पापियों को दण्डित न करें तथा सेना सहित भूमंडल में सूर्य के जैसे पर्यटन न करें तो चोर और डकैत अधिक होकर श्री हरि से निर्माण किए हुए वर्णाश्रम धर्मों का नाश कर देंगे।।52,53,54।।

विषयासक्त धर्मद्रोही निरंकुश अधर्म ही बढ़ता जायेगा। धर्म कहीं भी दिखाई न देगा। यदि आप न्याय और अन्याय का विचार न करने पर आप सोये वैसा हैं। तब संसार चोरों से भर जाएगा। और व्यवहार करना कठिन हो जायेगा।।55।।

तथापि हे वीर! आप किस कार्य विशेष से यहाँ पधारे हैं-यह मेरी जिज्ञासा है। आप जिस उद्देश्य से आश्रम में आए हैं उसके लिए आप चिन्ता मत कीजिए। आपके इष्टार्थ को मैं निष्कपट भाव से पूरा करूँगा।।56।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः।।

अथ त्रय विंशोऽध्यायः

मैत्रेय जी कहते हैं-हे विदुर! अपने सब गुण तथा कर्मों की श्रेष्ठता का वर्णन सुन महाराज मनु ने कुछ सकुचाकर ध्यान परायण कर्दम मुनि से कहा।।1।।

ब्राह्मण श्री हरि के मुख से उत्पन्न हुए हैं। उनके लिए वेद ही मुख्य हैं। ब्राह्मण देह से कष्ट सहन करते हुए व्रताचरण करते हैं। शास्त्र ज्ञान और भगवद्भक्ति से सम्पन्न होते हैं। शम, दमादि गुणों से युक्त होकर रहते हैं, विषयों में आसक्त नहीं होते हैं। ऐसे ब्राह्मणों की सृष्टि क्षत्रियों के रक्षा के लिए ही हैं।।2।।

क्षत्रियों की सृष्टि ब्राह्मणों की रक्षा के लिए ही है। इन दोनों में से श्री हरि के लिए ब्राह्मण अत्यंत प्रिय हैं।।3।।

इन सबको ज्ञानी लोग जानते हैं। ब्राह्मण और क्षत्रिय परस्पर एक दूसरे की रक्षा करते हैं। ब्राह्मण अपनी भी रक्षा कर लेते हैं। सर्वत्र व्याप्त श्री हरि सदा इन दोनों की रक्षा करते रहते हैं।।4।।

"हे मुने! आपके दर्शन और आपके वचनों से मेरे मन के सभी संशय दूर हो गए। आपने प्रेमपूर्वक राजधर्मों को बताया है।।5।।

पापी लोगों को आपका दर्शन नहीं हो सकता है। ऐसे आपने मुझे दर्शन देकर मुझ पर अनुग्रह किया है। मैं आपके पावन चरण रज को अपने सिर पर धारण करके पवित्र हो गया हूँ।।6।।

यह मेरा सौभाग्य है। आप मुझे धर्म का उपदेश करके मुझपर अत्यधिक अनुग्रह किए हैं। आपके अमृत भरे वचनों को सावधानी से श्रवण किया हूँ।।7।।

यह सब पुण्य के बिना सुलभ नहीं हो सकता है। आप श्री हरि का ही मनन करने वाले हैं। हे मुने-इस कन्या के स्नेहवश मेरा चित्त बहुत चिन्ताग्रस्त हो रहा है। अतः मुझ दीन की यह प्रार्थना आप कृपापूर्वक सुनें।।8।।

मुझे प्रियव्रत और उत्तानपाद ऐसे दो पुत्र हैं। यह कन्या उनकी भगिनी है। इसका नाम देवहूति है। अवस्था, शील और गुण आदि में अपने योग्य पति को पाकर सुख से रहने की इच्छा रखती है।।9।।

एक बार नारद जी मेरे घर पर पधारे थे उन्होंने आपके स्वभाव, पाण्डित्य, सौन्दर्य, यौवन और सद्गुणों का वर्णन किया था। इसको सुनने के पश्चात् आपको ही पति के रूप में स्वीकार करने का निश्चय किया है।।10।।

हे ब्राह्मणोत्तम! इसकी इच्छानुसार श्रद्धा के साथ आपके साथ विवाह करके आपको समर्पण करने के लिए आपके पास आया हूँ। कृपा करके स्वीकार कीजिए। यज्ञ यागादि और आपके समस्त कर्मों में यह आपके योग्य है।।11।।

जो भोग स्वतः प्राप्त हो जाय उसकी अवहेलना करना विरक्त पुरुष को भी उचित नहीं है फिर विवाह के

लिए जो इच्छुक है विवाह के लिए आई हुई कन्या का तिरस्कार करना क्या उचित है। इस श्लोक में "**निर्मुक्त संगस्य**" का अर्थ सन्यासी के लिए ऐसा अर्थ नहीं करना चाहिए। क्योंकि उसको स्त्री का सेवन ही निषिद्ध और नरक आदि अनर्थ का कारण है। इसके लिए प्रमाण-

यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा पुनः सेवेत मैथुनं।
षष्टिवर्ष सहस्त्राणि विष्टायां जायते कृमिः।।12।।

कन्या के पिता का यही कर्तव्य है कि जो विवाह करना चाहते हैं उन्हें कन्या को देना चाहिए। किन्तु अयोग्य को नहीं। अयोग्य पुरुष को कन्या देने पर उसकी कीर्ति और गौरव नष्ट हो जाता है।।13।।

आप गुरुकुल में विद्याभ्यास समाप्त करके गुरु की आज्ञा लेकर योग्य कन्या के साथ विवाह करना चाहते हैं ऐसा मैंने सुना है। श्रद्धापूर्वक अपनी कन्या को आपको देने के लिए आया हूँ। कृपया स्वीकार करके अनुग्रह कीजिए ऐसी प्रार्थना किया।।14।।

कर्दम मुनि ने कहा-"हे राजन्! आपने जो कहा है वह युक्त ही है। मैं विवाह करना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि आपकी कन्या विषयासक्त न होकर पति की सेवा सुश्रूषा करते हुए त्रिविध (धर्म, अर्थ, काम) पुरुषार्थ के लिए कारण होगी। आज ही हम दोनों का ब्राह्म विवाह विधि से विवाह होने दो।।15।।

अपनी कान्ति से अन्य को लज्जित करने वाली लक्ष्मी जैसी आपकी पुत्री का कौन पुरुष आदर न करेगा।।16।।

वेद में बतलाए जैसे इसको दस सन्तान और ग्यारहवाँ पति। अपने महल की छत पर खेलते समय चरण के नुपुरों की झनकार करती तथा कन्दुक क्रीडा के कारण चपलनयन तुम्हारी जिस कन्या को देखकर विश्वावसु गन्धर्व मुग्धचित्त होकर अपने विमान से गिर पड़ा था।।17।।

ऐसी सुन्दरी को देखने के लिए पुण्यवान होना चाहिए। तब सुन्दर मनुपुत्री उत्तानपाद की भगिनी जो विवाह की इच्छुक है। ऐसी श्रेष्ठ कन्या को सत्कुल में उत्पन्न हुआ पण्डित भी तिरस्कार न करेगा।।18।।

मैं भी उसका तिरस्कार नहीं करता हूँ। परन्तु इनसे सन्तान प्राप्त होने तक इनके साथ रहूँगा। तत्पश्चात् श्री हरि के उपदेशानुसार सन्यास धर्म का आश्रय लूँगा।।19।।

पशु हिंसा इत्यादि से रहित यति धर्मानुष्ठान के लिए मैं चला जाऊँगा। यह जगत प्रमाण सिद्ध है, सत्य है, तारतम्य से युक्त और विचित्र है। श्री हरि जगत निमित्तकारण हैं और जगत इसकी धर्म के रक्षा करने वाले भी वही हैं और अन्त में अपने उदर में रख लेने वाले भी वही हैं। वह देश, काल और गुणों में अनन्त हैं। समस्त प्रजेश्वरों के पालक हैं। इस विषय में हम दोनों के लिए वही सर्वोत्तम साक्षी हैं।।20।।

मैत्रेय जी कहते हैं-हे विदुर! इतना कहकर कर्दम मौन हो गए। मन में श्री हरि के गुणों का ध्यान करते हुए बैठ गए। उस समय उनके मन्द हास्य युक्त मुख कमल को देखकर देवहूति का चित्त लुभा गया। श्री हरि का ध्यान करते हुए बैठे। उनके सभी इष्टार्थ सिद्ध होने के पश्चात् श्री हरि से क्या करना है। ऐसा उनमें अनादर की वृद्धि उत्पन्न नही हुई। किन्तु उनके अनुग्रह से ही समस्त कार्य पूर्ण हुए हैं ऐसा जानकर सदा उन्हीं का स्मरण करते

रहे।।21।।

मनु जी ने देखा कि इस संबंध में महारानी शतरूपा और राजकुमारी की स्पष्ट अनुमति है। अतः उन्होंने अनेक गुणों से सम्पन्न कर्दम जी के उन्हीं के समान गुणवती अपनी कन्या का प्रसन्नतापूर्वक दान कर दिये।।22।।

महारानी शतरूपा ने भी पुत्री और दामाद को बड़े प्रेमपूर्वक बहुत से बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण और गृहस्थोचित्त पात्र आदि दहेज में दिये।।23।।

इस प्रकार सुयोग्य वर को अपनी कन्या देकर महराज मनु निश्चिन्त हो गए। भावी विरह से व्याकुल राजा मनु ने देवहूति को हृदय से लगाकर पुत्री-पुत्री कहकर इतने आँसू बहाए कि सिर के बाल भीग गये।।24,25।।

कर्दम ऋषि से अनुमति लेकर अपनी रानी और साथियों समेत महाराज मनु सरस्वती नदी के तटों पर बने हुए शान्त तथा शिष्ट मुनियों के आश्रमों को देखते हुए अपनी राजधानी को चल दिए।।26,27।।

जब ब्रह्मावर्त की प्रजा को यह समाचार मिला की राजा मनु नगर में वापस आ रहे हैं तब वे अत्यन्त आनन्दित होकर स्तुति गीत एवं बाजे के साथ अगवानी करने के लिए आए।।28।।

सब प्रकार की सम्पदाओं से युक्त बर्हिष्मती नगरी मनुजी की राजधानी थी। जहाँ पृथ्वी को रसातल से लाने के पश्चात् शरीर झाड़ते समय श्री वराह भगवान के रोम झड़कर गिरे थे। वराह भगवान में और उनके रोम में भेद नही है। उनके रोम सच्चिदानन्दात्मक हैं। प्रत्येक रोम से एक-एक अवतार अभिव्यक्त हुए।।29।।

उन सच्चिदानन्द रोम से हरे भरे रहने वाले कुश और काश उत्पन्न हुए। जिनमें दैत्यों को पराभव करने की शक्ति थी। यज्ञ में विघ्न करने वाले दैत्यों को पराजय करने के लिए ऋषियों ने इनका उपयोग किया और यज्ञ के द्वारा श्री हरि की सेवा की। उन कुश और काश में यज्ञ विरोधी दैत्यों को जो पराभव करने की शक्ति थी वह श्री हरि के रोम की ही थी न कि कुश और काश की थी। जैसे गरम लोहा वस्तुओं को जलाता है तो वह जलाने की शक्ति लोहे में व्याप्त अग्नि की होती है न कि लोहे की।।30।।

उस नगर में रहकर मनु राजा दर्भ से बनाए हुए दर्भासन विछाकर श्री हरि के सेवा रूप में यज्ञ किये थे। जिसकी महिमा से उनको श्री हरि के शाश्वत स्थान की प्राप्ति हुई। (इसी कारण यह नगरी बर्हिष्मती नाम से प्रसिद्ध हुई)।।31।।

मनु राजा उस नगर में प्रवेश करके राजमहल में सुख से रहे। वहाँ दुःख के लिए कोई अवकाश ही नहीं था। वह अपनी स्त्री, पुत्रों के साथ रहकर विषय सुखों का अनुभव करते रहे जो धर्मविरुद्ध नहीं था।।32।।

गन्धर्व अपनी स्त्रियों के साथ प्रातः काल में आकर राजा का गुण गान किया करते थे, किन्तु मनु महाराज उसमें आसक्त न होकर भगवान की ही कथा श्रवण करते हुए मनन करते थे।।33।।

अणिमादि योग सिद्धियों में मनु राजा कुशल थे। इस पर भी सदा वह श्री हरि में ही आसक्त थे। विषय सुख भोगने पर भी भगवद् कथा श्रवण करने में उनका आदर कम नहीं हुआ।।34।।

भगवान विष्णु की कथाओं का श्रवण, मनन, ध्यान और निरूपण करते रहने के कारण उनके मन्वन्तर को

व्यतीत करने वाले क्षण कभी व्यर्थ नहीं जाते थे।।35।।

इस प्रकार वह अपने मन को श्री हरि में ही स्थित करते हुये तीन प्रकार के अधोगतियों (तिर्यक जन्म, नरक यातना और अन्धन्तमस) पर विजय प्राप्त करके अपने मन्वन्तर का काल इकहत्तर महायुग (कृत, त्रेता, द्वापर और कलि इन चार को एक महायुग कहते हैं ऐसे महायुग का इकहत्तर बार व्यतीत होने पर एक मन्वन्तर कहलाता है।) को पूरा किया।।36।।

श्री हरि के ही शरण में जाने से मनुष्य शरीर में रहने पर भी मनु राजा को शारीरिक, मानसिक, दैविक, मानुषिक अथवा भौतिक दुःख आने पर भी उन्हें सता नहीं सके।।37।।

जब ऋषिगण राजा मनु से प्रश्न करते थे तब वह मनुष्यों के वर्ण और आश्रम के अनेक धर्मों को प्रमाण सहित बतलाते थे। उन धर्मों के अनुष्ठान करने से श्री हरि प्रसन्न होकर उनको सद्गति प्रदान करते हैं। ऐसे धर्मों को बतलाने वाले मनु राजा समस्त प्राणियों के लिए हितकर थे, ऐसा क्या कहना है। उनको दुःख भी तो कैसे होगा।।38।।

यही प्रथम राजा थे। उनका चरित्र महत्त्वपूर्ण था। इसको विस्तार पूर्वक अवश्य कहना चाहिए। जिसको मैंने तुमसे कह सुनाया। हे विदुर! अब उनकी पुत्री देवहूति के सन्तति का हाल सुनिए।।39।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे त्रय विंशोऽध्यायः।।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

मैत्रेय जी ने कहा-हे विदुर जी! माता पिता के चले जाने पर पति के अभिप्राय को समझ लेने में कुशल साध्वी देवहूति कर्दम जी की प्रतिदिन प्रेमपूर्वक सेवा करने लगी। ठीक उसी तरह जैसे पार्वती जी भगवान शंकर की सेवा करती हैं।।1।।

वह काम वासना, दम्भ, द्वेष, लोभ, पाप और मद को त्याग कर बड़ी सावधानी और लगन के साथ सेवा में तत्पर रहकर विश्वास, पवित्रता, गौरव, संयम, सुश्रुषा, प्रेम और मधुर भाषणादि गुणों से अपने परम तेजस्वी पति देव को सन्तुष्ट कर लिया।।2,3।।

मनु राजा की पुत्री होने पर भी इतनी सेवा करते हुए देखकर कर्दम को दया आयी। वे जान लिए कि मुझसे एक उत्तम सन्तान प्राप्त करने की उसकी इच्छा है। बहुत दिनों तक अपनी सेवा करने वाली उस मनु पुत्री को व्रतादि का पालन करने से दुर्बल हुई देख देवर्षि श्रेष्ट कर्दम को दयावश कुछ खेद हुआ और उन्होंने उससे प्रेमगद्गद् वाणी में कहा।।4,5।।

कर्दम जी ने कहा-हे मानिनि! आप की सेवा और अनुपम भक्ति से मैं सन्तुष्ट हुआ हूँ। सभी देहधारियों को अपनी देह बहुत प्रिय एवं आदर की वस्तु होती है। किन्तु तुमने मेरी सेवा के आगे उसके क्षीण होने की भी कोई परवाह नहीं की।।6।।

मैंने अपने धर्मों का पालन करते हुए तप, समाधि, शास्त्राध्ययन और वैराग्य से श्री हरि को प्रसन्न करके उनके अनुग्रह से ज्ञान प्राप्त किया है। यह उनकी निरन्तर उपासना का फल है। उस ज्ञान को ही मैं तुम्हारे सेवा के फल रूप में देना चाहता हूँ। जिससे संसार का भय दूर होगा। दुःख का नाश होगा। वह तुम्हें शीघ्र ही फल देगा।।7।।

स्वर्ग इत्यादि लोक नश्वर है। श्री हरि अपनी इच्छा से इन लोकों का नाश करते हैं। उनकी इच्छामात्र से ही यह सब लोक नष्ट हो जाते हैं। इसलिए ऐसे लोकों को प्राप्त करने की विद्या से कोई प्रयोजन नहीं है। हे प्रिये! तुम मोक्ष आदि पुरुषार्थ को प्राप्त करने के योग्य हो। बहुत सा धन व्यय करने से तथा परिश्रम से किए जाने वाले अश्वमेघ आदि यज्ञों के द्वारा प्राप्त न होने वाले सम्पत्ति को तुम अब प्राप्त करोगी। जिससे धर्माचरण करने में सुविधा होगी। देवलोक की उस सम्पत्ति का तुम यहाँ पर ही अनुभव करो।।8।।

मैत्रेय जी ने कहा-कर्दम जी के इस प्रकार कहने से अपने पतिदेव को सम्पूर्ण योग विद्यायों में कुशल जानकर उस अबला की सारी चिन्ता जाती रही। वह अपनी इच्छा को कर्दम से कहने में किंचित संकोच की। चितवन और मधुर मुस्कान से उसका मुख खिल उठा और वह विनय एवं प्रेम से गद्गद् वाणी में इस प्रकार कहने लगी।।9।।

देवहूति ने कहा-हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! आप जो कुछ कहे हैं वह सब सिद्ध वचन है। हे पतिदेव! आपकी योगसिद्धियाँ कभी व्यर्थ होने वाली नहीं है। उसको मैं जानता हूँ। इस पर भी पतिव्रता स्त्रियों के लिए गुणवान पति देव के अंग संग सन्तान के लिए कारण होता है। इसलिए आपने पूर्व में जो वचन दिया है उसके अनुसार आपका अंग संग होने की मेरी इच्छा है। क्योंकि श्रेष्ठ पति के द्वारा सन्तान प्राप्त होना पतिव्रता स्त्री के लिए महान लाभ है।।10।।

हम दोनों के समागम के लिए शास्त्र के अनुसार जो कर्त्तव्य हो उसका आप उपदेश दीजिए। अन्य उपयोगी सामग्रियाँ भी जुटा दीजिए। जिससे मिलन की इच्छा से अत्यन्त दीन, दुर्बल हुआ मेरा यह शरीर आपके अंग संग के योग्य हो जाय।।11।।

मैत्रेय जी कहते है-हे विदुर जी! सन्त महात्मा आश्रित वत्सल होते हैं। पत्नी के इन वचनों को सुनकर कर्दम ने उनकी इच्छा को पूर्ण करने के लिए श्री हरि का ध्यान करके उनके अनुग्रह से सर्वत्र संचार करने वाला एक विमान प्रकट कर दिया।।12।।

वह विमान सब प्रकार से इच्छित भोग सुख प्रदान करने वाला, अत्यन्त सुन्दर, सब प्रकार के रत्नों से युक्त, सब सम्पत्तियों की उत्तरोत्तर वृद्धि से सम्पन्न तथा मणिमय खम्भों से सुशोभित था।।13।।

प्रत्येक ऋतु के अनुकूल सामग्री का उसमें प्रबन्ध था। उसमें रंग बिरंगी मालाएँ स्थान-स्थान पर टँगी हुई थीं, जिन पर भौरे गुंजार कर रहे थे। उसमें बहुमूल्य रेशमी और सूती बिछौने बिछे थे, विचित्र चैन्दोवे तट थे।।14,15।।

वह विमान कई मंजिलों का था और हर मंजिल बढ़िया पलंग, बिछौना तथा पंखे आदि से सजा हुआ था। बैठने के लिए आसन सिद्ध थे।।16।।

चित्र आदि से उसकी सजावट की गई थी। उसमें नीलम की फर्श थी और बैठने के लिए मूँगे के चबूतरे बने हुए थे। देहलियाँ भी मूँगे की ही थीं, किवाड़ों में हीरे जड़े हुए थे। उसमें इन्द्रनील मणि के शिखर थे, जिन पर सोने के कलश रखे हुए थे।।17,18।।

उनकी दीवालें हीरे की थीं और उसमें लालमणि जड़े रहने से ऐसा जान पड़ता था कि वे विमान के नेत्र हैं। उसमें सोने के हंस बन्दनवार बँधे हुए थे।।19।।

जहाँ-तहाँ ऐसे उत्तम हंस तथा कबूतर बने हुए थे कि उन्हें असली समझकर सचमुच के हंस और कबूतर उनके पास बैठकर बोलने लगते थे।।20।।

उस विमान में उपयुक्त स्थलों पर विश्रामगार, विहार-भूमि, शयन-मन्दिर, आँगन और खुले मैदान बने हुए थे। इस अद्भुत रचना के देखने से राजकुमारी को भी विस्मय हुआ।।21।।

उसमें सेवा करने के लिए कोई नहीं था। इसलिए मनु पुत्री को तृप्ति नहीं हुई। उसके मनके इस अभिप्राय को कर्दम ने जाना। कर्दम ऋषि को सबके मन में रहने वाली बात को जानने की योग्यता थी। कर्दम ऋषि ने अपनी स्त्री से कहा-हे प्रिये! इस सरोवर में स्नान करो। तत्पश्चात् विमान पर चढ़ो। लोगों के कल्याण के लिए ही शुक्लरूपी श्री हरि ने इस सरोवर का निर्माण किया है।।22,23।।

कमलनयनी देवहूति की धोती मैली थी, बाल चिपक जाने से लटें उलझ गई थीं, देह में मैल जमा हुआ था और पयोधर शोभाहीन हो गए थे। पति की आज्ञ मान कर सरस्वती तटवर्ती उस सरोवर में गोता लगाने पर जल के भीतर ही एक घर में ऐसी एक हजार तरुणियों को देवहूति ने देखा।।24,25,26।।

वे सभी सोलह वर्ष की थीं। उनकी देहें सुगन्धमय थीं। वे तरुणियाँ देवहूति को देखते ही उठ खड़ी हुईं और हाथ जोड़कर कहने लगीं कि हम आप की दासियाँ हैं। आज्ञा दीजिए, हम आप की क्या सेवा करें? ऐसी प्रार्थना की।।27।।

दासियों को देखकर राजपुत्री का मन प्रसन्न हुआ। दासियों ने उनको स्नान कराया और नए और शुद्ध रेशमी वस्त्र पहनाया। प्रकाशमान और बहुमूल्य आभूषणों से उनको अलंकृत किया। उन्होंने षडरस भोजन कराकर अमृत के समान स्वादिष्ट जल पीने को दिया।।28,29।।

तब देवहूति का शरीर पहले के जैसे नहीं था। अब देवहूति ने दर्पण देखा तो उसे दिखाई पड़ा कि वह साफ धोती पहने हुए हैं, दासियाँ आदरपूर्वक मंगलाचार कर रही हैं। वह सोने और रत्नों के हार पहने हुए हैं, हाथों में कड़े; पैरों में स्वर्ण की पायजेवे और कमर में जड़ाऊ करधनी पहने हुए हैं।।30,31।।

उसके माथे में कुंकुम, और देह में अंगराग लगा हुआ है। सुन्दर दाँन्तों, अच्छी भौहों, प्रेमपूर्ण चितवन, बड़ी-बड़ी आँखों और काली लटों से उसका मुख बड़ा सुन्दर मालूम पड़ता था।।32,33।।

पति के बिना ऐसे सौन्दर्य का कोई प्रयोजन नहीं है इस प्रकार का विचार करते ही वह दासियों सहित कर्दम ऋषि के पास पहुँच गई। कर्दम ऋषि के सामने ही सहस्र दासियों के साथ अपने को देखकर उसको कर्दम ऋषि के भगवद्भक्ति का ज्ञान हुआ।।34।।

हे विदुर! स्नान करने के पश्चात् उसमें अपूर्व शोभा दिखाई पड़ती थी। देवहूति मंगलस्नान करके बढ़िया वस्त्र पहनने से नई दुलहिन सी सुन्दर लगती थी, वह चोली पहने हुए हैं और हजारों विद्याधारियाँ (विद्याधर स्त्रियाँ) उसकी परिचर्या कर रही हैं। उसे देखकर कर्दम ऋषि ने प्रेमवश हो उसे विमान में बैठा लिया।।35,36,37।।

भगवद्भक्त कर्दम ऋषि इतने विषयासक्त होने पर भी उनकी महिमा कम नहीं हुई। कर्दम ऋषि सोलह वर्ष के युवक थे। विमान में रहकर आकाश में जैसे तारों के साथ चन्द्रमा प्रकाशमान होता है वैसे ही प्रकाशमान थे।।38।।

अष्ट दिक्पालों के बिहार करने के स्थान कुलपर्वत की गुहाओं में बिहार किया। वैश्रम्भक, देववन, नन्दनवन, पुष्पभद्रक और चैत्ररथ इत्यादि उद्यानवनों में तथा मानस सरोवर में देवहूति को सन्तुष्ट करते हुए बिहार किए।।39,40।।

कर्दम ऋषि का देदीप्यमान विमान चाहे जहाँ जा सकने वाला और बड़ा मूल्यवान था। इस वेगगामी विमान पर बैठकर कर्दम ऋषि सब विमानचारियों से आगे जाकर इच्छानुसार विचरते थे।।41।।

उनके लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी क्योंकि जिन चरणों से गंगा जी निकली हैं उन चरणों में वह

सामर्थ्य है कि जिसका आश्रय लेने से प्राणी संसार सागर से पार होकर मुक्त हो जाता है। ऐसे चरणों का निरन्तर उपासना करने वाले कर्दम ऋषि के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है।।42।।

इस प्रकार अपनी योगसिद्धि से भूमंडल को अपनी पत्नी को बतलाकर कर्दम ऋषि अपने आश्रम को वापस आए।।43।।

कर्दम ऋषि ने अपने योग सामर्थ्य से अपनी देह को नौ देहों में विभक्त कर दिया। उसी प्रकार से अपनी पत्नी को नौ देहों को धारण कराया। कामशास्त्र के अनुसार उसके साथ रमण करते हुए कई वर्षों को मुहूर्त की भाँति समाप्त कर दिये।।44।।

उस बढ़िया विमान पर ऐसी अच्छी शय्या बिछी थी कि उस पर बिहार करने से देवहूति को समय का पता ही न चलता था कि कब बीत गया।।45।।

योगसिद्धि के द्वारा इस प्रकार बिहार करने वाले दम्पतियों की भोगइच्छा दिन प्रतिदिन बढ़ती गई। एक सौ वर्ष इसी प्रकार व्यतीत हो गए इससे कर्दम ऋषि को काम लम्पट नहीं कहा जा सकता।।46।।

वह श्री हरि का सत्य संकल्प करके उपासना करते थे। इसलिए अपने संकल्पों को सत्य कर लिए थे। इसीलिए ज्ञानी जन उनको आत्मज्ञानी कहते थे। योगसिद्धि को प्राप्त किए हुए कर्दम ने नौ रूप से रमण किया और देवहूति ने कर्दम से गर्भधारण करके नौ कन्याओं को जन्म दिया।।47,48।।

कर्दम ऋषि ने अपनी स्त्री से सन्तान उत्पन्न हुए देखकर पहले जैसे निश्चय किया उसके अनुसार घर छोड़कर सन्यास लेने का विचार करने लगे। उन्हें पहले जैसी विषय लालसा नहीं थी। देवहूति इसको जानती थी। केवल कन्यायें होने से उन्हें एक पुत्र प्राप्ति की इच्छा थी। शुद्ध स्वभाव वाली सती देवहूति ने देखा कि पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार उसके पति देव, सन्यास आश्रम ग्रहण करके वन को जाना चाहते हैं तो उसने अपने आँसुओं को रोक कर ऊपर से मुस्कराते हुए व्याकुल एवं संतप्त हृदय से धीरे-धीरे अति मधुरवाणी में कहा-उस समय वह सिरनीचा किए हुए अपने चरण के अंगुष्ठ से पृथ्वी को कुरेद रही थी। कामार्त्त स्त्रियाँ विषय इच्छा को व्यक्त करने के लिए अपने पाद के अंगुष्ठ से पृथ्वी को कुरेदना वात्स्यायन शास्त्र में प्रसिद्ध है।।49,50।।

देवहूति ने कहा-हे पतिदेव! आपने जो कुछ प्रतिज्ञा की थी वह सब तो पूर्णतया निभा दी तो भी मैं आपके शरणागत हूँ। आप मुझ पर और एक उपकार कीजिए। आपके बिना मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। आप मुझे अभय प्रदान करने वाला एक पुत्र प्रदान करें।।51।।

आपसे उत्पन्न हुई इन कन्याओं के लिए योग्य वर ढूढ़ना पड़ेगा। आपके सन्यास लेकर घर छोड़कर जाने के पश्चात् मुझे संसार दुःख से पार कराने वाला एक पुत्र न हो तो मेरी गति क्या होगी। इसलिए सच्चिदानन्द रूप वाले एक पुत्र के लिए परम अनुग्रह कीजिए।।52।।

इन्द्रियों शब्दादि के विषयों को ही सुखकर जानकर उसी में अत्यासक्त होकर सर्वोत्तम श्री हरि की सेवा नहीं किया।।53।।

जो समय व्यतीत हुआ वह व्यर्थ गया। आप भगवद्भक्त हैं, महामहिमा वाले हैं इसको मैं जान नहीं सकी। केवल इन्द्रियों के विषयों में ही आसक्त होकर विषयसुख के लिए ही आपके साथ रही। फिर भी आपके सहवास से मुझे पुनर्जन्म न होकर मोक्ष का कारण बने ऐसा अनुग्रह आप कीजिए।।54।।

जो भगवद्भक्त नहीं हैं उनका संग संसार के बन्धन का कारण होता है वही संग सत्पुरुषों के साथ किए जाने पर ससार से वैराग्य उत्पन्न करके श्री हरि में ज्ञान और भक्ति के द्वारा मोक्ष का कारण बनता है।।55।।

सत्संग से उत्पन्न बुद्धि द्वारा अपने कर्मों को श्री हरि को समर्पण करना परपरया मोक्ष का साधन होता है। जिनका कर्म धर्म के लिए, वैराग्य और श्री हरि की सेवा का कारण नहीं होता है, उनका जन्म व्यर्थ है। वह जीवित रहते हुए मुर्दे के समान है।।56।।

अवश्य ही मैं भगवान की बन्धक शक्ति से वंचित होकर संसार की ही अपेक्षा किया जो आप जैसे मुक्तिदाता पतिदेव को पाकर भी मैंने संसार बन्धन से छूटने की इच्छा नहीं की। इसलिए आप मुझपर अनुग्रह करके मोक्ष के लिए कारण होने वाले पुत्र को प्रदान कीजिए।।57।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः।।

अथ पंचविंशोऽध्यायः

भगवान के समस्त अवतार सच्चिदानन्दात्मक देह वाले हैं। शुक्रशोणित सम्पर्क से उत्पन्न देह न होना इस अध्याय में बतलाते हैं। इसमें भी पहले देवहूति के वचनों के उत्तर में कर्दम ऋषि ने क्या उत्तर दिया उसको बतलाते हैं। **मैत्रेय जी कहते हैं**-हे विदुर! दयावान् और मननशील कर्दम ने मनु कुमारी देवहूति के वैराग्य युक्त वचन सुने, तब भगवान विष्णु के कथन का स्मरण करके देवहूति से कहा।।1।।

हे राजपुत्री ! तुम दोष रहित हो, तुम अपने विषय में इस प्रकार खेद न करो। थोड़े ही समय में शुक्रशोषित सम्पर्क से रहित तथा नाशरहित श्री हरि तुम्हारे गर्भ में शीघ्र ही पधारेंगे।।2।।

तुम्हारा कल्याण होगा। इन्द्रिय निग्रह, शौच, तप और दान के व्रत का पालन करते हुए श्रद्धापूर्वक श्री हरि का भजन करो।।3।।

वही नियामक हैं। ब्रह्मा जी के लिए भी वही कारण हैं और उपदेशक हैं। तुमसे आराधित श्री हरि तुम्हारे गर्भ में पुत्र रूप से अवतार लेकर मेरा यश बढ़ावेंगे और ब्रह्मज्ञान का उपेदश करके तुम्हारे हृदय ग्रन्थि रूप संसार बन्धन से मुक्त करेंगे।।4।।

मैत्रेये जी कहते हैं-हे विदुर जी! प्रजापति कर्दम के आदेश में गौरव बृद्धि होने से देवहूति ने उस पर पूर्ण विश्वास किया और वह निर्विकार जगद् गुरु और समस्त पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले भगवान की आराधना करने लगी।।5।।

इस प्रकार बहुत समय बीत जाने पर श्री हरि ने कर्दम ऋषि के वीर्य में प्रवेश करके देवहूति के देह में पहले से ही रहकर व्यक्त हुए जैसे कि लकड़ी में पहले ही से रहने वाली अग्नि उसका मंथन करने से व्यक्त होती है, वैसे व्यक्त हुए। अप्राकृत श्री हरि प्राकृत वीर्य से उत्पन्न नहीं हुए। वह तो पहले ही से देवहूति में रहकर कर्दम ऋषि से व्यक्त हुए। अग्नि का दृष्टान्त भी इसी अर्थ को समर्थन करता है। इसके अतिरिक्त

नावतारेष्वपि हरेर्देहः शुक्लादिसम्भवः।
तथापि शुक्लसंस्थः सन्मातृदेहं प्रविश्य च।
विलाप्य शुक्लं तत्रैव केवलज्ञानरूपकः।
उदेति भगवान्विष्णुः काले लोकं विमोहनय्। महावाराहे।

इस प्रमाण से भी भगवान का गर्भवास लोगों को मोहित करने के लिए है। अवतारों में भी श्री हरि का देह ज्ञानात्मक होना स्पष्ट होता है।।6।।

तब उस समय आकाश में मेघ जल बरसाते हुए गर्जने लगे। गन्धर्व गण गान करने लगे। और अप्सराएँ आनन्दित होकर नाचने लगीं।।7।।

आकाश में संचार करने वाले देवता पुष्प वृष्टि किए, सब दिशाओं में आनन्द छा गया, जलाशयों का जल निर्मल हो गया, सभी जीवों के मन प्रसन्न हो गए।।8।।

इसी समय सरस्वती नदी से घिरे हुए कर्दम जी के आश्रम में मरीचि आदि मुनियों के सहित ब्रह्मा जी आए।।9।।

तत्व ज्ञान का उपदेश करने के लिए देवहूति से गुणपरिपूर्ण श्री हरि का स्वरूपांश से अवतीर्ण होना वे जानते थे।।10।।

श्री हरि की स्तुति करने के लिए वे वहीं आए थे। तत्व ज्ञान के उपदेश करने की श्री हरि की इच्छा को ब्रह्मा जी ने विशुद्ध चित्त से अनुमोदन एवं आदर किया। अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों से प्रसन्नता प्रकट करते हुए कर्दम जी से इस प्रकार कहा।।11।।

ब्रह्मा जी ने कहा-हे प्रिय कर्दम! तुमने निष्कपट भाव से मेरी पूजा किया है।।12।।

पुत्रों को अपने पिता की सबसे बड़ी सेवा यही करनी चाहिए कि **"जो आज्ञा"** ऐसा कहकर आदर पूर्वक उनके आदेश को स्वीकार करे।।13।।

तुम्हारी ये सुन्दरी कन्याएँ पतिव्रता जीवन को व्यतीत करें। अपने वंशों द्वारा इस सृष्टि की अनेक प्रकार से वृद्धि करें।।14।।

अब तुम इन मरीचि आदि मुनिवरों को इनकी इच्छा और शील के अनुसार अपनी कन्याएँ समर्पण करो। संसार में अपना सुयश फैलाओ।।15।।

श्री हरि ही अपनी इच्छा से आप की पत्नी से कपिल रूप में अवतार लिए हैं।।16।।

सुख का स्वयं सदा अनुभव करने से और भक्तों को शाश्वत सुख प्रदान करने से उनका यह नाम सार्थक है। यही पुरुषोत्तम हैं। यही ज्ञान योग और विज्ञान योग का इस जगत को उपदेश करके कर्म स्वरूप को स्पष्ट समझाएँगे। ज्ञान से कर्म अमुख्य होना स्पष्ट करेंगे। भली भाँति ज्ञान साँख्य-कालक्रम से नष्ट होते जाने से उसको पुनः आसुरी नामक ऋषि के द्वारा जगत में प्रसार करेंगे। सुनहरे बाल, कमल जैसे विशाल नेत्र और कमलांकित चरण कमलों वाले साक्षात् श्री हरि हैं। उनका विष्णु होना मैं जानता हूँ। इस प्रकार देवहूति से कहे-हे मनुपुत्री! कैटभ दैत्य का संहार करने वाले श्री हरि ही आपके गर्भ में प्रवेश किए हैं। ये आपके अज्ञान और संशय ज्ञान से इस संसार का जो बन्धन है उसको दूर करेंगे। इतना ही नहीं अनेक भक्तों के संसार बन्धन को दूर करने के लिए भू-मंडल में संचार करते हुए तत्व उपदेश करेंगे।।17,18।।

इनको सामान्य मत समझो। मुक्त जीवों के ये स्वामी हैं। ज्ञानियों और आचार्यों के भी गुरु हैं। लोक में तुम्हारी कीर्ति का विस्तार करेंगे। संसार के कम्प को (लय) नाश करने से कपिल नाम से विख्यात होंगे।।19।।

मैत्रेय जी कहते हैं-हे विदुर जी! इस प्रकार जगत के सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने कर्दम और उनकी पत्नी को श्री हरि का होने का आश्वासन देकर नारद और सनकादि कुमारों के साथ हंस वाहन से सत्यलोक को चले गए।।20।।

ब्रह्मा जी के चले जाने पर कर्दम जी ने उनकी आज्ञानुसार मरीचि आदि प्रजापतियों के साथ अपनी कन्याओं का विधिपूर्वक विवाह कर दिया।।21।।

उन्होंने कला को मरीचि के साथ, अनूसूया को अत्रि के साथ श्रद्धा को अंगिरा के साथ, हर्षिर्भू को पुलस्त्य के साथ, गति को पुलह के साथ, क्रिया को क्रतू के साथ, ख्याति को भृगु के साथ, अरुन्धती को वशिष्ठ के साथ तथा शान्ति को अथर्वण के साथ विवाह कर दिया। इसी शान्ति की सहायता से श्री हरि की सेवा रूप यज्ञ किया जाता है। यह सब अपने-अपने पति के अनुकूल रहकर श्री हरि के पूजारूप यज्ञ में सहायक हुईं। इन विवाहित ऋषियों को दहेज देकर कर्दम प्रजापति ने सम्मानित किया।।22,23,24।।

मरीचि इत्यादि महर्षिगण अपनी-अपनी पत्नियों के साथ आनन्द से रहे। उनकी पत्नियाँ उनके इतने अनुकूल रहीं कि उनको दूसरे विवाह की इच्छा ही नहीं हुई। सभी कर्दम द्वारा दिए हुए धन और सम्मान से संतृप्त थे। कुछ समय वहाँ रहकर कर्दम ऋषि की आज्ञा लेकर अपने-अपने आश्रम को चले गये।।25।।

कर्दम जानते थे कि अपने घर में अवतार लिए कपिल श्री हरि हैं। ब्रह्मा जी ने भी यही बतलाया था। यह जानकर कर्दम प्रजापति ने एकान्त में जाकर त्रियुग भगवान (कृत, त्रेता और द्वापर में इनका प्रादुर्भाव होने से इनको त्रियुग कहा गया है।) को प्रणाम किया और कहा।।26।।

हे स्वामिन्! सभी जीव अपने-अपने किए हुए पाप कर्मों का फल नरक सदृश, इस संसार में आकर भोगते हैं। बहुत काल बीतने के बाद इन्द्रियों के प्रेरक तत्वाभिमानी देवता प्रसन्न होकर उनकी इन्द्रियों को आपकी ओर प्रेरित करते हैं।।27।।

इस प्रकार अनेक जन्मों में किए हुए पुण्य के फल से एकान्त स्थान में दोषरहित भक्ति से (नौ विध दोषरहित) से आपका भजन करके मुक्त योग्य जीवों को आप अपना दर्शन देते हैं।।28।।

उनका यह सारा प्रयत्न इसी के लिए होता है। आप अपने भक्त देवताओं के और उनके अनुग्रह पात्र योग्य जीवों की रक्षा करने वाले हैं। ऐसे आप हम जैसे विषयासक्त होकर आपका स्मरण न करते हुए आपका तिरस्कार करने वाली हमारी त्रुटियों पर ध्यान न देकर हमारे घर में व्यक्त हुए हैं।।29।।

भक्तों के साधन पूर्ण कराना ही आपका मुख्य उद्देश्य है। उनको शाश्वत सुख देने के लिए ही आप अवतार किए हैं। आप अपने वाक्य (मैं आप के पुत्ररूप से अवतार लूँगा) को सत्य करने के लिए अवतार किए हैं।।30।।

आपके भक्त ब्रह्मादि चेतनों ने जिन-जिन सज्जनों के द्वारा आपके अभिव्यक्ति की इच्छा करते हैं आप उन्हीं सज्जनों के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं।।31।।

आपको कभी भी प्राकृत रूप नहीं है। इसीलिए आपको अरूपी कहते हैं। योग्य चेतन अपने-अपने रुचि के अनुसार ब्रह्मादि अधिष्ठानों में आप की उपासना करने पर आप वहीं अभिव्यक्त होकर उनको फल देते हैं। ब्रह्मादि श्रेष्ठ ज्ञानी आपको जानने की इच्छा से आप की सदा सेवा करते रहते हैं। आप ऐश्वर्य वैराग्य (भगवान से भिन्न इस

जगत का आसार होने का ज्ञान) यश, ज्ञान, वीर्य और श्री इन छहों ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं।।32।।

आप में और इन ऐश्वर्यों में कोई भेद नहीं है। यह आपके स्वरूपभूत हैं। आप प्रकृति और पुरुष से उत्तम हैं। (जड़ प्रकृति, चित् प्रकृति, जीवों से उत्तम हैं। जगत का पोषण करने वाले हैं। आप देशतः कालतः गुणतः अनन्त हैं। आप स्वरूप से अनन्त हैं। आपका ज्ञान आपको कभी तिरोहित नहीं होता है। इसलिए आप जगत के समस्त विशेषों को भी जानते हैं। आप की शक्ति कभी अन्य के अधीन नहीं है। आप अपनी इच्छा से उस शक्ति को व्यक्त करते हैं। ब्रह्म रुद्रादियों को पोषण करने से और लय करने से आप कपिल कहलाते हैं।।33।।

आप तीनों वेदों से प्रतिपाद्य हैं, ऐसे आपके मैं शरण में हूँ। आपके इस अवतार से ही मेरी इच्छाएँ सिद्ध हो गई हैं। इस पर भी आप प्रजापालक होने से मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ। मैं सन्यास आश्रम ग्रहण करके ग्रामों में भ्रमण करते हुए मन को आप में ही स्थिर करके आपकी इस विरह से होने वाले दुःख से रहित होकर भविष्य में अपनी आयु को सार्थक कर लेना चाहता हूँ। यही मेरी प्रार्थना है।।34।।

श्री भगवान ने कहा-हे कर्दम! तुम मननशील हो। यथार्थ ज्ञान के विषय में मेरा वचन प्रमाण है, क्योंकि मैं आप्ततम हूँ। तुमको जो वचन दिया था, उसको सत्य करने के लिए मैं आपके पुत्र रूप में व्यक्त हुआ हूँ।।35।।

मुक्ति योग्य जीव संसारबन्धन से मुक्त होना चाहते हैं। उनके देह में रहने वाले परमात्मा और तत्वों के विषय में उनको समीचीन ज्ञान का उपदेश करने के लिए ही मैं यहाँ अवतार लिये हूँ। जो अपरोक्ष ज्ञानी हैं उनके समीचीन ज्ञान को दृढ़ करना ही मेरे इस अवतार का कार्य है।।36।।

मैं आप्तकाम हूँ। मुझे अन्य कोई प्रयोजन नहीं है। कालक्रम से समीचीन सम्प्रदाय प्रवर्तक न होने से यह सूक्ष्म आत्मतत्व मार्ग बहुत काल से लुप्त हो गया है। इसे फिर से प्रवर्तित करने के लिए यथार्थ ज्ञान को सांख्य शास्त्र द्वारा स्थापित करने के लिए मैं इस रूप से व्यक्त हुआ हूँ।।37।।

मैं तुम्हें आज्ञा करता हूँ। तुम यहाँ से जाओ और सुख से रहो। तुमसे किए जाने वाले सभी कर्मों को मुझमें समर्पित करो जिससे दुर्जय इन्द्रियों को जीतकर मेरी सेवा के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करके सुख से रहोगे।।38।।

मुझे स्वप्रकाश, समस्त प्राणियों के हृदयगुहा में रहने वाला, समस्त कर्मों का फल देने वाला स्वामी जानकर मेरी उपासना करो। इस उपासना से लिंगदेह से भिन्न तुम्हारा स्वरूप चिद्देह (जो मेरा नित्य सेवा रूप है) में रहने वाली स्वरूप इन्द्रियों के द्वारा मेरे स्वरूप का दर्शन करोगे। तब संसार के सभी दुःख नष्ट होंगे। इस प्रकार मेरा दर्शन करने वाला अपरोक्ष ज्ञानी कहलाता है।।39।।

जो प्रपंच, अनित्य और असार को जानने वाला, शास्त्र का उपदेश करने वाले आचार्यों के द्वारा श्री हरि अन्तर्यामी हैं, समस्त गुण परिपूर्ण हैं, इसलिए सर्वोत्तम हैं। ऐसा जानकर उपासना करता है, इसके फलस्वरूप उसे भगवान का अपरोक्ष ज्ञान होता है। तब उसके लिंग शरीर उसमें रहने वाली मन आदि इन्द्रियाँ नष्ट हो जाती हैं, तब उसको दुःख, अज्ञान, भय तथा शोक आदि नहीं होते हैं। इस प्रकार के स्वरूपानन्द का अनुभव करना ही मोक्ष है।।40।।

ऐसे मोक्ष को तुम प्राप्त करोगे। देवहूति जो मेरी माता है, उसको मैं इस अध्यात्म विद्या का उपदेश करूँगा, जिससे वह जान लेगी कि कर्म से भी ज्ञान श्रेष्ठ है। मेरे उपदेशानुसार उपासना करके इस संसार से छुटकारा पाकर वह मुझे प्राप्त होगी।।41।।

मैत्रेय जी कहते हैं-इस प्रकार कपिल भगवान से उपदेश प्राप्त करके कर्दम सन्तुष्ट हुए और कपिल भगवान की प्रदक्षिणा करके वन को प्रस्थान किये। केवल भिक्षा के लिए ग्राम में प्रवेश करते थे अन्य समय में ग्राम में नहीं आते थे।।42।।

प्रिय और अप्रिय व्यवहार के लिए वागेन्द्रिय ही मुख्य कारण है। कर्दम ऋषि इसको जानते थे। इसलिए उन्होंने मौन व्रत को धारण किया। वागेन्द्रिय से प्रिय और अप्रिय व्यवहार करने पर स्नेह और द्वेष उत्पन्न होते हैं। पहले ही से स्वयं दुष्ट विषयों में जाने वाले मन का दोष दूर नहीं हो सकता है। जिससे प्रिय और अप्रिय की निवृत्ति भी नहीं होती है। यही तो संसार है, इसलिए सबसे पहले वागेन्द्रिय का अवश्य निग्रह करने के लिए सूचित किया गया है।।43।।

अग्नि को आत्मरोपण कर लेने से होमादि कर्म नहीं करते थे। स्थायी रूप से कहीं रहने का कोई आश्रम का निर्माण नहीं किया था। किसी अन्य का संग न करते हुए श्री हरि को ही रक्षा करने वाला मानकर उन्हीं का आश्रय किए थे। एक जगह न रहकर भूमंडल में ही भ्रमण करते रहे। भ्रमण करते रहने पर भी उनका मन श्री हरि में ही लीन था।।44।।

श्री हरि मूर्तामूर्त जगत से विलक्षण (भिन्न) हैं। ज्ञान स्वरूप हैं। समस्त तत्वों में अन्तर्यामी हैं। प्राकृत गुण रहित हैं, सर्वोत्तम हैं। इस प्रकार ध्यान करने वाले भक्तों के मन से हरि विचलित नहीं होते हैं। भक्तों के निर्दृष्ट भक्ति से ध्यान करने वालों का विषय हैं। भगवान गुण परिपूर्ण हैं। ऐसी उपासना करके ममकार को त्याग कर द्वन्द्व (सुख दुःखादि) सहिष्णुता के साथ सर्वत्र रहने वाले श्री हरि को पूर्ण और स्वतंत्र होना जानकर स्वतंत्र कर्तव्य के अहंकार से रहित होकर बिम्ब रूपी भगवान में ही आनन्दित होते रहे। उनका मन लहरों से रहित शान्त समुद्र के समान जान पड़ता था। सम्पत्ति अथवा विपत्ति में क्षुब्ध न होते हुए निर्विकार थे। समस्त प्राणियों में व्याप्त श्री हरि का अपरोक्ष ज्ञान हुआ।।45,46।।

श्री हरि को ही समस्त प्राणियों का आश्रय होना भी जान लिये। गुणपूर्ण श्री हरि के इन दो रूपों को देखने से वह अपने अन्तर्यामी विम्बरूपी श्री हरि में सर्वोत्तम भक्ति करने लगे। अवतार रूपों में तत्पश्चात् मूल रूप में तत्पश्चात् जीवों के अन्तर्यामी रूप में मन को स्थिर करके इस संसार के लिए कारणीभूत देहाभिमान को त्यागकर निषिद्ध इच्छाओं और वैष्णव द्वेष से रहित होकर सर्वत्र श्री हरि को निर्दृष्ट, गुणपूर्ण देखते हुए अपनी योग्यतानुसार श्री हरि की सेवा करके श्री हरि को प्राप्त करके मुक्त हो गई।।47,48।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे (कपिलोपाख्याने) पंचविंशोऽध्यायः।।

अथ षड्विंशोऽध्यायः

इस अध्याय में श्री हरि में किए जाने वाले अतिशय भक्ति योग को श्री हरि में मन को स्थिर रखने का प्रकार भक्ति करने वाले अधिकारी चेतन के साधन को बतलाते हैं। इसमें भी पहले परीक्षित् राजा ने कपिल देव और देवहूति के सम्भाषण को सुनने की इच्छा से अब तक जो श्रवण किये थे। उसका अनुवाद करके प्रशंसा करके और श्रवण कराने के लिए प्रार्थना करते हैं-

परीक्षित् राजा ने कहा-हे शुक देव जी! आपने तो बताया कि साक्षात् श्री हरि ही सज्जीवों को आत्म विद्या का उपदेश करने के लिए अपनी इच्छा से कपिल का अवतार किये और तत्व सांख्या का प्रवर्तक होना भी बतलाये।।1।।

धर्मस्वरूप वाले मुक्ति योग्य जीव श्री हरि की सेवा करते हैं। सनकादि योगियों के लिए वह मुख्य गुरु हैं। वेद प्रतिपाद्य श्री हरि के विशेष चरित्र को श्रवण करने में मेरी इन्द्रियों को अत्यन्त तृप्ति होती है।।2।।

स्वतंत्र भगवान अपनी इच्छा से जो-जो कार्य किए हैं, उनका भगवद्भक्त प्रतिदिन उन्हीं का कीर्तन करके धन्य होते हैं, कपिल भगवान जो कार्य किए हैं, उन्हें मैं सुनना चाहता हूँ। कृपया आप मुझे बतलाइये।।3।।

शुकदेव जी ने कहा-हे राजन्! आत्मविद्या को जानने के लिए तुमने मुझसे जो प्रश्न किया वैसे ही विदुर जी ने मैत्रेय से प्रश्न किया था। तब मैत्रेय जी ने जो उत्तर दिया था, उसे मैं सुनाता हूँ।।4।।

हे विदुर! पिता कर्दम के वन चले जाने पर भगवान् कपिल जी देवहूति माता का प्रिय करने की इच्छा से उस बिन्दु सरोवर क्षेत्र में ही रहने लगे।।5।।

एक दिन तत्व विद्या को भली भाँति जानने वाले भगवान् कपिल कर्म कलाप से विरत हो आसन पर विराजमान थे उस समय ब्रह्मा जी के वचनों का स्मरण करके देवहूति ने अपने पुत्र रूप से अवतार किए हुए कपिल देव से कहा।।6।।

...पूर्ण हैं। सर्वस्वामी है। मैं तो इन दुष्ट इन्द्रियों को तृप्त करने में ही ...के अज्ञानान्धकार में पड़ी हुई हूँ। अब मुझे वैराग्य उत्पन्न हुआ है।।7।।

...र लगाने के लिए सुन्दर नेत्र रूप आप प्राप्त हुए हैं।।8।।

...ल रूप में आप मुझे प्राप्त हुए हैं। यह भी आपका अनुग्रह है। ब्रह्मादि ...अज्ञान अन्धकार से अन्धे पुरुषों के लिए नेत्र रूप सूर्य की भाँति आप ...

...पन के ज्ञान का प्रतिबंधक दुराग्रह है वह भी मेरे पूर्व कर्मानुसार आपका ...को ज्ञानोपदेश से दूर करने में आपही समर्थ हैं।।10।।

आप अपने भक्तों के जन्म-मरण रूप संसार वृक्ष को नाश करने में कुठार के समान हैं। निवृत्ति धर्म के जानने वालों में आप श्रेष्ठ हैं। आपके लिए नमस्कार है। मैं आपही के शरण में आई हूँ। नारायण इत्यादि पुरुष शब्द वाच्य वस्तुओं का और प्रकृति शब्द वाच्य लक्ष्मी इत्यादि स्त्री तत्वों का तथा जड़ के तारतम्य का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से आपकी शरण में आई हूँ। मैं इन सबके ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से आपकी शरण में आई हूँ। मुझे इन सबके ज्ञान का उपदेश कीजिए। मैं आपको प्रणाम करती हूँ।।11।।

मैत्रेय जी कहते हैं-इस प्रकार माता देवहूति ने जानने की जो अपनी अभिलाषा प्रकट की वह परम पवित्र और मुमुक्षुओं को मोक्ष मार्ग में अनुराग उत्पन्न करने वाली थी। उसे सुनकर कपिल देवजी मन ही मन देवहूति की प्रशंसा करने लगे और मृदु मुस्कान से सुशोभित मुखारविन्द से इस प्रकार कहने लगे।।12।।

भगवान् कपिल ने कहा-प्रत्येक जीवों के लिए देह में रहने वाले परमात्मा इत्यादि तत्वों का यथार्थ ज्ञान ही उनके लिए मोक्ष का साधन है। अन्तःकरण परिणामभूत सुख दुःखादि जो इस प्राकृत देह से भोगते हैं वह मोक्षावस्था में नहीं होते हैं, परन्तु स्वरूपभूतानन्द का अनुभव तो रहता ही है।।13।।

पहले ब्रह्मादि ज्ञानियों के लिए मोक्ष का जो साधन बतलाया था वही अब मैं आपको सुनाता हूँ।।14।।

इस जीव के बन्धन और मोक्ष का मन ही कारण है। शब्द इत्यादि प्राकृत विषयों में आसक्त हुआ मन ही बन्धन का कारण है। अप्राकृत स्वरूपी श्री हरि में अनुरक्त होने पर वही मन मोक्ष का कारण बन जाता है।।15।।

जब जीव के मन में मैं और मेरेपन का अभिमान रहता है तब निषिद्ध काम और विषय लोभ इत्यादि उत्पन्न होते हैं। यही मन का दोष है। इन दोषों से रहित स्वरूप भूत चिदानन्दात्मक मन जिसको जड़ मन से कोई सम्पर्क नहीं है, ऐसे शुद्ध मन से श्री हरि का ध्यान करने से प्राकृत विषय सुख में आसक्ति न होने से उसकी इच्छा नहीं होती है। तब निश्चल भक्ति से नित्यानन्द का अनुभव होता है।।16।।

तभी जीव स्वरूप भूत चिन्मन (जो नित्य है) बिम्बरूपी श्री हरि का दर्शन करता है। श्री हरि के गुण, देह और इन्द्रियों में परस्पर भेद नहीं है। उनके राम, कृष्णादि अवतार रूपों में भी कोई परस्पर भेद नहीं है। वह स्वप्रकाश, अत्यन्त सूक्ष्म और चित् प्रकृति से भी उत्तम हैं। भगवान हरि इस जीव में अन्तर्यामी होकर बिम्बरूप में रहते हैं। इस बिम्ब रूपी श्री हरि का साक्षात्कार होने के लिए उनके परिवार भूत मुख्य प्राण इत्यादि देवताओं का भी अपरोक्ष ज्ञान होना चाहिए तथा उनके अनुग्रह से ही चित् प्रकृति के अभिमानी देवता लक्ष्मी का तथा बिम्ब रूपी श्री हरि का साक्षात्कार होगा।।17,18।।

इन सबके लिए ज्ञान, वैराग्य के साथ भक्तियोग मुख्य साधन है। सर्वस्वामी श्री हरि में निरतिशयभक्ति होनी चाहिए। यह भक्ति ही मोक्ष का मार्ग है। इसके द्वारा ही परिपूर्ण श्री हरि की प्राप्ति हो सकती है। इसके समान अन्य कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है।।19।।

स्त्री, पुत्र आदि जो श्री हरि के भक्त नहीं हैं, उनमें अत्यन्त स्नेह नहीं करना चाहिए। यह अत्यन्त स्नेह ही सुदृढ़ बंधक है और श्री हरि के अपरोक्ष ज्ञान होने में प्रतिबंधक हैं। यही अति स्नेह को भगद्भक्तों में करना

चाहिए तब मोक्ष सुलभ होगा।।20।।

श्री हरि के भक्त वही हैं, जो शीतोष्ण द्वन्द्व को सहन करते हैं, जो परम दयालु और लोक हितचिन्तक हैं। शरीर के साथ उत्पन्न हुए काम, क्रोधादि दोषों से परे हैं। श्री हरि में ही निष्ठा वाले होते हैं, जो उनका स्वभाव है। लक्ष्मी और ब्रह्मादियों में किए जाने वाली भक्ति से भी अधिक भक्ति श्री हरि में करते हैं। कैसी भी विपत्ति क्यों न हो उस भक्ति से विचलित नहीं होते हैं। वे समस्त कर्मों को श्री हरि को समर्पित करते हैं। श्री हरि के लिए ही स्त्री, पुत्रों को त्यागते हैं और श्री हरि की कथा का ही श्रवण करते हैं। श्री हरि का सर्वोत्तम होना उनको दृढ़ ज्ञान होता है। शास्त्रों का अध्ययन करते रहते हैं। दुष्ट लोगों के सहवास से दूर रहते हैं। अपने सहवास से दूसरों के दुष्ट संग से उत्पन्न दोषों को दूर करते हैं। तुम उनका सहवास करो।।21,22,23,24।।

ऐसे सज्जनों के सहवास से सदा मन और श्रवणेन्द्रिय को आनन्द उत्पन्न करने वाली मेरे कर्ण-सुखद पराक्रमपूर्ण गाथाएँ सुनने को मिलती हैं। सत्संग से क्रमशः भगवान् में श्रद्धा उत्पन्न होकर मुझमें भक्ति करने लगता है और वह भक्ति क्रमशः वृद्धि होती जाती है।।25।।

उस भक्ति के द्वारा इस जगत् के असार होने का ज्ञान उत्पन्न होता है। तत्पश्चात् सर्वस्वामी, निर्दुःख श्री हरि में ज्ञानपूर्वक स्नेह और भी अधिक होता जाता है। उत्तम अधिकारी के द्वारा देखा हुआ, उनसे भी अधम अधिकारियों से सुना हुआ श्री हरि का मुमुक्षुजन निरन्तर ध्यान करते हुए चंचल मन को निग्रह करने का प्रयत्न करते हैं। तब वे अधिक परिश्रम के बिना ही योगमार्ग से युक्त स्वोत्तम संग को प्राप्त होते हैं और श्री हरि के अपरोक्ष ज्ञान के लिए और भी दृढ़तर प्रयत्न करते हैं।।26।।

तब वह प्राकृत गुणों का सेवन करना त्याग देते हैं। जिससे उनका वैराग्य दृढ़ होता है। तब देह से आरम्भ करके सर्वत्र रहने वाले परमात्मा इत्यादि समस्त तत्वों का तारतम्य ज्ञान को प्राप्त करते हैं। इससे उत्पन्न सर्वोत्तम भक्ति से सर्वस्व श्री हरि को समर्पण करके उन्हीं में मन को लीन करते हैं। तब वे प्रारब्ध कर्म प्रतिबंधक न होने पर अपने जीव के अन्तर्यामी विम्बरूपी मेरा दर्शन इसी जन्म में करते हैं। उनके भक्ति के वशीभूत होकर मैं उनमें स्थिर रूप में रहता हूँ।

यहाँ पर यह स्पष्ट किया गया है कि वैराग्य, भक्ति और उपासना के द्वारा उत्पन्न ज्ञान ही मोक्ष का साधन है, किन्तु कर्म मोक्ष का साधन नहीं है। मुझमें की जाने वाली भक्ति और योगध्यान से उत्पन्न ज्ञान द्वारा मुझ बिम्ब रूपी का दर्शन करते हैं। वह भक्ति योग प्राकृत गुणों का सेवन न करने से उत्पन्न होता है। वह भक्ति वैराग्य से युक्त होना चाहिए। प्राकृतगुणों का सेवन न करने का बारम्बार कहने से यह सूचित करते हैं कि जिस प्रकार तलवार की धार से अथवा घास इत्यादि से छिपे हुए कुआँ से बचते हैं, ऐसे ही प्राकृत विषयों को त्यागना चाहिए।।27।।

देवहूति ने कहा-हे देव देव! सुखस्वरूपी आपको प्राप्त करने के लिए आपमें निरन्तर कैसी भक्ति करनी चाहिए मैं स्त्री जाति कौन सी भक्ति की अधिकारिणी हूँ।।28।।

यथार्थ ज्ञान को उत्पन्न करने वाला योगमार्ग जो आपने समझाया है वह कौन-सा है? उसके कितने अंग

हैं।।29।।

मुझे ऐसा उपदेश दो, जिससे मुझ जैसी मन्द बुद्धि वाली तथा शास्त्र ज्ञान रहित स्त्री भी जिसे अन्य सामान्य लोग भी आसानी से समझ नहीं सकते हैं, उसको मैं आपकी कृपा से सरलता से जान सकूँ।।30।।

मैत्रेय जी कहते हैं-हे विदुर जी! श्री हरि अपने सच्चिदानन्दरूप से देवहूति में कपिल नाम से अभिव्यक्त हुए थे। अपनी माता का ऐसा अभिप्राय जानकर कपिल देव के हृदय में स्नेह उमड़ आया। उन्होंने भक्ति योग का निरूपण करने वाले शास्त्र का जिसे सांख्य कहते हैं, का उपदेश किया। साथ ही भक्ति विस्तार एवं योग का भी वर्णन किया। (अन्य जीवों की उत्पत्ति शुक्र शोणित संबंध से होती है। श्री हरि तो अपने सच्चिदानन्द देह से ही प्रकट होते हैं। उनका ज्ञानात्मक शरीर सर्वदा रहता है। उनकी उत्पत्ति शुक्र शोणित से कैसे हो सकती है। यहाँ यह जानना चाहिए कि श्री हरि अपने सच्चिदानन्द रूप से ही व्यक्त होते हैं। इसलिए उनको कोई नए शरीर की प्राप्ति नहीं है।) ।।31।।

सत्वादि गुणों के भेद से भक्ति भी अनेक प्रकार की है। उत्तमाधिकारियों की सात्विक भक्ति को बतलाते हैं। **श्री भगवान ने कहा**-समस्त गुण परिपूर्ण श्री हरि में एकाग्र, स्वाभाविक तथा प्रवाह के सदृश निरन्तर मन का लगा रहना ही भक्ति है। इन्द्रियाभिमानी देवता प्रत्येक में रहकर शब्दादि इन्द्रिय विषयक गुणों का ज्ञान कराते हैं। उनसे वेदोक्त कर्मानुष्ठान कराते हैं। वे श्री हरि में स्वाभाविक और उपरोक्त प्रकार की भक्ति करते हैं। यह एकान्त भक्त कहलाते हैं और किसी फल की इच्छा नहीं करते हैं। इनकी भक्ति सामान्य लोगों की भक्ति से भी उत्तम है। श्री हरि में किए जाने वाली भक्ति लिंग शरीर को असमर्थ कर देती है। जैसे जठराग्नि प्राणियों से सेवन किए हुए पदार्थ को जीर्ण कर देता है वैसे ही यह भक्ति लिंग शरीर को जीर्ण कर देती है।।32,33।।

1. देवता भगवान में एकाग्र होकर मन को स्थिर करते हैं यह देवताओं की भक्ति हैं।
2. तत्वाभिमानी देवता भगवान में एकाग्र होकर मन लगाते हैं। वह तत्वाभिमानी देवताओं की भक्ति है।
3. वेदोक्त कर्म को निरन्तर करने वाले जीव भगवान में मन को एकाग्र रूप से स्थिर करते हैं, वह सभी अधिकारी चेतनों की भक्ति है। इन तीनों में फल की इच्छा न होना और कामना रहित होना समान है।

तत्वाभिमानी देवताओं की भक्ति से भी देवता सामान्य की भक्ति तारतम्य में कम है। इससे भी वेदोक्त कर्मानुष्ठान करने वाले मुक्ति योग्य जीवों की भक्ति और भी कम है। परन्तु यह सब निरन्तर और फल की इच्छा रहित हैं।

अन्त में बतलाए गए अधमाधिकारियों की (सामान्य लोगों की) भक्ति उनके मोक्ष के लिए मुख्य साधन है। मध्यम और उत्तमाधिकारियों की भक्ति मोक्ष के लिये मुख्य साधन ही नहीं अपितु अधमाधिकारियों के मोक्ष से भी उत्तम है। उत्तमाधिकारी परस्पर मिलकर श्री हरि के पराक्रमों को भक्ति और आदर के साथ कहते और सुनते हैं। उनको तो श्री हरि की सेवा करने में ही आसक्ति है। उनको श्रीं हरि के सिवा किसी अन्य वस्तु की इच्छा नहीं है। उनको श्री हरि सायुज्य मोक्ष को देते हैं। इसको तो वह श्री हरि की आज्ञा मानकर ही स्वीकार करते हैं। कोई वस्तु

देते हैं तो बालक भी उसको स्वीकार कर लेता है तब ज्ञानी कैसे तिरस्कार करेगा? ऐसी शंका हो सकती है।

नेच्छन्ति सायुज्यमपि फलत्वेन हरिर्यदि।

ददाति भक्ति सन्तुष्ट आज्ञात्वेनैव गृह्यते।

तादृशानां सुखाधिक्यं पुनमुक्तौ भविष्यति। कापिलेय

इस प्रमाणनुसार केवल श्री हरि के आज्ञानुसार सायुज्य का अनुभव करने वाले भक्त भी होते हैं। इनको मोक्ष में अधिक आनन्द उत्पन्न होता है। वह सायुज्य की भी क्यों इच्छा नहीं करते हैं? इसका उत्तर **'मत्पादसेवाभिरता'** से दिया गया है। श्री हरि की सेवा ही पूर्णानन्द दायक होने से वह अन्य किसी की इच्छा नहीं करते हैं।।34।।

ऐसे रहने से ही उनको मोक्ष में अधिक आनन्द का अनुभव होता है। वे श्री हरि के अप्राकृत रूपों को देखकर आनन्दित होते हैं। हे माता जी! ऐसे ही भक्तों को मेरे प्रसन्नवदन, अरुणनयन और वरदायक दिव्य रूपों के दर्शन होते हैं। उन स्वरूपों के साथ वे सादर सप्रेम संभाषण करते हैं।।35।।

सुन्दर अंगों, लीलाओं, हास विलास, कृपा कटाक्ष और सूक्तियों से भक्त लोग गदगद् होकर तन्मय हो जाते हैं। यद्यपि उन्हें किसी वस्तु की इच्छा नहीं रहती तथापि उनकी सतत् भक्ति से प्रसन्न होकर मैं उनको सायुज्य मोक्ष प्रदान करता हूँ।।36।।

यद्यपि उन्हें अणिमादि अष्टविध ऐश्वर्य और सत्यलोक आदि की भोग सम्पत्ति जिसे जो मेरे भक्त नहीं हैं की इच्छा रहती है परन्तु मेरे इन भक्तों को इसकी सर्वथा इच्छा नहीं रहती है। इस प्रकार दृढ़ वैराग्य के साथ निरतिशय भक्ति करने से मैं उन्हें अपने देह में ही रहने का अनुग्रह करता हूँ। मेरे सच्चिदानन्दात्मक देह में रहकर वे अपने स्वरूप सुख का अनुभव करते हैं। लोक विलक्षण इस मोक्ष में यह कोई असम्भावित नहीं है। यही सायुज्य मोक्ष है।।37।।

इनसे भी किंचित न्यून अधिकारी जो मुक्ति योग्य हैं वे अपनी योग्यतानुसार वैराग्य को प्राप्त करके ऐहिक, सम्पत्ति की इच्छा न करते हुए, अनित्य स्वर्गादि की अपेक्षा न करके मुझे ही समस्त वस्तुओं से प्रिय जान कर सेवा करते हैं। यह मेरे वैकुण्ठलोक में शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं। यही सालोक्य मोक्ष है। मुझमें ही आसक्त और मुझ में ही मन को स्थित करने वाले इन मुक्तों का कभी नाश नहीं है। जो लोग मुझे हृदय से चाहते हैं और मुझको ही स्वामी, पुत्र, पिता, मित्र, उपदेशक, अनिमित्त बन्धु तथा इष्ट देवता मानते हैं ऐसे सब प्रकार से मेरी उपासना करने वाले भक्तों को काल चक्र का भय नहीं रहता है। वे मेरे लोक में शाश्वत रहकर सुख का अनुभव करते हैं।।38।।

अधिक क्या कहना है इस प्रपंच को नश्वर जानकर जीव अपने कर्मानुसार भूलोक, स्वर्गादि लोकों में जाता है। इस लोक के संबंधी स्त्री, पुत्र, घर, पशु, सम्पत्ति यह वस्तुएँ श्री हरि के अनुग्रह से इस जन्म में प्राप्त हुए हैं। यह सब भगवान के ही हैं। इस ज्ञानपूर्वक श्री हरि को सर्वोत्तम, सर्वज्ञ, जानकर अत्युत्तम भक्ति से सेवा करने वाले भक्तों को मैं इस संसार से पार कर देता हूँ।।39,40।।

चेतन प्रकृति लक्ष्मी, और पुरुष कहलाने वाले ब्रह्मा के लिए नियामक हूँ। समस्त जीवों को उनके कर्मानुसार मैं ही फल देकर उन जीवों को संसार भय से मुक्त करता हूँ। अन्य कोई भी इस संसार से छुटकारा नहीं दिला सकता है।।41।।

देवता अपने-अपने अधिकार में नियुक्त किए गए हैं। मेरे ही भय से वायु चलती है, सूर्य तपता है, इन्द्र वर्षा करते हैं, अग्नि जलती है और मृत्यु प्राणियों का संहार करती है।।42।।

मैं किसी के भय से प्रवृत्त नहीं होता हूँ। इसको जानने वाले ज्ञानी मोक्ष के लिए मेरी ही सेवा करते हैं।।43।।

वे ज्ञान और वैराग्य के साथ भक्ति करके मुझे ही प्राप्त होते हैं। मुमुक्षु जीवों को मोक्ष प्राप्त करने के लिए मुख्य एक ही उपाय यह है कि दृढ़ और सर्वोत्तम भक्ति से मुझमें मन को स्थिर करें।।44।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः।।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

भगवान ने कहा-हे मनु पुत्री! भक्ति के लक्षण को तो बतला दिया अब तत्वों के लक्षण अलग-अलग बतलाता हूँ।।1।।

जिसके ज्ञान से योग्य जीव प्रकृति के गुणों से मुक्त होता है। आत्मा कहलाने वाले श्री हरि का ज्ञान मोक्ष के लिए साधन है। संसार बन्धन से छुटकारा दिलाने वाला परमात्मा के ज्ञान को ही इन तत्वों लक्षणों के द्वारा भली भाँति वर्णन करता हूँ।।2।।

तत्वों के लिए मुख्य कारण श्री हरि हैं। उनके ज्ञान के बिना तत्व लक्षणों को जान नहीं सकते हैं। श्री हरि आदि अन्त रहित हैं। कारण रहित हैं। ज्ञानस्वरूप हैं। पूर्ण आनन्द को देने वाले हैं। अन्तर्यामी हैं। प्राकृत गुणों से रहित हैं। चेतन प्रकृति श्री लक्ष्मी से भी उत्तम हैं। स्वप्रकाश और सर्वत्र व्याप्त हैं। इनको जन्म मरण नही है। इस प्रकार श्रुति और स्मृतियों में कहा गया है। जीव को ही स्वरूपतः जनन और मरण नहीं है। तब श्री हरि को कैसे हो सकता है। जीव जानता है कि यह उससे भिन्न है इस पर भी देह के निमित्त से होने वाले जनन और मरण को भ्रम से अपना समझता है। स्वप्न में वासनामय शरीर को होने वाले जनन और मरण को स्वप्न देखने वाला भ्रम से अपने स्थूल शरीर के ही जनन मरण समझता है। इसी प्रकार से यह जीव देह के धर्मों को भ्रम से अपने स्वरूप धर्म समझता है। देह को ही आत्मा समझने से ऐसा भ्रम होता है। जब जीव के विषय में ही ऐसा है तो सर्वज्ञ, स्वतंत्र, अप्राकृत, अज्ञानादि दोष रहित श्री हरि जो जीव से अत्यन्त विलक्षण हैं। उनको जनन और मरण नहीं है ऐसा क्या कहना है।।3,4।।

अब श्री हरि के जगत की सृष्टि आदि महात्म्य का वर्णन करते हुए जीव का परतंत्र होना और श्री हरि का स्वतंत्र होना तथा यह जीव श्री हरि के अधीन होकर प्रकृति से बद्ध होना बतलाते हैं। उपरोक्त लक्षणों से युक्त श्री हरि ने अपने निकट रहने वाली लक्ष्मी को लीला से सृष्टि के लिए प्रेरित किया वैसे ही सूक्ष्म जड़ प्रकृति को और उसकी परिणाम शक्ति को व्यक्त किया।।5।।

यह चेतन प्रकृति कहलाने वाली लक्ष्मी श्री हरि की प्रेरणानुसार सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुणों से सात्विक आदि अनेक प्रकार के जीवों को इन्द्रियादि के साथ समान रूप वालों की सृष्टि करंने लगी। अर्थात् जीवों को देह का संबंध करायी। संसार अवस्था में जीवों के ज्ञान को ढकने की इच्छा से प्रकृति के द्वारा जीवों को मोहित किया।।6।।

इस प्रकार भगवान की इच्छा से मोह को प्राप्त हुआ जीव सत्वादि गुणों के द्वारा प्रकृति के ही कर्म करने पर भी इस प्रकृति के कर्तव्य को न जानकर भ्रम से अपने को स्वतंत्र कर्ता मानने लगा।।7।।

इस प्रकार अपने में न रहने वाले स्वातंत्र्य को अपना समझने वाले जीव को श्री हरि संसार के जनन मरण

के चक्कर में डालते हैं। जिससे अपने से निकृष्ट जीवों के अधीन रहता है। यही परतंत्रता है। परतंत्रता का अर्थ अस्वतंत्र नहीं करना चाहिए क्योंकि श्री हरि को छोड़कर सभी अस्वतंत्र हैं जो नित्य हैं। इसलिए परतंत्र का अर्थ अपने से निकृष्ट के अधीन रहना, करना चाहिए। यह परतंत्रता अनित्य है जो ईश्वर के ज्ञान से दूर हो जाता है। श्री हरि को कार्य करने में कोई क्लेश नहीं है। वह अपने प्रयोजन के लिए कोई कार्य नहीं करते हैं इसलिए श्री हरि अकर्ता कहलाते हैं। जीवों से किए जाने वाले पुण्य पापों को साक्षात् देखने से साक्षी कहलाते हैं। वह सदा आनन्द स्वरूप हैं। श्री हरि नियामक होने से जीवों को संसार में डालकर उनसे भी निकृष्ट के अधीन में रखते हैं। इसको पारतंत्र्य कहते हैं यही दुःख का कारण है। अपने से उत्तम के अधीन रहना जीव को स्वरूप भूत है, वह नित्य है तथा दुःख जनक नहीं है।।8।।

देह कार्य कहलाता है, इन्द्रिय, कारण कहलाती है, मन कर्ता कहलाता है। इनके लिए जड़ प्रकृति की अभिमानी लक्ष्मी ही कारण हैं। अर्थात् इन सबके अभिमानी देवता ब्रह्मादि चेतन, लक्ष्मी के अनुग्रह से ही जगत सृष्टि के कारण बने हैं। वह लक्ष्मी भी श्री हरि के अनुग्रह से ही ऐसा सामर्थ्य को प्राप्त किये हैं। श्री हरि की आज्ञा से लक्ष्मी आदि चेतन सुखादि को देते हैं। परन्तु जीवों को उनका अनुभव कराने वाले श्री हरि ही हैं। इस प्रकार प्रकृति और पुरुष दोनों इस जगत के लिए कारण हैं।।9।।

प्रकृति और पुरुष जिन-जिन के लिए कारण हैं इसको जानने के पश्चात् इन दोनों में अन्तर जानने के लिए उनका लक्षण बतलाने के लिए देवहूति ने प्रश्न किया। देवहूति ने कहा-इस जगत का कारण तथा स्थूल और सूक्ष्म रूप जगत में व्याप्त उस प्रकृति और पुरुष के असाधारण धर्म-लक्षण बतलाओ।।10।।

श्री भगवान ने कहा-जड़ प्रकृति, सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुणात्मक है। इसका अभिमानिनी चेतन प्रकृति है। यह सूक्ष्म है। इसको नाश नहीं है। इसको व्यक्ताव्यक्त अवस्थाएँ होते हैं। यह किसी अन्य वस्तु से नहीं हुआ है। इससे महत्तत्व आदि तत्व उत्पन्न होते हैं। यह कार्यों के लिए प्रधान होने से इसको प्रधान ही कहते हैं। सत्व गुण, रजो गुण और तमोगुण के लिए लक्ष्मी ही श्री भूः, दुर्गा रूप से अभिमानी हैं और उनके गुणों के लिए प्रवर्तक हैं। इसलिए त्रिगुणात्मक इस जगत के लिए औपचारिक रूप से उपादान कारण कहलाती है। ब्रह्मा की सृष्टि के लिए कारण होने से इनको प्रकृति कहते हैं। जब यह सृष्टि कार्य में उदासीन रहती हैं तो अव्यक्त कहलाती हैं। जब सृष्टि करने की इच्छा करती हैं तब व्यक्ताव्यक्त कहलाती हैं। महदादि तत्वों में जब व्याप्त रहती हैं तब व्यक्त कहलाती हैं। जड़ प्रकृति जब सूक्ष्म अवस्था में रहती है तब अव्यक्त कहलाती है। परिणाम शक्ति जब व्यक्त होती है उस अवस्था में व्यक्ताव्यक्त कहलाती है। जब महत्तत्वादि रूप में परिणित होती है तब व्यक्त कहलाती है।।11।।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पंचभूत हैं। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पंचतन्मान्त्राएँ हैं। श्रोत्र, तक्, चक्षु, जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पैर, गुह्येन्द्रिय, और पायु ये दस इन्द्रियाँ है।।12,13,14।।

अन्तःकरण में निश्चय करने वाली बुद्धि, संशय, करने वाला मन, अहंकार और स्मरण का कारण चित्त ऐसे सब मिलकर चौबीस तत्व हैं।।15।।

अन्य किसी के अधीन न रहने वाला स्वतंत्र काल नामक श्री हरि ही पच्चीसवाँ तत्व हैं।।16।।

श्री हरि के तत्व को भली भाँति जानने वाले ज्ञानीजन कहते हैं कि अहंकार से मोहित प्रकृति से बद्ध जीवों को जनन और मरण रूप संसार में डालने वाले श्री हरि के दो काल रूप हैं। पहला रूप हृदय में रहने वाला सर्वत्र व्याप्त रूप दूसरा रूप रुद्र के देह में रहने वाला पुरुषाकार रूप है। यही संहार और संसार के लिए कारण होने वाला रूप है।।17।।

प्रधान तत्वाभिमानी लक्ष्मी देवी हैं। श्री, भू, दुर्गा इनके तीन रूप हैं। इनको सृष्टि के लिए प्रेरणा करने वाला श्री हरि ही हैं। इसलिए वही काल कहलाते हैं। समस्त प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी होकर श्री हरि पुरुष कहलाते हैं। बाहर व्याप्त होकर काल कहलाते हैं। इन दोनों रूपों में कोई भेद नहीं हैं।।18,19।।

नारायण रूप से प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न किया। तब प्रधान तत्वाभिमानी लक्ष्मी में सृष्टि करने की इच्छा उत्पन्न किया। इस लक्ष्मी से सृष्टि के लिए कारण **'श्री'** रूप व्यक्त हुआ। नारायण रूप से व्यक्त हुआ पुरुषोत्तम नामक श्री हरि ने श्री देवी में अपना वीर्य स्थापित किया। तब उससे प्रकाशमय महत्तत्व उत्पन्न हुआ।।20।।

यह परम पुरुष रूप ब्रह्मादि समस्त जीव समुदाय का आधार है। इस रूप के उदर में समस्त जगत छिपा हुआ था जिसको व्यक्त करने की इच्छा किया। श्री हरि के योगनिद्रा के लिए कारणीभूत अन्धकार को अपने प्रकाश से नाश किया।।21।।

वह पूर्णानन्द, शुद्ध और कालुष्य रहित हैं। इसलिए महत्तत्व भी शुक्ल, स्तिमित है। इस महत्तत्व के नियामक वासुदेह रूप से प्राणियों का चित्त उत्पन्न होता है।।22।।

निर्मल रहना, किंचित् विकार को प्राप्त होना और प्रसन्न रहना यह चित्त के स्वाभाविक लक्षण हैं। अर्थात् जैसे जल स्वभाव से स्वच्छ रहता है वैसे ही चित्त भी स्वाभाविक रूप से उपरोक्त गुणों से युक्त होता है।।23।।

श्री हरि के इच्छानुसार महत्तत्व में विकार होकर तीन प्रकार के अहंकार तत्व के लिए कारण हुआ। इसमें महत्तत्व से भी ज्ञान शक्ति कम है इसलिए यह क्रिया शक्ति से ही प्रसिद्ध है।।24।।

इसमें से पहला वैकारिक अहंकार मनस्तत्व के लिए, दूसरा तैजस अहंकार इन्द्रियों के लिए, तीसरा तामस अहंकार पंच महाभूत के लिए कारण है।।25।।

वैकारिक अहंकार से दिगभिमानी देवता, तैजस अहंकार से बुद्धि के अभिमानी उमा और आहंकारिक प्राण उत्पन्न हुए। तामस अहंकार से शब्द आदि तन्मात्राएँ उत्पन्न हुई। यह त्रिगुणात्मक अहंकार शान्त, घोर, और मूढ़भाव के लिए व्यंजक है।।26।।

अहंकार तत्व सूक्ष्म और स्थूल दो प्रकार के हैं। जब वैकारिक, तैजस, और तामस में विभाजित नहीं रहता तो वह सूक्ष्म कहलाता है। जब विभाजन हो जाता है तो स्थूल कहलाता है। सूक्ष्म अहंकार के लिए संकर्षण रूपी श्री हरि नियामक हैं। और वही पंचभूत ज्ञान-कर्मेन्द्रियों के लिए प्रधान प्रवर्तक हैं। इनके अनन्त सिर हैं। देश, काल और गुणों से अन्त रहित हैं। तीन भागों में विभाजित अहंकार तत्व, स्थूल अहंकार कहलाता है। इसके लिए प्रद्युम्न नियामक हैं। संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूपों से प्रेरित हुए सहस्त्र फण वाला शेष देवता अहंकार तत्व के

अभिमानी हैं।।27।।

मनस्तत्व के लिए कारणीभूत वैकारिक अहंकार कर्ता कहलाता है। इन्द्रियों के लिए कारणीभूत तैजस अहंकार कारण कहलाता है। पंचभूत और भौतिक पदार्थों के लिए जो कारण है वह तामस अहंकार कार्य कहलाता है। वैकारिक अहंकार श्री हरि में निष्ठा उत्पन्न करने के कारण शान्त कहलाता है। तैजस अहंकार इन्द्रियों द्वारा घोर पदार्थों का ज्ञान और घोर कर्मों के लिए कारण होने से घोर कहलाता है। तामस अहंकार पंचभूतों के लिए कारण होने से मूढ़ कहलाता है। यह अन्य की अपेक्षा कम ज्ञान उत्पन्न करने से मूढ़ कहलाता है।।28।।

वैकारिक आदि अहंकार के भागों से मन आदि उत्पन्न होने का स्पष्ट रूप से वर्णन करते हैं। श्री हरि की इच्छा से वैकारिक अहंकार में विकार होकर मनस्तत्व में परिणित हुआ। इसका कार्य संकल्प, विकल्प है। इसी के द्वारा अनेक प्रकार की इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं।।29।।

पूर्वोक्त प्रद्युम्न रूप से अभिव्यक्त हुए अनिरुद्ध रूपी ही मनस्तत्व के नियामक हैं। यही सब इन्द्रियों के लिए नियामक हैं। यह नीले कमल की भाँति श्याम वर्ण का है। सनकादि ऋषि इनकी प्रशान्त मन से ध्यान करते हैं। काम का पुत्र अनिरुद्ध में यही अन्तर्यामी हैं। मन स्वाभाविक रोक-टोक न होने से अनिरुद्ध कहलाता है। दुष्ट विषयों का चिन्तन करने से कृष्ण वर्ण कहलाता है। यह समस्त इन्द्रियों का नियमन करता है। ऐसे मन को योगीजन प्राणायाम के द्वारा क्रमशः अपने अधीन कर लेते हैं।।30।।

श्री हरि की इच्छा से तैजस अहंकार में विकार होकर बुद्धितत्व बना। निर्दृष्ट इन्द्रियों के द्वारा पदार्थों से संबंध होने पर इस तत्व से पदार्थों का विशेष ज्ञान होता है।।31।।

संशय, मिथ्याज्ञान, निश्चय, स्मृति और अज्ञान ये बुद्धि तत्व के स्वाभाविक लक्षण हैं।।32।।

ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय तैजस अहंकार के परिणाम हैं। कर्मेन्द्रियों के लिए आहंकारिक प्राण अभिमानी है। ज्ञानेन्द्रियों के लिए उमा देवी है।।33।।

श्री हरि के प्रेरणा से तामस अहंकार में विकार होकर शब्द तन्मात्रा की उत्पत्ति हुई। और उससे आकाश की उत्पत्ति हुई। और शब्द का ज्ञान उत्पन्न करने वाली श्रोत्रेन्द्रिय (गोलक) उत्पन्न हुई।।34।।

पदार्थों का और श्री हरि का ज्ञान कराना आकाश का गुण है और यह शब्द का लक्षण है।।35।।

प्राणियों को स्थान देना, पदार्थों के भीतर और बाहर व्याप्त रहना, तथा प्राण, इन्द्रियों और मन को आश्रय देना यह आकाश का स्वाभाविक लक्षण है।।36।।

श्री हरि के प्रेरणा से आकाश में विकार होकर स्पर्श तन्मात्रा के लिए कारण बना। इससे भूत वायु, स्पर्शेन्द्रिय उत्पन्न हुए।।37।।

कोमलता, कठोरता और सर्दी गर्मी, आदि का ज्ञान स्पर्श से ही होता है।।38।।

वृक्ष आदि को हिलाना डुलाना, कास आदि को एकत्र कर देना, गन्धयुक्त वस्तु को घ्राणेन्द्रिय तक पहुँचाना, शीत और उष्ण पदार्थों को त्वगेन्द्रिय के पास और शब्द को श्रोत्रेन्द्रिय के पास पहुँचाना तथा सारी इन्द्रियों को

संचालित करना वायु का लक्षण है।।39।।

श्री हरि की इच्छा से विकार होकर वायु से रूप तन्मात्रा उत्पन्न हुई। जिससे तेज और चक्षुरेन्द्रिय उत्पन्न हुए।।40।।

पदार्थों के रहने तक रहना प्रकाशमान होना, उग्र होना रूप तन्मात्रा का स्वभाव है।।41।।

प्रकाश देना, अन्न पकाना, ठण्ड से रक्षा करना, पदार्थों को सुखाना, और भूख प्यास को उत्पन्न करना तेज का स्वभाव है।।42।।

श्री हरि की इच्छा से विकार होकर तेज से रस तन्मात्रा, उससे जल और रसनेन्द्रिय उत्पन्न हुई।।43।।

रस एक ही होने पर भी भौतिक पदार्थों के विकार से कसैला, मीठा, नमकीन, तीता, कडुआ और खट्टा आदि अनेक विध हो जाता है।।44।।

भिगोना, पिण्डाकार बना देना, तृप्त करना, चेष्टा के लिए कारण होना, सन्तोष उत्पन्न करना, बिन्दु भाव को प्राप्त होना, सन्ताप को दूर करना, कार्यों में अधिक रूप से रहना यह जल के स्वाभाविक गुण हैं।।45।।

श्री हरि की इच्छा से जल में विकार होकर गन्ध तन्मात्रा उत्पन्न हुई जिससे पृथ्वी और घ्राणेन्द्रिय उत्पन्न हुई।।46।।

गन्ध एक ही होने पर भी पदार्थों के सम्पर्क में आने से जलने का गन्ध, सड़ा हुआ गन्ध, सुगंध, मिश्रित गन्ध, मृदु, तीव्र और आम्ल (खट्टा) आदि अनेक प्रकार की हो जाती है।।47।।

अंकुरों के उत्पत्ति के लिए कारण होना, पार्थिव शरीर में श्री हरि का रहना, मूर्त द्रव्यों का धारण करना, वायु, तेज और जल से भी अधिक व्यक्त रहना, प्राणियों के शरीर में उन-उन गुणों को व्यक्त करना यह पृथ्वी के स्वाभाविक लक्षण हैं।।48।।

आकाश का गुण शब्द ही श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है। वायु का विशेष गुण स्पर्श त्वगिन्द्रिय का विषय है।।49।।

तेज का विशेष गुण रूप चक्षुरिन्द्रिय का विषय है। जल का विशेष गुण रस ही रसेन्द्रिय का विषय है।।50।।

भूमि का विशेष गुण गन्ध घ्राणेन्द्रिय का विषय है। पहले-पहले के भूतों का गुण वाद वाले भूतों में होते हैं। अर्थात् वायु आदि कार्य तत्वों में आकाश आदि कारण तत्वों के रहने से उनके गुण भी अनुगत देखे जाते हैं। इसलिए समस्त महाभूतों के गुण शब्द स्पर्श रूप, रस और गन्ध केवल पृथ्वी में ही पाए जाते हैं।।51।।

महत, अहंकार, आकाश, वायु अग्नि, जल और पृथ्वी (यह सब जड़ हैं) एक दूसरे न मिलकर अलग-अलग रहने से ब्रह्माण्ड का और ब्रह्मा के शरीर की सृष्टि करने में असमर्थ हुए। तब श्री हरि ने काल, कर्म, गुणों को निमित्त बनाकर उनमें (उपरोक्त तत्वों में) प्रवेश किया और उनके कार्योत्पत्ति की शक्ति को प्रकाश में लाए।।52।,53।।

तब उन तत्वों से अचेतन ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। उस अंड से प्रकाशमान ब्रह्मा उत्पन्न हुए।।54।।

यह ब्रह्माण्ड विशेष कहलाता है। ब्रह्माण्ड बाहर से जल तत्व, अग्नितत्व, वायुतत्व आकाश तत्व, अहंकार तत्व और महत्तत्वों से घिरा हुआ है। यह उत्तरोतर दस गुना जल आदि से घिरा हुआ है। इन तत्वों के आवरण के

बाहर तमोगुण और सत्व गुणों का आवरण है। इस ब्रह्माण्ड के अन्दर चौदह लोक हैं। यह सर्वोत्तम श्री हरि की प्रतिमा कहलाती है।।55।।

श्री हरि ने जल में से ब्रह्माण्ड को ऊपर लाया और उसमें प्रवेश किया। उसमें रहने वाले ब्रह्मा के देह में भी प्रवेश किया। और उसके अन्दर मुख आदि अनेक अवकाश को व्यक्त किया।।56।।

पहले मुख को व्यक्त किया। उसमें वागेन्द्रिय और उसके अभिमानी अग्नि देवता प्रकट हुए। तत्पश्चात् नाक के छिद्र (नथुने) और उसमें घ्राणेन्द्रिय तथा उसके अभिमानी प्राण देवता व्यक्त हुए। इसके पश्चात् नेत्र व्यक्त हुए। उनमें चक्षुरिन्द्रिय और उसके अभिमानी सूर्य देवता व्यक्त हुए। फिर कानों के छिद्र प्रकट हुए, उनसे उनकी इन्द्रिय श्रोत्र और उसके अभिमानी दिग देवता व्यक्त हुये।।57,58।।

इसी प्रकार से चर्म, रोम, मूँछ, दाड़ी, तथा सिर के बाल प्रकट हुए। इसके पश्चात् औषधि और उसके अभिमानी देवता, शिश्न, उपस्थेन्द्रिय, वीर्य उसके अभिमानी जलाभिमानी देवता, गुद पायु इन्द्रिय, अपान वायु, मृत्यु, हाथ, बलकार्य करने वाला हस्तेन्द्रिय और उसके अभिमानी इन्द्र देवता, चरण, पादेन्द्रिय उसके अभिमानी यज्ञ नामक देवता (जयन्त) उनके अन्तर्यामी विष्णु व्यक्त हुए। ब्राह्मणों के अंगुष्ठ को धोकर पीने वालों को (यह शैव सम्प्रदाय है)। फल देने के लिए पादाभिमानी देवताओं में श्री हरि सदा आविष्ट होकर रहते हैं इसको बतलाने के लिए ही अभिमानी देवता को न बतलाकर श्री हरि को ही कहा गया है इसके लिए प्रमाण-

यज्ञनामा तु देवोऽन्यो विज्ञेयः पाददेवता।
तमाविष्टो हरिर्नित्यं तमाहुः पाददैवतम्।। कापिलेये

इस प्रमाण से उरोक्त अर्थ की पुष्टि होती है। नाड़ियाँ उनसे रक्त तदाभिमानी नद्यभिमानी देवता, उदर, भूख और प्यास उसके अभिमानी समुद्र अभिमानी देवता, हृदय, मनोइन्द्रिय उसके अभिमानी चन्द्र, उस हृदय से बुद्धि तदाभिमानी बृहस्पति, उसी हृदय से अहंकार तदाभिमानी रुद्र देवता, उसी हृदय से चित्त उसके अभिमानी ब्रह्मा और उनके अन्तर्यामी विष्णु (बुद्धि अहंकार और चित्त मन के प्रभेद हैं) व्यक्त हुए।।59,60,61,62,63,64।।

मुख्य वायु भविष्य में ब्रह्मा के पद पर आएँगे यह दोनों एक ही योग्यता के हैं। इनमें से एक को उत्तम होना कहने से दूसरे को भी उत्तम कहे वैसा ही है। इस प्रकार मुख्य वायु समस्त जीवों में जीवोत्तम होना देवताओं के विवाद से निर्णय किया गया है। इस प्रकार श्री हरि की इच्छा से व्यक्त हुए इन्द्रियाभिमानी देवता ब्रह्मा के देह को उठाने में समर्थ न हो सके। वे देवता एक-एक करके इन्द्रियों में पुनः प्रवेश किए। अग्नि देवता वागेन्द्रिय के साथ मुख में प्रवेश किया। प्राण देवता (नासिक वायु) घ्राणेन्द्रिय के साथ नासिका में प्रवेश किया। सूर्य देवता चक्षुरिन्द्रिय के साथ आँखों में प्रवेश किया दिग्देवता श्रोत्रेन्द्रिय के साथ कान में प्रवेश किया। औषधि के अभिमानी देवता रोम के साथ त्वक् में प्रवेश किया। जलाभिमानी वीर्य के साथ उपस्थेन्द्रिय में प्रवेश किया। मृत्यु देवता अपान वायु के साथ गुदा में प्रवेश किया। इन्द्र देवता बल के साथ हाथों में विष्णु ने पादाभिमानी यज्ञ में रहकर गमन क्रिया के साथ चरणों में प्रवेश किया। नद्यभिमानी रक्त के साथ नाड़ियों में प्रवेश किया। समुद्राभिमानी ने भूख प्यास के साथ

उदर में प्रवेश किया। चन्द्र ने मन के साथ, बृहस्पति ने बुद्धि के साथ, रुद्र अहंकार के साथ, हृदय में प्रवेश किए। इस पर भी ब्रह्मा का शरीर नहीं उठा। ब्रह्मा के अन्तर्यामी क्षेत्रज्ञ कहलाने वाले श्री हरि ने ब्रह्मा और वायु के साथ जब देह में प्रवेश किया उसी समय ब्रह्मा का देह जल में से उठ खड़ा हुआ। ब्रह्मा जी ने अपने देह में एक अंश से सुप्त रूप से रहकर दूसरे अंश वायु और विष्णु के साथ बाहर आए तब देह गिर गया। तब देवता उस देह को उठाने के लिए एक-एक करके उसमें प्रवेश करने पर भी उठा नहीं सके। महावलिष्ठ तीन देवताओं के प्रवेश करने पर ही उसमें भी श्री हरि के प्रभाव से ही वह देह उठ खड़ा हुआ। चित्त के अभिमानी ब्रह्मा हैं। उनके अन्तर्यामी क्षेत्रज्ञ नामक श्री हरि नियामक हैं। प्राण ही मुख्य वायु हैं। ब्रह्मा और वायु के लिए स्वतंत्र श्री हरि नियामक हैं। प्राण ही मुख्य वायु हैं। ब्रह्मा और वायु के लिए स्वतंत्र श्री हरि ही नियामक हैं। इस प्रकार श्री हरि का सर्वोत्तमत्व जानना चाहिए। ।65,66,67,68,69,70,71,72,73। ।

यहाँ श्री हरि का सर्वोत्तम और सर्व समर्थ होना स्पष्ट रूप से कहा नहीं गया है। आप बलात् इस प्रकार का अर्थ कर रहे हैं। इस शंका को दूर करने के लिए श्री हरि का सर्वोत्तम होना स्पष्ट करते हैं। मुख्य प्राण देह में हो तो चैतन्य है वह न हो तो चैतन्य नहीं है। इससे मुख्यप्राण के नियामक श्री हरि का महात्म्य स्पष्ट होता है जिससे श्री हरि का सर्वोत्तम होना सिद्ध होता है। इसलिए सर्वोत्तम श्री हरि शरीर के अन्तर्यामी क्षेत्रज्ञ का ही वैराग्य, भक्ति के साथ निश्चयात्मक ज्ञान द्वारा हृदय में उपासना करना चाहिए। ।74,75। ।

। । इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः। ।

अथ अष्ट विंशोऽध्यायः

जीव और परमात्मा एक ही शरीर में रहते हैं। उस देह में रहने वाले जीव को दुःखादि का अनुभव होता है। शरीर में रहने से परमात्मा को भी दुःखादि का भोग क्यों नहीं होता है? इस शंका का समाधान इस अध्याय में करते हैं।

कपिल भगवान कहते हैं-हे मनु पुत्री! परिपूर्ण श्रीहरि जड़ देह में रहने पर भी उनको किसी प्रकार का विकार नहीं है। वह किसी के अधीन होकर कर्ता नहीं कहलाते हैं। प्राकृत गुणों से रहित हैं। प्राकृत देह में होने वाले सुख दुःख, जन्म मरण इत्यादि से श्री हरि लिप्त नहीं हैं। जिस तरह जल में प्रतिबिम्बित सूर्य में जल के दोषों का संबंध नहीं होता उसी प्रकार प्रकृति के कार्य शरीर में स्थित रहने पर भी परमात्मा श्री हरि इन सब धर्मों से लिप्त नहीं होते हैं। किन्तु जीव का ऐसा नहीं है। जीव तो जड़ देह में अभिमान से युक्त होकर ही जन्म लेता है। अहंकार और ममकार के वशीभूत होकर श्री हरि को भूलकर भ्रम से अपने को ही स्वतंत्रकर्ता मानता है।।1,2।।

इस भ्रम से ही सुख दुःखादि रूप इस संसार को प्राप्त हुआ है। यह जीव श्री हरि के अधीन है। शब्दादि विषय नश्वर होने से इसके मन को तृप्त नहीं कर सकते हैं। इस पर भी विषयासक्त होकर कर्म के दोषों से देवासुर, मनुष्य, योनियों में जन्म लेते हुये सुख दुःख रूप संसार में पड़ा रहता है।।3।।

यह जीव तो शब्दादि विषयों का सदा चिन्तन करते रहता है। मुक्ति योग्यजीवों का स्वरूप ज्ञानानन्दात्मक है। इस पर भी जब वह विषय का अनुभव करता है, तब मैं सदा आनन्द स्वरूप हूँ इसका ज्ञान नहीं होता है। इस संसार से जो प्रयोजन है वह नश्वर है। इस पर भी जागृत अवस्था में जिन-जिन पदार्थों को देखता और चिन्तन करता है उसका संस्कार मन में रह जाता है। विषयों का ध्यान और संस्कारों की परम्परा यह एक दूसरे के बीज और अंकुर जैसे अनादि काल से कारण हैं। यह श्री हरि के अनुग्रह के बिना नाश नहीं होते हैं। जागृत अवस्था में जिन-जिन पदार्थों का चिन्तन करता है स्वप्न में उन्हीं वासनामय पदार्थों को देखता है। स्वप्न में गधे पर सवारी करता है। इस प्रकार स्वप्न भविष्य में मरण रूप अनर्थ को सूचित करता है। **पुरुषं कृष्णं कृष्णदन्तं पश्यति स एनं हन्ति।** स्वप्न में काले दाँत और काले वर्ण वाले मनुष्य को देखने से मृत्यु सिद्ध है। इस प्रकार स्वप्न भविष्य में होने वाले अनर्थ के सूचक हैं। इसलिए स्वप्न पदार्थ प्रयोजनकारक होने से सत्य हैं। स्वप्न पदार्थ भी सत्य है। यह संसार का बन्धन जीव को ईश्वर की इच्छा से है। ईश्वर के अनुग्रह से ही इस बन्धन से छुटकारा पा सकता है। यह संसार तो जीव के लिए आगंतुक है। इसलिए इससे छुटकारा पा सकता है।।4।।

यह जीव अन्यथा ज्ञान (विपरीत ज्ञान अथवा मिथ्याज्ञान) और अज्ञान को दूर करके शास्त्र के श्रवण मनन से तत्वज्ञान को प्राप्त करके यह विषय भोग तो अधोगति का कारण है विषय अनित्य होने से शाश्वत फल नहीं दे सकते हैं। ऐसा जानकर संसार के लिए कारण होने वाले विषय चिन्तन का परित्याग करे।।5।।

विषयों में मन का आसक्त होना ही संसार का कारण है। वह तो कभी भी मोक्ष मार्ग नहीं हो सकता है। इसलिए मोक्ष के लिए विरुद्ध उस मार्ग को धीरे-धीरे त्याग करें इसके लिए श्री हरि में निरतिशय भक्ति करे। विषयों से विरक्त होकर मन को अपने अधीन करें।।6।।

यम, नियम, और प्राणायाम का अभ्यास करते हुए **ओंकार** का ही ध्यान करते हुए श्रद्धापूर्वक श्री हरि में भक्ति करें। समस्त सज्जीवों से हितकर वचन बोलें और भगवान की सत्कथा का श्रवण करें।।7।।

समस्त प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से रहने वाले श्री हरि को परिपूर्ण (जानकर) उन श्री हरि के रूपों में अभेद का चिंतन करें। (परस्पर भेद नहीं है)। विष्णु भक्तों में द्वेष न करे। जो विषयासक्त हैं उनका संग न करे और विषय भोग में आसक्त न होवे। व्यर्थ के लौकिक वार्तालाप न करें, गपशप न लगायें। अपने वर्ण और आश्रम के उचित धर्मानुष्ठान के द्वारा श्री हरि की सेवा आराधना करे।।8।।

अदृष्ट का नियामक श्री हरि की इच्छा से जो कुछ मिलता है उसी से तृप्त रहे, आहार परिमित रहे और श्री हरि के गुणों का मनन करते रहें। एकान्त प्रदेश में वास करते हुए मन को श्री हरि में ही स्थित करके सज्जनों के कष्ट को दूर करते हुए गायत्री से प्रतिपाद्य श्री हरि के रूप को तीनों सन्ध्याकाल में ध्यान करते हुए मित्रों में और सज्जनों में कृपा करते रहें।।9।।

मन को स्वाधीन रखकर कर्म से प्राप्त इस देह में और अपने अनुबंधी पत्नी पुत्र आदि बन्धुओं में मैं, मेरा पन का दुराग्रह त्याग दें। श्री हरि के विषय में चेतन और प्रकृति के विषय में यथार्थ ज्ञान प्राप्त करें।।10।।

इस प्रकार तत्वज्ञानी, होकर न करते हुए शब्दादि विषयों का चिन्तन त्याग कर दुष्ट और कुमत सिद्धान्तों को अप्रमाणिक होना जानकर सत् सिद्धान्तानुसार उपासना करते हुए स्वरूप मन से अपने स्वरूप को जानकर नामाभिमानी उषा देवी से लेकर मुख्य प्राण पर्यन्त देवताओं का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करके उनके अनुग्रह से बिम्बरूपी श्री हरि का दर्शन करे। उसके समान अथवा उससे अधिक कोई नहीं है। उसी को सर्वस्वामी और सर्वोत्तम जानकर उपासना करें।

श्रवणादि विना नैव क्षणं तिष्ठेदपि क्वचित्।
अत्यशक्ये तु निद्राहौ पुनरेव समभ्यसेत्।।

इस प्रमाण से यह सूचित किया गया है कि स्वयं ही निद्रा आने तक श्री हरि की कथा श्रवण, मननादि करते रहना चाहिए। निन्द्रा सहन न हो सके तो निद्रा करके पुनः श्री हरि की कथा श्रवण, शास्त्र अभ्यास करना चाहिए।।11।।

तत्पश्चात् प्रारब्ध कर्म का नाश होने पर प्रलयकाल में जीव ब्रह्मा में प्रवेश करके (श्री हरि के उदर में रहकर) (पुनः सृष्टि काल में) लिंग देह को त्यागकर मुख्य प्राण के बन्धु, समस्त रूपों में पूर्ण, निर्दृष्ट, सर्वज्ञ, मुक्तामुक्त जगत का आश्रय, समाधिक रहित उस श्री हरि को प्राप्त होता है। समस्त देवता शेष देवता के प्रतिबिम्ब हैं। शेष देवता ब्रह्मा जी के, ब्रह्मा परमात्मा के प्रतिबिम्ब हैं। यह प्रतिबिम्ब प्रसन्न होकर अपने-अपने बिम्बदर्शन के लिए अनुग्रह करते हैं। इसलिए देवताओं के अनुग्रह से शेष देवता का, उनके अनुग्रह से ब्रह्मा (वायु देवता) का,

उनके अनुग्रह से परमात्मा का दर्शन होता है। इन सब अर्थ को **'आत्मानं'** इस पद से यहाँ सूचित किया गया है।

शेषस्य प्रतिबिम्बास्तु देवाः, शेषश्च ब्रह्मणः।

स परब्रह्मणश्चैव ते स्वबिम्ब प्रदर्शकाः।

ततः स्वबिम्बद्वारेण परमात्म प्रदर्शन्।। ब्रह्मतर्के

इस प्रमाण से उपरोक्त अर्थ स्पष्ट होता है।।12।।

ब्रह्मा जी श्री हरि के प्रतिबिम्ब हैं। इनके अनुग्रह से ही श्री हरिं का दर्शन साध्य है। जिस प्रकार दीवार पर प्रतिफलित जल के प्रतिबिम्ब से जल में प्रतिबिम्बित सूर्य का ज्ञान होता है, जल में प्रतिफलित सूर्य के प्रतिबिम्ब से आकाश में रहने वाले सूर्य का दर्शन करते हैं।।13।।

जल में प्रतिबिम्बित पुरुष के मुख को देखकर किनारे पर खड़े पुरुष का ज्ञान होता है उसी प्रकार से शेष देवता के प्रतिबिम्ब भूत इन्द्रियादि अभिमानी देवताओं का, इन्द्रादि देवताओं के अनुग्रह से अहंकार के अभिमानी शेष देवता का, ब्रह्मा जी के प्रतिबिम्ब भूत इस शेष देवता के अनुग्रह से ब्रह्मा का, (मुख्य वायु का), श्री हरि के प्रतिबिम्ब भूत ब्रह्मा के अनुग्रह से उपासक श्री हरि का दर्शन करते हैं। श्री हरि को कोई भी पूर्ण रूप से जान नहीं सकते हैं इसलिए श्री हरि एक ही यथार्थ ज्ञानी हैं।।14।।

श्री हरि के प्रतिबिम्ब भूत ब्रह्मादि चेतन अपनी-अपनी योग्यतानुसार यथार्थ ज्ञानी हैं। उन सब में श्री हरि के रहने पर भी श्री हरि अपूर्ण ज्ञानी नहीं हैं। पंचभूत तन्मात्रा इन्द्रिय और बुद्धि के अभिमानी देवता संसारी जीव के स्थूल देह में रहकर निद्राकाल में उपरत हो जाते हैं परन्तु हरि निद्रा रहित और अभिमान रहित होकर जागते रहते हैं।।15।।

इससे स्पष्ट होता है कि श्री हरि को अज्ञानादि नहीं है। जीव के निद्रा अवस्था में मनोधर्म रूप अहंकार नष्ट होने से वह अपने को नष्ट हुए सा समझता है जैसे कोई व्यक्ति धन का नाश हो जाने पर अपने को नष्ट हुए मानने लगता है। भगवान का ज्ञान कभी नष्ट नही होता है जीव का ज्ञान नष्ट होता है। इस प्रकार इन दोनों में भेद होना इस श्लोक में बताया गया है।।16।।

इस प्रकार जीव और भगवान में भेद को जानकर श्री हरि ही जीव को सत्ता और ज्ञान को प्रदान करके अनुग्रह करने वाले हैं ऐसे ज्ञानपूर्वक उपासना करके जीव श्री हरि को प्राप्त होता है।

प्रश्न-यहाँ कुछ श्लोकों में जीव ब्रह्म का भेद नहीं कहा गया है किन्तु एक ही पर ब्रह्मा को ब्रह्मावस्था, और जीवावस्था कहा गया है। भेद ही कहा गया है ऐसा निश्चय करने में क्या प्रमाण है?

उत्तर- **नित्यहक् परमात्माऽसौ, मृतवद्यो न किंचन।**

जानाति ज़ीवः स ज्ञेयः, परमात्मा तदाश्रयः।। हरिवंशेषु

इस प्रमाण में जीव और परब्रह्म भिन्न होना तथा परमात्मा जीव के लिए आश्रय होना कहा गया है। इसलिए जीव और परब्रह्म में भेद सिद्ध होता है।।17।।

देवहूती ने कहा-हे प्रभो! जीव और परमात्मा के भेद ज्ञान से जीव प्रकृति के बन्धन से मुक्त होने मे कारण होता है, यह कैसे साध्य हो सकता है? क्योंकि प्रकृति भी नित्य है और जीव भी नित्य है। प्राकृत देह के बिना जीव कोई चेष्टा ही नहीं कर सकता है। जीव से संबंध न होने पर अचेतन प्रकृति भी कोई चेष्टा नहीं कर सकती है। इसलिए परस्पर यह दोनों एक दूसरे के उपकारी होने से इनमें वियोग साध्य नहीं है।।18।।

इस प्रकार त्रिगुणात्मक प्रकृति का संबंध पुण्य और पाप को भोगने वाले जीव से छूट नहीं सकता है। जैसे पृथ्वी और गन्ध जल और रस एक दूसरे को छोड़कर नहीं रह सकते हैं। इस प्रकार प्रकृति और जीव परस्पर छोड़कर नहीं रह सकते हैं।।19।।

जीव स्वतंत्र कर्ता नहीं है। संसार तो प्राकृत गुणों का ही आश्रय किया हुआ है। इसलिए जीव को इस प्रकृति के बन्धन से छुटकारा पाना साध्य ही नहीं है। जब तक प्रकृति के गुणों की निवृत्ति न होगी तब तक संसार की निवृत्ति न होगी। आप कहते हैं कि जीव परमात्मा के भेद ज्ञान से प्रकृति के बन्धन से जीव छूट जाता है। इससे जीव का प्रकृति के बन्धन से न छूटने का भय अब कुछ कम हुआ है। परन्तु वाह्य अन्तःकरण दूर न होने से प्रकृति का बन्धन छूट जाता है या नहीं यह संशय वैसे ही रह गया है। इसलिए कृपया इसको दूर दीजिए।।20,21।।

भगवान ने कहा-हे माता जी! प्रकृति के दूर होने से उसके गुण स्वयं ही चले जाते हैं। उस प्रकृति की निवृत्ति तो फलेच्छा रहित वर्णाश्रमोचित धर्मानुष्ठान से साध्य है इसी को स्पष्ट रूप से समझता हूँ। फलेच्छा रहित किए जाने वाले वर्णाश्रम धर्म शुद्ध कहे जाते हैं। ऐसे धर्माचरण का आचरण करते हुए बहुकाल तक वेदान्त शास्त्रों का श्रवण करना चाहिए। इससे श्री हरि में अतिशय भक्ति उत्पन्न होगी। इसके फलस्वरूप श्री हरि से आरम्भ करके देवताओं का अपरोक्ष ज्ञान होता है। इसके लिए सुदृढ़ विषय वैराग्य होना चाहिए। देह को शुद्ध करने वाले उपवास आदि व्रत, अष्टांग सहित योगाभ्यास, इससे मन की निश्चल एकाग्रता साध्य है। इस एकाग्र ध्यान से उत्पन्न हुए ज्ञानाग्नि से पुरुष का प्रकृति से जो संबंध है वह नष्ट हो जाता है। जैसे कि अरणिकाष्ठ (अश्वत्थ काष्ठ) अग्नि को उत्पन्न करके स्वयं उसमें भस्म हो जाता है।।22,23,24।।

बिम्बरूपी श्री हरि का अपरोक्ष ज्ञान होने पर जीव उनके अनुग्रह के द्वारा अपने स्वरूपभूत ज्ञानानन्दादि का अनुभव करता है। तब जीव से निवृत्त हुई प्रकृति पुनः जीव को संसार में नहीं डाल सकती।।25।।

इसी को दृष्टान्त के द्वारा स्पष्ट करते हैं-जैसे निद्रा करने वाला स्वप्न में देखे हुए शेर इत्यादि क्रूर प्राणियों से भयभीत होता है और वही जागने पर उसके भय के कारण नहीं होते हैं।।26।।

वैसे ही नामाभिमानी उषा देवी से लेकर परमात्मा तक समस्त तत्वोंका अपरोक्ष ज्ञान प्राप्तकरके श्री हरि में ही मन को ास्थिर किए हुए भक्त को प्रकृति संसार का कारण नहीं हो सकती है ।।27।।

इस प्रकार अनेक जन्मों में स्वोत्तम से लेकर श्री हरि तक समस्त देवताओं में उनके तारतम्यानुसार उनमें भक्ति करें। सत्यलोक तक के समस्त लोक और समस्त पद अनित्य और असार जानकर दृढ़ वैराग्य को प्राप्त होवे। भक्ति के साथ श्री हरि के गुणों का ही मनन करते रहे तब श्री हरि का अतिशय अनुग्रह होगा। जिसके

फलस्वरूप समस्त देवताओं का अपरोक्ष ज्ञान होगा। इस प्रकार अपने और अन्य देवताओं के स्वरूप को जानकर जीव अपने समस्त संशय को दूरकर तत्व निश्चय को प्राप्त होता है। तब श्री हरि में ही आसक्त होकर योग सिद्धि को प्राप्त करता है। लिंग शरीर भंग होकर उसका स्वरूप अभिव्यक्त होता है और श्री हरि को प्राप्त होता है। एक श्री हरि को ही आश्रय करने से इसको कैवल्य कहते हैं। स्वरूपानन्द का अनुभव करने से निःश्रेयस कहते हैं। ऐसे मोक्ष को प्राप्त हुआ जीव पुनः सृष्टि में नहीं आता है। ।28,29,30।।

इस प्रकार के साधन मार्ग में रहने वाले को योगेश्वर श्री हरि के अनुग्रह से अणिमादि योग सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। यदि वह उनको अनुभव करने की इच्छा से उन्हीं में आसक्त हो जाय तो मोक्ष में विलम्ब होगा। उनमें आसक्त न होकर श्री हरि में ही चित्त स्थिर किए रहा तो पुनरावृत्ति रूप मृत्यु भय से रहित नित्य मेरे स्थान को शीघ्र प्राप्त होता है। यही मोक्ष है। ।।31।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे अष्टविंशोऽध्यायः।।

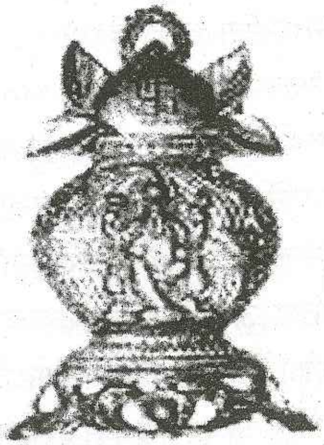

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

इससे पूर्व अध्याय में बतलाया गया कि विरक्त होकर भगवान में भक्ति के साथ उपासना करने से अपरोक्ष ज्ञान होगा। जीव स्वरूप का आविर्भाव होगा और मुक्त होगा। अब इस अध्याय में उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए साधनीभूत अष्टांग योग को विस्तार से बतलाते हैं।

कपिल भगवान कहते हैं-हे राजपुत्री! श्री हरि इस जगत के लिए निमित्तकारण होने से बीज कहलाते हैं। उस श्री हरि को प्राप्त करने के लिए जो योग है वह सबीज कहलाता है। इस योग का अनुष्ठान करने से श्री हरि में शरणागत भक्त का मन भगवान की ओर प्रवृत्त होता है।।1।।

इस वैष्णव योग के आठ अंग हैं। उसके लक्षण बतलाता हूँ। सबसे पहले इस योग के साधनों को समझना चाहिए। मुमुक्षु जीव अपने शक्ति के अनुसार अपने वर्ण और आश्रम के धर्मों का अनुष्ठान करें। निषिद्ध धर्म को त्याग दें। अदृष्ट (प्रारब्ध) के नियामक श्री हरि के अनुग्रह से जो कुछ प्राप्त हो उससे तृप्त रहें। ब्रह्मज्ञानियों के चरणों की सेवा करना न त्यागें अर्थात् निरन्तर सेवा करते रहें।।2।।

विषय सुख में आसक्त न होकर सकाम धर्म से दूर रहें। निवृत्ति धर्म जो मोक्ष का साधन है उसी का आचरण करते रहें। शास्त्रोक्त प्रकार से श्री हरि को समर्पित किया हुआ पवित्र आहार का प्रसाद रूप से परिमित आहार स्वीकार करें। उदर के आधे भाग की पूर्ति आहार से, एक भाग वायु संचार के लिये तथा एक भाग जल के लिए, इस प्रकार सेवन करना परमित आहार कहलाता है। श्री हरि के सन्निधान से युक्त क्षेत्रों में जाते रहें।।3।।

शास्त्र निषिद्ध हिंसा न करें। मिथ्या वाद (जगत मिथ्या है) का त्याग करें। और प्राणियों के लिए अहितकर वचन न कहें। स्वामी की आज्ञा के बिना तृण को भी न लें। शरीर निर्वाह के लिए जो आवश्यक हो उतना ही सेवन करें। आठ प्रकार के मैथुन से दूर रहें। 1. स्त्री हो या पुरुष प्रेम से पुरुष अथवा स्त्री का स्मरण करना। 2. उनके विषय में वार्ता करना। 3. खेल खेलना, 4. प्रेक्षण करना (देखना)। 5. रहस्य में बात चीत करना। 6. संकेत करना, 7. निश्चय करना। 8. कार्य निर्वाह करना यही आठ प्रकार के मैथुन हैं। उपवासादि व्रतों का आचरण करना, तत्वों का विमर्श करना, देह के भीतर और बाहर शुद्ध रहना, शास्त्राध्ययन करना, शास्त्रोक्त प्रकार से श्री हरि की अर्चना करना।।4।।

श्री हरि के अतिरिक्त (व्यर्थ वार्तालाप) न करें, उत्तम आसनों का अभ्यास करके स्थिरता पूर्वक बैठना, वैष्णव सिद्धान्त से विचलित न होना, और कष्ट आने पर भी धैर्य को न छोड़ना, धीरे-धीरे प्रणायाम के द्वारा वायु पर विजय प्राप्त करना (वायु देवता का अनुग्रह प्राप्त करना), इन्द्रियों को विषयों से हटाकर हृदय में रहने वाले श्री हरि में मन को स्थिर करना।।5।।

श्री हरि के चरण आदि एक-एक अवयवों में मन को स्थिर करके श्री हरि के सृष्टि आदि लीलाओं का

निरन्तर स्मरण करते रहे। प्रयत्न के बिना ही केवल अभ्यास बल से ही श्री हरि में मन स्थिर करे।।6।।

इस प्रकार इन्द्रिय और मन को अपने वश में करके श्री हरि के ध्यान में आसक्त होवे। नहीं तो दुष्ट विषयों में ही आसक्त होने के स्वभाव वाला मन दुष्ट मार्ग में चला जायेगा।।7।।

शुद्ध प्रदेश में आसन को डालकर पद्मासन आदि जिसमें देह को कोई असुविधा न हो में बैठकर योग का अभ्यास करे।।8।।

पहले पूरक, कुम्भक और रेचक अथवा रेचक, कुम्भक, पूरक से देह के अंग की वायु को परिशुद्ध करे।।9।।

इस प्रकार के प्राणायाम से चंचल मन स्थिर होगा। जिस प्रकार वायु और अग्नि से तपाया हुआ सुवर्ण (धातु) अपने मल को त्याग देता है उसी प्रकार जो योगी प्राण वायु को जीत लेता है उसका मन बहुत शीघ्र शुद्ध हो जाता है।।10।।

प्राणायाम के द्वारा राग द्वेषादि दोष नष्ट हो जायेंगे। प्रत्याहार से, दुष्टजनों की संगति से आए हुए पापों का परिहार होगा। धारणा से जन्मान्तर के संचित पाप दूर होंगे और ध्यान से योगसिद्धि (अणिमादि ऐश्वर्य) के प्रतिबन्धक जो प्राकृत गुण हैं उनका नाश होगा।।11।।

इस प्रकार मन शुद्ध होने पर एकाग्रता से ध्यान करने में सुविधा होगी। तब साधक अपने नासिका के अग्र भाग में दृष्टि को जमाकर वासनामय श्री हरि की मुर्ति का ध्यान करें।।12।।

वासनामय मूर्ति में उससे भिन्न तेजोमय तथा तदाकार होना श्री हरि का ध्यान करें। उनके मुख में मन्द मुस्कान है, नेत्र कमल कोष के समान रतनारे हैं, शरीर का साँवला रंग है और शंख चक्र गदा पद्म धारण किए तथा पीताम्बर पहने हैं। उनके हृदय में श्रीवत्स का चिन्ह शोभित है और कौस्तुभ मणि कंठ की शोभा बढ़ा रही है। वे ऐसी वन-माला पहने हुए हैं जिस पर भौरे गुंजार कर रहे हैं। वे बहुमूल्य हार कड़े, किरीट विजायठ और नुपुर पहने हुए हैं। उनकी कमर में करधनी पड़ी हुई है। ऐसे भगवान भक्तों के हृदय कमल में विराजते हैं। भगवान का रूप दर्शनीय, शांत और नयन तथा मन को आनंदप्रद है। भक्तों पर उनकी कृपा दृष्टि बनी रहती है। सारा संसार उनकी वन्दना करता है। उनकी अवस्था तरुण है। वे सदा भक्तों का हित-चिन्तन किया करते हैं। उनके गुण सदा कीर्तनीय हैं। सबसे कीर्तनीय तथा पवित्र कीर्ति वाले ब्रह्मादियों के यश को बढ़ाने वाले हैं। इस प्रकार श्री नारायण का सम्पूर्ण अंगों के सहित तब तक ध्यान करे। जब तक चित्त वहाँ से हटे नहीं।।13,14,15,16,17,18।।

शुद्ध (विषय चिन्तन से दूषित न हुए) मन से हृदय में रहने वाले (जीव और पंचप्राण के साथ) जाते हुए, समाधि में बैठे हुए, (निद्रा काल में) शयन करते हुए, सबके हृदय गुहा में वास करने वाले, अथवा दर्शनीय लीला करने वाले श्री हरि का ध्यान करे।।19।।

इस प्रकार से मनन करने वाला मुनि कहलाता है। उसका मन श्री हरि के अवयवों को देखते हुए वहीं स्थिर हो जाता है। यदि श्री हरि के समस्त अंगों का एक साथ ध्यान करने में मन असमर्थ हो तो उनके एक एक अवयव का स्मरण करते हुए चरण से लेकर शिर पर्यन्त ध्यान करते जायँ।।20।।

पहले भगवान के उस चरण कमल का भक्तिपूर्वक ध्यान करें जिसमें वज्र अंकुश, ध्वज, और कमल का चिह्न बना हुआ है। उस चरण कमल के लाल, लाल नाखूनों की आभा ध्यान करने वाले भक्तों के हृदय में पड़ने से वहाँ का घना अंधकार (अज्ञान) दूर हो जाता है।।21।।

उस चरण कमल के प्रक्षालन जल से वे गंगा जी निकली हैं जिन्हें अपने मस्तक के जटा में धारण करने से शिवजी अधिक पुण्य के भागी हुए। भगवान के चरण-कमल ध्यान करने वाले योगियों के मन में रहने वाले समस्त पापों के पर्वतों को चूर-चूर करने में वज्रायुध के समान हैं ऐसा जानकर बहुत देर तक ध्यान करें।।22।।

गरुड़ के कंधों पर शोभायमान तथा अत्यन्त वलिष्ठ और प्रकाशमान श्री हरि के दोनों जंघाओं का ध्यान करें। फिर कटि प्रदेश का ध्यान करें जिसमें करधनी समेत पीताम्वर सुशोभित है।।23।।

चौदह लोकात्मक कमल की उत्पत्ति का स्थान तथा जिसमें ब्रह्माण्ड स्थित है ऐसे श्री हरि के उदर भाग में रहने वाले नाभि का चिन्तन करें, फिर भगवान के स्तनों का ध्यान करें जिन पर हार की उज्जवल किरणें पड़ रही हैं।।24।।

इसके पश्चात् वक्षः स्थल का ध्यान करें, जिसमें लक्ष्मी जी का निवास है और जो भक्तों के मन तथा नेत्रों के लिए आनन्दप्रद है। फिर कण्ठ का ध्यान करें जो कौस्तुभ मणि को शोभा प्रदान करता है।।25।।

अब कड़े पहने हुए भगवान की चारों भुजाओं का ध्यान करें जिनसे मन्दराचल के द्वारा समुद्र का मंथन किया था। सब लोकपाल इन्हीं भुजाओं के भरोसे निर्भय रहते हैं। फिर भगवान के उस दाएँ हाथ का ध्यान करें जिसमें हजार धारों वाले सुदर्शन चक्र हैं जिसका तेज दैत्यों के लिए असहनीय है। इसके बाद राजहंस के जैसे उज्जवल पांचजन्य शंख का ध्यान करें।।26।।

फिर भगवान के गदा का स्मरण करें जो शत्रुओं का संहार करके उनके रक्त से लिप्त रहतीहै। अब भगवान की वनमाला का ध्यान करें जिस पर भौरें गुंजार किया करते हैं। फिर उनके कण्ठ में निर्मल कौस्तुभ मणि जो ब्रह्मा जी का स्वरूप है का ध्यान करें। ब्रह्मा जी ही कौस्तुभ मणि बनकर उनके कण्ठ में शोभायमान हैं।

ब्रह्मा चित्ताभिमानेन चैत्यस्तन्नियमाद्धारिः।
स च ब्रह्मा हरेः कण्ठे कौस्तुभत्वेन भासते।। भागवत तन्त्रे।

यह प्रमाण उपरोक्त अर्थ को स्पष्ट करता है।।27।।

भक्तों पर कृपा करने के लिए व्यक्त होने वाले भगवान के मुखारविन्द का ध्यान करें। मकराकार कुण्डलों के हिलने डुलने से उनके कपोलों पर आभा पड़ती है। निर्दृष्ट, मन्द मुस्कान से युक्त उनके मुख कमल का ध्यान करें।।28।।

घुंघराली अलकें उनके मुखड़े के दोनों ओर बिखरी हुई हैं और भौंहे सुन्दर हैं। भगवान के नेत्र कमल के समान सुन्दर और मछली की भाँति बड़े बड़े हैं। भगवान की दो भौंहे हैं जो प्रकाशमान हैं। ध्यान करने वाले योगी के मन में दिखाई देने वाली वासनामय मूर्ति के भीतर श्री हरि का तेजोमय रूप है। इस प्रकार श्री हरि के मुख कमल

का ध्यान करने में योगी थोड़ी सी भी आलस्य न करें।।29।।

अब भक्तों का भला करने वाली भगवान की मन्द मुस्कान युक्त चितवन का ध्यान करें जो भक्तों के तीनों तापों को दूर कर देती है। मन्द हास से युक्त प्रसन्न चितवन का बहुकाल तक भक्ति से ध्यान करें।।30।।

यह मन्द मुस्कान भक्तों के दुःख को सम्पूर्ण रूप से नष्ट कर देती है। अब भगवान की भौहों का ध्यान करें। भगवान ने इन्हें मुनियों की रक्षा करने तथा कामदेव को मोहित करने के लिए अपनी इच्छा से बनाया है।।31।।

इस प्रकार एक-एक अवयवों का ध्यान करने का अभ्यास करते रहने से उपासक के हृदय गुहा में श्री हरि स्थिर होकर रहते हैं। अब भगवान के हास्य का ध्यान करें। हँसते समय कुन्द कली के सदृश दाँतों पर नीचे के ओठ की आभा पड़ने से वे लाल लाल प्रतीत होते हैं। इस हास्य की ओर भक्त का मन बिना प्रयास किए आकृष्ट हो जाता है। हृदयाकाश में स्थित भगवान का महात्म्य ज्ञान पूर्वक भक्ति से भगवान में ही समर्पित मन से श्री हरि की मूर्ति का ध्यान करे। तब श्री हरि मोक्ष का अनुग्रह करेंगे। अन्य कोई मोक्ष देने में समर्थ नहीं है।।32।।

अन्य कोई स्वतंत्र भी नहीं है। इस प्रकार के ध्यान के अभ्यास से साधक का श्री हरि में स्नेह हो जाता है। उसका हृदय भक्ति से द्रवित हो जाता है। आनन्दातिरेक के कारण शरीर में रोमाँच होने लगता है और आनन्दाश्रु बहने लगते हैं। इस प्रकार श्री हरि का ध्यान करने वाले का मन अनायास समाधि अवस्था में चला जाता है।।33।।

इसके फलस्वरूप प्राकृत विषयों से हटकर नित्यमुक्त श्री हरि में ही स्थिर हो जाता है। तब अपना स्वरूप भूत देह चिदानन्दात्मक होना जान कर स्थूल देह का अभिमान पूर्णतः त्याग देता है। जैसे, तेल के समाप्त होने पर दीपशिखा बुझ जाती है। वैसे ही स्थूल मन स्थूल और सूक्ष्म देह के अभिमान से रहित होकर बाह्य शब्दादि विषयों से हटकर नित्य मुक्त और मुक्त आश्रय भगवान में तन्मय हो जाता है। तब उसको बिम्बरूपी भगवान का साक्षात्कार होता है तथा अपरोक्ष ज्ञान के प्रतिबंधक संसार की निवृत्ति हो जाती है।।34।।

इस प्रकार जीवन मुक्त हुआ अपरोक्ष ज्ञानी का वाह्य मन निवृत्त होने से अपने स्वरूप को सच्चिदानन्द स्वरूप जानकर निर्दृष्ट तथा ज्ञानानन्द स्वरूप श्री हरि के अधीन जानता है और श्री हरि के सच्चिदानन्द स्वरूप का दर्शन करता है। लौकिक सुख दुःखों के लिए वाह्य अन्तः करण ही कारण है। जिसके न होने से वह अभिमान शून्य हो जाता है। कारण जब देहाभिमान ही नहीं है तब लौकिक सुख अथवा दुःख नहीं होते हैं।।35।।

श्री हरि के अपरोक्ष ज्ञान से सदा आनन्द में मग्न हुए अपरोक्ष ज्ञानी को अपने अन्तिम देह में भी अभिमान नहीं रहता है। जैसे मद्यमान किया हुआ अपने ऊपर वस्त्रों का होना अथवा न होना नहीं जानता है। वैसे ही इस अपरोक्ष ज्ञानी को अपनी देह का अभिमान न होने से उस देह का रहने या न रहने की सुधि नहीं रहती। देह रहने पर भी उसका संबंध उससे नहीं है जैसे नारियल का खोपड़ी और उसके अंदर की गरी अलग है वैसे ही इस देह से जीव को अलग मानता है।।36।।

श्री हरि को ही स्वामी जानकर उसी से अपना संबंध जोड़े रहता है। श्री हरि के अपरोक्ष ज्ञान होते ही इस

चरम देह का नाश नहीं होता है। प्रारब्ध कर्म के फलस्वरूप श्री हरि से दिया हुआ यह देह प्रारब्ध कर्म समाप्त होने तक रहता है। तत्पश्चात् चला जाता है। स्वप्न में देखा हुआ वासना देह की रक्षा के लिए जागा हुआ पुरुष प्रयत्न नहीं करता है वैसे ही अपरोक्ष ज्ञानी भी अपने चरम देह की रक्षा करने का प्रयत्न नहीं करता है।।37।।

अपने पुत्र, धन, देह जैसे भिन्न है वैसे ही इस देह से भी जीव को भिन्न जानता है। इस श्लोक में देहात्मवाद निन्दित होना सूचित किया गया है। प्रमाण विरुद्ध नास्तिक्यवाद स्वीकार के योग्य नहीं है।।38।।

अग्नि से, चिनगारी से और धुवाँ से जैसे जलाने की शक्ति वाली अग्नि भिन्न है वैसे ही प्राकृत पंचभूत, इन्द्रिय, मन, प्रकृति, संसारी अथवा मुक्त जीव से भी श्री हरि भिन्न हैं। वह सर्वज्ञ गुण परिपूर्ण और स्वामी हैं। यहाँ पर जीव में और ब्रह्म में भेद कहा गया है। यह भेद पारमार्थिक है। जैसे जड़ में और जीव में भेद है वैसे ही जीव में और परमात्मा में भेद है।।39,40।।

भिन्न जीवों में रहने वाले श्री हरि की उपासना का वर्णन करते हैं। विविध योग्यता वाले जीव परस्पर भिन्न हैं। वे सब श्री हरि का ही आश्रय किए हुए हैं। उन सब में श्री हरि ही अन्तर्यामी हैं। श्री हरि के रूपों में परस्पर भेद नहीं है। श्री हरि नित्य तृप्त होने पर भी जीवों पर अनुग्रह करने के लिए आनन्दादि कार्यों में आसक्त हैं। अनुग्रह करने वाले श्री हरि में और अनुग्रह प्राप्त करने वाले जीवों में जो भेद है वह नित्य है।।41।।

अधिष्ठानों में भेद रहने पर भी उन अधिष्ठानों में रहने वाले श्री हरि के रूपों में कोई अन्तर नहीं है अर्थात् भेद नहीं है। इसे दृष्टान्त के द्वारा समझाते हैं-लकड़ी सूखी हो अथवा गीली हो। इस प्रकार लकड़ी में अन्तर रहने पर भी उस लकड़ी में रहने वाली अग्नि एक ही है वैसे ही जगत् में रहने वाले भिन्न भिन्न पदार्थों में रहने वाले भगवान उन पदार्थों के जैसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होने पर भी एक ही हैं। इस प्रकार श्री हरि सर्व समर्थ और भिन्न हैं। इसलिए अपने अधीन जड़ प्रकृति और उसकी अभिमानिनी लक्ष्मी देवी जो कार्य और कारणों में व्याप्त हैं और ब्रह्मादि भी उनको (लक्ष्मी देवी को) पूर्ण रूप से नहीं जान सकते हैं ऐसे चित् प्रकृति लक्ष्मी से भी श्री हरि सर्वोत्तम हैं।।42,43।।

श्री हरि के न रहने का कोई काल नहीं है, देश नहीं है। सृष्टि काल में भी। लय काल में भी व्याकृत और अव्याकृत आकाश में भी वह हैं ही। वह सबको देखने वाले (साक्षी) हैं। सर्वत्र व्याप्त सबके होनी और अनहोनी के लिए कारण हैं। इनसे भिन्न इस प्रपंच से उनको कोई प्रयोजन नहीं है। इसलिए असार और अनित्य है। इस प्रकार ही उपासना नित्य प्रति ब्राह्य मुहूर्त में उठकर उपासक को करना चाहिए जिससे श्री हरि के अनुग्रह का पात्र होगा।।44।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः।।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

अपरोक्ष ज्ञान से मोक्ष का प्राप्त होना और वह अपरोक्ष ज्ञान, अष्टांग युक्त योग से अभिवृद्धि हुई श्री हरि की उपासना से होता है। इसको पूर्व में कहा गया है। अब इस अध्याय में भक्ति योग में तारतम्य होने का वर्णन करते हैं। इसके आरम्भ करने से पहले देवहूति के महत्तत्वा लक्षणों को सामान्यरूप से जानने पर भी विस्तार रूप से जानने के लिए प्रश्न करती हैं।

देवहूति ने पूछा-हे प्रभो! ज्ञानी लोग कहते हैं कि सांख्या शास्त्र में महत्तवादि और उनके अभिमानियों का जड़ प्रकृति और उसकी अभिमानिनी चित् प्रकृति और समस्त पुरुषार्थ को देने वाले श्री हरि के इन सबके लक्षण बतलाए गए हैं। यह ज्ञान पुरुषार्थ के लिए प्रयोजन हैं और वही भक्तिमार्ग है। इसको तो आपने मुझे बताया है। इस पर भी मैं स्त्री होने से मंदबुद्धि वाली हूँ। इसको भली भाँति समझने के लिए विस्तारपूर्वक बतलाइए।।1,2।।

उपासक को प्रपंच के विषयों से विरक्त होने के लिए तो आपने बतलाया। उस वैराग्य के लिए कारणीभूत कर्मानुसार मिलने वाले संसार के दुःखों को बतलाइए क्योंकि वैराग्य के बिना भक्ति दृढ़ नहीं हो सकती है। श्री हरि के अतिरिक्त अन्य विषयों में उपासक को आसक्ति रहित होना चाहिए। जीवों के जन्म मरण, गर्भावास आदि में होने वाले दुःखों को बतलाइए। इस संसार में कर्मानुसार होने वाले दुःखों के अनुभवों के ज्ञान से उपासक को वैराग्य होता है। ऐसे ज्ञान की उत्पत्ति को बताइए।।3।।

जिसके भय से लोग शुभ कर्म में प्रवृत्त होते हैं, जो रमा, ब्रह्मादियों से भी उत्तम हैं उस सर्व समर्थ श्री हरि को जो काल कहलाते हैं, उनके विभूति स्वरूप को बतलाइए। मुझे स्त्री जानकर मेरी उपेक्षा न करें। यदि आप का अनुग्रह हो तो मैं सबको जान सकती हूँ।।4।।

अविद्या का अन्धकार अपार है। मुक्ति योग्य जीव इस अन्धकार में गाढ़ निद्रा में पड़े हुए हैं। इनको यथार्थ ज्ञान का उपदेश न करने वाले न होने से अन्यथा ज्ञानी होकर ज्ञान रहित हैं। जिससे पुण्य और पाप के लिए कारण होने वाले प्रवृत्ति कर्म में आसक्त होकर संसार में दुःख का अनुभव करते हैं। उनका उद्धार करने के लिए ही आप ज्ञान प्रकाशक सूर्य ही प्रकट हुए हैं। ऐसे आपको छोड़कर अन्य किससे मैं प्रश्न करूँ।।5।।

मैत्रेय जी कहते हैं-हे विदुर जी! माता के हितकर वचनों को सुनकर महामुनि कपिल जी ने उनकी प्रशंसा की और दया भाव से प्रसन्न होकर उत्तर दिया।।6।।

कपिल भगवान ने कहा-हे माता जी! भक्ति योग शास्त्रों में अनेक प्रकार का होना बतलाया गया है। समस्त जीव स्वाभाविक, सात्विक राजस और तामस स्वभाव से भिन्न-भिन्न हैं। उन-उन जीवों की भक्ति भी उनके स्वभाव के अनुसार अलग-अलग हैं।।7।।

अन्य लोगों की हिंसा करते हुए धामिक होने जैसे ढोंग करता है। भगवद्भक्तों के उत्कर्ष को सहन न करते

हुए मात्सर्य भाव से श्री हरि और उनके भक्तों से द्वेष करते हुए मिथ्याज्ञानी होकर भक्ति करने वाला (भक्त जैसे बतलाने वाला) तामस भक्त है।।8।।

विषय सुख की इच्छा करते हुए कीर्ति, ऐश्वर्य को ही उद्देश्य करके श्री हरि के अन्तर्यामी रूपों को परस्पर भिन्न जानकर प्रतिमा आदि में श्री हरि की अर्चना करने वाला राजस भक्त है।।9।।

पाप क्षय के लिए और सर्वोत्तम श्री हरि के प्रीत्यर्थ समस्त कर्मों को समर्पण करने के लिए अपना कर्तव्य जानकर श्री हरि की सेवा करने वाला श्री हरि के अन्तर्यामी रूपों में भेद का चिन्तन न करते हुए प्रतिमा आदि में सर्वत्र श्री हरि की सेवा करने वाला सात्विक है और यही वास्तविक श्री हरि भक्त हैं, यही मुक्ति योग्य है। राजस भक्त श्री हरि के रूपों में भेद जानते हैं। सात्विक भक्त उनमें भेद नहीं समझते हैं। यही इन दोनों भक्तों में अन्तर है। प्रतिमादि की अर्चना अज्ञानी राजस जीव और जिनको अपरोक्ष ज्ञान नहीं हुआ है तथा सात्विक जीव जिनको अपरोक्ष ज्ञान हुआ है इन सबके लिए समान है। परन्तु जिनको अपरोक्ष ज्ञान नहीं हुआ है उनके लिए यह विहित है। यदि अपरोक्ष ज्ञानी प्रतिमा की अर्चना करते हैं तो उनको आनन्द में अभिवृद्धि होगी और न करने पर कोई पाप नहीं है। इसके लिए प्रमाण-

अज्ञोऽर्चयेदेवार्चायामन्यथा दोषवान्भवेत्।
ज्ञस्त्वर्चयन्स गुणवानन्यथा दोषवान्नतु। कापिले।।10।।

मुक्ति योग्य जीव अपरोक्ष ज्ञान के पश्चात् भगवान की जो सेवा पूजा करते हैं वह मोक्ष में आनन्द की अभिवृद्धि के लिए कारण होता है। गंगा-प्रवाह बिना रोक-टोक के निरन्तर समुद्र में गिरता रहता है उसी प्रकार श्री हरि के गुणों के श्रवण मात्र से सर्व गुणात्मक श्री हरि में सदा मन को स्थित करके भक्ति करने वाला सात्विकोत्तम है। यह भक्ति निर्गुण भक्ति कहलाती है ।।11।।

इसके अतिरिक्त आत्यन्तिक (एकान्त) भक्ति कुछ लोगों में रहती है। वह एकान्त भक्त कहलाते हैं। वह जो भक्ति करते हैं उसके लिए कोई निमित्त नहीं होता है। कोई विषय इच्छा भी नहीं करते हैं। यह सालोक्य सार्ष्टि (समानैश्वर्य), सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मोक्ष की इच्छा से सेवा नहीं करते हैं। श्री हरि को सन्तुष्ट करने के लिए ही उनकी सेवा करते हैं। इसलिए मोक्ष में वह अपने चिदानन्दात्मक देह से श्री हरि के देह में प्रवेश करके सायुज्य मोक्ष को प्राप्त होते हैं। यही उत्तम स्थिति है। ब्रह्मादि देवता ऐसे एकान्त भक्त हैं।।13,14।।

माताजी! यदि श्री हरि में भक्ति उत्पन्न होना हो तो आगे बतलाये गये साधनों को प्राप्त कर लेना चाहिए। फलेच्छा रहित होकर भक्ति से अपने-अपने वर्ण और आश्रम के विहित धर्मों का आचरण करें। शक्त्यानुसार भगवद् पूजा करे। प्राणियों की हिंसा न करते हुए कर्मों का आचरण करें। श्री हरि की प्रतिमा का दर्शन, स्पर्शन पूजा, स्तुति और वन्दना आदि करें। जीवों में अन्तर्यामी होकर श्री हरि स्थित हैं ऐसी उपासना करें। सज्जनों के लिए हितकर वचन बोलते रहें, दुष्टों के सहवास से दूर रहें अपने से उत्तम पुरुषों का मान, दीनों पर दया और समान स्थिति वालों के प्रति मित्रता का व्यवहार करें। यम नियमों का पालन करते रहें। तत्पश्चात् वेदान्तशास्त्रों

का सद्गुरुओं के द्वारा अध्ययन करें। इस प्रकार श्री हरि की महिमा को जानकर भक्ति से नाम स्मरण करने का अभ्यास करें। तब मन शुद्ध होकर कपट आदि दोष दूर होंगे। तत्पश्चात् ज्ञानियों के संग से देहादि में जो अहंकार ममकार हैं वे दूर होंगे। वैष्णव दीक्षा (तप्त मुद्रा ऊर्ध्व पुण्ड्र इत्यादि) जिस उपासक को दृढ़ हुआ है उसका अन्तःकरण शुद्ध होकर सब प्रकार से निर्मल हो जाता है। तब वह भगवान के गुणों का श्रवण करके, उसके अनुसार उपासना करके शीघ्र ही मेरा दर्शन करता है।।15,16,17,18,19।।

जिस प्रकार वायु के द्वारा उड़कर जाने वाला गन्ध अपने आश्रय पुष्प से घ्राणेन्द्रिय तक पहुँच कर आकर्षित करता है उसी प्रकार भक्तियोग में तत्पर उपासक का मन विषयादि विकारों से शून्य होकर परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। इससे स्पष्ट होता है कि निर्गुण भक्तियोग को प्राप्त हुआ उपासक आत्यन्तिक भक्तियोग को प्राप्त करके श्रीहरि का दर्शन करता है।।20।।

अब भक्तियोग के उपासक को श्री हरि का ध्यान कहाँ करना चाहिए बतलाते हैं। उन उन जीवों के कर्मानुसार फल देने के लिए सर्वस्वामी मैं समस्त जीवों में सदा अन्तर्यामी होकर रहता हूँ। इस प्रकार जानकर अन्तर्यामी श्री हरि की उपासना करें। तामस और राजस जीव मुझे इस प्रकार न जानकर समस्त प्राणियों में अन्तर्यामी मेरा अनादर करके केवल प्रतिमा रखकर पूजा की विडम्बना करते हैं। इसलिए वे राजस और तामस कहलाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि राजस और तामस जीव सात्विक जीवों से अधम हैं।।21।।

समस्त जीवों में अन्तर्यामी रूप से रहने वाले मेरी उपेक्षा करके राजस जीव अविवेक से केवल प्रतिमा में ही मेरी पूजा करते हैं। इससे भस्म में होम करने वाले को मंत्रोच्चारण का जैसे किंचित फल मिलता है वैसे ही इनको किंचित् फल मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि राजस जीव तामस जीवों से किंचित् उत्तम है।।22।।

तामस जीव तो भक्तों में अन्तर्यामी मुझसे द्वेष करते हुए अन्तर्यामी रूपों में भेद होना जानकर विष्णु भक्तों से द्वेष करते हैं। अहंकार से अपने को स्वतंत्र जानते हैं इसलिए उनका मन कभी मुझमें आसक्त नहीं होता है।।23।।

हे पाप रहित मनु पुत्री! जीवों में रहने वाले मेरा तिरस्कार करने के स्वभाव वाले तामस जीव बहुत सी घटिया, बढ़िया सामग्रियों से अनेक प्रकार के विधि विधान के साथ मानसिक और कायिक क्रियाओं से प्रतिमा में मेरी पूजा करने पर भी मैं उससे प्रसन्न नहीं होता हूँ।।24।।

प्रतिमा में पूजा करने का जो विधान शास्त्रों में किया गया है क्या वह व्यर्थ है? अपने में अन्तर्यामी श्री हरि ही सब में अन्तर्यामी हैं यह ज्ञान होने तक प्रतिमा आदि में श्री हरि की पूजा करनी चाहिए। अन्तर्यामी रूपों में भेद का चिन्तन करना अनर्थ का कारण है। जिन रूपों में स्वाभाविक अभेद है उनमें भेद का चिन्तन करने से संसार की मृत्यु कहलाने वाले नृसिंह रूपी भगवान उनको अन्धंतमस में डालकर दुःख देते हैं।।25,26।।

इसलिए समस्त जीवों में अन्तर्यामी रूप से स्थित रहने वाले मेरे रूपों में और जीव के नियामक बिम्बरूप में भेद का न होना जानकर द्रव्यादि दान से पूजा करें। श्री हरि की निर्निमित्त मित्र की भावना से उपासना करें।।27।।

श्री हरि के अन्तर्यामी रूप कहीं कहीं अधिक सन्निधान से युक्त होकर क्लिप्त (नियत) होने से सन्निधान के अनुसार जीवों में भी तारतम्य है। यह तारतम्य का ज्ञान पुरुषार्थ का साधन होने से यहाँ पर तारतम्य का वर्णन करते हैं। संसार अवस्था में अन्तर होने पर भी मुक्तावस्था में जीव अपने अपने स्वरूप से रहते हैं। उनका स्वरूप वृक्ष, पशु इत्यादि रूप से हैं। उन रूपों के अनुसार यहाँ पर तारतम्य बतलाते हैं। श्री हरि के सन्निधान के तारतम्य के अनुसार ही उन जीवों के ज्ञान, भक्ति आदि में भी तारतम्य है। मुक्त होने पर भी यह तारतम्य रहता ही है। स्वरूप में ही रहने वाला यह तारतम्य कभी नहीं जाता है। अप्राकृत जीवों में स्वरूपतः स्थावर और जंगम ऐसे दो प्रकार के हैं। जंगमों में भी चेष्टा वाले, मनोवृत्ति वाले, इन्द्रिय वृत्ति वाले इत्यादि अनेक प्रकार के हैं। मुक्त हुए स्थावर जीवों से जंगम जीव उत्तम हैं। मुक्त हुए अल्प चेष्टा वाले जंगम जीवों से अतिशय चेष्टा वाले जीव उत्तम हैं। इनसे भी मनोवृत्ति वाले और इनसे भी इन्द्रिय वृत्ति वाले उत्तम हैं। इन्द्रिय वृत्तिवालों में भी स्पर्श को जानने वाले जीवों से रस का अनुभव करने वाले उनसे भी गंध का अनुभव करने वाले और गंध के अनुभव करने वालों से भी शब्द का ग्रहण करने वाले जीव श्रेष्ठ है। जीव स्वरूप से ही पशु वृक्षादि भेद से रहने के विषय में प्रमाण वाक्य इस प्रकार हैं-

पशुवृक्षादि भेदेन जीवा एवं स्वतः स्थिताः
संसृतौ व्यत्ययस्तेषां मुक्तौ तत्तत्स्वरूपतः।
तत्र स्थावरमुक्तेभ्यो वरा जंगममुक्तकाः।
तेभ्यो मानुषमुक्ताश्च विप्रामुक्तास्ततोऽधिकाः।
तत्रोपदेश मात्रेण मुक्तेभ्यो वेदवादिनः।
अर्थज्ञा ॠषयस्तेभ्यो देवताः संशयच्छिदः।
पूर्णधर्मास्ततास्विन्द्रो निःसंगो गरुड़स्ततः।
भक्तिपूर्णो हरेर्ब्रह्मा तस्माज्ज्ञान्योऽधिकस्ततः।
मुक्तौ वा संस्टतौ वापि सम्यगेषु हि ते गुणाः।। कापिलये

अर्थ-जीव स्वरूप से ही पशु और वृक्ष आदि स्वरूप से हैं। संसार में उनको भिन्न भिन्न देह मिल सकते हैं। इस पर भी मोक्ष में वह अपने-अपने स्वरूप से ही रहते हैं। मुक्त हुए स्थावर जीवों से जंगम जीव उत्तम हैं। जंगम जीवों में मनुष्य जीव उत्तम हैं। उनमें ब्राह्मण जीव उत्तम हैं। उनमें भी केवल उपदेश करके जो मुक्त हुए हैं उनसे भी वेदाध्ययन से सम्पन्न उत्तम हैं। उनसे भी वेदार्थ को जानने वाले ऋषि जीव उत्तम हैं। उनसे भी संशयों को दूर करने वाले देवता जीव उत्तम हैं। ये यभी पूर्ण धर्मी कहलाते हैं। इनमें इन्द्र पद से मुक्त हुए जीव उत्तम हैं। इनसे भी निःसंग कहलाने वाले गरुड़ (शेष) पद से मुक्त हुए जीव उत्तम हैं। इनसे भी पूर्ण भक्ति वाले ब्रह्मपद से मुक्त हुए जीव उत्तम हैं। इनसे भी उत्तम जीव नहीं हैं। मोक्ष में हों या संसार में हों यही उत्तम हैं। इनमें ही भक्ति आदि भागवत गुण पूर्ण रहते हैं।।28,29।।

उनसे भी रूप का अनुभव करने वाले जीव उत्तम हैं। इनसे भी वे जीव जिनके ऊपर नीचे दोनों ओर दत होते हैं, वे श्रेष्ठ हैं। उनमें भी बिना पैर वालों से बहुत से चरण वाले श्रेष्ठ हैं तथा बहुत चरणों वालों से चार चरण वाले और चार चरण वालों से भी दो चरण वाले वर्ण व्यवस्था रहित मनुष्य श्रेष्ठ हैं।।30।।

इनसे भी शूद्र वर्ण का जीव, उनसे भी वैश्य वर्ण का जीव, उनसे भी क्षत्रिय वर्ण का जीव इनसे भी वेदाध्ययन करने की योग्यता वाले ब्राह्मण जीव, उनसे भी उपदेश करने वाले अपरोक्षज्ञानी, तथा वेदाध्ययन से सम्पन्न, ब्राह्मण उनसे भी वेदार्थ को जानने वाले ऋषि जीव, उत्तम हैं।।31।।

उनसे भी संशय को दूर करने वाले देवता जीव, उनसे भी स्वतंत्र श्री हरि के प्रीत्यर्थ तीनों लोकों की रक्षा करने वाले इन्द्र पद वाले जीव श्रेष्ठ हैं। उनसे भी श्री हरि के प्रसाद मात्र की अपेक्षा करने वाले मुक्तसंग कहलाने वाले गरुड़, शेष पद के जीव श्रेष्ठ हैं।।32।।

उनसे भी समस्त कर्म और उनके फल को श्री हरि में समर्पित करके उन्हीं में अनुरक्त मन वाले भक्ति से पूर्ण ब्रह्म पद के जीव उत्तम हैं। ब्रह्म पद पर आने वाले जीव ही जीवोत्तम हैं।।33।।

उनके लिए श्री हरि ही जनक हैं। वे निर्दृष्ट गुण परिपूर्ण परमात्मा के ज्ञानी हैं। इनके समान शास्त्र को भली भाँति जानने वाले अन्य कोई नहीं हैं। इन जीवों से भी उत्तम जीव हैं ही नहीं। मुक्त जीवों में भी यही उत्तम हैं। इस प्रकार तारतम्य से युक्त भगवान् में भक्ति करने वाले इन जीवों की उनके योग्यतानुसार आदर और पूजा करें। इन जीवों में अनिरुद्ध के अंश से प्रविष्ट तथा आश्रय दाता श्री हरि को भक्ति से पणाम करें।।34।।

हे मनु पुत्री! मैं आपके लिए भक्तियोग, ज्ञन योग और कर्म योग सब को बतलाया हूँ। इनमें से ज्ञान और भक्ति योग मुख्य हैं। ज्ञान और भक्ति योग ही पुरुषार्थ के साधन हैं। धूम और अग्नि जैसे एक दूसरे को छोड़ कर नहीं रहते हैं वैसे ही जहाँ ज्ञान है वहाँ भक्ति है। जहाँ भक्ति है वहाँ ज्ञान है। इस साधन से ही जीव श्री हरि को प्राप्त होते हैं।।35।।

देव हूति के प्रश्न के अनुसार भक्ति योग को बतलाने के पश्चात् संसार के दुःखों का वर्णन करना चाहिए था। परन्तु यह बहुत विस्तृत होने से शूची कटाहन्यायानुसार काल स्वरूप जो अत्यल्प है उसको बताते हैं। हे माता जी! आपने कालस्वरूप को भी बतलाने के लिए पूछा है। गुणपूर्ण सर्व अन्तर्यामी श्री हरि चित् प्रकृति कहलाने वाली रमा देवी से और पुरुष कहलाने वाले ब्रह्मा जी से भी उत्तम हैं। सर्व देवोत्तम हैं। समस्त कर्मों के चेष्टक हैं।।36।।

शुक्ल आदि रूपों तथा ब्रह्माण्डादि समस्त वस्तुओं का आश्रय हैं। उनका यह रूप ही काल कहलाता है। ब्रह्मादि चेतन जो श्री हरि से अल्पज्ञ हैं वे इस काल रूपी श्री हरि से भयभीत रहते हैं।।37।।

प्राणियों में प्रवेश करके एक प्राणी के द्वारा दूसरे प्राणी का संहार कराते हुए सबका आश्रय यही काल विष्णु हैं, यम धर्म आदि नहीं हैं। इस काल को साक्षी ज्ञान से जानना चाहिए ।।38।।

यह किसी को भी उन-उन जीवों के योग्यता से बढ़कर अधिक प्रेम नहीं करते हैं। अथवा उनकी योग्यता से बढ़कर द्वेष भी नहीं करते हैं। इनका कोई हितकारी बन्धु नहीं है। सबका संहार करने वाले काल नामक विष्णु सदा

जागते रहते हैं। आयु समाप्त हो रही है, इसको न जानकर जो असावधान प्राणी हैं, उनको मरण काल में आकर उनका संहार करते हैं।।39।।

सबका संहार करने वाले यही हैं। इनकी आज्ञा से भयभीत न होने वाले कोई नहीं है। काल के डर से ही हवा चलती है, सूर्य तपता है, वर्षा होती है, तारे चमकते हैं।।40।।

पेड़ पौधे और लता आदि यथा समय फूलते फलते हैं।।41।।

काल के ही डर से नदी नाले-बहते है समुद्र मर्यादा में बने रहते हैं, आग जलती हैं, पर्वतों समेत पृथ्वी जल में डूबती नहीं किन्तु उसके ऊपर बनी रहती है।।42।।

आकाश प्राणियों को स्थान देता है। इनके शासन के अधीन होकर महतत्त्वाभिमानि ब्रह्मा प्राणियों के देह की सृष्टि करते हैं।।43।।

अहंकारादि तत्त्वों के अभिमानी रुद्रादि देवता प्रकृति से बद्ध होकर समस्त चराचर जगत के नियामक कहलाने वाले भी इस कालरूपी के भय से ही कल्प कल्प में सृष्टियादि में आसक्त हुए हैं।।44।।

यह काल रूपी सबका अन्त करने पर भी स्वयं अनन्त हैं। सबकी सृष्टिकर्ता होने पर भी वह अनादि हैं। उनकी ऐसी महिमा है कि याचकों को कितना भी देने पर भी उसके पास कोई कमी नहीं है। राजा जैसे अपने आज्ञा के पालन करने वालों से कार्य कराता है वैसे ही काल नामक विष्णु अपनी आज्ञा पालन करने वाले ब्रह्मादियों से सृष्टि कराने वाले, दुर्गा, रुद्रादि से संहार कराने वाले हैं, मुमुक्ष जीवों से उपास्य हैं।।45।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः।।

अथ एकत्रिंशोऽध्यायः

वैराग्य भक्ति का साधन है। वैराग्य उत्पन्न होने के लिए कर्मानुसार अनेक प्रकार के संसार के दुःखों का वर्णन करने के लिए देवहूति ने प्रश्न किया है। उसका उत्तर इस अध्याय में देते हैं। संसार के लिए जो मूल कारण है उसको सबसे पहले बतलाते हैं।

कपिल देव जी कहते हैं-हे माता जी! जिस प्रकार वायु के द्वारा उड़ाया जाने वाला मेघसमूह उसके बल को नहीं जानता उसी प्रकार यह जीव भी बलवान काल को नहीं जानता और उसकी प्रेरणा से मृत्यु की ओर जाता है।।1।।

यही जगत की सृष्टिकर्ता है। स्थिति और लय कर्ता है और वह अति पराक्रमी भी है। इसको अज्ञान वश वह जीव नहीं जानता, जिसके फलस्वरूप जनन-मरण रूप संसार में दुःख भोगता है। अस्वतंत्र यह जीव सुख के लिए अनेक साधनों को दुःख से प्राप्त करता है। महापराक्रमी श्री हरि उन सबको नाश कर देते हैं। जिससे उसको बहुत शोक होता है।।2।।

इन्द्रियों से युक्त यह वाह्य देह अनित्य है। यह जीव अपने इस नाशवान् शरीर तथा उसके संबंधियों के घर, भूमि और धन आदि को मोहवश नित्य मान लेता है।।3।।

जीव अपने कर्मानुसार नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेता है। वह देह कितना भी दुःख देने वाली क्यों न हो उसी में आनन्द मानकर आसक्त होता है। विरक्त नहीं होता है।।4।।

परमात्मा की इच्छा से मोहित होकर यह जीव नरक में रहने पर भी यातना शरीर में ही सुख मान कर उसको त्यागना नहीं चाहता है।।5।।

तब अन्य देहों के विषय में क्या कहना है। केवल देह में ही नहीं किन्तु स्त्री, पुत्र, घर, धन, बन्धु इत्यादि की ममता में फंसकर प्राणी वैराग्य को प्राप्त न होकर अपने को कृतार्थ समझ लेता है।।6।।

पुत्र कलत्र आदि के पालन पोषण की चिन्ता से बिकल होने के कारण वह पाप पर पाप किया करता है और दुराभिमानवश अपने को उनका रक्षक समझता है। इस प्रकार के मनवाले इस जीव को कर्तव्य का ज्ञान कहाँ है। कुलटा स्त्रियों के द्वारा एकान्त में प्रदर्शित किए हुए कपट पूर्ण प्रेम में तथा बालकों की मीठी-मीठी बातों में मन और इन्द्रियों के फंस जाने से गृहस्थ पुरुष घर के दुःख प्रधान कपट पूर्ण कर्मों में लिप्त हो जाता है। कपट और धर्म के ढोंग के लिए आश्रयभूत घर दुःख का साधन ही है, सुख साधन नहीं है। प्रतिक्षण में आने वाले दुःखों का प्रतीकार करते ही रहता है। उसी को वह सुख समझता है।।8,9।।

इस प्रकार संसार के दुःख भी वैराग्य को उत्पन्न नहीं कर सकते हैं। अपने कुटुम्ब-पोषण के लिए जगह-जगह अन्य लोगों की हिंसा करके धन लाता है उससे स्त्री पुत्रों का पोषण करता है। कुटुम्बियों के भोजन से बचे हुए

टुकड़े भी उसे कठिनाई से मिलते हैं। वह नरक में दुःख भोगता है।।10।।

काल रूपी श्री हरि की इच्छा से जब उसका जीवन भी दुःसाध्य हो जाता है तब भी विरक्त न होकर और भी अधिक दुष्ट मार्ग का अनुसरण करता है। कई बार ऋण लेकर विविध उद्योग में आसक्त होकर सफल न होने से दुःख को प्राप्त होता है तथा जीविका के लिए विविध उद्योगों के बार-बार निष्फल हो जाने पर मनुष्य दुराशा वश चोरी करने लग जाता है।।11।।

परिवार के परिपालनार्थ वह अभागा जो उपाय करता है वही निष्फल हो जाता है तब वह परिवार के पालन की चिन्ता से गहरी साँसे लिया करता है।।12।।

पहले जैसे पालन पोषण करने में उसके असमर्थ हो जाने पर स्त्री-पुत्र आदि उसका वैसे ही अनादर करने लगते हैं जैसे किसान बूढ़े बैल का तिरस्कार करता है।।13।।

ऐसी अवस्था में भी जीव को वैराग्य उत्पन्न नहीं होता है। स्वयं जिनकी रक्षा किया था उन्हीं के द्वारा रक्षित होना पड़ता है। बुढ़ापे से उसका शरीर कुरूप हो जाता है और मरणोन्मुख होकर घर में पड़ा रहता है। चिन्ता और बुढ़ापे के कारण उसे रोग घेर लेते हैं। पाचन शक्ति बिगड़ जाने से भरपेट भोजन नहीं कर सकता। इससे वह किसी काम-काज के योग्य नहीं रहता। इस दशा में अनादर के साथ घर वालों के दिए हुए टुकड़ों पर वह पालतू कुत्ते का सा जीवन बिताता है।।14,15।।

अब मृत्यु काल समीप होने पर भी वैराग्य का उत्पन्न न होना बतलाते हैं। उर्ध्वश्वास चलने से आँखे निकल आती हैं, नाड़ियों की गति को कफ रोक देता है, खाँसने और श्वास लेने में भी उसे बड़ा कष्ट होता है और कफ अटक जाने से गले से घुरघुर शब्द होने लगता है।।16।।

मृत्यु पाश के वशीभूत हो जाने से, चिन्तित भाई बन्धुओं के बीच लेटा हुआ वह प्राणी घर वालों के बार-बार कहने पर भी क्लेश के मारे नहीं बोल पाता। ऐसी अवस्था में भी जीव को वैराग्य उत्पन्न नहीं होता है। श्री हरि की मोहक शक्त ही ऐसी है जिसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता है।।17।।

इस प्रकार अन्तिम अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो मूढ़ पुरुष इन्द्रियों को न जीतकर निरन्तर कुटुम्ब पोषण में ही लगा रहता है वह रोते हुए स्वजनों के बीच अत्यन्त वेदना से बुद्धि नाश होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।।18।।

अब मृत्युशैय्या में रहने वालों का लक्षण बतलाते हैं। इस अवसर पर उसे लेने के लिए अति भंयकर और रोष युक्त नेत्रों वाले जो दो यम दूत आते हैं उन्हें देखकर वह भय के मारे मल-मूत्र कर देता है।।19।।

वे यमदूत उसे यातना देह में प्रवेश कराकर फिर जिस प्रकार राजदूत किसी अपराधी को ले जाते हैं उसी प्रकार उसके गले में रस्सी डालकर बलात् यम लोक की लम्बी यात्रा में ले जाते हैं।।20।।

उन यमदूतों की घुड़कियों से उसका हृदय फटने और शरीर काँपने लगता है। मार्ग में उसे कुत्ते नोचते हैं। उस समय अपने पापों का स्मरण करके वह व्याकुल हो उठता है।।21।।

अब नरक को जाने वालों की अवस्था का वर्णन करते हैं। भूख और प्यास का मारा हुआ वह प्राणी कड़ी धूप दावानल, और लू लगने से तप जाता है। तपे हुए बालू मय मार्ग पर चलने में उसके असमर्थ होने पर तथा प्यास के मारे जल माँगने पर यम दूत उसकी पीठ पर कोड़े लगाकर आगे बढ़ाते हैं। चलने में असमर्थ होने पर भी बड़े कष्ट से चलने लगता है।।22।।

इससे वह चलते-चलते गिर जाता है, मूर्छा आ जाती है। चेतना आने पर फिर उठता है। इस प्रकार पापियों के अति दुःखमय मार्ग से अत्यन्त क्रूर यम दूत उसे शीघ्रता से यमपुरी को ले जाते हैं।।23।।

निन्नान्वे हजार योजन की दूरी को वह प्राणी अपने कर्मानुसार दो अथवा तीन मुहुर्त में अथवा दस दिन में अथवा एक पक्ष (पन्द्रह दिन) अथवा एक मास में चलकर नरक प्रदेश को जाता है। वह नरक में अपने कर्मानुसार विविध प्रकार की यातनाओं का अनुभव करता है।।24।।

वहाँ तेल में भिगे हुए कपड़ों को उसके अंगों में लपेटकर जलती हुई लकड़ी से उसे जलाते हैं। कहीं पर उसे अपने ही हाथ से काटा हुआ अपना माँस खाना पड़ता है। कहीं पर दूसरे उसके माँस को काटकर उसे खिलाते हैं।।25।।

कहीं (नरक में) गिद्ध और कुत्ते उसकी अतड़ियाँ नोच लेते तथा कहीं साँप बिच्छू और खटमल अपने पूर्ण हिंसा का बदला लेते हुए काटते हैं।।26।।

कहीं पर उसका अंग प्रत्यंग काटे कूटे जाते, कहीं हाथी आदि क्रूर प्राणी उसे खदेड़ते हैं, कहीं पहाड़ की चीटी से ढकेला जाता है और कहीं जंजीर से बाँधकर मल मूत्र के गड्ढे में डालते हैं।।27।।

यातनाएँ अनेक प्रकार की होने से अब संक्षेप में कहते हैं। यातनाओं का वर्णन कहाँ तक करें। पुरुष हो या स्त्री हो विषयासक्त होकर परस्पर संग से किए हुए अपने पापों को, तामिस्र, अन्धतामिस्र और रौरवादि नरकों में भोगते हैं। यह सब श्री हरि से ही पाप करने वालों के लिए सृष्टि किए गए हैं।।28।।

हे माता जी! नरक और स्वर्ग बहुत दूर है ऐसा मत समझो। कुछ लोग तो कहते हैं कि स्वर्ग और नरक इसी लोक में हैं क्योंकि इस लोक में राजपुरुषों के द्वारा चोर आदि नरक की यातनाएँ भोगते प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं। श्लोक में **वै** शब्द का तात्पर्य यह है कि स्वर्ग में रहने वाले अपराधियों को भी इस प्रकार का दण्ड भोगना पड़ता है।।29।।

कुटुम्ब का पोषण मैं ही करता हूँ ऐसा जानकर कुटुम्ब का पोषण करने वाला अथवा अपने ही पेट का भरण करने वाला पुरुष उन कुटुम्ब और शरीर दोनों को यही छोड़ कर मृत्यु के पश्चात् अपने किए हुए पापों का फल उपरोक्त नरक की यातनाओं को भोगता है।।30।।

जो पाप करता है वह अकेला ही नरक के मार्ग में जाता है। अपने इस शरीर को यहीं छोड़कर प्राणियों से द्रोह करके एकत्रित किए हुए पाप रूप पाथेय को साथ लेकर वह अकेला ही नरक में जाता है।।31।।

अपने साथ के प्राणियों से द्रोह करके पोषण किया हुआ यह देह यहीं रह जाता है। उससे किए हुए पाप (पुण्य) इसके साथ जाते हैं। कर्म के फलदाता श्री हरि के द्वारा प्राप्त हुआ इन कर्मों को छोड़कर जा नहीं सकता है।

जैसे जिसकी धन सम्पत्ति लूटी गई हो अथवा कोई रोगी दैव से प्राप्त दुःख का अनुभव करता है वैसे ही प्राणी अपने किए हुए कर्मों का फल नरक में भोगता है।।32।।

तामिस्र आदि नरकों का वर्णन किए हैं। उन नरकों में जाने वाले कौन हैं इसके लिए क्या साधन है। अब इस विषय को बतलाते हैं। तामिस्र और अन्ध तामिस्र यह दोनों नित्य नरक हैं। इसमें कहीं देखो अन्धकार ही रहता है। इन नरकों में गया हुआ फिर वापस नहीं आता है। जो जीव स्वरूपतः दैत्य हैं वह इन नरकों में जाने के योग्य हैं। अपने को ही स्वतंत्र (ब्रह्म) जानकर संसार अवस्था में कुटुम्ब पोषण में ही आसक्त होकर श्री हरि और उनके भक्तों से द्वेष करते हुए पाप करते हैं। इनके कर्मों में भक्ति का कोई संबंध ही नहीं रहता है। ऐसे जीव इन दोनों नरकों में जाते हैं। इनके द्वेष करने में भी तारतम्य होने से नरक के दुःखानुभव में भी तारतम्य हैं।।33।।

अपने अपने कर्मानुसार अनेक प्रकार के नरकों में यातना भोगने के पश्चात् शुद्ध होकर यह जीव अपने कर्मानुसार योनियों में जन्म लेता है। उन योनियों में भी पुण्य करता है तो स्वर्ग को और पाप करता है तो नरक में जाता है। इस प्रकार स्वर्ग भूलोक और नरक में भ्रमण करता ही रहता है।।34।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः।।

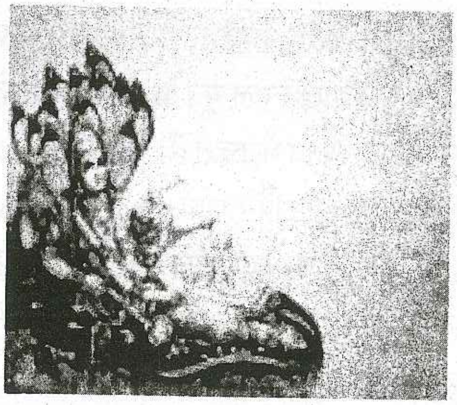

अथ द्व त्रिंशोऽध्यायः

संसार को असार जानना ही वैराग्य है। इसके लिए इस अध्याय में गर्भवास आदि के दुःखों के अनुभव का वर्णन करते हैं इसको जानकर विरक्त होकर ब्रह्मज्ञान के लिए प्रयत्न करें। ब्रह्मज्ञान भगवान की भक्ति से साध्य है। श्री भगवान कहते हैं-हे माता जी! अपने कर्म के फल को भोगा हुआ जीव वर्षा के द्वारा भूलोक में आता है। वहाँ से धान्य में प्रवेश करता है। अदृष्ट का नियामक श्री हरि इस जीव के कर्मानुसार देह का संबंध कराने के लिए आहार के द्वारा पुरुष देह में प्रवेश कराकर वीर्य में रखते हैं। इस वीर्य के द्वारा स्त्री के योनि में प्रवेश कराकर गर्भ कोश में प्रवेश कराते हैं।।1।।

स्त्री के गर्भ में प्रवेश किया हुआ वीर्य काल क्रम से शरीर के आकार में प्राप्त होना बतलाते हैं। वहाँ पर वीर्य काल क्रम से शरीर के आकार में प्राप्त होना बतलाते हैं। वहाँ पर वीर्य के कणों के साथ शोणित को मिली कर एक रात्रि में कलल (घुघची) जैसा हो जाता है। पाँच रात्रियों में वह बुलबुले की तरह गोल हो जाता है। दस दिन में बेर के समान कुछ कठिन हो जाता है। तत्पश्चात् (उन उन योनियों के अनुसार) मांस पिण्ड के रूप में परिवर्तित हो जाता हैं या तिर्यक योनि में हुए तो श्री हरि उसे अण्डा के रूप में कर देते हैं। जीव के कर्मानुसार ही गर्भ में वृद्धि नाना प्रकार से होती है।।2।।

एक महीने में शिर, दो महीने में हाथ पैर आदि का आकार बनता है, तीन महीने में नाखून, रोम, अस्थि और लिंग या योनि का छेद बन जाता है।।3।।

चार महीने में सातों धातुएँ बन जाती हैं, पाँच महीने में भूख प्यास होने लगती है, छः महीने में जब जरायु (झिल्ली) चर्म का आवरण उत्पन्न होता है तब वह दाहिने कोख में फिरने लगता है।।4।।

गर्भ में रहने वाले शिशु को सातवें महीने में ज्ञान उत्पन्न होना बतलाते हैं। सातवें महीने में श्री हरि की इच्छा से पूर्व जन्म में किए हुए कर्मों का स्मरण करता है। कभी-कभी स्मरण करता है और कभी गर्भवास की वेदना से भूल भी जाता है।।5।।

गर्भ में रहने वाला यदि ज्ञानी हो तो वह हरि की इच्छा से आए हुए संसार बन्धन का स्मरण करता है। यदि जीव अयोग्य है तो वह सब भूल जाता है। रोगी जैसे दूसरों के दिए आहार से बढ़ता है वैसे ही यह गर्भ माता के खाए-पिए आहार और जल से बढ़ता है। गर्भस्थ में कृमि उत्पन्न होते हैं। उन कृमियों के साथ मल मूत्र में यह गर्भ बढ़ता है। गर्भस्थ शिशु को अन्नयानादि **'आप्यायिनी'** नामक नाड़ी के द्वारा मिलता है। यह नाभि से निकल कर माँस और उल्ब को छेदन करते हुए कमल के नाल के जैसा मुख में रहने वाले होंठ तक रहता है। **'स जन्तु'** कहकर कृमियों के साथ गर्भवास नरक वास ही है सूचित किया गया है। इससे **'अत्रैव नरकः स्वर्गः'** जो पूर्व अध्याय में कहा गया है उसी का स्पष्टीकरण है।।6।।

यह सुकुमार तो होता ही है इसलिए जब वहाँ के भूखे कीड़े उसके अंग प्रत्यंग में काटते हैं तब अत्यन्त क्लेश के कारण वह क्षण-क्षण में अचेत हो जाता है।।7।।

माता के खाए हुए कड़ुवे, तीखे, गरम, नमकीन, रूखे और खट्टे आदि उग्र पदार्थों का स्पर्श होने से उसके सारे शरीर में पीड़ा होने लगती है।।8।।

जब जीव माता के गर्भाशय में झिल्ली से लिपटा और आँतों से घिरा रहता है। उसका सिर पेट की ओर तथा पीठ और गर्दन कुण्डलाकार मुड़े रहते हैं।।9।।

वह पक्षी के समान जिसके पंख नहीं निकले हैं अथवा आधा पंख उत्पन्न हुए हैं जो पिंजड़ा में दुःख का अनुभव करता है वैसा ही गर्भ का शिशु अपने अंग चेष्टाओं में असमर्थ रहता है। यदि गर्भ में रहने वाला जीव उत्तम हो तो श्री हरि उसको पूर्व के सैकड़ों जन्मों में किए हुए कर्मों का स्मरण करा देते हैं। उसका स्मरण करते हुए लम्बी सांस छोड़ते हुए दुःख का अनुभव करता है। वह अपने कर्मानुसार उन-उन योनियों के गर्भ में जन्म लेकर उन उन योनि के अनुसार ही उसको नाम मिलता है।।10।।

स्मरण आने से गर्भवास के असारता को जानकर जीव वहाँ से बाहर आने का प्रयत्न करता है। सातवें महीने से ज्ञान होने पर गर्भ में सूतिका वायु से काँपते हुए अब क्या गति होगी अब क्या गति होगी ऐसा संशय करता है और कृमि के जैसे एक जगह नहीं रहता है।।11।।

गर्भ से बाहर आने में अपना प्रयत्न सफल न होने से श्री हरि के प्रसाद (अनुग्रह) से ही बाहर आना शक्य है ऐसा जानकर श्री हरि की स्तुति करता है। सप्तेन्द्रिय (साक्षी मन और पाँच ज्ञानेन्द्रिय) से युक्त यह ज्ञानी गर्भ में अपने को माता के उदर में लाए हुए श्री हरि का ही स्मरण करते हुए उनसे प्रार्थना करता है कि पुनः उसे यह गर्भवास न होवे। हाथ जोड़कर दैन्य पूर्ण वाणी से स्तुति करना आरम्भ करता है।।12।।

गर्भस्थ जीव जो भगवान के गुणों की स्तुति करता है वह गुण क्या उसके अनुभव सिद्ध हैं? अथवा वेद मंत्रों में कहे हुए गुण हैं? यह दोनों नहीं हो सकते हैं। जीव को जो ज्ञान आया है वह उसके सैकड़ों जन्मों के विषय में है किन्तु अन्य नहीं। इसलिए जीव इस अवस्था में श्री हरि के गुणों को कहकर स्तुति नहीं कर सकता है। अतः यह स्तुति युक्त नहीं है। इस प्रकार प्रश्न करने पर श्री हरि ही अपनी अचिन्त्य शक्ति से योग्यजीव को तत्व ज्ञान देते हैं। इसलिए दोनों प्रकार के गुणों से स्तोत्र करना युक्त है।

जीव कहता है-हे श्री हरि! पाप कर्मों को ही किया हुआ मैं पापी हूँ। मेरे कर्म के अनुसार इस गर्भवास के दुःख को आपने मुझे दिया है। आप शरणागतों की रक्षा करने वाले हैं। भक्तों की रक्षा करने के लिए आप अवतार लिए हैं। आपको कोई भय नहीं है। आपके चरण कमलों का जो शरण लिए हैं उनको भी कोई भय नहीं है।।13।।

यह देह पंच भौतिक है। इसमें मन आदि एकादश इन्द्रियाँ हैं। कर्मवश यह जीव इस देह में अभिमान रागद्वेष करता है। उसके साथ प्रकृति के विकार भूत इस शरीर में आप भी रहते हैं किन्तु आप बुद्ध नहीं हैं। जनन-मरण रूप विकार आपको नहीं है। आप सर्वत्र व्याप्त और ज्ञान स्वरूप हैं।।14।।

इस देह में नियामक रूप से रहते हैं। तापत्रय से तप्त हुये इस जीव के हृदय में निर्दुःख आपका होना प्रमाण से सिद्ध है। जीव आपका प्रतिबिम्ब है। इन्द्रिय प्रकृति के गुण शब्द इत्यादि विषयों को जानते हैं। पंच भौतिक देह में वाह्य चक्षु से यह जीव दिखाई नहीं पड़ता है। हे श्री हरि! आप भी इसी में वास करते हैं। आप सब कुछ जानने वाले हैं। आपसे प्रेरित होकर ही जीव आपके गुणों को जानकर आपकी स्तुति करता है। आपकी महिमा कभी भी कुण्ठित होने वाली नहीं है। आप सर्वज्ञ हैं। लक्ष्मी, ब्रह्मादियों से भी उत्तम हैं।।15।।

उत्तम जीवों को आप गर्भ में दिखाई देते हैं। आपकी इच्छा से ही आपके अधीन प्रकृति के गुण और कर्म से बद्ध होकर इस संसार में जीव भ्रमण करता है। बारम्बार तापत्रय में फँस कर मुमुक्षु जीव भी आपको भूल जाते हैं। आपके अनुग्रह के बिना यह जीव अन्य कोई उपाय से आपकी शरण में नहीं आ सकता है। आपके शरण में आने की बुद्धि को प्रेरित करने वाले आपही हैं। आप समस्त स्थावर और जंगम वस्तुओं में अन्तर्यामी होकर अनेक रूप से रहते हैं। आप सदा के लिए अत्यन्त सुख स्वरूप हैं परिपूर्ण हैं। उत्तम जीवों को पूर्व जन्म का स्मरण देने वाले आप ही हैं।।16।।

आप अत्यन्त प्रिय हैं। कर्मानुसार इस संसार को भोगने वाला यह जीव अपने दुःख को दूर करने के लिए आपकी ही सेवा करता है।।17।।

माता का गर्भ तो रक्त, मल मूत्र का गड्ढा है। इसमें वास करने वाला जीव माता की जठराग्नि से तप्त होकर **'कब बाहर जाऊँगा'** ऐसा दिन गिना करता है।।18।।

आपही इसको बाहर निकाल सकते हैं। हे सर्व नियामक! दस महीने तक गर्भ में वास करने वाले जीव को आप कृपा से अपना ज्ञान दिए हैं। हे दीन रक्षक! आप का प्रत्युपकार करना किसी को भी साध्य नहीं है। आपने जो मुझ पर कृपा की है, उसी से आप प्रसन्न हों। सिवा प्रणाम करने के और कौन सी सेवा से मैं आपके उपकार का बदला चुका सकता हूँ।।19।।

प्राकृत शरीर रहित आप जैसे जानते हैं आपके दिए हुए ज्ञान के द्वारा मैं भी जानता हूँ कि सात इन्द्रियों से युक्त यह जीव और यह जड़ देह आपके अधीन है। देह में और जीव में, जीव जीव में, जड़-जड़ों में परस्पर भेद होना और इन सबसे आपका भिन्न होना जाता हूँ। यह ज्ञान प्रमाण होना और दृढ़ होना आपके अनुग्रह से हैं। हृदय में और हृदय के बाहर जैसे मैं ब्रह्मा जी का दर्शन करता हूँ वैसे ही मैं अनुग्रह करने वाले आपका अपने हृदय में और हृदय के बाहर दर्शन करता हूँ। इस प्रकार का ज्ञान और दर्शन सज्जीवों को होता है।।20।।

हे स्वामिन्! अत्यन्त दुःखमय इस गर्भवास का अनुभव करते रहने पर भी आपसे ज्ञान को प्राप्त किया हुआ मैं इस गर्भ से बाहर जाना नहीं चाहता हूँ। बाहर का प्रपंच अन्धकूप के समान है। उसमें गिरते ही आपकी इच्छा से मिथ्या ज्ञान मुझे आवृत कर लेता है। उस देह में मैं और मेरे पन की ममता उत्पन्न हो जाती है। जिससे इस संसार के आवागमन के चक्कर में पड़ जाता हूँ। इसलिए मैं इस गर्भ में ही रहना चाहता हूँ।।21।।

यह तो साध्य नहीं है, मुझे तो बाहर जाना ही है। आपके चरणों का आश्रय लिया हूँ। वही मेरे लिए बल है।

आप अनिमित्त बन्धु हैं आप मुझ पर अनुग्रह करेंगे ही और मेरे दुःख दूर होंगे। तत्पश्चात् इस प्रकार के दुःख के आने सम्भव नहीं हैं। इस नरक से मैं छुटकारा पाऊँगा। आपको नमस्कार है। इस प्रकार गर्भस्थ शिशु श्री हरि की स्तुति करता है।।22।।

श्री कपिल देव जी कहते हैं-हे माता जी! उत्तम कुल में जन्म लेने वाले जीव को ऐसा ज्ञान होता है। वह दस महीने का जीव गर्भ में ही जब इस प्रकार विवेक सम्पन्न होकर भगवान की स्तुति करता है तब उस अधोमुख बालक को प्रसव काल की वायु तत्काल बाहर आने के लिए ढकेलती है।।23।।

उसके सहसा ढकेलने पर यह बालक अत्यन्त व्याकुल हो नीचे सिर करके बड़े कष्ट से बाहर निकलता है। उस समय उसके श्वास की गति रुक जाती है और पूर्व स्मृति नष्ट हो जाती है।।24।।

इस प्रकार अत्यन्त दुःख के साथ वह माता के गर्भ से बाहर आता है। पृथ्वी पर माता के रुधिर और मूत्र में पड़ा हुआ वह बालक कीड़े के समान पड़ा रहता है। उसका गर्भवास का सारा ज्ञान नष्ट हो जाता है। वह देहाभिमान रूप अज्ञान दशा को प्राप्त होकर बार-बार जोर जोर से रोता है।।25।।

पालन करने वाले माता-पिता नवजात शिशु के अभिप्राय को न समझने से जब वह रोने लगता है तो दूध पिलाने लगते हैं, किन्तु वह अपना वास्तविक अभिप्राय प्रकट करने में असमर्थ रहता है कि मुझे इसकी नहीं, अमुक वस्तु की आवश्यकता है।।26।।

मैले कुचैले खटमल आदि से भरे विस्तरे पर लेटे हुए उस शिशु की नरम चमड़ी में डाँस, मच्छर, खटमल आदि बड़े, कीड़े को छोटे कीड़े की भाँति काटते हैं तो वह रोने चिल्लाने लगता है, परन्तु उसमें यह शक्ति नहीं कि वह अपने अंगों को खुजला सके। यही नहीं न तो वह स्वयं करवट बदल सकता है न उठ बैठ सकता है।।27,28।।

इसी प्रकार वाल्य (कौमार) और पौगण्ड (दस वर्ष तक) अवस्थाओं के दुःख भोगकर वह बालक युवावस्था में पहुँचता है। उस समय यदि उसे कोई इच्छित भोग नहीं प्राप्त होता तो अज्ञानवश उसका क्रोध उद्दीप्त हो उठता है और वह शोकाकुल हो जाता है।।29।।

जैसे देह बढ़ता जाता है वैसे ही देह का अभिमान और क्रोध भी बढ़ता जाता है। वैसे ही दिन व्यतीत होते होते विषयासक्त हो जाता है और अन्य विषयासक्त पुरुषों के साथ बैर ठानता है।।30।।

ज्ञान रहित छोटी बुद्धि वाला यह जीव पंच भूतों से रचे हुए इस देह में मैं मेरे पन के दुराग्रह से अभिमान करने लगता है।।31।।

इस जीव के कर्म ही इसको उस संसार के चक्कर में डालता है। मनुष्य जन्म में भी बन्धन के कारण होने वाले दुष्ट कर्म करके नरक में जाता है। इस प्रकार के पुण्य और पाप कर्म, इसके मैं और मेरे पन के दुरभिमान को और भी अधिक कर देते हैं, नरकादि दुःख के कारण होते हैं। इसकी अविद्या और कर्म के फल से प्राप्त हुआ यह संसार बन्धन और दृढ़ हो जाता है।।32,33।।

मनुष्य जन्म भी एक साधन मार्ग है। इसमें भी यह जीव स्त्रियों में आसक्त और अपने उदर पोषण करने

वाले तथा जीव और ब्रह्म ऐक्य कहने वाले असुर स्वभाव वालों के साथ मिलकर अपनी आयु को व्यतीत करके नरक ही में प्रवेश करता है।।34।।

ऐसे असज्जनों की संगति से उसके सत्य, शौच, दया, मौन सद्बुद्धि, भक्ति सम्पत्ति श्री हरि के अप्रिय कार्य करने में लज्जा, यश क्षमा (विष्णु भक्तों से किए हुए अपराधों का सहन करने का स्वभाव) शम, दम, ऐश्वर्य इत्यादि सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं।।35।।

देह में जीव एक ही रहता है ऐसे निश्चित ज्ञान वाले, तथा जो स्त्रियों के दास होते हैं और जो श्री हरि भक्ति रहित होते हैं ये अंधतमस के योग्य होते हैं इसलिए इनकी संगति नहीं करना चाहिए।।36।।

तमो योग्य जीवों की संगति न करे। इतना ही नहीं सज्जीव को दुष्ट स्त्रियों का सहवास भी नहीं करना चाहिए। दुष्ट स्त्रियों के और उनके सहवास में रहने वाले कामी जनों के सहवास से जीव जितना बन्धन और मोह के वशीभूत होता है उतना अन्य कोई जनों के सहवास से नहीं होता है।।39।।

ब्रह्मा जी का मन कभी भी अधर्म की ओर नहीं जाता है। परन्तु दुष्ट जनों को मोहित करने के लिए मृगरूप को धारण करके मृग के रूप में रहने वाली अपनी पुत्री की कामना किया। इससे जगत को वह नीति बतलाना चाहते हैं कि स्त्रियों के सौन्दर्य से कोई कैसा भी पुरुष क्यों न हो उसका मन विकृत हुए बिना नहीं रह सकता है। इसलिए मैं विकृत हुए बिना रह सकता हूँ इस अहंकार से किसी को भी स्त्री के सहवास में आसक्त नहीं होना चाहिए।।38।।

ब्रह्मा जी के पुत्र मनु राजा, उनके पुत्र प्रियव्रत इत्यादि, ब्रह्मा के पुत्र मारिचि आदि ऋषियों के पुत्र कश्यप के वंश में आए हुए स्त्री रूप मेरी मोहक शक्ति के वशीभूत न होने वाला एक ही नारायण ऋषि हैं। वह त्रिकाल ज्ञानी हैं वह मैं ही हूँ। इसलिए मैं अकेला ही (श्री हरि अकेला ही) स्त्रियों से विकार रहित हूँ।।39।।

हे माता जी! मेरी मोह्क शक्ति का बल तो देखिए। वह बड़े बड़े दिग्विजयी भूपालकों को अपने भ्रू विलास मात्र से अपने अधीन कर लेती है।।40।।

स्त्रियों का सहवास तत्वज्ञान को नाश कर देता है। अहंकार को बढ़ाता है। इसलिए दुष्ट स्त्रियाँ नरक का द्वार मानी गई हैं।।41।।

जो मुमुक्षु वेदान्त आदि शास्त्रों का श्रवण करके विरक्त हुआ है। स्वरूपानन्द का अनुभव करता है। श्री हरि में भक्ति करता है तथा अपनी योग्यतानुसार भक्ति की पूर्णता को प्राप्त करना चाहता है वह हास्य के लिए भी दुष्ट स्त्री का सहवास न करे। परन्तु योग्य और नियत पत्नियों में जो अनुराग रखता है वह ज्ञान साधन के लिए कारण होने से वह कभी बन्धक नहीं है। दैव वशात् यदि किसी की पत्नी दुष्ट स्त्री हो तो मुमुक्षु को उसे अपनी मृत्यु समझना चाहिए। वह घास फूस से छिपे हुए कुएँ के समान है भूलकर भी पैर रखेंगे तो अधःपतन होगा।

सज्जनों की संगति और सत् स्त्रियों की संगति दोष का कारण नहीं है। उनकी योग्यतानुसार ज्ञानादि गुणों के लिए कारण होता है। दुष्ट स्त्रियाँ सर्वथा त्याज्य हैं। आग के पास रखा हुआ पात्र के अन्दर का घी जैसे पिघल जाता है वैसे ही पुरुष का मन विकृत हो जाता है। गुड़, अंगूर और पिष्ट के रस का बना हुआ मदिरा पीने पर ही नशा

उत्पन्न करता है परन्तु यह स्त्री रूप चौथी सुरा देखने मात्र से ही मद को उत्पन्न कर देती है इसलिए उसको देखना भी नहीं चाहिए।।42।।

पुरुष विषयासक्त होकर दूसरे जन्म में स्त्रीत्व को प्राप्त होता है तो तब उस जन्म का पति मोह से यदि यह समझता है कि यह मेरी स्त्री है, और धन, पुत्र, घर इत्यादि के लिए कारण समझता है तो वह युक्त नहीं है।।43।।

जैसे व्याध का संगीत मृग के लिए बन्धन का कारण बनता है वैसे ही अदृष्ट के नियामक श्री हरि से प्राप्त विष्णु भक्ति रहित अयोग्य पति को साध्वी स्त्री नरक का कारण समझ कर उसमें अतिशय अनुराग न करे।।44।।

ज्ञान के बिना कर्म नाश नहीं हो सकता है। वह कर्म परम्परा के लिए कारण होना अब बतलाते हैं। जीव को यह देह उसके कर्मानुसार मिला है। ऐसे ही वह एक देह से दूसरे देह में जाते ही रहता है। अपने कर्मफल का अनुभव करते समय में अगले जन्म के लिए कारण होने वाले कर्म को करता ही जाता है। अयोग्य स्त्री अथवा अयोग्य पति का मिलना इन्हीं कर्मों का फल है। इसलिए ज्ञान के बिना कर्मक्षय नहीं हो सकता है।।45।।

पंचभूत, इन्द्रिय, मन सहित देह जिसके साथ रहता है वही जीव है। उत्पन्न हुआ और मृत्यु के प्राप्त हुआ ऐसा व्यवहार जीव के लिए है। इससे जीव के अनित्य होने की शंका न करें। देह का योग और वियोग ही जनन और मरण है। किन्तु जीवस्वरूप नाश नहीं होता है। उत्पत्ति और नाश देह को है जीव को नहीं। जीव नित्य है।।46।।

देह रहने पर भी प्रपंच के वस्तुओं को नहीं जानता है तभी कहते हैं कि उसकी मृत्यु हो गई। जब जीव देह ही मैं हूँ इस अभिमान से जब वस्तुओं को जानता है तभी देह की उत्पत्ति है।।47।।

जब कवल, मोतियाबिन्द आदि रोगों द्वारा दूषित होने पर जैसे इन्द्रिय गोलक कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं। तब इन्द्रियाँ भी देखने में असमर्थ हो जाती हैं। जब इन्द्रियाँ समर्थ होती हैं तब जीव उस इन्द्रिय के द्वारा शुक्ल और काले रंग को जानता है जिससे वह सुख अथवा दुःख का अनुभव करता है।।48।।

संसारी जीव तो चेतन है इसलिए वह ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही संसार को प्राप्त होता है। ब्रह्म ही मुक्त होता है ऐसा अद्वैत मत वाले कहते हैं। इसी का उत्तर इस श्लोक में देते हैं। इसी प्रकार कान अपना विषय शब्द, नासिका अपना विषय गन्ध, जिह्वा अपना विषय रस, त्वक, अपना विषय स्पर्श इनको जान सकते हैं। परन्तु एक दूसरे के विषय को जान नहीं सकते हैं अथवा बतला नहीं सकते हैं। इसलिए वह एक दूसरे से भिन्न हैं। इसी प्रकार से जीव परमात्मा का भिन्नांश है और परस्पर भिन्न हैं। इसलिए परब्रह्म परमात्मा कभी जीव नहीं हो सकता है। इसके विरुद्ध कहने वाले तत्ववादी नहीं हो सकते हैं।।49।।

यदि ऐसा है तो जीव को सदा के लिए संसार बंधन में रहना पड़ेगा और संसार बन्धन से मुक्त नहीं होगा। जीव को देहाभिमान त्यागना चाहिए। श्री हरि एक हैं। उनमें भेद नहीं है। ऐसा जानना ही पुरुषार्थ है। सज्जीव सुखस्वरूप है। इसको बाह्य सुख दुःख नहीं है। देह अचेतन (जड़) है इसलिए उसको भी सुख-दुःख नहीं है।।50।।

बाह्य सुख दुःख आदि जीव को देहाभिमान के कारण होते हैं। इसलिए जिसने देहाभिमान त्याग दिया है उसको भय तथा दीनता नहीं है।।51।।

जिसको श्री हरि का अपरोक्ष ज्ञान हो गया है वह प्रारब्ध कर्मानुसार मिला हुआ इस देह के अन्त होने तक श्री हरि की इच्छा से निर्मित इस कर्म भूमि में विचरता रहे। परन्तु श्री हरि को छोड़कर अन्य लौकिक विषयों में आसक्त न हो। वह ज्ञानी गंभीरता से रहे। अपने समीचीन ज्ञान से भक्ति योग और वैराग्य को अधिक प्राप्त करके जीव को प्राप्त होने वाले स्वर्ग, नरकादि विषयों को (इनके यथार्थ स्वरूप को) जानकर मुक्तामुक्त जीवों के आश्रय दाता श्री हरि को अपनी योग्यतानुसार अधिक से अधिक जानते हुए उसी की सेवा करते हुए रहे।।52।।

।।इति श्रीमद्‌भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे द्वत्रिंशोऽध्यायः।।

अथ त्रयत्रिंशोऽध्यायः

अर्चिरादि मार्ग ही पुनरावृत्ति रहित मोक्ष का साधन है। श्री हरि में भक्ति करने से यह मिल सकता है। इसी विषय को इस अध्याय में बतलाते हैं। इसमें भी पहले कर्म करने वालों को प्राप्त होने वाली पुनरावृत्ति से युक्त स्वर्ग प्राप्त होना बतलाते हैं। यह भी श्री हरि में अल्प भक्ति करने वालों को मिल सकता है। परन्तु द्वेष करने वालों को नहीं। इसलिए भक्ति ही मुख्य साधन है।

कपिलदेव जी कहते हैं-हे माता जी! सकाम कर्म करने वालों को जिस फल की प्राप्ति होती है उसे बतलाता हूँ। जो घर में रहकर देवपूजा, पितृ श्राद्ध इत्यादि कर्म करते हुए उनसे धर्म, अर्थ और काम को प्राप्त करता है और अपने सन्तति वालों को इन कर्मों को करने के लिए उपदेश करता है।।1।।

विषय सुख में आसक्त होकर श्रद्धा से देवताओं और पितरों की पूजा करने वाला 'पितृ देव व्रत' कहलाता है। इनमें मोक्ष को कारण होने वाली भक्ति नहीं होती है। इनमें अल्प भक्ति वाले और भगवद् भक्ति रहित ऐसे दो प्रकार के हैं। अल्प भक्ति से यज्ञ यागादि कर्म करने वाले कुछ समय के लिए स्वर्ग का सुख भोगने के लिए धूमादि मार्ग से चन्द्र के अधिकार में रहने वाले स्वर्ग को प्राप्त होकर पुण्य का फल भोग कर शेष अल्प पुण्य फल को भोगने के लिए पुनः भूलोक में आते हैं।।2,3।।

जिनमें भगवद्भक्ति नहीं है वे स्वर्ग के एक देश में रहकर पाप के फल भोगने के लिए नरक में जाते हैं। इस प्रकार सकाम कर्म में आसक्त गृहस्थ को प्राप्त होने वाले स्वर्गादि लोक शाश्वत (नित्य) नहीं हैं। श्री हरि जब शेषशायी होकर शयन करते हैं तब यह लोक नाश हो जाता हैं।।4।।

निवृत्ति कर्म में आसक्त हुए भगवद्भक्त ज्ञानी होते हैं। विषयासक्त नहीं होते हैं। उनका चित्त निर्मल और मन श्री हरि में स्थित रहता है। समस्त कर्मों को श्री हरि को समर्पित करते हैं। धर्म, अर्थ और काम के लिए वह अपने धर्माचरण नहीं करते हैं। वह ममकार रहित और स्वातत्र्याभिमान रहित होते हैं। वे निवृत्ति धर्म का आचरण करते हैं। यह सत्व स्वरूप और मुक्ति योग्य जीव हैं। यह शुद्ध अन्तःकरण वाले अर्चिरादि मार्ग से **'मानव'** पुरुष को प्राप्त होकर वहाँ से श्री हरि को प्राप्त होते हैं।।5,6,7।।

वह श्री हरि सर्वस्वामी, मुक्तामुक्त, प्रपंच का नियामक, सर्वज्ञ, जगत की सृष्टि, स्थिति और संहार इत्यादि के कारण हैं। प्रतीकालम्बन और अप्रतीकालम्बन ऐसे दो प्रकार के भक्त हैं। यह भक्तजन श्री हरि को प्राप्त होने से पूर्व चतुर्मुख ब्रह्मा जी के पास जाते हैं। द्विपरार्ध के अन्त में जब चतुर्मुख ब्रह्माजी का प्रलय होता है तब तक उस सत्यलोक में श्री हरि का ध्यान करते हुए वहाँ रहते हैं।।8।।

ब्रह्मा जी के अधिकार का काल परकाल कहलाता है। इसको दो भाग करके रहते हैं। इसलिए वह द्विपरार्ध कहलाता है। तब जीवोत्तम ब्रह्मा जी सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण को स्वीकार करके सृष्टि कार्य में आसक्त

रहते हैं। इस द्विपरार्ध के अन्त में वे श्री हरि की इच्छानुसार अपने से सृष्टि किए हुए जगत का संहार करने की इच्छा करते हैं। तब पंचभूत के अभिमानी, इन्द्रियाभिमानी, मनोभिमानी, शब्दादि अर्थाभिमानी, अहंकार तत्वाभिमानी अपने अपने बिम्ब में प्रवेश करके गरुड़ मार्ग शेषमार्ग से ब्रह्माजी में प्रवेश करते हैं। तत्व अपने अपने कारण में लय हो जाते हैं। इस प्रकार अपने में प्रवेश किए देवताओं के साथ ब्रह्मा जी लक्ष्मी में प्रवेश करते हैं तद्द्वारा श्री हरि में प्रवेश करते हैं।।9।।

श्री हरि में प्रवेश किए हुए यह समस्त योगी जन वायु और मन पर विजय प्राप्त करके वैराग्य से युक्त होते हैं। ब्रह्मा जी पर्यन्त समस्त जीव श्री हरि में प्रवेश करने पर भी वे हम जीव हैं ऐसा अभिमान उनको बना रहता है। केवल उनका लिंग शरीर नष्ट हुआ रहता है।।10।।

श्री हरि नित्य मुक्त, गुणपूर्ण, पुरातन, सर्वोत्तम हैं। इसलिए वह इन सबके लिए आश्रय हैं। श्री हरि को किसी अन्य में प्रवेश करना नहीं है। स्थावर और जंगम जीवों में ब्रह्मा जी उत्तम हैं। मुक्ति योग्य मनुष्योत्तम से लेकर शेष गरुड़ पर्यन्त जिनके साधन पूर्ण हुए हैं ऐसे ज्ञानियों के साथ सनत्कुमार आदि योगीश्वरों के साथ श्री हरि में प्रवेश करके सायुज्य इत्यादि मोक्ष को प्राप्त होते हैं।।11।।

इस प्रकार श्री हरि में प्रवेश करने वाले जीवों में और ईश्वर में भेद, जीव जीव में परस्पर भेद, जीव और जड़ में भेद, जड़ और ईश्वर में भेद और जड़-जड़ में परस्पर भेद ऐसे पाँच प्रकार के भेद ज्ञान तथा निष्काम कर्मानुष्ठान के साथ उनके योग्यतानुसार पूर्ण ज्ञान होता है। श्री हरि कर्ता होने से सगुण हैं, गुण पूर्ण हैं, सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। क्षराक्षर पुरुषों से उत्तम है। इसलिए इनको सायुज्यादि मोक्ष प्रदान करते हैं। भगवान को गुणपरिपूर्ण हैं कहने से प्रकृति के सत्वादि गुणों को नहीं समझना चाहिए किन्तु ऐश्वर्यादि समस्त कल्याण गुणों को होना समझना चाहिए।।12।।

जब श्री हरि गुण वैषम्य सृष्टि में आसक्त होते हैं। तब सायुज्य इत्यादि मोक्ष को प्राप्त किए हुए ब्रह्मादि जीव, श्री हरि के उदर से बाहर आकर अप्राकृत श्वेत द्वीप आदि श्री हरि के स्थानों में आनन्दपूर्ण होकर बिहार करते हैं। तब भी जैसे संसार अवस्था में परस्पर भिन्न और तारतम्य से युक्त थे वैसे ही भिन्न तथा तारतम्य से युक्त रहते हैं।।13।।

उनके द्वारा किए हुए साधन के फलस्वरूप भगवान के अनुग्रह से अणिमादि समस्त योगसिद्धि रूप भोगों का अनुभव करते हैं। स्वरूपभूत आनन्द का और अप्राकृत विषयों का अनुभव करते हैं। पुनः जब प्रलय होता है तब स्वोत्तमों में प्रवेश करके श्री हरि के उदर में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार श्री हरि के उदर में प्रवेश करना और उदरं से बाहर आना प्रत्येक प्रलय और सृष्टिकाल में निरन्तर मुक्त जीवों को भी होता ही रहता है। ऐसा जानना चाहिए।।14।।

इस प्रकार श्री हरि की उपासना करने से नित्यानन्दानुभव रूप मोक्ष प्राप्त होता है। हे माता जी! तुम भी श्री हरि को **'मेरा स्वामी मैं उनकी दासी हूँ'** इस भाव से युक्त होकर भक्ति से शरण में जाओ। उनकी महिमा समस्त वेदादि शास्त्रों से प्रतिपादित हुई है। वह समस्त प्राणियों के हृदय कमल में वास करते हैं। उस बिम्बरूपी श्री हरि की भक्ति से उपासना करो।।15।।

मनुष्यों में कुछ स्वर्गादि की अपेक्षा से यज्ञादि कार्य श्रद्धा से करते हैं। नित्य कर्मानुष्ठान तथा विहित यागादि को स्वर्ग प्राप्ति के लिए ही किया करते हैं।।16।।

उनका मन राजस गुण से भरा रहता है। विषय लोलुप होते हैं। अजितेन्द्रिय और ऐहिक सुख में आसक्त रहते हैं। पितरों की सदा पूजा करते हैं।।17।।

इस प्रकार धर्मनिष्ठ जैसे दिखाई देने पर भी दैत्यों का संहार करने वाले सर्वोत्तम श्री हरि की कथा श्रवण और मननादि में उनकी आसक्ति नहीं होती है। ऐसे लोग मोक्ष के योग्य नहीं है।।18।।

श्री हरि के अमृतमय कथा को त्याग कर काव्य नाटक, कथाओं में जो मोक्ष के साधन नहीं है उसी में आसक्त रहते हैं। वे देह त्यागने पर श्री हरि की इच्छा से श्वान सूकर इत्यादि जैसे अमेध्य का भोग करते हैं वैसा ही असहनीय नरक को प्राप्त होते हैं। जो श्री हरि के भक्त नहीं है वह जो धर्म करते हैं वह धर्म नहीं है। वह तमो योग्य है।।19।।

श्री हरि में किंचित भक्ति करने वाले उपरोक्त जो धर्म कार्य करने वाले हैं वह मृत्यु के पश्चात् दक्षिणायन मार्ग से पितृ देवताओं के अधिपति यम के लोक-पितृलोक को जाते हैं। वहाँ अधिक समय तक नहीं रहते हैं। पुनः वह अपने ही सन्तति के वंश में उत्पन्न होते हैं। षोडश संस्कारों के पश्चात् धर्म कार्य करके उस पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग लोक में कुछ समय तक रहकर पुण्य क्षीण होने पर देवताओं के द्वारा स्वर्ग से बाहर डाल दिये जाते हैं। पुनः मनुष्य लोक में जन्म लेते है इस प्रकार स्वर्ग, भूलोक और अनित्य नरकों में भ्रमण करते रहते हैं। (लिंग देह के भंग होने पर सान्तानिक लोक को प्राप्त होकर सुख दुःख का मिश्रित फल का भोग करते हैं।) इससे स्पष्ट होता है कि इनको स्वर्ग मनुष्य लोक, अनित्य नरक कल्प के अन्त तक प्राप्त होता रहता है। इनके लिंग देह भंग होने पर सान्तानिक अर्थात् सुख-दुःख से मिश्रित लोक को प्राप्त होते हैं। ऐसा सम्प्रदायज्ञों का कहना है। इस प्रकरण से सिद्ध होता है कि देवताओं से लेकर मनुष्योत्तम तक मुक्ति योग्य जीव हैं। श्री हरि में अल्प भक्ति करने वाले धर्म कार्य में आसक्त यह स्वर्गादि लोक में भ्रमण करने वाले मध्यम (नित्य संसारी) हैं। श्री हरि में द्वेष करने वाले असुर स्वभाव वाले तमो योग्य कहलाते हैं। इस प्रकार जीवों में मुक्ति योग्य, नित्य संसारी और तमोयोग्य तीन प्रकार के होना सिद्ध होता है।।20,21।।

माता जी! श्री हरि में भक्ति किए बिना मोक्ष नहीं है। तुम मुक्ति योग्य हो। सर्व सेवित सर्वोत्तम विष्णु जो लक्ष्मी और ब्रह्मादि से उत्तम हैं उस श्री हरि को तुम अपना स्वामी मानकर जो गुणपूर्ण तथा सब में व्याप्त है उस भगवान की अपने योग्यतानुसार भक्ति से उपासना करो।।22।।

श्री हरि में भक्ति करने से वैराग्य तथा ब्रह्मसाक्षात्कार के लिए कारण होने वाला भली भाँति ज्ञान (यथार्थ ज्ञान) उत्पन्न होगा।।23।।

जो वैराग्य आदि साधन सम्पत्ति को जुटा लियाहै ऐसे उपासक को अपरोक्ष ज्ञान उत्पन्न होने का समय अब बतलाते हैं। शब्दादि विषय जो बन्धक है उनमें प्रिय और अप्रिय का विभाजन न करते हुए सभी विषयों को अप्रिय

मानकर जब यह ज्ञान हो जाय कि श्री हरि ही प्रियतम हैं तब समझना चाहिए कि बाह्य मन की शक्ति कुण्ठित हो गई है।।24।।

उस समय स्वरूप भूत चिन्मन के द्वारा उपासक संग रहित, यथार्थ ज्ञानी निर्दृष्ट सदा सर्वोत्तम उस बिम्बरूपी श्री हरि का दर्शन करता है।।25।।

श्री हरि एक हैं। अनेक शब्दों से वाच्य हैं। तत्वों में उत्तम होने से परब्रह्म, जीवों से उत्तम होने से परमात्मा, नियमन करने की शक्ति होने से ईश्वर, कुण्ठित न होने वाले पुंशक्ति से युक्त होने से पुरुष हैं, समस्त ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न होने से भगवान कहलाते हैं। मुख्य तत्व होने से बौद्ध लोग ज्ञान कहते हैं, वेदान्ती परब्रह्म कहते हैं योगीजन परमात्मा कहते हैं, वैशेषिक और पाशुपत ईश्वर कहते हैं। सांख्य पुरुष कहते हैं, पौराणिक भगवान कहते हैं। यह समस्त शब्द श्री हरि को ही मुख्य तत्व होना बतलाते हैं।।26।।

इस प्रकार उपासना करने वाले उपासक का भक्तियोग सिद्ध होने पर उसके सम्पूर्ण भक्ति का फल लिंग देह का भंग होना ही है।।27।।

श्री हरि के मत्स्यादि समस्त रूप अप्राकृत देह से युक्त हैं। यदि प्राकृत देह से युक्त होना समझते हैं तो उनको अन्धंतमस होगा इसको इस श्लोक में बतलाते हैं।

मत्स्यकूर्मादिरुपं च विष्णोर्ज्ञानैकमात्रकम्।।

तन्मन्यन्ते भौतिकं तु ये गच्छन्त्यधरं तमः।। ब्राह्मे

सर्वोत्तम तथा स्वागत भेद रहित श्री हरि मत्स्यादि रूपों में अनेक संख्या में दिखाई पड़ते हैं। यह सभी ज्ञान रूप और अप्राकृतदेह वाले हैं परन्तु विषयासक्त अज्ञानीजन अपनी इन्द्रियों से भ्रमवश इन अवतार रूपों को भौतिक शरीर से युक्त होना जानते हैं। इस प्रकार का जानना अन्धंतमस का कारण हैं। महत्तत्वाभिमानी ब्रह्मा, तीन प्रकार के अहंकार तत्वाभिमानी रुद्रादि, पंच भूताभिमानी, एकादश इन्द्रियाभिमानी इन्द्र इनको अपने ज्ञानमय, चिद्देह के साथ इस ब्रह्माण्ड में प्राप्त हुआ भौतिक देह है वैसे ही श्री हरि के अवतारों को भी भौतिक देह से युक्त होना समझते हैं। ब्रह्मादियों के विषय में तो यह युक्त है किन्तु श्री हरि के विषय में ऐसा समझना भ्रम है। श्री हरि किसी का अभिमानी न होने से उसको प्राकृत देह कैसे हो सकता है।।29।।

यदि ऐसा ही है तो श्री हरि के अवतारों के देह को यथार्थ रूप से अप्राकृत देह का होना, कैसे जान सकते हैं? जो कोई नित्य श्रद्धा भक्ति से योगाभ्यास से श्री हरि में ही मन को स्थिर करके दुष्टसंग को त्याग कर सज्जन संग में ही रहकर वैराग्य से युक्त होता है वे ही यह अवतार रूप प्राकृत देह रूप दोष से रहित होना, अनन्त गुणपूर्ण ब्रह्मरूप होना, अपरोक्ष ज्ञान के द्वारा जान सकते हैं। इन साधनों के विरुद्ध साधन करने वालों को कभी भी यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता है। इस श्लोक का अन्य मत वाले इस प्रकार व्याख्या करते हैं कि निर्गुण ब्रह्म एक ही है और वही भ्रमवश जगत पदार्थ, पंचभूत, एकादश इन्द्रियादि के रूप में दिखाई देता है। इस प्रकार का अर्थ करते हुए जगत को भ्रान्ति कल्पित मानते हैं जो प्रमाण विरुद्ध है। इसी अध्याय के 28वें (अट्ठाइसवें) श्लोक में कहा गया है

कि मत्स्य, कूर्मादि रूप अप्राकृत हैं। इससे उक्त व्याख्यान का निराकरण हो जाता है।।30।।

अब तत्वोपदेश का उपसंहार करते हैं। हे माता जी! अब तक जो उपदेश किया हूँ वह प्रकृति शब्द वाच्य श्री लक्ष्मी जी तथा ब्रह्मादि चेतन और पुरुष शब्द वाच्य श्री हरि के विषय का यथार्थ ज्ञान है। इसी से श्री हरि का साक्षात्कार होता है। इस प्रकार के ज्ञान को प्रत्येक मुमुक्षु को अवश्य प्राप्त करना चाहिए।।31।।

श्री हरि में ही मन को स्थिर करके किए जाने वाली एकान्त भक्ति को निर्गुण भक्ति कहते हैं। यह भक्ति योग और ज्ञान योग एक दूसरे को छोड़कर नहीं रहते हैं। इनमें से एक प्रधान हो तो दूसरा उसका अंग होगा। इन दोनों के लिए श्री हरि ही विषय हैं। यह दोनों मोक्ष के लिए अत्यन्त आवश्यक साधन हैं। मोक्ष के लिए आवश्यक साधन भक्ति और ज्ञान को उपदेश किया हूँ। इस श्लोक में भक्ति योग न कहकर **'भक्ति लक्षणः योगः'** कहने से ज्ञान और भक्ति के बिना मोक्ष का न होना, इनमें से कोई एक के रहने से दूसरे का भी रहना, अतः एक से ही मोक्ष होता है कहने से दूसरा इसके लिए साधन होना जानना चाहिए। इसी विषय को यह प्रमाण वाक्य स्पष्ट करता है-

ज्ञान भक्ति विना नैव मुक्तिः कस्यापि विद्यते।
तयोरेकतरेणापि विष्णुगेनोभयं बिना।
एवमप्येतयोरेकभावेऽन्य नियतेर्ध्रुवम्।
एकेनापि भवेन्मुक्तिस्तदर्थ चान्यसाधनम्। हरिशंशेषु।।32।।

जिस प्रकार रूप, रस एवं गन्ध आदि अनेक गुणों का आश्रय भूत एक ही पदार्थ भिन्न इन्द्रियों द्वारा भिन्न-भिन्न रूप से अनुभूत होता है वैसे ही शास्त्र के शब्द एक ही भगवान के अनन्त गुणों को बतलाते हैं।।33।।

जैसे ज्ञान भक्ति के लिए भगवान विषय हैं वैसे ही संध्या वन्दनादि क्रियाओं के लिए भी भगवान को ही विषय होना बतलाते हैं। संध्या वन्दन, यज्ञ यागादि, सात्विक दान, चान्द्रायण इत्यादि उपवास व्रत, वेदादि शास्त्रों का अध्ययन, चल अचल प्रतिमाओं का दर्शन, इन्द्रिय निग्रह, कर्म समर्पण, अष्टांग योग, वर्णाश्रम धर्म, यथार्थ ज्ञान और दृढ़ वैराग्य इन सबके लिए श्री हरि ही विषय है। वह अनन्त कल्याण गुणों से युक्त होने से सगुण कहलाते हैं। प्राकृत गुणों से रहित होने से निर्गुण कहलाते हैं। वे स्वतंत्र ज्ञानी हैं।।34,35,36।।

हे माता जी! मैंने आपको सात्विक, राजस, तामस, भक्ति के स्वरूप, एकान्त भक्ति का स्वरूप तथा प्राणियों के भीतर नियामक रूप से रहने वाले जो विचार किए बिना जाना नहीं जा सकता है ऐसे श्री हरि स्वरूप को स्पष्ट रूप से बतलाया है।।37।।

इसके साथ-साथ अविद्याकर्म के फल से अनेक जन्मों को प्राप्त होकर श्री हरि को न जानते हुए यह जीव पुनः पुनः अनुभव करने वाले सांसारिक गति (जन्म) को भी बतलाया हूँ।।38।।

तत्व ज्ञान के लिए जो अधिकारी नहीं हैं अब उनको बतलाते हैं। खल, (इन्द्रियों को ही तृप्त करने में आसक्त दुर्जन), अविधेय, गुरुद्रोही (गुरु के आदेश को न मानने वाला) भिन्नाय (वैष्णव शास्त्रों को त्याग कर अन्य शास्त्र में आसक्त) धर्मध्वजाय (दाम्भिक), विषयासक्त, गृहासक्त, श्रद्धाहीन, मेरे भक्तों से द्वेष करने वालों को

तत्वोपदेश सर्वथा नहीं करना चाहिए। जैसे उपदेश के लिए विष्णु भक्ति अत्यावश्यक है वैसे ही विष्णुभक्त द्वेष राहित्य भी उपदेश के लिए अति आवश्यक होना बतलाया गया है।।39,40।।

अनाधिकारी समझ कर उपदेश न करने से तत्ववाद ही नष्ट हो सकता है इसलिए उपदेश के योग्य अधिकारी को बतलाते हैं-इसके अधिकारी तो मेरे वे अनन्य भक्त हैं जो श्रद्धालु, विनीत, असूया रहित, प्राणिमात्र के हितैषी, गुरुशुश्रूषा परायण, स्वर्गादि नश्वर फलों में विरक्त, श्री हरि में ही मन को स्थिर किया हुआ, मात्सर्य रहित, वहिरन्तः शुद्ध (निष्कपट), समस्त प्रिय वस्तुओं में श्री हरि ही प्रियतम हैं ऐसा जानने वाला-ऐसे भक्तों को उपदेश करना चाहिए।।41,42।।

फल को जानने से योग्य अधिकारी को इसको जानने में क्षिप्र प्रवृत्ति होती है। इसलिए अब इसका फल बतलाते हैं। हे माता जी! मुझमें ही मन को स्थिर करके कर्म करने से वह सुकृत कहलाते हैं। ऐसे कर्म करने वाला भक्त यदि श्रद्धा से इसका श्रवण करे या कराए तो वह पुनरावृत्ति रहित अत्युत्तम मेरे स्थान को प्राप्त होता ही है। इसलिए प्रत्येक भक्त इसका श्रवण करे, योग्य अधिकारी को उपदेश करे।।43।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।।

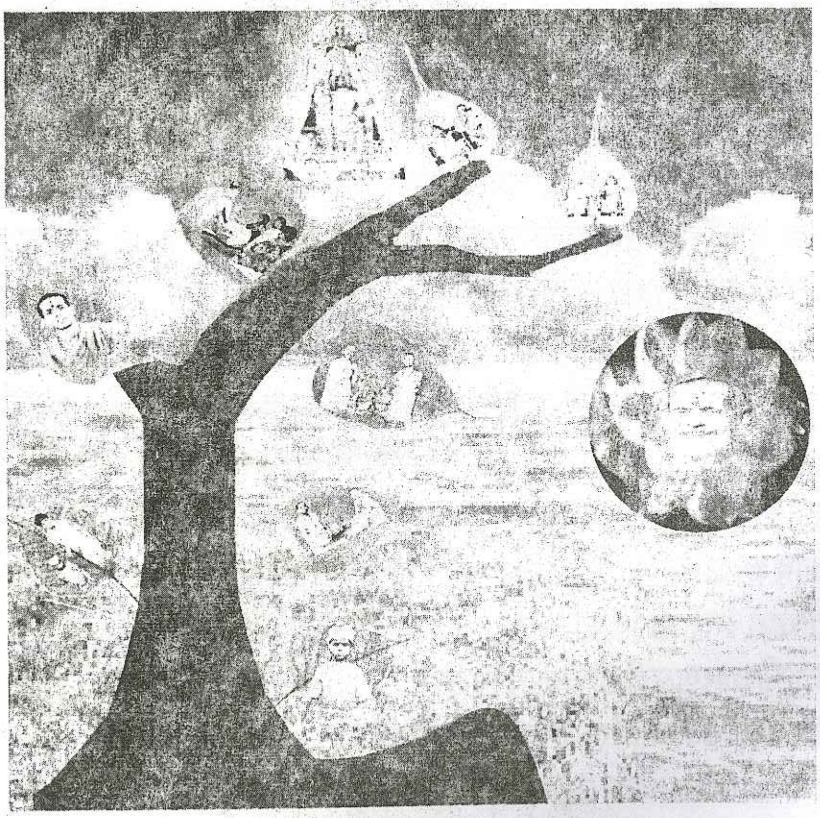

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

कपिल रूपी भगवान देवहूति को जो तत्वज्ञान का उपदेश किए थे देवहूति के स्तुति से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह उपदेश उसके समझ में आ गया है। जिसको इस अध्याय में बतलाते हैं-

मैत्रेय जी कहते हैं-हे विदुर जी! कपिलरूपी भगवान की माता देवहूति ने कर्दम ऋषि को सेवा से प्रसन्न कर लिया। देवहूति ने कपिल रूपी भगवान के उपदेश को एकाग्र से श्रवण किया। जिससे उसका हरि के विषय में जो अज्ञान था वह दूर हो गया। ब्रह्मादि ज्ञानियों के लिए आश्रयभूत कपिल की मैं माता हूँ इस अभिमान को त्याग कर भक्ति से नमस्कार किया।।1।।

देवहूति जी ने कहा-हे कपिल जी! समस्त जगत का कल्याण होवे। प्रलय के अन्त में आपकी नाभि कमल से उत्पन्न हुए चतुर्मुख ब्रह्मा ने प्रलय जल में शयन करने वाले आपके रूप का ध्यान किया। पंच भूत, इन्द्रिय, विषय और मन के लिए उपादान कारण प्रकृति की नियामक लक्ष्मी जी से भी आप श्रेष्ठ हैं।।2।।

सृष्टि काल में सत्वादि गुणों के आप ही प्रवर्तक हैं। आप सदा ज्ञानानन्दादि गुणों से पूर्ण हैं। आपका चिदानन्दात्मक देह सत्य है वह मायिक नहीं है। आप समस्त जगत की सृष्टि किए हैं। आप उसके लिए निमित्त कारण हैं। आप और आपके देह में भेद नहीं है। सत्व, रज आदि गुणों के प्रवर्तक रूप अपनी शक्तियों को विभक्त करके ब्रह्मादि चेतनों में प्रवर्तक रूप से रहते हैं। आप सत्य संकल्प हैं, सृष्टयादि कार्य आपको श्रमदायक नहीं है। आपका कोई नियात्मक नहीं है। आपही सबके नियामक हैं। आपकी शक्ति अचिन्त्य है। वटपत्र में शयन करते हुए आप ही सृष्टयादि कार्य करते हैं।।3।।

श्री हरि को अचिन्त्य शक्ति से युक्त होना अनुमान प्रमाण से बतलाते हैं। प्रलय काल में इस समस्त जगत को अपने उदर में रखकर अपनी इच्छा से ही शिशुरूप से अपने चरण के अंगूठे को चूसते हुए आप अकेले ही वटपत्र पर शयन करते हैं। उन्हीं आपको मैंने अपने गर्भ में कैसे धारण किया। यही मुझे आश्चर्य है। राई के दाने के बराबर भार को भी मैं उठा नहीं सकती हूँ ऐसी मैं तीनों लोकों को धारण किए हुए आपको धारण करने के योग्य मुझे आप ही ने बनाया है तब आप का अचिन्त्य और अनन्तशक्ति से युक्त होना अनुमान से सिद्ध होता है।।4।।

सर्वत्र व्याप्त रहने वाले आपने सच्चिदानन्दात्मक देह से अवतार लिया। आपकी चिदानन्दात्मक देह के लिए मेरा भौतिक देह कभी कारण नहीं हो सकता है। आप वराह आदि अवतार लेकर हिरण्याक्षादि दैत्यों का संहार किये। आप अपने आज्ञाकारी देवताओं का जैसे अभ्युदय किये वैसे ही यह कपिल अवतार भी काल क्रम से नष्ट हुए ज्ञान मार्ग का उपदेश करके सज्जनों का उद्धार करने के लिए हुआ है।।5।।

कैसा भी श्वपच ही क्यों न हो आपके नामों का श्रवण, कीर्तन तथा आप में भक्ति करने से शीघ्र ही पवित्र होकर याग करने के योग्य हो जाता है। तब मैं आपका दर्शन करके क्या कृतार्थ नहीं होऊँगी। स्त्री होने पर भी मैं

आपका दर्शन करके धन्य हो गई हूँ। ।6।।

भक्ति से सदा आपका नाम स्मरण करने वाला चाण्डल; जो आपका भक्त नहीं है ऐसे सोमादि याग करने वाले ब्राह्मण से भी उत्तम है। आपके नाम की महिमा ही ऐसी है आपका भक्त जो इस जन्म से चाण्डाल वंश में जन्म लिया है, वह पूर्व जन्मों में आपका तप किया है और देवताओं को उद्देश्य करके याग किया है। वेद का अध्ययन किया है यदि ऐसा न होता तो इस जन्म में उसको विष्णु भक्ति नहीं होती। प्रारब्ध कर्म वश चाण्डाल वंश में जन्म क्यों न लिया हो वह योग्य जीव ही है।।7।।

देवहूति कपिल भगवान के स्तुति को उपसंहार करते हुए कहती हैं कि आपके अवतार रूप और मूल रूप में कोई भेद न होना जो आपने मुझे सुनाया है। उसको मैं भली भाँति समझ गई हूँ। आपके उपदेश से देहाभिमान चला गया है। आपको गुणपरिपूर्ण सर्वोत्तम जानकर विषयासक्ति से रहित होकर जो आपमें ही निरन्तर मन को स्थिर करके ध्यान करते हैं उन्हीं को आप प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। सर्वत्र व्याप्त बल और आनन्द स्वरूप श्री विष्णु ही आप कपिल हैं। वेदों में ऐसा आपके विषय में कहा गया है। समस्त वेदों के तात्पर्य आप हैं। वेदों का विभाजन करके रक्षा करने वाले आप ही हैं। ऐसे आपके लिए साष्टांग नमस्कार है।ऐसी स्तुति करके देवहूति ने प्रणाम किया।।9।।

मैत्रेय जी कहते हैं-हे विदुर जी! माता के इस प्रकार स्तुति करने पर मातृवत्सल परम पुरुष भगवान कपिल देव जी ने उनसे गम्भीर वाणी में कहा।।9।।

श्री कपिल देव जी ने कहा-हे माता जी! मैंने तुम्हें जो मार्ग बतलाया है वह मुक्ति योग्य जीवों से भक्तिपूर्वक अवलम्बन अनुकरण करने योग्य है। इस मार्ग का तुम भी अनुष्ठान करो। शीघ्र ही तुम्हारी योग्यतानुसार स्वरूपानन्दातिशय अभिव्यक्त होगा और वह नित्य रहेगा।।10।।

मैंने जो उपदेश किया है उसे तांत्रिक मत समझो यह तो वैदिकों के द्वारा अनुष्ठान करने योग्य वेदों का मत है। इसकी उपासना करने वाला समस्त भय से रहित होकर मुझे प्राप्त होगा। यह मेरा मत प्रामाणिक है। इस पर विश्वास करो। जो इसमें विश्वास न करते हुए इसकी उपासना नहीं करते हैं वे संसार में ही पड़े रहेंगे। इसके विरुद्ध जीव और ब्रह्म में जो ऐक्य का मत है उसको प्रामाणिक मानकर उपासना करने वाले नित्य नरक अन्धंतमस को प्राप्त होते हैं।।11।।

मैत्रेय जी कहते हैं-हे विदुर जी! कपिल देव जी ने माता को परमात्मा का तत्वज्ञान का उपदेश किया वह श्री हरि के अति उत्तम प्रसाद के लिए कारण है। यह अति उत्तम प्रसाद मोक्ष को देने वाला है। कपिल जी ने माता को उपदेश देकर उसमें विश्वास होने के लिए अपने स्वरूप स्थिति को बतलाया और अपनी ब्रह्मज्ञानी जननी की अनुमति लेकर वहाँ से चले गए। देवहूति ने कपिल देव जी के विरह को अपरिहार्य जानकर अन्तर्यामी रूप से अपने ही हृदय में रहने का ज्ञान होने से पुत्र को जाने के लिए अनुमति दी।।12।।

देवहूति तो सरस्वती नदी के तट पर अपने ही आश्रम में रहने लगी। अपने पुत्र कपिलदेव जी से उपदेश किए हुए ज्ञानोपाय के फलस्वरूप उनका मन प्रसन्न था। निरन्तर भगवद्ध्यान में ही आसक्त रहीं।।13।।

प्रति नित्य स्नान करने से उनके घुँघराले केशों की लटे बँध गई, केश पीले पड़ गए, बल्कल पहनकर कठोर

तपस्या करने से वे बहुत ही दुर्बल हो गयी।।14।।

प्रजापति कर्दम के गार्हस्थ आश्रम में असृदश सम्पत्तियाँ वर्तमान थीं, जो तपस्या और योगबल से प्राप्त की जा सकती हैं। इस कारण उस आश्रम के लिए देवता भी अपेक्षा करते थे। उस आश्रम में हाथी के दत के पलंग थे, जिन पर दुग्ध फेन के समान स्वच्छ और सुकोमल शैया थे। सब पात्र स्वग के थे, स्वर्ण के आसन (चौकिया) बिछे हुए थे जिन पर कोमल गद्दे बिछे थे। स्फटिक और मरकत की भित्तियों में रत्नों की बनी हुई रमणी-मुर्तियों के सहित मणिमय दीपक जगमगा रहे थे। फूले हुए कल्पवृक्ष आदि देवद्रुम उस आश्रम की बाटिका की शोभा बढ़ा रहे थे। वृक्षों पर पक्षी बोलते और भ्रमर गुंजार करते थे। कमल गंध से सुवासित बावलियों में कर्दम जी के साथ जल-विहार करती थीं। गन्धर्व किन्नर आदि उनका गुण गान किया करते थे। इस सुख सामग्री के लिए इन्द्राणियाँ भी लालायित रहती थी-ऐसे गृहोद्यान की भी ममता उन्होंने त्याग दी। किन्तु पुत्र वियोग से व्याकुल होने के कारण अवश्य उनका मुख कुछ उदास हो गया।।15,16,17,18,19,20।।

ज्ञानी होने से उनको अधिक दुःख नहीं हुआ। पति के वन में जाने पर भी उनको दुःख नहीं हुआ। अपने पुत्र से तत्व उपदेश को प्राप्त करने पर भी पुत्र के वियोग में वह ऐसे गौ की भाँति व्याकुल हो गई जिसका बछड़ा बिछुड़ गया हो।।21।।

पुत्र के वियोग के दुःख से व्याकुल होकर क्या वह श्री हरि की उपासना ही त्याग दी? तो कहते हैं कि पुत्र के वियोग के दुःख से व्याकुल होने पर भी श्री हरि की उपासना नहीं त्यागी। अपने को तत्वोपदेश देने वाले कपिल को श्री हरि जानकर उन्हीं का ध्यान करते हुए गृहस्थ सुख से उपरत हो गई।।22।।

भगवान के उपदेशानुसार श्री हरि रूपी कपिल का प्रसन्न मुखारविन्द का ध्यान करती थी। कभी उनके एक अवयव का कभी उनके समग्र रूप का चिन्तन करती थी।।23।।

इस प्रकार श्री हरि के सर्वोत्तमत्व ज्ञानपूर्वक उनकी भक्ति प्रवाह की भाँति निरन्तर बहने लगी। स्वर्गादि सुख पुरुषार्थ न होने का ज्ञान दृढ़ हुआ। सारा जगत आसार होने की भावना प्रबल हुई। शास्त्रार्थ का भलीभाँति निश्चय होने से उनको जीव और परमात्मा एक ही होने का ज्ञान अथवा एक ही हैं अथवा नहीं इस प्रकार का सन्देह नहीं था। इस प्रकार श्री हरि का शुद्ध ज्ञान उनको निरन्तर ध्यान से प्राप्त हुआ था। इस प्रकार का ज्ञानही श्री हरि के प्रसाद के लिए कारण है। श्री हरि ने प्रसन्न होकर अपने चिदानन्द रूप का उनको दर्शन दिया। देवहूति ने अपने स्वरूप मन से विम्ब रूपी श्री हरि का दर्शन किया। सर्वज्ञ तथा स्वाभाविक प्रकृति के गुणों से संबंध रहित वह श्री हरि के अपरोक्ष ज्ञान से बढ़कर अन्य कोई उत्तम प्रसाद नहीं है। विम्बापरोक्ष ज्ञान प्राप्त की हुई देवहूति जीवन मुक्तावस्था में थी।।24,25।।

अपरोक्ष ज्ञान के पश्चात् उनकी क्या स्थिति थी अब उसका वर्णन करते हैं। समस्त गुण पूर्ण, देश, काल और गुणों से व्याप्त उस श्री हरि में उनका मन एकाग्र रूप से स्थिर हो गया था। लिंग शरीर के रहने पर भी उसके निमित्त से होने वाला शरीर अभिमान नहीं था। जब शरीराभिमान ही नहीं है तब दुःख कहाँ। वह परमानन्द में मग्न थी। सदा ही श्री हरि का ही ध्यान करने से देवहूति को शब्दादि विषय सुखकर होने की भ्रान्ति पूर्णरूप से नष्ट हो

गयी थी। स्वप्न से जगा हुआ पुरुष नश्वर स्वप्न पदार्थ की अपेक्षा नहीं करता है वैसे ही उसे भी अपने भौतिक शरीर की सुधि नहीं रही। जीव के दो उपाधि है। एक स्वरूपोवधि दूसरा बाह्योपाधि। स्वरूपोपाधि तो मोक्ष में भी रहता ही है। बाह्योपाधि लिंग शरीर काम कर्म इत्यादि हैं। जब यह निष्फल हो जाते हैं तब यह नहीं है के समान है। यही मुक्तावस्था है।।26,27।।

किसी प्रकार का देह का पोषण न होने पर भी वह कृश नहीं हुई। जब मन में व्यथा ही नहीं है तो देह के कृश होने का कोई कारण नहीं है। धूल से ढका हुआ उनका देह धूम से ढका हुआ अग्नि की भाँति अन्दर ही प्रकाशमान था।।28।।

तप और योग से परिपूर्ण उस देह की श्री हरि ही रक्षा करते थे। तपस्विनी वह देवहूति श्री हरि का ही ध्यान करते रहने से उनके बाल विखर जाने का या उनके वस्त्र का शरीर से गिर जाने की भी सुधि नहीं थी।।29।।

ऐसे शरीर अभिमान को त्यागी हुई उनके मन में दुःख कहाँ से। कुछ समय बीतने पर प्रारब्ध कर्म के समाप्त होने पर भौतिक देह भी नहीं रहा। कपिल भगवान के उपदेशानुसार ध्यान करने वाली उस देवहूति का जीव सर्वव्यापी अप्राकृत शरीर वाले गुणपूर्ण तथा सर्वोत्तम नारायण को (कालक्रम से) प्राप्त हुआ।।30।।

हे विदुर! इस प्रकार देवहूति ने जिस पवित्र बिन्दु सरोवर में तप की सिद्धि प्राप्त की थी वह स्थान **'सिद्ध पद'** के नाम से तीनों लोकों में प्रसिद्ध हुआ।।31।।

योगाभ्यास के द्वारा देवहूति ने जिस देह को त्याग दिया था वह कपलानदी के रूप में बहने लगा। अनेक सिद्ध पुरुष स्नान पानादि के द्वारा उसके सेवन किए। वह उत्तम नदी तपस्वियाँ को सिद्धि देने वाली हैं।।32।।

माता जी की आज्ञा प्राप्त करके पूर्ण ज्ञानी कपिल रूपी श्री हरि ने पिता के आश्रम से निकल कर ईशान्य दिशा में चले गए।।33।।

सिद्धि, चारण, गन्धर्व, ऋषि और अप्सरा गण उनकी स्तुति कर रहे थे। समुद्र राजा ने कपिल भगवान की पूजा करके अपने पास ही रहने के लिए प्रार्थना किया। सनकादि योगीश्वर ब्रह्मादि देवता भी स्तुति करते रहते हैं। कपिल भगवान जगत के कल्याण के लिए अब भी ध्यान में समाधिस्थ है।।34,35।।

मैत्रेय जी कहते हैं-विष्णुभक्त हे विदुर! तुम्हारे पूछने से मैंने तुम्हें यह भगवान कपिल और देवहूति का परम पवित्र संवाद विस्तार से सुनाया। यह परम पवित्र है। समस्त मुमुक्षुओं को सिद्धि प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है। इसको श्री हरि ही उपदेश किए हैं। जो गरुड़ध्वज श्री हरि में मन को स्थिर करके उत्तम भक्त इसका श्रवण अथवा वर्णन करता है। (सुनाता है) और इसका अनुष्ठान करने पर उसे श्री हरि का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।36,37।।

।।इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे कापिलेयोपाख्याने चतुःस्त्रिंशोऽध्यायः।।

।तृतीयः स्कन्धः समाप्तः।

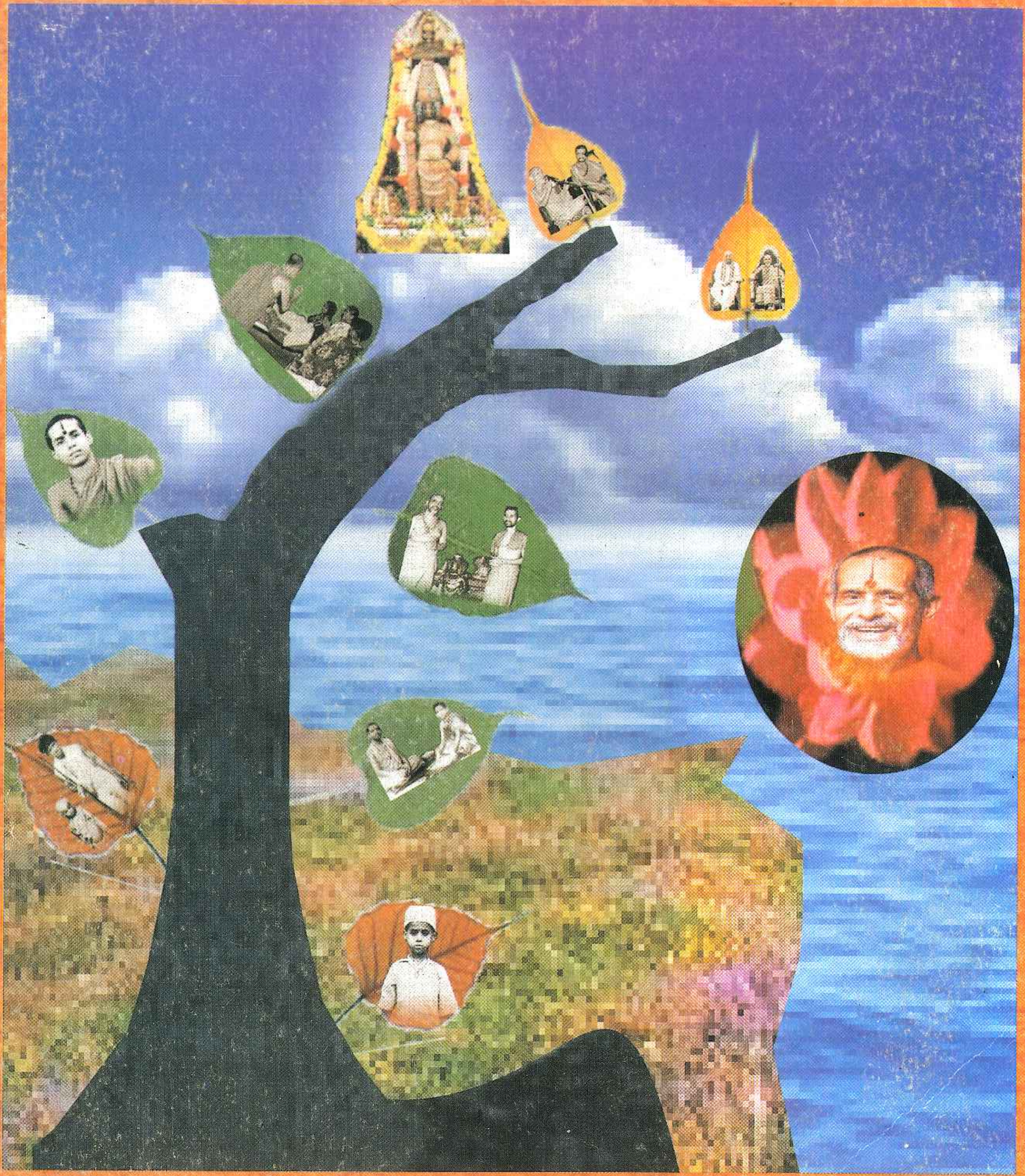

चित्र विवरण पेजावर 80

1. पाँच वर्ष के श्री वेंकटराम
2. आठ वर्ष में सन्यास दीक्षा
3. गुरुपदेश
4. सोलह वर्ष के स्वामी जी
5. गुरु श्री विद्यामान्य जी के साथ श्री कृष्ण पूजा
6. दीन दुःखी दलित दरिद्र को सहाय हस्त
7. श्री अशोक सिंघल के साथ राम जन्म भूमि सभा
8. शास्त्र प्रभोधन श्री विद्याधीश स्वामी जी के साथ

पता : मध्वमठ 63, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद 211 006
फोन नं0 : 0532-2504587

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

चतुर्थस्कंधः भाषानुवादः

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण
वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्रीमद्भागवत् महापुराणम्

विजय ध्वजी टीकानुसार

चतुर्थ स्कंधः

(भाषानुवादः)

लेखक

श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी

प्रकाशक

श्री मध्व तत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान, प्रयाग

श्रीमद्भागवतम् चतुर्थ स्कधः

लेखक श्री 1008 श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी

प्रकाशन

श्री मध्व तत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान

मध्वमठ ६३, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम मुद्रण 1000 प्रतियाँ

04-01-2009 मध्व नवमी

मूल्य - 60 रुपये

मुद्रक -

श्री वैष्णव प्रेस

मोरी, दारागंज, इलाहाबाद

फोन नं0 - 0532-2501463 मो0 - 9415235637

अनुग्रह सन्देश

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति श्री १००८ श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी, उडुपि

सारे पुराणों में भागवत श्रेष्ठ माना जाता है। इसी कारण इसको महाभागवत कहते हैं। भागवत ग्रंथ में भगवान सन्निहित हैं। जिस घर में भागवत ग्रंथ रहता है उस घर में भगवान सदा के लिये वास करते हैं।

चतुर्थ स्कंध में भागवत का रसमय सन्निवेश है। दक्षाध्वर का संयोजन करके अहंकार युक्त दक्षप्रजापति, अदक्ष बन गये। महारुद्र जी की अवहेलना से दक्ष को अपने सिर का दंड देना पड़ा। इसी कथा से चौथा स्कंध प्रारम्भ होता है,इस कथा का मुख्य मंतव्य यह है कि महादेव की उपेक्षा करते हुए किया हुआ कोई भी कर्म सफल नहीं होता। जहाँ रुद्र का अवमान होता है वहाँ भगवान नारायण दर्शन नहीं देते, उनका अनुग्रह भी नही मिलता। सभी देवताओं की प्रार्थनानुसार रुद्र जी वहाँ आये। रुद्र जी के ऊपर के प्यार से भगवान वहाँ स्वयं आये। खो गये सिर के बदले में बकरी का सिर जोड़ दिया गया। यज्ञ का अवभृत उत्सव (त्योहार) का स्वरूप पा लिया।

पिता जी की गोद में बैठने को न मिलने वाले ध्रुव को भगवान अपनी गोद में ले लिये। भगवान की कृपा से पिता का सिंहासन क्या, विश्व का सिंहासन ही उनको मिल गया। अच्युत के शरण में जाने वाले को च्युति रहित स्थान मिलना सहज है, आकाश में नक्षत्र बनकर शोभायमान होने का अवकाश ध्रुव को मिला। इस कथा से हमें यह नीति मिलती है कि भगवान प्रसन्न हुए तो एक बच्चा भी न हिलने वाला उच्चस्थान को पा लेता है।

ध्रुव के वंश की परम्परा में आने वाले राजा पृथु की कथा आगे मिलती है। राजा पृथु और अर्चि देवि लक्ष्मी नारायण जैसे सुशोभनवाले दम्पती हैं। किन्तु पृथु नारायण नहीं तथा अर्चि देवि महालक्ष्मी नहीं हैं। वे दोनो भगवान के विभूति रूप हैं। उनमें भगवान का सन्निधान विशेष रूप से है। इस राजा पृथु के कारण ही इस भूमण्डल को पृथ्वी का नाम पड़ा है।

इसी स्कंध के अन्तिम भाग में नारद जी कर्मठ राजा प्राचीन बर्हि को पुरंजन कथा कहते हैं। यह कथा रोचक विचित्र और दो-दो अर्थ वाली है। इस कथा से नारद मुनि ने राजा प्राचीन बर्हि को कर्म मार्ग से निवृत्त करते हुए ज्ञान मार्ग दिखाया है।

प्रचेतसों को नारद जी द्वारा दिये हुए उपदेश से यह स्कंध समाप्त होता है।

इन अपूर्व कथा युक्त व्यासजी के अत्यपूर्व भागवत को प्रयाग के हमारे मध्व मठ के पीठाधीश्वर **श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी** ने हिन्दी में अनुवाद कर यहाँ के सज्जनों के लिये महोपकार किया है। प्रतिदिन गंगा स्नान करते हुए सन्यास आश्रम के लिये उचित प्रणव सहित अष्ट महामंत्र जप पूजा इत्यादि कार्यों के साथ यहाँ के लोगों को हिन्दी में शास्त्र पाठ और प्रवचनादि कार्यों में मग्न रहते हैं। इन शमदमादि कार्यों को करते हुए वे अपने पीठाधिपत्य को सार्थक किये हैं।

ऐसी साधना उनसे निरंतर हो। उनका लाभ यहाँ के लोगों को सदैव प्राप्त हो, यही आकांक्षा रखते हैं।

सर्वधारी संवत्सर

माघ शुद्ध श्री मध्वनवमी

तीर्थराज प्रयाग क्षेत्र

प्राक्कथन

पूर्व पीठाधीश्वर श्री 1008 श्री विद्या वल्लभ तीर्थ स्वामी जी के भागवत के पहले तीन स्कंध के अनुवाद में प्रकाशित प्राक्कथन को यहाँ उद्धृत किया गया है।

सृष्टि अज्ञान का कार्य नहीं है, प्रयोजन रहित भी नहीं है, जीवों को अपनी अपनी गति प्राप्त करने के लिए सर्वशक्तिमान श्री हरि ने सत्यभूत जगत की सृष्टि किया है। जीव को प्राप्त होने वाले देह में मनुष्य देह साधन के लिए अति उत्तम है। सृष्टिकर्ता परब्रह्मपरमात्मा को जानकर उनको प्राप्त करने वाली बुद्धि भी इसी देह में है। ऐसे जन्म को सफल न करते हुए केवल आहार निद्रादि के लिए ही उपयोग करने वाला एवं इसके मूल्य को न जानने वाला मूढ़ है। ऐहिक सम्पत्ति को कितना ही क्यों न प्राप्त करें उसको अपने साथ नहीं ले जाया जा सकता है। स्वर्गादि सुख के लिए कर्म करने वाला "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" इस प्रमाणानुसार पुनः दुःख के लिए सिद्ध होना ही पड़ता है इसलिए शाश्वत् सुख मोक्ष के लिए कारण होने वाले कर्मों को करने वाला ही बुद्धिमान है। इसके मर्म को जानना प्रत्येक मुमुक्षु का कर्तव्य है। इस मर्म को बतलाकर हमें श्री हरि के निकट ले जाने वाले शास्त्रों में से श्रीमद्भागवत् भी एक है।

यह श्रीमद्भागवत् पुराण ग्रन्थ जैसा दिखाई देने पर भी इसमें शास्त्रार्थ का गहन विषय होने से यह एक शास्त्र ही है। इसमें श्री हरि का सर्वोत्तमत्व लक्ष्मी ब्रह्मादि समस्त चेतन समुदाय का अस्वतन्त्रत्व श्री हरि और उनके भक्तों की महिमा भागवत धर्माचरण इत्यदि विषय है जो श्री हरि का यथार्थज्ञान प्राप्त करने में अतिशय सुविधा जनक है। प्रायोप्रवेश के लिए बैठे मुमुक्षुराजा परीक्षित ने शुकदेव जी से इस कथा मृत का पान करके श्री हरि के चरण कमल को प्राप्त हुए। इसलिए प्रत्येक सज्जीव को अवश्य पढ़ने जानने तथा जीवन में उतारने योग्य ग्रन्थ है।

विभिन्न सम्प्रदायों ने अपने मतानुसार इस पुराण का अर्थ किया है और तदनुसार इसमें पाठ प्रभेद भी है, इस पर भी वैष्णव सिद्धान्त के प्रवर्तक जगद्गुरु श्रीमध्वाचार्य से रचित भागवत तात्पर्य निर्णयानुसार ही अर्थ करना चाहिए। किन्तु अपार्थ न करें। श्रीमदाचार्य जी महाभारत की कथा की भाँति इसकी व्याख्या न करके श्लोकों के शब्दार्थ को प्रमाणपूर्वक बतलाएं हैं। इसलिए यह ग्रन्थ अपने कल्याणार्थ अवश्य पठनीय है। इस एक ग्रन्थ को आमूलाग्र अध्ययन करने वाला प्रमेयों को यथार्थ रूप से जान सकता है। और किसी पुराण की मोहक कथाओं से मोहित नहीं हो सकता है। जिससे श्री हरि सन्तुष्ट होते हैं।

कलियुग में इस समय श्रीमद्भागवत् को यथार्थ रूप से जानने की इच्छा वाले अनेक अधिकारी चेतन हैं किन्तु काल की दुष्ट गति से पूर्ण आयुष्य को जीविका के लिए ही व्यतीत कर देते हैं और अपनी वृत्ति के लिए अन्य भाषा के अभ्यास में आसक्त हुए इनको गुरुकुल वास करके संस्कृत का अध्ययन करने के लिए अवकाश प्राप्त होना दुस्तर हो गया है। इसलिए ऐसे सज्जीवों को ज्ञान प्राप्त कराने में सहायता करना भी एक प्रकार से श्री हरि, वायु की सेवा जानकर इस श्रीमद्भागवत् पारमहंस संहिता की विजयध्वजी टीकानुसार कथा का संक्षेप और सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद किया गया है।

श्रीमद्भागवत् का अब तक विजयध्वजी टीकानुसार कथानुवाद हिन्दी में नहीं हुआ है। इसलिए हिन्दी भाषा प्रेमियों के आग्रह से उनको यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने हेतु इस ग्रन्थ का विजयध्वजी टीकानुसार सरल हिन्दी में संक्षेप कथानुवाद किया गया है।

"भक्तया भागवतं शास्त्रं" के अनुसार भागवत का यथार्थ ज्ञान होने के लिए स्वरूपतः भगवद् भक्त होना चाहिए।

"धनंजये हाटक सम्परीक्षा
महाहवे योध सुसम्परीक्षा
विपत्तिकाले गृहणी परीक्षा
विद्यावतां भागवते परीक्षा"

इसके अनुसार कैसा भी पण्डित क्यों न हो अपनी विद्वता से रहस्य अर्थ को समझ नहीं सकता है। ऐसे जटिल प्रमेय, गूढ़, अर्थ वाले शास्त्ररूप इस पुण्यग्रन्थ को वैष्णवों के लिए हिन्दी में प्रकाशित किया जा रहा है।

संसार दुःख से सन्तप्त जीवों के लिए श्रीमद्भागवत अमृत है, भवरोग के लिए दिव्य औषधि है, तथा इसमें बताया गया भागवत धर्माचरण एक पथ्य है, कालसर्प से डसे हुए मुमुक्षु के लिए मृत संजीवनी है, दरिद्रों के लिए चिन्तामणि है।

आशा है कि सज्जीव इस ग्रन्थ का अध्ययन श्रवण मनन एवं भागवत धर्माचरण करके अपना जीवन सार्थक करेंगे।

श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी
मध्वमठ, प्रयाग।

प्रस्तावना

पूर्व पीहमारे गुरुजी पूर्व पीठाधीश्वर श्री १००८ श्री विद्या वल्लभ तीर्थ स्वामी जी दस वर्ष पूर्व भागवत के पहले तीन स्कंध का अनुवाद प्रकाशित कर चुके थे। आकस्मिक रीति से उनका महा निर्याण होने के कारण इन दस वर्षों में इस दिशा में कुछ भी प्रयत्न नही हुआ।

दो वर्ष पहले हमारे दीक्षागुरु श्री १००८ श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामीजी महाराज मुझे भागवत का अनुवाद करने की आज्ञा दी। मैं अल्पज्ञान और अल्पशक्ति वाला हूँ। किन्तु गुरुजी की आज्ञा को शिरोधार्य करके इस महान् कार्य को प्रारम्भ किया।

'भागवते पण्डित परीक्षा' यह उक्ति अक्षरशः सत्य है। केवल गुरुजी का अनुग्रह ही मुझसे यह काम करवाया है। सारा श्रेय गुरु जी का है मेरा भी एक भाग है, वह इस अनुवाद में मिलने वाली गलतियों की। दक्षिण भारतीय होने के कारण मुणे अच्छी हिन्दी नहीं आती है, पण्डित न होने के कारण शास्त्र का विस्तार ज्ञान नही है तो भी गुर्वनुग्रह ही मेरे से यह काम करवाया है।

इस स्कंध में दक्षयज्ञ का प्रस्ताव आता है। मेरा अहोभाग्य यह कि इस दक्षाध्वर के प्रसंग को वहीं दक्षयज्ञ के स्थान में बैठकर लिखने का। हरिद्वार के अपने बड़े हनुमान आश्रम में हम चातुर्मास के व्रत का आचरण कर रहे थे। उसी समय हम इस चतुर्थ स्कंध का अनुवाद पूर्ण किये। दक्ष यज्ञ के लिये सभी देवता, शंकर, ब्रह्मा सहित स्वयं प्रभु श्रीहरी जहाँ आकर दक्ष यज्ञ को सम्पन्न किये उसी स्थान में बैठकर उसी कथा को अनुवाद करने से बढ़कर और भाग्य क्या हो सकता है ?

अनुवाद करने के बाद दो वर्ष बीत गये थे। साधन सम्पत्ति के राहित्य से मुद्रण कर नहीं सके। मुम्बई के श्री कुलकर्णी दम्पतियों ने इस ग्रंथ का मुद्रण करने का भार अपनाया। उन्हीं के कारण यह ग्रंथ आपके हाथ में आ गया है। श्रीमती सरस्वती और श्री जि. आर. कुलकर्णी जी धर्मिष्ठ, आचरणशील और दयालु हैं। उनकी सम्पत्ति का बहुभाग पुण्य कार्य के लिये व्यय होता हैं। उन दोनों को पूर्ण आयुः आरोग्य भाग्य के साथ ज्ञान भक्ति और वैराग्य प्रदान करने के लिये हम अपने उपास्य श्री पंचमुखी हनुमत्समेत श्री सीतारामचंद्र जी से प्रार्थना करते हैं।

मेरा अहोभाग्य है कि इस ग्रंथ का विमोचन श्री गंगा-यमुना-सरस्वती त्रिवेणी संगम पर कल्पवास के शुभ समय में मेरे दीक्षा गुरुजी श्री श्री १००८ श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी के अमृत हस्त से हो रहा है। उनकी विशेष कृपा यह भी है कि वे इस वर्ष इस पावन पवित्र गंगा तटी में एक महीने तक कल्पवास करते हुए अनुष्ठान किये और इस ग्रंथ का विमोचन करते हुए मेरे ऊपर विशेष अनुग्रह किये हैं। इस ग्रंथ के प्रकाशन के इस समय में ज्ञात और अज्ञात रीति से हमें सहयोग हस्त दिये हुए सारे सद्भक्तों को भगवान का कृपाशीर्वाद मिले।

इतिशं

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी

मध्व मठ, प्रयाग

विषय सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
	अनुग्रह सन्देश	iii
	प्राक्कथन	iv
	प्रस्तावना	vi
	विषय सूची	vii
	रंगीन चित्र	
१.	स्वायंभुव मनु राज के वंश का वर्णन, ब्रह्मपुत्र अत्रि मुनियो से दत्त का अवतार	१
२.	प्रजेश्वरो के सत्र में दक्ष एवं शिव में द्वेष उत्पन्न होना, परस्पर शाप-वितरण	८
३.	पिता के यज्ञ को देखने की इच्छुक दक्ष-पुत्री सतीको ईश्वर द्वारा निषेध	१२
४.	ईश्वर को छोड़कर यज्ञशाला को गई सती को पिता से अपमान। देह त्याग करने का सती का निर्णय।	१६
५.	योगाभ्यास से सती का देह-त्याग। दक्ष का पश्चाताप	२०
६.	सती का देह-नाश का विचार नारद जी से सुनकर रुद्र जी का क्रोध। वीरभद्र की सृष्टि, उससे दक्ष-यज्ञ का विध्वंश तथा दक्ष-वध।	२२
७.	ब्रह्माजी देवताओं के साथ कैलाश गये। वहाँ शिवान्तर्यामी शिव नाम के भगवान का स्तोत्र	२५
८.	दक्ष-यज्ञ का पुनः सन्धान। व्यक्त हुये विष्णु भगवान की स्तुति सारे देवताओं द्वारा।	३१
९.	सौतेली माँ सुरुचि के वाग् बाण से दुःखी ध्रुवराज का वन गमन। नारदजी के उपदेश से श्री हरि का दर्शन।	४१
१०.	श्री हरि से अभीष्ट पाये हुये ध्रुवराज की वापसी। पिता से पाये हुये राज्य का पालन।	५१
११.	यक्ष द्वारा सहोदर का वध सुनकर ध्रुवराज द्वारा अलकापुरी पर आक्रमण। मनु महाराज के वचन से युद्ध छोड़कर ध्रुवराज का पुनरागमन।	५९
१२.	कुबेर से हरि भक्ति का वर्णन। ध्रुवराज द्वारा यज्ञ का आचरण। आगत विष्णु दूतों से मिलकर श्रीहरि के धाम को गमन।	६६
१३.	ध्रुवराज के वंश, चाक्षुष मनवन्तर, उनके पौत्र अंगराज के पुत्र वेन की क्रूरता को न सहन करते हुये अंगराज का वन गमन।	७२
१४.	अंगराज के न होने के कारण ब्राह्मणों द्वारा वेन का राज्याभिषेक। वेन द्वारायज्ञ का विरोध। अधर्मी वेन का ऋषियों द्वारा वध। वेन के दाहिने हाथ से पृथुराज की उत्पत्ति।	७७
१५.	ब्राह्मणों द्वारा पृथुराज की प्रशंसा। निरहंकारी पृथुराज से वन्दी मागधों का निराकरण।	८२

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
१६.	ऋषियों से प्रेरित मागधों द्वारा पृथुराज की स्तुति।	८५
१७.	भूख से पीड़ित शरणागत प्रजा को पृथुराजा द्वारा अभयदान। बीज का अपहरण करने वाली भूमि का दण्डन के लिऐ पृथुराज का प्रयत्न। भूमि द्वारा राजा की स्तुति।	८८
१८.	भूमि के कथनानुसार वत्स और पात्रों की सृष्टि करके सारे लोगों द्वारा पृथ्वी का दोहन।	९२
१९.	पृथुराज का अश्वमेध याग। इन्द्र द्वारा यज्ञाश्व के अपहरण का प्रयास। क्रुद्ध पृथुराजा द्वारा इन्द्र-हनन का यत्न। ब्रह्माजी द्वारा निवारण।	९५
२०.	पृथुराजा के यज्ञ में आविर्भूत श्री हरि द्वारा राजा को उपदेश। पृथुराजा को अभीष्ट-प्राप्ति।	९९
२१.	राजा के नगर का वर्णन। पृथराजा द्वारा ब्राह्मणोंकी स्तुति और प्रजाओं के लिए भगवद् धर्म-शासन।	१०४
२२.	श्रीहरि की आज्ञा से आगत सनत्कुमारों से पृथुराजा के लिए ज्ञानोपदेश।	११०
२३.	ध्यान योग से पृथुराजा का देह त्याग। योग से देह त्यागने का प्रकार। तत्व और तत्वाभिमानियों में लय-चिन्तन। पृथुराजा का अपने पत्नी के साथ वैकुण्ठ-गमन।	११७
२४.	पृथुराजा के पौत्र राजा प्राचीनबर्हि, उनके पुत्र दस-प्रचेतस रुद्रदेव से उनको रुद्र-गीता का प्रबोध। ब्रह्मपद को उत्तमाधिकारी ऋतुगण।	१२१
२५.	प्रचेतसों द्वारा तप करना। प्राचीन बर्हि राजा को नारद जी से पुरंजन-कथा का उपदेश।	१२९
२६.	पुरंजन के शिकार के कथा के रूप में स्वप्न एवं जागृत अवस्था से संसार का विवरण।	१३७
२७.	पत्नी, पुत्र, इन्द्रिय-भोगों में आसक्त, पुरंजन श्री हरि को भूलकर मरण को प्राप्त ।	१४०
२८.	स्त्री-आसक्ति के कारण पुरंजन का स्त्री रूप। भगवान के ज्ञानोपदेश से मुक्ति। भक्ति से मुक्ति की प्राप्ति ।	१४४
२९.	परोक्षार्थी का विवरण। स्त्री संग से संसार, भगवत् संग से मुक्ति, ज्ञान से हरि प्रसाद, कर्म से ज्ञान साधन।	१५१
३०.	प्रचेतस से परमात्मा का अपरोक्ष ज्ञान। उनसे वर पाकर वृक्ष-कन्या से विवाह। प्रचेतसों से राज्य-भार।	१६१
३१.	पुत्र दक्ष को राज्याधिकार देकर प्रचेतसों का वनगमन। उन्हें नारद जी का उपदेश। उपासना से प्रचतेसों की मुक्ति। मैत्रेयों को नमस्कार करके विदर जी का हस्तिनावती को प्रस्थान।	१६७

श्रीमद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मूलमहासंस्थान
पलिमारु श्री हृषीकेश पीठ के प्रधान देव

श्री सीतांजनेय लक्ष्मण समेत श्री राम भगवान

रुक्मिणी करार्चित जगद्गुरु मध्वाचार्य से प्रतिष्ठापित और पूजित

वज्र कवचधारी उडुपी श्री कृष्ण भगवान

संकट मोचन श्री पंचमुखी हनुमान

कपिमुखमपि पूर्वं दक्षिणे नारसिंहम् ।
गरुड़मुखमपि पश्चात् उत्तरे सूकरास्यम् ।।
हृयद्वदनमतोर्ध्वं चिन्तयेद् वायुसूनुम् ।
सकलदुरितहरं रामदूतं नमामि।।

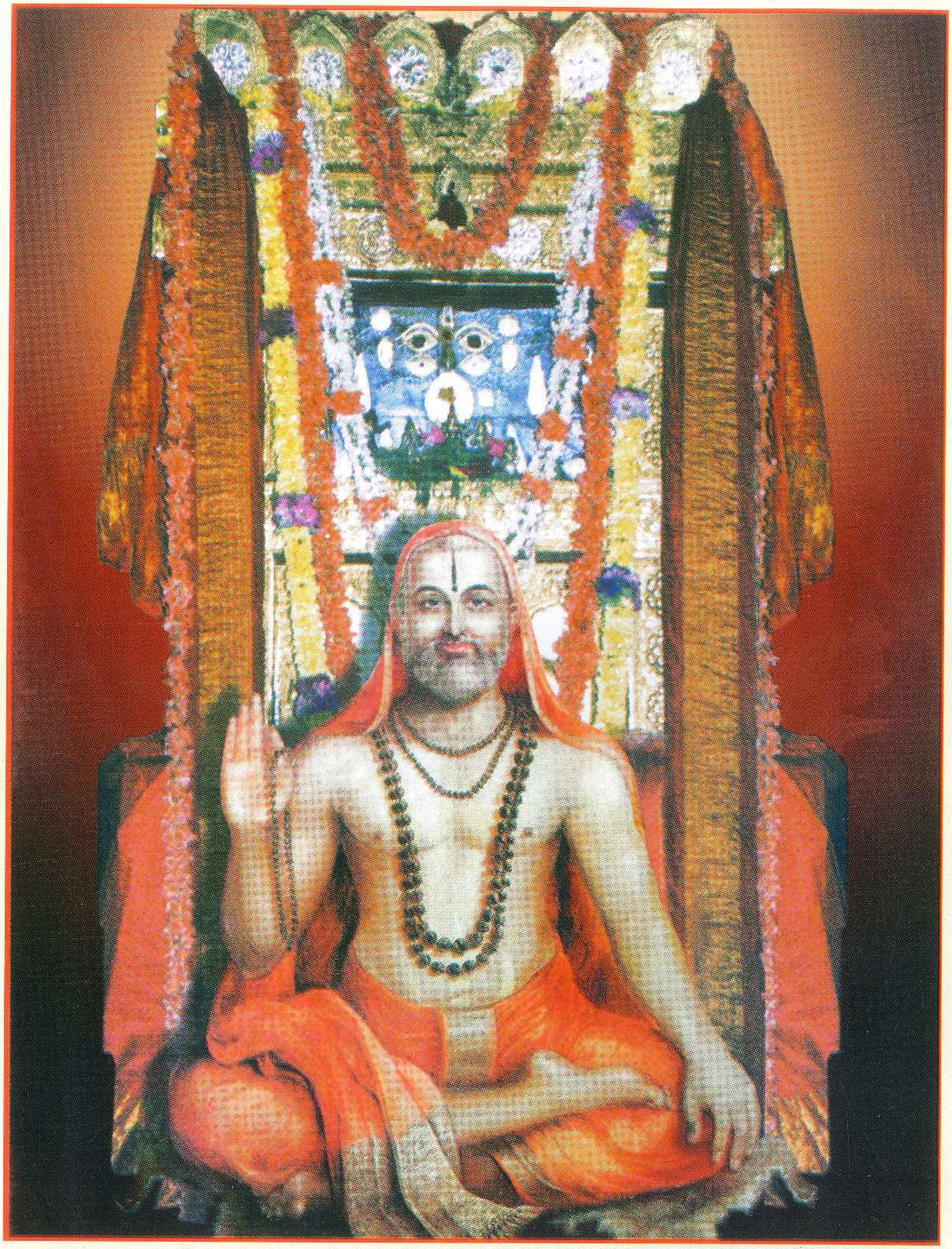

अपेक्षितप्रद मन्त्रालय के श्री राघवेन्द्र स्वामी जी

पूज्याय राघवेन्द्राय सत्यधर्मरताय च।
भजतां कल्पवृक्षाय नमतां कामधेनवे।।

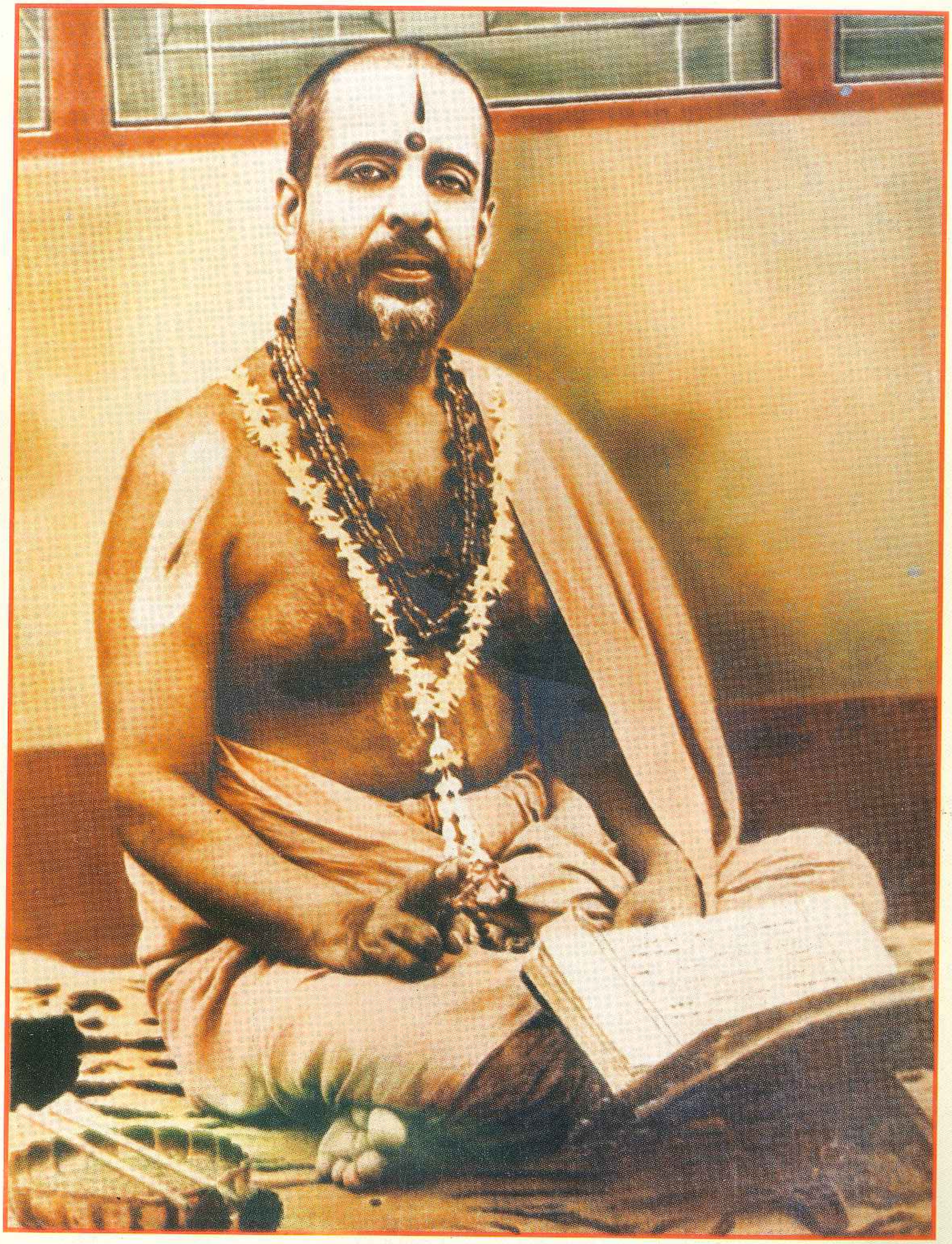

सर्वमान्य श्री १००८ श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी

ब्रम्हचर्य हरि प्रीति सुविद्या वादशालिनः
इष्टदान कष्टहर्तृन्नः विद्यामान्यान् मुनीन्नुमः

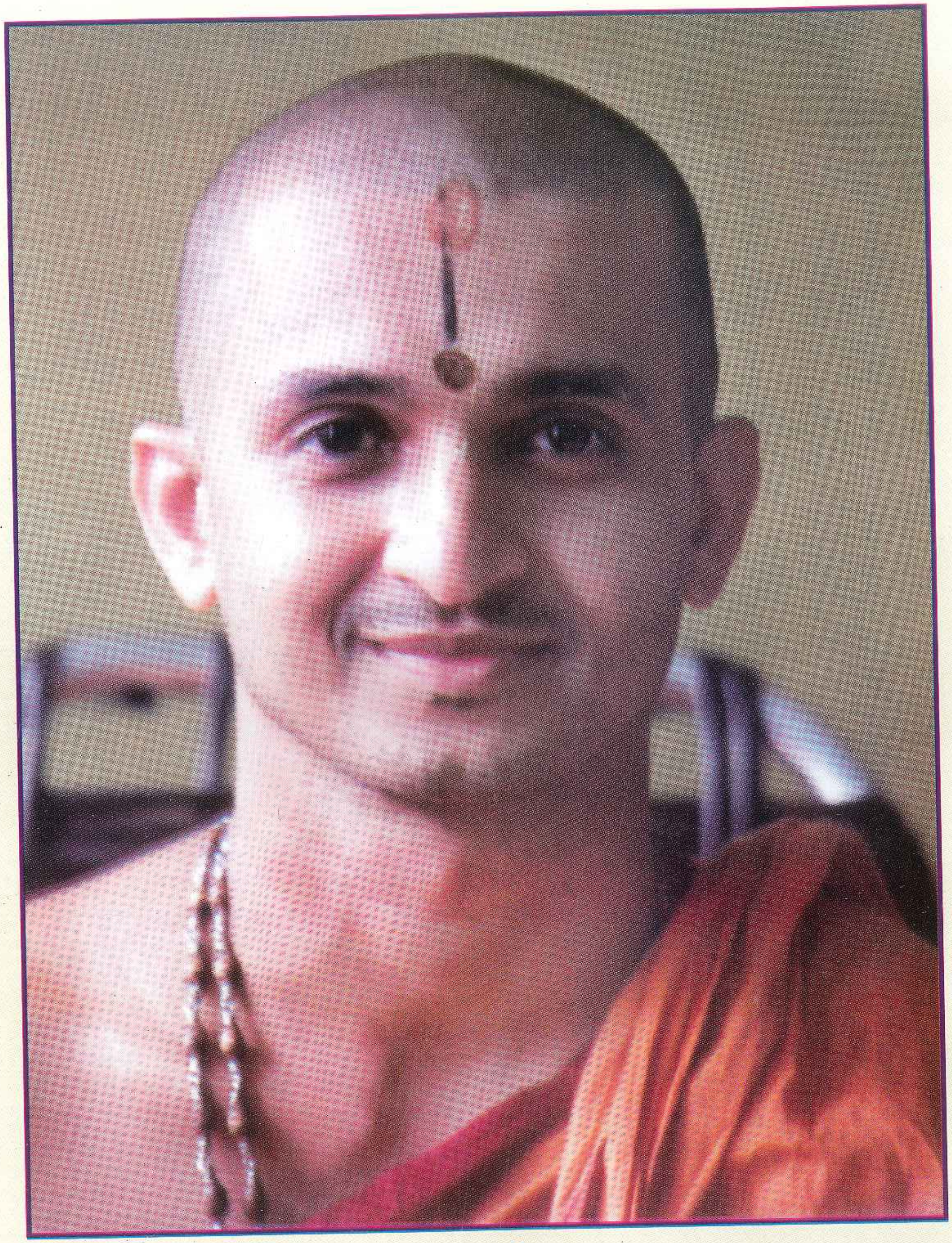

समर्पण

मुझे सन्यास दीक्षा देकर सन्मार्ग दिखाते हुए साधना के लिए सर्व साधन जुटाकर
सर्वश्रेष्ठ तीर्थराज त्रिवेणी संगम पर बिठा दिए स्वरुपोद्धारक गुरु
श्री १००८ श्री विद्याधीश तीर्थ गुरु जी, श्री पलिमारु मठ,
के श्रीमत् चरणों में यह ग्रंथ-सुमन समर्पित है।

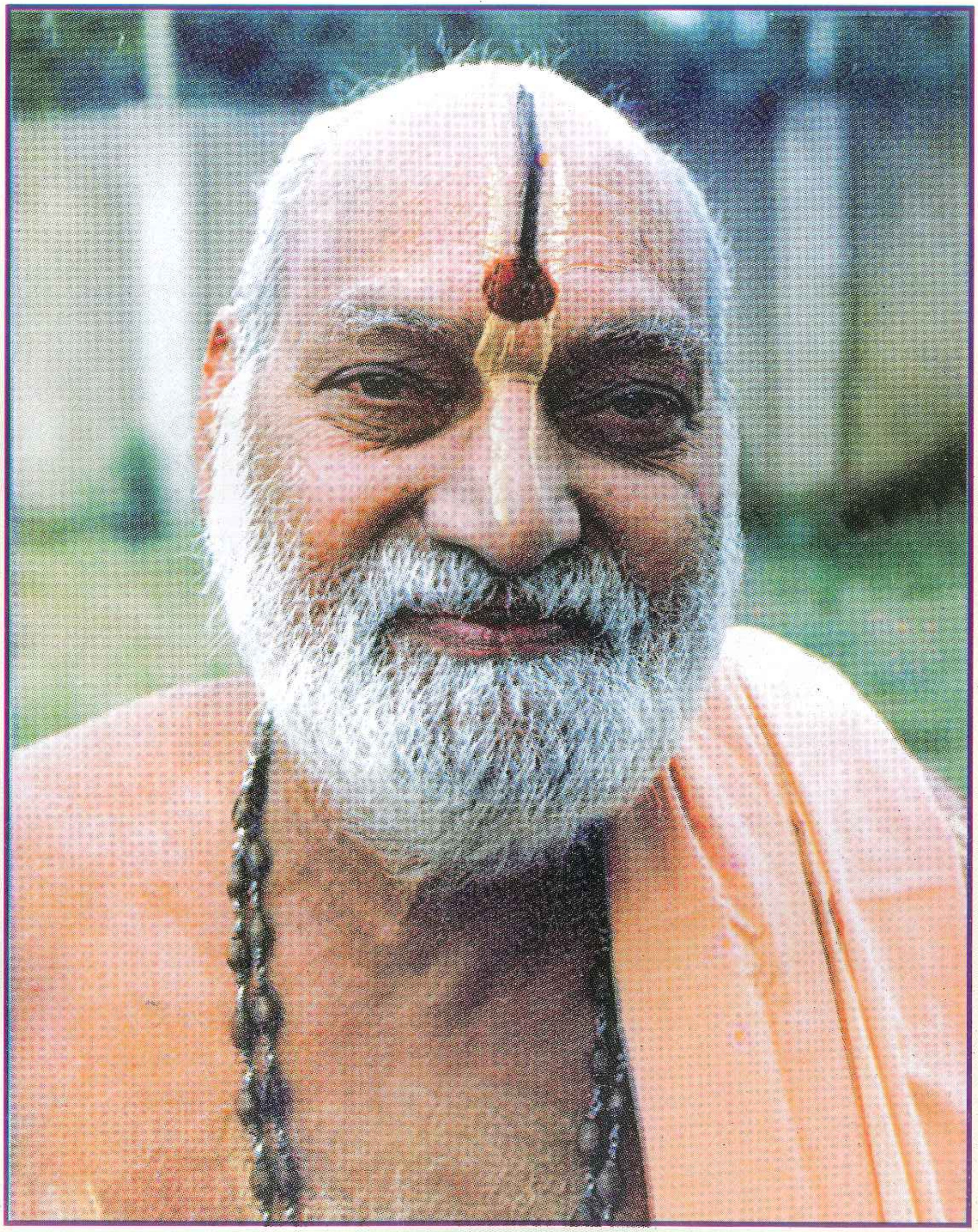

मध्व मठ प्रयाग के पूर्व पीठाधीश्वर

श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी

विद्यामान्याननुसृत्य सुविद्याप्रसरणं मुदा।
प्रयागे अकरोन्नित्यं विद्यावल्लभ गुरुं भजे।।

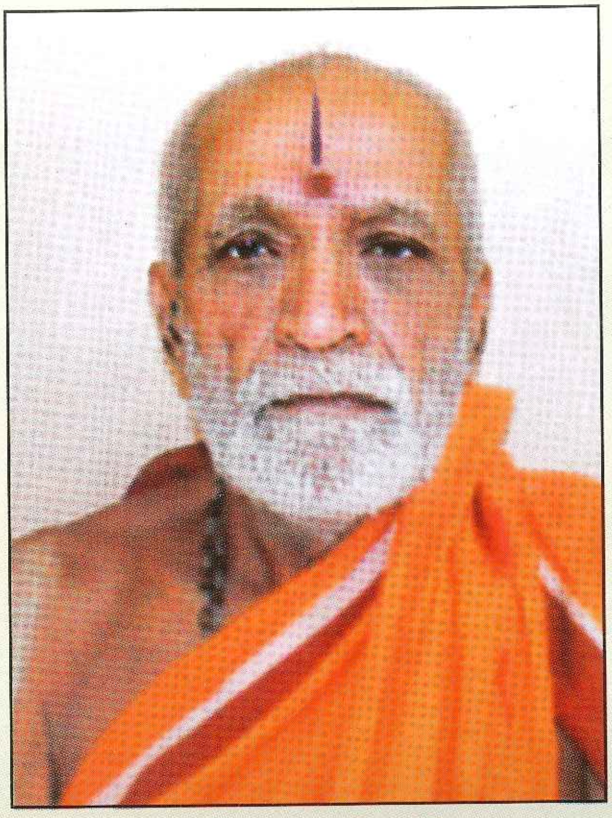

ग्रंथकर्तृ प्रयाग पीठाधीश्वर

श्री १००८ श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज

मुम्बई के अपूर्व दंपति श्रीमती सरस्वती और श्री जी० आर० कुलकरणी

ये दंपति साधक हैं, धर्मशील हैं, दीन-दुःखी, दरिद्रों की सेवा करते हैं।
ये इस ग्रंथ के आर्थिक भार को पूर्ण रीति से वहन किए हैं।

चतुर्थ स्कंद:

अथप्रथमोध्याय:

मैत्रेय जी बोलते हैं

स्वायंभुव मनुराज को शतरूपा देवी से तीन कन्यारत्न पैदा हुये। वे क्रमश: आकूति, देवहूति और प्रसूति नाम से प्रसिद्ध थीं। प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम के दो पुत्र भी हुए ।। १ ।।

उन पुत्रियों में से प्रथम आकूति का विवाह शतरूपा के अनुमोदन के बाद रुचि प्रजेश्वर के साथ किया गया।

दो पुत्र होते हुए भी मनुराज ने पुत्रिका धर्म का आश्रय करते हुए पुत्री से जन्म लेने वाला पुत्र अपने लिये पुत्र हो यह नियमन करते हुए शादी में अपने पुत्री को रुचि प्रजेश्वर को दिया ।। २ ।।

ब्रह्मतेज से विशिष्ट पूज्य रुचि प्रजेश्वर जी एकाग्र मन से श्री हरी का ध्यान करते थे। उन्होने आकूति में एक पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया। वह पुत्र ही अप्राकृत और सुन्दर देहधारी यज्ञ नामक भगवान विष्णु और वह पुत्री ही जनन मरण् रहिता महालक्ष्मी की अंशरूपा दक्षिणानामवाली बनी ।। ३-४।।

विवाह काल में किये हुए नियम के अनुसार मनु महाराज अपनी पुत्री के पुत्र (दौहित्र) को पुत्र रूप में स्वीकार करते हुए बहुत संतोष युक्त होकर अपने घर लाये, रुचि प्रजेश्वर दक्षिणा को अपने घर में पालने लगे। मनु महाराज यज्ञ को अपना ही पुत्र मानते हुऐ आनन्द विभोर होकर अपने घर में पालने लगे ।। ५ ।।

सकल वेद, भगवान श्री हरि के बारे में ही बोलतें हैं। भगवान् सर्व यज्ञों से प्रतिपादित हैं। यह यज्ञ रूपी भगवान अपने से शादी करने के इच्छुक अपनी नियत पत्नी दक्षिणा की इच्छानुसार उससे विवाह किया और उनके द्वादश पुत्र हुए। सदा काल तुष्ट रहने वाले भगवान से संतुष्ट दक्षिणा में जन्म लिये इन बारह पुत्रो के नाम हैं, तोष, प्रतोष, संतोष, भद्र, शांति, इडस्पति, इंद्र, कवि, भुवः, स्वहः, संदेह और रोचन ।। ६-७ ।।

स्वायंभुव मन्वंतर में ये सारे तुषित नामक देवता बन गये। मरीचि आदि ये सप्तर्षि बने। यज्ञ नामक श्री हरि स्वयं इंद्र बने ।। ८ ।।

स्वायंभुव मन्वंतर में मनुराज के पुत्र अतुल पराक्रमी प्रियव्रत और उत्तानपाद के पुत्र-पौत्र और

उनकी संतानों से यह भूमण्डल भर गया ।। ९ ।।

हे विदुर सुनिये, मैं इसके पहले ही आपको बता दिया हूँ कि मनु महाराज ने अपनी पुत्री देवहूती का विवाह कर्दम प्रजेश्वर से किया। उनके संबन्धो की कथाओं को मैंने आप से पहले ही कह दिया है। उनकी अंतिम पुत्री प्रसूती देवी का विवाह ब्रह्मा जी के पुत्र दक्ष प्रजेश्वर के साथ हुआ। दक्ष प्रजापति और प्रसूती मिलकर जो सृष्टि का उत्पादन किये उससे तीनों लोक भर गये। ।। १० ।। २२४

इसके पहले मैंने आपको यह बताया है कि कर्दम प्रजेश्वर की नौ पुत्री थीं। उनका विवाह नौ ब्रह्मर्षियों से किया गया। उनमें मरीची ऋषि की पत्नी कला देवी ने कश्यप और पूर्णिमा को जन्म दिया। इनके संतानों से यह सारा जगत भर गया ।। १२-१३ ।।

पूर्णिमा ने विरजन नाम के पुत्र और विश्वगा नाम की पुत्री को जन्म दिया। यह विश्वगा ही हरिपाद धौत जल होने से देवकुल को प्रिय है। तथा स्वर्गंगा नाम से प्रसिद्ध है ।। १४ ।।

अत्रि महर्षि की पत्नी अनसूया देवी ने अत्यंत कीर्तिशाली तीन पुत्रों को जन्म दिया। उनके नाम हैं। दत्त, दूर्वास और सोम। इनमें दत्त भगवान विष्णु के अवतार हैं। दूर्वास रुद्र के अवतार हैं, और सोम तो ब्रह्मा जी के विशेष आवेश युक्त चंद्र हैं ।। १५ ।।

विदुर जी प्रश्न करते हैं :-

अज्ञान का नाश करने वाले मैत्रेय जी ! इस प्रपंच का उत्पादन संरक्षण, और नाश करने वाले ये त्रिमूर्ति अनसूया देवी के गर्भ से क्यों और किस कारण से पैदा हुए। कृपा करके आप मुझे इसके बारे में बताइये ।। १६ ।।

मैत्रेय जी बोलते हैं।

विदुर सुनिये ! ब्रह्मा जी ने अत्रि महामुनी की सृष्टि किया। उनका विवाह अनसूया से करने के बाद उनको प्रजा सृष्टि कार्य में लगा दिये। ब्रह्मा जी से आदेश पाकर अत्रि मुनी जी अपने पत्नी के साथ यक्ष नाम के पर्वत को गए वहीं बड़ी तपस्या करने लगे। उस यक्ष पर्वत में तबक और शलाकादि वृक्षों से भरे हुए घने जंगले थे। निर्विंध्या नाम की नदी वहाँ गंभीर स्वर करते हुए बहती थी। उस नदी से सबको पानी प्राप्त होता था ।। १७-१८ ।।

वहाँ इन मुनि श्रेष्ठ ने प्राणायाम से मन सहित सारी इंद्रियों को अपने वश में रखते हुए केवल वायु भक्षण करते हुए (अन्न और जल को भी त्याग कर) सुख, दुःख, जयापजय, लाभ हानि, शीतोष्ण इत्यादि द्वंद्वो से मुक्त होकर एक ही पाद से खड़े होकर तपस्या की ।। १९ ।।

ब्रह्मा, रुद्र आदि सारे जगत को नियमन करने वाले श्री हरी की मैं शरणागत होता हूँ। ब्रह्म रुद्र के अंतर्यामी, विष्णु भगवान ही मुझे अपने सदृश एक पुत्र को वर में दे दें। इस प्रकार चिंतन और प्रार्थना करते हुए वे बहुत कठिन तपस्या किये ।। २० ।।

उन ऋषिवर्य के उग्र तप के कारण, उनके प्राणायाम के प्रभाव से उनके सिर से प्रज्वलित अग्नि की ज्वालायें उठने लगी। उनसे तीनों लोक दहने लगा ।। २१ ।।

अप्सरायें, ऋषिगण, दक्ष, गन्धर्व सिद्ध विद्याधर और नागों के गान से सदा संतुष्ट रहने वाले लोक नियामक त्रिमूर्तिगण सन्तुष्ट होकर अत्रिमुनि के आश्रम पर पधारे ।। २२ ।।

त्रिमूर्तियों के प्रादुर्भाव से अत्रि महामुनी के मन में दिव्य प्रकाश का भास हुआ। एक पाद से स्थित होकर करते रहे तप को समाप्त करते हुए वे मुनिश्रेष्ठ जी तप से जागृत होकर उन देवश्रेष्ठों का दर्शन किये ।। २३ ।।

उन त्रिमूर्ति में एक त्रिशूलधारी बैल के पीठ पर बैठे थे, एक कमंडलुधारी हंस पर बैठे थे। और एक चक्रधारी गरुड़ के कंधे पर बैठे थे। अपने वाहन और आयुध युक्त तीनो मूर्तियों को देखकर वह मुनि श्रेष्ठ दंड्वत् प्रणाम किये और उठकर खड़े होकर अर्घ्य पाद्यादि देने के बाद हाथ जोड़कर पूजा किये। उन देवदेवों के प्रखर तेज के कारण वे आंख खोलकर देख न पाये तो भी अर्धनिमीलित नयन से ही वे अपने मन में ही श्री हरी के गुणों का चिंतन करते रहे। उनका ध्यान करते हुए मधुर और वेदानुसार स्तोत्रा से स्तुति करने लगे ।।२४-२५-२६।।

इस जगत की सृष्टि करने के लिये रजोगुण का, पालन करने के लिये सत्वगुण का, और संहार करने के लिये तमोगुण का, प्रवर्तन करने वाले तद्नुकूल देह धारण किये हुए ब्रह्मा रुद्र संगत विष्णु जी, तीन देहों में दीखने वाले भगवान! मै आपको पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ। मैने आप मे से एक के लिए तप किया था। आप तीन रूप में कैसे आये। आप मुझे यह बताइए ।। २७ ।।

मैं इस वन में आकर भगवान श्री हरी के लिए में तप करने लगा। श्री हरी सर्वोत्तम हैं। वे ही ब्रह्माजी में रहते हैं। वेही रुद्र जी में भी रहते हैं। त्रिमूर्ती समान मेरा पुत्र हो यह संकल्प मैने किया था। देहधारी मानवों के मन को न मिलने वाले अगाध महिमा वाले तीन रूप में हमारे आश्रम में आप आर्विर्भूत हुए। यह मेरे समझ में नही आ रहा है। आप मेरे ऊपर कृपा करके मुझे बताइए ।। २८ ।।

(अत्रिऋषि ने त्रिमूर्ती के समान पुत्र हो इस कामना से श्री हरी का ध्यान किये थे। ब्रह्मा जी को छोड़कर और ब्रह्मरूप नही हैं, तथैव रुद्र जी को छोड़कर रुद्र रूप नही हैं। इसी कारण से भगवान के साथ वे दोनो स्वयं अपने रूप से आये हैं। श्री हरी के समान या उनसे बढ़कर कोई नही है। इसके लिये

भगवान स्वयं आये हैं। यह मालूम होते हुए भी अत्रिमुनि अज्ञ लोगों के सम्मोहनार्थ यह प्रश्न रखतें हैं।)

मैत्रेय जी बोलते हैं, !

हे ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ विदुर जी सुनिये। विषय ज्ञात होते हुए भी अज्ञ लोगों के सम्मोहनार्थ प्रश्न कर रहे अत्रि की बात पर मुस्कराते हुए भगवान मधुर बातों में उत्तर देने लगे ।। २९ ।।

भगवान बोले :-

हे ऋषि ! तप आरंभ करते समय में आप ने संकल्प किया था कि त्रिमूर्ति सदृश पुत्र हो। इस संकल्प को हम भी बदलना नही चाहतें हैं। तत् संकल्पानुसार आपने तप किया। आपके तप से संतृप्त होकर हम आपको वर प्रदान करने आये है ।। ३० ।।

हमारे स्वरूपांश और भिन्नांश से आपको लोक प्रसिद्ध तीनपुत्र होंगे। हे अत्रि वे पुत्र आपकी कीर्ति का और विस्तार करेंगे। वे आपको कल्याणकारी और सुख देने वाले बनेंगे ।। ३१ ।।

श्री हरी जो अवतार लेते हैं वे स्वरूपांश माने जाते हैं। ब्रह्मा और रूद्र भिन्नांश समझे जाते हैं। उपर्युक्त रीति से वर देकर उन दंपती के पूजन से संतुष्ट होकर उनके सम्मुख ही वे अदृश्य हो गये ।। ३२ ।।

ब्रह्माजी के आवेश से सोम, शंकरांश से दूर्वासा और एवं विष्णु भगवान के स्वरूपांश से अणिमादि योग शास्त्र के निर्माता दत्त हुए ये तीनो अत्रि और अनुसूया के तीन पुत्र बने ।। ३३ ।।

अब अंगीरस ऋषि के संतानों के बारे में सुनिये। अंगीरस ऋषि की पत्नी श्रद्धा देवी ने चार लड़कियों को जन्म दिया। उनके नाम क्रमशः सिनीवाली, कुहू, राका और सुमती रहा। उनके दो पुत्र उचथ्य और बृहस्पति नाम से हुए वे स्वारोचिष मन्वंतर में बहुत प्रख्यात हुए। उनमें उचथ्य भगवान के अंश युक्त थे। तथा बृहस्पति वैदिकों में श्रेष्ठ बने ।। ३५ ।।

पुलस्त्य और उनकी पत्नी हविर्भुजा से अगस्त्य और महातपस्वी विश्रवस् नाम के दो पुत्र हुए। अगस्त्य ऋषि ने अगले जन्म में भद्र नाम की अग्नि होकर जन्म लिया ।। ३६ ।।

विश्रवस् की पत्नी इडबिला ने कुबेर को जन्म दिया। यही कुबेर धनाधिपति यक्षराज है। इन्ही विश्रवस् की कोशिनी नाम की पत्नी से रावण, कुंभकर्ण और विभीषण जन्म लिये ।। ३७ ।।

पुलह ऋषि की पत्नी गीता ने कर्मश्रेष्ठ, वरीयांस और सहिष्णु नामके तीन पुत्रों को जन्म दिया ।। ३८ ।।

क्रतु प्रजेश्वर की क्रियानाम्नी पत्नी ने वालखिल्य नाम के ब्रह्मातेज से उज्ज्वल प्रकाश वाले, अल्प परिमाण के साठ हजार ऋषियों को जन्म दिया ।। ३९ ।।

वशिष्ट ऋषि की ऊर्जा नाम की पत्नी से परिशुद्ध और प्रसिद्ध सात पुत्र पैदा हुए। वे चित्रकेतु और उनके छः भाई ये सातों प्रसिद्ध ब्रह्मर्षि बने। शक्ति, चित्रकेतु, सुरोचिष् विरजमित्र, उल्वण, वसुभृध्यान और द्युमंत नाम के पुत्र वशिष्ट जी की दूसरी पत्नी से जन्म लिये ।। ४०-४१ ।।

अथर्व की पत्नी शांती ने दधीची नाम के पुत्र को जन्म दिया। त्रह दधीचि बहुत व्रत निष्ठ था। उसका मुख घोड़ा जैसा था ।। ४२ ।।

अत्यन्त पुण्यशाली भृगु ऋषि की पत्नी का नाम ख्याति था। उन्होने धाता और विधाता नाम के दो पुत्रों को और भगवान की प्रिय पत्नी श्री नाम की पुत्री को भी जन्म दिया ।। ४३ ।।

ये धाता और विधाता दोनो मेरू पर्वताभिमानी की पुत्री अयति और नियती से विवाह किये। उनके मृकंडु और प्राण नाम के दो पुत्र हुए। मृकंडु के पुत्र ही प्रसिद्ध मार्कंडेय ऋषि है और प्राण ऋषि के पुत्र वेदशिर और कवी हैं। इस कवी के पुत्र ही प्रसिद्ध दैत्य गुरु शुक्राचार्य है ।। ४४-४५ ।।

विदुर जी सुनिये। ये सारे ऋषिगण अपनी संतान से इस भूमंडल को अभिवृद्ध किये। यह कर्दम प्रजापति के दौहित्र वंश की संतती हैं ।। ४६ ।।

जो पुरुष इस कथा को अत्यंत श्रद्धा से सुनता है उसके सारे पाप तुरन्त नष्ट हो जाते हैं। अब आगे की कथा कहते हैं ।। ४७ ।।

ब्रह्मा जी के पुत्र दक्ष प्रजापती ने स्वायंभुव मनु महाराज की पुत्री प्रसूती से ब्याह किया। प्रसूती ने सोलह अत्यंत सुंदरी पुत्रियों को जन्म दिया, उनमे से तेरह पुत्रियों को यम धर्मराज को दिये। एक को अग्नि को और एक को पितृ देवताओं को और बची हुई एक का रूद्र देव (शंकर) से ब्याह किया ।। ४८-४९ ।।

श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री मूर्ति ये तेरह यम धर्मराज की पत्नियां हैं ।। ५० ।।

इनमें से श्रद्धा ने शुभ, मैत्री ने प्रसाद, दया ने अभय, शांती ने सुख, तुष्टी ने मोद और पुष्टी ने स्मयं को जन्म दिया ।। ५१ ।।

क्रिया ने योग, उन्नति ने दर्प, बुद्धि ने अर्थ, मेधा ने स्मृति, तितिक्षा ने क्षेम और ह्री ने प्रश्रय नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। ये सारे देवता उन उन गुणों के अभिमानी देवता हैं। समस्त गुणों की खान और तपस्वी नर और नारायण को मूर्ति देवी ने जन्म दिया ।। ५२ ।।

इनका जन्म होने पर इस सम्पूर्ण विश्व ने आनंदित होकर अपनी उन्नति को प्राप्त किया। उस समय लोगों का मन, दिशायें, वायु, नदी और पर्वत सभी में प्रसन्नता छा गयी ।। ५३ ।।

स्वर्ग में मांगालिक वाद्य बजने लगे। देवतागण फूलों की वर्षा करने लगे। मुनिजन प्रसन्न होकर स्तुति करने लगे। गंधर्व और किन्नर गाने लगे ।। ५४ ।।

अप्सरायें नाचने लगीं। इस प्रकार उस समय बड़ा ही मंगल हुआ तथा ब्रह्मदि समस्त देवता स्तोत्रो द्वारा भगवान् नारायण की स्तुति करने लगे। देवगणों ने कहा कि हे ! श्री हरी अपने अपनी इच्छा से, अपने सामर्थ्य से आपने इस संसार की रचना की है। आकाश, वायु, मेघ और विमानादि का आधार बनता है वैसे ही भगवान् ने इस जगत की आधारभूत होकर रचना की है। इस ज्ञान को प्रकाशित करने के लिये यमभार्या मूर्ति, ऋषि रूप से प्रकट हुई हैं। उन परम पुरुष सर्वोत्तम को हमारी वंदना ।। ५६ ।।

"यथाकाश स्थितो नित्यं वायुस्सर्वत्रगो महान् तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय" और 'यथकाशे विमानादि रूपभेदः ।। ५६ ।।

प्रतीयते तथा हरौ जगदिदं तत्सामर्थ्यात् प्रतीयते'।

यह दो श्लोक प्रमाण हैं।

हम देवता होकर भी आपको पूर्णरीति से जान नही सकते। लेकिन अनारोपित ज्ञान से आपके निजस्वरूप को प्रत्यक्ष और आगमादि के आधार से युक्त हेतुओं से आपकी जानकारी की जाती है। भक्ताभीष्ट प्रद और विघ्न निवारक आप भगवन् इस जगन्नियमों में से व्यवधान को निवारण करने के लिये सत्व जीव वाले हम देवतागणों को आप कृपा दृष्टि से देखे और अनुग्रह करें ।। ५७ ।।

हे विदुर जी ! श्री हरी का कृपा कटाक्ष प्राप्त कर देवताओं ने उनकी स्तुति और पूजा की। उनसे स्तूयमान भगवान् अपने साथ शेषावतार नर को लेकर गंधमादन पर्वत पर चले गये ।। ५८ ।।

यह नर नारायण ही इस समय पृथ्वी का भार उतारने हेतु यदुकुल भूषण श्री कृष्ण और कुरु कुलोद्भव अर्जुन के रूप में अवतार लिये हैं ।। ५९ ।।

आगे की कथा कहते हैं। अग्नि देव की भार्या स्वाहा ने जड़ाग्नि के अभिमानी पावक पवमान और शुचि-ये तीन पुत्र उत्पन्न किये। ये तीनों ही हवन किये हुये वस्तुओं का भक्षण करने वाले हैं ।। ६० ।।

इन्ही तीनों से पैंतालीस प्रकार की अप्रधान अग्नी और उत्पन्न हुयीं। अपने पिता और पितामह को साथ लेकर उनचास अग्नि कहलातें हैं। इन अग्नियों के नाम से इष्टि होने के कारण इनको जान लेना भी श्री हरी की आराधना का एक अंग है ।। ६२ ।।

अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, सोमप, आज्जय, साग्नि और निरग्नि ये छः पितृगण हैं। इनकी पत्नी दक्षपुत्री स्वधा देवी हैं। इन पितृगण से स्वधा देवी ने मैना और वैतरणी नामक दो पुत्रियों को जन्म दिया। ये दोनो ज्ञान-विज्ञान में प्रवीण और ब्रह्म ज्ञान में कुशल थीं ।। ६४ ।।

रुद्र देव की पत्नी सती देवी सब प्रकार से अपने पतिदेव की सेवा में सदा संलग्न रहती थी। किंतु अपने शील और पति के गुण और रूप के अनुरूप कोई पुत्र नही हुआ। क्योंकि सती के पिता दक्ष ने बिना ही किसी अपराध के रुद्र देव के प्रतिकूल आचरण किया था, इसलिये सती ने अप्रौढ़ावस्था में ही क्रोधवश होकर पिता से प्राप्त अपने देह को अपने ही इच्छा से योगमार्ग से त्याग दिया ।। ६५-६६ ।।

।। इति श्रीमद्भागवते चतुर्थ स्कंदे प्रथमोध्यायः समाप्तः श्री कृष्णार्पणमस्तु ।।

।। श्री वेद व्यासाय नमः ।।

विदुर जी प्रश्न पूछते हैं।

दक्ष प्रजेश्वर को अपनी पुत्रियों में ज्यादा प्यार होते हुए भी वे अपनी अंतिम पुत्री सती का अनादर क्यों किये ? हरि भक्ति के साथ सदा सदाचार रत श्रेष्ठ श्री रुद्रजी से द्वेष क्यों किया ? रुद्र देव जी चराचर को ज्ञान देने वाले, विष्णु भक्तों से बैर न करने वाले, शांतमूर्ति आत्मा सर्वस्वामी नारायण के ध्यान में आनंद पाने वाले, जीवों के आराध्य देव हैं। भला उनसे कोई क्यों बैर करेगा ? उनसे दक्ष प्रजेश्वर जी के द्वेष करने का क्या कारण होगा ? ।। १-२ ।।

इन ससुर और दामाद में इतना वैर कैसे हो गया ? जिसके कारण अपने दुस्त्यज प्राणों तक की सती ने बली दे दी। यह आप मुझे बताइये ।। ३ ।।

श्री मैत्रेय जी ने कहा ! हे विदुर ! पूर्व काल में सारे प्रजेश्वर मिलकर एक सत्रयज्ञ को आरंभ किए। उस यज्ञ में बड़े-बड़े ऋषिगण, मुनिगण सपरिवार अपनी अग्नि लेकर सामान्य ऋषिगण भी एकत्र हुए। उसी समय प्रजापति दक्ष उस यज्ञशाला में प्रविष्ट हुए। उनके सूर्य सदृश कांति से प्रकाशित होकर वहाँ का अंधकार चला गया ।। ४-५ ।।

उस प्रकाश से प्रभावित होकर तारतम्य में ज्येष्ठ ब्रह्मा जी और रुद्र जी को छोड़कर अन्य सारे देवदेवता और ऋषिगण अपने अपने अग्नि को उठाते हुये आसनो से उठकर खड़े हो गये ।। ६ ।।

इस प्रकार समस्त सभासदों से सम्मान प्राप्त करके तेजस्वी दक्ष प्रजापती ने उस सभा में सबसे श्रेष्ठ ब्रह्माजी को प्रणाम कर उनकी आज्ञा से अपने आसन पर बैठ गये ।। ७ ।।

परन्तु अपने दामाद श्री रुद्र जी अभ्युत्थानादि रूप में अपने प्रति कुछ भी आदर न दिखाने से ये उनका व्यवहार सहन नहीं कर सके उन्होने उनकी ओर टेढ़ी नजर से इस तरह देखा मानो उन्हे वे क्रोधाग्नि से जला डालेंगे। फिर सभी को देखते हुए कहने लगे ।। ८ ।।

सभासदों, देवतागण और अग्नि युक्त ब्रह्मर्षिगण मेरी बात सुनें। मैं अज्ञान से या द्वेष से नही कहता बल्कि सज्जनों के शिष्टाचार के बारे में कह रहा हूँ ।। ९ ।।

यह विहिताचार को न मानने वाला रुद्र, अपने घमंड से अपने श्वसुर के आने से न खड़ा हुआ। इसे खड़े होकर आदर्श दिखाना था। परन्तु यह निर्लज्ज अपने दुर्व्यवहार से समस्त लोक पालकों की

पवित्र कीर्ति को धूल में मिला दिया है। सज्जन लोगों के आचरण को इसने नष्ट-भष्ट कर दिया ।। १० ।।

तारतम्य में अपने से उत्तम होते हुए भी अपने को प्रत्युत्थान क्यों करना था इसका कारण बताते हैं। यह मेरा शिष्य लगता है। तारतम्य में जेष्ठ होते हुए भी मैंने इसे अपनी अग्नि और ब्राह्मणों के सम्मुख वेद मंत्रो से अपने पुत्री को विवाहित कर दिया है। जैसे गुरु गायत्री मंत्र का उपदेश देकर अपने शिष्य बनाते हैं वैसे ही मैंने अपने पुत्री को देकर शिष्य बना दिया है। इसे खड़े होकर मुझे आदर दिखाना था। परंतु इसने वाणी से भी मेरा सत्कार नही किया ।। ११ ।।

बंदर जैसी आँख वाला यह विरूपाक्ष हरिणाक्षी मेरी पुत्री से व्याहित है। मैंने इसको साधू समझा था। ।। १२ ।।

संस्कार रहित शूद्र को कोई अपौरूषेय और दोष रहित वेदों का उपदेश करता है ? लेकिन ऐसा ही हुआ। इसने सारे अनुष्ठानों को छोड़ दिया है। अशुद्ध रहता है। अहंकारी है (अहंकार तत्व के अभिमानी है।) हाय इसको अपनी सुंदरी सुकुमारी कन्या को ब्रह्माजी के कहने के अनुसार मेरी इच्छा न होते हुए भी ब्याह में दिया। ।। १३ ।।

मै द्वेष से इन बातों को नही कह रहा हूँ। यह सदा काल प्रेतों के साथ भयावह स्मशान में रहता है। वहाँ भी सारे भूतगण इसके परिक्रमा करते रहते हैं। पूरे पागल की तरह सिर के बाल बिखरे भंग घडंग भटकता रहता है। कभी हसता है कभी रोता है। (रूदति इति रूद्रः) यह स्नान करता नही। केवल चिता भस्म से अंगप्रत्यंग को लेपित करता है। (भस्म स्नान करता है)। प्रेतों की रूद्र माला गले में धारण करता है इतना अंमगल रूपी होते हुए भी इसका नाम तो शिव है। इसमें मंगल कहाँ है ? केवल तमोगुण से युक्त भूत निशाचरों का यह स्वामी है। भूत प्रेत और प्रथमगण ही इसके भृत्य है। हाय रे मैंने केवल ब्रह्मा जी के बहकावे में आकर ऐसे भूतों के सरदार आचारहीन मूर्ख को अपनी भोली भाली बेटी दे दिया ।। १४-१५-१६-१७ ।।

मैत्रेय जी कहते हैं :-

हे विदुर जी ! दक्ष प्रजापती ने शिव जी को बहुत कुछ बुरा भला कहा। तथापि रूद्रदेव इसका प्रतीकार नही किये। वे किसी से विरोध करने वाले नहीं हैं। वे भगवन्नाम स्मरण करते हुये ध्यानस्थ होकर बैठे रहे। इससे दक्ष प्रजापती का क्रोध और भी बढ़ा। वे जल हाथ में लेकर आचमन करते हुए शाप देने में व्यस्त हुए।

दक्ष प्रजापती कहते हैं " यह रुद्र देवता शम्भू हम में सबसे अधम है (सारे देवगण रुद्र जी से तारतम्य मे अधम है) इसको इंद्र उपेंद्रादि देवताओं के साथ यज्ञ का हविर्भाग न मिले ।। १८ ।।

सभानायक और अन्य बड़े सभासदों के अनुरोध को न मानते हुए दक्ष प्रजापती यह शाप देकर सभागार से अपने घर चले गये ।। १९।।

शंकर जी के अनुचरों में अग्रगण्य नंदीश्वर इसको जानकर क्रोध से तमतमा उठे और उन्होने दक्ष और उनके अनुमोदन करने वाले उस सभा स्थित ब्राह्मणों को शाप दिया। नंदीश्वर बोले "शंकर जी अपने को बुरा करने वाले को भी अच्छा ही करने वाले हैं। विष्णु भक्ति और अन्य सद्गुणों से भरे हैं। यह नश्वर देह वाला दक्ष अपने को ही श्रेष्ठ समझकर अपने से तारतम्य मे श्रेष्ठ रुद्र देव की निंदाकर द्रोही बन गया है। इसका यथार्थ ज्ञान नष्ट हो जाय। वेद केवल कर्म फलो के बारे मे कहतें हैं ऐसा समझकर केवल लौकिक ज्ञान को प्राप्त कर, श्री हरी के बारे मे ज्ञान विहीन हो कर,केवल काम्य कर्मो मे आसक्त होकर, केवल गृहस्थ धर्मो मे मग्न होकर,विषय वासनाओ मे मग्न होकर भगवान को भूलकर पशुतुल्य जीवन बिताता है। विरुद्ध ज्ञान को ही सही ज्ञान समझकर उसी को वह प्राप्त करे। इसका मुह बकरे का हो जाय ।। २०-२१-२२-२३ ।।

रूद्र देव का तिरस्कार करने वाले और इनके अनुयायी ये सभी ब्राह्मण लोग नित्य संसारी होकर जनन-मरण चक्र में पड़े रहे ।। २४ ।।

मुख्य प्राण देव के उपदेश से पुत्री रूप वेदवाणी जो आपाततः सामान्य लोगों को स्वर्गादि नश्वर फल देने वाली लगती है। ये ब्राह्मण भी ऊपरी अर्थो को ही समझें (वेद ज्ञान मोक्ष देने वाला है इसको भूल जाये।) इनका मन सदाकाल कामवासना से पीड़ित रहे। ये शिव द्वेषी अभक्ष्य भक्षण करते हुये सदाकाल अपने विद्या तप और व्रतों को केवल पेट भरने का उद्योग (जीवनोपाय मार्ग) बनकर रहे। वे इस लोक में सदाकाल याचक बनकर रहें ।। २५-२६-२७ ।।

नंदीश्वर के ब्राह्मण कुल के लिये दिए हुये श्राप को सुनकर भृगुऋषि ने कोपाविष्ट होकर ब्रह्मा दंड रूप श्राप दिये ।। २८ ।।

भृगु जी कहते है :-

जो लोग शिव भक्त और उनके अनुयायी कापालिक है वे सत् शास्त्र के विरुद्ध आचरण करने वाले और पाखंडी हो ।। २९ ।।

जो लोग शौचक्रियादि रहित है, मंद बुद्धि वाले हैं भस्म और लिंग धारण करतें है, मद्य और सूर्य का पूजन सेवन करते हैं वे ही शैव संप्रदाय में दीक्षित हो ।। ३० ।।

वेद सारे जगत को विशेष ज्ञान देकर रक्षा करते हैं। वे धर्म के सेतु हैं। वे परब्रह्म श्री हरी को प्रतिपादन करतें हैं। ब्राह्मण इन वेदों का सही अर्थ ज्ञान बताने वाले हैं। तुम लोग वेद ब्रह्मा और ब्राह्मणों

का दूषण करतें हो। इसके लिये तुम पाखंडी बनो ।। ३१ ।।

यह वेद मार्ग ही लोगों को कल्याणकारी है। पूर्व पुरुष इसी पर चलते हुये सुख पाये हैं। भक्त लोगों को जनन मरण दुःख से दूर करते हुये मोक्ष देकर अनुग्रह करने वाले श्री हरी हैं। ये वेद रक्षक ब्राह्मणों को और वेद प्रतिपाद्य विष्णु को तुम लोग तिरस्कार करतें हैं। तुम पाखंडी हो, तुमको भूतपती भैरवही सदा के लिये आराध्य भगवान हो ।। ३२-३३-३४ ।।

श्री मैत्रेय जी कहते हैं कि हे विदुर जी ! भृगु ऋषि के इस प्रकार शाप देने पर श्री शंकर जी अपने साथियों के साथ कुछ खिन्नता दिखाते हुए वहाँ से चले गये। सारे अन्य प्रजेश्वर लोग जो वहाँ यज्ञ कर रहे थे उसमे पुरुषोत्तम श्री हरी ही उपास्य देव थे। उस सत्र को अत्यंत भक्ति और उत्साह के साथ एक हजार वर्ष चलाए। विधि पूर्वक यज्ञ की पूर्णाहुति करने के बाद गंगा, यमुना, संगम स्थान तीर्थराज प्रयाग पर अवभृय स्नान किये। यज्ञ संपूर्ति से संतुष्ट हो कर और वे अपने अपने घर को लौट गये।। ३५-३६।।

।। इति श्रीमद्भागवते चतुर्थ स्कंदे द्वितियोध्याय: समाप्त: श्री कृष्णार्पणमस्तु ।।

।। श्री कृष्णाय नमः।।

अथ तृतीयोध्यायः

मैत्रेय जी कहतें हैं। दक्ष प्रजापति रुद्र देव से सदाकाल द्वेष करते थे। उनके विरूद्ध बोलते थे। महादेव भी अपने श्वसुर के विषय में उन्ही के जैसे व्यवहार करते थे ।। १।।

बहुत वर्ष बीत गये लेकिन यह द्वेष कभी कम नही हुआ। इसके बीच में ब्रह्माजी ने दक्ष प्रजापति को सारे प्रजेश्वरो का अध्यक्ष बनाकर उनका पट्टाभिषेक किये। इससे दक्षप्रजेश्वर का अहंकार और बढ़ गया ।। २ ।।

वे स्वयं को और बड़ा मानने लगे। वे वाजपेय यज्ञ किये। वे वाद करने लगे कि वेद में केवल कर्मवाद के बारे में ही बतातें है। इसी वाद को बढ़ाते हुए उन्होने बृहस्पति याग को आरंभ किये ।। ३ ।।

वे अपने बड़प्पन् को दिखाने के लिये यज्ञों में मंगल कार्य किये हुये (बहुत यज्ञों को संपन्न कर आये हुये।) सारे ब्रह्मर्षिगण, देवर्षियों, पितृगणों को और उनके पत्नियों को भी निमंत्रण देकर उन सबको बहुत दान दक्षिणा देकर बहुत सम्मान पूर्वक स्वागत किया ।। ४ ।।

एक दिन आकाश में संचार करने वाले गंधर्व लोग यज्ञ की स्तुति को जोर जोर से करते हुए आकाश मार्ग से जा रहे थे। अपने पिता जी के इस यज्ञ की स्तुति दक्ष के अंतिम पुत्री सती दाक्षायणी के कान पर पड़ी ।।५ ।।

वे बाहर आकर देखीं तो आकाश दक्ष यज्ञ को जाने वाले विमानों से भरा है। उन्होने उत्तम वस्त्र धारण किए हुये सुंदर आभरणों से भूषित, चंचल चक्षुवाले गंधर्व स्त्रियों को अपने अपने पतियों के साथ मंजुल शब्दों में बाते करते हुये देखा ।। ६ ।।

उनके घर के पास से ही ये विमान जा रहे थे। उस दृश्य को देखकर सती को अपने पिता के यज्ञ के लिये स्वयं जाने की इच्छा उत्पन्न हुई। अंतःपुर में प्रवेश करते हुए वे अपने पति रूद्र जी से बोलीं ।। ७ ।।

हे परम मंगलकर सुंदर पति श्रेष्ठ जी! आपके श्वसुर दक्ष जी द्वारा महायज्ञ प्रारंभ करने की वार्ता अभी मिली है। ये सभी देवता स्त्रियाँ वही जा रही हैं। यदि आपको भी वहाँ जाने की इच्छा है तो हम भी वहाँ अपने परिजन सहित जायेंगे ।। ८ ।।

अपनी सखियों को देखने की अभिलाषा से हमारी सारी बहिनें अपने पतियों के साथ वहा जरूर आयेंगी। ऐसे बड़े समारोह में अपने माता-पिता जी द्वारा हम दंपत्तियों के सम्मानार्थ जो स्वागत देंगे

उसको स्वीकारने की इच्छा मुझमें हो रही है ।। ९ ।।

हे पतिदेव ! हमारे बहिनों के साथ हमारी सारी मौसी लोग भी अपने पति परिवार के साथ वहाँ आयेंगी ही। बहुत दिनों से मै उनको देखी नही। अब उन से मिलने के लिये मेरा दिल धड़क रहा है। मेरी वह परमप्रिय माताजी, मुझको देख कर वह कितनी हर्षित होगी। सारे महर्षि मिलकर यह बड़ा यज्ञ कर रहे हैं। इन सब को देखने के लिये मेरा मन वही दौड़ रहा है ।। १० ।।

सती की इन बातों को सुनने के बाद भी रुद्रदेव टस से मस नही हुए। सती उनको संतुष्ट करने के लिये उनकी स्तुति करती है। हे पति श्रेष्ठ जी ! भगवान श्री हरि से सृष्ट हुआ यह जगत सत्य है सत्व रजस्तमो गुण से युक्त होते हुए भी बहुत विचित्रों से भरा हुआ है। यह प्रमाणों से सिद्ध है। इस सत्य ज्ञान को जानने वाले केवल आप है। मै भी आपको पूर्ण रूप से जान नही सकती। मैं दीन हूँ। विषयों के सेवन से ही तृप्ति पाने वाली मै स्त्री हूँ। यही अल्प ज्ञान से मुझमे अपने मैंके जाने की अभिलाषा बढ़ रही है ।। ११ ।।

ये देवस्त्रियों हमारे पिताजी की संबंधी तो नही है। तो भी वे अलंकृत होकर अपने पतियों से मिलकर हँसते हुए जा रहें हैं! उनके विमान राजहंसों की शोभा दे रहे हैं। जब वे लोग जा रहे है, तो मै बेटी होकर कैसे पीछे रह सकती हूँ ।। १२ ।।

हे देवोत्तम, सुनिये। पिता के घर में महोत्सव चल रहा है। ऐसे समय में मेरा मन मेरा तन यहाँ कैसे रहेगा ? पतिगृह, गुरुगृह और इस देह को जन्म देने वाले पिता के घर को जाने के लिये निमंत्रण की कोई आवश्यकता है क्या ? निमंत्रण के बिना ही स्नेह परख से जाना व्यवहार सम्मत है ।। १३ ।।

आप देवाधिदेव हैं। परम दयालु हैं। मै तो अनेक रूप से अपनी बिनती आपके समक्ष रखा है। आप सर्वज्ञ है। आप ही धर्म का उपदेश देने वाले है। मेरी यह विनती को न ठुकराते हुए पूर्ण करना आपका ही अधिकार है! आप मेरे ऊपर अनुग्रह करें ।। १४ ।।

मैत्रेय ऋषि कहते है :- महादेव देवताओं को बहुत प्यार करते हैं। ऐसे सुरप्रिय अपने पतिदेव की सती देवी ने प्रार्थना किया। उसको सुनकर रुद्रजी को प्रजेश्वरों के सामने दक्ष प्रजापति ने जो मर्मघातक बाण जैसे चुभने वाले कुवाक्यों को कहे थे वे सारे याद आ गये। उनको स्मरण करते हुए जोर से हँसते हुए सती को उत्तर देने लगे ।। १५ ।।

हे दाक्षायणी, तुम मंगलकारी हो। बंधुओं के घर को बिना आमंत्रण भी जाने का जो प्रस्ताव किया वह समुचित है। लेकिन उन बंधुओं को अपने को बड़े मानने वाले, और अहंमन्यता से प्रविष्ट होकर दूसरों के ऊपर दोषारोप करने वाले न होना चाहिये।। १६ ।।

विद्या, तप, संपत्ति, रूप, यौवन और सत्कुल में जन्म लेना ये गुण सज्जनता के लक्षण होते

हैं। किन्तु दुर्जनों में यही गुण अहंकार को उत्पन्न करतें हैं। अहंकार से उनमें दृष्टिदोष उत्पन्न होता है। वे कामादि दोषों से उत्पीड़ित होकर दुष्ट इंद्रियों के वश में इच्छा करते हुये अपने शास्त्र जन्य ज्ञान को भी खो देतें है। अपने अहंकार में महामहिमों के माहात्म्य को भी नही पहचानतें हैं ।। १७ ।।

ऐसे अहंकारियों के घर को निमंत्रण के बिना कैसे चला जाय ? देवी तुम ही बोलो। तो भी गये तो वे अपने यहाँ आए हुए पुरुषों को कुटिल बुद्धि से भौंह चढ़ाकर रोष भरी दृष्टि से देखतें हैं। ऐसे अव्यवस्थित चित्त वालों के यहां उनको अपना समझकर कभी भी नहीं जाना चाहिये ।। १८ ।।

युद्ध में शत्रुओं के बाणों से बिंध जाने पर भी ऐसी व्यथा नही होती जैसी अपने कुटिल बुद्धि स्वजनों के कुटिल बातों से होती है ।। १९ ।।

देवी मै यह भली-भांति जानता हूँ कि तुम पदोन्नति को प्राप्त की हुई दक्ष प्रजापती की इकलौती बेटी हो। तो भी तुम्हे उनसे योग्य गौरव नही मिलेगा। वे मुझसे बहुत जलते हैं। हमारी पत्नी का वे प्यार से कैसे स्वागत करेंगे ।। २० ।।

हम तत्वाभिमानी देव हैं। देहधारी जीवों के इंद्रियों को प्रेरणा देने वाले हैं। हमारी यह महिमा देखकर तुम्हारे पिताजी असूयाग्रस्त हैं। हमारे इस श्रेष्ठ स्थान को वे प्राप्त करना चाहते हैं। लेकिन नही मिलने से ईर्ष्या बढ़ रही है। दैत्य लोग जैसे भगवान् श्री हरी से द्वेष करते है वैसे तुम्हारे पिता जी हमसे द्वेष करते हैं ।। २१ ।।

हे सिंह सदृश कटि वाली सती! धर्म सूक्ष्म को बताता हूँ। ठीक तरह से जान लो। दो भागवत (सज्जन) जब मिलते हैं, तब प्रत्युत्थान (खड़े होकर) के साथ अभिवादन करतें हैं। ऐसे संदर्भ में नम्रता दिखाना, नमस्कार करना क्रम प्राप्त है। जब उत्तम से मिलते हैं तब अवर लोग ही नमस्कार करते हैं। जब समान लोग मिलते हैं तो परस्पर अभिवादन करना है। लेकिन उत्तम जीवी को यदि अवर को (बंधुत्ववश) नमस्कार करना पड़े तो उसके हृदय गुहावासी भगवान को मनसा नमस्कार करना चाहिये। लेकिन दैहिक रूप से नही। देहाभिमानी अधम जीव को शारीरिक नमस्कार करना शास्त्र से निषिद्ध है ।। २२ ।।

ब्रह्मा जी का शरीर अन्य जीवों के समान ज्यादा सत्वादि त्रिगुणों से युक्त नहीं है। इसी कारण उनका शरीर निर्मल है, सत्व गुणात्मक है दोष रहित हैं और प्रकाशमान है। इस शरीर में क्रीड़ादि गुण विशिष्ट श्री हरी आवरण रहित होकर बसे हैं। इस वासुदेव नाम के शरीर में वास करने के कारण से दक्ष प्रजापती के आने से मै उनका प्रत्युत्थान नही किया। (किसी द्वेष से नही) ।। २३ ।।

तुम्हारे इस देह को देने वाला और बाल्य में रक्षा करने वाला तुम्हारे पिता होते हुए भी तुम्हें उसका मुह तक देखना नहीं चाहिये। उनके अनुचरों को भी देखना नहीं। मैने तो कोई अपराध नही किया था।

इतना होते हुए भी तुम्हारे पिता ने प्रजेश्वरों के यज्ञ में मुझसे बहुत कहासुनी किया। मेरा तिरस्कार और अपमान किया है ।। २४ ।।

तुम मेरी आज्ञा को न मानते हुए यदि वहा जाओगी तो तेरा अकल्याण ही होगा। क्योंकि जब किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति का अपने आत्मीय जनों के द्वारा अपमान होता है, तब वह तत्काल उनकी मृत्यु का कारण बन जाता है।

।। संभावितस्य चाकीर्तिः मरणादतिरिच्यते ।।

।। इति श्रीमद् भागवते चतुर्थ स्कंदे तृतीयोध्याय: समाप्तः श्री कृष्णार्पणमस्तु ।।

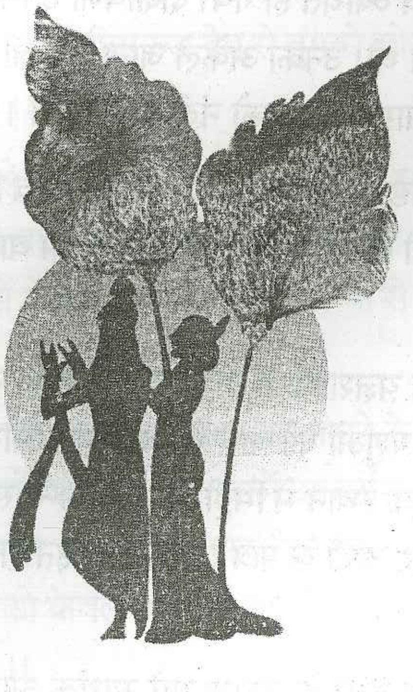

अथ चतुर्थ अध्यायः

मैत्रेय विदुर को कहते हैं शंकर जी ठीक तरह से जानते थे कि सती याग को जायें या न जाये उनका देह त्याग होना निश्चत है। यह समझकर चुप रह गये। दाक्षायणी को अपने लोगों को देखने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। वे एक बार घर के बाहर गईं। उनका मन दुविधता में पड़ गया ।। १ ।।

अपने लोगों के विरह के कारण उनकी आँखो में आँसू भर गये। वे व्याकुलता से कांपने लगीं ।। २ ।।

इंद्रादियों से उच्च कोटि के देव रूद्र जी को घूर घूर कर देखने लगी। तो भी शंकर जी अपने अभिप्राय को नही बदले। वे स्त्री होने के कारण कर्तव्याकर्तव्य का निर्धारण कर न पायी। उसी क्रोध में अपने अर्द्ध शरीर को ही देने वाले अपने पति श्रेष्ठ को न मानते हुए अपने मैके के तरफ चल पड़ी ।। ३ ।।

इसको देखकर नंदी भृंगी आदि रूद्र परिवार दुःखित हो उठे। पति आज्ञा को उल्लंघन करने वाली सती को कष्ट होने की आशका से वे व्यथित हो गये। दाक्षायणी उनमें से किसी को भी अपने साथ नही बुलाई। वे बहुत (तेजी से) जा रही थी। उनका अकेले जाना रूद्र जी को पसंद नही था यह जानकर वे सब उनका पीछा करने लगे। वे आग्रह से उनको नंदी पर बिठाये ।। ४ ।।

वे अपने वाद्यो को लेकर पीछा करने लगे। किसी ने श्वेत छत्र लिये कोई उनकी चामर सेवा करने लगे। सती प्रारंभ में अकेले निकली तो भी उनके साथ यह जुलूस वाद्य वैभव के साथ दक्ष प्रजापती के यज्ञशाला पहुंच गया ।। ५ ।।

सती आतंक के साथ सीधे यज्ञशाला में प्रवेश की। वहां हो रहा वेद घोष ब्रह्मलोक तक पहुंच गया था। यज्ञ में बली देनेके लिये पशुओं को बाधे थे। ऋषिगण और देवदेवतागण अपने अपने योग्य स्थानों पर बैठे थे। यज्ञ के लिये एक स्थान मे मिट्टी के पात्र, अन्य स्थान में काष्ठ पात्र, एक अन्य ओर लोहे के बर्तन और किसी ओर सोना चांदी के पात्र रखे गये थे। इनको देखते हुए सती यज्ञशाला के मध्य में आ गयीं ।। ६ ।।

यज्ञशाला के स्वामी दक्ष प्रजेश्वर के कारण सारे सार्थक आगत मृड पत्नी सती को गौरव नही दिखाये। सती इस अपमान को सह न सकी। वे आगे बढ़कर जहां उनकी माँ, बहने और मौसी थी वहा चली गयी। वे भवानी को अपने गले लगा लिये। संतोष और दुःख से उनके आँख भर गयी। इनको छोड़कर उस यज्ञशाला में रहने वाले और कोई भवानी का मान-सम्मान नही किये ।। ७ ।।

माँ, और भगिनी और मौसी ने सती को एक उच्च आसन दिये। माता भगनियों के प्यार और सम्मान से भवानी संतुष्ट नही हुई। उनका दिया हुआ आसन वे ग्रहण नही की। वे खड़े खड़े देखती रही। स्वयं अपने पिता ने उनकी अवज्ञा की है। वे मुहँ खोलकर एक शब्द भी नही बोले है ।। ८ ।।

यज्ञ आगे बढ़ा और पूर्णाहुति का समय आ गया। किंतु पूरे यज्ञ में अपने समर्थ पति को उनका हविर्भाग दिया नही गया। स्वयं अपने पिता से हुए अपमान को वे कैसे सहन करेगी। इंद्रादि देवताओं को नियामन करने वाली दाक्षायणी की आँख क्रोध से लाल हो गयी। लगता था कि वे अपनी क्रोधाग्नि से स्वर्गादि लोकों को ही जला डालेगी ।। ९ ।।

इनको क्रोधित देखकर रुद्रगण दक्ष प्रजापती को मारने के लिये सिद्ध हो गये। उनको मना करते हुए सती देवी ने रुद्र द्वेषी और कर्म मार्ग में ज्येष्ठता का अहंकार रखने वाले अपने पिता को पूरे जन सुने इतनी आवाज में कोसने लगी। क्रोध के कारण भवानी का वाक् स्पष्ट नही था ।। १० ।।

भगवती बोली "मेरे पती रूद्रदेव सामान्य नही है। वे इंद्रादि देवताओं को अपने प्रिय मनोभीष्ट को पूर्ण करते हैं। वे योग्यता से ज्यादा किसी से प्यार नही करते। वे योग्यता से ज्यादा किसी से द्वेष भी नही करते। भगवद्धको में से किसी से भी वे द्वेष नही करते। इंद्रादि देवताओं के वे स्वामी है और सकल जनो के वे मनोभिमानी है। ऐसे सर्व जनप्रिय रूद्र देव से तुमको छोड़कर और कोई द्वेष करता है क्या ? तुमको छोड़कर और कोई नही ।। ११ ।।

दुष्ट लोग सज्जन लोगों से उत्तम गुण संपन्न होते हुए भी सदैव उनमे दोषों की ही गणना करते हैं। किन्तु शास्त्रों में विश्वास रखने वाले अन्य लोगों में दोष न ढूढ़ते हुए उनके ही सद्गुण को बड़ा करके दिखाते हैं। आपकी गणना उत्तमों में की जाती है। आप रूद्र जी से द्वेष करने के कारण पाप संचय कर रहे है ।। १२ ।।

आपको और लोग साधु कैसे माने। कर्मफल को भोगने के लिये मिले इस शरीर को ही आत्मा मानने वाले दुष्ट लोग महान् लोगों की निंदा करें इसमें आश्चर्य जनक कुछ नहीं है। निंदा करने वाले सज्जनों के सत्संग से दूर होने वाले, इन दुष्टों को महन्निंदा ही अपनी दुर्गती का साधन बनती है। कभी भी एक बार शिव इन दो अक्षरों को केवल एक बार बोलने से और किसी से भी नष्ट न होने वाला पाप तत्क्षण ही नाश होता है ।। १३ ।।

भगवान रूद्रदेव सदा शुचि हैं वे निष्कलंक कीर्तिमान है। उनके शासन का कोई उल्लंघन नही कर सकता। इनके नामोच्चर से आने वाले पुण्य को और कोई छीन नही सकता। ऐसे शुभकारी शिवजी को सदा अशुचि मानने वाले आप, क्रिया भ्रष्ट होकर केवल उनसे द्वेष करते हैं ।। १४ ।।

ब्रह्मज्ञान आनंद देने वाला होता है। यह आनंद सभी इंद्रियों को संतुष्टी देने वाला अमृत है। इस अमृत प्राप्ति को सदाकाल चाहने वाले सनक सनंदनादि महर्षियों ने इन रुद्रदेव के पाद कमलों का सदा भक्ति से ध्यान करते रहते हैं। ये पादपद्म,ध्यान करने वाले सारे भक्तों के इष्टार्थ को पूर्ण करने वाले है। ये भगवान शंकर इस भूमंडल के निर्वाज्य बंधु बन गये है। इनसे द्वेष करने से आप गुरु द्रोही बन गये हैं ।। १५ ।।

आपसे भिन्न ब्रह्म मानस पुत्र सनकादि मुनि पुरुषार्थ प्रद मानकर शिव पाद रज को अपने सिर पर धारण करते हैं। स्मशान में रहने वाले, कपाल, हड्डी और चिता भस्म धारण करने वाले जटा जूट धारण करने वाले शिव जी को वे कभी भी अशिव नही मानते ।। १६ ।।

धर्मपालक अपने स्वामी की निंदा को निर्दयी लोग यदि करते रहे तो सामर्थ्यवान् को उन निंदको की जीभ काटना चाहिये। अथवा वहाँ से दूर जाना चाहिये। ये दोनो न कर सकने वाले को निंदा सुनने के पाप परिहारार्थ वहीं मर जाना चाहिये। संभावितों के लिये यही कार्य धर्म होता है ।। १७ ।।

मैं तो ईश्वर की निंदा सुन चुकी हूँ। मै स्त्री हूँ असमर्थ हूँ। मैं बाहर भी जा नही सकती। निंदा करने वाले की जीभ भी नही काट सकती हूँ। मेरे पति की निंदा करने वाले गुरुद्रोही आपसे उत्पन्न हुए इस अपवित्र शरीर को अब मै धारण नही करूंगी। अज्ञान से खाए हुए अपवित्रान्न को वमन करना ही योग्य माना जाता है ।। १८ ।।

मेरे पति सदाकाल उज्ज्वल प्रकाशमान अपने बिंबरूपी श्री हरी के ध्यान से संतोष पाते हैं। उसी के दर्शन से ही सदा तृप्त रहते हैं। ऐसे सर्वज्ञ और मननशील ईश्वर पूर्णज्ञानी होने के कारण स्वेच्छा प्रवृत्ति के हैं। उनका मन किसी विधि निषेध का अनुसरण नही करता। ऐसे अलौकिक धर्माधिकारी रुद्रदेव को तुम ने कर्मवादी कहा। देवमार्ग और मनुष्य मार्ग अलग अलग होते हैं। धर्मशील मानव को अपने उत्तमाधिकारियों के व्यवहारों के लिये आक्षेप नही करना चाहिये ।। १९ ।।

वेदो में काम्यफलापेक्षा से करने वाले प्रवृत्ति मार्ग और मोक्ष फलापेक्षा से करने वाले निवृत्ति मार्ग इन दोनों के बारे में बताया गया है। एक ही अधिकारी इन दोनो मार्गों को एक साथ अनुसरण नही कर सकता। ये दोनो परस्पर विरुद्ध मार्ग है। ये दोनो प्रकाश और अंधेरे जैसे हैं। जीवन्मुक्त स्थितप्रज्ञ इन दोनो कर्मों से दूर रहते है। उनके कर्मों को महानियम कहते हैं ।। २० ।।

ओ पिताजी ! योगीश्वर सनक सनंदादि एकांत भक्तों का अनुसरण करने वाले हम ज्ञानी लोग अर्चिरादि मार्ग से चलते हैं। अन्य लोग इसको जानते नही। आप यज्ञशाला में दीक्षित होकर बैठे हैं। पशु मांस को खाते हुए हिंसक बन गये हैं। अपवित्र लोगो के जाने वाले धूमादि मार्ग को आप पकड़ रखे हैं।

हमारे मार्ग एक दूसरे से मिलने वाले नही है ।। २१ ।।

हरी से अपराध किये (हरि भक्तों से किया हुआ अपराध हरी का माना जाता है) हुए आप से मिला हुआ यह शरीर निंदनीय है। दाक्षायणी नाम के इस शरीर की मुझे आवश्यकता नहीं हैं,तेरी बेटी होने में मुझे लज्जा लगती है (होती है)। बड़े लोगों के (सज्जनों के) उपयोग न आने वाले इस शरीर को क्यों रक्खूँ ? मेरे जन्म को धिक्कार हैं ।। २२ ।।

यदि मैं इस शरीर से जीवित रही तो यदा कदाचित मेरे पति देव वृषभध्वज मुझे 'दाक्षायणी' नाम से पुकार सकते हैं। आप के नाम से जुड़े हुए मेरे नाम के उच्चारण से उनके मन को क्लेश होगा। वे विषण्ण वदन होकर नीचे देखने लगेंगे। उनके मुहँ में सदाकाल नाचने वाला लास्य अदृश्य हो जायेगा। इसको मै अवकाश नही दूंगी। आप से मिले हुए इस पापी शरीर को मैं यहीं त्याग दूंगी। इन बातों से सती का कंठ रूद्ध हो गया ।। २३ ।।

।। इति श्रीमद्भागवते चतुर्थ स्कंदे चतुर्थोध्याय: समाप्त: श्री कृष्णार्पणमस्तु ।।

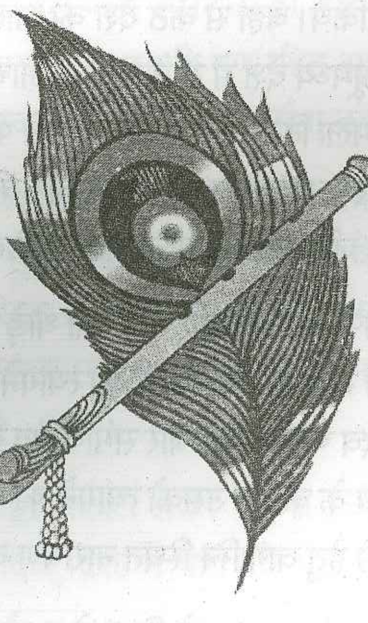

पांचवाँ अध्याय

शरीर छोड़ने के बहुत से तरीके हैं। अन्य तरीके से देह छोड़ना आत्म हत्या होती है। किंतु योग मार्ग से देह छोड़ना पवित्र है। महायोगिनी मार्ग से सती द्वारा शरीर छोड़ने के क्रम का इस अध्याय में वर्णन किया गया है।

विदुर से मैत्रेय जी कहते हैं।

यज्ञशाला में दक्ष प्रजेश्वर को सकल देव देवता के सामने उनके दोषों को दिखाने के बाद सती देवी उत्तर की ओर मुहँ करके बैठ गयी पीतांबर से अपने शरीर को लपेट लीं। मौन व्रत धारण करते हुए जल से आचमन करने के बाद आँखों को बंद की। तथा अपने देह से प्राणवायु का उत्क्रमण करते हुए योगस्थ होकर निश्चल बैठी रही ।। १ ।।

प्रथमतः उन्होने आसन जय प्राप्त किया। (बिल्कुल न हिलते हुए पूरे शरीर को शांत कर दिया) बाद में प्राणायाम करते हुए रेचक और पूरक को करने के बाद मूलाधार स्थित अपान को ऊपर खींचते हुए नाभिचक्र में स्थित (हृदय से बाहर लाया गया) प्राण वायु से मिला दिये। दोनों को नीचे न छोड़ते हुए केवल ऊर्ध्व मुख करते हुये हृदय में स्थापित किये। वहां से कंठ देश को लाते हुये वहां की समान वायु से मिला दिया। वहां से तीनों वायु को मिलाकर भ्रूमध्य देश में रहने वाले आज्ञाचक्र में स्थिर करते हुए शरीर के सारे संधियों में संचार करने वाला व्यान से मिला दिया। उदान सहित पांचो पवनों को सती आज्ञा चक्र में स्थापित की। (यह तो योगियों का नित्य ध्यान करने का तरीका है) यहां सती देवी ने अपने देह के त्यागने का निर्धारण किया। इन प्राणों के साथ उन्होने अपने जीव को भी आज्ञा चक्र में मिला दिया ।। २ ।।

आज्ञाचक्र में प्राण और जीव को स्थिर करते हुए सती देवी थोड़े समय के लिये रुक गयी। अपने मन को सदाकाल अपने वश में रखने वाली सती ने अपने शरीर को त्यागने का निश्चय किया। सती की इस देह को जो इंद्रादि देवताओं से श्रेष्ठ है वे रुद्रदेव प्यार से बार बार समायोपित करते थे (बिठा देते थे)। इतना पवित्र होते हुए भी पिता दक्ष के ऊपर के क्रोध के कारण उसको त्यागने का बलवत निर्धारण किया। योगाग्नी से उसको दाहकर (जलाकर) राख बनाने हेतु वागाग्नि स्थित नारायण का ध्यान करने लगीं ।। ३ ।।

अपने शरीर के मरणोत्तर दाह संस्कार अपने पिता से न हो, यही दाक्षायणी की इच्छा थी। वे देवगणों को ज्ञान देने वाले अपने पती का ध्यान करते हुए उनके अंतर्निहित भारती, सरस्वती, वायु, ब्रह्म, लक्ष्मी और नारायण का तारतम्यानुसार ध्यान करते हुए उस आनंद का आस्वादन करते हुए अपने से

उत्तम देवों का चिंतन करने लगी। इससे बड़ों की निंदा सुनने का और गुरु द्रोही की पुत्री होने का पाप भस्म हो गया। पाप विमुक्त हुआ सती का जीव ब्रह्मरंध्र स्थित सहस्त्रार चक्र से उत्फुल्ल होकर बाहर निकल आया। तत्क्षण ही उनके ध्यान से उत्पन्न हुयी योगाग्नी से उनका शरीर पादादिशिरःपर्यन्त जलकर राख हो गया ।। ४ ।।

इन सारी अद्‌भुत घटनाओं को देखने वाले आकाशवासी और भूलोकवासी हाहाकार करने लगे। वे चिल्लाने लगे। अरे देखो देवोत्तम रुद्रदेव की प्रिय पत्नी सती देवी ने दक्ष प्रजापती से रूष्ट होकर अपने शरीर को त्याग दिया ।। ५ ।।

इस जगत की सारी स्थावर जंगम प्रजा दक्ष प्रजापती से उत्पन्न हुई है। तथा उनके अधीन हैं। किन्तु इनकी यह मूर्खता देखिये। अत्यन्त पूज्य और मनस्विनी अपनी पुत्री को इन्होने जान बूझकर अपमानित किया। इसी कारण दक्षपुत्री अपने प्राणों को त्याग दीं ।। ६ ।।

यह हरिहर द्वेषी दक्ष प्राण त्यागने को सिद्ध हुई अपनी बेटी को क्या रोक नही सकते थे ? इसका मन कितना दुष्ट होगा। यह दुष्ट ब्राह्मण धर्म हीन है। इस दुष्ट कर्म से इसकी कीर्ति नष्ट हो गयी और अब इसकी अपकीर्ति फैल जायेगी ।। ७-८ ।।

पुत्री के मरण से दक्ष प्रजापती का मन पिघल गया। उन्होने सोचा मेरे ही कारण मेरी बेटी मृत्यु पायी। मैंने यह बड़ा पाप किया। मैं इस नश्वर शरीर को ही श्रेष्ठ मानकर, अपने से भी उत्तम रूद्रदेव का अपमान करते हुए अपराधी बन गया। शम दमादि गुण रहित अपवाद भय रहित निर्लज्ज इस मेरे जनम को धिक्कार हैं इस प्रकार दक्ष प्रजापती ने आत्म भर्त्स्रना की ।। ९-१० ।।

इधर सती के प्राण त्याग को देखकर उनके पीछे आये हुए भूतगण अपने आयुधों को लेकर दक्ष और उनके लोगों के ऊपर कूद पड़े। इन भूतगणों के वेग को लक्ष्य में लेते हुए उस यज्ञ के अध्वर्यु भृगु ऋषि ने (वे मंत्र सिद्ध थे) यज्ञ घातुक इन भूतगण के नाश के लिये यजुर्वेद के मंत्रो से दक्षिणाग्नी में हवन किया। परिणाम स्वरूप अनेक यज्ञों में अपने हविर्भाग लेकर पुष्ट हुए ऋभुनामक हजारों देवताए उत्पन्न हुए ।। ११-१२ ।।

वे अपने हाथो में जलती हुई मशाल लेकर भृगु के इच्छानुसार भूतगणों को मारने लगे। उनसे ताडित भूतगण गुह्यकों के साथ दिक् दिशा में भाग गये ।। १३ ।।

।। इति श्रीमद्‌भागवते चतुर्थ स्कंदे पंचमोध्यायः समाप्तः श्री कृष्णार्पणमस्तु ।।

अध्याय छः

मैत्रेय जी बोले

दक्ष प्रजापती से अपमानित होकर सती ने अपने शरीर को त्याग दिया। याग के मुख्य अध्वर्यु भृगु के कारण रुद्र के प्रथमगण ताड़ित होकर भाग गये। यह समाचार रूद्रदेव को नारद जी ने बताया। इस समाचार से शिवजी अत्यंत क्रोधाविष्ट हो गये ।। १।।

वह धूर्जटी क्रोधित होकर अपने ओठों को काट लिये। वे गंभीर नाद करते हुए उठकर खड़े हो गये। अपने एक जटा को उखाड़कर प्रबल अट्टहास करते हुए जमीन पर फेंक दिये ।। २ ।।

उससे एक महाकाय का आविर्भाव हुआ। उसका शरीर आकाश को छूता था। हजार बाहु वाले उस महाकाय की आँखे सुबह के सूर्य जैसी लाल लाल थीं। उसके दांत मुहँ से बाहर झाँकते थे और डरावने थे। बाल जलती हुई आग जैसे थे। और गले में कपाल माला थी और सारे हाथों में विविध हथियार थे। यही वीरभद्र रुद्र, का अगला रूप था ।। ३ ।।

उस महापुरुष वीरभद्र ने हाथ जोड़कर शंकर जी की स्तुति करते हुए उनसे आदेश मांगा। रूद्रजी वीरभद्र से कहे 'वीरभद्र' तुम मेरी जटा से उत्पन्न हुये हो, तुम हमारे परिवार में अग्रमान्य हो। तुम दक्ष यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट करते हुए दक्ष का संहार करो ।। ४ ।।

यह आदेश मिलते ही वीरभद्र रुद्रजी की परिक्रमा करते हुए अपने मन में विचार करने लगा। मैं रुद्र की जटा से उत्पन्न हुआ हूँ। स्वयं रुद्र जी ही मुझे आदेश दिये हैं। मैं समर्थ हूँ। मुझे रोकने वाला और कोई नही है। मैं जो चाहूँ वह कर सकता हूँ। मै शत्रुओं का नाश करूंगा ।। ५ ।।

यह कहते हुए वीरभद्र दक्षाध्वर के लिये चल पड़ा। शिव परिवारगण ने उसका पीछा किया। वीरभद्र ने एकबार सिंहनाद किया उस आवाज से सारा लोक घबड़ा गया। उसके पादाघात के अनुसार ही पाँव में बाँधे हुए घंटे आवाज करते थे। इस ब्रह्मांड की मृत्यु यमदेव के लिए भी मृत्युरूप वाला त्रिशूल को अपने दाहिने हाथ में लिये हुए वह महाकाय दक्षयज्ञशाला की ओर तीव्र गति से चल पड़ा ।। ६ ।।

जैसे ही वीरभद्र पहुँचा, उत्तर की दिशा में प्रबल हवा से धूल उड़ने लगी। सभी जगह अंधेरा छा गया। इसको देखकर सारे ऋत्विज, यज्ञ के यजमान, ब्राह्माण और ब्राह्मणी आश्चर्य से बोलने लगे 'अरे यह कहाँ का अंधेरा है अरे यह तो अंधेरा नही धूल हैं यह कैसे आई। आंधी या तूफान नही हैं ? चोर तो यज्ञ

मंडप के पास आ नही सकते। प्राचीन बर्ही जैसे राजा के राज्य में चोर डाकूओं के लिये स्थान कहाँ ? यदि चोर चोरी किये हुए गायों को ले जाता होता तो इतनी धूल उड़ती। यह बिना कारण धूल कैसे उड़ने लगी ? क्या इतनी जल्दी प्रलय काल आ गया ।। ८ ।।

वहाँ इक्कट्ठा हुयी स्त्रियों में सती देवी के मरण से उद्विग्न हुई प्रसूती आदि महिलाये आपस में कहने लगी 'दक्ष प्रजापती को अपनी पुत्री का अपमान इन सारी महिलाओं के समुदाय के सामने नहीं करना था। सती अत्यंत स्वाभिमानी थीं। यह धूल और उत्पात दक्ष की करनी के फल हैं ।। ९ ।।

जब रुद्रदेव प्रलय करते हैं। उस समय वे अपने जटाजूट को फैलाये हुए अपने त्रिशूल की शिखा में आठों दिग्गजो को धारण करते हुए, सारे आयुधों के साथ अपनी भुजाओं को ऊपर उठाकर, अपने विकटाट्टहास से दिग् दिशाओं को चीरते हुए तांडव नृत्य करने लगते है ।। १० ।।

इनके इस तेज को अन्य देवदेवता भी सह नही सकते। क्रोध से भृकुटी चलाने वाले इनको कौन रोक सकता है ? ।। ११ ।।

उनकी क्रूर दृष्टि इन सूर्यादि तेज मूर्तियों को भी दूर कर देती हैं। दक्ष ने इनको अपनी सहन शीलता छोड़ने के लिये बाध्य किया"। वहा सम्मिलित लोग इस प्रकार आपस में बाते करते हुए भयभीत हो गये थे। भय के मारे उनकी आँख चंचल हो गई थी। इतने में अंतरिक्ष में, यज्ञशाला में, और परिसर में उत्पात होने लगे ।। १२ ।।

इन उत्पातों के साथ साथ आयुधों से सजे हुए रूद्रानुचर यज्ञशाला को चारो ओर से घेर लिये। यह मुखगण में कई कुब्ज (ठिगने) थे, कई छोटे शिखा वाले थे। कोई कपिल वर्ण के थे अन्य कई पीले रंग वाले थे। कई के मुंह मगर जैसे थे ।। १३ ।।

उनमें से कई लोग अग्निहोत्र का स्थान को, अन्य कई महिला निवास को और कई मुख मंडप को पुनश्च कई लोग पशुबली स्थान को, बाकी के कई अग्नीध्रं शाला को और भी कई पाकशाला को उध्वस्त किये ।। १४ ।।

यज्ञ के उपकरणों को कई नष्ट करने लगे तो अन्य कई तीनो अग्नि को भ्रष्ट किये। अग्नि कुंडो में और वहां के अन्य पात्रों में कई मूत्र विसर्जन किये। यज्ञ मेंखलाको कई उखाड़कर फेक दिये ।। १५ ।।

बचे कई भूतगण ऋषियों का उत्पीड़न किये, छिपे कई भूतगण महिलाओं को त्रस्त किए, और भी खड़े कई गण दौड़ने वाले देवगणों को बंदी बनाये ।। १६ ।।

भूतगणाध्यक्ष मणिमंत ने भृगु को बांध दिया, स्वयं वीरभद्र ने दक्ष प्रजापति को पकड़ लिया।

चंडीशने पूषण्ण को नंदीश ने भृगु को अपने वश में ले लिया ।। १७ ।।

बाकी के रुद्र परिवार दिखने वाले अन्य सभी गणों ने बचे हुए देवताओं को पत्थर से मार मार कर भगाया ।। १८ ।।

पुरोहितों के इन परिभव ने पिछली सभा में रुद्रदेव के उपहास के समय में भृगु अपने दाड़ी को दिखाते हुए हँसा था। स्रुव पकड़कर होम करने वाले भृगु की दाढ़ी को वीरभद्र ने काट डाला ।। १९ ।।

उस सभा में निंदा करने वाले दक्ष को भृगु ने अपने आँखों से इशारा किया था। जमीन पर गिरे हुए नंदीश ने क्रोध से भृगु की आंखों को बाहर निकाल दिया ।। २० ।।

द्यूत में हँसने वाले कलिंग के (दंतवक्र के) दांतों को बलराम ने जैसे निकाल दिया था वैसे ही चंडीश ने पूषण् के दांतों को निकाल दिया क्योंकि वह सभा में दक्ष द्वारा शिव जी का अपमान होते हुए देखकर दांत दिखाकर हंसा था ।। २१ ।।

अंत में वीरभद्र ने दक्ष प्रजापति को जमीन पर गिरा कर उसके सीने पर बैठते हुये तीक्ष्ण धार वाले शस्त्र से उनका सिर काटने लगा किंतु बहुत प्रयास के बाद भी वह कुछ कर नही सका ।। २२ ।।

वीरभद्र मंत्रपूत भारी आस्त्रों को लेकर दक्ष का गला काटने लगे पर दक्ष की थोड़ी सी चर्म को भी काट नही सके। इसको देखकर वीरभद्र को अत्यंत आश्चर्य हुआ। वे अपने मूलरूपी शंकर जी का चिंतन करने लगे ।। २३ ।।

उस चिंतन के परिणाम से वहाँ मूलरूपी रूद्र ही आ गये। वे दक्ष प्रजापती के मरण को एक यज्ञ बनाये। उस यज्ञ (युद्ध) को बहुत समय चलाये। स्वयं पशुपती यज्ञ के यजमान बनकर दक्ष को बलि पशु बनाकर यजमान पशु के सिर को काट डाले ।। २४ ।।

रूद्रानुचर सारे भूतप्रेत पिशाचों ने रूद्र को इसका साधुवाद किये। तथा दक्ष के अनुचर निंदा किये ।। २५ ।।

कुपित रूद्रदेव दक्ष के सिर को दक्षिणाग्नी में हवन किये उस यज्ञ शाला को जला दिये। वहां जो थे उनको जीतकर भगा दिये। तथा शांत होकर कैलास चले गये ।। २६ ।।

(यहा २२ वे श्लोक से अंकित किये त्र्यंबक, पशुपती इत्यादि नाम शुद्ध वीरभद्र के बारे में नही कहते। ये मूलरूप शिव के नाम है।)

।। इति श्री मद्‌भागवते चतुर्थ स्कंदे षष्ठांध्याय समाप्तः ।।

सातवाँ अध्याय

मैत्रेय उवाच

इस प्रकार रुद्रपरिवार से शूल, खड्ग, मुद्गर गदाओं से ताड़ित सभिक, पुरोहित और देवगण पराजित होकर जहाँ तहाँ, भाग गये ।। १ ।।

उनके अंगांग छिन्न भिन्न हुए थे। वे सारे इक्कट्ठा होकर इंद्र के नेतृत्व में सत्यलोक गये। वहां ब्रह्माजी को नमस्कार करते हुए सारे समाचार का निवेदन किये ।। २ ।।

दक्ष यज्ञ में होने वाले विनाश कार्यों को पहले ही जानने वाले कमल संभव ब्रह्मा जी और विश्वव्यापी नारायण दक्ष यज्ञ को नही गये थे ।। ३ ।।

देवताओं की विनती को सुनते हुए चतुर्मुख कहे "बलिष्ठ दुष्टों के प्रति किया हुआ अपराध मुमुक्षु जीवों को अपराधी बनकर मोक्ष के लिये विघ्न नहीं बनेगा, आप लोग यज्ञशाला में थे ।। ४ ।।

हविर्भाग योग्य शंकर जी को छोड़कर आप लोग उसे अन्यों को दिलवाने के कारण रुद्र के साथ अपराध किये हैं। किंतु रूद्रदेव बड़े कृपालु हैं। वे जल्दी ही प्रसन्न होने वाले स्वभाव के हैं। आप शुद्ध मन से उनके पाद पद्मों का आश्रय पाकर उनको प्रसन्न कीजिये ।। ५ ।।

आप भी यह चाहते हैं कि आधा हुआ यह यज्ञ आगे बढ़े और पूर्णाहुति सांगोपांग पूर्ण हो। किंतु महादेव कुपित हुए तो दिक् पालकों के सहित स्वर्गादि लोक भी नष्ट हो जाते हैं। रुद्रदेव ऐसे समर्थ हैं। वे अब दक्ष के व्यंग्य दुरुक्तियों से कुपित है। इसके साथ वे अपनी प्रिय पत्नी भवानी को खो दिये हैं। आप शीघ्र ही उनसे क्षमा प्रार्थना करें ।। ६ ।।

मैं, इंद्रादि देवताओं (यज्ञयाने इंद्र) और ये प्रजेश्वर सहित सारे जीव श्री हरी का निजस्वरूप, बल, वीर्य, ज्ञान को पूर्ण रूप से जान नही सकते। रूद्र भी नही जानते। किंतु वे भगवान के प्रिय हैं और उनकी इच्छानुसार चलने वाले है। मुझे और वायुदेव को छोड़कर वे किसी के अधीन नहीं हैं। मोक्ष की इच्छा करने वाला कौन ऐसे महिमान्वित रुद्र देव का अपराध करेगा ?

मोक्ष देने वाले विष्णु के प्रिय, मनो नियामक रुद्र जी की कृपा के बिना किसी को भी मोक्ष नहीं मिलेगा ।। ७ ।।

इतना कहने के बाद ब्रह्मा जी पितरों से, देवताओं और प्रजेश्वरों से मिलकर सत्य लोक से त्रिपुरारी

रुद्रदेव के प्रिय निवास कैलास की ओर चल पड़े ।। ८ ।।

उस कैलास पर्वत में मनुष्यों से श्रेष्ठ, जन्म, औषधी, तप, मंत्र और योगों से सिद्धि प्राप्त किये हुए देवता समान सिद्ध, विद्याधर, यक्ष किन्नर, गन्धर्व और अप्सराएं सदाकाल वास करती हैं ।। ९ ।।

वहां इंद्रनील इत्यादि मणियों से प्रकाशित भूभाग, अनेक मृग, पक्षी तरूलताओं से शोभित है। तथा अन्यान्य मृग भी वास करते हैं। अनेक नदी, उपनदी और पानी की झीले बहती हैं। वहां सिद्ध स्त्री पुरूष आनंद से विहार करते हैं ।। १०-११ ।।

यहां मोर कलरव करते हैं, मधु से मत्त भृंग झंकार करते हैं। कोयल गाती है और अन्य पक्षी गण कूंजते हैं ।। १२ ।।

लगता है कि अपेक्षित वस्तुओं को देने वाले यहां के उन्नत वृक्ष शाखा रूप के अपने उन्नत बाहुओं को उठाकर इन पक्षियों के कलरव से अतिथियों का स्वागत करते हैं। यहां संचार करने वाले हाथियों को देखे तो लगता है कि कैलास पर्वत ही चल रहा है और प्रवाहित नदियों से लगता है कि पर्वत ही बाते कर रहा है ।। १३ ।।

यहां मंदार, पारिजात, तमाल, साल, औशाल (वृक्ष), देवदारू, तथा अर्जुन वृक्ष, फूलों से भरे हैं ।। १४ ।।

यहां आम, नीम, कदंब आदि वृक्ष फलों से भरे हैं। केडुवा, पुन्नाग, चंपक बकुल, अशोक, कुंद और कमल पुष्प विकसित होकर पूरे पर्वत को सुगंधित किये हैं ।। १५-१६।।

कटहल, खर्जूर, अश्वत्थ, औदुंबर, वट, प्रियाल, बास, (छोटा और मोटा) जामुन, हिंगुलक आदि वृक्षों से यह पर्वत सुशोभित है ।। १७-१८ ।।

उस पर्वत के ऊपर कुमुद, उत्पल, कल्हार, शतपत्र इत्यादि कमलके अन्यान्य जाति के पुष्पों से भरा हुआ सरोवर है। उन सरोवरों में जल कुक्कुट सुन्दर स्वर से गाते हैं ।। १९ ।।

हिरन, बंदर, वराह (जंगली सुअर) भालू, बन-मानुष, साहू,जंगली गाय, जंगली भैस, आठ पाय वाला शरभ, शेर, सिंह, कर्णमृग, बाल वाली बकरी, एकपादी, मृगनाभि आदि प्राणी वहाँ आनन्द से संचार करते थे ।। २० ।।

वहाँ जंगली केला, कमल युक्त सरोवार और बालू से बने पर्वत दिख पड़ते थे ।। २१ ।।

पवित्र नदी नंदा उस कैलास पर्वत के चारों दिशा में बहती थी। वहाँ देवी भवानी के प्रतिदिन स्नान करने से वह नदी परम पवित्र हो गयी।

इस सुन्दर कैलास पर्वत को देखाकर देवता आश्चर्य चकित हो गये ।। २२ ।।

इस कैलास पर्वत में देवताओं ने अलकापुरी नाम का सुंदर नगर देखा। सौगंधिका नाम का सुंदरवन देखा तथा सौगंधिका नाम का कमल पुष्प देखा ।। २३ ।।

इस नगर के बाहर नंदा और अलकनंदा नाम की दो नदी बहती हैं। इन नदियों के जल परम पावन श्री हरी की पाद धूली से परम पवित्र हो गये हैं।। २४ ।।

देव और देवता अपने विमान से आकर इन नदियों के किनारे उतरते हैं। रतिश्रांत देव रमणियाँ इस पवित्र जल में नहा कर अपना श्रम निवारण कर लेती हैं और नहाते वक्त अपने पुरुष के ऊपर इस शीतल जल का सिंचन करते हुए जल क्रीडामग्न होती हैं ।। २५ ।।

उनके स्नान करते समय वक्षोज में लेपित कुंकम केसर नदी जल में मिश्रित होकर उसके रंग को लाल और पीला बना देते है ।। २५ ।।

उस सुगंधमय रंगीन जल को प्यास न होते हुए भी वे स्वयं पी लेते हैं और अपनी पत्नियों को आग्रह से पिलाते हैं ।। २६ ।।

इन नदियों के किनारे सोना, चांदी, मोती और हीरों से अपने को सजाये हुए यक्ष स्त्रियाँ बहु मंजिले महलों में रहती हैं। ऐसे सौधों से युक्त यह नगरी भरी बिजली से प्रकाशित आकाश जैसे दिखती है ।। २७ ।।

नगर के इस सौंदर्य को देखते हुए देवता आगे बढ़े। आगे वे सौगंधिका वन को देखे। उस वन के फल फूल और पत्तियों से भरे हुए इच्छितार्थ को देने वाले वृक्ष शोभा दे रहे थे ।। २८ ।।

इनमे वास करने वाली कोयल अपने कुहु स्वर से वन को संगीतमय किए है।। यहां रहने वाले भृंग अपने गुंजारव से उस संगीत का साथ दे रहे हैं। उस वन में छोटे छोटे सरोवर हैं। वहा राजहंस खेलते हैं और वहाँ पैदा हुए कमल पुष्पों के नाल को खाकर संतुष्ट हैं ।। २९ ।।

इस वन के सुगंधित वृक्षों में मद मत्त हाथियों के खुजली निवारण करने के लिये अपने शरीर को रगड़ने से यहा का सारा वातावरण सुगंधित हो उठा है। यह सुगंध युक्त हवा यहां के पुण्यमती स्त्रियों के मन को उत्तेजित करती है ।। ३० ।।

इस वन में और भी छोटे छोटे जलकुंड (सरोवर) हैं। इनकी सीढ़िया हीरे (वैडूर्यमणि) से बनी हुई हैं। वहाँ कि पुरुष लोग भरे हैं। इस सौगंधिक वन को बाहर से ही देखते हुए देवतागण आगे बढ़े और सामने एक विशाल वट वृक्ष को देखे ।। ३१ ।।

वह वट वृक्ष एकसौयोजन उन्नत था (लम्बा था) और उसकी चौड़ाई पचहत्तर योजन विस्तार में थी। यहां पक्षियों ने अपना घर नही बनाया था। उस वृक्ष की विस्तृत छाया में जाड़े (शीतल)गर्मी दोनों का अनुभव नही होता था ।। ३२ ।।

यह वृक्ष अणिमादि अष्टैश्वर्य का रूप है। ज्ञानोपदेश चाहने वाले मुमुक्षु वैष्णव लोगों के लिये आश्रय स्थान है। इस वृक्ष के नीचे अपने शेष को त्याग दिये हुए अकेले रुद्र जी को देवताओं ने देखा ।। ३३।।

योगसिद्धि को प्राप्त किये सनंदनादि ऋषिगण और यक्ष राक्षसों के अधिपती कुबेर उनकी सेवा में लगे थे। रुद्रदेव का शरीर शांत और स्वस्थ था ।। ३४ ।।

यह रुद्रदेव विद्या, तप और योग का अनुष्ठान करने वाले अन्यों को इनके बारे में उपदेश देने वाले, और उनके नियामक हैं। वे इस लोक के मंगलकारक हैं। अनिमित्त बंधू नारायण का सदा ध्यान करने वाले है ।। ३५ ।।

उनका शरीर शाम के मेघ जैसा दीख ने वाला अरुण राग लिप्त है। उनके ऊपर तपस्वियों के लिये योग्य भस्म, दंड जटा और मृगछाल है। वे सिर के ऊपर चंद्र कला को धारण किये हैं ।। ३६।।

सन्यासीगणों के लिये योग्य दर्भासन (कुशासन) पर बैठे हैं। नारद जी के प्रश्न के उत्तर रूप में नित्य, वेदों से मुख्य प्रतिपाद्य, सकल गुणपूर्ण श्री हरी के बारे में उपदेश दे रहे हैं। चारो ओर घेर कर बैठ हुए संत ध्यान से इस उपदेश को सुन रहे हैं ।। ३७ ।।

वे अपने दाहिने जंघा पर बाये पाद कमल रखते हुए वीरासन में बैठे हैं। दाहिने घुटने पर वे अपना दहिना हाथ, बाये घुटने पर बायाँ हाथ रखते हुए अक्षमाला और तर्क मुद्रा का धारण किये हैं ।। ३८ ।।

इस सुंदर अवस्था में बैठे हुए शंकर जी को, आए हुए देवदेवता सारे दिक्पालक और ऋषिमुनियों ने दंडवत प्रणाम किये। रुद्रदेव योगासन में बैठे थे। योग पट्टिका से अपनी जाँघों को ठीक तरह से बांधे थे। देहाभिमान को न रखते हुए एकाग्रचित होकर श्री हरी के ध्यान में मग्न होकर समाधिस्थ हो गये थे। इसी कारण वे मननशील भक्तों में अग्रणी माने जाते हैं ।।३९-४० ।।

देवता श्रेष्ठ और असुर श्रेष्ठों से समान रूप में वंदित और सूर्य से भी ज्यादा प्रकाशमान शंकर जी ब्रह्माजी के आगमन की वार्ता सुनते ही उठ खड़े हुए। तथा श्री हरी को वंदन करने के ही तरीके में ब्रह्माजी को दंडवत नमस्कार किये। उनके प्रणाम करने के बाद वहां आगत सारे देवतदेवता सिद्ध और ऋषिगण ब्रह्माजी को नमस्कार किये ।। ४१ ।।

ब्रह्माजी हंसमुख से रुद्रांतर्गत महेश्वर रूपी नारायण की स्तुति करने लगे। हे रूद्रांतर्गत अखंड ऐश्वर्योपेत भगवान महेश्वर आप इंद्र से लेकर इस सारे प्रपंच के माता पिता है। प्रकृति शब्द वाच्य उमा और पुरुष शब्द वाच्य शिव इन दोनों से, उत्तम और स्वगत भेद शून्य किंतु अधिष्ठान निमित्त भेद वाले और गुणपूर्ण वस्तु आप ही है। यह प्रत्यक्ष और वेदों से भी प्रसिद्ध है ।। ४२ ।।

मकड़ी (मकरी) अपने खेलने के लिये जाल बनाती है और खेल समाप्त होने के बाद उसको उपने पेट में समेट लेती है, तथैव आप भी अपने प्रतिमारूप उमाशंकर में सन्निहित होकर उनके जरिये इस सृष्टि की रचना, पोषण, और संहार करते हैं ।। ४३ ।।

धर्म और अर्थ की प्राप्ति के लिये दक्ष ने यज्ञ रचा था। किन्तु अपने से श्रेष्ठ रुद्र जी को गौरवपूर्वक हविर्भाग न देते हुए उनका अपमान करने के कारण दक्ष ने विष्णु भक्तों में द्वेष किया। दक्ष के इस दोष को दूर करते हुए उसका गर्वापहरण करने के उद्देश्य से आपने उनके यज्ञ का नाश किया। व्रत धारण किये हुए ब्राह्मण जो धर्म कार्य करते है उनका नियमों को पालन करने का नियम आपने ही किया है। यह बात वेदो में और लोक व्यवहार में प्रसिद्ध है ।। ४४ ।।

सबको अपनी अपनी गति देने वाले आप उनके देह में रहते हुए उनसे पाप या पुण्य कर्म करवाते रहते हैं। अपने से उत्तम लोगों के प्रति अपराध करने वालों के पुण्य कर्म का भी, कभी कभी विपरीत फल देते हैं ।। ४५ ।।

आपके पादारविंदो में मन को स्थिर रूप से रखने वाले मानते हैं कि आप सर्वत्र व्याप्त हैं। सारे प्राणियों के अंदर आप रहते हैं। सकल जीवराशि आपके आश्रय से ही जीवित है। आपके अनुग्रह के बिना कोई कुछ नहीं करता। आपको छोड़कर कोई स्वतंत्र नही है। इसीकरण सज्जन लोग कारण के बिना व्यर्थ रूप से रूष्ट नही हाते ।। ४६ ।।

अन्यथाज्ञान वाले कर्म को ही मोक्ष देने वाला मानकर (समझकर) प्रवृत्ति कर्म करने लगते हैं। वे दुष्टभावना रखते है। अन्यों के उत्कर्ष को सहन करते नही। मतभेदक दुष्ट और बोलने अयोग्य बातों को कहते हुए उत्तम लोगों के मन को दुःख देते हैं। ऐसे लोग स्वयं ही अपना नाश कर लेते हैं। आप को उन्हे मारने की आवश्यकता नही है ।। ४७ ।।

इस जगत में अपने को न छुड़ा सकने वाले आवृत्त श्री हरी की बंधक शक्ति से बंधित दक्ष जैसे सज्जन लोग अज्ञान वश अपने से उत्तम लोगों के प्रति द्वेष कर सकते हैं। किन्तु आप जैसे बड़े लोग अनुकंपा से उनको क्षमा करेंगे ही ।। ४८ ।।

आप सर्वज्ञ हैं। सर्वोत्तम भगवान हरी के अधीन बंधक शक्ति से मोहित मन वाले और यज्ञ जैसे

केवल कर्म मार्ग में निरत दक्ष जैसे सज्जन लोगो के ऊपर कृपा करने के लिये आप समर्थ हैं ।। ४९ ।।

आप यज्ञ में हविर्भाग योग्य हैं। आप ही यज्ञ को नीचे से उन्नति की ओर ले जाने वाले है। किन्तु दुष्टस्पर्धा से ऋत्विज आपको हविर्भाग नही दिये। इसी कारण से आप दक्षयज्ञ को नष्ट भ्रष्ट किये। परिणाम स्वरूप पूर्णाहुति और अवभृथ के बिना यज्ञ अपूर्ण हो गया है। इस असमाप्त यज्ञ को आप ही पूर्ण कर सकते हैं ।। ५० ।।

उस यज्ञ के यजमान दक्ष पुनर्जीवित हो। भृगु को आँखों की पुनः प्राप्ति हो। पूषण के मुंह में पुनः दांत हों। भृगु को पुनः दाढ़ी प्राप्त हो ।। ५२ ।।

आपके परिजनों के शस्त्रों से और पत्थरों से ताड़ित जो अन्य पुरोहित देवता और सभिकों अवयवहीन (अंगहीन) हो गये हैं। वे पुनः प्राप्त हो तथा सुख से रहें। आप उनके ऊपर अनुग्रह करें।। ५२।।

प्रत्येक यज्ञ के अंत में होने वाला स्विष्टकृत होम आपको ही हो। यज्ञशेष जो रहता है वह सारा आपको ही मिले। आज से आप यज्ञ के हविर्भागी बने। आप यज्ञ ध्वंसक बन गये हैं। आप इस यज्ञ भाग से संतुष्ट हों तथा यज्ञ की संपूर्ति करें।। ५३।।

श्री ब्रह्माजी के इस निर्देशानुसार आज भी प्रत्येक यज्ञ के अंतिम भाग में स्विष्टकृत होम करते है और उसको शिवार्पण करते हैं ।। ५४ ।।

।। यहाँ सातवा अध्याय समाप्त होता है।।

।। आठवाँ अध्याय।।

मैत्रेय उवाच,

हे धर्म के शत्रुओं का नाश करने वाले विदुर जी सुनिये। ब्रह्मा जी के इन समाधान कारक वचनों को सुनकर शंकर जी संतुष्ट हो गये ।। १।।

वे हँसन्मुख होकर कहे 'हे जीवोत्तम ब्रह्माजी और आप सब लोग सुनिए। श्री हरी की माया (इच्छाशक्ति) से बंधित दक्ष जैसे अज्ञानी के अपराध की मै परवाह नही करता। उनको मैने जो दंड दिया है उसके लिये मुझे पश्चाताप नही होता। उनके अपराध का समुचित दंड उनको मिला है। किन्तु आपकी बातों को मैं मानूंगा ।। २ ।।

दक्ष का सिर अग्नि में जल गया है। उसको बकरी का सिर जोड़ा जाय। वह आज से अजमुख हो। भग जो आंखों को खो दिया है आज से वह अपने हविर्भाग को मित्र की आखों से देखे। ।। ३।।

पूषण जो आटा को अपने हविर्भाग में लेता है वह यजमान के दांतो से चबाये। मुझे हविर्भाग देने वाले देवता और ऋषियों का अगांग यथापूर्व ठीक हो ।। ४ ।।

जिनके बाहू कट गये हो वे पुरोहित अश्विनी देवताओ के हाथों से अपना हाथ प्राप्त करें। भृगु जो अपनी दाढ़ी को खो गया है बकरी की दाढ़ी अपनाये ।। ५ ।।

भक्ताभीष्टप्रद रुद्र देव की इन अनुग्रह पूर्ण बातें सुनकर सभी संतुष्ट मन से साधु साधु कहते हुए उनका साधुवाद किये। इंद्रादि देवों ने वहाँ से चलने के लिये रुद्र देव की अनुज्ञा मांगी ।। ६ ।।

किन्तु शिवजी भी ब्रह्माजी का अनुसरण करते हुए इंद्रादि देवताओं के साथ नष्ट भ्रष्ट हुई उस यज्ञशाला को आ गये ।। ७ ।।

यज्ञ पूर्ण करने हेतु देवताओं ने शिवजी के कथनानुसार यज्ञ में उपयोग की हुई एक बकरी के सिर को दक्ष के पड़े हुए शरीर से जोड़ दिया ।। ८ ।।

ऐसे सिर को जोड़ने के बाद रुद्रदेव ने अपने करूणा पूर्ण दृष्टि से उनको देखा। उनके देखते ही दक्ष सोए हुए व्यक्ति जैसे उठकर खड़े हुए ।। ९।।

उठते ही दक्ष प्रजापती ने अपने सामने खड़े हुए शंकर जी को देखा। पहले रूद्र द्वेष से कलुषित

मन वाले प्रजेश्वर दक्ष ने शिशिर काल के बादल जैसे सफेद वर्ण के रहते हैं वैसे मन का मलिन को खोकर शुद्धचित्त हो गये। उनका सारा पाप चला गया ।। १० ।।

वे रूद्र देव की प्रार्थना करना चाहते थे। किन्तु मृत पुत्री की याद करके उनकी आखों में आँसू भर गये। गला भर आया। वे स्तोत्र कर नही पाये ।। ११ ।।

वे बहुत प्रयास करके अपने मन को वश में लाये। प्रेम से कातर होते हुए भी वे अपनी बुद्धि से काम लेते हुए अचंचल भक्ति से शिवजी की स्तुति करने लगे ।। १२ ।।

दक्ष उवाच

हे रुद्रदेव मेरे अपराध के लिये आपने बलपूर्वक दंड रूप मे मेरा सिर काट दिया। यह दंड नही, आप द्वारा मेरे लिये किया हुआ अनुग्रह ही है। आप बड़े कृपालु हैं। भगवान श्री हरी का तिरस्कार, धर्म विहीन-ब्राह्मण भी नही करता है। धर्मात्मा लोग तो कभी भी नहीं करते है। किन्तु यज्ञ दीक्षित होकर मैने आपकी अवज्ञा किया। यह अपराध है आप और श्रीहरी तो उपेक्षा योग्य नहीं हैं। मै यज्ञ दीक्षित होकर बैठा था। ऐसे धर्मिष्ट ब्राह्मण का उपेक्षा नही करते हुए आप दंड देकर अनुग्रह ही किये ।। १३ ।।

प्रभो ! विद्यावान और तपस्वी ब्राह्मण अन्य लोगों के मार्ग दर्शक बनते हैं। गुण पूर्ण श्री हरी का इनमें विशेष सन्निधान रहता है। इसके लिये प्रथमतः इनकी सृष्टि मुख से हुयी। पशुपालक जैसे पशुओं का पालन करता है वैसे ही आप ऐसे ब्राह्मणों का पालन करते हैं ।। १४ ।।

योग्यायोग्य को न जानने वाला मैं भरी सभा में आपको दुष्ट शब्दों से गाली दिया। मेरे वे शब्द नुकीले बाण बनकर आपको चुभे होंगे। किन्तु आप उनकी परिगणना नहीं किये। पूज्यों की निंदा करने से होने वाले अधःपात से मुझकों आपने दयापूर्ण दृष्टि से देखकर उद्धार किये हैं। आपके इस उपकार के बदले मै क्या कर सकता हूँ। अपने कार्य से ही आप संतुष्ट हो जाइये ।। १५ ।।

इन शब्दों से दक्ष प्रजापति ने रुद्रदेव से क्षमा प्रार्थना की। तदनंतर में वे यज्ञ को आगे बढ़ाने के लिये अनुज्ञा मांगे। उपाध्याय और ऋत्विजों से मिलकर त्रेताग्नियों का अनुसंधान करते हुए श्री हरी की प्रीती को प्राप्त करने हेतु उन्ही को ही समर्पण किये ! ।। १६ ।।

दूषित और अपूर्ण हुए यज्ञ की संपूर्ति हेतु और वीरभद्र और उनके परिवार की क्रिया से आये हुए दोषों को दूर करने हेतु तत्वज्ञानी ब्राह्मणों ने तीन कपालो में मंत्रपूर्वक पुरोडाश का (गेहूँ के आटे से यज्ञ के लिये बनी हुई विशिष्ट रोटी) ठीक तरह से पाक करते हुए प्रायश्चित रूप में विष्णुयाग किये ।। १७ ।।

यजुर्वेद मंत्रो के तज्ञ यजुर्वेद पुरोहित अपने यजुर्वेद मंत्रो से यजुर्वेदाभिमानी विष्णु के उद्देश्य से

शुद्ध घी से हवन किये। उस समय यजमान दक्ष प्रजापती ने विशुद्ध मन से श्री हरी का ध्यान किया। उससे संतुष्ट होकर वहां श्री हरी प्रादुर्भूत हुए ।। १८ ।।

दश दिशाओं को प्रकाशित करने वाली श्री हरी की देहकांति के सामने वहाँ इक्कट्ठा हुए ब्रह्मदि देवताओं का प्रकाश फीका पड़ गया। सामगान से संतुष्ट हुए श्रीमन्नारायण श्री हरी गरुड़ के नारे (कंधे) पर बैठकर वहां आये ।। १९।।

उनके शरीर का रंग नीले मेघ जैसा था। वे कमर में सोने की पट्टी बांधे थे। उनका वस्त्र सोने जैसा पीत वर्ण का था। उनका किरीट सूर्य जैसा प्रकाशमान था। उनके फाल के ऊपर वाले काले काले बाल भ्रमर की याद दिलाते थे। उनके कानों में मकर कुंडल विराजते थे (शोभा देते थे)। ऐसे सुंदर मुखवाले श्रीहरी अपने हाथों में शंख कमल, चक्र, तीर, कमान, गदा, खड्ग और ढाल को धारण किये थे। ये शस्त्र उनके लिये अलंकार बन कर शोभा देते थे। उनके बाहू सोने के जैसे लगते थे। वे फुले हुए फूल से भरे हुए कर्णिकार वृक्ष जैसे दीख पड़ते थे ।। २० ।।

श्री हरी के वक्ष स्थान में लक्ष्मी देवी आश्रय लेकर सदाकाल के लिये सेवा करने में सिद्ध थी। भगवान के गले में वैजयंती माला शोभित थी। दोनो बाजू में राजहंस के समान सफेद रंग वाले चामर थे और उनके सिर के ऊपर चंद्रमा जैसे शोभा देने वाली श्वेतच्छत्र था। भगवान अपने सुशोभित मंदहास और चंद्रकला जैसे संतोष देने वाले कटाक्ष के ईक्षण से सारे जगत को संतोष देते थे ।। २१ ।।

सबके सामने व्यक्त रूप से आये हुए भगवान को देखकर ब्रह्मा ने वायु, रूद्र और इंद्रादि सारे देवदेवताओं के साथ खड़े होकर भक्ति से मान वंदना की ।। २२ ।।

उनका प्रकाश श्री हरी के प्रकाश से मंद हो गया था। उनके गले भर गये थे। आनन्द विभोर होकर वे कुछ बोल नही पाये। भगवान के अनुग्रह के बिना उन्हे कोई देख नही सकता। अब वे सामने खड़े हैं। उनको देखकर सारे देवदेवता अपने सिर के ऊपर दोनो हाथो को जोड़ते हुए स्तोत्र करने लगे ।। २३ ।।

श्री हरी की महिमा अनंत होती हैं। उनको ब्रह्मा से लेकर सारे देवता पूर्ण रूप से वर्णन नही कर सकते। किंतु भक्तों पर अनुग्रह करने वाले भगवान की अपने सच्चिदानंद रूप से व्यक्त होने के कारण अपने योग्यतानुसार उनकी स्तुति इस तरह की ।। २४ ।।

दक्ष प्रजेश्वर ने पूजा साधनों को जुटाकर इस विश्व के सृष्टिकर्ता परमगुरु, गुणपूर्ण, उपदेशक, नंद सुनंदादि परिवार से परिवृत यज्ञों के नियामक श्री हरी को नमस्कार किये। वे झुके हुए, अपने दोनो हाथ जोड़कर बोलने लगे ।। २५ ।।

भगवान् आपका रूप अत्यंत शुद्ध है। आपके रूप में जागृत स्वप्न और सुषुप्ति नाम के अवस्था भेद कदापि नही हैं। आपका ध्यान जड़ से न मिला हुआ शुद्ध ज्ञान है। आप प्रधान है सर्वोत्तम है। आपके समान और कोई नही है। आप भय रहित हैं। आपके इन गुणों का श्रुतियों ने प्रतिपादन किया है। आपको जड़ प्रकृति का और उसके कारण रूप प्राकृत शरीर का संबंध नही है। आपका रूप सदाकाल के लिये अप्राकृत है। आप इस जड़ प्रकृति को मूल वस्तु बनाते हुए (उपादान बनाकर) प्राकृत शरीरों की सृष्टि करते हैं। उन प्राकृत शरीरों में रहते हुए आप उनके नियमन करने के कारण आप पुरुष कहलाते हैं। इतने होते हुए भी अज्ञलोग आपको जीव कहते है। समझते हैं कि आप प्रकृति और उपाधियों से बंधित है आपको पुनः नमस्कार ।। २६ ।।

ऋत्विज प्रार्थना करते हैं।

पाप पुण्यों का लेप न होने वाले भगवान् ! हम ऋत्विक लोग नंदी के शाप के कारण प्रवृत्ति कर्मों का आग्रह रखते हैं। हमें आपका यथार्थ ज्ञान नही हैं तो भी हमारा भक्तिपूर्ण प्रत्यक्ष, आगम और अनुमान से सिद्ध ऋग्वेद, यजुर्वेद और समवेद ये तीनो वेद मंत्रपूर्वक हुए रूद्रदेव की कृपा कटाक्ष के कारण ही हुआ है। आप अधिदैव नाम से ब्रह्मादि वेद मान्य ब्रह्मादि देवताओं में स्थित होकर यज्ञ का हविर्भाग लेते हैं। अधियज्ञ रूप से आप स्वयं यज्ञ भोक्ता है। यज्ञ का हविर्भाग लेने के लिये आप स्वयं आ गये हैं। यह यज्ञ आपके उद्देश्य से चल रहा है। यही आपकी पूजा है ।। २७ ।।

सभासद स्तुति करने लगे ।

हे मोक्ष देने वाले भगवन् हम अज्ञानी हैं। इस संसार में हम यात्री बने हैं। शब्द स्पर्श रस, रूप, गंध नामके विषयों के मृग जल के पीछे हम पड़े हैं। हमारी तृष्णा कैसे पूर्ण होगी ? हम अहंकार और ममकार के देह और गेह (घर) के बड़े भार ढो रहे हैं। हम काम पीड़ित हैं। इनसे रक्षा करने वाला कोई नही है। अविद्या अस्मिता, राग द्वेष और अभिनिवेशों के कारण हम आगे बढ़ नही सकते। आगे मृत्यु नाम का बड़ा सर्प दिख रहा है। सुख दुःख नाम के गिरि कंदर को पार करना है। बीच में दुष्टजन रूप क्रूर मृग का भी भय है। शोक नाम की दावाग्नि आगे दिख रही है। जनन मरण के इस संसार मार्ग में चलने वाले हम अपके शरण में कब आयें ? (आप ही मुक्ति देने वाले आप के शरण के बिना मुक्ति कैसे मिलेगी ? यह भाव है) ।। २८ ।।

रुद्र उवाच :-

हे वर देने वाले भगवान् श्री हरी आपके पादपद्म की लौकिक कामना से सेवा नहीं करनी चाहिये। निष्कामना से उनकी पूजा करनी चाहिये। किंतु उनकी सेवा करने से लौकिक और

अलौकिक दोनो फल मिलते हैं। ये दोनो फल को न चाहने वाले ब्रह्मदि देवता तथा ज्ञानी भक्ति से आपकी पाद सेवा करते हैं। दक्ष ने मेरा तिरस्कार करते हुए मुझको यज्ञ से बाहर किया था। आप मुझे अपने पादो में आसक्त मनवाला मान लिये तो मै और किसी की प्रार्थना क्यों करूँ ? ।। २९ ।।

भृगु स्तुति करते है।

आपकी माया अत्यन्त निगूढ़ है। आपकी इच्छा ही माया कहलाती है। वह जीवाच्छादक और परमाच्छादक इन दो रूपों में पहचानी जाती हैं। इन आच्छादनों के कारण ब्रह्मदि तृण पर्यंत सभी जीव राशियाँ अज्ञान में मग्न है। सृष्टि करने के इतने वर्ष बाद भी आप उन जीवों के प्रेरक होकर उनके हृदय में आवास करने वाले आप उनके कर्म के अनुसार उनको प्रेरणा देते हैं। इस तत्व को वे जानते नही। ऐसे अगम्य महिमा वाले और भक्तों के बंधु आप हम पर प्रसन्न हो जायें ।। ३० ।।

नेत्र आदि पांच ज्ञानेंद्रिय, हाथ आदि पाँच कर्मेंद्रिय शब्द जैसी पांच तन्मात्रायें पृथ्व्यादि पंचमहाभूत, सत्वादि त्रिगुण, उनके कार्यरूप अहंकार और महत्तत्वादि इन सबको आश्रय देने वाली प्रकृति के विकार रूप इस प्रपंच से आप भिन्न है। ज्ञानी इस भिन्नता को मानता है। ये प्राकृत पदार्थ आपसे भिन्न हैं ये कभी आपके शरीर नही बन सकते। आपका शरीर सच्चिदानंद स्वरूप का है। इसको पूर्ण रूप से कोई जान नही सकता" ।। ३१ ।।

इंद्र उवाच (इंद्र स्तुति करते हैं)

हे च्युति रहित भगवान् आंतरिक रूप से हमारे मन को तथा बाह्य रूप से हमारी आखों को दिखने वाले और आनन्द देने वाले, दैत्यों के संहार करने वाले आयुधों को धारण करने वाले अष्ट भुजा वाले यह दृश्यमान शरीर इष्ट जगत सृष्टि के मूल कारण होने से परब्रह्म स्वरूप है ।। ३२ ।।

यज्ञ पत्नियाँ बोली :-

हे यज्ञ के स्वामी कमलनाथ, आपकी पूजा रूप में दक्ष ने इस यज्ञ को प्रारम्भ किया! दक्ष के ऊपर क्रोध से रूद्र देव ने इसको विध्वस्त किया। आधे हुए इस यज्ञ को आप अपनी पूर्ण कांतियुक्त कृपा दृष्टि से अवलोकन करें। स्मशान सदृश बनी हुई यज्ञशाला पवित्र करते हुए यज्ञ को सफल बनाइये ।। ३३ ।।

ऋषि लोग स्तुति करते हैं।

हे भगवान् आपका कार्य लोक विलक्षण है। किसी की सहायता के बिना ही आप कर्म करते हैं। तो भी आपको कर्म का लेप नही है। लक्ष्मी जी के अनुग्रह से ब्रह्मदि देवता सकलैश्वर्य प्राप्त करते हैं। वही लक्ष्मी जी आपके गुणों से मुग्ध होकर सदाकाल आपकी ही सेवा करती हैं। आपकी पत्नी होते हुये

भी आप लक्ष्मी को अपना भक्त मानते है। आप महामहिम हैं ।। ३४ ।।

सिद्ध लोग बोले :- हे भगवन् हमारे मन का हाथी संसार की दुःख नाम की वनाग्नि के ताप से जले हुए विषय वासनाओं से पीड़ित होकर आपके कथामृत नामके जल में नहाकर संतोष से संसार सागर में छिपी हुई वडवाग्नि की याद नहीं करते हैं। परब्रह्म, आपको पाकर उस जल से बाहर आना नहीं चाहते। आपकी कृपा से इससे छूट पाते हुए हम मोक्ष को प्राप्त करेंगे ।। ३५ ।।

दक्ष पत्नी प्रसूती बोलती है।

हे श्रीनिवास, आप सबके नियामक हैं लक्ष्मी के स्वामी हैं, आपका स्वागत है। आप प्रसन्न हो। मै वंदना करती हूँ। आप लक्ष्मी के साथ यहाँ रहते हुए हमारी रक्षा करें। सिर न रहने वाला शरीर शोभाहीन होता है। वैसे ही हमारी यज्ञशाला इतने ऋत्विज होते हुए भी आपके बिना शोभा नही देती थी। तथा यज्ञ भी पूर्ण नही हुआ। अब आप के रहने से यह यज्ञ पूर्ण होगा ।। ३६ ।।

लोक पालक बोले

आपको लोग यज्ञ नाम से पुकारते हैं। आप इस संपूर्ण प्रपंच को ठीक तरह से जानते हैं। हमारी इंद्रियाँ शब्दादि विषयों के पीछे दौड़ती हैं। ऐसे इंद्रियों से हम आपको कैसे देखे। आप अनुग्रह करके हमें प्रत्यक्ष दर्शन दिये हैं। आप परिपूर्ण है। पंचमहाभूतों से अलग हैं। आप अपने सामर्थ्य के कारण ही हमारी इन भौतिक आँखों को दिखाई पड़े हैं। इस चर्म चक्षु से हम आपको देख रहे हैं, यह हमारा अहोभाग्य है। पंच महाभूतों के साथ किंतु उनसे पृथक होकर आप दिख रहे हैं। यह केवल आपके सामर्थ्य के कारण है। इसमें हमारी कुछ साधना नही हैं ।। ३७ ।।

योगेश्वर बोलते हैं,

हे प्रभो आप मुक्त लोगों को अधिक प्यार करते हैं। आप भक्त वत्सल हैं अधिकारी चेतन (सज्जन लोग) आपको ठीक तरह से जानते हैं। आप जगद के अन्तर्यामी है। देव मानव और अन्य सकल जीवराशी में आप ही अंतः प्रेरक होकर रहते है। ये दोनों रूप एक ही है। योगी लोग इन रूपों में भेद नही मानते। ऐसे ज्ञानवान लोग आपके प्रिय होते हैं। वे ज्ञानी लोग परस्पर भिन्न और आपके आश्रय में जीने वाले राशियों को अलग अलग मानते हैं। हम आपके दास हैं। हमारे स्वामी आपको हम अनन्य भक्ति से प्रार्थना करते है। आप हमे अधिक सुख देकर अनुग्रह करें।। ३८ ।।

आप इस जगत की सृष्टि स्थिति में अपने अधीन जड़ प्रकृति, सत्व, रज और तमोगुणों के संसर्ग से जीवों में अज्ञान और अन्यथा ज्ञान को उत्पन्न करते हैं। किंतु आपके महिमा विशेष से आप ये प्राकृतिक

गुण, अज्ञान और मिथ्या ज्ञानों को अतिक्रमण करते हुए उनसे कोसो दूर हैं। आप ही सर्वस्वामी है। आपको नमस्कार ।। ३९ ।।

ब्रह्मा जी बोले।

भगवान श्री हरी, आप गुण, देश और काल से परे हैं। अनंत है। आप स्वयंभू है। आपके समान और कोई ज्ञानी नही है। अपरिमित स्वरूप वाले आप हमारी और धर्म की उत्पत्ति के मूल कारण हैं। प्राकृत गुणों से आपका किंचित् भी संबंध नही है। मैं सारे चेतनों से ज्येष्ठ होते हुए भी आपको संपूर्ण रीति से जानता नही, और कौन आप को (पूर्ण रीति से) जानने वाला है। ऐसे महामहिम आपको मेरी वंदना ।। ४० ।।

अग्नि उवाच

हे भगवान् नारायण, आपके तेज से समृद्ध बल को प्राप्त किया हुआ मै यज्ञ में दिए हुए आज्य (घी) के साथ मिले हुए हविष्यान्न को विभिन्न देवताओं का विभाजनकर देने में समर्थ बन गया हूँ। किन्तु पांच विध के यजुर्मंत्रों से पूजित होने वाले पांच रूप वाले आप ही यज्ञ प्रवर्तक महा विष्णु है। आपको मैं भक्ति युक्त प्रणाम समर्पित करता हूँ ।। ४१ ।।

देवता बोले :-

हे देवों के देव! आपसे रचे हुए इस कार्यरूपी जगत को प्रलय काल में आप अपने पेट में रखते हुए (सृष्टिकाल में पिए हुए जल में) आप शेष-शय्या पर सोते हैं। आप ही आदि पुरुष हैं। आपके इस सर्वोत्तम पद को मुक्त-लोग और वेद बताते रहते हैं। वही सर्वोत्तम आप अब हमारे आंखों के सामने हैं। आप भक्तों की रक्षा करतें हैं ।। ४२ ।।

गंधर्व बोले :-

ये मरीच्यादि सारे प्रजेश्वर, ब्रह्मा, रुद्र, इंद्रादि सारे देवता सभी फलापेक्षी होते हैं। इनसे भरा हुआ यह प्रपंच पूर्णानंद रूपी आपका एक खिलौना बन गया है। आप महामहिम है। हे नाथ हम आपको निरंतर नमन करते हैं ।। ४३ ।।

विद्याधर बोले :-

हे देव आपने अपनी इच्छा से, अपने अधीन प्रकृति द्वारा निर्माण किए हुए इन देह इंद्रियों को प्राप्त कर दुःख का अनुभव करने वाले जीव इन देह गेहादियों में मैं और मेरा भाव से अभिमान करते हैं। उस अभिमान के कारण दुर्मार्ग में जाने वाले वे अपनी इंद्रियों से आकृष्ट होकर अमंगल कार्यो मे आसक्त होते हैं। किन्तु आपके अनुग्रह से आपकी महिमा रूप कथा को यदि भक्ति के साथ सुनते हैं तो इस मोहकारी संसार बंध

को पूर्ण रूप से निवारण करते हैं। ऐसी आपकी लीला कथा सुनने का भाग्य हमें आप दे दीजिये ।। ४४ ।।

ब्राह्मण बोले :-

हे देव आप यज्ञ है, आप ही हविष्, अग्नि, आप मंत्र, आप समिधा, आप ही कुश तथा आप ही यज्ञपात्र हैं। आप ही सदस्य, आप ही ऋत्विजः यज्ञ के यजमान आप हैं तथा यज्ञ पत्नी भी आप ही हैं। देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, समिधा, आज्य और यज्ञ पशु भी आप ही हैं। आप इस यज्ञ और यज्ञ साधनों में नियामक होकर रहते हुए उन्ही नामों से पुकारे जाते हैं। आप ही यज्ञ के संकल्प रूप हैं। आपके अवयवों से यज्ञ के साधन उत्पन्न होते हैं ।। ४५ ।।

यहां बहुत बार आप बोलना भगवान के विविध रूपों के कारण है। किंतु मुख्य बात यह है कि इतने रूप होते हुए भी भगवान् एक ही हैं।

आपका ही प्राचीन काल में यज्ञवराह के रूप में आविर्भाव हुआ। सनकादि ऋषि आपका स्तोत्र करने लगे। जैसे हाथी अपने सुंड से कमल पुष्ण को ले आता है वैसे ही जब आप अपने कराल दंष्ट्र के ऊपर रसातल में पतित भूमंडल को अनायास लाकर हमारे ऊपर अनुग्रह किये, उसी समय आपके शरीर से इस यज्ञ की उत्पत्ति हुयी ।। ४६ ।।

सामगान करने वाले बोले :-

हे स्वामी हम आपका दर्शन करना चाहते हैं। किन्तु हम यज्ञादि सत्कर्म को खो बैठे हैं। आप हमको क्षमा करें। हमारे ऊपर प्रसन्न हो। आप हमारे नियमन करने वाले हैं। हम भक्ति से सामगान से आपका स्तोत्र करते है। इससे यज्ञ नाश करने वाले राक्षस नष्ट होते हैं। इस रीति से हम यज्ञ की रक्षा करने वाले आपको नमस्कार करते हैं ।। ४७ ।।

मैत्रेय जी कहते हैं।

यज्ञ का आचरण करने वाले सभी लोगों ने सर्वेंद्रिय नियामक भगवान् श्री हरी की सारी स्तुतियाँ किये। ज्ञानी दक्ष प्रजेश्वर ने रूद्रावतारी वीरभद्र से नाशित यज्ञ को पूर्ण कर दिया। सारे देवताओं के अंतर्यामी, सर्वभोक्ता, पूर्णानंद रूपी भगवान् नारायण प्राप्त हुई हवि से संतुष्ट होकर दक्ष के प्रति प्रिय वाक्य बोले ।। ४९।।

श्री भगवान उवाच

मैं सर्व जीवों का नियमन करता हूँ। मैं उत्तम साक्षी हूँ। स्वयं प्रकाशवान हूँ। सर्वोत्तम हूँ। मेरे समान कोई नही है। तथा मेरे से ऊँचा भी कोई नहीं है। मै इस जगत का पालनकर्ता हूँ ।। ५० ।।

ब्रह्मा के अंतर्यामी होकर ब्रह्मा नाम से इस सृष्टि को रचता हूँ। रुद्र के अंतर्यामी होकर रुद्रनाम से संहार करता हूँ। मैं इस सत्व रजस्तम गुणात्मक अधीन प्रकृति में प्रवेश करता हूँ। रजोगुण को प्राधान्य देते हुए वहाँ ब्रह्मा की सृष्टि करके उनमें ब्रह्मा नाम से जगत की सृष्टि करता हूँ। सत्व गुण को प्राधान्यतादेते हुए सत्व स्वरूपी विष्णु में इसका पालन करता हूँ। तमोगुण को उपाधन रूप से लेकर रुद्र की सृष्टि करते हुए इस जगत का संहार करता हूँ। उन पात्रों में उन कारणों से तथा बृंहण कार्यो से ब्रह्मा, विलास विशिष्ट व्याप्ति से विष्णु और हरण कार्य से हर नाम से कहलाता हूँ ।। ५१ ।।

इस जगत् सृष्ट्यादि कारणों के लिये मैं ही मुख्य कारण हूँ। मुझे इस जड़ प्रकृति का संबंध नहीं है। मै ही गुण पूर्ण हूँ। मुझसे अधिक और समान कोई नही है। इसीलिये मैं ही सर्वोत्तम हूँ। ऐसे होते हुए भी देह को ही आत्मा मानने वाले अज्ञानी लोग ब्रह्मदि चेतनाओं को स्वतंत्र रीति से सृष्ट्यादि कार्य करने वाला समझतें हैं। ये भिन्न होते हुए भी मुझसे अभिन्न मानते हैं। किन्तु ज्ञानी लोग ऐसा नहीं मानते है ।। ५२ ।।

जैसे आदमी अपने सिर हाथ पाव को अपने अधीन मानता है वैसे ही ज्ञानी लोग ब्रह्मदि सकल चेतन प्राणी को मेरे अधीन मानते हैं ।। ५३ ।।

इसी कारण से ब्रह्मा रुद्रादियो में अंतर्यामित्वेन रहने वाले रूप ओर विष्णु के प्रत्यक्ष दिखने वाले इस रूप को एक ही तरह के गुण विशिष्टता होने के कारण एक ही समझना चाहिये इन रूपों में भेद नही मानना चाहिये। जो जीव इसको जान लेगा, (उसी को मोक्ष प्राप्त होगा), वही मोक्ष पायेगा ।। ५४ ।।

मैत्रेय उवाच :- भगवान से यह आदेश पाकर भगवद् भक्त दक्ष प्रजेश्वर ने उस यज्ञ में देवदेवताओं को उनका हविर्भाग देकर उनका पूजन किये ।। ५५ ।।

अनुसंधान पूर्वक रुद्रजी का हविर्भाग उच्छिष्ट होम करते हुये उनका भी पूजन किया। इससे दक्ष प्रजापती शुद्ध हो गये। वे स्विष्टकृत होम करते हुए यज्ञ की समाप्ति करते हुए पंच कपाल पुरोडाश होम से समान, हीन, और अनर्ह देवतओं का भी पूजन किये ।। ५६ ।।

इस रीति से स्वतंत्र भगवान श्री हरी के सामर्थ्य से दक्ष प्रजापती ने यज्ञ को पूर्ण किया। तदा भगवद्भक्त दक्ष प्रजापती को सभी देवताओ ने निवृत्ति धर्म में ही प्रेरणा देते हुए अपने अपने स्थानों को चले गये ।। ५७ ।।

सती रुद्रदेव की नियत पत्नी है। रुद्र को अनन्य भाव से वे सेवन करती है। वे रुद्र को ही पाने योग्य हैं। जैसे प्रलय काल में श्री हरी में ही अनुरक्त रहने वाली लक्ष्मी सदाकाल के लिये विष्णु को ही पाती है वैसे ही सती सदाकाल रुद्रको ही पति रूप में पाती है ।। ५८-५९ ।।

परम विष्णुभक्त भगवान् रुद्रदेव ने दक्ष प्रजापति के यज्ञ का नाश करना दक्ष को शिक्षा देने के उद्देश्य से किया था, अन्यथा नहीं। मैने इस कथा को बृहस्पत्याचार्य के शिष्य और उन्ही के अवतार मानने वाले उद्धव से सुना ।। ६० ।।

भक्ति से शुद्ध हुआ ज्ञानी अत्यंत रहस्य पूर्ण, आयु और कीर्ति देने वाली, पाप को नाश करने वाली रुद्रदेव की इस कथा को सुनेगा तो श्री हरी और उनके भक्तों का द्वेष करने का पाप जो होता है उनको खोकर पूर्ण रूप से शुद्ध हो जाएगा ।। ६१ ।।

हे विदुर सुनिये। मैना की पुत्री पार्वती को रुद्र जी पत्नी रूप में पुनः पाकर उसके साथ अनेक वर्षों तक मैथुन क्रीडा करते रहे ।। ६२ ।।

अपने वीर्य को लज्जा के कारण धारण करने में पार्वती के असामर्थ्य को जानते हुए शंकर जी ने उसको आकाश में छोड़ दिया। आकाश भी उसको धारण कर नही सका। तब आकाश गंगा ने उसको धारण किया ।। ६३ ।।

गंगा जी से भी छोड़े गये इस वीर्य को अग्नि ने पान किया। वह भी उसको पचन नहीं कर सका। उसने अपने पत्नी स्वाहा देवी को दिया। वह भी उसका पचन करने में असमर्थ होने के कारण शरकानन (पहाड़) के बीच में वमन किया। इस अमोघ वीर्य से स्कंद की उत्पत्ति हुयी। मातृ रहित उस कुमार को कृत्तिका नक्षत्राभिमानी छः देवता स्त्रियों ने अपना दूध पिलाया ।। ६४ ।।

अपने छः मुखों से कुमार इन छः माताओं का स्तनपान करते हुए बढ़ गया। असुर भयंकर इस कुमार को ही देवताओं ने अपना सेनाध्यक्ष बनाया ।। ६५ ।।

।। यहाँ आठवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

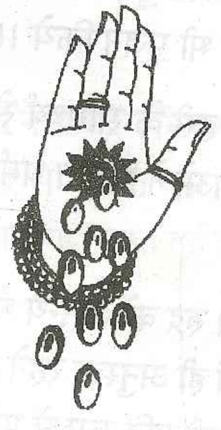

नवाँ अध्याय

मैत्रेय उवाच :-

ब्रह्म मानस पुत्र सनक सनंदादि ऋषियों और नारद, ऋभु, हंस आरूणी ये सारे गृहस्थाश्रमी नही बनें। परमहंस सन्यासी बनकर रह गये ।। १ ।।

इसी कारण इनकी वंशाभिवृद्धि नहीं हुई। किंतु ब्रह्म पुत्र अधर्माभिमानी ने मृषा (झूठ) से शादी किया। उनसे अनुक्रम से दंभाभिमानी और माया (वंचना) नाम के पुत्र और पुत्री को पाया। संतान न होने वाला निऋती उन दोनो बच्चों को गोद लिया ।। २ ।।

उस दंभाभिमानी को क्रमशः लोभाभिमानी और निकृती नाम के पुत्र और पुत्री हुए। उनसे क्रोधाभिमानी और हिंसाभिमानी उत्पन्न हुए। उनको कली और दुरु की नाम के दो बच्चे हुए ।। ३ ।।

उनको भयाभिमानी और मृत्यु अभिमानी पुत्र बने। उनसे नरकाभिमानी और यातनाभिमानी उत्पन्न हुए। ये सारे ब्रह्मा जी से सृष्ट हुए अधर्म वृक्ष की शाखायें हैं। इसे होने वाला अधर्म इत्यादि संसार के कारण बन जाते हैं। अपने श्रेय की आकांक्षा करने वाले इनका सेवन न करे। अधर्म के साथ ये सब रहते हैं ।। ५ ।।

सृष्टि के साथ साथ की हुई अनुसृष्टि को हम संग्रह रूप में बता दिये। योग्य अधिकारी इसको तीन बार सुने (सुनकर अधर्माचरण न करे) तो उनके मन में रहने वाले राग द्वेषादि मल चले जाते है ।। ६ ।।

अब आपको एक मंगल कर कथा सुनाऊगाँ। यह भगवान के विशेषांश युक्त स्वायंभुव मनु के मनोहर वंश की कथा है ।। ७ ।।

ब्रह्म पुत्र स्वायंभुव मनु की पत्नी शतरूपा को प्रियव्रत और उत्तान पाद नाम के दो पुत्र हुए। इन दोनो में भगवान वासुदेव का राजराजांश था। वे इस जगत का रक्षण करते थे ।। ८ ।।

इनमे छोटे उत्तानपाद को सुनीती और सुरुची नाम के दो पत्नियाँ थी। उनमें छोटी पत्नी सुरुची पर राजा उत्तानपाद का विशेष प्यार था ।। ९ ।।

एक दिन राजा उत्तानपाद सुरुचि के पुत्र उत्तम को अपने जंघे के ऊपर बिठाकर प्यार कर रहे थे। उसी समय सुनीती के पुत्र ध्रुवराज भी राजा के जंघे पर बैठना चाहे। किंतु राजा ने उनको अपने को छूने भी नही दिया ।। १० ।।

अपने पिता के अंको पर चढ़ने के इच्छुक ध्रुवराज को, पती के प्यार के कारण अत्यंत गर्वित छोटी रानी सुरुचि राजा के समक्ष ही असूया से ध्रुव को संबोधन करते हुए बोली ।। ११ ।।

अरे ध्रुव तुम राजा के पुत्र हो। किंतु इस सिंहासन पर चढ़ने की योग्यता तुम्हारे मे नहीं हैं। अरे तुम और कुछ नही जानते हो। मेरे सिवाय अन्य किसी स्त्री के पेट से जन्म लेने वाला इस सिंहासन पर कभी भी बैठ नही सकता। यह सिंहासन तेरे लिये दुर्लभ है।। १२-१३ ।।

यदि तुम इस सिंहासन को पाना चाहते हो तो तप करने से संतुष्ट होने वाले भगवान श्री हरी को तप करके संतुष्ट करो। और मरने के बाद उन्ही की कृपा से मेरे गर्भ से जन्म लो। इस सिंहासन पर बैठने के इच्छुक को मेरे ही पेट से जन्म लेना होगा ।। १४ ।।

मैत्रेय उवाच

सौतेली माँ की इन चुभने वाली बातों ने ध्रुवराज के मन को बहुत दुखाया। लाठी से मार खाए हुए सर्प जैसे निश्वास करते ध्रुव इन सब को देखते हुए कुछ भी नही करने वाले अपने पिता को छोड़कर चल पड़े। और रोते हुए अपनी माँ के पास आये ।। १५ ।।

ध्रुव जी निश्वास छोड़ रहे हैं। उनका नीचे का ओठ (ओष्ठ) कांप रहा था। उनकी माँ सुनीती ने उन्हे अपनी गोद में बिठा लिया। सौतन की कही बातों को वे और लोगों से सुन चुकी थीं ।। १६ ।।

वे बहुत दुःखीं हुई। दावानल में जली हुई जंगली लता जैसे मुरझाते हुए बार बार सौत के बातों को याद करते हुए अपने कमल सदृश आँखों से पानी बरसाती हुई रो पड़ी ।। १७ ।।

वे दीर्घश्वास लेते हुए रोते रोते अपने पुत्र से कहने लगी बेटे मेरे पाप और दुःख का अंत नही है। दूसरों के बारे में बुरा मत सोचो। दूसरों के बारे में बुरा मानने वाले को स्वयं कष्ट भोगना पड़ता है।। १८ ।।

आपके राजा पिता मुझको पत्नी मानने के लिये भी शर्माते हैं। ऐसे अभागिन के पेट से तुम पैदा हुए हो। राजकुमार होते हुए भी केवल मेरे स्तनपान से तुम्हारा पोषण हुआ ।। १९ ।।

तेरी सौतेली माँ सुरूचि ने जो कहा है उसको सही ही मानना चाहिये। तुम तप करके श्री हरी का अनुग्रह प्राप्त करो। उनकी बातों को सुनकर मत्सर से विचार मत करो। उनकी बातों को सत्य करने के लिये अधोक्षज के कमल सदृश पादों के शरण होना जरूर है। उन भगवान की कृपा से तुम उत्तम से भी बढ़कर बड़ा सिंहासन प्राप्त करोगे ।। २० ।।

मनोजय को साधते हुए मन को अपने वश में रखने वाले ब्रह्माजी ने जगत सृष्टि करने हेतु आवश्यक सर्वज्ञत्वादि गुणों की प्राप्ति के लिये भगवान श्री हरी की सेवा करते हुए वायु के समान श्रेष्ठ

ब्रह्म पद को पा लिये। यह तो शास्त्र में प्रसिद्ध है ।। २१ ।।

वैसे तेरे नाना स्वायंभुव मनु ने अनन्य भक्ति से बहुत दान दक्षिणा देते हुए बड़े बड़े यज्ञ किये। उन यज्ञों के जरिये वे श्री हरी की कृपा का संपादन किये। उन्ही की कृपा के कारण वे अन्य किसी से भी अलभ्य इस ब्रह्मांड के एक मन्वंतर के आधिपत्य (अधिकार) को पाये। स्वर्ग सुख भी पाये। साथ साथ देह त्याग के बाद मोक्ष को भी प्राप्त किये ।। २२ ।।

मेरे प्यारे बेटे, तुम उन भृत्यवत्सल भगवान की ही शरण हो जाओ। मोक्ष चाहने वाले भी उन्ही की शरण लेते हैं। वे जो चाहे वे फल देते हैं। अन्य देवो में श्रद्धा न करते हुए भक्ति से केवल पुरुषोत्तम की सेवा करो। यम नियमादि अष्टांग साधना करते हुए शुद्ध मन में (ध्यान करते हुए) श्री हरी का स्थिर प्रसन्न करो ।। २३ ।।

दुःख को दूर करने वाले श्री हरी को छोड़कर अन्य कोई नही है। ब्रह्मादि देवगण अपनी भक्ति की अभिवृद्धि के लिये श्री लक्ष्मी की सेवा करते हैं। श्री लक्ष्मी अपने दोनो हाथों में नये कमलों को धारण करते हुए गुण और स्वरूप से श्रेष्ठ श्री हरी को ढूढ़कर सेवा करती है। यही भगवान तुम्हारे दुःख का नाश करेंगे। सारे शास्त्रों में ढूढ़ने के बाद भी कमलदलाक्ष श्री हरी को छोड़ कर अन्य तारणहार कोई नही है। तुम उन्ही की शरण में जाओ ।। २४ ।।

मैत्रेय उवाच

माता के इष्टार्थ एवं पुरुषार्थप्रद वचनों को ध्रुवराज गौर से सुने। तथा धैर्य से अपने मन को विषयों से निवृत्त किये तथा अपने पिता के नगर को छोड़कर चल पड़े ।। २५ ।।

महर्षि नारद ने इस विषय को दूर से ही सुन लिये थे। वे स्वयं ध्रुवराज के पास आ गये। उनके मन के विचारों को वे भली-भाँति जानते थे। पितृ द्वेषादि मन के मलिनों को दूर करने हेतु उनके सिर पर अपने वरद हस्त रखकर अनुग्रह किये और विस्मय से कह उठे ।। २६ ।।

अरे इस क्षत्रिय के तेज को देखो। यह अपने अपमान को नही सहता। इस छोटे बालक को देखो कितना धैर्य और कितना प्रभाव। यह तो बिल्कुल छोटा अनजान लड़का है। किन्तु सौतली माँ की चुभने वाली गलत बातों को मन में लगा लिया है ।। २७ ।।

नारद जी ध्रुव से बोलते हैं।

अरे बेटे, अपने संपद् युक्त राजगृह को छोड़कर तुम अकेले कहा जा रहे हो ? तुमको देखने से लगता है कि अपने लोगों द्वारा अपमान पाने से तुम दुःखित हो ।। २८ ।।

इसके उत्तर में ध्रुव बोले ।

महामहिम आप योगी हैं। ध्यान से आप योगासिद्धि को प्राप्त किये हैं। आप सब कुछ जानते ही है। मुख्यतः मेरी सौतेली माँ सुरुचि की बातों से हुए आघात को मै सह नही सकता, भूल भी नही सकता ।। २९ ।।

नारद उवाच

अरे बालक तुम छोटे बच्चे हो। खेलकूद में रहने की आयु है। इस आयु में मान-सम्मान क्या? अनादर अपमान क्या? यह हमारे समझ में नही आता ।। ३० ।।

जीव के मन के अनुसार शत्रु मित्र के भाव होते हैं। स्वाभाविक शत्रु मित्रत्व भाव ही दुःख का कारण बनता है। लोग अपने किये हुये कर्म के अनुसार उत्तम मध्यम और अधम भेद से भिन्न होते हैं। अंदर रहकर हमारे मन को प्रेरणा देने वाले श्री हरी स्वतंत्र है। शत्रु मित्र भाव के लिये उनकी प्रेरणा ही मूल कारण है। सज्जनों से शत्रु भाव नहीं रखना है वैसे ही दुर्जनों से मित्रत्व नही रखना। यह समझकर अपने मन के क्लेश को दूर करो ।। ३१ ।।

अरे बेटा, नियामक भगवान है। वे स्वतंत्र है। वे जो देते हैं उसी से संतुष्ट होना चाहिये। तुम अपनी माता के उपदेशानुसार भगवान हरी के अनुग्रह से सिंहासन पाना चाहते हो न ? किन्तु श्री हरी को प्राप्त करना सुलभ नहीं है। मै और अन्य महापुरुष बहुत कष्ट करके उनके अनुग्रह पाये। उनकी आराधना बहुत कष्ट की बात है ।। ३२-३३ ।।

मननशील योगियों ने विषयों में आसक्ति को छोड़कर अत्यन्त भक्ति से एकाग्रचित होकर बहुत जन्मों से श्री हरी को ढूढ़ा है। किन्तु उनको कोई नही पाये हैं, तुम उनकी आराधना को सुलभ मानते हो क्या ? ।। ३४ ।।

इस छोटी आयु में हरि प्राप्ति का तुम्हारा हठ फल नही देगा। अब घर चले जाओ। बुढ़ापे में मोक्ष प्राप्ति का यह प्रयास कर सकते हो ।। ३५ ।।

सुख हो या दुःख हो उसको भगवान का देन समझना चाहिये। ऐसा समझने से आदमी सुख दुःखों से आहत न होते हुए सदा काल तृप्ति से रह सकता है। इसके साथ नम्रता पूर्वक अपने कर्म को करते हुए प्राप्त फल को भोगने से भगवान संतुष्ट होते हैं और मोक्ष देते हैं ।। ३६ ।।

शमदमादि गुणों में अपने से उत्तमों को देखकर संतोष करना है, असूया से जलना नही। अपने से कनिष्ट को देखकर उसे कारूण्य दिखाना है, तिरस्कार नही करना। अपने समानों से स्नेह करना

चाहिये, स्पर्धा करना नही ।। ३७ ।।

उत्तर में ध्रुवराज बोलते हैं

महोदय, आपने शास्त्राभ्यासों से भी दुरुह ज्ञान को दुःख से पीड़ित मुझको करूणा से उपदेश दिये। भगवान के ऊपर निष्ठा रखने का तरीका दिखाये ।। ३८ ।।

किन्तु क्षत्रिय सहज, हठ मेरा धर्म है। इसीकारण नम्रता की कमी है। सुरुचि का वाग्बाण अभी भी मुझे चुभता है। आपके उपदेश के बाद भी आराम को मेरे दिल में स्थान नही है ।। ३९ ।।

हमारे पिता जी से या अन्य किसी से तीनों लोकों में पाने वाले स्थान से भी बढ़िया स्थान को मैं चाहता हूँ। उसका लाभ पाने का तरीका बताकर मुझ पर अनुग्रह करिये ।। ४० ।।

आप ब्रह्माजी के अंग से (शरीर से) उत्पन्न हो गये हैं। इस जगत के कल्याण के लिये अपनी वीणा लेकर सूर्य के तरह सारे विश्व का पर्यटन करते रहते हैं ।। ४१ ।।

मैत्रेय उवाच :-

ध्रुवराज की इस विनती को सुनकर नारद जी बहुत संतुष्ट हो गये। उस बालक के ऊपर कृपा करते हुए बोले ।। ४२ ।।

नारद जी बोले :-

प्यारे बेटे, तुम्हारी माँ के कथनानुसार भक्त वत्सल भगवान श्री हरी की सेवा करना ही एकमेव मार्ग है। तुम भगवान् वासुदेव की उपासना भक्ति से करो ।। ४३ ।।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नाम के पुरुषार्थ को चाहने वाले, अपने श्रेयः प्राप्ति की कामना करने वाले को श्री हरी का पाद सेवन करना ही एकमेव मुख्य उपाय है ।। ४४ ।।

हे प्यारे बालक तुम्हारा कल्याण हो। तुम परम पवित्र यमुना तट पर जाओ। वहां मधुवन नाम का अत्यन्त पवित्र स्थान है। उस वन में सदाकाल श्री हरी का सन्निधान रहता है ।। ४५ ।।

वहां मंगलकारी पवित्र जमुना जी के जल में तीनो बार स्नान करते हुए नित्योचित देवता तुष्टि के कारण बनने वाले पूजादि कार्यों को पूर्ण करो। तुम्हारे लिये योग्य एक आसन को रचाओ ।। ४६ ।।

उस आसन के ऊपर बैठकर रेचक पूरक और कुंभक नाम के तीन विध के प्राणायाम करो। इससे वायु की अवशता, इंद्रियों की विषयाभिमुखता और मन की चंचलता नाम के तीन मल (दोष)

चले जाते हैं। गुरुओं के लिये भी उपदेश देने वाले महागुरु नारायण से लेकर अपनी गुरु परम्परा का स्मरण करो, ध्यान करो ।। ४७ ।।

श्री हरी सदाकाल भक्तों को अनुग्रह करना चाहते रहते हैं। उनका मुख और (विशेषकर) आँख प्रशांत है। उनकी भृकुटी (भौं) और नाक बहुत सुन्दर है। उनकी कपोल (गाल) बहुत मनोहर हैं। ज्यादा क्या कहना श्री हरी सर्वांग सुंदर हैं ।। ४८ ।।

वे सदाकाल के लिये सोलह वर्ष के होते हैं। एकेक रूप में हरिद्वर्ण के होते हैं, एकेक मे नीलमेंघ श्याम कहलाते हैं। उनके सारे अवयव अत्यन्त रमणीय है। उनकी आँखे कमल जैसी हैं। ओठ लाल और सुन्दर है। वे शरणागत वत्सल है। नमस्कार करने वाले को आश्रय देते है। वे श्री वत्सलांछन को धारण किये हैं। तुलसी वनमाला को धारण किये हैं। अत्यन्त पौरूषवान केवल वे ही पुरुष है। वे अपने बाहुओं में शंख, चक्र गदा, और पद्म को धारण किये हैं ।। ४९-५० ।।

किरीट कुण्डलधारी वे केयूर, कौस्तुभाभरण भूषित हैं। पीतांबर धारण किये हैं। उनकी कटी में सोने की करधनी है। पावों में नुपूर शोभा देते हैं। उनका शरीर दर्शनीय और कमनीय है। देखने से आँखों और मन को आनन्द होता है। वे अत्यन्त शांत हैं ।। ५१-५२ ।।

उनके पादो के नाखून रत्न के समान शोभायमान है। जो इनके पादों को भक्ति पूर्वक पूजन और वंदन करता है उसके हृदय कमल को ही पीठ बनाकर वहां वे अधिष्ठापित होते हैं ।। ५३ ।।

उनका मृदुहास्य और कृपा कटाक्ष बहुत अनुग्रहकारी है। ऐसे शोभायमान भगवान श्री हरी में, बाह्य वस्तुओं की ओर लक्ष्य न देते हुए सदाकाल के अभ्यास बल से एक निष्ठ मन से अचंचल भक्ति से ध्यान करना चाहिये ।। ५४ ।।

श्री हरी का रूप अत्यन्त मंगलकारक है। बताए गए क्रम से श्री हरी का ध्यान करने वाले भक्त का मन बढ़िया आनंद से युक्त होकर तीव्रता से तृप्ति पा लेता है, (मनः प्रसाद मिलता है), मन इधर उधर न दौड़ते हुए भगवान के रूप में ही स्थिर होता है ।। ५५ ।।

हे राजपुत्र, परम गुह्य और शीघ्र फल देने वाले अत्युत्तम मंत्र का उपदेश देता हूँ। उसको सुनो, (सुनकर उसका अनुष्ठान करो)। सात दिन अहोरात्र इस मंत्र का जाप भक्तिपूर्वक जो करता है वह मंत्राभिमानी देवताओं को देख सकता है ।। ५६ ।।

"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस मंत्र से ज्ञानी को देश और काल के विभाग को जानते हुए शिलादि प्रतिमाओं में श्री हरी के सन्निधान का ध्यान करते हुए अनेक पूजा द्रव्यों से (फल पुष्प आरती

इत्यादि से) उनकी पूजा करनी चाहिये ।। ५७ ।।

स्वच्छ जल, फूल, माला वन से लाया हुआ कंदमूल फल, कुश और श्री हरी को अत्यन्त प्रिय तुलसी से सर्वशक्त प्रभु नारायण की पूजा भक्तियुक्त होकर करना चाहिये ।। ५८ ।।

इस रीति से प्रतिमा पूजा करने के बाद भू, जल, सूर्य, अग्नि और अपने हृदय में स्थित श्री हरी के रूप की आराधना करनी चाहिये। श्री हरी में ही असक्त और अन्य विषयों से विमुक्त मन से श्री हरी के नाम रूप और गुण चिंतन करते रहना। मिताहार सेवन करना ।। ५९ ।।

श्री हरी दोष रहित कीर्तिशाली हैं। अपनी इच्छानुसार मत्स्य कूर्मादि अवतार लेते हैं। उन अवतार कालों में अनेक महान कार्यों से अपने बहुत गुणों को अभिव्यक्त किये हैं। उन गुण और पराक्रमों का गुणगान करना चाहिये ।। ६० ।।

पूर्वाचार्यों के द्वारा की हुई परिचर्या का अनुसरण पूर्वक नमः शब्द सहित मंत्रोच्चार करते हुए मंत्र प्रतिपाद्य श्री हरी का ध्यान, भक्ति से करना चाहिये ।। ६१ ।।

इस प्रकार देह वाक् और मन से त्रिकरण पूर्वक हरी के सेवा (ध्यान) करने से सेवा करने वाले के मन में स्थित श्री हरी उसकी योग्यतानुसार उसके भक्ति की अभिवृद्धि करते है ।। ६२ ।।

ऐसे कपट (वंचना) रहित जनों की भक्तियुक्त सेवा से संतुष्ट भगवान धर्मादि पुरुषार्थों में अत्यन्त श्रेष्ठ और सभी लोगों के अभीष्ठ मोक्ष को ही देते हैं ।। ६३ ।।

विषयों में वैराग्य और श्री हरी के सर्वोत्तमत्व को जानते हुए उनमें निष्कपट भक्ति से सतत उनका ध्यान करने वाले को मोक्ष मिलता है। इसके लिये श्री हरी का निरंतर ध्यान करना ।। ६४ ।।

मैत्रेय उवाच :-

उत्तानपाद राजा के पुत्र ध्रुवराज नारद जी से उपदेश पाकर उनकी परिक्रमा करते हुए दंडवत् प्रणाम किये। तदनंतर श्री हरी के पाद सन्निधान युक्त मधुवन को चले गये ।। ६५ ।।

ध्रुवराज के चले जाने के बाद नारद जी उत्तानपाद राजा के अंतःपुर में गये। वहां राजा के दिये हुए अर्घ्यपाद्य स्वीकार करते हुए सुखासीन पर बैठ गये। तथा राजा से पूछे ।। ६६ ।।

नारद उवाच :-

हे राजा ! आपका मुंह सूख गया है। लगता है बहुत दीर्घ चिंता में पड़े हो। क्या आपका अर्थ सहित धर्म का और काम का नाश हुआ है ? ।। ६७ ।।

उत्तर में राजा ने कहा :-

ब्रह्मर्षि सुनिये ! करुणाहीन और स्त्री व्यामोही मैं और उसकी सौतेली माँ सुरुचि दोनो ने मिलकर अत्यन्त बुद्धिशाली पांच वर्षीय पुत्र ध्रुव को त्याग दिया। वह रूष्ट होकर तप करने के लिये वन चला गया ।। ६८ ।।

जंगल में कुछ न मिलने के कारण भूखा ही, थक जाने के बाद सोए हुए मेरे पुत्र को भेड़िया न खाये। उसका रक्षक नही है। वह अनाथ है ।। ६९ ।।

हे नारद जी ! मैं दुष्ट हूँ। स्त्री के वशवर्ती बन गया हूँ। मेरा पुत्र मेरे जंघे पर बैठना चाहा। किन्तु मैं दुष्ट उसको चढ़ने नही दिया। मेरे जन्म के लिये धिक्कार हो ।। ७० ।।

नारद उवाच :-

हे उत्तानपाद, दुःख मत करो। तुम अपने पुत्र की महिमा को नही जानते। तुम्हारे पुत्र की रक्षा स्वयं नारायण करते हैं। तुम्हारे पुत्र की कीर्ति पूरे इस विश्व में फैलेगी ।। ७१ ।।

तुम्हारा पुत्र बहुत समर्थ है। वह जो तप कर रहा है उसको लोक पालक अपने विहित न होने के कारण नही कर पाते। ध्रुवराज यश प्राप्त करने के बाद जल्दी ही वापस आयेंगे। उससे तुम्हारी यशोभिवृद्धि भी होगी ।। ७२ ।।

मैत्रेय उवाच :-

महर्षि नारद जी की बातों पर राजा उत्तानपाद को विश्वास हुआ, किन्तु वे राजकाज का अनादर करते हुए पुत्र की चिंता में ही डूबे रहते थे ।। ७३ ।।

यहां ध्रुवराज मधुवन में प्रवेश किये। वहां नदी में स्नान किये। इंद्रियों का निग्रह करके उस दिन उपवास किये। शम दमादि साधना करते हुए एकाग्रचित्त से नारद जी के उपदेशानुसार वासुदेव रूपी भगवान का ध्यान करने लगे ।। ७४ ।।

प्रारम्भ में प्रथम मास में तीन दिन में एक बार बेल (कपित्थ) और बेर का फल देह धारणा के लिये जितना आवश्यक है उतना ही खाते थे। भक्तिपूर्वक श्री हरी का पूजन करते थे। ऐसे एक मास गुजर गया ।। ७५ ।।

दूसरे महीने में बालक ध्रुवराज छः दिन में एक बार सूखी घास या वृक्षों से गिरी हुई पत्ती को अपना आहार बनाये। तथा सदाकाल प्रभुनारायण का ध्यान पूजादि करते रहे ।। ७६ ।।

तीसरें महीने में वे नौ दिन में एक बार केवल जल सेवन करते हुए सर्वोत्तम श्री हरी का मनन करते रहे ।। ७७ ।।

चौथे मास में बारह दिन में एक बार श्वास लेते हुए प्राणायाम में वायु जय को साधते हुए ध्रुवराज श्री हरी का ध्यान करते रहे ।। ७८ ।।

पाँचवे मास के प्रारम्भ होते ही श्वासोंच्छवास के ऊपर जय साधते हुए ध्रुवराज एक ही पाद के ऊपर खड़े होकर सूखे वृक्ष की तरह खड़े होकर गुण परिपूर्ण श्री हरी के ध्यान में लगे रहे ।। ७९ ।।

परम भगवद्भक्त ध्रुवराज के यश को और बढ़ाने हेतु देवताओं ने अपने सामर्थ्य से सांप, हाथी, सिंह, पिशाचादियों को ध्रुवराज के समीप भेजकर उनके तप में विघ्न डालना चाहे। किन्तु श्री हरी के ध्यान में मग्न ध्रुवराज उनको देखे ही नही ।। ८० ।।

ध्रुवराज अपने मन को सारे विषय सुखों से निवृत्त किये थे। पंच महाभूत और उससे उत्पन्न प्राणियों और उनके इंद्रियों को आश्रयी भूत श्री हरी के रूप का ही अपने ह्रदय में ध्यान करते थे। यह सारा विश्व श्री हरी के अधीन है इसी चिंतन में उनका मन मग्न था। बाह्य वस्तुओं को वे नही देखते थे ।। ८१ ।।

महत्तत्व आदि सकल तत्वों को और उनके अभिमानी ब्रह्मादि सकल देवताओं को आश्रय देने वाले और जड़ प्रकृति की नियामक श्री लक्ष्मी का भी नियमन करने वाले गुणपूर्ण श्री हरी को ह्रदय में धारण करते हुए ध्रुवराज ध्यान (तप) करने लगे। इससे तीनों लोक कांपने लगे। यह आश्चर्य की बात है ।। ८२ ।।

आश्चर्य का विवरण देते हैं :-

ऐसे सारे विश्व के आश्रय जगदीश्वर का भार ध्रुवराज धारण किये थे। वे एक पाद से जमीन पर खड़े थे। उस असमर्थ उनकी अंगुली जमीन को दबाती थी। उनको बार बार पाव को बदलना पड़ता था। उससे बड़े हाथी के चढ़े हुए नाव जैसे, यह भूमण्डल एक ओर झुक जाता था। ध्रुवराज जमीन पर एक बार बांया और एक बार दहिना पाद रखते थे। इससे यह भूमि डोलायमान होती थी ।। ८३ ।।

केवल इतना ही नही। ध्रुवराज निश्चचंल मन से प्राणवायु को कुंभकमें स्तंभन करते हुए तप कर रहे थे। इंद्रियाभिमानी देवताओं के साथ उनका नियमन करने वाले श्री हरी ध्रुवराज के ह्रदय में बंधित है। इस स्तंभन से विश्व के सारे जीवराशि श्वासोच्छवास करने में कष्ट का अनुभव करने लगे। इसी कारण सारे लोकपाल श्री हरी के शरण में आये ।। ८४ ।।

देवतागण प्रार्थना करते हैं :-

सकलैश्वर्य सम्पन्न श्री हरी, भगवान विश्व में सारे जीव समुदाय का श्वास निरोध हो रहा है। इसको पहली बार ही हम देख रहें हैं। इस श्वासावरोध से जीवराशी को मुक्ति दो और हमें आराम दो। आप शरणागत रक्षक है। हम आपके ही शरण आये हैं ।। ८५ ।।

उत्तर में भगवान बोले :-

हे लोकपालकों डरने की कोई बात नहीं। आप धैर्य से अपने स्थान को वापस चले जाइये। उत्तानपाद राजा का पुत्र छोटा बालक ध्रुवराज मुझमें मन लगा के तप कर रहा है। उसके तप के कारण ही यह श्वास निरोध का अनुभव हो रहा है। मैं उस बालक को तप से निवृत्त करूँगा ।। ८६ ।।

।। यहाँ नौवा अध्याय समाप्त होता है ।।

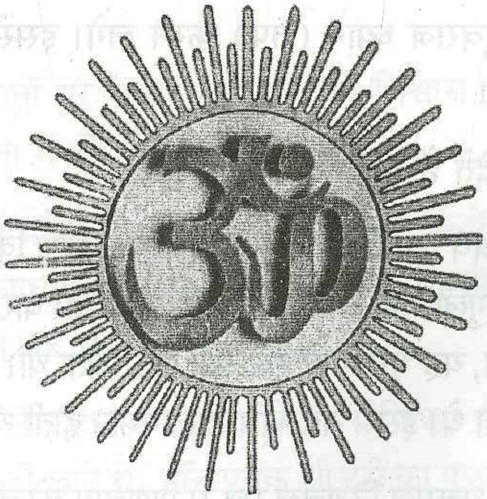

अथ दशमोध्याय :

मैत्रेय उवाच :-

भगवान श्री हरी की इन बातों से संतुष्ट होकर भयरहित (निर्भीक) मन से सारे देवतागण महापराक्रमी नारायण को नमस्कार करते हुए स्वर्ग को वापस चले गये। भगवान श्री हरी भी गरुड़ के नारे पर चढ़कर ध्रुव को देखने के लिये मधुवन को चले गये ।। १ ।।

ध्रुवराज समाधि मे थे। उनका ध्यान पक्व हो रहा था। तप सिद्धि के समीप पहुंच रहा है। वे गाढ़ मन से अपने बुद्धि से अपने हृदय कमल में बिजली जैसे प्रकाशमान भगवान श्री हरी की निश्चल मूर्ति को देख रहे थे। किन्तु वह मूर्ति एकदम अदृश्य हो गयी। ध्रुवराज आंख खोले तो सामने उनकी मूर्ति खड़ी हुई है ।। २ ।।

अपने उपास्य मूर्ति के बहिद्दर्शन से संभ्रांत वे बाल योगी अपनी दोनो आँखों से उस मूर्ति को देखने लगे। लगता था कि वे अपने आँखों से उस मूर्ति को पीना चाहते हैं। वे उस मूर्ति को अपने मुह से चुम्बन देना चाहते थे। अपने भुजाओं से आलिंगन करना चाहते थे। वे भूमि पर विनम्रता से शरीर को झुकाकर दंडवत प्रणाम किये ।। ३ ।।

श्री हरी सारे जीवों के हृदयों में निवास करते हैं। ध्रुवराज के हृदय में भी वे है ही। ध्रुवराज दोनो हाथ जोड़कर खड़े हैं। वे अपने हृदय और मुख खोलकर श्री हरी की प्रार्थना करना चाहते हैं। किन्तु उनके श्री हरी के तत्व को अपनी योग्यतानुसार न जानने के कारण मुहँ से एक शब्द भी नही निकल रहा है। श्री हरी इसको देख लिये। दयापूर्ण होकर लक्ष्मी जी के वास माने जाने वाले अपने वेदरूप शंख से ध्रुवराज के कपोल को स्पर्श किये ।। ४ ।।

उस शंख के स्पर्श मात्र से अपनी योग्यतानुसार ध्रुवराज ने गुणपूर्ण और सर्वोत्तम भगवान श्री हरी के तत्व विषय में निर्णायक ज्ञान को प्राप्त किये। भाव उद्रेक से वे रोमांचित हो उठे। वे अस्खलित वाणी में गद्गदित स्वर में भाव विभोर होकर श्री हरी की स्तुति करने लगे। श्री हरी की कीर्ति सर्वत्र व्याप्त हैं। उसको सुनने से मंगल होता है। भगवान नाश रहित बैकुंठ में वास करते है। अब अपने सामने खड़े हुए भगवान के संकीर्तन करने लगे ।। ५ ।।

ध्रुव उवाच :-

भागवत का यह श्लोक अत्यन्त प्रसिद्ध है। भगवान् श्री हरी, आप अपने ही सामर्थ्य से हमारे अंदर प्रवेश करते हुए हमारे इंद्रिय और उनके अभिमानी देवताओं को प्रेरणा देते रहते हैं। आप नियामक

होकर मेरे अंदर प्रवेश किये। मेरा वागेन्द्रिय सुप्त हो गया था। मैं आपका स्तोत्र करने में भी असमर्थ रहा। आप ही के कारण मेरी वाक् शक्ति जागृत हुयी। तथाच मेरे हाथ पाव कान त्वचादि सारे इंद्रियों का और इंद्रियों के अभिमानियों को अपने विषयों की ओर आप प्रवाहित करते हैं और प्रार्थना करने से उनको विषयों से उन्मुख करके आपकी तरफ प्रवाहित करते हैं। सर्वैश्वर्य संपन्न, देह के अंतर्नियामक आपको नमस्कार ।। ६ ।।

भगवान् आप अकेले हैं। किन्तु चेतन और उनके शरीर अनेक होते हुए आप ही उनका नियामन करते हैं। यह प्रकृति सत्वादि गुणों से निर्मित है। वह आपके अधीन है। उसको शक्ति और माया नाम से भी पुकारते हैं। आप इस प्रकृति से महत्तत्व आदि सकल कार्य समूह को सृष्ट किये। यह प्रकृति, सत्वादि गुण, महदादि तत्व ये सारे प्राकृत हैं इसी कारण अमंगल है, उनमें आप प्रवेश करके-यज्ञ में जैसे अग्नि रहता है-वैसे रहने लगे। एक ही अग्नि दारू भेद से अलग अलग दिखता है वैसे आप एक होकर भी अलग अलग रूप से प्रकाशित हो रहें हैं ।। ७ ।।

इस संसार से दुःखित लोगों के लिये आप आप्त बंधु हैं। आपसे सृष्ट हुआ सत्य और प्रत्यक्ष प्रमाण युक्त इस जगत को सोया हुआ आदमी उठने के बाद जैसे जान लेता है, वैसे आपके शरण आने वाला आदमी आपके अधीन माना जाता है। ऐसा आपका भक्त इस ज्ञान देने वाले और मुक्तों को भी आश्रय देने वाले आपके श्री चरणों को कैसे भूल सकता है ? भूल गया तो वह कृतघ्न हो जाता है ।। ८ ।।

हे भक्तों का अभीष्ट देने वाले कल्प वृक्ष ! जनन मरण युक्त इस संसार से मुक्ति देने वाले आप हैं। ऐसे श्रेष्ठ आपको इस संसार के अनित्य और अमंगलकारी सुखों के लिये पूजा करने वाले आपके बंधक शक्ति से वंचित मन वाले हैं। वे अपेक्षा करने वाले ये अनित्य विषय वासना से नरक में और तत् समान कनिष्ट जन्मों को मिलने वाले हैं ।। ९ ।।

हे नाथ! आपके भक्तों को (अधिकार युक्त जीव को) आपके पादपद्मों के ध्यान से, आपके भक्तों की कथा सुनने से, या भक्तों के मुख से आप के कथा सुनने से जो आनन्द होता है वह आनंद अन्य विषयों से होता नही। भगवान में ही रहते हुए अल्प मुक्ति को प्राप्त किये किन्तु ध्यान विहीनों को भी होता नही। तो स्वर्ग में नंदनवन में विहार करने वाले का आनन्द अल्प ही होगा। (इसका मतलब यह है कि भगवान के ध्यान के बिना मिला अल्पमुक्ति का आनंद और स्वर्गादि सुख से भी ज्यादा आनन्द भगवान के पादपद्मों के ध्यान से, भक्तों के कथा सुनने से और भक्तों के मुख से भगवान की कथा सुनने से होता है) ।। १० ।।

भगवान् निरंतर रूप से भक्ति को आपने प्रवहण करने वाले निर्मल मन के सद् भक्तों का संग सदाकाल हो। मैं उनसे आपका गुण कथामृत को पीकर मत्त होकर अन्य व्यसनों में निरासक्त होकर

इस दुःख पूर्ण और क्रूर संसार सागर को पार करता हूँ। इस संसार में पुनः नही आऊगाँ ।। ११ ।।

पत्नी, पुत्र, मित्र, धन, दौलत और घर को ही अपना मानने वाले लोग नश्वर वस्तुओं के कारणरूप और स्वयं प्रलय काल में भी नाश रहित आपका स्मरण नही करते। किन्तु हे पद्मनाभ, आप के पादपद्म की सुगंध से आकृष्ट भक्त और उनमें भक्ति करने वाले भक्त लोग पुत्र दारादि का स्मरण नही करते। किन्तु इन सबसे अत्यन्त प्रिय और जगदादिकारण आपका ही ध्यान करते हैं ।। १२ ।।

भगवान् आप जनन रहित है। महदादि तत्वों के कार्य के लिये कारणी भूत, सत् मानने वाले पृथ्वी, जल और अग्नि असत् मानने वाले वायु और आकाश इन महाभूतों से भी विशेष, वृक्ष, पक्षी, प्राणी, पशु आदि देव दैत्य मानवादि विध विविधों से युक्त यह ब्रह्मांड आपका स्थूल रूप है। यह आपका प्रतिमारूप है। मूल रूप इससे अलग है। हे सर्वोत्तम आपके स्वरूपभूत रूप को, वेदो में पूर्ण प्रतिपादन नहीं कर सकते। वेदाभिमानी लक्ष्मी भी (पूर्णतया) नही जानती। ऐसे स्थूल विलक्षण और सूक्ष्मातिसूक्ष्म आपके चिदानंद स्वरूप को मैं नही जानता हूँ। सामने वाले इस रूप को गुरु के अनुग्रह से देखते हुए भी पूर्णरूप से मैं कैसे जानूँ ।। १३ ।।

आप अनंत नामके शेष देव के मित्र हैं। आप स्वयं प्रकाशमान हैं। आप पुरुष नामक श्री हरी है। ब्रह्म कल्प के अंत में आप इस ब्रह्मांड को संहार कर अपने पेट में धारण करते हैं। उस समय आप शेष के ऊपर सो जाते हैं। आपकी नाभि बड़े समुद्र के समान है। उसमें उत्पन्न हुए सुवर्ण वर्ण के चौदह लोक रूप वाले कमल की कर्णिका में चतुर्मुख ब्रह्मा की सृष्टि हुई। हे विष्णु भगवान् आपको मैं भक्ति पूर्वक वंदन करता हूँ ।। १४ ।।

इस लोक में देखने में परस्पर विरुद्ध लगने वाले पुरुष निर्मित शास्त्र स्थूलत्व, अणुत्व ह्रस्वत्व आदि विविध शक्तियाँ, योगरूढ़ी इत्यादि विध विविध वृत्तियाँ, अघटनघटना सामर्थ्य (न होने वाले को कर देना) सारे काल देश अवस्था आपमें हैं। यह विषय वेद प्रसिद्ध है। आप गुणपूर्ण है। इस जगत के सृष्टयादि विषयों के आप मुख्य कारण है। इतना होते हुए भी आप इस जगत से भिन्न है। इस जगत के आरंभ में आप थे, प्रलय काल में भी आप रहने वाले है। आप विकार रहित हैं और आनंदरूप हैं। वेद इन रूप गुणों का वर्णन करते हैं। हे नारायण मैं आपकी शरण में हूँ ।। १६ ।।

आप आनंदानुभव के मूर्त रूप हैं। आपके पाद कमलों को अपनी योग्यतानुसार सेवन करने वाले सद्गुरू लोग अपने शिष्यों को अनुग्रह व्यक्त उपदेश देते हैं। उनका वह उपदेश भक्तों को अपने अभीष्ट देने में समर्थ है। इससे भी बढ़कर आप दयाशील हैं। गाय अपने नये बच्चे को जितने प्यार से पालन पोषण करती है उससे भी ज्यादा प्यार से आप आपके आशीर्वाद को चाहने वाले हमको पुनः पुनः रक्षा करते हैं ।। १७-१८ ।।

उक्त रीति से सदभिप्राय: वाले बुद्धिमान् ध्रुवराज ने शास्त्रोंक्त रीति से भगवान् की स्तुति की। उससे संतुष्ट भगवान् ध्रुवराज का अभिनंदन करते हुए कहे "हे क्षत्रिय पुत्र, तुम मन में निश्चय करके जिसकी प्राप्ति के लिये तप कर रहे हो उसको मैं जानता हूँ। तेरा कल्याण हो। बड़े बड़े योगियों से भी पाने में असमर्थ वह अभीष्ट मैं तुमको दे रहा हूँ ।। १९ ।।

हे मंगलकारी ध्रुव, मैं तुम्हारे लिये जो स्थान दे रहा हूँ वह अन्य लोगों से कभी भी अप्राप्य है। वह स्थान अत्यन्त प्रकाशमान् है। वहां तुम्हारा नित्य निवास होगा। खलिहान में बैल जैसे रहते हैं या तेली के कोल्हू को बैल जैसे परिक्रमा करते हैं वैसे तुम्हारे इस स्थान को ग्रह नक्षत्र आदि सदाकाल परिक्रमा करते रहेंगे ।। २० ।।

इस स्थान को, यम, अग्नि आदि देवता, तथा नक्षत्राभिमानी देवता, कश्यप इंद्र सहित सप्तर्षि परिक्रमा करेंगे। ऐसे एक न हिलने वाले ध्रुवस्थान को तुम्हारे लिये हमने दिया है। इस स्थान को मनुकल्प का बंधन नही रहेगा। यह ब्रह्मा के दिन कल्प तक रहेगा ।। २१ ।।

इसके साथ साथ तुम्हारे पिताजी अपने सारे राज्य को तुम्हे सौंपकर वानप्रस्थाश्रम में वन जाने के बाद तुम उस सिंहासन पर सकल आयुरारोग्य सहित छत्तीस हजार वर्ष तक राज्यभार करो ।। २२।।

तुम्हारा भाई उत्तम शिकार करते मार जायेगा। उसकी चिंता करने वाली उनकी माता दावाग्नि का शिकार बनेगी ।। २३ ।।

मैं यज्ञों को बहुत चाहता हूँ। तुम श्रेष्ठ यज्ञों से मेरी आराधना करते हुए इहलोक में अपने सारे अभीष्टों का अनुभव करो ।। २४ ।।

अंतकाल में तुझको मेरा स्मरण आयेगा। मेरे स्मरणपूर्वक मृत्यु पाने के कारण सबसे नमस्कार योग्य, सप्तर्षि मण्डल के ऊपर मुझसे दिया हुआ उक्त ध्रुवलोक को पावेगा। वहां ब्रह्मा के एक दिन कल्प तक आधिपत्य करने के बाद जैसे मेरे भक्त स्वधर्मानुष्ठान करते हुए पुरावर्तन रहित बैकुण्ठ को प्राप्त करते हैं वैसे तुम भी मेरे पास बैकुण्ठ में आ जाओगे ।। २५ ।।

मैत्रेय उवाच !

इस प्रकार ध्रुवराज से पूजित भगवान् गरुड़ध्वज ध्रुवराज को अपना लोक को देकर (वाग्दान करते हुए) उस बालक के देखते देखते अदृश्य हो गये (अपने स्थान को चले गये) ।। २६ ।।

यहां ध्रुवराज भगवान के पाद सेवा से वर पाकर अपनी इच्छापूर्ति को पाने के बाद भी (भगवान की आज्ञा के कारण और छत्तीस हजार वर्ष रहना पड़ा) थोड़ा सा अतृप्त होकर अपने पिता के शहर

को चले आये ।। २७ ।।

विदुर पूछते हैं :-

ब्रह्मज्ञानी मैत्रेय जी, ध्रुवराज अविवेकी नही हैं। काल के अनुसार जो जो करना है उसको वे ठीक तरह से जानते हैं। भक्तों का इष्टार्थं देने में समर्थ और सर्वज्ञ श्री हरी से एक ही जन्म में वे ध्रुवलोक को प्राप्त किये अन्यों से यह असाध्य है। इतना होते हुए भी अपने इस जन्म में उनको असंतोष क्यों हुआ ।। २८ ।।

मैत्रेय उवाच :-

सौतेली माँ की चुभने वाली बातों से आहत हुये ध्रुवराज अपने अंतःकरण में क्रोध से उन्हीं की याद कर हे थे। मोक्ष देने वाले भगवान् के सामने होते हुए भी उस अंतर्निहित क्रोध के कारण मोक्ष के वर को नही मांग सके (नारद जी ने ध्रुवराज को क्रोध को त्यागने के लिये कहा था। किन्तु ध्रुवराज ने उसमें अपनी असमर्थता प्रकट की थी) इसी के कारण ध्रुवराज अपने पर ही नाराज हुए थे ।। २९ ।।

ध्रुवराज अपने से कहते हैं। सनंदनादि ऋषि आजन्म ब्रह्मचारी हैं। वे अनेक जन्मों के अभ्यास के फलस्वरूप एकाग्रचित्त से श्रीहरी के पादों के स्थान को जानते हैं। वैसे भगवान् श्री हरी के पादों की छाया को मै केवल छः महीने में पा सका ! किन्तु मेरा मन श्री हरी को छोड़कर अन्य ऐहिक विषयों को ही चिंतन करता था। इससे मैं पीछे ढकेल दिया गया,जिससे इस संसार में मुझें हजारो वर्षों तक रहना पड़ेगा ।। ३० ।।

मैं मंद भाग्य हूँ। मेरी मूर्खता देखो। हाय्! संसार बंध का नाश करने वाले साक्षात् श्रीहरी के चरण लाभ के बाद भी मैंने इन नश्वर पदों की ही याचना किया ।। ३१ ।।

मुझसे पहले ही मन्वंतर प्रलय काल तक रहने के इस पद को चाहने वाले मनोभिमानी देवता मेरे इस प्रयत्न को न सह सके। वे मेरी बुद्धि को ही व्यामोहित किये। गुरु नारद जी मुझे योग्य बाते कहें थे। किन्तु मैंने उनको ग्रहण नही किया ।। ३२ ।।

भगवान श्री हरी देवताओं में अत्यन्त उज्जवल प्रकाश वाले है। उनकी बंधक शक्ति अपार है। उस बंधक शक्ति के वश होनेवाला अज्ञान और तंद्रा के वश होता है। स्वप्न देखने लगता है। वह यथार्थ ज्ञान को खो बैठता है। उसको विपरीत ज्ञान आता है। मैं भी विपरीत ज्ञान से "मोहवश" हो गया। स्वतंत्र श्री हरी को छोड़कर अस्वतंत्र जगत के विषय में ही दुःख को अपनाया। अपने भाई उत्तम को अपना शत्रु समझ लिया। उसी से मैं मन का रोगी हो दुःख भोग रहा हूँ ।। ३३ ।।

इस जगत के स्वामी और आदानादि कर्ता प्रभु श्री हरी बहुत प्रयास से प्रसन्न होते है। ऐसे भगवान

का मैं तप करके उनके प्रत्यक्ष होने के बाद भी उनसे मैंने इस सिंहासन को ही मांगा। जिनकी आयु समाप्त हो गयी है उसको चिकित्सा करने जैसे यह मेरा प्रयास निष्प्रयोजक बन गया। हाय मेरा जैसा मंद भाग्य और कौन होगा ? ।। ३४ ।।

श्री हरी इस संसार बंध को छुड़ाने वाले हैं। मैंने उनसे इस संसार की ही याचना किया। भगवान जो चाहे उसको देने को तैयार थे। मैं चाहे होता तो वे एकाग्रमन दे देते, मेरे मन के अनुसार जब चाहे तब मोक्ष देते। पुण्यहीन मूढ़ आदमी के राजा से मूंठ भर चावल मांगने जैसे मैंने राज्य इत्यादि विषयों में ही अभिमान को मांगा" इस रीति से तरह तरह से ध्रुवराज पछतायें ।। ३५ ।।

मैत्रेय उवाच :- हे विदुर श्री हरी के पादारविंद की सेवा करने वाले आप जैसे एकांत भक्त अपने लिये कुछ न चाहते हुए केवल भगवान की इच्छा से ही अपना अभीष्ट पाते हुए तृप्त होकर जीवन चलाते हैं। श्री हरी में भृत्य भाव को छोड़कर और किसी पुरुषार्थ को वे नही चाहते हैं ।। ३६ ।।

राजा उत्तानपाद ने अपने पुत्र के पुनरागमन की वार्ता सुनी। परन्तु उस पर विश्वास नही हुआ। मै अभागा हूँ मुझे वह पुण्य कैसे प्राप्त होगा। मरे हुये को वापस आया कहे तो उस पर कोई विश्वास नहीं करेगा। वैसे ही राजा को ध्रुवराज के आगमन के बारे में विश्वास नही हुआ ।। ३७ ।।

इतने में राजा को देवर्षि नारद जी की बातें याद आयी। (१-७२ श्लोक)पुत्र वापस आने की सत्यता पक्की हो गई। संतोष का प्रवाह बहने लगा। समाचार देने वाले को अपने बहूमूल्य कंठहार का पारितोषिक (उन्होंने) दे दिये ।। ३८ ।।

पुत्र को देखने के औत्सुक्य से वे सोने के अलंकारों से सजे हुये घोड़े वाले रथ में बैठ गये। अपने साथ वंश ज्येष्ठों को, ब्रह्माणों को और मंत्रियों को ले लिये ।। ३९ ।।

शंखोद्घोष होने लगा। भेरियाँ बजने लगी। वेद पाठ होने लगा। इनके साथ वेणु गान भी मिल गया। वे बहुत जल्दी में शहर से बाहर आ गये ।। ४० ।।

उनके पीछे पीछे स्वर्णालंकृत पालकियों में दोनो राजमहिषी सुनीति और सुरुचि उत्तम के साथ आ रहे थे ।। ४१ ।।

इतने में ध्रुवराज शहर के बाहरी उद्यान को आ पहुंचे थे। वहाँ उनको देखते ही राजा अपने रथ के नीचे कूद पड़े। वे प्रेम विह्वल हो कर अपने पुत्र को देखे ।। ४२ ।।

बहुत दिनों से वे अपने पुत्र को देखने के लिये लालायित थे। ध्रुवराज अब श्री हरी के पाद स्पर्श करके अपने सारे पाप और बंधनों से छूट गये हैं। उनको वे अपने दोनो बाहुओं में लेकर

आलिंगन किये ।। ४३ ।।

वे प्यार से पुनः पुनः उनके सिर को सूंघे। अपने मनोभीष्ट को प्राप्त किए हुए अपने पुत्र के ऊपर हर्षातिरेक से अपने आनंदाश्रु से अभिषेक किये ।। ४४ ।।

ध्रुवराज सज्जनों में सज्जन हैं। वे अपने पिता से सत्कार पाकर उनके पाद द्वय को नमस्कार किये। उनसे आशीर्वाद मांगे। अपनी दोनो माताओं को सिर झुकाकर नमस्कार किये ।। ४५।।

पादों के ऊपर झुके हुए ध्रुव को सुरुचि ने अपनी दोनो बाहों से छोटे बालक जैसे उठाकर अपने गले लगा लिये। आँखों से पानी बहाती हुई रुद्ध कण्ठ से बोली "बेटे जुग जुग जीओ" ।। ४६ ।।

ध्रुवराज अब भगवान श्री हरी का दर्शन करके आ रहे हैं। उनसे द्वेष करने वाला कौन? उनसे छोटे उनमें भक्ति करने लगे। समान स्नेह करने लगे। बड़े लोग कारूण्य दिखाये। पानी जैसे स्वभावतः नीचे की दिशा में बहता है, वैसे सज्जनों का यह स्वभाव ही है ।। ४७ ।।

उत्तम और ध्रुवराज स्नेह कातर होकर परस्पर आलिंगन किये। वे दोनो रोमांचित हो गये। वे कितने प्रयास के बाद भी अपने आनंदाश्रुको रोक नहीं सके ।। ४८ ।।

रानी सुनीती अपने प्राणों से भी ज्यादा प्रिय ध्रुवराज को प्यार से गले लगा लीं। पुत्र के शरीर स्पर्श से ही उनकी सारी मनोव्यथायें दूर हो गयी। वे सुख सागर में डूब गयी ।। ४९ ।।

उस वीर माता ने अपने आनंदाश्रु से अपने पुत्र का अभिषेक किया। उधर उसके स्तनों से दूध बहने लगा। यह नयन जल और स्तन दुग्ध से वे अपने वीर्यव्रत पुत्र का अभिषेक करती रही ।। ५० ।।

वहां सम्मिलित लोग सुनीती की स्तुति करने लगे। हे रानी आप धन्य हैं। आपके पुण्य विशेष से ही यह पुत्र आपको पुनः मिला है। यह राजा बनकर सारे भूमण्डल पर राज्य करेगा। प्रजाजनों का दुःख निवारण करेगा। नष्ट हुआ सा पुत्र पुनः मिलना और किसी के भाग्य में होगा क्या ? ।। ५१ ।।

सुरुची आप पूर्व जनमों में भक्तों के दुःख को दूर करने वाले भगवान् श्रीहरी को परम भक्ति से सेवा की होंगी। उनकी सेवा करने वाले मरण को क्या इस पूरे संसार को ही जीतते हैं ।। ५२ ।।

इस रीति से लोगों के स्तुति पात्र ध्रुवराज को पुनः पाने से राजा उत्तानपाद को बहुत संतोष हुआ। सुनीती आदि समस्त लोगो ने राजा का गुणगान किया। राजा ने ध्रुवराज और उत्तम दोनों को हथिनी पर बिठाकर जुलूस में नगर प्रवेश किये ।। ५३ ।।

शहर के मुख्य पथ पर तोरण बनाये गये थे, फूलों से सजाया हुआ केले का स्तंभ, सुपारियों के

गुच्छों से पूरे नगर को सजाया गया था ।। ५४ ।।

प्रत्येक घर के दरवाजे को आम के पत्ते, वस्त्र के झंडे और मोती के हारों से श्रृगांर किया था। द्वार के सामने जल पूरित कलश और दीप जलाकर रखे थे। शहर चारो ओर के किलो, मंदिर के शिखरों और घर की ऊपरी मंजिलों को सोने से अलंकारित किया गया था। धुव्रराज के इस पुर प्रवेश का वैभव देखने आये हुए देवताओं के विमानों का उज्जवल प्रकाश पूरे शहर में व्याप्त हो गया था। शहर के चौरास्ते और महापथों में चंदन का लेपन किया गया था ।। ५५-५६-५७ ।।

जहाँ देखो, वहा फल-फूल, मंत्राक्षत चावल और अन्य पूजा सामग्री रखी गयी थी। शहर की प्रबुद्ध नारियाँ राजपथ पर जुलूस समेत आते ध्रुवराज को देखकर वात्सल्य से आशीर्वाद देते हुए सफेद सरसों, दही, पानी, फूल फलों को प्रदान करती थी। वे अपने कोमल कंठ से सुंदर गीत गाती थी। उन गीतों को सुनते हुए ध्रुवराज अपने पिता के राजगृह में प्रवेश किये ।। ५८-५९।।

उस राजगृह को बहुत मूल्यवान हीरों से अलंकृत किया गया था। अच्छी तरह से सजाये हुये मंच पर राजा ने ध्रुवराज को बिठाया। स्वर्ग के देवता के समान वहां ध्रुवराज बिराजे ।। ६० ।।

उस राजमहल में हाथी के दांतो से रचाए हुए और सोने से सजाये हुये तख्त लगाये गये थे। उन पर दूध के ऊपर की मलाई जैसी सफेदी और मुलायम बिछौने बिछाये गये थे। वहां के सारे बर्तन सोने के थे। दीवारों को स्फटिक शिला और अमूल्य मणियों से सजाया गया था। वहां सुन्दर स्त्री विग्रहों के हाथ के दीप प्रकाश देते थे। राजगृह के बाहर का उद्यान अनेक देववृक्षों से सुशोभित था। वहां पक्षिगण कूंजते हुए अपने साथियों को बुलाते थे। भृंग झंकार करते थे। उद्यान के बीच में सुन्दर सरोवर थे। उनकी सीढ़ियाँ वैडूर्य से रचाया था। सरोवर में कमल, कल्हार और कुमुदादि फूल खिले थे। वहां हंस, कारंड और चक्रवाक आदि जलचर पक्षी वास करते थे ।। ६१-६२-६३-६४ ।।

बहुत दिन बीतने के बाद राजर्षि उत्तानपाद लोगों से वर्णित अपने पुत्र की महिमा सुनकर और स्वयं देखकर अत्यन्त विस्मित हो उठे ।। ६५ ।।

अपने पुत्र को राज्यभार संभालने योग्य वयवाला देखकर उनके प्रजानुराग को देखते हुए और सारी प्रजा की इच्छानुसार ध्रुवराज को सिंहासन पर बिठाकर उनको राज्य भार सौंप दिये ।। ६६ ।।

तदनन्तर राजा उत्तानपाद अपने वृद्धत्व को पहचान कर वैराग्य से युक्त होकर खुद के और नियामक भगवान के बारे में चिंतन करते हुए अरण्य की दिशा में चल पड़े ।। ६७ ।।

।। यहां दसवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

ग्यारहवां अध्याय

मैत्रेय उवाच :-

शिंशुमार नाम के प्रजेश्वर की भ्रमी नाम की पुत्री से ध्रुवराज का विवाह हो गया। उनके कल्प और वत्सर नामके कल्पाभिमानी और वत्सराभिमानी पुत्र जनम लिये ।। १-२ ।।

उत्तम की अभी शादी नही हुई थी। एक दिन वह शिकार के लिये जंगल चला गया। वहाँ एक बलिष्ठ यक्ष ने युद्ध में उसको मारा। उनको ढूढ़ते हुए वन गयी हुई उनकी माँ सुरुची उसी जंगल में वडवानल से मर गयी ।। ३ ।।

भाई उत्तम की मरणवार्ता सुनकर ध्रुवराज अत्यन्त दुःखित हो गये। बंधु वध के दुःख को वे सह नही सके। वे क्रोध से जल उठे तथा विजयशील अपने रथ में बैठकर यक्षों की राजधानी अलकापुरी पर चढ़ाई किये ।। ४ ।।

वे उत्तर की दिशा में अपने रथ दौड़ाये। वे हिमालय पर्वत के उन्नत स्थान में स्थित अलकापुरी को देखे। वह नगर रूद्रानुचर राक्षसों से रक्षित था वह नगर यक्षों से भरा हुआ था ।। ५ ।।

महापराक्रमी दीर्घबाहू ध्रुवराज अपना शंख बजाये, उससे आकाश प्रतिध्वनित हुआ। उस शंख ध्वनि से यक्ष स्त्रियाँ घबड़ा गयी। किन्तु बलशाली यक्ष योद्धा उस शंख ध्वनि को सह नही सके। वे अनेक विध के शस्त्रास्त्र लेकर ध्रुवराज के ऊपर आ पड़े। बलशाली धनुष्य को अपने हाथ में लिये हुए पराक्रमी और महारथी ध्रुवराज ऊपर आने वाले उन सब यक्षों को एक ही समय में प्रत्येक पर तीन तीन बाण छोड़ दिये। वे बाण उनके फाल (ललाट) में लग गये। वे वीर योद्धा इससे अपनी हार को मान लिये। और ध्रुवराज के युद्ध नैपुण्यता की प्रशंसा किये ।। ६-७-८-९ ।।

किन्तु वे हार मानने को तैयार नही थे। पाद छुए हुए सर्प जैसे वे रोष और ज्यादा जोश से ध्रुवराज पर प्रत्याक्रमण करते हुए ध्रुवराज पर प्रत्येक छः छः बाण छोड़े ।। १० ।।

वे इतने से ही नही रूके। वे कुद्ध होकर प्रतीकार भाव से परिघ, खङ्ग, प्रास, शूल, परशु, शक्ति, ऋष्टि और भृशुंण्डी नामके नानाविध आयुधों से और विचित्र वर्णों के पुच्छ वाले एक लाख तीस हजार बाणों से, रथ, घोड़े, सारथी और स्वयं ध्रुवराज के साथ भीषण युद्ध किये ।। ११-१२ ।।

उस बाण वर्षा से घिरा हुआ "उत्तानपादपुत्र" वर्षा से आवृत पर्वत की तरह दूसरों को न दिखाई पड़े ।। १३ ।।

आकाश में खड़े होकर इस युद्ध को देखने वाले सिद्ध लोग हाहाकार करने लगे। वे कहे, 'मनुराज के पौत्र, ज्ञानी और सूर्य समान प्रकाशमान ध्रुवराज यक्षों के साथ युद्ध करते हुए मर गये ।। १४ ।।

इस क्षणिक जय से यक्षों ने जय सूचक सिंहनाद किये। इतने में जैसे सूर्य कुहरे से ऊपर उठ आते हैं वैसे ही ध्रुवराज का रथ बाण सागर को चीरकर आता हुआ दीख पड़ा ।। १५ ।।

ध्रुवराज अपने उग्र धनुष से टंकार किये। वे शत्रुओं को दुःख देते हुए बहती हवा जैसे बादलों को हटा देती है वैसे शत्रुओं के अस्त्र समूह को धूली पट किये ।। १६ ।।

वज्रायुध जैसे पहाड़ों को चूर चूर करता है वैसे ही ध्रुवराज के धनुष से निकले हुए नुकीले बाण यक्षों के रक्षा कवच को चीरकर उनकी छाती के अंदर घुस गये ।। १७ ।।

ध्रुवराज के शूल से यक्षों के सुन्दर कुण्डलों से सुशोभित सिर नीचे गिर पड़े। सोने के कंकण धारण किये हुए उनके हाथ कटकर भूवश हो गये। सोने के वृक्ष स्तंभ जैसे दिखने वाले उनके जंघे टुकड़े टुकड़े हो गये। जहां देखे वहां युद्ध भूमि में यक्षों का बहुमूल्य हार, केयूर, किरीट और कुण्डल गिरा हुआ ही दीख पड़ता था ।। १८-१९ ।।

बचे हुए इक्के दुक्के यक्ष राक्षस बाणों से क्षत विक्षत होकर विकलांग बन गये थे। वे सिंह से युद्ध में बचे हुए हाथी जैसे दिखते थे। वे रणांगण से भाग गये ।। २० ।।

सभी के भाग जाने से पूरे युद्ध क्षेत्र में शस्त्र धारण किय हुये एक भी ध्रुवराज को नही दिखे। ध्रुवराज शत्रुओं की नगरी अलकापुरी को देखना चाहते थे। किन्तु मायावी राक्षसों के आगे का तंत्र न जानने के कारण वे वही खड़े रहे ।। २१ ।।

ध्रुवराज कुछ न करते हुए योही खड़े रहने वाले नही हैं। वे अपने सारथी से बोले 'ये मायावी लोग है। इनके आगे की रणनीति जानने के लिये थोड़ा ठहरो। इतने में वहाँ एक बड़ी आवाज़ सुनाई पड़ी। वह झंझावात से अल्लोल कल्लोल समुद्र के शब्द सदृश था। उस ध्वनि के साथ दसोदिशा धूल से धूसरित (व्याप्त) हो गयी ।। २२ ।।

एक ही क्षण में चहूँ दिशायें काले मेघों से आवृत हो गयी। बिजली चमकने लगी और बारबार मेघ गर्जना होती रही ।। २३ ।।

उन मेघों से रक्त, मांस, मज्जा, मल-मूत्र और हड्डियों की वर्षा होने लगी। ध्रुवराज के सामने ही अनेक सिर रहित देह गिर पड़े ।। २४ ।।

इनके साथ आकाश से और पहाड़ की ओर से पत्थर गिरने लगे। चतुर्दिशाओं से गदा, परिघ,

खड्ग और मूसल आदि आयुध गिरने लगे ।। २५ ।।

विषका निश्वास छोड़ने वाले, शेष समान आँखों से आग को उगने वाले विषधारी सर्प आकाश से गिरने लगे। मदमत्त हाथी, सिंह और शेर के झुंड ध्रुवराज के ऊपर पड़े ।। २६ ।।

अपने लहरों से बड़ा आवाज करते हुए प्रलय जल के स्वरूप में (सुनामी से भी बढ़कर) बड़ा समुद्र ध्रुवराज को डुबाने आगे बढ़कर आ रहा है ।। २७ ।।

कायर लोगों को डराने वाले अन्यान्य तंत्र को उन क्रूर वृत्ति वाले मायावियों ने ध्रुवराज के ऊपर प्रयोग किये ।। २८ ।।

ध्रुवराज के ऊपर इस माया जाल को देखते हुये वहां आये हुए ऋषियों ने ध्रुवराज के क्षेम प्राप्ति के लिये भगवान की प्रार्थना की ।। २९ ।।

मुनयः ऊचुः :-

हे उत्तानपाद के पुत्र ध्रुवराज ! आप नारायण की स्तुति करें। नारायण के प्रार्थना करने वाले श्रम के बिना ही मृत्यु और संसार भयों से मुक्त हो जाते है। अन्य लोग इसको पार नही कर सकते, भगवान् श्री हरी नमस्कार करने वाले के दुःख को परिहार करने वाले हैं। वे शार्ङ्गधारी नारायण आपके शत्रुओं का नाश करें ।। ३० ।।

मैत्रेय उवाच :-

उन ऋषि वाक्यों को सुनकर ध्रुवराज ने आचमन किया और नारायण से अभिव्यक्त हुए नारायणास्त्र को अपने धनुष पर संयोजन किये ।। ३१ ।।

हे विदुर, भगवद् परोक्ष ज्ञान होते ही इस संसार का क्लेश जैसे नाश होता है वैसे ही ध्रुवराज के नारायणास्त्र का अनुसंधान करते ही यक्षों से कृत इंद्रजाल माया नष्ट हो गयी ।। ३२ ।।

ऋषियों ने याद किया हुआ इस ज्ञान रूप नारायणास्त्र को छंदस् ऋषि और देवता स्मरण पूर्वक अपने महाधनुष में जोड़कर छोड़ दिये तो उससे सोने के रंग वाले और हंस समान सफेद पूंछ वाले बाणों के झुंड निकलेंगे और मोर के समूह जैसे वन में प्रवेश करते हैं वैसे बड़े आवाज़ करते हुए शत्रु समूह में प्रवेश करेंगे ।। ३३ ।।

मोर के सामने सांप का क्या चलेगा ? ध्रुवराज के छोड़े हुए उन बाणों से ऊपर आए हुए यक्षों के, हाथ, पाँव, पेट कट गए। युद्ध में देह त्याग दिये यक्षों को परिव्राट् योगी को मिलने वाला उत्तम लोक

मिला। "द्वामिमौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडलभेदिनौ। परिव्राट् योग युक्तश्च रणे अभिमुखे हत:" इस श्लोक के अनुसार युद्ध में मरने वाले वीर को उत्तम लोक मिलता है ।। ३५ ।।

इस रीति से ध्रुवराज यक्षों के समूह का नाश करते रहे। किन्तु मरने वाले यक्ष ऐसे कोई (बड़ा) अपराध नही किये है। ऋषियों के साथ युद्ध देखने आये हुये स्वायंभुव मनु महाराज को यह अच्छा नही लगा। वे पितामह अपने (उत्तानपाद के पुत्र,) पौत्र के पास आकर बोले ।। ३६ ।।

अरे पौत्र, अति क्रोध करना योग्य नही हैं। वह सदा वर्जनीय है। अतिक्रोध से यथार्थ ज्ञान लुप्त होता है। वह नरक का कारण बनता है। तुम क्रोध वश होकर पाप रहित इन लोगों की हत्या कर रहे हो। इन निरपराधियों की हत्या की सज्जन लोग निंदा करते हैं। यह हमारे वंश में जन्मे हुए के करने योग्य काम नही है। कोई एक यक्ष तुम्हारे भाई का वध करने का अपराध किया होगा। किन्तु उसके बदले में भ्रातृवत्सल तुम भाई के मरण से दुःखित होकर इतने यक्ष लोगों का संहार किये हो ।। ३७-३८-३९ ।।

मन को अपने वश में न रखते हुए मूर्ख जैसे इस रीति से प्राणी हिंसा करना इंद्रियों का नियमन करने वाले श्री हरी के भक्तों को शोभा नही देता ।। ४० ।।

तुम श्री हरी को सर्व प्राणियों में रहने वाले सर्व प्राणियों को रहने के लिये एक ही आवास स्थान मानकर उपासना करते हुए अन्यों से कितनी भी उपासना करने पर भी न मिलने वाले नक्षत्रों से भी उन्नत स्थान को प्राप्त किये हो ।। ४१ ।।

श्रीहरी के अनुग्रह प्राप्त तुम अब भी उनको सर्वांतर्यामी मानकर उपासना करते हो। इसी कारण से भगवद् भक्त तुमको गौरव देते हैं। भगवद्भक्तों के नियमों का तुम अन्य जनों को उपदेश देते रहते हो। इतना होते हुए तुम यह निंद्य कर्म को क्यों और कैसे किये ।। ४२ ।।

भगवद्भक्त शीतोष्ण तथा सुख दुःखों को समान मानते हैं। वे अपने से अधम लोगों में कारूण्य रखते है। समानों में स्नेह करते हैं। सब प्राणियों में भगवान को समान रूप से देखते हैं। स्नेहितो में स्नेह करते हैं शत्रु में शत्रु भाव से रहते हैं। इससे भगवान श्री हरी संतुष्ट होते हैं ।। ४३ ।।

संतुष्ट होने से श्रीहरी योग्य जीवों को सत्वादि गुणों से पार करते हैं। तब जीव प्राकृत शरीर को छोड़कर अपने स्वयं कर्तृत्व अभिमान को त्याग देता है। तब जीव इस जड़ शरीर से सम्पर्क न रखने वाले गुणपूर्ण और परमानंद रूपी "नारायण" को प्राप्त कर लेता है ।। ४४ ।।

अप्राकृतावस्था में जीवों के स्वरूप देह में भी स्त्री पुरुष भेद रहता है। उसी के अनुसार पंचभूतात्मक सृष्टि में भी स्त्री पुरुष भेदयुक्त सृष्टि हुयी। उन स्त्री पुरुषों के देह संबंध से इस सृष्टि का

विस्तार हुआ। इन देहों की सृष्टि भी पंच भौतिक सृष्टि ही है ।। ४५ ।।

पालन करने वाले राजा लोग और संहार करने वाले यम आदि ये पंच भौतिक देहवाले ही हैं। श्रीहरी की इच्छानुसार सत्वादि गुणों में व्याप्त होकर, सम विषमादि व्यवस्थायें करते हैं ये ही सृष्टि स्थिति और संहार के कारण बन जाते हैं ।। ४६ ।।

लोह चुंबक के सामने लोह के चलन की ही तरह भगवान के सन्निधान में उसी (भगवान) के प्रविष्ट होकर चलने से यह जगत हिलता रहता है। भगवान इस सृष्टि के निमित्त कारण है ।। ४७ ।।

भगवान ही इस विश्व के मूलभूत कारण है। भगवान् अपने स्वरूप सामर्थ्य से प्राकृत सृष्टयादि कार्यों में उन क्रिया के अनुसार विभाग करते हुए निरायास से ये सारे काम संभालते हैं। पर लगता है वे कुछ नही करते। इतनी आसानी से वे सृष्टयादि कार्य करते रहते हैं। सृष्टि के नाश करते समय उनमें द्वेष भाव न रहने के कारण वे हिंसक नही बनते। परिपूर्ण श्री हरी की इन लीलाओं को अल्प वीर्य वाले हम कैसे समझ सकते हैं ।। ४८ ।।

भगवान् इस जगत का अंत (प्रलय) करने वाले है। किन्तु उनका अंत नही है। ये अनन्त हैं। इनको काल कहते हैं। ये सारे जीवों के कर्म फल को पक्व कर हैं। कर्म के अनुसार जीवों का नाश करते हैं। ये सृष्टि करते है, इतना ही नही ये ही सब के मुख्य कर्ता हैं। ज्ञान पूर्ण है। ये छुपके कुछ करते नही। माता पिता पुत्र सभी देह वालो को इन्होने ही सृष्ट किया है। और अपने अधीन यमादि से शरीर वियोग कराते हुए मृत्यु के भी मृत्यु बन गये है ।। ४९ ।।

भगवान जीवों के पुण्य और पाप के अनुसार उनको प्रेरणा देते रहते हैं। भगवान किसी को उसकी योग्यता से ज्यादा फल नहीं देते। वैसे ही किसी से पक्षपात नही करते। यह शास्त्रों का कहना है। हवा के साथ धूल जैसे उड़ती है वैसे ही अस्वतंत्र कर्मबद्ध जीव सर्व तंत्र स्वतंत्र भगवान श्री हरी का अनुसरण करते हुए कर्म करता है ।। ५० ।।

कई लोग (मीमांसक) इनको कर्म कहते हैं क्योंकि वे कर्मियों में रहकर कर्म करवाते हैं) कई (चार्वाक) स्वभाव बोलते हैं क्योकि विश्व की सृष्टि करना इनका स्वभाव है, कई (पौराणिक) काल कहते हैं क्योंकि वे ही प्रलय करते हैं। कई दैव (ज्योतिर्विद) बोलते हैं क्योकि वे खेलते खेलते सबका नियामन करते हैं। कई (वात्सायन) इनको काम नाम से पुकारते हैं क्योंकि वे (नारायण) जीवों को इच्छितार्थ प्रदान करते हैं। वेद द्रष्टार ऋषि भगवान को उन वस्तुओं में प्रेरक होकर रहते हुए उन शब्दों से वाच्य मानते हैं ।। ५१-५२ ।।

हे बालक ध्रुव, सुनो, भगवान किसी को अपने को दिखाना चाहते हैं तो दिखाते है, नहीं तो नहीं

इसीलिये व्यक्त और अव्यक्त दोनो नाम से पुकारे जाते हैं। वे अप्रमेय हैं, लक्ष्मी सहित और कोई भी पूर्णतया उनको नही जानते। कर्म इत्यादि से वे अपनी नाना तरह की शक्तियों को व्यक्त करते रहते हैं। इनको और इनके कामों को ब्रह्मादि सकल देवता साकल्येन नही जान सकते। हम कैसे जाने ? ।। ५३ ।।

कुबेर के अनुचर ये यक्ष लोग तुम्हारे भाई उत्तम के हत्यारे नही हैं। इसको समझो। भगवान् श्री हरी ही स्वतंत्र कारण है। जगत की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिये वे ही मुख्य कारण है। जीव उनके अधीन होकर काम करता है। भगवान को अपने कार्य का अहंकार (मै करता हूँ नाम की भ्रांति) नही है। इसी कारण उनको प्राकृत कर्म या पुण्य पाप का लेप नहीं है ।। ५४-५५ ।।

उनकी शक्ति उन्ही की है (स्वरूपभूत है) वह शक्ति उनके अधीन है। यही शक्ति चेतन अचेतन (जड़) के स्वभाव को नियमन करती है। वैसे ही काल और कर्मों का भी नियमन करती हैं। वे अपने अधीन और अस्वतंत्र कारणों को लेकर जीवों को देने लेने के कर्म वाले श्रीहरी सृष्टि पालन और संहार करते हुए प्राणियों को उनके योग्य गति देते हैं ।। ५६ ।।

जैसे नाक में नथने (नाक में रस्सी डालना) से बैल वश में रहता है वैसे ही सारे प्रजेश्वर भगवान के अधीन होकर उन्ही की पूजा करते हैं। भगवान श्री हरी सारे जगत को आश्रय देने वाले हैं। वे नित्य मुक्त हैं। वे मरण रहित है। वे ही सर्व प्राणियों का संहार करते हैं। तुम "दैव" नामक उन्ही भगवान के शरण हो जाओ ।। ५७ ।।

जब तुम पांच वर्ष के थे उस समय सौतेली माता की बातों से दु:खित होकर अपनी माँ को भी त्याग कर वन गये। वहां सबको देखने वाली आँख वाले भगवान श्री हरी तप से आराधना करते हुए तुम स्वर्ग से भी उन्नत स्थान ध्रुव लोक को प्राप्त किये ।। ५८ ।।

पुनः अपरोक्ष ज्ञानी होकर उन्ही की उपासना करो। यह जड़ और चेतन युक्त जगत उन्ही के आश्रय में है यह अनुभव हमें आता है। यह अनुभवपूर्ण भाव से उपासना कर तुमने उनका साक्षात्कर कर लिया। अपने भौतिक शरीर को छोड़े हुए विरोध रहित योगियों से प्राप्त हैं। प्रभु को पुनर्जन्मादि नही है। विषयों के अधीन न होते हुए इंद्रियातीत है। वे एक मात्र प्रमुख हैं, सर्वोत्तम है। वे ही विशिष्ट आनन्द वाले मुक्ति को देने वाले हैं। देश काल और गुण से वे अतीत हैं, वे आनंद स्वरूपी है ।। ५९ ।।

देखने के लिये विरुद्ध लगने वाले स्थूलत्व और अणुत्व आदि विरुद्ध गुण उनमें एकत्र रूप से सम्मिलित हैं। तुम उन्हीं की शरण हो जाओ। उसमें अविच्छिन्न और सर्वोत्तम भाव से भक्ति करो। इससे क्रमशः तुम्हारा अज्ञान नष्ट होने लगेगा। मैं और मेरापन नष्ट हो जाएगा। इस दुरुह संसार सागर को सुलभ रीति से पार कर जावोगे ।। ६० ।।

जैसे औषधि से रोग को दूर किया जाता है वैसे ही अपने श्रेयस के प्रतिबंधक हुये इस क्रोध को सही रीति से शास्त्र ज्ञान को पाकर नाश करो ।। ६१ ।।

हे राजा तुम्हारा कल्याण हो। रोष युक्त पुरुष को देखकर ज्ञानी लोग बहुत उद्विग्न होते हैं। भगवान श्री हरी से भय रहित मोक्ष की अपेक्षा करने वाले को इस रोष के अधीन नही होना चाहिये ।। ६२ ।।

तुमने क्रोध के वश में आकर इन्हे अपने भाई का हत्यारा मानकर रुद्र से पालित और रुद्र के स्नेही धनाधिपती कुबेर की अवज्ञा की है ।। ६३ ।।

रुद्र और यक्षपति कुबेरों का तेज हमारे वंश को नष्ट करे इसके पहले जल्दी ही उनको दंडवत् प्रणाम करते हुए मधुर वाक्यों से उनको संतुष्ट करो ।। ६४ ।।

अपने पूज्य पितामह के हित वचनों को सुनकर ध्रुव उनको प्रणाम किये और बोले हे पूज्य! मैं आपकी आज्ञानुसार चलता हूँ। अपने भाई और सौतेली माँ के मरण से दुःखित होकर मैने यह दुष्कृत्य किया है। मुझे क्षमा करें ।। ६५ ।।

इस रीति से स्वायंभुव मनु ने अपने पौत्र को अनुशासन में करते हुए उनसे नमस्कृत होकर ऋषि मुनियों के साथ अपनी राजधानी को चले गये।

।। यहां ग्यारहवां अध्याय समाप्त होता है ।।

बारहवां अध्याय

मैत्रेय उवाच :-

ध्रुवराज द्वारा युद्ध को त्याग देने का समाचार यक्षराज कुबेर को मिला। उनका भी क्रोध शांत हो गया। स्तोत्र कर रहे यक्ष किन्नर और चारणों के साथ वे ध्रुवराज के समक्ष आ गये। ध्रुवराज अपने दोनो हाथ जोड़कर खड़े हुए ।। १।।

कुबेर उवाच,

हे क्षत्रिय बंधो ! तुम अपराध से मुक्त हो। तुम्हारे बारे में हमें सन्तोष हो गया है। तुम्हारे पितामह जी के उपदेशानुसार तुम अपने द्वेष को छोड़ दिये हो ।। २ ।।

तुम स्वतंत्र रीति से यक्षों का वध नहीं किये। यक्षों ने भी स्वतंत्र रूप से तुम्हारे भाई का नाश नही किया। प्राणियों के मरण और जनन के बारे में केवल काल नियामक भगवान श्री हरी ही स्वतंत्र कर्ता है ।। ३ ।।

जीव के शरीर में रहने वाले स्वतंत्र कर्ता भगवान को न पहचानते हुए पुरुष खुद को ही स्वतंत्रकर्ता मानते है। हम जागृत अवस्था में कई विषयों का और वस्तुओं का अनुभव करते हैं। उन्ही के संस्कार वश स्वप्न में भी वे पदार्थ दीख पड़ते हैं। वैसे ही हमारे न रहने वाले स्वातत्र्य को अपना मानते हुए उन्ही को पुनः पुनः स्मरण करते हुए अपने सुख को खोकर, मै, मेरा पुत्र, मित्र इत्यादि संबंधों से दुःख का अनुभव करते हैं। वैसे ही दुष्ट जीव कभी कभी सुख का भी अनुभव करता है ।। ४ ।।

हे ध्रुवराज, तुम अपने नगर को वापस जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। सर्व प्राणियों में भगवान ज्ञानानंदादि गुणों से पूर्ण मूर्तिरूप में और सबमें प्रादेश मात्र के रूप में रहते हैं। वे आत्मसामर्थ्य से परिपूर्ण है किन्तु गुणत्रयात्मक इस जड़ प्रकृति से बद्ध नही है। सारे लोग इनके पादपद्म का पूजन करते हैं। वे संसार बंध के परिहारक हैं। सर्व प्राणियों को क्रियात्मक शक्ति देने वाले सर्वश्रेष्ठ स्वामी समझकर सर्वांतर्यामी मानकर उन्ही की उपासना करो। इससे वे तुमको मोक्ष देंगे ।। ५-६ ।।

ध्रुवराज मुझसे वर मांगने में संकोच मत करो। तुम वर मांगने योग्य हो। तुम्हारे मन में क्या है उसको निस्संकोच मांगो। हमने सुना है कि तुम सदाकाल भगवान के पाद कमलों में आसक्त हुये मन वाले हो ।। ७ ।।

मैत्रेय उवाच :-

ध्रुवराज महाभागवत हैं। महा भक्त हैं। वे भगवान को छोड़कर अन्य किसी से मांगने वाले नहीं हैं। तो भी वे लोक शिक्षणार्थ वे श्री हरी के निरंतर स्मरण रहने का वर मांगे। इस निरंतर स्मरण से मानव तरने में कष्ट साध्य-असाध्य अज्ञान को विशेष प्रयत्न के बिना ही पार करता है ।। ८ ।।

इलिबिला के पुत्र कुबेर संतुष्ट होकर ध्रुवराज को वर देने के बाद देखते देखते अदृश्य हो गये। ध्रुवराज अपनी राजधानी को वापस आ गये ।। ९ ।।

राजधानी को वापस आने के बाद ध्रुवराज ने विषयों के बारे में विचार भी न करते हुए बड़े और श्रेष्ठ यज्ञों के आचरण के मुखांतर भगवान की आराधना करते रहे। उन्होने यज्ञों में बहुत बड़ी मात्रा में दान दक्षिणा दी। यज्ञ रूपी भगवान् कर्म बंधन न रहने वाले निष्काम कर्म से प्राप्त होने वाले अकर्म नाम के मोक्ष को देने वाले प्रभु हैं ।। १० ।।

ध्रुवराज सर्वांतर्यामी और सकल गुणपूर्ण श्री हरी में प्रवाह रूप में निरंतर रहने वाली भक्ति किये। वे इसके पहले अपने में और सर्वप्राणियों में रहने वाले सर्वत्रव्यापी भगवान का दर्शन किये थे। उसी बिंबरूपी भगवान का उनको दर्शन मिलता रहा ।। ११ ।।

ऐसे शील सम्पन्न ब्राह्मणप्रिय, दीनवत्सल, धर्मज्ञ और प्रजापालक ध्रुवराज को प्रजा लोग अपना पिता ही मानती थी ।। १२ ।।

सुख और दुःख को समान रीति से अनुभव करते हुए ध्रुवराज ने अपने प्रारब्ध कर्म को नाश करते हुए छत्तीस हजार वर्षकाल भूमण्डल का राज्य भार किये। इतने वर्ष सुख दुःख भोगते राज्यभार करने के बाद भी उनकी इंद्रियों के पटुत्व में कमी नही आयी थी। इस समय को वे धर्म अर्थ और काम का योग्य रीति से संपादन किए। वैसे ही उनका शरीर धर्म, अर्थ, कामों का प्रयोजनकारी होकर भी युवावस्था में ही था। (वे चतुर्थ पुरुषार्थ प्राप्ति हेतु) अपने पुत्र को सिंहासन पर बिठाये ।। १३-१४ ।।

भगवान श्री हरी इस जगत के लिये आधार रूप हैं। उन्ही की इच्छा से यह भूमण्डल का निर्माण हो हुआ। स्वप्न में देखी गयी वस्तुयें वास्तव में नहीं मिलती वैसे ही ये सारी गंधर्व नगरी समान अशाश्वत है। हमारी देह, पत्नी, पुत्र, स्नेही, सैन्य, सम्पत्ति, कोश अंतःपुर, विहार भोग सामग्रियाँ और चारो ओर समुद्र से घिरा हुआ भूमण्डल ये सारे काल नामक भगवान के अधीन हैं। नाशवान् हैं। वे जब चाहे तब इसको नाश करते हैं। इन सारे विषयों को मन में लाते हुए उनका अभिमान छोड़कर ध्रुवराज बदरिकाश्रम चले गये ।। १५-१६ ।।

वहाँ की विशाला नामक नदी के पुण्य जल में नहाये। वे अंतःकारण से भी शुद्ध होकर सुखासन में बैठकर प्राणायाम से वायुजय को प्राप्त किये। मन को और इंद्रियों को विषयों से वापस खींचकर भगवान के स्थूल रूप इन चतुर्दश लोकों का चितंन किये। उसके बाद समाधि लगाकर उस स्थूल रूप के ध्यान को छोड़कर अपने हृदयस्थ बिंबरूप का चिंतन और दोनो में अभेद चिंतन करने लगे ।। १७।।

वे सदाकाल श्रीहरी के ध्यान में मग्न होते रहते थे। उनका भक्ति प्रवाह जैसे अविरत बहता था। वे पुनः पुनः आनन्द विभोर होकर संतोषाश्रु बहते थे। कभी कभी रोमांचित होते थे। उनका मन भक्ति से भरा था, तथा शरीर रोमंच से। वे अपने शरीर को भी भूल गये और मैं ध्रुव हूँ यह भाव भी उनसे चला गया। वे श्री हरी को छोड़कर अन्य वस्तु का विचार भी नहीं करते थे ।। १८ ।।

ऐसे रहते हुए एक दिन वे आकाश से उतरता हुआ एक श्रेष्ठ विमान देखे। वह विमान उदयमान पूर्णचंद के समान दसो दिशाओं को प्रकाशित करता था ।। १९ ।।

उस विमान में वे दो देवता पुरुषों को देखे। वे देवपुरुष नील वर्ण के (वाले) थे। उनके चार बाहु थे। वे किशोर वयके थे। उनकी आँखे कमल समान अरु ण वर्ण की थी। वे किरीट हार, कुण्डल धारण करते हुए हाथ में गदा पकड़े थे। वे पीतांबर पहने थे ।। २० ।।

ध्रुवराज उनके वेषभूषण से जान गये कि ये देवपुरुष श्री हरी के किंकर हैं वे जल्दी से उठ खड़े हुये। वे श्री हरी का नाम स्मरण करते हुए दोनो हाथ जोड़कर उनको नमस्कार किये ।। २१ ।।

भगवान के पाद चिंतन में ही अपने मन को लगाये हुये, दोनो हाथ जोड़े हुये थोड़ा सा सिर झुकाए हुए ध्रुव को देखकर प्रसन्नता से हंसते हुए वे नंदसुनंद नामके देव पार्षद बोले ।। २२ ।।

हे मंगलकर ध्रुवराज! तुम्हारा कल्याण हो। सावधानी से हमारी बातें सुनों। तुम पांच वर्ष के छोटे लड़के थे। उसी समय तप करके श्री हरी की कृपा पाये ।। २३ ।।

उन जगद्रक्षक शार्ङपाणी श्री हरी के हम द्वारपालक हैं। आपको हम उस शिंशुमार लोक को ले जाने के लिये आये हैं ।। २४ ।।

अन्य लोगों को न मिलने वाले इस विष्णु लोक को तुमने पा लिया है। उस लोक में भगवान शिशुमार के रूप और तुमको छोड़कर अन्य लोग प्रवेश नही पायेंगे। केवल देवता प्रवेश कर सकते है। बाकी के ज्ञानी दूर से देख सकते हैं। उस लोक की चंद्र सूर्य, अश्विन्यादि नक्षत्र प्रदक्षिणा रूप से परिक्रमा करते रहते हैं। वह स्थान तुम्हारा बन गया है ।। २५ ।।

उस स्थान को तुम पालो। तुम्हारे पूर्वज और तुम्हारे से कनिष्ठ और कोई इस पद को पाये नहीं।

यह स्थान अत्यंत पवित्र है सारे लोग इसको नमस्कार करते हैं। यहां शिशुमार रूप से श्री हरी सदाकाल वास करते हैं ।। २६ ।।

सर्वोत्तम शिंशुमार रूपी भगवान ही इस विमान को भेजे हैं। तुम इस विमान में चढने योग्य हो ।। २७ ।।

मैत्रेय उवाच -

महापराक्रमी श्री हरी को अत्यन्त प्रिय ध्रुवराज श्री हरी के द्वारपालक नंद सुनंद की सुमधुर बातों को ध्यान से सुने। वे स्नान किये, नित्य मंगल कार्यों को समाप्त किये। वहां के आश्रमवासी ऋषिमुनियों को भक्ति से नमस्कार करते हुए उनके स्तोत्र किये ।। २८ ।।

वे उन द्वारपालकों को परिक्रमा और अर्चना करते हुए प्रणाम किये वे उस श्रेष्ठ विमान में चढ़ने के लिये सिद्ध हुए ।। २९ ।।

उस समय दुंदुभी बजने लगी मृदंग पणव और अन्य वाद्यों का वादन हुआ। गंधर्व श्रेष्ठ गाने लगे। पुष्प वृष्टि हुई ।। ३० ।।

स्वर्ग लोक जाने के लिये विमान पर चढ़ने वाले ध्रुवराज अपनी माता सुनीती का स्मरण किये। मेरी माँ को छोड़कर मै कैसे स्वर्ग को जाऊँ ? वे उनको छोड़कर स्वर्ग न जाने का निश्चय कर डाले ।। ३१ ।।

ध्रुवराज के इस मनोनिश्चय को जानकर वे देव द्वारपाल उनको विमान से आगे जाने वाली सुनीती देवी को दिखा दिये ।। ३२ ।।

मार्ग के बीच में अन्य विमानों में आरूढ़ देव देवताओ ने ध्रुवराज का अभिनंदन करते हुए उनके ऊपर पुष्प वृष्टि किये। आगे रास्ते में वे क्रमशः ग्रहों को देखते चले ।। ३३ ।।

वे (अपनी माँ को देखने के लिये) सीधा स्वर्ग को गये। वहां अपनी माता और ऋषियों को नमस्कार करते हुए फिर उतरकर निश्चल गति वाले (न हिलने वाले) ध्रुवलोक में प्रवेश किये ।। ३४ ।।

उन पुण्य कर्मियों का वर्णन करते हैं। जो सदाकाल भगवान का ही ध्यान करते हैं, सर्वत्र भगवान को ही देखते हैं, अंतर बाह्य शुद्धि रखते हैं, सब प्राणियों को प्यार करते है, भगवान श्री हरी के भक्तों के ही अपना बंधु मानते है। वे ही ध्रुव लोक में प्रवेश पाते हैं ।। ३६ ।।

इस प्रकार उत्तानपाद राजा के पुत्र, श्री हरी के भक्त और शुद्ध जीवन चरित्र वाले ध्रुवराज तीनो

लोको में चूडामणि रत्न के समान शोभा पाये ।। ३७ ।।

तीव्रगति से चलने वाले, अस्त न होने वाले (सदाकाल प्रकाशित रहने वाले) ज्योतिष् समूह (सूर्यादि नक्षत्रगण) खलिहान में पाठों से बांधे हुए बैल की तरह किन्तु सदाकाल चक्कर काटते रहते हैं। इन नक्षत्रों के इशारे पर हम अब भी ध्रुव प्रदेश को पहचान सकते हैं ।। ३८ ।।

अन्य लोग बजा न सके ऐसे बढ़िया वीणा को बजाते हुए नारद जी राजा प्रचेतस् के सत्रयाग में पहुंचे। वे ध्रुवराज की महिमा को ठीक तरह जानते ही थे। वे उस सत्रयाग में ध्रुवराज की यशो गाथा गाने लगे ।। ३९ ।।

नारद जी कहे :-

सुनीती अपने पतिदेव को भगवान मानकर पूजन की। (पती के अंदर भगवान को ही देखी) इसी के कारण से उनके पुत्र ध्रुवराज बड़े तपस्वी बने। तप करके मोक्ष पाने वाले अनेक ऋषि है। किन्तु कोई भी उनके समान तपः फल को न पाये। और राजा क्या पा सकते हैं ? ।। ४० ।।

पांच वर्ष का लड़का सौतेली माँ के कटु बातों से बिगड़े हुए मन से दुखते हुए दिल से वन गया। वहा हमारे उपदेशानुसार प्रभु परमेश्वर श्री हरी की उपासना करते हुए और किसी को न मिलने वाले भगवान को अपने वशवर्ती कर लिया। इस पांच वर्षीय बालक ने चन्द दिनों में श्री हरी को प्रसन्न किया, उनके अनुग्रह से शिंशुमार रूपी श्री हरी के स्थान ध्रुव प्रदेश को प्राप्त किया। जिस स्थान को धुव्रराज ने प्राप्त किया है, उस स्थान को अन्य राजा पाने की इच्छा भी कर नही सकते तो उसको पाने की बात तो दूर रही ।। ४१-४२ ।।

मैत्रेय उवाच,

विदुर जी आप ध्रुवराज की कथा को सुनना चाहे। ध्रुवराज की कीर्ति महिमा बहुत बड़ी है। वह सज्जनों को बहुत इष्ट है। आपके लिये मैंने उस कथा को (पूर्ण रूप से) बताया ।। ४३ ।।

ध्रुवराज की इस कथा को जो पढ़ता है या सुनता है वह धन्य है। इस कथा को पढ़ने से, सुनने से और सुनाने से धन लाभ होगा, कीर्ति मिलेगी, आयुष्य की वृद्धि होगा, पुण्य भी बढ़ेगा। यह कथा क्षेम देने वाली, स्वर्ग देने वाली और अंत में मोक्ष भी देने वाली होगी। इससे मन शुद्ध होता है, पाप का नाश होता है, यह अत्यन्त प्रशंसनीय है ।। ४४ ।।

ध्रुवराज भगवान अच्युत को अत्यंत प्रिय हैं (इसके लिये उनको च्युति रहित स्थान मिला) इस कथा को श्रद्धा से बार बार सुनने वाले, पढ़ने वाले, या सुनाने वाले को भगवान में भक्ति उत्पन्न होगी।

उस भक्ति से अविद्यादि कष्टों का निवारण होता है ।। ४५ ।।

ऊंचेपद (या स्थान) को पाने के चाह वाले इस कथा के श्रवण पठन और पाठन से योग्य महत् स्थान को पाते हैं। इस कथा को सुनने वाले में शील की वृद्धि होती है। इसके अभ्यास से तेज को अपेक्षा करने वाले तेज को प्राप्त करते हैं। जो अपने मन को जीत लिये है उनको इस कथा के सुनने से बड़ा बहुमान मिलेगा ।। ४६ ।।

इस उत्तम कथा को सुबह शाम ब्राह्मणों के सभा में एकाग्रचित्त होकर संकीर्तन करना चाहिये। विशेष कर पूर्णिमासी, अमावस्या, द्वादशी इत्यदि दिनों में, श्रवणनक्षत्र वाले दिन में, दिनक्षय में, व्यतीपात में, संक्रांति के दिन, भानुवार (रविवार) में श्रद्धावान लोगों को इस कथा का श्रवण करवाना चाहिये। कथा करने वाले को और कुछ न चाहते हुए केवल भगवान के श्री चरणों की शरण होकर कथा वाचन करना चाहिये। ऐसे करने वाले सदाकाल संतुष्ट रहते हैं ।। ४७-४८-४९ ।।

ध्रुवराज की कथा के निमित्त में परात्पर तत्वज्ञान को न जानने वाले लोगों को सर्वोत्तम श्री हरी के उनके अधीन लक्ष्मादि अन्य देवताओं के और इस जगत् तत्व के बारे में कथा वाचकों समझा देना चाहिये। इससे परम कृपालु और दीन सज्जनों के मार्ग दर्शक और उपदेशक श्री हरि की पूर्ण कृपा मिलेगी। इतना ही नही इंद्रियाभिमानी देवताओं का अनुग्रह भी मिलेगा ।। ५० ।।

हे विदुर खेल खेलने की आयु में केवल खिलौना नही किन्तु माँ सहित अपने घर को ही त्यागते हुए ध्रुवराज श्री हरी के शरण में गये। इससे उनका कर्मों का विपाक (शुद्ध) हो गया और वे कीर्तिमान हो गए आपके लिये मैंने उनकी कथा कही है ।। ५१ ।।

।। यहाँ बारहवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

तेरहवाँ अध्याय

श्री शुक उवाच :- हे राजा परीक्षित् ! मैत्रेय वर्णित ध्रुवराज के शिंशुमार लोकारोहण की कथा सुनकर विदुर जी को श्री हरी में और भी भक्ति बढ़ी। वे हरी की कथा को और भी सुनना चाहते थे। इसके लिये वे मैत्रेय से पुनः प्रश्न किये ।। १ ।।

विदुर उवाच :-

पिछली कथा में आपने कहा कि नारद जी प्रचेतस के सत्रयाग में ध्रुवराज की कथा का संकीर्तन किये। वे प्रचेतस कौन हैं ? उनके पिता कौन ? किस वंश में वे प्रसिद्ध है ? वह सत्रयाग कहा हुआ ? भगवान को अपनी आखों से देखे हुए नारद जी बड़े भगवद्भक्त हैं। वे श्री हरी की परिचर्या के बारे सें (मोक्ष साधन के बारे में) क्रियायोग नाम से नारद पंचरात्र नाम के ग्रंथ में विशेष प्रतिपादन किये हैं ।। २-३ ।।

राजा प्रचेतस क्षत्रिय है। वे अपने कर्तव्य कर्म के अनुसार यज्ञ और यागों के जरिये श्री हरी का पूजन करते थे। नारद जी वहाँ आ गये। वे वहा यज्ञ करने वाले साधनों मे, उनके अभिमानी देवताओं में और मंत्रो में अंतर्यामी रूप से रहने वाले भगवान के बारे में ही भक्तिपूर्वक सुनाए ।। ४ ।।

नारद जी ने जिन जिन भगवद्भक्तों और भगवान की लीलाओं की कथा सुनाई ? मैत्रेय जी आप भगवद्भक्त हैं। उन सबको मै सुनना चाहता हूँ। आप उनको कहने योग्य हैं। (आप में कहने की सामर्थ्य है) ।। ५ ।।

मैत्रेय उवाच :-

ध्रुवराज के ज्येष्ठ पुत्र उत्कल नाम के थे। वे अपने पिता जी के सिंहासन और चक्रवर्तीपद को नही चाहते थे। वे बाल्य से ही भगवान में अनुरक्त थे। तथा दुर्जन और विषयासक्तियों से दूर रहे। वे जानते थे कि सारी वस्तुओं में भगवान व्याप्त हैं और सारी वस्तुएँ भगवान में निहित है ।। ६-७ ।।

भागवान गुणपूर्ण हैं, गुणतः देशतः कालतः सर्वत्र व्याप्त है। उनका शरीर प्राकृत नही है। वे नाश रहित हैं। अवतार, अंतर्यामी और ये तीनो रूपों में एक ही तरह हैं। जीव के प्रयत्न से दर्शन देने वाले नही हैं (केवल अपनी इच्छा से दर्शन देते हैं) उनका शरीर केवल ज्ञानात्मक है। ऐसे श्री हरी का अपरोक्ष दर्शन उनको हुआ था ।। ८ ।।

सदाकाल भगवान का ध्यान करने से प्राप्त उनकी ज्ञानाग्नि ने उनके अनिष्ठ और काम्य कर्मों के फल को और पाप के कारण हुए मन के मालिन्य को जला डाला था। उनका मन निर्मल बन गया था। वे वहां अपने बिंबरूपी भगवान का दर्शन करते थे। उनको श्री हरी को छोड़कर अन्य कोई वस्तु दिखाई ही नहीं पड़ती थी ।। ९ ।।

वे राख में छिपी हुई आग जैसे थे। अज्ञानी लोग उनको जड़, काना, गूंगा और मूर्ख समझते थे। केवल ज्ञानी लोग उनको ठीक तरह से जानते थे ।। १० ।।

मंत्री और कुटुंब के वृद्ध लोग भी उनको मूर्ख ही समझते थे। (ध्रुव जी का दूसरा पुत्र कल्प दिन कल्पाभिमानी होने के कारण शिंशुमार देव उनको अपने पास रखे) वे छोटे पुत्र वत्सर को राजा बनाये ।। ११ ।।

वत्सर को स्वर्षीथी नाम की पत्नी में पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इर्ष, ऊर्ज, वसु और जय नाम के छः पुत्र हुये ।। १२ ।।

उनमे प्रथम पुष्णपर्ण को प्रभा और दोषा नाम की दो पत्नी थीं। प्रभा को प्रातः, मध्य दिन और सायं नामके (दिन के तीन भाग के अभिमानी) तीन पुत्र हुये ।। १३ ।।

दोषा को प्रदोष, निशीथ, और व्युष्ट नाम के तीन (रात के तीन भाग के अभिमानी) पुत्र हुए। कनिष्ठ पुत्र व्युष्ट को अपनी पुष्करणी नाम की पत्नी में सर्व तेजस नाम का पुत्र हुआ ।। १४ ।।

सर्वतेज की पत्नी आकूती ने चक्षुस नाम के पुत्र को जन्म दिया। यही चाक्षुष मन्वंतर के अधिपती बने। चाक्षुष की पत्नी वैराज की पुत्री अनड्वला। उनको पुरुकुत्स, त्रित, व्युम्न, सत्यव्रत, ऋतव्रत, अग्निहोम, अतीरात्र, सुद्युग्न, शिवि और उन्मुखा नाम के पुत्र हुये ।। १५-१६ ।।

इनमे से सबसे छोटे उन्मुख को अपनी पत्नी पुष्करणी में अंग, सुनास और व्याती, क्रतु, आंगिरस और गय नाम के छः श्रेष्ठ पुत्र हुए ।। १७ ।।

इनमें सबसे ज्येष्ठ अंगराज ने सुनीथा नाम की अपनी पत्नी में असुर स्वभाव के वेन नाम के दुष्टपुत्र को पाये। वेन के दुर्व्यवहार से त्रस्त अंगराज राज्य से (राजधानी से) चले गये ।। १८ ।।

केवल अपनी बातों से मार सकने वाले मुनियों ने (ऋषियों ने) कुद्ध होकर वेन को मर जाने का शाप दिये। इससे भूमण्डल को प्रशासन करने वाला राजा नही रहा ।। १९ ।।

उस अराजक स्थिति में राज्य में चोर उचक्के बढ़ गये। ऋषियों के प्रयत्न से वेन के दहिने हाथ से महापराक्रमी भगवान् नारायण के अंश से संभूत पृथुराज जन्म लिये ।। २० ।।

विदुर पूछते हैं। मैत्रेय जी अंगराजा सज्जन थे, शीलावान थे और ब्राह्मण पूजक थे। वे भगवान श्री हरी को सदाकाल सर्वोत्तम मानते थे। आपने कहा कि ऐसे राजा अपने दुष्ट पुत्र के कारण राज्य त्याग दिये। इतना श्रेष्ठ राजा को इतने दुष्ट पुत्र कैसे उत्पन्न हुआ ।। २१ ।।

उसके साथ धर्म दंड के धारण करने वाले धर्मज्ञ ऋषि मुनियों को राजदंडधारी वेन को शापरूपी शिक्षा क्यो देनी पड़ी। इसमें वेन का अपराध क्या था ? ।। २२ ।।

प्रजापालक राजा अपने सामर्थ्य के साथ लोक पालक देवताओं की भी शक्ति को धारण करता है (ना विष्णुः पृथवी पतिः) इसी कारण से राजा दुष्ट होते हुए भी (युद्ध में छोड़कर अन्यत्र) उसका तिरस्कार वध नही करना चाहिये ।। २३ ।।

मैत्रेय जी आप ब्रह्मा को जानने वाले तत्वज्ञानी है। आप इतिहास को (ठीक तरह से) जानते हैं। सुनीथा के पुत्र वेन की इस कथा को श्रद्धावान मुझको बताने की कृपा करें ।। २४ ।।

मैत्रेय उवाच :-

राजर्षि अंगराज अश्वमेघ नाम का बड़ा यज्ञ किये। ब्रह्मज्ञानी ऋत्विजों ने वेद मंत्र कहते हुए यज्ञांग हविष्य को लेने के लिये देवताओं का आहवान किये (निमंत्रित किये) किन्तु वहा निमंत्रित इंद्रादि देवताओं में कोई नही आये ।। २५ ।।

इससे ऋत्विजों को आश्चर्य हुआ। वे यज्ञ दीक्षित यजमान अंगराजा से पूछे 'अरे महाराज हमारे होम किए हुए हविष्य के देवता स्वीकार नही कर रहे हैं ।। २६ ।।

हे राजा! यहाँ के होम द्रव्यों का अत्यन्त शुद्धता से संग्रह किया गया है। सारे नियमों को पालन करने वाले ऋत्विजों से प्रयोग किए गए वेद मंत्र (कभी भी) सामर्थ्य हीन नहीं होते। वे ओजःपूर्ण हैं ।। २७ ।।

इस याग में देवताओं की अवहेलना नहीं की गयी है (हमारी दृष्टि में नही आती) देवतागण कर्मसाक्षी होते हैं। उनको हमारी कर्म की शुद्धता और अशुद्धता का ज्ञान स्वयं होता है। वे अपने हविर्भाग को क्यों नही लेते यह हमारी समझ में नहीं आता ।। २८ ।।

मैत्रेय जी आगे कहे :-

ब्राह्मणों की यह बात सुनकर अंगराज अपने मन में बहुत दुःखित हुए। वे यज्ञ के लिये मौन व्रत धारण किये थे। देवताओं के हविष्य का निराकरण पूछने के लिये वे अपने मौन को तोड़कर धर्मज्ञ सभिकों से प्रश्न किये ।। २९ ।।

हे सभिक महोदय! इस यज्ञ में आमंत्रित देवगण हविष्य को नहीं ले रहे हैं। हविद्रव्य और सोमरस पात्र को भी नही लेते। आप कृपा करके बताइये ऐसा क्यो ? यह राजा की विनती थी ।। ३० ।।

राजा के प्रश्न के उत्तर रूप में सभासद बोले :-

हे नरदेव! आप इस जन्म मे या इस याग में कोई अपराध नहीं किये हैं। आप बहुत गुणशाली होते हुए अभी तक आपको संतान नही हुई है। इसके लिये कोई कारण होगा। हमारा अंदाजा है कि आप अपने पूर्व जन्म में बाल हत्या किये होगें ।। ३१ ।।

आप पुत्रवान् हो। इसके लिये आप पुत्र कामेष्टि याग करते हुए यज्ञ भोक्ता भगवान हरी की आराधना करें। इससे आपको पुत्र प्राप्ति होगी। उसके बाद देवतागण आपने दिये हुए हविष्य को स्वीकार करेंगे ।। ३२ ।।

पुत्र प्राप्ति के लिये आपके नारायण की ही प्रार्थना करने से, उनकी तुष्टि के साथ साथ सारे देवता संतुष्ट होकर श्री हरी की इच्छानुसार हविर्भाग को निश्चित रूप से ग्रहण करेंगे ।। ३३ ।।

श्री हरी की आराधना करने वाले जो जो चाहते है उन सबको भगवान प्रदान करते हैं। जिस कारण से भगवान का पूजा की जाती है उसके अनुसार ही भगवान् फल देते हैं। इस दृष्टि से आप श्री हरी का आराधना यज्ञ रूप से करते हुए अपना इष्टार्थ पावें ।। ३४ ।।

सभासदों के वचनों के अनुसार ऋत्विजों ने यज्ञ के यजमान् की अपेक्षानुसार पुत्र कामेष्टि याग करने के लिये उद्यत हो गये। तदनुसार पुत्र कामेष्टि के मुख्य देवता शिपिविष्ट नामके श्रीहरी के और एक रूप के लिये पुरोडाश नाम के हविष्य को समर्पण किये ।। ३५ ।।

उस पुरोडाश के हवन से अग्नि कुंड से सोने की माला से अलंकृत शुभ्र वस्त्र धारी पुरुष सोने के पात्र में प्रासाद रूप में खीर (पायस) लेकर उभर आये ।। ३६ ।।

तब राजा ने ब्राह्मणों की आज्ञानुसार दोनो हाथों से उस सुवर्ण पात्र को अपने हाथ में लेकर एक बार सूघंकर सन्तोष से उसको अपनी पत्नी सुनीथी को दिये ।। ३७ ।।

रानी सुनीथी ने आदर से उसको पिया। पुत्र प्राप्ति की इच्छा करने वाली वह रानी ऋतुकाल में राजा से गर्भ पा लीं। नौ माह के बाद वे पुत्र को जन्म दी ।। ३८ ।।

वह लड़का मातामह (माता के पिता या नाना) के अधर्म के अंश से उत्पन्न हुई मृत्यु के प्रभाव से अपने छोटेपन से ही धर्म विरुद्ध काम करता रहा। (यह मृत्यु यम के भाई हैं) ।। ३९ ।।

वह अपना धनुष लेकर शिकार करने के लिये वन को जता था। वह वहां साधु प्राणियों को मारता था। लोग उसको क्रोध से वेन नाम से पुकारने लगे। (बेन शब्द का शब्दिक अर्थ कष्ट देने वाला होता है) ।। ४० ।।

वेन बहुत क्रूर था खेल खेलते वह दयारहित होकर अपने आयु के बच्चों को चाण्डाल पशु की हत्या करने जैसे (क्रूरता से) मार डालता था ।। ४१ ।।

अपने दुष्ट पुत्र को राजा ने विविध रीति से शिक्षा देकर सुधारने का प्रयत्न किया। किन्तु वेन नहीं सुधरा। इससे राजा बहुत दुःखी हुए ।। ४२ ।।

दुःखी मन से राजा अपने से बोले (विचार किये) गृहस्थ, जिनको दुष्ट पुत्र नही है या जिनको पुत्र ही नही है वही धन्य हैं वह पुण्यवान है और भगवान की सही रीति से पूजा किये हैं ।। ४३ ।।

दुष्ट पुत्र से अपकीर्ति मिलती है। अधर्म बढ़ता है, सबसे विरोध हो जाता है। इसके परिणाम स्वरूप मनोव्यथा बढ़ती जाती है ।। ४४ ।।

वेन तो नाम मात्र के लिये मेरी प्रजा है। यह 'मेरा पुत्र' इस मिथ्याभिमान के लिये कारण है। यह दुष्ट पुत्र मेरे बंधन का कारण बन गया है। कौन ज्ञानी अपने दुष्ट पुत्र को प्यार करता है ? इससे मुझे यह घर ही कष्टदायक बन गया है ।। ४५ ।।

किन्तु दुष्ट पुत्र भी एक कारण से अच्छा ही है। अच्छा पुत्र इच्छानुवर्ती होने के कारण मोह से बंधक बन जाता है। दुष्ट पुत्र से क्लेश होकर आदमी घर बार का मोह छोड़कर विरक्त हो जाता है। मै समझता हूँ, इसी ने मुझको अच्छा किया ।। ४६ ।।

इस रीति से संसार से जिगुप्सित राजा, घर की आसक्ति छोड़कर घोर रात्रि में नींद न आने के कारण उद्रेक से विरक्त होकर सोते हुए अपने कुपुत्र वेन और उसकी माता सुनीथी को छोड़कर घर से बाहर आये और किसी के दृष्टिक्षेप को न मिलते हुए अदृश्य हो गये ।। ४७ ।।

सारी प्रजा, पुरोहित, मंत्रीगण, स्नेही और बंधुगण अपने पालक अंगराज विरक्त होकर राज्य त्याग दिये यह समाचार जानकर बहुत दुःखी हुए। वे उनको बहुत ढूँढ़े। किन्तु उनको कितना ढूढ़ने पर भी अपने हृदय गुहा में छिपे हुए भगवान को जैसे नही देख सकते वैसे ही वे भी अपने राजा को नहीं पाये। वे बहुत निराश हो गये ।। ४८ ।।

बहुत ढूढ़ने के बाद भी उनको राजा की गति विधियाँ मालूम नही हुई। वे ढूंढने का काम छोड़कर निराश होकर राजधानी को वापस आ गये। राजा के लापता होने का समाचार सुनकर वहाँ भृगुँ आदि महर्षि आये, उनको नमस्कार करते हुए आँखों में आँसू बहाते हुए पुरजन राजा के निर्गमन के बारे में विज्ञापन किये ।। ४९ ।।

।। यहाँ तेरहवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

।। चौदहवाँ अध्याय ।।

मैत्रेय उवाच :- हे विदुर ! भृगु आदि ऋषिगण प्रजाओं का क्षेम चिंतन ही करते थे। देश के रक्षक रूप में राजा होना चाहिये। वह नही रहा तो देश में अराजकता होगी और प्रजाजन नीति नियमों को छोड़कर (धर्म को छोड़कर) पशु जैसे बन जायेंगे ।। १ ।।

यह सोचकर ब्रह्मज्ञानी ऋषिगण भगवान की इच्छानुसार सुनीथी को बुलाये और कहे 'आपका पुत्र अमात्य प्रभृति लोगों को सम्मत नही है। दुष्ट होने के कारण वह सिंहासन के लिये योग्य भी नही है। किन्तु आपका बेटा है। इसी कारण उसको हम राजा बनायेंगे 'यह कहकर उन्होने वेन को राजा बनाया ।। २ ।।

बहुत कड़क शिक्षा देने वाले वेन के राजा बनने का समाचार सुनते ही चोर उचक्के सांप को देखे हुए चूहे के समान जहा थे वहा ही लुप्त हो गये ।। ३ ।।

वेन के राजा होने के बाद उसकी दुष्टता और भी बढ़ी। अष्ट विभूति याने मंत्र, अमात्य, दूत, कोश, दुर्ग, देश और पुरोहित, या अणिमादि अष्टैश्वर्य अथवा अष्टदिक् पालक इत्यादि बल से गर्वित किन्तु स्वयं को बहुत बड़ा मानने वाला परन्तु स्वयं मूर्ख वेन सदाचारों को छोड़कर बड़े लोगों का तिरस्कार करने लगा ।। ४ ।।

अहंकार से भरे कर्तव्य ज्ञान शून्य राजा वेन अंकुश विहीन हाथी के समान दुराचार करते हुए भूमि और आकाश को हिलाते हुए अपने रथ में बैठकर संचार करने लगा, और नगारा बजाते हुए बोलता रहा "कोई धर्माचरण करना नही, ब्राह्मण लोग यज्ञ करना नहीं। किसी ब्राह्मण को दान दक्षिणा देना नही। कही भी सत्कर्म न हो।" वह धर्माचरण में रूकावट डालता रहा ।। ५-६ ।।

सत्कर्म करने वाले ऋषि मुनियों ने वेन की इस दुष्टता को देखा। प्रजाजनों को हो रहे कष्टों के बारे में विचार करने लगे। उनका अंतःकरण पिघल गया (द्रवित हो गया) दोनो सिरे से (तरफ से) आग लगी रहे तो बीच में रहने वाले प्राणी की तरह एक बाजू से राजा से दुःख और दूसरी बाजू से दुष्ट लोगो से कष्ट। प्रजाजन को दोनो बाजू से विपत्ति ही विपत्ति दिख रही है ।। ७-८ ।।

अराजकता न हो इस दृष्टि से हम इसको राजा बनाये। इसमें तो राजा बनने की योग्यता बिल्कुल नही थी। किन्तु अब राजा से ही प्रजाजनों को कष्ट हो रहा है। इससे लोगों का कल्याण कैसे होगा ? ।। ९ ।।

साँप को दूध पिलाकर पोषण करने से वह एक दिन पोषक का भी मारक होगा ।। १० ।।

वेन स्वभाव से ही दुष्ट हैं। सुनीथी का पुत्र है, इसी को मानकर हम इसको राजा बनाये। किन्तु यह प्रजाहंतक बन गया है ।। ११ ।।

यह स्वभाव से दुष्ट है और हमारी बातें मानने वाला नही है। तो भी हम इसे सही बातों से समझाये। दुष्ट है मालूम होते हुए भी हमने ही इसको राजा बनाया है। इसके दुष्कृत्यों का पाप हमें भी लगता है ।। १२ ।।

हमारे हित वचनों को यदि यह नही सुनता तो हमें उसका पाप नहीं लगेगा। ये अधर्म करने वाला राजा हमारे सद्वचनों से भी नहीं बदला तो यह पापी प्रजाओं के धिक्कार से ही जल सा जायेगा, और इसको हम अपने तेज से जला डालेंगे ।। १३-१४ ।।

कभी भी क्रोध व्यक्त न करने वाले ऋषि मुनिगण वेन के पास आये और उससे प्रार्थना की "हे महाराजा आप हमारे प्रीतिपात्र हैं। हमारी विनती सुनें। (हमारी बातों को सुने) आपकी आयुष्य, सम्पदा, बल और कीर्ति बढ़ेगी।" वाणी, मन, शरीर और बुद्धि से धर्माचरण करने से दुःख रहित लोक की प्राप्ति होती है ।। १५-१६ ।।

फलापेक्षा रहित होकर वही कर्म करे तो वह कर्म मोक्ष देता है। हे पराक्रमी राजा सुनो प्रजा लोगों का क्षेम करना ही तुम्हारा धर्म है। वह धर्म नष्ट न होना चाहिये। राजा का धर्म भ्रष्ट हुआ तो उसका ऐश्वर्य भी नष्ट होता है ।। १७ ।।

दुष्ट लोगों से और चोर उचक्कों से राजा को प्रजा का रक्षण करना चाहिये। इस लिये प्रजा से उनकी प्राप्ति का एक षष्ठांश भाग लेना चहिये ।। १८ ।।

जिस राष्ट्र में और नगर में अपने वर्णाश्रम के अनुसार यज्ञयागादि करते हुए यज्ञ नामक भगवान की पूजा होती है उस राजा के प्रति विश्व के स्वामी नारायण संतुष्ट हो जाते हैं और मानते हैं कि यह राजा हमारी बातें मान रहा है ।। १९-२० ।।

लक्ष्मी ब्रह्मादि सहित इस सारे विश्व के स्वामी, सर्वेश्वर और सर्वरक्षक श्री हरी तुष्ट हुये तो राजा को इस जगत में क्या नहीं मिलेगा। लोकपाल सहित समस्त भक्त भक्ति से नारायण भगवान का ही पूजन करते हैं ।। २१ ।।

भगवान नारायण का ही तीनों वेद मुख्य रूप से प्रतिपादन करते हैं। वे सारे लोकों को उनके पालकों को ठीक तरह से जानते हैं। ऐसे भगवान को ब्राह्मण, द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, ज्ञानयज्ञ इत्यादि अनेक यज्ञों से पूजन करते हैं। वे ब्राह्मण आपको उपदेश दे सकते हैं। वे दान स्वीकारने योग्य हैं और वे आपकी प्रजा हैं, वे जो यज्ञ करते हैं उससे आपका ही कल्याण होता है ।। २२ ।।

तो आपको उन ब्राह्मणों का अनुसरण करते हुए (उनसे यज्ञ आदि धार्मिक कार्य करवाते हुए)

उनको अनुकूल कर लेना आप के लिये भी अच्छा है। आपके राज्य में ब्राह्मण यदि विस्तार रूप से यज्ञादि धार्मिक कार्य करने लगे तो इससे श्री हरी के विशेषांश वाले देवताओं की भी पूजा होती है। इससे सारे देवता संतुष्ट हो जाते हैं। हे पराक्रमी राजा यज्ञ रूपी धर्म कार्यों को रोकने से देवताओं का तिरस्कार होता है। यह आपके लिये अच्छा नही है ।। २३ ।।

ब्राह्मणों की इन बातों के उत्तर में वेन ने कहा ।

आप लोग अज्ञानी हैं। आप अधर्म को धर्म मानते हैं। आपको देख कर मुझे दुःख होता है। व्यभिचारी स्त्री अपने पती को छोड़कर जैसे विट् पुरुष की सेवा करती है, वैसे ही तुम लोग अपना पालन करने वाले राजारूपी स्वामी को (मुझको) छोड़कर अपना पेट भरने के लिये अन्य श्री हरी रूप के भगवान को मान रहे हैं। जो मूढ़ लोग राजा रूपी स्वामी का तिरस्कार करते हैं। उनका यहाँ भी कल्याण नही होगा और परलोक में भी सुख नहीं मिलेगा ।। २५ ।।

आप के द्वारा कहे जाने वाले वह यज्ञ पुरुष कौन हैं ? आप उन यज्ञ पुरुष में बहुत भक्ति करते हैं न ? पति को प्यार न करते हुए अपने उपपति से प्यार करने वाली जार स्त्री जैसे ही आप लोगों की भक्ति ।। २६ ।।,

विष्णु, ब्रह्म, शिव, इंद्र, वायु, यम, सूर्य, पर्जन्य, कुबेर, चंद्र, भू देवी, वरूण और अन्य शाप देने और अनुग्रह करने वाले सारे देवता राजा के शरीर में वास करते हैं। इस कारण से राजा सारे देवताओं का स्वरूप होता है। हे ब्राह्मण लोग आप मात्सर्य छोड़ दें। यज्ञ यागादि कर्मों से मेरी ही पूजा करें। मेरे लिये ही बली दें। यज्ञों में याग हविष्य को स्वीकारने वाला मुझको छोड़कर और कौन होगा। यज्ञ में प्रथम हविष्य को स्वीकारने वाला पुरुष मैं ही हूँ ।। २७-२८-२९ ।।

मैत्रेय उवाच :-

इस रीति से वेन का ज्ञान व्यत्यस्त हो गया था। महापापी वह गलत रास्ता पकड़ लिया था। इसी कारण उसका पुण्य पूर्ण रूप से नष्ट हो गया था ।। ३० ।।

ब्राह्मणों द्वारा अपनी सुमधुर भाषा में प्रार्थना करने के बाद भी राजा उनकी बात को न माना और यज्ञानुष्ठान के लिये अनुकूल नहीं बना। अपने को ज्ञानी मानने वाले अहंकारी राजा वेन ने अपने घर आये हुए ब्राह्मणों का तिरस्कार किया। उस राजा को सही रास्ते पर लाने के लिये ब्राह्मणों ने उसके ऊपर क्रोध व्यक्त किया। तो भी राजा अपने को सुधारने के लिये सिद्ध नहीं हुआ ।। ३१ ।।

तब ब्राह्मण क्रोध से बोले :-

यह पापी, स्वभाव से ही दुष्ट है। इसको मारना चाहिये। मार डालो इसे। यह यदि जिंदा रहेगा तो इस सारे जगत को जलाकर राख बना देगा। यह निश्चित है। यह दुष्ट राजा के सिंहासन में रहने योग्य नही है। इसको थोड़ी भी लज्जा नही है। यह यज्ञपति विष्णु की ही निंदा करता है। इतना बड़ा ऐश्वर्य भोगने के लिये श्री हरी के कृपापात्र ही योग्य होते है। उन्ही के अनुग्रह से इस वेन ने यह राज्यैश्वर्य प्राप्त किया है। अब कृतघ्न होकर उनकी ही निंदा कर रहा है। इसको छोड़कर इस दुनिया में और कौन हरि निंदा करता है ? ।। ३२-३३-३४ ।।

इन कारणों से ऋषियों ने वेन को मरने योग्य मान लिया। वेन के बारे में उनका क्रोध और बढ़ा। हरि निंदा से पहले ही मरे जैसे वेन को ऋषियों ने अपने हुंकार मात्र से मार डाला। मैं ही भगवान हूँ मानने वालों को यही दुर्गती होती है ।। ३५ ।।

कुद्ध वेन का संहार करने के बाद ब्राह्मण अपने-अपने आश्रम चले गये। पुत्र कितना भी दुष्ट हो पर उसके मरण से सुनीथी को दुःख हुआ। वह दुःख करती हुयी मंत्रौषधियों की सहायता से अपने पुत्र के कलेवर की रक्षा करती रही ।। ३६ ।।

एक दिन इन ऋषियों ने सरयू नदी में स्नान किया। वही होमादि क्रियाओं को पूर्ण करने के बाद उस सरयू तट पर बैठे हुए, सर्वोत्तम भगवान की कथा कर रहे थे ।। ३७ ।।

उस समय वे सारे विश्व को पीड़ा देने वाले भयंकार उत्पातों को देखे। अरे इस भूमंडल में अब राजा नही है। चोर उचक्के ज्यादा हो गये हैं। इस अनाथ भूमंडल को अब कष्ट होगा ।। ३८ ।।

इतने में ही ऋषियों ने, लोगों को लूट कर चारो और भागते हुए चोरों को देखा। इससे वातावरण धूल से भर गया था ।। ३९ ।।

वे अपने में विचार करने लगे 'अब राजा वेन नही है। चोर बढ़ गये हैं। लोग आपस में लड़ रहे हैं। प्रजाजन संकट में हैं ।। ४० ।।

अराजकता से सारा प्रदेश नष्ट हो जायेगा। इसको रोकना चाहिये। ऐसे विचार करने वाले ऋषि इन कष्टों का निवारण करने में समर्थ थे। ऐसा न करने पर वे भी इस पाप के भागी होते हैं। वे विशेष ज्ञानी थे और जानते थे कि समर्थ होने पर निवारण नही किया तो फिर वे भी पापी के भागी हो जाते हैं ।। ४१ ।।

ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण सभी स्थानों में, सभी वस्तुओं में दोष रहित निर्दुष्ट भगवान को ही देखते हैं। उनकी निष्ठा भगवान में ही रहती है। किन्तु इन दुष्टों से कष्ट भोगने वाले को देखकर निष्क्रिय नही होना चाहिये। वे उदास रहें तो उनका ब्राह्मण्य फटे हुए घट के पानी जैसे बह जाता है (नष्ट होता है) इस सूक्ष्म धर्म को भी वे जानते थे ।। ४२ ।।

अंगराजा का वंश बहुत बड़ा है। उसमें बहुत बड़े लोग जन्म लिये हैं, और आगे जन्म लेने वाले

हैं। यह वंश नष्ट होने नही देना चाहिये। यह वंश भगवान केशव का कृपापात्र है ।। ४३ ।।

यह निश्चय कर ऋषि मुनियों ने राजधानी में आकर वेन के कलेवर को लाकर उसकी जंघा का जोर से मंथन करने लगे। वहां एक ठिगना आदमी उत्पन्न हुआ। वह कौए के समान काले वर्ण का था। उसके अवयव बिल्कुल छोटे थे, ओठ मोटे थे, नाक व आंखे लाल रंग की थी और बाल भी लाल रंग के थे। विधेय होकर वह नम्रता से उन ब्राह्मणों को नमस्कार करते हुए उनकी आज्ञा मांगा। ऋषियों ने उसको निषीद (बैठो) बोले। इसी से उसका नाम निषाद पड़ा ।। ४४-४५-४६ ।।

वेन के देह में जो तामस था उस तामस स्वभाव से इसका जन्म हुआ किन्तु उसमें वेन का राजस भाव भी मिला था। वह वेन के पाप से जन्म लेने के कारण वह पाप मूर्ति कहलाया। वेन के सात्विक अंश से पृथु राजा का जन्म हुआ। अंगराजा के बाल हत्या के कारण वेन दुष्ट हुआ था। किन्तु अंग राजा के पुण्य और उनसे किये हुये यज्ञों के फल स्वरूप पुण्यवान पृथु उनके पौत्र बनकर जन्म लिये। वेन के राजस भाव से एक अंश स्वर्ग को चला गया। उसके तामस भाव के एक अंश महातमस को चला गया। इस रीति से वेन के देह से चार अलग अलग भाग चार स्थान पाये। (ये सारी कथा अन्य पुराणों से जान लेना चाहिये)।

उस निषाद के वंश में आये उनको निषाद नाम पड़ा। वे पहाड़ और वन में रहने लगे। वे वेन के पापांश से जन्मने वाले हैं ।। ४७ ।।

मैत्रेय उवाच :-

ब्राह्मण वेन की दोनो बाहूओं का मंथन करने लगे। दाहिने बाहू से एक पुरुष और बाये हाथ से एक स्त्री का जन्म हुआ ।। ४८ ।।

ब्रह्मवादी ऋषि उन दोनों को देखकर बहुत संतुष्ट हो गये। पुरुष रूप को देख कर वे जान गये की भगवान विष्णु के अंश से ही यह बालक पैदा हुआ है ।। ४९ ।।

वे सन्तोष से कहने लगे :-

इस पुरुष रूप में जगत को पावन करने वाला श्री हरी का राजाधिराज रूप है और इस स्त्री रूप में विष्णु भगवान को कभी भी न छोड़कर रहने वाली लक्ष्मी का अंश है।

श्री हरी के पूर्ण रूप अवतार में लक्ष्मी भी पूर्ण रूप से अवतार लेकर उनकी पत्नी बनती हैं। और श्री हरी के अंशावतार में वे भी अंश रूप से अवतार लेकर पत्नी बनती है। वे कभी भी विष्णु को छोड़कर अन्य किसी की पत्नी नहीं बनती ।। ५० ।।

।। यहां चौदहवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

पन्द्रहवां अध्याय

उनको देखकर वे ब्राह्मण कहे :-

श्री हरी से भिन्न किन्तु श्री हरी के अंश वाला यह पुरुष बड़ा कीर्तिशाली होगा। राजाओं में इसका नाम प्रथम रहेगा। अन्य राजाओं से श्रेष्ठ होने के कारण इसका नाम पृथु होगा। इसकी बहुत बड़ी प्रसिद्धी होगी ।। १ ।।

यह सुन्दर दन्त पक्ति वाली बालिका बहुत गुणवती होगी। अत्यन्त सुन्दर नितंब वाली ये पृथु की पत्नी होगी। इसके गुण ही इसके आभूषण बनेंगे। सकल गुण भूषिता इसका नाम अर्चिता होगा ।। २ ।।

ये पृथु राजा लोक रक्षा के लिये अवतार किए हुए श्री हरी के अंश हैं। यह क्षत्रियों में राजराजेश्वर रूप माना जाता है। वैसे ही श्री हरी के बिना न रहने वाली यह, अर्चिता श्री हरी में आसक्ता रमा के अंश वाली है ।। ३ ।।

मैत्रेय उवाच :- ब्राह्मण पृथुराजा की प्रशंसा करने लगे। गंधर्व गाने लगे। सिद्ध पुरुष पुष्प वृष्टि किये। अप्सराये नाचने लगी। स्वर्ग लोक में शंख, तूर्य और मृदंग बजने लगे। देवता ऋषि तथा पितृगण सारे वहाँ आ गये ।। ४-५ ।।

जगद्गुरु ब्रह्माजी और देवताओं के साथ वहाँ आ गये। वेन पुत्र पृथु के दाहिने हाथ में वे चक्र रेखा को देखे। उनके पादो में वे पद्म रेखा को देखे। ये श्री हरी के लक्षणों को देखकर, श्री हरी यहाँ अंश रूप से जनमे हैं यह मानते हुए इनकी आज्ञा का उल्लंघन कभी भी नही होता यह समझ लिए। श्री हरी ने यहा राजराजेश्वरा रूप में अवतार लिये है यह भी मान लिये ।। ६ ।।

तब ब्रह्मवादी ब्राह्मणगण पृथुराजा का पट्टाभिषेक करने को सिद्ध हो गये। देश के सभी भागों से प्रजा लोगों ने अभिषेक के साधन जुटाये ।। ७ ।।

नदियाँ, समुद्र, पर्वतगण, सर्प, गौ, पक्षियों, प्राणियों तथा आकाश और भूमि में रहने वाले समस्त जीव राशियों ने पृथु राजा के सिंहासन आरोहण समय में उपहार समर्पण किया ।। ८ ।।

वायुदेव चामर दिये, धर्मदेव कीर्ति रूप माला दिये, इंद्र देव उत्कृष्ट किरीट दिये, यमदेव निग्रह करने के लिये दंड दिये ।। ९ ।।

अत्यन्त मूल्यवान् वस्त्रों को पहने महाराजा पृथु आभूषणों से अलंकृत थे। उनकी पत्नी

अर्चिता भी सुवर्णालंकार से सुशोभित थी। पत्नी के साथ राजा पृथु दूसरी अग्नि के समान शोभायमान बने ।। १०-११ ।।

पृथुराजा को कुबेर जी सुवर्णमय सिंहासन दिये। चंद्र ने अपने समान शुभ्र, अमृत का द्रवण करने वाले छत्र को दिये ।। १२ ।।

ब्रह्माजी वेदमय कवच को, भारती देवी उत्कृष्ट फूल माला को, भगवान नारायण सुदर्शन चक्र को, लक्ष्मी देवी ने अचल संपदाओं को दिया ।। १३ ।।

दश चंद्र नाम के खङ्ग को रूद्र ने शतचंद्र नाम के ढाल को पार्वती देवी ने, अमृत समान शुभ्र वर्ण के घोड़ो को चंद्र देव ने, अत्यन्त सुन्दर रथ को विश्वकर्मा ने दिया ।। १४ ।।

अग्निदेव अजगव नाम के धनुष को, सूर्यदेव रश्माभिमानी बाणों को, भू देवी ने योगसिद्धि देने वाले और इच्छित स्थान को ले जाने वाले पादुका द्वय को, द्युभाभिमानी ने रोज का पुष्प बली को दिया ।। १५ ।।

आकाश में विहार करने वाले खेचर देवता ने नाट्य संगीत के वाद्यों को, ऋषियों ने अमोघ आशीर्वादों को, समुद्राधिपति ने अपने में उत्पन्न होने वाले शंखों को दिये ।। १६ ।।

नद, नदी, पर्वत और समुद्रो ने पृथुराजा के रथ को आने जाने के लिये योग्य मार्ग को बना दिये। निधि समर्पण के बाद सूत, बंदी मागध राजा की स्तुति करने आये ।। १७ ।।

स्तुति करने के लिये सामने आये हुए स्तुति पाठकों को देखकर पृथुराज हंसते हुए अपनी मेघ निनाद सम ध्वनि में बोले ।। १८ ।।

पृथु उवाच :-

हे सूत, हे मागध, हे बंदी, तुम लोग हमारा स्तोत्र करने आये हो। किन्तु इस जग में हमारे पराक्रमादि गुण अभी व्यक्त नहीं हुए हैं। तुम लोग हमारे किन गुणों के बारे में स्तुति करोंगे ? मेरे पराक्रम दिखाने के बाद तुम स्तुति कर सकते हो। अभी स्तोत्र करने से तुम्हारी स्तुति व्यर्थ हो जाती है ।। १९।।

मेरे पराक्रम दिखाने के बाद तुम उन कर्मों के अनुसार स्तुति करों। किन्तु श्री हरी हमारे परोक्ष और अपरोक्ष दोनो स्थानों में हैं। (समीप और दूर दोनो स्थानों में हैं।) उनकी कथा का गायन करके तुम अपने बातों को सार्थक बनाओ। कीर्तिवानों का गुणगान करना योग्य है। किन्तु आत्म स्तुति करना हेय है। भगवान के स्तुति को छोड़कर हमारी स्तुति करना योग्य नही है ।। २० ।।

अपने में न रहने वाले गुणों के बारे में कौन विद्वान अपनी स्तुति करने देगा। जो गुण नही है उनके बारे में कहें तो वह स्तुति कैसे होती है। उससे जिगुप्सा उत्पन्न होती है। किन्तु मूर्ख लोग अपने में न रहने वाले किन्तु भगवान के गुणों से अपनी स्तुति करवाते हैं उससे लोग उपहास करते हैं। मूर्ख उस उपहास को भी नही समझता ।। २१ ।।

पराक्रमादि गुणों से प्रासिद्ध उदार राजा आत्म स्तुति को गर्हित मानते हैं। अपने में पराक्रम होते हुए भी लज्जा से आत्म प्रशंसा को निदंनीय समझते हैं। (मानते हैं) ।। २२ ।।

हे सूत मागध, हम इस लोक में अभी अनजाने हैं (परिचित, प्रसिद्ध नही हैं)। अनजान के बालक जैसे हमारी स्तुति तुम कैसे करोंगे। हमारे द्वारा न किये हुए कार्य की इन स्तुतियों को हम कैसे सुने ? ।। २३ ।।

।। यहां पन्दहवा अध्याय समाप्त होता है ।।

सोलहवां अध्याय

मैत्रेय उवाच :-

राजा के इन बातों को सुनकर सूतादि गायकगण सन्तुष्ट हो गये। ऋषियों ने उनको राजा कीं स्तुति करने के लिये प्रोत्सहित किये। उनसे प्रेरित वे स्तुतिकार राजा पृथु की स्तुति करने लगे ।। १ ।।

देवदेव श्री हरी अपनी इच्छा से भक्तों के ऊपर दया करने हेतु वेन के पुत्र रूप से अंशावतार लिये है। उनके पराक्रमों की स्तुति करने में ब्राह्मादि देवता भी एक शक्त नही होते। उनकी बुद्धि भी कम पड़ती है। हम छोटे लोग आप की महिमा का क्या वर्णन करेंगे ।। २ ।।

हम पूर्ण रूप से वर्णन करने में असमर्थ हैं किन्तु हम मुनियों से उपदेश पा लिये हैं उनके उपदेशानुसार आपके (भगवान के) श्लाघ्य कर्मों का वर्णन करेंगे। भगवान के कलावतार राजराजेश्वर के सन्निधान विशेष का वर्णन यथा शक्ति करेंगे ।। ३ ।।

लोगों को धर्मानुष्ठान करने में प्रेरणा देते हुए धर्म के नीति नियमों की रक्षा करने वाले पृथुराजा में सन्निहित भगवान धर्म का नीति नियमों का न पालन करने वाले का शासन करने वाले आप धर्म के बड़े रक्षक हैं ।। ४ ।।

अपने में आविष्ट भगवान के बल से आप इंद्रादि लोकपालकों को अपने शरीर में धारण करते है। भू और स्वर्ग दोनो लोकों को सुख देते हैं। यज्ञ से स्वर्ग लोक को और बरसात से भू-लोक को सुख देते हैं ।। ५ ।।

सूर्य जैसे गर्मी के दिनों में भूमि से जल को आहरण करते हुए बरसात में पानी बरसाता है वैसे ही आप काल काल में प्रजाओं से कर रकम वसूल करते हुए योग्य काल में प्रजाओं के लिये ही उसका उपयोग करते हैं। सूर्य जैसे अपनी उष्णता से सबकी रक्षा करता है वैसे ही आप सबके रक्षक बने हैं। (यह सूर्य का गुण आप में है) ।। ६ ।।

भू-देवी जैसे अपने ऊपर पादाघात करने वाले सज्जनों को सहती हैं वैसे ही आप सज्जन लोग अतिक्रमण करे तो भी आप उनको सहते हैं। आप सर्वप्राणियों में दया करते हैं। दरिद्रता से दुःखी जीवों को अभयदान देकर (काम देकर) उनको जीवनोपाय देते हैं (यह भूमि का गुण आप में हैं) ।। ७ ।।

बरसात न होने से भूख और प्यास से पीड़ित प्रजा के लिये नरदेव पृथुराजा के शरीर में रहने वाले स्वामी आप इंद्र जैसे पानी बरसाकर उन लोगों की रक्षा करते हैं। (यह इंद्र की शक्ति आप में हैं) ।। ८ ।।

आपका मुख चंद्र के समान शुभ्र सुन्दर और मंदहास युक्त हैं। आपकी दयापूर्ण दृष्टिक्षेप से लोग

आनंद पाते हैं (यह चंद्र का लक्षण आप में हैं) ।। ९ ।।

समुद्राधिपती वरूण का आगमन निर्गमन मार्ग स्पष्ट रूप से दिखता नही। उनका कार्य शुद्ध होता हैं। उनकी गहराई कोई नही जानता। हीरा-मोती आदि मूल्यवान वस्तु इनके वश में गुप्त रीति से रहती हैं। पृथुराजा भी गूढ़ाचारों से प्रविष्ट सूक्ष्म मार्ग वाले हैं। शुद्ध कर्तव्यशाली हैं। इनका मन बहुत गंभीर है। इनका कोश (भण्डार) बहुत सुरक्षित है। इनकी कीर्ति भी सुरक्षित है। अनेक गुणों के मुख्याश्रय होते हुए उनको ठीक तरह से जानना कठिन होने के कारण अव्यक्त रूप वाले हैं (यह वरूण रूप आप है) ।। १० ।।

अग्नि को जैसे हम अपने पास रख नही सकते, जैसे सहन नही कर सकते, और जैसे पास गये तो दूर जाना पड़ता है वैसे ही वेन नामकी अरणी से उत्पन्न हुए आप शत्रुओं को दुष्प्राप्य सहन करने अयोग्य और पास आये तो दूर भाग जाना पड़ता है (इससे अग्नि का गुण साधर्म्य आप में है।) ।। ११।।

वायु जैसे जीवों के अंतर्यामी होकर सब जनों के प्रीत्यास्पद बनकर श्वास और उच्छ्वास से अन्दर और बाहर से काम करते हुए प्राण रूप से हैं, वैसे ही आप (पृथुराज) प्रजाओं के प्रीति पात्र होकर अंदर बाहर के कामकाज को गूढ़ाचारों से मालूम करते हुए (समझते हुए) रहते हैं (इससे वायु का, मुख्य प्राण का अंतर्यामित्व दिखाया है) ।। १२ ।।

यमधर्म जैसे आप न्याय मार्ग से चलने वाले शिक्षाहीन होने वाले अपने शत्रु के पुत्र को भी दंड नही देंगे। वैसे ही शिक्षा के योग्य, अधर्म मार्ग से चलने वाला अपना पुत्र हो तो भी उसको शिक्षा देने वाले हैं। (इससे यम का साधर्म्य आप में है यह मालूम होता है) ।। २३ ।।

जहाँ सूर्य की प्रकाश किरण जाती है वहा तक याने मानस पर्वत तक (सारे भूमण्डल मे) पृथु राजा की आज्ञा, सैन्य और रथ के पहिये चलते रहते हैं (पूरे भूमण्डल में इनकी आज्ञामानी जाती है) ।। १४ ।।

ये राजा अपने मनोरंजनक विध-विविध कार्यों से अपने प्रजाओं का रंजन करते हैं इसलिये इनका "राजा" नाम अन्वर्थक है ।। १५ ।। (रंजयति इति राजा)

महाराजा निश्चल नियम वाले हैं (नियमों का पालन करते हैं) इनकी प्रतिज्ञा सत्य ही होती है। वृद्धों की सेवा करते हैं। सबको रक्षा देते हैं। सबको आनन्द देते हैं। दीनों को प्यार करते हैं। परस्त्रियों को माँ के समान मानते हैं। अपनी पत्नी को काम के समान है। प्रजाओं को अपने पुत्र जैसे प्यार करते हैं। ब्रह्मज्ञानियों की सेवा करते हैं ।। १६-१७ ।।

जीवियों को शरीर के समान प्रिय हैं। मित्रों का आनन्द बढ़ाने वाले, विषयों का सहवास त्याग दिये परमहंसों के स्नेही किन्तु दुर्जनों के लिए कारूण्य रहित होकर यम के समान दंड देने वाले हैं ।। १८ ।।

ये अपने पराक्रम से गौरूप वाली भूमि का दोहन करके औषधियाँ प्राप्त करते हैं। अपने धनु से सारे ब्रह्मांड को समतल करेंगे ।। १९ ।।

ये सारे पराक्रम अंतर्निहित भगवान के बल से करते हैं। उनका ये राजराज रूप धारण किये हैं। वह (भगवान्) गुणपूर्ण है। त्रिलोकाधिपती इंद्रादियों से श्रेष्ठ हैं। चेतनाचेतन स्वरूप में व्याप्त होते हुए भी निर्विकार हैं। उसी भगवान की स्तुति हम कर रहे हैं। श्रीहरी के अवतारों में भेद नही है। तो भी उनकी इच्छा से ही लोगों को भेद लगता है। (भेद की भ्रांति होती है) ।। २० ।।

भगवान के सन्निधान विशेष से ये पराक्रमियों में श्रेष्ठ होकर उदय पर्वत तक सारे भूमण्डल की रक्षा करते हैं। इसके लिये ये धनुष को धारण किये हुए अपने विजयशाली रथ में चढ़ कर सूर्य के समान भूमण्डल की परिक्रमा करते हैं ।। २१ ।।

इनके परिक्रमा करते समय सभी स्थानों के राजा लोक पालकों के साथ आकर उपहार देते हैं। उनकी पत्नियाँ भी पृथुराजा का यशोगान करते हुए इनको चक्रायुधधारी श्री हरी का अंशावतार मानती हैं ।। २२ ।।

थोड़े में कहना हो तो महाराजा गाय के रूप वाले इस भूमण्डल से सभी वस्तुओं को पालते हैं। ये प्रजापती अपनी प्रजाओं को जीने की वृत्तियाँ दिखाकर उनको सुखी बनायेंगे। वे लीला से अपने धनुष के सिर से इस भूमि की चट्टानों को इंद्र के समान समतल करते हुए लोगों के वास योग्य और उपजाऊ बनाएंगे ।। २३ ।।

अपने पुच्छ को उठा के चलने वाले सिंह के समान वे अपने अजगव नाम के धनु को हाथ में उठाकर भूमण्डल में संचार करते समय शत्रु और चोर उचक्यादि लोग भयभीत होकर दिक् दिशाओं में लीन हो जाते हैं ।। २४ ।।

ये सरस्वती नदी के मूल (स्थान) में एक सौ अश्वमेघ याग करेंगे। सौवें यज्ञ में इंद्रदेव इनके यज्ञ के घोड़े का अपहरण करेंगे ।। २५ ।।

ये अपने राजगृह के उद्यान में पूज्य सनत्कुमार से मिलकर भक्ति से उनकी आराधना करते हुए स्वगत भेद रहित सर्वोत्तम श्री हरी का दर्शन करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करेंगे ।। २६ ।।

प्रसिद्ध कीर्ति वाले महापराक्रमी महाराजा पृथु जहाँ जाते वहाँ अपनी यशोगाथा सुनते हैं ।। २७ ।।

इस भूमण्डल के एकमेव पती महाराजा पृथु (अपने अंतर्निहित भगवान श्री हरी के सान्निध्य से) बहुत पराक्रमी हैं। इनकी आज्ञा को न मानने वाला और इनके रथ के चक्र को रोकने वाला कोई नही रहेगा। दशो दिशा को जीतते हुए लोक कंटकों को उन्मूलन करते हुए देवश्रेष्ठों से गीयमान कीर्ति वाले विशेष महिमा वाले भूमण्डल के एकमेव राजा बनेंगे ।। २८ ।।

।। यहां भागवत का सोलहवां अध्याय समाप्त होता है ।।

सत्रहवा अध्यायः

मैत्रेय उवाच :-

श्री हरी के अंशरूप पृथुराज की इस रीति से उनके गुण कर्म के अनुसार स्तुति करते हुए वंदि मागधों ने उनके गुणों को प्रसिद्ध किये। (प्रसिद्धी को लाये)। पृथुराज ने भी उनके इच्छितार्थ को देकर मान सम्मान किये ।। १ ।।

उसके बाद क्रमशः ब्राह्मणादि चारो वर्ण वाले, मंत्रीजन, सेवकगण, पुरोहित, नगरवासी, ग्रामवासी, अपने समान वयस्क मित्र और अंगरक्षकादि सारी प्रजाओं को यथा योग्य सत्कार किये ।। २ ।।

विदुर पूछते हैं :-

हे मैत्रेय जी आप कहे, पृथुराज ने गोरूप धारिणी भू देवी का दोहन किया। बहुरूप वाली भू देवी गोरूप क्यों धारण की ? पृथुराज दोहन क्यों किये। वहा वत्स कौन था। वे किस पात्र में दोहन किये ? तथा किन द्रव्यों का दोहन किये ।। ३ ।।

विषम रहना (नीचे ऊंचे) भूमि का स्वाभाविक गुण है। इस भूमि को पृथु राजा ने समतल कैसे बनाया ? राजा पृथु के अश्व को इंद्र ने क्यो अपहरण किया ? वह राजर्षि पृथुराजा ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ सनत्कुमार से ज्ञान और विशेष ज्ञान को प्राप्त करके कौन सी गति को पाए ।। ४-५ ।।

सजराजरूपी श्री हरी राजा पृथु के अंतर्निहित होकर गोदोहनादि अद्भुत कार्यों को किये। समर्थ और कीर्तिशाली भगवान की इन लीलाओं को आप अपने भक्त, 'मेरे' लिये कहने की कृपा करें। मैं गुण लुब्ध हूँ। मैं आपका और भगवान श्री हरी का भक्त हूँ। मैं आप में अनुरक्त हूँ ।। ६-७ ।।

श्री शुक्र उवाच :- हे राजा परीक्षित सुनो। आप ने मुझसे वासुदेव की कथा के बारे में जैसे प्रश्न किया वैसे ही विदुर भी मैत्रेय जी से वही प्रश्न पूछे। इससे मुदित मन से मैत्रेय जी विदुर की प्रशंसा करते हुए आगे कहने लगे ।। ८ ।।

मैत्रेय उवाच :-

हे विदुर ब्राह्मणों ने राजा पृथु का पट्टाभिषेक करने के बाद उनको प्रजा पालन करने में नियुक्त किये। और कहे कि तुम प्रजाओं के रक्षक बनो। उन दिनों देश में अकाल पड़ा था। प्रजा को खाने के लिये अन्न नही था। प्रजाजन भूख के मारे कृश देह वाले हो गये थे। वे आकर राजा से बोले ।। ९ ।।

महाराज वृक्ष के कोटरे में लगी हुई आग से जैसे वृक्ष जल जाता है, वैसे जठराग्नी से (भूख से) हम जले जा रहे हैं। आप हमारे रक्षक हैं। हम आप की शरण में आये हैं। आप हमें जीवन के लिये उद्योग का प्रबंध करे और हमारी रक्षा करें। हम क्या करें ? आप ही हमें हमारा कर्तव्य मार्ग दिखाये ।। १० ।।

आप राजाधिराज हैं। हम अहार के बिना अभी मर रहे हैं। हम मरने के पहले भूखे रहें हमारे लिये आप ही आहार दे सकते हैं। आप राजा हैं। हम प्रजा लोगों को केवल आप ही जीवनोपाय बता के, (योग्य उद्योग देकर) पालन करने वाले हैं ।। ११ ।।

मैत्रेय उवाच :-

प्रजाओं की करूणा जनक इन दुःख पूर्ण बातों को सुनकर इस भूमण्डल में आहार न मिलने के कारण के बारे में बहुत समय तक वे विचार किये। अंत में उनको वह कारण मालूम हुआ ।। १२ ।।

यह भूमि सस्यों (बीजों) को अंकुर नही आने देती है। इसी कारण भूमण्डल में अन्न की उपज न होकर भूमण्डल अन्न रहित हो गया है। यह अपने बुद्धि से जानकर पृथु महाराजा ने भूमि के ऊपर त्रिपुरहारी शिव जैसे कुद्ध होकर अपने धनू के ऊपर बाण चढ़ाये ।। १३ ।।

राजा क्रोधित होकर हाथ में आयुध ले लिये है यह सुनकर घबड़ायी हुई भू-देवी कांपती हुई गाय का रूप धारण करते हुए शिकारी के भय से दौड़ने वाली हिरण के तरह जोर से दौड़ने लगी ।। १४ ।।

गोरूप वाली भू-देवी जब दौड़ने लगी तब क्रोध से लाल हुई आँखों वाले पृथुराज धुनर्बाण लेकर उस गाय के पीछे ही दौड़ते चले ।। १५ ।।

गोरूप धारिणी भू-देवी दिग् दिशा में दौड़ती रही। वह भूव्योम और अंतरिक्ष में भी दौड़ी। उसके पीछे पीछे धनुर्बाण लेकर राजा पृथु दौड़ते रहे। वह जहां गयी वहां राजा को देखती रही ।। १६ ।।

मृत्यु से जीव को कोई बचा सकता है क्या ? वैसे ही राजा पृथु के बाण से भू देवी की इंद्रादि देव भी रक्षा नही कर पाये। अंत में भू-देवी अत्यन्त दुःखित मन से पृथुराजा की राजधानी को वापस आ गयी ।। १७ ।।

भू-देवी राजा से प्रार्थना करती है "हे राजा आप ठीक तरह से धर्म को जानने वाले हैं। आप शरण आये हुए लोगों की रक्षा करने वाले हैं। आप सर्व प्राणियों की रक्षा करने वाले हैं। आप मेरी भी रक्षा करें ।। १८ ।।

मैं निरपराधी हूँ, दीन हूँ। आप मुझे क्यों मारना चाहते हैं ? आप धर्मज्ञ होते हुए मुझे मारकर स्त्री हत्या क्यों करेंगे ।। १९ ।।

अज्ञानी पुरुष भी अपराध की हुई स्त्री को स्त्री होने के कारण जीव से नही मारते। आप करूणाशाली

है, दीन वत्सल है। "आप जैसे धर्मज्ञ मुझको न मारें" क्या इस बात को बताना पड़ेगा ?।। २० ।।

मै सारे भू निवासियों के लिये रहने के लिये आश्रय देती हूँ। मै उनको पानी के ऊपर के नाव जैसे बिना आतंक से रहने का स्थान बन गयी हूँ। मुझको मारकर आप और आपकी प्रजा कहा रहेंगे ? " ।। २१ ।।

भू देवी को डराकर अपना कार्य कराने के इच्छुक पृथु राजा भू देवी को डांटते हुए बोलते हैं 'हे भू देवी ! तुम मेरी पत्नी हो। मैं तुम्हारा पती हूँ। तुम मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर रही हो। तुम यज्ञ में अपना हविष्य को ले रही हो। किन्तु उसके बदले में हमें धान्यादि रूप संपदा की वृद्धि का कर नही दे रही हो ।। २२ ।।

जो गाय रोज चारा खाती है किन्तु दूध नही देती उसको दंड देना ही पड़ता है। वैसे तुम भी रोज हविष्य को लेने के बाद भी हमारी प्रजा को आहार नही दे रही हो। तुमको दंड देना योग्य ही होगा ।। २३ ।।

बहुत पूर्व काल में ब्रह्मा जी ने सारी वनस्पतियों और औषधियों को बीज रूप में सृष्ट किया। वे बीज तुम्हारे में छिपे हुए है। तुम मूर्ख हो। हमारी आज्ञा के विरुद्ध तुम उनको बाहर न छोड़ते हुए अपने में छिपा रखी हो ।। २४ ।।

मेरी प्रजा अब भूख से पीड़ित होकर मेरी शरण आयी है। मै तुम्हें अपने बाणों से चूर चूर कर डालूंगा। तुम्हारे अंदर की मदस को खाकर वे जीवित रहेंगे ।। २५ ।।

प्राणियों में प्यार न रखने वाला और स्वयं को बड़ा मानकर स्वार्थी होने वाला चाहे वह पुरुष हो, स्त्री हो, या नपुंसक हो उनका संहार करने से राजा को पाप नही लगता है ।। २६ ।।

तुम कर्तव्य विमुख होकर दुरहंकारी बन गयी हो। मेरी वंचना करने के लिये गोरूप धारण की हो। तुम्हारे जैसे पापी को मारने से पाप नही लगेगा। मैं अपने बाणों से तुम्हे चूर चूर कर डालूंगा। मैं अपनी सहज धारणा शक्ति से (योग बल से) प्रजा को धारण करूँगा ।। २७ ।।

क्रोध के कारण यम के समान दिखने वाले राजा को देखकर भूदेवी कांपने लगी। तथा अपने दोनों हाथों को जोडते हुए भक्ती से नमस्कार किया और पृथुराजा के अंतर्निहित श्री हरि की प्रार्थना करने लगी ।। २८ ।।

हे भगवान ! आपने अपनी इच्छा से चित्प्रकृति अभिमानी लक्ष्मी देवी से जड़ प्रकृति के सहयोग से ब्रह्मदि सकल जीवराशि के बाह्य शरीरों का निर्माण करवाया हैं। किन्तु आप सत्वादि तीनो गुणों से रहित होकर केवल आनंदादि गुणों से युक्त देह वाले हैं। आप सर्वोत्तम हैं। आपको नमस्कार। आपको सदाकाल अपने स्वरूप का ज्ञान रहता है। इसी कारण आपको द्रव्य क्रियाकारी अहंकार ममकार रूप का अभिमान, और उसका फलस्वरूप राग द्वेषादि आप में नहीं है। इसीकारण प्राकृत इंद्रियों से आने वाले

संशय आदि आप में नहीं है ।। २९ ।।

आप इस जगत के सृष्टिकर्ता हैं। आपके शरीर रूप में मेरी (भूमि की) सृष्टि हुई। ये प्राकृत सृष्टि में जो जीव जगत है उसको आप ही धारण किये हैं। आप ही मेरे स्वामी हैं। अब आप ही मुझको मारने के लिये शस्त्र धारण कर आये हैं। मैं और किसके शरण में जाऊँ ? ।। ३० ।।

आप आपनी इच्छा रूप माया से इस प्रकृति की सहायता से सृष्टिकाल में इस स्थावर जगम रूप (चल, अचल) सृष्टि का निर्माण किये। अपनी इच्छा से ही अब इसका पालन कर रहे हैं। आप सबके पालनहार है, धर्म रक्षक हैं, आप केवल मुझको कैसे और क्यों मारेंगे ? ।। ३१ ।।

हे स्वामिन् अल्प बुद्धि वाले, गुरुपदेश के बिना ही रहने वाले लोग आपकी बंधक शक्ति का पार नही पा सकते। इस शक्ति से ही आप स्वतंत्र होकर अपने सृष्टयादि कार्य करते हैं तथा औरों से करवाते हैं। आप स्वगत भेद न रहने वाले अनेक रूपी हैं। स्वतंत्र रूप से, आप के आप ही स्वामी हैं। (आपके ऊपर और कोई नही हैं।) ।। ३२ ।।

द्रव्य = पंचमहाभूत, क्रिया = कर्मोन्द्रिय, कारक = ज्ञानेंद्रिय और चेतनों में आप व्याप्त होकर अपने सामर्थ्य से ही इस सृष्टि की रचना किये हैं। इस लोक में परस्पर विरूद्ध मानी जाने वाली शक्तियाँ आप में एकत्र मिलकर परिपूर्ण रीति से रहती हैं। आप एक ही काल में अनेक विरुद्ध कार्य एक साथ कर सकते हैं। आप सर्वोत्तम है। आपको नमस्कार ।। ३३ ।।

सकल दोष दूर और अनेक महिमा वाले आप आदि वराह होकर अपने से ही सृष्टि किये हुये, इस भूमण्डल को जो महाजल में डूब रहा था उसको उठाकर ले आये और ठीक स्थान पर बिठाये। आप ही रसातल से मुझको उठाकर ले आये हैं और अब आप ही शस्त्र लेकर सारे जगत को नाव जैसे आश्रय देने वाली मुझकों मारना चाहते हैं।

आप प्रजावत्सल हैं। आप पराक्रमशाली है। आप भू धारण करने वाले वह श्वेत वराह हैं। आपकी प्रजा के लिए अन्नरूपी दूध आप दुहाना चाहते हैं। ऐसे प्रजा वत्सल राजा मुझको क्यों मारते है ? ।। ३४-३५ ।।

आपके सृष्टयादि इस तरह की लीलाओं को अल्पज्ञान वाले हम जैसे लोग कैसे जान सकते हैं। आप अपने पराक्रम और यश के अनुसार ही यथायोग्य काम करने वाले हैं। आप ऐसे ही मन चाहे जैसे काम करने वाले नही हैं आपके इन महान् कार्यों को भी मैं नमन करती हूँ ।। ३६ ।।

।। यहाँ सत्रहवां अध्याय समाप्त होता है ।।

अठारहवाँ अध्याय

इस रीति से गोरूपधारी भू देवी के पृथु राजा में आविष्ट श्री हरी की प्रार्थना करने के बाद भी पृथुराजा कोप्राविष्ट ही थे। क्रोध से उनका अधर (ओठ) कांप रहा था। उनको देखकर भू-देवी भयभीत हुई। मन ही मन में अपने को समाधान करते हुए और आगे बोली ।। १ ।।

हे महाराजा अपने क्रोध को संभालिये। मेरी विनती को मानिये। ज्ञानी लोग भृंग जैसे सभी जगह से केवल सार को ही ग्रहण करते हैं ।। २ ।।

ज्ञानी और तत्वज्ञानी ऋषियों ने इस लोक में और परलोक में सुख प्राप्ति के लिये क्रमशः कृषि और यज्ञों को आचरण में लाये। इन आचारों का श्रद्धापूर्वक अनुसरण किया जाय तो निश्चित रूप से वे सत्फल देते हैं ।। ३-४ ।।

यदि कोई अज्ञानी उन ऋषियों के दिखाये हुए उपायों को अलक्ष्य करते हुए अपने मन के अनुसार काम करने लगे तो उन्हे फल देना कठिन होता है (कभी फल मिलता है कभी नहीं) ।। ५ ।।

हे महाराज !

ब्रह्मा जी से सृष्ट की हुई वनस्पति और औषधियों को बीजों को व्रतहीन अकर्मण्य लोग खाने लगे। (उनके नाश के भय से) मैंने उनको (अपने में रखकर) रक्षा की है ।। ६ ।।

आप जैसे राजाओं ने उनकी रक्षा नही की। चोरों से उनकी रक्षा करने वाला कोई नही रहा। इससे लोग चोर बन गये। वे यज्ञादि कर्म करना छोड़ दिये। राजा लोग यज्ञ करना छोड़ दिये। उन बीजों के रक्षण के लिये (यज्ञ के समय देने के लिये) उनको मैंने अपने पास रखा है ।। ७ ।।

अब बहुत दिन बीत गये हैं। वे तरुलता औषधिओं के बीज जीर्ण होकर दूध बन गए है (केवल) शास्त्र में बतायी गयी रीति से आप उनको पा सकते हैं ।। ८ ।।

गो जैसे अपने बच्चे को प्यार करती है वैसे मै भी गोरूप धारण की हूँ। अपने बच्चे को बहुत प्यार करती हूँ (लेकिन मेरे लिये) बच्चे नही हैं। आप मेरे लिये बच्चे को प्राप्त करे। तब मै प्यार से दूध देने लगती हूँ। उस दूध के लिये दुहाने के पात्र का निर्माण करें ।। ९ ।।

आप प्राणियों की रक्षा करने वाले हैं। आप अपनी प्रजा के लिये बल देने वाला आहार चाहते हैं। मेरे कहने के अनुसार आप बच्चे, पात्र और दुहाने वाले का प्रबन्ध कीजिये ।। १० ।।

सस्य (औषधि) को उपजने के लिये बरसात में गिरा पानी मुझमें सदाकाल रहना चाहिये। मैं असमर्थ हूँ। मुझे समतल करवाये। इससे वर्षा काल में गिरा हुआ पानी मेरे अंदर वर्ष भर रहेगा। आपका भला होगा ।। ११ ।।

भू-देवी की इन प्रियकर बातों को सुनकर पृथुराजा सन्तुष्ट हो गये। वे उसकी सलाह को स्वीकार किये। उनके अनुसार ही आचरण किये। ज्ञानी लोग सबमें सार वस्तु को ही लेते हैं ।। १२ ।।

प्रथमतः वे स्वयं दूध दुहाये। राजाओ में श्रेष्ठ स्वायंभुव मनु को वत्स कर दिये। अपने हाथ को ही पात्र बनाये। तथा समृद्ध दूध दुहाये। वही दूध औषधियों में (वनस्पति और सस्य के रूप में) बदल गया। उनके बाद और आठ वर्ग के प्रणियों ने अपने इष्टानुसार इष्ट रूप का दूध दुहे ।। १३ ।।

हे विदुर ऋषियों ने बृहस्पति को वत्स बनाया, इंद्रियों को पात्र बनाते हुए दूध दुहा। वह दूध वेद रूप में परिवर्तित हुआ। (ज्ञानेंद्रियों में वाक् मन और कान वेग धारक होते हैं। अन्य इंद्रिय उनको परिशुद्धता देती हैं। इसके लिये इनको पात्र बताया है। याने ऋषियो ने छंदः पूर्वक पुनश्च मंत्र (वेद०) पढ़ाना प्रारम्भ किये ।। १४ ।।

देवतागण इंद्र को वत्स बनाये और सोने के पात्र में सोमरस नाम का दूध दुहा। वह दूध सहनशक्ति और शरीरिक बल के रूप में बदल गया। (इससे भूमि में सोमलता का उत्पादन प्रारम्भ हुआ) ।। १५ ।।

दैत्य और दानव उस मन्वन्तर के प्रह्लाद को वत्स बनाए। लोहे के पात्र में दूध दुहे। वह दूध सुरा बनकर बदल गया ।। १६ ।।

अप्सरायें और गंधर्वो ने विश्वावसु को वत्स बनाया। कमल पात्र में दूध दुहा। वह दूध मधुर संगीत में बदल गया ।। १७ ।।

श्राद्ध कर्म के प्रमुख पितृ देवताओं ने अर्यमा नाम के पितृगण के प्रमुख को वत्स बनाकर दूध दुहे। वे मिट्टी के नए पात्र में दुहे। वह दूध कव्य नामका श्राद्धान्न बना ।। १८ ।।

सिद्ध लोग कपिल को वत्स बनाये और दूध दुहे। वह दूध अणिमादि अष्ट रूप धारण किया। विद्याधर लोग मेघ को वत्स बनाये और दूध दुहे। वह दूध आकाश गमन रूप विद्या बन गयी ।। १९ ।।

अदृश्य होकर रहना चाहने वाले मायावी लोग मयको वत्स बनाकर दूध दुहे। वह दूध माया सृष्टि बन गया ।। २० ।।

यक्ष, राक्षस, पिशाच और मांसाहारी लोग भैरव रूद्र को वत्स बनाए। मानव के कपाल को पात्र बना कर उसमें दुध दुहे। वह दूध रक्त समान मद्य बन गया ।। २१ ।।

वैसे ही फणयुक्त, फण रहित, विषयुक्त और विष रहित सार्पो ने तक्षक सर्प को वत्स बनाया। अपने मुख को ही पात्र बना के दूध दूहा। वह दूध विष रूप में परिवर्तित हो गया ।। २२ ।।

चतुष्पाद पशुओं ने नंदी को वत्स बना के अरण्य को पात्र बना के दूध दुहे। वह दूध घास बन गया। और मांसाहारी हिंस्र पशुओं ने सिंह को वत्स बनाये अपने देह को पात्र बनाकर दूध दुहे। वह दूध मांस बन गया ।। २३ ।।

पक्षियों ने गरुड़ को वत्स बनाकर चर (कीट) और अचर (फल इत्यादि) रूप दूध दुहे ।। २४ ।।

बड़े वृक्ष वट वृक्ष को वत्स बनाकर कटु क्षारादि षड् रस रूप दूध प्राप्त किये। पर्वतों ने हिम को वत्स बनाते हुए शिखिर प्रदेश का पात्र बनाकर दूध दुहे। वह दूध सोना, चांदी आदि धातुओं का रूप धारण किये ।। २५ ।।

पूर्वोक्त रीति से सभी अपने प्रमुख को वत्स बनाये अपने अपने योग्य पात्रों में प्रप्रत्येक रूप से अपनी इच्छानुसार दूध दुहे। पृथुराजा के कारण भू देवी से वे अपने इष्टार्थ पा लिये। दुहने वाले और 'पात्र' के अनुसार 'दूध' भी परिवर्तित होता रहा ।। २६ ।।

हे विदुर सुनिये! इस रीति से राजा पृथु से प्रारंभ करके सारे लोग भूमि का दोहन किये। जैसे दुहने वाला और दुहने का पात्र बदलता रहा वैसे दूध भी (उनके इष्टानुसार) बदलता रहा ।। २७ ।।

पृथुराज पुत्रियों को ज्यादा प्यार करते थे। भू-देवी के आहार इत्यादि देकर उनको तृप्त करने से वे उसको अपनी बेटी के तरह मान सम्मान दिये ।। २८ ।।

अपने धनुष के एक सिरे से चक्रवर्ती पृथुराजा ने पहाड़ों के शिखरों को चूर-चूर करते हुए इस भूमण्डल को साधारणतया समतल कर दिया ।। २९ ।।

तदनंतर इस सामर्थ्यशाली राजा ने अपनी सारी प्रजाओं को जीवन के लिये वृत्तियों का (उद्योगों का) आयोजन किये। उद्योंगों के स्थानों के आजू बाजू में लोगों को रहने के लिये आवासों का निर्माण किये। इससे गाँव, शहर, नगर और महानगरों का निर्माण हुआ। महाराजा ने दुर्गो का गोकुल, सेना निवास तथा बाजार आदि का निर्माण करवाया ।। ३०-३१ ।।

इसके पूर्व राजाओं ने ग्राम और पुर जैसे वास स्थानों का निर्माण नहीं किया था। लोग निर्भयता से जहाँ चाहे वहाँ रहते थे। किन्तु इस तरह का सौलभ्य वहां नही था। अब पृथुराजा के कृपा से लोग संतोष से रहने लगे ।। ३२ ।।

।। यहां अठारहवा अध्याय समाप्त होता है ।।

उन्नीसवां अध्याय

मैत्रेय उवाच :-

गोरूप भूमि का दोहन और भूसमक के बाद राजर्षि पृथु ने पूर्व दिशा को बहने वाली सरस्वती नदी के स्थान में, (पूर्वमुखी स्थान) तथा ब्रह्मावर्तनाम के मनु के क्षेत्र में एक सौ अश्वमेध यागों को करने का संकल्प करते हुए यज्ञ दीक्षित हुए ।। १ ।।

किन्तु (इसके पूर्व ही) सौ यज्ञ किये हुए इंद्र देव "पृथु राजा के यज्ञ उनसे श्रेष्ठ हो रहे हैं" यह देखकर उस (अन्तिम सौवा) यज्ञ को सहन कर न सके ।। २ ।।

इस यज्ञ में, समस्त लोकों के गुरु सबके नियामक, सर्वत्र व्याप्त श्री हरी आहूत होकर ब्रह्म रूद्रादि देवताओं के साथ स्वयं आये थे, और दृग्गोचर थे। वे ही यज्ञापति बने थे ।। ३ ।।

इन यज्ञों में पृथुराजा ने गंधर्व ऋषि और अप्सराओं को निमंत्रित किया था। वे प्रभु का संकीर्तन कर रहे थे ।। ४ ।।

भगवद् भक्त सिद्ध लोग, विद्याधर, दैत्य, दानव, यक्षादि लोगो के साथ, नंद सुनंदादि भगवद् पार्षद (द्वार रक्षक) कपिल नारद, दत्त इत्यादि योगीगण और श्री हरी की सेवा करने को उत्सुक भागवतगण सनकादि ऋषियों से युक्त होकर श्री हरी के साथ निमंत्रित होकर आये थे ।। ५-६ ।।

गोरूप भू-देवी ने यज्ञ की आवश्यक सामग्री दूध इत्यादि को दिया था। धर्म रूपी इस भूमि के कारण पृथुराजा को यज्ञ के लिये जिन साधनों की जरूरत थी वे सारे वहा आये थे (प्राप्त थे) ।। ७ ।।

नदी देवताओं ने अनेक विध के दूध, दही, खीर, और अनेक विध के मधुर रसों को अपने सिर पर रखकर लाकर दिये। बड़े बड़े लंबे लंबे वृक्षों ने अनेक विध के फल, फूलों को स्वयं दे दिये ।। ८ ।।

समुद्राभिमानी देवता रत्नों को लाये पर्वतों के अभिमानी चतुर्विध अन्न को समर्पण किये। इस रीति से लोकपालक सहित सकल जन यज्ञ के लिये अपना भाग समर्पित किये ।। ९ ।।

श्री हरी को ही स्वामी मानकर उपासना करने वाले राजा पृथु के इस यज्ञ के अभ्युदय को देखकर असूया से जलते हुए इंद्र देव ने यह सौवा यज्ञ पूर्ण होने का अवकाश नहीं दिया। बीच में ही विघ्न डाले ।। १० ।।

यजुर्वेद मंत्र के अधिदैव श्री हरी की इस सौवें यज्ञ में पूजा करने वाले पृथुराजा के यज्ञ के घोड़े का इंद्र अदृश्य होकर अपहरण करके ले गये ।। ११ ।।

अपहरण करने के लिये इंद्र देव ने अधर्म को धर्म मानने वाले भ्रांति युक्त पाखंडी का वेष धारण किये थे। आकाश मार्ग से यज्ञाश्व के साथ दौड़ने वाले उनको अत्रि ऋषि ने देखा ।। १२ ।।

वे महारथी राजा पृथु के पुत्र को इंद्र देव का संहार करने का इशारा किए। क्रोधित राजापुत्र ठहरो, कहते हुए उनके पीछे दौड़ा ।। १३ ।।

इंद्र देव जटाजूट धारण किये हुये और सर्वांग को भस्म लगाकर पाखण्ड वेष में थे। अधर्म शरीर में पाप वेष धारण किये हुए उनके ऊपर वे बाण छोड़ना नही चाहते थे ।। १४ ।।

पाखण्डी को मारने से पाप लगता है समझकर पृथु पुत्र ने उसको नही मारा। इसको देखकर अत्रि मुनि पुनः बोले यज्ञाश्व को चुराने वाले देवताओं के अधिपति इंद्र को (चोरी करने के कारण से) मार डालो ।। १५ ।।

ऋषि की बात मानते हुए पृथु पुत्र इंद्र की हत्या करने हेतु "रावण के पीछे दौड़े हुये जटायु जैसे" क्रुद्ध होकर इंद्र के पीछे दौड़ा ।। १६ ।।

इससे इंद्रदेव उस वेष को और यज्ञाश्व को वहीं छोड़कर अंतर्ध्यान हो गये। वह धीर पुत्र यज्ञाश्व के साथ यागशालाा को वापस आया ।। १७ ।।

वहाँ के ऋषि श्रेष्ठों ने यह अद्‌भुत कार्य देखकर (सन्तोष व्यक्त किया) संतुष्ट हुए। वे इस अद्‌भुत कार्य करने वाले पृथु पुत्र को विजिताश्व नाम से पुकारे ।। १८ ।।

उस समय इंद्र देव ने गाढ़ अंधकार को बनाया। वे यूपस्तम्भ और उसका छल्ला (यूपस्तंभ में पशु को बांधने वाली लकड़ी के गोलक) के बीच में छिपाकर बैठे थे। वे समय पाकर सोने के वड्याण से अलंकृत यज्ञाश्व को पुनः चुराये ।। १९ ।।

कपाल और त्रिशूल को हाथ में धारण किये हुए घोड़े के साथ आकाश में दौड़ने वाले इनको अत्रि मुनि ने विजिताश्व को पुनः दिखाये। किन्तु वह वीर उनको देखने में समर्थ नहीं हुआ ।। २० ।।

किन्तु अत्रि ऋषि की उसने दिखायी हुई दिशा में वह तेजी से अपने तीक्ष्ण बाण छोड़े। इससे इंद्र घबड़ाकर उस वेष को और यज्ञाश्व को वही छोड़कर वही अंतर्धान हुए ।। २० ।।

वह शूर विजिताश्व घोड़े के साथ पिता की यज्ञशाला में आ गया। "अज्ञानी" और "अन्यथा" ज्ञानी

लोग इंद्र से छोड़े हुए वेषों को मूर्खता से अपनाए ।। २२ ।।

इंद्र देव यज्ञाश्व को चुराने हेतु जिन वेषों को धारण किये उनको उनको पाखंडियों ने अपनाया। पाखंड याने पाप खंड सूचक वे (वेष) पाप सूचक बने ।। २३ ।।

इस रीति से राजा पृथु के यज्ञ का नाश करने हेतु इंद्र जी अन्यन्य रूपों से यज्ञाश्व का अपहरण करते रहे। वे धारण कर छोड़े हुए पाखण्ड वेषों में दुष्ट जनों की अभिलाषा बढ़ी ।। २४ ।।

ऊपर से देखने के लिये सुन्दर दिखने वाले, कुयुक्ति से भरा हुए वाक्यों के शास्त्र वाले, और स्वयं अधर्म होते हुए भी धर्म के समान दिखने वाले, नग्न रहना, लाल वस्त्र को पहनना, त्रिशूल नर कपालादि धारण कर कापालिक इत्यादि दुराचारों को धर्म मानकर अपनाये। इनको उपधर्म मानकर गलत तरीके से इनमें कई लोगों का मन लग गया। वे इनको सुदंर या युक्ति युक्त मानकर अपनाये ।। २५ ।।

यज्ञ में विघ्न डालने हेतु इन्द्र देव उद्देश्यपूर्वक यज्ञाश्व को चोरी करने का प्रयास कर रहे हैं यह जानकर अत्यन्त पराक्रमी और श्री हरी के आवेश युक्त वाले पृथुराजा ने क्रोध से अपने धनुर्बाण को हाथ में लिये ।। २६ ।।

क्रोध से उनका मुख दुरुह्य हो गया था। कोई आंख उठाकर उनको देख नही पाता था। क्रोध से लाल हुए उनको देखकर वहां के ऋत्विजों ने समझ लिया की यज्ञ दीक्षित महाराजा इंद्र का संहार करने को उद्यत हैं। वे तुरन्त बोले 'हे महाज्ञानी महाराजा आप ये क्या करना चाहते हैं' ? यज्ञ दीक्षा लिये हुए आप को शास्त्र यज्ञ पशु को छोड़कर, अन्य के वध को मान्यता नही देता। आप इंद्र वध को करना चाहते हैं वह शास्त्र सम्मत नही है। (इससे यज्ञ भंग होता है। अभीप्सित प्रयोजन नही मिलेगा ।। २७ ।।

इंद्र के वध करने के उपाय (तंत्र) को ऋत्विजों ने बताया। महाराजा! आपकी कीर्ति श्रवण से असूया युक्त इंद्र अपनी प्रभा को खो दिये हैं। वे आपके यज्ञ को नाश करने के प्रयास से द्रोह किये हैं। हमारे पास बहुत बलशाली मंत्र है। हम उन मंत्रो से इंद्र को इस यज्ञशाला में आग्रह से बुलायेंगे और आपके उन शत्रु को अग्नि के लिए जोर जुलूम करके आहुति दे देंगे ।। २८ ।।

हे विदुर सुनिये। कुद्ध हुए उन ऋत्विजों ने अपने मंत्रों से इंद्र को बलपूर्वक बुलाया और अपने स्रुक (यज्ञ करने का साधन) के ऊपर बिठाकार होम करने लगे। इतने में स्वयं ब्रह्माजी ने वहाँ आकर उनको रोका ।। २९ ।।

ब्रह्माजी बोले :- हे ऋत्विज! यज्ञ भगवान को 'शरीर जैसे प्रिय है' वैसे इंद्रादि देवगण इस यज्ञ के कारण श्री हरी को बहुत प्रिय लगते हैं। इंद्र वध को आप द्वारा नही होना चाहिए। उनको मारने का

प्रयास मत करो। पृथुराजा के सौवें यज्ञ को नष्ट करने के लिये ही इंद्र ने इन पाखण्ड आचरणों को किया है ।। ३०-३१ ।।

पृथुराजा की कीर्ति एकोनशतक्रतु ही रहे। (इंद्र का तो शत क्रतु है।) (एकोनशत क्रतु याने निन्यानवे यज्ञ किये हुए)। भगवत् प्रीति को पाने के लिये आप किये हुए इतने (निन्यानवे) यज्ञ ही पर्याप्त हैं, आप और यज्ञ करने का विचार छोड़े। आप मोक्ष धर्म को जानने वाले हैं ।। ३२ ।।

आप का इंद्र से द्वेष करना योग्य नहीं। इंद्र भी भगवान के विशेषांश वाले है। और भगवान के प्रिय है। आपसे उत्तम हैं आप दोनो कीर्तिशाली हैं ।। ३३ ।।

महाराजा यह अंतिम याग पूर्ण होने वाला नही है। आपको इसके लिये चिंता करने की कोई बात नहीं। आप यदि इस यज्ञ को पूर्ण करने का साहस करोगे तो दोनो लोको में अनर्थ की प्राप्ति होगी। यह भगवान की इच्छा के कारण हो रहा है। आप हमारी बातों को ध्यानपूर्वक सुनें ।। ३४ ।।

यदि आप यह सौवाँ यज्ञ पूर्ण करने का प्रयत्न करेंगे तो इंद्र से सृष्ट हुए अधर्म को धर्म मानने वाले पाखंड अधर्म को बढ़ायेंगे। इससे धर्म लुप्त हो जायेगा। इस यज्ञ को यही छोड़ दें। देवताओं से दुराग्रह करना ठीक नहीं। देवताओं के क्रोध से आपके देश में बरसात ही नही होगी ।। ३५ ।।

आपके यज्ञ का नाश करने की दृष्टि से इंद्र जो पाखण्डों का निर्माण किये हैं वे आपके वाक् चातुर्य से लोगों को अपने वश में लेते हैं। वे इस याग कर्म को अपहरण कर लेते हैं ।। ३६ ।।

अनेक शास्त्रों से चलने वाले धर्म को वेन ने अपने आचार से नष्ट किया था। उस धर्म की रक्षा करने हेतु आप वेन के शरीर से श्री हरी के कलाविष्ट होकर जन्म लिये हैं ।। ३७ ।।

सत्वगुण का अवलंबन करके विष्णु पालन करते हैं, नाश नही करतें। धर्म रक्षा के लिये जन्म लिये आप धर्म की अवज्ञा न करें। यह यज्ञ पूर्ण करने के प्रयास में मेरी और इंद्र की आवमानना न करें। आप समर्थ है। इंद्र की इस माया का और क्रूर 'पाखंडमत' का नाश करो। और सद्धर्म को बढ़ाओ" ।। ३८ ।।

मैत्रेय उवाच :- इस रीति से लोकगुरु ब्रह्मा जी से आज्ञात राजा पृथु ने यज्ञ को वहीं समाप्त किया। तथा इंद्र के साथ द्वेष छोड़कर स्नेह वृद्धि किये ।। ३९ ।।

पृथु राजा यज्ञ पूर्ति के बाद अवभृथ स्नान किये। यज्ञ के लिये आये हुए देवता उनको वर प्रदान किए ।। ४० ।।

यज्ञ करने वाले ब्राह्मण श्रद्धा से दी हुई दक्षिणा से तृप्त होकर राजा को सफल आशीर्वाद दिये ।। ४१ ।।

।। यहां उन्नीसवां अध्याय समाप्त होता है।।

बीसवाँ अध्याय

मैत्रेय उवाच :-

यज्ञों से पूजित, अश्वमेघ यज्ञ में अग्र पूजा प्राप्त, यज्ञों के रक्षक और यज्ञ के मुख्य फल भोक्ता श्री विष्णु ने जो समर्थ, सर्वैश्वर्य युक्त है इंद्र के साथ आकर पृथुराजा से कहा :- ।। १ ।।

भगवान उवाच :-

हे राजन् इंद्र ने तुम्हारे सौवे यज्ञ को नष्ट किया है न ? इसके लिये तुमसे और तुममे स्थित हमसे वे क्षमा मांग रहे हैं। उनको तुम क्षमा करो ।। २ ।।

यह देह जड़ है और अनित्य है। इसी कारण से लोक में साधु और ज्ञानी लोग देहाभिमान से किसी को (जीवमात्र) को कष्ट नही देते ।। ३ ।।

शरीर के अभिमान से तुम्हारे जैसे ज्ञानी लोग अपने विरुद्ध आने वाले जीवों के बारे में यदि द्रोह किये तो पूरे जन्म भर की हुई बड़े लोगों की सेवा व्यर्थ हो जायेगी। वह (सेवा) केवल अपने शरीर को कष्ट देने की क्रिया बन जाती है ।। ४ ।।

ज्ञानी कभी भी अपने ज्ञान को (शास्त्राभ्यास को) व्यर्थ होने नहीं देते। वे ठीक तरह से जानते हैं कि यह शरीर अविद्या (अज्ञान) काम (कामना) और कर्मो से प्राप्त हुआ है। इसी कारण इसमें वह अभिमान रखता नही ।। ५ ।।

इस शरीर में आसक्ति न रखने वाला ज्ञानी इस शरीर से निर्मित हुए, घर, गृहणी, बच्चे और संपदाओं में ममता क्यों करे ? ।। ६ ।।

भगवान् नारायण मुख्य है। उनमें स्वगतभेद नही हैं वे जनन मरणादि दुःख रहित है। सत्वादि प्राकृत गुण रहित है। ज्ञानांनंदादि गुणों से पूर्ण है। सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी अन्यों को दिखते नहीं। साक्षी के लिये अनुभव विषय हैं, सबके स्वामी है। उनके लिये और एक स्वामी नहीं है। वे सबसे श्रेष्ठ हैं ।। ७ ।।

वे निष्प्रयोजक जड़ देह रहित और देह के कारण होने वाले जननमरणादि रहित हैं। "सोआ हुआ आदमी जैसे देहाभिमान छोड़कर भगवान के पास रहता है" वैसे ही भगवान सदाकाल दुःख रहित हैं। जागृतावस्था में जीव जैसे कार्य मग्न होता है; वैसे 'स्वतंत्र' प्रवृत्ति वाले हैं ।। ८ ।।

इस रीति से (ऊपर क दो श्लोको में वर्णित रीति से) अपने शरीर में रहने वाले भगवान को जो जान लेता है वह श्री हरी में दृढ़ मन वाला होता है। वह अपने जड़ शरीर में रहते हुए भी सुख दुःखो से बाधित नहीं होता ।। ९ ।।

जो (भक्त) जीव कोई कामना न करते हुए श्रद्धा से प्रतिदिन अपने स्वधर्म से उक्त रीति से मेरा ध्यान (आराधना) करता है उसका मन क्रमानुसार प्रसन्न होता जायेगा ।। १० ।।

मन प्रसन्न होने के बाद (शब्दादि) विषयों में से आसक्ति छूट जाती है। मन दोष रहित होकर शुद्ध हो जाता है। इसके बाद मेरा दर्शन मिल जाता है। (ब्रह्मापरोक्ष होता है) ।। ११ ।।

इस रीति से अपरोक्ष से मेरा दर्शन किया हुआ भक्त मेरे अनुग्रह से न बदलने वाले अपने स्वरूपभूत आनन्द को (मोक्ष को) पाता है। मै इस विश्व का स्वामी हूँ। मै इस तामस वैकारिक और तेजस अहंकार से सृष्ट वस्तुओं का स्वामी हूँ। बिना किसी कष्ट मैं इस विश्व की रचना करता हूँ। इतना होते हुए मैं विकार रहित हूँ। मैं ही सर्व जीवियों को प्रेरणा देने वाला हूँ। इस रीति से मुझको जानने वाले को मोक्ष (अपरोक्ष) होता है। मोक्षापरोक्ष के बाद ही उसको अपना पूर्ण स्वरूप ज्ञान होगा ।। १२ ।।

शरीर अभिमान त्याग का और एक विषय (तरीका) है। पंचमहाभूत, पंचज्ञानेद्रिय पंच कर्मेन्द्रिय और चेतना ये इनसे निर्माण हुआ यह शरीर जड़ से भिन्न है (क्रियाशाली है) और चेतनात्मक मन से युक्त है। यह मन गतकाल के विषयों को और (कभी) होने वाले विषयों को समझ लेता है। यह चेतन युक्त विश्व सत्वादि गुणों से प्रवर्तित होते हुए यह संसारिक जीवन चलता है। मैं सर्वोत्तम हूँ और विश्व चलाने को समर्थ्यवान हूँ। यह समझकर मुझमें सर्वोत्तम भक्ति करना चाहिये। इस रीति से चिंतन करने वाले मेरे भक्त को चाहे संपदा आये या विपदा उसको दुःख नहीं होता। उसे जनन मरण का दुःख नही बाँधता। (इसका अर्थ सबका नियामक रूप से भगवान को ही मानना) ।। १३ ।।

(मोक्ष के और साधनों के बारे में भी कहते हैं।) उत्तम मध्यम और अधम लोगों को उनकी योग्यता के अनुसार समभाव से देखना, सुख-दुःख, लाभ-हानि, जयापजय इत्यादि द्वन्द्वो में समान रहना। इंद्रिय और मन जीतकर इंद्रिय जय की साधना यह मोक्ष जीवन के लिये अन्य साधन है। तुम इन सबको पा लिये हो। तुम सज्जन ब्राह्मणों से मिलकर सारी प्रजा का पालन करो ।। १४ ।।

प्रजा पालन करना राजा के लिये श्रेय देने वाला है। स्वर्ग या मोक्ष में राजा अपनी प्रजा के पुण्य के एक षष्ठांश को पाता हैं। प्रजा की रक्षा नही करने वाले राजा को प्रजा के पाप को ही भोगना पड़ता

है। (प्रजा पालन भी राजा को मोक्ष का साधन बनता है) ।। १५ ।।

तुम उत्तम ब्राहमणों का मत लेते हुए धर्म के अनुसार (उस प्रजा की योग्यता के अनुसार) प्रजा का पालन करो। प्रजानुराग को प्राप्त करने के बाद तुमको सनकादि सिद्ध पुरुषों का दर्शन होगा। वे ही तुम्हारे पास आ जायेंगे ।। १६ ।।

मैं तुम्हारी भक्ति, सद्गुण और साधु स्वभाव को देखकर लुब्ध हो गया हूँ। मैं भक्तों की योग्यता के अनुसार उनमें रहता हूँ। गुरु और बड़े लोगो में भक्ति करने वालों को मै सुलभ प्राप्य हूँ। मुझसे तुम कुछ वर मांगो ।। १७ ।।

सारे विश्व को जीते हुए राजा पृथु जगत के गुरु श्री हरी के आदेश को सिरसा मान्य किये। (इंद्र के सामने अपनी हार माने) ।। १८ ।।

भगवान के साथ आये हुए इंद्र देव पृथु में स्थित राजाधिराज रूप का स्मरण करते हुए उनके चरण स्पर्श किये और उनके पाद को सिर स्पर्श करते हुए दंडवत् प्रणाम किये। (समर्थ होते हुए असुर जन मोहनार्थ अपनी लज्जा प्रकट किये।) राजा पृथु उनको गलें लगाते हुए उनसे विद्वेष छोड़ दिये ।। १९ ।।

पूर्णगुण देहवाले भगवान् नारायण का पृथुराजा पूजन किये। वे सज्जनों के अनिमित्त बंधु हैं। कमल दल सदृश आँखवाले भगवान वहां से जाना चाहते थे। किन्तु पृथुराजा के प्यार के खंखल से बंधित पादवाले वहीं ठहर गये। चंद्रोदय से जैसे समुद्र बढ़ता है वैसे पृथुराजा की बढ़ती हुई भक्ति के कारण भगवान का प्यार भी राजा के ऊपर बढ़ रहा है ।। २०-२१ ।।

राजा दोनो हाथ जोड़ दिये हैं। उनकी आँखे प्रेमाश्रुसे भरी हैं। वे आंख खोल के भगवान को ठीक तरह से देख न पाये। मुहँ से एक बात भी नहीं निकल रही है। आँखों से पानी बहाते हुए हृदय में हरि ध्यान करते हुए वे चुपके से खड़े हुए है ।। २२ ।।

थोड़े समय के बाद आँखों को पोंछ कर श्री हरी को गौर से देखे। वे देखते ही रहे। बार बार देखने के बाद भी उनको तृप्ति नही हुई। भगवान उनके सामने अपने लिये ऊपर आये हुए गरूड़ के कंधे के ऊपर एक हाथ रखकर खड़े हैं। श्री हरी को प्रणाम करते हुए वे बोले ।। २३ ।।

भगवान आप वर देने में प्रसिद्ध ब्रह्मादि देवों का नियमन करने वाले हैं। ज्ञानी आपसे क्या वर मांगना चाहेगा ? विषयों से विकृत होने वाला मन जिसका है, और जिसके परिणाम से नरक मिलता है। ऐसे मन वाले भी ये ऐहिक सुख देने वाले वरों को पा लेते हैं। (उनसे मेरा मतलब नही) मोक्ष को ही

देने वाले आपसे उनको कौन मांगना चाहता है ? ।। २४ ।।

हे नाथ! बड़े बड़े संतो के मुखारविंद से द्रवित होने वाले आप के नामरूप मकरंद से हम तृप्त है। इसके बदले में हमें मोक्ष की भी आवश्यकता नहीं है। कर्णमधुर अपका नामामृत और आपका कथामृत सुनने का भाग्य हमें दें। हमें यही बस है। हम और कुछ नही चाहतें। यही हमारे लिये वर होगा ।। २५ ।।

भगवन् संत लोगों के मुख से संकीर्तन रूप से निकली हुई आपके पाद कमल की सुगंध लिए हुए वायु का सेवन करने से तत्वमार्ग को भूल गया हुआ योगभ्रष्ट किन्तु मोक्ष योग्य जीवी को तत्वज्ञान की पुनः याद हो जाती है। ऐसा रहते हुए हम अन्य वर को लेकर क्या करेंगे ।। २६ ।।

प्रभो आप मंगलकर हैं। आप कीर्तिमान हैं। आपके यशोगान को पुनः पुनः सुनना, आपसे उपदेश पाने की इच्छा श्री लक्ष्मी देवी स्वयं करती रहती है। ऐसे होते हुए आपके तत्वाान को जानने वाले ज्ञानी संत यदा कदा आते हैं। तदा आपकी मोक्ष देने वाली यशोगाथा को सुनने के अवसर को सारग्राही नही छोड़ेगा। कोई छोड़ देता है तो वह अज्ञानी होगा ।। २७ ।।

इसीकारण से पुरुषोत्तम और सर्वगुणाश्रय आपको मैं आसक्ति से लक्ष्मी की तरह से सेवा करना चाहता हूँ। हम दोनों को आपके पद कमल ही आश्रय है। हमारे स्वामी आपकी सेवा हम दोनों करेंगे। हम दोनो में कभी भी वैमनस्य आने वाला नहीं है ।। २८ ।।

इस जगत में इस प्राणी समूह में परस्पर द्वेष और झगड़ा स्वाभाविक है। पदाधिकार के लिये तो झगड़े होते है। यह स्वाभाविक है। किन्तु आपकी सेवा कर्म में विरोध आने की बात ही नही उठती, क्योंकि आप छोटे से कर्म के लिये भी महत्फल देते हैं। आप दीन वत्सल हैं। आप स्व रमण हैं। आपके लिये और किसी की (लक्ष्मी की भी) आवश्यकता नही हैं ।। २९ ।।

आप भक्तों के ऊपवर विशेष प्यार करते हैं। इसी कारण ज्ञानी और साधु संत प्राकृत गुण विकार रहित आपका भजन करते हैं। वे निष्काम होते हैं। उनकी भक्ति में आपके पाद स्मरण के बिना अन्य कोई उद्देश्य हमें दिखता नहीं ।। ३० ।।

आपके स्मरण से ही मोक्ष मिल जाता है। आप वर मांगने के लिये कह रहे हैं मै समझता हूँ वह केवल मोह करने के लिये हैं ।। ३१ ।।

आपके शब्द रूप वेद भी रस्सी बनकर अज्ञानियों को बांध देते हैं। इसी कारण वे मोह वश होकर फल कामना करते हुए कर्म करतें है। हे जगदीश अनादिकाल से लोग आपकी इस बंधक शक्ति के वश

होकर आपका स्मरण करना छोड़कर काम्य फलों की इच्छा करते हुए आप से दूर हो गये हैं। हम पहले ही आपकी इस माया (बंधक शक्ति) से बंधित हैं। ऐसे हमको पुनः वर मांगने के लिये प्रचोदित करना ठीक नही। पिता जैसे अपने पुत्र के हित को करता हैं। वैसे ही आप हमसे न मांगे हुए हमारा कल्याण जिसमें हो उसी को करें ।। ३२ ।।

श्री भगवान उवाच :- हे राजन् मुझको छोड़कर तुम और कुछ नही चाहते हो। मेरे भक्त स्वर्ग और नरक जैसे मोक्ष को भी अनपेक्षणीय मानते हैं (मोक्ष को भी चाहते नही) मेरी बातों में विश्वास रखते हुए तुम न त्याग सकने योग्य क्रोध को त्याग दिये हो। मेरी बातों को मानना ही मेरी श्रेष्ठ पूजा है ।। ३३-३४ ।।

मैंत्रेय उवाच :- ऐसे पृथुराजा की अर्थपूर्ण बातों को सहराते हुए उनसे की हुयी पूजा को ग्रहण करने के बाद उनको पूर्णानुग्रह देकर भगवान वहाँ से चलने का मन किये ।। ३५ ।।

सब देव ऋषियों के भगवान नियामक होकर रहते है और अपने में प्रेरक होकर कर्म करवाते हैं। यह विचार समझकर पृथुराजा भगवान के साथ आये हुए देवता, ऋषिगण, पितृगण, गंधर्व, यक्ष, सिद्ध, चरण, पक्षी, नाग, किन्नर, अप्सरसाओं, मानव समूह और खासकर श्री हरी के द्वारपालकों का पूजन तन, मन, धन (मनसा वाणी कर्मणा), नमस्कार और भक्ति के साथ किया ।। ३६-३७ ।।

राजा से सत्कार पाकर भगवान अपने साथी के साथ राजा और पुरोहितों के देखते देखते उनके मन को हरण करते हुए अदृश्य हो गये (अव्यक्त हो गये) ।। ३८ ।।

राजा पृथु अव्यक्त होने के बाद भी अनुग्रह करके अपने चिदानंद रूप के दर्शन दिये हुए भगवान को वहीं से नमन करते हुए अन्य बचे हुए लोगों के साथ यागशाला से अपने नगर को वापस आये ।। ३९ ।।

।। यहा बीसवां अध्याय समाप्त होता है ।।

इक्कीसवां अध्याय

मैत्रेय उवाच :- उस नगर का मोतियों की और फूलों की माला से, रेशमी वस्त्रों से और सोने के तोरणों से श्रृंगार किया था। जगह जगहों पर सुगंधित धूप डाले थे ।। १ ।।

उस नगर के राजपथ, अन्य रास्ते और चौरस्तों को चंदनागरु युक्त सुगंधित जल से धोये थे। फूलों से, अक्षतों से, फलों से, नारियल से लावा (लाजा, कील) से और दीपों से सजाया गया था ।। २ ।।

रास्ते के दोनो तरफ फूलों से सजाये हुए केले के खम्बे और सुपारी के गुच्छों से अलंकार किये थे। हरेक घर और मंदिर आम की पत्ती से शोभायमान थे, फूलों की माला द्वार पर लटकायी गयी थी ।। ३ ।।

दीप,पूजा सामग्री और मंगल द्रव्यों को हाथ में लिये हुए प्रजा लोगों ने राजा का स्वागत किया। शुद्ध स्नान किये हुए और दूकूल वस्त्र पहने हुए आभरणों से भूषित स्त्रियों ने राजा की आरती उतारी ।। ४ ।।

शंख और दुंदुभी ध्वनि होने लगी। ऋत्विज वेद घोष करने लगे। बन्दी स्तोत्र करने लगे। अहंकाररहित राजा विनम्र होकर राजमन्दिर में प्रवेश किया ।। ५ ।।

महा कीर्तिशाली राजा राज्य की प्रजा से, खासकर नगर की प्रजा से सम्मानित हुए और उनका प्रति सम्मान किये। राजा उनसे संतुष्ट हुए और उनको इष्टार्थ दिये ।। ६ ।।

राजा पृथु द्वारा किये जाने वाले कामों में दोष नहीं रहता था। वे महामहिम इस भूमण्डल का पालन करते हुए अपनी कीर्ति को और बढ़ाते हुए भूमि में अपनी कीर्ति को स्थापित कर परम पद को प्राप्त किये ।। ७ ।।

सूत उवाच! हे शौनक महोदय, सुनिये! आदि राजा पृथु के सद्गुणों से भरे हुए यशोगान को सुनने के बाद विदुर जी ने अपने गुरु स्वरूप मैत्रेय जी की मानवंदना करते हुए पूछा ।। ८ ।।

विदुर उवाच :- पृथु राजा ब्राह्मणों से अभिषिक्त हुए देवताओं से पूजित हुए। वे दोनों बाहों में भगवान के तेज को धारण किये थे और प्रजा के लिये भूदोहन किये ।। ९ ।।

इनके पराक्रम की छाया में आगे आने वाले राजा और (असुर जन मोहनार्थ) लोकपालों ने अपना जीवन चलाये। ऐसे महामहिम की कीर्तिगान को सुनने का अवकाश कौन रसज्ञ छोड़ता ? उनके पवित्र

कर्मों को आप मेरे लिये और भी बताइए ।। १० ।।

मैत्रेय उवाच :- पृथुराजा गंगा जी और जमुना जी के मध्य के प्रदेश में रहते थे। प्रारब्ध कर्म के अनुसार शरीर धारण के लिये आवश्यक जीवन चलाते थे। मोक्ष के लिये बंधक होने वाले पुण्य को व्यय करने के लिये सुखोपभोग लेते थे किन्तु सुखभोग से भोग विलास करने के लिये नही। वे भगवद् भक्तों को कष्ट नही देते थे किन्तु, पापियों के ऊपर कड़क आज्ञा चलाते थे। सात समुंदर पार करते हुए सातो द्वीपों में उनका एकक्षत्र राज्य चलता था ।। ११-१२ ।।

राजा एक बार बड़ी दीक्षा यज्ञ चलाये। उस यज्ञ के लिये देवता, ब्रह्मर्षि और देवर्षिगण एकत्र हुए थे। उन सबका उनकी योग्यतानुसार सत्कार किया गया। नक्षत्रों के मध्य से चंद्र के समान राजा पृथु उनके बीच में खड़े हुए ।। १३-१४ ।।

(राजा का वर्णन करते हैं)

पृथुराजा की देह उन्नत थी। भुजायें गोल और विस्तृत थीं। निर्मल और सोने जैसा उनका रंग; कमल सदृश आँखे, सुंदर और सुशील नाक, मनोहर मुख, सुन्दर स्वरूप सुशोभित दंत पंक्ति, मंदहास विशाल वक्ष, विस्तार पीठ, तीन रेखा युक्त पेट, गूढ़नाभी उज्ज्वल कांति युक्त शरीर; सुन्दर और गोल जंघाद्वय, उन्नत पादाग्र, स्पष्ट और गंभीर आवाज, पतले और घुघराले काले बाल शंख के समान तीन रेखा युक्त कंठ ऐसे सुन्दर रूप वाले, महाराजा रेशम के सुन्दर दुकूलों का परिधान धारण किये हुए यज्ञ की दीक्षा के कारण सारे आभरणों को निकाले हुए ऊपर एक वस्त्र धारण किये हुए मृग छाल से युक्त होकर सभा मध्य में शोभायमान थे। वे हाथों में कुशों की पवित्र धारण किये थे। यज्ञ प्रारम्भ करने के (यज्ञ का) सारे कर्म कर चुके थे। वे अपनी प्रेममय दृष्टि से चारो ओर बैठे हुए सभासदों को देखे ।। १४-१५-१६-१७-१८ ।।

सुनने वाले को संतोष देने वाली, सुन्दर पद वाक्यों से युक्त, मन को मुद देने वाली अर्थ पूर्ण बातों को राजा बोलने लगे ।। १९ ।।

पृथु उवाच - हे सभासद महोदय ! मेरी बातों को ध्यान से सुनिये। आपका कल्याण हो। धर्म की जिज्ञासा करने वाले लोगों को अपने विचार धर्मज्ञों के सामने रखना चाहिये ।। २० ।।

सर्वरक्षक श्री हरी इस भूलोक में दुष्टों को दंड देने के लिये प्रजा की रक्षा के लिये और उनको जीवन वृत्ति का (उद्योगों का) निर्माण करने, उनसे धार्मिक विधि-विधानों को करवाने के लिये मुझे नियुक्त किये हैं। उन विधानों का अनुष्ठान करने से कर्म साक्षी भगवान संप्रीत होतें

हैं। तब मुझे अपनी इच्छानुसार समस्त सिद्धियुक्त सारे पुण्य लोकों की प्राप्ति होगी। यह ब्राह्मवादियों का कहना है ।। २१-२२ ।।

जो राजा प्रजाओं से शुल्क लेता है किन्तु उनको धर्म मार्ग में चलाता नही वह प्रजा के पाप को ही भोगता है। उसको प्रजा के पुण्य का एक षष्ठांश भाग भी नहीं मिलेगा ।। २३ ।।

इस लिए आप (प्रजाजन) असूया रहित होकर अपने पालन करने वाले मेरी सद्गति प्राप्ति के लिये अपने कल्याण के लिये श्री हरी में दृढ़ निष्ठायुक्त भक्ति कीजिये। यही मेरे लिये आपका अनुग्रह बनेगा ।। २४ ।।

पितृगण और देवतागण आप लोग दोष रहित है। आप सभिकों के साथ मेरी इन बातों का अनुमोदन करें। कर्ता को, करवाने वाले को और उसका अनुमोदन करने वालों को भी सत्कर्म का फल मिलता है ।। २५ ।।

हे सज्जनोत्तम जन, व्यासादि बड़े ऋषि भी बताते है कि सर्व यज्ञों की रक्षा करने वाले भगवान श्री हरी हैं। यह प्रसिद्ध है। इस देह में इस लोक में और परलोक में भी भगवान की विभूतियाँ देवता रूप में, इंद्रियाभिमानियों के रूप में और श्रेष्ठ महापुरुषों के रूप में दीख पड़ती हैं। वे नक्षत्र के रूप में प्रकाश देती हैं ।। २६ ।।

कई विभूतियों के नाम देते हैं। स्वायंभुव मनुराज, राजा उत्तानपाद, ध्रुवराज, राजा प्रियव्रत, आपके पितामहा अंगराज, प्रह्लाद, बलि चक्रवर्ती, रुद्र ब्रह्मादि देवतागण ये विभूतियाँ भगवान श्री हरी की सेवा करती रहती हैं। उन्ही से प्रकाश पाती हैं, अनुग्रह पाती हैं ।। २७-२८ ।।

राज्य, स्वर्ग और मोक्ष मिलने के लिये श्री हरी की कृपा होनी चाहिये। इस सारे जगत में श्री हरी ही प्रधान हैं, वही जगत के कारण है। मृत्यु के पौत्र वेन मणिमंतादि नास्तिकों को श्री हरी मिलते नही। वे लोग अधर्म को ही धर्म मानते हैं। वे मोह के अधीन हैं और अंधःतमको पाते हैं ।। २९ ।।

तपस्वी लोग उनकी (भगवान की) पाद सेवा में आस्था रखते हैं। श्री हरी के पादांगुष्ठ से उत्पन्न हुई गंगा जी, अपने सेवन करने वाले के तन और मन को शुद्ध करते हुए (एक के बाद एक) बहुत दिनों के बाद भगवत् प्रसाद का कारण बनती हैं। किन्तु भगवान के अनुग्रह से उनकी पाद सेवा से वह प्रसाद अभी मिल जाता है, और रोज रोज बढ़ता जाता है ।। ३० ।।

अपने स्वरूपभूत आनन्द प्राप्ति रूप मोक्ष को पाने के लिये तुम लोग मोक्ष देने वाले महिमा वाले

श्री हरी के पाद कमलों की निष्ठा से सेवा करें। अपने मन, तन, और वचन से ध्यान, सेवा और संकीर्तन से उनकी अपनी योग्यतानुसार आराधना करें ।। ३२ ।।

इन जीवराशियों में कई योग्य सज्जन षोड़शादि यज्ञों से श्री हरी की आराधना करते हैं। इन यज्ञों में पुरोडाशादि द्रव्य, सत्कुल जन्मादि गुण, ऋत्विगों का वेद मंत्र और क्रिया अलग अलग होती है। यजमान के ऊपर कृपा करने वाले देवताओं का चिन्ह और नाम, (भगवान के चक्र धारित्व और नारायणादि नाम) अलग अलग होते हैं। इसीकारण ये यज्ञ अलग अलग गुण वाले और अलग फल देने वाले होते हैं। इन यज्ञों को करने से अत्यन्त शुद्ध और विशेष ज्ञान से भरे हुए श्री हरी को पाते हैं ।। ३३ ।।

श्री हरी स्वतंत्र और ज्ञान रूप हैं। लकड़ी में आग रहता है। मंथन करने से वह दीख पड़ती है। लकड़ी के छोटे मोटेपन के अनुसार आग भी बड़ी और छोटी होती है। उससे मिलने वाला प्रकाश भी छोटा मोटा होता है। वैसे ही भगवान श्री हरी जीवों के अंतर्यामी होकर उन उन जीवों की योग्यतानुसार काल, स्वभाव और अदृष्ट के अनुसार कर्म के फल देते है। पुण्यकर्मी लोग इसको ठीक तरह से समझ लेते हैं ।। ३४ ।।

ये पुण्यकर्मी लोग भगवद् भक्त हैं। मुझे संतोष है कि ये मेरी प्रजा हैं। ये सदाकाल श्री हरी के काम में ही मग्न रहते हैं। अपनी भक्ति से अपने इष्ट देव, गुरु और यज्ञ के फल भोगने वाले ब्रह्मादि देवताओं का नियमन करने वाले श्री हरी की सदैव पूजा करते रहते हैं। ये ब्राह्मण है और भगवान के मुख से जन्म लिये हैं। ये लोग अपने पुण्य के एक षष्ठांश भाग को अनुग्रह के साथ हमें देते हैं। ये हमारे प्यार के योग्य हैं। इनका पुण्य फल अधिक है, इनका पाप नष्ट होता है, इनसे इस लोक में समत्व बन जाता है ।। ३५ ।।

हमारे वंश वाले हे राजाओं आपके पास सम्पदा है। उसके प्रभाव से आप ब्राह्मणों को कष्ट देने वाले न बनें। वे अजित नाम के भगवान श्री हरी की उपासना करने वाले हैं। सुख दुःखादि द्वंद्व को सहन करने वाले है। विद्या और तप से उनका वंश प्रकाशमान होता है ।। ३६ ।।

इंद्र देव सदाकाल श्री हरी के पाद कमल का भजन करते हुए बहुकाल के लिये ऐश्वर्य और पवित्र कीर्ति का संपादन किये ।

इंद्र से भी श्रेष्ठ और ब्रह्मा जी से भी दिव्य स्थान में श्री हरी विराजतें हैं। ऐसे पुराण पुरुष श्री हरी ब्राह्मणों को विशेष प्यार करते हैं। आप सब लोगों को भी उनसे प्यार करना चाहिये ।। ३७ ।।

सकल सद्गुणों के आश्रय स्वतंत्र और सबके नियामक श्री हरी ब्राह्मण प्रिय हैं। वे ब्राह्मणों की सेवा से संतुष्ट होते हैं। इसी कारण भगवद्धर्मों में आसक्त विनीत क्षत्रिय लोगो को सर्व रीति से ब्राह्मणों की सेवा भक्ति से करनी चाहिये ।। ३८ ।।

ब्राह्मण सदाकाल भगवान से संलग्न रहते हैं। भक्तिपूर्वक इनकी सेवा करने से भगवान का अनुग्रह तीव्र मिलेगा। तब वह आदमी अकृत्रिम रूप मोक्ष को पावेगा। देवताओं के लिये भी इस संसार में इससे बढ़िया सुख कहां मिलेगा ।। ३९ ।।

भगवत् तत्व को ठीक तरह से जानने वाले श्रद्धा से ब्राह्मणों के मुख में भगवन्नाम के साथ अन्नादियों को होम करेंगे (अन्नदान करेंगे)। उस अन्न को भगवान् बहुत प्यार से ग्रहण करते हैं। अग्नि मुख में किए हुए अन्न को उतने प्यार से लेते नही। (अग्नि जड़ है ब्राह्मण चेतन है)। और यति (सन्यासी) यों के मुख में होम किये तो (अन्न दान किये तो) ब्राह्मणों से भी ज्यादा प्यार से भगवान उसको स्वीकार कर लेते हैं। क्योंकि वे (सन्यासी) वेदों का विचार करतें हैं। याने अग्नि मुख में होम करने से ज्ञानी ब्राह्मण को अन्नदान करना श्रेष्ठ है। और ब्राह्मण से भी बढ़कर यति भोजन श्रेष्ठ है ।। ४०।।

ब्राह्मण जन निषिद्ध वस्तुओं का परित्याग कर श्रद्धा से तप इत्यादि विहिताचारसे, मौन, दम और समाधियों के साधने से नित्य, निर्दुष्ट और सनातन ब्रह्म और वेदों को धारण करते हैं। समाधि में ब्रह्म को आपने जैसे चित्र की भांति स्पष्ट रूप से देखतें हैं ।। ४१ ।।

इनके पाद कमल की धूली को मै तो जीवन भर अपने किरीट में धारण करता हूँ। जो भी इसे धारण करता है उसके पाप तुरन्त नष्ट होते हैं। सारे सद्गुण उसमें आ जाते हैं। श्रद्धावान् गुणवान, शीलवान् और उपकार का स्मरण करने वाला जो होता है उसी के पीछे सारी सम्पदायें आ जाती हैं। इसी कारण मैं प्रार्थना करता हूँ कि; ये ब्राह्मण लोग, वेद वाक्य, और अपने परिवार सहित भगवान् श्री हरी मुझसे प्रसन्न हो ।। ४२-४२ ।।

मैत्रेय उवाच :-

राजा की इन बातों को सुनकर साधु, पितृ देवगण, और ब्राह्मण लोग संतुष्ट होकर राजा की प्रशंसा किये ।। ४४ ।।

साधू उवाच :-

इस भूलोक में यह बात प्रसिद्ध है कि योग्य पुरुष उत्तम पुत्र से सद्गति पाता है। श्रुतियों की यह

बात आपके बारे में सत्य हो गयी है। राजांश वाले आपके पिता बहुत पाप किये थे। फलस्वरूप ब्राह्मणों के श्राप से मर गये। वे आपके प्रभाव से नरक न पाते हुए स्वर्ग सिधार गये ।। ४५ ।।

हिरण्यकशिपु में रहने वाले को जय भगवन्निंदा के कारण अंधंतमस् को जाना था। किन्तु पुत्र प्रह्लाद के भगवद्भक्ति के कारण ऊर्ध्व लोक को पाया ।। ४६ ।।

हे वीरवर ! इस पृथ्वी के पालक होने के कारण आप को पिता माना जाता है। पूरे ब्रह्मांड के स्वामी भगवान में आपकी अचल भक्ति है। आप जुग जुग जीयो ।। ४७ ।।

हे परम पावन कीर्तिशाली महाराज़ ! हम आपके कारण अब जगन्नाथ मुकुंद को अपना नाथ मान लिये हैं। आप हमसे पूछने के पहले ही कीर्तिवानों में अत्यन्त श्रेष्ठ ब्राह्मणों के उपास्य भगवान् श्री हरी की सुन्दर कथा को कह दिये ।। ४८ ।।

आपके सेवक हम लोगों को उपदेश देकर आपने अनुग्रह किया, यह आपके स्वभाव के अनुसार ही है। कारूण्य वाले आप प्रजाओं को प्यार करते हैं ।। ४९ ।।

प्रभो हम अपने दैव मानने वाले कर्म से इधर उधर भटकते रहते हैं। हम तत्वज्ञान रहित हैं। अब आप हमको अज्ञान के उस पार के ज्ञान से मिला दिये हैं ।। ५० ।।

आप भगवान श्री हरी के अंश से आविष्ट है। आपमें श्री हरी सत्वगुण को ही प्रधान रूप से लेते हुए जगद्रक्षा का विशेष काम करते हैं। और आप से ही इन ब्राह्मणों की रक्षा भी कर रहे हैं।" इन वाक्यों से प्रजाजन अपने स्तोत्र का समर्पण किये ।। ५१ ।।

।। यहां इक्कीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।।

बाईसवां अध्याय

मैत्रेय उवाच :-

इस रीति से प्रजाजन महापराक्रमशाली पृथु राजा की स्तुति किये। इतने में सूर्य के समान प्रकाश देने वाले चार मुनी वहाँ आ गये ।। १ ।।

आकाश से उतरते हुए उन श्रेष्ठ सिद्ध पुरुषों को देखकर ये जान गये की ये सनक सनंदनादि योगीश्वर हैं। और अपने सभासदों के साथ उनका स्वागत करने उठ पृथुराज खड़े हुए।। २-३ ।।

गौरवान्वित सदस्यों के साथ साधु स्वभाव के राजा नम्रता से सिर झुकाये हुए पूजा सामग्री को लेकर आसन देकर अर्घ्यपाद्यादि से उनकी विधिवत् पूजा किये ।। ४ ।।

उनके पाद धोकर उस जल को अपने शिखा (चोटी) पर मार्जन करके पृथुराजा ने बड़े लोगों को सम्मान देने के तरीके से ही उनको सम्मान दिये ।। ५ ।।

वे सनकादि ऋषि राजा से दिये हुए चार सोने के आसन पर गार्हपत्य, आहवनीय, दाक्षिणाग्नि और सामान्य अग्नि ऐसे चार अग्नि के समान दिखने वाले वे चार सिद्ध पुरुष बैठे थे। ये चारों ऋषि श्वेत वराह कल्प में रुद्र देव से भी पहले ब्रह्मा जी से सृष्ट हुए थे। (तीसरे स्कंद में देखें) श्रद्धा और संयम से युक्त राजा प्रीती से उन मुनियों से बोले ।। ६ ।।

पृथु उवाच :-

हे सारे मंगलों के आश्रयीभूत मुनिजन, जो भगवान के भक्त नही हैं उनको आप दर्शन देते नहीं। आपका दर्शन हुआ इसका अर्थ यही है कि; हम भगवान के लिये 'प्रिय' कुछ 'मंगल' कार्य किय होंगे। मै धन्य हो गया ।। ७ ।।

ब्रह्मादि सारे जीव अंतर्यामी श्री हरी को जैसे पूर्ण रूप से नही जान सकते हैं वैसे ही लोक संचार करने वाले हम आपको देखते हुए भी पूर्ण रूप से जान नही पाते ।। ९ ।।

आपकी सेवा में सज्जन गृहस्थ लोग अपकी पूजा करते हुए आपको अपने घर पर बिठा के दर्भासन, अर्घ्य देकर प्यार से बाते करते हैं। वे धन हीन और दरिद होते हुए भी वे ही धन्य हैं। वे ही पुण्यवान हैं। ।। १० ।।

इसके विपरीत जो घर तीर्थपादों (भगवद् भक्त वैष्णवों) के पादतीर्थ से वंचित हैं (वहां संत आते ही नही) वह घर कितना भी धन धान्य से समृद्ध रहने पर भी सांप को आश्रय दिये हुए वृक्ष के समान त्याज्य है ।। ११ ।।

हे महोदय आपका स्वागत है। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ आप मोक्ष की अपेक्षा करेन वाले श्रद्धा से व्रत और नियमों का पालन करते हैं। देखने के लिये बच्चे जैसे लगते हैं किन्तु आप ज्ञानवृद्ध हैं ।। १२ ।।

हम अपने कर्मफल के अनुसार दुःख का कारण बने हुए इस संसार में पतित होकर केवल इंद्रियों के तृप्ति के लिये धन सम्पादन करने में जुटे हुए हैं। ऐसा होते हुए हमें सुख कहा से मिलेगा ? ।। १३ ।।

आप अंदर से ही आनन्द पाते हैं। आपको कुशल और अकुशल ऐसा अलग कुछ नही है। आप सबको भगवान की आज्ञा मानकर स्वीकार करते हैं ।। १४ ।।

इसके लिये आपके योगक्षेम के बारे में पूछने का विषय ही नही आता। आप श्री हरी में ही आनन्द का अनुभव करने वाले है। आप अब कृपा करके मुझे बताइये की इस संसार का दुःख निवृत्ति रूप मोक्ष शीघ्रातिशीघ्र हमें किस साधन से मिलेगा ? ।। १५ ।।

भगवान श्री हरी सकल जीवराशियों को इष्टार्थ देने वाले हैं। वे हमारे अन्दर रहते हैं। हमारे मन को प्रेरणा देते हुए स्वयं का ज्ञान करा देते हैं। वे भगवान, और लोगों के प्रति अनुग्रह करने के लिये आप जैसे सिद्ध पुरुषों के रूप में संचार करते हैं। (इसी के लिये अनुग्रह करके आप ही हमें योग्य रास्ता बताइये) ।। १६ ।।

मैत्रये उवाच :-

पृथुराजा का वक्तव्य, सूक्त, सारयुक्त, अपशब्द रहित और सुनने योग्य था। उसके उत्तर रूप में सनत्कुमार ने प्रीति से हंसते हुए कहा ।। १७ ।।

सनत्कुमार उवाच :-

महाराज, मोक्ष के बारे में आपने जो पूछा उसको आप जानते हैं। किन्तु लोक कल्याण क लिये यह प्रश्न पूछे हैं। यह ठीक है। साधु लोग दूसरों के हित का ही विचार करते हैं। साधु लोगों के मिलने से सबका हित होता है ।। १८ ।।

साधु संग से बोलने वाले और सुनने वाले दोनों का कल्याण होता है। सत्संग में प्रश्न पूछने से और उत्तर देने से श्रीहरी में निष्ठापूर्ण सुख मिलता है, और सबको सुख मिलता है ।। १९ ।।

राजन् ! भगवान हरी के बारे में आपका मन सदाकाल भक्ति से भरा रहता है। यह आत्यंतिक भक्ति पाप और विषयाभिलाषा ये दोनो मन के मैल (मालिन्य) को दूर करते है ।। २० ।।

वेद उपनिषदादि सद्शास्त्रों में पूर्णतया चर्चा करने के बाद सिद्ध हो गया है कि मोक्ष पाने के लिये ये दो ही प्रमुख साधन हैं। भगवान को छोड़कर अन्य वस्तुओं में विरक्ति और प्राकृत गुण रहित आनन्दादि गुणपूर्ण भगवान श्री हरी में आत्यंतिक भक्ति ।। २१ ।।

वैराग्य और भक्ति को पाने के लिये,

भगवान् में श्रद्धा रखते हुए वर्ण आश्रम धर्मों का पालन करना, भगवान का चिंतन करना, अष्टांग योग का अनुष्ठान करना, योगी जनों की सेवा करना, भगवत् कथा सुनना, आदि विधियों का आचरण करना और देह इंद्रियों के अहितकारी शब्दादि विषयों का त्यागना, देह, और भोग विषयों में अलंबुद्धि होना, (जो मिलता है उसी से तृप्त होना) अतिभोग वस्तुओं का निराकरण, शास्त्र विरुद्ध हिंसा को त्यागना, सन्यास को स्वीकारना (अर्थ कामों का सम्पादन नही करना) इन सभी निषेधों का पालन करना, मोक्ष धर्म की उपसाधन हैं ।। २२-२३ ।।

भगवान की कथा विषयों का स्मरण करते रहना, यम नियमों का पालन करना, सदाकाल भगवद्ध्यान करते रहना, केवल धर्माचरण करना (निषिद्ध आचरण नही करना) द्वंद्वो का त्याग करना, तितिक्षा रखना ये सारे भगवद्भक्ति को बढ़ाने वाले हैं ।। २४ ।।

हरिभक्त द्वारा किये जा रहे भगवान के गुण संकीर्तन को अपने कानों में भर लेने से हरिभक्ति में और वृद्धि होती है। उसके साथ साथ सदसत् कार्य कारण प्रपंच में वैराग्य बढ़ता जाता है ।। २५ ।।

श्री हरी में सबसे ज्यादा प्यार करने से अपरोक्ष ज्ञान और उस ज्ञान होन के बाद अपने नियत गुरु का अनुग्रह प्राप्त होता है। उनका उपदेश फलकारक होता है। उनमें भक्ति दृढ हो जायेगी। उससे वैराग्य भी दृढ़ होगा। वैराग्य और भक्ति बढ़ने से अपरोक्ष ज्ञान भी बढ़ेगा। उस अपरोक्षक ज्ञान के कारण जीव की लिंग देह भंग होगी। अरणी में उत्पन्न हुई अग्नि स्वयं के कारणीभूत लकड़ी को जैसे जला देती है; वैसे ही अपरोक्ष ज्ञान से लिंग शरीर भंग हो जाता है। जीव का स्वरूप देह मात्र रहता है ।। २६ ।।

यदि स्वरूप उपाधी भी (स्वरूप देह) नष्ट हो गयी तो जीव के ज्ञान इत्यादि गुण नहीं रहेंगे। तब जीव को बाह्य का विषय और आंतरिक सुख का अनुभव ही नहीं रहेगा। मोक्ष के पूर्व संसारावस्था में जीव और भगवान का संबंध अपरोक्ष ज्ञान न रहने के कारण स्वप्न में जैसे अल्प और अस्थिर सुखानुभाव होते रहते हैं। यदि स्वरूपोंपाधि का नाश होता है तो जीव को भी नष्ट होना पड़ता है। (जीव अविनाशी है। और स्वरूपोपाधि नित्य है ।। २७ ।।

जीव और विषय दोनों से उत्तम उनके स्वामी और उनसे भिन्न नारायण, स्वरूप उपाधि को दर्शन देते है। स्वरूप ज्ञान नहीं रहा जिनमें उनको कैसे दर्शन देंगे ? (जीव उनको देख नही सकेगा) ।। २८ ।।

पानी के रहने से आदमी के बिंब, और प्रतिबिम्ब, उनका भेद और प्रतिबिंब को लगा हुआ करमल का ज्ञान होगा। पानी ही नही रहा तो यह ज्ञान कैसे हो सकता है? वैसे ही जीव की स्वरूप उपाधी को भगवान का दर्शन होगा ।। २९ ।।

ध्यान करने वाले की इंद्रियाँ विषयों से आकृष्ट होकर मन को अपनी ओर खींचती हैं। तालाब का पानी छेद के कारण जैसे चला जाता है वैसे ही इंद्रियों से खींचा हुआ मन बुद्धि के बहुविषयों को याद रखने की शक्ति को खो देता है ।। ३० ।।

चित्त का (बहुस्मरण शक्ति का) नाश होने से शास्त्रों को याद रखने का सामर्थ्य चला जाता है। चित्त नष्ट होने से ज्ञान भ्रंश याने सदसद् विचार या भगवान का सर्वोत्तमत्व इत्यादियों का सही ज्ञान चल जाता है। संशय या मिथ्या ज्ञान बढ़ जाता है। इस ज्ञान का नाश हुआ तो आत्म नाश ही हो जाता है। (यहां भगवद्गीता का ध्याय तो विषयान् पुंसः (२-६२-६३) इन दो श्लोकों का अनुसंधान करना) ।। ३१ ।।

इस स्वरूप ज्ञान के नाश से बढ़कर और कोई हानि जीव को नहीं हो सकती। जीव को देह गेह और सम्पदाओं में प्रीति होती है किन्तु स्वरूप ज्ञान से श्रेष्ठ और कोई (कुछ) नही हो सकता ।। ३२ ।।

अपनेपन से ही सारे प्रिय होते हैं न। शब्दादि विषयों का निरन्तर ध्यान ही सारे पुरूषार्थों के नाश का कारण बनता है। साधक विषयों के चिंतन से सामान्य और विशेष दोनों ज्ञानों से भ्रष्ट होता है। सदसद् विचार शक्ति को खो बैठता है। मूढ़ बन जाता है।

दुष्ट लोगों का सहवास नही करना चाहिये। वह संग अज्ञान को बढ़ाता हैं। चतुर्विध पुरुषार्थ का नाश करता है। जो इस घोर अज्ञान को पार करना चाहता है। उसे दुष्टों का सहवास नहीं करना चाहिये ।। ३४ ।।

धर्म, अर्थ और काम प्रलयकाल में भगवान के भू चलन (इच्छा) मात्र से छूट जाते हैं। किन्तु मोक्ष एक शाश्वत है, वह मुख्य पुरुषार्थ माना जाता है ।। ३५ ।।

निकृष्ट मानने वाले ऐहिक भोग और उत्कृष्ट स्वर्ग से सत्यलोक तक के पिछले और आगे के सारे भगवान की इच्छा मात्र से नष्ट हो जाते हैं। ये नित्य नही हैं। इनकी पुनरावृत्ति होती रहती है। मोक्ष जो अप्राकृत है, वह नित्य है ।। ३६ ।।

यह जगत सत्य है यह देखने से ही मालूम पड़ता है। यह भगवान् की इच्छा से सृष्ट होता है, उन्ही से पालित होता है और उन्ही के इच्छानुसार नष्ट होता है। यह जगत हरी के मन के अंदर रहता है। स्वप्न

में हम अनेक वस्तुओं को देखते है। वे भी स्वप्न में भगवान से ही निर्मित और नष्ट होती हैं। वैसे ही बाहर इस सृष्टि की रचना और नाश होता रहता है। स्वप्न में जो निर्माण होता है, उसको मानव मन की वासना कारण बनती है। इस जगत में जो निर्माण होता है उसके लिए श्री हरी की इच्छा ही कारण (मन से) बनती है। प्रलयकाल में यह जगत भगवान में लीन होता है। पूर्ण नष्ट नहीं होता ।। ३७ ।।

भगवान का प्रकाश कभी भी लुप्त नही होता। वह प्रकाश दूसरों से आने वाला नही है। जागृति स्वप्नादियों को देखने वाले जीव से वे भिन्न हैं। इस रीति से भगवान की महिमा को जानने वाला उनकी बंधक शक्ति से पार हो जाता है। (मुक्त होता है) ।। ३८ ।।

मुक्त जीव को भगवान निद्रा, मोह, जागृति, स्वप्न, सुप्ति, कारण और लय आदि अवस्था नही देते। केवल पूर्ण रूप के स्वरूपानंद को देते हैं। इनको देने वाले श्री हरी के रूप का आश्रय लेकर मुक्त जीव आनन्द से रहते हैं ।। ३९ ।।

हे नरेन्द्र आप स्थावर और जंगमों के बीच में अनेक दुःख के साथ रहने वाले जीव हैं। ये स्थावर और जंगम दोनो इंद्रिय प्राण बुद्धि और अहंकारों से परिवेष्टित है। आप जैसे मैं भी एक जीव हूँ। मैं आपसे ज्यादा ज्ञान वाला हूँ। यही अन्तर है ।। ४० ।।

भगवान हमसे अलग है। वे इस जगत के अव्यक्त तत्व को लेकर सबको सम्पूर्ण रीति से जानते हैं। वे इस स्थावर जंगम जगत को सत्ताप्रद (शक्ति देने वाले) हैं। सारी वस्तुओं में व्याप्त हैं। सबमे हैं, किन्तु उनमें दोष नही हैं। वे सबको ज्ञान देने वाले हैं। आपको भी सुख दुःख देने वाले वे ही है। इस रीति से भगवान को जान लेना। श्री हरी ज्ञान की ही देह वाले हैं। जीव प्राकृत देही है। जगत भी प्राकृत है। इस ज्ञान से अपने मन की भ्रांति को दूर करना है। श्री हरी सदाकाल मुक्त हैं। सदाकाल परिशुद्ध हैं। इसीकारण उनको कर्म का लेप नही होता। प्राकृत गुणों का सम्बन्ध नही आता। ऐसे श्री हरी की सदाकाल के लिये शरणागत होना ।। ४१ ।।

सज्जन लोग भगवान श्री हरी की कमलदल के समान पादांगुलियों के प्रकाश से (मिलने वाले ज्ञान से) मन में बैठे हुए कर्मों को बाहर फेंकते हैं। संसार प्रवाह में रहने से अन्य बाह्य गुणों का परिणाम भी होता है। ये कभी कभी मोक्ष के विरुद्ध भी होते हैं। इन गुणों के कारण एक बार भगवान में आसक्ति बढ़े तो एकेक बार अन्य विषयों में आसक्ति होती है। किन्तु ये लोग दृढ़ मनस्क होकर भगवत् तत्व को छोडते नही। आप भी श्री हरी को ही अपना रक्षक बनायें ।। ४२ ।।

श्री हरी में भक्ति करना संसार सागर को पार करने के लिये नाव मिलने जैसा है। श्री हरी नामकी नाव के बिना (किसी को) भी काम, क्रोधादि मगरमच्छों से भरे हुये संसार सागर को पार करना असाध्य

है। इसके लिये आप भी श्री हरी की सेवा करने योग्य पादपोत को (पाद नाम के नाव को) अपनाकर इस दुःख पूर्ण संसार को सुलभता से पार करें। ज्ञान के बिना इसको पार कर नहीं सकते। भक्ति के बिना केवल योग मार्ग भी कष्टप्रद है ।। ४३ ।।

मैत्रेय उवाच :- ब्रह्मा जी के मानस पुत्र सनत्कुमार जी आत्मज्ञानी, मनोयोगी और सिद्ध पुरुष हैं। वे दूसरी रीति से पृथुराजा को भगवान श्री हरी का ज्ञानोंपदेश दिये। इनकी अनेक रीति से प्रशंसा करते हुए पृथुराज बोले :- ।। ४४ ।।

पृथु उवाच :-

पूज्य मुनिवर्य आप ब्रह्माज्ञानी है। भगवान श्री हरी मेरे ऊपर दया करके दर्शन देकर अनुग्रह किये थे। उसको पूर्ण करने आप आयें। आप कृपालु हैं। आप मुझे सही मार्ग दिखाते हुए उस कार्य को पूर्ण किये। 'मेरा' कहने वाली वस्तु अब मेरे पास कुछ भी नहीं है। इस शरीर को मिलाकर सारी वस्तुओं को मैं सज्जनों को दे चुका हूँ। मै आपको क्या दूं ? ।। ४५-४६ ।।

मेरे प्राण, पत्नी, पुत्र, सारी सम्पदा युक्त राजमहल लें, सारा धन, जमीन, सेना, कोष, इन सबको समर्पित कर चुका हूँ। सेना पतित्व, राज्य, दंड देने का अधिकर इतना ही नही सर्वलोकों का अधिकार वेदज्ञानी के हाथ में रहना चाहिये। वेद ज्ञानियों ने निर्णय किया है कि वेद और वेदान्त के अनुसार वेद का मुख्य सिद्धान्त ही हरि सर्वोंत्तमत्व है। वह हरि सर्वोंत्तमत्व ज्ञान को आपने हमें ठीक तरह से समझाये। आप बहुत करूणाशाली हैं। आपके इस दीनोद्धार कार्य से हमें तृप्त होना चाहिये। आपके इस उपकार के बदले में हम प्रति उपकार कर नही सकते। केवल हाथ जोड़कर आपको दंडवत प्रणाम करते हैं। इसको छोड़कर अन्य कुछ करे तो हम लोग हास्य के पात्र बन जायेंगे ।। ४७-४८-४९ ।।

मैत्रेय उवाच :- महाराज से पूजित हुए आत्म ज्ञानियों में श्रेष्ठ वे ऋषिवर्य राजा का गुण कथन करते हुए सभी के सामने आकाश मार्ग से चले गये ।। ५० ।।

पृथुराजा अपने मन को भगवान में ही लगा दिये थे। उनमें ज्ञान, भक्ति और वैराग्यादि गुणों का भार ज्यादा था। इसी कारण वे वहां के भगवद्ज्ञानियों में अग्रणी बने थे। अब उनको पूर्णतया आत्म ज्ञानोपदेश मिल गया था। वे मान गये थे कि उनको सकल अभीष्ट मिल गया हैं, उनको मुक्ति ही मिल गयी ।। ५१ ।।

काल देश और शक्ति के अनुसार और अपनी सम्पत्ति के अनुसार सबको ब्रह्मार्पण करने के उद्देश्य से ही वे कर्म करते थे ।। ५२ ।।

कर्म के फल को वे भगवान को समर्पित करते थे। विषयों मे आसक्ति छोड़ दिये थे। सदाकाल एकाग्रमन से श्री हरी का ही चिंतन करते थे। प्रकृत्याभिमानी लक्ष्मी देवी से श्रेष्ठ किन्तु प्रकृति सम्बन्ध रहित

श्री हरी को ही कर्म प्रेरक समझ कर उन्ही को स्वामी और साक्षी मानते थे ।। ५३ ।।

वे गृहस्थ थे। गृह में और विषयों के बीच में रहते थे। किन्तु उनमें मैं और मेरा मानने वाला अहंकार बिल्कुल नही था। इंद्रियों के शब्ददि विषयों में उन्हे रुचि नही थी। वे सूर्य समान निर्लेप थे ।। ५४ ।।

इस प्रकार अध्यात्म योग से सारे कर्मों को श्री हरी में अनुसंधान पूर्वक करते थे। अपनी पत्नी अर्ची देवी से उन्हे उनको मानने वाले उन्ही के समान विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण और वृक नाम के पाँच पुत्र हुए थे ।। ५५ ।।

वे श्री हरी में (च्युति रहित भगवान में) अपने मन रखे थे। इस जगत की रक्षा करने हेतु वे काल के अनुसार विविध गुणों को धारण करते हुए सारे लोक पालकों का काम अकेले करते थे। मानसिक, वाचिक और शारीरिक शान्त गुणों से वे प्रजारंजन करते थे ।। ५६-५७ ।।

इनके लिये राजा नाम अन्वर्थक बना था प्रजारंजन करते हुए वे दूसरे चंद्र बने थे। सूर्य भूमि से पानी ग्रहण करते हुए उस पानी को पुनः जैसे भूमि को ही देता है वैसे वे प्रजा से शुल्क लेकर उसको पुनः प्रजा को देकर वे दूसरे सूर्य बने थे ।। ५८ ।।

वे अग्नि के समान थे, दुष्ट लोग उनके समीप नही जा सकते थे। वे इंद्र के समान दुर्जय थे। भूमि के समान क्षमा गुण वाले वे स्वर्ग के समान लोगों को इष्टार्थ देने वाले थे। पर्जन्य के समान तृप्ति देते थे, समुद्र के समान अपार थे। मेरू के समान सन्मार्ग से अचल थे ।। ५९-६० ।।

शिक्षा देने में वे यम धर्म के समान निष्ठुर थे, हिमालय के समान आश्चर्य रखते थे। कुबेर के समान धनाढ्य थे, वरुण के समान गुप्त सम्पत्ति रखते थे ।। ६१ ।।

वायु के समान सभी के अंतर्बाह्य विषयों को जानते थे। बल में, पूज्य शिवशंकर के समान थे। ।। ६२ ।।

सौंदर्य में वे मन्मथ, मनोजय में सिंह, मनुराज के समान वात्सल्य युक्त, ब्रह्मा के समान प्रभुत्व, बृहस्पति ब्रह्म विद्या मे, स्वयं को जानने में श्री हरी के जैसे थे। वे गो, गुरु और ब्राह्मणों में भक्ति रखते थे। भगवद्भक्तों को ज्यादा प्यार करते थे ।। ६३-६४ ।।

वे विधेय थे, लज्जावान थे, परोपकार करने में उनके समान और कोई नही था। इनका यशोगान तीनों लोकों को पार कर गया था। वहा के सज्जन लोग उच्च स्वर में उनकी कीर्ति का गान गाते थे। वे बहुश्रुत थे। दशरथ पुत्र श्री रामचन्द्र जी के जैसे इनके गुण कीर्तन स्त्री, पुरुषादि सभी सज्जन लोग करते थे ।। ६५ ।।

।। यहां बाईसवां अध्याय समाप्त होता है ।।

तेईसवाँ अध्याय

मैत्रेय उवाच :- राजा पृथु अपनी प्रजा की उनके पुत्र और पौत्रों के साथ रक्षा करते आये थे। चलने वाले जीवों को उद्योग देकर जीवनोपाय की रचना की थी। वृक्षादि स्थावरों का उद्यान बनाकर रक्षा की थी। सज्जनों के धर्मों का रक्षा किये वे जिन कार्यों को करने के लिये जन्म लिये थे वे सारे काम कर भगवान की आज्ञा को पूर्ण किये। एक दिन उनको लगा कि वे वृद्ध हो रहे हैं। वे जल्दी में राज्यभार छोड़कर वन जाने का विचार करने लगे। इसको समझकर उनकी बेटी बनी हुई भू-देवी रोने लगी। राजा ने अपने जेष्ठ पुत्र के वश में भूमण्डल को देकर अपनी पत्नी अर्ची देवी के साथ वन चले गये। प्रजाजन राजा के विरह से बहुत उद्विग्न हुए ।। १-२-३ ।।

वहां उपजीवन के लिये जितना आवश्यक था उतना ही कंद मूल फलादि आहार लेते थे। वानप्रस्थ लोगों के लिये योग्य कठिन कायक्लेश युक्त उग्र तप को आरम्भ किये ।। ४ ।।

एक बार वे कंदमूल आदि को खाते थे, एक बार सूखी पत्ती को ही खाकर जीवन निर्वाह करते थे कभी कभी केवल जल पीकर रहते थे तो एकेक पक्ष पन्द्रह दिन के लिये केवल वायु भक्षण (प्राणायाम) करते रहते थे ।। ५ ।।

ग्रीष्म ऋतु में (गर्मीयों के दिन में) ये वीर पंचाग्नि तप (चारो और आग लगा के ऊपर जलता हुआ सूर्य) करते थे। वर्षा ऋतु में बरसते हुये पानी में खड़े होकर तप करते तो शिशिर ऋतु में गले तक पानी में डुबे हुए तप करते थे। रात में केवल जमीन पर सोते थे ।। ६ ।।

वे शीतोष्णादि द्वंद्व को सहन करते थे। जितना जीवन निर्वाह के लिए आवश्य है उतना ही बोलते थे। इंद्रियों का निग्रह किये थे। प्राणायाम विधिवत् करते थे। इस प्रकार वे उत्तम और कठिनतर तप करने लगे। इस तप का मुख्य उद्देश्य श्री हरी की आराधना करना ही था ।। ७ ।।

समय के अनुसार उनका तप सफल होने लगा। सिद्धि मिलने लगी। उनके सारे पाप नष्ट हो गये। मन निर्मल हो गया। प्राणायाम से काम क्रोधादि अरिषड्वर्गों का नाश हो गया। अहंकार ममकार का बंध टूट गया। इस रीति से सिद्ध पुरुष बने हुए इन राजपुरुष ने सनत्कुमार के उपदेशानुसार पुरुषोत्तम की उपासना की ।। ८-९ ।।

निरंतर श्रद्धायुक्त होकर इस रीति से गुणपूर्ण श्री हरी की आराधना करने से श्री हरी के सर्वोत्तमत्व और सर्व स्वतंत्रत्व में दृढ़ विश्वास हो गया। इसके परिणाम स्वरूप नारायण में अचंचल मन के भक्त बन

गये। निरंतर उनकी ध्यान प्रकिया क्रमशः बढ़ती रही ।। १० ।।

इनके कर्म परिशुद्ध बन गये। मन सात्विक बन गया। तीव्रतर अपरोक्ष मिल गया। संशय और मिथ्या ज्ञान का कारण बनने वाले आप बाह्य और जड़ मन को, और लिंग शरीर को निरूपयोगी बनाये (उपयोग में लाना बंद किये) संशय और मिथ्या ज्ञान का नाश होने से उनको अपने स्वरूप का अपरोक्ष हुआ (दर्शन हुआ) अब उनको विधि बंधन नही रहा। तो भी हरि प्रीति के लिये कर्म करते रहे। अब अपरोक्ष ज्ञान होने के कारण बाह्य वाले जड परोक्ष को नश्वर और स्वरूप ज्ञान से भिन्न मानकर उसको त्याग दिये। स्वरूप ज्ञान के कारण श्री हरिकथा श्रवण में तीव्र आसक्ति मिल गयी ।। ११-१२ ।।

इन क्रमों से यह वीर श्रेष्ठ महाराजा, श्रीहरी में अपना मन स्थिर करते हुए श्रीहरि के आश्रय के अनुसंधान के साथ अपने देह के अवसान का समय जानकर जड़ देह को छोड़ देने का निर्णय किये ।। १३ ।।

एड़ी से अपने गुदा मार्ग को बन्द करते हुए (वज्रासन में बैठे हुए) उदानवायू को क्रमशः नाभि, हृदय, वक्षस्थल, कंठ भ्रूमध्य और ब्रह्म रंध्र को लाकर वहां स्थिर मनस्क बन गये। तब वे लय चिंतन में लगे। अपने देहस्थ वायु को बाह्य भूत वायु में, मृद् भाग को बाह्य पृथ्वी भूत में, अपने तेजो भाग को बाह्य तेजोभूत में रंध्रो को आकाश में और जल भाग को जल तत्व में लीन करने का चिंतन करने लगे ।। १४-१५-१६ ।।

अब बाह्य लय चिंतन क्रम को कहते हैं। बाह्य के पृथ्वी तत्व को उसके कारणीभूत जलतत्व में, जलभूत को तेज में, तेजोमय भूत को वायु में, वायुमय भूत को आकाश में लीन होने का चिंतन किये ।। १६ ।।

चिंतन को आगे बढ़ाते हुए उत्पत्ति के अनुसार इंद्रियों को तन्मात्राओं में, तन्मात्राओं को (उनको अभिमानी देवताओं को) मूल पदार्थों में लय होने का चिंतन करने लगे। तैजस वैकारिक और तामस अहंकारों को महत्तत्व में तदभिमानी गरुड़ शेष रुद्रों में सरस्वती भारती के मुखांतर महत्तत्वाभिमानी ब्रह्मा वायु में लीन होने का चिंतन किये ।। १७ ।।

भक्त्यादि सकल विशेषों को आश्रयी भूत सत्वादि गुणों से सृष्टि करने वाले महत्तत्त्वाभिमानी ब्रह्मा जी लक्ष्मी देवी में प्रवेश करते हैं और लक्ष्मी देवी की अधीनता का अनुसंधान करते हैं। इस रीति से महत्तत्व अव्यक्त का आश्रय लेते हैं। इस जड़ प्रकृति के साथ सारे जीव चेतन से युक्त श्री महालक्ष्मी श्रीहरी का आश्रय लेतीं हैं। जड़ चेतनात्मक यह एक सृष्टि के साथ ब्रह्मा जी अप्राकृत शरीर वाले नारायण में रहेंगे। श्री हरी मे आसक्त मन वाले पृथुराजा अपरोक्षज्ञान और समुचित वैराग्य पाये थे। इसी कारण

वे इस प्रकार से लय चिंतन कर सके। इससे वे श्री हरी का सायुज्य पद (मोक्ष) प्राप्त किये ।। १८ ।।

अत्यन्त कोमला पृथुराजा की महारानी अर्चीं देवी पति के साथ ही वन आयी थी। पति ने भूशयन आदि जो जो व्रत किये उन सबको स्वयं मानते हुई स्वयं आनन्द से उन सबका कट्टरता से अनुसरण कीं। वे बड़ी निष्ठा से पति सेवा भी करती थीं। व्रत नियमों से उनका शरीर बहुत कृश हो गया था। उससे उनको न कष्ट होता था, न दुःख। पति के हस्त स्पर्श से ही वे आनन्द विभोर हो जाती थीं ।। १९-२० ।।

भू देवी को अपने को, अत्यन्त प्रिय राजा के निष्क्रिय देह इंद्रिय और प्राणों को नष्ट होते देखकर रानी पहले थोड़े समय तक रोयी, किन्तु बाद में उठकर पहाड़ के समतल प्रदेश में चिता को रचाकर उसके ऊपर राजा के देह को चढ़ा दी। विधिपूर्वक उस चिता को आग लगा दी। बाद में वे नदी में स्नान कीं। सत्कार्य किये हुए अपने पती को तिल तर्पण दी। तदनंतर अंतरिक्षवासी देवताओं को नमन करने के बाद तीन बार अग्नि की परिक्रमा करते हुए मन में पति ध्यान करते करते उस अग्नि में प्रवेश की ।। २२ ।।

इस सती यज्ञ को देखने के लिये हजारों देवपुरुष और उनकी पत्नियाँ वहा आयी थी। वह वीरश्रेष्ठ पति पृथुराजा का अनुसरण करते सती हो गयीं देव पुरुष और उनकी पत्नियाँ उस पतिव्रता को सती होते देखे। और हर्ष से धन्य धन्य बोलते हुए पुष्प वृष्टि किये। वह पूरा मंदर पर्वत देव दुंदुभी के स्वर से प्रति ध्वनित हुआ। वे परस्पर बोले ।। २३-२४ ।।

ये राजपत्नी धन्य हैं। वे अपने पती राजा पृथु को, लक्ष्मी श्री हरी की जौसी सेवा करती हैं वैसे ही सेवा की। ।। २५ ।।

जो लोग जन्म लेने के बाद तीव्रगति से साधना करते हुए अपनी छोटी सी आयु में मोक्ष योग्य साधना करते है उनको न मिलने वाला पुरुषार्थ कहाँ है ? ।। २७ ।।

किन्तु इतने दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाने के बाद भी जो लोग केवल विषयासक्ति में ही आसक्त रहते है तो उनके बारे में क्या कहा जाये ।। २८ ।।

मैत्रेय उवाच :- देवस्त्रियों ने इस प्रकार आर्ची देवी की स्तुति किया। आत्म ज्ञानियों में श्रेष्ठ वेन पुत्र पृथु ने जिस लोक को प्राप्त किया था, उसी को अर्चि देवी ने भी प्राप्त किया ।। २९ ।।

अपनी योग्यता के जीवो में पृथुराजा बड़े श्रेष्ठ थे। वे अत्यन्त प्रभावशाली थे। उदार चरित वाले उनकी कथा मैने तुम्हारे लिये कही है ।। ३० ।।

जो इस कथा को श्रद्धा से एकाग्र मन से पठन करता है, सुनता है या सुनाता है वह पृथुराजा के

उन ज्ञान भक्ति आदि गुणों को पा लेता है ।। ३१ ।।

इसके प्रभाव से ब्राह्मण ब्रह्म तेज को पायेगा, क्षत्रिय जगत का मालिक बन जायेगा। वैश्यों में अग्रगण्य होगा। शूद्र उत्तम बन जायेगा ।। ३२ ।।

स्त्री हो या पुरुष इस कथा को तीन बार आदर से सुने तो पुत्र न होने वाले को अच्छे पुत्र होते हैं। दरिद्र भी अपार धन संपत्ति को प्राप्त कर लेता है ।। ३३ ।।

कीर्तिहीन श्रेष्ठ कीर्ति को पाता है, मूर्ख पण्डित बन जाता है। यह कथा सबको श्रेय देने वाली है। सबका अनिष्ट निवारण करती है। यह कलि के दोष को दूर करने वाली है। यह आयुष्य को बढ़ाती है, कीर्ति बढ़ाती है और धन्यता देती है ।। ३४ ।।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी पुरुषार्थों को पाने के इच्छुक चतुर्विध पुरुषार्थ देने वाली इस कथा को श्रद्धापूर्वक सुनना और सुनाना चाहिये ।। ३५ ।।

युद्ध करने वाला राजा इस कथा को सुनने के बाद युद्ध करे तो उसका शत्रु वह राजा पृथु के शत्रुओं जैसे ही राजा के शत्रु भी शरणागत होते हैं ।। ३६ ।।

दुष्टों का संग छोड़ते हुए श्री हरी में अविचल भक्ति करते हुए पृथुराजा की इस पवित्र कथा को सुनना चाहिये, पठन-पाठन करना चाहिये ।। ३७ ।।

हे विदुर सर्वोत्तम भगवान की और भगवद्भक्त की यह कथा मैने कही है। इसमें आसक्त मनुज, पृथुराजा जैसे मोक्ष को ही पाता है ।। ३८ ।।

विषयों का संग पूर्ण रूप से त्याग कर प्रतिदिन आदर से इस पृथु चरित्र को सुनते हुए, विमर्श करते हुए जो मनुष्य रहता है, संसार सागर के पार उस तटरूपी श्री हरी में भक्ति पा लेता है। वह भक्ति श्री हरी के पूर्णानुग्रह को दे देती है ।। ३९ ।।

।। यहां तेईसवां अध्याय समाप्त होता है ।।

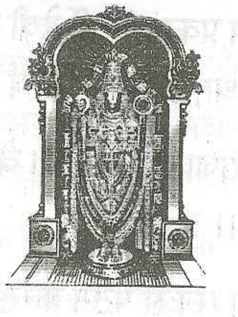

चौबीसवां अध्याय

मैत्रेय उवाच : पृथुराजा का प्रथम पुत्र महाकीर्तिशाली विजिताश्व राजा बना। वह अपने भाईयों को बहुत प्यार करता था। उसने अपने भाईयों को चारो दिशाओं में राज्य दे दिया जिसमें हर्यक्ष को पूर्व दिशा धूम्रकेतु को दक्षिण, वृक को पश्चिम और द्रविण को उत्तर दिशा का राज्य दिया ।। १ ।।

विजिताश्व ने इंद्र देव से अंतर्धान विद्या सीख लिया था। इसलिये इसको लोग अंतर्धान नाम से पुकारते थे। साधु वंद्य विजिताश्व को अपनी पत्नी शिखंडिनी में पावक, पवमान, और शुचि नाम के तीन पुत्र हुए। ये तीनो पूर्व जन्म में (त्रेता युग मे) अग्नि थे। ये विशिष्ट के शाप से मनुष्य हुए। तथा श्री हरी की सेवा करके पुनः अग्नि बने ।। ३-४ ।।

विजिताश्व ने अपने पिता के यज्ञ करते समय विघ्न करने वाले इंद्र को जीतने पर भी नही मारा था। (तब इंद्र से अंतर्धान विद्या सीख लिया था) यह अंतर्धान की दूसरी पत्नी नभस्वति। नभस्वती ने हविर्धान नाम के पुत्र को जन्म दिया ।। ५ ।।

राजा का काम क्रूर होता है। दुष्टों को शिक्षा देना पडता है। प्रजा से शक्ति पूर्वक शुल्क दंड वसूल करना पड़ता है। ये सब राजा अंतर्धान को अच्छा नहीं लगा। वह सन्यास स्वीकार लिया और राज्य को त्याग दिया ।। ६ ।।

सन्यासी बनकर वे निर्दोष और गुणपूर्ण श्री हरी का पूजन किये। वे आत्मज्ञानी बने, भगवान को एकाग्र रीति से पूजन करने से अंत में उत्तम गति को प्राप्त किये ।। ७ ।।

हे विदुर हविर्धान को बर्हिष्मंत, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य और जितव्रत नाम के छः पुत्र हुए ।। ८ ।।

हे कुरु श्रेष्ठ विदुर महाभाग्यशाली प्रजापालक हविर्धान के पुत्र बर्हिष्मंत कर्मकाण्ड और ज्ञान (योग) मार्ग में पण्डित थे ।। ९ ।।

उनके यज्ञ करते रहने से हर बार यज्ञशाला का विस्तार होते होते पूर्व दिशा इनकी यज्ञ शिखा से भर गयी। इसीकारण इनको प्राचीन बर्ही नाम पड़ा ।। १०।।

देवों के देव ब्रह्माजी ने बर्हिष्मंत को समुद्र पुत्री रातद्रुती से शादी करने के लिये कहे। शादी के समय में अत्यन्त सुंदरी किशोरी शतदृश्ती अग्नि की परिक्रमा कर रही थी। उस समय उसको देखकर अग्नि को उससे प्यार हुआ। पीछे ऐसे ही समय में अग्नि ने शुकी नाम की राजपुत्री का अपहरण किया

था। किन्तु इस समय वह ऐसा कर नही सका ।। ११ ।।

शादी के बाद शतद्रुतु अपने पाद के घुंघुरु के निनाद से दश दिशाओं को आनंदित करती थी। इससे असुर गंधर्व ऋषि सिद्ध नाग ये सारे मोद से मन्मथ वश होते थे ।। १२ ।।

प्राचीन बर्ही और शत्रद्रुतू को प्रचेतस नाम वाले धर्मानिष्ठ और वेदज्ञ दस पुत्र हुए। पिता के आज्ञानुसार सृष्टि के उद्देश्य से तप करने वे समुद्र में प्रवेश किये। ये तपस्वी वहां दस हजार वर्ष तप किये। रास्ते पर मिले सुप्रसन्न रूद्र देव से उपदेश पाकर वही संयम से, तप, ध्यान और पूजा करते रहे ।। १३-१४ ।।

विदुर पूछते हैं। ब्रह्मज्ञानी मैत्रेय जी! रास्ते में प्रचेतसों से रुद्र देव का सम्बन्ध कैसे हुआ। प्रसन्न हुए रुद्र देव उनको क्या उपदेश दिये। उस प्रयोजन वाले उपदेश के बारे में मुझसे कहिये ।। १६ ।।

हे मैत्रेय जी, सज्जन रूद्रदेव को चाहते हैं। सारा संग छोड़ दिये हुए मुनि भी उनके संग को चाहते हुए ध्यान करते हैं। किन्तु रूद्र देव से संगम होना सुलभ नही है ।। १७ ।।

रुद्र देव श्री हरी से ही सन्तुष्ट हैं। सामान्य लोगों के सुख के लिये, सिद्धों को मुक्ति साधने के लिये और शत्रुओं के संहार के लिये सदा संचार करते रहते हैं। इनसे समागम होना ही जब दुर्लभ होता है तो संभाषण के लिये अवकाश कहाँ मिलता है ? ।। १८ ।।

मैत्रेय उवाच :- साधु प्रचेतसो ने अपने पिताजी का आदेश सिरसा मानते हुए तप करने में आदर भाव रखते हुए पश्चिम की दिशा में चले ।। १९ ।।

पश्चिम समुद्र के समीप में वे एक सुन्दर सरोवर देखे। वह (सुन्दर) सरोवर दक्षिणोत्तर दिशा में फैला था। तटस्थ आश्रमवासी भगवद्भक्त कण्व ऋषि के मन के समान वह सरोवर स्वच्छ था। उस जल में रहने वाले मत्स्यादि जलचर निर्भय होने के कारण शांत रीति से रहते थे ।। २० ।।

उस सरोवर ने नील, लाल, कमल, कल्हार, इंदोवर इत्यादि फूलों का आश्रय स्थान बना था। हंस , कारंड चक्रवाकों का विहार स्थान। भ्रमर मधुपान करते थे तथा मत्त होकर झंकार करते थे। इनसे लता और वृक्ष भी आनंद पाते थे। वहाँ से चलती हुई हवा कमल पुष्प पराग को चारो ओर बिखेर देती थी ।। २१-२२ ।।

वहाँ उन राज पुत्रो ने गंधर्वों का गान सुना। वह अलौकिक गान देवताओं के मन को भी आकर्षित करता था। उस संगीत के साथ मृदंग पणव इत्यादि वाद्यों का वादन भी सुनने में आता था। उससे राजपुत्रों को आश्चर्य हुआ ।। २३ ।।

उस गायन के साथ साथ सरोवर से अपने अनुचर के साथ ऊपर आते हुए रुद्रदेव को देखे। उनके पीछे गंधर्व गान गाते हुए आ रहे थे। तप्त (गर्म किया हुआ) हेमनिकष के पत्थर के समान उनका देह उज्ज्वल ओर प्रकाशमान थी। वे नील कण्ठ फालनेत्र, वहाँ आ रहे थे। यह देखकर राजपुत्रों ने कौतुक से उनको नमस्कार किया ।। २५ ।।

शरण आने वाले के दुःख का नाश करने वाले धर्म वत्सल रुद्रदेव उन धर्मज्ञ, शील सम्पन्न राजपुत्रों को प्यार से कहने लगे ।। २६ ।।

तुम बर्हिष्मंत के पुत्र हो। तुम यहाँ क्या करने आये हो उसको मै जानता हूँ। तुम लोगो पर अनुग्रह करने के लिये ही मैने तुमको दर्शन दिया है। लक्ष्मी देवी सत्वादि तीन गुणों की अभिमानिनी 'जीव' शब्द से बोली जाती है। इनसे श्री हरी श्रेष्ठ है। ऐसे वासुदेव की जो भक्त शरण जाते हैं वे मुझको प्रिय होते हैं ।। २७-२८ ।।

योगी जीव, भक्ति ज्ञान वैराग्यों में अपनी योग्यतानुसार पूर्ण सिद्धि को प्राप्तकर निन्यानवे ब्रह्म कल्प के बाद भगवान के अनुग्रह से ब्रह्म पदवी पाते हैं। उस पद का अनुभव करने के बाद सौवें कल्प में लक्ष्मी की अनुज्ञा से भगवद्भक्तों से मिलकर प्रलयकाल में श्री हरी को प्राप्त करते हैं। वे प्रलय के बाद सायुज्य मोक्ष को पा लेंगे। वैसे ही मैं भी रुद्र पद के योग्य होकर रुद्र पद को पा लिया हूँ। मुझे भगवान अत्यन्त प्रिय हैं। वैसे ही भगवद्भक्त भी मुझे अत्यन्त प्रिय है। मुझे भगवद्भक्तों को (भागवतों को) छोड़कर अन्य प्रिय नही हैं ।। ३० ।।

मैं आपको एक मंत्रोपदेश दे रहा हूँ। इसका आप विशेष रूप से जाप करिये। यह पवित्र है। अत्यन्त मंगलकारी है। मोक्ष को भी देने वाला है ।। ३१ ।।

मैत्रेय उवाच :- उन करबद्ध राजपुत्रों पर करूणापूर्ण हृदय वाले, पूज्य रुद्रदेव ने नारायण मंत्रोपदेश दिया ।। ३१ ।।

रूद्र उवाच :- आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हे प्रचेतस, तुम लोग सबको जीत लिये हो। तुमको तुम्हारे स्वरूपानंद प्राप्ति के लिये श्री हरी में भक्ति हो। तुम्हारा कल्याण हो। इष्टार्थ पाने के लिये मेरे उपदेश के अनुसार भगवान की पूजा करो। सर्वांतर्यामी भगवान को नमस्कार ।। ३२-३३ ।।

पंचमहाभूत, पंचविषय, मन सहित ग्यारह इंद्रिय इनको नियमन करने वाले और इनमे व्याप्त होकर रहने वाले, सौम्य सुखपूर्ण विकार रहित, स्वयं प्रकाश युक्त, सर्वोत्तम पद्मनाभ वासुदेव को नमस्कार ।। ३४ ।।

अत्यन्त सूक्ष्म, देश काल गुण से नाश न होने वाले सबको नाश करने वाले संकर्षण को नमस्कार। सम्पूर्ण ज्ञानी और विश्व को बोधित करने वाले अंतर्यामी बिंबरूप प्रद्युम्न को नमस्कार ।। ३५ ।।

जीव की सारी इंद्रियों के नियामक, प्रेरक और स्वामी हृषीकशको नमस्कार। परमहंस, शुद्ध, बुद्धिह्रास विहीन, स्थिर रूप वाले अनिरूद्ध को नमस्कार ।। ३६ ।।

स्वर्ग और मोक्ष के कारण, अग्नि और वायु में रहने वाले, दुःख को दूर करते हुए सुख को देने वाले, स्वर्ण के समान वीर्य वाले, यज्ञ में होतृ, अध्वर्यु, उद्गातृ और यजमान इन चारो में होते हुए (रहते हुए) कार्य करने वाले, व्याप्त और संतति देने वाले श्री हरी को नमस्कार ।। ३७ ।।

पितरों को अन्न देने वाले, देवताओं को भी अन्न देने वाले, इच्छा के अनुरूप रूप धारण करने वाले, सबको तृप्ति देने वाले, वेदों की रक्षा करने वाले सवन्तिर्यामी श्री हरी को नमस्कार ।। ३८ ।।

समस्त प्राणियों को देह देने वाले, अपने को देने वाले, जीवों में उनके अंगुष्ट प्रमाण के स्वरूप देह में प्रविष्ट, पूर्ण ज्ञानानंदात्मक शरीर वाले सबसे बड़े स्वरूप वाले, सहन करने वाले धारण शक्ति और बाहु शक्ति में सर्वश्रेष्ठ, तीनो लोकों को रक्षा करने वाले श्री हरी को नमस्कार ।। ३९ ।।

वेद शास्त्र ही इनके प्रमाण है। वे पुरुषार्थ देने वाले हैं। आकाश के समान असंग है। ब्रह्मांड के अंदर और बाहर दोनो स्थानों में व्याप्त हैं। पुण्यकर हैं, प्रकाशमान हैं, पुण्य लोक देने वाले हैं तेजस्वी देवदेव श्री हरी को वंदना ।। ४० ।।

वे प्रवृत्ति मार्ग को दिखाते हैं, निवृत्ति मार्ग को दिलाते हैं। पितृ दोवो में अंतर्यामी रूप से रहते हैं। क्रियारूप हैं, पुण्य फल देने वाले हैं नाश (मृत्यु) रहित हैं, मृत्यु का कारण हैं, मृत्यु नाम धारण करते हैं दुष्टों को दुःख देने वाले श्री हरी को मेरा नमन हो ।। ४१ ।।

आशीर्वादों को नियमन करने वाले भगवान आप मननशील हैं मंत्र प्रतिपाद्य हैं, कार्यकारणों में रहते हुए उनका नियामन करते हैं। आप इस जगत को धारण करते हैं। कृष्ण नाम से सबके पाप को नाश करने वाले बुद्धि में किंचित भी दोष धारण नही करने वाले आपको बार बार नमस्कार ।। ४२ ।।

भक्तों को पुरुषार्थ देने वाले, प्रारम्भ से रहने वाले, यथार्थ ज्ञान अथवा सांख्य शास्त्र और अष्टांग योगों के स्वामी, ज्ञान क्रिया और इच्छा को प्रेरणा देने वाले अथवा सत्व रज तमोभिमानी श्री भू दुर्गा के पति, अभीष्ट देने वाले रुददेव के स्वामी, ज्ञान और भक्ति को देने वाले सकल विध के सृष्टि के कारण रूप भगवान् आपको वंदना ।। ४३ ।।

हम आपके भक्त आपका दर्शन करना चाहते हैं। कृपया आप अपना अपरोक्ष दर्शन दें ।। ४४ ।।

उस रूप का वर्णन करते हैं।

आपका रूप भक्तों को अत्यन्त प्रिय है। सारी इंद्रियों के गुणों को अभिव्यक्त करने वाला है। बरसात के दिनों के पानी भरे हुआ बादल के समान जैसे नील मेघ श्याम तथा सारे सौंदर्यों को आश्रय देने वाला है ।। ४५ ।।

वह रूप सुन्दर दांत वाला है अत्यन्त सुन्दर गाल वाला आभूषणों से विभूषित कान वाला तथा प्रीतियुक्त मंदहास भरित ओठ सुन्दर दृष्टि और घुंघराले काले बालों से सुशोभित है ।। ४७ ।।

आप पद्मराग रंग का पीतांबर धारण किये है, कानो में बहुमूल्यवान कुण्डल है। उज्वल किरीट, हार पाँव में आभरण और कटि में सोने की पट्टी बांध दिये है ।। ४८ ।।

आप शंख, चक्र, गदापद्म वनमाला और कौस्तुभमणि को धारण किये हैं। सिंह के समान आपका स्कंद है। विशाल वक्ष (छाती) वाले हैं ।। ४९ ।।

श्री लक्ष्मी सदाकाल इनके वक्षस्थल में रहती है। सोने के निकषाश्म के समान प्रकाश वाली छाती है। इनके उदर कोमल और विशिष्ट हैं। श्वासोच्छ्वास से ऊपर की त्रिवली हिलती हैं ।। ५० ।।

गंभीर नाभि दाहिने आवर्त वाली है लगता है, उसमें और एक ब्रह्मांड को छिपा रखा है। श्याम वर्ण के नितंब के ऊपर शोभा देने वाला पीतांबर ऊपर के सोने के समान सुशोभित है ।। ५१ ।।

इनके पाद, जंघा और जंघा के ऊपर का भाग बहुत सुन्दर है। इनकी बड़ी बड़ी सुन्दर आँखे बहुत शोभायमान हैं ।। ५२ ।।

स्तुति करने वाले के समस्त पापों को नाश करने वाले इनके पाद नख शरत्काल के कमल के दल के समान शोभते हैं। ऐसे सुन्दर रूप वाली (श्लोक ४४ से यहा तक वर्णित) अपनी मूर्ति को हमें दिखाइये। आप उत्क्रमण पाये अपने भक्तों को अर्चिरादि मोक्ष मार्ग को दर्शाने वाले हैं। हमें अपने भयरहित उस सुन्दर रूप को दिखाइये ।। ५३ ।।

इस संसार से मुक्ति पाने वाले श्री हरी के इस रूप का अपनी योग्यतानुसार ध्यान करना चाहिये। अपने विहित वर्णाश्रम धर्मों का आचरण करते हुए श्री हरी में भक्ति युक्त ध्यान करने से निश्चित रूप से मोक्ष मिलेगा ।। ५४ ।।

हे भगवान् श्री हरी भक्तिहीनों को आप दुर्लभ है, किन्तु भक्तों को आप सुलभता से ही लभ्य होते हैं। स्वर्ग के अधिपती इंद्र देव को भी मोक्ष पाने के लिये आत्म को जानने वाले आपकी ही शरण होना पड़ता है। स्वर्गादि राज्य प्राप्ति के लिये भी एकांत भक्ति की आवश्यकता है। अनन्य भक्ति, सज्जनों के

लिये भी दुर्लभ है ।। ५५ ।।

आप आराधकों को दुर्लभ हैं। ऐसे अलभ्य आपकी आराधना करने के बाद आपके पाद मूल को छोड़कर अन्य ऐहिक या स्वर्गादि सुख की अपेक्षा कौन करता है ? हमें केवल एकांत भक्ति चाहिये ।। ५६ ।।

यम अपने प्रभाव और उत्साह से भ्रू को हिलाने मात्र से सारे विश्व को अपने वश मे ले सकतें हैं। किन्तु आपके पाद तल को शरण आने वाले को, यम धर्म तिरछी नजर से भी नही देख सकते ।। ५७ ।।

आपके भक्तों के एक क्षणार्ध के संग से मिलने वाले सुख के समान स्वर्ग सुख या संसार निवृत्ति का सुख भी नही होता तो फिर मरणशील आदमी द्वारा चाहने योग्य ये स्वर्गादि सुख उनके समान हो सकते है क्या ? ।। ५८ ।।

आप पापों का नाश करने वाले हैं। आपकी कीर्ति की कथा भागवतादि पुराणों का श्रवण रूप स्नान करके आपके पाद से उद्गत गंगादि तीर्थों में बाह्य स्नान करते हुए अपने अंतर्बाह्य पापों को निवारण किये हुये भक्त सात्विक स्वभाव वाले हैं। प्राणियों में दया करना उनका सहज स्वभाव है। इन भक्तों का संग मोक्ष से भी अधिक सुख देने वाला होता है। आप हमें ऐसा सत्संग दीजिये। यही हमारे ऊपर आपका अनुग्रह होगा ।। ५९ ।।

सज्जन संग से मन बाह्य विषयों को चाहता नही। हृदय गुहा में रहने वाले भगवान में ही निमग्न होता है। इस रीति से मनन करने से वह मुनि बन जाता है। तब उस मुनि के मन में, आपका यथावत् (सही) रूप स्थिर होता है। यह प्रमाण से सिद्ध और सत्य और पंच भेद युक्त जगत् श्री हरी के आधार से व्यक्त हो गया है ।। ६० ।।

भगवान् श्री हरी सारे जगत में व्याप्त हैं। तो भी अज्ञानी लोग उनको जान नहीं सकते। ज्ञानी लोग समझ लेते हैं। वे सदाकाल एक प्रकार रहते हैं। गुणपूर्ण है, सर्वोत्तम है और आकाश के समान अंतरहित हैं ।। ६१ ।।

इस रूप का ध्यान करने वाले मुनि अपरोक्ष में देखते हैं, श्री हरी विकार रहित हैं। वे अपने अधीन त्रिगुणात्मक जड़ प्रकृति से इस जगत को रचाते हैं पालते है और नाश करते हैं। जीव और जड़ से भिन्न हैं। यह दोष रहित ज्ञान उन मुनियों को आता है। स्वतंत्रचर्या वाले आपको हम अपने योग्यतानुसार समझ लेंगे ।। ६२ ।।

श्रद्धाभक्ति वाले कर्म योगी पंचभूत, इंद्रिय और मन से न समझने वाले इस जगत्तत्व को उद्देश्य

कर भगवान के अपरोक्ष के लिये, भगवान को प्यार हो इस रीति से यज्ञादि कर्म करते रहते हैं। वे ही वेद आगम और तंत्रों को ठीक तरह से जानते हैं ।। ६३ ।।

प्रलय काल में आप अकेले थे। शक्ति नाम से पहचानने वाली लक्ष्मी देवी अपना सृष्टि करने का काम स्थगित कर आपके आश्रय में थीं। शक्ति विरहित प्रकृति भी आपके शरण में थी। (तब आपके दृष्टि क्षेप से) लक्ष्मी को सृष्टि करने की इच्छा हुई। तब लक्ष्मी ने गुण त्रयाभिमानी श्री, भू और दुर्गा नाम के तीन रूप को धारण किया। परिणाम स्वरूप जड़ प्रकृति में सत्व रज और तमो गुण में विषमावस्था हो गयी। लक्ष्मी रूप से महत्तत्वाभिमानी ब्रह्माजी और गुणत्रयों से महत्तत्व की सृष्टि हुओी। महत्तत्व से तीन विध के अहंकार तत्व उत्पन्न हुए।

तामस अहंकार से पंचमहाभूत, वैकारिक अहंकार से इंद्रियाभिमानी देवता, और तैजस अहंकार से इंद्रियों का निर्माण हुआ। इनसे इस सारे जगत और जीव जड़ों की सृष्टि हुई। इस रीति से आपका स्वरूप और उससे भिन्न यह दो विध की शक्ति से इस सृष्टि की रचना आपने ही की ।। ६४ ।।

ऐसे सृष्ट हुये चार विध के शरीरों में स्वरूपांश से आपने ही प्रवेश किया। जीवों के स्वरूपेंद्रियो में रहने वाले आप इंद्रियों से केवल सारभूत सुख को ही ग्रहण करते हैं इसी कारण इन देहो में रहते हुए भी आपको कर्म का लेप नही होता। (तस्मात्) इसलिए ज्ञानी लोग आपको ही इस देह का स्वामी मानते हैं, इसीलिए आपको पुरूष नाम से भी पुकारते हैं ।। ६५ ।।

आप इन लोकों की सृष्टि करते हैं, उनमें प्रवेश करते हुए उनका पालन करते हैं और आप ही रूद्र और यमादि से इस समस्त जीव जाति का नाश करवाते हुए वायु जैसे बादलों का नाश करते हैं वैसे ही अत्यन्त तीव्रगति से नाश करते हैं। आपके वेग को कोई रोक नहीं सकता ।। ६६ ।।

"मै ही स्वतंत्ररूप से सारा कर सकता हूँ" यह समझकर आपको भूलते हुए विषय लोलुप होकर अतिशय भोगशक्ति को सदाकाल जागृत रखने वाले को आप सांप चूहे को पकड़ने वाले की तरह पकड़ लेते है। किन्तु इसको वह जानता नही। इसी कारण आप अंतक कहलाते हैं ।। ६७ ।।

आपके स्वरूप को जानने वाला कोई भी ज्ञानी आपके पद कमलों को छोडेगा नहीं। उन पाद कमलों को हमारे पिता और गुरु ब्रह्माजी दृढ़ भक्ति से पूजा करते हैं। चौदहों मनु भी भगवान की प्रीति के बिना और कुछ न चाहते हुए सदाकाल पूजा करते रहते हैं ।। ६८ ।।

आपके पाद का आलिंगन करके (निद्रा में प्राज्ञ रूप भगवान का आलिंगन करके जीव सुख भोगता है) जीव प्रतिदिन दुःख रहित सुख सागर में नींद करता है। नींद खुलने के बाद आपकी याद नही करता। किन्तु सुख की याद रखता है ।। ६९ ।।

यह सारा जगत रुद्र जी के कारण नष्ट होता है। इसी कारण से ज्ञानी लोग इसको नश्वर मानते हैं। ऐस समझने वाले हमको अन्दर और बाहर व्याप्त आप ही भय विरहित गति हैं ।। ७० ।।

हे राजपुत्रो,तुम अपने धर्म का अनुष्ठान करते हुए श्री हरी में ही मन लगाकर हमसे कहे हुए इस उपदेश का जप करो। तुम्हारा कल्याण हो ।। ७१ ।।

सबका स्वामी, सबके बिंबरूप, सब प्राणियों में रहने वाले श्री हरी ही इस मंत्र के प्रतिपाद्य देवता है। उन्ही की बार बार स्तुति करें ध्यान करें और पूजा करें ।। ७२ ।।

इस योगादेश को पाकर अपने मन में धारण करें। ऋषि के समान व्रताचरण करें। एकाग्रचित से इसका अभ्यास करें ।। ७३ ।।

पूर्वकाल में ब्रह्मा जी ने सृष्टि करने हेतु अपने पुत्र भृगु आदि मुनियों को इसी मंत्र का उपदेश दिया। प्रजा सृष्टि में प्रेरित हम सारे प्रजेश्वरो ने इसी का जप करके अपने अज्ञान को हटा दिया। तथा अनेक रीति की प्रजा को सृष्ट किये ।। ७५ ।।

वासुदेव पर एकाग्र चित्त वाले योगभ्यासी भक्त प्रतिदिन इस मंत्र का जप करने लगें तो वे जल्दी ही बड़े श्रेय को पालेंगे ।। ७६ ।।

शास्त्र कहते हैं कि श्री हरी का ज्ञान ही बड़ा श्रेयोदायक है। इस ज्ञान नाम की नौका से पार करने में अत्यन्त कष्टमय इस संसार को जल्दी ही अत्यन्त सरलता से पार कर सकते हैं ।। ७७ ।।

जो मुझसे कहे हुआ इस मंत्र को श्रद्धा से अध्ययन करता है वह दुष्टों से दुराराध्य भगवान का आराधना करता है। और उनका कृपापात्र बनता है ।। ७८ ।।

कृपालु भगवान् श्री हरी जिनको चाहते है उन सबका अनुग्रह करते हैं ।। ७९ ।।

इसे सुबह उठते ही कर बद्ध होकर भक्ति भाव से जो कहते है और जो सुनते है वे कर्मबंधन से मुक्त होते हैं ।। ८० ।।

हे राजपुत्रों और एक बार सुनिये। श्री हरी ही पुरुषोत्तम हैं। उन्ही का स्तोत्र को मैं कहा हूँ। प्रलयकाल में वे अकेले जागृत रहते हैं। और किसी का ध्यान न करते हुए उन्ही का ध्यान करें। उनके प्रिय तप का आचरण करें। आपके अंतिम समय में वे आपको आपका इष्टार्थ (मोक्ष को) दे देंगे। यह उपदेश हमने आपके हित में दिया है ।। ८१ ।।

।। यहा चौबीसवां अध्याय समाप्त होता है ।।

पचीसवां अध्याय

मैत्रेय उवाच : इस प्रकार उपदेश देकर रुद्रदेव जी राजपुत्रों के द्वारा की हुई पूजा को स्वीकार करते हुए देखते देखते वहीं अदृश्य हो गये ।। १ ।।

सारे प्रचेतसो ने रूद्रोपदिष्ट उन उपदेशों को जल में खड़े होकर जपते हुए दस हजार वर्ष तप किया ।। २ ।।

हे विदुर ! आध्यात्म तत्व को जानने वाले कृपालु नारद जी यज्ञ आदि प्रवृत्ति कर्मों में मग्न प्राचीन बर्हि राजा को ज्ञानोपदेश दिये और उनको कर्म के रहस्य को बता दिए। (उस कथा को अब बताता हूँ।) प्रचेतसों की बाकी कथा बाद में बताऊगां ।। ३ ।।

नारद उवाच

हे (प्राचीन बर्हि) राजा, तुम यागादि कर्मो को कर रहे हो। उनसे तुम कौन से श्रेय की इच्छा करते हो ? इन कर्मो से संपूर्ण दुःख दूर होकर मोक्ष रूप नित्य सुखानुभव मिलने वाला नही हैं। इसको शास्त्र भी मानते हैं। वह शाश्वत सुख, निवृत्ति कर्मो से ही मिलने वाला है ।। ४ ।।

प्राचीन बर्हिरूवाच :- नारद जी आप भगवद्भक्त हैं। आप अत्यन्त भाग्यशाली हैं। मैने कर्म को ही मुख्य साधन मान लिया है। यदि यह गलत होगा तो मुझे आप शुद्ध और भगवत् प्राप्ति के ज्ञान का उपदेश दीजिये ।। ५ ।।

नारद उवाच :- हे राजन् गृहस्थाश्रम में लोग काम्य कर्मो को करते रहते हैं। गृहस्थ लोग पत्नी पुत्र और धन को ही पुरुषार्थ समझते हैं। यह तो मूर्खता है। ऐसे लोग संसार मार्ग मे (जनन मरण मार्ग में) फिरते रहते हैं। वे भगवान को पा नहीं सकतें ।। ६ ।।

हे राजा तुम प्रजा पालक हो। किन्तु तुम यज्ञों में दया रहित होकर हजारो प्राणी समूह को बलि दिये हो। इनको देखो ।। ७ ।।

ये तुम्हारी हिंसा से क्रुद्ध हो गये हैं। वे अवकाश देख रहे हैं। तुम्हारे मरने के बाद वे लोहे के शस्त्रों से तुमको काटना चाहते हैं। तुमसे किये हुये प्रवृत्ति कर्म ही तुमको नरक दिखा रहे हैं ।। ८ ।।

इसके बारे में हम तुमको एक पुरातन कथा को सुनाते हैं। इससे तुमको मालूम होगा है कि संसार में डूबे हुये आदमी को भगवान का लक्ष्य रहता ही नही। वह कथा पुरंजन राजा के बारे में है। उसका

गूढ़ार्थ सहित पूरा विवरण हम बता देंगे ।। ९ ।।

(यह पूरी कथा द्वंद्वार्थ वाली है वाचकों के सुविधा के लिये गूढार्थ को कंसो में दिया जाता है)

प्राचीन काल में महाकीर्तिशाली पुरंजन नाम वाला राजा था। उसको नाम न रहने वाला एक मित्र था (राजापुरंजन बार बार जन्म ने वाला जीव है और नाम न रहने वाला मित्र भगवान् है। द्वासुपर्णा सयुजा सखाया' यह उपनिषद् मंत्र इसका विवरण देता है) ।। १०-११ ।।

दुष्टों को शिक्षा देने के सामर्थ्य वाला पुरंजन अपने वास के लिये योग्य नगर को ढूंढते हुए सारे भूमण्डल में फिरा। (कर्म करने के सामर्थ्य वाला जीव साधना करने के लिये योग्य शरीर को ढूंढते हुए अनेक जन्म लेता है) योग्य नगर नहीं मिलने से उसको दुःख हुआ ।। १२ ।।

एक बार उसने हिमालय के दक्षिण भाग में नौ द्वार वाली सर्व लक्षणों से युक्त एक नगरी को देखा। (तिर्यग्ज जन्मों में जीव को साधना करने का अवकाश नहीं था इसके लिये दुःख हुआ। किन्तु अनेक जन्मों के बाद एक बार उसको कर्म भूमि भारत में नवद्वारों से युक्त मानव शरीर मिला) ।। १३ ।।

उस नगर में किला, उपवन, पानी की नहरें, बड़े और छोटे द्वार सोना और लोहे का शिखर और घर थे। (उस मानव शरीर को चर्मरोग, मेदस् मांस, रक्त ऊंचे बाहू, सात्विकादिगुण, कान, पेट आदि अवयव इनसे कांतियुक्त वह देह भोग का साधन बना) ।। १४ ।।

उस नगर में अनेक वज्र, स्फाटिक और रत्नों से निर्माण किये हुये धनिकों के सुन्दर गृहों को देखा। वह नगर नाग लोक की राजधानी भोगवती के समान था। सभा मंदिर, चौक बड़ा रास्ता, खेलने का मैदान, दुकाने, मंदिर ध्वज पताकाओं से सजाये गये थे (देव निवास हृदय, नाड़ी, ग्रंथी, सुषुम्ना नाड़ी, इंद्रियों के बाह्य गोलक, शिर, बाल, अंगुली इत्यादि अंतर्बाह्य अवयव और आभरणों से युक्त बाह्य शरीर को जीव ने देखा) ।। १५-१६ ।।

नगर के बाहर के उद्यान में श्रेष्ठ वृक्ष और लतायें थीं। वहां पक्षियों का कूंजना और भृंगों के गायन से गूंजते हुए सरोवर थे। ऊपर से बहकर आने वाल झरने के पानी के साथ फूलों की सुगंध और पानी की शीतलता को लेकर मंद वायु बहती थी। वहां विविध वन्य पशु मुनि के समान व्रताचरण करते हुए किसी को कष्ट नही देते थे। कोयलों के सुश्राव्य स्वर को सुनकर यात्री उनका स्वागत मानकर भागे आते थे। (उस मानव शरीर में छोटे बड़े अवयव, अन्यान्य स्वर और ध्वनि विक्षेप, शीतल श्वासयुक्त नाक, बोलने के लिये कोमल जीभ, हितकर स्पर्शेंद्रिय, शब्द ग्रहण सामर्थ्य के कान, इन सबको देखकर विषयानुभाव के लिये इसी को स्वागत समझते हुए जीव उसी में प्रवेश किया-रहने लगा) ।। १७-१८-१९ ।।

एक दिन उस उद्यान में बैठे हुए पुरंजन ने अकस्मात् आयी हुई एक सुन्दरी युवा कुमारी को देखा। उसके दस सेवक थे। एकेक भृत्य को सौ से भी ज्यादा उपसेवक थे। (इस जीव को भगवान के प्रेरणा से विषय बुद्धि में सबसे बड़ी तामस बुद्धि का दर्शन हुआ। वह तामस बुद्धि दस इंद्रियों से उत्पन्न होती थी।) ।। २० ।।

उस कुमारी के सामने एक बहुरूपिया आता था। वह सारे स्त्रियों सहित भृत्यों में श्रेष्ठ था। उन सारे भृत्यों से वह कर लेता था। (बुद्धि के समाने पहले मन रहता है। यह विचित्र विषयों से युक्त होकर अनेक रूप धारण करता है। सभी इंद्रियों के फल को वही भोगता है। मन इंद्रियों का स्वामी बन जाता है) ।। २१ ।।

पांच फणों वाला एक सर्प सभी दिशाओं से उस सुंदरी की रक्षा करता था। उसने अभी तक विवाह नही किया था। वह काम रूपिणी, उत्तम पति को ढूंढ रही थी। (प्राण, अपानादि पांच क्रिया वाले मुख्य प्राण द्वार पालक के समान उस बुद्धि की रक्षा करते थे। अभी तक यह बुद्धि किसी जीव से मिली नहीं थी। योग्य जीव को ढूंढ रही थी ।। २२ ।।

उस सुन्दरी की नाक बहुत सुन्दर थी। दांत सुन्दर थे। उसका गाल सुन्दर था। किशोरावस्था वाली वह सुन्दरी कांति युक्त कर्ण कुंडलों को धारण की थी। (बुद्धि को अतिशय अभिमान होता है। उसका काम अभी पूरा पक्व नही हुआ है। बाहर और अंदर दोनो व्यापारों का नियंत्रण करतीं है। सदाकाल दुविधता में रहती है) ।। २३ ।।

वह सुन्दरी पिंगल वर्ण की साड़ी पहने थी। सुन्दर कमर बंध रखी है। वह कृष्ण वर्ण की थी। वह चलने लगी तो पायों का नुपुर आवाज करता था। देखने से वह देव स्त्री लगती थी। (बुद्धि कभी कभी अच्छा काम करती थी कभी बुरा काम, किन्तु तमोगुण ज्यादा। रजो और तमो गुण के कारण कभी अच्छा और कभी बुरा काम होता है) ।। २४ ।।

यौवन की प्रारम्भिक अवस्था को दिखाने वाले अपने स्तनों को वह सुन्दरी लज्जा के कारण बार बार वस्त्र से ढक लेती थी। (बुद्धि शब्द मध्यमा अवस्था को दिखाती है। वर्ण वृत्तों में गुरु लघु के व्यत्यास के बिना मिले हुए शब्द को बुद्धि अभिव्यक्त करती है। यह शब्द बुद्धि ऊर्ध्व मुख होने से मूलाधार से उत्पन्न होता है) ।। २५ ।।

लज्जा से युक्त मंदहास से वह युवती बहुत सुन्दर लगती थी। स्नेहपूर्ण कटाक्ष से उसको देखते हुए वीर पुरंजन ने पूछा (बुद्धि अपने कार्य में लगी थी। विषय सुखों की ओर खींचने वाली बुद्धि के आकर्षण में पड़ा यह जीव उसको अपने सामने कर दिया और उसके मोह में पड़ गया) ।। २६ ।।

पुरंजन ने उससे पूछा 'हे सुन्दरी कमल दल के समान आँख वाली सती, तुम कौन हो। तुम यहा कहा से आयी। तुम्हारा यहाँ कौन है। मुझे बताओ। इस नगर का क्या करना चाहती हो। (इस देह को तुम क्या करना चाहती हो। उसको मेरे अनुभव में लाओ) ।। २७ ।।

तुम्हारे पीछे वाले ये सेवक है? उनके ऊपर वाला यह ग्यारहवां महाभट कौन है ? हे सुन्दरी ये स्त्रियाँ कौन हैं ? तुम्हारे सामने वाला वह सर्प कौन है (ये दस इंद्रिय क्या है। उसके ऊपर नियंत्रण करने वाला ग्यारहवा मन क्या है ? उनकी ये वृत्तियाँ क्या है। तुम्हारे सामने आने वाला यह दीर्घश्वास क्या हैं ?) ।। २८ ।।

तुम क्या ह्वी देवी हो ? भवानी या वाग्देवी हो ? या रमा देवी हो ? तुम्हारा हाथ का कमल कहां गया ? वह तुम्हारे पाद के साथ मिल गया तो मेरी सारी आशायें पूर्ण हो गयीं (तुम्हारी लज्जा युक्त क्रिया क्या (बुद्धि का) है ? या संकल्प सहित क्रिया क्या है ? वचन व्यापार है या क्रीडा व्यापार है ? मन के मुखांतर तुम एक शरीर में छिपे हुए स्वामी को ढूंढ रही हो क्या) ।। २९ ।।

हे वरोरूवा, तुम्हारे पाद भू स्पर्श करते हैं, तो तुम देव स्त्री नही हो सकती। मानुष स्त्री होने के कारण मेरे साथ इस नगर को अलंकार बनो (मुझसे शादी करो)। लक्ष्मी जी यज्ञ पुरुष के साथ वैकुण्ठ की अलंकार बनती है। श्री हरी अनेक वीर कर्मो को करते हैं। मैं भी अनेक पराक्रम युक्त कर्मो को करने से उत्तम वीर बना हूँ। (बुद्धि लज्जा आदि व्यापारों से संबंध रखता नही। उसका व्यापार स्थिर रहता है। सत्कर्माभिलाषा से युक्त होता है। जीव प्राण से प्रेरित होकर अनंत कर्मो को करता है। उसके साथ इस देह में रहने के लिये बुद्धि योग्य है) ।। ३० ।।

हे सुन्दरी तेरे कटाक्ष से ही मेरा मन भ्रमित हो चुका है। लज्जा और हास्य युक्त तुम्हारी भौहों के चलन से मै पीडित हूँ। मन्मथ मुझे और दुःख दे रहा है। सुन्दरी तुम मुझ पर अनुग्रह करो। (जीव की इंद्रिय को शरीर के बिना वृत्तियों से दूर रहना पड़ता है। लज्जा, दृष्टि और हास्य इनके साथ मन के प्यार से जीव अपने अनुकूल कर्म करने को तैयार हो रहा है। यह बुद्धि के लिये अनुकूल बना गया) ।। ३१ ।।

हे सुभ्रू (सुन्दर भौहों वाली) ! तुम निर्मल मंद हास वाली हो। लज्जा से अपने मुख को नीचे की हो। तुम्हारे लम्बे काले बालों से सुन्दर नेत्र ढक गये हैं। तुम अपने मुंह को थोड़ा उठाकर मुझे दिखाओ। (विषयों में संचार करने वाला विलास बुद्धिके व्यापार लज्जा आदियों के कारण जीव को अनुकूल नही हैं। अविषय ज्ञान वाले तामस व्यापार रहित सुन्दर सद् व्यापार को जीव के अनुभव को ला देना) ।। ३२-३३।।

इस रीति से पुरंजन भ्रमित बुद्धि वाले आदमी के समान याचना करता रहा। वीरों को भी मोहित करने वाली वह स्त्री हंसते हुए बोली ।। ३४ ।।

हे पुरूष श्रेष्ठ ! हमारे उत्पादक और पालकों को याने माता-पिता को हम नहीं जानते। हमारे नाम निशान भी हम नहीं जानते। (हम इस सृष्टि के कर्ता और पालन कर्ता को हम पूर्ण तरह से नही जानते। उनके नाम गोत्र के बारे में निश्चित रूप से बोल नहीं पाते)।

हम अब यहाँ है इसी मात्र को जानते है। मेरे वासस्थल के इस नगर के निर्माता को भी मैं नही जानती। (बुद्धि केवल अपने को पहचानती है। कर्म वश से इसमें भी संशय आ सकता है। ज्यादा वह नहीं जानती। इंद्रिय और बुद्धि को आश्रय देने वाले इस देह का निर्माण करने वाला भगवान को नही जानती) ।। ३५ ।।

हे शत्रुमानापहारक ये पुरुष मेरे मित्र है, ये स्त्री मेरी सखियाँ हैं। मै जब सोती हूँ तब यह सांप मेरे नगर की रक्षा करते है (मन की मुख्य क्रियायें बुद्धि की सहायक हैं। श्वासोंच्छ्वास करने वाले वायु बुद्धि सुप्त हुए समय में शरीर की रक्षा करती है) ।। ३६ ।।

हे शत्रु संहारक हमारे अदृष्ट से आप यहा आये हैं। आपका कल्याण हो। आप मेरे साथ विषय भोग की अपेक्षा कर रहे हैं। मै आपसे शादी करूंगी। (श्री हरी की इच्छा से जीव यहाँ आया है। वह (प्रयास करे तो) उसको मोक्ष ही मिलेगा। किन्तु वह विषय सुखों को भोगना चाहता हैं बुद्धि इंद्रियों से उन सुखों को मिला देगा) ।। ३७ ।।

हे विभो ! मैं आपको जो विषय सुखों को देती हूँ उनको इस नौ द्वार वाले नगर में रहते हुए सौ वर्ष जीओ (बुद्धि के दिए हुए विषय सुखों को इस (नौद्वार वाला) मानव देह में अनुभव करते जीव सौ वर्ष रहना चाहता है।) ।। ३८ ।।

आप जैसे रतिज्ञ, पंडित, युद्ध करने में शक्त, और ज्ञानी को छोड़कर आरतिज्ञ, अज्ञानी और कायर पशु प्राय जीव को कौन सुख देना चाहती है? (बुद्धि को परमात्म का रतिज्ञान है। शास्त्र मोक्ष की आकांक्षा है। अपने सद् गति के लिये मानव शरीर को प्राप्त कर आनन्द को पाना है। किन्तु इसके विपरीत में पशु के समान केवल भोग में रत मानव को सुख देती नहीं) ।। ३९ ।।

आपके चाहने वाले इस गृहस्थाश्रम से धर्म, अर्थ, काम, पुत्रों से मिलने वाला आनन्द, मोक्ष, यश ये सारे मिलते हुए दोष रहित उच्च्व लोक मिलेंगे। ब्रह्मचारी या सन्यासी इनको पा नही सकतें। (मानव देह से धर्मादि पुरुषार्थों को पा सकते हैं। इनको सुख भोग चाहने वाला, केवल पेट भरने के लिये जीने वाला या दरिद्र नहीं पाता) ।। ४० ।।

संसारावस्था में देव, ऋषि, पितृ, मानव, जीव जाति समूह, इन सबका कल्याण कर सकते हैं, इसकारण हे वीर! आप विख्यात, सुन्दर परिवार के इष्ट प्रदाता और स्वयं आगत आपसे मेरे जैसा अविवाहित स्त्री शादी न किये हुए कैसे रह सकती है ।। ४१-४२ ।।

हे दयानिधे मंदहास युक्त दृष्टि क्षेप से अनाथ लोगों के दुःख निवारण के लिये आप संचार कर रहे हैं। अजगर के समान लंबी लंबी बाहों के बंधन का कौन स्त्री तिरस्कार करती है?।। ४३ ।।

नारद उवाच :- इस प्रकार दोनो दंपतियों ने परस्पर की सम्मति से उस नगर में प्रवेश करके वहाँ सौ वर्ष के सुखी जीवन का आरंभ किये (उस शरीर में बुद्धि और जीव दोनो मिलकर सौ वर्ष के सुखी जीवन का आरम्भ किये) ।। ४४ ।।

वहाँ बंदी मागधों से स्तुति गान को सुनते हुए स्त्री परिवार से युक्त पुरंजन ने जल क्रीडा करने के लिए सरोवर में प्रवेश किया (जागृत अवस्था में जीव इंद्रिय और विषयों के संबंध से सुख दुःख पाता है। स्वप्न में केवल मनोव्यापार से सुख दुःख पाता है। निद्रावस्था में प्राज्ञनामक भगवान को पाकर केवल सुख को पाता है) ।। ४५ ।।

उस नगर को ऊपरी भाग में सात द्वार हैं और नीचे दो द्वार हैं। एक अलग अलग स्थानों को जाने के मार्ग हैं। (देह के ऊपरी हिस्से में दो आँख, दो कान के गोलक, एक मुहं कुल सात द्वार है। नीचे मल और मूत्र के द्वार है। इन सारे रंध्रों से अलग अलग काम होते हैं। अत्यन्त विलक्षण शक्ति वाले भगवान् इस शरीर का नियमन करते हैं। अल्प शक्ति वाला जीव से इस शरीर का चलन करवाता है) ।। ४६ ।।

इन द्वारो में पांच द्वार पूर्वाभिमुख हैं। एक उत्तर की दिशा में है और एक दक्षिण की दिशा में। दो पश्चिम के ओर खुलते हैं। (ऊपर के रंध्रो में पांच सामने हैं, एक दहिने बाजू और एक बाये बाजू) ।। ४७ ।।

पूर्व दिशा के द्वारो में खद्योत और अविर्मुख नामके द्वार एक ही स्थान पर लगे हुए हैं। द्युमंत नामके मित्रके साथ पुरंजन उनमे से विभ्राजित देश को जाता रहता है। (खद्योत याने आकाश है इसके लिये हम देख सकते हैं इसी कारण और खद्योत समान प्रकाश देने वाली हमारी दाहिनी आँख खद्योत कही जाती है। प्रकाश के साथ रूपग्राही बायी आंख ये दोनो एक ही स्थान पर हैं। चक्षुरभिमानी सूर्य की सहायता से जीव रूप को ग्रहण कर सकता है) ।। ४८ ।।

नलिनी और नालिनी नामके दो द्वार पूर्व की ही दिशा में एक ही स्थान पर एक साथ है। अवधूत नामके मित्र के साथ पुरंजन इन द्वारों से सौरभ देश को जाया करता है (श्वास करने से नलिनी नाम का दाये नाक उच्छ्वास करने से नालिनी नामके बायें नाक दोनो एक ही जगह पर हैं। हवा और अभिमानी अश्विनी देवताओं के सहायता से जीव गंध का अनुभव करता है ।। ४९।।

और एक पूर्व के मुख्य द्वार हैं इसका नाम मुख है। इस द्वार से रसज्ञ के साथ पुरंजन बहूदन देश को जाता रहता है तथादि विपण के साथ आपण देश को आता जाता रहता है। (और एक ऊपर का रंध्र मुख हैं जीव इससे जीभ की सहायता से रस (आहार का) सेवन करता है; और वागेंद्रिय की सहायता से बातें कर सकता है।) ।। ५० ।।

पितृभू नाम के दक्षिण के द्वार से पुरंजन दक्षिण पांचाल देश को और देव नाम के उत्तरके दरवाजे से उत्तर पांचाल को पुरंजन के लिये आने जानेकी सुविधा है। (पितरो से मंत्रोपदेश लेने वाला होने के कारण दहिने कान को पितृभू कहते हैं। तत्वज्ञान को समझने वाला जीव वेदादि सकल शास्त्रों का और काव्यादि सुखप्रद ज्ञान को पाता हैं। जीव जाते समय दहिने कान से जाए तो देव लोक, और बायें कान से जाए तो पितृलोक को पाता है) ।। ५१ ।।

पश्चिम के दो द्वार नीचे बाजू में हैं। उनमें एक आसुरी नाम के द्वार से पुरंजन दुर्मद के साथ ग्राम्यक नामके प्रदेश को आया जाया करता है। (नीचे वाला द्वार में एक मूत्र द्वार है। असुर जन को हितकारी होने से इसको आसुरी कहते हैं) इस द्वार से स्वयं आत्यंतिक सुख देने वाले मानने वाला दुष्ट मद वाले जननेद्रिंय से ग्राम्य कर्म को जीव करता रहता है।) ।। ५३ ।।

पश्चिम की ओर के एक द्वार का नाम है निश्ऋति, पुरंजन लुब्धक के साथ वैशस नाम के देश को जाता है (देह का निचले भाग में मलमार्ग है। यह मल को बाहर भेजता हैं। प्रयत्न के बिना मल को बाहर भेजने वाले अपान वायु की सहायता से मल विसर्जन होता है। इस मार्ग से जाने वाला जीव यातना प्रधान नरक भोग अथवा पाप फल के शरीरों को पाता है) ।। ५४ ।।

इस नगर के और दो द्वार हैं किन्तु वे खुलते नही। उनका नाम है निर्वाक्य और उपस्कर। जनपति पुरंजन इससे जाता है और (काम) करता है (देह की और दो कर्मेंद्रिय है हाथ और पाव इनको ज्ञान नही हैं। मानव देह वाला जीव पादों से चलता है और सब जीवों में श्रेष्ठ समझने वाला मानव हाथ से काम करता हैं) ।। ५५ ।।

नपुंसक के साथ अंतःपुर में रहने वाला पुरंजन पत्नी पुत्रों से मिलकर मोह का, सुख का या प्रसन्नता का अनुभव करता रहता है। (बाह्येंद्रियों से बाहर न जाते हुए जीव जहां चाहे वहा संचार करने वाले मन के साथ मोह (जागृति में) सुख (स्वप्न में) और प्रसन्नता सुषुप्ती में पाता रहता है। मृत्यु के बाद नरक, स्वर्ग या मोक्ष को पाता है) ।। ५६ ।।

इस प्रकार से पुरंजन कर्मो में आसक्त रहा। उसका मन विषय सुखोंमें ही व्यस्त रहा। पत्नी के विलासो में वह मस्त हो गया था। वह अविवेकी पुरंजन पत्नी की प्रत्येक बातों को मानते हुए वह जो

कहती थी उसी को करता था। वह पीने लगी तो यह भी मदमत्त होकर मद्यपान करता था। वह खाने लगी तो खाता था। जब वह गाने लगती तो स्वयं गाता था, रोती तो रोता था, हँसी तो हसता था। वह दौडने लगती तो दौड़ता था, रूकी तो रूकता था। उसका अनुसरण करते हुए सोता था, बैठता था, सुनता था, देखता था, सूँघता था, छूता था उसका दुःख के साथ दुःख और संतुष्टि के साथ संतुष्टि का अनुभव करता रहा (जीव असद् बुद्धि के साथ मिलकर जीव ग्राम्य कर्म करने लगा। खाना-पीना मजा करने में मस्त रहा। अपने अभिप्राय को खोकर दुर्बुद्धि को ही मानने लगा। सद् बुद्धि के प्रभाव से मिला जीव सज्जन होता चलेगा) ।। ५७-५८-५९-६०-६१-६२ ।।

पुरंजन अपनी पत्नी के कारण, मंत्रियों से वंचित रहा। तथा प्रजाजन के साथ छोड़ दिया। कर्तव्य विमूढ़ वह अपनी इच्छा के विरुद्ध पत्नी के वश होकर मृग के समान उसके पीछे पीछे दौड़ते रहा। (जीव जल्दी ही दुर्बुद्धि से वंचित होता है। भूलना उसका स्वभाव है। वह आत्म विस्मृत होकर अपने आगे की गति का चिंतन ही छोड़ देता है। बुद्धि के अधीन होकर विषय सुखों के पीछे पशु जैसे पड़ जाता है। सज्जीव सद्बुद्धि के अधीन होकर सत्कार्य करते हुए सद्गति पाता हैं, वह स्त्री स्वभाव को जीत लेता है। वह ज्ञानी होकर सब को भगवान श्री हरी के अधीन मानकर श्री हरी की ही सेवा करता है) ।। ६३ ।।

।। यहा पँचीसवा अध्याय समाप्त होता है।।

छबीसवां अध्याय

नारद उवाच :-

महा धनुर्धारी पुरंजन एक दिन रथ में बैठकर शिकार के लिये पंचप्रस्थ नामके वन को गया। उसके रथ में पांच घोड़े, दो पहिये, एक अरा तीन ध्वज, और पांच निम्नोन्नत स्थान थे। तीव्रगति से जाने के लिये वह अनुकूल था।

उस रथ में एक रस्सी, एक सारथी, एक आसन, दो कूबर जुड़े थे। उसमें पांच आयुध थे, सात रक्षक थे, पांच प्रभाव थे। उनका सोने से अलंकार किये थे।

पुरंजन सोने का कवच पहना था, अक्षय बाण और धनुष को बांध लिया था। ग्यारह सैन्यों का स्वामी बनकर रथ में बैठे हुए शिकार के लिये चला।

(जीव स्वप्नावस्थानंतर जागृदवस्था में शब्ददि पांच विषयों का अनुभव करता है। उसके लिये रथ रूप में उसके लिये देह है। उस देह की पांच इंन्द्रिया है। वह देह क्षण क्षण के बदलता रहता है। पुण्य पाप के फलस्वरूप वह देह मिला है। मुख्य वायु इस देह के लिये आधार है। सत्व रज और तमोगुण उसकी पहचान हैं, पंच प्राण और उनके संचार के लिये नाडी इस शरीर में है। उसमें मन एक है और बुद्धि एक है। हृदय जीव का वास स्थान है। शीतोष्ण सुख दुःख का अनुभव जीव को उसी से होता है। पांच इंद्रियों के और पंच विषयों के संबंध से पंच सूनादोष होते हैं। त्वगादि सप्त धातु देह रक्षण के लिये हैं। पंचभूतों का परिणाम इस शरीर पर होता रहता है। ऐसे शरीर को सोने से सजाते हैं। जीव ग्यारह इंद्रियों का स्वामी है) ।। १-२-३ ।।

उस पंचप्रस्थ नामके जंगल में धनुर्बाण को धारण किया पुरंजन कभी भी न त्याग की हुई पत्नी के सहवास को भी छोड़कर शिकार करने की लालसा से (हिंसा के ऊपर के प्यार से) दया रहित होकर वन्य प्राणियों का हनन अपने नुकीले बाणों से करने लगा। (हिंसा भाव युक्त जीव विवेक (या सद्बुद्धि) को त्याग कर दुर्बुद्धि से दूसरों को कष्ट देते हुए अपनी कामनाओं को पूर्ण करने का प्रयास करने लगा) ।। ४-५-६ ।।

शिकार करने में (राजा के लिये भी) नियम होते हैं। शिकार में ही अति प्रीति रखते हुये निष्पाप प्राणियों का हनन नहीं करना चाहिये। श्राद्ध और यज्ञ छोड़कर बकरी और हिरण का वध नहीं करना चाहिये। शिकार में आसक्ति न रखते हुए लोक कल्याण के लिये शिकार करने वाले को यह नियम अन्वय

नही होता ।। ७ ।।

ज्ञान के बिना इस नियम का उल्लंघन करते हुए हिंसा और विषय लालसा से प्राणी वध (दुष्ट कार्य) करने वाले सत्व, रज, और तमोगुणों के प्रभाव से ज्ञानहीन होकर पाप योनि और नरक को पाते हैं ।। ८ ।।

उस जंगल में विविध बाणों से छिन्न भिन्न हुए शरीर वाले दुःखित मृग मरे पड़े थे। करुणा हृदयी कोई इस दृश्य को देख नहीं सकता, देखकर सह नही सकता ।। ९ ।।

खाने योग्य खरगोश, जंगली सुअर, खाने अयोग्य जंगली भैंस, गाय इत्यादि प्राणियों को मारते हुए वह राजा थक गया। (जीव ग्राह्य और अग्राहय विषयों का अनुभव करते हुए उनका मोह न छोड़ते हुए थक जाता है) ।। १० ।।

तब पुरंजन भूखा प्यासा थका हुआ घर वापस आया। स्नान करने के बाद भोजन किया। श्रम परिहार के लिये बिस्तर पर लेट गया ।। ११ ।।

धूप, गंध लेप, हार इत्यादि से अपने शरीर का अलंकार किया था। संतुष्ट होकर वह शय्या पर लेटते ही काम वासना से युक्त होकर पत्नी को याद किया ।। १२ ।।

गृहस्थ धर्म के लिये अनुकूल अपनी सुन्दरी पत्नी को वह कही भी नही देखा। तब पुरंजन को बहुत दुःख हुआ। अपने अंतःपुर में रहने वाली स्त्रियों से उसके बारे में पूछा ।। १३ ।।

हे महिलाओं! रानी सहित आप सब लोग क्षेम से हैं न? हमें यह महल और इसमे रहने वाली सारी सुख सम्पत्ति अब पहले जैसे अच्छी नही लग रही है ।। १४ ।।

घर में माता, या पति को प्यार करने वाली पत्नी रहना चाहिये। तब ही घर रहने के लिये योग्य बनता है। नही तो घोड़ा और पहियो रहित गाड़ी समान हो जाता है। ऐसे घर में कोई बुद्धिमान आदमी नहीं रहता ।। १५ ।।

जो मेरी पत्नी दुःख समुद्र में डूबे हुये मुझको पग पग पर ज्ञान देती हुई सुखी करती थी। वह कहां है? ।। १६ ।।

अंतःपुर की नारियों ने कहा :- हे राजा आपकी प्यारी के मन में क्या है उसको हम नही जानते। वहा देखिये बिस्तर के बिना खाली जमीन पर सोई हैं ।। १७ ।।

नारद उवाच :- पुरंजन ने जमीन पर पड़ी अपने पत्नी को देखा उसको अपने शरीर का ख्याल नहीं था। उसको देखकर पुरंजन का दिल पिघल गया। वह कातर होकर अपने मनोहर वाक्यों से उसको समझाने लगा ।। १८-१९ ।।

पुरंजन का मन दुःख से भरा हुआ था। वह विचार करने लगा कि मेरा कौन सा कृत्य मेरी प्रेयसी की नाराजगी का कारण हुआ ? सौ बार विचार करने के बाद भी उसको कारण नही मिला। (जीव अपने हितकारी विषयों से वैषयिक बुद्धि को तृप्त करता है। किन्तु मन सद्बुद्धि के सम्पर्क से दुःखित रहता है। जीव रजो गुण व्याप्त होकर सद्बुद्धि के नाश का कारण समझ नही पाता है) ।। २० ।।

पुरंजन पत्नी के अनुनय में बहुत निपुण था। वह अपने प्रेयसी को क्रमानुसार समझाया। वह वीर अपनी पत्नी के पादों को पकड़ा। उसको उठा के अपने जंघे पर रखकर प्यार से उसका उपचार किया। उससे कहा (जीव वैषयिक बुद्धि के अनुनय में बहुत चतुर होता है। क्रमशः उसी के वश में हो जाता है। उसी का अंग मन और चित्त का अधीन होकर वैषयिक बुद्धि और सद्बुद्धि दोनों वाला जीव वैषयिक बुद्धि के शरण हो जाता है ।। २० ।।

हे मंगलांगी ! राजा अपराधी सेवकों को शिक्षा देना चाहिये। शिक्षा देने से ही भृत्यों पर प्रभु अनुग्रह करता है। अपराध करने के बाद भी जिनको दंड नही देते वे भृत्य निश्चित रूप से मंद भाग्य हैं ।। २१ ।।

हे कृशांगी, प्रभु वैसी शिक्षा देता है वह शिष्यों के ऊपर उनका किया हुआ अनुग्रह ही है। वह शिक्षा नहीं। उस शिक्षा से अपराध का प्रायश्चित होकर अपराधी अपराध से मुक्त होता है। इस विषय को न जानने वाला अज्ञानी दुःख को न सहते हुए शिक्षा को कष्ट समझ लेता है। यह नहीं समझता है कि शिक्ष देने वाला प्रभु शिक्षा देकर बन्धु का कार्य किया है ।। २२ ।।

हे सुदति, मनस्विनी, तुम मेरी स्वामिनी हो। तुम अपने प्यारे मुख को थोड़ा मेरी ओर करके दिखओ। तुम्हारी सुन्दर भौहें प्यार और लज्जा भरित मंद हास्य युक्त तेरा वह लास्य, काले काले घुघराले बाल युक्त, सुन्दर नाक और प्रिय बातों को बोलने वाली अपने मुंह को दिखाने की कृपा करो।। २३ ।।

तुम वीर पत्नी हो। तुमसे अपराध किया हुआ कोई भी हो उस अपराधी को मैं दंड दूंगा वह ब्राह्मण या भगवद्भक्त हो तो उनको मैं शिक्षा नही दे सकता। बाकी के कोई हो वह तीनो लोको में कहीं भी हो मेरे भय से मुक्त नही होता ।। २४ ।।

(वह प्रयास करके उसका मुह देखने के बाद आगे बोलता है) सुन्दरी तेरा मुहं (आज जैसे) तिलकर रहित मलिन होकर जो हीन कभी भी नहीं होती। अब तो क्रोध से भयंकर दिखता है। यह तेरा मुख कभी भी संस्कार के बिना रंग रहित नहीं था। तेरे कोमल स्तन दुःखाश्रुओं से कभी भी नही भीगे थे। लाला लाल गाल और ओठ केसरी रंग से कभी भी दूर नही हुए थे। देवी तुम प्रसन्न हो जाओं। मै तेरा स्नेही हूँ। शिकार के लालच से तुम्हारे आज्ञा के बिना ही वन को जाकर अपराध किया हूँ। मुझे क्षमा करो। पती काम पीड़ित होकर धैर्य और लज्जा छोड़कर अधीन होकर जब आता है, तब कौन कामिनी उससे न मिलती रहेगी ?

।। यहां छब्बीसवां अध्याय समाप्त होता है।।

सत्ताईसवाँ अध्याय

नारद उवाच :- हे राजा बर्हिष्मन् इस प्रकार वह पुरंजनी अपने विलासों से पति को अपने वश में लेकर उनके साथ खेलती रही। (दुर्बुद्धि जीव को अपने वश में लेकर भौतिक सुख में डाल दिया। अब इंद्रिय जय होना जीव से कोसो दूर रहा) ।। १ ।।

वह पुरंजनी सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से अलंकृत होकर स्वयं भोगेच्छा से राजा के पास आयी। राजा ने उसका अभिनंदन किया। (बुद्धि अपने विविध कार्यो से जीव को क्षणिक सुख देता है। जीव मंद (मंद जीव) उसी का अनुसरण करता है) ।। २ ।।

वह राजा को आलिंगन दी। राजा उसको गले से लगा लिया। एकांत में राजा ने उससे बहुत सी प्यारी प्यारी बातें की। उसका होश ही उड़ गया। वह स्वयं को भूल गया। उसको अपनी पत्नी ही सर्वस्व बन गयी। उस प्रमत्त यौवनवाली पत्नी के सामीप्य में राजा को काल का ख्याल भी नही रहा। दिन और रात का अंतर ही नहीं रहा। (जीव के मनोव्यापार से एक के बाद एक सुखों का अनुभव होता ही रहता हैं इससे मत्त जीव अपने स्वरूप को भूल जाता है। ज्ञान अज्ञान का भेद चला जाता है। सामान्य लोग इसको जान नही पाते) ।। ३ ।।

महामन वाला वह राजा बहुविध भोगों को भोगता रहा। पत्नी के हाथों को ही तकिया बना के उसके ऊपर सोता रहा। उसका अविवेक बढ़ गया। वह अपनी पत्नी को ही सार सर्वस्व मान गया। उसके संग से उसका अज्ञान और बढ़ा। वह खुद को और भगवान को भूल गया। (जीव प्रयास करने से भगवान को जानने की क्षमता रखता है। किन्तु अहंकार और संसार मद से वह खुद को ही भूल जाता है और भगवान को भी भूल जाता है ।। ४ ।।

इस प्रकार से अपनी पत्नी से क्रीडा करते हुए राजा का मन केवल काम भोगों से भरकर कलुषित हो गया। पुरंजन का नवयौवन (आधी आयु) एक क्षण सा होकर बीत गया। (जीव कुबुद्धि के वश होकर अपने ग्यारह इंद्रियों की क्रियाओं में और भौतिक सुखों में मग्न होकर अपना बहुमूल्य क्रियावान् काल यौवन को क्षणिक सुखोपभोगों में नष्टकर देता है) ।। ५ ।।

राजा पुरंजन को अपनी पत्नी से ग्यारह सौ पुत्र हुए और एक सौ ग्यारह पुत्रियां हुई। ये पुत्री सारी शीलवती, पिता और भाइयों की कीर्ति को बढ़ाने वाली बनीं। (अपनी ग्यारह इंद्रियों से जीव हजारो कर्मो को करता रहता है। वे सारे जीव के बंधक बनते हैं।) ।। ६-७ ।।

वह पांचालाधिपति राजा पुरंजन अपने पितृवंश को बढ़ाने वाले पुत्रों की शादी किया। और पुत्रियों का भी योग्य वरो को ढूंढ़कर विवाह किया ।। ८ ।।

प्रत्येक पुत्र को सौ सौ बेटे पैदा हुए। इस रीति से पांचाल देश में पुरंजन का वंश बढ़ गया ।। ९ ।।

ये पुत्र और पौत्र पुरंजन की सारी जायदाद (सम्पदा) को बाँट लेने के लिये ही पैदा हुए थे। इनके अगाध ममता से राजा बंधित हो गया था ।। १० ।।

पुरंजन की आकांक्षायें बढ़ती रही। वह ऐहिक कामना प्राप्ति के लिये बहुत से यज्ञ (सकाम कर्म) करने लगा। हे बर्हिष्मन् राजा तुम्हारे जैसे अपने मनोकामना पूर्ति के लिये उसने बहुत प्राणियों की हिंसा की ।। ११ ।।

क्रियायुत काम्य कर्मों का आचरण और भोगलालसायुक्त पुरंजन अपने सारे कर्तव्यों को भूल गया। घर के व्यवहारो में ही मग्न हो गया। इतने में मृत्यु रूप वाले रसिकों के संहारक गंधर्वाधिपती उसके ऊपर आक्रमण किए। (जीव केवल काम्य कर्मों मे ही आसक्ति रखता है। समयानुक्रम से वृद्धत्व के सहारे उसके ऊपर अप्रिय मृत्यु का आक्रमण होता है) ।। १२ ।।

हे राजा उस गंधर्वाधिपती का नाम चंडवेग है। उसके अधीन (सेवक) गंधर्व बहुत बलिष्ठ होते हैं। वे कुल मिलकर तीन सौ साठ हैं। (कला काष्ठा निमेष इत्यादि को आश्रय देने वाला काल (निश्चित) वेग से चलता है। उसमें तीन सौ साठ दिन होते है।) वे गंधर्व की पत्नियां भी तीन सौ साठ होती हैं ये दोनो मिलकर पुरंजन के ऊपर आक्रमण किये) उनमे कई सफेद और कई काले। वे सारे मिल के पुरंजन की एकेक करके सारी शक्तियों को नष्ट किये। (तीन सौ साठ रात्रियाँ भी होते हैं। वे सारी मिल के जीव के सौ वर्ष में एक एक करके सारी शक्तियों को नष्ट करती हैं।) ।। १३-१४ ।।

चंडवेग के ये सारे अनुचर पुरंजन के नगर के ऊपर हमला किये। उस समय उस नगर का रक्षक प्रजागर उनको रोका (दिन बीतते हुये शरीर बलहीन होता है। किन्तु प्राणायाम से उस बल हीनता और वृद्धत्व को रोक सकते हैं) ।। १५ ।।

वह बलिष्ठ राजा पुरंजन सात सौ बीस गंधर्वों से अकेला ही एक सौ वर्ष युद्ध करते रहा (प्राण के बल जीव वर्ष के सात सौ बीस दिन (दिन-रात को मिलाकर) संघर्ष करते हुए शरीर में सौ वर्ष रहता है) ।। १६ ।।

अकेले पुरंजन को बहुत गंधर्व गंधविनियों से लड़ना पड़ा। राजा की शक्ति कम होती रही। तब उनके देश वाले, पुत्र पुत्री और बंधु बहुत चिंतित हुए (अकेले जीव को काल के साथ संघर्ष करना पड़ता

है। दिन ब दिन जीव की शक्ति नष्ट होती है।) ।। १७ ।।

किन्तु राजा विषय चिंतनों में और विलास के उपभोग मे ही रहा। स्त्री वश में रहने वाले उसको शत्रु से हार होने के विषय का लक्ष्य नहीं रहा। (जीव इंद्रियों से विषयोपभोग करते रहा) विवेक रहित होने से उसको वृद्धाप्य और मृत्यु का लक्ष नहीं रहता ।। १८ ।।

हे बर्हिष्मन् सुनो, चंडवेग की एक पुत्री थी। वह पती को ढूंढ़ती हुई तीनो लोकों का संचार की। उनका नाम था जरा। किन्तु उसको कोई पति नही मिला। उससे कोई प्यार नही किया (काल क्रम में आने वाली वृद्धावस्था को कोई नही चाहता, कोई स्वागत नहीं करता) ।। १९ ।।

उसके देह में सौंदर्य नही था। लोग उसको दौर्भाग्या नाम से पुकारते थे। केवल पुरुराजा के एक पुत्र ने उसको आदर किया था। तब ययाति राजा ने उस पुत्र को राज्य देकर आदर किया था ।। २० ।।

एक बार वह जरा फिरती हुई सत्य लोक से भूलोक को आयी हुई मुझसे (नारद जी से) शादी करने की इच्छा प्रकट की। वह ठीक तरह से जानती थी कि मैं ब्रह्मचारी व्रत में हूँ। तो भी काम मोहित होकर मुझसे मिलना चाहती थी। मैंने निराकरण किया। उससे वह रुष्ट होकर मुझे श्राप दिया की मै एक स्थान पर न रहते हुए इधर उधर भटकता रहूँ ।। २१-२२ ।।

उसकी शादी होने की संभावना नहीं थी। मैने उसको यवनेश्वर के पास जाने को कहा। भय नाम से प्रसिद्ध आधिव्याधि के अधिपति यवनेश्वर को अपना पति बनाई ।। २३ ।।

हे यवन श्रेष्ठ! आपको मै अपना पती चुन ली हूँ। आप प्राणियों के बारे में जो संकल्प करते हैं वह कभी भी भ्रष्ट नही होता ।। २४ ।।

शास्त्र विहित और लोक विहित जो है उसको सभी लोग स्वीकार करते हैं। जो केवल लोक विहित है उसको मूढ लोग मात्र मानते है। मै आपसे जो शादी करने की मांग रखी हूँ वह तो शास्त्र विहित भी है और लोक विहित भी है ।। २५ ।।

अतः आपके साथ शादी करने की इच्छा वाली मेरे साथ आप कृपा करके शादी करें। आर्तो के ऊपर कृपा करना पुरुषों का धर्म है ।। २६ ।।

काल की पुत्री दुर्भरा की बातें सुनकर यवनेश्वर देव गुह्य को चलाने के इरादे से हसन्मुख से बोले 'मै ज्ञान दृष्टि से विचार करते हुए तुम्हारे लिये एक पती के बारे मे सुझाता हूँ। तुम अमंगलकारी हो। इसी कारण तुम्हारे से कोई शादी करना नही चाहता। इसके लिये एक उपाय करो ।। २७-२८ ।।

जो लोग कर्म के अनुसार जन्म लेते हैं, उनके अनजान से ही तुम उनके शरीर में प्रवेश करो। उन

लोगों के साथ तुम सुख का अनुभव करो। तुम मेरे सैन्य इन आधि और व्याधियों के साथ हो जावो। मेरा एक बड़ा भाई हैं उसको बच्चे नहीं हुए हैं। उसका नाम प्रज्वार है। वह ज्वर का अभिमानी हैं उससे तुम्हारी शादी होगी। आज से तुम मेरी बहिन बन गयी। तुम दोनों को मैं अपना सेनापति बनाऊंगा। तुम लोगों को न मालूम होते हुए उनमें प्रवेश करे तो तुम्हे मेरा सहकार मिलेगा। मैं इस मनुष्य लोक में किसी को मालूम न होतो हुए ही आक्रमण करूंगा ।। २९ ।।

।। यहां सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

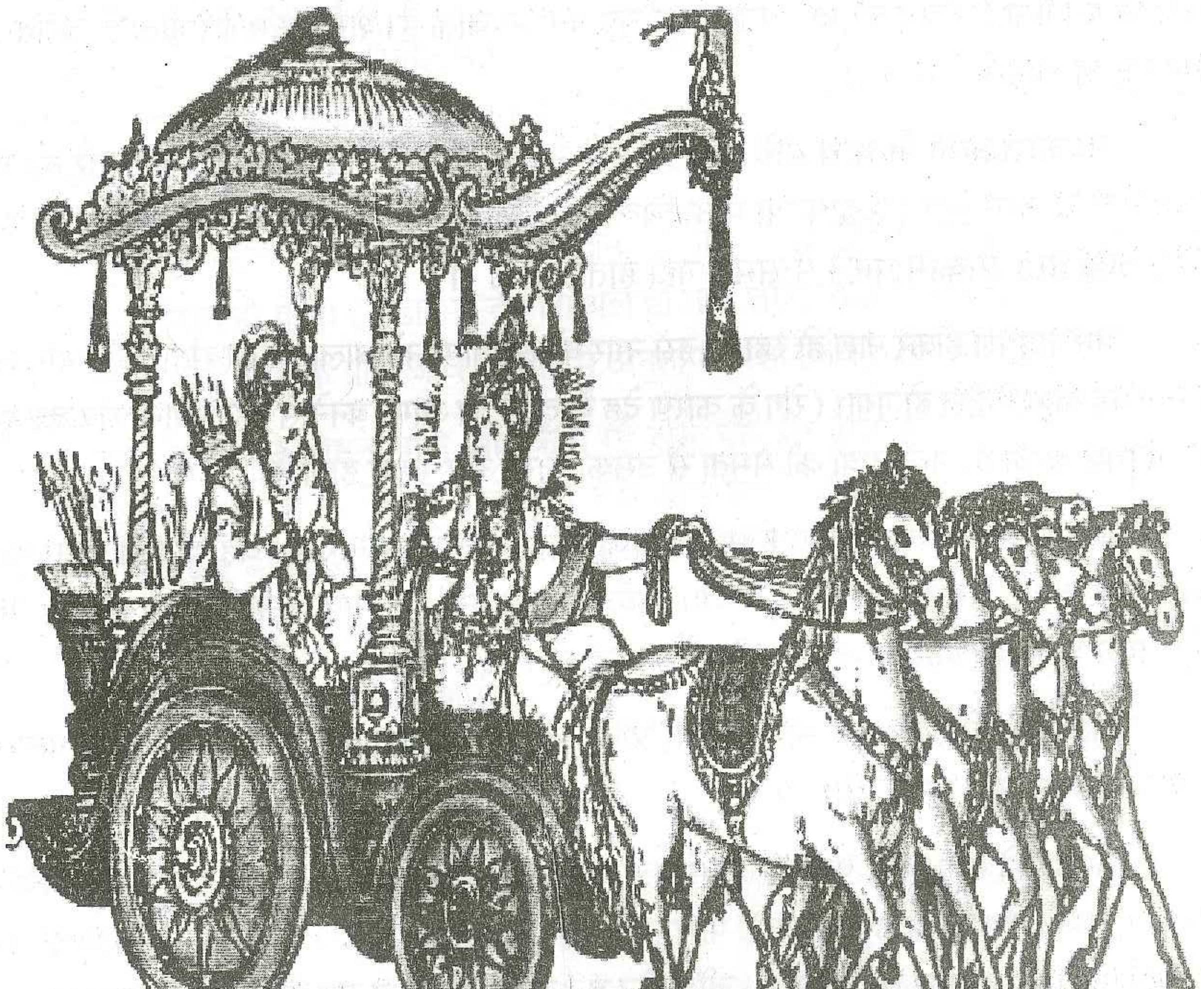

अट्ठाईसवा अध्याय

नारद उवाच :- हे बर्हिष्मन् सुनो,भय के इच्छानुसार चलने वाले उसके सैनिक काल की कन्या प्रज्वार के साथ इस भूमंडल में संचार करने लगे (मृत्यु के इष्ट को पूर्ण करने वाले ज्वर और व्याधियों में जरा और मृत्यु के साथ संसार के प्राणियों के शरीरों पर आक्रमण करने लगे) ।। १ ।।

सारे सुखों से समृद्ध, बूढ़े संर्पो से रक्षित पुरंजन के नगर को सकल सैनिको के साथ वे कूद पड़े (जीव के कर्म के अनुसार आधिव्याधि युक्त होकर प्राण होते हुए भी क्रियाशक्ति को खो जाता है) ।। २ ।।

कालकन्या भी बलात्कार से पुरंजनपुर में प्रवेश की। उससे अपनी कांती को खोया हुआ पुरुष बलहीन बन गया (यौवन को खो जानेके बाद बूढ़ापन आ जाता है। शरीर कमजोर होता है, कांति और बल नष्ट हो जाते हैं) ।। ३ ।।

उस कालकन्या के साथ सारे यवन सैनिको ने सारे नौ द्वारों से प्रवेश करते हुए नगर को चारों दिशा से नाश करने लगे (वृद्धावस्था में आधिव्याधियाँ शरीर के सारे भागों में फैले जाती हैं। एक भी इंद्रिय ठीक तरह से काम करने में समर्थ नही होती) ।। ४ ।।

नगर शत्रुवश होकर नाश हो रहा है। इस नगर को अपना मानने वाला पुरंजन संतप्त हो गया। कुटुंब वत्सल वह बहुत चिंतित हो गया। (रोग के कारण देह के दुःख का आगर बनने से देहाभिमानी जीव बड़े दुःख का अनुभव करता है। पत्नीं पुत्रों की ममता से उसका दुःख और गहरा होता हैं।) ।। ५ ।।

कालकन्या के वश में घिरा हुआ वह राजा और कांतिहीन बन गया। वह दीन हो गया। किन्तु उसका मन विषय चिंताओं से घिरा हुआ था। विवेक नष्ट हो गया था उसका कुछ नही चलता था। गंधर्व और यवन दोनो मिलकर पुरंजनपुर को नष्टकर रहे थे ।। ६ ।।

पुत्र, पौत्र, परिवार वाले, मंत्रीगण सारे प्रतिकूल हो गये, राजा का अनादर करने लगे। पत्नी भी पहले जैसे प्यार नही करती थी।। ७ ।।

देह वृद्ध हो गया। सारे पांचाल देशमें शत्रु ही शत्रु बस गये हैं। इसको देखकर राजा बहुत चिंतित हो गया। इसको रोकने का उपाय उसके पास नही था। (बुढ़ापे का कारण शरीर की कांति चली जाती है। कार्य करने में असमर्थ बन जाता है। जीव दीन बन जाता है। किन्तु मन विषयो में ही लगा रहता है। शास्त्र ज्ञान नष्ट हो जाता है। दिन रात रोग शरीर को शिथिल करता हैं। इंद्रियाभिमानी इच्छा के विरुद्ध काम

करते हैं। जीव के बारे में किसी को भी आदर नही रहता। बुद्धि भी पहले के तरह नही रहती। चिंतायुक्त जीव असहाय बन जाता है।) ।। ८ ।।

वृद्ध राजा विषय भोगों को चाहता रहा। किन्तु सारे विषय उनको नीरस लगने लगे। भगवान के बारे में उसको थोड़ा भी ज्ञान नही रहा। इस अवस्था में भी उसको भगवान् में श्रद्धाभक्ति नहीं रही। वह भगवान् के विरुद्ध लोगों में स्नेह करने लगा। पत्नी पुत्रों का पालन ही उसका मुख्य काम रहा। गंधर्वों द्वारा आक्रमण किया हुआ काल-कन्या से नष्ट हुआ। उस नगर को अपने इष्ट के विरुद्ध छोडने के लिये सिद्ध हो गया। (वृद्धवस्था के साथ विषयाभिलाष भी बढ़ती है। किन्तु विषयोपभोग से भी अब सुख नही मिलता है। वह भगवान को छोड़कर पत्नी पुत्रों में रत रहता है। अपनी इच्छा के विरुद्ध जीव को उस शरीर को छोड़ना पड़ता है) ।। ९-१० ।।

भय का बड़ा भाई प्रज्वार भी उसके साथ आया था। अपने भाई को सहाय करने हेतु उस नगर को जलाने लगा। (मृत्यु को अनुकूल करने के हेतु देह ज्वर से जलने लगा) नगर जल रहा है राजा की पत्नी पुत्र परिवार और प्रजाजन दुःखित हुए। इससे राजा का दुःख और बढ़ा। (देह के इंद्रिय, इंद्रियाभिमानी सहित बुद्धि को अपना मान कर जीव और दुःखित होता है) ।। ११-१२ ।।

पूरा नगर काल-कन्या के वश में है। यवन राजगृह को घेर लिये। प्रज्वार ने राजा को पकड़ा। राजा और दुःखित हो गया। (बुढापे से देह शिथिल हो गई। शरीर नाडी व्याधिग्रस्त हो गये। ज्वर देह को पकड़ लिया देह रक्षक प्राण जीव के बारे में अनुताप व्यक्त किये) ।। १३ ।।

अति दुःख को भोगने वाले और कांप रहे राजा को उस नगर में रहना असाध्य हो रहा है। आग से जलते हुए वृक्ष के छेद से (खोड़र) जैसे सांप बाहर निकल आता है वेसे ही पुरंजन उस नगर को छोड़कर बाहर जाना चाहा (क्लेश से कांपते हुए शरीर से बाहर निकलने का समय आ गया।) ।। १४ ।।

हे प्राचीनबर्हिराजा, पुरंजन शत्रुओं से पराजित हो गया। यवनों से घिरा हुआ राजा रोने लगा (देह की शक्ति चली गयी। अवयव दुर्बल हो गये हैं। देह में व्याधि भरी हैं। जीव के पास रोना छोड़कर और कुछ नही रहा) ।। १५ ।।

राजा को अपनी पत्नी को छोड़ना पड़ा। उसके बाल, बच्चे, बेटे-बिटिया, पौत्र, दामाद बहू, नौकर चाकर अपार घर-धन और सम्पदा को छोड़ने में उसको कष्ट अनुभव होने लगा। इतना सारा इक्कट्ठा किया हुआ यह 'मै' 'मेरा' को कैसे छोडू? वह उन्ही के बारे में विचार करता रहा। (मरण समय में जीव भगवान को छोड़कर इन्ही के बारे में चिंता करता रहता है) ।। १६-१७ ।।

राजा के विचारों के बारे में कहते हैं। मैं अन्य लोक गया तो मेरी पत्नी अनाथ हो जाती है। उसकी और मेरे अन्य लोगों का रक्षा कौन करेगा ? मेरी पत्नी मेरे बिना कैसे जिएगी ? मै नही खायाा तो वह नही खाती थी। मै सन्तोष से रहा तो वह भी संतोष मानती थी। मै क्रोध से जोर किया तो मौन रहती थी। जब मैं कर्तव्य मूढ़ रहा तब सलाह देती थी। मैं प्रवास में गया तो वह कृश होती थी। मुझे वीर पुत्रो को दी है। वह घर को कैसे चलायेगी? पुत्र और पुत्री मेरे भरोसे के ऊपर ही जीवित रहते थे। मै गया तो ये डूबते हुए नाव के यात्री जैसे बच जायेंगे ।। १८-१९-२०-२१ ।।

राजा मन में इतना दुःख करता रहा। भय आगे आकर राजा को पकड़ने का प्रयास करने लगा। यवनेश्वर ने भय से पकड़े हुए राजा को पशु के समान खीचंते घसीटते ले जा रहा है। उसकी पत्नी पुत्र दुःखित होकर उसका पीछा करने का प्रयत्न किये। (मृत्यु के बाद जीव दूसरा शरीर में प्रवेश करता है, प्राण इंद्रिय उसी का पीछा करते हैं) ।। २२ ।। २३ ।।

पुरंजन पुरी यवनों से घेर जाने के बाद वह रक्षक सर्प भी उसको छोड़कर चला गया। तुरन्त बाद पूरा नगर नष्ट हो गया। (आधिव्याधियुक्त शरीर को जीव छोड़ दिया। पंच महाभूतों से निर्माण हुआ शरीर पंच भूतों में बट गया शरीर रक्षक पंच प्राण चले गये।) ।। २४ ।।

वह बलिष्ठ यवनेश्वर बलात्कार से पुरंजन को खींच लिया। बेचारे पुरंजन इससमय में भी अपने पत्नी पुत्रों को याद करते रहा किन्तु अपने अनिमित्त बंधु और सदाकाल, उसको न मालूम होते हुए भी उसके साथ रहने वाले प्यारे एकमात्र मित्र (अविज्ञात) को एक बार भी याद नहीं किया। (अत्यन्त अनिवार्य मृत्यु के काल में भी जीव, लौकिक विषयों का ही चिंतन करते रहा। अज्ञान के कारण उसको अपने अनिमित्त बंधु, सदाकाल साथ रहने वाले, सदाकाल हितोपदेश देते रहने वाले भगवान की याद नहीं आयी।। २५ ।।

पुरंजन क्रूरता से अनेक यज्ञो में और शिकार में बहुत से प्राणियों का वध किया था। वे पशु अब पीछे का उसके क्रौर्य की याद करते हुए कुल्हाडियों से उसे काट दिये। (जीव अपने जीवित रहने के लिये भगवदर्पण बुद्धि से कर्म न करते हुए स्वार्थ बुद्धि से करता है। वे काम्य कर्म जीव को कष्ट देते हैं) ।। २६।।

सदाकाल पत्नी मे आसक्त होने के कारण, विषयोपभोगों से मन कलुषित रहने के कारण पुरंजन अपने सुहृद (मित्र) को भूल ही गया था। उस पाप के कारण बहुकाल नरक दुःख को भोग करने के बाद वह विदर्भ राजा की पुत्री बनकर जन्म लिया। अंत्यकाल में पत्नी का ही स्मरण करते रहने के कारण उसको स्त्री जन्म प्राप्त हुआ। वह राजा पुरंजन विदर्भ के सिंह सदृश राजा के घर में सुन्दर स्त्री रूप में जन्म लिया ।। २७-२८ ।।

पांड्य देश के राजा मलयध्वज ने युद्ध में अन्य राजाओं को हराकर स्वयंवर में उस सुन्दरी वैदर्भी से शादी किया ।। २९ ।।

उनको एक बेटी और उनके बाद सात बेटे हुये। वे सातों पुत्र द्रविड़ देश के राजा बने। (जीव अपने सात्विक और एक निष्ठभक्ति से श्री हरी को प्राप्त करनी वाली भक्ति को पाता है तदनंतर वैराग्यदि सात गुण प्रकट होते हैं।) ।। ३० ।।

उन सात पुत्रों में प्रत्येक को दस करोड़ बच्चे हुए। इसी वंश वाले एक मन्वन्तर तक इस भूमण्डल का राज्याधिकार किये।। ३१ ।।

उनकी व्रत और आचार करने वाली पहली पुत्री से अगस्त्य मुनी ने शादी किया। उनको धृडच्युत नाम का पुत्र हुआ। वह पूर्व जन्म कें इद्मवासन का पुत्र था ।। ३२ ।।

राजर्षि मलय ध्वज ने राज्य को अपने पुत्रों में बाटकर भगवान श्री कृष्ण को पाने की इच्छा से मलय पर्वत को गया ।। ३३ ।।

सुन्दरी वैदर्भी भी घर बाल बच्चे और सकल संपदा को त्याग कर चांदनी चंद्रमा का अनुसरण करने जैसे मलयध्वज के पीछे पीछे चली। (जींव दुस्संग से पुरंजन के समान बिगड़ जाता हैं सत्संग के कारण वैदर्भी के समान सुधर जाता है, सज्जन बनता है) ।। ३४ ।।

उस कुल पर्वत में चंद्र वट नाम की ताम्रपर्णी नदी की शाखा बहती थी। उसका जल बहुत निर्मल था। उसके पुण्य सलिल में रोज नहाकर राजा अपने अंतर्बाह्य मल को धोता था ।। ३५ ।।

वह राजा काल के अनुसार कभी कभी कंदमूल फल, कभी केवल फूल या पत्ती को केवल देह रक्षण हेतु खाता था। कभी कभी केवल घास और पानी से दिन चलाता था। तप से शरीर कृश हो गया ।। ३६ ।।

सभी स्थानों में और सभी वस्तुओं में भगवान को ही देखते हुए वह शीत, उष्ण, हवा, पानी, भूख-प्यास, प्रिय-अप्रिय और सुख-दुःखादि सारे द्वंद्वों को सहन करता था ।। ३७ ।।

राजा मलय ध्वज ने इंद्रिय,वायु और मन को अपने वश में कर लिया मनन रूप तप से मन और दृढ़ हो गया। यम नियमों से पाप रहित होकर मन को विषयों से दूर रखते हुए भगवान श्री हरी का ध्यान करने लगा ।। ३८ ।।

वह ध्यान में भगवान के अंतर्यामी रूप और सर्वत्र व्याप्त बहिरूप दोनों को समान पाया। एकांत में निश्चल होकर (पत्थर के समान) एक सौ वर्ष तप करता रहा। वह भगवान श्री हरी वासुदेव को गुण समुद्र पाया। उन्ही की उपासना अचल निष्ठा से करने लगा ।। ३९ ।।

स्वप्नावस्था में भगवान प्रेरक है जीव केवल अस्वतंत्र होकर अनुभव करता हैं वैसे ही जाग्रदवस्था में जीव से अलग रहकर प्रेरणा करता है। इस दृढ़ धारणा से राजा जीवन्मुक्त हुआ ।। ४० ।।

भगवान से उपदिष्ट यह ज्ञान राजा अपने गुरु के उपदेशों से पा लिया था। दीप जैसे प्रकाश देता है वैसे यह ज्ञान उसको परात्पर तत्वों का परिचय कराया था ।। ४१ ।।

राजा ने दृढता से जान लिया कि भगवान् श्री हरी अंतर्यामी होकर अपने में रहते हैं और वह स्वयं श्री हरी के आश्रय से रहता हैं। इस ज्ञान को सम्यक रीति से पाने के बाद और अनुभव करने के बाद वे अपना निरुपयोगी शरीर छोड़ दिये। (मर गये) ।। ४२ ।।

वह विदर्भराज की पुत्री अपने पती को और उनके अंतर्यामी भगवान को इष्ट मानकर पूजा करती थी। उसका पति तो परम धर्मिष्ठ था। वह विषय भोगों को छोड़कर भक्ति से उनकी सेवा करती थी ।। ४३ ।।

वह तापसी बन गयी थी फटे कपड़े पहनी थी सिर का बाल जटा बन गया था। शांतमन से पति के पास रहती थी। उसका मुखका तेज अग्नि के समान था ।। ४४ ।।

उसको मालूम ही नही हुआ कि उसके पति मर गया है। न हिलते हुए स्थिरासन में बैठे उनको देखकर उसको लगा कि वह तप कर रहे हैं वह रोज की तरह उपचार करती रही। लेकिन पादपूजा करते वक्त रोज की तरह वे पाद गरम नही लगे। बिल्कुल ठंडे हो गये थे। उसका मन उद्वेग और दुःख से भर गया। झुडं से बाहर हुए हिरनी जैसी वह घबड़ा गयी ।। ४५-४६ ।।

उस जंगल में उसके और कोई नही हैं। वैदर्भी पहले अपना हाल याद करते हुए बहुत रोई। अश्रुओं से उनके कपड़े भीग गये। वह जोर जोर से चिल्लाकर रोई ।। ४७ ।।

वह रोते हुए बोली 'हे राजर्षि आप उठिये। चारो ओर समुद्र से घिरा हुआ। इस भूमण्डल की रक्षा करना है। दुष्ट क्षत्रिय और चोरों से केवल आप ही इसकी रक्षा कर सकते हैं ।। ४८ ।।

वह दुःख के उद्वेग से रो रही थी। वह पती के साथ वन को आ गयी थी। अब अकेले बन गयी। पती के पाद के ऊपर गिरकर रोने लगी ।। ४९ ।।

वह रोती रोती लकड़ी इक्ट्ठा की। उससे एक चिता बनाई। उसके ऊपर पती के शव को रखकर आग लगायी। पती के चिता में कूदकर वह भी जल जाना चाहती थी ।। ५० ।।

हे बर्हिष्मन्! इतनमें एक ब्राह्मण वहां आ गया। मन को जीता हुआ वह पुरंजन का पिछले जनम का मित्र था। रोने वाली वैदर्भी से मृदु और हितकर वाक्यों से समाधान करते हुये कहा ।। ५२ ।।

तुम कौन हो? इसकी क्या लगती हो ? यह सोया हुआ कौन है? इसके लिये तुम क्यो रोती हो? अरे तुम पहले मेरे मित्र थे। तुम मुझको याद कर सकते हो क्या ? (पुरंजन पुरुष था इसके कारण आगे सारे पुल्लिंग में हैं) अरे तुम सारे भूल गये हो ।। ५२ ।।

हे मित्र, तुम मुझको याद कर नही सकते। छोड़ो ! किन्तु यह याद करो कि तुम को अविज्ञात नाम का एक मित्र था। इतना तो याद करो। एक बार तुम भोगासक्त होकर अकेले शिकार के लिये वन को चले गए (भगवान जीव का अनिमित्त मित्र है। वे जीव को सदाकाल याद रखतें हैं। किन्तु जीव भगवान को भूलकर विषयों में मग्न होता है) ।। ५३ ।।

हे ज्ञानी हम दोनो हंस है, स्नेही हैं। मानस सरोवर में हजारो वर्ष साथ खेलते थे ।। ५४ ।।

तुम ग्राम्य कामनाओं से मुझको छोड़कर इस भूमि में संचार करते हुए एक स्त्री निर्मित प्रदेश में प्रवेश किया ।। ५५ ।।

वहा पांच उपवन थे, नौद्वार, एक पालक, तीन कमरे, छो, बरा मदे पांच दुकाने, पंच प्रकृति और उसकी एक मालिकिन थी ।। ५६ ।।

हे राजा !

शब्दादि पांच विषय ही उपवन हैं। इंद्रियों का छिद्र ही द्वार है। आगवानी और अन्न ये तीन कमरे हैं। ज्ञानेंद्रियों के पांच गोलक बरामदे हैं। कर्मेंद्रियों की शक्ति ही पाँच दुकाने हैं। जीवों का कारण ही प्रकृति है। बुद्धि इसकी मालकिन। तुम बुद्धि अधीन होकर उस नगर में प्रवेश किये। वहां तुम शास्त्र ज्ञान खोकर उस स्त्री के सहवास में क्रीडा करते हुए अंत में स्त्री होकर पुनर्जन्म ले लिये ।। ५७-५८-५९ ।।

तुम विदर्भ राजा की पुत्री नही। यह वीर तुम्हारा पति नही। उस नगर में पुरंजनी के अधीन होकर रहने वाले पुरंजन रूप के पुरूष और वैदर्भो का यह स्त्री रूप भी तुम्हारा मूल रूप नही। यह सदा तुम्हारा मूल स्वरूप नहीं है ।। ६० ।।

इस बंधक प्रकृति को मैने (भगवान श्री हरी ने) ही सृष्ट किया है। अपने अंतर्यामी श्री हरी को याद करो। ये स्त्री पुरुष जन्म जो होते है वे स्वाभाविक नही है। जीव का स्वरूप निर्मल होता है। श्री हरी की इच्छा ही प्रारब्ध कर्म फल को अनुभव कराने लगती है। जीव के शुद्ध स्वरूप को भगवान ही सत्ता प्रद हैं ।। ६१-६२ ।।

आदमी अपने प्रतिबिंब को आइनाऔ आखों से देख लेता है। उसमें दीखने वाला प्रतिबिंब धूल

इत्यादि से मूलबिंब से अलग दिखता है (आगे वाला पीछे, पीछे वाला आगे, बाये वाला दाहिने और दाहिने वाला बाये दिखता है) वैसे ही हमारे में और तुम्हारे में अंतर दिखता है। हमारे भेद से हम अलग अलग दो हैं ।। ६३ ।।

इस प्रकार मानसरोवर के हंस के समान शुद्ध हुआ तुम वैदर्भी होकर जन्म लिया पुरंजन अपने स्नेहित हंस समान सदाकाल शुद्ध निर्मल भगवान से प्रबोधित होकर स्वतंत्र श्री हरी में ही अपना मन रख दिया। तिरोहित हुआ उनका ज्ञान वापस मिल गया। वह अंततोगत्वा मोक्ष को प्राप्त किया ।। ६४ ।।

नारद उवाच :-

हे बर्हिष्मन् :- इस विश्व के निमित्त कारण भगवान् श्री हरी गूढ़ उपदेश से संप्रीत होते हैं। इसी कारण आध्यात्म तत्वों को पुरंजन की कथा रूप में छिपाकर बोल दिया हूँ। 'परोक्ष प्रिया:हि देवा:" इस बात के अनुसार गूढ़ रूप से बोलने से देवताओं को प्रीति होती है ।।

।। यहां अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

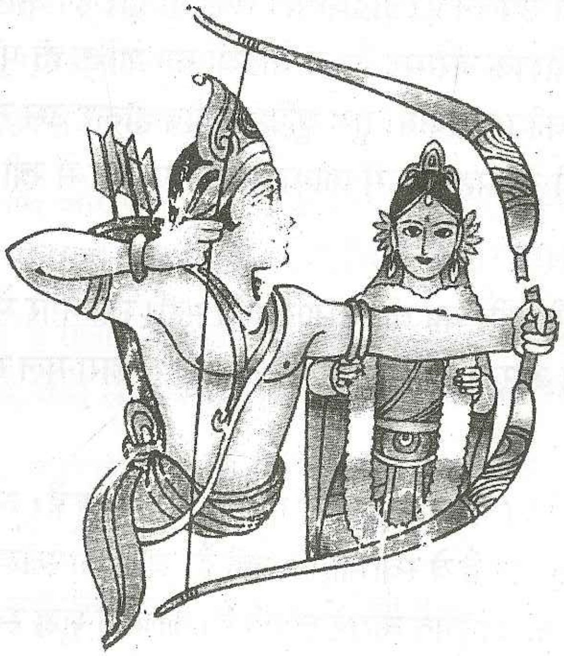

उनतीसवां अध्याय

प्राचीन बर्हिराजा बोलते हैं: हे पूज्य! आपसे कही हुई पुरंजन राजा की कथा के दो दो गूढ़ अर्थो को आध्यात्म ज्ञानी जान लेते हैं। किन्तु हमारे जैसे मंद लोगों को वह साध्य नहीं है। मैं तो कर्म से ही पुरुषार्थ को जानने वाला। हमें यह कैसे अर्थ होगा ? आप कृपया इसका अर्थ कहिये ।। १ ।।

नारद उवाच :- जीव का स्वरूपदेह सूक्ष्म रहता है। कर्मफल के अनुसार वह स्थूल रूप का एक पादी पिशाचजन्म, दोपाद का मनुष्य जन्म, तीन पाद का भूत देह, चार पाद का पशु जन्म बहुपाद का कीट देह अथवा पाद न रहने वाला सांप इत्यादि ससरीसृपों का देह लेता है। इसके कारण जीव को यहा पुरंजन नाम का प्रयोग किया है ।। २ ।।

अविज्ञात नाम के उसके मित्र भगवान् श्री हरी हैं। श्री हरी के नाम, रूप, गुण, और क्रियाओं को पूर्ण रूप से और विशेषों के साथ कोई भी जान नही सकता। इसके लिये उनका नाम अविज्ञात हैं । ३ ।।

जीव शब्द रसादि विषयों को पूर्ण रीति से भोगने के लिये मनुष्य देह को ही पसंद किया हैं मनुष्य देह को नौ दरवाजे (छिद्र) हैं, दो पाँव और दो हाथ हैं ।। ४ ।।

जीव को बुद्धि के संबंध से मै और मेरा (अहं, मम) का अनुभव आता रहता है (अहंकारी बन जाता है)। इस बुद्धि के सहारे से ही जीव इंद्रियों से शब्ददि विषयों का अनुभव करता है। बुद्धि को प्रमदा शब्द से यहा माना गया है ।। ५ ।।

जीव ज्ञानेद्रिय और कर्मेन्द्रियों के सहारे ज्ञान और कर्म कार्यो को करता रहता है। इंद्रियगणों को यहा भृत्य शब्द से सूचित किया गया हैं उनकी क्रिया को नायक शब्द से उल्लेख किया है।

प्राण अपानादि पांच क्रिया वाला प्राण यहा पांच फणावाला सर्प हो गया है ।। ६ ।।

ज्ञानेद्रिय और कर्मेद्रियों को मन ही विषयों की ओर खींच लेता है। इसका 'तेषां परिवृध' शब्द परिचय देता हैं। शब्दादि पांच विषय यहा 'पांचाल देश' बन गये हैं। इसके बीच रहने वाला यह शरीर नौ द्वारवाली पुरी है ।। ७ ।।

दो आंख, नाक, दो (छिद्र) घ्राणेद्रिय, दो कान, मुंह, मूत्र द्वार और मलद्वार इनको यहाँ एकेक स्थान के दो द्वार बताये गये हैं। इनसे जीव बाह्य विषयों का अनुभव करता है इसी कारण इसको बहिर्गमन शब्द से कहा गया है ।। ८ ।।

आंख, नाक, मुहं पूर्व के द्वार माने गये हैं। दहिना ओर बायाकान दक्षिण और उत्तर के द्वार, मल मूत्र द्वार नीचे के पश्चिम द्वार बताये गये है ।। ९ ।।

एक ही स्थान पर रहने वाले आंखे 'खद्योत और अविर्मुख नाम से पुकारी गई हैं। रूप विभ्राजित देश बन गया। जीव आंखों से रूप को ग्रहण करता है ।। १० ।।

नाक के दो रंध्र है नलिनी और नालिनी। गंध सौरभ देश। घ्राणेद्रिय अवधूत नाम के मित्र, मुख्य जो हैं वह मुंह है। वागेन्द्रिय को 'विपण' शब्द से निर्देश किया है। रसज्ञ जीभ का नाम है, आपण याने बात करने की शक्ति। बहूदन बोलने से विविध रीति के अन्न ।। ११-१२ ।।

दाहिना कान देव तृप्ति करने वाला। बाया कान पितृ तृप्ति करने वाला, पांचाल शब्द से प्रवृत्त और निवृत्त दोनो कर्मों को बताने वाल शास्त्र। ये दोनो कर्म उत्तर और दक्षिण पांचाल देश माने गए है। 'श्रुतधर' से श्रवणेंद्रिय समझना चाहिये। बांये कान से जिनका जीव चला जाता है उसको पितृमार्ग मिलता है। दहिने कान से चल जाने से देवमार्ग (यान) मिलजाता है। जननेद्रिंय आसुरी शब्द से सूचित है, ग्राम्य रति व्यवसाय कहा गया है ।। १३-१४ ।।

मूत्र मार्ग को दुर्मद संज्ञा दी गयी है, निर्यति शब्द से मल मार्ग का निर्देश किया गया है। मल को वैशस कहा गया है। अंध शब्द से हाथ पाँव का निर्देश किया गया है। जीव उन से चलता है, और काम करता है। अंत:पुर शब्द से हृदय को लेना है, विसूचि से मन ।। १५-१६ ।।

मन और उसके गुण से जीव हर्ष, मोह या प्रसन्नता को पाता है। जागृत अवस्था में विषय वासनाओं के कारण जो संस्कार होते है उसी से भरा हुआ मन स्वप्नों में उसी को देखता है। ऐसे ही गुणों से बद्ध और स्वप्नों को देखने वाला जीव बुद्धि के अनुसार ही जन्मांतरों के संस्कार से काम करता जाता है। इन सबको 'महिषी यद्यधीयेत' इन शब्दों से कहा गया है। कथा में आने वाला रथ यहाँ देह है। इंद्रिय यहाँ घोड़े बने हैं। संवत्सार इत्यादि आयु से रथ की गति वर्णित की गई है ।। १७-१८।।

पुण्य पाप ये दो रथ के दो पहिये है। सत्व, रज औरतम ये तीन गुण ध्वज है। पंच प्राण बांधने का स्थान है। मन रस्सी बना, बुद्धि सारथी। हृदय रथ में बैठने का स्थान है, शीतोष्ण इत्यादि द्वंद्व रथ का जुआ (घोड़ो के पीठा के कूबर) हैं ।। १९ ।।

पंच प्रहरण से यह ध्वनित होता है कि पंचेद्रिय पंच विषयों में आसक्त होना। चर्म आदि सप्त धातुओं को रक्षक कह दिया है। अभिप्राय को विक्रम शब्द से उल्लेख किया है। पंच प्रस्थ वन गमन मृगमरीचिका जैसा हैं। मृगमरीचिका दूर से सुन्दर जल सी लगती है। किन्तु वहा गये तो कुछ भी नही रहता, प्यास नही बुझती। बाह्य विषय का इससे तुलना किया है ।। २० ।।

ग्यारह इंद्रिय यहां सैन्य बना है छेद भेदाहि पंचसूना दोष यहाँ मृगया (शिकार) बन गया हैं संवत्सरादि काल चंडवेग अभिधान लिया है ।। २१ ।।

कथा में गंधर्व नामसे दिन का निर्देश किया गया है, उनकी पत्नियाँ गंधर्वी रात्री बनी हैं। ये हर वर्ष में तीन सौ साठ बार आते हुए आदमी का आयुर्हरण करते हैं ।। २२ ।।

बूढ़ापन जो आता हैं वह कालकन्या नाम से सूचित किया गया है। उस कालकन्या को कोई चाहते नहीं (किन्तु वह निश्चित रूप से हरेक के पास आती है।) मृत्यु को यवनेश्वर नाम दिया गया है; काल के अनुसार निश्चित रूप से आने वाले बुढापे को अपना बहन बना दिया है। (वृद्ध होने के बाद मृत्यु निश्चित है) ।। २३ ।।

इस कथा की यह आध्यात्मिक सूचना हैं। आगे आने वाले श्लोको में इसका विवरणात्मक उपदेश देते हैं ।। २४ ।।

नारद जी कहते हैं हे बर्हिष्मन् राजा सुनो; जीव अपने शरीर में रहते हुए अधिदैविक, आधि भौतिक और आध्यात्मिक तीनो विध के दुःखों को सहते हुए अपने आयु के सौ वर्ष (या जीवित रहते तक का समय) जीवनयापन करता है ।। २५ ।।

उसके दुःख को दूर करने का उपाय वह जानता नही; वह उसके हाथ में नही है। जीव स्वरूपतः प्राकृत गुण रहित और आनन्द गुण युक्त है। किन्तु श्वास इत्यादि प्राण धर्म, कानापन इत्यादि इंद्रिय धर्म, दुःख इत्यादि मनो धर्मों को अपनाता है। और समझ लेता है कि मै ही इसको करने वाला हूँ या मुझे इनसे कष्ट होता है।

वह अहंकार और ममकार से कर्म करता है सदा विषय सुखों का ही चिंतन करने वाले जीव को दुःख तो होगा ही ।। २६ ।।

जीव अज्ञानी है वह सर्वोत्तम, सर्वेश्वर और सबके गुरु भगवान श्री हरी के अंतर्नियामकत्व को नहीं जानता। गुणाभिमा प्राकृत गुणों में ज्यादा रति रखते हुए सात्विक, राजस और तामस कर्मो को करता रहता है ।। २७-२८ ।।

कभी सत्व गुण अधिक होने से प्रकाश वाले देवता सुख शरीर को, कभी रजो गुण ज्यादा हुआ हो तो कष्ट सुख से मिश्रित मानव शरीर को, कभी कभी तमोगुण बढ जाने से अज्ञान और शोक वाले पशु (तियग्) शरीर का कर्मानुसार पा लेता है ।। २९ ।।

इसके साथ कभी पुरुष हो जाता है, कभी स्त्री जन्म पा लेता है। देव मनुष्य, पशु जन्म, सत्व, रज

तम गुणों से, जीव के स्वभाव के अनुसार प्रारब्ध कर्म के अनुसार मिलता है ।। ३० ।।

जैसे भूखा कुत्ता भूख का निवारण करने में असमर्थ होने के कारण दीनता से घर घर फिरता है और अपने नसीब के अनुसार कही अन्न और कही दंड से मार खाता है, वैसेही विषयासक्त मन वाला जीव उच्च और नीच मार्गों में (देवयान और पितृयान से) संचार करते हुए उत्तम, मध्यम और अधम देह को पाते हुए प्रिय या अप्रिय को भोगता है ।। ३१-३२ ।।

तापत्रयों से जीव एक से भी छुटकारा नही पा सकता। उसकी प्रतिक्रिया (दुःख दूर करने का प्रयास) भी दुःख देने वाला ही होगा। सिर पर भारी भार को ढो रहा आदमी उसको कंधे पे लेकर कम करना चाहता है, किंतु चंद क्षणों में वह भार वहां भी दुःख देने वाला बनता है। वैसे ही दुःख को कमी करने का सारा प्रयास भी दुःख देने वाला बन जाता है ।। ३३-३४ ।।

भगवदर्पण बुद्धि से न किआ हुआ कर्म, दुःख जनक कर्म को पूर्ण प्रतीकार नही बन सकता। हे राजन् पापकर्म और उसके निवारण के लिये किया हुआ कर्म श्री हरी के ज्ञान के बिना दोनो निष्फल बन जाते हैं। स्वप्न में देखी हुई वस्तु को स्वप्न ही नाश नही करता। वासनामय मन के रहते हुए स्वप्न का निवारण नहीं होगा ।। ३५ ।।

भगवान के अपरोक्ष के बिना संसार की निवृत्ति नही होती हैं। श्री हरी के ज्ञान से ही सारे दुःखों का नाश होता हैं संसार के निवृत्ति के लिये यहां लिंग रूप मन की निवृत्ति (निवृत्ति मार्ग में मन को लगाना) निवृत्ति अत्यन्त अवश्यक हैं। इसी कारण श्री हरी में सर्वोत्तम भक्ति करना चाहिये। मुक्ति योग्य जीव स्वभावतः निर्दुखानंद स्वरूपी होता है ।। ३६ ।।

भगवान के अज्ञान से यह दुःख परंपरा युक्त संसार उसको मिल गया हैं। इस लिंगरूप मन से उन सारे दुःखों का अनुभव होता है। श्री हरि में सर्वोत्तम भक्ति करते हुए उनके बारे में ज्ञान ओर वैराग्य प्राप्त करने से ही यह दुःख समूल नाश होता हैं और स्वरूपानंद का दर्शन हो जाता है। मन का मलिन, रज, तमादि गुण प्राणायाम से भस्म हो जाते हैं। ऐसे परिशुद्ध हुए मन में श्री हरि की भक्ति को पूर्ण रूप से स्थापित करना है ।। ३७-३८।।

हे राजर्षि, बर्हिष्मन्, भक्ति तो श्री हरि की कथा से जुड़ी हुई है। प्रतिदिन श्रद्धा से भगवान की कथा को सुनना और अध्ययन करना चाहिये। इससे थोड़े ही दिन में भक्ति उत्पन्न होती है ।। ३९ ।।

हे राजन्, साधु और भागवत लोग निर्मल मन से भगवद् कथा श्रवण हेतु सभाओं में मिलते हुये श्री हरि का गुण संकीर्तन और भगवान के सर्वोत्तमत्व के बारे में कथा कहेंगे ।। ४० ।।

उस सत्संग में श्री हरि के कथामृत की नदियाँ चारो ओर बहेंगी। तीनों समय उनको सुनते हुए समझने वाले भक्त अपने कानों से उस अमृत जल को पीते हैं। उनको भूख, प्यास, भय, दुःख मोह आदि का स्पर्श भी नही होता ।। ४१ ।।

शरीर के स्वभाव के अनुसार होने वाली भूख प्यास आदि तृष्णाओं से पीड़ित जीव श्री हरी के कथामृत को नित्य पीते नहीं। इसी कारण सबको मुक्ति मिलती नहीं ।। ४२ ।।

भूख प्यास इत्यादि शारीरिक पीडा न होने वाले साक्षात ब्रह्म देव, रुद्रदेव, स्वायंभुवादि मनुओं, दक्षादि सारे प्रजेश्वर बाल ब्रह्मचारी सनकादि ऋषिगण, मरीचि, अत्रि, अंगिरा पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु वशिष्ठादि मत्पर्यंत (नारद) ब्रह्मज्ञानी, ये सारे भगवान् विष्णु को (विष्णु के स्वरूप को) पूर्ण रूप से जान नही सकते। ये सारे वाक्यार्थ समर्थ हैं। अपने तप, विद्या और चित्तैकाग्रता से श्री हरी की सेवा करते रहते हैं। वे अपनी अपनी योग्यतानुसार श्री हरी के रूप को जानते हैं ।। ४३-४४-४५ ।।

निर्दुष्ट शब्द राशि युक्त वेदराशि अति विस्तार, अपार और अनंत हैं। ये उनके वाक्यार्थ करते हैं; उनकी चर्चा करते रहते हैं; उनमें कहे हुए नाम रूप गुणों से श्री हरी की उपासना सदाकाल करते रहते है; तो भी वे उनको पूर्ण रूप से जान नही पाते ।। ४६ ।।

इस जगत में सकल जीव जाति को अपने देह भरण के लिये पर्याप्त ज्ञान सदाकाल रहता है। किन्तु मनुष्य में इतने ज्ञान रहने से क्या लाभ है? (उसको स्वरूपानंद सुख का ज्ञान होना चाहिये) ।। ४७ ।।

भूलोक में बहुत जन्मों के बाद पुण्य विशेष से यह मानव जन्म भगवान की कृपा से मिलता है। इस जन्म में "मै और मेरा" को छोड़कर भगवद्ज्ञान को प्राप्त कर लेना हैं। इसको जो प्राप्त करेगा वही धन्य है, अन्यों से श्रेष्ठ है ।। ४८ ।।

ऐसे श्रेष्ठ पुरुष को भगवान श्री हरी को अपने लिये और अपनी सारी वस्तुओं के स्वामी मानकर निष्ठ मन से उपासना करनी चाहिये। ऐसी उपासना करने वाले को भगवान स्वापरोक्ष देते है। तब वह आदमी व्यवहार और शास्त्र, महाभारत, वेद इत्यादि में कहे गये, धर्म के अनुसार अनुभव करना छोड़कर स्व सामर्थ्य से सर्वेंद्रियों से भगवान का अनुभव करने लगेगा। (यह रुद्रादि देवों का मुक्ति साधन है) ।। ४९ ।।

इसी कारण से हे बर्हिष्मन्, ज्ञान से ही मोक्ष मिलेगा। अपनी यह धारणा छोड़ दो कि काम्य कर्मों से पुरुषार्थ साधना होती है। इनमें श्री हरी को जानने का तत्व ज्ञान नही है; परम पुरूषार्थ मोक्ष प्राप्ति का मार्ग नही है। इतना होते हुए लोग इन काम्य कर्मो के प्रयोजन का साधन मानते हैं। किन्तु ये पुरुषार्थ साधन नही है ।। ५० ।।

ये काम्य कर्म करने वाले श्री हरी का श्वेतद्वीप, अनंतासन, वैकुंठ लोकों को जाने का तरीका नही जानते; वे वेद का तात्पर्य को नही जानते। केवल धुए से भरे हुए कर्म मार्ग (सदाकाल सकाम यज्ञ करते हुए) में ही रत होकर, समझते हैं कि वेद केवल कर्म मार्ग बताता है ।। ५१ ।।

तुमने भी पूर्व की दिशा में अग्र करते हुए विश्व भर में कुश को डाल दिया है (यज्ञ के लिये धर्म का परिस्तरण डाल दिये हो,) बहुत पशुओं का बलि दिये हो, और अहंकार से मानते हो की मै ही बड़ा यज्ञ करने वाला। तुम को भी मोक्ष के साधन रूप निवृत्ति कर्म की परवाह नही है ।। ५२ ।।

श्री हरी को संतोष देने वाला ही सही कर्म है, उनका ज्ञान देने वाली ही विद्या है। श्री हरी सर्व जीवों के अंतर्यामी है। वे स्वतंत्र है और सर्व विलक्षण हैं वे ही सबका मूल कारण है; समग्र ऐश्वर्यशाली हैं ।। ५३ ।।

उनके पादमूल सबका रक्षा प्रद है। वे ही अत्यन्त प्रियतम हैं। उनके अनुग्रह से उनके उपासकों को और किसी से भय नही। ऐसे जो जानता है वही ज्ञानी है, उसी में श्री हरी का विशेष सन्निधान रहता है। इसको जानने वाला ज्ञानी अन्य अज्ञानियों का उपदेशक बनता है। किन्तु सर्वज्ञ हरी ही सबके गुरु है। वेदव्यासादि रूपों से वे जगत को ज्ञान देते हैं ।। ५४ ।।

नारद उवाच :-

हे पुरुष श्रेष्ठ बर्हिष्मन्, तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देकर संशय का परिहार किया। अब इस विषय में ज्ञानियों द्वारा पूर्व में निश्चित किये हुये रहस्यों को मैं कहूँगा सुनो ।। ५५ ।।

फूलों से भरे हुये घने जंगल में एक हिरन भ्रमर के मधुर गान को सुनते हुए, उसके अनुसार अपने सुन्दर कान हिलाते हुए वहां की दूब (दूवा) और घास को आनन्द से खा रहा है। उसको मालूम नही कि आगे उसी घास में उसका शत्रु भेड़िया छिपा हुआ है। इतने में उसकी मांस की आशा से उसके पीछे खड़ा हुआ शिकारी बाण से मारकर उसकी हत्या कर डालता है।

वैसे ही यह मानव शरीर धारण किया हुआ जीव सुकोमल स्त्री सहवास युक्त गृहस्थाश्रम मे, फूलों के शहद के समान जीभ आदि इंद्रियों से प्राप्त क्षणिक और अल्प सुखों को भोगते हुए जीवन यापन करता है।

अपने इंद्रिय सुखों में आसक्त होकर स्त्रियों से मिलते हुए उनके मंजुल विषय सल्लापों में मग्न होकर आयुहरण करने वाले दिनरात काल विशेष को लक्ष न देते हुए अपने मृत्यु के बारे में नही सोचता हैं। इतने में उसका पीछा करने वाले यम जीव के अनजान में अदृष्ट नाम के बाण से मारकर उसके जीव

का हरण करते हैं ।। ५६ ।।

इस विचार को ठीक तरह से विचार कर जान लो। काम्य कर्मों में मग्न अपने मन की इस मृग चेष्टा को समझ लो। अपने मन को हृदय में रहने वाले भगवान में रखो। वे कर्ण जिह्वादि इंद्रियों का प्रवर्तक है। बुद्धि को उन्हीं में स्थिर करो। स्त्री भ्रम को छोड़ दो। सन्यासी भी जिनकी शरण जाते हैं उन भगवान हरी की उपासना करो, उनको संतुष्ट करो। इस प्रकार साधना करते हुए संसार से उपरत हो जाओ ।। ५७ ।।

राजोवाच :- हे ब्रह्मर्षि ! आप जो बोले वह श्रुति सम्मत और विचारपूर्ण है। मेरे कर्मोपदेशक गुरु इसको नही जानते होंगे। वे यदि जानते तो मुझे भी बतलाते थे ।। ५८ ।।

किन्तु इस विषय में मुझे अभी संदेह बाकी हैं मुझे एक बड़ा सन्देह रह गया है। यह विचार अतींद्रिय विषय के बारे में है। ज्ञानी लोग भी इसको ठीक तरह से नही जानते हैं ।। ५९ ।।

जीव इस लोक में पंच भौतिक शरीर को लेकर उसकी सहायता से कर्म करता है। बाद में इस शरीर को यही छोड़कर परलोक जाता है। वहां अलग एक शरीर लेकर उन कर्मों का फल भोगता है यह कैसे? कर्म किया हुआ शरीर अलग; उसका फल भोगने वाला शरीर अलग। यह तो हमारे दिमाग में नही बैठता। किन्तु इसको अप्रामाणिक मानकर टाल नही सकते वेद और स्मृतियों ने यही विचार अभिव्यक्त किये हैं।

वेदोक्त कर्मों को फलापेक्षा से करने पर उनका फल तो जल्दी ही नष्ट होता हैं। इनसे लाभ कैसे होगा? ये दो संशय मेरे मन मे रह गये हैं। इसका अब तक मुझे परिहार नही मिला है ।। ६०-६१ ।।

नारद उवाच :-

जीव इस दृश्यमान स्थूल शरीर को यही छोड़ देता है; किन्तु उसको और एक सूक्ष्म शरीर है, उसको लिंग शरीर कहते हैं। यह शरीर इस लोक में और परलोक में भी जीव के साथ ही रहता है। इस लिंग शरीर में मन ही प्रधान है। इस लिंग शरीर की सहायता से जीव कर्मो को करता है। इसी लिंग शरीर से परलोक में फल का अनुभोग करता हैं। शास्त्रों में भी यही कहा गया है। (इससे पहला संदेह का निवारण हो गया) ।। ६२ ।।

स्वप्न में आदमी बिस्तर में श्वासोच्छवास करता हुआ अपना शरीर होते हुए और दूसरा शरीर या विचित्र पशु पक्ष्यादि शरीर धारण कर मंन के संस्कार के कारण कर्म के फलस्वरूप सुख दुःख को भोगता है ऐसे ही जन्मांतर में अन्य लोक में फल भोगता है ।। ६३ ।।

जीव मैं और मेरा कहते हुए अहंकार से जो जो कर्म करता है उसका फल भोगता है। बचा हुआ कर्म भोगने के लिये पुनः पुनः जन्म लेता है। (इससे दूसरा प्रश्न को समाधान मिला ।। ६४ ।।

आदमी ज्ञानेद्रियों और कर्मेंद्रियों से सात्विक राजस, तामसादि कार्यों को करता है। ये कार्य वह मन के इच्छा के अधीन होकर करता है। इससे मन या अंतःकरण का अस्तित्व सिद्ध होता हैं। ऐसे ही मन पूर्व जन्मों में किए हुए कर्मों के संस्कार का अनुभव होता है। इसी अनुभव से ही भिन्न जीव और भिन्न भिन्न कर्मों के लिये कारण मिलता है ।। ६५ ।।

कभी भी न देखा हुआ और अनुभव न किया हुआ रूप सामान्य जीव को स्वप्न में और योग्य जीव को जागृति में भी दीख पड़ते हैं, यह पूर्व जन्म का (जन्मांतर का) अनुभव को सिद्ध करता है ।। ६७ ।।

हे राजन् ! लिंग शरीर वाले जीव को मन ही प्रधान है। पूर्व जन्म के कर्म के अनुसार जीव को शरीर मिलता है। यह प्रमाणों से सिद्ध हुई बात है। पूर्व जन्म के अनुभव के बिना मन स्वयं कुछ रचना नही कर सकता। मन ही पूर्वानुभव को याद करा देता है ।। ६८ ।।

इसी प्रकार अब अनुभव मे आ रहे और आगे के अनुभवों को मन ही समझा देता है। इस जनम में कभी भी न देखा हुआ दृश्य स्वप्न में आया तो वह भिन्न देश और काल का अनुभव हो सकता है। इस रीति से इस जन्म में हम अनुभव कर रहे सुख दुःख पूर्व जन्मों में किसी देश और किसी काल में किए हुए कर्म के अनुरूप फल हैं ।। ६९ ।।

शब्दादि विषय, पूर्व जन्मों में उन देहों के इंद्रियो द्वारा आकर, मन में वासना रूप से बैठ जाते हैं। वे भगवान श्री हरी की इच्छानुसार क्रमानुसार आकर तीव्रगति से लुप्त हो जाते है। ध्यान से परिपक्व हुये जीव को ये नही दीखते ।। ७० ।।

जीव में अनादिकाल से रहने वाला अहंकार और ममस्कार (मैं और मेरा भाव) के साथ स्वातंत्र भाव (मैं करने वाला भाव) का नाश न होने तक लिंग शरीर नष्ट नही होता। (जनन मरण चक्र चलता रहता है।) यह लिंग शरीर देह, बुद्धि सत्वादि गुण इनके समूह से बनता है ।। ७२ ।।

नींद, मूर्छा तीव्र दुःख अपमृत्यु, तीव्रज्वर इत्यादि संदर्भों में इंद्रियों की कार्य शक्ति कुंठित हो जाने के कारण अहंकार की अभिव्यक्ति नही होती। (स्वरूपेद्रिंय में अहंज्ञान रहता ही है) ।। ७३ ।।

यह अहंकार गर्भावास में, बाल्य में, कौमार आयु में इंद्रियों की पूर्ण रूप से अभिवृद्धि न होने के कारण एकादश (ग्यारह) इंद्रियों सेआने वाला अहं दुरभिमान अमावस्या के दिन के चंद्रबिंब के समान दृष्टिगोचर नही होता ।। ७४ ।।

इस शरीर से भगवान के अपरोक्ष ज्ञान को पाना साध्य हैं; और यह स्वातंत्र्याभिमान भी केवल आभास है। इतना होते हुए भी विषयों की वासना रहने तक जीव को इस संसार से मुक्ति नही मिलती। स्वप्न को देखने वाले की नींद ही नही खुली तो क्या होगा ? श्री हरी के अनुग्रह के बिना अहंकार का नाश नही होता ।। ७५ ।।

मन, बुद्धि अहंकार चित्त और चेतन नाम के पंच विध के अंतःकरण को मन कहते हैं। प्राण ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिंये ये तीनों पांच पांच है। मन मिलकर सोलह कला होते हैं। यह लिंग शरीर चेतन से मिलकर जीव कहलाता है ।। ७६ ।।

इस लिंग देह से जीव स्थूल देहों को पाता और छोडता रहता है। संतोष, दुःख, भय, आदि इस स्थूल शरीर से अनुभव करता है ।। ७७ ।।

तृण मे रहने वाला जुलूक नाम का कीट एक तृण को छोड़कर दूसरे को जाता रहता है। वह दूसरा मिलने के बाद ही पहले को छोड़ता है। वैसे ही जीव पिछले जन्म के कर्मों के विलंब के कारण दूसरा शरीर मिलने तक पहला शरीर के अभिमान को नही छोड़ता। दूसरा जन्म मिलनेके बाद पहले देह के व्यामोह को छोड़ देता है ।। ७८ ।।

हे महाराज! मन और इंद्रियों से किए हुए और अनुभव किये हुये कर्म के बारे में विचार करते हुए पुनः पुनः कर्म करता रहता है। मन ही मुख्य होकर इस शरीर के पुनर्जन्म का कारण बन जाता है ।। ७९ ।।

जीव को बंधक बनाने वाली भगवान की इच्छा के अनुसार स्थूल देह के कारण जीव कर्म करता ही है। कर्म जब तक रहता है तब तक बंध रहेगा, वही और कर्म का कारण बनेगा। अतः श्री हरी की इच्छा का अनुसरण करते हुए, कर्म निवृत्ति के लिये भगवान का भजन करो ।। ८० ।।

इस जगत की सृष्टि, पालन और नाश ये सब भगवान श्री हरी ही करते हैं। इसीलिये भगवान श्री हरी को इस जगत का मुख्य स्वामी मानकर उपासना (भजन) करो ।। ८१ ।।

भगवान श्री हरी ही इस संसार बंध से छुड़ाने वाले हैं। वे पूर्णानंद स्वरूप है। उनका अपरोक्ष ज्ञान पाने के लिये उनमें सर्वश्रेष्ठ भक्ति करो। अपने गुरु से लेकर ब्रह्माजी तक तारतम्य के अनुसार भक्ति करना, अपने से अधम जीवों में दया, समानों में स्नेह और दुर्जीवों में द्वेष करना चाहिये। अपने स्वरूप का ज्ञान कर लेना चाहिये। इसके बाद अत्यन्त स्पष्ट विवेक ज्ञान मिलेगा। इस ज्ञान प्राप्ति के बाद जीव को जल्दी ही मोक्ष मिल जायेगा ।। ८२ ।।

स्वर्गादियों से मिलने वाले फल ऐहिक फल के समान ही नाशवान् हैं। यह जगत भी स्वप्न में मिलने वाले फल के समान अनित्य है। इसी कारण ये सारे परम पुरुषार्थ के (मोक्ष के) साधन नही बनते। सर्व शास्त्रों से मुख्य प्रतिपाद्य, गुरूपदेश से मिलने वाले, अयोग्य को न मिलने वाले श्री हरी को नित्य और पुरुषार्थ प्रद मानकर उन्ही में मन लगाना चाहिये ।। ८३ ।।

मैत्रेय उवाचः- परम भागवतों में मुख्य नारद जी प्राचीन बर्हिराजा को जीव और परमात्मा के ज्ञान को उदाहरण पूर्वक मनन कराने के बाद सिद्ध लोक को चले गये ।। ८४ ।।

राजा प्राचीन बर्हि भी प्रजा कोटि को रक्षा का आदेश देकर तप करने के लिये कपिलाश्रम को चले गये ।। ८५ ।।

वहां वे एकाग्रमन से कामना रहित होकर भगवान् गोविन्द के पाद पद्मों को अपनी शक्त्यानुसार सेवा करते हुए अंत में निर्दुःख पूर्णसुखानंद वाले मोक्ष को पा लिये ।। ८६ ।।

यह भगवान को और उनको जानने वाले जीव के बारे में एक गूढ कथा है। देवतागण परोक्ष प्रिय होते हैं। नारद जी भी इसको गूढ़ रीति से ही बताये। इस कथा को जो कहते है और सुनते है वे दोनो शरीर को त्यागकर मुक्त हो जाते हैं ।। ८७ ।।

यह कथा अत्यन्त गहन है, आश्चर्यकर है। नारदजी ने इसको राजा प्राचीन बर्हि को उपदेश दिये। इस रहस्य कथा को मैंने गुरु मुख से जान लिया है। उसी को आपके लिये कह दिया। इसका अभ्यास करने से जीवात्म के विषय में और देवता के विषय में जो संशय आते हैं वे सारे निरसन होकर निश्चित ज्ञान मिल जाता है। यह कथा सारे वेदों का सार है। इसको श्रद्धा से अभ्यास करना है ।। ८८-८९ ।।

।। यहाँ उनतीसवां अध्याय समाप्त होता है।।

तीसवाँ अध्याय

विदुर उवाच :- हे ब्रह्मज्ञानी मैत्रेयजी, आप प्राचीन बर्हि के पुत्र प्रचेतस के बारे में कहे थे। वे रूद्रजी से प्राप्त हुये उपदेश को लेकर उस स्तोत्र से भगवान् श्री हरी को सन्तुष्ट कर किन पुरुषार्थों को प्राप्त किये ? ।। १ ।।

भगवान नारायण मोक्ष देने वाले हैं। वे भक्त प्रिय हैं। उनके समीप रहने वाले, रुद्रदेव के समीप रहने वाले भक्त इस लोकमें ओर अन्य लोक में मिलने वाले सुखों के योग्य है। ये प्रचेतस भी भगवान की इच्छा से रुद्रदेव से मिलकर क्या पाये ? ।। २ ।।

मैत्रेय उवाच :- पिता की आज्ञा के अनुसार तप करने निकले हुए प्रचेतस समुद्र के मध्य मे 'रूद्रगीत स्तोत्र का जप यज्ञ करने लगा। उस यज्ञ से सबको शरीर देने वाले और उन शरीरों को नियमन करने वाले व्यक्त रूपी भगवान् नारायण को संतुष्ट किये (यहां पुरंजन शब्द से पिछली कथा के राजा के बारे में सोचना नही। पुंर अर्थात् इस शरीर को जन अर्थात् अन्यों को देने वाले और उसका नियमन करने वाले भगवान के बारे में चिंतन करना है। यहाँ वही अर्थ लिखा है) ।। ३ ।।

देवमान के एक हजार वर्ष के तप के बाद भगवान् श्री हरी उनको दर्शन दिये। व्यक्त श्री हरी को देखने से ही उनका तप का सारा श्रम छूट गया ।। ४ ।।

मेरु शिखर के ऊपर चढ़े हुए नील बादल के समान गरुड़ के ऊपर चढकर भगवान आये। वे पीताम्बर पहने थे ; कंठ में कौस्तुभमणि को धारण किये थे। उनके प्रकाश से सारी दिशायें प्रकाशित हो गयी। उनके कर्णाभरणों का प्रकाश उनके गालों में प्रतिफलित होता था। वे प्रकाशमान किरीट को धारण किये थे। आठ हाथों में आठ आयुधों को धारण किये थे। ऋषि और देव श्रेष्ठ उनकी सेवा करते थे। गरुड और किन्नर उनका संकीर्तन कर रहे थे ।। ५ ।।

चमकीले सुवर्णमय कानों के आभूषणें से युक्त उनके कमनीय कपोल और मनोहर मुखमंडल की अपूर्व शोभा हो रही थी। उनके मस्तक पर झिलमिलाता हुआ मुकुट शोभ।यमान था। प्रभु के आठ भुजाओं में आठ आयुध थे। देवता मुनि और पार्षदगण सेवा करने में सिद्ध थे तथा गरुड जी अपने पंखों से किन्नरों की भांति सामगान का संकीर्तन कर रहे थे ।। ६ ।।

भगवान की लम्बी लम्बी स्थूल आठ भुजाओं के बीच में, लक्ष्मी जी से स्पर्धा करने वाली वनमाला विराजमान थी। जगदादि पुरूष श्री नारायण ने इस प्रकार पधार कर अपने शरणागत प्रचेतसों

की ओर दयापूर्ण दृष्टि से देखते हुए मेघ के समान गंभीर वाणी में कहे ।। ७ ।।

श्री भगवान उवाच :-

हे राज पुत्रो ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम सब में परस्पर प्रेम है और स्नेहवश तुम एक ही धर्म का अनुसरण कर रहे हो। तुम्हारे इस आदर्श सौहार्दता से मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। मुझसे वर मांगो ।। ८ ।।

जो पुरुष सायंकाल के समय प्रतिदिन तुम्हारा स्मरण करेगा, उसका अपने भाइयों में अपने ही समान प्रेम होगा तथा समस्त जीवों के प्रति मित्रता का भाव हो जायेगा ।। ९ ।।

जो लोग प्रातः और शाम को एकाग्रचित्त से रुद्रगीता द्वारा मेरी स्तुति करेंगे, उनको मै अभीष्ट वर और शुद्ध बुद्धि प्रदान करूँगा ।। १० ।।

तुम लोगो ने बड़ी प्रसन्नता से अपने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की है, इससे तुम्हारी कमनीय कीर्ति समस्त लोकों में फैल जाएगी ।। ११ ।।

अपने गुणों से ब्रह्माजी का अनुसरण करने वाला प्रसिद्ध पुत्र आपको होगा। उसके वीर्य से संतति होकर तीनो लोक भर जायेगा ।। १२ ।।

कंडु नाम के ऋषि और उनकी पत्नी प्रम्लोचा को कमल समान आंख वाली एक पुत्री हुई। ऋषि तप करने गये और वह प्रम्लोचा अप्सरा वापस इंद्र लोक चली गयी। अनाथ उस बच्ची को वन के वृक्षों ने अपनाया। वह बच्ची भूख से रोने लगी तब वनस्पतियों के राजा चंद्र ने दयायुक्त होकर अपनी अमृत स्रवण करने वाली तर्जनी को उसके मुख में रखते हुए उसका संरक्षण किए। उस सुंदरी कन्या से तुम शादी कर लो ।। १३-१४-१५ ।।

तुम सब भाई अपने पिता की आज्ञानुसार धर्माचरण करते हो; एक ही धर्म, और स्वभाव वाले हो। यह कुमारी भी एक ही धर्म स्वभाव की है। मैं वर रूप में इसको तुम्हारे लिये दे देता हूँ। तुम सबके लिये यह अकेले ही योग्य पत्नी बनेगी ।। १६ ।।

तुम लोग देवमान के तीन हजार तीन सौ तैंतीस (३३३३) वर्ष और चार महीने तक पूर्ण शक्तिसे राज्य करते हुए देवलोक और मनुष्य लोक के सारे ऐहिक सुखों को इसके साथ अनुभव करे। तुम्हारे लिये यह मेरा अनुग्रह है ।। १७ ।।

(देवमान के ये दिन मनुष्यमान के बारह लाख वर्ष होते हैं) इस सुख को अनुभव करते हुए मुझमें सदाकाल एकचित्त होकर भक्ति करते हुए अपने जड़मन को परिपक्व करते हुए नरक समान हेय, पुण्य पाप युक्त संसार से विरक्त होकर मेरे लोक को पाओगे ।। १८ ।।

तुम लोग अपने घर में रहते हुए करने वाले कर्मों को मुझे समर्पण करते हुए मेरी कथा सुनते हुए कालक्षेप करने से तुम्हें यह संसार बंधक नही बनेगा ।। १९ ।।

भगवान के अनुग्रह से सूक्ष्म चिंतन करते हुए अपने योग्यतानुसार श्री हरी को जानने वाले ब्रह्मज्ञानी विपदो में मुग्ध होते नही, संकट समय में शोक करते नही, अभिवृद्धिमें आनन्द मानते नही। वे अपने भगवान के बारे मे प्राप्त सारे अनुभवों को अन्य लोगों को पूर्णतया बोलते नही। श्री हरिवार्ता सुलभ में मिलने वाली नही है ।। २० ।।

मैत्रेय उवाच :- ऐसे पुरुषार्थ देने वाले परम स्नेही दुष्टों का मर्दन करने वाले जनार्दन के दर्शन से और उनकी अमृतमय बातों से प्रचेतसों के मन की मलिनता का मार्जन हो गया। तमो रजादि गुण नष्ट हो गये। वे हाथ जोड़ते हुए गद्‌गद् स्वर मे प्रार्थना करने लगे ।। २१ ।।

प्रचेतसः ऊचुः दुःख को दूर करने वाले भगवान हम आपकी शरण में है। अगणित गुणों को याद दिलाने वाले, मन और शब्द से भी तीव्र गति इंद्रियों से अगम्य मार्ग वाले आपको हम नमस्कार करते हैं ।। २२ ।।

प्राकृत गुण रहित आप अत्यन्त शुद्ध हैं; आप पूर्णानन्द युक्त हैं। संशय मन वाले को आप दूसरी स्वतंत्र वस्तु को दिखाते हैं। (केवल आप एक मात्र स्वतंत्र हैं) इस जगत के स्थिति, लय और सृष्टि के लिये प्रकृति का सत्व, तम और रजोगुणों को काम में लाने के लिये विष्णु रूप से रुद्र और ब्रह्मा के रूपों को व्यक्त करने वाले आपको नमस्कार ।। २३ ।।

आप दोष रहित है; सर्वगुण स्वरूप हैं; भक्तों का पाप परिहार करने वाले है, आप ज्ञान स्वरूपी हैं। आप यादवों के मुख्य है, सर्वत्र व्याप्त होनेसे वासुदेव कहलाते हैं। हे प्रभु श्री कृष्ण, आपको अनंतानंत नमन ।। २४ ।।

हे कमलनाभ, कमलाधार, हे कमल सदृश पाद वाले, हे कमलाक्ष हम तुम्हे बार बार नमस्कार करते हैं ।। २५ ।।

आप कमल पराग जैसे शुभ्र पीत वस्त्र को धारण किये हैं। सर्वप्राणियों के अंदर रहने वाले हैं कर्म साक्षी आपको हम नमस्कार कर रहें है ।। २६ ।।

हे भगवान संसार क्लेश आक्लिष्ठ से हमारे कष्टों को दूर करने के लिये आप अपने यह क्लेश दूर करने वाले अपने सुन्दर रूप को अनुकम्पा से व्यक्त किये हैं, अन्यथा और क्या कारण हो सकता है। हम आपकी इस दयालुता की प्रार्थना करेंगे ।। २७ ।।

पापों को जला डालने वाले श्री हरी ! दुःखित लोगो में प्यार रखने वाले प्रभु आप भृत्य के कष्ट को देखकर उसकी प्रार्थना के बिना ही रक्षा करने के लिये भृत्य की याद करते हैं। शास्त्र इसी को धर्म कहते हैं ।। २८ ।।

क्षुद्र प्राणियों के हृदय में भी गूढ रीति से वास करने वाले आप, उनको सुख कैसे होगा, इसको ठीक तरह से जानते है। हमारे अंतिर्निहित आप हमको सुख होने के मार्ग को नही जानते हैं क्या ? ।। २९ ।।

हे जगत्पते भगवान्, आप मोक्ष मार्गोंपदेशक हैं, आप ही गम्य हैं। आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो गये हैं। यह ही हमे श्रेष्ठ वर है ।। ३० ।।

लक्ष्मी से भी श्रेष्ठ स्वामी, आपसे हम एक वर मांगना चाहते हैं। आपके विभूति रूपों का लिये अंत नही है। इसीकारण आपका नाम अनंत है ।। ३१ ।।

जब पारिजात पुष्प लभ्य है तो भृंग अन्य पुष्पों के पास क्यो जायेगा ? जब आपका पाद मूल ही मिल गया है तो हम और किसी को क्यो मांगेंगे ? ।। ३२ ।।

हम आपकी इच्छा रूप माया से बंधित हैं आपकी इच्छानुसार अपने कर्म के वश होकर हम इस संसार में जितनी बार जन्म लें। उन सारे जन्मों में आपके पादासक्त भावगतों का संग हमें मिले ।। ३३ ।।

भगवान के संग वाले भागवतों के संग के एक लेशमात्र से हम स्वर्ग कीं तुलना नहीं कर सकते हैं। और संसार निवृत्ति को भी चाहते है। अब मरण शील मनुष सुख की तुलना इससे कैसे हो सकती है ।। ३४ ।।

सत्संग में मन को मुदित कर देने वाली श्रीहरि की कथाये होती हैं। विषय वासना का शमन हो जाता है। अन्य प्राणियों का बैर नष्ट होता है। मन का उद्वेग उड़ जाता है ।। ३५ ।।

सत्संगों में सत्कथाओं से सन्यासिगम्य भगवान असंग भक्तों के संग का विषय बनता है। बार बार इन कथाओं को सुनने से मन आनंद से विभोर हो जाता है ।। ३६ ।।

आप के भक्त तीर्थों को पवित्र करने के हेतु भगवद्दर्शन के उद्देश्य से पद यात्रा से तीर्थाटन करेंगे। सज्जनों के उद्धार के लिये कारूण्य से स्वयं आ जायेगे। संसार भीत भगवद्भक्त को इससे ज्यादा रूचिकर और क्या हो सकता है ।। ३७ ।।

हम तो भगवान् नारायण के प्रिय साक्षात शंकर जी के चंद क्षणों के सहवास से आपका दर्शन कर सके। अत्यंन्त दुःख देने वाले इस भवरोग के लिये आप उत्तम वैद्य है। आप सज्जन गम्य हैं ।। ३८ ।।

हम जो स्वाध्याय किये हैं, गुरु की सेवा करके उनके प्रीति को पाये हैं; ब्राह्मण और वृद्धों का अनुसरण किए है, पूज्य विद्वान, स्नेही सहोदर, और सर्वप्राणियों से असूया रहित बर्ताव किये है; आहार के बिना जल में खड़े होकर ये तप किये है; हे परिपूर्ण ब्रह्मन् ये सारे आपकी तृप्ति का कारण हो ।। ३९-४० ।।

ब्रह्मा रूद्रादि देवता, मनु महाराजादि मनुष्य लोग तप ज्ञानादि से शुद्ध चित्त होते हुए भी आपकी महिमा को पूर्ण रूप से जान नही पातें। हम केवल हमारी योग्यता के अनुसार केवल यथा शक्ति आपका स्तवन करेंगे ।। ४१ ।।

सम शुद्ध और पापनाशक सर्वोत्तम भगवान्, आप बल, ज्ञान रूपी मुख्य प्राण को प्रेरणा देने वाले है। आप सर्वगुणात्मक होकर सर्वत्रवास करने से वासुदेव कहलाते है। आप को हम नमस्कार करते है ।। ४२ ।।

मैत्रेय उवाच :- प्रचेतसों की यह प्रार्थना सुनकर संप्रीत होकर भक्त वत्सल श्रीमन्नारायण ने 'तथास्तु' कहे। अतृप्त आंखों से अधीक्षा करने वाले प्रचेतसों के देखते देखते सर्वशक्तिशाली स्वतंत्र भगवान अपने धाम को चले गये ।। ४३ ।।

तब प्रचेतस जल से बाहर आ गये। राजा प्राचीन बर्हि के तप करने के लिये जाने के कारण, ठीक तरह से कृषि न करने से सारा भूमण्डल वृक्षों से भरा हुआ था। वृक्ष इतना बढ़ गये थे कि लगता था आकाश को चढ़ जाने के लिये वे सीढ़ी बन गए है। उनको देखकर प्रचतेसों को क्रोध आ गया ।। ४४ ।।

क्रोध के कारण उनके मुह से प्रलय काल के संवर्तकाग्नि के समान तूफानयुक्त अग्नि निकल आया। वह दावानल बनकर वृक्षों को जलाने लगा ।। ४५ ।।

सारे वृक्ष संकुल के भस्मसात् होने का दृश्य देखकर ब्रह्माजी ने प्रचेतसों के पास आकर युक्तियों से उनको शांत किये ।। ४६ ।।

बचे हुए वृक्ष घबड़ाकर खड़े हुए थे। ब्रह्माजी के उपदेशानुसार वे अपने पालित पुत्री को प्रचेतसों को समर्पण किये ।। ४७ ।।

ब्रह्माजी के आज्ञानुसार प्रचेतसों ने मारिषा नाम की उस वृक्ष कन्या से विवाह किये। पहले ब्रह्मा पुत्र होकर जन्म लिये। दक्ष प्रजेश्वर रुद्रदेव की निंदा करने के कारण इनके पुत्र बन गये ।। ४८ ।।

चाक्षुष मन्वंतर में ब्रह्माजी पूर्व सृष्टि के अनुसार सृष्टि करने लगे। उस समय भगवान श्री हरी और

ब्रह्माजी से प्रेरणा पाकर ये दक्ष, प्रजा की सृष्टि करने लगे । ४९ ।।

अपनी कांति से सबके तेज को धिक्कारते हुए अपने सामर्थ्य से योग पद को प्राप्त करने से ब्रह्मादि देवता इनको 'दक्ष' कहने लगे ।। ५० ।।

श्री हरी के पुत्र ब्रह्माजी और मरीच्यादि देवताओं ने इनको प्रजासर्ग के संरक्षण में नियुक्त किया ।। ५१ ।।

।। यहा तीसवा अध्याय समाप्त होता है ।।

एकतीसवां अध्याय

मैत्रेय उवाच – मानवमान से बारह लाख वर्ष राज्य भार चलाने के बाद प्रचेतसों ने विशेष ज्ञान को पाकर श्री हरी के आदेश को याद किया। अपनी पत्नी को पुत्र के वश में रखते हुए घर छोड़कर सन्यास ले लिये। वे पश्चिम समुद्र के तट पर आये। वहाँ जाजलि नाम के ऋषि ने तप करके सिद्धि पाई थी। उस स्थान पर रहकर सकल प्राणियों के नियामक और स्वामी श्री हरि को जानने के लिये अनुकूल सन्यास धर्म का अनुष्ठान करने लगे ।। १-२ ।।

वे प्राण, मन, वचन, नयन आदि सर्वेंद्रियों पर नियंत्रण पा लिये। आसन जय को साधते हुए उनका देह सभी अवस्था में भगवन्निष्ठ होकर एक प्रकार रहा। सर्वोत्तम श्री हरी का एकाग्रमन से चिंतन करने में सफल हो गये। इतने में सुरासुरों से पूजित नारद जी उनको दृष्टिगोचर हो गये ।। ३ ।।

वहाँ आये हुए नारद जी को खड़े होकर दंडवत प्रणाम करते हुए उनको उच्चासन पर बिठाकर स्वागत करते हुए प्रार्थना किये ।। ४ ।।

हे देवर्षि आपका स्वागत है। हमारे भाग्य से आपका दर्शन हुआ। हे ब्रह्मन्, आप सूर्य की तरह सदाकाल लोगों को अभय दान के लिये प्रवास करते रहते हैं ।। ५ ।।

हे स्वामिन्, रूद्रदेव और भगवान् नारायण से दिए हुए उपदेश को हम कौटुबिंक कार्यों के कारण भूल गए है ।। ६ ।।

आप कृपया परापर तत्वों का यथार्थ ज्ञान देने वाला उपदेश देकर उस ज्ञान को बढाइये। उससे हम इस दुस्तर संसार सागर को सुलभता से पार करेंगे ।। ७ ।।

मैत्रेय उवाच :- प्रचेतसों के इस प्रश्न के उत्तर रूप में मननशील नारद मुनि पुण्य कर्म और कीर्ति वाले श्री हरि में मन लगाकर उन राजपुत्रों को उपदेश देने लगे ।। ८ ।।

इस जग के मालिक सर्वनियामक श्री हरि का सेवन करने वाले का जन्म सार्थक है; उसका वंश ही सद्वंश है; उसका कर्म ही सत्कर्म है। उसकी आयु का सदुपयोग होता है। उसका मन ही शुद्ध मन है; उसकीं बात ही काम की होती है ।। ९ ।।

श्री हरि के अपरोक्ष के बिना जन्म कितना शुद्ध होकर भी प्रयोजन क्या ? शास्त्र पढ़ने से क्या ? आहिताग्नि रखने से क्या ? ये सारे फल देने वाले नही होते ।। १० ।।

श्री हरि के दर्शन के बिना वेदोक्त कर्म से क्या उपयोग है ? दीर्घायुष्य से भी क्या मतलब है ? श्री हरि के बिना विद्या, तप, मनोव्यापर, कुशल बुद्धि, बल, इंद्रिय पटुत्व, योग, यथार्थ ज्ञान, सन्यास, शास्त्राध्ययन, तीर्थ यात्रा, व्रत और वैराग्य लेकर क्या करना है। ये सारे श्रेयस्साधन श्री हरि के दर्शन के बिना निरर्थक हो जाते हैं। (अथवा अन्य देवताओं के पूजन से क्या फल है ?) ।। ११-१२ ।।

इन सब श्रेयस्साधनों का उद्दिष्ट, प्राप्य फल श्री हरि ही है। आनन्दरूपी भगवान संतुष्ट हुए तो अपने को ही दे देते हैं। सारे जीवों के अंतर्यामी वही हैं अन्य देवताओं में उनको अंतर्यामित्व भाव से पूजा करने वाले को भी, वे ही फल देते है। वे सकल जीवों के लिये प्रिय हैं ।। १३ ।।

वृक्ष के मूल को जल से सींचने से उसके तना, शाखा, उपशाखा आदि सभी का पोषण होता है, और जैसे भोजन करके प्राण को तृप्त करने से सर्वेंद्रियाँ पुष्ट होती हैं, वैसे ही भगवान श्री हरि की पूजा से सारे देवता तृप्त होते हैं ।। १४ ।।

जैसे उदय काल में किरणें सूर्य से बाहर आती हैं, अस्त समय में पुनः सूर्य में ही जा मिलती हैं, जैसे आषाढादि मासों में सूर्य से पानी बाहर आ जाता है, और हेमंतादि ऋतुओं में पुनः सूर्य में ही समा जाता है, और जैसे यह स्थावर जंगम प्राणी में पृथ्वी में मिल जाते हैं, वैसे ही यह त्रिगुणात्मक जगत प्रवाह सृष्टिकाल में श्री हरि से व्यक्त होकर उसी के आश्रय से रहता हैं, तथा लय काल में उन्ही में छिप जाती हैं ।। १५ ।।

भगवान श्री हरि उपनिषद् प्रतिपाद्य हैं सृष्टि प्रारम्भ के पहले सकल जीवराशि अपनी इंद्रियों से श्वासादि व्यापार न करते हुए अविद्या के आवरण में निष्क्रिय होकर भगवान ने अपरोक्ष के बिना पड़ी रहती हैं। जब सृष्टि का आरम्भ होता है तब प्राणेद्रिय जय से वे श्री हरि का अपरोक्ष के व्यापार में लगना चाहिये। सज्जनों की इंद्रिय इन कामों में लगा कर प्रबुद्ध होती हैं इस रीति से जीव जागृत होना चाहिये। तब देह को आत्मा मानने का द्रव्यभ्रम स्वतंत्रकर्ता नाम की क्रियाभ्रम और इंद्रिय मेरा नामक कारकभ्रम नष्ट हो जाता है। तब श्री हरि का अपरोक्ष होता है ।। १६ ।।

आकाश में बादल, आंधी, प्रकाश, अंधेरा बार बार होते हुए भी आकाश के ऊपर उनका परिणाम जैसे होता नही वैसे ही सर्वदा असंग श्री हरि में उनके अधीन रहने वाले, सत्व रज तमोगुणों का प्रवाह रूप में बार बार प्रवेश होते रहने से भी उनको उन गुणों का लेप नही होता ।। १७ ।।

इन कारणों से सबके अंतर्यामी मुख्य स्वगत भेद रहित, काल प्रधान और पुरुष शब्द वाच्य, सर्वोत्तम और सर्वनियामक स्वसामर्थ्य से प्रकृति के गुणप्रवाह से परे रहने वाले श्री हरी को केवल उन्हे

ही परिपूर्ण मानकर श्रद्धा से तुम लोग सेवा करो ।। १८ ।।

उनके अनुग्रह के बिना किसी का संकल्प विकल्प होता नही। पंच भेदों को न मानने वाले कुतर्कियों के कुतर्कों को सुतर्क से खंडन करने वालों को ही उनका ज्ञान होता हैं, उनको न आदि है न मध्य न अंत। वह आनंद रूपी है; केवल ज्ञानात्मक है। इन गुणों को आवाहन करते हुए तुम लोग श्री हरी का उपासना करो ।। १९ ।।

सर्व प्राणियों में दया करना, भगवान की कृपा से जो मिलता है उसी से तृप्ति पाना, सर्वेंद्रियों को श्री हरि से संलग्न करना-इन कर्मों से जनार्दन जल्दी से सन्तुष्ट होते हैं ।। २० ।।

ईषणत्रयों को दूर करते हुए, शुद्ध मन में प्रतिदिन बढते हुए भक्ति से युक्त ज्ञान से अपरोक्ष के लिये योग्य बनकर जो नित्य साधना करता है श्री हरि उनके वश होकर अक्षर नामक आकाश जैसे उनके मन में स्थिर रहते हैं ।। २१ ।।

विद्या, संपत्, कुल, और कर्म, ये दुर्जनों में अहंकार के कारण बन जाते हैं, किन्तु सज्जनों में ये गुण बन जाते हैं। इन गुणों से अहंकारप्राप्त दुष्ट लोग सज्जनों से अपराध करते हैं। ऐसे कुबुद्धियों की पूजा को भगवान कभी भी स्वीकारते नही।

उनकी पूजा में ही अपने धन का व्यय करने वाले और उनको ही धन मानने वाले भक्तों को श्री हरी प्यार करते हैं। वे भक्तों का भक्ति को जानने वाले रसज्ञ हैं ।। २२ ।।

वे स्वयं परिपूर्ण हैं। वे भक्तों के प्रयोजन के उद्देश्य से उनके वश वर्ती होते हैं। लक्ष्मी देवि इनका अनुसरण करती हैं। ब्रह्मादि देवता भी श्री लक्ष्मी के अनुग्रह की आकांक्षा रखते हैं। चक्रवर्ती राजा इन सबका अनुग्रह चाहते हैं, मनुष्योत्तम चक्रवर्तियों के वशवर्ती होते हैं। ये सारे भगवान के भक्त हैं। ये अपने प्रयोजन के लिये भगवान की शरण में नही जाते। यह भगवत्तत्व को जानने वाला, श्री हरि को कैसे छोड़ सकता है ।। २३ ।।

आपका वंश भगवद् भक्तों का वंश है। आपके पूर्वजध्रुव उत्तम भक्त हैं। उसको चित्ररथ भी कहते हैं। वह चक्रवर्ति बन गया। बाल्यकाल में पत्नी के वशवर्ति पिता के और सापत्नी माता के वाग्बाणों से शीर्ण हृदय होकर घर बार छोड़कर जंगल जाने के रास्ते में उसकी मुझसे भेट हुई। तब वह पांच वर्ष का था किन्तु उदार मनस्क होने के कारण मैंने उसको ब्रह्मोपदेश दिया। मेरे उपदेश के अनुसार उसने पुरुषोत्तम श्री हरि को भक्ति से सेवन किया। श्री हरि के अनुग्रह से वे देवस्थानों से उन्नत ध्रुवमंडल के राजा बन गए। सामान्य मुनि और राजाओं ने अब तक ध्रुवमंडल के नीचे खड़े होकर उस स्थान को देखते हैं किन्तु उसको पा न सके ।। २४-२५-२६ ।।

कृपा करके ध्रुव को उन्नत स्थान दिये हुए, सर्व जीवों के अंतर्यामी, सर्वोंत्तम और सर्वनियामक स्वामी श्री हरि को रूद्र देव के उपदेशानुसार तुम लोग सेवा करो। उनके भजन करने से तुम लोग भवभय से मुक्त होते हो जाओगे ।। २७ ।।

मैत्रेय उवाच ! हे राजा सुनो, प्रचेतसों को इस रीति से उपदेश देकर और अन्य कथाओं को कहने के बाद ब्रह्म पुत्र नारदजी ब्रह्मलोक चले गये ।। २८ ।।

प्रचेतसों ने नारद जी के दिए हुए उपदेश के अनुसार सारे पापों का निवारण करने वाले श्री हरि का स्मरण, संकीर्तन करते हुए, उनके पाद कमलों के ध्यान करते करते श्री हरि का स्थान को प्राप्त किये ।। २९ ।।

हे विदुर, आप प्रचेतस और नारद जी के संभाषण के बारे में पूछे थे। श्री हरि के कथायुक्त उस संभाषण को हम आपको सुनाये ।। ३० ।।

शुक उवाच :- हे राजा परीक्षित, अब तक हम स्वायंभुव मनु महाराज के पुत्र उत्तानपाद राजा के वंश के बारे में कहे। आगे प्रियव्रत राजा के वंश के बारे में कहेंगे ।। ३१ ।।

प्रियव्रत राजा ने नारद जी से सर्वोंत्तम श्री हरी के तत्व को समझ कर राज्य सुख भोगने के बाद इस भूमण्डल को अपने पुत्रों में बटवारा करके अंत में श्री हरिपद को प्राप्त किये ।। ३२ ।।

मैत्रेय जी से श्री हरि की निर्दुष्ट कथा सुनकर आनन्द भाष्प भरे नेत्र वाले विदुर भाव विभोर होकर उनके चरणों पर अपना सिर रखे; और हृदय में भी हरि का ध्यान करते रहे ।। ३३ ।।

विदुर उवाच :- हे करूणा शाली महायोगी मैत्रेय जी दया पूर्ण मन से आप मुझ जैसे अज्ञान से अत्यन्त दूर रहने वाले और अकिंचन भक्तों को दर्शन देने वाले भगवान के दर्शन कराने वाले ज्ञान मार्ग को दिखाये। आपके उपदेश से मैं धन्य हूँ ।। ३४ ।।

शुकाचार्य उवाच -

इस प्रकार कृतज्ञता पूर्वक मैत्रेय जी का वंदन करते हुए विदुर जी उनकी अनुज्ञा लेकर हस्तिनापुर को चले गये। उनका मन सन्तोष से भर गया था। वे अपने बंधुओं को देखना चाहते थे। हे राजा परिक्षित, तुम अपने मन को श्री हरि को अर्पण किये हो। इस श्री हरि की कथा को जो सुनता है वह पूर्णायुष्य, सकल सौभाग्य, धन, यश और क्षेम को पाता है। अंत में उत्तम गति को प्राप्त करता है।

।। यहाँ एकतीसवा अध्याय समाप्त होता है ।।

।। यहाँ चतुर्थ स्कंद समाप्त होता है।।

प्रथमो हनुमान्नाम द्वितीयोभीम एव च।
पूर्णप्रज्ञः त्रितीयस्तु भगवत्कार्यसाधकः॥

पता : मध्वमठ 63, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद 211 006
फोन नं0 : 0532-2504587

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

पंचम-षष्ठ स्कन्धौ भाषानुवादः

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण

वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री विजयध्वज टीकानुसारी

पंचम एवं षष्ठ स्कंधौ

(भाषानुवादः)

लेखक

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

प्रकाशक

श्री मध्व तत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

श्री अखिल भारतीय पेजावर स्वामी अभिवंदन समिति

श्री मद्भागवत महापुराणम्

लेखक-
श्री 1008 श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी

प्रकाशक
श्री मध्व तत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान
श्री मध्व मठ 63, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद, 211006
फोनः- 0532 - 2504587

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम मुद्रण 1000 प्रतियाँ
12-12-2010

मूल्य - 60 रुपये

अक्षर विन्यास
श्री प्राणेश कुमार शुक्ल (एक्टर)

मुद्रक -
श्री वैष्णव प्रेस
मोरी, दारागंज, इलाहाबाद

श्री राम श्री

अनुग्रह संदेश

श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य मूल महासंस्थान श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी उडुपि

हमारे विशेष अभिमान पात्र श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी ने लिखा भागवत का हिन्दी भाषा अनुवाद को देख कर हमे सन्तोष हुआ है। श्री स्वामी जी अपने पूर्वाश्रम में अनेक वर्षो से सामजिक सेवा में रचनात्मक कार्यों को किये हैं। हमारे साथ अकाल, भूकम्प, बाढ़ इत्यादि कामों में सम्पूर्ण समर्पण भाव से काम किए हैं। अब अपने अस्सी वर्ष के समय में आठ शास्त्र ग्रन्थों का अनुवाद और प्रकाशन का स्तुत्य काम अपने हाथ में लिए हैं। मध्व तत्वज्ञान को अभ्यास करने के जिज्ञासुओं को अनुकूल होने वाली एक विशिष्ट सेवा किए हैं।

वे अपने सत्तर वर्ष की आयु में कन्नड़ भाषियों के अनुग्रह रूप में अनेक शास्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किए थे। अब प्रयाग में रह कर मध्व सिद्धान्त का प्रसार कार्य करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा मध्व तत्वज्ञान को हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचार करने का महान कार्य कर रहे हैं।

श्री कृष्ण, श्री वेद व्यास जी, अस्मदुपास्य श्री रामविट्ठल जी इनको विशेष अनुग्रह करते हुए इनकी सेवा विस्तार रूप से सारी जनता को मिले यही हमारा आशीर्वाद है।

इति नारायण स्मरण

श्री श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी महाराज
पेजावर मठ उडुपि

अनुग्रह संदेश
श्री राम श्री

श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य मूल महा संस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी, उडुपी

आठ सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरू मध्वाचार्य जी ने मध्व सिद्धान्त का प्रचार प्रसार बहुत पैमाने से आरम्भ किया। इस प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए उडुपी में आठ पीठ और उत्तर कर्नाटक में एक पीठ की स्थापना किए। श्री जयतीर्थ मुनि, श्री श्रीपाद राज स्वामी, श्री व्यासराजमहामुनि, श्री वादि राज योगी, श्री रघूत्तम स्वामी जी, श्री राघवेन्द्र तीर्थ जी इत्यादि महामहिमों ने उस सिद्धान्त को और विकसित किए। इसके बारे में यह श्लोक प्रसिद्ध है।

व्यासेन व्युप्तबीजः श्रृतिभुवि भगवत्पाद लब्धांकुरश्रीः।
प्रत्यैरीषत् प्रभिन्नोऽजनिजयमुनिना सम्यगुद्भिन्न शाखाः।।
मौनीशव्यासराजात् उदित किसलयः पुष्पितोयं जयीन्द्रात्।
अद्य श्री राघवेन्द्रात् विलसति फलितो मध्व सिद्धान्तशाखे।।

हमारे दीक्षा शिक्षा गुरू युगपुरूष श्री श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी उत्तर भारत में श्री मध्व तत्व ज्ञान को प्रसार करने हेतु **बीस वर्ष** पहले श्री प्रयाग क्षेत्र में श्री मध्व पीठ की स्थापना की है। उन दिनों से प्रयाग का हमारा मठ मध्वसिद्धान्त का प्रसार करते आया है।

इस वर्ष श्री पेजावर मठ के पूज्य श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ श्री पाद जी का अस्सीवाँ वर्ष है। स्वीकृत मध्व सिद्धान्त का प्रसार करने हेतु इस वर्ष में हमने अपने मठ से आठ मध्व शास्त्र ग्रन्थों का प्रकाशन करने का व्रत ग्रहण किया है। हमारे प्रिय शिष्य प्रयाग पीठाधिपति श्री विद्यात्म तीर्थ जी आठ ग्रन्थों को हिन्दी में अनुवाद किए हैं। हम आशा रखते हैं कि सद्भक्त लोग इन ग्रन्थों का उपयोग करके साधक बनें, भगवान के प्रिय बनें।

हमारे शिष्य श्री विद्यात्म तीर्थ जी को भी अस्सी वर्ष हो गये हैं। इस शुभ अवसर में वे आठ शास्त्रग्रन्थ अनुवाद कर अपने आयु को सार्थक बनाए हैं। हम अपने आराध्य श्री सीतारामांजनेय स्वामी से प्रार्थना करते हैं कि उनके हाथ से ऐसे कार्य और हों, उसका उपयोग सद्भक्तों के लिए सन्तोष कारक हो।

इति नारायण स्मरण

उडुपी

कार्तिक शुक्ल एकादशी

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी

निवेदन

पश्चिम समुद्र के तट पर द्वारका से पधारे हुए, रूक्मिणी देवी से पूजित श्री कृष्ण जी की प्रतिमा व जगद्गुरू श्री मध्वाचार्य जी ने उडुपि में आठ सौ वर्षों से पूर्व में प्रतिष्ठित किया। जगद्गुरू मध्वाचार्य तीन मत प्रवर्त आचार्यो में माने जाते हैं। ज्ञानयुक्त भक्ति के बिना शाश्वत सुख (मोक्ष) नही मिलेगा; भगवान सर्वशक्त, सर्वाधा सर्वोत्तम हैं, जीव भगवान का दास है; यह विश्व नश्वर है किन्तु प्रवाहतः सत्य है; इस विश्व में रहने वाले प्रत्ये जीव परस्पर भिन्न हैं; अल्प शक्ति, अल्पवीर्य और अल्प ज्ञान वाला जीव कदापि भगवान नही बनता ये विच मध्वतत्वज्ञान का सार है।

जगद्गुरू मध्वाचार्य जी श्री कृष्ण मठ में भगवान की पूजा अर्चा करने और मध्व सिद्धान्त के प्रचार प्रस हेतु अष्ट मठों की स्थापना की। वे आठ मठ के अधिपति सदियों से अपने इस कर्तव्य को निभाते आ रहे हैं। अ के इन पीठाधिपतियों में पेजावर मठ के श्री विश्वेश तीर्थ स्वामी जी सबसे श्रेष्ठ और वरिष्ठ हैं।

बालक वेन्कट राम अपनी आठ वर्ष की आयु में सन्यास लेकर विश्वेश तीर्थ बने और पेजावर मठ पीठाधिपति होकर भगवान श्री कृष्ण की पूजा परम्परागत पर्याय व्यवस्था अविरत और अखण्ड भक्ति यु होकर करते आये हैं। मध्व शास्त्र में अगाध पांडित्य वाले आप शत - शत पण्डित मंडलियों को शिक्षित किए वेद, उपनिषद्, पुराण आदि अनेक शास्त्र ग्रन्थों के भाष्य, टीका, व्याख्यान आप ने संस्कृत और कन्नड भाष रचना की है। नदियों में बाढ़, माँ भूमि के विघातक कम्पन, सुनामी और अकाल के आघातों से दुःखित, दी दलित, दरिद्रों के लिए आप का सहाय हस्त सबसे पहले सरकार से भी पहले और पर्याप्त मात्रा में मिल चुका

पूज्य पेजावर स्वामी जी अब अपनी आयु के अस्सी वर्ष में गुजर रहे हैं। इनमें से वे अपने बहत्तर सु वर्षों को सन्यास में, ज्ञान प्रसार में, भगवत् पूजा में और नानाजन शुश्रूषा में बिताये हैं। एक ऐसे क्रियाशील स रूपी सज्जीव को अभिवन्दन करना, मान वन्दन करना, अपने के लिए श्रेयस्कर है।

जिस मध्व तत्व ज्ञान के प्रचार प्रसार के लिए पूज्य पेजावर स्वामी जी ने अपना जीवन समर्पित कि जीव और भगवान के बीच में सुन्दर सेतु बन्ध निर्माण करने का प्रयास किया उसी कार्य में एक छोटी सी गिल का काम करने के लिए हम कार्यक्षेत्र में उतरे हैं। उनके अस्सी वर्ष के उन पद चिन्हों को अनुसरण करते हुए अ मध्वशास्त्र ग्रन्थों को इस वर्ष विमोचन करने का सकंल्प हम किए हैं। वह कार्यक्रम इस प्रकार है।

पंचम स्कन्ध का विषय सूची

क्र0	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	अध्याय एक	प्रिय व्रत कथा	3-7
2.	अध्याय दो	अग्निध्र का संसार	8-10
3.	अध्याय तीन	ऋषभावतार	11-13
4.	अध्याय चार	ऋषभ देव का राज्य भार	14-15
5.	अध्याय पॉच	ऋषभ देव का अवधूत चर्या	16-20
6.	अध्याय छः	ऋषभ देव का योगैश्वर्य	21-23
7.	अध्याय सात	भरत चक्र वर्ती का राज्य भार	24-26
8	अध्याय आठ	भरत मुनि का हिरण जन्म	27-29
9.	अध्याय नौ	जड़ भरत का जन्म	30-32
10.	अध्याय दस	जड़ भरत का उपदेश	33-36
11.	अध्याय ग्यारह	राजा के प्रश्न को जड़ भरत का उत्तर	37-39
12.	अध्याय बारह	नाहम करता हरि कर्ता	40-42
13.	अध्याय तेरह	जड़ भरत का उपदेश संसार एक जंगल है	43-46
14.	अध्याय चौदह	संसार क्यों जंगल है? शुक जी का उपदेश	47-51
15.	अध्याय पन्द्रह	भरत चक्र वर्ती का वंश	52-53
16.	अध्याय सोलह	जम्बू द्वीप	54-56
17.	अध्याय सत्ररह	गंगा अवतरण, भू लोक और स्वर्ग लोक	57-60
18.	अध्याय अट्ठरह	भद्राश्व खंड़ से उत्तर कुरू खण्ड तक	61-65
19.	अध्याय उन्नीस	किम्पुरूष खण्ड से भरत खण्ड तक	66-69
20.	अध्याय बीस	प्लक्षद्वीप से पुष्कर द्वीप तक	70-74
21.	अध्याय इक्कीस	सूर्य रथ का संचार	75-76
22.	अध्याय बाइस	सूर्य से लेकर सप्तर्षि मण्डल तक	77-80
23.	अध्याय तेइस	सप्त पाताल लोक	81-86
24.	अध्याय चौबीस	अट्ठाइस नरक	87-91

श्री बालाजी

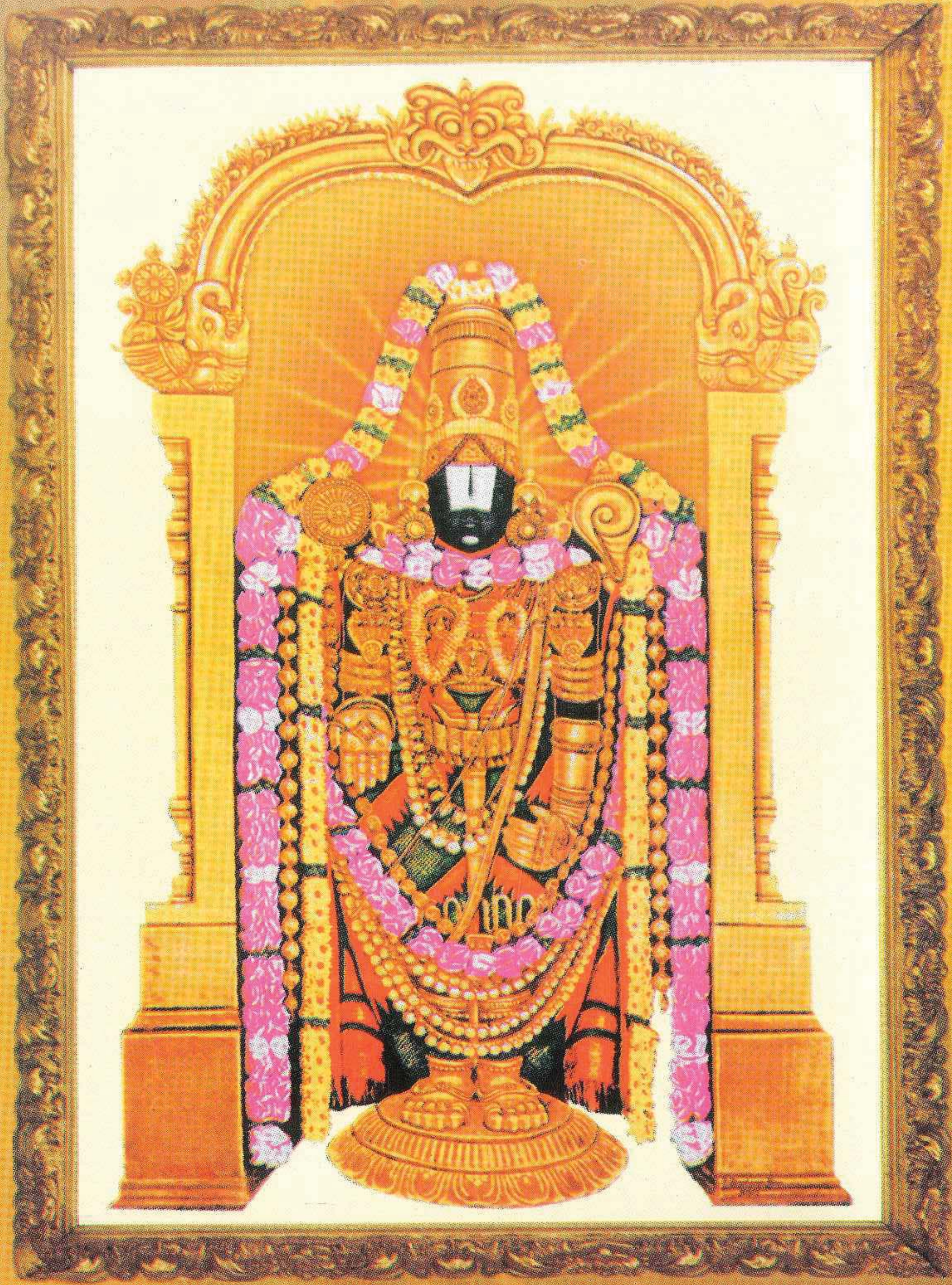

हमारे कुल देव विश्व के एकमेव बड़ा देव
श्री वेंकटेश्वर बालाजी के श्री चरणों में
यह ग्रन्थ समर्पित है

श्रीमद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मुलमहासंस्थान
पलिमारु श्री हृषीकेश शाखा पीठ के प्रधान देव
श्री सीता समेत श्री राम भगवान

संकट मोचन श्री पंचमुखी हनुमान

कपिमुखमपि पूर्वं दक्षिणे नारसिंहम् ।
गरुड़मुखमपि पश्चात् उत्तरे सूकरास्यम् ।
ह्यवदनमतोर्ध्वं चिन्तयेद् वायुसूनुम् ।
सकलदुरितहरं रामदूतं नमामि ।।

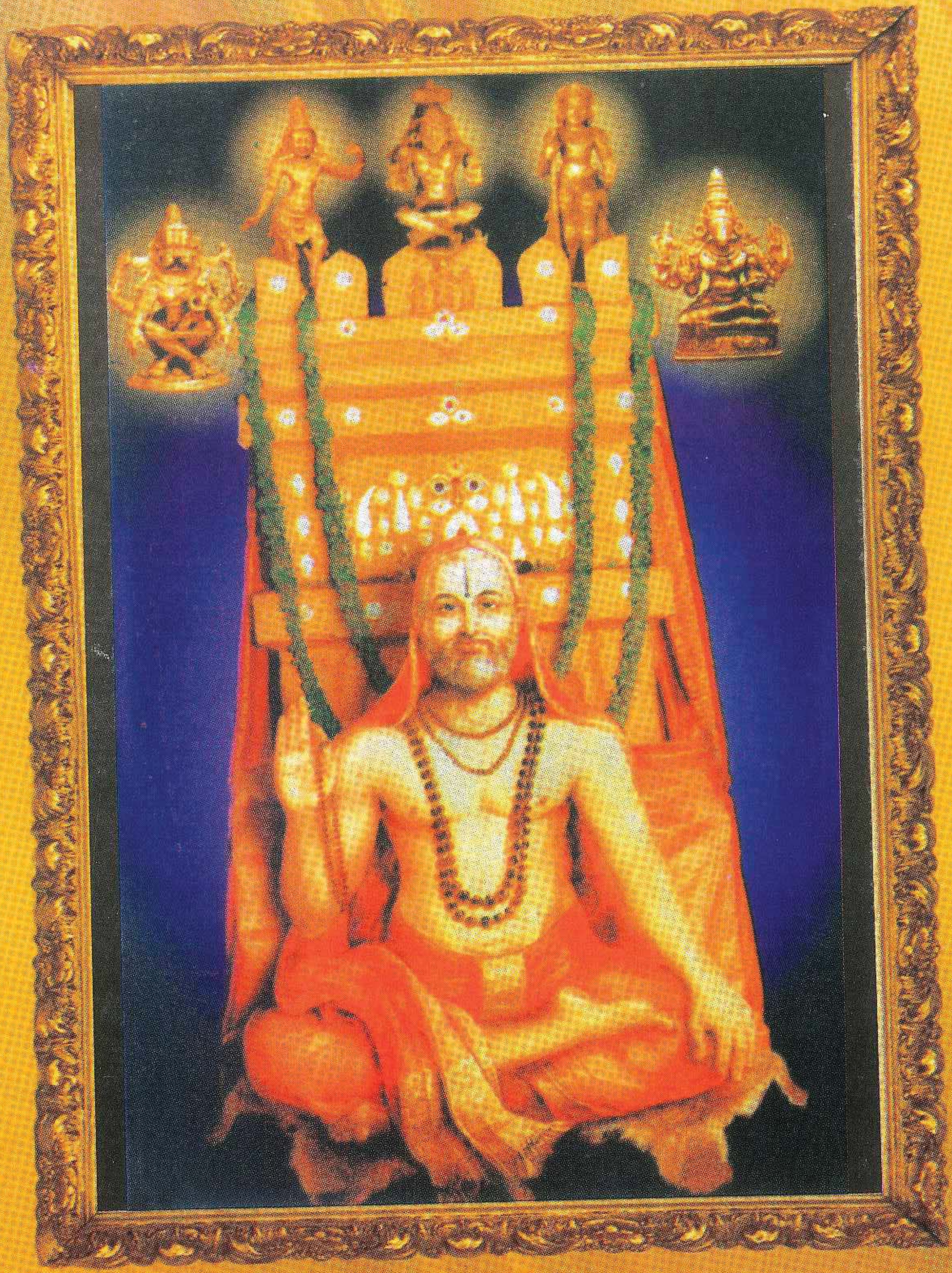

अपेक्षितप्रद मन्त्रालय के श्री राघवेन्द्र स्वामी जी

पूज्याय राघवेन्द्राय सत्यधर्मरताय च।
भजतां कल्पवृक्षाय नमतां कामधेनवे।।

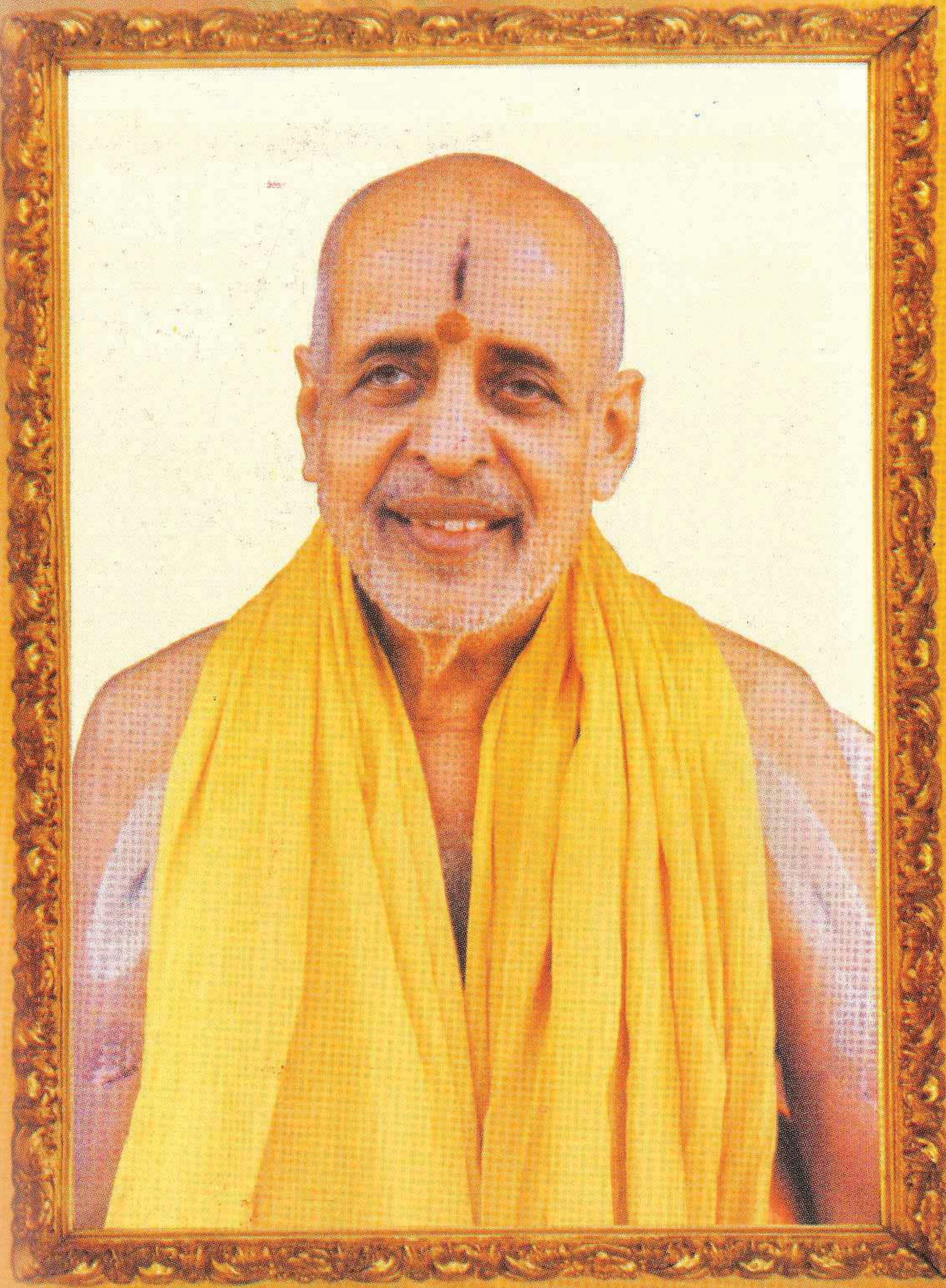

सर्वमान श्री १००८ श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी

ब्रम्हचर्य हरि प्रीति सुविद्या वादशालिनः
इष्टहर्तृन्नः विद्यामान्यान् मुनीन्नुमः

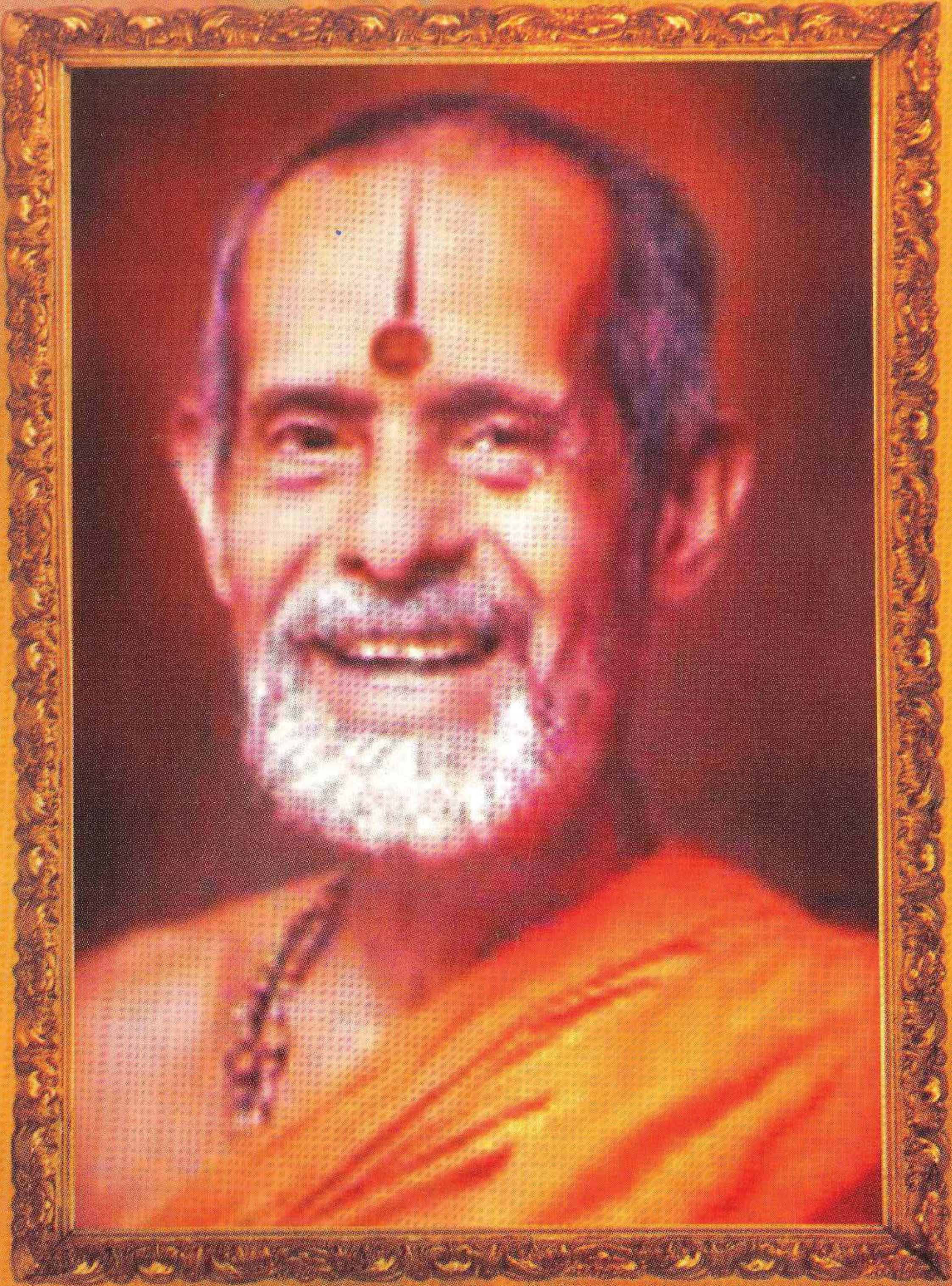

श्रीमद् जगद्गुरुमध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधीश
श्री १००८ श्री विश्वेशतीर्थ जी महाराज

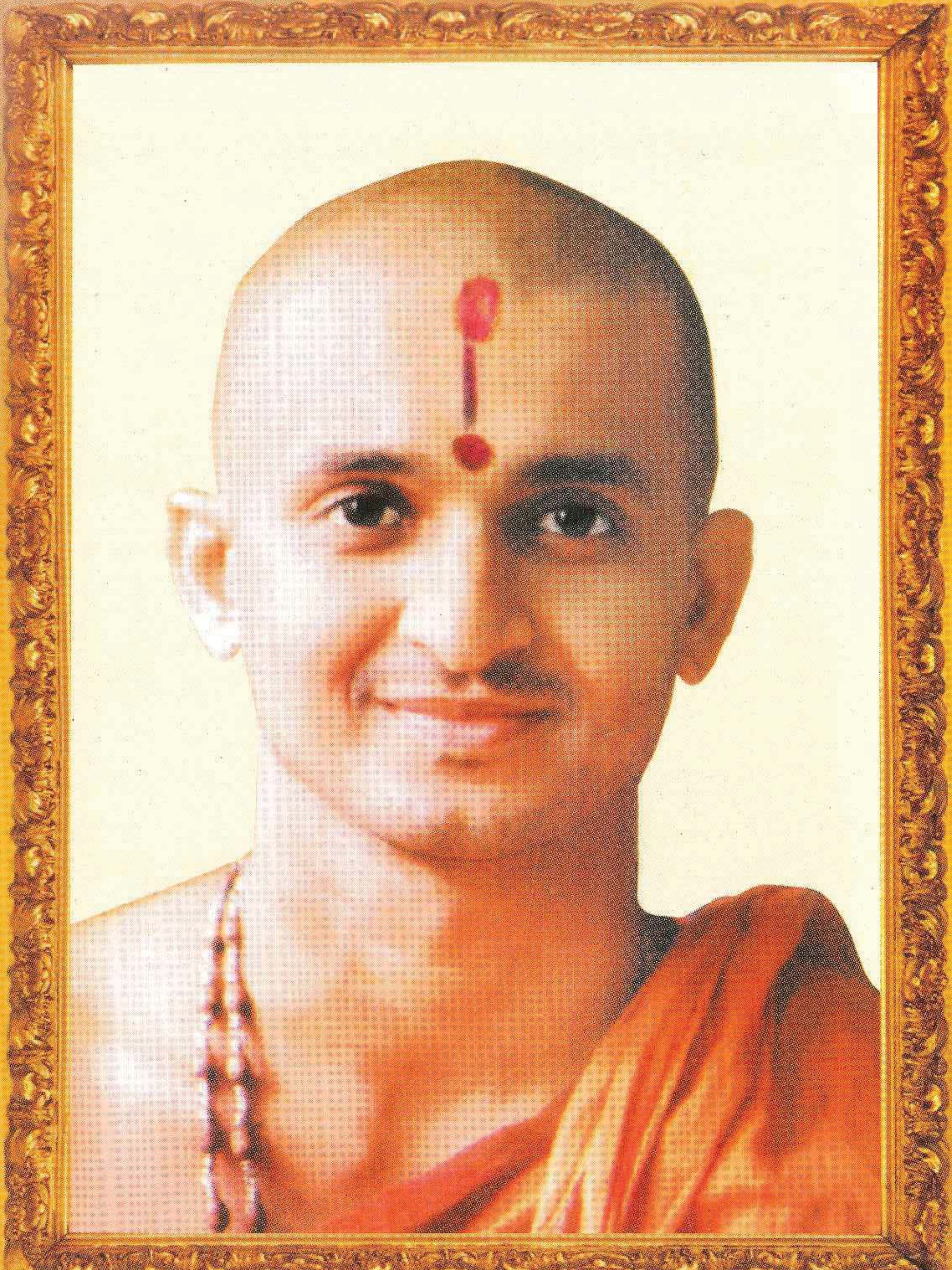

हमारे स्वरूपोद्धारक एवं दीक्षा गुरु
श्रीमद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधीश
श्री 1008 विद्याधीश स्वामी जी महाराज

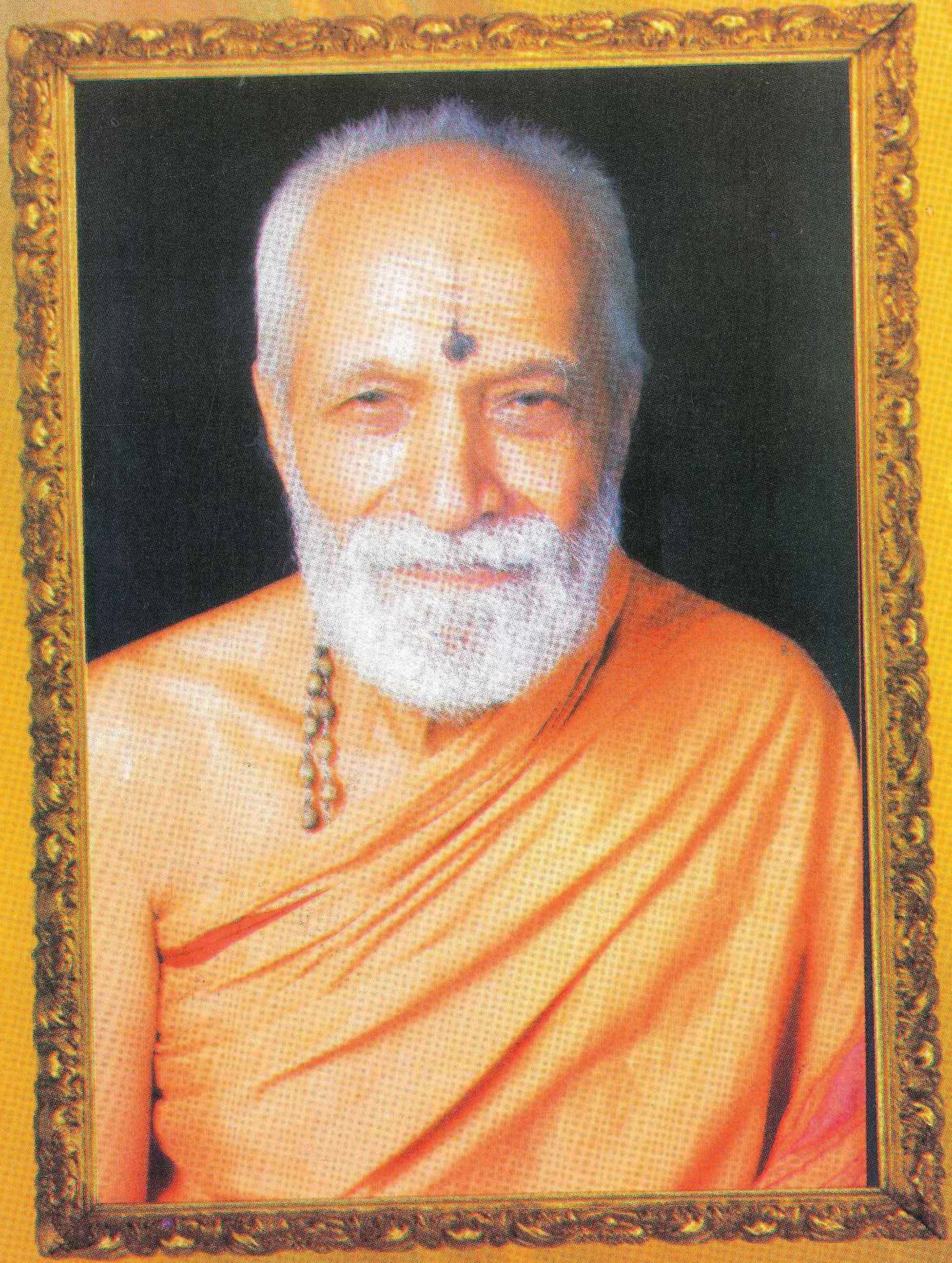

ग्रंथकर्ता प्रयागपीठाधिपति

श्री १००८ श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी महाराज

प्रस्तावना

हमारे गुरू जी पूर्व प्रयाग पीठाधिपति श्री 1008 श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी लगभग दस वर्ष पूर्व भागवत के पहले तीन स्कन्धों को अनुवाद कर प्रकाशित किए थे। उनका महाननिर्वाण आकस्मिक रीति से होने के कारण वह कार्य वही रूद्ध हो गया था।

हमारे दीक्षा गुरू उडुपि श्री पलिमारु मठ के पीठाधिपति जगद्गुरू श्री मध्वाचार्य श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महराज जी ने उस अवरूद्ध कार्य का पुनरारम्भ करने का आदेश दे दिया। मै अल्प शक्ति और अल्प ज्ञान वाला हूँ। किन्तु हमारे गुरूवर्य की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मै यह कार्य कर रहा हूँ।

विद्यावतां भागवते परीक्षा यह पूर्ण्यत: सत्य है। श्री गुरू जी के अनुग्रह ही मुझसे यह कार्य करवा रही है। दक्षिण भारत में जन्म लेने के कारण मुझे अच्छी हिन्दी नही आती। पण्डित न होने के कारण शास्त्र का गहन और विस्तृत ज्ञान प्राप्त नही है। केवल गुरू के अनुग्रह ही मुझे प्रेरणा दे रहा है। पाठक गलतियों को दिखाई दें, अगले अंक में सुधारने का प्रयास करेंगे।

भागवत के पंचम स्कन्ध में भूगोल की वर्णन आता है। यह वर्णन आज के विज्ञान के अनुसार स्कूल और कालेजों मे पढ़ाई जा रही भूगोल से मिलती नही। इसी को आधार रख कर अनेक बुद्धिवादि लोग कहते है कि भागवत में जो कहाँ गया है वह वास्तव से दूर है, काल्पनिक है। किन्तु भागवत एक सामान्य पुराण नही है, भगवान वेदव्यास जी ने इसे रचाया है और शिव जी के अवतार श्री शुकदेव जी ने इसका प्रकाशन किया है। हम गम्भीरता से भागवत में आने वाले ऐसे विषयों के बारें में गहन चिन्तन करने के बाद ही निष्कर्ष करना पड़ता है। इसी कारण **विद्यावताम् भागवते परीक्षा** यह वाक्य सर्वत्र प्रसिद्ध है।

पंचम स्कन्ध में आने वाले सप्त द्वीप के वर्णन मे जम्बू द्वीप के बारे में भागवत का जो अभिप्राय है उसको आधुनिक विज्ञान भी मानता है।

ऊपर दिखाने वाला भागवत के सामान्य अभिप्राय से हमे लगता है कि यह भू-मण्डल रोटी के तरह (कमल पत्र के तर) चपटा है। विज्ञान भवन में दिखाने वाला पृथ्वी फुटबाल के तरह गोल है किन्तु पृथ्वी ये दोनों तरह नही हैं। भागवत के अनुसार यह ब्रह्माण्ड (पृथ्वी मिलकर चौदह लोक) अंडे की तरह गोल है। उसमें पृथ्वी के समान चौदह लोक एक - एक अंग है, और वे दोनों बाजू में चपटा रह कर गोल है। हम सामान्य लोग इन दोनों में सत्य क्या है यह निर्णय नही कर सकते। कोई आदमी जा कर अपने आँखों से देख कर इसके बारे मे बोल नही सकता। ये सारे अनुमान है, केवल ऊहा मात्र है।

हम तपस्वी और विज्ञानी ये दोनों क्या कहते हैं इसका विमर्श करना चाहिए। हम किसके ऊपर विश्वास

रखे यह भी निश्चित करना चाहिए। हम उत्तर ध्रुव से दक्षिण ध्रुव तक किसी वाहन से जा सकते है। किन्तु विज्ञान इतना बढ़ जाने के बाद भी वैसे ही आगे बढ़ते हुए दक्षिण ध्रुव से उत्तर ध्रुव को जा नही सकते, यहद जाना ही है तो वापस आना पड़ता है। इसका उत्तर हमे अभी तक नही मिला है। हमारे विमान राकेट आदिअक्षांश के अनुसार रेखांश को काटते हुए जाते है। किन्त रेखांश के अनुसार अक्षांश को काटते हुए क्यों नही जा सकते। इन प्रश्नों का उत्तर मिलने के बाद ही यह समस्या खुल सकती है।

यदि अन्दाजों से निर्णय लेना है, तो किसको मानना है। सह समस्या आ जाती है। भागवत को स्वयं भगवान वेदव्यास जी लिखे हैं। भागवत के व्याख्यान कार, भाष्य कार और अनुवादक महोदय बड़े तपस्वी थे, व्रत निष्ठ थे, सिद्ध पुरूष थे और दार्शनिक थे। अपने साधना से सिद्धि पा कर वे जिस सत्य को देखा उसका अनुभव वे जीवन में कर लेते थे। ऐसे अनुभव सिद्ध सत्य को, तत्व को वे अन्य लोगों के हित में प्रचार प्रसार करते थे।

विज्ञानी लोग विशेष कर पाश्चिमात्य विज्ञानी लोग केवल भौतिक तत्वों के बारे में लौकिक उपकरों की सहायता से निष्कर्ष करते थे। अन्य विषयों में वे सामान्य लौकिक व्यवहारों में बद्ध थे। उनमें कई मांसाहारी और मध्य पानी भी थे।

हम अपने तपस्वी ऋषि मुनियों का हजारों वर्षों का तप प्रभाव से मिला हुआ अध्यात्म ज्ञान को छोड़ कर लौकिक लोगों का अन्दाजों पर पूर्ण भरोषा क्यों करें? इसका अर्थ विज्ञान से हमें मिल रहा ज्ञान को तिरसकार करने का नही है। हमारे इतिहास पुराणों में कहे हुए विषयों पर सघन चिन्तन करना होगा, पुराणों के अन्दर छिपा हुआ सही अर्थ को समझ लेना चाहिए पुराण रूपक होते है।, कथा रूप में हमे तत्व ज्ञान को समझाते है। इसको लक्ष्य में रखते हुए पुराणों को समझने का प्रयास हम करें।

मेरा विशेष भाग्य है कि मेरा यह अल्प कृति परम पुज्य श्री विश्वेश तीर्थ स्वामी जी पेजावर मठ इनके अस्सी वर्ष के मान वन्दन सभा में प्रकासित हो रहा है। मै पूज्य स्वामी जी के मार्ग दर्शन में अपना जीवन बीताया हूँ और चाहता हूँ कि आने वाले वर्षो में भी उनका मार्ग दर्शन निरन्तर मिलते रहे।

इस ग्रन्थ के अक्षर विन्यास किये हुए **श्री प्राणेश कुमार शुक्ल (एक्टर)** समय पर सुन्दर मुद्रण किए **वैष्णव प्रेस** के श्री पुरूषोत्तम और ज्ञाताज्ञत अन्य सहकारियों का हम आभार मानते है।

उडुपि
विकृति सं0 मार्गशिर्ष
शुक्ल पक्ष सप्तमी
12-12-2010

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वाजी महाराज

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

पंचम स्कन्धः

अध्याय - एक

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित शुकदेव जी से पूछते हैं हे महामुनि प्रियव्रत राजा स्वभाव से भगवद् भक्त है। उनको नारद जी का उपदेश भी मिला था। वे भगवान के ध्यान से ही आनन्द लेते थे। ऐसे होते हुये भी वे क्यों गृहस्थाश्रमी बने ? गृहस्थाश्रम सदाकाल कर्मों से बंधा हुआ है। बार बार कर्म करते हुये मनुष्य गृहस्थाश्रम में दु:ख मोल लेता है।।1।।

हे महामुनि! प्रियव्रत राजा जैसे संग रहित पुरुषों को गृहस्थाश्रम में बिल्कुल रति नही होती। वे इस संसार में आनन्द नही लेते।।2।।

हे ब्रह्मर्षि! श्रीहरि के पाद धूल में रहते हुये ध्यान का आनन्द लेने वाले महात्माओं को अपने कुटुम्ब पोषण भरण करने में आसक्ति नही रहती है।।3।।

पत्नी, पुत्र, घर-जायदाद में आसक्ति रखने वाला अन्तकाल में अपने बच्चों को राज्य देने के बाद उनको भगवान श्रीकृष्ण में निरन्तर भक्ति कैसी हुई। उनको मुक्ति कैसे मिली। यह मेरा सन्देह है।।4।।

श्री शुकजी बोलते हैं - हे राजा! अपने जो कहा है वह सही है किन्तु भगवान श्री हरि के चरणरविन्द के मकरन्द रस में प्रारम्भ से ही मन रखने वाला उत्तम भक्त के संग मिलने के बाद भगवद्भक्त और परमहंस व्यक्ति को अपने विहित और कल्याणकारी निवृत्ति मार्ग को वह कभी भी नही छोड़ता। वह राग-द्वेष इत्यादि विघ्नों से विचालित नहीं होता।।5।।

राजकुमार प्रियव्रत स्वभावत: परम भगवद्भक्त था। नारद जी की पाद सेवा से उसने निर्दुष्ट तत्व को पा लिया था। उसी कारण वह सन्यास लेने का इच्छा रखता था। किन्तु इस भूमण्डल की रक्षा करने और वेद में कहा गया क्षत्रि योचित श्रेष्ठ शौर्यादि गुण उसमें थे। इसीकारण उनके पिता स्वायंभुव महाराजा ने उनको राजा बनने के लिये आज्ञा दी। किन्तु राजा प्रियव्रत ने अपने इन्द्रियों के ज्ञान और सारी क्रियाओं को भगवान वासुदेव में चित्तैकाग्रता से समर्पण करने के कारण इस आज्ञा को माना। किन्तु पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना उचित नही है समझ कर अनिवर्य रूप से राज्याधिकार करने से उसके मन में भय था कि अमंगल विषयोपभोग से हरि स्मरण से वह वंचित हो सकता है।।6।।

तब सत्व रज तम: नाम के तीन गुणों से बद्ध हुए इस प्रपंच के बारे में चिन्तन करते हुये सारी जीवों के मन के

अभिप्राय को समझने वाले ब्रह्माजी वेद और मरीची इत्यादि ऋषियों से मिलकर सत्य लोक से प्रियव्रत के पास आ गये।।7।।

ब्रह्माजी ऊपर से उतरते समय में आकाश में चन्द्र के समान दिखते थे। रास्ते में विमान में बैठे हुये सारे देवताओं ने उनकी पूजा की। ब्रह्मदेव जी अपने वाहन से उतरकर प्रियव्रत राजा नारद जी के साथ गंध मादन पर्वत के जिस गुफा में रहते थे वहाँ आये। उनके प्रकाश से सारी गुहा कान्तियुक्त हो गयी। स्वायंभुव मनु भी वहीं बैठे थे।।8।।

नारद ऋषि ने हंसवाहन से आये हुये अपने पिता श्री को मनु और प्रियव्रत के साथ दंडवत प्रमाण करते हुये स्वागत किया।।9।।

हे राजा! **वेदों ने हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे** इत्यादि मंत्रों से ब्रह्मदेव जी के गुणपूर्णत्व और जीवोत्तमत्व की बहुत सी स्तुति की है। ऐसे आदि पुरुष भगवान ब्रह्मदेव ने मनु प्रियव्रत के दिये हुए सत्कार को ग्रहण करते हुये दया पूर्ण मन्द हास से प्रियव्रत को उपदेश देने लगे।।10।।

श्री भगवान ब्रह्मा जी बोलते हैं :-

हे पुत्र! सुनो, श्रीहरि ने हमें जो आदेश दिये हैं उसी शास्त्र विधि को मैं बताता हूँ। इससे तुम क्रोधाविष्ट नहीं होना। हम भगवान को ठीक तरह से नहीं जान सकते। मैं, रूद्र जी, नारद जी और तुम्हारे पिता हम सब अस्वतंत्र हैं। उनके आदेश का हमे पालन करना चाहिये ।।11।।

भगवान का आदेश कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता। अपने तप से विद्या से भी कोई भगवान को पूर्ण रीति से जान नहीं सकता। योग बल से या बुद्धि शक्ति से उनको समझ नहीं सकता। धर्म के बल से या अर्थ की सहायता से या दूसरों के बल से अपने स्वसामर्थ्य से भी हम उनको पूर्ण रीति से जान नहीं सकतें।।12।।

हे पुत्र! सुनो - इस संसार में रहने वाले सारे जीवों को जन्म लेना शोक, मोह, भय, सुख-दुःख भोगना कर्म करना, मरण ये सब अपने कर्म वश होकर करना पड़ता है। भगवान से कर्म संबंध युक्त होकर प्राप्त हुआ इस शरीर को भरण करना ही पड़ता है। कोई जीव इसके विरूद्ध जा नही सकता। इतनी स्वातंत्रता उसमें नही रहती है।।13।।

कर्म करने में भी हमें स्वातंत्र्य नही है। नत्थुनी वाले पशु जैसे मनुष्य के अधीन होकर भार ढ़ोता है वैसे हम सब श्रीहरि के वेद वाणी के अनुसार अपने वर्ण और आश्रम के उचित कर्मो से बन्धित होकर कर्म करते रहते हैं। इन्ही कर्मो से हमें श्रीहरि की पूजा करना है।।14।।

कर्म फल भोगने में भी हम अस्वतंत्र हैं। हमें अपने प्राचीन जन्म के प्रयत्न और कर्म के अनुसार श्रीहरि से जो जन्म मिलता है, उसी योनी में जन्मते हैं। भगवान जी सुख-दुःख देते हैं, उसी को हमें स्वीकार करना है। उन सुख-दुःखों का अनुभव हमें करना ही चाहिये। आँख न रहने वाला अन्धा जैसे आँख वाले का अनुसरण करते हुये चलता है वैसे ही हमें भगवान का अनुसरण करना अनिवार्य है।।15।।

अभिमान रहित होकर अज्ञान से दूर हुआ जीवन मुक्त को भी श्रीहरि की कृपा से प्राप्त हुए इस शरीर में रहते

हुये प्रारब्ध कर्म को अनुभव करना ही पड़ता है। किन्तु जन्मान्तर देने वाले त्रिगुण उसके मोक्ष के मार्ग में बंधि नही बनते।।16।।

इसी करण से हे राजा! तुम गृहस्थाश्रमी बनो। गृहस्थ होकर तुम भगवान की सेवा करो। गृहस्थ होने में विषयासक्ति बढ़ने की साध्यता है। किन्तु जो इन्द्रिय निग्रह कर नही सकता उसको वानप्रस्थ लेने के बाद भी यह भय रहता ही है। जिसमें इन्दिय निग्रह नही है उसके साथ कामादि अरिषड्वर्ग वास करते हैं। इन्दिय जय साधने वाले भगवान के ध्यान में सुख देखने वाले गृहस्थाश्रमी बनने के बाद अरिषड्वर्गो से बचने उपाय क्या है।।17।।

जो इन कामादि छः शत्रुओं को जीतना चाहता है उसे गृहस्थाश्रम में रहते हुए मिलने वाले विषयों के भोग में जितना मिलता है उसी से तृप्त होकर मन, बुद्धि और इन्द्रियों को निग्रह करते हुये अरिषड्वर्गां को जीतने का प्रयत्न करना चाहिये। इन्दिय जय से भगवान में भक्ति क़रते हुये उस भक्ति नाम के किला में आश्रय लेने के बाद बाहर के कामादि शत्रुओं से लड़ना चाहिये। उन शत्रुओं के ऊपर अपने वश में रखते हुये वे पुनः सिर न उठायें ऐसे उनका निग्रह करना चाहिये। जब कामादि शत्रु निर्बल होते हैं तब तुम गृहस्थाश्रम में निर्भय होकर अपनी इच्छा के अनुसार रह सकते हो।।18।।

राजा! तुम अब भी भगवान पद्मनाभ के पाद कमल नाम के किला के आश्रय में रहते हुये छः शत्रुओं को जीत चुके हो। तुम गृहस्थाश्रम में रहते हुये श्रीहरि की सेवा करते हुये श्रीहरि से दिए हुए भोगों का अनुभव करो। निरासक्त होकर सारे कर्म को हरि पूजा रूप से करते हुये उसका फल भोगो। अन्त में वैराग्य से सर्वसंग को त्याग करते हुये सन्यास आश्रम स्वीकार करो। सन्यास पाने के बाद योग साधन करते हुये अपने स्वरूप आनन्द रूप मोक्ष के सुख का अनुभव करो।।19।।

श्री शुकजी कहते हैं

ब्रह्मदेव जी के इस अनुग्रह पूर्ण आज्ञा को महाभगवद्भक्त प्रियव्रत ने स्वीकार किया। तीनो लोकों के गुरु ब्रह्मा जी के आदेश को पालन करते हुये उनके सामने अपने अल्पत्व को दर्शाते हुये दण्डवत् नमस्कार किया।।20।।

इससे स्वायंभुव मनु ने सन्तुष्ट होकर विधिपूर्वक ब्रह्मदेव जी की पूजा की। उस पूजा को स्वीकार करते हुये, प्रियव्रत नारदादि लोगों के देखते-देखते ब्रह्माजी अदृश्य होकर अपने स्थान जहाँ सरस्वती जी रहती हैं, और जो स्थान और लोगो के मन को भी नही मिलता है वैसे सत्यलोक को चले गये।।21।।

ब्रह्माजी से अपने मनोरथ को पाये हुये मनु महाराज नारद जी से अनुज्ञा पाकर प्रियव्रत को समग्र भूमण्डल के गौरव की रक्षा करने का अधिकार देते हुये, इस अतिदुस्तर विषय जल से पूर्ण इस संसार का परित्याग किये।।22।।

राजा प्रियव्रत भगवान की इच्छा के अनुसार गृहस्थ होकर राज्य कार्यभार सभालने लगे। वह राजा सारे योग्य लोगों के बंध नाश करने वाले महासमर्थ आदि पुरुष भगवान श्रीहरि के पाद कमलों का निरन्तर ध्यान करते हुये उस ध्यान के प्रभाव से मन के रागादि-दोषों से निवृत्त होकर जीवन मुक्त होते हुये भी बड़े लोगो की बात मानते हुये

उनके गौरव की लाज रखते हुये इस भूतल का सम्राट बने। सुव्यवस्थित रूप से अनुशासन किये।।23।।

राजा प्रियव्रत प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती के साथ विवाह किये। उनके शील गुण कर्म के अनुसार अपने रूप के समान दस श्रेष्ठ पुत्रों को जन्म दिये। इन सबसे छोटी ऊर्जस्वती नाम की एक पुत्री को भी जन्म दिये। प्रियव्रत के पुत्र के नाम क्रमशः अग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहू, महावीर, हिरण्यरेत, घृतपृष्ठ, सवन, मेघातिथि, वीतिहोत्र, कवि ये सारे प्रियव्रत के पुत्र थे। ये सारे अग्नि के नाम से प्रसिद्ध हुये।।24-25।।

इनमे कवि, महावीर, और सवन ये तीनो सन्यासी बनकर ब्रह्मविद्या का अभ्यास करते हुये घर छोड़कर वन को चले गये। विरक्त उन महाऋषियों ने जीव समूह के वासस्थान संसार भय से शरणगत भक्तों को आश्रय देने वाले भगवान श्री वासुदेव के श्रीचरणों का निरन्तर ध्यान करते हुये अखण्ड भक्ति योग के प्रभाव से अपने निर्मल हृदय में सब के स्वामी भगवान के रूप का साक्षात्कार पा लिये।।26-27।।

प्रियव्रत महाराज की और एक पत्नी थी। उससे उनको तीन पुत्र हुये। उनका नाम उत्तम, तपसा और रैवत था। वे क्रम से उत्तम, तापस और रैवत मन्वंतर के अधिपति बने।।28।।

कवि सहित अपने तीन बच्चों के सन्यासी बनने के बाद राजा प्रियव्रत एक सौ दस करोड़ वर्ष राज्यभार किये। पौरुषों में श्रेष्ठ अव्याहत पौरुष उसकी बाँहों में था। उन बाँहो से वह एक बार अपने धनुष से टंकार किए तो सारे धर्मद्रोही भाग जाते थे। ऐसे रहते हुये राजा अपनी रानी बर्हिष्मती के प्यार से मोहित होकर उसी के आनन्द में आनन्द पाते हुये तत्वज्ञान से वंचित रहने लगे। उनकी हरि निष्ठा उदात्त थी, किन्तु अज्ञ जैसे वह रानी के साथ सुख भोगने लगे।।29।।

भगवान सूर्य देव मेरु पर्वत की परिक्रमा करते हैं। इस परिक्रमा से वे सारे जगत को प्रकाश देते रहते हैं। किन्तु फिर भी विश्व के आधे हिस्से को अंधेरे में रहना पड़ता है। इस अंधेरे के कारण उस प्रदेश में तामसी शक्ति बढ़ती जाती है। भगवान की उपासना से अतिमानुष शक्ति को पाया हुआ राजा इसको सहन न कर सका। वह रात को प्रकाशित करने की इच्छा रखते हुये सूर्य के समान वेग से चलने वाले ज्योतिमय रथ से सूर्य के पीछे, सूर्य के साथ-साथ सात बार मेरु पर्वत की परिक्रमा की।।30।।

उस समय उनके रथ के पहियों से निर्माण हुये गड्ढ़े से सात समुद्र बन गये। एक एक समुद्र के तट पर एक एक द्वीप बने। इस रीति से सात समुद्र और सात द्वीपों का निर्माण हुआ। (समुद्र के तट पर जहाँ जहाँ प्रियव्रत का रथ जाता था वहाँ वहाँ गड्ढे बनकर विस्तृत समुद्र बन गये। इसी को समुद्र का निर्माण कहते हैं ।।31।।

जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौं, चशक, पुष्कर ये सात द्वीपों के नाम हैं। उनका विस्तार सुनो। पहले के बाद दूसरा जो आता है वह क्रमानुसार दुगुना विस्तार वाले होते हैं। ये सारे द्वीप सात समुद्रों के चारों और घेर कर रहते हैं।।32।।

सात समुद्र क्रमानुसार इस प्रकार हैं - पहले वाला नमकीन समुद्र बाद में इक्षुरस वाला आगे मध्य का बाद में घी का उसके बाद दूध, दही और पीने योग्य जल वाले हैं। ये सात द्वीपों के बीच बीच में हैं। अपने में रहने वाले

द्वीप के समान विस्तार वाले हैं। प्रत्येक क्रमानुसार प्रत्येक प्रत्येक होते हुये एक एक द्वीप को बाहर से घेर लिये हैं। प्रियव्रत महाराज अपने विधेय अग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहू, हिरण्यरेतस, घृतपृष्ठ, मेघातिथि और वीतिहोत्र नाम के अपने सात पुत्रों को क्रमशः एक एक द्वीपों का राजा बना दिया।।33।।

अपनी पुत्री ऊर्जस्वती को शुकाचार्य जी से विवाह कर दिया। उनको देवयानी नाम की एक पुत्री जन्म ली। श्रीहरि भक्तों ने भगवान के पाद धूलि का सेवन करने से काम, क्रोधादि षड्रिपुओं को जीत चुके हैं। प्रियव्रत राजा भी श्रीहरि भक्त होने के कारण उसने भी इन शत्रुओं को जीत चुका था। चारों वर्णों से दूर रहने वाला एक वर्णबाह्य व्यक्ति भी एक बार भी श्रीहरि का नाम स्मरण करे तो उसका सारा पाप नाश होता है।।34-35।।

अत्यन्त बलशाली प्रियव्रत ने देवर्षि नारद जी की पाद पूजा करने के फल के कारण इस संसार से वैराग्य पा लिया। भगवान की इच्छा के अनुसार प्राप्त सत्वादि गुणकारी विषय पदार्थों के संग से उसको कुछ भी सुख का अनुभव नही होता था। तब उसने कहा।।36।।

अरे मैंने कितनी गलती किया। अभी तक मैं इस संसार के सुख-दुखों को भोगते हुये विषयभोग नाम के अन्धकारमय कुंऐ में रहता था। मेरी इन्दियाँ मुझे इस संसार में अभिमान को उत्पन्न करती थी। अब बस है। मैं आगे से स्त्री का शिकार नही बनूंगा। अभी तक के मेरे जन्म के लिये धिक्कार रहे।इस रीति से राजा स्वयं अपनी निन्दा करने लगा।।37।।

सबसे श्रेष्ठ भगवान नारायण के अनुग्रह से उसको परमतत्व का अनुभव होने लगा। उससे उसको स्वरूपभूत आनन्द का आविर्भाव होने लगा। वह अपने पुत्रों को उनके अनुसार राज्य का हिस्सा दिया। मृत शरीर को जीव जितनी सरलता से छोड़ता है, उतनी ही सरलता से अपने साम्राज्य, रानी और राज्याधिकार को छोड़कर वैराग्य पाकर भगवान के मनोहर लीलाओं को और उनके सामर्थ्य को अपने हृदय में भरते हुये भगवन नाम का संकीर्तन करते हुये नारद मुनि से दत्त निवृत्ति मार्ग को पकड़ कर सन्यास ले लिया।।38।।

प्रियव्रत राजा के गुणगान इन तीन श्लोको से किया जाता है।

राजा प्रियव्रत से किए हुए महत् कार्य को भगवान को छोड़कर और कोई कर सकता है क्या? रात्रि के अन्धकार को नाश करने वाला और कौन हो सकता है? अपने रथ के पहियों से उसने सात समुद्रों का निर्माण किया है। भूमि को सात द्वीपों में विभाजित किया है। नदी, पर्वत और अरण्यों का निर्माण करते हुये समस्त जीव राशि के सुख के लिये आवश्यक नियमों को, सातों द्वीपों में बनाया है। पताल लोक, देवलोक और भू-लोक के सकल ऐश्वर्य को और योग सामर्थ्य से मिलने वाला सकल भोग पदार्थों को नरक समान मानते हुये केवल विष्णु भक्तों का संग को ही चाहता है।।39-40-41।।

।।यहाँ भागवतमहापुराण में पाँचवे स्कन्ध में पहलाअध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - दो

श्री शुकजी कहे

पिता प्रियव्रत महाराज के राज्यभार से निवृत्त होने के बाद उनके आदेश को मानते हुये अग्नीध्र ने जम्बू द्वीपवासी प्रजा लोगों को अपने पुत्रों के समान पालन करने लगा।।1।।

वह पितृलोक पाने के लिये सत्पुत्रों की कामना करते हुये देव स्त्रियों के लिये विहार स्थल मंगल पर्वत की गुफाओं में रहते हुये सारे प्रजाओं के स्वामी भगवान ब्रह्मदेव जी के लिये पूजा सामग्री लाकर एकाग्र मन से तप करने लगा।।2।।

इसको जानकर आदिपुरुष भगवान ब्रह्मदेव अपनी सभा में गाने वाली पूर्वचित्ती नाम की अप्सरा को भेजे।।3।।

वह अप्सरा अग्नीध्र के आश्रम के उपवन में संचार करने लगी। वहाँ अनेक रमणीय वृक्ष थे। उनकी टहनियों पर लतायें फैली थीं। उन वृक्षों में मोर और कोयल बैठकर सुन्दर श्रुतियों में गान गाती थीं। उस श्रुति के अनुसार कारण्डव, कलहंस इत्यादि पक्षियाँ ने सुन्दर कलरव करते थे। उन आवाजों से भरा हुआ सरोवर कमलों से भरकर प्रतिध्वनि करता था। ऐसे उपवन में वह अप्सरा इधर उधर चलने लगी।।4।।

वह अपने कोमल पाँव से धीरे-धीरे चलती तो उसके पाँव में बंधी हुई घुघुरू सुमधुर आवाज करती थी। उस ध्वनि से आधा खुला हुआ कमल के समान आँख वाला राजा अग्नीध्र उस आवाज से अपनी समाधि से उठकर उस अप्सरा को देखा।।5।।

अपनी चाल-चलन और विनयभरी आँखों से देखती हुई वह अप्सरा अपने सुमधुर बातों से राजा को क्या सारे देवताओं के भी आँख और मन को आनन्द देने वाली बन गयी। देखने वाले के मन में काम को प्रवेश करने के लिये रास्ता बनते थे। ऐसी अप्सरा के समीप में फूलों के ऊपर बैठने वाले भौंरे जैसे फूलों को आघ्राण करते हुये वह राजकुमार की दृष्टि में आ गयी।।6।।

उसके मुख से बाहर आने वाली सुगन्ध को भौंरे सूंघ कर झुण्डों में उसके मुख के पास उड़ने लगे। इससे वह जल्दी-जल्दी आगे बढ़ी। इस कारण से उसके स्तन, केशपास, हार और कटिबंध हिलने लगे। उनको देखकर राजकुमार काम वश होकर जड़ जैसे बनकर उसी की ओर मुख करके देखने लगा।।7।।

अग्नीध्र कहता है -

हे देवी! आप कौन हो। आप मुनि जैसी हो। इस पर्वत के ऊपर आप क्यों आई। आप भगवान की माया रूप हैं क्या ? बोलो ये तुम्हारी भौहें मदन के धनुष जैसी हैं। उनको क्या तुमने आत्म रक्षा के लिये रखा है अथवा

हमारे जैसे मृगों का शिकार करना चाहती हो।।8।।

हे पूज्या! ये आपके आँखों का दर्शन नही है। वे तीक्ष्ण धारा वाले बाण हैं। वे कमल सदृशय सुन्दर हैं। अत्यन्त शोभायमान हैं। तुम इन बाणों को इस जंगल में किसके ऊपर प्रयोग करने वाली हो। मैं इसको नही जान सकता। तुम अपने पराक्रम को जड़ बुद्धि वाले हमारे ऊपर प्रयोग न करते हुये हमारी क्षेम की रक्षा करो।।9।।

ये जो भौरे आ रहे हैं वे भौरे नही हैं, आपके शिष्य हैं। उनका गुंजन वेद पाठ जैसे लगता है। तुम्हारे चारों ओर वे चलते हुये सामवेद का पाठ कर रहे हैं। तुम्हारे बालों से गिरे हुये पुष्पों से ये सारे ऋषि शिष्य सदृश समूह वेदों का पाठ कर रहे हैं।।10।।

हे मुनि! तुम्हारे चरणों में जो घुंघुरू हैं वे घुंघुरू नही हैं। वे टिट्टिभ पक्षी हैं। उनसे सुन्दर गाने आते हैं। उस गान में अर्थ नही होता। बात करना हमें दिखता नही किन्तु बातें सुनते हैं। तुम पीताम्बर धारण नहीं की। उसके ऊपर कटिबंध नही है। तुम्हारे नितम्बों में कदंब कुसुम की कान्ति प्रकाशित होती है। उसके ऊपर हमें एक तेजो मण्डल दिखता है। तुम्हारा वल्कल वस्त्र कहाँ है?।।11।।

हे मुने! आपकी छाती में जो दिख रहे हैं वे स्तन नहीं हैं। वे दो सींग हैं। बहुत सुन्दर दिखते हैं। उनमें आप ने क्या भरा है। किसी अपूर्व वस्तु से भरे हैं क्या? आपकी कटि बिल्कुल छोटी है तो भी तुम इतने बड़े स्तनों का भार संभाल रही। मेरी आँख उनमें बैठ गयी है। उन सींगों के ऊपर तुमने क्या लाल-लाल सुगन्ध का लेप की है। उसकी सुगन्ध से मेरा आश्रम भर गया है।।12।।

हे मित्र! अपने लोक को हमे दिखाओ। वह लोक अलौकिक होगा। तुम वहाँ की होने के कारण दो सींगो को धारण किया है। वे हमारे जैसे आदमियों के चित्त को हिला रहे हैं। मुख में तुम सही बातें और मन्द हास रखी है। ये सारे मुझे बहुत अद्भुत लगता है।।13।।

हे प्रिये! तुम क्या खाती हो ? मुझे लगता है कि तुम तो अन्न नही खाती हो। अन्न विष्णु का न खाने वाला अंश है। तुमने विष्णु जैसा अपने कानों में मकर कुण्डल धारण किया है। तुम सामान्य जैसे नहीं दिखती हो। तुम्हारा मुख एक सरोवर जैसा दिखता है। उनमें तुम्हारी आँखें मछली जैसी लगती हैं। तुम्हारा मुख हंसो के समान शोभायमान है। आपके दांतो की पक्ति बहुत सुन्दर है। आपके सिर में हमें बाल नही दिखता। वे भौहे जैसे शोभायमान हैं।।14।।

तुम अपने कर-कमलों से मारने वाली यह गेंद चहुँ दिशा में चलते हुये तुम्हारी आँखों को और चंचल कर रही हैं। स्त्री लम्पट वायु देव तुमसे आकृष्ट होकर जोर से हवा चला रहे हैं। इससे तुम्हारी उत्कृष्ट जटा इधर उधर हिल रही है। तुम्हारे कपड़े भी हिल रहे हैं। यह तो अच्छा नही लगता।।15।।

हे तपोधन! तुमने तप करने वालों के तप को नाश करने वाला यह मोहक रूप धारण कर इस भूमि में आकर क्या तप कर रही हो। तुम ये तो मेरे साथ तप करो अथवा तप छोड़कर मेरे साथी बनो। इसी से तुम्हारा कल्याण होगा।।16।।

हे मुने ! मैं तुमको छोड़ने वाला नही हूँ । मेरी आँख और मन तुम्हारे में लगे हैं। तुम भगवान की कृपा से ही मुझे मिली हुई मेरी प्रिया हो। ये मोहक सींगों वाली, तुमको छोड़कर मैं रह नही सकता। तुम मुझे जहाँ चाहे वहाँ ले जा सकती हो। मेरा मन तुम्हारे लिये विधेय हो गया है। तुम्हारे दास बने हुये उन भौओं को दूर हटाओ। मैं तम्हारे साथ विवाह करना चाहता हूँ।।17।।

श्री शुक जी कहते हैं -

इस रीति से स्त्री वशीकरण कला में चतुर अग्नीध्र ने प्रणय सम्भाषण करते हुये चातुर्य से सांकेतिक भाषा मे बोलते हुये उस अप्सरा को अपनाया।।18।।

वह अप्सरा भी वीराधिवीरों के नायक उस अग्नीध्र के बुद्धि, काम, शील, रूप, विद्या, वय, कान्ति, और औदार्य आदि गुणों से लुब्ध होकर जम्बूद्वीप के राजा के साथ एक हजार वर्षो तक भोग किया।।19।।

राजा अग्नीध्र उस अप्सरा से नाभि, किंपुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरू, भद्राश्व, केतुमल नाम के नौ पुत्रों को पा लिया। वह अप्सरा पूर्वचित्ति प्रत्येक वर्ष एक एक बच्चे को जन्म दिया। उसके बाद उन बच्चों को राजा के साथ छोड़ते हुये वापस ब्रह्मदेव जी के पास चली गयी।।20।।

अग्नीध्र का एक पुत्र माँ की कृपा से बहुत बलशाली था। राजा अग्नीध्र ने जम्बूद्वीप को नौ भाग करते हुये अपने बच्चों का नाम रखते हुये उनके अधिकार में दे दिया। वे नौ पुत्र राज्य भार किए।।21।।

राजा अग्नीध्र अप्सरा के प्यार को न भूलते हुये उसके साथ रहने की इच्छा करते हुये श्रीहरि की आराधना कर जहाँ वह अप्सरा थी उसी लोक को प्राप्त किया। उस लोक में पितृ लोग विहार करते हैं।।22।।

अपने पिता के चले जाने के बाद वे नौ भाई क्रमश: मेरू देवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रामा, श्यामा, नारी, भद्रा और देवी नाम की मेरू कन्याओं से विवाह किये।।23।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत् महापुराण में पंचम स्कन्ध का दूसरा अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - तीन

श्री शुक मुनि जी कहते हैं -

अग्नीध्र पुत्र नाभिराजा और उनकी पत्नी मेरूदेवी को बच्चे नही हुये। राजा पुत्र कामना करते हुये भगवान यज्ञ पुरुष की एकाग्रचित से आराधना की।।1।।

वह राजा श्रद्धा से, निर्मल मन से यज्ञ करते समय प्रवर्ग्य कर्म किये। (उबलते हुये घी में गाय और बकरी के दूध को मंत्र सहित मिलने के काम को प्रवर्ग्य कर्म बोलते हैं।) उस समय द्रव्य, देश, काल, मंत्र, ऋत्विज और दक्षिणा वेद के अनुसार ये सारे साधन ठीक तरह से रहें। उस समय अलभ्य भगवान नारायण भक्त वात्सल्य से सम्प्रीत होकर भक्त जनों का अभीष्ट पूर्ण करने वाले उनकी इच्छा से आकृष्ट होकर मन आँखों के लिये आनन्दकारी हुये अपना सुन्दर अङ्गैर स्वतंत्र रूप को दर्शाये।।2।।

पुरुषोत्तम भगवान श्रीनारायण सोने के समान शरीर धारण किये थे। चार भुजाओं से शोभित थे। रेशम के पीतम्बर को धारण किये थे। उनकी छाती के ऊपर श्रीवत्सलांछन शोभायमान था। शंख पद्म वनमाला धारण किये थे। कौस्तुभणि को और चक्र गदाओं को धारण किये थे।।3।।

उज्ज्वल प्रकाश वाला श्रेष्ठ रत्न खचित किरीट धारण कर कुण्डल, कंकण, पेटीबंध, बाजूबंध और घुंघुरूओं से उनका शरीर शोभित था। उस भगवद् रूप को देखकर ऋत्विज, सदस्य और यजमान हर्ष से खड़े हो गये। सिर झुकाकर स्तुति करने लगे।।4।।

सबसे पूज्य भगवान श्रीहरि हम आपके सेवक हैं। हम बार बार आपकी पूजा करते हैं। आप कृपया इसको स्वीकार करो। हम आपका स्तोत्र करने में अशक्त हैं। **नमो नमः** यह छोड़कर हम कुछ बोल नही पाते इसको भी हमें सज्जन लोगों ने दोहराने के लिये बोले हैं। इस प्रकृति के गुण दोष युक्त प्रपंच में रहने वाले हम अप्राकृत आपके रूप को कैसे जान सकते हैं। वह हमारे बुद्धि के परे है। इसलिये असमर्थ मानव प्रकृति पुरुष से विलक्षण और सर्वशक्तिमान आपका नाम रूप का वर्णन कैसे कर सकता है।।5।।

सारे जन समूहों के पाप को नाश करने वाले परममंगलकर आपके श्रेष्ठ गुण समूह नाम और रूपों में केवल कुछ को अल्प मात्रा में हम बोल सकते हैं।।6।।

हे सर्वोत्तम! सेवक लोगों भक्ति से उच्चारण करने वाले छोटे से स्तोत्र मंत्रों से आप सन्तुष्ट होते हैं। आप ही ने कहा है पत्र, पुष्प, पानी, तुलसी और दुर्व से पूजा करने से आप सन्तुष्ट होते हैं।।7।।

हे भगवान! भक्ति के बिना सारे उत्कृष्ट साधन होते हुये भी आप दर्शन देने वाले नही हे।। हमारे वेदोक्त यज्ञ ा से आपके लिये कोई प्रयोजन नही है। यह हम ठीक तरह से जानते हैं।।8।।

आप सदाकाल स्वरूपभूत पूर्ण सुख को ही अनुभव करते रहते हैं। आप प्रभु हैं, पुरूषार्थों को चाहने वाले हमको आपकी आराधना हमारे सभी अभीष्टों को पूर्ण करने वाली है।।9।।

हम अपने श्रेय को ठीक तरह से जानने वाले नही हैं। हे परम पुरुष! आप अपनी अपार करूणा से हमें स्वरूपानन्द मोक्ष के साथ साथ हमारे इच्छित पुरुषार्थों को देने के लिये यहाँ आये हैं। पूजा से देवतागण सन्तुष्ट होते हैं। आप भी सन्तुष्ट होकर इस यज्ञशाला में प्रकट हुये हैं।।10।।

अत्यन्त पूज्य हे श्रीहरे! इस राजर्षि नाभिराजा की यज्ञशाला में वर देने में श्रेष्ठ तथा भक्तजनों को दर्शन देने वाले आपको हम अपनी श्रेष्ठ इच्छाओं की पूर्ति के लिये आराधना कर रहे हैं।।11।।

वैराग्य से जलने वाली ज्ञान अग्नि में रागों से उत्पन्न हुए सारे मलों को जलाकर आप में योग्य भक्ति भाव रखते हुये आपके ध्यान में ही सुख देखने वाले मुनियों को भी गिनती करने के लिये असाध्य गुण समूह वाले हे भगवान उच्चारण मात्र से सारी सम्पदाओं को देने वाले भगवान, आपका नाम बहुत श्रेष्ठ है।।12।।

चलने में, गिरने में, अगड़ाई लेते हुये, छीकने में, ज्वर में, मरण अवस्था में ऐसी अनेक अवस्थाओं में हम आप के श्रीचरणों का स्मरण नही कर सकते। हम चाहते हैं कि सारे दु:खों को दूर करने वाले आपके श्रेष्ठ गुण वाले नामों का स्मरण हमे सदाकाल प्राप्त हो।।13।।

हम और एक प्रार्थना आप से करते हैं। ये नाभिराजा पुत्र को चाहते हैं। आपके सदृशय एक पुत्र की कामना करते हुये ऐहिक और पारमार्थिक सुख देने वाले आपकी शरण में आए हैं। वे पुत्र सन्तति को ही अपना पुरूषार्थ मानते हैं। जो चाहे उनको देने वाले आपके सामने उनकी यह दारिद्रपूर्ण इच्छा है।।14।।

हे अपराजित भगवान! आपके अनुग्रह के बिना किसी को इस बन्धक शक्ति से मुक्ति नही मिलती। तत्व निश्चय करने की सामर्थ्य नही रखने वाला महाराजा आपके ध्यान में सदाकाल रत नही हो सकते हैं। ये कठिन विषय भोगों में मन रखने के कारण यह महात्माओं की पाद सेवा नही कर सकते हैं।।15।।

हे सर्वकर्त्ता, हे भगवान, इस राजा के सन्तति लाभ के लिये हम मन्दमति लोग आपको यहाँ बुलाये हैं। हे देवदेव हम आपका अपचार किये हैं। अज्ञानियों का यह अपराध आप पूर्ण रूप से क्षमा करें।।16।।

इस रीति से ऋत्विजगण गद्य, पद्य से भगवान का स्तोत्र किये। भारतवर्ष के अधिपति नाभिराजा भी उनको दंडवत् प्रमाण किए। देवोत्तम भगवान कारूण्य पूर्ण स्वर में बोलने लगे।।17।।

श्रीभगवान बोले - हे ऋषिवर्य! आप कभी भी असत्य नही बोलते। आप अत्यन्त दुर्लभ वर को मांगे हैं। आप मांगते हैं कि इस नाभिराजा को मेरे सदृश एक पुत्र हो। मैं सर्वोत्तम हूँ। मेरे समान और एक नही हो सकता। सर्वोत्तम कभी भी दो नही हो सकते। अपने समान केवल मैं ही हूँ। ब्राह्मणों का वाक्य असत्य नही होना चाहिये क्योंकि ब्राह्मण मेरे मुख से जन्म लिये हैं।।18।।

इसीकारण मेरे समान और न होने से मैं ही एक अंश से नाभिराजा की पत्नी से अवतार लेता हूँ।।19।।

इन वाक्यों को मेरू देवी सहित सारे लोग सुन रहे थे। उसी समय भगवान अन्तर्धान हो गये।।20।।

हे राजा परीक्षित! यज्ञ में महर्षियों से प्रार्थित भगवान ज्ञानी, ऊर्ध्वरेतस्क, दिगम्बर सन्यासी धर्म को विश्व को दिखाने की इच्छा से नाभिराजा को सन्तोष देते के लिये उनकी पत्नी मेरू देवी में शुक्रल श्रोणित सम्बन्ध के बिना ही निर्मल, चिन्मय शरीर से अवतार लिये।। 21।।

।।यहाँ श्रीमद् भागवत महापुराण का पंचम स्कन्धम में तीसरा अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - चार

श्री शुकदेव जी बोले - नाभिराजा के पुत्र होकर अवतार लिये हुये श्रीहरि अपने जन्म से ही हाथ और पांवों के पंजे में बज्र और अंकुश इत्यादि भगवत् लक्षण युक्त होकर अवतार लिये। इन लक्षणों से उनके अवतार को जानना बहुत सुलभ था। समानता, शान्ति, वैराग्य और ऐश्वर्य से युक्त उनका स्वभाव दिन प्रतिदिन प्रवर्धमान होता रहा। मंत्री, पुरोहित, प्रजायें, ब्राह्मण और देवता भी उनके राज्य शासन में अभिलाषा रखते थे।।1।।

उनका शरीर बहुत श्रेष्ठ था। कवियों ने उनके बारे में बहुत से श्लोकों को रचा कर उनका गुणगान करते थे। सहन शक्ति, बल, यश, वीर्य, शौर्य इन गुणों से युक्त उनको उनके पिता ऋषभ नाम जो रखे वह बिल्कुल अन्वर्थक था। ऋषभ के साथ स्पर्धा करते हुये भगवान इन्द्र देव ने उनके देश में पानी नही बरसाये। इसको जानकर योगेश्वर भगवान ऋषभ देव हंसते हुये अपने स्वरुप सामर्थ्य से अंजना नाम के अपने देश में पानी बरसाये।।2-3।।

अपनी इच्छा के अनुसार पुत्र होने के कारण नाभिराज को बहुत आनन्द हुआ। अपने संकल्प के अनुसार मानव शरीर के समान दिखने वाले शरीर को धारण किया हुआ पुराण पुरुष भगवान ऋषभ देव को उनकी मोहक शक्ति के वश होकर अपना पुत्र मानते हुये भ्रमाधीन राजा उनको बेटे, पिता बोलते हुये बहुत प्यार करते थे।

प्रजाजन, मंत्री और पुरोहित आदि अपने सारे देशवासियों का प्यार अपने पुत्र के साथ होने के कारण नाभिराजा ने धर्म की रक्षा करने हेतु पुत्र को राज्याभिषेक करते हुये उनको ब्राह्मण के वश में रखकर स्वयं मेरू देवी के साथ बदरिकाश्रम गये। वहाँ इन्द्रिय निग्रह करते हुये प्रसन्नचित्त होकर महातप और समाधि योग से नर-नारायणरूपी भगवान वासुदेव की उपासना करते रहे। समय आने पर उन्हीं के जैसे जनन-मरण रहित तत्व रूप महिमा को पा लिये।।4।।

हे राजा परीक्षित उनके बारे में नीचे के ये दो श्लोक कहे जाते हैं।।5।।

राजर्षि नाभिराजा के उन लोकोत्तर कर्म को और कौन कर सकता है। उनका पुण्य विशेष है, उसके शुद्ध कर्म के कारण भगवान श्रीहरि स्वयं उनके पुत्र होकर जन्म लिये।।6।।

नाभिराजा से बढ़कर ओर कौन ब्राह्मण प्रिय हो सकता है क्योंकि उन्होने दान-दक्षिणा जो दिये हैं और जिन पूजा द्रव्यों से पूजा की। उसी के कारण ब्राह्मणों ने उनके यज्ञ में मंत्र बल से यज्ञेश्वर नारायण को प्रत्यक्ष प्राप्त कर लिया।।7।।

भगवान ऋषभ देव अंजनाभ वर्ष को (भगवान ऋषभ देव अंजन जैसे काले थे। उनके प्रदेश को अंजनाभ वर्ष कहते हैं अपनी कर्म भूमि करते हुये पहले वे गुरुकुलवास में रहे। गुरुदक्षिणा के रूप में गुरु को अनेक वर देते हुए उनसे अनुज्ञा पाकर गृहस्थ धर्म को अन्य लोगो को सीख देने के लिये, देवेन्द्र द्वारा कन्यादान पूर्वक दिये हुये जयन्ती नामक पत्नी में अपने अनुरूप सौ पुत्रों को पा लिये। वे प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो मार्गों का अनुसरन करते थे।।8।।

उन सौ पुत्रों में महायोगी भरत सबसे श्रेष्ठ और गुण से भी उत्तम था। उसी के कारण इस अंजनाभ वर्ष का

भारतवर्ष नाम पड़ा।।9।।

उनके बाद कुशावर्त, इळावर्त, ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त, मलयकेतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक, विदर्भ, कीटक ये नौ पुत्र अन्य नब्बे पुत्रों से श्रेष्ठ थे। उनके नाम के अनुसार प्रदेश का नाम पड़ा।।10।।

कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलाद, अग्निर्होत्र, द्रुमिळ, चमस, करभाजन ये सारे नौ राजकुमार महाभगवद्भक्त् बने और भावगत धर्म का प्रचार-प्रसार किये। भगवान की महिमाओं से भरी हुयी उन राजकुमारों की कथा और लोगों को भगवननिष्ठा के लिए मार्ग दर्शक है। उनसे किया हुआ **जायन्ते उपाख्यान** आगे एकादश स्कन्ध में वसुदेव नारद सम्वाद रूप में आता है।।11।।

उनसे छोटे और जयन्ती देवी के अस्सी पुत्र पिता की आज्ञा के अनुसार प्रतिवर्ष यज्ञ करते थे। महाश्रोत्रिय होकर यज्ञ करते हुये कर्म में श्रद्धा रखते थे। क्षत्रिय होकर भी विश्वामित्र के समान ब्राह्मणत्व को प्राप्त किये थे।।12।।

ऋषभ भगवान स्वंत्रत थे। सारे अनर्थ उनसे बहुत दूर रहते थे। वे केवल आनन्दानुभव करते थे। सर्वशक्त होकर भी अज्ञ और अस्वतंत्र मानव के समान कर्माचरण करते हुये काल धर्म को स्वयं आचरण करते अन्य लोगों को भी उसकी प्रशिक्षा देते थे। भगवन्निष्ठा और कारूण्य युक्त होकर धर्म, अर्थ, यश, सन्तति और सुख भोग के साथ मोक्ष के लिये भी अनुकूल गृहस्थ धर्म के नियमों को लोगों को सिखाये।।13।।

महात्मा लोग जो करते हैं सारे लोग उन्हीं का अनुवर्तन करते हैं। इसी कारण ऋषभदेव ने अन्य लोगों के लिये गृहस्थ धर्म का आचरण किये।।14।।

वेदोक्त सकल धर्मों को स्वयं जानते हुये भी और अन्य धर्म को भी जानने वाले ऋषभ देव ब्राह्मणों से परामर्श करते हुये, उनके द्वारा दिखाये हुये साम, दान, भेद, दण्ड इत्यादि उपयों को लोगों को बताते रहे।।।15।।

द्रव्य, देश, काल, वय, श्रद्धा, ऋत्विज् इन विविध उद्देश्यों से युक्त सारे यज्ञों को विधिपूर्वक सौ बार आचरण करते हुये अपनी पूजा को स्वयं किये।।16।।

भगवान ऋषभदेव के इस देश का पालन करते समय उनकी प्रजा और किसी से किसी भी वस्तु की याचना नही करती थी, इच्छा भी नही करती थी। अपने पास जो कुछ नही रहता उसको पाने की इच्छा होना स्वाभाविक है। किन्तु ऋषभ देव जो चाहे उसको देते थे, इसी के कारण उनकी प्रजा को और किसी से मांगने की आवश्यकता नही होती थी। उनकी एक ही चाह थी, वह यही की राजा ऋषभदेव में उनकी श्रद्धा और भक्ति की वृद्धि प्रतिक्षण बढ़ती रहे।।17।।

भगवान ऋषभ देव एक बार संचार करते हुये ब्रह्मावर्त को आये। वहाँ के श्रेष्ठ ब्रह्मर्षियों की सभा बुलाये, उस सभा में सारे लोगों सुनते हुये अपने विनयशाली और मन लगाकर सुनने वाले अपने पुत्रों को उपदेश देने लगे।18।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्ध में चौथा अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - पाँच

ऋषभ देव बोले -

हे पुत्र! सुनो इस मनुष्य लोक में रहने वाले जीवियों का देह बहुत दिन उनके वश में रहता नही। ऐसे नश्वर देह से कौन विवेकी जन भोग का सुख चाहता है। मल खाने वाले सुअर और कुत्ते को भी वे भोग प्राप्त हैं। वे भोग तुच्छ हैं, अशाश्वत हैं इसी के कारण आप सब लोग उनको त्याग कर वैकुण्ठ प्राप्ति कराने वाला कायक्लेश और शास्त्राभ्यास युक्त तप का आचरण करें। तप से अन्त:करण की शुद्धि होती है। देश, काल, गुण से अनन्त पूर्णानन्द स्वरूप नारायण को उस तप से पा सकते हैं। इसके साथ अपनी योग्यता के अनुसार शाश्वत स्वरूप सुख मोक्ष को पा सकते हैं।।1।।

विषय में अनासक्ति और तप में आसक्ति होने के लिये महात्माओं की सेवा करनी चाहिये। वे मोक्ष का मार्ग दिखलाते हैं। पर स्त्री और पर वस्तुओं में आसक्त हुआ आदमी का संग करने वाला भी नीचे गिर जाता है, तो स्वयं विषयासक्त की बारे में क्या कहें। महात्मा कौन होते हैं ? वे भगवान में समान रूप से मन रखते हैं। इन्द्रियजय को पाकर शान्त रहते हैं। सज्जनों में क्रोध और मत्सर नही करते हैं। विहित अनुष्ठान करते हुये सद्गुणों का सम्पादन करते रहते हैं। इन्ही को महात्मा बोलते हैं।।2।।

उनको परमेश्वर रूपी मुझमें प्यार हुआ तो उसी को परम पुरुषार्थ कहते हैं। श्रीहरि के विषय को छोड़कर वे अन्य विषय पदार्थो में इच्छा रखते नही। इतना ही नही इन विषयों के बारे में बोलने वाले में और पत्नी, पुत्र, मित्र, संपत्ति में उनका प्यार नही रहता। वे अपने जीवन के लिये जितना चाहिये उतना ही लौकिक कार्यों में व्यस्त रहते हैं। अन्य लौकिक कार्यों में उनका मन नही लगता।।3।।

आत्मा को जड़ देह नही है। लेकिन कर्मवश के कारण यह जड़ देह मिलता है। यह कष्टदायक है। कर्म करने से जड़ देह आता है। देह आने के कारण कर्म करना पड़ता है। ऐसे कर्म का चक्र चलता रहता है। इसी से देह बंध होता है। इसी कारण इन्द्रियों के सुख के लिये आत्मा प्रमाद वश बन्धक कर्म करे तो सदाकाल आत्मा देह बन्धन में ही पड़ा रहेगा। इसके लिये वैसे कर्म करना मैं कभी भी सही नही मानता।।4।।

परम तत्व के विचार करने से लेकर अपरोक्ष सम्पादन करते तक यह अस्वाभाविक बन्ध शरीर रहता है। पाप कर्म का लेप हो या पाप कर्म से मिला हुआ यह शरीर बन्ध हो, ये सारे परम तत्व को पाने तक रहते हैं।।5।।

भगवान स्वतंत्र हैं, इसको न जानते हुये जीव अपने मन को कर्म वश होकर संसार में लगा देता है। अन्तर्यामी भगवान अन्दर रहते हुये भी अव्यक्त होकर दूर रहते हुये मुझमें जब तक भक्ति उत्पन्न नही होती है तब तक इस शरीर के बन्धन से जीव मुक्त नही हो सकता।।6।।

इसका सही ज्ञान न होते हुये अपने मोक्ष के लिये बन्धक बनने वाला विषयास शक्ति को अपना साधन समझ कर शास्त्रार्थ जन्य ज्ञान को भूल जाता है। अपने पुरुषार्थों के साधन में गलत रास्ता पकड़ता है। आगे होने

वाले अनर्थों की कल्पना न करते हुये स्त्री सुख की लालच से घर, पत्नी, पुत्र इत्यादियों में आसक्त होकर तापत्रयों को भोगता है।।7।।

पुरुष और स्त्री में होने वाला समागम उन दोनो के मन को एक करते हुये संसार बन्ध करने वाला पाश बनता है। दोनो मन एक होने से घर, जमीन, बच्चे, बन्धु, पैसा इत्यादि से मैं और मेरा का मोह बढ़ता है। इसी से तापत्रय उत्पन्न होते हैं।।8।।

आत्मा को मन के विषय में बन्ध पाश बनने वाला विषय भोग बन्धक कर्मो को करने के लिये बार बार प्रेरक होता है। इस पाश से छुटकारा पाना चाहिये। तब ही जीव संसार में रहते हुये भी सारे तापों से मुक्त होता है। संसार हेतु बनने वाला मोह को दूर करते हुये भगवान को पा लेता है।।9।।

इस लिंग शरीर में मन विषयासक्ति नाम के पाश से बंधा हुआ है। लिंग देह दूर होने के लिये पहले हरि गुरुओं में भक्ति रखते हुये उनकी निरन्तर सेवा करनी चाहिए। विषय की आशा को छोड़ना चाहिए। सुख-दुखादि द्वंद्वों को सहन करना चाहिए। ऐहिक आमुष्मिक सुखभोग में सभी जगह दुःख ही है, इसको समझना चाहिए। शास्त्रार्थों का विचार करना चाहिए। व्रत, उपवास इत्यादि काय क्लेश रूप तप करना चाहिए। काम्य और निषिद्ध कर्मो का त्याग करना चाहिए, निषिद्ध कामनाओं को त्यागना चाहिए।।10।।

हे पुत्रों! प्रतिदिन मेरे आराधना रूप में तुम्हें कर्म करना चाहिए। मेरी कथाओं को सुनना चाहिए। मेरी पाद सेवा करने वाले महात्माओं का संग करना चाहिए। मेरा गुणगान करना चाहिए। प्राणियों में प्यार रखते हुये उनमें समान रहने वाले मुझको देखना चाहिए। सहनशीलता की अभिवृद्धि होनी चाहिए। शरीर, घर इत्यादि में मैं और मेरापन को भुलाते हुये स्वातंत्र्याभिमान को छोड़ना चाहिए।।11।।

अध्यात्म शास्त्र का अभ्यास करना चाहिए। दुर्जन संग से दूर रहना चाहिए। प्राण, इन्द्रिय और मन को ठीक तरह से अपने वश में रखना चाहिए। शुद्ध निष्ठा होकर ब्रह्मचर्य व्रत का साधन चाहिए। साधनानुष्ठानों को कभी भी न भूलना। यथा साध्य मौन व्रत धारण करना चाहिए।।12।।

भगवान सर्वत्र हैं उसका अनुसंधन होना चाहिए। मेरे अन्य योग्य विशेष गुणों की जानकारी रखना चाहिए। ध्यान करते रहना चाहिए। वैष्णव सिद्धान्त से कभी भी दूर नही होना चाहिए। सदाकाल उत्कृष्ट सत्व गुण से युक्त होकर रहना चाहिए। ये सारे करते हुये इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाले अहंकार को त्याग कर लिंग शरीर को दूर करना चाहिए।।13।।

यह लिंग शरीर ही पुनः पुनः हमारे से कर्म कराता रहता है। स्त्री पुरुषों की अन्योन्यासक्ति इसी में है। भगवान की इच्छानुसार अनादि काल से जीव को यह जागृत लगा हुआ है। जीव अज्ञान बंध होकर अब बताये हुये उपायों से गुरुपदेश के अनुसार उसको त्याग करते हुए अपरोक्ष के बाद ध्यानादि उपाय से सदाकाल भगवान के समीप में रहकर आनन्द पाना है। इसी को स्वरूपानंद आविर्भाव रूप मुक्ति कहते हैं। इसको पाने के लिये पिता अपने पुत्रों को, गुरू अपने शिष्यो को उपदेश देना चाहिए। साधारण भक्त रहा तो मेरे लोक को पाने की इच्छा से

और उत्तम भक्त रहे तो केवल मुझको पाने की इच्छा से यह करना है ।।14।।

उपदेश देते समय पुत्र या शिष्य पुन: पुन: प्रश्न पूछे तो क्रोध नही करना चाहिए। मोक्षोपाय को न जानने वाले अन्य लोग काम्य कर्मों को ही श्रेय: साधन मानते हैं। उनको पुन: कर्म में उद्यत नही होने देना चाहिए। अन्धा जैसे गड्ढे में गिर जाता है वैसे काम्य कर्मी को पुन: इस संसार में न गिरने देना चाहिए।।15।।

अज्ञ जन अपने श्रेय के बारे में अन्धे जैसे रहते हैं। वे विषय पदार्थों को अत्यन्त आशा से पाना चाहते हैं। उनसे मिलने वाले अल्प सुख के लिये परस्पर द्वेष करते हुये अन्त तक दु:ख का अनुभव करते रहते हैं। जिससे उनका अज्ञान और बढ़ता है। इसी के लिये उनको अज्ञलोग कहते हैं।।16।।

इसको जानने वाला ज्ञानी अविद्या में बन्धा हुआ अल्प विद्या वाले अज्ञ को पुन: पुन: उन्ही काम्य कर्मों में नही लगाना चाहिए। रास्ता न मिलने वाले अन्धे लोगों को गड्ढे में न पड़ने देना चाहिए। कृपालु ज्ञानी को यही करना है।।17।।

इस सारे जगत को अज्ञान से काम्य कर्म करते हुये संसार कूप में गिरते हुए देखकर उसको न रोंकने वाला, निवृत्ति मार्ग को न बताने वाला, प्रवृत्ति मार्ग को बताते रहने वाला गुरु नही हो सकता, वह पूजा के लिये योग्य नही है। ऐसे न करने वाली माता, माता नही बनेगी, यज्ञाहुति लेने वाले देव भी पूजा योग्य नही बनेगे, राज्य करने वाला राजा पूजा योग्य नही बनता।।18।।

हे पुत्रो, सुनो इस निवृत्ति मार्ग के साथ अपने भाई की सेवा करना भी आपको मोक्ष देने वाला है क्योंकि यह मेरा शरीर मानव जैसे दिखते हुये भी अप्राकृत होने के कारण और लोग इसको ठीक तरह से समझते नही। मैं सत्व गुण को अपने हृदय से प्यार करता हूँ इसी कारण मेरे शरीर के इस लोक में व्यक्त होते ही सत्व गुण की अभिवृद्धि रूप धर्म की वृद्धि हो जाती है और अधर्म दूर भाग जाता है। इसी कारण ज्ञानी लोग मुझको ऋषभ नाम से श्रेष्ठ जानते है।।19।।

आप सब लोग मेरे हृदय को प्रिय लगने वाले सत्व गुण के कारण उत्पन्न हुये हैं। सत्व गुण होने के कारण आप लोगों का अपना भाई भरत राजा बन गया तो उससे असूया नही करनी चाहिए। भरत सर्वलोक को आश्रय देने वाला मेरे आश्रय में रहता है। वह सारी प्रजाओं के लिये आश्रय दिया है। आप सब उसी की सेवा कीजिये। उसके राज्यभार करने से आप का भी मेरी सेवा किए लैसा ही होता है।।20।।

मोक्ष साधन के लिये चेतनाओं के बीच उनके तारतम्य का ज्ञान होना चाहिए। चेतनाओं में स्थावर वृक्ष लताओं से चलने वाले प्राणी श्रेष्ठ होते हैं। उनमें बुद्धि वाला पशु श्रेष्ठ होता है। उनसे भी श्रेष्ठ मनुष्य है। मानव से श्रेष्ठ गन्धर्व, सिद्ध इत्यादि देवानुचर श्रेष्ठ हैं।।21।।

देवानुचरों से देवता श्रेष्ठ हैं। देवताओं से दक्ष प्रजापति इत्यादि ब्रह्मपुत्र, उनसे भी श्रेष्ठ इन्द्र हैं। इन्द्र से भी श्रेष्ठ रूद्र जी हैं, रूद्र तो ब्रह्मा जी के पुत्र हैं उनसे श्रेष्ठ ब्रह्माजी हैं। ब्रह्माजी से मैं श्रेष्ठ हूँ। मैं ब्राह्मणों के लिये आराध्य देव हूँ। ब्राह्मण मेरी पूजा करते हैं इसके लिये आप क्षत्रियों के लिये ब्राह्मण पूज्य हैं।।22।।

भगवान की प्रतिमा रूप में ब्राह्मण के समान और प्रतिमा रूप और कोई नही है। उनसे श्रेष्ठ कोई भी नही हो सकता। उनके मुख में जो होम करता है, मैं उसको बहुत आनन्द से ग्रहण करता हूँ। अग्नि में दिया हुआ हविष्य से भी यह श्रेष्ठ है।।23।।

इस लोक में मेरा निर्मल अनादि नित्य वेद नाम की मूर्तियों, मत्स्यादि, दश मूर्तिंयों को जो हृदय में धारण करता है जिसमें सत्व गुण, शम, दम, सत्य, अनुग्रह, बुद्धि, तप, सहन और बह्मज्ञान नाम के आठ गुण हैं ऐसे ब्राह्मण को छोड़ कर मेरी प्रतिमा और कहाँ हो सकती है।।24।।

मैं परात्पर हूँ, अनन्त हूँ, स्वर्ग-मोक्षों के लिये स्वामी हूँ, मुझसे भी इन ब्राह्मणों को कुछ होन वाला नही है। तो धनी लोगों से उनका सम्बन्ध क्या है ? उनको मुझमें भक्ति है, वे भगवान को ही अपना मानने वाले अकिंचन भक्त हैं।।25।।

हे पुत्र! सुनो, सारे चर और अचर जीवियों में मैं वास करता हूँ यह समझकर तुम्हें उनका यथायोग्य सत्कार करना चाहिए। केवल ब्राह्मण को ही नही, प्रत्येक जीव को मेरा वासस्थान मानते हुये सबको गौरव से देखना ही मेरी आराधना होती है ।।26।।

मन, वचन, श्रवणादि साधनानुष्ठान करते हुए परम प्यार से युक्त मेरा साक्षात्कार पाना ही मेरे परम सन्तोष का कारण होता है। साक्षात्कार को न पाया हुआ जीव मैं और मेरा कहते हुये महामोह में रहते हुए संसार बन्ध और यमपाश से छुटकारा नही पाता।।27।।

शुकदेव बोलते है -

अपने पुत्र सुशिक्षित होते हुये भी ऋषभ देव अन्य लोगों को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से अपने पुत्रों को उपदेश दिये। बाद में सकल लोक की हित कामना करने वाले सब का उपकार करने वाले ऋषभ नामक भगवान काम्य कर्मं रहित इन्द्रिय निग्रह उक्त महामुनियों को भक्ति, ज्ञान, वैराग्य रूप सन्यास को सीखने के उद्देश्य से पहले अपने सौ पुत्रों में ज्येष्ठ, परम भगवद्भक्त, भगवान के भक्तों का आश्रय में रहने वाला अपने पुत्र भरत को इस भूमण्डल के शासन करने के लिये सिंहासन में बैठा कर राज्याभिषेक किये। अपने सारी सम्पदा को राज्य को घर में छोड़ते हुए अपने शरीर मात्र को ग्रहण करते हुये आवाहनीय इत्यादि सारे अग्नियों को अपने शरीर में धारण करते हुए दिगम्बर होकर बालों को बिखराए हुये मूर्ख जैसे दिखने वाले अपने ब्रह्मावर्त नाम के प्रदेश को भी छोड़कर सन्यासी होकर सुदूर दक्षिण को चले गये।।28।।

मूढ़, अन्ध, मूक और बधिर जैसे रहते हुये पिशाच और दानव जैसे आचरण करते हुए अपने जनों को त्याग कर लोगों के बोलते हुये भी मौन व्रत धारण कर चुप रहने लगे।।29।।

वे चलते समय बीच में मिलने वाले नगर, गाँव, किला, घर, दुकान, सेना शिविर, गोनिवास, बाजार, जंगल, ऋषि आश्रम, में ठहरते थे। वह हाथी के ऊपर जैसे मक्खी बैठ जाती है, वैसे मूर्ख लोग उनको घेर लेते थे, अपमान करते थे, पत्थर फेकते थे, मल और धूल को उनके ऊपर फेक देते थे। वे इसके ऊपर किंचित भी लक्ष्य न

देते हुये इस जड़ शरीर में मल-मूत्र रहते हुये भी जैसे आदमी शुद्ध रहता है वैसे वे अपने को जड़ शरीर न होते हुये सदाकाल शुद्ध रहते हुये परमहंस सन्यासी जैसे रहे, इसका एक आदर्श रूप बने। सदा निर्भय स्वरूप में रहने वाले आनन्द की महिमा का अनुभव करते हुए मैं और मम को त्यागते हुये एकाकी होकर इस भूमि में संचार किए।।30।।

ऋषभ देव स्वभाव से सुन्दर थे। उनके हाथ, पैर, छाती, मुखादि सारे अवयव अत्यन्त कोमल और सुन्दर थे। मुख में सदाकाल स्वाभाविक मंद हास था। आँख अभी खुला हुआ कमल के समान थे। उनकी आँखों से गाल, कान, गला और नाक को भी शोभा आ गयी थी। ये सब परस्पर अनुरूप और सुन्दर थे। सदा हसन्मुख उनका मुख देखने वाले को सन्तोष उत्पन्न करता था। शहर की नारियाँ उनका सौन्दर्य देखकर काम बाण से पीड़ित होती थीं। मुख के सामने बिखरे हुए लाल बाल उनके मुख को ढ़क कर रखे हुए थे। वे अवधूत शरीर धारण कर ग्रह से पीड़ित जैसे दिखते थे। भगवान ऋषभ देव इस लोक को अपने ध्यानादि क्रियाओं के लिये प्रतिकूल मानकर इसका प्रतिकार करने की इच्छा न रखते हुये अजगर व्रत को धारण किए। वे अजगर जैसे सो कर ही खाते थे, पीते थे, मल-मूत्र विसर्जन भी वहीं करते थे। हँसते हुए जमीन पर लुढ़कते थे। इससे शरीर को मल लग जाता था। उनके लिये यह मल धारण भी निषिद्ध नही है क्योंकि उनके मल से सुगन्ध आता था और उस सुगन्ध को लेकर हवा दस योजनपर्यन्त प्रदेश को सुगान्धित करता था। लोक शिक्षण के लिये ऋषभ देव गो, मृग, का कवक का भी प्रदर्शन किए। खड़े होकर, चलते हुए, बैठते समय, चलते हुये वे कौवा, हिरण और गाय जैसे खाते पीते, मल विसर्जन करते थे।।32।।

ऋषभ देव साक्षात् भगवान हैं, वे मोक्ष देने वाले हैं। परम महा आनन्द को अनुभव करने वाले हैं। किन्तु लोक शिक्षण के लिये अनेक रीतियों के योग साधनाओं को आचरण किए। सारे जीवियों में अन्तर्भूत होकर वासुदेव में और अपने में निरन्तर अभेद और निर्दोषत्व को अनुभव करते हुये अपने में सारे योग और ऐश्वर्य स्वभाव सिद्ध होते हुये भी, स्वयं परिपूर्ण होकर भी आकाश संचार, मनोवेग, अन्तर्धान, परकाय प्रवेश, दूर श्रवण, दूरदर्शन इत्यादि बाह्ययोग सिद्धियों के स्वयं होकर अपने पास आते हुये भी उनको स्वीकार नही किए।।33।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्ध में पांचवा अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - छः

राजा परीक्षित पूछते हैं -

हे पूज्य शुकदेव जी, भगवान के ध्यान में ही सुख को पाने वाले योगीजन ध्यान जन्य ज्ञान के बल से कर्म के बीज रूप रागादि दोषों को जला देते हैं। उनके पास दैवेच्छा से योग सिद्धियाँ आयें तो उनमें बुरा क्या है।।1।।

शुकाचार्य जी कहते हैं -

हे राजा! तुमने जो कहा है वह सत्य है किन्तु वंचक व्याध में जैसे मृग विश्वास नही रखते वैसे ज्ञानी लोग रागादि विषयों में विश्वास नही रखते क्योंकि रागादि विषय पुन: योगी के मन में भी उत्पन्न हो सकते हैं। इसके बारे में आगे के श्लोक स्पष्ट करते हैं।।2।।

मन कभी भी स्थिर नही रहता है। इसके लिये कोई विषयभोग योग्य वस्तुओं के बारे में मन के ऊपर विश्वास नही रखना चाहिये। मन के ऊपर विश्वास रखने से बहुत दिनों से किया हुआ तप चला जाता है। सौभरी इत्यादि ऋषियों के जीवन में यह नजर में आ चुका है।।3।।

शील रहित पत्नी के ऊपर पति विश्वास रखे तो वह पत्नी पर पुरुष को अवकाश देते हुए उसी के हाथ से अपने पति का वध करवाती है। ऐसे ही स्थिर मन में विश्वास रखने वाले योगी का मन काम के वश होकर उसके साथ आने वाले क्रोधादि अन्य शत्रुओं के लिये भी अवकाश कर देता है।।4।।

काम, क्रोध, मद, लोभ, शोक, मोह, भय, माया इत्यादियों को और कर्म बन्धक को नियंत्रण में न रखने के लिए मन ही कारण है। यह मन किसके वश में रहता है, कौन इस मन के ऊपर भरोसा कर सकता है।।5।।

सारे लोकपालकों में अलंकार प्राय, लोक विलक्षण ऋषभ देव ने अपने भगवत प्रभाव को अन्य सामान्य लोगों के लिये नही दिखाये। मूढ़ मानव जैसे अपने अवधूत वेष भाषा और चाल-चलन से अपने प्रभाव को छिपाकर रखे। योगियों को मोक्ष साधन प्रकार को सिखाने के लिये अपने शरीर समान इस भूलोक को छोड़ने का विचार किये। भगवान से स्वयं अलग न होते हुये निरन्तर भगवान के प्रक्रियाओं को व्यक्त करते हुये विषयानुभवों को त्याग कर भगवान के अवतार रूप स्वयं अपने पास रहने वाले अपने मूल रूप को ध्यान करने लगे।।6।।

जड़ देह से नित्य मुक्त भगवान ऋषभ देव योग सामर्थ्य की पराकाष्ठा से युक्त अपने चिन्मय शरीर ब्रह्मण्ड के अन्दर बाहर सारे स्थानों में ज्ञान प्रकाश रूप मन से चलते रहते थे।।7।।

त्रषभ देव कांकट कर्नाटक से (भीमरथी नदी तीर से दक्षिण कर्नाटक प्रदेश को जाकर वह कुटजाचल नाम के उपवन में रहने लगे। वे सदाकाल मौन रहने के लिये मुहँ में पत्थरों को डालते थे। दिगम्बर होकर बाल को बिखरा कर मनमानी संचार करते थे।।8।।

एक दिन आँधी से घिरे हुये वे बाँस के जंगल में जलती हुयी आग में वे प्रवेश किये। वह आग बहुत जोर से जलते हुये त्रषभ देव के साथ सारे जंगल को राख कर दिया।।9।।

उस घोर आग से ऋषभ देव बाहर आ गये। वे स्वयं को ऋषभ देव न बोलते हुये वासुदेव नाम बोलने लगे। इसको सुनकर कांकट कर्नाटक और दक्षिण कर्नाटक का राजा मन्दमति अर्हन् नाम का राजा स्वयं ऋषभ देव का उपदेश बोलते हुये अपना उपदेश देने लगा। वह राजा कलियुग में अधर्म को बढ़ाने के लिये, असुर जनों को पाप फल देने वाला, श्रीहरि के मोहक शक्ति के वश होकर संसार भय को नाश करने वाले अपने धर्म को त्याग कर दुर्मार्ग और असमंजस पाषण्ड मत का प्रचार करने लगा। यह पाषण्ड मत उस राजा की कपोल कल्पित सृष्टि है। वह ऋषभ देव का मत नही है ।।10।।

उस मत के प्रभाव से कलियुग में देव माया से मोहित होकर मनुष्याधम लोग अपने धर्म का प्रबोधन करने वाला, वेदों में बताये हुये विहित शौच और आचायर को छोड़ते हुये देवताओं के लिये अपचार करने वाला अवैदिक मत और व्रत को प्रमाण के बिना ही स्वेच्छा से करने लगते हैं। स्नान, आचमन और शौच को छोड़ते हुये किन्तु केश लोचन करते हुये अधर्म अनाचार्य करते हुये कलि के कारण वेद, ब्राह्मण और यज्ञों की निन्दा करते हैं।।11।।

अर्हता और अद्वैत विचारों से वेद का विरोध करते हुये अपने लोगों के साथ अन्धतमस् में पड़ते हैं। उनको सही शास्त्रों में निष्ठा नही रहती।।12।।

ऋषभदेव इस रीति से असुर स्वभाव के लोगों को मोहित करते हुये रजोगुण से इस संसार में दुःखित सज्जन लोगों के लिये मोक्ष मार्ग की सीख दिये। इसी कारण के लिये वे अवतार लिये थे। उसके अनुसार उनका गुणगान इन श्लोकों से करते हैं।।13।।

सात समुन्द्र से घिरी हुयी सप्तवद्वीप वाली इस धरती में भारतवर्ष ही अधिक पुण्य करने के लिये और ज्यादा पाप करने के लिये भी योग्य भूमि है। यहाँ के लोग ऋषभादि युक्त अवतारों से श्रीहरि का मंगल गीत गाते हैं। कई लोग इसकी निन्दा भी करते हैं।।14।।

प्रियव्रत का वंश बहुत कीर्तिमान है। इस वंश में पुराण पुरूष श्रीहरि ऋषभ अवतार करते हुये मोक्ष साधन रूप धर्म का आचरण करके दिखाये।।15।।

मुक्ति के लिये प्रयत्न करने वाले कौन योगी ऋषभ देव के समान उन्नत स्थान को प्राप्त कर सकता है क्योंकि ऋषभ देव योग के अणिमादि बाह्य सिद्धियों को अपने से बहुत दूर रखे हैं। किन्तु श्रावणादि मोक्ष साधन करते हुये महायोगी भी उन सिद्धियों को पाने की आशा रखते हैं।।16।।

चारों वेद, लोक, ब्राह्मण, गाय इनको परमगुरु भगवान ऋषभदेव का यह निर्मल चरित्र है। सुनने वाले के सारे पापों को नाश करने वाले हैं। परम मंगलकारा हैं। इसको प्रतिदिन ज्यादा श्रद्धा और आस्था से एकाग्रचित्त होकर सुनने वाले और सुनाने वाले दोनो को भगवान वासुदेव में निरन्तर एकान्त भक्ति अभिवृद्धि होती जाती है।।17।।

रोज होने वाले अनेक पाप जन्य, संसार के ताप त्रय से पचने वाले लोगों के मन को एकत्र भक्ति रस में

डुबोते हुये भक्ति से अभिव्यक्त होने वाले अत्यन्तिक स्वरूप सुख को अनुभव करने वाले ज्ञानियों को अन्तिम सुख मोक्ष उनके न चाहते हुये भी उनको आ जाता है। वे उसमें ज्यादा आदर नही रखते क्योंकि उनको भगवद्भक्ति से ही अपने योग्य रूप पूर्ण स्वरूप सुख व्यक्त होता है।।18।।

हे राजा! सुनो - भगवान श्री कृष्ण आप लोगों के और यादवों के पालक, गुरु, कुलपति और प्यार का स्नेहिल बना गए थे। कभी कभी आपकी सेवा भी करते थे। उनकी पूजा करने वाले भजन करने वाले को वे मुक्ति देते हैं। अपने पूर्ण भक्ति योग को वे केवल चतुर्मुख ब्रह्मा को ही देते हैं।।19।।

सदाकाल अपने स्वरूपानन्द सुख को अनुभव करते हुये अन्य बाह्य विषयों की अभिलाषा न करते हुये उनसे सदाकाल ऋषभदेव दूर रहते थे। उनको अपने अवतार से अपने के लिये कुछ प्रयोजन नही था। सज्जनों के लिये मोक्ष की अभिलाषा होते हुये भी वे अपने अज्ञान के कारण मोक्ष विरोधी कर्म करते रहते हैं। इसको देखकर परम करूणाशाली ऋषभ देव संसार भय का नाश करने वाला भगवान के अपरोक्ष ज्ञान साधन का उपदेश उनको दिये। ऐसे भगवान ऋषभदेव को नमस्कार।।20।।

।। श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्ध में छठा अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - सात

श्री शुकदेव जी कहते हैं -

राजा भरत बहुत बड़े भगवद्भक्त थे। वे इस भूमि के राजा बने इस दृष्टि से ऋषभदेव ने उनको सिंहासन पर बैठाया। भरत उनके आदेश का पालन करते हुये राज्य करने लगे। विश्वरुप की पुत्री पंचजनी से उनका विवाह हुआ।।1।।

तमस अहंकार से पंच तन्मात्राओं का निर्माण हुआ। वैसे ही भरत को पंचजनी में अपने अनुरूप पांच पुत्र हुये। उनके नाम क्रमशः सुमति, राष्ट्रभृत, सुदर्शन और धूम्रकेतु हैं।।2।।

अंजनाभ नाम के इस प्रदेश को भरत के नाम पर भारत देश कहने लगे।।3।।

भरत चक्रवर्ती बहुत ज्ञानी था। वह अपने पूर्व पिताओं से मिली हुयी इस देश की प्रजा को बहुत प्यार से रक्षण करते थे।।4।।

चक्रवर्ती भरत ने श्रद्धा से अग्न्याधान करते हुये अग्निहोत्र, दर्शनपूर्णमास, चातुर्मास, पशु, सोम नाम के अनेक छोटे बड़े यज्ञों को करते हुये भगवान यज्ञ पुरूष को कालक्रमानुसार आराधना करते रहे।।5।।

अहिताग्नि का अर्थ अधान नाम का यज्ञ करने वाला। पचीस वर्ष की आयु में त्रेताग्नि अथवा पंचाग्नि का आधान करना चाहिया। गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, अहवनीय ये तीन त्रेताग्नि होते है। सभ्य, अवसथ्य ये दो मिलकर पंचाग्नि होते है।

वसन्त ऋतु में ब्राह्मण, ग्रीष्म में क्षत्रिय, शरद में वैश्य को इन अग्नियों के आधान करते हुये दोपहर में यज्ञ करना है। सायंकाल में अग्नि और प्रजापति दूसरे दिन सुबह में सुर्य और प्रजापति इनको यजमान अपने हाथ से दूध इत्यादि की अहुति देना चाहियें। दूध से हवन करने से स्वर्ग फल मिलता है, दही से यज्ञ करने से इन्द्रिय शक्ति मिलती है। अन्न से होम करने से भू लाभ और अन्न लाभ होता है। चावल से ओज की वृद्धि होती है। घी से तेज बढ़ता है। ये सारे अग्निहोत्र होम का विधान है।

पूर्णमासी के दिन करने वाले तीन यागों को इष्टि कहते हैं। अमावस्या के दिन तीन इष्टि करना चाहिये। ये छः इष्टि मिल कर एक दर्श पूर्ण मास याग होता है। अग्निहोत्र होम माना जाता है। यजमान बैठकर स्वाहा बोलते हुये हविष् डालने से वह होम होता है। खड़े होकर वौषट् बोलकर हविष् को अध्वर्यु डालता है उस समय यजमान केवल **इदं न मम** बोलना चाहिये। यह याग होता है। दर्शपूर्णमास याग अग्निहोत्र जैसे नित्य करने वाला कर्म है। इसको छोड़ने से पाप आता है। उसके लिये प्रायश्चित्त करना पड़ता है। इष्टियों में आटा को पचाते हुये पुरोडाश अथवा चारू करते हुये होम करना चाहिये। दूध, दही और घी इष्टियों में हविष् बनते हैं।

प्रतिवर्ष बसन्त ऋतु में करने वाला सोमयाग नित्य कर्म बनता है। सोमलता को मोड़ने से रस निकलता है। उस रस को ठीक तरह से उपयोग करने से आयुष्य वृद्धि होती है, हाथी जैसा बल आता है, साथ साथ सारे वेदों का ज्ञान और मन्मथ जैसे रूप सौन्दर्य मिलता है। सोमलता एक विचित्र वनस्पति है। पूर्णमासी के दिन उसमें पन्द्रह पत्तियाँ होती हैं। बाद में प्रतिदिन एक पत्ती गिरते हुये अमावस्या के दिन उसमें एक भी पत्ती नही रहती है। बाद में पूर्णिमा तक एक एक पत्ती बढ़ते हुये पूर्णिमा को पुनः पन्द्रह पत्ती हो जाती हैं। इसका विवरण आयुर्वेद में सुश्रुत संहिता में आता है। किन्तु आज के दिनों में यह सोमलता भारत में लभ्य नही है। कई लोगों की कल्पना के अनुसार यह मादक पेय नही है। यह अत्यन्त आरोग्य

कर पवित्र रसायन है। दिन में तीन समय में प्रातःसवन, माध्यंदिन सवन और सायं सवन इस रीति से तीनों सवन में तीन इष्टि करना है। सवन में होतृ ऋग्वेद मंत्र से देवताओं का आवाहन करते हुये प्रशंसा करते है। उद्गातृ सामगान करता है। अग्निष्टोम नाम के सोम याग सारे सोम यागों में प्रधान है। उनमें अनेक स्त्रोत मंत्र होते है। अग्निष्टोम मंत्र इस याग के अन्त में आने के कारण इस याज्ञ को अग्निष्टोम याग बोलते हैं।

वेदों में होम करते समय प्रारम्भ में अग्निहोत्र होम को, इष्टि को और दर्शपूर्ण मास को बताया गया है। बाद में सोमयाग और अग्निष्टोम याग आते हैं।

इन यागों को करते समय उन यागों में आहुति स्वीकार करने के लिये इन्द्र अग्नि इत्यादि देवताओं की आराधना करते हैं। इसका अर्थ ये देवतायें स्वयं हविष् को स्वीकार नही करते उनके अन्तर्यामी भगवान उनको स्वीकार करते हुये अन्य देवताओं को भी तृप्ति देते हैं। यह अनुसंधान होना चाहिये। किसी भी देवता का आवाहन करने के बाद भी उनके अन्तर्यामी लक्ष्मीनारायण ही उन हविष्यों को ग्रहण करते हैं। यह अनुसंधान यज्ञ में रहना चाहिये।

भरत चक्रवर्ती इस अनुसंधान से यागादि कर्मो को करते रहे।

होतृ, अध्वर्यु, उद्गातृ और ब्रह्म नाम के चार ऋत्विजों से (चारो पुरुषों से) करने वाला यज्ञ उसके अंगक्रियाओं के साथ यज्ञ के पुण्य फल को भरत चक्रवर्ती वासुदेव को ही समर्पित किया क्योंकि भगवान वासुदेव ही यज्ञ पुरुष हैं। मंत्रों में जो देवताओं के स्तोत्र आते हैं, जो मंत्र देवताओं की महिमा बताते हैं वे सारे भगवान के नियंत्रण में रहते हैं। भगवान ही यज्ञ क्रियाओं का मुख्य कर्ता है। अन्य देवताएँ अमुख्य कर्ता बनते हैं। भगवान स्वयं परदेव हैं। यह अनुसंधान करने से भरत चक्रवर्ती के सारे पाप चले गये। अन्यान्य यागों में अलग-अलग देवताओं के लिये देने वाले हविष् को उस मंत्र देवता को अर्पण करते हुये उस देवता के अन्तर्गत परमपुरुष भगवान वासुदेव को ही राजा हविष् देते थे। भगवान वासुदेव स्वतंत्र हैं, अन्य देवताएँ सारे अस्वतंत्र हैं। इसको समझते हुये इसी के चिन्तन के साथ **इन्द्राय इदं न मम** यह कहते हुये फल के उद्देश्य को त्याग देते थे।।6।।

इस अनुसंधान से चक्रवर्ती भरत द्वारा किया हुआ यज्ञ पूर्ण शुद्ध था। उसके अन्तकरण: भी उन कर्मों से शुद्ध हो गया। उसके हृदय में रहने वाले भगवान के आकाश शरीर उसके उज्ज्वल प्रकाशमान पुरुषाकार से प्रकाशित हुआ। वह मिथ्या नही था। सारे भक्तों के हृदय में ठीक तरह से ध्यान योग्य रूप यही है। पुरुषोत्तम नारायण का लक्षण श्रीवत्स कौस्तुभ, वनमाला, चक्र, शंख और गदा उस रुप में दृश्यमान थे। अपने हृदय में अन्तर्यामी होकर रहने वाला यह रूप चक्रवर्ती भरत को दिन प्रतिदिन तीव्र वेग से बढ़ते हुये दर्शन देते थे। उससे राजा की भक्ति प्रतिदिन बढ़ती रही।।7।।

इस तरह से एक करोड़ वर्ष राज्यभार करने के बाद भरत चक्रवर्ती को वैराग्य आ गया। अपना प्रारब्ध पूर्ण होने का अनुभव उसको आ गया। वह अपने पैतृक सम्पत्ति राजभोग को अपने पुत्रों में बाँट दिया। सकल सौभाग्यों से सम्पन्न अपने राजघर को छोड़कर सन्यासी बनकर पुलह मुनि के आश्रम सालग्राम क्षेत्र को चला गया। उस क्षेत्र में भगवान श्रीहरि वहाँ के लोगों पर प्रेममय अनुग्रह किये थे। आज भी उनका वह रूप सामने आता है।।8।।

वहाँ बहने वाली गण्डकी नदी में सालग्राम शिलाओं में ऊपर और नीचे चक्र का चिन्ह होते हैं। उनको देखने के लिये एक द्वार उनमें रहता है। वह श्रेष्ठ नदी वहाँ के आश्रम प्रदेश को पवित्र करती रहती है।।9।।

भरत चक्रवर्ती उस पुलह आश्रम के उपवन में मिलने वाले अनेक तरह के फूल, फल, तुलसी, दूर्वा,

कन्दमूलों को भगवान को निवेदन करते हुये अकेले एकान्त प्रदेश में भगवान की आराधना किये। विषय की अभिलाषा को त्याग कर भगवान में अत्यन्त निष्ठा करते हुये अत्यन्त आनन्द का अनुभव करते रहे।।10।।

इस तरह निरन्तर परम पुरुष की आराधना करने से उनकी भक्ति चंचलत्व को छोड़कर स्थिर हो गयी। आनन्द के उद्रवेग में उनको बार बार रोमांचन होने लगा। उत्कठां से आनन्द वाष्प बहने लगे। परमपिता भगवान के पाद कमल ध्यान से भक्ति योग बढ़ने लगा। परमानन्द हृदय में भर गया। इस रीति से गंभीर हृदय वाला भरत अतिग्रहण रूप वाला भगवान नाम के अगाध जल में डूबता हुआ भगवान के पूजा को भी भूलकर उसी में मग्न रहा।।11।।

ऐसा विष्णुव्रत निष्ठ चक्रवर्ती भरत मृगछाल को धारण करते हुये तीन बार स्नान संध्या करते हुये अपने भीगे हुये लाल बना हुआ जटा जूट को धारण कर दूसरे सूर्य जैसे दिखने लगा। केवल हृदय में नही सूर्यमण्डल में रहने वाले हिरण्यमय पुरुष भगवान का साक्षात्कार पा लिया।।12।।

वे स्तोत करते रहे।

ये दोष दूर, सृष्टिकर्ता, सर्वज्ञ, सूर्यान्तर्गत भगवान नारायण आप वेद माता के गर्भ से उत्पन्न होते हैं। इच्छा मात्र से इस सारे जगत को अपने वीर्य से सृष्ट करते हैं। दुःख लेप रहित होकर सृष्ट हुआ इस जगत में आप स्वयं प्रवेश करते हुये उसकी रक्षा करते हैं। विषय चाहने वाले जीवों के आप स्वयं स्वामी हैं। आपकी हम बार बार स्तुति करते है।।13।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्द में सातवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - आठ

शुक जी कहते है - एक बार राजा भरत गण्डकी नदी में स्नान करने के बाद वेद विहित नित्य कर्मो का अनुष्ठान कर शरीर नाश रहित परमब्रह्म नारायण को गायत्री इत्यादि मंत्रों से स्तोत्र करते हुये तीन मुहूर्त पर्यन्त नदी तट पर बैठे थे। उस समय एक हिरणी वहाँ आ गयी, अपनी प्यास बुझाने के लिये पानी पीने लगी। वह अकेली थी, उसी समय एक सिंह ने घोर गर्जना की ।।1।।

सदा भयभीत रहने वाली हिरणी उस आवाज को सुनकर बहुत घबरा गई। उसकी दिल की धड़कन और तेज हो गयी। उसकी चंचल दृष्टि और भी चंचल हो गयी। प्यास बुझने के पहले वह नदी पार करने के लिये छलांग मारी।।2।।

वह गर्भिणी थी। छलांग मारने से उसके गर्भ से निकला हुआ श्राव पानी में गिर गया। गर्भ श्राव के कारण, ऊपर छलांग मारने के कारण और भय के कारण वह वहीं मर गयी ।।3।।

वह मृग शावक अनाथ हो गया। माँ मर गयी है, कोई बन्धु नही है, पानी में बह रहे इस अनाथ बच्चे को देखकर चक्रवर्ती भरत को दया आ गयी। प्यार से उसको उठाकर अपने आश्रम में ले आये ।।4।।

उस मृग शावक में राजा भरत को बहुत ममता उत्पन्न हुई। वे रोज उसका पालन पोषण करते थे। प्यार से उसको गोद में लेते हुये उसको चुम्बन देते थे, आहार देते थे और सदाकाल उसी की चिन्ता में रहते थे। इस शावक के कारण वे अपनी देवापूजा यमादि व्रत कर्मो को एक एक कर छोड़ते चले। समय बीतने के बाद वे अपने सारे अनुष्ठान छोड़ दिये ।।5।।

वे अपने मन में चिन्तन किये। 'अरे यह बेचारा मृग शावक काल के कारण अपने सारे बन्धुओं से दूर होकर मेरे पास आ गया है। वह मुझको ही माँ बाप, भाई-बहन और बन्धुओं से बढ़कर रक्षक मानकर मेरे साथ रहता है। मुझको छोड़कर वह अन्य किसी को जानंता नही। मुझमें ही उसको आत्यान्तिक विश्वास है। मेरे शरण में आए हुए इस शावक को मुझे न रूठते हुये उसकी रक्षा करनी चाहिये। शरणागतों की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। उसके हाथ को छोड़ देना महापाप होता है ।।6।।

बड़े लोग शान्त होकर रहते हुये दीन-दरिद्रों में सदा प्यार रखते हैं। ऐसे समय में वे अपनी आशा आकांक्षाओ त्याग कर उनका हित चिन्तन करते हैं ।।7।।

भरत को उस मृग शावक में आत्यान्तिक मोह उत्पन्न हुआ। वह स्नान, भोजन, शयन, चलना-फिरना सारे सन्दर्भो में स्नेह पास से बाध्य होकर उसी के साथ रहने लगा ।।8।।

फूल-फल कन्दमूल लाने के लिये जंगल जाते समय भेड़ और कुत्ते से उसको कष्ट न हो इसके लिये उसको अपने साथ लेकर वन जाता था ।।9।।

रास्ते में उस शावक के खेल को देखते हुये प्यार भर कर उसको अपने कन्धे के ऊपर रखता था। कभी कभी आश्रम में उसको अपने गोद में ले लेता था। कभी कभी अपने छाती के ऊपर उसको रखते हुये परमानन्द से सो जाता था ।।10।।

नित्य नैमित्तक कर्म करते समय भी बीच बीच में वह उसको झाँक झाँक कर देखता था। वह आँख को दिखा तो सन्तोष होता था नहीं तो दुःख से उसको ढूढ़ने लगता था। मिले तो प्यार से बोलता था ऐ बेटा तुम्हारा कल्याण हो।।11।।

कभी वह अदृश्य हुआ तो उद्विग्न होकर धन को खोया हुआ लोभी के समान बन जाता था। उसके विरह के कारण दुख करता था। शोक से रोता था ।।12।।

अरे बेचारा प्यारा यह मृग शावक अपनी माँ को खो दिया है। मुझको ही वह रक्षक मानता है किन्तु मैं पुण्यवान नही हूं, मैं वंचक हूँ। वह मुझमें विश्वास रखते हुये माँ के पास आने वाले बच्चे के समान और पुनः मेरे पास आता है क्या? ।।13।।

भगवान की कृपा से वह क्षेम से वापस आकर यहाँ की हरी-भरी हरियाली और एक बार खायेगा क्या ? उसको मैं प्यार से देख सकूंगा क्या ? ।।14।।

जंगल में उसको भेड़िया या कुत्ता अथवा अन्य वन्य पशु उसको खा लिया है क्या?।।15।।

इस जगत को सुख देने वाला भगवान सूर्य देव अस्त होने वाले हैं। इस समय भी माँ के बिना रहने वाला वह शावक नही आ रहा है। मैं उसको कहा ढुंढू ।।16।।

मेरा हिरण राजकुमार मेरे पास और आ गया क्या ? आकर अपने लीलाओं से मुझे सुख देगा क्या? अपने लोगों का दुख दूर करना उसके हाथ में है। मैं उतना पुण्यशाली नही हूँ ।।17।।

मैं खेलने के लिये क्रोध व्यक्त करते हुये समधि के बहाना करते हुये आँखे बन्द कर बैठ गये तो वह अपने सिंह से मुझको घिसता है। वह मुझे आनन्द देता है ।।18।।

कुश के ऊपर मैं हविष् रखे तो वह उसको खाकर अपवित्र करता है। उस समय मैं उसको डाटता था। उससे घबरा गया वह अपने सारे क्रिया कर्तृत्व को बन्द करते हुये ऋषि कुमार जैसे स्तब्ध होकर गम्भीरता से बैठा जाता था।।19।।

इस रीति से विलाप करते हुये आश्रम के बाहर उस हिरण शावक के पाद चिह्नों को देखकर अपने में कहता है यह भूमि बहुत भाग्यवती है। यहाँ उस मनोहर मंगलकर मृग शावक का पाद चिन्ह अंकित है। यह हिरण शावक नाम के धन को खोया हुआ मुझ जैसे दीन दरिद्र को उस धन को पाने का मार्ग बता रहा है। उन पाद चिह्नों का यह क्षेत्र स्वर्ग और मोक्ष पाने वाले को यज्ञ भूमि के समान है ।।20।।

चन्द्र बिम्ब में रहने वाले हिरण का काला चिन्ह देखते हुये भरत अपने में कहते हैं। यह मेरे शावक की माँ सिंह के भय से प्राण को छोड़ दिया है। अब वह शावक भी आश्रम से छूटकर कहीं गायब हो गया है। दीन वत्सल भगवान चन्द्र उसको अपने में रख कर रक्षा कर रहे हैं क्या? यह रक्षा करने वाला चन्द्र उस शावक को मुझे वापस देंगे क्या?।।21।।

अथवा यह जो दिखता है वह चन्द्र नही है। वह मेरा मृग का बच्चा ही है। मेरे पुत्र जैसे पालित किया हुआ यह मृग शावक इससे दूर रहना मुझे आग लगा हुआ जैसे लगता है, मेरा हृदय जल रहा है। यह मेरा मृग शावक और मेरे पास आ जाये अपने मुख से हिमालय के शीतल रस नाम के अमूर्त किरण से मुझको आनन्द से सुखकर कर जाएं।।22।।

किसी भी आदमी को एक हिरण का शावक इतना व्यामोह उत्पन्न नही कर सकता। किन्तु प्रारब्ध कर्म के कारण विधि मृग शावक बनकर उसको कष्ट दे रहा है। इससे उनका हृदय व्याकुलित हो गया। योग रूप तप करने वाले वे योग अनुष्ठान और भगवदाराधना रूप कर्म को ही छोड़ दिये। मनुष्य से अन्य जाति वाले मृग में इतना प्यार का सम्बन्ध और कहीं नहीं दिखता। मोक्ष मार्ग में बाधक होने वाला अपने औरस पुत्रों को भी छोड़ने वाला वह राजर्षि इस शावक से इतना मोहित हो गया है। उस मृग के कारण राजर्षि भरत का योगानुष्ठान रूक गया। मृग के पालन पोषण में वह राजा भगवान को भी भूल गये। उसी समय कोई भी न पार करने वाला काल चूहा के घर में आने वाले सर्प की तरह भरत के ऊपर आक्रमण किया ।।23।।

मरण समय में भी भरत उस शावक को ही देखते थे। वह मृग शावक भी उसी को देखते हुये रोता था। उस शावक में ही मन रखे हुए राजा भरत उसी की चिन्ता में अपने शरीर को छोड़ दिये। पूर्व जन्म के स्मरण के साथ अनेक घटनाओं के याद के साथ अज्ञ मृग के समान शरीर वाला मृग के शरीर को पा गया। उस शरीर में रहते हुये भी भरत को पूर्व जन्म का पूरा स्मरण था ।।24।।

हिरण के जन्म में रहते हुये इस जन्म को पाने का कारण उसको अपने पूर्व पुण्य से याद आया। वह बहुत पश्चात्तप से अपने में विचार करने लगा ।।25।।

यह कष्ट की बात है कि मैं भगवान के ध्यान धारणादि मार्ग से भष्ट हो गया। सर्वसंग परित्याग कर एकान्त के लिये पुण्यारण्य में जप करने आया। मनोनिग्रह करते हुये सारे जीवात्माओं के अन्तर्यामी भगवान वासुदेव में सदाकाल भक्ति करते हुये उनके बारे में श्रवण-मनन, निधिध्यास इत्यादि अनुष्ठान करते हुये मन को भगवान में स्थिर करने के बाद निश्चिन्त होकर ध्यान करता था। इतना होते हुये भी अज्ञ होकर एक मृग के शावक में मन लगाकर अपने सर्वस्व को खो दिया ।।26।।

इस रीति से चिन्तन करते हुये मृग के जन्म में भी राजा भरत अत्यन्त वैराग्य से रहने लगा। माँ को छोड़कर अपनी जन्म भूमि कालंजर पर्वत को छोड़कर मुनिजनों को अत्यन्त प्रिय पुलस्त्य मुनि के आश्रम सालग्राम क्षेत्र को आ गया।।27।।

वह भी अपने मरण समय का निरीक्षण करते हुये सारी विषया सक्ति छोड़कर अकेले होकर वृक्ष से गिरी हुयी सुखी पत्ती और सूखे हुये घास और लताओं को खाकर अपना जीवन यापन करने लगा। अपने प्रारब्ध कर्म से प्राप्त हुए मृग जन्म की समाप्ति के काल की गणना करते हुये अन्तिम समय में गण्डकी नदी में स्नान कर अपने शरीर को छोड़ दिया ।।28।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्द में आठवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - नौ

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ

श्री शुकदेव जी कहते हैं अंगीरस गोत्र में प्रमुख एक ब्राह्मण था। शम, दम, तप, वेदाध्ययन करते हुये जो मिलता है उसी से तृप्त होकर द्वन्द्वों को सहन करते हुये विनय विद्या रखते हुये असूया रहित होकर भगवान के ज्ञान को पाकर आनन्द से रहता था। उसकी दो पत्नियाँ थीं। पहली पत्नी में अपने अंग रूप, नौ पुत्र हुये थे। दूसरी पत्नी में एक पुत्र और एक पुत्री जुड़वा होकर जन्म लिये ।।1।।

इन जुड़वा में पुत्र जो हुआ वह परम भगवद्भक्त राजर्षि भरत था। वह हिरण का जन्म छोड़ने के बाद अन्तिम जन्म में यह ब्राह्मण जन्म पा लिया ।।2।।

इस जन्म में भी भरत को बन्धु स्नेह से बहुत डर था। प्यार करने से योग मार्ग से भष्ट होता है, यह उसके पहले जन्म का अनुभव था। भगवान के चरण युगल के श्रवण-मनन ध्यान से सेवा करने से कर्म का बंध नाश होता है। भरत उन्ही पाद चरणों को अपने मन में सदाकाल ध्यान करता था। उसको केवल एक ही भय था। वह यह कि भगवान के स्मरण में पुन: बाधा न आ जाये। उसको अपने पूर्व जन्मों का स्मरण भगवान के अनुग्रह से प्राप्त था। उसी कारण वह काना, गूंगा और बहरे जैसे अपने जीवन को व्यतीत करता था ।।3।।

पुत्र के व्यामोह से उसके पिता उसको यज्ञोपवीत आदि समस्त ब्राह्मण संस्कारों को विधिपूर्वक करने लगे। उपनयन के बाद भरत को उनके पिता शौच, आचमनादि नियत कर्मो का पाठ करवा दिया। प्रत्येक्ष से देखने में भरत जड़ था किन्तु वह अपरोक्ष ज्ञानी था। अपरोक्ष ज्ञानी के लिये विधि निषेध का बंध नही रहता। भरत के पिता इसको नही जानते थे। वे पुत्र के प्यार से उनको धर्म मार्ग को सिखाने का बहुत प्रयास किये।।4।।

भरत अपने पिता के सामने कर्माचरण करते थे। किन्तु उपाकर्म के बाद वेद इत्यादि शास्त्र पाठ को पिता व्याहृति के साथ प्रणव शिरसहित गायत्री मंत्र को चैत्र से लेकर चार महीने तक उसको बोलने के बाद भी वह स्वर वर्ण शुद्धि से उनको बोल नही सका ।।5।।

आत्मा वै पुत्र नामासि इसके अनुसार अपने समान पुत्र को भरत के पिता अत्यन्त प्यार से शौच, वेदाध्ययन, व्रत नियम, गुरु सेवा और अग्नि कार्य इत्यादि योग्य कर्मो को उनकी इच्छा के विरूद्ध अत्यन्त आग्रह से सिखाने लगे। इतना प्रयत्न करने के बाद भी वे यशस्वी नही हुये। गृहस्थाश्रम में निरत वह काल को भूल गया था। एकदिन काल वश होकर वह मर गया ।।6।।

छोटी पत्नी अपनी पुत्र और पुत्री को अपने सौत के हाथ में देकर वह पति के साथ सहगम होकर पतिलोक को पा ली। भरत के सारे भाई वेदानुसार स्वर्गादि भोगों को पाना ही जीवन में बड़ा श्रेय मानने वाले थे। उनको परा

विद्या में श्रद्धा नही थी। पिता जी के मर जाने के बाद भरत का प्रभाव न जानने वाले उनके भाई उसको मूढ़ मानकर कर्म काण्ड के किसी शिक्षण देने में आसक्ति नही रखे ।।7।।

अज्ञ लोग भरत को मूढ़, काना, बहरा मानकर उससे चेष्टा करते थे। भरत भी उसके अनुसार ही वर्तन करता था। लोग उससे कुली का काम करवाते थे। काम करने के बाद उसको मजदूरी भी नही देते थे। भरत उनके अनुसार काम करता था। भगवान की कृपा से जो मिलता है, उसी से वह तृप्त रहता था। भीख मांगकर जो थोड़ा मिलता था उसी को वह चाहे अच्छा रहे या बुरा उसको न देखते हुये खाता था। उसी में आनन्द पाता था। वह जीभ के लालच में कभी नही पड़ा ।।8।।

भरत को सदाकाल दुःख रहित शुद्ध स्वप्रकाश युक्त आनन्द रूप भगवान का स्वरूप और अपने आत्मस्वरूप का अनुभव हो चुका है। देह का सम्पूर्ण अभिमान छोड़ने के कारण उसको शीत उष्ण, मान-अपमान आदि द्वंद्वो का सुख दुःख नही होता था ।।9।।

ठण्डा, गर्मी, आँधी और तुफानों में वह सांड़ की तरह नंगे बदन चलता रहता था। परिपुष्ट और दृढ़काय वाला वह जमीन पर सोता था। स्नान न करने के कारण उसके शरीर को गंदगी लगी रहती थी। उसका ब्रह्मतेज कीचड़ में गिरे हुए रत्न के समान मन्द हो गया था। एक फटा हुआ कपड़ा जैसे तैसे शरीर में लपेटे रखता था। उसका यज्ञोपवीत काला सा बन गया था। देखने वाले उसको कर्मभ्रष्ट ब्राह्मण कहते थे ।।10।।

कुली के काम से उसका पेट नही भरता था। इसको देखकर उनके भाई उसको खेत के काम में जोड़ दिये। भरत उसको भी आनन्द से करने लगा। लोग जो देते थे उसको वह ठीक तरह से देखता भी नही था। कम ज्यादा कुछ भी मिले उसी को ले आता था। खराब आहार जला हुआ अन्न और कीटों से नष्ट हुये अन्न को भी वह प्यार से खाता था ।।11।।

एक बार एक शूद्र राजा अपने को पुत्र प्राप्ति के लिये भद्रकाली को नरबलि देने का संकल्प किया ।।12।।

किन्तु बलि देने के लिये लाया हुआ आदमी अपने पुण्य के कारण वहाँ से भाग गया। उस राजा के सैनिक उसको ढूढ़ते हुये इधर उधर घूमने लगे। आधी रात बीत चुकी थी, अन्धेरे में वह मनुष्य नही मिला। उसी समय क्षेत्र की रक्षा के लिये वीरासन में बैठा हुआ अंगिरस गोत्र के ब्राह्मण श्रेष्ठ के पुत्र भरत उनकी नजर में आ गया। उसको देखकर उन सैनिकों को बहुत आनन्द हुआ। कारण यह था कि वह हृष्ट-पुष्ट होकर बलि देने के लिये योग्य लगता था। वे भरत को रस्सी से बाँधकर चण्डी देवालय को खींच के ले चले गये। बाद में उस शुद्र पुरोहितों ने अपने कार्य क्रम के अनुसार भरत को नहला धुलाकर नये कपड़े पहना दिये, आभरण गन्ध तिलक लगाकर लाल रंग का फूल माला चढ़ा दिये। धूप-दीप लेकर गाना गाते हुये देवी को अर्पण करने वाले फल इत्यादि लेकर स्त्रोत गान गाते हुये मृदंग ढ़ोलक इत्यादि वाद्य को बजाते हुये महाघोष के साथ बलि पशु भरत को भद्रकाली के सामने बैठा दिये।।13,14,15।।

शुद्र पुरोहित नर बलि देने के बाद उसी रक्त से भद्रकाली की पूजा करने के लिये सिद्ध होकर देवी मंत्र से

अभिमंत्रित अपना तीक्ष्ण और भयानक खड्ग को हाथ में ले लिया ।।16।।

वह शूद्र राजा तमस भाव का था। धन मद से उसका मन कलुषित हो गया था। वह भगवान के सन्निधान में रहने वाले अंगिरस कुल को भी तिरस्कार करते हुये दुर्मार्ग में अपनी इच्छानुसार विहार करते थे। हिंसा को वे खेल समझते थे। वे नर बलि का घोर कर्म करने लगे हैं। भरत परब्रह्म में मन रखा हुआ साक्षात् ब्रह्मर्षि कुमार है। वह किसी के साथ बैर नही रखता था। सब जीवियों को प्यार से देखता था। उसको बलि रूप में अर्पण करने की सिद्धता को भद्रकाली देवी ने देख लिया। उस ब्राह्मण कुमार में सन्निहित होकर रहने वाले श्रीहरि के महा सामर्थ्य को देखकर देवी के मन में सन्ताप हुआ। वे प्रतिमा से बाहर आईं ।।17।।

वे जो कर रहे हैं उससे देवी का अपमान हो रहा है। देवी को असहनीय क्रोध आ गया है। भौहें सिकुड़ कर अपने रोष को प्रकट कर रही हैं। उसका भयावह दांत, लाल लाल आँखें सबको डरा रही हैं। वह सारे जगत को नाश करने वाली लगती थी। वह सिंहनाद करते हुये झट से पुरोहित के हाथ से खड्ग को लेकर उसी खड्ग से उन सारे लोगों का सिर काट दिये। बाद में वहाँ बहता हुआ रक्त को पीकर मदमत्त होकर अपने गणों के साथ गाने लगी, नाचने लगी और उनके सिरों को लेकर उनको गेंद करते हुये खेल खेलने लगी ।।18।।

बड़े लोगो का अतिक्रमण या हिंसाचार करे तो वह जो करता है, उसी को मारता है ।।19।।

हे परीक्षित राजा सुनो - अपने शिरछेद के समय में भी भरत तनिक भी नही घबराया। भगवद्भक्त परमहंस लोग अपने देह का अभिमान नही रखते हैं। उनकी हृदय ग्रंथि छूट जाती है। वे सब लोगों का आप मित्र बनते है। वे किसी में द्वेष नही करते है। भगवान स्वयं कालचक्र नाम के आयुध को पकड़ कर जगृत होकर सदाकाल सारे अपत्तियों से उनकी रक्षा करते रहते है। वे लोग भयरहित होकर उनके पाद चरणों के शरण में रहते है। इसके लिये भरत अपनी बलि देने के समय में भी बिल्कुल भयभीत नही हुये। इसमें आश्चर्य करने की बात क्या है ?।।20।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्द में नवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - दस

श्री शुकदेव कहते हैं - सिन्धु सौवीर देश का राजा रहूगण एकबार इक्षुमती नदी तट के ऊपर रहने वाले आश्रम में वास करने वाले भगवान कपिल मुनि को देखने निकला। राजा की पालकी को ढ़ोने के लिये राजा के भृत्य लोगो को ढूढ़ रहे थे। उस समय एक आदमी कम पड़ा था। दैववश होकर ब्राह्मण श्रेष्ठ भरत उनको रास्ते में मिल गया। यह हृष्ट-पुष्ट युवक हट्टा-कट्टा है। यह गधे की तरह किसी भी भार को ढो सकता है। इस रीति से विचार करते हुये वह भृत्य भरत को जबर्दस्ती से पकड़ कर लाया। ब्राह्मण होने के कारण भरत ऐसे कार्यों के लिये योग्य नही था। तो भी वहे कुछ भी विचार न करते हुये पालकी को ढ़ोने लगा ।।1।।

अपने पाँव के नीचे चींटी इत्यादि कृमि कीट न मर जाये इस दृष्टि से वह नीचे देखते हुये इधर उधर बड़े छोटे पाँव रखते हुये चल रहा था। अन्य किसी के साथ इनका पाद नही सधते थे। इसके लिये पालकी ऊपर नीचे होने लगी। अन्दर बैठा हुआ राजा को इससे कष्ट हुआ। राजा कहांरों को डाटते हुये बोला ठीक तरह से चलो।।2।।

इससे सारे कहांर घबरा कर राजा के सामने विनती करने लगे ।।3।।

हे महाराज! हमने कुछ गलती नही की है। हम नियमानुसार पालकी ढ़ो रहे है। लेकिन नया जो आदमी आया है वह ठीक तरह से चलता नही है। उसके साथ जाना हमारे वश का काम नही है ।।4।।

राजा विचार करने लगा। संग दोष ऐसे ही होता है। एक गलती किया तो सारे लोग उसी का अनुसरण करते हैं। यह विचार करते हुये राजा स्वयं ज्ञानी था किन्तु क्षत्रिय स्वभाव के कारण कुपित हो गया। भरत का ब्रह्मतेज बाहर नही दिखता था। वह राख से ढ़का हुआ आग जैसे था। राजा भी उस समय तमोगुण से आवृत्त हो गया था। वह भरत से कहा।।5।।

अरे भाई, तुम बहुत थक गये हो। तुम अकेले इस पालकी को इतनी दूर तक लेकर आये हो। तुम बहुत दुबले पतले हो। तुम्हारे में बिल्कुल शक्ति नही है न ? तुम बूढ़े हो हे मित्र सुनो। बाकी के कहार जो हैं वे तुम्हारे जैसे नही हैं। वे हृष्ट-पुष्ट होकर दृढ़ हैं ।।6।।

राजा व्यंग से कितनी भी निन्दा किये तो भी भरत मौन होकर पालकी ढ़ो रहा था। भगवान की इच्छानुसार इस प्रकृति से सृष्ट हुये पंच महाभूत, त्रिगुण और पुण्य-पाप कर्म अन्तःकरण से मिले हुये अव्यय के साथ मिलकर अनित्य हुआ इस शरीर में रहते हुये मैं और मेरा भाव को उत्पन्न करते रहते हैं। किन्तु भरत अपने अन्तिम शरीर में है। वे इस तरह के कर्तृत्व भ्रान्ति को करने वाले नही हैं। वे अपने मन से सदाकाल परब्रह्म का ध्यान करते थे। वे राजा के सामने कुछ नही बोले ।।7।।

पालकी यथा प्रकार ऊपर नीचे होता था। रहूगण को क्रोध आ गया। उसने कहा, रे, तू जिन्दा है या मरा है।

मेरी आज्ञा को न मानते हुये अपनी इच्छानुसार चल रहा है। इस लोक को मैं ही यम के समान हूँ, दण्ड लेकर योग्य शिक्षा देने वाला हूँ। तुमको सही ज्ञान नही है। इसके लिये योग्य शिक्षा दूंगा। तब तुम ठीक हो जाओगे ।।8।।

राजा, राजा होने के दुरभिमान से असम्बद्ध बातें करता रहा। वह रजोगुण और तमोगुण से उन्मत्त हो गया था। योगी लोग अभिमान त्याग कर कैसे रहते हैं इसका ज्ञान उसको नही था। वह अहंकार से भगवान के प्रिय और पिछले जन्म में भगवान में ही मन लगाकर सारे जीवियों में भगवान को देखने वाले भरत को राजा तिरस्कार से देख रहा है। अज्ञान से अपराध किया हुआ क्षत्रिय राजा को भरत हंसते हुये बोलने लगे ।।9।।

ब्राह्मण बोलते हैं - भाई, तुम अकेले पालकी को ढो रहे हो। आपके इस व्यंग का अर्थ मैं पालकी को ठीक तरह से नही ढो रहा हूँ। यह होता है। यह सही है, भार ढोने वाला और रास्ते में चलने वाला मैं ही हुआ तो तुम जो बोले वह गलत होता था। इस काम में मैं अस्वतंत्र हूँ। वस्तुत: भगवान श्रीहरि ही स्वतंत्र रूप से भार ढोते हैं, और रास्ते में चलते हैं। मैं अस्वतंत्र हूँ। मैं मोटा हूँ, यह जो बोलते हो वह सत्य नही है। यह मेरा शरीर मोटा है, मैं वह शरीर नही हूँ ।।10।।

शरीर मोटा होना, दुर्बल रहना, दैहिक और मानसिक रोग भूख और प्यास, भय और कलह, इच्छा, बुढ़ापा, नींद, दु:ख, क्रोध, अहंकार और मद ये सारे देहाभिमान जिनको हैं उनको होते है। ये सारे मुझको होते ही नही ।।11।।

हे राजा! आपने कहा, मैं जीते हुये भी मर गया हूँ। आपने यह जो कहा, वह मेरे लिये नही है। जीना और मरना देह का स्वभाव है। जीव के लिये नहीं। शरीर में प्राण रहने तक यह जीवन चलता है। असहनीय दु:ख होने के बाद मरण आता है। यह सारे जीवित शरीरों के समान है। तुम मेरे इस शरीर के बारे में अलग क्या बताते हो। तुमने कहा मैंने राजाज्ञा का उल्लंघन किया है। किन्तु राजा आप कौन आज्ञा देने वाले हैं। आपके अन्दर रहकर मुख्य आज्ञा देने वाले सर्वेश्वर भगवान नारायण है। उनके अधीन होकर अन्य देवता आज्ञा देते हैं। तुम्हारे जैसा राजा हमारे ऊपर क्या आज्ञा कर सकता है ।।12।।

इस देश का मैं राजा हूँ, इस बोली में क्या विशेषता है। मनुष्य को व्यवहार में बोलने के लिये ये शब्द होते हैं। इसके अलावा इन शब्दों में क्या अर्थ है। इस देश में राजा कौन है, और प्रजा कौन है। स्वाभाविक नही कर्म, वश होकर तुम राजा बन गये हो। मैं भी इसको मानता हूँ। इसी कारण मैं यथा शक्ति तुम्हारी आज्ञा का पालन करते आया हूँ। किन्तु कर्म वश से मैं राजा बनू तो तुमको मेरी आज्ञा का पालन करना पड़ता है।।13।।

हे राजा! तुमने कहा मुझमें ज्ञान नही है, इसके लिये योग्य दण्ड देता हूँ। किन्तु देहाभिमान को छोड़कर मत्त जैसे मूढ़ रीति से रहने वाला मैं सदाकाल भगवान के ध्यान में रहता हूँ। तुम्हारा मुझको डाँटना या दण्ड देना इससे तुमको क्या होने वाला है। यदि मैं देहाभिमान से अहंकारी होता तो उस समय तुम्हारा दण्ड आँटा को और एकबार आँटा करने का प्रयास जैसे व्यर्थ होता है क्योंकि स्वभाव को कोई बदल नही सकता ।।14।।

शुक देव बोले - विषयासक्ति से दूर श्रेष्ठ मुनि भरत ने राजा की बातों को एक एक करके खण्डन करते हुये शुद्ध शास्त्रयोग्य बातों से राजा को उत्तर देते हुये भरत पहले जैसे पालकी को ढोते हुये चलने लगा। देह सम्बन्ध से

होने वाले सुख दु:ख और देहाभिमान न रहने वाला भरत इस देह के कारण प्राप्त हुआ प्रारब्ध कर्म को भोगना ही पडेगा। इस दृष्टि से उसने पालकी को ढ़ोते चला ।।15।।

राजा परीक्षित! सुनो - वह राजा रहूगण तत्व विचार में उत्तम श्रद्धा रखता था। वह योग्य था, उसके अन्त:करण में रहने वाला मैं और मेरा को नष्ट करने वाली उस ब्राह्मण की बातें सुनकर, उसने बहुत से योग्य शास्त्र के प्रमेय को देखकर राजा अपनी पालकी से उतर गया। भरत को दण्डवत् प्रणाम किया। राजा का अहंकार नाश हो गया था। वह क्षमा प्रार्थना करते हुये कहा ।।16।।

राजा रहूगण प्रश्न करता है - महात्मा! ब्राह्मणों में आप कौन हैं। आप यज्ञोपवीत को धारण किये हैं। अवधूतों में आप कौन अवधूत हैं। आप किनके पुत्र हैं और कहाँ रहते हैं। आप यहाँ क्यों आये? आप किस कारण से संचार कर रहे हैं। आप हमारे ऊपर अनुग्रह करने आए कपिल मुनि हैं क्या? ।।17।।

मैं देवेन्द्र के वज्रायुध से नहीं डरता। शिव के शूल से भी और यम के दण्ड से भी मैं डरने वाला नही हूँ। अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु और कुबेरों के अस्त्रों से मुझे कुछ भय नही है। किन्तु ब्राह्मण का अपमान करने के अपराध से मैं बहुत डरता हूँ ।।18।।

आप मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दीजिये। आप अपने ज्ञान के प्रभाव को छिणकर रखे हैं। आप बड़े महिमाशाली हैं। आप सर्वसंग त्याग करके मूर्ख जैसे संचार कर रहे हैं। हे साधु! आपकी बातों में अनेक शास्त्रों के प्रमेय भरे हैं। वे मन से चिंतन कर समझने योग्य हैं ।।19।।

मैं भगवान के अवतार, परम तत्वज्ञानी, गुरुओं के गुरु, ज्ञान कार्य के लिये ही अवतार लिये हुये साक्षात् विष्णु स्वरूप योगेश्वर कपिलमुनि को देखने जा रहा हूँ, मैं इस संसार की रक्षा करने वाले के बारे में उनसे पूछना चाहता हूँ।।20।।

मैं समझता हूँ कि आप ही वह कपिलमुनि हैं। आप इस लोक में सज्जन और दुष्टों की परीक्षा करने के लिये गुप्त वेश से संचार कर रहे हैं। अल्प बुद्धि वाला, संसार में आसक्ति रखने वाला मैं, योगेश्वर आपको कैसे जान सकूं? ।।21।।

मेरे प्रश्न ये हैं - मुझको कर्म से श्रम होता है। आप पालकी ढो रहे थे। आपको भी श्रम होता होगा। हमें श्रुति विहित कर्मो का आचार करना होगा। नही तो वेद असत्य होते हैं। हमारे लौकिक वैदिक, व्यावहारिक, जीव कर्तृत्व सही है, अनुभव सिद्ध हैं। यह होते हुये भी आप बोले कि भार ढोने वाला मैं नही हूँ, चलने वाला भी मैं नही हूँ। यह सत्य कैसे होता है ।।22।।

आप और बोले देह का मोटापन और छोटापन मन के ऊपर परिणाम नही करता। इसका भी विचार करना पड़ता है क्योंकि एक पात्र को चूल्हे के ऊपर रखने के बाद पहले पात्र गर्म होता है। बाद में पानी उबलना शुरू करता है, बाद में उसमें चावल डालने से अन्न बन जाता है। वैसे ही इस देह में इन्द्रिय, प्राण और अन्त:कारण इनके सम्बन्धों से जीव को शरीर का मोटापन और छोटापन से सुख-दु:ख होते हैं। अपनी योग्यता और पूर्व कर्म के

अनुसार मन में क्षोभ होना इस संसार में स्वभाविक है ।।23।।

राजा दुर्जनों को दण्ड देते हुये सज्जनों का रक्षक होकर उनकी सेवा करे तो वह आँटा पीसने के समान व्यर्थ नही होगा। भगवान की पूजा रूप में राजा का अपने धर्म का आचरण करने से उसका कर्तव्य भंग नही होता। उससे उसको आने वाले पापों का नाश होता है ।।24।।

आप ने इन बातों को कहा, ये बातें मुझे ठीक नही लगती। आप ज्ञानी हैं, आप कभी भी असत्य नही बोलते। इसके लिये आप जो बोले वह सही होता है। मैं राजा होने के दुरहंकार से परम साधु आपको तिरस्कार भाव से देखा। आप दु:खित लोगो के बन्धु हैं। आप मेरे ऊपर दया करें। आप मुझे सही उपदेश दें, आगे चलकर मैं ऐसा पाप कभी भी न करू ।।25।।

विश्वबन्धु भगवान! श्री नारायण आपके मित्र हैं। इसी कारण आप मान-सम्मान, अपमान को समान रीति से देखते हैं। इस अपमान से आपके मन में विकार नहीं हुआ होगा। किन्तु बड़े लोगों का अपमान करने वाला मेरे जैसा आदमी निश्चित रूप से अपनी करनी से, अपने पाप से स्वयं जल जाता है। स्वयं रूद्र भी हों, अपने से बड़े लोगों का अपमान करे तो वह जल जायेंगे। गरुड़ पुराण का यह वचन सही है ।।26।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्द में दसवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - ग्यारह

राजा के प्रश्नों का जड़ भरत उत्तर देते हैं - राजा, तुम पण्डित नही हो। किन्तु पण्डित जैसे वाद करते हो। उत्तम ज्ञानियों में ज्ञानी जैसे बर्ताव करना शक्य नही है। अपरोक्ष ज्ञानी लोग तत्व ज्ञान के साथ लौकिक व्यवहार को मानते नहीं। जीव अस्वतंत्र है। उसका कर्तृत्व नाम मात्र का है। किन्तु श्रीहरि के कतृत्व के बारे में बोलते समय ज्ञानी लोग जीव के कर्तृत्व को मानते नही। इसी कारण मैंने कहा, मैं पालकी नही ढो रहा हूँ, और चलने वाला मैं नही हूँ।।1।।

गृहस्थाश्रम में करने वाले बड़े बड़े यज्ञ के बारे में बोलने वाले कल्प सूत्रादि ग्रन्थ केवल कर्मकाण्ड के बारे में कहते होंगे। किन्तु यह ऊपर से देखने वाले को लगता है। भगवान ही यज्ञ का प्रेरक है। वही फल को भोगता है। जीव भगवान से दिये हुये फल को खाता है। उनके प्रीति के लिये कर्म विधि है। यह विचार कर्मकाण्ड को ऊपर से देखने वाले को दिखता नही। सम्प्रदाय को जानने वाले गुरु के उपदेश से उसको समझ सकते हैं। इसी कारण मैंने कहा, कर्मों को जीव करता नहीं, भगवान उससे करवाते हैं। इसी के लिये मैंने बताया कि जीव को कर्तृत्व नही है।।2।।

गृहस्थाश्रम में मिलने वाला सुख स्वप्न के समान अल्प और स्थिर होता है। इसको त्यागना चाहिये। इसको जो नही समझता है, विषय वैराग्य रहित उस मनुष्य को अपौरूषेय और दोषरहित, भगवान के बारे में ही बोलने वाले वेदों की बात भी तत्वज्ञान को प्राप्त नही करा सकती ।।3।।

स्वप्न के दृष्टांत से विषय सुख त्याज्य है। ऐसे मानव अपने मनो दोष के कारण समझ नही सकता। मन सत्व, रजो और तमो गुण से परवश होकर बुद्धि, अहंकार इत्यादि से, और विषय की इच्छाओं से निरंकुश होकर वेदों की विधि निषेधों का उल्लंघन करते हुये सत्कर्म, दुष्कर्मो को करते रहता है ।।4।।

सत्वादि गुणों से मन उन गुणों के अधीन होकर कार्य करता है। षोडश कला वाले लिंग शरीर में मन बहुत प्रधान है। वह अपने में रहने वाले संस्कारों से स्वप्न में जीव को अनेक नाम, आकार वाले देव, मानव और असुरों के शरीरों को उनके कर्म के अनुसार अनुभव करा देता है ।।5।।

भगवान की इच्छा से प्रकृति से निर्माण हुआ मन इस लिंग शरीर में रहते हुये शरीर के अन्दर रहने वाले जीव को आलिंगन करते हुये उसके साथ रहता है। जीव को काल से आने वाले सुख-दुखों का अथवा उनके मिश्रण का अनुभव कराता रहता है। इसी कारण यह संसार मानव को सुख-दुःख का अनुभव को चक्र जैसे बार बार करता रहता है ।।6।।

इस रीति से मन अपने दोष से जीव को जब तक सुख-दुःख को जब तक उत्पन्न करता रहता है, तब तक भगवान और वायु जागृत स्वप्न और सुषुप्ति में स्थूल सूक्ष्म विषयों का अभिमान कराते रहते हैं। मन उनके अधीन रहता है। इसके लिये जीवों को संसार से उत्तम और अधोगति दोनो होते हैं ।।7।।

मनः एव मनुष्याणाम् कारणम् बंध मोक्षयोः। अच्छे जीवियों को इस संसार में सज्जनों के संग के कारण मोक्ष मिलता है। अधम जीव को दुष्ट जनों के संग के कारण नरक मिलता है। नित्य संसारी लोग सदाकाल संसार में ही अपने मन को लगाते रहते हैं। उनके लिये संसार ही नित्य हो जाता है।

मन शब्दादि विषयों में आसक्त हुआ तो संसार के दुःख के लिये कारण बन जाता है। वही मन भगवान में आसक्त हुआ तो मोक्ष का कारण बन जाता है। घी और बत्ती से जलने वाला दीप ज्वाला के साथ धुआँ को प्रसारित करता है। वहीं अग्नि से जला हुआ लोहा ज्वाला और धुआँ के बिना अपने स्वरूप से ही लाल होकर रहता है। ऐसे ही त्रिगुणों के परिणाम रूप कर्मो के अनुसार कामादि विषयों से मन दूषित हुआ तो बाहर के विषयों के बारे में विचार करने लगता है। वही मन रागादि दोष के बिना चिन्तन करने लगे तो भगवान में भक्ति करने लगता है ।।8।।

बाहर के विषय पदार्थों में मन इन्द्रियों के साथ ग्यारह कामों को करते रहता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पाँच रीति के अभिमान उनके बारे में पांच तरह की इच्छायें इनके साथ विषय में लगने वाला मन ये ग्यारह कार्य होते हैं। इन्द्रियों के साथ काम कराने वाले मन का ग्यारह काम होता है। मन दस इन्द्रियों में प्रवेश करते हुये उन दस इन्द्रियों के बारे में अभिमान रखता है। अपने विषय में तो उनके लिये अभिमान है ही, इन्द्रियों के लिये शब्दादि विषय पाँच हैं। उसके उच्चारण रूप कर्म पाँच और अभिमान का कारण शरीर एक ऐसे ये ग्यारह होते हैं। यह ज्ञानियों का अभिप्राय है। बाहर दिखने वाले ये ग्यारह इन्द्रिय गोलक उनके ग्यारह आश्रय स्थान हैं ।।9।।

गन्ध नाक के लिये विषय बनता है। रुप आँख का विषय है। स्पर्श त्वगिन्द्रिय का विषय है। रस जीभ का विषय बनता है। शब्द कान का, विसर्जन गुदा और लिंग का, गमन पाद का, सुखानुभव उपस्थ का विषय बनता है। शब्द मुख का काम बनता है। हाथ से काम करने का है ये दस इन्द्रियों को अपना मानकर अभिमान करने वाला मन ग्यारहवां है। मैं ही करने वाला हूँ, यह अभिमान करने वाला मन बारहवां होता है। इस रीति से संस्कार बारह हैं। दस इन्द्रियों के लिये दस विषय होते हुये भी उनमें अभिमान करने से ही संस्कार बनते हैं। इससे मिलकर मैं और मेरा यह अभिमान रखना और मै स्वतंत्र करती हूँ यह अभिमान रखना इस संसार के लिये मुख्य कारण है। यह ज्ञानियों का मत है ।।10।।

ग्यारह तरह के मन के क्रिया कारित्व देह, इन्द्रियाँ इत्यादि द्रव्यों से, जीव की योग्यता से, अन्तःकरण से और पुण्य पाप कर्मों से काल के अनुसार होता है। इनमें अन्तःकरण उपादान कारण होता है। (अन्तःकरण के कारण ही सारे संस्कार बनते हैं।) बाकी के निमित्त कारण बनते हैं। मन के यह ग्यारह तरह के कार्यकारित्व सैकड़ों और हजारों और करोड़ों बन कर जीव को कष्ट देते हैं। इन सब को करने वाले भगवान हैं। अस्वतंत्र जीव इसका कर्ता नही बन सकता। जीव की इच्छा के अनुसार मन चिन्तन नही करता। मन के चिन्तन को ही कर्तृत्व मानना अथवा अपने का स्वयं कर्तृत्व मानना दोनो युक्तियुक्त नही होता ।।11।।

जीव के मन की चिन्तनाओं के लिये भगवान हरि ही स्वतंत्र कर्ता हैं क्योंकि वही शुद्ध कर्ता हैं, जीव अशुद्ध कर्ता है। मन के चिन्तन के कारण जीव को सुख-दुःखादि विकार होते हैं। भगवान को ये विकार नही हैं। श्रीहरि अपनी इच्छानुसार उनका सृजन करते हैं और तीन क्षण के बाद उनका नाश करते हैं। जागृति और स्वप्न में जीव को

उनका अनुभव देते हैं। अनुभव केवल त्याज्य विषयों के बारे में रहता है। उदासीन विषयों को जीव देखते हुये भी उसको उनका अनुभव नही आता है। इस रीति से मन का कार्य कारित्व केवल जीव के लिये देखने को मिलते हैं। किन्तु भगवान श्रीहरि शुद्ध कर्ता होकर सारे कार्य कारित्व का कर्ता होते हैं ।।12।।

हरि विलक्षण हैं। वे जीव के अन्तर्यामी होकर जीव के शरीर में रहते हैं। वे स्वतंत्र हैं। जीव के बारे में उनको पूर्ण ज्ञान होता है। जीव की तरह वे अज्ञानी नही हैं। भगवान बहुत प्राचीन काल से रहते हैं। स्वयंप्रकाश वाले जनन रहित, पुरुषोत्तम भगवान श्री नारायण स्वयं वासुदेव हैं, शुद्ध परतत्व केवल निर्गुण और निराकार नही। नारायण जीव में रहते हैं। किन्तु जीव के आश्रय से नही, स्वेच्छा से ही वे जीव में रहते हैं। स्वयं उनका आश्रय उनके लिये है। जीव को वे अदृश्य हैं ।।13।।

जीव के अन्तर्यामी होकर भी भगवान को जीव के पापों का सम्बन्ध नही आता क्योंकि स्थावर जंगम जीव में प्राण रूप से प्रवेश किये हुये मुख्य प्राण भी जीव के पाप सम्बन्ध के बिना ही उनके प्रेरक होते है तो मुख्य प्राण से भी उत्तम भगवान वासुदेव इस स्थावर जंगम रूप प्रकृति में अन्तर्यामी होकर प्रवेश करने मात्र से जीव के पापादि सम्बन्ध उनको कैसे लगते हैं ।।14।।

मोक्ष योग्य देह धारण करने वाला जीव जब तक विषयों में मैं, मेरा और मैंने किया, यह मेरा है इस अभिमान रूप माया को शास्त्रज्ञान से दूर करते हुये, पत्नी पुत्रों में आसक्ति छोड़कर, अरिषड् वर्गों को जीत कर वेद में श्रेष्ठ परब्रह्म के अपरोक्ष को नहीं पाता, तब तक वह संसार में चक्कर लगाते रहता है ।।15।।

अपरोक्ष ज्ञान होने के बाद भी प्रारब्ध भोगते तक विषयों में मैं और मेरा का अभिमान उत्पन्न होते रहता है। इस संसार के दु:ख का बीज अंकुर होने का स्थान मन ही है। शोक, मोह, रोग, राग, लोभ, वैर इन सबके लिये मन ही मूल कारण है। जीव योग्यता भी इस मन के कारण ही समझ में आती है। जिस दिन जीव को यह मैं, मेरे में अभिमान नही होता उसी दिन से वह मोक्ष मार्ग में चलने लगता है ।।16।।

मैं और मेरा यह अभिमान जीव के लिये शत्रु हैं। मैं और मेरा की शक्ति बहुत बड़ी है। थोड़ा सा अलक्ष्य से वह वृद्धि होता है। हे रहूगण, इस मिथ्या अभिमान को गुरु पाद सेवा नाम के अस्त्र से बहुत होशियारी से नाश करो।।17।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्द में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - बारह

रहूगण कहता है - अपने स्वरूप के आनन्दानुभव से इस जड़ देह में अभिमान छोड़े हुये आप नित्य परमात्म का सन्निधान के अनुभव करते हुये भी अवधूत ब्राह्मण वेश से उसको छिपाकर रखे हैं। केवल प्रारब्ध कर्म मात्र से शरीर धारण करने वाले आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ।।1।।

इस दुष्ट देहाभिमान नाम के विष सर्प के काटने से तत्व ज्ञान को खोया हुआ मुझको आपकी बात से ज्वर से पीड़ित को औषधि मिलने से अथवा गर्मी से पीड़ित आदमी को ठण्डा पानी मिलने से जो आनन्द होता है वह आनन्द मुझे हुआ है ।।2।।

इसके लिये मैं प्रथमत: अपने संशय निवृत्ति के लिये आपके सामने पहले प्रस्ताप किया हुआ शास्त्र प्रमेय के बारे में कुछ पूछना चाहता हूँ। आप मेरे लिये विस्तार पूर्वक बताइये। मेरे मन में इसके बारे में बहुत कुतूहल है।।3।।

हे योगेश्वर, प्रत्यक्षादि प्रमाण से दिखने वाले कर्म से होने वाले श्रम से जीव को प्रयोजन होता है। तो भी उससे सिद्ध होने वाले जीव कर्तृत्व को आप मानते नही। आप केवल भगवान के कर्तृत्व को मानने वाले हैं। इस बात में मुझे सन्देह आता है ।।4।।

ब्राह्मण भरत बोलते हैं - भगवान ही मुख्य कर्ता होते हैं। उनके मुख्य कर्तृत्व को छोड़कर मैं कर्ता हूँ यह बोलना सही नही है। मुख्य कर्ता यह विवक्षित नही है तो मैं जमीन पर चलता हूँ इसका अर्थ क्या है क्योंकि जमीन में केवल मेरे दो पाद चलते हैं। पाद के ऊपर एड़ी, एड़ी के ऊपर पांव, पांव के ऊपर जांघ, जांघ के ऊपर पेट, पेट के ऊपर हृदय, हृदय के ऊपर सिर है। हम जमीन के ऊपर चलते हैं इसका अर्थ केवल पाद चलता है , यह नही किन्तु हमारा पूरा शरीर चलता है। किन्तु मुख्य आश्रय पाद होते हुये भी हम पाद से चलते नही कहते हुये हम जमीन के ऊपर चलते हैं बोलते हैं। जैसे शरीर के चलने में पाद मुख्य आश्रय है वैसे ही जीव के काम करने में भगवान ही मुख्य आश्रय हैं, वे अन्तर्यामी होकर काम करवाते हैं। इसलिये उन्ही को ही मुख्य आश्रय कहना चाहिये ।।5।।

इसी तरह राजा रहूगण जमीन पर आ रहा है। इसके अर्थ को भी मूलाश्रय के विवक्ष से बोलना चाहिये क्योकि कहांर के ऊपर लकड़ी की पालकी है। पालकी में सौवीर राजा नाम से परिचित देह है। उस देह में रहने वाले तुम यह मेरा शरीर मान कर उसमें अभिमान रखा है। मैं सिन्धु देश का राजा इस दुरहंकार से भरे हुए तुम अन्धे हो गये हो। लोग कहांर के कन्धे के ऊपर राजा आ रहा है ऐसे नही कहते। जमीन ही मुख्य आश्रय होने के कारण राजा जमीन पर चलता है ऐसे कहते हैं। यहाँ जमीन से भी बढ़कर भगवान ही मुख्य आश्रय है। जीव को अमुख्य कर्तृत्व है। वह भी काम करता है, किन्तु भगवान के अधीन होकर करता है। इसके लिये मैंने कहा, मैं पालकी नही ढो रहा हूँ, मैं नही चल रहा हूँ ।।6।।

राजा के दुरहंकार से तुम इन गरीब लोगो को पकड़ कर उनको कुछ न देते हुये उनसे काम करवा रहे हो। ऐसे करने से तुमको आगे दुख होने वाला है। तुम राजा होकर प्रजा का रक्षण करने की बड़ाई कर रहे हो। तुम दुष्ट हो ज्ञानी की सभा में रहने योग्य तुम नही हो। तुम रक्षक भी नही, राजा भी नही तुम्हारे अन्दर रहने वाले भगवान ही रक्षक हैं और वे ही राजा हैं ।।7।।

सारे स्थानों में मुख्य आश्रय, मुख्य कर्ता होने के कारण जमीन से भी मुख्य आश्रय देने वाले भगवान होते हैं। तो हम जमीन पर चलते हैं, यह बोलना उचित नही होगा। यह आपका आक्षेप सही नही है। पृथ्वी, जमीन, क्षिति ये सारे नाम मुख्य रूप से भगवान के बारे में बोलते हैं। इस जड़ पृथ्वी को जमीन मानना अज्ञों के व्यवहार से रूढ़ि में आ गया है। शब्द में आने वाला गुण उसमें नही है। भगवान में यह शब्द और गुण दोनो हैं। निर्वचन क्रिया से, योग से, महायोग से ये शब्द भगवान के बारे में ही कहते हैं। इसी कारण चराचर वस्तुओं को मूल आश्रय, मूल कारण होने के कारण पृथ्वी शब्द से भगवान का अर्थ होता है। अज्ञ लोग इसको न समझते हुये पृथ्वी शब्द से जमीन समझ लेते हैं। व्यवहार में यह प्रसिद्ध है। किन्तु यह केवल व्यवहार है।।8।।

आदमी जमीन के ऊपर चलता है इस व्यवहार का मूल आश्रय विवक्ष से जानना है तो इस जमीन को मूल आश्रय परमाणु है। विष्णु भगवान कैसे होते हैं। आपके प्रश्न के लिये यह उत्तर है। क्षिति - क्षि, निवास गत्यो इस धातु के बल से मूल अर्थ मिलता है। केवल परमाणु है, इससे पृथ्वी नही बनी, यह बोलना है तो केवल परमाणु का समूह रहना चाहिये। अलग अलग परमाणुओं से उनका समूह होना चाहिये। परमाणु सदा के लिये रहते हैं, उनका नाश कभी भी नही होता इसके कारण परमाणु समूह सदा के लिये रहना पड़ता है। क्योकि ब्रह्म सूत्र (2-2-19) में यह स्पष्ट किया गया है इससे हम परमाणु समूह को भी मूल आश्रय कह नही सकते। परमाणु से पृथ्वी का निर्माण होता है। इस पक्ष में परमाणु को मूल आश्रय कहना वे अविद्या से बनते हैं। यह **अ** नामक भगवान से **विद्या** यानि ज्ञान से, उनकी इच्छा मात्र से इस पृथ्वी का निर्माण होता है। यही भगवान का संकल्प है। परमाणुओं के मूलाश्रय भगवान के संकल्प होने के कारण भगवान श्रीहरि ही मूल आश्रय होते है ।।9।।

ऐसे होते हुये कृश, स्थूल, अणु, महत् , अमूर्त, मूर्त, चेतन, जड़ इस रीति से विष्णु से अन्य सारी वस्तुएँ द्रव्य, स्वभाव, अन्त:करण, काल कर्मो के लिये अभिमानी होकर उन्ही के नाम से पुकारने वाले भगवान के अधीन चेतन प्रकृति से उत्पन्न हो गये हैं, अस्वतंत्र हैं। सृष्टि कर्ता चतुर्मुख ब्रह्मा जी भी ऐसे ही प्रकृति से जन्म लिये हैं। यह प्रकृति श्रीहरि के अधीन होने के कारण, मूल कारण भगवान श्रीहरि हैं ।।10।।

भगवान श्रीहरि किसी के अधीन नही हैं। वे भगवान नाम से पुकारे जाते हैं। वे वासुदेव शुद्ध ज्ञान के शरीर वाले हैं। उनको जड़ शरीर नही है। वे सर्वोत्तम हैं, उनके समान और कोई नही है। वे स्वगत भेद वर्जित हैं। सारे शरीरों में अन्तर्गत हैं। वे सबके अन्दर बाहर रहते हैं। इसके लिये उनको सत् - ति - यम् = सत्यम् यानी मुक्त अमुक्तों का नियामक हैं। वे सर्व जीवों के अन्दर रहते हैं। उत्कृष्ट सुख देने वाले सुख पूर्ण हैं। यह ज्ञानियों का मत है। ऐसे भगवान का दूसरों के अधीन होना असम्भव है ।।11।।

हे रहूगण! इस भगवान को कायकष्ट करके तप से जान नही सकते। ठीक तरह से सम्प्रदायों को जानने

वाले सही गुरु से ही वे प्राप्त होते हैं। पौरुषेय ग्रन्थों से ही उनको समझ नही पाते। केवल अपौरूषेय ग्रन्थों से या सन्यास आश्रम से या गृहस्थी से नही समझ सकते हैं। वरुण, अग्नि, सूर्यों की उपासना से भी जान नही सकते। महात्माओं की पाद धूलि से अभिषेक करने से वे प्राप्त होते हैं। इसको छोड़कर अन्य किसी वस्तु से भगवान का ज्ञान नही होता ।।12।।

महात्माओं की सेवा से ज्ञान कैसे मिलेगा इसके बारे में बोलता हूँ। विषय सुख के चिन्तन के लिये अवकाश न देते हुये महात्मालोग बार-बार भगवान की महिमा के बारे में बोलते रहते हैं। उसको सुनते रहे तो मोक्ष चाहने वाले को भगवान के विषय में स्पष्ट ज्ञान प्राप्त होता है ।।13।।

मैं पिछले जन्म में भरत नाम का राजा था। ऐहिक और पारित्रिक सारे विषय सुखों को और स्नेह सम्बन्धों को छोड़ दिया था। भगवान की आराधना करता था। किन्तु एक दिन एक मृग शावक में आसक्ति होने के कारण योग भ्रष्ट हो गया। अगले जन्म में मैं हिरण बनकर जन्म लिया ।।14।।

भगवान श्री कृष्ण की आराधना बल से मुझे उस हिरण के जन्म में भी पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त था। इसी कारण आसक्ति से योग भ्रष्ट होने के भय से मैं अभिमान छोड़कर इस जन्म में अवधूत होकर संचार कर रहा हूँ।।15।।

इसीलिये मनुष्य वैराग्य से और सज्जनों के संग से ज्ञान पाकर उस ज्ञान नाम के खड्ग से संसार में आसक्ति नाम के बन्धन को काटते हुये श्रीहरि के कीर्ति गान को सुनते हुये श्रीहरि ध्यान करते हुये उनके प्यार को पाने से संसार मार्ग के उस परे रहने वाले भगवान को पा सकते हैं ।।16।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्द में बारहवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - तेरह

जड़ भरत उपेदश देता है। धन कामा में आसक्त व्यापारी लोग रास्ते में चलते चलते भ्रान्त होकर अरण्य के प्रवेश करते हैं। अरण्य में उनको सुख नही मिलता। वैसे ही विषय सुख सम्पादन करने वाले जीव काम्य और निषिद्ध कर्माचरण में चलते चलते अपने को ही कर्ता समझते हुये उसी ब्रह्म में राजस तामस सात्विक कर्म से मिलने वाला अनेक शरीर पाकर उस संसार नाम के अरण्य में प्रवेश करते हैं। यह अरण्य पार करना केवल श्रीहरि के हाथ में है। प्रकृति बन्धक होकर इस जीव को इस संसार नाम के अरण्य में लाकर दिया है ।।1।।

राजा एक व्यापारी समूह को समर्थ नायक नही है। उस समय चोर आकर उनके पैसों को लूट लेते हैं। उनके भेड़, बकरी को भेड़िया खा जाते हैं। वैसे ही जीव को उनकी दुर्बुद्धि ही नायक बनता है। उसको योग्य गुरु नही मिलता है। उनके छ: इन्द्रिय नाम के चोर जीव जो कर्म करके पुण्य सम्पादन किया है उसको विषय भोग के द्वारा लूट लेते हैं। जीव से संग्रह की हुयी सम्पत्ति को पत्नी और पुत्र लोग खींच लेते हैं। कोल्हू जैसे अच्छी अच्छी बातें बोलते हुये पत्नी-पुत्र भेड़िया जैसे सम्पत्ति को लूटते हैं ।।2।।

जंगल में रास्ते में काँटे, कंकड़ होते हैं वैसे ही संसार नाम के इस जंगल में गृहस्थाश्रम के रास्ते में काम्य कर्म नाम के कंकड़ काँटे होते हैं। जंगल में मक्खी मच्छर भक्तों को चूसते हैं। संसार में चूहे जैसे चोर हमारे धन, कनक को अपहार करते हैं। जंगल में संचार करते समय आकाश में विचित्र आकार के मेघ गन्धर्व नगर जैसे दिखते हैं। इस संसार में कर्म करते हुये मिले पुण्य पाप नाम के विचित्र शरीर प्राप्त होते हैं। वे गन्धर्व नगर के समान अस्थिर होते हैं। जंगल में कभी कभी पिशाच दीखते हैं। उनके पास गये तो वे प्राण को ही खींच लेते हैं। संसार में यदि पैसे के लिये धनिक के पास गये तो वे कर्ज लेने वाले के जीव को ही चूसते है ।।3।।

घर और सम्पत्ति को अपनाने की आशा से व्यापारी लोग इधर उधर भटकते रहते हैं। उस समय बड़ी आँधी से सारे दिशाओं में अन्धकार हो जाता है। आँखों में धूल भरकर आगे का कुछ भी नही दिख पाता है। वैसे ही संसार में जीव घर, पानी, सम्पदाओं को पाने के लिये सदाकाल प्रयत्न करते रहते हैं। दुष्ट स्त्रियाँ आँधी के समान आ पड़ती हैं और राग-द्वेष को उत्पन्न करती हैं। रजो गुण से आँख ठीक तरह से देख नही सकती। निर्मल दृष्टि की कमी होने के कारण कर्म साक्षी दिग् अभिमानी देवता अदृश्य होते हैं। इसी कारण आदमी संकोच रहित होकर पाप कर्म करता है। पीछे रहते हुये हमारे बारे में दुष्ट बात करने वाला शब्द सुनाई पड़ते हैं। उल्लू के समान सामने ही निन्दा करने वाले दुर्जनों की बात से व्यथा होती है। भूख के कारण पाप वृक्ष के फल को खाने जैसे धन की आशा से दुष्ट अमीर आदमी की सेवा में लगता है। मृग मरीचिका के समान विषय सुख के पीछे दौड़ता रहता है ।।4।।

प्यास लगा हुआ सूखा हुआ नदी के पास होकर कष्ट अनुभव करने आदमी जैसे ज्ञान के लिये पाषंण मत का अनुसरण करते हुये दु:खभागी होता है। खाने के लिये अन्न न मिलने के कारण पिता पुत्र में झगड़ा होता है। पिता अपने घर में आग लगा जैसे शोकाग्नि में जलता रहता है। जंगल में यक्ष जैसे प्राण लेते हैं वैसे राजा के लोग प्राण के

समान धन को लेते रहते है ।।5।।

अपने सार सर्वस्व को नष्ट होते देखकर मन में दुःख करते हुये बेहोश होता है। स्वप्न में गन्धर्व नगर के समान हाथ को न मिलते हुये पिता-माता ऐसे बन्धुओं के प्रपंच को देखकर एक क्षण में रोमांचित होकर आनन्द पाता है ।।6।।

रास्ते में कंकड़ पत्थरों से पाँवों को दर्द होते हुये उन्नत पहाड़ को चढ़ने में अशक्त होकर रोते रहते हैं वैसे ही गृहस्थाश्रम में प्रत्येक काम में अनेक दुःखों से हताश होकर यज्ञादि महाकार्यों को करने में अशक्त होकर दुःख करता है। संसार बढ़ने के कारण कुटम्ब पोषण करने में असमर्थ होकर पत्नी पुत्रों से झगड़ा करने लगता है ।।7।।

व्यापारी लोग जंगल के रास्ते में अजगर के मुँह में पड़ कर ज्ञान शून्य हो जाते हैं। जीव भी अजगर समान नींद के वश होकर अपने कर्तव्य ज्ञान को भूल जाते हैं। व्यापारी लोग रास्ते में नींद करते समय सांप काटे तो शव के समान गिर जाते हैं, या अन्धे होकर किसी कुआँ में पड़ते हैं। जीव भी बन्धुओं और दुर्जनों की निन्दा से दुःखित होकर दुःख से हताश होकर अन्धे के समान संसार कूप में गिर जाता है ।।8।।

व्यापारी लोग शहद को पाने के लिये मधुमक्खी के छत्ते में हाथ रखते हुये उन मधुमक्खियों से पीड़ित होकर थोड़े से शहद को पाते हैं, किन्तु अन्य लोग बलात्कार से अपहरण करते हैं। वैंसे ही संसार में जीव दूसरों की पत्नी, कनक और जमीन को अपहार करने का प्रयत्न करते हुये उनसे मार खाकर थोड़ा सा अपनाने के बाद भी दूसरे ने उनका अपहरण करते हैं। इस पाप के परिणाम स्वरुप वह जीव नरक में गिर जाता है ।।9।।

कभी कभी जाड़े से, गर्मी से अथवा बरसात से अपनी रक्षा के लिये बहुत प्रयास करता है। किन्तु उनसे कष्ट होता है। कभी कभी खरीदी हुई वस्तुओं का मूल्य न देते हुये वंचना करता है और लोगों के साथ द्वेष करने लगता है।।10।।

कभी कभी अपने विस्तर तक घर, वाहन सबको खो देने के बाद दूसरों के पास मांगने लगता है। कुछ न मिलने के कारण चोरी करना चाहता है। किन्तु न मिलने से अपमानित हो जाता है ।।11।।

कभी कभी व्यापारी लोग अपने उद्योग को भूलकर लताओं के ऊपर सोते हुये पक्षियों के मधुर ध्वनि से तल्लीन होकर सो जाते है। वैसे जीव कोमल स्त्रियों की भुजाओं से आलिंगन करते हुये पक्षियों जैसे सुन्दर बातें करने वाले स्त्री के मोह में पड़कर भगवान के बारे में न विचार करते हुये नरक भागी होता है। वर्तक लोग सिंह को पकड़ कर उसको पिजड़े में रखते हुये उससे पैसा कमाना चाहते हैं वैसे ही बक, शुक आदि पक्षियों को पकड़ कर उनकी हिंसा करते हैं वैसे ही जीव काल चक्र से डरते हुये जिन्दा रहते तक सुख पाने की आशा से तामस देवताओं की पूजा करने लगता है ।।12।।

वर्तक लोग बक, शुक वंचना करके जब उड़ जाते हैं तो पैसा कमाने के लिये हंसों को पाने का विचार करते हैं। किन्तु वे आकर्षक नही बनते तब वे बन्दरों का पालन करते हैं। बन्दरों की चेष्टा देखकर उनमें अपना उत्कृष्ट समय बिताते हैं। अन्य विषयों को भूल जाते हैं। जीव भी तामस देवताओं से कुछ लाभ न मिलने के कारण शुद्ध

ब्राह्मण कुल की सेवा करने की इच्छा करता है। किन्तु उनसे न पटने के कारण शूद्रों का सहवास करता है। वैदिक शुद्ध संस्कार न रहने वाले अपने मन के अनुसार व्यवहार करने वाले शूद्रों का जीवन उसको आकर्षक बनता है। स्त्रियों के साथ व्यवहार करते हुये इन्द्रियों के सुख की लालसा में रहता है। स्त्रियों का मुँह देखते हुये उसी में अपना समय नष्ट करता है। किन्तु जीव को यह मालूम नही होता ।।13।।

बन्दर पेड़ों में बैठकर खेलते हुये पत्नी पुत्रों में आसक्त होकर विपरीत स्त्री संग करने से निर्वीर्य होकर जंगल में गिर जाते हैं। वहाँ हाथियों से उनको कष्ट होता है। वैसे ही जीव घर में अपनी पत्नी, पुत्रों से प्यार करते हुये अतिकामुकता से अपनी तबियत को खराब करते हुये मर कर नरक पाता है। वहाँ भी क्रूर मृग के भय से चिन्तातुर होता है ।।14।।

बन्दर जंगल में जहाँ गिरे हैं वहाँ से लताओं के सहारे उठकर अन्य बन्दरों में मिल जाते हैं। वैसे ही जीव नरक के दु:ख को अनुभव करने के बाद कर्म शेष के कारण वहाँ से उठकर मानव लोक में पुन: जन्म पाकर अपने लोगों में मिला जाता है। हे राजा! इस रीति से जीव अपने अनादि लिंग शरीर के कारण इस अरण्य मार्ग में आ गया हैं, वहाँ भगवान की ही कृपा से आया है। यदि जीव भगवान के बारे में जानकारी रखता है तो उसको सही मार्ग मिलता है। किन्तु जीव भगवान को जानने का प्रयास नही करता है ।।15।।

व्यापारी लोग जैसे पैसे के लेन देन में द्वेष कर लेते हैं और परस्पर संबन्ध से जंगल में चलते रहते हैं, और अनेक कष्ट सहने करते हुये मृत प्राय बनते हैं। जीव भी संसार में धन के कारण अनेक लोगों से द्वेष करते हुये मरा हुआ जैसा जीवित रहता है ।।16।।

व्यापारी लोग चोर लोगों से अपनी सम्पत्ति को लूट लिए जाने के बाद दूसरे स्थान में जाकर नई सम्पत्ति को सम्पादन करते हुये उसी वन में फिरते रहते हैं। ठीक रास्ता पकड़ कर जंगल से बाहर आने का विचार नही करते। हे राजा! जीव भी वैसे ही उन जन्मों में रोगादियों के वश होकर अपने शरीर को वहीं छोड़ते हुये नया जन्म पाकर नये शरीर से संसार में भटकता रहता है। इस संसार को पार कर मोक्ष पाने वै रास्ते के बारे में विचार भी नही करता है।।17।।

राजा लोग यदि धैर्यशाली होते हैं तो सभी क्षेत्रों में दिग्विजय करते हुये अपने राज्य की सीमा को बढ़ाते हुये युद्ध करते रहते हैं किन्तु सज्जनों में हिंसा और वैर को छोड़कर विरक्ति पाकर मोक्ष पाने का प्रयत्न नही करते।।18।।

हे रहूगण! तुम भी संसार के मार्ग में चलने वाला है। सज्जनों में स्नेह करो। हिंसा को छोड़ दो। विषय पदार्थो में मन न रखते हुये श्रवण-मननादि रूप से श्रीहरि सेवा नाम के खड्ग से अपने संसार के मार्ग में आने वाले विघ्नों को काटते हुये मोक्ष मार्ग पाने का विचार करो। इस संसार नाम के अरण्य को पार करने का विचार करो।।।19।।

रहूगण कहता है - भो, सारे जन्मों में यह मानव जन्म ही श्रेष्ठ है। स्वर्ग में सुखभोग पाने के लिये मिला हुआ अन्य जन्मों से क्या लाभ है। जन्म सफल होने के लिये भगवान हृषीकेश में मन रखे हुये आप जैसे महात्माओं का सत्संग बार बार मिलता रहे। इसके बिना इस जन्म से क्या उपयोग है ।।20।।

आपकी पाद सेवा करने वाले के सारे पाप नष्ट होकर भगवान अधोक्षज में निर्मल भक्ति होने में आश्चर्य क्या है। आपके साथ कई चंद समय बिताने के बाद मुझे शास्त्रार्थ ज्ञान हो गया। जीव को कर्म से श्रम होता है तो उसके लिये कर्तृत्व होना ही चाहिये, यह मेरा तर्क गलत था और मेरा अविवेक इससे चला गया ।।21।।

अवधूतों में वयोवृद्ध आपको मेरा नमस्कार, युवकों के लिये भी, वटु के लिये भी मेरा नमस्कार। बाह्यज्ञानी अवधूत वेष से जो इस भूमि में संचार करते हैं उन सबको नमस्कार। मेरे जैसे अवधूतों के साथ अपचार किये हुये सारे राजाओं को भी मेरे इस नमस्कार के कारण शुभ फल मिले। अन्य राजाओं को भी मेरे यह नमस्कार शुभप्रद हो। किसीको भी कष्ट न हो ।।22।।

शुक देव बोलते हैं - हे राजा परीक्षित! इस रीति से अपार महिमाशाली ब्रह्मर्षि पुत्र भरत मुनि के अपार करूणा से रहूगण राजा को परमात्मा नारायण के निर्मल स्वरूप का ज्ञानोपदेश मिला। राजा रहूगण दीन भाव से उनके चरण कमल की वन्दन किए। भरत मुनि इन्द्रिय और मन को अपने वश में रखते हुये भरा हुआ सागर जैसे रहते हुये इस भूमि में संचार करते रहे ।।23।।

सौवीर राजा रहूगण सज्जन भरत मुनि से भगवान के निर्मल स्वरूप का ज्ञान पाकर देह में रहने वाला मैं और मेरा नाम की अविद्या से उत्पन्न हुये अभिमान को त्याग दिया। हे परीक्षित राजा! भगवान के आश्रय में रहने वाले ज्ञानियों की महिमा बहुत बड़ी होती है।।24।।

भरत मुनि की कीर्ति को इस रीति से गाते हैं। महात्मा ऋषभ पुत्र भरत राजर्षि था। उसके समान मोक्ष मार्ग को और कोई राजा स्वप्न में भी पा नही सकता। मक्खी क्या गरुड़ के साथ उड़ सकती है ।।25।।

अपनी सुन्दर पत्नी और राज्य को त्याग कर भरत ने भगवान में ही अपने यौवन काल से आसक्त होकर जीवन व्यतीत किया। मल के समान अन्य वस्तुओं को बहुत सुलभता से छोड़ दिया ।।26।।

छोड़ने में असाध्य राज्य, पुत्र, सन्तति, बन्धु, पत्नी और देवों को भी लुभाने वाले ऐश्वर्य को भोगने की इच्छा भरत में बिल्कुल नही थी। यह सही है भगवान में एकबार मन रखने वाले को मोक्ष भी महापुरुषार्थ नही बनता।।27।।

यज्ञ में आराध्य, पुण्यों का स्वामी, विहित कर्मानुष्ठान में नैपुण्यता देने वाला, इन्द्रियों को विषयों में लगाने वाला, उत्तम ज्ञान स्वरूप, इस प्रकृति के स्वामी पाप परिहारक श्रीहरि को नमस्कार। इस तरह से गान करते हुये भरत हिरण के जन्म को भी उत्तम मानते हुये उसे स्वीकार किया।। 28।।

भगवद्भक्तों में आदर रखने वाला, निर्मल गुण कर्म वाला राजर्षि का यह चरित्र है। यह चरित्र मंगलकर है, आयुष्य, धन सम्पत्ति, कीर्ति और स्वर्ग को देने वाला है। इसको कहने वाला और सुनने वाला मानव अपने इष्टार्थों को भगवान से ही पाता है। वह अपने अभीष्ट को अन्य देव या मानव से पाने की इच्छा नही करता ।।29।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्द में तेरहवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - चौदह

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे परम भगवद्भक्त मुने ! पिछले अध्याय में आपने इस जीव समूह के संसार मार्ग को रूपक भाषा से निगूढ़ रीति में वर्णन किये हैं। आप सर्वज्ञ हैं। आपने जो बताया है वह केवल पण्डितों के लिये अर्थ होता है। उस भाषा का परिचय न रहने वाले लोगों की समझ में आने वाला वह नही है। इसके लिये आप कृपा करके उसको व्याख्यान करते हुये ठीक तरह से समझाइये ।।1।।

सूत बोलते हैं - शुकदेव जी विवरण देने लगे। इस देह में मैं और मेरा यह अभिमान रखने वाले सत्वादि तीन गुणों के अनुसार सात्विकादि अनेक रीति का पुण्य, पाप और मिश्र कर्मो से आने वाले अनेक देहो का योग-वियोग रूप मरण-जनन को पाते हुये अनादि काल से जन्मते, मरते आये हैं। इस मार्ग का प्रवृत्ति कर्म जंगल जैसे बहुत दुर्गम है । सर्वशक्तिमान भगवान विष्णु के अधीन रहने वाली प्रकृति जीव को इस मार्ग में रखती है। धन को सम्पादन करने के लिये चले हुये व्यापारी लोग रास्ता भूलकर जंगल को आने के समान है। संसार के अनुभव के लिये साधन रूप ये छः इन्द्रियों से जीव अपने शरीर में किया हुआ कर्म के फल को अनुभव करते हुये स्मशान के समान अत्यन्त अमंगल संसार नाम के अरण्य में फिरता रहता है। हृदय में हजारों दु:खों का अनुभव करता है। उन दु:खों का परिहार होते हुये भी वह उनको प्राप्त नही कर सकता। उस दर्द को नाश करने के लिये एक बड़ा उपाय है, हरि गुरुओं की सेवा और उनके पादरविन्द में भौरा जैसे रहने वाले ज्ञानियों की सेवा करनी चाहिये। किन्तु जीव उसको करता नही।।2।।

जंगल में जैसे चोर हैं वैसे शरीर में छः इन्द्रियाँ चोर बन कर काम करती हैं। जीव मोक्ष साधन के लिये प्रयत्न करते हुये बहुत कष्ट से थोड़ा सा पुण्य सम्पादन करता है। परम पुरुष नारायण की आराधना के लिये उपयोग होने वाला उस पुण्य को ज्ञानी मोक्ष साधन कहते हैं। किन्तु जीव में रहकर दुष्ट कामनाओं को प्रेरणा देने वाले दुष्ट गुरु के अधीन होकर मन का निग्रह न करते हुये जीव इन छः इन्द्रियों के वश में जाता है। छः इन्द्रिय उससे दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, आस्वादन, आघ्राण और संकल्प नाम के अपने कर्म से गृहस्थाश्रम में भोगने लगता है। उसी के कारण उसका पुण्य धन के समान नष्ट होता है। यह दिन दहाड़े होने वाली चोरी है ।।3।।

घर में अपने कुटुम्ब के पालन पोषण करने वाला जीव को उनकी पत्नी पुत्र द्वारा करने वाला काम सियार और भेड़ के समान है। धर्म कांर्य के लिये सम्पादन किया हुआ धन को उनको देने का इष्ट न होते हुये भी सियार और भेड़ बकरी को उठाते जैसे वे अपहार कर लेते हैं ।।4।।

जमीन में निराई-गुड़ाई करके उनके घास को नही जला दिये तो जमीन में बीज बोते समय घास पैदा होता है। गृहस्थाश्रम भी इसके समान है। कोई भी कर्म फल को पूर्ण रीति से नष्ट नही कर सकता।।5-6।।

घर यानी क्या ? वह एक विषयासक्ति नाम के बीजों से भरा हुआ बर्तन है। इस घर में अभिमान रखने वाला

जीव विषयासक्ति जब जब अंकुरित होता है तब वह कर्म करते रहता है। उस समय जंगल के मक्खी, मच्छर जैसे दुष्ट मानव पक्षी, सांप जैसे चोर, चूहा जैसे कष्ट देने वाले बनकर जीव के बाहर का प्राण रूप वाला धन-धान्य को नष्ट करते हैं। गृहस्थाश्रम में यह प्रवृत्ति मार्ग में चलते समय अविद्या, विषयासक्ति, काम्य कर्मों से मलिन हुआ मन वाला जीव गन्धर्व नगर के समान अस्थिर और निष्फल वाला अपने जन्म को स्थिर और फलकारी समझ कर भ्रान्ति से उनमें सुख पाना चाहता है ।।7।।

सारे दोषों को आश्रय देने वाले के पास जीव जाता है। वह व्यक्ति अपने प्रभाव ऐश्वर्य अधिकारों से अपने दुर्गुणों को ढक कर रहता है। जीव उससे वंचित होता है। वह दुर्जन है इसको भूल जाता है। उसके पास से सोने को मांगता है। यह पिशाची से आग लेने की तरह अनर्थकारी है ।।8।।

कभी-कभी धन पानी और सम्पदाओं को मैं ही मालिक मानकर सारी वस्तुओं में अभिमान मानते हुये इस संसार नाम के अरण्य में इधर उधर भटकता रहता है ।।9।।

कभी-कभी झंझावात की तरह आँखों में धूल फेकने वाली दुष्ट स्त्री उसको अपनाती है। उस समय विषयासक्ति से ऊपर उठने वाली धूल सभी जगह फैल जाती है। वह धूल जीवों के विचार करने की सामर्थ्य को छीन लेते है। जीव कर्म साक्षी दिग्देवताओं को न देखते हुये, उनकी परवाह न करते हुये गलत मार्ग को पकड़ता है, दुष्ट कर्मं करने लगता है ।।10।।

कभी-कभी उल्लू के समान आवाज करने वाले क्रूर शत्रुओं द्वारा की गयी निन्दा को सुनकर बहुत दुखी होता है। पीछे से दुष्ट बात बोलने वाले लोगों की बात कान को कष्ट देती है ।।11।।

पिछले जन्म में पुण्य नही किया हुआ जीव अब जीते हुये भी मरने जैसे रहता है। दुष्ट वृक्षों से दुष्ट लताओं से अङ्गैर विष के कूपों के समान कई कंजूस अमीर लोग अपने पैसे को यहाँ के सुख के लिये उपयोग नही करते और स्वर्गादि फल के लिये खर्च भी नही करते। ऐसे लोग अपने पास पैसा रखते हुये जीते जी मरा हुआ जैसे रहते है। इनके पास जीव जाता है और पैसा मांगता है ।।12।।

कभी कभी ज्ञानियों के साथ सत्संग में रहकर इन विषय सुखों में लाभ नही है, यह समझते हुये भी सत्संग के बाद उनको भूल कर पुनः विषय सुखों के लिये दौड़ता है ।।13।।

कभी-कभी दुर्जनों का संग करते हुये विवेक को खोकर सूखी हुई नदी के पास दौड़ते पशुओं के समान दुःख देने वाला पाषंण मत का आश्रय लेता है ।।14।।

पाषण्ड मत को पाकर लोगो को वंचना करने के बाद भी अपने पेट के लिये अन्न न मिलते हुये पिता-पुत्र वहीं अन्न के लिये झगड़ करते हैं ।।15।।

जंगल की आग जैसे जलता हुआ सुख न देने वाला अपने घर में प्रवेश करते हुये दुःख से जलते हुये विषाद से बैठ जाता है ।।16।।

काल के बल के अनुसार राजा के सैनिक विरोधी बनकर यक्ष के समान इसके परम प्रिय धन को लूट लेते

है। तब यह जीव मृतवत निश्चेतन होता है।।17।।

कभी-कभी स्वप्न में अपने मन की कल्पना के अनुसार पिता, बाबा के प्रपंच को देखकर उनमें आनन्द पाता है।।18।।

कभी गृहस्थाश्रम में विहित कर्मं नाम के पहाड़ को चढ़ने वाला जीव लौकिक दु:खों से दु:खी होकर कंकड़ पत्थर से भरा हुए जमीन पर चलने वाले जैसे दु:ख करता है ।।19।।

कभी-कभी बहुत भूख से पीड़ित होकर नि:शक्त होकर अपने लोगों से झगड़ा करता है ।।20।।

वही जीव पुन: अजगर जैसे नींद करते हुये शून्य अरण्य में अन्धा जैसे अपनी नींद को छोड़कर और किसी चीज का अनुभव नही करता। शून्य अरण्य में फेका हुआ शव जैसे पड़ा रहता है। कभी कभी दुर्जन नाम के सांप के काटने के बाद वे दुष्ट हैं यह समझ कर हताश होकर नींद न आते हुये दु:ख भरित हृदय से कुछ न समझते हुये अन्धा जैसे कुआं में पड़ता है वैसे दु:ख के कुएँ में गिर जाता है ।।21।।

कभी-कभी विषयसुख को ढूढ़ते हुये परधन, परस्त्री का अपहरण करते हुये उनके यजमान अथवा राजा के हाथ से पकड़ा जाता है और उनसे शिक्षा भोग कर अन्त में नरक को गिर जाता है ।।22।।

कभी इन पापों के लिये प्रायश्चित करने के बाद भी उस कर्म में भी दोष के कारण वह भी संसार का कारण बनता है। ऐसे ज्ञानी लोग कहते हैं ।।23।।

मैंने चोरी नही किया है, यह मेरा धन है, ऐसे झूठ बोलते हुये वंचना करते हुये कष्ट से, शिक्षा से छूट जाने के बाद भी उस अन्य के धन को दूसरा मनुष्य उससे छीन लेता है। उस दूसरे को और एक कोई लूटता है। इस रीति से वह धन किसी के पास नही रहता है ।।24।।

कभी-कभी घर में बैठे-बैठे आँधी, तूफान, जाड़ा और गर्मी के कष्ट को न सहते हुये आधि भौतिक और आध्यात्मिक तापों का निवारण करने में अशक्त होकर दु:ख से पीड़ित होता है।। 25।।

और किसी समय में दो लोग मिलकर व्यापार करते समय परस्पर वंचना करते हुये झूठ बोलते हुये दूसरों के धन को लूटता है और उनके द्वेष का कारण बनता है ।। 26।।

कभी-कभी गरीबीपन में विस्तर, आसन, भोजन न मिलने से दुखी होकर दूसरों के सामान की चोरी करने लगता है, बाद में सामान सहित पकड़ा जाता है और अपमानित होकर दु:ख भोगना तो उसको होता ही है।।27।।

इस रीति से धन के कारण बैर बढ़ते हुये पूर्व संस्कार के कारण और उन्हीं लोगों के साथ मिलकर व्यापार करने लगता है ।।28।।

किसी समय श्रीहरि के बन्धक शक्ति के वश होकर दुष्ट स्त्री के मोह के कारण अपने ज्ञान को खोकर उसकी विहार के लिये क्रीड़ागृह निर्माण करता है। गृहस्थाश्रम में और भी फँस जाता है। उस स्त्री से पैदा हुये बच्चों

की बातों से और उनकी चेष्टाओं से आकर्षित होकर मनोनिग्रह को खोकर भगवान के विचार को भूलकर नरकभागी हो जाता है।। 29 ।।

परमाणु काल से आरम्भ होकर दो परार्ध तक के काल में परिभ्रमण करने वाले चतुर्मुख ब्रह्मा से आरम्भ करते हुये तृणपर्यन्त सबकी आयुष्य को अपहरण करने वाले श्रीहरि के काल चक्र के भय से, उस काल चक्र को आयुध किया हुआ सर्वशक्तिशाली यज्ञ पुरुष साक्षात् भगवान का दर्शन करना असाध्य समझते हुये पाषण्ड मत के अनुसार कल्पित देवताओं की पूजा करने लगता है। वे देवता जल्दी से फल देने वाले हैं ऐसा लोगों के सामाने बोलते चलता है। काल चक्र द्वारा अपने आयुष्य का अपहरण करने के पहले ही विषयसुख भोगने की आशा से शीघ्र फल देने वाले क्षुद्र देवताओं की पूजा करते हैं। ये कंकगृध्र, बक के समान दुष्ट स्वभाव वाले ये क्षुद्र देवतायें ज्ञानियों के मत से निषिद्ध हैं। वे देवता भी नही हैं। पाषण्ड मत वाले उनको देवता मानते हैं ।।30।।

कितने भी खाए पर तृप्त न होने वाले उन दुष्ट शक्तियों की पूजा करने वाला जीव असामर्थ्य से थोड़ा सा भी वंचना किया तो वे इसको कष्ट देने लगते हैं। तब वह हताश होकर ब्राह्मणों के पास दौड़ कर आता है। उपनयन इत्यादि श्रौत स्मार्त कर्म में आसक्ति रखने वाले यज्ञ पुरुष की आराधना करने वाले इन ब्राह्मणों का स्वभाव उसको अच्छा नही लगता। वह वेदोक्त संस्कार शुद्धि रहित शूद्रों के सहवास में जाता है। वे बन्दरों जैसे केवल स्त्री संग और कुटुम्ब पोषण में ही आसक्ति रखते हैं। उनके साथ मिलकर यह भी विधि-निषेध का भय न रखते हुये स्वेच्छा से विषयसुख भोगने लगता है। बुद्धि न रखने वाले स्त्री-पुरुष परस्पर मुख को देखते हुये विषयसुख के भोगों मे रत होकर अपने आयुष्य के अन्तिम क्षण की परवाह न करते हुये जीवन चलाते हैं ।।31।।

बन्दरों को वृक्ष जैसे जीव के लिये घर आश्रय है। घर में ऐहिक सुख साधन सम्पत्ति रहती है। ऐसे घर में सुख भोग करते हुये पत्नी पुत्रों में आसक्त होता है। अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को स्त्री संग में व्यतीत करता है।।32।।

इस रीति से विषयभोग करते हुये अनेक रोग नाम के पहाड़ से नीचे गिरते हुये मर कर नरक में यम यातना अनुभव करते हुये यम के हाथी और क्रूर मृगों के भय से त्रस्त होता है। बाद में कर्म शेष नाम के दुर्बल लता के आधार पर कैसे ही जीवित रहते हुये कष्ट से, नरक से, ऊपर उठकर आता है। पुनः इस संसार मार्ग में चलते हुये मनुष्य जन्म पाकर मनुष्यों के साथ रहने लगता है ।।33।।

इस संसार मार्ग में उसको शोक, मोह, छेद, भय, हर्ष, रोना, गाना इत्यादि अनेक क्लेश दु:ख होते रहते हैं। उसी के कारण शरीर का नाश होता है। इस रीति से अनेक शरीर नष्ट होते हुये उनको छोड़ते हुये बार बार नये शरीर को पाता रहता है। और योग्य गुरु के मार्ग दर्शन के बिना काम्य और निषिद्ध कर्मों के अरण्य मार्ग में बार-बार फिरता रहता है ।।34।।

इस रीति से जीव संसार में प्रवास करता रहता है। भगवान के बन्धक शक्ति के कारण इस प्रवास का अन्त भगवान में ही है। यह उपदेश योग शास्त्र में प्रवृत्ति देता है। वह पूर्णानन्द वाले भगवान को यह विषयासक्त जीव नही पा सकता। हिंसा को त्यागने वाले, भगवान में निष्ठा रखने वाले, विषय पदार्थों में वैराग्य वाले, मनोनिग्रह कर सकने वाले भगवान को पाते हैं। दिग्विजय करते हुये काम्य यज्ञों को करने वाले राजर्षि लोग भी भगवान को नही

पाते। वे युद्ध क्षेत्र में मर जाते हैं। उनको राज्य में मैं और मेरा भाव भरा रहता है। इसी कारण वे बार-बार अपने वैर साधते हुये शत्रु राजाओं से युद्ध करते हैं इन शत्रुओं से नाश पाते हैं। राज्य को त्यागना पड़ता है। वे संसार नाम के अरण्य में फिरते रहते हैं।।35।।

हे राजा! सुनो, संसार में ये दुःख हैं। सुख-दुःख, राग-द्वेष, भय-अभिमान, प्रमाद-उन्माद, शोक-मोह, मात्सर्य, ईर्ष्या, अपमान, भूख और प्यास से ये सारे मनोरोग शरीररोग, जनन और मरण इत्यादि।।36।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्द में चौदहवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - पन्द्रह

श्री शुक जी कहते हैं - भरत के सुमति नाम के पुत्र थे। इसको मैं तुमको पहले ही कह चुका हूँ। वह सुमति ऋषभ देव के समान अवधूत मार्ग में चला गया। कई दुष्ट पाखण्डी उसको **देख कर** दुर्बुद्धि से **उसे** वेद विरुद्ध बौद्धागम में कहा हुआ बुद्ध देव मानते है। कलियुग में बुद्धदेव का अवतार कहलाते हैं।।1।।

सुमति की **पत्नी** गृद्धश्येना से देवपादि नाम का पुत्र जन्मा। उसके देवद्युम्न नाम के पुत्र जन्म लिया। देवद्युम्न की पत्नी धेनुमती से परमेष्टि नाम का पुत्र हुआ। परमेष्टि सुवर्चला में प्रतीह नाम का पुत्र हुआ। वह पुत्र भगवान की विद्या में सिद्धि पाकर परम पुरुष नारायण को प्राप्त किया। उसके सुतबाला नाम की पत्नी में प्रतिहर्ता, प्रस्तोता, उद्गाता नाम के तीन पुत्र हुये। वे यज्ञानुष्ठान करने में निपुण थे। प्रतिहर्त से स्तुति नाम की पत्नी ने व्योम और भूं नाम के दो पुत्र हुये ।।2-3-4।।

व्योम से उनकी पत्नी ऋषिकुल्या में उद्गीथ नाम का पुत्र जन्म लिया। देवकुल्या नाम के अपनी पत्नी में उद्गीथ को प्रस्ताव नाम का पुत्र हुआ। प्रस्ताव को विरूरुत्सा में विभु, विभुको रति में पृथुसेण नाम का पुत्र हुआ। पृथुसेण को आकूति में नक्त नाम का पुत्र हुआ। नक्त को ऋति नाम की पत्नी में गय नाम का पुत्र हुआ। यह गय राजाओं में श्रेष्ठ और महा कीर्तिशाली राजा बना। इस जगत की रक्षा के लिये सत्व गुण को स्वीकार किया हुआ भगवान विष्णु के अंशावेश वाला राजाब न गया। उनके हाथ और पाँव में चक्र के चिन्ह थे। वह प्रियव्रतादि राजाओं में श्रेष्ठ माना जाता है।।5।।

वह राजा प्रजा का पालन-पोषण करते हुये धार्मिक शिक्षण देते हुये प्रजा पालन को अपना धर्म मानता था। यज्ञ कर्म करते हुये उस फल को महापुरुष परब्रह्म नारायण को समर्पण किया। ये सारे कार्य उनको मोक्ष देने वाले बन गये। ब्रह्मज्ञानियों की सेवा करते हुये वह भगवान में भक्ति को प्राप्त कर लिया। इससे उसका मन निर्मल हो गया। वह सदाकाल अपने इन्द्रियों को मन सहित अपने वश में रखता था। इन्द्रियों से विषय पदार्थ सेवन करते समय भी उसको कोई भी विकार नही होता था। परब्रह्म का सामर्थ्य ही उसके मन में प्रत्यक्ष रूप में सदाकाल गोचर होता था। वह मैं और मेरे यह अभिमान को त्याग कर राज्यभार करता था ।।6।।

हे राजा परीक्षित, प्राचीन इतिहासकारों ने गय की स्तुति इस प्रकार की है। बहुत राजाओं ने यज्ञ किये हैं, उससे वे सम्मानित हो गये हैं, वे ज्ञानी भी होगे, धर्म रक्षक भी थे, सदाकाल सकल सम्पदाओं को प्राप्त किये होगे, सज्जनों की सभाओं में अध्यक्ष बने होगे, सज्जन के सेवक भी होगे, किन्तु भगवान के अवतार रूप, देवांश सम्भूत गय के समान और कोई महाराजा नही हो सकते।।7।।

कान्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेघा, धृति, क्षमा ये सारे दक्ष पुत्रियाँ नदी जलो से आशीर्वाद पूर्वक गय राजा को अभिषेक किये। भू देवी गुणशाली गय को अपना बछड़ा मानकर गौ रूप में उसको दूध पिलायी। गय की सारी

प्रजाओं को उनके अभीष्ट कामनाओं को पूर्ण किये।।8।।

वेद कर्म राजा के न चाहते हुये भी उनको फल देते थे। अन्य राजा युद्ध में हार मानते हुये उनको नज़राना देते थे। ऋषि मुनिलोग आशीर्वाद देते थे। प्रजागण अपनी कमाई में एक षष्ठांश रुप में कर देते थे ।।9।।

राजा द्वारा किए हुए यज्ञों में आहुति लेकर ब्रह्मा, रूद्र, इन्द्रादि देवतालोगों और अन्न दान से अन्य जीवियों ने तृप्ति पाते थे। श्रद्धा से और निर्मल, नि:श्चल भक्ति योग से यज्ञ के फल को वह राजा यज्ञेश्वर नारायण को अर्पण करते थे। भगवान श्रीहरि उसको प्यार से स्वीकार करते थे ।।10।।

यज्ञ में ब्रह्मा से आरम्भ कर प्राणी, मानव, तरूलताये तृप्त हुये तो भगवान तृप्त होते हैं क्योंकि भगवान उन सब में रहते हैं। यह विश्व भगवान का अधिष्ठन बना है। जीव राशि को तृप्त किये तो श्रीहरि तृप्त होते हैं। श्रीहरि तृप्त हुये तो यह जगत तृप्त हो जाता है। अन्तर्यामी तृप्त हुआ तो सबको तृप्ति मिल जाती है। गय की आराधना से भगवान सम्प्रीत हो गये ।।11।।

गय को जयन्ती नाम की पत्नी में चित्ररथ, स्वति, अवरोधन नाम के तीन पुत्र हुये। चित्ररथ को उनके ऊर्जी नाम की पत्नी में सम्राट नाम का पुत्र हुआ ।।12।।

सम्राट को उत्कला में मरीचि, मरीचि को बिन्दुमति में बिन्दुमान, बिन्दुमान को सुषेणा में मधु, मधु को सुमनसी में वीरव्रत, वीरव्रत को भोजी में मन्यु और प्रमन्यु, मन्यु को सत्या में भुवन, भुवन को दोषा में त्वष्टृ, त्वष्टृ को विलोचन में विरज, विरज को विषूचि में शतजित् और सौपुत्र एक बेटी जन्म लिये ।।13।।

विरज की स्तुति में यह श्लोक पढ़ा जाता है। प्रियव्रत राजा के वंश में अन्त में आने वाले विरज राजा की कीर्ति बहुत बड़ी है। भगवान विष्णु जैसे देव समूह के अलंकार हैं वैसे राजा विरज राजकुलों के अलंकार हैं। बारह आदित्यों में भगवान विष्णु अन्त में अवतार लिये। वे कीर्ति में सारे आदित्यों में ज्येष्ठ और श्रेष्ठ माने जाते हैं।।14।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्द में पन्दहवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - सोलह

राजा परीक्षित बोले - सूर्य जहाँ तक प्रकाश देते हैं, और ज्योतिर्गणों के साथ चन्द्र प्रकाश देते हैं, वहाँ तक भूमण्डल का विस्तार है। इस बात को आप ने संक्षेप में मुझे कहा है ।।1।।

उस भूमण्डल में प्रियव्रत राजा के रथ के पहिये के कारण सात गड्ढ़े बन गये। वे ही सात समुद्र बने और उन सात समुद्रों के बीच में सात द्वीपों का निर्माण हुआ, इसको भी आप संक्षेप में कह चुके हैं। उन सात सुमद्र और सात द्वीप वाले स्वर्ण भूमि के बारे में मैं विस्तार से जानना चाहता हूँ ।।2।।

हे गुरो! सत्वादि तीन गुण वाले स्थूल पातालादि रूप प्रतिमा में भगवान का चिन्तन करने लगे तो मन त्रिगुण विकार रहित सूक्ष्म स्वप्रकाश वाले परब्रह्म का वासुदेव नामक रूप मन में स्थिर होता है। इसके लिये उस स्थूल प्रतिमा रूप ब्रह्माण्ड का विस्तार रूप से वर्णन कीजिये ।।3।।

शुक जी बोले - हे राजा परीक्षित! प्रकृति के विकार रूप इस प्रपंच में विविध रूपों में प्रवेश किये हुये भगवान के सारे स्थानों की विशेषता उनके नाम रूपों से पूर्ण रीति से समझने के लिये देवताओं का आयुष्य भी कम पड़ता है। अत: बातों से उसको कैसे बोलना है। किन्तु इस भूगोल के मुख्य अंशों को नाम, आकार, विस्तार और लक्षणों से कहते हैं ।।4।।

इस भूमण्डल नाम के कमल के कोशों के अन्दर के कोश में जम्बूद्वीप है। वह वर्तुलाकार है। उसका व्यास एक लाख योजन है ।।5।।

इस जम्बूद्वीप में नौ वर्ष हैं। एक एक वर्ष नौ हजार योजन विस्तार वाला है। आठ मर्यादा पहाड़ों ने जम्बूद्वीप को नौ भागों में विभाजित किये हैं।।6।।

इन नौ वर्षों के बीच में इलावृत नाम का वर्ष है। इसके बीच में कुल पर्वतों में अतिश्रेष्ठ सुवर्णमय मेरू पर्वत है। जम्बूद्वीप के विस्तार के समान यानी एक लाख योजन यह पहाड़ ऊँचा है। भूमण्डल नाम के कमल को यह पर्वत बीच में वाला कार्णिका के समान है। इसके शिखर का विस्तार बत्तीस हजार योजन है। उसके तल में सोलह हजार योजन विस्तार है। उसके नीचे उतना ही लम्बा भूमि में घुसा है।।7।।

इलावृत खण्ड के उत्तर दिशा में क्रमानुसार नील, श्वेत, शृंगवन्त नाम के तीन मर्यादा पर्वत रम्यक, हिरण्यमय और कुरू नाम के भूखण्डों को खण्डित किया है। पश्चिम से पूर्व की दिशा में फैला है। उनकी दोनो दिशा में लवण समुद्र छूते हैं। प्रत्येक पर्वत दो दो हजार योजन विस्तार है। लम्बाई और चौड़ाई में पहले से लेकर आखिरी तक एक एक दस भाग की कमी है। यानी अनुक्रम से एक लाख अस्सी हजार, एक लाख नब्बे हजार और दो लाख योजन लम्बे हैं।।8।।

इलावृत खण्ड के दक्षिण भाग में क्रमानुसार समान लम्बे वाले निषध, हेमकूट और हिमलय नाम के तीन मर्यादा पर्वत हरिवर्ष, किंपुरुष, भरत नाम के तीन खण्डों को बनाये हैं। नील पर्वत के समान ये भी पश्चिम से पूर्व की दिशा में फैले हैं। एक लाख योजन विस्तार है।।9।।

वैंसे ही इलावृत खण्ड के पूर्व और पश्चिम दिशा में उत्तर के नील पर्वत और दक्षिण के निषध पर्वतों के पर्यन्त विस्तार वाले गन्धमादन और माल्यवंत नाम के दो पहाड़ हैं। ये दोनो एक एक इक्तीस हजार योजन लम्बा और दो हजार योजन विस्तार हैं। भद्राश्व और केतुमाल नाम के खण्डों के मर्यादा बने हैं ।।10।।

मन्दर, मेरूमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद नाम के चार पर्वत दस हजार योजन लम्बे वाले हैं। उतना ही वे उन्नत हैं। मेरू पर्वत के चारों ओर आधार रूप स्तम्भ बने हैं। इनको अवष्टंभ पर्वत कहते हैं ।।11।।

ये चार पर्वतों में क्रमश: आम, जम्बू, वटपत्र इत्यादि हजारों - हजारों वृक्ष उन पर्वतों में निशान जैसे दिख रहे हैं। वे अपनी लम्बाई और चौड़ाई से पूरे पर्वत को व्याप्त किये हैं ।।12।।

हे राजा परीक्षित! इन पर्वतों के ऊपर दूध, शहद, गन्ने का रस और पीने के जल का चार सरोवर है उनका सेवन कर यक्ष, किन्नरादि उपदेव गण योग सिद्धि को पाते हैं ।।13।।

नन्दन, चैत्र रथ, वैभ्राजक, सर्वत्तोभद्र नाम के चार सुन्दर उद्यान हैं। यहाँ देवताओं में उत्तम देवता स्त्रियों के साथ देवदेव के गुणगान करते हुये विहार करते हैं।।14-15।।

मन्दर पर्वत के उन्नत प्रदेश में एक हजार एक सौ योजन ऊँचाई वाले आम के वृक्ष से गिरि शिखर के समान बड़े बड़े अमृते सदृश रूचि वाले आम गिरते रहते हैं।।16।।

उन आमों के फट जाने से अति मधुर परिमल युक्त लाल रंग के रस बहने से अरूणोदा नाम की नदी उत्पन्न हुई है। वह नदी मन्दर पर्वत के नीचे बहती हुई इलावृत खण्ड के पूर्व भाग को पानी देती है ।।17।।

पार्वती देवी की दासी लोग, यक्ष स्त्रियों के उस जल का सेवन करने से उत्पन्न हुआ उनके शरीर के सुगन्ध को लेकर बहने वाली हवा दस योजन विस्तार प्रदेश को सुगन्धमय बना देती है ।।18।।

इस प्रकार जामुन वृक्ष के ऊँचा और हाथी के समान बीज वाले फल गिरने से जम्बू नदी उत्पन्न हुई। उस नदी के मेरू मन्दर से दस हजार योजन के ऊपर के शिखर से नीचे बहने से इलावृत खण्ड के दक्षिण भाग में जितनी दूर बहती है तत्पर्यन्त दोनो तट की मिट्टी उस पानी से भीगकर सूर्य और हवा के स्पर्श के कारण जांबूनद नगर नाम का सोना बन गया है। उसको देवताओं के गहने बनाने के लिये प्रयोग में लाते हैं। देवता लोग उसी से आभूषण बनाकर पहनते है।।19,20,21।।

सुपार्श्व पर्वत के ऊपर रहने वाले बड़े महुआ वृक्ष के अन्दर रहने वाले घोसले में मधुमक्खियों से बनाया हुआ पाँच बड़े छत्ता से पाँच धारा बने हुये है। वे सुपार्श्व शिखर से नीचे बहते हुये इलावृत खण्ड के पश्चिम भाग को सुगन्धित किये हैं। उनका सेवन करने वालों के मुख से सुगन्ध भरित हवा सौ योजन पर्यन्त प्रदेश को सुगन्धित किया

है।।22-23।।

ऐसे ही कुमुद पर्वत में उत्पन्न हुआ शतवल्य नाम की वट वृक्ष के टहनियों से इच्छित वस्तुओं को देने वाली नदियाँ अधोमुख होकर बहती हैं। उनसे लोगों को दही, दूध, घी, शहद, गुड़, अन्न, भक्ष्य, वस्त्र, विस्तर, आसन और आभरण इत्यादि जो चाहे वस्तु मिलती है। वे नदियाँ कुमुद पर्वत के शिखर से नीचे बहते हुये इलावृत खण्ड के उत्तर दिशा के जनों को सुख देती हैं। उन नदियों को सेवन करने वाले बूढ़े नही होते, वे थकते नही, उनको दुर्गन्ध, बुढापे, रोग, मरण, शीत, उष्ण, कान्ति हीनता और ज्ञान विघ्न इत्यादि कष्ट कभी भी कहीं भी नही होता, वे जीवित रहते पर्यन्त उत्तम सुख को ही पाते है।।24-25।।

कमल की कर्णिका के चारों और केसर के समान, भूमण्डल के कमल कर्णिका के समान रहने वाला मेरू पर्वत के चारों ओर कुरंग, कुरर, कुसुंभ, वैकंकत, त्रिकूट, शिशिर, पंतग, रूचक, निषध, शितिवास, कपिल, शंख, वैढूर्य, जारूधि, हंस, ऋषभ, नीर, नाग, कालंजर, नारद नाम के पहाड़ हैं।।26।।

मेरू के पूर्व दिशा में मन्दर पर्वत के परे दक्षिण से उत्तर दिशा में जठर और देवकूट नाम के दो पर्वत हैं। ये पर्वत अट्ठारह हजार योजन लम्बा दो हजार योजन चौड़ा और उतना ही ऊँचाई वाले हैं। मेरू के पश्चिम भाग में सुपार्श्व के परे पवन और पारीयत्र नाम के पर्वत हैं वे भी अट्ठारह हजार योजन लम्बा और दो हजार योजन विस्तार और ऊँचाई वाले है। दक्षिण से उत्तर दिशा में फैले हैं। मेरू के दक्षिण में मेरू मन्दर के बाहरी भाग में कैलास और करवीर नाम के पहाड़ हैं। वे भी अट्ठारह हजार योजन लम्बा और दो हजार योजन चौड़ाई वाले और उतना ही ऊचाई वाले है। पूर्व-पश्चिम दिशा में फैले हैं। मेरू की उत्तर दिशा में कुमुद पर्वत के बगल में श्रृंग और मकर पर्वत अट्ठारह हजार योजन लम्बा, दो हजार योजन चौड़ा उतना ही उन्नत हैं। पूर्व पश्चिम दिशा में फैले हैं। इस रीति से दर्भा के परीस्तरण के समान आठ पर्वत चारो ओर घेरे हैं। उनके बीच में आग के समान जलने वाला सोने का मेरू पर्वत प्रकाशमान है ।।27।।

मेरू पर्वत के शिखर में दस हजार योजन विस्तार वाला आयताकार के सुवर्णमय भगवान चतुर्मुख ब्रह्मा का शहर है। उसको शतकोटी कहते हैं ।।28।।

शतकोटी के चारो ओर उसका चौथा भाग वाला आठ दिक्पालों का आठ शहर आठों दिशाओं में उनकी अनुकूलता के अनुसार बने हुये हैं ।।29।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्द में सोलहवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - सत्रह

श्री शुक जी कहते हैं - यज्ञमूर्ति साक्षात् भगवान विष्णु बलि चक्रवती के यज्ञ में वामन रूप से आकर त्रिविक्रम रूप पाकर अपने दाहिने पाँव से भूमि को नाप कर बाँये पाँव ऊपर उठाने से अंगूठे का नाखून ब्रह्माण्ड कटाह को लग गया। उससे कटाह में छेद हो गया। वहाँ से बाह्य जलावरण का जल अन्दर घुसकर त्रिविक्रम भगवान के पाद को धोया। लाल लाल पाद कमल के पराग धुलि के सम्पर्क से जल लाल होकर उसको आचवान करने वाले के अन्दर के पाप और बाहर के मल को नाश करने की शक्ति को पा लिया। दूसरों के मल को निवारण करते हुये स्वयं निर्मल रहा। आगे आगे बढ़ते हुये जह्नु मुनि, भगीरथ राजा के सम्बन्ध के कारण जाह्नवी नाम होते हुये भगवान के पाद तीर्थ के कारण विष्णुपदी नाम से प्रसिद्ध हैं। यह केवल भगवान की प्रतिमा होने के कारण नहीं। हजारों युगों के दीर्घ काल से यह विष्णु पदी नदी अंतरिक्ष के अन्तिम भाग में रहने वाले शिंशुमार लोक में प्रकट हुआ, यह लोक शिंशुमार मूर्ति विष्णु भगवान के निवास होने के कारण इसको विष्णुपद बोलते हैं ।।1।।

इस शिंशुमार लोक में दृढ़व्रत, परम भगवद्भक्त ध्रुवराज विष्णु पदी जल को अपने कुलदेवता विष्णु का पाद कमल तीर्थ मान कर प्रतिदिन बढ़ने वाली भगवान के भक्ति योग से हृदय पूर्णरीति से गलने से आज भी दिन में तीनों बार परमादर से अपने सिर में धारण करते हैं। उत्कंठा से परवश होकर आधा खिला हुआ कमल के समान आँखों से आनन्द वाष्प को बहाते हैं। उसको रोमांचन होता है।।2।।

ध्रुव लोक से विष्णु पदी नीचे बहते हुये सप्तर्षि लोक में पहुची। उस जल की महिमा को जानने वाले सप्तर्षि ने उस हरि पाद तीर्थ जल को अपने सिर के ऊपर धारण करना ही सारे तपों का परम सिद्धि मानकर अपने जटा जूटों में धारण किये क्योकि सर्वेश्वर भगवान वासुदेव में निरन्तर भक्ति योग को पाना ही उनका परम ध्येय है। वे और किसी फल को नही चाहते हैं। इसके लिये उनको विष्णु दीप जल मिलने से मुमुक्षु को मोक्ष मिलने का आनन्द उनको हुआ ।।3।।

उसके बाद सप्तर्षि लोक से नीचे उतरते समय हजारों विमानों से देवतालोग आकर सेवन करते रहे। वहाँ आकाश मार्ग से चन्द्र मण्डल को आकर सारे चन्द्र मण्डल को भिगो दिये। वहाँ से मेरू पर्वत के शिखर में रहने वाला शतकोटि नाम के ब्रह्मदेव के शतकोटि नाम के नगर में गिर गई ।।4।।

वहाँ से वह नदी सीता, अलखनन्दा, चक्षु, भद्र नाम के चार धाराओं से चारों दिशाओं में बहते हुये सारी नदियों के अधिपति समुद्र को मिल जाती है ।।5।।

सीता नदी से एक शाखा शतकोटि से पूर्व दिशा में मेरू के चारों ओर केसर के समान कुरंग, कुरर, कुसुंभ नाम के पर्वतों के शिखर से नीचे बहते हुये गन्धमादन के शिखर पर गिरते हुये भद्राश्व खण्ड से बह कर पूर्व दिशा में लवण समुद्र को मिलती है ।।6।।

चक्षु नाम की नदी शतकोटि से पश्चिम दिशा में चलकर केसर पर्वतों को पार कर माल्यवत् पर्वत के शिखर से नीचे गिरते हुये केतुमाल खण्ड मार्ग से पश्चिम दिशा में लवण समुद्र को जा मिलती है।।7।।

भद्रा नाम की शाखा मेरू शिखर से उत्तर दिशा में बहते हुये केसर पर्वत के शिखरों से नील पर्वत शिखर को वहाँ से श्वेत पर्वत शिखर को, वहाँ से शृंगवत् पर्वत के शिखर पहुँचते हुये उसको पार कर उत्तर कुरूखण्ड को पार करके उत्तर दिशा में लवण समुद्र को मिलती है ।।8।।

वैसे ही अलखनन्दा शाखा शतकोटि से दक्षिण दिशा में बहते हुये अनेक केसर पर्वतों को पार करते हुये बहुत तेज धारा से भरत खण्ड में बहते हुये दक्षिण दिशा में लवण समुद्रों को मिलती है ।।9।।

और अन्य नदियाँ सारे खण्डों में मेरू इत्यादि पर्वतों में जन्म लेकर बहती हैं। इस जम्बूद्वीप में भारतवर्ष ही कर्म क्षेत्र है। अन्य आठ वर्षों में स्वर्गवासी लोग स्वर्ग का भोग भोगने के बाद बचे हुए पुण्य फल को अनुभव करने के लिये स्थान है। इसी कारण उसको भूलोक का स्वर्ग कहा जाता है ।।10।।

वहाँ के मनुष्यों को दस हजार वर्ष का आयुष्य है। दस हजार हाथी का बल उनमें है। वे देवताओं के समान होते हैं। उनका शरीर दृढ़ होता हैं। बल, यौवन और उल्लास से युक्त होते है। बहुत स्त्री सुखों को पाते हैं। राजा रानी के समान बहुत वर्ष विहार करते हुये अन्त में पुत्र प्राप्ति के लिये स्त्रियाँ केवल एक समय में गर्भ धारण करती है। उनके लिये सदाकाल त्रेतायुग के समान है ।।11।।

उनके वासस्थान पर्वत और जंगलों से भरे हुए बहुत सुन्दर हैं। सभी ऋतुओं में फल, फूलों से भरे हुए वृक्ष और लताओं से सुशोभित है। निर्मल जलाशयों में विकसित अनेक तरह के कमलों के परिमल का सेवन करते हुये मदमत्त राजहंस, सारस, चक्रवात, कारण्डव इत्यादि पक्षियों और भौरों से भरा हुआ है। वह हॉ ये देवोत्तम लोग अपनी परिचारकों से सेवा को स्वीकारते हुये शृंगार भाव से भरी हुयी देवता स्त्रियों के अनुराग पूर्ण बात और व्यवहारों से पानी में खेलते हुये विनोद से व्यवहार करते हैं ।।12।।

वहाँ के लोग केवल विषय सुखभोग में मग्न नही होते। इन नौ खण्डों में परम पुरुष भगवान नारायण उन खण्डों के लोगों पर अनुग्रह करने के लिये अपने पारमार्थिक रूपों से वहाँ सन्निहित हैं।।13।।

इलावृत खण्ड में भगवान शिव रहते हैं। वहाँ केवल वही अकेले पुरुष हैं। पार्वती के शाप के कारण उस खण्ड में कोई पुरुष नही आयेगा। गलती से कोई आया तो वह पुरुष बन जायेगा। पार्वती का शाप ही इसका कारण है। इस विषय को नवम् स्कन्ध में वर्णन करेंगे ।।14।।

वहाँ शिव जी की सेवा करने के लिये करोड़ों-करोड़ों स्त्री समूह हैं। उन सबकी स्वामिनी पार्वती हैं। उनसे सेवा लेते हुये भगवान शिव अपने पिता संकर्षण मूर्ति की आराधना करते हैं। यह मूर्ति परमपुरुष वासुदेवादि चतुर्मूर्ति रूप भगवान का चौथी मूर्ति है। संसार के कारण होने वाले तमो गुण के लिये संकर्षण प्रवर्तक होते हैं। ऐसे संकर्षण मूर्ति की उपासना एकाग्र मन से करते हुये मंत्र पाठ और आराधना करते हैं।।15।।

शिव जी कहते हैं - हे सकल गुणशाली सुप्रसिद्ध भगवान शेषदेव! आप जिसके ऊपर दया करते हैं उनको

दर्शन देते हैं। आप में रहने वाले संकर्षण मूर्ति भगवान श्रीहरि सबसे श्रेष्ठ हैं। वे सकल गुण स्वरूप हैं। वे समस्त वेदों से प्रतिपाद्य हैं। देश काल गुण के ऊपर हैं। अपनी इच्छानुसार केवल अपने भक्तों को दर्शन देते हैं। ऐसे प्रणव प्रतिपाद्य भगवान को नमस्कार ।।16।।

भक्त लोगों द्वारा भजन किए जाने वाले हे भगवान संकर्षण मूर्ति ! आपके लाल लाल पाद कमलों को भक्त लोग पूजा करते हैं। आप षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न हैं। सारे जीवियों का निर्माण करने वाले सर्वशक्त आप हैं। भक्तों के संसार दुख का हरण करने वाले और संसार में सुख देने वाले आप हैं। हम आपका भजन करते हैं। हे शेषदेव! आपका भी हम भजन करते हैं ।।7।।

आप इस जगत का निर्माण करते हैं। आपका स्वरूप ज्ञान किसी को नही होता। आप इस प्रकृति के कारण विकार नहीं पाते। हम विकार वाले हैं। क्रोध को जीतना हमारे हाथ का काम नही है। आप प्रकृति के गुणों के स्वामी हैं। हम उन गुणों के वशवर्ती होकर संसार करते हैं। मन का निग्रह करते हुये मोक्ष पाने की इच्छा करने वाला कौन आपका भजन नही करेगा ।।18।।

हे शेष देव! आप मदमत्त जैसे दिखते हे।। किन्तु वह भ्रान्ति है। भगवान के बन्धन शक्ति के कारण जिनकी दृष्टि बाधित हुयी है उनके लिये आप सुरापान किये हुये जैसे लगते हैं। आप की आँख लाल-लाल है। नाग कन्याएँ ने आप से डर कर आपकी सेवा में नही आती। आपके पाद स्पर्श मात्र से उनकी इन्द्रियाँ विचलित होने के कारण वे लाज से आपकी सेवा करने में असमर्थ होती हैं ।।19।।

हे संकर्षण मूर्ति! आप इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय करने वाले हैं। किन्तु आपके लिये स्थिति, उत्पत्ति लय नही है। आप देश काल इत्यादि से परे हैं। आप सर्वेश्वर हैं। हे शेषदेव! आप संकर्षण मूर्ति के आवेश से हजारों हजारों फणों में किसी एक के ऊपर इस भूमण्डल को सरसों जैसे आराम से रखकर रहते हैं। वह भूमण्डल आपको कभी भी भारी नही होता ।।20।।

हे संकर्षण त्रिगुण से निर्माण हुए शरीर में महत्तत्वाभिमानी, बुद्धितत्वाभिमानी सरस्वती को आश्रय देने वाले चतुर्मुख ब्रह्म आप से जन्म लिये हैं। आपसे जन्म लिया हुआ मैं तीन विधि के अहंकार के प्रेरक होकर तीन तरह के देवताओं को तेजस इन्द्रियों का, तामस पंचभूतों की सृष्टि करता हूँ। हे शेषदेव! आप भगवान चतुर्मुख से जन्म लिये हैं। मैं आप से जन्म लिया हूँ ।।21।।

महत्तत्वाभिमानी ब्रह्मदेव, अहंकाराभिमानी मैं गरुड़ और शेष, वैकारिक देवतायें भूताभिमानी, इन्द्रियाभिमानी देवतायें ये सारे रस्सी से बन्धा हुआ पक्षी के समान सूत्र नामक वायु से आपके इच्छानुसार बन्धित हैं। आपके अनुग्रह से हम इस जगत की सृष्टि करते हैं। शेष देव, इन्द्रादि देवताओं के लिये पूज्य मैं, और वैकारिक भूताभिमानी, इन्द्रियाभिमानी देवतायें ये सब आपके वश में हैं। आपके अनुग्रह से इस जगत का सृष्टि कार्य करते रहते हैं।।22।।

हे संकर्षण मूर्ति ! कर्म के बन्ध को देने वाला पत्नी पुत्र रूप का आपकी माया की विषयों की अभिलाषा से मोहित अज्ञ मानव उनको ही पुरुषार्थ मानते हुये उनमें ही सुख मानता है। इस माया के बन्ध को दूर करने की इच्छा भी नही करता और इसे आप ही दूर करने वाले हैं। इसको भी नही समझता। आपके परम कारूण्य से ही आपकी यह

बन्धक माया नाश होती है। आपके लिये नमस्कार। हे शेष देव! इन्द्रादि सारे देवताओं के बन्धकों को दूर करने वाले केवल आप हैं। आपको शतः नमन ।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्द में सत्रहवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - अट्ठारह

श्री शुक देव कहते हैं - भद्राश्व खण्ड में भद्रश्रव नाम के धर्म पुत्र थे। उनके पूर्वज लक्ष्मी ब्रह्मादि देवताओं के लिये अत्यन्त प्रिय थे। धर्म प्रवर्तन करने वाले भगवान वासुदेव के हयवदन नाम के रूप को वे एकाग्र चित्त से हृदय में धारण करते हुये मंत्र और स्तोत्रों का जप करते हैं ।।1।।

भद्रश्रवस बोलते हैं - इस जगत की सृष्टि करने वाले धर्मस्वरूप भगवान, अल्प बुद्धि वाले अशुद्ध जीवों को ज्ञान देकर शुद्ध करने वाले, हयवदन रूपी नारायण आपको नमस्कार ।।2।।

हे भगवान! आपकी लीला विचित्र है, अद्भुत है, आप जीवों को अशुद्ध रखते हैं। लोग मानक मृत्यु को जानते हुये भी अनजाने से रहते हैं। पिता की अंत्येष्ठि करने वाले पुत्र जीने की इच्छा रखते हुये विषय पदार्थों के सेवन के साथ पापों का साधन करते रहते हैं। पाप से अपने ज्ञान को खो देता है। पुनः पाप करता है। इस रीति से भगवान आप लोगों को मोहित करते हैं ।।3।।

पंडित लोग मानते हैं कि विषय पदार्थों से भरा हुआ यह प्रपंच नश्वर है। इसको वे ध्यान करते समय अपने अनुभव से मालूम करते हैं। तो भी वे आप की माया से बन्धित होते हैं। आप की लीला बहुत महान होती है। अपने मोह के निवारण के लिए हम आप को नमस्कार करते हैं ।। 4 ।।

उपनिषद आप को अकर्ता मानता है। आप अकर्ता होने के कारण इस सृष्टि का निर्माण कैसे करेंगे? सृष्टि स्थिति और लय ये कार्य परस्पर विरुद्ध हैं। ये तीनों विरुद्ध धर्म आप अकेले में कैसे रहते हैं? यह आक्षेप सही नही है। आप सर्वशक्त हैं। आप अनायास ही सृष्ट्यादि कार्य को करने वाले हैं। इसी कारण वेद आप को अकर्ता मानते हैं। वेद आपको सृष्टि कर्ता भी मानता है। आप अनेक रीति से विचित्र कार्य करने वाले हैं। आप इस प्रकृति के सारे कर्मों को नियन्त्रण करने वाले, लोक विलक्षण होने के कारण आप मेंविरुद्ध कार्य होना असंभव नही है। आपका ये सारे विरुद्ध कार्य करना स्वाभाविक है।। 5।।

इस जगत के प्रारम्भ में तामस रूपी मधु नामक दैत्य ने वेदों का अपहरण किया। उस समय ब्रह्मा जी की प्रार्थना के अनुसार आप हयग्रीव का रूप धारण करते हुए उस दैत्य का नाश किये। रसातल से वेदों को लाकर ब्रह्मा जी को दे दिया। सत्य संकल्प भगवान आपको नमस्कार ।। 6।।

हरिवर्ष खण्ड में भगवान वासुदेव नरसिंह रुप से हैं। इस रुप के बारे में आगे सप्तम स्कन्ध में विवरण देगे। महापुरुष ब्रह्मादि देवताओं में भक्ति रखने वाले परम भागवत भक्त दैत्यपुर को अपने शील और आचरण से पवित्र किए हुए प्रहलाद जी भक्तों को प्रिय उन नरसिंह भगवान की आराधना फल कामना के बिना अनन्य भक्ति से उस खण्ड के अन्य भक्तों के साथ मिल कर करते रहते हैं। वे इस मन्त्र का पाठ करते हैं।।7।।

सारे तेजों से अधिक तेज वाले हे नरसिंह भगवान! आपको नमस्कार! आप बार-बार अवतार लेते रहे।

बज्र के समान नाखून वाले और वज्र के समान दाँत वाले हमारे कर्मों के और अन्त:करण के दोषों को जला दीजिए, हमारे अज्ञान का नाश किजिए। हमार भय का निवारण हो ।। 8।।

संहार करने वाले नरसिंह भगवान! आप प्रसन्न हो जाइए, हमें शुभ फल दीजिए। मंगलों को मंगल करने वाले ज्ञान रुपी नरसिंह भगवान का ध्यान करना चाहिए। हमारा मन नरसिंह भगवान का भजन करे। हमारी बुद्धि फलकामना न करते हुए अधोक्षज में स्थिर हो कर रहे ।।9।।

भगवद्भक्तों का संग हमें मिले। इससे हमें अपनी पत्नी, पुत्र, देह और बन्धुओं में आसक्ति नही होती। तब भगवान में मन दृढ़ होता है। जीने के लिये जितना चाहिये उतना ही विषय पदार्थों का सेवन करते हुये तृप्ति जो पाता है, मनोनिग्रह को प्राप्त कर वह शीघ्र ही मोक्ष को पाता है। इन्द्रियों को प्रियकर विषयों का उपभोग करने वाला मनोनिग्रह को कैसे प्राप्त कर सकता है। वह अपरोक्ष को तो बिल्कुल नही पाता है ।।10।।

भगवद्भक्तों के संग में रहते हुये, भगवान का संकीर्तन करते हुए, आपके पराक्रम और वैभव को सुनते हुये पुन: पुन: शास्त्र सेवन करने से कानों के मुखान्तर हृदय में आकर अंत:करण में स्थिर होने वाले भगवान हमारे पाप को नाश करते हैं। ऐसे भगवान के भक्तों का संग कौन नही करेगा ।।11।।

जिनको भगवान में भक्ति है, उनमें सारे सद्गुण आ जाते हैं। निष्काम देवता भी उनमें प्रसन्न हो जाते हैं। सदाकाल निषिद्ध विषयों के प्रति दौड़ने वाले, श्रीहरि भक्ति को न करने वाले मनुष्य को, बड़ों का गुण कैसे आ सकता है ।।12।।

भगवान श्रीहरि इन सारे शरीरों के मुख्य पोषक हैं। पानी के बिना मछली जैसे रह नही सकती वैसे जीव भगवान के बिना रह नही सकता। ऐसे परम उपकारी भगवान को छोड़कर, बूढ़े होने के बाद भी गृहस्थ धर्म में रहने वाले दम्पति को केवल आयु से बड़ा माना जा सकता है। ऐसी ज्येष्ठता शूद्र में मानी जाती है। गधा में भी आयु से बड़ा माना जाता है किन्तु पूजा के लिये वह सही नही होता ।।13।।

इसी कारण राजा, पुत्र, मित्रादियों में आसक्ति, विषाद, क्रोध ,अहंकार, आशा, भय, दैन्य, दु:ख इत्यादि के मूल कारण जनन-मरण रूप इस संसार के बीज रूप वाले गृहस्थ धर्म को छोड़कर नृसिंह भगवान के भजन करने वाले को भय कहाँ है।।14।।

केतुमाल खण्ड में कामदेव हैं। वह भगवान प्रद्युम्न नाम रूप से आविष्ट हैं। वे रति में आविष्ट लक्ष्मी जी के साथ हैं। उनके साथ प्रजापति चतुर्मुख ब्रह्मा जी के पुत्र दिवा और रात के अभिमानी देवताएँ भी केतुमाल खण्ड में हैं। उनको भी प्रीति उत्पन्न करने हेतु श्रीहरि भगवान प्रद्युम्न रूप से मन्मथ में आविष्ट होकर उनसे पूजा स्वीकार करते हैं। जिनके अभिमानी देवताएँ केतुमाल खण्ड के अधिपति हैं उनकी संख्या छत्तीस हजार है। रात्रि अभिमानी देवताएँ भी छत्तीस हजार हैं। हर वर्ष के अन्त में परम पुरुष श्रीनारायण के महा अस्त्र सुदर्शन चक्र के तेज से मन में उद्वेग का अनुभव करने वाले रात्रि अभिमानी स्त्रियों का गर्भ नाश होता है ।।15।।

वहाँ रमादेवी अत्यन्त सुन्दरी हैं। उनका चाल-चलन भी आकर्षक है। उनके मोहक हास्य और सम्मोहक भौंह

और सुन्दर मुख कान्ति देखने वाले को परमानन्द देता है। उन रमादेवी की सेवा प्रद्युम्न, रतिदेवी और काम करते रहते हैं।।16।।

भगवान के ज्ञान इच्छा रूप वाले प्रद्युम्न रूप को और भगवान के प्राकृत प्रतिमा रूप कामदेव को रमादेवी की प्रतिमा रूप रतिदेवी को दिन-रात उनके पति के साथ सेवन करती रहती हैं। उस समय इस मंत्र का स्तोत्र करते हैं ।।17।।

भगवान हृषीकेश रूप वाले प्रद्युम्न मूर्ति को नमस्कार। आप सर्वज्ञ ब्रह्मादि देवताओं को अपने शरीर में आश्रय दिये हैं। आप चित्त, वृत्ति, मन, बुद्धि और अहंकार के अधिपति हैं। एकादश इन्दिय और पंचमहाभूत नाम के सोलह कलाओं के लिये आप नियामक हैं। आप वेदों से प्रतिपाद्यों में मुख्य हैं। आप महाभोक्तृ और महाभोग्य हैं। मुक्तों के लिये आप स्वामी हैं। आप सर्वेश हैं, आप इन्दिय बल, आत्म बल और देह बल के नियामक हैं। आप मेरे पतिदेव हैं। आप कामदेव में आविष्ट हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं। आप हमें अन्तर्बाह्य रक्षा दें।।18।।

स्त्री सुमदाय सर्वेश्वर हृषीकेश आपको व्रतों से आराधना करती हुई अपने पति को पाती हैं। आप उनकी आराधना से सन्तुष्ट होकर उनको पति, धन, आयुष्य इत्यादि देकर उनकी रक्षा करते हैं। आपको छोड़कर उनके लिये अन्य पति कौन है। उनके पति अस्वतंत्र हैं। वे कैसे रक्षा करेगे ।।19।।

वे पति नही होते। स्वतंत्र रूप से आप ही मुख्य पति हैं क्योंकि आप स्वयं भय मुक्त हैं, और आप भयभीत लोगों का भय निवारण करते हुये उनकी चारों तरफ से रक्षा करते हैं। इसी कारण आप ही सही पति हैं। इस लोक में अस्वतंत्र हजारों पति होते हैं। किन्तु आप केवल एक मात्र पति हैं। आपको छोड़कर दूसरों का आश्रय लेने से आप से होने वाला लाभ और किसी से नही होता। इस भावना से लोगों को आपके पतित्व को स्वीकारना पड़ता है। परस्पर स्पर्धा के कारण लोगों में एक से एक को भय होता रहता है ।।20।।

जो सारी इच्छाओं को त्याग कर केवल आपके पाद कमलों में भक्ति करता है, वह अपनी सारी इच्छाओं को पूर्ण कर सकता है। हे भगवान, मैं आपकी पूजा निष्काम भाव से करना चाहती हूँ क्योंकि कामना से पूजा करने से पाप और बन्धक आते हैं। इसी कारण सकाम पूजा आप को इष्ट नही है। आपको जो इष्ट नही है, उस सेवा अर्चना से आप फल देने वाले नही हैं। इसी कारण सकाम पूजा करने वाला आशा भंग होकर दुःख पाता है।।21।।

इन्दिय तृप्ति देने वाले विषय पदार्थों की कामना करते हुये, मुझे उद्देश्य कर घोर तप करने वाले वे देव, दानव या मानव कोई भी हो, मैं उनको निष्कंटक ऐश्वर्य नही देती क्योंकि वे आपके पादों की शरण में नहीं आये हैं। आपकी शरण के बिना वे मेरे भक्त नही बनते क्योंकि हे अजित, मैं आपकी भक्त हूँ। सारे देव, दानव, मानव मेरी पूजा करते हैं। किन्तु आपकी पूजा न करने वाले भक्तों के ऊपर मैं अनुग्रह नही कर सकती। तो अन्य देवता कैसे कर सकते हैं ।।22।।

हे भगवान! आप अपने भक्तों के सिर के ऊपर रखने वाले अपने कर-कमलों को मेरे सिर के ऊपर रखिये। मैं आपके विशेष अनुग्रह की प्रार्थना करती हूँ। आप पूज्य हैं, आपकी कृपा मेरे ऊपर सदाकाल है। इसी कारण आप अपने छाती में मेरे चिन्ह को धारण करते हैं। वह भी मेरे कल्याण के लिये है। इससे आप को कुछ होने वाला नही है।

आप स्वतंत्र रीति से इच्छा करते हैं। आपकी इच्छा से आपको कुछ होने वाला नही है। आपके स्वतंत्र लीलाओं का अन्दाज कौन कर सकता है।।23।।

रम्यक खण्ड में भक्तों के लिये अत्यन्त प्रिय भगवान का मत्स्यावतार रूप है। इस खण्ड के अधिपति वैवस्वत मनु हैं। इनको भगवान पूर्व समय में अपना रूप दिखाये थे। उस रूप को मनु आज भी बहुत श्रद्धा से आराधना करते हुये इस मंत्र का जाप करते रहते हैं।।24।।

हे षड्गुण पूर्ण, सर्वोत्तम सद्गुण स्वरूप, सर्वप्रेरक, बलस्वरूप, महामत्स्य मूर्ति आपके लिये नमस्कार।।25।।

उच्च स्वर से वेद का उपदेश करने वाले आप ब्रह्मादि सारे लोक पालकों को अदृश्य होकर उनके अन्दर बाहर रहते हुये उनका नियमन करते हैं। कठपुतली को खिलाने वाला जैसे अपने सूत्र को चलाते हुये लकड़ी की गुड़िया को नचाता है वैसे सर्वशक्तिशाली स्वामी आप इस जगत को अपनी इच्छानुसार नचाते रहते हैं।।26।।

एकबार इन्द्रादि लोकपालक अपने को स्वयं लोकपालक मानते हुये, आप से असूया करते हुये, आपको छोड़कर रहने का प्रयास करने के बाद भी वे कुछ कर नही सके। इस जगत में दिखने वाले पशु, सर्प, स्थावर, जंगम सभी वस्तुओं का वे रक्षण करने में असमर्थ हो गये ।।27।।

आप युग प्रलय के समय में उठती हुयी लहरों के बीच में मेरे साथ औषधि और शस्यों को आश्रय रूप नौका रूप धारण किये थे। हे महापराक्रमशाली, इस जगत को प्रेरणा देने वाले आपको मेरा नमस्कार ।।28।।

हिरण्मय खण्ड में भगवान भक्तों को अत्यन्त प्रिय कूर्म रूप को धारण किए हुए वास करते हैं। पितृओं के अधिपति अर्यम उस खण्ड के अन्य जनों के साथ कूर्म मूर्ति की आराधना करते हैं। वे इस मंत्र का जाप करते हैं।।29।।

हे समुद्र में संचार करने वाले, सकल प्राणियों के गुणों को विशेष रूप से प्रेरणा देने वाले, आप के जल में संचार करने से आपके स्थान को हम समझ नहीं सकते। आप प्राकृत देह रहित हैं, अनन्त देह वाले हैं, आप ही इस जगत के आधार हैं। ऐसे कूर्म रूपी भगवान आपको नमस्कार।।30।।

आप इस जगत के आधार हैं। आप अपनी इच्छा से इसको अपने पेट में रखे हैं। यह जगत जरायुज उद्भिज, अण्डज इत्यादि अनेक रूपों में रहते हुये अनुभव सिद्ध सत्य है। एक परमाणु के अल्प मात्रा के प्रदेश में भी रहने वाले अनन्त प्राणी समूह के कारण इस प्राणी प्रपंच के संख्या की मिति नही है। यह प्रपंच आज जैसे कल नही रहेगा। सदाकाल बदलता रहता है। ऐसे जगत के अन्तर्यामी आपको पूर्ण रीति से वर्णन करने के लिये शब्द नही मिलते हैं। हे कूर्म रूपी भगवान आपको नमस्कार।।31।।

आप इस जगत के अन्तर्यामी हैं। जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, देव, ऋषि, पितृ, भूत नाना प्रकार के चर-अचर, स्वर्ग, अन्तरिक्ष, भूमि, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, ग्रह, नक्षत्र इन सारे शब्दों से मुख्य रूप से बुलाने वाले इन जरायुजों के अन्तर्यामी आप अकेले हैं। जरायुजों में जरायुजत्व जो है वह आपके अधीन होने के कारण आप ही मुख्य रूप से जरायुज कहलाते हैं। अमुख्य होकर जरायुजत्व उन प्राणियों में होता है। अज्ञ जन अमुख्य

व्यवहार को मानते हैं, किन्तु ज्ञानी लोग मुख्य व्यवहारों को करते हुये आपको ही श्रेष्ठ मानते हैं।।32।।

आप में असंख्य गुण, नाम, वर्ण, आकृति रहते हुये भी ज्ञानी लोग आपको दशावतार, चतुर्विंशति रुप वाले कहते हुये संख्या शब्दों की कल्पना करते हैं, उसका समर्थन करते हैं। चतुर्विंशति संख्या शब्द अनन्त वाचक होते हैं। वैसे ही आपके अवतार भी अनन्त वाचक हैं। आप इस तत्वज्ञान के स्वरूप हैं। आप इस लोक को संख्या शास्त्र से ही तत्वज्ञान को सिखाये हैं। आप इस स्वरूपभूत तत्वज्ञान को संख्या शास्त्र से बताये हैं। सांख्य शास्त्र के आप ही मूल हैं। आपको नमस्कार ।।33।।

उत्तर कुरूखण्ड में भगवान यज्ञपुरुष वराह रूप में रहते हैं। वहाँ भू देवी कुरूओं के साथ सदाकाल भक्ति योग से भगवान की आराधना करती हैं। अत्यन्त रहस्य इन मंत्रों से स्तोत्र करती हैं।।34।।

वे मंत्रों से गुणगान करने वाले यूप सहित और यूप रहित दोनो यज्ञों के आप प्रवर्तक हैं। हे पुरुषोत्तम! आप इस भूमि के धारक हैं। हे वराह मूर्ति, आपको नमस्कार। आप शुद्ध कर्म प्रवर्तक हैं। आप तीनो युगों में अवतार करते हैं। आपके लिये नमस्कार।।35।।

विचार करने वाले ज्ञानी लोग आपके स्वरूप को **वेद नाम** के मन में रखते हुये वेद नामक मथनी से मन्थन करते हैं क्योंकि आप देह इन्द्रियों में रहते हुये भी निगूढ़ होते हैं। अरणियों में रहने वाली अग्नि के समान अव्यक्त रहने वाले आप वेदों में उपक्रमादि लिंगों से समझे जा सकते हैं। ज्ञानी लोग इसको चिन्तन-मन्थन से जान लेते हैं। उपनिषदों में, कर्म-काण्डों में, यज्ञ क्रियाओं में, इन्द्रादि नामों में आप ही मुख्य वाच्य हैं। आप ही उन नामों से बुलाये जाते हैं। आपको नमस्कार।।36।।

ज्ञानियों में ब्रह्मा, रूद्रादि देवता श्रेष्ठ होते हैं। द्रव्येश रुद्र, क्रियेश गरूड़, कारणेश ब्रह्म, अयनेश वायु ये सारे इस जगत की सृष्टि करते हैं। वे आपके अधीन हैं, आपकी इच्छानुसार काम करते हैं, माया गुण वाले हैं। वे माय. निर्मित, प्राकृत शरीर न रहने वाले आपके स्वरूप को यथार्थ रूप में प्रत्यक्ष देखते हैं क्योंकि वे आप ही में दृढ़ रूप से मन लगा चुके हैं। आपको नमस्कार।।37।।

लक्ष्मी देवी भी स्वतंत्र नही हैं। वह इस प्रपंच की स्थिति, लय और उत्पत्ति को करती रहती हैं। तो भी वह आपके गुणों को पूर्ण रूप से समझ नही सकती। अयस्कान्त शिला लोहे को जैसे आकृष्ट करती है, वैसे लक्ष्मी आपसे आकृष्ट होकर सदाकाल आपकी सेवा में रहती हैं। इन लक्ष्मी ब्रह्मादि देवताओं के गुण कर्मों को स्वयं देखने वाले आपको नमस्कार।।38।।

हे जगत कारण रूपी वराह स्वामी, आप मुझको अपने सूढ़ के ऊपर रखते हुये रसातल से ऊपर आकर पानी में खेलने वाले हाथी के समान समुद्र से बाहर आ गये। बाद में युद्ध में प्रतिस्पर्धी होकर आए हुए हिरण्याक्ष को उसी सूढ़ से चीरकर नाश किये। ऐसे प्रभु वराह स्वामी आपको बार-बार नमन।।39।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्ध में अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - उन्नीस

श्री शुक जी कहे - किंपुरुष खण्ड में लक्ष्मण के भाई, सीता जी के प्रियकर आदि पुरुष भगवान श्रीराम जी वास करते हैं। उनके श्रीपाद के पास परम भगवद्भक्त हनुमान जी किंपुरुषों के साथ निरन्तर भक्ति से आराधना करते रहते हैं। आर्ष्टिषेण के साथ गन्धर्व मिलकर जो परम मंगलकर गीत गाते हैं, उसको वह निरन्तर भक्ति से आराधना करते हैं।।1,2।।

उत्तम कीर्तिशाली भगवान आपको नमस्कार। पूज्य व्यक्तियों को लक्षण शील व्रतों को देने वाले आपको नमस्कार। सारे जीवों को आश्रय देने वाले आपको मेरा नमस्कार। लोक में लौकिक उपासना को स्वीकार करने वाले आपको नमस्कार। सज्जनों की योग्यता की परीक्षा करने वाले, सज्जनों की रक्षा करने वाले आपको नमस्कार। ब्राह्मणों के प्रिय पुरुषोत्तम महाराज श्रीरामचन्द्र जी आपको पुन: पुन: नमस्कार।।3।।

आप दोषरहित अनुभव रूप शरीर वाले हैं। अपने सामर्थ्य से सत्वादि गुणों को और जागृतादि तीन अवस्था के पार आप हैं। आप सकल जीवान्र्तगत हैं, परम सुख स्वरूप हैं। निर्मल चित्त में आप दृश्यमान होते हैं। आप का पूर्ण वर्णन करने में कोई भौतिक शब्द मिलता नही। आप अहंकार शून्य हैं। ऐसे सर्वोत्तम श्रीरामचन्द्र जी मैं आपकी शरण में हूँ ।।4।।

श्रीरामचन्द्र जी! आप मनुष्यों में अवतार लिये किन्तु जन्म नही लिये। आप राक्षसों का नाश किये, साथ साथ मनुष्यों के लिये पितृवाक्य पालनादि आदर्शों को दिखाये। स्त्रियों में ज्यादा आसक्ति रखना दुख का कारण बनता है। इसका शिक्षण देने के लिये आप सीता वियोग से दुख का प्रदर्शन किये, नही तो सदा स्वरमण, नित्यावियोगिनी सीता जी के साथ सदा रहने वाले आपको, सीता जी के वियोग से अथवा लक्ष्मण जी के वियोग से दु:ख कैसे होता है।।5।।

सारे शरीरों के स्वामी, सर्वेश्वर भगवान वासुदेव, आप कभी भी दु:खों का अनुभव नही करते। आपको पत्नी वियोग होता नहीं। आप लक्ष्मण को परित्याग करते ही नही।।6।।

हे आर्ष्टिषेण, ब्राह्मणादि उत्तम कुल में जन्म लेना, बहुत सम्पदाओं को सम्पादन करना, बुद्धि से बड़ा ज्ञानी होना रूप से अत्यन्त सुन्दर होना, इनसे भगवान श्रीराम जी की कृपा नही होती क्योंकि लक्ष्मण जी के भाई श्रीराम जी हम जैसे जंगल में रहने वाले बन्दरों को अपना स्नेही बनाये।।7।।

देव हो, दैत्य हो, नर हो, वानर हो प्रत्येक व्यक्ति को कृतज्ञ होकर सर्वोत्तम मानवरुप श्रीरामजी की सेवा करनी चाहिये। श्रीरामजी सेवा से सन्तुष्ट होते हैं। इसके लिये वे परमधाम को जाते समय उत्तर कौशल के समस्त जनों को पशु-पक्षी, तृणादि जीवों को भी अपने साथ वैकुण्ठ ले गये।।8।।

भारतवर्ष में भगवान नर और नारायण रूप में हैं। धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, भगवन्निष्ठा, इन्द्रियनिग्रह,

भगवान के अपरोक्ष नाम के तपस्वी के इन सारे गुणों को दिखाते हुये, तपस्वी के स्वरूप को अपने भक्तों को दिखाने के लिये और अनुग्रह करने के लिये कल्प के अन्त तक यहाँ नर नारायण रूप में तप करते हैं।।9।।

भगवान नारद मुनि, कपिल भगवान से उपदेश दिए हुए सांख्य शास्त्र से भगवान की महिमा का वर्णन करने वाले पंचरात्र आगम को सावर्णि मनु को उपदेश देते हैं। वे वर्णाश्रम में निष्ठा रखने वाले, भारत की प्रजाओं के साथ मिल कर परम भक्ति भाव से नर नारायण रूपी भगवान की उपासना करते हैं। वे इस मंत्र का जाप करते हैं ।।10।।

भगवान में निष्ठा रखने वाले, अपने दैहिक बाधाओं से दूर रहने वाले, ऐहिक सम्पदा से दूर रहने वाले, भक्तों को ही अपनी सम्पदा मानने वाले, श्रेष्ठ मुनियों के लिए, परम शुद्धों के लिए, परम गुरुओं के लिए और स्वरमण समस्त लोकाधिपति नर नारायण को बार-बार नमस्कार ।।11।।

और गाते हैं - भगवान को दैहिक बाधाएँ नही हैं। वे सृष्टि, स्थिति, लय इत्यादि करते रहते हैं। इनको करने के बाद भी जीव के समान उनको कर्म बद्धता नही है। जीवों के देह में रहते हुए भी उन देह के सम्बंध से होने वाले दुख उनको होते नही। विषय पदार्थो को देखते हुए भी उनकी दृष्टि दूषित नही होती। वे लोक विलक्षण हैं, सर्व साक्षी हैं और आसक्ति रहित हैं, ऐसे भगवान को नमस्कार ।।12।।

हे भगवान, आप ध्यान योग में निष्ठा दिखाते हैं। हे योगेश्वर, चतुर्मुख ब्रम्हा जी योग के बारे में जो उपदेश दिये आप उस योग कौशल को दिखा रहे हैं। अंत काल में त्रिगुण रहित हो कर आप में मन रखते हुए इस जड़ शरीर को त्यागना इस योग कौशल से ही साध्य है अन्यथा साध्य नही है ।।13।।

ऐहिक, आमुष्मिक सुख भोगों में आसक्त जीव मरते समय पत्नी पुत्र और संपदा के बारे में चिन्तन करते हुए शरीर छोड़ने के लिए डरता रहता है। ज्ञानी भी उसी की तरह डरने लगा तो उसके ध्यान और अभ्यास से क्या लाभ है। वह व्यर्थ श्रम हो जाता है ।।14।।

हे अधोक्षज प्रभु, आप के बन्धक शक्ति से हमें अपने दुष्ट शरीर में कभी होने वाला मै और मेरा का भाव अभेद्य होता है। किन्तु हमें उसको पार करना है। इसलिए आप आवश्यक ज्ञान भक्ति को बढ़ाने वाले योग को हमें दीजिए ।।15।।

इस भारत वर्ष में नदी और पहाड़ बहुत हैं। मलय, मंगल प्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कनक, कोल्य, सत्य, वेद गिरी, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवत, ककुभ, श्रीशैल, वेंकट, महेन्द्र, वारीधर, विंध्य, शुक्ति मान, रूक्ष गिरि, नील, कोका मुख, इन्द्र कील, कामद गिरि इत्यादि हजारों पहाड़ हैं। उनके प्रस्थ प्रदेश से निकलने वाली बहुत सी नदियाँ हैं।।16।।

केवल नामस्मरण मात्र से पुनीत करने वाली इन नदियों के पवित्र जल को यहाँ की प्रजा स्नान आचमन इत्यादि कार्यो में प्रयोजन करती है ।।17।।

चन्द्रवटा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, घृतमाला, वैयहासी, कावेरी, वेणी, पयोदा, शर्करावर्ता, तुंगभद्रा, कृष्णा, भीमरथी, गोदावरी, निर्विंध्या, परूष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती ये सारी महानदियाँ हैं। सिन्धु, अन्ध,

शोण ये तीन महानद हैं। वेदस्मृति ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधवती,सप्तवती, घोषा, सुषोमा, शतमाला, चन्द्रभागा, शतुद्री, मरूद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी, विश्वा ये भी महानदियाँ हैं ।।18।।

इस भारतवर्ष में जन्म लिया हुआ मानव अपने करने वाले सफेद, लाल और काले रंग वाले सात्विक, राजस और तामस कार्यो से क्रमानुसार दिव्य, मानुष और नरकों की गति इन सबको भगवान से ही प्राप्त करता है। वर्णाश्रम धर्म के अनुसार उसे मोक्ष भी होता है। जब महापुरुषों का, श्रीहरि भक्तों का संग होता है तब सभी प्राणियों को उसके अर्न्तयामी भगवान जो जीव स्वभाव से रहित, अन्यों का आश्रय न चाहने वाले, मोक्ष देने वाले वासुदेव रूपी भगवान में आत्यन्तिक भक्ति होती है। इस कारण से स्वर्ग-नरक इत्यादि अनेक गति का मूल कारण अविद्या के बन्धन को त्याग कर स्वरूपानन्द को अनुभव करना ही मोक्ष है। इस रीति से भारतवर्ष में मानव होकर जन्म लिये हुये व्यक्ति को वासुदेव में भक्ति करते हुये, वर्णाश्रम धर्म का पालन करने से मुक्ति अत्यन्त सुलभता से मिलती है। इसकी देवता भी गाकर स्तुति करते हैं ।।19-20।

भारत भूमि में मुकुन्द की सेवा चाहते हुये मानव जन्म को पाया हुआ आदमी जो चाहता है उसको पाता है। वे भाग्यशाली हैं। स्वयं भगवान इन पर अनुग्रह करते हैं ।।21।।

मनुष्य को हमारी कृपा पाने के लिये, अत्यन्त कष्टकर काम्य, यज्ञ और काम्य तप, व्रत, दानादि करते हुये, बहुत कष्ट से, अल्प सुख देने वाले स्वर्ग को पाने से क्या मतलब है। वे इन्द्रिय सुख को अनुभव करते हुये नारायण के पुण्य स्मरण को खो देते हैं ।।22।।

महर्लोक में रहने वाले लोगों को ब्रह्मा जी के एक दिन का आयुष्य होता है। इनको नारायण पाद कमल का स्मरण भी मिलता है। महर्लोक में एक कल्प समय तक नारायण स्मरण करने के बाद भी पुन: इस संसार में जन्म लेना पड़ता है। किन्तु कर्मभूमि भारत में एक क्षण नारायण स्मरण करे तो वह मोक्ष के लिये कारण बनता है। इससे पुन: इस संसार में जन्म लेने की आवश्यकता नही रहती है। इसीलिये पुन: इस संसार को आने की सम्भाव्य कल्पायुर्षि स्थान महर्लोक को पाने के अलावा एक क्षण आयुष्य वाला भारत भूमि में जन्म लेना अच्छा होता है क्योंकि इस मरने वाले शरीर से एक क्षण में किया हुआ कर्म को मनोनिग्रह वाले होकर भगवान में समर्पित करते हुये निर्भय से श्रीहरि के वैकुण्ठ को हम पा सकते हैं ।।23।

जहाँ श्रीहरि कथा की नदी बहती है। जहाँ श्रीहरि कथा को बोलने वाले सज्जन होते हैं। जहाँ संगीत नृत्यादि उत्सव और वैष्णव याग चलते हैं, वही देवलोक है। जहाँ ये सारे नही होते हैं, वह देवलोक होकर भी वास के लिये योग्य नही है। भारतभूमि के बारे में और क्या कहना है, इसीलिये भारतभूमि में जन्म लिये मानव को श्रीहरि कथा को या तो सुनना चाहिये अथवा सुनाना चाहिये। श्रीहरि की प्रीति के लिये यज्ञ, सत्कर्म नृत्य गानादि उत्सवों को भी चलाना है।।24।।

बुद्धि शक्ति, कर्म करने की शक्ति, कर्म करने की साधन सामग्री से युक्त मनुष्य जन्म को, कष्ट से पाने के बाद भी, मोक्ष के लिये प्रयत्न करने वाले, शिकारी के जाल में एक बार फँसा हुआ प्राणी उससे बाहर आने के बाद

भी और उसी में फँस जाने जैसे इस संसार बन्धन में फंस जाता है।।25।।

भारतवर्ष में यज्ञ में **अग्नये जुष्टं, निर्वपामि, इन्द्राय जुष्टं निर्वपामि** इन मंत्रों से अन्यान्य देवताओं के नाम से हविर्भाग को अलग अलग करते हुये यज्ञों को अलग अलग मंत्र और हविष्य से करते हैं। उसको सारे इच्छित पदार्थों को देने वाले गुण पूर्ण भगवान सन्तोष से ग्रहण करते हैं क्योंकि भारतवासी लोग अन्यान्य देवताओं के नाम से मुख्य वाच्य भगवान को ही यज्ञ में आहुति स्वीकारने के लिये आमंत्रण देते हैं ।।26।।

काम्य कर्म करने वाले चाहे तो भगवान श्रीहरि से जो चाहें उसको पा सकते हैं। किन्तु चाहे हुये वर मिलने के बाद उससे उसको अहंकार होता है। इसी कारण भगवान उसको नही देते। किन्तु कुछ भी न चाहने वाले भक्तों को वे अपने कोमल पादों को यानी मोक्ष को स्वयं प्रीत होकर देते हैं। मोक्ष में वे जो चाहते हैं वह सब मिलता है।।27।।

यज्ञ दान और अन्य कर्म से सम्पादन किए हुए पुण्य स्वर्ग सुख पाने के बाद जो थोड़ा बचता है उसके कारण हमें भारतवर्ष में जन्म मिलता है क्योंकि वहाँ जन्म लेने से पद्मनाभ का स्मरण मिलता है। भारतवर्ष में श्री हरि भजन करने वाले अपने भक्तों को मोक्ष देते हैं ।।28।।

श्रीशुक देव बोले - हे राजा परीक्षित, सगर राजा के पुत्रों ने यज्ञ के घोड़े को ढूंढ़ते हुये इस भूमि के चारों ओर खोद दिये। उसी से इस जम्बू द्वीप में आठ उपद्वीप हो गये, यह और कई लोगों का कहना है ।।29।।

स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मन्दहार, पांचजन्य, सिंहल और लंका ये आठ उपद्वीपों के नाम हैं।।30।।

हे राजा, हमारे गुरु जी हमें जो बताये थे, उसके अनुसार जम्बू द्वीप के विभागों के बारे में हम कहे हैं ।।31।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्ध में उन्नीसहवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - बीस

श्री शुक देव बोले - अब हम प्लक्ष इत्यादि द्वीपों की लम्बाई, चौड़ाई और उनके लक्षण के बारे में उनके वर्ष विभाग के बारे में वर्णन करते हैं ।।1।।

मेरू पर्वत जम्बू द्वीप से जैसे घिरा हुआ है, जम्बू द्वीप एक लक्ष्य योजन विस्तार लवण समुद्र से घिरा हुआ है। लवण समुद्र उससे दुगना यानी दो लाख योजन विस्तार वाला प्लक्ष द्वीप से घिरा हुआ है, कन्दक जैसे उपवन से घिरा रहता है। जम्बू वृक्ष के समान विशाल गात्र वाला सोने का प्लक्ष वृक्ष इस द्वीप में रहने के कारण इस द्वीप को प्लक्ष द्वीप नाम पड़ा है। यहाँ सात जीभ वाला अग्नि श्रीहरि की उपासना करता रहता है। इस द्वीप के अधिपति प्रियव्रत के पुत्र इध्मजिह्व ने अपने द्वीप को सात वर्षो में विभाग किया है। उनको उन्हीं के नाम से पुकारने वाले अपने सात पुत्रों को देकर भगवान के नाम का ध्यान करते हुये उन्होने इस लोक को त्याग दिया।।2।।

शिव, यशस्य, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत, अभय ये सात वर्ष प्लक्ष द्वीप में हैं। एक एक वर्ष में सात सात पर्वत और सात सात नादियाँ प्रसिद्ध हैं।।3।।

इसके अलावा और बहुत से पहाड़ और नदियाँ है। मणिकूट, व्रजकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान, धूम्रवर्ण, हिरण्यग्रीव, मेघमाल ये सात बड़े पहाड़ हैं। अरूणा, अनुगण, आंगीरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा, सत्यंभरा ये सात महानदियाँ हैं। इन नदियों के जल का सेवन करने से प्लक्षद्वीप वासी लोग अपने रज, तम दोनों दोषों का परिहार कर लेते हैं। जम्बू द्वीप में जैसे ब्राह्मणादि चार वर्ण हैं, वैसे ही प्लक्षद्वीप में हंस, पंतग, गोध्यायन, सत्यांग नाम के चार वर्ण हैं। उनको एक हजार वर्ष का आयुष्य होता है। उनकी आकृति और सन्तानोत्पत्ति देवता जैसे है। स्वर्ग प्राप्ति के कारण सूर्यान्तिगत वेद-वेद्य भगवान श्रीनारायण को इन मंत्रों से वे उपासना करते हैं।।4।।

पुरातन, मुक्त और अमुक्तों का नियामक, निर्विकार, सकल गुण पूर्ण, नित्य मुक्त और लय करने वाले विष्णु के सूर्यान्तिगत सूर्य नाम के जगत स्वामी रूप का हम भजन करेंगे।।5 ।।

प्लक्ष इत्यादि छ: द्वीपों में रहने वाले लोगों का आयुष्य, इन्द्रिय, बल, ओजस्, सहन करने वाली शक्ति, शरीर बल, बुद्धि, पराक्रम इत्यादि गुण सब में जन्म सिद्ध से समान है ।।6।।

प्लक्ष द्वीप के समान यानी दो लक्ष्य योजन विस्तार वाला इक्षुरस समुद्र से आवृत्त प्लक्ष के समान उससे दुगना विस्तार वाला शाल्मलद्वीप उतना ही विस्तार वाला सुरा समुद्र से घिरा हुआ है। शाल्मल द्वीप में एक बड़ा शाल्मली वृक्ष है। वह प्लक्ष वृक्ष के समान बड़ा है। किन्तु जम्बू वृक्ष के डेढ़ गुना बड़ा ऊँचा है। उसकी छाया में वेदो से श्रीहरि का गुण गान करने वाले पक्षिराज गरूड़ का आवास स्थान है।।7।।

शाल्मलद्वीप को प्रियव्रत का पुत्र यज्ञबाहू अधिपति बना था। उसने अपने पुत्रों को उनके नाम वाले सात वर्षों को बाँट दिया। उनका नाम है, सुरोचन, सौमनस, रमणक, देवबर्ह, पारिभद्र, आप्यन, अभिजत।।8।।

इन सात वर्षो में सात पर्वत और सात नदियाँ प्रसिद्ध हैं। स्वरस, शतशृंग, वामदेव, कुन्द, मुकुन्द, पुण्यवर्ष और सहस्त्रश्रुति ये सात मर्यादा पर्वत हैं। अनुमति, सीनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा, राका ये सात महानदियाँ हैं।।10।।

शाल्मलद्वीप के वर्षो में श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर, इध्मधर नाम के चार वर्ण के लोग वेद प्रतिपाद्य में मुख्य सोमान्तर्गत भगवान श्रीनारायण को वेद मंत्र से आराधना करते हैं ।।11।।

शुक्ल कृष्ण दोनो पक्षों में क्रम से देव और पितृओं के लिये अपने किरण से सोमरस नाम के अन्न को वितरण करने वाले चन्द्रार्गत भगवान नारायण को हमारा नमस्कार। वे हमें सन्तोष दें ।।12।।

शाल्मलद्वीप जैसें सुरा समुद्र से आवृत्त है, उसके दुगुना यानी आठ लाख योजन विस्तार वाला कुशद्वीप उतना ही विस्तार वाला घृत समुद्र से घिरा हुआ है। इस द्वीप में कुश नाम का घास देव से निर्माण होकर विस्तार से घिरा हुआ है। उसी नाम से इस द्वीप का नाम कुश है। यह कुश आग जैसे अपने प्रकाश से चहुदिशाओं को प्रकाश देता है ।।13।।

इस कुशद्वीप के स्वामी प्रियव्रत राजा के पुत्र हिरण्यरेता थे। वह इस द्वीप को सात वर्षो में विभाग करते हुये अपने सात पुत्रों को देकर तप करने गए।।14।।

उन पुत्रों का नाम है, वसु, वसुदान, घृढ़रूचि, नाभिगुप्त, सत्यव्रत, विप्र, वामदेव। उनके राज्यो को उन्हीं के नाम से पुकारते हैं। उन वर्षो में मर्यादा पर्वत और महानदियाँ सात-सात हैं। चक्र, क्रतुशृंग, कपिल, छिन्नकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोम और द्रविण ये सात मर्यादा पर्वत हैं। रसकुल्या, मधुकुल्या, शृतविन्दा, मित्रविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता और मंत्र माला ये सात महानदियाँ हैं। इन नदी जलों से कुशल, कोविद, अभियुक्त नाम के इन द्वीप वासी लोगों ने अग्नि के अन्दर रहने वाले स्वतंत्र रूपी नारायण को अपने कर्म कौशल से आराधना करते हैं।।15-16।।

हे अग्नि देव, आप मुख्य रूप से परब्रह्म नारायण के सन्निधान पात्र हो। यज्ञ पुरुष आप भगवान के शरीर रूप इन्द्रादि देवताओं को हविर्भाग देने वाले हैं। हम जो यज्ञ करते हैं, उस यज्ञ से आप यज्ञ पुरुष भगवान की आराधना करें। हम जो आहुति देते हैं उनको आप यज्ञ पुरुष को अर्पण करें।।17।।

कुशद्वीप समान विस्तार वाला घृतसमुद्र से घिरा हुआ कुशद्वीप के बाहर क्रौंचनद्वीप सोलह लाख योजन विस्तार वाला दधि समुद्र से घिरा हुआ है। इस द्वीप में क्रौंच नाम का महापर्वत है। उसी के नाम से यह द्वीप क्रौंच नाम वाला है।।18।।

क्रौंच पर्वत को षणमुख द्वारा अपने आयुध से मारने के कारण उसके वृक्षों के लिये बाधा होने पर भी दधी समुद्र के जल का सेचन करने से और भगवान वरूण की रक्षा में रहने के कारण यह पर्वत भय मुक्त है ।।19।।

प्रियव्रत का पुत्र घृतपृष्ठ इस द्वीप का अधिपति था। उसने अपने सात पुत्रों के नाम से इस द्वीप को सात वर्षों में विभाजन कर अपने सात पुत्रों को देकर अपने में रहने वाले भगवान श्रीहरि के पादों में समाहित हो गया।।20।।

आम, माध्वर्ह, मेघपृष्ठ, सुदाम, ऋषिज्योति, लोहितार्ण, वनस्पति ये सात घृतपृष्ठ के पुत्र थे। उनके वर्षो में मर्यादा पर्वत सात और महानदियाँ सात हैं। शुक्ल, वर्धमान, उपबर्हण, उपभोजन, नन्द, नन्दन और सर्वत्रोभद्र ये सात मर्यादा पर्वत हैं ।।21।।

अभय, अमृतौघ, आर्यका, तीर्थवती, रुपवती, पवित्रा और शुक्ल नाम की सात नदियाँ हैं। उनके पवित्र जल को सेवन करने वाले गुरु ऋषभ, द्रविण, देवक नाम के चार वर्ण वाले वे द्वीप वासी लोग उस जलान्तर्गत भगवान को जलांजलि से आराधना करते हैं ।।22।।

पवित्र जल अपने अन्दर की भगवान की शक्ति से भू: भुव: स्व: नाम के तीन लोकों को पवित्र करता है, पापों का नाश करता है। मोक्ष चाहने वाले जीव को इस पवित्र जल का स्पर्श करना चाहिये। ऐसा पवित्र जल हमको और पवित्र करे।।23।।

दधि समुद्र के बाहर उससे घिरा हुआ बत्तीस लाख योजन विस्तार वाला शाकद्वीप है। वह उतना ही विस्तार वाला क्षीर समुद्र से घिरा हुआ है। इस शाक द्वीप में शाक नाम का वृक्ष है। उसके नाम से इसको शाकद्वीप कहते हैं। इस वृक्ष की सुगन्ध सम्पूर्ण द्वीप को सुगन्धित किया है।।24।।

इस शाकद्वीप को भी प्रियव्रत के पुत्र मेधातिथि अधिपति था। उसने अपने सात पुत्रों के नाम से इस द्वीप को सात वर्षो में विभाग किया। अपने पुत्रों को उनके अधिपति बनाकर स्वयं भगवान अनन्त में मन रखते हुये तपोवन में चला गया। उन सातों वर्षो का नाम है, पुरोजव, मनोजव, वेपमान, धूम्रानीक, चित्ररथ, बहुरूपा, विश्वधर।।25।।

इन सात वर्षो में सात मर्यादा पर्वत और सात महानदियाँ हैं। ईश, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत्र, देवपाल, महानस ये सात मर्यादा पर्वत हैं।।26।।

अनघा, आयुर्दा, उभय स्पृष्टि, अपराजिता, पंचपदीय, सहस्र स्रुती, निर्जघ्नु नाम की सात महानदियाँ वहाँ बहती हैं ।। 27।।

वहाँ वास करने वाले लोग ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत, अनुव्रत नाम के चार वर्ण वाले होते हैं। वे प्राणायाम से रज और तम के दोष को दूर हटा कर वायु के अन्दर रहने वाले भगवान में पूर्ण रीति से चित्त लगा कर ध्यान करते हैं।। 28।।

वे भगवान से प्रार्थना करते हैं। प्राणियों के शरीर में प्रवेश कर प्राण अपानादि नियामक रुप से अन्तर्यामी सर्व शक्त वायुदेव उनकी रक्षा करते हैं।यह पूरा जगत उन्ही के वश में है। वे हमारी रक्षा करें।। 29।।

क्षीर समुद्र के उस पार पुष्कर द्वीप है। वह चौसठ लाख योजन विस्तार वाला है। उतना ही विस्तार वाला स्वादूदक समुद्र से घिरा हुआ है। इस पुस्कर द्वीप में आग की ज्वाला के समान प्रकाश वाला, दस हजार सोने के दल वाला एक बड़ा कमल यानि पुष्कर है। वहाँ ब्रह्म देव जी का आसन बना है। इस द्वीप में मानसोत्तर नाम का एक बड़ा पर्वत द्वीप के मध्य भाग में है। वह द्वीप को दो वर्षो में विभाग किया है। दस हजार योजन ऊँचा उतना ही चौडा इस पर्वत के चारो दिशा में चार इन्द्रादि लोक पालों के चार नगर हैं।उनके ऊपर मेरु पर्वत को परिक्रमा करने वाले सूर्य

रथ का चक्र चलता रहता है। वह दिन रात चलते हुए ऋतु और संवत्सर नाम के काल को दिखाता रहता है।।30।।

प्रियव्रत का पुत्र वीति होत्र इस द्वीप का अधिपति बना था। उसने अपने रमण और धातकी नाम के पुत्रों को उन्ही के नाम से प्रसिद्व हुए दो वर्षों को आधिपत्य दे कर, अपने भाई के समान भगवान की आराधना में लग गया।।31।।

पुष्कर द्वीप में रहने वाले लोग ब्रह्मान्तर्यामी ब्रह्म रुपी भगवान को ज्ञान और कर्म मार्ग से आराधना करते हैं।वे इस मन्त्र का जाप करते हैं।।32।।

सर्व कर्मों के मुख्य आराध्य ब्रह्मान्तर्गत आप का स्वरुप अत्यन्त विलक्षण है, स्वगत भेद वर्जित है। ज्ञानी लोग इस रीति से आप की उपासना करते हैं। ऐसे भगवान आपको हम नमस्कार करते हैं।।33।।

सुद्वोगत समुद्र के उस पार कांचन भूमि को पार करते हुए उसके चारों ओर लोकालोक नाम का पर्वत है। यह सदा काल सूर्य और चन्द्र के प्रकास से प्रकाशित होता है। इस प्रदेश को लोक कहते हैं। प्रकाश न रहने वाला प्रदेश अलोक है।इन दोनों के बीच में लोकालोक पर्वत है।।34।।

मानस के बाद और मेरु पहाड़ के बीच रहने वाला भू भाग छानबे लाख योजन विस्तार वाला कांचन भूमि शुद्वोंद समुद्र से लोकालोक पर्वत तक फैला है। वह आयना जैसे निर्मल है। वहाँ देव और देवानुचर रहते हैं। उनको छोड़कर कोई प्राणी या वस्तु वहाँ प्रवेश किए तो वापस नही आते। इसके लिए वहाँ कोई प्रवेश नही करते।।35।।

लोकालोक पर्वत लोक और अलोक पर्वत के बीच में रहते हुए उन दोनों प्रदेशों का अविभाजन करता है। इसके लिए उसका नाम अन्वर्थक है ।।36।।

सूर्य आदि प्रकाश वाले लोक का, प्रदेश का निर्देश करने वाले भगवान बीच में लोकालोक पर्वत को खड़ा किये हैं। सूर्य से लेकर ध्रुवनक्षत्र तक प्रकाश देने वाले सारे ग्रह नक्षत्र इस पर्वत के दूसरे बाजू में नहीं जाते, यह पहाड़ इक्यावन लाख योजन ऊँचा है। और साढ़े पचास लाख योजन विस्तार वाला है।।37।।

देवता लोग, ऋषिगण और मानव इत्यादियों के लिए संचार योग्य प्रदेश को उनके लक्षण आकृति और विस्तार से निश्चित करते हुए ज्ञानी लोग इस रीति से निरूपण किये हैं। यह पचास करोड़ योजन का पर्वत ब्रह्माड का एक छोटा अंश है ।।38।।

लोकालोक पर्वत के ऊपर चारों दिशा में इस जगत के जगद्गुरु ब्रम्हा जी ऋषभ,पुष्कर चूड, वामन, अपराजीत नाम के चार दिग्गजों को खड़ा किये हैं। ये दिग्गज सारे लोकों को वहन करते हैं।।39।।

लोकालोका पर्वत में सभी ओर इस लोक के कल्याण के लिए परम महा पुरूष महाविभूति पति भगवान नारायण इन दिग्गजों में अन्तर्यामी हो कर उसी प्रकार लोक पालकों के अन्दर रहते हुए उनकी शक्ति का वर्धन करते

हैं। अन्दर और बाहर अपने शुद्ध वीर्य, धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य इत्यादि अष्ट महा सिद्वयों को व्यक्त करते हुए विष्वक्सेन इत्यादि अपने प्रमुख पार्षदों से घिरे हुए अपने श्रेष्ठ आयुधों से शोभायमान बाहुओं सें इन लोकों को धारण करते हुए खड़े हैं।।40।।

दिन कल्प के अन्त तक भगवान अपनी योग माया से सृष्ट किए हुए इन सारे लोको को सुस्थिति में रखते हुए ऐसे ही खड़े रहते हैं।।41।।

मेरु पर्वत और लोकालोका पर्वत के बीच का विस्तार बोलने से लोकालोक प्रदेश का विस्तार बताया गया। (मेरु से लोकालोक के बीच का अन्तर साढ़े तीन करोड़ योजन हो गया। लोका लोक के बाद उस बाजू में रहने वाले अलोक का विस्तार भी उतना ही है।) आलोक प्रदेश के उस बाजू में योगेश्वर अथवा मुक्त लोक वास करने वाला निर्मल अनन्तासन नाम वाला लोक है। यह ज्ञानियों का कहना है।।42।।

स्वर्ग और भूमि के बीच में अन्तरिक्ष है। वहाँ सूर्य भगवान रहते हैं। वह ब्रह्माण्ड के मध्य भाग में है। इसके पूर्वादि आठों दिशाओं में सूर्य और अण्डकटाह के बीच का अन्तर पचीस करोड़ योजन है। इन सब के बीच में केवल मेरु पर्वत है।।43।।

सूर्य बह्माण्ड के बीच में रहते हैं। यह मार्तण्ड और हिरण्य गर्भ नाम से ही मालूम पड़ता है। मृत अण्ड में रहने वाला मार्ताण्ड कहा जाता है। अण्ड के मध्य भाग में रहने वाले सूर्य को मार्ताण्ड कहते हैं। हिरण्मय इस ब्रह्माण्ड के बीच में जन्म लिए हैं। इसके लिए सूर्य भगवान को हिरण्यगर्भ कहते हैं।।44।।

केवल ज्ञानियों को मिलने के कारण, सूर्य कहलाने वाले भगवान चारों दिशा में (अन्तरिक्ष भूमि, स्वर्ग, मोक्ष, नरक, पाताल,) रहने वाले भगवान इन सारे प्रदेशों को अलग अलग निर्माण किये हैं।।45।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्ध में बीसवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - इक्कीस

श्री शुक देव बोले - भूमण्डल के विस्तार और लक्षणों के बारे में हमने बताया है। इसी से अन्तरिक्ष मण्डल के बारे में ऊहा करना उचित होगा। यह ज्ञानियों का मत है।। 1।।

द्विदल धान्य में एक दल की मात्रा को जान लेने से दूसरे दल का अन्दाजा हो सकता है। वैसे ही स्वर्ग और भूमि के बीच में कितना विस्तार है, अन्तरक्षि का विस्तार भी उतना ही है।। 2।।

प्रकाश देने में श्रेष्ठ भगवान सूर्य देव अन्तरिक्ष के मध्य में रहते हुए तीनों लोको को गर्म करते हैं, अपने प्रकाश से प्रकाशित करते हैं। उत्तरायण, दक्षिणायण और विषुवृत्त में चढ़ना उतरना और समान रीति से चलने से दीर्घ,ह्रस्व और समान गतियों को करते हुए मानसोत्तर पर्वत के ढ़ाल और समान जमीन में चलते हुए काल के अनुसार मकर इत्यादि राशियों में चलते चलते दिन और रात को छोटा बड़ा और समान करते हैं।।3।।

सूर्य का रथ जहाँ चलता है वह मार्ग एक ही तरह का नही है। उसमें ढ़ाल, चढ़ाव और समतल प्रदेश आता है। उत्तरायण में भगवान चढ़ाव चढ़ते हुए धीमे से चलने के कारण दिन तीस घटी से ज्यादा होता है। वृषभ, मिथुन, कर्काटक, सिंह और कन्या ये पाँच मासों में दिन लम्बे होते हैं, रात छोटी होती है। ढ़ाल प्रदेश में जाते समय दिन जिस घटी से कम होता है, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन ये पॉच मासों में दिन छोटा होता है, रात ज्यादा। समतल पृष्ठ में जाते वक्त मेष और तुला मास में दिन और रात समान होते हैं। ये सूर्य गति के अनुसार होते हैं (यह पूर्ण रीति से एक रुप है इसका विवरण हम इस ग्रन्थ के अन्त में देने का प्रयास करेगें)।।5।।

सूर्य, मेष और तुला राशि में संचार करते समय दिनऔर रात सम प्रमाण के होते हैं। वृषभादि पॉच राशियों में सूर्य चलते समय रात्रि से दिन बड़ा होता है, रात में कमी होती है। प्रति मास में एक एक घटी कम होता जाता है। ऐसे दिन रात में वृद्रि क्षय होते हुए भी तीस मुहूर्त का दिन प्रमाण समान रहता है। वृद्धि होने वाला जिनके साथ क्षय होने वाला रात को मिलने से दिनमान तीस मुहूर्तो का होता है। वृश्चिकादि पाँच मासों में सूर्य चलते समय इसके विपरीत दिन घटता है, रात बढ़ती है। दक्षिणायण में दिन बढ़ता है, रात घटती है। उत्तरायण में दिन घटता है, रात बढ़ती है।।6।।

यह मानसोत्तर पर्वत मार्ग का प्रमाण नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन है। मानसोत्तर पर्वत में मरु के पूर्व में देवधानी नाम का इन्द्र का नगर है।दक्षिण दिशा में संयमनी नाम का यम का नगर है। पश्चिम में निम्लोचनि नाम का वरुण का नगर है। उत्तर में विभावरी नाम का सोम का शहर है। मेरु के इन चार दिशाओं में रहने वाले चारों नगरों को सूर्य रथ आने से क्रमानुसार उदय, मध्याह्न, अस्तमय औरमध्य रात्र होते हैं। ये जीवों के प्रवृत्ति और निवृत्ति के लिए कारण बनते हैं। यह तो केवल व्यवहार के लिए है।। 7।।

मेरु प्रदेश में यानी इलावृत खण्ड में रहने वाले को सूर्य सदा काल सिर के उपर रहता है। सूर्य मेरु के चारों

ओर जाते समय मेरु पर्वत को अपने दाहिनी ओर करते हुए प्रदक्षिणाकार में चलते रहते हैं।।8।।

सूर्य पूर्व दिशा में जहाँ से उदय होते हैं, ठीक उसके विरुद्ध दिशा में पश्चिम में अस्त होते हैं। दक्षिणायन में दक्षिण की दिशा थोड़ा थोड़ा सरकते हुए उदयास्त होते हैं। उत्तरायण में क्रमशः उत्तर की दिशा में बदलता रहता है। सूर्य जहाँ अस्तमान होते हैं, उसके विरुद्ध दिशा में पूर्व में रात होता है, सूर्य भगवान वहाँ के लोगों को नींद देते हैं। वहाँ के लोग सूर्य को देख नही सकते।। 9।।

इन्द्र के नगर के द्वार से निकला हुआ सूर्य रथ पन्द्रह घटिका में दो करोड़ बत्तीस लाख पचहत्तर हजार योजन पार करते हुए यमराज के नगर को आता है।।10।।

ऐसा ही यमराज के शहर से वरुण के नगर को वहाँ से सोम नगर को और वहाँ से पुनः इन्द्र नगर को आता है। इसी तरह पुनः पुनः प्रतिदिन चलता रहता है। इसी प्रकार चन्द्र इत्यादि ग्रह और नक्षत्र ज्योतिश्चक्र के साथ उदय होते हैं, और अस्त होते हैं ।।11।।

इस प्रकार वेद में बताए हुए क्रम के अनुसार सूर्य रथ एक मुहूर्त में चौतिस लाख आठ सौ योजन चलते हुए चारों नगरों में संचार करता है।।12।।

इस सूर्य रथ के लिए एक ही चक्र है। उनमें बारह तीलियाँ होती हैं। ये तीलियाँ बारह मासों के अभिमानी हैं। इस पहिये में छः पट्टी रहती हैं, इनके अभिमानी ऋतु होते हैं। तीन चातुर्मास के अभिमानी तीन नाभी होते हैं। संवत्सर अभिमानी इस चक्र के अभिमानी होते हैं। यह चक्र तेल के यंत्र के समान मानसोत्तर पहाड़ में परिक्रमा करता रहता है।।13।।

यह चक्र दो करोड़ सात लाख योजन लम्बा है। उस चक्र के नीचे भाग में और एक छोटा चक्र लगा हुआ है। यह बड़ा चक्र का एक चतुर्थांस इस छोटे चक्र की लम्बाई है।।14।।

तेल के यंत्र के समान रहने वाले चक्र का छोटा भाग ध्रुव मण्डल में वायु पास से बद्ध है। सूर्य रथ में रहने वाला सूर्य का आसन छत्तीस लाख योजन ऊँचा है। नौ लाख योजन उसका विस्तार है। इस रथ से घोड़े को जोड़ने वाला जुआ नौ लाख योजन लम्बा है। उसको गायत्री, बृहती, उष्णिक,जगती, त्रिष्टुप, अनुष्टुप, पंक्ति नाम के सात घोड़ों को जोड़ कर अरुण रथ को चलाता है। सूर्य भगवान उसमें यात्रा करते हैं।।15।।

पूर्व की दिशा में मुख करके बैठे हुए सूर्य के सामने बैठ कर अरुण रथ चलाते हैं। किन्तु वे सूर्य के सम्मुख में पीठ कर के बैठते नहीं। वह पश्चिम की ओर मुख करके पूर्व की दिशा में रथ चलाता है। अंगुष्ट मात्र के शरीर वाले वालखिल्य नाम के साठ हजार ऋषि सूर्य रथ में सूर्य के सम्मुख में बैठ कर सौर मंत्रों से सूर्य में अन्तर्निहित भगवान नारायण की स्तुति करते हैं। इस कार्य में वे ब्रह्म जी से नियुक्त हैं। इनके साथ अन्य ऋषियाँ, गंन्धर्व, नाग, यक्ष, राक्षस और देवताओं के सात सात लोगों के बारह गण हैं। वे एक एक मास में एक एक गण **हो कर** रथ में बैठ कर अन्यान्य **बर्मो से** अन्यान्य नामों से सूर्यान्तर्गत नारायण भगवान की स्तुति करते हैं।।16-17।।

नौ करोड़ इक्यावन लाख परिधि वाले इस भू मण्डल को एक क्षण में दो हजार योजन की गति से सूर्य रथ चलता रहता है।।18।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्ध में इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - बाइस

राजा परीक्षित बोले - आप बोले कि **सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति** यानी भगवान सूर्य देव मेरू और ध्रुव नक्षत्र की परिक्रमा करते हुए चलते हैं। **यदा वृषभादिषु पंचषु राशिषु चरति,** इस प्रकार राशि संचार अभिमुख हो सकता है। यह प्रसिद्व है। इसका अर्थ यह होता है कि सूर्य भगवान अप्रदक्षिणाकार संचार करते हैं। **नक्षत्रैः सह ज्योतिश्चक्रेण समभ्युद्यन्ति** इसके अनुसार भगवान सूर्य को राशियों के साथ मेरू की भी प्रदक्षिणा करना पड़ता है। यह अभिमुख और विमुख संचार दोनो कैसे हो सकता है।।1।।

श्री शुक देव बोले - दाहिने बाजू से फिरने वाले कुम्हार के चक्र के ऊपर रहने वाली चीटीं इत्यादि छुद्र कीड़े जैसे बायें से चलते हुये दाहिने से चलने वाले चक्र के कारण दोनो दिशा में चलते रहते हैं। ऐसे ही ध्रुवको और मेरुको परिक्रमा करने वाले सूर्य के रथ में बैठ कर सूर्य दाहिने से परिक्रमा करने के साथ साथ उत्तरायण और दक्षिणायन के अनुसार चलते हुए राशियों के अभिमुख हो कर बायें बाजू से परिक्रमा कर सकते हैं। ऐसे ही अन्य ग्रह भी अलग अलग नक्षत्र राशियों में जो चलन होता है वह प्रादक्षिण और अप्रादक्षिण दोनो ही होते हैं। इसी को ज्योतिष शास्त्र में वक्र गति बोलते हैं।।2।।

सूर्य के अन्दर रहने वाले आदि पुरुष नारायण लोक कल्याण के लिए मास देवता के द्वारा कर्मों को शुद्ध करने के लिए वेदोक्त अपने स्वरुप को बारह भागों में, वसन्त इत्यादि छः ऋतुओं में विभाजन किये हैं। वे ऋतुएँ अपने लिए प्रिय फल पुष्पों का निर्माण करती हैं। ऐसे माहात्म्य वाले भगवान को ज्ञानी लोग वेद मन्त्रों का चिन्तन करते हुए समझ लेते हैं।।3।।

वर्ण और आश्रम के आचारों में निष्ठ हो कर मोक्ष को चाहने वाले लोग छोटे मोटे कर्मों से और यज्ञ यागों से सूर्य के अन्दर रहने वाले भगवान नारायण की श्रद्धा से आराधना करते हुए मुख्य पुरुषार्थ मोक्ष को पाते हैं।।4।।

इस लोक के स्वामी सूर्यान्तर्गत नारायण स्वर्ग और भूमि के बीच में रहने वाले अन्तरिक्ष मण्डल के मध्य में रहने वाले सूर्य में रहते हुए बारह महीनों को पैदा करते हैं। मेषादि सौर मास सवा दो नक्षत्र के प्रमाण के अनुसार और चैत्रादि चन्द्र मास दो नक्षत्र प्रमाण से युक्त हैं। ज्ञानी लोग इसको प्रमाणित करते हैं। एक वर्ष के एक षष्ठांश भाग को ऋतु मानते हैं।।5।।

आकाश में नक्षत्र रूप रास्ते में आधा भाग सूर्य के गमन को अयन बोलते हैं।।6।।

स्वर्ग और भूमडल के बीच के अन्तरिक्ष लोक में सूर्य देव के सारे नक्षत्रों में एक बार संचार करने के समय को संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर नाम से पुकारते हैं। उत्तरायण में मन्द गति से दक्षिणायन में शीघ्र और विषुवृत्त में सम गति से चलने वाला सूर्य एक वर्ष में सारे नक्षत्रों में एक बार चलता है।।7।।

चन्द्र सूर्य मण्डल से एक लाख योजन ऊपर है। सूर्य एक वर्ष में द्वादश राशियों में चलते हैं तो चन्द्र उसी

मार्ग को एक मास में पार करता है। सूर्य के एक माह में चला रास्ता एक राशि को चन्द्र सवा दो नक्षत्र समय में चलता है। सूर्य के एक पक्ष काल में चलने के रास्ता के एक नक्षत्र को चन्द्र एक ही दिन में प्रयाण करता है। चलन में चन्द्र सारे ग्रहों के आगे रहता है। बहुत वेग से संचार करता है। एक दिन में एक नक्षत्र को पार करते हुए दूसरे नक्षत्र को मिल जाता है ।।8।।

चन्द्र अपनी कलाओं की वृद्धि करते हुए शुक्ल पक्ष में पितृओं को एक दिन करता है, और कृष्ण पक्ष में उनको एक रात करता है। सारे जीव लोक को प्राण धारण करने योग्य अन्न की वृद्धि करता है। इसी के कारण उसको जीवनप्रद बोलते हैं। वह प्रत्येक नक्षत्र को तीस मुहूर्तो में पार करता है।।9।।

चन्द्र को सोलह कलायें होती हैं। इसी कारण भगवान चन्द्र को षोडश कला पुरुष कहते हैं।वह मनोभिमानी देव हैं। वह अन्न की वृद्धि करते हैं। अमृत बरसाने वाली अपनी किरणों से देव,पितृ, मानव, दूत, पशु, पक्षी, साँप और लता ऐसे सारे प्राणियों को अन्न को वृद्धि कर के देने वाले होने के कारण सारे लोगों को प्रियकर हैं, सारे जीवों को आश्रय देने वाले हैं।।10।।

चन्द्र मण्डल के ऊपर एक लाख योजन दूर नक्षत्र हैं। उत्तराषाढ़ के उत्तरार्ध और श्रवणा के पूर्वार्ध दोनों मिल कर अभिजित नाम का एक नक्षत्र होता है। ये सब मिल कर नक्षत्र अट्ठाइस होते हैं। ये सारे नक्षत्र मेरु पर्वत को प्रदक्षिणाकार में परिक्रमा करते हैं। इनको सूर्य के जैसे अप्रादक्षणिक गति नही है। उनके सूर्य रथ के अनुसार चलने की विधि को भगवान ने बनाया है।।11।।

नक्षत्रों के दो लाख योजन दूरी पर शुक्र ग्रह दिखता है। वह सूर्य के समान शीघ्र मन्द और सम गति वाला है। शीघ्र गति में सूर्य से एक नक्षत्र आगे रहता है। मन्द गति में एक नक्षत्र पीछे रहता है। सम गति में सूर्य के साथ एक ही नक्षत्र में रहता है। प्राय: वह सभी लोको को अच्छा ही करता है। उसकी स्थिति के अनुसार बरसात के बारे में अन्दाजा की जाती है। बरसा आने में मंगल इत्यादि ग्रह से प्रतिबन्ध होते हुए भी शुक्र उसका उपसमन करता है। शुक्र के समान बुध भी मन्द शीघ्र और सम गति वाला है।।12।।

शुक्र से दो लाख योजन दूरी पर चन्द्र पुत्र बुध दिखता है। यह भी प्रायश: शुभ कारक है। क्रमों को छोड़ कर अगले नक्षत्र को यदि गया तो अनावृष्टि और तुफान इत्यादि भय कारक हैं।।13।।

बुध से दो लाख योजन ऊपर मंगल रहता है। वह वक्र गति न रहने पर तीन तीन पक्ष को एक बार करते हुए द्वादश राशियों को पार करता है। शुभग्रह योग होते समय शुभसूचक होता है। किन्तु अन्य समय में अशुभसूचक है। इसी कारण मंगल को अशुभग्रह कहते हैं।।14।।

अंगार के ऊपर दोलाख योजन दूरी में भगवान बृहस्पति हैं। वक्र गति न रहे तो प्रत्येक राशि में एक वर्ष रहता है। यह ग्रह ब्राह्मणों को अनुकूल है।।15।।

बुध से दो लाख योजन ऊपर मंगल रहता है। वह वक्र गति न रहने पर तीन तीन पक्ष को एक बार करते हुए द्वादश राशियों को पार करता है। शुभग्रह योग होते समय शुभसूचक होता है। किन्तु अन्य समय में अशुभसूचक है। इसी कारण मंगल को अशुभग्रह कहते हैं।।14।।

अंगार के ऊपर दो लाख योजन दूरी में भगवान बृहस्पति हैं। वक्र गति न रहे तो प्रत्येक राशि में एक वर्ष रहता है। यह ग्रह ब्राह्मणों को अनुकूल है।।15।।

बृहस्पति के ऊपर दो लाख योजन दूरी पर दिखने वाला ग्रह शनि है। एक एक राशि में तीस तीस महीना रहते हुए तीस वर्ष में सारे राशियों को पार करता है। यदि शनि शुभ स्थान में नही रहा तो अशान्तिकारक है।।16।।

शनि ग्रह के ऊपर ग्यारह लाख योजन दूरी पर सप्तर्षि मंण्डल है। वे ऋषियाँ विश्व पर अनुग्रह करते हुए शिंशुमार लोक की प्रदक्षिणा करते रहते हैं।।17।।

सप्तर्षि मण्डल के ऊपर तेरह लाख योजन दूरी पर शिंशुमार रूपी विष्णु का परम पद ध्रुव लोक है। वहाँ उत्तान पाद राजा के पुत्र परम भगवद्भक्त ध्रुव श्री हरि की उपासना करते रहते हैं। ध्रुव के समान समय तक वास करने वाले अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, कश्यप और धर्म नाम के नक्षत्र देवताएँ भक्ति से ध्रुव की परिक्रमा करते रहते हैं। आज भी कल्पायुष्य वाले महर्लोक वासी लोग ध्रुव के तत्वोपदेश से सन्तुष्ट हैं। उसके चरित्र को हम ने चतुर्थ स्कन्ध में वर्णन किया है ।।18।।

ध्रुव की महिमा इस तरह है। अपार सामर्थ वाले काल नाम वाले भगवान श्री हरि आँखों को भी बन्द न करते हुए ग्रह नक्षत्र इत्यादि ज्योतिर्गणों को अन्तरिक्ष में सदा काल परिक्रमा करते रहने के लिए उनके सहायक बन कर आश्रय देने के लिए ध्रुव नक्षत्र को खड़ा किए हैं। वे सारे ग्रह नक्षत्र ध्रुव नक्षत्र की परिक्रमा वायु पाश से बद्ध हो कर शीघ्र, समान और मन्द तीनों गति से अपनी कक्षा में अलग अलग चक्कर लगाते रहते हैं।।19।।

ग्रह नक्षत्र सूर्य को केन्द्र बना कर कई अन्दर की कक्षा में और कई बाहर की कक्षा में वायु पाश से बद्ध हो कर ध्रुव नक्षत्र को आधार करते हुए अतिवाहक वायु के वेग के कारण कल्पान्त तक परिक्रमा करते रहते हैं।।20।।

आकाश में बाज, गरुड़, इत्यादि पक्षी न गिरते हुए वायु के आधार पर अपनी इच्छानुसार चलते हैं। यह अदृष्टि के कारण है।।21।।

वैसे ही ज्योतिर्गण भी प्रकृति और पुरुष के संयोग से होने वाले कर्म के कारण अन्तरिक्ष में चलते हैं। वे कभी नीचे नही गिरते।।22।।

कई ज्ञानियों का अभिप्राय है कि भगवान वासुदेव शिंशुमार रुप में बिच्छू के आकार में अपने सामर्थ से अपने अवयवों में सारे ज्योतिर्मंडलों को धारण किये हैं। इसी के कारण वे नीचे नही गिरते।।23।।

शिंशुमार मूर्ती अपने शरीर को गोलाकार करते हुए सिर को नीचे किया है। पूंछ के अन्त में ध्रुव नक्षत्र को धारण किया है। पूंछ में प्रजापति, अग्नि, इन्द्र, धर्म नाम के नक्षत्रों को धारण किया है ।।24।।

पूछ के नीचे धातृ, विधातृ नाम के नक्षत्र हैं। बीच में सप्तर्षि नक्षत्र हैं। दाहिने बाजू मुड़ा हुआ गोलाकार शरीर के दाहिने भाग में सूर्य के उत्तरायण गति के मार्ग में मिलने वाले अभिजित से पुनर्वसु तक के चौदह नक्षत्र हैं। बायें भाग में दक्षिणायन मार्ग में पुष्य से उत्तराषाढ़ तक के चौदह नक्षत्र हैं। बिच्छू के पेट के दोनों बाजू में पाँव जैसे समान

रहते हैं वैसे यह है।।26।।

शिंशुमार के पीठ के बाजू में अजबीथि पेट में आकाश गंगा है। पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र बायें और दाहिने जघन में आर्द्रा और आश्लेषा दाहिने और बायें पावों में अभिजित और उत्तराषाढ़ नक्षत्र बायें और दाहिने नखों में आश्रय लिए हैं। श्रवण और पूर्वा षाढ़ा नक्षत्र दाहिने और बाये आँखों में, धनिष्ठा और मूला दाहिनें और बायें कानों में मघादि आठ दक्षिणायन नक्षत्र बायाँ प्रदेश में मृगसिरा से पीछे पूर्वाभाद्रा तक आठ उत्तरायण नक्षत्र दाहिने भाग में आश्रय ले रखे हैं ।।28।।

शतभिषा और ज्येष्ठा ये दो नक्षत्र शिंशुमार के दोनो कंधों पर हैं।।29।।

शिंशुमार के ऊपरी दाँतों में अगस्त नक्षत्र है, नीचे में यम नक्षत्र है। मुख में कुज है, उपस्था में शनिश्चर है।, कण्ठ में गुरु, हृदय में नारायण, मन में चन्द्र, नाभी में शुक्र, स्तन में दोनो अश्विनी कुमार हैं। प्राणापान में बुध है, कण्ठ में राहु, सर्वांग में केतू और रोमों में अन्य सारे नक्षत्र हैं, यह समझ लेना।।30।।

इस रीति से सकल देवताओं के लिए आधार भगवान विष्णु का शिंशुमार रूप को प्रति दिन तीनों संध्या में तन से मन से और वाक से नियम निष्ठ हो कर मन से दर्शन करते हुए उपस्थान (खड़े हो कर हाथ जोड़ कर) प्रार्थना करना चाहिए। सारे ज्योतिर्मण्डलों के लिए आश्रय देने वाले काल की याद दिलाने वाले देवाधिपति पुरुषोत्तम आप को बार बार नमस्कार करते हैं, ध्यान करते हैं।।31।।

ग्रह, नक्षत्र, ताराओं और सारे देवताओं के लिए आधार रुप शिंशुमार जी के इस मंत्र को तीनों कालों में जप और स्तोत्र करते हुए नमस्कार करने वाले का त्रिकाल में किया हुआ सारा पाप नष्ट हो जायेगा।।32।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्ध में बाइसवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - तेइस

श्री शुक जी बोले - सूर्य मण्डल से ले कर ध्रुव मंडल तक के ज्योतिर्गण के बारे में कह दिया। सूर्य मण्डल के नीचे दस हजार योजन दूरी में राहु ग्रह नक्षत्र जैसे मेरू को प्रदक्षिणाकार में परिक्रमा करता रहता है। यह कई पौराणिक लोग कहते रहते हैं। राहू सिंही का पुत्र है। वह स्वयं दुष्ट असुर है। उसको अमरत्व और ग्रहत्व दोनों की अर्हता नही है। किन्तु भगवान के अनुग्रह से दोनो मिल गये। इसके जन्म और कर्म के बारे में आगे अष्टम स्कन्द में कहते हैं ।।1।।

अन्तरिक्ष में अत्यन्त प्रकाशमय सूर्य मण्डल दस हजार योजन विस्तार वाला है। चन्द्र मण्डल का बीस हजार योजन विस्तार है। राहु मण्डल चालीस हजार योजन विस्तार है। अमृत पान के समय में सूर्य चन्द्र के बीच में बैठा हुआ राहू का, सूर्य चन्द्र के सूचना देने से शिरच्छेद हुआ। इसी कारण यह उन दोनो में वैर रखते हुए ग्रहण काल में, भगवान से विशेष बल पा कर, राहु उनको खाने के लिए दौड़ कर आता है।।2।।

उसको देख कर भगवान नारायण सूर्य चन्द्र की रक्षा के लिए अपने प्रिय सुदर्शन चक्र को भेज देते हैं। सदाकाल भ्रमण करने वाले चक्र के सामने एक मुहुर्त काल खड़े हो कर राहु दूर चला जाता है। राहु के बीच में रहने के कारण सूर्य चन्द्र हमे दिखते नही इसी को लोग ग्रहण कहते हैं।।3।।

राहु मण्डल के नीचे दस हजार योजन दूरी पर सिद्ध विद्याधर और चारण लोक हैं।।4।।

उनके नीचे यक्ष, राक्षस, पिशाच और भूत प्रेतों का विहार स्थान अन्तरिक्ष है। वहाँ तक हवा बहती है। बादल दिखते हैं।।5।।

उसके नीचे सौ योजन दूरी में हंस, सारस, श्येन, गरुण इत्यादि पक्षियों के उड़ने वाला प्रदेश भू लोक माना जाता है। अब तक हमने भू लोक के विस्तार के बारे में बताया।।6।।

इस भूमि के नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल नाम के सात लोक हैं। प्रत्येक दस हजार योजन लम्बा चौड़ा है, और क्रमश: एक के नीचे एक हैं।।7।।

इनमें स्वर्ग से भी अधिक सम्पत्ति और समृद्धि है। वहाँ चाहे जो भोग, ऐश्वर्य, अन्न और सम्पदाओं से युक्त घर उद्यान और क्रीड़ा स्थान हैं। वहाँ दैत्य, दानव, नाग, लोग सदा सुख से अपने प्रिय पत्नी पुत्र बांधव स्नेही और सेवकों के साथ सुख से रहते हैं। इनको वर का बल प्राप्त होने के कारण उनके सुख विहार को कोई बन्द नही कर सकता।।8।।

हे राजा परीक्षित, इन पाताल लोको में मय द्वारा मंत्र और औषधियों से निर्मित नगर हैं। अनेक रत्नो से निर्मित विचित्र भवन, प्राकार, गोपुर, सभा भवन, मन्दिर और राज मार्ग हैं। यहाँ स्त्री और पुरुष मिल कर सुन्दर रीति से गाते हैं। यहाँ के राजगृह, कबूतर, शुक, सारिका आदि पक्षियों के गुंजन से भरे रहते हैं।।9।।

इन नगरों के उद्यान देव लोक के उद्यान से ज्यादा सुन्दर हैं। वहाँ वृक्ष की टहनियाँ, मन और इन्द्रियों को आनंद देने वाले फूल फल और कनखी से भरे हुऐ हैं। सोने के रंग वाली लताएँ वृक्षों का आलिंगन करते हुए मन को आनन्द देते हैं। वहाँ के जलाशय अमृत समान जल से भरे हुए हैं। वहाँ चक्रवाक पक्षी और अनेक पक्षियों से मिल कर कोलाहल करते हैं। मछलियाँ बार बार जल के ऊपर उछल कर पुन: पानी में डूब जाने से पानी अल्लोल कल्लोल होता है। उस जल में नीरज, कुमुद, कुवलय, कल्हार, नीलोत्पल, शतपत्र जाति के अनेक कमल खिले रहते हैं। उन कमलों में अपने घर बना कर बसे हुए भवरें आनन्द से मदमस्त हो कर सुनने वाले को सन्तोष देने वाले मधुर स्वर से गूजते हैं ।।10।।

वहाँ दिन में उज्वल प्रकाश रहता है, रात में महासर्पो के ऊपर रहने वाले मणि के प्रभाव से अन्धेरा नही रहता।।11-12।।

इन लोक वासियों को दिव्य औषधियों से नहाने के कारण रोग नही आता, बुढ़ापा, कान्तिहीनता, पसीना, श्रम और उत्साहहीनता नही होती है ।।13।।

सदा सुखी रहने वाले उनको भगवान के चक्र के तेज के बिना अन्य किसी से मरण नही। वह चक्र एक बार भी प्रवेश करे तो असुर स्त्रीयों को गर्भस्त्राव या गर्भपात होता है ।।14-15।।

चार महीने के पहले हुआ तो स्त्राव कहते हैं। पाँचवाँ और छठवाँ महीने में हुआ तो पात।

अतल लोक में मय का पुत्र बल नाम का असुर राजा है। उसने छानबे माया की सृष्टि किया। कई लोग आज भी उनमें से कई मायाओं का प्रयोग करते हैं। उसकी अगड़ाई से तीन तरह के दुष्ट स्त्री जाति उत्पन्न हुए। उनके नाम हैं स्वैरिणी,कामिनी, पुंश्चली ।।16।।

ये असुर वेश्याएँ अपने घर आने वाले पुरुष को हाटक नाम के रस को पिला कर नटना करते हुए लघु हास्य से सरस सल्लाप करते हुए आलिंगन से मोहित करती हैं ।।17।।

हाटक रस के सेवन से पुरुष अपने को दस हजार हाथी के ताकत वाला समझते हुए, मैं ही भगवान, मैं ही सिद्ध पुरुष, बोलते हुए अहंकार से मत्त हो जाते हैं ।।18।।

वितल लोक में भगवान हाटकेश्वर शिव राजा हैं। वे अपने पार्षद भूत गण से आवृत्त हैं। वे प्रजापति की सृष्टि को बढ़ाने के लिए पार्वती के साथ विहार करते हैं। उन दोनों के वीर्य से हाटका नाम की नदी उत्पन्न दुई है।

अग्नि वायु से उत्तेजित हो कर उस जल को पीने से वह सोना बन गया। उससे गहने बना कर असुर स्त्री पुरुष उनको धारण करते हैं ।।19।।

वितल लोक के नीचे सुतल लोक में महा कीर्ति शाली पुण्य श्लोक विरोचन पुत्र बली राजा है। उसके अधीन में रहने वाले तीनों लोकों को वामन रुपी भगवान अवतार लेकर दान पा लिये थे। भगवान के कृपा से ही बलि पुन: सुतल लोक में प्रवेश किये हैं। वहाँ वे देवेन्द्र से ज्यादा सम्पत्ति से युक्त हो कर स्वधर्म का पालन करते हैं, भगवान की आराधना करते हुए निर्भर्य से रहते हैं ।।20।।

सारे जीव समूहों में प्राण धारण करने वाले भगवान वासुदेव अत्यन्त पवित्र हैं, दान के लिए योग्य पात्र हैं। राजा बलि उनमें श्रद्धा रखते हुए परम आदर से उनको भूमि दान किया है, यह उसको मोक्ष में आनन्द की अभिवृद्धि के लिए है। इसी से बलि को ये जो सुतल लोक का आधिपत्य मिला है, वह वामन को भूमि दान का फल मानना सही नही होता क्योंकि हम कुछ भी करते हुए, परवशता से एक भगवान का नाम उच्चारण करने से कर्म का बन्ध छूट जाता है ।।21।।

भगवान के नामोच्चारण करने से मुमुक्षु लोग उनका साक्षात्कार पाते हैं। साक्षात्कार से कर्म बन्ध का नाश होता है। कर्म बन्ध नाश होने से ज्ञानी को भी नामस्मरण से स्वरुपानन्द का आविर्भाव होता है ।।22।।

भगवान इस संसार में रहने वाले सब पर अनुग्रह नही करते। अन्य लोगो को अपने में सेवा मनो भाव को नाश करते हैं। वे उनको नश्वर भोगसम्पत्ति को ही देते हैं ।।23।।

भगवान बलि के सामने भू का दान मागने के निमित्त से, बलि से तीनों लोको को छीन कर, केवल उसके शरीर को छोड़ कर, उसको भी वरुण पाश से बाँध कर पहाड़ की गुफा में बन्दी बनाये। उस समय बलि बोलता है।।24।।

हे भगवान, आप भक्तों का इष्टार्थ पूर्ण करने में बहुत ही निष्णात हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नही है। देवेन्द्र मेरे पास संधान करने के लिए, रहस्य में बृहस्पति को भेजा था किन्तु संधान के पहले ही आप वामन के रुप में आकर भूमि का दान माग लिए। दान मागने के लिए मै योग्य नही हूँ, और दान मागने में आप को कोई इष्टार्थ नही है। आप आप्तकाम हैं। आप मुझसे त्रिलोक को छीनते समय यह कहे हैं कि मैं इस मन्वंतर में तुमको त्रैलोक्याधिपत्य नही दूँगा। अगले मन्वंतर में आप देने वाले हैं। किन्तु काल के शीघ्र गति में यह एक मन्वंतर समय का साम्राज्याधिपत्य बहुत बड़ा पुरुषार्थ नही है। इसी कारण आप मुझे मोक्ष में आनन्द की अभिवृद्धि को ही देने की कृपा करें ।।25।।

हमारे परदादा प्रह्लाद जी अपने पिता के मरण के समय भगवान के पास केवल उनके दास्य की ही याचना किये। हमारे पिता जी भी राज्य को नही माँगे। भगवान स्वयं वैकुन्ठ देने के लिये सिद्ध थे, उसकी भी वे याचना नही किये। विषय की वासना को पूर्ण रुप से न छोड़े हुए हमारे जैसे लोग भगवान के अनुग्रह को कैसे उपेक्षा कर सकते

हैं।।26।।

प्रह्लाद जी के चरित्र को हम सप्तम स्कन्ध में वर्णन करने वाले हैं। बलि के घर के सामने जगद्गुरु भगवान नारायण स्वयं गदा धारण करते हुए खड़े हैं। भक्तों के ऊपर उनके हृदय में दया भरी है। रावण दिगविजय करते हुये जब सुतल लोक को आया तब बलि के घर के सामने खड़े हुए भगवान अपने पाँव की अंगुली से दस हजार योजन दूर को फेक दिये ।।27।।

सुतल लोक के नीचे तलातल लोक में मय असुर नाम का राजा रहता है। वह मायावियों का गुरु है। पहले वह त्रिपुर नगरों का अधिपति बना था। उस समय जगत कल्याण के लिए भगवान शिव उन तीनो नगरों को जला दिये बाद में रुद्र के अनुग्रह से मयासुर तलातल लोक का अधिपति बना है। महा देव के रक्षा में रहते हुए सुदर्शन के भय से मुक्त है।।28।।

तलातल लोक के नीचे महातल में बहुत फण वाले क्रोध वसु नाम के कद्रु पुत्र नागों का गण है। उनमें कुहक, तक्षक, कालीय, सुशेण ये प्रधान हैं। बड़े शरीर वाले ये बड़े पक्षियों के अधिपति विष्णु वाहन गरुण से सदा काल डरते हुए पत्नी पुत्र मित्रों के संग सुख से मत्त हो कर संचार करते हैं ।।29।।

तलातल के नीचे रसातल में दैत्य, पणि नाम के दानव, निवात, कवच, कालकेय, नाम के असुर रहते हैं। वे जन्म जात महा पराक्रमी हैं, महा साहसी होते हैं सारे लोको में अपना सामर्थ्य दिखाने वाले श्री हरि के तेज के सामने ये हार जाते हैं। ये बिल में रहने वाले साप जैसे रहते हैं। पणि लोग देवेन्द्र के गावों का अपहरण किये थे। उस समय देवेन्द्र ने अपहरणकारियों के शोध में सरमा नाम की कुतिया को भेजे थे। उस समय पणि लोग घबरा गये, इन्द्र के साथ सन्धि करनां चाहते थे किन्तु सरमा ने सन्धि न होने दी। पणि इन्द्र के शरण में चले गये ।।30।।

रसातल के नीचे पताल में शंख, कुलिक, महाशंख, श्वेत, धनंजय, धृतराष्ट्र, शंखचूड, कंबल, अश्वतर और देवदत्त नाम के महा शरीर वाले और महा क्रोध वाले नाग रहते हैं। इनका अधिपति वासुकी है। पॉच, सात, दस, सौ और हजार फण वाले इन नाग के फणों में जन्म से ही बड़े रत्न रहते हैं। वे पाताल लोक में रहने वाले अन्ध:कार का नाश करते हैं।।।31।।

इस पाताल लोक के नीचे तीस हजार योजन दूरी पर शेष देव हैं। तमो गुण का कार्य रुप लय को करने वाले भगवान संकर्षण शेष देव में विशेष रुप से आविष्ट हैं। यह संकर्षण ही देखने वाले जीव को और देखने योग्य विषय पदार्थो को जोड़ते हुए मै, मेरा और कर्ता नाम के अभिमान रुप सम्पर्क को करने वाला अहम् नाम के नाड़ी में रहते हैं। यह पंचरात्र को ठीक तरह से जानने वाले पंण्डित लोगो का अभिप्राय है।।32।।

हजार सिर वाला संकर्षण भगवान अनन्तमूर्ती अपने एक सिर के ऊपर इस बह्माण्ड को धारण किये हैं। वह उनके लिए एक सरसों इतना भार वाली है। उसको वे सहज रूप से धारण करते हैं।।33।।

लय काल में लय करने वाले अनन्त भगवान अपने भ्रू के चलन मात्र से उसके बीच में रहने वाले संकर्षण भगवान तीन आँख वाले बन कर त्रिशूल पकड़ कर ग्यारह रूप धारण करते हैं।।34।।

वे नागों के राजा भगवान के भक्तों के साथ मिल कर एकान्त भक्ति योग से भगवान अनन्त पद्म नाभ की पाद वन्दना करते हैं। श्री अनन्त जी के दोनो पाद कमलों में लाल रंग से शोभायमान नखरत्न मण्डल में अत्यन्त प्रभाव शाली कुण्डलों से प्रकाशमान कपोल वाले अति सुन्दर अपने मुख प्रतिफलित होते देख कर आनन्द पाते हैं।।35।।

भगवान अनन्त से अपने इष्टार्थ को पाने के उद्देश्य से नाग राज कुमारियाँ अपने सुन्दर बाहों से निर्मल सफेद और मनोहर चादी के समान शोभायमान उनके बाहों को अगरु, चन्दन और कुंकुम का लेप करते हैं। उन बाहों के स्पर्श से उनके हृदय पिघल जाते हैं, मन में मन्मथ का आवेश होता है। उनके मुख में मन्द हास मुखरित होता है। उनके अनुराग से वे सुख पाते हैं। मद से लाल हुयी आँखों से उनके मुख कमल को देख कर लज्जा से अवनत मुखी होती हैं।।36।।

अनन्त गुण सागर आदि देव भगवान अनन्त प्रलय काल के अपने क्रोध के वेग को छोड़ते हुए समस्त विष को मंगल करते हैं।।37।।

सुर, असुर, उरग, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और मुनियों का समूह भगवान अनन्त के ध्यान में मग्न रहते हैं। उनकी आँखें सदा आनन्द से भर कर विस्फारित होते हैं। सुन्दर वचनो से अपने देव श्रेष्ठ पार्षदों को आह्लाद देते हैं। नीलवस्त्र पहन कर एक कुण्डल धारी हो कर अपने हलायुध के ऊपर अपना हाथ रखते हैं। भगवान इन्द्र ऐरावत और सोने का कटिबन्ध जैसे रखते हैं वैसे ही भगवान वैजयन्ती माला को धारण करते हैं। उस माला में रहने वाली कभी भी न सूखने वाली तुलसी की मंजरी में रहने वाली सुगन्धित मधु रस को पा कर भौरे मत्त होकर गीत गाते हैं। इससे माला को और सोभा आती है।।38।।

उपर्युक्त मंत्र से भगवान अनन्त के नाम रुप और गुण का चिन्तन करने से, वे स्वयं हृदय में खड़े हो कर, मोक्ष की अपेक्षा करने वाले को उनके अनादि काल से आए हुए कर्म संस्कार युक्त अज्ञान और सत्व रज तम से हुए विषयासक्ति का नाश करते हैं।।39।।

अनन्त भगवान की इस महिमा को ब्रह्म पुत्र भगवान नारद तुम्बुरु के साथ ब्रम्हाजी की सभा में श्लोक बद्ध हो कर गाये।।40।।

इस जगत की सृष्टि, स्थिति और लय के कारण सत्वादि प्रकृति के गुण, अपने अन्दर रहने वाले संकर्षण भगवान के कृपा अवलोकन से बल पा कर शेष अपने कार्य में समर्थ होते हैं। यह संकर्षण रुप अनादि और नित्य है। अलग अलग स्थानों में रहते हुए भी मूलत: एक हैं। अन्य आधारों का आश्रय न चाहते हुए अपने में नाना विध

जगत को धारण करते हैं। ऐसे शेषान्तर्यामी भगवान के स्वरुप को कौन जान सकता है।।41।।

तो भी मोक्ष को चाहने वाले लोगों के ऊपर अपार करुणा वाले भगवान उनके समझ में आने के लिए छोटे छोटे रुपो में प्रकट होते हैं। वे रुप भी मूल रुप के समान बल ज्ञान स्वरुप रहते हुए निर्माण होते हैं। उन रुपों में यह कार्य कारित्व वाला प्रपंच आश्रय लिया है। भक्तों के मन को अपनी ओर खींचने के लिए निर्दुष्ट सिंह के समान पराक्रमशाली भगवान अपनी लीलाओं को शेष में रह कर दिखाते रहते हैं।।42।।

कभी दु:खित हो कर, मार खाकर अथवा प्रलोभन से कभी सुने हुए भगवान के नाम को एक बार भी उच्चारण किये तो मनुष्य के सारे पाप नाश होते हैं। ऐसे भगवान शेष के अन्तर्गत नारायण के सिवाय अन्य किसी के आश्रय में कौन जाना चाहता है।।43।।

पहाड़, नदी, समुद्र और समस्त प्राणियों से भरा हुआ यह भू मण्डल भी हजार शिर वाले शेष के एक फण में एक कंकड़ के समान बैठा है। इसी से हमें भगवान की अनन्त शक्ति का परिचय होता है। किन्तु उसका पूर्ण ज्ञान किसी को भी नही होता। गुण पूर्ण उनके वीर्य और पराक्रम को हजार जीभ वाले भी स्तुति कर नही सकते हैं।।44।।

ऐसे अचिंत्य प्रभाव वाले अनन्त भगवान के वीर्य पराक्रम का अन्त नही है। वे अपने गुणों से पूर्ण सामर्थ्य वाले और स्वतन्त्र हैं। पाताल लोक के नीचे खड़े हो कर जगत की रक्षा करते हुए उसको अपने सिर के ऊपर लीला मात्र से धारण किये हैं।।45।।

मनुष्य को अपने कर्म के अनुसार मिलने वाले लोक के बारे में हमने जो सुना है उसी को तुम्हारे सामने वर्णन किया है।।46।।

हे राजा परीक्षित, फल कामना करने वाले मनुष्य को उसके कर्म के अनुसार मिलने वाले लोकों का यह विवरण ये है। छोटे बड़े हैं। परस्पर भिन्न हैं, और विलक्षण हैं। तुम्हारे प्रश्न के अनुसार मैने सब कुछ बताया है। तुम और क्या सुनना चाहते हो।।47।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्ध में तेईस वाँ अध्याय समाप्त होता है।।

अध्याय - चौबीस

राजा पूछे - हे महा मुनि, मुझे यह बताइए कि सुख पाने के लिए जो काम्य कर्म करते हैं, उनमें वैलक्षण्य नही है तो उनसे मिलने वाले फल में यह विलक्षणता कैसे आती है?।।1।।

श्री शुकदेव बोले - कर्म करने वालों की श्रद्धा में सात्विक राजस, तामस नाम के तीन गुण के कारण यह विलक्षणता होती है। इसी कारण सत कर्म से मिलने वाला फल, और लोक अलग अलग हो कर तारतम्य युक्त होते हैं।।2।।

इसी रीति से निषेध वाक्यों से समझ लेने वाला पाप कर्म भी कर्ता के श्रद्धा में रहने वाले तारतम्य के अनुसार फल में भी तारतम्य युक्त होता है।।3।।

इसी कारण अनादि काल से आयी हुयी अविद्या और विषय कामनाओं से युक्त जीवों को उसके परिणाम स्वरुप होने वाले पाप कर्मो से मिलने वाले नरकों की गति भी हजारों है। उनमें कई मुख्य नरकों के बारे में कहेंगे।।4।।

राजा परिक्षित पूछते हैं - भगवान ये नरक कहाँ होते हैं। ये क्या इस भूमि में रहने वाले प्रदेश हैं? तीनों लोकों को पार कर या बीच में हैं, अथवा और कही हैं।।5।।

शुकदेव बोले तीनों लोकों के बीच में दक्षिण की दिशा में भूमि के नीचे गर्भोदक के ऊपर ये नरक हैं उसी दिशा में अग्निष्वात्तरे इत्यादि पितृगण एकाग्रता से भगवान का ध्यान करते हुए अपने कुल के लोगों के लिए शुभ कामना करते हुए वास करते हैं।।6।।

वहीं पितरों के अधिपति यम देव भी रहते हैं। जब प्राणी मरता है, यम दूत उसके जीव को यम लोक को ले जाते हैं। यम जी उनको उनके पाप के अनुसार दण्ड देते हैं। इस विषय में यम और यमदूत भगवान के आदेश का कभी भी उल्लंघन नही करते।।7।।

कई लोग कहते हैं कि नरक इक्कीस हैं। मै उन नरकों के नाम, रुप और लक्षण को क्रमशः बोलता हूँ तामिश्र, अन्धतामिश्र, रौरव, महा रौरव, कुम्भी पाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, संदंश, तप्तसूर्मी, वज्रकंटकशाल्मलि, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन,लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि और अयःपानह इत्यादि।।8।।

इतना ही नही, क्षारकर्दम, रक्षोगण भोजन, शूलप्रोत, दन्द शूक, अवटनिरोध, पर्यावर्तन, सूचिमुख नाम के और सात मिल कर प्रधान अठ्ठाईस नरक होते हैं। नाना यातना के लिए ये मुख्य स्थान हैं।।9।।

दूसरों की पत्नी, पुत्र और और धन को अपहरण करने वाला, यम पाश से बद्ध होकर भयकारी यमदूतों से जबर्जस्ती से तामिस्त्र नाम के नरक में गिराया जाता है। वहाँ पूर्ण अन्धकार रहता है। उस पापी को न अन्न मिलता है न पानी। उनको कोड़ा से मार पड़ते रहते हैं। वह बहुत यातना से मूर्छित हो जाता है।।10।।

ऐसे ही दूसरों की हत्या करके उनकी पत्नी, पुत्र और सम्पदाओं का भोग करने वाले को अन्ध तामिस्र में शिक्षा देते हैं। यहाँ यातना शरीर वाला पापी दर्दों से पीड़ित हो कर मूर्छा से गिर जाता है। इसके लिए इसको अन्ध तामिस्र कहते हैं।।11।।

सब कुछ मै ही करता हूँ, जो है वह सारा मेरा है, यह कहते हुए दूसरों से द्रोह करने वाला और इसीसे अपना कुटुंब पोषण करने वाला सब,कुछ यहीं छोड़कर, केवल पाप को सिर पर लेकर रौरव नरक में गिरता है। जिन जिन की उसने हिंसा किया है, वे सारे उनको हिंसा देने लगते हैं। रुरु से हिंसा होता है इसके लिए इस नरक को रौरव कहते है। रुरु नाम का प्राणी सर्प से भी क्रूर है, और बहुत घोर विष वाला है ।।12-13।।

सबसे द्रोह करते हुए वंचना से ही अपना जीवन यापन करने वाला महा रौरव नरक में गिरता है। वहाँ मांस भक्षण करने वाले क्रूर रुरु उसके मांस को खाने लगते हैं। इससे पापी की महा हिंसा होती है।।14।।

क्रूर पशु पक्षियों को भूँज कर खाने वाले को नर भक्षक भी सहन नही कर सकते। ऐसे निष्कारुणिक को यम दूत कुम्भी पाक नरक में ले जाते हैं वहाँ उबालते हुए तेल में उसको डाल कर भिजाते हैं।।15।।

माता पिता और ब्राह्मण से द्रोह करने वाले कालसूत्र नाम के नरक में गिरते हैं। उस नरक में दस हजार योजन विस्तार वाला ताबे का खल है। खल यानी धान को सुखाने के लिए किया हुआ विशिष्ट स्थान है। इस खल के नीचे आग जलाते हैं। ऊपर कड़क सूर्य का ताप रहता है। प्यास भूख से लटपटाए हुए पापी को उसके ऊपर सोना पड़ता है। वह गर्मी से उठता है, दौड़ता है, चिल्लाता है और उससे अपने को छुड़ाने की याचना करता है। उसके शरीर में जितने रोम हैं उतने हजार वर्ष उस पापी को इस नरक में रहना पड़ता है।।16।।

आपत काल न रहते हुए, ठीक समय होते हुए भी वेद मार्ग को छोड़ कर दुर्मार्ग से जो पाषंडी बनता है उसको यम दूत असिपत्रवन नाम के नरक में गिरा कर कोड़ा से मारते रहते हैं। वह पापी जहाँ भी दौड़ता है, वहाँ ही तलवार जैसे पत्ती वाले तालपत्र से उनके सर्वांग में घाव होते हैं। उस समय वह पापी मैं मर गया बोलते हुए बार बार मूर्छित हो जाता है।।17।।

राजा हो या उसका नौकर निरपराधी को दण्ड दिये या ब्राम्हण को देह दण्ड दिये तो वह पापी सूकरमुख नरक में गिरता है। वहाँ यम दूत गन्ने का रस को निकालने जैसे उसके शरीर से रक्त को निकालते हैं। वह आर्त स्वर से रोते हुए मूर्छित होता रहता है।।18।।

मच्छर, खटमल जैसे मानव रक्त को चूसने वाले प्राणी को भगवान ने उसी को जीवन वृत्ति बनाया है। आदमी को हम दु:ख दे रहे हैं, यह ज्ञान उनको नही रहता। प्राणिहिंसा निषिद्ध है (दुष्ट प्राणियों को, आत्म रक्षा के लिए वध करने से, सज्जनों को ज्यादा पाप आता नही) ऐसे प्राणि द्रोह के परिणाम में पापी अन्धकूप नाम के नरक में गिरता है। वहाँ उससे पीड़ित प्राणी उसको कष्ट देते हैं, नीद करने नही देते। वह पापी एक स्थान पर न रहते हुए दु:ख से जमीन पर लोटता रहता है।।19।।

अपने को मिले हुए अन्न और जल को अतिथि, बाल, वृद्ध और दूतों को न देते हुए, श्रेयस्साधन यज्ञयाग न करने वाला आदमी कृमि भोजन नाम के नरक में गिरता है। एक लाख योजन विस्तार वाला कृमि कुण्ड में गिर कर और कृमियों का आहार बन जाता है। भूख से खाने के लिए कुछ न मिलने के कारण उन कृमियों को ही खाता है। दूसरों को न देते हुए खाने वाला उसके बारे में प्रायश्चित् न किया तो उस इस नरक को भोगना अनिवार्य है।।20।।

ब्राह्मणों के और लोगों के भी गहने और रत्नाभरण की चोरी करने वाला संदंश नाम के नरक में गिरता है। वहाँ यमदूत उस पापी के चमड़े को गरम किए हुए फक्कडो से चीरते हैं।।21।।

अगम्य स्त्री के साथ संग करने वाला पुरुष और अगम्य पुरुष के साथ संग करने वाली स्त्री, इन दोनो को तप्तसूर्मी नाम के नरक में रख कर कोड़ा से मारते हैं। गरम किए हुए पुरुष की मूर्ति को स्त्री से आलिंगन करवाते हैं, वैसे ही गर्म की हुयी स्त्री की मूर्ति से पुरुष को आलिंगन करवाते हैं।।22।।

बहुत स्त्रियों का संग करने वाले को वज्रकन्टकशाल्मलि नाम के नरक में वज्र के समान काँटे वाले वृक्ष के ऊपर नीचे चढ़ाते उतारते रहते हैं।।23।।

राजा हो या उसके नौकर पाषंड हो कर धर्मो का नियम टालने वाले, मरने के बाद वैतरणी नरक में पड़ते हैं। इस नरक के चारों ओर रहने वाले खड्ढ़े में बहने वाली वैतरणी नदी में रहने वाले मगर उनको काट काट कर खाते हैं तो भी उनका मरण नही होता। मल मूत्र, रक्त, बाल, नख, हड्डी, मांस इत्यादि नदियों में उनको बहना पड़ता है। अपने दुष्ट कर्मो को याद करते हुए दु:ख से पचते रहते हैं।।24।।

नीच स्त्री से मिल कर शौच आचार को छोड़ कर लज्जा के बिना पशु जैसे जीवन में स्वेच्छाचारी बने हुए लोग मल मूत्र कफ इत्यादि से भरे हुए पूयोद नाम के नरक में रह कर असह्य कष्टों को भोगते रहते हैं। वहाँ उनको मल को ही खाना पड़ता है।।25।।

ब्राह्मण लोग कुत्ता और गधा को पालते हुए शिकार करते हुए विधि नियमों का उल्लंघन के साथ प्राणिवध करने वालों के प्राणोध नाम के नरक में जाना पड़ता है। वहाँ यमभट बाणों से उनको पीड़ित करते हैं।।26।।

दम्भाचार के लिए यज्ञ करने वाले अपनी दाम्भिकता के कारण विशन नाम के नरक में गिरते हैं। वहाँ यम दूत उनको मार गिरा कर उनके अंगांग को काट डालते हैं।।27।।

कामान्ध ब्राह्मण अपनी पत्नी के काम वश हो कर अपने वीर्य को पिलाया तो वह पापी इसके शिक्षारूप लाला भक्ष नाम के नरक में रेतस्स के प्रवाह में गिर कर उसी का पान करते हैं।।28।।

राजा और राज दूत जो घर जलाना, विष पिलाना इत्यादि करते हुए गाँव को या वर्तकों को लूटने लगें तो वे मरने के बाद सारमेयादन नाम के नरक में गिरते हैं। वहाँ वज्र के समान दाँत वाले सात सौ बीस कुत्ते उनको काट काट कर खाते हैं।।29।।

खरीदना, बेचना अथवा दान के व्यवहार में असत्य बोलने वाले शरीर त्यागने के बाद अविची नाम के नरक में गिरते हैं। वहाँ पत्थर कंकड़ इत्यादि भरे रहते हैं। यमदूत उस पापी को सौ योजन ऊँचाई वाले पर्वत शिखर से पत्थर के ऊपर फेक देते हैं। गिरते वक्त उसको पकड़ने के लिए कोई सहारा नही मिलता वह सिर नीचे करते हुए गिरता है। शरीर चूर चूर होता है। किन्तु वह मरता नही। बार बार उसको ऊपर से पत्थरों पर गिराया जाता है।।30।।

ब्राह्मण या उसकी पत्नी को मद्य पान कभी नही करना चाहिए। राजा हो या रानी, यज्ञ के सोमपानके अन्तर मद्य पान नही करना चाहिए। वैश्य हो या उसकी पत्नी मृत के अन्त क्रिया समय में व्रत दीक्षा वाला मद्य पान नही करना चाहिए। ये सब उक्त समय में मद्य पान किये तो वे अयः पान नाम के नरक में गिरते हैं। यम भट उनके छाती के ऊपर पाँव रखते हुए मुख में गरम किए हुए लोहे के रस को डालते हैं।।31।।

स्वयं अधम हो कर अपने को उत्तम बताते हुए जन्म, तप, विद्या, आचार, वर्ण और आश्रमों में अपने से उत्तम लोगों को गौरव न देते हुए जो जीता है वह मरा जैसा है। मरने के बाद वह क्षारकर्दम नाम के नरक में पड़ता है। यम भट वहाँ नमक के दल दल में सिर नीचे किये हुए फँसा देते हैं। वहाँ वह अन्त रहित दुःख को भोगता है।।32।।

भैरवादि दुष्ट देवताओं के लिए नर बलि देने वाले, शास्त्र निषिद्ध प्राणियों का और मनुष्यों का मांस खाने वाले रक्षों गढ़ भोजन नाम के नरक में गिरते हैं। उनसे मारे गये लोग वहाँ राक्षस के समान हो कर तलवार से उसका गला काटते हुए रक्त को पी कर नृत्य करते हैं। जब बलि देने के समय वह पापी जैसे आनन्द पाया था उसी आनन्द से वे खुशी मनाते हैं।।33।।

जंगल में या गाँवों में निरपराध प्राणी या लोगों को वंचना करते हुए उनको फाँसी देना या उन्हे जीव से मारना इसी से अपने मनोरंजन करने वाले शूल प्रोत नाम के नरक में गिरते हैं। वहाँ यमदूत इनको शूल के ऊपर चढ़ाते हैं। भूख और प्यास से पीड़ित वह पापी दुःख से रोता है। उसी समय अनेक पक्षियाँ उसके शरीर को काट काट कर उसका मांस भक्षण करते हैं। वह पापी अपने किये हुए पापों को याद कर के रोता है।।34।।

सर्पों से अति क्रूर स्वभाव वाले सब को भय उत्पन्न करने वाले दुष्ट लोग मरने के बाद दंदशूक नाम के नरक में पड़ते हैं। वहाँ अजगर के समान किन्तु पाँच या सात फणा वाले सर्प इनको खा लेते हैं। तो भी ये मरते नहीं।।35।।

खड़्ढ़ा में, जेल में, कुए में या पानी में डुबा कर श्वास बन्द कर के मारने वाले अवट निरोध नाम के नरक में पड़ते हैं। वहाँ यमदूत इनको उसी तरह खड्ढ़ा आने में डालते हुए श्वास निरोध करवाते हैं।।36।।

घर का यजमान हो कर आये हुए अतिथि को या परिचितों को घूर कर देखते हुए उनको अपमान करने वाला मरने के बाद पर्यावर्तन नाम के नरक में पतित होता है। पाप दृष्टि से भरे हुए उनकी आँखों को पक्षियाँ काट काट कर खाते हैं।।37।।

अपने श्रीमंती का अहंकार रखते हुए सब को तिरस्कार से तिरछी नजर से देखने वाला, और सब के ऊपर

संसय रखते हुए, अपने धन को लोग छीनते हैं या नाश करते हैं इस चिन्ता से दु:खित हो कर अपने धन को पिशाची जैसे रक्षा करने वाला पापी मरने के बाद सूचीमुख नाम के नरक में गिरता है। धन कमाने में उसकी वृद्धि में, और उसकी रक्षा करने में बहुत पाप किए हुए यह पापी को यम भट सुई से उनके शरीर को सभी ओर से चुभाते हैं। डोरी को लेकर शरीर को सिलते हैं।।38।।

इस तरह से नरक यम लोक में बहुत से हैं। इन सब नरको में पापी भरे रहते हैं। हम अभी तक कहे हुए और न कहे हुए इन नरको के लिए एक के पीछे एक कतार लगा कर जाते रहते हैं।।39।।

ऐसे ही धर्म मार्ग में चलने वाले मरने के बाद स्वर्ग में जाते हैं। लोग स्वर्ग और नरकों में अपने पुण्य और पाप के फल को भोग चुकने के बाद उनके शेष से पुन: जन्म लेने के लिए इस भूमि में आते हैं।।40।।

मोक्ष मार्ग को पहले ही हम **वैश्वानरम् याति विहायसा गतः** इन शब्दो से द्वितीय स्कन्द में कहे हैं। अब तक हम चौदह लोकों से युक्त ब्रह्मान्ड के बारे में बता दिये। ये सारे पुराणों में वर्णित हैं।।41।।

यह ब्रह्मान्ड पुरुषोत्तम भगवान नारायण के अपने स्व सामर्थ्य से प्रकृति के गुणों को ले कर निमार्ण किया हुआ एक महत्तम कृति है। इसके वर्णन को आदर से पढ़ने वाला, सुनने वाला और कहने वाला, श्रद्धायुक्त निर्मल अन्त: करण से भगवान श्री हरि के अत्यन्त सूक्ष्म बिम्ब रुप को देख सकता है।।42।।

भगवान की इस महा प्रतिमा के बारे में श्रवण किये तो उस बिम्ब का ध्यान साध्य होता है। महा प्रतिमा का चिन्तन को एकाग्रता से करने से मन भगवान के बिम्ब में ही स्थिर होता है। यही ध्यान की प्रक्रिया है।।43।।

सारे जीव समूह के लिए आश्रय देने वाला इस ब्रह्मान्ड के भूमि, द्वीप, खण्ड, नदी, पर्वत, आकाश, समुद्र, पाताल, दिशायें, नरक, ज्योतिर्मण्डल और अन्तरिक्ष आदि सारे भाग हैं। ऐसे अदभूत रूप वाला यह ब्रह्मान्ड भगवान का अति बड़ा प्रतिमा (मूर्ति) रुप है। तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैंने तुमको यह सब बताया है।।44।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में पंचम स्कन्ध में चौबीसवाँ अध्याय समाप्त होता है।।

।। यहा पंचम स्कन्ध समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्री मद्भागवत महापुराणम्

षष्ठ स्कन्धः

षष्ठ स्कन्ध का विषय सूची

क्र0	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	अध्याय एक	पश्चात्ताप और प्रायश्चित अजामिल की कथा	1-7
2.	अध्याय दो	हरि नाम की महिमा - अजामिल की मुक्ति	8-12
3.	अध्याय तीन	हरि नाम को यम भी डरते हैं	13-15
4.	अध्याय चार	दक्ष प्रजापति का पुनर्जन्म - हंस गुही स्त्रोत्र	16-21
5.	अध्याय पॉच	नारद जी को शाप	22-25
6.	अध्याय छ:	दक्ष पुत्रियों की सन्तान	26-29
7.	अध्याय सात	विश्वरूपा देवगुरू बने	30-32
8	अध्याय आठ	नारायण वर्म मंत्र (कवच)	33-36
9.	अध्याय नौ	वृत्रासुर का जन्म	37-42
10.	अध्याय दस	वज्रयुध युद्ध निर्माण - देवासुर संग्राम	43-45
11.	अध्याय ग्यारह	भागवतोत्तम वृत्रासुर	46-48
12.	अध्याय बारह	वृत्र वध	49-57
13.	अध्याय तेरह	इन्द्र के ब्रह्म हत्या का परिहार	52-54
14.	अध्याय चौदह	वृत्र का पूर्व जन्म - चित्रकेतु कथा	55-59
15.	अध्याय पन्द्रह	चित्रकेतु राजा को वैराग्य का उपदेश	60-62
16.	अध्याय सोलह	चित्र केतु को ज्ञानोदय - संकर्षण स्त्रोत्र	63-69
17.	अध्याय सत्रह	चित्रकेतु को पार्वती का शाप	70-73
18.	अध्याय अट्ठरह	आदित्यों का वंश	74-79
19.	अध्याय उन्नीस	पुंसवन व्रत विधान	80-82
20.	BRIEF LIFE HISTORY OF SHRI PEJAWARA SWAMIJI		83

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

षष्ठः स्कन्धः

अध्याय - एक

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे मुनि श्रेष्ठ! आपने यहाँ तक बताया कि मोक्ष मार्ग में चलने से ब्रम्ह मिले जाते हैं, और इस संसार से छुटकारा मिलता है।।1।।

प्राकृत स्वर्ग सुख को देने वाले काम्य कर्मो का मार्ग भी आपने बता दिया। उस मार्ग से चलने से प्रकृति बन्ध से छुटकारा नही मिलता। यह प्राकृत शरीर बाराबार आता रहता है।।2।।

पाप कर्म के फल के कारण होने वाले नरक के दुःखों के बारे में पंचम स्कन्ध में विवरण दिये। चतुर्थ स्कन्ध में स्वायंभुव मनु के प्रथम मन्वन्तर के बारे में वर्णन किये हैं ।।3।।

स्वायंभुव मन्वन्तर में प्रियव्रत और उत्तानपाद राजा के वंशके बारे में उनके चरित्र के बारे में, द्वीप, वर्ष, समुद्र, पर्वत, नदी और वनों का वर्णन किये।।4।।

भूमण्डल के आकार, उसका विभाग, लक्षण और उसके विस्तार के साथ सूर्य, चन्द , ज्योतिर्मण्डल और अतल, वितल इत्यादि अधोलोकों के बारे में बताते हुए भगवान द्वारा उनको सृष्ट करने का तरीका पाचवा स्कन्ध में आप ने बताया।।5।।

भगवान! अब मानव को अनेक भय उत्पन्न करने वाले, अनेक वीध के यातनाओं से भरे हुए नरकों से छुटकारा पाने के उपाय के बारे में बताइये।।6।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - मानव, मन और देह से जो पाप करता है, उसके लिये इसी जन्म में प्रायश्चित्त करना है, नहीं तो वह मरने के बाद नरक में पड़ जाता है। उन दारुण नरकों के बारे में मै बता चुका हूँ।।7।।

इसी कारण मरने के पहले, शरीर को रोगादि उपद्रव होने के पहले, इसी जन्म में प्रायश्चित्त करना चाहिए। रोग को जानने वाला वैद्य जैसे उसके लिए योग्य चिकित्सा करने की तरह पाप के अनुसार विचार करके छोटा मोटा प्रायश्चित्त करना पड़ता है।।8।।

राजा परिक्षित पूछते है - पापी को क्लेश रूप फल मिलता है। शास्त्र कहते हैं कि परलोक में पाप के लिए नरकादि दुःख होते हैं। पाप अपने के लिए अहितकारी है, दुःख देने वाले हैं। यह जानते हुए भी मानव रागादि दोषों से बाराबार पाप कर्म करता रहता है। प्रायश्चित्त करने के बाद भी और वही पाप करता

रहता है। तो शास्त्र में बताया गया प्रायश्चित्त का मतलब क्या है ।।9।।

पापी एक बार प्रायश्चित्त करने के बाद और पुनः वही पाप करता है। यह हाथी के स्नान जैसा है। हाथी स्नान करने के बाद भी अपने ऊपर मिट्टी या बालू डालता है। यह देखते हुए मुझे लगता है कि प्रायश्चित्त का कोई फल नही मिलता।।10।।

श्री शुकदेव बोले - प्रायश्चित्त से पाप सामान्यतः समूल नाश नही होता। इसका कारण प्रायश्चित्त करने वाले अज्ञानी हुए तो ऐसा होता है। परम तत्व को जानने वाले प्रायश्चित्त करें तो पाप का सम्पूर्ण रीति से नाश होता है। इसी कारण शास्त्र में कहा गया है कि प्रायश्चित्त विधि सही और सार्थक है।।11।।

इसका मतलब यह नही होता है कि अज्ञानी लोगों का प्रायश्चित्त करना व्यर्थ है। वे निषिद्ध कर्म न करते हुए विहित कर्म करते समय होने वाले पापों के लिए प्रायश्चित्त करते रहें तो वे भी श्रेय को पाते हैं। सदाकाल पथ्य का आहार सेवन करने वाले को रोग नही होते हैं।।12।।

ज्ञानी लोगों को वास्तव में प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता नही पड़ती। शास्त्राध्ययन, ब्रम्हचर्य, भगवन्निष्ठा, इन्द्रिय निग्रह, मिथ्याभिमानत्याग, सत्य, शौच, यम, नियम इन नौ साधनो से हरि स्मरण करने वाले का पाप कितना भी बड़ा पाप हो वह उससे मुक्त हो जाता है। आग छोटे होते हुए भी बाँस के जंगल को राख कर डालता है।।14।।

अन्य कई ज्ञानी यम नियमादि योग का भी अवलम्बन नही करते। केवल वासुदेव के शरण में जा कर ज्ञान युक्त अनन्य भक्ति से अपने पाप को धो डालते हैं। सूर्य आने के बाद कोहरे के लिए स्थान कहाँ? इन लोगों के लिए प्रायश्चित्त की कोई आवश्यकता नहीं है।।15।।

हे राजा सुन लो। श्रीकृष्ण को अपने प्राण को ही समर्पित करने वाले भक्तों की सेवा करने से, पापी को जितनी शुद्धि मिलती है, उतनी शुद्धि तप और यम नियमों से उसे नही मिलती है।।16।।

इस जगत में भक्ति मार्ग ही सबसे श्रेष्ठ मार्ग है। उसी से मोक्ष मिलता है। उसमें विघ्नों का भय नहीं है। इसके लिए शीलवान श्रेष्ठ साधुसन्त, भगवान नारायण में ही श्रद्धा रखते हुए भक्ति मार्ग में चलते हैं।।17।।

हे महाराज, शराब से भरे हुए मटके को बार - बार नदी के जल में धोने के बाद भी जैसे वह पवित्र नही होता। वैसे ही नारायण से विमुख लोग, कितने ही प्रायश्चित्त करने से भी शुद्धि नही पाते।।18।।

भगवान श्रीकृष्ण के पादारविन्दो में आसक्ति रखने वाले, अपने मन को सदा काल भँवरे जैसे भगवान के श्री चरण कमलों में ही रखने वाले को प्रायश्चित्त करने की कोई आवश्यकता नही है। समझ लो वे सारे प्रायश्चित्त कर चुके हैं। उनको यमदूत क्या पाशधारी स्वयं यम भी कुछ नही कर सकते। वे स्वप्न में भी यम दूत को नही देखते हैं।।19।।

इसके बारे में ज्ञानी लोग एक पुरातन कथा को कहते हैं। उसमें विष्णु दूत और यम दूतों के बीच में हुआ संभाषण आता है। उसको सुनो।।20।।

कान्य कुब्ज प्रदेश में (गंगा, यमुना का मध्य भू भाग कान्य कुब्ज कहा जाता था) वहाँ अजामिल नाम का एक ब्राह्मण रहता था। अजामिल शब्द का अर्थ ऐसा होता है **अजा** यानी अनादि अविद्या। प्रारब्ध कर्म से अविद्या ने उसके सदाचार को **मील** यानी निर्मूलन किया था। किन्तु प्रारब्ध भोगने के बाद **अज** यानि जननरहित भगवान के अनुग्रह बल से **अमील** यानी ज्ञानोदय हो गया। **अजामील अजामिल** बन गया। वह एक दासी के सम्पर्क के कारण पतित होकर दासी पति बन गया। अपने सारे सदाचारों को छोड़ दिया।।21।।

यात्रियों को लूटना, जुआ खेलना, झूठ बोलना और चोरी करने से उसका जीवन चलता था। वह इन हीन वृत्तियों से अपने कुटुम्ब का पालन पोषण करता था। अशुचि होकर नरक पाने के लिए योग्य बन रहा था।।22।।

राजा सुनो! उन दासी के पुत्रों का पालन करते हुए उसे उसकी आयु का बड़ा भाग यानी अस्सी (80) वर्ष चले गये।।23।।

उस बूढ़े ब्राह्मण को दासी से दस पुत्र पैदा हुए थे। उनमें से अन्तिम पुत्र का नारायण नाम रखा गया। वह पुत्र माता पिता को बहुत प्यारा था।।24।।

वह लड़का अपनी बाल भाषा में प्यारी-प्यारी बातें करता था। उस बच्चे की लीला से मोहित होकर वह वृद्ध उसके खेल को देखते हुए बहुत आनन्द पाता था।।25।।

पुत्र के मोह वश वह ब्राह्मण अपने साथ उसको खिलाता - पिलाता था। यह सब करते हुए अपनी मृत्यु समीप होने का ज्ञान उस मूर्ख को हुआ ही नही।।26।।

अजामिल का समय ऐसा चलता जाता था। उसका अन्तिम दिन एक बार आ ही गया। उसको न जानने वाला अजामिल अपने अन्तिम पुत्र नारायण को ही बुलाता रहा।।27।।

उस समय उसको पकड़ कर खींच लेने के लिए आये हुए तीन यम दूतों को उसने देखा। वे सारे विकराल मुख वाले थे, वे उसके सिर के ऊपर खड़े हुए थे। वे अपने हाथ में पाश धारण किये थे। वे बहुत क्रूर थे।।28।।

यम दूत को देख कर अजामिल कापने लगा। दूर खेलते हुए अपने बेटे नारायण को जोर - जोर से चिल्ला कर बुलाने लगा।।29।।

यहाँ एक प्रश्न आता है। यम दूतों से भयभीत अजामिल अपने पुत्र नारायण को क्यों बुलाया, क्या वह बच्चा उसकी रक्षा कर सकता था? वह अपने पुत्र को बुलाये तो भगवान अपने पार्षदों को क्यों भेजे, इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार है। अजामिल पूर्व में भगवान का एक श्रेष्ठ भक्त था। अपने भक्तों की रक्षा

आपतकाल में भगवान करते हैं, यह प्रसिद्ध है।।30।।

अजामिल अपने पूर्व जन्म में बहुत पुण्य किया था। उसकी योग्यता से वह पुण्य ज्यादा हो गया। इस ज्यादा पुण्य को खोने के लिए उसको दासी संग विवाह करना पड़ा। **अपिचेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्** भगवद्गीता के इस वचन के अनुसार अजामिल अपने पूर्व जन्म के संस्कार के वश होकर भगवान नारायण को ही बुलाया। **पुंनाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः** इस वचन के अनुसार नरक से उद्धार करने वाले भगवान पुत्र कहलाते हैं, उनको अजामिल ने बुलाया।

मरने वाले के मुँह से नारायण नाम का उच्चारण सुनते ही विष्णु दूत वहाँ आ गये, क्योंकि वह नारायण नाम प्रभु विष्णु का ही नाम है, वह उस लड़के का नाम नही हो सकता।।30।।

उस समय यमदूत दासी पति अजामिल के जीव को उसके हृदय से खींच रहे थे। विष्णु दूतों ने उनको अपने बल से, खींचने से रोक दिया।।31।।

यमदूत विष्णु दूतों से कहते हैं, हम यमदूत हैं। हमारे कामों में बाधा डालने वाले आप कौन हैं। आप किनके दूत हैं, आप कहाँ से आये, आप क्या देवता या उपदेवता हैं, सिद्ध श्रेष्ठ हैं? हम इसको खींच कर जाने वाले हैं, बीच में रुकने वाले नहीं हैं। हमको रोकने वाले आप कौन हैं।।32,33।।

आपकी आँख कमल के समान हैं। आप पीताम्बर धारण किये हैं। किरीट, कुंडल और सुन्दर कमल माला धारण किये हैं। आप सब युवक हैं। आप अपने चारों बाहों में खड्ग, गदा, शंख, चक्र धारण किये हैं।।34,35।।

आप के शरीर के प्रकाश से अन्धकार चला गया। किन्तु यमराज के दूतों को आप क्यों रोक रहे हैं।।36।।

शुक जी कहते हैं। यम दूत की इन बातों को सुनकर विष्णु दूत हँसते हुए कहे।।37।।

विष्णु दूत कहे - तुम लोग धर्म राजा के दूत हो न? तो हमे बताइये धर्म क्या है और अधर्म क्या है, उसका स्वरूप क्या है, उसको समझने का तरीका क्या है।।38।।

तुम लोग दण्ड कैसे देते हो। तुम लोगों के अभिप्राय में दण्ड योग्य कौन है। मानव जो-जो पाप करते हैं, उन सब को दण्ड देते हैं, या केवल कई लोग दण्डार्ह होते हैं?।।39।।

यम दूत कहते हैं - धर्म वेद के अनुसार होता है। वेद जिसको मना करता है वह अधर्म है। वेद अपौरुषेय हैं, अनादि हैं। कल्प के आदि में उनका पूर्ण उपदेश ब्रह्मा जी को भगवान नारायण ने दिया।।40।।

भगवान नारायण अपने आश्रय में रहने वाले सत्व, रज, तम नाम के त्रिगुण से सारे चल और अचल वस्तुओं को उनके नाम गुण रूप और क्रियाओं के साथ सृष्टि करते हैं, उसका पालन करते हैं और नाश करते हैं ।।41।।

जीवों के कर्मों के लिए सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, स्वर्ग, भूमि, जल, चन्द्र, प्रात:-सायंकाल,

और दण्डधारी यम साक्षी बनते हैं।।42।।

सूर्य, अग्नि और चन्द्र के कर्म साक्षित्व को सभी मानते हैं। भगवान श्री हरि लक्ष्मी, ब्रह्म वायु, गरुड़ शेष, रुद्र, इन्द्र, सूर्य, यम, अग्नि और शनि ये सारे काल माने जाते हैं।

ये साक्षी जिसको पापी मानते हैं वे दण्ड योग्य बनते हैं।पापीय लोग शास्त्र में बताये हुए क्रम के अनुसार उनके पाप के अनुसार नरको में फल भोगते हैं।।43।।

रौरव, महारौरव, वह्नि, वैतरणी, कुंभीपाक, ये पाँच अनित्य नरक हैं, तामिस्त्र और अन्ध तामिस्त्र ये दोनों नित्य नरक हैं।

हे विष्णु दूत, सुनिये। सारे कर्मों में कई पुण्य कर्म होते हैं, और कई कर्म पाप रूप होते हैं। त्रिगुण से सम्बन्ध होना ही इनका कारण है। देह धारी कोई जीव इन गुण के संग में आकर कर्म करने से नही बच सकता।।44।।

पुण्य और पाप के अनुसार स्वर्ग में पुण्यफल का अनुभव रूप सुख को, नरक में पाप फल का अनुभव रूप दु:ख को भोगना पड़ता है ।।45।।

हे देव श्रेष्ठ, इस जन्म में लोग अपने शरीर में रहने वाले सत्व, रज और तमो गुण के अनुसार सात्विक, राजस और तामस नाम के तीन तरह के कर्म करते हैं। वैसे ही जन्मान्तर में शरीर त्रिगुण जन्य होने के कारण तीन तरह के कर्म करना पड़ेता है। इसको हम अनुमान से समझ सकते हैं।।46।।

इस वर्ष के वसन्त काल में जो रहता है वही पिछले और आगे के वसन्तों में भी सामान्यत: वैसे ही रहता है। इस अनुमान के अनुसार पाप और पुण्य इनके फल के बारे में भूत और भविष्य में वही करना साध्य है।।47।।

किन्तु शरीर में अन्तर्यामी होकर श्री हरि रहते हैं, और जीव जन्म जन्मान्तर के सारे पाप पुण्यों को देख सकता है। वैसे ही शरीर में रहने वाले सारे तत्वाभिमानी देवता भी देखते रहते हैं। वैसे ही संयमनीय पुर में रहने वाले यम देव भी सारे कर्मों को प्रत्यक्ष रूप में देखते हैं। उन कर्मों के अनुसार फल देने का क्रम को भी निर्णय करते है।।48।।

सोया हुआ अज्ञानी मानव स्वप्न में जो शरीर देखता है उसी को अपना मानता है। जागृत होने के बाद उसको भूल जाता है। वैसे ही पूर्व कर्म के अनुसार मिला हुआ इस शरीर को ही शाश्वत समझता है। आगे पीछे के जन्मों के बारे में विचार नही करता। उसको पिछले जन्मों का याद नही रहता। यदि याद रहता तो पिछले के अनुसार मुझे और भी जन्म लेना पडता है, उसी तरह पिछले जन्मों में मैं जैसे मरा वैसे इस जन्म में भी हमें मरना है यह प्रज्ञा रहती थी ।।49।।

जीव पाँच कर्मेंद्रियों से पाँच तरह के कर्म करता रहता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों से पाँच विषयों को जानता है। यहा कर्मेंद्रिया पाँच, ज्ञानेंद्रिय पाँच और विषय पाँच कुल मिलकर पन्द्रह होते हैं। सोलहवाँ इन्द्रिय मन के

साथ सत्रहवाँ होकर जीव अकेला होकर त्रिगुण जन्य सुख दु:खों का मिश्रण का अनुभव करता रहता है।।50।।

ग्यारह इन्द्रिय और पाँच महाभूत युक्त सोलह अंश वाला यह लिंग शरीर त्रिगुणों का प्रकाश, क्रिया और आवरण नाम के तीन शक्तियों से भरा हुआ है। इस शरीर को भगवान के अनुग्रह के बिना जीव छोड़ नही सकता। यह शरीर कर्म के अनुसार जीव को सदाकाल हर्ष, शोक और भय उत्पन्न करता रहता है। जीव को जनन मरण चक्र में फँसाता रहता है।।51।।

रेशम का कीड़ा अपने घर को स्वयं बनाता है, और उसमें आनन्द से रहने लगता है, आगे आने वाले नाश को वह जानता ही नही, वैसे ही जीव अज्ञान से सारे इन्द्रिय और छ: शत्रुओं को दमन न करते हुए अवांछनीय कर्मों को (सकाम कर्मों को) त्रिगुण के प्रभाव से करता रहता है। उन कर्मों के वश होकर अपने आने वाले विपदओं के बारे में चिन्ता नही करता है।।52।।

इस जगत में कोई भी व्यक्ति एक क्षण भी कर्म न करते हुए रह नही सकता। पूर्व जन्म के संस्कार के वश होकर प्रकृति के त्रिगुणजन्य रागद्वेष युक्त कर्म को करना ही पड़ता है।।53।।

स्थूल और सूक्ष्म शरीर भी, उससे होने वाला दु:ख भी जीव के अदृष्ट के कारण होता है। कर्म वासना के बल के अनुसार वह शरीर माँ के अनुसार या पिता के अनुसार रूप धारण करता है।।54।।

इस रीति से यह संसार और प्रकृति का सम्बन्ध जीव को होता है। भगवान की उपासना और उनके अनुग्रह से यह लिंग शरीर भंग (नाश) होता है।।55।।

यह अजामिल पूर्व जन्म में बड़ा शास्त्रज्ञ था। उत्तम स्वभाव वाला, सदाचारी और शमदमादि गुणों से युक्त था। व्रताचरण करने वाला, कोमल हृदयी, इन्द्रिय निग्रह और सत्य निष्ठा वाला वेद वेत्ता शुची ब्राह्मण था।।56।।

गुरु, अग्नि, अतिथि और बड़ों का आदर और सेवा करता था। उसमें अहंकार बिल्कुल नही था। सारे प्राणियों का हित करने वाला सज्जन, मितभाषी और असूया रहित था।।57।।

एक दिन अपने पिता के आदेश के अनुसार वह ब्राह्मण वन गया, वहाँ से फल, फूल, समित्, और कुश को लेकर घर आ रहा था।।58।।

उस समय एक कामी दुष्ट सुरा के मद से मत्त होकर हँसते - गाते - नाचते हुए एक दासी के साथ विहार कर रहा था। वह दासी भी शराब से मत्त होकर निर्लज्जता से उसको साथ दे रही थी। दोनो को अपने कपड़ों का भी ख्याल नही था।।59,60।।

वह कामी उस दासी को अपनी बाँहो में ले लिया था। उसको देख कर वह ब्राह्मण मोहित होकर कामपरवश हो गया।।61।।

वह ब्राह्मण काम विचलित हुआ अपने मन को अपने वश में लाने के लिए बहुत प्रयास किया, शास्त्र

के अनुसार इन्द्रियजय को पाने के लिए बड़ा साहस किया किन्तु वह असमर्थ रहा।।62।।

उस दासी को देखकर उस ब्राह्मण को उसमें अनुराग हो गया, मन में काम पिशाच नाचने लगा, इस के कारण उसका सकल शास्त्र ज्ञान लुप्त हो गया। वह सदा काल उसी का चिन्तन करते हुए अपने धर्म को छोड़ दिया।।63।।

वह उसी के साथ रहने लगा। उसके प्यार को पाने के लिए अपने पैत्रिक सकल सम्पत्ति को खर्च कर दिया।।64।।

उस जार स्त्री की एक तिरछी नजर को पाने के लिए वह अपने सर्वस्व को खो दिया। सौन्दर्यवती, युवती और सत्कुल प्रसूता अपनी पत्नी को त्याग कर उस स्त्री के साथ रहने लगा।।65।।

वह अन्याय को न्याय मानने लगा। न्याय अन्याय का विचार न करते हुए कैसे ही धन को पाकर उस दासी के पुत्रों की रक्षा करने लगा। वह विवेक शून्य बन गया ।।66।।

वह शास्त्रों का उल्लंघन करते हुए स्वेच्छाचारी बन गया। सारे लोग उसकी निन्दा करने लगे, वह अग्निहोत्र इत्यादि धार्मिक कार्य छोड़ दिया, स्नान न करते हुए, शुचिरहित अन्न को खाते हुए, अपनी आयु को पाप करने में ही व्यतीत करने लगा। बहुत दिन ऐसे ही बीत गये।।67।।

इसी कारण पाप करने के बाद भी प्रायश्चित्त न करने वाले इसको हम यम जी के पास ले जा रहे हैं। वहाँ यह ब्राह्मण पाप के योग्य शिक्षा भोग कर शुद्ध हो जायेगा ।।68।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में छठा स्कन्ध में पहला अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय दो

श्री शुक जी कहते हैं - राजा! नीति को जानने वाले विष्णुदूत यमदूतों की बातों को सुनकर उनको उत्तर दिये।।1।।

विष्णु दूत कहते हैं - यह तो बहुत कष्ट की बात है। धर्मज्ञानियों की सभा में अधर्म कैसे आता है। पाप रहित होकर जो दण्डार्ह न होते हुए भी उसको शिक्षा क्यों दी जाती है?।।2।।

सज्जन प्रजा को पिता जैसे पालक होकर पक्षपात न करते हुए शासन करना चाहिए। वे ही पक्षपात करने लगे तो प्रजा लोगों को किसकी शरण में जाना चाहिए।।3।।

व्यवहार में बड़े लोग जैसे करते हैं उसी का अनुसरण अन्य लोग करते हैं। वे जिसको प्रमाण मानते हैं, उसी को वे भी प्रमाण मानते हैं।।4।।

सामान्य जन पशु जैसे रहते हैं। वे बड़े लोगों के उपदेश के बिना धर्माधर्म का भेद नही समझते हैं। इसके लिए वे बड़े लोगों के ऊपर विश्वास रखते हुए निश्चिन्त रहते हैं।।5।।

श्रेष्ठ लोग जनता के विश्वास पात्र होने चाहिए। वे दयालु होकर अपने में श्रद्धा रखने वाले लोगों को द्रोह करना योग्य नही होता।।6।।

हम यह विचार इसके लिए बोल रहे हैं कि यह अजामिल अपने अन्त्य समय में मोक्ष देने वाले हरि नाम का स्मरण भक्ति परवश होकर किया है। हरि नाम स्मरण से कोटि जन्मों में किया हुआ पापों का प्रायश्चित्त होता है।।7।।

नारायण ये चार अक्षर के भगवन्नाम स्मरण करने के कारण यह पापी ब्राह्मण अपने सारे पापों का प्रायश्चित्त कर लिया।।8।।

चोर, पीवट, मित्रद्रोही, ब्रह्म घातकी, गुरु पत्नी गमन करने वाला, स्त्री घातक, राज हत्या, पितृ हत्या, गो हत्या करने वाला और ऐसे ही हजारों पाप करने वाला हरि का नाम उच्चारण करने से ही प्रायश्चित पाकर सारे पापों से मुक्त होता है। हरि नामोच्चारण से उसकी स्वाभाविक विष्णु भक्ति व्यक्त होती है।।9,10।।

शुद्ध वेदवादी मनु और पराशर मुनि के समान स्मृतिकारों ने व्रत और प्रायश्चित की जो विधियाँ बनाए हैं, उनके अनुष्ठान करने से भी बढ़कर हरि नाम उच्चारण करना है। क्योंकि हरि नाम स्मरण से पाप हरण के साथ उनका गुण स्मरण भी होता है।।11।।

प्रायश्चित करने के बाद भी मन उसी शास्त्र विरुद्ध मार्ग में दौड़ने लगा तो प्रायश्चित का मतलब क्या

होता है? इसी कारण पापों को धो देने वाला सही प्रायश्चित करना है तो गुणानुसंधान सहित भगवान का नामोच्चारण करना ही सही मार्ग है। क्योंकि हरि नामोच्चारण चित्तशुद्धि करता है।।12।।

इसके लिए आप अजामिल को नरक मार्ग में मत ले जाइये। वह अपने पापों के लिए प्रायश्चित्त कर चुका है। क्योंकि वह अपने अन्तिम समय में भगवान के नामोच्चारण को वैराग्य और भक्ति से किया है।।13।।

दूसरों के नाम के कारण हो, हास्य में हो, चेष्टा में हो, या दूसरों का क्रोध बढ़ाने के लिए हो, हरि नाम स्मरण किसी कारणवश उच्चारण करने से भगवान का स्मरण आ जाता है तो उससे उनकी हरि भक्ति अभिव्यक्त होती है। हरि नाम सारा पाप नाश करता है, मोक्षादि सकल फल को दे देता है।।14।।

भगवत ध्यान के लिए आसन प्राणायाम आदि नियम होते हैं। हरि स्मरण के लिए इसकी आवश्यकता नही है। हरि नाम स्मरण बहुत सरल है। चलते हुए, गिरते हुए, आग छूने से, साँप काटने से, मार पड़ने के समय में भी मानव किसी अवस्था में भक्तिपरवश होकर एक बार हरि ये दो अक्षरों का उच्चारण करने से वह कभी भी यम पाश से बद्ध नही होता है।।15।।

हरि नाम स्मरण के लिए वर्णाश्रम का प्रतिन्ध नही हैं। कोई भी वर्ण या जाति वाला, किसी भी आश्रम में रहते हरि का ध्यान कर सकता है। वह मानव होना चाहिए, भक्त होना चाहिए। उसके लिए हरि नाम का दो अक्षर पर्याप्त है, नारायण नाम के चार अक्षर की भी आवश्यकता नही है।

महर्षियों ने बड़े बड़े पाप के लिए बड़ा प्रायश्चित्त और छोटे पाप के लिए छोटा प्रायश्चित्त, धर्म शस्त्र के अनुसार बताये हैं। हरि नाम छोटे मोटे सभी पापो के लिए एक मात्र बड़ा प्रायश्चित्त है।।16।।

महर्षियों ने पाप नाश के लिए प्रायश्चित्त सहित दान, व्रत, और तप का विधान किये हैं। वे पाप का नाश करते हैं, किन्तु पाप के मूल स्थान अन्त:करण की शुद्धि नही करते हैं। हरि नामोच्चारण सहित हरि पादसेवा करने से मन और चित्त भी शुद्ध हो जाते है।।17।।

अब तक हमने जो बताया हैं यह भागवत धर्म सनातन है, श्रेष्ठ है। इसको प्रतिनित्य आचरण करने वाले का अन्त:करण शुद्ध होता है। रोज कपड़ा धोने से वह कपड़ा शुद्ध होता है न?।।18।।

यज्ञ, दान, तप इत्यादि करने वाले जीव को अहंकार आने से उसके अन्त:करण पूर्ण रीति से शुद्ध नही होती। इसके लिए कर्म कराने वाले सर्वतन्त्रस्वतन्त्र भगवान हरि की आराधना, निष्काम होकर करना चाहिए। मै यह सारे कर्म करने में स्वतन्त्र नही हूँ केवल भगवान ही स्वतन्त्र हैं। वे किसी भी फल की अपेक्षा न करते हुए सारा काम करवाते है।।19।।

भगवान के नाम का सम्पूर्ण अर्थ को न जानते हुए कितनी बार स्मरण करे अथवा पूर्ण अर्थ जान कर उच्चारण करने के बाद वह भक्त रहे, तो नाम स्मरण उसके पाप को नष्ट करता है। जानते या न जानते हुए आग को लकड़ी की राशि में डाले तो वह पूरा राशि नष्ट हो जाती है।।20।।

रोग को और दवा को और उसके परिणाम को न जानने वाला रोगी भगवान की प्रेरणा से अच्छा औषध लिया तो रोग नाश होता है। वैसे ही भगवान के नाम में रहने वाला विशेष और शब्द का अर्थ न जानते हुए भी शक्तिशाली नरायण इत्यादि मन्त्र को ठीक तरह से जानकर नाम जप करे तो वह पाप को नष्ट कर देगा।।21।।

हे यम भट, हम जो भागवत धर्म के बारे में कहे हैं इसमें आपको शंका आए तो आप अपने प्रभु यम धर्म से पूछें। यमधर्मा जी धर्म के इस रहस्य को कीठ तरह से जानते है।।22।।

श्री शुकदेव जी बोलते हैं-राजा! यम दूत विष्णु दूतों के मुख से भागवत धर्म को ठीक तरह से जान कर अजामिल को यमपाश से मुक्त कर दिए। इससे वह अजामिल पुनः जीव को प्राप्त कर जागृत हो गया।।23।।

हे राजा सुनो, विष्णु दूतों का उत्तर सुनकर यम दूत यम के पास जाकर उनको सारी बातो को बता दिये।।24।।

यमपाश से मुक्त हुआ अजामिल भयरहित होकर ठीक हो गया। विष्णु दूतों के दर्शन से आनन्दित होकर उनको सिर झुका कर नमस्कार किया।।25।।

अजामिल विष्णु दूतों से कुछ कहना चाहता था। किन्तु विष्णु दूत उनके सामने ही अदृश्य हो गये।।26।।

अजामिल विष्णु दूतों से शुद्ध भागवत धर्म को सुन चुका है। उसने यम दूतों से वेदोक्त काम्य धर्म के बारे में सुन लिया है। श्री हरि महात्म्य को सुनकर उसका भक्ति भाव बढ़ गया। अपने किये हुए पापों के बारे में उसको बहुत लज्जा हुई, और पश्चात्ताप भी हुआ।।28।।

मैंने इन्द्रिय निग्रह नही किया। इसी कारण मुझे यह महाकष्ट भोगना पड़ा। दासी के साथ रहते हुए उससे बच्चों को पैदा किया। मेरा ब्राह्मण्य नष्ट हो गया ।।29।।

मैं सज्जनों की निन्दा का विषय बना। मैंने अपने वंश का मान घटा दिया, मै पापी हूँ। मेरे लिए धिक्कार हो। साध्वी और युवा पत्नी को छोड़ कर शराब पीने वाली स्त्री के साथ संग किया।।30।।

मेरे पूज्य माता पिता बूढ़े हो गये थे, वे अनाथ थे, मुझको छोड़ कर उनके लिए अलग बन्धु कोई नही थे। वे कष्ट में थे। इस स्थिति में मै उनको छोड़ कर उनको बहुत कष्ट दिया। मै नीच हूँ और कृतघ्न हूँ।।31।।

इसके परिणाम स्वरूप मुझे धर्म घातक कामियों को मिलने वाले नरक में जाना पड़ेगा यह निश्चित है।।32।।

मैंने इस अदभुत को अपनी आँखो से देखा। यह क्या स्वप्न था या जागृति थी। इसको मै ठीक तरह से जानता नही। हाथ में पाश लेकर मुझको खीचने वाले कहाँ गये ।।33।।

यमदूत पाशों से बांध कर मुझको नरक को ले जाने वाले थे। उस समय मुझको छुड़ाने वाले वे सुन्दर और सिद्ध पुरुष कहाँ गये।।34।।

इस जन्म में मैंने केवल पाप किया है, तो भी मुझे देव दर्शन हुआ है। उनको देखने से मेरा मन प्रसन्न हो गया है। यह मेरे पूर्व जन्म के पुण्य का परिणाम हो सकता है।।35।।

यदि पूर्वपुण्य का फल नही रहता तो दासी पति होकर अशुद्ध रहने वाले मुझको मरण समय में हरि नाम स्मरण कैसे आया?।।36।।

मै कपटी, लज्जा विहीन और ब्राह्मणत्व को छोड़ दिया हुआ पापी हूँ। मै कहाँ और परम मंगल कर भगवन्नाम कहाँ?।।37।।

अब मैं आगे के जीवन में अपने मन इन्द्रिय और प्राणों को अपने वश में रखते हुए, सत् कार्य करते हुए नरक में न जाने का प्रयत्न करता हूँ।।38।।

अज्ञान, राग, कर्मों से होने वाले बन्धन से छुटकारा पाते हुए सारे प्राणियों का हित करुँगा। दम मैत्री, करुणा और इन्द्रिय निग्रह इत्यादि गुणों को बढ़ाऊँगा। स्त्री रूप से मुझे बन्धक बनाने वाली भगवान की माया से दूर रहूँगा। मैं अब एक स्त्री के वश में होकर उसके हाथ का खिलौना बन गया हूँ। यह नही होना चाहिए।।39,40।।

मैं मोक्ष रूप चतुर्थ पुरुषार्थ की साधना में मन लगाऊँगा। देह और इन्द्रियों में **मै** और **मेरा** का भाव छोड़कर भगवान का संकीर्तन करते हुए निर्मल मन से भगवान का ध्यान करने लगूँगा।।41।।

इस रीति से विष्णु दूतों के एक क्षण के सत्संग से वैराग्य पाकर अजामिल इस संसार के सारे बन्ध पाशों से अपने को छुड़ा लिया। विरक्त होकर हरिद्वार क्षेत्र को चला गया।।42।।

वहाँ भगवान त्रिविक्रम के मन्दिर में बैठकर योग साधना करने लगा। इन्द्रियों को विषयों से खींच कर भगवान में लगा दिया।।43।।

चित्त को अपने अन्तर्यामी भगवद् रूप में समाहित कर अपने से भिन्न उस रूप का ध्यान करते हुए ज्ञानस्वरूपी षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न तेजोमय भगवान का नित्य दर्शन करने लगा।।44।।

बुद्धि उस भगवद् रूप में निश्चल होने के बाद वह पहले देखे हुए उन विष्णु दूतों को दुबारा देखा। उनको दण्डवत नमन किया।।45।।

उनके दर्शन करने के बाद अजामिल गंगा घाट में पुण्य स्नान करने के बाद अपने शरीर छोड़कर विष्णु दूत के समान रूप को पा लिया।।46।।

वह विष्णु दूतों के साथ सोने के विमान में बैठ कर श्रीपति भगवान नारायण के धाम को जा पहुँचा।।47।।

दासी संग से पतित होकर सर्व धर्म को परित्याग किया हुआ, निन्द्य कर्मो को करने वाला अजामिल नरक में जाने के समय में भगवन्नामोच्चरण करने से मुक्ति पा लिया।।48।।

इसके लिए मुक्ति चाहने वाले को नाम संकीर्तन छोड़कर पाप कर्म को सम्पूर्ण नाश करने वाला और

सुलभ साधन कोई नही है। नाम संकीर्तन करने से मन रजो और तमों गुण से मलिन न होते हुए पाप कर्मों में नही लगेगा। नाम संकीर्तन नही करे तो मन पाप लिप्त हो जायेगा।।49।।

परम रहस्य और पाप परिहार करने वाला इस इतिहास को श्रद्वा भक्ति से सुनने वाला और दूसरों को कहने वाला कितने भी पाप किया हो नरक भागी नही होता। यमदूत उसके ऊपर दृष्टि नही डालेंगे। वह विष्णु लोक में गौरव का स्थान पाता है।।50, 51।।

अजामिल अपने पूरे जीवनकाल में पाप करते रहा। किन्तु मरते समय अपने पुत्र को बुलाने के बहाने भगवन्नामस्मरण करने से मोक्ष पा लिया। इस इतिहास को सुनकर सदा काल श्रद्वा भक्ति से हरि नाम संकीर्तन करने वाले के बारे में क्या कहना है।।52।।

भक्ति के बिना केवल नामोच्चारण करने से पाप परिहार होता है, इस दृष्टान्त में अजामिल की कथा बोलना सही नही है। अजामिल भक्ति से विभोर होकर भगवान के नाम स्मरण करने से ज्ञान पाकर मोक्ष पा लिया। यह नारद पुराण में लिखा हुआ है।।53।।

।।यहा श्री मदभागवत महा पुराण में छःठा स्कन्द में दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

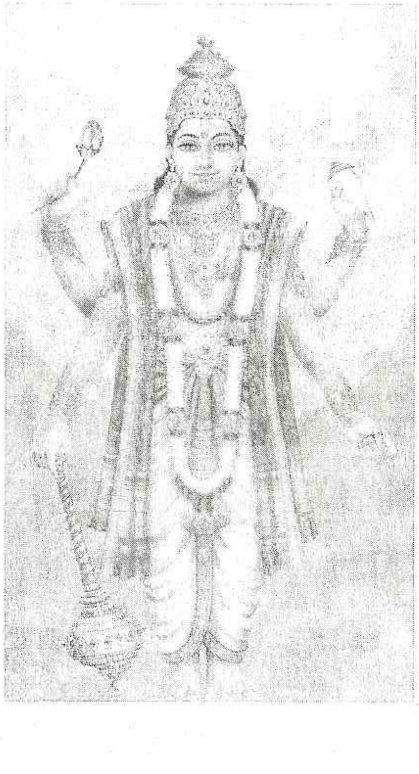

अध्याय तीन

राजा परीक्षित पूछता है। अपने दूत द्वारा बताए हुए अजामिल प्रसंग को सुनकर यमधर्म राजा क्या किया। जिनके वश में सारे जीव रहते हैं उन विष्णु भगवान के दूतों ने, यमदूतों को रोक लिये। इससे यमधर्म की आज्ञा का भंग हो गया ।।1।।

हे महामुनि, यम धर्म के आज्ञा का भी भंग हो सकता है क्या ? इसको तो हम अभी तक सुना नही। इस संशय को आपके बिना कौन परिहार करने वाला है?।।2।।

शुक देव जी कहते हैं - राजा! अपने कर्तब्य करने में देव दूतों से विघ्न आते ही यमदूत यम के पास जाकर उनको पूरा हाल बता दिये।।3।।

यम दूत बोलते हैं - लोग पुण्य, पाप और मिश्र नाम के तीन विध के कर्म करते रहते हैं। उसके अनुसार फल देने वाले और इस जीव जगत का शासन करने वाले कितने होते हैं?।।4।।

लोक में अपराधियों को दण्ड़ देने वाले आप हैं। हम अकेले आपको जानते है, आपको छोड़ कर और भी है तो सुख या दु:ख किसको होता है और किसको आता है, कैसे आता है, यह व्यवस्था ही चली जाती है।।5।।

कर्म करने वाले अनेक हैं। उनको दण्ड़ देने वाले भी अनेक हैं तो उनका अधिकार मांडलिक जैसे सीमित होता है। चक्रवर्ती के समान परमाधिकार वाले कोई नही होंगे।।6।।

इसी कारण इन सारे लोकों को और वहाँ के लोकाधिपतियों को स्वामी होकर लोगों के पुण्य पाप कर्म का विवेचन करते हुए योग्य दण्ड देने वाले केवल आप ही हैं।।7।।

अब आपकी आज्ञा को मानव लोक में विघ्न आ गया है। चार अद्भुत सिद्धपुरुषों ने आप की आज्ञा का उल्लंघन किया है ।।8।।

हम आप की आज्ञानुसार उस पापी को नरक ले जा रहे थे। बीच में वे जबर्दस्ती से हमारे पाशों को उखाड़ फेक कर उस पापी को छुड़ा दिये।।9।।

उन देवपुरुषों के बारे में हम आपसे सुनना चाहते हैं। यदि हम सुनने योग्य हैं तो बताइये। वह पापी जब नारायण शब्द का उच्चारण किये तब विष्णु दूत डरो मत कहते हुए वहाँ आ गये।।10।।

श्री शुक जी कहते हैं - दूतों के प्रश्न को सुनकर प्रजा शासक यम देव सन्तुष्ट होकर श्री हरि चरण कमलों को मन में याद करते हुए उनसे कहे।।11।।

यम देव बोलते हैं - इस चल और अचल प्रपंच के लिए मुझे छोड़ कर और एक प्रभु हैं। कपड़े को सिलाई करने से जैसे दोनों कपड़े एक हो जाते है, वैसे ही यह सारा जगत उन्ही के आश्रय में है। वह विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र के रूप से इस जगत की सृष्टि, रक्षा और लय करते है। यह सारा जगत नाक में डोरी लगाया हुआ सांड जैसे उनके वशवर्ती हैं।।12।।

गोपालक अपने गायों को रस्सियों से बांध रखता है, वैसे ही श्री हरि अपने आज्ञा रूप में रहने वाले वेदों के विधि निषेध रूप कर्तव्य कर्मों से वर्णाश्रम से अपने जीवका चलाने वाले जीपों को कर्म नाम के रस्सी से बांध रखते हैं। इसी कारण सारे लोग ब्राह्मण क्षत्रिय आदि अपने नामों से और कर्तव्यों से बद्ध होकर भगवान के भय भक्ति से आराधना करते हुए जीवित रहते हैं।।13।।

मै यमधर्म, महेन्द्र, निऋति, वरुण, चन्द्र, अग्नि, शिव, वायु, सूर्य, ब्रह्मा, आदित्य, विश्वेदेवा, वसु, साध्य, मरुत्, रुद्र, सिद्व, प्रजापति, भृगु और अन्य देवता ये सारे रजो और तमो गुण से मुक्त हुए सात्विक जीव हैं। हम सारे भगवान के माया से बद्ध रहते हैं और भगवान के संकल्प को कोई नही जानते हैं।।14,15।।

हम अपने आँखों से आकृतियों को देखते हैं। सही बोलना है तो आँख से आकृति का सम्बन्ध होने से उनको हम देखते हैं। किन्तु आकृतियाँ हमको या हमारी आँखों को देखते नही। वैसे ही इन्द्रिय और भगवान का सम्पर्क होने मात्र से इन्द्रिय भगवान को देख नही पाते किन्तु भगवान इन्द्रियों को देखते है। इसी कारण से किसी भी प्राणी ने आँख से, मन से, बुद्दि या वाक से, इनकी सम्बन्धित इन्द्रियों से सबके हृदय में रहने वाले भगवान दृश्य नही होते क्योंकि वे इन्द्रियों से अतीत हैं।।16।।

भगवान स्वतंत्र हैं सबके इष्ट हैं, दोष रहित हैं, गुण पूर्ण हैं और लक्ष्मी पति हैं। वे महात्मा हैं, उनके दूत भी उनके समान मनोहर रुप वाले गुण और स्वभाव से युक्त हैं। वे भगवान का नाम स्मरण जहॉ जहॉ होता है, वहाँ उपस्थित होते हैं ।17।।

वे विष्णु दूत देवताओं को मान्य हैं, महा अदभुत हैं, केवल पुण्यवान् लोगों को ही दर्शन देते हैं। विष्णु भक्तों को आग, विष, शत्रु और अपायों से और मुझसे भी रक्षा करते रहते हैं।।18।।

प्रश्न यह आता है कि वे अजामिल का रक्षण क्यों किये। अजामिल पापी नही था। वह पुण्यवान् हैं। पुण्य पाप के बारे में भगवान ने ही व्यवस्था की है। उनको ऋषि, देवताएँ, सिद्ध, असुर, विद्याधर और चारण इत्यादि कोई भी ठीक तरह से नही जानते। तो मानव कैसे जान सकते हैं।।19।।

चतुर्मुख ब्रह्मा जी, नारद, शिव, सनत् कुमार, कपिल, मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, बलि, शुक और मै ये बारह लोग भागवत धर्म को जान सकते हैं। हे दूत सुनो, यह भागवत धर्म अत्यन्त गोपनीय एवं परिशुद्ध है। इसको जानना कठिन है, जो जानता है वह मोक्ष पाता है।।21।।

इस जगत में लोगों के लिए विहित धर्म केवल यही है, भगवान का नाम संकीर्तन और भगवान में भक्ति करना।।22।।

श्री हरि के नामोंच्चारण के माहात्म्य को बताता हूँ सुनो। पापी अजामिल भी नाम स्मरण के बल से यम पाश से मुक्त हो गया ।।23।।

भगवान के गुण, कर्म, नाम, इनका संकीर्तन करना पाप परिहार के लिए योग्य साधन है। पापी अजामिल मरते समय अपने पुत्र को नारायण नाम से पुकारने से भगवान का याद होकर उनके गुण कर्म नाम के संकीर्तन के बल से मोक्ष पाया।।24।।

हरि नाम स्मरण से बड़ा पाप भी चल जाता है। भक्ति से नामस्मरण करने से महाफल मोक्ष मिलता है,

पाप परिहार के लिए भी यही साधन है, यहाँ अजामिल पुत्र को बुलाते समय उसको भगवान की याद आ गया। वह उसके पूर्व जन्म के पुण्य का प्रभाव है। केवल पुत्र का नाम बोलने से उसको मुक्ति मिली यह बोलना गलत होता है। ज्यादातर लोग भगवान की इच्छा से ही, उनकी ही प्रेरणा से विषय भोग में मग्न होकर ऊपर देखने वाले और कष्ट साध्य वेदों में बताए गए स्वर्ग के साधन, काम्यकर्मों में आसक्त होते हैं। वेद तो सही अर्थ में भगवान के बारे में और मोक्ष फल देने वाली बातों को कहते हैं। वे इनका ग्रहण नही करते हैं।।25।।

ज्ञानी लोग ठीक तरह से चिन्तन करते हुए अनन्त रूपी भगवान में श्रद्धा भक्ति रखते हुए योग करते हैं। वे पाप नही करते। कदाचित वे पाप करें तो भी हरि संकीर्तन उसका नाश करता है।।26।।

सभी लोगो में उनकी योग्यता के अनुसार दोष रहित भगवान का सन्निधान रहता है। इसको समझते हुए भगवान की आराधना करने वाले सज्जन लोगों की कीर्ति को देवता भी गाते हैं। तुम लोग उन सज्जन लोगों के पास तक नही जाना। उनकी रक्षा भगवान श्री हरि की गदा करती है। उनको हम भी दण्ड देने में असमर्थ है।।27।।

भगवान मुकुन्द के पादारविन्द का मकरन्द रस को सेवन करने वाले सर्वसंग परित्यागी परम हंस सन्यासी लोग विष्णु भक्त होते हैं। तुम उनका स्पर्श न करना। इसके विरुद्ध नरक की राह दिखाने वाली पत्नी, पुत्र, घर दौलतों में आसक्त रहने वाले दुष्ट लोगों को तुम यहाँ ले आओ।।28।।

जिनकी जीभ भगवान का गुण नाम कीर्तन नही करती है, जिनका मन भगवान का चिन्तन नही करता है, जिनका सिर श्री कृष्ण को एक बार भी नमन नही करता है, और जो भगवान की कथा श्रवणादि नव विध वैष्णव धर्म का आचरण नही करते हैं, उन दुष्टो को खीचकर यहाँ लाओ।।29।।

भगवान के पाद कमलो में भृंग जैसे रहने वाले सज्जन, पाप मानकर एक बार छोड़ दिये तुच्छ विषय पदार्थों में पुनः आसक्त नही होते। दुर्जन लोग विषय कामना के बलि पशु होकर अपने पापों को धोने के लिए बार बार प्रायश्चित्त कर्म करते रहते हैं, और पुनः वही पाप कर्म करते हैं।।30।।

अब हमारे सेवको से किए हुए अपराध को वह पुराण पुरुष भगवान नारायण क्षमा करें। हम अज्ञानी हैं, किन्तु उनके भक्त हैं। उनको हम हाथ जोड़ कर नमन करते हैं। वे बड़ों से भी बड़े हैं। वे हमे क्षमा करें। वे क्षमा गुण पूर्ण हैं।।31।।

श्री शुक देव कहे - इस तरह अपने स्वामी से भगवान की महिमा सुनकर यमदूत आश्चर्यचकित हो गये। उस दिन से यम दूत विष्णु भक्तों से डरते हुए उनको नजर उठाकर देखने में भी हिचकिचाते है।।32।।

हे राजा सुनो - इस जगत के लिए कल्याणकारी, भगवान को गुणनामसंकीर्तन सारे पापों का नाश करता है।।33।।

श्री हरि की महिमा को बार बार सुनने से बिना कष्ट होने वाली भक्ति अन्तःकरण को शुद्धि करती है। इतनी शुद्धि और कोई व्रत या नियम से नही होती।।34।।

यह इतिहास अत्यन्त गहन है इसको मलय पर्वत में बैठकर श्री हरि की आराधना करने वाले भगवान अगस्त्य मुनि मुझे बताए थे।।35।।

।।यहा श्री मदभागवत महा पुराण में छःठा स्कन्द में तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय चार

राजा परीक्षित बोले - हे पूज्य! स्वायंभुव मन्वन्तर में देव, असुर, मनुष्य, सर्प, नाग, मृग, पक्षियों के बारे में संक्षेप में आपने बताया। ब्रह्माण्ड के अन्दर की यह सृष्टि सर्वोत्तम भगवान नारायण अपने सामर्थ्य से सृष्ट किये। इसको विस्तार रूप से मैं आपसे सुनना चाहता हूँ।।1,2।।

सूत बोले - हे महर्षि! महायोगी शुकदेव जी राजा परीक्षित के प्रश्न का अभिनन्दन करते हुए बोले।।3।।

प्राचीन बर्हि राजा के दस पुत्र प्रचेतस समुद्र से उठकर बाहर आये। तब यह पृथ्वी वृक्षों से आवृत हुआ था ।।4।।

वे उन वृक्षों से रुष्ट हो गये। वे अपने तपोबल से उन वृक्षों को नाश करने के लिए अपने मुह से हवा और आग की सृष्टि किये।।5।।

हे राजा, अग्नि और वायु द्वारा वृक्षों को जलते हुए देख कर वनस्पतियों के राजा चन्द्र उनके क्रोध को शमन करते हुए बोले।।6।।

हे महात्मा प्रचेतस ! आपका इन निरापद वृक्ष और वनस्पतियों से द्रोह करना ठीक नही है, आप प्रजापति हैं। आप प्रजा की अभिवृद्धि करने वाले हैं।।7।।

सभी प्रजापतियों के अधिपति और अविनाशी सर्वशक्त भगवान श्री हरि प्रारम्भ में देव पितृओं के अनुरूप में वृक्ष, वनस्पति और धान्यों का सृष्टि किये। प्रजापालक आपको इन जीवों का नाश नही करना है।।8।।

स्थावर वृक्ष वनस्पति जंगम जीवों के लिए आहार बनता है। जिनको पाँव नही है उनके लिए पाँव होने वाले, जिनको हाथ नही है, उनको हाथ वाले, और चार पाँव वाले दो पाँव वाले को आहार बनते है। इस सृष्टि में कोई भी जन्तु व्यर्थ नही है। उसको नाश नही करना है ।।9।।

आप लोगों को आपके पिता राजा प्राचीन बर्ही और चतुर्मुखः ब्रह्म जी को, भगवान नारायण ने सृष्टि करने का आदेश दिया। उस सृष्टि की रक्षा के लिए उत्पन्न हुए आप सृष्टि का नाश क्यों करते।।10।।

आप अपने क्रोध को शमन कीजिए। दीनों की रक्षा करना सज्जनों का धर्म है। आपके पिता और पूर्व पित्रों ने इसी मार्ग का अनुसरण किया, आपको भी उनका अनुसरण करना चाहिए।।11।।

छोटे बच्चों को माता पिता, आँखों के लिए पलक, पत्नी के लिए पति, प्रजाओं को राजा, सन्यासी को गृहस्थ और अज्ञ लोगों के लिए ज्ञानी लोग हितकारी बन्धु होते हैं। वैसे ही आप को प्रजापति, प्रजाओं के लिए हितकारी बन्धु होना चाहिए।।12।।

प्राणियों के देह में भगवान श्री हरि अन्तरात्मा होकर रहते हैं। प्राणियों के शरीर को श्री हरि का वास स्थान है इसको समझ लीजिए। उनको नष्ट नही करना है। उनकी रक्षा करने से भगवान हरि सन्तुष्ट होते हैं

।।13।।

देह नाम के हृदयाकाश में बढ़ने वाले तरंग जैसे महा क्रोध को भगवान के विचार से दमन करने वाला त्रिगुणों को पार कर मोक्ष को पाता है ।।14।।

इसी कारण आप अब तक जो वृक्षों को जलाए हैं, वह बस है। जो बचे हैं उनको आपकी रक्षा मिले। उनकी रक्षा करने वाली मारिषा नाम की कन्या को आप पत्नी रूप में स्वीकार करें, आगे की सृष्टि कीजिए।।15।।

इस रीति से चन्द्र देव प्रचेतसों को समाधान करते हुए प्रम्लोचा नाम की अपसरा की पुत्री मारिषा को दे दिये। प्रचेतस उनसे शादी किये।।16।।

हे राजा, ब्रह्मदेव के वर से पहले जन्म लिए हुए दक्ष प्रजापति पुनः प्रचेतस पुत्र होकर मारिषा से उत्पन्न हुए। वह दक्ष के प्रजासृष्टि से तीनों लोक भराये ।।17।।

दक्ष को साठ पुत्री हुयी। उन पुत्रियों में दक्ष को बहुत प्यार था। अपने संकल्प और वीर्य से उनसे की हुयी सृष्टि के बारे में बोलता हूँ। ठीक तरह से सुन लो।।18।।

प्रारम्भ में दक्ष प्रजापति संकल्प मात्र से आकाश, भूमि और जल में वास करने वाले देव असुर और मनुष्य आदि समस्त तरह के जीवियों की सृष्टि की।।19।।

इससे सृष्टि की पूर्ण रूप से वृद्धि नही हुयी। उसको देख कर दक्ष प्रजापति विंध्य पर्वत में कठिन तप का अनुष्ठान करने लगे ।।20।।

वहाँ पाप नाश करने वाले अघमर्षण नाम के उत्तम तीर्थ में तीन बार नहाते हुए कठिन तप कर के श्री हरि को प्रसन्न कर लिए।।21।।

वे हंसगुहीय नाम मंत्र से भगवान अधोक्षज का स्तोत्र करने लगे। उससे वे श्री हरि के प्यार को पा लिए। राजा तुमको उस मंत्र का उपदेश करता हूँ।।22।।

प्रजापति स्तोत्र करते हैं। भगवान दोष दूर और गुण पूर्ण हैं। उनका रूप अनुभव के अनुसार सहज है। गुणत्रय के कार्य के लिए कारण प्रकृति और पुरूष के वे बन्धु हैं। विषय पदार्थो को जो परम पुरूषार्थ मानते हैं, उनको वे दृश्य नही होते। स्वतः सिद्व और स्वयं पूर्ण भगवान को मेरा नमस्कार।।23।।

जीव और भगवान एक ही शरीर में रहते हैं।वे दोनों मित्र हैं। किन्तु जीव के लिए भगवान प्रेरक हो कर उसके शरीर में रहते हैं। किन्तु जीव इसको जानता नही। उसकी दृष्टि स्थूल होती है, वह सूक्ष्म विषयों को नही जानता। जिसको सही ज्ञान नही है प्रभु उसके सामने होते हुए भी वह उनको मित्र रूप से जान नही सकता। प्रभु के अभिप्राय को जानने की सूक्ष्म दृष्टि उसमें नही रहती। ऐसे सर्वशक्तिशाली भगवान को मै नमस्कार करता हूँ।।24।।

देहाभिमानी कुबेर, प्राणभिमानी मरुत्, इन्द्रियाभिमानी इन्द्रादि देव, मनोभिमानि रुद्र, पंचभूताभिमानी गणपति, शब्दाभिमानी बृहस्पति इत्यादि ये सारे देवगण अपने को और इस प्रपंच को ठीक तरह से जानते नहीं। वे भगवान को कैसे समझते है? जीवाभिमानी चतुर्मुख ब्रह्म हरि की कृपा से अपने को और इस प्रपंच को उनके गुण और क्रिया के साथ ठीक तरह से जानते हैं। किन्तु भगवान को वे भी पूर्ण रूप से समझ नही सकते। क्योंकि भगवान की महिमा अपार है, वे सर्वज्ञ हैं। अपनी महिमा को केवल वे ही जानते हैं। ऐसे भगवान को नमस्कार है।।25।।

इस नामरूपात्मक प्रपंच को समझने वाला मन स्वप्न सुषुप्ति इत्यादि अवस्थाओं में जीव की इच्छा के अधीन न होते हुए केवल भगवान की इच्छा मात्र से वाह्य कार्य कारित्व से छुटकारा पाता है। इसी कारण उसको वाह्य प्रपंच का अनुभव और स्मरण चले जाते हैं। स्वप्न से उठने के बाद जीव को अपने से अलग होते हुए स्वप्नादि अवस्थाओं को जोड़ने वाले भगवान और एक है। ऐसा ज्ञान आ जाता है। ऐसे मुख्य प्राण के अन्दर रहने वाले नित्य निर्दुष्ट भगवान को मेरा नमस्कार।।26।।

ज्ञानी लोग अपने हृदय कमल में रहने वाले भगवान को अपने मन से देखते हैं। उनके हृदय में भगवान तीन रीति से और नौ शक्तियों के साथ रहते हैं। वहाँ चौदह तत्वों के नियामक होकर पन्द्रहवाँ हो कर रहते हैं। हृदय में हरि इतने वैभव से बैठे हुए भी अयोग्य व्यक्ति को दर्शन न देते हुए गूढ़ रीति से रहते हैं। अरणी में रहने वाले अग्नि मंथन करने के बाद अरणी से अलग दिखता है। वैसे ही भगवान अलग रूप से रहते हैं।।27।।

विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञान, क्रिया, योग, प्रह्वी, सत्या, ईशाना, अनुग्रह नाम की भगवान की नौ शक्तियाँ होती हैं। इनके साथ रमा, ब्रह्म, वायु, शेष, गरुड़, रुद्र रूप की नौ शक्तियाँ भगवान के इन नौ शक्ति के अधिष्ठान होते हैं। ये छ: विध के नौ शक्तियाँ ज्ञान, इच्छा, क्रिया नाम के तीन तीन रूपों में रहती है। भगवान के स्त्री रूप वाली विमला देवी इच्छा विमला, ज्ञान विमला और क्रिया विमला नाम के तीन रूप वाली होती हैं। इस रीति से लक्ष्मी ब्रह्मादी स्वरूप वाली नव शक्तियाँ तीन तीन रूप वाली होती हैं। ये सारे हृदय के अष्टदल कमल में रहते हैं। कमल के आठ दल में आठ देवियाँ और बीच के कर्णिका में अनुग्रह देवी रहती हैं। ये आठ देवियाँ भगवान को चामर चलाती है। बीच में कर्णिका के ऊपर अग्नि मण्डल के ऊपर ज्वाला में आसन रूप में अनुग्रह देवी रहती हैं। उसके ऊपर शेषशायी होकर रमारमण सोया करते हैं। आठ देवियाँ चामर के साथ, क्रमानुसार छत्र, चामर, व्यजन, दर्पण, गीत, नृत्य, वाद्य और स्तोत्रों से सेवा करती हैं। अनुग्रह देवी उन सबको भगवान श्री हरि को अर्पण करती हैं।

दु:खियों के हृदय में रहने वाले श्री हरि को, उनके दु:ख का लेप नही होता क्योंकि उनकी स्वरूप भूत शक्ति इतनी बड़ी है। उनका वर्णन वेद भी नही कर सकते। उनके गुण भी अगणित हैं। उनको प्रकृति का

परिणाम नही होता वे सदा काल सुख स्वरूप हैं। सारे शब्द उनके गुण गान करते हैं। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त उनके प्रतिबिम्ब मात्र है। ऐसे भगवान मुझसे प्रसन्न हो।।28।।

हम बात से जो कहते हैं, बुद्धि से, इन्द्रियों और मन से जो जो समझते हैं, वे सारे भगवान के रूप नही हैं। इस संसार के लौकिक प्रमाणों के लिए वे गोचर नही हैं। इसी कारण वे लौकिक वस्तुओं से भिन्न हैं। लौकिक वस्तुओं ने प्रकृति के गुण के कारण आकार और रूप पाते हैं त्रिगुणों से बद्ध हैं। भगवान त्रिगुण रहित है, और स्वाभाविक लक्षण वाले है।।29।।

जिस स्थान में, जिस काल में, जिस मूल वस्तु से, जिसका होकर, जिस वस्तु को, जिसके लिए, जिस रीति से, जो भी जिसकी प्रेरणा से कर रहा है, उन सबको, उन सारी क्रियाओं को और दूसरों से दी गयी प्रेरणा के लिए भी भगवान ही कारण हैं। इस ब्रह्माण्ड का अस्तित्व ही भगवान के अधीन है। छोटे हो चाहे बड़े ब्रह्मादि सारे सृष्टिकर्ताओं को, वे स्वतंत्र रीति से सृष्ट करते हैं। वे अनादि काल से रहते आये हैं। वे ही अद्वितीय ब्रह्म हैं। उनके सारे अवतार, गुण,क्रियायें एक समान हैं।।30।।

भगवान की इन शक्तियों के बारे में कई लोग सहमत हैं, और कई लोग इसको मानते नही। दोनों को उनके बारे में पूर्ण ज्ञान नही है क्योंकि उनके गुण अनन्त हैं। उनको मानने वाले और न मानने वाले दोनो भी उनको समझने में असमर्थ हैं। जो उनको मानते नहीं वे उनके एक गुण को भी समझ नही पाते ऐसे सर्वोत्तम नारायण को नमस्कार।।31।।

मुझसे अलग और एक भगवान है ऐसे मानने वाले और न मानने वाले अलग अलग एक के विरुद्ध एक अलगवाद करने वाले दोनों के अभिप्राय का विषय भगवान ही हैं। ये दोनों वाद करने वाले भगवान के बारे में ही चर्चा करते हैं। प्रत्येक वस्तु और से भिन्न होकर रहता है और वह पहले जैसे नही इसके साथ वह वस्तु स्वयं होकर है ही नही बोलने वाले परस्पर विरुद्ध वाद करते रहते हैं। इन दोनों वादों के अनुसार भगवान उनको फल देते हैं। सांख्य और योग यानी ज्ञान काण्ड और कर्म काण्ड दोनों परस्पर विरोध के बिना जीव से भिन्न भगवान के अस्तित्व को पूर्ण रूप से मानते हैं। ऐसे अलौकिक परब्रह्म परमात्मा नारायण को नमस्कार।।32।।

भगवान अपने मूल रूप में, वे अनन्त होते हुए भी अपने लीलाओं को और किसी को दिखाते नही। इसके लिए उनकी लीलाओं का वर्णन करने वाले का नाम प्रसिद्ध नही हैं। वे अपने सुन्दर रूपों को इस लोक में दिखाते नही, इसके लिए वे रूप प्रसिद्ध नही हैं। किन्तु उनके अवतारों में अवतारों के रूप और लीलाओं को, दामोदर, रावणारि इत्यादि रूप और नाम से वे प्रसिद्ध हैं। यह उनके पाद सेवक भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए है। नहीं तो वे अपने अवतार रूप में भी मूल रूप जैसे स्वभावत: अव्यक्त हैं। ऐसे भगवान मुझसे प्रसन्न हो जायँ।।33।।

इस देह में रहने वाले भगवान सही शास्त्रों से और दुष्ट शास्त्रों से उन लोगो की योग्यता के अनुसार

समझे जाते हैं। पंच भूतात्मक इस शरीर में रहने वाले मुख्य प्राण जैसे अनादि काल से रहते हैं, लोग इनको जानते हैं, ऐसे भगवान मेरी इच्छाओं को पूर्ण करें।।34।।

श्री शुकदेव बोले - हे राजन्, दक्ष प्रजापति विंध्य पर्वत के अघमर्षण तीर्थ में स्नान करते हुए इस प्रकार स्तोत्र करने के बाद भक्तवत्सल भगवान उनको दर्शन दिये।।35।।

भगवान गरूड़ के कंधे के ऊपर अपने पाँव रखे हैं। लम्बे लम्बे आठ भुजायें हैं। आठों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, खड्ग, ढ़ाल, बाण, कमान, पाश और गदा को धारण किये हैं।।36।।

वे पीताम्बर धारण किये हैं। गले से लेकर पाद तक लटकती वनमाला को धारण किये हैं। नील मेघ श्याम प्रसन्न आँख वाले श्री हरि की छाती में श्रीवत्सकौस्तुभ शोभाय मान है।।37।।

सिर के ऊपर बहुत बड़ा किरीट धारण किये हैं। मकर कुन्डल कान में शोभायमान है। कटिबन्ध और अंगूठी, हाथ में और पाँव में धारण करने वाले आभूषण भुजकीर्तियों के साथ शोभाप्रद बने हैं।।38।।

तीनों लोकों को मोहित करने वाले तीनों लोकों के स्वामी भगवान नारद, नन्द, सुनन्दादि पार्षदादि देवताओं से घिरे हुए हैं।।39।।

सिद्व, गन्धर्व और चारण उनके गीत गाते हुए स्तुति कर रहे हैं। भगवान के इस महान अद्भुत रूप को देख कर दक्ष प्रजापति भय के साथ परमानन्द के युक्त होकर दण्डवत प्रणाम किये।।40।।

पर्वत के झीलों से जैसे नदी भर जाती है, वैसे उभरे हुए आनन्द से भरा हुआ दक्ष प्रजापति का वागिन्द्रिय भर गया। वह कुछ भी बोल नही सके ।।41।।

दक्ष प्रजापति अपनी सन्तान को बढ़ाना चाहते थे किन्तु मुँह से कुछ भी बोल नही पाये। जीवों के चित को जानने वाले जनार्दन प्यार से बोले।।42।।

श्री भगवान बोले - हे महा भाग्यशाली दक्ष, तुम्हारा तप पूर्ण हो गया तुम दृढ़ श्रद्धा से और गाढ़ भक्ति से मुझको पा चुके हो।।43।।

प्रजापति, मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुमने प्रजाभिवृद्वि के लिये तप किया है। मै भी चाहता हूँ प्रजा की अभिवृद्वि हो, समृद्वि हो।।44।।

ब्रह्मा, शिव, प्रजापति, मनु और अन्य देवश्रेष्ठ ये सारे मेरे तिरोहित रूप हैं। मैं आप लोगों में विशेष रूप से रहता हूँ। मेरे रहने के कारण आप प्रजासमृद्वि कर रहे हैं।।45।।

तप के अभिमानी रुद्र मेरे हृदय से जन्म लिये हैं, और वे वहीं वास करते हैं। इसके लिए मै तप को प्यार करता हूँ। विद्याभिमानी उमा मेरे शरीर से, क्रियाभिमानी इन्द्र मेरे आकृति से और यज्ञाभिमानी देवताएँ अन्यान्य अंगों से, धर्माभिमानी यम मध्य देह से, मुख्य प्राण मेरे प्राण से, ब्रह्मा मेरे चित्त से, सूर्यादि देवता

आँख इत्यादि इन्द्रियों से जन्म लेकर वहीं रहते हैं।।46।।

आप से तप करके पाया हुआ यह मेरा चिन्मय रूप ऐसा ही प्रलयकाल में भी था। उस समय अन्दर बाहर और कुछ नही था। मेरे अनुग्रह के बिना दर्शन न देने वाला गुण पूर्ण यह रूप प्रलय काल मे आँख मूँद कर बैठा था। देखने से नीद लगा जैसा लगता था।।47।।

मेरे सारे गुण प्रत्येक स्वयं अपरिमित हैं। ऐसे मेरे अनन्त गुण हैं,मै अनन्त रूप वाला हूँ। मेरे नाभिकमल से प्रथम अयोनिज ब्रम्हा जी की सृष्टि हुई।।48।।

मेरी शक्ति से भरा हुआ वह महापुरुष सृष्टि कार्य में लगा किन्तु वह सोचा कि मै इस कार्य में असमर्थ हूँ।।49।।

इसके लिए मैं उसको तप करने का आदेश दिया। उसके अनुसार ब्रह्मा जी तीव्र तप किये। उस तप बल से वे नौ प्रजापतियो को सृष्ट किये ।।50।।

तप से ही प्रजा वृद्धि होती है। तुमने ऐसा महातप किया है। अब तुम पंचजन प्रजापति की पुत्री **असिक्नी** से शादी करो।।51।।

सहधर्मिणी पत्नी से दाम्पत्य जीवन करते हुए बहुत से ये प्रजा सृष्टि करते रहो।।52।।

इसके बाद सारी प्रजाएँ मेरी इच्छा के अनुसार स्त्री से ही बच्चों को पैदा करें और मेरी आराधना करें।।53।।

भगवान की इन बातों को दक्ष प्रजापति लक्ष्य देकर सुन रहा था । वह देखते देखते भगवान स्वप्न में जैसे अदृश्य हो गये।।54।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में छठा स्कन्ध में चौथा अध्याय समाप्त हुआ।।

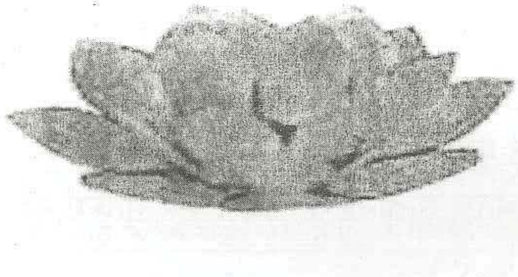

अध्याय पाँच

श्री शुकदेव जी कहे - भगवान की इच्छा के बल से दक्ष प्रजापति ने **असिक्नी** नाम की अपनी पत्नी से हर्यश्व नाम के दस हजार पुत्रों को पाये।।1।।

दक्ष प्रजापति के ये दस हजार पुत्र एक तरह के स्वभाव और आचार वाले हर्यश्व नाम के एक ही नाम वाले थे। वे अपने पिता की आज्ञानुसार प्रजा सृष्टि के हेतु तप करने पश्चिम दिशा में गये।।2।।

वहाँ सिन्धु सागर के संगम क्षेत्र में नारायण सरोवर नाम का तीर्थ है। सिद्ध और मुनियों वहाँ तप करते हैं।।3।।

हर्यश्व के वहाँ स्नान करने मात्र से उन सबके अन्तःकरण में रहने वाला रागद्वेषादि मल नष्ट हो गया। उनका परम हंस सन्यास धर्म में मन लग गया।।4।।

किन्तु पिता जी के आदेश के अनुसार प्रजावृद्धि के लिए उन्होने कठोर तप किया। सन्यास इच्छा रखते हुए प्रजा वृद्धि के लिए तप करने वाले हर्यश्व को देवर्षि श्री नारद जी देख लिए।।5।।

वे उनसे पूछे - हे हर्यश्व, आप लोग प्रजापालक हैं, किन्तु मूर्ख जैसे व्यवहार कर रहे हैं। **भूमि के अन्त को देखे बिना** आप कैसे सन्तान पाओंगे?।।6।।

एक पुरुष वाले देश को, अन्दर गये हुए लोगों को फिर वापस न आने का द्वार न होने वाली गुफा को, अनेक रूप वाली स्त्री को, व्यभिचारिणी के साथ रहने वाले पति को, दोनों तरफ बहने वाली नदी को, पचीस लोगों के एक साथ रहने वाले अद्भुत घर को, विचित्र बातें करने वाले हंस को, तलवार की धार के समान तीक्ष्ण चक्र को, और आपके सर्वज्ञ पिता के आदेश को न जानने वाले आप लोग अनुरूप संतति को कैसे पाओंगे।।7,8,9।।

श्री शुक जी कहते हैं। नारद जी की इन बातों को सुनकर हर्यश्वों ने अपने सहज विचार शक्ति से चिन्तन करने लगे।।10।।

इस भूमि के अन्त को देखना, इसका अर्थ होता है, इस लिंग शरीर के भंग करने के उपाय को जान लेना है। यह जीव बीज जैसे सृष्टि में रहता है। यह अनादि लिंग शरीर नाम की मिट्टी में रहता है। मिट्टी में रहने वाला बीज पानी मिलने के बाद अंकुरित हो जाता है। वैसे ही लिंग शरीर वाले जीव भगवत कृपा से स्थूल शरीर को पा लेते हैं। जीव के मूल भूत आनन्द का अनुभव करने के लिए इस लिंग शरीर का भंग होना चाहिए। इसको उपयोग न होने वाला सन्तानोत्पत्ति जैसे कर्म सत्कर्म नही होते। वे असत्कर्म होते हैं। उनको करने से क्या लाभ है?।।11।।

भगवान एक है, स्वतंत्र है, उनके लिए तीनों तरह की अवस्थायें नही होती हैं। वे तुर्य पुरुष हैं। उनके लिए वे ही आश्रय हैं। यह सारे जगत उनका ही राज्य है। बहुत प्रयत्न करके हमे उनका दर्शन करना है।

उनको देखने में उपयोग न होने वाले इस सन्तानोत्पत्ति कर्म से क्या फल है।।12।।

स्वर्ग को पाया हुआ जीव पुण्य क्षय होने के बाद इस जगत में वापस आना है। किन्तु एक बार भगवान के पद मोक्ष को जो पाता है वह वापस नही आता। उन सर्वान्तर्यामी भगवान को न समझाने वाला सन्तानोत्पत्ति कर्म से क्या उपयोग है।।13।।

व्यभिचारिणी स्त्री अनेक तरह के वेष भूषा धारण करती है। वैसे ही बुद्धि रज और तमो गुण के प्रभाव से अनेक तरह के रूप धारण करती है। उसके संग से दूर रहने में उपयोग न होने वाला इस संतानोत्पत्ति कर्म से क्या फायदा है।।14।।

दुर्बुद्धि के संग से भगवान के विषय की प्रज्ञा चली जाती है। उस सम्पदा को खोया हुआ आदमी इस संसार में दु:ख पाता है, वैसे ही स्वर्ग और नरकों में फिरता रहता है। इस ज्ञान को न देने वाला संन्तानोत्पत्ति कर्म से क्या लाभ है।।15।।

चन्द्र के उदय होने से समुद्र में उछाल आता है। उस समय समुद्र में मिलने वाली नदी पीछे हटती है। जब समुद्र उतरने लगता है तब नदी समुद्र की ओर बहती रहती है। वैसे ही भगवान की इच्छा सृष्टि और प्रलय दोनो दिशा में बहती रहती है। प्रवाह, तप, विद्या इत्यादि तट की दिशा में बहने वाली भगवान की इस बन्धक इच्छा को पारकर तट को पाना कष्ट साध्य है। भगवान की यह इच्छा काम क्रोध आदि को उत्पन्न करने वाला तेज ही है। इस धारा को हरिकथा सुनते हुए पारकर उस तट को जाना है। इस विषय को अहंकार से भूल गये और शास्त्रकथा श्रवण नही करे, भगवान का अनुग्रह पाने का साधना न करे तो इस सन्तानोत्पत्ति कर्म से क्या लाभ है।।16।।

पचीस लोगों के वास करने वाला अद्भुत घर का अर्थ, मन मिल के ग्यारह इन्द्रियाँ, पंच महाभूत, पंचतन्मात्रायें, प्रकृति, महतत्व, अहंकार और ये जीव ये पचीस तत्वों के लिए घर के स्वरूप में रहने वाले षड्गुण पूर्ण, अद्भुत आकार वाले भगवान ही हैं। वे जीव के अन्दर प्रेरक होकर रहते हैं। जीव उनको जानता नही। ऐसे जीव को इस सन्तानोत्पत्ति कर्म से क्या लाभ है।।17।।

विचित्र भाषा करने वाला हंस इसका अर्थ समाधि भाषा, दर्शन भाषा, गुह्य भाषा नाम के विचित्र भाषा में बोलने वाला शास्त्र होता है। भगवान के बारे में प्रतिपादन करने वाला यह शास्त्र भगवान के परापरत्व को विश्लेषण करते हुए विवरण देता है। हंस पक्षी जैसे दूध और पानी को अलग अलग करता है, वैसे ही शास्त्र बन्ध मोक्ष के साधनों का विवेचन करता है। ऐसे शास्त्र का चिन्तन न करते हुए इस संतानोत्पत्ति कर्म से क्या लाभ है।।18।।

काल चक्र की धारा तलवार जैसी बहुत तीक्ष्ण होती है। नाना विध कर्मों में मानव को लगाकर वह जीवियों को चकराता रहता है। वह काल चक्र स्वतंत्र है, भगवान को छोड़कर किसी के अधीन नही है। उस काल चक्र का स्वरूप को न जानते हुए इस संन्तानोत्पत्ति कर्म से क्या लाभ है।19।।

पिता का आदेश इसका अर्थ होता है, शास्त्र की विधि। दूसरे जन्म के कारण बनने वाला शास्त्र

को पिता मानते हैं। निवृत्ति योग्य को वह निवृत्ति मार्ग का उपदेश देता है। उसको न जानते हुए त्रिगुणों से युक्त प्रवृत्ति मार्ग को पकड़ने से निवृत्ति मार्ग कैसे मिलेगा।।20।।

नारद जी की इन बातों को सुनकर सदाकाल एकाभिप्राय से रहने वाले हर्यश्व नारद जी की परिक्रमा और दण्डवत प्रणाम करके सन्यासी बनकर चले गये।।21।।

उसके बाद नारद जी वीणा को धारण कर स्वर ब्रह्म में व्यक्त होने वाले भगवान के श्री चरणों में मन रखते हुए निरन्तर ध्यान करते करते लोक संचार करने लगे।।22।।

अपने पुत्र स्वभाव से अच्छे हैं किन्तु नारद जी के उपदेश के कारण सन्यास ले लिए, यह सुनकर दक्ष प्रजापति दु:ख से जलने लगे। अच्छे पुत्र भी कभी कभी दु:ख के कारण बनते हैं।।23।।

ब्रह्मा जी दक्ष प्रजापति के पास आकर उसे सान्त्वना दी। दक्ष प्रजापति अपनी पत्नी **असिक्नी** की गर्भ से शबलाश्व नाम के एक हजार पुत्रों को पाये।।24।।

वे भी पिता के आदेश के अनुसार अच्छी सन्तानोत्पत्ति के लिए संकल्प करते हुए वही नारायण सरोवर को तप करने के लिए चले गये।।25।।

वहाँ केवल स्नान करने से ही उनके अन्त:करण में रहने वाले रागद्वेष चले गये। वे श्रेष्ठ मंत्र का जप करते हुए बड़ी तपस्या का आचरण किये।।26।।

कई महीने वे केवल पानी पीकर रहे और कई महीने वे हवा से ही अपने पेट को भरे। नीचे का मंत्र का जाप करते हुए मंत्राधिपति भगवान का आराधना की।।27।।

हे प्रणवशब्द वाच्य भगवान हम आप का ध्यान कर रहे हैं। जीवों के शरीरों में रहने वाले हे सर्वोत्तम और सब के स्वामी आप शुद्ध बल और ज्ञानादि गुणों के लिए आश्रय हैं, आप अत्यन्त निर्मल हैं। आपको हम नमस्कार करते हैं ।।28।।

हे राजन, इस रीति से प्रजा सृष्टि में मन रखने वाले उन शबलाश्वों को भी नारद जी ने पहले के समान कूट बातों को कहते हुए उपदेश दिये।।29।।

हे शबलाश्व, आप मेरी बात सुनिए। आप अपने भाइयों में प्यार रखते हैं। आप भी उन्ही का अनुसरण करते हुए सन्यास लीजिए।।30।।

भाइयों के सही मार्ग का अनुसरण करने वाले धर्मज्ञ भाइयों को पुण्य मिल कर मोक्ष का मार्ग बन जाता है। वे देवताओं के साथ सुख पाते हैं।।31।।

इस प्रबोधन के साथ नारद जी चले गये उनका दर्शन कभी भी व्यर्थ नही होता। शबलाश्व अपने बड़े भाइयों के पद चिन्हों का अनुसरण करते हुए सन्यास ले लिए।।32।।

अन्दर के आँखों को दिखने वाले भगवान के पास ले जाने वाला अत्यन्त सुन्दर निवृत्ति मार्ग को वे पकड़ लिए। वे कभी भी प्रवृत्ति मार्ग पर नही आय।।33।।

दक्ष प्रजापति ने इस समय अनेक उत्पातों को देखे। पहले की तरह नारद जी ने इन पुत्रों को भी निवृत्ति

मार्ग का उपदेश दिया तथा उसको सुनकर वे पुत्र भी सन्यास ले लिए हैं, यह समाचार भी सुना।।34।।

नारद जी का विचार था कि पुत्रों का अनुसरण करते हुए पिता दक्ष प्रजापति भी निवृत्ति मार्ग को अपनायेंगे। किन्तु दक्ष प्रजापति पुत्र शोक के कारण नारद के ऊपर क्रुद्ध हो गये। उनका अधर कांप रहा था।।35।।

दक्ष कहते हैं - हे पापी नारद! देखने में तुम सज्जन दिखते हो। किन्तु तुमने मेरे सारे पुत्रों को बिगाड़ दिया। पुत्र कि कामना करने वाले उनको तुमने सन्यास का मार्ग दिखाया।।36।।

मेरे पुत्र देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण को नही चुकाएँ हैं। कर्म के स्वरूप के बारे में वे विचार भी नही किये हैं। इसी कारण हे पापी नारद तुमने मेरे पुत्रों को सन्यास धर्म का बोधन करके उनको संसार सुख अथवा मोक्ष मार्ग दोनों से वंचित किया है।।37।।

तीन ऋणों को चुकाने के बाद ही मोक्ष मार्ग को पकड़ना है। ऋण को न चुकाते हुए निवृत्ति मार्ग को जो पकड़ता है उसका अध: पतन होता है।

हे नारद! तुम्हारे हृदय में दया का लवलेस भी नही है। मासूम लड़कों की बुद्धि का नाश किया है। इसके बाद भी लज्जा विहीन होकर भगवान के समीप में फिरते रहते हो। यह भगवान के लिए भी कलंक है।।38।।

भगवान के भक्त सकल प्राणियों पर दया करते हैं। और अनुग्रह करने में आतुर रहते हैं। तुम वैसे नही हो। विश्वास से रहने वाले में तुम कलह निर्माण करते हो, मित्रता को शत्रुता में परिवर्तित करते हो।।39।।

तुम ज्ञानी के वेष पहनते हो। तुम्हारे कथन से हमारे पुत्रों को वैराग्य आ गया। यह हम और किसी से नही देखा। तुमने ऐसा समझा है कि उपदेश से वैराग्य आता है और मोह पाश कटता है।।40।।

किन्तु विषय पदार्थ को न भोगते हुए उनकी तीक्ष्णता का अनुभव के बिना ज्ञान का उदय नही होता है। दूसरे लोगों की बुद्धि को बिगाड़ने से वैराग्य स्वयं नही आता।।41।।

प्रजा की अभिवृद्धि के कर्म में हम नियुक्त हैं। हम अपने गृहस्थ धर्म का पालन कर रहे हैं। तुमने हमारे पुत्र हर्यश्वों की बुद्धि बिगाड़ने से हमारे प्रति बहुत बड़ा अपराध किये हो।।42।।

अब पुन: संततिवृद्धि करने हेतु तप करने वाले शबलाश्वों का भी तुमने बुरा किया है। इसके लिए मै तुम्हे शाप देता हूँ, तुम एक स्थान पर न रहते हुए सदा काल तीनों लोको में संचार करते रहो।।43।।

श्री शुक देव कहते हैं - नारद जी दक्ष से दिए हुए शाप को हसन्मुख से "वैसा ही हो" कहते हुए स्वीकार किये। समर्थ आदमी को **सहन** करना ही योग्य है।।44।।

प्रवृत्ति मार्ग में रहने वाले बच्चों का दिमाग खराब किया यह दक्ष प्रजापति की बात सही नही थी। नारायण सरोवर में उतरते ही उनके रागद्वेष मिट गये। उनमें प्राप्त वैराग्य को नारद जी ने दृढ़ किया। इसको न समझते हुए शोक तप्त दक्ष शाप दिये। इससे नारद जी कुपित न होते हुए हरीच्छा मानकर स्वीकार किये। 'साधूनां भूषणं क्षमा'।।45।।

।।यहाँ श्रीमदभागवत महापुराण में छठा स्कन्ध में पाँचवा अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय छः

श्री शुकदेव जी कहे - पुत्र शोक से दु:खित दक्ष को ब्रह्मा जी ने सान्त्वना दी। इसके बाद वह दक्ष अपनी पत्नी असिक्नी के गर्भ से साठ पुत्रियों को पाए। उनको अपने पिता से बहुत प्यार था।।1।।

नारद जी दक्ष से दिए हुए शाप को सहर्ष स्वीकार किये थे। इसको देखकर दक्ष को लगा कि वे होने वाले बच्चों को भी सन्यास दीक्षा दे सकते हैं। इसके लिए इस बार दक्ष ने पुत्रियों को पाया।

दक्ष ने अपने दस पुत्रियों को यम धर्म को शादी में दिया। तेरह पुत्रियों को कश्यप ऋषि को, काल का नियामन करने वाले अपनी सत्ताईस तारा नाम के पुत्रियों को चन्द्र को, दो को भूत को, दो को अंगिरस ऋषि को, दो को कृशाश्व को बची हुई चार पुत्रियों को पुन: कश्यप को दिया।।2।।

इन पुत्रियों के नाम को बताता हूँ। उनके वंश से तीनों लोक भर गये ।।3।।

उनका नाम क्रमश: भानु लम्बा, ककुभा,जामी, विश्वा, साध्या,मरुत्वती, वसु मुहूर्ता, संकल्पा ये दस यम् धर्म की पत्नियाँ, उनके पुत्रों का नाम सुनो।।4।।

भानु के पुत्र वेदऋषभ, उसका पुत्र इन्द्रसेन, लम्बा के पुत्र विद्योत, उनके पुत्र मेघाभिमानि देवता।।5।।

ककुभा के पुत्र संकट, उसके पुत्र कीटक। भूमि के अगम्य स्थान के अभिमानी देवताएँ जामी के पुत्र है। स्वर्गाभिमानी भी जामी का पुत्र है। उसका पुत्र नन्दि है।।6।।

विश्वा के पुत्र विश्वेदेवताएँ। उनके लिए सन्तान नही हुआ। साध्या से साध्य नाम के देवताएँ जन्म लिए। उनके पुत्र का नाम अर्थसिद्धि पड़ा।।7।।

मरूत्वति के पेट से मरूत्वन्त और जयन्त नाम के दो पुत्र जन्म लिए। उनमें उपेन्द्र नाम का जयन्त वासुदेव का अंश है।।8।।

मुहूर्ता से मुहूर्त के अभिमानीदेवताएँ जन्म लिए। वे अपने अपने मुहूर्त में होने वाले फलों को लोगों को देते हैं।।9।।

संकल्पा का पुत्र संकल्प है, उसके पुत्र काम । अष्टवसुओं ने वसु के गर्भ से पैदा हुए उनका नाम सुनो।।10।।

द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वस्तु, विभावसु ये आठ वसुओं का नाम है। द्रोण की पत्नी का नाम अभिमति है। उनके पुत्र हर्ष, भय, शोक इत्यादि के अभिमानी देवताएँ हुए।।11।।

प्राण की पत्नी ऊर्ज्वस्वती, पुत्र सह आयु, पुरोजव ये तीन उनके पुत्र हैं। ध्रुव की पत्नी धरणी, उनके

पुत्र नगरों के अभिमानी देवताएँ है।।12।।

अर्क का पत्नी वासना, पुत्र हैं तर्ष इत्यादि। अग्नि नाम के वसु को धारा देवी पत्नी बनी। उसकी दुसरी नाम है स्वाहा (इनके पुत्र होते हैं)। द्रविणक इत्यादि इनके पुत्र होते हैं।।13।।

अग्नि से कृतिका में स्कन्द नाम का पुत्र हुआ। उसको विशाख इत्यादि पुत्र हुए। दोष की पत्नी का नाम शर्वरी है। उनके पुत्र श्री हरि के अवतार शिंशुमार देव हैं।।14।।

वस्तु की पत्नी आंगीरसी। पुत्र विश्वकर्मा है। उसकी पत्नी कृती। कृति के पुत्र ही चाक्षुष मनु हैं। उनके पुत्र विश्वेश इत्यादि हैं।।15।।

विभावसु की पत्नी उषा देवी। उनके पुत्र हैं व्युष्टि, रोचिष, आतप। आतप से दिन का अभिमानी पंचयाम जन्म लिया इससे लोग कर्माचरण के लिए जागृत होते हैं।।16।।

भूत की पत्नी भूता। इससे एकादश रुद्र जन्म लिए। भूत की दूसरी पत्नी सुरूपा करोड़ों रूद्रों को अपने पुत्र रूप में पा लिया।।17।।

रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषा कपि, अजैकपात्, अहिरबुंध्न्य, बहुरूपा और महान नाम के ग्यारह रुद्र उनमें मुख्य हैं और रुद्र, रुद्रपार्षद, घोर रूप वाले प्रेत विनायक भी सुरूपा के पुत्र हैं।।18।।

अंगिरस् प्रजापति की स्वधा नाम की पत्नी पितृओं को अपने पुत्र रूप में पा ली। उनकी दूसरी पत्नी सती नाम की। वह अथर्वांगिरस नाम के वेदाभिमानि देवता को अपने पुत्र रूप में पा लिया।।19।।

कृशाश्व ने अर्ची नाम की अपनी पत्नी में धूमकेतू नाम के पुत्र को जन्म दिया। कृशाश्व का दूसरा नाम वेदशिर है। उसकी दूसरी पत्नी का नाम धिषणा है। उसके पेट से देवल और मनु नाम के दो ऋषि जन्म लिए।।20।।

कश्यप का दूसरा नाम है ताक्ष्र्य। उनके चार पत्नी। उनका नाम क्रमशः विनता, कद्रू, पतंगी और यामनी। पतंगी से पक्षियों का जन्म हुआ। यामनी से शलभ उत्पन्न हुए।।21।।

विनता देवी यज्ञपुरुष विष्णु भगवान के वाहन गरुड़ और सूर्य के सारथी अरुण को अपने पुत्र रूप में पा ली। कद्रू देवी ने अनेक नागों को जन्म दिया ।।22।।

कृत्तिका इत्यादि सताईस नक्षत्र देवताएँ चन्द्र की पत्नियाँ हैं। चन्द्र उनमें से रोहिणी नाम की पत्नी से ज्यादा प्यार करते हुए अन्य पत्नियों को अलक्ष्य करने के कारण उनके पिता दक्ष चन्द्र को शाप दिये। दक्ष शाप के कारण चन्द्र को क्षय रोग हो गया इसी कारण उसको पुत्र नही हुए बाद में चन्द्र दक्ष के प्यार को पा लिया। दक्ष के प्यार से क्षीण हुए चन्द्र की कलाएँ पुनः अभिवृद्ध हो गये। कृष्ण पक्ष में घटने वाली उनकी कलायें शुक्ल पक्ष में बढ़ने लगी।।23।।

अब कश्यप की पत्नियों को कहते हैं। लोकमाता उन का नाम सुनो। यह सारा जगत उन्ही की सन्तान है।।24।।

अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा और तिमी ये तेरह कश्यप की पत्नियाँ हैं।।25।।

तिमी से जलचर निर्माण हुए। सरमा के सन्तान क्रूर मृग हैं। गाय, बैल, भैंस इत्यादि दो नख वाले प्राणी सुरभि के हैं। बाज़ और चील इत्यादि पक्षी ताम्रा की सन्तान बने ।।26।।

क्रोध वशा का सन्तान साँप, बिच्छू इत्यादि विषारी जन्तुएँ हैं। इला के सन्तान हैं पेड़ और वृक्ष। यातुधान सुरसा के सन्तान हैं।।27।।

अरिष्टा से गन्धर्व जन्म लिए, काष्ठा से घोड़ा, गधा जैसे एक नख वाले प्राणी जन्म लिए। दनु के पुत्र है इकसठ दानव, उनमें मुख्यों का नाम बताता हूँ। सुनो ।।28।।

द्विमूर्ध, शम्बर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु, अयोमुख, शंकुशिर, स्वर्भानु, कपिल, अरुण, पुलोम, वृषपर्व, एकचक्र, अनुतापन, धूम्रकेश, विरूपाक्ष, विप्रचित्ति, दुर्जय ये अठारह उनमें प्रमुख हैं।।30।।

स्वर्भानु की पुत्री शुप्रभा के साथ नमुचि की शादी हुयी। विषपर्व की पुत्री शर्मिष्ठा को महा बलशाली नहुष पुत्र ययाति ने पत्नी के रूप में स्वीकार किया।।31।।

दनु के पुत्र वैश्वानर को उपदानवीय, हयशिरा, पुलोमा और कालका नाम की सुन्दर पुत्रियाँ हुई।।32।।

उनमें उपदानवीय को हिरण्याक्ष ने हयशिरा को क्रतु पत्नी बनाये। पुलोमा और कालका नाम के वैश्वानर के पुत्रियों को ब्रह्मा जी के आदेशानुसार भगवान कश्यप ने शादी कर लिया। पुलोमा के पुत्र पौलोमो तथा कालका के पुत्रों कालकेय, ये सारे महावीर दानव हैं ।।33,34।।

हे राजन, सुनो, आप के बाबा अर्जुन जब स्वर्ग को गये थे तब इन्द्र को सन्तुष्ट करने के लिए अकेले साठ हजार पौलोम कालकेय दानवों को नाश किये थे। ये सारे यज्ञ नाशक बने थे।।35।।

विप्रचित्ति ने सिंहिका के गर्भ में एक सौ एक पुत्रों को पा लिया। उनमें राहू सबसे ज्येष्ठ है। केतु और सौ पुत्र बाद में जन्म लिए। राहु का सिर गगन में ग्रह रूप में शास्वत हो गया।।36।।

अब अदिति की सन्तान के बारे में क्रमश: बोलते हैं, उसको लक्ष्य पूर्वक सुनो। अदिति के गर्भ में सर्व शक्त भगवान नारायण अपने अंश से उरूक्रम वामन रूप से अवतार लिये।।37।।

विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र और उरूक्रम ये बारह अदिती के पुत्र हैं।।38।।

विवस्वान् से संज्ञादेवी श्राद्धदेव नाम के वैवस्वत मनु को और यम यामनी जुड़वा को पुत्र रूप में पा

ली।।39।।

संज्ञादेवी ही घोड़ी का रूप धारण कर सूर्य से अश्विनी नाम के जुड़वा को जन्म दी। छाया देवी सूर्य से शनैश्चर और सावर्णी मनु नाम के दो पुत्रों को और तपती नाम की एक कन्या को पा लिया। तपती संवरण नाम के पति को पा ली।।40।।

अर्यमा की पत्नी मातृका के गर्भ में चर्षणी नाम के पुत्र जन्म लिए। ब्रह्मा जी ने उनमें से मनुष्य जाति का निमार्ण किया।।41।।

पूषाण को पुत्र नही हुए। शिव दक्ष के ऊपर क्रुद्ध हुए थे उस समय यह पूषाण हँस कर अपने दाँत दिखाया था। उससे वीर भद्र ने उसके सारे दातों को उखाड दिया था। उस दिन से वह पिष्ट का ही आहुति को ग्रहण करता है।।42।।

त्वष्टा की पत्नी दैत्यों की भगिनी रचना नाम की कन्या। इन दोनो में सन्निवेश और विश्वरूपा नाम के पुत्र जन्म लिये। विश्वरूपा बड़ा सामर्थ्यशाली था। आगे चल कर वह इन्द्र का गुरु बना।।43।।

वह अपने शत्रु के बहन का बेटा होते हुए भी देवता लोग उसको पुरोहित के रूप में ग्रहण किये। क्योंकि उस समय देव गुरू बृहस्पत्याचार्य ने इन्द्र के ऊपर क्रुद्ध होकर उसको त्याग दिये थे।।44।।

।।यहा श्री मदभागवत महा पुराण में छ:ठा स्कन्द में छठवाअध्याय समाप्त हुआ।।

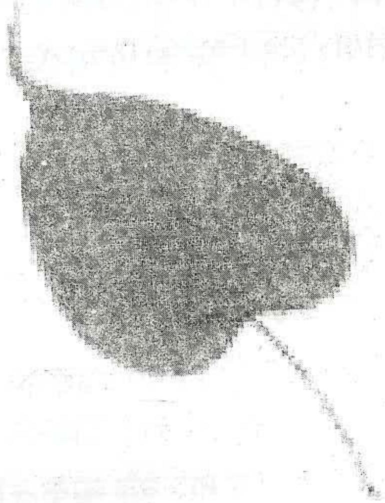

अध्याय सात

राजा परीक्षित पूछते हैं - आचार्य बृहस्पति अपने शिष्य देवताओं को क्यों त्याग दिये। उन शिष्यों से गुरु के बारे में किए हुए अपचार के बारे में कहिये।।1।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजन सुनों, भगवान इन्द्र ने तीनों लोकों का आधिपत्य पाकर अहंकार से सतपथ का उल्लंघन किया। मरुत, वसु, रुद्र, आदित्य, ऋभु, विश्वेदेवता, साध्य और अश्विनी देव ये सारे इन्द्र के आश्रय में रहते हैं। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, अप्सरायें, किन्नर, पक्षी, नाग और ब्रह्मवादी मुनि उनकी सेवा वे करते थे, स्तुति करते थे ।।2,3,4।।

ये सारे लोग सुमधुर गान गाते हुए उनका कीर्तिगान करते थे। उनके सिर के ऊपर चन्द्र मण्डल से भी शोभायमान श्वेत छत्र था। इन्द्र के चारों ओर राजाधिराजों के लिए योग्य चामर, व्यजन, आसनों से वह राजसभा सुशोभित थी। ऐसी सुधर्मसभा में देवराज इन्द्र अपनी पत्नी शची देवी के साथ सिंहासन पर विराजे थे।।5,6।।

तब उनके और देवताओं के परम गुरु बृहस्पत्याचार्य जी आस्थान में प्रवेश किये। देवेन्द्र उनको प्रत्युथान नही दिये। गौरव से उनको आसनादि नही दिये ।।7।।

बृहस्पत्याचार्य जी देव दानव आदि सभी लोगों से नमस्कार करने योग्य मुनि हैं। किन्तु देवेन्द्र उठ कर उनको गौरव नही दिए अपने आसन को छोड़कर ऊपर उठे ही नही।।8।।

तब बृहस्पत्याचार्य जी समझ गये की यह अधिकार के मद से होने वाला मनोंविकार है। वे कुछ भी नही बोलते हुए वहाँ से अपने घर वापस चले गये ।।9।।

तब देवेन्द्र ने अपने गलती को समझ लिया। अपने गुरु को किया हुआ अपमान के बारे में वह समझ गया और स्वयं का निन्दा किया ।।10।।

मैने बहुत बड़ी गलती किया है। अपने अधिकार मद से मूर्ख होकर मैंने अपने गुरु को भरी सभा में अपमान किया ।।11।।

मेरी इस स्थिति को देखते हुए कौन बुद्धिशाली लोग स्वर्ग के सिंहासन को चाहता है क्योंकि इस साम्राज्य के मद से ही मैंने असुर भाव का प्रदर्शन किया।।12।।

स्वर्ग के सिंहासन पर बैठा हुआ आदमी किसी को उठकर गौरव प्रदर्शन नही करना है, यह धारण ही बहुत गलत है।वह आदमी धर्म को ठीक तरह से जानता नही ।।13।।

उसने जो मार्ग देखा है, वह बहुत बड़ा दुर्मार्ग है। वह मार्ग घोर नरक को ले जाता है। उसके बातों में विश्वास रखने वाला पत्थर के नाव से प्रवाह पार करने वाला जैसे होता है। वे नाव के साथ डूब जाते हैं।।14।।

अब मैं अपने अहम् भाव को त्याग कर महाज्ञानी देव गुरु उने ब्राह्मण श्रेष्ठ के पाँव पड़कर उनके प्यार

को पाना चाहता हूँ।।15।।

बृहस्पत्याचार्य जी देवेन्द्र के इस विचार को अपने भविष्यत् ज्ञान से जानते थे। इसके लिए देवेन्द्र के आने के पहले ही वे किसी को न दिखाते हुए अपने घर से अदृश्य हो गये ।।16।।

इन्द्र देव आचार्य जी को बहुत ढूंढे किन्तु वे देख नही पाये। सारे देवताओं के साथ मन्त्रणा करने के बाद भी उसको समाधान नही मिला।।17।।

इस समाचार को सुनते ही सारे असुर सन्तुष्ट हो गये। वे शुक्राचार्य जी के तत्वावधान में शस्त्रों को धारण कर जोर से देवताओं के ऊपर आक्रमण किये।।18।।

उनके द्वारा प्रयोग किए गए तीक्ष्ण बाणों से देवताओं के हाथ, पैर और शिर कट गये। सारे असुरों से हारकर देवता इन्द्र के साथ ब्रह्मा जी के पास चले। नतमस्तक होकर उनसे प्रार्थना किये।।19।।

असुरों से मार खाकर आये हुए देवताओं को देख कर ब्रह्मा जी उनके ऊपर दया करते हुए प्यार से बोले।।20।।

ब्रह्मा जी बोले - देवता, तुम लोगों ने भारी अपराध किया है। ब्रह्मज्ञानी और इन्द्रिय निग्रह करने वाले श्रेष्ठ ब्रह्मण को अपने ऐश्वर्य के मद से अवमानित किये हैं।।21।।

इस अन्याय के फल स्वरूप आपकी यह दुर्गति आई है। दरिद्र और शक्तिहीन असुरों ने ऐश्वर्य और सामर्थ्य वाले आप लोगों को हरा दिये।।22।।

हे देवेन्द्र देखो। असुरों ने पहले अपने गुरु शुक्राचार्य से दुर्वर्तन किये थे उसी कारण वे दरिद्र हो गये थे। अब वे पुन: शुक्राचार्य जी का सम्मान करने से श्रीमान बन गये। वे शुक्राचार्य जी के पूर्ण अनुग्रह पाकर मेरे लोक को भी छीन सकते हैं।।23,24।।

शुक्राचार्य जी के शिष्य होकर उत्कृष्ट मंत्र बल वाले असुर लोग स्वर्ग को क्यों लक्ष्य देंगे। क्योंकि ब्राह्मण, गाय और गोविन्द के अनुग्रह वाले राजाओं को और किसी से बाधा नही होती। अन्य लोगों के लिए कष्ट होना स्वभाविक है।।25।।

इसी कारण आप लोग त्वष्टृ प्रजापति के पुत्र विश्वरूपाचार्य की सेवा करें। वह तपस्वी और संयमी ब्राह्मण हैं। असुरों के बारे में वह पक्षपाती हैं। यदि आप लोग उनकीं सहन करे तो वह आपकी सेवा से संतुष्ट होकर तुम लोगों के अभीष्टों को पूर्ण कर सकते हैं।।26।।

श्री शुक जी कहते हैं - हे राजा परीक्षित, ब्रह्मा जी की इस बात को सुनकर देवता लोग अपने दुख को त्याग दिये। वे विश्वरूपाचार्य के पास आये और उनसे आलिंगन करते हुए बोले ।।27।।

देवता गण बोले - हम अतिथि बनकर आपके आश्रम में आ गये हैं। आपको शुभ हो, आप पिता के स्थान में रहने वाले हमको समयानुसार योग्य सहकार दीजिए।।28।।

पितृओं की सेवा करना पुत्र का मुख्य धर्म होता है। बच्चों को पाकर पितृ ऋण को चुकाये हुए लोग भी पितृ सेवा करते रहते हैं। आपको तो अभी पुत्र नही हुआ है। आप ब्रह्मचारी हैं। आप को सेवा करना अनिवार्य है।।29।।

उपनयन करके वेद पाठ करने वाले आचार्य में ब्रह्मा जी का सन्निधान रहता है। उनकी सेवा से ब्रह्मा जी का अनुग्रह मिलता है। उसी तरह पिता में शिव का सन्निधान होता है। भाई में इन्द्र का, माँ में साक्षात भू देवी का सन्निधान होता है।।30।।

बहन में दया देवी का, अतिथि में स्वयं भगवान का सन्निधान होता है। परिचित अतिथि में अग्नि का सन्निधान, सारे प्राणियों में भगवान का सन्निधान होता है।।31।।

हम पितृलोग दु:खित होकर आपके पास आये हैं। शत्रुओं से हुए इस दु:ख को आपको अपने तप से दूर करना है। आपको हमारि इस बात को मानना है।।32।।

हम आपको अपने आचार्य रूप में चुन लिए हैं। आप ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण हैं। आप गुरु होकर अपने तपोबल से हमारे शत्रुओं को ठीक तरह से हरा दीजिए।।33।।

वय में हम आप से बड़े हैं, तो भी छोटे आपको नमस्कार करते हैं। आज के विशेष कारण से यह गलत नही होता। वेदतत्वज्ञान ही बड़ा माना जाता है। उसमें वय को देखने कीआवश्यकता नही है।।34।।

श्री शुकदेव बोले देवता गण इस रीति से महा तपस्वी विश्वरूपाचार्य को पौरोहित्य ग्रहण करने के लिए प्रार्थना की। उस समय वे कहे।।35।।

विश्वरूपाचार्य बोले - धर्म में निष्ठा रखने वाले पौरोहित्य को श्रेष्ठ मानते नही। उससे ब्रह्म तेज का नाश होता है। आप लोकाधिपति हैं। आपके बोलने से मैं उसको क्यों नही मानू। मै आपका शिष्य हूँ। आप जो बोलते है उसको पूर्ण करना मेरा कर्तव्य होता है।।36।।

हे लोकाधिपति देवता, विरक्तों के लिए शिलोंछवृत्ति सही मार्ग है। मै उसवृत्ति से पितृ कार्य, देव कार्य और अन्य सत्कार्यों को करते आया हूँ। मैं किस कारण से इस निन्द्य पौरोहित्य को क्यों अपनाऊ। संसार में जीव निर्वाह के लिए इस वृत्ति को दु:खी लोग अपनाते हैं।।37।।

किसान के अपने खेत में कटाई करने के बाद गिरे हुए अनाज को उठा कर उससे जीवन यापन करना शिलोंछवृत्ति होता है। तो भी मै आप के बातो को मानता हूँ। मै छोटा हूँ। आपके बातों को मै कैसे निवारण करूँ। मै धन, प्राण का भी परवाह न करते हुए आप लोगों का काम करता हूँ।।38।।

श्री शुकदेव बोले - देवताओं को दिये हुए वचन के अनुसार महा तपस्वी विश्वरूपा सकल तरह के प्रयत्न करते हुए देवताओं का पौरोहित्य का धुरी ले लिया।।39।।

शुक्राचार्य के मंत्र बल से रक्षित असुरों का शक्ति और धन धान्य सम्पद को नारायण वर्म के मंत्र बल से उनसे छीन कर विश्वरूपा ने देवेन्द्र को दे दिया।।40।।

प्रथमत: विश्वरूपा ने देवेन्द्र को नारायण वर्म मंत्र का उपदेश दिया। उस मंत्र के बल से देवेन्द्र ने अपनी रक्षा करते हुए सारे असुर सेना को जीत लिया।।41।।

हे राजा! देवेन्द्र ने नारायण कवच को पहन कर अत्यन्त सुरक्षितता से सिंह जैसे क्षुद्र मृगों को जीत लेता है, वेसे ही सारे असुरों को जीत लिया।।42।।

।।यहाँ श्रीमदभागवत महापुराण में छठा स्कन्ध में सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय आठ

राजा परीक्षित पूँछते हैं - हे पूज्य महात्मा, देवेन्द्र जिस मंत्र के बल से सुरक्षित होकर शत्रु का सैन्य, वाहन और बल को लीला मात्र से जीतकर तीन लोकों के वैभव को अपना लिया उस नारायण वर्म नाम के मंत्र को मुझे उपदेश दीजिए। देवेन्द्र शस्त्र धारण करते हुए सामने वाले शत्रुओं को युद्ध क्षेत्र में स्वयं सुरक्षित होकर कैसे जीत लिया। इसको भी बताने की कृपा कीजिए।।1,2।।

श्री शुकदेव बोले - देवताओं ने अपने पुरोहित के रूप में विश्वरूपा का चयन किये। देवेन्द्र के प्रार्थना के अनुसार पौरोहित्य स्वीकार किया हुआ विश्वरूपा उनको नारायण नाम का कवच का उपदेश दिया, उसको मैं तुम्हारे लिए बताता हूँ। एकाग्र मन से उसको सुनो ।।3।।

विश्वरूप कहते हैं। जब आपदा आ जाती है तब नारायण मंत्र रूप इस कवच को धारण करना चाहिए। सांक्रामक रोग, अनावृष्टि आद्धि-व्याधि इत्यादि अनेक तरह के आपदा होते हैं। इनको और प्राचीन कर्म निमित्त आने वाले अपस्मारादि रोग हो सकते हैं। इन सबसे निवृत्ति इस मंत्र से होती है। प्रथमतः नारायण सर्वोत्तम हैं, इसमें दृढ़ विश्वास होना चाहिए। हाथ मुह धोकर आचमन के साथ पवित्र होते हुए उत्तर की दिशा में मुह करते हुए बैठना चाहिए। मंत्र पढ़ते समय शुचित्व रखना चाहिए। अयोग्यों के साथ बात नही करना चाहिए। नारायण अष्टाक्षर और वासुदेव द्वादशाक्षर मंत्रों से अंगन्यास और करन्यास करना चाहिए।।4,5।।

अंगन्यास करने का क्रम इस प्रकार है। ''ॐ नमो नारायणाय'' इस मंत्र से ॐ कार से लेकर आठ अक्षरों को क्रमशः पाद, घुटना, जंघा, पेट, हृदय, छाती, मुख, सिर में न्यास करना चाहिए बाद में इससे विरुद्ध सिर से प्रारम्भ करते हुए पाद तक य से प्रारम्भ करते हुए ॐ कार तक आठ अक्षरों का न्यास करना चाहिए। यह सृष्टि क्रम है। बाद में आधा भाग यानि पाद से पेट तक क्रमशः और आधा भाग सिर से हृदय तक पुनः न्यास करना चाहिए यह स्थिति न्यास। इस रीति से तीन विधि के अंगन्यास करने के बाद द्वादश मंत्राक्षर से करन्यास करना चाहिए।।6,7।।

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मंत्र से **ॐ** से प्रारम्भ करते हुए क्रमानुसार आठ अक्षरों को दाहिने हाथ के तर्जनी से आरम्भ कर बायें हाथ के तर्जनी तक दोनो हाथों की अंगुलियों में न्यास करना चाहिए। बाकी के चार अक्षरों को अंगुष्ठ के गाठों में न्यास करना चाहिए। बाद में **ॐ विष्णवे नमः** इस विष्णु सप्ताक्षर मंत्र के **ॐ** कार को हृदय में न्यास करना चाहिए। **वि** अक्षर को **ॐ** कार के सहित सिर में न्यास करना चाहिए। **ष** कार को भुओं के बीच में और **ण** कार को सिखा में, **वे** कार को दोनो आँखों में **न** कार को शरीर के सारे सन्धियों में न्यास करना चाहिए। **ॐ मःअस्त्राय फट** इस मंत्र से **म** कार को दिग्बंधन में उच्चारण करना चाहिए।।8,9,10।।

ॐ विष्णवे नमः इसमें समग्र ऐश्वर्य , वीर्य, यश, सम्पत् , ज्ञान, वैराग्य इन छः शक्तियों से

युक्त उनसे अभिन्न भगवान का ध्यान करना चाहिए। बाद में नारायण वर्म मंत्र का उच्चारण करना चाहिए। उससे ज्ञान, ब्रह्म वर्चस् और शत्रु तापन शक्ति से ध्यान करने वाला भर जाता है ।।11।।

गरुड़ के पीठ में अपने पाद पद्म को रखे हुए भगवान अपने आठ हाथों में आठ आयुध क्रमश: शंस, चक्र, ढाल, खड्ग, गदा, बाण, धनु और पाश को धारण करते हुए अष्ट सिद्धि युक्त भगवान श्री हरि मुझे सारे जगहो में सभी प्रकार से रक्षा दें।।12।।

मछली के रूप वाले **मत्स्य** नाम के भगवान **पानी** में जल चरों से और वरुण पाश से मेरी रक्षा करें। स्व इच्छा से वटुरूप धारण किये हुए **वामन** रूपी भगवान **जमीन** में मेरी रक्षा करें। ब्याप्त रूपी **त्रिविक्रम** भगवान **आकाश** में मेरी रक्षा करे।।13।।

दुर्गम अरण्य और **रणभूमि** में हिरण्य कश्यप के शत्रु **नरसिंह** भगवान मेरी रक्षा करें। उनके महाअट्टहास से सारे दिशाओं में प्रतिध्वनि होती है। उससे दैत्य स्त्रियों के गर्भपात होता है।।14।।

अपने दाँतों से भूमि को उद्धार करने वाले **यज्ञवराह** भगवान मुझे **यात्रा** में रक्षा करें। पहाड़ के **सिखरों** में भगवान **परशुराम** रक्षा करें। यात्रा में **चलते समय** लक्ष्मण सहित **श्री राम** मेरी रक्षा करें।।15।।

भय करने वाले महा धनु को धारण किये हुए **नारायण** सारे **प्रमादों** से मेरी रक्षा करें। नर में रहने वाले **नर** नाम के भगवान **उन्माद** से मेरी रक्षा करें। अष्टांग योग के गुरु **दत्तात्रेय, योगभ्रंश** से मेरी रक्षा करें। त्रिगुण बन्ध को निवारने वाले भगवान **कपिल** देव मुझे **कर्म बन्ध** से रक्षा करें।।16।।

सनत् कुमार नाम के भगवान **गलत कामना** से मुझे दूर रखें। यात्रा करते समय रास्ते में मिलने वाले भगवन मूर्तियों को नमस्कार न करते हुए जाने के **अपचार** से हयग्रीव भगवान मेरी रक्षा करें। अन्य देवताओं को भगवान विष्णु के परिवार रूप में न देखते हुए **स्वतन्त्र रूप से अर्चन** करने वाले अपराध से मुझे देवर्षि महिदास रक्षा करें। सारे **नरकों** से **कूर्म** भगवान मुझे संरक्षण दें।।17।।

यहाँ सनतकुमार एक ऋषि नही हैं, भगवान का रूप हैं। देवर्षि से हमे नारद जी का अर्थ नही निकालना है। ऐतरेय उपनिषद में आने वाले महिदास हैं। ये दोनों भगवान के पूर्ण रूप हैं। नर में भगवान अन्तर्निहित होते हैं। उनके साथ नारायण रूप में स्वयं रहते हैं।

भगवान **धन्वन्तरि अपथ्य** से मेरी रक्षा करें। मनोनिग्रह वाले **ऋषभ** देव भगवान सुख दु:खादि **द्वन्द्व** से मेरी रक्षा करें। **यज्ञदेव, लोकापवाद** से और लोक पीड़ा से मेरी रक्षा करें। शेषांश बलराम में रहने वाले भगवान **नारायण साँपों** से मेरी रक्षा करें।।18।।

भगवान **वेदव्यास** जी शास्त्र के **अज्ञान** से मेरी रक्षा करें। भगवान **बुद्ध** देव जी **पाषण्डी** समूह से उनके सहवासजन्य भगवान के विस्मरण से मेरी रक्षा करें। **कलि काल** के दोष से धर्म रक्षा के लिए अवतार लिये हुए **कल्कि** भगवान मेरी रक्षा करें ।।19।।

गदाधारी **केशव** दिन के पहले भाग **प्रात: काल** में, वेणुधारी **गोविन्द** भगवान **संगव** काल में (दिन का दूसरा भाग) मेरी रक्षा करें। लक्ष्मी सहित **नारायण** दिन का तीसरा भाग **प्राह्ण** काल में मेरी रक्षा करें। दिन का चौथा भाग **मध्याहनकाल** में **विष्णु** भगवान रक्षा करें ।।20।।

उग्रधनुर्धारी **मधुसूदन** भगवान **अपराहन** काल में (दिन का पाँचवा भाग) मेरी रक्षा करें। तीनों धामों का स्वामी **माधव** देव दिन का अन्तिम भाग **सायंकाल** में मेरी रक्षा करें। रात्रि के प्रथम भाग **दोषा** में **हृषीकेश** भगवान मेरी रक्षा करें। **अर्द्ध रात्रि** और **निशीथ** में (रात्रि के दूसरा और तीसरा भाग में) अकेले **पदमनाभ** भगवान मेरी रक्षा करें।।21।।

श्री वत्स धारी **श्रीधर** नाम के भगवान **अपररात्र** में (रात्रि के चौथा भाग) मेरी रक्षा करें। खड्ग धारी **जनार्दन** भगवान **प्रत्यूष** काल में (रात्रि का पाँचवा भाग) मेरी रक्षा करें। रात्रि के अन्तिम भाग प्रात: **संध्या** काल में **दामोदर** भगवान मेरी रक्षा करें। **सूर्योदय** के काल में विष्णु भगवान मेरी रक्षा करें। इस रीति से प्रात: काल से प्रभात समय तक **सारे कालों** में कालनियामक **काल मूर्ति** भगवान **श्री पति विष्णु** मेरी रक्षा करें।।22।।

हे सुदर्शन चक्र आप प्रलय काल की अग्नि के समान तीक्ष्ण धार वाले हैं। भगवान आपका प्रयोग करें तो आप किसी बंधक से आहत न होते हुए चलते हैं। ऐसे आप हवा से प्रज्वलित अग्नि घास को जैसे जलाती है, वैसे शत्रु सैन्य को नाश कर दें।।23।।

हे कौमोदकी गदा, दो वज्रायुध आपस में लड़े तो जैसे उनसे आग उगलता है, वैसे आप से आग जलता रहता है। आप अजित भगवान विष्णु के लिए प्रिय आयुध हैं। मेरे विरोधी कूष्माण्ड, वैनायक, यक्ष, राक्षस, भूत इत्यादि ग्रहों को कूट कूट कर चूर-चूर करो। मेरे शत्रुओं को टुकड़ा टुकड़ा करो।।24।।

हे पाँचजन्य शंख, आप को भगवान जब फूंकते हैं तब आप बड़ी आवाज करते हैं। उस आवाज से आप मेरे विरोधी यातुधान, प्रेत, मातृका, पिशाच और ब्रह्म राक्षस इत्यादि क्रूर दृष्टि वाले शत्रुओं को उनके दिल को हिलाते हुए दूर भगाओ ।।25।।

तीक्ष्ण धारा वाले नन्दक नाम के हे श्रेष्ठ खड्ग ! आपसे भगवान जब वार करते हैं तब आप मेरी शत्रुओं को पूर्ण रूप से नाश करो। हे शतचन्द्र नामक ढाल ! आप मेरे पापदृष्टि वाले शत्रुओं की आँखों को ढक दो और हमारे पापों का नाश करो।।26।।

ग्रह, उत्पात, मनुष्य वर्ग, साँप, क्रूर दाँत वाले मृग और अन्य प्राणियों से हमें अपाय होता रहता है ।।27।।

ये सारे भगवान के नाम, रूप, आयुधों का नाम संकीर्तन करने से नाश हो जाय, और हमारे श्रेय के लिए जो विरोधी बनते हैं वे सारे नाश पायें।।28।।

बृहत रथन्तर और सामगान मंत्रों से, वेद के मंत्रों के साथ भगवान के अभिमानी गरुड़ और पार्षद विष्वक्सेन अपने अन्तर्यामी नारायण के नामोच्चारण से कृपा करके हमें सारे आपदो से रक्षा दें।।29।।

श्री हरि के नाम, रूप, वाहन और पार्षद ये सब हमारी बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणों को सारी विपदाओं से रक्षा करें।।30।।

कार्य कारण वाला यह प्रपंच भगवान के अधीन है। हमारे इस सत्य ज्ञान से भगवान सुप्रीत हों। इससे

हमारे सारे उपद्रवों का नाश हो।।31।।

भगवान श्री हरि स्वगत भेद वर्जित हैं। वे सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। अपनी इच्छा से वनमालादि भूषण, चक्रादि आयुध और गरुड़ादि चिन्हों को धारण किये हैं। उन्ही नामों से और अलग अलग रूपों को वे धारण करते हैं ।।32।।

भगवान के शंख चक्रादि आयुध जड़ वस्तु नही हैं। उनमें भगवान की शक्ति व्यक्त होती है। उनका रूप धारण करते हुए भगवान उन्ही नामों से कहे जाते हैं। इस यथार्थ ज्ञान के लिए शरण होकर सर्वगत सर्वज्ञ भगवान श्री हरि सब वस्तुओं में अन्दर और बाहर सारे रुपों से रहते हैं। वे सदाकाल सारे देशों में हमारी रक्षा करें।।33।।

अपने आवाज से ही इस जगत के भय को नाश करने वाले और अपने तेज से अन्य तेजों को कम करने वाले भगवान नरसिंह सभी दिशाओं से, ऊपर-नीचे, अन्दर बाहर सभी ओर से हमारी रक्षा करें।।34।।

हे देवेन्द्र, इस नारायण वर्म को हमने आपको दिया है। इस कवच को धारण करते हुए सारे असुरों को पराभव करो।।35।।

इस कवच को धारण किया हुआ कोई भी किसी को आँखों से देखे या पादों से स्पर्श करे तो वह भी सारे भयों से मुक्त होता है।।36।।

इस कवच मंत्र का पाठ करने वाले को राजा, चोर अथवा दुष्टक ग्रह की बाधा नही होती है। आधिव्याधि और रोग इत्यादि का भय भी नही होता है ।।37।।

पीछे एक बार कौशिक गोत्र के एक मुनि ने इस कवच मंत्र की साधना करते हुए एक मरुस्थल में योग बल से अपने शरीर को त्याग दिया।।38।।

एक दिन उस स्थल के ऊपर एक गन्धर्व राजा अपनी पत्नी के साथ विमान में संचार-विहार कर रहा था।।39।।

जब उसका विमान उक्त स्थान को पार कर रहा था तब वह गन्धर्व राजा अपनी स्त्री के साथ सिर नीचे करते हुए गिर गया। वह उस समय नारायण वर्म को धारण किए हुए मुनि की अस्थियों को पार कर रहा था।।40।।

बाद में वह गन्धर्व वालखिल्य नाम के ऋषि के पास इसका कारण समझ कर आश्चर्य चकित हो गया। उस साधु के अस्थि का चयन करते हुए पूर्व दिशा में बहने वाली सरस्वती नदी में विसर्जन करते हुए अपने लोक को चला गया। नारायण वर्म का महात्म्य इतना बड़ा है।।41।।

जो इस मंत्र को योग्य गुरु से उपदेश पाकर योग्य समय में पाठ करता है, उसको सारे लोग नमन करते हैं। वह सारे भयों से मुक्त होता है ।।42।।

इस मंत्र को देवेन्द्र ने विश्वरूपा से उपदेश पाकर युद्ध में असुरों को जीतते हुए तीनों लोकों का स्वामित्व पा लिया।।43।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत् महापुराण में छठा स्कन्ध में आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय नौ

श्री शुक जी बोले - विश्वरूप को तीन मुख हैं। उनमें से एक से वह सोम पान करता था, दूसरे से सुरापान करता था, तीसरा मुख उसको अन्न पाने के लिए था।।1।।

वह यज्ञ में हविर्भाग को विनय पूर्वक प्रत्यक्ष में इन्द्राय इदम् अग्नये इदम् , इन मंत्रों से उच्च स्वर में आहुति देता था। उसको देवतागण पिता से सम्बधित थे।।2।।

वही याग करते समय अपने माँ के ऊपर के प्यार से उसके अनुकूल हो यह समझ कर परोक्ष रीति से असुरों को हविर्भाग देता था। उसकी माँ रोचना असुर की पुत्री थी ।।3।।

यह कपट धर्माचरण देवताओं के लिए असुख करने वाला था। इसको जानते हुए इन्द्र ने लोकक्षय भय से रुष्ट होकर विश्वरूप के सिरों को काट दिया।।4।।

सोम पान करने वाला मुख कबूतर हो गया। सुरा पान करने वाला मुख चिड़िया बन गयी, तीसरा अन्न खाने वाला मुख टिट्टिभ पक्षी बन गया।।5।।

इससे देवेन्द्र को ब्रह्म हत्या दोष आ गया। उसको दूर करने में इन्द्र देव समर्थ थे। किन्तु उसने उसको अपने अंजलि में स्वीकार किया। एक वर्ष के बाद ब्रह्म हत्या पाप को दूर करने के लिए उसको चार भाग करते हुए भूमि, जल, वृक्ष और स्त्रियों में बाँट दिया।।6।।

बना हुआ खड्ढा कालक्रम में अपने आप भर जाये इस वर को पाकर भूमि ने ब्रह्म हत्या का एक भाग ले लिया। दल दल और ऊसर जमीन के रूप में ब्रह्म हत्या जमीन में रहती है। यह प्रदेश वेदाध्यन के लिए निषिद्ध है।।7।।

एक बार काटने के बाद पुनः फल फूल पाने के वर के साथ वृक्षों ने ब्रह्म हत्या का दूसरा भाग को स्वीकार किये। वृक्ष से बाहर आने वाला गोंद के रूप में ब्रह्म हत्या रहती है। वह खाने योग्य नही है।।8।।

गर्भ धारण के बाद भी प्रसव काल तक पति संग का सुख पाने का वर पाते हुए स्त्रियों ने ब्रह्म हत्या का तीसरा भाग स्वीकार किया। हर महीने के उनके रजो दोष में ब्रह्म हत्या दिखने में आता है। उस समय वे अस्पृश्य रहती हैं ।।9।।

स्वयं अभिवृद्धि पाते हुए अपने सम्पर्क में आने वाले भी अभिवृद्ध हों इस वर के साथ जल ब्रह्म हत्या को स्वीकार किया। बुलबुले जल में रहने वाला ब्रह्म हत्या है। वह अपवित्र है।।10।।

अपने पुत्र के मर जाने के बाद त्वष्ट्रा प्रजापति ने इन्द्र के ऊपर के द्वेष से इन्द्र के शत्रू जन्मले और जल्दी में इन्द्र का नाश करें, इस मंत्र से बड़ा यज्ञ किया।।11।।

वह इन्द्र शत्रो इस मंत्र बोलते ही दक्षिणाग्नि से वृत्रासुर उठकर आया। वह युग प्रलय काल में लोकनाश करने वाला काल यम के समान घोर रूप धारण किया था।।12।।

वह प्रति दिन सौ बाड़ के समान वृद्धि पाता था। वह एक काला पहाड़ जैसे दिखता था। उसके कपड़े संध्या काल के समान लाल थे। उनके सिर का बाल तांबे वर्ण के थे और खडे हुए थे। उसकी दाढ़ी और मूछ भी दोपहर के सूर्य के समान प्रज्वलित थी।।13।।

भूमि, आकाश को प्रकाशित करने वाला, त्रिशूल को हाथ में पकड़ कर पाँव से जमीन पर थपथपाते हुए नृत्य करने लगा।।14।।

गुहा के समान अपने मुँह से आकाश को पीते हुए, नक्षत्र को चाटते हुए तीनों लोकों को खा लिया।।15।।

भय को उत्पन्न करने वाले उसके मुह और दाँत को देख कर भयभीत होकर सारे लोग दशो दिशा में भागने लगे।।16।।

सभी लोकों को अन्धकार के समान आवरणन करने वाला परम पापी त्वष्ट्रा के इस पुत्र का नाम वृत्रासुर रहा।।17।।

सारे देवता एक साथ अपने सैन्य के साथ आकर अपने दिव्यास्त्रों से उसको मारने आये। वह राक्षस उनके सारे अस्त्रों को खा लिया।।18।।

उसको देख कर देवता आश्चर्य चकित हो गये। उनका पराक्रम लुढ़क गया। दु:खित होकर एकाग्रचित्त से वे अन्तर्यामी भगवान का स्तोत्र करने लगे।।19।।

देवता बोले - वायु, आकाश, अग्नि, जल और पृथ्वी के अभिमानी देवता, तीनों लोको के ब्रह्मादि देवता हम सब मिलकर भय से आप की आराधना करते हैं। महा लक्ष्मी भी आप के अधीन होती हैं। आप भावान हमारी रक्षा करें।।20।।

भगवान आप अहंकार रहित हैं। स्वरूपानन्द से भरे हुए हैं। अपने सारे रूपों में एक से हैं, और गुण पूर्ण हैं। आप रागादि द्वेषों से और सारे दोषों से दूर हैं। ऐसे आपको छोड़कर हम और किसी के शरण कैसे हो सकते हैं। कोई कुत्ते की पूछ को पकड़ कर समुद्र को पार कर सकता है क्या?।।21।।

वैवस्वत मनु ने मत्स्य मूर्ति के महा श्रृंग को भूमि नाम के नाव को बांधकर अपने महा संकट से मुक्त हो गए। हे भगवान, आप हमें इस वृत्रभय नाम के इस आपद से भी हमारी रक्षा करें।।22।।

आदि सृष्टि में प्रलय सागर में चन्डमारुत से महा तरंग उठते थे। उसके बीच में पद्म में अकेले बैठे हुए ब्रह्मा जी भय से महाजल में पड़ सकते थे। उस समय उनकी रक्षा करने वाले आप हमारी भी रक्षा करें।।23।।

आप स्वतंत्र हैं, सर्वेश हैं। आप की इच्छा मात्र से हमारी सृष्टि होती है। आपके अनुग्रह से हम इस

प्रपंच की रचना करते हैं। आप स्वयं पूर्ण रुप के सृष्टिकर्ता हैं। आप पूर्णानन्द स्वरूप हैं। हम सब मिल कर आप के सामने खड़े होकर केवल आप ही पूर्णानन्द हैं, यह अन्दाजा करते हैं। किन्तु प्रत्यक्ष रूप में पूर्ण रूप से देखने में असमर्थ हैं। हम कभी कभी अपने को ही स्वतन्त्र समझ लेते हैं। यह गर्व हममें अपने तारतम्य के अनुसार कभी कभी आता रहता है।।24।।

हम जब जब शत्रु से पीड़ित होते हैं तब तब युगों युगों में नित्य आप अपनी इच्छा के अनुसार देव, ऋषि, प्राणी मनुष्य जातियों में आप वामन, परशुराम, मत्स्य, राम इत्यादि रूपों से अवतार लेकर हमको अपनाते हुए रक्षा करते हैं ।।25।।

पुरुषश्रेष्ठ, सर्वत्रव्याप्त, सर्वकारण, सर्वरक्षक भगवान आप हमारे नियन्ता हैं। आपकी ही हम शरण में आये हैं। आप हमको अपनाते हुए हमारा मंगल करें।।26।।

श्री शुक जी बोले - हे राजा परीक्षित, देवताओं की स्तुति को सुनकर संप्रीत हुए भगवान शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करते हुए देवताओं के हृदय में प्रकट हुए।।27।।

बाद में भगवान उनके सामने भी प्रत्यक्ष हुए। उनकी आँख शरद काल के कमल जैसे हैं। उनके चारों तरफ उन्ही के स्वरूपभूत वासुदेव आदि चार और केशवादी बारह कुल सोलह भगवन्मूर्ति उनकी परिवार रूप से सेवा कर रहे हैं। वे सारे श्री वत्स कौस्तुभिमनि प्रकृति पुरुषों से अतीत हैं। वे शुद्ध चिन्मयगात्र वाले हैं। वे सारे परस्पर समान हैं ।।28।।

भगवान को देखकर सारे देवताओं ने आनन्द विभोर होकर जमीन के ऊपर दण्डवत प्रणाम किया। बाद में उठकर खडे होकर इष्टार्थ सिद्धि के लिए पुन: प्रार्थना करने लगे।।29।।

देवताओं ने कहा - हे, यज्ञ करने के लिए शक्ति देने वाले भगवान, आपको नमस्कार। इस जगत को अपनी इच्छा से बांध कर रखने वाले आपको नमस्कार। हे चक्रधारी अनन्त नाम वाले आपको पुन: नमस्कार।।30।।

देव लोक, पितृ लोक, नरक लोकों से उत्कृष्ट आपके वैकुन्ठादि तीनो लोकों को ब्रह्म सृष्टि में देवादि उत्तम लोगों को छोड़कर उनसे नीचे वाले अज्ञ मानव पा नही सकते।।31।।

हे, षड्गुणपूर्ण नारायण! आप आदिपुरुष वासुदेव हैं। हे महानुभाव, आप परम मंगलस्वरूप, परम मंगलकारक, परम कारुणिक हैं। आपको नमस्कार। परमहंस परिव्राजक लोग का अपने ध्यान और समाधि से प्राप्त किया हुआ ज्ञान उनके अज्ञान को हटाकर मोक्ष का दरवाजा खोलता है। आपके लोक को दिखाता है। वहाँ स्वरूपानन्दानुभव रूप वाले आप सुलभता से दर्शन देते हैं। हे भगवान आपके जगत सृष्ट्यादि लीला को जानना बहुत कष्ट है। आप स्वयं शक्ति से और बिना किसी आधार से यह सृष्टि कार्य करते हैं। आपको प्राकृत शरीर नही है, सत्वादि गुण का लेप नही है। आपको हमारी सहायता की आवश्यकता नही है। स्वयं न बदलते हुए, किसी विकार के अधीन न होते हुए, किसी प्रयोजन की अपेक्षा न करते हुए अपने स्वभाव से ही

इस त्रिगुणात्मक प्रपंच की सृष्टि करते हैं, रक्षा करते हैं, और नाश भी करते हैं।।32।।

इस लोक में देवदत्त के समान प्राकृत लोग परतंत्र होकर घर इत्यादि की सृष्टि करते हुए अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार सुख दु:ख को भोगते हैं। वैसे ही आप भी सृष्ट्यादि कार्यों में त्रिगुणों से युक्त होकर शुभाशुभ कर्म के फल को भोगते हैं अथवा स्वतन्त्र, पूर्णानन्दानुभव स्वरूप, शुद्ध ज्ञान रूप होकर शुभाशुभ कर्म के फलों से दूर रहते हैं, इसका निश्चय हम कर नही सकते। इसी संशय के कारण हमें नरक भोगना पडता है क्योंकि स्वातन्त्र और पारतंत्र्य दोनों परस्पर विरुद्ध हैं। इन दोनो को एक साथ कैसे जोडे।

इसमें से किसी का निर्णय हम कर नही सकते क्योंकि भगवान आप स्वातंत्र्यादि अनन्त गुण परिपूर्ण हैं। आपका महात्म्य, हम वह भी नही जान सकते। हम दोनों विकल्पों का तर्क वितर्क करते हैं। **इदमित्थम** ऐसे कुछ समझ नही पाते। इसके लिए हम जिनको प्रमाण मानते हैं, वे सारे दुर्बल प्रमाण होते हैं। उनके आश्रय से निकलने वाले तर्क कुतर्क आपके निजी स्वरुप के ग्रहण नही कर सकते। दुरागम ऐसे ही कुतर्कों से भरे हुए हैं। इन दुरागमों से अन्त:करण मलिन होता है, वह दुराग्रह से भर जाता है। इसी से दुराग्रह वादियों ने अपने अभीष्टित दुराग्रह पूर्ण वादों का प्रति पादन करते हैं। हे भगवान आप इन दुर्वादों से प्राप्त नही होते। अद्वितीय स्वरूप सामर्थ्य वाले आप प्राकृतिक त्रिगुण प्रभाव को दूर हटा दिये हैं। ऐसे हाथ में पारतंत्र्य के लिए स्थान कहाँ है। तो हमे आप के स्वातंत्र को मानना है तो आप ईश्वर हैं। आप अघटित घटना करने वाले हैं अणुमहत्तादि विरुद्ध गुणों को अपने में धारण करने वाले अचिन्त्याद्भुतशक्ति वाले हैं। ऐसे ही स्वातंत्र्य और पारतंत्र्य से दो गुण विरुद्ध होते हुए भी आप में दोनों है, इस कुतर्क को वाद में रखते हैं।इसी से हम स्वातंत्र्य और पारतंत्र्य का निर्धारण कर नही पाते। यह संशयवादियों का वाद होता है।

ये सब अज्ञानियों की बाते हैं। वस्तुत: आपमें स्वातंत्र्य और पारतंत्र्य ये परस्पर विरुद्ध गुण आप में हैं। यह बोलने के लिए कोई प्रमाण नही है दोनों स्वरूप है कहने वाले का ज्ञान **भ्रमादीन** है। आप ज्ञानीयों को यथार्थ ज्ञान के लिए गोचर हैं, अज्ञानियों के भ्रम का कारण भी है। यह आप की अचिंत्याद्भुत शक्ति है। रस्सी अज्ञानियों को साँप जैसे दिखता तो ज्ञानियों के लिए रस्सी का टुकड़ा लगता है। वैसे आप ज्ञानियों को अपने निजस्वरूप से दर्शन देते हैं।

आपकी निज दर्शन का स्वरूप इस प्रकार है। आपसे सृष्ट हुयी वस्तुओं में आप अन्तर्गत होकर नियामकत्वेन रहते हैं। उनके विकार से आप में विकार नही आता है क्योंकि आप सर्वशक्त हैं। आप जगत्कारण ब्रह्मादियों की सृष्टि करने वाले हैं। आप सबके अन्तर्यामी हैं। आप सदाकाल अपने आनन्दादि गुणों का अनुभव करते हैं। प्रलयकाल में अकेले रहते हैं। सृष्टि काल में सबकी सृष्टि करते हैं।

हे मधुसूदन! आपके एकान्त भक्त परम भागवत लोग आपके महिमा नाम के महा अमृत रस समुद्र के कण कण को बार बार आस्वादन करते हुए अपने मन में निरन्तर सुख का अनुभव करते हुए पिछले देखे या सुने हुए सारे विषय सुखों को भूल जाते हैं। हे भगवान! आप सारे प्राणियों के लिए प्रिय मित्र बने हैं। ये साधु

सज्जन परम भागवत लोग आपको कैसे छोडते हैं। आपके पाद कमल के सेवन से वे जनन-मरण संसार-चक्र से मुक्त हो जाते हैं।

भगवान आप तीनों लोकों के लिए आश्रय हैं। तीनों वेदों में आपके पराक्रम का वर्णन है। आप तीन आँख वाले नरसिंह भगवान हैं। तीनों लोकों में आपकी महिमा विस्तृत रूप से प्रस्तावित है। दैत्य, मानव, देव आप के विविध गुण स्वभावों की अभिब्यक्ति के लिए आपके विविध रुप हैं। तो भी उनके पराभव काल को ठीक समझते हुए आप शुक्ल शोणित संबंध के बिना स्वसामर्थ्य से देव मानव मृग, नर मृग, जलचर आकृतियों से उपेन्द्र कृष्ण, वराह, नरसिंह मत्स्यादि अवतार रूप धारण करते हुए दानवों को उनके अपराध के अनुसार योग्य दण्ड को आप ने दिया है ।।33।।

वैसे ही भगवान आप यदि मानते हैं कि त्वष्ट्रा पुत्र वृत्तासुर को मारने का समय आया है, तो आप उसको अभी मारिये। हम आपके हैं। आपके पाद कमलों के ध्यान से हमारे मन के बन्धन मजबूत होकर स्थिर बन गए हैं। हम आपके शंख चक्र आदि चिन्हों को धारण करने से आप हमको अपनाऐ हैं। आप अनुकंपा युक्त अपने मंद हास सहित कृपा दृष्टि से, मुख से उभर आने वाले मधुर स्वर युक्त अमृत बिन्दु के समान अपनी बातों से हमारे ह्दय के ताप का शमन करें

आग को उसकी चिनगारी कुछ नही कर सकती। वैसे ही साक्षात परब्रह्म आपको काम करने का निर्देश हम कैसे दे सकते हैं। इस सारे ब्रह्माण्ड की चाल चलन सब आपकी इच्छा से होने वाली लीलाएँ हैं। सारे जीवों के ह्दय में अन्तर्यामी होकर उनको मिलने वाला सुर नर इत्यादि देहों के जागृति स्वप्न सुषुप्ति इत्यादि काल विशेषों को प्रत्यक्ष आप ही करते हैं और करवाते हैं। आप से ही देह, अवस्था, देश, काल, इत्यादि विशेषों में आप उपादान कारण होकर प्रकृति को प्रेरणा देते हैं। सारे जीवों की चित्त वृत्ति को आप ठीक तरह से जानते हैं। आकाश के समान आप व्याप्त हैं, निर्लिप्त अतींद्रिय वाला शरीर आपका है। हम अपने अनेक पापों से प्राप्त हुए संसार दु:ख को दूर करने वाले परम पूज्य गुरु आपके श्री चरणों के छत्र-छाया में आश्रय लिये हैं। हमे आपको कुछ कहने की क्या आवश्यकता है। हमारी अभिलाषाओं को आपही स्वयं पूर्ण करें।

यह वृत्रासुर हमारे अस्त्रों के साथ तेज को भी खा डाला है। वह तीनों लोको को खाने लगा है। हे भगवान श्री कृष्ण! आप सर्वशक्त हैं। आप उसका संहार करें।।34।।

हे शत्रु नाशक, सबके ह्दयाकाश में रहने वाले, सब के मन को जानने वाले, सदा आनन्द रूपी निर्मल कीर्ति वाले आप भगवान हैं। आप अपने कर्मो को बिना श्रम से करने वाले हैं। आप सज्जनों को स्वीकारते हैं। दुर्जनों का निराकरण करते हैं। संसार मार्ग में चलने वाले को सदा सन्मार्ग को दिखाते हैं। सज्जनों को पुन: इस संसार चक्र में गिरने की आवश्यकता न होते हुए आप उनको मोक्ष देने वाले हैं। ऐसे आपको हम बार बार नमस्कार करते हैं ।।35।।

श्री शुक जी कहते हैं - हे राजा परीक्षित, देवताओं की श्रद्धा युक्त स्तुति से भगवान श्री हरि संतुष्ट

होकर बोले।।36।।

श्री भगवान बोले - देव गण, आप की स्तुति से मै संतुष्ट हो गया हूँ। आपसे कहे हुए इस मंत्र के पठन से मेरे माहात्म्य का ज्ञान होता है, भक्ति भी मिलती है।।37।।

मैं भक्ति से मिल जाता हूँ। तब दुर्लभ क्या रहता है। एकान्त भक्त तत्वज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। वह मुझको छोड़कर और कुछ नही चाहता है। आप जो चाहते है, वह मेरे लिए प्रिय हैं। मैं आपकी कामनाओं को पूर्ण करता हूँ।।38।।

नश्वर काम्य फल को चाहने वाला, इन्द्रियों के वश में रहने वाला अज्ञानी भक्त मुझसे देर से मिलने वाले मोक्ष की कामना नही करता है। वह जल्दी में मिलने वाले ऐहिक सुख को ही चाहता है। उसको मैं काम्य फल को देता हूँ। उत्तम भक्त को मैं अहितकारी काम्य फल को नही देता हूँ।।39।।

मोक्ष साधन को जानने वाला ज्ञानी भक्त कर्म में आसक्त अज्ञानी को उसका उपदेश नही देता है, उसकी कर्मासक्ति को हटाता नही। उसको कर्म का ही उपदेश देता है। वैसे ही मैं भी काम्य कर्म को चाहने वाले अज्ञानी को उसी को देकर प्रोत्साहित करता हूँ। रोगी अपथ्य आहार को चाहे तो वैद्य उसको देता नही वैसे ही मेरे प्रिय भक्त को वह काम्य कर्म को चाहे तो भी उसको मै नही देता।।40।।

हे देवेन्द्र! आप सब लोग ऋषि श्रेष्ठ दधीचि के पास जाइये। मंत्र और तप से उनका शरीर दृढ़ बन गया है। उन्ही से उनके आस्थियों को आप मांगिये। आपका कल्याण हो।।41।।

पिछली बार अश्विनी देवताओं ने दधीचि से प्रार्थना किये, उस समय उन ऋषि ने उनको नारायण कवच और **प्रवर्ग्य** कर्म का उपदेश दिये। वह अश्व सिर नाम वाला नारायण कवच अश्विनी देवताओं को अमरत्व दिला दिया।।42।।

अथर्वण और त्वाष्ट्र नाम से प्रसिद्ध अभेद्य नारायण वर्म को त्वष्ट्रा ने अपने पुत्र विश्वरूप को उपदेश दिया। विश्वरूप से तुमने उसका उपदेश पा लिया।।43।।

तुम लोग दधीचि से प्रार्थना करो तो वह ऋषि अपने शरीर को दान देते हैं। वे ना नही कहते। माँगने वाले को देना वे धर्म मानते हैं। उन ऋषि की हड्डियों से विश्वकर्मा श्रेष्ठ वज्रायुध का निर्माण करे, उसमें मैं अपना तेज भर देता हूँ। उस वज्रायुध से तुम वृत्रासुर का शिरच्छेद करो।।44।।

वृत्रासुर के मर जाने के बाद उससे खाया हुआ तुम्हारे शस्त्रास्त्र और तुम लोगों का तेज तुमको वापस मिलेगाकोई मेरे भक्तों को कष्ट नही दे सकता। तुम लोगों का कल्याण हो।।45।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में छठा स्कन्ध में नौवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय दस

श्री शुक जी बोले - विश्व कर्ता भगवान हरि इन्द्र को आदेश देकर उनके देखते देखते वहीं अदृश्य हो गये।।1।।

भगवान के आदेशानुसार देवताओं ने दधीचि से याचना की। महर्षि दधीचि आनन्द से कहे।।2।।

शरीर रहने वाले जीवियों को मरण के समय में असहनीय दु:ख होकर मूर्च्छा आ जाती है। इसको आप जानते हैं।।3।।

जीवी सदा के लिए जीवित रहना चाहता है। यह सहज है। यह शरीर जीवी के लिए अत्यन्त प्रिय वस्तु है। भगवान के स्वयं आकर माँगने पर भी अपने शरीर को दान देने वाला कौन होता है।।4।।

देवताओं ने कहा - हे महात्मा! आप जैसे महापुरुष प्राणियों पर दया रखते हैं। आपके कार्य को पुण्य-वान लोग भी स्तुति करते रहते हैं। आप सर्वस्व दान देते हैं। आपको दान न देने वाली वस्तु क्या है।।5।।

इस लोक में सारे लोग अपने सुख के बारे में चिन्ता करते हैं। दूसरों के दु:खों के बारे में कौन चिन्ता करता है। यदि दूसरों के बारे में चिन्ता करें तों मांगने वाला कोई नही रहेगा देने वाले देते ही रहेगें।।6।।

दधीचि ऋषि बोले - आपके मुख से धर्म की बातों को सुनने की अपेक्षा से मैने यह आक्षेप किया। यह शरीर एक दिन छूट कर जाने वाला है। इसको आपके संतोष के लिए मै अभी त्याग देता हूँ।।7।।

हे देवताओ, सुनो, जो प्राणियों में दया करते हुए अपने शरीर से पुण्य सम्पादन नही करता है वह वृक्षों से भी कनिष्ठ है क्यों कि वृक्ष भी परोपकार करते हैं।।8।।

और लोगों के दुख के लिए हमें भी शोक करना चाहिए, दूसरों को सन्तोष देना यही धर्म है। पुण्य शाली लोग इसी का कीर्तन करते हैं।।9।।

अपनी पत्नी, पुत्र, यह शरीर सारे नश्वर हैं। एक न एक दिन ये साथ देने वाले नहीं हैं। यह शरीर कुत्ते और सियार का भोजन होता है। उस समय इस शरीर से कुछ प्रयोजन नही है। यदि इससे कुछ प्रयोजन होने वाला है तो अभी इसको त्याग देना चाहिए, नही तो इससे क्या लाभ है।।10।।

श्री शुक जी बोले - दधीचि मुनि इस प्रकार निर्धारण करने के बाद अपने मन को भगवान में स्थिर करते हुए अपने शरीर को त्याग दिए।।11।।

पत्नी पुत्र इत्यादियों का सम्बन्ध छोड़ते हुए इन्द्रिय, प्राण, मन, और बुद्धि को अपने वशमें रखते हुए परम तत्व परमात्मा परमेश्वर भगवान श्री हरि को अपने ध्यान में देखते हुए इन्द्रिय और प्राणों का लय चिन्तन

में मग्न मुनि को अपना शरीर छोडने का अनुभव ही नही आया ।।12।।

बाद में देवेन्द्र के आदेश के अनुसार विश्वकर्मा ने मुनि की अस्थियों से बज्रायुध का निर्माण किया। इन्द्र उसको धारण करते ही भगवान की कृपा से अत्यन्त बलिष्ठ बन गया ।।13।।

सारे देवगणों से घिरा हुआ देवेन्द्र मुनिगण से स्तोत्र करते हुए तीनों लोकों को हर्ष उत्पन्न करते हुए ऐरावत के ऊपर आरोहण किये ।।14।।

असुर सैन्यों से आवृत्त असुर वृत्त के ऊपर पराक्रम से चढ़ाई की। लगता था जैसे रुद्र यम के ऊपर आक्रमण किया हो।।15।।

आज के वैवस्वत मनवन्तर के प्रथम चतुर्युग के अन्तर वाला त्रेता युग के आरम्भ में नर्मदा तट पर देवता और असुरों में महा घोर युद्ध हुआ ।।16।।

राजा वृत्र को आगे रखते हुए युद्ध भूमि में असुर गण, रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विनी, पितृ, अग्नि, मरुत, ऋभ, साध्य और विश्वेदेव नाम के देव गणों से युक्त वज्रायुध को हाथ में लिए हुए अपने कान्ति से शोभायमान। इन्द्र को असुर लोग, सहन न कर सके।।17,18।।

नमुचि, शंबर, अनर्व, द्विमूर्ध, वृषभ, अम्बर, हयग्रीव, शंकुसिर, विप्रचित्ति,अयोमुख, पुलोम, वृषपर्व, प्रहेति, हेति, उत्कच, व्योमकेश, विरूपाक्ष, कपिल, विभावसु, इल्वल, बल्वल, दंदशूक, वृषध्वज, कालनाभ, महानाभ, भूतसंतापन, वृक, सुमाली और मालि नाम के दैत्य, दानव, यक्ष और राक्षसों ने हजारों-हजारों की संख्या में सोने के रथ में बैठ कर, सोने के गहने पहन कर युद्ध करने आये थे। मृत्यु से भी न डरने वाले, इन्द्र के सैन्य से बिलकुल न डरते हुए दुरहंकारी होकर सिंहनाद करते हुए आक्रमण किये ।।19,20,21,22,23।।

वे गदा, परिघ, बाण, प्रास, मुद्गर, तोमर, शूल, परशु, खड्ग, शतघ्नी, भुशुन्डी, इत्यादि अस्त्रों की वर्षा देवताओं के ऊपर की।।24।।

बरसात में बादल से जैसे आकाश घिरा रहता है वैसे ही देवगण दानवों के इन आयुध वर्षा से ढक गये। वे किसी को न दिखाई पड़े ।।25।।

किन्तु वे अस्त्र समूह देवताओं का स्पर्श भी नही किए, क्योंकि देवताओं ने चमत्कार से उनको आकाश में ही टुकड़ा टुकड़ा कर दिए।।26।।

अपने अस्त्रशस्त्र समाप्त होने के कारण असुर लोग देवताओं के ऊपर पत्थर, पहाड़, वृक्षादि को वर्षाए। देव गण उसको भी पूर्ववत टुकड़ा टुकड़ा कर दिए।।27।।

अपने शस्त्रास्त्र समूह से आहत न होते हुए, पर्वत पत्थरों से भी सुरक्षित रहे हुए देवताओं को देख कर

असुरों ने पुनः पुनः नये नये शस्त्रास्त्र और वृक्ष शिलाओं का वर्षण किए।।28।।

छुद्र लोगों के द्वारा महात्माओं के बारे में बोले हुए दुष्ट बात जैसे व्यर्थ होता है वैसे ही भगवान श्री कृष्ण के भक्त देवताओं के ऊपर दैत्यों द्वारा बार बार किया हुआ आक्रमण व्यर्थ हो गया।।29।।

श्री हरि से विमुख रहने वाले असुर लोग अपने प्रयत्न विफल होता देखकर कला हीन हो गये उनका पराक्रम चकना चूर हो गया। वे युद्ध क्षेत्र में अपने महानायक वृत्र को छोड़कर भाग निकले ।।30।।

भागने वाले अपने अनुचरों को देखकर धीर वृत्रासुर ने हँसते हुए उनको बुद्धिवाद दिया।।31।।

वीर पुरुषों के लयि वीरोचित, काल के समुचित बातों को वृत्रासुर ने कहा। हे विप्रचित्ति, पुलोम, मय, अनर्व, शम्बर, आप सब लोग मेरी बात सुनिए ।।32।।

जन्म लेने वाले को एक दिन मरना ही होगा। इसके लिए और कोई चारा नही है। युद्ध में लड़ते लड़ते मरने वाले को यहाँ कीर्ति और मरने के बाद वीरस्वर्ग मिलता है। ऐसे होते हुए आप लोग क्यों भागते हो। वीरोचित मरण को वीर स्वागत करता है।।33।।

इस लोक में दो तरह के मरण शास्त्र सम्मत हैं। वह दुर्लभ भी है। एक प्राणायाम के साथ परब्रह्म के ध्यान करते हुए योग बल से शरीर छोड़ना है। दूसरा युद्ध क्षेत्र में पलायन न करते हुए वीर होकर मरण पाना।।34।।

।।यहाँ श्रीमदभागवत महापुराण में छठा स्कन्ध में दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय ग्यारह

श्री शुक जी बोले - हे राजा परिक्षित, सुनो। अपने नायक वृत्रासुर के धर्मोपदेश के बाद भी बुद्धि-विहीन असुर इसकी बातों को नही माने। वे भयग्रस्त होकर दौड़ रहे थे।।1।।

भगवान के अनुग्रह से रक्षित देवताओं से जर्जरित हुए अनाथ होकर भागने वाले अपने सैन्य को देखकर पराक्रमशाली वृत्र क्रोध से जलते हुए अपने सैन्य को रुका कर असहना से देवताओं की निन्दा करने लगा।।2,3।।

वृत्र ने कहा - हे देवताओ, आप अपने माता के शरीर से मल के समान बाहर निकले हैं। भयभीत होकर भागने वाले कायर लोगों को मारने में क्या शौर्य है। इससे तुम लोगों को न कीर्ति मिलेगी और न स्वर्ग।।4।।

यदि आपको युद्ध में श्रद्धा है, हृदय में धैर्य है, और घर में अपनी पत्नी को बोलकर आये हैं तो एक क्षण के लिए मेरे सामने खड़े रहो।।5।।

महाबलिष्ठ वृत्रासुर क्रुद्ध होकर अपने शत्रु देव गण को अपने भयंकर आकृति से भयभीत करते हुए पंथाह्वान किया। उसको देखकर अनेक देव मूर्छित हो गये।।6।।

वृत्र की गर्जना से देवगण बिजली से मारे हुए जैसे मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़े।।7।।

देवों का सैन्य भय से आँख बन्द कर लिए। युद्ध क्षेत्र में मत्त होकर वृत्रासुर पराक्रम से अपने त्रिशूल को उठाकर दौडने लगा। उससे जमीन काँपने लगी। मदमत्त हाथी के कमल से भरे हुए सरोवर में घुसने से जो हड़कंप मचता है वैसे ही देव सैन्य में हाहाकार मच गया ।।8।।

इसको देखकर देवेन्द्र रुष्ट हो गये। उसने अपने शत्रु के ऊपर अपने महा गदा को फेक दिया। उस गदा के आघात को कोई सह नही सकता है, किन्तु अपने ऊपर गिरने वाली उस गदा को वृत्र ने अपने बायें हाथ से पकड़ कर आसानी से उसको फेक दिया ।।9।।

महा पराक्रमी वृत्र से क्रुद्ध होकर फेकी हुई गदा ऐरावत के कुंभ स्थल पर आघात किया। उसके इस पराक्रम की स्तुति देव दानव दोनो करने लगे।।10।।

वृत्र के गदा के प्रहार से ऐरावत मार खाकर बहुत दुःख का अनुभव किया। उसका सिर फट कर रक्त को बहाते हुए इन्द्र सहित सात कदम पीछे हट गया।।11।।

अपने वाहन ऐरावत को आघात होते हुए जर्जरित होने के कारण इन्द्र को बहुत दुःख हुआ। वृत्रासुर युद्ध धर्म को पालते हुए उसी समय गदा को और एक बार देवेन्द्र के ऊपर प्रयोग नही किया। देवेन्द्र अपने अमृत को बहाने वाले दाहिने हाथ से ऐरावत के गंडस्थल को संवारने से उसको घाव और दर्द चला गया। इन्द्र

युद्ध के लिए पुनः तैयार हुआ।।12।।

अपने बड़े भाई विश्वरूपा की हत्या करने वाले बड़े शत्रु इन्द्र को युद्ध के लिए खड़ा हुआ देख कर वृत्र को इन्द्र से किए हुए पाप कर्म की याद आकर मोह वश होकर हँसते हुए बात किया ।।13।।

वृत्रासुर बोला - तुम्हारे गुरु और मेरे ब्राह्मण भाई विश्वरूपा की हत्या करने वाले शत्रु तुम मेरे सामने खड़े हुए हो, यह मुझे संतोष दे रहा है। हे दुरात्मा, पत्थर के समान तुम्हारे हृदय को अपने त्रिशूल से चीर कर अपने बड़े भाई के ऋण से मुक्त होता हूँ।।14।।

हमारे भाई विश्वरूपा श्रेष्ठ ज्ञानी थे, ब्राह्मण और तुम्हारे गुरु थे। यज्ञ दीक्षित होकर पाप रहित थे। ऐसे योग्य को तुमने पुरोहित स्थान देने का वचन देकर विश्वास देते हुए, स्वर्ग को चाहने वाला यज्ञ में पशु को करुणा रहित होकर जैसे मारता है वैसे तुमने हमारे भाई के तीनों सिरों को करुण्य रहित होकर काट दिए।।15।।

दुष्ट कार्य करने में तुम्हे लज्जा नही होती है। धर्मार्थ संपदाओं की योग्यता तुम्हे नहीं है, दया नहीं कीर्ति तो बिल्कुल नहीं। ऐसे तुम्हारे द्वारा की हुयी गुरु हत्या की नर भक्षक राक्षस भी निन्दा करते हैं। इसी से तुम्हारे शरीर को इस त्रिशुल से चीरकर तुमको कष्ट का मरण देता हूँ। सारे देवताओं को मार कर तुम्हारे मरे हुए शरीर को अग्नि स्पर्श के लिए भी एक भी न रहे ऐसे कर देता हूँ। तुम्हारे शव को गिद्ध ही खा ले।।16।।

अन्य अज्ञानी देवताएँ तुम्हारे साथ खडे होकर हमारे ऊपर शस्त्र से आघात किए तो उनको भी अपनी इस तीक्ष्ण धारा वाले त्रिशूल से उनके भी सिर को काट कर भैरव को बलि दूँगा।।17।।

अथवा हे वीर इन्द्र, तुम इस युद्ध में अपने वज्रायुध से मेरा सिर काटे तो वह भी सही होता है क्योंकि मैं पशु पक्षियों को इस शरीर की बलि चढ़ाकर कर्म बंधन से मुक्त होकर दिव्य ज्ञानियों के लोक को जाकर उनके पादधूली को पा लूँगा।।18।।

हे देवराज, मैं तुम्हारा प्रबल शत्रु तुम्हारे सामने खड़ा हूँ। अपने अमोघ बज्रायुध को मेरे ऊपर क्यों नही प्रयोग करते हो। शंसय मत करो। तुम्हारी गदा जैसी वज्रायुध कंजूस के सामने कनक मांगने के समान व्यर्थ नही होगा ।।19।।

क्योंकि तुम्हारा यह वज्रायुध श्री हरि के तेज से और दधीचि मुनि के तप से तीक्ष्ण हो गया है। उसी से तुम मुझको मारो। इसमें वह शक्ति सन्निहित है। भगवान विष्णु तुमसे प्यार करते हैं। विष्णु जिसके पक्ष में होते हैं, उसी को विजय, संपदा और अन्य सारे गुण मिल जाते हैं।।20।।

मेरे प्रभु श्री संकर्षण जी के उपदेश के अनुसार मैं उनके चरणारविन्दों में मन रखते हुए तुम्हारे वज्र ाायुध की मार से विषय तृष्णा से छुटकारा पाते हुए शरीर को त्याग देता हूँ। स्वर्ग इत्यादियों की कामना न करते हुए योगी लोगों पाने योग्य सद्गति को पा लेता हूँ।।21।।

भगवान अपने एकान्त भक्तों को स्वर्ग भूमि और पाताल में किसी ऐश्वर्य को नही देते हैं क्योंकि वह ऐश्वर्य शत्रु भय, उद्वेग, चिन्ता, मद, कलह, व्यसन और आयास को उत्पन्न करता है ।।22।।

धर्म, अर्थ और काम से होने वाले सारे आयासों से भगवान अपने एकान्त भक्तों को दूर रखते हैं। मेरे प्रभु श्री हरि के अनुग्रह का फल विशेष यही है कि उनको आयास नही होता। इसके लिए तुम्ही साक्षी हो। ऐसा अनुग्रह भौतिक सम्पत्ति वाले को नही मिलता।।23।।

हे भगवान श्री हरि, मैं सदाकाल आपके पाद कमल में श्रद्धा रखते हुए आपके दासों का दास बन गया हूँ। मेरा मन, मेरे अपने भगवान का ध्यान करे, मेरी वाणी उनका ही गुण गान करे, मेरा बदन उनकी ही सेवा में जुटा रहे ।।24।।

हे भगवान, मुझको आपको छोड़कर स्वर्ग की कामना नही है। मुझे ब्रह्म लोक का आधिपत्य नही चाहिए। भूमि के साम्राज्य को मै नही चाहता। पाताल का स्वामित्व को भी नही चाहता हूँ। योग सिद्धि को भी नहीं चाहता हूँ। जनन मरण चक्र से भी छुटकारा नही चाहता हूँ। इन सबसे बढ़कर बड़ा सौभाग्य आपही हैं।।25।।

जनन मरण चक्र से छुटकारा पाना मोक्ष माना जाता है। मोक्ष में दो भाग होते हैं। जननमरण से छुटकारा पाना पहला मोक्ष है। किन्तु इस मोक्ष में सुख नही है। भगवान कें प्राप्ति के बाद स्वरूपानन्द की अभिव्यक्ति होती है। भगवत प्राप्ति ही चौथा पुरुषार्थ है। वही पूर्ण आनंद को देने वाली है। भगवान के भक्त केवल जनन मरण से छुटकार नही चाहते हैं।

हे पुंडरीकाक्ष, छोटे पक्षियों को उनकी माँ अपने पंखों में रख कर रक्षा करती है। भूखे अपने बच्चों को माँ गाय दूध पिलाती है। दूर प्रवास में रहने वाले प्रिय पति की याद पत्नी को बार बार आती रहती है। इसी रीति से सदा काल मेरी रक्षा, भोजन, दर्शन देने वाले आपको देखने के लिए मेरा मन इच्छुक रहता है।।26।।

हे नाथ, अत्यन्त कीर्तिशाली आपके भक्तों का संग मुझे मिले। मेरे कर्म के कारण इस संसार में चकराने वाले आपकी बन्धक शक्ति से बन्धे हुए, अपनी पत्नी पुत्र, घर जायजाद में आसक्ति रखने वालों के दु:संग से आप मुझे दूर रखे ।।27।।

।।यहाँ श्रीमदभागवत् महापुराण में छठा स्कन्ध में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

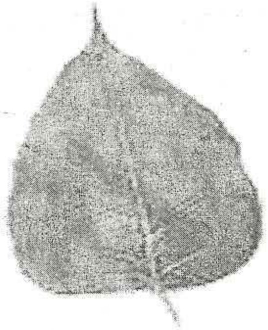

अध्याय बारह

श्री शुक जी बोले - हे राजा परीक्षित सुनो। वृत्रासुर को इन्द्र को हराने के बदले में, उसके हाथ से मरना ही अच्छा लगा था। इसी कारण युद्ध में शरीर त्यागने की इच्छा से उसने अपने त्रिशुल को पकड़ कर, कैटभासुर को प्रलय महाजल में जैसे भगवान विष्णु ने आक्रमण किया, वैसे वृत्र ने इन्द्र के ऊपर आक्रमण किया।।1।।

वृत्रासुर ने प्रलयाग्नि के समान जलने वाले अपने शूल को वेग से चकराते हुए इन्द्र के ऊपर फेक दिया। साथ साथ जोर से चिल्लाया कि इन्द्र तू मर जा।।2।।

आकाश से गिरने वाला महा उलका के समान अपने ऊपर गिर रहा, उसकी ओर देखना भी अशक्य हो, ऐसे शूल को देखकर इन्द्र विचलित नही हुआ। वे उस शूलके साथ उसको पकड़ने वाला हाथ को भी जो वासुकी नाग के समान दीखता था, उसको अपने सौ गाठ वाला वज्रायुध से काट दिये।।3।।

एक बाहू कट जाने के बाद वृत्रासुर कुपित होकर वज्रधर देवराज इन्द्र के ऊपर आक्रमण करते हुए परिघ नाम के अपने आयुध से उसके गाल के ऊपर जोर से मारा। उस समय वज्रायुध इन्द्र के हाथ से नीचे गिर गया ।।4।।

वृत्र के इस महा अद्भुत पराक्रम को देख कर सुर, असुर, चारण और सिद्ध लोक उसकी बडी प्रशंसा की और देवेन्द्र के दु:ख को देखकर हाय हाय बोले।।5।।

शत्रु के सामने अपने हाथ से गिरे हुए वज्रायुध को इन्द्र ने लज्जा से पुन: नही उठाया। तब वृत्र ने कहा, हे देवेन्द्र, वज्रायुध को उठा लो। यह शोक करने का समय नही है। अपने शत्रु को मारने के लिए तैयार हो जाओ।।6।।

उत्पत्ति, स्थिति और लय के कारण, सर्वशक्त, सर्वज्ञ, सनातन आदि पुरुष को छोड़कर शस्त्र धारण कर युद्व में खड़े होने वाले में किसी एक को जय और किसी को अपजय यह सिद्ध है। जयापजय किसी के वश में नही हैं।।7।।

इस जगत के लोकपालक भी जाल में घिरे हुए पक्षी जैसे जिनके वश में परवश होकर रहते हैं वह काल नामक भगवान हमारे जयापजय के कारण हैं। उनको छोड़ कर हम तुम नही हर सकते हैं। इसके लिए लज्जा करने की बात ही नही आती है।।8।।

ओजस्, सहनकरना, बल, प्राण, अमृत और मृत्यु इनको देने वाले भगवान ही हैं। इसको न जानते हुए अज्ञ लोग उनको स्वयं पाते हैं ऐसे मानते हैं ।।9।।

लकड़ी की गुड़िया के समान अथवा खिलौना घोड़े के समान सारे लोग भगवान के ही अधीन होते है।।10।।

ब्रह्मा, लक्ष्मी, शेष, वायु, भूताभिमानी और इन्द्रियाभिमानी देवताओं जिनके अनुग्रह के बिना सृष्ट्यादि कार्य को नही कर सकते, ऐसे सर्वान्तर्यामी भगवान असमर्थ जीव से अलग हैं। इसको एक ही समझने वाला अन्यथा ज्ञानी होता है।।11।।

भगवान, रमा और ब्रह्मादियों के साथ स्वयं ही इस प्रपंच की सृष्टि करते हैं, नाश भी करते हैं, रक्षा तो करते ही रहते हैं ।।12।।

बुढ़ापे, दारिद्रय की तरह, आयुष्य, ऐश्वर्य, कीर्ति, सुख, जय इत्यादिकी कामना न ही करना हुए वे समय आने पर आ जाते हैं।।13।।

इसी कारण कीर्ति-अपकीर्ति, जय-अपजय के समान सभी द्वन्दों में सुख दुःख न मानते हुए समान रहना चाहिए।।14।।

सत्व, रज, तम नाम के प्रकृति के तीन गुण जीव के मूल स्वरूप नही हैं। जीव ज्ञानानन्दमय है। उसमें अन्तर्यामी होकर भगवान रहते हैं। उनको जानने वाला आदमी सुख दुःख से न बड़ा और न छोटा होता है।।15।।

देवेन्द्र मुझको ही देखो। मेरा शूल टूट गया है, हाथ कट गया है, मै स्वयं तुमसे हार गया हूँ। किन्तु मैं अपनी शक्ति के अनुसार तुमको मारने का प्रयत्न नही छोडूँगा।।16।।

युद्ध एक जुआ है। यहाँ जीव को ही **पण** लगाना पड़ता है। यहा बाण ही **पासा** है वाहन ही जुआ खेलने का **तखता** होता है। इसका हार जीत किसी को भी पहले मालूम नही रहता।।17।।

श्री शुक जी बोले - वृत्र के इन कपट रहित बातों को सुनकर इन्द्र उसकी प्रशंसा किये। अपने वज्रायुध को उठाते हुए वृत्र से कहे।।18।।

इन्द्र बोले - हे दानव तुम जीवन्मुक्त हो गए हो। तुम्हारी इस सद्बुद्धि को देख कर मुझे आश्चर्य होता है। सब के सखा, इस जगत के स्वामी भगवान नारायण को तूने सभी प्रकार से आराधना की है।।19।।

अज्ञ लोगों को मोहित करने वाली भगवान की माया रूप भू दुर्गा देवी को उन्ही के अनुग्रह से तुमने प्रसन्न कर लिया है। इसी कारण तुम असुर भाव को त्याग कर भगवान के एकान्त भक्त बन गये हो।।20।।

यह बड़ी आश्चर्य की बात है। राजस स्वभाव के असुर जाति में जन्म लेते हुए भी तुम्हारी बुद्धि सर्वान्तर्यामी भगवान वासुदेव में दृढ हो गयी है।।21।।

भगवान में भक्ति करते हुए मोक्षाधिपति श्री हरि नाम के अमृत समुद्र में सदाकाल खेलने वाले को छोटे मोटे नहर के समान रहने वाले स्वर्ग के सुख से क्या होने वाला है।।22।।

श्री शुक जी कहे - भगवान के स्वरूप के बारे में जिज्ञासा करने वाले दोनों महा पराक्रमी वीर परस्पर बातें करते हुए युद्ध करने लगे।।23।।

हे राजा परीक्षित, वृत्रासुर ने अपने बायें हाथ से अत्यन्त घोर लोहे का परिघ नाम के आयुध को इन्द्र के ऊपर फेक दिया ।।24।।

इन्द्र इस परिघायुध के हाथी के शुन्ड के समान वाला वृत्र के बायें हाथ के साथ काट डाला।।25।।

इस रीति से दोनो हाथ कटे हुए और रक्त धारा बहाते हुए वृत्रासुर वज्रायुध से पंखे कटे हुए पहाड़ के समान दिख रहा था।।26।।

उस असुर ने अपने मुख को जमीन से आसमान तक खोलकर अपने क्रूर जीभ से आकाश को एक बार चाट लिया।।27।।

मृत्यु के समान दाँत वाले महाशरीर वाला वह असुर पहाड़ों से भी बढ़कर गगन को छूते हुए खड़ा था।।28।।

चलते हुए पहाड़ के जैसे दिखने वाला वृत्रासुर जमीन फट जाने के समान पाँव रखते हुए इन्द्र के पास आकर वाहन सहित उसको लील लिया। यह दृश्य अजगर हाथी को लील लेने जैसे दिख रहा था ।।29।।

वृत्र ने इन्द्र को लील लेते हुए देख कर प्रजापति, महर्षि और देवता गण हताश होकर हाहाकार करने लगे।।30।।

वृत्र के लील लेने के बाद उसके पेट में रहने वाला इन्द्र नही मरा, क्योंकि वह नारायण कवच को पहना था। वह अणिमादि सिद्धियों को पाया था। योग बल भी उनके साथ था। इनके कारण इन्द्र नही मरा।।31।।

वृत्र के पेट के अन्दर रहने वाला इन्द्र अपने वज्रायुध से उस असुर के पेट को चीरते हुए बाहर आकर पर्वत के शिखर के समान दिखने वाले शत्रु के शिर को तीव्रता से काट डाला।।32।।

महावेग वाला, चक्र के समान फिरने वाला वज्रायुध भी जल्दी में वृत्र का शिरछेद नही कर सका। उसको काटने में उत्तरायमण और दक्षिणायन ये दोनों अयन का समय यानी तीन सौ साठ दिनों के बाद वृत्र का शिर कटकर नीचे गिर गया।।33।।

तब आकाश में देव दुंदुभियाँ बजने लगे। गंधर्व, विद्याधर, महर्षि और सिद्धों ने इन्द्र के इस जय को वेद मंत्र के साथ स्तुति करते हुए उनके ऊपर पुष्पों का वर्षण किये।।34।।

वृत्र के शरीर से ज्योति रूप में उसका जीवात्म बाहर निकल आया। ज्ञानी लोगो के देखते देखते विद्याधर लोक को चला गया।।35।।

।।यहाँ श्रीमदभागवत् महापुराण में छठा स्कन्ध में बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय तेरह

श्री शुक जी बोले - हे राजा परिक्षित सुनो। वृत्र के मरने के बाद इन्द्र को छोड़कर तीनों लोको के लोग और लोक पालक निश्चिन्त हो गये ।।1।।

देवताओं, ऋषियों, निॠतुओं, भूत, दैत्य, देव, गन्धर्व के साथ ब्रह्म, रुद्र और इन्द्र भी अपने अपने लोक को चले आये।।2।।

राजा पूछता है, हे महास मुने ! वृत्र के मरने से इन्द्र को संतोष क्यों नही हुआ। सारे देवताओं को संतोष होते हुए भी इन्द्र को क्यो दु:ख हुआ? मै इसको जानना चाहता हूँ।।3।।

शुक जी बोले - वृत्र के पराक्रम को देखकर सारे देवता और ऋषि गण उसका वध करने के लिए प्रार्थना किए थे। किन्तु ब्रह्महत्या के भय से इन्द्र उसको स्वीकार नही किया था।।4।।

इन्द्र कहता है - विस्वरूपा के वध के कारण मुझे ब्रह्म हत्या का पाप आया था। उसको भूमि, स्त्री, जल और वृक्ष मुझ पर अनुग्रह करते हुए उस पाप को अपने में बाँट लिए थे। अब वृत्र को मार कर उस पाप से मै कैसे निवृत्त हो सकता हूँ।।5।।

शुक जी कहते हैं - इस बात के उत्तर में ऋषि बोले - हे इन्द्र, आपको पाप का भय न हो। हम अश्वमेध याग करते हुए आपके पाप को धो डालेंगे। आप वृत्र का वध करें, आप का कल्याण हो।।6।।

सारे जगत का संहार करने के पाप को अश्वमेध याग से परम पुरुष परमेश्वर परमात्मा भगवान नारायण की आराधना करते हुए नाश कर सकते हैं।।7।।

भगवान के नाम संकीर्तिन करने से ब्रह्महत्या, पितृहत्या, गोहत्या, मातृहत्या और आचार्यहत्या करने वाले पापी, श्वपच और पुलस्कर भी शुद्व हो जाते हैं।।8।।

आप श्रद्धालु हैं। आपके अश्वमेध यज्ञ करने से ब्राह्मण से लेकर चराचर जगत के सारे जीव राशि को नाश करने पर भी आपको पाप का लेप नही हो सकता। तो दुष्ट वृत्र की हत्या से आपको पाप कहाँ से आने वाला है।।9।।

इस रीति से ऋषियों से प्रेरणा लेकर इन्द्र ने वृत्र का वध किया था। वृत्र के मरते ही ब्रह्म हत्या इन्द्र के पीछे पड़ गया।।10।।

ब्रह्म हत्या से त्रासित इन्द्र चैन को नही पाया। लोकापवाद से लजाने वाले आदमी को दुष्ट वध करने के बाद उससे मिलने वाले पुण्य और यश से समाधान नही होता ।।11।।

ब्रह्म हत्या इन्द्र का पीछा कर रही है। वह चंडाल स्त्री के समान थी। वृद्धावस्था वाली वह काँप रही थी, क्षय रोग से पीडित थी। कपड़े सारे रक्त से भीगे थे ।।12।।

वह ब्रह्म हत्या अपने सफेद बालों को खोल कर रखी थी। **ठहरो** बोलते हुए उच्चस्वर में चिल्ला रही थी। उसके शरीर से मछली की दुर्गन्ध आ रही थी। इससे बढ़कर उसकी श्वास की दुर्गन्ध परिसर को दूषित कर रही थी।।13।।

हे राजा, उसके भय से इन्द्र दशों दिशाओं में दौड़े। आकाश में खड़े होकर ईशान्य दिशा में दौड़ते हुए मानस सरोवर में घुस गये ।।14।।

वहाँ कमल के नाल में छिपकर बैठ गये। ब्रह्म हत्यारा होने के कारण उनको यज्ञ का हविर्भाग मिलना बन्द हो गया। अग्नि, दूत बनकर उनको ढूंढ़ने लगा। इधर ब्रह्म हत्या के पाप से विमुक्त होने की चिन्ता से इन्द्र ने एक हजार वर्ष पर्यन्त किसी को न दिखाते हुए छिप कर रहा ।।15।।

इस समय में इन्द्र पद पाकर नहुष चक्रवर्ती स्वर्ग का राजा बना। उसमें विद्या तप और योग का बल होने के कारण स्वर्ग का राजा बनने की ताकत थी, किन्तु ऐश्वर्य के मद से अन्धा होकर उसके अयोग्य कामना करने के कारण शचीदेवी के तंत्र से उसको साँप का जन्म आ गया।।16।।

मदांध नहुष ने इन्द्र की पत्नी शची का संग चाहा। उसने शची को संदेश भेज दिया कि आप इन्द्र की पत्नी है। अब मै इन्द्र बन गया हूँ। इसके लिए आपको मेरे वश में आना चाहिए। नहुष की इस कामना को सुनकर शची ने एक तंत्र किया। उसने संदेश भेजा कि राजा नहुष महर्षियों से ढोने वाली पालकी में बैठ कर आयें तो मैं आपको स्वीकार करुंगी। नहुष के आदेशानुसार महर्षियों ने पालकी लेकर चले। कामांध नहुष जल्दी जाने के लिए बोलते हुए अगस्त्य ऋषि को पाँव से मार दिया। ऋषि-शाप से वह अजगर बन गया

इतने में इन्द्र एक हजार वर्ष नरसिंह मंत्र के जप करने से पाप मुक्त हो गये। बाद में ब्रह्म हत्या उसको कुछ नही कर सकी। ईशान्य दिशाभिमानी रुद्र और उनके अन्तर्यामि नरसिंह भगवान इन्द्र की आराधना से संतुष्ट हो गये। कमल में रहने वाले विष्णु जी का पाद और उसके साथ महालक्ष्मी का अनुग्रह मिला। सरोवर में रहने वाली गंगा जी की कृपा से पाप पुरुष सम्पूर्ण रीति से नष्ट हो गया। ऋषि मुनियों की प्रार्थना से इन्द्र पुनः स्वर्ग को आ गये।।17।।

हे राजा परीक्षित, ब्रह्म हत्याभिमानी पाप पुरुष शक्ति हीन रह गया है, किन्तु कालावकाशमें वह बल शाली हो सकता है। इसके लिए ऋषियों ने इन्द्र को अश्वमेध यज्ञ का दीक्षा दिये, और यज्ञ किये।।18।।

वेद का उपदेश देने वाले ब्रह्मर्षियों से कराए हुए अश्वमेध यज्ञ में इन्द्र ने सर्व देवोत्तम सर्वान्तर्यामि, परम पुरुष भगवान की आराधना करने से वृत्र हत्या का महापाप भी, सूर्य उगने के बाद कुहरा जैसे नाश होता है, वैसे सम्पूर्ण नाश हो गया।।19,20।।

मरीचि इत्यादि महामुनियों से विधि पूर्वक चलाए हुए अश्वमेध यज्ञ से सनातन यज्ञ पुरुष की आराधना को इन्द्र ने विधिवत किया। उससे ज्ञान से पहले ही पाप मुक्त हुआ इन्द्र अब इस यज्ञ से बहुत पुण्य को पा लिया। यह बात **इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा महानभवत्** श्रुति में कहा गया है ।।21।।

यह महा कथा सारे पापों को नाश करने वाली है। यहाँ पवित्र रूप वाले भगवान की महिमा की गाथा गायी गयी है। भक्ति की महिमा व्यक्त हुई है। भक्तवृत्र की व्यक्तित्व का वर्णन है। देवेन्द्र के ब्रह्महत्या का पाप विमोचन और विजय का वर्णन है।।22।।

इन कथाओं का ज्ञानी लोगों को नित्य पाठ करना चाहिए। पर्व कालों में पारायण करना चाहिए, नहीं तो किसी से सुनना चाहिए । इससे इन्द्रियों में शक्ति, यश, पाप परिहार, मंगल और अन्त्य में मोक्ष मिल जायेगा ।।23।।

।।यहाँ श्रीमदभागवत् महापुराण में छठा स्कन्ध में तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय चौदह

राजा परीक्षित पूछे - हे महामुने! वृत्रासुर पापी था। राजस और तामस स्वभाव वाले असुर जाति में पैदा हुआ था। उसको नारायण में इतनी दृढ़ भक्ति कैसे उत्पन्न हुई।।1।।

देव और ऋषि लोग जाति से ही शुद्ध सात्विक स्वभाव वाले और निर्मल मन वाले होते हैं। उनमें भी वृत्र के समान भक्ति होना कठिन है। यह भक्ति ब्रह्मादि देवों में दिखता है।।2।।

इस ब्रह्माण्ड में जितने धूलि कण हैं उतने जीव जन्तु हैं। उनमें केवल मानव ही सुख साधन रुप धर्म का अनुष्ठान करते हैं।।3।।

उनमें ज्यादा लोग मोक्ष की कामना न करते हुए विषय सुखों में मग्न होते हैं। मोक्ष को चाहने वाले द्विजोत्तम बहुत कम होते हैं। ऐसे हजारों मुमुक्षों में केवल थोड़े लोग जीवन्मुक्ति के लिए प्रयास करते हैं। उनमें सफल होने वाले बिल्कुल कम होते हैं।।4।।

जीवन मुक्त लोग अन्त में मुक्ति पाते हैं। वे भगवान नारायण में सम्पूर्ण ज्ञान और भक्ति रखते हैं। उनमें करोड़ों में केवल थोड़े लोग श्रेष्ठ ज्ञान और भक्ति वाले हैं। वे अत्यन्त दुर्लभ हैं।।5।।

यह वृत्र महापापी है, लोक कंटक है। उसने युद्ध के प्रसंग में भगवान में दृढ़ भक्ति को कैसे पाया।।6।।

प्रभु, इस विषय के बारे में मुझे बहुत बड़ी शंका है। इसका समाधान पाने के लिए मुझमें कूतूहल है। वृत्र इन्द्र के भय से भगवान श्री कृष्ण की शरण में जाने वाला नही है। उसका युद्ध का, पौरुष का स्तुति को ने स्वयं इन्द्र किया है।।7।।

सूत पुराणिक कहते हैं परीक्षित राजा के इस प्रश्न को भगवान शुक मुनि जी अभिनन्दन करते हुए समाधान देते हैं।।8।।

श्री शुक जी बोले - हे राजा, एक प्राचीन कथा को बोलता हूँ, ध्यान देकर सुनो। इसको मैं वेदव्यास जी के मुखारबिन्द से सुना हूँ। नारद और देवल ऋषियों ने इसको दुहराये हैं।।9।।

शूरसेन देश में चित्रकेतु नाम का एक सार्वभौम राजा था। उसको भू देवी कामधेनू के समान वह जो-जो चाहता था उसको देती थी ।।10।।

उनको करोंडों रानियाँ थीं किन्तु उसको एक भी सन्तान नही हुआ था।।11।।

उसमें रूप,औदार्य, यौवन, कुलीनता, विद्या, अधिकार, संपदा इत्यादि अनेक सद्गुण थे। किन्तु एक भी पुत्र न होना उस दु:ख का कारण बना था।।12।।

सार्वभौमिकता का अपनी संपदा और सुन्दर रानियाँ ये सारे उनको सुख नही दिये।।13।।

भगवान अंगिरा मुनि संचार करते हुए भगवान की इच्छा के अनुसार उस राजा के राज गृह को पहुँच गये।।14।।

राजा उठकर खड़ा होकर उनको आसनादि सत्कार देते हुए विधि पूर्वक उनको गौरव दिया। आतिथ्य के बाद उनके आसन पर बैठ जाने के बाद भक्ति से उनके पास जाकर जमीन पर बैठ गया।।15।।

राजा अपने पास विनम्र होकर जमीन पर बैठा देखकर संप्रीत हुए मुनि ने उनसे कुशल प्रश्न पुछा।।16।।

अंगीरा ऋषि बोले - हे राजा, तुम गुरु, मंत्री, राष्ट्र, दुर्ग, कोश, सैन्य और मित्रराज इन सात प्रकृतियों से आरोग्य से है न। महत्तत्व, अहंकार, पंचमहाभूत ये सात प्रकृतियों के रक्षा में जीव जैसे रहता है वैसे राजा को गुरु मंत्री इत्यादि सात प्रकृतियों की रक्षा में रहना चाहिए।।17।।

राजा, तुम प्रकृति की रक्षा में स्वयं रहे तो तुम्हारा कल्याण होगा। वैसे ही ये प्रकृतियाँ भी राजा के सर्वतो मुख हित को देखते हैं तो वे भी श्रेय को पा सकते हैं ।।18।।

तुम्हारी पत्नी, पुत्र, अमात्य, सेवक, अंगरक्षक, मंत्री, नागरिक, देशवासी और सामन्तराज इनके साथ तुम्हारा मन तुम्हारे वश में रहता है न।।19।।

मन जिसके वश में रहता है। उसके वश में सभी रहते हैं। लोक और लोक पालक उसको बहुमानित करते हैं।।20।।

अपने सन्तोष के लिए अपना मन ही कारण होता है। अब तो लगता है तुम्हारा मन अतृप्त हो गया है। इसके लिए क्या कारण है। कारण अन्दर का है या बाहर का। मुझे लग रहा है तुम बहुत चिन्तित हो। तुम्हारे मुख देखने से यह लगता है।।21।।

शुक देव बोले - ज्ञानी मुनि के इन बातो को सुनकर पुत्र को चाहने वाला राजा विनय से नत मस्तक होकर कहा।।22।।

चित्रकेतु ने कहा - पूज्य पाद ! सारे पापो को परिहार करने वाले आप जैसे योगियों को अपने तप के कारण त्रिकालज्ञान और चित्त की एकाग्रता होने के कारण शरीर और मन में रहने वाला सारा विचार ज्ञात ही रहता है ।।23।।

किन्तु आप लोकरूढ़ि के अनुसार इच्छा कर पूछ रहे हैं। अपने मन में रहने वाले विचार को आपके सामने रखना चाहता हूँ।।24।।

लोकपाल भी अपने की इतना बड़ा साम्राज्य सम्पदा मेरा है। किन्तु पुत्र न रहने से इनसे मुझे संतोष नही है। भूखे को अन्न के बिना और किसी वस्तु से आनन्द नही होता ।।25।।

हे महात्मा, आप अनुग्रह करें। मैं अपने पूर्वजों के साथ नरक में गिर रहा हूँ। मै संतति के बल से उस घोर नरक को पार कर सकूँ ऐसा अनुग्रह आप कीजिए।।26।।

श्री शुक जी बोले - राजा की इस प्रार्थना को सुनकर कृपालु अंगिरा ऋषि ने त्वष्ट्रा देवता के उद्देशकर भविष्य का पाक करते हुए यज्ञ करवाये ।।27।।

राजा के सबसे श्रेष्ठ पटरानी का नाम कृतद्युति था। उनको ऋषि ने यज्ञ का शेष दिये।।28।।

बाद में वे राजा से कहे - हे राजा तुमको एक पुत्र होता है वह तुम्हारे दुःख और शोक दोनो का कारण बनता है। इतना कहकर ऋषि वहाँ से चले गये ।।29।।

रानी कृतद्युति ने यज्ञ शेष को पाकर, कृत्तिका देवी ने अग्नि कुमार षण्मुख को जैसे पाई वैसे, चित्र केतु से गर्भ धारणा की।।30।।

चित्रकेतु से पाया हुआ रानी का गर्भ शुक्ल पक्ष के चन्द्र के समान दिन प्रति दिन बढ़ता रहा।।31।।

नौ महीने के बाद एक कुमार का जन्म हुआ उसको सुन कर शूरसेन देश की प्रजा को बड़ा आनन्द हुआ ।।32।।

राजा मंगल स्नान करते हुए शुचिर्भूत होकर अलंकार धारण करते हुए ब्राह्मणों से आशीर्वाद पा कर अपने सुपुत्र का जातककर्म करवाया।।33।।

ब्राह्मणों को सोना चाँदी, वस्त्र, ग्राम, घोड़े, हाथी और करोड़ो गायों का दान दिया।।34।।

अन्य लोगों को भी मेघ जैसे वर्षा करता है वैसे जो चाहे उसको जितना चाहे उतना और उससे भी ज्यादा दान दिया। अपने पुत्र को धन यश और आयुष्य की वृद्धि की कामना किए।।35।।

दरिद्र को बहुत कष्ट के बाद धन लाभ हुआ तो उस धन में उस दरिद्र को जैसे मोह बढ़ता है वैसे ही राजा चित्रकेतु को अपने पुत्र में प्रति दिन मोह बढ़ता रहा।।36।।

माँ कृतद्युति को उससे भी बढ़कर पुत्र व्यामोह हो गया। साथ साथ उसकी सौतों को हमें पुत्र नही हुआ, यह दुःख भी बढ़ता रहा।।37।।

चित्रकेतु सदाकाल अपने पुत्र से प्यार करता था। पुत्र के साथ उसकी माँ के ऊपर भी उसकी ममता बढ़ती गयी। उसका प्यार अन्य पत्नियों में कम होता रहा।।38।।

उनकें अन्य पत्नियों ने पुत्र न होने का दुःख भोगने के साथ साथ बाँझ होने के कारण राजा के प्यार को भी खो जाने के कारण बहुत दुःख का अनुभव किए। सौत कृतद्युति के ऊपर असूया करते हुए खुद को का सने लगे।।39।।

पुत्र के बिना स्त्री को गौरव नही। उनके जीवन के लिए धिक्कार है। वह पति के प्यार को भी खो देती

है। पुत्र वाली सौत उसको दासी बना लेती है।।40।।

उससे दासी ही अच्छी है। उसके लिए क्या दु:ख होता है। प्रभु की सेवा करती है। बार बार उसको प्रभु की सेवा से बहुमान मिलता रहता है। बच्चे के बिना रहने वाले हम भाग्यहीन हैं, दासी के दासी बन गयी हैं।।41।।

सौत के पुत्र के कारण संताप करने वाली रानियाँ, अपने जीवन को राजा नही चाहता है यह समझ कर उनका सौत और उस बच्चे के ऊपर वे ज्यादा द्वेष करने लगे।।42।।

द्वेष से उनका मन खराब हो गया, हृदय क्रूर हो गया। राजा के ऊपर के द्वेष से उस बच्चे को विष खिलाए।।43।।

कृतद्युति को सौतों का यह महापापकार्य लक्ष्य में नही आया। वह समझ गयी की बच्चा सो रहा है। वह संतोष से इधर उधर भटक रही थी।।44।।

किन्तु बहुत देर के बाद भी बच्चे को सोते हुए देख कर रानी ने उसको ला देने के लिए दासी को बताई।।45।।

दासी सोए हुए बच्चे के पास जाकर देखती है, बच्चे की आँखें स्थिर हो गयी हैं। प्राण इन्द्रिय और मन शरीर को छोड़ कर चले गये हैं। उसको देख कर वह मैं **मर गयी** बोलते हुए चिल्लाई।।46।।

दासी की आवाज़ सुनकर उसके दोनो हाथों से अपने सीने को मारते हुए देखकर रानी बच्चे के पास दौड़ गयी, और मरा हुआ बच्चे को देखी।।47।।

वह भूमि के ऊपर गिर गयी। वह मूर्छित हो गयी। उसका बाल बिखरा हुआ था। पहना हुआ कपड़ा अस्त व्यस्त हो गया था। अन्त:पुर में रहने वाले स्त्री पुरुष इस रोदन को सुनकर बहुत दु:खित हो गये। अपराध किए हुये वे रानीयाँ भी दु:ख का नाटक की ।।48।।

अपने पुत्र के इस निगूढ मरण को देखकर राजा की आँखो में अंधेरा छा गया। गिरते उठते उसने अपने मंत्री, ब्राह्मण और प्रजाओं के साथ पुत्र के पास आ गया। मरा हुआ पुत्र को देखकर मूर्छित हो गया।।49।।

राजा मृत बालक के पाँव के नीचे गिर गया। उसके भी बाल बिखर गये, कपड़े तितर बितर हो गये। दीर्घ स्वास करते हुए रोने लगा। उसकी आँखों से दु:ख की नदी बहने लगी। गला अवरुद्ध हो कर कुछ भी नही बोल सका।।50।।

पति का गहन शोक, एक मात्र प्यारे पुत्र का मरण और मंत्रि मान्यों का विलाप देखकर रानी कृतद्युति बहुत दु:ख करने लगी।।51।।

काजल के कालिख से मिला हुआ आँख का पानी उसके दोनों स्तनो को भिगा दिया। सिर की फूल

माला गिर गयी, कुररी पक्षी के समान बहुत आवाज करते हुए वह पुत्र के लिए रोने लगी ।।52।।

हे भगवान, आप मूर्ख हैं। आप सृष्टि के विरुद्ध चल रहे हैं। बूढ़े जीवित हैं, बच्चे मर रहे हैं। यह विपरीत काम ही यदि आपसे होता है, तो आप निश्चित रूप से इस प्रपंच के शत्रु हैं।।53।।

शरीर के जनन मरण में क्रम नही रहता, जो कुछ होता है वह कर्म के कारण होता है, माने तो आपके सृष्टि चलाने के लिए किया हुआ यह पिता माता पुत्र के सम्बन्ध को आपही काट रहे हैं। आप निश्चित रूप से मूर्ख हैं।।54।।

हे बेटा, देखो, मुझको अनाथ बनाकर तुम मत जाओ। देखो तुम्हारे पिता जी बहुत दुःख कर रहे हैं। संतानहीन लोग जिन नरकों को पार करने में असमर्थ होते हैं उन नरकों को तुम्हारी सहायता से पार करना है। इसके लिए तुम कारुण्य रहित होकर यम के साथ नही जाना।।55।।

हे बेटा, जागो, उठो। तेरे साथी तुमको खेलने के लिए बुला रहे हैं। तुम सोकर बहुत समय हो गया है। उठो, आओ, मैं दूध पिलाती हूँ। तुम हम लोगो का दुःख दूर करो।।56।।

हे बेटा, मै भाग्यहीन हूँ। मुग्ध और मंदहास पूर्ण तुम्हारे आँखों को दिल भर अभी तक मैने देखा नही। तुम्हारे नन्हे मुन्हे शब्दों को अभी तक सुनी नही। निष्करुण यम ने तुमको वापस न आने वाले परलोक को ले गया क्या ? तुम उसके साथ चले गए क्या?।।57।।

श्री शुक जी कहे - इस रीति से रानी की अपने पुत्र के लिए तरह तरह से विलाप करते देखकर चित्रकेतु शोकसंतप्त होकर गला खोल कर रोने लगा।।58।।

इस रीति से दम्पति रोने लगे तो राजा के सारे सभासद भी रोने लगे।।59।।

उस समय वहाँ जो थे वे सारे रोने लगे। उनको कोई कहने वाला और सुनने वाले नही रहे। इसको देख कर अंगिरा मुनि नारद जी के साथ वहाँ आये।।60।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत् महापुराण में छठा स्कन्ध में चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय पन्द्रह

श्री शुक जी बोले - पुत्र शोक से परवश होकर मृत शरीर के पास शव जैसे गिरे हुए राजा को अंगिरा और नारद जी ने अच्छी बातों से सान्त्वना दी ।।1।।

महाराज, तुम इस बच्चे के लिए रो रहे हो। ये बच्चा तुम्हारे लिए क्या लगता है। तुमने इसको अपना बेटा समझा है, तुम इसका बाप है क्या ? यह लड़का बहुत बार जन्म ले चुका है, और बहुत बार जन्म लेने वाला है। तुम उसको कौन सा पिता है?।।2।।

नदी की धारा से बालू के कण एक साथ मिलते हैं, बाद में अलग होते हैं। वैसे ही काल प्रवाह के कारण जीव परस्पर मिलते हैं, और अलग हो जाते हैं।।3।।

बीज को बोने के बाद कई बीज फलित होते हैं, कई बीज वैसे ही नष्ट हो जाते हैं। मानव जीवियों में भी कई बड़े हो जाते हैं। कई छोटेपन में मर जाते हैं। यह भगवान के संकल्प के अनुसार होता है।।4।।

हम तुम और ये सारे चराचर वस्तु इस काल में साथ रहे हैं। किन्तु जन्म लेने के पहले अथवा मरने के बाद ऐसे ही साथ में रह नही सकते। अब भी हम स्वाभाविक रूप से साथ नही हैं। केवल देह सम्बन्ध के कारण एक साथ हैं।।5।।

पंच भूतों का स्वामी जनन रहित भगवान नारायण, पंच भूतों से इन भौतिक शरीरों का निर्माण करते हैं, रक्षा करते हैं, नाश भी करते हैं। पंच भूतों को भी वे ही निर्माण करते हैं। इसी कारण पंचमहाभूत भी अस्वतंत्र हैं। इस सृष्टि से भगवान को कोई प्रयोजन नही है। उनके लिए यह बच्चों का खेल है। बच्चे बालू से बँगला बनाते हैं, जाते समय वे ही उसका नाश करते हैं ।।6।।

एक बीज से औरएक बीज होता है, वैसे ही पिता के संपर्क से माता के देह से बच्चे का जन्म होता है। यह अचेतन देह अनित्य है। देह के अन्दर रहने वाला देही चेतन सत्य है। वह भी प्रवाहत: सत्य है। भगवान के समान नित्य नही है।।7।।

एक ही वस्तु में तार्किक लोग घटत्व और पटत्व से अपने अज्ञान के कारण भेद की कल्पना जैसे करते हैं, वैसे अज्ञानी संसारी लोग देह और देही में अभेद की कल्पना करते हैं। वे भेद को समझते हुए भी अभेद है ऐसे व्यवहार करते रहते हैं।।8।।

तृण को आग लगकर तृण जले तो हम उस गलती को आग के ऊपर जैसे डालते हैं। वैसे ही शरीर की उत्पत्ति, विनाश, वृद्धि, कर्म और कर्मफल को, ये आत्मा का गुण धर्म न होते हुए भी देह के सम्बन्ध के कारण, देह में अभिमान रखते हुए हम उसको आत्मा से जोड़ देते हैं।।9।।

जागृति में देखने वाले वस्तुअसें को जैसे स्वप्न में देखने वाले पदार्थो का साम्य दीखाता है वैसे और

देह की उत्पत्ति, नाश इत्यादि देह सम्बन्ध से, देहाभिमान के कारण आत्मा में दिखता है। इससे आत्मा के स्वरूप से भिन्न देह को एक समझना गलत होता है। यही दु:ख का कारण है।।10।।

सुषुप्ति (स्वप्न रहित घन निद्रा) में देह का अभिमान न होने के कारण इस संसार के दु:ख का अनुभव नहीं होता वैसे ही जीवन्मुक्ति में जीव को शरीर होते हुए भी उसका अभिमान न रहने के कारण संसार का अनुभव नही होता।।11।।

पत्नी पुत्रों में करने वाले ज्यादा अभिमान से मन में दोष उत्पन्न होता है, मिथ्या ज्ञान बढ़ता है। उसका परित्याग करो। अन्तर्यामि सर्वेश्वर भगवान वासुदेव में अपना मन स्थिर रखो।।12।।

शुक जी बोले - इस रीति से नारद और अंगिरा राजा को सांत्वना दी। राजा दु:ख से म्लान हुए अपने मुख को कपड़े से पोछते हुए कहा।।13।।

चित्र केतु राजा ने कहा - आप श्रेष्ठ ज्ञानियों में अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। अवधूत वेष में आये हुए आप कौन हैं।।14।।

भगवान के प्रियब्राह्मण पागल के जैसे वेष धारण कर हमारे जैसे विषयासक्त लोगों को ज्ञान देने के लिए संचार करते रहते हैं।।15।।

सनत्कुमार, नारद, ऋभु, अंगिरस, देवल, असित, अपान्तरतम, व्यास, मार्कन्डेय, गौतम, वशिष्ठ, परशुराम, कपिल, शुक, दुवास, याज्ञवल्क्य, जातुकर्ण्य, आरुणी, रोमश, च्यवन, दत्त, आसुरी, पतंजलि, पराशर, मैत्रेय, भरद्वाज, अरुण, वेदशिरस, बोधायन, पंचशिख, हिरण्यनाभ, कौशल्य, श्रुतदेव, क्रतुध्वज इत्यादि अनेक सिद्ध पुरुष ज्ञान देने के लिए संचार करते हैं।। 16, 17, 18, 19।।

आपलोग विषयासक्त पशु समान, अज्ञान अंध:कार में डूबे हुए मुझको ज्ञान का प्रकाश दीजिए।।20।।

ऋषि अंगिरा कहे - हे राजा पुत्र को चाहने वाले तुमको पुत्र दिया हुआ अंगिरा मुनि मैं हूँ। मेरे बगल में खड़े हैं ब्रह्मा जी के मानस पुत्र साक्षात् भगवान नारद मुनि।।21।।

अब तुम पुत्र शोक से बहुत बड़े गहरे अज्ञान में डूब गए हो। यह तुम्हारे लिए शोभा नही देता। तुम भगवान के लिए प्रिय हो। तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करने के लिए हम यहाँ आये हैं। भगवान ब्राह्मण प्रिय हैं। उनके भक्तों को कभी भी दु:ख नही करना है।।23।।

उस दिन जब हम तुम्हारे राज घर आये थे तभी तुमको यह उपदेश देना चाहते थे। किन्तु उस समय तुमको विषयों में उत्कट अभिलाषा होने के कारण उस समय तुमको पुत्र संतति का वर दिये।।24।।

अब तुमको पुत्र रहने वाले लोगों का दु:ख क्या होता है इसका अनुभव आया है। ऐसे ही अधिकार सम्पदा, पत्नी, घर, शब्द रस इत्यादि विषय भोग, राज्य, भूमि, सैन्य, कोश, सेवक, अमात्य, मित्र जन ये सारे शोक मोह भय और दु:ख के कारण बनते हैं। गंधर्व नगरी के समान, स्वप्न पदार्थ जैसे इन्द्र जाल की तरह दिवा स्वप्न जैसा दिखते रहते हैं। पदार्थ के बिना केवल भ्रान्ति कभी भी नही होती। विषय पदार्थों को

चाहने वाले मन से अनेक कर्म होने के कारण उन उन काम्य कर्मो से किए हुए सारे विषय पदार्थ कामना को बढ़ाने वाले मन में निहित होते हैं। ये सारे अनित्य हैं किन्तु मिथ्या नही ।।25,26,27,28।।

जीव का यह देह पंचभूत से निर्माण किया हुआ ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय युक्त है। ये देह जीव को अनेक रीति से दु:ख देता रहता है। इनसे होने वाला अनुभव मिथ्य नही होता।।29।।

इसी कारण तुम स्वयं मन से भगवान के स्वरूप के बारे में चिन्तन करो। भगवान अकेले ही नित्यों में नित्य है। उन्ही के ऊपर विश्वास रखो। जीव परतंत्र है। उससे पाए हुए शरीर के बारे मे ऋषियों का शाश्वत अभिप्राय समझो। उनके ऊपर विश्वास रखो। भगवान में भक्ति करो।।30।।

यहाँ मूल में द्वैत शब्द का प्रयोग है। जीव को मिलने वाले शरीर उसके लिए शाश्वत नही होते हैं क्योकि वे द्वैत हैं। भगवान हरि स्वतंत्र हैं। इसी कारण वे एक कहलाते हैं। जीव परतंत्र है। इसके लिए वह द्वय कहलाता है। जीव जो पाता है उसको द्वैत बोलते हैं। शब्द निर्णय ने इसकी व्याख्या की है।

भोज नाम के राजा उसने स्वप्न में बड़ा दु:ख का अनुभव किया। स्वप्न में दूसरा राजा उसके ऊपर आक्रमण किया। भोज राजा को उसके वश में होकर शोक मोह भय से पीड़ित होकर उसका जूठा खाना पड़ा।।31।।

पिछले के शत्रुत्व को याद करते हुए उस शत्रु राजा ने उसके सारे भोग सामग्री को छीन लिया। उसके आश्रित लोगों को मार दिया, और उसके रानी का अपहरण करते हुए अन्त में उसका सिर काट डाला।।32।।

इस रीति से अन्तरहित अपार दु:खों का अनुभव करने के बाद भोज राजा स्वप्न से जागृत हो गया। वहअपने स्वप्न के बारे में पुन: पुन: याद करते हुए विरक्त होकर राजगृह को छोड़ दिया ।।33।।

वह राजा दुर्जनों का संग छोड़ दिया, वैर भाव को विराम दिया। स्वेच्छा से जड़ के समान रहने लगा। मन में अप्राकृत शरीर वाले परब्रह्म नारायण का स्मरण करते हुए अपने शरीर के भाव को भूल गया। असंप्रज्ञात समाधि पाकर पूर्ण रीति से शरीराभिमान रहित हो गया।।34।।

नारद जी कहे कि मैं आगे जो बोलता हूँ, उस रहस्य मंत्र के उपदेश को एकाग्रचित होकर पा लो। उसकी उपासना किया तो सात दिन में तुम प्रभु संकर्षण के दर्शन पाओगे।।35।।

शेष के अन्तर्निहित संकर्षण भगवान का पाद सेवा करने से रुद्रादि देवताओं ने शरीर का अभिमान त्यागते हुए उसके मूल रूप देहादि बन्ध का त्याग कर भगवान संकर्षण की कृपा से मिलने वाले श्रेष्ठ माहात्म्य को तुम भी जल्दी में पाओंगे।।36।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत, महापुराण में छठा स्कन्ध में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय सोलह

श्री शुक जी बोले - हे राजा, बाद में देवर्षि नारद जी मरा हुआ बच्चे को योग बल से जिन्दा कर दुःख करने वाले बन्धुओं को दिखाए। उस बच्चे से कहते हैं।।1।।

नारद जी बोले - हे जीवात्मा, अपने माता पिता को देखो। तुम्हारे कारण ये सारे लोग बहुत दुःखित हो गये हैं। तुम इनको देखो। तुम्हारा कल्याण हो।।2।।

तुम अपमृत्यु से मरे हो, तुम्हारी आयु बाकी है। उससे तुम इस शरीर में और एक बार प्रवेश करो इनके साथ सकल भोग भाग्य का अनुभव करो। तुम इस राज्य के राजा बनो और इन सबको संतोष समाधान दो।।3।।

जीव ने कहा - हे मुनि ये किस जन्म में मेरे माता पिता हो गये थे। मै अनन्त जन्म ले चुका हूँ। ये केवल एक जन्म में तात्पूर्तिक रूप से माता पिता बन गये थे। मै अपने कर्मवश से देव, प्राणी, मनुष्य इत्यादि अनेक शरीरों में फिरते हुए आया हूँ। अगले जन्म में ये मेरे माता-पिता नही होने वाले हैं।।4।।

विवाह-सम्बन्ध, सपिण्डी लोग, खून करने वाले, उपकार और अपकार दोनो करने वाले, केवल उपकार करने वाले, इन दोनो को नही करने वाले और केवल अप्रिय को करने वाले ये सारे तात्पूर्तिक सम्बन्ध होते हैं। तात्कालिक जन्म लेते हैं। इस जन्म में मैं इनका प्रिय बना था किन्तु पिछले जन्म में इनका शत्रू भी हुआ हूँगा। ऐसे मेरे लिए ये दुःख क्यों करते हैं और मैं इनको क्यों समाधान करूँ।।5।।

सोना जैसे बेचने वाले वस्तु हाथ बदलता रहता है, वैसे ही जीव भी शरीर बदलता रहता है।।6।।

स्थिर होकर सदाकाल रहने वाला सोना इत्यादि वस्तुओं का स्वामित्व मनुष्य में थोड़े समय के लिए रहता है। वह जितने समय तक उसके वश मे रहता है केवल उसी समय तक उस सोने में उसका मोह रहता है।।7।।

जीव नित्य है। इससे पिता-पुत्र का अभिमान नही करना है। एक जन्म में पुत्र होकर जितने दिन उस शरीर में रहता है उतने दिन ही वह पुत्र होता है। शरीर को छोड़ ने पर पुत्र का सम्बन्ध नही रहता।।8।।

भगवान अपनी इच्छा के अनुसार अपने अधीन वाले गुणत्रयों से प्रपंच की सृष्टि करते हैं। उसके नियामक अपने रूपों को स्वयं व्यक्त करते हैं। यह भगवान नित्य हैं। नित्य सम्बन्धि होते हुए भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं। उसी कारण अन्यों को दिखते नही, वे स्वयं सबको देखते रहते हैं। वे सर्वशक्त हैं। इसी कारण अनित्य

सम्बन्ध वाले पुत्र पत्न्यादि मोहो को छोड़कर नित्य सम्बन्ध वाले भगवान का भजन करना चाहिए।।9।।

भगवान असुर, दुष्ट लोग और दुष्ट प्राणियों का निर्माण भी करते हैं। उनका स्वभाव को वे पहले से ही जानते है। तो भी सृष्टि करते हैं। क्योंकि भगवान के लिए प्रिय और अप्रिय कोई नही है। वे सब को समान रीति से रहते है। कर्म करने वाले जीव विचित्र बुद्धि और गुण दोषों को देखते हुए उनके अनादि जीवन योग्यता के अनुसार पुण्य पाप कर्म को और उनके अनुसार उसके फल को देते रहते हैं। वे किसी के साथ पक्षपात नही करते।।10।।

भगवान सृष्टि करते हैं। किन्तु वे शुभ अशुभ कर्म के फल को जीव के तरह भोगते नहीं। शुभ फल को भेगने के बाद भी उनमें वृद्धि नही होती। अशुभ फल को वे खाते नही। बिना कष्ट से वे सारे कार्य करते रहते हैं। इसी कारण वे उदास जैसे दिखते हैं। भगवान अचिन्त्य शक्ति वाले हैं। उनको भूत और भविष्यत का समग्र ज्ञान रहता है। ऐसे भगवान अपार महिमा वाले हैं। वे जीव से स्वयं माँ पिता पुत्र इत्यादि सारे नित्य सम्बन्ध रखते है। ऐसे नित्य सम्बन्ध होते हुए भी ये लोग अल्प काल के सम्बन्ध वाला मुझ के बारे में क्यों रोते हैं, और मै उनको क्यों कर सांत्वना देता हूँ? ।।11।।

श्री शुक जी बोलते है - यह बोल कर जीव आत्मा चला गया। इसको देखकर उनके बन्धु आश्चर्य चकित होकर पुत्र मोह का शृंखला को फाडते हुए शोक को त्याग दिए।।12।।

बन्धुओं ने उसके शरीर को अनुपनित के योग्य उत्तर क्रिया किए। शोक मोह भय दुःख का भाव सताते हुए तो भी पुत्र का मोह को पूर्ण रूप से त्याग दिए।।13।।

बच्चे को विष पिलाने वाली रानियाँ शिशु हत्या दोष से कान्तिहीन हुए। वे लजाते हुए अंगिरा ऋषि के उपदेश के अनुसार ब्राह्मणों के बचने के अनुसार यमुना तट पर शिशु हत्या निवारण के लिए प्रायश्चित रूप व्रतका आचरण किए।।14।।

अंगिरा और नारद जी के उपदेश को सुनकर चित्रकेतु ने कीचड़ में पड़ा हुआ हाथी उठकर ऊपर आने जैसे अन्धकार से भरा हुआ अपने घर को छोड़ कर बाहर आ गया।।15।।

जमुना नदी में विधि पूर्वक स्नान करते हुए पितृतर्पण इत्यादि पुण्य कार्य करने के बाद अयोग्यों से बाते न करते हुए प्राणायाम के बाद ब्रह्मा जी के पुत्र अंगिरा और नारद जी को नमस्कार किए।।16।।

अशौच के बाद राजा संयमि होकर भक्ति से भगवान नारद जी के शरण में आया। तब नारद जी मंत्र का उपदेश दिये।।17।।

नारद जी मंत्रोंपदेश करते हैं। भगवान वासुदे व को नमस्कार। प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण को मै

मन : पूर्वक नमस्कार करता हूँ।।18।।

पूर्णज्ञानस्वरूप, परमानन्द शरीर वाले, स्वरमण, पूर्णसुखी और अपने अवतारों में भेद न रखने वाले भगवान को मै नमस्कार करता हूँ।।19।।

स्वरूपानन्द के अनुभव से प्यास, भूख, मोह, बुढ़ापा, ए छः लहरों को दूर किये हुए, इन्द्रियों के नियामन करने वाले, महामूर्ति शेषान्तर्गत नारायण को नमस्कार।।20।।

बाहर के मन इन्द्रिय स्तब्ध होने के बाद चिन्मय आन्तरिक मन को गोचर होने वाले सर्वऔत्म भगवान नामरूप रहित हैं। वे नाश रहित हैं, स्वयं चिन्मय हैं। और कार्य कारण विलक्षण रूप वाले हैं।।21।।

मिट्टी के कारण पहाड़ और मैदान में मिट्टी के गुण के अनुसार पेड़ पौधे उगते और नाश होते रहते हैं। वैसे ही यह जगत भगवान में रहता है, नाश होता है, और फिर उन्हीं से सृष्ट होता है। ऐसे भगवान को नमस्कार।।22।।

वे कार्य कारणात्मक इस प्रपंच से विलक्षण हैं। हमारे मन बुद्धि और ज्ञानेन्द्रिय उनको नही जान सकते हैं। प्राण यानी कर्मेन्द्रिय उनको छू नही सकते। आकाश के समान वे अन्दर बाहर सर्वत्र व्याप्त हैं। तो भी हम उनको जान नही सकते, छू नही सकते। इसी कारण उनको ज्ञानी लोग प्रपंच विलक्षण कहते हैं। ऐसे भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।।23।।

देह, इन्द्रिय,प्राण, मन, बुद्धि और उसके अभिमानी भगवान के विशेष रूप से प्रेरित होकर जागृति अौर स्वप्न में अपना कार्य करते रहते हैं। सुप्ति और मूर्छा में नही करते, क्योंकि उस समय उनको प्रेरणा नही मिलती है। लोहा जब आग में जला हुआ रहता है तब स्वयं अन्य वस्तुओं को जलाता है। बाकी समय में जला नही सकता। किन्तु वह कभी भी आग को जला नही सकता, वैसे ही भगवान की शक्ति से काम करने वाले मन इन्द्रिय और उनके अभिमानी, भगवान को नही जानते हैं। किन्तु भगवान इन्द्रियों में प्रेरक होकर रहते हुए सबको देखते रहते हैं। इसी के लिए उनको द्रष्टा कहते हैं। ऐसे भगवान की मै शरण में जाता हूँ।।24।।

सारे सज्जन भक्त हाथ जोड़कर जिनके चरण कमलों की आराधना करते हैं वह सर्वोत्तम, सर्वेश्वर, भगवान हैं। ऐसे महापुरुष, महानुभाव, महाविभूति, गुण पूर्ण भगवान आपको नमस्कार।।25।।

शुक जी बोले - राजा, भक्त होकर शरण आए हुए चित्रकेतु राजा को नारद जी अंगिरा ऋषि के साथ ब्रह्मलोक को चले गये।।26।।

नारद जी के उपदेश के अनुसार चित्रकेतु ने उस महा मंत्र को सात दिन तक केवल जलाहार नियम से रहते हुए एकाग्रचित्त होकर जाप किया।।27।।

सात दिन के बाद जप किए हुए मंत्र के प्रभाव से राजा निष्कंटक विद्याधर आधिपत्य को पा लिया।।28।।

उसके बाद थोड़े ही दिन में मंत्र के बल से अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ चाहे वहाँ जाने की शक्ति को पा लिया। बाद में देवाधिदेव शेष लोक में उनके पाद के समीप जा बैठा ।।29।।

कमल के मृणाल के समान सफेद रंग वाले, नीलाम्बारधारी, चमकने वाले किरीट, बाहु बन्द, कटि सूत्र और कंकण को धारण किये हुए प्रभु संकर्षण को चित्रकेतु ने देखा। वे भगवान सिद्ध समूहों के बीच में बैठे थे, हंसमुख थे।।30।।

संकर्षण नामक उन शेषदेव के दर्शन से उसके सारे पाप का निवारण हो गया। अन्त:करण स्वस्थ हो गया, निर्मल हो गया। भक्ति के उद्रेक से रोमान्च हुआ। आँख में आनन्द के आँसू बह गये। बाद में उपासना करते हुए शेष में रहने वाले संकर्षण का दर्शन चित्रकेतु राजा ने कर लिया।।31।।

भगवान हरि के पाद पीठ को अपनी आँखों के प्रेममय जल से बार बार धोते हुए चित्रकेतु अपने मुँह से एक बात भी कर नही सका। वह बहुत प्रयास करने पर भी स्तुति वाक्य एक भी उसके मुह से नही निकला।।32।।

बाद में अपने बुद्धि को नियंत्रण में लाते हुए इन्द्रियों को बाह्य विषयों से अपने वश में लेते हुए बात करने की शक्ति को अपनाया। भक्तों को सन्मार्ग दिखाने, अवतार लेने वाले जगद्गुरु संकर्षण की स्तुति करने लगा।।33।।

चित्रकेतु बोला - हे अजित, आप समदर्शी, जितमनस्क, साधुओं से अराप जित हैं क्योंकि निष्कामना से आप का भजन ध्यान करने वाले को आप अपने को स्वयं दे देते हैं। आप अत्यन्त करुणाशाली हैं। आप उन भक्तों को भी अपने अधीन में रख लेते हैं।।34।।

हे शेषान्तर्गत नारायण ! इस जगत की सृष्टि, स्थिति, लय और पालन आपकी लीला है। ये जगत आपके स्वरुपांश विशिष्ट भिन्नांश हैं। इसी कारण ब्रह्मादि देव सृष्टि कार्य करने में समर्थ हैं। आप स्वतन्त्र हैं। किन्तु देखने में वे स्वतंत्र और आपके स्पर्धी लगते हैं। यह स्पर्धा केवल नटना है।।35।।

परमाणु के समान सूक्ष्म, मूल कारण, अत्यन्त महत्व, अन्तिम कार्य इनके आदि मध्य और अन्त में आप नियामक होकर रहते हैं। सत्वादि गुणत्रयों के कार्यों में आप ही आदि, मध्य, अन्त काल में रहते हैं। आप शाश्वत हैं, ब्रह्मादि देवता एक कल्प मात्र रहने वाले हैं।।36।।

इस ब्राह्माण्ड में पृथ्वी से लेकर एक एक करके दस गुना बड़े जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महतत्व और गुणत्रय नाम के सात आवरणों से घिरा हुआ है। ऐसे कोटि कोटि ब्रह्माण्ड आपके रोम कूप में अणु से अणु होकर रहते हैं। यह सारा आपका ही अपरमित रूप है।।37।।

विषय को चाहने वाले नर पशु के समान हैं क्योंकि वे आपका ही विभूति रूप इन्द्रादि देवताओं को

विषय सुख के लिए सकाम पूजा करते हैं किन्तु आपको भूल जाते हैं। राजा के घर में रहते तक सेवकों को सुख भोग मिलता है। एक बार राज्य नष्ट हुआ तो सेवकों को सुख कहाँ से मिलेगा। वैसे ही विषय सुख के उद्देश्य से आपका भजन करने वाले थोड़ा सुख भोग कर बाद में नाश होते हैं।।38।।

आप ज्ञानादि गुण स्वरूप हैं। आपको गुणत्रय के विकार रूप इन्द्रिय, शरीर नही है। जीव आप में पहले काम्य फल को चाहता है, बाद में निष्काम कर्म करने के बाद भूजे हुए बीज के समान उसमें विषयों की लालसा उत्पन्न नही होती आप त्रिगुण रहित होने के कारण आपकी उपासना से वह भी क्रमशः त्रिगुणों को छोड़ देता है। केवल इन त्रिगुणों से ही जीव को ये सारे सुख दुःख रूप द्वन्द्वो से उपद्रव होता है।।39।।

हे अजित ! आप मुझे जब भागवत धर्म का उपदेश दिए तभी आप ने सब को जीत लिया। क्योंकि सारे आकर्षणों को जीतकर अपने पास कुछ भी न रखते हुए ध्यान में ही सुखपाने वाले योगीय भी मोक्ष के लिए आपकी उपासना करते हैं।।40।।

भागवत धर्म में मैं, मेरा, मै स्वतंत्र कर्ता, यह मेरा है, यह तुम्हारा है, इस तरह की वैषम्य पूर्ण बुद्धि नही रहती। भगवान ही सब करने वाले, वे ही स्वतंत्र कर्ता, ये सारा उन्ही का है , ऐसे सम बुद्धि रहति है। विषम बुद्धि से करने वाले काम्य कर्म रागादि दोषों से युक्त होते हैं, नश्वर फल देते हैं और हिंसादि अधर्म कार्य को करवाते हैं।।41।।

उग्र काम्य कर्म से या तप से अपने को और दूसरे को क्या सुख मिलने वाला है। इससे खुद को काय क्लेस, दूसरों को क्षोभ होने के कारण काम्य कर्म करने से क्या लाभ है। वह स्वयं अहित कर्म करते हुए देवताओं के लिए द्रोह जनक काम करता है। उसी के कारण आप रुष्ट हो जाते हैं। लोकक्षेम् के कारण दूसरों की हिंसा करना बड़ा पाप है। तत्व को बताने के लिए आप हमें भागवत धर्म का उपदेश दिये हैं। वह कभी भी असत्य नही होता। इस धर्म को स्थावर जंगम इस प्राणि समूह में सही ज्ञान वाले साधु सज्जन लोग इस धर्म का अनुष्ठान करते हैं।।43।।

भगवान आपके दर्शन से मानवों के सारे पाप नाश होते हैं, यह असम्भव नही हैं। आपके नाम का एक बार श्रवण करने से चण्डाल भी संसार से मुक्त होता हैं।।44।।

हे भगवान, मैंने आपके दर्शन से अपने अन्तःकरण के सारे पापों को धो लिया। आपके प्रिय भक्त नारद जी जो कहे थे वह सारा सच निकला।।45।।

आप सर्वान्तर्यामी हैं। आपको लोगों के आचरण के बारे में पूरा विदित रहता है। आप गुरुओं के गुरु हैं, सर्वज्ञ हैं, आपको मैं क्या बोलूँ। मै मूढ था, नारद जी से अनुग्रहीत होने के कारण आपकी कृपा को पा लिया। हे अनन्त सबको देखने वाले सूर्य भगवान को जुगुनू क्या दिखाता है।।46।।

इस जगत की सृष्टि स्थिति लय करने वाले भगवान आपको मेरा नमस्कार। आपकी महिमा कुहुक योगियों के समझ में नही आता। आप शुद्ध स्वरूप हैं। आप मेरा प्रणाम स्वीकारिये।।47।।

आपकी प्रेरणा के बिना हम नमस्कार करने में भी समर्थ नही हैं। आप अन्दर रहकर सृष्ट्यादि कार्य करते हैं। ब्रह्मादि देवता उस कार्य को चलाते हैं। आप अन्दर रह कर प्रेरणा देते हैं, इन्द्रियासदाकाल बाहर देखते रहते हैं। आपके एक फणे के ऊपर यह भूमण्डल सरसों के मात्र में रहता है। ऐसे हजार फणा वाले शेष अन्तर्यामी संकर्षण भगवान आपको नमस्कार।।48।।

श्री शुक जी कहे - हे राजन इस प्रकार स्तोत्र करने से भगवान संकर्षण प्रसन्न होकर विद्याधर चक्रवर्ति को कहे ।।49।।

श्री भगवान बोले - हे राजा, नारद और अंगिरा ऋषियों द्वारा दिए हुए मंत्र से और मेरे दर्शन से तुम जीवन्मुक्त हो गये हो।।50।।

मै सारे जीवियों का अन्तर्यामी हूँ। उनका अधिपति होकर उनकी सृष्टि करने वाला मैं ही हूँ। मुझे वेदादि शास्त्र, शब्दब्रह्म कहते हैं। परब्रह्म और परमात्मा ये दोनों मेरे शाश्वत रूप हैं।।51।।

तुम्हारा मन इस विषय प्रपंच में लगा रहता है। यह प्रपंच अपने संस्कार से मन को प्रभावित करता है, ये मन और प्रपंच दोनो में मैं व्याप्त हूँ, ये दोनो मेरे अधीन होकर मेरे आश्रय में रहते हैं।।52।।

नींद करने वाले जीव स्वप्न में वासनामय प्रपंच को देखते हैं, जागने पर अपने को सोते पाते हैं। स्वप्न में जो देखा है वह अब दिखता नही। यह स्वप्न और सुषुप्ति दोनों भगवान की इच्छा से होते हैं।।53।।

इसी तरह जागृत अवस्था भगवान के अधीन रहता है। मन के सम्बन्ध में आने वाले जीव के सुख-दुख आदि अनुभव, जागरणादि अवस्था केवल भगवान की इच्छा और उनके अधीन प्रकृति के कारण होता है। इसको समझकर उनको करने वाले को भगवान की उपासना करनी चाहिए।।54।।

नींद करने वाला जीव प्राज्ञ नामक भगवान के अनुग्रह से अपनी नींद में अपने स्वरूपभूत आनन्द को अनुभव करता है। उस समय उसको बाह्य प्रपंच का अनुभव नही आता। इस रीति से स्वप्न, जागृति , और सुषुप्ति में विश्व तैजस ओर प्राज्ञ नाम के भगवान के अनुग्रह से ही जीता है। त्रिगुण के कार्य रूपी इन अवस्थाओं को पाने वाले जीव को त्रिगुण रहिति, गुण पूर्ण मैं ही चौथा रूप लेकर चतुर्थावस्था मोक्ष को देता हूँ।।55।।

जीव नीद और जागृति ए दोनों को अनुभव करता है, उसके साथ भगवान भी जागृत रहते हैं। किन्तु जीव जब नींद करता है, उस समय में भी भगवान नींद न करते हुए जागृत रहते हैं। भगवान ज्ञान स्वरूप होकर जीव से बहुत भिन्न और विलक्षण रहते हैं। मुझको वही भगवान मानो।।56।।

मेरे स्वरूप से जीव अत्यन्त भिन्न हैं। इसको भूलने से जीव को इस संसार में रहते हुए एक शरीर के बाद और एक शरीर पाते हुए जीवन चलाना पड़ता है। वह नित्य संसारी बनता है। यदि वह मुझमें और उसमें अभेद कल्पना किया तो अन्धंतम को पाता है। उसको एक दु:ख के बाद और एक दु:ख भोगना पड़ता है। इन दु:खों के लिए अंत नहीं रहता।।57।।

इस कर्म भूमि में शास्त्र ज्ञान और अपरोक्ष ज्ञान के साधन रूप मानव जन्म पाने के बाद भी गुण पूर्ण भगवान का अधीन रूप अपने स्वरूप को जो नही जानता वह कभी भी सुख को नही पाता।।58।।

संसार के सुख के लिए कर्म करने वाले को प्रवृत्ति मार्ग में कष्ट ही ज्यादा रहता है। उस कष्ट के कारण निरीक्षित फल के बदले में दु:ख ही आ जाता है। किन्तु मोक्ष के लिए प्रयत्न करने वाले निवृत्ति मार्ग में ये दोनो नही हैं। यहाँ नित्य सुख रूप वाला मोक्ष ही मिलता है। इसको जान कर बुद्धिमान जीव को प्रवृत्ति मार्ग को छोड़ कर विरागी होना चाहिए।।59।।

प्रवृत्ति मार्ग में रहने वाले दम्पति ने सुख की कामना करते हुए, दु:ख न हो इसके लिए संकल्प करते हुए काम्य कर्मों का आचरण करते हैं। इससे उनका दु:ख भी दूर नही होगा, पूर्ण सुख भी नही मिलेगा।।60।।

इस रीति से अविद्या को विद्या मानकर अभिमान करने वाले काम्य कर्मियों को मिलने वाले विपरीत फल को देखकर जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्था को पार करते हुए, अज्ञेय भगवान के स्वरूप को समझ लेना चाहिए। अपने विवेक बल से ऐहिक और पारत्रिक विषय सुखों से विरक्त होकर शास्त्र ज्ञान और अपरोक्ष ज्ञानों से तृप्त होकर मेरा भक्त होना चाहिए।।61,62।।

इसमें आवश्यक निपुणता पाने का इच्छुक ज्ञानी मानव भगवान के दर्शन से ही इसको पा सकता है। इसको समझ लेना चाहिए।।63।।

हे राजा, हमारे इन बातों को एकाग्र चित होकर श्रद्धा से मनन किए तो शास्त्र और अपरोक्ष ज्ञान ये दोनो को पा सकोगे। उससे शीघ्र ही मोक्ष पाओगे।।64।।

श्री शुक जी कहते हैं - जगद्गुरु, सर्वान्तर्यामी भगवान श्री हरि चित्र केतु को आश्वासन देकर उसके देखते हुए ही अन्तर्ध्यान हो गये।।65।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत् महापुराण में छठा स्कन्ध में सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय सत्ररह

श्री शुक जी बोले - भगवान के अनन्त अदृश्य हुए दिशा को नमस्कार करते हुए विद्याधर चित्र केतु आकाश मार्ग से संचार किया।।1।।

महायोगी वह लाख लाख वर्षों तक अपने इन्द्रिय बल से मुनिसिद्ध और चारणों से स्तुति सुनते हुए अनेक पहाड़ और विशाल स्थानों में विद्याधर स्त्रियों के साथ हरि के गुणगान करते हुए विहार किया।।2,3।।

एक बार वह श्री हरि के दिए हुए विमान में विहार कर रहा था। वह भगवान शिव को देखा। वे सिद्ध और चारणों से घिरे हुए थे, मुनियों से भरी हुयी उस सभा में देवी पार्वती को अपने जंघा के ऊपर बिठा के आलिंगन करके बैठे थे। उनको देख कर चित्रकेतु ने उनके पास ही खडे होकर हँसते हुए जोर से बोला।।4,5।।

चित्रकेतु ने कहा - ये भगवान रुद्र लोकगुरु हैं। धर्म का उपदेश करते हैं। शरीर में रह कर मन का नियंत्रण करते हैं। तो भी भरी सभा में पत्नी से आलिंगन करके बैठे हैं।।6।।

जटाधारी, तीब्र तपो निरत और वेदोपदेश करने वाले ये सज्जनों के स्वामी हैं तो भी अज्ञ के समान निर्लज्ज होकर पत्नी को अपने जंघे के ऊपर बिठाये हैं।।7।।

अन्य लोग भी सामान्यत: एकान्त में ही पत्नी को अपने जंघे के ऊपर बिठाते हैं, यह महाव्रतधारी होकर ऐसा क्यों करते हैं।।8।।

हे राजा परीक्षित, इसको सुनकर गम्भीर चित्त वाले भगवान शिव हँस कर चुप रहे। सभा में रहने वाले साधु भी विधेय होकर चुप रहे।।9।।

चित्रकेतु को अपने जितेन्द्रियत्व के ऊपर दुरभिमान था, बड़े के सामने छोटी बात करने का दु:साहस भी था। शिव की महिमा न जानते हुए उसने बहुत बुरी बातों को सुनाया। इससे देवी पार्वती क्रुद्ध हो गयी।।10।।

पार्वती जी बोली - यह क्या इस लोक में शासन करने वाला है? क्या यही शिक्षा देने वाला प्रभु बन गया। यह हमारे लिए प्रबोधन करने आया है?।।11।।

क्या ब्रह्म देव जी धर्म को नही जानते? ब्रह्म पुत्र भृगु नारद आदि लोग धर्म को नही समझते। कुमार कपिल, मुनि ये हमें धर्म बोध करने आते हैं क्या? (ये सब हमारी सभा में आनन्द से बैठे हैं। इस समय इस चित्रकेतु का क्या बिगडा है)।।12।।

इन सारे देवताओं के अभिप्राय में, इन्द्रादि देवता और सारे मुनियों के लिए शिवजी का दो पाद ध्यान करने योग्य है। ऐसे जगद्गुरु और अत्यन्त मंगलकारी शिव जी को यह दुष्ट क्षत्रिय शासन करने जा रहा है। यह ब्रह्मादि देवताओं को भी अवमान कर रहा है। अहंकारी इसको शिक्षा होनी चाहिए।।13।।

यह अपने को बहुत बड़ा मानता है, अहंकारी है। यह साधुजन के उपासना करने वाले श्री हरि के पाद मूल में रहने योग्य नही है।।14।।

इसी कारण हे पापी, अपने इस पाप के कारण तुम असुर बन जाओ तभी तुमको योग्य बुद्धि आ जाती है। आगे तुम कभी भी बड़े लोगों का अपचार नही कर सकोगे।।15।।

श्री शुक जी बोले - पार्वती जी के इस शाप से डरा हुआ चित्रकेतु विमान से उतर कर देवी को दण्डवत प्रणाम करते हुए उनको प्रसन्न करने का प्रयास करने लगा।।16।।

चित्रकेतु कहता है - हे माता आपने जो शाप दिये हैं उसको मैं हाथ जोड़कर नम्रता से स्वीकार करता हूँ। देवता मर्त्य लोगों को जो शाप देते हैं वह अपने कर्मानुसार श्री हरि के संकल्प के कारण होते हैं। हम उनका निराकरण कर नही पाते।।17।।

जीव को अज्ञानवश से मोहित होकर इस संसार चक्र में फिरते हुए सुख दुःख के फल को भोगना ही पड़ता है।।18।।

जीव अपने सुख दुःख के लिए स्वयं कारण नही हो सकता, अन्य लोग भी कारण नही बनते। अज्ञ लोग अपने को या दूसरों को सुख दुःख का कारण समझते हैं।।19।।

अनर्थकारक इस त्रिगुण प्रवाह रूप संसार में हम पड़े हैं। इसके सामने आप का शाप तो छोटा सा ही लगता है। अनुग्रह, स्वर्ग, नरक, दुःख, सुख, ये सारे संसार दुःख से बड़े नही हैं।।20।।

शाप आदि भगवान के संकल्प से आते हैं। केवल भगवान ही अपनी इच्छा के अधीन प्रकृति से जीवियों की सृष्टि करते हैं। स्वतः बन्ध मोक्ष इत्यादि से रहित वे जीवियों को बन्ध मोक्ष, सुख, दुःख को देते हैं।।21।।

उनके लिए जीवों में कारण के बिना पक्षपात नही है। जीवों की योग्यता के अनुसार, उनके कर्म को देखते हुए, उनके अनुसार सुख दुःखों को देते रहते हैं। योग्यता के बिना कोई उनके प्रिय या अप्रिय नही है, कोई उनके सगे सम्बन्धी नही हैं, अपने पराये भी नही हैं। भगवान दोष दूर हैं। सब लोगों में समान रूप से रहते हैं, जिनको वैषम्य नही हैं उनको रागद्वेष कहाँ से आता है ।।22।।

भगवान सम होते हुए भी जीव की योग्यतानुसार होने वाले पुण्य पाप कर्म ही शरीरियों को तम में

तामसियों को शाश्वत बन्ध और दुःख के कारण बनते हैं, मध्यम लोगों को नित्य संसार में हित अहित, मिश्रानुभव के लिए कारण बनता है, और उत्तम लोगों के लिए जनन मरण से छुटकारा पाते हुए नित्य सुख के लिए कारण बनता है।।23।।

भगवान को किसी से प्यार नही है, द्वेष भी नही है। इसका अर्थ भक्त लोग अपनी स्वरुप योग्यता के अनुसार सेवा करने से भगवान के प्यारे बनते हैं। वैसे ही द्वेषी लोग उनकी जीवन योग्यता के अनुसार द्वेष करने के बिना पापी नही बनते।

इसी कारण देवी, मैं आपसे शाप विमोचन के लिए प्रार्थना नही करता। मैने जो असभ्य बात किया उससे आपको क्रोध आया है यह सही है। उसको आप सहन करें नही तो मेरा ज्ञान भक्ति आदि गुण कुन्ठित होते हैं।।24।।

शुक जी बोले - हे राजा, चित्रकेतु अपनी बातों से शिव पार्वती को सन्तुष्ट किया। उनके हसन्मुख को देखकर अपने विमान में बैठते हुए चला गया ।।25।।

तब भगवान रुद्र देव ऋषि, दैत्य, सिद्ध और पार्षदों के समक्ष पार्वती से बोले।।26।।

शिव जी कहे - हे सुन्दरी तुमने देख लिया है न ? श्री हरि के दासानुदास अद्भुत कर्म करते हैं। वे निस्पृह और महात्मा होते हैं।।27।।

नारायण को ही परम पुरुषार्थ मानने वाले कोई भी शाप से डरते नही। वे स्वर्ग नरक और जीवन्मुक्ति में समान लाभ देखते हैं।।28।।

देह के कारण आने वाले सुख दुःख, जनन मरण, शाप और अनुग्रह ये द्वन्द्व भगवान की लीला के निमित्त बनते हैं। साधु लोग उनको अपरिहार्य मानकर उनसे डरते नहीं।।29।।

किन्तु मूढ़ लोग जो सुख दुःख होते हैं। उनको मैने ही पाया है, पुण्य पाप, गुण दोष ये सारे मेरे ही वजह से बने हैं, इस भ्रान्ति में रहते हैं। मन में वासना रूप से रहने वाले स्वप्न के पदार्थों को बाहर रहने वाले पदार्थ मानते हैं।।30।।

भगवान वासुदेव में भक्ति रखने वाले शास्त्र ज्ञान और अपरोक्ष ज्ञान के कारण भगवान से अन्य किसी का आश्रय नही चाहते हैं।।31।।

हम सारे लोकपाल अपने को लोक-पालन कार्य में नियुक्त मानते हैं। किन्तु भगवान के प्रतिबिम्ब के रूप में हैं, उनके अधीन हैं, अल्प शक्ति वाले हैं। इसी कारण हम भगवान की लीलाओं को समझ नही पाते। केवल हम नही, नारद, सनत कुमार, चतुर्मुख ब्रह्म और उनके पुत्र भी नहीं जानते हैं तो मुनि और अन्य देवता

कैसे जान सकते हैं।।32।।

भगवान सारे जीवों के अधिपति होने के कारण वे सबको प्रिय लगते हैं। उनसे बढ़कर ज्यादा प्रिय और कोई नही है। वे अप्रिय नही हैं, वे किसी को अपना या पराया नहीं मानते हैं।।33।।

यह चित्रकेतु महा भाग्यशाली है। भगवान नारायण का प्रिय सेवक है। सभी स्थानों में सभी वस्तुओं में भगवान का दर्शन करते हुए वह स्वस्थ चित्त बना है। मै भी श्री नारायण का प्रिय भक्त हूँ। तुम चित्रकेतु के ऊपर क्रोध मत करो।।34।।

भगवान के भक्त महापुरुष होते हैं वे शान्त और समचित्त रहते हैं। इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नही है।।35।।

श्री शुक जी कहे - भगवान शिव जी की बात सुनकर पार्वती जी आश्चर्य रहित शान्त मनस्क बन गयी।।36।।

भगवद् भक्त चित्रकेतु देवी को शाप न देते हुए उनके शाप को नत मस्तक होकर स्वीकार किया। यही साधुओं का लक्षण है।।37।।

बाद में चित्रकेतु त्वष्ट्रा के दक्षिणाग्नि में दानव योनि पाकर वृत्र नाम का असुर बना। वह दानव होते हुए भी ज्ञान विज्ञान से युक्त था।।38।।

वृत्र दानव होकर भी भगवत भक्त कैसे बना, इसका कारण तुमने पूछा था। मैंने उसके बारे में बता दिया है।।39।।

महात्मा चित्रकेतु के इस पुण्यकर इतिहास को, विष्णु भक्त अंगिरा और नारद के महात्म्य को सुनने वाले को इस संसार बन्धन से मुक्ति मिलती है।।40।।

सुबह उठ कर अन्य व्यर्थ बातों को छोड़ कर श्रद्धा से श्री स्मरण पूर्वक इस इतिहास का पठन करने वाले को परम पद मिलता है।।41।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत, महापुराण में छठा स्कन्ध में सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय अठ्ठारह

श्री शुक जी बोले - बारह आदित्यों में त्वष्ट्रा के अनंतरवाला सवितन के पत्नी पृश्नि। वह सावित्रि, व्याहृति, त्रयि, अग्निहोत्र, पशु की, सोम, चातुर्मास्य, पंचमहायज्ञों के अभिमानी आठ पुत्रों को जन्म दी।।1।।

भग नाम के आदित्य का पत्नि का नाम सिद्धि। वह महिम, विभु, प्रभु, नाम के तीन पुत्र और आशिष नाम के सुन्दर कन्या को जन्म दी ।।2।।

धातृ नाम के आदित्य के कुहू, सिनीवाली, राका और अनुमति नामके चार पत्नियाँ थी। वे क्रमशः सायं, दर्श, प्रातः, पूर्णमास नाम के पुत्रों को जन्म दिये।।3।।

आदित्यों में अनन्तर आने वाले विधातृ की पत्नी का नाम क्रियात्मी उससे पुरीष्य नाम का पाँच अग्नि पुत्र रूप में जन्म लिए। वरुण नाम के आदित्य की पत्नी का नाम चर्षणी है। ब्रह्म पुत्र भृगुमुनि और एकबार इसमें जन्म लिए ।।4।।

महा योगी वाल्मिकी वरुण के पुत्र होकर वाल्मिक से जन्म लिए। अगस्त्य और वशिष्ठ मित्रा वरुण के पुत्र बने।।5।।

मित्रा वरुण एक बार उर्वशी के पास थे। उस समय उनका वीर्य का स्वलन हुआ। वे दोनों उसको एक साथ करवा में रख दिये। उससे पुलस्त्य पुत्र अगस्त्य मुनि और ब्रह्म पुत्र वशिष्ठ मुनि और एकबार जन्म लिए। मित्र को रेवती नाम की पत्नी से उत्सर्ग, अरिष्ट, पिप्पल नाम के तीन अलग पुत्र जन्म लिए।।6।।

इन्द्र नाम के आदित्य की पत्नी का नाम शची है। वह पुलोमासुर की पुत्री है। उसका नाम पौलोमी भी है। उसमें जयन्त, ऋषभ, मीढुष नाम के तीन पुत्र जन्मे।।7।।

उरूक्रम नाम से प्रसिद्ध उपेन्द्र वामन की पत्नी कीर्ति है। उसको वृहच्छ्लोक नाम का पुत्र हुआ उस वृहच्छ्लोक को सौभाग नाम के पुत्र हुए।।8।।

वामन के महान कार्यों को और वे महात्मा कश्यप की पत्नी अदिती से जैसे अवतार लिए इसके बारे में आठवाँ स्कन्द में आगे कहते हैं।।9।।

कश्यप की द्वितीय पत्नी दिति के संतती के बारे में कहेंगे। इस वंश में परम भगवद्भक्त प्रह्लाद और बलि जन्म लिए ।।10।।

दिति को दैत्य और दानवों से पूजित हिरण्यकश्यप और हिरण्यक्ष ये दो ही पुत्र थे।।11।।

हिरण्यकश्यप की पत्नी कयाधु। वह जम्भ नाम के दानव के पुत्री है।।12।।

प्रहलाद, सल्हाद, अनुल्हाद, ल्हाद नाम के चार पुत्रों को कयाधू ने जन्म दिया। उसको सिम्हिका नाम के एक बेटी भी हुई। विप्रचित्ति से उसका विवाह हुआ। राहु उससे जन्म लिया।।13।।

राहु के अमृत पीते समय श्री हरि ने अपने चक्र से उसके सिर को काट दिया। कृति सल्हाद की पत्नी। उससे पंचजन नाम का असुर जन्म लिया। यही पंचजन भगवान श्री कृष्ण को अपने पांचजन्य नामक शंख को समर्पित किया।।14।।

ह्लाद की पत्नी धमनी। उससे इल्वल और वातापि जन्म लिए। जब अगस्त्य ऋषि अतिथि होकर आये थे तब इल्वल वातापी को पचा कर उनका भोजन करवाया।।15।।

अनुल्हाद की पत्नी सूर्म्या। उसके पुत्र भाष्कल और महिषासुर। प्रह्लाद के पुत्र विरोचन, उसके पुत्र बलि।।16।।

बलि की पत्नी अशना। उसके बाण इत्यादि सौ पुत्र जन्म लिए। पुण्यशाली बलि के महात्म्य को आगे अष्टम स्कन्द में कहेंगे।।17।।

बाणासुर शिव की आराधना करके उनके गणों का मुखिया बन गया। उसके नगर की रक्षा के लिए आज भी शिव उसके पास रहते हैं।।18।।

उनचास मरूत भी दिति के पुत्र हैं। उन मरुतों को पुत्र नही हुए। इन्द्र उनको देव बनाकर अपने साथ रखे हैं।।19।।

राजा परिक्षित कहते हैं - गुरुजी मरूत जन्म से असुर थे। इन्द्र उनके असुर स्वभाव को हटाकर देवत्व को कैसे दिये। वे ऐसे क्या पुण्य किये थे।।20।।

पूज्य गुरुजी! ये ऋषि भी मेरे साथ इस विषय को सुनने के लिए उत्सुक और श्रद्धा युक्त हैं। आप कृपया हमे बताइए।। 21।।

सूत बोलते हैं। हे शौनक जी, राजा परिक्षित द्वारा आदर से पूछे हुए अर्थगर्भित प्रश्न को सुनकर सर्वज्ञ शुक देव उसकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्न चित्त से कहे।। 22।।

श्री शुक जी कहते हैं। भगवान विष्णु द्वारा इन्द्र का पक्षपात करते हुए अपने पुत्रों को मार डालने से दिति को बहुत क्रोध आ गया। वह विचार करने लगी।। 23।।

इन्द्रियों से सुख का अनुभव करने वाला निष्करुण पापी इन्द्र अपने भाई लगने वाले मेरे पुत्रों को मार डाला है। मैं कैसे उसको मार कर सुख की नींद पायें।। 24।।

लोग राजा के शरीर को प्रभु बोलते हैं। जीव के उससे चले जाने के बाद वह शरीर शव बन जाता है। दो तीन दिन में सडकर उसमें कृमि कीट उत्पन्न हो जाते हैं। कुत्ता और सियार खाकर मल कर देते हैं। जलने से राख बन जाता है। ऐसे शरीर के लिए अन्य जीवियों का नाश करने वाला क्या पुरुषार्थ पाता है। वह कुछ भी पा नही सकता। व्यर्थ जीवियो का हनन करने के कारण उसको नरक ही मिलता है।।25।।

इस शरीर इन्द्रियों को स्थिर समझने वाले अहंकारी इन्द्र के अहंकार को नाश करने वाला एक पुत्र को मुझे पाना होगा ।।26।।

इस भाव से दिति द्वारा अपने पति कश्यप ऋषि को अनुराग विनय और इन्द्रिय निग्रह के साथ सेवा करने से उनके प्यार को प्राप्त किया।।27।।

हे राजा परिक्षित ! पति के अभिप्राय को जानने वाली दिति मधुर बातों से हसन्मुख से, तिरछे नजर से और भक्ति से पति का मन जीत ली।।28।।

कश्यप ऋषि ज्ञानी हैं तो भी अपनी चतुर पत्नी के वश में होकर अपने ज्ञान को खो दिए। वे पत्नी को जो चाहे वह देने का वर दे दिए। बुद्धिमती स्त्री का अपनी कुशलता से पति को वश में लेना कोई आश्चर्य कारक बात नही है।।29।।

ब्रह्माजी सृष्टि के प्रारम्भ में सृष्ट किए हुए सारे जीवों को निस्संग रहते देखकर अपने शरीर के आधा भाग से स्त्री को सृष्ट किए। उसी दिन से स्त्री पुरुषों को मन को अपहरण करने लगी ।।30।।

दिति की सेवा से अत्यन्त संन्तुष्ट हुए भगवान कश्यप ऋषि हँसते हुए अपने पत्नी की स्तुति करने लगे।।31।।

कश्यप जी बोलते हैं हे सुन्दरी, तुम अनिंद्य हो। मै तुमसे संतुष्ट हूँ। तुम जो चाहे मांगो। मै देने के लिए तैयार हूँ। पति एक बार संतुष्ट हुआ तो स्त्री को क्या नही मिलने वाला है।।32।।

स्त्री को जो चाहे देने वाले श्रेष्ठ देवता, सबके मन में रहने वाले लक्ष्मीपति वासुदेव पति में ही रहते हैं।।33।।

भगवान वासुदेव देवताओं में उनके रूप धारण करते हुए उनके नाम से अभिव्यक्त होकर पुरुषों से पूजा पाते हैं, पतियों में पतिरूप से रहते हुए स्त्रियों से पूजे जाते हैं ।।34।।

इसके लिए पतिव्रता स्त्री श्रेय पाने के लिए अनन्य भक्ति से पति में रहने वाले सर्वेश वासुदेव को ही पति में आराधना करती हैं।।35।।

हे मंगलांगी, तुम मुझको हरि के सन्निधान वाले मानकर भक्ति से आराधना की है। मै तुम्हारे लिए पतिव्रता न रहने वाली स्त्री को न मिलने वाला किस इच्छितार्थ को पूरा करूँ।।36।।

दिति ने कहा भगवन देखिए। मेरे दो पुत्र मर गये। यदि आप वर देना चाहते हैं मेरे पुत्रों को भगवान विष्णु के हाथ से मराने वाला इन्द्र को मारने वाला मरण रहित पुत्र को दीजिए।।37।।

शुक जी बोले - दिति की बात को सुनकर कश्यप खिन्न होकर बोले - हाय! मैने ये क्या किया? स्त्री मोह से मुझे एक अधर्म और पाप कर्म करना पड़ा।।38।।

मै इन्द्रिय सुख का अनुभव पाते हुए स्त्री रूप वाले भगवान के बन्धक शक्ति के वश होकर दु:खित होकर निश्चित रूप में नरक में पड़ने वाला हूँ।। 39।।

इसमें दिति का क्या अपराध है। उसने अपने स्त्री स्वभाव को दिखाया है। मुझे धिक्कार हो। मैं इन्द्रियवश होकर अपने हित को नही जान सका।।40।।

स्त्री का मुख शरत्काल के चन्द्र जैसा रहता है, बाते अमृत समान होते हैं। किन्तु हृदय तो तलवार के धार जैसे रहता है। स्त्री चरित्र को कौन जानता है। (देव भी नही जान सकते, मनुष्य की क्या बात है) अपने सुख को चाहने वाली स्त्री को अपना कोई नही है। वे अपने सुख के लिए पति, पुत्र या भाई को भी मारने के लिए हिचकिचाते नही (यहाँ हम कैकेयी की याद कर सकते हैं)।।41,42।।

जो चाहे वह वर देने की बात किया है। वह असत्य न हो। इन्द्र की हत्या से पाप भी न आये, हत्या न हो जाय, इसके लिए मै एक उपाय करता हूँ।।43।।

इस रीति से आलोचना करते हुए कश्यप ऋषि दिति को बोलने लगे। मन में वे अपने के बारे में कुपित होकर धिक्कार करते हुए कहे।।44।।

कश्यप बोले - हे मंगालांगी, तुम्हे एक वर्ष पर्यन्त एक व्रत करना चाहिए। उस व्रत करने की विधि को मै बोलता हूँ। इसको ठीक तरह से आचरण करे तो इन्द्र को मारने वाला पुत्र जन्म लेता है। किन्तु व्रत में बाधा आई तो जन्म लेने वाला पुत्र देवताओं के पक्ष में जाता है।।45।।

दिति बोली - हे महा मुने, कितने भी कष्ट हो मै उस व्रत का आचरण करती हूँ। बताइए, मुझे क्या करना होगा, और क्या न करना होगा? और बताईए क्या करने से ब्रत का भंग नही होगा।।46।।

कश्यप बोले - किसी की हिंसा नही करना चाहिए, गाली नही देना चाहिए, नाखून और बाल को नही काटना चाहिए, झूठ न बोलना चाहिए, कंकाल अस्थि इत्यादि अमंगल वस्तु का स्पर्श नही करना चाहिए। पानी में सिर डुबा कर स्नान नही करना चाहिए (केवल स्त्रीयों के लिए), क्रोध नही करना, एक बार पहना हुआ फूल को पुन: न पहनना ये दस नियमों का पालन करना चाहिए ।।47,48।।

पति को छोड़कर किसी का जूठा न खाना चाहिए। गौरी, पद्मा, शचि, देवी, सावित्रि, विजया, जया ये सप्तमातृकाओं को निवेदित अन्न को, मास को, धर्म विरोधी और रजस्वलासे देखा हुआ अन्न को नही खाना चाहिए। उजली से पानी नही पीना चाहिए। ये छ: नियमों का पालन करना चाहिए।।49।।

भोजन के बाद हाथ मुह न धोते हुए, आचमन न करते हुए घर के बाहर नही जाना। दोनो संध्या के समय में घर छोड़ कर बाहर नही जाना। बाल बिखरे हुए, शरीर का श्रृंगार न करते हुए बाहर नही जाना। दुपट्टा के बिना बाहर नही जाना। अयोग्यों से संभाषण नही करना। ये घर के बाहर के सात नियम हैं।।50।।

पाँव न धोते हुए, अपवित्र अवस्था में, भीगे पाँव से, उत्तर या पश्चिम को सिर रखते हुए, अन्य व्यक्ति के साथ, निर्वस्त्र होकर दोनो संध्या समय में नीद नही करना चाहिए। नीद के बारे में ये आठ नियम हैं। कुल मिल कर इन एक्तीस नियमों को कड़ाई से पालन करना चाहिए।।51।।

करने के और ये काम होते हैं। सदा काल धुला हुआ वस्त्र को धारण करना चाहिए। मंगल द्रव्य को धारण करना चाहिए। सुबह के समय आहार या जल न पाते हुए गो, ब्राह्मण और लक्ष्मी नारायण की पूजा करना चाहिए।।52।।

सुमंगलियों को और अपने पति को फूल माला चन्दन और प्रसाद देकर आभूषणों से सजाकर पूजा

करना चाहिए। उनके हृदय में रहने वाले नारायण का ध्यान करना चाहिए।।53।।

इन सारे कर्मो को, लोप दोषों के बिना विधि पूर्वक एक वर्ष काल तक आचरण करे तो तुम्हे इन्द्र को मारने वाला पुत्र मिलता है। इस व्रत को पुंसवन व्रत कहते हैं।।54।।

श्री शुक जी कहते हैं - ठीक, मै इस व्रत का आचरण करती हूँ, यह अंगीकार करते हुए दिति ने कश्यप ऋषि से गर्भ धारण किया, और ठीक तरह से व्रत का अनुष्ठान करने लगी।।55।।

अपनी बड़ी माँ के अभिप्राय को जानते हुए इन्द्र कश्यप के आश्रम में रहते हुए उसकी (अपने बड़ी माँ की) सेवा करने लगे।।56।।

प्रतिदिन जंगल से फूल फल, कंद मूल, समिध और कुश, अंकुर मिट्टी और जल समय से लाकर बहुत प्यार से इन्द्र उसकी सेवा करने लगा।।57।।

शिकारी मृग को मारने के लिए वेष धारण करने जैसे व्रताचरण में रहने वाली दिति के नियमों में लोप को ढूढ़ने के लिए कपट भक्ति से इन्द्र अपनी बड़ी माँ की सेवा में डटे रहा।।58।।

कितने कटाक्ष रखने के बाद भी इन्द्र को दिति के नियमों में लोप नही दिखा। इससे इन्द्र चिन्तित रहे। वे नियमों के भंग के बारे में विचार करने लगे।।59।।

एक दिन दिति ने संध्या समय में भोजन करने के बाद, हाथ मुह न धोये, आचमन न किए, जहाँ बैठी थी वहीं सो गयी। बहुत दिन से व्रताचरण करने से गर्भिणी दिति बहुत थक गयी थी। भगवान की इच्छा ही इसको करवाया था।।60।।

इन्द्र को अपने काम के लिए योग्य समय मिल गया। योगेश इन्द्र अपने योग शक्ति से दिति के गर्भ में प्रवेश किए। उस समय दिति को गाढ़ निद्रा लगी थी।।61।।

सोने के समान प्रकाश वाली उस गर्भ को इन्द्र ने सात टुकड़े कर दिया। वे टुकड़े रोने लगे। तब इन्द्र ने रो मत बोलते हुए उन टुकड़ों को और सात-सात टुकड़े कर दिये।।62।।

ये सारे उनचास टुकड़े दु:ख को सहते हुए रोते हुए हाथ जोड़ कर इन्द्र से कहे, हे भाई इन्द्र, आप हमको क्यों मार रहे हैं। हम आप के भाई मरूत हैं।।63।।

अनन्य भाव से अपने पार्षद बनने की इच्छा रखने वाले उन मरूद्गण को अभय देते हुए इन्द्र कहे डरो मत आप लोग हमारे भाई हैं।।64।।

वज्रायुध के मार से टुकड़े हुए वे श्रीनिवास की कृपा से नही मरे। हे राजा तुम भी अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से अपनी माँ के गर्भ में रहते समय नही मरे।।65।।

परम पुरुष भगवान को एक बार आराधन करे तो जीव उसके सारूप्य को पाता है। दिति करीब एक वर्ष काल श्री हरि की आराधना की है तो मरूत कैसे मरते हैं ।।66।।

इन्द्र के साथ मिलकर ये मरूत पचास देवताएँ बन गये। इन्द्र उन मरूतों के मातृत्व दोष दैत्यत्व को नष्ट कर यज्ञ में सोम पाने योग्य देवता उनको बना दिए।।67।।

दिति की नींद खुली। देखती है इन्द्र के साथ अग्नि के समान प्रकाश वाले अपने बच्चे खड़े हैं। वस्तुत: साधु स्वभाव वाली दिति यह देख कर संतोष का अनुभव की।।68।।

वह इन्द्र से कही - बेटा इन्द्र, मैंने अदिति के पुत्रों को मारने वाला पुत्र को पाने के लिए यह दुष्कर व्रत किया है।।69।।

मै एक पुत्र को चाहती थी। किन्तु ये उनचास कैसे बने । यदि तुम सत्य को जानते हो तो बोलो। झूठ मत बोलो।।70।।

इन्द्र जी कहते हैं। माता जी, मैंने आप की इच्छा को पहचान लिया था, इसी कारण आप की सेवा में लग गया। अवकाश मिला, आप शुचित्व नही रखी, उस समय साध के मैने आपका गर्भ को काट डाला। मैं यहाँ आया था वह अपने स्वार्थ का साधन करने के लिए। मै धर्म बुद्धि से आपकी सेवा करने नही आया था।।71।।

मैंने गर्भ को सात भाग किया तब सात बच्चे हो गये। उनमें एक एक को सात सात टुकड़ा कर दिया तो भी कोई नही मरा। कुल मिलकर आपके उनचास पुत्र हुए।।72।।

इस आश्चर्य को देखकर मुझको लगा कि यह आप द्वारा की गयी भगवदाराधना और व्रत की महिमा है। परम पुरुष भगवान नारायण की आराधना करने से इष्टार्थ सिद्धी होती है।।73।।

आप छोटे फलको चाहते हुए भगवान की आराधना की हैं। फल की कामना न करने वाले लोग भगवान की आराधना करते समय परम पुरुषार्थ मोक्ष की भी कामना नही करते। वे ही पुरुषार्थ साधना में कुशल होते हैं।।74।।

भगवान सन्तुष्ट हुए तो अपने को ही दे देते हैं। सर्वांतर्यामी जगदीश्वर भगवान नारायण की आराधना करने के बाद विवेकी लोग विषय भोग की प्रार्थना नही करते। क्योंकि विषयोपभोग से नरक ही मिलता है।।75।।

पूज्य माता जी, मैं मूर्ख हूँ। मेरे द्वारा किए हुए इस दौर्जन्य को आप क्षमा कीजिए। आपका गर्भ न मरते हुए जीवित रूप में बाहर आया यह मेरे लिए बहुत संतोष की बात है।।76।।

श्री शुक जी बोलते हैं - इन्द्र द्वारा अपने अपराध को न छिपाते हुए सत्य बोलने से दिति संतुष्ट हो गयी। इन्द्र सारे मरुत्तो के साथ दिति को नमस्कार करते हुए स्वर्ग को चले गये।।77।।

हे राजा परिक्षित! तुम्हारे प्रश्न के अनुसार मरुद्देवताओं की जन्म कथा को विस्तार रूप से बता दिया। और क्या सुनना चाहता है, बोलो।।78।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत् महापुराण में छठा स्कन्ध में अठ्ठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

अध्याय उन्नीसवा

राजा परिक्षित पूछते हैं - हे महा मुने! आपने बताया कि पुंसवन व्रत से विष्णु का अनुग्रह प्राप्त होता है। उस व्रत के विधान को मै जानना चाहता हूँ ।।1।।

शुकदेव बोलते हैं - पुंसवन व्रत को कामना रहित होकर किए तो मोक्षादि सारे पुरुषार्थ की सिद्धी होती है। स्त्री को अपने पति की अनुज्ञा पाकर मार्गशीर्ष (अगहन) मास में अथवा धनुर्मास में शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से व्रत का आचरण प्रारम्भ करना है।।2।।

प्रारम्भ में यह मरुद्देवताओं की कथा को श्रवण करना चाहिए। प्रति दिन मुह धोकर मंजन करते हुए स्नान करने के बाद वस्त्रालंकार को धारण करना चाहिए।।3।।

सुबह के आहार या पानीय लेने के पहले श्री लक्ष्मी नारायण का पूजा करना चाहिए। तब प्रार्थना करने का तरीका ऐसा होता है।

हे प्रभु, मैं तुझे नमस्कार करता हूँ। तुम पूर्ण काम लक्ष्मीपति हो। आप संकल्प मात्र से अणिमाद्दि सकल सिद्धी को प्राप्त किए हैं। यह लो, तुझको बार बार नमस्कार।।4।।

प्रभु आप कृपा, संपदा, महातेज, और ओज इत्यादि सकल गुणों से परिपूर्ण हैं। आप सर्व शक्त हैं। इसी कारण आप भगवान कहलाते हैं।।5।।

जगन्माता, विष्णुपत्नी, महामहिमा युक्त, श्री हरि के वक्षस्थल में श्रीवत्सलांछन के रूप में विराज मान श्री महालक्ष्मीदेवी! आपको मेरा नमस्कार। आप मेरे ऊपर अनुग्रह करें।।6।।

हे गुणपूर्ण, पुरुषोत्तम, सर्वशक्त, महाऐश्वर्य के अधिपति, महाविभूति नारायण आपको नमस्कार। आप रमा, ब्रह्म इत्यादि महाविभूतियों के साथ रहते हैं। आपकी मै पूजा कर रहा हूँ। इस मंत्र से प्रति दिन विष्णु का आवाहन करते हुए अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप दीप इत्यादि उपचार करते हुए भोग लगाकर एकाग्र चित्त से पूजा करना चाहिए।।7।।

बचा हुआ खीर प्रसाद को महेश्वर्य के अधिपति पुरुषोत्तम भगवान को नमस्कार, इस हवि को मै अपर्ण कर रहा हूँ इस मंत्र को बोलते हुए घी के साथ बारह आहुतियों को अग्नि में होम करना चाहिए। इस प्रकार सारे संपदाओं को चाहने वाले को भक्ति से श्री लक्ष्मी नारायण की पूजा करनी चाहिए। केवल ये दो ही वर देने वाले है। ये ही सारे अभिष्ट को पूर्ति करते हैं।।8।।

होम करने के बाद जमीन पर दण्डवत प्रणाम करना चाहिए। दस बार नीचे के मंत्र का पाठ करना चाहिए ।।9।।

हे जगदीश्वर! केवल आप दो ही इस जगत के मूल कारण हैं। श्री लक्ष्मी देवी प्रकृति हैं। आप पुरुष हैं। प्रकृति पुरुष के मिलन से इस जगत की उत्पत्ति होती है। महालक्ष्मी को ठीक तरह से जानना बहुत कठिन है। इस जगत को अज्ञान में बन्धक बनाने वाली आपकी माया शक्ति श्री महालक्ष्मी हैं। आप दोनों को कोई ठीक तरह से जान नही सकते ।।10।।

आप लक्ष्मी जी के अधिपति, सर्वोत्तम और परम पुरुष हैं। सर्व यज्ञों के आप अंतर्यामी हैं। लक्ष्मी जी यज्ञों के क्रिया की अन्तर्यामी हैं। कर्म की अभिमानी लक्ष्मी जी और आप कर्तृ में रहते हुए कर्म फल को देने वाले हैं।।11।।

लक्ष्मी देवी त्रिगुणों को अभिव्यक्त करती हैं। आप उन अभिव्यक्ति से होने वाले सुख दुःखादि फल को हमें खिलाते हैं। आप सारे शरीर के अन्तर्यामी हैं। महालक्ष्मी शरीर, इन्द्रिय, अन्तःकरण की अभिमानी हैं।।12।।

नाम रूपात्मक इस प्रपंच की अभिमानी देवी भगवती लक्ष्मी जी हैं। इस तत्वज्ञान को देने वाले आप हैं। आप सर्वतंत्र स्वतंत्र हैं। आपको किसी की सहारा नही चाहिए। केवल आप दो इन सारे लोको में सर्वोत्तम हैं, वर दायक हैं। हे कीर्तिशाली श्री हरि, आपकी यह महिमा जितनी सत्य है उतनी ही हमारी अभिलाषायें सत्य और सफल बनें ।।13।।

इस प्रकार वर देने वाले लक्ष्मी सहित श्रीनिवास की आराधना करते हुए भोग को अलग रखते हुए आचमन के साथ उत्तर पूजा करना चाहिए।।14।।

उसके बाद भक्ति भाव से भरे हुए अन्तःकरण से भगवान की स्तुति करते हुए यज्ञ शेष को सूंघ कर पुनः श्री हरि की पूजा करनी चाहिए।।15।।

श्री हरि में पति भी रहता है। इस भाव से भगवान की पूजा करनी चाहिए। पति जो जो चाहता है। उनको भगवान को अपर्ण करना चाहिए। पति के भी पत्नी से प्यार करते हुए उसको प्रिय वस्तुओं का भेट देते हुए उनकी छोटे मोटे कार्यो को करना चाहिए। पति पत्नी में कोई एक कार्य करे तो उसका फल दोनों को मिलता है ।।16,17।।

अनिवार्य कारण से बीच में पत्नी व्रत करने में असमर्थ रही तो पति ही व्रत को आगे चलाना है। एकाग्रचित्त से व्रत संपूर्ति करना है।।18।।

यह विष्णु व्रत है। प्रारम्भ करने के बाद बीच में इसको छोड़ना नही। स्त्री को नियम पालन करते हुए प्रतिदिन भक्ति भाव से ब्राह्मणों का और सुमागंलियों का पूजन फूल माला अलंकार से करना चाहिए।।19।।

भगवान को अपने हृदय में स्थापना करते हुए मूर्ति के सामने बैठ कर अपने शरीर शुद्धि और इष्टार्थ प्राप्ति के लिए केवल भगवान को समर्पित अन्न को ही खाना चाहिए।।20।।

इस क्रम से पतिव्रता स्त्री को एक वर्ष के बारह मासों में भगवान की आराधना करनी चाहिए। कार्तिक मास के अन्तिम दिन में व्रत का समापन करना चाहिए। व्रत को एक वर्ष यानी बारह मास करना चाहिए। पुरुषोत्तम मास में तेरह महीना होते हैं, क्षयमास में ग्यारह महीना होते हैं। इसी कारण यहाँ मार्गशीर्ष प्रारम्भ से कार्तिक का अन्त तक बताया गया है।।21।।

व्रत के उद्यापन के दिन में प्रारम्भ के दिन के जैसे पति सुबह स्नान करने के बाद पाकयज्ञ विधि से दूध में पकाया हुआ चरु को घी सहित बारह आहुतियाँ अग्नि में हवन करना चाहिए।।22।।

बाद में केशवादि बारह मूर्तियों को बारह ब्राह्मणों में आवाहन करते हुए उनका भोजन करवाना चाहिए। उनको तिल, उदक, पात्र और भूमि का दान देना चाहिए।।23।।

ब्राह्मण लोग संतुष्ट होकर जो आशीर्वाद देते हैं, उसको सिर झुका कर स्वीकार करते हुए उनका नमन कर उनकी अनुज्ञा से पुरोहित का भोजन करवा कर चरु शेष का भोजन करना चाहिए।।24।।

मौन से एकाग्र चित्त होकर यजमान के स्वयं भोजन करने के बाद बचा हुआ चरु शेष को अपनी पत्नी को देना चाहिए। वह उसके सौभाग्य और संतति का कारण बनता है।।25।।

इस विष्णु व्रत को विधि पूर्वक आचरण करने वाले अपने सारे इष्टार्थों को पा जाते हैं। स्त्री व्रत करने से सौभाग्य, संतति, कीर्ति और घर गहने को प्राप्त करती है। उसका पति दीर्घायुषी होता है ।।26।।

कन्या शुभ लक्षण वाले सुन्दर पति को पाती है। विधवा व्रताचरण से पाप रहित होकर अगले जन्म में उत्तम पति को पाकर अन्त में मोक्ष पाती है। जन्म लिए बच्चे अकाल में मरते रहे तो इस व्रताचरण से दीर्घायुषी पुत्रों को पाती है। दरिद्र स्त्री श्रीमान बनती है, कुरूपी आगे जन्म में सुन्दरी होती है। रोगी व्रता चरण के प्रभाव से रोग मुक्त होता है, सारे इन्द्रियों में शक्ति पाकर सर्वांग सुन्दर होता है। विवाहादि शुभ कार्यों में इन मरुद्देवताओं की उत्पत्ति का वृत्तान्त पठन करे तो पितृओं को और देवताओं को अनन्त तृप्ति मिलती है।।27।।

होम समाप्ति के समय इन मरूत्तों का चरित्र पठन करने वाले को अग्नि, श्रीदेवी और स्वयं भगवान हरि संन्तुष्ट होकर वांछितार्थ देते हैं। हे परीक्षित राजा ये महा पुण्यकर मरूत्तों का जन्म कथा और पुन्सवन व्रत कथा को तुम्हारे लिए वर्णन किया है।। 28।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत् महापुराण में छठा स्कन्ध में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

यहाँ पर छठा स्कन्ध समाप्त होता है

BRIEF LIFE HISTORY OF SHRI PEJAWARA SWAMIJI

Sri Vishvesha Tirtha was born in the year 1931 at Ramakunja to a Shivalli Tulu Brahmin family and his pre-Sanyasa name was Venkataramana Bhat. He was ordained into Sanyasa at the young age of 8 years in 1938. His vidya guru is Vidyamanya Teertha of Sri Bhandarkeri Math.

The Swamiji assumed first paryaya, turn to worship Lord Krishna at Udupi, at a young age. During his first Paryaya in the year 1953, he organized the All India Madhva Conference in Udupi. During his second Paryaya in 1969, he got the Badagumalige in Udupi repaired. During his third tenure as Paryaya Swamiji in 1985, he has got a new hall built at Udupi called Krishna Dhama.

The swamiji is involved in various social service organisations, and is said to have started many educational and social service organisations.

The Akhila Bharat Madhwa Maha Mandal [ABMM] center started by the Swami is said to have helped many of poor students. He has established math centres at various holy places in India. These centres are of great help to many pilgrims.

He is one of advisers to VHP. He was in the forefront in the Ram Janmabhoomi movement. He has also led the Go Raksha (Cow Protection) movement.

Sri Vishvesha Tirtha has ordained Sri Vishvaprasanna Tirtha as his successor to the Pejavara matha in 1988.

चित्र विवरण पेजावर 80

1. पाँच वर्ष के श्री वेंकटराम
2. आठ वर्ष में सन्यास दीक्षा
3. गुरुपदेश
4. सोलह वर्ष के स्वामी जी
5. गुरु श्री विद्यामान्य जी के साथ श्री कृष्ण पूजा
6. दीन दुःखी दलित दरिद्र को सहाय हस्त
7. श्री अशोक सिंघल के साथ राम जन्म भूमि सभा
8. शास्त्र प्रभोधन श्री विद्याधीश स्वामी जी के साथ

पता : मध्वमठ 63, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद 211 006
फोन नं0 : 0532-2504587

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः भाषानुवादः

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण

वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री विजयध्वज टीकानुसारी

श्री मद्भागवत महापुराणम्

सप्तम स्कंधः
(भाषानुवादः)

लेखक

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

प्रकाशक

श्री मध्व तत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

श्री अखिल भारतीय पेजावर स्वामी अभिवंदन समिति

श्रीमद्भागवत महापुराणम् सप्तम स्कन्धः (भाषानुवादः)

लेखक-

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

प्रकाशक

श्री मध्व तत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान

श्री मध्व मठ 63, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद, 211006

फोनः- 0532 - 2504587

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम मुद्रण 1000 प्रतियाँ

31-3-2011

मूल्य - 60 रुपये

अक्षर विन्यास

श्री प्राणेश कुमार शुक्ल

मुद्रक -

श्री वैष्णव प्रेस

मोरी, दारागंज, इलाहाबाद

श्री राम श्री

अनुग्रह संदेश

श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य मूल महासंस्थान श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी उडुपि

हमारे विशेष अभिमान पात्र **श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी** ने किया आठ शास्त्र ग्रंथों का हिन्दी भाषाअनुवाद को दखकर हमे सन्तोष हुआ है। श्री स्वामी जी अपने पूर्वाश्रम में अनेक वर्षों से सामजिक सेवा में रचनात्मक कार्यों को किये हैं। हमारे साथ अकाल, भूकम्प, बाढ़ इत्यादि कामों में सम्पूर्ण समर्पण भाव से काम किए हैं। अब अपने अस्सी वर्ष के समय में आठ शास्त्र ग्रन्थों का अनुवाद और प्रकाशन का स्तुत्य काम अपने हाथ में लिए हैं। मध्व तत्वज्ञान को अभ्यास करने के जिज्ञासुओं को अनुकूल होने वाली एक विशिष्ट सेवा किए हैं।

वे अपने सत्तर वर्ष की आयु में कन्नड़ भाषियों के अनुग्रह रूप में अनेक शास्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किए थे। अब प्रयाग में रहकर मध्व सिद्धान्त का प्रसार कार्य करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा मध्व तत्वज्ञान को हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचार करने का महान कार्य कर रहे हैं।

श्री कृष्ण, श्री वेद व्यास जी, अस्मदुपास्य श्री रामविट्ठल जी इनको विशेष अनुग्रह करते हुए इनकी सेवा विस्तार रूप से सारी जनता को मिले यही हमारा आशीर्वाद है।

इति नारायण स्मरण

श्री श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी महाराज
पेजावर मठ उडुपि

अनुग्रह संदेश
श्री राम श्री

श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य मूल महा संस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी, उडुपी

आठ सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरू मध्वाचार्य जी ने मध्व सिद्धान्त का प्रचार प्रसार बहुत पैमाने से आरम्भ किया। इस प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए उडुपी में आठ पीठ और उत्तर कर्नाटक में एक पीठ की स्थापना किए। श्री जयतीर्थ मुनि, श्री श्रीपाद राज स्वामी, श्री व्यासराजमहामुनि, श्री वादिराजयोगी, श्री रघूत्तम स्वामी जी, श्री राघवेन्द्र तीर्थ जी इत्यादि महामहिमों ने उस सिद्धान्त को और विकसित किए। इसके बारे में यह श्लोक प्रसिद्ध है।

व्यासेन व्युप्तबीजः श्रृतिभुवि भगवत्पाद लब्धांकुरश्रीः।
प्रत्यैरीषत् प्रभिन्नोऽजनिजयमुनिना सम्यगुद्धिन्न शाखाः।।
मौनीशव्यासराजात् उदित किसलयः पुष्पितोयं जयीन्द्रात्।
अद्य श्री राघवेन्द्रात् विलसति फलितो मध्व सिद्धान्तशाखे।।

हमारे दीक्षा शिक्षा गुरु युगपुरुष श्री श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी उत्तर भारत में श्री मध्व तत्वज्ञान को प्रसार करने हेतु **बीस वर्ष** पहले श्री प्रयाग क्षेत्र में श्री मध्व पीठ की स्थापना की है। उन दिनों से प्रयाग का हमारा मठ मध्वसिद्धान्त का प्रसार करता आ रहा है।

इस वर्ष श्री पेजावर मठ के पूज्य श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ श्री पाद जी का अस्सीवाँ वर्ष है। स्वीकृत मध्व सिद्धान्त का प्रसार करने हेतु इस वर्ष में हमने अपने मठ से आठ मध्व शास्त्र ग्रन्थों का प्रकाशन करने का व्रत ग्रहण किया है। हमारे प्रिय शिष्य प्रयाग पीठाधिपति श्री विद्यात्म तीर्थ जी **आठ ग्रन्थों को हिन्दी में अनुवाद किए हैं।** हम आशा रखते हैं कि सद्भक्त लोग इन ग्रन्थों का उपयोग करके साधक बनें, भगवान के प्रिय बनें।

हमारे शिष्य **श्री विद्यात्म तीर्थ जी** को भी अस्सी वर्ष हो गये हैं। इस शुभ अवसर पर वे आठ शास्त्रग्रन्थ अनुवाद कर अपने आयु को सार्थक बनाए हैं। हम अपने आराध्य श्री सीतारामांजनेय स्वामी से प्रार्थना करते हैं कि उनके हाथ से ऐसे कार्य और हों, उसका उपयोग सद्भक्तों के लिए सन्तोष कारक हों।

इति नारायण स्मरण

उडुपी

कार्तिक शुक्ल एकादशी

विकृति नाम संवत्सर

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी

श्रीमद् अच्युत प्रेक्षाचार्य संस्थानम्
भीम सेतु मुनिवरेन्द्रमठ भीमनकट्टे
अनुग्रह संदेश

|| SRI DAMODARA SEETHARAMACHANDRAYA NAMAHA ||

SRIMAD ACHUYTA PREKSHACHARYA SAMSTHANAM

BHIMASETHU MUNIVRUNDA MUTT, BHIMANAKATTE.

SRI 1008 SRI SRI. RAGHUMANYATEERTHA SWAMIJI
PEETHADHIPATHI

Doorvasapuram Post, Taluk: Teerthahalli, District: Shimoga. Pincode: 577432
Phone: 08181-228281, Mobile: 9342877166, 9448181782. Email: [illegible]@gmail.com

Branch: BHIMANAKATTE SRI RAGHAVENDRA SWAMY MUTT
No.10, 5th Block, Doddabommasandra, Vidyaranyapura Main Road, Bangalore : 560097. Phone: 080-23463471.

[illegible]

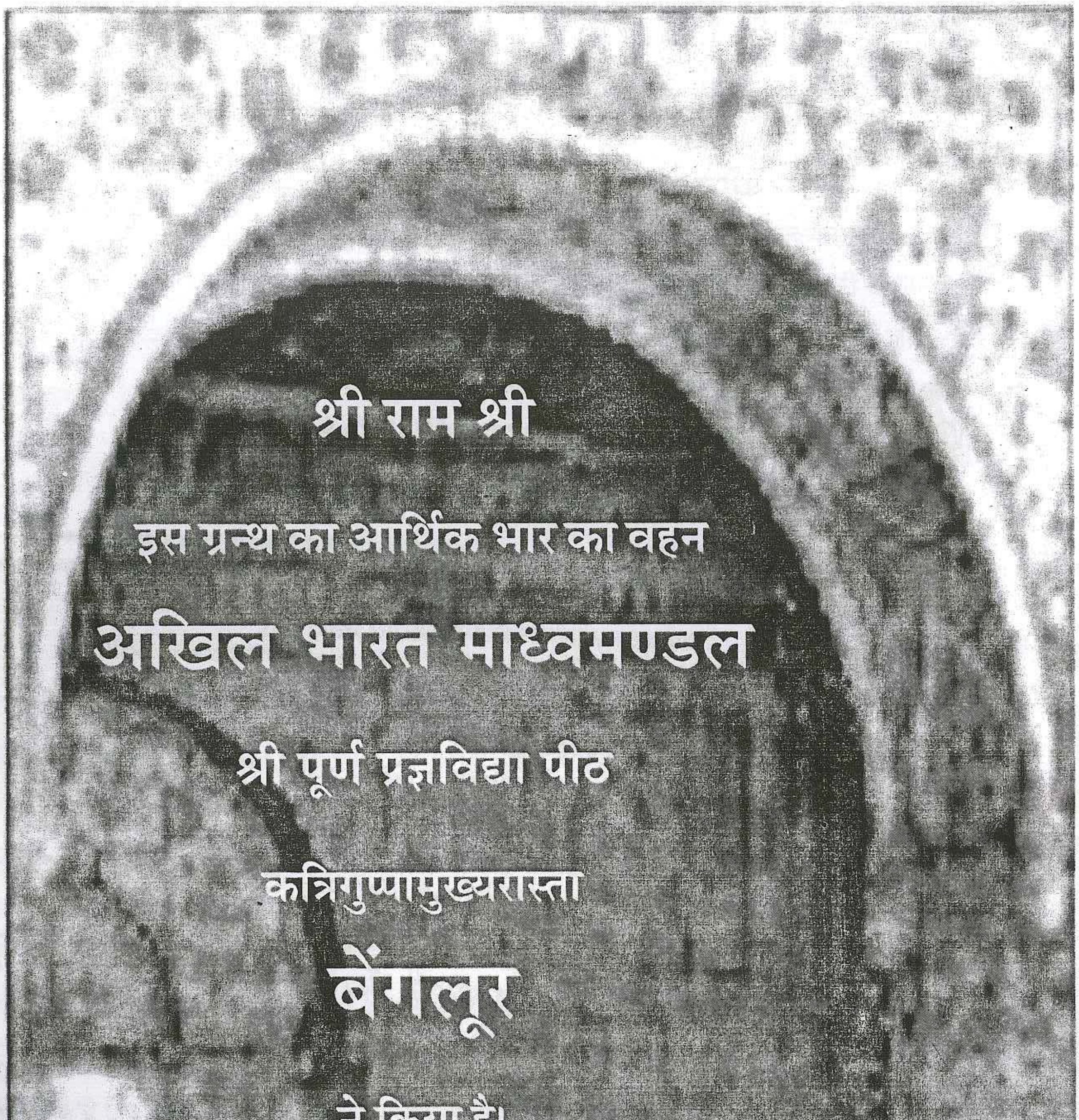
श्री राम श्री
इस ग्रन्थ का आर्थिक भार का वहन
अखिल भारत माध्वमण्डल
श्री पूर्ण प्रज्ञविद्या पीठ
कत्रिगुप्पामुख्यरास्ता
बेंगलूर
ने किया है।
हम उनके कृतज्ञ हैं
प्रकाशक

प्रस्तावना

हमारे गुरु जी पूर्व प्रयाग पीठाधिपति श्री 1008 श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी लगभग दस वर्ष पूर्व भागवत के पहले तीन स्कन्धों का अनुवाद कर प्रकाशित किए थे। उनका महानिर्वाण आकस्मिक रीति से होने के कारण वह कार्य वहीं अवरुद्ध हो गया था।

हमारे दीक्षा गुरु उडुपि श्री पलिमारु मठ के पीठाधिपति जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महराज जी ने उस अवरुद्ध कार्य का पुनरारम्भ करने का आदेश दिया। मैं अल्प शक्ति और अल्प ज्ञान वाला हूँ। किन्तु अपने गुरुवर्य की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मैं यह कार्य कर रहा हूँ।

विद्यावतां भागवते परीक्षा यह पूर्णत: सत्य है। श्री गुरु जी का अनुग्रह ही मुझसे यह कार्य करवा रहा है। दक्षिण भारत में जन्म लेने के कारण मुझे अच्छी हिन्दी नही आती। पण्डित न होने के कारण शास्त्र का गहन और विस्तृत ज्ञान प्राप्त नही है। केवल गुरु का अनुग्रह ही मुझे प्रेरणा दे रहा है। पाठकों द्वारा निर्दिष्ट त्रुटियों को अगले अंक में सुधारने का प्रयास करेंगे।

भागवत की सप्तम स्कन्ध में श्री नरसिंह अवतार की कथा आती है। इसमें दो विशेषताएँ हैं। पाँच वर्ष के छोटे प्रह्लाद जी अपने पिता के सामने नवधा भक्ति के बारे में बताते हैं। इस विषय को बहुत कथाकारों ने भागवत का हृदय माना है। इसके लिए हमने इस श्लोक के ऊपर ज्यादा ध्यान देकर विस्तृत रूप से उसका अनुवाद रखने का प्रयास किया है। यह मूल भागवत में नही आता है। किन्तु भागवत का मूल विचार भागवत धर्म के बारे में अत्यन्त विस्तृत विवरण देनेवाला विषय है। हमारा प्रयास इसके लिए है कि पाठक इस प्रयोजन का लाभ उठावें, और स्वयं भागवत धर्म का अनुष्ठान करें। इस भागवत धर्म के बारे में भागवत महा पुराण में बहुत बार प्रस्ताप आता है किन्तु ज्यादा विवरण नही मिलता है। इस विवरण से हम भागवत में प्रस्तापित भागवत धर्म के बारे मे प्राथमिक ज्ञान का विवरण देने का अल्प प्रयास किए हैं। हम आशा रखते है कि पाठक इसका सदुपयोग करें।

सप्तम स्कन्ध का दूसरा आकर्षक भाग है प्रह्लाद जी का दैत्य बालकों को देने वाला उपदेश। यह उपदेश भगवान के बारे में, प्रकृति के बारे में, जीव के बारे में और इन तीनों के सम्बन्ध के बारे में विवरण देने वाला अति सुन्दर विषय है। कई लोग इस भाग की व्याख्या करते हुए **मैं ही वह भगवान, अहम, मम** इत्यादि भावना को जगाने वाले विचारों की प्रस्तुति किए हैं। यह विचार मूल भागवत के विचार धारा के विरुद्ध होता है। सर्व श्रेष्ठ सर्वोत्तम, सकल सृष्टिकर्ता सर्वाधारक स्वामी नारायण भगवान एक और

अकेले हैं, उनसे सृष्ट हुआ यह नैज प्रकृति और उसमे रहने वाला उनके अधीन जीव इनका सम्बन्ध इसी रूप से रखना अत्यन्त आवश्यक है। अपनी शक्ति के अधीन होकर इस विषय का विवरण देने का प्रयास हमने इसमे किया है। ये दोनों विचार भागवत के मूल से भिन्न होते हुए भी भागवत धर्म का और भागवत ग्रन्थ के विचार को अभिव्यक्त करने वाले हैं। मूल से इस विचार को प्रत्येक दिखाने के लिए इनको छोटे अक्षरों में दिखाया गया है। यह विचार मेरा स्वयं अपना नही है। अन्यान्य शास्त्र ग्रन्थों के आधार से हमारे पूज्य गुरूवर्य **श्री श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी** ने अपने श्री कृष्ण पूजा पर्याय काल में (2002-2004) में राजांगण के सभांगण से प्रवचन देते हुए मण्डन किए थे। उसी को मैंने यहाँ लिखते हुए प्रकाशित करने का साहस किया है।

श्री 1008 श्री विश्वेश तीर्थ स्वामी जी के अस्सी वर्ष के निमित्तय होने वाले समारम्भ में वाराणसी के बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय के प्रांगण में होने वाली सभा में अनेक विद्वन्मडली के सामने इस ग्रन्थ का विमोचन हो रहा है, यह मेरा अहो भाग्य है।

इस ग्रन्थ का अनुवाद करते समय हमने अनेक ग्रन्थों का सहयोग लिया है। खासकर विद्वद्वर्य **श्री के हयवदन पुराणिक जी** द्वारा लिखे हुए और **भागवताश्रम प्रतिष्ठान भंडारकेरिमठ** बेंगलोर द्वारा प्रकाशित **सुललित श्रीमद्भागवतम्** से बहुत प्रयोजन मिला है। इसके लिये हम उनके आभारी हैं। हमारे आग्रह के अनुसार इस ग्रन्थ के लिये अनुग्रह संदेश भेजे **श्रीमत्पूज्य श्री 1008 श्री विश्वेतीर्थ स्वामी जी** पेजावरमठ, **श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी** पलिमारुमठ और **श्री 1008 श्री रघुमान्यतीर्थ स्वामी जी** भीमसेतुमठ इनको कृतज्ञता पूर्वक दंडवत प्रणाम करता हूँ।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का आर्थिक भार बेंगलोर के श्री माध्वमहामण्डल ने लिया है। उनको हमारे आराध्य दैव श्री पंचमुखी हनुमत्समेत श्री सीता राम जी अनुग्रह करें यही प्रार्थना करते हैं।

इसके प्रकाशन में सहकारी बने ज्ञात-अज्ञात सारे कार्य कर्ता गण को हम अभिनन्दन करते हैं।

इति शम्

वाराणसी
31-03-2011

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज

निवेदन

पश्चिम समुद्र के तट पर द्वारका से पधारे हुए, रुक्मिणी देवी से पूजित श्री कृष्ण जी की प्रतिमा को जगद्गुरू श्री मध्वाचार्य जी ने उडुपि में आठ सौ वर्षों से पूर्व में प्रतिष्ठित किया। जगद्गुरू मध्वाचार्य तीन मत प्रवर्तक आचार्यो में माने जाते हैं। ज्ञानयुक्त भक्ति के बिना शाश्वत सुख (मोक्ष) नही मिलेगा; भगवान सर्वशक्त, सर्वाधार, सर्वोत्तम हैं, जीव भगवान का दास है; यह विश्व नश्वर है किन्तु प्रवाहतः सत्य है; इस विश्व में रहने वाले प्रत्येक जीव परस्पर भिन्न हैं; अल्प शक्ति, अल्पवीर्य और अल्प ज्ञान वाला जीव कदापि भगवान नही बनता ये विचार मध्वतत्वज्ञान का सार है।

जगद्गुरू मध्वाचार्य जी श्री कृष्ण मठ में भगवान की पूजा अर्चा करने और मध्व सिद्धान्त के प्रचार प्रसार हेतु अष्ठ मठों की स्थापना की। वे आठ मठ के अधिपति सदियों से अपने इस कर्तव्य को निभाते आ रहे हैं। आज के इन पीठाधिपतियों में पेजावर मठ के श्री विश्वेश तीर्थ स्वामी जी सबसे श्रेष्ठ और वरिष्ठ हैं।

बालक वेन्कट राम अपनी आठ वर्ष की आयु में सन्यास लेकर विश्वेश तीर्थ बने और पेजावर मठ के पीठाधिपति होकर भगवान श्री कृष्ण की पूजा परम्परागत पर्याय व्यवस्था अविरत और अखण्ड भक्ति युक्त होकर करते आये हैं। मध्व शास्त्र में अगाध पांडित्य वाले आप शत - शत पण्डित मंडलियों को शिक्षित किए हैं। वेद, उपनिषद्, पुराण आदि अनेक शास्त्र ग्रन्थों के भाष्य, टीका, व्याख्यान आपने संस्कृत और कन्नड भाषा में रचना की है। नदियों में बाढ़, माँ भूमि के विघातक कम्पन, सुनामी और अकाल के आघातों से दुःखित, दीन, दलित, दरिद्रों के लिए आपका सहाय हस्त सबसे पहले सरकार से भी पहले और पर्याप्त मात्रा में मिल चुका है।

पूज्य पेजावर स्वामी जी अब अपनी आयु के अस्सी वर्ष में गुजर रहे हैं। इनमें से वे अपने बहत्तर सुनहरे वर्षों को सन्यास में, ज्ञान प्रसार में, भगवत् पूजा में और नानाजन शुश्रूषा में बिताये हैं। एक ऐसे क्रियाशील सन्त रूपी सज्जीव को अभिवन्दन करना, मान वन्दन करना, अपने के लिए श्रेयस्कर है।

ज़िस मध्व तत्वज्ञान के प्रचार प्रसार के लिए पूज्य पेजावर स्वामी जी ने अपना जीवन समर्पित किया, जीव और भगवान के बीच में सुन्दर सेतु बन्ध निर्माण करने का प्रयास किया उसी कार्य में एक छोटी सी गिलहरी का काम करने के लिए हम कार्यक्षेत्र में उतरे हैं। उनके अस्सी वर्ष के उन पद चिन्हों को अनुसरण करते हुए आठ मध्वशास्त्र ग्रन्थों को इस वर्ष विमोचन करने का सकंल्प हम किए हैं। वह कार्यक्रम इस प्रकार है।

क्र0	ग्रन्थ का नाम	स्थान	समय
1.	श्री भागवत पंचम और षष्ठ स्कन्ध	उडुपि	12-12-2010
2.	रामायण पात्र चित्रण	हुब्बली	13-12-2010

3.	श्री भागवत प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्कन्ध	प्रयाग	16-02-2011
4.	भागवत सप्तम स्कन्ध	वाराणसी	31 मार्च 2011
5.	भागवत अष्टम, नवम स्कन्ध	अयोध्या	अप्रैल 2011
6.	श्री कृष्णामृत महार्णव	तिजारा जिला अलवर, राजस्थान	29 अप्रैल 2011
7.	प्रातस्संकल्प गद्य	जलन्धर, पंजाब	जून 2011
8.	ब्रह्मसूत्र भाष्य	दिल्ली	जुलाई 2011

इन सारे ग्रन्थों को प्रयाग पीठाधिपति श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी ने संस्कृत से हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है।

इन ग्रन्थों का प्रयोजन सद भक्तों को मिले। इन ग्रन्थों को आप लोग अपने के लिए खरीदें अपने बन्धु बान्धवों को उपहार में दें। ऐसे करते हुए मध्वसिद्धान्त प्रसार के इस सेतु बन्ध कार्य मे यथाशक्ति सहयोग दें यही अभ्यर्थना।

सज्जन सेवा में

अखिल भारतीय श्री पेजावर स्वामी जी अभिवन्दन समिति

गौरव अध्यक्ष

डॉ कुटुम्ब शास्त्री

कुलपति डॉ0 सम्पूर्णानन्द वि. वि. वाराणसी

परामर्श दाता

मान्यवर अशोक सिंघल

अन्तर राष्ट्रीय अध्यक्ष वि. हिं. प.

स्वामी श्री सीतावल्लभ जी मध्वमठ बड़ा अखाड़ा

मैहर (म. प्र.)

बाल सन्तमहान शरण देवाचार्य जी, नेपाल

श्री स्वामी ललित मोहन ओझा प्रेम पीठ मध्वमठ

तिजारा जिला अलवर, राजस्थान

डॉ. ह्वि. आर पंचमुखि मंत्रालय

डॉ. ह्वी. एनं पाडुरंगी, जयपुर

डॉ. श्रीनिवास वरखेड़ि, हैदराबाद

कार्याध्यक्ष

श्री के. एन. सिंह पूर्व जिला न्यायाधीश

उपाध्यक्ष

श्री सर्वोत्तमन्, चेन्नै

श्रीमती अरुणा आचार्य, मुम्बई

श्री ध्रुव खेरा, जलन्धर, पंजाब

डॉ0 रवि नागपुर

श्री परीक्षित भराठे, भुसावल

प्रधान सचिव

श्री गिरधारी लाल मिश्र, इलाहाबाद

श्री मानसिंह (एड्वोकेट), इलाहाबाद

कोषाध्यक्ष

श्री रमेश अग्रवाल, इलाहाबाद

कार्यालय सचिव

श्री अनिल त्रिपाठी, इलाहाबाद

श्री बालाजी

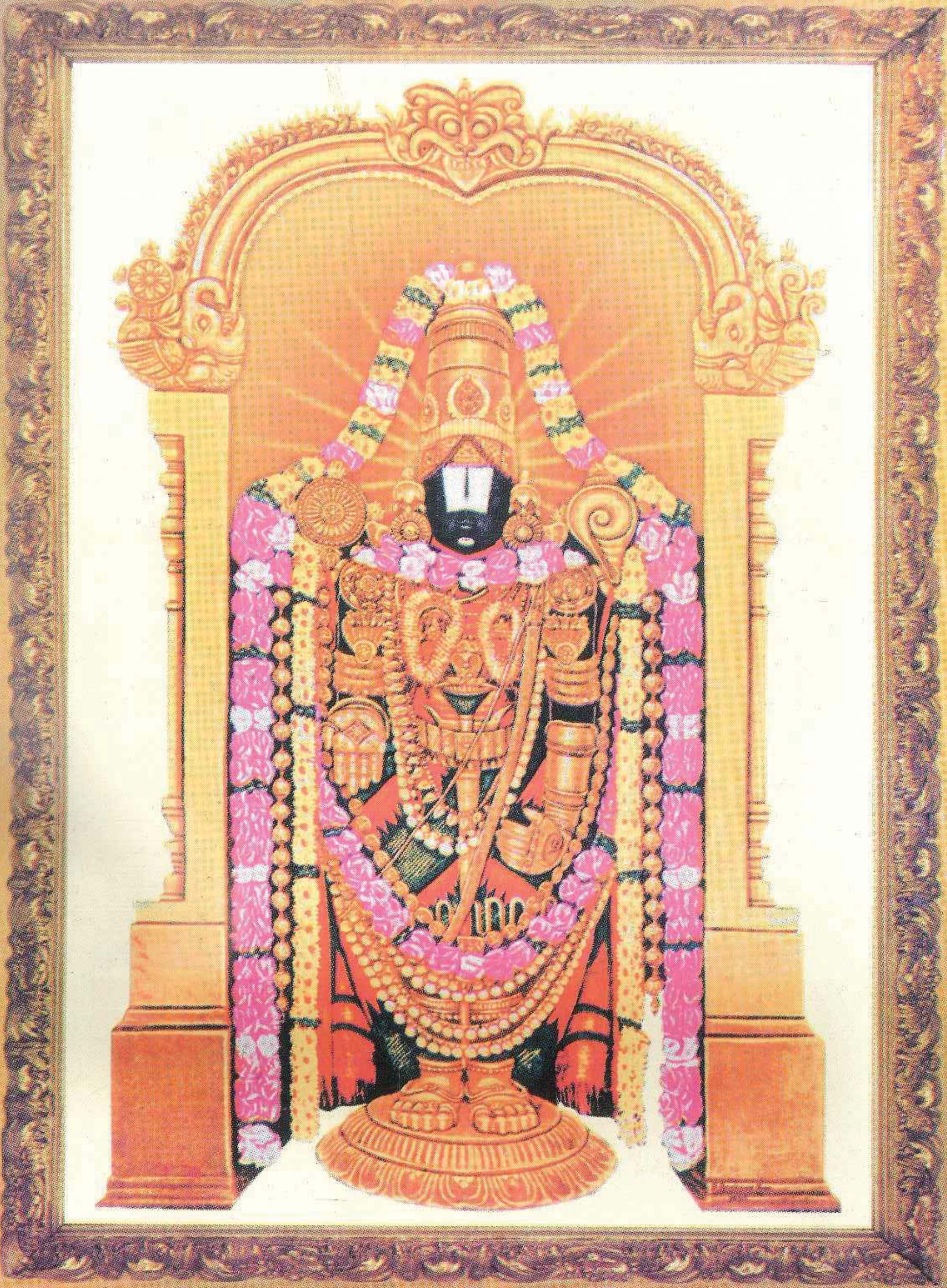

हमारे कुल देव विश्व के एकमेव बड़ा देव
श्री वेंकटेश्वर बालाजी के श्री चरणों में
यह ग्रन्थ समर्पित है

श्रीमद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मुलमहासंस्थान
पलिमारु श्री हृषीकेश शाखा पीठ के प्रधान देव
श्री सीता समेत श्री राम भगवान

संकट मोचन श्री पंचमुखी हनुमान

कपिमुखमपि पूर्वं दक्षिणे नारसिंहम् ।
गरुड़मुखमपि पश्चात् उत्तरे सूकरास्यम् ।
ह्यवदनमतोर्ध्वं चिन्तयेद् वायुसूनुम् ।
सकलदुरितहरं रामदूतं नमामि ।।

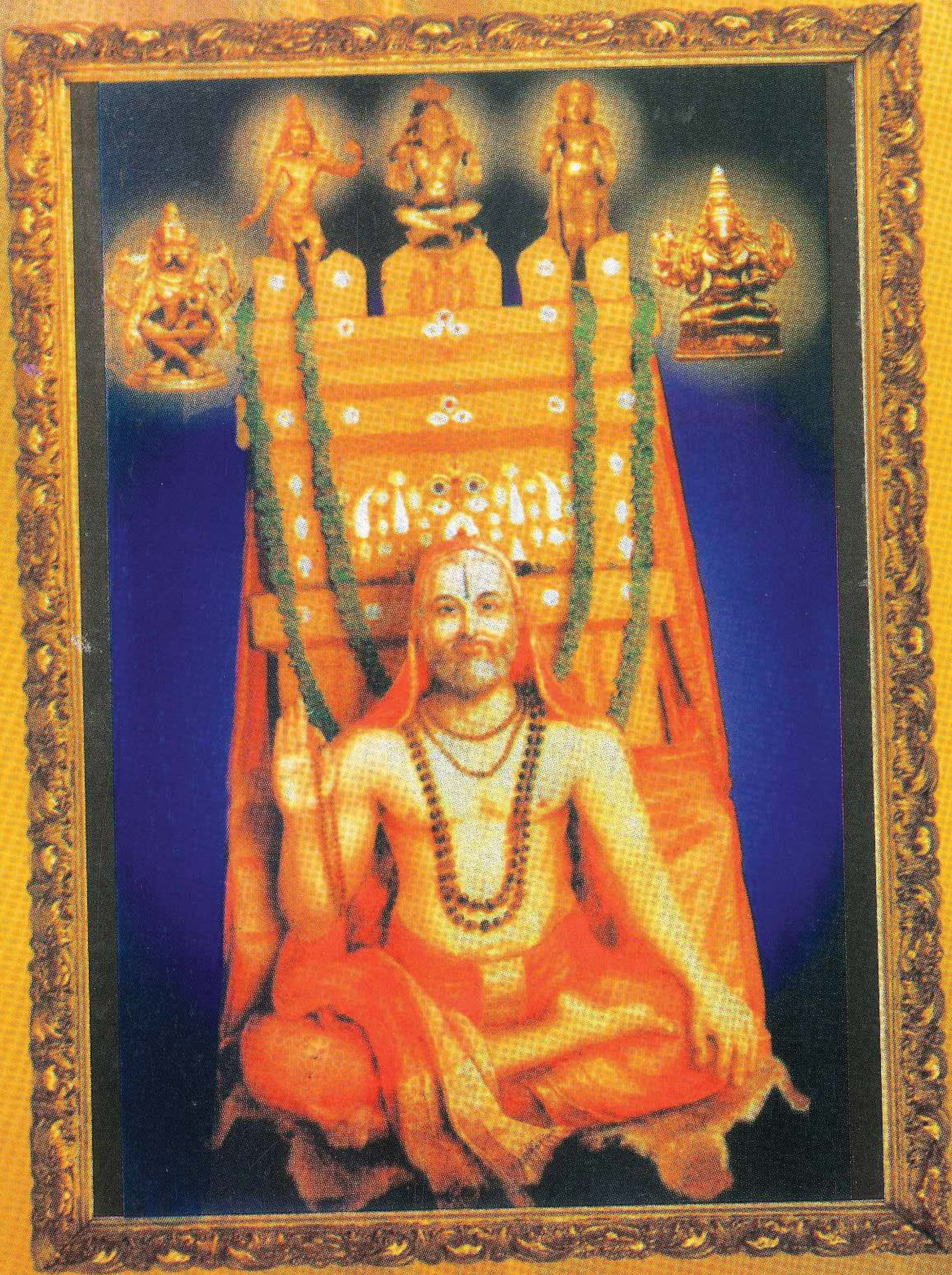

अपेक्षितप्रद मन्त्रालय के श्री राघवेन्द्र स्वामी जी

पूज्याय राघवेन्द्राय सत्यधर्मरताय च।
भजतां कल्पवृक्षाय नमतां कामधेनवे।।

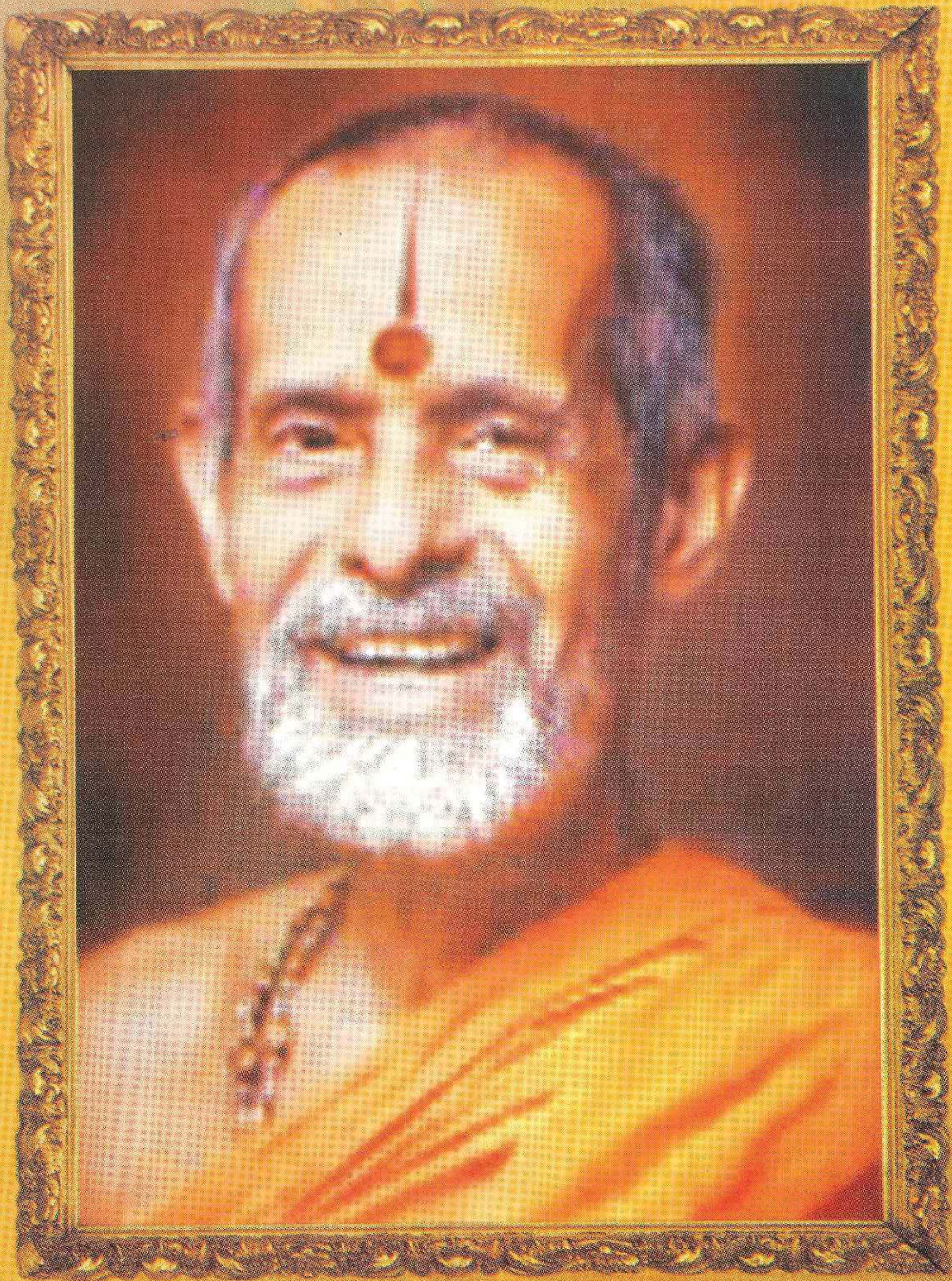

श्रीमद् जगद्गुरुमध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधीश
श्री १००८ श्री विश्वेशतीर्थ जी महाराज

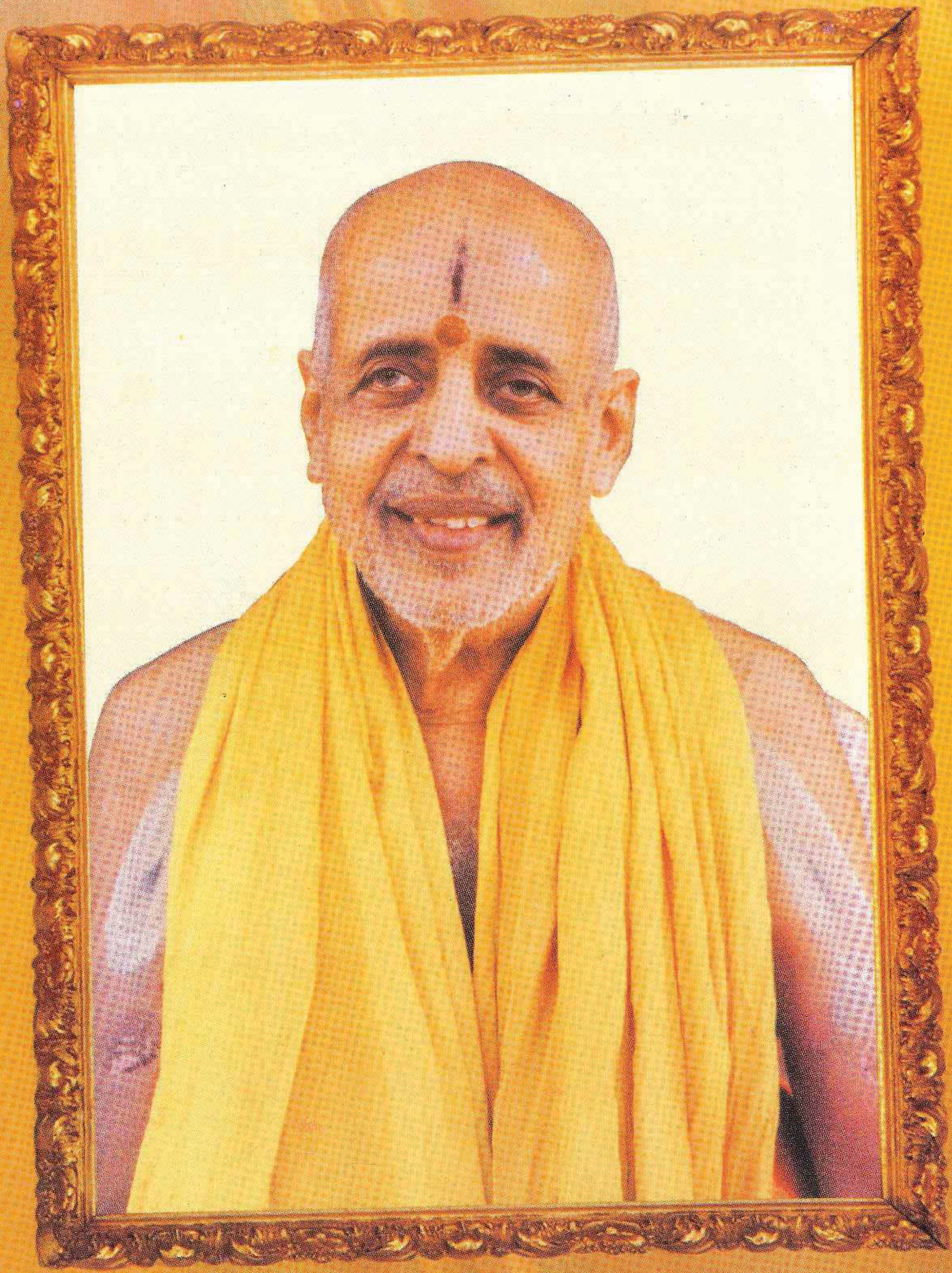

सर्वमान श्री १००८ श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी

ब्रह्मचर्य हरि प्रीति सुविद्या वादशालिनः ।
इष्टदान कष्टहर्तृन्नः विद्यामान्यान् मुनीन्नुमः ॥

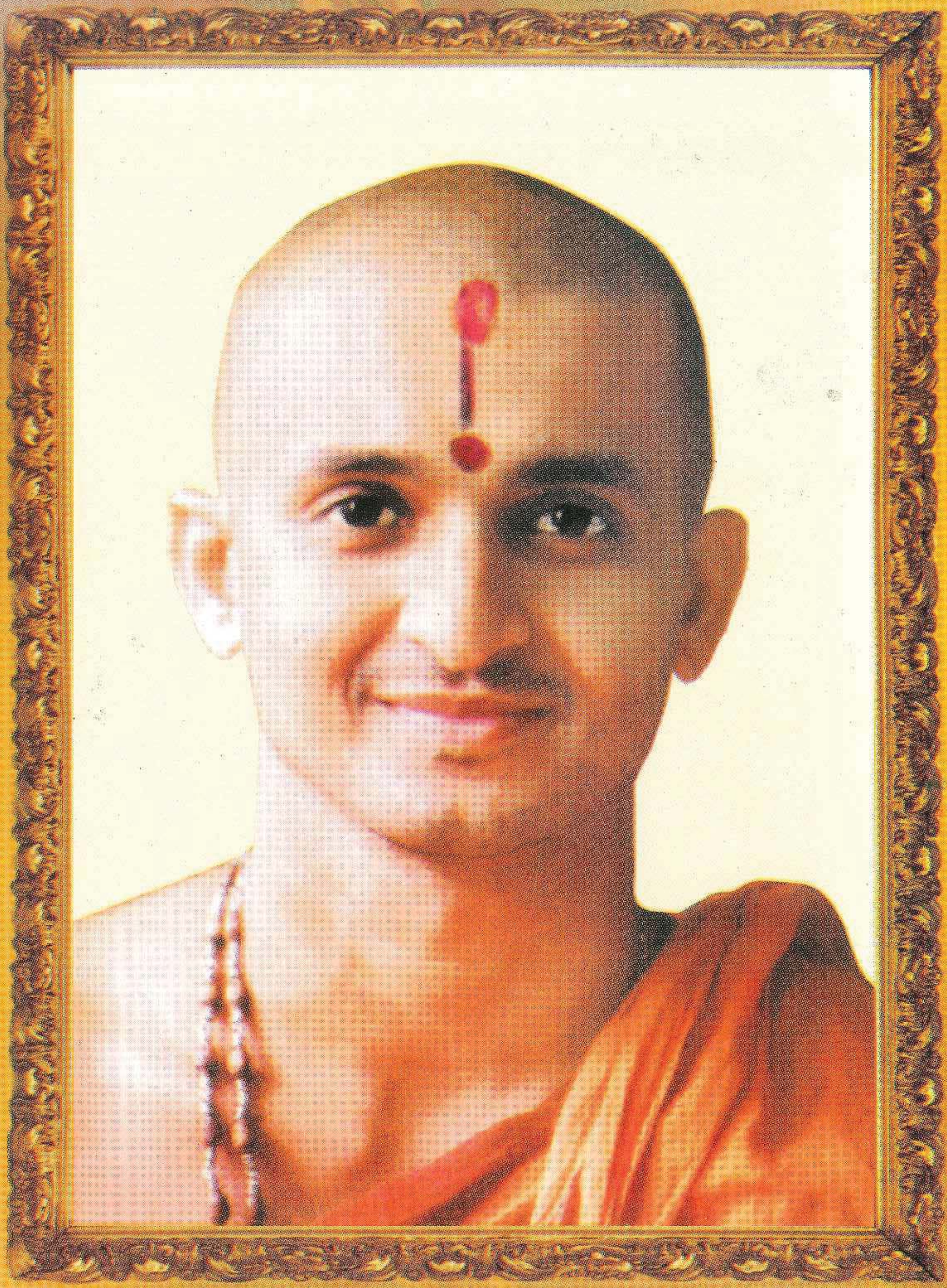

हमारे स्वरूपोद्धारक एवं दीक्षा गुरु

श्रीमद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधीश

श्री 1008 विद्याधीश स्वामी जी महाराज

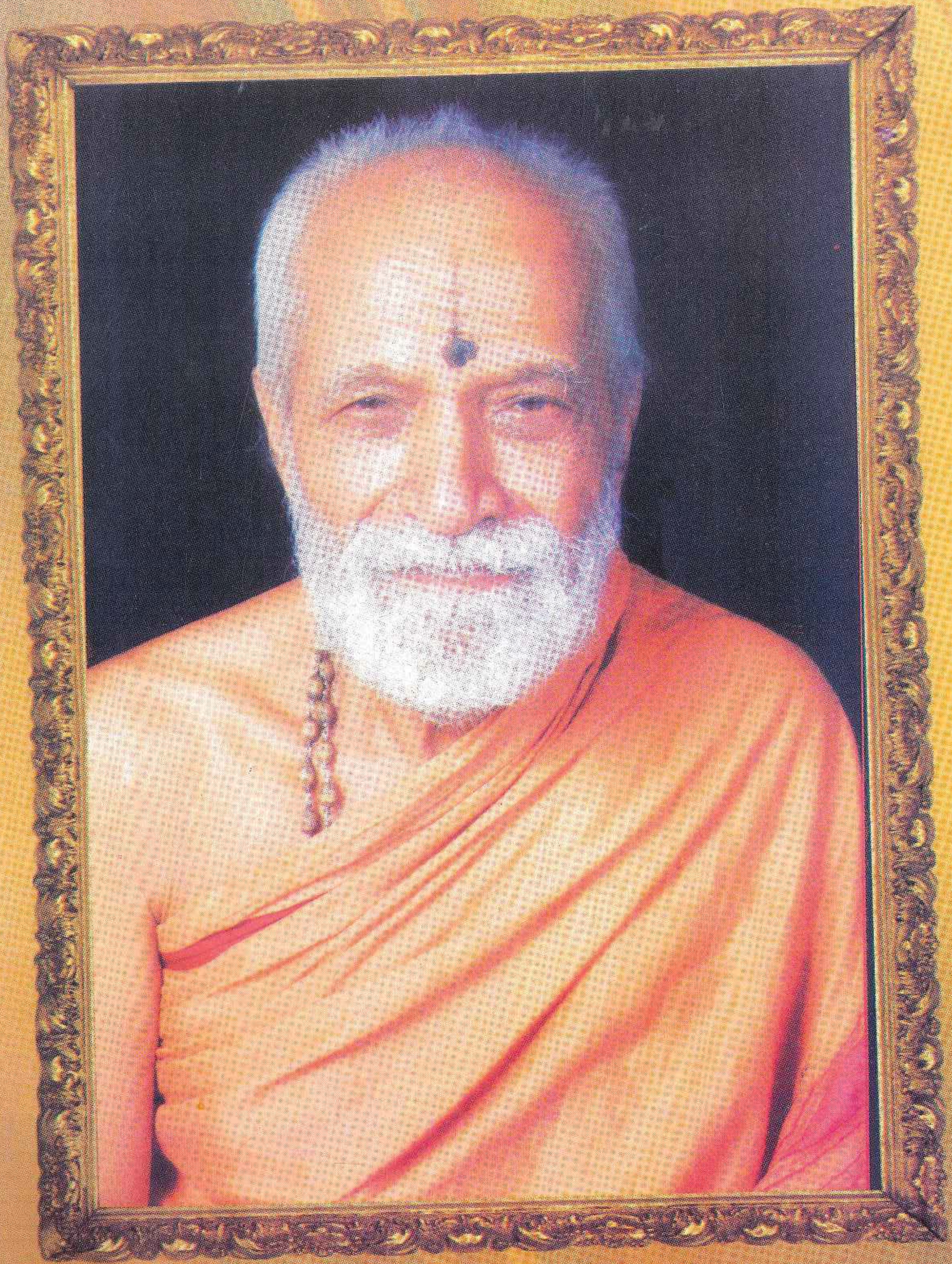

ग्रंथकर्ता प्रयागपीठाधिपति

श्री १००८ श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी महाराज

सप्तम स्कन्ध की विषय सूची

क्र0	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	अध्याय एक	भगवान के वैषम्य के अभाव का विवरण धर्म राजा और नारद का संवाद।	1-8
2.	अध्याय दो	हिरण्याक्ष वध से हिरण्यकश्यप का क्रोध। माता और हिरण्याक्ष की पत्नी को सांत्वना।	9-15
3.	अध्याय तीन	हिरण्यकश्यप से तप आचरण। ब्रह्मा जी से वरदान।	16-20
4.	अध्याय चार	हिरण्यकश्यप का दर्प। देव पीड़ना, भगवान से अभय दान।	21-25
5.	अध्याय पॉच	प्रह्लाद का जन्म, शण्डामर्क का अध्यापन। पिता के सामने प्रह्लाद का वचन। नवधा भक्ति विवरण, हिरण्य कश्यप का रोष।	26-41
6.	अध्याय छ:	दैत्य बालकों के लिए प्रह्लाद जी का भागवत धर्मोपदेश।	42-50
7.	अध्याय सात	नारद मुनि से प्रह्लाद का गुरूपदेश पाना।	51-71
8	अध्याय आठ	पुत्र हनन के लिए हिरण्यकश्यप स्वत: सिद्ध होना। प्रह्लाद की रक्षा के लिए श्री नरसिंहावतार। दैत्यवध	72-78
9.	अध्याय नौ	प्रह्लाद कृत नरसिंह स्तुति।	79-86
10.	अध्याय दस	पिता की सद्गति के लिए प्रह्लाद की प्रार्थना। भगवान से वरदान। प्रह्लाद का सिंहासनारोहण।	87-91
11.	अध्याय ग्यारह	त्रिपुर वध में अशक्त हर के लिए हरि का अनुग्रह, त्रिपुर दहन।	92-93
12.	अध्याय बारह	नारद, युधिष्ठिर संवाद। स्त्री धर्म और चातुर्वर्ण आदि धर्म का निरूपण।	94-97
13.	अध्याय तेरह	ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ आश्रम का निरूपण। सर्वाश्रम साधारण धर्म निरूपण।	98-100
14.	अध्याय चौदह	सह्य पर्वत के ऊपर प्रह्लाद जी को अवधूत दर्शन। उससे स्ववृत्ति-वर्णन।	101-105
15.	अध्याय पन्द्रह	नारद जी से धर्म राजा को गृहस्थ धर्म की विशेषताओं का उपदेश	106-109
16.	अध्याय सोलह	कर्म और ज्ञान योग का विवरण रूप प्रलयादि वर्णन। नारद जी का पूर्व जन्म वृतान्त। युधिष्ठिर कृत श्री कृष्ण पूजा।	110-117

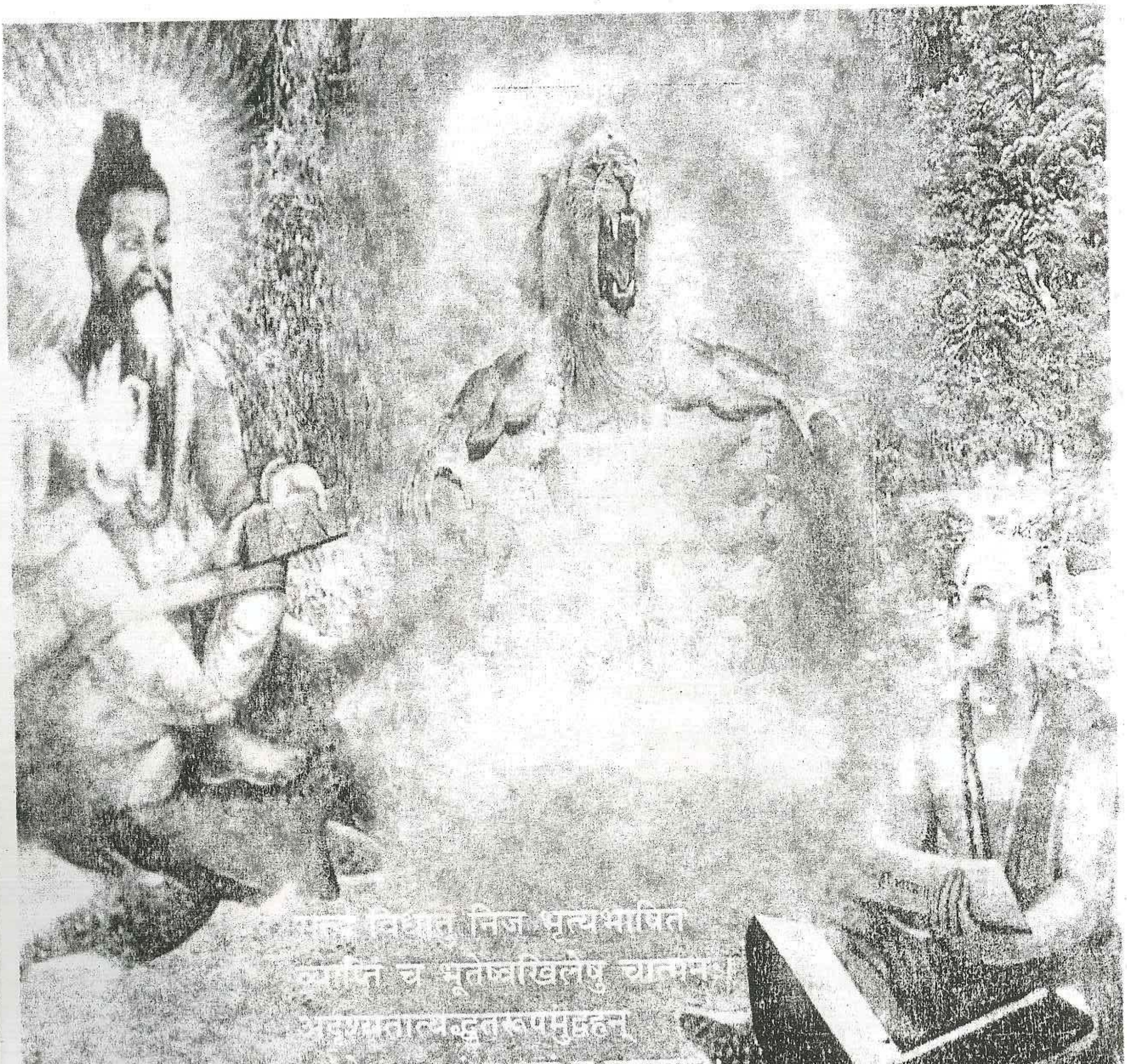
सत्यं विधातुं निज भृत्यभाषितं
व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन्
स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम्॥

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः

अध्याय - एक

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परिक्षित पूछते हैं - हे महामुने, भगवान सारे जीवियों में समान रहते हैं। वे सबको समान रीति से प्यार करते हैं। ऐसा होते हुए इन्द्र के कारण वे सामान्य लोगों की तरह वृत्र का वध क्यों किये?।।1।।

षष्ठ स्कन्ध के अन्त में अदिति के पुत्र इन्द्र के पक्ष का वहन करते हुए भगवान दिति के पुत्र राक्षसों का वध किये। तब दु:खित दिति इन्द्र को मारने वाला पुत्र को पाने का व्रत करके कश्यप से मरूत देवताओं को पायी। इन्द्र के ऊपर की प्यार के वजह से भगवान वृत्रदैत्य का भी वध किये। इसको सुनने के बाद राजा परिक्षित पुछते हैं वृत्र दैत्य होते हुए भी भगवद्भक्त था। उसका वध भगवान ने क्यों किया। यह भगवान का पक्षपात क्यों नहीं होता है। राजा परिक्षित आगे कहते हैं -

भगवान स्वयं परमानन्द स्वरूप हैं। उनको देवों से या दैत्यों से कोई प्रयोजन या लाभ होने वाला नही है। उनको देवताओं से न प्यार है, असुरों से न द्वेष है। प्यार और द्वेष के मूल कारण बनने वाले त्रिगुणात्मक विकार उनमें कभी नही होता।।2।।

इसी कारण हे महामुने! हमें यह संशय आ रहा है कि नारायण में समत्व आदि गुण की कमी है क्या?। इस संशय को केवल आपही निवारण कर सकते हैं।।3।।

शुकदेव जी कहते हैं - महाराज! आपका प्रश्न सही है, और सुन्दर भी है। आप इस प्रश्न को पूछे यही अच्छा है क्योंकि भगवान की लीला बहुत अद्भुत है। उसके बारे में हम जितना सोचते है, और चिन्तन करते हैं उतनी हमारी भक्ति और बढ़ती है।।4।।

भगवान की महिमा अत्यन्त पुण्यकर है। नारदादि महामुनियों ने महिमा के बारे में बहुत कहे हैं। उनकी महिमा को हमें बताये हुए श्री वेदव्यास जी को नमन करते हुए हम श्री हरिकथा का आरम्भ करते हैं।।5।।

भगवान प्रकृति से भी विलक्षण हैं। प्रकृति के त्रिगुणों के विकार रहित जनन मरण रहित अव्यक्त रूप हैं। ऐसा होते हुए भी अपने अधीन रहने वाली प्रकृति से देव और दानवों का शरीर निमार्ण करते हुए उनमें प्रवेश कर बाध्य बाधक भाव को नियंत्रण करते हैं। यानी बाधा देना और बाधा को सहन करना दोनों काम

उनसे करवाते हुए उनका प्रेरक बनते हैं।।6।।

सत्व, रज, तम ये तीनों प्रकृति के गुण हैं, ये भगवान के गुण नही हैं। भगवान निर्गुण है। ये तीनों गुण प्रकृति में एक साथ क्षय वृद्धि को नही पाते हैं। एक बढ़ा तो दूसरा घटता है।।7।।

सत्व गुण के वृद्धि काल में भगवान देवता और ऋषियों में प्रवेश करते हुए सत्कार्यों को बढ़ावा देते है। वैसे ही रजो गुण के वृद्धि समय में असुरों में, तमों गुण के वृद्धि काल में यक्ष राक्षसों में प्रवेश करते हुए उन गुणों की अभिवृद्धि करते है। इससे अन्य लोगों को पीड़ा होती है।।8।।

भगवान श्री हरि अव्यक्त होने के कारण वे देव दानवों के शरीर में रहते हुए भी काष्ठ में रहने वाले अरणी के समान, अथवा दधि में रहने वाले घी के समान प्रत्येक रूप से दिखते नही। अरणी का मंथन करने के बाद अग्नि मिलती है, दधि को मंथन करने से घी मिलता है। वैसे ही ज्ञानी लोग शास्त्र मंथन करते हुए परिपक्वता पाने के बाद शरीर में रहने वाले भगवान को शरीर से भिन्न रूप में देखते हैं।।9।।

भगवान स्वभावत: अव्यक्त हैं। दधि में रहने वाला घी के समान और काष्ठ में रहने वाला अग्नि के समान जीवों के शरीर में रहते हुए भी दृष्टिगोचर नही बनते हैं। यह बात भविष्यत् पर्व मे कहा गया है।

भगवान अपने प्रवेश के लिए जीवों की शरीरों को सृष्ट करते समय उन जीवों की योग्यतानुसार सत्व रज तमो गुणों का भिन्न भिन्न तरह के मिश्रण से उन शरीरों को स्वेच्छा से अलग अलग रूप से सृष्ट करते हैं। देव मानव इत्यादि शरीरों में क्रीड़ा करने की इच्छा से भगवान उनमें सत्व गुण की वृद्धि करते है। सब को संहार कर के योगनिद्रा करने के लिए जाने वाले भगवान उस समय तमो गुण की वृद्धि करते है। इस रीति से त्रिगुणों की अभिवृद्धि भगवान के अधीन होता है, भगवान के इच्छानुसार वृद्धि क्षय होता है, भगवान उनके अधीन नही हैं।।10।।

सर्वतंत्र स्वतन्त्र, सर्वाश्रय भगवान श्री हरि प्रकृति, पुरुष और उनके साथ सदा काल प्रवाहित होने वाले काल की भी सृष्टि करते हैं। इस सृष्टि में भगवान के वश में न रहने वाला सृष्टि साधन कोई नही है। भगवान सत्य सृष्टि की ही रचना करते हैं। जो नही है उसको बना के दिखाने वाला जादूगर वे नही हैं। वे मायाबी नही हैं। वे स्वयं सृष्ट किये सत्वादि गुणों में, प्रकृति में, और काल मे रहते हुए उनमें परस्पर बाध्य बाधक दोनों कार्य करते हुए उसमें पूर्ण रूप से यश पाते हैं। माया से किसी को दिखाने वाले को यह अन्तिम यश मिलने वाला नही है। बाधा को हम माया नही वोल सकते। शरीर धारी जीव को जीवन में होने वाले सुख दु:खों का अनुभव सत्य ही होता है।।11।।

भगवान केवल प्रकृति आदि के प्रवर्तक जैसे हैं वैसे काल के भी प्रवर्तक हैं। वे स्वतन्त्र हैं, सत्व गुण वाले देव गण उनके लिए प्रिय बनते हैं। भगवान उनमें सत्व गुण की अभिवृद्धि करते हैं। उनमें ज्ञान भक्ति को

बढ़ावा देते हुए उनको सुख देते हैं। मानव और दानव राजस तामस होने के कारण इनमें तामसी वृत्ति ज्यादा है। वे स्वाभाविक रूप से भगवान के अप्रिय बनते हैं। भगवान उनके भक्ति और द्वेष के अनुसार राजस तामस गुण को बढ़ावा देते हुए भक्ति और द्वेष को उत्पन्न करते हैं। राजस लोगों के भक्ति में बढ़ावा देते हुए सुख दुख दोनों का अनुभव देते हैं। स्वभाव से ही भगवान से द्वेष करने वाले दानवों में द्वेष को भी बढ़ावा देते हुए उसके फल रूप तमस में रखते हुए उनको दु:ख देते हैं। उन उन जीवों के स्वभाव के अनुसार भक्ति, द्वेष की अभिवृद्धि करते हुए सुख दु:ख देना भगवान हरि के लिए भूषण ही है। इससे भगवान की कीर्ति बढ़ी है, इसी कारण उनको **उरुश्रवा** कहते हैं। समत्व का अर्थ उनके योग्यता अनुसार फल देना ही होता हैं।।12।।

भगवान देवताओं के लिए प्रिय हैं। असुरों के लिए अप्रिय हैं। मानवों के लिए दोनों हैं। जीव के योग्यतानुसार प्रिय - अप्रिय बनने से उनमें पक्ष पात दोष नही है। जीवों के गुण-दोष को देख कर उनके अनुसार एक निष्पक्षपात न्यायाधीश के समान सुख - दु:ख देने के कारण वे निष्पक्षपाती हैं। अनादि काल से देवताओं में गुण, असुरों में दोष और मानवों में दोनों के मिश्रण की अभिवृद्धि करने से उनमें यह वैषम्य नजर में आता है। यह वैषम्य दोष नही हो सकता ऐसे ब्रह्मतर्क का निर्णय है।

भगवान स्वयं प्रत्येक युग में पुन: सृष्ट किए हुए प्रपंच को बचाने के लिए सात्विक शरीर वाले देवताओं को भक्ति आदि गुणों से भर कर उनको सुखी करते हैं।।13।।

भगवान स्वाभाविक रूप से देवताओं को प्रिय और असुरों को अप्रिय हैं। इसके बारे में धर्मराजा ने राजसूय याग के समय में नारद जी से प्रश्न पूछे थे। उसके उत्तर रूप में नारद जी एक ऐतिहासिक कथा सुनाए।।14।।

राजसूय महायाग के अन्तिम समय में शिशु पाल को भगवान वासु देव से सायुज्य पाने की अद्भुत घटना को देखते हुए धर्मराज आश्चर्य चकित होकर यज्ञ मंडप में बैठे हुए नारद जी से सबके समक्ष प्रश्न पूछे।।15,16।।

यह क्या अद्भुत है? परतत्व परम पुरूष वासुदेव में सायुज्य पाना परम भागवतो के लिए भी दुर्लभ है। यह पद भगवान के द्वेषी शिशुपाल को कैसे मिल गया?।।17।।

हे महामुनि! इसके बारे में जानने के लिए हम सब उत्सुक हैं। भगवान की निन्दा किए हुए वेन को ऋषि मुनियों ने शाप देकर अन्ध: तमस में डाल दिये थे।।18।।

पापी शिशुपाल और दुर्बुद्धि वाला दन्तवक्र अपने बचपन से, अन्त तक भगवान श्री कृष्ण से द्वेष करते रहे।।19।।

अविनाशी परब्रह्म महा विष्णु श्री कृष्ण रूप धारण किये हैं। बारबार ये उनकी निन्दा किए हैं। ऐसे

लोगों के जीभ को कुष्ठ रोग होना चाहिए। वे भी वेन के समान अन्धन तमस में क्यों नही गिरे?।।20।।

सारे लोगों के देखते-देखते वे अचिन्त्य स्वरूप भगवान में सायुज्य कैसे पाये?।।21।।

शिशुपाल को उसी समय सायुज्य मिला दन्त वक्र को आगे मिलना निश्चित है। इसके लिए धर्म राजा सायुज्य मिल गया ऐसे कहते हैं।

कई महत्व के पापों के फल को इसी जन्म में भोगना पड़ता है अन्य पापों को अगले जन्म में भोगना पड़ता है। शिशुपाल दन्त वक्र अपने किये हुए बड़े पाप को इसी जन्म में रोगादियों से क्यों न भोगे यह धर्मराजा के प्रश्न का मन्तब्य है।

मेरा मन हवा से हिल रहे दीपक के समान इस विषय के बारे में दोलायमान है। यह आश्चर्यकारक है। आप इसके कारण को बताइए।।22।।

श्री शुक जी कहते हैं - धर्मराजा के इन बातों को सुनकर पूज्य नारद मुनि सन्तुष्ट होकर राजा को वह कथा कहने लगे। अन्य सभासद भी इसको सुनते रहे।।23।।

प्रकृति और पुरुष इन दोनों के बारे में सही ज्ञान न होने के कारण निन्दा, प्रशंसा, उपचार, अपचारों से होने वाले सुख - दुःख के अनुभव के लिए यह शरीर कारण बनता है।।24।।

अपने शरीर को अपने से भेद जो है उसका ठीक तरह से ज्ञान न होने के कारण शरीर को मार पड़ने से, कान को दुष्ट बात सुनने से जीव को दुःख होता है। शरीर को ही मैं और मेंरा यह अभिमान रहता है। उसी के कारण दुख अनुभव होता है।।25।।

जिस शरीर में अभिमान होता है उस शरीर के नाश से जीव को ही नाश समझा जाता है। भगवान श्री हरि प्रकृत्यादि सब का स्वामी होने के कारण प्राकृत शरीर आदि बन्ध रहित हैं। अन्य जीवियों के समान उनको प्राकृत शरीर में अभिमान नही है। भगवान को सृष्ट करने वाला और कोई नही है। ऐसे भगवान को दुःख कैसे हो सकता है।।26।।

इस लोक में **कैवल्य** शब्द का प्रयोग है। कैवल्य का अर्थ भगवान को अपने से भिन्न शरीर नही है, यह होता है। **अकर्तृ** शब्द से भगवान को जन्म देने वाला और कोई नही है यह अर्थ होता है। **इदम् हिंसा** इस शब्द में लिंग व्यत्यास है, यह निन्दा को दर्शाता है। महा व्याकरण के लिए यह सम्मत है।

भगवान को जीव के समान देहाभिमान न होने के कारण शिशुपाल की गालियों से उनको दुःख नही हुआ। यदि गालियों से दुःख होता है तो भगवान गाली देने का अवसर ही उनको नही देते। शिशुपाल का हरिद्वेष स्वभाविक नही है। इसी कारण उसमे श्री हरि को स्वाभाविक द्वेष नही है। इसी कारण उनके गलतियों को क्षमा करते हुए भगवान

उनको सायुज्य दिये।

इसी कारण सतत वैर भाव से अथवा वैर रहित भक्ति भाव से अथवा काम से जैसे भी हो एक भक्त प्यार से भगवान में मन रखे तो उसका मन भगवान को छोड़कर और किसी के बारे में चिन्तन नही करता।।27।।

इस श्लोक का अर्थ विस्तृत यह होता है। स्वभाव से भक्त शिशुपाल भगवान के निन्दा करने मात्र से भगवान को दु:ख नही हुआ। इसी कारण वैर भाव से, भक्ति, भय, स्नेह और काम इनमें से किसी भाव से भगवान में अपना मन रखते हुए उन भावों को भक्ति में बदल सकते हैं। इस रीति से इन भावों को भगवान ही भक्ति में परिवर्तित करते हैं। ऐसे समय को भगवान देखते रहते हैं।

स्वभाव से भक्त होकर जन्म निमित्त द्वेष करने वाले शिशुपाल जैसे द्वेषियों को भगवान अन्त में भक्ति देते हैं। सदा काल वैरभाव रखने से भगवान में द्वेष करने वाले भक्ति की तन्मयता बहुत कम लोग पाते हैं। किन्तु द्वेष से तन्मय होकर बाद में उसमें परिर्वतन पाकर भक्ति से तन्मयता पाने वाले बहुत कम भक्त मिलते हैं। केवल हरि द्वेष करने वाले सारे भक्त बनते हैं तो इस जगत में भक्तों की संख्या ही अधिक होती वास्तव में यह सही नही है। यह मेरी निश्चित धारणा है।।28।।

कुड्य नाम वाली तितली छोटे कीट को लाकर घरों में अपना घर बना कर उसमें रखता है। छोटे घर में बन्दी बनाने से उस कीट को पहले भय होता है, बाद में उसके ऊपर क्रोध आता है। किन्तु आहार आदि देकर योगक्षेम देखने के कारण बाद में उसके ऊपर प्यार होता है। कोप भय से उत्पन्न हुए इस प्यार के कारण वह कीट तन्मयता से कुड्य का चिन्तन करते हुये स्वयं कुड्य बन जाता है।।29।।

ऐसे ही अपनी इच्छा से मानव जैसे अपने को दिखाने वाले भगवान श्री कृष्ण में पहले वैर करने वाला शिशुपाल वैर, क्रोध, भय के बाद अन्त में भगवान के रूप को पहचानते हुए भगवान में तन्मयता पाकर भक्त बनने के कारण ही शिशुपाल को सायुज्य मोक्ष मिला।।30।।

कुड्य जैसे कीट को घर बनाकर पालन पोषण करता है, वैसे ही भगवान यह शरीर नाम के घर में जीव को रखते हुए पालन पोषण करते हैं। असुरावेश के कारण जीव प्रारम्भ में भगवान से द्वेष करता है। किन्तु जीव के स्वरूप में सुप्त रहने वाली भक्ति को भगवान व्यक्त करने के बाद जीव भगवान से प्यार करने लगता है। कीट कुड्य से करते हुए प्यार के कारण सदा काल कुड्य का ही चिन्तन जैसे करने लगता है, वैसे ही जीव भगवान में प्राप्त भक्ति के कारण भगवान के दर्शन की चाह अपने मन में बढ़ाता है। यही प्यार भक्ति में परिवर्तित होता है। आत्यन्तिक भक्ति से जीव भगवान को पाता है। यहाँ शिशुपाल जन्म भर भगवद्वेष से उनकी निन्दा करते हुए भी जब भगवान शिशुपाल का शिरच्छेद के लिए हाथ में सुदर्शन चक्र को धारण किए तब शिशुपाल भगवान को पहचान लिया। उसी क्षण वैर भाव

मन से गायब हुआ और वहाँ भक्ति का आगमन हुआ। वैर के कारण सदा काल भगवान के चिन्तन करने के कारण शिशुपाल भगवत् चिन्तन में परिणत हो गया था। उसी चिन्तन के कारण उसकी भक्ति बढ़ गयी। अन्त में शिशुपाल मोक्ष पा लिया।

स्वयोग्य भक्ति युक्त काम, स्नेह, भय, द्वेष, से भगवान में मन स्थिर करते हुए कामादियों से होने वाले पाप को दूर करके बहुत लोग विष्णु लोक को पा चुके हैं।।31।।

गोपिका स्त्रियों ने स्वयोग्य भक्ति सहित काम से, कंस में आविष्ट भृगु मुनि भक्ति सहित भय से, शिशुपाल आदि राजा में रहने वाले जय आदि देव भक्ति सहित द्वेष से, यादव गण भक्ति सहित शरीर सम्बन्ध से, आप पाण्डव लोग भगवान के महात्म के ज्ञान को समझते हुए समान प्यार से, हम नारदादि मुनि प्रीति से अधिक ज्ञान से। इस रीति से सारे भक्त गण किसी एक तरह की भक्ति योग से ही भगवान के अनुग्रह के लिए पात्र बनते हैं।।32।।

भय द्वेष के समान काम और बन्धु प्रेम भी पापकर होकर बन्धक बनते हैं। किन्तु भक्ति का सम्बन्ध आने से भय, द्वेष, काम, स्नेह आदि से किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है।

कामाद्, भयात्, द्वेषात्, सम्बन्धात् इन सारे शब्दों के साथ भक्ति युक्त शब्द को जोड़ना चाहिए। **पाण्ड़व स्नेह से नारदादि मुनि भक्ति से** ऐसे कहने से **पाण्डव भक्त नही नारद भगवान से स्नेह नही रखते** यह अर्थ नही होता। पाण्डव मुनियों से बढ़कर भक्त थे, उनकी भक्ति में **ज्ञान** से बढ़कर **स्नेह** का अंश ज्यादा था। नारद जी में स्नेह से बढ़ कर ज्ञान का अंश ज्यादा था। ब्रह्मतर्क इसी बात को कहती है।

परम पुरुष भगवान में वेन को काम, भय, द्वेष इत्यादि पाँच रीति की भक्ति में एक अंश भी नही था। इसी कारण उसको तमस प्राप्त हुआ। किन्तु द्वेष करने वाले भक्त शिशुपाल को सायुज्य मिला। इसका अर्थ यही होता है कि किसी तरह से अपने चित्त को भगवान में स्थायी भाव से भगवान में रखकर हमे भक्ति करनी चाहिए।।33।।

हे राजा परिक्षित! - तुम्हारे मांसी के पुत्र शिशुपाल दन्त वक्र को असुरवेश के कारण भगवान में द्वेष था। किन्तु मूल रूप से भक्ति ही थी। वे पूर्व जन्म में भगवान विष्णु के पार्षद थे। मुनि के शाप से वे पदच्युत हो गये थे।।34।।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं। वह क्या शाप है? हरि भक्तों को कौन शाप दिये? भगवान के एकान्त भक्तों को भी शाप के कारण इस भूमि में जन्म लेना पड़ता है यह विश्वास करने योग्य नही बनता।।35।।

एक बात और है। वैकुण्ठ में जो रहते हैं, उनको पुनर्जन्म नही होता है। उनको प्राकृत देह इन्द्रिय और प्राण न होने के कारण वे प्राकृत शरीर में कैसे जनन पाते हैं। इसका कारण भी आप बताइए।।36।।

नारद जी कहते हैं - तीनों लोकों में रहने वाले भगवद्भक्तों को और भगवद्रूपों को देखने के लिए तीनों लोको में संचार करने वाले सनन्दन आदि ब्रह्म पुत्रों ने भगवान की इच्छा से ही एक बार विष्णु लोक को गये।।37।।

वे दिगम्बर थे। पाँच या छ: वर्ष के बच्चे जैसे थे। वे अन्य ब्रह्म पुत्रों से पहले जन्म लिए थे। वैकुण्ठ के पार्षद जय विजय उनको बच्चे समझ कर दण्ड दिखाते हुए उनको वही रोक दिये।।38।।

विष्णु लोक में रहने वाले सभी मुक्त हों ऐसा नियम नही है। कई अधिकारी काम के कारण वहाँ रहते हैं। उनके लिए प्राकृत इन्द्रिय आदि देह पहले से ही रहते हैं। जो मुक्त हैं, उनके लिए प्राकृत शरीर नही रहता है। यह तत्र सार नाम के ग्रन्थ में है।

तब ऋषियों ने क्रोध से शाप दिया कि रजो तमो गुण वाले तुम लोग भगवान के समीप में रहने योग्य नही हो। तुम अपने इस वचकाने काम से देव योग्य नही हो। आप इस दिव्य शरीर को छोड़कर पापी और दैत्यावेश वाला शरीर पावो।।39।।

इस प्रकार शाप देने के बाद पतित होकर गिरने वाले उनके ऊपर कृपा करते हुए उन दयालु मुनियों ने तीन बार तुम राक्षस जन्म लेकर बाद में पुन: वैकुण्ठ आ जाओ। तब तुम्हे शाप की निवृत्ति हो जायेगी।।40।।

बाद में वे दोनों पार्षद दैत्य-दानव से वन्दित दिति के पुत्र हिरण्य कश्यप, बड़ा भाई और हिरण्याक्ष छोटा भाई बने।।41।।

नरसिंहावतार लिए भगवान हिरण्य कश्यप का संहार किये। भूमि का उद्धार करने के लिए वराह का अवतार लिए हुए भगवान से हिरण्याक्ष मारा गया।।42।।

हिरण्य कश्यप अपने प्रिय पुत्र को मारना चाहा। मारने के लिए उसको बहुत कष्ट दिया किन्तु मार नही सका।। 43।।

प्रह्लाद जी सारे जीवियों के अन्दर रहने वाले भगवान के ऊपर अचल श्रद्धा रखते हुए सभी स्थानों में एक ही भगवान को देखते थे। महा भगवद् भक्त प्रह्लाद जी भगवद् अनुग्रह से अपरा शक्ति और भक्ति वाले थे। इसी कारण बहुत सारे प्रयत्नों के बाद भी हिरण्य कश्यप उनको मार नही सका।।44।।

बाद में वे जय विजय विश्रावसु की राक्षस पत्नी केशिनी के पेट से जन्म लेकर राक्षस बने। वे सारे लोक कण्टक रावण और कुम्भकर्ण नाम से प्रसिद्ध थे।।45।।

तब श्री हरि उनके शाप विमुक्ति के लिए श्री राम जी के नाम से अवतार लेकर उनका वध किये। श्री राम जी के पराक्रम के बारे में मार्कण्डेय मुनि के मुँह से तुम सुनने वाले हो।।46।।

वे रावण कुम्भकर्ण अब तुम्हारे मौसी के पेट से क्षत्रिय जन्म लिए थे। अभी अपने तीनों जन्मों में किए हुए पापों से मुक्त होकर भगवान श्री कृष्ण के चक्र के स्पर्श के कारण शाप मुक्त हो गये।।47।।

द्वेष के साथ तीव्र भक्ति युक्त होकर ध्यान करते हुए अच्युत के पेट में प्रवेश किये हैं। श्री कृष्ण भगवान के परम धाम जाते समय उनके साथ वैकुण्ठ जाकर पुन: पार्षद बनेंगे।।48।।

वैरानुबन्ध का अर्थ वैरयुक्त अनुबन्ध। अनुबन्ध का अर्थ भक्ति होता है। वैरानुबन्ध का अर्थ प्रारम्भ में द्वेष होते हुए भी पूर्व जन्मों के संस्कार के कारण अन्त समय में भक्ति पा लेना यही अर्थ होता है।

युधिष्ठिर पूछते हैं - अच्युत में अपार निष्ठा रखने वाले, उन्ही में मन रखने वाले अपने प्रिय पुत्र को हिरण्य कश्यप ने क्यों द्वेष किया, और क्यों मारना चाहा। हे पूज्य! आप इसको बताइए।।49।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में सातवाँ स्कन्ध में पहला अध्याय समाप्त हुआ।।

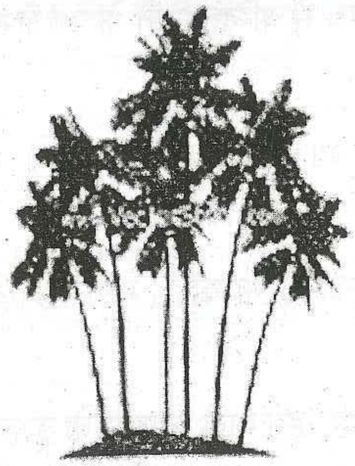

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः

अध्याय - दो

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

नारद जी कहते हैं - अपना भाई हिरण्याक्ष वराहरूपी भगवान हरि से मरण पाया इससे हिरण्यकश्यप कोप और ताप से बहुत दुख का अनुभव किया।।1।।

उसने क्रोध से चाभुक बांध कर क्रोध से जलती हुयी आँखों से आकाश को देखा। उससे पूरा आकाश धुआँ से घिर गया।।2।।

उसका मुँह बहुत उग्र हुआ था भौहें चढ़ी हुयी थीं, उसके दाँत आवाज कर रहे थे। उसके कराल मुख को कोई देख नही सकता था। उसने अपने दायें हाथ में शूल को उठाते हुए भरी सभा में अपने दानव दूतों को आज्ञा दी।।3।।

हिरण्यकश्यप बोलता है - हे दानव, हे दैत्य, हे द्विमूर्ध, त्र्यक्ष, शम्बर, शतबाहू, हयग्रीव, नमुचि, पाक, इल्वल, विप्रचित्ति, पुलोम, शकुनी, तुम सारे लोग पहले लक्ष्य देकर मेरी बात सुनों और बाद में तुरन्त उसके अनुसार कार्य करो।। 4-5।।

हरि सबको एक समान देखता है किन्तु क्षुद्र शत्रु लोग उसकी सेवा करते हुए उसको अपनाए हैं। इसी कारण हरि ने मेरे प्रिय भाई और मित्र जैसे रहने वाले भाई हिरण्या को मार डाला है।।6।।

पहले सबको समान देखने वाला हरि अब अपने उस स्वभाव को छोड़कर देवताओं के पक्ष में काम कर रहा है। वह कपट रूप में वराह बनकर हमारे भाई का वध किया है। छोटे बच्चे के समान जो अपनी सेवा करते है उनके सेवक बनता है। वह स्थिर बुद्धि वाला नही है। उसको देखकर मुझको कारूण्य आता है।।7।।

मै अपने इस शूल सेउसके गले को काटकर युद्ध में अपने प्रिय भाई को रक्त से तर्पण दूगाँ। तब मेरा यह दुःख दूर होगा।।8।।

देवताओं के लिए विष्णु का बल ही बल है। कपटी उस विष्णु का नाश होने के बाद सारे देवतागण मूल को काटा हुआ वृक्ष के समान सूख जाते हैं।।9।।

तुम लोग पहले एक काम करो। तुम लोग ब्राह्मण और क्षत्रियों के कारण सम्पद समृद्ध हुए भू लोक पर आक्रमण करो। तप, यज्ञ, दान, व्रत और वेदाध्ययन जहाँ होता है वहाँ जाकर उनका नाश करो।।10।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्ण वाले जो तप इत्यादि सत्कर्म करते हैं उसी के बल के आधार पर विष्णु की शक्ति बढ़ती है। वह धर्म का आश्रय लेकर रहता है। देव, ऋषि, पितृ इत्यादि सारे जीवियों को और धर्म का मुख्य आश्रय होकर सारे यज्ञों के फल को स्वीकारता है।।11।।

इसी कारण तुम लोग जहाँजहाँ ये त्रैवर्णिक रहते हैं वहाँ जाकर जहाँ गाय है, जहाँ वेदघोष होता है, वर्णाश्रमों का आचरण होता है, उन सबको जला दो, नाश करो।।12।।

हिरण्यकश्यप की इस आज्ञा को उनके दूत सिरसा मानते हुए भूमण्डल पर विस्तार रूप से आक्रमण किये। दैत्य लोगों को उनके स्वभाव से ही हिंसा प्रिय होती है। अब उसके लिए राजा की आज्ञा मिलने से वे बहुत जोर से आक्रमण किये और लोगों पर हिंसा किए।।13।।

असुर ठीक तरह से जानते हैं कि यज्ञादि सत्कर्म हरि के मूलाश्रय बनते हैं। ब्रह्मपुराण में भी यह बात कही गयी है।

वे दैत्य और असुर लोग शहर, गाँव, गोशाला, उद्यान, पुण्यक्षेत्र, उपवन, आश्रम, नाट्य मन्दिर, बाजार इन सबको उखाड़ कर फेकते हुए, जलाते हुए हल्ला मचा दिए।।14।।

कई दानव फावड़ा लेकर पुल को, गोपुर को गिरवा दिये, कई कुल्हाड़ी लेकर वृक्षों का नाश किए, कई असुर जलते हुए मशाल को लेकर लोगों का घर जला दिए।।15।।

हिरण्यकश्यप के दूत इस तरह से बार बार जन जीवन को ध्वस्त करते हुए नाश करने लगे। तब लोक पालक देवताओं ने स्वर्ग को त्याग कर भूमि में ही अदृश्य रूप से संचार करते हुए दु:खितों को अपने अदृश्य हस्त से सान्त्वना देने लगें।।16।।

इधर हिरण्यकश्यप दुःख करते हुए अपने मरे हुए भाई को धर्मोदक देकर उनके बच्चों को सान्त्वना देने के लिए उनके घर आया।।17।।

शकुनि, शम्बर, दृष्ट, भूतसन्तापन, वृक, कालनेमी, महानाभ, हरिश्मश्रु, उत्कल ये नौ हिरण्याक्ष के पुत्र थे। इनकी माता का नाम था रुषद्भानु। इनके साथ अपनी माँ दिति को भी समाधानकारक बातें बोलते हुए मधुर वाक्यों में उपदेश देने लगा। वह देश काल को ठीक तरह से जानने वाला था।।19।।

हिरण्यकश्यप ने कहा - माँ जी, भयाहू, और बच्चो! आप लोगों को वीर हिरण्याक्ष के वीर मरण के लिए शोक नही करना चाहिए। शूर वीर और धीर लोग सदा के लिए शत्रु के सामने युद्ध करते हुए मरना

चाहते हैं। यह प्रशंसनीय है।।20।।

इस भूमि में जीव सदा काल एक साथ नही जी सकते। प्याऊ में यात्री लोग इधर उधर से आते हैं, चन्द क्षणों के लिए रुकते हैं, दैव के वश होकर मिलते हैं, दैव के कारण ही अलग होते हैं।।21।।

भगवान नित्य है। उनका शरीर नाश नही होता। उनका शरीर तीनों गुणों से रहित है। वह सर्वत्र व्याप्त सर्वज्ञ और स्वतन्त्र हैं। जीवात्माओं के लिंग शरीर की वे रक्षा करते हैं। अपनी इच्छा से आदि सृष्टि में अत्यन्त सूक्ष्म रूप वाले त्रिगुणों को स्थूल रूप देकर सृष्टिका आरम्भ करते हैं।।22।।

पानी के चलन के कारण तट में रहने वाले वृक्षों की छाया पानी में प्रतिफलित होकर चलता जैसा लगता है। पिया हुआ आदमी को नशा में यह सारी जमीन फिरती हुयी लगती है।।23।।

वैसे ही त्रिगुणों के अज्ञान भ्रम के बन्धन में बन्धित हुआ जीव के अन्तर्यामी होकर भगवान विकार के बिना रहते हैं। फिर भी हमको जीव के साथ उनके साम्य का भास होता है। लिंग शरीर न रहने वाला भगवान लिंग शरीरी जैसे लगते हैं।।24।।

इस रीति से लिंग शरीर न होते हुए भी लिंगी जैसे दिखना, या समझना भगवान के बारे में भ्रम होता है। इस भ्रम के कारण ही जीव को सुख दुःख, बन्धुवियोग, पापलेप होता है, इस रीति से यह संसार चक्र चलता रहता है।।25।।

जनन-मरण, उसके अनुभव में आने वाले अनेक तरह के शोक, दुःख, अविवेक और चिन्ता के साथ साथ अविवेकी होते हुए भी अपने को बहुत विवेकी मानं लेना इन सबका कारण भगवान के बारे में भ्रम रहना ही कारण है।।26।।

सुनिए! जीव इस लोक में चिर काल के लिए एक साथ नही रह सकते इसके बारे में एक प्राचीन कथा है। उसको मैं आपके लिए बताता हूँ। इस कथा में मरे हुए बन्धुओं के साथ यमधर्म सम्भाषण किये हैं।।27।।

उसी नर नाम के देश में सुयज्ञ नाम का एक प्रसिद्ध राजा था। एक बार वह शत्रुओं के साथ युद्ध करके मर गया उस समय उसके बन्धु लोग उसके बारे में दुःख करने लगे।।28।।

उस राजा का रत्न का कवच छिन्न भिन्न हुआ था। फूल माला इधर उधर फैले थे। छाती तीरों से चीर गया था। वह लहू में लथपथ हो गया था।।29।।

उसके बाल बिखरे थे आँख बन्द हो गये थे। क्रोध से चाभुक बाँधा था। मुह धूल से आवृत था। आयुध को पकड़ा हुआ हाथ कटकर दूर पड़ा था।।30।।

उसीनर की इस स्थिति को देखकर रानियाँ बहुत दुःखित हुयी। पतिदेव हम मर गये ऐसे बोलते हुए

अपने छाती को बार बार पीटते हुए उसके पाँव पर गिर गयी।।31।।

वे जोर से रोने लगी। अपनी आँखों से गिरे हुए आंशू से उसके पॉव को धोये। उनके केश के आभरण गिर गये उनका दु:ख देखने वालो के आँखो मे भी आंशू आ गया।।32।।

उन्होने रोते रोते कहा - हे महाराज! ये क्या है? विधि निष्करुणी है। वह आपको हमारे आँख को न दिखने वाले प्रदेश को लेकर गये हैं। उसको धिक्कार हो। आप उसीनर राज्य के लोगों को अन्न वस्त्र देकर सुखी रखे थे। अब विधि उनको भी दु:ख देकर आपको शोक वर्धक बनाया है।।33।।

हे राजा! आप कृतज्ञ हैं। हमे अत्यन्त प्रिय हैं। आपको छोड़कर कैसे जीवित रहे? हे वीर! तुम जहाँ जा रहे हो हमको भी वहीं ले चलो।।34।।

इस रीति से वे रानियाँ राजा के मृत शरीर को आलिंगन करते हुए रोती रही। उस शरीर की अन्तिम क्रिया करने के लिए भी वे तैयार नही थीं। सूर्य अस्तंगत होने वाला था।।35।।

मरे हुए आदमी के बन्धुओं का यह घोर दु:ख देखकर यमदेव स्वयं एक बालक के रूप में आये।।36।।

यम धर्म कहते हैं - यह आश्चर्य की बात है कि ये सारे लोग आयु में मेरे से बड़े हैं। इस जगत में जीना और मरना भगवान के आधीन है। लोगों के हाथ में कुछ नही है। ये लोग इसको ठीक तरह से जानते हैं। तो भी इन लोगों को मोह हो गया है। परलोक से आया हुआ जीव यहाँ जन्म लेकर कई दिन रहने के बाद परलोक के लिए ही चला जाता है। ऐसे जाने वाले जीव के बारे में पूरी जानकारी रखते हुए वे भी स्वयं ऐसे ही होते हुए मरे हुए आदमी के लिए व्यर्थ दु:ख कर रहे हैं।।37।।

जीना और मरना हमारे हाथ में नही है, भगवान के हाथ में है। यह समझ लेने के बाद शोक करने के लिए अवकाश नही रहता। इनसे बढ़कर मैं ही धन्य हूँ। मेरे माता पिता के मेरा परित्याग करने के बाद भी मैं अपनी रक्षा के बारे में चिन्ता नही करता। मै दुर्बल होते हुए भी भेड़िया का आहार नही बना। गर्भ में रहते समय जो मेरी रक्षा किए हैं, वे ही सदा के लिए मेरे रक्षक हैं।।38।।

हे दुर्बल लोग! सुनो। भगवान अपनी इच्छा से इस जगत की सृष्टि करते हैं, पालन करते हैं, और नाश भी करते हैं। वे स्वयं नाश रहित हैं। मारना और पालना, दोनों में समर्थ इस जग के स्वामी के लिए यह सारा प्रपंच केवल कठपुतली की गुड़िया जैसे है। मारने या पालन करने में उनको कुछ होने वाला नही है।।39।।

रास्ते में खोयी हुयी वस्तु उनकी कृपा रहे तो मिल सकती है। किन्तु दैव के कृपा के बिना घर में खोयी हुयी वस्तु मिल नही सकती। अनाथ होकर जंगल में अकेला रहने वाला भी उनकी कृपा से जीवित रह सकता

है। किन्तु भगवान यदि मारना चाहे तो घर पर रहते हुए भी वह सुरक्षित नही रहता है। ।40। ।

जनन पाया हुआ जीव उस जन्म के कारण बनने वाला कर्म के प्रभाव से मरण पाते हैं। आगे जन्म के लिए कारण बनने वाला कर्म को भोगने के लिए यह शरीर त्याग अनिवार्य है। उस शरीर के रूप में रहने वाले प्रकृति का नियामक बनने वाले भगवान जीव के साथ रहते हुए भी जीव की तरह जनन मरण दु:ख के भागी नही बनते, क्योंकि वे जीव से बहुत विलक्षण स्वरूप वाले हैं। ।41। ।

पंच भूत से निर्माण हुआ यह घर जैसे घर में रहने वाले लोगों से अलग रहता है वैसे ही पृथ्वी आप तेज के पंच भौतिक परमाणुओं से काल नाम के भगवान ने यह शरीर को सृष्ट किया है, उसमें रहने वाला जीव भी शरीर से भिन्न है। अज्ञान और मिथ्या ज्ञान के कारण यह शरीर जीव को प्राप्त हुआ है। उस शरीर में रहने वाले जीव को उसके कर्म के अनुसार जनन, मरण, जरा मृत्यु आदि दु:ख आते हैं।इसके लिए जीव अज्ञान और मिथ्या ज्ञान को दूर करते हुए भगवान में भक्ति करना चाहिए। तब यह दु:ख से वह दूर हो जाता है। ।42। ।

लकड़ी में आग रहती है, किन्तु वह अलग रहती है। लकड़ी जल जाती है, किन्तु आग जलकर नाश नही होती। प्राण वायु देह में रहता है, किन्तु देह से अलग रहता है। देह को घाव होता है, प्राण के लिए कुछ नही होता। आकाश सर्वत्र है, उसको किसी का लेप नही होता। वेसे ही भगवान जीव के शरीर में रहते हुए शरीर या जीव को होने वाले विकार से लेप नहीं होते । ।43। ।

हे मूढ़ लोग! तुम किसके लिए रो रहे हो। तुम्हारे सामने पड़ा हुआ यह शरीर सुयज्ञ का है क्या? नही। यह उसका हुआ होता तो तुम्हारी बातों को सुनकर, तुम्हे रोते हुए देखकर वह उत्तर देता था। चेतन सुयंज्ञ के लिए हम रो रहे हैं ऐसे बोले तो तुम्हारी बातों को सुनने वाला स्वत: सुयज्ञ नही है। उसके कान जिह्वा के ऊपर उसका अभिमान है, किन्तु उसको सुनने या बोलने वाली शक्ति स्वयं उसकी नही है। सुनने वाला, सुनाने वाला, बोलने वाला, बुलाने वाला भगवान ही है। इस शरीर में सुयज्ञ जब रहता था तब भी वह कुछ नही कर सकता था। शरीर में रहते हुए भी न रहने वाले जैसे रहने वाला सुयज्ञ के बारे में दु:ख करने से क्या प्रयोजन होता है। ।44। ।

देह में प्राण, लकड़ी में आग, सभी जगह में आकाश रहते हुए भी देह से वे विलक्षण हैं। वे अन्य गुण धर्मो से लेप नही पाते। जीव में रहने वाले भगवान भी विलक्षण हैं, वे निर्लेप हैं। वामन पुराण इस बात की पुष्टि करती है।

पंच महा भूत, इन्द्रिय और मन से प्राप्त होने वाला उत्तम अथवा कनिष्ट शरीरों को उनके जनन के समय में अन्तर्यामी होकर प्रवेश करते हैं, मरण के समय में उस शरीर को त्याग देते हैं। इन सारे कर्मो को वे अपने स्वशक्ति से करते हैं। वे जीव पूर्ण भिन्न हैं। उनके चले जाने के बाद इस जड़ शरीर को लेकर आप दु:ख कर रहे हैं। यह आपके योग्य नही है। ।46। ।

भगवान जबतक जीव के शरीर की रक्षा करते हैं, तब तक जीव इस शरीर में रहता है। किन्तु वह उस समय में भी अपने निज स्वरुप में नही रहता। कर्म बद्ध होने के कारण उसको अज्ञान और संसार क्लेश का सम्बन्ध सदा के लिए रहता है।।47।।

सुयज्ञ भले पराधीन हो किन्तु उसने हमें शब्द स्पर्शादि सुख दिया है। उसी के कारण हम रो रहे हैं, यह भाव यदि आपके मन में है तो वह सही नही है। शब्द स्पर्श इत्यादि गुण देने वाला सुख शाश्वत नही है। उनसे प्यार करना, प्रशंसा करना ये सारे दिवास्वप्न के समान व्यर्थ है। स्वप्न में जो इन्द्रिय गोचर है, सुख दु:ख को देते हैं, वे व्यवहार में अथवा स्वरूप आनन्द को देने में विफल होते हैं।।48।।

दु:ख करने से तुम लोग इस स्वभावतः अनित्य शरीर को नित्य कर नही सकते। नित्य शरीर के लिए जैसे दु:ख नही करना है, वैसे अनित्य शरीर के लिए भी दु:ख नही करना है। ज्ञानी लोगों का यह मत है।।49।।

मरने वाले के बारे में जो रोता है उसको भी एक दिन मरना पड़ता है। इसके लिए एक दृष्टान्त यह है। जंगल में रहने वाले पक्षियों को मारने के लिए एक व्याध सिद्ध हो गया। वह जंगल में जहाँ चाहे वहाँ जाल विखेर कर उसमें आहार वस्तु रख देता था।।50।।

कुलिंग नाम के एक पक्षिदम्पति में से स्त्री पक्षी आहार के प्रलोभन से आगे पीछे न देखते हुए उस जाल में जा गिरी और फँस गयी।।51।।

काल वश के कारण वह पक्षी जाल में फँस गयी। उसको देखकर वह पुरुष पक्षी बहुत रोया।।52।।

स्त्री पक्षी की उस दैन्य स्थिति को देखकर उसको उस बन्धन से न छुड़ा सकने के कारण वह बहुत दु:ख करते हुए रोया। अरे भगवान! आप कितने निष्करुणी हैं। मैं इधर रो रहा हूँ। मुझको देखकर वह भी उधर रो रही है। मेरी पत्नी गरीब नेक और दीन स्त्री है। इस छोटी पक्षी को लेने से व्याध का क्या पेट भरने वाला है। हे विधि! वह व्याध मेरी पत्नी के साथ मुझको भी ले चले। शरीर का आधा हिस्सा समझी जाने वाली अर्धांगिनी के चले जाने के बाद मुझको इस शरीर से क्या प्रयोजन है।।53, 54।।

दु:ख से पत्नी के बिना दु:ख से परितप्त होकर दुर्बल शरीर से जीने में मुझे क्या आनन्द मिलेगा, क्या प्रयोजन होगा। अभी पंख न आये हुए मेरे छोटे - छोटे बच्चे माँ के बिना कैसे जीवित रहेंगे। भाग्य विहीन वे बच्चे घर में बैठ कर माँ की राह देख रहे हैं।।55।।

इस रीति से वह पुरुष कुलिंग पक्षी अपनी प्यारी पत्नी के विरह को न सहते हुए उस जाल के समीप में रहते हुए तन्मयता से दु:ख करते हुए उसको उस व्याध ने बाण से मारा।।56।।

तुम लोग भी बुद्धिहीन होकर आने वाली आपदाओं के बारेमें विचार न करते हुए शोक करते बैठे ही। ऐसे सौ वर्ष दु:ख करते बैठे तो भी तुम्हारे पति वापस आने वाले नही हैं।।57।।

हिरण्यकश्यप कहता है - बालक की इन बातों को सुनकर आश्चर्य चकित राजा के बन्धु दु:ख त्याग कर यह सारी सम्पदा अनित्य है, और उसके ऊपर अपना स्वामित्व भी मिथ्या है यह समझ लिए।।58।।

इस प्रकार उपदेश देकर यम धर्म वहाँ से अदृश्य हो गये। सुयज्ञ के बन्धु उसके शरीर की उत्तर क्रिया किए। यह कथा सुनने के बाद तुम लोग भी अपने लोगों के बारे में जो शोक कर रहे हो, उसको छोड़ दो।।59।।

देह में रहने वाले लोग अज्ञान से शरीर को ही स्वयं मानते हैं, और अन्य लोगों के शरीर को अपना शत्रु मानते हैं। वस्तुत: हमें यह विचार करना चाहिए। इसमें हमारी वस्तु क्या है, हमारे शत्रु कौन हैं। किनके शरीर हमारे शत्रु बनते हैं।।60।।

नारद जी कहते हैं - हिरण्यकश्यप की इन बातों को सुनकर दिति और रूषद भानु दोनों अपने शोक को छोड़ दिये। दिति देवी पुत्र शोक से अपने मन को हटा कर भगवान में अपना मन स्थिर कर दिये।।61।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में सातवाँ स्कन्ध में दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

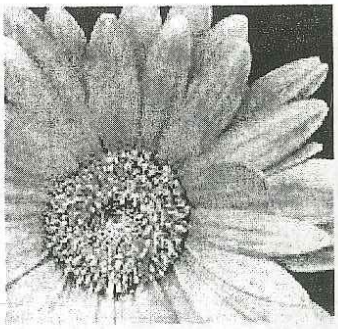

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः

अध्याय - तीन

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

नारद जी कहते हैं - हे धर्म राजा, हिरण्यकश्यप स्वयं को अजरामर अजेय बनाना चाहता था। तीनों लोको में अपने को दूसरा स्पर्धी न हो, केवल एक मात्र राजा बने यह उसकी आकांक्षा थी।।1।।

वह घर छोड़कर मन्दर द्रोण पहाड़ के ऊपर घनघोर तप किया। पाँव के केवल उगलियों को जमीन को लगाते हुए खडे.होकर दोनों हाथों को सिर के ऊपर उठाते हुए आकाश को देखते देखते उत्थित ताड़ासन में घनघोर तप किया।।2।।

उसके जटा के प्रभा से वह प्रलय काल के सूर्य के समान प्रकाशित हुआ। वह जब तप करने लगा तो सारे देवता छुटकारा पाकर देव लोक में अपने अपने स्थान पा लिए।।3।।

इधर हिरण्यकश्यप के सिर के ऊपर तपोमय तेज से जलता हुआ आग से धुआँ उठने लगा। वह धुआ सभी जगहों में पसरने लगा। इससे सारे लोक त्रस्त हुए।।4।।

नदी और समुद्र क्षोभित हो गये। द्वीप और पर्वतों के साथ भूमि हिलने लगा। ग्रह और नक्षत्र गिरने लगे। दशों दिशा में ज्वाला दिखने लगे।।5।।

इस तपो ज्वाला से तप्त देवतागण स्वर्ग को छोड़कर ब्रह्म लोक को चले गये। वहाँ ब्रह्मा जी को हे देव! हे जगत्पते! कहते हुए दंडवत प्रणाम किये।।6।।

वे आगे कहे - हिरण्यकश्यप के तप के ताप के कारण हम स्वर्ग में नही रह सकतें। आप योग्य समझें तो इसको परिहार कीजिए।।7।।

हम देव लोक में स्थित होकर आपकी आराधना करते हैं। वे लोक नाश होने के पहले आपको यह परिहार करना चाहिए। वह दैत्य कोई संकल्प लेकर यह तप कर रहा है।।8।।

उस संकल्प को आप भलीभाँति जानते हैं। तो भी हम उसके बारे में निवेदन करेगें। आप तप योग और

समाधि के बल से इस चराचर प्रपंच की सृष्टि करते हुए इन सबसे श्रेष्ठ सत्य लोक के स्वामी बने हैं। काल नित्य है, आत्मा भी नित्य है। वह राक्षस जन्म जन्मान्तरों से ज्यादा से ज्यादा तप करते हुए उस ब्रह्म पद को पाना चाहता है।।9,10,11।।

सत्य लोक को पाने के बाद पूर्व परम्परा से आये हुए इन्द्रादि दिक्पालक, स्वायंभुव मनु आदि मन्वन्तराधिपतियों को बदलाते हुए अपने दैत्य लोकों को वहाँ बैठाना चाहता है। स्वयं ब्रह्म पद को स्वीकारना चाहता है। इन्द्रादि पद केवल कल्पान्त तक रहते हैं। वे अल्प होने के कारण उनको नही चाहता।।12।।

अयोग्य लोगों को अपने से ऊपर के स्थान की आशा नही करनी चाहिए। अयोग्यपद को तप करने से कोई पा नही सकता। इसी कारण दैत्य लोग अयोग्य पद के लिए तप करने लगे तो उसका विरोध करना देवताओं का कर्तव्य होता है। यह प्रकाश संहिता का अभिप्राय है।

हिरण्यकश्यप के इस दुराग्रह को हम जानते हैं। इसी दुराग्रह से वह घोर तप कर रहा है। आप तीनो लोकों के स्वामी हैं। आपको तुरन्त इसके परिहार का उपाय करना होगा।।13।।

हे जग के स्वामी! आपके इन चौदह लोको का स्वामित्व जो है वह सज्जनों के ज्ञानादि गुण वृद्धि के लिए, मोक्ष योग्य के गुण का ह्रास न हो और जो सम्पदा आया है वह सुरक्षित हो और आने वाला सम्पदा प्राप्त हो इसके लिए हैं। हिरण्यकश्यप इसी कारण उस स्वामित्व को पाना चाहता है।।14।।

हे राजा! देवताओं के इस विज्ञापन को सुनकर ब्रह्मा जी भृगु, दक्ष इत्यादि ऋषियों से मिलकर हिरण्यकश्यप के आश्रम की ओर चल पड़े।।15।।

यहाँ हिरण्यकश्यप के शरीर का चर्म, मांस, रक्त, मेदस को चीटें खा चुके थे। उसके शरीर के ऊपर वल्मीक बना हुआ था। घास और बाँस के बीच में वह दिखाई नही पड़ता था। ऐसी अवस्था में ब्रह्मा जी उनको देखे।।16।।

उज्वल सूर्य के समान अपने तपःशक्ति से लोक को जलाने वाले उसको देख कर ब्रह्मा जी को आश्चर्य हुआ। अयोग्य पद के लिए व्यर्थ महाप्रयत्न करने वाला उसको देख कर हँसते हुए बोले।।17।।

ब्रह्मा जी कहे - हे हिरण्यकश्यप! जाग उठो, तुम्हारा कल्याण हो। तुमने तप करके सिद्धि पा ली है। तुमको वर देने के लिए मै स्वयं आया हूँ। जो चाहे वर मागो।।18।।

मैनें तुम्हारे मनोबल को देखा है। क्या अद्भुत है, तुम्हारे शरीर को चीटियाँ पूर्ण रूप से खा चुकी हैं। केवल अस्थियो में तुम्हारा प्राण बचा हुआ है।।19।।

ऐसा कठोर तप कोई ऋषि आज तक नही किया है, आगे भी नही कर पायेगा। पानी को भी न पीते हुए देवमान के सौ वर्ष तक कौन जीवित रह सकता है?।।20।।

हे हिरण्यकश्यप! मनोबल न रहने वाले और किसी से करने में असाध्य तुम्हारी साधना और तपो निष्ठा देखकर मैं सन्तुष्ट हूँ।।21।।

हे असुरेन्द्र! तुम जो चाहे वह अभीष्ट देने के लिए मैं आया हूँ। मर्त्य को देव का दर्शन व्यर्थ नही होता।।22।।

नारद जी कहते हैं - भगवान से विश्व के आदि काल में सृष्ट किया हुआ ब्रह्मा जी अपने दिव्य अमोघ प्रभाव वाले कमण्डल जल से प्रोक्षण किये। उस जल के प्रभाव से हिरण्यकश्यप का चींटा खाया हुआ शरीर पुनः ठीक हो गया।।23।।

तब बाँस के बीच में से बिल को फाड़ कर दृढ़ काय वाला हिरण्यकश्यप उठकर आया। वह ओज और तेज से युक्त होकर आग में डालकर शुद्ध किया हुआ सोने के जैसे प्रकाशमान शरीर वाला हिरण्यकश्यप लकड़ी में रहता हुआ आग जैसे दिखता था।।24।।

वह आकाश में हंस के ऊपर चढ़े हुए ब्रह्मा जी को देखकर आनन्द विभोर होकर जमीन पर दण्डवत नमस्कार किया।।25।।

खड़े होकर दोनों हाथ जोड़ कर भाव पूर्ण, आनन्द भाव से, रोमांचित होकर गद्गद होकर स्त्रोत करने लगा।।26।।

हिरण्यकश्यप ने कहा - कल्प के अन्त में प्रलय को प्रवर्तन करने वाले भगवान हरि दुर्गा देवी के अभिमान से गाढ़ अन्धकार को सृष्ट किये। उस अन्धकार से सारा जगत व्याप्त हुआ। बाद में सृष्टि के समय में स्वतंत्र ज्योति श्री हरि अपने स्वयं प्रभा से उस अन्धकार को हटाते हुए इस जगत को अभिव्यक्त किए।।27।।

वे प्रकृति से इस जगत की सृष्टि करते हैं, संरक्षण करते हैं, और अन्त में नाश करते हैं। इस सृष्टि स्थिति लय के लिए सत्व, रज, तम को आश्रय देने वाले गुण पूर्ण सर्वोत्तम श्री हरि को नमस्कार।।28।।

हिरण्कश्यप यहाँ चतुर्मुख ब्रह्मा जी का स्त्रोत कर रहा है। वह राक्षस रूप से ब्रह्मा जी का और जय के रूप से भगवान श्री हरि का स्त्रोत कर रहा है। यहाँ 27 - 28 श्लोको में ब्रह्मा जी ने रहने वाले श्री हरि की स्तुति करता है। आगे कई श्लोको से चतुर्मुख ब्रह्मा जी का स्त्रोत करता है। जीव ईश्वर ण्क ही शरीर में रहते हुए स्रोत करने वाले भक्त को दोनों फल देते हैं। विष्णु स्वतन्त्र होकर मुख्य वृत्ति से स्तुति ग्रहण करते हुए फल देते हैं। श्रेष्ठ जीव ब्रह्मा जी

अमुख्य वृत्ति से स्तुति ग्रहण करते हुए फल देते हैं। यह ब्रह्म तर्क में स्पष्ट किया गया है।

वासुदेव रूप से आदि सृष्टि में व्यक्त होकर इस जगत के कारण रुप बनने वाले आप ज्ञान विज्ञान स्वरूप हैं। प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि नाम के प्राकृत वस्तुओं से मिला हुआ इस ब्रह्माण्ड के अन्दर रहने वाले विराट रूप वाले भगवान श्री हरि आपको नमस्कार। आदि सृष्टि में पुरुष नाम से आप इस जगत को सृष्ट किये। ज्ञान विज्ञान के उपदेशक, प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि इत्यादि प्राकृत वस्तु से मिला हुआ इस ब्रह्माण्ड में आप विराट रूप से जन्म लिए। ऐसे ब्रह्माजी आपको नमस्कार।।29।।

हे भगवान! आप स्थावर जंगमों के नियामक हैं।। मुख्य प्राण के साथ मिलकर आप सारे जीवियों की रक्षा करते हैं, चित्त को विस्मरण देते हैं, मन इन्द्रियों की रक्षा करते हैं। पंच महाभूतों को, शब्दादि गुणों को और इन्द्रिय अन्त:करण को नियमन करते हैं।।30।।

तीनो वेद, ब्रह्म, होतृ, अध्वर्यु, अग्नीध्र नाम के चार ऋत्विजो से चलने वाले यज्ञ की विधि को बताने वाले कल्प सूत्र आदि सारे शास्त्र भी आपके शरीर के आश्रय से रहते हैं। आप इनके सहारे अग्निष्टोम आदि सारे यागों को लोक में प्रचार करते हैं।आप जीवियों के मुख्य अन्तर्यामी हैं, आप अनादि हैं। आप इस अपार संसार को पार करने वाले सर्वज्ञ श्री हरि हैं। आप मुक्ति के स्वामी हैं। हे चतुर्मुख ब्रह्मा जी! आप नित्य मुक्त श्री हरि में अपने मन को स्थिर किये हैं।।31।।

अपने भ्रमित बुद्धि के अनुसार राक्षस और जय ब्रह्मा जी और श्री हरि की अलग अलग प्रार्थना कर रहे हैं।

आप काल नियामक हैं, नींद न करते हुए सदा काल के लिए जागृत रहते हैं। लोगो की आयुष्य को अत्यन्त सूक्ष्म गणना क्रम से लय, त्रुटि इत्यादि सूक्ष्म अंश से क्षय करते जाते हैं। आप निर्विकार हैं, इस जगत के स्वामी हैं, अत्युन्नत लोक में वास करते हैं। आप सर्वोत्तम हैं। जीव समुदाय के प्राण का धारण करते हैं, आप सर्वव्यापक हैं।।32।।

अतीत काल में, भविष्यत वर्तमान काल में कभी भी कोई भी स्थावर जंगम वस्तु आपको छोड़ कर रह नही सकती। आप उन सब में व्याप्त हैं। सारे वेद उप वेद और अन्य शब्द गण आपके शरीर के आश्रय से रहते हैं। आपके पेट में ब्रह्माण्ड बसा है। आप तीनो अवस्था से दूर हैं, सकल गुणपरिपूर्ण हैं।।33।।

तृपृष्ठ का अर्थ तुरीय नाम का भगवद् रूप होता है।

हे प्रभु! यह बड़ा ब्रह्माण्ड आपका शरीर बना है। इससे आप इन्द्रिय, प्राण, मन, विषयो को सत्य लोक में रहते हुए अव्यक्त होकर अनुभव करते हैं। आप पुराण पुरुष हैं।।34।।

देश काल गुण इनकी सीमा न रखते हुए अव्यक्त रूप से इस समस्त जगत को व्याप्त किये हैं। आप चेतन अचेतन दोनों को प्रेरणा देने वाले हे भगवान! आपको नमस्कार है।।35।।

हे प्रभु! आप वर देने में श्रेष्ठ हैं। यदि आप मुझको वर देना चाहते हैं तो आपसे सृष्ट हुए कोई भी जीव से मेरा मरण न हो।।36।।

मुझे अन्दर या बाहर, दिन या रात में मरण न हो। किसी आयुध से और किसी से मेंरा मरण न हो। न जमीन पर न आकाश में, न मृग से, न मानव से मेरी मृत्यु हो यह वर दीजिए।।37।।

निर्जीव वस्तु से या जीव रहने वाले से, सुर, असुर, साँप, शस्त्रों से मुझे मरण न आवे। युद्ध में मेरा सामना करने वाला कोई न हो। सारे शरीरों के ऊपर मेरा आधिपत्य हो।।38।।

सारे लोकपालों की शक्ति मुझमें आये। यह मेरी शक्ति अन्य लोगों के तप योग के प्रभाव से नष्ट न हो जाय यह वर मै आपसे मांगता हूँ।।39।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में सातवाँ स्कन्ध में तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

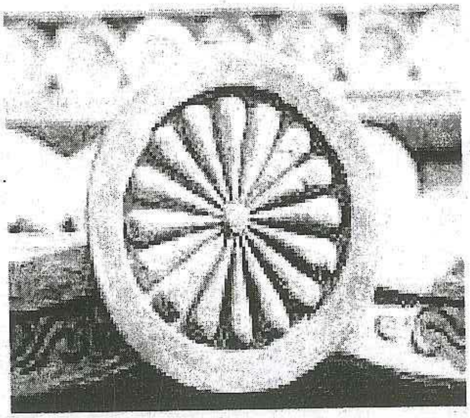

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः

अध्याय - चार

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

नारद जी कहते हैं - राक्षस हिरण्यकश्यप ने जो माँगा उन सबको वे बहुत दुर्लभ होते हुए भी उसके तप से सन्तुष्ट हुए ब्रह्मा जी द दिये।।1।।

ब्रह्मा जी कहते हैं - हे बेटा हिरण्यकश्यप! तुम मुझसे जो वर माँग रहे हो वे अन्य लोगों के लिए मिलने वाले नही हैं। इतने दुर्लभ वरों को केवल तुम्हारे लिए मैं दे रहा हूँ।।2।।

इसके बाद अमोघ वर देने वाले सर्वशक्त भगवान ब्रह्मा जी हिरण्यकश्यप से पूजा स्वीकारते हुए प्रजापतियों की स्तुति को सुनते हुए वहाँ से अदृश्य हो गये।।3।।

उज्वल प्रकाश युक्त सोने के समान शरीर धारण किया हुआ वर पा चुका हिरण्यकश्यप अपने भाई के हत्या के बारे में विचार करते हुए भगवान श्री हरि से द्वेष करने लगा।।4।।

वह महासुर सारे दिशाओं में रहने वाले देव मानव दानवों को जीत लिया। तीनों लोको के ऊपर स्वामित्व पाया। देव, असुर, मानव, राजा, गन्धर्व, पक्षी, नाग, सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि, पितृ, मनु, यक्ष, राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूत और इन सबके प्रभुओं को जीत लिया। इतना ही नही समस्त प्राणि मुख्यों को जीतकर सारे जगत को अपने वश में रखते हुए समस्त लोकपालों का तेजोहरण करते हुए उनके स्थान को भी अपनाया।।5,6,7।।

दैविक उद्यान और सम्पदाओं से शोभायमान स्वर्ग लोक पर आक्रमण कर उसी को अपना आवास बनाया। विश्वकर्मा से निर्मित तीनों जगत की सम्पद के मूलस्रोत, सकल समृद्धि से युक्त देवेन्द्र राज के घर को अपना निवास बनाया। उस महल की सीढ़ियाँ तक हीरा मोती से बनी हुयी हैं। जमीन मरकत मणि से बनाया हुआ है।।8,9।।

उसके सारे दीवाल स्फटिक मय है, स्तम्भ वैदूर्य से बना हुआ है। ऊपर बाँधने वाले यवनिका चित्र रंजित हैं, आसन पद्मराग मय हैं।। 10 ।।

शय्या दूध के ऊपर के फेन के समान सफेद है, उनको मोती की मालाओं से अलंकृत किया गया है। सुन्दरी देवता स्त्रियों ने अपने पद घुघरू से मंजुल निनाद करते हुए इधर उधर चलते समय मणिमय जमीन में अपने सुन्दर मुख बिम्ब का दर्शन करती हैं।।11।।

हिरण्यकश्यप महाबलिष्ठ असुर, सारे लोकों को जीत कर एक चक्राधिपति बना है। उसके अत्यन्त क्रूर राज्यभार में देवताओं को त्रस्त होकर उसके पाँव पड़ने का सन्दर्भ आ गया। इससे अत्यन्त गर्विष्ठ होकर वह राक्षस उनके वंदनाओं को स्वीकारते हुए देवेन्द्र के महल में आनन्द से रहने लगा।।12।।

वह अत्यन्त तीक्ष्ण गन्ध से भरे हुए मद्य का पान करता था। उस समय उसकी आँख लाल लाल होती थी। वह तप और योग बल से पूर्ण ओज से भरा हुआ था। इसी कारण वसु, रुद्र, आदित्य नाम के तीन विध के देवताओं को छोड़ कर अन्य समस्त लोक पालक हाथों में नजराना लेकर उसके शरण में आते थे।।13।।

हे धर्म राजा! सुनो, अपने सामर्थ्य से इन्द्र को हरा कर अपने सिंहासन पर बैठे हुए उस राक्षस को विश्वावसु, तुम्बुर और मैं भी उनका गुण गान किये। गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि, विद्याधर और अप्सरायें बार बार उसके गुण गान करते रहें।।14।।

सारे वर्ण वाले, सारे आश्रम वाले बहुत दक्षिणा से युक्त होकर यज्ञों से उसकी आराधन किए। वह अपने स्वसामर्थ से सारे हविर्भाव को स्वीकार करता रहा।।15।।

हिरण्यकश्यप के राज्य करते समय सप्तद्वीपात्मक यह भूमि उससे डरकर कृषि न करते हुए आहार धान्य देने लगी। गायें समृद्ध दूध देते रहीं। आकाश, ग्रह, तारा से मिलकर आश्चर्यकर रीति से बहुत शोभायमान रहा।।16।।

लवणसमुद्र, इक्षुसमुद्र, घृतसमुद्र, सुरासमुद्र, दधिसमुद्र, क्षीरसमुद्र और शुद्धोदसमुद्र, रत्न के आकर रहने वाले ये सातो समुद्र और उनके पत्नियाँ सारी नदियाँ मिलकर अपने तरंग नाम के हाथों से रत्नों को लाकर उसको समर्पित किया।।17।।

पहाड़ अपने कन्दराओं में लोगों को विहार स्थान बना दिये। वृक्ष सदा काल सर्व ऋतुओं के फूल फल भरित रहे। इन्द्र अग्नि इत्यादि लोक पालक सदा काल आवश्यकतानुसार पानी बर्षाते रहे, और आवश्यक उष्णता देते रहे। इनके कारण राज्य व्यवस्था का सभी पहलुओं को अकेला हिरण्यकश्यप ही निभाता रहा।।18।।

उसने सारे दिशाओं को जीतकर एक चक्राधिपति होकर भी अपने इन्द्रियों को न जीतने के कारण अनेक तरह से विषय सुखों का भोग करने के बाद भी तृप्ति नही पाया।।19।।

सनकादि मुनियों के शाप के कारण हिरण्यकश्यप अहंकार से और ऐश्वर्य मद से मत्त होकर शास्त्र के नियमों का उल्लंघन करते हुए बहुत वर्ष तक राज्य भार किया।।20।।

उसके उग्र दण्ड के भय से सारे लोकपालक भयभीत रहे। उनको कहीं भी रक्षक न मिले। वे अन्त में सर्व रक्षक च्युति रहित अच्युत के शरणागत हो गये।।21।।

वे प्रार्थना करने लगे - तारतम्य की पराकाष्ठा, सकल जग के मालिक श्री हरि को हमारा नमन रहे। हम भक्त लोग अपने सारे कर्मो को श्री हरि को समर्पण करेंगे। ऐसे समर्पण करने वाले दोष रहित ज्ञानी लोग विष्णु के लोक को पाते हैं, और इस संसार बन्ध से छुटकारा पाते हैं।।22।।

इस प्रकार निश्चय करते हुए मनोनिग्रह और चित्त एकाग्रता को पाकर रागादिदोष से दूर होकर केवल हवा को ही अहार बनाते हुए निद्रात्याग कर इन्द्रियों के स्वामी हृषिकेश के स्त्रोत करने लगे।।23।।

हे गुणपूर्ण स्वरूप वाले परम पुरुष भगवान! आपको हमारा नमन। आप शुद्ध ज्ञानानन्द सागर हैं। आपसे ही हमारा भय दूर हो सकता है।।24।।

उस समय उनको आकाश में मेघ समान गंभीर वाणी सुनने में आया। वह सारे दिशाओं में गर्जना करते हुए सज्जनों को अभय दान दिया।।25।।

हे उत्तम देवता गण, आप भय से मुक्त रहें! तुम लोगों का कल्याण हो। मुझको ठीक तरह से जानने वाले लोगों के लिए सदा कल्याण होता है।।26।।

क्षुद्र दैत्य हिरण्यकश्यप का दौर्जन्य मुझे मालूम है। मैं उसका परिहार निश्चित रूप से करूँगा। तब तक के लिए आप लोग प्रतीक्षा करें।।27।।

देवताओं में, वेदों में, गावों में, साधु सज्जनों में, धर्म में और मुझ में जिसका द्वेष भाव बढ़ता है, शीघ्र हीउसका नाश होता है।।28।।

सज्जनों से वैर न रखने वाला श्रेष्ठ भक्त और महात्मा उसका पुत्र प्रह्लाद को जब वह कष्ट देने लगता है तब वह ब्रह्मा के वर से कितने भी बलिष्ठ हो मै उसका नाश करता हूँ।।29।।

नारद जी कहते हैं - जगद्गुरु श्री हरि के इस वक्तव्य को सुनकर देवता गण आनन्द विभोर हो गये। वे समझ गये कि दुष्ट राक्षस आज ही मर गया। वे उसके भय से निवृत्त होकर अपने स्थान पर चले गये।।30।।

उस दैत्य राज को चार पुत्र थे, चारों बड़े अद्भुत व्यक्ति थे। उनमें से पहला वाला पुत्र प्रह्लाद गुण पूर्ण

भगवान के आराधक होने के कारण स्वयं भी गुणों से श्रेष्ठ था। वह ब्राह्मणों में भक्ति करने वाला, शील सम्पन्न, सत्यसंध और जितेन्द्रिय था।।31।।

सकल प्राणी लोक उससे प्यार करते थे। वह उन सबके लिए परम मित्र बना था, सबको अपने जैसे देखता था। पूज्य और गुरुओं को दास के समान पाँव पड़ता था, दीन लोगों के साथ पिता के जैसे प्यार करता था।।32।।

समवयस्कों से सहोदर भाव से स्नेह करता था। गुरुजनों में भगवान को ही देखता था। विद्या, ऐश्वर्य, शरीर सौन्दर्य, कुल इत्यादि से श्रेष्ठ होते हुए भी अहंकार और मद से बहुत दूर रहता था ।।33।।

व्यसन से वह व्याकुल चित्त नही होता था। सुना हुआ, समझा हुआ, देखा हुआ, और अनुभव किया हुआ विषय पदार्थो में अनावश्यक आसक्ति को नही रखता था। सारे भोग वस्तुओं को अनित्य मानता था। अपने इन्द्रिय, प्राण, शरीर, मन को अपने वश में कसकर रखता था। विषय लालसा उसमें कभी भी उत्कट नही होती थी। असुर जाति में जन्म लेने वाला यह बालक आसुर भाव को नही रखता था।।34।।

हे धर्म राजा! ज्ञानी जन भी उसके सदगुणों को देखकर उनको अपनाना चाहते थे। सर्वेश्वर भगवान नारायण की तरह प्रह्लाद भी बहुत गुणों से युक्त था उन सबको मैंभी कह नही सकता।।35।।

भगवान जैसे प्रह्लाद में बहुत अच्छे गुण हैं उनको अब मै बोल नही सकता इसका अर्थ प्रहलाद भगवान के समान नही बनता। प्रह्लाद की श्रेष्ठता के वर्णन में नारद जी यह अर्थ वाद करते हैं। भगवान के समान उनके अवतारो के बिना और कोई रूप नही हो सकता यह स्कन्द पुराण का वाक्य है।

हे राजा! दैत्यों के शत्रु देवता लोग भी सज्जनों के लक्षणों को बोलते समय सभाओं में प्रह्लाद का दृष्टान्त देते हैं। ऐसे स्थिति में तुम्हारे लिए और क्या कहना है?।।36।।

प्रह्लाद के असंख्य गुणों के बारे में अलग अलग कहलाने का मतलब क्या होता है। एक ही वाक्य में मैं उसके महात्म्य को बोल देता हूँ। भगवान वासुदेव में उसकी भक्ति स्वाभाविक थी।।37।।

बाल्य से ही लगता था कि उसके ऊपर नारायण नाम के ग्रह का आवेश चढ़ गया है। वह जड़भरत के समान सदा काल नारायण का स्मरण करता था। अपने खिलौने को दूर रखते हुए बाल्य सहज खेलों को न खेलते हुए भगवद् ध्यान में मस्त रहता था। बाह्य प्रपंच का ज्ञान ही उसको नही रहता था।।38।।

बैठा हुआ, चलते फिरते, खाते, पीते, सोते, जगते, सारे कर्मों को करते हुए उसको अपनी करनी की चिन्ता कुछ नही रहती थी। भगवान की कृपा के बिना वह कुछ नही चाहता था।।39।।

गोविन्द के लिए चिन्तातुर होकर वह व्याकुल चित्त वाला कभी कभी रोता था, गोविन्द के चिन्तन से

आह्लादित होकर हँसता था। कभी-कभी जोर से गाना गाता था।।40।।

कभी-कभी उत्कण्ठा से भगवन्नाम का उद्घोष करता था। एक एक बार लज्जा छोड़कर नाचता था। कभी कभी हरि ध्यान में तन्मय होकर श्री हरि के लीलाओं का अनुसरण करता था।।41।।

कभी-कभी रोमांचित होकर विषय पदार्थों से अनासक्त होकर बैठ जाता था। कभी हरि ध्यान में साँस लेने को भी भूल जाता था। आँख से आनन्द भाष्प बहते थे, अर्धनिमीलित होकर केवल हरि ध्यान करता था।।42।।

विरक्त साधुओं के सत्संग से सीखकर भगवान के पाद कमलों को हृदय में धारण कर परमानन्द का अनुभव करते हुए, दुर्जन संग से दूर रहते हुए सदा काल परमानन्द का अनुभव करता था।।43।।

हे धर्म राजा! ऐसा परम भगवद्भक्त, महाभाग्यशाली महात्मा अपने पुत्र प्रह्लाद से हिरण्यकश्यप द्वेष करते हुए उसके साथ द्रोह किया।।44।।

धर्म राजा पूछते हैं - ज्ञानोपदेश का व्रत धारण किये महात्मा परिशुद्ध साधु जीवन बिताने वाले अपने पुत्र से पिता ने द्रोह किया, यह आश्चर्य की बात है। इसके बारे में हम सुनना चाहते हैं।।45।।

अपने पुत्र के अपने विरुद्ध चलने के बाद भी उनमें प्यार रखने वाले पिता बहुत से मिलते हैं। वे शिक्षा करने हेतु अपने पुत्रों को डाटते हैं किन्तु शत्रु की तरह से उनका द्रोह नही करते। ऐसे होते हुए विधेय, सज्जन और बड़े लोगों को भगवान जैसे आदर से देखने वाले प्रह्लाद जैसे पुत्र के बारे में पिता द्रोह करता है ऐसे विचित्र के बारे मे और क्या कह सकते हैं। अपने प्यारे पुत्र को मारने का प्रयास करने के कारण वही द्वेष पिता के मरण का कारण बना।।46।।

हे महामुनि! कौतुहल का विषय है। पिता पुत्र को द्वेष करके अपने मरण को पाने का विचार हमें बताइए। उस कुतूहल का परिहार केवल आपही कर सकते हैं।।47।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में सातवाँ स्कन्ध में चौथा अध्याय समाप्त हुआ।।

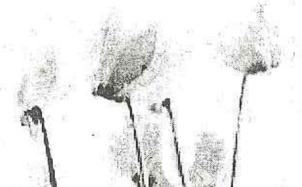

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः

अध्याय - पाँच

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

नारद जी कहते हैं - असुर लोग अपने पौरोहित्य के लिए शुक्राचार्य जी को अपनाये थे। उनके शन्ड और मर्क नाम के दो पुत्र हिरण्यकश्यप के राजगृह के पास रहते थे।।1।।

हिरण्यकश्यप अपने पुत्र प्रह्लाद को शिक्षा पाने के लिए उनके पास भेजा । सकल नीति को जानने वाले प्रह्लाद सहित अन्य दैत्य बालकों को दण्ड नीति इत्यादि पाठ्य विषयों को वे पढ़ाने लगे।।2।।

अप्रामाणिक, वैष्णव सिद्धान्त के विरुद्ध विषयों को गुरु जो सिखाते थे वह प्रह्लाद जी को पसन्द नही आया। प्रह्लाद जी पाठ को सुनते रहे किन्तु उसको याद नही किये, पाठ नही पढ़े।।3।।

एक बार हिरण्यकश्यप छुट्टी में घर आये हुए अपने पुत्र प्रह्लाद जी को अपने जंघों के ऊपर बैठाते हुए प्यार से पूछा। बेटा! तुमने ठीक तरह से जो सीखा है उसको बताओ।।4।।

प्रह्लाद जी कहते हैं - हे असुर श्रेष्ठ! आप सदा काल सत् सिद्धान्त के विरुद्ध दुष्ट मत का आश्रय करते हुए मन के समाधान को खो बैठे हैं। सदा उद्विग्न रहते है। लोगों का मन अन्धःकार में रहा हुआ कुआ जैसे रहता है। वह हमारे पतन का कारण बनता है। आप इस झंझट को छोड़िए। जंगल जाकर हरि का आश्रय लेना चाहिए। मैं इसको ठीक तरह से समझ लिया हूँ।।5।।

नारद जी कहते है - शत्रु पक्ष की स्तुति करने वाले अपने पॉच वर्ष के छोटे पुत्र की बातें सुनकर हिरण्यकश्यप ठहाका मारकर जोर से हँस दिया। शत्रु पक्ष के दुर्बोधन से हमारे बच्चों का दिमाग खराब हो रहा है।।6।।

गुप्त रीति से छिपे हुए विष्णु पक्ष के ब्राह्मणों के बच्चे इनकी बुद्धि को नष्ट न करें। तुम इसका ठीक तरह से ख्याल रखो। शंडामर्क को यह आज्ञा दिया।।7।।

राज-भट प्रह्लाद जी को गुरुकुल में वापस ले आये। तब दैत्य पुरोहित प्रह्लाद से प्यार करते हुए अच्छी बातों से उनका स्तुति करते हुए प्रश्न पूछे।।8।।

बेटा प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो। सच बताओ। झूठ न बोलना। अन्य बच्चों में न दिखने वाली यह दुष्ट बुद्धि तुम कैसे पाये? किसने तुमको उपदेश दिया?।।9।।

क्या तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गयी है अथवा अन्य कोई उपदेश दिया है। हे दैत्य कुल श्रेष्ठ, बताओं, हम तुम्हारे गुरु जो पूछते हैं उसको स्पष्ट रूप से उत्तर दो।।10।।

प्रहलाद कहते हैं - और लोग स्वतंत्र हैं, हम भी स्वतंत्र हैं, यह दुर्बुद्धि दुष्ट जनों के मन में देखने में आती है। वह भी भगवान की इच्छा के अधीन ही होता है। ऐसे भगवान को मेरा नमस्कार हैं।।11।।

दुरभिमान की उत्पत्ति के लिए जब भगवान भी अनुकूल बनते हैं। तब लगता है, भगवान जैसे स्वतंत्र हैं वैसे मै भी स्वतंत्र हूँ। यह दुरभिमान मन में बढ़ने लगता है। यह पशु बुद्धि है, यह शास्त्रार्थ विचार से आने वाला नही है। यह जीव के मूल स्वरूप में नही रहता है, लिंग शरीर में रहता है, उसके मन में आ जाता है।।12।।

अकेले भगवान स्वतंत्र कर्ता है। हम भी स्वतंत्र हैं और लोग भी स्वतंत्र हैं, ऐसा मानने वाले गलत बुद्धि के लोगों को भगवान की महिमा का अर्थ नही होता। वेद के उपदेश देने वाले ब्रह्मादि देवताओं, रुद्र, इन्द्र ये सारे कभी कभी इसमें गलत रीति से विचार कर सकते हैं। ऐसा करने वाले भगवान मेरी बुद्धि को आपकी बुद्धि से अलग बनाए हैं।।13।।

हे गुरु जी! चुम्बक के पास रहने वाले लोहे के समान भगवान की इच्छा के अनुसार मेरी बुद्धि आपसे अलग होकर भगवान के बारे में चिन्तन करती है।।14।।

नारद जी कहते - महा ज्ञानी प्रह्लाद इन बातौ को ब्राह्मण के लिए बोल कर चुप हो गये। तब अपनी हार मानने वाला वह राज सेवक ब्राह्मण क्रुद्ध होकर प्रह्लाद को डाटते हुए बोला।।15।।

अरे, छड़ी लाओ। यह लड़का कुल को जलाने वाला आग जैसे है। हमको अपकीर्ति को लाने वाले इस दुर्बुद्धि पर साम दान आदि उपाय नही चलता। चौथा दण्ड ही योग्य है।।16।।

दैत्य नाम के चन्दन वृक्षों के जंगल में यह एक काँटे का वृक्ष बन गया है। चंदन वृक्षों को काटने वाला कुल्हाड़ी जैसे बना हुआ यह विष्णु के हाथ का कुल्हाड़ी का डंडा बन गया है।।17।।

इस रीति से शिक्षा देने का डर दिखाते हुए अनेक उपायों से प्रह्लाद को समझाते हुए वह गुरु प्रह्लाद को लौकिक व्यावहारिक शिक्षण देते हुए धर्म मार्ग से उनको दूर रखना चाहा।।18।।

बहुत दिन तक यह उपदेश देकर प्रह्लाद ठीक तरह से समझ गया है इस भावना से छुट्टी देते हुए प्रह्लाद जी को उसके घर ले आया। वहाँ उनकी माँ कयाधु उनको स्नान श्रृंगार आदि करके हिरण्यकश्यप के

सामने लेकर आयीं।।19।।

पादों में दण्डवत प्रणाम करते हुए बालक को आशीर्वाद देते हुए सन्तोष से अपने दोनों हाथों से पुत्र को उठाकर बहुत समय तक आलिंगन करते हुए हिरण्यकश्यप बड़ा आनन्द पाया।।20।।

हे राजा युधिष्ठिर, हिरण्यकश्यप प्रह्लाद जी को अपने जंघा के ऊपर बिठाकर सिर को सूंघते हुये सन्तोष से आनन्द वाष्प को बहाते हुए प्रह्लाद जी से प्यार की बातें कहने लगा।।21।।

बेटा, चिरंजीवि प्रह्लाद! तुम इतने दिन तक अपने गुरु से जो सीखा है उसमें से अच्छी एक बात को हमारे लिए सुनाओ।।22।।

प्रह्लाद जी कहते हैं - श्री विष्णु की महिमा को सुनना, हरिनाम संकीर्तन करना, हरि स्मरण हरि भक्तों में हरि को देखते हुए पाद सेवा करना, तुलसी और फूलों से हरि की अर्चन करना, हरि की स्तुति करते हुए अभिवादन करना, हरि के दास समझते हुए उनकी सेवा करना, हरि में अत्यन्त स्नेह करना, मुक्त होने के बाद भी हरि नियामक हैं। यह समझकर हरि को अपने का समर्पण करना।।23।।

इन नौ लक्षणों से युक्त भक्त भगवान विष्णु में इस नवधा भक्ति को समर्पित करे तो उसने जो सीखा है वह श्रेष्ठ है। यह मेरा अभिप्राय है।।24।।

नवधा भक्ति एक विशेष विषय है। भगवत का हमें दिया हुआ यह नवरत्न माला है। भगवान के मन्दिर को जाने के लिए ये नौ सीढ़ियाँ हैं। इसको विस्तार रूप से विवरण अन्यान्य ज्ञानी संत पण्डित लोगों ने किया है। उसको विस्तार रूप से हम यहाँ प्रस्तुत करने का साहस करते हैं। भगवान विष्णु की महिमा अपार है। उसको जानने के लिए हमें नवधा भक्ति को करना चाहिए। भक्ति बहुविध होती है। उनमें नव विध भक्ति विशेष होती है। सबसे श्रेष्ठ श्रवण भक्ति है।

श्रवण यानी सुनना। हमें सारा ज्ञान सुनने से आता है। गुरु मुख से अभ्यास करना ही श्रेष्ठ माना जाता है। भगवान के बारे में हमें सुनते रहना चाहिए। प्रह्लाद जी कहते हैं **विष्णोः श्रवणं** भगवान विष्णु की कथा को सुनते रहना। इसके लिए भगवान ने हमें दो कान दिये हैं। सदा काल हमें सत्कथा को सुनते रहना चाहिए। कूटस्थ रहने वाली महा लक्ष्मी भी भगवान की कथा को सुनती रहती हैं। यह हमें आश्चर्य लगता है कि लक्ष्मी जी को कथा सुनाने वाले कौन होते हैं? भागवत में यह प्रसंग आता है। रुक्मिणी जी भगवान श्री कृष्ण को पत्र लिखकर अपने प्यार को अभिव्यक्त करती हैं। यह विश्व का प्रथम प्रेम पत्र माना जाता है। वह **श्रुत्वा** इस शब्द से प्रारम्भ होता है। रुक्मिणी जी कहती हैं, भगवान! मैं आपकी महिमा सुनकर आपसे प्यार करने लगी हूँ। इससे यह स्पष्ट होता है कि महालक्ष्मी भी भगवान की कथा सुनती रहती हैंऔर यह भी स्पष्ट होता है कि भगवान के प्यार पाने के लिये उनके बारे में सुनना चाहिये। हम याद रखे कि तब तक रुक्मिणी जी कृष्ण भगवान को नही देखी थीं। इसका मन्तब्य यही है कि भगवान में भक्ति उत्पादन करने के लिए

श्रवण ही सबसे श्रेष्ठ साधन है।

सुनना इसका अर्थ ध्यान देकर सुनना। सुनते समय हम इधर उधर का चिन्तन न करें। भगवान में ही अपना मन लगाते हुए भगवान की कथा सुनना है। जिसको सुनते हैं उसको मन में रखना चाहिए। इसके लिए बार बार सुनते रहना चाहिए। एक बार सुनने से हमारे मन में विषय ठीक तरह से बैठ नही सकता। हमारा मन अन्य विषयों में लगा रहता है। मन सदा काल विषयों के बारे में चिन्तन करता रहता है। इन्द्रिय सुख की लालच से सदा काल बहिर्मुख रहते हैं। हमें उनको मन के नियन्त्रण से अन्तर्मुख करना चाहिए। मन अपना कुछ नही रखता। हम उसको जो सिखाते हैं उसी को अपनाता है। हम पहले से ही श्रवण मननादि भक्ति साधनों में अपना मन लगायें तो वह उसी में लग जाता है। मन एक बार अभ्यस्त होने के बाद वह वही करने लगता है। इसके लिए हमें बार बार सुनना चाहिए, सुनते रहना चाहिए, और पुनः पुनः सुनना चाहिए।

श्रवण करने से श्रवण करते समय ही आनन्द होता है। यह श्रवण करने का प्रथम फल है। स्वाभाविकतया संगीत आदमी को आनन्द देता है। भक्ति से भाव विभोर होकर गाया जाने वाला संगीत, बताने वाली बात और बोलने वाली कथा अधिक आनन्द देते हैं। इसके लिए हमें भक्ति भाव से सुनना चाहिए। भक्ति संगीत से मिले तो सोने में सुगन्ध आने जैसा ज्यादा आनन्ददायक होता है। हम भक्ति से भगवान की कथा सुने, भगवान का संकीर्तन सुने और भगवान के नाम रूप गुण के बारे में सुनते रहें।

इन सारे गुण लक्षणों से श्रवण भक्ति नवधा भक्ति में श्रेष्ठ मानी जाती है। इसी के कारण प्रह्लाद जी श्रवण को प्रथम स्थान दिये हैं।

श्रवण भक्ति सबसे बड़ा साधन है। नवधा भक्ति भगवान के पास जाने के लिए नौ सीढ़ियाँ हैं। भगवान के साक्षात्कार के लिए भक्ति ही एकमेव साधन है। श्रवण इस भक्ति के लिए सबसे श्रेष्ठ साधन है। भक्ति उत्पन्न होने के लिए सुनना चाहिए, कितने समय, कितने दिन इसकी गिनती करने की बात नहीं है। यथा साध्य चौबीसों घंटे जीवन पर्यन्त सुनते ही रहना चाहिए। सुनते-सुनते हममें भक्ति बढ़ जाती है। सुनने के साथ साथ भक्ति बढ़नी चाहिए। हम भगवान के प्रति देखना चाहिए। किन्तु हम देखते नहीं। जो देखते हैं वे गलत चीजों को देखते हैं। आँख कान के पास है। आँख जो गलती करती है, कान उसको सुधारता है। इसके लिए आँख के ऊपर कान का प्रभाव होना चाहिए। कान आँख को बुरी वस्तुओं को देखने से बचाने की आदत प्रारंभ करना है। यह देखना और सुनना ये बाहर की इन्द्रियों से नही होता है। अन्दर रहने वाला जीव मन से देखना और सुनना करता है। हमें कान से अच्छी बातें सुनना चाहिए और आँख से अच्छी वस्तु को देखना चाहिए। यदि इन दोनों गुहाओं में बुरी वस्तु का प्रवेश हुआ तो वहाँ भगवान आ नही सकते।

श्रवण को बहुत बड़ी सामर्थ्य है। वह पत्थर में भी छेद कर सकता है। सदा काल गिरने वाली पानी की बूँद पत्थर में छेद करती है। पत्थर जैसे हमारे मन की गाथा को आनन्द से सुन रहा है।

श्रवण पहली सीढ़ी है तो, **विष्णोः कीर्तनम्** भगवान का नाम संकीर्तन करना दूसरी सीढ़ी है। हम एक सीढ़ी से

दूसरी सीढ़ी चढ़ते समय पहले वाले को छोड़ देते हैं। किन्तु इस भक्ति मार्ग में आने वाले इन सीढ़ियों को चढ़ने वाले को एक के साथ दूसरे का सम्बन्ध करना पड़ता है। यहाँ किसी सीढ़ी के छोडने की बात नही आती। श्रवण और संकीर्तन में कान और मुँह के समान और अति समीप का संबन्ध है, दोनों में अन्तर बहुत कम है। शहर में ई0 एन0 टी0 के डाक्टर होते हैं। वे कान, नाक और गले का सुधार करने वाले हैं। इन तीनों के लिए एक ही डाक्टर होते हैं। इन तीनों का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है। कान जो सुनता है, गला उसको खाकर अन्दर रखता है या बाहर फेकता है। सामान्यतः बहुत लोगों के गले का काम दूसरों के दोष को दिखाना होता हैं। इसके बदले में नाम संकीर्तन करना चाहिए। जब हम बुरे शब्द को सुनते हैं, तब हमारे गले को उसको अन्दर खा लेना चाहिए। जब जब हम विष समान दुष्ट बातों को सुनते हैं, उस समय भगवान का नाम संकीर्तन करना चाहिए। उस संकीर्तन से वह विष अमृत बन जाता है। उन अमृत तुल्य शब्दों को हमे दूसरों को बताना चाहिए। यही संकीर्तन होता है। प्रह्लाद जी को हिरण्यकस्यप ने विष पिलाया। भगवान के नाम संकीर्तन से उस विष का असर नहीं हुआ।

हम जो जो अच्छी बातें और संकीर्तन सुनते हैं उनको और लोगों के सामने बोलना चाहिए। और लोगों के सामने बोलने से हमारी दृढ़ता बढ़ती है। इसके लिए सुनो कहो, कहो और सुनो। ये दोनों काम एक साथ होना चाहिए। ज्ञानी लोग जो कहते हैं उसको कान देकर सुनना चाहिए। जो सुनते हैं उसको स्पष्ट रूप से कहना चाहिए। हम जितना सुनते हैं और उसको जितना सुनाते हैं उतनी ही ज्यादा उसकी दृढ़ता होती है। कई लोग दरवाजा बन्द करके संकीर्तन करते है। दूसरे लोग सुने तो उनको लज्जा होती है। और कई लोग होते हैं वे चिल्लाते हुए संकीर्तन करते है। वे प्रदर्शन के लिए ऐसा करते हैं। इन दोनों को संकीर्तन में विश्वास नही है। भगवान के ऊपर विश्वास रखते हुए मन लगाकर सुश्राव्य रीति से संकीर्तन करना चाहिए। राग ताल बद्ध होकर संकीर्तन करना अच्छा है। किन्तु यह अनिवार्य नही है। भगवान के उपकार का स्मरण करें। भक्ति भाव से विभोर होकर आखों से आँसू बहे। यही संकीर्तन का परिणाम होना चाहिए।

ज्ञानी लोग संकीर्तन को नाम जपयज्ञ कहते हैं। कलियुग में नाम जपना ही बड़ा यज्ञ माना जाता है। भगवान श्री कृष्ण के, श्री वेदव्यास जी के वाक्यों का प्रवचन करना, सुनना, कहना, पाठ करना, श्रवण करना, श्रवण करवाना, यही बड़ा यज्ञ है। यज्ञ में हम स्वाहा बोलते हुए समर्पण करने के साथ **इदम् न मम** कहते हैं। मेरे पास जो है, मै जिसको अपना मानता हूँ वह सारा आपके लिए अर्पित है, यही संकीर्तन का फल है। अहंकार को त्यागना, अहंकार और ममकार रहित होकर नाम जप करना ही सबसे बड़ा यज्ञ है।

भगवान का नाम संकीर्तन केवल गले से नही होना चाहिए, हृदय भरकर गाना गाना चाहिए। मन भरकर मकान भरकर शरीर भरकर शब्द राशि से भगवान की अर्चना ही संकीर्तन का समर्पण है। श्रवण के बाद कीर्तन है। यह दोनों तप हैं। **तद्धितपः तद्धितपः** उपनिषद कहता है। तुम तप करो। यह श्रवण और संकीर्तन एक तप है। यही स्वाध्याय और प्रवचन है। ये दोनो भक्ति के प्रभेद होते हैं। भक्ति की अभिव्यक्ति के लिए, भगवान और भक्त को जोड़ने के लिए जोड़ने वाली ये दो कड़ी हैं। माँ के बारे में जो प्यार बच्चे का होता है वही भगवान में किये तो भक्ति बनती है। हमें भगवान की तरफ अपना प्यार बढ़ाना चाहिए यह कहना और सुनना जो है, इसी से हमारा प्यार भक्ति में

परिवर्तित हो जाती है। इसके लिए हमे श्रवण और कीर्तन इन दोनों को सदाकाल जारी रखना चाहिए। प्रवचन स्वाध्याय, श्रवण, संकीर्तन ये भगवान के दर्शन करने का साधन माने जाते हैं। जगदगुरु मध्वाचार्य जी कहते हैं कि बोलने वाले हैं तो सुनो, नही तो बोलो, जो बोलते हैं उनको सुनो, जो सुनते हैं उनको दूसरों को कहो, सुनो- कहो, कहो-सुनो। प्रह्लाद जी अपने पिता जी को नवधा भक्ति के बारे में जो बोले उसके पहले की दो सीढ़ी ये श्रवण और कीर्तन है।

प्रह्लाद जी अपने पिता को भगवान तक ऊँचाई पर चढ़ने का रास्ता बता रहे हैं। श्रवण और कीर्तन करने के लिए जो सुना है उसको याद रखना चाहिए। इसके लिए जो हम सुनते हैं, उसको ध्यान देकर सुनना है। जो हम सुनते हैं उसके लिए हमारा मन स्पन्दन करना चाहिए। जो सुना है उसको दूसरों को बोलना है तो जो सुनते हैं उसको मन में दृढ़ता पूर्वक याद रखना चाहिए, पुनः पुनः याद करना चाहिए। इसी को स्मरण कहते हैं। **स्मरण** भगवान के द्वार की तीसरी सीढ़ी है। ज्ञान अग्नि के समान होता है। अग्नि जैसे सारे पापों का, कल्मषों का नाश करता है। स्मरण से अपनी ज्ञान वृद्धि होती है। बीज बोने के बाद उसको पानी से सिंचाई करना पड़ता है। सिंचाई से बीज की वृद्धि शस्यरूप में होती है। ज्ञान का बीज बोने के बाद स्मरण का पानी देने से ज्ञान बढ़ता है। लेकिन सस्य के साथ खर पतवार भी बढ़ता है। इसके लिए ज्ञान के साथ और दोष को उगने न देने के लिए हमारे पाप के बीज को ज्ञानाग्नि से भूज कर बोना चाहिए। **स्मरण** यह भूजने का काम करता है। ज्ञानाग्नि अन्तरंग के पाप को जलाती है।

स्मरण पूर्वक भगवान का ध्यान करने से भगवान हमारे पास चल कर आते हैं, हमारे मनो मन्दिर में अवतार करते हैं। उस समय हमें उनकी पाद सेवा करना है। हमें भगवद् विचार के बारे में सुनकर समझ कर चिन्तन मंथन कर पाद से शिरःपर्यन्त भगवान का स्मरण, पूजन, वन्दन करना चाहिए। पाद से प्रारम्भ करते हुए शिर तक भगवान के सम्पूर्ण रूप का चिन्तन करना चाहिए। प्रथमतः भगवान के पादों को दृढ़ता से पकड़ लेना चाहिए। भगवान को वापस जाने नही देना है। भगवान परम करुणाकर हैं। जीव के वे साथी हैं। पाद सेवा के बाद अर्चन, वन्दन, सख्य, दास्य और आत्म निवेदन आता है। भगवान ब्रह्माण्ड में और पिण्डाण्ड में समान रूप से व्याप्त हैं। मोक्ष में भी जीव के लिए केवल भगवान ही एकमेव मित्र हैं। अनन्य भक्ति से भगवान मित्र बनते हैं।उनके अनुग्रह को प्राप्त कर, प्रीति को प्राप्त कर मनः पूर्वक उनकी पाद सेवा करते हुए आत्म निवेदन करना चाहिए। पहले हमे उनके भृत्यत्व को स्वीकारना चाहिए। मेरा कुछ नही है, सब कुछ तेरा है। **नाहं कर्ता हरिः कर्ता** यह भाव होना चाहिए। खेलने वाले आप हैं, खिलाने वाले आप ही हैं। मेरा सब कुछ आप हैं। आपके बिना मेरा और कुछ नही है। हमारे हृदय गुहा में रहने वाले भगवान से यह निवेदन करना है। यही आत्म निवेदन होता है। हमे अपने को ही भगवान के पद तल में समर्पण करना है।

पिता के प्रश्न का प्रह्लाद उत्तर दे रहे हैं। इन उत्तरों को पिता ने निरीक्षण नही किया था। ये अपायकारी उत्तर हैं। राक्षस में रहने वाला जय समाधान से सुन रहा है। उपनिषदों में बतायी हुयी बातों को सरल तरीके से प्रहलाद जी बोल रहे हैं। **श्रोतव्यो, मन्तव्यो, निधिध्यासितव्यः** उपनिषद की इसी वाक्य को प्रहलाद जी कहते हैं। **श्रवणं, कीर्तनं, विष्णोः, स्मरणं, पाद सेवनं**। भगवान की प्रार्थना करते हुए प्रथमतः बड़े लोग जो बोलते हैं उसको सुनना चाहिए सुनने के बाद उसके बारे में बोलना चाहिए। बोलने का अर्थ संकीर्तन है। सदा काल भगवान का संकीर्तन करना चाहिए। **विष्णोः पाद**

सेवनम् भगवान के पाद से लेकर शिरपर्यन्त भगवान की मूर्ति को मन में स्थिर करना चाहिए। द्वादश स्तोत्र के प्रथम स्तोत्र में जगद्गुरु मध्वाचार्य जी पाद से लेकर सिर तक के भगवान के रूप का वर्णन किए हैं। उसका पाठ करने से भगवान के रूप गुण का चिन्तन हो जाता है।

बड़े लोगों के पाद को पकड़ कर वन्दन करना चाहिए। लेकिन भगवान के पाद को कैसे पकड़े? भगवान के पाद तो हमे मिलते नही। पाद का अर्थ पद भी होता है। भगवान के पाद सेवा का अर्थ भगवान के पदो का सेवन होता है। पद और पाद का अर्थ एक ही होता है। भगवान के गीतों का गाना, महिमा का वर्णन करना, संतो के दोहे का उल्लेख करना पाद सेवा होती है। भगवद् गीता का पाठ करना, उपनिषदों का पारायण करना वेद मंत्र रटना ये सब काम भगवान की पाद पूजा होती है। भगवान के पदों के ऊपर विश्वास रखना, भगवान के वचनानुसार अपना जीवन व्यतीत करना भगवान की पाद पूजा होती है। भगवान के दर्शन करके जिन्होने जो वर्णन किया है, जो चित्र रचाया है, जो कथा कहा है उसका अनुसरण करना, उसको चित्रित करना, रंगोली में रंग रंगाना ये सारा भगवान का पाद सेवन होता है।

हमारे बड़े लोगों के पाद सेवन, पाद वंदन या पाद संवहन करने से हमारे ऊपर उनका प्यार बढ़ जाता है। वैसे ही भगवान की बातों को अपने जीवन में आचरण करने से भगवान हमारे बारे में सन्तुष्ट होते हैं। भगवान सन्तुष्ट होने से क्या नही मिलेगा? पाद सेवन भक्ति बहुत बढ़िया भक्ति मानी जाती है। सर्वश्रेष्ठ भक्त हनुमान जी सदा काल भगवान के पाद संवहन करते रहते हैं। हम भी अपने जीवन में यथा साध्य भगवान के पाद सेवन करें, भगवान के पदों का, शास्त्रों का अनुसरण करें, और शास्त्र के अनुसार अपने जीवन व्यतीत करें।

पाद सेवन के बाद नवविध भक्ति में आगे आती है अर्चना। भगवान का पाद सेवन अनेक तरह से करना भगवान की पूजा होती है। यह पूजा कैसे करें? श्री राघवेन्द्र स्वामी जी कहते हैं पूजा को यथा ज्ञप्ति, यथा शक्ति, यथा वैभवम् करिष्ये। हम जो देखते हैं उसको याद रखना चाहिए। अपनी शक्ति के अनुसार जहाँ-जहाँ की पूजा देखा है उसको दृढता से याद रखना। अपने सामर्थ्य के अनुसार वैभव से पूजा करना। भगवान हमसे कुछ नही चाहते एक तुलसी दल के अपर्ण से वे सन्तुष्ट होते हैं।

अर्चत प्रार्चत प्रिय मेधासो अर्चत अर्चन्तु पुत्र काः उतः पुरम् न धृष्ण्वर्चत। यह उपनिषद का मंत्र है। भगवान की पूजा करनी चाहिए। पूजा करना यानी अपने को समर्पित करना। **निषुसीद गणपते गणेषु त्वामाहुः विप्रमथं कवीनाम् न ऋते त्वत् क्रियते किन्चनारे महामर्कम् मघवन् चित्रमर्च**। यह मंत्र भगवान के सामने बैठकर बोलने वाला है। भगवान आपकी पूजा आपही कर लें। मेरे अन्दर रहकर पूजा कराने वाले आप हैं। बाहर रहकर पूजा स्वीकार करने वाले भी आप ही है। इस भाव से हमें पूजा करना है। अहंकार छोड़कर पूजा करना पड़ता है। मैने सत्यनारायण की पूजा किया, करवाया। पूजा के लिए इतना खर्च किया। आज की पूजा मेरी है। पूजा करने वाले को इतना दक्षिणा दिया। इस वित्ताहंकार से पूजा करना सही नही है। दूसरों को दिखाने के लिए, अपने वैभव का प्रदर्शन करने के लिए पूजा करना उचित नही होगा। पहले अहम् भाव को छोड़ देना चाहिए। विष्णोः अर्चनम् भगवान ही पूजा करने वाला, कराने वाला सारा वे ही हैं। यह अनुसंधान करना है। सारे चेतनों का चेतन सर्वोत्तम भगवान अन्य चेतनाओं से पूजा करवाते हैं। यह

धारणा होनी चाहिए। पूजा करते समय मन विचलित नही होना चाहिए। पूजा में भगवान ही प्रधान हैं। साधन कभी भी प्रधान नही होता। प्रधान भगवान ही कर्तृ, कर्म करने वाला, कराने वाला, वे ही हैं। प्रार्चत प्रकृष्ट अर्चना करनी चाहिए। ज्ञान पूर्वक करने वाली पूजा प्रकृष्ट होती है। भगवान के ज्ञान के साथ पूजा करना चाहिए। प्रीतिपूर्वक पूजा करनी चाहिए। भगवान की महिमा को ठीक तरह से समझ कर प्रीतियुक्त होकर पूजा करना ही सही पूजा होती है। उसी को **उपनिषद् प्रियमेधासः** कहती है। भगवान की महिमा को जानते हुए उनमें सबसे ज्यादा प्यार रखते हुए करने वाले कर्म को जगद्गुरू मध्वाचार्य जी भक्ति कहे हैं। पूजा करते समय मन शुद्ध रहना चाहिए, प्रीति से भरना चाहिए। पूजा करने के बाद पूरा दिन मन प्यार से भरना चाहिए। तब पूजा सार्थक होती है।

अर्चन्तु पुत्रकाः हमे पूजा करने के साथ-साथ अपने बच्चो से भी पूजा करवानी चाहिए। बच्चों का मन पूजा में लगना चाहिए, कामना करते हुए पूजा करे तो भी चलेगा किन्तु बच्चों को पूजा करने की आदत पड़नी चाहिए। इसके लिए कुछ आशा दिखाते हुए आग्रह पूर्वक बच्चों को पूजा में लगाना चाहिए। एक बार रूढ़ि होने के बाद वे स्वयं ही करने लगते हैं। इसी कारण ऋषि कहते हैं बचपन से ही पूजा का आरम्भ हो। **पुरम् न धृष्णु अर्चतः** भगवान की पूजा के बदले में इस शरीर की पूजा मत करो। आजकल शरीर की पूजा बड़े पैमाने से होती है। इस शरीर के लिए हम क्या- क्या श्रृंगार करते हैं। कितने खर्च करते हैं। तो भी यह शरीर हमे साथ नही देता। बार - बार इसके लिए डाक्टर के पास दौड़ना पड़ता है। यह शरीर इन्द्रिय सभी अशाश्वत हैं। केवल भगवान ही शाश्वत हैं। उनकी पूजा भक्ति से करने से वे हमारे इष्टार्थों को पूर्ण करते हैं। सदा काल वे हमारे हित चिन्तक हैं। यह स्वामी का अर्चन श्रवण मनन निधिध्यास के साथ पाद सेवा युक्त होकर करना चाहिए। **धृष्ण्वर्चत**, धैर्य से निर्भय होकर शाश्वत रूपी भगवान की पूजा करें।

गरीबी के कारण हमे पूजा छोड़ने का संदर्भ कभी नही आता। भगवान की पूजा के लिए पैसा नही लगता। श्री कृष्ण भगवान को अक्रूर मथुरा ले जा रहे थे। बीच में रथ को खड़ा कर नदी में स्नान करने के लिए डुबकी मारे। पानी के अन्दर श्री कृष्ण भगवान को देखा। ऊपर उठकर देखे तो भगवान रथ में बैठे हैं। अक्रूर ने पुनः पानी में डूबकर भगवान का दर्शन किया। श्री कृष्ण भगवान की पूजा अक्रूर ने जल में केवल जल से ही किया। भगवान की पूजा के लिए भक्ति से बढ़कर और बड़ा साधन कोई भी नही है। भगवान की पूजा के लिए कोई भी अधिकारी बन सकता है। उसमें देव मानव दानव असुर इत्यादि कोई भेद भाव नही है।

वन्दनम् भगवान के पास जाने के लिए अगली सीढ़ी है नमस्कार करना। यह भक्ति का एक प्रभेद है। पूजा करते हुए अपना सब कुछ समर्पित करने वाला कार्य नमस्कार होता है। वन्दन यानी साष्टांग नमस्कार। **शिरसा, उरसा, दृष्ट्या, मनसा, वचसा तथा पद्भ्यां कराभ्याम्, जानुभ्याम्, प्रणामोऽष्टांग उच्यते।** भगवान को हमे पहले अपने सिर का अर्पण करना चाहिए। सिर में जो है उसको भगवान को समर्पित करना है। अपने ज्ञान अज्ञान को भगवान को अर्पण करना है। भगवान अज्ञान को दूर करते हैं, ज्ञान की अभिवृद्धि करते हैं। अपने सद सद विवेक को भगवान के पद तल में रखना चाहिए। **कायेन वाचा मनसेंद्रियैर्वा बुध्यात्मना वा प्रकृतेस्वभावात्। करोमियद्यत् सकलम् परस्मै नारायणायेति समर्पयामि।** हे भगवान, शरीर से, शब्द से, मन बुद्धि से प्रकृति स्वभाव से मैं जो जो करता हूँ वह सारे आपके चरण में

समर्पित करता हूँ। मै जो - जो करता हूँ वह सारा आपका है। **भूइष्टान्ते नमः उक्तिम् विधेम।** भगवान मै आपको क्या दे सकता हूँ। इस शरीर को झुकाकर केवल एक नमस्कार कर सकता हूँ। मेरा कुछ नही है। मेरे सब कुछ आप हैं। यह भाव अन्दर से मन में भरते हुए बाहर बहकर अपनी आठों इन्द्रियों को भगवान के सामने अर्पण करना ही नमस्कार है। यहाँ अहंकार के लिए अवकाश नही है। मैंने यह किया, मेरा है, यह मनोभाव नही होना चाहिए। जिज्ञासा का अर्थ विवरण देते हुए टीकाचार्य जय तीर्थ जी कहते हैं - **मनोवृत्तेः प्रणवता हि वन्दनम्।** मै छोटा हूँ, इसका ज्ञान हमारे मन में सदा के लिए जागृत रहना चाहिए। भगवान सबसे बड़े हैं यह भाव सदा काल मन में बहते रहना चाहिए। हमारे मन को भगवान की दिशा में बहने के लिए नमस्कार ही अत्यन्त सुलभ साधन है। मेरा यह पूजन, यह नमस्कार दूसरों के लिए नही है, दूसरों को दिखाने के लिए नही है। और लोग देखे तो लज्जा का अनुभव नही होना चाहिए। भगवान करवाते हैं, मैं करता रहता हूँ। यह ज्ञान सतत होना चाहिए। पूजा, पुरस्कार और नमस्कार को फलापेक्षा से नही करना चाहिए। भगवान मैं आपको यह देता हूँ, आप मुझे यह दीजिए। इस तरह से भगवान से व्यापार नही करना है। पूजा हमें ज्ञान देती है। वन्दना यानी नमस्कार करना। **व का अर्थ ज्ञान होता है। द यानी दो। वन्दना इसका अर्थ भगवान से ज्ञान की प्रार्थना करना।** भक्ति भाव से पूजा करे तो भगवान भक्त से कभी भी विभक्त नही होता। वन्दन करते हुए हमे भगवान का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए सदा काल के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

आगे की सीढ़ी है **दास्यं।** जो दास होकर सेवा करता है, उसके ऊपर यजमान का प्यार बढ़ता जाता है। कहे हुए काम को करने वाले के ऊपर किसका प्यार नही होता? बोले हुए काम को ठीक तरह से जानकर और भी अच्छे तरीके से काम करने वाले के ऊपर तो सभी लोग प्यार करते हैं। हमें भगवान के प्यार को पाना है। इसके लिए हमें भगवान का दास बनना पड़ता है। भगवान जो कहते हैं उन कामों को हमे भाव भय भक्ति से करना है। भगवान की बातों को समझ कर प्यार से अनुष्ठान में लाना है। किन्तु भगवान हमें कहते कहाँ हैं? उनका और हमारा सम्बन्ध ही आता नही तो हम उनके दास कैसे बने, यह संशय मन में आना स्वभाविक है। वेद और उपनिषद भगवान की वाणी माने जाते हैं। प्रथमतः भगवान ब्रह्मा जी को वेदों का उपदेश दिये। वही बाद में विश्व के ज्ञान का भण्डार बना। वेद श्रुति और स्मृति विधि निषेध के बारे में कहते हैं। जो करना, जो नही करना, यही विधि निषेध होता है। इन श्रुति स्मृति और इतिहास पुराणों की बातों को हमें **हरेराज्ञा** मानकर अक्षरशः पालन करना है। यही भगवान का दास होता है। हमें तो विधि के बारे में गौरव नही है, शास्त्र जो कहता है उसको हम करते नहीं। एकादशी का व्रत हम करते नही। किन्तु अन्य किसी दिन व्रत रहते हैं। भगवान जो कहे हैं, उसको हम करते नहीं। लेकिन जो नही कहे हैं उसको हम करते हैं। जो नही करना है, उसको जीवन पर्यन्त करते रहते हैं। हम शास्त्र का अपने तरीके से अर्थ करने का प्रयास करते हैं। भगवान की इन बातों को हमें परिप्रश्न नही करना चाहिए। हमें अपने कर्तव्यों को निभाते रहना है। सेनापति सैनिक को आज्ञा देता है, सैनिक को उसकी विमर्शा न करते हुए उसका पालन करना चाहिए। वैसे ही भृत्य को अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करना चाहिए, इसी को दास्य - भक्ति कहते हैं। दास्य विष्णुकर्तृक होना चाहिए। इस तरह से हम भगवान के दास बन गये तो भगवान हमारे दास बन जाते हैं। हम प्रतिबिम्ब हैं, बिम्ब रूपी भगवान हमारे से काम करवाते हैं। **न हि**

प्रतिबिम्बे क्रिया अस्ति। भगवान ही स्वामी बनकर भृत्य से काम करवाते हैं। रामायण में भृत्य होकर अपनी सेवा किए हुए हनुमान जी के भृत्य होकर स्वामी ने महाभारत में भीमसेन जी की अनेक रूप से सेवा किया है। जुठा उठाये, घोड़े को नहवाये। **यथा-यथा उपासते तदेव भवति।** भगवान हर एक का ऋण चुकाते हैं। किसी का ऋण वे रखते नही हम भगवान के दास बने तो भगवान हमारे दास बनते हैं। भगवान को हम फूल चढ़ाये तो भगवान हमारे घर के जानवर को घास लाते हैं। भगवान इसमें अहंकार नही मानते हैं। वे पाण्डव के दूत बनकर कौरव के पास दूत कर्म किये।

दास्य पुराण और इतिहासों का सार होता है। भगवान जो कहते हैं उसको हमें आज्ञा मानकर पालन करना है। भगवान से बढ़कर और कोई बड़ा विज्ञानी नहीं मिलता। भगवान सबसे बड़े विज्ञानी हैं। हम उनके समान उनसे श्रेष्ठ कभी भी नही बन सकते। समान और श्रेष्ठ मानने से दास्य भाव आना असाध्य है। भगवान बिम्ब हैं और हम प्रतिबिम्ब हैं। **न ऋते तत्क्रियते किन्चनरे।** भगवान के बिना कोई कुछ भी नही कर सकता। हमें हर बार यह चिन्तन करना चाहिए कि भगवान आप जैसे रखते हैं वैसे ही मैं रहता हूँ। आप मुझको अपना दास बनाओ।

सख्यः नवधा भक्ति में सख्य भक्ति की आगे की सीढ़ी है। सख्य भक्ति एक विशेषता रखती है। सख्य यानी मित्रता। बच्चे अपने माँ बाप की बातों को कभी-कभी नही मानते, किन्तु मित्र की बात को नही टालते। **आप्तवाक्यं प्रमाणम्** मित्रत्व में विश्वास ज्यादा रहता है। हृदय में जिसके लिए स्थान है वही मित्र माना जाता है। मित्र को सखा कहते हैं। **ख यानी आकाश, सख यानि हृदय में, हृदयाकाश में अवकाश देने वाला, विशाल हृदयी।** सख्य भक्ति का अर्थ भगवान को अपने हृदय में स्थान देना है। तब हम भगवान के मित्र बनते हैं। भगवान तब हमारे न बुलाते हुए भी हमारे पास आते हैं। मित्र बिना निमंत्रण जैसे आता है, वैसे भगवान भी आते हैं। तब हमें उनको अपना मित्र बनाना है। मित्र बनाने का अर्थ उनकी बातों को मानना है। भगवान हमारे शरीर में, बुद्धि में, और चित्त में रहते हुए हमें समय-समय पर आदेश देते रहते हैं। हमे उनका पालन करना चाहिए। भगवान अर्जुन और दुर्योधन को बार-बार सलाह देते रहे। दुर्योधन उनको न मानते हुए कहता था कि **जानामि धर्मम् न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्यधर्मम् न च मे निवृत्तिः** मै धर्म को जानता हूँ, किन्तु उसका आचरण नही करता। अधर्म को जानता हूँ, किन्तु उसको नही छोड़ता। अर्जुन बोलता था, **करिष्ये वचनम् तव** मैं आपकी बातों के अनुसार करता हूँ। दुर्योधन भगवान का द्वेषी बना, अर्जुन भगवान के मित्र बने। हमे भी भगवान के आदेश का पालन करना चाहिए। किन्तु हम अहंकार से उनके आदेश को टाल देते हैं। इसके बाद भी भगवान रुष्ट होकर हमको छोड़कर चले नहीं जाते।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानम् वृक्षम् परिषस्व जायते

देव और जीव एक ही वृक्ष में रहने वाले दो पक्षी के समान हैं, एक को छोड़कर एक रहता नही। देव को छोड़ कर जीव रह नही सकता। ऐसे होते हुए भी हम अहंकार से भगवान का ख्याल न रखते हुए स्वयं को बड़ा मानते हैं। किन्तु भगवान सदा काल हमारी रक्षा करते रहते हैं। बरौनी आप की जैसे रक्षा करती है वैसे भगवान सदा काल हमारी रक्षा करते हैं। आने वाली सारे कष्ट, सुख, आपदा और विपदाओं को पहले ही विचार करते हुए हमें भगवान जागृत करते हैं। श्रुति - स्मृति पुराणों में हमें होने वाली आपदा और विपदाओं के बारे में और उनको करने वाले परिहारों के बारे में भगवान

बताये हैं। नित्य हमारे अन्दर रहते हुए बताते रहते हैं। अन्य बड़े छोटों में रहते हुए हमें मार्ग दर्शन करते रहते हैं। हमें इन सलाह सुझावों को मानते हुए जीवन में उनका अनुसरण करना है। भगवान से मित्रता रूप सख्य भक्ति को करना है। सामान्यतः मित्रत्व को जीवन के अन्त तक निभाना बहुत दुष्कर है। मित्रता बीच में ही छूट जाती है। किन्तु भगवान के साथ मित्रता को हमे जीवन भर चलाना है। भगवान ही सही अर्थ में हमारे मित्र हैं। **विष्णुर्मे परमोसुहृत्।** भगवान हमारे अन्तरंग के मित्र हैं। अर्जुन सख्य भक्ति का प्रतीक है। वे भगवान के साथ सख्य भक्ति का अनुसरण किये। भगवान के मित्र बने इसी कारण भगवान अर्जुन के रथ के सारथी बने। उन्ही के सारथ्य में अर्जुन कुरुक्षेत्र युद्ध को जीते। दुर्योधन को श्री कृष्ण जैसा सारथी न रहने के कारण वह मर गया। हमारा शरीर एक रथ है। हमारी दसों इन्द्रियाँ इस रथ के घोड़े हैं। अन्दर रहने वाले भगवान को इन घोड़ों को चलाना चाहिए। सारथी के अनुसार हमें अपनी जीवन यात्रा चलानी चाहिए। तब हमारा यह जीवन रथ ठीक तरह से चलता है।

अर्जुन भगवान के मित्र होते हुए भी उनमें निरन्तर भक्ति करते थे। सदा काल भगवन्नाम स्मरण करते थे। एक बार नारद जी ने भगवान श्री कृष्ण जी से यह प्रश्न पूछा कि अर्जुन की क्या श्रेष्ठता है, आप उनके नौकर जैसे घोड़े चलाते हैं, उनको पानी पिलाते हैं। तब भगवान नारद जी को अर्जुन के पास भेजे। उस समय अर्जुन सोये थे, दीर्घ निद्रा में थे। उनके बाल तखत के नीचे जमीन तक पसरे हुए थे। श्री कृष्ण जी ने नारद जी को संज्ञान करते हुए उनसे सुनने के लिए कह दिये। नारद जी उनके बालों को अपने कान से लगाये। उनसे कृष्ण कृष्ण की आवाज सुने। नीद करते समय भी अर्जुन के अंग प्रत्यंग भगवन्नाम स्मरण करते थे।

हम भी कनिष्ठ सोते तक भगवन्नामस्मरण करें, उठते ही अपने मन को पुनः नाम स्मरण से जोड़ें। इसी से हमारी निष्ठा बढ़ सकती है। हम भगवान से अपना प्यार का नाता जोड़ सकते हैं। याद रहे भगवान हमारे मित्र हैं ही किन्तु हमें भगवान का मित्र बनना चाहिए।

नवधा भक्ति के अन्त में आता है **आत्म निवेदन।** आत्म निवेदन सबसे श्रेष्ठ भक्ति मानी जाती है। नौ सीढ़ियों में यह अत्यन्त ऊपर की सीढ़ी है। प्रह्लाद जी ऊपर चढ़ाते - चढ़ाते हमे भगवान के अति समीप ले जाते हैं। ये नवधा भक्ति में एक - एक भक्ति एक - एक को आधिक्य दे दिया है। राजा परीक्षित श्रवण भक्ति से मोक्ष पाये। केवल निरन्तर श्रवण करने से जीव मोक्ष पा सकता है। उसके बाद श्रवण और भगवन नाम स्मरण करते रहना वेद उपनिषद और उसका सार भूत पुराण इतिहास का श्रवण करते रहना। जगद्गुरु मध्वाचार्य जी कहते हैं। अपनी योग्यतानुसार इनको श्रवण करने वाला निश्चित रूप से मोक्ष पाता है। जिसके हाथ से जो होता है वह उसी को करे। रामायण का संपाती श्रवण से मोक्ष पा लिया। कीर्तन करने से भीष्माचार्य जी मोक्ष पाये। आचार्य शुकदेव जी मनन से मोक्ष पाये। ध्रुव और प्रह्लाद ध्यान से भगवान का साक्षात्कार पाये। वीर मारुति भगवान के पाद सेवन से उनका प्यार पाये। राजसूय याग में धर्म राज भगवान का पाद सेवन किए। शबरी जंगल में मिले जंगली फलों से भगवान की अर्चना की। अक्रूर जमुना जी में अघमर्षण स्नान करते हुए भगवान की अर्चना जल में ही की। **वन्दनम्** वयोभेद को न मानते हुए कुन्ती अपने पुत्र की आयु के भगवान को नमस्कार करके मोक्ष पायी। विभीषण श्री राम जी के चरणों को वन्दन करते हुए भगवत कृपा पाये।

लक्ष्मण जी सीता जी के चरणों का नित्य वन्दन करने से कीर्ति पाये। हनुमान जी भगवान के दास्य को अपना गौरव माने। अपने बड़े विक्रम के प्रदर्शन के बाद भी भरी रावण की सभा में हनुमान जी कहते हैं **दासोहम् कोसलेन्द्रस्य** मै श्री राम जी का दास हूँ। इसी दास्यत्व से हनुमान जी जीवोत्तम बने। सख्य भक्ति में श्रेष्ठ हैं अर्जुन। सदा भगवान से सख्यत्व रखने वाले अर्जुन भगवान को श्रेष्ठ मानते हुए सख्यत्व में दास्यत्व को मिलाते हुए परमात्मा के प्रिय शिष्य बने। गीता का उपदेश सुने। आत्म निवेदन के अग्रमान्य निवेदक हैं जगद्गुरु मध्वाचार्य जी। वे नवधा भक्ति को अपने जीवन में पूर्ण रूप से आचरण में लाये। स्वतः सर्वज्ञ होते हुए भी वेद व्यास जी के शिष्यत्व को धारण करते हुए हिमालय के जंगलों में मध्य रात्रि में कपाने वाली ठण्डक में **तद्धितपः - तद्धितपः** घोर तप करते हुए पाठ का श्रवण किए। **पुर एव पूरितम्** पूर्ण भरा हुआ ज्ञान को निरन्तर श्रवण से और भरित किए। वे समग्र भारत में पैदल चलते हुए दो बार भू प्रदक्षिण करते हुए ज्ञान का प्रसार किए, भगवान का संकीर्तन किए। अपने मूल रूप वायु देव के रूप में प्रत्येक जीव में रहते हुए हर एक से **हंस सोऽहम् स्वाहा** इस मंत्र का जप करते और कराते हुए विष्णु का स्मरण करते रहते हैं। आचार्य जी का ध्यान आदर्श पूर्ण है। वस्त्र से अपने पूर्ण शरीर को ढ़ककर ध्यान को घंटों तक करना उनकी ही विशेषता है। भगवान श्री कृष्ण की प्रतिमा को वे स्वयं लाकर उडुपि में प्रतिष्ठापन करते हुए उस मूर्ति का नित्य पाद सेवन किए। बद्रीनाथ में नारायण का स्वयं अर्चना किए। उडुपि में चन्द्र शाला में खड़े होकर चामर सेवा करते हुए श्री कृष्ण भगवान की अपूर्व अर्चना किए। समग्र भारत में संचार करते हुए हजारों प्रतिमा और सालग्राम में स्वयं व्यक्त रूप में रहने वाले भगवान का बार-बार परिक्रमा और वन्दन किए। आचार्य जी का सिद्धान्त दास्य भक्ति के लिए अत्यन्त आदर्श है। स्वामी कहने वाले से दास्य भक्ति की जा सकती है। अपने को ही भगवान बोलने वाले में दास्य भाव कैसे हो सकता है? हमे भगवान के दासों का दास होना चाहिए। दास साहित्य मध्व शास्त्र का एक बड़ा अंग है। **सख्य** मध्वाचार्य जी भगवान के प्रियतम सखा हैं। हनुमान के अवतार में भगवान अपने को ही देकर उनके सखा बने। सदा काल भीम की रक्षा भगवान श्री कृष्ण स्वयं किए। नारायणास्त्र के सामने सिर झुकवा कर भीम का रक्षण भगवान किए। यह भीमावतार का **सख्य** भक्ति का निदर्श है। वेद व्यास जी अपने हाथ से पकड़ कर मध्वाचार्य जी को नारायण आश्रम में ले चले। यह मध्वाचार्य जी का सख्य भक्ति का प्रमाण है।

आत्मनिवेदनम् - भक्ति का प्रधान अंश है आत्मनिवेदन। थोड़ा सा भी लोप रहित भक्ति ही आत्म निवेदन होता है। एक बन्दर को उसके बच्चे के साथ एक बर्तन में डालकर पानी भरते रहे। बन्दर बाहर आ नही सकता था। वह जैसे पानी ऊपर आने लगा तो वह अपने बच्चे को कंधे के ऊपर रख लिया। किन्तु जब स्वयं डूबने लगा तो अपने बच्चे को पाव के नीचे रखकर अपने को बचाने का साहस किया। हमारा भगवान के बारे में प्यार भी बन्दर के प्यार जैसा न बने। कष्ट आया तो हम भगवान से प्रार्थना करते हैं। किन्तु सुख के समय में हम भगवान को भूल जाते हैं। हमारी भक्ति बन्दर का न बने किन्तु बन्दर के बच्चे जैसा बने। शास्त्र में इसको किशोरमर्कट न्याय बोलते हैं। बन्दर के बच्चे अपने छोटेपन में माँ को पकड़ कर रहते हैं। बन्दर कितने भी छलांग मारे, माँ बच्चे को छोड़ती नही। हमें भी सदा काल भगवान से लगे हुए रहना चाहिए। वैसा रहे तो भगवान हमको सदा काल रक्षित करते हैं। इस तरीके को शास्त्र में किशोरमार्जार न्याय कहते

हैं। बिल्ली अपने मुह से अपने बच्चे को पकड़ कर एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाती है। उसमें बच्चे का पात्र बिलकुल रहता नही। वह पूर्ण रूप से माँ के ऊपर निर्भर रहता है। भगवान के ऊपर हमारी भक्ति भी ऐसे ही होनी चाहिए। हमारी भक्ति में कोई लोप नही होना चाहिए। कष्ट के अनुसार हमारी निष्ठा नही बदलनी चाहिए।

दारान् सुतान् प्रियान् प्राणान् परस्मै सन्निवेदयेत्।

अपने ग्रंथ **सदाचार स्मृति** में जगद्गुरु मध्वाचार्य जी कहते हैं भगवान को हमें सब कुछ समर्पण करना है। पति-पुत्र, जमीन-जायदाद हमारे प्राण सहित सबको हमे भगवान को समर्पण करना है। प्रह्लाद जी ये सब भगवान को अर्पित किये थे। इतना ही नही, अपने जीवन के स्वरूप को ही भगवान को निवेदन किए थे। जो नश्वर नही है, अनादिनित्य है, और स्वात्मीय है। उन सबको अनन्त भगवन्त के पद पंकज में अर्पित किये थे। जो कुछ है वह उनका है। इसी को वे समर्पित किए थे। इसको स्वरूप का समर्पण कहते हैं। इस शरीर से बढ़कर आत्मा श्रेष्ठ है। शरीर बदलता रहता है आत्मा निरन्तर रहता है। नित्य आत्मा का निवेदन ही निरन्तर भक्ति का प्रतीक है। यही आत्म निवेदन है।

भगवान विष्णु का स्मरण मन में स्थिर रहने के लिए हमें सदा काल उनका स्मरण करते रहना चाहिए। ये श्रवण और कीर्तन कब तक करना चाहिए। यह संकीर्तन सदा काल करते रहना चाहिए। यह संकीर्तन केवल मरते तक ही नही करते रहना है। मरने के बाद भी संकीर्तन चलाते रहना चाहिए। मोक्ष में भी ब्रह्मा जी निरन्तर भगवन्नाम संकीर्तन करते रहते हैं। वहाँ ब्रह्मा जी प्रवचन करते हैं। अन्य जीव उसको सुनते रहते हैं। जो सुना है वह भूलने के लिए नही। **विष्णोः स्मरणम्** स्मरण के साथ साथ **विष्णोः पाद सेवनम्** किन्तु भगवान के पाद हमें मिलता नही। गया के पण्डा लोग उसको पकड़कर रखे हैं। पाद यानी पद भी होता है। **तद्विष्णोः परम् पदम**। पाद यानी एक चतुर्थांश। **पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्या मृतं दिवि** पुरुष सूक्त से यह अर्थ होता है कि यह सारे जीव राशि भगवान के एक अंश हैं। और तीन अंश ऊपर रहने वाले श्वेतद्वीप, अनन्तासन और वैकुण्ठ ये अन्य तीन अंश हैं। श्वेतद्वीप में भगवान का एक रूप है, अनन्तासन में एक रूप है, वैकुण्ठ में और एक रूप है। इसी को भगवद्गीता में भगवान कहे हैं **ममैवांशो जीव लोके जीव भूतः सनातनः** भगवान सबके शरीर में प्रवेश किये है। इस जीव राशि में भगवान भरकर रहते हैं। हम पाद सेवन के लिए भगवान के इन रूपों का उपयोग कर सकते हैं। विश्व में अनन्त जीव हैं। भगवान के अनन्त रूप हैं।

नारद जी कहते हैं - पुत्र की इन बातों को सुनकर हिरण्यकश्यप का क्रोध बढ़ गया। उसके ओठ हिल रहे थे। वह क्रोध से शुक्राचार्य के पुत्र शन्डामर्क को बोला।।25।।

हिरण्यकश्यप बोलता है - हे दुर्बुद्धि वाले ब्राह्मणाधम! तुमने ये क्या किया। तुम अपनी दुष्टता से मुझको धिक्कार करते हुए शत्रु पक्ष के बनकर सार रहित विष्णु भक्ति को छोटे बच्चे को सिखलाया है।।26।।

पापियों के लिए उनके पाप का भोग करने के लिए रोगों की उत्पत्ति होती है। वैसे नीच लोग कपट वेष धारण करते हुए अपने मित्रों को वंचना करते हैं। उनके मन में छिपी हुयी दुष्ट बुद्धि उस समय

स्पष्ट हो जाती है। तुम ऐसे दुष्टों में एक हो। तुम पर मै विश्वास रखा था। तुमने मुझसे द्रोह किया है।।27।।

गुरु पुत्र बोले - हे इन्द्र शत्रु राजा! आपके पुत्र को मैने नही सिखाया है, मेरा भाई भी नही सिखाया है। और कोई भी उसको यह ज्ञान नही दिया है। यह उसका स्वाभाविक ज्ञान है। आप हम गरीब के ऊपर क्रोध मत करिए। मै आपको वंचना करने वाला कैसे बन सकता हूँ।।28।।

नारद जी कहते हैं - गुरु पुत्र का यह उत्तर सुनकर हिरण्यकश्यप अपने पुत्र से और एक बार पूछता है - हे बेटा! यह दुर्बुद्धि गुरु मुख से नही आयी तो कहाँ से आयी है? बताओ।।29।।

प्रह्लाद जी कहते हैं - गृहस्थ आश्रम में रहकर केवल काम्य कर्मो को करने वाले अपने इन्द्रिय निग्रह न करते हुए नरकादि अनर्थ को पाते हैं। लौकिक जीवन में भी सुख को खो देते हैं। पारलौकिक सुख तो उनको मिलने वाला नही है। वे चर्वित चर्वण करते रहते हैं। उनके लिए कृष्ण भक्ति अपने प्रयत्न से अथवा दूसरों के उपदेश के बाद भी नही आती है।।30।।

बाह्य विषयों में आसक्त दुर्बुद्धि वाले लोग साधन करने के पुरुषार्थ के बारे में कुछ भी नही जानते। ऐसे मूढ़ लोग उन्ही के जैसे रहने वाले उनके गुरु सारे एक साथ मिलकर अन्धे लोग कितने भी होते हुए एक साथ होकर कहीं भी नही जा सकते। सब मिलकर गडढे में गिर जाते हैं। ऐसे ये लोग भी काम्य कर्मो का बोध देने वाला वेद के बातों का सही अर्थ न जानते हुए द्रव्य देवता फल इत्यादि आशाओं से वेद को ठीक तरह न समझ कर भगवान के पाश में बंधे जाते हैं। सदा काल संसार कूप में गिरे रहते हैं।।31।।

भगवान के पाद से संसार निवारण रूप फल मिलने के बाद भी विषयों की आशा त्याग दिये हुए महात्माओं के पाद रज में स्नान किए बिना इनकी बुद्धि भगवान के पाद को छू नही सकती।।32।।

प्रह्लाद के इन बातो को सुनकर हिरण्यकश्यप क्रोध से अन्धा हो गया। अपने बेटे को गोद से उठाकर जमीन पर फेक दिया। क्रोध, आक्रोश और असहन से आँखों को लाल करते हुए बोला।।33।।

हिरण्यकश्यप बोला - हे राक्षस लोग! इसको मार देना है। तुम इसको जल्दी से मार डालो। मार कर इसको दूर फेक कर आओ। यही हमारे भाई का वध किया है क्योंकि यह नीच अपने हितैषी हम सबको छोड़कर अपने चाचा जी को मारने वाले विष्णु के पादों की पूजा दास होकर करता है। यह दुःख की बात है। पाँच वर्ष का छोटा लड़का अपने माता-पिता का प्यार का सम्बन्ध को भी टाल दिया है। इसके ऊपर विश्वास कैसे रखें। यह विष्णु के लिए भी क्या सहायता कर सकता है?।।34-35-36।।

दूसरों का कोई आदमी अरण्य में रहने वाली औषधि की तरह हितकारी बन सकता है।

यह बेटा मेरे शरीर से जन्म लिया है। किन्तु रोग के समान यह अहितकारी बन गया है। अहितकारी रोग ग्रस्त शरीरका भाग अपना होते हुए भी उसको काट डालना चाहिए। उसको काट डालने से अन्य शरीर सुख से जीवित रह सकता है।।37।।

यह अपने हितकारी जैसे दिखता है,किन्तु मुनि के दुष्ट इन्द्रिय के समान मेरा शत्रु बन गया है। इसको विष पिलाने से,जलता हुआ लोहे के ऊपर लिटाना,शूल के ऊपर चढ़ाना ऐसे अनेक रीतियों से मारना चाहिए।।38।।

हिरण्यकश्यप का राक्षसों को ऐसा आदेश देने के बाद वे राक्षस अपने हाथ में रहें शूलों से सामने बैठे हुए प्रह्लाद के सारे मर्मस्थान पर आघात किये। तीक्ष्ण और भयानक दाँत वाले लाल रंग के मूछ और बाल वाले भारी आवाज करते हुए मारो काटो इन शब्दों से चिन रहे थे।।39,40।।

मन को बात को न मिलने वाले सर्वेश्वर भगवान में मन रखा हुआ प्रह्लाद को राक्षसों का आयुध कुछ नही कर पाये। अदृष्ट न रहने वाला आदमी कुछ भी करे वह व्यर्थ हो जाता है।।41।।

हे राजा युधिष्ठिर! राक्षसों का प्रयत्न विफल होने से डरा हुआ हिरण्यकश्यप आग्रह से प्रह्लाद को मारने के लिए अन्य उपायों की योजना किया।।42।।

आठों दिशाओं की रक्षा करने वाली हाथियों को प्रह्लाद के छाती के ऊपर चढ़ा दिया,बड़े-बड़े साँपों से कटवाया,मन्त्र करवाया,पहाड़ों से नीचे गिरवाया,ये सारे करने के बाद भी प्रह्लाद को कुछ नही कर पाया। इससे आक्रोशित राक्षस उसको जमीन के नीचे गाड़ दिए,विष खिलाया,बहुत दिनों तक अन्न न देते हुए उपवास रखा,हिम,आग,पानी इत्यादि के अन्दर रखा,पहाड़ों को उठाकर उसके ऊपर फेका। ये सारे करने के बाद भी वे राक्षस प्रह्लाद को जीव से मार नही सका।।42,43,44।।

इसके बाद राक्षस दीर्घ चिन्तन किया,तो भी उसको अपने पुत्र को मारने का उपाय नहीं मिला । वह चिन्तन करने लगा "मैंने इसको बहुत दुष्ट बातें कही हैं।अनेक हिंसा कार्य किया है। मेरे इन सारे दुष्कृत्यों को वह अपने स्वसामर्थ्य से अपनी रक्षा की है। मेरे समीप होते हुए भी,यह छोटा लड़का अपने बुद्धि को नहीं खोया है। वह पहले जैसे तेज है।।45।।

शुनःशेप अपने पिता हरिश्चन्द्र, अपने को दूसरों को बेच दिया था,इसको कभी नही भूला। यह भी मेरे द्वारा किए हुए दौर्जन्य को कभी भी नहीं भूलेगा।।46।।

इसकी ताकत को मापने का काम कोई कर नहीं सकता। इसको मरण का भय नहीं है। कुछ भी करें यह मरने वाला नही है। इसका विरोध करके क्या मैं ही मर जाता हूँ? अथवा

ब्रह्मवर के बल से जीवित रहता हूँ?।।47।।

इस रीति से चिंताकुल हुआ हिरण्यकश्यप का शरीर कान्तिहीन हो गया। वह मुह नीचे करते हुए बैठ गया। शुक्राचार्य के पुत्र शन्डामर्क एकान्त में उसके सामने अपने विचार रखे।।48।।

शन्डामर्क कहते हैं- प्रभु! आप एक बार अपनी भौहों को संकुचित करें तो लोकपालक डर गये,तीनो लोक आपके वश में आ गया। ऐसे महाधीर को आतंकित करने वाला विचार हम अभी तक देखे नही। यह प्रह्लाद आपका बेटा है, बिल्कुल छोटा है। बच्चों के मन में गुण दोष स्थिर रीति से नहीं रह सकते।।49।।

गुरु शुक्राचार्य जी के आते तक यह भाग न जाये,इसके लिए इसको वरुण पाश से बाँधकर रखें। आयु बढ़ने के बाद बड़ों की सेवा के कारण मानव को सही बुद्धि आती है।।50।।

गुरुपुत्र की इन बातों को मानते हुए हिरण्यकश्यप उनको आज्ञा दिया- आप लोग इसको राजधर्म के बारे में उपदेश दीजिए।।51।।

हे धर्मराजा! हिरण्यकश्यप की आज्ञा के अनुसार शन्डामर्क विनीत प्रह्लाद को अपने साथ लेकर गुरुकुल चले गये और वहाँ केवल धर्म अर्थ और काम के बारे में उपदेश देने लगे।।52।।

गुरुओं से दिए हुए उपदेश में रहने वाले धर्म अर्थ और काम इस त्रिवर्ग को प्रह्लाद नहीं माने। लोग त्रिवर्ग से रागद्वेषादि द्वन्द्वों के जैसे वश में होते हैं वैसे प्रह्लाद उसके वश में नही आया।।53।।

अपने घर के कामों के लिए शिक्षक जब घर जाते थे तब सारे बच्चे खेलने लगते थे। वे प्रह्लाद को भी खेलने के लिए बुलाऐ।।54।।

तब वह बाल रूप वाला अपने स्वरूप को ठीक तरह से जानने वाला महाज्ञानी प्रह्लाद अपने सुमधुर बातों से करुणा पूर्वक हँसते हुऐ उनको उपदेश देने लगा।।55।।

रागद्वेष युक्त गुरु के उपदेश से और उनके आचरण से बच्चों का मन अभी नहीं बिगड़ा था। वे सारे प्रह्लाद के ऊपर के गौरव के कारण अपने खेलने का साधन बाजू में रखते हुए प्रह्लाद में मन रखते हुए, उसी को देखते हुए उसके सामने बैठ गये। हे धर्म राजा! असुर के पेट से जन्म लेने के बाद भी प्रह्लाद महा भगवद्भक्त थे।,करुणालु और हितैषी थे। प्रह्लाद जी उन असुर बालकों को उपदेश देने लगे।।56,57।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में सातवाँ स्कन्ध में पाचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः

अध्याय - छः

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

प्रह्लाद जी कहते हैं - हे बच्चो! मेरी बातें सुनो। ये बाते आपको इह पर दोनों के लिए हितकारी होती हैं। केवल अन्धे जैसे खेल में मग्न होकर आयुष्य को व्यर्थ न गवाइये। आयुष्य स्थिर नही रहता। देखिये हमारे में भी कई लोग मर गयें हैं।।1।।

हन्तार्भका मे श्रुणुत, प्रह्लाद जी बोलते रहे, बच्चे सुनते रहे। वे असुर होते हुए भी बच्चे हैं। वें कोई पाप नही किये हैं।ऐसे बच्चों को मन लगाकर सुनने के लिए **अर्भकाः** कहते हैं। वे भी उन बच्चों के आयु वाले हैं। कई बच्चे इनसे बड़े भी हैं। लेकिन प्रह्लाद जी उनके गुरु बने हैं, इसके लिए प्यार से कहते हैं बच्चो, मेरी बात सुनो। अब तक गुरु जी ने गलत बातें बतायें हैं। मैं आपके हित में बोलता हूँ। प्रह्लाद जी में वक्तानुकूलता, यानी कहने की योग्यता है। असुर बच्चे प्यार से सुनने के लिए तैयार रहने के कारण उनमें श्रोत्रानुकूलता यानी ठीक तरह से सुनने की योग्यता है। जब ये दोनो होते हैं, तब कहना सुनना दोनो अच्छा होता है।

सर्वतः शिवः वचो मेश्रुणुत सदा काल के लिए आपके हित में बनने वाली मेरी बातों को सुनो। प्रह्लाद जी जो बोल रहे हैं, वह भगवान का विषय सदा काल के लिए कल्याणकारी है। वह तात्पूर्तिक सुख देने वाला नही है। वे भगवान को लाकर आपके हृदय में बैठाने वाला है। यह **सर्वतः शिवम्** है। यह कभी अपायकारी नही है, केवल उपकारक है, कई औषधियों के ऊपर लिखा रहता है, डाक्टर के कहने के अनुसार इसका सेवन करे। नही तो वह खतरनाक होता है।आज कल के कई बाबाओं की भगवान के बारे में बोलने की बात तात्पूर्तिक सुख देने वाली होती है। किन्तु प्रह्लाद जी जो कह रहे हैं वे बातें सदा के लिए सुख देने वाली हैं। सभी देशों में, सारे काल में और सभी आयु वाले लोगों के लिए ये बातें जन्मान्तर में भी फल देने वाली हैं।

वयस्कान् पश्यत मृतान् क्रीड़ांधामा प्रमाद्यथ।

बच्चो सुनिए। यह जीवन शाश्वत नही है। कब मरते हैं, यह मालूम नही रहता। छोटे बड़े सभी मरते हैं।कई लोग जीते हुए भी मरे जैसे रहते हैं। इस संसार में शाश्वत कोई नही है। मेरी बाते सुनो। वे अमृत के समान हैं।इसको पीने वाले सदा के लिए सुख पाते हैं। आप अपने समय को व्यर्थ नही करे। केवल खेलते नही रहें। आजकल के बच्चे सदाकाल खेलते रहते हैं। खेलना छोड़े तो खेल के बारे में टी. वी. समाचार देखते हैं।पढ़ना है तो खेल समाचार पढ़ते

हैं, बोलना है तो खेल के बारे में बोलते हैं। इतना ही नही खेलने वाले के जैसे वेष भूषा करते हैं, खाना पीना करते है। बच्चो आप ऐसे खेल के अन्धे न बनो, अपने समय को व्यर्थ में न गवायें।

पिछले दिनों में बच्चे खेल में मोक्षमार्ग को नही भूलते थे। वे इसके लिए हितकर और प्रियकर तत्वज्ञान की इच्छा करते थे। हमारे गुरु जी अनर्थ वाले त्रिवर्ग तत्व को पुरुषार्थ कहते हैं। यह गलत है। इसको हमें नहीं मानना है।।2।।

अज्ञान की नींद में डूबा हुआ आदमी किसी के उपदेश से जागृत नही होता। उसके वचन पर विश्वास नही रखना चाहिए। उसकी बातो को माने तो अन्धे के पीछे चलने वाले अन्ध जैसे नाश कर लेता है।।3।।

गुरु के नीति शास्त्र मे हमारे मित्र शत्रु का ज्ञान होता है यह भी सही नही है। हमारे पक्ष में शत्रु कौन है, तटस्थ कौन है और मित्र कौन है ? ये सारे भगवान ही हैं। भगवान श्री हरि हमारे कर्म के अनुसार शत्रुओं में शत्रुतत्व की प्रेरणा देते हैं। सम्पद और विपदा कैसे आती हैं इसका विवेक हमें गुरुक्त नीति शास्त्र से आता है यह भी सही नही है। वह नीति हमारे प्रयोग से फल देने वाले नहीं बनते। भगवान ही उनके फल के कारण बनते हैं।।4।।

पत्नी पुत्र और अपने लोगों के वश होकर प्रवृत्ति धर्म का प्रयोग करते हैं और काम्य कर्म करते हुए ऐहिक और पारत्रिक सुख को भोगते हुए मोक्षमार्ग को भूल जाने के कारण मानव अनर्थ पा लेता है, अज्ञान में डूब जाता है। ऐसे लोग ही ज्यादा मिलते हैं। किन्तु स्वजन के वश न होकर निवृत्ति धर्म का पालन करते हुए निष्काम कर्म के पुण्य वश के कारण ऐहिक और पारत्रिक सुख पाने वाला मोक्ष साधना करता है। इससे उसको कोई भी अनर्थ नहीं होता, वह अज्ञान से मुक्त होता है। ऐसे लोग बहुत कम मिलते हैं।।5।।

ठीक तरह का ज्ञानी अपने मानव जन्म में उसे बचपन से ही भगवद् भक्ति युक्त धर्माचरण का प्रारम्भ करना चाहिए। केवल मानव जन्म में मोक्षादि पुरुषार्थ साध्य हैं, यह जन्म दुर्लभ है। करने वाला सत्यकार्य को अगले जन्म के लिए नही टालना।।6।।

छोटी आयु से ही धर्माचरण करना चाहिए, छोटे आयु वालों में दुर्बुद्धि नही रहती है। छोटे बच्चे झूठ नही बोलते हैं, चोरी नही करते हैं, काम क्या है, इसकी जानकारी भी नही रहती है। आयु बढ़ने से ये सारे एक - एक कर आ जाते हैं। इसके लिए छोटी आयु से ही धर्माचरण में लगे रहें तो ये सारे दोष दूर रहते हैं। मन शुद्ध रहे तो धारणा और अनुष्ठान के लिए अनुकूल होता है। जमीन को ठीक तरह से कृषि करने के बाद बीज डालने से अच्छी फसल आती है, फल, फूल मिलता है। बच्चो, आप छोटी आयु वाले हैं। इसी आयु में आप ध्यान धारणा करे तो जल्दी में आप सिद्धी पा लेते हैं।

आप ठीक तरह से यह जान लें कि हमारे पिता के डर से हमारे बड़े लोग गलती कर रहे हैं। अनन्त काल में रहते हुए, अनन्त रूप वाले भगवान सदा काल के लिए हमारे रक्षक बने हैं। उनको छोड़कर, नाश होने वाले कितने ही

बलवान हो पर एक न एक दिन मर जाने वाले मनुष्य के पीछे क्यों जाना है। **दुर्लभम् मानुषम् जन्म** मानव जन्म बार बार मिलने वाला नही है। चौरासी लाख शरीरों को पाने के बाद यह दुर्लभ मानव जन्म मिलता है। हम ऐसे चौरासी लाख घरों को पार कर इस अच्छे घर को पा चुके हैं। बहुत कष्ट करके पाया हुआ इस श्रेष्ठ शरीर को व्यर्थ न करो। अन्य जीवियों के लिए जो शरीर मिला है, वह दोष पूर्ण हैं। किन्तु मानव शरीर परिपूर्ण है। भगवान के आवास के लिए हमारा यह शरीर रूपी मन्दिर बहुत प्रशस्त है। मैं जो कह रहा हूँ उस भागवत धर्म को तुम लोग आचरण में लावो। तब यह घर उत्तम बनता है, अगले जन्म में इससे भी उत्तम शरीर हमें मिलता है। इसके विरुद्ध में भागवत धर्म का आचरण नही किया तो कौवा या गधा का जन्म आ जाता है। बच्चो, तुम सोच विचार करो तुम्हारे लिए कौन सा शरीर अच्छा है।

धर्मान् भागवतानिह इसके लिए आप लोग को भागवत धर्म का आचरण करना है। नित्य भगवान का संकीर्तन करना, कथा सुनना, पाठ करना और सदा काल हरि चिन्तन करना भागवत धर्म होता है। पाठ प्रवचन के लिए जो नही आता है, वह कौवा या गधा बनता है।

प्रह्लाद जी छोटे बच्चों के सामने धर्मोपदेश दे रहे हैं। बच्चे पूछते हैं कि प्रह्लाद हमें बताओ हम धर्माचरण क्यों करें। इससे क्या लाभ है। प्रह्लाद जी हँसते हुए इसका उत्तर देते हैं।

दुर्लभम् मानुषम् जन्म मानव जन्म मिलना बहुत दुर्लभ है। बहुत कष्ट करते हुए जन्म जन्मान्तर के पुण्य के वश से हमे यह मानव जन्म प्राप्त हुआ है। यह शरीर साधना के लिए मिला है। भगवान धर्माचरण रूप साधन के लिए यह शरीर दिये हैं। पशु पक्षी को ऐसा शरीर नही मिला है। वे साधना नही कर सकते हैं। भगवान मानव को विशेष ज्ञान दिये हैं। प्राणियों को थोड़ा सा ज्ञान है। वह ज्ञान केवल आहार पाना, नींद करना इत्यादि शरीर की आवश्यकता के लिए सम्बन्ध है। मानव के लिए युक्तायुक्त समझने का विशेष ज्ञान है। जो करना, जो नही करना, वह सोच सकता है। वह चिन्तन कर सकता है। चिन्तन मंथन करते हुए एक निष्कर्ष पर आ सकता है। यह अत्यन्त दुर्लभ है। धर्म को समझ कर आचरण करना है। दैत्य लोगों के लिए धर्म क्या है इसकी जानकारी नही है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना एक विशिष्ट धर्म रहता है। यह शरीर नाश होने वाला है। जो करना है उसको जल्दी ही करना है। अच्छे काम को कल के लिए मत रखो। कल करने वाले काम को आज करो। आज करने वाले को अभी करो अभी से अच्छे काम का आरम्भ करना है। यह देह केवल वाह्य सम्पद का संग्रह करने के लिए नही है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नाम के चार विध पुरुषार्थ होते हैं। पुरुषार्थ का अर्थ होता है इस जन्म में साधन करने वाला। **कौमारे एव** बाल्य से ही इन पुरुषार्थो का साधन करना चाहिए। अध्ययन, स्मरण, मनन, निधिध्यास इत्यादि साधनाओं को अभी से प्रारम्भ करना है। एकादशी इत्यादि व्रतों का आचरण करना है। इन्द्रिय सुख सर्वत्र मिलता है। पशु पक्षी को भी यह सुख मिलता है। सुख के लिए हमें प्रयत्न करने की आवश्यकता नही है। **यथा दुःखं अयत्नतः** दुःख को पाने के लिए हम प्रयत्न नही करते हैं। तो भी दुःख आता ही है। वैसे ही हमें सुख के लिए प्रयत्न नही करना चाहिए। जैसे दुःख अपने आप आता है वैसे ही सुख अपने भाग्य में रहे तो आता ही है। उसके लिए प्रयत्न करने की कोई जरुरत नही। लेकिन इन्द्रिय जन्य सुख दुःख शाश्वत नही हैं। धर्माचरण से मिलने वाला सुख शाश्वत रहता है। धर्माचरण को करते समय सुख मिलता है। बाद में भी वह सुख

रहता है। भागवत धर्म के आचरण से भगवान ही मिलते हैं, तो सुख हमें क्यों नही मिलता। किन्तु इन्द्रिय सुख जो है वह दु:ख के साथ ही आता है।

मनुष्य जन्म में परम पुरुष विष्णु की पाद सेवा करनी चाहिए। वे ही सबके प्रिय हैं, अन्तर्यामी हैं, प्रभु होकर हमारे हित करने वाले हैं। और कोई यह हो नही सकते।।7।।

ऐसा रहे तो हम विषय सुख का भोग कब करें? देह वाले जीव को एक न एक शरीर मिलता ही रहता है। उन शरीरों को प्रयत्न के बिना ही अदृष्ट वश से दु:ख के समान इन्द्रिय जन्य सुख भी आता रहता है। इसके लिए अलग प्रयत्न करने की आवश्यकता नही है।।8।।

अनादि संसार में रहने वाला जीव विषयों से सुख दु:ख को पाते हुए पाप पुण्य कर्मो को करता रहता है। उनके लिए अलग प्रयत्न न करे तो भी कर्म के फल भोगना ही पड़ता है। किन्तु ऐहिक सुख उपभोग के लिए कर्म करते रहे तो जीवन इसी में व्यर्थ चला जाता है। इसके लिए क्षेम करने वाले मुकुन्द के पाद पद्म को पाने का प्रयास करना चाहिए।।9।।

शरीर सारे इन्द्रियों से सशक्त होकर और काम करने में जब सक्षम रहता है उसी समय में भगवान का आश्रय लेकर सत्कार्य करते हुए मोक्ष के लिए साधना करना चाहिए।।10।।

मानव को ज्यादा से ज्यादा सौ वर्ष का आयुष रहता है। नींद इत्यादि को निग्रह न करने वाले को आधा भाग नींद में चला जाता है। रात में वह अज्ञान से आवृत होकर तामस में लिप्त होकर निद्रा करता है।।11।।

बाल्य काल में कौमार तक बीस वर्ष का आयुष केवल खेल में जाता है। अस्सी के बाद का बीस वर्ष का आयुष बुढ़ापे में कुछ न कर सकने के कारण व्यर्थ में चला जाता है।।12।।

अब रहा हुआ साठ वर्ष कभी तृप्ति न मिलने वाला भोग लालसा से और बलिष्ठ मोह करने वाला गृहस्थ जीवन में रहकर मोक्ष साधना के बिना वह भी जीवन व्यर्थ होता है।।13।।

देखो, बच्चो! हम गृहस्थों में अनेक तरह से परस्पर कलह और मनस्ताप होते हैं। उनके परिहार करने वाला प्रयत्न हमारे संसार बन्ध को और ज्यादा बन्धक बनाता है। श्रेय को पाने के विरुद्ध प्रेय के पीछे पड़े हुए मानव व्यर्थ श्रम करते हुए आयुष को गवा देता है।।14।।

गृहस्थ जीवन में आसक्त होकर बन्धुओं के स्नेह पाश से बद्ध होकर उनसे छुड़ाने के लिए इन्द्रिय निग्रह न करने वाला आदमी क्या कर सकता है।।15।।

धन का मोह छोड़ने वाला कौन है? धन लोगों को प्राण से भी प्यारा लगता है। चोर हो, व्यापारी हो, सेवक हो अपने प्राण को छोड़कर भी पैसा कमाना चाहते हैं।।16।।

स्त्री के बारे में दिल मे प्यार भरा हुआ आदमी पहले अनुकम्पा से अपने प्रिय पत्नी के साथ एकान्त में संग सुख को पाकर, मधुर बातों से आकृष्ट हुआ आदमी बाद में उसे कैसे त्याग देता है? बन्धुओं और

पुत्रों के वात्सल्य के वश में हुआ आदमी उनके मधुर वचनों को कैसे त्याग कर सकता है। दिल में प्यार भरा हुआ आदमी छोटे बच्चों के प्यारी-प्यारी बातों को सुनने के सुख को कैसे छोड़ सकता है।।17।।

पैसे का मोह प्राण से भी बढ़कर रहता है। लाख रुपये के लिए मरने वाले लाख लोग मिलते हैं। सेवा करते हुए जीने वाला सेवक, चोरी करने वाला चोर और व्यापार करने वाला व्यापारी पैसे के लिए कितना कष्ट करते है। माघ मास में गंगा जी में स्नान करने के लिए ब्राह्मी मुहूर्त में उठकर जाने को हम बहुत कष्टकर समझते हैं। किन्तु हमारे से पहले गंगा तट पर भिक्षुक और व्यापारी बैठे रहते हैं। पैसे के सामने उनको ठंडी नही लगती। धर्माचरण करने वाले हम ठंडी से कांपते रहते हैं। चोर मन्दिर गये तो भी वहाँ वह चोरी ही करता है। पकड़े गये तो मार खाता है, जेल जाता है। छूटकर आने के बाद फिर चोरी करता है। चोरी करते करते मरता है। किन्तु चोरी करना नही छोड़ता। व्यापारी, चोर और भिक्षुक पैसे के लिए निष्ठा से जो काम करते हैं, उसी निष्ठा से यदि वे धर्माचरण किए तो निश्चित रूप से भगवान मिल जाते हैं। हमें यह समझ लेना चाहिए कि धर्म कार्य करने में इतना कष्ट करने की आवश्यकता नही है। थोड़ी सी निष्ठा हमें धर्ममार्ग में सहायक बनाती है। धर्म कार्य के लिए हम कष्ट करे तो सुख हमें सुलभ रीति से मिल जाता है। इसके लिए, बच्चो, अभी से आप धर्म के साधना मार्ग में चलें।

बच्चों के ऊपर प्रह्लाद जी की बड़ी अनुकम्पा है, भगवान में भक्ति है। अनुकम्पा से भगवान में भक्ति करने के क्रम को बोलते हैं। यह प्रपंच मायामय है। माया का अर्थ भगवान की इच्छा होती है। भगवान हमारे कल्याण के लिए अपनी माया से इस प्रपंच की सृष्टि की है। वे उसमें रहते हुए इस प्रपंच को चलाते हैं। अपनी माया श्री दुर्गा के कारण वे हमें दिखते नहीं। उनसे किया हुआ यह प्रपंच हमे दिखता है। हे बच्चो, हमारे पूर्वज असुर हैं। उनको इस प्रपंच में मोह है, आप असुर नही बने। इस नश्वर प्रपंच में मोह नही रखे, केवल जीने के लिए न खाये। पैसा कमाना और सुख भोगना यही जीवन का उद्देश्य न बने। तस्कर, सेवक, वणिक जैसे केवल पैसे कमाने के लिए कष्ट करते हुए जीवन यापन न करें, हमे भगवान से प्यार करना चाहिए। हमे भक्ति से उनका अनुग्रह पाना चाहिए। भगवान सर्वोत्तम हैं, वे जगन्नाथ हैं, वे इस प्रकृति के स्वामी हैं। उनका प्यार पाना कोई कष्ट की बात नही है।

शादी करके दिया हुआ अपने बेटियों को, अपने भाई-बहनों को, माता-पिता को और सुन्दर पीठोपकरण से अलंकृत घर को कैसे भूल सकता है । जीवनाधार वस्तुओं को, पशु भृत्यों को कैसे भूल सकता है।।18।।

रेशम का कीट अपने शरीर से घर बनाकर उसमें स्वयं बन्दी होकर बाहर आ नही सकता। वैसे गृहस्थ मानव सुख के लिए लोभ से कर्म करते हुए अतृप्त होकर जननेंद्रिय और जीभ का सुख को ही मानते हुए अन्त न रहने वाला विषय सुख के मोह में रहने वाला कैसे वैराग्य को पाता है?।।19।।

अपने कुटुम्ब के संरक्षण करने में ही आयु चली जाती है। इसकी कल्पना भी नही आती। शास्त्र के ज्ञान तो बिल्कुल नही आता। जो कुछ ज्ञान आया है वह संसार के झंझट में चला जाता है। इन सारे तापत्रयों

से मन को दु:ख होते हुए आदमी अपने संसार में मग्न होता है, वैराग्य नही पाता।।20।।

अन्य लोगों के सम्पदा को अपहरण करने वाले को यहाँ जीवित रहते समय सुख नही होता, मरने के बाद भी अनर्थ ही होता हैं। अपने इच्छाओं को पूर्ण करने में शक्त न होते हुए अन्यों की सम्पदाओं को देखकर मन में आशा करते हुए असूया युक्त हो जाता है।।21।।

हे दानव पुत्र, विषयासक्ति के अनर्थ को जानते हुए भी अपने कुटुम्ब में ही मग्न होने वाला मोक्ष नही पायेगा ।मिथ्या ज्ञानी जैसे तमस् को पाता है वैसे यह भी अपने को स्वातंस्त्र्य है इस भ्रम से संसार के बन्धन में बंधित हो जाता है।।22।।

स्त्रियों की तिरछी नजर से ज्ञानी भी बंधित होता है यह जानते हुये भी उनके साथ क्रीड़ा करते हुए मृग बन जाता है। तब कोई भी ज्ञानी अपने को इस बंधन से छुड़ा नही पाता।।23।।

इसी कारण हे बच्चो! विषयलम्ट के सहवास से दूर रहे। आदि देव नारायण का संग करो। दुष्टों का संग छोड़ के नारायण का संग पाना ही अच्छा है।।24।।

हे असुरो के बच्चो, अच्युत को प्रसन्न करना बहुत कष्ट की बात नही है। क्योंकि वे सर्वत्र व्याप्त रहते हैं, सारे जीवियों के देह में बिम्ब रूप में रहते हैं।।25।।

भगवान का प्यार पाना तनिक कष्ट की बात नही है। अच्युत, अनन्त, गोविन्द तीन बार इन तीन प्रधान नामों को बोलने से अच्युत सम्प्रीत होते हैं। इस प्रपंच में ऐहिक सुख पाने के लिए पैसा कमाना पड़ता है। पैसा कमाना कठिन है। कमाने से भी कठिन उसकी रक्षा करना है। रक्षा करने से भी कठिन उसका योग्य विनियोग करना है। यह एक तरह का चिपकना है। एक बार लग गया तो छोड़ने वाला नही है।

छोटे-बड़े सारे प्राणी और वृक्षों से लेकर चतुर्मुख ब्रह्मा तक सारे जीवों में भगवान रहते हैं। भौतिक पदार्थों में पंच महाभूतों में, महत्तत्वादि सारे तत्वों में वे ही रहते हैं।।26।।

सत्वादि गुणों में, प्रलय काल में, सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वेश्वर नाशरहित भगवान अकेले रहते हैं। ऐसे भगवान की उपासना कष्ट कारक नही है।।27।।

उनकी वर्णना पूर्ण रूप से कोई नही कर सकता। किन्तु अन्तर्यामी होकर ह्रदय के छोटी गुफा में रहते हैं, यह वर्णना कर सकते हैं। भगवान काल रूप से सर्वत्र व्याप्त होकर रहते हैं। उनका व्यापकत्व उन्ही का है, वे अचिंत्य शक्ति वाले हैं, विकल्पित हैं, विविध रूपों में स्थित हैं।।28।।

भगवान शुद्ध ज्ञानन्दं रुपी हैं! वे जीव के आवरण बनने वाली, गुण के सृष्टि के कारण बनने वाली प्रकृति के कारण, जीव को वे दिखाई नही देते हैं। ऐसे शास्त्र कहता है।।29।।

सारे प्राणियों में भगवान रहते हैं। इसी कारण तुम लोग अपने असुर स्वभाव को छोड़कर प्राणियों में दया करो, प्यार करो इसी से भगवान संतुष्ट होते हैं।।30।।

प्रह्लाद जी दैत्य बालकों को उपदेश दे रहे हैं। सबके ऊपर दया करना चाहिए, यह विचार प्रस्ताव करते हुए

आगे बोलते हैं - हमें आनन्द चाहिए, सुख चाहिए, ऐश्वर्य चाहिए, इनको भोगने की शक्ति चाहिए। ये सब भगवान दिये तो हमें मिलता है। इन सबकी कुंजी भगवान के हाथ में है। वे आनन्द की निधि हैं, सुख के सागर हैं, ऐश्वर्य के ईश्वर हैं, वे केवल आनन्द गुण पूर्ण सुखानुभव का रूप हैं। उनसे हमें प्यार करना चाहिए। **यथा - यथा उपासते तदेव भवति** हम भगवान को जिस रूप में उपासना करते हैं, उसी को पाते हैं। निज सुख आनन्द ऐश्वर्य को चाहने वाले को भगवान से ही प्यार करना चाहिए। भगवान से प्यार करने का अत्यन्त सुलभ मार्ग है, **भूतेषु भूतेषु दयां कुरूत।**

हम आनन्द को पाने के लिए पैसा कमाते हैं। कमाया हुआ पैसा नष्ट न हो इसके लिए बैंक में रखते हैं। वह भी न दिवाला होने वाले बैक में। भगवान न दिवाला होने वाला आनन्द ऐश्वर्य का बैंक है। उनका प्यार और विश्वास पाने के लिए प्रह्लाद जी कहते हैं, **दयां कुरूत सौहृदम्।** हम अच्छे काम करें अच्छे सम्बन्ध रखे तो घर का यजमान सन्तुष्ट होता है। ऐसे ही भगवान की प्रजा-सकल भूत-के ऊपर दया करो। **भूतेषु - भूतेषु दयां कुरुत।**

केवल दया करना पर्याप्त नही है। असूया और मात्सर्य नही होना । असूया और मात्सर्य के बिना किसी से बदले में कुछ न चाहते हुए केवल भगवत्प्रीति पाने के लिए सारे प्राणियों में दया करना चाहिए। **उन्मुच्च आसुरं भावम् दयां कुरुत।** मन में रहने वाले आसुर भाव को छोड़कर प्राणियों के ऊपर दया करनी चाहिए। भगवान भगवद्गीता के सोलहवाँ अध्याय में कहते हैं कि **मामात्म परदेहेषु प्रद्विष्वन्तोभ्य सूयका:।** अन्य जीवों के शरीर में रहने वाले भगवान से द्वेष करने वाले असुर होते हैं। हिरण्य कश्यप अपने प्यारे पुत्र प्रह्लाद जी से द्वेष क्यों किया? वह अपने पुत्र से द्वेष नही किया। किन्तु पुत्र में रहने वाले भगवान से उसका द्वेष था। भगवान से द्वेष करना असुरों का स्वभाव है। प्रह्लाद जी कहते हैं इस आसुर भाव को त्यागना चाहिए। आसुरी भाव को त्यागने के बाद ही हम भगवान के पूजा करने योग्य होते हैं। पिता भगवान के प्रिय जो हैं, उनसे द्वेष किया, पुत्र भगवान के जो प्रिय हैं उनसे प्यार किया। यही आसुर भाव को छोड़ने का रास्ता है। हमे अपने मन में रहने वाले आसुर भाव को मूल सहित उखाड़ कर फ़ेकना है। सभी के मन में तात्कालिक रूप में आसुर भाव आता रहता है। उस आसुर भाव को छोड़ना चाहिए। हमारे मन से दूर हटना चाहिए। किन्तु स्वभावजन्य आसुर भाव कभी भी नही जाता। दैत्यों का स्वभाव ही आसुर है।

प्रह्लाद जी दैत्य बच्चों के ऊपर दया किये। वे किसी को सुख नही दिये, पैसा नही दिये किन्तु दु:खपरिहारक दयासागर भगवान के बारे में उनके मन में विश्वास पैदा किये, भगवान के ऊपर प्यार और भक्ति को जगा दिये। प्रह्लाद जी खुद का कल्याण पाने का सही रास्ता उन दैत्य बालकों को दिखा दिये, प्रह्लाद जी अपने में रहने वाले अनिर्देश्य और व्यापक भगवान को उन छोटे छोटे दैत्य बालको में आवाहन किये। इससे उन बच्चों का दुष्टतन दूर हो गया। कार्तिकमास में जैसे एक दीप से दूसरा दीप जलाया जाता है, वैसे प्रह्लाद जी उन दैत्य बच्चों के हृदय में ज्ञान की ज्योति जलाये। पहले शन्डामर्को से दिए हुए दुष्ट पाठ को समूल उखाड़ कर उनके अज्ञान का नाश करते हुए उनके मन में ज्ञान

का बीज बोये। **ययादृश्यति अधोक्षजः तुष्यति** दूसरों में रहने वाले भगवान को पहचान कर सेवा रूप में उनके दु:ख को हटाने से भगवान इन्द्रिय गोचर होकर सारे दु:खो को निवारण करते हैं। इससे असुरों का असुरत्व नाश होता है और भगवान का अनुग्रह आशीर्वाद मिलता है। इससे सही आनन्द की प्राप्ति होती है।

प्रह्लाद जी अपने आयु वाले छोटे बच्चों के सामने प्रवचन दे रहे हैं। वे सारे उनके मित्र हैं। कल तक स्वयं उनके साथ बैठ कर पाठ पढ़ते थे। एक ही कक्षा में बैठकर गुरु शण्डामर्क के शिष्य बने थे। किन्तु एक ही दिन में बहुत बड़ा बदलाव आ गया है। आज प्रह्लाद गुरु बन गये हैं।बच्चों को पाठ पढ़ा रहे हैं। वह भी गुरु शण्डामर्क से बढ़कर बड़ा गुरु बने हैं।यह बहुत बड़ा आश्चर्य की बात है। अपूर्व परिवर्तन है, ये कैसे हुआ? दैत्य बालक प्रश्न पूछते हैं कि प्रह्लाद, ये सारे तुमने कहाँ से सीखा? किसने आपको सिखाया? बचपन से तुम हमारे पास हो, तुम ये सारे अपूर्व विषय को कहाँ सीखे, कब सीखे? प्रह्लाद जी उत्तर देते हैं - मैं ठीक तरह से अध्ययन किया हूँ। मानव को सम्पत और ज्ञान आने के लिए दो रास्ता हैं। एक आगर्भ से मिलने वाला सम्पद। पिता जी अपने बच्चे के लिए वह जन्म लेने के पहले ही बहुत सम्पत को इकठ्ठा करता है, अपनी सम्पदा बढ़ाता रहता है, बैंक में डालता है, जमीन जायजाद खरीदता है, मन्दिर मकान बनवाता है। यह जो सम्पत्ति आती है। इसको आगर्भ सम्पत्ति बोलते हैं। लेकिन इस सम्पत्ति के पुत्र के हाथ में जाने के बाद वह पुत्र उसी पैसे से दुष्टता के अधीन हो सकता है और सारे सम्पत्ति का नाश होता है। प्रह्लाद जी को भी आगर्भ सम्पत्ति मिली, यह सम्पत्ति नाश होने वाली नही है। प्रह्लाद जी को उत्तम संस्कार वाला, उत्तम साधना वाला, उत्तम विद्या माँ के गर्भ में रहते समय मिल गया। महा भगवद्भक्त नारद जी प्रह्लाद जी को उपदेश दिये। उसी कथा को प्रह्लाद जी दैत्य बालकों के समान कहते हैं - मेरे पिता जी तप करने के लिए चन्द्र द्रोण पर्वत गये थे। उस समय साधकर देवेन्द्र मेरी माँ कयाधु को जबरदस्ती से अपने घर ले जा रहे थे। रास्ते में नारद जी इन्द्र से मिले और कहे कि यह काम देवेन्द्र के लिए योग्य नही है। तब इन्द्र जी ने कहा - मै इनको दुष्ट इरादे से नही ले जा रहा हूँ। एक हिरण्य के कारण हम दु:ख भोग रहे हैं। कयाधु गर्भवती है। इनके गर्भ से और एक दुष्ट हिरण्य का जन्म न हो इसके लिए इनको अपने वश में रखते हुए, बच्चा का जन्म होते ही उसको मार डालने का विचार मेरा है। इस बात को सुनकर नारद जी इन्द्र को समझाये कि मेरी (प्रह्लाद की) माँ के गर्भ से एक महा भगवद्भक्त का जन्म होने वाला है। नारद जी मेरी माँ को अपने आश्रम में रखे। नित्य नित्य सत् कथा और भगवत् संकीर्तन करते थे।वहाँ पिता जी जंगल में तप करते थे, यहाँ मै माँ के गर्भ में मंत्र पाठ करता था, जप तप करता था।दस हजार वर्ष तक नारद जी का अमृत समान ज्ञानोपदेश मुझको मिलता रहा। रोज रोज मै बढ़ता रहा, साथ साथ मेरा ज्ञान का विस्तार होता रहा।

आदि पुरुष अनन्त रूपी भगवान संतुष्ट हुए तो क्या नही मिलेगा? उनके पाद कमल के सेवा करने वाले हमको उनके अनुग्रह छोड़कर मिलने वाले अन्य गुणत्रयात्मक विषय सुख से क्या मिलने वाला है। त्रिगुण रहित मोक्ष की आकांक्षा भी जब नही है, तब अन्य धर्मादि पुरुषार्थ से हमें क्या होने वाला है।।31।।

धर्म, अर्थ, काम ये त्रिवर्ग कहलाता है। उसका ज्ञान, नीति शास्त्र, दण्ड शास्त्र, कृषि शास्त्र

इत्यादि इन लौकिके शास्त्रों से हमें क्या लाभ है। इन सबको परम पुरुष परमात्मा को समर्पित करने में ही जीवन की सफलता है। यह मेरा दृढ़ अभिप्राय है।।32।।

यह निर्मल ज्ञान दुर्लभ है। इसको नरक के मित्र धर्म पुत्र नारायण नारद जी को उपदेश दिये। ऐसा उपदेश भगवान के पाद धूलि से अपने शरीर को धोए हुए विरक्त एकांत भक्तों के लिए मिलने वाला है।।33।।

मोक्ष के साधन बनने वाला विशेष मोक्ष साधन ज्ञान के साथ शुद्ध भागवत धर्म को मैं पहले श्री हरि का अपरोक्ष ज्ञान वाले नारद जी से सुना था।।34।।

दैत्य पुत्र पूछते है- प्रहलाद! हम तुम सारे गुरु पुत्र शण्डामर्क जी के पास शिक्षण पाते हैं, अन्य गुरु को देखे नही हैं। स्वयं भगवान आकर भी बच्चों को उपदेश देते हुए न दिखे।।35।।

अन्त: पुर में रहने वाला छोटा बालक तुम को नारद जी के साथ कैसे सम्पर्क हुआ। यह संशय हमारे मन में मण्डरा रहा है इस संशय को तुम्ही शमन करो।।36।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में सातवाँ स्कन्ध में छठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

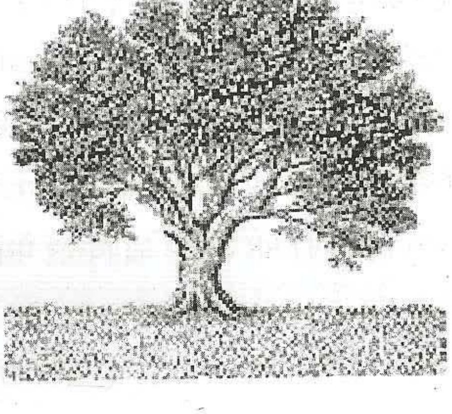

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः

अध्याय - सात

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

नारद जी कहते हैं- दैत्य बालक के इस प्रश्न के उत्तर में महा भगवद् भक्त प्रहलाद हँसते हुए कहते हैं।।1।।

प्रहलाद जी कहे- हमारे पिता जी तप करने के लिए मंदरद्रोण पर्वत को गये थे। इस समय को साधते हुए देवता लोग दानव के ऊपर चढ़ाई किए।।2।।

इन्द्रादि देवता आपस में बोलने लगे कि साप जैसे चीटियों से अपना मरण पाता है वैसे हिरण्यकश्यप अपने पाप से नाश होता है।।3।।

देवता लोग असुरों को मारने लगे। उनके इस महा प्रयास को देखकर असुर नायक घबड़ाकर दसों दिशाओं में दौड़ गये।।4।।

अपने पत्नी पुत्र घर जमीन जायदाद को छोड़कर जीव के भय से जहाँ रास्ता मिला वहाँ दौड़ गये।।5।।

जय पाने के बाद देवताओं ने हमारे पिता जी के राज घर को लूट लिए। देवेन्द्र हमारी माँ रानी कयाधु को बंधक बनाकर अपने साथ ले गया।।6।।

इन्द्र के हमारी माँ को ले जाते समय भय से मेरी माँ रोती रही। उस समय भगवान की इच्छा के अनुसार महर्षि नारद जी वहाँ आये।।7।।

वे इन्द्र से बोले- हे महा भाग्यशाली देवेन्द्र, ये पतिव्रता स्त्री है। इसको तुम छूना भी नहीं। छोड़ो, इसको छोड़ दो।।8।।

देवेन्द्र कहते हैं- नारद जी! इसके गर्भ में बलिष्ठ राक्षस का दैत्य संतान है। प्रसव होते तक यह मेरे वश में रहे। बच्चा जन्म लेते ही उसको मैं मार डालूँगा हूँ एक और हिरण्यकश्यप को मैं नही चाहता। बच्चे को मारने के बाद इसको छोड़ दूगाँ।।9।।

नारद जी कहते हैं- इसको होने वाला बच्चा पाप रहित है, साक्षात महाभागवत, भगवान के सेवक, बलिष्ठ और योग्य है इसको तुम मार नही सकते।।10।।

नारद जी की बात को मानते हुए इन्द्र ने मेरी माँ को छोड़ दिया। हरि प्रिय देवेन्द्र मेरे ऊपर श्रद्धा

रखते हुए माँ को परिक्रमा करते हुए स्वर्ग को चले गये।।11।।

बाद में नारद जी मेरी माँ को अपने आश्रम में ले गये और समाधान करते हुए पति के वापस आते तक अपने यहाँ ही रहने का आदेश दिया।।12।।

नारद जी के आदेश को मानते हुए मेरी माँ ने मेरे पिता जी के अपने घोर तपस्या को पूर्ण करके आने तक वही वास किया।।13।।

गर्भवती मेरी माँ अपने गर्भ में रहने वाले मेरे क्षेम का चिन्तन करते हुए परम भक्ति से नारद मुनि की सेवा की और सुलभ प्रसव के लिए प्रार्थना करती रही।।14।।

नारद जी परम करुणा रूप और समर्थ हैं। वे गर्भ की रक्षा और इच्छा प्रसव दोनो के लिए अनुकुल वर दे दिये वे निवृत धर्म रूप वाला भगवान के बारे में मुझे उद्देश्य कर मेरी माँ को उपदेश देते रहे।।15।।

नारद जी कयाधु को उनकी इच्छानुसार प्रसव होने का वर देने के कारण हिरण्यकश्यप बहुत समय तक तप करते रहने के बाद उनके तप पूर्ति होते तक नारद जी के आश्रम में रही। हिरण्यकश्यप के आने के बाद ही बच्चे को जन्म दिया। हिरण्यकश्यप के प्रह्लाद को शिक्षा देते समय उसकी आयु पाँच वर्ष की थी।

नारद जी के उपदेश देकर बहुत समय बीत चुके हैं,उसके साथ मेरी माँ स्त्री होने के कारण अन्य चिंताओ में उनके उपदेश को भूल गई। किन्तु नारद जी के अनुग्रह से मैं इस उपदेश को पूरा-पूरा याद रखता हूँ।।16।।

मेरी बातों में विश्वास रखो। आप विश्वास रखें तो आपको मेरे जैसे तत्वज्ञान मिल जायेगा। इसको सुनने वाले बालक और स्त्रियों के लिए भी वह तत्वज्ञान मिलेगा।।17।।

वृक्ष में फल आते हैं,वे सड़ जाते हैं, और नाश हो जाते हैं, वैसे ही यह शरीर जन्म लेकर छः विध का विकार पाकर अन्त मे नाश होता है। ये देह के विकार हैं, किन्तु देह में नियामक होकर रहने वाले भगवान को इन विकारों का परिणाम नही होता, क्योंकि वे परिणाम सारे देह में रहने वाला काल नामक भगवान से ही होते हैं।।18।।

शरीर को होने वाले छः विकार जीव के अभिमान के कारण होते हैं। भगवान के लिए यह अभिमान होता नही। भगवान नियामक हैं, शरीर उनके अधीन है,यह समझकर शरीर के ममता को छोड़ना चाहिए। यह ब्रह्म तर्क में उक्त है।

प्रह्लाद जी कहते हैं - इस शरीर को जन्मादि छः विकार होते हैं। इनको षडूर्मि कहते हैं। वे हैं **जायते, अस्ति, वर्धमान, परिणाम, विपरिणाम, म्रियते** ये छः जीवन सागर की छः लहर हैं। ये रोज छूते, मारते, गिरते, गिरवाते हमको गिरवा देते हैं। **जायते** गर्भ में बच्चा पैदा होता है। वहाँ उसका हाथ, पाँव, आँख, कान इत्यादि इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। किन्तु स्त्री, पुरुष, काला, गोरा मालूम नही होता। गर्भ से बाहर आने के बाद उसको एक अस्तित्व मिलता है। इसी कारण पहले **जायते** कहकर बाद में **अस्ति** कहे हैं।बाद में **वर्धते**। बच्चा जन्म लेने के बाद बढ़ता जाता

है। बढ़कर मानव बन जाता है। 21 वर्ष तक यह जीवन यात्रा चलती है यह **वर्धते**। 40 वर्ष तक युवक बढ़कर प्रौढ़ होता है यह **परिणाम**। 40 के बाद आरम्भ होता है **विपर्यय**। आँख की दृश्य शक्ति कम होने लगती है, जंघों मे दर्द होता है, और बाल पकने लगता है। 60 हो गया तो विपर्यय का **विपरिणाम** होता है। देह की एक एक शक्ति कम होते हुए अन्त में एक दिन मृत्यु आ जाती है। हमे पहले वाले जायते और अस्ति का अनुभव नही आती है किन्तु प्रह्लाद महाज्ञानी हैं। पूर्व जन्म के संस्कार के कारण उनको पूरा पूरा ज्ञान है। माँ के गर्भ में ही वे इस ज्ञान का फल पा चुके थे।

फलानामिव वृक्षस्य कालेन ईश्वर मूर्तिना

यह शरीर जड़ है। इस शरीर का अभिमानी जीव इसमें वास करता है। जीव का प्रेरक बनकर भगवान इस जीव के साथ है। बच्चों को इस विचार को समझाने के लिए प्रह्लाद जी एक दृष्टान्त देते हैं। वृक्ष में फूल और फल होते हैं। वृक्ष एक ही होता है, और समान होता है। यह वृक्ष बढ़कर बहुत बड़ा होता है। इसमें फलने वाले फूल विकसित होते हैं, बाद में फल के रूप पाते हैं। इस प्रकार विकार पाने वाला फल एक दिन नीचे गिर जाता है, और सड़कर नाश को पाता है। वृक्ष के लिए विकार नही है। देह के लिए विकार है। वह बाल्य, यौवन, बुढ़ापा और मृत्यु इत्यादि छः विकारों को पाता है। किन्तु जीव के लिए विकार नही होते। भगवान को काल से हो या और अन्य किसी तरह से विकार नही है। **प्रत्यगात्म स्वरूपेण काल रूपेण च स्वयं** भगवान स्वयं काल रूप हैं। उनके लिए ये विकार नही होते। काल आने पर फूल फलता है, फल गिरता है, सड़कर नाश होता है। किन्तु जीव या भगवान इस रीति से काल के कारण नाश नही पाते। काल जड़ है यह जड़ काल फल को कैसे पकता है। उसको फल को पकाने या उसको नाश करने की शक्ति नही है। यह जड़ काल चेतन शरीर को कैसे विकार उत्पन्न करता है। काल नियामक भगवान यह काम करते है। एक दण्ड की सहायता से हम वृक्ष में रहने वाले फल मे गिरा देते हैं, किन्तु दण्ड स्वयं फल को गिरा नही सकता। एक आदमी के हाथ में दण्ड लेकर फल को मारने के बाद ही फल गिरता है। वैसे ही काल नामक भगवान के काल में रहने के कारण काल को यह शक्ति आती है। जिसमें भगवान रहते हैं, उसमें शक्ति रहती है। भगवान जिसको छोड़ देते है, उसका नाश होता है, वह सड़ जाता है। भगवान की शक्ति का अर्थ उनकी नियामक शक्ति इसको प्रह्लाद जी द्वारा दिए हुए यह वृक्ष का दृष्टान्त भगवत तत्व को हमें ठीक तरह से समझाता है। भगवान काल नियामक हैं। वृक्ष आत्मा है, फल उसका देह है। भगवान की शक्ति जीव के साथ इस शरीर में रहे तो यह चेतन सारे काम करते रहते हैं। कई लोगों को 40 वर्ष के बाद देखने पढ़ने में कष्ट होता है, चश्मा को पहनना पड़ता है, कई लोगों को 80 तक भी उसकी आवश्यकता नही पड़ती। यह काल का परिणाम है तो सबको समान होना चाहिए। यह केवल काल का परिणाम नही है। अन्दर रहने वाले भगवान के संकल्प के अनुसार ये यह सारा चलता रहता है। सर्वशक्तिशाली भगवान सबके हृदय में रहते हुए उनकी योग्यता और कर्म के अनुसार नियंत्रण करते रहते हैं। इस भूमि में रहते तक काल का विकार दीख पड़ता है। एक बार इस सृष्टि को पार करते हुए इस विश्व का सम्बन्ध छूट जाने के बाद यह काल का निर्बन्ध चला जाता है। भागवत में इसके बारे में एक सुन्दर कथा आती है। अपनी पुत्री रेवती के लिए वर ढूढ़ते हुए रेवती के पिता सत्य लोक में चतुर्मुख ब्रह्मा जी को देखने गये थे। वहाँ एक निमिष के लिए उनको रुकना पड़ा। तब तक भूमि में रहने वाली रेवती को सोलह हजार वर्ष हो

गये थे।

जड़ जीव और भगवान इन तीनों में बड़ा अन्तर है। फल में विकार होना स्वाभाविक है। वृक्ष को फल के समान बहुत जल्दी में विकार नही होता। वृक्ष का जीवन बहुत बड़ा होता हैं फिर भी उसको भी विकार है। बीज सस्य होकर बड़ा वृक्ष बनता है। अन्त में एक दिन नाश पाता है। शरीर फल के समान जल्दी नाश होता है किन्तु शरीर में रहने वाला जीव भगवान के समान अनादि और नित्य है। उसके स्वरूप देह के लिए कोई विकार नही है। किन्तु उसके लिए देह आते हैं और जाते हैं। यह शरीर नाश रूप का विकार उसको है। वह एक शरीर से बदल करते हुए दूसरे शरीर को जाता है। उसका यह वाह्य शरीर नाश होता है, किन्तु मूल भूत शरीर कभी भी नाश नही होता। वृक्ष के लिए उच्चत्व और नीचत्व है। वर्षा में वृक्ष बढ़ता है, गर्मी में घटता है। एक पात्र भरकर आग में रखा हुआ दूध गर्म होने के बाद ज्यादा होकर नीचे गिर जाता है। किन्तु आग से नीचे रखे तो दूध पहले जैसे उतना ही रहता है। दूध जैसे समान होते हुए भी ज्यादा कम होता है वैसे ही जीव का उच्चत्व नीचत्व है। एक गुब्बारे का दृष्टान्त इसका विवरण दे सकता है। गुब्बारे में हवा भरे तो छोटा गुब्बारा हमारे सामने एकदम बड़ा होता है। किन्तु हवा छोड़ने के बाद वह पहले जैसे छोटा बनता है। जीव भी सुख दु:ख से आनन्द और दु:ख को पाते हुए छोटा मोटा होता रहता है। यही जीव के अल्प स्वरूप का नाश है। वृक्ष के समान वह सम्पूर्ण नाश नही पाता। भगवान के लिए वृक्ष के समान हो या जीव के समान हो किसी तरह का नाश नही है उनका पूर्ण नित्यत्व है, यह भगवान की विशेषता है।

प्रह्लाद जी छोट बच्चों के लिए वृक्ष के संदेश में नित्य, नित्यानित्य और अनित्य नाम के तीन विषयों के विवरण से एक बड़ा तत्व ज्ञान समझा दिये। **अहम् ममेत्य तद्भावम् देहादै मोहजम् त्यजेत्** प्रह्लाद जी आगे कहते हैं कि बच्चो पहले हमे मैं और मेरा ये दो भाव को त्याग देना है। इसके लिए पहले इस देह के अभिमान को छोड़ देना चाहिए। यह देह हमारे मैं और मेरा अभिमान को बढ़ाने वाला है। हम इस शरीर को सबसे बढ़कर प्यार करते हैं। देह के ऊपर के प्यार से मैं और मेरा भाव और बढ़ता है। यह परस्पर अवलंबित है। देह के ऊपर के प्यार से ममत्व बढ़ता है। ममत्व से देह के ऊपर का प्यार बढ़ता है। हम रोज रोज मरने वाले को देखते हैं। हमारे घर के बगल में ही मरण होता है। टहलने गये तो गंगा के तट पर मरे हुए लोगों का दर्शन होता है। इतने मरे हुए लोगों को देखने के बाद भी हम अपने शरीर को शाश्वत समझते हैं। हमारे मन में यह दृढ़ धारणा है कि यह मेरा शरीर मरने वाला नही है। यह शरीर अनित्य है, कृतघ्न है, हम इसके लिए बहुत श्रृंगार करते हैं। इसके बदले में यह शरीर हमें दुर्गन्ध और मल को देता है। शरीर के अन्दर जो कुछ है, वह बाहर आया तो मल होता है। उसके निवारण के लिए हमे पानी, मिट्टी, साबुन और वस्त्र का प्रयोग करना पड़ता है। इस शरीर को सुख रूप से रखने के लिए हम बहुत सारे प्रयत्न करते हैं। लेकिन यह शरीर हमे कष्ट देता रहता है। हमे कितने पोषण करने के बाद भी यहाँ रोग, रुजिन और आपत्तियाँ प्राप्त होती हैं। **पूर्व जन्म कृतम् पापम् व्याधि रूपेन पीड़ितम्** पूर्व जन्म में किया हुआ पाप महाव्याधि रूप में कष्ट देता है। इसके लिए बच्चो, **देहादौ मोहजं त्यजेत**। यह मेरा शरीर मै इसको प्यार करता हूँ, इस मोह को छोड़ देना चाहिए।

प्रह्लाद जी दैत्य के बच्चों के ऊपर दया किए। इसका अर्थ वे उनको लौकिक सुख नही दिये। दया सागर दु:ख

दूर करने वाले भगवान के ऊपर उनकी श्रद्धा को जगा दिये। भगवान के ऊपर प्यार और भक्ति करने का रास्ता दिखा दिये। अच्छे वस्तु को देना सौहार्दता होती है। प्रह्लाद जी अपने में रहने वाले अनिर्देश्य और व्यापक भगवान को उन छोटे जीव राशियों में आवाहन किए। इससे उन बच्चों की दुष्टता दूर हो गयी। प्रह्लाद उनके हृदयों में ज्ञान के दीप जलाये। शण्डामर्क जो दुष्ट शिक्षण दिये थे उसको नष्ट करते हुए नारद जी के दिये हुए शिष्ट शिक्षण के बीज को दिल में बो दिये। दूसरों में रहने वाले भगवान को देखते हुए उनके दु:खो को दूर करना यही भगवान की पूजा होती है। इससे असुरत्व का नाश होकर भगवान का अनुग्रह और आशीर्वाद मिलता है। तब सही आनन्द मिलता है।

भगवान के ये बारह लक्षण हैं, अनित्यत्व, देहहानि, दु:ख प्राप्ति, अपूर्णता (ये चारविधि के नाश,) ये भगवान को होते नही। इसके साथ भगवान नैमित्तिक नाश रहित, दोषरहित, स्वतंत्रकर्ता, समग्र ब्रह्माण्ड़ का समग्र ज्ञान वाले, सबको आश्रय देने वाले, विकार रहित, केवल वे अपने को पूर्ण रीति से जान सकते हैं। (और कोई उनकी समग्र जानकारी नही पा सकते।) वे स्वतंत्र हैं, सर्वव्यापक हैं, पुण्य-पाप के लेप से दूर हैं और अज्ञानदि आवरण रहित हैं।।19।।

इन बारह लक्षणों को समझ लेने से जीव और भगवान के भेद और सम्बन्ध का ज्ञान होता है।

आत्मा नित्य: - भगवान नित्य है। नित्यत्व केवल भगवान की ही विशेषता है। जीव ब्रह्म और महा लक्ष्मी इनमे कोई पूर्ण नित्य नही है। **नित्यो - नित्यानाम् चेतनश्चेतनानाम्** सारे नित्य चेतनाओं में भी भगवान सबसे अधिक चेतन है, नित्य है। यह शरीर नित्य नही है, हमारे साथ आता है, हमारे साथ रहता है, हमारे साथ चलता भी है। **नाश: चतुर्विध: ज्ञेय: अनित्यत्वम् देह हानि: दु:ख प्राप्ति: अपूर्णता।** ये चारों नाश कहलाते हैं। कई वस्तु नाश होते हैं। कपड़ा बन गया, पुराना हो गया, फटा और नाश हो गया। बर्तन बना फटा नाश होगया। ऐसे ही यह शरीर अनित्य है। जीव परमात्मा के समान नित्य है। किन्तु शरीर के साथ उसका मरण देखा जाता है। कष्ट आये तो आदमी, मैं मर गया बोलता है। अपने सर्वस्व को खो देने वाला मैं मर गया कहता है। इस रीति से जीव को देह हानि के साथ दु:ख से भी नाश होता है। तीसरी **अपूर्णता।** जीव कभी भी पूर्ण नही होता। अणु रूप जीव से लेकर ब्रह्मा जी और स्वयं लक्ष्मी जी तक सारे चेतन अपूर्ण होते हैं। इसके लिए बच्चो! समझ लो, हम सब नित्य नही हैं, हमारे पिता, तुम्हारे पिता, और किसी के पिता नित्य नही हैं। केवल भगवान अकेले नित्य है, शाश्वत है, बाकी के सारे अनित्य और अशाश्वत हैं।

अव्यय: - भगवान व्यय रहित है। उनमें कभी भी खर्चा करने का प्रसंग नही आता। गुण से भरे हुए हैं। उनके गुण में कभी भी व्यय नही होता। जीव के शरीर के लिए बढ़ना और घटना होता रहता है, अन्त में नाश भी होता है। भगवान व्यय रहित है, ज्ञानानन्द पूर्ण है। भगवान को नित्य शाश्वत और ज्ञानानन्द पूर्ण शरीर है। इस रीति से भगवान की उपासना करने वाले चिर यौवन को पाते हैं।

शुद्ध:- अपाप विद्धम् भगवान दोष रहित है। उनको दोष का सम्पर्क नही होता। जीव अस्वतंत्र होने के कारण उनको पूर्ण शुद्धि नही मिलती। भगवान परम शुद्ध है। जब तक वे जीव के साथ रहते हैं तब तक जीव भी शुद्ध रहता है।

ऐकः- भगवान एक है, मुख्य है, अकेले हैं। उनके समान और उनसे अधिक कोई नही है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि मैं ही सबसे अधिक बनूँ। वह चाहता है अपने समान और कोई न हो, अपने से बढ़कर कोई भी न हो। एकैक वीर, एकैक नायक ऐसे शब्द से बुलाने के लिए हर एक इच्छा करता है। किन्तु **एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्म** ब्रह्म केवल एक है। भगवान बिना कष्ट से इस सृष्टि का निर्माण करते हैं। उसके लिए पानी ऊर्जा इत्यादि की आवश्यकता नही है। किसी के सहाय के बिना ही भगवान विश्व का कृषि करते हैं। विष्णु सहस्रनाम में भगवान के नाम आते हैं, **एकोनैकः स वहः कः किं** इत्यादि।

क्षेत्रज्ञः - जो क्षेत्र को जानता है, उसको क्षेत्रज्ञ कहते हैं। जमीन क्षेत्र कहलाता है। इसको जानने वाला किसान होता है। किन्तु किसान क्षेत्रज्ञ नही बनता। हम इस शरीर को अपना कहते हैं। इसके बारे में हम क्या जानते हैं? इसको कुछ हुआ तो डाक्टर के पास भागते हैं। इस शरीर के बारे में, खेत के बारे में और सारी प्रकृति के बारे में केवल भगवान ही पूर्ण रीति से जानते हैं। इसी के लिए केवल भगवान ही क्षेत्रज्ञ हैं। **क्षेत्रंजनयति इति क्षेत्रज्ञः** भगवान इस क्षेत्र का निर्माण किए हैं। वे ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का निर्माण किए हैं, नियमन करते हैं इसके लिए वे क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं।

आश्रयः - इस सृष्टि का भगवान निर्माण किए हैं और आश्रय भी उन्होने दिया है। अब रहने वाले आगे आने वाले, सबको छोड़कर मुक्त होने वाले सबको आश्रय देने वाले वे ही हैं। वे **मुक्तानाम् परमा गतिः हैं।** वे चौदह लोको को आश्रय देने वाले हैं। सबको आश्रय देने वाले इस रीति से उपासना किया तो वे हमे सुन्दर आश्रय देते हैं। हमको अपने माता पिता में गौरव है। वे हमे आश्रय दिये हैं। लेकिन उनके द्वारा बनाया हुआ यह आश्रय, घर-मकान कभी गिर जाता है। आज कल के आश्रय योजना में बनने वाले घर बनते-बनते ही गिर जाते हैं। किन्तु भगवान से रचाया हुआ यह ब्रह्माण्ड नाश होने वाला नही है। एक ही भगवान सबको आश्रय देने वाले हैं। **चन्द्रमा मनसो जाता प्राणाद् वायु रजायत, नाभ्याआसीदन्तरिक्षम्** ये सारे भगवान से जन्म लिए। इस रीति से आराधना करने से हम अच्छे आश्रय पायेंगे इतना ही नही और अन्य लोगों को आश्रय दे सकेंगे।

अविक्रयः - भगवान में विकार नही है। विकार जहाँ नही है वहाँ भगवान का विशेष सन्निधान होता है। जीव में विकार भरे हैं। आज जैसा है कल वैसा नही रहता। कल का हाल परसो को और बदलता है। हर क्षण में यह प्रकृति बदलती रहती है। भगवान को छोड़कर इस प्रकृति में रहने वाले अन्य सब कुछ बदलते रहते हैं। भगवान अनादि काल से हैं, और अनन्त काल तक रहेंगे। इसलिए उनको अविक्रय कहते हैं। विकार न रहना भगवान का धर्म है। विकार न रहने वाले भगवान की पूजा विकारवान हम लोग कैसे करें? हमारे पूजा से उनको कुछ होने वाला नही है। हम पूजा न करे तो भी उनको कुछ होने वाला नही है। भगवान निर्विकार हैं। हमें कष्ट आये तो हम दुःख करते हैं। भगवान को दुःख कष्ट की बात ही नही है। उनको कायिक, मानसिक, विकार नही होते हैं। उनको श्रम नही होता।

स्वदृग् - यह भगवान का और एक विशेष गुण है। इस प्रपंच को देखने के लिए हमे आँख होते हुए भी प्रकाश जैसे दूसरा माध्यम नही रहे तो हम देख नही सकते। कई लोगों को आँख प्रकाश दोनों होते हुए भी चश्मे की जरुरत पड़ती है। हम प्रकाश के बिना देख नही पाते। आँख है तो प्रकाश होना चाहिए। **बृहदारण्यक उपनिषद** में एक सुन्दर चर्चा

चलती है। ऋषि याज्ञवल्क को उनकी पत्नी पूछती है, सूर्य अस्त होने पर रात में कौन गति है इस प्रश्न को याज्ञवल्क उत्तर देते हैं **रविः अस्तंगते चन्द्रमसैव ज्योतिषा आस्ते।** जब सूर्य नही रहता है, तब चन्द्र ही रात का आधार है। प्रश्न आगे बढ़ता है। चन्द्र न रहने पर उत्तर में बताते हैं अग्नि ही आधार है। अग्नि भी न रहे तो इस प्रश्न के उत्तर मे ऋषि बोलते है **आत्मैव अस्य ज्योतिः** आत्मा ही जीव को प्रकाश देते हैं। गार्गी आगे प्रश्न पूछती है आत्मा को प्रकाश कहाँ से आता है। याज्ञवल्क बोलते हैं गार्गी ! इस प्रश्न से तुम्हारा सिर हजार टुकड़ा हो जायेगा। भगवान स्वयं प्रकाशित है। उनके लिए बाहर के प्रकाश की आवश्यकता नही है। वे स्वयं प्रकाशवान हैं। वे स्वदृग हैं। उनके लिए किसी लौकिक वस्तु की अवश्यकता नही है। प्रलय काल में अगाध अंधकार मे वे रहते हैं। उनके लिए भौतिक प्रकाश की आवश्यकता नही होती है। उनके लिए दिन और रात की कोई बदल नही रहती। वे स्वदृक हैं। जीव भी वैसे ही है। मोक्ष पाने के बाद उसको भी स्वरुप भूत ज्ञान मिलने के कारण उसको अन्य प्रकाश की आवश्यकता नही होती। भगवान स्व तेजस से प्रकाशित हैं। वे स्वयं को पूर्ण रीति से जानते हैं। जीव को इन सबका ज्ञान नही रहता। भगवान का रूप क्या है, उनके गुण क्या हैं, मै कहाँ से आया, मुझे कहाँ जाना है, ये सब जीव जानता नही। भगवान के रूप कितने हैं, कहाँ - कहाँ हैं और कैसे हैं, ये सारे विषय भगवान को छोड़कर और किसी को पूर्ण रूप से मालूम नही है। इसी के लिए भगवान को स्वदृक कहते हैं। वे चाहे तो अपना दर्शन देते हैं। उनको देखना हमारे हाथ में नही है।

वश्यः - भगवान के वश मे यह सारा जगत है। वे इस जगत के नियामक होकर इसमें रहते हैं। हम भी इस जगत में रहते हैं। लेकिन अपनी इच्छा के अनुसार हम इस जगत को बदल नही सकते, अपनी इच्छानुसार कुछ भी नही कर सकते। हमारी इच्छा को जब भगवान की इच्छा मिलती है तभी एक काम होता है। किन्तु भगवान अपनी इच्छा के अनुसार कर्तुम्, अकर्तुम्, अन्यथा कर्तुम् शक्त हैं। भगवान के कृपा पात्र रहने वाली **लक्ष्मी बळित्था सूक्त** में कहती है, **रुद्रम् कामये तंतमुग्रम् करोमि, ब्रह्मम् कामये तंतब्रह्माणं कृणोमी।** ऐसे रहते हुए भगवान तो कुछ भी कर सकते हैं। वेदव्यास जी एक कृमि को राजा बनाकर उससे राज्य चलाये।

व्यापकः - भगवान इस ब्रह्माण्ड में पूर्ण रीति से व्याप्त हैं। वे सभी जगह रहते हैं। सभी वस्तुओं में स्वामी बनकर रहते हैं। इस ब्रह्माण्ड में जो जो वस्तु है उन सबमें भगवान व्याप्त हैं। भगवान के बिना किसी वस्तु का अस्तित्व नही रहता। **आनन्दमयोभ्यासात्** इस सूत्र में भगवान वेद व्यास जी प्रतिपादन करते हैं कि आनन्दमय रूप भगवान सर्वत्र व्याप्त होकर रहते हैं। हमारा शरीर पंच कोशों से निर्माण हुआ है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय ये पंच कोश हैं। ये एक के अन्दर एक रहते हैं। भगवान इन पाँचों कोशों में भर कर रहते हैं। कई लोगों का कहना है कि पाँचों कोशो में भगवान एक साथ कैसे भरते हैं। इसी के लिए **आनन्दमयो पुच्छे प्रतिष्ठा** कहते हैं। ब्रह्म केवल पुच्छ में नहीं सभी कोशो में ठीक तरह से पूर्ण रूप से रहते हैं। यह भगवान की अचिन्त्याद्भुत शक्ति है।

असंग्यः - भगवान सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी किसी के संग में नही आते हैं। वे असंग हैं। इसके लिए भगवद्गीता में भगवान दो दृष्टान्त देते हैं। आकाश और वायु। ये दोनों हजारो वस्तुओं के सम्पर्क मे आते हैं। किन्तु उसका परिणाम उनके ऊपर कुछ भी नही होता। वे इतना संग करने के बाद भी असंग रहते हैं। भगवान सम्पूर्ण असंग हैं। उनके ऊपर

किसी वस्तु का परिणाम नही होता। वे पानी में रहता हुआ पद्म पत्र के समान कितने भी वस्तु के सम्बन्ध मे आते हुए भी वे निस्संग रहते हैं। इस रीति से आराधना करने वाले अपनी योग्यता के अनुसार असंग बनते हैं।

अनावृतः - भगवान सर्वत्र सर्व वस्तु में रहते हुए भी वे अनावृत हैं, किसी को दिखते नही, स्वयं को छिपाकर रहते हैं। यह विचित्र सा लगता है कि सर्वत्र रहने वाला वस्तु कहीं भी दिखता नही। भगवान की यही विशेषता है। वे सर्व वस्तु में सदा के लिए सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी को दिखते नही। उपनिषद इसी विषय को अरूपं, अशब्दम्, इत्यादि शब्दों से वर्णन किए हैं। इसका अर्थ भगवान बिल्कुल दिखते नही ऐसे नही है। जिनको दर्शन देना चाहते हैं, उनको वे अपने को दर्शाते हैं। ऋषि मुनि देवता गण उनको बार बार देखते हैं। अर्जुन ने स्पष्ट रूप से कहा है कि भगवान मैं आपको देख रहा हूँ। भगवान की यह अचिन्त्याद्भुत लीला है।

ये लोक विलक्षण बारह लक्षण वाले भगवान को जो जानता है वह इस शरीर से मैं और मेरा ऐसे होने वाले भ्रम को त्याग सकता है।।20।।

शरीर में मै और मेरा यह भ्रम सबको रहता है। किन्तु शरीर कभी भी मैं नही होता। यह शरीर मेरा है, यह मै हूँ इस भाव को छोड़कर शरीर से अलग जीव है, इस श्रद्धा को दृढ़ करना चाहिए ।

सोने के खान में काम करने वाला वहाँ के सोने को ठीक तरह से जानता है, वह मिट्टी से सोना को अलग कर लेता है वैसे हमें भी सारे प्रदेश में और शरीरों में रहने वाले भगवान को भक्ति आदि अनेक उपायों से जानकर उनको शरीर आदियो से अलग रहकर उनका नियामन करते हैं इस ज्ञान को सम्पादन करना है।।21।।

मूल प्रकृति, महत्तत्व,अहंकार तत्व और पंचतन्मात्रा, ये कुल आठ प्रकृति माने जाते हैं। सत्व रजस्तमो गुण ये इन्ही प्रकृति के अलग अवस्थायें हैं। मन, पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय, पंचमहाभूत ये सोलह प्रकृति के विकार है, यह कपिल और मनु आदि ऋषियों का अभिप्राय है। इन सारे चौबीस तत्वों में रहने वाले तत्वाभिमानी देवताओं में अकेले भगवान श्रीहरि एक-एक रूप में रहते हैं, इस दृष्टि से वे पच्चीसवॉं तत्व हैं।।22।।

तत्वो के साथ उनके अभिमानियों को मिलाकर विवक्षा करने से तत्व चौबीस होते हैं, भगवान पच्चीसवाँ तत्व बनते है। तत्वों को केवल जड़ मानते हैं तो जीव पच्चीसवाँ बनता है। भगवान इन पच्चीस तत्वों में नियामक रहकर स्वयं भी पच्चीसवाँ तत्व बनता है यह ब्रह्म तर्क का कहना है।

देह इन चौबीस तत्वों से अलग नही है, वे सारे मिलकर यह शरीर बना है। इस प्रकृति में स्थावर जंगम ऐसे दो तत्व हैं। उसमें जड़ और अनित्य रहने वाले वस्तुओं को यह भगवान नही, यह भगवान नही इस विवेचना से भगवान का भजन करना चाहिए।।23।।

प्रह्लाद अपने समवयस्क छोटे बच्चो को पाठ पढ़ा रहे हैं। ये विषय पुस्तक मे मिलने वाले नही हैं। ये उनके अनुभव के पाठ हैं। भगवान को कहाँ ढूंढ़ना है। उनके बारे मे कैसे चिन्तन करना है। इसके बारे मे प्रह्लाद जी प्रवचन

कर रहे हैं। **देहस्तु सर्व संघातः** भगवान को और कही नही ढूंढ़ना है, वे इस शरीर मे रहते हैं। यह देह सारे विषयों का संघात है, सारे वस्तु से मिलकर बना है। **अष्टौ प्रकृतयः** प्रकृति आठ विध की होती है। इस ब्रह्माण्ड में जो है वही पिण्डाण्ड मे है। इस शरीर को देखो, इससे सृष्टि की कल्पना आती है। पंच इन्द्रिय, मन बुद्धि अहंकार से यह शरीर बना है। पंच तत्व और उनके अभिमानी देवता, और मन बुद्धि अहंकार के अभिमानी देवता से मिल कर इस सृष्टि की रचना हो गयी है। अहंकार तत्व से महतत्व को भी लेना चाहिए। **देहस्तु सर्व संघातः** इसमें **तु** शब्द का प्रयोग है। इसका अर्थ होता है यह शरीर विशेष है। भगवान सृष्टि करते समय जो जो सृष्टि किए उन सबको इस शरीर में भर दिये हैं। इस शरीर में जो जो होना है, वह सारा भरा है। यहाँ और किसी वस्तु को शरीर के बाहर ढूंढने की कोई आवश्यकता नही है।

प्रहलाद जी कहते हैं - यह जगत दो विध का है। एक स्थावर है, वह चलता नही एक ही जगह पर रहता है। वृक्ष इत्यादि स्थावर होते हैं। उनको **तस्थुः** कहते हैं। वे चलते नहीं, एक ही स्थान पर रहते हैं। उनको भी शरीर है। उनके अन्दर भगवान रहते हैं। वृक्ष टहनी, पत्ती, फूल निकलते हैं। फल बनते हैं, प्रारम्भ से लेकर अन्त तक वृक्ष एक ही स्थान पर रहते हुए स्वयं सुख दुःख को भोगते हुए अन्य लोगों को सुख देते हुए अन्यों को जिसकी आवश्यकता न हो उससे जीवन करते हुए प्रपंच को उपकारक बनकर जीवित रहते हैं। दूसरा एक जगत है, वह **गच्छति** गमनशील है। इनको चलने योग्य देह है। अन्य उपयोगी वस्तुओं को खाते हुए अन्य जीव को खाकर अपना जीवन चलाते हैं। ये सारे जीव परोपकारी न होते हुए परोपजीवी बने हैं। **अत्रैव पुरुषो मृग्यः** इन दोनों तरह के शरीरों मे हमें भगवान को ढूंढ़ना है। यही अष्ट विध प्रकृति, यह ब्रह्माण्ड, इसी में पुरुष नाम का भगवान रहते हैं। यहीं ढूंढ़ना है तो भगवान अन्य जगह नही हैं ऐसा नही है। सर्वत्र रहने वाले भगवान यहाँ भी रहते हैं। इन भगवान को ढूंढने के लिए इधर - उधर भटकने की कोई जरूरत नहीं। **पुरी शेते इति पुरुषः** इस शरीर में रहने के कारण उनको पुरुष कहते हैं। उप निषद भगवान के बारे में कहती है, **यो वेद निहितम् गुहायाम्** इस देह के हृदय गुफा में रहने वाले भगवान के बारे मे चिन्तन करों। गुफा यानी पत्थर। उसको तोड़कर भगवान को ढूंढ़ना है। गुहा यानी आवरक- जो छिपा कर रखा है। उसके अन्दर भगवान हैं। पुरुषाकार में शरीर के अन्दर भरे हुए भगवान को ठीक तरह से चिंतन द्वारा देख लेना चाहिए। यह शरीर भगवान को ढ़क कर रखा है। शास्त्र कहता है सुबह उठते ही दर्पण अथवा आयना को देखना चाहिए। सुबह उठते ही और किसी को न देखते हुए दर्पण में अपने मुख को देखना चाहिए। इसमें दो काम होते हैं। एक से हम अपने मुख में रहने वाले दोषों को हटा सकते हैं। दूसरा अत्यन्त मुख्य कारण है। हमारा मुख बिम्ब है। उसके प्रतिबिम्ब को हम दर्पण में देखते हैं। हम अपने बिम्ब रूपी भगवान के प्रतिबिम्ब हैं। हमारा जीवन ही एक बड़ा लोप है। इसमे दोष भरे हैं। इस शरीर के नियमन करने वाले भगवान को हम बार बार भूलते हैं। इस दोष को हमें सुधारना है। दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखकर यह शक्तिशाली रूपवान सुदृढ़ शरीर को दिए हुए हमारे बिम्ब रूपी भगवान को याद करना ही यह दर्पण देखने से होने वाला लाभ है। मुख ही हमारी पहचान देती है। मुख को छिपा कर रहे तो हम आदमी को पहचान नही सकते। आँखों के ऊपर पट्टी बँधा रहे तो हम उसको पहचान नही सकते। इसके लिए और अन्यान्य अंगो को न देखते हुए अपने मुख को

देखना ही हमे भगवान की याद दिलाती है। हमे अपने बिम्ब रूपी भगवान को याद करने के लिए अपने मुख के प्रतिबिम्ब को दर्पण में देखना पड़ता है। **अत्रैव पुरुषो मृग्यः** उस पुरुष नामक भगवान को हम इस शरीर में ढुंढ़ सकते हैं। हम उनके प्रतिबिम्ब हैं, बिम्ब को देखने के लिए हमें प्रतिबिम्ब को देखना पड़ता है। यह शरीर और यह प्रकृति इनमें हम भगवान के दर्शन पाते हैं।

नेति नेतीति अतत्यजन् भगवान को पकड़ना है तो हमे और चीजों को छोड़ना पड़ता है। किसी को पकड़ना है तो और किसी को छोड़ना जरूरी है। हम किसी वस्तु को पूरा पूरा नही पकड़ सकते। पकड़ना है तो छोड़ना जरूरी है। प्रह्लाद जी कहते हैं कि हम किसी को सौ टके पकड़ भी नही सकते, छोड़ भी नहीं सकते। नारियल के अन्दर रहने वाले गरी को यदि हम चाहते हैं तो ऊपर के जटा और करट को छोड़ना पड़ता है। इस शरीर नाम के करट में रहने वाले भगवान को हमे यदि पकड़ना है तो हमे इस शरीर के बारे में जो मोह है उसको छोड़ना पड़ता है। भगवान पूर्ण गुण हैं, **षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न** हैं। ऐसे भगवान को चाहने वाले को हमारे साथ न जाने वाले नाशवान इस शरीर के बारे में ज्यादा मोह नही रखना चाहिए। भगवान सर्वत्र व्याप्त हैं और सदा काल हमारे साथ रहते हैं।उनको पाने के लिए हमें **अतत्तु** व्याप्त न रहने वाले हमारे साथ न जाने वाले इन शरीरों को त्याग कर **तत्तु** भगवान को पकड़ना चाहिए। वह कैसे? प्रह्लाद जी कहते हैं, **नेति नेतीति आत्मादृशः** यह नहीं, यह नहीं ऐसे भगवान को ढूंढ़ना पड़ता है। इस शरीर में ये आँख जीव या भगवान नही है, ये हाथ, ये पावँ, ये कान सारे जीव या भगवान नही हो सकते। इनको शक्ति देने वाले अन्दर रहकर प्रेरणा देने वाले भगवान होते हैं। उनकी प्रेरणा को मानने वाला जीव होता है। **धियोयोनः प्रचोदयात्** हमारे धी, बुद्धि, क्रिया इत्यादि को प्रेरणा देने वाले पूर्ण रूप वाले हमारे अन्दर रहने वाले **तत्** भगवान को, **अतत्** शरीर आदि संसार मोह को त्यागते हुए पाना है। हमे देह नाम के देवालय मे भगवान का दर्शन करना है।

इस शरीर में नियामक भगवान रहें तो यह शरीर रहता है, वे चले गये तो शरीर नाश होता है, यह अन्वय और व्यतिरेक भाव से मिलने वाला विवेक ज्ञान से सृष्टि स्थिति आदि विषयों का ज्ञान को शास्त्र को ठीक तरह से विमर्शा करने से भगवान मिल जाते हैं।।24।।

जागृति स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्था जीव के अनुभव में आते हैं। इन अनुभव को कराने वाले सर्वज्ञ भगवान श्री हरि जीव से विलक्षण हैं।।25।।

सत्व रज तम ये तीन गुण कर्म से उत्पन होते हैं। जीव में तारतम्य का कारण होकर जीव को लगे रहते हैं। भगवान इन गुणत्रयों से लिप्त जीव के साथ रहने से अज्ञानी लोग उनको भी गुणत्रय युक्त समझते हैं। वायु सुगन्ध या दुर्गन्ध से जब युक्त होते है तब लगता है कि वायु गन्ध युक्त हैं, किन्तु वायु गन्ध रहित है वैसे ही भगवान गुणत्रय रहित हैं। यह भेद दृष्टि अन्य लोगों को दिखता नही।।26।।

जीव और परमेश्वर के बीच में रहने वाला यह भेद संसार के कारण समझ में नही आता। स्वप्न में अपने सिर को स्वयं काटकर दुःख का अनुभव करने वाले की तरह इस भेद को न देखने वाला अज्ञान के कारण संसार के दुःख को जानते हुए अज्ञान के कारण इस संसार दुःख को सिर मोल लेता है।।27।।

प्रह्लाद जी के उपदेश में यह सबसे महत्व का अंश है। **संसार एतद्वारोही।** संसरण से संसार शब्द की उत्पत्ति हुई है। सदा काल सरकते रहना संसार का स्वभाव है। हमको भी एक स्थान पर बैठना नही होता। जहाँ भी बैठे रहें वहाँ हमारा शरीर तो चलता ही रहता है। वैसे यह संसार भी चलता रहता है। जीव भी अपना शरीर बदलता रहता है। ऊपर नीचे स्वर्ग नरक में फिरता रहता है। बार बार जन्म लेकर संसार मे आ जाता है। **गुण कर्म निबन्धनः** गुण और कर्म के अनुसार उसका जनन मरण चलता रहता है। जीव का जन्म लेना और मरना इसके लिए जीव का मूल भूत स्वभाव और उसके जन्मान्तर का कर्म कारण बनता है। इसमें कर्म मुख्य कारण बनता है। हम जन्मान्तर में क्या कर्म करते हैं उसके फल स्वरूप स्वर्ग या नरक के फल भोगकर शेष पुण्य या पाप के कारण हमे उसके योग्य शरीर मिलता है। इस जन्म में हम अच्छे कर्म किए तो अच्छा फल मिलते हुए सदगति पाते हैं। बुरा कर्म किए तो बुरे फल पाते हुए दुर्गति प्राप्त करते हैं। कर्म के अनुसार यह फल मिलता जाता है। बुरा कर्म के लिए बुरा फल और सत् कर्म के लिए सत् फल यह स्वाभाविक है। नीम के वृक्ष लगाकर हम आम का फल नही पा सकते। कर्म ऐसा क्यों होता है। **गुणः कर्मानुसारिणी** गुण कर्म के अनुसार होते हैं। गुण का अर्थ वेदान्तियों की भाषा मे सत्व, रज, तम ऐसे तीन भाग में होता है हमारे मे सत्व गुण प्रचुर मात्रा में रहे तो हमारे हाथ से सात्विक कर्म होते हैं। उस सात्विक कर्म के अनुसार अगले जन्म में अच्छा सात्विक जन्म मिलता है। ऐसे जन्म - जन्मान्तर सात्विकता बढ़ते हुए जीव सज्जन होकर मोक्ष पाता है। वैसे ही रजो गुण से राजस होकर नित्य संसार के चक्र में जनन-मरण पाते हुए नित्य संसारी बनता है। तामस गुण वाले तामसी होते हुए अपने तामस गुण को बढ़ाते हुए अन्त में नरक और अन्धं तमस में गिर जाता है। यह जनन-मरण चक्र है। इसी के अनुसार उच्च-नीच शरीर और जीवन मिलता है। इस रीति से पिछले जन्म के कर्म के अनुसार आज का जीवन चक्र (लाइफ साइकल) चलता रहता है। साइकल आगे चलने के लिए हमें उसको पैडिल करते रहना चाहिए। वह साइकल गड्ढे मे गिर न जाय इसके लिए उसको ठीक समय पर ठीक रास्ते पर मोड़ना चाहिए, गलत रास्ते से मोड़ने के बाद होने वाले अपघात के लिए हम ही जबाबदार होते हैं। पिछले के हमारे जीवन की साइकल गलत मोड़ने के कारण हम इस जन्म में कष्ट भोग रहे है। इस रीति से कर्म करने के लिए हर एक का अपना - अपना मूल स्वभाव गुण ही कारण बनता है। सत्व, रज और तम के अनुसार ऊपर, मध्यम और अधोगति होती है।

प्रह्लाद जी के इस विवरण से असुर बालकों के मन मे एक ससय आ जाता है। जब गुण कर्म ही प्रधान होकर हमारा जीवन यदि चलता है तो इसको बदलने के लिए हमारे हाथ में क्या है। हम गुण कर्म के विरुद्ध कुछ भी नही कर सकते। उनके इस प्रश्न का प्रह्लाद जी उत्तर देते हैं - **अज्ञान मूल अपार्थोपि पुंसां स्वप्न इव आप्यते।** एक काम करते हैं तो हम उस काम को मैने ही किया ऐसे बोलते रहते हैं। हम ही उसको करने वाले ऐसे अपने बड़प्पन को दिखाते हैं। इसमें मेरापन कुछ नही है, मेरा पात्र बिल्कुल नही है। मै किया, मैं बोला, मैं गया, उसके लिए यह काम हो सका नही तो यह नही होता था ऐसे बोलने मे कोई अर्थ नही है। यह जीवन स्वप्न सदृश है। संसार मे हमारी गति बहुत बार अविवेक से युक्त रहती है। उसका प्रयोजन हो सकता है, कभी कभी नही हो सकता है। हमसे किए हुए कर्म के लिए अच्छा फल मिल सकता है। कभी-कभी दुःख ही दुःख होता है। हमारा अज्ञान ही इसका मूल कारण है। हमे ठीक तरह

से समझना चाहिए। प्रह्लाद जी कहते हैं। ये सारे स्वप्न **इव आप्यते**। ये सारे स्वप्न के समान होते रहते हैं। स्वप्न हमारे नियंत्रण मे नही रहता। हम स्वप्न को बदल नही कर सकते। स्वप्न मे हमे सुख होता है। दु:ख होता है। स्वप्न में आदमी रोता है। हँसता है। उसको देखकर हमे हँसी आती है। उठने के बाद उसको पूछे तो उसे कुछ भी याद नही रहता। वह बोलता है मैं रोया नही, मै हँसा नही। उसको कोई याद ही नही। यह उसके अज्ञान के कारण है। किन्तु उसकी हँसी और रोने को देखने वाले को याद है। हँसने वाले को उसका कारण भी याद नही है। इसके लिए वह इसको कबूल नही करता। हमारा जन्मान्तर का कर्म का फल इसी तरह होता है। हम बोल सकते हैं पिछले जन्म में मैं कुछ भी बुरा काम नही किया, मुझको इस जन्म में दु:ख क्यों। उसको अपने पूर्व जन्म के करनी का याद नही है। उसका अज्ञान ही इसका मूल कारण है। हमे जन्म जन्मान्तर के कर्म की याद नही रहती। पिछले जन्म के कर्म के फल को भोगते समय मात्र हम उसके बारे मे बोलते हैं। हम पहले जन्म में दुष्कर्म किये हैं। इसी कारण भगवान इस जन्म में दु:ख दे रहे हैं यह अनुसंधान हमे करना पड़ता है। मैं किसी को कष्ट दिया था उसके फल स्वरूप मैं कष्ट को भोग रहा हूँ। मै अच्छा काम किया था उसके फल स्वरूप सुख भोग रहा हूँ ऐसे निर्णय करते हुए हमें अपने कर्तव्य कर्म को करते रहना चाहिए। जब हमारे कर्म के फल हमारे हाथ में नही हैं तो उसके बारे मे चिन्ता करने से क्या मतलब है। जगद्गुरू मध्वाचार्य जी इसके बारे में कहते हैं - **कुरु भुंक्ष्व च कर्मनिजम् नियतम्** अपने वर्णाश्रम के अनुसार अपने कर्तव्य कर्म को करते रहना चाहिए। फल के बारे में अपेक्षा नही करना चाहिए। मिलने वाला फल मिलेगा ही, उसके बारे में चिन्ता मत करो। अपना कर्तव्य कर्म करते रहो इस कर्म को ऐसा ही फल मिलना चाहिए यह हम बोल नही सकते, मांग नही कर सकते। भगवान हमारे कर्म के अनुसार ही फल देने वाले हैं। फल देने वाले वे होते हुए वे दिये तो फल मिलता है नहीं तो नहीं। हम भगवान से फल को मांग नही सकते। परीक्षा मे ठीक तरह से लिखना हमारा काम है उसके अनुसार अंक देना परीक्षक का काम होता है। हम परीक्षक से अंक को डिमांड नही कर सकते। केवल लौकिक परीक्षा में ऐसा है तो भगवान की परीक्षा में कैसे हो सकता है। हम अपने गुण कर्म के अनुसार सुख दु:ख का अनुभव करना पड़ता है। प्रह्लाद जी कहते हैं-ऐ बच्चो। तुम छोटे हो। कमाने के लिए यह अच्छा समय है। कमाना इसका अर्थ पैसा कमाना नही, उत्तम संस्कारों को पाना है, उत्तम विद्या को पाना है। यह संस्कार और यह विद्या आपके साथ जन्म जन्तान्तर में जाने वाला है। यह विद्या और यह संस्कार इस जन्म को पावन करते हैं। यह संसार ससार होने के लिए हमं अपने अज्ञान को खो देना चाहिए। भगवान के प्यार को पा लेना चाहिए। इसके अनुसार कर्म शुद्धि और गुण शुद्धि होना चाहिए। इसके लिए भगवान के प्यार को पाना चाहिए। इसके लिए हम जो जो करते हैं उसको भगवान को समर्पित करना चाहिए। **नाहम् कर्ता हरिः कर्ता** इस भाव से कर्म करना चाहिए। सुख-दु:ख कर्म गुण के अनुसार आते जाते रहते हैं। इसके बारे मे चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नही। हमे आगे जन्म में ऊँचाई पाने के लिए सीढ़ी को चढ़ना चाहिए। हमारी गति चढ़ने मे होना चाहिए उतरने में नही होना चाहिए, प्रह्लाद जी दैत्य बच्चों के साथ हमको भी हाथ पकड़ कर ऊँचा उठा रहे हैं।

सारी क्रिया भगवान के अधीन होते हैं। कर्म को मन:पूर्वक करने के कारण दिखाने वाला मनोमय कहलाने वाला सारे वस्तुओं स्वप्न और जागृति में अनित्य के कारण समान होते हैं। इनसे आने वाला अनर्थ भी समान होते हैं उनको आसक्ति से चिन्तन करने से वे जीव को शोक भय और मोह को उत्पन्न करते

हैं।।28।।

इसी कारण तुम लोग त्रिगुण से बनने वाले कर्म के मूल कारण अज्ञान को निवारण करने का उपाय करना चाहिए, अपने वुद्धि को भगवान में स्थिर रूप से रखना चाहिए।।29।।

धियःप्रवाहोपरमः इसका अर्थ बुद्धि प्रवाह को रुकवाना नही, उसको भगवान के प्रति बहाना है। यही अज्ञान को नाश करने का उपाय है

प्रह्लाद जी कहते हैं कि तुम सब लोगों को योग करना चाहिए। किन्तु ब्रह्म सूत्र में वेद व्यास जी लिखते हैं **एतेन योगः प्रत्यक्तः** योग को करने के लिए मना करते हैं। वे ही वेद व्यास जी यहाँ प्रह्लाद जी के मुँह से योग को करने का उपदेश दे रहे हैं। दोनों व्यास वाणी हैं। कई इसका अर्थ निकालते हुए कहे कि दैत्य लोग योग करे और सज्जन लोग योग न करे। यह ठीक नही है। ब्रह्मसूत्र में वेद व्यास जी हट योग के लिए मना करते हैं। यानी भगवान को बलात्कार से पाने का प्रयत्न अथवा इस संसार को बलात्कार से त्यागने के प्रयत्न को हठयोग बोलते हैं। ब्रह्म सूत्र में इस हठयोग को त्यागने का उपदेश है। यहाँ भागवत **योगः कर्तव्यः** ऐसे कहता हैं। दोनों विधि वाक्य हैं, दोनों को वेद व्यास जी ही कहे हैं। **योगः कर्तव्यः कर्मणाम् त्रिगुणात्मनाम् निर्हरणम्** योग का अर्थ कर्म का बीज नाश करने का होता है। युंज् धातु से योग शब्द का निर्माण हुआ है। वेद व्यास जी कहते हैं योग करो इसका अर्थ योजन करो, भगवान से जोड़ो। योग शब्द का दूसरा एक अर्थ है। वह वियोजन के बारे में बोलता है वेद व्यास जी इन दोनों अर्थो से ये दो बात कहे हैं। जो दुष्टता से वियोजन करता है और सज्जनता से संयोजन करता है। वह योग है। बीज **निर्हरणम्-** जो संसार बीज का नाश करता है उस योग को हमें आचरण में लाना है। **कर्मण्या बीजम् निर्हरति** कर्म का बीज नाश करने वाला योग होता है। कर्म से ही यह संसार चक्र चलता है। पिछले जन्म और अगले जन्मों के लिए कारण बनने वाला हमारा यह कर्म है। हमारे एक कर्म करने से आगे के दस जन्मो के लिए आवश्यक कर्म का बीज निक्षेप होता है। इसी के कारण हमारे जन्म जन्मान्तर के लिए कर्म ही कारण है। ऐसे कर्म के बीज को नाश करने वाला योग है। कर्म इस संसार का मूल कारण बनता है? यह कर्म का बन्धन छूट गया तो मोक्ष मिल जाता है किन्तु यह कर्म का निवारण कैसे होता है। यह कर्म बहुत बड़ा बृक्ष रूप ले चुका है। अपने बारजा में पैदा हुए एक बड़े वृक्ष को एक आदमी ने काट डालने का विचार किया। इसके लिए उसकी टहनियों और पत्तियों को काट डाला। वह वृक्ष पुनः पत्ती, फूल, फल देने लगा। वृक्ष को काटना है तो टहनियाँ और पत्ती काटने से नाश नही होता। मूल से काट कर वृक्ष को उखाड़ कर फेकना पड़ता है। वृक्ष का नाश करना है तो उसके मूल अथवा बीज को नाश करना होगा। वैसे ही यह कर्म वृक्ष जगद व्यापी है। सारे जगह फैल चुका है। इसको नाश करना है तो उसके बीज को ही नाश करना पड़ता है। उस बीज को नाश करने के काम को प्रह्लाद जी योग बोलते हैं। **कर्मणाम् बीजम् यत् तस्या निर्हरणम् नाशकः योगः।** अब हमें यह देखना होगा कि कर्म का बीज कौन सा है, कर्म किससे पैदा होता है। कहाँ तक रहता है? जब तक यह शरीर है जब तक उसका आवरक, आच्वादक लिंग देह है तब तक कर्म का बन्धन है। यह शास्त्र का वचन है। जब तक यह लिंग शरीर है, तब तक जीव को यह अन्न मय शरीर (कर्म कारक शरीर) प्राप्त होता रहता है। जब शरीर है, तब उसके पोषण के लिए कुछ न कुछ कर्म करते रहना पड़ता है। वह

अच्छा कर्म भी हो सकता है और बुरा कर्म भी हो सकता है, कर्म को करते रहना। **नहि कश्चित् क्षणमपि जातुतिष्ठत्यकर्मकृत** कर्म को करते ही रहना पड़ता है। यही हमारे संसार के लिए कारण बनने वाला कर्म है। कर्म के कारण यह स्थूल शरीर है। स्थूल शरीर के कारण यह सूक्ष्म शरीर है। इसके लिए यह प्राकृतिक शरीर नष्ट होने से कर्म का बन्धन नाश नही होता। लिंग शरीर इस संसार के बीज रूप में है, आवरक रहने वाला यह शरीर इनसब का मूल कारण है। एक प्रश्न आता है, देह जाने के बाद कर्म करने के लिए शरीर ही नही रहा तो कर्म कैसे करें? यह आवरक शरीर नाश होने से कर्म का नाश होता है। कर्म के बीज रूप होकर जीव को आवरक रूप में रहने वाला इस शरीर को उखाड़ फेकना है। इसको ही वेद व्यास जी **योगः** शब्द से व्याख्यान किए हैं। यह कर्म सत्व रज तम के कारण त्रिगुणात्मक बना है। कर्म, सात्विक, राजस, तामस कुछ भी हो इस संसार का मूल है, बन्धक बनता है। अज्ञान मूल में रहने वाला लिंग शरीर इसके मूल में हैं। वह एक बार छूट गया तो संसार बन्धन नाश होता है। इसके लिए प्रह्लाद जी दैत्य बालकों को कहते हैं। **बच्चो, अहम् वृक्षस्य मूलः** मैं यह इस संसार के मूल है। इस संसार वृक्ष का मूल को काटना है तो इस मैं का मोह त्यागना होगा। **त्रिगुणात्मनाम् कर्मणाम् बीजनिर्हरणम् योगः**। यानी त्रिगुणों का बीज सहित मूल को हटाना ही योग होता है। योग कार्य दो तरह का होता है। एक निराई-गुडाई करना, दूसरा अच्छे बीज को बो देना। हम यदि अच्छे फसल को चाहते हैं तो बार बार निराई - गुणाई करते रहना। बीज कितना भी अच्छा हो निराई - गुडाई के बिना अच्छी फसल नही होती है। वैसे ही हमें दुष्ट कार्य और दुष्ट चिन्तन को छोड़ना पड़ता है। यह योग का अर्थ वियोजक है, प्रतिबन्धक है, छोड़ने का है। यह योग का पहला भाग है। प्रह्लाद जी कहते हैं, यह लिंग शरीर प्रतिबन्धक है। उससे बनने वाला कर्म, कर्म के मूल भूत त्रिगुण, इनके सम्बन्ध को हटाना ही योग का पहला काम है। उसको कैसे करना? प्रह्लाद जी कहते हैं। **धियः प्रवाह उपरमः योगः**। हमारे मन में सदा काल एक न एक चिन्तन का प्रवाह नदी के जैसे बहता रहता है। उस प्रवाह को रोकना चाहिए। उसी प्रवाह से यह वृक्ष का बीज फलित होता है। बाद में बड़ा वृक्ष होकर उसकी टहनी और पत्तियाँ विस्तार रूप से बढ़ कर एक जंगल ही बन जाता है। इसका मूल कारण यह विषय प्रवाह है। यदि यह प्रवाह रूक गया तो यह जंगल पानी के बिना सूख जाता है। इसके लिए प्रह्लाद जी कहते हैं, **धियः प्रवाहस्य उपरमः** इसका अर्थ बुद्धि का अथवा चिन्तन शक्ति का उपरम नही, केवल दुष्ट चिन्तन से उपरम होना चाहिए। इसके लिए हमें स्थितप्रज्ञ होना चाहिए। **धियः प्रवाह उपरमः** इसका अर्थ हमारी बुद्धि चंचल नही होनी चाहिए। प्रवचन के समय हम बैठे रहते हैं। किन्तु हमारा मन इधरउधर भागता रहता है। प्रवचन सुनने के बाद हमें उस विषय के बारे में अपने मन मे पुन: चिन्तन करें तो विषय से हमारी प्रज्ञा **ट्यून** होनी चाहिए, एक साथ होनी चाहिए। हमारी प्रज्ञा उसी विषय के साथ वहीं रुकनी चाहिए मन की एकाग्रता बढ़ना चाहिए। मन स्थिर होकर एक ही स्थान पर रहना चाहिए, इसका अर्थ हमारी प्रज्ञा एक ही स्थान पर रूकनी चाहिए। भगवान की कृपा को यदि पाना है इतना ही नही, इस प्रपंच मे किसी को पाना है तो हमें उस विषय के बारे में एकाग्रता से चिन्तन मंथ न करना पड़ता है। एक समस्या का हम यदि परिहार चाहते हैं तो उसके बारे में हमे गाढ़ चिन्तन करना पड़ता है, एक तत्व को जानना है तो उसके बारे में बार-बार एकाग्रता से चिन्तन करना पड़ता हैं। लौकिक व्यवहार में एक विषय पाने के लिए इतनी एकाग्रता की

जरूरत है तो अध्यात्म के बारे में कितनी एकाग्रता रखना यह विचार करने की बात है। अध्यात्म उन्नत मेरु शिखर है। उसपर चढ़ने के लिए परमोच्च एकाग्रता का आवश्यकता है। भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन के लिए उपदेश देते हैं, हे अर्जुन! हजारों दिशा में अपने बुद्धि को नही दौड़ाओ बुद्धि को एक स्थान में एकाग्र होकर रख दो। प्रज्ञा स्थिर होनी चाहिए, वह भगवान में स्थिर होनी चाहिए, अपने कर्तव्य के बारे में स्थिर होनी चाहिए, यही स्थितप्रज्ञ का लक्षण है। स्थितप्रज्ञ होने के लिए प्रज्ञा का एक ही स्थान पर रहना अत्यन्त आवश्यक है। एक कथा, एक उपन्यास अथवा एक चिठ्ठी लिखने के लिए हमें मन की एकाग्रता की आवश्यकता है। चिन्तक का यह अनिवार्य आवश्यक गुण है। भगवान श्री कृष्ण स्थितप्रज्ञ के लक्षण में इसी विचार के ऊपर आग्रह रखते हैं। भगवान आगे कहते हैं कि अपने मन को मुझ मे रखो, अपनी बुद्धि का निवेश मुझ में करो ऐसी स्थिर बुद्धि वाला मनुष्य ही भगवान को पा सकता है। हम अपने मन को शिक्षण देते हुए एक ही स्थान पर रुक कर रहने का अभ्यास करवाना चाहिए। अभ्यास के बाद आदमी स्थितप्रज्ञ हो सकता है। स्थितप्रज्ञ को बाहरी आवाजों से चित्त चांचल्य नही होता। हम क्रिकेट के रनिंग कमेन्ट्री सुनते वक्त कोई आवाज किया तो हम उसको डाटते हैं। बाहरी आवाजों से हमारी बुद्धि अन्य स्थानों में प्रवाहित होती है। स्थितप्रज्ञ को यह नही होता। बाजू में बम फटे तो भी उसका मन विचलित नही होता। अपने मन को ऐसे स्थिर करके हमें भी स्थितप्रज्ञ बनना है। भागवत में शमीक, ऋषि का उदाहरण मिलता है। राजा परीक्षित के दुर्व्यवहार से शमीक को अपमान भी नही हुआ ध्यान भंग भी नही हुआ। मान अपमान से पीड़ित नही होना स्थितप्रज्ञ का लक्षण है। प्रह्लाद जी कहते हैं, योग का अर्थ एक से वियोग और दूसरों से योग। **धियाः प्रवाहः उपरमः** हमारी बुद्धि हजारों दिशा में बहती रहती है। गंगा जी सागर को मिलते समय हजार प्रवाहो में विभाजित होकर मिलती हैं। हमारी बुद्धि को वैसे हजारो विषयों में विभाजित नही होना चाहिए। प्रह्लाद जी कहते हैं बुद्धि को एक ही प्रवाह में प्रवाहित होना चाहिए। हमारी बुद्धि को एक ही विषय में रत होना चाहिए, अन्य विषयों से उपरत होना चाहिए। बुद्धि का प्रवाह बहुत विशाल होता है। गंगा जी का प्रवाह कभी रुक भी सकती है किन्तु हमारी बुद्धि का प्रवाह रुक नही सकता है। एक के बाद एक विचार आता ही रहता है। उनमें अच्छा विचार भी आता है बुरा भी आता है। पहले इस बुद्धि प्रवाह को रोकना चाहिए। यानी बुद्धि को काम करना छोड़ना चाहिए।इसका अर्थ हमे मूढ़ बनना नही है। चिन्तन करना है, किन्तु तर्क के प्रवाह मे बह जाना नही है। तर्क के प्रवाह में हम विषयग्रहण कर नही पाते। हमारे विरुद्ध जो आता है उस विचार को हम ग्रहण नही कर सकते। हमे वह सहन नही होता क्योंकि हमारा मन पूर्वाग्रहित विषयों से भरा हुआ है। प्रह्लाद जी कहते हैं कि यदि हमें विषय ग्रहण करना है तो पहले बुरा विषय हमारे मन से बाहर जाना चाहिए। कम्पूटर या मोबाइल में हम किसी विषय को **सेव** करना चाहते हैं तो पहले अनपेक्षित विषय को **डिलीट** करना पड़ता है। उसके बिना हम **सेव** नही कर पाते। कलयुग के कारण हम दुष्ट वातावरण में रहते हैं। उसका परिणाम हमारे ऊपर होता रहता है। यहाँ दैत्य बालक दुष्ट वातावरण में पनपे हैं। पहले उस दुष्टता का निवारण करना है। एक ही माँ के दो तोते में से कसाई के पास रहने वाला तोता **मारो काटो** शब्दों को सीखा तो ब्राह्मण के पास का तोता **राम** नाम बोलने लगा। जिस वातावरण में हम रहते हैं उसका परिणाम हमारे ऊपर होता है। यहाँ दैत्य बालको की बुद्धि अपने पिता-माता के अनुरूप बन गयी है। पिता-माता हिरण्य कश्यप का अनुसरण करते हैं।

हिरण्य कश्यप की बुद्धि भगवद्वेष से भरी हुयी है। उसका परिणाम इन दैत्य बालको में भी आ गया है। इसके लिए प्रह्लाद जी कहते हैं, अरे बच्चो, आप पहले नास्तिकता के इस दुष्ट चिन्तन से दूर हो। मैंने जो कहा है उससे आपके मन में उत्तम संस्कार आ सकते हैं। उनका प्रभाव होना है तो पहले मन के यह कालुष्य को धो डालना है। यह प्रह्लाद जी का केवल दैत्य बालको के लिए उपदेश नही है। यह उपदेश हमें भी लागू होता है। दुष्ट माध्यमों के प्रभाव से हमारे मन की टंकी दुष्ट विचारों से भर गयी है। इस टंकी को स्वच्छ करना है। इसके लिए **धियः प्रवाहः उपरमः** बुद्धि की दुष्ट प्रवाह की धारा को बन्द करना चाहिए। कुतर्क को बन्द करना चाहिए, दुष्ट विचार को छोड़ना चाहिए इसको योग बोलते हैं। योग से योग के लिए थोड़ा वियोग करना चाहिए। दुष्टता को छोड़ना चाहिए। अच्छे विचारों को सुनना है तो पहले मुह बन्द कर उसको सुनना चाहिए, तब हमें उस उपदेश का अर्थ होता है। प्रह्लाद जी यही कहते हैं। चिन्तन के पहले पूर्वाग्रह को छोड़ना चाहिए।

प्रह्लाद जी दूसरे विचार रखते हैं, **योगः कर्तव्यः भवद्भिः** आप लोगों को योग करना है, संयोग करना है। **धियः प्रवाहः उपरमः** इसका अर्थ यहाँ ऐसा होता है कि हमारे बुद्धि का प्रवाह को रोकना नही, वह बहते रहना चाहिए। अपने **भागवत तात्पर्य निर्णय** नाम के ग्रन्थ में जगद्गुरु मध्वाचार्य जी ने इसके लिए एक उत्कृष्ट अर्थ दिये। बुद्धि का प्रवाह, जल प्रवाह बहते रहना चाहिए। पानी का वहन करते रहना चाहिए। बहना, वहन करना, दोनों का अर्थ एक ही है। **प्रकृष्टम् वहति** जो नदी बहती है उसमें गन्दगी नही रहती। हमारा आज का अनुभव यही है कि गंगा जी में पानी कम होने के कारण ही यह जल प्रदूषण की समस्या उद्भूत हो गयी है। प्रवाहित जल शुभ्रता का वहन करती है। एक जगह रूका हुआ जल गन्दा होता है। हमारा मन हरि का वहन करना चाहिए। हमारा मन हरि के बारे में बहते रहना चाहिए। हमारा बुद्धि प्रवाह हरि के प्रति बहते रहना चाहिए। प्रकृष्ट सर्वोत्कृष्ट श्रीहरि को लेकर वह बहना चाहिए। किन्तु हमारी बुद्धि अच्छे विषय के बारे में बहती नही। वह बुरी वस्तुओं को छोड़ती नही। हमारे नजर को अच्छे दृश्य आते नही। जो बुरा है उसके बारे में हमारा मन बहुत विचार करता है। **धियः प्रवास्य उपे रमः** उपे = उत्कृष्ट। जगद्गुरु मध्वाचार्य जी कहते हैं हमारे मन को उत्कृष्ट भगवान के बारे में ही विचार करना चाहिए। अन्य विषयों के बारे में हमारा मन निवृत्त होना चाहिए, अन्य विषयों में अलं बुद्धि होनी चाहिए। हम पूजा करते हैं, पूजा के बाद और क्या यह विचार आता है। पूजा के बाद और कुछ नही। केवल भगवान के प्यार को पाना ही पूजा का उद्देश्य होना चाहिए। ऊपर यानी सर्वोत्कृष्ट सर्वाधिक भगवान में रमण करने वाली बुद्धि प्रवाह को पाना ही देव पूजा का उद्देश्य होना चाहिए। हमारे मन को नियमन करने वाले, उसको तेल के धारा के समान अक्षुण्ण रीति से बहाने वाले रूद्र देव होते हैं। हमारे मनो नियामक रुद्र देव हमारे मन को प्रेरणा देते हुए तेल धारा के समान उसको भगवान की दिशा में प्रेरित करें यही हमारी प्रार्थना का मूल होना चाहिए। दीप में रखी हुयी बत्ती तेल को दीप में प्रवाहित करती है। वैसे हमारे मन को भगवान के यहाँ मनो नियामक रूद्र देव प्रवाहित करें, यही योग है। प्रह्लाद जी योग के बारे में बताते हुए कहते हैं - **धियः प्रवाहः उपरमः योगः** योग करते समय एक को छोड़ना चाहिए, दूसरे को पकड़ना चाहिए, एक से वियोग हो दूसरे से संयोग हो यह वियोग संयोग भगवान रूद्र देव और वायु देव की कृपा से हो। हमारे मन को भी योग वियोग है। हमारा मन अच्छे विषयों से वियोग

पाता है, और बुरे विषयों से योग करता है। यह विरुद्ध होना चाहिए। मन बुरे वस्तुओं से वियोग पाये और भगवान से संयोग पाये। प्रह्लाद जी कहते हैं- **एतद् भवद्भिः कर्तव्या** हमें भी इसको करना है।

प्रह्लाद जी योग की आवश्यकता के बारे में बोलते हैं - **योगः प्रवाहो परम धियः** यह योग **समेति अधोक्षजम** अधोक्षज को पाने का यही रास्ता है। वह एक ही मार्ग है। **मही यसा भक्ति प्रयोगेन** योग शब्द का विश्लेषण प्रह्लाद जी और विस्तार से कहते है कि विशेष भक्ति प्रयोग से अधोक्षज को पा सकते हो। भगवान को पाने के लिए हमें मनोयोग की आवश्यकता है। इस योग के कारण ही हमारा मन भगवान में स्थिर रूप से संलग्न होता है। जहाँ अतिशय प्रेम होता है वहाँ मन स्थिर होता है। प्रेम से, प्रीति के सम्बन्ध से, भक्ति के प्रयोग से उत्कट भक्ति के आचरण से हम अधोक्षज को पा सकते हैं। भगवान को पाना है तो पहले भक्ति चाहिए। भक्ति को मनोयोग से जीव परमात्म से सम्बन्ध जोड़ता है। प्रह्लाद जी भगवान को पाने का शब्द प्रयोग **समेति अधोक्षजम्** इस शब्द से किए हैं। हमें भगवान को पूर्ण रूप से पाना असाध्य है। किन्तु भक्ति एक ऐसा मार्ग है जिससे हम भगवान के पास जा सकते हैं। भगवान को पाने के लिए हमे भक्ति छोड़कर अन्य मार्ग नही है क्योंकि भगवान अधोक्षज हैं। वह हमारे इन आँखों से इस ज्ञान से मिलने वाले नही हैं। **यमैवेष वृणुते तेन लभ्यः** हम भगवान को पाना चाहते हैं, केवल इससे भगवान मिलने वाले नही हैं। भगवान इच्छा करने से स्वयं अपने दर्शन देने की कृपा करें तो वे मिलते हैं। अर्जुन के भगवान से हजार प्रश्न पूछ कर उत्तर पाने के बाद भी उन्हे विश्व रूप दर्शन के लिए भगवान अर्जुन को **दिव्य चक्षु** को देना पड़ा, केवल चक्षु देना नही विश्व रूप देखने की शक्ति भी दिए। हम इन चर्म चक्षुओं से भगवान को देख नही सकते। भगवान किसी इन्द्रियों से, इन्द्रिय जन्य ज्ञान से न मिलने वाले हैं। **भक्ति प्रयोगेन** भगवान केवल भक्ति से मिलने वाले हैं। (उस भक्ति करने के क्रम को प्रह्लाद जी यहाँ बताते हैं। वे ग्रन्थो में लिखित शास्त्रों के शब्दों को बच्चों के सामने नही रखे वे अपने अनुभव का विवरण दे रहे हैं। वे स्वयं अनुभव करके सिद्ध हुआ भगवद्दर्शन का सही कारण बच्चों के सामने खुला रख कर दिखा रहे है।

वह है सर्वेश्वर भगवान में श्रद्धा से भक्ति करे तो सुख मिलता है, नही तो नही।।30।।

विष्णु भक्ति के लिए ये उपाय हैं - गुरु सेवा, गुरु भक्ति अपने के लिए जो जो मिला है उन सबको भगवान को अर्पित करना ,सद्भक्तों का संग करना, पंचरात्रादि शास्त्रों में बताने त्र्ये हुए के अनुसार सर्वेश्वर भगवान का आराधना करना।।31।।

भगवान की कथा में श्रद्धा रखना, भगवान का गुण संकीर्तन करना, हरि पद कमल का ध्यान करना, हरि के चल-अचल प्रतिमा का दर्शन वन्दन करना।।32।।

सर्वेश्वर हरि सारे सज्जनों मे रहते हैं। इस भाव से उन सज्जनों को अभीष्ट वस्तुओं को देते हुए आदर से आतिथ्य करना ये सारे विष्णु भक्ति का उपाय हैं।।33।।

इन उपायों से काम क्रोध आदि अरिषड्वर्ग को निग्रह करते हुए सर्वेश्वर भगवान वासुदेव में भक्ति

करना सुलभ है। इससे ध्यान सुख मिलता है।।34।।

भगवान के सृष्ट्यादि कार्य को और उनके अनुपम ज्ञान आनन्दादि गुणों को और अवतार आदि रूपों को, उस समय उन्होनें किया हुआ लीलाओं को सुनने से भक्त को आनन्द होता है, रोमांचन होता है, आखों से आसू बहने लगता है कण्ठ भर आता है। भक्त उच्च स्वर से गाता है, रोता है, और नर्तन करता है।।35।।

लगता है उसके ऊपर भूत चढ़ा है। एक-एक बार हँसता है, रोता है, चिल्लाता है, ध्यान करता है, भक्त जनों का वन्दन करता है बार-बार निश्वास छोड़ता है। भगवान के चिन्तन में तल्लीन होकर लज्जा छोड़कर **हरि नारायण** उच्चारण करता है।।36।।

तब उसका मन तन शरीर श्री हरि के स्वरूप का सही ज्ञान पाने के कारण भक्ति से काम करते हैं। भक्ति प्रवाह प्रबल होकर बहने के कारण सदा काल हरि का चिन्तन करने के कारण उसके संसार के बीज रूप वाला कर्म और जड़ रूप अन्त:करण जल जाते हैं। सारे बन्धनों से वह छुटकारा पाकर अधोक्षज को पाता है।।37।।

विषय भोगों से कलुषित मन और अपवित्र शरीर वाले भी हरि कथा श्रवण करते रहे तो उस श्रवण के कारण उसका जनन मरण चक्र कट जाता है। मोक्ष में भगवान व्यक्त करने वाला स्वरुपानन्द को केवल हरि कथा श्रवण के काल में वह अनुभव करता है, यह ज्ञानियों की बात है। इसी के लिए हे दैत्य पुत्रो! तुम लोग अपने हृदय में रहने वाले प्राज्ञ नामक भगवान की कथा श्रवण इत्यादि से पूजा करें।।38।।

हे असुर बच्चो! श्री हरि की सेवा में क्या कष्ट है। वे सदाकाल हमारे शरीर में हमारे हृदयाकाश में रहते हुए आत्मा का मित्र बन गये हैं। उनके खोज में हमें कहीं दूर जाने की बात नही उठती।।39।।

पत्नी, पैसा, पशु, पुत्र, और घर, जमीन, हाथी भण्डार, ये सारे इच्छित वस्तुऐं एक क्षण में नाश होते हैं, अथवा हमारे हाथ से छूट जाते हैं। जब मरना निश्चित है तो इनसे क्या सुख मिलने वाला है।।40।।

यज्ञ से मिलने वाला स्वर्गादि लोक भी नाश होने वाले हैं। भू लोक के मान में वहा ज्यादा सुख है तो भी वहाँ रागादि दोष है। वह स्वर्ग अप्राकृत नही है। इसी कारण सर्वोत्तम, सर्वेश्वर, शाश्वत सुख देने वाला श्री हरि का संकीर्तन करना चाहिए। वे सकल दोष दूर हैं, सर्व विलक्षण युक्त हैं। उनके भजन से शाश्वत स्वरूपानन्द मिलता है।।41।।

उन परमात्मा का प्यार पाने के लिए विधि विहित सारे अंगों से युक्त यज्ञादि कर्म को बार-बार करते रहे तो वह मानव भगवान से नाश रहित अमोघ फल को प्राप्त करता है। किन्तु मानव इसको छोड़कर भगवान में भक्ति न करते हुए ऐहिक सुखों के लिए विधि विहित सारे अंगो से युक्त यज्ञादि कर्म को कामयुक्त होकर यज्ञादि कर्म बार-बार करता है। इस कर्म के अनुसार दु:ख के फल को निश्चित रूप से भोगना पड़ता है।।42।।

इस लोक में कर्म जो करता है वह अपने सुख के लिए करता है, अपने दुःख को दूर करने के लिए करता है किन्तु सुख की अपेक्षा करते हुए वह दुःख को ही मोल लेता है।सुख न चाहते हुए भगवान के प्रीति को जो पाना चाहता है उसको ज्यादा सुख मिलता है।।43।।

जिन देह इन्द्रियों के भोग तृप्ति के लिए मानव विषय भोग को चाहता हैं वह देह इन्द्रिय जब जीवित होते हैं तब पत्नी पुत्र के वश में रहते है। मरने के बाद कुत्ता सियार का भोजन बनता है। यह शरीर नश्वर है, एक आता है, एक जाता है, जन्म लिया हुआ आदमी मरता है, मरा हुआ पुनः जन्म लेता है।।44।।

जब देह नश्वर होता है तब इस देह के सम्बन्ध को रखने वाले पत्नी, पुत्र, जमीन, जायदाद, राज्य, हाथी, मंत्री, सेवक और सगे सम्बन्धी ये सारे नश्वर है, नष्ट होने वाले है, अन्य लोगों के हाथ में जाने वाले हैं।।45।।

पूर्ण नित्य आनन्द के सागर भगवान को छोड़कर तुच्छ, देह नाश के साथ नाश होने वाला और अनर्थ करने वाला ऊपर से पुरुषार्थ के समान दिखने वाला विषय भोग से आत्म को क्या सुख है।।46।।

हे दैत्य बच्चों! गर्भादान से लेकर मरणपर्यन्त सारी अवस्थाओं में अपने काम्यकर्म के कारण होने वाले क्लेश को अनुभव करते हुए इस शरीर को क्या प्रयोजन मिला है इसको तुम ही बोल सकते हो।।47।।

परमात्मा के अधीन रहने वाला इस देह में रहने वाला भगवान कर्म को करवाते हैं। उन कर्मो के कारण जीव पुनः पुनः अलग-अलग शरीरों को पाता रहता हैं। जीव का अज्ञान ही इसका कारण है।।48।।

धर्म, अर्थ, काम के साधना ये भी भगवान की कृपा से सफल होते हैं। भगवान प्रयत्न न करते हुए सारे जीवों से यह काम करवाते रहते हैं ऐसे सर्व शक्त भगवान श्री हरि की पूजा तुम लोग भी स्वाभाविक रूप से करे।।49।।

श्री हरि स्वयं सृष्ट किये हुए पंचभूतों से जीव को अज्ञान योनि में डालकर इस भूमि में भेज देते हैं। वे भगवान सारे जीवियों का अन्तर्यामि और सबके मालिक है। सूक्ष्म मूल प्रकृति से इस स्थूल प्रकृति को व्यक्त करने से उनको इस विश्व का बीज माना जाता है।।50।।

भगवान विष्णु इस जगत के सृष्टि के कारण रूप बीज हैं इसका अर्थ वे स्वयं बीज से वृक्ष जैसे बनता है वैसे वे प्रपंच नही बनते।वे सूक्ष्म प्रकृति को स्थूल रूप से व्यक्त करते है

देव हो, असुर हो, मनुष्य हो, यक्ष या गन्धर्व हो मुकुन्द के पाद भजन करने से उनको इह और पर में मेरे जैसे अच्छा ही होता है।।51।।

प्रह्लाद जी यहाँ अपने अनुभव का बात बताते है। ये बात किसी ग्रन्थ में मिलने वाले नही है।

प्रोत्कन्ठः उद्गायति, यह भक्ति का पहला अंग है। **प्रोत्कन्ठः** हमे गला खोलकर भगवान का संकीर्तन करना चाहिए। जोर से आवाज करते हुए भगवन्नाम संकीर्तन करने में हमें लज्जा आती है। प्रह्लाद जी कहते हैं। पहले हमे लज्जा को छोड़ना चाहिए। गला खोलकर जोर जोर से किन्तु मधुर स्वर में भगवान का नाम संकीर्तन करना चाहिए।

जब तक हम लज्जा नही छोड़ते तब तक हमारे में भक्ति उत्पन्न नही होती। हम अकेले रहें तो हमें लाज आती है। इसके लिए हमें और लोगों के साथ मिलकर नाम संकीर्तन करना चाहिए। हमें दुःख हुआ तो चिल्लाते हैं। रो-रोकर अपने दुःख को निवेदन करते हैं। जब आफत बढ़ती है तब हम भगवान का सहारा लेते हैं। कष्ट के समय में नाम स्मरण का नाटक करते हैं। किन्तु अन्य समय में हम भगवान को भूल जाते हैं। यह बदलना चाहिए। हमे भगवान के साथ सदा काल भक्ति करनी चाहिए। हम अपने पुत्र पत्नी, मित्र आस्ती वित्त को प्यार करते हैं। इस प्यार को हम भगवान में रखे तो वही भक्ति बनती है। भक्ति के लिए हमें इधर उधर देखना नही हैं। भक्ति हमारे हृदय में रहती है। इस भक्ति को हम कैसे पायें? प्रह्लाद जी इसके लिए कहते हैं - **निशम्य कर्माणि गुणान् वीर्याणि लीला तनु भिः कृतानि** भगवान अपने अवतार रूप धारण कर जो लीलायें की हैं उसको हमे पहले ठीक तरह से जानना चाहिए। भगवान की लीला बहुत विचित्र होती है। इस सृष्टि को उन्होने किया है। एक वृक्ष जैसे दूसरा एक वृक्ष नही है, एक फल जैसे दूसरा एक फल नही है, एक पुष्प जैसे दूसरा एक पुष्प नही हैं, करोड़ों करोड़ों लोग होते हुए भी एक के समान एक नही है। यह अगाध जल, यह आकाश, मेघ, सूर्य चन्द्र ये सारी सृष्टि उनकी रचना है। इसको हमे समझ लेना चाहिए। भगवान की इस विशाल सृष्टि को देखते हुए उनकी लीलाओं के बारे में हमे विचार करना चाहिए। इसके बारे में और लोगों से सुनना चाहिए, जो सुनते हैं उसको मन में ध्यान करना चाहिए। तब हमें भगवान की महिमा की कल्पना होने लगती है। **निशम्य कर्माणि गुणान् अतुल्यान्।** इस प्रपंच में रहने वाली सारी वस्तुओं में एक न एक दोष रहते हैं। **बहु चित्र जगत् बहुधा करणा पर शक्तिररन्त गुणः परमः** इस चित्र विचित्र जगत में सारे वस्तु दोष युक्त हैं। केवल भगवान एक हैं, जो केवल गुण पूर्ण हैं, दोष दूर हैं। भगवान में जो गुण हैं उनके समान गुण और किसी में नही हैं, उनसे ज्यादा गुण वाले और कोई कैसे हो सकते हैं? भगवान के चिन्तन करने में हमे उनके गुणों के बारे में चिन्तन करना चाहिए। ऐसा करने से हमारा मन भगवान में स्थिर होता है। प्रह्लाद जी हमें यहाँ भक्ति के और एक विषय के बारे में कहते हैं। **वीर्याणि लीला तनु भिः कृतानि।** वीर्य शब्द का अर्थ जो काम हाथ में लिया है उसको पूर्ण करने की शक्ति। भगवान अपनी इस शक्ति को अवतार के रूप में अपने लीलाओं से हमें दिखाएँ हैं। हमे इन लीलाओं को बार-बार याद करते हुए भगवान का संकीर्तन करना चाहिए। भगवान की लीलाओं के बारे में उनके साथी लोगों को भी संसय होता था। श्री कृष्ण के अवतार काल में गोपाल बालकों को भी यह संशय होता था, यह संशय बार बार होता था। हमें भी बार बार संशय आता है। किन्तु गोवर्धन पर्वत को भगवान द्वारा लीला जान से अपने एक कनिष्टिका अंगुली से उठाते हुए देखकर उनको लगा ये स्वयं भगवान हैं। तब उनका संशय चला गया। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। उनको भगवान के इस सामर्थ्य को देखकर उनमें भक्ति बढ़ गयी। ये भगवान नारायण स्वयं श्री कृष्ण के रूप में आये हैं। इक्कीस किलोमीटर लम्बा इस पहाड़ को पाँच वर्ष का बालक अपनी एक उंगली से सात दिन तक उठाये है। बरसात में जाते समय हम अपनी रक्षा के लिए हम छाता लेकर चलते हैं। किन्तु हम उसको बार बार एक हाथ से दूसरे हाथ में बदल करते रहते हैं। भगवान श्री कृष्ण की क्या शक्ति होगी, क्या उनका प्रभाव, गोपालकों के ऊपर उपकार और कितना सामर्थ्य। सात दिन तक पहाड़ को उठाने के बाद भी वे नही थके। ऐसे एक दो नही हजारों हजार उनकी लीलाएँ। ये लीलाएँ केवल उन दिनों के लोगों ने ही उपकार

नही किए। वे हमको भी उपकार करते हैं। आज भी जो गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा करते हैं, उनके सारे रोग चले जाते हैं। भगवान उन दिनों, आज के दिनों और आगे के दिनों में भी अपनी लीलाओं से हमें उपकृत करते हैं। हम भगवान की इस लीला गाथा को गला खोल कर उच्च स्वर में संकीर्तन करना चाहिए।

विचित्र वीर्याणि निशम्य, भगवान की इन लीलाओं को हम जितनी बार याद करते हैं, जितनी बार मनन करते हैं, उतनी बार हमें **फुलको द्रम** होना चाहिए, रोमांचन होना चाहिए। भगवान श्री कृष्ण पहाड़ को कैसे उठाये? पत्थर टूटे नही क्या? ऊपर से गिरे नही क्या? ऐसे हजार प्रश्न मन में उठते हैं। भगवान की शक्ति के बारे में लीला के बारे में हमें विश्वास नही होता। किन्तु भगवान की इन लीलाओं को देखने वाले गोपालक थे। उनको भी पहले हमारे जैसे संशय आते थे। किन्तु भगवान के दर्शन मात्र से उनके सारे संशय का निवारण हो गया। अर्जुन संशय से भगवान श्री कृष्ण से बहुत प्रश्न पूछते थे। किन्तु विश्व रूप के दर्शन के बाद वे स्वयं बोले **नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा।** भगवान के दर्शन के बिना संशय का निवारण नही होने वाला है। भगवद् दर्शन के बाद ही सारे संशय चले जाते हैं।

भावुक भक्तों को भगवान की इन लीलाओं को बार बार सुनना चाहिए। जब यह लीला मन में बैठ जाती है, तब हमें भी पुलकोद्रम होता है, रोमांचन होता है। न मिलने वाली अमूल्य निधि मिलने से जो आनन्द होता है वह आनन्द हो जाता है। आँखें आँसुओं से भर जाती हैं, गला अवरुद्ध होता है। **रौति** भगवद् भक्त रोने लगता है। **नृत्यति** भगवद् भक्त नाचने लगता है। लगता है, उसका दिमाग खराब हो गया है। पागल जैसे उसका व्यवहार बनता है। लोग क्या कहते हैं। इसके बारे में उसका लक्ष्य नही रहता। भगवान और उसके बीच में और कोई नही रहता। हमे भी भगवान के बारे में पागल होना चाहिए। हम और अन्य छोटे छोटे विषयों के बारे में पागल बनते हैं। किन्तु हम भगवान के बारे में पागल बनें। हम आँखों में आँसू भरें, गायें कूदे नाचे।

दैत्य बालको के सामने प्रह्लाद जी अपने अनुभव की, भक्ति की रीति का विवरण दिये।

हे बच्चों! केवल ब्राह्मण बनने से, देवता बनने से, ऋषि होने से, दान, तप, पूजा, शौच, केवल इनका आचरण से भगवान तुष्ट नही होते। भगवान के प्यार पाने के लिए निर्मल भक्ति चाहिए । वह नही तो हमारी क्रिया केवल आनन्द का प्रदर्शन होता है।।52,53।।

इसी कारण तुम लोग अपने जैसे सभी जीवों में रहने वाले, सबके मालिक, सर्व शक्त भगवान श्री हरि में भक्ति करें।।54।।

दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्री, शूद्र, यादव, पक्षि, मृग, मानव अन्य सारे पाप योनि में जन्म लिए जीव भगवद भक्ति से मोक्ष पा चुके हैं।।55।।

भगवान गोविन्द में निश्चल भक्ति और सारे वस्तुओं में उनको देखना यही जीवी के लिए परम पुरुषार्थ माना जाता है।।56।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में सातवाँ स्कन्ध में सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः

अध्याय - आठ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

नारद जी कहते हैं - प्रह्लाद द्वारा कहे हुए वैष्णव धर्म को सुनकर दैत्य बालक उसी का अनुसरण करने लगे क्योंकि उसमें कोई दोष नही है। वे बालक असुर जाति में जन्म लेने के बाद भी स्वभावत: उनमें दोष नही है। वे दोष पूर्ण गुरु के उपदेश को स्वीकार नही किये।।1।।

शुक्राचार्य के पुत्र शण्ड ने उन बालकों की बुद्धि भगवान में स्थिर होते देखकर तुरन्त हिरण्यकश्यप के पास जाकर सारा विषय उसके सामने बता दिया।।2।।

अपने को अपमान करते हुए, अपने अधिकार के विरुद्ध और अपनी बातों को विरोध करते हुए तथा हरि को मानना यह अन्याय पुत्र से होते देखकर हिरण्यकश्यप का क्रोध बढ़ गया। वह क्रोध से काँपने लगा। अपने पुत्र को स्वयं मारने का निर्णय लिया।।3।।

हिरण्यकश्यप स्वभावत: क्रूर है। अब तो अपने विरोध करने वाला पुत्र हाथ जोड़कर विनय से सिर झुकाकर सामने खड़ा है। हिरण्यकश्यप साँप के समान फूफकार रहा है। इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाले, अपने छोटे वय में दण्डनार्थ काम कुछ भी न किए हुए प्रह्लाद को घूरकर देखते हुए हिरण्यकश्यप कोसने लगा।।4,5।।

हे दुर्विनीत, मूर्ख बुद्धि वाले अधम, तुम हमारे वश में गलत पैदा हुआ है। मेरी आज्ञा की अवज्ञा करने वाले अहंकारी तुमको अभी यमलोक को भेज दूँगा।।6।।

हे मूर्ख! यदि मुझे क्रोध आता है तो तीनो लोक काँपने लगते हैं, लोकपालक भी डर जाते हैं। ऐसी मेरी आज्ञा को तुम उल्लंघन कर रहे हो। यह तुम किसके बल के आधार पर कर रहे हो?।।7।।

प्रहलाद जी कहते हैं- राजा केवल मेरे लिए नहीं तुमको और अन्य छोटे-बड़े बलिष्ठ, बलवान को बल देने वाले केवल एक मात्र श्री हरि ही हैं। ब्रह्मा जी तथा सकल बलिष्ठ देवताओं और स्थावर जंगम सारे वस्तु उनके अधीन हैं।।8।।

यह भगवान सर्वशक्त और काल नियामक हैं। अपने तीन पादों से वे तीनों लोकों को माप लिए। ओजस सहन सत्व बल और इन्द्रियों के वे ही नियामक हैं। गुणत्रयों का नियमन करने वाले वे सर्वोत्तम हैं। वे ही अपने स्वरुप शक्ति से इस जगत को सृष्ट करते है, पालन और नाश भी वे ही करते हैं।।9।।

आप अपने आसुर भाव को त्याग दीजिये। सारे जीवों में भगवान वास करते है इसको समझ लीजिये। आपके नियंत्रण में न रहते हुए दुर्मार्ग में जाने वाले आपके मन को छोड़कर आपका और कोई शत्रु नही है। सारे जीवों में भगवान को देखना ही उनकी श्रेष्ठ तरह की आराधना होती है।।10।।

पिताजी- आपके शरीर को लूटने के लिए काम क्रोध आदि चोर आपके मन में बैठे हैं। पंच ज्ञानेन्द्रिय और मन मिलकर छः डाका डालने वाले आपके अन्दर ही हैं। लोग अन्दर के इन शत्रुओं को जीतने का प्रयास न करते हुए दसों दिशाओं क जोतने का डीग मारते हैं। मन को जीतकर ज्ञानी बनने वाले देहो में रहने वाला भगवान को समान देखने वाले सज्जन को अपने मिथ्या ज्ञान से पैदा होने वाले बाह्य शत्रु कहाँ पैदा होते हैं (कहीं भी पैदा नही होते यह भाव है)।।11।।

हिरण्यकश्यप ने कहा- मूर्ख! मुझको अब स्पष्ट हुआ कि तुम मेरे हाथ से मरना चाहते हो। तुम मेरे सामने खड़े होकर मेरे शत्रु की स्तुति कर रहे हो। जो मरने जा रहा हो उसकी बातें तुम्हारे है जैसे असम्बद्ध होती हैं।।12।।

हे दुर्बुद्धि, मुझे छोड़कर और कोई भगवान है क्या ? तुम बोल रहे हो वह भगवान सारे जगह में सारी वस्तुओं में रहता है। यदि वह रहता है तो वह कहाँ रहता है। वह इस स्तम्भ में मुझे क्यों नही दीखता।।13।।

हरि की स्तुति करने वाले तेरे इस सिर को मैं अभी इस खड्ग से काट डालूगाँ। तुम उस हरि को अपना रक्षक मानते हो न? यदि वह है तो आकर तुम्हारी रक्षा करे।।14।।

नारद जी कहते हैं- अत्यन्त बलिष्ठ महासुर हिरण्यकश्यप महा भगवद्भक्त अपने पुत्र को क्रोध से बार-बार दुष्ट बातों से कोसते हुए सिंहासन से कूदकर दाहिने हाथ में खड्ग पकड़कर बाएँ हाथ से उस स्तम्भ को जोर से मारा (अन्य कई पुराणों में पाँव से मारा ऐसा विवरण आता है)।।15।।

उस समय उस स्तम्भ से ब्रह्माड कवच को छेदने वाली अति भयंकर आवाज़ आई। हे धर्म राजा! सुनो, यह आवाज सारे चौदहों लोकों में सुनी गई। ब्रह्मादि देवता इस आवाज से अपना लोक नाश होने का समय आ गया होगा इस भय से डरने लगे।।16।।

हिरण्यकश्यप जैसे अपने पुत्र को मारने की इच्छा से उसके पास बढ़ रहा था तो उसने पीछे भी कभी भी न सुनी हुयी ऐसा आवाज सुना। इस आवाज से असुर लोग भी अपने नायक के साथ घबड़ा गये। लेकिन किसी को यह मालूम नही हुआ कि वह आवाज कहाँ से आ रही है।।17।।

अपने भृत्य द्वारा कह हुयी बात को सत्य करने के लिए,इस चराचर सृष्टि में अपनी सर्वत्र व्याप्तता को सत्य करने के लिए श्री हरि इधर मानव नही,उधर नही ऐसे अद्भुत रुप को धारण करते हुए सभा में हिरण्यकश्यप द्वारा मारे हुए स्तम्भ में दृष्टिगोचर हुए।।18।।

सत्यम विधातुम् निज भृत्यभाषितम् इसको अनेक रीजि से अर्थ करते है। वह इस प्रकार है-

1. अपने भृत्य एकान्त भक्त प्रह्लाद ने कहा था कि भगवान सर्वत्र हैं। इसको सत्य करने के लिए भगवान

स्तम्भ से प्रकट हुए।।

2. अपने भृत्य जय-विजय को सनन्दनादियों का शाप प्राप्त होने के बाद तीनों जन्मों में मैं ही तुम्हारा वध करता हूँ इस बात को सत्य करने के लिए।

3. अपने भृत्य सनकादि ऋषि शाप दिये थे कि तीन जन्मों के बाद वैकुण्ठ को वापस आने के लिए कहे थे। उस बात को सत्य करते हुए एक जन्म का अन्त करने के लिए।

4. चतुर्मुख ब्रह्मा अपने पुत्र हैं। उनका भृत्य भक्त हिरण्यकश्यप है। उसने वर माँगा था कि मृग से या नर से मेरा मरण न हो। इसको सत्य करने के लिए न मृग और न मानव रुप धारण करके।

5. अपने भृत्य चतुर्मुख ब्रह्मा जी हिरण्यकश्यप को तथास्तु बोले थे उसको सत्य करते हुए उसको मारने के लिये।

6. हिरण्यकश्यप बोला था कि प्रह्लाद के विरोध के कारण उसकी मृत्यु होगी। इसको पूर्ण करने और अपने पार्षद भृत्य हिरण्यकश्यप ने कहा था हरि हैं तो इस स्तम्भ से आकर तेरी रक्षा करें इन दोनों बातों को सत्य करने।

7. निज यानी अपने। अपने भक्तों के बारे में भगवान कहे हैं **नमे भक्तः प्रणश्यति** इस बात को सत्य करने।

8. भगवान अपने भृत्यों को सदा काल बोलते रहते हैं, **तेषामहम् समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरत्।** नारद जी कयाधु को बताये थे कि तेरे गर्भ में रहने वाले बच्चे को किसी का भय नही इन बातों को सत्य करने।

9. जगद्गुरू मध्वाचार्य जी कहते आये हैं, यह जगत सत्य है। इस सत्य जगत के प्रतिरूप में सत्य स्तम्भ में से भगवान आये अपने भृत्य की इस बात को सत्य करने।

10. भगवान के बारे में उनके भृत्य रूप भक्त कहते हैं- भगवान को माता-पिता से मिलने वाला जड़ देह कभी भी नही होता। इस बात को सत्य करने के लिए माता-पिता न होने वाला स्तम्भ से भगवान न मृग और न मानव रूप से अवतार पाये।

हिरण्यकश्यप आयी हुयी आवाज सुनकर घबड़ाकर चारों ओर घूमकर देखा। वहाँ इधर मानव नही उधर मृग भी नही, ऐसा विचित्र नरसिंह रूप को देखकर आश्चर्य चकित हुआ।।19।।

हिरण्यकश्यप उस रूप के बारे में विचार करने लगा उसी समय श्री हरि अपने भयंकर रुप से उसके सामने खड़े हो गये। वह रूप अद्भुत और भयानक था। आँख द्रव रूप सोने के समान चमकते थे। उनकी ओर देखना असाध्य था। सिंह का आयल (बाल) उज्जवल रीति से चमकते थे। मुह खुला हुआ था।।20।।

भय करने वाले दाँत आगे निकल आये थे। जीभ तलवार के समान धारा वाली दिखती थी। कान खड़े होकर मुख की रौद्रता को बढ़ाऐ थे। पहाड़ में रहने वाले गुफा की तरह मुह और नाक खुले थे। इससे उनका मुह और भयंकर बना था।।21।।

आकाश को छूने वाला उन्नत शरीर छोटा और मोटा कंठ विस्तार छाती, छोटी कटि, चंद्र के प्रकाश के समान सफेद लम्बा लम्बा बाल, सारे दिशाओं में फैले हुऐ शत-शत बाहु। उनमें दिखने वाली नाखून एक-एक वज्रायुध जैसे लगते थे।।22।।

दैत्य लोग अन्यान्य आयुध धारण करके खड़े थे। वे नरहरि के नाखून को देखकर घबड़ाकर भाग गये तब हिरण्यकश्यप विचार करने लगा- बहुश: मेरा सहज शत्रु श्री हरि इस रूप में आया होगा। पुत्र को मारने में लगे हुए मुझको मारने के लिए यह आया है क्या?।।23।।

ऐसा विचार करते हुए गदा को उठाते हुए हाथी के समान शरीर वाला वह दैत्य नरसिंह के ऊपर आक्रमण किया। किन्तु आग में गिरने वाले पतंग के समान वह नरसिंह के तेज में आँख खोलकर देख नही पाया।।24।।

इसमें आश्चर्य की कोई बात नही है। नरसिंह का अर्थ ही बल और ज्ञान का समूह होता है। आदि सृष्टि में पुरुष रूप से अपने सामर्थ्य से प्रलय काल के तमस को वे पी लिए थे। वे एक क्षण में उस दैत्य को मार सकते थे। किन्तु जगत को उसकी शक्ति को दिखाने के लिए उसके साथ प्रभु ने युद्ध की लीला की। भगवान की इस लीला को न समझने वाला वह असुर अपने गदा को उठाकर जोर से मारा। अपने पास आने वाले गदाधारी हिरण्यकश्यप को महागदाधर नरसिंह जी अपने हाथ से पकड़ लिए। कश्यप पुत्र गरुड़ महा सर्प को जैसे पकड़ते हैं वैसे भगवान उस दानव को पकड़े और जैसे गरुड़ खेलते हुऐ उसको छोड़ता वैसे छोड़ दिये। उस समय वह दानव नरसिंह जी के हाथ से जमीन पर गिर गया।।26।।

हे धर्म राजा! बादलों के बीच में अपने तेज को खोया हुआ सूर्य के समान अपने तेज को खोये हुए लोकपालक इसको देखकर घबड़ा गये। हिरण्यकश्यप सोचा कि नर हरि अपने पराक्रम से डरकर खुद को छोड़ दिये हैं।।27।।

वह पराक्रमी असुर श्रम के बिना अपने तलवार और ढाल लेकर नरसिंह जी के ऊपर आक्रमण किया। बाज जैसे नीचे वाले पक्षी के ऊपर आक्रमण करने के लिए तीव्र गति से उड़ता है वैसे वह महासुर नरसिंह जी के ऊपर अपना तेज दिखाना चाहा। महाबलशाली नरसिंह अत्यन्त अट्टहास से महाध्वनि करते हुऐ जैसे साँप चूहे को पकड़ता है वैसे उसको पकड़े। तब हिरण्यकश्यप भय से अपने आँख को मूंद लिया, दर्द से कराहने लगा। नरसिंह जी उसको पकड़कर दोनों हाथ से उठाते हुऐ उस राज्य घर के देहली पर बैठते हुए उसको अपने घुटने पर रख लिए। इन्द्र के वज्रायुध से थोड़ा भी क्षत विक्षत न होने वाले उस दैत्य के पेट को आसानी से अपने नाखून से चीर दिए। उस समय नरसिंह जी की दोनो आँखें क्रोध से लाल-लाल हो गयी थीं। वे अपने जीभ से अपने होठ को चाट रहे थे।।28,29,30।।

हिरण्यकश्यप के पेट से आँत को निकालते हुऐ उनको माला रूप में अपने गले में धारण किये। उसके रक्त से भीगे हुए नरसिंह जी हाथी को मारे हुए सिंह जैसे लगते थे। तब नरहरि उस दानव की छाती को

चीरकर उसके शरीर को उठाकर दूर फेक दिये। उस समय वहाँ रहने वाले हिरण्यकश्यप के भृत्य लोग अनेक तरह के आयुधों को लेकर उनके ऊपर आक्रमण किये। नरसिंह भगवान उन सबको अपने लम्बे-लम्बे हाथों से पकड़कर जहाँ का तहाँ उन लोगों को वहीं मारे। उनके बाल से उठी हुयी हवा से सारे बादल चले गये। उनकी दृष्टि के प्रकाश के सामने सारे ग्रह अपने कांति को खो दिये।।31,32।।

उनके श्वास के आघात से समुद्र उथल पुथल हुए, उनकी गर्जना को सुनकर दिग्गज दिश दिशा में दौड़ने लगे। उनके गले के बाल से निकले हुए विमान से भरा हुआ आकाश हिलने लगा। जमीन उनके पाँव के भार से हिलने लगा।।33।।

भगवान के वेग के कारण पहाड़ उखड़ गये। उनके तेज के सामने आकाश और दिशाऐं फींकी पड़ी। नरसिंह जी देहली से उठकर वहाँ के राज्य सिंहासन पर बैठे। उनके तेज से वह राजसभा जगमगाने लगी। अपने सामने खड़े रहने वाले किसी को कभी न देखने वाले भगवान, तीनों लोकों के सिरदर्द बने हुए उस बड़े दैत्य को युद्ध में मारने के बाद भी बहुत क्रोधित और उनके भयंकर मुख के सामने कोई आने का साहस नही किये। आकाश में आये हुए देवता, स्त्रियों ने भगवान के इस कृत्य को देखकर संतोष से बार-बार फूलों की वर्ष किए।।34,35,36।।

भगवान के इस विचित्र रूप के दर्शन के लिए आये हुए देवताओं के विमानों से आकाश भर गया। देवदुन्दुभि नगाड़ा, नौबत बजाने लगें, गन्धर्व गाने लगे, अप्सरा स्त्रियाँ नाचने लगी।।37।।

हे धर्म राजा! सुनो, इसके बाद ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, आदि देवता, ऋषिगण, पितृगण, गन्धर्व, अप्सराएँ, चारण, महानाग, मनु, प्रजापति, किंपुरुष, वेताल, किन्नर, सुनन्द, कुमुद इत्यादि सारे विष्णु दूत वहाँ आकर सिर के ऊपर हाथ जोड़कर दूर खड़े हो गये। प्रखर तेज से प्रकाशमान नरसिंह भगवान को एक-एक करके स्तुति करने लगे।।38,39,40,।।

ब्रह्मा जी कहते हैं- हे अनन्त! आपको नमन, आपकी शक्ति के लिए न अंत है, न पार है। आपका पराक्रम अद्भुत है। कार्य पवित्र है। त्रिगुणों से विश्व की सृष्टि स्थिति और लय को लीला से करने वाले आपके शरीर को लय नही है।।41।।

रुद्र जी कहते हैं- हे भक्त वत्सल, आपके क्रोध के लिए यह योग्य समय नही है। आपके क्रोध से युग का अंत होता है, इसलिए आप युग समाप्ति के समय में क्रोध करे। आप जिस असुर को मारना चाहते थे वह काम हो गया है। आप में शरणागत उसके पुत्र अपने भक्त की रक्षा आपही करें।।42।।

इन्द्र कहते हैं- हे सर्वोत्तम! आप हमारे रक्षक है। आप यज्ञ के हमारे भाग्य को हमको दिलवाने वाले है। आपके वासस्थान हमारा दिल, उस दैत्य के आक्रमण से भर गया था। आप उसको पुनः विकसित किये है हे नरसिम्ह, हे नाथ-आपकी सेवा करने वाले को यज्ञभाग्य से क्या मतलब है। वह यज्ञ भाग थोड़ी सी समय के लिए रहता है। आपके भक्त को शाश्वत मुक्ति भी महाफल नही लगता तो अन्य क्षणिक फलों

से क्या मतलब है।।43।।

ऋषिगण बोलते हैं- हे आदि पुरुष! हे शरणागत रक्षक! आपके ज्ञान स्वरूप उत्तम तप के बारे में आपसे उपदेश मिला था। वह तप करते हुए हम उस ध्यान रूप तप से सारे जगत को अपनी आँखों के सामने रखते थें। उस तप को यह दैत्य ने नाश किया था। आप यह रूप धारण करते हुए उस तप को वापस दे दिये। आपने किया हुआ रक्षण और अनुग्रह से हम आपके ऋणी हैं।।44।।

भगवान ने दिया हुआ तप को हिरण्यकश्यप ने नाश किया यह सही नही है। यहाँ ऋषियों ने इस बात का बोलने का उद्देश्य इतना ही है वह असुर जो तप किया वह हमारे जैसे ध्यानात्मक तप था। यहाँ सादृश्य के कारण अभेद दिखता है। भगवान ने दिया हुआ तप को नाश करने कि शक्ति असुर में नही है।

पितृगण बोले- हे श्री हरि हमें हमारे पुत्र शराध्य में देते हुए अन्य और तिलोदक को वह असुर खाकर पी लेता था। उसके पेट को चीरकर आँत को अपने नाखून से काटकर वह श्राद्धान्न आपने हमकों पुन: दिलवा दिये। सर्व धर्म रक्षक भगवान आपको नमस्कार।।45।।

सिद्ध बोले- हमारे योग सिद्ध अन्तर ध्यानादि शक्ति को इस दुष्ट ने अपने योग तप के बल से अपहार किया था बहुत दर्प से ढींग मारता था। हे नरसिम्ह भगवान आपने अपने नाखून से उसको चीर कर डाले। आपको हमारा नमन्।।46।।

विद्याधर बोले- हम अनेक तरह के उपासना से प्राप्त किया हुआ अदृश्य होना आदि विद्या को बल और पराक्रम उन्मत्त यह असुर निषेध किया था। आप उसको युद्ध में पशु के समान मार डाले। ऐसे आपको हम नित्य नमन करेंगें।।47।।

नाग बोलते है - यह पापी असुर हमारे रत्न और सुन्दर स्त्रीयों का अपहरण किया था। उनके छाती को चीर कर आपने हमको और हमारे स्त्रीयों को आनन्द दिये। आपको अनंत नमन।।48।।

मनु बोले - हम मनुओं ने आपकी आज्ञा के अनुसार चलने वाले है किन्तु यह दैत्य आपने किया हुआ धर्म मर्यादा को हमारे से जबरन उल्लंघन करवाया। हे भगवान आप उस दुष्ट का संहार किये है। कहिये किंकर लोग हम आपकी क्या सेवा करें?।।49।।

प्रजापति बोले- हे परमेश्वर हम आपसे जन्म लिए है। यह दुष्ट के निषेध के कारण हम प्रजोत्पत्ति करना रुकवाना पड़ा। आपकी कृपा से यह दैत्य मर गया है। हे बल ज्ञान कारण मूर्ति आपका अवतार इस जगत के लिए मंगल कारक है।।50।।

गन्धर्व बोले- हे प्रभु हम आपके लीलाओ को नृत्य नाटकों अभिनय करने वाले, आपके गुणगान करने वाले है। यह दैत्य अपने बल पराक्रम से हमको अपने वश में रखतें हुए खुद का गुणगान करने के लिए विवश किया था। आपने इस दैत्य को विवश किये है सदा सुयश वाले आप हमें अनुग्रह करें। दुर्मार्गि के लिए कभी क्षेम नही होता।।51।।

चारण बोले- हे श्री हरि इस संसार से मोक्ष देने वाले आपके श्री चरण के आश्रय में हम रहने वाले, सज्जनों को यह कंटक बना था। इस असुर को आप निस्सार किये है। आपको नमन।।52।।

यक्ष बोले - हम आपके वहन करने वाले, वाहन के रूप मनोहर सेवा करने वाले सेवक है। इस दैत्य के आग्रह के कारण उसका भार वहन करना पड़ा था। अपने सेवकों का यह दु:ख को देखकर हे पच्चीसवाँ तत्व रूपी नरसिम्ह आप इस दैत्य के देह को पंचतत्वों में मिला दिये।।53।।

प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार तत्व, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पॉच कर्मेन्द्रिय, पंचतन्मात्रा, पंचमहाभूत, इन चौबीस तत्वों को नियामन करने वाले आप पच्चीस वॉ तत्व है

किम्पुरुष बोले- भगवान हम किम्पुरुष है, आप महापुरुष है। यह सज्जनों से शाप पाया हुआ दुष्ट पुरुष है। इसका वध करते हुए आपने शिष्टों का रक्षा की है।।54।।

बेताल बोले- भगवान हम सभा में, यज्ञों में आपके निर्मल कीर्ति का संकीर्तन करते हुए बहुत सम्मान पाते थे। यह दुष्ट हमको कष्ट करके दुष्ट रोग के समान व्यसनों से हमें भ्रष्ट किया था। इसको नष्ट करते हुए आपने हमारे ऊपर बड़ा अनुग्रह किये है।।55।।

किन्नर बोले - प्रभू, हम किन्नरगण आपके सेवक हैं आप सदाकाल हमारे पोषण करते थे। यह दुष्ट दैत्य हमारे से सेवा लेता था, कष्ट के बिना हमें कुछ नही देता था। हे हमारे स्वामी आपने इस दुष्ट को नाश किये है। आप पहले जैसे हमारे मंगल का कारण रहे।।56।।

विष्णु दूत बोले - हे सर्व रक्षक, सकल लोगों को सुख देने वाले सदाकाल आपके पास रहते हुए भी आपका उग्र नरसिम्ह रुप हमने पहली बार देखा है। यह राक्षस हमारे जैसे आपका पार्षद था। मुनी शाप के कारण असुरावेश से दुखित उसको आपने जो मरण शिक्षा दी है वह उसके कल्याण के लिए है।।57।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में सातवाँ स्कन्ध में आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः

अध्याय - नौ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

नारद जी कहते है- भगवान नरसिम्ह जी क्रोध से तप्त होकर सिंहासन के ऊपर बैठे है। उनके पास जाने का साहस ब्रह्मा जी से लेकर सारी देवताओं में किसी में नही था।।1।।

देवताओं ने लक्ष्मी जी से प्रार्थना करते हुऐ उनको भगवान के पास जाने के लिए प्रार्थना की। किन्तु लक्ष्मी जी भी भगवान के उस अद्भुत उग्र रूप को इसके पहले कभी भी कहीं भी न यह कभी भीदिखा हुआ, न सुना हुआ उस अद्भुत उग्र रूप को देखकर उनके पास जाने कि धैर्य नही किया।।2।।

ब्रह्मा जी अपने पास प्रहलाद जी को बुलाकर कहे - बेटा तुम्हारे पिता के बारे में भगवान रुष्ट हैं। तुम उनके पास जाकर उनका समाधान करों।।3।।

अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात् इसका अर्थ नरसिम्ह जी का रुप अन्य लोगों ने नही देखा है। लक्ष्मी जी लोक मोह के लिए नरसिम्ह जी के पास नहीं गई। यहाँ प्रह्लाद जी का महिमा और उसके ऊपर अपने प्यार को भी लोक को दिखाना है। इसी कारण ब्रह्मा जी भी भगवान के पास नहीं गये। ये सारा अज्ञजनों के मोह के लिए है। यह ब्रह्माण्ड पुराण का वचन है।

हे राजा सुनो भगवद्भक्त प्रह्लाद जी ब्रह्मा जी के वचन के अनुसार भगवान के पास जाकर दण्डवत् प्रणाम किये।।4।।

अपने पाँव के ऊपर पड़े हुए बालक को दोनों हाथ से प्यार से उठाकर उसके सिर के ऊपर अपने हाथ को रखते हुए इसको भयरहित किये।।5।।

नरसिम्ह जी के करस्पर्श मात्र से अपरोक्ष और प्रतिबन्धक सारे पाप प्रह्लाद जी से चला गया। उनको उसी क्षण अपने बिम्बरूपी भगवान का दर्शन हुआ। उससे उसको स्वरूपानन्द अभिव्यक्त हुआ। भक्ति रस से अन्तःकरण द्रवित हुआ। आखों में आनन्दबाष्प बहने लगा। प्रह्लाद जी ने अपने हृदय में भगवान के पाद कमल का चिन्तन करने लगे।।6।।

सुख दुःख को समान मानने वाले प्रह्लाद जी नरसिम्ह भगवान में अपने आँख और मन को स्थिर करते हुए एकाग्र चित से प्रेम गद्गद होकर प्रार्थना करने लगे।।7।।

प्रह्लाद जी कहते है - भगवन् ब्रह्मादि देवगण, मुनिगण और सिद्ध ये सारे सत्वगुण से आप में अनन्य भक्ति करने वाले है। आप रमा ब्रह्मादि से उत्तम हैं। वे सर्वोत्तम आपका बहुत अच्छी स्तुति करते हैं। तो भी वे अपाको समाधान न करते हुए दूर खड़े हैं। मैं तो तामस स्वभाव का असुर जाति में जन्म लिया हूँ। मेरे स्तुति को आप कैसे स्वीकार करते है।।8।।

मैं जानता हूँ कि आप धनसम्पत, सत्कुल में जन्म, शरीर सौन्दर्य, तप, विद्या, ओजस, ब्रह्मावर्चस्, दैहिक शक्ति, पराक्रम, बुद्धि ग्रहण शक्ति, एकाग्रता इन सबसे मिलने वाले नही। आप परम पुरुष है। आप केवल भक्ति से मिलने वाले है। गजेन्द्र के केवल भक्ति को देखकर आप उन पर कृपा किये।।9।।

ज्ञान,सत्य,दम,शम,इत्यादि बारह गुण को प्राप्त किया हुआ ब्राह्मण कभी पद्मनाभ के पदपद्म से विमुख हुआ तो (मै ही स्वतंत्र हूँ इस भाव से रहे तो) उससे बढ़कर अपने तन मन प्राण को अर्पण करने वाला चाण्डाल को मैं श्रेष्ठ मानता हूँ। वह चाण्डाल इस जगत पवित्र करता है, वह अहंकारी ब्राह्मण यह कर नही सकता।।10।।

ज्ञान, सत्य, दम, शम, अमात्सर्य, लज्जा, द्वन्द्वसहिष्णुता, क्रोध नही करना, दान, यज्ञ, तप, और अध्ययन ये बारह गुण ब्राह्मण में होना चाहिए,यह महाभारत का वाक्य है। इन बातों को बोलते समय प्रह्लाद जी के मन में शंडामर्क ब्राह्मण और भक्त राक्षय पुत्र थे।

हे प्रभु आप स्वरूपानन्दपूर्ण है। अन्य लोगों से आप पूजा नही स्वीकार करते। ज्ञानी भी सकाम होकर किया हुआ पूजा को तिरस्कार करतें। मुख को अलंकार करने से उसका चित्र में वह अलंकार आ जाता है। वैसे आपके सेवा करने वाले को लाभ मिलता है, क्योकि आप उन लोगों के हित के लिए ही उनकी पूजा को स्वीकार करते है।।11।।

बिम्ब को अलंकार करने से उसका प्रतिबिम्ब सुन्दर दिखाता है। हम भगवान के प्रतिबिम्ब के रुप में हैं। हमारा अस्तित्व और कार्यकारित्व उनके अधीन है। हमारे स्वरूपानन्द में उनके अनुग्रह से थोड़ा साम्य दिखाता है। बिम्ब को सुख समृद्धि करने से प्रतिबिम्ब को उसका एक अंश हमें मिलता है। हम मुख का अलंकार करने के बदले में दर्पण में दिखने वाला हमारे मुहँ को अलंकार किये तो वह सुन्दर नहीं दिखता,वह व्यर्थ प्रयास होता है। हम सारे भोग सुख को भगवान को समर्पित करते हुए प्रसाद रूप में उसका ग्रहण करना चाहिए।

भगवान कि महिमा अचिन्त्य और अनंत है। मैं पूर्ण रूप से आपकी स्तुति कर नही सकता। किन्तु बन्धक प्रकृति से बद्ध होकर संसार सागर में डूबा हुआ जीव आपकी महिमा का वर्णन करने के बाद ही बन्ध मुक्त होता है। भगवान मैं अनुमान रहित होकर मेरे बुद्धि के अनुसार स्तोत्र करता हूँ।।12।।

ब्रह्मादि सारे देवता हमारे तरह ज्ञानानन्दपूर्ण आपके आज्ञाधारक हैं। हम सब आपसे डरने वाले नहीं है, क्योकि हमें मालूम है आपकी सारी लीलाऐं इस प्रपंच के कल्याण के लिए, सुख सम्पत्ति के लिए और मोक्ष सुख देने के लिए हैं।।13।।

हे भगवान आप अपने क्रोध को छोड़कर शान्त हो जाइयें। दैत्य को तो आप मार डाले हैं। साधु-सज्जन भी साँप बिच्छू जैसे हिंस प्राणियों को मारने से सन्तोष पाते हैं। आपकी इस कृति से सारे जगत को समाधान मिला है। जो देखने आये है वे अपने स्थान को वापस जाने दीजिये। आप इस उग्ररुप को त्याग दीजियें। लोग आपका इस रूप का स्मरण सदाकाल करते रहें।।14।।

हे अजेय नारसिम्ह, आपका रूप अति भयंकर है, सूर्य के समान जलने वाले ऑख, भय निर्माण करते है। आप ऑत के माला को धारण किये है। आपके बाल रक्त से लाल हो गये है। कान खड़े हो गये हैं। आपकी गर्जना को सुनकर दिग्गज भी भय से डर गये है। शत्रु को चिरने वाले आपके नख अत्यन्त भयकारक है। मैं इनसे डरने वाला नहीं हूँ।।15।।

हे दीन दयालों सत्यकाम श्री हरि मैं यह असहनीय भीकर जनन मरण चक्र में फसकर दु:खित हो गया हूँ। मेरे कर्म से बध्य हो गया हूँ। इस संसार और मेरे कर्म इसको मैं डरता हूँ। जिसकों डर है उस सबको रक्षा देने वाले आपके पद तल का शरण लेना चाहिए। यह मेरी आशा कब पूर्ण होगी।।16।।

सारे योनियों में इष्ट दूर होना अनिष्ट आ पड़ना, दु:ख का अनुभव करना इन सबके कारण मेरा शरीर जल रहा है। इसके परिहार में कुछ भी प्रयास करे वह और ज्यादा दु:ख कारण बनता है। इससे मुझे परिहार नही मिल रहा है। हे पूर्ण रूप परब्रह्म आपकी सेवा करना ही इन दु:खों का परिहार मार्ग है। वह सेवा करने का उपाय आप मुझे बताइये।।17।।

हे नरसिम्ह प्रिय और हितैषि आप श्रेष्ठ देव है। ब्रह्मादि देवता आपकी लीला का गुणगान करते हैं। मैं मेरे योग्यतानुसार संकीर्तन कर रहा हूँ। ये त्रिगुण बन्ध से मुझको छुड़ना चाहता हूँ। आपके पादद्वय का आश्रय में रहने वाले नारदादि परमहंसों के संग में रहते हुए इस दु:ख सागर को पार करूँगा।।18।।

हे नरसिम्ह बच्चे का रक्षण माता-पिता करते हैं, औषधि रोगों से रक्षा करती है, धूप से थका हुआ आदमी को शीतोपचार से रक्षा मिलती है। वैसे प्रभु आपके उपासक हम लोगों का शरीर के आप ही रक्षक है।।19।।

आपसे अलग ब्रह्मादि देवता हो या कुम्हार जैसा मानव हो, सारे आपके प्रेरणानुसार काम करते हैं। विलक्षण स्वभाव वाले वे लोग जिस पदार्थ से, जिस साधन से, जिनके सहाय से, जिस तरीके से पदार्थों का उत्पन्न करते है, अथवा बदल करते है वह सारी क्रिया आपके अधीन है।।20।।

प्रकृति के सत्वादि गुण के अनुसार जीव को पुण्य पाप मिलता है। इसके कारण रुप कर्म को संकल्प और विक्लप करने वाले बलिष्ठ मन इसको करता है। यह मनोमूल संसार चक्र को- दश इन्द्रिय, पंचप्राण, और एक मन मिलकर सोलह अरा होते है। हे जनन रहित श्री हरे, इस संसार चक्र से आपके बिना हमको और कौन्पार कर सकता है।।21।।

आप अपने सामर्थ्य से शरीर धर्म और जीव धर्म को दूर किये है। आप सर्वज्ञ है। सृष्टि योग्य के

सृष्टि करने में ब्रह्मादि देवताओं को जो शक्ति है वह भी आपके अधीन है। हे प्रभु सर्वेश मैं आपके शरण में आया हूँ। प्रकृति मुझको इस संसार चक्र में फेका है। मैं इस चक्र के नीचे कुचल जा रहा हूँ। आप कृपया मुझको अपने पास खींच लिजिये।।22।।

हे प्रभु लोग चाहने वाले लोक पालकों का दीर्घायुष्य, सम्पत और वैभव को स्वर्ग में मै देखा हूँ। किन्तु मेरे पिता जी क्रोध से अट्टाहास्य करने के कारण वे सारे नष्ट हो गये। मेरे पिता का वैभव भी नष्ट हो गया। आपने ही उनको नष्ट किया है न।।23।।

आप सर्वशक्त काल नियामक काल नाम वाले हैं। आप इष्ट भोग पदार्थो को नष्ट करने वाले हैं, इसको मै ठीक तरह से जानता हूँ। ब्रह्म लोक में मिलने वाला दीर्घायुष्य, सकल भोग भाग्य वैभव को मै नही चाहता हूँ मुझको आपके भक्तो के साथ रखिये, यही मेरी प्रार्थना है।।24।।

भोग वस्तुओं की वर्णना सुनने के लिए आकर्षक होते है। किन्तु मृगमरीचिका के तरह वे मिलने वाले नही है। एक बार मिल गये तो भी रोगों के उत्पत्ति स्थान इस शरीर के लिए उनका उपयोग कहाँ तक होगा? तो इतने होते हुए भी लोगो को वैराग्य नही आता है। सब कुछ जानने वाला भी इच्छा नामक अग्नि को मिलने वाले भोग सुख से तृप्त करना चाहता है।।25।।

हे सर्वेश्वर विषयासक्ति का उत्पत्ति स्थान तमोगुण असुर कुल में ज्यादा रहता है। उस कुल में जन्म लिया मेरे ऊपर आप कितना अनुकम्प कर रहे हैं ? आप मेरे सिर के ऊपर अपने कल्याणकारी कर कमल रखें है। यह अनुग्रह आप ब्रह्मा जी के ऊपर भी नही किये, रुद्र जी को नही किये, रमादेवी के लिए भी नही किये।।26।।

रमादि देवताओं के सिर के ऊपर आप अनुग्रह हस्त नही रखे हैं, यह असुर मोहन के लिए प्रह्लाद जी कहते है। वस्तुत: सदा काल आपका वरद हस्त उनके लिए रहता है यही अर्थ से इन बातों को कहे है।

यह मेरे जात का है, इसको अनुग्रह करना है, यह अन्य जाति वाला है, इसको अनुग्रह नही करना यह पक्षपात बुद्धि आप में नही है। आप इस जगत के समस्त जीव जन्तुओं को आप्त मित्र है। अन्य लोगो की सेवा करने से कल्पवृक्ष को संतोष होता है। वैसे ही हम जो चाहते है उसको देने से आपको आनन्द होता है हम जो सेवा करते है उसके अनुरूप आप फल देते है, पक्षपात नही करते।।27।।

मै विषय भोग नाम के विष सर्पो से भरा हुआ इस संसार कूप में गिरा हुआ था। विषयाभिलाषि लोगो के अनुसरण करते हुए उनके संग से पतित होने वाला था। तब देवर्षि नारद जी मुझको अपनाये। भगवान मै कैसे आपके दास लोगो का सेवा को त्याग सकता हूँ।।28।।

हे अनन्त आपने मेरे प्राण की रक्षा की, मेरे पिताजी को मार दिये यह नारद जी मुझको जो उपदेश दिये थे उसको सत्य किये। मेरे पिताजी मुझको मारने के लिए हाथ खड्ग पकड़ कर बोले मै तेरे सिर को काट डालता हूँ। मुझको छोड़कर और एक भगवान है तो आकर तेरी रक्षा करे। इस बात को सत्य करने के लिए

आप व्यक्त होकर आये।।29।।

भगवान आप एक है, मुख्य है। आप सारे रूपों में समान और अभिन्न है। इस जग के आदि अन्त और मध्य में इस जगत से भिन्न रहने वाले आप है। आप त्रिगुणों के वैषम्य से जनन लेने वाला इस जगत को अपने सामर्थ्य से सृष्टि करते हुए उसमें प्रवेश करते हुए स्वामित्व से वहाँ रहते हैं। आप ने सृष्ट किया हुआ ये सारे पदार्थ अलग-अलग अनेक रहने से उसमें रहने वाले आप भी अनेक तरह से अनेक रूप से दिखते हैं। वस्तुत: सारे आपके रूप समान है अभिन्न है। आप एक है, रूप अलग- अलग हैं।।30।।

यह चेतन-अचेतन प्रपंच सारे अपने के अधीन है। इसको आप भी कहते है। किन्तु ये प्रपच ही आप नही है। आप उससे अलग है। आप इस प्रपंच के प्रभु है। ऐसे होते हुए भी हम अपने को प्रभु समझना भ्रान्ति पूर्ण है, अनर्थकारी है। जिससे जनन मरण जीवन और उसका जानकारी होता है उसको उसी के नाम से पुकारते है। दृष्टान्त के रूप में कल्पवृक्ष देवताओं के वश में रहने के कारण उसको **सुरतरु** कहते है। वृक्षदाह काल के अधीन होने कारण दहन करने वाला अग्नि को कालाग्नि कहते है।।31।।

प्रलय काल में इस जगत को अपने पेट में रखते हुए प्रलय समुद्र में अन्त में रहने वाले वटपत्र में सोते हुए अपने स्वरूपानन्द को भोगते हुए सृष्टि कार्य में अनासक्त होकर स्वेच्छा से आप ऑख मूंदते है। आपको नींद नही लगता। आप नित्यमुक्त है, और मुक्ति नियामक तुर्यरुपी है। प्रलय के अन्त में आप अपने वश में रहने वाली प्रकृति को और उनके गुणों को सृष्टि कार्य में प्रेरणा देते हैं।।32।।

आप प्रलय के जल में से योग निद्रा त्याग उठने के बाद प्रकृति आदि तत्वों को पेट में धारण किये हुए आपके अन्दर सूक्ष्म रूप से रहने वाला महाकमल आपके अधीन शक्ति से प्रेरित होकर आपके नाभि से व्यक्त हुआ। सूक्ष्म बरगद के बीज से बडा पीपल वृक्ष जैसे उत्पन्न होता है वैसे यह ब्रह्माण्ड कमल उत्पन्न हुआ । यह नाभि कमल आपके शरीर समान है।।33।।

उस नाभि कमल में जन्म लिया हुआ सर्वज्ञ चतुर्मुख ब्रह्मा जी पद्म को छोड़कर अन्य किसी को न देखते हुए बीज रूप में रहने वाले आपको पद्म के बाहर ढूढ़ते हुये कहा भी नही देखे। वस्तुत: आप आपके शरीर समान इस कमल में ही थे। बीज से अंकुर आने के बाद बीज रुप में रहने वाला आपको कैसे देख सकते है ? आपको अंकुर रूप में देखना सही होता है।।34।।

आपको न देखने से अत्यन्त आश्चर्य चकित ब्रह्मा जी उसी कमल में बैठकर बहुत काल तक तप किये। तप से शुद्ध अन्त:करण वाले होकर आपके देह रूप पंचभूत इन्द्रिय मन आदि तत्वों में पृथ्वी तत्व में गन्ध जैसे आविष्ट है वैसे आप सूक्ष्म रूप से व्यापत है इसको देख लिये।।35।।

पृथ्वी अभिमानी देवता पृथ्वी जैसे व्यापत है वैसे भगवान विष्णु इस जगत में व्याप्त हैं। मायामय इसका अर्थ ज्ञानस्वरुप होता है। सदुपलक्षण सन्निवेश का अर्थ आनन्द आदि लक्षणों का समुदाय रुप होता है।

आप हजारों मुख,पाद,शिर,हाथ,नाक, मुह, कान,आँख,आयुध और आभ्रणों से युक्त हैं।

ज्ञानस्वरूपी आनन्द, ओज, बल इत्यादि लक्षणों के समूह रूप हैं ऐसे परम पुरुष आपको देखकर ब्रह्मा जी आनन्द विभोर हो गये।।36।।

भगवान आप हयग्रीव रूप धारण कर मधु और कैटभ नाम के अति बलिष्ठ वेदद्रोही असुरों को मारकर वेद समूहों को ब्रह्मा जी को लाकर दिये। आपको सत्व रज और तमो गुण प्रिय शरीर है ऐसे लोग कहते हैं।।37।।

मधु कैटभ वेद को अपहरण किये। वेद अभिमानी देवताओं को अपने वश में रखते हुए लोगो से वेदोक्त कर्मानुष्ठान होने नही दिये। हयग्रीव रूपी भगवान उनको मारकर वेदाभिमानी को ब्रह्मा जी के वश में दिये। इससे लोगों को कर्मानुष्ठान करने में अनुकूल हुआ इस रीति से भगवान स्वरूपावतार करते हुए सात्विक देवताओं में, राजस मानओं में,तामस राक्षसों में प्रेरक होकर लीलाऐं की । इस दृष्टि से सत्व रजस्तमों गुण उनके शरीर के समान है

इस रीति से आपने मानव, प्राणी,ऋषि,देव और मत्स्य होकर आवतार लेते हुए लोको का रक्षा की है, लोक कंण्टको का नाश किये है। उन युगों के अनुसार धर्म की रक्षा की है। हे परम् पुरुष आप कलियुग में अवतार न लेते हुए त्रियुगहूति नाम से प्रसिद्ध है।।38।।

हे बैकुण्ठनाथ, मेरे इस मन आपके कथा श्रवण में सुख नही पाता है क्योंकि वह पाप से कलुषित हो गया है बहुत वेग से विषय सुख का अनुभव करने में उत्कंठित है हर्ष शोक भय से, पत्नी पुत्र घर के प्यार से बंन्धित होकर दुःख पाता है। ऐसे मनस्थिति में मैं आपकी लीलाओं को कैसे मनन करे।।39।।

हे अचुत, विषय सुख को खाकर भी तृप्त न होने वाला मेरा जीभ उसी के तरह मुझको खींच रहा है। जननांग स्त्री सुख के लिए खींचता है। शरीर स्पर्श के लिए, पेट अन्न के लिए, नाक सुगन्ध के लिए, कान मधुर गान के लिए अलग-अलग दिशा में मुझे खींच रहे है। ये चंचल आँखे और ये कर्मेन्द्रिय मुझको आपसे बहुत दूर ले जा रहे हैं। बहुत से सौत मिलकर यजमान को जैसे अपने-अपने पास घसीटतें हैं,वैसे मुझको मेरी इन्द्रियाँ कष्ट दे रही हैं।।40।।

ऐसे मैं मेरे कर्मवश से संसार नाम के वैतरणि नदी में गिर गया हूँ। बार-बार जनन-मरण से होने वाले आघातों से बहुत डर रहा हूँ। मेरा शरीर और अन्यों के शरीरों में द्वेष और प्यार करता हूँ। इस संसार नदी को कैसे पार करूँ इसको न जानने वाला मूढ़ मैं हूँ। मुझको देखकर मेरा इस दुःख को देखकर मुझको इस संसार नदी से उस पार ले लों।।41।।

हे जगतगुरु भगवान आप इस जगत के सृष्टि स्थिति और लय के लिए मूल कारण हैं। आपके लिए मुझको इस संसार से पार करने में क्या कष्ट हैं। हे दीनबन्धों आप भक्तों को अपने भक्ति के अनुसार अनुग्रह करने वाले हैं। भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने से आपको क्या होने वाला है। आप अपने स्वभाव से ही भक्तों को अनुग्रह करते हैं। हम अज्ञ हैं। हमको मोक्ष देना आपका बड़ा अनुग्रह होगा।।42।।

मैं इस पार न करने वाला वैतरणि से डरने वाला नही हूँ। आपके कीर्ति को संकीर्तन करने वाले शास्त्रों को सुनते हुए उस अमृत पान से मैं सदा काल सुख पाता हूँ। मैं दुःख कर रहा हूँ यह मेरे लिए नही है, किन्तु आप में मन न रखते हुए इन्द्रिय जन्य प्राकृत सुख की आशा में इस संसार के बोझ को ढो रहे मूढ़ लोगो के लिए मैं शोक कर रहा हूँ।।43।।

देवतागण ऋषिगण अपने मोक्ष पाने की इच्छा से एकान्त में मौन रहते हैं। दूसरों के मोक्ष साधना में उनकी निष्ठा नहीं रहती। **मैं अपने में विश्वास रखें हुए इन असुर बालकों को छोड़कर मोक्ष पाने की इच्छा नहीं रखता।** इस संसार के महारण्य में फिरते रहे उनको भी आपही गति प्रदर्शक हैं। आपको छोड़कर मैं दूसरो को नही जानता। इसी कारण मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ।।44।।

तात्विक देवता नारद आदि मुनि अपने भक्तों के बारे में विशेष दया करना चाहिए। नही तो उन भक्तों को मोक्ष नहीं मिलता। प्रह्लाद आदि देवता और मुनिगण को सारे जीवों में दया करना होता है। यह भगवान की इच्छा भी हैं।

गृहस्थलोंग जो लैंगिक सुख पाते है वे अल्प हैं। दोनों हाथों को घिसकर खुजली को निवारण करने जैसा है। यह और दुःख के लिए कारण बनता है। केवल देह पोषण में मग्न रहने पर और ज्यादा दुःख को भोगना पड़ता है। इसके लिए लैंगिक सुख की आशा को खुजली के समान सहन करना पड़ता है।।45।।

मौन, व्रतानुष्ठान, शास्त्र श्रवण, तप, अध्ययन, वर्णाश्रमधर्माचरण, प्रवचन, एकान्तवास, जप और ध्यान ये सारे इन्द्रिय निग्रह न रहने वाला डाम्भिको के लिए केवल जीवनोपाय हैं। इसकी डाम्भिकता मालूम हुआ तो जीवनोपाय भी नहीं मिलेगा।।46।।

आपके आराधना के लिए बीज अंकुर के समान कारण-कार्य बनने वाले सारी वस्तुयें **द्वेवाव ब्रह्मणों रूपें मूर्तं चैवामूर्तं च** इस वेद वाक्य के अनुसार दो प्रतिमा के समान हैं। ये सारे आपके अधीन हैं। आप प्राकृत शरीर रहित हैं। वे आपका शरीर नही बनते। आपके यह गुणपूर्ण शरीर छोड़कर और प्राकृत शरीर अलग नही हैं। अरणि काष्ट में अग्नि का आविर्भाव होने जैसे कार्य-कारण वस्तुओं में ध्यान निरत उपासक आपका साक्षात्कार पाते हैं। इसी कारण वे आपके प्रतिमा रूप में है।।47।।

जड़ पदार्थ भगवान के अधीन है, वे भगवान के प्रतिमा रूप लगते है। विवक्षता रूप में मत्स्य कूर्मादि रूप ही साक्षात प्रतिमा रूप हैं।

वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, तन्मात्रा, पंचप्राण, इन्द्रिय, मन और जीव ये सारे आपके अधीन हैं। आप ज्ञानान्दादि गुण पूर्ण हैं। त्रिगुण रहित हैं। मन और बात से मिलने वाली सारे वस्तु आपके अधीन हैं, स्वतंत्र नही।।48।।

गुणत्रयाभिमानी श्री भू दुर्गा, गुण के परिणाम महत् आदि तत्वादि अभिमानी देवताओं, मन अभिमानी रुद्र और अन्य देवताओं और सकल मानव ये सारे उत्पत्ति नाश वाले हैं। आप सर्वोत्तम हैं। वेद आपके

गुणगान करते हैं। आपको कोई पूर्ण रूप से जान नही सकता। ज्ञानी लोग वेदों से चिन्तन करते हुए आपको पाकर इस संसार से मुक्त होते हैं।।49।।

आप परम तत्व हैं। आपमें मन निश्चल होना चाहिए। आँख आपके दर्शन करना चाहिए, जीभ आपकी स्तुति, हाथ आपकी पूजा में रत हो। कान आपकी कथा सुने, पाँव आपकी क्षेत्र यात्रा करें। ये छः तरह सेवा करने वाले लोग परम हंसो के लिए प्रिय आपके भक्ति को पाते हैं।।50।।

नारद जी कहते हैं - त्रिगुण रहित भगवान अपने ज्ञानान्दादि गुणों को भक्त प्रह्लाद ने परम भक्ति से जो गुणगान किया उससे संतुष्ट होकर अपने क्रोध को त्यागकर प्यार से बोलिए।।51।।

श्री भगवान ने कहा- हे असुर श्रेष्ठ सज्जन प्रह्लाद तुमको शुभ हो। मैं तुमसे संतुष्ट हूँ। जो चाहे वह वर माँगो। मैं भक्तजनों के इष्टार्थ को पूर्ण करने वाला हूँ।।52।।

हे दीर्घायु प्रह्लाद जो मेरे भक्त नही हैं उनके लिए मेरा दर्शन दुर्लभ है। जो मेरा दर्शन करता है उसको कभी भी कष्ट नही होगा।।53।।

ज्ञानी, महात्मा और देवता भी श्रेय को चाहते हुए पूर्ण भक्ति से मेरी आराधना करते हैं। लक्ष्मीपति मैं सब लोगो की इच्छितार्थ को देने वाला हूँ।।54।।

नारद जी कहते है- भगवान इस रीति से प्रह्लाद को अत्यन्त आकर्षक वर देने की आशा उत्पन्न करने का यत्न किये तो भी प्रह्लाद फल की कामना न करते हुए भक्ति करने वाले परम भागवत होने के कारण उन वरों को नही स्वीकार किया।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में सातवाँ स्कन्ध में नौवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

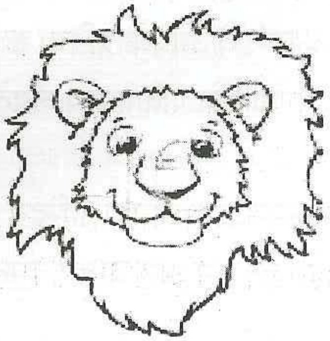

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः

अध्याय - दस

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

नारद जी कहते है- वे सारे वर भक्ति योग के लिए विघ्नकारक हैं। इसको समझने वाला बालक प्रह्लाद हँसते हुए भगवान से कहा।।1।।

प्रह्लाद जी कहते है- भगवान मैं सहज रीति से विषयों में आसक्त था। उनके संग से डर कर विरक्त होकर मोक्ष की आकांक्षा रखते हुए आपकी शरण में आया हूँ। मुझको फिर वर पाकर उस विषय सुख का लोभ उत्पन्न मत करियें।।2।।

प्रभु मैं जानता हूँ, आप भक्त को आशा से लुभवाकर इस बन्धक बनने वाले संसार के विषयों में इस भक्त का भक्ति कितना दृढ़ है इसकी परीक्षा करने के लिए और लोगों को उसकी दृढ़ता को दिखाने के लिए आप मुझको वर माँगने का आदेश दे रहें हैं।।3।।

ऐसा नही तो करुणामयी जगद्गुरु आप हमें ऐसे नहीं लुभवाते थे। संसार के अंधेरे में दिगदिशा को न देखने वाले को दिशा दिखाकर पार करने वाले आपही है न?।।4।।

भक्ति के प्रति फल रुप में जो आपसे वर चाहता है वह आपका भक्त नहीं होता है, वह व्यापारी बनता है। भगवद्भक्त का केवल भक्ति को देखना है, भक्त भगवान का केवल महिमा को समझना हैं, भक्त भगवान भक्ति से कोई उपकार की कामना नही करना चाहिए। तब वह भगवान है, और यह भक्त है।।5।।

स्वामी के यहाँ अपने अभीष्टों को माँगने वाला भक्त नहीं बनता। अपने बड़प्पन को दिखाने के लिए वर देने वाला भगवान नही बनता।।6।।

मैं आपसे कुछ भी न चाहने वाला भक्त हूँ, आप मुझसे कुछ भी न चाहने वाले प्रभु है। स्वामी मैं केवल आपके प्रभुत्व के लिए आपके शरण आया हूँ, आप मेरे भक्ति से संतुष्ट हुऐ हैं। इसको छोड़कर हमारे बीच में राजा और सेवक के समान सम्बन्ध बिल्कुल नहीं है।।7।।

वर देने में सबसे श्रेष्ठ हे प्रभु यदि आप वर देने के लिए संकल्प किया है तो मेरे मन में वर पाने की इच्छा न हो ऐसे वर मुझे दीजिए।।8।।

क्योंकि दुष्ट विषयों कि कामना एक बार शुरु हुआ तो उससे इन्द्रिय, मन, प्राण, शरीर, पुण्य, विषयों भोगों को त्यागने का धैर्य, शास्त्रज्ञान अकलन करने में लज्जा, शरीर कांति, ब्रह्मवर्चस, शास्त्रार्थस्मरण और

समस्त भूतों को हित करना ये सारे नाश हो जाते हैं।।9।।

मन में उत्पन्न होने वाले कामनाओं को मानव जब परित्याग करने लगता है तब वह मोक्ष योगी बनता है। हे पुण्डरीकाक्ष, नारद जी मुझे उपदेश दिये हुए आपका इस मन्त्र को मैं सदाकाल दोहराते रहता हूँ।।10।।

ओम् नमों भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने।
हरयेध्भुत सिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ।।

हे अद्भुत, गुण पूर्ण षड्गुणशाली, महात्मा, हरि का अवतार, परब्रह्म परमात्मा, अद्भुत नरसिंहम आपको नमस्कार।।11।।

इस मन्त्र को नारद जी ने प्रह्लाद जी को उपदेश दिये है। भागवत में स्पष्ट लिख है, नारदेनोपदिष्टंमे तव मन्त्रमिमम् स्मरे।

श्री नरसिंह जी कहते हैं- प्रह्लाद तुम्हारे समान एकांन्त भक्त कभी भी किसी से इह में या पर में विषयोपभोगों को नहीं माँगते। तुम इस मन्वन्तर के अंत तक इस जगत में दैत्यों का चक्रवर्ती बनकर सारे सुख भोगों का अनुभव करों यह मेरी इच्छा है।।12।।

तुम्हारे लिए प्रिय कर मेरी कथाओं का श्रवण करो। सकल जीविओं में अन्तर्यामी होकर रहने वाले सर्वोत्तम मुझको हृदय में रखते हुए यज्ञ करते हुए यज्ञ फल भोगते मेरी भक्ति से आराधना करो, प्रति बन्धक कर्म को नाश करो। इससे तुमको मोक्ष में आनन्द का उन्नाह होता है।।13।।

भोग से अनिष्ट प्रारब्ध कर्म को, प्रायश्चित्त से प्रारब्ध पाप को, काल बल से शरीर को छोड़ते हुऐ देव लोक में गाने योग्य निर्मल कीर्ति को पसारते हुऐ बन्धमुक्त होकर तुम मुझको पाओगे।।14।।

तुमसे किया हुआ मेरा यह गुण संकीर्तन को कौन मानव गाता है और योग्य काल में तुझको और मुझको स्मरण करता है वह संसार से मुक्त होता है।।15।।

प्रह्लाद कहते हैं- हे परमेश्वर आप वर देने वाले के प्रभु हैं, आपसे मैं एक वर माँगना चाहता हूँ। मेरे पिताजी आपकी शक्ति को और तेजस को और आपकी निन्दा की है।।16।।

आपको अपने भाई का हत्यारा समझते हुए गलत रीति से मन में आपके बारे मे द्वेष करते हुऐ सकल लोक गुरु साक्षात प्रभु आपकी निन्दा की है। आपके भक्त होने के कारण मुझको भी बहुत हिंसा दी है।।17।।

तैरने असाध्य इस पाप सागर से मेरे पिताजी का उद्धार हो। आप दीन दु:खियों मे कृपा करने वाले भगवान आपके कृपा कटाक्ष से ही वे पाप मुक्त हुए हैं ऐसी मेरी धारणा है।।18।।

श्री भगवान बोले- हे पाप रहित प्रह्लाद तुम्हारे जन्म-जन्मांतर के इक्कीस पीढ़ी के पिताओं के साथ तुम्हारे पिता पाप मुक्त हो गया है। क्योंकि कुल को पावन करने वाला तुम जैसे सज्जन उसके कुल में पैदा

हुऐ हो।।19।।

जहाँ-जहाँ प्रशांत, समदर्शी, सज्जन और सदाचार निरत मेरे भक्त रहते है उस प्रदेश के निषिद्ध कीट भी वहाँ के लोगों को परिशुद्ध करता है।।20।।

हे दैत्य राज सारे प्राणियों मे मै रहता हूँ इस भावना से विषयों की आशा को छोड़ने वाला मानव छोटे-बड़े प्राणियों के समूह में किसी प्राणी को कभी भी त्रिकरणों से हिंसा नही करते है।।21।।

इस लोक में मेरे भक्त जो है उन्हे तुम्हारा अनुसरण करना चाहिए। तुम मेरे सारे भक्तों के आदर्श प्राय बना है।।22।।

अब तुम अपने पिताजी का उत्तर क्रिया कर्म करों। मेरे स्पर्श से वह पूर्ण रूप से परिशुद्ध हो चुका है। तुम्हारे जैसे पुत्र को पाने से वह उत्तम लोक को पाता है।।23।।

मरते समय केवल विष्णु के अंग-संग मात्र से मोक्ष मिलने वाला नहीं है। मोक्ष के लिए भक्ति चाहिए। मुक्ति के लिए भक्ति ही मुख्य साधन है। मधु कैटभ हरि के जंघा पर मरने के बाद भी भक्ति रहित होने के कारण उनको मोक्ष नही मिला। शिशु पाल को भक्ति होने के कारण मोक्ष मिला। यह स्कन्द पुराण का वाक्य है।

तुम पिता के सिंहासन का आरोहण करो। वेद जानने वाले ब्राह्मण जैसे कहते है उसमें मन लगाकर तत्परता से राज्यभार करो।।24।।

नारद जी कहते हैं- हे राजा सुनो, भगवान के आदेशानुसार प्रह्लाद पिताजी के उत्तर कर्म किया। ब्राह्मण लोक उसका पट्टाभिषेक किये। प्रह्लाद निष्कंटक होकर राज्य चलाया।।25।।

प्रह्लाद से प्रसन्न नरसिंह रूपी श्री हरि को देखकर देवताओं ने उनसे परिक्रमा करते हुऐ स्तुति करने लगे।।26।।

ब्रह्मा जी कहते हैं - हे देव-देव, सर्वेश्वर, सर्वजीवों का सृष्टिकर्ता, आदिपुरुष आप लोक कंटक पापी असुर को अनायास संहार किये।।27।।

मैंने इस असुर को वर दिया था कि उसको मुझसे सृष्ट किसी जीव से मरण न हो। उस मद से मत्त होकर तप योगशक्ति और पराक्रम से सकल यज्ञादि वैदिक कर्मो को बाधक बन गया था।।28।।

अदृष्ट वश से उसका पुत्र महा भगवद्भक्त और सज्जन निकला। उसी को आपने मृत्यु से मुक्त करते हुऐ रक्षा की है।।29।।

भगवान आपका यह नरसिंह रूप मन का निग्रह करते हुए ध्यान करने वाले को सकल भय से रक्षा देने वाली है। मारने आया हुआ यम से भी यह रक्षा देती है।।30।।

श्री भगवान कहते है - हे पद्म में जन्म लिया हुआ चतुर्मुख - तुम आगे किसी असुर को ऐसे वर देना नही। वह क्रूर स्वभाव के साँपों को अमृत पिलाना जैसा हो जाता है।।31।।

नारद जी कहते है - हे राजा स्वभावत: सकल जीवियों को अदृश्य रहने वाले भगवान श्री हरि

ब्रह्माजी से पूजित होकर वही अदृश्य हुए।।32।।

इसके बाद प्रह्लाद जी भगवान के प्रतिबिम्ब रूप ब्रह्म, रुद्र आदि देवताओं और प्रजापतियों को विधि पूर्वक सत्कार करते हुए नमस्कार किया।।33।।

उसके बाद शुक्राचार्य जी आदि ऋषि मुनियों से मिलकर ब्रह्माजी प्रह्लाद जी को दैत्य और दानव के लिए राजा बनाये।।34।।

तादन्तर ब्रह्मादि देवताओं प्रह्लाद का अभिनन्दन करते हुऐ उनको आशीर्वाद दिये। उनसे सत्कृत होकर अपने-अपने वासस्थान को चले गये।।35।।

इस रीति से जय-विजय नाम के वे दो विष्णु पार्षद दिति के पुत्र होकर हृदय में रहने वाला विष्णु के ऊपर के वैर से वही रहने वाला विष्णु से नाश हो गये।।36।।

पहले शाप के अनुसार वे पार्षद पुनः रावण,कुम्भकर्ण नाम के राक्षस होकर जन्म लिये। श्री राम जी के पराक्रम से वे नाश पाये।।37।।

युद्धस्थल में श्री राम जी के बाण से गिरे हुऐ वे उन्ही में मन रखते हुए शरीर छोड़े।।38।।

वे दोनों पार्षद अब पुनः शिशुपाल और दन्तवक्र होकर जन्म लेकर श्री कृष्ण में वैर पूर्वक भक्ति से आप सब लोग देखते-देखते श्री कृष्ण के पेट में समावेश हो गये।।39।।

श्री कृष्ण से वैर से भक्ति करने वाले कृष्ण वैरी राजाओं ने वैर भक्ति पूर्वक कृष्ण का ध्यान करते हुए दैत्यावेश से पीछे किये हुऐ पाप को अन्त समय में खो दिये। कीट जैसे अपने कीटत्व को खोकर कणज बन जाता है वैसे हे राजा भगवान में समाविष्ट हो गये।।40।।

पौण्ढ्रक वासुदेव,नरकासुर,साल्व,कंस,रुक्मि इनमे आविष्ट हरि भक्त हरि को पाये। उनमें रहने वाला दैत्य तमस में गिरे। यह स्कन्द पुराण का वचन है। यहाँ **तदात्मानः** इसका अर्थ श्री कृष्ण के शत्रुओ,असुरों में आविष्ट ऐसा अर्थ होता है। **वैरानुबंध** इसका वैर सहित भक्ति होता है।

उनके योग्यतानुसार भगवान में परम भक्ति करने वाले शिशुपाल राजा भगवान के ध्यान करने के कारण मोक्ष और श्री हरि के साम्य वाले चतुर्भुजादि रूप को पाये।।41।।

द्वेषियों को भी भगवान क्या अपने सारूप्य मोक्ष को देते हैं तुम्हारे इस प्रश्न को मै विस्तृत रूप से उत्तर दिया हूँ। संक्षेप से कहना है तो भगवान श्री कृष्ण इन द्वेषियों ने पहले से उनके भक्त थे, दैत्यावेश से द्वेष किये थे, उसी कारण भगवान उनको क्षमा कर अपने सारूप्य दिये हैं। भगवान अश्वासन दिये हैं कि **नमे भक्तःप्रणस्यति**।।42।।

यह आदि दैत्य हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्षों की वध की कथा है। ब्राह्मण प्रिय महात्मा श्री कृष्ण की पुण्यकर नरसिंम्हावतार की यह कथा है।।43।।

इस कथा में महा भगवद्भक्त प्रह्लाद का चरित्र आता है।भक्ति ज्ञान वैराग्य और श्री हरि का यथार्थ

वर्णन वाले नवधा भक्ति का विवरण है।।44।।

सृष्टि स्थिति लय के लिए स्वामी श्री हरि का गुण कर्मों का वर्णन है। छोटे-बड़े इन्द्रादि पद काल वश से बड़ा व्यत्यास पाते हैं इसका भी विवरण आया है।।45।।

मुख्य रूप से भगवान को पाने के लिए भागवत धर्म भक्ति ही है,द्वेष नही इसका वर्णन इस कथा में आया है। भगवान का सही ज्ञान का वर्णन यहाँ पूर्ण रूप से आया है।।46।।

भगवान विष्णु के महिमा युक्त इस पुण्य कर कथा को जो बोलता है और श्रद्धा से सुनता है वे सांसारिक बन्धन से मुक्त हो जाते है।।47।।

आदि पुरुष भगवान नरसिम्ह जी के लीला को, वे हिरण्यकश्यप नाम का हाथी को कैसे मार दिये इस कथा को और सज्जनों में श्रेष्ठ प्रह्लाद जी का पुण्य कर महिमा को एक चित्त से जो श्रवण पठन करता है वह निर्भय होकर वैकुण्ठ .ाता है।।48।।

हे युधिष्ठिर इस मनुष्य लोक में तुम लोग ही महा भाग्यशाली हो, क्योकि तुम्हारे घर को लोक को पावन करने वाले ऋषि मुनि आते हैं और साक्षात परम ब्रह्म मनुष्य के रूप में भगवान श्री कृष्ण आकर आपके घर में वास करते है।।49।।

वही श्री कृष्ण आप लोगों का प्रिय मित्र मामा के पुत्र और आप लोगो के अत्यन्त पूज्य पात्र और स्वामी होते हुए भी तुम लोगों के आज्ञा का पालन करते हैं,और तुम्हें हितकर उपदेश देते हैं। महात्मा ब्रह्मादि देवता इस गुण पूर्ण परब्रह्म को ढूंढते हैं। वही स्वतन्त्र और स्वरूप सुखानुभव वाले हैं।।50।।

जिसके स्वरूप को शिव ब्रह्म इत्यादि देवता भी देखकर पूर्ण रीति से वर्णन नही कर सकते,वे श्री कृष्ण हमारे भक्ति युक्त मनन और ध्यान से आराधना करते हैं वे हमें प्रसन्न हों।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में सातवाँ स्कन्ध में दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

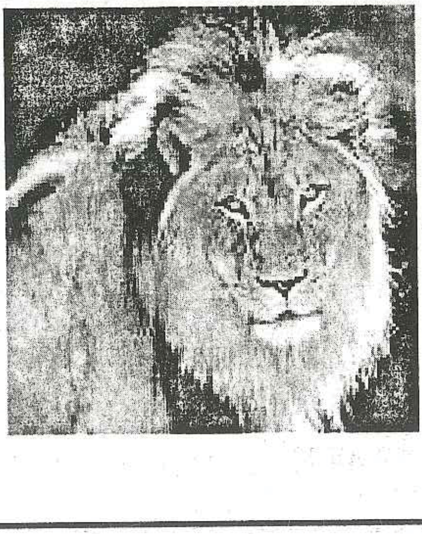

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः

अध्याय - ग्यारह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

नारद जी कहते हैं - प्राचीन काल में रुद्र जी को एक संशय आया था, यह सारा जगत भगवान के अधीन है क्या नही। बहुत मायावी किन्तु अल्प मयासुर से रुद्र जी का विरोध करने से रुद्र का उस संशय को भगवान नारायण ने परिहार किया इसके बाद हरि की कीर्ति सारे जगत में प्रसिद्ध हुयी।।1।।

धर्मराज पूछता है - इस कार्य में मयासुर रुद्र के विरोध मे प्रतिक्रिया किया। इसमें यश कैसे मिला। भगवान श्री कृष्ण रुद्र के यश को कैसे बड़ा दिये ये सारे विषय मुझे बताइये।।2।।

नारद जी कहते- श्री कृष्ण के बल से देवता लोगो ने असुरों को युद्ध मे हराने के बाद मायावी के परम गुरु मयासुर के यहाँ सारे असुर शरण पा लिए ।।3।।

मयासुर सोना, चाँदी और लोहे से तीन नगरी का निर्माण करते हुए उनको असुरों को सौंप दिया। ये नगरी एक जगह से दूसरे जगह पर सैर करते थे। वे कब आते थे और जाते थे किसी को मालूम नही पड़ता था। उनमें कितना युद्ध सामग्री भरा है और वह किस तरह का है यह किसी के समझ के बाहर था ।।4।।

असुर के सेनाधिपतियो ने पिछले के शत्रुत्व को याद रखते हुए अदृश्य होकर इन तीनों नगरियो की सहायता से तीनो लोको का नाश करने में उद्यत रहे ।।5।।

तब लोक पालको ने अन्य रास्ता न देखते हुऐ रुद्र जी के शरण में आये और कहे - भगवान हम आपके हैं। त्रिपुरो मे वास करने वाले असुरो से हमारा नाश हो रहा है। आप हमारी रक्षा करे ।।6।।

तब भगवान रुद्र जी उनको धैर्य देते हुऐ धनुष्य को बाण जोड़कर उन तीनो नगरियो के ऊपर अस्त्र प्रयोग किये ।।7।।

तब जैसे सूर्य मण्डल से किरण का समूह उत्पन्न होता वैसे शिव धनुष्य से आग के समान जलने वाले बाण बिखर गये। उनसे तीनो नगर ढक गये ।।8।।

उन बाणों के स्पर्श मात्र से त्रिपुरो मे रहने वाले सारे असुर मर गये। किन्तु उनको लाकर मायासुर ने चमत्कार से रचाया हुआ सिद्धरस के कुए मे डाल दिया ।।9।।

सिद्ध रस अमृत समान था उसके स्पर्श से असुर लोग पुनः वज्र शरीरि बनकर महा पराक्रमी होकर मेघ को चीर कर विद्युत जैसे आता है वैसे आ गये ।।10।।

इसको देखकर रुद्र हताश हो गये, दु:खित हो गये। इसको देखकर भगवान विष्णु उसके लिए एक उपाय किये ।।11।।

तब भगवान विष्णु गाय बन गये, ब्रह्मा जी उसका बछड़ा बन गये। दोपहर के धूप मे त्रिपुर मे प्रवेश करते हुऐ सिद्ध रस के कुए मे रहने वाला सिद्ध रस को पी लिए। असुर लोग इसको देखते हुए वे भी विष्णु माया से मोहित होकर उसका विरोध न करते हुऐ चुप खड़े थे ।।12।।

महायोगी मयासुर इसको देखकर, असुरों के दु:ख को सहन करते हुऐ दैव प्रतिकुल हुआ तो कौन क्या करेगा यह विचार करते हुऐ सिद्धरस की रक्षा करने वाले असुरों को कहा ।।13।।

अपने को या अन्य लोगो को अथवा दोनो को भगवान जो कष्ट-सुख देता है उसको निवारण करने के लिए देव दानव, मानव इनमें कोई समर्थ नही है ।।14।।

इसके बाद श्री हरि रुद्र जी के धर्मज्ञान, वैराग्य, तप, विद्या, कर्म इत्यादि से हुये पुण्य के वजह से उत्कृष्ट रथ- उसको इस भूमि से निर्माण किये और महा शक्तिशाली धनुष्य को उसको मेरु पर्वत से बनाये इन दोनो को रुद्र के वश मे दे दिये ।।15।।

रथ, सारथी, ध्वज, घोड़ा, धनुष्य, कवच, बाण इत्यादि युद्ध सामगियों से सन्नद्ध होकर रुद्र देव रथ मे चढ़कर हाथ में धनुर बाण उठाये ।।16।।

अभिजित् मुहूर्त मे भगवान के तेज रक्षा मे रुद्र देव बाण छोड़कर उन तीनो पुरो को जला दिये ।।17।।

तब अन्तरिक्ष मे दुंदुभियो ने स्वर किये। इन्द्रादि देवताओं, वशिष्ठादि ऋषियों ने, अर्यमादि पितृओं ने भूतश्रेष्ठ सहित हृष्ट होकर जय गान किये, फूल बरसायें। अप्सराओं ने नृत्य किये ।।18।।

धर्म राजा, इस रीति से भगवान रुद्र त्रिपुरारि बन गये। वे तीनो नगरियों को जलाकर ब्रह्मादि देवता गण स्तुति करते समय अपने स्थान को वापस आये ।।19।।

जगद्गुरु और इस जग के स्वामी भगवान श्री हरि अपनी इच्छा से इस नरलोक का अनुसरण करते हुऐ अनेक लीलायें करते रहते हैं। ये लीलायें इस जगत को पावन करते हैं। ऋषि मुनियों इनका संकीर्तन करते है इसके बारे मे मै और क्या बताऊँ ।।20।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में सातवाँ स्कन्ध में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः

अध्याय - बारहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- भगवान मे मन रखते हुए पूज्यो मे पूज्य दैत्यराज प्रह्लाद जी की कथा भरी सभा मे संकीर्तन करने योग्य है उसको सुनकर संतुष्ट हुये युधिष्ठिर नारद जी से पूछते हैं ।।1।।

युधिष्ठिर कहते है- हे पूज्य, महात्मा लोगो को भगवान को पाने का साधन, वर्णाश्रम उचित, स्नान, शौच, आचार युक्त यज्ञ, अध्ययन आदि सनातन धर्माचरण से होता है ऐसे सुना है। उसको मै आपके श्री मुख से सुनना चाहता हूँ ।।2।।

हे मुनि आप साक्षात ब्रह्म पुत्र है तप ध्यान से सनकादि अन्य ब्रह्म पुत्रों के आप पूज्य हैं ।।3।।

आप दया पूर्ण, सज्जन, शांत स्वभाव वाले भगवद्भक्त हैं। आप जैसे इस गोपनीय धर्म जैसे जानते हैं, अन्य लोग उतना नही जानते हैं ।।4।।

नारद जी कहते है- इन सारे लोको का रक्षक पूज्य नारायण मुनि को नमस्कार करते हुऐ उनके श्री मुख से मै सनातन धर्म के बारे मे जो सुना उसी को बोलता हूँ ।।5।।

वह नारायण अपने मूल रूपी परमात्म के अंश से दक्ष पुत्री मूर्ति देवी में यम धर्म के पुत्र होकर अवतार लिए। लोकक्षेम के लिए मुनि जनों को तप करने की शिक्षा देने के लिए बदरिकाश्रम में तप कर रहे है ।।6।।

धर्म के विषय में आधार बनने वाला मूल प्रमाण को वेद का उपदेश देने वाले श्री हरि और श्री हरि को और वेद को जानने वाले मुनियो का उपदेश ही धर्म का लक्षण है। जिसके अनुष्ठान से भगवान संतुष्ट होते वही धर्म है।।7।।

सत्य, प्राणिदया, एकादशी के उपवास, तप करना, स्नानादि शौच, सुख-दुःख आदि द्वन्द्व सहन करना, देव पूजा, शम, दम, अहिंसा और ब्रह्मचर्य ये नियम सारे वर्णाश्रम के लिए सामान्य है। इसके साथ परस्त्री संग नही करना, निषिद्ध त्याग, जो मिलता है उसी से तृप्त होना कपट वर्तन नही करना इस नियमों का भी पालन करना है।।8।।

अध्ययन, सारे जगहो में भगवान को समान देखना, महात्माओ की सेवा करना, दुर्विषयों का भोग की

आशा छोड़ना, दूसरों को बुरा नही करना, बुरी बात न बोलना भगवान का विचार करते रहना ।।9।।

अन्न को ब्राह्मण और गाय को देकर भोजन करना, उस समय पशुओं मे और मनुष्यो मे तत्वाभिमानी देवताओं का अनुसंधान करना ।।10।।

गुरुपदेश का श्रवण करना, भगवन्नाम संकीर्तन करना, हरि नाम स्मरण करना, महात्माओं की सेवा अर्चा करना, पूज्य व्यक्तियों मे विनय रखना, उनसे सख्य करना, राम कृष्णादि रूपों का दास्य करना, हृदय बिम्ब रूप में रहने वाला भगवान का दास बनना ।।11।।

ये तीस सामान्य धर्म चारों वर्ण और आश्रम वाले के लिए सामान्य है। इनके अनुष्ठान से भगवान संतुष्ट होते है ।।12।।

ये संस्कार तीनो वर्णों के लिए हैं। जो इन वैदिक धर्मों का आचरण करते हैं उनको द्विज कहते है। स्त्रियों को मात्र के बिना ही वैदिक संस्कार होते है। उनको उपनयन के बिना शादी ही संस्कार माना जाता है। विवाह संस्कार उनको मन्त्र सहित होता है। इस रीति से द्विज कहलाने वाले सारे स्त्री-पुरुषों को देवपूजा, अध्ययन और दान विहित है ।।13।।

जन्म से और कर्म से जो शुद्ध द्विज हैं उनको ये वेदोक्त कर्तव्य अन्वय होता है। द्विज मे विप्र को अध्ययन अध्यापन, यजन-याजन, और दान-प्रतिग्र ये छ: कर्तव्य होते हैं। क्षत्रियों को केवल तीन कर्तव्य है, प्रतिग्रह, अध्यापन और याजन ये तीन नही हैं।।14।।

राजा प्रजा का रक्षण, दण्ड शुल्क और कर संग्रह का कार्य उसका होता है। ब्राह्मण किसी से कर संग्रह नही करना। वैश्य कृषि वाणिज्य वृति करना, वह ब्राह्मणों की सेवा करना ।।15।।

त्रै वर्णिकों का सेवा करना शूद्रका धर्म है। यजमान देने वाला तनख़ा उसकी जीवन वृत्ति बनती है। विप्रों को याजन अध्यापन प्रतिग्रह यह जीवन वृत्ति बनती है। आपतकाल मे वे कृषि, धान्य संग्रह इत्यादि कर सकते हैं। वे घर-घर जाकर भिक्षा माँग सकते हैं। खेत मे गिरा हुआ धान्य को संग्रह करते हुए उञ्छ वृत्ति से जीवन यापन कर सकते हैं। ये चार वृत्ति विप्रों के लिए हैं। ये पीछे से आगे वाले उत्तम हैं। आपत न रहने के समय मे क्षत्रिय विप्र वृत्ति नही करना चाहिए ।।16,17।।

राजा को छोड्कर अन्य वर्ण वाले आपत समय मे अन्य वृत्तियों को अपना सकते हैं। विप्रों को छ: जीवन वृत्ति ग्राह्य है। ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत, सत्यअनृत, विप्र इन छ: वृत्तियों से जीवन करना चाहिए। किन्तुश्व वृत्ति से कभी भी जीवन नही करना। श्व वृत्ति यानी दूसरों का नौकर करना। ऋत का अर्थ उञ्छ वृत्ति है। अमृत यानी भीख न माँगते हुए संग्रह करना ।।18,19।।

मृत यानी रोज माँगकर लाना, प्रमत यानी खेती करना, सत्य अनृत ये दोनों का अर्थ व्यापार होता है। श्व वृत्ति नौकरी करना ।।20।।

विप्र और राजा कभी भी श्व वृत्ति नही करना। वह अत्यन्त हेय वृत्ति है। विप्र सर्व वेद का ज्ञानी होता

है, राजा मे सारी देवताओं की सन्निधान होता है। ये दोनो अपने से कनिष्टो को सेवा नही करना चाहिए ।।21।।

भगवान मे भक्ति, इन्द्रिय निग्रह, तप, शौच, जो मिलता है उसी मे तृप्त रहना, वंचना नही करना, ज्ञान, दया, सदाकाल भगवन्नाम स्मरण ये ब्राह्मण का लक्षण है ।।22।।

पराक्रम अजेयत्व, सहन, शत्रुनिग्रह, औदार्य, मनोजय, क्षमा, ब्राह्मणो के बारे मे गौरव रखना, प्रसन्नचित्त रहना, और तीनो वर्णों की रक्षा करना ये क्षत्रियों का लक्षण है ।।23।।

देवताओं, गुरु, बड़े लोग गाय मे भक्ति करना, धर्म, अर्थ, काम, इन तीनों से भगवान की आराधना करना, आस्तिक्य बुद्धि रखना, सदाकाल प्रयत्न करते रहना, कार्य मे निपुणता प्राप्त करना ये वैश्य का लक्षण है ।।24।।

बड़े लोगों को गौरव देना, शुचित्व रखना, वंचना के बिना यजमान का सेवा करना, मन्त्र के बिना नमस्कार से ही यज्ञ करना, चोरी नही करना, ज्ञानी होते हुए भी मूढ़ जैसे रहना, गो ब्राह्मणों की रक्षा करना ये शूद्र का लक्षण है ।।25।।

अब स्त्री धर्म के बारे मे कहते हैं- पति को पूज्य भाव से देखने वाली स्त्री को पति की सेवा मे और पति के करने वाले पूजा मे सहायता करना, पति के बन्धुओं के साथ प्यार करना, सदाकाल पातिव्रत्य का अनुष्ठान करना स्त्री का कर्तव्य है ।।26।।

घर मे झाडू लगाना, गोमय से शुद्ध करना, गृह का अलंकार करना, अपने को श्रृंगार करना, घर को स्वच्छ रखना, इसके साथ पति की सेवा करना।।27।।

पति को इष्ट होने वाला छोटे-बड़े विषय पदार्थो को देना, इन्द्रिय निग्रह करना, प्रिय और सत्य बातों को कहना, विनय से प्रेम पूर्वक काल-काल मे पति की सेवा करते रहना ।।28।।

जो मिलता है उसी से तृप्त होना, दुष्ट अभिलाषाओं को छोड़ देना, सेवा मे दक्ष रहना, धर्म की जानकारी रखना प्रिय और सत्य बातों को बोलना, पति सेवा को न भूलना, शुचि और स्नेहमयी रहकर महापातकी न रहने वाली पति का सेवा करना ।।29।।

पति मे भगवान सन्निहित है इस भावना से भगवान के समान पति की सेवा जो करती है वह हरि लोक मे श्री देवी जैसे हरि के साथ आनन्द भोगती है वैसे आनन्द भोगती है ।।30।।

अपने वृत्ति से चोर हो, पाप कर्मी हो अथवा मिश्र जाति वाला हो अंत्यज हो या अंत्येवासीये सारे अपने-अपने कुल कर्मो को करना चाहिए ।।31।।

उस जाति स्वभाव के अनुसार लोगों को विधिप्राप्त धर्मो को वेद ज्ञानियों ने स्मृति ग्रन्थों मे बताए हैं। हे राजा वही धर्म प्रत्येक युग मे लोगों को यहाँ पर सुख देने वाला बनता है ।।32।।

अपने-अपने जाति के अनुसार स्वभाविक भक्ति से अपने-अपने कर्म मे जो निरत है वह अपनी

इच्छा से काम्यकर्म को छोड़कर त्रिगुण रहित मोक्ष को साधना से प्राप्त करता है ।।33।।

खेत मे बिना खाद से बार-बार बीज डालते रहे तो वह जमीन बंजर बन जाती है । आगे उसमे कुछ भी फसल नही आता, बीज भी नष्ट हो जाता है ।।34।।

वैसे ही योग्य लोग मन मे कामनाओं को भरकर अति कामों को भोग करे तो उस भोग के कारण वह अनेक रोगादि उपद्रव को पाता है। अल्प विषयभोग से वैसा नही होता। आग के ऊपर थोड़ा-थोड़ा घी डालते रहे तो आग भभक उठता है। घी से आग बुझ नही सकता ।।35।।

जो मनुष्य जिस वर्ण मे दिया हुआ लक्षण के अनुसार रहता है उसको उसी वर्ण का मानना चाहिए। ब्राह्मण न होते हुए भी उस में ब्राह्मण का लक्षण देखने मिले तो उसको ब्राह्मण के समान गौरव देना चाहिए। व्यक्ति केवल जन्म से सत्कार योग्य नही बनता ।।36।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में सातवाँ स्कन्ध में बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

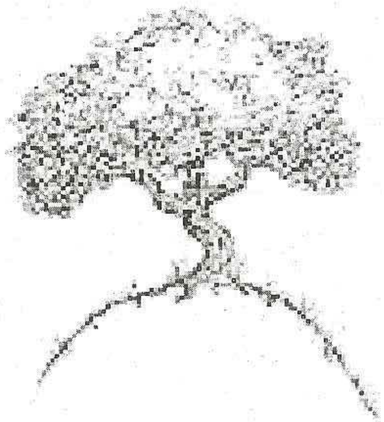

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः

अध्याय - तेरह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

नारद जी कहते है- ब्रह्मचारी को गुरुकुल मे वास करना चाहिए। इन्द्रिय निग्रह करते हुए गुरु के हित के बारे मे काम करते रहना चाहिए। गुरु के गुलाम बने और गुरु मे दृढ़ और स्नेह भाव रखे।।1।।

सुबह शाम गुरु अग्नि सूर्य दिक्पालक, देवतागण और देवोत्तम विष्णु का दोनों समय आराधना करना चाहिए। मौन रहकर एकाग्र चित से गायत्री की उपासना तीन बार करना चाहिए।।2।।

वेद का अध्ययन करना चाहिए गुरु जिस समय मे बुलाते है उसी समय उनके पास जाकर अध्ययन के प्रारम्भ मे और अंत मे दोनो समय गुरु के पाँव के ऊपर सिर रखते हुए नमस्कार करना चाहिए।।3।।

मौंजी(कुश से किया हुआ कटि सूत्र) मृगछाल, उत्तरीय, जटा, दण्ड, कमंडलु, यज्ञोपवीतों को शास्त्र मे बताये गये क्रम से धारण करना चाहिए। हाथ मे दर्भ के पवित्र को धारण करना चाहिए।।4।।

सुबह और शाम भिक्षा याचना करना चाहिए। उसको गुरु को अर्पण करके उनके अनुज्ञा से भोजन करना चाहिए। अपराध करे तो गुरु के आज्ञा के अनुसार उपवास रहना चाहिए।।5।।

ब्रह्मचारी शीलवान होना चाहिए, मित भोजन करना चाहिए। गुरु कार्य मे चतुर होना चाहिए। गुरु मे श्रद्धा रखना चाहिए। स्त्रियों मे और स्त्री वश मे जो है उसमे केवल व्यवहार मात्र का सम्बन्ध रखना चाहिए।।6।।

ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी इन्द्रिय निग्रह करना चाहिए। स्त्री के साथ या स्त्री के बारे मे बाते नही करना चाहिए। इन्द्रिय बलिष्ठ होते हैं, वे निग्रह करने वाले का भी मन को चंचल करते है।।7।।

शिष्य को गुरु पत्नी से तेल लगवाना, स्नान अभ्यंजन केश प्रसाधन नही कराना चाहिए।।8।।

स्त्री आग के समान है, पुरुष घी के बर्तन है। इसी कारण गृहस्थ भी अपने पुत्री के साथ ज्यादा समय एकांत मे नही रहना चाहिए। व्यवहार के लिए जितना कम समय चाहिए उतना समय उनके साथ रहना चाहिए।।9।।

सर्वशक्त भगवान जीव को स्वातंत्र का भ्रम को करते रहते हैं। इस भ्रमों के ही अधीन होकर यह संसार चल रहा है। इससे छुटकारा पाकर मोक्ष पाने के लिए मानव वर्णाश्रम धर्म का आचरण करना चाहिए।।10।।

ब्रह्मचारी के ये जो नियम बताये गये है वे गृहस्थ को और सन्यासी को प्रणव जप इत्यादि विहित हैं। गुरुकुल वास विकल्प है। सन्तांन के लिए अनुकूल समय मे स्त्री संग करने वाला गृहस्थ को गुरुकुल वास का नियम नही है।।11।।

यदि गृहस्थ गुरुकुल वास करता है उस समय उसे अभ्यंजन आदि नही करना चाहिए,औषधि आसव इत्यादि नही पीना चाहिए,मांसाहार मद्यपान फूलमाला धारण नही करना चाहिए।।12।।

इस रीति से गुरुकुलवास करने वाला द्विज वेदांग,उपनिषदों के साथ वेद को कंठस्थ करते हुए उनके यथामति अर्थ को समझकर सामर्थ के अनुसार गुरु को दक्षिणा देते हुए उसके अनुमति से गृहस्थाश्रम अथवा वानप्रस्थ आश्रम को स्वीकार करना चाहिए,सन्यासी होकर अथवा ब्रह्मचारी होकर भी रह सकता है।।13,14।।

अग्नि मे गुरु मे अपने मे और सारे प्राणियों मे सर्वत्र रहने वाले सर्वत्र व्याप्त अधोक्ष्ज उन रूपों मे प्रविष्ट होकर रहता है इसको समझ लेना चाहिए।।15।।

इस रीति से स्वकर्माचरण निष्ठ ब्रह्मचारी,गृहस्थ,वानप्रस्थ अथवा सन्यासी अपरोक्ष आज्ञा को पाकर परब्रह्म को पाता है।।16।।

अब वानप्रस्थ के बारे मे कहते हैं- मुनियों के सम्मत वानप्रस्थाश्रम के बारे मे बताता हूँ उनको अनुष्ठान करने वाला सप्तर्षि लोक को पाकर अंत मे वैकुण्ठ पाता है।।17।।

वानप्रस्थाश्रमी कृषि कार्य से उत्पन्न किया हुआ आहार को नही खाना चाहिए। खाली जमीन मे स्वयं उगा हुआ त्रृण धान्य को खा सकता है। आग से पकाया हुआ अन्न को नही ग्रहण करना चाहिए। कच्चा अथवा सूर्य से पका हुआ अन्न को खाना चाहिए।।18।।

जंगल मे मिलने वाले धान्य से यज्ञ विहित चरु पुरोडाशाको बनकर याग करना चाहिए। नया धान्य आया तो पुराने को छोड़ देना चाहिए।।19।।

होमाग्नि की रक्षा के लिए घर या गुहा का वास करना चाहिए स्वय उसमे न रहते हुए धूप पानी और हवा का कष्ट सहते हुए बाहर ही रहना चाहिए।।20।।

बाल नाखून को नही निकालना चाहिए। कमंडलु और कृष्णा जिन का धारण करना चाहिए।।21।।

इस प्रकार बारह,आठ,चार,दो अथवा एक वर्ष वानप्रस्थ नियम पालना चाहिए। तप के क्लेश से बुद्धि खराब न हो।।22।।

जब बुढ़ापे से,व्याधियों से धर्म और कर्मानुष्ठान मे असमर्थ रहे तो तब प्राण त्याग के लिए उपवास करना चाहिए। वह भी नही हुआ तो पन्द्रह दिन मे एक बार अथवा महीने मे एक बार अन्न ग्रहण करना चाहिए।।23।।

आहवनीय,गाहर्यपत्य इत्यादि होमाग्नियों को अपने शरीर मे आरोपण करते हुए मै स्वतंत्र हूँ यह भाव और अहंकार को न करते हुए यह शरीर मेरे अधीन है यह अहंकार को छोड़ते हुए सारे कार्य पदार्थो को

यथा योग्य उनके कारणों मे लीन होते इस रीति से ध्यान करना चाहिए।।24।।

ध्यान करने का तरीका इस तरह है। जितेन्द्रिय मुनि अपने शरीर मे रहने वाला आकाश तत्व को महाकाश मे, प्राण तत्व को बाहर के वायु मे, शरीर के गर्मी को बाहर के तेज मे, रक्त कफ इत्यादि को जल तत्व मे, अस्थि मज्जा इत्यादि घन पदार्थो को पृथ्वी तत्व मे अन्य पंचभूत लघु तत्वों को उनके कारण आकाशादि तत्वों मे लय चिन्तन करना चाहिए।।25।।

इस रीति से देह के भागों को उनके कारणों मे लय ध्यान करते हुए कर्मेन्द्रियों को उनके अभिमानी देवताओं मे लय चिन्तन करना चाहिए। वागीन्द्रिय को और उसके कर्म बात को अग्नि मे, हस्तेन्द्रिय और उसके कर्म काम को इन्द्र मे, पादेन्द्रिय और उसके कर्म गमन को जयंत मे, उपस्थेंन्द्रिय और उसका कर्म रतिक्रिया को स्वायंभुवमनु मे, पायु इन्द्रिय और उसकी क्रिया मल विसर्जन को मित्र नाम के आदित्य मे इस रीति से उन अभिमानी देवताओं के अनुसार लय चिन्तन करना चाहिए। ज्ञानेन्द्रियों का लय चिन्तन इस प्रकार होता है। श्रोत्रोंन्द्रिय और शब्द को दिग देवताओ मे, त्वगिन्द्रिय को और स्पर्श को प्राण वायु मे, चक्षुरिंन्द्रिय और रूप को सूर्य मे, रसनेन्द्रिय और रस को वरुण मे, घ्राणेंन्द्रिय और गंध को धरा देवी मे लय चिन्तन करना चाहिए। मन बुद्धि अहंकार चित्त और चेतना नाम के पाँच तरह के मनों को उनके विषयो के साथ उनके अभिमानी देवताओं मे लय चिन्तन करना चाहिए। वह इस प्रकार है मन और मनोरथ को चन्द्र मे, बुद्धि और उसके विषयों को बृहस्पति मे लय करना चाहिए।।26,27,28।।

अहंकार से मैं करता हूँ यह अभिमान से ममतत्व और क्रिया का जन्म होने के कारण अहंकार के साथ उन कर्मो को उनके अभिमानी रुद्र मे लय करना चाहिए। सदगुणों से उनके अभिमानी रुद्र जी को ब्रह्म लक्ष्मी द्वारा क्षेत्रज्ञ भगवान मे और चेतनाभिमानी ब्रह्म को लक्ष्मी द्वारा परमात्मा मे लय चिन्तन करना चाहिए।।29।।

पृथ्वी आदि अव्यक्त तत्व तक लय इस प्रकार होता है- पृथ्वी तत्व जल मे, जल तत्व अग्नि मे, अग्नि वायु मे, वायु आकाश मे, आकाश अहंकार मे, अहंकार महत्तत्व मे, महत्तत्व अव्यक्त मे, अव्यक्त भगवान मे लय चिन्तन करना चाहिए।।30।।

भगवान हरि लय रहित हैं और चिन्मात्र हैं। वे अंत मे अकेले रहते हैं यह ध्यान करते हुए और किसी का स्मरण नही करना चाहिए। लकड़ी जलने के बाद केवल आग रह जाता है। योगी को हरि ध्यान के बिना और कुछ नही रहता है।।31।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में सातवाँ स्कन्ध में तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

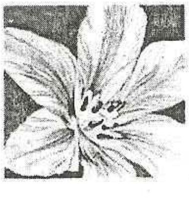

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः

अध्याय - चौदह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री नारद जी कहते है - ब्रह्म के विचार मे समर्थ हुआ वानप्रस्थ प्राण त्याग के लिए उपवास न करते हुए देह को छोड़कर बाकी सर्वस्व को त्यागकर सन्यास आश्रम स्वीकार करते हुए एक गाँव मे एक रात रहने के नियम पालते हुए, धन कनकादि अपेक्षा न करते हुए इस भूमि मे संचार करते रहना चाहिए। संचार करने मे असमर्थ रहे तो पुण्य क्षेत्र मे ध्यान और प्रवचन करते वास करना चाहिए। कामादि सहज शत्रुओं का निग्रह करने मे समर्थ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ किसी भी आश्रम से चतुर्थ आश्रम को स्वीकार कर सकता है। विरक्ति मिलने के बाद सन्यास लेना ठीक है। सन्यास लेने के लिए और किसी का निर्बन्ध नही है ।।1।।

कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस इस रीति से सन्याप्तियों मे चार भाग होते हैं। उनमे परमहंस का लक्षण ये है। परमहंस कपड़ा नही पहनना श्रेष्ठ है। यदि पहनना है तो एक कैपीन(लंगोट)पहनना है। और ज्यादा कपड़ा पहनना है तो दूसरा एक कपड़ा लपेट सकता है। जाड़े के दिन मे तीसरा एक कपड़ा अनिवार्य रूप से ले सकता है। ये कपड़े खरीद कर नही लेना है। अन्य लोग दिये तो पहनना है। कमंडुलु और परमहंस के आवश्यक चिन्हों के साथ एक दण्ड को रखना है। आपात समय को छोड़कर इससे ज्यादा कुछ नही रखना है ।।2।।

कौपीन, रेशम का कटि वस्त्र और ऊनी का उत्तरीय, दो करवस्त्र सुमध्व विजय के अनुसार परम हंस का वस्त्र होते हैं। उसे एक दण्ड धारण करना चाहिए। त्रिदण्ड निषिद्ध है

सन्यासी को सदाकाल भगवान के बारे मे चिन्तन करते रहना चाहिए। अपने के लिए घर बांधकर उसमे नही रहना चाहिए। सारे जीवियों का हित को चाहते हुए क्रोध रहित होकर नारायण का ही आश्रय लेना चाहिए। पत्नी, पुत्र और परिवार को त्यागकर अकेले रहकर भिक्षाटन करते हुए संचार करना चाहिए ।।3।।

इस मूर्त अमूर्त प्रपंच से श्रेष्ठ और असदृश भगवान के आधार से इस प्रपंच खड़ा है इसमे गुणपूर्ण सर्वोत्तम भगवान सर्वत्र व्याप्त हैं ऐसा समझ लेना चाहिए ।।4।।

नींद को जाते समझ और उठते समय, संधिकालों मे सुबह शाम, नींद और जाग्रति मे सबके आश्रय

रूपी भगवान का चिन्तन करना चाहिए। अपनी योग्यता को समझते हुए अपने बन्ध मोक्ष भगवान के इच्छानुसार होते है, इसमे स्वतंत्रता नही है यह समझ लेना चाहिए ।।5।।

मरण निश्चित है, इसकी इच्छा नही करना चाहिए। जीवन अशाश्वत है इसके लिए भी आशा नही करना चाहिए। सकल जीवियों का जीवन मरण, कालनामक परमात्म के अधीन है, इसकी चिन्तन करना चाहिए ।।6।।

दुष्ट शास्त्रों मे आसक्त नही होना चाहिए। किसी जीवनवृत्ति को नही अपनाना। वेदवाद के विरुद्ध शुष्क तर्क का अवलंबन नही करना चाहिए। वैष्णव पक्ष को छोड़कर प्रयोजन रहित किसी पक्ष का आश्रय नही लेना चाहिए।।7।।

ज्ञान कार्य को छोड़कर अन्य व्यर्थ काम के लिए शिष्य ग्रहण नही करना। मोक्ष विचार को छोड़कर अन्य प्रतिकूल ज्योतिष काम शास्त्रादि ग्रन्थ नही पढ़ना। प्रवचन को जीवन का उपाय नही बनना। कृषि इत्यादि निष्द्धि कर्म नही करना चाहिए ।।8।।

निर्दोष, भगवान मे भक्ति रखते हुए कामना रहित होकर रहना चाहिए। वह अपने आश्रम को अन्न दानादि सकाम कर्म का हेतु नही करना चाहिए। पीठाधिपति को छोड़कर अन्य सन्यासी को अन्नदान का अधिकार नही है। सन्यासी दण्ड कमंडल को रख सकता है, छोड़ भी सकता है।।9।।

दण्ड कमंडल आदि बाह्य चिन्ह न रहते हुए भी यति अंतरंग मे हरि का दर्शन करना चाहिए। इसके लिए वह मननशील होना चाहिए। ज्ञानी होकर भी सामान्य जैसे रहना चाहिए। मुग्ध या छोटे बच्चे के समान रहना चाहिए। वाग्मी होते हुए भी मूक जैसे रहना चाहिए ।।10।।

इस विषय मे प्रह्लाद जी और अजगर व्रत निष्ठ एक सन्यासी के साथ हुआ संवाद को कहते है।।11।।

भगवान को प्रिय प्रह्लाद जी अपने मंत्रियों के साथ संचार करते हुए सह्याद्रि पहाड़ मे कावेरी तट पर जमीन पर सोया हुआ एक सन्यासी को देखे। उसके शरीर को मिट्टी लगा हुआ था। इससे उसका निर्मल तेज कम दिखता था।।12,13,।।

उसके देहाकृति से, काम से, बात से अथवा वर्णाश्रम चिन्हों से उसका व्यक्तित्व का अंदाजा नही होता था।।14।।

किन्तु महा भगवद्भक्त प्रह्लाद जी उसको पहचान कर विधि पूर्वक पूजा करते हुए, पादों मे शिर रखकर नमस्कार करते हुए तत्व को जानने के लिए उससे प्रश्न पूछे ।।15।।

प्रह्लाद जी कहते है - हे साधु आप उद्योग से धन सम्पादन करके भोग भोगने वाले मनुष्य के समान हृष्ट पुष्ट है। उद्योग करने वाले को पैसा मिलता है, धन से भोग मिलता है, भोग से शरीर स्थूल होता है।।16,17।।

आप कुछ भी नही करते है,आपको भोग के लिए पैसा कहाँ से मिलता है, हे मुने! तुम हृष्ट पुष्ट शरीर वाले कैसे हो इसके बारे मे क्या हम पूछ सकते हैं?।।18।।

तुमको देखने से बुद्धिशाली,दृढ शरीरि,काम करने वाला,उत्कृष्ट दृष्टि वाला दिखता है। देखे तो सुन्दर भाषण भी कर सकते हो। तुम सुख दु:ख को समान मानते हुए चुप से सोये हो। अन्य लोग कर्म करते रहते हैं तो तुम उसको द्वेष भी नही करते और स्तुति भी नही करते।।19।।

नारद जी कहते है - इस प्रकार दैत्य राज प्रह्लाद जी के बातों को सुनकर हँसते हुए वह महामुनि उठकर बाते करने लगा ।।20।।

ब्राह्मण कहता है - हे असुर श्रेष्ठ आप इसको जानते हैं तो भी सज्जनों को प्रिय होने के कारण ज्ञान दृष्टि से लोगों के प्रवृत्ति निवृत्ति मार्गों को जान लिए हैं।।21।।

आपके हृदय मे भगवान नारायण सदा के लिए वास करते हैं। वे आपके निष्काम भक्ति से प्रीत होकर सूर्य जैसे अन्धकार को भगाते हैं वैसे आपके अज्ञान को भगा दिये है ।।22।।

तो भी महराजा मै आपके प्रश्नों को उत्तर सज्जन लोगों से जो पाया हूँ उसके अनुसार देता हूँ क्योंकि आत्म शुद्धि को पाने वाला आपके समान सज्जनों के साथ बाते करना चाहिए ।।23।।

विषय की इच्छा, विषय भोग से कभी भी तृप्त नही होता। संसार के मूल कारण होने वाला यह इच्छा के वश होकर पूर्व काल मे काम्य कर्म करते हुए अनेक योनियों मे जन्म लिया ।।24।।

कर्म के कारण अनेक योनियों मे चक्कर काटते हुए भगवान की कृपा से यह मनुष्य जन्म को पा चुका हूँ। यह मनुष्य जन्म स्वर्ग मोक्ष के लिए साधन बन सकता है। अथवा प्राणी या मनुष्य जन्म लेकर पुन: आ सकता है।।25।।

पुण्य से स्वर्ग,ज्ञान से मोक्ष,पाप से नरक और प्राणीजन्म,पुण्य विशेष से मानव जन्म,इस रीति से पुण्य पाप के लिए स्वग नरक के लिए मनुष्य जन्म द्वार बनता है।

इस मानव जन्म मे भी गृहस्थ लोग सुख की आशा करते हुए दु:ख परिहार हो इसके लिए कर्म करते रहते हैं तो भी कोई सुख नही पाता इसको देखकर मै सकाम कर्म को छोड़ दिया हूँ ।।26।।

सुख इस आत्म का स्वरूप है सारे काम्य कर्मो को छोड़कर सर्व प्रेरक भगवान मे मन रखते हुए ध्यान करने से स्वरूप सुख व्यक्त होता है। मन से विषय भोग करते हुए पाने वाला लौकिक सुख अच्छा लगने के बाद भी विमर्शा करके सकाम कर्म का आसक्ति को छोड़ना चाहिए ।।27।।

मानव अपने इस आत्म हित को भूलकर अप्रशस्त गृहस्थ आश्रम मे रहते हुए संसार के गर्त मे बन्धित होता है ।।28।।

पानी के ऊपर वनस्पति फैल जाने से पानी ढक जाता है। पास मे पानी रहते हुए भी अन्य मानव उसको न देखते हुए दूर मे रहने वाला मरीचका के पीछे दौड़ता है। ऐसे मानव अपने स्वरूप सुख को

छोड़कर विषय सुख को ही पुरुषार्थ मानते हुए उसके पीछे दौड़ता रहता है ।।29।।

यह शरीर दैवाधीन है। इन्द्रियों से सुख दु:खों को चाहने वाला इन्द्रियों से सुख पाने मे अस्वतंत्र है। इसी कारण सुख पाने के लिए करने वाले सारे प्रयत्न व्यर्थ होते है ।।30।।

मानव को आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक दु:ख से कभी मुक्त नही होता। एक न एक दिन उसको मरना है। इसके पहले भी वह अपने ऐहिक इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए बहुत प्रयास किया है। इस रीति से तीनों काल मे दु:ख से भरा हुआ उन वस्तुओं से क्या लाभ है ।।31।।

इन्द्रियों को दास होकर पैसा कमाने वाले कंजूस धनि को का कष्ट को मै देख लिया हूँ। उनको सभी के ऊपर संशय आता है। भय से उसको रात मे नींद नही आता ।।32।।

अपने प्राण से ज्यादा महत्व देकर पैसा को सम्पादन किया हुआ श्री मंतको राज्य से, चोर से, बन्धुजन से, पशु-पक्षियों से, याचको से, काल से अंत मे अपने से भी भय रहता है ।।33।।

पैसा एक ही जगह रखने से काल के कारण उसका मैल्य घटता है, पदार्थो मे पैसा लगाये तो पदार्थ नष्ट होते हैं, इससे काल से भय है। धन की भद्रता के बारे मे, आतुरता से ज्यादा खर्च करने के बारे में और अंत मे जहाँ रखा है उसको भूल जाने के बारे में स्वयं से भय रहता है ।

संसार मे अधिक आशा रखते हुए धन मे बहुत मोह रखने वाला आदमी उससे शोक, मोह, भय, क्रोध, राग, श्रम और दौर्बल्य को पाता है। इसी कारण बुद्धिमान आदमी संसार मे ही ज्यादा मोह नही रखता। वह धन मे क्यों मोह रखेगा ।।34।।

मधुमक्खी और अजगर ये दोनों इस लोक मे मुझे अच्छे गुरु बने। उनके आदत से मै धन सम्पादन मे वैराग्य, और जो मिलता है उसी से तृप्त रहना इन दोनो से सीख लिया हूँ ।।35।।

मधुमक्खी से मै ऐहिक कामनाओं मे वैराग्य पाने का तरीका सीख लिया, क्योंकि मधुमक्खी बहुत प्रयास से संग्रह किये हुये मधु को लोग उसको मारकर ले जाते हैं। वैसे ही पैसा कमा के रखा हुआ आदमी को मारकर भी पैसा को लूट लेते हैं।।36।।

ज्यादा आशा न रखते हुए भगवान की कृपा से जो मिलता है उससे तृप्ति पाने का विषयों को मै अजगर से सीख लिया। अजगर अपने आहार के लिए कुछ प्रयास नही करता। अपने पास आकर जो कुछ मिलता है उसी से वह तृप्त होता है। मै भी अजगर जैसे रहता हूँ। भगवान मुझे पैदा किया है। जिन्दा रहते तक वे मेरा पेट भरते हैं। यह धैर्य मुझे है। इसके लिए मै पुष्ट हूँ ।।37।।

कई बार थोड़ा और कई बार भर पेट भोजन मिलता है और कई बार दान दक्षिणा भी मिलता है। कभी-कभी कुछ भी नही मिलता है। एक बार मिष्टान्न मिलता है और एक बार सूखा कन्दमूल से चल जाता है। मै दोनों को निर्विकार मन से भोजन करता हूँ ।।38।।

कभी-कभी कोई देते हैं, कभी फेंकते है, कभी बहुत आदर से भोजन देते है। हरि इच्छा मानकर

उसको दिन मे मिला हुआ दिन मे खाता हूँ, रात मे मिला तो रात को खाता हूँ ।।39।।

एक बार पीतांबर, एक बार चीनांबर, कभी कपास का नही तो मृग छाल का वही नही मिला तो चीर वल्कल का धारण करता हूँ। कुछ भी नही मिला तो वृक्ष के पत्तियों से लज्जा छिपाता हूँ। किन्तु भगवान जो दिये उसी मे संतुष्ट हूँ ।।40।।

कभी जमीन पर, कभी पुवाल, कभी पत्तियों के ऊपर कभी पत्थर के ऊपर या राख के ऊपर जहाँ मिले वहाँ सोता हूँ ।।41।।

कभी स्नान करके सुगन्ध लेपन करते हुए सुन्दर कपड़ा पहनकर, फूलमाला रत्न हीरों को गले मे डालते हुए रथ हाथी घोड़े के ऊपर सवार होता हूँ। कभी दिगंबर होकर पिशाच जैसे फिरता रहता हूँ ।।42।।

अबधूत यहाँ अपने पूर्व जन्मों का याद करते हैं। स्वभाव से अलग-अलग रहने वाले सज्जनों की निन्दा मै नही करता, दुर्जनों का कीर्तन भी नही करता। सबका कल्याण हो, सज्जन का कल्याण हो, भगवान उनकी रक्षा करें यह प्रार्थना करते रहता हूँ ।।43।।

इस रीति से ऐहिक आकर्षण से दूर रहना ही मेरा लय चिन्तन का मूल कारण है। हम अनेक तरह के यह सात्विक प्रपंच चित मनोवृत्ति का अभिमानी अग्नि देव मे लीन हो का चिन्तन करना चाहिए। वह अग्नि विषय पदार्थो मे चकराने वाला मन के अभिमानी इन्द्र मे लय होता है। मनोभिमानी इन्द्र वैकारिक अहंकार अभिमानी रुद्र मे लय होने का चिन्तन करना चाहिए। रुद्र जड़ प्रकृति जन्य महत्वाभिमानी ब्रह्म मे लय चिन्तन करना चाहिए।।44।।

वह ब्रह्म आत्म अनुभूति परमात्म को सदाकाल अनुकूल रहने वाली लक्ष्मी के पास रहते है ऐसा चिन्तन करना चाहिए। वह लक्ष्मी स्वानुभव स्वरूप भगवान के पास रहती है यह चिन्तन करना चाहिए। स्वानुभव स्वरूप उस परमात्मा मे मन रखते हुए उनका अपरोक्ष ज्ञान को पाने का मुनि मेरे तरह बाह्य आकर्षणों से दूर रहकर बाह्य कर्मो से निवृत्त होता है ।।45।।

अत्यन्त गौपय मेरा इस चरित्र को मै आपको कहाँ हूँ ऊपर देखने से यह लोक मर्यादा के विरुद्ध लगता है आप भगवान के प्रिय होने के कारण आपको कह चुका हूँ ।।46।।

यहाँ अवधूत का वृतान्त **लोक शास्त्र व्यपेतम्** लगता है किन्तु यह सारा शास्त्र सम्मत है नारद जी कहते है असुर राज प्रह्लाद जी अवधूत मुनि से परम हंस सन्यासी का धर्म को सुनकर उनकी पूजा करने के बाद उनसे अनुमति पाकर अपने राज गृह को वापस चले ।।47।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में सातवाँ स्कन्ध में चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

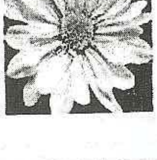

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः

अध्याय - पन्द्रहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

धर्मराज पूछता है- हे देवर्षि, मूढ़ बुद्धि से गृहकृत्य मे आशक्त मेरे जैसे गृहस्थ लोगों को परम हंस को मिलने वाला लोक कैसे मिलेगा यह मुझको बताइये।।1।।

नारद जी कहते हैं- हे धर्म राजा आप महा भाग्यशाली हैं। अन्य लोगों को उपयोग हो इस दृष्टि से आपने जो प्रश्न पूछे हैं वह बहुत योग्य है। गृहस्थ धर्म मोक्ष के लिए कैसे साधक बनेगा इसका निरुपण करता हूँ।।2।।

गृहस्थ आश्रम मे रहने वाला आदमी उस आश्रम के उचित सारे अनुष्ठानों को फलापेक्षा न करते हुए भगवान वासुदेव को अर्पण करते हुए अपरोक्ष ज्ञानियों की सेवा करते रहना चाहिए ।।3।।

विहित काल मे श्रद्धा युक्त होकर परमहंस के मुख से भगवान के अवतार की कथामृत को सदाकाल सुनते रहना चाहिए।।4।।

स्वप्न से जागृत होने वाला स्वप्न मे देखे हुए पत्नी पुत्रों की आसक्ति जैसे छोड़ता है वैसे अपरोक्ष ज्ञानियों के संग से अपने पत्नी पुत्रों मे आसक्ति को कम करते जाना चाहिए। कम नही किया तो एक दिन वे ही इसको छोड़कर जाते हैं।।5।।

ज्ञानी होकर परलोक साधना के लिए कितना चाहिए और ज्ञानियों की सेवा के लिए कितना चाहिए उतनी आसक्ति घर मे रखते हुए, अंतरंग मे विरक्त होकर बाहर सबमे आसक्ति को दिखाते हुए सामान्यों में सामान्यासा रहते हुए व्यवहार करना चाहिए ।।6।।

अपने लोग, रक्त सम्बन्धी, माता-पिता, पत्नी, पुत्र, भाई बहन, मित्र इत्यादि लोग जो कहते है उसको सुनना जो चाहते हैं उसको करना किन्तु उनमे केवल भगवत प्रीति के लिए आसक्ति रखना ।।7।।

द्युलक मे दिखने वाला प्रकाश, पृथ्वी मे उगने वाला अन्न, अंतरिक्ष मे मिलने वाली हवा ये सारे भगवान ने निर्माण किया है। इन सबको हमे उपभोग करना है। किन्तु ज्ञानी समझता है कि यह सारेलोगों के लिए है, केवल अपने के लिए नही मानना है ।।8।।

देहधारी जीव अपने पेट भरने के लिए जितना चाहिए उतना ही अपने पास रखना है उसे ज्यादा

रखना पाप है। जो रखता है वह चोर है उसको शिक्षा होना चाहिए ।।9।।

घर में रहने वाले नौकर,प्राणी पशु,गधा कुत्ता,बिल्ली चूहा,सॉप पक्षी,मक्खी सहित सब जीवों को अपने बच्चे जैसे प्यार करना चाहिए। इन मे भगवान रहते है यह समझते हुए उनका पालन पोषण करना गृहस्थ धर्म है।।10।।

गृहस्थ भी धर्म अर्थ काम इन तीनों को अपने के लिए और अन्य लोगों के लिए ज्यादा हिंसा न करते हुए देश कालानुसार भगवान जितना देते हैं उतना सेवन करना चाहिए ।।11।।

पत्नी के सहकार से पति का ज्ञानसम्पत अभिवृद्धि होना चाहिए। ऐसे पत्नी को पाया हुआ गृहस्थ कुत्ते से लेकर चांडाल तक के सारे जीवों को जो जो चाहिए उनको बलिहरण के मुखान्तर अन्न देना चाहिए।।12।।

दुष्ट पत्नी को त्याग देना चाहिए। आदमी अपने पत्नी के लिए उसको प्यार के लिए सब कुछ त्याग देता है, अपने माता-पिता को त्याग सकता है गुरु को मार सकता है। ऐसे पत्नी की ममता को जो त्यागता है वह भगवान को ही पाता है।।13।।

यह शरीर अंत मे कृमिराशि,मल अथवा राख बन जाता है। ऐसे तुच्छ शरीर को रतिसुख देने वाली पत्नी कहाँ है। आकाश मे व्याप्त परम सुख मोक्ष को देने वाले भगवान कहाँ ।।14।।

गृहस्थ प्रतिनित्य पंचयज्ञ करने के बाद जो बचता है उसी से अपना जीवन निर्वाह करना चाहिए। अन्य विषयों की ममता छोड़ देना चाहिए ऐसे गृहस्थ को महात्मा परमहंस को मिलने वाला मोक्ष मिलता हैं।।15।।

अपने वर्णाश्रम के लिए योग्य वृत्ति से मिला हुआ सम्पत को देवता,ऋषि मानव पितृ और इन सबसे भिन्न और सबके अंतर्यामी भगवान को प्रतिदिन यज्ञ तर्पण और अन्नदानादियों से पूजा करनी चाहिए।।16।।

यज्ञादि कार्य करने वाला सारे यज्ञ के सामग्री को एकत्र करते हुए विधि पूर्वक अग्नि होत्र आदि यज्ञ को करना चाहिए ।।17।।

यज्ञाधि कार्य के लिए एक पुत्र होना चाहिए,बाल्य काल का होना चाहिए,यानी मध्यम वय वाला होना चाहिए। ऐसे अधिकारी अग्नि होत्र दर्शपूर्णमास,चातुर्मास्य,पशु,सोम इस रीति से पाँच यज्ञों को करना गृहस्थ का कर्तव्य है ।

यज्ञ में ब्राह्मण भोजन एक आवश्यक अंग है। सर्व यज्ञभोक्ता भगवान अन्य यज्ञ से बढ़कर ब्राह्मण मुख मे अर्पण करने वाला अन्न से अधिक तृप्त होते हैं।।18।।

इसी कारण ब्राह्मण मुख से यज्ञ रचाते हुए सर्वज्ञ भगवान नारायण को उनमे आवाहन करते हुए उनका अभीष्ट को पूर्ण करते हुए उनकी आराधना करनी चाहिए ।।19।।

धनिक द्विज अपने योग्यतानुसार भाद्रपद मास मे अपने माता-पिता और भाई बन्धु के लिए महालय

श्राद्ध को करना चाहिए ।।20।।

इसके साथ उत्तरायण, दक्षिणायन संक्रांति काल मे, तुला, मेष विषुव संक्रांति मे, अमावस्या, व्यतीपात, दिनक्षय, चन्द्र, सूर्य ग्रहण, श्रवण, मघा, भरणी नक्षत्रों मे पितृश्राद्ध करना चाहिए।।21।।

वैशाख शुद्ध तृतीया मे, कार्तिक शुद्ध नवमी मे, मार्गर्षी, पुष्य, माघ, फाल्गुन के कृष्ण पक्ष के सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी दिन मे श्राद्ध करना चाहिए ।।22।।

माघ शुद्ध सप्तमी, मघायुक्त पूर्णिमा, चित्रायुक्त पूर्णिमासी वैशाख और ज्येष्ठ मास के उन्ही नक्षत्रों मे श्राद्ध करना चाहिए ।।23।।

द्वादशी के दिन अनुराधा, श्रवणा, उत्तरा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद नक्षत्रों मे मृगशिरा मे जन्म नक्षत्र के दिन श्राद्ध करना चाहिए।।24।।

एकादशी इसका अर्थ एकादशी तरह ऐसे होता है। एकादशी के दिन श्राद्ध नही करना चाहिए। एकादशी के दिन श्राद्ध छोड़कर अन्य पुण्य कर्म करना श्रेष्ठ है

ये काल पुण्य कर्म के लिए बहुत फलप्रद हैं इन कालों मे सकल जन धर्माचार करना चाहिए। इससे जीवन सफल होता है ।।25।।

इन दिनों मे स्नान, जप, होम, व्रत देव पूजा, ब्राह्मण और पित्रयें का आराधना करना चाहिए। देवताओं को, मनुष्यों को और प्राणियों को जो दिया जाता है वह अक्षय फल बनता है।।26।।

एकादशी के दिन मे होम श्राद्ध निषिद्ध है उस दिन जप तप करना चाहिए। विद्ध एकादशी के दिन श्राद्ध होम आदि कर सकते है ।

अपने पत्नी को करने वाला सीमन्त विधि मे, बच्चे को करने वाला नामकरण विधि मे अपने को करने वाला अग्न्याधान नाम के संस्कारों मे, प्रेत कर्म मे, सांवत्सरिक आदि श्राद्ध मे, मंगल कार्यो मे पितृ, देवता मनुष्यों को जो देते है वह अक्षय फल देता है ।।27।।

अब मै तुमको धर्म कार्यो मे श्रेय देने वाले प्रदेश के बारे मे बोलता हूँ। सत्पात्र व्यक्ति जहाँ मिलता है वह प्रदेश अत्यन्त पुण्यकर है ।।28।।

दान का फल मिलने के लिए देश से भी बढ़कर दान लेने वाला मुख्य होता है। सत्पात्र से देश भी पुण्यकर बनता है।

जिस प्रदेश में भगवद्भक्त रहता है, जहाँ तप, विद्या, दया से युक्त ब्राह्मण समूह रहता है वहाँ सारा प्रपंच रहता है । सत्पात्र जहाँ रहता है वहाँ पुण्य क्षेत्र होते है ।।29।।

जहाँ जहाँ भगवान का विग्रह हो, अष्टादश पुराण उपपुराण मे प्रसिद्ध गंगादि नदी बहती है वह प्रदेश सबको श्रेय करने वाला होता है।।30।।

पुष्कर नाम का सरोवर, योगियों का वासक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, गया, प्रयाग, पुलहाश्रम, शालग्राम क्षेत्र।।31।।

नैमिषारण्य, कन्यातीर्थ, रामसेतु, प्रभास, द्वारका, काशी, मधुवन, कांची, हम्पी, बिन्दु सरोवर, बदरिकाश्रम, अलकनंदा, चित्रकूट, महेन्द्र मलय आदि पर्वत।।32,33।।

ये सारे अत्यन्त पुण्य कर प्रदेश हैं। भगवान हरि का जहाँ विग्रह है वे पुण्यतम प्रदेश है। श्रेय को चाहने वाला पुरुष बार-बार इन प्रदेशों की सेवा करना चाहिए ।।34।।

इन क्षेत्रों मे जो पुण्य कर्म किया जाता है वह हजार गुना फल देता है। दान देने के लिए सत्पात्र के बारे मे ज्ञानियों का मत कहता हूँ ।।35।।

हे राजा भगवान हरि ही मुख्य पात्र है। वह इस सकल चराचर जगत का स्वामी है। जब तुम लोग राजसूय यज्ञ किये तब ब्रह्मा जी ब्रह्म पुत्र और अन्य पूज्य बड़े देवता और ऋषियों होते हुए भी अग्रपूजा को भगवान श्री कृष्ण ही योग्य पात्र मानकर चुना गया न ।।36।।

यह महा ब्रह्माण्ड वृक्ष जीव राशियों से भरा है । श्री हरि इस वृक्ष के मूलाधार हैं। उनको तृप्त करे तो इस जगत के सारे जीवात्म तृप्त हो जाते है ।।37।।

मानव, पशु, ऋषि देवतागण इनके शरीरों को भगवान श्री हरि ही सृष्टि किये हैं। प्रतिबिम्बों के साथ बिम्ब रूपी स्वयं भगवान इन शरीरों मे वास करने के कारण उनको पुरुष कहते है ।।38।।

हे राजा मानवों मे तारतम्य रहता है। उसके अनुसार भगवान भी उनमे तारतम्य से सन्निहित रहते है। जिसमे भगवान का सन्निधान जितना है उतना पात्रत्व उनका होता है ।।39।।

हे राजा इस रीति से सारे जीव भगवान की चल प्रतिमा हैं। उनमे उच्च नीच मानकर अन्तर्यामी को अवमान करने की प्रवृत्ति त्रेतायुग मे आने का कारण ज्ञानी लोग उपासना के लिए अचल प्रतिमाओं की स्थापना की।।40।।

इसी कारण से अनेक लोग श्रद्धा युक्त होकर प्रतिमाओं मे भगवान श्री हरि की उपासना करते हैं। किन्तु उत्तम पुरुषों का द्वेष करने वालो को उस उपासना का फल नही मिलता ।।41।।

हे राजा, जड़ पत्थर मे प्राण प्रतिष्ठा करने से भगवान का सन्निधान बढ़ता है। वैसे ही ब्राह्मण तप विद्या, यदृच्छा लाभ संतृप्ती से वह वेदवित्त बनता है। इसी कारण हरि के उत्तम सन्निधान पात्र प्रतिमा रूपी ब्राह्मण को योग्य पात्र माना जाता है।।42।।

हे राजा, अपने पाद धूलि से तीनों लोकों को पवित्र करने वाला ब्राह्मण इस जगत के मालिक भगवान श्री कृष्ण के प्रतिमा रूप में रहते है और इस जगत के लिए वे जीते जागते भगवान के रूप में है।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में सातवाँ स्कन्ध में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

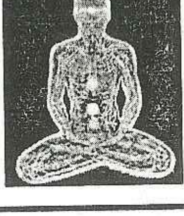

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

सप्तम स्कन्धः

अध्याय - सोलह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

अब नारद जी ज्ञान यज्ञ के बारे मे कहते हैं। हे राजा कई द्विज गृहस्थ अग्निहोत्रादि कर्म मे निरत रहते हैं अन्य कई वानप्रस्थ उपवासादि व्रत करते हैं। अन्य कई ब्रह्मचर्य मे रहकर वेदाध्यन करते है, और कई कुटीचक्र, बहूदक सन्यासी प्रवचन निरत रहते है, अन्य कई परमहंस, परमात्म के तत्वज्ञान में निरत रहते है। हंस योग समाधि मे रहते हैं।।1।।

इस संसार मे संतति निरन्तर रहे, पर मे शाश्वत मुक्ति मिले इसको चाहने वाले पितरां को कव्य से, देवताओं को हव्य से आराधना करने वाले, इन हव्य कव्यों को ज्ञान निरत परमहंस को देना चाहिए। परमहंस नही मिले तो अन्य कर्म निरतों को यथायोग्य देना चाहिए।।2।।

विश्वेदेवस्थान मे दो को और पितृ स्थान मे तीन को असाध्य रहे तो दोनों स्थान मे एक-एक को बिठाकर भोजन करवाना चाहिए। बहुत बड़ा श्रीमंत भी श्राद्ध कार्य को विस्तार नही करना चाहिए। अनावश्यक लोगों को निमंत्रण नही देना चाहिए।।3।।

अपने सगे भाई बहन को अन्न दान करने से उस समय मन की एकाग्रता नष्ट होने की संभवना रहता है। इसके लिए देश काल उचित श्रद्धा, पदार्थ, दान पात्र और उनकी पूजा ये सारे ठीक तरह से नही बनते।।4।।

श्राद्ध मे परमहंस को मांसान्न नही देना। धर्म तत्व को जानने वाला परमहंस को माँसाहार नही करना चाहिए। परमहंसों को पशु हिंसा से संतोष नही होता। यज्ञों मे, श्राद्धों मे पशु हिंसा से परम संतोष नही होता।।5।।

उस प्रदेश मे पैदा हुआ न मानते हुए मिला हुआ वस्तु को श्री हरि को समर्पण करते हुए श्रद्धा से युक्त होकर सत्पात्र को देना चाहिए। वह अक्षय होकर सारे इष्टार्थों को देता है ।।6।।

अन्न को देव, ऋषि, पितृ, भूत और अपने बन्धुओं को विभाग करते हुए अर्पण कर इन इष्टान्नो मे भगवान भोजन करते हैं यह अनुसन्धान करना चाहिए ।।7।।

किसी प्राणी को मन से, बात से, शरीर से, हिंसा नही करना यह श्रेष्ठ धर्म है। उत्तम धर्म को चाहने वाले को इससे बड़ा धर्म और नही है ।।8।।

यज्ञतत्व को जानने वाले ज्ञानी श्रेष्ठ बाह्य कर्म वाले यज्ञों को ज्ञान से प्रज्ज्वलित मनोनिग्रह नाम के अग्नि मे होम करते है। वे निवृत्ति मार्ग मे चलने वाले हैं। वे मन मे सारा चिन्तन करते हुए सबको भगवान को अर्पण करते हैं।।9।।

सारे यज्ञों मे मानस यज्ञ सबसे श्रेष्ठ है। द्रव्य यज्ञ को करने वाले को देखकर प्राणी डरते हैं और कहते हैं कि यह निष्करुणी है। वह भगवदर्पण बुद्धि से, कतृत्वाभिमान त्यागता नही कामना त्याग भक्ति ये यज्ञ के मुख्य अंग है इसको जानता नही। यह केवल अपने इन्द्रियों के तृप्ति के लिए हमको मारकर खाता है।।10।।

इसी कारण धर्म को जानने वाला भगवान के अनुग्रह से मिलने वाला मुनियों को योग्य अन्न से संतुष्ट होते हुए प्रतिदिन का नित्य नैमित्तिक कर्मों को करते रहना चाहिए ।।11।।

विधर्म, परधर्म, आभास, उपमा, छल ये पाँच अधर्म की शाखायें है। धर्मज्ञ इन पाँचों को अधर्म के समान त्यागना चाहिए ।।12।।

अन्यों के धर्म को विघ्न करना विधर्म होता है, दूसरों को विहित धर्म पर धर्म होता है, वेदों के विरुद्ध आचार दम्भाचार अथवा परधर्म होता है उसको उपमा भी कहते है, धर्म नाशक जो है वह छल है ।।13।।

काम्य फल की आशा से मानव जो कर्म करते हैं वह आभास है। स्वतंत्र परमात्मा में भक्ति से किया हुआ वर्णाश्रम उचित प्रत्येक धर्मकर्ता को मोक्ष फल देता है ।।14।।

धर्माचार के लिए अथवा जीव निर्वाह के लिए धन की याचना नही करना चाहिए। याचना न करने वाले को भगवान की कृपा से जीवन के लिए आवश्यक जो है उतना मिलता है। जितना मिलता है उतना उसके लिए पर्याप्त है। अजगर को प्रयत्न के बिना ही जहाँ है वही अन्न मिलता है न ।। 15।।

किसी से न माँगते हुए जो है उसमे तृप्त होकर भगवान के विचार मे सुख देखने वाले को जो सुख मिलता है वह सुख कामना से, लोभ से धन के लिए दस दिशा मे घूमने वाले को कहाँ मिलेगा ।।16।।

पाँव मे पादत्राण पहनने वाले को पत्थर कंकड़ से कुछ कष्ट नही, उसके लिए सारा रास्ता सुगम होता है। वैसे ही सदा मन मे तृप्त रहने वाले को सुख दश दिशाओं से आता है ।।17।।

राजा, सदाकाल तृप्त जो रहता है वह किसी से भी अपना जीवन यापन करता है वह पानी पीकर भी जीवित रहता है। किन्तु बहुत आशा रखने वाला जननेंद्रिय और जिह्वचापल्य से घर का पालतू कुत्ता बन जाता है ।।18।।

ब्राह्मण असंतुष्ट रहा तो उसका तेज, वेद विद्या तप और यश सारे बह जाते हैं। इसके साथ इन्द्रिय चापल्य के कारण अध्यात्म ज्ञान अदृश्य होता है ।।19।।

खाने पीने से भूख और प्यास चला जाता है। क्रोध भी समय के बाद समाप्त होता है किन्तु लोभ सारे सम्पदा को पाने के बाद भूमण्डल के मालिकत्व मिलने के बाद भी शमन नही होता ।।20।।

राजा, पंडित लोग सारे संशयों का निवारण कर सकते है। सभाओं मे पंडित होकर अध्यक्ष बनने वाला भी अतृप्ति से अध:पतन पाता है ।।21।।

विषय त्याग के संकल्प से विषय कामना का जय पाना चाहिए। धन संग्रह से होने वाले अनर्थ को विचार करते हुए धन लोभ को छोड़ना चाहिए। सबकी रक्षा करने वाले भगवान है इस तत्वज्ञान से भय का निवारण करना चाहिए ।।22।।

तर्क विद्या से शोक मोह को, महात्मा की सेवा से दम्भ को मौन से योग विघ्न को विषय विरक्ति से हिंसा को निवारण करना चाहिए ।।23।।

दया से आदि भौतिक दु:ख को योग समाधि से आधि दैविक दु:ख को योगाभ्यास के बल से आध्यात्मिक दु:ख को सात्विक पदार्थ सेवन से नींद को जीतना चाहिए ।।24।।

सारे प्राणियों मे दया करने वाले को किसी प्राणी से अपाय नही होता है। योग समाधि से देवताओं का प्यार मिलता है, अधिदैविक दु:ख नही आता है। प्राणायाम आदि योगाभ्यास से शरीर मन का आरोग्य मिलता है उससे आध्यात्मिक रोग उपद्रव नही होते। सात्विक पदार्थ का सेवन से निद्रा आलस्य आदि तामस परिहार होता है ।

रजोगुण तमोगुण को सत्वगुण से जीतना है। भगवन्निष्ठा से सत्व गुण का बन्धन दूर होता है। ये सारे काम हरि गुरु भक्ति से युक्त मन से जीतना है ।।25।।

ज्ञान प्रद लोकगुरु साक्षात् भगवान श्री कृष्ण मे जो अपचार करते है उनके श्रवण मन न आदि सारे कार्य गज स्नान के समान व्यर्थ होते हैं।।26।।

हाथी पानी मे नहाने के बाद अपने शरीर के ऊपर मिट्टी फेंकता है। वैसे ही हरि गुरु भक्ति न रहने वाला भगवान के संकीर्तन के बदले मे उनका अवहेलना करता है। इसी कारण से उसका कर्म का फल नष्ट हो जाता है। वह पुन: संसार मे जन्म लेता है।

भगवान श्री कृष्ण जड़ प्रकृति और अक्षर पुरुष महा लक्ष्मी दोनों के स्वामी होकर स्वयं भगवान हैं। योगी लोग इनके पादारविन्दों को ढूंढ़ते है। अन्य लोग इनको मानव समझते है ।।27।।

इन्द्रिय और मन को निग्रह करने के लिए जो शांस्त्र विधि बनें है उनका अंतिम लक्ष्य भगवद् प्राप्ति है। शास्त्र विधि अनुष्ठान यदि भगवद्भक्ति को उत्पन्न नही करता है तो वह निरर्थक श्रम बनता है ।।28।।

वाणिज्य, कृषि इत्यादि विद्या कभी-कभी मानव को लाभदायक नही बनते, कभी-कभी नष्ट कारक भी होते है। ब्याज के लिए पैसा देने मे कभी-कभी मूल धन भी नाश होने का भय रहता है। वैसे ही शास्त्र विधि से समाज सेवा आदि कार्य करें तो भी भगवद, द्वेषी मानव को स्वर्गादि सुख लाभ नही होता है, विरुद्ध तमस का साधन बनता है।।29।।

मन बिना कष्ट से भगवान मे स्थिर करने की इच्छा रखने वाला निषिद्ध विषयों मे आसक्ति छोड़ देना चाहिए। लौकिक छोड़कर एकांत प्रदेश मे रहना चाहिए। परमहंस यति बनकर भिक्षा से प्राप्त अन्न को

मिति में ग्रहण करना चाहिए ।।30।।

यम नियम के साथ आसन करना चाहिए। स्वच्छ प्रदेश समतल भूभाग मे आसन लगाकर अपने को अनुकूल स्थिर आसन मे बैठकर प्रणव का उच्चारण करते हुए बैठना चाहिए। रेचक पूरक कुम्भक पूर्वक प्राणअपानों को रुकाना चाहिए। मन विषय पदार्थो का आलोचना छोड़ते तक नाक के अग्र को दोनों आँखों से देखते रहना।।32।।

इसके बाद प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। लौकिक विषयों का कामना न करते हुए, इधर उधर भागने वाले मन को खींचकर हृदय मे रहने वाले भगवान के पास उसको बंधना चाहिए। इसी को आगे बढ़ाते हुए धारणा ध्यान और समाधि करना चाहिए ।।33।।

इस रीति से योगाभ्यास करते रहे तो मुनि के मन थोड़े ही समय मे बाह्य शरीर का अभिमान को छोड़कर लकड़ी जलने के बाद रहने वाला आग के समान वाह्य प्रपंच के विषय मे निष्क्रिय बनता है ।।34।।

लौकिक कामना के आघात को न मिलते हुए विषय पदार्थों के आलोचना को छोड़ दिया हुआ योगी का मन ब्रह्म साक्षात्कार्य से व्यक्त होने वाले स्वरूपानंद सुख का अनुभव करने के बाद ब्रह्म को छोड़कर वह कही भी नही जाता है ।।35।।

धर्म, अर्थ, काम के कारण बना हुआ गृहस्थ आश्रम को छोड़कर सन्यास लेने के बाद पुनः उसको स्वीकार करने वाला पापी है और निर्लज्ज है ।।36।।

देह आत्म से अलग है वह मरने के बाद मल होकर, कृमि बनकर अथवा राख हो जाता है। ऐसे होते हुए भी इस शरीर को मेरा मानना और उसकी स्तुति करने वाले महा दुष्ट होते हैं, वे ही असुर हैं।।37।।

सन्यासी जैसे अन्य लोग भी अपने आश्रम छोड़े तो उनको भी पाप आता है। गृहस्थ औपासना और अग्निहोत्र को छोड़ना, ब्रह्मचारी अग्नि कार्य और वेदाध्ययन छोड़ना, वानप्रस्थ फिर गाँव मे बसना, सन्यासी इन्द्रिय लोलुप बनना ये दोष हैं ।।38।।

ऐसे करने वाले अपने आश्रम को कलंकित करते है, वे आश्रम वेषधारी होते हैं। भगवान की इच्छा से मूढ़ बने उनमे अनुकंप नही दिखाना, उपेक्षा करना ।।39।।

देह को छोड़कर अपने को, अपने से अलग भगवान को समझकर उस ज्ञान से मनोनिग्रह किया हुआ मानव किस कारण से विषय लंपट होकर अपने शरीर का पोषण करता है ।।40।।

इसका अर्थ शरीर इन्द्रिय निरूपयोगी है ऐसा नही। यही शरीर के सहायता से मोक्ष पा सकता है या नरक में गिर जाता है। यह शरीर एक पहियावाली रथ है। इन्द्रिय उनके घोड़े है। इन्द्रिय मे प्रधान मन उनके लगाम होता है। शब्दादि इन्द्रिय विषय रास्ता है। बुद्धि सारथी है। सत्व नाम अंतःकरण भगवान बैठने का उन्नत आसन है ।।41।।

प्राणापान और नागकूर्म आदि दशप्राण इस रथ के अरा बनते है। मै और मेरा कहने वाला जीव इस

रथ मे बैठा है। ओंकार उसका धनु है, जीव स्वयं उसका बाण बनता है उसका लक्ष्य परब्रह्म है।।42।।

राग, (अपने मे न रहने वाला वस्तु के ऊपर की इच्छा) द्वेष, लोभ, शोक (वस्तु न मिलने से आना वाला दु:ख, मोह (अज्ञान), भय, मद (अपने से छोटे के ऊपर दिखाने वाला दर्प) मान (अपने को बड़ा मानना) अभिमान (ऐश्वर्य का दर्प)असूया(दूसरों का उन्नति को सहन नही करना) माया (कपट) हिंसा मत्सर, रज, प्रमाद, भूख, नींद इन सबको जीतकर जीव नामक बाण अंत मे भगवान के पास जाना चाहिए। इन रागादि दोषों मे कई रजोगुण और कई तमोगुण से और भी कई दोनों गुण से बनते है। कई बार स्थूलसत्व गुण भी समाधि के विरोधी कर्मो को प्रेरक बनकर दोष बनता है। केवल सूक्ष्म सत्व ही मोक्ष के उपयोगी होता है।।43,44।।

यह मनुष्य शरीर नाम का रथ अपने वश मे रहते समय ही श्रेष्ठ गुरु की पाद सेवा नाम के खड्ग से भगवान के अनुग्रह बल से रागादि शत्रुओं को नाश करते हुए मोक्ष का प्राप्ति को निश्चित करते हुए विषयों की आश छोड़कर संतुष्ट होकर संसार बन्धन से मुक्त होना चाहिए ।।45।।

ऐसा न करते हुए थोड़ा भी अजागुरूक रहे तो इन्द्रिय नाम के दुष्ट घोड़े बुद्धि नामक सारथी सहित रथ को गलत रास्ते से ले जाते है। वहाँ विषय भोग नाम के लुटेरों के सामने खड़ा करते हैं। वे लुटेरू घोड़े सारथी और अभिमानी के साथ अंधंतमस मे अथवा नित्य संसार मे गिराते हैं। वहाँ मरण से भी ज्यादा दु:ख रहता है।।46।।

ज्योतिष्टोंमो स्वर्गकामो यजेत इस वेद वाक्य के अनुसार स्वर्गादि विषय साधन भूत यागादि कर्म प्रवृत्त कर्म माना जाता है। **नारायणोसौ परमो विचिन्त्य** इस वेद वाक्य के अनुसार श्रवणादि कर्म निवृत्त मार्ग बनता है दोनों वैदिक कर्म हैं। प्रवृत्त कर्म से पुन: संसार मिलता है, निवृत्त कर्म से भगवान मिलते है, मुक्ति मिलती है।।47।।

अग्नि होत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु, सोम ये सारे यज्ञ कर्म हिंसा से युक्त है। पशु, चरु, पुरोड़ाश, सोम रस ये सारे यज्ञ के द्रव्य है। यही काम्य फल उद्देश्य से किया तो मोक्ष नही मिलता है।।48।।

बहुत मानने वाला वैश्व देव, प्रहुत नाम वाला बलिहरण ये दोनो इष्ट होते है। ये यदि काम्य फल का उद्देश्य वाला हुआ तो प्रवृत्त बनता है। मंदिर उपवन तालाब कुँआ और वृक्षारोपण ये सारे पूर्त शब्द से ज्ञात होता है। यह फल के उद्देश्य से करे तो प्रवृत्त धर्म बनता है ।।49।।

शाक से बना हुआ अन्न को ब्राह्मण को दान दिये तो उसको द्रव्य बोलते है। ऐसे प्रवृत्त कर्म करने वाला धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दर्श दक्षिणायन, अभिमानी लोक और चन्द्रलोक को पाकर वापस वृक्षलता, अन्न, रेतस के मुखान्तर इस भूमि मे जन्म लेता है। इसको पितृयान बोलते है। इससे प्रवृत्त कर्मी धूम इत्यादि स्थान को क्रम से प्राप्त करते अंत मे भूमि मे जन्म लेता है ।।50,51।।

तब इसको गर्भावास से लेकर अंत्येष्टि तक सारे संस्कार होकर द्विज बनता है। द्विज पुन: प्रवृत्त कर्म

करता है। पितृयान मार्ग से चलता है। इस रीति से प्रवृत्त कर्मी को संसार चक्र मे चक्कराते रहना पड़ता है। निवृत्त कर्मी अर्चीरादि मार्ग से मोक्ष पाते हैं। उसके पहले प्राण जाते समय वे लय चिन्तन करते हैं। क्रियात्मक यज्ञादिभिमानी कर्मांग देवताओं को ज्ञान के कारण इन्द्रियाभिमानी देवताओं मे होम करते है। वे उनके अधीन है इसका चिन्तन करते हैं।।52।।

इन्द्रियाभिमानीयों को मनोभिमानी इन्द्र मे वैकारिक मनोभिमानी इन्द्र को वेदाभिमानी पार्वती मे, पार्वती को अकार, उकार, मकार रूप ओंकार का अवय के अभिमानी रुद्र मे, उस रुद्र को अवयव से बना ओंकार के अभिमानी शेष मे ज्ञानी लोग होम करते है। निवृत्त कर्मी ऐसा ही करना चाहिए ।।53।।

ओंकार अभिमानी शेष को बिन्दु की अभिमानी सरस्वती के अंश मे,उस अंश को नाद के अभिमानी सरस्वती के मूल रूप मे उस सरस्वती को ब्रह्मा जी मे, ब्रह्मा जी को भगवान मे होम करना चाहिए। बिन्दु नादिभिमानी भारती को मुख्य प्राण मे, मुख्य प्राण को प्रकृत्याभिमानी जया रूप लक्ष्मी द्वारा संकर्षण रूप भगवान मे हवन करना चाहिए। बाद मे अर्चिरादि मार्ग का स्मरण इस रीति से करना चाहिए। अर्चि लोक अग्नि और ज्योति नाम के दो रूप से अग्नि ज्ञानी को मिलता है। उसके बाद अति वाहिक वायु, अभिजित् दिवा, शुक्लपक्ष, राका, उत्तरायण, सम्वत्सर, तटित, वरुण, प्रजापतियों के द्वारा सूर्य, सोम, वैश्वानर द्वारा इन्द्र लोक।।54।।

बाद मे ध्रुव लोक के उस पार विश्व तैजस,प्राज्ञ नाम के भारती पुत्र,अनिरुद्ध प्रद्युम्न संकर्षण ये छ: भारती पुत्र भारती के पास रहते हैं। बाद मे ज्ञानी भारती के पास जाकर मुख्य प्राण के समीप जाता है वहाँ से वैकुण्ठ मे भगवान के पास जाकर ब्रह्मा जी के साथ ब्रह्माण्ड के बाहर नौ आवरणों को पार करके विश्व, तैजस, प्राज्ञ तुरीय नाम के चार भगवद्रूपों को पाकर अनिरुद्ध प्रद्युम्न संकर्षण वासुदेव नाम के भगवद रूपों को पाता है। बाद मे, समन्वय आत्मा सर्वत्र व्यापी नारायण भगवद्रूप को पाता है। इसको देवयान बोलते हैं। ये क्रमानुसार एक से एक ज्यादा सुख देने वाले लोक होते है। इससे ज्ञानी अधिक सुखी होकर भगवान का आराधना करते हुए विषय वासना रहित मन से भगवान मे रह जाता है,वापस इस संसार को आता नही।।55।।

ये देवयान और पितृयान मार्ग भगवान से निर्माण हुए हैं। इनको शास्त्र नाम के सूक्ष्म आँखों से देखने वाला अन्य लोगों के समूह मे रहते हुए भी मोह से अध:पतन नही पाता,मुक्ति को ही पाता है।।56।।

इस प्रपंच के सृष्टि स्थिति नाश को करने वाले भगवान इन तीनों काल मे उत्पत्ति नाश रहित होते हैं। ब्रह्माण्ड के अन्दर बाहर रहते हुए अणु और महत् रूप धारण करते है। ज्ञान और ज्ञेय वे ही हैं। वाग्रूप और वाच्य वे ही है। दैत्यों को अज्ञान और सज्जनों को ज्ञान देने वाले हैं। उनमे मोक्ष देने का सामर्थ्य रहना स्वाभाविक है।।57।।

अबाधित जीव भगवान के प्रतिबिम्ब है उनके सामर्थ्य के अधीन है, नित्य है। वैसे ही इन्द्रिय गोचर जगत प्रपंच भी भगवान से ही सत्य रूप से सृष्ट है।।58।।

भगवान के बिना सत्य सृष्टि होता है यह सही नही क्योंकि पदार्थ सृष्टि के लिए एक सर्वशक्त कर्ता का आवश्यकता है। दृष्टान्त के लिए पृथ्वी मे जल राशि नही है, जल का परिणाम भी नही है, परिणाम भी पृथ्वी नही है, किन्तु पृथ्वी पानी से अलग नही रहता इसके साथ पृथ्वी पानी के साथ रहने वाला वस्तु नही है।।59।।

पृथ्वी आदि धातुओं पृथ्वी तत्व के अवयव हैं किन्तु वे भिन्न अवयव नही होते। अवयव के बिना अवयवी नही रहता। ये सब मिलकर एक साथ रहते हैं।।60।।

अवयव और अवयवी मे अभेद होते हुए सादृश्य है यह सही नही है। उनमे भेद है ही। यह अनुभव मे व्यक्त होता है। भेद के बिना सादृश्य का भ्रम भी नही होता। इसी कारण स्वप्न मे दिखने वाला जागृति और जागृति मे अनुभव आने वाला स्वप्न के समान अभिन्न अवयव, अवयवीयों मे जलतत्व विधि, जलतत्व निषेध, पृथ्वीतत्व विधि पृथ्वीत्व निषेध भी भगवान के बिना नही होता।।61।।

ज्ञानी सदाकाल भगवान के बारे मे भावाद्वैत, क्रियाद्वैत, द्रव्याद्वैत की चिन्तन करते हुए स्वरूपानंद का आनन्द का अनुभव से स्वप्न जागृति और सुषुप्ति से मिलने वाली अनर्थो को दूर करता है।।62।।

पट और तन्तु मे जैसे कार्य कारण सम्बन्ध होता है। वैसे ही वस्तु मे और भगवद रूपों मे अभेद को देखना और यहाँ भेद असत्य होने के कारण यह युक्त है। इसको भावाद्वैत बोलते है ।।63।।

धर्मराज! साक्षात् परब्रह्मा मे मन तनु वाक्य से करने वाले सारे कर्मों को समर्पित करना क्रियाद्वैत होता है।।64।।

अपने पत्नी पुत्र इत्यादि अन्यों के स्वार्थ कामना और उनमे रहने वाले भगवद रूपों को ऐक्य चिन्तन करना द्रव्याद्वैत कहा जाता है।।65।।

हे राजा जिससे, जिनसे और जहाँ फूल तुलसी इत्यादि जो वस्तुओं को पाना निषिद्ध नही है वह उन वस्तुओं को उसी से पाकर उन्ही से भगवान की आराधना सामान्यत: करना चाहिए। आपतकाल मे इस नियम की आवश्यकता नही ।।66।।

हे राजा इन कर्मों को और वेदोप्क्त अन्य कर्मों को अनुष्ठान करते रहे तो भगवान मे भक्ति करने वाला मनुष्य गृहस्थ होते हुए भी परमहंस पाने योग्य लोक को पा सकता है।।67।।

राजा इसके लिए आप ही उदाहरण हैं। आप श्री कृष्ण के पाद कमल की सेवा से सारे आपदों को पार किये सकल दिशा मे दिगविजय करते हुए राजसूयाग को सम्पन्न किये। इससे आप लोगों को परमहंस को मिलने वाला मोक्ष मिलेगा इसमे थोड़ा भी संशय नही है ।।68।।

नारद जी कहते हैं- मै पिछले ब्रह्म कल्प मे उपबर्हण नाम का गन्धर्व था। गन्धर्व विद्या मे प्रवीण मुझको गन्धर्व लोग बहुत गौरव से देखते थे ।।69।।

सौन्दर्य, सुकुमार्य, माधुर्य और सौगन्ध से मेरा दर्शन सबको प्रिय बना था स्त्री लोग मुझसे ज्यादा

प्यार करती थीं। मै उनके संग मे मत्त होकर रहता था ।।70।।

एक बार देवता लोग एक सत्र मे श्री हरि की लीलाओं को गाने के लिए प्रजापतियों ने गन्धर्व और अप्सराओं का समूहों को निमन्त्रित किये थे ।।71।।

मै भी वहाँ जाकर स्त्रीयों के साथ मिलकर वहाँ बैठकर अश्लील गाने गायें। इस अपचार को देखकर प्रजापतियों ने अपने तप की शक्ति से मुझको शाप दिये ।।72।।

सबको अपचार किया हुआ तुम अपने सौन्दर्य और सम्पत को खोकर जल्दी ही शूद्र बन जाओ। इस शाप के परिणाम से मै एक ब्रह्मज्ञानियों के दासी के पेट से जन्म लिये। उस शूद्र जन्म मे भी मै मेरी माँ की और उन ब्रह्मज्ञानीयों की सेवा को अत्यन्त भक्ति से करने से अब चतुर्मुख ब्रह्मा जी के पुत्र बन गया हूँ। इसी से ब्रह्मज्ञानियों की सेवा अमोघ है यह अनुभव सिद्ध हो गया ।।73।।

पाप नाश करने वाला यह गृहस्थ धर्म का वर्णन मैनें किया है उसको अनुष्ठान करने से गृहस्थ भी सन्यासी पाने योग्य विष्णु लोक को पा सकता है ।।74।।

मनुष्य लोक मे आप बड़े महाभाग्यशाली हैं। साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्री कृष्ण मनुष्याकार मे सदाकाल निगूढ़ होकर आपके घर मे वास करते हैं। इसी के लिए लोक को पावन करने वाले मुनि लोग आपके घर आते हैं।।75।।

अप्राकृत स्वरूपानंदानुभव स्वरूप भगवान श्री कृष्ण वह परब्रह्म है जिनको महात्मा चतुर्मुखादि देवतागण ढूढ़ते रहते हैं वही श्रीकृष्ण आपका प्रिय मित्र मामा के पुत्र, अन्तर्यामी, पवित्र और पूज्य है। यह होते हुए भी आपके आज्ञायों का पालन करते हैं। साथ-साथ आपको उपदेश देने वाले गुरु भी है ।।76।।

भगवान के इस स्वरूप को साक्षात ब्रह्मरुद्रादि देव भी अपने बुद्धि से पूर्ण रूप से वर्णन नही कर सकते। मनन भक्ति वैराग्य से पूजित होने वाले भगवान श्री कृष्ण हमारे मे प्रसन्न हो ।।77।।

श्री शुकदेव जी कहते है - देवर्षि नारद जी से इन बातों को सुनकर धर्म राज संतुष्ट होकर अन्य सब कुछ भूलकर श्री कृष्ण की आराधना करने लगे ।।78।।

धर्म राज से सत्कार पाकर नारद मुनि श्री कृष्ण और धर्मराजा के आज्ञा पाकर चले गये। नारद जी श्री कृष्ण को परब्रह्म का रूप कहते सुनकर पाण्डव आश्चर्य चकित हो गये ।।79।।

ऐसे दक्षपुत्रियों का अलग-अलग वशों का वर्णन अभी तक किया है। उनमे देव, असुर, मनुष्य और सारा चराचर लोक अन्तर गत है।।80।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में सातवाँ स्कन्ध में सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

।।इसके साथ सप्तम स्कन्ध समाप्त होता है।।

BRIEF LIFE HISTORY OF SHRI PEJAWARA SWAMIJI

Sri Vishvesha Tirtha was born in the year 1931 at Ramakunja to a Shivalli Tulu Brahmin family and his pre-Sanyasa name was Venkataramana Bhat. He was ordained into Sanyasa at the young age of 8 years in 1938. His vidya guru is Vidyamanya Teertha of Sri Bhandarkeri Math.

The Swamiji assumed first paryaya, turn to worship Lord Krishna at Udupi, at a young age. During his first Paryaya in the year 1953, he organized the All India Madhva Conference in Udupi. During his second Paryaya in 1969, he got the Badagumalige in Udupi repaired. During his third tenure as Paryaya Swamiji in 1985, he has got a new hall built at Udupi called Krishna Dhama.

The swamiji is involved in various social service organisations, and is said to have started many educational and social service organisations.

The Akhila Bharat Madhwa Maha Mandal [ABMM] center started by the Swami is said to have helped many of poor students. He has established math centres at various holy places in India. These centres are of great help to many pilgrims.

He is one of advisers to VHP. He was in the forefront in the Ram Janmabhoomi movement. He has also led the Go Raksha (Cow Protection) movement.

Sri Vishvesha Tirtha has ordained Sri Vishvaprasanna Tirtha as his successor to the Pejavara matha in 1988.

श्री राम श्री

श्रीमध्वतत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

हमारे प्रकाशित ग्रन्थ

क्र0.	ग्रन्थनाम	मौल्य
1.	श्रीमद्भागवद्गीता प्रतिश्लोकका हिन्दी भावानुवाद	70.00
2.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् प्रथम, द्वितीय, तृतिय स्कंधाः भाषानुवादः	100.00
3.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् चतुर्थ स्कंधः भाषानुवादः	60.00
4.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् पंचम एवं षष्ट स्कंधौ भाषानुवादः	60.00
5.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् सप्तम स्कंधः भाषानुवादः	60.00
6.	श्री रामायणपात्रचित्रणम् एवम् नीतिकथा	50.00

पुस्तक प्राप्ति स्थान

1. श्री मध्वमठ
   63 मीरागलि, दारागंज इलाहाबाद
2. तत्व संशोधन संसत् श्री हृषीकेशतीर्थ संस्थानम्, श्री पलिमारूमठ, रथ बीदि उडुपि कर्नाटक
3. श्री स्वामी सीता वल्लभ शरण
   श्री मध्वमठ बड़ा अखाड़ा मैहर (म. प्र.)
4. श्री स्वामी ललित मोहन ओझा
   प्रेमपीठ मध्वमठ तिजारा ज़िला अलवार, राजस्थान
5. डाँ रवि,
   1st फ्लोवर, नीयर लक्ष्मी भगवन, सेन्ट्रल बाजार रोड़, नागपूर,
6. श्री G. R. Kilkarni
   2041 B wing Mahesh Tower
   Charkop, Sector 2, Kambivali (W)
   Mumbai 67.
   Ph - 9867251783

चित्र विवरण पेजावर 80

1. पाँच वर्ष के श्री वेंकटराम
2. आठ वर्ष में सन्यास दीक्षा
3. गुरुपदेश
4. सोलह वर्ष के स्वामी जी
5. गुरु श्री विद्यामान्य जी के साथ श्री कृष्ण पूजा
6. दीन दुःखी दलित दरिद्र को सहाय हस्त
7. श्री अशोक सिंघल के साथ राम जन्म भूमि सभा
8. शास्त्र प्रभोधन श्री विद्याधीश स्वामी जी के साथ

पता : मध्वमठ 63, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद 211 006

फोन नं0 : 0532-2504587

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

कूर्मावतार

अष्टम स्कन्धः भाषानुवादः

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण

वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री विजयध्वज टीकानुसारी

श्री मद्भागवत महापुराणम्

अष्टम स्कंधः

(भाषानुवादः)

अनुवाद

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

प्रकाशक

तत्व संशोधन संसत्

जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

श्रीमद्भागवत महापुराणम् अष्टम स्कन्धाः

लेखक-

श्री 1008 श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी

प्रकाशक

तत्व संशोधन संसत्

जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम मुद्रण 1000 प्रतियाँ

सहयोग राशि

पुस्तकालय संस्करण 120 रुपये

सामान्य संस्करण 60 रुपये

15-5-2011

अक्षर विन्यास

श्री प्राणेश कुमार शुक्ल

मुद्रक -

श्री वैष्णव प्रेस

मोरी, दारागंज, इलाहाबाद

श्री राम श्री

अनुग्रह संदेश

श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य मूल महासंस्थान श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी उडुपि

हमारे विशेष अभिमान पात्र **श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी** द्वारा किए हुए आठ शास्त्र ग्रंथों का हिन्दी भाषानुवाद को देखकर हमें सन्तोष हुआ है। श्री स्वामी जी अपने पूर्वाश्रम में अनेक वर्षों से सामजिक सेवा में रचनात्मक कार्यों को किये हैं। हमारे साथ अकाल, भूकम्प, बाढ़ इत्यादि कामों में सम्पूर्ण समर्पण भाव से काम किए हैं। अब अपने अस्सी वर्ष के समय में आठ शास्त्र ग्रन्थों का अनुवाद और प्रकाशन का स्तुत्य काम अपने हाथ में लिए हैं। मध्व तत्वज्ञान को अभ्यास करने के जिज्ञासुओं को अनुकूल होने वाली यह एक विशिष्ट सेवा किए हैं।

वे अपने सत्तर वर्ष की आयु में कन्नड़ भाषियों के अनुग्रह रूप में अनेक शास्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किए थे। अब प्रयाग में रहकर मध्व सिद्धान्त का प्रसार कार्य करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा मध्व तत्वज्ञान को हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचार करने का महान कार्य कर रहे हैं।

श्री कृष्ण, श्री वेद व्यास जी, अस्मदुपास्य श्री रामविट्ठल जी इनको विशेष अनुग्रह करते हुए इनकी सेवा विस्तार रूप से सारी जनता को मिले यही हमारा आशीर्वाद है।

इति नारायण स्मरण

श्री श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी महाराज
पेजावर मठ उडुपि

अनुग्रह संदेश
श्री राम श्री
श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य मूल महा संस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति
श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी, उडुपि

श्रीमद्भागवत भगवान की कथा से पूर्ण भरा हुआ कृति है। जहाँ छुए वहाँ हमें भगवान का स्पर्श मिलता है। यह आध्यात्म की रसमय फौवारा है। इसी कारण भागवत आज भी जन मन में जीवित है। भगवान के साक्षात अवताररूप श्री वेदव्यास जी द्वारा प्रज्वलित किए हुए ज्ञान का न बुझने वाले चिरन्तन नन्दादीप है भागवत। भगवान की कथा के साथ भगवत भक्तों की कथा भगवान की श्रेष्ठता में परिपूर्ण होती है। **चरितं वैष्णवानां तु विष्णूद्रेकाय कथ्यते।** बारह स्कन्दों का हृदय कहलाता है यह अष्टम स्कन्ध। इसमें जो समुद्रमंथन का चिन्तन आता है, वह हृदय के साथ सम्बन्ध रखता है। भगवध्यान की चिन्तना यहाँ भरी हुई है।

मद भरित गजेन्द्र के ऊपर सवार होकर देवराज इन्द्र दिग्विजय कर रहे हैं। सामने से आने वाले दूर्वास जी सुगन्ध भरित भगवान के प्रसाद रूप पुष्प माला को इन्द्र जी को भेट करते हैं। इन्द्र जी उस माला को हाथी के मस्तक पर रखते हैं। ऐरावत उसको लेकर जमीन पर फेंक कर उसके ऊपर पाँव रखते हुए आगे बढ़ता है। इन्द्र देव इसके मौन साक्षी बनते हैं। फल स्वरूप इन्द्र जी को दूर्वासा के शाप के कारण दैत्यों का आक्रमण, दैत्यों के आक्रमण के परिणाम से इन्द्र देवलोक की सारी सम्पदा को खो देते हैं। उनको दैत्य लोग समुद्र में फेंक देते हैं। यह कथा हमें जागृत करती है। भगवान के प्रसाद रूप में मिलने वाले उनसे चढ़ाए हुए पुष्प, प्रसाद्, निर्माल्य, मंत्राक्षता ये सारे सर्वार्थ सिद्धप्रद होते हैं। इन की अवमानना सर्वस्व को नष्ट कर देता है। दुर्वास जी की पुष्प माला, शुकदेव जी द्वारा उपदेश दिये हुए भागवत की भाव पुष्प माला है। इन्द्र ने जैसे फूल माला को फेक दिया वैसे इस भागवत की उपेक्षा कभी भी हमें नही करनी चाहिए। नित्यनूतन,

सुगन्धभरित, स्वादिष्ट, भगवरोगनिवारक, सुरूप, सुमनोहर, भावपुष्प माला रूपी यह भागवत आपके कन्ठ में सदा काल के लिए शोभायमान रहे।

समुद्र मंथन करने के बाद विष मिलता हैं, मद्य आता हैं, लक्ष्मी जी का अनुग्रह होता है, अन्त में अमृत भी मिलता है। शास्त्र चिन्तन करते समय, जगत नाश करने वाले चिन्तन "भगवान नही है, मैं ही भगवान हूँ" यह विष आ सकता है। " मैं भगवान के समान हूँ, मुझमें और भगवान में कोई फरक नही रहेगा " इस भाव का मद्य भी मिल जाता हैं। शास्त्रध्ययन करने वाले को सकल सम्पदा देने वाली लक्ष्मी का भी अनुग्रह होता है। किन्तु " **सर्वेपि पुरुषार्था: स्युः ज्ञानादेव न संशयः** " इस प्रमाण के अनुसार हमारा उद्देश्य अमृत रूप मोक्ष पाना ही होना चाहिए। वह मोक्ष मिलते तक समुद्रमंथन को चालू रखना चाहिए।

श्री वेदव्यास जी की इस सुसंस्कृत भागवत को हमारे शिष्य श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी ने समर्थ सुन्दर और सबके मन को मिले ऐसी सुन्दर हिन्दी में अनुवाद कर साधक सज्जनों का परमोपकार किए है। कन्नड़, संस्कृत न समझने वाले हिन्दी भाषि साधको को जगद्गुरू मध्वाचार्य जी का शास्त्र का परिचय कराने वाले इस कार्य को हम अपने हृदय भर कर अभिनन्दन करते हैं। अन्य सारे कार्यों को बाजू में रखते हुए **तद्धितप - तद्धितप** के जैसे दिन-रात किया हुआ यह शास्त्र सेवा अनुपम है। हमारे गुरु श्री श्री 1008 विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी से स्थापित तत्व संशोधन संसत से मुद्रण करते हुए गुरु जी के ग्यारहवाँ आराधना पर्व काल में यह प्रकट हो रहा है। यह हरि गुरु का अनुग्रह प्राप्त करने वाला है। उत्तर भारत के हिन्दी भाषी लोग इस ग्रन्थ को पढ़ें और अपने बन्धु बान्धवों से पढ़ाएँ तो यह प्रयत्न सार्थक हो जाता है। इनसे भागवत के अन्य भाग भी जल्दी से जल्दी अनुवादित होकर साधकों के हाथ में विराजमान हो, यही हमारी अपेक्षा है। श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य जी से प्रतिष्ठापित श्री कृष्ण, श्री राम जी के अनुग्रह से हम अपने शिष्य को शुभ कामना करते हैं।

पलिमारु उडुपि

वैशाख शुक्ल एकादशी

खर नाम संवत्सर

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी

श्रीमद् अच्युत प्रेक्षाचार्य संस्थानम्

भीम सेतु मुनिवरेन्द्रमठ भीमनकट्टे

अनुग्रह संदेश

|| SRI DAMODARA SEETHARAMACHANDRAYA NAMAHA ||

SRIMAD ACHUYTA PREKSHACHARYA SAMSTHANAM

BHIMASETHU MUNIVRUNDA MUTT, BHIMANAKATTE.

SRI 1008 SRI SRI. RAGHUMANYATEERTHA SWAMIJI
PEETHADHIPATHI

Doorvasapuram Post, Taluk: Teerthahalli, District: Shimoga. Pincode: 577432
Phone: 08181-226261, Mobile: 9242977866, 9845181792. Email: [illegible]@gmail.com

Branch: BHIMANAKATTE SRI RAGHAVENDRA SWAMY MUTT
No.18, 5th Block, Doddabommasandra, Vidyaranyapura Main Road, Bangalore : 560097. Phone: 080-23463471.

[illegible]

[illegible]

प्रस्तावना

हमारे गुरु जी पूर्व प्रयाग पीठाधिपति श्री 1008 श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी लगभग दस वर्ष पूर्व भागवत के पहले तीन स्कन्धों का अनुवाद कर प्रकाशित किए थे। उनका महानिर्वाण आकस्मिक रीति से होने के कारण वह कार्य वहीं अवरुद्ध हो गया था।

हमारे दीक्षा गुरु उडुपि श्री पलिमारु मठ के पीठाधिपति जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महराज जी ने उस अवरुद्ध कार्य का पुनरारम्भ करने का आदेश दिया। मैं अल्प शक्ति और अल्प ज्ञान वाला हूँ। किन्तु अपने गुरुवर्य की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मैं यह कार्य कर रहा हूँ।

विद्यावतां भागवते परीक्षा यह पूर्णत: सत्य है। श्री गुरु जी का अनुग्रह ही मुझसे यह कार्य करवा रहा है। दक्षिण भारत में जन्म लेने के कारण मुझे अच्छी हिन्दी नही आती। पण्डित न होने के कारण शास्त्र का गहन और विस्तृत ज्ञान प्राप्त नही है। केवल गुरु का अनुग्रह ही मुझे प्रेरणा दे रहा है। पाठकों द्वारा निर्दिष्ट त्रुटियों को अगले अंक में सुधारने का प्रयास करेंगे।

अष्टम स्कन्ध का प्रकाशन श्री श्री 1008 श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी से प्रतिष्ठापित तत्वसंशोधन संसद कर रहा है, यह मेरा बड़ा भाग्य है। पूज्य श्री श्री 1008 श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी ने प्रयाग में मध्व पीठ का शुभारम्भ किए और उन्ही के छत्र छाया में मैं रहता हूँ। उनके इच्छा और हमारे गुरुवर्य के आदेशानुसार यह भागवत का अनुवाद कार्य हाथ में ले लिया हूँ, और उनके ही अनुग्रह से इसको पूर्ण करना चाहता हूँ। बस यही मेरा बल है। मेरी योग्यता तो इसमे बिल्कुल नही है।

तत्व संशोधन संसद बहुत बड़े उद्देश्य से प्रस्थापित संस्था है। उसमें बहुत बड़े बड़े विद्वांसों का, मनीषियों का संशोधित उद्ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। ऐसी संस्था से मेरी यह छोटी सी कृति प्रकाशित हो रही है। यह हमारे गुरु जी के अनुग्रह के बिना अन्य किसी योग्यता को मैं नही रखता। इसके लिए मैं उनको शिरसाष्टांग दण्डवत प्रणाम के सिवा और क्या दे सकता हूँ।

इस अष्टम स्कन्ध के अनुवाद के समय पूर्णप्रज्ञ विद्यापीठ के पूर्व प्रांशुपाल और तिरुपति संस्कृति विश्वविद्यालय के संदर्शक प्राध्यापक श्री हयवदन पुराणिक जी ने लिखा हुआ सुललित और श्री श्री 1008 श्री विद्येश तीर्थ स्वामी जी के भागवताश्रम प्रतिष्ठान श्री भण्डार केरी मठ से प्रकाशित भागवत का उपयोग हमें बहुत हुआ है। हम उनके आभारी हैं।

इस ग्रन्थ के अक्षर विन्यास किया हुआ **श्री प्राणेश कुमार शुक्ला**, मुद्रण संशोधन किए हुए श्री गिरधारी लाल मिश्रा और मुद्रण किए श्री वैष्णव प्रेस के सारे कर्मचारियों के सहयोग का स्मरण हम करते हैं। सूज्ञ सदभक्त इस ग्रन्थ का सदुपयोग करें यही आकांक्षा है। **इति शम्**

पलिमारु उडुपि
15-05-2011

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज

अष्टम स्कन्ध की विषय सूची

क्र0	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	अध्याय एक	यज्ञ नामक भगवान से स्वायंभुव मनु की रक्षा।	1-4
2.	अध्याय दो	चतुर्थ तापस मन्वन्तर में गजेन्द्र मोक्ष की कथा का आरम्भ।	5-8
3.	अध्याय तीन	गजेन्द्र कृत स्तोत्र। भगवान से गजेन्द्र मोक्ष।	9-13
4.	अध्याय चार	देवताओं से पुष्प वृष्टि। मकर को भी शाप निवृत्ति, फलशृति।	14-16
5.	अध्याय पॉच	चाक्षुस मन्वन्तर में समुद्र मंथन प्रस्ताव। दूर्वास शाप	17-22
6.	अध्याय छ:	भगवान का आविर्भाव। मन्दर पर्वत को लाना	23-27
7.	अध्याय सात	समुद्र मंथन कूर्म रूप मन्दर वहन। हालाहल उत्पत्ति	28-33
8	अध्याय आठ	समुद्र का पुनर्मंथन। कामधेनू, लक्ष्मी, आविर्भाव। धन्वतरि रूप से अमृत कलश लाना।	34-41
9.	अध्याय नौ	देव दानव युद्ध। मोहिनी रूप से अमृत वितरण।	42-46
10.	अध्याय दस	देवासुर पुनर्युद्ध। ब्रह्मा जी के उपदेश से युद्ध निवृत्ति।	47-51
11.	अध्याय ग्यारह	हर से मोहिनी रूप दर्शन।	52-56
12.	अध्याय बारह	अष्टम सावर्णि मन्वन्तर में वामनावतार प्रस्ताव।	57-60
13.	अध्याय तेरह	प्रति मन्वन्तर में, हरि इन्द्र, ऋषि अवतारों का निरूपण।	61-62
14.	अध्याय चौदह	बलि का दिग्विजय, इन्द्र का स्वर्ग परित्याग।	63-66
15.	अध्याय पन्द्रह	पुत्र प्राप्ति के लिए अदिती को कश्यप से पयोव्रत उपदेश।	67-73
16.	अध्याय सोलह	अदिती से व्रत धारण, वामन का प्रादूर्भाव।	74-76
17.	अध्याय सत्रह	वामनावतार, उपनयन, बलि-यज्ञ-मंडप प्रवेश।	77-80
18.	अध्याय अठ्ठारह	वामन से बलिवंश की स्तुति। पदत्रय भूमि याचना।	81-86
19.	अध्याय उन्नीस	बलि को शुक्राचार्य को शाप देना। बलि वामन पूजा। त्रिविक्रम पदद्वय से सब का आक्रमण।	87-90
20.	अध्याय बीस	ब्रह्मा जी से विष्णु पाद की पूजा। गंगा-जनन, बलि बन्धन।	91-94
21.	अध्याय इक्किस	तीसरे पाद को बलि का सिर दान। हरि से बलि को सुतल में भेजना।	95-98
22.	अध्याय बाइस	बलि से प्रह्लाद जी का निवेदन। बलि यज्ञ समाप्ति।	99-101
23.	अध्याय तेइस	मत्स्यावतार की कथा।	102-107

श्री बालाजी

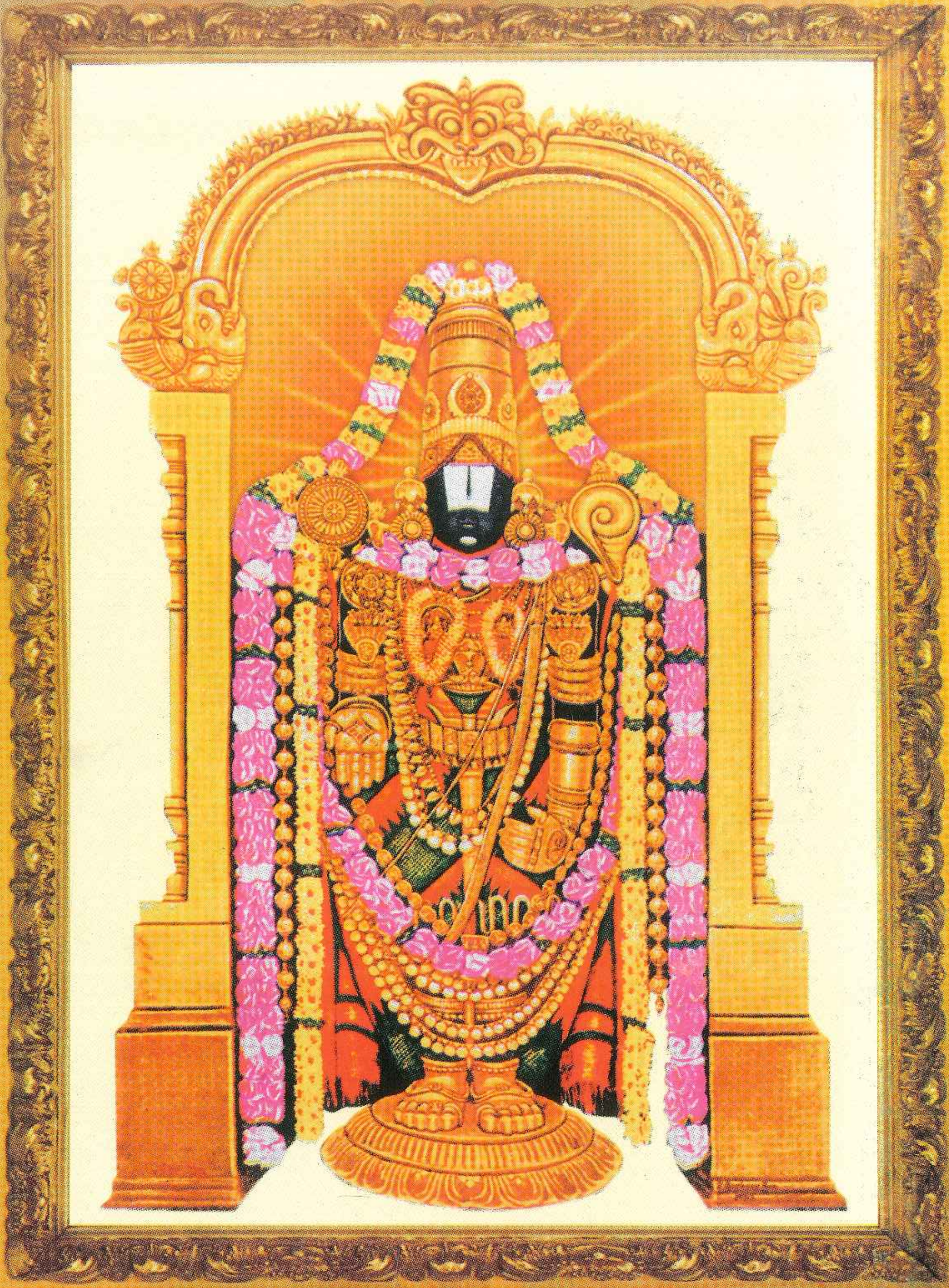

हमारे कुल देव विश्व के एकमेव बड़ा देव
श्री वेंकटेश्वर बालाजी के श्री चरणों में
यह ग्रन्थ समर्पित है

श्रीमद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मुलमहासंस्थान
पलिमारु श्री हृषीकेश शाखा पीठ के प्रधान देव
श्री सीता समेत श्री राम भगवान

संकट मोचन श्री पंचमुखी हनुमान

कपिमुखमपि पूर्वं दक्षिणे नारसिंहम् ।
गरुड़मुखमपि पश्चात् उत्तरे सूकरास्यम् ।
ह्यवदनमतोर्ध्वं चिन्तयेद् वायुसूनुम् ।
सकलदुरितहरं रामदूतं नमामि ।।

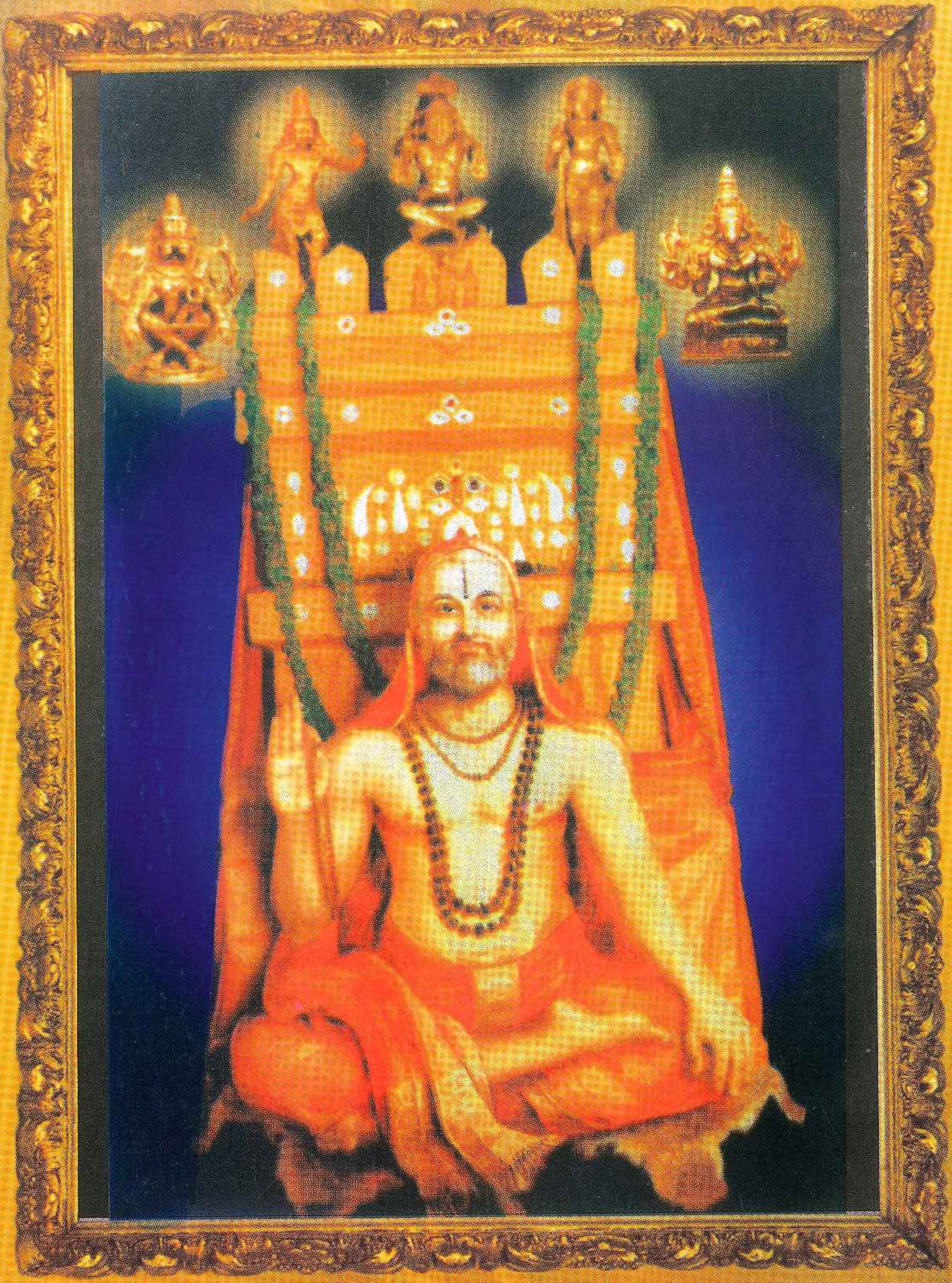

अपेक्षितप्रद मन्त्रालय के श्री राघवेन्द्र स्वामी जी

पूज्याय राघवेन्द्राय सत्यधर्मरताय च।
भजतां कल्पवृक्षाय नमतां कामधेनवे।।

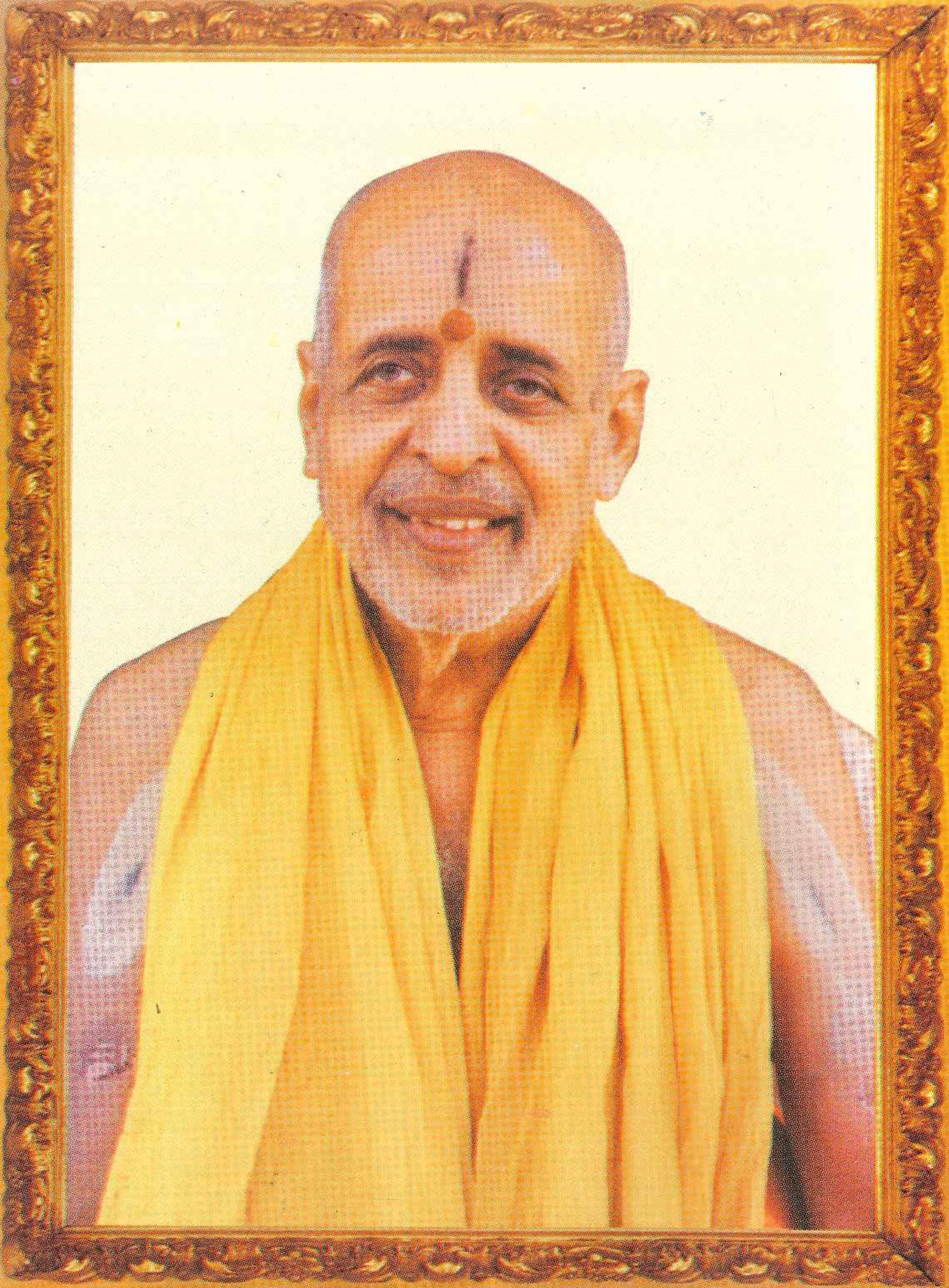

सर्वमान श्री १००८ श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी

ब्रह्मचर्य हरि प्रीति सुविद्या वादशालिनः ।
इष्टदान कष्टहर्तृन्नः विद्यामान्यान् मुनीन्नुमः ॥

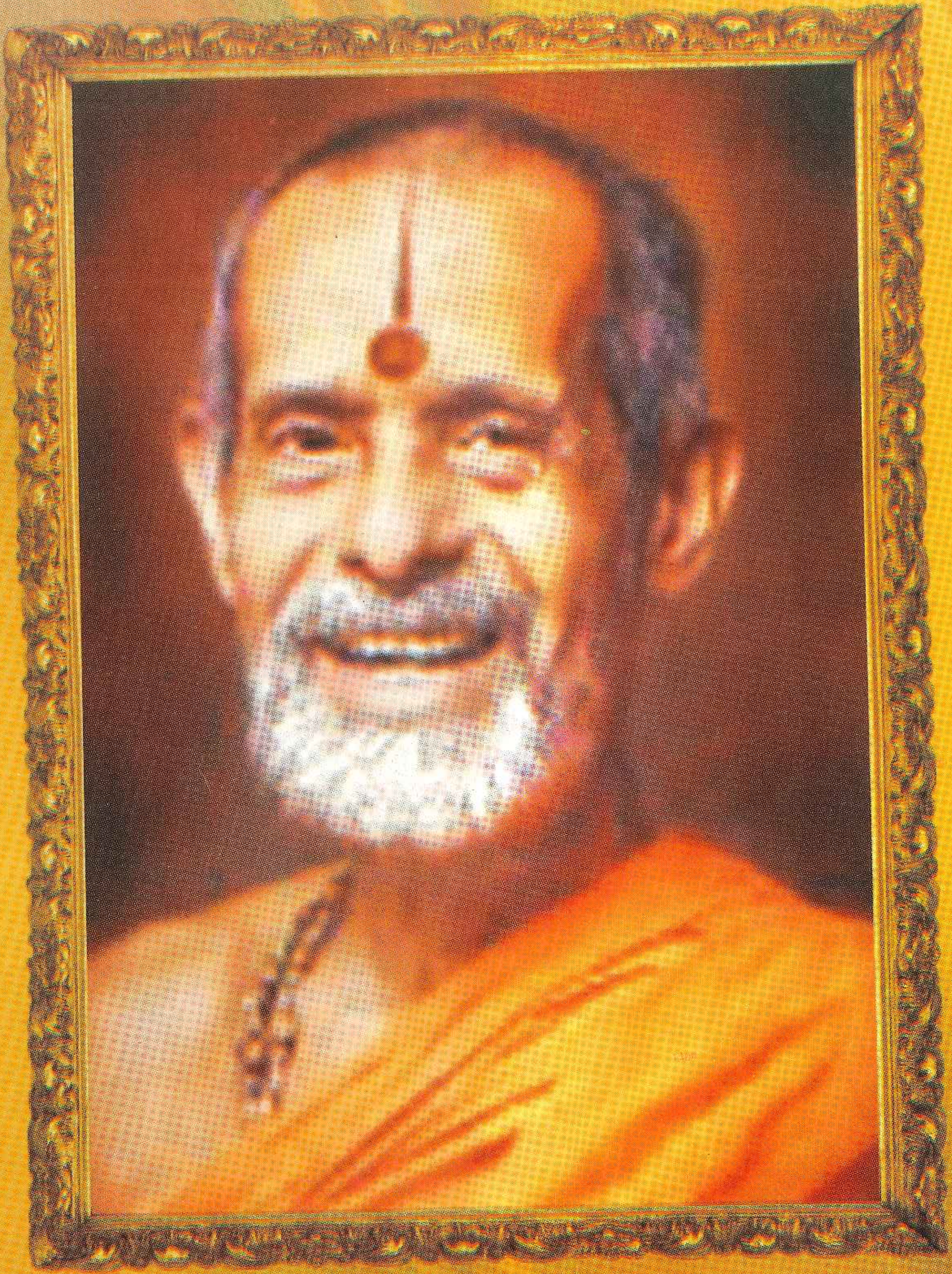

श्रीमद् जगद्गुरुमध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधीश
श्री १००८ श्री विश्वेशतीर्थ जी महाराज

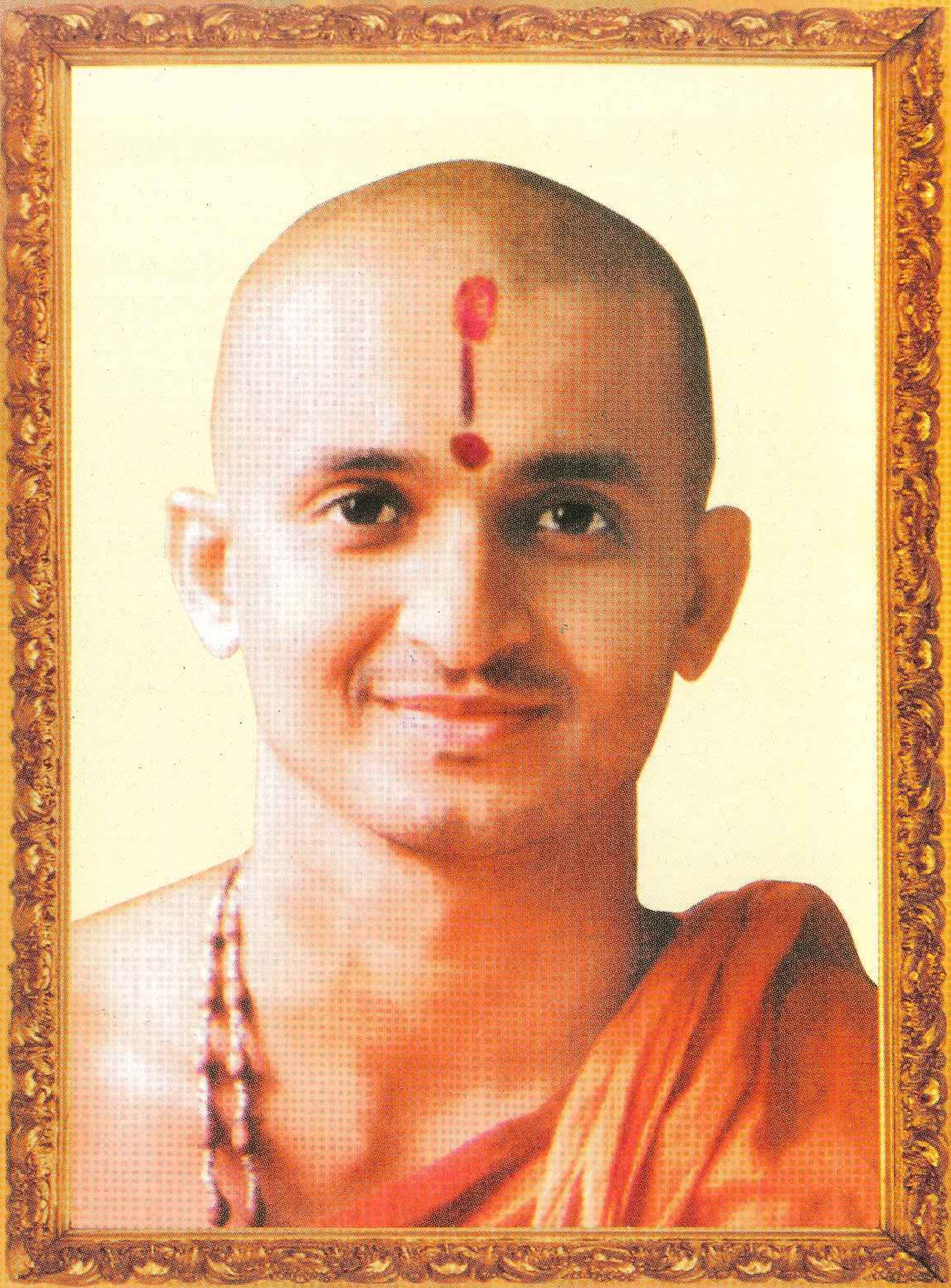

हमारे स्वरूपोद्धारक एवं दीक्षा गुरु
श्रीमद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधीश
श्री 1008 विद्याधीश स्वामी जी महाराज

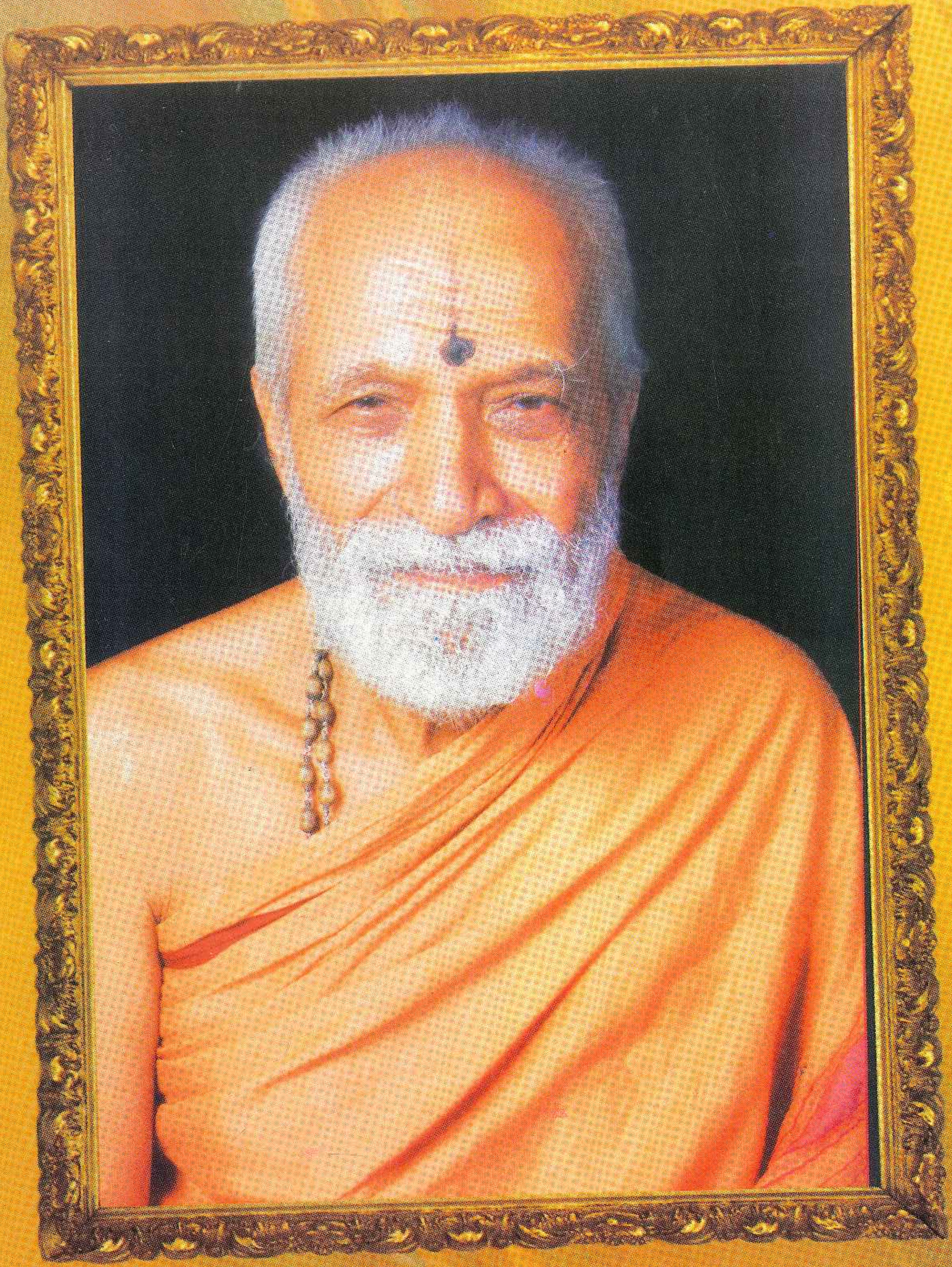

ग्रंथकर्ता प्रयागपीठाधिपति

श्री १००८ श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी महाराज

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - एक

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - चतुर्थ स्कन्ध के प्रारम्भ में मैंने आपके श्री मुख से स्वायंभुव मनु के वंश की कथा विस्तार रूप से सुना है। उस मन्वन्तर में मरीचि इत्यादि प्रजापतियों से आकूति इत्यादि मनु पुत्रियों में पुत्र और पौत्रों के जनन के बारे में सुना है। अब आप अन्य मनुओं के चरित्र के बारे में बताइए। अन्य मन्वन्तरों में अनेक विध के शुभ कर्म और धर्माचार कैसे प्रवृत्त हुए इसके बारे में भी कहिए। साथ-साथ उसी समय में भगवान श्री हरि जो अवतार लिए थे और मुनियों ने उनके जो गुण गान किए थे उसको हम सुनना चाहते हैं। कृपा करके उसके बारे में कहिए।।1,2।।

हे महामुनि! इस प्रपंच की सृष्टि करने वाले भगवान किन - किन अवतारों को किन किन मनवन्तरों में किए हैं, और आगे किन मन्वतरों में करने वाले हैं इसके बारे मे भी कहिए।।3।।

शुकदेव बोले - एक दिन कल्प में स्वायंभुव, स्वारोचिष , उत्तम, तापस, रैवत और चाक्षुष नाम के छः मनु महाराज राज्य चलाये। इनमें से प्रथम स्वायंभुव मन्वन्तर के बारे में उस मन्वन्तर में हुए देवताओं का, मनु पुत्र का, सप्त ऋषियों का, इन्द्र का और भगवान के वराहादि अवतारों के बारे में कह चुका हूँ।।4।।

स्वायंभुव मनु की पुत्री आकूती के पुत्र होकर यज्ञ नामक भगवान, देवहूती में कपिल नामक भगवान धर्मोपदेश देने के लिए पुत्र होकर जन्म लिए।।5।।

भगवान के ये दो अवतारों में कपिल अवतार की कथा को कह चुका हूँ। अब यज्ञमूर्ति भगवान की लीलाओं के बारे में बोलता हूँ।।6।।

स्वायंभुव मनु विषय भोग से विरक्त होकर पत्नी समेत राज्य छोड़कर तप करने के लिए जंगल में चले गये।।7।।

मनु ने अलकनन्दा तट पर एक सौ वर्ष पर्यन्त एक पाँव पर खड़े होते हुए घोर तप करते हुए भगवान की स्तुति की।।8।।

स्तुति करते स्वायंभुव मनु ने कहा- भगवान आपके तेज से सूर्य प्रकाश देता है, सारे लोगों को मोक्ष प्राप्ति का ज्ञान आपसे ही मिलता है, जीव जब नींद करता है उस समय भी आप अन्दर जागृत रहते हुए जीव का पालन करते हैं। हे भगवान, आप सबको जानते हैं, किन्तु आपको पूर्ण रीति से जानने वाला और कोई नही है।।9।।

हे मन, यह समझ लो कि इस प्रपंच में कुछ हिलने के लिए भी भगवान का इसमें प्रवेश करना आवश्यक है। यह प्रकृति भगवान के अधीन होकर रहती है। भगवान जो देते हैं, उसी से तृप्ति पाओ, और किसी के सम्पत्ति की आशा मत करो।।10।।

ईशावास्यमिदम् सर्वम् इस शब्द से **ईशावास्योपनिषद** प्रारम्भ होता है। यहा संशय आने वाले अद्वैत भाव को दूर करने के लिए यहाँ मनु जी **आत्मावास्यम्** इस शब्द का प्रयोग किए हैं। दोनों का अर्थ यह जगत भगवान का आवास स्थान है, होता है।

वे भगवान सबको स्वतंत्र रीति से देखते हैं, किन्तु उनको कोई स्वतंत्र रूप से नही देख सकता। उनको दर्शन के लिए कभी च्युति नही होती। वे सारे जीवों के आश्रय स्थान हैं, आनन्दमय हैं। हे सज्जन लोंग! ऐसे भगवान की आराधन सदा के लिए करें।।11।।

भगवान के लिए न उत्पत्ति है, न नाश है और मध्य का जीवन भी नही है। उनसे श्रेष्ठ कोई नही है। वे सर्वत्र व्याप्त हैं, उनके लिए अन्दर बाहर का कुछ अन्तर ही नही है। इस प्रपंच की सारी वस्तुओं की उत्पत्ति और नाश वे ही करते हैं। यह सारा प्रपंच उनके अधीन हैं, वे सत्य है, गुण पूर्ण हैं।।12।।

यह अधीन प्रपंच उनका शरीर बनता है। सारे शब्द उनके बारे में ही कहते हैं। सारे शब्दों के प्रवृत्ति और निवृत्तियों का नियमन वे ही करते हैं। वे सद्गुण पूर्ण हैं, परंज्योति हैं। वे कर्म के कारण जन्म नही लेते। जगदादि पुरुष वे अपने शक्ति से यह अनादि प्रकृति से इस जगत को सृष्ट करते हुए चलाते हैं। ज्ञान शक्ति से प्रकृति की प्रतिबन्धक शक्ति को दूर करते हुए विषय की अभिलाषा के बिना (सृष्ट्यादि) कर्म करते रहते हैं।।13।।

पूर्व काल में दुष्कर्म के विनाश के लिए ऋषियोंने विहित कर्म करते थे। ऐसे कर्म करने वाले जीव विधि निषेध को पार करते हुए कर्म रहित मोक्ष को पाते हैं। फल की कामना करने वाला मुक्ति को नही पाता।।14।।

ईशावास्योपनिषद का **कुर्वन्नेवेह कर्माणि** इस द्वितीय मन्त्र का यह श्लोक छायानुवाद है।

भगवान राम कृष्णादि अवतारों मे विहित कर्म करते है, किन्तु उसके फल में आशक्त नही रहते। ऐसे

जो लोग निष्काम कर्म का आचरण करते हैं वे भगवान को पाकर कृतार्थ बनते हैं। वे इस संसार बन्ध के दु:ख को नही भोगते हैं।।15।।

भगवान कर्म करते हैं किन्तु स्वतंत्र होकर कर्म करते हुए भी उनको मै स्वतंत्र हूँ यह मिथ्याभिमान रूप अहंकार उनको नही है। वे पूर्ण काम हैं। उनके लिए कर्म की आशा आकांक्षा नही है। वे अन्य किसी की प्रेरणा से काम नही करते। मुक्ति मार्ग को न जानने वाले भक्तों को अपने कर्माचरण से और कर्म करने वाले ज्ञानियों के मुखान्तर प्रबोधन करते हैं। इस रीति से सबसे कर्म कराने वाले प्रभु यज्ञमूर्ति भगवान की शरण में जाता हूँ।।16।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- इस रीति से ईशावास्योपनिषद मंत्रों को एकाग्रता से उच्चारण करने वाले स्वायंभुव मनु को देखकर उनको खाने के लिए राक्षस लोग दौड़ कर आये।।17।।

सर्वत्र व्याप्त यज्ञ नामक हरि मनु को खाने के लिए आ रहे उन राक्षसों का संहार करते हुए याम नामक देवताओं से मिलकर इन्द्र पद को पाकर स्वर्ग का राजा बने।।18।।

अग्नि पुत्र स्वारोचिस बाद में दूसरा मनु बना। द्युमन्त, सुषेण, रोचिष्मान् ये उनके पुत्र हैं।।19।।

उस मन्वन्तर में वायु के अवतार रोचन इन्द्र बने। तुषिर इत्यादि देवताओं। ओजस्तम्भ इत्यादि ब्रह्मज्ञानी ऋषियों ने सप्तर्षि बने।।20।।

वेदशीर नाम के ऋषि को तुषिता नाम की पत्नी थी। उनके पेट से भगवान विभु नाम से अवतार लिए।।21।।

अठ्ठासी हजार लोग व्रतधारी बालब्रह्मचारी मुनियों ने उन्ही से ब्रह्मचारी व्रत ग्रहण किए।।22।।

प्रियव्रत का पुत्र तीसरा मनु बना। उनके पुत्र पवन, सृंजन, यज्ञहोत्र इत्यादि थे।।23।।

वशिष्ठ के पुत्र प्रमद इत्यादि ऋषियों ने सप्तर्षि बने, सत्य, वेदश्रुत और भद्र इत्यादि देवता और सत्यजित इन्द्र बने।।24।।

धर्म की पत्नी सूनृतादेवी के पेट से भगवान अवतार लिए। यहाँ उनका नाम सत्यसेन था। उनको सत्यव्रत और पुरुषोत्तम नाम के दो भाई थे।।25।।

सत्यजित के स्त्रोत से सन्तुष्ट होकर भगवान उनके ऊपर अनुग्रह किए। वह सत्यसेन असत्य बोलने का व्रत ग्रहण किए हुए दुष्ट स्वभाव के यक्ष राक्षसों को और दुष्ट स्वभाव से प्राणिहिंसा करने वाले भूत गण का नाश कर दिया।।26।।

उत्तम के भाई तापस नाम वाले चौथे मनु बने। उनके वृषख्याति नरकेतु नाम के दस पुत्र हुए।।27।।

सत्यकर, हरि और वीर इस तापस मन्वन्तर के देवता थे। इन्द्र का नाम है त्रिशिख। ज्योतिर्धाम इत्यादि सप्तर्षि बने।।28।।

हे राजा! सुनो, विधृति के पुत्र वैधृत भी इस मन्वन्तर के देवताएँ हैं। वे काल बल से अदृश्य होने वाले वेदों को अपने तप से पुन: धारण किए।।29।।

उस तापस मन्वन्तर में भगवान हरि मेध से हरिणी के पेट में अवतार लेकर भगवान श्री हरि नाम से प्रसिद्ध हुए। वे गजेन्द्र को मगरमच्छ से मुक्त किए।।30।।

राजा परीक्षित पूछता है- हे व्यास पुत्र श्री शुकदेव जी! श्री हरि गजेन्द्र को मुक्त किया हुआ कथा को हम आपके श्री मुख से सुनना चाहते हैं। कृपा करके बताइए।।31।।

श्रेष्ठ कीर्ति वाले भगवान श्री हरि के गुण गान से युक्त कथाएँ सारी कथाओं में श्रेष्ठ और पुण्यकर होती हैं। सुनने वाले धन्य होते हैं। उनको क्षेम और मंगल होता है।।32।।

सूत जी कहते हैं- प्रायोपवेश किया हुआ राजा परीक्षित विस्तार रूप से कथा कहने के लिए जब पूछा तब शुकाचार्य जी उनका अभिनन्दन करते हुए सभा में सबको उद्देश्य करते हुए सन्तोष से कहने लगे।।33।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में पहला अध्याय समाप्त हुआ।।

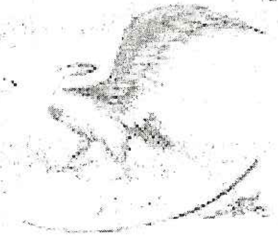

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - दो

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- हे राजा! क्षीर समुद्र से घिरा हुआ चित्रकूट नाम का एक सुप्रसिद्ध सुन्दर और विस्तृत महा पर्वत है। वह दस योजन विस्तार वाला है।।1।।

वह चाँदी, सोना और लोहे के तीन शिखर वाला है। समुद्र और दिशाओं को प्रकाशित करता है।।2।।

वह पर्वत रत्न धातुओं से भरा हुआ दस दिशाओं को प्रकाश देता है। अनेक तरह के लता वृक्ष पक्षि संकुल से युक्त होकर पानी के निर्झरों से सुशब्दित और शोभायमान है।।3।।

पहाड़ के चारो ओर रहने वाले समुद्र की लहरें उनके पादपद्मों को धो रही हैं। मरकत इत्यादि रत्नों के प्रभा के कारण यह पर्वत सदा काल के लिए हरा भरा दिखता है।।4।।

सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, महानाग, किन्नर, और अप्सरायें अपने विहार के लिए इस पर्वत की गुहा का आश्रय लेते हैं।।5।।

किन्नर, गन्धर्वो के संगीत से गुहायें प्रतिध्वनित होने से उस ध्वनि को हाथी का चिघाड़ना समझ कर सिंह गर्जन करते हैं। वे समझते हैं अपना मुकाबला करने वाला और कोई नही है।।6।।

अनेक तरह के वन्य पशु समुदाय से भरा हुआ विशाल प्रदेश पहाड़ को विशेष शोभा देता है। उनमें रहने वाले वृक्षों से बना हुआ देवोद्यान में पक्षिसंकुल संगीत के सुमधुर स्वर से गीत गा रहे हैं।।7।।

स्वच्छ जल से भरा हुआ अच्छोद सरोवर में स्पष्ट दिखने वाली मणि रत्नों की बालू से युक्त जल में विहार करने वाली देवता स्त्रियों के शरीर की सुगन्ध पानी में मिल कर हवा से प्रसरित होकर पूरे पहाड़ को सुगन्धित किया है।।8।।

उस पर्वत के विस्तार प्रदेश में महात्मा वरूण का ऋतुमन्त नाम का उद्यान है। वह देवता स्त्रियों का विहार प्रदेश बना है।।9।।

वह उद्यान प्रतिदिन फल - पुष्प से भरा हुआ है। उसमें मन्दार, पारिजात, अशोक, चम्पक इत्यादि फूलो से सुगन्ध भरित है।।10।।

चूत, प्रियाल, पनस, आम्र, आम्रातक, क्रमुक, नारियल, खजूर, बीजपूर, मधुक, साल, ताल, तमाल, आशन, अर्जुन, अरिष्ट, औदुम्बर, प्लक्ष, वट, किंशुक, चन्दन, पिचुमन्द, कोविदार, सरल, देवदारू इत्यादि वृक्ष; अंगूर, गन्ना, केला, जामुन, बैर इत्यादि फल; अक्ष, अभय, अमलक, बिल्व, कपित्थ, भल्लाथक इत्यादि वृक्षों से वह पहाड़ सुशोभित है।

वहाँ के सरोवर मे कुमुद, उत्पल, कल्लार, सतपत्र नाम के कमलों से भरे हुए हैं। उनमें सोने के रंग के कमल विस्तृत होकर बहुत शोभा दे रहे हैं। उनसे मिलने वाली मधु से मत्त होने वाली मधुमक्खियाँ गुंजन करती हैं। उनके साथ पक्षियों मधुर स्वर से कलरव करते हैं।

हंस, करढ़व, चक्रवात, सारस जल कुक्कुटों का सुस्वर इन नाद में मिलकर सुमधुर संगीत का आभास कर रहे हैं।।11,12,13,14,15,16।।

सरोवर में मछली और कछुओ के संचार से जब कमल हिलते हैं तब उनका पराग पानी में मिल जाता है। कमल के साथ कम्ब, वेतस, सरल इत्यादि फूलो से वह सरोवर भरा है।।17।।

कुंद, अशोक, सीरस, शिरीस, कुटज, भद्रकरणी, सेवन्तिका, नागकेशर, मल्लिका, माधवी, सतपत्र, कमल, वासन्तिका, जालकादि अनेक वृक्ष इस सरोवर के तट पर खड़े हैं। उनमे फल और पुष्प सदा काल भरकर सरोवर की शोभा को संवर्धन किए हैं।।18,19।।

उस पहाड़ के जंगल में एक बड़ा हाथी रहता था। वह अपने साथ बहुत सी हथिनियों को लेकर संचार करता था। उस हाथी को कई पुत्र भी थे। उनके साथ वह जंगल में फिरता था। वहाँ वह हाथी बाँस के बहुत तरह के जातियों को और वहाँ के वृक्ष शस्यों को खाते हुए आनन्द से रहता था।।20।।

उसके मद जल की गन्ध (बू) से ही सिंह, शेर इत्यादि अन्य पशु और छोटे मोटे मृग राशि डरकर भाग जाते थे। उनमें बिना पाँव वाले शरीसृप, चार पाँव वाले सफेद काले हिरण और आठ पाव वाले चमगादड़ भी शामिल थे।।21।।

भेड़, जंगली सुअर, जंगली भैस, भालू, जंगली बैल, लंगूर, बन्दर, सियार, हिरन और खरगोश ऐसे दुर्बल प्राणी इस गजेन्द्र के अनुग्रह के कारण क्रूर पशुओं के भय से मुक्त होकर गजराज के पास आराम से रहते थे।।22।।

अपने छोटे बच्चे और पत्नियों से घिरा हुआ यह गजराज मद जल का स्रवण करते हुए पर्वत के

ऊपर संचार करता था। उस समय इसके शरीर के भार से सारा पहाड़ हिलता था। उसके मद जल को पाने के लिए भौरे झुन्ड के झुन्ड में उसके पास संचार करते थे। उस समय गर्मी का दिन आने से दोपहर के समय वह गज राज धूप से त्रस्त होकर प्यासा होकर पानी को ढूढ़ने निकला।।23।।

उस समय उसको रास्ते में सरोवर के ऊपर से बहने वाली हवा कमल के पराग से युक्त सुगन्ध को वह पहचान लिया। प्यास से त्रस्त वह गजराज अपने पत्नी पुत्र और परिवार के साथ जल्दी से उस सरोवर के पास आया।।24।।

उस सरोवर में प्रवेश करते हुए वहाँ के सोने के रंग वाले कमल के पराग से सुगन्धित, स्वच्छ, निर्मल और अमृत समान जल को अपने सूंड़ से भर भर कर पेट भर पी लिया। अपने शरीर के ऊपर पानी डाल कर अपने श्रम का परिहार किया।।25।।

भगवान की बन्धक शक्ति को न जानने वाला गृहस्थ संसार में मग्न होकर अपने पत्नी पुत्र और जमीन जायदाद की चिन्ता में डूबकर आगे होने वाले दुर्दशा के बारे मे जैसे चिन्ता नही करता वैसे ही यह गजेन्द्र भगवान के संकल्प के कारण अपने परिवार के बारे में चिन्ता करते हुए और किसी के बारे में चिन्त न करते हुए निश्चिन्त होकर अपने परिवार से जल क्रीड़ा करता रहा। अपने सूड़ में उस सरोवर के शीतल जल को भर भर कर पत्नियों के और पुत्रों के ऊपर फेकते रहा, छोटे बच्चों को पिलाता रहा। इस आनन्द में वह आगे आने वाली विपद का अन्दाजा भी नही किया।।26।।

हे महराजा, उस समय भगवान की प्रेरणा से एक बलिष्ठ मगर मच्छ आकर जोर से उसके एक पाँव को पकड़ लिया। गजराज के बहुत प्रयत्न करने के बाद भी उससे अपने को नही छुड़ा पाया। भगवान की इच्छा के विरुद्ध कौन जा सकता है।।27।।

वह बलिष्ठ मगर मच्छ जोर से पानी के अन्दर उसे खींचने लगा। तब इस महा गज के साथी उसकी पत्नी-पुत्र दूसरी दिशा से उसको पानी से बाहर खींचने का बड़ा प्रयास किए। किन्तु वे असफल रहे। वे दैन्य से आर्तनाद करने लगे।।28।।

हे राजा! गजेन्द और मगर दोनो बड़े ताकतवार थे। मगर गजेन्द्र को सरोवर के अन्दर खींचता था, किन्तु गजेन्द्र मगर को सरोवर से बाहर खींचने का प्रयास करता था। दोनों का यह द्वंद्व युद्ध हजारों वर्षों तक चलता रहा। दोनों में कोई न हारा न कोई जीता। इस द्वन्द्वयुद्ध को देखकर देवतागण आश्चर्यचकित हो गये।।29।।

मगर द्वारा गजेन्द्र को पानी में खींचते रहने से गजेन्द्र को बहुत कष्ट हुआ। इस दीर्घ काल में गजेन्द्र की सहन शक्ति, देह बल और पराक्रम क्षीण होता रहा। पानी के अन्दर स्वक्षेत्र होने के कारण मगर की

शक्ति बढ़ता रही।।30।।

गजेन्द्र अपने को छुड़ाने में असमर्थ रहा। वह किंकर्तव्यविमूढ़ रहा। बहुत समय चिन्तन करने के बाद उसको एक विचार मन में आया।।31।।

कष्ट मे फँसा हुआ मुझको छुड़ाने में पुरुष हाथी भी असमर्थ हुए, तब हथिनी क्या कर सकती हैं। वास्तव में इस मगर नाम के यम पास में मैं जो बँधा हुआ हूँ यह भगवान की इच्छा के अधीन ही है। इसके लिए मैं ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी आश्रय देने वाले भगवान नारायण की शरण मे जाना ही मुझको ठीक है।।32।।

वह भगवान लोक विलक्षण हैं, अचिन्त्याद्भुत शक्ति वाले हैं। प्रचंड वेग से मेरे ऊपर आने वाली मृत्यु नाम के साँप के भय से मैं यदि उनकी शरण में जाऊँ तो वे मेरी रक्षा करते हैं। इसमें संशय नही है क्योंकि मृत्यु भी भय के कारण ही हमारे पास आती है। अत: हमें उन्ही की शरण में जाना आवश्यक है।।33।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - तीन

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक देव जी कहते हैं - इस प्रकार गजेन्द्र अपने मन में निश्चय करते हुए श्री हरि में मन रखते हुए पूर्व जन्म मे जो उपदेश पाया था उन उत्तम स्तोत्रों का जाप करने लगा।।1।।

गजेन्द्र पशु होकर उसको मोक्ष मिला इसका अर्थ यही होता है कि जन्मान्तर के कर्म के अनुसार वह आवश्यक साधना कर चुका था। अब जितनी बाकी थी उतनी साधना पशु जन्म में ही निश्चल रूप से भगवत चिन्तन करते हुए सिद्धि प्राप्त किया।

गजेन्द्र संकीर्तन करता है- देश काल और गुण से परिपूर्ण भगवान वासुदेव आपको नमस्कार। आप इस प्रपंच के मूल कारण हैं। आप परमेश्वर, षड्गुणैश्वर्य, सम्पूर्ण नारायण, आपके प्यार पाने के लिए हम स्तोत्र करेंगे। आपसे ये सज्जन वृन्द मोक्ष में चित्स्वरूप आनन्द को पाते हैं।।2।।

यह जगत आप में लय पाता है, आपसे ही इसकी सृष्टि होती है। आपके प्रेरणा से यहाँ सारी प्रवृत्तियाँ होती हैं, आप ही इस प्रपंच को अस्तित्व में लाते हैं। आप स्वतंत्र हैं। आप इस अमुक्त प्रपंच और उस मुक्त प्रपंच इन दोनों से उत्तम हैं। आप स्वयं भू परमेश्वर हैं। आपकी मैं शरण आता हूँ।।3।।

प्रलय काल में आप इस जगत को स्वेच्छा से अपने पेट में रख कर इसका संरक्षण करते हैं। आप उसको देखते रहते हैं। किन्तु सृष्टि काल में भी जीव को यह जगत जागृति में दिखती है, किन्तु सुषुप्ति मे दिखती नही। आप सदा काल इस जगत को देखते रहते हैं। आपका ज्ञान कभी भी बाधित नही होता है। आप स्वतंत्र होकर देखते रहते हैं। अपने लिए आप स्वयं ही आश्रय हैं। ऐसे परात्पर भगवान आप मेरी रक्षा करें।।4।।

पंच महा भूत से सृष्ट हुए ये सारे लोग काल नामक हरि से लय पाकर पुन: पंच भूत रूप को पाने के बाद पंच भूतो से लेकर महत्तत्व तक के सारे मूल तत्व अपने अपने मूल स्थिति को पाने के बाद यानी ब्रह्म प्रलय के काल में केवल मूल प्रकृति रह गयी थी। दुर्गा देवी का रूप वाला यह मूल प्रकृति को कोई नही समझ सकता था। उस मूल प्रकृति के परे आप प्रकाशमान थे। मूल प्रकृति के बीच में रहते हुए भी उसके सम्पर्क से आपको कोई विकार नही होता था और नही होगा।।5।।

ऐसे आपके स्वरूप को देवतागण या ऋषि गण कोई भी पूर्ण रूप से जान नही सकते। तो सामान्य लोग आपको कैसे जान सकते हैं। ऐसे आपकी वर्णना कौन कर सकता है। नाटक में नट अन्यान्य वेश धारण कर जब पात्र करता है तब उसका मूल रूप को कौन पहचान सकता है। ऐसे रहते हुए किसी से भी न जान सकने वाले आपकी लीलाओं को कौन जान सकता है। ऐसे भगवान श्री हरि आप मेरी रक्षा करें।।6।।

भगवान आपके अत्यन्त मंगलकर रूप को साक्षात देखने की इच्छा रखते हुए विषयासक्ति को छोड़कर मननशील मुनिवृन्द जंगल में रहते हुए अनेक कठोर व्रत नियम करते रहते हैं। सर्वेश आप भगवान में मन रखकर अन्त:करण को शुद्ध रखते हैं। ऐसे शुद्ध अन्त:करण को देने वाले भगवान आप मेरी रक्षा करें।।7।।

भगवान आपका जन्म कर्म के अधीन होकर नही होता। आप फल प्राप्ति के लिए कर्म नही करते। उसकी आवश्यकता आपको नही है। आपके सारे नाम रूप सार्थक हैं, गुण पूर्ण हैं। उसमे प्राकृत कुछ नही। आप में सत्वादि दोष पूर्ण गुण नही हैं। आप बिल्कुल दोष दूर हैं। यह होते हुए भी अपनी अभिलाषा न रहते हुए सामान्य जन को सुख देने के लिए आप प्रत्येक काल में अवतार लेते हैं और उनके अनुसार कर्म भी करते हैं।।8।।

प्राकृत रूप रहित, बहुरूप धारण करने वाले, विचित्र लीला दिखाने वाले अनन्त शक्ति वाले, गुण परिपूर्ण परमेश्वर भगवान श्री हरि आपके लिए मेरा नमस्कार।।9।।

हे भगवान! आप स्वयं प्रकाश वाले, स्वतंत्र रूप से सबको देखने वाले हैं। किसी की बात और चित्त वृत्ति को आप मिलने वाले नही हैं। आप सबके साक्षी हैं। ऐसे भगवान आपको मैं बार बार नमस्कार करता हूँ।।10।।

हे भगवान! निष्काम कर्म से ज्ञान पाकर जो ज्ञानी आप को पाने का प्रयत्न करता है उनको आप दर्शन देते हैं। आप मुक्ति के स्वामी हैं। स्वरूप सुख का अनुभव देने वाले हैं। ऐसे भगवान श्री हरि आपको नमस्कार है।।11।।

आप मोक्ष देने वाले सत्वगुण प्रर्वतक वासुदेव हैं, रजोगुणप्रर्वतक परशुराम हैं और तमो गुण प्रर्वतक वराह रूपी भगवान हैं। उन जीव और गुणों के अनुसार आप प्रवर्तन करते हैं। आपसे बढ़कर कोई नही है आपके मूल रूप और अवतार रूप में कोई भेद नही है। आप सर्वत्र भरे हुए हैं। जीव की योग्यता के अनुसार फल देने वाले पूर्ण ज्ञान रूपी श्री हरि आपको नमस्कार।।12।।

सब प्राणियों के अन्तर्यामी, सबको जानने वाला, सबका स्वामी, सबको साक्षी रूप से देखने वाले, सभी सृष्टियों के मूल रूप चतुर्मुख ब्रह्मा की सृष्टि करने वाले, सब चेतनाचेतन प्रकृति को आश्रय देने वाले, सब सृष्टि के मूल कारण पुरुष रूपी नारायण आपको नमस्कार (आप क्षेत्रज्ञ भी हैं)।।13।।

यह श्लोक भगवद्गीता के तेरहवें अध्याय का अर्थ रूप है।

इस श्लोक में साक्षी शब्द का विवरण देते हैं।

ग्यारह इन्द्रियों से आपको विश्व का ज्ञान प्राप्त है। आप सारे विश्व को ज्ञान देने वाले हैं। इस अस्वतंत्र जगत से आप दूर हैं। आप सत्यवाक् और सत्यसंकल्प हैं। आप का शरीर दोष दूर है। लक्ष्मी आदि आपके प्रतिबिम्ब रूपी हैं। आप को मेरा नमस्कार।।14।।

इन्द्रियादि रहने से भगवान आप मेरी यह प्रार्थना सुनते हैं। यह विश्वास गजेन्द्र में है, और हमें भी होना चाहिए।

हे भगवान! आप इस चित और अचित रूप जगत के निर्माता हैं। आप शरणागतों की रक्षा करने वाले हैं। आप सदागमों से ज्ञेय हैं, मुक्तों के आश्रय हैं, और नित्य मुक्त हैं। हे नारायण! आपको मैं बार बार नमस्कार करता हूँ।।15।।

काष्ठ में अग्नि जैसे छिपी रहती है वैसे जीव के इस त्रिगुणात्मक लिंग शरीर में रह कर आप इस जीव की रक्षा करते हैं। सत्वादि तीन गुणों के क्षोभ से भी आप सृष्ट्यादि काल में मनोविकार रहित रहते हैं। इन्द्रिय जयी लोग आपको मन में ध्यान करते हैं। हे ज्ञान रूपी देह वाले भगवान! आपको नमस्कार है। आप ही इस सकल जगत के स्वामी हैं।।16।।

अपने भिन्नांश से समस्त जीव राशि में अन्तर्यामी रूप से रहने वाले, सर्वनियामक, अनन्त रूपी नारायण आपको मैं नमस्कार करता हूँ। मुझ जैसे पशु योनि में जन्म लिए शरणागत जीव के अज्ञान रूप इस संसार बन्धन को सदाकाल के लिए काट देने वाले परम दयालु नाश रहित परमेश्वर आपको मैं नमस्कार करता हूँ।।17।।

शरीर, पुत्र, मित्र, कलत्र, घर, सम्पत्ति एवं कुटुम्बियों में आसक्त क्षुद्र जीवों को आप मिलने वाले नही हैं और मुक्त लोगों के द्वारा अपने हृदय में सदा काल चिन्तित ज्ञान स्वरूप सर्वशक्त भगवान आपको मेरा नमस्कार है।।18।।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के हेतु लोग जिनकी आराधना करके उन पुरुषार्थों को पाते हैं और पुत्र दारादि अपने छोटे छोटे कामनाओं को भी पाते हैं, जो भगवान जीव के आवर्क रूप, लिंग देह को भंग करते हुए स्वरूप देह को अभिव्यक्त करते हैं, ऐसे श्री हरि आप मुझे इस मगर से छुड़ाने के साथ साथ इस संसार बन्धन से भी छुड़ा दीजिए।।19।।

भगवान के एकान्त भक्त भगवान से कुछ भी मांगते नही। वे मोक्ष को भी नही चाहते। वे उनके अत्यद्भुत मंगलमय चरित्र का संकीर्तन करते हुए आनन्द सागर में डूबे रहते है। वे केवल भगवत प्रसाद को ही मागते हैं। हे भगवान! मुझे भी आप उस प्रसाद का अनुग्रह करें।।20।।

हे श्री हरि! आप नाश रहित सर्वोत्तम और गुण पूर्ण हैं, आप अनुग्रह किए बिना व्यक्त नही होते।

जिसके ऊपर अनुग्रह करते हैं उसी को दर्शन देते हैं। ध्यान योग से आप लभ्य हैं। आप इन्द्रियों से मिलने वाले नही हैं। आप अति सूक्ष्म हैं, अति महान हैं, अति दूर और अति समीप हैं। आप सर्वत्र परिपूर्ण हैं, आप देश काल और गुण से सर्वत्र व्याप्त हैं। आप ही इस जगत के निमत्त कारण हैं। आप मुक्तों का नियमन करते हैं, आप ही मुख्य हैं, स्तुति करने योग्य हैं। हे प्रभु! मैं आपकी स्तुति कर रहा हूँ।।21।।

जिस भगवान के भिन्नांश से चतुर्मुख ब्रह्मादि देवता गण, यह सकल चराचर सृष्टि और चतुर्दश लोक का निर्माण, सकल वेदादि ग्रन्थ, सकल शब्द राशि आपसे व्यक्त हुए हैं। ऐसे सृष्टिकर्ता भगवान मैं आपकी पूज़ा करता हूँ।।22।।

जैसे अग्नि से ज्वालायें और सूर्य से किरण समुदाय उज्वल प्रकाश रूप से बार बार बाहर आते हैं और वहीं विलीन होते हैं। वैसे ही शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और तदभिमानी देवताओं की सृष्टि भगवान के शरीर से सृष्टि काल में बाहर आते हैं और प्रलय काल में उन्ही में विलीन होते हैं। ऐसे सृष्टि करने वाले परम पिता आपकी मैं पूजा कर रहा हूँ।।23।।

वह भगवान देव, असुर, मानव, पशु, पक्षी इत्यादि जाति का नही है। वे नियत रूप से स्त्री नही हैं। (कभी कभी स्त्री रूप धारण किए हैं) अन्य पुरुषों जैसे उनको स्त्री की अपेक्षा नही है। वे कृमि जाति के नही हैं। उनके प्राकृत गुण कर्म इत्यादि नही हैं। वे पृथ्वी, आप तेज, वायु आकाश के रूप भी नही हैं। भगवान आप इन सब से बढ़ कर उत्कृष्ट हैं। सबसे विलक्षण, विशिष्ट, प्रमाण सिद्ध और परिपूर्ण रूप वाले भगवान आपको मेरा नमन है।।24।।

अन्दर और बाहर सभी जगह में अज्ञान से भरे हुए इस हाथी शरीर से मुझे क्या प्रयोजन है। इस देह में और बहुकाल तक रहने की मेरी इच्छा नही है। काल क्रम से न नाश होने वाला किन्तु आपके अनुग्रह से ही नाश होने वाला अज्ञान आवरक लिंग देह से मैं मुक्ति पाना चाहता हूँ। आप कृपा करके मेरे इन दोनों शरीरों से मुझे मुक्ति दिलवा दें।।25।।

इन शरीरों से मुक्ति की याचना करने वाला मैं आपको पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ। विश्व नामक भगवान आपही इस सृष्टि के मूल में हैं। किन्तु इस विश्व से भिन्न हैं। आप इस विश्व को सृष्ट करते हुए इसमें प्रवेश किए हैं। आप इस विश्व में पूर्ण रीति से व्याप्त हैं। केवल आपको ही इस विश्व का सम्पूर्ण ज्ञान है। ऐसे विश्व रूपी सर्वोत्तम, विश्वात्मा भगवान आपको मेरा प्रणाम।।26।।

हम आप ही को पाना चाहते हैं। ज्ञानोपाय योग से कर्म फल को नाश करते हुए ज्ञानी लोग योग के प्रकाश में अपने हृदय में जिनका दर्शन करते हैं, उन सारे योगियों के नियामक योगेश्वर आपको मैं नमस्कार करता हूँ।।27।।

अन्यों से सहन न होने वाला प्रचंड वेग आपका हैं। आप सृष्टि, स्थिति, लय कारक तीनों शक्ति वाले हैं। सारे विषयों के बारे में आपको विशिष्ट और सम्पूर्ण ज्ञान हैं। किसी भी इन्द्रिय से जीव आपको पूर्ण

रूप से जान नही सकता। आप शरणागत रक्षक हैं। मैं आपकी शरण में आया हूँ। आपको बार बार नमन करता हूँ।।28।।

आप इस प्रचंड शक्ति के ज्ञान के मूल में हैं। मैं और अन्य जीव अपने को स्वतंत्र कर्ता समझ कर अहंकार से अपने पारतंत्र्य की कल्पना न करते हुए आत्म नाश करते हुए अपने स्वरूप अन्तर्यामीरूप भगवान आपको नही जान सके। ऐसे किसी से भी पूर्णतया न जानने योग्य अगाध महिमा वाले हे भगवान नारायण! मैं आपको बार बार नमस्कार करता हूँ।।29।।

श्री शुक जी बोले- सर्वत्र समान रूप से रहने वाले परब्रह्म परमपिता नारायण श्री हरि की गजेन्द्र ने इस रीति से स्तुति किया। गजेन्द्र की यह स्तुति भगवान नारायण की है, हमारी नही, यह जानकर ब्रह्मादि देव अन्तरिक्ष में देखते रहे। सर्वत्र व्याप्त सर्वोत्तम श्री हरि गजेन्द्र की यह प्रार्थना सुनकर गजेन्द्र के पास व्यक्त हो गये।।30।।

अखिल जगन्निवास श्री हरि, गजेन्द्र दुःखित है, इसके लिए कृपा करने योग्य है, यह विचार करते हुए गजेन्द्र की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए चक्रधर भगवान वेदाभिमानी गरुड़ के कन्धे पर बैठकर उस सरोवर के तट पर दृश्यमान हुए। उनके चारों ओर ब्रह्मादि देवता गण स्तुति पाठ करने लगे। भगवान करुणामय हैं। वे एक हाथी की भी प्रार्थना सुनते हैं, सुनकर रक्षा करते हैं।।31।।

वह गजेन्द्र सरोवर के अन्दर महाबलशाली मगर की पकड़ से बहुत पीड़ित था। आकाश में गरुड़ के कन्धे पर बैठे चक्रपाणि नारायण को देखकर गजेन्द्र ने अपने शूण से कमल पुष्प को उठाकर बहुत कष्ट से कहा कि हे गुण पूर्ण सर्वोत्तम भगवान! आपको नमस्कार।।32।।

जननादि सकल दोष दूर श्री हरि भगवान नारायण, श्री विष्णु बहुत पीड़ा से त्रस्त और शुंण में अर्पण के लिए पुष्प धारण किए हुए गज राज को मगर के साथ पानी से ऊपर उठाकर अपने चक्रायुद्ध से मगर के मुह को चीर कर गजेन्द्र को उसकी पकड़ से छुटकारा दिलवा दिए। कृपा पूर्ण भगवान के अनुग्रह से दोनों मुक्ति पाये। कुतूहल से इस दृश्य को देखते हुए देवतागण श्री मन्नारायण की जय घोष बोले।।33।।

आदमी एक हाथ से पूजा अर्चादि करता है तो भगवान उसे दो दो हाथ से वापस देते हैं, यह कहावत कभी असत्य नही होती। यहाँ गजेन्द्र ने भगवान की प्रार्थना किया। उससे तृप्त श्री हरि चक्र से उसको पीड़ा देने वाले मगर को मारे। इससे गजेन्द्र कष्ट से मुक्त हुआ। साथ साथ भगवान के चक्र स्पर्श के कारण गजेन्द्र मगर के साथ मोक्ष पाया। हम भगवान की प्रार्थना किए तो वे हमारे कष्टों के निवारण के साथ शास्वत सुख मोक्ष को देते हैं। यह नीति कथा इस गजेन्द्र की कथा से हमे लभ्य होता है।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - चौथा

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

शुकदेव जी कहते हैं - तब ब्रह्म रुद्रादि देवताओं, ऋषि, गन्धर्व श्री हरि की इस गजेन्द्र मोक्ष लीला की स्तुति करते हुए पुष्प वृष्टि किए।।1।।

आकाश में देव दुंदुभि ध्वनि किए, गन्धर्व नृत्य किए, चारण सिद्ध पुरुष पुरुषोत्तम नारायण की स्तुति किए।।2।।

वह मगर पिछले जन्म में हूहू नाम का श्रेष्ठ गन्धर्व था। वह देव ऋषि के शाप से मगर बना था। अब गजराज की कृपा शाप से मुक्त होकर के पुनः गन्धर्व रूप पाया।।3।।

श्रेष्ठ ब्रह्मादि देवताओं से स्तुत्य, नाश रहित, कीर्तिशाली, गुण सम्पूर्ण, दोष रहित, शुद्ध चरित्र वाले सर्वेश भगवान नारायण को वह हूहू गन्धर्व नमस्कार किया। वह भगवान का गुण गान करने लगा।।4।।

वह गर्न्धव भगवान की कृपा से दोष मुक्त होकर श्री हरि को नमस्कार करते हुए सबके सामने अपने लोक को चला गया।।5।।

गजेन्द्र भगवान के करास्पर्श से अज्ञानमय हाथी के शरीर से मुक्ति पाकर भगवान के सारूप्य को पाकर चतुर्भुजधारी बन कर पीताम्बेर धारण किया।।6।।

वह पूर्व जन्म में द्रविड़ देश के पांड्य कुल का इन्द्रद्युम्न नाम का राजा था। वह वैष्णव धर्मों का अनुष्ठान करने वाला सज्जन था।।7।।

वह एक बार मलय पर्वत में रहते हुए जटा धारण करके मनोनिग्रह के साथ तपस्वी बन गया। स्नान करके शुद्ध होकर हरि पूजा के समय में मौन ब्रत धारण करते हुए, देश काल गुण में च्युति रहित स्वामी अच्युत की आराधना करता था।।8।।

तब वहाँ श्री हरि की इच्छा के अनुसार महाकीर्तिशाली अगस्त्यमुनि अपने शिष्यों के साथ वहाँ आये। राजा उनको देखकर उठा नही, अर्घ, पाद्य देकर उनका स्वागत नहीं किया। एकान्त में हरि ध्यान करते हुए

निश्चल होकर बैठा था। इसको देखकर ऋषि को क्रोध आ गया।।9।।

तब ऋषि ने राजा को शाप दिया- इसका अन्त: करण अहंकार से मलिन हो गया है। हाथी के जैसे मदमत्त हुआ यह राजा मेरा स्वागत, सत्कार नही कर रहा है। मुझको तिरस्कार करते हुए दुष्ट दुर्जन बन गया है। इसको हाथी का जन्म आये।।10।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- हे राजा! अगस्त्य ऋषि राजा इन्द्रद्युम्न को शाप देकर चले गये। राजा ने इसको अपना प्रारब्ध समझ कर स्वीकार किया।।11।।

वह भगवान के स्मरण का नाश करने वाले, हाथी के जन्म को पा लिया। किन्तु पूर्व पुण्य के प्रभाव से गज जन्म में भी योग्य समय में भी उसको भगवान का स्मरण आया।।12।।

इस रीति से तापस रूप पद्मनाभ भगवान गजेन्द्र को ऋषि शाप से मुक्त करते हुए अपना पार्षद बनाये। उसके साथ देवता लोग अपने कीर्ति का गुण गान करते समय गरुड़ारूढ़ होकर वैकुंठ चले गये।।13।।

हे कुरूश्रेष्ठराजा परीक्षित! मैंने तुम्हारे लिए गजेन्द्र मोक्ष रूप श्री हरि की लीला का वर्णन किया हैं। यह कथा को जो सुनता है वह स्वर्ग पाता है, वह कीर्ति पाता है, कलि काल का दोष चला जाता है, दुस्स्वप्न का नाश होता है।।14।।

इसके लिए श्रेयस को चाहने वाले ब्राह्मण प्रतिदिन सुबह उठकर शौच, आचमन आदि करके दुस्स्वप्न आदि अरिष्टों के निवारण के लिए गजेन्द्र मोक्ष का पाठ करते हैं।।15।।

हे कुरूश्रेष्ठ, सारे जीव राशि के स्वामी सर्वशक्त सर्वेश्वर श्री हरि सुप्रीत होकर गजेन्द्र से कहे।।16।।

भगवान कहते हैं। जो लोग मुझको, तुझको, इस सरोवर को, यह पर्वत, जंगल, यहाँ के बाँस, वृक्ष..............।।17।।

ब्रह्म, रुद्र और मुझको बास स्थान बना हुआ यह तीन शिखर, मेरा प्रिय वास स्थान क्षीर सागर और स्वेतद्वीप ....।।18।।

मेरा श्री वत्सकौस्तुभ, वन माला, कौमोदकी गदा, सुदर्शन चक्र, पांचजन्य शंख, पक्षिराजगरूड......।।19।।

शेष मेरे अंश रूपी मेरी छाती में वास करने वाली सूक्ष्म रूपी श्री देवी, ब्रह्म, रुद्र, नारद मुनि, प्रह्लाद..........।।20।।

मत्स्य, कूर्म, वराह, अवतार में मेरे द्वारा किए हुए अनन्त पुण्य कर्म, सूर्य, चन्द्र, अग्नि....।।21।।

ओंकार, सत्य तत्व, अव्यक्तत्व, गाय, ब्राह्मण, क्षय रहित, भक्त्यादि धर्म, दक्षपुत्री, सती देवी, धर्म पत्नी, सोम पत्नी, कश्यप की पत्नियाँ......।।22।।

गंगा, सरस्वती, अलकनन्दा, कालिन्दी, ऐरावत, ध्रुव, सातब्रह्मर्षि, पुण्यश्लोक नल और गय जैसे महराजा, मनु पुत्र.........।।23।।

सुबह उठकर शुचिर्भूत होकर ये सब रूप मेरे सन्निधान पात्र हैं, यह समझते हुए इनका स्मरण जो करते हैं वे सारे पाप से मुक्त हो जाते हैं।।24।।

जो इस स्तोत्र से मुझको रात्रि के अन्त समय में अथवा सुबह सूर्योदय के पहले स्तुति करता है उसे उसके जीवन के अन्त में अपने शुद्धज्ञान को देता हूँ।।25।।

श्री शुकदेव जी बोले- इस रीति से उपदेश देते हुए भगवान श्री हृषीकेश शंख की ध्वनि करते हुए देव समूह को सन्तोष दिलाकर गरुण के कन्धे के ऊपर चढ़कर वैकुण्ठ को चले गये।।26।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में चौथा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - पाचवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा! पाप परिहारक भगवान की कथा रूप गजेन्द्र मोक्ष नाम के पुण्य कर्म को मैने तुम्हारे लिए वर्णन किया है। अब रैवत मन्वन्तर के बारे मे कहूँगा। लक्ष्य रखते हुए सुनो।।1।।

पाँचवाँ मनु तापस के भाई रैवत हैं। बलविन्ध, अर्जुन उनके पुत्र हैं।।2।।

अश्वि में एक दस्रविभु नाम का इन्द्र था। भूतरय इत्यादि देवता गण। हिरण्यरोम, वेदशिर, ऊर्ध्वबाहु इत्यादि सप्तर्षि बने।।3।।

उनमें से शुभ्रनाम के ऋषि की पत्नी का नाम विकुन्ठा था। उनमें वैकुण्ठ नाम से भगवान अंश रूप से उनमें अवतार लिए।।4।।

रमादेवी की प्रार्थना के अनुसार उनको प्रिय करने हेतु सारे जगत से वन्द्य वैकुण्ठ लोक को यह वैकुण्ठ भगवान निर्माण किए।।5।।

वैकुण्ठ की महिमा, उनके अत्यन्त समृद्धि पूर्ण गुण श्रुतियों मे बहुत बार वर्णित हुए हैं। भगवान विष्णु के गुणों को कौन पूर्ण रूप से वर्णन कर सकता है। इस भूमि में रहने वाले धूलि कण को गिन सकने वाले चतुर्मुख ब्रह्मा भी उनको गिन नही सकते।।6।।

छ:ठा मनु चक्षु मुनि के पुत्र चाक्षुस। उनके पुत्र पुरुष, सुद्युम्न आदि थे।।7।।

मन्द्र द्रुम इन्द्र बने। आप्य इत्यादि देवता गण बने। वैराज, हविष्मद्, विरक इत्यादि सप्तर्षि बने।।8।।

उस मन्वन्तर में भी जगतपति भगवान श्री नारायण वैराज और सम्भूति दम्पति के पुत्र होकर अजित नाम से अवतार लिए।।9।।

भगवान अजित क्षीरसागर मन्थन करते हुए देवताओं को अमृत पान करवाये। वे ही क्षीर सागर में डूबने वाला मन्दर पर्वत को कूर्म रूप से धारण किए।।10।।

राजा परीक्षित पूछते हैं- हे महामुने भगवान क्षीरसागर का मन्थन क्यों किए। उसकी आवश्यकता क्यों पड़ी? कूर्म रूप से पहाड़ को धारण क्यों किए।।11।।

देवताओं को अमृत कैसे मिला? समुद्र मन्थन के समय में और क्या क्या वस्तु निर्माण हुए? भगवान की इस लीला को विस्तार रूप से बताने की कृपा करें।।12।।

श्री हरि की इन महिमाओं को आप जैसे जैसे कहने लगते हैं, उनको सुनते सुनते मन विभोर हो जाता है, किन्तु तृप्ति नही मिलती। संसार ताप से तप्त मन को यह आनन्द देता है।।13।।

सूत जी बोले- हे शौनकादि ऋषि गण, राजा परीक्षित के इस प्रश्न को सुन कर व्यास पुत्र भगवान शुक मुनि राजा का अभिनन्दन करते हुए श्री हरि की महिमा वर्णन करने लगे।।14।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- युद्ध मे असुर लोग देवताओं को अपने तीक्ष्ण आयुधों से मारने के बाद देवता गण युद्ध में मृत प्राय होकर गिरते थे, बहुत समय तक उठ नही सकते थे।।15।।

दुर्वाषा ऋषि के शाप के कारण तीनों लोक भ्रष्ट होकर शक्ति विहीन बन गये थे। इससे यज्ञादि क्रिया लुप्त होने लगी।।16।।

इसको देखकर इन्द्र, वरुण इत्यादि देवताओं ने मिलकर बहुत से मंत्रालोचना की। किन्तु कोई निर्धारण कर नही पाये।।17।।

वे सारे मिलकर मेरु शिखर में रहने वाले ब्रह्मा जी की सभा को गये। वहाँ ब्रह्मा जी को नमस्कार करते हुए अपने दु:ख को बताए।।18।।

ब्रह्मा जी देखते हैं इन्द्र वरूण इत्यादि देवता गण सत्व हीन बनकर निस्तेज दिख रहे हैं। तीनों लोक अमंगल हो गये हैं। परिणाम स्वरूप असुरगण शक्तिशालि बने हैं।।19।।

जीवोत्तम भगवान ब्रह्मा जी एकाग्र चित्त से परम पुरुष नारायण का स्मरण करते हुए सन्तुष्ट होकर देवताओं से कहे।।20।।

मैं, रुद्र और सारे देवताओं, मनुष्य, पशु, वनस्पति, कृमि ये सारे भगवान के अवतार के सामर्थ्य के एक अंश से उत्पन्न हुए हैं। हम नाशरहित उसी परमात्मा की शरण जायेंगे।।21।।

भगवान अपने के लिए किसी का वध नही करते, वे किसी को खास कर रक्षा नही देते। वे किसी की उपेक्षा नही करते, वैसे किसी का आदर भी नही करते। किन्तु भक्तों के अनुग्रह के लिए समय समय में सृष्टि स्थिति लय इनको करने के लिए सत्व रज तम में वृद्धि क्षय करते रहते हैं।।22।।

देवता गण अपने भक्त होने के कारण और योग्य गुण वाले होने से भगवान उनके पक्षपाती हैं, वे अपने स्वार्थ के लिए देवताओं का कल्याण करते हैं ऐसे नहीं। इस वाक्य को जगद्गुरुमध्वाचार्य जी ने ब्रह्म तर्क से प्रस्तुत किए हैं।

भक्तों की रक्षा के लिए, इस प्रपंच को सुस्थिति में रखते हुए इसको पालन करने का समय है। भगवान अब सत्व गुण की वृद्धि कर रहे हैं। यह हमारे लिए बहुत अनुकूलकर समय है। हम वे जगद्गुरु नारायण के शरण में जायेंगे। वे सज्जन पक्षपाती हैं। वे हमारे लिए मंगल करने वाले हैं।।23।।

श्री शुकदेव जी बोले- हे राजा! सुनो। ब्रह्मा जी देवताओं को साथ लेकर भगवान श्री अजित देव के वास स्थान तमस के परे श्वेत द्वीप के पास गये।।24।।

वहाँ भगवान दृश्य रूप से नही दिखे, तो भी ब्रह्मा जी वेद से भगवान को जानने वाले हैं। इसी कारण इन्द्रिय नियमन करने वाले वे अपने चारों मुखों से वेद मंत्रों से भगवान की स्तुति करने लगे।।25।।

ब्रह्मा जी कहते हैं- हे भगवान! आप सुख दु:खादि विकार रहित हैं, सत्य, अनन्त और विश्व के मूल हैं। सारे जीवों के हृदय गुहा में आप वास करते हैं। आपके भिन्न भिन्न अवयव नही हैं। ऊहा के परे मन से भी अधिक वेग वाले बातों से वर्णन करने अशक्य रूप वाले हे देवोत्तम, पूज्य, देव - देव हम आपकी शरण में आये हैं।।26।।

प्राण मन बुद्धि और जीव को ठीक तरह से जानने वाले आप परमात्मा हैं। जीव को विषय पदार्थों के ज्ञान को इन्द्रियों से आप उत्पन्न करते हैं। आप कभी नींद नही करते। आपके शरीर में कहीं भी घाव नही होते। अविद्या और शास्त्रजन्यज्ञान ये दोनों विषयाकांक्षी जीव को ऊर्ध्व और अधोगति देने वाले दो पंखे के समान हैं। ये जीव नाम के पक्षी के लिए हैं। किन्तु भगवान के लिए इनकी आवश्यकता नही है। वे नाश रहित ज्ञानरूप और कृत त्रेता, द्वापर इन तीनों युगों में अवतार लेने वाले हैं। ऐसे भगवान की शरण में हम आये हैं।।27।।

छाया यानी अविद्या, आतप यानी शास्त्रजन्यज्ञान, जीव को ये दोनो ऊर्ध्व और अधो लोक को जाने वाले सहायक पंख जैसे हैं। ये पंख भगवान के लिए आवश्यक नही हैं। ब्रह्म तर्क के इस वाक्य को जगद्गुरु मध्वाचार्य जी यहाँ उधृत किए हैं।

यह जगत प्रवाह रूप से सदा काल भगवान की परिक्रमा करती रहती है। भगवान ही इसके अक्ष बन कर आधार बने हैं। प्रकृति के प्रेरणा से यह भूमण्डल चलता रहता है। उसके लिए मन ही मूल कारण है। दस इन्द्रिय और पाँच विषय ये पन्द्रह उस चक्र का आरा बने हैं। त्रिगुण इस चक्र के बीच में का छेद बने हैं। इस संसार चक्र को भगवान ही चलाते हैं। हम उन्ही की शरण में आये हैं।।28।।

जीव के संसार नाम के चक्र को सत्व रज तम ये गुण मध्य मे रहते हुए नाभि बने हैं। विद्युत नामक हरि इस चक्र को बल देते हैं। वे इस चक्र के लिए अक्ष रूप में आधार बने हैं। यह भी ब्रह्म तर्क का वाक्य है।

भगवान ओम्कार नाम के एकाक्षर से प्रतिपाद्य हैं, अज्ञान रहित, निर्दोष, लोक विलक्षण अव्यक्त और नाश रहित हैं। उनके लिए कोई मिति नही है। ज्ञानी लोग योग रथ में चढ़कर उनके पास तीव्र गति से जाते हैं। ऐसे भगवान की मैं शरण में हूँ।।29।

भगवान की इच्छा का अतिक्रमण कोई नही कर सकता। किन्तु उनसे मोहित हो सकता है, इसी कारण अपने स्वरूप को ठीक तरह से नही जान सकता है वह परमात्मा सारे आत्माओं को और उनके गुणों को जीतकर अपने वश में रखे हैं। उनको किसी का पक्षपात नही है। सभी को अपने अपने योग्यता के अनुसार समान दृष्टि से देखते हैं। ऐसे भगवान नारायण को मैं नमस्कार करता हूँ।।30।।

हे प्रभु! आपकी कृपा से आपके शरीर रूप सत्व गुण से इस ब्रह्माण्ड के अन्दर और बाहर में हमारी सृष्टि किए हैं। आप परिपूर्ण ज्ञानी हैं हम आपके सूक्ष्म रूप को जान नही सकते। अब रज़ और तमो गुण से सृष्ट हुए राजस तामस स्वभाव के नित्य संसारी औरअसुर लोक को कैसे जान सकते हैं?।।31।।

जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज इस रीति से चार विध की सृष्टि के लिए आधार भूत यह भूमि विराट रूपी आपके पाद से सृष्ट हुआ है। आप स्वतंत्र, विराट रूपी श्रीपति हैं। आप ऐश्वर्य और गुण पूर्ण हैं। आप हमसे प्रसन्न हो जायँ।।32।।

आपका सामर्थ्य अगणित है। यह विराट रूपी जल आपके रेत से निर्माण हुआ है। इसी के आधार से तीन लोक और लोक पालक जन्म लेते हैं, जीवित रहते हैं, बढ़ते हैं। अपर्मित ऐश्वर्य शाली और गुण पूर्ण भगवान आप हमसे प्रसन्न हो।।33।।

आप अपने अमृत किरणों से शस्यों की वृद्धि करते हुए देवताओं को अन्न, आयुस, और बल को देते हैं। आप वनस्पतियों के राजा हैं। आप लोगों को रति सुख देते हुए सन्तान वृद्धि करने वाले हैं। इसको करने वाले चन्द्र आपके मन की प्रतिमा रूपी हैं। हे अपरिमित ऐश्वर्य शाली भगवान नारायण आप प्रसन्न हों।।34।।

इस विश्व में जन्म लिया हुआ सारे जीव राशि को, और अन्यान्य वस्तुओं को ठीक तरह से जानने वाले आप यागादि कर्म समूह को आप अरणी से जन्म लेने वाले अग्नि हैं। समुद्र गर्भ में रहने वाला वडवानल आप हैं। प्राणियों के शरीर में वैश्वानर रूप में रहते हुए आप अन्न का पचन करते हैं। आपके मुख से अग्नि का आविर्भाव हुआ। अगणित ऐश्वर्यशाली भगवान आप प्रसन्न हों।।35।।

भगवान सूर्य देवयान मार्ग में वे वेद प्रतिपाद्य देवता हैं। परब्रह्म की उपासना का वे द्वार होकर सविता

नाम से प्रसिद्ध हैं। अर्चिरादि मार्ग के देवता होने के कारण संसार मुक्ति के लिए सुख मय द्वार बने हैं। यह सूर्य भगवान आपके आँख से उत्पन्न हुए हैं। ऐसे परम ऐश्वर्यशाली नारायण भगवान आप हम से प्रसन्न हो जायें।।36।।

इस चराचर जगत के जीवधारण के लिए आवश्यक सहन, बल और पराक्रम ये सारे वायु से होते हैं। जीव के शरीर में वायु देव को मुख्य प्राण रूप में अन्य देवताएँ सम्राट मानकर सेवा करते हैं। ऐसे वायु आपके प्राण से उत्पन्न हुए हैं। ऐसे परम भाग्यशाली आप हम में प्रसन्न हो जायँ।।37।।

भगवान के कान से दिगाभिमानी चन्द्रादि देवताएँ, हृदय से इन्द्रिय, नाभी से अन्तरिक्ष उत्पन्न हुए। प्राण और इन्द्रियों के नियामक, अपने शरीर रूप में रहने वाले जीवात्माओं को वे ही बन्धु हैं। ऐसे परम ऐश्वर्य शाली भगवान नारायण हमसे प्रसन्न हों।।38।।

बल से इन्द्र, अनुग्रह से देवताएँ, क्षमात्मक क्रोध से रुद्र, बुद्धि से ब्रह्म, इन्द्रियों से सात छन्दस और मरीचि आदि ऋषि गण, जननेन्द्रिय से दक्ष प्रजापति इस रीति से सारे देवताओं को जन्म देने वाले भगवान नारायण हमारे ऊपर कृपा करें।।39।।

छाती से लक्ष्मी, छाया से पितृ, स्तन से यमधर्म, पीठ से अधर्म, सिर से स्वर्ग, विहार से अप्सरायें इन सबको सृष्टि करने वाले महा ऐश्वर्यशाली भगवान हमारे से सन्तुष्ट हों।।40।।

मुख से ब्राह्मण और रहस्यमय वेद, बाहु से क्षत्रिय और बल, जंघा से वैश्य और धन, पाद से शूद्र और सेवा का सृष्टि करने वाले महाविभूति नारायण आप हमारे से सदा सन्तुष्ट रहें।।41।।

नीचे के ओठ से लोभ, ऊपर के ओठ से प्रीति और कान्ति, नाक से तृणादि अल्प जीव, स्पर्श से स्त्रीकामना, भौ से यम, बरौनी से मृत्यु को सृष्ट करने वाले जगदादि महापुरुष भगवान कृपा करे।।42।।

पंच भूत, द्रव्य, आयुष्य, अदृष्ट और भक्त्यादि गुण, जीव कलादि स्वभाव हरि के इच्छा मात्र से होते हैं, हरि की उपेक्षा से अस्तित्व खो देते हैं। उनके स्वरूप को कोई जान नही सकता ज्ञानियों को ज्ञान भी उन्ही से मिलता है ऐसे परमैश्वर्य शाली भगवान हमसे प्रसन्न हों।।43।।

हे भगवान! आपको नमस्कार। आपकी शक्ति अव्यक्त होती है। आप स्वयं प्रकाश वाले आनन्द आदि गुण पूर्ण शरीर वाले हैं। अपने स्वाधीन प्रकृति से आप ही जीवों के शरीरों को सृष्टि करते हुए उनमें नियामक रूप से रहते हैं। तो भी आप शरीर से आने वाले दुःखादि मनों रूप से अलिप्त रहते हैं। हे अणिमादि स्वरूप भूत अष्टैश्वर्यशाली भगवान नारायण! आपको पुनः नमस्कार।।44।।

हमारे इन्द्रियों को गोचर होकर आप हमें दर्शन देने की कृपा करें। हम आपकी शरण मे आये हैं।

आप अपने मन्दहासयुक्त मुखारविन्द को दिखाइये। हम उसको देखने के लिए लालायित हैं।।46।।

हे प्रभु! आप काल काल में अपनी इच्छा से दिखाने वाले रूप से हमे अशक्य धर्मसंस्थापन कार्य को आप स्वयं पूर्ण करते हैं।।46।।

विषय की आशा से युक्त जीव जो कर्म करते हैं उनको बहु कष्ट से करने के बाद भी वे अल्प सुख देते हैं, वे असफल होते हैं। किन्तु यदि हम उन्ही कर्मों को निष्काम रीति से करते हुए आपको समर्पित करें तो वे असफल नही होते। इसके लिए हमारे छोटे से इस निष्काम कर्म से आप सम्प्रीत होकर अपना दर्शन दें।।47।।

निष्काम कर्म अंग रहित होने के कारण कर्म का भाष होते हुए अधम लगता है, किन्तु भगवान के लिए अर्पित होने के कारण वह कभी विफल नही होता क्योंकि परम पुरुष भगवान जीव से बहुत प्यार करते हैं। वे सदा काल जीव को हितकर काम ही करते हैं।।48।।

वृक्ष के मूल को पानी देने से वह उसके फल, टहनी और पत्तियों को भी मिलता है। इस जीव सृष्टि के मूल रूप में रहने वाले भगवान विष्णु की आराधना सारे देवताओं को तृप्ति देती है। उसके साथ आराधना करने वाले को भी वह सुख देती है।।49।।

हे अपरिमित महिमा वाले, हम आपके कर्म स्वरूपों की ऊहा नही कर सकते। आप तीनों गुण रहित हैं। आप उन गुणों के नियामक हैं। अब आप सत्व गुण को बढ़ावा दे रहे हैं, हम आपको शतशः नमन करते हैं।।50।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - छटवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा! ब्रह्मादि देवताओं की स्तुति को सुनकर भगवान उनके सामने आविर्भाव हुए। एक ही समय हजारों सूर्य एक साथ उदित हुए तो जितना प्रकाश होता था उससे बढ़कर प्रकाश फैल गया।।1।।

उस प्रकाश से देवता लोग भी आँख मूंद लिए। वे कुछ देख नही पाये। वे आकाश, दिक, भूमि और सामने वाले भगवान को और स्वयं को भी वे देख नही पाये।।2।।

हे राजा भगवान ब्रह्मा जी और शिव भगवान के दर्शन पाये। निर्मल, मरकत मणि के समान श्यामल वर्ण वाले, कमल के गर्भ के समान लाल आँख वाले भगवान प्रभू..............।।3।।

तप्त सोने के समान उज्वल प्रकाश वाले पीताम्बर को धारण किए हैं। उनके सर्वांग मनोहर, और सुन्दर हैं, उनके श्री मुख सुशोभित हैं, उनके भौं आकर्षक हैं........।।4।।

महारत्नखचित किरीट और भुजकुण्डल धारण किए हैं। कान में मकर कुण्डल देदीप्यमान हैं, उनके प्रकाश से उनके गाल सुशोभित हैं..............।।5।।

उनके कमरबन्द, कंकण, हार और नूपूर अत्यन्त आकर्षक हैं। कौस्तुभ और श्रीवत्स चिन्ह को छाती के ऊपर धारण किए हैं। वन माला वहाँ सुशोभित है।।6।।

सुदर्शन इत्यादि आयुध के अभिमानी आकर उनकी सेवा कर रहे हैं। वे अपने सर्वांग को जमीन के ऊपर निछावर करते हुए दण्डवत प्रणाम कर परम पुरुष की स्तुति करते हैं।।7।।

ब्रह्मा जी कहते हैं- हे महानुभाव! मैं आपको नमन करता हूँ। आप उत्पत्ति रहित हैं, किन्तु इस प्रपंच की उत्पत्ति और नाश करते हैं। आप ज्ञानानन्दादि गुण पूर्ण हैं, किन्तु प्राकृति शरीर रहित हैं। आप आनन्द सागर हैं। आप अणु से अणु हैं, किन्तु अपरिमित शरीरी हैं।।8।।

हे विश्वाधारक, हे विश्वमूर्ति, हे पुरुषोत्तम, आपके इस शरीर को यश कामना वाले सारे वैदिक और पंचरात्रिक लोग भक्ति योग से आराधना करते हैं। सर्वाधार, आपके इस रूप में हमको भी मिलकर तीनों लोकों को एक साथ देख रहा हूँ।।9।।

आप प्रलय काल में भी स्वतंत्र रहते हैं। तब यह ब्रह्माण्ड आपके पेट में रहता है। इस जगत के आप ही सृष्टिकर्ता, स्थितिकर्ता और लयकर्ता भी हैं। मिट्टी से घड़ा को बनने में मिट्टी का महत्व जैसे रहता है वैसे आप भी इस सृष्टि का सर्व मुख्य कारणों में आपही मुख्य हैं। सारे नामों से केवल आपही वाच्य हैं।।10।।

मिट्टी से घड़ा बनते समय मिट्टी ही घड़ा बनती है। वैसे आपही यह जगद्रूप में परिवर्तित नही होते। कुम्हार मिट्टी से जैसे घड़ा बनाता है वैसे आपके अधीन रहने वाली प्रकृति से इस जगत की रचना करते हुए आप उसमें उसकी रक्षा के लिए प्रवेश करते हैं। इसी बात को उपनिषद् **तत् सृष्ट्वा तदेव आनुप्राविशत्** कहते हैं। ज्ञानी और विवेकी लोग इसको ध्यान युक्त मन से और शास्त्र से दर्शन पाते हैं। आप त्रिगुण समूह में प्रवेश होकर भी गुणजन्य दोष को नही पाते। इसका भी दर्शन उनको मिलता है।।11।।

लकड़ी में जैसे आग रहता है, गाय में जैसे अमृत समान दूध रहता है, जमीन के अन्दर सुमधुर और सन्तापहारक जल मिलता है, वैसे ज्ञानी लोग शास्त्रादि अध्ययन आदि उपाय से त्रिगुण में रहने वाले किन्तु निर्मल मोक्षदायक अमृत रूप परिहारक आपका दर्शन कर लेते हैं। आप त्रिगुणों मे कर्म के कारण नही रहते किन्तु आप बुद्धि पुरस्सर वहीं रहते हैं, इसको भी जान लेते हैं।।12।।

हे नाथ, हे पद्मनाभ, हम बहुत दिन से ढूंढ़ रहे परम पुरुषार्थ आप हैं। आपको देखकर दावानल से पीड़ित हाथी को गंगाजल मिलने से होने वाला आनन्द हमे हो रहा है।।13।।

सबके अन्दर बाहर रहते हुए नियामन करने वाले हे भगवान श्री हरि, हम लोक पालक आपके पाद मूल को जिस उद्देश्य से आये हैं उसकी आपूर्ति करें। आप सबको पूर्ण रीति से जानने वाले हैं। आपके सामने और हम क्या कहें?।।14।।

हे प्रभु! आप ऋषि और देवताओं के लिए आप्तमित्र हैं। शिव, देवताओं, सारे प्रजापति, हम सभी सूर्य के सामने जुगुनू के समान हैं। हम अल्प प्रकाश और अल्प ज्ञान वाले हैं। हम आपसे ही जन्म लिए हैं। हम स्वयं अपने हित को कैसे साध सकते हैं। आपही हमारा कल्याण करें।।15।।

श्री शुकदेव जी बोले- इस रीति से ब्रह्मादि देवता स्तोत्र करते हुए हाथ जोड़कर खड़े हुए। वे अपने विनती को भगवान के सामने रख चुके हैं। भगवान उनके मन की अन्दर की कामना को समझ कर मेघ गम्भीर ध्वनि से कहे।।16।।

देवताओं के इष्ट साधना को देने में भगवान श्री हरि को और किसी की सहायता की आवश्यकता नही पड़ती है। वे स्वयं कर सकते हैं। किन्तु समुद्र मंथन के निमित्त से कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी इत्यादि लीला दिखाने के लिए भगवान चाहते थे।।17।।

श्री भगवान बोले- हे ब्रह्म रुद्र और अन्य देवता गण - आप सब लोग हम जो कह रहे हैं, लक्ष से सुनिए। इसके अनुसार किए तो अपने खोये हुए सम्पदा को वापस पाओगे।।18।।

यह समय दानवों के लिए अनुकूलकर है। आप अपनी सम्पदा को वापस पाते तक उनके साथ सन्धि करें।।19।।

अपने कार्य की साधना करने वाले बड़े उद्देश्य को पाने के लिए सन्धि विग्रह करना पड़ता है। जैसे साँप और चूहा भी कभी राजी होकर काम करते हैं।।20।।

एक मदारी ने साँप की टोकरी में उसके आहार के लिए एक चूहा को रखते हुए बाहर गया। साँप ने उस चूहे को न खाते हुए उसके साथ राजी होकर कहा - भाई, मैं तुमको नही खाऊँगा। बदले में तुम मुझको बाहर जाने के लिए इस टोकरी में एक छेद करो। चूहा उसके अनुसार छेद किया। बाहर जाते समय साँप चूहा को खाकर चला गया। शत्रु के साथ राजी होते समय ठीक विचार करना चाहिए।

आप सब लोग असुरों के साथ मिलकर अमृत को पाने का प्रयास करें। तुम एक बार अमृत पी लिए तो दानव आपको मार नही सकते।।21।।

क्षीर सागर में आवश्यक वनस्पति औषधि शस्यों को डालकर मन्दर पर्वत को मथनी बनाकर वासुकी सर्प को रस्सी बनाकर मेरी सहाय से आलस्य छोड़कर समुद्र मथन करें। आप देवता गण फल भागी बनेंगे, दैत्य केवल श्रम भागी बनेंगे।।22,23।।

हे देवता गण, सुनो, मन्थन के समय में जो जो उद्भव होता है उनमें असुर गण जो चाहता है उसको तुम सहर्ष दे दों। आप उनको मना न करें। यहाँ क्रोध से कार्य सिद्धि नही बनती है। यहाँ समाधान से काम करना है।।24।।

समुद्र मन्थन के समय में काल कूट का विष उत्पन्न होता है। उससे भय का अनुभव नही करना। अन्य उत्पन्न होने वाले वस्तुओं मे लोभ नही करना। क्रोध तो करना ही नही। अमृत छोड़कर और किसी वस्तु की चाह नही करना।।25।।

श्री शुकदेव जी कहे- हे राजा परीक्षित! भगवान पुरुषोत्तम इस रीति से देवता गण को आदेश देते हुए अपने इष्ट के अनुसार करने का स्वातंत्र रहने वाले वे वहीं अदृश्य हो गये।।26।।

तदनन्तर ब्रह्मा, शिव भगवान को नमस्कार करते हुए अपने अपने स्थान को चले गये। देवतागण राजी बातों के लिए दैत्य राज बलि के पास गये।।27।।

देवता लोग अपने के लिए शत्रु होते हुए भी आयुध के बिना खाली हाथ से आये हुए देख कर सन्धि विग्रह में कुशल राजा बलि अपने कुपित सैनिकों को जोर से आवाज करते हुए रोक दिया।।28।।

बलि सकल लोकों को जीतकर सारे सम्पदाओं को पाकर असुरों की रक्षा करते हुए सिंहासन पर बैठा था। उनके पास देवता गण आप पहुँचे।।29।।

महा बुद्धिशाली देवेन्द्र अपनी मधुर बातों से बलि को समाधान करते हुए पुरुषोत्तम नारायण से सीखी हुयी बातों को बोल दिये।।30।।

वह वे बातें बलि और उनके साथ रहने वाले शम्बर, अरिष्टनेमी इत्यादि त्रिपुरवासी असुर नायकों को सही लगी।।31।।

हे राजा, इसके बाद देव और दानव परस्पर मित्र होकर राजी से अमृत पाने के लिए कार्य करने को सिद्ध हो गये।।32।।

बाद में परिधायुध के समान बाहु रहने वाले, बल के अहंकार से मस्त रहे दानव लोग सिंह नाद करते हुए मन्दर गिरि को उठाकर क्षीर सागर के पास ले चले।।33।।

मन्दर पर्वत को शिव का वर प्राप्त होने के कारण उसको देव दानव कोई उठा नही सके। ब्रह्मा जी के प्रार्थना के अनुसार श्री हरि उसको उठाकर गरुड़ के कंधे के ऊपर रखकर क्षीर सागर की दिशा में चले। बीच में दानव लोग उसको उठाकर अपने कंधे के ऊपर लेकर क्षीर सागर की दिशा में दौड़ने लगे। भागवत में यह अंश नही है किन्तु महाभारत में यह विशेष अंश प्रस्तुत है।

थोड़ी दूर दौड़ने के बाद इन्द्र बलि आदि लोग सुस्त हो गये। आगे जा न सकने से विवस होकर पहाड़ को नीचे गिरा दिए।।34।।

सोने के उस मन्दर पर्वत के नीचे गिरते समय उसके नीचे दब कर बहुत से देव-दानव मर गये।।35।।

पहाड़ के नीचे दबे हुए देव-दानव हाँथ पाँव टूटकर दु:ख भोगने लगे तब भगवान गरुणध्वज वहाँ प्रकट हुए।।36।।

हे राजा परीक्षित- पहाड़ गिरने से मरे या घायल हुए लोगों के प्रति भगवान अपने अमृत कटाक्ष से एक बार देखे। उससे वे सारे लोग जीवित हुए और उनका दु:ख निवारण हुआ।।37।।

यहाँ राजा परीक्षित को शुकदेव जी हे **अमर** ऐसे सम्बोधन किए क्योंकि राजा परीक्षित श्री कृष्ण के अनुग्रह से पुनर्जीवित हुए हैं। यहाँ देव दानव पुनर्जीव पाने के कारण उनके लिए निर्जरान शब्द का प्रयोग है। ऐसा नही अर्थ करे तो **निर्जरान** का प्रयोग व्यर्थ होता है।

नीचे गिरा हुआ इस पहाड़ को भगवान बिना कष्ट से एक ही हाथ से गरुण के कन्धे के ऊपर पुनः रखकर स्वयं भी गरुड़ारूढ़ होकर देव दानवों के साथ क्षीर सागर के तट पर आये।।38।।

गरुण अपने कंधे के ऊपर के पर्वत को क्षीर सागर में खड़ा कर दिए। श्री हरि को नमस्कार करके वह वहाँ से अपने स्थान को चला गया।।39।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में छठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

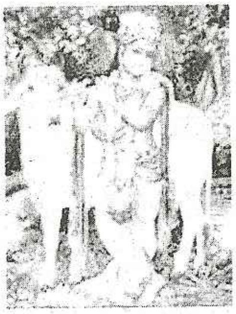

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - सातवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - अमृत में तुमको भी एक भाग दे देंगे यह बात कहकर देव दानव नागराज वासुकी को निमन्त्रण देकर उसको रस्सी बनाकर मन्दर पर्वत को लपेट कर मंथन करने के लिए सिद्ध हुए। इससे उनको आनन्द हुआ।।1।।

हे राजा! पहले देवतागण सिद्ध होकर अमृत मंथन के लिए आगे बढ़े। श्री हरि स्वयं वासुकी के सिर को पकड़कर खड़े हुए। उनके साथ सारे देवतागण साँप के मुह को ही हाथ में पकड़कर खड़े हो गये।।2।।

इस अमंगलकर साँप के पूछ को हम पकड़ने वाले नही हैं। हम वेदाध्ययन और शास्त्र श्रवण किए हैं। हम सत्कुल में जन्म लिए हैं। यज्ञादि सत्कर्म करने वाले महादानव हैं। हम वासुकी के पूछ को नही पकड़ेंगे। इसको कहते हुए सारे दानव लोग शान्त खड़े हो गये। इसको देखकर श्री हरि हँसते हुए शेष फण को दैत्य को सौंप कर पूँछ को पकड़कर खड़े हो गये। इस रीति से कश्यप की सन्तति देव दानव वासुकी के पूँछ और फण को पकड़कर स्थान विभाग कर लिये।।3,4,5।।

देव और असुर सम्भ्रम से अमृत के लिए समुद्र मंथन करने लगे। तब नीचे आधार न होने के कारण वह मंदर पर्वत समुद्र में डूबने लगा।।6।।

हे राजा! बलिष्ठ देव दानव द्वारा पर्वत को डूबने न देते हुए अपने शक्ति से उसको उठाकर ऊपर रखने का प्रयास करने के बाद भी वह डूबने लगा। अपना पौरुष किसी काम के लिए नही आ रहा है, इसको देखकर वे हतास हो गये। उनकी मुखकान्ति धूमिल हो गयी।।7।।

अपार शक्तिशाली, सत्यसंकल्प, भगवान नारायण, विघ्नकर्ता विनायक का यह कृत्य देखकर हँसते हुए अद्‌भुत बड़ा कछुआ का रूप धारण कर पहाड़ को अपने पीठ के ऊपर धारण कर खड़े हो गये।।8।।

भगवान श्री हरि के संकल्प के अनुसार ही श्री गणेश प्रारम्भ में अपनी पूजा न होते देखकर उसी को निमित्त करते हुए श्री हरि की अपार शक्ति को विश्व मे विख्यात करने के लिए पर्वत को पानी में डुबाने का तंत्र किये। इसको

जानकर श्री हरि नरसिंह अवतार के समान माता पिता के बिना उसी समय बड़े कूर्म का रूप धारण कर वहाँ अद्भुत रूप से आविर्भाव हुए।

मन्दर पर्वत ऊपर उठकर आते हुए देखकर देव दानव पुनः मंथन कार्य मे तत्पर हो गये। भगवान और एक बड़े द्वीप के समान एक लक्ष योजन विस्तार वाले कूर्म के पीठ में महान पर्वत को धारण किए।।9।।

हे राजा! देवासुरों के भुज बल से चलने वाला उस महा पहाड़ को अपने पीठ के ऊपर रगड़ते रहे तो भी आदि कूर्म रूपी अचिन्त्य शक्ति वाले भगवान श्री हरि उससे पीड़ित नही हुए। उससे उनके पीठ के ऊपर की खुजली शान्त हुयी ऐसा लगा।।10।।

श्री हरि असुरों में उनके बल वीर्यों को प्रेरणा देते हुए असुर रूप से आविष्ट हुए। देव समूहो में उनके बल वीर्य को बढ़ाते हुए देव रूप से आविष्ट हुए। वासुकी में सर्प रूप से आविष्ट होकर उसको कष्ट सहन करने की शक्ति दिए।।11।।

पहाड़ ऊपर न उछले इसके लिए भगवान हजारों बाहु वाले और एक रूप धारण करते हुए उससे बड़ा एक पहाड़ सदृस रूप धारण कर पहाड़ को दबा कर रखे। ब्रह्म, रुद्र, इन्द्र और देवता गण उनके गुण गान गाये। फूलो की वर्षा किए।।12।।

ऊपर नीचे बीच में पहाड़ और रस्सी में भगवान प्रवेश करते हुए देवासुरों के बल को भी बढ़ाने से देवासुर बहुत जोर से मंथन करने लगे। इससे समुद्र में रहने वाले सारे मगरमच्छ क्षोभित हो गये।।13।।

वासुकी के हजारों क्रूर मुखं से दसों दिशाओं में उसके श्वास से आग उगलने लगा। उससे असुरों के शरीर की कान्ति कलंकित हुयी। पौलोम, कालेय, बलि, इल्वल इत्यादि दानव वीर दावानल में जले हुए वृक्ष के समान बन गये।।14।।

देवताओं के लिए भी वासुकी का श्वास से निकल रही अग्नि से शरीर जलकर कष्ट हुआ। उनके कपड़े, फूल माला, श्रेष्ठ कवच और मुख सारे काले काले हो गये। तब भगवान श्री हरि कृपा करते हुए मेघों को बुलाकर पानी बरसाये। समुद्र के लहरों के साथ शीतल वायु से देवदानव समाधान पाये।।15।।

देवासुर के इस रीति से बहुत समय तक मंथन करने के बाद भी अमृत न मिल रहा है इसको देखकर अचित रूपी भगवान स्वयं मंथन कार्य मे लग गए।।16।।

मेघश्याम रंग वाले, पीताम्बर धारी, कानों में उज्जवल मकर कुण्डल धारण किए हैं, सिर के ऊपर घुघराले बाल, गले में माला, आँखों के आँचल में लाल रंग, विशाल बाहु वाले भगवान जगत को अभय देते

हुए उन्ही बाहों से वासुकी को पकड़कर मंदर पर्वत को जोश से मंथन कर रहे हैं। एक पहाड़ के सामने दूसरे पहाड़ के समान बड़े हुए भगवान के दोनों हाथों से मंथन करने का सुन्दर दृश्य कौन देखना नही चाहेगा।।17।।

मंथन चालू रहते हुए समुद्र से पहले महा क्षोभकर हालाहल नाम का विष उद्भूत हुआ। उससे समुद्र मे रहने वाले मगरमच्छ, तीमितिंगल इत्यादि प्राणि त्रासित हुए।।18।।

उस हालाहल का विष असहनीय था। दसों दिशा में ऊपर नीचे उस विष का विषमय स्वरूप विस्तार होता रहा। उस समय अन्य तारक को न देखते हुए जीवगण सदाशिव की शरण में गये।।19।।

सदाशिव उस समय पार्वती समेत कैलाश पर्वत में मुनियों के साथ बैठे थे। वे तीनों लोकों के हित के लिए और अपने मोक्ष के लिए तप कर रहे थे। जीवगण उनकी स्तुति करते हुए नमन किए।।20।।

प्रजा लोग बोलते हैं- सकल भूतों के स्वामी, जीवियों के जनक, देव देव महादेव हम आपकी शरण में आये हैं। तीनों लोकों को जला रहे इस विष से हमारी रक्षा करे।।21।।

प्रजा जन यहा रुद्रान्तरगत नारायण को उद्देश्य करते हुए रुद्र मूर्ति में प्रार्थना कर रहे हैं।

हे शिवान्तर्यामी स्वामी नारायण, आप ब्रह्म रुद्रादि सकल जगत को बन्ध और मोक्ष देने वाले हैं। आप शरणागतों का दु:ख परिहार करने वाले और ज्ञान देने वाले हैं। सारे ज्ञानी आपकी आराधना करते हैं।।22।।

गुण पूर्ण प्रभु आप स्वतंत्र रीति से सबको देख सकते हैं। आप त्रिगुणात्मक इस प्रपंच को अपने वश में रखते हें। अपने स्वाधीन में रहने वाली प्रकृति से इस जगत की सृष्टि स्थिति और लय को करते समय आप ब्रह्मा, विष्णु और शिव का नाम धारण करते हैं।।23।।

परम रहस्य ब्रह्म आप हैं। देव दानव और सकल जीव राशि को सृष्ट करने वाले आप हैं। आप अपने विचित्र शक्ति से शोभायमान हैं। आप सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर हैं।।24।।

आप सकल शास्त्र को जानने वाले हैं। आप जगत कारण, जगन्नाथ, प्राण, इन्द्रिय, द्रव्य और गुण स्वभावों के नियामक हैं। आप सर्व संहारक, ज्ञान रूप, परमसत्य, सदा आनन्द रूपी, सदाकाल एक प्रकार रहने वाले भगवान हैं। आप सर्वाधार हैं, आप अ, उ, म इन तीनों अक्षरों को मिलकर हुआ ओम रूप का प्रणव शब्द केवल आप हैं।।25।।

हे जगन्मंगल, सकल देवताओं की आहुति को यज्ञ में स्वीकार करने वाला अग्नि आपका मुख है, सकल जगदाधार यह भूमि आपका पद कमल है, सर्वदेवाधिदेव काल आपका गमन है, दिशायें आपके कान, वरुण को जिह्वा मानकर लोग उपासना करते हैं।।26।।

नाभि आपकी अन्तरिक्ष है, वायु श्वास है, सूर्य आँख है, जल वीर्य है, ब्रह्मा जी मुक्तामुक्त प्रंपच के आश्रयी भूत आपके शरीर हैं, चन्द्रमा मन है और द्युलोक आपका सिर है।।27।।

हे सकल वेद रूप, समुद्र आपके उदर हैं, पहाड़ अस्थि समूह हैं, औषधि और लता आपके रोम हैं, सप्तछन्दस साक्षात् सप्त धातु हैं, यम धर्म आपके हृदय हैं।।28।।

हे शिव, सद्योजात, वामदेव, अघोर, ततपुरुष, ईशान इन नाम के आपके पाँचों मुखों से क्रमानुसार **सद्योजातम् प्रपद्यामि, वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय, अघोरेभ्योथ घोरेभ्यो घोर घोरतरेभ्यः, तत्पुरुषाय विद्महे, ईशानः सर्व विद्यानाम्,** ये पाँच नरसिंहस्तुति रूप महानारायणोपनिषद् मंत्र व्यक्त हुए। उनको पदच्छेद करने से उनसे अढ़तीस कलात्मक मंत्र वर्ग का निर्माण हुआ। हे देव! आपको वह शिव नामक परम ज्योति स्वरूप परमात्मा विष्णु ही आपको कैलाश का आधिपत्य दिये है।।29।।

हे महा शिव! अधर्माभिमानी निरूति आपकी छाया के आश्रय में रहता है। इस प्रपंच के सृष्टि के मूल कारण बने सत्व रज तम आपकी आँख बने हैं। मनुओं में मुख्य स्वायंभूव आपके दृष्टि के आश्रय में रहते हैं। प्राचीन देव ऋषि नारद आपकी इच्छा के अनुसार चलते हैं।।30।।

हे कैलास गिरि के पालक! आपके अन्दर रहने वाला परंज्योति रूप स्वगत भेद रहित है, गुण पूर्ण है। उसके ऊपर सत्व रज तम का प्रभाव कुछ भी नही होता। सारे लोक पालक चतुर्मुख ब्रह्मा जी अथवा वैकुण्ठ में रहने वाले मुक्तामुक्त देवगण उनको पूर्ण रूप से जान नही सकते।।31।।

मन्मथ, दक्षयज्ञ, त्रिपुर, काल हर, इत्यादि अनेक भूत द्रोहियों को आप नाश किए हैं। आप सृष्ट किए हुए इस विश्व को लय करने के लिए आपके नेत्र की एक चिनगारी पर्याप्त है। उससे सारा विश्व भष्म हो जाता है।।32।।

भगवान के ध्यान में ही सुख पाने वाले सनकादि गुरुओं ने भी अपने हृदय में आपके पाद कमल द्वन्द्व का चिन्तन करते हैं। आप सदा काल तप करते रहते हैं। तो भी लोग आपको सदाकाल उमा के साथ कामासक्त रहते हैं, श्मसान में रहते हुए भयंकर रूप धारण करते हैं ऐसे बोलते रहते हैं। वे लोग सकल जगत को सुख सम्पद देने वाले आपके बारे में ठीक तरह से नही जानते। जो जानकर भी बताते हैं वे लज्जा विहीन हैं।।33।।

हे शिवान्तर्गत स्वामी! आपको समझना बहुत कठिन है। मूर्त और अमूर्त इस जगत से उत्तम रहने वाली प्रकृति से भी बढ़कर बड़े रहने वाले आपको ठीक तरह से समझ लेने में ब्रह्मादि देवतालोग भी शक्त नही हैं आपका स्त्रोत और कौन कर सकता है। हम उन ब्रह्मादियों से जन्म लिए मनुओं के सृष्टि में आये हैं। हम आपके स्तोत्र कैसे कर सकते हैं? हम केवल अपनी भक्ति को दर्शाये हैं।।34।।

हे महेश्वर, आपके हृदय में रहने वाले इस शिव नामक नारायण को हम सर्वोत्तम मानते हैं। उनसे उत्तम और किसी को हम नही जानते। इस लोक में आपका व्यक्त होना केवल उसके कल्याण के लिए है। तो भी आपके कार्यों को हम ठीक तरह से समझ नही सकते।।35।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- देवताओं के इस दु:ख को देखकर कारुण्य से द्रवित हृदय से सकल जीवियों का हित चाहने वाले भगवान शिव पार्वती से कहते हैं।।36।।

शिव जी कहते हैं- हे भवानी! इन जीवियों का कष्ट देखो। क्षीर सागर के मथन से उत्पन्न हुआ काल कूट विष से यह परिस्थिति उत्पन्न हुयी है।।37।।

प्राण रक्षा के लिए कातर हो रहे इन लोगों को हमें अभय देना चाहिए। कष्ट में फँसे हुए इन लोगों की रक्षा करनी चाहिए। इसी में शक्तिमान लोगों की शक्ति का साफल्य रहता है।।38।।

भगवान के मोहक शक्ति से मोहित जीवगण परस्पर वैरभाव दर्शाते हैं। किन्तु सज्जन लोग क्षणभंगुर अपने प्राण को छोड़कर भी अन्य जीवियों की रक्षा करते हैं।।39।।

हे प्रिय गौरी, एक व्यक्ति दु:खित लोगों को प्यार दर्शाये तो भगवान श्री हरि उससे संप्रीत होते हैं। हरि तुष्ट होने से मेरा सन्तुष्ट होना स्वाभाविक है। तब यह चराचर विश्व प्रीतमय बनता है। इसी कारण मैं अब उस विष को पी लेता हूँ। उससे इन सारे जीवियों के लिए कल्याण हो।।40।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- इस प्रकार जगत को उत्पन्न करने वाले भगवान शिव भवानी को बताने के अनुसार विष पीने लगे। शिव के सामर्थ्य को जानने वाली भगवती भवानी ने इसका अनुमोदन किया।।41।।

सारे जगह फैले हुए हलाहल विष को इकठ्टा कर अपने करतल में लेकर सकल जीवियों के हित चाहने वाले महादेव कृपा करते हुए उस विष को पी लिए।।42।।

जल के कल्मष रूप से निर्माण हुए विष ने शिव के ऊपर भी अपना प्रभाव दिखा दिया। उससे उनका कण्ठ नील वर्ण का बना। साधु पुरुषों के लिए वह भी शोभा देता है।।43।।

हालाहल विष कलि का आवास स्थान है। उसको श्री हरि और वायु ही छू सकते हैं। इसको पीने का धैर्य शिव जी ने कैसे किया इसका उत्तर स्वयं शिव जी पार्वती को पद्म पुराण में, उत्तर खण्ड में पार्वती को कहते हैं - हे गौरी! सुनौद्र हलाहल घोर विष है, वह प्रलय काल के आग के समान है। उसको देखकर देव और दानव भय से भागने लगे। ब्रह्मा जी भगवान की आज्ञा के अनुसार वायु देव को कह दिये कि इस विष को आपके बिना और कोई पीने में समर्थ नही हैं। सारे जीवियों के हित के लिए उसको पूरा पी लीजिए। श्री हरि ब्रह्मा जी के इन वचनो से बद्ध होकर हरि नामोच्चार करते हुए भक्ति से उस विष के पात्र में हाथ डाल कर थोड़ा सा विष को अपने हाथ से मर्दन

करते हुए उसकी तीव्रता को कम करते हुए मेरे हाथ में रखते हुए **खाओ** बोले। मैं वायु देव के अनुसार भगवान नारायण का नाम स्मरण करते हुए उस विष को जीभ के ऊपर रख दिया। उस समय मेरा जीव ही चला जायेगा यह अनुभव होने लगा मैं **अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः** इस नामत्रय को बार बार कहने से जीवित रह गया। किन्तु मेरा गला नीले रंग वाला हो गया। वायु देव तो उस घोर विष को एक बूंद भी न छोड़ते हुए पी लिए।

केशीविषस्य पात्रेण यद्रुद्रेणापिबत सः ऋग्वेद का दसवाँ मण्डल का छत्तीसवाँ अनुवाक में सातवाँ मंत्र इसका बड़ा प्रमाण है। ऋषि, मुनि श्री वायु महात्म्य वाले वेद मंत्र को गाने लगे।

भागवत के चालीसवाँ श्लोक में **श्री रूद्र देव जी सर्वात्मा प्रीयते हरिः** इस शब्द से हरि का अर्थ वायु भी होता है इस निर्णय को जगद्गुरु मध्वाचार्य जी अपने भागवत तात्पर्य निर्णय में स्पष्ट रूप से कहे हैं।

इस जगत में सज्जनों को दु:ख हुआ तो साधु सन्त लोग दु:ख का अनुभव करते हैं। इस रीति से दूसरों के दु:ख को स्पंदन करना सर्वान्तर्यामि परम पुरुष नारायण की सर्वोत्तम आराधना है।।44।।

भक्तों के अभीष्ट को पूरा करने वाले देव देव भगवान रुद्र देव के इस विष पान को देखकर सारे जीव कोटि, पार्वती देवी, ब्रह्म देव, स्वयं नारायण भी प्रसंशा किए।।45।।

रुद्रस्य यशसेर्थाय स्वयं विष्णुर्विषम् प्रभुः। नसंजह्रे समर्थोपी वायुं चोचे प्रसान्तये यह इसके लिए आधार है।

शिव जी के विष पान करते समय उनके हाथ से गिरा हुआ विष बिन्दुओं को साँप ,बिच्छू और विष सस्य स्वीकार किए। उनके दंशन से आज भी विष चढ़ जाता है।।46।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

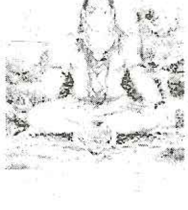

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - आठवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेवजी कहते हैं - शिव जी के विष पीने के बाद हर्ष से देव दानव और भी जोर से समुद्र मंथन करने लगे। उससे कामधेनु का जन्म हुआ।।1।।

हे राजा! देवता लोग सोम पान करने के लिए यज्ञ के लिए उपयोग होने वाले हविष के लिए वेद जानने वाले ऋषि गण अग्नि होत्र के लिए उपयोग होने वाला कामधेनु को स्वीकार किए।।2।।

बाद में चन्द्र के समान सफेद रंग वाला **उच्चैश्रव** नाम का घोड़ा उत्पन्न हुआ। राजा बलि उसको पाना चाहा। किन्तु इन्द्र उसको नही चाहा क्योंकि भगवान नारायण देवताओं के लिए अमृत छोड़कर और किसी वस्तु को चाहने के लिए मना किए थे।।3।।

उसके बाद ऐरावत नाम का गजराज पर्वत शिखर के समान चार दाँत वाला शुभ्रवर्ण वाला भगवान शिव के कैलाश के समान शोभा वाला हाथी क्षीर सागर से जन्म लिया। असुर लोग उसको इन्द्र को दे दिये।।4।।

बाद में स्वर्ग लोक को अलंकार स्वरूप पारिजात वृक्ष उदित हुआ। भूमि में परीक्षित राजा के समान स्वर्ग में जो जी चाहता है उसको देने वाला बन गया है।।5।।

उसके बाद अप्सरा स्त्रियों ने जन्म लिया वे सुन्दर साड़ियाँ पहने हुए, सोने का गहना पहन कर सुन्दर चाल से चलते हुए अपनी तिरक्षी नजर से स्वर्ग लोक के लोगों को उत्साहित करती हैं।।6।।

उसके बाद भगवान नारायण की परमप्रिया साक्षात लक्ष्मी देवी का आविर्भाव हुआ। वह आकाश के बिजली के समान अपने कान्ति से दसों दिशाओं को प्रकाशित कीं।।7।।

अपने रूप, औदार्य तथा शरीर की कान्ति से देखने वाले के मन को लुभाते हुए वह सबके आकर्षण का केन्द्र बनी।।8।।

उस समय समुद्र महाराज ने श्री देवी के स्वयंवर का आयोजन किया। उसके प्रारम्भ में देवेन्द्र देवी को

एक अद्भुत महा आसन लाकर दिये। नदी अभिमानी देवताएँ सोने के घड़ा में निर्मल जल को भरकर रखे।।9।।

अभिषेक करने के उपयुक्त धान्यों को भू देवी लाकर रखीं। गायें पवित्र पंच गव्य को लायी। वसन्त ऋतु अभिमानी देव शहद को लाकर रखे।।10।।

ऋषिगण विधि पूर्वक अभिषेक किए। गन्धर्व मंगल गीत गाये। अप्सरायें गाते हुए नर्तन किए।।11।।

मेघ के अभिमानी देवता गण शंख, वंशी, वीणा इत्यादि के साथ, मृदंग, पणव, मुरज, और ढंका का वादन किए।।12।।

इसके बाद दोनों हाथों में कमल धारण करते हुए आसन पर विराजमान दोष रहित श्री देवी को मुनि गण मंत्र पाठ करते हुए, अभिषेक सूक्त का पाठ करते समय दिग्गजों ने पूर्ण कलशो से अभिषेक किए।।13।।

पिता समुद्र राज, वरुण देव पीले रंग के दो रेशम के वस्त्र को समर्पित किए। वे ही वैजयन्ती हार को चढ़ाये।।14।।

विश्वकर्मा प्रजापति सुन्दर आभूषणों को लाकर रखे, सरस्वती देवी मोती की माला का अर्पण किया। ब्रह्म देव जी कमलों को दिए। नाग लोग कर्ण कुण्डल दिये।।15।।

बाद में देवी पुण्याह वाचन के बाद कर्ण कुण्डल से शोभाय मान कपोलों में लज्जा के कारण प्रसारित लाल रंग से और शोभायमान होकर हाथ में वैजयन्ती माला को धारण करते हुए स्वयंबर सभा में संचार करने लगीं।।16।।

उनके दोनों स्तन बीच में थोड़ा भी स्थान न छोड़ते हुए कुंकुम से लिप्त होकर शोभायमान थे। उनके चलते समय पाँव के घुघरू की गुंजारव की मधुर ध्वनि सुनने में आती थी। सोने के लता के समान इधर उधर हिलने वाली महालक्ष्मी देखने वाले लोगों के मन को आनन्द देती थीं।।17।।

सदा निर्दोष, सदगुणशाली, सुस्थिर आश्रय देने वाला एक सुन्दर वर को ढूंढने वाली महादेवी वहाँ जमे हुए गन्धर्व, यक्ष, असुर, चारण, सिद्ध, देवताओं में किसी को योग्य नही पायीं।।18।।

विश्वामित्रादि ऋषि तपस्वी हैं किन्तु क्रोधी हैं; बृहस्पति, शुक्र ज्ञानी हैं किन्तु धन की आशा करते हुए पुरोहित बने हैं। ब्रह्मा महापुरुष हैं किन्तु काम निग्रह नही हैं। रुद्र दूसरों के आश्रय में रहने वाला वह कैसे ईश्वर बनता है?।।19।।

यम में धर्म निष्ठा है किन्तु उसके हृदय में प्यार नही है। बलि चक्रवर्ती में दान निष्ठा है किन्तु वह

मोक्ष देने वाला नही है। काल के वेग को अपने सामर्थ्य से सामना करने वाला कोई भी जीव नही है। सारे काल वश हैं। गुणत्रय से जन्म लेने वाले काम क्रोध दोष रहित भगवान नारायण को छोड़कर और कोई नही है।।20।।

मृत्यु देव चिरंजीवी हैं किन्तु उनमें परोपकार, दया, शील और बन्धु जन स्नेह नही है, वे सदा काल अमंगल रहते हैं। मनमथ में सन्तान वृद्धि नाम का मंगल कार्य है किन्तु देवताओं के लिए निर्दिष्ट आयुष्य नही है। चन्द्र में आयुष्य, आह्लादक रूप और मंगल गुण भी है किन्तु वह गुरु पत्नी गमन समान घोर पाप किया है। देवेन्द्र सौ यज्ञ करने वाले पाप रहित हैं। किन्तु मंगल होते हुए ऐश्वर्य वृद्धि की भौतिक कामना से लिप्त हैं। इन सारे देव देवताओं के आयुष्य को शिशुमार रूपी काल नियामक भगवान आहरण करते हैं उनका नियमन भगवान नारायण को छोड़ कर और कोई नही करता। इस रीति से सारे देवताओं मे एक न एक दोष भरा है।।21।।

भगवान नारायण अकेले सकल गुणों से पूर्ण हैं। अपने आश्रय में रहने वाले सारे सदगुणों को केवल वे ही आश्रय हैं। वे सर्वगुणों के स्वरूप भूत मूल चेतन रूप होने के कारण सारे गुण उन्ही के आश्रय में रहते हैं। भगवान को छोड़कर कोई गुण और दूसरों में रहे तो उस गुण को व्यभिचार दोष आता है। एक उत्तम गुण होते हुए उसके साथ अन्य दोष रहे तो भी वह गुण व्यभिचार होता है। वैसे ही सारे गुणों से भरे हुए रहे तो भी एक दुर्गुण रहे तो वहाँ भी गुण व्यभिचार होता है। यह दोनो गुण व्यभिचार विहीन सदगुण पूर्ण भगवान मुकुन्द ही एक हैं। सारे गुण उन्ही के आश्रय में रहने के कारण और वे स्वरमण होने के कारण सकलसद्गुणपरिपूर्ण हैं। ऐसे निरपेक्षित अन्यों को अपेक्षिता प्रद वेद वेद्य मोक्षदात मुकुन्द श्री हरि को ही लक्ष्मी देवी ने चुन लिया।।22।।

मत्त मधुमक्खी के गुंजारव से गुंजीत मनोहर मंजुल नव नव कमल, माला को दोनों हाथों से भगवान के दोनों भुजा के ऊपर डालते हुए लज्जा से उसने छाती को लगते हुए उनके पास खड़े हुए।।23।।

तीनों लोको का माता पिता श्री हरि और रमा देवी परस्पर पति पत्नी बने। श्री हरि अपने अनादि पत्नी के लिए अपने हृदय में स्थान बनाकर दिए। श्री देवी वहाँ बैठकर सकल लोकाधिपति देव दानव जीव राशि को अपने पुत्रवत कृपा पूर्ण दृष्टि से देखकर उनको ऐश्वर्य और समृद्धि दे दिए।।24।।

शंख, मूरजा, मृदंग और मुखवाद्य सुनाद करने लगे। गन्धर्व अपने स्त्रियों के साथ नृत्य करते हुए। गीत गाने लगे।।25।।

ब्रह्म रुद्र और अंगिरादि मुनि, सकल प्रजापति श्री लक्ष्मी नारायण के स्तुति रूप श्री सूक्त पुरुष सूक्त मंत्रों से स्त्रोत किए, पुष्पवृष्टि किए।।26।।

श्री देवी के कृपा कटाक्ष को पाये हुए देवतागण, प्रजापतिगण और सकल जीव राशि सच्छील को सदगुण सम्पन्न बनकर परम सुख को प्राप्त किए।।27।।

लक्ष्मी जी से उपेक्षित दैत्य दानव सत्व हीन होकर, निरुद्योगी बनकर लज्जा छोड़कर लक्ष्मी को पाना चाहे किन्तु पा न सके।।28।।

उसके बाद कमल लोचन कन्या वारुणी देवी से अभिमन्यमान मद्य समुद्र मंथन से उद्भूत हुआ। श्री हरि की अनुमति से असुरलोक उसको स्वीकार किए।।29।।

इसके बाद बहुत तीव्रता से देवासुर अमृत मंथन कार्य आगे बढ़ाये। उस समय परम अदभूत रूप वाले एक श्रेष्ठ पुरुष समुद्र मध्य से ऊपर आये।।30।।

उनके लम्बा पुष्प हाथ थे, शंख के समान कंठ वाले आँखों के आचल में लाल रंग वाले सामल वर्ण के तरुण वय के वह महापुरुष सर्वाभरण भूषित हैं। उत्तम फूल माला को धारण किए हैं।।31।।

वे पीताम्बर को धारण किए हैं। उज्वल रीति से प्रकाशमान कर्ण कुण्डल को धारण किए हैं। घुघराले बाल वाले बहुत सुन्दर लगते हैं। वे सिंह के समान चाल वाले हैं।।32।।

वह परमाद्भुत पुरुष दोनों हाथों में सोने का कंकण पहने हैं। वे अपने कंधे पर अमृत कलश को रख कर आ रहे हैं। वे साक्षात विष्णु भगवान के अंश रूप पद्मनाभ नाम से आविर्भूत हुए हैं।।33।।

वे धनवन्तरी नाम से प्रख्यात, आयुर्वेद शास्त्र को जानने वाले और यज्ञ में हविर्भाग पाने वाले हैं। सारे असुर उनको देखे। वे तुरन्त उनके ऊपर झपट कर अमृत कलश को उनके हाथ से छीन लिए।।34।।

भगवान धनवन्तरी समर्थ होते हुए भी अमृत कलश को उनको दे दिए। दैत्य लोग अपना किया हुआ राजी सूत्र को वे स्वयं टालने के लिए यह स्वामी की लीला है।

अमृत पान करके बलिष्ठ होने के बाद समुद्र से उत्पन्न हुए कामधेनु इत्यादि सारे वस्तुओं को बल पूर्वक अपने वश मे ले सकते हैं। इस उद्देश्य से असुर गण अमृत कलश को छीन लिए। अमृत कलश दैत्यों के वश में हो जाने के बाद देवतागण विषण्ण होकर श्री हरि के शरण मे गये। भक्तो के अभीष्ट को पूर्ण करने वाले भगवान उनसे कहे - तुम्हे दु:ख करने की कोई बात नही। मेरी माया से ये असुरगण आपस में झगड़ा करेंगे। अमृत हमारे वश में आ जायेगा।।35,36।।

हे राजा! अमृत के लिए असुर लोग आपस में झगड़ा करने लगे। अमृत पीने के लिए उनमें स्पर्धा प्रारम्भ हुआ। मैं पहले, मैं पहले, तुम नही, तुम नही बोलते हुए वे आपस में युद्ध करने लगे।।37।।

सत्र याग में सारे ऋत्विजो को समान हिस्सा जैसे मिलता है वैसे समुद्र मंथन में समान श्रम किए हुए

देव दानवों को समान फल मिलना चाहिए यह सनातन धर्म है।।38।।

इन बातों से दुर्बल दैत्य इस युद्ध से अमृत हमें मिलने वाला नही है यह समझते हुए असूया से अमृत कलश को पकड़ते हुए प्रबल दैत्यों को अमृत पीने में विघ्न बनते हुए किसी को अमृत न मिलने का कारण बने।।39।।

इसके बीच में किस समय में किस तरह का उपाय करना चाहिए इसको ठीक तरह से जानने वाले सर्वज्ञ सर्वेश्वर भगवान नारायण, अनिर्वचनीय, परमाद्भुत सुन्दर स्त्री रूप को धारण किए।।40।।

उनका अत्यन्त प्रेक्षणीय नील कमल के समान श्यामल वर्ण वाली सर्वांग सुन्दर अवयव वाली समान शोभायमान कर्णाभरण वाली सुन्दर गाल वाली, उन्नत नाशिक वाली.....।।41।।

नव यौवन से स्तन भार से झुकी हुयी छाती, सिंह समान कृश कटी, मुख सुगन्ध से अनुरक्त मधुमक्खी के गुंजारव से विह्वल चंचल नेत्र........................।।42।।

भरपूर बाल उसके ऊपर सुशोभित सफेद फूल की सुशोभित माला, गले मे सुन्दर आभरण, सुन्दर बाहुओं में अत्यन्त सुन्दर चूड़ियाँ.................................।।43।।

सुन्दर साड़ी पहनी हैं, कमर में सोने के कमर बन्द हैं, पाँव में सोने के घूंघरू गुंजारव कर रहे हैं.........।।44।।

अपनी लज्जा और भौ की चलन से तिरछी नजर से देखने वाले के मन में काम का उद्दीपन कर रही हैं।।45।।

इधर दैत्य लोग अपने परस्पर के प्यार को भूल कर अमृत कलश को एक के हाथ से एक डकैत की तरह अमृत कलश को छीनते हुए आपस में गाली देते हुए झगड़ा करते रहे। इतने में वे देखे कि एक सुन्दर स्त्री उनके ओर चलकर आ रही है।।46।।

वाह क्या रूप है, क्या शोभा, क्या शरीरकान्ति, और क्या नवयौवन कहते हुए झगड़ा छोड़कर कामासक्त होकर उसके पीछे पड़े।।47।।

हे कमलाक्षि! आप कहाँ से आयी हैं, क्या कारण है, किसकी बेटी बताओ! तुम हमारे मन को उत्पन्न खलबल कर रही हो।।48।।

देव, दानव, सिद्ध, गन्धर्व, चारण और लोकपाल ये सारे लोग आपको छूने के लिए भी योग्य नही हैं। मानव क्या कर सकते हैं? हे सुन्दरी! लगता है तुम पुरुष स्पर्श से थोड़ा सा भी मलिन नही हुई हैं।।49।।

हे सुन्दर भौं वाली! विधाता ब्रह्म ने सकल जनों के इन्द्रियों को सन्तोष उत्पन्न करने के लिए ही तुम्हारा निर्माण किया होगा।।50।।

हे सुन्दर कटि वाली! हम एक ही कुटुम्ब के होते हुए इस अमृत के कारण परस्पर द्वेष करते हुए स्पर्धा कर रहे हैं। तुम हमारे इस कलह को निवारण करते हुए हमे शान्ति दो।।51।।

हम कश्यप ऋषि के पुत्र हैं, परस्पर भाई हैं और बहुत पराक्रमी हैं। आपस में झगड़ा न हो न्याय के और नीति के अनुसार इस अमृत को तुम ही ठीक तरह से बाँटो।।52।।

दैत्य लोग इस प्रकार अपनी इच्छा से अपने को आवाहन स्वयं स्त्री रूप लिए श्री हरि को देखकर अपने तिरक्षी नजर से देखते हुए बोले।।53।।

भगवान बोले- आप सब लोग कस्यप मुनि के पुत्र होते हुए मेरी जैसी स्वेच्छाचारी महिला में कैसे विस्वास रखते हैं?।।54।।

बन्दर, सियार और स्वेच्छाचारी स्त्री का सख्य शाश्वत नही होता। वे अपने सुख के लिए रोज रोज नया नया सहकारी को चुनते हैं।।55।।

श्री शुकदेव बोले- हास्य से भरी हुयी श्री नारायणी की इस बात को सुनकर असुर बोले। देवी तुम जो बोल रही है वह झूठा है, हास्य के लिए इस प्रकार कह रही है। तुम हमे वंचना करने वाली नही है यह कहते हुए वे मन में उसके ऊपर दृढ़ विश्वास से उसके हाथ में अमृत कलश को समर्पित किए।।56।।

तब श्री हरि अमृत कलश को अपने वश मे लेते हुए हँस कर बोले - देखिए मैं गलती करूँ या ठीक करूँ कुछ भी करूँ तो भी तुम लोग मुझको मानना चाहिए। इससे आप सम्मत हैं तो मैं अमृत वितरण कर सकती हूँ।।57।।

उनकी बात सुनकर उनके अन्तरंग के निज रूप को न पहचानते हुए मोहित महासुर लोग तुम जो भी करो हम राजी हैं, कह दिए।।58।।

बाद में देव दानव व्रत आचरण करते हुए नहाकर नया वस्त्र पहन कर हविष्यार्पण के साथ यज्ञ करते हुए गो ब्राह्मण और प्राणी मात्र को दान देकर ब्राह्मणों के सहयोग से पुण्याहवाचन करते हुए इष्टानुसार अलंकार को धारण करते हुए जमीन के ऊपर कुशासन में पूर्व को मुह करते हुए बैठ गये।।59,60।।

हे राजा परीक्षित- फूल माला से और दीपों से सजा हुआ, धूप के सुगन्ध से भरा हुआ मण्डप में देव दानव आमने सामने पंगत मे बैठे हैं। वहाँ वह सुन्दर स्त्री नारायणी यौवन से भरा हुआ चंचल नेत्र वाली,

नितम्ब के भार के कारण मन्द गमन वाली हाथी के शूड के समान जंघा वाली, रेशम के सुन्दर साड़ी को पहनने वाली, चाँदी के घूघुरुँ के गुंजन में पाँव रखने वाली घटो के समान बड़े बड़े स्तन वाली अमृत कलश को अपने हाथ में लेकर उस मंगलमय मण्डप में प्रवेश की।।61,62।।

सुन्दर मुख, कानों में सोने के कर्ण कुण्डल, उनको भी शोभा देने वाले सुन्दर कान, सुन्दर गाल और नाक वाली लक्ष्मी से भी ज्यादा सुन्दर दिखने वाली, मोहक मुस्कान से भरकर अपने छाती को छिपा हुआ सुन्दर दुकूल को थोड़ा सा सरकाते हुए आने वाली वह मन मोहिनी को देव दानव मोह के वश हो गये।।63।।

स्वभावतः क्रूर असुरों को अमृत पिलाना, साँप को दूध पिलाने जैसे मारक होता है यह समझकर नारायणी उनको अमृत नही पिलाई किन्तु सद्भक्त् देवताओं को पिलाई।।64।।

यहाँ **न तान्** इस शब्द से असुर और उसी शब्द को पुनरावर्तन करते हुए **नतान** इस शब्द से देवताओं को ऐसे द्वन्द्वार्थ को करना होगा।

इसके लिए भगवान जगन्नाथ नारायणी के रूप में देव और दानवों को अलग अलग पंक्तियों मे प्रत्येक को बैठाये।।65।।

हाथ में कलश लेकर जरामरण को परिहार करने वाले अमृत को दूर बैठे हुए देवताओं के पास दौड़ते चले। बीच बीच में दैत्यों के पास आकर सुमधुर बातों से और तिरछी निगाहों से उनको मोहित करते रहे।।66।।

असुर पहले अपने को ही अमृत वितरण को चाहते हुए भी स्त्रीदाक्षिण्य और मोह से पहले कुछ भी करो हम राजी हैं इस वचन से बद्ध होकर स्त्री के साथ झगड़ा करने के लिए मन न करते हुए प्रतीक्षा करते हुए बैठे रहे।।67।।

उस स्त्री में बहुत प्यार किए हैं। अब उससे आक्षेप करे तो वह प्रेम सम्बन्ध बिगडेगा इस भय से वे **मौन** रहे वह स्त्री हमे देवताओं से ज्यादा मानती है। हम गौरवान्वित हैं। इस गौरव के अनुसार हम वचन बद्ध हैं इस अहंकार से वे मुँह नही खोले।।68।।

राहू नाम का दैत्य इसको समझ लिया। देवता समान वेष धारण कर देवताओं की पंक्ति में बैठकर अमृत पान करने लगा। सूर्य चन्द्र इसको देखकर मोहिनी को सूचित किए।।69।।

तब वह राहू अमृत को मुह को लगा कर जब पीने लगा श्री हरि तब अपने अति तीक्ष्ण धार वाला चक्र से बहुत तीव्रता से उसके सिर को काट दिये। वह शिर रहित शरीर अमृत स्पर्श के कारण नष्ट न होकर आज

भी शुद्धोद समुद्र में गिर पड़ा है।।70।।

उसका शिर सौ केतु देवताओं से प्रविष्ट हो गया। मरा हुआ राहू भी उसी मे प्रविष्ट हो गया। भगवान श्री हरि उसी को राहू केतू नाम के दो ग्रहो के लिए वास स्थान कर दिए। वे दोनो पूर्णमासी और अमावस्या के दिन राहू और केतू नाम से (कभी-कभी) ग्रहण कर लेता है। स्वयं अमृत पान करते समय अपने बारे में मोहिनी को सूचित करने वाले सूर्य चन्द्र होने के कारण उनके बारे में उसके मन में द्वेष भरा है।।71।।

देवता गण के अमृत पान करने के तुरन्त बाद लोक जनक भगवान श्री हरि असुर लोगों के देखते देखते अपने मूल रूप को धारण किए।।72।।

समुद्र मंथन करने का क्षीर सागर, मंथन करने का काल, मंथन करने का साधन मन्दर पर्वत और वासुकी नाग, मंथन से उत्पन्न हुए कामधेनू से अमृत तक प्राप्त हुए सकल सामग्री और इनको पाने का समुद्र मंथन का महाउद्यम देव और दानव में एक ही होते हुए भी परिणाम मात्र अलग हुआ। देवता लोग अमृत पाये, दानव दुःख पाये इसका कारण केवल एक ही है देवता गण भगवान के पादकमल रज में भक्ति से आश्रय पाये थे। उसके फल स्वरूप अमृत पाये। किन्तु दानव गण अपने अहंकार में स्वार्थ से झगड़ते रहने के कारण अमृत को न पाकर दुःख भागी बने।।73।।

मानव लोग केवल अपने शरीर पत्नी पुत्र इनमें अपना प्राण धन, मन, कर्म को लगाते हुए काम करते रहते हैं। वह सही फल नही देगा क्योंकि वह भगवान के सेवा के उद्देश्य से विमुख होता है। वही प्राण धन मन को भगवद आराधना में प्रयत्न पूर्वक लगाये तो वह सत्फल देगा। वृक्ष के मूल को पानी देने से उस वृक्ष के स्तम्भ टहनी पत्तियाँ सबको जल और आहार मिलता है।।74।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - नौ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा! दानव और दैत्य अमृत मंथन कार्य में पूर्ण सहयोग देने के बाद भी अमृत को नही पाये। वे नारायण से विमुख होने के कारण उसको पा नही सके।।1।।

हे राजा! श्री हरि अमृत को उत्पादन करने के बाद देवताओं को पिलाकर सबके देखते देखते गरुण के कंधे के ऊपर आरोहण करते हुए चले गये।।2।।

अपने शत्रु लोगों द्वारा पायी हुयी परम समृद्धि को देखकर उसको सहन न करते हुए असुर लोग अन्यान्य आयुध पहनते हुए देवताओं के ऊपर चढ़ाई की।।3।।

नारायण को ही मुख्य आश्रय बनाये हुए देवतागण अमृत से ज्यादा शक्ति पाकर शस्त्रास्त्रों के साथ उनका सामना किए।।4।।

क्षीर सागर के तट पर देव दानवों के बीच यह घनघोर युद्ध हुआ।।5।।

देवासुर परस्पर शत्रुत्व से आक्रोश करते हुए युद्ध में धनुर्बाण और अन्यान्य आयुधों से परस्पर मारने लगे।।6।।

शंख, मुरज, मृदंग, भेरीद्र, डमरू, हाथी, घोड़ा, रथ और सेनानी सारे मिलकर एक साथ स्वर करने से महाकोलाहल उत्पन्न हो गया।।7।।

रथी रथिक के साथ, पदाति पदाति के साथ, अश्वारोही अश्वारोही के साथ, और हाथी हाथी के साथ घनघोर युद्ध किए।।8।।

कई लोग ऊँट के ऊपर, कई पक्षियों के ऊपर, कई गधे के ऊपर और कई सिंह शेर भालू जैसे वन्य प्राणियों के ऊपर चढ़कर युद्ध किए।।9।।

बड़े गिद्ध, बक, शिकारी, भास, तिमिंगिल, शरभ, भैसा, गाय, बैल, खड्गमृग, सियार, चूहा,

खरगोश, मनुष्य, बकरी, कृष्ण मृग, हंस, सुअर और अन्यान्य विकार रूपी प्राणियों के ऊपर सवारी करते हुए देवा सुर लोग आमने सामने युद्ध किए।।10,11,12।।

हे पाण्डव वंश के राजा, देवदानव वीर दोनों सैन्यों में आश्चर्य कारक ध्वज, स्वेत छत्र, वज्र खचित दण्ड, छत्र चामर हवा से हिलने वाले शिरोभूषण हाथ और बाहू के लिए कवच भूषण, सूर्य किरण से जगमगाने वाले आयुध इन दोनों सैन्यों मे शोभायमान हुए।।13,14,15।।

हे राजा! इस युद्ध में विरोचन पुत्र बलि असुरों का सेनापति था। वह अपनी स्वेच्छा से जाने वाला मय निर्मित श्रेष्ठ विमान में बैठा था। उसमें सारे युद्ध सामग्री भरे थे। ऊहातीत और वर्णनातीत आश्चर्यकर था वह विमान। एक बार दृश्यमान होता था और एक बार अदृश्य। ऐसे श्रेष्ठ विमान में बैठकर अपने सेनापतियों से घिरा हुआ, छत्रचामर से व्यंजनों से सेवित होकर उदय काल के चन्द्र के समान शोभायमान था।।16,17,18।।

बलि के विमान के चारों ओर विमान में बैठे हुए सेनापति असुर नायक नमुचि, संम्बर, बाण, विप्रचित्ति, अयोमुख, द्विमूर्ध, कालनाभ, प्रहेती, हेती, इल्वल, शकुनि, भूतसंताप, वज्रदंष्ट्र, विरोचन, हैग्रीव, शंकुशिर, कपिल, मेघ दुंदुभि, तारक, चक्रदृक, शुम्भ, निशुम्भ, जम्भ, उत्कल, अरिष्ट, अरिष्टनेमी, मय, त्रिपूराधिप, दूसरा पौलोम, कालेय, निवातक इत्यादि असुरगण बलि के चारों ओर घिरे थे।।19,20,21,22।।

ये सारे असुर पिछले अनेक युद्ध में देवताओं को जीत चुके थे। किन्तु अब अमृत में अपने भाग से वंचित होकर केवल मंथन करने का दु:खी मात्र बने हैं।।23।।

वे सिंहनाद करते हुए महास्वर वाले शंखों को बजाये। बल से मस्त हुए इन सौतेले शत्रुओं को देखकर देवराज इन्द्र बहुत क्रोधित हुए।।24।।

बहने वाले पानी और पहाड़ से युक्त उदयाद्रि को सूर्य जैसे चढ़ते हैं वैसे देवेन्द्र आकाश में अपने मद जल को बहाने वाले ऐरावत के ऊपर चढ़कर बैठ गये।।25।।

उनके चारों ओर अनेक वाहन ध्वज आयुध वाले अग्नि, वरुण इत्यादि लोक पालक देवतागण अपने परिवार के साथ घेरे हुए थे।।26।।

देव और असुर परस्पर आमने सामने खड़े होकर एक एक के नाम से धिक्कार करते हुए आगे बढ़कर द्वन्द्व युद्ध किए।।27।।

हे राजा, बलि इन्द्र के साथ, कार्तिकेय तारक के साथ, वरुण हेति के साथ, मित्र प्रहेति के साथ युद्ध

किए।।23।।

यम कालनाभ के साथ, विश्वकर्मा मय के साथ, शम्बर त्वष्ट्रा के साथ विरोचन, सविता के साथ युद्ध किए।।29।।

नमुचि अपराजित के साथ, अश्विनि देवता वृष पर्व के साथ, सूर्य देव बाण और उनके भाई सौ लोग बलि पुत्रों के साथ युद्ध किए।।30।।

चन्द्र राहू के साथ, भूत वायु पुलोम के साथ, नराशनि देवी भद्रकाली शुम्भ निशुम्भ के साथ युद्ध किए।।31।।

हे राजा रुद्र देव जम्भासुर के साथ, अग्नि महि के साथ, वातापि और इल्वल मिलकर ब्रह्म पुत्र दक्षवशिष्ट इत्यादि के साथ घनघोर युद्ध किए।।32।।

दर्मर्ष मनमथ के साथ, उत्कल सप्तमाताओं के साथ, बृहस्पति शुक्र के साथ, शनि नरक के साथ युद्ध किए।।33।।

मरूत निवात कवच के साथ, वसुदेव गण कालेयों के साथ, विश्वेदेवगण पौलोमों के साथ, रूद्रगण कोध वशो के साथ युद्ध किए।।34।।

इस प्रकार युद्ध में देवासुर जोड़ी जोड़ी होकर द्वन्द्व युद्ध में एक के ऊपर एक चढ़ाई करते हुए दूसरों को जीतने की आशा से तीक्षण खड्ग, बाण और तोमर इत्यादियों से जोर से मारे।।35।।

भशुण्डि, चक्र, गदा, ऋष्टि, पट्टिश, शक्ति, उल्मुक, प्रास, परशू, निस्त्रिंस, भाला, परिघ, मुद्गर, भिण्डिपाल इत्यादि आयुधो से परस्पर सिर को काटे।।36।।

हाथी, घोड़ा, रथ और पदातियों से युक्त अनेक वाहन सारथियों के साथ काटे गये। योद्धाओं का हाँथ, पाँव, जंग्रा, सिर कट कर गिरते रहे। ध्वज, धनुष, कवच, आभरण चकनाचूर हो गये।।37।।

योद्धाओं के पदाघात से और रथ के चक्र के चलने से चूर्णित बना हुआ रण रंग से धूल उठकर सारे दिशाओं को व्याप्त होकर, सूर्य को ढंक दिया। किन्तु बाद में रक्तसिक्त होकर वह धूल बैठ गया।।38।।

रण रंग में किरीट कुण्डल इधर उधर बिखरे हुए हैं। आँख उनको क्रोध से घूर कर देख रहे हैं। सिर मुंड से खंडित होकर गिर पड़े हैं। अलंकार युक्त, आयुध को पकड़ा हुआ हाँथ शरीर से अलग होकर गिरे हैं। हाथी के सूंड़ और मानवों के जंघा एक साथ गिरे पड़े हैं।।40।।

बलि अपने दस बाण से महेन्द्र को, तीन बाण से ऐरावत को, चार बाण से ऐरावत के चारो पाँवों की

रक्षा करने वाले चार अश्वारोहियों को एक बाण से ऐरावत के महावत को मारा।।41।।

किन्तु ये अट्ठारह बाण आते समय बीच के रास्ते में उतने ही बाणों से हँसते-हँसते इन्द्र ने उनको काट दिया। इन्द्र शत्रु को इतनी तीव्रता से अपने पराक्रम को करके दिखाया।।42।।

इन्द्र का यह उत्कृष्ट हाथ चाल को देखकर बलि क्रोध से शक्ति आयुध को अपने हाथ में लिया। महा उल्का के समान प्रज्वलित वाले उस शक्त्यायुध को वह बलि के हाथ में होते होते इन्द्र उसको काट दिया।।43।।

इसके बाद बलि, सूल, प्रास, तोमर, और ऋष्टियों को एक एक करके उठाता रहा। वे बलि के हाथ में रहते हुए ही इन्द्र उनको काट डाला।।44।।

तब बलि अदृश्य होकर अपनी आसुरी माया से युद्ध करने लगा। तब देवता सैन्य के ऊपर एक बड़ा पहाड़ खड़ा हो गया।।45।।

उस पहाड़ से देव सैन्य के ऊपर आग से जलने वाले वृक्ष गिरने लगे। पहाड़ से खिसक कर बड़े बड़े पत्थर और उन्नत शिखर देव सैन्य के ऊपर गिरने लगे। उनसे वह सैन्य चकनाचूर हो गया।।46।।

बड़े बड़े साँप, अजगर और विषारी, साँप, सिंह, शेर और जंगली सुअर पहाड़ से गिरकर देवताओं के ऊपर आक्रमण किए।।47।।

हजारों राक्षसियाँ नग्न होकर शूल को पकड़े मारो काटो बोलते हुए देव सैन्य के ऊपर आक्रमण किए। उनके साथ राक्षस समूह भी गिर पड़े।।48।।

उसके बाद आकाश मे बड़े बड़े मेघ गम्भीर नाद करते हुए हवा के जोर के साथ आग बरसाये।।49।।

बलि की अपनी माया से रचे हुए इस हवा और आग के कारण देवता सैन्य प्रलयाग्नि में जैसे जलने लगे।।50।।

उसके बाद बलि की माया से चारों ओर से समुद्र ऊपर उठकर घेर लिया। चंड मारुत से उठने वाली बड़ी बड़ी लहर से सुनामी जैसे वह बहुत घोर दिखता था।।51।।

दैत्य लोग इस प्रकार अदृश्य होकर संचार करते हुए बड़ी बड़ी माया से देवताओं को त्रस्त किए। उससे देवतागण बहुत चिन्तित रहे।।52।।

हे राजा! इन मायाओं को हटाने का तरीका देवतागण नही जानते थे। इन्द्रादि देवगण कुछ न समझते हुए भगवान की प्रार्थना करने लगे तब भगवान श्री हरि वहीं प्रत्यक्ष हुए।।53।।

भगवान श्री हरि पीताम्बर पहने हैं। छाती में श्री वत्स चिन्ह और कौस्तुभ माला सुशोभित है। अमूल्य किरीट कुण्डल धारण कर आठ बाहु वाले हाथों में आठ आयुध धारण किए हैं, नव नवीन कमल के समान आँख वाले हैं। गरुण के कंधे के ऊपर अपने कोमल पाद को रखे हैं। ऐसे श्री हरि रण रंग मे देवताओं को दर्शन दिए।।54।।

श्रेष्ठों से भी श्रेष्ठ नारायण के रणरंग में प्रवेश करते ही असुरों की सारी माया स्वप्न में आयी हुयी सॉप जागृति में जैसे नष्ट होता है वैसे नष्ट भ्रष्ट हो गये। श्री हरि का स्मरण सारी आपदाओं से छुडाने वाला है।।55।।

रणरंग में गरुण वाहन नारायण को देखकर सिंह के ऊपर चढ़ा हुआ कालनेमि नाम का राक्षस अपने शूल को घुमाते हुए उनके ऊपर फेका। वह गरुण के सिर को पहुचने के पहले ही तीनो जग के स्वामी उसको अपने हाथ में पकड़ते हुए उसी से उस राक्षस को उसके वाहन के साथ नाश कर दिए।।56।।

उसके बाद बलिष्ठ माली और सुमाली दोनों विष्णु चक्र से सिर कटाकर युद्ध रणक्षेत्र में गिर गये। माल्यवन्त नाम का दैत्य भगवान के सामने आकर अपनी तीक्ष्ण गदा से गरुड़ को मारने के पहले आदि पुरुष श्री हरि सिंह नाद करते हुए शत्रु के सिर को अपने चक्र से निवारण किए।।57।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में नौवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

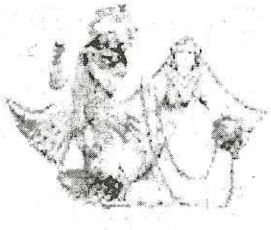

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - दस

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- परमपुरुष भगवान नारायण के परमानुग्रह से पुनश्चैतन्य पाये हुए इन्द्रादि देवताओं जिनके साथ द्वन्द युद्ध में मार खाये थे उन्ही को ठीक तरह से मारे।।1।।

भगवान इन्द्र कुपित होकर बलि को मारने के लिए वज्रायुध को उठाये। उसको देखकर असुर हाहाकार करने लगे।।2।।

युद्ध के उत्साह से शस्त्रों से सुसज्जित इन्द्र महारण में अपने सामने खड़े हुए बलि की निन्दा करते हुए बोले।।3।।

इन्द्र बोले- हे मूढ़ वंचक! बच्चों की आँखों से वंचना करते हुए उनके पैसे को हड़प लेता है वैसे तुम भी वंचना करते हुए माया से हमारे साथ युद्ध करते हुए हमको जीतना चाहा।।4।।

जो लोग कपट कृत्य से स्वर्ग को चढ़ना चाहते हैं, उससे भी उत्तम लोक पाना चाहते हैं वे अपने को अयोग्य उस पद को पा नही सकते, इतना ही नही, मैं उन लुटेरों को पहले से भी नीचे के नरक में फेंक देता हूँ।।5।।

हे बुद्धि विहीन! मैं शक्तिशाली हूँ, दुष्ट और कपट युद्ध करने वाले तुम्हारे शरीर को इस वज्रायुध से काट के निकाल कर चूर चूर करता हूँ। यदि ताकत है तो अपने बन्धु के साथ मिलकर मेरे साथ युद्ध करो।।6।।

उत्तर में बलि बोलता है- काल नामक हरि की प्रेरणा के बिना कुछ नही होता। युद्ध करने वाले सारे योद्धा उन्ही की प्रेरणा से युद्ध करते हैं। उस समय प्रभु की प्रेरणा से ही कीर्ति, जय, अपजय, मृत्यु एक बार वह और एक बार यह ऐसे प्रत्येक को मिलते रहते हैं।।7।।

बुद्धिमान लोग इस जय अपजय को काल पुरुष का प्रभाव मानते हैं। वे उससे सन्तोष या दुःख नही करते। तुम लोग मूर्ख हो।।8।।

जय और अपजय में अपने को समर्थ समझने वाले को साधु लोग देखकर अपहास करते हैं। उसके बदले में तुम लोगों की इस बात को सुनकर हमें हँसी आती है।।9।।

श्री शुकदेव जी बोले- वीरों को झुकाने वाले परम वीर बलि इन्द्र को इस रीति से आक्षेप करते हुए शब्द के साथ साथ बाण से भी उसको मार दिया।।10।।

अंकुश से मारे तो हाथी जैसे सहन नही करता वैसे शत्रु बलि के सत्य वाक्यों से इन्द्र सहम गया।।11।।

शत्रुओं को झुकाने वाला इन्द्र अपने अमोघ वज्रायुध से बलि के ऊपर आघात किए। उससे मार खा कर बलि अपने विमान के साथ पंख कटे पंक्षी की तरह जमीन पर गिर पड़ा।।12।।

अपने मित्र को जमीन पर गिरते देखकर उसके बारे में अपना कर्तव्य निभाने, मित्र के प्यार से जम्भ नामक दैत्य युद्ध करने आया।।13।।

जम्भ सिंह के ऊपर चढ़कर आया। महाबलशाली वह तीव्रता से गदा उठाकर इन्द्र के गर्दन के नीचे जोर से मारा। ऐरावत को भी मार दिया।।14।।

गदा के प्रहार से हाथी त्रस्त होकर अपने आगे के दोनो पाँवों को टेकते हुए मूर्छित हो गया।।15।।

तब मातलि (इन्द्र का सारथी) एक हजार घोड़े वाला रथ को लाया। इन्द्र हाथी छोड़कर रथ पर सवार हो गया।।16।।

मातलि के इस समयोचित कार्य को देखकर दानव श्रेष्ठ जम्ब उसको शाबासी देते हुए अपने जलते हुए सूल से मातलि को मार दिया।।17।।

दर्द बहुत होते हुए भी सहन करते हुए मातलि आक्रोष किया। उसको देखकर इन्द्र क्रोध से वज्र ाायुध से जम्भ के सिर को काट डाला।।18।।

जम्भ की मरण वार्ता को नारद जी के मुह से सुनकर नमुचि, बल, पाक नाम के जम्ब के तीनों बन्धु दौड़ते आये। वे इन्द्र को निष्ठुर और मर्म भेदक बातों से आहत करते हुए पर्वतों के ऊपर मेघ धाराकार पानी बर्षाने के तरह इन्द्र के ऊपर बाणों को बर्षाए।।20।।

युद्ध में अत्यन्त चतुर बलासुर अपने एक बाण से इन्द्र के हजार घोड़ों को दुःख दिया।।21।।

पाकासुर दौ सौ बाणों से मातलि को और रथ को मार दिया। वह उन सारे बाणों को एक ही समय में एक साथ छोड़ा था यह अत्यन्त आश्चर्यकर है।।22।।

नमुचि युद्ध में सोने के पक्ष वाला पन्द्रह बड़े बाणों से इन्द्र को मारकर मेघ के समान गर्जता रहा।।23।।

चारों दिशा से असुर रथ सारथी सहित इन्द्र को अपने बाण से मारते हुए बरसात में बादल सूर्य को घेरने जैसे, घेर लिए।।24।।

शत्रु सैन्य से पराजित देवता गण, उनके अनुचर, बाण से घिरा हुआ इन्द्र को न देखते हुए अपने नायक को खो जाने के कारण दु:ख करने लगे। सागर मध्य में यदि नौवका टूट जाय तो व्यापारी लोग जैसे दु:ख करते हैं वैसे इनका दु:ख था।।25।।

किन्तु तीब्रगति से इन्द्र उन सर पंजरों से बाहर आ गया। दसों दिश अन्तरिक्ष और पृथ्वी रात के बाद सूर्य अपने तेज से प्रकाशित जैसे करते हैं वैसे अपने घोड़े, रथ, ध्वज और सारथियों से शोभित होगया।।26।। वज्रायुध को धारण किया हुआ इन्द्र देव अपने सैन्य को हुआ कष्ट को देखकर रोष से शत्रुओं का नाश करने के लिए वज्रायुध को हाथ में ले लिए।।27।।

हे राजा! आठ तीक्ष्ण धारा वाले वज्रायुध से बलासुर और पाकासुर के सिरों को एक ही समय में उनके बन्धुओं को देखते देखते भय उत्पन्न करते हुए काट डाले।।28।।

हे राजा! बल और पाक के हनन को देख कर नमुचि को असहनीय दु:ख और रोष आ गया। वह इन्द्र को मारने के लिए महासाहस किया।।29।।

सोने के घंटाओं से अलंकृत अपने लोहे के शूलधारी वह दानवेन्द्र नमुचि देवेन्द्र के ऊपर आक्रमण करने दौड़ते आया।।30।।

महाबलशाली नमुचि उस शूल को घुमाते हुए अरे देखो तू मर गया बोलते हुए इन्द्र के ऊपर फेक दिया।।31।।

उस शूल को आकाश में अपनी दिशा में बहुत वेग से आते हुए देखकर देवेन्द्र ने अपने बाण से उसको हजारों टुकडे कर दिए। क्रोध से नमुचि का सिर छेद करने हेतु उसके गले के ऊपर वज्रायुध का प्रयोग किए।।32।।

देवराज अपनी शक्ति से नमुचि के वज्रायुध को फेके। किन्तु वह वज्रायुध नमुचि के चर्म को भी नही काट सका। यह अति आश्चर्य कर है कि अति बलिष्ठ वृत्रासुर को मारने वाला यह वज्रायुध नमुचि को कुछ नही कर सका।।33।।

वज्रायुध के हार को देखकर इन्द्र डर गया। महाबलशाली वज्रायुध के इस पराभव को देखकर इन्द्र चिंतित रहा।।34।।

पहले जब पहाड़ को पंख थे, उनके बल से वे इधर उधर फिरते थे। उसके नीचे दबकर लोग मरते थे। मैने इस वज्रायुध से उनके पंखो को काट डाला था।।35।।

यह वज्रायुध दधीचि मुनि के तप: शक्ति से युक्त है। उन ऋषिवर्य के पीठ के हड्डी से विश्वकर्मा ने इसको बनाया है। मैं बलशाली वृत्रासुर को इसी से चीर डाला था। अन्य आयुधों से कुछ भी न होने वाले बलिष्ठ असुरों को भी मैं इसी से मारा था।।36।।

ऐसा यह वज्रायुध अब यह अल्प असुर में विफल हो गया है। वह ब्रह्म तेज से भरा है तो भी वह काम कर नही सका। अब मैं इस वज्रायुध को नही छुऊँगा।।37।।

इन्द्र इस प्रकार दु:खित हो गया। उस समय शरीर वायु से आकाश में एक बात सुना। यह दानव सूखा और भीगा दोनो वस्तुओं से मरने वाला नही है।।38।।

हे इन्द्र! मैं इसको वर दिया हूँ कि शुष्क और आर्द्र वस्तु से तुम्हारा मरण नही होगा। इसके लिए इसके मरण के लिए तुम और अलग उपाय करो।।39।।

उस दिव्य बाणी को सुनकर इन्द्र एकाग्रचित्त से चिन्तन किया। तब उसके समझ में आया कि फेन भीगा भी नही है, सूखा भी नही। इसके वध के लिए यही उत्तम साधन है।।40।।

उसके बाद इन्द्र न सूखे, न भीगे फेन से नमुचि का सिर काट डाले। तब ऋषि मुनियों ने इन्द्र की स्तुति की वे उनके ऊपर पुष्प वृष्टि किए।।41।।

विष्वावसु और परावसु नाम के गन्धर्व श्रेष्ठ गीत गाये। देव दुंदुभि निनाद किए। अप्सराएँ नृत्य किए।।42।।

जैसे सिंह मृग का शिकार करते हैं वैसे वायु, अग्नि, वरुण इत्यादि देवता अपने प्रतिद्वन्द्वि असुरों को आयुधों से काट डाले।।43।।

हे राजा! ब्रह्म देव दानवों का सत्यानाश को देखते हुए देवताओं के पास देवर्षि नारद जी को भेजे। वे दैत्यों के नाश को रोक दिए।।44।।

नारद जी कहते हैं- भगवान नारायण की भुजाओं के आश्रय में रहने वाले तुम लोग अमृत पा चुके हो, ऐश्वर्य से समृद्ध भी हैं। अब दानवों से व्यर्थ युद्ध करना छोड़ो।।45।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- देवतागण नारद जी को मानते हुए असुरों के ऊपर के क्रोध को सहन करते हुए युद्ध छोड़ कर गन्धर्व गुणगान करते समय सारे स्वर्ग को चले गये।।46।।

युद्ध में बचे हुए दानव लोग नारद जी की आज्ञा के अनुसार मूर्छित बलि को उठाकर अस्ताचल को चले गये।।47।।

युद्ध रंग में हाँथ पाँव इत्यादि अवयवों को न खोये हुए दानवों को शुक्राचार्य जी अपने संजीवनी मंत्रों से पुनर्जीवित किए।।48।।

शुक्राचार्य जी के स्पर्श मात्र से बलि अपने इन्द्रिय शक्ति और ज्ञापक शक्ति को वापस पाया। स्वयं युद्ध मे पराजित था। जय पराजय सारे भगवान के अधीन यह लोक तत्व को जानने वाला वह दु:खित नही हुआ।।50।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

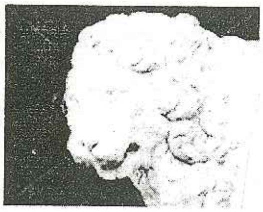

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - ग्यारह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - श्री हरि का स्त्री रूप से दानवों को मोहित करते हुए देवताओं को अमृत पिलाने की बात शिव जी सुने।।1।।

वे अपने वृषभ के ऊपर चढ़कर देवी उमा और भूतगण के साथ उनको देखने श्री हरि जहाँ थे वहाँ आ गये।।2।।

भगवान से आदर पूर्वक सत्कार पाकर शिव भगवान नारायण की पूजा करते हुए उमा के साथ बैठते हुए पूछे।।3।।

हे जगन्नियामक देव देव श्री हरि आप इस जगत में सम्पूर्ण व्याप्त हैं। केवल आप स्वतन्त्र हैं। आप सारे वस्तुओं में अन्तर्यामी होकर रहते हैं। आप सबके पिता हैं। मै ईश हूँ मुझसे बढ़कर आप देव देव हैं।।4।।

मोक्ष चाहने वाले मुनिगण ऐहिक और पारत्रिक सुख भोग की आसक्ति को छोड़कर, फल की कामना न करते हुए आपके पाद कमल की आराधना करते हैं।।5।।

आप देश, काल, गुणों से पूर्ण होने के कारण ब्रह्म कहलाते हैं। आप नित्य मुक्त हैं। सत्वादि गुणत्रय रहित होने के कारण आप निर्गुण हैं। आप शोक रहित और केवल आनन्द रूप हैं। आप विकार रहित हैं। आप अपने अवतार गुण कर्मादियों से भिन्न हैं। आप इस प्रपंच की उत्पत्ति स्थिति और लय के कारण होते हुए इस प्रपंच से भिन्न हैं। आप अन्तर्यामी और स्वामी होने के कारण समस्त जीव आपके आश्रय से रहते हैं। किन्तु आपके लिए किसी की आश्रय की आवश्यकता नही है।।6।।

कार्य कारणों में आपही अन्तर्यामी होने के कारण आप सत् असत् दोनो शब्दों से वर्णित हैं। आपअद्वितीय हैं। सोना और उससे बने गहने में जैसा वस्तुत: भेद नही रहता वैसे कार्य कारण में नियामक होकर प्रवेश करने वाले आप के रूपमे वस्तुत: भेद नही है। आपके रूपों में लोग अज्ञान से भेद की कल्पना करते हैं। गुणत्र्य मिलने से अलग अलग कार्य पदार्थों में आप रहने से अलग अलग लगते हैं किन्तु आप अलग अलग नही हैं।

अज्ञान आदि उपाधियों से भी आप में भेद नही होता क्योंकि आप उपाधि रहित हैं।।7।।

वेदान्ती लोग आपको ब्रह्म मानते हैं, स्मृतिकार धर्म कहते हैं, पौराणिक कार्य कारण से भिन्न परमेश्वर आपको परम पुरुष बतलाते हैं, पांचरात्रिक लोग विमादि नव शक्तियुत परमात्मा समझते हैं, एकान्त भक्त महापुरुष, अव्यय और स्वतन्त्र मानते हैं।।8।।

मैं, परमायु नाम वाले ब्रह्म, और सात्विक स्वभाव वाले मरीचि इत्यादि ऋषिगण आपकी लीलाओं को जान नही पाते। आपकी बन्धक शक्ति हमारे बुद्धि को आच्छादित करती है। हे श्री हरि! हमारा हाल ही ऐसा है तो सदाकाल राजस तामस गुण से युक्त होकर अमंगल आचारों में सदा काल निरत मानवों दानवों के बारे मे क्या कहना?।।9।।

आपही इस जगत की स्थिति, उत्पत्ति, नाश जीवियों के अभीष्ट और बन्ध मोक्ष को करने वाले हैं वायु आकाश जैसे चराचर सर्वश्च को प्रवेश करते हैं वैसे आप भी उनमें अन्तर्यामी होकर प्रवेश करते हैं ऐसा समझना ही आपका स्त्रोत बनता है।।10।।

कल्याण गुणों से विहार करने वाले आपके अन्य अवतार लीलाओं को मैने देखा है। अब मैं आपके स्त्री रूप को देखना चाहता हूँ।।11।।

दैत्यों को मोहित करते हुए देवताओं को अमृत पिलाये आपके उस रूप को मैं कौतूहल से देखने के लिए यहाँ आया हूँ। कृपया उसको आप दर्शाइए।।12।।

श्री शुकदेव कहे- रुद्र देव की इस प्रार्थना को सुनकर भगवान विष्णु हँसकर भाव गम्भीर होकर कहे।।13।।

श्री भगवान कहते हैं- दैत्यों को कौतूहल उत्पन्न करते हुए उनको मोहित करने के लिए मैं स्त्री रूप धारण किया। अमृत कलश जब दैत्यों के वश में चला गया तब देवताओं के कल्याण के लिए मैने ऐसा किया।।14।।

हे देवोत्तम! यदि तुम इसको देखना चाहते हो तो मैं उसको दिखाऊगाँ। वह कामुकों के लिए बहुत अच्छा दृश्य होगा, विरक्तों में भी वह काम को उत्पन्न करेगा।।15।।

शुकदेव कहते हैं- इस प्रकार कहते हुए भगवान वहीं अदृश्य हो गये। शिव जी चारों ओर टक-मक देखते हुए उमा के साथ बैठ गये।।16।।

बाद में अनेक तरह के फूल और लाल कली वाले वृक्षों से युक्त एक उपवन में एक सुन्दर स्त्री को गेद खेलते हुए देखे। उसका नितम्ब सुन्दर साड़ी को कमरबन्द से सुशोभित था।।17।।

गेंद जैसे नीचे ऊपर होता था वैसे वह भी नीचे ऊपर झुकती थी। उससे उसकी स्तन द्वय हिलते थे। उनके भार से गले के हार भी आगे पीछे होते थे। लगता था स्तन के भार से उसकी कटि कभी भी मुड़ सकती है। नयी कली के समान चंचल पादों को वह इधर उधर रखती थी।।।8।।

गेंद सारे दिशाओं मे चलती थी। उसके अनुसार उसकी दोनों आँखें चारों ओर चंचल होकर देखने वाले को आकर्षक बनी थी। कान मे शोभायमान कुण्डल से गालों के ऊपर प्रकाश पड़कर गालों की शोभा बढ़ाये थे। घुँघराले बाल मुख की शोभा को और बढ़ाये थे।।।9।।

पहनी हुई रेशम की साड़ी बार बार नीचे सरकती थी। बाँन्धा हुआ वेणी खुलकर उसकी सौन्दर्य की अभिवृद्धि की थी। एक हाथ से बाल को पकड़ कर दूसरे हाथ से वह गेद खेलती थी। हाथ में पकड़े काले बाल से बाहर दिखने वाले उसका मुख काले मेघ से बाहर आने वाले चाँद के टुकड़े के समान दिखता था। वह मोहिनी अपनी मोहक शक्ति से सारे जगत को मोहित करती थी।।20।।

शिव उस मोहिनी को देखे। वह भी गेद खेलते खेलते लज्जा से आकर्षक हँसी हँसते हुए शिव की ओर तिरछी नजर डाली। शिव मोहित होकर उसी के प्रति देख रहे हैं। वह भी अपने के प्रति ही देख रही है यह देखकर शिव रोमांचित हो उठे। पास में बैठी उमा और चारों ओर से घेरा हुआ अपने परिवार गण को और स्वयं को भी भूल गये।।21।।

इतने में गेद उसकी हाथ से छूटकर दूर जाने लगी तब वह सुन्दरी उसके पीछे पीछे दौड़ने लगी। इतने मे हवा जोर से चलने के कारण पहना हुआ साड़ी कटी सूत्र के साथ हवा में उड़ गयी।।22।।

तब वह सुन्दरी और लज्जित होकर शिव की दिशा में अपनी तिरछी नजर फेकी। पहले ही सुन्दरी, मनोहरी, अब अत्याकर्षक रूप में लज्जित होकर खड़ी है। इसको देखकर शिव उसी में अनुरक्त हो गये।।23।।

वह पर स्त्री है, उसको देखना नही, यह परिज्ञान वह ही शिव से हटाई थी। शिव मोहवश होकर सारी लज्जा छोड़कर पार्वती के देखते हुए उसके पीछे दौड़ते चले गये।।24।।

नग्न वह सुन्दरी शिव को अपने पास दौड़ रहे देखकर लज्जा से पानी पानी हो गयी। वृक्षों के आड़ में अपने को छिपाते हुए जोर से खिलखिलाते हँसते हुए दौड़ती रही।।25।।

शिव की सारी इन्द्रियाँ उद्रिक्त हुए, वे मोहवश होकर हथिनी के पीछे दौड़ने वाले हाथी के समान उसका पीछा करने लगे।।26।।

शिव बहुत जोर से दौड़ते हुए उसके मन के विरुद्ध बाल से उसको पकड़कर अपने दोनों हाथों में

लेकर उसको आलिंगन किए।।27।।

शिवजी के बलपूर्ण पकड़ से वह अपने को छुडाने के लिए प्रयास करने वाले उनके पर बिखर गये। इससे शिव का व्यामोह और बढ़ गया।।28।।

घननितम्ब वाली यह सुन्दर स्त्री लोक मोह के लिए श्री हरि से धारण किया हुआ स्त्री रूप है। वह शिव के हाथो से अपने को छुड़ाकर वह दौड़ने लगी।।29।।

शिव अपने शत्रु मदन से हारे जैसे लगा। वे अद्भुत कार्य समर्थ भगवान नारायण के स्त्री रूप के पीछे पीछे दौड़े।।30।।

बड़ा वीर्यशाली हाथी मद मे आकर हथिनी के पीछे जैसे दौड़ता है वैसे दौड़ने वाले अमोघ वीर्य शिव जी को मोहिनी के पीछे दौड़ते समय वीर्यस्खलन हुआ।।31।।

हे राजा! महात्मा शिव का वीर्य इस पृथ्वी पर जहाँ जहाँ गिरा उन सारे प्रदेश में सोना और चाँदी का का खान (खदान) बने।।32।।

शिवजी मोहिनी के पीछे दौड़ते रहे। मोहिनी नदी, सरोवर, पहाड़, वन, उपवन, और ऋषि आश्रम इत्यादि जहाँ जहाँ पर जाती थी उसके पीछे शिव जी दौड़ते रहे।।33।।

हे राजश्रेष्ठ- वीर्यस्खलन होते ही शिव के काम का आवेग उतर गया। श्री हरि के मोहक शक्ति से मैं मोहित हो गया था। इसकोजान कर शिवजी अपने को सम्भालते हुए मोहिनी का पीछा करना छोड़ दिए।।34।।

जगत के अन्तर्यामी, अपने को भी समझने के लिए असाध्य श्री हरि का महात्म्य को रुद्र देव जी अब समझ गये। अब तक उनकी बातों की सत्यता को वे पूरा नही समझे थे, अब तो उनको उन पर पूरा पूरा विश्वास हो गया।।35।।

शिव जी का मन अब स्वस्थ हो गया। अस्वतन्त्र होने के कारण यह बर्ताव सहज मानते हुए वे लज्जित नही हुए। इसको देखकर श्री हरि परम सन्तुष्ट होकर पुरुष रूप धरिण करके सामने आये।।36।।

भगवान बोले- परम प्रिय रुद्र देव, यह ठीक ही हुआ। थोड़े समय के लिए किसी से भी पार न पाने वाले असाध्य मेरी बन्धक शक्ति से आप मोहित होकर भी अब अपने स्वभाविक स्थिति को वापस होगये हैं।।37।।

मोहक अन्यान्य लीला विलासों को रचाने वाली मेरी बन्धक शक्ति को (माया को) मनोनिग्रह न

रहने वाला कोई पार कर नही सकता। आपके बिना विषयासक्त अन्य पुरुष कौन मेरी यह बन्धक शक्ति को पार करने वाला है।।38।।

मै काल नामक लय मूर्ति आपके सामने खड़ा हूँ। मैने जो रूप दिखाया था वह मेरी ही इच्छा से मैने ही स्वयं अपने एक अंश से रचाया हूँ। मेरे अनुग्रह से आपको भी वह त्रिगुणात्मक प्रकृति (माया) बन्धक नही बनेगी।।39।।

श्री शुक देव कहते हैं- हे राजा! श्री हरि का यह प्रेमपूर्ण प्रशंसा को सुनकर श्री शिव जी भगवान को परिक्रमा करते हुए, उनकी अनुज्ञा से अपने परिवार के साथ कैलाश को चले गये।।40।।

हे राजा! महर्षियों ने अपनी स्तुति करते रहे तो शिव पार्वती के सामने भगवान नारायण का स्वरूपांश भूत मोहिनी रूप की स्तुति किए।।41।।

रुद्र जी कहते हैं- हे देवी! अनादि परम पुरुष परम देव श्री हरि की मोहक स्त्री रूप को तुमने भी देखा न? भगवान के विभूति रूपों मे श्रेष्ठ रूप वाला मैं भी उससे प्रभावित हुआ, परवश हुआ तो मेरे अधीन रहने वाले जीव लोक काम से मोहित होता है। इसमें क्या विशेषता है।।42।।

मेरे हजार वर्ष ध्यान करते समय तुम मेरे पास आकर किसके बारे में तप कर रहे हैं यह प्रश्न पूछी थी न। मैं और किसी की नही, वही साक्षात पुराण पुरुष श्री हरि का ध्यान मग्न था। उनमें काल से होने वाले जरा मरणादि दुःख कोई नही रहता। वेद भी उनका पूर्ण रीति से वर्णन कर नही सकता।।43।।

शुक देव बोले- हे राजा! श्री हरि के पराक्रम की यह गाथा हमने बतायी। समुद्र मंथन के समय में वे अपने पीठ पर मंदर पर्वत को वहन कर अपने पराक्रम को दिखाये थे।।44।।

इस कथा को बार बार सुनने वाले और कहने वाले के सारे कार्यों की सिद्धि होती है। उनका कोई काम व्यर्थ नही होगा। ब्रह्मादियों से स्तुत्य श्री हरि का गुणगान इस संसार के समस्त दुःखो को नाश करने वाला होता है।।45।।

मैं उन श्री हरि को नमस्कार करता हूँ। दुष्ट लोगों को न मिलने वाला केवल भक्ति मात्र से प्राप्त होने वाला उनके पादारविन्द के शरण मे गये हुए देवताओं को समुद्र मंथन से मिला हुआ अमृत को खिलाये। दैत्यों के वंचना के लिए स्त्री रूप धारण कर भगवानों को मोहित किए। इससे यह सिद्ध होता है भक्ति से पास आने वाले की सारी मनोकामनाओं को भगवान पूर्ण करते हैं।।46।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - बारह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - सूर्य के पुत्र वैवस्वत मनु का नाम है श्राद्धदेव। अब चल रहा सातवाँ मन्वन्तर के वे ही प्रवर्तक हैं। उनके पुत्रों के बारे में कहता हूँ सुनो।।1।।

इक्ष्वाकु, नभ, दृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट, करूश, वृषध्र, वशुमान इस प्रकार वैवस्वत मनु को दस पुत्र हुए।।2,3।।

आदित्य, वशु, रूद्र, विश्वेदेव, मरूदगण, अश्विनिकुमार और ऋभू ये इस मन्वतन्तर के देवताएँ हैं। इस मन्वन्तर के इन्द्र पुरन्दर हैं।।4।।

कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरतद्वाज ये इस मन्वन्तर के सप्त ऋषि हैं।।5।।

इस मन्वन्तर में भी भगवान अवतार लिए। कश्यप ऋषि से अदिति के गर्भ में आदित्यों में अन्तिम वामन रूप धारण किए हुए भगवान श्री विष्णु अवतार लिए।।6।।

अब तक सात मन्वन्तर के बारे में मैने वर्णन किया है अब आगे के सात मन्वन्तर के बारे में वर्णन करता हूँ। उनमे भी भगवान विष्णु के अवतार होते हैं।।7।।

स्वायंभू , स्वारोचिष, उत्तम, तापस, रैवत, और चाक्षुष नाम के छः मन्वन्तर बीत चुके हैं। सातवाँ यह वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। आगे के सात मन्वन्तर है क्रमशः सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रूद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि।

विवस्वान नाम के सूर्य देव को विश्वकर्मा की पुत्रियाँ, संज्ञा और छाया नाम की दो पत्नी थी। इस बात को मैं पहले ही षष्ठः स्कंध मे बोल चुका हूँ।।8।।

कई कहते हैं वडवा नाम की तीसरी भी एक पत्नी थी। उनमे संज्ञा देवी की अपत्य तीन यम, यमी और श्राद्ध देव। छाया देवी के पुत्रों के बारे में और कहूँगा। सावर्णि और शनैश्च ये दो पुत्र और संवरण मुनि की

पत्नी तपती नाम की बेटी। वडवा देवी के पुत्र अश्वनी देवताएँ।।10।।

सातवाँ मन्वन्तर के बाद आने वाले आठवाँ मन्वन्तर को सावर्णि मनु बनता है। सावर्णि को निर्मोह, विरजस्क इत्यादि पुत्र बनते हैं।।11।।

इस मन्वन्तर में सुतपस, विरज और अमितप्रत देवता बनते हैं। विरोचजन पुत्र बलि उस समय का इन्द्र बनता है।।12।।

बलि चक्र वर्ति में भगवान विष्णु जब तीन पाँव जमीन माँग कर वह सारे भूमण्डल को दान देता है बाद में आठवाँ मन्वन्तर में इन्द्र पद को प्राप्त कर बाद मे उसको भी त्याग कर मुक्ति को पाने वाला है।।13।।

भगवान पहले उसको बन्धक बनाए। बाद मे प्रसन्न होकर उसको सुतल लोक में रखे। वहं लोक स्वर्ग से भी वैभवशाली है। अब बलि उसमें इन्द्र के समान रहता है।।14।।

आठवाँ मन्वन्तर में गालव, दीप्तिमन्त, परशुराम, अश्वत्थाम, कृप, ऋष्यश्रृगं और हमारे पूज्य पितृवर्य वादरायण जी ये सप्त ऋषि बनते हैं।।15।।

ये अपने योग शक्ति से उस मन्वन्तर के ऋषि बनते हैं। अब ये अपने अपने आश्रम मे रहते हैं।।16।।

देवगुह्य नाम के मुनि से अपनी पत्नी सरस्वती में प्रभु नाम से भगवान श्री हरि अवतार लेते हैं। सार्वभौम के लिए भी सार्वभौम बनकर पुरन्दर से इन्द्र सिंहासन को हटाकर बलि को देते हैं।।17।।

हे राजा! नौवाँ मनु वरुण पुत्र दक्षसावर्णि। भूतकेतु, दीप्तकेतु आदि उनके पुत्र होते हैं।।18।।

पाठ, मरीचिगर्भ इत्यादि इस मन्वन्तर के देवता बनते हैं। अद्भुत इन्द्र बनता है। द्युतिमन्त इत्यादि सप्तर्षि बनते हैं।।19।।

आयुस मन्त से अम्बुधारा में भगवान ऋषभ देव होकर अवतार लेते हैं। वे तीनों लोको को रक्षा करते हुए राज्य चलाते हैं।।20।।

दसवाँ मनु उपश्लोक के पुत्र पूज्य ब्रह्मसावर्णि, भूरिषेण इत्यादि उनके पुत्र। हविष्मान इत्यादि सप्तर्षि बनते हैं।।21।।

इस ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तर में भी भगवान अवतार लेते हैं। विश्वसृज की पत्नी से अवतार लेकर श्री मूर्ति नाम से प्रसिद्ध होते हैं। वे पूरे जगत को सन्तोष देते हैं।।22।।

हविष्मान, सुकृत, सत्य, जय, मूर्ति ये उस मन्वन्तर के ऋषि होते हैं। सुवासन, विबुद्ध, इत्यादि इस मन्वन्तर के देवताएँ। शम्भू नाम वाले इन्द्र बनते हैं।।23।।

विश्वसृज की पत्नी विषुचि में अवतार लिए, सर्वेष **शान्त** नाम वाले श्री हरि शम्भू नाम के इन्द्र के मित्र बनते हैं।।24।।

अतुल मनोबल वाले धर्म सावर्णि आगे ग्यारहवाँ मनु बनने वाले हैं। उनको सत्य धर्म इत्यादि दस पुत्र होते हैं।।25।।

विहंगम, कामगंम, निर्वाणरुचि, इस मन्वन्तर के देवता बनते हैं। उनके लिए वैधृत नाम वाले इन्द्र होते हैं। अरुण इत्यादि इस मन्वन्तर के ऋषि गण हैं।।26।।

वैधता देवी में आर्य के पुत्र होकर श्री हरि अंश रूप से अवतार लेने वाले हैं। वे धर्म सेतू नाम से प्रसिद्ध होकर तीनो लोको की रक्षा करते हैं।।27।।

हे राजन, रुद्र सावर्णि बारहवाँ मनु होने वाले हैं। देववान, उपदेव और देव श्रेष्ठ उनके पुत्र बनते हैं।।28।।

उस मन्वन्तर में ऋतधाम इन्द्र बनते हैं। हरित इत्यादि देवताएँ, तपोमूर्ति, तपस्वी और अग्नीध्रक इत्यादि ऋषि बनते हैं।।29।।

स्वधाम नाम से सूनृता नाम की पत्नी में सत्य सह के पुत्र होकर श्री हरि अवतार लेकर उस रुद्र सावर्णि मन्वन्तर का पालन करते हैं।।30।।

विशेष मनोबल वाले देवसावर्णि तेरहवाँ मनु बनने वाले हैं। चित्र सेन, विचित्रसेन उनके पुत्र होते हैं।।31।।

सुकर्म, सूत्राम उस मन्वन्तर के देवताएँ, दिवषपति उनका इन्द्र। तब निर्मोक तत्वदर्श इत्यादि ऋषि बनते हैं।।32।।

हरि के अंश योगेश्वर देव होत्र के पुत्र बनकर बृहती देवी में अवतार लेने वाले हैं। वे दिवसपति को बहुत ऐश्वर्य देने वाले बनते हैं।।33।।

इन्द्र सावर्णि चौदह मनु बनने वाले हैं, गुरु, गम्भीर बुद्धि इत्यादि उनके पुत्र होते हैं।।34।।

विचित्र और चाक्षुष उस काल के देवताएँ। शुचि उनका इन्द्र बनने वाले हैं। अग्नी, बाहु, शुचि, शुद्ध मानष इत्यादि सप्तर्षि बनते हैं।।35।।

उस मन्वन्तर में भगवान श्री हरि विताना देवी में सत्रायण के पुत्र बनकर बृहद्भानु नाम से अवतार लेते हैं। हे महाराज! वे यज्ञ क्रिया को बढ़ावा देते हैं।।36।।

हे राजा! पहले अब और आगे इस रीति से तीनों कालों में चलने वाले चौदह मन्वन्तर के बारे में मैने बता दिया। ये चौदह मन्वन्तर से बनने वाला ब्रह्मा जी के एक दिन कल्प में चारों युग एक बार चलते हैं।।37।।

ब्रह्मा जी का सौ वर्ष के आयु वाले एक दिन को दिनकल्प कहते हैं। इस एक दिन कल्प में चौदह मन्वन्तर व्यतीत होते हैं, और एक हजार चतुर युग बीत चुकते हैं, यानी एक युग में बहत्तर चतुर्युग समाप्त होते हैं। कृत, त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग मिलकर एक चतुर्युग बनता है। इन चार युगों मे देवताओं का बारह हजार देवता वर्ष होते हैं। इस रीति से चतुर्युग प्रमाण बारह हजार देवमान का वर्ष होते हैं। मनुष्यमान का एक वर्ष देवताओं के लिए एक दिन बनता है। उत्तरायण दिन, दक्षिणायन रात इस रीति से मानवमान के चार सौ बत्तीस करोडू वर्ष ब्रह्ममान का एक दिन बनता है इसी प्रमाण का एक रात बनता है। ब्रह्मा जी के एक दिन के अन्त में भूः, भुवः, स्वः नाम के तीन लोक जल जाते हैं। स्वर्ग में रहने वाले देवता ऋषि इत्यादि जन ऊपर वाले महर्लोक जनो लोक इत्यादि लोक में जाते हैं। ब्रह्मा जी के रात गुजर कर दिन में पुनः सृष्टि प्रारम्भ होने के बाद पुनः इन तीन लोको में आ जाते हैं। प्रति मन्वन्तर के अन्त में दो हजार देवमान के वर्ष काल के अन्त में मन्वन्तर प्रलय होता है। उस समय तीनों लोक प्रलय जल से आवृत होते हैं, किन्तु नाश नही होते। ब्रह्मा जी के सौ वर्ष के आयु को एक **पर** कहते है। पर के एक अर्धरात का भाग बीत चुका है अब द्वितीय परार्ध स्वेत वराह, कल्प के प्रथम दिन मे सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है। अठाइसवाँ चतुर्युग इस कलयुग के अन्त में समाप्त होने वाला है।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

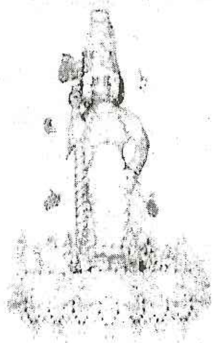

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - तेरहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजापरीक्षित पूछते हैं - हे पूज्य! इन मन्वन्तरों मे ये मनु महराज के कर्तव्य क्या हैं और ये किन से अपने कर्तव्य से जुड़े हैं।।1।।

शुकदेव जी कहते हैं- हे राजा! प्रत्येक मन्वन्तर के मनु, मनुपुत्र, सप्तर्षि और इन्द्र सारे देव समूह के साथ परम पुरुष श्री हरि के आज्ञानुवर्ती होते हैं।।2।।

राजा मैने यज्ञ इत्यादि के बारे मे कहा है न वे सारे भगवान के अवतार हैं। उनकी आज्ञानुसार ही मनु इत्यादि लोग इस जगत की रक्षा करते हैं।।3।।

सप्तर्षियों ने पहले दिनकल्प के अन्त में प्रलयकाल के प्रभाव से गुप्त हुए वेदसमूह को अपने तप के बल से दर्शन कर लेते हैं। उन्ही वेदों से लोग सनातन धर्म की जानकारी रखते हैं।।4।।

उसके बाद तप शौच, दया और सत्य नाम के चार पाव से खड़े हुए धर्म को मनुओं ने अपने मन्वन्तर के काल में श्री हरि के आज्ञानुसार इस भूमि में मन लगाकर प्रसार करते हैं।।5।।

उनके बाद मनुपुत्र और उनके संतति मन्वन्तर के अन्त तक भूमि में धर्म की रक्षा करते हैं। यहाँ के देव समूह उस मन्वन्तर के समय में हविर्भाग पाते रहते हैं।।6।।

उस मन्वन्तर के इन्द्र भगवान देने वाले तीनों लोको का ऐश्वर्य को भोगते हुए तीनों लोको का पालन करते हैं। सारे लोकों में यथेष्ट पानी बरसाते हैं।।7।।

प्रत्येक युग मे श्री हरि कपिलादि सिद्ध रूप धारण कर ज्ञान योग को, व्यासादि ऋषि रूपधारी बनकर कर्मयोग को, दत्तात्रेयादि योगेश्वर रूप धारण कर योग शास्त्र को लोगों को उपदेश देते हैं।।8।।

दक्ष इत्यादि प्रजापतियों में रहते हुए प्रजोत्पत्ति करते हैं। इन्द्र रूप में रहते हुए असुर संहार करते हैं और काल रूप से दुष्टों का दमन करने के लिए तमोगुण की अभिवृद्धि करते हैं।।9।।

इन ऋषियों ने भगवान के गुणगान को गाते हैं, भगवान उनके आखों के सामने दिखते हैं। लौकिक नाम रूप रहित उनके अचिन्त्याद्भूत शक्ति से मोहित लोग अन्य दुष्ट शास्त्रों से उनका ज्ञान नही् पाते।।10।।

इस रीति से मैंने अवान्तर कल्प के परिमाण के बारे में बताया है। इस अवान्तर कल्प में ही चौदह मन्वन्तर चलते हैं। यह पुराण जानने वालों का अभिप्राय है।।11।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

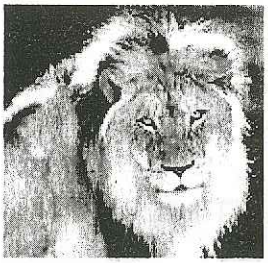

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - चौदहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - श्री हरि भगवान होते हुए भी पूरे जगत के मालिक होने के बाद भी दरिद्र ब्राह्मण जैसे बलिचक्रवर्ति के पास तीन पाव जमीन क्यों मांगे? उसको पाने के बाद भी बलि को बन्धक बनाके पाताल मे क्यों रखे।।1।।

भगवान पूर्णकाम हैं तो भी वे दान मागते हैं और निरपराध बलि को बन्धन में रखे हैं। भगवान बिना कारण कुछ करने वाले नही हैं। इसी कारण हम इस उद्देश्य के पीछे के रहस्य को जानना चाहते हैं। हमे इसके बारे में बहुत कुतूहल हो गया है।।2।।

श्री शुकदेव बोले- पूर्व काल में देवासुर के युद्ध में बलिचक्रवर्ती इन्द्र से हारकर अपने सारे सम्पदा को खो बैठे। जीवन का सार सर्वस्व गवाँ दिए। शुक्राचार्य जी की कृपा से पुनर्जीवित होकर उनके शिष्य बन कर सारे भृगुवंश के लोगों को बहुत तरीके से सेवा करने लगे।।3।।

बाद में उन्ही की कृपाबल से तीनों लोकों को जीतना चाहा। महासामर्थ्यशाली भृगुकुल के मुनियों ने सम्प्रीत होकर बलि को महाभिषेक विधि से अभिषेक करके उससे विश्वजित नाम का यज्ञ करवाये।।4।।

उन हविष्यों से अग्नि प्रज्वलित हुई, उससे एक सोने का रथ, इन्द्र के घोड़े के समान, उसी रंग वाले घोड़े और सिंह लान्छन से शोभायमान ध्वज उस होम कुण्ड से ऊपर आये।।5।।

उनके साथ सोने से बना हुआ दिव्य धनुष, दो क्षय रहित तरकस (तूणूर), दिव्य कवच मिले। बलि के पितामह श्री प्रह्लाद जी कभी न सूखने वाली फूल माला दी, गुरु शुक्राचार्य शंख दिए।।6।।

ब्राह्मणों के अनुग्रह से बलि चक्रवर्ती युद्ध के सारे सामग्री को सम्प्राप्त किए। ब्राह्मण स्वस्ति वाचन किए। उनको परिक्रमा करते हुए दण्डवत प्रणिपात करने के बाद प्रह्लाद जी को नमस्कार करते हुए दिग्विजय करने की आज्ञा मांगी।।7।।

बाद में महारथी बलि शुक्राचार्य से यज्ञ में मिले दिव्य रथ के ऊपर चढ़कर वहीं मिले कवच, खड्ग,

बाण, तरकस (तूणूर) और फूल माला को धारण किया। प्रकाशमान सोने के कड़ा और मकर कुंडल को धारण किया हुआ बलि यज्ञ वेदिका में शोभायमान योगाग्नि के समान शोभित हुआ।।9।।

उसके परिवार के लोग उसके समान ऐश्वर्य बल और कान्ति वाले हैं। अन्तरिक्ष को केवल देखने से पीते हैं ऐसे लगने वाले आँख वाले हैं, ऐसे सेनापति रथ में चढ़कर बलि के साथ आक्रमण करने चले। इनके साथ बलिष्ठ बलि अपनी बड़ी दैत्य सेना को आगे चलाते हुए भूमि और आकाश को कँपाते हुए सम्पत भरित अमरावती के ऊपर चढ़ाई की।।10,11।।

वह अमरावती नगर अत्यन्त सुन्दर नन्दन वन से युक्त, अनेक उपवनो से सुशोभित नगरी है। वहाँ के वन उपवन उद्यानों में कूंजने वाले पक्षी, झंकार करने वाले मधु मक्खी शोभा को और बढ़ाये हैं। वहाँ कल्प वृक्षों के कतार फल पुष्प के वजन से नीचे झुके हैं। हंस, राज हंस, बक, चक्रवाक और जल कुक्कुट भरे हुए कमल से सुशोभित सरोवर में देवतागण अपने स्त्रियों के साथ विहार कर रहे हैं। नगर के चारों ओर रहने वाली खाईं में आकाश गंगा बहती है।।12,13,14।।

अड्डा से युक्त किला, आग के समान प्रकाशमान होकर सोने के दरवाजों और खिड़कियों से तथा स्फटिक के गोपुरों से सुशोभित है।।15।।

विशाल राज मार्ग, सभागार, बरामदे और रास्तों से रचित हजारों घरों से शोभायमान वह नगर विश्वकर्मा से निर्माण हुआ है।।16।।

वहाँ रत्न से निर्मित खिड़कियाँ, वज्र से निर्मित आँगन वाले मंजिलों में, नित्य यौवन वाले, सौन्दर्य युक्त निर्मल वस्त्र धारण किए हुए सोलह वर्ष के वय वाले देवता पुरुष अपने स्त्रियों के साथ आनन्द से रहते हैं।।17।।

उस नगर के राजमार्ग में देवता स्त्रियों के केशपाश से गिरे हुए सौगन्धिका पुष्पों की सुगन्ध मन्द वायु से प्रसारित हो रही है।।18।।

सोने की खिड़कियों से सुगन्धिज द्रव्य की सुगन्ध युक्त सफेद धूप बाहर आते हुए राज मार्ग में प्रसरित हो रही है। वहाँ देवता स्त्रियों का मुक्त संचार चलता है।।19।।

मोती की माला, रत्न से शोभित सोने के ध्वज चिन्ह, अनेक तरह के झण्डाओं से युक्त गुम्बज इस नगर में भरे हुए हैं। उनके ऊपर मोर, कबूतर और मधुमक्खी अपने कुजंन से रंजित कर रही हैं। विमान में बैठी हुई देवता स्त्रियों के मंजुलगान से पूरा नगर मंगलमय बन गया है।।20।।

मृदंग, शंख, आनक, दुंदुभियों के ताल के साथ वीणा, मृदंग, मुरली के मंजुल गान के साथ

गन्धर्वों के नृत्य नगरवासियों के मन का अह्लाद बढ़ा रहे हैं। इस नगरी के प्रकाश सूर्यादि ग्रहों को भी लज्जित करता है।।21।।

इस अमरावती नगर में पापी, असूया वाले, लोभी लोग, हिंसा करने वाले, कपटी, अहंकारी, कामुक और लोभी जन प्रवेश नही कर पाते। इन दोषों से रहित लोग ही यहाँ प्रवेश कर सकते हैं।।22।।

बलि चक्रवर्ती ने अपने सेनापतियों के साथ देवताओं के इस अमरावती नगर को बाहर से चारों ओर से अपने सैन्य के सहायता से घेर लिया। शुक्राचार्य जी द्वारा दिए हुए महास्वर वाली बड़े शंख को बजाया। उससे शची इत्यादि इन्द्र की रानियों को भय हो गया।।23।।

इन्द्र बलि की इस युद्ध सिद्धता को जानकर देवता समूह के साथ अपने गुरु बृहस्पत्याचार्य के पास जाकर प्रश्न पूछे।।24।।

भगवन, हमारा शत्रु बलि महान सिद्धता के साथ युद्ध के लिए आया है। मुझे लगता है कि हम उसका सामना नहीं कर पायेंगे। हमें बताइए कि वह इतना पराक्रमशाली कैसे बना।।25।।

अब इस जगत में उसका कोई सामना नहीं कर सकता। लगता है कि वह अपने मुख से सारे जगत को पी लेता है, अपनी जीभ से दशों दिशा को चाट लेता है, आँखो से अन्तरिक्ष को जला देता है। लगता है कि प्रलयकाल नहीं अग्नि स्वयं बलि के रूप में आ गयी है।।26।।

मेरे इस शत्रु को इतनी बेजोड़ वीरता कहाँ से आयी? उसका कारण हमें बताइए। उसका ओज, सहन शीलता, बल, पराक्रम और यह युद्ध सिद्धता उसको कैसे मिली।।27।।

गुरु वृहस्पत्याचार्य कहते हैं- हे इन्द्र! तुम्हारे शत्रु का श्रेय कैसे हुआ यह मैं जानता हूँ। सारे वेदों की जानकारी रखने वाले उनके गुरु शुक्राचार्य जी ने अपने शिष्य में इस बल पराक्रम को भर दिए हैं।।28।।

यम के सामने जैसे कोई खड़ा नही हो सकता वैसे ही भगवान श्री हरि को छोड़कर अब बलि के सामने तुम्हारे जैसे अन्य कोई खड़ा नहीं हो सकता।।29।।

अब अन्य कोई उपाय नही है। आप सब लोग इस स्वर्ग को त्यागकर अदृश्य होकर रहें। शत्रु के विपदकाल की निरीक्षा करने के सिवाय और कोई चारा नही है।।30।।

यह बलि चक्रवर्ती अब ब्राह्मणों के बल से बहुत बढ़ गया है, शक्तिशाली बना है। किन्तु आगे चल कर उन्ही ब्राह्मणों का अपमान करते हुए वह नष्ट भी होने वाला है।।31।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- भविष्य को ठीक तरह से जानने वाले गुरु बृहस्पत्याचार्य जी से उपदेश पाकर उनके अनुसार देवतागण स्वर्ग को छोड़कर अपने इष्ट अलग अलग सूक्ष्मरूप धारण कर चले गये।।32।।

देवताओं के इस रीति से अदृश्य होने के बाद विरोचन पुत्र बलि देवताओं की उस सुन्दर नगरी अमरावती को अपने वश में लेकर तीनों लोकों के ऊपर अपना राज्य प्रस्थापित किया।।33।।

इससे बलि पूरे विश्व को जीत लिया। अपने विधेय शिष्य बलि से शिष्य वत्सल भृगुकुल के वे ब्राह्मण सौ अश्व मेध यज्ञ करने के लिए उसको प्रवृत्त किए।।34।।

इन्द्र पद सौ अश्वमेध याग करने वाले को मिलता है। किन्तु बलि को वह शुक्राचार्य जी के तप प्रभाव से मिला है। उसको शाश्वत रूप से अपनाने के लिए सौ यज्ञ को करना ही पड़ेगा। इसी के लिए उनके गुरु बलि को सौ अश्वमेध याग करवाने लगे।

अश्वमेध यागों के बल से बलि तीनों लोको में अपार कीर्ति को पाया। उसकी कीर्ति चन्द्र के प्रकाश के समान दशों दिशा में प्रसारित हुयी।।35।।

ब्राह्मणों के पूज्य शुक्राचार्य जी के अनुग्रह से समृद्ध राज्य को पाया हुआ महाज्ञानी बलि अपने को कृतकृत्य समझकर सुख भोग में मग्न रहा।।36।।

बलि की यह प्राप्ति बहुत दिन रहने वाली नही है। वह स्वर्ग उसे देवेन्द्र के समान हरि करुणा से मिला हुआ नही है। गुरु के तप बल से किन्तु अन्याय से अपहरण करके प्राप्त किया है। इसके लिए यह तात्पूर्तिक रहने वाला है।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - पन्द्रहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - इस रीति से अपने पुत्र देवतागण को स्वर्ग से बिछुड़ कर अदृश्य होकर रहने का सन्दर्भ आया हुआ देखकर देव माता अदिति अनाथ के समान दुखित हुई।।1।।

बहुत समय के बाद समाधि को त्याग कर बाहर आये हुए भगवान कश्यप ऋषि हर्ष उल्लास के साथ अपनी ज्येष्ठ पत्नी अदिति के आश्रम को आये।।2।।

वहाँ अदिति से विधिवत् सत्कार पाकर उचित आसन मे बैठ गये। पत्नी के दीन वदन को देखकर प्रश्न पूछे।।3।।

हे मंगलांगि! स्वर्ग लोक मे ब्राह्मणों को कोई कष्ट हुआ है क्या? धर्म की ग्लानि हो रही है क्या। अपनी इच्छा के अनुसार चलने वाली मृत्यु से कोई दुःख आया है क्या?।।4।।

हे गृहस्थ धर्म में अनुकूल रहने वाली कुटुम्बिनी, घर में कोई कष्ट हुआ है क्या? गृहस्थों को अर्थ काम की सिद्धि केवल घर से ही होती है।।5।।

अथवा तुम घर के काम में जुटे होकर अतिथियों का सत्कार ठीक तरह से नही कर सकी क्या? उससे आए हुए अतिथि रुष्ट होकर घर से बाहर गये क्या।।6।।

जिस घर में अतिथियों को केवल जल से ही क्यों न हो, सत्कार नही मिलता वह घर निश्चित रूप से स्मशान के समान है।।7।।

अथवा जब मैं घर छोड़ कर गया, तब मेरे विरह के कारण मन में उद्विग्न होकर यज्ञ यागादि कार्य में विघ्न आया क्या।।8।।

ब्राह्मण और अग्नि, सारे देवताओं के स्वामी नारायण के मुख से जन्मे हैं। उनकी आराधना से गृहस्थ लोग अपने इष्टार्थो को देने वाले उत्तम लोको को पा सकते हैं।।9।।

हे श्रेष्ठ मन वाली! तुम्हारे सारे बच्चे ठीक हैं न, तुम्हारा मुख छोटा होने से मेरे मन की शान्ति चली गयी है।।10।।

अदिति उत्तर देती है- ज्ञानादि गुण पूर्ण और गृहस्थाश्रम को पालने वाले आप मेरे पति हैं। यह मेरा भाग्य है। आपके होने के कारण यहाँ ब्राह्मण, गाय, धर्म और अन्य लोगों के लिए छेम ही है। धर्म, अर्थ, काम, रूप तीन वर्गों का उत्तम स्थान बना हुआ आपका यह घर उत्तम स्थिति में है।।11।।

आपके ध्यान बल से मेरे से अग्नि, अतिथि, सेवक, यति और अन्य भिक्षुकों सेवा में कोई कमी नही हुई है।।12।।

हे मेरे बच्चों के स्वामी! आपही स्वयं होकर मुझको धर्माचरण के बारे में आदेश देते समय मेरी मनोकामना कैसे अपूर्ण रहेगी?।।13।।

हे मरीचि-पुत्र! आप मेरे प्रभु हैं। सत्व रज तम से भरे हुए देव-मानव-दानव ये सारी संसति आपके शरीर और मन से उत्पन्न हुए हैं। सर्वेश्वर भगवान हरि काल गुण के अनुसार देवादि अपने संतति को इष्टार्थ देने वाले होते हैं। इस समय वे दानवों को इष्टार्थ दे रहे हैं।।14।।

हे व्रतनिष्ठ स्वामी! आप अपने अर्ध शरीर वाली मेरे बारे में थोड़ा विचार करें। हमारे शत्रु दानव लोग हमारी सारी सम्पदा और वास स्थान तक को हमारे से हड़प लिए हैं। अब हमारी आपको छोड़कर रक्षा करने वाला और कौन है।।15।।

शत्रु हमको हमारे मकानों से बाहर कर दिए हैं। मेरे पुत्रों के ऐश्वर्य, सम्पदा, यश, स्थान आदि का हमारे बलिष्ठ शत्रु दानव लोगों के बन गये हैं। इससे मैं दु:ख सागर में डूब गयी हूँ।।16।।

आप साधु और कल्याण करने वाले हैं। आप जो खोया है उसको वापस दिलाने का अनुग्रह करें। आप मन से अनुग्रह किए तो हमारा कल्याण होता है।।17।।

श्री शुकदेव कहे- अदिति की इस प्रार्थना को सुनकर कश्यप मुनि हँसते हुए कहे। भगवान की लीला को, उनकी इच्छा को समझना सरल नही है। सारा जगत माता-पुत्र के मोह बन्धन से बन्धित है।।18।।

जीव से अलग विलक्षण वाला यह भौतिक शरीर कहाँ? और प्रकृति से विलक्षण यह जीव कहाँ यह दोनो कभी एक नही बनते। तो कौन किसका पति, पत्नी और पुत्र बनते हैं? शरीर और यह अन्य वस्तु स्वतन्त्र रूप से मेरा है यह गलत अभिमान ही इस दु:ख का कारण है।।19।।

तुम अब भी इस अभिमान को छोड़ नही सकती हो तो सारे प्राणियों के हृदय गुहा में रहने वाले

जगद्गुरू भगवान परम पुरुष जनार्दन की आराधना करो।।20।।

भगवान श्री हरि तेरी मनोकामना को पूर्ण करेगा। वे दीनों में दया करते हैं। भगवान केवल भक्ति से सन्तुष्ट होते हैं और वे कुछ नही चाहते, यह मेरा अभिप्राय हैं।।21।।

अदिति कहती है- हे मुने, सत्य संकल्प भगवान जगन्नाथ की मैं अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए कैसी आराधना करुँ।।22।।

हे मुनिश्रेष्ठ! बच्चो के साथ दु:खित मुझमें भगवान जल्दी प्रसन्न हों इसके लिए मै किस विधि से उनकी उपासना करुँ। आप उस विधि के बारे में बताइए।।23।।

कश्यप मुनि बोले- पुत्र प्राप्ति के लिए मैंने भगवान चतुर्मुख ब्रह्मा जी के पास जब प्रार्थना किया था तब वे केशव के तोषण के लिए जिस व्रत के बारे में मुझे उपदेश दिए, उसको मै तेरे लिए कह रहा हूँ।।24।।

फागुन मास के शुक्ल पक्ष में बारह दिन पर्यन्त क्षीर व्रत करते हुए परम भक्ति से कमल नयन श्री हरि की पूजा अर्चना करनी चाहिए।।25।।

चतुर्दशि के सहित माघ मास के अमावस्या के दिन जंगली सुअर से खोदी हुयी मिट्टी को पूर्ण शरीर को लगाते हुए नदी प्रवाह में स्नान करना चाहिए। यदि जंगली सुअर से खोदी हुयी मिट्टी नही मिले तो कहीं की पवित्र मिट्टी से मृत्तिका स्नान करना चाहिए। तब आगे का मन्त्र कहना चाहिए।।26।।

त्वम् देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता।

उद्धृतासि नमस्तुभ्यम् पाप्मानम् मे प्रणाशय (।।8-15-27।।)

हे देवी आप प्राणियों के लिए वास स्थान हैं। आदि वराह स्वामी आपको चाहते हुए रसातल से ऊपर उठाकर लाये हैं। मै आपको नमस्कार करता हूँ। आप मेरे पाप का नाश करें।।27।।

अपने नित्य कर्मों को पूर्ण करते हुए एकाग्रचित्त होकर विग्रह में, जमीन में, सूर्य में, पानी में, अग्नि में, अथवा गुरु में भगवान की अर्चना करनी चाहिए।।28।।

भगवान के आवाहन के लिए ध्यानमंत्र नौ हैं। वे इस प्रकार है

1. **नमस्तुभ्यम् भगवते पुरुषाय महीयसे।**

   सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे।।

सारे प्राणियों के हृदय में आप रहते हैं। आप सकल कर्म साक्षी हैं। हे महापुरुष भगवान वासुदेव! आपको यह नमस्कार।।29।।

2. नमोव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च।

चतुर्विंशगणज्ञाय गुणसंस्थानहेतवे।।

आप अनुग्रह नही किए तो किसी को दिखते नही। आप न दिखने वाला शक्ति वाले हैं। हे पुरुषोत्तम! प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, मन, पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय, पंचतन्मात्रा, पंचमहाभूत नाम के चौबिस तत्वों को आप ठीक तरह से जानते हैं। उन तत्वों को प्रतिपादन करने वाला सांख्यशास्त्रकर्ता कपिल मुनि आप हैं।।30।।

3. नमो द्विशीर्षे त्रिपदे चतुःशृंगाय तंतवे।

सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः।।

दो सिर, तीन पाँव, चार सींघ, सात हाँथ वाले, तीनों विद्या से प्रतिपाद्य और फलदायक यज्ञान्तर्गतमूर्ति आपको नमस्कार।।31।।

4. नमःशिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च।

सर्व विद्याधिपतये भूतानाम् पतये नमः।।

हे मंगलकर, भवरोगहर, लक्ष्मीधर, सर्वविद्याधिपति, सकल चेतनाधिपति श्री हरि आपको नमस्कार।।32।।

5. नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने।

योगैश्वर्य शरीराय नमस्ते योगहेतवे।।

हे ब्रह्मा जी के अन्तर्यामी, मुख्यप्राण के अन्तर्यामी, जगत के स्वामी, योग सिद्धि स्वरूप शरीर वाले, योग शास्त्रकर्ता श्री हरि! आपको नमस्कार।।33।।

6. नमस्ते आदिदेवाय देवदेवाय ते नमः।

नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः।।

हे आदि देव, देव देव, नारायण ऋषिरूपी, नर ऋषि मै। आविष्ट श्री हरि! आपको नमस्कार।।34।।

7. नमो मरकतश्यामवपुषेधिगतश्रीये।

केशवाय नमस्तुभ्यम् नमस्ते पीतवाससे।।

हे मरकत मणि के समान नील रंग के शरीर वाले, लक्ष्मीधर, पीताम्बरधर केशव जी आपको नमस्कार।।35।।

8. त्वम् सर्ववरदः पुंसाम् वरेण्य वरदर्षभ।

अतस्ते तपसा धीराः पादरेणुमुपासते।।

आप सकल जनों के सकल इच्छाओं को देने वाले, हे वर देने वालों में श्रेष्ठ वर देने वाले, श्री हरि! आप पूज्य हैं। ज्ञानी लोग अपने श्रेय के लिए आपकी पादधूलि की उपासना करते हैं।।36।।

9. अन्वर्तन्त यम् देवाः श्री विनिर्जित पद्मयोः।

स्पृहयन्त इवामोदम् भगवान मे प्रसीदताम्।।

देवताओं ने अपने कान्ति से आपके पाद पद्म के सुगन्ध को अपनाने के उद्देश्य से आपकी पाद सेवा करते हैं। ऐसे भगवान श्री हरि आप हमसे प्रसन्न हो जायँ।।37।।

इन नौ मँत्रों से भगवान हृषीकेश को नौ प्रतिमाओं में आवाहन करते हुए श्रद्धा युक्त होकर पाद्य आचमन आदि सोलह विधियों से पूजा करनी चाहिए।।38।।

भगवान को दूध से अभिषेक करते हुए वस्त्र, उपवीत, आभरण, पाद्य, आचमनो से गन्ध, पुष्प, तुलसी से अर्चना करना है।।39।।

सुगन्ध वाले धूप और फूल चढ़ाना चाहिए। भगवान द्वारा दिये हुए सम्पदाओं से, श्रेष्ठ चावल दूध में पकाकर घी और गुड़ मिलाकर बनाया हुआ भोग को लगना चाहिए। इन सारी पूजाओं को और उपचारों को श्री वासुदेव द्वादशाक्षर मंत्र से समर्पण करना है। बाद में उसी मूल मंत्र से किया हुआ खीर से हवन करना चाहिए। होम शेष खीर को हरि भक्तों को खिलाकर बचा हुआ शेष को स्वयं प्रसाद रूप से ग्रहण करना है।।40,41।।

नैवेद्य के समर्पण के बाद भगवान को आचमन करा के छत्र चामरादि राजोपचार देने के बाद तांबूल समर्पण करना चाहिए। एक सौ बार मूल मंत्र वासुदेव द्वादशाक्षर मंत्र को जपना है। पीछे बताये हुए आठ स्तुति मंत्रों से प्रभु की स्तुति करनी चाहिए।।42।।

परिक्रमा करते हुए संतोष से जमीन पर दण्डवत प्रणाम करना चाहिए। हरि निर्माल्य को शरीर के

ऊपर धारण करते हुए भगवान का विसर्जन करना चाहिए।।43।।

यथा साध्य बारह ब्राह्मणों को, कनिष्ठ दो ब्राह्मणों को समर्पित खीर से भोजन करवाना चाहिए। उनका सत्कार करते हुए उनकी आज्ञा लेकर अग्नि में और ब्राह्मण मुख में होम करने के बाद शेष नैवेद्य को स्वयं ग्रहण करना है।।44।।

उस रात्रि में ब्रह्मचर्य पालन करते हुए दूसरे दिन सुबह (व्रत के पहले दिन) सुबह स्नान करके शुद्ध होकर, शुद्ध मन से पीछे बताये हुए क्रम से भगवान को क्षीर से अभिषेक करते हुए पूजा करनी चाहिए। इस रीति से व्रत समाप्ति पर्यन्त विष्णु पूजा में आदर रखते हुए केवल विष्णु समर्पित दूध को ग्रहण करते हुए व्रत का आचरण करना चाहिए।।45,46।।

पिछले के अनुसार अग्नि में होम और ब्राह्मणों का भोजन करवाना है। इस प्रकार बारह दिन पर्यन्त यह पयोव्रत का आचरण करना है।।47।।

प्रतिपदा से प्रारम्भ करते हुए शुक्ल पक्ष के त्रयोदशी पर्यन्त प्रतिदिन श्री हरि की आराधना, होम रूप अग्नि पूजा, ब्राह्मण भोजनों से उनको तृप्त करना, ब्रह्मचर्य, जमीन पर सोना, तीन बार त्रिसंध्या में स्नान करना इनको न चूकते हुए आचरण करना चाहिए। दुर्जनों के साथ बातें नही करना, ज्यादा या थोड़ा भी विषय भोग का सम्पूर्ण त्याग करना चाहिए।।48,49।।

क्रूर प्राणी भी हो किसी प्राणी की हिंसा नही करना चाहिए। भगवान वासुदेव में सदाकाल मन रखना चाहिए। त्रयोदशी के दिन शास्त्रोक्त विधि से, विधि को जानने वाले ब्राह्मणों से भगवान विष्णु का क्षीराभिषेक कराना चाहिए। कंजुसी को छोड़कर वैभव से महा पूजा करनी है।।50,51।।

गरुडारूढ़ श्री विष्णु को मंत्र पूर्वक दूध दूहाकर, उससे चरू (चावल) को पचाकर शुद्ध मन से अग्नि में श्री हरि को आहुति देना है।।52।।

परम पुरुष श्री हरि को तृप्ति हो इतना छः विधि के रस वाले अन्न को समर्पण करते हुए तत्व ज्ञान सम्पन्न पण्डित और ऋत्विज को वस्त्राभरण और गोदान देकर तृप्त करना चाहिए। उनकी पूजा भी उनके अन्तर्गत श्री हरि की सेवा ही मानना चाहिए।।53।।

हे प्रकाशमान हँसी हँसने वाली, उनको शुचि और रुचि वाले अन्न को ही देकर उनका तृप्ति करना है और ब्राह्मण आयें तो उनको भी यथा शक्ति भोजन करवा कर आचार्य और ऋत्विज के साथ सबको यथा योग्य दक्षिणा देना है।।54,55।।

तब वहाँ आये चाण्डालादि समस्त लोगों को अन्न वस्त्र देकर सन्तुष्ट करना चाहिए। इस प्रकार

ब्राह्मण दीन, दुखित, अंध और बुजुर्ग लोग के भोजन करने के बाद भगवान श्री विष्णु तृप्त हुए, इस भाव से बन्धुओं के साथ स्वयं भोजन करना है।।56।।

व्रत करते समय प्रति दिन शाम को नृत्य, वाद्य, संगीत, स्तोत्र और स्वस्ति वाचनों से, भगवान की कथा और प्रवचनो से भी आराधना करवाना है।।57।।

यह परम पुरुष परमात्मा नारायण का उत्तम आराधना रूप पयोव्रत है। ब्रह्मा जी ने मुझको इसका उपदेश दिए थे। मै इसको तुमको कहा हूँ।।58।।

हे सौभाग्यवती! तुम इस व्रत को ठीक तरह से अनुष्ठान करते हुए अव्यय और सर्वजनो से सेव्य केशव जी का शुद्ध भाव से प्रयत्न पूर्वक आराधना करो।।59।।

इस व्रत को **सर्वयज्ञ** कहते हैं, इसको **सर्वव्रत** भी कहते हैं। हे मंगलांगि! तप में यह श्रेष्ठ तप है, दान में यह भगवान को अत्यन्त प्रियकर दान है।।60।।

इसमें भगवान अधोक्षज का प्यार मिले यही मुख्य **नियम** बने हैं, उनके प्रियकर **यम** ही उत्तम यम हैं। उनके लिए जो **तप, दान, यज्ञ** प्रियकर होते हैं वे ही सही तरह के यज्ञ, दान, तप हैं।।61।।

हे मंगलांगि! इन कारणों से तुम संयम और श्रद्धा युक्त होकर इस व्रत का आचरण करो। इससे भगवान प्रसन्न होकर तुम्हारी इच्छाओं को जल्दी ही पूर्ण करते हैं।।61।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - सोलहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा! अपने पति कश्यप मुनि से बताए हुए पयोव्रत को अदिति ने निष्ठा से थोड़ा सा भी आलस्य न करते हुए ठीक तरह से अनुष्ठान किया।।1।।

व्रत काल में एक मन से भगवान अधोक्षज का सदाकाल स्मरण करती रही। उसके लिए बुद्धि को सारथी बनाकर मन नाम के लगाम से इन्द्रिय नाम के आज्ञा न मानने वाले घोड़े को नियंत्रित करती रही।।2।।

मन को एकाग्र करते हुए सर्वान्तर्यामी वासुदेव में रखते हुए पयोव्रत का आचरण यथा क्रम की।।3।।

हे प्रिय परीक्षित, भगवान श्री हरि पीताम्बर धारण कर शंख चक्र गदा युक्त चार बाहु वाले आदि पुरुष भगवान वासुदेव रूप में अदिति के सामने आविर्भूत हुए।।4।।

आँखों के सामने खड़े भगवान को देखकर देवी अदिति ने झट से उठ कर भक्ति परवशता से जमीन पर प्रणाम किया।।5।।

वह उठकर खड़े होकर स्तोत्र करने लगी। किन्तु मुँह से शब्द नही निकले। वह स्तोत्र कर नही सकी। प्रभु के दर्शन से हुए आनन्द से उसका शरीर काँप रहा था, शरीर रोमांचित हो गया था। आँखो में आनन्द वाष्प भरे थे। वे दोनो हाथ जोड़ कर मन से खड़ी रहीं।।6।।

हे परीक्षित! यज्ञेश्वर और जगदीश्वर रमापति श्री हरि को आँखो से पी लेगी, ऐसा आखें खोलकर देखने वाली अदिति देवी भक्ति से गद्गदित होकर धीमे स्वर में स्तुति करने लगी।।7।।

अदिति बोली हे यज्ञेश्वर, हे यज्ञ नामक परम पुरुष, हे अच्युत, पाँव से गंगा जी को जन्म देने वाले, पवित्र कीर्ति वाले, नाम स्मरण नाम मात्र से मंगल करने वाले, हे शरणागत! भक्तों के पाप को नाश करने के लिए अवतार लेने वाले, दीनो को उद्धार करने वाले, हे प्रभु, मुझे मंगलदायक हो।।8।।

हे विश्व नाम वाले, हे विश्व के सृष्टि स्थिति लय करने वाले, स्वेच्छा से प्रकृति के तीन गुणों को सृष्टि कार्य मे लगाने वाले, हे गुण पूर्ण, हे निर्मल, हे सदा अभिव्यक्त पूर्ण ज्ञान वाले, अज्ञान रहित हे श्री

हरि, आपको नमस्कार।।9।।

हे अनन्त, ब्रह्मादि तृणपर्यन्त जीवों को दीर्घ आयुष्य, अभीष्ट शरीर, अनुपम ऐश्वर्य, अन्तरिक्ष, भू, पाताल लोक प्राप्ति, सकल योग सिद्धि और धर्म अर्थ काम रूप त्रिवर्ग के साथ उत्तम ज्ञान केवल आप की कृपा से मिलने वाले हैं, तो आपके शरणागत होने से मनो दु:ख दूर होता है इसको अलग बताने की क्या जरूरत है।।10।।

श्री शुकदेव कहे- हे राजा! अदिति देवी के इस स्तोत्र को सारे जीवों के अन्तर्यामी, कमल के समान आँख वाले भगवान नारायण सुनकर उनसे कहे।।11।।

श्री भगवान कहते हैं- हे देव माता! असुरों ने तुम्हारे पुत्रों की सम्पदा का अपहरण किया है। उनके वास स्थान से उनको हटा दिया है। उन पुत्रों की उन्नति के बारे में तुम्हारी इच्छा को मैं जानता हूँ।।12।।

अहंकार से मस्त महादानवों को तुम्हारे पुत्र को युद्ध में जीतना चाहिए। जय लक्ष्मी को आपके पुत्रों को पुन: पाना चाहिए। ऐसे यश प्राप्त बच्चों के साथ मेरी आराधना करना चाहती हैं न?।।13।।

इन्द्र के सहित आपके पुत्र युद्ध में शत्रुओं को मारना चाहिए। उनके पत्नी को दु:खित होकर अपने पति के शव के पास बैठकर रोना चाहिए। उसको देखकर तुम आनन्द पाना चाहती है न।।14।।

आपकी पुत्र सम्पत समृद्धि को पाना चाहिए, खोया हुआ कीर्ति को पुन: प्राप्त करना चाहिए, देव लोक में रहते हुए विहार करना चाहिए। उसको देखकर तुम सन्तोष पाना चाहती है न?।।15।।

किन्तु देवी, अब दानव नायक आपके पुत्रों से जीतना मुझे अशक्य लगता है क्योंकि मेरे प्रिय ब्राह्मणों की रक्षा उन दानवों से प्राप्त है। उनके ऊपर चढ़ाई करना तुम्हारे पुत्रों के लिए अच्छा नही है। बलि को ब्राह्मणोत्तम शुक्राचार्य की रक्षा प्राप्त है। पहले उस रक्षा को ब्राह्मण के शाप के कारण उसको हटाना चाहिए। उसके बाद बलि का निग्रह हो सकता है।।16।।

वामन का रूप धारण कर बलि के पास भूमि दान देने का कारण श्री हरि इस श्लोक मे बताते हैं।

देवी! मैं तुम्हारे व्रताचरण से सन्तुष्ट हूँ। तुम पर अनुग्रह करने के लिए मुझे कुछ न कुछ उपाय करना होगा। मेरी आराधना कभी निष्फल नही होती क्योंकि वह श्रद्धा के अनुसार फल देगी ही।।17।।

अपने पुत्रों के कल्याण के लिए तुमने पयोव्रत किया है, उसके अनुसार मेरा स्तोत्र करते हुए मेरी आराधना की है। कश्यप ऋषि के तप के लिए भी फल देना है। इसके लिए मैं अपने एक अंश से तुम्हारा पुत्र होकर अवतार लेकर तुम्हारे पुत्रों की रक्षा करूँगा।।18।।

हे मंगलांगि, तुम्हारे पति कश्यप प्रजापति पाप रहित हैं। तुम उनकी पूजा करो। तुम्हारे सामने खड़ा हुआ मेरे इस रूप को पुत्र मानकर उपासना करो।।19।।

यह देवताओं से भी गुप्त रखने का गुह्य विषय है। इसको किसी को बोलना नही। देव रहस्य को गुप्त रखने से उसका पूर्ण फल मिलता है।।20।।

श्री शुकदेव कहते हैं- इतना कह कर भगवान वहीं अन्तर्धान हो गये। अदिति प्रभु श्री हरि अपने पुत्र बनकर अवतार लेने वाले हैं यह समझकर आनन्द विभोर होकर अपने को कृतकृत्य मानते हुए परम भक्ति से पति की आराधना करने लगी। कश्यप मुनि योग समाधि से अपने शरीर मे हरि का अंश प्रवेश किया यह अनुभव पाये। कश्यप का दर्शन कभी गलत नही होता।

हे राजा! कश्यप मुनि बहुत दीर्घ काल से रक्षित करते हुए रखे हुए अपने वीर्य को एकाग्र चित्त से अदिति को दान दिए। हवा सबको समान होता है। किन्तु अपने घर्षण से जंगल को जलाने वाली आग को उत्पन्न करता है। वैसे ही कश्यप मुनि देव दानवों के समान रीति से पिता होते हुए भी दानवों के नाश के लिए अपने वीर्य को प्रदान किए।

अदिति के गर्भ में कश्यप से रखे हुए वीर्य से बनने वाला पुत्र साक्षात सनातन भगवान हैं यह जान कर ब्रह्मा जी रहस्य नामों से उनकी स्तुति की।।21,22,23,24।।

ब्रह्मा जी कहे कि महात्मा लोग वेदादि ग्रन्थों में आपको सर्वोत्तम कहते हैं। आप त्रिविक्रम बनकर बड़ा पाँव रखने वाले हैं, आप इन्द्र के शत्रु का नाश करें, हे ब्राह्मण प्रिय भगवान! आप तीनों गुणों के प्रेरक हैं। आपको नमस्कार।।25।।

अदिति अपने पूर्व जन्म में पृश्नि थी। उसके गर्भ से आप अवतार लिए थे। आप वेदों से प्रकट होते हैं, सर्वज्ञ हैं, तीनो लोको में श्रेष्ठ हैं, तीनों लोको के ऊपर रहने वाले तीनो धामों मे आप वास करते हैं। हे गरुड़ारूढ़ विष्णु, आपको नमस्कार।।26।।

इस लोक के सृष्टि स्थिति और प्रलय करने वाले, अनन्त शक्ति वाले आप परम पुरुष हैं, इस रीति से वेद आपके गुण गान करते रहते हैं। गहरे और धारा वाले प्रवाह मे गिरे हुए तिनके को वह प्रवाह जैसे वहा लेता है, वैसे हे प्रभु, आप काल नियामक बनकर विश्व को अपने गर्भ में खींचकर रखते हैं।।27।।

स्थावर जंगम प्राणियों के अन्दर और उनको जन्म देने वाले प्रजापतियों के अन्दर भी आप अन्तर्यामी होकर रहते हैं। देव लोक से च्युत होकर रहने वाले देवताओं को हे देव, आप पानी में डूबने वालों को नाव जैसे आश्रय दीजिए, यही प्रार्थना है।।16।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - सत्रहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - इस प्रकार ब्रह्मा जी भगवान श्री हरि की लीला और शक्ति सामर्थ्य का स्तुति करने के बाद मुक्तों को आश्रय देने वाले चतुर्भुज, शंख, गदा, पद्म, चक्र धारी, पीताम्बर पहने हुए कमल दल के समान आँख वाले श्री हरि अदिति के गर्भ में प्रादुर्भाव हुए।।1।।

वे निर्मल श्यामल रंग वाले, मकर कुण्डल के कान्ति से सुशोभित मुख वाले, छाती में श्री वत्स लांछन वाले, शोभायमान बलाई किरीट वाले, सुन्दर कमर बन्द और पग घुंघरू वाले परम पुरुष भगवान अपने सौन्दर्य से विराजे।।2।।

मधु मक्खी के झंकार से शोभायमान माला कौस्तुभ सहित गले में शोभा देती है, अपने कान्ति से कश्यप प्रजापति के घर के अन्धेरे को भगवान श्री हरि भगा दिए।।3।।

वामनावतार के इस समय में दशो दिशाएँ प्रसन्न हो गये, जलाशय निर्मल बने, जीवियों ने सन्तोष पाये, ऋतुओं ने फल फूलों से भरे, स्वर्ग अन्तरिक्ष और भूमि, देवताएँ, गो, ब्राह्मण पहाड़ों के साथ सारे अभिमानी देवताएँ हर्षित हो गये।।4।।

भाद्र पद मास में श्रवण नक्षत्र युक्त द्वादशी के दिन चन्द्र श्रवण नक्षत्र में जब थे, उसमें भी श्रवण के आदि भाग के अभिजित नक्षत्र में जब थे उस अभिजित मुहूर्त में भगवान का अवतार हुआ। तब सारे नक्षत्र गुरु शुक्र भगवान के अवतार के मुहूर्त से अपने स्थान को उत्तम मुहूर्त में बदला दिए।।5।।

हे राजा! जिस तिथि में वामन जी के अवतार को लोग देखे उसको विजय द्वादशी नाम से प्रसिद्ध किए हैं। भगवान के अवतार के समय सूर्य आकाश के मध्य में था (दोपहर के बारह बजे थे)।।6।।

उस समय में शंख, दुन्दुभी, भेरी, मृदंग, पणव, आनक सुस्वर किए। इसके साथ अन्य वाद्यों की ध्वनि मिल गयी।।7।।

अप्सरायें सन्तोष से नृत्य किए, गन्धर्व श्रेष्ठ सुस्वर से गाये। मुनि, देवता पितृ और अग्नि अलग

अलग भगवान की स्तुति किए।।8।।

सिद्ध, विद्याधर गण, किंपुरुष, किन्नर, चारण, यक्ष, राक्षस, पक्षि, नाग और सात्विक जीव भगवान वामन की स्तुति किये।।9।।

गायन करने वाले गन्धर्व, कूदते नाचते गन्धर्व अदिति के आश्रम पर पुष्प वृष्टि किए।।10।।

अपनी इच्छा के अनुसार शरीर धारण करते हुए अपने गर्भ से प्रादुर्भाव होने वाले परम पुरुष को देखकर अदिति अत्यन्त आनन्द का अनुभव की, कश्यप ऋषि जय घोष किए।।11।।

स्वभाव से अव्यक्त रहने वाले श्री हरि जिस शरीर को अपने अचिंत्य शक्ति से व्यक्त किए हैं, वह शरीर अनेक आभूषण और आयुधों से सुशोभित था, उस शरीर से अदिति कश्यप देखते हुए अत्यद्भुत सामर्थ्य वाले नट के समान श्री हरि वामन रूप में वटु बनकर खड़े रहे।।12।।

उस वामन रूप वटु को देखकर वशिष्ठ आदि ऋषि आनन्द विभोर होकर कश्यप प्रजापति को अपने सामने रखते हुए जात कर्मादि कार्य को करवाये।।13।।

वामन जी को उपनयन करते समय स्वयं सूर्य देव आकर गायत्री मंत्रोपदेश दिये। बृहस्पति यज्ञोपवीत धारण करवाये। कश्यप ऋषि मौंजी दान दिये।।14।।

पृथ्वी कृष्णाजिन (मृग छाल) दी। कानन के अधिपति चन्द्र पलाश दण्ड दिए। माँ अदिति कौपीन दिए। इस जग की स्वामिनी द्युलोकाभिमानी देवी छत्र दिए।।15।।

ब्रह्मा जी कमण्डल दिए, सप्त ऋषि गण कुश को दिए, अक्षय शरीर वाले साक्षात् श्री हरि को सरस्वती ने अक्ष माला दी।।16।।

भगवान के इस वैभव के उपनयन समारम्भ में यक्ष राज कुबेर वटु को भिक्षा पात्र दिए। सती शिरोमणि जगदम्बिका उमा भिक्षान्न दीं।।17।।

श्रेष्ठ वटु वामन इस रीति से जगत श्रेष्ठों से सम्मानित होकर ब्रह्म ऋषियों से भरी हुयी सभा में ब्रह्म वर्चस से शोभायमान हुए।।18।।

उपनयन से द्विज बने वामन अहिताग्नि के परित: जल से परिषेचन करते हुए चारों ओर दर्भ को पसार कर अक्षता से अलंकार करते हुए समिधा से होम किए।।19।।

भृगु वंश के ब्राह्मणों द्वारा कराने वाले अश्वमेध यागों के लिए बलि यजमान बनकर अपार सम्पत्त समृद्धि को पाया है। इसको सुनकर वामन स्वयं सकल सम्पत्ति से परिपूर्ण होते हुए भी बलि से दान माँगने के

लिए पग पग पर जमीन को झुकाते हुए वामन चले।।20।।

भृगुवत्स नाम से प्रसिद्ध, नर्मदा के उत्तर तीर में श्रेष्ठ अश्वमेघ यज्ञ को करवाने वाले भृगुवंश के बलि यज्ञ के ऋत्विज लोग उदयमान सूर्य के समान दिखने वाले वामन को देखे।।21।।

हे राजा, वे- यजमान, ऋत्विज और सारे सदस्य वामन के तेज से फीका पड़े। उनको लगा यज्ञ को देखने के लिए सूर्य स्वयं उतर कर आये हैं क्या? अथवा स्वयं संनत्कुमार आये। वे सारे इसके बारे में ऊहा करने लगे।।22।।

यज्ञ करने वाला यजमान होता है। इस यज्ञ के लिए सोलह पुरोहित हैं- अद्धर्यु गण में चार लोग ऋत्विज, अद्धर्यु, प्रतिपस्थातृ, नेष्टृ, उनेन्नतृ नाम से; ब्रह्मगण चार लोग - ब्रह्म, ब्राह्मणाच्छंसि, अग्नीध्र, प्रोतृ नाम से; होतृगण में होतृ, मैत्रावरुण, अच्छा वाक, ग्रावस्तुत् नाम से; उद्गातृगण में उद्गातृ, प्रस्तोतृ, प्रतिहतृ, सुब्रह्मण्र्य नाम से। इन सोलह ऋत्विजों के साथ सत्रहवाँ सदस्य नाम का ऋत्विज रहता है। बलि के यज्ञ अनेक होने के कारण सदस्य भी अनेक थे।

भृगुवंश के ब्राह्मण और उनके शिष्य अनेक रीति से ऊहा करते रहे। इतने में वामन दण्ड, छत्र और पानी से भरा हुआ कमंडलु को धारण कर अश्वमेध यागशाला में प्रवेश किए।।23।।

मंजू से किया हुआ कटि सूत्र को, उपवीत और कृष्णाजिन को धारण किए हुए जटा जूट धारी स्वेच्छा से वामन रूप धारण किए हुए हरि को ऋत्विज देखे।।24।।

वामन को याग शाला में प्रवेश करते हुए देखकर भृगुवंश के ब्राह्मण और उनके शिष्य बलि चक्रवर्ती, आवहनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि नाम के तीनों यज्ञ करने वाले उठकर उनका स्वागत किए। वामन के तेज के सामने उनका तेज मन्द हो गया था।।25।।

आँख को आनन्द, मन को प्रसन्नता देने वाली आकृति के लिए अनुरूप अवयव वाले वामन को देखकर यज्ञ के यजमान बलि आनन्द से वामन को उच्चासन दिए।।26।।

विषयासक्ति से रहित मनोहर रूप वाले वामन को स्वागत से सन्तुष्ट करते हुए बलि चक्रवर्ती भगवान की पाद पूजा किए।।27।।

कलिकल्मश को नाश करने वाले मंगल कारक भगवान के पाद को धोए हुए पानी को धर्मज्ञ बलिचक्रवर्ती अपने शिर के ऊपर धारण किया। चन्द्रमौलि देव-देव शिव भी हरिपादोदक गंगा जी को अपने शिर के ऊपर धारण किए हैं न?।।28।।

बलि चक्रवर्ति ने कहा- हे ब्राह्मण! आपका स्वागत है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। कहिए मैं

आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ। हे आर्य! आपको मैं साक्षात रूप में आया हुआ ब्रह्मर्षियों का तप मानता हूँ।।29।।

आपके हमारे घर आने से हमारे पितृगण तृप्त हो गये, हमारा कुल पावन हो गया, हमारा यज्ञ सफल हो गया।।30।।

हे ब्राह्मण कुमार! आपके पाँव को धोकर मिले हुए पवित्र जल से मैं पाप मुक्त हो गया। मेरे अग्नि विध्युक्त होम से पूर्ण तृप्त हैं। मेरी यह भूमि आपके छोटे छोटे पावों से परम पुनीत हो गयी।।31।।

हे बटो! मैं समझता हूँ कि आप ब्राह्मण कुमार यहाँ दान माँगने आये हैं। हे ब्राह्मण, गाय, सोना, सारे साधन युक्त सुसज्जित घर, मिष्टान्न, सुन्दर कन्या, समृद्ध गाँव, घोड़ा, हाथी, रथ इन में तुम जो जो चाहते हो अथवा इन सब को चाहते हो तो उन सबको पाओगे।।32।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

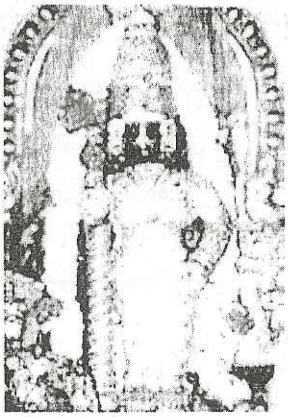

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - अठ्ठारहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - धर्म सम्मत और प्रियकर बलि की बातों को सुनकर भगवान सन्तुष्ट हुए। प्रशंसा करते हुए भगवान कहे।।1।।

भगवान कहते हैं- राजा! तुम्हारी बात बहुत प्रियकर है, तुम्हारे कुल के योग्य है, धर्म सम्मत है और यश को देने वाली है। ऐसी बात तुम्हारे लिए योग्य है क्योंकि पारत्रिक धर्म के विषय में तुमको मार्ग दर्शक बनकर भृगुवंश के ब्राह्मण हैं और तुम्हारे कुल वृद्ध प्रशान्त पितामह प्रह्लाद हैं।।2।।

तुम्हारे इस वंश में कोई भी दुर्बल, दीन अथवा वचन देकर ना न कहने वाला और ब्राह्मण को दान न देने वाला कोई नही है।।3।।

हे राजा! यज्ञ के समय में याचक ब्राह्मण आकर जो माँगता है उसको नकारने वाला अथवा रण रंग में वीर युद्ध चाहे तो अधीर होकर भाग जाने वाला तुम्हारे वंश मे कोई नही है। तुम्हारे कुल के लोग निर्मल कीर्ति से शोभायमान हैं, उनमें सबसे श्रेष्ठ प्रह्लाद जी नीला आकाश में चन्द्र के समान शोभायमान हैं।।4।।

आपके कुल में जन्म लिया हुआ हिरण्याक्ष अपने दिग्विजय के काल में केवल एक गदा को लेकर अकेले ही इस भूमि में संचार करने के बाद भी उसको प्रतिद्वन्द्वि नही मिला।।5।।

भूमि के उद्धार करने के समय में वराह ने हिरण्याक्ष को बहुत कष्ट से जीतने के बाद भी उसी के पराक्रम को बड़ा मानते हुए उनको न जीता ऐसे ही समझा।।6।।

हिरण्याक्ष के वध का समाचार सुनकर उनके बड़े भाई हिरण्यकश्यप क्रुद्ध होकर अपने भाई को मारने वाले हरि को मारने के लिए उनके वास स्थान वैकुण्ठ को गया।।7।।

शूलधारण करके आने वाला उसको देखकर महामायावी विष्णु चिन्तन करने लगे।।8।।

यह असुर मेरा पीछा कर रहा है। कहीं गये तो भी यह छोड़ने वाला नही है इसके लिए मैं इसके हृदय

में प्रवेश करुँगा। यह सदा काल बाहर देखता ही रहता है, अन्दर कभी भी देखता नही।।9।।

इस प्रकार निश्चय करते हुए विष्णु अपना पीछा करने वाले हिरण्यकश्यप के शरीर में प्रवेश किए। हे असुर राज! विष्णु बहुत व्याकुल चित्त था। सूक्ष्म शरीर बनाकर उसके स्वाँस के मुखान्तर नाक के मार्ग से हिरण्यकश्यप के शरीर के अन्दर प्रवेश किए।।10।।

बाद में हिरण्यकश्यप विष्णु के वैकुठधाम को एक कोने को भी न छोड़ते हुए हरि को ढूँढ़ा, कहीं भी देख नही पाया। आक्रोश से गर्जन करते हुए भूमि, स्वर्ग, आकाश, अन्तरिक्ष, पाताल, समुद्र सभी जगहों मे ढूढ़ने के बाद भी नहीं पाया।।11।।

हरि को कहीं भी न देखने वाला वीर हिरण्यकश्यप बोला- अरे, मैंने पुरे इस जगत को शोध कर देखा है, मेरे भाई का हत्यारा नही मिल रहा है। वह तो और न जा सकने वाले लोक को गया है। यह निश्चय है।।12।।

हिरण्यकश्यप की यह धारणा है कि हरि मरकर यम लोक को गया है। इसके लिए वह मिलने वाला नही है।

देह रहने वाले को उसके अन्त तक दीर्घ द्वेष रहता है। देह वाला कितना भी बड़ा हो उसमें अज्ञान रहता है। अज्ञान के कारण होने वाले क्रोध और वैर रहना स्वभाविक है। उसके साथ यदि **मैं** यह दुरभिमान मिला तो मरण के बिना व शान्त नही होता है।।13।।

हिरण्यकश्यप हरि को अन्य जीव के समान पांच भौतिक शरीर वाला मानता है और अपने द्वेष के कारण वह मर गया ऐसा समझ लेता है। वामन रूपी श्री हरि उसके अज्ञान को और बढ़ाते हुए बलि के मोहनार्थ हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष की स्तुति करते हुए स्वयं की निन्दा करते हैं। तीन पग जमीन के लिए बलि की इतनी स्तुति करने की जरुरत नही है। याचक को दानी की स्तुति करनी पड़ती है, अपने को निन्दा करना लोक नीति है। श्री हरि इसका अनुसरण करते हैं। वे व्यर्थ रीति से असत्य नही बोल रहे हैं। बलि को असुरावेश आना हरि के संकल्प के अनुसार है। त्रिविक्रम होकर अपनी लीला से श्री हरि उस असुरावेश का नाश करते हैं।

प्रह्लाद के पुत्र और तुम्हारे पिता विरोचन ब्राह्मण में बहुत प्यार रखते थे। अपने पास जो ब्राह्मण याचना के लिए आते थे उनको देवता मानकर, यदि देवता ब्राह्मण वेष में आये तो उनके वेष को मानते हुए वे जो चाहते हैं उसको, अन्त में अपने आयुष्य को दान दिए (यहाँ शुक्राचार्य जब सर्वस्व दान का विरोध करने के बाद भी बलि सर्वस्व दान दे इस दृष्टि से उसकी प्रशंसा करते हैं)।।14।।

तुम भी गृहस्थ ब्राह्मण हो अपने पूर्व के लोग और महा कीर्तिशाली लोग जिस धर्म का आचरण किए हैं तुम भी उसी का आचरण करते हो।।15।।

इन्द्रिय निग्रह न करने वाला तीनो लोकों को पाने के बाद भी सुख को नही पाता।।24।।

अर्थ काम के विषय में कितने भी मिले उससे तृप्ति न पाने वाला आदमी अपने अतृप्ति के कारण पुनः पुनः जनन मरण के चक्र मे फँस जाता है। श्री हरि की इच्छा से जो मिलता है उसमे तृप्ति पाना ही मोक्ष का कारण बनता है।।25।।

श्री हरि इच्छा से मिलने वाले से तृप्ति पाने वाले ब्राह्मण का वर्चस् बढ़ता जाता है। अतृप्ति से आग के ऊपर के पानी जैसे बुझ जाता है।।26।।

हे दान शूर मैं तुम्हारे से केवल मेरे पाँव के माप में तीन पग जमीन की याचना करता हूँ। मैं इसी से कृतार्थ होता हूँ। सदा काल आवश्यकता के अनुसार ही धन होना चाहिए (ज्यादा धन संग्रह नही करना चाहिए)।।27।।

श्री शुकदेव बोले- वामन की बातों को सुनकर बलि हँस कर कहा- अरे, अपनी इच्छा के अनुसार जो चाहते हो उसी को पाओ। यह कहते हुए भूदान देने के लिए जल पात्र को अपने हाथ में ले लिया।।28।।

श्री हरि को दान देने के लिए सिद्ध हुआ बलि को देख कर अपने शिष्य वात्सल्य से शुक्राचार्य जी ने उसको रोका। वे ज्ञानी श्रेष्ठ हैं, श्री हरि का संकल्प जानते थे।।29।।

बलि असुरावेश में हरि भक्ति के बिना दे रहा है। श्री हरि उसका निग्रह करने वाले हैं, यह जानकारी होते हुए भी शिष्य की रक्षा करना यथासाध्य गुरु का कर्तव्य है यह जानकर वे श्री हरि की इच्छा के अनुसार ही आज्ञा उल्लंघन को निमित्त बनाकर शाप दे देते हैं।

शुक्राचार्य कहते हैं- हे बलि राज! यह नाश रहित भगवान विष्णु हैं। कश्यप और अदिति के पुत्र होकर देवताओं का कार्य साधने के लिए यहाँ आये हैं।।30।।

आगे के अनर्थ को अर्थ न करते हुए (न समझते हुए) तुमने इनको वाग्दान किया है। यह ठीक नही है। इससे असुरों के लिए बहुत अन्याय होगा। ।31।।

तुमको वंचना करने के लिए वटु रूप धारण करके आया हुआ श्री हरि तुम्हारे स्थान, ऐश्वर्य, सम्पदा, तेज, कीर्ति, ज्ञान इन सबको छीनकर इन्द्र को देने वाला है।।32।।

यह विश्व व्यापी शरीर धारण कर तीन पगों से सारे लोकों का अतिक्रमण करने वाला है। तुम मूढ़ हो। सर्वस्व विष्णु को दान देकर कैसे जीवित रहोगे।।33।।

भक्ति से समर्पण किया हुआ भक्त की रक्षा करना भगवान का गुण धर्म है। जब भक्ति ही नही है व्यापार भाव से काम्य कर्म करता रहता है तब दान देने वाले को अपने हित रक्षा को स्वयं करना पड़ता है।

प्रभु वामन अपने शरीर को महत बनाकर एक माप से भूमि और दूसरे से द्युलोक को मापने के बाद तीसरे पाँव के लिए तुम क्या दोगे?।।34।।

वाग्दान के अनुसार दान देने में तुम असमर्थ हो जाते। तब वाग्दान के बाद भी सफल दान न देने के कारण तुमको नरक ही मिलेगा। यह मेरा मत है।।35।।

अपने जीवन के लिए मारक बनने वाले दान को कोई योग्य नही कहते। जो इस लोक में जी सकता है वही सफल दान तप और सत्कर्म कर सकता है।।36।।

अपने कमाई को (1) पुण्य पाने के लिए (2) कीर्ति सम्पादन के लिए (3) सम्पदा को आगे की अभिवृद्धि के लिए (4) अपने कुटुम्ब के भरण के लिए (5) अपने सुख भोग के लिए इस प्रकार पंच विभाग करके व्यय करने वाला इस लोक में और पर लोक में सुख को पाता है।।37।।

हे असुरोत्तम! इस विषय में ऋग्वेद के इस मंत्र को सुनो - **ओऽम** कहते हुए **अपने पास जो है** उसको जो मागता है उसको देता हूँ इस प्रकार बोलने में सत्य है। **न** मेरे पास जो नही है उसको दे नही सकता यह झूठ होता है।।38।।

जो चाहते हैं वह मेरे पास है उसको देता हूँ वह सत्य जीवित रहने वाले शरीर नाम के इस वृक्ष के फल फूल समझना चाहिए। यदि शरीर ही जीवित नही रहा वृक्ष, मरे तो फल पुष्प कहाँ रहेगा? यह फल पुष्प मिलेगा ही नही। इस शरीर वृक्ष के जीवित रहने के लिए थोड़ा सा असत्य का आधार चाहिए।।39।।

वृक्ष जीवित रहा तो सत्य के अनुसार दान दे सकते हैं। किन्तु केवल सत्य के आधार से सर्वस्व दान दिये तो जीवन के लिए आगे आधार न रहने से शरीर वृक्ष ही सूख जायेगा। तब फल पुष्प रूप दान देना असाध्य हो जायेगा **देता हूँ** यह सत्य चला जाता है। इसके लिए देह पोषण के लिए जितना चाहिए उतना रखते हुए मेरे पास नही है, मै दे नही सकता इतना असत्य बोलना जीवन है। यह वेद की विधि है इससे पाप नही आता।

मूल को उखाड़े तो वृक्ष सूख जाता है। वैसे ही सम्पूर्ण सत्य बोलना और असत्य को सम्पूर्ण त्यागना इससे आदमी को जीने के लिए कुछ भी न रहते हुए शरीर का शोषण होता है इसमें संशय नही है।।40।।

मेरे पास है, ओम मै देता हूँ ऐसे बोलते समय सत्य को थोड़ा दूर रखना है क्योंकि वह अपूर्ण है, रिक्त है। पूर्ण सत्य से शरीर रक्षा नही होता। इसके लिए ओम बोलते हुए सर्वस्व दान किए आगे उसको कुछ भी नही रहेगा।।41।।

याचक को मेरे पास सारे हैं मैं सब कुछ देता हूँ, ओम बोलते हुए दान देने वाला अपने जीवनोपाय को भी खो देता है। अपने विषय उपभोग के लिए कुछ भी रख नही सकता। मेरे पास नही है, मैं देने में असमर्थ हूँ। मैं दे नही सकता इस रीति से **न** (अपने के लिए थोड़ा सा रखते हुए) बोलने अनृत वाक्य से शरीर पोषण होता है क्योंकि जीवनोपाय उसी में रहता है।।42।।

याचक को मेरे पास कुछ भी नही हैं, मैं कुछ भी नही देता इस प्रकार **न** सदा काल असत्य बोलने वाला अपकीर्ति को पाता है, जीवित रहते हुए भी मरा जैसा होता है। शास्त्र की बात है कि, कामुक स्त्री में, चेष्टा में, शादी के समय में, वधू-वर की स्तुति में, चोरों से प्राणापाय के समय में, गो ब्राह्मणों के हित के लिए, हिंसा को रोकने के लिए असत्य बोलने में पाप नही होता। वह योग्य ही है। (ऐतरेय उपनिषद मे ओम बोलना सत्य और न बोलना असत्य ऐसे कहा गया है)।।43।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

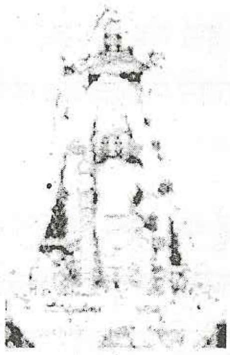

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - उन्नीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- हे राजा! अपने गृहस्थ यजमान राजा बलि को कुलगुरु शुक्राचार्य इस प्रकार उपदेश दिए। उसको सुनकर वह एक क्षण के लिए चुप रहकर स्थिर चित्त से उत्तर दिया।।1।।

बलि कहता है- पूज्य! आप जो कहे वह सत्य है। धन सम्पदा, विषयभोग, कीर्ति, जीवनोपाय इनमें बाधा न आने वाला गृहस्थों के लिए यह योग्य धर्म है।।2।।

किन्तु प्रह्लाद के वंश में जन्म लिया हुआ मैं ब्राह्मण को एक बार वाग्दान करने के बाद जीवित रहने की आशा से वंचक के समान कैसे **न** कहूँ।।3।।

असत्य के समान और कोई पाप नही है। भू माता कहती है- झूठ बोलने वाले को छोड़कर सारे लोगों के भार को मैं वहन कर सकती हूँ।।4।।

मैं भी ब्राह्मण की वंचना के लिए जितना डरता हूँ उतना भय नरक, पाप, दुःख, स्थान च्युति और मरण के लिए भी नही डरूँगा।।5।।

मरा हुआ आदमी इस जगत में ही सब कुछ छोड़ जाता है। उन्ही को दान देने से ब्राह्मण सन्तुष्ट होता है तो न देने का कारण क्या बनता है।।6।।

सज्जन लोग न छोड़ने योग्य अपने प्राणों को भी त्यागकर अन्य लोगो को उपकार करते हैं। धीचि, शिवि इनका दृष्टान्त हमारे समाने है। वे अपने जीवन को भी त्यागकर अन्यों का कल्याण किए। अब जमीन दान देने में चिन्ता करने की क्या बात है?।।7।।

हे मुने! युद्ध भूमि में न हारने वाले दैत्यराज इस भूमि को जीत कर भोग किए हैं। किन्तु काल उसके अधीन में रहने वाला सब कुछ छीन लिया। किन्तु उनसे कमायी हुयी कीर्ति आज तक अक्ष्क्षुण्ण रही है।।8।।

हे ब्रह्मर्षि! युद्ध रंग से पलायन न करते हुए शरीर को त्यागने वाले बहुत लोग हैं। किन्तु यज्ञ मै। सत्पात्र मिलने के बाद श्रद्धा से अपने सम्पत्ति को पूर्ण रूप से दान करने वाले मिलना दुर्लभ है।।9।।

याचक को अभभ्रष्ट दान करने वाला उदाश्र मन वाले को, करुणा पूर्ण हृदय वाले को दान के कारण दुर्गति आये तो भी वह भूषण ही होगा। अब आपके समान ब्रह्मज्ञानी को दान देने से दुर्गति आये तो उसमे दुःख क्यों करना चाहिए। इसके लिए मैं इस वटु को उसकी इच्छार्थ को दान देने की इच्छा करता हूँ।।10।।

यह वेद विधि को जानने वाले आप लोगों से अश्वमेधादि यज्ञो से, ज्योतिष्टोमादि, याग से आराधना करने वाला विष्णु हो अथवा और कोई हो मैं उसकी अपेक्षा के अनुसार भूमि दान देने वाला हूँ।।11।।

यह निरपराध मुझको वंचना से बन्धक बना सकता है। मेरे डर से सामने आए हुए ब्राह्मण रूप अपने शत्रु से भी मैं डरने वाला नही हूँ। मैं उसकी हिंसा नही करना चाहता।।12।।

यदि श्रेष्ठ कीर्ति वाले यह श्री हरि अपने कीर्ति को कलंक न हो इसके लिए यदि वंचना करना नहीं चाहता है तो वह युद्ध में मुझको मारकर मेरे वश के इस भूमि को अपने वश मे ले ले अथवा युद्ध में मेरे हाथ से मर जाय।।13।।

असुरावेश से हरि में भक्ति न करते हुए केवल अहंकार और कीर्ति की चाह में भूदान करने चला है बलि। यह न भगवान को सम्मत है, न शुक्राचार्य को पसन्द।

श्री शुकदेव जी कहते हैं शिष्य होकर अपनी सेवा करने वाले, अपने तपः शक्ति से तीनों लोकों का स्वामित्व पाया हुआ बलि अब अपने में ही श्रद्धा न होने के कारण अपने गुरु के आदेश का तिरस्कार किया है। बलि उदार है, सत्यसंध है किन्तु हरि गुरु में भक्ति छोड़ दिया है। इसी कारण भगवत प्रेरणा से ही गुरु शुक्राचार्य उसको शाप दिए।।14।।

शुक्राचार्य बोलते हैं- हे मूढ़! तुम मुझको अलक्ष करते हुए मेरी आज्ञा को तिरस्कार करने लगा है, और स्वयं को पण्डित समझ रहा है। गुरु के सामने उद्धतता का प्रदर्शन कर रहा है। इसी के कारण तुम जल्दी ही अपने ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाओ।।15।।

इस प्रकार गुरु से शाप पाने के बाद भी सत्य को न छोड़ने वाला महात्मा बलि वामन को जल से अर्चना करते हुए जल पूर्वक भू दान किया।।16।।

पति के साथ यज्ञ में दीक्षित उसकी पत्नी विंध्यावली अपने सिर के ऊपर कुम्बरीक नाम के वस्त्र को धारण करते हुए, उस वटु के पाद को धोने के लिए सोने के कलश में पानी भर कर ले आयी।।17।।

यजमान बलि स्वयं वामन जी के सुमनोहर पावन पावों को धोकर विश्व पावन करने वाला उस जल

को अपने सिर के ऊपर धारण किया (बलि असुर होते हुए भी सात्विक कर्मज देवता होने के कारण उसको भगवान का अनुग्रह श्री पाद जल मिला है। इसी कारण भगवान निग्रह करने के बाद भी उसको सुतल लोक में रखते हुए स्वयं पालन करते हैं)।।18।।

याचक रूप में आया हुआ ब्राह्मण अपना शत्रु है इसको समझने के बाद भी बलि भूदान किया है। इसको जानकर उसको देखने और भगवान को नमन करने के लिए आये हुए देवता गण, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध, चारण ये सारे बलि की स्तुति करने लगे। स्वभाव से महाज्ञानी असुर राजा बलि के ऊपर सन्तोष से फूल की वर्षा की।।19।।

हजारों देव दुन्दुभियाँ और और ध्वनि के किए। गन्धर्व किम्पुरुष, किन्नर गान गाए। स्थिर मन वाले बलि दृढ़ता से महत्तर कार्य किया है। जान बूझ कर अपने शत्रु को तीनों लोकों का दान दिया है।।20।।

अनन्त शक्ति वाले श्री हरि उस वामन रूप से गुणत्रयों को अपने में भरते हुए उस रूप को अद्भुत रूप से बढ़ा दिए, भूमि, अन्तरिक्ष, दस दिशाएँ, स्वर्ग पाताल, सागर, पशु, मानव, देव, सारे ऋषि गण उसके अन्दर अन्तर्गत हो गये।।21।।

अणिमादि अष्टैश्वर्य योग पूर्ण, शक्ति वाले भगवान, त्रिविक्रम रूप के ज्ञानादि गुण रूप शरीर में बलि उनके ऋत्विज, आचार्य और सदस्य, गुणत्रयात्मक, पंचभूतात्मक, इन्द्रिय, शब्द, विषय मन जीवों से मिला हुआ सारे प्रपंच को देखे।।22।।

उस महापुरुष के विश्व व्यापी शरीर में उनके पादतल में सप्त पाताल, पाद में पृथ्वी, जंघा में पर्वत या पहाड़, घुटना मे पक्षी संकुल और मरुदगण वास कर रहे हैं। बलि ने अपने आँखों से देखा।।23।।

भगवान त्रिविक्रम के पीताम्बर में संध्या, गुह्य भाग में प्रजापति, कटि में अपने साथी असुरगण को बलि ने देखा। नाभि मे अंतरिक्ष, उदर में सप्त सागर, छाती में नक्षत्र-माला को देखा।।24।।

हे राजा परीक्षित! भगवान मुरारी के हृदय में धर्म को बलि चक्रवर्ति ने देखा। स्तनो में ऋत और सत्य के अभिमानि देवताएँ, मन में चन्द्र, छाती के ऊपर कमलधारी श्री देवी, कंठ में सारे शब्द सामो के अभिमानियों को देखा।।25।।

त्रिविक्रम जी की बाहुओं में इन्द्रादि देवताओं को, कानो में दिगाभिमानी देवताओं को, सिर में विलाकाभिमानी, केश में मेघ के अभिमानी, नाक में नाशिक अभिमानी वायु, आँखो में सूर्य और मुँह मे आग को देखा।।26।।

वागेन्द्रियों मे सारे वेदो को, जिह्वा में वरुण को, भौ में शास्त्र के विधि निषेधों को, बरौनी में दिन

और रात के अभिमानी, गाल में क्रोधाभिमानी, ओंठ में लोभाभिमानी को देखा।27।।

हे राजा, बलि ने चर्मन्द्रिय में काम को, रेतस में जल को, पीठ में अधर्म को पाँव मे यज्ञ को, छाया में मृत्यु देवता को, हँसी में जन लुभाने की शक्ति को, रोमों में वक्ष और लता को देखा।।28।।

नाड़ियों में नदियों को, नाखून में पत्थरों को, बुद्धि मे ब्रह्मा जी को, प्राणियों मे देवता और ऋषियों को, शरीर मे स्थावर, जंगम को आश्रय लेकर रहते हुए देखा। एक एक क्षणार्ध में बड़ा हुआ त्रिविक्रम के शरीर में बलि ने देखा।।29।।

हे राजा परीक्षित! इस भुवन के सर्वस्वामी भगवान श्री हरि में समग्र प्रपंच को, सहन न होने वाला तेज को उगाने वाला सुदर्शन चक्र मेघ के समान आवाज करने वाला शार्ङधनुष को देखकर सारे असुर मूर्छित हो गये।।30।।

बादलों के गर्जन के समान ध्वनि वाले पाञ्चजन्य शङ्ख, बहुत वेग से चलने वाले कौमोदकी नामक गदा, शतचन्द्र नाम के ढाल, वैद्याधर नाम का खड्ग, अक्षय बाण वाले दो तरकश मौजूद हैं। गरुड़ इत्यादि पार्षद और लोकपालक त्रिविक्रम की सेवा कर रहे हैं।।31।।

हे राजा! भगवान त्रिविक्रम के उज्वल प्रकाश वाला किरीट, शरीर को शोभा देने वाला अंगद, कर्ण में शोभायमान, मीनकुण्डल, छाती के ऊपर श्रीवत्सकौस्तुभ, कटि में सोने का कमरबन्द के नीचे उज्वल पीताम्बर, मधु मक्खियों से घिरा हुआ वन माला इनसे सुशोभित थे।।32।।

ऐसे महापुरुष विश्व व्यापी भगवान त्रिविक्रम अपने एक पाद से बलि की इस भूमिको माप लिए। शरीर से अन्तरिक्ष को अपने बाहों से दसों दिशाओं को अतिक्रमण करते हुए दूसरे पाँव से स्वर्ग को माप लेने के बाद तीसरे पाँव रखने के लिए बलि के पास थोड़ी भी जमीन नही बची। त्रिविक्रम का दूसरा पाद ही स्वर्ग को भेद करते हुए महर्लोक, जनो लोकों को पार करते हुए तपो लोक के ऊपर वाला सत्य लोक में चला गया।।33।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - बीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा, त्रिविक्रम के दूसरा पाद बढ़ते हुए सत्य लोक को पहुँच गया। उसका चन्द्र के समान प्रकाश देने वाले नाखून की कान्ति के सामने सत्य लोक का उज्जवल प्रकाश भी फीका पड़ गया। ब्रह्मा जी की सफेद रंग वाली शरीर की कान्ति भी उससे ढ़क गयी। उस पाद का दर्शन करते हुए उसकी आराधना करने के लिए ब्रह्मा जी अपने परिवार समेत आ गये। मरीचि इत्यादि ऋषिगण और सनन्दन इत्यादि नैष्ठिक ब्रह्मचारीगण और योगीगण वहाँ आ गये।।1।।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्वण नाम के चारों वेद; आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्वेद और अर्थशास्त्र नाम के चार उपवेद; यम, नियम, ब्रह्मतर्क, भारत, पंचरात्र, मूलरामायण नाम के इतिहास; शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्दस, ज्योतिष, निरूक्त नाम के छः वेदांग; भागवत आदि अट्ठारह पुराणों को समझता है, इनके अभिमानी देवता सहित सत्य लोक में ब्रह्मा जी की आराधना करने वाले, त्रिविक्रम जी के श्री पाद का स्वागत करने आये। योगाभ्यास नाम के हवा से ज्ञान नाम की अग्नि को प्रज्वलन करते हुए उस ज्ञानाग्नि में अपने पाप कर्म नाम के मल को जलाये हुए अन्य सत्य लोकवासी भी इस स्वागत कार्यक्रम में समाविष्ट हुए।।2।।

त्रिविक्रम के पादध्यान के बल से सत्य लोक में आकर बैठे हुए ज्ञानियों ने कर्म से न मिलने वाला, केवल शुद्ध ज्ञान से मिलने वाला, उस पाद का दर्शन करते हुए, वन्दन किए। ऊपर मुँह करके आया हुआ उस पाद के अभिषेक करने के लिए उसी के नख के आघात से आया हुआ बाह्य जल धारा को ब्रह्मा जी ने अपने कमंडल में भर कर लाए।।3।।

श्री हरि के नाभिकमल से उत्पन्न हुए निर्मल कीर्ति वाले ब्रह्मा जी श्री हरि के उस पाद को स्वतः धोकर पूजा करते हुए भक्ति से स्तुति किए।।4।।

हे राजा! ब्रह्मा जी के कमंडल के जल से त्रिविक्रम का पाद धोने से बहने लगा। वह पवित्र जल आकाश गंगा बनकर बहने लगी। हरि के समान निर्मल कीर्ति वाली वह गंगा तीनो लोकों को पवित्र करती रही

है।।5।।

अपरमित स्वरूपभूत योग के सम्पत्ति वाले अपने स्वामी जी को ब्रह्मादि सकल लोक पालक अपने परिवार सहित आकर पूजा की।।6।।

जल, फूल, माला, दिव्य गन्ध, सुगन्ध, परिमल वाले धूप दीप, लावा, अक्षत, फल और अंकुर से भगवान की पूजा की। उनके पराक्रम को उनके महिमा वाले स्तोत्र और जयकार से नृत्यवाद्य और गीतों से शंख, दुन्दुभि और ध्वनियों से आराधना की।।8।।

भालुओं के राजा यमा अवतारी, ब्रह्म पुत्र, जामवन्त, भगवान त्रिविक्रम के इस विजय को भेरी और दुन्दुभियों को बजाते हुए दशो दिशा में मनोवेग से संचार किया।।9।।

तीन छोटे पाद समान भूमि दान माँगने के बहाने से यज्ञ दीक्षित अपने स्वामी बलि जी का सार सर्वस्व को त्रिविक्रम ने अपहरण किया है इसको देखकर असुर कुपित होकर अपने में बाते करने लगे।।10।।

यह लड़का ब्राह्मण पुत्र नही हो सकता। महाकपटी विष्णु ही उसके रूप में आया है। वह देवताओं के लिए जो हित है उसी को करने वाला है।।11।।

हमारे स्वामी यज्ञदीक्षित होने के कारण शत्रु निग्रह को छोड़ दिए हैं। इसका लाभ उठाते हुए हमारे शत्रु विष्णु इस वटु रूप से आकर दान माँगकर हमारे स्वामी का सर्वस्व हरण किए हैं।।12।।

हमारे प्रभु सदा काल सत्य का आचरण करने वाले व्रत को धारण किए हैं। अब तो विशेष कर यज्ञ दीक्षित होने के कारण भू-दान देने में असत्य नही बोल सकते। वह ब्राह्मण प्रिय होने के कारण और स्वभावत: दयालु रहने के कारण असत्य नही बोलते।।13।।

ऐसे सन्दर्भ में इसका हनन करना हमारा कर्तव्य बनता है। यही हमें अपने स्वामी के लिए करने की बहुत बड़ी सेवा होती है। इस प्रकार बलि के भृत्य असुर अपने अपने आयुधों को हाथ मे ले लिए।।14।।

हे राजा! असुर लोग इस प्रकार क्रोध से शूल इत्यादि आयुध को लेकर बलि की अनुमति के बिना और बलि का ध्यान न रखते हुए वामन को मारने के लिए आगे बढ़े।।15।।

राजा! असुर लोगों के इस आक्रमण को देखकर विष्णु दूत जोर से हँसते हुए अपने शस्त्रास्त्रों को अपने हाथ मे उठा लिए।।16।।

नन्द, सुनन्द, जय, विजय, बल, प्रबल, कुमुद, कुमुदाक्ष, गरुड़, विष्वक्सेन, जयन्त श्रुत देव, पुष्पदन्त और सात्वत ये सारे एक एक दस हजार हाथी के बल वाले। वे अपने सामने दिखने वाले असुरों की

हत्या करने लगे।।17,18।।

अपने सैनिकों को विष्णु के पार्षदों से मरते हुए देख कर बलि को शुक्राचार्य जी के शाप की याद आयी। वह अपने सैनिकों को क्रोध से और बढ़ने से रोक दिया।।19।।

हे विप्र चित्ती, हे राहू, हे हेति मेरी बात सुनो। युद्ध को समाप्त करो। वापस चले आओं। हमारे लिए अब समय अनकूल नही है।।20।।

सारे जीवों को सुख या दु:ख देने वाला समर्थ काल नामक भगवान को कोई व्यक्ति अपने पौरुष से पार कर नहीं सकता।।21।।

पीछे हमारी उन्नति और देवताओं की अवनति का कारण काल नामक प्रभु अब हमारे विरुद्ध हो गये हैं।।22।।

सैन्य, मंत्रि, राजनीति, किला, मायामंत्र, औषधि इन किसी से और साम दान इत्यादि किसी उपाय से कोई भी काल को अतिक्रमण नहीं कर सकता।।23।।

श्री हरि के अनुचरों को दैव जब उनके विरुद्ध था तब आप लोगों ने ही उनको हराया है। अब वे ही काल बल से हमको जीत कर सिंहनाद कर रहे हैं।।24।।

आगे हमे दैवानुकूल हो गया तो हम उनको जीत सकते हैं। इसके लिए अनुकूल समय मिलते तक हमें राह देखनी चाहिए।।25।।

श्री शुकदेव जी बोले- हे राजा! दैत्य दानव सेनापति विष्णु पार्षदों से मार खाकर बलि की आज्ञा के अनुसार युद्ध को आगे न बढ़ाते हुए रसातल में जाकर छिप गये।।26।।

बाद मे गरुड़ श्री हरि के अभिप्राय को समझ कर यज्ञ के लिए सोमरस को निकालने के समय में वरुणपाश से बलि को बन्धक बनाये (इस बन्धन से बलि के असुरावेश को नाश करना श्री हरि का उद्देश्य था)।।27।।

सर्व शक्त भगवान श्री हरि द्वारा बलि का बन्धन करते समय भूमि, अन्तरिक्ष और सारे दिशाओं में बड़ा हाहाकार हो गया।।28।।

हे राजा! श्रेष्ठ कीर्ति वाले बलि अपनी सारी सम्पत्ति को खोकर वरुणपाश से बन्धित होने के बाद भी दिए हुए अपने वचन का पालन करने का दृढ़ मन वाला था।।29।।

भगवान बलि से बोलते हैं- हे बलि! तुमने तीन पग जमीन देने का वचन दिया है। मै दो पादो

से तुम्हारी सकल जमीन को अतिक्रमण किया है। तीसरे पाँव को रखने का स्थान दिखाओ।।30।।

सूर्य किरण जहाँ तक प्रकाश देता है, चन्द्र और नक्षत्र का प्रकाश जहाँ तक जाता है, मेघ जहाँ-जहाँ पानी बरसाते हैं, वहाँ तक का प्रदेश तुम्हारे वश में था।।31।।

तुम्हारे देखते-देखते मैंने एक पाद से नीचे के पाताल आदि सहित इस भू लोक को माप लिया। विस्तार रीति से बढ़ा हुआ मै अपने दूसरे पाँव से स्वर्ग लोक को अपने वश मे लिया। अब मेरे तीसरे पाव के लिए स्थान नही है।।32।।

दिए हुए वचन को पालन न करने वाले व्यक्ति को नरक को जाना पड़ता है। इसके लिए तुम्हे नरक में प्रवेश करना पड़ता है। इसके लिए तुम्हारे गुरु की सम्मति भी है।।33।।

दिए हुए वचन के अनुसार याचक को दान न देते हुए वञ्चन करने वाले को उनका इष्टार्थ सिद्धि तो नही होती। वह स्वर्ग से दूर होता है, उसका अध:पतन होता है।।34।।

तुम अपने सम्पत्ति के मद से जो वागदान किए थे उसको न देते हुए वंचना किए हो। इस वंचना के फलस्वरूप तुम बहुत समय तक नरकवास का अनुभव करो।।35।।

देवताओं के लिए नरकवास नही है। बलि असुर होते हुए भी कर्मज देवता है। इसके लिए उसको नरक वास के बदले में पहले ही बताए जैसे (पञ्चम् स्कन्ध 23,24 श्लोक देखे) भगवान वामन बलि को थोड़े समय के लिए पहाड़ की गुफाओं मे बन्दी बनाकर रखे थे।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

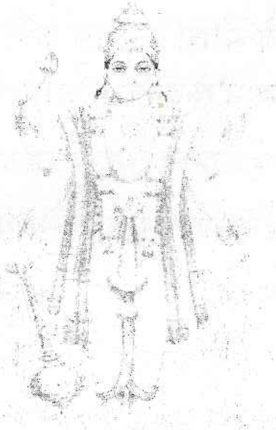

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - इक्कीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा! इस रीति से भगवान बलि को बहुत कड़की से आक्षेप किए तो भी बलि निर्विकार रीति से धैर्य न छोड़ते हुए भगवान से कहा।।1।।

बलि कहता है- हे देवता श्रेष्ठ! मेरे दिए हुए वचन यदि आप झूठ हुआ ऐसा समझते हैं तो मैं उसको सत्य करुँगा। मैं आपको वंचना करने वाला नही हूँ। आप सही तरीके से अपने छोटे तीसरे पाँव को मेरे सिर के ऊपर रखें।।2।।

यहाँ बलि का भाव है कि वामन ने उसको वंचना कर दिया। छोटे पाँव को दिखाकर बाद में बड़े पाँव से माप लिया है। यह वंचना हो सकता है। किन्तु भगवान बलि को वंचना करने का आरोप कर रहे हैं। इसके लिए तीसरे पाँव के लिए सिर देने से बलि अपने को वंचन शब्द से बचाना चाहता है। किन्तु पहले पाँव से ही भगवान जब ब्रह्माण्ड को माप लिए तब उस ब्रह्माण्ड में बलि का सिर भी आ जाता है। तो तीसरे पाव के लिए स्थान कहाँ बचा। यहाँ वामन वंचना नही किए हैं। उनके वामन और त्रिविक्रम रूप में, छोटे और बड़े पाँवों मे कोई भेद नही है। इसी को उपनिषद कहती है **नेह नानास्ति किञ्चन।** भगवान के रूपों मे भेद देखना आसुर स्वभाव होता है। उस आसुर स्वभाव को हटाना ही भगवान का उद्देश्य है।

मैं स्वर्ग से वंचित होने से डरता नही, नरक बन्धक पाश, असहनीय दु:ख, धन नाश अथवा आप द्वारा देने वाली शिक्षा से मै ज्यादा डरता नही। किन्तु लोक निन्दा को मैं बहुत डरता हूँ।।3।।

परम पूज्य महात्मा लोगों द्वारा दी जाने वाली विद्या को मैं बहुत गौरव देता हूँ। ऐसे उत्तम ज्ञान को अभिमान से अन्धे बने हुए माता-पिता, भाई-बन्धु अथवा मित्र दे नही पाते।।4।।

आप निश्चित रूप से असुर बने हमको परोक्ष रूप से परम गुरु बने हैं क्योंकि हम धनादि अनेक मद से अन्धे बनते हैं उसको हटाकर हमे वैराग्य नाम की दिव्य आँख देने वाले आप हैं।।5।।

आप हमारे जैसे असुरों को परोक्ष रूप से हितकारी हैं क्योंकि हम आप में लेष से युक्त स्नेह करने के बाद भी बहुत असुरों को भी एकान्त भक्त को मिलने वाली सिद्धि को आप दिए हैं।।6।।

आप बहुत लीलाओं को दिखाते हुए हमारा हित चाहते हुए मेरा निग्रह करते हुए वरुण पाश से बन्धित किए हैं। इससे मुझे न दुःख है अथवा लज्जा नही होती है।।7।।

मेरे बाबा प्रह्लाद आपको आपके भक्तों को बहुत प्रियकर बने हैं। वे शुद्ध भक्त माने जाते हैं। ऐसे प्रह्लाद को आपके भक्त होने के कारण, आपसे द्वेष करने वाले उनके पिता हिरण्यकश्यप उनको बहुत कष्ट दिए।।8।।

तब प्रह्लाद विचार किए। यह शरीर हमको छोड़कर एक न एक दिन जाने वाला है। पिता से मिला हुआ जायजाद को पुत्र खींचता है। बन्धुओं के रूप में आने वाले चोर हमारे क्या हित के बनते हैं। माँ के गर्भ में बच्चों के रूप से पिता ही पुनः जन्म लेता है। इस रीति से पुनर्जन्म के लिए कारण बनने वाली पत्नी से क्या प्रयोजन है? इन घर और जमीन जायजाद से क्या मतलब है। इनमें आसक्त होकर मानव व्यर्थ रीति से अपना आयुष्य गवाँ देता है।।9।।

इस प्रकार चिन्तन करते हुए परम सज्जन और महान ज्ञानी हमारे बाबा प्रह्लाद जी बन्धु जनों के संग से भयभीत होकर असुर कुल के लिए नाश बने आपके पाद कमल को भय रहित आश्रय स्थान समझ कर उसी को बहुत दृढ़ता से पा लिए हैं।।10।।

इसी से मै भी आप मेरे लिए शत्रु बने तो भी आपके आश्रय के लिए बल पूर्वक मुझे आना पड़ता है। दैव ही स्वयं मेरे सम्पत्ति को लूट लिया है। सम्पत्ति लोगों के विवेक को खराब करता है। इस जीवन को लोग मृत्यु वश में रहते हुए भी अशास्वत है ऐसे नही समझते हैं।।11।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- हे राजा! बलि के इस प्रकार बोलते समय भगवान के अत्यन्त प्रिय प्रह्लाद उदयमान चन्द्र के समान होकर वहाँ आ गये।।12।।

कमल के दल के समान लम्बी आँख वाले, उन्नत शरीर वाले, आजानुबाहु, सुन्दर शरीर वाले, पीताम्बर धारण किए हैं। ऐसे उज्वल रूप वाले अपने बाबा प्रह्लाद् जी को बलि ने देखा।।13।।

बलि वरुण पाश से बद्ध होने के कारण उनका सत्कार पिछले जैसे कर नही सका। वह सिर झुका कर उनका नमन किया। आँखें आँसुओं से भर गये। लज्जा से सिर नीचा किया।।14।।

प्रहलाद उस यज्ञ शाला में नन्द और सुनन्द अनुचरों से सेवा लेते हुए, सज्जन रक्षक, विराज मान वामन जी को देख कर जल्दी से उनके पाँव में सिर रखते हुए नमस्कार किए। भक्ति परवशता से उनके आँख आनन्द वाष्प से भरे हैं। शरीर रोमाञ्चित हो गया है।।15।।

प्रहलाद जी कहते हैं- हे भगवान! बलि को आपने ही श्रेष्ठ स्थान दिया था, अब आपने ही उसको वापस ले लिया है। बलि ने उसको न कमाया है, न खोया है, न दान दिया है। यह तो ठीक ही हुआ।

वह उससे बहुत मोहित हो गया था। आपने उसको उससे लेकर अच्छा ही किया। इसको आपसे किया हुआ एक बड़ा अनुग्रह मानता हूँ।।16।।

ज्ञानी जिस सम्पत से मोहित होता है उससे किसका कल्याण होगा? उससे कौन श्रेय को पाता है। ऐसे सम्पत को छीनकर भक्त के ऊपर अनुग्रह किए हुए अखिल लोक के कर्मसाक्षी जगदीश्वर नारायण आपको नमस्कार।।17।।

श्री शुक देव जी बोलते हैं- हे राजा! पति बलि बन्धित हुआ है इसको देखकर उसकी पत्नी पतिव्रता विन्ध्यावलि भयभीत होकर हाथ जोड़कर अवनत मुख से बलि के सामने विनती की।।18।।

विन्ध्यावलि कहती है- हे भगवान! आप अपनी लीला से इन तीनों लोगों का सृष्टि किए हैं। किन्तु हम असुर लोग और बुद्धिहीन अन्य लोग इसको अपना मानकर दुरभिमान रखते हैं। जो अपना नही है उसको अपना मानते हुए। जिसका है ऐसे आपको दान देकर कीर्ति पाना चाहते हैं। यह लज्जारहित काम है। इस जगत की रचना करते हुए उसका पालन करने वाले प्रभु आपको कौन क्या करता है। वे सारे कामों को स्वतंत्र रीति से करते हुए ऐसे समझते हैं। आप उनके दर्प को उतारने वाले हैं। आप उनको अनुग्रह करने वाले हैं (पर्याय रूप से बलि का दर्प नाश कर अनुग्रह करने के लिए प्रार्थना करती है)।।19।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- हे राजा! प्रह्लाद जी हाथ जोड़कर वहाँ खड़े रहे। तब भगवान ब्रह्म देव बिनती करते हैं।।20।।

सबको जन्म देते हुए इस जगत के ऊपर राज्य करने वाले सर्वत्र व्याप्त देव देव श्री हरि आप इसको छोड़ दीजिए। आप इसके सर्वस्व का हरण कर चुके हैं। इससे ज्यादा शिक्षा उसको नही दें।।21।।

बलि आपको सारे भूमण्डल को दे दिया है। अपने कर्म से पाए हुए स्वर्गादि लोक को भी छोड़ दिया है। अपने सर्वस्व मानने वाले शरीर को भी बिना हिचकिचाते हुए आपको समर्पित किया है।।22।।

आपके पादों को निर्मल बुद्धि से धोकर दूर्वा से पूजा किए तो भी भक्त उत्तम गति को पाता है। यह बलि तो वंचना रहित होकर आपको तीनों लोकों को समर्पित किया है। अब इसको कहाँ से दु:ख होता है। उसे क्यों कर दु:ख को पाना है।।23।।

भगवान कहते हैं- ब्रह्मा जी मैं जिसको अनुग्रह करना चाहता हूँ पहले उसकी सम्पत्ति का नाश करता हूँ क्योंकि वह उस सम्पत्ति के अहंकार से विस्मृति पाकर असुरावेश से जगत को और मुझको भी भूल जाता है, और अवमानना करता है।।24।।

अस्वतंत्र जीव अपने कर्म से अनेक योनियों मे जन्मते हुए कभी एक बार श्रेष्ठ मानव जन्म को पाता है।।25।।

इस मानव जन्म में भी जन्म, कर्म, वय, रूप, विद्या, ऐश्वर्य, धन, सम्पदा इत्यादि से उसको अहंकार नही आया तो मेरे अनुग्रह के लिए वह योग्य बनता है।।26।।

सारे स्थानों मे सभी श्रेयों के बीच मे आने वाले अभिमान और अहंकार को यह जन्म मरण कारण बनते हैं। मेरे भक्त को उनके मोह के वश मे नही आना चाहिए।।27।।

दानव दैत्यों का नायक यह बलि बहुत कीर्तिशाली है। यह स्वभाविक तरह से मेरे अनुग्रह के बिना न जीतने वाली बन्धक माया को मेरे अनुग्रह से जीत लिया है। ऐसे लोगों को किसी भी दु:ख के प्रसंग में स्वतंत्रता का भ्रम उत्पन्न नही होता है।।28।।

किन्तु असुरावेश से हमारे क्रोध का कारण बनकर यह बलि अपने सर्वस्व को खोकर स्थान भ्रष्ट होकर उसके शत्रु मेरे अनुचरों के बन्धन मे बन्धित हैं। उसका कोई बन्धु उसको छुड़ाने नही आता है। वह दु:ख भागी बना है। उसके गुरु शुक्राचार्य भी उसे डाटे और शाप दिए तो भी वह अपने दिए हुए वचन को सत्य करने के छल को नही छोड़ा। मैं उसके पूर्वजो की स्तुति करते हुए वंचना की बातों से धर्म के बारे में उससे कहा तो उसी के ऊपर विश्वास रखते हुए सत्य को न छोड़ने का आग्रह रखता है।।29,30।।

तो भी मैं बलि की इस क्रिया को असुरावेश का प्रभाव मानकर अलक्षित करते हुए इसको देव दुर्लभ बड़ा स्थान दे रहा हूँ। आगे के सावर्णि मन्वन्तर में मेरे आश्रय में इन्द्र बनेगा।।31।।

तब तक यह बलि सुतल लोक में विश्वकर्मा से निर्मित राज घर में रहे वहाँ उसको आधिव्याधि, आयास आलस्य पराजय इत्यादि उपद्रव मेरे अनुग्रह से नही होते।।32।।

महाराज इन्द्रसेन तुम सुतल लोक को जाओ। उस लोक को जाने के लिए देवगण भी आशा करते हैं। वहाँ बन्धुओं के साथ जाओ। तेरा कल्याण हो।।33।।

वहाँ तुमको लोकाधिपति भी हरा नही सकते। तेरे शासन के विरोध में आने वाले दैत्यों का संहार मेरा यह चक्र करता है।।34।।

तुम्हारे सेवक और परिवार को भी मैं सारी आपदाओं से रक्षा करता हूँ। हे वीर! मैं। सदा काल वहाँ रहता हूँ। तुम रोज मेरा दर्शन करते रहो।।35।।

वहाँ दानव दैत्यों के संघ से तुम में। यदि असुरावेश उत्पन्न हुआ तो उसी क्षण मेरे दर्शन से वह नाश हो जायेगा (भगवान वहाँ बलि के घर की रक्षा नही कर रहे हैं, किन्तु पुन: असुरावेश न हो इस दृष्टि से उसके मन की रक्षा कर रहे हैं)।।36।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - बाईसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - सारे सज्जनों के लिए प्रिय पुराण पुरुष भगवान श्री हरि की बातें सुनकर बलि आनन्द विभोर हो उठा। वह दोनो हाथ जोड़कर गला अवरुद्ध होने के कारण गद्गद स्वर से बोला (उसका असुरावेश अब सम्पूर्ण उतर गया है)।।1।।

बलि कहता है- शरणागत भक्तों की इच्छा पूर्ण करने वाले और लोकपाल अन्य देवता से जो पा नही सकते ऐसा प्रेम पूर्ण अनुग्रह को नीच और असुर मुझ पर आप किए हैं यह मुझे आश्चर्य लगता है।।2।।

श्री शुकदेव कहते हैं- बलि ऐसे बोलते हुए भगवान हरि को और ब्रह्म और रुद्र को नमस्कार किया। बन्धन से मुक्त होकर सन्तोष से असुरों के साथ सुतल लोक में प्रवेश किया। (बलि मुक्ति पहाड़ के गुफा मे बन्धक बनाके रखने के बाद ही हुआ। यह पञ्चम स्कन्ध में आती है)।।3।।

इस प्रकार भगवान स्वर्ग के अधिकार को इन्द्र को वापस दे दिए। अदिती के इस इष्टार्थ को पूर्ण करते हुए वे सम्पूर्ण जगत की रक्षा किए।।4।।

वंशोद्धारक पौत्र भगवान के अनुग्रह से बन्ध मुक्त हुआ देखकर भक्ति से नम्र प्रह्लाद जी कहते हैं।।5।।

प्रहलाद जी कहते हैं- हे भगवान श्री हरि! लोक पालक पूज्य ब्रह्मादि देवताएँ आपकी पाद पूजा करतें हैं। ऐसे आप हमारे द्वार पालक बने हैं। इतना अनुग्रह ब्रह्मा जी नही पाये हैं, लक्ष्मी भी नही पायी हैं, रुद्र भी नही पाये हैं, और अन्यों के बारे मे क्या कहना है?।।6।।

श्री हरि बलि के दरवाजे पर रक्षक बने हैं इसका उद्देश्य बलि मे असुरावेश और न आये। लक्ष्मी, ब्रह्म और रुद्र मे यह असुरावेश आने वाला नही है, इसके लिए उनको इस अनुग्रह की आवश्यकता नही है।

भक्तों को आश्रय देने वाले प्रभु आपके पाद कमल रज को सेवन करने वाले ब्रह्मादि देवता सकल ऐश्वर्य को पाते हैं। हम दुष्ट दानव वंश में जन्म लिए हैं, असुर आपके द्वेषी और दुर्मार्गी होते हैं। तो भी आप अपने उदार दृष्टि से हमारे ऊपर अनुग्रह किए हैं वह विशेष कारण है। (आपकी कारुण्य लीला है)।।7।।

अपार योग माया से लीला करते हुए जगत की सृष्टि करने वाले आपकी लीला अत्यद्भुत है। आप सारे जगत के स्वामी हैं। आप किसी के ऊपर पक्षपात न करते हुए सबको समान दृष्टि से देखते हैं। जो आपकी सेवा करता है उसको आप फल देते हैं। आप भक्तों के लिए फल देते हैं, आप भक्तों के पक्ष पाती हैं। आप भक्त जो चाहते हैं उसको देने वाले कल्प वृक्ष हैं।।8।।

भगवान नारायण कहते हैं- हे बेटा प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपने पौत्र के साथ सुतल जाओ। वहाँ सुख से जीवन करने के साथ साथ सबको सुख दिलाओ।।9।।

वहाँ तुम प्रतिनित्य गदापाणि होकर रहने वाला मेरा दर्शन पाओगे। मेरे दर्शन के महा आनन्द से जन्म जन्मों के दुष्कर्म के बन्धन को खो डालोगे।।10।।

श्री शुकदेव कहते हैं- हे राजा! असुरों के नायक निर्मलज्ञानी प्रह्लाद बलि के साथ भगवान की आज्ञा को मानते हुए हाथ जोड़ते हुए आदि पुरुष की परिक्रमा करने के बाद सुतल लोक चले गये।।12।।

उसके बाद श्री हरि ब्रह्मज्ञानी ऋत्विजों की सभा में बैठे हुए शुक्राचार्य को उदेश्य कर बोले।।13।।

हे मुनि! याग करने वाले अपने शिष्य के कर्म लोक को प्रायश्चित के साथ ठीक करो। मुनि के दर्शन मात्र से कर्म का लोप दोष ठीक बन जाते हैं। तो प्रायश्चित करने के बाद दोष कैसे रहते हैं?।।14।।

श्री शुक्राचार्य जी कहते हैं- कर्म को प्रेरणा देने वाले यज्ञ का फल देने वाले यज्ञ नामक पुरुष आप होते हुए, बलि आपकी पूजा करने के बाद कर्म लोप कैसे होता है?।।15।।

मंत्र, तंत्र, देश, काल, पात्र, दक्षिणा इनमे लोप दोष जो होते है वह दोष आपके नाम संकीर्तन से पूर्ण होते हैं। अलग से प्रायश्चित करने की आवश्यकता नही होता है।।16।।

शुक्राचार्य जी की बात का अर्थ यह होता है कि नामत्रय जप करने से प्रायश्चित्त की आवशकता नही होती है। इसका कारण यही है कि बलि बद्ध होने के कारण प्रायश्चित्त नही कर सकता है। ऐसे समय में **अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः,** यह नामत्रय जप करने के बाद प्रायश्चित्ताकी अवश्यकता नही है।

तो भी आपकी आज्ञा के अनुसार मैं प्रायश्चित करुँगा।। आपकी आज्ञा का पालन करना ही सबको श्रेयस्कर है (श्रुति, स्मृति भी हरि आज्ञा को पालन करने के लिए बताते हैं)।।17।।

आचार्य शुक्राचार्य इस प्रकार कहते हुए भगवान की आज्ञा को सन्तोष से मानते हुए यज्ञ के लोप दोषों को ब्रह्मर्षियों के साथ मिलकर प्रायश्चित्त पूर्वक ठीक किए।।18।।

हे राजा! इस प्राकर वामनावतारी श्री हरि बलि से भूमि का दान पाकर अपने भाई देवेन्द्र को शत्रु से अपहृत स्वर्गलोक का आधिपत्य दे दिए।।19।।

देवताएँ, ऋषिगण, चक्रवर्ति, दक्ष, भृगु, अंगिरस आदि मुनि, सनत्कुमार, और शिव के साथ मिलकर कश्यप मुनि और अदिति को प्यार हो, सकल जीवियों का भय परिहार हो, इसके लिए दक्ष इत्यादि प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्मा जी, वामन को सकल लोको के ऊपर लोक पालक अधिपति घोषित किए।।20,21।।

देवेन्द्र अधिपति थे, तो भी वेद, देवताएँ, धर्म, यश, सम्पदायें, सकल मंगल कार्य, व्रतनियम, स्वर्ग प्राप्ति, मोक्ष प्राप्ति, इनके लिए समर्थ वामन जी को ही सबके कल्याण के लिए ब्रह्मा जी अधिपति घोषित किए। तब सारे लोग बहुत आनन्दित हुए।।22,23।।

उसके बाद इन्द्र और लोकपालकों की अनुमति पाकर वामन जी को सामने रखते हुए दिव्य विमान में उनको स्वर्ग लोक को लेकर चले गये।।24।।

इन्द्र तीनों लोकों का आधिपत्य पाकर वामन जी की रक्षा में भय मुक्त होकर सकल सौभाग्य का आनन्द भोगने लगे।।25।।

हे राजा! ब्रह्म, शिव, सनत्कुमार, भृगु इत्यादि मुनि गण, पितृगण, जीव गण, विमान में संचार करने वाले सिद्धगण ये सारे श्री हरि के इस अद्भुत कार्य का संकीर्तन करते हुए अपने अपने लोकों को चले। वे अदिति की तपो महिमा की प्रशंसा किए।।26,27।।

हे राजा! श्रोताओं के पाप हरण करने वाली विष्णु की इस लीला को मैंने तुम्हारे लिए पूर्ण रीति से कहा हूँ।।28।।

इतने कहने के बाद भी मैं भगवान की लीला को संक्षेप में ही कह सका। भगवान की लीला अपार है। उसको कौन कह सकता है। इस पृथ्वी में धूलि के कण कितने हैं इसको महाज्ञानी एक गिन सकता है। किन्तु छोटा और बड़ा पाँव से विश्व को मापने वाले महापुरुष मुरारी की महा महिमा के सार को भी अब तक जन्म लिया हुआ, पहले जन्म ले चुका, या आगे जन्म लेने वाला महापुरुष कैसे बोल सकता है? कभी भी बोल नही सकता यह मंत्र द्रष्टार की बात है। (ऋग्वेद 1-154 और 7-99 देखें)।।29।।

अद्भुत कार्य करने वाले देवों के देव भगवान श्री हरि का इस वामन अवतार की लीला का श्रवण करने वाला निश्चित रूप से मोक्ष को पाता है।।30।।

देवता कार्य, पितृकार्य, श्राद्धकार्य, ब्राह्मणादि पूजा रूप मनुष्य कार्य करते समय इस वामन चरित्र को कहने वाले और सुनने वाले के सारे कार्य पूर्ण फल देने वाले होते हैं ऐसा ज्ञानियों का मत है।।31।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अष्टम स्कन्धः

अध्याय - तेइसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित कहते हैं - हे पूज्य मुनिवर्य, अद्भुत लीला करने वाले भगवान श्री हरि अपने ही मर्जी से मछली के रूप में जन्म लेकर मछली के अनुसार जो लीला किए उस अवतार की कथा को मै सुनना चाहता हूँ।।1।।

लोगो को हल्का लगने वाला मछली का शरीर तमोगुण वाला और असह्य लगता है। सर्व शक्त भगवान कर्म बद्ध जीव के समान इस मछली का रूप क्यों लिए।।2।।

हे पूज्य! इस सारी कथा को पूर्ण रीति से आप हम सुनाइए। भगवान के पवित्र कीर्ति वाली कथा सारे लोक को सुख देने वाली बनती है।।3।।

सूत जी कहते हैं- राजा परीक्षित की विनती को मानते हुए भगवान शुकदेव विष्णु की मत्स्य रूप की कथा और लीला का वर्णन करने लगे।।4।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- भगवान विष्णु गाय, ब्राह्मण, देवगण, सज्जन लोग, वेद, धर्म, और अर्थ की रक्षा के लिए कभी कभी अवतार लेते रहते हैं।।5।।

हवा, दुर्गन्ध से भरी हुयी वस्तु के ऊपर से चलने के बाद भी शुद्ध जैसे रहती है वैसे भगवान भी वाह्य रूप गुण से उच्च-नीच नही होते। वे अवतार लेने के बाद भी उस रूप के अनुसार उच्च - नीच नही होते। वे सदा काल उच्च ही रहते हैं क्योंकि वे प्राकृत गुण रहित होने के कारण प्रकृति के सत्व रजादि गुणों का परिणाम उनके ऊपर नही होता। वे कभी भी नीच नही होते।।6।।

ब्रह्मा जी के गत दिन कल्प के अन्त में ब्रह्मा जी के निद्रा के समय मे प्रलय कारक लय हुआ। तब भू, भुव और स्वर्ग ये तीनों लोक प्रलय जल से आवृत हो गये।।7।।

ब्रह्मा जी को नीद आने के कारण वे जब सोये तब उनके मुख से व्यक्त हो रहे वेदों के अभिमानी देवताओं के बगल मे रहने वाला हयग्रीव नाम का असुर अपहरण कर उनके बल से बहुत बलिष्ठ बन गया।।8।।

महादानव हयग्रीव के इस दुष्ट कृति को समझ कर सर्वसक्त भगवान श्री हरि मत्स्य के रूप को धारण किए (तीनों लोकों को घेर कर प्रलय जल रहने के कारण उस जल मे मछली का रूप अत्यन्त स्वभाविक है।।9।।

उस मत्स्य रूप को उद्देश्य करते हुए भगवान नारायण के भक्त सत्यव्रत नाम का महानराजर्षि केवल जल को पीकर तप का आचरण करने लगा।।10।।

पहले वेद की रक्षा के लिए हयग्रीव को नाश करने के लिए भगवान स्वायंभुव मन्वन्तर के आदि में मत्स्यावतार लिए। चाक्षुस मन्वन्तर के अन्त में राजा सत्य व्रत की रक्षा के लिए मत्स्य मूर्ति बने। इस प्रकार मत्स्यावतार दो बार हुए।

वह राजा सत्यव्रत ही इस वैवस्वत मन्वन्तर मे विवस्वान नाम के सूर्य के पुत्र बनकर जन्म लेकर श्राद्ध देव नाम से प्रख्यात होकर इस मन्वन्तर के मनु पद को श्री हरि इच्छा से पा लिया।।11।। वे एक बार कृत माला नदी में जल का अर्घ देते समय उनके अंजलि में एक सुन्दर अद्भुत छोटी मछली दिखाई दिया।।12।।

द्राविड़ देश के राजा सत्य व्रत अपने अंजलि में रहे मछली को नदी में छोड़ना चाहा।।13।।

तब वह मछली बहुत दैन्य से उस करुणामय राजा को बताने लगी। हे दीन वत्सल राजा, मैं अत्यन्त छोटी हूँ। मुझको बड़ी मछली खा सकती हैं। मुझको उनसे डर है। आप दीन मुझको नदी में कैसे छोड़ सकते हैं।।14।।

श्री शुकदेव कहे- राजा यह मछली मेरे अनुग्रह के लिए रूप धारण कर आये हुए भगवान न हो समझते हुए उसकी रक्षा का संकल्प करता है।।15।।

मछली के दैन्य युक्त बातों को सुनकर दयालु राजा उसको एक कलश में रखकर अपने आश्रम को ले गया।।16।।

वह मछली एक ही रात में पूरे कलश भरे इतनी मोटी हो गयी और राजा से कही।।16।।

हे राजा! मैं। इस कलश मैं रह नही सकतीं मेरे लिए और बड़ा स्थलावकाश मिला दीजिए। वहाँ मैं सुख से रहना चाहती हूँ।।18।।

तब राजा उसको उठाकर एक बड़ी कड़ाही में रख दिया। वह मछली वहाँ एक मुहूर्त में तीन हाथ के प्रमाण बढ़ती रही।।9।।

तब वह मछली बोली- हे महाराजा! मुझे यहाँ रहना कष्ट हो रहा है। मुझको और बड़ा स्थान

दीजिए। मैं आपके शरण में हूँ।।20।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- राजा ने उस मछली को उठाकर एक सरोवर में डाल दिया। वह अपने शरीर से पूरे सरोवर मे व्याप्त होकर भर गयी।।21।।

मछली बोली- राजा! पानी में रहने वाली मुझको यह सरोवर छोटा होने के कारण सुखदेने वाला है इसके लिए मुझको कभी भी न सूखने वाला महाजल मे डाल दो।।22।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- मछली के इस बात को सुनकर राजा बड़े बड़े तालाब में उसको रखते हुए अन्त में बड़े सागर में उसको छोड़ दिया।।23।।

समद्र में छोड़ते समय वह मछली राजा से बोली- हे राजा मै यहाँ कैसे सुरक्षित रहूँ? यहाँ के मगरमच्छ मुझको खा डालते है। मुझे अकेले को यहाँ मत छोड़ो।।24।।

मछली के इन मोहक बातो को सुनकर राजा मोहित होकर मछली से पूछता है, अरे तुम कौन हो? मछली के रूप में आप मुझको मोहित कर रहे हों।।25।।

इतने छोटे समय में अनेक योजन विस्तार वाला सरोवर में भरकर तुम बड़ी हो गयी हो। ऐसी बड़ी सामर्थ वाली मछली को हम कभी देखे नहीं, सुने भी नही।।26।।

मुझे लगता है कि तुम स्वयं भगवान श्री हरि हो, तुम ही नाश रहित नारायण हो, यहाँ जीवियों को अनुग्रह करने के लिए जलचर के रूप धारण करते हुए यहाँ आये हैं, ऐसे में समझता हूँ।।27।।

हे पुरुषोत्तम, आप सृष्टि, स्थिति और लय करने वाले हैं। हे प्रभु, आपको नमस्कार। शरणागत भक्तों के मुख्य रक्षक आप स्वामी हैं। हमको आपही सदगति देने वाले हैं।।28।।

आपके सारे लीलावतार सकल जीवियों के कल्याण के लिए होते हैं। मैं अब यह जानना चाहता हूँ कि आप इस रूप को क्यों धारण किए हैं।।29।।

हे कलाक्ष, सकल जीवियों के लिए जो आप्त बनते हैं उनसे भी बढ़कर आप प्रिय हैं, आपके पाद सेवा को अन्य पामर कैसे पा सकते हैं। ज्ञानी सज्जन लोग करे तो भी फल पाना कष्ट है। मै इसके दृष्टान्त रूप में हूँ। आप कृपा करके अपना यह अद्भुत रूप का दर्शन दिए हैं।।30।।

राजा सत्य व्रत की बात को सुनकर मत्स्य रूपी जगदीश्वर प्रभु श्री हरि मन्वन्तर के प्रलय काल में प्रलय महा जल में विहार करने की इच्छा वाले और एकान्त भक्त को सुखदेने वाले भगवान श्री हरि इस प्रकार कहे।।31।।

भगवान बोले- हे राजा! आज से सातवें दिन में भूमि अन्तरिक्ष और स्वर्ग इन तीनों लोको में

प्रलय होता है। उस समय तीनों लोक प्रलय जल में डूब जाते हैं।।32।।

तीनों लोक डूब जाने के उस समय में तुम्हारे पास मैं एक नौका को भेज देता हूँ। वह विशाल नौका तुम्हारे पास आ जाती है।।33।।

उस समय तुम आगे के सृष्टि के लिए जो जो आवश्यक है उन सबके छोटे बड़े बीजों को संग्रह करते हुए सारे प्राणियों और सप्त ऋषियों के साथ उस बड़ी नौका के साथ बैठ जाओ। प्रकाश रहित उस अगाध प्रलय जल में तुम उन ऋषियों के प्रकाश से भय रहित रहो।।34,35।।

तब आँधी और तूफान से वह नौका हिलने लगेगी उस समय तुम्हारी नौका को तुम्हारे पास आने वाली मेरी बड़ी सिंघ से नौका को बांधो।।36।।

हे राजा! मन्वन्तर के प्रलय के अन्त तक मैं तुम जिस नौका मे रहते हो उसको खींचते हुए मैं संचार करता रहता हूँ।।37।।

ब्रह्मा जी के निद्रा समय पूर्ण होते तक एक कल्प होता है। इस अभिप्राय से **मन्वन्तर के अन्त तक** ऐसे कहा हैं। दो मत्स्यावतार हो गये है। एक दिनप्रलय मे और एक मन्वन्तरप्रलय मे हुआ है।

मेरी महिमा परब्रह्म कही जाती है। तुम्हारे मन मे जो प्रश्न उठते है उनके लिए उस समय मै उत्तर देता रहता हूँ। इससे सृष्टि के प्रारम्भ तक तुम्हारे संशय नष्ट हो जाते हैं।।38।।

श्री शुकदेव कहते हैं- राजा सत्यव्रत को इस प्रकार आदेश देकर श्री हरि अन्तर्ध्यान हो गये। राजा श्री हरि से बताए हुए काल की निरीक्षा करने लगा।।39।।

राजा सत्यव्रत कुश को पूर्व के अभिमुख करते हुए पसार कर ईशान्य दिशा में मुँहकर के बैठकर मत्स्य रूपी भगवान के श्री चरणों का ध्यान करते बैठा।।40।।

बहुत समय के बाद बड़े बड़े बादल आने लगे और घन घोर वर्षा होने लगी। उससे समुद्र चारों तरफ से ऊपर चढ़कर सभी जगह से जमीन को डुबो दिया। राजा इसको देखता रहा।।41।।

भगवान के आदेश के अनुसार आते हुए एक नौका को राजा ने देखा। वह राजा सस्य, वृक्ष, बीज इत्यादि ग्रहण कर ऋषियों के साथ उस नौका मे चढ़ गया।।42।।

उससे ऋषिगण सन्तुष्ट हो गये। वे राजा से कहे, हे राजा भगवान केशव का ध्यान करो। वे हमे कष्टों से रक्षा करते हैं, हमे मंगल करते हैं।।43।।

उसके अनुसार राजा जब ध्यान किया तब एक लाख योजन प्रमाण वाला एक सींग वाला सोने के मछली रूप में भगवान श्री हरि दर्शन दिए।।44।।

भगवान पहले जैसे कहे थे उसके अनुसार पानी मे मिला हुआ साँप को रस्सी करते हुए नौका को बड़े मछली के सिंग को बाँध कर राजा मधुसूदन की स्तुति करने लगा।।45।।

राजा कहता है- अनादि अविद्या से भगवान का ज्ञान ढक गया है। उस अविद्या के कारण लोग संसार मे पुन: पुन: जनन मरण पाते हुए थक जाते हैं। उनमे सज्जन लोग भगवान की इच्छा से संसार वैष्णव जन्म को पाकर साधना करते हुए भगवान को पाते है। ऐसे भगवान और गुरु ये दोनो आप ही हैं। आप हमे न केवल इस प्रलय समुद्र से किन्तु संसार सागर से भी मुक्ति दें।।46।।

अज्ञानी लोग अपने कर्म बन्ध में फँसे हुए सुख की लालच से दु:खकर कर्म करते हैं। किन्तु ज्ञानी लोग आपकी सेवा करते हुए दुष्कर्म करने वाली बुद्धि से निपट जाते हैं। हमारे हृदय में रहने वाला कर्म बन्ध को निवारण हमारे गुरु आपही करें।।47।।

आग के सम्पर्क से सोना अपने मल को खो देता है, और अपने स्वभाविक रंग को पा लेता है। वैसे ही मोक्ष को चाहने वाला जीव भगवान की सेवा करते हुए अपने मन में तम से उत्पन्न होने वाले राग द्वेषादि मल को निवारण कर सकता है, और अपने स्वरूप आनन्द को पा सकता है। ऐसे ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी गुरु बने हुए सर्वेश, सर्वोत्तम, नाशरहित भगवान श्री हरि आप हमारे कर्म बन्ध का नाश करें।।48।।

अन्य देवताएँ, अन्य गुरु और सारे लोग मिलकर भी, स्वतंत्र रूप से भगवान श्री हरि अनुग्रह करते हुए इष्टार्थो को देते है उसके दस हजारों में एक हिस्सा भी दे नही पाते। ऐसे सर्वेश्वर भगवान आपके चरण में हम आये हैं।।49।।

अन्धे को आँख वाला ही रास्ता दिखा सकता है। वैसे अज्ञानी को ज्ञानी गुरु ही सद्गति दे सकते हैं। सद्गति पाने के लिए इच्छा करने वाले हमको, हमारे इन्द्रियों को ज्ञान और शक्ति देने वाले, भक्तों को, सारे अभीष्ट को देने वाले आपको ही हम गुरु रूप से स्वीकार करते हैं।।50।।

मूढ़ अज्ञ को अर्थ काम के बारे मे ही (गुरु) उपदेश दे सकता है। उससे अज्ञ कभी भी पार न करने वाला घोर संसार नाम के तम मे ही रहता है। किन्तु आप नाशरहित, अमोघ, श्रेष्ठ उपदेश देते हैं। उसी से ज्ञानी अपने स्वरूप आनन्द को पाता है।।51।।

आप सारे लोगों को उनके कर्मानुसार उपकार करते हैं। ये सबके प्रिय स्वामी, सबके अन्तर्यामी, गुरु, ज्ञानस्वरूपी इच्छाप्रद भगवान आप हैं। लोग बाहर के अर्थ काम की लालसा से अन्धा बनकर अन्दर रहने वाले आपको जान नही पाते हैं।।52।।

आप देवोत्तम, पूज्य, सर्वेश, सर्वोत्तम हैं। आपको ही मैं तत्व को जानने के लिए शरण आया हूँ। हे भगवान! तत्व के ऊपर प्रकाश डालने वाले आपके उपदेश से मेरे हृदय मे रहने वाले कर्म बन्धन का नाश करें। हे भगवान! आप अपने स्वरूप को खोल कर दिखाएँ, और मेरे स्वरूप आनन्द को दर्शाएँ।।53।।

सत्य व्रत राजा के इस प्रार्थना को सुनकर आदि पुरुष मत्स्य रूपी नारायण प्रलय जल के महा समुद्र में विहार करते हुए राजा को तत्व उपदेश देने लगे।।54।।

राजा सत्यव्रत को मत्स्यमूर्ति भगवान नारायण ज्ञान भक्ति कर्म योग युक्त श्रेष्ठ तत्व वाला मत्स्यपुराण को राजा के योग्यतानुसार, अपने गोप्य स्वरूप के साथ उपदेश दिए।।55।।

शंसय के लिए थोड़ा सा भी अवकाश न छोड़ते हुए सनातन ब्रह्म के बारे में भगवान के इस उपदेश को और आत्म रहस्य को ऋषियों के साथ नौका मे बैठा हुआ राजा सुनता रहा।।56।।

दिन प्रलय के अन्त में नींद से जब ब्रह्मा जी उठे तब बगल में रहने वाला हयग्रीवासुर को मारकर वेदाभिमानी देवताओं को मत्स्य रूपी भगवान ब्रह्मा जी को दे दिए।।57।।

राजा सत्यव्रत भगवान हरि के अनुग्रह से ज्ञान और विज्ञान में सम्पूर्ण ज्ञान पाकर इस मन्वन्तर में वैवस्वत मनु होकर राज्य चलाए।।58।।

राजर्षि सत्य व्रत, और स्वेच्छा रूप से मछली का रूप पाये हुए भगवान विष्णु के बीच में हुआ यह संवाद और मत्स्यावतार की यह सुन्दर कथा जो सुनता है वह सारे पापों से मुक्त होता है।।59।

श्री हरि के इस अवतार की कथा को प्रतिदिन सुनाने वाले मानव को उनके सारे अभीष्ट सिद्ध होता है और वह उत्तम गति को पा लेता है।।60।।

दिन प्रलय के जल में अन्य विषय पदार्थ से बाहर आकर केवल भगवान में ही अपने इन्द्रिय मन आदि शक्तियों को रखते हुए सोया हुआ चतुर्मुख ब्रह्मा जी के मुख से बाहर निकले हुए वेद के अभिमानी देवताओं को हयग्रीव असुर ने अपहरण किया था। उनको मत्स्यमूर्ति भगवान वापस लाकर ब्रह्मा जी को दे दिए। बाद में चाक्षुष मन्वन्तर के प्रलय जल में सत्यव्रत राजा को ब्रह्म स्वरूप को उपदेश दिए। उन मत्स्य मूर्ति को मैं अनन्त प्रणाम करता हूँ।।61।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में आठवाँ स्कन्ध में तेइसहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

।।यहाँ आठवाँ स्कन्ध समाप्त होता है।।

मत्स्यावतार

पता : मध्वमठ 63, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद 211 006
फोन नं0 : 0532-2504587

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

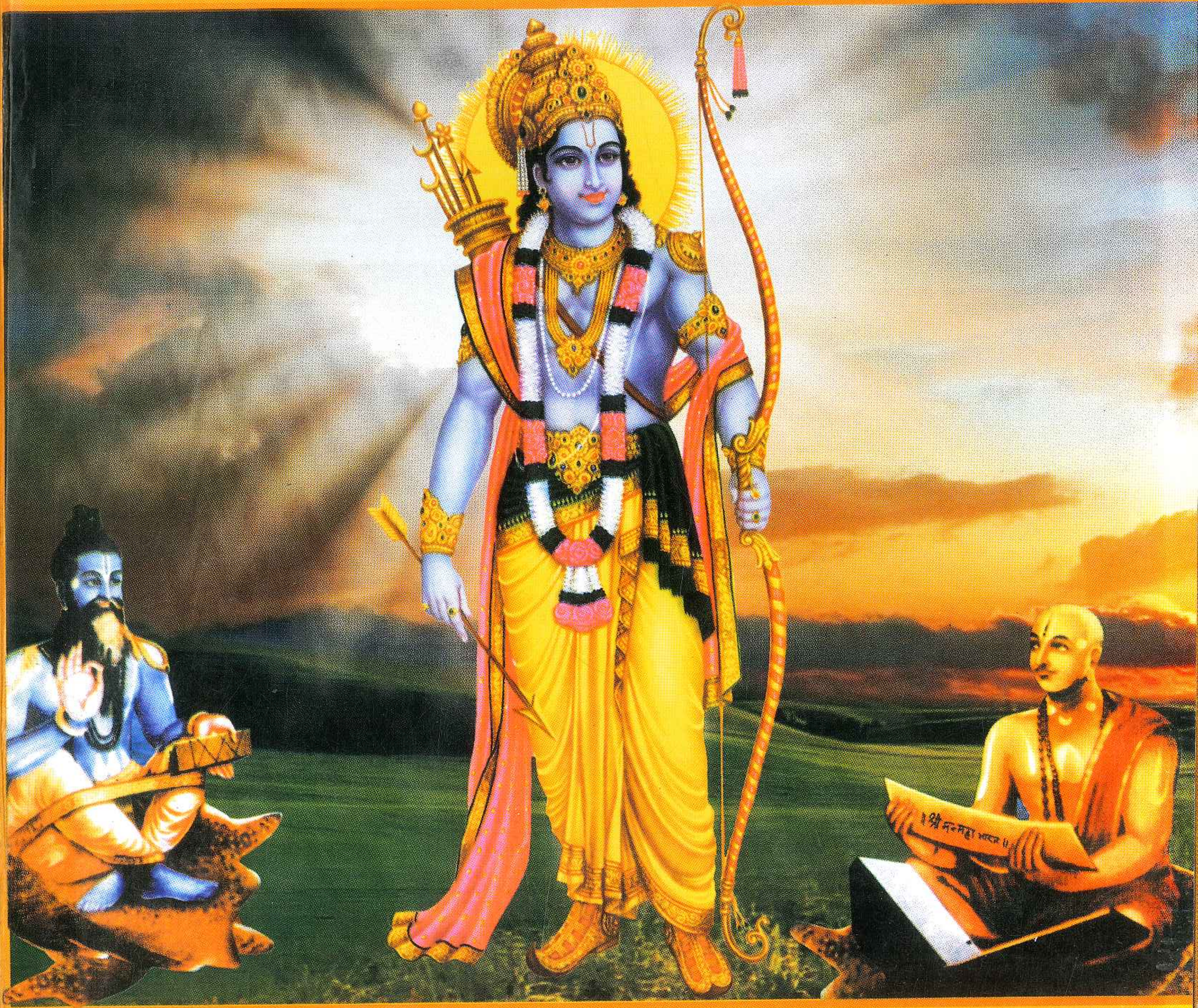

रामावतार

नवम स्कन्धः भाषानुवादः

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण

वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री विजयध्वज टीकानुसारी

श्री मद्भागवत महापुराणम्

नवम स्कंधः

(भाषानुवादः)

अनुवादक

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

प्रकाशक

तत्व संशोधन संसत्

जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

श्रीमद्भागवत महापुराणम् नवम स्कन्धः

लेखक-

श्री 1008 श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी

प्रकाशक

तत्व संशोधन संसत्

जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम मुद्रण 1000 प्रतियाँ

सहयोग राशि

पुस्तकालय संस्करण 100 रुपये

सामान्य संस्करण 60 रुपये

21-10-2011

अक्षर विन्यास

श्री प्राणेश कुमार शुक्ल

मुद्रक -

श्री वैष्णव प्रेस

मोरी, दारागंज, इलाहाबाद

अनुग्रह संदेश
श्री राम श्री

श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य मूल महा संस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी, उडुपी

आठ सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरू मध्वाचार्य जी ने मध्व सिद्धान्त का प्रचार प्रसार बहुत पैमाने से आरम्भ किया। इस प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए उडुपी में आठ पीठ और उत्तर कर्नाटक में एक पीठ की स्थापना किए। श्री जयतीर्थ मुनि, श्री श्रीपाद राज स्वामी, श्री व्यासराजमहामुनि, श्री वादिराजयोगी, श्री रघूत्तम स्वामी जी, श्री राघवेन्द्र तीर्थ जी इत्यादि महामहिमों ने उस सिद्धान्त को और विकसित किए। इसके बारे में यह श्लोक प्रसिद्ध है।

व्यासेन व्युप्तबीजः श्रृतिभुवि भगवत्पाद लब्धांकुरश्रीः।
प्रत्यैरीषत् प्रभिन्नोऽजनिजयमुनिना सम्यगुद्धिन्न शाखाः।।
मौनीशव्यासराजात् उदित किसलयः पुष्पितोयं जयीन्द्रात्।
अद्य श्री राघवेन्द्रात् विलसति फलितो मध्व सिद्धान्तशाखे।।

हमारे दीक्षा शिक्षा गुरु युगपुरुष श्री श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी उत्तर भारत में श्री मध्व तत्वज्ञान को प्रसार करने हेतु **बीस वर्ष** पहले श्री प्रयाग क्षेत्र में श्री मध्व पीठ की स्थापना की है। उन दिनों से प्रयाग का हमारा मठ मध्वसिद्धान्त का प्रसार करता आ रहा है।

श्री वेदव्यास जी की इस सुसंस्कृत भागवत को हमारे शिष्य श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी ने समर्थ सुन्दर और सबके मन को मिले ऐसी सुन्दर हिन्दी में अनुवाद कर साधक सज्जनों का परमोपकार किए हैं। कन्नड़, संस्कृत न समझने वाले हिन्दी भाषी साधकों को जगद्गुरू मध्वाचार्य जी के शास्त्र का परिचय कराने वाले इस कार्य को हम अपने हृदय भर कर अभिनन्दन करते हैं। अन्य सारे कार्यों को बाजू में रखते हुए **तद्धितप - तद्धितप** के जैसे दिन-रात किया हुआ यह शास्त्र सेवा अनुपम है। हमारे गुरु श्री श्री 1008 विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी से स्थापित तत्व संशोधन संसत से मुद्रण किया गया है। यह हरि गुरु का अनुग्रह प्राप्त करने वाला है। उत्तर भारत के हिन्दी भाषी लोग इस ग्रन्थ को पढ़ें और अपने बन्धु बान्धवों से पढ़ाएँ तो यह प्रयत्न सार्थक हो जाता है। इनसे भागवत के अन्य भाग भी जल्दी से जल्दी अनुवादित होकर साधकों के हाथ में विराजमान हो, यही हमारी अपेक्षा है। श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य जी से प्रतिष्ठापित श्री कृष्ण, श्री राम जी के अनुग्रह से हम अपने शिष्य को शुभ कामना करते हैं।

श्री श्री 1008 श्री विद्याधीशतीर्थ
स्वामी जी महाराज

अनुग्रह संदेश

श्री दिग्विजय रामो विजयते

श्री मद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

उत्तरादि मठ

भगवान के गुणों का चिन्तन करना प्रत्येक आदमी का मुख्य कर्तव्य है। अनन्त गुणपरिपूर्ण भगवान के महिमा को जानने के लिए सब को भागवत के प्रकाश की आवश्यकता है। भागवत के पाठ प्रवचन श्रवण सारे बहुत पुण्य देने वाले हैं। ऐसे श्रेष्ठ महाभागवत पुराण को वैष्णव सिद्धान्त के अनुसार श्री श्री विद्यात्मतीर्थ जी ने हिन्दी में सब के मन मोहित करने वाले उत्कृष्ट व्याख्यान किए हैं। प्रयाग के त्रिवेणी तट पर रहते हुए अपनी स्वयं साधना करते हुए उत्तर भारत में वैष्णव सिद्धान्त के प्रचार प्रसार कार्य अपने को समर्पित किए हैं। वे जो इस प्रयास में रत हैं उसको सहकार देते हुए श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी उन्हें बल दे रहे हैं यह संतोष का विषय है।

मध्व मत का प्रसार समग्र भारत में उज्वल रीति से प्रसार होना चाहिए। उत्तर भारत के परिसर में यह प्रसार कार्य करने वाले श्री श्री विद्याधीश तीर्थ और श्री श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी को हम अभिनन्दन करते हैं।

इसी प्रकार श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी और अनेक कृति और व्याख्यान करते हुए तत्वप्रचार कार्य को इससे भी अधिक रूप से करे इस प्रकार हम अपने उपास्य मूर्ति श्री दिग्विजय राम और वेदव्यास जी से प्रार्थना करते हैं।

बैंगलूरु

श्री सत्यात्म तीर्थ स्वामिनः
उत्तरादि मठ

श्रीमद् अच्युत प्रेक्षाचार्य संस्थानम्
भीम सेतु मुनिवरेन्द्रमठ भीमनकट्टे
अनुग्रह संदेश

SRIMAD ACHUYTA PREKSHACHARYA SAMSTHANAM

BHIMASETHU MUNIVRUNDA MUTT, BHIMANAKATTE.

SRI 1008 SRI SRI. RAGHUMANYATEERTHA SWAMIJI
PEETHADHIPATHI

Doddvaspuram Post, Taluk: Teerthahalli, District: Shimoga. Pincode: 577432
Phone: [illegible], Mobile: [illegible] Email: [illegible]@gmail.com

Branch: BHIMANAKATTE SRI RAGHAVENDRA SWAMY MUTT
No.16, 6th Block, Doddabommasandra, Vidyaranyapura Main Road, Bangalore : 560097. Phone: 080-23483471.

[illegible]

शुभ कामना

श्री निम्बार्को जयति

श्रीमद् गोपीजनवल्लभाय नमः

अनन्त श्री जगद्गुरु निम्बार्काचार्य

गोस्वामी श्री विष्णुकान्त जी महाराज, पीठाधिपति

श्री निम्बार्काचार्य पीठ, 18/12, महाजनी टोला प्रयाग - 211 003 फोन : 2404298

श्री निम्बार्क प्रभास्थली व्यास गद्दी नैमिषारण्य (उ० प्र०)

कर्नाटक के अन्तर्गत उडुपी माध्व पीठ प्रयाग के अधिपति श्री 1008 श्री स्वामी विद्यात्म तीर्थ जी महराज के लोक भाषा में अनुवादित भागवत के ग्रन्थ और अन्य भगवद्गीतादी ग्रन्थ देखने को मिले। इक्यासी वर्ष की अवस्था में अदम्य स्फूर्ति, वैदुष्य एवं सार्थक जीवन के धनी महा पुरुष अभिनन्दनीय हैं। कई अवसर में हम लोग एक रहे हैं।

इस अवस्था में भी कई ग्रन्थों के लेखन, सामाजिक एवं पारमार्थिक कार्यो को एक युवक की भांति करते हुए संलग्न हैं।

आप का जीवन अमृतत्व की ओर अग्रसित है सकल कुशल पात्र हैं।

भगवान श्री गोपीजन बल्लभ देव जी से दीर्घ जीवन की कामना करते हैं।

आचार्य विष्णु कान्त गोस्वामी
16-06-2011
इलाहाबाद

प्रस्तावना

हमारे गुरु जी पूर्व प्रयाग पीठाधिपति श्री 1008 श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी ने लगभग दस वर्ष पूर्व भागवत के पहले तीन स्कन्धों का अनुवाद कर प्रकाशित किए थे। उनका महानिर्वाण आकस्मिक रीति से होने के कारण वह कार्य वहीं अवरुद्ध हो गया था।

हमारे दीक्षा गुरु उडुपि श्री पलिमारु मठ के पीठाधिपति जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महराज जी ने उस अवरुद्ध कार्य का पुनरारम्भ करने का आदेश दिया। मैं अल्प शक्ति और अल्प ज्ञान वाला हूँ। किन्तु अपने गुरुवर्य की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मैं यह कार्य कर रहा हूँ।

विद्यावतां भागवते परीक्षा यह पूर्णत: सत्य है। श्री गुरु जी का अनुग्रह ही मुझसे यह कार्य करवा रहा है। दक्षिण भारत में जन्म लेने के कारण मुझे अच्छी हिन्दी नही आती। पण्डित न होने के कारण शास्त्र का गहन और विस्तृत ज्ञान प्राप्त नही है। केवल गुरु का अनुग्रह ही मुझे प्रेरणा दे रहा है। पाठकों द्वारा निर्दिष्ट त्रुटियों को अगले अंक में सुधारने का प्रयास करेंगे।

नवम स्कन्ध में वेदव्यास जी ने सूर्यवंश और चन्द्रवंश की कथा कहे हैं। ये दोनों वंश साक्षात सूर्य और चन्द्र से चलते आए हैं, यह श्रद्धा विश्वास समग्र भारतीयों में फैला है। ये दोनों राज वंश भारत के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हैं। अनेक लोगों की धारणा है कि ये वंश एक के बाद एक अपने राज्य चलाए। किन्तु इतिहासकारों को यह मान्य नही है। दोनों वंश अलग अलग क्षेत्र में अपना राज्य चलाते थे। कभी सूर्य वंश तो कभी चन्द्र वंश में श्रेष्ठ राजा होते थे तब उस वंश की प्रसिद्धि होती थी। दोनों वंश में बड़े बड़े त्यागी, शूर, तपस्वी और श्रेष्ठ राजाओं ने राज्य चलाए।

वेदव्यास जी विस्तार रूप से पहले सूर्य वंश का इतिहास कहते हैं। सूर्य वंश में इक्ष्वाकु, रघु, अज, दिलीप आदि बड़े बड़े राजा हो चुके, उनके राज्य काल में भारत अत्यन्त वैभव का स्थान पाया। इसका विवरण देते हुए वेद व्यास जी श्री राम जी की कथा थोड़ा विस्तार रूप से कहते हैं। मूल वाल्मीकि कथा को वेद व्यास जी थोड़ा बदलाव करते हुए लिखे हैं। इस राम कथा में सीता जी के अग्निप्रवेश की कथा नही है। राम रावण युद्ध के बाद, रावण के संहार के बाद श्री राम जी हनुमान समेत अशोक वन को जाते हैं और स्वयं सीता जी को हाथ पकड़ कर उठा लेते हैं, और अपने शिविर को ले आते हैं। यह दृश्य हृदय स्पर्शी है, पाठक भाव विभोर हो जाता है। सन्त महात्माओं ने ऐसे बदलाव लाकर पाठकों का भक्ति भाव बढ़ाते हैं। जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य जी अपने रामायण तात्पर्य (महाभारत तात्पर्य निर्णय नाम के ग्रन्थ में) छायासीता की कथा जोड़ कर हमारे मन को प्रसन्नता देते हैं। भगवती लक्ष्मी की अवतार सीता देवी में हमारी

श्रद्धा और बढ़ती है। सन्त तुलसी दास जी इसका अनुकरण करते हुए अपने मानस ग्रन्थ में छायासीता प्रसंग को उद्बोधक बनाये हैं।

श्री राम जी का दर्शन हम रामायण में दो रूप से कर सकते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम मानव सहज रूप धारण करते हुए मानव सहज लीलाओं को किए हैं। दूसरी दृष्टि से स्वयं लक्ष्मी नारायण श्री राम सीता के रूप में अवतार लेकर हमारे लिए एक आदर्श जीवन की प्रस्तुति किए हैं। ये दोनों समान रीति से आदरणीय हैं।

वेदव्यास जी के रामायण में हम इन दोनों रूपों को देख सकते हैं। इस दृष्टि से हमें रामायण में वेद व्यास जी द्वारा किए हुए सुधार को स्वीकारना है। अथवा इसमें एक और अर्थ है। युग भेद कल्प भेद से भगवान की यह दोनों लीला हो सकती है।

नवमस्कन्ध के अन्त में संक्षेप में वेद व्यास जी चन्द्रवंश की कथा बोलते हुए श्री कृष्णचन्द्र की कथा की प्रस्तुति करते हैं। अन्त में राजा परीक्षित के आग्रह के कारण श्री कृष्ण कथा को विस्तार रूप से कहने लगते हैं। यह दशम स्कन्ध का विषय बनता है।

इस नवम स्कन्ध के अनुवाद के समय पूर्णप्रज्ञ विद्यापीठ के पूर्व प्रांशुपाल और तिरुपति संस्कृत विश्वविद्यालय के संदर्शक प्राध्यापक श्री हयवदन पुराणिक जी द्वारा लिखा हुआ और श्री श्री 1008 श्री विद्येश तीर्थ स्वामी जी के भागवताश्रम प्रतिष्ठान श्री भण्डार केरी मठ से प्रकाशित सुललित भागवत का उपयोग हमें बहुत हुआ है। हम उनके आभारी हैं।

हमारे परम गुरु श्री विद्यामान्य जी से संस्थापित और हमारे गुरु जी श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महराज से पोषित श्री तत्व संशोधन संसत् ने इस ग्रन्थ प्रकाशन की जिम्मेदारी ले लिए हैं। तत्व संशोधन संसत् दक्षिण भारत में एक प्रसिद्ध संशोधन और प्रकाशन की बड़ी संस्था है। बहुत श्रेष्ठ विद्वान और पण्डित संशोधकों के ग्रन्थ यहाँ से प्रकाशित हुए हैं। मेरे जैसे अल्प बुद्धि वाले इस छोटी सी कृति को वे प्रकाशित कर रहे हैं, यह मेरा बड़ा भाग्य है। इसके लिए मैं अपने श्री गुरु जी को शत शत नमन करता हूँ।

वृहती सहस्र याग और सहस्र चन्द्र दर्शन शान्ति याग के सन्दर्भ में आये हुए दस माध्व पीठाधिपतियों के अमृत हस्त से इस ग्रन्थ का विमोचन हो रहा है यह मेरा और एक बड़ा भाग्य है।

इस ग्रन्थ के अक्षर विन्यास किए हुए **श्री प्राणेश कुमार शुक्ला**, अक्षर संशोधन किए हुए श्री गिरधारी लाल मिश्रा और मुद्रण किए श्री वैष्णव प्रेस के सारे कर्मचारियों के सहयोग का स्मरण हम करते हैं। सूज्ञ सदभक्त इस ग्रन्थ का सदुपयोग करें यही आकांक्षा है। **इति शम्**

तीर्थ राज प्रयाग

21-10-2011

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज

नवम स्कन्ध की विषय सूची

क्र0	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	अध्याय एक	वैवस्वत मनु से यज्ञ करना। इळा बदल कर सुद्युम्न होगया	01-03
2.	अध्याय दो	इळावर्त महिमा। पुरूरव उत्पत्ति। वशिष्ठ महिमा। पुरूरव का राज्य ग्रहण	04-05
3.	अध्याय तीन	पुत्र के लिए मनु की तपस्या। करूष वंश दिष्ट वंश की कथा	06-09
4.	अध्याय चार	सुकन्या की कथा। च्यवन महिमा। रेवती कथा	10-13
5.	अध्याय पॉच	नाभाग कथा। आगिरस सत्रयाग	14-15
6.	अध्याय छ:	नाभाग पुत्र अम्बरीष कथा। कादशी महिमा	16-24
7.	अध्याय सात	अम्बरीष वंश की कथा यौवनाश्व और सौभरी कथा। त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र कथा	25-33
8	अध्याय आठ	रोहित वंश में सगर जन्म। भागीरथी कथा। रघु जन्म और रामावतार	34-47
9.	अध्याय नौ	श्री राम द्वारा अश्वमेध यज्ञ, सीता परित्याग, कुश लव उत्पत्ति, राम शासन प्रशंसा	48-51
10.	अध्याय दस	कुश से सौमित्र तक मनु वंश की कथा	52-53
11.	अध्याय ग्यारह	इक्ष्वाकु पुत्र निमी कथा। वशिष्ठ शाप। राजा जनक और उसका वंश	54-56
12.	अध्याय बारह	चन्द्र वंश की कथा। बुध पुरूरव कथा। उर्वशी प्रणय कथा	57-62
13.	अध्याय तेरह	गाधि राजा की कथा। परशुराम अवतार।	63-66
14.	अध्याय चौदह	परशुराम कथा। शुन:शेप कथा, धन्वन्तरी अवतार।	67-72
15.	अध्याय पन्द्रह	नहुष वंश। ययाति देवयानी कथा।	73-78
16.	अध्याय सोलह	ययाति से कथा निरूपण। हरि के आश्रय के लिए वन गमन	79-81
17.	अध्याय सत्रह	पुरू वंश वर्णन। दुष्यन्त की कथा। भरत की कथा, भरद्वाज जन्म।	82-85
18.	अध्याय अठ्ठारह	रंति देव महिमा। अहल्या, शतानन्द कथा। कृप कृपी का जन्म।	86-89
19.	अध्याय उन्नीस	दिवोदास वंश में द्रुपद जन्म। कुरू जन्म। शंतनु, धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर की उत्पत्ति।	90-93
20.	अध्याय बीस	यदु वंश का वर्णन। कार्तिवीर्यार्जुन महिमा। शैब्य का जन्म।	94-97
21.	अध्याय इक्कीस	यदुवंश में वसुदेव देवकी से श्री कृष्ण सुभद्र का जन्म।	98-102

श्री बालाजी

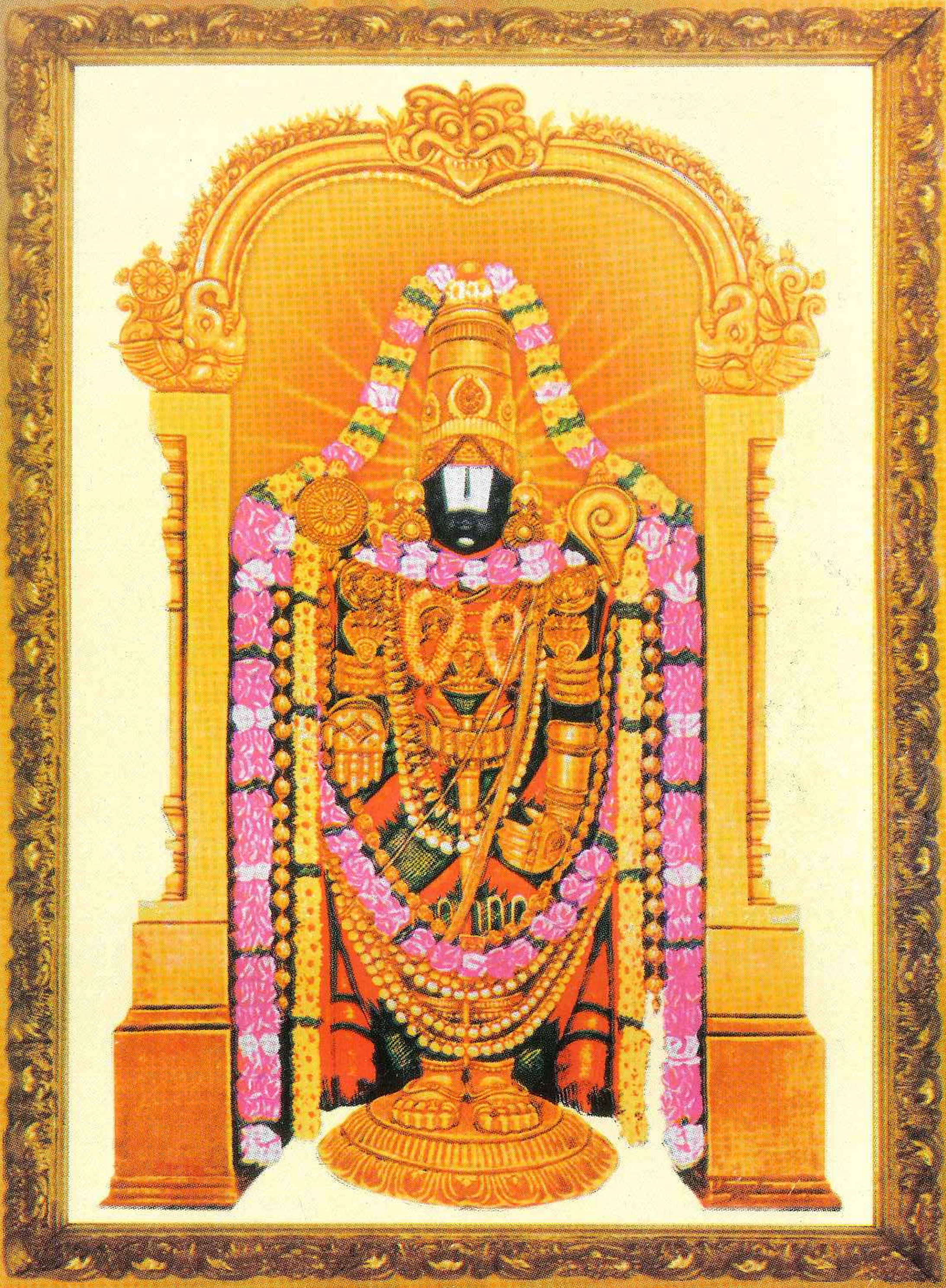

हमारे कुल देव विश्व के एकमेव बड़ा दैव
श्री वेंकटेश्वर बालाजी के श्री चरणों में
यह ग्रन्थ समर्पित है

श्रीमद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मुलमहासंस्थान
पलिमारू श्री हृषीकेश शाखा पीठ के प्रधान देव
श्री सीता समेत श्री राम भगवान

संकट मोचन श्री पंचमुखी हनुमान

कपिमुखमपि पूर्वं दक्षिणे नारसिंहम् ।
गरुड़मुखमपि पश्चात् उत्तरे सूकरास्यम् ।
ह्यवदनमतोर्ध्वं चिन्तयेद् वायुसूनुम् ।
सकलदुरितहरं रामदूतं नमामि ॥

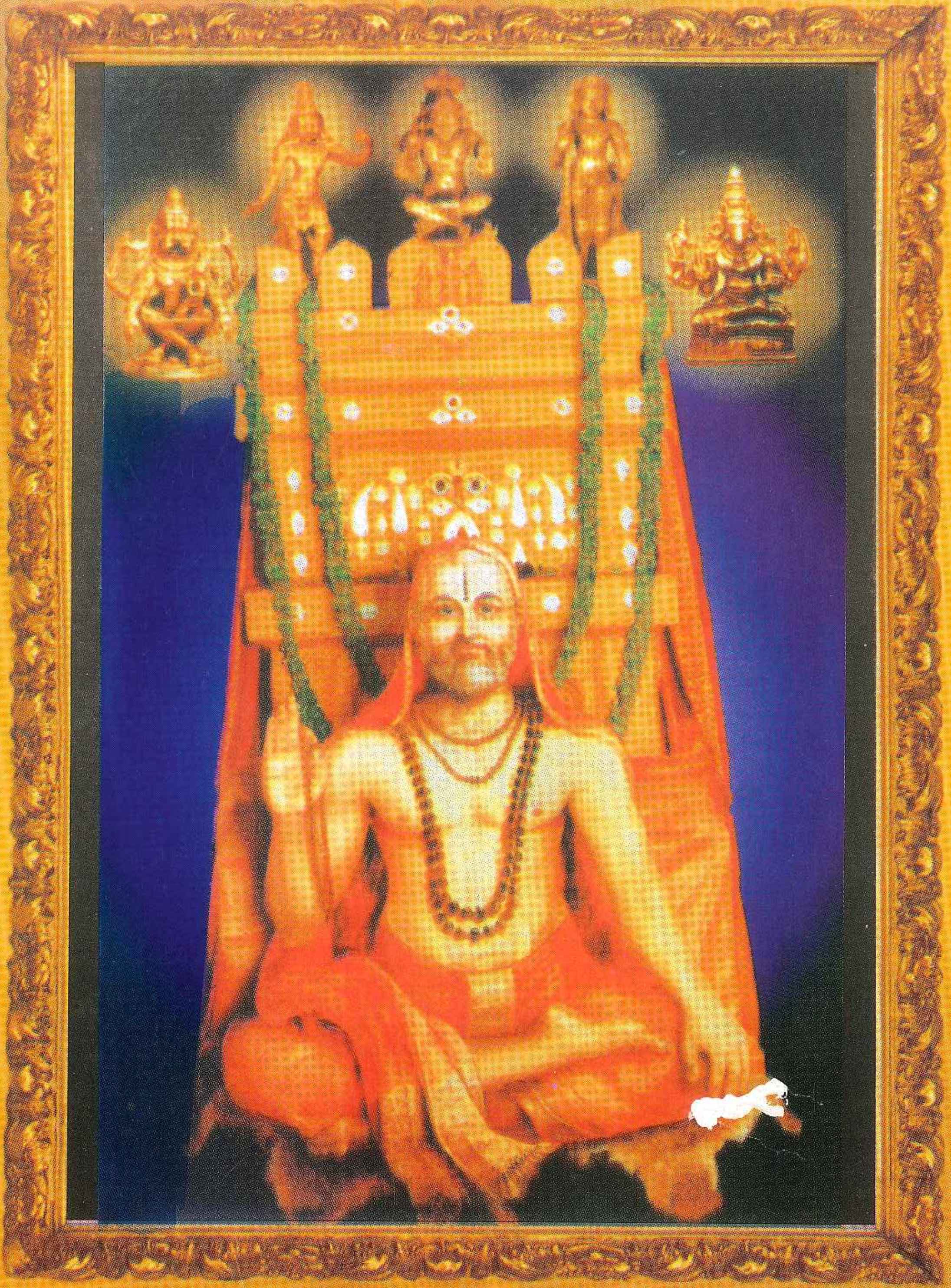

अपेक्षितप्रद मन्त्रालय के श्री राघवेन्द्र स्वामी जी

पूज्याय राघवेन्द्राय सत्यधर्मरताय च।
भजतां कल्पवृक्षाय नमतां कामधेनवे॥

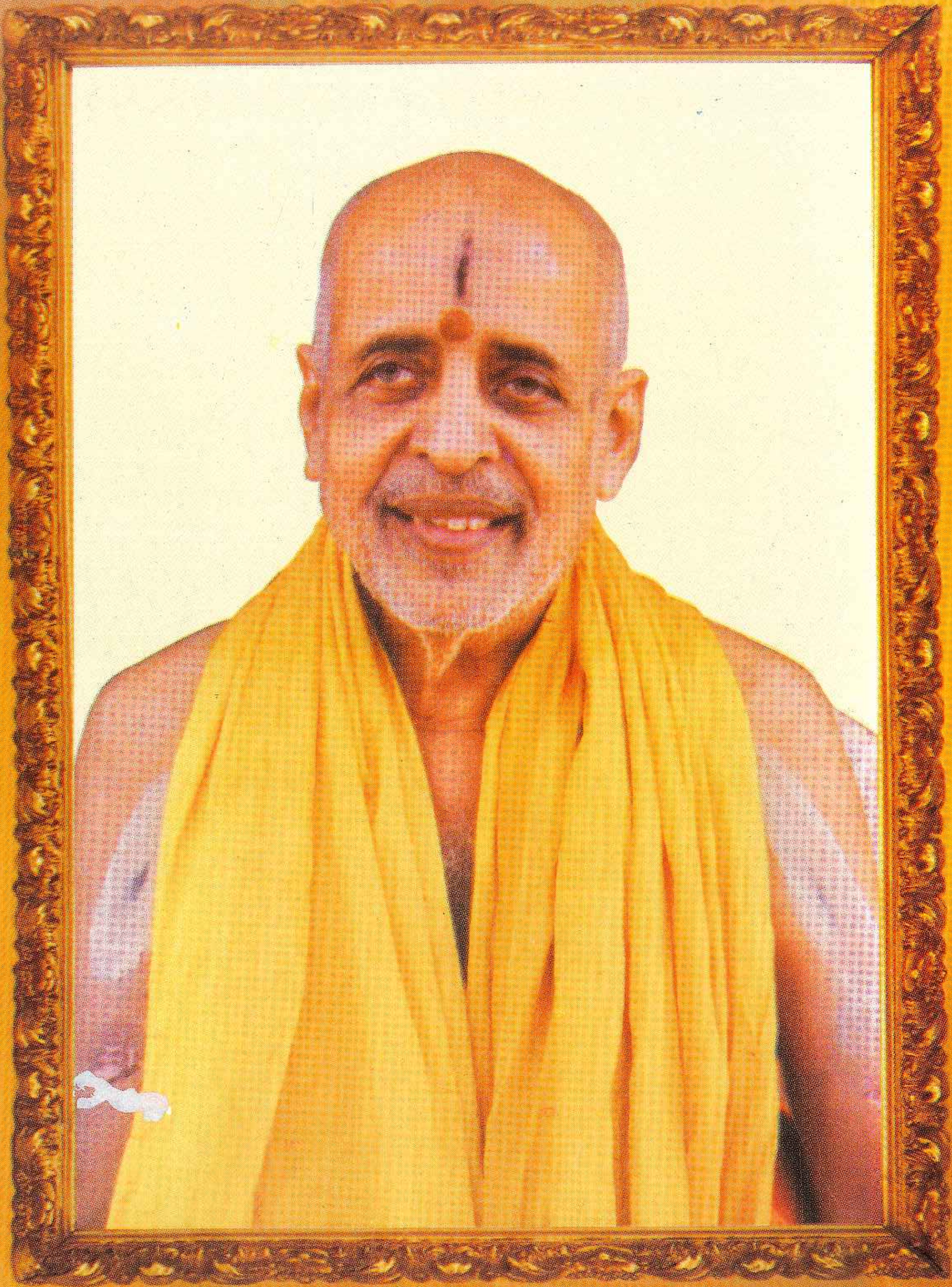

सर्वमान श्री १००८ श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी

ब्रह्मचर्य हरि प्रीति सुविद्या वादशालिनः ।
इष्टदान कष्टहर्तृन्नः विद्यामान्यान् मुनीन्नुमः ॥

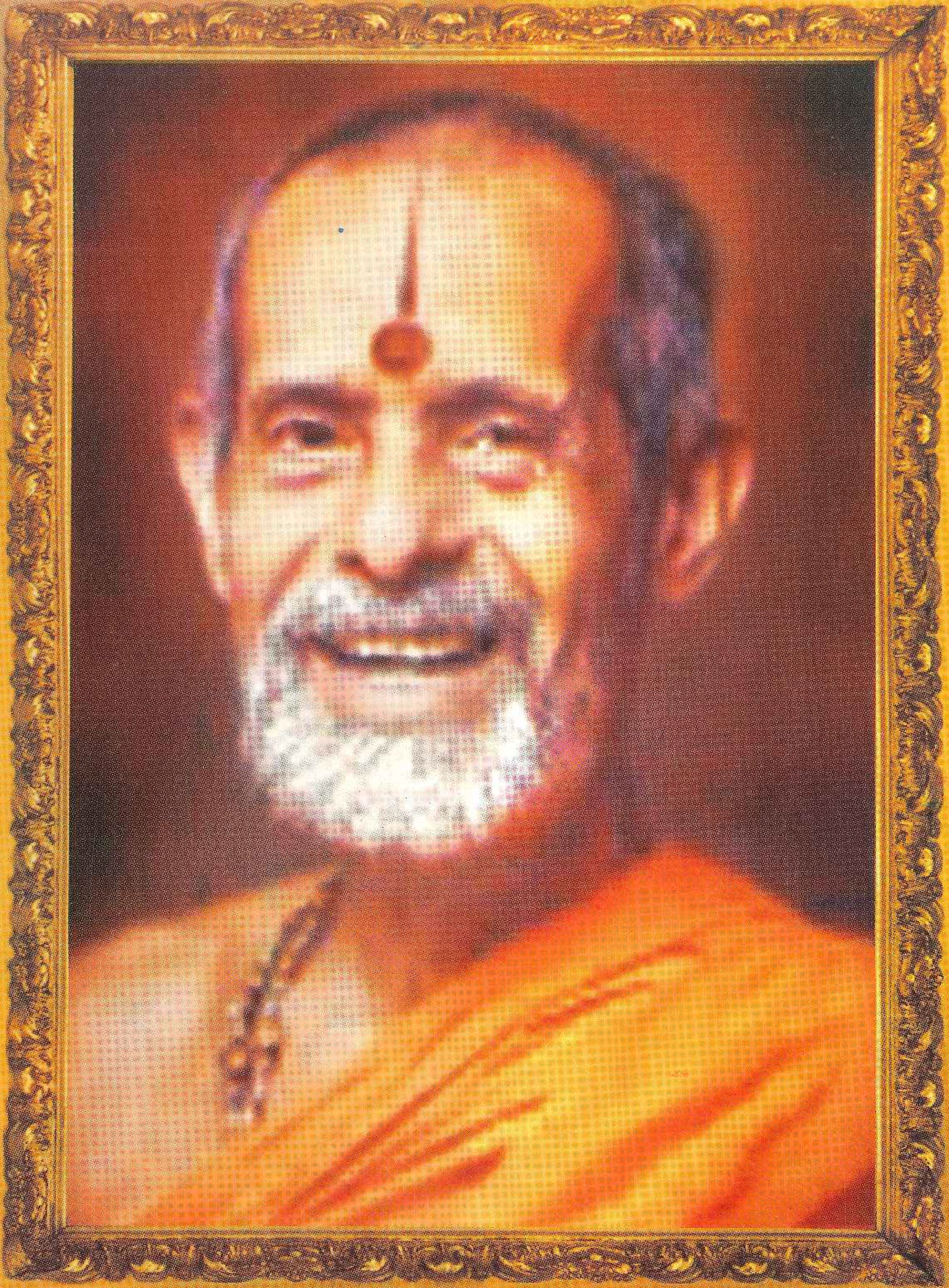

श्रीमद् जगद्गुरुमध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधीश
श्री १००८ श्री विश्वेशतीर्थ जी महाराज

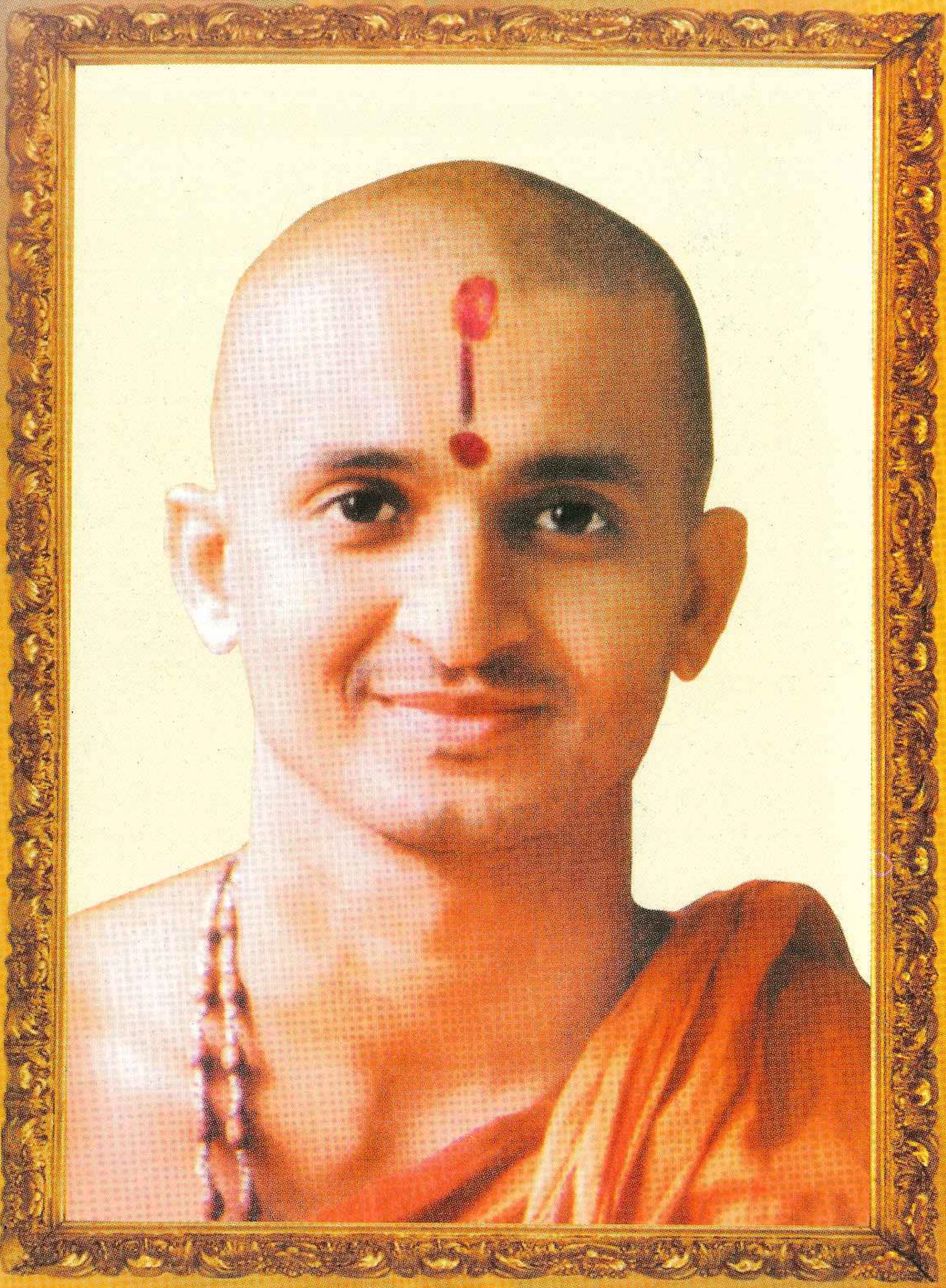

हमारे स्वरूपोद्धारक एवं दीक्षा गुरु
श्रीमद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधीश
श्री 1008 विद्याधीश स्वामी जी महाराज

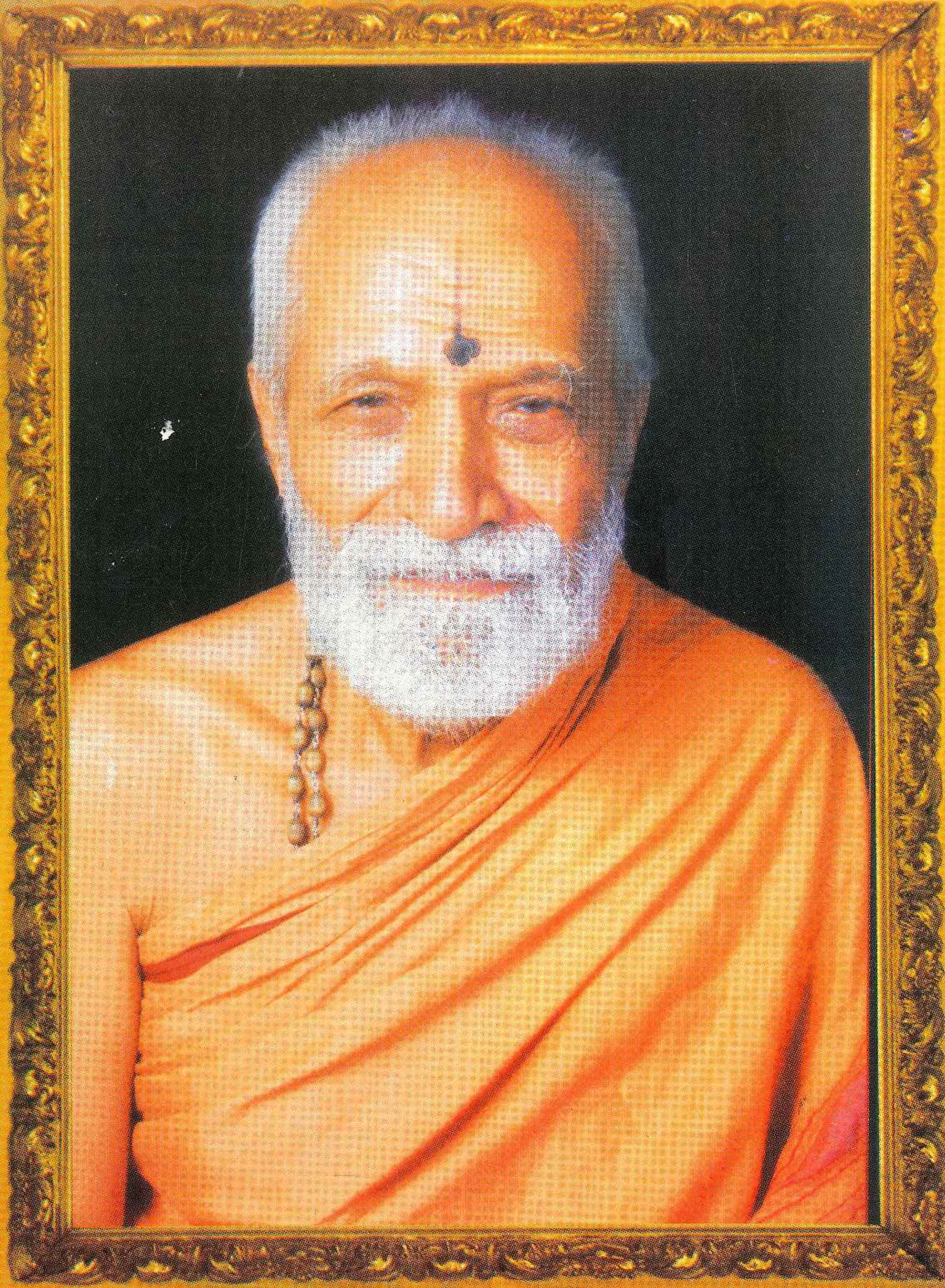

ग्रंथकर्ता प्रयागपीठाधिपति

श्री १००८ श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी महाराज

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - एक

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - सारे मन्वन्तर और उनमें सर्वसमर्थ और अनन्तशक्ति वाले भगवान नारायण द्वारा किए हुए कार्यों के बारे में आपने अब तक कहा। उसको सुनकर मुझे बहुत आनन्द हुआ।।1।।

द्रविड़ देश के राजर्षि सत्यव्रत ने पिछले मन्वन्तर में मत्स्यमूर्ति की सेवा से तत्वज्ञान को पाकर दूसरे जन्म में वे ही विवस्वान नाम के सूर्य के पुत्र होकर जन्म लिए। उनका नाम वैवस्वत मनु था। उनके पुत्र राजा इक्ष्वाकु इत्यादि हुए यह बात भी मैंने आपसे सुना।।2,3।।

हे महामुने - उस राजा के वंश के राजाओं की कथा को आप हमें सुनाइए। उसको सुनने के लिए हम बहुत आतुर हैं।।4।।

पूर्व के राजाओं की अब जो राजा बने हैं उनके और आने वाले राजाओं के पराक्रम के बारे में बताइए। वैवस्वत मनु वंश के सारे राजा पवित्र कीर्ति वाले हैं।।5।।

सूत जी कहते हैं - सारे वेदों को जानने वाले मुनियों की सभा में राजा परीक्षित से वेदवेत्ता भगवान शुकदेव जी कहते हैं।।6।।

शुकदेव जी कहे - हे शत्रुसंहार करने वाले राजा, मैं वैवस्वत मनु के वंश के बारे में संक्षिप्त रूप में कहता हूँ। उसको विस्तार रूप से कहने के लिए सौ वर्ष भी पर्याप्त नही होगा।।7।।

इस प्रपंच की सृष्टि होने के पहले पूर्व कल्प के अन्त में उत्तम मध्यम अधम सारे युगों के अधिपति परम पुरुष नारायण स्वतन्त्र और अकेले थे और कोई स्वतन्त्र रूप से नही था। इसके लिए उसका अस्तित्व नहीं सा लगता था।।8।।

श्री मन्नारायण के नाभिकमल से सोने का कमल उत्पन्न हुआ। उस पद्म में स्वयंभू चतुर्मुख ब्रह्मा जी जन्म लिए।।9।।

ब्रह्मा जी के मानस पुत्र होकर मरीचि जन्म लिए। उनके पुत्र कश्यप। उनसे दक्षपुत्री अदिति के पेट से

विवस्वान नाम के सूर्य जन्म लिए।।10।।

विवस्वान से संज्ञादेवी में वैवस्वत नाम के पुत्र जन्म लिए। हे राजा! सुनो, अच्छे दिल वाले वैवस्वत मनु अपनी पत्नी श्रद्धा देवी में दस पुत्रों को जन्म दिए।11।।

उनके नाम हैं - क्रमशः इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त, वृषध्र, नाभाग और नभ।।12।।

इन पुत्रों के जन्म लेने के पहले, सन्तति न होने के कारण वैवस्वत मनु पुत्र प्राप्ति के लिए भगवान वशिष्ठ, मित्र और वरुणों को पुरोहित बनाकर देवताओं को उद्देश्य करते हुए एक यज्ञ किए।।13।।

उस समय पयोव्रत करने वाली मनुपत्नी श्रद्धादेवी ने होतृ नाम के ऋत्विज के पास आकर नमस्कार करते हुए अपने लिए पुत्र के बदले पुत्री का वर मांगा।।14।।

होतर्यज इस मंत्र से अध्वर्यु होतृ को प्रैष को देते हुए हवन करने के लिए देने के बाद होतृ **वौषट्** इस मंत्र से वषट्कार का उच्चारण करते हुए एकाग्र मन से पुत्री की कामना की।।15।।

होतृ द्वारा किए हुए इस व्यत्यास के फल स्वरूप इला नाम की पुत्री का जन्म हुआ। उसको देखकर मनु को पूर्ण संतोष नही हुआ। राजा ने गुरु वशिष्ठ के पास जाकर पूछा।।16।।

हे पूज्य महोदय - आप द्वारा किए हुए इस याग के फल में व्यत्यास क्यों हुआ? यहाँ पुत्री का जन्म हुआ। यह नही होना था। आप बड़े वेद मंत्रज्ञ हैं। आपके यज्ञ में यह फल व्यत्यास क्यों हुआ? यह मुझे बहुत आश्चर्य लगता है।।17।।

आप योगी हैं। तप के कारण आपके सारे पाप जल गये हैं। आप मंत्रज्ञ हैं। देवतागण जो बोलते हैं वह कभी भी असत्य नही होता। आपका संकल्प भी बदलता नही। इतना होते हुए भी यह बदलाव कैसे हुआ।।18।।

मैत्रा वरूणेष्टिं कुर्यात् पुत्र कामः। पुत्र को चाहने वाला मैत्रावरूणि नाम के इष्टि को करना चाहिए। जिस देवता को उद्देश्य कर हविष अध्वर्यु उठाता है, वही देवता फल दे, इस वषट्कार मंत्र से होतृ को ध्यान करना चाहिए। ऐसा करे तो व्यत्यास हो ही नही सकता। इतना होते हुए भी व्यत्यास क्यों हुआ, मनु का यह संशय है।

वैवस्वत मनु को इस बात को सुनकर उनके पूर्वज वशिष्ठ ऋषि होतृ से किए हुए व्यत्यास को दिव्य ज्ञान से समझते हुए मनु को बता दिए।।19।।

हे राजा! संकल्पित फल में जो व्यत्यास हुआ वह होतृ के ध्यान में बदलाव होने के कारण। किन्तु मैं अपने सामर्थ्य से तुम्हारी इस पुत्री को पुत्र बना दूगाँ।।20।।

हे राजा परीक्षित - महाकीर्तिशाली श्रेष्ठऋषि वशिष्ठ जी इस प्रकार निर्धारण करते हुए इला नाम की उस कन्या को पुरुषत्व आने के लिए इच्छा करते हुए भगवान नारायण का स्तोत्र करने लगे।।21।।

सर्वशक्त भगवान श्री हरि उस स्तुति से संतुष्ट होकर मुनि की इच्छा के अनुसार इला को श्रेष्ठ पुरुष बना दिये। उस पुत्र का नाम सुद्युम्न रखे।।22।।

वह सुद्युम्न बड़ा होने के बाद एक दिन सिंधु देश के उत्कृष्ट घोड़े पर सवार होते हुए अपने मंत्री और अन्य लोगों के साथ जंगल में शिकार करने चला।।23।।

उत्कृष्ट धनुष और बाण लेकर कवच और कुण्डल को धारण किये हुआ वह वीर एक हिरण के पीछे -पीछे दौड़ते हुए उत्तर दिशा में चला गया।।24।।

मेरु पर्वत के निचले हिस्से में स्थित सुकुमार नाम के वन में प्रवेश किया। वहाँ भगवान शम्भु उमा के साथ वन विहार करते रहते हैं।।25।।

उस वन में प्रवेश करते ही शत्रु संहारक राजा सुद्युम्न स्त्री बन गया। आश्चर्य की बात है कि उसका घोड़ा भी घोड़ी बन गयी।।26।।

इसके साथ राजा के साथ आने वाले सारे लोगो में लिंग परिवर्तन हो चुका था। उसको देखकर वे सारे दुःखित हो गये।।27।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में पहला अध्याय समाप्त हुआ।।

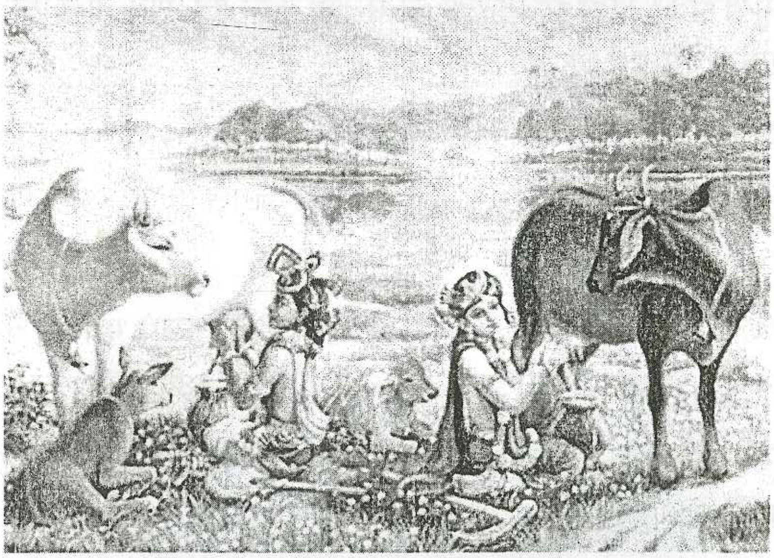

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - दो

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे पूज्य महोदय! उस जंगल का क्या विशेष है। उसमें प्रवेश करने वाले स्त्री क्यों बनते हैं? इसको किसने बनाया। इस विषय में हमें कुतूहल हो रहा है। आप हमारे इस संशय का निवारण करें।।1।।

श्री शुकदेव बोले - एक बार कई व्रतनिष्ठ ऋषियों ने अपने दिव्य प्रभा से सारे दिशाओं को शोभित करते हुए उस सुकुमार वन में शिव जी के दर्शन के लिए आये।।2।।

उस समय शिव पार्वती रतिकेलि में थे। उस समय नग्न रहीं अम्बिका देवी लज्जा करते हुए पति को छोड़कर साड़ी से अपने शरीर को ढ़क लीं।।3।।

ऋषियों ने भी रतिकेलि में रहे हुए शिव पार्वती को देखकर अपने रतिविघ्न के पाप को परिहार करने के लिए बद्रि के नरनारायण आश्रम को चले गये।।4।।

लज्जा से अवनत मुख होकर खड़ी हुई गिरिजा को सन्तोष करने हेतु शिव जी ने एक नियम बनाया। आज से इस जंगल में जो प्रवेश करता है वह स्त्री बने।।5।।

इसके बाद उस वन में कोई पुरुष प्रवेश करे तो स्त्री बन जाते थे। इसी कारण के अनुसार राजा सुद्युम्न अपने घोड़े और परिवार के साथ स्त्री हो गया। वह लज्जा से जंगल-जंगल फिरता रहा। अपने घर को जाना नही चाहता था।।6।।

एक बार ऐसे संचार करते हुए वह स्त्री रूप का सुद्युम्न (पहले की इला) भगवान बुध के आश्रम के पास गया। वहाँ सुन्दर पुरुष बुध अत्यन्त सुन्दरी इला को देख कर मोहित हुआ।।7।।

सुन्दरी इला भी सुन्दर पुरुष बुध को देखकर उससे शादी करने के लिए इच्छा प्रकट की। उन दोनों से पुरूरव नाम का पुत्र जन्म लिया।।8।।

मनु पुत्र राजा सुद्युम्न सुन्दर पुत्र को पाने के बाद भी अपने स्त्रित्व से दुःखित रहता था। सुना है वह

अपने कुल पुरोहित वशिष्ठ जी का स्मरण किया।।9।।

प्रत्यक्ष आये हुए वशिष्ठ जी सुद्युम्न की उस दुर्दशा को देखकर दुःखित होकर उसको पुनः पुरुषत्व प्रदान के लिए शंकर के बारे में तप किए।।10।।

उनके तप से शिव जी सन्तुष्ट हुए। ऋषि को सन्तोष हो और अपना वाक्य भी स्थिर रहे इसके लिए उन्होने एक सुवर्ण माध्यम ढूंढ़ निकाले।।11।

भगवान शंकर बोले, हे ऋषि, तुम्हारे तप के फल स्वरूप यह सुद्युम्न एक महीने के लिए पुरूष बने और एक महीने के लिए स्त्री हो जाय। इस व्यवस्था से वह अपनी इच्छा के अनुसार अपने इस भूमि का राजा बने।।12।।

श्री शुकदेव बोले - वशिष्ठ जी के इस अनुग्रह से सुद्युम्न एक महीना स्त्री और एक महीना पुरुष होते हुए इस भूमि का राजा बनकर राज्य चलाया। जब वह स्त्री बनता था तब एक मास पर्यन्त वह घर छोड़ कर बाहर नही आता था। एक महीने तक अपने राजा को न देखते हुए प्रजा जन दुःखित होते थे।।13।।

संग्रह रामायण में यह कथा आती है। वहाँ राजा सारे यज्ञों में श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ करते हुए स्थिर रूप से पुरुषत्व को पा लिया। किन्तु उनके अनुचर किंपुरुषों के पत्नी बनकर अन्त तक स्त्री ही रहे।

सुद्युम्न को उत्कल, गय, विमल नाम के तीन पुत्र हुए। वे सारे धर्मिष्ठ होकर दक्षिणापथ के राजा बने।।14।।

प्रतिष्ठान नगरी के राजा सुद्युम्न अपने बुढ़ापन में इला रूप में पाया हुआ पुरूरव नाम के पुत्र को राज्याधिकार को सौंपकर तप करने के लिए वन को चला गया।।15।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

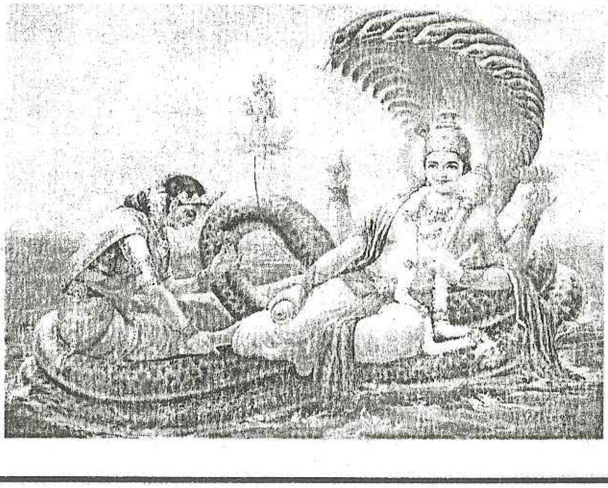

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - तीन

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव बोले - पुत्र सुद्युम्न के जाने के बाद वैवस्वत मनु और पुत्रों को पाने की इच्छा से यमुना जी के तट पर सौ वर्ष पर्यन्त तप किए।।1।।

बाद में पुत्र प्राप्ति के लिए भगवान श्री हरि की विशेष रीति से पूजा की। फल स्वरूप अपने के लिए अनुरूप इक्ष्वाकु आदि दस पुत्रों को पाए।।2।।

मनु के अष्टम पुत्र वृषध्र वशिष्ठ के आश्रम में गुरुकुल वास करता था। वह रात में जागरण करते हुए खींचे तलवार को हाथ में पकड़ते हुए वीरासन में खड़े होकर गायों की रक्षा करता था।।3।।

एक बार रात में बहुत वर्षा हुई। बरसात के कारण आहार न पाया हुआ एक शेर गौ शाला में प्रवेश किया। उससे घबड़ाई हुई गायें भय से उठकर इधर उधर हिलने लगीं।।4।।

वह बलिष्ठ शेर एक गाय को पकड़ लिया। वह गाय भय से चिल्लाने लगी। उसकी आवाज सुनकर वृषध्र उसके पास दौड़ कर गया।।5।।

अंधेरी रात और मेघ से आच्छादित होने के कारण और भी अंधेरा था। उसमे वृषध्र शेर मान कर गलती से गाय को ही काट डाला।।6।।

गाय के सिर के साथ शेर का कान भी कट गया। शेर घबरा कर रक्त बहाते हुए दौड़ गया।।7।।

शत्रु का संहार करने वाला वृषध्र समझ लिया कि शेर मर गया। किन्तु सुबह उठकर देखता है कि गाय की हत्या हो गयी है। इसको देख कर वृषध्र बहुत दुःखित हुआ।।8।।

वृषध्र बुद्धिपूर्वक अपराध नही किया था तो भी कुलपुरोहित वशिष्ठ उसको शाप दिए। गो वध करने के कारण तुम्हारा क्षत्रियत्व नष्ट हो गया है। गो वध के पाप के कारण तुम आज से शूद्र बन गये।।9।।

गौ हत्या बड़ा पाप होता है। अज्ञान से भी पाप कर्म करने के बाद प्रायश्चित न करने से वेदाधिकार चला जाता है। इसी कारण वशिष्ठ शाप दिए। गुरु का शाप भी अनुग्रह होता है। आगे के घटनाओं से यह स्पष्ट होता है।

गुरु के शाप को सुनकर वीर वृषध्र हाथ जोड़ कर उस शाप को विनय से स्वीकार किया। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए व्रत नियम उपवास आदि किया।।10।।

सारे प्राणियों में समान रूप से रहने वाले सर्वस्वामी, दोष रहित भगवान पर वासुदेव में भक्ति करते हुए एकान्त में रहने लगा।।11।।

लौकिक लोगों का संग छोड़ते हुए साधु लोगों का संग करने वाला वह वृषध्र आनन्द में भगवान नारायण में चित्त को रखते हुए अयोग्य विषयों को आँख उठाकर भी न देखते हुए, भगवदिच्छा से जो मिलता है उसी को पाकर शरीर धारण करता रहा। वह किसी से कुछ भी नही लेते हुए जीवन यापन करता था।।12।।

भगवान में एकाग्र चित्त रहने वाला वृषध्र एकाग्रचित्त से मिलने वाले ज्ञानानन्द से ही तृप्त होकर लौकिक में अन्धा और बहरा जैसा रहता था।।13।।

ऐसे जंगल में वास करते समय एक घने दावाग्नि में (जंगल में लगा हुआ आग में) आत्मार्पण किया। इस तप के कारण गौ हत्या पाप से मुक्त होकर वह परब्रह्म को ही प्राप्त किया।।14।।

इस प्रकार ज्ञानी वृषध्र विषय भोगों में वैराग्य रखते हुए नि:स्पृह होकर बन्धु बान्धवों को और सर्व संग को परित्याग करते हुए जंगल में जाकर स्वप्रकाश रूप परम पुरुष श्री हरि को निरन्तर ध्यान करते हुए छोटे वय में ही परब्रह्म को प्राप्त किया।।15।।

मनु का छठा पुत्र करुष अन्त तक क्षत्रिय रहा। उनके पुत्र कारुष नाम से प्रसिद्ध हैं। वे ब्राह्मणों में निष्ठा धर्म में श्रद्धा रखते हुए पूरे उत्तरापथ के राजा बने।।16।।

मनु का पाँचवाँ पुत्र दृष्ठ से **धाषर्ट** नाम के पुत्र उत्पन्न हुए। वे जन्म से क्षत्रिय होते हुए भी कर्म से ब्राह्मणत्व को स्वीकार किए। मनु का दूसरा पुत्र **नृग** नाम का राजा बना। उसकी पुत्री स्वाती। उनका पुत्र ज्योति। ज्योति के पुत्र का नाम वसु था।।17।।

वसु से प्रतीक जन्म लिया। उनके पुत्र का नाम है ओघवान्। ओघवन्त के बहन का नाम ओघवती उसके पति का नाम सुदर्शन था।।18।।

मनु के सातवे पुत्र नरिष्यन्त। उसका पुत्र का नाम चित्रसेन। चित्रसेन का पुत्र दक्ष। दक्ष के पुत्र मीढ्वान्। मीढ्वान् के पुत्र कूर्च, उसका पुत्र इन्द्रसेन।।19।।

इन्द्रसेन से वीतिहोत्र, उसका पुत्र सत्यश्रव, उससे उरुश्रव, उससे देवदत्त जन्म लिए।।20।।

देवदत्त के पुत्र होकर भगवान अग्नि जन्म लिए। यह अग्नि कानीन पुत्र नाम से प्रसिद्ध जातूकर्ण नाम

के महाऋषि।।21।।

जातुकर्ण से **अग्निवैश्वा** नाम का ब्राह्मण वंश उत्पन्न हुआ। हे राजा, मैं पहले ही नरिष्यन्त के वंश की कथा कह चुका हूँ। मनु के चतुर्थ पुत्र दिष्ट के वंश के बारे में अब कहूगाँ।।22।।

दिष्ट का पुत्र नाभाग। मनु का पुत्र एक नाभाग था। यह नाभाग इससे अलग है। यह वैश्यकर्म करने लगा इसी कारण वैश्य बना। उसका पुत्र हलन्दन। हलन्दन के पुत्र वत्सप्रीति।।23।।

वत्सप्रीति का पुत्र प्रांशु, उसका पुत्र प्रमति। प्रमति के पुत्र खनित्र, उससे चाक्षुष उससे विविंशति जन्म लिए।।24।।

विविंशति के पुत्र का नाम रंह। उसका पुत्र खनमित्र। खनमित्र बहुत धार्मिक था। हे राजा परीक्षित, खनमित्र का पुत्र करंधम।।25।।

करंधम का पुत्र अविच्छित। उसका पुत्र मरुत चक्रवर्तीराजा बना। अंगीरस ऋषि के संवर्त नाम के महायोगी के पुत्र ने राजा मरुत से बड़ा यज्ञ करवाया।।26।।

इसके समान यज्ञ कहीं भी और किसी ने भी नही किया था। वहाँ जो जो साधन उपयोग में लाए थे वे सारे सोने के थे। यज्ञ अत्यन्त मंगलकर रहा।।27।।

इसी यज्ञ से बचे हुए सोने को पाण्डवों ने जमीन शोध कर पाने के बाद अश्वमेघ यज्ञ किए।

मरुत के यज्ञ में इन्द्रादि देव प्रत्यक्ष आकर अग्नि में मंत्र के सहित हवन किए गए सोम रस को पीकर अत्यन्त संतुष्ट हुए। वहाँ दिया हुआ दक्षिणा से ब्राह्मण तृप्त हुए। स्वयं मरुद्देवता ने भोजन परोसा। सारे देवताएँ एक साथ बैठ कर सभा में भाग लिए।।8।।

मरुत का पुत्र दम, उसका पुत्र राजवर्धन। उसकी पुत्री सुधृति के पेट से नर नाम का पुत्र जन्म लिया।।29।।

नर का पुत्र केवल, उनका पुत्र बन्धुमान, बन्धुमान से वेगवान, उससे बुध उसका पुत्र तृणबिन्दु राजा बनकर राज्य वहन किए।।30।।

तृणबिन्दु राजा अलम्बुसादेवी नाम की श्रेष्ठ अप्सरा से शादी किया। राजा उस अप्सरा के अनुरूप था। उसको तीन पुत्र और ऐळिविळा नाम की पुत्री हुई।।31।।

ऐळिविळा से जन्म लिया हुआ विश्रवस् नाम का ऋषि कुबेर को जन्म दिया। ऐळिविळा से शादी करने के लिए योगेश्वर पुलस्त्य पुत्र विश्रवस ऋषि उसके पिता को उत्तम विद्या प्रदान किया था।।32।।

विशाल, शून्यबन्धु और धुमकेतु नाम के तीन पुत्र तृणबिन्दु को हुए। विशाल राजा अपना वंश बढ़ाते हुए वैशाली नाम के नगर का निर्माण किया।।33।।

विशाल के पुत्र हेमचन्द्र, उसके पुत्र धूम्राक्ष, उसका पुत्र सहदेव। सहदेव का पुत्र कृशाश्व।।34।।

कृशाश्व से सोमरत जन्म लिया। अन्नाधिपति, वाक्पति, इढ़स्पति नाम से यज्ञ में आवाहित करने वाले श्री हरि को यह राजा अश्वमेध यज्ञों से आराधना करते हुए योगेश्वर पाने योग्य वैकुण्ठ को पा लिया।।35।।

सोमरत की बेटी सुमति, पुत्र जनमेजय। ये सारे विशाल राजा के वंश में प्रसिद्ध होकर तृणबिन्दु राजा के कीर्ति का वर्धन किए।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - चौथा

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा! वैवस्वत मनु का तीसरा पुत्र शर्याति चारों वेदों में तज्ञ था। एक बार अंगीरस नाम के ऋषि के सत्र में यज्ञ के दूसरे दिन किस मंत्र का पठन करना है इसके बारे में विवाद उत्पन्न हुआ तो शर्याति सही मंत्र का पठन किया, यह प्रसिद्ध है।।1।।

शर्याति की पुत्री का नाम सुकन्या, वह बहुत सुन्दरी थी। उसके आँख कमल के समान सुन्दर थे। राजा एक बार शिकार को जाते समय अपनी इस पुत्री को साथ लिया। संचार के समय में वह च्यवन ऋषि के आश्रम में गया।।2।।

वहाँ सुकन्या अपनी सहेलियों के साथ फूल और फल का चयन करने के लिए फिरते समय एक वल्मीक के दो रध्रों में प्रकाशित होने वाले दो वस्तुओं को देखी।।3।।

दैव प्रेरणा से वह मासूम लड़की कुतूहल से काटे से उन वस्तुओं को चुभा दिया। वहाँ से रक्त बहने लगा। उससे घबरा कर सुकन्या वहाँ से भाग कर अपने पिता के पास आयी।।4।।

यहाँ राजा के सैनिक और परिवार का मल मूत्र अवरुद्ध हो गया। इसको देख कर राजा आश्चर्य चकित होकर अपने सैनिकों से पूछा।।5।।

हमारे लोगों में कोई यहाँ के ऋषि च्यवन जी को अपचार किए है, क्या? मुझे लगता है कि हमारे में से कोई आश्रम को अपवित्र किया होगा।।6।।

तब सुकन्या भयभीत होकर पिता को बोलती है - पिता जी, मैंने एक गलती किया है। क्या है यह न समझते हुए वाल्मीक में प्रकाशित होने वाले दो वस्तु को काँटे से चुभा दिया है। वहाँ से रक्त बह रहा है।।7।।

पुत्री की यह बात सुनते हुए शर्याति भय से डरते हुए वाल्मीक के अन्दर बैठे हुए च्यवन ऋषि के पास जाकर उनसे समाधान से बाते करने लगा।।8।।

च्यवन मुनि की इच्छा समझ कर उसको अपनी पुत्री को शादी में दे दिया। अपने सैनिको का दुःख

निवारण होने के बाद अपने नगरी को वापस चला गया।।9।।

च्यवन मुनि शीघ्र कोपी थे। उससे शादी होने के बाद सुकन्या बहुत लक्ष्य देते हुए उसके अनुकूल अनुवर्तन करते हुए उसके मन को समझते हुए प्यार से उनको जीत लिए।।10।।

कई दिन व्यतीत होने के बाद एक बार अश्विनी देवता आदि उस आश्रम को आए। मुनि उनका बड़ा आदर सत्कार किए। बाद में पूछे आप मुझे तारुण्य दे दीजिए, आप इसमे समर्थ हैं।।11।।

आपको यज्ञ में सोम का भाग नही मिलता। किन्तु मै आपको यज्ञ में सोमाहुति दूँगा। इसके बदले में आप मुझे स्त्रीयौ को चाहने वाला यौवन और सुन्दर रूप दीजिए।।12।।

अश्विनी देवताओं के वैद्य हैं। वे हीन जाति के कारण सोमाहुति से बहिष्कृत थे।

श्रेष्ठ वैद्य अश्विनीयों ने तथास्तु कहते हुए, मुनि की प्रसंशा किए। तुम सिद्ध पुरुषों से निर्माण हुए इस सरोवर में डुबकी मार कर स्नान करो।।13।।

मुनी का शरीर बुढ़ापे से शक्ति हीन हुआ था। शरीर में रक्तनाल उभर कर आँख को दिखते थे। मुनि अकेले सरोवर में भी उतर नही सकते थे। तप के कारण वे इतना अशक्त हो गये थे दोनों अश्विनी देवताओं ने उस ऋषि के हाथ को पकड़ कर सरोवर में उनके साथ स्वयं भी डुबकी मारे।।14।।

जब ऊपर उठे तब तीन सुन्दर पुरुष, नवतारुण्य वाले, स्त्रियों को आकर्षक रूप वाले और चीताम्बर पहन कर सोने का हार कुण्डल धारण किए थे।।15।।

वह सुन्दरी पतिव्रता, सुकन्या सूर्य के समान प्रकाशित तीनों को देखकर उनमें से अपने पति को पहचान नही सकी। वह अपने पति को दिखाने के लिए अश्विनी कुमारों से प्रार्थना की।।16।।

उसके पातिव्रत्य से सन्तुष्ट हुए अश्विनी देवताओं ने अपने से अलग उसके पति को दिखाते हुए मुनि से विदा लेते हुए विमान से स्वर्ग चले गये।।17।।

बहुत दिन के बाद राजा शर्याति एक बड़ा यज्ञ करने का संकल्प करते हुए बेटी और दामाद को बुलाने के लिए च्यवन ऋषि के आश्रम पर चले आये। वहाँ अपनी पुत्री के बाजू में एक सुन्दर युवक पुरुष को देखा।।18।।

पिता के पाँव को प्रणाम करने वाली बेटी को आशीर्वाद न देते हुए राजा अपनी पुत्री के शील के बारे में संशय करते हुए असमाधान से आच्क्षेप किया।।19।।

हे दुष्टे, तुमने ये क्या किया? अपने पति को वंचना कर रही हो। तेरे पति समस्त लोक में पूज्य मुनि

वर्य हैं। वृद्ध और बलहीन उनको छोड़ कर तुम यह दूसरे पुरुष के साथ कैसे रहती हो।।20।।

हे पुत्री! तू गलत रास्ता पकड़ी है। यह हमारे वंश को कलंक है। तुमने परपुरुष से सम्बन्ध किया है। तुम लज्जा को छोड़ दी है। तुम्हारे इस कर्म से पिता और पति दोनों के वंश नरक में जाते हैं।।21।।

पिता की इन बातों को सुनकर सदा हसन्मुख वाली सुकन्या हँसते हुए बोली - पिता जी, ये आपके दामाद हैं, ये ही च्यवन ऋषि हैं।।22।।

सुकन्या अपने पिता को मुनि ने तारुण्य और सौन्दर्य को कैसे पाया उसकी कथा को पूर्ण रूप से सुनवाई। इस बात को सुनकर राजा परमानन्द से आश्चर्य चकित होकर पुत्री का आलिंगन किया।।23।।

शर्याति राजा से सोमयज्ञ कराने वाले च्यवन ऋषि तब तक सोमाधिकार न रहने वाले अश्विनी देवताओं को अपने तपप्रभाव से सोमाहुति दिए।।24।।

इस क्रम विरुद्ध कर्म को देखकर इन्द्र आक्रोश से च्यवन को मारने के लिए दाहिने हाथ से वज्र ाायुध को उठाये। च्यवन ऋषि अपने तप बल से इन्द्र के उस बाहु को निश्चल बनाए।।25।।

बाद में इन्द्र ने सकल देवताओं के साथ अश्विनी देवताओं को भी सारे यज्ञों में सोमाहुति देने के लिए अनुज्ञादि वैद्य होने के कारण देवताओं ने अश्विनी देवताओं को सोमाहुति से बहिष्कृत किए थे।।26।।

उत्तान बर्हि, आतर्थ और भूरीषेण नाम के शर्याति के तीन पुत्र थे। इनमें आनर्त से रेवत जन्म लिया।।27।।

हे शत्रु नाशक परीक्षित, वह रेवत समुद्र के बीच में कुशस्थली नाम की नगरी का निर्माण किया और वहीं रहने लगा। आनर्त इत्यादि अन्य देशों के ऊपर भी वह अपना राज्य वहीं से चलाता था।।28।।

रेवत को ककुद्मि के साथ सौ पुत्र थे। रैवत अपनी पुत्री रेवती को लेकर ब्रह्मा जी के पास गया।।29।।

वह चाहता था कि उसे अपनी सुन्दर पुत्री के लिए योग्य वर मिले। वहाँ गन्धर्व गान चलता था। इसके लिए ब्रह्मा जी के साथ समालोचना करने के लिए समय न मिलने के कारण एक क्षण रुक गया।।30।।

वह गान समाप्त होने के बाद ब्रह्मा जी को नमस्कार करते हुए अपने उद्देश्य को उनके सामने बता दिया। उसको सुनकर ब्रह्मा जी हँस कर बोले।।31।।

ब्रह्मा जी कहते हैं - हे राजा, तुम्हारे मन में रहने वाले कन्यार्थी राजा काल क्रम से चले गये हैं। उनके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और उनके गोत्र के नाम भी नही सुनायी देते।।32।।

तुम आकर मानवों द्वारा न सुनने वाला गन्धर्व गान को यहाँ ब्रह्म लोक में एक क्षण के लिए सुनते

रहे। इस समय भू लोक में 27 चतुर्युग मान का दीर्घकाल बीत गया है।।33।।

हे राजा, तुम अब वापस चले जाओ। देव देवोत्तम भगवान श्री हरि अपने शुक्ल केश के आवेश वाले महाबलिष्ठ बलराम रुप में 28 वाँ द्वापर में अवतार ले चुके हैं। उस पुरुष रत्न को अपनी कन्या रत्न से शादी करवाओ।।34।।

अपना नाम संकीर्तन करने वाले लोगों को पवित्र करने वाले सर्व कर्ता भगवान श्री हरि अपने अंश से शेष में आविष्ट होकर भूभार हरण के लिए बलराम रूप में अवतार लिए हैं।।35।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- ब्रह्मा जी से इस प्रकार आज्ञप्त रेवत उनको नमस्कार करते हुए अपने नगर को वापस आया। राक्षसों के भय से उनके सारे बन्धु नगर को छोड़ कर अन्यान्य दिशाओं में रहने लगे थे।।36।।

अपनी सुन्दरी पुत्री को बलशाली बलराम से शादी करने के बाद राजा रैवत तप के लिए बद्रिनारायण आश्रम को चला गया।।37।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में चौथा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - पाँच

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव बोले - दिष्ट पुत्र नाभाग से अलग नाभाग मनु के नौवें पुत्र हैं। यह नाभाग बहुत बड़ा ज्ञानी था। वह गुरुकुल में पाठ करता था। उसके वहाँ ज्यादा दिन तक रहने के कारण उसके भाई वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर रहता है समझ कर उसको राज्याधिकार न देते हुए आपस में पिता का राज्य बाँट लिए। गुरुकुलवास को पूर्ण किया हुआ नाभाग आकार अपने भाइयों से पूछा।।1।।

"हे भाइयो, मेरे लिए आपने किस राज्य को दिया हैं"। उससे घबराए हुए भाई बोले " यदि तुम राज्य में अपना हिस्सा चाहते हो तो पिता जी से पूछो" पिता जी से पूछने से वे कहे "पुत्र, तुम इस राज्य में हिस्सा मत मागो। इससे भी बढ़िया सम्पदा मैं तुमको दे दूँगा"।।2।।

"ज्ञानी अंगिरा ऋषि सत्र याग कर रहे हैं। नाभाग, तुम ज्ञानी हो। हर बार छठा सोमाहुती दिन में वे वैश्व देव कर्म में पठन करने वाले मंत्र के बारे में वे नासमझ में पढ़ते हैं"।।3।।

"उस समय उन्हे जिसे मंत्र को बोलना है वह विश्वदेव देवताके बाद दो सूक्तों का पाठ तुम करो। उससे उनको स्वर्ग मिलता है"।।4।।

"स्वर्ग को जाते समय वे यज्ञ से बचे हुए सारे धन को तुमको देते हैं। वह धन पूरे राज्य से भी बढ़कर बढ़िया होता है" नाभाग उसी प्रकार किया। वे यज्ञ में बचे हुए सारे सम्पत्ति को नाभाग को देकर स्वर्ग को चले गये।।5।।

यह कथा ऐतरेय ब्राह्मण में विस्तार रूप से आती है।

नाभाग जब उस धन को उठाने लगा तब यज्ञशाला के उत्तरी भाग से एक काला मोटा आदमी आकर बोला "यह सारा धन मेरा है। इसको मै ले लूँगा"।।6।।

नाभाग ने कहा "ऋषि ने इसको मुझे दिया है"। "हे मनुपुत्र, इस विवाद के बारे में तुम अपने पिता से पूछ लो।" नाभाग अपने पिता के पास जाकर वैसे ही प्रश्न पूछा।।7।।

पिता उत्तर दिए "यज्ञ शाला में जो धन बचता है उसके बारे में दक्ष-यज्ञ के समय में भगवान नारायण स्वयं निर्णय लिये हैं कि यज्ञ शेष जो होता है उसके ऊपर रूद्र का अधिकार है। वह काला आदमी रुद्र हैं। उस सम्पत्ति के ऊपर रुद्र का अधिकार है। किन्तु भगवान रुद्र उसको तुमको ही दे देंगे।" ।।8।।

नाभाग पीछे आकर काला रंग के रुद्र जी को नमस्कार करते हुए कहा "प्रभु, इस यज्ञ में बचा हुआ सब कुछ आपका ही है इस प्रकार पिता जी कहे हैं। आप गुणपूर्ण हैं। मै आपसे सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए प्रार्थना करता हूँ कि आप अनुग्रह पूर्वक उसको मुझे दे देंगे" ।।9।।

रुद्र जी कहते हैं- "तुम्हारे पिता धर्म की बात कहे हैं। तुम भी सत्य बोलते हो। तुम वैश्वदेवसूक्त के द्रष्ट्रार हो। इसी कारण तुमको सनातन ब्रह्म तत्व के बारे में बताने वाले मंत्र और उसका अर्थ अध्ययन के बिना ही तुमको प्राप्त हो" ।।10।।

"इसके साथ यज्ञ में बची हुयी इस सम्पत्ति को भी तुझको दे देते हैं। मंत्र के साथ तुम इसको भी स्वीकार करो" इस प्रकार बोलते हुए सत्यप्रिय भगवान रुद्र वहीं अन्तर्ध्यान हुए।।11।।

सुबह-शाम एकाग्र मन से नाभाग की पितृ भक्ति की इस कथा को जो स्मरण करता है, पठन करता है वह मंत्रार्थ का ज्ञानी बनता है और परम तत्वज्ञान को पाकर अन्त में भगवान को पाता है।।12।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - छः

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - नाभाग को अम्बरीष नाम का पुत्र हुआ। वह बड़ा भगवद्भक्त था। एक बार उसको ब्राह्मण शाप लगा, किन्तु विष्णु चक्र के प्रभाव के कारण उसको कुछ भी हानि नही हुआ।।1।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे महामुने, ब्राह्मण शाप किसी से टाला नही जा सकता। वैसा शाप अम्बरीष को कुछ भी नही किया यह सुनकर आश्चर्य होता है। उस ज्ञानी राजर्षि की कथा को मैं सुनना चाहता हूँ।।2।।

श्री शुकदेव कहते हैं - राजा अम्बरीष महाभाग्यशाली था। सातों द्वीप वाली अखण्ड भू-मण्डल की सारी साधन सम्पत्ति उसके हाथ में थी। उत्कृष्ट सेवक वर्ग था। मानवों को अत्यन्त दुर्लभ सकल सम्पत्ति उनके वश मे थी किन्तु राजा इसको स्थिर नही मानता था। इस सम्पत्ति के मोह के कारण ही मानव माया जाल में मग्न होता है, इस बात को वह ठीक तरह से समझा था।।4।।

भगवान वासुदेव में और उनके भक्त साधु सज्जनों में वह बहुत भक्ति करता था। सारी सम्पत्ति को वह मिट्टी के ढ़ेले के समान मानता था।।5।।

वह अपने मन को सदा काल भगवान श्री कृष्ण के पाद कमल में रखते हुए ध्यान में मग्न रहता था। केवल हरिस्तुति और उनके गुण वर्णना के लिए बातें करता था। हाथ केवल हरि मन्दिर का शुद्धिकरण करते थे। कान सदा के लिए विष्णु शास्त्र सुनते थे।।6।।

उनकी आँख हरिविग्रह और देवमन्दिर के दर्शन करते थे। त्वगिंद्रिय हरि दासों के अंगसंग के लिए ही था। नाक को भगवान के पाद कमल में समर्पित उत्कृष्ट तुलसी का सुवास लेने में प्रयोग करते थे। उसकी जीभ केवल हरिनैवेद्य का आस्वादन करती थी।।7।।

उनके पाद श्री विष्णु क्षेत्र की यात्रा करते थे, सिर हरिपाद वन्दन के लिए था। सारी इच्छाएँ भगवान की सेवा में रखता था। विषय पदार्थ का सेवन उसके लिए निषेध था। हरिभक्तों के संग में वह सुखानुभव पाता

था।।8।।

जिस रीति से सदा काल जो कुछ करता था उन सब को यज्ञपुरुष भगवान अधोक्षज को ही समर्पित करता था। सम्पूर्ण भक्ति उनमें ही करता था। भगवान के भक्त ऋषि मुनियों की सलाह के अनुसार राज्य भार करता था।।9।।

सरस्वती नदी के तट पर यज्ञशाला में मिले हुए वशिष्ठ, असित, गौतम इत्यादि ऋषियों की सहायता से अश्वमेधादि यज्ञ करते हुए पुराणपुरुष भगवान की आराधना करता था। महाज्ञानी अम्बरीष इन यज्ञों में देने वाले दान को अपनी सम्पत्ति के अनुसार बढ़ाता था।।10।।

उसके यज्ञ में सदस्य होकर, ऋत्विज होकर बैठे हुए लोग उनके दिए हुए वस्त्र को पहन कर देवता के समान दिखते थे। देवता लोग आँखो को झपकाते नही। वैसे ही ये ब्राह्मण कर्मलोप न हो इसके लिए आँख भी न झपकाते थे।।11।।

उनकी प्रजा हरि लीला की कथाओं को सुनते गाते उसके राज्य में आनन्द से रहते थे। उस राज्य को छोड़ कर वे स्वर्ग को जाने के लिए भी तैयार नही थे।।12।।

सिद्धों को दुर्लभ लगने वाला समृद्ध विषय भोग पदार्थों को भी अम्बरीष सदा के लिए दूर रखता था। अपने हृदय में मुकुन्द को देखने वाले उसको उनसे क्या मतलब है? हृदय में मुकुन्द को देखने में होने वाला स्वरूपानन्द के सामने ये क्षुद्र विषयपदार्थ नीरस बन गये।।13।।

हे राजा, अम्बरीष इस प्रकार तपोयुक्त भक्तियोग से और स्वधर्माचरण रूप प्रजापालन से हरि के प्यार को पाकर विषयासक्ति से दूर रहा।।14।।

घर, पत्नी, पुत्र, बन्धु, श्रेष्ठ, हाथी, रथ, घोड़ा, सैन्य, रत्नाभरण, शस्त्र और भरा हुआ भण्डार इन सबको अम्बरीष अनर्थकारी है, ऐसा समझता था।।15।।

उसके इस एकान्त भक्ति से सन्तुष्ट श्री हरि उसकी रक्षा के लिए शत्रु को भयप्रद सुदर्शन चक्र का नियोजन किए थे।।16।।

उसकी पत्नी अनुरूप थी। वह भगवान को और आराधना करने के लिए एक वर्ष पर्यन्त आचरण करने वाले (एकादशी) द्वादशी व्रत ग्रहण किया।।17।।

अम्बरीष केवल एक वर्ष मात्र एकादशी व्रत किया ऐसा नही। यह एक वर्ष तक आचार करने वाला एकादशी है। इसको सांवत्सरिक एकादशी कहते हैं। द्वादशी के पारण के बाद पुनः एक वर्ष तक व्रत करना सांवत्सरिक एकादशी होता है।

अम्बरीष के ऐसे सांवत्सरिक एकादशी को करने के बाद द्वादशी के दिन यह घटना घटी। वह संवत्सर के अन्त के कार्तिक मास में तीन दिन उपवास कर यमुना नदी में स्नान कर मधुवन में भगवान नारायण की अर्चना की।।18।।

तीन दिन उपवास का नियम इस प्रकार होता हैं। दशमी रात्रि उपवास रहना एकादशी के दिन सम्पूर्ण उपवास रहते हुए द्वादशी के सुबह पारण करना। पुनः द्वादशी के रात में कुछ न खाते हुए त्रयोदशी के दिन अनुपारण करना। इससे द्वादशी का व्रत पूर्ण होता है।

सकल सामग्री को जुटा कर भगवान श्री हरि को विधि के अनुसार अभिषेक करते हुए श्रेष्ठ गन्ध माला धूप दीप नैवेद्य को समर्पण करते हुए तदेकचित्त से भगवान की पूजा किया। पूजा न चाहने वाले महा पुण्यशाली ब्राह्मणों की भी भक्ति से पूजा किया।।19,20।।

साधु ब्राह्मणों को 60 करोड़ गायों का दान दिया। उन गायों के सींग को सोने के आभरण, पाँव को चाँदी का घुँघरू, शरीर पर उत्तम पीताम्बर चढ़ाकर दान दिया। ये सारी गाय अच्छे दूध देने वाली साधु स्वभाव वाली छोटे आयु वाली सुन्दर रूप वाली और बच्चों के साथ थी। राजा इन गायों के साथ उनके लिए खाने का पात्र और दुहाने का बर्तन भी दान दिया। पहले ब्राह्मणों को उत्कृष्ट भोजन कराने के बाद दक्षिणा सहित इन गायों को उनके घर भेज दिया।।21,22।।

सारे ब्राह्मणों का इच्छितार्थ पूर्ण करने के बाद उनकी अनुज्ञा से पारण करने के लिए राजा सिद्ध हुआ। इसी समय उसके अतिथि रूप में साक्षात भगवान दुर्वासा मुनि आ गये।।23।।

अतिथि दुर्वासा को आसन आदि सत्कार करते हुए उनके पाद मूल को नमस्कार करते हुए भोजन करने के लिए प्रार्थना किया।।24।।

मुनि उसकी याचना की प्रसंशा करते हुए स्नान के लिए यमुना जी चले गये। वहाँ शुद्ध और पावन यमुना जल में परब्रह्म नारायण के ध्यान में लग गये। उनको समय का ध्यान नही रहा।।25।।

इधर राजा अम्बरीष को पारण के लिए द्वादशी तिथि केवल आधा मुहूर्त बचने के कारण राजा धर्म संकट में पड़ा। धर्मज्ञ राजा ब्राह्मणों से समालोचन किया।।26।।

दुर्वासा के पहले स्वयं भोजन किया तो ब्राह्मणातिक्रम होता है। वह दोष है। द्वादशी तिथि समाप्त होने के पहले पारण न करे तो भी दोष होता है। अब क्या करे, किस कर्म से पाप नही आएगा? राजा इस दुविधा में पड़ा।।27।।

राजा ने विचार किया अब मैं केवल जल को पीकर पारण करता हूँ। जल पीने से पारण भी होता है

और भोजन नही होता। यह बड़े लोगों का वाक्य है।।28।।

इस प्रकार निर्णयं करते हुए ब्राह्मणों की अनुज्ञा पाकर राजा अम्बरीष मन में अच्युत का ध्यान करते हुए थोड़ा सा जल पीकर दुर्वासा ऋषि के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए बैठ गया।।29।।

दुर्वासा ऋषि अपने नित्य कर्म को समाप्त करते हुए यमुना तीर से राज घर आये। राजा उनको आदर और श्रद्धा से स्वागत किया। महायोगी दुर्वासा राजा जलपान किया है इसको योग बल से समझ लिए।।30।।

क्रोध से उनका शरीर काँपने लगा। भौंह सिकुड़ गये। भूख भी लगी थी। हाथ जोड़े हुए राजा को बोले।।31।।

यह देखिए, यह राजा धर्म के नियमों का अतिक्रमण किया है। यह क्रूर है। सम्पत्ति के मद से उन्मत्त है। स्वयं अकेले अपने को विष्णु भक्त समझता है। किन्तु भगवान में भक्ति नही है।।32।।

मैं यहाँ अतिथि होकर आया हूँ। यह राजा मुझे आमन्त्रण दिया है। इतना होते हुए भी मुझको देने के पहले स्वयं भोजन कर चुका है। उसके फल को मैं उसको अभी दिखाता हूँ।।33।।

यहाँ अम्बरीष का जल पारण दुर्वासा ऋषि ने देखा नही। योग दृष्टि से देखे हैं। केवल जल पान किया तो भी उसको ऋषि आग्रह से भोजन कह रहे हैं। इस अहंकार से विष्णु भक्त अम्बरीष उनको तुच्छ लग रहा है। विष्णु भक्त के इस अपमान के कारण दुर्वासा ऋषि को अपनी करनी का फल भोगना पड़ेगा है।

ऐसे बोलते हुए क्रोध से जलते हुए दुर्वासा अपनी जटा से एक बाल को खींच कर जमीन के ऊपर गिराते हुए अम्बरीष के वध के लिए एक कृत्रिम देवता की सृष्टि किए।।34।।

वह कृत्रिम देवता आग के समान जलते हुए हाथ में तलवार को पकड़ते हुए जमीन हिलते जैसे पाँव रखते हुए अम्बरीष के प्रति दौड़ कर आने लगी। तो भी अम्बरीष अपने स्थल से नही हिला।।35।।

अपना दोष न रहते हुए भी बड़े लोग कष्ट दिए तो उनको मारने से पाप नही आता। किन्तु उनके हाथ से यदि मर जाय तो एक अश्वमेघ यज्ञ का फल आता है। इसी कल्पना के साथ अपने को विष्णु चक्र की रक्षा होने के कारण वह नही डरा।

परम पुरुष नारायण के भक्त अम्बरीष की रक्षा के लिए भेजा हुआ चक्र रोषपूर्ण साँप के आग जैसे जलता था। वह कृत्रिम देवता को जला दिया।।36।।

दुर्वासा ऋषि अपना प्रयत्न निष्फल होते देखकर और चक्र को अपने पास आते हुए देखकर भयभीत होकर अपनी रक्षा के लिए दशों दिशा में दौड़ते रहे।।37।।

अम्बरीष के ऐसे सांवत्सरिक एकादशी को करने के बाद द्वादशी के दिन यह घटना घटी। वह संवत्सर के अन्त के कार्तिक मास में तीन दिन उपवास कर यमुना नदी में स्नान कर मधुवन में भगवान नारायण की अर्चना की।।18।।

तीन दिन उपवास का नियम इस प्रकार होता हैं। दशमी रात्रि उपवास रहना एकादशी के दिन सम्पूर्ण उपवास रहते हुए द्वादशी के सुबह पारण करना। पुनः द्वादशी के रात में कुछ न खाते हुए त्रयोदशी के दिन अनुपारण करना। इससे द्वादशी का व्रत पूर्ण होता है।

सकल सामग्री को जुटा कर भगवान श्री हरि को विधि के अनुसार अभिषेक करते हुए श्रेष्ठ गन्ध माला धूप दीप नैवेद्य को समर्पण करते हुए तदेकचित्त से भगवान की पूजा किया। पूजा न चाहने वाले महा पुण्यशाली ब्राह्मणों की भी भक्ति से पूजा किया।।19,20।।

साधु ब्राह्मणों को 60 करोड़ गायों का दान दिया। उन गायों के सींग को सोने के आभरण, पाँव को चाँदी का घुँघरू, शरीर पर उत्तम पीताम्बर चढ़ाकर दान दिया। ये सारी गाय अच्छे दूध देने वाली साधु स्वभाव वाली छोटे आयु वाली सुन्दर रूप वाली और बच्चों के साथ थी। राजा इन गायों के साथ उनके लिए खाने का पात्र और दुहाने का बर्तन भी दान दिया। पहले ब्राह्मणों को उत्कृष्ट भोजन कराने के बाद दक्षिणा सहित इन गायों को उनके घर भेज दिया।।21,22।।

सारे ब्राह्मणों का इच्छितार्थ पूर्ण करने के बाद उनकी अनुज्ञा से पारण करने के लिए राजा सिद्ध हुआ। इसी समय उसके अतिथि रूप में साक्षात भगवान दुर्वासा मुनि आ गये।।23।।

अतिथि दुर्वासा को आसन आदि सत्कार करते हुए उनके पाद मूल को नमस्कार करते हुए भोजन करने के लिए प्रार्थना किया।।24।।

मुनि उसकी याचना की प्रसंशा करते हुए स्नान के लिए यमुना जी चले गये। वहाँ शुद्ध और पावन यमुना जल में परब्रह्म नारायण के ध्यान में लग गये। उनको समय का ध्यान नही रहा।।25।।

इधर राजा अम्बरीष को पारण के लिए द्वादशी तिथि केवल आधा मुहूर्त बचने के कारण राजा धर्म संकट में पड़ा। धर्मज्ञ राजा ब्राह्मणों से समालोचन किया।।26।।

दुर्वासा के पहले स्वयं भोजन किया तो ब्राह्मणातिक्रम होता है। वह दोष है। द्वादशी तिथि समाप्त होने के पहले पारण न करे तो भी दोष होता है। अब क्या करे, किस कर्म से पाप नही आएगा? राजा इस दुविधा में पड़ा।।27।।

राजा ने विचार किया अब मैं केवल जल को पीकर पारण करता हूँ। जल पीने से पारण भी होता है

और भोजन नही होता। यह बड़े लोगों का वाक्य है।।28।।

इस प्रकार निर्णय करते हुए ब्राह्मणों की अनुज्ञा पाकर राजा अम्बरीष मन में अच्युत का ध्यान करते हुए थोड़ा सा जल पीकर दुर्वासा ऋषि के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए बैठ गया।।29।।

दुर्वासा ऋषि अपने नित्य कर्म को समाप्त करते हुए यमुना तीर से राज घर आये। राजा उनको आदर और श्रद्धा से स्वागत किया। महायोगी दुर्वासा राजा जलपान किया है इसको योग बल से समझ लिए।।30।।

क्रोध से उनका शरीर काँपने लगा। भौंह सिकुड़ गये। भूख भी लगी थी। हाथ जोड़े हुए राजा को बोले।।31।।

यह देखिए, यह राजा धर्म के नियमों का अतिक्रमण किया है। यह क्रूर है। सम्पत्ति के मद से उन्मत्त है। स्वयं अकेले अपने को विष्णु भक्त समझता है। किन्तु भगवान में भक्ति नही है।।32।।

मैं यहाँ अतिथि होकर आया हूँ। यह राजा मुझे आमन्त्रण दिया है। इतना होते हुए भी मुझको देने के पहले स्वयं भोजन कर चुका है। उसके फल को मैं उसको अभी दिखाता हूँ।।33।।

यहाँ अम्बरीष का जल पारण दुर्वासा ऋषि ने देखा नही। योग दृष्टि से देखे हैं। केवल जल पान किया तो भी उसको ऋषि आग्रह से भोजन कह रहे हैं। इस अहंकार से विष्णु भक्त अम्बरीष उनको तुच्छ लग रहा है। विष्णु भक्त के इस अपमान के कारण दुर्वासा ऋषि को अपनी करनी का फल भोगना पड़ेगा है।

ऐसे बोलते हुए क्रोध से जलते हुए दुर्वासा अपनी जटा से एक बाल को खींच कर जमीन के ऊपर गिराते हुए अम्बरीष के वध के लिए एक कृत्रिम देवता की सृष्टि किए।।34।।

वह कृत्रिम देवता आग के समान जलते हुए हाथ में तलवार को पकड़ते हुए जमीन हिलते जैसे पाँव रखते हुए अम्बरीष के प्रति दौड़ कर आने लगी। तो भी अम्बरीष अपने स्थल से नही हिला।।35।।

अपना दोष न रहते हुए भी बड़े लोग कष्ट दिए तो उनको मारने से पाप नही आता। किन्तु उनके हाथ से यदि मर जाय तो एक अश्वमेघ यज्ञ का फल आता है। इसी कल्पना के साथ अपने को विष्णु चक्र की रक्षा होने के कारण वह नही डरा।

परम पुरुष नारायण के भक्त अम्बरीष की रक्षा के लिए भेजा हुआ चक्र रोषपूर्ण साँप के आग जैसे जलता था। वह कृत्रिम देवता को जला दिया।।36।।

दुर्वासा ऋषि अपना प्रयत्न निष्फल होते देखकर और चक्र को अपने पास आते हुए देखकर भयभीत होकर अपनी रक्षा के लिए दशों दिशा में दौड़ते रहे।।37।।

जंगल को जलाने वाली आग चारों तरफ से जैसे घेर लेती है, वैसे अपने पीछे पीछे आने वाले आग को देख कर मुनि घबरा गये। वे मेरु पर्वत की गुफा में छिपने का प्रयास किए।।38।।

विष्णु चक्र वहाँ भी पीछा करते आया, तब भूमि आकाश, पाताल, समुद्र, स्वर्ग, नरक कहीं भी जायँ विष्णु चक्र छोड़ने वाला नही है। वे जहाँ जहाँ जाते थे विष्णु चक्र वहाँ वहाँ उनका पीछा करता रहा।।39।।

सभी जगह अपनी रक्षा करने वाले किसी को न देखते हुए ऋषि भयभीत होकर ब्रह्मा जी के शरण में आये। वे दोनों हाथ जोड़कर ब्रह्मा जी से प्रार्थना की कि हे परम पुरुष! आप इस पराजय विहीन विष्णु चक्र के तेज से मेरी रक्षा करें।।40।।

श्री ब्रह्मा जी कहते हैं - मेरे दो परार्ध आयु के अन्त में इस प्रपंच का अन्त करने वाले कालरूपी श्री हरि अपने **भौंह** के एक छोटी सी चलन से मेरे स्थान को जला देते हैं। ऐसे श्री हरि के संकल्प के सामने मैं क्या कर सकता हूँ।।41।।

मैं, रुद्र, दक्ष, भृगु, कश्यप प्रजापति, कुबेर, इन्द्र सारे उनके शरण में रहते हुए वे हमें जो काम देते हैं उसको सिर झुकाते हुए काम करते हैं। हम असहाय हैं।।42।।

श्री शुकदेव कहते हैं - विष्णु चक्र की गर्मी से ऊबगये दुर्वासा ब्रह्मदेव से रक्षा न मिलने के कारण शिव जी की रक्षा पाने के लिए कैलास चले।।43।।

शिव जी बोले - भगवान नारायण के सुदर्शन चक्र से हम रक्षा कर नही सकते। गुणपूर्ण श्री हरि ऐसे हजारों ब्रह्माण्ड की सृष्टि और नाश करते रहते हैं। हम ऐसे एक ब्रह्माण्ड में उन्ही के आश्रय के आधार पर चलते रहते हैं।।44।।

मैं सनत कुमार, नारद, ब्रह्मदेव, कपिल ऋषि, **अपान्तरतम**, देवल, धर्म, आसुरी, मरीची इत्यादि शस्त्र पारंगत, सिद्ध श्रेष्ठ ये सारे लोग उनके संकल्प को जान नही सकते, क्योंकि हम प्रकृति से बद्ध हैं।।45,46।।

जगन्नाथ श्री हरि के उस चक्र को हम नही रुकवा सकते। तुम उसी श्री हरि की शरण में जाओ भगवान तुम्हारा भला करेगा।।47।।

शिव की इन बातों से हताश होकर दुर्वासा ऋषि भगवान नारायण के धाम वैकुंठ को चले। वहाँ श्री हरि श्रीदेवी के साथ रहते हैं।।48।।

किसी से न हारने वाला श्री हरि के चक्र के भय से काँपते हुए ऋषि श्री हरि के चरण में दण्डवत

प्रणाम किए। हे अच्युत, अनन्त सज्जनों के स्वामी, हे प्रभु, हे विश्वकर्ता मैं अपराध किया हूँ। मुझको क्षमा करते हुए रक्षा करिए।।49।।

मैं आपके महासार्थ्य को न जानते हुए आपका भक्त का अपचार किया है। हे जगदीश! केवल आप के नामोच्चारण मात्र से नरक में गिरा हुआ आदमी भी मुक्त होता है। आप मुझको प्रायश्चित दे के रक्षा करें।।50।।

श्री भगवान कहते हैं - हे मुने, मैं भक्तपराधीन हूँ। मैं स्वतन्त्र होते हुए भी भक्त के हाथ में हूँ, मैं भक्त जनों का प्रिय हूँ। साधु सज्जन भक्त लोग अपनी भक्ति से मुझको अपने वश में रख लेते हैं।।51।।

सज्जन भक्तों को छोड़कर मैं अपने को अलग रखना नहीं चाहता । नित्य मेरे साथ रहने वाली और कभी भी मुझको न छोड़ने वाली लक्ष्मी से भी मैं दूर रह सकता हूँ। किन्तु मुझको ही परमगति मानने वाले अपने भक्तों का हाँथ मैं कैसे छोड़ू।।52,53।।

मेरे भक्त अपनी पत्नी, पुत्र, घर इत्यादि ऐहिक, पारत्रिक, सकल सम्पदा को और अपने प्राण की भी चिन्ता न करते हुए मेरे शरण में आते हैं। ऐसे भक्तों को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ।।54।।

पतिव्रता स्त्री अपने अच्छे पति को भक्ति से जैसे अपने वश में कर लेती है, वैसे मुझमें ही अपने मन रखे हुए, सर्वत्र मुझको देखने वाले साधु भक्त मुझको अपने वश में रखते हैं।।55।।

मेरी सेवा करते हुए उसके फल रूप में मैं सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य नाम के चार तरह के मोक्ष को देने के लिए तैयार रहे तो भी मेरे भक्त उनको नही चाहतें। वे मेरी सेवा से ही तृप्त हैं। ऐसे लोग काल की गति से नष्ट होने वाले स्वर्गादि लोकों को कभी भी नही चाहते। ऐसे साधु लोग मेरे प्रिय हैं, मैं उनका प्रिय हूँ। मैं उनको कैसे छोड़ सकता हूँ।।56।।

मेरे भक्त मुझको छोड़ कर अन्य से प्यार नही करतें। मैं उनसे ज्यादा प्यार और किसी से नही करता। हे मुने तुम्हारी रक्षा के लिए एक उपाय बोलता हूँ। सुनो।।57।।

तुमने जिसके ऊपर कृत्रिम देवता का प्रयोग किया था। उसी की शरण में जाओ। साधु सज्जनों के ऊपर शक्ति प्रयोग किए तो वह शक्ति प्रयोग करने वाले को ही नाश करता है।।58।।

तप और विद्या ब्राह्मणों को दोनों श्रेय देने वाले बनते हैं। किन्तु अहंकार से उनका दुष्ट प्रयोग करने वाले को वे अनर्थकारी बनते हैं।।59।।

हे मुने! - तुम्हारा कल्याण होगा। तुम राजा अम्बरीष के पास जाओ। उससे क्षमा मांगो। उससे

तुम्हारा भला होगा।।60।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - भगवान के इस आदेश को सुनकर चक्र के ताप से जलने वाले दुर्वासा ऋषि दु:ख से अम्बरीष के पास जाकर उनके पाँव पड़े।।61।।

ब्राह्मण ऋषि मुझ क्षत्रिय के पाँव को पकड़ रहा है इससे अम्बरीष लज्जित हो गया। मुनि के दु:ख को देखकर कृपा पूर्ण हृदय से दु:खित होकर श्री हरि के सुदर्शन चक्र की स्तुति करने लगा।।62।।

अम्बरीष कहता है - हे चक्र के अन्तर्यामी श्री हरि, यह सारा ब्रह्माण्ड आपके वश में है। भगवान अग्नि, सूर्य, नक्षत्र, चन्द्र, जल, पृथ्विआकाश, वायु, शब्दादि विषय और दशेन्द्रिय ये सारे आपके वश में हैं।।63।।

हे हजार दाँतवाले, सारे अस्त्र शस्त्रों को नाश करने वाले, अच्युत को प्रिय, सुदर्शन चक्र के अभिमानी नारायण आपको नमस्कार। दुर्वासा ऋषि का कल्याण हो।।64।।

हे चक्र के अन्तर्यामी आप धर्म, धृति, सत्य और यज्ञ के प्रेरक हैं। सर्व यज्ञों का फल भोगने वाले आप हैं। सकल लोकपालकों को और सारे प्रपंच को नियमन करने वाले आप हैं। आप श्री हरि के अपार तेज और पौरुष रूप हैं।।65।।

हे सुदर्शन अभिमानी, सारे धर्मों की रक्षा करने वाले, पाप करने वाले दैत्यों का नाश करने वाले, तीनों लोकों की रक्षा करने वाले, निर्मल कान्ति वाले, मनोवेग वाले, अद्भुत कार्य करने वाले आपको यह नमस्कार।।66।।

हे सुदर्शन अभिमानी आप दोष से दूर हैं। भगवान श्री हरि युद्ध में जब प्रयोग करते हैं, तब आप महा दैत्यों से भरा हुआ असुर सैन्यों में घुस कर उनके बाहु, पेट, जंघा, पाँव और गले को काटते हुए सदा काल विराजमान रहते हैं।।67।।

आप के उज्वल तेज से तमस का नाश होता है, महात्माओं के आँखों के लिए प्रकाश मिलता है। हे वेदपति! आप की महिमा को कोई नही जानता। आप मूर्त, अमूर्त, चेतन, अचेतन इस प्रपंच का मूर्तरूप हैं।।68।।

हे जगद्रक्षक, आप गदाधर से दुष्टों के नाश के लिए नियुक्त हैं। आप भक्तों के लिए भय कारक नही बनते। भक्तों के सारे अपराधों को आप सहन करते हैं। हमारे कुल देवता के प्यार के लिए आप मुनि के लिए कल्याण करिए। उससे हमारा भी कल्याण होगा।।69।।

मैंने जो दान दिया है, याग किया है, स्वधर्माचरण ठीक तरह से किया है, अपने कुल ब्राह्मणों को

देवता के समान देखा है तो उस पुण्य से इस मुनि का ताप शान्त हो।।70।।

भगवान सारे जीवों में रहते हैं, इस भाव और भक्ति से मैं सर्वगुण के आश्रय, सर्वोत्तम भगवान की आराधना की है और उससे भगवान संप्रीत हो गए हैं तो उस पुण्य से इस मुनि का ताप शान्त हो।।71।।

शुकदेव कहते हैं - इस रीति से राजा अम्बरीष स्तोत्र करते रहे। उसके परिणाम स्वरूप चारों दिशाओं से मुनि को जलाने वाला सुदर्शन चक्र शान्त हो गया।।72।।

ऋषि दुर्वासा चक्र के ताप से मुक्त होकर क्षेम को प्राप्त किए। राजा को आशीर्वाद देते हुए उसकी प्रशंसा करने लगे।।73।।

दुर्वासा कहते हैं - भगवद्भक्तों की महिमा कितनी आश्चर्यकारक है। इसको मैंने अपनी आँखों से देखा। राजा मैंने तुमसे अपराध किया था किन्तु तुमने मेरा कल्याण ही किया।।74।।

महात्मा, साधु लोग चाहें तो कुछ भी कर सकते हैं, क्योंकि वे अपनी भक्ति से भक्तों के स्वामी भगवान नारायण को अपने वश में रखते हैं।।75।।

केवल जिसके नाम स्मरण मात्र से मानव सारे पापों को धोकर निर्मल हो जाता है ऐसे पवित्रपाद श्री हरि के दासों में पाप कहाँ रह सकता है।।76।।

हे राजा! तुमने मेरे ऊपर अनुग्रह किया है। तुम परम दयालु हो। मेरे अपराध की गणना न करते हुए मेरे प्राण की रक्षा की है।।77।।

दुर्वासा जी इस प्रकार स्तुति करते रहे। अम्बरीष उनके दोनों पाँव के ऊपर नतमस्तक होकर उनको सन्तुष्ट किया। बाद में उनको भोजन करवाया। तब तक वह अन्न आहार और एक बूँद पानी भी नही लिया था।।78।।

दुर्वासा ऋषि राजा द्वारा आदर पूर्वक दिए हुए सकल लोक से चाहने वाले उत्कृष्ट अन्न को खाकर तृप्त हुए और राजा से बोले अब तुम भोजन करो।।79।।

दुर्वासा बोले - हे राजा! तुम भगवद्भक्त हो, तुम्हारे दर्शन, स्पर्शन, बातचीत और आतिथ्य सत्कार से मैं सन्तुष्ट हूँ। भगवान के तत्वज्ञान को सुनकर अनुगृहीत हूँ।।80।।

हे राजा! देवता, स्त्रियाँ तुम्हारे इस निर्मल चरित्र को बार बार गाती हैं। भू लोक में तुम्हारी कीर्ति दशों दिशाओं में प्रसारित होगी।।81।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस रीति से सत्कार पाकर दुर्वासा ऋषि राजा की स्तुति करते हुए उससे

बिदा होकर अन्य दुर्जनों के लिए अलभ्य ब्रह्म लोक को आकाश मार्ग से चले गये।।82।।

जिस दिन दुर्वासा ऋषि राजा से क्रोधित होकर चक्र के भय से जब चले गये थे तब से अब वापस आने में एक वर्ष बीत गया था। राजा मुनि की राह देखते हुए एक वर्ष पर्यन्त अन्न ग्रहण न करते हुए केवल पानी पी के रहा।।83।।

दुर्वासा ऋषि के जाने के बाद राजा अम्बरीष, मुनि के अत्यन्त पवित्र उच्छिष्ट का भोजन किया। मन में चिन्तन करने लगा कि भगवान की कृपा से मुनि का संकट दूर हुआ। यह सारी भगवान की कृपा है। मेरे हाथ से क्या होने वाला है। ऐसे विचार करते रहे।।84।।

अनेक गुणवाले राजा अम्बरीष अश्वमेध आदि अनेक सत्कार्य करते हुए किया हुआ कर्म को परब्रह्म परवासुदेव में अपर्ण करते हुए अपनी भक्ति को बढ़ाते रहे। भक्ति में ब्रह्मादि देवताओं से भी आगे बढ़ा।।85।।

अम्बरीष भगवान का बड़ा भक्त है। किन्तु ब्रह्मादि देवता के सामने वह लेश मात्र भी समान नही होता। जैसे प्रह्लाद को अपने को ज्यादा प्रिय है इसको दिखाने के लिए भगवान नरहरी प्रह्लाद को जेष्ठता और श्रेष्ठता दी, वैसे ही यहाँ अम्बरीष की महिमा को दिखाने के लिए अम्बरीष को श्रेष्ठता दी है। अम्बरीष की कीर्ति को बढ़ाने के लिए और विष्णु के अधीनत्व को दिखाते हुए ब्रह्म और रुद्र अम्बरीष की कीर्ति को बढ़ाए। दुर्वासा ऋषि रुद्रावतार होते हुए भी असुरावेश के कारण भक्त अम्बरीष का द्रोह प्राप्त किए। उनके अहंकार को नाश करने के लिए और दोनों पर अनुग्रह करने के लिए भगवान विष्णु अम्बरीष के मुखान्तर ही उसको संकट से दूर किए।

इसके बाद महाज्ञानी अम्बरीष अपने योग्य पुत्रों को राज्य भार को समर्पित करते हुए वासुदेव में मन रखते हुए तीनों गुणों से उत्पन्न होने वाले रागद्वेषादि प्रवाह को पार करते हुए तप करने चले गये।।86।।

यह राजा अम्बरीष का पुण्यकारी कथानक है। प्रतिदिन संकीर्तन करना, याद करना और दूसरों को कहते रहना बहुत पुण्य कारक है। जो इसको करता है वह भगवद्भक्त बनता है।।87।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में छठा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - सातवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - अम्बरीष को विरूप, शम्भू और केतुमान नाम के तीन पुत्र हुए। विरूप से पृषध्वज जन्म लिया। उसका पुत्र रथीतर हुआ।।1।।

रथीतर को पुत्र नही हुए। उसने सन्तति के लिए अंगिरा ऋषि से प्रार्थना की। वे उसकी पत्नी में ब्रह्मवर्चस्व वाले पुत्रों को जन्म दिए।।2।।

ये पुत्र क्षत्रिय क्षेत्र में अंगिरा से जन्म लेने के कारण उनका नाम आंगीरस पड़ा। वे रथीतर में मुख्य माने जाते हैं। वे क्षत्रिय होने के साथ ब्राह्मण भी माने जाते थे।।3।।

प्राचीन काल में उत्तम सन्तति के लिए निचली जाति में सन्तान उत्पत्ति करने के लिए उच्च वर्ण वालों से प्रार्थना करने की पद्धति थी। जैसे जमीन में कृषि काम के लिए दूसरों को लगाने से उससे किए हुए काम से जो उत्पन्न होता है वह खेत के मालिक का होता है वैसे ही पत्नी में दूसरों से प्राप्त किया हुआ उनका बनता है।पति से जन्म लेने वाला पुत्र **औरस** कहलाता है, दूसरों से जन्म लेने वाला पुत्र **क्षेत्रज** कहलाता है।

वैवस्वत मनु के छींकते समय उसके नाक से इक्ष्वाकु नाम का पुत्र जन्म लिया। उसको सौ पुत्र हुए। उनमें विकुक्षी, निमि और दण्डक ये तीनों श्रेष्ठ हैं।।4।।

इसके पहले भागवत में (9-1-11) वैवस्वत मनु को श्रद्धा देवी में इक्ष्वाकु मिलकर दस पुत्र हुए ऐसी कथा आती है। अब मनु के नाक से इक्ष्वाकु के जन्म की बात है। इसका विवरण ऐसा है मनु को श्रद्धा देवी में नौ और इक्ष्वाकु मिल कर दस पुत्र हुए ऐसे कहना ठीक होता है। मनु के सारे पुत्रों की श्रद्धा देवी माँ होने के कारण इक्ष्वाकु को भी श्रद्धा का पुत्र मानना क्षात्रिन्याय से सही होता है अथवा दक्ष प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र होकर जन्म लेने के बाद प्रचेतस का भी पुत्र बनता है। वैसे यहाँ इक्ष्वाकु का दुबारा जन्म लेने की बात सही हो सकती है। तीसरा यह भी हो सकता है कि वह इक्ष्वाकु और यह इक्ष्वाकु अलग अलग पुत्र हैं। ऐसा समझने से कोई समस्या नही आती।

उन सौ पुत्रों में पच्चीस लोग आर्यावर्त के पूर्व भाग के राजा बने, और पच्चीस लोग पश्चिम भाग के राजा बने। तीन पुत्र मध्य भाग के राजा बने। बाकी के सैतालिस पुत्र उत्तर दक्षिण भाग के राजा बने।।5।।

एक बार इक्ष्वाकु अष्टक श्राद्ध के लिए अपने पुत्र विकुक्षी को जल्दी जाकर शुद्ध मांस को लाने के लिए आदेश दिया।।6।।

विकुक्षी उसके अनुसार जंगल जाकर श्राद्ध के लिए योग्य मृगों को मारकर थक गया। वह बहुत भूखा भी था। उसने उनमें से एक खरगोश के मांस को खा लिया। उसके इस मांस को खाने से वह उच्चिष्ट हो जाता है इसको वशिष्ठ आदि ऋषियों को परोसने योग्य नही होता यह विवेक उसमें नही रहा।।8।।

विकुक्षी से किए हुए इस कृत्य को ज्ञान दृष्टि से जानकर वशिष्ठ ऋषि इस बात को इक्ष्वाकु राजा को बता दिए। राजा इसको समझ कर सदाचार को छोड़े हुए अपने पुत्र को क्रोध से अपने राज्य से बाहर किया।।9।।

आगे इक्ष्वाकु जापक नाम के ऋषि से चर्चा करते हुए ज्ञान को पाकर योगाभ्यास करके शरीर त्याग करते हुए परब्रह्म को पा लिया।।10।।

पिता के मरने के बाद सबसे बड़ा पुत्र विकुक्षी राज्य को वापस आकर इस भूमि का राजा बना। वह श्री हरि की आराधना करते हुए अनेक यज्ञ किया। खरगोश का मांस खाने से उसका नाम शशाद भी था।।11।।

शशाद पहले दुराचारी था। किन्तु बाद में श्री हरि की उपासना से अपने पाप को धोकर वह प्रख्यात राजा बना। कलियुग में श्राद्ध में मांस भोजन निषिद्ध है। किन्तु पिछले युगों में उसके लिए अनुमति थी।

विकुक्षी का पुत्र पुरंजय। उसका इन्द्रवाह नाम भी था, उसको ककुतस्थ भी बोलते थे। उसको तीन नाम क्यों आये, उससे किए हुए महत्कार्य के बारे में बताता हूँ सुनो।।12।।

कृतयुग के अन्त में देव और दानवों के बीच में युद्ध हुआ। उस समय दैत्यों से पराजित देवता गण वीर पुरंजय का सहायता पा लिए।।13।।

सर्वेश्वर प्रभु देव भगवान विष्णु के आदेश से इन्द्र महावृषभ रूप धारण करते हुए पुरंजय का वाहन बन गया क्यों कि पुरंजय इन्द्र को वाहन बनने के लिए माँगा था।।14।।

पुरंजय कवच धारण कर दिव्य धनु और तीक्ष्ण बाण को धारण कर उस वृषभ के कंधे के ऊपर बैठ कर युद्ध के लिए सिद्ध हुआ। उस समय देवता लोग उसका यशोगान गाये। वृषभ के कंधे के ऊपर बैठने के कारण उसका नाम ककुतस्थ पड़ा।।15।।

परम पुरुष परमात्मा विष्णु के तेज को भरकर देवताओ के साथ पश्चिम दिशा से दैत्यों के नगर को घेर लिया। इन्द्र को वाहन बनने से उसका नाम इन्द्रवाह पड़ा।।16।।

हे राजा परीक्षित सुनो - दैत्यों के साथ पुरंजय का रोमांचकारी युद्ध हुआ। उस युद्ध में पुरंजय अपने बाण से युद्ध करने वाले सारे दैत्यों को यमपुरी भेजा।।17।।

उसके बाण प्रलयाग्नि के समान जलते हुए आगे खड़े हुए दैत्यों को मारता हुआ देखकर, पीछे के दैत्य अपना नगर छोड़ कर भाग गये।।18।।

दैत्यों के नगर को उनके सैन्य सम्पत्ति के साथ सारे धन संपत्ति के साथ इस राजर्षि द्वारा पुर को जीतने के कारण इसका नाम पुरंजय पड़ा। जीती हुयी सारी सम्पत्ति को पुरंजय इन्द्र को सौंप दिया। इस तरह उसको ककुतस्थ, इन्द्र, वाह और पुरंजय ऐसे तीन नाम पड़े।।19।।

पुरंजय को अनेनस नाम का पुत्र हुआ। उसका पुत्र पृथु, पृथु का पुत्र विश्वगन्धि, उसका पुत्र चन्द्र। चन्द्र का कुमार युवनाश्व।।20।।

युवनाश्व का पुत्र **श्रावस्ति**। उसने ही श्रावस्ति नगर का निर्माण किया। उसका पुत्र बृहदश्व उसका पुत्र कुवलयाश्व।।21।।

कुवलयाश्व बहुत बलिष्ठ था। उदंक नाम के ऋषि को कष्ट देने वाला दुन्धु नाम के दैत्य को अपने इक्कीस हजार पुत्रों के साथ जाकर वध किया।।22।।

इसी कारण कुवलयाश्व दुन्धुमार नाम से प्रख्यात हुआ। किन्तु उनके तीन बच्चों को छोड़कर अन्य सारे बच्चे दुन्धुमार के मुख से आयी हुयी आग में जल गये।।23।।

दृढ़ाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व ये तीन बचे थे। इनमें से सबसे जेष्ठ दृढ़ाश्व का पुत्र हर्यश्व उसका पुत्र निकुम्भ।।24।।

निकुम्भ के पुत्र बर्हिणाश्व, उसका पुत्र कृषाश्व, उसको सेनजित, उसको युवनाश्व पुत्र हुए। युवनाश्व को पुत्र नही हुआ। सौ पत्नी होते हुए भी वह पुत्र न होने के कारण वैराग्य से तप करने जंगल गया।।25।।

वहाँ के ऋषियों ने दया पूर्ण होकर इससे इन्द्रयाग करवाया। वह एकाग्रचित्त होकर यज्ञ करता रहा।।26।।

एक दिन रात में राजा प्यास लगने से यज्ञ शाला में जाकर सारे ऋषियों को सोया हुआ देख कर वहाँ रखा हुआ मंत्र से युक्त जल को उठा कर पी लिया। ऋषि गण उस जल को उसकी पत्नी को देने के लिए रखे थे।।27।।

ऋषि गण सुबह उठ कर देखे तो मंत्र जल पूरित कलश खाली हो गया है। वे पूछे, अरे पुत्र संतती को

देने वाला जल को किसने पी लिया है।।28।।

अन्त में उनको मालूम हुआ कि भगवान की प्रेरणा से राजा ने ही उस जल को पी लिया है। दैव बल ही ऐसा रहे तो मानव क्या कर सकता है। यह भगवान की प्रेरणा है। वैसा ही ही बोलते हुए नमो कहते हुए वे भगवान को नमस्कार किए।।29।।

मंत्र जल को पीने के कारण राजा गर्भ धारण किया। नौ महीने बीत जाने के बाद युवनाश्व अपने नाम का पुत्र पिता के पेट को चीर कर बाहर आया।।30।।

बच्चा बहुत रोने लगा। तब रोते हुए इस बच्चे को किसका दूध पिलाए? ऋषि गण इस बात से चिन्तित थे। तब यज्ञ से सन्तुष्ट हुआ इन्द्र आकर अपने अंगुली को उस बच्चे के मुह में रखते हुए **मान्धाता** तुम मेरे इस अंगुली से दूध पिओ। उस दिन से उस बच्चे का नाम मान्धाता पड़ा।।31।।

पिता के पेट से बच्चा बाहर आने के बाद भी पिता नही मरा। ऋषि मुनियों ने उसके बारे में देवताओं से प्रार्थना की थी। उनके अनुग्रह से युवनाश्व नही मरा। बाद में वह यज्ञशाला में तप करते हुए सिद्धि पा लिया।।32।।

मान्धाता को इन्द्र ने त्रसद्दस्यु नाम रखा। दस्यु यानि राक्षस लोग त्रसद यानि डराते हैं। राक्षस लोग मान्धाता से डरते थे इसके लिए उसका नाम त्रसद्दस्यु पड़ा।।33।।

युवनाश्व का पुत्र मान्धाता चक्रवर्ती बना। अच्युत भगवान के तेज से आविष्ट होकर एकचक्राधिपति होकर सात द्वीप वाली इस समग्र भूमि का राजा बना।।34।।

सर्व देवमय, सर्वेश्वर, अतीन्द्रिय, यज्ञ नामक भगवान नारायण को परमात्म ज्ञानी राजा मान्धाता बहुत दक्षिणा देते हुए अनेक यज्ञ करते हुए आराधना की।।35।।

द्रव्य, मंत्र, विधान, यज्ञ कार्य, यजमान, ऋत्विज, धर्म, देश, काल ये सारे हरि के आधीन हैं। इसके ऊपर मान्धाता का दृढ़ विश्वास था।।36।।

सूर्य जहाँ उदय होता है, चन्द्र जहाँ प्रकाश देता है वह सारा प्रदेश यौवनाश्व मान्धाता का राज्य बना था।।37।।

शशबिन्दु की पुत्रि बिन्दुमति से राजा मान्धाता की शादी हुई। उस पत्नी में पुरुकुत्स, अम्बरीष और योगी मुचुकुन्द नाम के पुत्र हुए।।38।।

इनकी पचास बहने थीं। उन सब को सौभरी ऋषि से शादी करवा दिया।।39।।

सौभरी मुनि यमुना जी के गहरे पानी के अन्दर डूबकर वहीं महातप का आचरण करते थे। उस समय एक बड़ा नरमछली अनेक मादामछलियों के साथ खेलते हुए महानन्द पाता था। उसको देखकर वह ऋषि उसी तरह का आनन्द पाने की इच्छा से जल को छोड़ कर बाहर आया। वह मान्धाता राजा के पास जाकर पचास में से एक पुत्री को अपने के लिए शादी में देने की माँग रखा। ऋषि के रूप को देख कर राजा को पुत्री देने का मन नही हुआ। किन्तु बोला आपही इनमें से कोई लड़की जो आपको पसन्द करे तो उससे स्वयंबर करो।।40,41।।

इनको स्त्री लोग कैसे पसन्द करते हैं? ये बूढ़े हो गये हैं, बाल पके हैं, चमड़ी सिकुड़ गयी है, सिर हिलता है इससे कौन लड़की विवाह करना चाहेगी। यह सोच कर राजा ने मुझसे ऐसा कहा है।।42।।

इसके लिए मेरे शरीर को देवता स्त्री भी चाहे ऐसे तपोबल से इसको बदल दूँगा। यह निर्धारण करते हुए योगशक्ति वाले वह सौभरी ऋषि अत्यन्त सुन्दर युवक बने।।43।।

इसके परिणाम से सम्पद्धरित अन्त:पुर में रहने वाली सभी पचास कन्याएँ उसी के साथ शादी करने के लिए सिद्ध हो गयी।।44।।

सभी उसी को चाहते हुए मैं इससे शादी करूँगी, मुझे यह योग्य पति बनेगा, तेरे लिए नही, ऐसे बोलते हुए अपने प्यार को घोल कर झगड़ा करने लगी। तब राजा ने उन सबको उन्ही से शादी करवाए।।45।।

ऋग्वेद मंत्र के द्रष्टार वह सौभरी मुनि मंत्र के सामर्थ्य से, अपने तप सामर्थ्य के साथ सारे सम्पदाओं से युक्त अलग अलग सुन्दर पचास घरों को बनवाये। उन घरो में उद्यान, सरोवर, सरोवर में सुन्दर पुष्प और बाग बगीचा बनाकर स्वयं पचास रूप धारण कर उनके साथ विहार किए।।46।।

बहुत महंगे सस्य, आसन, वस्त्र, अलंकार, स्नान, अनुलेप, खाद्य, फूलमाला इनसे सारे घर भरे हुए थे। उत्तमरीति से अलंकृत दास दासियाँ वहाँ सेवा के लिए थे। मृग पक्षियाँ सुस्वर से कूंजते थे। लगता था वे इनके गुणगान कर रहे हैं। इन घरों में उद्यानों में मुनि अपने पचास रूप से पचास पत्नियों के साथ विहार किए, अपना गृहस्थ धर्म चलाए।।47।।

दामाद का यह गृहस्थ धर्म देख कर सप्तद्वीप युक्त इस समग्र भूमि के राजा सार्वभौम, साम्राज्य लक्ष्मी से सुशोभायमान राजा मान्धाता दंग रह गया। इस लोक में केवल मैं ही सुख समृद्ध गृहस्थ धर्म को चलाने वाला यह अहंकार को छोड़ दिया।।48।।

सौभरी मुनि इस प्रकार अपने घरों में कितना भी सुख भोग करते रहने के बाद भी उसको तृप्ति नही मिली। आग में घी को कितना भी डाले वह कम ही होता है।।49।।

एक बार वह बैठ कर विचार करने लगा। अरे, मैं ऋग्वेद मंत्र का द्रष्टार और आचार्य हूँ। किन्तु केवल मछली का संग देखकर अपने आत्मनाश को मैने ही स्वयं किया है।।50।।

अरे मेरे इस तपो नाश को देखिए। मैं तपस्वी था, श्रेष्ठ व्रताचरण करता था। एक बार मैं पानी में अपने पत्नियों के साथ विहार करने वाले मछली को देखकर आसक्ति रखने से बहुत काल किया हुआ तप को नाश कर दिया।।51।।

मोक्ष चाहने वाले को कभी भी रतिकेलि का दर्शन नही करना चाहिए, उसका संग ही छोड़ना चाहिए, इन्द्रियों को विषय वासनाओं के पास बाहर नही छोड़ना चाहिए। मैं अकेला एकान्त में सर्वेश अनन्त नामक भगवान में मन लगाकर तप करता था, वैसा ही करना चाहिए। यदि संग करना है तो साधु संग करना है, सद्भक्तों का संग करना चाहिए।।52।।

एकांगी होकर अकेला तप करने वाला मैं पानी में रहने वाला मछली के बारे में आसक्ति दिखाया। इसका परिणाम देखो। पचास शरीर को धारण किया है, पचास पत्नियों में पाँच हजार बच्चों को जन्म देते हुए संसार के गर्त में गिर गया हूँ। अब लड़कियों की शादी, लड़कों का उपनयन और अभ्यास करवाना है। ये सारी चिन्ता में डूब गया हूँ। रागादि मनोरथ में मेरी बुद्धि ही खराब हो गयी हैं। विषय पदार्थों को ही पुरुषार्थ मान रहा हूँ।।53।।

सौभरि महा योगी थे। मुक्ति उनकी सिद्ध हो गयी थी, केवल प्रारब्ध कर्म को भोगना था। उनका प्रारब्ध बहुत बड़ा था, पचास जन्म में पचास पत्नियों के साथ प्रारब्ध कर्म का भोग करना था। सौभरि एक ही जन्म में प्रारब्ध को भोगने के लिए पचास रूप धारण कर पचास राजकुमारियों से शादी करके प्रारब्ध का भोग किया। प्रारब्ध को भोगना ही पड़ता है। इससे सौभरि मुनि को योगभ्रष्ट बोलना गलत होता है। वह ज्ञानी और मोक्ष योग्य होते हुए भी प्रारब्ध कर्म वश संसार में आसक्त रहा।

इस प्रकार बहुत वर्ष संसार में रहते हुए भोग करने के बाद सौभरि विरक्त होकर जंगल को गया। पति को भगवान मानकर आराधना करने वाली उनकी पचास पत्नियाँ उनके साथ चली। जंगल में सौभरि ऋषि सकल विषय भोग त्याग कर वानप्रस्थाश्रम में गये।।54।।

वहाँ शरीर शोषण करने वाले तीव्र तप को करते हुए भगवान के ज्ञान को पाया हुआ सौभरि भगवान में ही अपने अन्तःकरण को मिला दिये और अपने पचास शरीरों को श्रौताग्नि से जला दिए।।55।।

हे राजापरिक्षित अपने पति को शरीर त्याग कर भगवान से लते देख कर उनकी पत्नियाँ भी आग बुझाते समय ज्वाला भी जैसे बुझाते हैं वैसे वे भी उनके साथ चली गयी।।56।।

मान्धाता के पुत्रों में जेष्ठ अम्बरीष को उसके नाना जी शशबिन्दु दत्तक लेकर पुत्र बना दिया।

अम्बरीष का पुत्र युवनाश्व।।57।।

युवनाश्व के पुत्र हरित। अम्बरीष, युवनाश्व और हरित मान्धातृ गोत्र के अवान्तर विशेष प्रवर्तक बने। पुरुकुत्स को नाग कन्या नर्मादा से विवाह किया गया। यह विवाह नर्मादा के सोदर नागों ने किया।।58।।

भाईयों के प्रेरणा से नर्मादा पुरुकुत्स को रसातल को ले गयी। विष्णुशक्ति के आवेश रहने वाला वह वहाँ नागों के शत्रु वध्रश्व नाम के गन्धर्व जाती के दुष्टों का हनन किया।।59।।

पुरुकुत्सक को स्मरण करने वाले को सर्प का भय न हो इस रीति से पुरुकुत्सक नाग राजा से वर पाया। इसका पुत्र अनरण्य।।60।।

अनरण्य के पुत्र हर्यश्व, उसका पुत्र अरुण, अरुण का पुत्र त्रिबन्धुर, उसका पुत्र सत्यव्रत। यह सत्य व्रत ही त्रिशंकु नाम से प्रसिद्ध है।।61।।

एक बार त्रिशंकु ने शादी होने वाली एक ब्राह्मण लड़की का अपहरण किया। इससे क्रुद्ध होकर गुरु वशिष्ठ जी और उनके पुत्र इसको शाप दिए। उस शाप के कारण वह चाण्डाल बन गया। पुन: विश्वामित्र के तप: प्रभाव से उसी शरीर से त्रिशंकु स्वर्ग पाया। आज भी आकाश में हम त्रिशंकु नाम का नक्षत्र को देखते हैं।।62।।

राजा परीक्षित पूछा-त्रिशंकु आज भी आकाश में कैसे हैं। उत्तर में शुकदेव कहते है - विश्वामित्र जी तपो बल से उसको स्वर्ग को चढ़ाए। किन्तु स्वर्ग द्वार में वशिष्ठ के शाप के कारण देवताओं ने उसको वहीं से ढ़केल दिया। त्रिशंकु सिर नीचे होकर गिरने लगा। तब विश्वामित्र जी अपने तपो बल से आकाश में ही उसी स्थिति में खड़ा कर दिए और वहीं एक अलग स्वर्ग का निर्माण किए। इस त्रिशंकु का पुत्र ही हरिश्चन्द्र है। हरिश्चन्द्र के बारे में विश्वामित्र और वशिष्ठ परस्पर शाप देकर पक्षी बनकर बहुत वर्ष तक युद्ध किए। हरिश्चन्द्र को पुत्र नही हुआ। वह दु:खित होकर नारद जी के सलाह के अनुसार वरुण के शरण में आया और प्रार्थना किया कि यदि मुझे एक वीर पुत्र जन्म लिया तो उसी को बलि देकर आप के प्यार में एक यज्ञ करुगाँ।।63,64,65।।

जन्म लिए हुए बच्चे को बलि देने से पुत्र होने का क्या लाभ है ऐसा लगता है। किन्तु यहाँ हरिश्चन्द्र पुत्र होते ही उनका बलि देने का बात नही किया है। पुत्र होने के बाद देखेंगे, भगवान है इस भाव से वह वरुण को आश्वासन दिया था। भगवान की कृपा से उसको अपने पुत्र रोहित को बलि देने का सन्दर्भ नही आया। बच्चा जन्म लेते ही वरुण बलि चाहा तो राजा ने कहा कि इस छोटे बलि से तुम्हारा पेट भरने वाला नही है, इसको बड़े होने दो कहते हुए हरिश्चन्द्र यज्ञ को आगे ढकेलता है।

वरुण इस बात को मानकर पुत्र बड़े होते तक रुक गया।।66।।

दस दिन के बाद पशु बलि योग्य बनता है, हरिश्चन्द्र बोले तो उसी के अनुसार वरुण दस दिन के बाद आते हैं, और पूछते है अब बलि दो।।67।।

तब हरिश्चन्द्र बोलता है दाँत आने के बाद पशु बलि के लिए योग्य बनता है। तब वरुण दाँत आने के बाद बलि माँगने आता है।।68।।

हरिश्चन्द्र कहता है - दाँत गिरने के बाद बलि ठीक होता है। तब वरुण पूछता है अब दाँत गिर गये हैं बलि दो।।69।।

हरिचन्द्र ने कहा, गिरा हुआ दाँत पुनः आने से बलि योग्य बनता है। वरुण पूछता है अब दाँत आए हैं बलि दो।।70।।

तब हरिश्चन्द्र कहता है - यह शिशुपशु छोटा है। क्षत्रिय शस्त्र धारण करने के बाद शुद्ध होता है। तब बलि दूँगा। इस प्रकार पुत्र प्रेम से हरिश्चन्द्र काल वंचना करता रहा। हरिश्चन्द्र जैसे बोलता था वैसे वरुण बलि मागने आता था।।71।।

बाद में बलि के लिए पुनः माँगा। बलि की बात सुनकर बड़ा हुआ रोहित राज घर को छोड़कर जंगल में चला गया। ।72।।

इधर हरिश्चन्द्र वरुण के आग्रह के कारण महोदर रोग का रोगी बना। इसको सुनकर रोहित अपने घर जाने लगा। बीच में इन्द्र वृद्ध ब्राह्मण के रूप में आकर उसको रोका।।73।।

तीर्थक क्षेत्र यात्रा करते भूमि में संचार करने से पुण्य मिलता है कह कर इन्द्र देव ने रोहित को उपदेश दिए। उसके अनुसार रोहित एक वर्ष पर्यन्त यात्रा में रहा।।74।।

इस प्रकार दूसरा, तीसरा, चौथा और पाँचवा वर्ष इन्द्र के उपदेश के अनुसार रोहित यात्रा करता रहा।।75।।

छ:ठा वर्ष जंगल में संचार समाप्त कर अपने घर को जा रहा रोहित बीच में अजीगर्त मुनि से उसके मध्यम पुत्र शुन:शेप को खरीद कर अपने पिता को बलि पशु के रूप में दे दिया। इससे शुन:शेप हरिश्चन्द्र का क्रीत पुत्र बना।।76।।

महायश को पाया हुआ हरिश्चन्द्र राजसूय महायज्ञ के अभिषेचनीय काल में पुरुषबलि देकर वरुणादि देवताओं को सन्तुष्ट कर महोदर रोग से मुक्त हो गया।।77।।

उस महायाग में विश्वामित्र होतृ बना। परमज्ञानी जमदग्नि अध्वर्यु बने, वसिष्ठ ब्रह्मा बने, अयास्य उद्गातृ बने।।78।।

शुन:शेप को इन्द्र ने सन्तुष्ट होकर सोने के रथ दिए। उसकी कथा हम चौदहवाँ अध्याय में बोलेंगे।।79।।

राजा हरिश्चन्द्र पत्नी समेत सत्य निष्ठा में आपत्काल में भी दिखाया हुआ धैर्य को देख कर विश्वामित्र बहुत सन्तुष्ट होकर विचलित न होने वाला दृढ़ तत्व ज्ञान का उपदेश दिए।।80।।

राजसूययाग में दक्षिणा के निमित्त में हरिश्चन्द्र के सम्पूर्ण राज्य को विश्वा मित्र ने अपने वश में ले लिया। हरिश्चन्द्र को अपने पत्नी पुत्र को बेचना पड़ा। हरिश्चन्द्र सत्य निष्ठा के लिए अपने को भी बेचना पड़ा। इसके सत्य निष्ठा को देख कर सन्तुष्ट हुए विश्वामित्र उनको परमपद को पाने का तत्वोपदेश दिए।

बहुत दिनों के बाद अपने जीवन के अन्तिम समय में हरिश्चन्द्र ने लय का चिन्तन किया। अन्न को पृथ्वि में, पृथ्वि को जल में, जल को तेज में, तेजस को वायु में, वायु को आकाश में, आकाश को अहंकार में अहंकार को महत्तत्व में, महत्तत्व को अव्यक्त में लय करना, (उन तत्वाभिमानि देवता इस प्रकार कनिष्ट देवता अपने ऊपर के श्रेष्ठ देवता में विलीन होना लय चिन्तन होता है।) इस प्रकार ध्यान करते हुए सारे तत्व और उनके अभिमानी देवताओं को मुख्य नियामक श्री हरि में अपने योग्य ज्ञानादि गुणांशों को ध्यान करते हुए श्री हरि को प्रत्यक्ष देखते हुए उस अपरोक्ष के कारण लिंग शरीर को नाश करते हुए अविद्या बन्धन से मुक्त हुए। प्राकृत शरीर से न मिलने वाले स्वरूपसुखज्ञानयुक्त चिन्तन के स्वरूप सुख को पाते हुए जीवन मुक्त होगया।।81।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

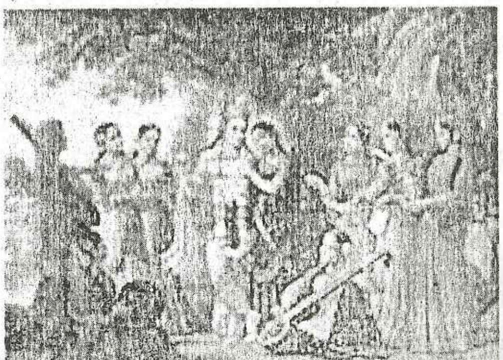

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - आठवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

शुकदेव कहते हैं - रोहित के पुत्र हरित, हरित का पुत्र चम्प। इसी ने चम्पापुरी नाम का नगर का निर्माण किया, उसका पुत्र सुदेव, सुदेव का पुत्र विजय।।1।।

विजय का पुत्र भरुख उससे वृक जन्म लिया, वृक से बाहुक, बाहुक के राज्य को शत्रुओं ने अपहरण किया। राजा पत्नियों के साथ जंगल चला गया।।2।।

बाहुक जंगल में ही मर गया। उसके साथ उसकी एक रानी सहगमन करने के लिए सिद्ध हो गयी। तब वह गर्भिणी थी। उसको देखकर और्व नाम के मुनि सहगमन से उसको मना किया।।3।।

रानी के गर्भ में शिशु है इसको समझकर मत्सर से उसके सौत ने उसको तीव्र विष खिला दिया। भाग्यवश रानी नही मरी। गर्भ में रहने वाला बच्चा विष के साथ जन्म लिया। आगे बड़ा कीर्तिशाली हुआ वह सगर नाम से प्रसिद्ध हुआ। **स - गर** इसका अर्थ विष के साथ ऐसे होता है।।4।।

सगर चक्रवर्ती बना। उनके एक हजार पुत्र भूमि में विशाल गढ्ढा खोद करसमुद्र का विस्तार बढ़ाए। उस दिन से समुद्र को सागर नाम पड़ा। सगर राजा अनागरिक लोग तालजंघ, यवन, शक, हैहय, बर्बर इन जातियों के लोगों को दुष्ट होने के बाद भी अपने गुरु और्व मुनि के आदेश से नही मारा। उनको विचित्र वेष पहनाया। कई लोगों का मुंडन करते हुए दाढ़ी को रखा। कई लोगों को लम्बा बाल रखवाया। कई लोगों को आधा मुंडन करवाया।।5,6।।

कई लोगों को अन्दर के कपड़े पहनने से मना किया, और कई को बाहर के कपड़े पहनने नही दिया। ये सारे पाखण्ड मत के अनुयायी बने हैं। स्वयं सगर राजा ने सारे वेद और देवताओं में रहने वाले भगवान को अश्वमेध इत्यादि यज्ञों को करते हुए आराधना की।।7।।

और्व मुनि के उपदेश के अनुसार सर्व जीवि के स्वामी परमात्मा परमेश्वर श्री हरि की आराधना अश्वमेध यज्ञ से किया। उस यज्ञ के समय भू प्रदक्षिणा के लिए छोड़ा हुआ यज्ञाश्व को देवेन्द्र ने अपहरण किया।।8।।

सगर राजा के सुमति और केशिनी नाम की दो रानी थीं। उसमें पहले वाली सुमति के पेट से साठ हजार पुत्र जन्म लिए। ये सारे अहंकारी थे। पिता के आदेश के अनुसार यज्ञाश्व को ढुढ़ते हुए पाताल को जाने के लिए जमीन में खुदाई किए।।9।।

पाताल में इशान्य दिशा में कपिल मुनि तप करते बैठे थे। देवेन्द्र उनके पास यज्ञाश्व को छिपा कर रखा था। यज्ञाश्व को मुनि के पास देखकर उसी को चोर समझ कर चिल्लाते हुए साठ हजार सगर पुत्र आयुध लेकर मुनि के ऊपर मारने के लिए आक्रमण किए। तब मुनि आँख खोले।।10,11।।

मनोभिमानी इन्द्र उनके मन का अपहरण किया था। इसी कारण अज्ञ सगर पुत्र महात्मा कपिल को मारने को गये थे। किन्तु ऋषि से किए हुए अपचार के कारण भस्म हो गये।।12।।

सगर पुत्र कपिल मुनि के क्रोधाग्नि से जल गये। ऐसे कहना सही नही है। बल ज्ञान को आश्रय देने वाले कपिल में क्रोध के कारण बनने वाला अज्ञान कैसे रहेगा? जगत को पवित्र करने वाला साधु सज्जनों में अपवित्र अज्ञान और कोप उनके स्वभाव में कैसे रहता है? इस भूमि से उड़ा हुआ धूल आकाश में क्या रह सकता है।।13।।

शुद्ध भगवत्तत्वज्ञान रूप सांख्य दर्शन को निरूपण करने वाले कपिल ऋषि हैं। पार करने के लिए असाध्य इस मृत्यु मार्ग वाला संसार सागर को मुमुक्षु पार करने के लिए यह सांख्य दर्शन एक बड़ा नौका के रूप में है। ऐसे शुद्ध ज्ञान वाले परमात्म के स्वरूप श्री कपिल देव में रोष और दूषित बुद्धि कैसे रहती है।।14।।

केशनी के पुत्र असमंजस उसका पुत्र अंशुमान। अंशुमान अपने बाबा सगर चक्रवर्ती के हित के कार्य में सदा काल निरत था।।15।।

असमंजस पूर्व जन्म में योगी था। जन सम्पर्क के कारण वह योगभ्रष्ट हुआ था। इस जन्म में भी उसको पूर्व जन्म का स्मरण रहा। इससे वह पश्चाताप से लोगों से दूर रहने के लिए दुष्ट कार्यों में अपने को लगाया।।16।।

लोकों में निन्दित, अन्धोंओ को भी असहनीय होने वाला दुष्कर्म को करते हुए लोगों को भय निर्माण करता था। खेलते बच्चों को सरयू नदी में फेकता था।।17।।

इसकी दुष्टता को देखते हुए राजा सगर, पुत्रवात्सल्य को छोड़कर अपने पौत्र का परित्याग किया। वह भी उसी को चाहता था। राजा के आज्ञा के अनुसार वह जंगल चला गया। जाते समय अपने योगशक्ति से नदी में डूबे हुआ सारे बच्चों को उठाकर उनके घर को वापस भेज दिया।।18।।

अयोध्यावासी जन के मरे हुए बच्चे वापस आये हैं इसको देखकर बहुत आश्चर्य चकित हुए। राजा सगर भी उसको परित्याग करने से पश्चाताप किया।।19।।

सगर चक्रवर्ती अपने पौत्र अंशुमान को घोड़े के अन्वेषण के लिए भेजा। वह अपने छोटे पिता लोगों द्वारा जहाँ जमीन को काटकर गुफा बनाए थे उसी मार्ग से पाताल जाकर अपने घोड़े को देखा। उसके बगल में एक बड़े राख के ढेर को देखा।।20।।

वहाँ बैठे हुए विष्णु के अवतार रूप कपिल मुनि को देखा। उनको हाथ जोड़कर नमन करते हुए तदेक चित्त होकर स्तोत्र करने लगा।।21।।

ब्रह्मा जी भी अपने से बड़े और श्रेष्ठ लक्षण वाले आपको पूर्ण रीति से साक्षात्कार नही कर सकते। आज भी वे अपने ध्यान योग से भी आपको पूर्ण रीति से जान नही सकते। अन्य मरीचि इत्यादि ब्रह्मा जी के मन और शरीर से सृष्ट हुए ऋषि मुनि आपको कैसे जान सकते हैं। हम तो पूर्ण अज्ञ हैं।।22।।

त्रिगुणों से प्रधान रूप से सृष्ट हुए जीव तीन तरह के होते हैं। क्रमशः वे हैं सत्वप्रधान, रज:प्रधान और तम:प्रधान। इनमें आपके माया से **अमोहित,** मोहित न होने वाले केवल सत्व प्रधान मात्र होता हैं। वे अपने में रहने वाले आपको अपने शक्ति के अनुसार जान सकते हैं। **अमोहित,** किंचिन्मात्र मोहित होने वाले राजस लोग आपको देख नही सकते। वे बाहर रहने वाले विषय पदार्थ को ही देखते रहते हैं। वे त्रिगुण जन्य स्वर्गादि सुखों को भोगते हैं। **अमोहित,** पूर्ण रूप से मोहित अन्त: करण वाले तामस लोग अपने अन्दर रहने वाले आपको देख नही सकते और तमस को भोगते रहते हैं।।23।।

आप पूर्णानन्द स्वरूप हैं। सनन्दानादि ऋषि अविद्या से उत्पन्न होने वाले भेद विषय में होने वाला मोह को नाश किए हैं। वे आपका ध्यान कर सकते हैं। मैं तो मूढ़ हूँ, मैं कैसे आपका ध्यान कर सकता हूँ।।24।।

प्रकृति के गुण हों, उनसे बनने वाले कर्म हों, उनके साधन रूप शरीर हों आपके लिए नही हैं। आप के नाम प्राकृत नही हैं। आपको पूण पापकर्म का लेप नही हैं। ज्ञानोंपदेश के लिए आप अपने स्वरूप को व्यक्त करते हैं। ऐसे पुराणपुरुष आपको हम नमन करते हैं।।25।।

आप अपनी इच्छा से प्रकृति से निर्माण करते हैं। लोग भ्रमित होकर घर जमीन इत्यादि लौकिक साधनों को शास्वत समझते हैं। काम लोभ मत्सर मोह से उनका मन भ्रमाधीन रहता है।।26।।

हे सारे जीव राशि के अन्तर्यामी भगवान श्री हरि। हम आज आप के दर्शन से काम्यकर्म और इन्द्रियों के निमित्त रहने वाला अज्ञान को मिटा दिए। सारे पापों का मूल अज्ञान को उत्पन्न करने वाला स्नेह पाश आज कट गया।।27।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार अंशुमान द्वारा की हुयी हुई प्रार्थना को सुनकर कपिल मुनि उसके ऊपर पूर्ण अनुग्रह करते हुए बोले।।28।।

कपिल जी कहते हैं - हे बेटा, सुनो! यह घोड़ा आप लोगों का है। यह तुम्हारे बाबा का यज्ञपशु है। यहाँ राख का ढेर जो है वह तुम्हारे पितृ लोगों का है। इनका उद्धार केवल गंगा जल से हो सकता है। अन्य किसी से वे मुक्त नही होंगे।।29।।

अंशुमान कपिल मुनि को परिक्रमा करने के बाद दण्डवत् प्रणाम करते हुए अपने घोड़े को लेकर सगर चक्रवर्ती के सामने आया। सगर चक्रवर्ती उस घोड़े से अपने यज्ञ की समाप्ति किया।।30।।

राजा सगर अपने राज्य भार को अंशुमान को देकर विषय वासना से सम्बन्ध छोड़ते हुए संसार बन्ध को दूर करते हुए और मुनि के उपदेश से उत्तम गति को पा लिया।।31।।

अंशुमान देव गंगा को भूमि और पाताल को लाने के लिए कई वर्ष तप किया। वह उसमें यश नही पाया। काल बीतने के बाद वह मरण पाया।।32।।

अंशुमान के पुत्र दिलीप भी पिता के समान तप करने के बाद भी यश न पाते हुए मरण पाया। उसके पुत्र भगीरथ। वह इन दोनों से भी बढ़ कर तप किया।।33।।

भगीरथ के तप से सन्तुष्ट होकर गंगाजी उनको दर्शन दीं और कहीं जो चाहे वह वर माँगो भक्ति से नम्र हुआ राजा अपने मनोकामना को बताया।।34।।

गंगा जी कहती हैं - हे राजा, मैं स्वर्ग से भूमि के ऊपर आ जाऊँगी। किन्तु मेरी प्रबल शक्ति वाली धारा को रोकने वाला कौन है। मेरी धारा के आघात से यह भूमि टुकड़ा टुकड़ा हो सकती है।।35।।

इतना ही नही मैं भूमि पर उतरी तो मेरी दुर्गति हो जायेगी। पापी लोग अपने सारे पापों को मुझमें धो डालेंगे हैं। हे राजा, उस पाप को मैं कहाँ धोऊँ। तुम इसके बारे में विचार करो।।36।।

राजा भगीरथ कहते हैं - विरक्त, भगवद्भक्त, ब्रह्मज्ञानी, साधु सज्जन लोग इस जगत को पावन करते हैं। अपने हृदय में भगवान के प्यार को भरे हुए वे लोग अपने पाद धोना इत्यादि अंग संग करने वाले लोगों के पाप का परिहार करते हैं। हरिध्यान बल से वे ही पाप निवारण का यह काम करते हैं तो सदा काल हरिचरण तल में रहने वाले आपको पाप लेप कहाँ से होता है? तो भी आप पाप की चिन्ता नही करना क्योंकि साधु सज्जन लोग स्नानादि अंग संग से सारे पापों का परिहार करते हैं।।37।।

आपकी धारा के वेग को शंकर जी रोकते हैं। वे शरीर में रहने वाले अहंकार तत्व के अभिमानी हैं। कपड़े को सूत से सिलाई करने से दोनों कपड़े जैसे मिल कर रहते हैं वैसे ही सारे शरीर रुद्र जी के आश्रय में

रहता है।।38।।

गंगा जी को इस प्रकार आश्वासन देने के तुरन्त बाद राजा भगीरथ तप करते हुए शिव को प्रसन्न किए। शिव भगवान तप से बहुत जल्दी सन्तुष्ट होते हैं।।39।।

राजा की प्रार्थना को सुनकर उसके अनुसार सारे जगत के हितकारी भगवान रुद्र श्री हरि के पाद के संग से पवित्र जल वाले गंगा जी को अपने सिर पर रखे।।40।।

राजर्षि भगीरथ अपने पूर्वजों का शरीर जहाँ भष्म होकर गिरे थे वहाँ परम पावनी गंगा जी को लेकर चला।।41।।

वायुवेग वाला रथ से राजा भगीरथ आगे आगे दौड़ते थे। गंगा जी वेग से उनका पीछा करती थीं। गंगा जी चलते चलते रास्ते में मिलने वाले सारे प्रदेश को पावन करते हुए अन्त में जाकर सगर पुत्रों के भस्म के ढेर को भीगो दिए।।42।।

देह के इस भस्मराशि को गंगा जी का जल का स्पर्श होते ही सगर के पुत्र जिन्होने कपिल परब्रह्म में किया हुआ अपचार से नरक पाए थे वे स्वर्ग सिधार गये।।43।।

भस्म हुए वे राजपुत्र केवल गंगा स्पर्श से स्वर्ग पाये तो व्रत निष्ठ होकर गंगा जी का रोज आराधना करने वाले के बारे में और क्या कहना है।।44।।

भवबन्धन को नाश करते हुए हरि पाद कमल से आये हुए गंगा जी के लिए पापियों का पाप निवारण करना बड़ा आश्चर्य की बात नही है।।45।।

गंगा जी हरि के श्रीचरणकमलों से उत्पन्न होकर बहती हुई हमारे तक आयी हैं। गंगा जी में श्रद्धा रखते हुए ऋषि मुनियों ने छूटने वाला त्रिगुण बन्धन से जल्दी छुटकारा पाकर हरि सायुज्य रूप मोक्ष को पाते हैं।।46।।

भगीरथ के पुत्र श्रुत। श्रुत का पुत्र नाभाग। यह नाभाग मनुपुत्र नाभाग से अलग हैं। नाभाग का पुत्र सिंधुद्विप। उसका पुत्र अयुतायु।।47।।

अयुतायु से ऋतुपर्ण जन्म लिया। यह नल महराज का मित्र। उसने नल को शूतविद्या को सिखा कर अश्वविद्या को उससे सीख लिया।।48।।

कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्यच।

ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनम् कलिनाशनम्।।

इस प्रकार ऋतुपर्ण का नाम कलि नाश करने में प्रसिद्ध है।

सर्वकाम का पुत्र सुदास उसके पुत्र सौदास राजा। उसकी पत्नी का नाम मदयन्ती। उसके कारण इसका नाम मदयन्ती पति इस प्रकार प्रसिद्ध था। उसको कल्माष पाद भी कहते हैं।।49।।

प्रारब्ध कर्म वश से अपने पाप कर्म से भी वशिष्ठ से शाप पाकर राक्षस बन गया। उसको सन्तति भी नही हुयी।।50।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - महात्मा सुदास के पुत्र को किस कारण से अपने गुरु से शाप मिला, मै इसको जानना चाहता हूँ। यदि यह गूढ़ नही है तो कृपया बताइए।।51।।

शुकदेव कहते हैं - राजा सौदास एक बार शिकार करने गया था। उस समय उसने एक राक्षस को मार दिया। उसका भाई वहाँ से भाग गया। वह भाई के वध का बदला लेने के लिए राज-घर में आ गया।।52।।

अपने भाई के वध को मन में रखते हुए वह राक्षस धद्म वेष में भण्डार में घुस कर भण्डारी जैसे रूप धारण कर नर मांस को पका कर भूख से आये हुए गुरु वशिष्ठ जी को नर मांस को परोसा।।53।।

भण्डारी द्वारा किए गए इस अपवित्र कार्य को देखकर कुपित हुए वशिष्ठ जी राजा को नरभक्षक राक्षस बनने का शाप दिए।।54।।

बाद में यह राक्षस का काम है इसको समझने के बाद राजा की गलती न होने के कारण शाप को बारह वर्ष के लिए सीमित किए। तब राजा ने भी क्रोध से हाथ में जल लेकर अपने गुरु को शाप देने के लिए सिद्ध हो गया।।55।।

तब रानी मदयन्ति आकर उसको रोक ली। राजा मन्त्र से शक्तियुक्त अपने हाथ के जल को अपने पाँव के ऊपर छोड़ दिया क्योंकि प्राण हरण करने वाले वह मंत्रजल और किसी के ऊपर छोडे तो वे प्राणी मर जाते थे। इस भूमण्डल में पूरा जगह जीवियों से भरा है। अन्य जीवि का नाश न हो इसके लिए पानी को अपने पाँव के ऊपर डाल दिया।।56।।

इस रीति से मंत्र जल को अपने पाँव के ऊपर डालने के कारण उसके पाँव काले होगये। गुरु के शाप के कारण राक्षस रूपवाला और पानी डालने के कारण काले पाँव वाला राजा सौदास एक बार वन में संचार करते समय ब्राह्मण दम्पति को उनके सम्भोग समय में देखा।।57।।

भूखा राजा अपने आहार के लिए ब्राह्मणों को पकड़ लिया। उसकी पत्नी बोली हे राजा, तुम जन्म से राक्षस नही हो। तुम इक्ष्वाकु वंश में आया हुआ श्रेष्ठ महारथिक हो।।58।।

तुम मदयन्ति के पति हो तुम पाप नही करना। मैं एक पुत्र को चाहती हूँ। हम उस काम में लगे थे। हमारी इच्छा पूर्ण नही हुयी है ऐसी स्थति में तुम कृपा करके मेरे पति को छोड़ दो।।59।।

हे राजा, मनुष्य के लिए यह शरीर सकल पुरुषार्थ साधन है। हे वीर, उसी कारण तुम मेरे पति ब्राह्मण का वध करते हो तो तुम्हारे सारे पुरुषार्थ नाश हो जायेंगे।।60।।

मेरे पति ब्राह्मण, ज्ञानी, तप करने वाले और सद्गुणी हैं। यह सदा काल सारे प्राणियों के अन्तर्यामी होकर रहने वाले नारायण को परब्रह्म और गुण पूर्ण समझते हुए उपासना करते रहते हैं। ऐसे श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि को तुम राजर्षि कैसे मारते हो। हे धर्मज्ञ राजा, पिता को उनका ही पुत्र मारने जैसा यह हो रहा है। ये साधु हैं, पाप रहित हैं और वेद के उपदेश करने वाले हैं। स्त्री गर्भ में पुत्र रूप से जन्म न लेने वाले भ्रूणावस्था में रहने वाले इनको वध करना गलत होता है।।61,62,63।।

तुम सज्जन हो। लोगों से गौरव पाने वाले हो। तुम गो हत्या के सामान वाला यह ब्रह्महत्या को कैसे ठीक समझते हो। यदि तुम इनको खाना चाहते हो पहले मुझको खाओ।।64।।

इनके बिना मै एक क्षण जीवित नही रह सकती। मेरा जीवन ही मुर्दे के समान हो जायेगा। इस प्रकार करुणाजनक स्वर में अनाथ होकर वह रोती रही।।65।।

गुरु शाप के कारण दुष्ट बना हुआ सौदास शेर जैसे गाय को खा डालता है वैसे ब्राह्मण को खा लिया। पति को यह नर भक्षक राक्षस खा लिया। उसको देख कर वह ब्राह्मण पत्नी अपने छाती को पत्थर से मारते हुए आक्रोश से रोती हुई राजा को शाप देते हुए बोली - हे पापी, बुद्धि शून्य, तुम मेरे पति को खा लिया। मै कामार्ता थी। तुमने मेरे पति को खा लिया। तुमको भी सुरत काल में गर्भाधान के पहले मृत्यु हो। तुम पापी हो इस प्रकार उसको शाप दिए। बाद में वह पति लोक को पाने का संकल्प की।।66,67,68।।

ब्राह्मण के अस्थि को जलने वाले आग में डालते हुए स्वयं उसमें कूद कर वह सहगमन की। बारह वर्ष के बाद शाप निवृत्ति होने के बाद राजा अपने राज घर वापस आया। एक दिन वह रानी से मिलना चाहा।।69।।

रानी को ब्राह्मण पत्नी का शाप मालूम था। इस कारण वह राजा को रोक लिया। राजा अपने ही पाप के कारण सन्तति रहित रहा।।70।।

राजा की अनुमति से वशिष्ठ मुनि मदयन्ति को गर्भाधान किए। गर्भधारण करने के बाद मदयन्ति सात वर्ष तक प्रसव नही की।।71।।

इससे बेजार होकर रानी पत्थर से अपने पेट को मार लिया। तब उसके गर्भ से जन्म लिया हुआ

सौदास का पुत्र का नाम अश्मक पड़ा। ब्राह्मण पत्नी पत्थर से अपने पेट को मारी थी। उसी अपराध के कारण रानी को अपने पेट के लिए पत्थर से मारना पड़ा। संस्कृत में पत्थर को अश्म कहते हैं। इसी कारण उसका नाम अश्मक पड़ा।।72।।

अश्मक का पुत्र मूलक। मूलक को नारी कवच नाम का और एक नाम था। परशुराम जी क्षत्रिय वंश को नाश करने के लिए जब अश्मक के पास आते थे तब उसके रानियों ने राजा को घेर कर परशुराम जी को बोलते थे कि यहाँ कोई पुरुष नही है। परशुराम जी हँसते हुए जाते थे। इसी कारण उसका नाम नारी कवच पड़ा। अश्मक से क्षत्रिय वंश बढ़ा। मूलक के पुत्र दशरथ। यह दशरथ श्री राम जी के पिता से अलग हैं। इनके पुत्र का नाम ऐलिबिली।।73।।

ऐलिबिली का पुत्र विश्वसह। उसका पुत्र खट्वांग। वह सबको क्षमा करने वाला गुणशील राजा था।देवताओं के इच्छानुसार दैत्यों के साथ युद्ध करते हुए किसी से न मरने वाले दैत्यों का नाश किया।।74।।

उसका आयुष्य का समय एक मुहूर्त मात्र रह गया था। इसके लिए वह अपने नगर में आकर ध्यान करने लगा। वह अपने में कहा कि मुझको और बहुत दिन जीने की इच्छा नही, सतपुत्रों को पाने की इच्छा नही।।75।।

मुझे भूमि, राज्य, स्त्री सुख इत्यादि कोई सुख नही चाहिए। बाल्य से मैं कुछ अधर्म और अकार्य नही किया है।।76।।

श्रेष्ठ, ब्रह्मादि से भी स्तुत्य वासुदेव को छोड़ कर और कोई इस जगत में स्वतंत्र नही है। तीन लोकों अधिपति सारे देवताओं ने मुझे जो चाहे वह वर देने को तैयार हैं।।77।।

जगत सृष्टिकर्ता वासुदेव के ध्यान को छोड़ कर अन्य किसी कर्म को मैं करना नही चाहता। विषय पदार्थों के बीच में आकर्षित न होते हुए इन्द्रिय और मन को जीते हुए देवता गण भी अपने हृदय में रहने वाले भगवान को ठीक तरह से जानते नही। तो अन्य सामान्य लोग कैस जानते है।।78,79।।

इसी कारण हरि की इच्छा से प्रकृति से निर्माण हुआ गन्धर्व नगर के समान क्षणिक इन देह इन्द्रिय और विषयों में रूढ़ मूल मन को न रखते हुए अपनी सारी आसक्ति को जगन्नाथ में भक्ति युक्त होकर उसी के शरण जाना चाहता हूँ।।80।।

इस प्रकार नारायण में अखण्ड मन को रखने वाला खटवांग राजा अज्ञान से अन्य वस्तुओं में आसक्ति न रखते हुए नित्य और स्वतंत्र परमात्मा नारायण के शरण को पाया।।81।।

भगवान सर्वोत्तम, लौकिक इन्द्रिय रहित, गुण पूर्ण ब्रह्म हैं। वे अपने शून्य नामक मूल रूप से

व्यक्त होते हैं। पञ्चरात्र को जानने वाले पण्डित लोग उनको भगवान वासुदेव कहते हैं।।82।।

खटवांग के पुत्र दीर्घबाहू। उसका पुत्र महाकीर्तिशाली रघुराजा। रघु से अज जन्म लिया। अज का पुत्र राजा दशरथ।।83।।

देवताओं से प्रार्थित वेदवेद्य साक्षात् भगवान श्री हरि स्वरूप से एक और अंशांश से तीन इस प्रकार दशरथ के राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चार नाम से चार पुत्र अवतार लिए।।84।।

यहाँ **अंशाशेन चतुर्धा** ऐसा कहा है। इन चार में श्री राम स्वरूपावतार हैं। ब्रह्माण्ड के बाहर वासुदेवादि चार रूप मूलरूपि नारायण से व्यक्त होते हैं। तो भी ब्रह्माण्ड के अन्दर होने वाले सारे अवतार पद्मनाभ रूप से व्यक्त होते हैं। इसी कारण पद्मनाभ से व्यक्त होने वाले वासुदेवादि चार रूप रामादि चार अवतार लिए हैं। वासुदेव स्वयं श्री राम जी बने। संकर्षण शेषावतार लक्ष्मण में आविष्ट हुए, प्रद्युम्न मन्मथावतार भरत में, अनिरुद्ध, अनिरुद्ध नाम के मन्मथ पुत्र के अवतार रूप शत्रुघ्न में आविष्ट हुए।

हे राजा श्री सीतापति श्री रामचन्द्र जी की लीलाओं को तत्वदर्शी वाल्मिकी इत्यादि ऋषियों ने बहुत सुन्दर तरीके से वर्णन किए हैं। उसको तुम सुन चुके हो। संक्षेप रूप से और एक बार कहता हूँ सुनो।।85।।

कौशल देश के अधिपति श्री राम चन्द्र जी हमारी रक्षा करें। वे पितृ वाक्य को पालन करने के लिए राज्य सिंहासन को छोड़कर रानी सीता जी का हस्तस्पर्श को भी सहन न करने वाले कोमल कमल के समान पादों से सारे जंगलो में फिरते रहे तो भी उनको मार्गायास नही हुआ। हनुमान और सुग्रीव, लक्ष्मण के साथ वन संचार किए। शूर्पनखा के कान, नाक काट कर विरूप करने के निमित्त सीता का विरह के साथ जब बड़े क्रोध से भौवों को उठाने के कारण समुद्र राज जब डर गया तब उसी की प्रार्थना से समुद्र के ऊपर पुल बाध कर लंका को जाकर दुष्ट रावण नाम के जंगल को नाश करने वाले दावानल बने। यह संक्षेप में रामायण है।।86।।

विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के समय में लक्ष्मण देखते देखते मारिचादि महाराक्षसों को अकेले राम ने ही मार डाल।।87।।

हे राजा, सीता स्वयंबर के काल में जग के वीरों के सामने जनक राज की सभा में तीन सौ लोगों से लाकर रखा हुआ उग्र शिव धनु को उठाकर जैसे छोटे हाथी गन्ना को तोड़ता है वैसे दो टुकड़े कर दिए।।88।।

अपने रूप, गुण, शील, आयु के लिए अनुरूप, पहले से ही अपने छाती में स्थान पाये हुए सीता नाम से अवतार लिए हुए लक्ष्मी, उनको श्री राम जी ने स्वयंवर में जीत लिए। रास्ते में परशुराम मिले। भूमण्डल में क्षत्रियों का सम्पूर्ण नाश करने वाला मै हूँ। यह अहम परशुराम में था। उस दर्प को श्री राम जी दूर किए।।89।।

व्यावहारिक लोक में इस प्रकार है किन्तु वास्तव सत्य अलग है। दुष्ट क्षत्रियों में रूढ मूल हुआ दर्प को निमित्त करते हुए क्षत्रियों के संतति को इस भूमि से नष्ट किए परशुराम जी के साथ एक साथ होकर श्री राम जी **व्यनयत** अपने को अलग किए। ऐसा अर्थ होता है।

कैकेयी को दिया हुआ वचन के सत्यपाश से बद्ध स्त्री वश अपने पिता के आदेश को श्री राम जी सिरमौल लिए। राज्य को, अपने प्यारे लोगों को, मित्रों को छोड़ कर पत्नी समेत जंगल को चले गये। यह विरक्त, योगी शरीर को छोड़ कर अपने प्राण को लेकर जैसे जाता है वैसे है। श्री राम जी भी विरक्त होकर सब कुछ छोड़ दिए।।90।।

श्री राम जी ने रावण की बहन शूर्पनखा को विरूप किया, क्योंकि उसकी बुद्धि और नीयत ठीक नही थी। बाद में उसके बन्धु खर, त्रिशिर और दूषण इत्यादि राक्षसों को नाश किए। वे राक्षस चौदह हजार होते हुए भी कोई न सामना करने वाला धनुष को पकड़े हुए श्री राम एक ही मुहुर्त में उन सब का नाश किए। इसके कारण उस जंगल में ऋषि मुनियों का कष्ट दूर हो गया।।91।।

शूर्पनखा के मुख से सीता के सौन्दर्य के बारे में सुनने से रावण का काम उद्दीप्त हो गया। उससे भेजा हुआ सोने के रंग वाला अद्भुत हिरण के शरीर वाला मारिच को देखकर सीता जी से प्रार्थित श्री राम उसका पीछा करते हुए आश्रम से दूर चले गये। उग्र नरसिंह हिरण्य कश्यप को, रुद्र अंधकासुर को जैसे मारे वैसे अपने बाण से मारिच को मार दिए।।92।।

कोई नही रहते समय भेड़िया जैसे बकरी को उठा कर ले जाता है वैसे नीच राक्षस रावण के सीता को अपहरण करने के बाद अपने प्रियतमा से वियोग पाये हुए श्री राम लक्ष्मण के साथ दीन मानव की तरह जंगल में फिरते रहे। स्त्री में यदि मानव आसक्त होता है तो उसकी स्थिति क्या होती है उसका एक प्रदर्शन किए।।93।।

सीता-रक्षणा के अपने जीजिकार्य में युद्ध करते हुए रावण से मारा गया जटायु के दाह संस्कार करने के बाद कबन्ध को मारा हुआ श्री राम कपियों से सख्य करते हुए बाली के हनन के बाद हनुमान से सीता जी के समाचार को सुनते हुए ब्रह्म रुद्रादि से अर्चित पाद वाले श्री राम कपि सैन्यों के साथ समुद्र तट तक चले।।94।।

जब श्री राम जी तीक्ष्ण क्रोध से अपने आखों से देखे तो सागर का पानी उबलने लगा। मगरमच्छ और तिमिंगिल जलने लगे। भय से समुद्र का आवाज स्तब्ध हो गया। समुद्रराजा पूजा साधन को सिर पर रखते हुए मूर्तिमन्त होकर श्री राम जी की पादपूजा किया।।95।।

कहता है हे पूर्णपुरुष, आप विकार रहित आदिपुरुष हैं, आप जगन्नाथ, त्रिगुणाधिपति, सत्व गुण से

सात्विक देवताओं को रजो गुण से राजस मानवों को तमो गुण से तामस भूतों को सृष्ट किए हुए भगवान हैं। इसको मन्द बुद्धि वाले हम जान नही पाते।।96।।

आप अपनी इच्छानुसार समुद्र मार्ग में पधार सकते हैं। हे वीर, आप विश्रवश मुनि का मल के रूप में रहने वाला तीनों लोकों का कन्टक बना हुआ रावण को मार डालें। अपनी पत्नी सीता जी को पुनः पाएँ। इसके लिए समुद्र के ऊपर सेतु बांधने की आवश्यकता आपको नही है किन्तु आप समुद्र के ऊपर सेतु बांधे। उससे आप की कीर्ति का बोलबाला हो। दिग्विजय करने की इच्छा करने वाले राजा सेतु का दर्शन करते हुए आपका गुण गान करें।।97।।

श्री राम जी समुद्र में अनेक गिरिशिखरों को डाल कर सेतु बन्ध करवाए। उनको लाते समय कपिवीरों के हाथ से वृक्ष और उनकी टहनियाँ कापते थे। सेतु बन्ध के बाद सुग्रीव, नील, नल, हनुमान इत्यादि असंख्य कपियों के साथ विभीषण के बुद्धि के बल से लंका पहुँचे। पहले श्री हनुमान जी इसी लंका को जलाए थे।।98।।

लंका में रहने वाला घर, भण्डार, महाद्वार, शिखर, सभांगारण, बरामदे यहाँ तक कि कबूतर के छोटे घर भी बन्दरों से भर गये। घर, ध्वज, सोने के कलश, रास्ता और मंजिल सारे कपिवीरों के कारण नष्ट हुए। हाथी के समूह एक बार सरोवर में घुसे तो उसका क्या हाल होगा।।99।।

रावण उसको देखकर अपने और कुम्भकरण के पुत्र कुम्भ, निकुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, देवान्तक, नरान्तक, इनको और प्रहस्तन अतिकाय विकम्पन इत्यादि सारे अनुचरों को खोने के बाद कुम्भकर्ण को युद्ध के लिए भेजा।।100।।

खड्ग, शूल, धनु, प्रास, ऋष्टि, शक्ति, तोमर और ढाल को पकड़े हुए राक्षस के सैन्य को सुग्रीव, लक्ष्मण, हनुमन्त, गन्धमाधन, नील, अंगद, जांबवन्त, पनस इत्यादि कपिवीरों से श्री राम जी उनको मार दिए।।101।।

श्री राम जी के सेनापतियों ने सारे सवण के सैन्य को द्वन्द्व युद्ध के क्रम से आक्रमण करते हुए पहाडों से उन राक्षसों का ही गदा और बाण को छीनकर उसी से उनको मार डाले। रावण का सैन्य हाथी, रथ, घोड़ा, पदाती सारे मिलकर कितने जोर से युद्ध करे तो भी वे सफल नही हुए, क्योंकि वह सैन्य रावण का था, रावण सीता हरण करके जो अपचार किया था उसके पाप के कारण उसके सारे काम काज नष्ट हो गये थे।।102।।

राक्षसाधिपति रावण अपने पूरे सैन्य को खोकर कुपित होकर पुष्पक विमान में बैठ कर श्री राम जी के ऊपर आक्रमण किया। तब इन्द्र के सारथी मातली स्वर्ग से सुन्दर रथ को लाया। उज्वल रूप से प्रकाशित

उस रथ में खड़े होकर शोभायमान श्री राम जी को रावण अत्यन्त तीक्ष्ण अपने अर्ध चन्द्र बाणों से मारा।।103।।

श्री राम रावण से कहते हैं - हे नर भक्षक राक्षसों में भी अत्यन्त दुष्ट रावण, तुम हमारे न होते समय साधते हुए मेरी पत्नी का अपहरण स्वयं किया है। तुमको जनलज्जा, मनलज्जा दोनों नही है। तुमको देखकर हमें असह्य लगता है। यम के समान कोई सामना न कर सके ऐसे पराक्रम वाला मै तुमको योग्य शिक्षा देने के लिए यहा आया हूँ।।104।।

इस प्रकार आक्षेप करते हुए श्री राम जी अपने धनुष को बाण जोड़ कर रावण के ऊपर प्रक्षेप किए। वह बाण वज्रायुध से भी बढ़िया होकर रावण की छाती को चीर दिया। दसो मुहों से रक्त का वमन करते हुए पुण्य किया हुआ आदमी पुण्य व्यय के बाद जैसे स्वर्ग से नीचे गिरता है वैसे उनके लोग हाहाकार करते समय विमान से जमीन पर गिर गया।।105।।

तब हजारों राक्षसी मन्दोदरी के साथ लंका से चल कर रोदन करते हुए रण रंग में दौड़कर आयी।।106।।

राम नाम से अंकित बाणों से हत अपने बन्धुओं के आलिंगन करते हुए वे राक्षस स्त्री अपने छाती को मारते हुए आर्त होकर उच्च स्वर में रोती रहीं।।107।।

वे बोले- हे नाथ रावण! आपने हम सब को रुला दिया। आपके बिना हम मर गये। आपके बिना यह लंका शत्रुओं से घिरा हुआ है। इस समय हम किसके शरण में जाएँ।।108।।

हे महा भाग्यशाली! तुम कामवश होकर सीता जी का तेज के प्रभाव को जान नही सके। उसी कारण तुम्हारा यह हाल हो गया है।।109।।

हे राक्षस कुल नन्दन, तुम अब इस लंका को विधवा कर हमको भी विधवा कर चले गये। आपके शरीर को गिद्ध आकर खाने के लिए छोड़ दिए हैं, आत्मा को नरक भेजा है।।110।।

श्री शुकदेव कहते हैं - विभीषण श्री राम जी की आज्ञा से अपने बन्धुओं का शव दाह को विधान रूप से करते हुए शास्त्रोक्त विधि से और्ध्वदैहिक कर्म को ठीक तरह से किया।।111।।

बाद में श्री राम जी ने अशोक वन के आश्रम रूप भाग में अपने विरह से दु:खित, और कृशित (दुबला, पतला हुआ) शिंशूप्मार वृक्ष के नीचे बैठे हुए सीता जी को देखा।।112।।

अपने प्रियतमा, भार्या, दीन दु:खित सीता जी को देखकर श्री राम जी को उसके ऊपर अनुकम्प हुआ। श्री राम जी के सन्दर्शन मात्र से सीता जी का मुखकमल खिल गया।।113।।

भगवान श्री राम विभीषण को राक्षसों का राजा बनाए। लंका राज्य को एक दिन कल्प के अन्त तक राजा होकर राज्य भार करने के लिए आवश्यक आयुर्दान भी दिए। चौदह वर्ष के अपने वनवास व्रत को पूर्ण करते हुए अयोध्या को चले। सीता जी को पुष्पक विमान में बैठाते हुए लक्ष्मण, सुग्रीव के साथ हनुमत्समेत श्री राम स्वयं भी पुष्पक विमान में बैठ कर अयोध्या के ओर निकल पड़े। रास्ते में लोक पालक पुष्पवृष्टि करते रहें।।114,115।।

ब्रह्मादि देवताओं ने उनके गुण गान किए। उनके भाई भरत उनकी अनुपस्थिति में गोमूत्र में पचाहुआ जौव को खाते थे, जमीन पर सोते थे, वृक्ष के छाल को पहनते थे। जटा जूट धारी बने थे यह सारे सुनकर श्री राम जी के आँखों में आँसू आए। श्री राम जी के आगमन की वार्ता सुनकर भरत अपने पौर, अमात्य और पुरोहितों के साथ भाई श्री राम जी का स्वागत करने के लिए उनके सामने आए। सिर के ऊपर श्री राम जी के पादुका को रखते हुए गीतवाद्यघोषों के साथ। नन्दि ग्राम के अपने शिविर से निकल पड़े।।116,117,118।।

वाद्यघोष के साथ वेदघोष होता रहा। ब्रह्मज्ञानि वेदघोष को बारी बारी से करते रहे। सोने के हौदे से सजा हुआ हाथी, ध्वजों से , श्रेष्ठ अश्वों से और सोने के कवच से अलंकृत सोने के रथ, सोने कवच को पहने हुए भट, अंग रक्षक, गीत गाते हुए वेश्यायें और सेवा करने वाले सेवको के साथ भरत जी श्री राम जी के स्वागत के लिए चल पड़े।।119,120।।

राजोपचार के छोटे मोटे सामग्री के साथ प्रीति से भरा हुआ आँख और हृदय वाला भरत श्री राम जी के पाँव पर सिर रखते हुए नमन किए।।121।।

श्री राम जी के पादुकाओं को उनके सामने रखते हुए हाथ जोड़े हुए आँखो से पानी बहाते हुए भरत जी उनको दोनों हाथों से आलिंगन किए, आँखों के जल से अभिषेक किए।।1122।।

श्री राम जी लक्ष्मण और सीता जी के साथ वहाँ रहने वाले ब्राह्मणों को नमस्कार करते हुए प्रजाओं के नमस्कार को स्वयं स्वीकार किए।।123।।

उत्तर कौसल के लोग बहुत दिनों के बाद आये हुए अपने स्वामी को देखकर अपने अंगौछा को हिलाते हुए आनन्द व्यक्त किए। फूल और माला को आकाश भर फेकते हुए परमानन्द से नृत्य किए।।124।।

भरत पादुका का ग्रहण किए, सुग्रीव, विभीषण उत्कृष्ट चामरों को हिलाते रहे। हनुमान स्वेतछत्र पकड़े, शत्रुघ्न तीर कमान लिए, सीता जी तीर्थ कमण्डलू को धारण किए। अंगद सोने के हाथ वाली तलवार को पकड़े तो जांबवन्त ढ़ाल पकड़े थे।।125,126।।

इन सारे लोगों से परिवृत भगवान श्री राम पुष्पक विमान में बैठे थे। स्तुति पाठक संकीर्तन करते थे। इस समय श्री राम जी ग्रह नक्षत्रों से परिवृत उदय मान चन्द्र के समान सुशोभित रहे।।127।।

भरत जी से दिया हुआ स्वागत को स्वीकार करते हुए शादी के लड़की समान सुशोभित अयोध्यापुर में श्री राम जी प्रवेश किए। राज घर में प्रवेश करते हुए अपनी माता कौसल्या और विमाता सुमित्रा और कैकेयी को वन्दना करते हुए गुरु वृन्द को अभिवन्दन करते हुए, समान और छोटे से अभिनन्दित होकर स्वयं उनका अभिनन्दन किए। सीता लक्ष्मण भी यथा योग्य सभी का अभिनन्दन किये।128,129।।

गया हुआ प्राण वापस आये तो शरीर पुनः जैसे उठकर खड़ा होता है वैसे अपने चारों पुत्रों को देखकर माताएँ उनको अपने गोद में उन्हे लेकर अपने भाष्प से उनको भीगोते हुए वियोग दुःख से दूर हुए।।130।।

यहाँ भरत शत्रुघ्न वनवास नही किए किन्तु वनवास के समान व्रताचरण करते हुए नन्दिग्राम में वास किए। वे दोनों राम लक्ष्मण के साथ अयोध्या आने के कारण तीनों माताओं को चारों पुत्रों का दर्शन एक साथ हुआ।

गुरु वशिष्ठ जी कुल के बड़े लोगों के साथ विधि के क्रम में चारों लोगों का जटा जूट को निकालते हुए गुरु बृहस्पति इन्द्र को मंगल स्नान करवाते हैं वैसे श्री राम जी को चारों समुद्र और गंगा सहित एक सौ एक नदीयों के मंगल जल से सुमंगल स्नान करवाये।।131।।

इस प्रकार अभ्यंजन करने के बाद उत्कृष्ट चीताम्बर को धारण किए हुए आभरण को धारण कर शृगांर किए हुए श्री राम सीता सहित अपने भाईयों के साथ शोभायमान रहे।।132।।

भरत दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने के बाद श्री राम जी राज सिंहासन पर बैठे। वर्णाश्रम के अनुसार धर्मानुष्ठान करने वाले श्रह राम जी वर्णाश्री धर्म निरत अपने प्रजाओं को पुत्र के समान रक्षा किए। प्रजा भी उनको पिता मानते थे। यह त्रेता युग की बात रहे तो भी काल कृत युग के समान चलता था।।133,134।।

हे राजा परीक्षित - धर्मज्ञ और सकल प्राणी संकुल को सुख देने वाले भगवान श्री राम राज्य करते समय जंगल में मंगल हुआ। नदी, पहाड़, नवखण्डद्वीप, सागर, सरोवर सारे प्रजाओं के मनोकामनाओं को सम्पूर्ण करते थे। राम राज्य में किसी प्रजा को मानसिक, दैहिक रोग नही होता था। वृद्धावस्था, भूख, प्यास, दुःख, शोक, भय कुछ भी नही होता था। यहाँ तक कि कोई थक नही जाता था।।135,136।।

अधोक्षज श्री राम राज्य करते समय प्रजाओं की इच्छा के विरुद्ध मरण भी नही आता था। श्री राम जी एक पत्निव्रतनिष्ठ होकर राजर्षियों का आचार करते हुए शुचित्व रखकर गृहस्तस्थ के विहित स्वधर्म को स्वयं पालन करते हुए प्रजाओं को भी उसी का पाठ सिखाते थे। सीता जी पति की इच्छा को ठीक तरह से समझते हुए विनय से झुके हुए, प्रेम, शुश्रूषा, शील, भय, लज्जा से पति का मन जीत ली। इस प्रकार श्री राम जी इस भू मण्डल में ग्यारह हजार सात सौ वर्ष राम राज्य चलाए।।137,138।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - नौ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक देव कहते हैं - गुरुकुल में रहकर आचार्य के पास अध्ययन किए हुए भगवान श्री राम उत्तम कल्प से यज्ञ करते हुए सर्व देवोत्तम अपनी आराधना स्वयं किए।।1।।

प्रभु श्री राम पूर्व दिशा को होतृ को दान दिए। दक्षिण भू भाग को ब्रह्मा जी को दिए। पश्चिम भू भाग को अध्वर्यु को दिए, उत्तर भाग को उद्गातृ को दिए।।2।।

बीच में रहने वाला समस्त भू भाग को यज्ञ किया हुआ आचार्य जी को दान दिए। जो मिला है उसी में तृप्ति पाने वाले ब्राह्मणों को समस्त भू मण्डल को दान लेने की अर्हता होती है। श्री राम जी इसको ठीक तरह से जानते थे।।3।।

श्री राम जी अपने पहने हुए दो कपड़े को छोड़ कर सारे आभूषणों का दान दिए। रानी सीता देवी मंगल सूत्र को छोड़कर सब कुछ दान दिए।।4।।

ब्राह्मणों के पूज्य श्री राम जी के ब्राह्मण वात्सल्य को देखकर वे सज्जन ब्राह्मण सुप्रीत होकर भरे हुए दिल से प्राप्त राज्य को श्री राम जी के चरण में समर्पित किए।।5।।

ब्राह्मण बोलते हैं - जगन्नाथ भगवान श्री राम जी, आप स्वयं को हमे दे दिए हैं। इससे ज्यादा हम आपसे क्या माँगे। आप हमारे हृदय में रहते हुए अन्दर का अज्ञान और तम को नष्ट कर रहे हैं।।6।।

ब्राह्मणों का हित करने वाले हे भगवान, आपकी ज्ञान शक्ति किसी से रोका नही जाता। सदा काल महायश को पाने वालों में सबसे श्रेष्ठ भगवान श्री राम आप, भक्त गण अपने शरीर इत्यादि सार सर्वस्व को समर्पण करने वालो के हृदय में आपके दिव्य श्रीचरण रहते हैं। आपको हमारा नमन।।7।।

श्री शुकदेव कहते हैं - एक बार श्री राम जी जनाभिप्राय को समझने के लिए वेष बदलकर अकेले जा रहे थे। उस समय एक आदमी अपनी पत्नी से बोलते हुए बातों को सुने।।8।।

तुम परपुरुष के घर में रहकर आयी हो, तुम कलंकिनी हो, तुम पतिव्रता नही हो। तुमको मैं अपने घर में

रहने नही देगे। मैं स्त्रीलोलुप राम जैसे नही हूँ। भले राम अपनी पत्नी को स्वीकार करें मैं पुनः स्वीकार करने वाला नही हूँ।।9।।

लोग अपने मन में जो आता है ऐसे अर्थहीन बातों को बोलते रहते हैं। कोई इस जग के जन का मुँह बन्द नही कर सकता। उनको वे क्या बोल रहे हैं, इसकी खबर भी नही रहती। किन्तु श्री राम जी लोकापवाद के कारण सीता जी का परित्याग किए। वे वाल्मिकि के आश्रम में रहने लगी।।10।।

आश्रम में आते समय गर्भिणी रहने वाली सीता जी सकाल में दो पुत्रों को जन्म दिए। वाल्मीकी उनका नामकरण इत्यादि क्रिया कलापों को चलाए। वे पुत्र कुश, लव नाम से प्रसिद्ध हुए।।11।।

हे राजा, लक्ष्मण के पुत्र के नाम अंगद और चक्र केतु। भरत को तक्ष और पुष्कल नाम के दो पुत्र हुए।।12।।

शत्रुघ्न के पुत्र सुबाहु और श्रुतसेन। भरत दिग्विजय करते हुए तीन करोड़ असुरों का नाश किए। उनके साधन सम्पत्ति को लाकर श्री राम जी को समर्पण किए।।13।।

शत्रुघ्न मधुदैत्य के पुत्र लवण को मार कर मथुरापुरी और मधुवन का निर्माण किए।।14।।

पति से परित्यक्त सीता देवी दोनों पुत्रों को वाल्मीकी मुनि की रक्षा में रखते हुए श्री राम जी के चरण कमल के स्मरण करते हुए भूमि के अन्दर चली गयीं।।15।।

सीता जी लोक दृष्टि से भूमि में समाहित हुईं किन्तु किसी को न दिखते हुए श्री राम जी के साथ रही। श्री राम जी लोक दृष्टि से विरही रहे। किन्तु परम्धाम जाते समय सारे लोग देखते देखते श्री सीता राम जी इस भूमि को छोड़कर वैकुण्ठ चले गये।

इसको सुनकर सर्वेश्वर भगवान श्री राम लोक निमित्त दुःख को सहन न करते हुए पत्नी सीता के सद्गुणों को याद करते हुए दुःखित सा रहे।।16।।

यह केवल दिखाने के लिए था। वास्तव में पत्नी में अति आसक्ति रखे तो वह इह पर दोनों में दुःख दायी बनता है। बड़े लोगों का हाल यह है तो, कामासक्त, सामान्य गृहस्थ क्या कर सकता है। श्री राम जी इसका निदर्शन बने।।17।।

श्री राम जी देखने वाले को दुःखित लगते थे। यह अज्ञ लोगों के मोह के लिए। **राम शब्द का अर्थ ही होता है नित्य सुख को भोगने वाले।**

सीता जी भूगत होने के बाद श्री राम जी पुनः शादी न करते हुए अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किए। तेरह हजार वर्ष वे सिंहासन पर बैठकर अत्यन्त सुचारू रूप से राम राज्य चलाए। अग्निहोत्रादि होम

को नित्य चलाए।।18।।

वाल्मीकी रामायण में श्री राम जी ग्यारह हजार सात सौ वर्ष राज्य भार किए ऐसा आता है। वह सौरमान हैं। भागवत में तेरह हजार वर्ष यह जो आता है, यह नक्षत्र मान हैं। नक्षत्र मान से सत्ताइस दिन का एक महीना होता है। दोनों बराबर हैं।

बाद में स्मरण करने वाले लोगों के हृदय में सूर्य किरण के समान प्रकाश देने वाले, आम के कली के समान कोमल मन और शरीर वाले और भक्तों के हृदय कमल को खिलाने वाले स्वयं ज्योति श्री राम परमधाम को चले गये।।19।।

समुद्र में सेतु बाँधना, रावणादि राक्षसों का वध करना, श्री राम जी के लिए कोई बड़ी बात नहीं है क्योंकि वे भगवान हैं, विश्वव्यापी हैं, केवल अपनी इच्छा से लीला के लिए शरीर धारण किए हैं। अधिक सुख पूर्ण हैं, नित्य मुक्त स्वरूप वाले हैं। शस्त्र धारण किए हुए उनको शत्रु संहार के लिए बन्दरों की सहायता की क्या आवश्यकता है।।20।।

दिग्गजों का संचार जहाँ होता है, जहाँ सारे दिशाओं में राजा और ऋषि रहते हुए सकल पाप परिहार करने वाले श्री राम जी के यश का संकीर्तन करते हैं वैसे श्री राम जी, देवेन्द्र, कुबेर इत्यादि देवताओं से सेवा पाने वाला उनके किरीटों के प्रकाश से सुशोभित श्री पादों के शरण में मैं नतमस्तक होता हूँ।।21।।

श्री राम जी को हाथ से छूकर, भक्ति से नमन किए हुए, आँखों से देखे हुए, कानों से सुने हुए, उनके पीछे - पीछे चले हुए सारे लोग, अयोध्यावासी योगी लोग विष्णु लोक को पा लिए।।22।।

हे राजा, श्री राम जी के परम पावन कथा को भक्ति पूर्वक बार-बार जो सुनता है और हृदय में धारण करता है वह कभी प्रमाद से अकार्य करे और पाप किए तो भी श्री राम जी की कृपा से इस संसार बन्धन से मुक्त होता है।।23।।

राजा परीक्षित पूछता है - हे भगवन, श्री राम जी अपनी पत्नी के साथ कैसे व्यवहार करते थे। भाई के साथ उनका सम्बन्ध कैसे रहा। उनके भाई उनके प्रति क्या व्यवहार रखे थे। श्री राम जी अपने प्रजा को और पुरवासियों को कैसे पालन करते थे। प्रजा और पौर उनके प्रति क्या भाव रखते थे इसके बारे में विस्तार रूप में मुझे बताइए।।24।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा, देव देवेश भगवान राम अपने भाइयों को दिग्विजय के लिए भेजे। प्रजाओं को अपना दर्शन देने के लिए प्रतिदिन अनुचरों के साथ नगर और ग्रामों का संदर्शन करते थे।।25।।

अयोध्यापति श्री राम जी पधार रहे हैं इसको देखकरप्रजा जन का सन्तोष मदमत्त हथिनी की तरह बढ़ गया। हाथी के परिमल युक्त मद जल सारे मार्गों को भीगा कर दिया था।।26।।

भव्य बड़े महल, मन्दिर, गोपुर, सभांगण और वेदिकाओं को सोने के कलशों से सुशोभित किया था। मन्दिर पताकाओं से अलंकृत थे।।27।।

सुपारी के गुच्छे, कपड़े के झण्डे, आयनों के दीवार, वस्त्र फूल इनसे घर और बाहर के भागों को सुन्दरी किया गया।।28।।

श्री राम जी जैसे पधारे और लोग हाथ में पूजा सामग्री को लेकर सामने आए और प्रार्थना करते हुए बोले भगवान आपने वराह अवतार में इस भूमि को उठा कर ले आए थे। अब आप ही इसकी रक्षा करें, इन बातों से अभिवादन करते थे।।29।।

बहुत दिनों के बाद पधारे हुए प्रभु को देखने के उद्देश्य से स्त्री पुरुष कातर होकर दौड़ते हुए घर से बाहर आकर मंजिल और मन्दिरों के ऊपर चढ़कर कमल के समान आँख वाले श्री राम जी के ऊपर फूलों की वृष्टि किए। देखने वाले का दिल न भरे, आँख तृप्ति न पाए।।30।।

बाद में श्री राम जी अपने पूर्वज जहाँ वास करते थे वहाँ प्रवेश किए। उनमें अगनित घर हैं, प्रत्येक घर में गिनती न कर सके उतने खजाना भरे हैं। देहली और दरवाजा हवलो से बना है, स्तम्भ वैडूर्य से बना हैं, जमीन मकरत मणि से बना हैं, दीवार स्फटिक से बना है। वहाँ फूल माला, ऊपर बाँधने वाला वस्त्र, प्रकाश देने वाले मणियों से वे सारे घर केवल देखने से मन को प्रसन्नता देने वाले थे। प्रत्येक घर सुगन्ध मय धूप, दीप फूल माला से अलंकृत था। उनमें सुन्दर आभरण धारण किए हुए देवता के समान स्त्री पुरुष शोभायमान थे।।31,32,33,34।।

ऐसे राज घर में बड़े उद्यान जो है उसमें संचार करने वाले देवता श्रेष्ठ भगवान श्री राम अपने प्रिय और इष्ट सीता जी के साथ परम सुख भोगे।।35।।

केवल भक्तों के ध्यान में गोचर होने वाले मृदुल पाद वाले श्री राम जी हजारों वर्ष धर्म के लिए विरुद्ध न हो ऐसे कामभोगों को यथा इच्छा सेवन करते रहे।।36।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में नौवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - दस

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- कुश के पुत्र अतिथि। उनके पुत्र निषध। निषध का पुत्र नभ। नभ से पुण्डरीक जन्म लिया। उनका पुत्र क्षेमधन्व ।।1।।

क्षेमधन्व से देवानिक जन्म लिया उनका पुत्र अहीन,उनका पुत्र पारियात्र,उनसे बलस्थ,बलस्थ से वज्रनाभ,वज्रनाभ से अर्कसम्भव जन्म लिया ।।2।।

अर्कसम्भव का पुत्र स्वगण,स्वगण से निधृत उससे हिरण्यनाभ। यह योगशास्त्र का उपदेशक बना। जैमिनि इनका शिष्य रहा ।।3।।

हिरण्यनाभ से याज्ञवल्क्य मुनि अज्ञान को नाश करने वाला महा सिद्धि देने वाला परमात्म तत्व को बताने वाला योग को सीख लिया ।।4।।

हिरण्यनाभ का पुत्र पुष्य, उससे ध्रुवसंधि जन्म लिया। ध्रुवसंधि से सुदर्शन,सुदर्शन से अग्निवर्ण,अग्निवर्ण से शीघ्र,शीघ्र से मरूत नाम का पुत्र जन्म लिया ।।5।।

मरूत योग में सिद्धि पाकर कलाप नाम के ग्राम में रहता है। कलियुग के अंत में समाप्त होने वाले सूर्यवंश को यह आगे बढ़ाता है ।।6।।

मरूत का पुत्र सुश्रुत, उसके पुत्र संधि। संधि से मर्षण,उससे महस्वान् , उससे विश्वसाह्व जन्म लिया ।।7।।

विश्वसाह्व का पुत्र बृहद्बल। वह तुम्हारे पिता अभिमन्यु से कुरूक्षेत्र युद्ध में मारा गया। ये सारे इक्ष्वाकु वंश में जन्म लिये और राजा बने। आगे के राजाओं के बारे में बताता हूँ सुनो ।।8।।

बृहद्बल को बृहद्रण नाम का पुत्र जन्म लेगा। उसका पुत्र उरूक्ष्य। उसको वत्सप्रीत नाम का पुत्र होता है ।।9।।

वत्सप्रीत से प्रतिष्योम,उससे भानु,उससे दिवौक,उससे वाहिनी पति, उससे सहदेव,उससे भवि,उससे बृहदश्व,उससे भानुमान जन्म लेते हैं ।।10।।

भानुमान के पुत्र प्रतीकाश्व, उससे सुप्रतीक,उससे मरूदेव,उससे सुनक्षत्र,उससे रुक्षक

जन्म लेने वाले हैं ।।11।।

रुक्षक का पुत्र अंतरिक्ष ,उसका सुतप ,उससे अमित्रजित, उसको बृहद्भोज ,उसको बर्हि ,उससे कृतंजय नाम का पुत्र होता है ।।12।।

कृतंजय का पुत्र रणंजय ,उसका संजय ,उससे शक्य ,उससे शुद्धोद ,उससे लांगल जन्म लेते हैं ।।13।।

लांगल से प्रसेनजित, उससे कुद्रक जन्म लेने वाले हैं। कुद्रक से कुणक ,कुणक से सुरथ, उससे सुमित्र नाम का पुत्र होता है। सुमित्र को पुत्र नही होते। यहाँ बृहदबल की गोत्र संतति समाप्त होती है ।।14।।

इक्ष्वाकुओं का वंश राजा सुमित्र से अंत होता है। उसके बाद कलियुग में उसका वंश नही चलता है

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

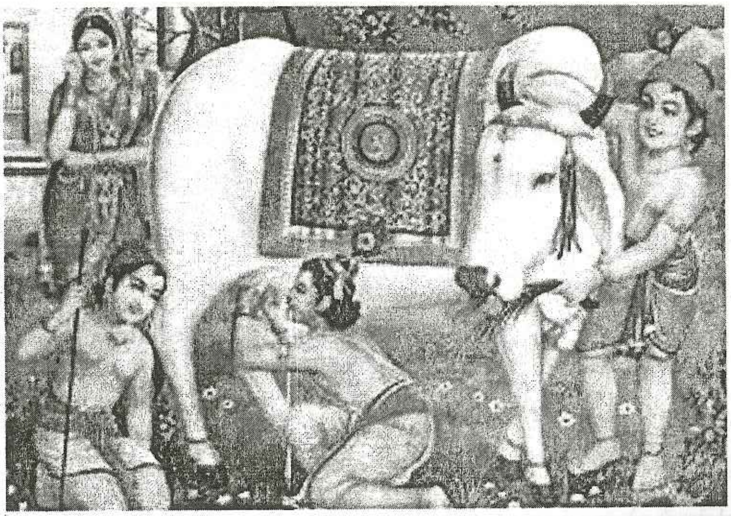

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - ग्यारह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इक्ष्वाकु का पुत्र निमि एक सत्रयाग करना चाहता था उस यज्ञ के ऋत्विज बनने के लिए वशिष्ठ ऋषि से प्रार्थना किया। वे बोले इससे पहले देवेन्द्र मुझको अपने यज्ञ में ऋत्विज बनने के लिए प्रार्थना किए हैं ।।1।।

मैं पहले उस काम को पूरा करके आऊँगा। तब तक तुमको राह देखना पड़ेगा है। निमि कुछ नही कहा। वशिष्ठ ऋषि इन्द्र के यज्ञ को करने के लिए चले गये ।।2।।

जीवन अस्थिर है यह समझते हुए भगवन्निष्ठ निमि गुरु वशिष्ठ जी के आने के पहले अन्य ऋत्विजों से अपना यज्ञ चलाया ।।3।।

इन्द्र के यज्ञ को पूर्ण करने के बाद वशिष्ठ आ गये और देखे अपना शिष्य हमारी आज्ञा का उल्लंघन किया है।इसको देखकर वशिष्ठ जी शाप देते हैं - अपने को स्वयं पण्डित मानने वाला निमि के शरीर का पतन हो ।।4।।

निमि भी अधर्म के अनुसार शाप दिये हुए गुरु को स्वयं शाप दिया - लोभ के कारण निमित्त न रहते हुए शाप देने वाले धर्म को न जानने वाले वशिष्ठ का शरीरपात हो ।।5।।

यह शाप देने के बाद निमि अपने शरीर को छोड़ दिया। परमतत्व को पूर्ण रूप से जानने वाले वशिष्ठ भी मर गये। बाद में हमारे पूर्वज वशिष्ठ मित्रा वरुण से उर्वशी के पुत्र होकर जन्म लिये ।।6।।

इधर निमि का यज्ञ पूर्ण नही हुआ था। इसके लिए निमि के शरीर को सुगंध तैल में रखकर वहाँ के श्रेष्ठ मुनियों ने यज्ञ का समापन किये। उस समय यज्ञ में आये हुए देवताओं से कहते हैं ।।7।।

हे देवतागण! आप समर्थ हैं। आप प्रसन्न हैं तो राजा पुनः जीवित हो। देवतागण तथास्तु कहते हुए अपनी सहमति दिखाये। किन्तु निमि ने कहा मुझे इस शरीर का बंधन नही चाहिए।।8।।

निमि कहता है - तत्वज्ञानी मुनि लोग देह का सम्बन्ध वियोगभय से चाहतें नही। वे दूसरी बार देह प्राप्ति न हो इसके लिए श्रीहरि के पाद कमल का भजन करते हैं। मैं भी ऐसे शरीर

को पाने की इच्छा नही करता हूँ।यह शरीर दुःख,शोक,भय के लिए कारण बनता है। मछली को पानी में जैसे मृत्यु रहता है वैसे इस शरीर को सभी जगह मृत्यु रहता है। छोटी मछली को बड़ी,और बड़ी को उससे बड़ी मछली खा लेती है ।।9,10।।

दुःख शब्द में दो अक्षर है। **दुः** बोलने से ही दुःख का अंश प्रत्यक्ष होता है। उसको पहले बोलने से दुःख ज्यादा होता है। बाद में आने वाला **ख** शब्द से आनन्द ऐसा अर्थ मिलता है। दूसरी बार आने से इसका अर्थ थोड़ा सुख होता है। दुःख बोलने से, ज्यादा दुःख और थोड़ा सुख यह अर्थ होता है। शोक बोलने से थोड़ा भी सुख न होने वाला पूर्ण दुःख यह अर्थ होता है। यहाँ दुःख शोक यह दोनों शब्द में यहाँ दो विशेषार्थ होते हैं, पुनरुक्ति नही होता है। यहाँ मछली का दृष्टांत दिया गया है। आदमी की आँख के पलकें होते हैं किन्तु मछली के आँख के पलके नही होतें। इसके लिए वे आँखे झपकते नही।यह मछली के लिए अनुकूल नही। वे सुखकारक नींद नही कर सकते। राजा निमि यही बोलना चाहता है इस शरीर को पाने से सुख को नही पाते केवल दुःख ही होता है।

देवतागण कहते हैं - निमिराज जीवित हो। उसके इच्छानुसार उसको स्थूल शरीर न हो। वह सूक्ष्म शरीर से ही रहे। बंधक बनने वाला यह स्थूल शरीर उसको न हो। निमि सूक्ष्म शरीर में ही सुख पायें ।।11।।

शुकदेव कहते हैं -निमिराज के मृत देह से ही उसके वंश का विस्तार हुआ। राजा न होने के कारण अराजकता न हो इसके लिए ऋषियों ने निमि राजा के शरीर का मंथन किये। तब एक सुन्दर कुमार उत्पन्न हुआ ।।12।।

विलक्षण रीति से जन्म लेने के कारण उसका नाम जनक रहा। स्थूल शरीर न रहने वाला सूक्ष्म रूप में रहने वाला निमि का पुत्र होने के कारण उसका नाम वैदेह पड़ा। मृत शरीर के मंथन से जन्म लेने के कारण उसको मैथिल भी कहते थे। उसके नगरी में आने वाले राजाओं का मंथन करने के कारण उसके नगरी का नाम मिथिला हो गया ।।13।।

उस जनक से उदावसु जन्म लिया,उसके पुत्र नंदिवर्धन,उसके पुत्र सुकेतु,उसका पुत्र देवरात ।।14।।

देवरात का पुत्र बृहद्रथ,उसका पुत्र सुधृत। सुधृत से दृष्टकेतु,उससे हर्यश्व,उससे मरु उत्पन्न हुऐ ।।15।।

मरु के पुत्र प्रतींधक,उससे कृतिरथ जन्म लिया, उसका पुत्र देवमीढ़,उससे विधृत,उससे महाधृति उत्पन्न हुए ।।16।।

महाधृति के पुत्र कृतिरात,उससे महारोम,उसका स्वर्णरोम और उससे ह्रस्वरोम जन्म पायें ।।17।।

ह्रस्वरोम का पुत्र सीरध्वज। इन सारे राजाओं को जनक,मिथिल और विदेह नाम कुल

के नाम होकर सबके साथ लगते थे। यह सीरध्वज राजा सोने के नांगर से जमीन जोतते समय नांगर के नोक से सीता देवी का प्रादुर्भाव हुआ। इसके लिए उसको सीरध्वज जनक राजा कहते हैं ।।18।।

सीरध्वज का पुत्र कुशध्वज,उसका पुत्र धर्मध्वज। धर्मध्वज को कृतध्वज और मितध्वज नाम के दो पुत्र हुए ।।19।।

कृतध्वज से केशिध्वज और मितध्वज से खांडिक्य नाम का पुत्र जन्म लिए। कृतध्वज का पुत्र भगवान को जानने की विद्या में बड़ा तज्ञ था ।।20।।

खांडिक्य कर्मकाण्डी था,ब्रह्मज्ञानी केशिध्वज के डर से वह वन को चला गया। खांडिक्य का पुत्र भानुमान् । उसका पुत्र शतद्युम्न ।।21।।

शतद्युम्न का पुत्र शुचि,उससे सनद्वाज,सनद्वाज से ऊर्जकेतु,उससे कुरुजित,उससे अज जन्म लिया ।।22।।

अज का पुत्र अरिष्ठनेमि। उसका पुत्र श्रुतायु, उससे सुपार्श्वक,उससे चित्ररथ,उसका पुत्र क्षेमापि जन्म लिये ।।23।।

क्षेमापि का पुत्र हेमरथ, उसका पुत्र सत्यरथ,उससे उपगुरु जन्म लिया। उससे उपगुप्त जन्म पाया। यह अग्नि का अंश बनकर जन्म लिया ।।24।।

उपगुप्त से वैवस्वत,उससे युयुध,उससे सुभाषण,उसका पुत्र श्रुत,उससे जय,उससे विजय,उसका पुत्र ऋत जन्म लिये ।।25।।

ऋत का पुत्र शुनक,उसका पुत्र वीरहव्य,उससे धृति,धृति से बहुलाश्व,उसका पुत्र धृति,धृति के पुत्र कृति,उसका पुत्र महावशी जन्म लिये ।।26।।

हे राजा! ये सारे मिथिल कहलाते हैं। ये सारे परमात्म विद्या में विशारद थे। योगेश्वर याज्ञवल्क के अनुग्रह से गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी शीतोष्ण इत्यादि सारे द्वंद्व को सहन करने के सामर्थ्य वाले थे ।।27।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में ग्यारह अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - बारह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा आगे हम पवित्र चन्द्र के वंश के बारे में कहते हैं, सुनो। उस वंश में पुरूरव इत्यादि बड़े पुण्यशाली राजा बने ।।1।।

हजार सिरवाले परम पुरुष भगवान नारायण के नाभि सरोवर में उत्पन्न हुए कमल से चतुर्मुख ब्रह्मा जी जन्म लिए। वे गुण में अपने पिता के अनुरूप हैं। उनके मानस पुत्र अत्रि ।।2।।

अत्रि के आनन्द भाष्प से अमृतमय सोम का जन्म हुआ। ब्रह्मा जी इसको कुमुदपुष्प और औषधियों के अधिपति बनाये ।।3।।

अत्रि और अनुसूया के पुत्र सोम हैं ऐसे चतुर्थ स्कन्ध में आया है। आँखों का मतलब दम्पति होता है। इससे यहाँ सोम को अत्रि अनुसूया के पुत्र समझने से गलत नही होता।

सोम तीनों लोकों को जीतकर बड़ा राजसूय याग किया। इससे उसको अधिक पुण्य मिला। उसके साथ अहंकार भी बढ़ा। चंद्र अहंकार से बृहस्पति की पत्नी तारा को बालात्कार से अपहरण किया ।।4।।

देव गुरु के बहुत बार याचना करने के बाद भी अहंकार से सोम तारा को उसको नही दिया। इसी कारण बाद मे देवासुरों में युद्ध हुआ ।।5।।

बृहस्पति के ऊपर के द्वेष से शुक्राचार्य जी ने असुर और चंद्र को अपना शिष्य बनाया। शिव अपने गुरु आंगिरा के पुत्र बृहस्पति को अपने शिष्य बनाए। प्यार से अपने भूतगण परिवार सहित उनके सहयोग में खड़े हुए ।।6।।

सारे देवगण से युक्त होकर देवेन्द्र बृहस्पति के सहयोग में खड़े रहे। एक स्त्री तारा के बारे में देव और दानवों मे बड़ा विनाशकारी युद्ध हुआ ।।7।।

आंगिरा ब्रह्मा के पास जाकर अपने दुःख का निवेदन किया। तब ब्रह्मा जी सोम को अपने पास बुलाकर उसको डाटकर बृहस्पति को उनकी पत्नी तारा को दिलवा दिये। उस समय तारा गर्भिणी थी। बृहस्पति इसको जान लिए ।।8।।

हे दुष्ट बुद्धि वाली स्त्री! तुमने दूसरों के गर्भ को धारण कर मेरे पास आई है। मेरे क्षेत्र से

उस गर्भ को बाहर करो। तुम स्त्री हो और गर्भिणी हो इसी कारण मै तुमको नही मारुँगा। नहीं तो मैं तुमको भस्म कर डालता।।9।।

इन बातों को सुनकर तारा को बहुत लज्जा हुयी। दिन पूर्ण होने के बाद तारा सोने के समान उज्ज्वल कांति वाले पुत्र को जन्म दिया ।।10।।

वह पुत्र सुन्दर और अत्यन्त मोहक था। सोम और बृहस्पति दोनों उस पुत्र को अपनाना चाहे। दोनों जोर से आवाज करते हुए यह पुत्र तेरा नही मेरा है ऐसे चिल्लाने लगे। तब वहाँ आ गये सारे ऋषि और देवता उस बच्चे के बारे में तारा से पूछे, सही बोलो यह बच्चा किसका है। किन्तु लज्जा से अवनत मुखी तारा कुछ भी नही बोली। तब वह बच्चा ही आक्षेप युक्त स्वर से अपने माँ से पूछा ।।11,12।।

हे दुराचारी,क्यों बोलती नही। जल्दी बोल दो मेरे पिता कौन हैं। किया हुआ अपराध को छुपाने वाली तुमको मै क्यों नही भस्मसात करूँ ।।13।।

अपने समक्ष चला हुआ इस सन्दर्भ को देखकर भगवान ब्रह्मा जी पुत्र को डाटते हुए तारा को समाधान करते हुए रहस्य में पूछे, बोलो यह पुत्र किससे जन्म लिया है।।14।।

तारा मंदस्वर में बोली यह बच्चा चंद्र का है। इस बात को सुनते ही सोम उस पुत्र को अपनी गोद में उठा लिया। ब्रह्मा जी ने उस सुन्दर लड़के को बुध नाम दिया ।।15।।

नाम के अनुसार बुध अत्यन्त ज्ञानी था। उस ज्ञानी पुत्र के साथ सोम ने बहुत दिनों तक आनन्द का अनुभव किया। उस बुध से इला नाम की अपनी पत्नी से पुरूरव का जन्म हुआ। इस बात को हम पहले ही कह चुके हैं।।16।।

एक बार नारद जी इन्द्र की सभा में राजा पुरूरव का रूप, गुण,शील,औदार्य,सम्पत और पराक्रम के बारे मे कीर्तन किये। उसको सुनकर उर्वशी उनसे मोहित हुयी ।।17।।

एक बार उर्वशी **मित्र** के साथ रहती थी। उस समय उसके भाई वरुण से भी वह प्यार करने की इच्छा प्रकट की। इसी कारण मित्रा और वरुण उर्वशी को शाप दिये।इसलिए उसे कई वर्षों तक भूलोक में रहना पड़ा। उस शाप के कारण वह भू लोक में वास करने के लिए पुरूरव के पास आई।।18।।

उर्वशी, रम्भा, तिलोत्मा ये सारे गन्धर्व होते हैं। गन्धर्व स्त्री देवताओं मे वेश्या जैसे होते हैं। देवता होने के कारण इससे उनको पाप आता नही।

मन्मथ के समान रूप वाले श्रेष्ठ पुरुष पुरूरव को देखते ही उर्वशी का मन चंचल हुआ। वह लज्जा से युक्त होकर पुरूरव के बहुत नजदीक आई ।।19।।

राजा पुरूरव भी देवी उर्वशी को देखकर मोहित हुआ। वह रोमांचित हुआ। अत्यन्त मधुर

बातों से वह उर्वशी से बातें करने लगा।।20।।

राजा पुरूरव बोलता है सुन्दरी तुम्हारा स्वागत है। आओ, यहाँ बैठो और कहो,तुम्हारे लिए मै क्या करूँ। हम दोनों प्यार करें। हमारा रतिविहार बहुत वर्षों तक चलता रहे ।।21।।

उर्वशी बोलती है - हे सुन्दर पुरुष तुमको एक बार देखने के बाद कौन स्त्री अपने आँखों को तुमको छोड़कर अन्य वस्तु पर लगाती है? तुम अत्यन्त सुन्दर हो। सदाकाल जिसके आश्रय में लक्ष्मी रहती है और कहीं भी छोड़कर नही जाती वह श्री हरि तुमको आश्रय देने वाले हैं।।22।।

हे राजा, यह दो बकरी के बच्चे को तुम्हारे पास रखती हूँ। तुम इनकी रक्षा ठीक तरह से करना। स्त्रियों को इष्ट जो होता है वही श्रेष्ठ पति बनता है।।23।।

अप्सराओं को नियत पति नही होते हैं। वे जिसको जितने दिन पति मानती हैं वे उतने दिन तक उनके पति बनते हैं। **स्त्रियों को जो इष्ट होता है वही पति** यह नियम केवल गन्धर्वो के लिए है। उर्वशी शाप के कारण कई वर्ष यहाँ रहने वाली है इसके लिए उसको छोड़ने के लिए निमित्त रूप मे कई निर्बन्ध रखती है। बकरी को ठीक तरह से रखना यह पहला निर्बन्ध है।

उर्वशी आगे बोलती है- हे वीर, मुझे घी का भोजन देना चाहिए। सम्भोग के समय को छोड़कर कभी भी नग्न होकर मेरे सामने नही आना चाहिए। राजा पुरुरव इन तीनों निर्बन्धों को स्वीकार करता है।।24।।

अमृतम् वा आज्यम् घी इस भूमि का अमृत है। स्वर्ग में देवतागण अमृत खाते हैं। इसके लिए उर्वशी भूलोक में घी खाती है।

राजा पुरूरव कहता है - हे सुन्दरी,नरलोक को मोहित करने वाला तुम्हारा यह आश्चर्य कारक रूप और तुम्हारा यह श्रृंगारभाव को देखकर स्वयं आये हुए देवता को कौन पुरुष त्याग सकता है।।25।।

शुकदेव कहते हैं- पुरुष श्रेष्ठ राजा पुरूरव उर्वशी को राज्ययोग्य भोग पदार्थों को देते हुए अत्यन्त सुख मे रखा। उर्वशी भी नन्दनवन और देवोद्यान में मिलने वाला सुख से राजा को संतोष दिया। राजा सब कुछ भूलकर उसके साथ आनन्द भोग भोगा ।। 26।।

उर्वशी देवी का शरीर कमल केसर के समान सुगंध भरित थी। उसके साथ विहार करते हुए उसके रूप से मोहित राजा पुरूरव सबको भूलकर उसके साथ कई वर्ष सुख भोग में रहा।।27।।

इधर स्वर्ग मे देवेन्द्र उर्वशी को न देखते हुए गन्धर्वों को कहा- उर्वशी के बिना इन्द्र लोक नही शोभता।।28।।

इन्द्र की इच्छानुसार गन्धर्व मध्यरात्रि में आकर उर्वशी राजा के पास न्यासरूप में रखा हुआ बकरी के बच्चे को अपहरण किया।।29।।

उस समय वे बकरी के बच्चे चिल्लाने लगे। उसको देखकर देवी रोने लगी। हाय मै इसको वीर पुरुष मानी थी। किन्तु यह नपुंसक है। इसके ऊपर विश्वास रखते हुए मैं मर गयी।।30।।

इस दुष्ट पति में विश्वास रखने के कारण मेरा सर्वनाश हो गया। चोर मेरे बच्चों को अपहरण किये। तो भी यह वीर पुरुष स्त्री के समान डरकर सोया है। यह केवल दिन का पुरुष है।।31।।

उर्वशी की ये बाते राजा को बाण के समान चुभने लगीं। अंकुश से मारा हुआ हाथी के समान राजा हाथ में खडग लेकर चोर को पकड़ने के लिए बाहर आया। वह भूल गया कि वह नग्न है।।32।।

गन्धर्व बकरी के बच्चों को छोड़ दिये। अपने शरीर के प्रकाश से उस प्रदेश को प्रकाशित किये। उस प्रकाश में उर्वशी,राजा को नग्न रूप मे देखी ।।33।।

घर आकर राजा पुरुरव मंच पर उर्वशी को नही देखा। वह व्याकुल होकर दुःख से रोते हुए पागल के समान गाँव-गाँव फिरने लगा ।।34।।

कुरुक्षेत्र के सरस्वती तट पर राजा ने उर्वशी को देखा। उसके साथ उसके पास सहेलियाँ थीं। राजा संतोष से बोला ।।35।।

हे मेरी पत्नी! खड़ी हो जाओ। तेरे बिना में जीवित नही रहता,तेरे विरह को सह नही सकता। तुम मुझको छोड़कर नही जाओ। हमारे प्यार का समय पूर्ण नही हुआ है।।36।।

ऋग्वेद के अष्टमाष्टक पंचम अध्याय के प्रारम्भ के मंत्र **हये जाये मनसा तिष्ठघोरे** इस मन्त्र(10-95-1) का यह अर्थानुवाद है

हे देवी, अच्छे आहार और विहार का साधन शरीर तुम्हारे बिना यहीं गिर जायेगा। तुम मेरे मन को अपहरण कर अपने पास ले गई हो। यदि तुमने अनुग्रह नही किया तो इस शरीर को भेड़िया और गिद्ध खा जाएँगे।।37।।

सुदेवों अदय (10-95-14) इस मन्त्र के चौदह ऋचा का यह अर्थानुवाद है

उर्वशी बोलती है- राजा तुम मरो मत। तुम वीर पुरुष हो। तुम धैर्य रखो,तुमको भेड़िया न खाये। भेड़िया का हृदय और स्त्री का हृदय कुटिलयुक्त होता है। उनके साथ कभी भी सख्य नही करना चाहिए ।।38।।

यह **पुरुरवो मा मृथा** (10-95-15) ऋग्वेद के पन्द्रहवाँ ऋचा का अर्थानुवाद है

उर्वशी की सखी बोलती है - हे राजा स्त्रियाँ निर्दयी होती हैं। क्रूरु होती हैं। सहन न करने वाले वे किसी भी दुष्ट कार्य को करने में सिद्ध होती हैं। अल्प कारण के लिए विश्वासी पति

और भाई को भी मार डालती हैं।।39।।

अमायक पुरुष में पहले स्नेह करते हुए कपट विश्वास को दिखाकर स्वच्छंदवृत्ति से रहते है। ऐसी स्त्री को पुंश्चली कहते हैं। वे एक के बाद एक नया-नया पुरुष से प्यार करते हैं।।40।।

उर्वशी कहती है- हे पति देव, एक वर्ष के बाद मैं आपके पास आती हूँ। एक रात आपके साथ रहती हूँ।तब तुमको और भी पुत्र होते हैं। पुरुरव समझ गया। एक वर्ष उर्वशी दूर रहना चाहती है इसका अर्थ वह गर्भिणी है। इसको समझकर वह अपने नगर को वापस आया।।41।।

एक वर्ष के बाद पुरुरव कुरुक्षेत्र गया। वहाँ उर्वशी आयु,श्रुतायु इत्यादि छः पुत्रों के साथ रहते देखकर संतुष्ट हो गया। उस दिन राजा वहीं रहा ।।42।।

विरह से दीन रहा राजा को उर्वशी बोलती है - राजा, तुम गन्धर्वों की स्तुति करो। वे तुमको मेरे सालोक्य का अनुग्रह करेंगे ।।43।।

यह इति त्वा देवा (10-95-18) इस मन्त्र का आठवाँ ऋचा का अर्थानुवाद है

हे राजा परीक्षित,उर्वशी के कथनानुसार राजा पुरुरव गन्धर्वों की स्तुति किया। उस स्तुति से संतुष्ट गन्धर्व अग्नि युक्त एक पात्र को यज्ञ करने के लिए दिये। वह पात्र उर्वशी लोक को पाने का साधन है, यह समझते हुए पुरुरव उस पात्र को पकड़कर जंगल मे चलते समय उर्वशी लोक प्राप्ति के लिए यज्ञ करने को विचार करते हुए यज्ञ के मंत्रों को पाने का विचार किया।।44।।

उस पात्र को जंगल मे छिपाकर रखते हुए राजा राजघर को वापस आकर उस रात्रि को ध्यान मे बिताया। दूसरे दिन त्रेतायुग आरम्भ हुआ। तब मन मे उर्वशी का ध्यान करते हुए उर्वशी लोक पाने का साधन अग्न्याधान इत्यादि सांगयज्ञ प्रतिपादक तीनों वेदों का मंत्र ध्यान मे आये।।45।।

इन मंत्रों से यज्ञ करने के उद्देश्य से राजा अग्निपात्र को जहाँ रखा था उस स्थल को गया। वहाँ देखे तो पात्र शमी वृक्ष बन गया है और अग्नि अश्वत्थ वृक्ष बन गया है। इन दोनों को अरणी बनाते हुए उर्वशी लोक प्राप्ति के लिए उर्वशी को नीचे के अरणी में और स्वयं को ऊपर के अरणी मे आवाहन करते हुए मंथन करने लगा। अग्नि के बगल मे पुत्रोत्पादन के उद्देश्य बनाते हुए उर्वशी मंत्र पूर्वक अनुसंधान करते हुए मंथन किया ।।46,47।।

पुरूरव को कई व्याख्यानकार यहाँ अतिकामी मानकर व्याख्यान किये हैं। भागवत का अभिप्राय यह नही हो सकता। उर्वशी पुरूरव को देखते ही **हरिराश्रयः** इस शब्द से वर्णन करती है। पुरूरव सदाकाल हरि आश्रय से जीने वाला है। वह कभी भी अतिकामी नही होता। यहाँ पुरुरव गन्धर्व प्रीत्यर्थ यज्ञ करके गन्धर्व लोक पाकर अंत में

विष्णु लोक को पा लिया। उर्वशी लोक, गन्धर्व लोक एक ही है। देवता लोग गन्धर्व लोक के मुखान्तर सालोक्य द्वारा विष्णु लोक को पाते हैं। पत्नी न रहने के कारण राजा पुरुरव आरणी मे उर्वशी का आवाहन किया। श्री राम जी ऐसे ही सीता जी न होने के कारण सोने की सीता को रखकर यज्ञ किये थे। अनियन्त्रित काम को नियन्त्रण मे लेकर उसको वैराग्य मे परिवर्तन करने का तरीका यह है। ऋग्वेद मे इस प्रसंग को यज्ञ के रूपक मे बताया है। वहाँ का उर्वशी मंत्र यह है।

विद्युन्न या पतंती दविद्योंद्भरंती मे अप्याकाम्यानि।
जनिष्टो अपोर्नयः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः (10-95-10)

पुरूरव जब आरणी का मंथन किया तब वेदविद्या से जातवेद नाम का अग्नि का प्रादुर्भाव हुआ। आहवनिय,गाह्यपत्य,दक्षिणाग्नि नाम की इन तीनों अग्नियों को अपने के लिए मोक्ष देने के उद्देश्य से अपना पुत्र माना ।।48।।

इन तीनों विध के अग्नि से यज्ञपति सर्वदेवोत्तम अधोक्षज नाम के श्रीहरि को उर्वशी लोक प्राप्ति की इच्छा से आराधना किया ।।49।।

त्रेतायुग में केवल भगवान श्रीहरि की ही आराधना करते थे। सारे शब्दराशि और ओंकार प्रतिपाद्य श्रीहरि की महिमा के लिए सीमित था। सारे यज्ञों मे केवल श्रीहरि को ही आहुति देते थे। ब्रह्मादि देवताओं को गुरु मानकर आराधना करते थे। अग्नि में ब्रह्मादि नाम से जो हविष्य देते थे उसको श्रीहरि को ही समर्पित करते थे। ब्राह्मणादि चारों वर्ण वाले विष्णु को ही देव मानकर आराधना करते थे ।।50।।

हे राजा त्रेतायुग के आरम्भ मे पुरूरव तीनों वेदों का प्रचार किया। तीन अग्नि को पुत्र मानकर गन्धर्व लोक को पाया हुआ पुरूरव गन्धर्व मानकर विष्णु लोक को प्राप्त किया ।।51।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

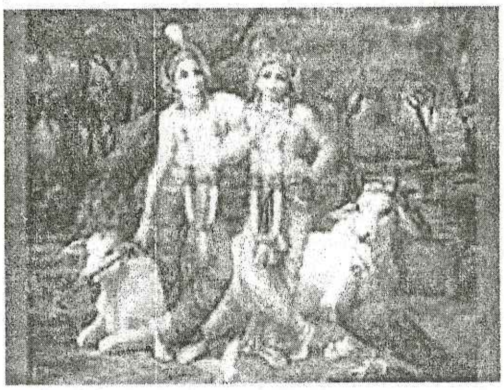

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - तेरह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- परीक्षित सुनो। राजा पुरूरव को उर्वशी से आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय, जय नाम के छः पुत्र हुये।।1।।

इसमे श्रुतायु का पुत्र वशुमान,सत्यायु का पुत्र श्रुतंजय,रय का पुत्र अद्भुत, जय का पुत्र अमित ।।2।।

विजय का पुत्र भीम,भीम से कांचन, कांचन से होत्रक,होत्रक से जन्हु जन्म लिये। यह जन्हु गंगा जल को एकापोशन पी लिया था ।।3।।

जन्हु एक बार मेधवा नाम का सत्रयाग कर रहा था। भगीरथ के तप से तुष्ट हुई गंगा माता उसके पीछे आते हुए जन्हु की यज्ञशाला में घुस गई। क्रोध से जन्हु गंगा नदी को पी लिया। बाद मे ऋषियों के और भगीरथ की प्रार्थना को सुनकर गंगा जी को अपनी पुत्री मान दाहिने कान से बाहर छोड़ दिया। उस दिन से गंगा जी का नाम जान्हवी पड़ा।

जन्हु के पुत्र पूरु,उसके पुत्र बलाक,उसका पुत्र अज़क,उससे कुश, कुश से कुशांबु,तऩय,वसु,कुशनाभ नाम के चार पुत्र हुये। इसमे कुशांबु का पुत्र कुशांबुज। इसका दूसरा नाम गाधी था। कुश के पौत्र होने कारण इसको कौशिक भी बोलते हैं। इसकी पुत्री सत्यवती को रुचिक नाम के मुनि आकर शादी कर देने के लिए याचना किए ।।5।।

अपने पुत्री को योग्य न समझकर किन्तु शाप भय से डरते हुए एक कान काले रहने वाले एक हजार सफेद घोड़े को कन्या शुल्क में दिये तो मैं शादी करता हूँ ऐसे कह दिया।ऐसे घोड़े अलभ्य होते हैं यह समझते हुय रुचीक मुनि वरुण के पास गया ।।6,7।।

वरुण से उसी तरह के एक हजार घोड़े पाकर रुचीक मुनि उनको गाधी को देकर सत्यवती से शादी किया।सत्यवती और उसकी माँ दोनों तपस्वी रुचीक के पास आकर पुत्र संतान के वर को देने के लिए प्रार्थना की। उनकी बातें सुनकर उनको मानते हुए ऋचीक ऋषि दो अलग-अलग चरु को अभिमंत्रित करके रखकर स्नान करने चला गया ।।8।।

मुनि जब स्नान के लिए गया तब सत्यवती की माँ अपने दामाद उसकी पत्नी के लिए

अच्छा चरू रखा है, मेरा उससे कम होगा यह समझकर पुत्री के चरू को स्वयं पाई और पुत्री को अपना चरू दे दी। दोनों चरू को भक्ति से स्वीकार किये ।।9।।

मुनि अपने तपोबल से इस चरू व्यत्यास को समझ गया और पत्नी को बताया-तुमने बहुत बड़ी भूल किया। चरू व्यत्यास के कारण तुम्हारा पुत्र भयंकर करने वाला होगा है और-लोगों को अपने जीवनावधि मे दंडित करता रहेगा है ।।10।।

सत्यवती मुनि को प्रसन्न करती हुई बोली स्वामी, मेरा पुत्र हिसंक न हो। पत्नी के इस बात को मानते हुए ऋषि कहते हैं तो तेरा पौत्र वैसा होगा।इसके अनुसार जमदग्नि सत्यवती के पुत्र बनकर जन्म लिया ।।11।।

उसके बाद सत्यवती महापुण्यकारी लोक पावन करने वाली कौशिकी नदी बन गई।इक्ष्वाकु वंश के रेणु नाम के राजा की पुत्री रेणुका से जमदग्नि की शादी हुयी ।।12।।

उनको वसुमान इत्यादि पुत्र जन्म लिये। इनमे सबसे छोटे का नाम परशुराम है ।।13।।

परशुराम श्रीहरि का साक्षात रूप हैं। पद्मनाभ के अंश हैं।इन्होनें हैहय वंश का नाश किये।इक्कीस बार भू प्रदक्षिणा करते हुए दुष्ट क्षत्रियों का संहार किये ।।14।।

ब्राह्मणों के विरोध करने वाले, धर्माचरण न करने वाले, भूमि का भार बने हुये क्षत्रिय उस समय रज और तमोगुण से युक्त होकर मदोन्मत्त हो गये थे। हम ब्राह्मणों की रक्षा करते हैं इसके लिए उन्हें हमारे अधीन होना चाहिए। इस विचार को जानकर परशुराम एक छोटी सी गलती के कारण क्षत्रिय कुल को नाश करने लगे।।15।।

राजा परीक्षित कहते हैं- क्षत्रिय लोग अपने मनोनिग्रह को खोते हुए क्या गलती किये। उस गलती के लिए परशुराम जी क्षत्रिय कुल को क्यों बार-बार नाश किये ।।16।।

श्री शुकदेव कहते हैं- क्षत्रिय श्रेष्ठ हैहय के राजा कार्तिवीर्यार्जुन नारायण के अंश दत्तात्रेय की नानाविध सेवा से आराधना करते हुए एक हजार बाहु पा लिया। उसके साथ शत्रु के मध्य में (अजययत बिना रूप धाम के इन्द्रिय शक्ति) शरीर सौन्दर्य, अस्त्रबल, कीर्ति और अणिमादि अष्ट सिद्धि से युक्त योग शक्ति को पाकर बिना रोकथाम हवा के समान सारे दिशा में दिग्विजय किया ।।17,18,19।।

वह मदोन्मत्त होकर स्त्रियों के साथ नर्मदा नदी में जल क्रीड़ा कर रहा था। अपने हजार बाहुओं से बहती हुई नदी को रोक लिया ।।20।।

रावण उसी नदी के तट पर अपना शिविर रखा था। कार्तिवीर्यार्जुन जल प्रवाह को रोकने के कारण रावण का शिविर जलावृत्त हो गया।इससे रावण क्रुद्ध हो गया ।।21।।

वह कार्तिवीर्यार्जुन के साथ युद्ध किया।उसके पत्नियों के सामने उसको अपना बंदी बना

लिया। कार्तिवीर्याज़ुन रावण को बंदी बनाकर माहिष्मती नगर में जेल में रखा। बाद में पुलस्त्य मुनि के आदेश के अनुसार बंधितबंदर को जैसे छोड़ते हैं वैसे छोड़ दिया ।।22।।

वह कार्तिवीर्याज़ुन एक बार निर्जन अरण्य में शिकार करते हुए दैववशात् जमदग्नि आश्रम में प्रवेश किया ।।23।।

वहाँ तपोधन जमदग्नि ऋषि ने राजा, उसके सैन्य, मंत्री और सारे सहायकों को अपने कामधेनु की सहायता से यथेच्छ सत्कार किया ।।24।।

अपने सारे ऐश्वर्य से बड़ा उस गोरत्न को देखकर दंग हुआ राजा उस गोरत्न को चाहते हुए उसको लेकर जाने के लिए अपने नौकरों को आदेश दिया। उस समय वह कामधेनु आक्रन्दन करती रही। तो भी जोर जुल्म से उस गाय को बच्चे के साथ माहिष्मति नगर को ले गये।।25,26।।

राजा के जाने के बाद बाहर गया हुआ परशुराम अपने आश्रम को आकर राजा ये किसे हुए दौर्जन्य को देखा। मार खाया हुआ साँप के समान फूत्कार करते हुये अपने शस्त्रास्त्र और अपने परशु लेकर हाथी को पकड़ने के लिए सिंह जैसे आक्रमण करता है वैसे हैहय राजा की राजधानी माहिष्मति के प्रति दौरा किया ।।।28।।

नगर प्रवेश करते ही धनुर्बाण और परशु को धारण किया हुआ जटाधारी मृगछाल को पहना हुआ परशुराम कार्तिवीर्याज़ुन को देखा ।।29।।

परशुराम को देखकर कार्तिवीर्याज़ुन गदा, खड्ग, बाण, शक्ति इत्यादि आयुध से युक्त हाथी,रथ,घोड़ा और पदातियुक्त सत्रह अक्षोहिणी सैन्य को उसके ऊपर युद्ध करने के लिए भेज दिया। भगवान परशुराम अकेले ही उस सारे सैन्य को समाप्त कर दिये।।30।।

एक अक्षोहिणी सैन्य में 21870 रथ,21870 हाथी,65610 घोड़े,109350 पदाति सैन्य होते हैं। ऐसे सत्रह अक्षोहिणी सैन्य को भगवान परशुराम अकेले मार दिये। वे साक्षात् भगवान हैं, सर्वशक्त हैं।

शत्रु सैन्य को मारने वाले परशुराम अपने परशु को लेकर मनोवेग वायु वेग से सैन्य में जहाँ-जहाँ आक्रमण किये वहाँ शत्रुओं ने अपने रथ और सारथी को खोते हुए हाथ पैर सिर कटे हुये जमीन पर गिर जाते थे।।31।।

रण रंग में परशुराम अपने सैन्य को काट डाल रहे हैं, अपने सैन्य को चूर-चूर होकर रक्त से बना हुआ कीचड़ में पड़ते देखकर कार्तिवीर्याज़ुन आक्रोश से परशुराम का सामना करने स्वयं आ गया।।32।।

हजार बाहु वाला कार्तिवीर्याज़ुन परशुराम के ऊपर एक ही समय में एक साथ पांच सौ कमानों में बाण जोड़ते हुए छोड़ दिया। परशुराम उन सब बाणों को अपने एक ही कमान से एक ही बाण छोड़कर सबको एक साथ काट दिये।।33।।

कार्तिवीर्यार्जुन अपने हजार हाथों से पहाड़ और वृक्षों को परशुराम के ऊपर फेक दिया। जोर से अपने ऊपर आने वाले इन पहाड़ और वृक्षों को परशुराम हँसते हुए अपने तीक्ष्ण धारा वाले कुल्हाड़ी से उनको चकना चूर किया। उसी कुल्हाड़ी से कार्तिवीर्यार्जुन के हजार बाहुओं को एक ही मार से काट डाला।।34।।

कार्तिवीर्यार्जुन के बाहुओं को काटने के बाद परशुराम उसके सिर को भी काट डाला। उसका सिर एक पहाड़ जैसे गिर गया। मरा हुआ पिता को देखकर उसके दस हजार पुत्र भय से युद्ध भूमि को छोड़कर भाग गये ।।35।।

अग्निहोत्र के लिए उपयोग में आने वाली कामधेनु इन दुष्टों के कारण दुःखित हुई थी। बच्चों के साथ उसको लेकर परशुराम जी आश्रम में अपने पिता को समर्पण किये ।।36।।

पिता और भाइयों को अपने किए हुए पराक्रम का वर्णन किये। उसको सुनकर जमदग्नि कहे।।37।।

हे राम! तुमने क्या किया। सारे देवताओं के सानिध्य वाले एक राजा को मार डाला। इससे तुम पापी बन गए।।38।।

हम ब्राह्मण लोगों को सारे अपराधों को क्षमा करना चाहिए। क्षमा के कारण ही हमें पूज्यत्व मिलता है। क्षमा करने के कारण ही जगद्गुरु ब्रह्मा जी ब्रह्म पदवी को पाये हैं।।39।।

क्षमा से ब्रह्मवर्चस् सूर्य प्रकाश के समान बढ़ता है। क्षमा गुण वाले को भगवान श्री हरि जल्दी कृपा करते हैं।।40।।

सिंहासन पर बैठने वाले राजा को मारना ब्रह्महत्या से भी बढ़कर पाप होता है। इस पाप को निवारण करने के लिए अच्युत में निष्ठा रखते हुए तीर्थ यात्रा करो ।।41।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

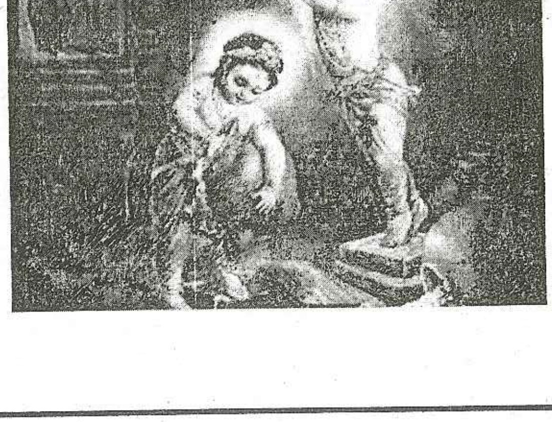

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - चौदह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- हे राजा, पिता के इस उपदेश को मानते हुए परशुराम जी एक वर्ष पर्यंत भूमण्डल मे संचार करते हुए तीर्थ यात्रा करने के बाद आश्रम को वापस आये ।।1।।

एक बार परशुराम की माता रेणुका देवी पानी लाने के लिए नदी गई थी। वहाँ एक गन्धर्व राजा नदी में अप्सराओं के साथ जलक्रीड़ा कर रहा था।।2।।

पानी के लिए नदी आई हुई रेणुका गन्धर्व राजा की इस क्रीड़ा को देखते हुए उसी में आसक्त होकर वहीं खड़ी रही।पति के यज्ञ के लिए देर होता है इसको भूल गई ।।3।।

थोड़ा समय बीतने के बाद देर हुआ इसको जानते हुए पानी लेकर भय से उसको ऋषि के सामने रखते हुए हाथ जोड़कर खड़ी हुई।।4।।

पत्नी के इस मानसिक व्यभिचार को समझते हुए मुनि क्रोधाविष्ट होकर उसको मार डालने के लिए अपने पुत्रों को आदेश दिये। उनके पुत्र उसको नही माने ।।5।।

परशुराम अपने पिता के तप और समाधि के प्रभाव को ठीक तरह से जानते थे। वे पिता की आज्ञानुसार अपनी माता और भ्राताओं को अपने कुल्हाड़ी से मार डाला ।।6।।

इससे संतुष्ट सत्यवतीसुत जमदग्नि ऋषि अपने पुत्र को चाहे जो वर माँगने के लिए कहा।परशुराम जिनको मैं मारा हूँ वे सब पुनः जीवित हों और उनको मैने मारा है इसकी याद न हो।।7।।

परशुराम अपने ही शक्ति से माता और भाइयों को पुनर्जीवित कर सकते थे। वे स्वयं नारायण के अवतार हैं। किन्तु पिता के ऊपर के आदर से उन्होंने पिता से वर माँगे।

तब वे सारे नींद से जगने वाले जैसे उठते हैं वैसे उठकर खड़े हो गये। पिता की इस तपःशक्ति को जानते ही परशुराम अपने बन्धुओं की हत्या की थी ।।8।।

इधर कार्तिवीर्यार्जुन के पुत्र परशुराम से हार कर भाग गये। वे अपने पिता के वध को बार-बार याद करते रहे। उनको शान्ति और समाधान नही मिला ।।9।।

एक बार जब परशुराम अपने भाइयों के साथ आश्रम छोड़कर जंगल गये थे उसी समय

को साधते हुए कार्तिवीर्यार्जुन के पुत्र ईर्ष्या से जमदग्नि के आश्रम में आये।।10।।

वहाँ जमदग्नि यज्ञशाला में श्रेष्ठ कीर्तिवाले भगवान में दृढचित्त होकर समाधि लगा कर बैठे थे। पाप कार्य करने के लिए आये वे जमदग्नि का वध किये।।11।।

असहायक राममाता रेणुका बहुत प्रार्थना करने के बाद भी क्रूर और क्षत्रियाधम कार्तिवीर्यार्जुन के पुत्र बलात्कार से ऋषि के सिर को काट कर ले चले ।।12।।

साध्वी रेणुका दुःख और शोक से आकुल होकर आर्तनाद करते हुए अपने पेट और छाती को मारते हुए हाय राम-हाय राम बोलते हुए रोती रही ।।13।।

माता की आर्त ध्वनि को दूर से ही सुनते सारे पुत्र दौड़कर आश्रम आये। वहाँ मरे हुये पिता को देखे ।।14।।

दुःख,रोष,असहन और शोक के आवेग से वे रोते रहे और कहते थे, हे पिता जी, आप सत्पुरुष हैं,धार्मिक हैं,हमको छोड़कर आप क्यों स्वर्ग सिधार गये ।।15।।

परशुराम लोक मोहनार्थ विलाप करते हुए पिता के शरीर को अपने भाईयों का सौंप कर, कुल्हाड़ी को लेकर क्षत्रिय वंश का नाश करने के उद्देश्य से आश्रम से बाहर आये ।।16।।

वहाँ से सीधा वे माहिष्मति नगरी आये। ब्रह्म हत्या के पाप से पहले ही अपनी शान को खोया हुआ नगरी के मध्य में परशुराम जी ने राजाओं के सिर से एक बड़ा ढेर का निर्माण किये।।17।।

ब्राह्मण विरोधी क्षत्रियों को नाश करते हुए उनको डराते हुए उनके लहू की नदी बहा दिये। उन दिनों क्षत्रिय लोग मदोन्मत्त होकर पाप कार्य में निरत हुये थे। पिता के मारने का बदला को चुकाना केवल एक निमित्त था। पापनिरत क्षत्रियों का नाश करना ही मुख्य उद्देश्य था।।18।।

सर्व शक्त भगवान परशुराम जी इक्कीस बार भू प्रदक्षिण करते हुए क्षत्रियों का नाश कर समंतपंचक में नौ रक्त का तालाब निर्माण किये ।।19।।

अपने पिता के सिर को लाकर कुश के ऊपर रखते हुए अंतेष्टी कार्य करने के बाद देव देवोत्तम भगवान श्री राम अपनी ही पूजा को स्वयं किये ।।20।।

पूर्व की दिशा को होतृ को ,दक्षिण दिशा को ब्रह्मा जी को पश्चिम दिशा को अध्वर्यु को उत्तर दिशा को उद्गातृ को दक्षिणा पूर्वक दान दिये ।।21।।

अन्य ऋत्विजों को ईशान्य,आग्नेय,नैरुत्य,वायव्य,नाम के अवान्तर दिशाओं को दान दिये। मध्य में बचा हुआ भूभाग को कश्यप को दान दिये। न्यूनातिरिक्त को सुधारते हुए कर्म साक्षि को आर्यावर्त को दान दिये। वचा हुआ सम्पदा को सदस्यों को दिये।।22।।

बाद में अवभृतस्नान करते हुए सारे लोगों की पाप राशि को नाश किये। ब्रह्मा जी के सान्निध्य युक्त सरस्वती नदी के तट पर बिना बादल के आकाश में शोभायमान सूर्य के समान विराजे।।23।।

इस यज्ञ के फल के कारण जमदग्नि ज्योतिर्मय शरीर को पाकर राम से पूजित होकर सप्तर्षि मण्डल में सातवाँ ऋषि होकर रहते हैं।।24।।

आकाश में ध्रुव नक्षत्र की परिक्रमा सप्तर्षि मण्डल करवा है। इसमें इस वैवस्वत मन्वन्तर में कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, भरद्वाज ये सात वेद प्रवर्तक ऋषि हैं।

जमदग्नि पुत्र भगवान परशुराम आगे आने वाले आठवाँ सावर्णी मन्मतर में सप्तर्षियों में एक बनने वाले हैं।।25।।

आज भी महेन्द्र पर्वत में शस्त्र और क्रोध को त्याग दिये हुए परशुराम जी रहते हैं।वहाँ सिद्ध,गन्धर्व और चारण लोग उनकी गाथा गाते रहते हैं।।26।।

इस प्रकार इस जगत के स्वामी सर्वेश्वर भगवान श्री हरि भृगु वंश में अवतार लेकर भूमि को भार बने हुए राजाओं की भूमि पर बहुत बार संचार करते हुए संहार किये ।।27।।

गाधि महराज से, जलने वाला आग के समान तेजस्वी विश्वामित्र का जन्म हुआ वे क्षत्रिय जाति को छोड़कर ब्राह्मण बने।।28।।

हे राजा! विश्वामित्र जी को एक सौ एक पुत्र थे। उनमें से बीच में आने वाला मधुच्छन्द। उससे पचास बड़े और पचास छोटे भाई थे। उनको मधुच्छन्दस् कहते हैं ।।29।।

शुनःशेप मुनि अजीगर्त मुनि का पुत्र है,भृगु वंश मे जन्म लिया है।देवताओं ने इसको पुत्र रूप में विश्वामित्र को दिये। इसी कारण इसका नाम देवरात पड़ा।विश्वामित्र उसको पुत्र रूप मे स्वीकार करते हुए अपने एक सौ एक पुत्रों को बोले यह शुनःशेप को अपना बड़ा भाई समझो।।30।।

हरिशचन्द्र ने यज्ञ किया उस समय इसका पिता अजीगर्त मुनि इसको नर बली देने के लिए बेचा था।बाद में प्रजापति इत्यादि देवताओं की स्तुति करते हुए उसने बंधपाश से मुक्ति पाया।।31।।

हरिशचन्द्र को अपने पुत्र रोहित को यज्ञ मे बलि देना था। किन्तु रोहित शुनःशेप के पिता से उसको खरीद कर अपने पिता को दे दिया। शुनःशेप के पिता को तीन पुत्र थे शुनःशेप उनमे बीच वाला। पहले वाला पिता के प्यार का था,आखिर वाला माता का प्यार का था। इसी कारण पिता ने बीच वाले को बेच दिया था। शुनःशेप को बलि देने के लिए उसके पिता ने यूपस्तम्भ को रस्सी से बाँध दिया। मारने के लिए खड्ग को भी सिद्ध किया। तब शुनःशेप प्रजापति इत्यादि देवताओं की वेद मन्त्र से स्तुति किया। तब उसका बन्धन देवताओं के अनुग्रह से नाश होकर वह बंध मुक्त हो गया। बलि के बिना ही यज्ञ का समापन हो गया। हरिश्चन्द्र भी वरुणपाश से आया हुआ जलोदर रोग

से मुक्त हुआ। राजसूय यज्ञ के अंग में अभिषेचनीय याग में राजा के सामने यह शुनःशेप कथा को कहने की विधि बन गयी है।

यज्ञ समापन के बाद शुनःशेप जन्म देने वाला पिता अजीगर्त का पुत्र है अथवा खरीद किया हुआ हरिशचन्द्र का पुत्र यह समस्या आ गई। तब शुनःशेप दोनों को छोड़कर विश्रवामित्रको अपने पिता के रूप मे स्वीकार किया। प्रथम पिता अजीगर्त दयारहित होकर बली देने के लिए बेचा था इसके लिए उसको छोड़ा, विश्वामित्र को ही पिता के रूप मे पाया। मध्यम पुत्र होने से पिता मुझको त्याग दिया है यह समझकर वह विश्वामित्र के प्रथम पुत्र बनने की इच्छा प्रकट किया। तब विश्वामित्र जी अपने एक सौ एक पुत्रों को उसको बड़ा भाई मानने के लिए बोल दिये।

देवताओं की आराधना के लिए किया हुआ यज्ञ मे देवताओं ने मुझको इसको दे दिया है। इसी कारण भृगु वंश का यह शुनःशेप आज से देवरात नाम से प्रसिद्ध होता है ।।32।।

विश्वामित्र के इस बात को सुनकर मधुच्छन्द से बड़े पचास पुत्रों ने उसको सही नही माने। इससे विश्वामित्र क्रोधित होकर तुम दुर्जन हो, तुम चंडाल बनो ऐसे शाप दिये ।।33।।

मधुच्छन्द के नीचे वाले पचास पुत्रों ने मधुच्छन्द से कहे, इस बात मे हम आपके आदेश के अनुसार चलते है ।।34।।

मधुच्छन्द के बात के अनुसार ऋग्वेद मंत्र के द्रष्टार शुनःशेप के - और आपके हम छोटे भाई बनते हैं। आप हमारे बड़े भाई हो। इस बात को सुनकर विश्वामित्र संतुष्ट होकर उनसे कहे तुम अच्छे पुत्र हो। तुम अच्छे संतान वाले हो इस प्रकार उनको आशीर्वाद दिये ।।35।।

तुम लोग मेरे आदेश को मानते हुए मुझको इस शुनःशेप का पिता बना दिये हो। इसके बाद यह देवरात कौशिक गोत्र का होता है और आप लोगों मे एक बनता है, मेरा पुत्र बनता है। तुम लोगों को इनके अधीन होना चाहिए।।36।।

विश्वामित्र जी की यह बात, यह श्लोक ऋग्वेद का मंत्र है। इसके लिए शुक जी कहते हैं अब तक मैंने जो कहा है वह वेद का ही भाग है।

विश्वामित्र को इनको छोड़कर अष्टक, हारित, जय, क्रतुमत इत्यादि अन्य पुत्र भी थे। इस प्रकार कौशिक गोत्र वाले मे कई लोग शाप ग्रस्त, कई वर पाने वाले और एक दत्तक स्वीकार किया हुआ ऐसे अनेक विध का गोत्र पुत्र बने ।।37।।

प्रवरांतरमापन्नं तद्धीत्येवम् प्रकल्पितम्। कौशिक गोत्र मे देवरात प्रवर इस प्रकार आता है। ऋषि जो-जो प्रवर मे आते है वें सारे प्रवर एक गोत्र के बनते हैं। यह नियम है। भार्गव और अंगिरस गोत्र को यह नियम लागू नही होता। इसके लिए कौशिक गोत्र वाले को देवरात भी एक प्रवर ऋषि हैं।

पुरुरव के पुत्र आयु को नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजि, रम्भ और अनेन्स नाम के पाँच पुत्र थे। इनमे से क्षत्रवृद्ध के वंश की आगे की कथा बोलते हैं, सुनो ।।38,39।।

क्षत्रवृद्ध के पुत्र सुहोत्र को तीन पुत्र थे।उनका नाम काश्य,कुश,गृत्समद हैं। गृत्समद का पुत्र शुनक। उससे शौनक नाम के ऋग्वेद प्रवर्तकों मे ज्येष्ठ पुत्र जन्म लिया।काश्य का पुत्र काशी,उसके पुत्र सुराष्ट्र।उसको दीर्घतम नाम का पुत्र हुआ ।।40,41।।

दीर्घतम से धन्वंतरि जन्म लिया।यह आयुर्वेद का प्रवर्तक बना।यह यज्ञ के फल भोगने वाले हरि के अंश रुप मे है। इनके स्मरण मात्र से सारे दुःख दूर होते हैं।।42।।

धन्वंतरि के पुत्र केतुमान् ,उसके पुत्र भीमरथ।भीमरथ से दिवोदास,उसके पुत्र द्युमान।इसको प्रतर्दन भी कहते हैं ।।43।।

प्रतर्दन से वत्स का जन्म हुआ।इसका नाम शत्रुजित,ऋतध्वज और कुवलयाश्व भी है।वत्स से अलर्क इत्यादि पुत्र जन्म लिये ।।44।।

हे राजा परीक्षित, सुनो- छाछठ हजार वर्ष तक अलर्क राजा ने राज्य चलाया। उसके जीवित रहते तक इस देश में और कोई युवा राजा नही था ।।45।।

अलर्क के पुत्र सन्नति, उससे सुनीथ, उससे सुकेतन, उससे धर्मकेतु, उससे सत्यकेतु जन्म लिये।।46।।

उससे धृष्टकेतु, उससे राजा सुकुमार, उससे वीतिहोत्र, उससे भर्ग, उससे भार्गभूमि पुत्र होकर राजा बने।।47।।

ये सारे काश्य वंश के राजा हैं। वे क्षत्रवृद्ध के वंशज है। इनके भाई रम्भ का पुत्र रभस, उसके पुत्र गम्भीर, गम्भीर के पुत्र चक्रक जन्म लिये।।48।।

चक्रक की पत्नी में ब्राह्मण वंश जन्म लिया और आगे बढ़ा।अब अनेनस का वंश के बारे में बताता हूँ, सुनो। अनेनस का पुत्र शुद्ध,उसका पुत्र शुचि,शुचि से त्रिककुप,उससे धर्मसारथि पैदा हुये।।49।।

धर्मसारथि से शान्तरज जन्म लिया। वह बहुत बड़ा ज्ञानी था,सदाकाल भगवद ध्यान में रहता था, उसको पुत्र न हुये तो भी वह मोक्ष पाया। आयु के तीसरा पुत्र रजि को अत्यन्त पराक्रमशाली पाँच सौ, पुत्र हुए।।50।।

देवताओं की विनती के अनुसार रजि दैत्यों को नाशकर इन्द्र को स्वर्ग का आधिपत्य दिलाया। इन्द्र उस राज्य को पुनः रजि को अर्पण करते हुए उसका पाँव पकड़कर स्वयं को समर्पण किया। इन्द्र प्रह्लाद से डरता था। रजि मरने के बाद उनके पुत्र स्वर्ग की कामना करें तो भी इन्द्र उनको नही दिया। रजि के पुत्र यज्ञ मे इन्द्र को देने वाले आहुति को स्वयं लेने लगे। तब इन्द्र के गुरु बृहस्पत्यिाचार्य रजि पुत्रों के नाश के लिए अभिचारिक यज्ञ किये। इसके कारण वे धर्ममार्ग को छोड़ दिये। इसी कारण इन्द्र ने उन सबको मार डाला। क्षत्रवृद्ध के प्रतिक्षत्र नाम के

और एक पुत्र था। उसका पुत्र संजय,उसी से जय जन्म लिया ।।51,52,53,54।।

जय से कृत,कृत से वीर्यधन,उससे सहदेव,सहदेव का पुत्र अहीन,उससे जयत्सेन जन्म लिया ।।55।।

जयत्सेन का पुत्र संकृति,उसका पुत्र जय,उसका पुत्र क्षत्रधर्म। ये सारे क्षत्रवृद्ध वंश के राजा बने। आगे नहुष वंश के बारे में बोलता हूँ सुनो -

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में चौदह अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - पन्द्रह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- राजा नहुष को यति, ययाति, संयाति, आयाति, वियति, कृति इस प्रकार जीव के छः इन्द्रियों के समान छः पुत्र थे ।।1।।

प्रथम पुत्र यति ने पिता के दिए हुए राज्य को स्वीकार नही किया।वह ठीक तरह से जानता था कि राज्यादि विषयों मे जो आसक्त है वह भगवान को जान नही सकता इसके लिए वह राज्याधिकार को स्वीकार नही किया ।।2।।

पिता देवेन्द्र के रानी शचि के ऊपर दौर्जन्य करने जाते समय ऋषि शाप से स्वर्ग छोड़कर अजगर बनने के बाद ययाति राजा बना ।।3।।

चार दिशाओं मे अपने चार भाईयों को राजा बनाकर वह। शुक्राचार्य जी के और दैत्यराज वृषपवा के पुत्रियों से शादी किया।।4।।

राजा परीक्षित पूछते हैं- भगवान शुक्राचार्य ब्रह्मर्षि हैं। ययाति क्षत्रिय है। ब्राह्मण और क्षत्रियों मे यह प्रतिलोम विवाह कैसे हुआ। उसका कारण बताइए।।5।।

शुकदेव कहते हैं- यह दैव के वश में अकस्मात हुआ।एक बार दानव राज वृषपर्व की पुत्री शर्मिष्ठा तथा उसकी हजार सहेलियाँ और गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी के साथ अपने नगर के उद्यान में संचार कर रही थीं। उस उद्यान में सारे वृक्ष फूल से भरे थे। सरोवर में रहने वाले कमल पुष्पों में भौंरे गुंजन करते थे ।।6,7।।

कमल के समान आँख वाली वे सारी कन्याएँ अपनी साड़ी को उतार कर सरोवर के तट पर रखते हुए पानी में उतर कर जल विहार करती रहीं। एक के ऊपर एक पानी फेंकते हुए आनन्द मनायीं ।।8।।

इसी समय आकाश में नंदी के ऊपर बैठे शिव पार्वती उसी रास्ते से जा रहे थे। उनको देखकर लज्जित होकर वे सारी कन्याएँ दौड़ कर तट पर आकर साड़ी पहनी।।9।।

राजपुत्रि शर्मिष्ठा गड़बड़ी में अपना मानकर गुरु पुत्री देवयानी की साड़ी को पहन ली।इससे देवयानी क्रुद्ध होकर बोली।।10।।

ये देखो इस दासी ने क्या किया है। यज्ञ के हविष को जैसे कुत्ता ले जाता है वैसे ही यह अल्पस्त्री मेरी साड़ी को पहन चुकी है ।।11।।

ब्राह्मण लोग अपने तप से इस लोक का निर्माण किये हैं। वे परम पुरुष भगवान नारायण के मुख से जन्म लिये हैं। वे परम्ज्योति तत्व को अपने हृदय में ध्यान करते हैं। मंगलकर वेद मार्ग को दिखाते हैं।।12।।

लोक पालक बने हुए देवोत्तम भी उनको नमन करते हैं परम पावन सर्वेश्वर भगवान श्री-निवास भी उनकी स्तुति करते है ।।13।।

ऐसे ब्राह्मणों में हम भृगु वंश के हैं,श्रेष्ठ हैं। शर्मिष्ठा का पिता हमारे पिता का शिष्य है। इतना होते हुए भी शूद्र के वेद का अध्ययन करने के समान यह दुष्ट शर्मिष्ठा हमारी साड़ी को पहनी है।।14।।

देवयानी की इन बातों को सुनकर शर्मिष्ठा पाँव से दबा हुआ साँप के समान रोष से फूत्कार करते हुए बोली ।।15।।

हे भीख माँगने वाली, हम जो अन्न देते हैं उसको खाने के लिए कौए के समान हमारे घर के सामने वाली तुम्हारे अपने जीवन का उपाय क्या है इसको न समझते हुए डींग मार रही हो।।16।।

इस प्रकार कटु शब्दों से शर्मिष्ठा देवयानी को डाटते हुए क्रोध से उसके हाथ में रहने वाले कपड़े को छीनते हुए नंगे शरीर वाली देवयानी को पास में रहने वाले कुएँ मे ढकेल दिया।।17।।

इसके बाद शर्मिष्ठा अपने घर चली गई। उसी समय उसी रास्ते से शिकार करने आया हुआ ययाति राजा पानी पीने के लिए उसी कुएँ को आया।।18।।

नंगी देवयानी को अपना अंगौछा देते हुए राजा हाथ पकड़कर देवयानी को ऊपर खींचा।।19।।

देवयानी अपने प्यार भरे शब्दों से राजा को बोली - हे महाराज, आप शत्रुओं के नगरों को जीतने वाले हैं, आप मेरा हाथ पकड़े हैं। इस हाथ को और कोई दूसरा न पकड़े ।।20।।

हे वीर हमारे सम्बन्ध को भगवान ही निर्माण किये हैं। यह पुरुष प्रयत्न का फल नही है। कुँए में रहने से मुझको तुम्हारा दर्शन हो गया है ।।21।।

हे महाबाहु,कोई ब्राह्मण मेरे हाथ को पकड़ नही सकता क्योंकि बहुत पहले बृहस्पति के पुत्र कच ने मुझको शाप दिया है। मैं भी उसको शाप दी थी ।।22।।

बृहस्पति के पुत्र शुक्राचार्य के पास मृत संजीवनी विद्या को सीखने के उद्देश्य से उनके पास आया और कहा मैं आपको गुरु मानकर एक हजार वर्ष सेवा करूँगा। मुझे अनुज्ञा दीजिए। शुक्राचार्य मान लिए। कच गुरु पुत्री

देवयानी को भी नृत्य, वाद्य, गायन इत्यादि से संतुष्ट किया। इस प्रकार पाँच सौ वर्ष चले गये। मंत्रोपदेश नही मिला। कच के उद्देश्य को समझते हुए असुरगण उसको मार कर भेड़ियों को खिलाये। गाय चराने गया हुआ कच क्यों नही आया ? इससे आतंकित देवयानी पिता से आग्रह करते हुए कच को जीवित करवाया। असुरों ने दूसरी बार उसको मारकर समुद्र में फेंक दिये। फिर भी गुरु के मृत संजीवनी मंत्र से वह पुनः जीवित हुआ। असुरों ने तीसरी बार उसको मारकर जलाकर राख बनाकर उस राख को मद्य में मिलाकर गुरु शुक्राचार्य जी को पिला दिया। देवयानी के आग्रह के कारण शुक्राचार्य उसको पुनर्जीवित किये। वह शुक्राचार्य के पेट के अन्दर रहते हुए वहीं से अभिवादन किया।अब कच बाहर आया तो शुक्राचार्य मर जाते हैं। शुक्राचार्य जी पुत्री को बोले तुम हम दो में से किसी एक को चाह सकती हो। अभी मैं कच को बुलाऊँ तो मेरा पेट चीरकर वह बाहर आता है। मैं मर जाऊँगा। देवयानी ने कहा मुझको दोनों चाहिए। आप पेट में रहने वाले कच को मृत संजीविनी विद्या को उपदेश दें। बाहर आया हुआ कच उसी मंत्र से आपको जीवित करे। इससे कच को संजीविनी मंत्र मिला। कृतार्थ होकर कच शुक्राचार्य को नमस्कार करते हुए अपने घर जाने की तैयारी की। तब देवयानी उससे शादी करना चाही। कच इसका निराकरण करता है। आपके पिता के पेट में रहने के कारण तुम मेरी बहन हो जाती हो। हमारी शादी नही होगी। इससे क्रुद्ध हुई देवयानी मंत्र का फल तुमको न मिले इस प्रकार शाप दिया। इसके बदले में कच भी तुमको ब्राह्मण पति न मिले ऐसे शाप दिया। मंत्र के फल के बारे में कहते हुए मुझको भले फल न मिले किन्तु मैं दूसरों को उपदेश दूँगा। उनको तो मंत्र का फल मिलेगा।

उच्च वर्ण के वधू को निम्न के वर्णवाला से शादी करना प्रतिलोम विवाह होता है। यह शास्त्र से निषेध है।ययाति इसको जानता था।किन्तु दैव संकल्प मानकर वह उसको अपनाया। उसका मन भी देवयानी मे आसक्त हो गया था।वह उसकी इच्छा को स्वीकार कर लिया।।23।।

राजा से अनुमति पाकर देवयानी अपने घर चली गई।पिता के सामने शर्मिष्ठा द्वारा किए हुए कर्म के बारे में रोते-रोते सारी बाते कह दी ।।24।।

भगवान शुक्राचार्य जी को यह बात बहुत बुरी लगी। वे भिक्षुक वृत्ति के समान वाला पौरोहित्य जीवन की निन्दा करते हुए, जमीन में गिरा हुआ धान्य को पाकर जीवन चलाने वाला शिलोंछ वृत्ति को श्रेष्ठ मानते हुए उस प्रदेश को छोड़कर बेटी के साथ चले गये।।25।।

राजा इस विषय को समझकर शुक्राचार्य के देवताओं के पक्ष में होने की निरीक्षा से उनको रास्ते में मिलकर पाँवों पर सिर रखते हुए उनको संतुष्ट किया ।।26।।

शुक्राचार्य जी को क्षणिक क्रोध आया था।वे राजा से बोले राजा, यदि मुझको समाधान करना चाहता है तो मेरी बेटी की बातें मानो।बच्चे झगड़ा करते हैं। मै अपनी अकेली बेटी को छोड़कर जीवित रह नही सकता ।।27।।

राजा शुक्राचार्य जी की बात को मानकर नगर को वापस आ गये। देवयानी अपना शर्त

रखी। मैं शादी करके जहाँ जाती हूँ वहाँ शर्मिष्ठा को मेरी दासी बनकर आना होगा।।28।।

शुक्राचार्य जी यदि नगर छोड़ दिये तो दैत्यों के लिए वह हानिकारक होगा इसको जानकर राजा ने देवयानी की बात को माना और दासियों को साथ में लेकर शर्मिष्ठा देवयानी की दासी बनने के लिए तैयार हो गई।।29।।

ययाति के साथ अपनी पुत्री की शादी करते हुए शुक्राचार्य उसको कहते हैं - हे राजा, तुम कभी भी शर्मिष्ठा को अपने बिस्तर में भाग लेने नही देना।।30।।

देवयानी को उत्तम पुत्र प्राप्त हुआ। उसको देखकर शर्मिष्ठा को भी पुत्र पाने की इच्छा हुई। वह गर्भधारण के योग्य समय में अपनी सहेली के पति राजा से गुप्त रीति से शादी की।।31।।

संतती की कामना करते हुए गर्भधारण समय में आयी हुई स्त्री को निरादर करना अधर्म होता है। यह समझकर धर्मज्ञ राजा शुक्राचार्य की बात याद आने पर भी दैवेच्छा के अनुसार हो, कहते हुए शर्मिष्ठा को स्वीकार लिया।।32।।

देवयानी यदु और तुर्वसु नाम के दो पुत्रों को जन्म दिया।शर्मिष्ठा के पेट से द्रुह्यु,अनु और पूरू नाम के तीन पुत्र जन्म लिये ।।33।।

अपने पति से शर्मिष्ठा को पुत्र हुये हैं यह समझकर देवयानी क्रोध से पतिघर को छोड़कर मायके चली गई ।।34।।

देवयानी को चाहने वाला राजा ययाति उसके पीछे-पीछे जाकर उसको बहुत प्यारी-प्यारी बातों से, पाँव पकड़ना और पाँव दबाना इत्यादि कर्मों से भी देवयानी को संतुष्ट नही कर सका।।35।।

इस बात को समझकर शुक्राचार्य जी क्रोधवश में बोले, हे स्त्री लोलुप, झूठ बोलने वाला और बुद्धिहीन राजा तुमको मानव के रूप को मिटाने वाला घोर वृद्धत्व आ जाय।तुम बूढ़ा बुजुर्ग बन जाओ।।36।।

ययाति गिड़गिड़ाते हुए बोलता है- हे मुनि, मैं अभी युवा हूँ। आपकी पुत्री के साथ मेरी कामेच्छा पूर्ण नही हुयी है।मेरे ऊपर दया करो। मैं अपने पुत्रों में से किसी से यौवन का विनिमय करके काम सुख को भोगना चाहता हूँ। आप कृपा करें।।37।।

शुक्राचार्य जी इस बात को तथास्तु बोले।राजा ययाति अपने वृद्धत्व को विनिमय करने के लिए अपने ज्येष्ठ पुत्र को कहता है-हे पुत्र तुम मेरा यह वृद्धत्व स्वीकार करो। बदले में अपने यौवन को मुझे दो। यह वृद्धत्व तेरे नाना से मुझे मिला है। तुम उसको स्वीकार कर अपने यौवन को मुझे दो। मै उसको पाकर कई वर्षो तक सुख पाऊँगा।।38,39।।

इसके उत्तर में यदु बोला- मैं आपके अभिप्राय से सहमत नही हूँ। यौवन में आने वाले वृद्धत्व से विरक्त होकर मैं रहना नही चाहता। स्त्री सुख के अनुभव के बिना मानव को वैराग्य पाना बहुत कठिन है।।40।।

इस प्रकार राजा ययाति की बात को तुर्वसु, द्युहु और अनु तीनों पिता की आज्ञा को तिरस्कार किये। ये सारे धर्म की प्रज्ञा न रहने वाले है। अनित्य यौवन के विषय सुख को ही वे शाश्वत मानकर रखे हैं।।41।।

अंत में ययाति अपने अंतिम पुत्र पुरुरव को पूछा। पुरूरुव वय में छोटा होते हुए भी गुण में सबसे श्रेष्ठ था। राजा ने कहा बेटा, अपने भाइयों की तरह तुम मेरे आदेश का तिरस्कार मत करो ।।42।।

पुरूरुव कहता है - हे राजा, जन्म दिया हुआ पिता का ऋण इस लोक में कौन चुका सकता है। उनके अनुग्रह से ही पुत्र भगवान को पा सकता है।।43।।

पिता जी की इच्छा को समझकर चलने वाला पुत्र श्रेष्ठ माना जाता है। पिता जी की बात को सुनकर उसके अनुसार करने वाला मध्यम माना जाता है और पिता जी की बात में श्रद्धा न रखते हुए उसको न मानने वाला अधम होता है। उसका निराकरण करने वाला पुत्र ही नही होता है। वह केवल मल है।।44।।

इस प्रकार बोलते हुए पुरू अपने पिता जी के वृद्धत्व को स्वीकार किया। पिता अपने पुत्र के यौवन से विषय सुखों को यथा योग्य अनुभव किया।।45।।

सात द्वीपों के अधिपति ययाति अपनी प्रजाओं को पिता के समान पालन करते हुए शक्ति न खोने वाले इन्द्रियों से बहुत तरह की सुख को अनुभव करता रहा।।46।।

देवयानी भी अपने प्रियकर ययाति की प्यारी बनकर एकांत में मन, बात और शरीर से, अन्यान्य वस्तुओं से परमानन्द दिये ।।47।।

भूमि दक्षिणा देते हुए ययात्ति सर्व देवोत्तम, सर्ववेदवेद्य, सर्वयज्ञभोक्ता श्रीहरि को, अनेक यज्ञों के साथ ने आराधना किया।।48।।

यज्ञ करते समय वह इस रीति से अनुसंधान करता था यह सारा प्रपंच श्री हरि में आश्रय पाता है, आकाश में दिखने वाले मेघ के समान, स्वप्न के बीच मे दिखने वाली वस्तु के समान, इन्द्र जाल के समान, मन की कल्पना के समान, एक क्षण रहकर दूसरे क्षण नाश होने वाला यह संसार अनित्य है, अल्प है और श्री हरि के अधीन है ।।49।।

भगवान सर्वत्र व्याप्त हैं, वैसे ही सूक्ष्म रुप से अपने हृदय गुहा में रहने वाले नारायण को फलेच्छारहित होकर निष्काम कर्म से ययाति ने यज्ञ किया।।50।।

इस प्रकार एक हजार वर्ष काल तक अपने दुष्ट पंचेन्द्रिय और छठा इन्द्रिय मन के साथ कितने भी सुख भोगने के बाद भी ययाति तृप्ति को नही पाया ।।51।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

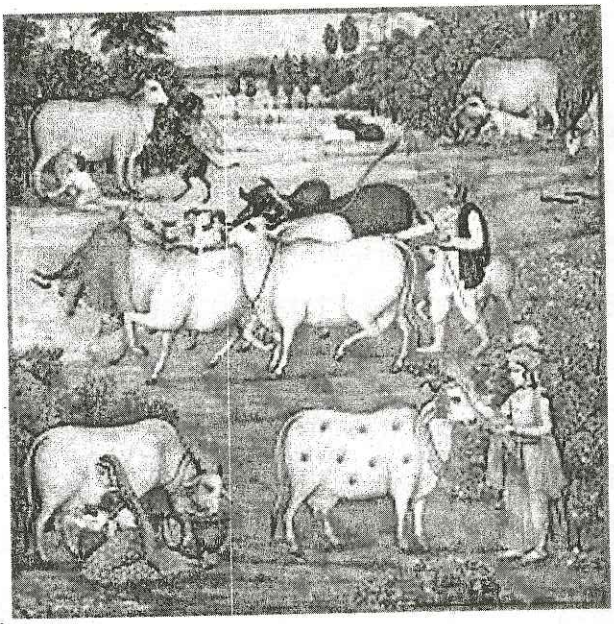

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - सोलह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- ययाति स्त्री लोलुप होकर अनित्य विषय सुखों को भोगते-भोगते नित्यसुखों से वंचित हो रहा हूँ इसको समझकर विरक्त होकर देवयानी को एक कथा कहा।।1।।

हे देवयानी सुनो- ज्ञानी वनवासी लोग मेरे जैसे गृहस्थ जीवी के जीवन को देखकर परिताप से एक कथा बोलते हैं। मै उस कथा को तुम्हारे लिए कहता हूँ सुनो।।2।।

एक बार एक बकरा ने जंगल मे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कुएँ में पड़ी हुई एक बकरी को देखा।।3।।

उसको ऊपर उठाने के लिए अपने सींग से कुएँ की दीवार मे सीढ़ी बनाया। उससे ऊपर आयी हुई वह बकरी, बकरे से प्यार करने लगी।।4।।

उस बकरी के साथ और कई बकरी आ गई।वे सारे इस बकरे के साथ शादी करना चाहते थे।वह उन सबके साथ प्यार से रहने लगा।वह बकरा समर्थ था और सुन्दर भी था।वह पेट भर खाता था ।।5।।

वह बलिष्ठ बकरा खूब खाता था और अनेक बकरियों के साथ खूब खेलता था,और खूब रतिक्रिया करता था ।।6।।

वह सुन्दर बकरा और किसी एक सुन्दरी बकरी के साथ प्यार करने लगा। इसको देखकर पहली बकरी उसको सहन नही कर सकी ।।7।।

बाहर प्यार दिखाते हुए अन्दर दुष्ट मन वाला स्त्री लोलुप और अपनी इन्द्रियों की तृप्ति चाहने वाले उस बकरा को छोड़कर वह बकरी अपने पिता के घर चली गई ।।8।।

स्त्री वश वह बकरा दुःख के साथ बकरी का पीछा करते हुए उसके साथ चला। सारे प्रयत्न करने के बाद भी वह बकरी को जीत नही सका।।9।।

बकरी का यजमान क्रोध से बकरे के वृषण को काट डाला बाद में बकरे के दुःख को सुनकर उनको पुनः जोड़ दिया।।10।।

उस दिन से पुनः अपने वृषण को पाया हुआ वह बकरा कुएँ में मिली हुयी अपनी बकरी के साथ बहुत काल उपभोग करने के बाद आज भी अतृप्त रहता है।।11।।

वैसे मैं भी तेरा वियोग को न सहते हुए दुःखित होकर, तेरे प्रेम वश होकर, तेरे सौंदर्य से मोहित होकर रहा। किन्तु भगवान के बारे में थोड़ा भी विचार नही किया।।12।।

भू लोक में यह गेहूँ,धान,सोना,चाँदी,पशु,स्त्री ये सारे विषय भोग तृष्णा से पीड़ित मेरे मन की इच्छा को पूर्ण करने वाले नही हैं।।13।।

विषय भोग लालसा कभी भी तृप्त नही होती।हविष्य से जैसे आग ज्यादा प्रज्वलित होता है, वैसे यह मन भी विषय लालसा से तृप्त नही होता ।।14।।

सारे जीवियों में अमंगलकर रागद्वेष भावना को न करते हुए सारे जीवि को भगवान के अधीन मानकर समान दृष्टि से जो देखता है उसके लिए सारी दिशाएँ मंगलकर बनती हैं।।15।।

अविवेकियों को भोग लालसा नही छोड़ती।शरीर बूढ़ा होता है किन्तु मन बूढ़ा नही बनता सुख चाहने वालो को दुःखों को लाने वाली दुराशाओं को, छोड़ना चाहिए।।16।।

माँ, बहन, पुत्री के साथ एकांत मे साथ नही बैठना चाहिए।इन्द्रिय बहुत बलशाली होती हैं।वे विद्वान को भी मोहित करती है।।17।।

एक हजार वर्ष तक पुनःबार-बार विषय सुख का अनुभव करने के बाद भी आशा बुझाने के बदले में रोज-रोज बढ़ता जा रहा है ।।18।।

इसके लिए मैं इन विषय लालसाओं को छोड़कर परब्रह्म में मन लगाते हुए द्वंद्व से दूर रहते हुए,अहंकार को त्याग कर ज्ञानियों के साथ रहना चाहता हूँ ।।19।।

ऐहिक,पारत्रिक विषय सुख को क्षण भंगुर मानना चाहिए।उनका चिन्तन नही करना चाहिए,अनुभव नही करना चाहिए।चिन्तन करने से,अनुभव करने से वह संसार बंधन का कारण बनता है,शाश्वत सुख का नाश करता है,इसको जो जानता है वही आत्मज्ञानी बनता है।।20।।

श्री शुकदेव बोलते हैं- ययाति राजा देवयानी को कहकर पुरूरुव को अपने यौवन को वापस देते हुए अपने बुढ़ापे को स्वीकार किया।विषय वासना को छोड़ दिया ।।21।।

आग्नेय दिशा में द्युहु को दक्षिण में यदु को पश्चिम में तुर्वसु को उत्तर में अनु को इस प्रकार ययाति राजा अपने चारों पुत्रों को राजा बनाये।।23।।

वह हजारों वर्ष विषय भोग में रहते हुए उसी को अभ्यास किये हुए अपनी छः इन्द्रियों की आकांक्षाओं को एक क्षण में त्याग दिए।पंखे बढ़ने के बाद जैसे पक्षी अपना घोसले को छोड़कर उड़ जाता है वैसे राजा अपने सुख त्याग दिया ।।24।।

राजा अपने सारे संग को छोड़कर भगवान के अपरोक्ष ज्ञान से सत्वादि त्रिगुणों से आने वाले अभिमान को छोड़कर निर्दुष्ट परब्रह्म वासुदेव की आराधना करते हुए उसी में तन्न होकर

जीवन्मुक्तावस्था को पा लिया ।।25।।

ययाति की कथा वास्तव में स्त्री पुरुष अपने स्नेह भंग से किया हुआ वंचना है। देखने के लिए परिहास लगने वाली राजा ययाति की यह कथा विषय वासना को त्यागने के विचार की है इस भाव को देवयानी समझ ली ।।26।।

बन्धुओं के साथ मिलकर रहना भगवान के अधीन की बात है।जो कुछ होता है वह उन्ही के संकल्प से होता है। इस जगत में शाश्वत कोई नही है। जैसे प्याऊ में मिले हुए यात्रिक एक क्षण बैठकर बातें करते है। बाद में उठकर अपनी-अपनी राह पकड़ लेते हैं, वैसे इस जगत में पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री का सम्बन्ध है ।।27।।

स्वप्न के समान ये सारा अस्थिर है। इसमें मन लगाने का उपयोग नही है समझते हुए देवयानी इस संसार में अपनी आसक्ति को छोड़कर श्री कृष्ण में मन रखते हुए लिंग शरीर के बन्धन को तोड़ दिया ।।28।।

हे ज्ञानात्मक भगवान वासुदेव आपको नमस्कार। सारे जीवियों को आश्रय देने वाले, आनन्दमय गुण पूर्ण श्रीहरि आपको नमस्कार ।।29।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - सत्रह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- हे राजा परीक्षित, तुमको जन्म दिया हुआ पुरू वंश की कथा बोलता हूँ। इसके बारे में सुनो।इस वंश में अनेक राजर्षि बने,कई ब्रह्मर्षि बने ।।1।।

पुरू से जनमेजय, उससे प्रचिन्वान,उससे प्रविर,उससे नमस्यु,उससे चारुपद जन्म लिए।।2।।

चारुपद का पुत्र सुद्यु,उससे बहुगव,उसका पुत्र शंयाति,उसके पुत्र हंयाति,उसके पुत्र रौद्राश्व जन्म लिये ।।3।।

रौद्राश्व को ऋतेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, कृतेयु, जलेयु, संतनेयु, धर्मेयु, सतेयु और व्रतेयु नाम के पुत्र हुये ।।4।।

इनमें सबसे छोटा वनेयु नाम का दसवाँ पुत्र है। इनकी माँ है घृताचि नाम की अप्सरा। सम्पूर्ण जगत में व्याप्त रहने वाले मुख्य प्राण को जैसे दस इन्द्रिय हैं वैसे राजा को ये दस पुत्र थे।।5।।

ऋतेयु से रंतिनार जन्म लिया।उनको सुमति,धृव,और अप्रतिरथ नाम के तीन पुत्र हुये। इनमें अप्रतिरथ का पुत्र कण्व ।।6।।

कण्व के पुत्र मेधातिथि।मेधातिथि से प्रस्कण आदि ब्राह्मण पुत्र जन्म लिये।सुमति के पुत्र रैभ्य, उसके दुष्यंत ।।7।।

दुष्यन्त एक बार शिकार करने कण्व ऋषि के आश्रम में प्रवेश किया। वहाँ लक्ष्मी के समान शोभा वाली एक सुन्दर स्त्री को देखा। अपने सेवकों को दूर रखते हुए राजा उस सुन्दरी से बातें करने लगा ।।8,9।।

हे सुन्दरी! तुम्हारे दर्शन से मेरा शिकार करने का श्रम चला गया।काम ताप से जलता हुआ राजा हँसते हुये और बोलता है ।।10।।

कमल के समान आँख वाली हे सुन्दरी! तुम कौन हो। इस जन रहित जंगल में क्या कर

रही हो।।11।।

सुन्दरी ! मैं निश्चित रूप से मानता हूँ कि तुम क्षत्रिय कन्या हो क्योंकि मेरा मन तेरा सहारा चाहता है। पुरू वंश के किसी राजा का मन अधर्म में आसक्त नही होता ।।12।।

शकुन्तला कहती है- मैं विश्वामित्र की बेटी हूँ। माँ मेनका मुझको जंगल मे छोड़कर चली गयी। मेरी जन्म की यह कथा भगवान कण्व ऋषि जानते हैं। हे राजा, कहिये, हम आप लोग की क्या सेवा करें ।।13।।

हे कमल के समान आँख वाले राजा, आप यहाँ विश्राम करें। हम आपको नीवार का चावल से बना हुआ अन्न को परोसेंगे।आप उसको ग्रहण करें और आप इच्छा करते हैं तो यहाँ विश्राम ले सकते हैं।।14।।

दुष्यन्त कहता हैं- हे सुन्दरी, विश्वामित्र की पुत्री होकर जन्म लिए,तुम्हारे लिए यह बात योग्य लगता है,तुम्हारे वंश के लिए सही है।राज्यकन्याओं में यह प्रथा है कि वे अपने पति को स्वयं चुनती हैं ।।15।।

शुकदेव कहते हैं- राजा की बात को शकुन्तला अनुमोदन करते हुए **ओम्** कह दी। देशकाल और विधि विधान को जानने वाला राजा दुष्यन्त शकुन्तला को धर्म के अनुसार गान्धर्व विधि से शादी किया।।16।।

अमोघ वीर्य वाला राजर्षि दुष्यन्त रानी शकुन्तला मे वीर्याधान किया।दूसरे दिन अपने नगर को चला गया।नौ महीने के बाद शकुन्तला पुत्र रत्न को जन्म दिया ।।17।।

कण्व ऋषि उस राजकुमार को जंगल में ही जातकर्मादि संस्कार दिये।बालक जैसे बड़ा हो गया वह सिंह और शेर के साथ,उनके बच्चों के साथ खेलता था ।।18।।

बहुत दिन होने के बाद भी पति के न बुलाने के कारण शकुन्तला अजेय और पराक्रमशाली हरि के अंश युक्त पुत्र को साथ लेकर अपने पति के पास चली आयी ।।19।।

निर्दोषी पत्नी और पुत्र को जनभय से राजा नही स्वीकार किया।तब सब लोग सुन सके इतने आवाज से आकाश से आकाशवाणी सुनाई दिया ।।20।।

यह पुत्र तुम्हारा है। **माँ केवल भायाती जैसे** पुत्र को ग्रहण करती है। बच्चा बाहर आने से पुत्र पिता का बनता है। **आत्मा वै पुत्रनामासि** पिता ही अपने पुत्र का रूप धारण करता है। यह पुत्र भरत तुम्हारा पुत्र है। यह शकुन्तला तुम्हारी पत्नी है। उसकी अवमानना ठीक नही है।।21।।

पुत्र पिता को यमलोक से उठाकर अक्षय विष्णु लोक को ले जाता है।राजा तुमने इस गर्भ को आधान किया है।शकुन्तला जो कहती है वह सत्य है ।।22।।

कालिदास के शाकुन्तल नाटक में दुर्वासा के शाप के कारण शकुन्तला को दुष्यन्त भूल जाता है। पहचान के लिए दिया हुआ अंगूठी को देखने से उसको पुनः शकुन्तला की याद आती है। पद्म पुराण में ऐसे ही कथा आती है। किन्तु भागवत में और महाभारत में शकुन्तला को दुष्यन्त नही भूलता है किन्तु प्रजा के भय से पहले निराकरण करता है। किन्तु अशरीर वाणी को सुनकर शकुन्तला की क्षमा प्रार्थना करने के बाद उसको स्वीकार करता है।

पिता दुष्यन्त मरने के बाद कीर्तिशाली भरत चक्रवर्ती बना। भगवान हरि के अंशयुक्त भरत की महिमा पूरे भू प्रदेश में **तदप्येते श्लोकाः अभिगीताः** इस ऐतरेय ब्राह्मण वेद मंत्र से गाया जाता है।।23।।

भरत के दाहिने हाथ में चक्र का चिन्ह और पाँव मे पद्म रेखा थे। उसने महाभिषेक से अभिषिक्त राजा होकर, सारे राजाधिराजाओं का प्रभु होकर बड़ा यज्ञ किया।।24।।

दीर्घतम मुनि के पौरोहित्य में भरत चक्रवर्ती गंगा तट पर एक्यावन, यमुना तट पर अठहत्तर अश्वमेध याग किये। उन यागों में अग्नि मंथन करें तो अग्नि बहुत जल्दी मिल जाती थी।।25,26।।

सहस्र वद्व संख्या में गायों को ब्राह्मणों के लिए दान दिये। इस प्रकार एक सौ तैंतीस अश्वमेघ याग करके अपने महा वैभव से देवता के वैभव को भी पार किया ।।27।।

तेरह हजार चौरासी संख्या को एक वद्व कहते हैं। भरत ऐसे एक हजार वद्व गो दान किया है।

मष्णार नाम के क्षेत्र मे याग करके सोने से अलंकृत सफेद और काला **वीर** दाँत वाले चौदह लाख हाथी को दान दिया ।।28।।

भरत ने जो महत्व कार्य किया वह कार्य और कोई नही किया है और कोई आगे आने वाला राजा भी नही कर सकता। स्वर्ग को हाथ से छूना जैसे असाध्य है वैसे भरत के अनुसार यज्ञ करना भी असाध्य है।।29।।

भरत दिग्विजय करते हुए किरात, हूण, यवन, आंध्र, कंक, कष, शक इत्यादि ब्रह्मविरोधी म्लेच्छ राजाओं का संहार किया ।।30।।

भरत की सहायता से देवता लोग असुरों को जीत लिये। खोया हुआ अपने स्थान को पुनः प्राप्त किये। असुर लोग जिन देवता स्त्रियों को रसातल को ले गये थे उनको छुड़वाकर वापस ले आये।।31।।

भूमि और आकाश भरत के प्रजाओं ने जो चाहते थे उसको मिलवा दिये। इस प्रकार राजा भरत सत्ताइस हजार वर्ष राज्य भार करते हुये दशों दिशा में अपने राज्य का विस्तार किया।।32।।

सम्राट राजा भरत लोकपालकों की सम्पत्ति और राजाधिराजाओं का वैभव और न रोकने वाले सैन्य के होते हुये भी इन सबको अशाश्वत मानकर विरक्त हो गया।।33।।

हे राजा परीक्षित, भरत को विदर्भ राजा की तीन पुत्रियाँ रानी बनी थी। वे सारे रूप गुण शील में उनके योग्य थीं। किन्तु पुत्र पिता के समान न दिखे तो अपने ऊपर व्यभिचार के आरोप की शंका करते हुये अपने पुत्रों को स्वयं मार दिये ।।34।।

इस प्रकार पुत्र हीन होकर राजा उत्तम पुत्र प्राप्ति के लिए मरुस्तोम नाम का यज्ञ किया।तब मरुद्देवताओं ने पुत्र रूप में भरद्वाज को दिये ।।35।।

अब भरद्वाज की जन्म की कथा बोलता हूँ। उचथ्य मुनि की पत्नी ममता से संग करने के लिए बृहस्पति प्रवृत्त हुआ। तब गर्भिणि होने के कारण वह बृहस्पति को रोकना चाही। बोली मैं तुम्हारे बड़े भाई की पत्नी हूँ। तो भी बृहस्पति रुका नही। गर्भ में रहने वाले दीर्घत्म नाम वाले शिशु का इसका विरोध करने से उसको अंधा होने का शाप देकर वहीं अपने वीर्य को छोड़ दिये। उस वीर्य से भरद्वाज मुनि जन्म लिया।।36।।

भरद्वाज ऋषि ऋग्वेद के छठा मण्डल के द्रष्टार ऋषि हैं।

ममतादेवी, पति अपने को त्याग कर सकता है इस भय से शिशु भरद्वाज को त्याग करने का विचार किया। तब मरु देवताओं वैसा मत करो बोलने से शिशु का नाम भरद्वाज पड़ा ।।37।।

वे आगे बोलते हैं- हे मूर्ख स्त्री! यह भरद्वाज उचथ्य और बृहस्पति दोनों का पुत्र है।यह बृहस्पति के वंश की अभिवृद्धि करता है। दोनों को **पुत्** नाम के नरक से त्र पार करता है इसी के लिए इसका नाम भरद्वाज है। तुम इसकी रक्षा करो।।38।।

इस प्रकार देवताओं से उपदेश पाकर ममता देवी ब्रह्मवर्चस से प्रकाशमान भरद्वाज को पुत्र मानते हुये पति के डर से त्याग दिया। बाद में मरुद्देवताओं ने उनका पालन पोषण किये।भरत चक्रवर्ती वंश के रुक जाने की स्थिति में यानी वितथ होते समय, देवताओं ने भरद्वाज को उनको दिये। इसी कारण भरद्वाज का नाम वितथ भी है ।।39।।

ममता के पुत्र को पहले वेद ही भरद्वाज नाम दिये थे। उस नाम का अर्थ ही दो पिताओं का पुत्र होता है। भरद्वाज उचथ्य के क्षेत्रज पुत्र हैं, बृहस्पति के औरस पुत्र हैं। **तेजस्विनाम् न दोषाय** इस बात के अनुसार बृहस्पति को गर्भिणी संग दोष नही बना।**देवराच्च सुतोत्पत्तिः** इस बात के अनुसार उस युग के नियम के अनुसार सोदर पत्नी का संग दोष कारक नही बना।मूढ़ ममता पति भय से शिशु को त्याग किये तो भी देवताओं ने उसका पालन पोषण किये।उसी से भरत चक्रवर्ती का वंश आगे बढ़ा।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - अठ्ठारह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक देव कहते हैं - भरत चक्रवर्ती के पुत्र का नाम वितथ उसका पुत्र मन्यु, मन्यु से बृहत क्षेत्र, जय, महाविर्य, नर, गर्ग नाम के पाँच पुत्र जन्म लिए।।1।।

नर का पुत्र संस्कृति नाम का राजा बना।

हे राजा! उनमें गुरु और रन्ति देव ये दो संस्कृति के पुत्र हैं। रन्तिदेव की कीर्ति इस लोक और परलोक में प्रसिद्ध है।।2।।

रन्ति देव युद्ध में शत्रुओं का नाश करता था। वह बड़ा दानशूर भी था। बड़े अकाल के समय में भूखे लोगों के, ब्राह्मण के और अतिथियों की आराधना के लिए दो लाख भण्डारियों की नियुक्ति किया था।

अपनी सारी सम्पत्ति को दान कर राजा रन्तिदेव दरिद्र हो गया। अपनी पत्नि पुत्र और कुटुम्ब सहित अन्न न मिलने से कृश होकर किन्तु हरिध्यान में सन्तोष पाता था।।3।।

एक बार उन सारे लोगों को पीने के लिए पानी भी नही मिला। ऐसे अढ़तालिस दिन चले गये, उनचासवें दिन सुबह उनको घी, खीर और दलिया का जल सहित भोजन को किसी ने दिया।।4।।

उसको खाने के लिए राजा अपने घर वालो के साथ बैठे थे। वे स्वयं भूख और प्यास के कारण काप रहे थे। भोजन प्रारम्भ करने के पहले एक ब्राह्मण अतिथि होकर वहाँ आ गया।।5।।

रन्तिदेव उस ब्राह्मण को श्रद्धा से भोजन दिया। सारे अतिथियों में राजा रन्तिदेव भगवान को देखते थे। राजा के आतिथ्य से तृप्त होकर ब्राह्मण चला गया।।6।।

बचा हुआ अन्न को खाने की इच्छा से बैठते समय एक शूद्र अतिथि आ गया। उसमें भी भगवान का चिन्तन करते हुए उसको भी अन्न दान दिए।।7।।

वह शूद्र जाते जाते और एक शूद्र दो कुत्तों के साथ आ गया। महाराजा, मैं और मेरे कुत्ते बहुत भूखे है। दो दिन से खाए नही हैं।।8।।

राजा बचा हुआ अन्न को आदर के साथ उसको और उसके कुत्ते को भी अन्न दिए। राजा उनमें भी भगवान नारायण को देख कर उनको नमस्कार किया।।9।।

अन्त में थोड़ा सा पानी केवल एक को पर्याप्त हो इतना बचा था। उस समय एक अन्त्यज आया। महाराज मै नीच कुल में जन्म लिया हूँ बहुत प्यासा हूँ। थोड़ा सा पानी दीजिए।।10।।

प्यास से थका हुआ कारूण्य पूर्ण बातों से याचना करने वाला उसको देखकर राजा पानी देकर करुणा से अमृत समान बातों से भगवान की प्रार्थना की।।11।।

हे भगवान, मैं राज्य नही चाहता, योगेश्वरों से पाने वाले महरादि लोकों को भी नही चाहता हूँ। मुझे मोक्ष की कामना नही है। सारे जीवियों को होने वाला दु:ख वह मुझे हो और वे सुखी रहें। केवल यही मेरी कामना है।।12।।

जीवन में संघर्ष करते हुए जीने वाले दु:खित जीव को तृप्ति देने वाला थोड़ा सा जल, एक दो कवल देने वाले को भूख, प्यास, शरीर के अन्दर रहने वाले दु:ख, आलस्य और बाहर रहने वाले विषाद ये सारे नष्ट हो जाते हैं।।13।।

इस प्रकार बोलते हुए स्वभाव से अत्यन्त करुणाशाली राजा स्वयं मरने की स्थिति में रहते हुए भी हरि ध्यान में सुख देखते हुए बचा हुआ जल को उस अन्तज को पिला दिया।।14।।

फलकामना करने वाले को फल देने वाले तीनों लोको के अधिपति ब्रह्मादि देवताएँ भगवान की आज्ञानुसार ब्राह्मण, शूद्र और कुत्ते के रुप में आकर अपने स्वशक्ति का प्रदर्शन किए थे। ये सारे रन्तिदेव की दानशूरता की परीक्षा के लिए था। इस परीक्षा में राजा पूर्ण रूप से उत्तीर्ण होने के कारण अपने निज रूप में दर्शन दिए।।15।।

राजा उनको नमस्कार किया, कुछ नही माँगा। वासुदेव में स्थिर मन और भक्ति की कामना रखा। वह स्वयं फलाशक्ति न रखने वाला उनका कुटुम्ब भी फल में आसक्त नही था।।16।।

और किसी को कुछ भी न चाहते हुए श्री हरि में मन रखने वाला राजा का संसार बन्धन स्वप्न जैसे होते हुए भी नही सा हो गया।।17।।

रन्तिदेव के सहवास के कारण उसके अनुसरण करने वाले सारे योगी बन गये। नारायणपर बन गये। अन्त में मोक्ष को पाए।।18।।

गर्ग से शिनि का जन्म हुआ। क्षत्रिय शिनि के वंश ब्राह्मण बना। मन्यु के दूसरे पुत्र महावीर्य से दुरितक्ष्य जन्म लिया। उससे त्रय्यारूणि, कवि, पुष्करारूणि नाम के तीन पुत्र हुए। ये तीनों ब्राह्मण बने।।19।।

मन्यु के जेष्ठ पुत्र बृहतक्षेत्र, उसका होत्र, होत्र से हस्ति। आज का हस्तिनावति को इसी ने निर्माण किया।।20।।

इसके पुत्र अजमीढ़, द्वमीढ़ और पुरमीढ़। अजमीढ़ के वंश के प्रियमेध इत्यादि पुत्र ब्राह्मण बने।।21।।

अजमीढ़ से बृहदिषु जन्म लिया। उसका पुत्र बृहद्धनु उससे बृहत्कार्य, उससे जयद्रथ जन्म लिए।।22।।

उसका पुत्र विशद, विशद से श्येनजित जन्म लिए। श्येनजित का पुत्र रुचिराश्व, दृढ़धनु, काश्य और वत्स।।23।।

रूचिराश्व का पुत्र याज, उसका पुत्र पृधुसेन, उससे पार, पार से नीप पुत्र हुए। नीप को एक सौ पुत्र हुए।।24।।

उन सौ में से सबसे बड़ा अणुह भगवद् ध्यान में रहता था। वह शुक मुनि की पुत्रि कृत्वीदेवी में ब्रह्म दत्त नाम के पुत्र को पाया।।25।।

शूकमुनि जन्मजात ब्रह्मचारी, अवधूत और सन्यासी हैं इनको पुत्री कैसे यह समस्या आती है। किन्तु रुद्रांश शुक मुनि एक रूप से यति और एक रूप से गृहस्थ होकर रह सकते हैं। उनके गृहस्त रूप की पुत्री कृत्वीदेवी हो सकती हैं।

योगेश्वर ब्रह्मदत्त गो नाम के अपनी पत्नी में विष्वक्सेन नाम के पुत्र को पाया। रूद्रावतार जैगीषव्यमुनि के उपदेश से योग शास्त्र को रचाया।।26।।

विष्वक्सेन का पुत्र उदक्सेन, उससे भल्लाद ये सारे बृहदिषु के वंश के हैं। द्विमीढ़ के पुत्र यवीनर, उसका पुत्र कृतिमान।।27।।

कृतिमान से सत्यधृति, उससे धृढ़ नेमी, उससे सुपार्श्व, उससे सुमति, उसका पुत्र सन्ततिमान बने।।28।।

सन्ततिमन्त से कृति जन्म लिया। यह हिरण्यनाभ से योगशास्त्र को सीख कर प्राच्यशाम के बारह संहिता को शिष्यों के लिए उपदेश दिया। इसका पुत्र उग्रायुध, उसका नीप पुत्र हुए।।29।।

नीप को क्षेम्य, उसको सुवीर, उससे रिपुंजय, उससे बहुरथ पुत्र हुए। पुरमीढ़ को पुत्र नही हुए।।30।।

अजमीढ़ के वंश में प्रियमेध इत्यादि कई ब्राह्मण बने, ब्रहदिषु इत्यादि कई क्षत्रिय होकर रहे अजमीढ़ का वंश आगे ऐसे बढ़ा। अजमीढ़ के नलिनी नाम की पत्नी में नील नाम का पुत्र जन्म लिया। उससे शन्ति, शन्ति से सुशान्ति, उससे पुराज, उससे अर्क नाम के पुत्र बने।।31।।

अर्क के पुत्र हमर्याश्व, उससे मुदग्ल, यवीनर, बृहदिषु, कांपिल्य, संजय नाम के पाँच पुत्र हुए।।32।।

अपने पाँच देश की रक्षा के लिए और स्वयं को शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध नाम के पाँच विषयों से अपनी रक्षा के लिए ये पाँच पुत्र समर्थ हो इसके लिए उन पाँचों को मिलकर **पंचाल** नाम से पुकारता था।।33।।

मुद्गल से एक ब्राह्मण जाति का निर्माण हुआ, मौद्गल्य नाम का एक गोत्र भी हुआ। उसको जुड़वा बच्चे हुए उनमें से पुरुष पुत्र का नाम दियोदास है।।34।।

बेटी का नाम अहिल्या। उसको गौतम मुनि से शतानन्द नाम का पुत्र हुआ। वह जनक राजा का पुरोहित रहा। सीता राम जी का विवाह इसी ने करवाया। उनके पुत्र शतधृति। यह धनुर्वेद विद्या में बड़ा विशारद था।।35।।

शतधृति के पुत्र शरद्वान। इसको उर्वशी के दर्शन मात्र से वीर्यस्खलन होकर काई में गिर गया। उससे वहाँ ये जुड़वा बच्चे जन्म लिए।।36।।

शिकार के लिए आया हुआ राजा शान्तनु (यह भीष्माचार्य के पिता हैं) इन दोनों बच्चों को प्यार से गोद लिया। उसमे पुरुष बच्चा कृपाचार्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। वे कुरुपाण्डवों के प्रथम शस्त्रास्त्र गुरु हैं। चिरंजीवि होने के कारण महाभारत के युद्ध के बाद भी जीवित रहे हैं। कन्या शिशु का नाम कृपि, वह द्रोणाचार्य की पत्नी बनी।।37।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में अठ्ठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

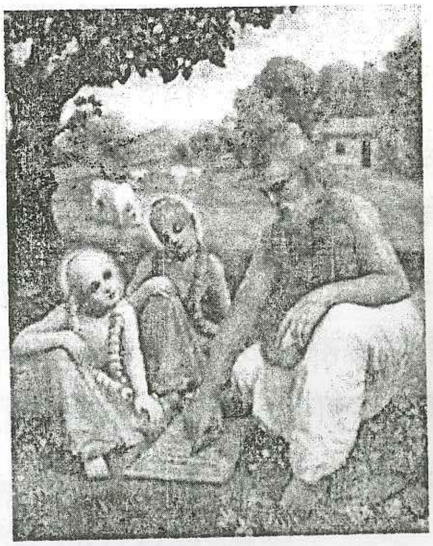

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - उन्नीस

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक देव कहते हैं - हे राजा परीक्षित, सुनो। देवोदोस से मित्रायु जन्म लिया। मित्रायु का पुत्र च्यवन, उससे सुदास, उससे सहदेव, उससे सोमक जन्म लिए सोमक को जन्तु इत्यादि सौ पुत्र जन्म लिए।।1।।

इन सौ में से आखिर का नाम है पृषत। उसका पुत्र द्रुपद। उसको द्रौपदी, दृष्टद्युम्न और सिखन्डि नाम के पुत्र हुए।।2।।

धृष्टद्युम्न से दृष्ट केतु हुआ। हर्म्यश्व के वंश के ये राजा पांचाल नाम से प्रसिद्ध हैं। अजमीढ़ के और एक पुत्र ऋक्ष, उससे संवर्ण जन्म लिया।।3।।

संवर्ण से सूर्यकन्या तपति में कुरुक्षेत्र के अधिपति कुरु नाम का राजा बना। परिक्षित, सुधनु, जन्हु, निषध ये कुरु के पुत्र हैं।।4।।

सुधनु से सुहोत्र, उससे च्यवन, उससे कृति, उससे उपरिचरवसु, उससे बृहद्रथ, कुशाम्बु, मत्स्य, प्रत्यग्र, वेदिष, इत्यादि पुत्र जन्म लिए। ये सारे चेदी देश के राजा बने इन्ही के वंश में शिशुपाल जन्म लेता हैं। वृहद्रथ से कुश, उससे ऋषभ जन्म लिए।।5,6।।

ऋषभ का पुत्र सत्यहित, उसका पुत्र पुष्पवान। उससे जहु नाम का पुत्र हुआ। वृहद्रथ के और एक पत्नी में एक शिशु जन्म लिया। विचित्र है वह शिशु दो टुकड़ो में हुआ था।।7।

उसको देख कर उसकी माँ उन दोनों टुकड़ों को बाहर फेंका। जरा नाम की राक्षसी वहाँ आकर उन दोनों को जोड़कर तुम जीवित हो, तुम जीवित हो ऐसे गाते हुए खेलती रही। उससे जरासंध उसी का पुत्र बन कर जीवित हो गया। यह जरासंध भीम जी के हाथ से युद्ध में मरता है।।8।।

जरासंध का पुत्र सहदेव, उससे सोमापि, उससे शतश्रव। परिक्षित को पुत्र नही हुए। जन्हु का पुत्र सुरथ।।9।।

सुरथ से विदूरथ, उससे सार्वभौम, उससे जयत्सेन उसका पुत्र राचीक, उससे द्युमान जन्म लिए।।10।।

द्युमन्त से क्रोधन, उससे देवातिथि, उससे ऋक्ष, उससे दिलीप, उससे प्रतीप पुत्र हुए।।11।।

प्रतीप के देवापि, शन्तनु और बाल्हीक नाम के पुत्र हुए। देवापि पिता द्वारा दिया हुआ राज्य को छोड़ कर तप करने जंगल गया।।12।।

शान्तनु राजा बना, उसने पूर्व जन्म में ब्रह्मा जी के शाप से महाभिषक नाम से जन्म लिया था। इस जन्म में वह किसी को दोनों हाथों से छुए तो वह वृद्ध होते हुए भी युवा बन जाता था और शान्ति सुख से जीता था। इसके लिए इसका नाम शन्तनु पड़ा। उसके राज्य में एक बार बारह वर्ष का बड़ा अकाल पड़ा।।13,14।।

उस समय ब्राह्मण बोले - राजा, तुम अपने भाई का राज्य भोग रहे हो, यहाँ वृष्टि होकर समृद्धि पाना है तो बड़े भाई को राज्य दे दो।।15।।

ब्राह्मणों के उपदेश के अनुसार शन्तनु बड़े भाई देवापि को बुलाकर राज्य को स्वीकार करने के लिए कहा किन्तु शन्तनु के एक मंत्री ने पहले ही कई ब्राह्मणों को भेजकर उनसे देवापि को अधर्म बोलकर वेद धर्म से उसको विमुख किया था। शन्तनु प्रजा पालन ही धर्म मानकर राज्य भार किया किन्तु देवापि प्रजा पीड़ा ही धर्म मान कर चला। इससे वह राज्य चलाने के लिए अनर्ह बना। देवताओं ने अर्ह शन्तनु को राजा बनाए। इससे सन्तुष्ट होकर इन्द्रदेव वर्षा किए।।16।।

बाद में देवापि हरि ध्यान करते हुए कलाप ग्राम में वास करता है। कलियुग में चन्द्र वंश नाश होने के कारण कृत युग के आदि में यह पुनः राजा बनकर चन्द्र वंश को आगे बढ़ाता है।।17।।

बाल्हिक से सोमदत्त, उससे भूरी, भूरिश्रव और शल्य नाम के तीन पुत्र हुए। शन्तनु से गंगा देवी में प्रबल मन निग्रह करने वाला भीष्म जन्म लिए।।18।।

भीष्म सर्व धर्मज्ञ थे, वे भगवद्भक्त, श्रेष्ठ ज्ञानी और वीर समूह में अग्रेसर थे। अम्बा से शादी न करने के कारण परशुराम जी से युद्ध करते हुए उनको भी हरा कर उनको सन्तोषित किए।।19।।

शन्तनु से मछुआरों की पुत्री सत्यवति में चित्रांगद और विचित्रवीर्य नाम के दो पुत्र हुए। पहला पुत्र चित्रांगद उसी नाम के गन्धर्व से युद्ध में मारा गया।।20।।

इसके पहले सत्यवती से वेद रक्षा के लिए साक्षात भगवान हरि के अंश रूप से पाराशर से कृष्ण द्वैपायन मुनि अवतार लिए। मैं उनका पुत्र हूँ, उन्ही से यह भागवत पुराण का अध्ययन किया हूँ।।21।।

भगवान बादरायण अपने प्यारे शिष्य पैल, जैमनी इत्यादियों को छोड़कर पुत्र और भक्त मुझको अत्यन्त गूढ़ इस भागवत का उपदेश दिए।।22।।

भीष्माचार्य द्वारा स्वयंवर मंडप से जीत कर लाए हुए काशीराज की पुत्री अम्बिका और अम्बालिका से विचित्रवीर्य ने शादी किया।।23।।

इन दोनों में वह विपरीत अनुरक्त होकर जीवन करने से विचित्र वीर्य क्षय रोग से मरण पाया।।24।।

छोटा भाई विचित्र वीर्य के निपुत्रक होकर मरने के कारण माता जी के आदेश के अनुसार बादरायण वेदव्यास जी उसकी पत्नी में धृतराष्ट्र, पाँडु और विदुर को जन्म दिए।।25।।

हे राजा, धृतराष्ट्र को अपनी गांधारी नाम की पत्नी से एक सौ पुत्र जन्म लिए। उनमें दुर्योधन सबसे बड़ा पुत्र। दुश्यला नाम की कन्या भी जन्म ली।।26।।

किन्दम मुनि के शाप से पाँडु स्त्री संग नही कर सकता था। उसकी पत्नी कुन्ती में यम, वायु, इन्द्र ने महारथी युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन को जन्म दिये।।27।।

नासत्य और दश्र नाम के अश्विनी कुमारों से पाँडु की दूसरी पत्नी माद्री में नकुल, सहदेव जन्म लिए। उन पाँचों से द्रौपती में पाँच पुत्र जन्म लिए। वे तुम्हारे बड़े पिता होते हैं।।28।।

युधिष्ठिर के प्रतिविन्ध्य, भीम के श्रुतसेन, अर्जुन के शतकीर्ति, नकुल के शतानीक, सहदेव के श्रुतकीर्ति ये भी तुम्हारे अलग बड़े पिता हैं। युधिष्ठिर के पौरवि नाम की पत्नी में देवक, भीमसेन के हिडम्बा नाम की पत्नी में घटोत्कच और काली में शर्वगत, सहदेव के विजया नाम की पत्नी में सुहोत्र नाम के जो पुत्र बने वे भी तुम्हारे बड़े पिता हैं।।31।।

नकुल की पत्नी करेणुमति निरमित्र को जन्म दी। अर्जुन उलूपि में इरावन्त, मणलूर राजा की पुत्री चित्रांगदा में बभ्रुवाहन को पुत्र रूप में पाया। मणलूरा राजा के पुत्री के पुत्र को अपने पुत्र रूप में ग्रहण किया। तुम्हारे पिता अभिमन्यु सुभद्रा में जन्म लिए।।32,33।।

अभिमन्यु सारे अतिरथ महारथों को जीतने वाला, उससे उसकी पत्नी उत्तरा के गर्भ से तुम्हारा जन्म हुआ। कुरुवंश में रहने वाले सारे अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से सारे मर जाने के कारण तुम अकेले श्री कृष्ण से रक्षित होकर मरण से छुटकारा पाकर अकेले रह गये। तुम्हारे पुत्र जनमेजय इत्यादि।।34,35।।

श्रुतसेन, भीमसेन, उग्रसेन और वीर्यवान ये सारे जनमेजय के छोटे भाई। आगे तक्षक से तुम्हारे मरण को सुनकर क्रोध से जनमेजय सर्प याग करते हुए सारे सर्पो का हवन करने वाला हैं उस समय कवषा पुत्र तुरनाम के मुनि को पुरोहित करते हुए अश्वमेध याग में सारे भूमि को जीत कर सकल पुण्य क्षेत्रों में यज्ञ करने वाला है। उसका पुत्र शतानीक याज्ञवल्क से वेद का अध्ययन, कृपाचार्य से अस्त्रज्ञान और शौनक से भगवान के तत्व ज्ञान को पा लेता हैं उसका पुत्र सहस्त्रानीक, अश्वमेध याग के फल रूप में उसका जन्म होता

है।।37,38,39।।

सहस्रानीक का पुत्र विश्रम्भ कृष्ण, उसका पुत्र नेमिचक्र। हस्तिनावति जमुना जी में डूब जाने के कारण इसने कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाता है।।40।।

नेमीचक्र का पुत्र उक्त, उसका पुत्र चित्र रथ, उसका पुत्र सुचिरथ, उससे दृष्टिमान, उससे सुषेण जन्म लेंगे।।41।।

उस सुषेण से सुनीथ जन्म लेने वाला है, उसका पुत्र नृचक्षु, उससे सुखीनल, उससे परिप्लव, उससे मेधावी उसका पुत्र सुनय जन्म लेने वाले हैं।।42।।

सुनयन से नृपंजय, उससे दूर्व, उससे तिमि, उससे वृहद्रथ, उससे सुदास, सुदास से शतानीक जन्म लेने वाले हैं।।43।।

शतानीक के पुत्र दुर्दमन, उसका पुत्र बहीनर, उससे दण्डपाणि, उससे निमि, निमि से क्षेमक जन्म लेने वाले हैं।।44।।

ब्राह्मण और क्षत्रियों के लिए मूल, देवता और ऋषियों के लिए पूज्य चन्द्र वंश, क्षेमक राजा के अन्त से इस कलियुग में अवसान पाने वाला है।।45।।

इन राजाओं का नाम संकीर्तन से सारे पाप नाश होते हैं। इसके आगे मैं मगध राजवंश की कथा को बोलता हूँ।।46।।

सहदेव से सोमापि, उससे श्रुतश्रव, उससे अयुतायु, उससे निरमित्र जन्म लेने वाले हैं।।47।।

निरमित्र का पुत्र सुनक्षत्र, उससे बृहत्सेन, उससे कर्मजित, उससे श्रुतंजय, उससे विप्र , विप्र से शुचि पुत्र होते हैं।।48।।

सुचि से क्षेम, उससे सूरत, उससे धर्मसत्र, उससे सम, उससे दृढ़सेन, उससे सुमति, सुमति से सुबल जन्म लेते हैं।।49।।

सुबल से सुनीथ, उससे सत्यजित, उससे विश्वजित, उससे रिपुंजय पुत्र होते है। इस प्रकार बृहद्रथ के वंश के राजा हजार वर्ष राज्य भार करते हैं।।50।।

आगे के राज वंश के बारे में द्वादश स्कन्ध में कहते हैं।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - बीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - ययाति पुत्र पुरू के बारे में बता दिए अब ययाति का और एक पुत्र अनु के वंश के बारे में बताते हैं। अनु को सभानर, चक्षु, परेक्षु नाम के तीन पुत्र हुए। सभानर से कालनर उससे संजय जन्म लिए।।1।।

संजय का पुत्र जनमेजय, उसका महाशील उससे महामन, महामन का पुत्र उसीनर अज्ञैर तितिक्षु।।2।।

उसीनर के चार पुत्र थे शिवी, वन, शमी, दक्ष नाम के। शिवी को भी वृषदर्भ, सुवीर, मद्र, कैकय नाम के चार पुत्र हुए तितिक्षु से पृषद्रथ, उससे हेम, उससे सुतप, सुतप से बलि जन्म लिया।।3,4।।

बलि की पत्नी में दीर्घतमा ऋषि की कृपा से अंग, वंग कलिंग नामके प्रधान राजा और सुह्म, पुण्ड्र और आन्ध्र नाम के अन्य राजा भी जन्म लिए।।5।।

ये छः राजाओं ने अपने अपने नाम से पूर्व की दिशा में अलग छः राज्य बनाए। अंग से खनपान जन्म लिया, उससे दिविरथ।।6।।

दिविरथ से धर्मरथ, उससे मित्ररथ जन्म लिए। मित्ररथ को पुत्र नही हुए। उसको रामपाद भी कहते थे। उसको केवल शान्ता नाम की एक बेटी हुई। उसको वह अपने मित्र दशरथ को दत्तक दे दिया। उसका विवाह ऋष्यश्रृंग मुनि से हुआ।।7।।

रोमपाद के राज्य में जब बारह वर्ष वर्षा नही हुआ तब हिरण के पेट से जन्म लिया हुआ ऋष्यश्रृंग को राज्य में बुलाये तो पानी बरसेगा ऐसा ऋषि मुनियों ने कहा, उसके अनुसार रोमपाद ने ऋष्यश्रृंग को लाने के लिए वेश्यास्त्रियों को भेज दिया। वे अपने संगीत, वाद्य, नृत्य, श्रृंगारविलास, आलिंगन और सत्कारों से अपने वश में लेते हुए रोमपाद के राज्य में लाए। उनके आते ही वहाँ मूसलाधार वर्षा हुई। राजा शान्ता से मुनि का विवाह किया।।8।।

सन्तान न होने के कारण राजा रोमपाद से ऋष्यश्रृंग ऋषि इन्द्रेष्टि नाम यज्ञ को करवाए। उससे राजा

को पुत्र हुआ। दशरथ भी इसी यज्ञ को करते हुए चार पुत्रों को पाया।।9।।

रोमपाद से चतुरंग जन्म लिया। उसका पुत्र पृथुलाक्ष उसके बृह्द्रथ, बृहद्कर्म, बृहद्भानु ये तीन पुत्र हुए। बृहद्भानु से बृहन्मन, उससे जयद्रथ जन्म लिए।।10,11।।

जयद्रथ का पुत्र विजय, विजय से उसके सम्भूति नाम की पत्नी में धृति जन्म लिया। धृति से धृतव्रत, उससे सद्धर्म, उससे अधिरथ जन्म लिया।।12।।

अधिरथ गंगा तीर में विहार करते समय नदी में एक पेटी बहता हुआ देखा। उसमें कुन्ती से अपनी कन्यावस्था में त्याग किया हुआ शिशु को पाया। उसका नाम कर्ण पड़ा।।13।।

कर्ण का पुत्र वृषसेन, ययाति के और पुत्र दृह्यु उसका पुत्र बभ्रू, उसका पुत्र सेतु।।14।।

सेतु से आरब्ध, उससे गान्धार, उससे धर्म, उससे धृत, धृत से कर्दम, उससे प्रचेत जन्म लिए। प्रचेत को एक सौ पुत्र हुए। उनको प्राचेतस कहते हैं।।15।।

ये सौ पुत्र उत्तर दिशा में म्लेच्छाधिपति बने। तुर्वसु, ययाति के और एक पुत्र हैं। उसका पुत्र वन्हि, उससे भग, भग से भूनुमान् जन्म लिए।।16।।

उसको नृभानु, उससे करन्धम, उससे मरुत जन्म लिये। मरुत को पुत्र नही हुए। उसके लिए वह पूरुवंश के दुष्यन्त को दत्तक लिया।।17।।

किन्तु दुष्यन्त साम्राज्य की अपेक्षा से अपने जन्म दिए हुए पुत्र के पास ही चला गया। यह दुष्यन्त भरत के पिता दुष्यन्त से अलग हैं।।18।।

ययाति के ज्येष्ठपुत्र यदु के वंश के बारे में कहता हूँ। राजा यह कथा सारे पाप को हरण करती है और महापुण्य कारक है।।19।।

इस यदु वंश में भगवान नारायण स्वयं मानव रूप में अवतार लिए। इसके लिए यदु वंश की कथा को सुने तो सारे पाप चले जाते हैं।।20।।

यदु को सहस्रजित, क्रोष्टु, नल, रिपु नाम में चार पुत्र हुए। उसमें प्रथम पुत्र सहस्रजित का पुत्र शतजित, उसके पुत्र महाहय, वेणुहय और हैहय।।21।।

हैहय का पुत्र धर्म, उससे नेत्र, उससे कुन्ती, उससे सोहंजि, उससे महिष्मान, उससे भद्रसेनक, उससे दुर्मद और धनक पुत्र हुए। धनक के पुत्र कृतवीर्य, कृत्याग्नि, कृतवर्म और कृतौज।।22,23।।

कृतवीर्य के पुत्र कार्तवीर्यार्जुन। यह सात द्वीपों का राजा बना। हरि के अंश दत्त त्रेय से अणिमादि

अष्ट सिद्धि को पाकर शौर्यादि महागुणों को पा लिया। यम, दान, तपस, योगों से, अध्ययन, पराक्रम इत्यादि में कार्तीवीर्यार्जुन को हराने वाला और कोई नही था। पचासी वर्ष तक अपने न घटने वाले शरीर बल से वह सदा हरि स्मरण करते हुए राज्य भार किया।।24,25,26।।

वह सदा काल हरि स्मरण करता था। भगवान विष्णु को न भूलते हुए अपने छः इन्द्रियों से भोग भाग्य, सुख सम्पदाओं का अनुभव किया। उनको दस हजार पुत्र थे। रणरंग में युद्ध करते उनमें केवल पाँच बचे।।27।।

जयध्वज, शूरसेन, ऋषभ, मधु, ऊर्जीत उनका नाम हैं। जयध्वज से ताल जंघ जन्म लिया। उसको सौ पुत्र हुए। तालजंघ के सौ पुत्रों को राजा सगर चक्रवती ने युद्ध में मारा। उनमें ज्येष्ठ का पुत्र वीतहोत्र, मधु का पुत्र वृष्णि।।29।।

मधु को सौ पुत्र थे। वृष्णि उसमें ज्येष्ठ हैं। यह मधु और वृष्णि से यदु कुल का विस्तार हुआ इन कुलों के राजाओं को माधव, वृष्णि और यादव कहते हैं।।30।।

यदु पुत्र क्रोष्टु का पुत्र वृजिवान, उससे वाहि, उससे रुकेषु, उससे चित्ररथ, जन्म लिए।।31।।

चित्ररथ से शशबिन्दु जन्म लिया, उसको महाभोज भी कहते हैं। यह महायोगी और महात्मा था। इसकी सभा में चौदह पंण्डित रत्न थे। वह चक्रवर्ती बना, उसको कोई हरा नही सकता था।।32।।

शशबिन्दु महाराज को दस हजार पत्नियाँ थीं। उसमें प्रत्येक पत्नी में एक लाख के अनुसार कुल सौ करोड़ पुत्रों को पाया।।33।।

उनमे छः अत्यन्त प्रधान थे। उनमे से प्रथम पृथुश्रवस का पुत्र धर्म, धर्म से उशनस। इसने सौ अश्वमेध याग किया।।34।।

उशनस का पुत्र रुचक। उनको पुरुजित, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु, ज्यामघ नाम के पाँच पुत्र हुए।।35।।

ज्यामघ को पुत्र नही हुए। उसकी पत्नी का नाम शैब्या, वह बाँझ थी। पत्नी के भय से राजा दूसरी शादी नही किया। एक बार युद्ध करते समय शत्रु के घर से एक सुन्दरी कन्या को जबरन लाकर अपने रथ में बैठा दिया।।36।।

रथ में आया हुआ उस कन्या को देखते हुए क्रोध से शैब्या अपने पति से पूछी - हे वञ्चक, यह लड़की कौन है। मेरे रथ में इसको क्यों बैठाया है?।।37।।

राजा घबरा गया और भय में कुछ नही बोल पाया। अन्त में बोला यह तेरी बहू बनने वाली है। पति को देखते हुए हँस कर शैब्या बोली - मै तो बाँझ हूँ, मुझको कोई सौत भी नही है, बोलिए यह मेरी बहू कैसे

बनेगी।।38।।

राजा झट से बोला - रानी ऐसा मत बोलो तुम एक पुत्र की माँ बनेगी। तब यह स्त्री तुम्हारी बहू बनेगी। राजा की इस दुर्दशा को देखकर विश्वेदेवताओं ने और पितृओं ने तथास्तु बोले।।39।।

दैवानुग्रह से शैब्या गर्भवती बनी। समय के बाद एक सुन्दर सुकुमार को जन्म दी। उसका नाम विदर्भ था। पिता के आदेश के अनुसार वह उसी कन्या से शादी किया।।40।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

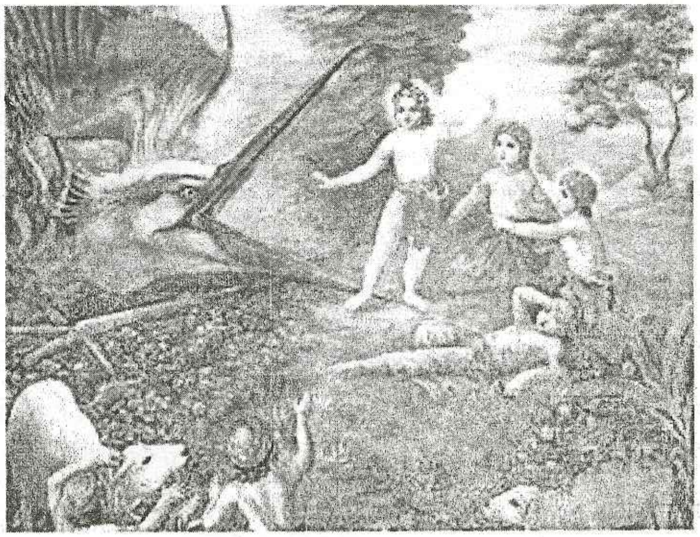

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - इक्कीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- राजा विदर्भ के उस पत्नी में कुश और क्रथ नाम के दो पुत्र हुये। बाद में विदर्भ कुल की समृद्धि देकर वैभव करने वाला रोमपाद नाम के तीसरे पुत्र को भी पाया।।1।।

रोमपाद के पुत्र बभ्रु, बभ्रु से कृति, उससे उशिक, उशिक से चेदि, चेदि से शिशुपालादि जन्म लिये।।2।।

क्रथ के पुत्र कुन्ति, उसका पुत्र बली, बली का पुत्र निर्वृति, उससे दशार्ह, उसका पुत्र व्योम।।3।।

व्योम से जीमूत, उसका पुत्र विकृति, उससे भीमरथ, उससे नवरथ और उससे दशरथ जन्म लिये।।4।।

दशरथ से शकुनि, शकुनि से करंभि, उससे देवरात, उससे देवक्षत्र, उससे मधु उससे कुरुवश उससे अनु जन्म लिये।।5।।

अनु के पुत्र पुरुहोत्र, उससे आयु, आयु से सात्वत जन्म लिये। सात्वत को भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अंधक और महाभोज नाम के सात पुत्र हुये। भजमान को एक पत्नी मे निम्लोचि, किंकिण और दृष्टि नाम के तीन पुत्र हुये, दूसरी पत्नी में शताजित, सहस्राजित, अयुताजित नाम के तीन पुत्र हुये।।6,7,8,।।

देवावृध के पुत्र बभ्रु। ये पिता पुत्र के कीर्ति की गाथा दोनो लोकों से की गई है। भागवत कहता है कि इन पिता पुत्रों की कीर्ति दूर से जैसे सुनते हैं वैसे समीप में भी देखते हैं। मनुष्यों में बभ्रु श्रेष्ठ है, देवाधृत देवताओं के समान है।।9।।

दूर से बहुत सुन सकते हैं। समीप जाने से वहाँ कुछ नही रहता। इन पिता पुत्र के बारे में वैसा नही है। उनके समीप जाने के बाद भी उनकी कीर्ति यथा रीति है।

छः हजार तिहत्तर लोग बभ्रु और देवावृध के उपदेश से मोक्ष पाये ।।10।।

महाभोज बड़ा धर्मात्मा था।उसके वंश के लोगों को भोज बोलते हैं ।।11।।

वृष्णि के पुत्र सुमित्र और युधाजित। सुमित्र का पुत्र शिनि, शिनि का पुत्र अनमित्र, उससे निम्न जन्म लिया।।12।।

निम्न के पुत्र सत्राजित और प्रसेनजित। सत्राजित श्री कृष्ण की पत्नी सत्यभामा के पिता। अनमित्र के दूसरे पुत्र शिनि से सत्यक जन्म लिया।।13।।

सत्यक के पुत्र सात्यकि, उसका नाम युयुधान भी था।उसका पुत्र जय, जय से कुणि, उससे युगंधर पुत्र हुये। अनमित्र के और एक पुत्र पृश्नि।।14।।

इस प्रकार अनमित्र को निम्न,शिनि,पृश्नि नाम के तीन पुत्र हुये।

पृश्नि के दो पुत्र थे श्वफल्क और चित्ररथ नाम के।श्वफल्क से गांदिनि नाम की पत्नी में अक्रूर और अन्य बारह पुत्र हुये।।15।।

अक्रूर के उन बारह भाईयों के नाम हैं - आसंघ, सारमेय, मृदूर, मृदुवित, गिरि, धर्म, विदृष्टकर्म, क्षेत्रोपेक्ष, अरिमर्दन, शत्रुधन, गंधमोद, प्रतिबाहु। इनको सुसारा नाम की एक बहन थी।अक्रूर को दो पुत्र थे।।16,17।।

उनका नाम था देववान और उपदेव।चित्ररथ के पुत्र पृथु,विपृथु इत्यादि बहुत पुत्र हुये।ये सारे सात्वत पुत्र वृष्णि के वंश की कीर्ति को बढ़ाये ।।18।।

सात्वत पुत्र अंधक के पुत्र हैं कुकुर,भजमान,शुचि और कंबलबर्हिष। कुकुर के पुत्र धृष्णु,उसका पुत्र विलोम ।।19।।

विलोम से कपोतरोम, उसका पुत्र अनु।तुम्बुर गन्धर्व उसके मित्र थे। अनु के पुत्र दुदुंभि, उसका पुत्र परिद्योत, उसका पुत्र पुनर्वसु।।20।।

पुनर्वसु के दो पुत्र आहुक और आहुकि। आहुक के दो पुत्र देवक और उग्रसेन। देवक को चार पुत्र हुये।।21।।

उनके नाम हैं- देववान, उपदेव, सुदेव और देववर्धन। इनके धृतदेवा इत्यादि सात बहन थीं।।22।।

उनके नाम हैं- धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी। इन सातों से वसुदेव ने शादी किया।।23।।

कंस, सुनाम, न्यग्रोध, कंक, शंकु,सुभ्रू, राष्ट्रपाल, अब्दसृष्टि और तुष्टिमान ये सारे उग्रसेन के पुत्र थे।।24।।

कंसा, कंसवती, कंका, सुरभू, राष्ट्रपालिका ये सारे उग्रसेन की पुत्री। ये वसुदेव के भाइयों के साथ शादी किये।।25।।

अंधक पुत्र भजमान से विदूरथ जन्म लिया। विदूरथ से शूर जन्म लिया। यह वसुदेव के पिता से अलग हैं। इससे शिनि जन्म लिया,उससे स्वयंभोज,उससे हृदिक जन्म लिया ।।26।।

देवबाहु, शतधनु, कृतवर्म और देवमीढ़ ये चार हृदिक के पुत्र। इनमे देवमीढ़ का पुत्र शूर। इसकी पत्नी का नाम मारिषा।।27।।

शूर मारिषा में पाप रहित दस पुत्रों को पाया। वे हैं- वसुदेव, देवभाग, देवश्रवस, आनक, सृंजय, शामक, कंक, अनीक, वत्सक, वृक। इनमे वसुदेव के जन्मकाल मे देवदुंदुभि और आनक का आवाज हुये। श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव इसका नाम आनकदुंदुभि यह भी पड़ा। इन दस शूर पुत्रों को पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा, राजाधिदेवी ये पाँच भगिनी थे। इसमें पहली पुत्री पृथा को शूर राजा के मित्र कुन्तिभोज को बच्चे न होने के कारण दत्तक दिया।।28,29,30,31।।

पृथा दुर्वासा ऋषि की सेवा करते हुये उसको संतुष्ट कर देवताओं की आवाहन करने का मंत्रोपदेश पा ली। मंत्र की शक्ति को परीक्षा करने के लिये स्नान करके शुचिर्भूत होकर मंत्र से सूर्य का आवाहन की।।32।।

भगवान सूर्यदेव आ गये।उसको देखकर मन में आश्चर्य चकित होकर कुन्ती बोली- भगवान क्षमा करें। मैं केवल मंत्र शक्ति की परीक्षा करने के लिए आपको बुलाई। कृपा करके आप वापस चले जायें।।33।।

इससे सूर्य बोले - देव का दर्शन व्यर्थ नही होता। मैं तुमको एक पुत्र को देता हूँ। तुम्हारी कन्यात्व नष्ट नही होगा।।34।।

इस प्रकार कहते हुये सूर्य उसमे गर्भाधान करते हुये अंतरिक्ष को चले गये। तब दूसरे सूर्य के समान उससे एक पुत्र जन्म लिया।।35।।

लोकापवाद के भय से कुन्ती उस शिशु को नदी के पानी में पेटी में रखकर बहा दी। बाद मे महापराक्रमी तुम्हारे बाबा के पिता पाण्डु राज ने पृथा से शादी किया।।36।।

श्रुतदेवी को करूषाधिपति वृद्धशर्म व्याह लिया। उसमे सनकादि मुनि से शाप पाया हुआ विजय रावण होने के बाद दंतवक्र नाम से जन्म लिया।।37।।

केकय देश के अधिपति दृष्टकेतु श्रुतकीर्ति से शादी किया। उसको संतर्दन इत्यादि पाँच पुत्र हुये। उनको कैकय भी कहते हैं।।38।।

राजाधिदेवी में अवंति देश के अधिपति जयत्सेन, विंद, अनुविंद नाम के पुत्रों को पाया। श्रुतश्रवा से चेदिराज के दमघोष शादी कर लिया।।39।।

इन दोनो के पुत्र शिशुपाल इसके जन्म के बारे मे सातवाँ स्कन्ध मे कहे हैं। वसुदेव का भाई देवभाग और उसकी पत्नी कंसा इन दोनों चित्रकेतु और बृहद्बल नाम के दो पुत्रों को पाये।।40।।

वसुदेव के भाई देवश्रव से कंसवती मे सुवीर और इषुमान जन्म लिये। आनक से कंका में

सत्यजित, पुरजित जन्म लिये।।41।।

सृंजय से राष्ट्रपाली में वृष और दुर्मर्षण नाम के पुत्र जन्म लिये। श्यामक से सूरभूमि में हरिकेश और हिरण्याक्ष जन्म पाये।।42।।

वत्सक मित्रकेशी नाम की अप्सरा में वृक इत्यादि पुत्रों को उत्पन्न किया। वृक ने ऊर्वशी में तक्ष, पुष्कर और शाल इत्यादि पुत्रों को पाया।।43।।

अनिक ने सुदामिनी में सुमित्र, अर्जुन, बाण इत्यादि पुत्रों को पाया। कंक कर्णिका में ऋतुधाम, जय नाम के पुत्रों को पाया।।44।।

आनकदुंदुभि (वसुदेव) को पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला, देवकी इत्यादि बहुत पत्नियाँ थीं।।45।।

वह बलराम, गद, सारण, दुर्मद, विपुल और ध्रुव नाम के पुत्रों को रोहिणी में उत्पन्न किया।।46।।

सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद,भद्र, भूत इत्यादि बारह पुत्र पौरवी में जन्म लिये।।47।।

नंद, उपनंद, कृतक, शूर इत्यादि पुत्र वसुदेव से मदिरा नाम की पत्नी में जन्म लिये।कोसल देश के राज कुमारी भद्रा में केशी नाम के एक कुलदीपक पुत्र जन्म लिया।।48।।

रोचना नाम के पत्नी में हस्त, हेमांगद नाम के पुत्र जन्म लिये। इला नाम के पत्नी में पुरुवल्क इत्यादि मुख्य यादव जन्म लिये।।49।।

धृतदेवा में वसुदेव से त्रिपृष्ठ जन्म लिया, शान्तिदेवी में प्रश्रम, प्रश्रित इत्यादि जन्म लिये।।50।।

उपदेवी में कल्प, वर्ष इत्यादि दस पुत्र जन्म लिये। बाद में वे राजा बने। वसु हंस सुधन्व इत्यादि छः पुत्र श्रीदेवी में जन्म लिये।।51।।

देवरक्षिता में गद इत्यादि नव पुत्र जन्म लिये। सहदेवी में आठ पुत्र जन्म लिये।।52।।

धर्मनाम वसु अपनी पत्नी में अष्टावसु को जैसे जन्म दिया वैसे वसुदेव अपनी पत्नी सहदेवा से पुरु, विश्रुत इत्यादि आठ पुत्रों को पाया। वैसे देवकी से भी आठ पुत्रों को पाया।।53।।

कीर्तिमान, शुशेण, भद्रसेन, ऋजु, संमर्दन, भद्र और शेषावतारी संकर्षण ये सात जन्म लिये।।54।।

आठवाँ पुत्र वसुदेव और देवकी में स्वयं भगवान श्रीहरि जन्म लिये। तुम्हारी दादी सुभद्रा भी उनकी बहन होकर जन्म ली।।55।।

जब-जब धर्म का नाश होता है और अधर्म बढ़ता है तब सर्व शक्त भगवान श्री हरि स्वयं इस लोक में दृश्यमान होते हैं।।56।।

हे राजा सर्व शक्त सर्वज्ञ भगवान के अवतार के लिये और लीला के लिए उनकी इच्छा के

बिना और कारण नही रहता।।57।।

भगवान की इच्छा के अनुसार इस ब्रह्माण्ड में जीव जगत की उत्पत्ति स्थिति लय होते हैं। उन्ही के अनुग्रह से संसार की निवृत्ति और स्वरुपानंद का आविर्भाव होता है।।58।।

हे राजा, वेषधारी असुर लोग असंख्य अक्षोहिणी सैन्य बल से भूमि का आक्रमण करने के कारण भगवान श्री हरि भूभार के हरण के लिए अवतार लिये।।59।।

तब मधुसूदन भगवान अपने भाई बलराम से युक्त होकर ब्रह्मादि लोक के कल्पना में भी न रहने वाले लीलाओं को करते हुये भक्तों का मन मोहन किये।।60।।

कलियुग में जन्म लेने वाले भक्तों को अनुग्रह करने के लिये उनके दुःख शोक और अज्ञान को दूर करने वाला अपने पुण्यकर कीर्ति को जगत में प्रसारित किये।।61।।

सज्जनों के श्रवणेन्द्रियों को अमृत समान रहने वाले अपार लीला वाले इस समुद्र से एक बार क्यों न हो कान नाम के हाथों में लेकर जो पान करता है उसका संसार के सारे दोष नाश हो जाते हैं।।62।।

भोज, वृष्णि, अंधक, मधु, शूरसेन, दशार्ह, कुरु, सृंजय, पाण्डु ये वंश के सारे लोग सदाकाल श्रीकृष्ण की लीलाओं की गाथा गाते रहे।।63।।

प्यार से भरा हुआ दृष्टिक्षेप, हसन्मुख, मधुर मीठी बाते, पराक्रम लीलाएँ सर्वांग सुन्दर रुप से भगवान देखने वाले आँखों को त्योहार बनाये।।64।।

श्री कृष्ण के मुख, मकर कुण्डल से दिखने वाले सुन्दर कान, आइना जैसे दिखने वाले सुन्दर गाल, सदाकाल हँसता हुआ मुख ऐसे सुन्दर रूप वाला श्रीहरि का संग सदाकाल संतोष देने वाला था। उनके रूप को नारियों ने अपनी आँखों से पीना चाहते थे। कितनी बार पिये तो भी तृप्ति न पाते हुये अपलक नेत्रों (न मूंदने वाले आँख) को न देने के कारण ब्रह्मा जी को कोसते थे।।65।।

श्री कृष्ण के जन्म लेते ही पिता के घर से गोकुल चले। वहाँ बढ़ते-बढ़ते हजारों शत्रुओं का नाश किये, हजारों पत्नियों से लाखों पुत्रों को पाते हुये यज्ञ करते हुये यज्ञ में अपनी आराधना को स्वयं ही करते हुये, स्वयं उपदेश दिये हुये वेद मार्ग के अनुष्ठान करके दिखाने के लिए।।66।।

भूभार हरण करने के लिये पाण्डव कौरवों के अंतःकलह के निमित दुष्टराजाओं को रणरंग में दर्शन मात्र से नाश करते हुये अर्जुन को जय देते हुये उद्धव को परतत्व का प्रबोधन करते हुये भगवान श्रीहरि इस भूमि में अपने एक रूप को रखते हुये परमधाम को चले गये।।67।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध समाप्त होता है।।

श्री राम श्री

श्रीमध्वतत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

हमारे प्रकाशित ग्रन्थ

क्र0.	ग्रन्थनाम	मौल्य
1.	श्रीमद्भागवद्गीता प्रतिश्लोकका हिन्दी भावानुवाद	70.00
2.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् प्रथम, द्वितीय, तृतिय स्कंधाः भाषानुवादः	100.00
3.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् चतुर्थ स्कंधः भाषानुवादः	60.00
4.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् पंचम एवं षष्ट स्कंधौ भाषानुवादः	60.00
5.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् सप्तम स्कंधः भाषानुवादः	60.00
6.	श्री रामायणपात्रचित्रणम् एवम् नीतिकथा	50.00

पुस्तक प्राप्ति स्थान

1. श्री मध्वमठ
   63 मीरागलि, दारागंज इलाहाबाद

2. तत्व संशोधन संसत् श्री हृषीकेशतीर्थ संस्थानम्, श्री पलिमारूमठ, रथ बीदि उडुपि कर्नाटक

3. श्री स्वामी सीता वल्लभ शरण
   श्री मध्वमठ बड़ा अखाड़ा मैहर (म. प्र.)

4. श्री स्वामी ललित मोहन ओझा
   प्रेमपीठ मध्वमठ तिजारा जिला अलवार, राजस्थान

5. डॉ.रवि,
   1st फ्लोवर, नीयर लक्ष्मी भगवन, सेन्ट्रल
   बाजार रोड़, नागपूर,

6. श्री G. R. Kulakarni
   2041 B wing Mahesh Tower
   Charkop, Sector 2, Kambivali (W)
   Mumbai 67.
   Ph - 9867251783

गंगावतरण

पता : मध्वमठ 63, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद 211 006
फोन नं0 : 0532-2504587

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

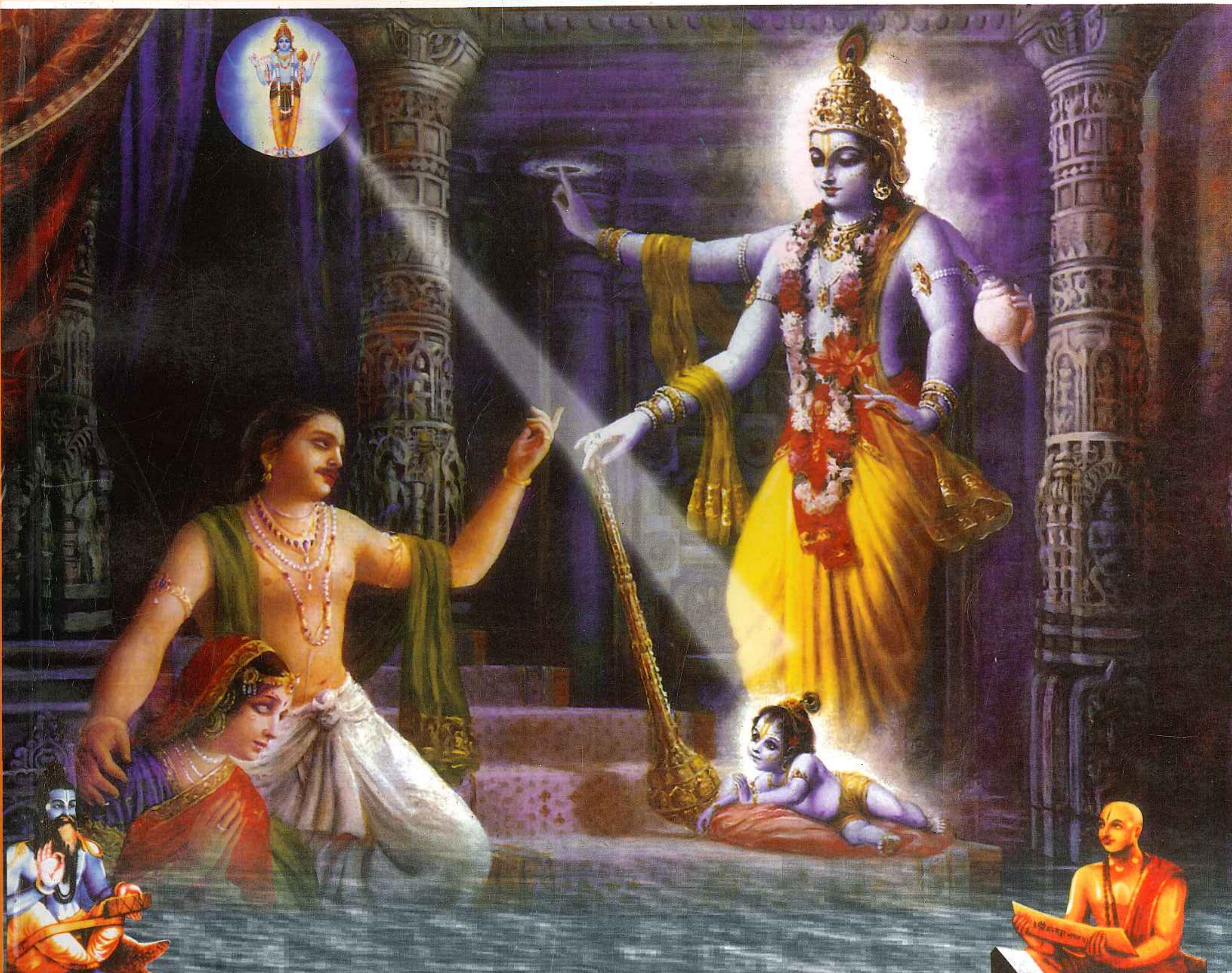

श्रीकृष्णावतार

दशम स्कन्धः भाषानुवादः

पूर्वार्द्ध अध्याय १ से २६ तक

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण

वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री विजयध्वज टीकानुसारी

श्री मद्भागवत महापुराणम्

दशम् स्कंधः

(भाषानुवादः)

अनुवादक

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

प्रकाशक

तत्व संशोधन संसत्

जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

श्रीमद्भागवत महापुराणम् दशम् स्कन्धः

लेखक-

श्री 1008 श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी

प्रकाशक

तत्व संशोधन संसत्

जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम मुद्रण 1000 प्रतियाँ

सहयोग राशि

पुस्तकालय संस्करण 150 रुपये

सामान्य संस्करण 100 रुपये

13-11-2011

अक्षर विन्यास

श्री प्राणेश कुमार शुक्ल

मुद्रक -

श्री वैष्णव प्रेस

मोरी, दारागंज, इलाहाबाद

श्री राम श्री

अनुग्रह संदेश

श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य मूल महासंस्थान श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी उडुपि

हमारे विशेष अभिमान पात्र **श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी** द्वारा किए हुए आठ शास्त्र ग्रंथों का हिन्दी भाषानुवाद को देखकर हमें सन्तोष हुआ है। श्री स्वामी जी अपने पूर्वाश्रम में अनेक वर्षों से सामजिक सेवा में रचनात्मक कार्यों को किये हैं। हमारे साथ अकाल, भूकम्प, बाढ़ इत्यादि कामों में सम्पूर्ण समर्पण भाव से काम किए हैं। अब अपने अस्सी वर्ष के समय में आठ शास्त्र ग्रन्थों का अनुवाद और प्रकाशन का स्तुत्य काम अपने हाथ में लिए हैं। मध्व तत्वज्ञान को अभ्यास करने के जिज्ञासुओं को अनुकूल होने वाली यह एक विशिष्ट सेवा किए हैं।

वे अपने सत्तर वर्ष की आयु में कन्नड़ भाषियों के अनुग्रह रूप में अनेक शास्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किए थे। अब प्रयाग में रहकर मध्व सिद्धान्त का प्रसार कार्य करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा मध्व तत्वज्ञान को हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचार करने का महान कार्य कर रहे हैं।

श्री कृष्ण, श्री वेद व्यास जी, अस्मदुपास्य श्री रामविट्ठल जी इनको विशेष अनुग्रह करते हुए इनकी सेवा विस्तार रूप से सारी जनता को मिले यही हमारा आशीर्वाद है।

इति नारायण स्मरण

श्री श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी महाराज
पेजावर मठ, उडुपि

अनुग्रह संदेश
श्री राम श्री

श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य मूल महा संस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी, उडुपी

आठ सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरू मध्वाचार्य जी ने मध्व सिद्धान्त का प्रचार प्रसार बहुत पैमाने से आरम्भ किया। इस प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए उडुपी में आठ पीठ और उत्तर कर्नाटक में एक पीठ की स्थापना किए। श्री जयतीर्थ मुनि, श्री श्रीपाद राज स्वामी, श्री व्यासराजमहामुनि, श्री वादिराजयोगी, श्री रघूत्तम स्वामी जी, श्री राघवेन्द्र तीर्थ जी इत्यादि महामहिमों ने उस सिद्धान्त को और विकसित किए। इसके बारे में यह श्लोक प्रसिद्ध है।

व्यासेन व्युप्तबीजः श्रृतिभुवि भगवत्पाद लब्धांकुरश्रीः।
प्रत्यैरीषत् प्रभिन्नोऽजनिजयमुनिना सम्यगुद्धिन्न शाखाः।।
मौनीशव्यासराजात् उदित किसलयः पुष्पितोयं जयीन्द्रात्।
अद्य श्री राघवेन्द्रात् विलसति फलितो मध्व सिद्धान्तशाखे।।

हमारे दीक्षा शिक्षा गुरु युगपुरुष श्री श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी उत्तर भारत में श्री मध्व तत्वज्ञान को प्रसार करने हेतु **बीस वर्ष** पहले श्री प्रयाग क्षेत्र में श्री मध्व पीठ की स्थापना की है। उन दिनों से प्रयाग का हमारा मठ मध्वसिद्धान्त का प्रसार करता आ रहा है।

श्री वेदव्यास जी की इस सुसंस्कृत भागवत को हमारे शिष्य श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी ने समर्थ सुन्दर और सबके मन को मिले ऐसी सुन्दर हिन्दी में अनुवाद कर साधक सज्जनों का परमोपकार किए हैं। कन्नड़, संस्कृत न समझने वाले हिन्दी भाषी साधकों को जगद्गुरू मध्वाचार्य जी के शास्त्र का परिचय कराने वाले इस कार्य को हम अपने हृदय भर कर अभिनन्दन करते हैं। अन्य सारे कार्यों को बाजू में रखते हुए **तद्धितप - तद्धितप** के जैसे दिन-रात किया हुआ यह शास्त्र सेवा अनुपम है। हमारे गुरु श्री श्री 1008 विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी से स्थापित तत्व संशोधन संसत से मुद्रण किया गया है। यह हरि गुरु का अनुग्रह प्राप्त करने वाला है। उत्तर भारत के हिन्दी भाषी लोग इस ग्रन्थ को पढ़ें और अपने बन्धु बान्धवों से पढ़ाएँ तो यह प्रयत्न सार्थक हो जाता है। इनसे भागवत के अन्य भाग भी जल्दी से जल्दी अनुवादित होकर साधकों के हाथ में विराजमान हो, यही हमारी अपेक्षा है। श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य जी से प्रतिष्ठापित श्री कृष्ण, श्री राम जी के अनुग्रह से हम अपने शिष्य को शुभ कामना करते हैं।

श्री श्री 1008 श्री विद्याधीशतीर्थ
स्वामी जी महाराज

अनुग्रह संदेश

श्री दिग्विजय रामो विजयते

श्री मद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

उत्तरादि मठ

भगवान के गुणों का चिन्तन करना प्रत्येक आदमी का मुख्य कर्तव्य है। अनन्त गुणपरिपूर्ण भगवान की महिमा को जानने के लिए सब को भागवत के प्रकाश की आवश्यकता है। भागवत के पाठ प्रवचन श्रवण सारे बहुत पुण्य देने वाले हैं। ऐसे श्रेष्ठ महाभागवत पुराण को वैष्ण सिद्धान्त के अनुसार श्री श्री विद्यात्मतीर्थ जी ने हिन्दी में सब के मन मोहित करने वाले उत्कृष्ट व्याख्यान किए हैं। प्रयाग के त्रिवेणी तट पर रहते हुए अपनी स्वयं साधना करते हुए उत्तर भारत में वैष्णव सिद्धान्त का प्रचार प्रसार कार्य करते हुए अफ्ने को समर्पित किए हैं। वे जो इस प्रयास में रत हैं उसको सहकार देते हुए श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी उन्हें बल दे रहे हैं यह संतोष का विषय है।

मध्व मत का प्रसार समग्र भारत में उज्वल रीति से होना चाहिए। उत्तर भारत के परिसर में यह प्रसार कार्य करने वाले श्री श्री विद्याधीश तीर्थ और श्री श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी का हम अभिनन्दन करते हैं।

इसी प्रकार श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी और अनेक कृति और व्याख्यान करते हुए तत्वप्रचार कार्य को इससे भी अधिक रूप से करें इस प्रकार हम अपने उपास्य मूर्ति श्री दिग्विजय राम और वेदव्यास जी से प्रार्थना करते हैं।

बैगलूरु

श्री सत्यात्म तीर्थ स्वामिनः
उत्तरादि मठ

श्रीमद् अच्युत प्रेक्षाचार्य संस्थानम्

भीम सेतु मुनिवरेन्द्रमठ भीमनकट्टे

अनुग्रह संदेश

|| [illegible] ||

SRIMAD ACHUTYA PREKSHACHARYA SAMSTHANAM

BHIMASETHU MUNIVRUNDA MUTT, BHIMANAKATTE.

SRI 1008 SRI SRI. RAGHUMANYATIRTHA SWAMIJI
PEETHADHIPATHI

Doorvasapuram Post, Taluk: Teerthahalli, District: Shimoga. Pincode: 577432
Phone: [illegible], Mobile: [illegible]. Email: [illegible]

Branch: BHIMANAKATTE SRI RAGHAVENDRA SWAMY MUTT
No.10, 6th Block, Doddabommasandra, Vidyaranyapura Main Road, Bangalore : 560097. Phone: 080-23483471.

[illegible]

[illegible]

शुभ कामना

श्री निम्बार्को जयति

श्रीमद् गोपीजनवल्लभाय नमः

अनन्त श्री जगद्गुरु निम्बार्काचार्य

गोस्वामी श्री विष्णुकान्त जी महाराज, पीठाधिपति

श्री निम्बार्काचार्य पीठ, 18/12, महाजनी टोला प्रयाग - 211 003 फोन : 2404298

श्री निम्बार्क प्रभास्थली व्यास गद्दी नैमिषारण्य (उ० प्र०)

कर्नाटक के अन्तर्गत उऊपी माध्व पीठ प्रयाग के अधिपति श्री 1008 श्री स्वामी विद्यात्म तीर्थ जी महराज के लोक भाषा में अनुवादित भागवत के ग्रन्थ और अन्य भगवद्गीतादि ग्रन्थ देखने को मिले। इक्यासी वर्ष की अवस्था में अदम्य स्फूर्ति, वैदुष्य एवं सार्थक जीवन के धनी महा पुरुष अभिनन्दनीय हैं। कई अवसर में हम लोग एक रहे हैं।

इस अवस्था में भी कई ग्रन्थों के लेखन, सामाजिक एवं पारमार्थिक कार्यों को एक युवक की भाति करते हुए संलग्न हैं।

आप का जीवन अमृतत्व की ओर अग्रसित है आप सकल कुशल पात्र हैं।

भगवान श्री गोपीजन बल्लभ देव जी से हम आपके दीर्घ जीवन की कामना करते हैं।

आचार्य विष्णु कान्त गोस्वामी
इलाहाबाद

प्रस्तावना

हमारे गुरु जी पूर्व प्रयाग पीठाधिपति श्री 1008 श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी ने लगभग दस वर्ष पूर्व भागवत के पहले तीन स्कन्धों का अनुवाद कर प्रकाशित किए थे। उनका महानिर्वाण आकस्मिक रीति से होने के कारण वह कार्य वहीं अवरुद्ध हो गया था।

हमारे दीक्षा गुरु उडुपि श्री पलिमारु मठ के पीठाधिपति जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महराज जी ने उस अवरुद्ध कार्य का पुनरारम्भ करने का आदेश दिया। मैं अल्प शक्ति और अल्प ज्ञान वाला हूँ। किन्तु अपने गुरुवर्य की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मैं यह कार्य कर रहा हूँ।

विद्यावतां भागवते परीक्षा यह पूर्णत: सत्य है। श्री गुरु जी का अनुग्रह ही मुझसे यह कार्य करवा रहा है। दक्षिण भारत में जन्म लेने के कारण मुझे अच्छी हिन्दी नही आती। पण्डित न होने के कारण शास्त्र का गहन और विस्तृत ज्ञान प्राप्त नही है। केवल गुरु का अनुग्रह ही मुझे प्रेरणा दें रहा है। पाठकों द्वारा निर्दिष्ट त्रुटियों को अगले अंक में सुधारने का प्रयास करेंगे।

दशम् स्कन्ध भागवत का कीरीट प्राय है। वे व्यास जी इसको भक्ति रस से पूर्ण रूप से भिगो दिए हैं। कई कथाकार इसको ऊपर ऊपर से पढ़ते हुए अपने गलत अर्थ प्रसार किए हैं। इस स्कन्ध में भक्ति को छोड़ कर काम इत्यादि अन्य विचार करना गलत है। मूल भागवत में दशम स्कन्ध में पूर्वार्ध और उत्तरार्ध इस प्रकार दो भाग कर चुके हैं। दोनों भाग सौ - सौ अध्यायों से भर कर फल पुष्प से भरा हुआ वृक्ष के समान अपने बोझ से बहुत झुके हैं। पाठक की सुविधा के लिए हम पूर्वार्ध में भी और भाग करना चाहते हैं। उसमें से प्रथम भाग अब प्रस्तुत है। इसका विस्तार अध्याय एक से अध्याय छब्बीस तक सीमित है।

विस्तृत रूप से जानकारी देने के उद्देश्य से हमने क्रम में भी थोड़ा सा बदलाव किया है। पहले के समान श्लोकार्थ मोटा अक्षरों में दिया गया है, अर्थ थोड़ा सा छोटे अक्षरों में दिया गया है। इस भाग में विशेषार्थ के लिए और थोड़ा अवकाश किया है। प्रत्येक श्लोक का नही तो जहाँ आवश्यक है वहाँ विशेषार्थ, उससे भी छोटे अक्षरों में देने का प्रयास किया है। आशा है कि यह पाठकों को सुविधा जनक होगा।

तीन सौ साठ वर्ष के पहले मंत्रालय के श्री राघवेन्द्र स्वामी जी ने अनेक शास्त्र ग्रथों की रचना की वे थोड़े श्लोको में दशम स्कन्ध की श्री कृष्ण की कथा को बता दिए हैं। रोज इन श्लोकों के पाठ करने से नित्य दशम स्कन्ध पाठ का पुण्य मिलता है। हम इन श्लोकों को अर्थ के साथ यहाँ दिए हैं।

बड़े लोगों का कहना है कि नित्य पाठ करते समय नाम रूप गुण इन तीनों की अवश्यकता है। हमारे पाठकों को यह तीनों लाभ प्राप्त हो इस दृष्टि से इन श्लोकों के पाठ करते समय भगवान के **नाम** फोटो में भगवान के **रूप,** श्लोक में और चित्र की सहायता से कथा को याद करते हुए भगवान का **गुण** इन तीनों का चिन्तन एक साथ मिले। ग्रन्थ के प्रारम्भ में फोटों को अर्थ सहित दिया हैं। आशा रखतें है कि पाठक गण नित्य पाठ कर के भगवान का प्रीत पात्र बने।

हमारे परम गुरु श्री विद्यामान्य जी से संस्थापित और हमारे गुरु जी श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महराज से पोषित श्री तत्व संशोधन संसत् ने इस ग्रन्थ प्रकाशन की जिम्मेदारी ले लिए हैं। तत्व संशोधन संसत् दक्षिण भारत में एक प्रसिद्ध संशोधन और प्रकाशन की बड़ी संस्था है। बहुत श्रेष्ठ विद्वान और पंडित संशोधकों के ग्रन्थ यहाँ से प्रकाशित हुए हैं। मेरे जैसे अल्प बुद्धि वाले इस छोटी सी कृति को वे प्रकाशित कर रहे हैं, यह मेरा बड़ा भाग्य है। इसके लिए मैं अपने श्री गुरु जी को शत शत नमन करता हूँ।

पंजाब के जालंधर में इस ग्रन्थ का लोकार्पण हम अपने प्रिय शिष्य श्री ध्रुवकुमार खेरा जीके आग्रह के कारण और भारत के दस दिशाओं में भागवत का प्रसार हो, प्रत्येक व्यक्ति श्री कृष्ण का भक्त हो, इस उद्देश्य से इस ग्रन्थ का लोकार्पण जालंधर में कर रहे हैं। यह हमे बहुत संतोष दे रहा है।

इस ग्रन्थ के लिए आवश्यक फोटो के लिए हमे बहुत प्रयास करना पड़ा। वैसा तो श्री कृष्ण के लाखों फोटों प्राप्त हैं, तो भी कथा में आए हुए संगग को संगति देने वाला फोटो मिलने में कष्ट हुआ। इस समय श्री रामचन्द्र सिंह जी और ईश्वर शरण श्रीवास्तव हमें आवश्यक फोटो देकर सहायता किए है। हम यहाँ उनकी याद करते हैं।

इस ग्रन्थ के अक्षर विन्यास किए हुए श्री प्राणेश कुमार शुक्ला, अक्षर संशोधन किए हुए श्री गिरधारी लाल मिश्रा और मुद्रण किए श्री वैष्णव प्रेस के सारे कर्मचारियों के सहयोग का स्मरण हम करते हैं। सूज्ञ सद्भक्त इस ग्रन्थ का सदुपयोग करें यही आकांक्षा है। **इति शम्**

जालंधर पंजाब
13-11-2011

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज

दशवाँ स्कन्ध की विषय सूची

क्र0	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	अध्याय एक	भू-भार हरण के लिए देवकी के गर्भ से भगवान का अवतार लेना।	01-09
2.	अध्याय दो	कंस का देवकी को मारना। देवकी-वसुदेव को जेल में रखा। प्रथम पुत्र को मारा।	10-11
3.	अध्याय तीन	छः पुत्रों को कंस ने मार डाला सप्तम बलराम बच गये। देवकी अष्टम् गर्भ धारणा की, ब्रह्मादि देवताओं से गर्भ स्तुति।	12-20
4.	अध्याय चार	श्री कृष्ण का जन्म, उनको नन्द के पास पहुँचाए	21-30
5.	अध्याय पाँच	दुर्गा-जनन, शत्रु अलग पल रहा है, सारे बच्चों को मारने का निर्णय	31-36
6.	अध्याय छः	नन्द वशुदेव की भेंट, जल्दी वृन्दावन जाने के लिए आग्रह	37-40
7.	अध्याय सात	पूतना संहार, गोपालकों का हर्ष।	41-47
8	अध्याय आंठ	शंकटासुर संहार, तृणावर्त संहार, मुख में विश्व रूप दर्शन।	48-52
9.	अध्याय नौ	गर्ग मुनि से राम कृष्ण का नाम करण	53-62
10.	अध्याय दस	दही भाण्ड फोड़ने से कृष्ण को ओखली से बाँधना।	63-65
11.	अध्याय ग्यारह	यमळार्जुन विमोचन	66-71
12.	अध्याय बारह	वृन्दावन गमन, वत्सासुर हनन, बकासुर भंजन	72-79
13.	अध्याय तेरह	धेनुकासुर हनन	80-85
14.	अध्याय चौदह	कालिया मर्दन।	86-95
15.	अध्याय पन्द्रह	कालियावृत्तान्त। दावानल भक्षण।	96-98
16.	अध्याय सोलह	प्रलम्बासुर वध।	99-102
17.	अध्याय सत्रह	और एक बार दावानल भक्षण।	103-104
18.	अध्याय अठ्ठारह	ऋतुओं का वर्णन।	105-109
19.	अध्याय उन्नीस	श्री कृष्ण का वेणु गान। जन-मन, पशु पक्षी भी आकर्षित।	110-113
20.	अध्याय बीस	गोपिका वस्त्रापहरण।	114-120
21.	अध्याय इक्कीस	विप्र पत्नियों से अन्न निवेदन।	121-126
22.	अध्याय बाइस	इन्द्र यज्ञ भंग।	127-130
23.	अध्याय तेइस	गोवर्धनोद्धार।	131-134
24.	अध्याय चौबीस	श्री कृष्ण साक्षात नारायण, गोपालकों की स्तुति।	135-137
25.	अध्याय पचीस	इन्द्र से क्षमा प्रार्थना।	138-141
26.	अध्याय छब्बीस	वरुण से नन्द गोप का मोचन।	142-144

श्री राम श्री

श्रीमध्वतत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

हमारे प्रकाशित ग्रन्थ

क्र0.	ग्रन्थनाम	मौल्य
1.	श्रीमद्भगवद्गीता प्रतिश्लोक का हिन्दी भावानुवाद	70.00
2.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्कंधा: भाषानुवाद:	100.00
3.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् चतुर्थ स्कंध: भाषानुवाद:	60.00
4.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् पंचम एवं षष्ठ स्कंधौ भाषानुवाद:	60.00
5.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् सप्तम् स्कंध: भाषानुवाद:	60.00
6.	श्रीमद्भागवत अष्टम् स्कन्ध: भाषानुवद:	60.00
7.	श्रीमद्भागवत नवम्स्कंध: भाषानुवाद:	60.00
8.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्ध: पूर्वार्ध अध्याय छब्बीस तक	100.00
9.	श्री रामायणपात्र चित्रणम् एवम् नीतिकथा	50.00

पुस्तक प्राप्ति स्थान

1. श्री मध्वमठ
   63 मीरागलि, दारागंज इलाहाबाद
2. तत्व संशोधन संसत् श्री हृषीकेशतीर्थ संस्थानम्, श्री पलिमारूमठ, रथ बीदि उडुपि कर्नाटक
3. श्री स्वामी सीता वल्लभ शरण
   श्री मध्वमठ बड़ा अखाड़ा मैहर (म. प्र.)
4. श्री स्वामी ललित मोहन ओझा
   प्रेमपीठ मध्वमठ तिजारा जिला अलवर, राजस्थान
5. डाँ रवि,
   1st फ्लोवर, नीयर लक्ष्मी भगवन, सेन्ट्रल बाजार रोड़, नागपूर,
6. श्री G. R. Kulakarni
   2041 B wing Mahesh Tower
   Charkop, Sector 2, Kambivali (W)
   Mumbai 67.
   Ph - 9867251783

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी

यह एक अनोखी स्तोत्र है जिसमें **श्री राघवेन्द्र स्वामी जी** ने केवल थोड़े ही श्लोकों में दशम स्कन्ध की श्री कृष्ण कथा को जोड़ दिए हैं। हमारे गुरू जी उडुपि पीठाधीश्वर श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य पीठाधिपति **श्री 1008श्री विध्याधीश तीर्थ स्वामी जी** इन श्लोको को सरल भाषा में अनुवाद किए है। हम इन दोनों को मिलाते हुए साथ साथ तीस रंगीन चित्रों में इन अध्यायों की कथा को फोटों के द्वारा आप के सामने प्रस्तुत करते है। शास्त्र जानने वाले कहते है कि केवल नाम स्मरण करने के बजाय भगवान का नाम रूप गुण चिन्तन करना श्रेष्ठ हैं। इससे प्रथमत: हमारे मन को आनन्द होता है साथ साथ भगवतप्रीति भी ज्यादा होती है। आगे के पृष्ठों में हम नाम रूप गुण के चिन्तन के लिए कथानुसारी फोटों, मूल श्लोक और उसका अर्थ दिए हैं। इससे नाम रूप गुण चिन्तन एक ही समय में एक साथ होगा। आग्रह है, पाठक इसका प्रयोग करते हुए प्रतिनित्य नाम रूप गुण चिन्तन से पाठ करें।

आपका

प्रकाशक

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय एक से आठ तक की कथा

ॐ विष्णु ब्रह्मादि देवैः क्षितिभरहरणे प्रार्थितः प्रादुरासीद्। देवक्याम् नन्द नन्दी शिशुवध निहिताम् पूतनाम् योजघान।

उत्थानौत्सुक्यकाले रथ चरणगतम् चासुरम् पादघातैः। चक्रावर्तं च मात्रा गुरुरिति निहतो भूतले सोवतान्माम्।।1।।

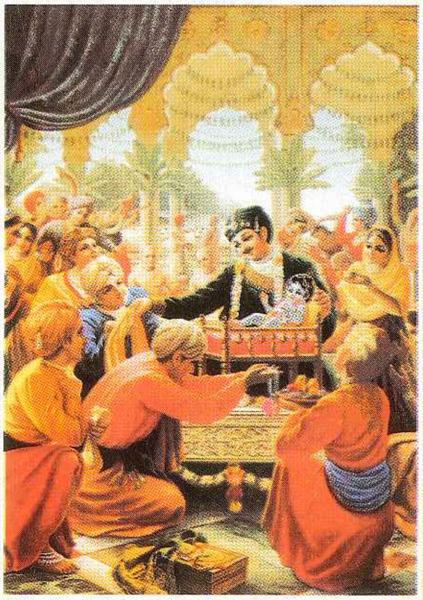

भूमि के लिए भार बने हुए कंस जरासंधादि दैत्यों के संहार के लिए ब्रह्मादि देवताओं से प्रार्थित श्री विष्णु देवकी गर्भ से श्री कृष्ण होकर अवतार लिए। नन्द नन्दन बने। शिशु वध के कंस से प्रेषित पूतना को मार दिए। बहिर्निनिष्क्रमण उत्सव के समय में बैलगाड़ी के पहिए में रहने वाले शकटासुर को अपने छोटे पाँवों से लात मारते हुए जीव से मारे। शिशु के भार को न सहते हुए यशोदा उनको जमीन पर रखीं तो, उस समय चक्रवात के रूप में आये तृणावर्त को भी मार दिए। ऐसे श्री कृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी

अध्याय नौ की कथा

योमातु जृंभमाणो जगदिदमखिलम् दर्शयन्नंकरूदो। गर्गेणाचीर्णनामा कृत रुचिर महा बाललीलो वयस्यैः।

गोपिगेहेसु भांड़स्थित मरुदयया क्षीर दध्यादि मुष्णन्। मृदां भंक्षीती मातुःस्ववदनगजगद् भासयन्भासतां मे।।2।।

माँ की गोद में सोए हुए श्री कृष्ण जम्भुहाइ लेते हुए मुँह में ब्रह्माण्ड का दर्शन कराए। गर्ग मुनि से नामकरण कराए। बलराम के साथ नामकरण कराए। बलराम के साथ सुन्दर महान बाल लीलाएँ की। मित्रों के साथ गोपियों के घर में दूध, दही, मक्खन को कृपा कर के चोरी से खाए। मिट्टी को खा कर मैंने मिट्टी नही खाया, देखो, कहते हुए अपने मुह में माँ को ब्रह्माण्ड का दर्शन कराए। ऐसे श्री कृष्ण हमें दर्शन दें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी

अध्याय दस से बारह तक की कथा

दध्नोंपात्रस्य भंगाद् उपगमितरुषा नन्दपत्याथ बद्धः। कृच्छ्रेणोंलूखलेयो धनपति तनयौ मोचयामास शापात्।

नन्दाद्यैः प्राप्यवृन्दावनमिहरमयन् वेणुनादादिभिर्यो। वत्सान् पान् वत्स रूपम् क्रतुभूगरिमथो पोथयन् सोवतान् माम।।3।।

दही की मटकी को फूटी हुयी देखकर क्रोध से यशोदा बहुत प्रयत्न से श्री कृष्ण को ओखली में बाँध दिया। नारद के शाप से वृक्ष बने कुबेर के पुत्रों को श्री कृष्ण मुक्त किए। नन्द इत्यादि सारे लोगों के साथ वृन्दावन चले गये। वहाँ वंसी बजाते हुए सबको आनन्द देते हुए गाय के बच्चों को चराते समय गाय के बच्चें के रूप में आए हुए वत्सासुर को मार दिए। ऐसे श्री कृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय तेरह से सौलह तक की कथा

रक्षन् वत्सान् वयस्यैः बकमभिनदथो तिग्मतुंड़े गृहीत्वा। प्रीतिं कर्तुम् सखीनाम् खरमपिबलतो घातयन् कालियाहिम्।

उन्मथ्योद्वास्य कृष्णां अतिविमल जलां यो व्यधाद् दाववन्हिम्। सुप्ता नावृत्य गोष्ठे स्थितमपि बदसौ दुष्ट वृक्षच्छिदव्यात्।।4।।

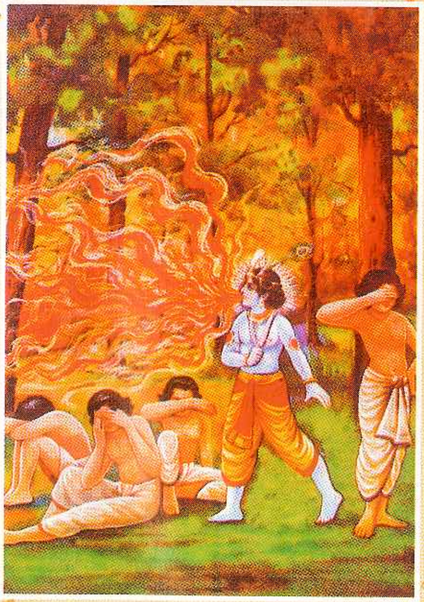

बाद में मित्रों के साथ गाय के बच्चों को चराते समय बकासुर को उसके तीक्ष्ण चोचों से पकड़ कर उसे चीर कर दो टुकड़े किए। मित्रों को संतोष करने के लिए बलराम से धेनुकासुर का वध करवाए। कालिय नाग को अपने पाँवों से दबाकर उसको बाहर भेजकर यमुना नदी के जल को शुद्ध किए। रात के समय गायों के साथ सोए हुए गोपालकों को घेरा हुआ आग को पान किए। दुष्ट विष वृक्ष रूप उग्रासुर को नाश किए। ऐसे श्री कृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय सत्रह से उन्नीस तक की कथा

दुर्गारण्यं प्रवेशाच्युत निज सरणीन् गो गणानाहवयद् यो। दावाग्निम् तत्रपीत्वा समवपुष दनुगान् गोपकानाविषण्णान्।

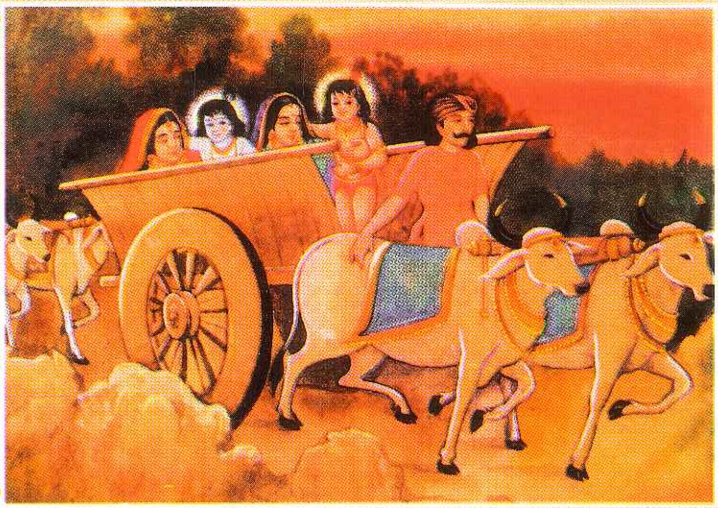

गोभिर्गोपैः परितः सरिदुदकतटस्थोपले भोज्यमन्नम्। भूक्वावेणोंर्निदाद् व्रजगत वनिताचित्तहारी समाव्यात्।।5।।

गायों के चरते चरते बहुत दूर घने जंगल में प्रवेश करने के कारण दिखायी नही पड़ रही थी। तब श्री कृष्ण उनके नाम से पुकारे तो सारे गायें आ गयीं। उसी समय भयंकर दावाग्नि को खा लिए। गोप-गोपियों के साथ नदी तट में पत्थर के ऊपर बैठकर घर से लाए हुए दही भात को खाए। वेणु गान से गोकुल की महिलाओं के मन मोहित करने वाले ऐसे श्री कृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय बीस से पच्चीस तक की कथा

कृष्णोस्माकं पतिःस्याद् इतिकृत तपसां मज्जने गोपिकानाम्। नग्नानाम् वस्त्रदाता द्विजवरवनिता नीत मन्नं समश्नन्।

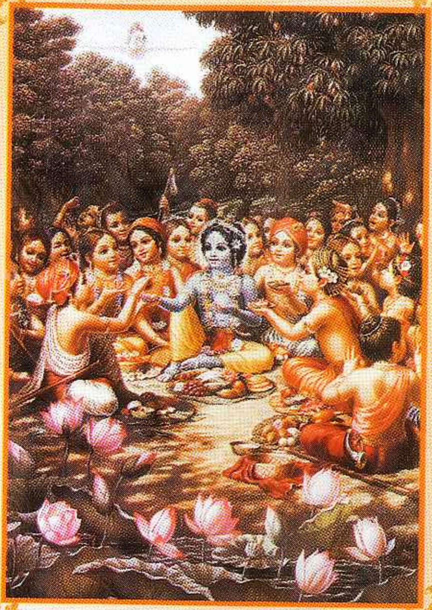

श्रान्तैर्गोपैः समं यो बलमथनबलावाह्यतेस्मिन् सवृष्टौ। प्रोद्धृत्याहार्यवर्यं निज जल मखिलं पालयन् पात्वसौ माम्।।6।।

श्री कृष्ण अपना पति बने इस उद्देश्य से कठिन व्रत करने वाली गोपिकाएँ स्नान करते समय निर्वस्त्र हो गयी थीं उनको वस्त्र देने वाले विप्र पत्नियों से लाए हुए अन्न को भूख से पीड़ित साथियों के साथ भोजन किए, इन्द्र को देने वाली यज्ञाहुति को स्वयं ग्रहण किए। इससे इन्द्र रुष्ट होकर अतिवृष्टि किया। उस समय बड़ा गोवर्धन पर्वत को एक हाथ से उठाकर श्री कृष्ण सब की रक्षा किए। ऐसे श्री कृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी

योग माया द्वारा कंस बध के लिए आकाशवाणी करना

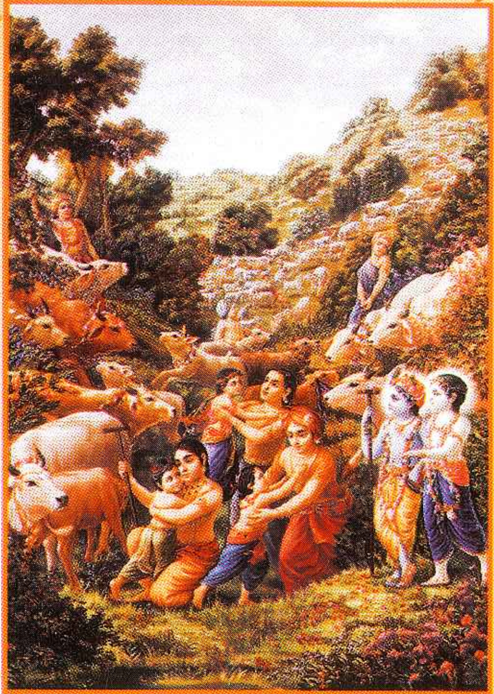

ग्वालबालों एवं गौंओं के साथ श्रीकृष्ण एवं बलराम

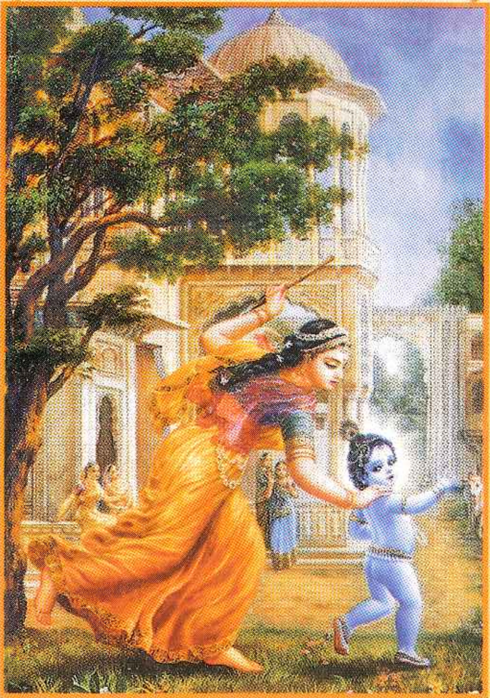

यशोदा मैया एवं श्रीकृष्ण

अधासुर के मुख में ग्वालबालों का हँसते हुए प्रवेश

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी

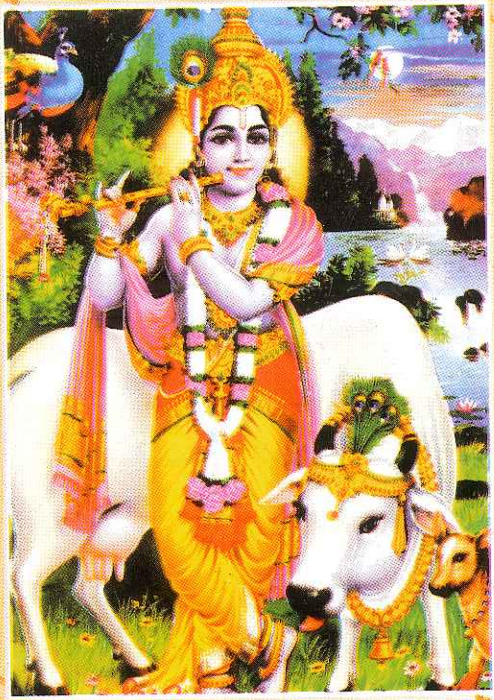

सुन्दर रूपवाले श्रीकृष्ण

मक्खन खाते श्रीकृष्ण

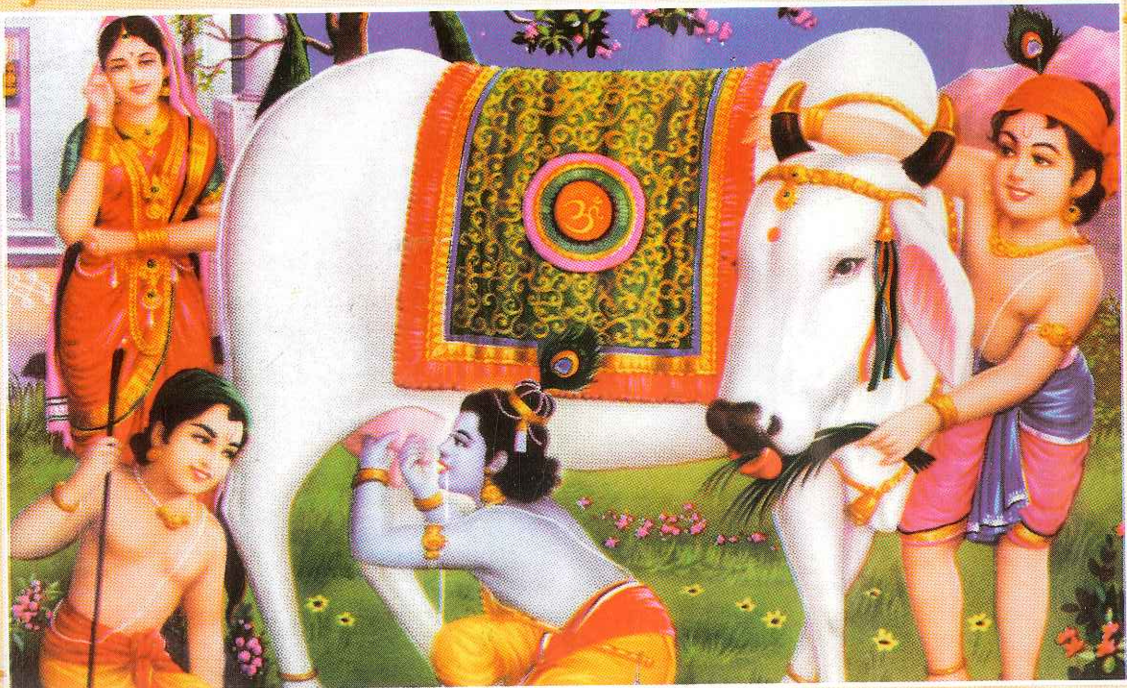

गाय दुहते श्रीकृष्ण

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - एक

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं- हे मुनि वर्य! आप मुझको अब तक चन्द्र वंश और सूर्य वंश के राजाओं के बारे मे कहे हैं।उनका चरित्र बहुत अद्भुत है। उससे मुझे आनन्द हुआ है।।1।।

यहाँ शुकदेव को भवतः शब्द से राजा सम्बोधन करता है।भव इसका अर्थ रुद्र भी होता है।शुक देव रुद्रांश हैं इसके लिए भागवत दशम स्कन्ध उन्हीं के मुँह से सुनना बहुत श्रेष्ठ है यह अभिप्राय भी इससे होता है।

धर्मात्मा यदु का वंश बहुत बड़ा अदभुत है। उसमें अपने अंश से अवतार लिए हुये भगवान श्री विष्णु का मैं वीरता और पराक्रम के बारे में सुनना चाहता हूँ।।2।।

यहाँ यदु को धर्मशील शब्द से सम्बोधन किया गया है।अपने यौवन को पिता को देकर उनसे वृद्धत्व को न लेने वाला यदु कैसे धर्मज्ञ होता है ऐसा संशय का आना सम्भव है।किन्तु अपने यौवन से अपनी ही माँ के साथ सुख भोगने की पिता की इच्छा को पुत्र पूर्ण नही किया। इससे यदु को पाप नहीं आता। इस धर्म सूक्ष्म के कारण आगे नितराम् शब्द का प्रयोग है। यदु के वंश में भगवान श्री कृष्ण अवतार लेकर इस धर्मशील शब्द को सार्थक किये हैं। पुरु ने अपना यौवन दिया उसको यह दोष नहीं आता क्योंकि उसकी माँ अलग है। यहाँ यदोः शब्द विष्णु के साथ अन्वय करना सही होता है।इसका अर्थ विद्यमान पदार्थों में सबसे श्रेष्ठ भगवान विष्णु यह एक विशेष अर्थ यहाँ मिलता है।

इस जगत के जनक और सब जीवों के कल्याणकारक भगवान श्री हरि यदु वंश में जन्म लेकर क्या-क्या लीलाएँ किए हैं उनको मेरे लिए कृपा करके बताइये।।3।।

नौवाँ अध्याय के अंत में आपने मुझे श्री कृष्ण कथा को अत्यन्त संक्षेप मे कहा है उससे तृप्ति नही होती है इसके लिए विस्तार पूर्वक कहें।

विषयों की आशा को जो त्यागदिये हैं, और जीवन्मुक्त हुये हैं। उन्हें भी भगवान का संकीर्तन करना है। यह भव रोग के लिए औषधि रूप है।केवल सुनने से ही आनन्द देने वाली है।पशु हिंसा करने वाले को छोड़कर अन्य कौन हरि गुणगान करना छोड़ देता है।।4।।

पशु हिंसा का अर्थ केवल स्वर्ग के लिए यज्ञ करने में किया जाने वाला पशु वध मात्र नही है।प यानी इस जगत का पालन करने वाला और शु का अर्थ सुख देने वाला दोनों मिलकर पशु कहे तो भगवान नारायण होता है।

स्वर्ग के लिए प्राणी हिंसा करने वाला भगवान का नाम संकीर्तन नही करता है। वैसे कुतर्क करने वाला भी भगवान के अस्तित्व को न मानने वाला अथवा स्वयं को भगवान मानने वाला प्राणी हिंसक होता है।

युद्ध में देवताओं को भी हराने वाले भीष्म आदि अतिरथ तिमी तिमींगिलों से भरे हुए पार करने में असाध्य कौरव सेना को हमारे पूर्वज पाण्डवों ने जिन भगवान श्री कृष्ण नाम के नौका की सहायता से बिना कष्ट से पार किये उन भगवान की कथा मैं सुनना चाहता हूँ।।5।।

दश योजन विस्तार रहने वाली मछली को तिमि बोलते हैं। उसको भी खाने वाली बडी मछली को तिमिंगिल कहते हैं।

केवल हमारे पूर्वजों को भगवान रक्षा करते हैं ऐसा नही। मुझको भी वे ही रक्षा किये हैं। इसके लिए उनकी कथा सुनने में मुझे आतुरता है। इस विचार को आगे के श्लोक में व्यक्त करते हैं।

उन दिनों में अपनी शरण में आयी हुयी मेरी माँ उत्तरा के गर्भ को भगवान श्री कृष्ण चक्रधारी होकर अंदर प्रवेश करते हुये मेरी रक्षा किए हैं। वे रक्षा नही किये होते तो पाण्डव वंश का एक मात्र संतान मै अश्वत्थाम के अस्त्र से जल जाता।।6।।

पाण्डव, मेरी माँ और मैं केवल इनका रक्षक ही भगवान नही है, किन्तु सकल जीव राशि के रक्षक वे ही हैं। इस बात को आगे के श्लोक में कहते हैं।

सारे जीवों के अन्दर बिम्ब रूप में अन्दर और काल नियामक रूप में खड़े होकर उनकी योग्यता के अनुसार संसार और मुक्ति देने वाले भगवान श्री कृष्ण अपनी इच्छा से मानव रूप में आकर अपने शौर्य और पराक्रम को दिखाये हैं उस कथा को आप विवरण पूर्वक बताइये।।7।।

आप पूर्व कथा में संकर्षण के अवतार बलराम जी को एक बार रोहिणी पुत्र और एक बार देवकी तनय कहे हैं। एक ही जीव दो माँ के पुत्र होकर दो गर्भों में कैसे रहता है इस संशय का निवारण करें।।8।।

नवम स्कन्ध के अंत में वसुदेव के पुत्र के बारे में बोलते हुये वसुदेव को रोहिणी में बलराम, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव ये पुत्र जन्म लिये कहे हैं। देवकी में कीर्तिमंत, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, सम्मर्दन, भद्र, बलराम और कृष्ण ये जन्म लिये ऐसा कहे हैं। इस संशय का निवारण करने के लिए परीक्षित पूछते हैं।

भगवान श्री कृष्ण अपने घर को छोड़कर नन्द गोकुल को क्यों छोड़ दिये। अपने बंधुओं के साथ कहाँ रहने लगे।।9।।

नन्द गोकुल में भगवान श्री कृष्ण क्या-क्या लीलाएँ की। वहाँ से वे मथुरा क्यों गये। अपने मामा को क्यों मारे? मामा को भांजा कभी नही मारना। तो भी भगवान उसको मारे इसके बारे में हमारे संशय का निवारण करें।।10।।

मनुष्य के समान रूप धारण किये हुये भगवान श्री कृष्ण यादवों के साथ कब तक रहे उनको कितनी पत्नियाँ थीं? इसको भी विवरण पूर्वक बताइये।।11।।

हे मुनिवर्य, आप श्री कृष्ण की अन्यान्य लीलाओं को भी मुझे अवगत कराइए। मैं उनको श्रद्धा से सुनता हूँ। रुद्रावतार आप मुझको कहने में समर्थ हैं।।12।।

आपके मुखारविन्द से बहकर आने वाली अमृत कथा को मैं पीना चाहता हूँ। पानी को भी न पीते हुये कथा सुनने वाले मुझको न भूख लगती है, न प्यास लगती है।।13।।

कमल से अमृत बहना कहीं नहीं सुना गया है। यह कवि समय गलत होता है ऐसे विचार करना सही नही होता। यहाँ मुख कमल से अमृत धारा बहना यह शब्द एक मुख्य उद्देश्य से कहा गया है। कमल सदाकाल पानी में रहता है। किन्तु उसको पानी नही लगता है। वैसे ही वेदव्यास जी से भागवत कथा को शुकदेव जी अपने कान से सुने हैं। उसमें एक बूँद भी शेष न रखते हुये पूरी कथा को सुनाइये यही भाव यहाँ व्यक्त किया गया है।

सूत जी कहते हैं - हे शौनकादि ऋषिगण, परीक्षित की इन बातों को सुनकर भगवद्भक्त शिरोमणि व्यास पुत्र शुकदेव जी राजा को अभिनंदन करते हुये कलिमल को नाश करने वाली भगवान श्री कृष्ण की कथा कहने लगे।।14।।

श्री शुकदेव कहते हैं- हे राजश्रेष्ठ,श्री कृष्ण की कथा में तुम्हारी आसक्ति बढ़ रही है। इससे सिद्ध होता है कि तुम्हारा निर्धार सही है।।15।।

तुम श्री कृष्ण की कथा को सुनना चाहते हो। वह कथा हरि पादों के समान पावनमयी है। सुनने वाला कहने वाला और कहलाने वाला इन तीनों को यह पवित्र करती है।।16।।

यहाँ तत्पाद सलिलं यथा इस शब्द में और एक अर्थ निकलता हैं। यहाँ भागवत की कथा करने वाले शुकदेव रुद्रांश हैं। उनके सिर पर गंगा जी बैठी हैं। कथा सुनने वाला राजा परिक्षित गंगा जी के बीच में बैठा है। अन्य सूत पूराणिक इत्यादि श्रोता गण गंगा जी में नहा कर आए हैं। इसी कारण यहाँ गंगा जी के समान इस शब्द का प्रयोग किया गया है। तत् सृष्टि करने वाले चतुर्मुख ब्रह्मा, प यानि विष्णु, अद यानि सर्व संहारक यानि रुद्र। गंगा जी विष्णु के पाद से उत्पन्न हुई हैं। ब्रह्मा जी के कमंडलु में प्रवेश की हैं। रुद्र के जटा जूट से बहकर आने वाली विष्णु पाद से उत्पन्न हुआ जल। सालिग्राम तीर्थ भी होता है। भागवत की कथा जहाँ होती है वहाँ गंगा जी त्रिमूर्ति और सालिग्राम का सन्निधान होता है।

बहुत पूर्व काल मे दर्पिष्ठ राजा लोग असंख्य संख्या में असुरों के साथ मिल गये थे। उनके भार से पीड़ित भू देवी दुःख को न सहन करते हुये ब्रह्मा जी के शरण में गईं।।17।।

गोरूप को धारण करने वाली भू देवी आँखों से आंसू बहाती हुई करुणाजनक रूप में रोते हुये ब्रह्मा जी के सामने खड़ी हुयीं।।18।।

यहाँ भू देवी का गाय का रूप धारण करना एक विशेष है। गाय सभ्य होती है। स्वयं सूखा हुआ घास को खाकर अमृत समान दूध देती है। सदाकाल गाय का रूप करूणाजनक होता है। इसी प्रकार भू देवी अन्य सज्जन लोगों के भार को कितना भी हो धारण करती हैं। किन्तु दुष्ट लोगो का भार वह सहन नही करती हैं।

ब्रह्मा जी भू देवी के दुःख को सुने।उनको लेकर और शिव सहित सारे देवताओं को साथ में लेते हुये क्षीर सागर के तट पर गये।।19।।

वहाँ जाकर सकल लोकों के स्वामी देवदेवोत्तम परम पुरुष नारायण को पुरुष सूक्त से देवताओं के साथ मिलकर स्तुति किये।।20।।

पुण्य कर्म करने वाले सज्जन लोगों को भगवान मोक्ष देते हैं। किन्तु थोड़ा सा पुण्य करने वाले दैत्यों को उत्तम लोक देना व्यर्थ होता है। उनके तमस को जाना है। इसी कारण कंस को आकाशवाणी, नारद जी के वचन के अनुसार दुर्गा के मुखांतर, अलग - अलग रीति से कंस में भगवान के विरुद्ध द्वेष उत्पन्न करना है। पूतनादियों से पाप कर्म करवाना है। ऐसे करते हुये सज्जनों की रक्षा करना है इसी के लिए ब्रह्मा जी भगवान की स्तुति करते हैं।

तब भू देवी और अन्य देवताओं को समाधान करने के लिए भगवान श्री हरि आकाश में रहते हुये बोले। उसको केवल ब्रह्मा जी सुने।वे अन्य देवताओं को बोलते हैं। हे देवतागण! सुनिये। भगवान परम पुरुष जो कहे हैं उसको आपके लिए कहता हूँ। इस प्रकार आप बिना विलम्ब करते हुये अनुसरण करिये।।21।।

श्री हरि अदृश्य होकर आकाश में खड़े हुये बोले उसको केवल ब्रह्मा जी सुने। ब्रह्मा जी देवताओं के साथ मेरु शिखर पर आये। वहाँ भरी सभा में भगवान के वचन को सबको सुनाये। मेरु शिखर में बोलने का उद्देश्य एक ही था कि दैत्य लोग भी इसको सुनें और वे भी भूमि में जन्म लेकर अपने पाप की साधना करें। इस दृष्टि से उनको दुर्गम श्वेतद्वीप को छोड़कर मंत्रालोचन की सभा का आयोजन मेरु शिखर में किया गया था। यह विचार हरि वंश पुराण में व्यक्त किया गया है।

ब्रह्मा जी कहे- भू देवी का दुःख परम पुरुष परमात्मा भगवान श्री हरि पहले से ही जानते हैं। उनके दुःख को दूर करने के लिए वे यदुकुल में जन्म लेने वाले हैं। उनकी सेवा के लिए आप सब लोग अपने अंश से यादव बनकर जन्म लीजिए। भगवान अपने स्वरूप भूत दैत्यसंहारक शक्ति से भू भार नाश करते हुये भूमण्डल में जितने दिन तक रहते हैं आप लोगों को भी उतने दिन भूमि में रहना चाहिए।।22।।

वसुदेव की पत्नी देवकी देवी के पेट से भगवान परम पुरुष स्वयं प्रादुर्भत होते हैं। उनकी सेवा और प्यार के लिए देवता स्त्रियाँ भी अवतार लें।।23।।

देवतास्त्री और अप्सरायें गोपी बनकर भगवान की सेवा भक्ति रूप काम से आराधना करने के लिए वे अवतार लेती हैं। उनमें रमावेश होने के कारण वे भगवान की आराधना योग्य रीति से कर सकती हैं।

भगवान के शय्यासन आदि शेष बलराम रूप में अवतार लें। वह हजार मुँहवाले, सदाकाल स्वतंत्र श्री हरि के बिस्तर बनकर उनको अपने ऊपर लेकर रहते हैं। वह भगवान श्री हरि के शुक्लकेशावेश युक्त होकर श्री हरि के प्यार को प्राप्त करें।।24।।

<u>अनन्त अग्रतो भविता</u> इसका विशेष अर्थ है, मूल रूप में शेष भगवान नारायण की शय्या बनकर सेवा करते हैं। भगवान के अवतार में वेंकट गिरि, करिगिरि बनकर उनके मन्दिरों के आधार बनते हैं। जब भगवान मानव रूप धारण करते हैं तब बड़ा या छोटा भाई होकर सेवा करते हैं। राजा महाराजा अपने प्रयाण के पहले अपने विस्तर को भेज देते हैं। यह उनके वैभव का प्रदर्शन है। यहाँ बलराम जी का श्री कृष्ण से पहले जन्म लेना इसी अर्थ को देता है।

लक्ष्मण होकर श्री राम जी की सेवा अपनी योग्यता से बढ़कर करने के कारण भगवान के बड़े भाई बनकर उनसे सेवा लेने का भाग्य उनको प्राप्त है। इस प्रकार उस पाए हुए अधिक पुण्य का क्षय हो सकता है। यह भी श्री हरि के लिए प्रीतिकर है।

सारे जगत को अपनी माया से मोहित करने वाली योग्य माया दुर्गा देवी को अपने स्वामी के कार्य करने के लिए आज्ञा मिली है। वह भी अपने एक अंश से भूमि में अवतार लेने वाली हैं।।25।।

श्री शुकदेव कहते हैं- प्रजापति के स्वामी चतुर्मुख ब्रह्मा जी इस प्रकार देवताओं को आज्ञा देकर, भू देवी को अपनी बातों से सान्त्वना देते हुये अपने उत्तम सत्यलोक के प्रति गमन किये।।26।।

यादव कुल का अधिपति शूरसेन नाम का राजा मथुरा नगर में स्वतंत्र रूप से अपना राज्य चलाता था। वह मथुरा मण्डल और शूर मण्डल का अधिपति था।।27।।

उन दिनों से मथुरा नगरी यादव राजाओं की राजधानी बनी। वहाँ भगवान श्री हरि आज भी शाश्वत रूप से सन्निहित हैं।।28।।

परशुराम के क्रोध का बलि होकर कार्तिवीर्यार्जुन के दस हजार पुत्र बलि बन गये। उनमें जयध्वज, शूरसेन, ऋषभ, मधु और ऊर्जित नाम के पाँच पुत्र बचे थे। उनमे शूरसेन एक है। दूसरा मधु मथुरा नगर में राज्य किया। इनके वंश के सभी लोग विष्णु भक्त होने के कारण यदु वंश इनसे आगे बढ़ा।

वसंति वैष्णवा यत्र तत्र सन्निहितो हरिः।

इस बात के अनुसार मथुरा नगरी पुण्य क्षेत्र बन गई। श्री हरि के प्रतिमा रूप सान्निध्य को प्राप्त की। यह पूर्व कथा को याद करना है।

मथुरा नगरी में उग्रसेन राजा राज्य करता था। शूरसेन के पुत्र वसुदेव का विवाह देवकी के साथ हुआ। नव वधू के साथ बारात चली थी।।29।।

वसुदेव देवकी रथ में बैठे थे। उग्रसेन राजा का पुत्र कंस अपनी बहन देवकी को संतोष देने हेतु रथ को स्वयं चला रहा था। उसके साथ सौ से ज्यादा रथ सोने से अलंकृत होकर चल रहे थे।।30।।

यदु वंश के शूर राजा के पुत्र वसुदेव। वसु का अर्थ सम्पद्धरित देव यानी प्रकाशमान। वसुदेव गो सम्पत्ति

से प्रकाशित था। ब्रह्मा जी के शाप के कारण शूर के पुत्र होकर जन्म लिया हुआ यह कश्यप मुनि है। एक बार कश्यप ऋषि अपने यज्ञ के लिए अपने पुत्र वरुण के पास रहने वाली गायों को यज्ञ के लिए पाया था। अपनी पत्नी अदिति और सुरभि की बात सुनकर वह उनको वापस नही भेजा। इसके फल स्वरूप अदिति और सुरभि भी देवकी और रोहिणी होकर जन्म लिये थी।

यदुवंश में दूसरा राजा आहुक के पुत्र देवक और उग्रसेन। देवक की पुत्री देवकी। उग्रसेन का कंस। इस रीति से देवकी कंस बहन बनती हैं।

सोने की माला से श्रृंगारित चार सौ हाथी, पन्द्रह हजार घोड़े और एक हजार आठ सौ रथ दहेज रूप में बारात में मिले थे।।31।।

सुन्दर और अलंकृत दो सौ दासियों को पुत्री के प्यार से देवक ने दिया था।।32।।

बारात प्रारम्भ होते ही शंख, तूर्य, मृदंग और भेरी का वादन हुआ। यह मंगल निनाद आकाश में गूँज उठा।।33।।

उस समय आकाशवाणी सुनी। हे मूर्ख कंस! तुमको मालूम नही। तुम जिन दंपति को ले जा रहे हो उनका आठवाँ पुत्र तुमको मारने वाला है।।34।।

कंस स्वभाव से ही दुष्ट, पापी और यादव कुल को कलंक करने वाला। वह इस बात को सुनकर खड्ग को खींचकर अपनी बहन को काटने के लिए उसके केश को पकड़ लिया।।35।।

दुष्कर्मी, क्रूर और कोई बुरा काम करने में न हिचकिचाने वाले निर्लज्ज कंस को महाभाग्यशाली वसुदेव समाधान करते हुये बोले।।36।।

वसुदेव कहता हैं- हे कंस! तुम यदु वंश को कीर्ति देने वाले हो, शूर लोग तुम्हारा गुणगान करते हैं। तुम एक स्त्री को, वह भी अपनी बहन को, और उसकी शादी के समय उसको मारने के लिए तैयार हो गए हो। यह तुमको शोभा देने वाला नही है।।37।।

सम्बन्ध लाभोपकृतिरभेदो गुणकीर्तनम्।
नाम पंचविधं भेदो दृष्टादृष्टो भयं वचः।।

सम्बन्ध, लाभ, उपकार, अभेद, गुणकीर्तन ये पाँच शमोपाय होते हैं। दृष्टभय अदृष्टभय ये दो भेदोपाय होते हैं। यहाँ वसुदेव इन शमभेदों का प्रयोग कर रहा है। बहन बोलकर सम्बन्ध को दिखाता है, भोजयशस्करः बोल कर लाभ के बारे में बताता है, विवाह सम्बन्ध बताकर उपकार के बारे में बोलता है, विवाह सम्बन्ध को दिखाकर अभेद का बोध कराता है, शूर से गुण गान गाने वाले इससे गुण कीर्तन करता है, अपकीर्ति से दृष्टभय दिखाता है, नरक से अदृष्टभय दिखाता है। इससे मालूम होता है कि वसुदेव बड़ा ज्ञानी था।

हे वीर! जो जन्म लेता है उसको एक न एक दिन मरना है। सौ वर्ष जीने के बाद भी एक दिन मरना जीव पाया हुआ प्रत्येक जीवों को निश्चित है।।38।।

यहाँ वीर शब्द से और एक अर्थ निकलता हैं। अपने बहन को मारने वाले तुम कैसे वीर हो सकते हो।

उपहास का यह काकुस्वर इसमें आता हैं। जीव शरीर छोड़ने के पहले ही अगले शरीर का प्रबन्ध हो जाता हैं। पुराने घर में रहकर ही नये घर की रचना बनती हैं।

इस पंचभूत शरीर मृत्यु के बाद पुनः पंचभूत मे मिल जाता है इसके बाद देह पाने वाला जीव दूसरा देह पाने के बाद ही पहले शरीर का अभिमान को छोड़ देता है।।39।।

चलने वाला आदमी एक पाँव को धृढ़ रूप से रखने के बाद ही दूसरा पाँव उठा लेता है। तृण के ऊपर चलने वाला कीट दूसरे तृण को पकड़ने के बाद ही पहले वाला तृण को छोड़ देता है। वैसे ही कर्म प्रवाह मे बहने वाला जीव भी अन्य देह मिलने के बाद ही पहले देह को छोड़ देता है।।40।।

जागृत अवस्था मे देखा सुना विषयों को संस्कार के वश अनेक आशा आकांक्षा को मन मे भरा हुआ मानव उन्ही के चिन्तन करते हुये नींद करते समय स्वप्न मे उसी तरह का वासनामय शरीर को देखता है, उसी मे अभिमान रखता है। उसी प्रकार जीव अपने जीवित काल मे जो देखा सुना है उसी मे आशा और मन रखते हुये मरने के समय उसी की चिन्ता करते हुये अपस्मृति (मरण) पाता है। बाद मे पुनर्जन्म लेकर उस चिन्तन के अनुसार नया पंचभौतिक शरीर पाता है।।41।।

अपस्मृति का अर्थ होता है भूल जाना। मरा हुआ आदमी अपने पूर्व शरीर का अभिमान खो देता है। शरीर मरता है किन्तु जीव कभी भी मरता नही। अपने पूर्व शरीर को भूल जाने के कारण यहाँ अपस्मृति को मरण इस प्रकार अर्थ होता है। मरा हुआ व्यक्ति मरने के पहले किस आशा से किसकी चिन्ता करते हुये मरता है दूसरे जन्म मे उसी शरीर को पाता है। इस दृष्टांत मे यहाँ सोने के पहले आदमी जो गाढ़ चिन्तन करता है उसी को स्वप्न मे पाता है।

संकल्प विकल्प इत्यादि अनेक परिणाम होने वाला मन मरण के समय मे देव, गन्धर्व, पितृ, मानव, असुर इस प्रकार पाँच तरह का शरीर मे अपने योग्यता के अनुसार स्वरूप गुण के अनुसार पाकर भगवान के साथ जन्म लेता है। उस देह मे भगवान की इच्छा से ही प्रकृति के गुण धर्म के अनुसार काम करता है।।42।।

अधिकारी के अनुसार उत्तम जीव को देव शरीर मध्यम पितृ शरीर अधम गन्धर्व शरीर नित्य संसारी मनुष्य शरीर तमो योग्य को असुर शरीर सामान्यता पुनर्जन्म मे योग्यतानुसार शरीर मिलता है। अपने योग्यता के ज्यादा चिन्तन करने से उत्तम शरीर मिलने वाला नही है। किन्तु मरण काल मे उत्तम देवता के चिन्तन से देवादियों का सानिधय मिलेगा।

सूर्य चन्द्र पानी से भरे हुए पात्र में प्रतिफलित होकर बहुरूप में दिखते हैं। हवा चले तो पानी हिलने से उसमें बिम्बित प्रतिबिम्ब हिलता है। वैसे ही जीव भगवान की इच्छा से निर्मित त्रिगुणात्मक शरीर में रहता है। विषय पदार्थों की इच्छा के कारण अनेक मोह से बन्धित होता

है। इनसे मुक्त जीव विषय वासना रहित होने के कारण स्थिर मन वाला होता है। पात्र का सम्बन्ध न रहता हुआ सरोवर का पानी हवा के सम्बन्ध से विचलित नही होता है। उसमे प्रति फलित होने वाला बिम्ब भी चंचल नही होता है और सदाकाल निश्चल रूप से एकप्रकार रहता है। वैसे ही मुक्त जीव त्रिगुणात्मक रहित शरीर में मोह रहित होकर रहता है।।43।।

इस प्रकार आत्मा कभी मरता नही। देह तो एक दिन मरने वाला है। एक देह गये तो भी दूसरा देह भगवान की इच्छा के अनुसार मिलता ही है। इसके लिए स्वयं जीवित रहने के उद्देश्य से दूसरो को हिंसा देना व्यर्थ होता है। यह शरीर देने वाले भगवान और हमारे माता पिता को द्रोह होता है। अपने शरीर की रक्षा चाहने वाले दूसरों के शरीर का नाश करना गलत होता है क्योंकि वे भी अपने शरीर का रक्षण करना चाहते हैं। तुम्हारे द्वारा किसी को मारने से इस जगत में द्रोह होता है और परलोक में भी पाप होता है।।44।।

जीव कभी भी नाश नहीं होता है अतः केवल नश्वर शरीर के लिए अन्यों का द्रोह नही करना है। इसी कारण हे दीन वत्सल कंस, मेरी पत्नी तेरी बहन है। यह बारह वर्ष की लड़की है। दीन है तुम्हारे पुत्री के समान है। अभी नवविवाहिता है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम इसको जीव से मारना नही।।45।।

श्री शुकदेव कहते हैं- वसुदेव इस प्रकार कंस को पाँच तरह के साम और दो तरह के भेदोपाय का उपदेश दिया। किन्तु क्रूर स्वभाव का कंस नर भक्षक राक्षस के समान है, उनसे भी नीच है, वह देवकी को मारने की इच्छा से बिल्कुल नही हटा।।46।।

कंस के इस जिद को देखकर वसुदेव विचार करके आई हुई इस आपदा से एक मार्ग मन में तय किए।।47।।

बुद्धिमान आदमी को अपने बुद्धि बल के अनुसार आयी हुई अपमृत्यु के परिहार करने का प्रयास करना चाहिए।प्रयत्न करने के बाद भी एक बार मृत्यु आती है तो कौन क्या कर सकता है।।48।।

आया हुआ विपदा वापस चले जाने तथा अश्वत्थामा के अस्त्र से भी नष्ट न होने वाले परीक्षित साक्षी हैं। पाण्डवों को सूई को लगने वाली मिट्टी को नही दूँगा बोलने वाला दुर्योधन का क्या हाल हुआ। इससे हमें धर्म सूक्ष्म को ठीक तरह से जान लेना पड़ता है। देह त्याग करने के बाद लोकान्तर को पाकर बाद में पुनः जन्म लेना, रोगादि उपद्रव बार बार आना ये इसके लिए दृष्टान्त हैं। मृत्यु के बाद भी सान्दीपनी गुरु के पुत्र जन्म लेकर आए। जंगल में रहने वाली लकड़ी भी होम कुण्ड में गिरने के लिए जड़ होने के कारण असमर्थ होता है। उसके अदृष्ट का निर्णय भगवान ही करते हैं।

देवकी में जन्म लेने वाले बच्चों को कंस को देकर देवकी के मरण का परिहार करना चाहिए। मुझे देवकी में पुत्र नही हुआ अथवा कंस बीच में मर जाये तो भय नही है। यदि कंस

जीवित रहा और मुझे बच्चे भी हुये तो उनको कंस को देना अनिवार्य होता है। इसमें भगवान की इच्छा जो है उसी के अनुसार हो।।49।।

इसके बदले में मेरे पुत्रों से यदि कंस का मरण निश्चित है तो दैव गति को कोई नहीं बदल सकता। आयी हुई मृत्यु वैसे ही चली जा सकती है अथवा गयी हुयी मृत्यु वापस आ सकती है।।50।।

घर के अन्दर रहने वाला यज्ञ कुण्ड और जंगल में रहने वाली लकड़ी से क्या सम्बन्ध है? किन्तु उस लकड़ी के होमकुण्ड का आहार बनना अदृष्ट के कारण ही होता है। लकड़ी स्वयं चलकर आग के वश में नही होती है। जीव को एक शरीर मिलना अदृष्ट के कारण होता है वैसे एक शरीर का चले जाना वह भी अदृष्ट नियामक भगवान के बिना और कोई नही करता है। अदृष्ट के कारण आकाशवाणी सत्य हो सकती है।।51।।

यहाँ अग्नि, होमकुण्ड और चूल्हा इनको स्वतः प्रवृत्ति नही है। आग को अदृष्टवश से लकड़ी मिलती है। वैसे ही अदृष्ट के कारण जीव को शरीर का आना जाना रहता है। यह वामन पुराण की बात है।

इस प्रकार विचार करते हुये वसुदेव अपनी बुद्धि से कंस को समाधान करते हुये गौरव दिखाते हुये अपने विचार को व्यक्त करता है।।52।।

कंस क्रूर, दुष्कर्म करने के लिए लज्जा रखने वाला नही है। वसुदेव इसको ठीक तरह से जानता था, मन के अन्दर बहुत तड़फड़ाहट थी। बाहर उसको न दिखाते हुये प्रसन्न मन से हँसते-हँसते कहा।।53।।

वसुदेव कहता है - हे सौम्य-स्वभाव वाले कंस! अशरीर वाणी के अनुसार देवकी से तुमको कोई भय होने वाला नही है। मैं एक वादा करता हूँ कि देवकी से जन्म लेने वाले सारे बच्चों को जन्म लेते ही तुम्हारे हाथ में दे देता हूँ। तुमको भय उन बच्चों से है। मुझसे और देवकी से तुम्हें भय कैसे होता है।।54।।

इस बात से हमें लगता है कि वसुदेव बहुत स्वार्थी है, बच्चों को बलिदान देकर पत्नी को बचाना चाहता है। पहले बच्चों को जन्म देकर बाद में उनको बलि देने के बदले में बच्चों को पैदा ही न करें तो अच्छा होता है ऐसा विचार आ सकता है। किन्तु ऋतुकाल को व्यर्थ करना भ्रूण हत्या समान पाप होता है। यहाँ कंस शिशु हत्या करने वाला है। इससे शिशु हत्या दोष कंस को जाता है।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध में पहला पूर्वाध मे अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - दूसरा

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- वसुदेव के अभिप्राय को सुनकर कंस उनके विचार के अनुसार देवकी की हत्या करना छोड़ दिया। इससे वसुदेव संतुष्ट होकर कंस की स्तुति किया। गृह प्रवेश का कार्यक्रम यथासांग पूर्ण हुआ।।1।।

भगवान के अवतार के स्थान रूप देवकी सारे देव देवता के सन्निधान पात्र होकर बड़ी होने के बाद प्रतिवर्ष एक -एक ऐसे आठ पुत्रों को जन्म दिये। सुभद्रा नाम की एक पुत्री को भी बाद में जन्म दिया।।2।।

जन्म नक्षत्र से कीर्तिमान नाम वाले पहले पुत्र को जन्म लेते ही वसुदेव अपने दिए हुए वचन के अनुसार, असत्य से डरते हुये बहुत कष्ट से उस पुत्र को लाकर कंस को सौंप दिए।।3।।

सत्य से इतना डरने वाला, अष्टम पुत्र कृष्ण को कंस के वंश मे क्यों नही दिया यह संशय यहाँ आता है। किन्तु भगवान श्री कृष्ण की आज्ञानुसार ही वह उनको जमुना पार ले गया। भगवान का आज्ञा पालन सत्य से भी बड़ा सत्य है।

वसुदेव ज्ञानी और सज्जन था। ज्ञानी लोग मरण से नही डरते, दुःख नहीं करते। वैसे ही वसुदेव ऐहिक सुख की अपेक्षा न करते हुये आये हुये दुःख को सहन करते हुये पुत्र को दुष्ट कंस के हाथ मे रखा। कंस दुष्ट था उसको शिशु हत्या से न भय है और न अकार्य करने का डर है। सज्जन लोग सत्य वचन को पालने के लिए त्याग करने के लिए सिद्ध रहते हैं।।4।।

पुत्रोत्पत्ति और पुत्र नाश दोनों को समान देखने वाले वसुदेव की मनःस्थिति और सत्य निष्ठा को देखकर कंस मोहित होकर हँसते हुये कहता है।।5।।

वसुदेव! तुम्हारा पुत्र अपनी माँ की गोद में चला जाये। इससे मुझे कुछ दिक्कत नही है। मुझे आठवें गर्भ से आपत्ति आने वाली है। यही अशरीर वाणी का मन्तव्य था न?।।6।।

वैसा ही हो कहते हुये वसुदेव पुत्र को उठाते हुये अपने घर चला गया। चंचल मन वाला दुष्ट कंस के ऊपर उसका विश्वास नही था। कंस का मन स्वाधीन में नही रहता है। वह किस

समय क्या कर सकता है। इसको कोई नही जान सकता। कंस की इस बात पर वसुदेव का विश्वास नही हुआ,वह इससे सन्तोष नही पाया।।7।।

नन्द इत्यादि यादव, यशोदा इत्यादि गोपिका स्त्री, वसुदेव इत्यादि यादव प्रमुख, देवकी इत्यादि यादव स्त्री, इस प्रकार वसुदेव नन्द गोप के दोनों कुल के ज्यादातर लोग देवांश से जन्म लिए हैं।।8।।

कंस के नजदीकी बन्धु अनुचर सेवक ये सारे लोक को उपद्रव करने वाले असुरांश से जन्म पाये हैं।।9।।

वसुदेव पुत्र को उठाकर अपने घर गया। इतने में नारद जी कंस के पास आकर रहस्यमय बातें की। भू भार हरण के लिए, जन्म लिए हुये दैत्यों का नाश करने के लिए देवता लोग अवतार लिये हैं। दैत्यों के हाथ से पाप की घटना हो इस दृष्टि से नारद जी आठ नौ इन दोनों श्लोकों मे कहे हुये रहस्य को बता दिये।इससे भगवान के भूभार हरण कार्य में अपना भी किंचित सहयोग दिये।।10,11।।

देवता प्राया: *इससे वसुदेवादि कई देवता अंश वाले हैं। शतधन्व इत्यादि देवता नही हैं। यह अर्थ होता है।*

कंसमनुव्रता: ***यहाँ क माने ब्रह्म वायु, सम शब्द से विष्णु यह अर्थ होता हैं। इन दोनों को अनुसरण करते हुए हरि वायु भक्त अवतार लिए। यह अर्थ स्पष्ट होता है।***

नारद जी के चले जाने के बाद कंस विचार करने लगा, ये यादव सारे हमारे शत्रु देवतागण हैं। विष्णु मेरा वध करने के लिए ही देवकी के गर्भ से जन्म लेने वाला है। विष्णु की माया समझ में आने वाली नही है यह समझकर वसुदेव देवकी को कारागृह में डाल दिया। वापस दिए हुये बच्चे को पुनः लाकर अपने हाथ से उसको मार डाला। विष्णु की माया के संशय से आगे जन्म लिये हुये बच्चों को भी मारते रहा।।12,13।।

अन्य लोगों के जीव को लेकर अपने इन्द्रियों के तृप्ति को पाने वाले स्वार्थी लोग प्रायशः अपने माँ-बाप, भाई-बहन, स्नेही-मित्र, सबको मारने के लिए तत्पर होते हैं।।14।।

समुद्र मंथन करते समय हुए देवासुर युद्ध में कालनेमि नाम के दैत्य को विष्णु ने मार डाला। वह असुर ही अब कंस रूप में जन्म लिया है। इस बात को नारद जी से सुनकर देवांश से जन्म लिये हुये यादवों से कंस द्वेष करने लगा।।15।।

यदु, भोज, अंधक इन तीनों कुलों के नायक अपने पिता राजा उग्रसेन को जेल में डालते हुये उसके शूरसेन राज्य पर स्वयं शासन करने लगा। बलिष्ठ कंस से सारे लोग डरने लगे।।16।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तीसरा

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - कंस बड़ा बलिष्ठ था। मगध के राजा जरासंध का आश्रय उसको मिला था, प्रलम्ब, बक, चारुण, तृणावर्त, मुष्टिक, अरिष्ट इत्यादि दुष्ट मल्लों को पोषण करते हुये उनसे दुष्ट कार्य करवाता था। पूतना, केशी, धेनुक इत्यादि अपने सेवकों, बाण, नरक इत्यादि असुर राजाओं से मिलकर कुवलयापीड़ नाम के मत्तगज के सहयोग से यादवों के साथ सदाकाल विरोध करता था।।1,2।।

महाशन नाम का कोई कंस का साथी नही था। महा यानी बहुत असन खाने वाले कुवलयापीड़ को महाशन कह सकते हैं।

कंस से पीड़ित यादव लोग मथुरा छोड़कर चले गये। वे कुरु, पांचाल, केकय, साल्व, विदर्भ कोसल देशों में रहने लगे।।3।।

अक्रूर जैसे कंस के कई सम्बन्धी यादव मथुरा में ही रहते थे। वे बहिरंग में कंस में निष्ठा दिखाते हुये भगवान की सेवा करते हुये मथुरा में ही वास करते थे।।4।।

देवकी के किसी गर्भ में विष्णु अवतार लेकर अपना वध कर सकता है, इस भय से कंस देवकी के छः बच्चों को मार दिया। सातवाँ होकर विष्णु के शुक्ल केश के आवेश वाले शेषावतारी बलराम जन्म लिये। वे अपनी माँ को सन्तोष और कंस को दुःख देते रहे। कंस का वह दुःख दिन-दिन बलराम जी के साथ बढ़ता रहा।।5।।

महर्षि नारद कंस को भविष्य बता दिये थे कि विष्णु तुमको मारने वाला है। आकाशवाणी ने सुनवाया था देवकी के अष्टम पुत्र से तुम्हारा मरण होगा। कंस यह ठीक तरह से समझ लिया था कि उसको मारने वाला तो केवल विष्णु हो सकता है। एक क्रम से आठ पुत्र एक के बाद एक जन्म लिये किन्तु अष्टम को गिनना सरल नही है। कोई भी पुत्र गिनने का क्रम बदल करने से अष्टम हो सकता है।

इसका मुख्य कारण हिरण्यकश्यप से दिया हुआ शाप। वह इस प्रकार है। कश्यप मुनि का पुत्र असित देवल मुनि तप करते-करते बहुत कृश हो गया था। मरीचि ऋषि के छः पुत्र उनको देखकर हास्य किये। असित देवल क्रोध से उनको शाप दिये। शाप पाकर वे छः स्मर, उद्गीत, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रभृद, घृणी नाम से ये सभी

कालनेमि नाम के दैत्य के पुत्र बने। वे ब्रह्मा जी से तप करने लगे। पानी में डूबकर वहाँ गर्भगृह में वास करने के कारण उनको षड्गर्भ कहते हैं। कालनेमि हिरण्याक्ष का पुत्र था। ब्रह्मा जी के बारे में तप कर रहे उनको देखकर हिरण्यकश्यप को क्रोध आया। जो चाहे उसको देने की ताकत वाला मेरे रहते हुये अन्य देवों की उपासना करने वाले तुम अपने पिता के हाथ से मरण पाओ। इस प्रकार शाप दे दिया। इन वर और शाप को भगवान की आज्ञानुसार देवी दुर्गा अनुष्ठान में लाईं। कालनेमि अब कंस बनकर जन्म लिया है। षड्गर्भों को एक एक करके देवकी-गर्भ में दुर्गा देवी रखती थी। बच्चा के जन्म लेते ही कंस रूप में रहने वाला कालनेमि उस बच्चे को मार डालता था। इस प्रकार कंस द्वारा उनको मारने से हिरण्यकश्यप का शाप भी पूर्ण हुआ। बलराम श्री विष्णु के शुक्ल केश से अवतार लेने वाले शेष हैं। यह हमने पहले ही बताया है।

भगवान को ही रक्षक मानने वाले यादवों को कंस से होने वाले संकट को समझते हुये सर्वांतर्यामी श्री हरि दुर्गा देवी को आज्ञा दिए।।6।।

हे देवी,मंगलकारिणी तुम यादव और गायों से भरा हुआ नन्द गोकुल को जाओ। वहाँ वसुदेव की पत्नी रोहिणी रहती है।।7।।

वसुदेव की और अन्य पत्नियाँ कंस के भय से दूर-दूर अलग-अलग गुप्त स्थानों में रहती हैं। तुम देवकी के गर्भ में रहने वाले मेरे आवेश युक्त आदिशेष के भ्रूण शरीर को खींचते हुये रोहिणी के गर्भ में बैठा दो। बाद में मैं अपने सिर में से एक काले बाल के स्वरूपांश से देवकी पुत्र होकर अवतार लेने वाला हूँ। तुम भी नन्द गोप की पत्नी यशोदा के गर्भ से जन्म लो। हे मंगलकारी, तुम श्रेष्ठ हो, सबके अभिष्टों को पूर्ण करने वाली हो। तुम ही बड़े लोगों की बड़ी आकांक्षाओं को भी पूर्ण करने वाली हो। मनुष्य लोग मन्दिर निर्माण कर तुम्हारी पूजा अलग-अलग नाम और अलग-अलग विधि से, धूप दीप नैवेद्य से करें।।8,9,10,11।।

रोहिणी बाह्लीक राजा की पुत्री और वसुदेव की ज्येष्ठ पत्नी थी। उसके गर्भ धारण करते ही कंस के देवकी के बच्चों को पहचानने के लिए, बच्चे अदल बदल न हों इसके निश्चय करने के लिए रोहिणी को दूर भेजा था।

दुर्गा-दुष्ट जनों को न मिलने वाली, **भद्रकाली**-मंगल स्वरूप वाली, कालीरंग वाली, **विजया** सर्वत्र जय देने वाली, **वैष्णवी**-विष्णु पत्नी, **कुमुदा**-भू लोक में सुख देने वाली, **चंडिका**-दुष्ट जनों को शिक्षा देने वाली, **कृष्णा**-सज्जनों को आनन्द देने वाली, **माधवी**-मधु नाम के यादव वंश में यशोदा के पेट से जन्म लेने वाली, **कन्या**-सुख देने वाली, शादी न करते हुए कन्या कुमारी होकर समुद्र तट पर रहने वाली, **माया**-सम्पदा देने वाली, **नारायणी**-नारायण की पत्नी, **ईशाना**-सबकी ईश्वरी, **शारदा**-प्रपंच को लय करने वाली, **अम्बिका**-इस जगत की माँ रूप धारण करने वाली, इस प्रकार लोग तुमको अलग-अलग नाम से आराधना करते हैं।।12,13।।

भक्तों की रक्षा करने वाले दुर्ग के सम्मान करती हैं इसके लिए लक्ष्मी को दुर्गा बोलते हैं। वैसे ही दुःख को दूर करने वाली यह अर्थ भी होता है। माया का अर्थ माम् (भगवान को) या आश्रय लेती हैं यह अर्थ होता है। शारदा का अर्थ हिंसा का खण्डन करने वाली यह होता है।

दिति, अदिति, दनु, काष्टा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा, तिमि ये तेरह दक्ष पुत्री मरीचि मुनि के पुत्र कश्यप ऋषि की पत्नियाँ बनी। कश्यप जब वसुदेव होकर जन्म लिया तब सुरभि दिति, दनु ये तीन काशी के राजा बाह्लीक करवीर राजा की पुत्रियाँ, रोहिणी, सुतनु, वडवा नाम से वसुदेव की पत्नी बनीं। अदिती देवकी बनी और छः पुत्री जो कश्यप की पत्नी थीं वे धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा नाम से देवकी की बहन बनकर वसुदेव की पत्नी बनी। रोहिणी, मदिरा, वैशाखी, भद्रा, सुनामुनि ये पाँच पुत्रियाँ पुरु वंश में जन्म लेकर वसुदेव की पत्नी बनी।

शूर नाम के यादव राजा को भोजादेवी नाम की क्षत्रिय पत्नी में वसुदेव जन्म लिया, उसी की वैश्य पत्नी में नन्द गोप जन्म लिया। अष्टवसु में एक द्रोण श्री हरि को पुत्र रूप में पाने के लिए वर पाकर शूर के पुत्र यादवों के राजा नन्द गोप होकर जन्म लिया।

देवकी के अलावा वसुदेव की अन्य पत्नियाँ गर्भधारण किये तो कंस उनको दूर भेजता था। यदि वे यहीं रहे तो अपने पुत्र को बदल सकते हैं इसके लिये उनको दूर भेजता था। रोहिणी वसुदेव से गर्भ पाने के बाद नन्दगोप वसुदेव के भाई होने के कारण उन्ही के घर में रहती थी। उसके पेट में रहने वाले बलराम को बदल करने के लिए भगवान ने दुर्गा को आज्ञा दी। यहाँ भगवान **स्वांशभागेन** कहते हैं। इसका अर्थ वे बलराम की तरह भिन्नांश से नही। यह अर्थ होता है।

देवकी के गर्भ से बाहर निकाल कर लाने से बलराम का नाम संकर्षण भी है। इस जग को आनंद देने वाले हैं इसके लिए उनका नाम राम हो। बल और बल के निमित्त श्रेष्ठत्व होने के कारण वे बलभद्र भी हैं।।14।।

श्री शुकदेव कहते हैं - भगवान की आज्ञा को दुर्गा देवी वैसा ही करूँगी बोलते हुये भगवान नारायण को परिक्रमा करते हुये इस भूमि में आकर वे जैसे कहे थे वैसे ही किये।।15।।

दुर्गा देवी देवकी-गर्भ को खींचकर रोहिणी के गर्भ में रख दीं। तब लोग समझे कि देवकी को गर्भस्राव हो गया।।16।।

दुर्गा देवी योग निद्रा की अभिमानी, उनके प्रभाव से देवकी और रोहिणी दोनों को एक ही समय गर्भस्राव हुआ। उस समय देवी के कारण उन दोनों को गाढ़ निद्रा आई थी। रोहिणी स्वप्न में ही गर्भपात का अनुभव करती दुःखित हो गई। तब दुर्गादेवी ने उसको बता दिया कि तुम्हारे गर्भ में और एक दूसरा गर्भ को लाकर रखी हूँ। संकर्षण नाम का पुत्र तुम्हारे गर्भ से जन्म लेने वाला है। इसी कारण तुम्हे दुःख करने की कोई बात नही। जब नींद खुली तो रोहिणी पहले जैसे तीन माह की गर्भिणी थी। उधर देवकी का गर्भपात कंस ने ही करवाया ऐसा लोगों का अभिप्राय

बन गया था। यह कथा हरिवंश मे आती है।

विश्वव्यापी भगवान भक्तों को अभय देने के लिए साक्षात अपने सिर के एक काले बाल के रूप से वसुदेव के शरीर में प्रवेश किये।।17।।

जीव पहले पिता के उदर में प्रवेश करता है। वहाँ से माता के पेट में आकर नौ महीना वहाँ रहते हुए दसवें महीने में बाहर आता है। यह मानव का क्रम है। भगवान श्री कृष्ण होकर पहले प्राणि रूप में वसुदेव में प्रवेश करते हुए उसी भूतावेश से माँ देवकी के गर्भ में प्रवेश किए हैं। यह शुक्र शोणित के सम्बन्ध से होने वाला नही है।

बलराम देवकी गर्भ में तीन महीने रहे, बाद में रोहिणी गर्भ में सात महीने रहे। कुल मिलाकर दस महीने रहे। श्री कृष्ण इस श्रुति मर्यादा को रखते हुए वसुदेव के पेट में तीन महीना और शेष बचा हुआ सात महीना देवकी के गर्भ में रहे। दसवें महीने में जन्म लिए। यहाँ मध्वाचार्य जी केवल साढ़ेसात महीने का गर्भावास की बात बताए हैं और कई लोग बलराम के तीन मास मिलकर दस मास बोलते हैं। हरिवंश में लिखा है कि भगवान आठवें महीने में जन्म लिए हैं। ये सारे विवक्षा भेद से सही होते हैं।

काले बाल के रूप में आये तो भी वह मूलरूप का शरीर पुरुष रूप में ही था। इसका वर्णन करते हुये भागवतकार आगे कहते हैं कि वह साक्षात मन्मथ से बढ़कर मन्मथ रूप था। भगवान के सारे अवयव और इन्द्रिय पुरुष रूप में पुरुष के अवयव धारण करते हुये सर्वशक्त और सर्वसमर्थ हैं।

परम पुरुष पुरुषाकार्य में तेजोरूप से वसुदेव के अन्दर प्रवेश करने से वसुदेव सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा था, अतः वसुदेव के पास कोई भी अपायकर प्राणी आ नही सकता था। कोई भी दुष्ट उसको बुरी नज़र से देख नही सकता था।।18।।

श्री हरि अपने स्वरूप शरीर से ही माता पिता के शरीर में प्रवेश कर वहाँ से बाहर आते हुये व्यक्त होते हैं। उसी को लोग भगवान जन्म लिये ऐसे कहते हैं लेकिन भगवान प्राकृत रूप से जन्म नही लेते। यह बात वामन पुराण की है।

इसके बाद वसुदेव लोक कल्याणकारी और सज्जनों को सुख देने वाले अच्युत रूपी भगवान श्री कृष्ण को अपने पेट से देवकी-गर्भ में रख दिया। तब भगवान वहाँ स्वेच्छा से अपने स्वरूप से ही आविर्भाव हुये। आकाश मार्ग में चलते हुये आने वाले आह्लादकर चन्द्र पूर्व दिशा मे दिखने लगे तो लोग चन्द्रोदय हो गया ऐसे कहते हैं। वैसे ही भगवान श्री कृष्ण देवकी-गर्भ में उदित हुये।।19।।

जुआ के स्थान में सत्य जैसे झूठ से छिपा रहता है वैसे ही जेल में देवकी पहले कान्तिहीन होकर बन्धित स्थिति में दुःखित रहती थी।अब जगदाधार स्वामी को आधार देने वाली देवकी अग्नि की ज्वाला के समान ज्वाज्वल्यमान होकर प्रकाशित होने लगी थी।।20।।

कभी भी न हारने वाले भगवान श्री कृष्ण को पेट में धारण करने वाली देवकी अपनी

कांति से पूरा कारागृह को प्रकाशित करती थी। उसके हर्षोत्फुल्ल वदनारविन्द को देखकर कंस को संशय आने लगा। वह अपने में विचार करने लगा-निश्चित रूप से मुझको मारने के लिए ही श्री हरि इसके पेट नाम की गुफा में छिप कर बैठा है। इसी कारण देवकी शोभायमान है। इसके पहले वह कभी भी इतना उज्ज्वल नही दिखती थी।।21।।

अपना कार्य साधना करने वाले अपने पराक्रम को कभी भी कलंकित नही करना चाहिए। अब मैं क्या करूँ, जल्दी में हरि के बारे में क्या निर्णय करूँ? गर्भिणी स्त्री वह भी मेरी बहन इसको मैंने मार दिया तो मेरी कीर्ति, सम्पत और आयुष सबका नाश हो जाता है।।22।।

व्यक्ति अत्यन्त क्रूर हुआ तो वह जीते जी मरा जैसे हो जाता है। वह मरता है तो उसके साथ उसकी निर्मल कीर्ति, कमायी हुयी सारी सम्पत्ति,भोग भाग्य और परलोक सुख सब नष्ट हो जाते हैं।।23।।

ऐसे विचार करते हुये कंस अपनी आलोचना के अनुसार स्वयं की प्रेरणा से श्री हरि के जन्म लेने के समय का निरीक्षण करता रहा। कंस समर्थ था, उसी समय देवकी को मार सकता था किन्तु लोक भय से स्वयं प्रेरित होकर पुत्र जन्म लेने की राह देखता रहा।।24।।

कंस में जीवद्वय का आवेश होने से उसको अच्छे बुरे दोनों विचार आते थे।

कंस गन्धर्व कुल में जन्म लिया हुआ द्रुमिल नाम के असुर से उग्रसेन की रानी में वंचना से जन्म लिया हुआ है। कालनेमि स्वयं मनोभिमानी असुर है। वही कंस रूप से जन्म लिया है। इस अंश को नारद जी कंस को बताते हैं। वंचना किए हुए द्रुमिल के बारे में क्रोधित होकर उग्रसेन की पत्नी शाप देती है कि तुम जिन पुत्रों को जन्म देते हो उनको मेरे पति के कुल में जन्म लेने वाली संतति नाश करे।इसी कारण जन्म से कंस श्रीकृष्ण से बद्धद्वेष करता था। कंस के सहायक जरासन्ध, नराकासुर, बाणासुर ये सारे तत्वाभिमानी दैत्य हैं। जरासन्ध नरकासुर मनोभिमानी है, बाणासुर चक्षुरिन्द्रियाभिमानी। केशी धेनुक वाक इन्द्रियाभिमानी, तृणावर्त पादाभिमानी, साल्व श्रोत्रेन्द्रियाभिमानी दैत्य थे। कालनेमि रूद्र के वर के कारण अजेय था।उसके साथ-साथ उसमें भृगु मुनि और मुख्य प्राण के अंश थे। जरासंध अपनी पुत्रियों की रक्षा के लिए रखे हुये अनेक यक्षों को जीत कर उनकी पुत्रियों से शादी किया था। शिव के बल के कांरण इन्द्र और वरुण को भी जीत चुका था।

बैठे हुये,सोते समय,फिरते चलते,खाते पीते सभी समय वह हरि का चिन्तन करता रहा।उसको जहाँ देखे वहाँ हरि ही दिखता था।।25।।

ब्रह्म, रुद्र आदि देव नारदादि मुनियों के साथ और देवतागण सहित अनुचरों के साथ देवकी के पास आ गये।वे अर्थ गर्भित बातों से देवकी के गर्भ में रहने वाले श्री हरि की स्तुति करने लगे।।26।।

ब्रह्मा भवश्च इसका अर्थ इस जगत में अवतार न लेने वाले चतुर्मुख ब्रह्मा जी ऐसे होता है।

ब्रह्म-रुद्र बोलते हैं भगवान श्री हरि! आप सदाकाल पूर्णानन्द ज्ञान रूप हैं। पंच महाभूतों से आप विलक्षण हैं। आप तीनों वेदों से प्रतिपाद्य हैं। इस सत्य प्रपंच के आप मूलकारण हैं। सत्य प्रपंच के नियामक होकर उसके अन्दर आप व्याप्त होकर रहते हैं। निर्दुष्ट आनन्दरूप ज्ञान वाले सात्विक लोगों को आप आनन्द ज्ञान देने वाले हैं। आप इस सत्य प्रपंच के नेता है, इसके संहारक भी आपही हैं। ऐसे आपके शरण में हम आये हैं।।27।।

भगवान! आपके वश में रहने वाला यह प्राणि प्रपंच एक अदभुत पीपल के वृक्ष के समान है। **एकायन,** आपके वश मे रहने वाले वृक्ष को मूल प्रकृति नाम की एक प्रमुख जड़ है। **द्विफल**-प्रवृत्ति निवृत्ति नाम के दो फल, **त्रिमूल**-सत्व रज़ तम नाम के तीन अन्य जड़। **चतुरस्र**-प्रवृत्ति कर्म नाम के फल में धर्म, अर्थ, काम नाम के तीन रस,निवृत्ति कर्म नाम के फल में मोक्ष नामक एक रस कुल मिलकर चार रस, **पंचशिफा**-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध नाम के पाँच बाहर के जड़, **षड़ात्मा**- 1. अस्ति-शरीर जन्म लेने के पहले रहने वाला भ्रूणावस्था, 2. जायते -जन्म लेना 3.वर्धते- अंकुर शरीर रूप में बढ़ते रहना 4.विपरिणमते - क्रमशः शरीर बदलता रहता है 5.अपक्षीयते -बुढ़ापे के कारण शरीर क्रमशःक्षय होता है 6.नश्यति - मरण पाना, यह शरीर के होने वाले छः स्वभाव अथवा ऊर्मि होते है, **सप्तत्वक्**-इस शरीर को त्वक, चर्म, मांस, रक्त मज्जा, मेधस्, अस्ति नाम के सात आवरण होते हैं, **अष्टविटप**- इस वृक्ष को देव, गन्धर्व, दानव, राक्षस पिशाच, प्राणि, मनुष्य और स्थावर नाम के आठ डाल होते हैं, **नवाक्ष**-दो आँख, दो कान, दो नाक, मुहँ, मल और मूत्र द्वार नाम के नौ घोसले होते हैं। (काठकोपनिषद में इन द्वारों को नाभि और सिर को जोड़ते हुये एकादश द्वार कहे हैं। लेकिन इन दो द्वारों से प्रवेश और निर्गमन न होने के कारण नौ द्वार को ही यहाँ कहा गया है) **दशच्छद**-पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय नाम के दस पत्तियाँ हैं, (नव द्वार इन्द्रिय नही हैं, वे केवल इन्द्रियों का स्थान हैं) इस प्रकार यह शरीर रूपी वृक्ष है। इसमें **द्विखग**-प्रवृत्त कर्मी और निवृत्त कर्मी नाम के दो पक्षी इस वृक्ष मे हैं। वे अपने कर्म के अनुसार मिलने वाले चार तरह के रस को खाते हैं। यह आदि वृक्ष है, प्रवाहतःयह अनादि वृक्ष है।।28।।

इस सत्य प्रपंच के आपही सृष्टि कर्ता, स्थितिकर्ता और लयकर्ता है। लयकाल में यह सृष्टि आप में प्रवेश करती है। आप इसके आधार रूप हैं। आपकी इच्छानुसार प्रकृति से आवृत अन्य लोग सृष्टि के लिए अलग स्थिति के लिए अलग और नाश के लिए अलग ऐसे अलग-अलग रूप में आपको देखते हैं। किन्तु ज्ञानी लोग तीनों में आपके एक ही रूप को देखते हैं।।29।।

प्रभु आप ज्ञानस्वरूप हैं। इस चराचर लोक के कल्याण करने के लिए,सज्जन को सुख देने के लिए, दुर्जनों का नाश करने के लिए सदाकाल आप अपने सकल सद्गुण पूर्ण अवतार

रूपों को बार-बार धारण करते रहते हैं।।30।।

<u>सत्वोपपन्नानि</u> इसका अर्थ भगवान के सारे रूप सत्य हैं और स्वतंत्र हैं यह होता है। भगवान <u>सर्वगुण समाहार हैं</u> सारे गुण उनमें मिल गये हैं।

हे कमलाक्ष! आप सकल चेतन जगत के आधार रूप हैं। आपमें मन रखते हुये ध्यान करने वाले भक्त अपने पूर्वजों द्वारा दिखाये हुये आपके पाद कमल नाम की नौका में बैठकर इस संसार सागर को छोटी गाय बछड़े के पाँव के खड्डे में खड़ा हुआ पानी को जैसे आसानी से पार करते हैं।।31।।

हे ज्ञान मूर्ति! आपमें भक्ति करने वाले परम ज्ञानी लोग अन्यों को असाध्य और भयानक इस संसार सागर को ठीक तरह से पार करते हैं। पार करने के बाद भी उस नौका को छोड़ते नही, अपने शिष्यगण को दे देते हैं। वे स्वयं उसी में बैठकर मोक्ष पाते हैं। इन गुरु शिष्यों को परमानुग्रह करने वाले, आपको छोड़कर और कौन हो सकता है।।32।।

हे कमलाक्ष, अन्य ज्ञानी लोग आपमे भक्ति न करते हुये,आपके पाद के शरण में न आते हुये आधा ज्ञान पाकर स्वयं को मुक्त समझते हैं। वे कष्टकारक और श्रमसाध्य काम्य कर्म करते हुये स्वर्गादि स्थान पाकर पुण्य क्षय के बाद नीचे गिरते हैं।।33।।

संसार सागर को पार करने के लिए भगवान का पाद ही एकमेव नौका है, वह अन्य नौका के समान सामान्य नही है। उसमें यात्रा करने वाले स्वयं संसार सागर पार करने के बाद भी, शिष्यों के लिए उसका सहारा देते हुये स्वयं उनके साथ उसमें बैठकर मोक्ष पाते हैं, यह वामन पुराण का वाक्य है।

हे लक्ष्मीरमण, हे प्रभु, आपके लोग, आपमें गाढ़भक्ति करने वाले ज्ञानी लोग कभी भी मोक्ष मार्ग से नही गिरते। उनके लिए आपकी रक्षा है। कितने भी विघ्न आये उनके शिर पर पाँव रखते हुये भय रहित होकर वे आगे बढ़ते हैं।।34।।

आप स्थिति काल में शुद्ध सत्व वाले ब्रह्मादि देवताओं के शरीर में रहते हैं। वह शरीर उनको ज्ञानोपदेश का श्रेयः साधन हैं। इसी कारण लोग वेद के अध्ययन, यागादि कर्म, योग, तप इत्यादि से आपकी आराधना करने में शक्त होते हैं।।35।।

<u>सत्वं विशुद्धम्</u> सत्व प्रचुर ब्रह्मादि देवता भगवान के शरीर में रहते हैं। इसके कारण यहाँ विशुद्ध सत्वम् शब्द का प्रयोग किया है। इसका अर्थ यह नही होता है कि भगवान को शुद्ध सत्वात्मक शरीर है।

सत्व सत्व महासत्व सूक्ष्मसत्व श्चतुर्मुख इस वाक्य के अनुसार ब्रह्मादि देवताओं का शरीर शुद्धसत्वमय है। भगवान के आवेश बल से वे शरीर अन्यों को ज्ञानोपदेश देते हैं।

शुद्धसत्वात्मक शरीर को श्री हरि आश्रय करता है इसका अर्थ उनके शरीर मे प्रवेश करते हैं। उनके आवेश बल से देवता उपदेश देते हैं, सज्जन लोग उसके अनुसार चलते हैं यह भागवत तंत्र का वाक्य हैं।

हे जगदाधार स्वामी! ब्रह्मादियों के शरीर को आपका सन्निधान न मिले तो अज्ञान को नाश करने वाला उत्कृष्ट ज्ञान इस जगत से लुप्त हो जाता है। शुद्ध सत्व गुण से ज्ञान के प्रकाश पाये हुये ब्रह्मादि देवताओं से उपदेश पाये हुये जिज्ञासु लोग आपको ठीक तरह से न जानते हुये, ठीक तरह से उपासना नही कर पाते क्योंकि ब्रह्मादियों के उपदेश के बिना गुणत्रय रहित आपका दर्शन किस साधन से हो सकता है?।।36।।

सत्वमय ब्रह्मादि देवता श्री हरि के आवेश से ज्ञानोपदेश नही किये तो त्रिगुण रहित हरि को सज्जन लोग कैसे समझते हैं? यह तंत्र भागवत का वाक्य है।

हे देव! आपके गुण कर्म अवतार के साथ आपके नाम रूप सारे अलौकिक होते हैं। उनको आपके कृपा के बिना हम केवल अपने मन से समझ नही सकते,मुहँ से बोल नही सकते। आप इस नाम रूपात्मक प्रपंच को सदाकाल देखते रहते हैं। हमें आपके स्वरूप को ज्ञानियों के मन और मुहँ से निकले हुए शब्दों से जानने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए भी आपके अनुग्रह की आवश्यकता है। ज्ञानी लोग भी आपके अनुग्रह से ही आपको जानते हैं।।37।।

भगवान को इस जगत के जैसे अल्प शब्दार्थ वाले, नाम वाले न होने के कारण और निरवधिक स्वतंत्र सम्पदा होने के कारण न नाम रूपे शब्द का प्रयोग किया गया है। भगवान सत्वादि तीनों गुणों से रहित होने के कारण उनको अगुण कहते हैं। अनायास कर्म करते हैं, इसके लिए उनका नाम अकर्म भी हैं। भगवान को अनन्त, अलौकिक नाम रूप होने के कारण उनका श्रवण मनन करना चाहिए।

इस लोक में व्यक्ति का नाम वह अस्वतंत्र होने के कारण उसके अल्पगुणधर्मों के बारे में कहते हैं, कभी-कभी नाम और गुण धर्म का सम्बन्ध ही नही रहता है। लौकिक दृष्टांत के लिए एक का नाम क्षीरसागर भट्ट है किन्तु घर मे एक लोटा भी दूध नही है क्योंकि उसके घर में गाय ही नही है। प्राकृत गुण धर्म रहित श्री हरि को ये नाम योग्य नही होते, इसके कारण उनको **अनाम** कहते हैं, प्राकृत रूप न रहने के कारण उनको **अरूप** कहते हैं। सत्वादि गुण रहित होने के कारण वे **निर्गुण** हैं, बिनायास सारे कर्म करने के कारण **अकर्म** हैं, जनन न होने के कारण वे **अज** हैं। इसी कारण यहाँ भागवत में **न नाम रूपे गुणकर्म जन्मभिः निरूपितव्ये** कहा गया है। वस्तुतः भगवान परम मुख्यवृत्ति से स्वतंत्र पूर्ण धर्म वाले सारे अनंत नाम होने के कारण श्री हरि अनंत नाम हैं, अप्राकृत अनंत रूप वाले हैं, पूर्ण अनंत गुण वाले हैं। अपने से भिन्न गुणक्रिया रहित होने के कारण वे अगुण अक्रिय हैं। वे अभिन्न गुण क्रिया वाले हैं यह ब्रह्मतर्क की बात है।

आपके नाम और रूप से मंगलकर वाले श्रवण कीर्तन, रूप से स्मरण ध्यान जो करते हैं और जो आप श्री चरणों में मन और मस्तक रखते हैं वे आपको ठीक तरह से समझते हैं। उपासक आपही हैं, उपास्य भी आपही हैं, मैं केवल निमित्त मात्र हूँ, यह अनुसंधान जो करता है वह पुनः इस संसार का भागी नही बनता है।।38।।

आपके रूप भूमि बोलने का अर्थ यह भूमि भगवान के पाद से हुआ है, उसमे पाद का सादृश्य भी है यह ब्रह्मतर्क की बात है।

हे श्री हरि! आप जगदीश हैं। आपके इस अवतार से आपके पाद रूपी इस भूमि के ऊपर हुआ दुष्ट लोगों का भार नाश हो जाता है, इसमे संशय नही है यह हमे संतोष देने वाला विषय है। आपके सुन्दर, सुकोमल और ध्वज, वज्र, अंकुश इत्यादि शुभ चिन्ह वाले पादों से यह भूमि चिन्हांकित होती है। स्वर्ग में आपकी कारूण्य नदी बहती है, इसको हम देखने वाले हैं, यह हमारे लिए संतोषदायक है।।39।

यह जमीन भगवान का पाद है, आकाश नाभि है, इसका अर्थ भगवान के उस अवयव से उनका निर्माण हुआ है। पुरुष सूक्त इसी को बताता है। इसका अर्थ हमें यह नही समझना चाहिए कि भूमि और भगवान के पाद में या आकाश और भगवान के नाभि में भेद नही हैं। मानव चलते समय हुए उसके पद चिह्नों को जैसे पाद मानता है वैसे भगवान के पाद से भूमि जन्म लेने के कारण उसको विष्णु पाद कहते हैं।

हे जगदीश! आप जनन मरण रहित हैं।अब आप जन्म लेने वाले हैं, यह केवल आपके लीला विनोद के लिए है, इसमें और कुछ कारण नही हो सकता है। आपको भी जनन मरण है ऐसा समझना और आपके लिए भी किसी की रक्षा की आवश्यकता है यह समझना अज्ञानी और कुहकियों की कल्पना है। इस संसार में रहने वाले सबको जनन मरण देने वाले और उनको जनन-मरण चक्र से मुक्ति देने वाले और मुक्ति में भी उनको आश्रय देने वाले आपको जनन-मरण कैसे हो सकता है? आपकी इच्छा मात्र से जनन-मरण इस लोक में संभव होता है।।40।।

जीव को जनन-मरण हरि की इच्छा से होते हैं तो श्री हरि को जनन मरण कैसे होता है? अज्ञानी लोग हरि में इनकी कल्पना करते हैं। यह ब्रह्मतर्क की बात है।

हे भगवान, हे यदुकुलोत्तम, आप इसके पहले मत्स्य, हयग्रीव, नरसिंह, वराह, हंस, परशुराम, राम, वामन इत्यादि अवतार लेकर तीनों लोको की रक्षा की है। हे भगवान, इस बार भी आप इस भूमि के भार को निवारण करते हुये जगत कल्याण करें, यही हमारी प्रार्थना है। आपको नमस्कार।।41।।

हे माँ देवकी, हमारे भाग्यवश से परम पुरुष भगवान साक्षात् अपने स्वरूपांश से हमारे कल्याण करने के लिए आपके पेट में प्रवेश किये हैं। अब कंस जल्दी मरने वाला है। आपका भय निवारण हो गया।आपका पुत्र सम्पूर्ण यदुकुल की रक्षा करेगा।।42।।

जिनके रूप लोक विलक्षण हैं ऐसे परम पुरुष श्री हरि को देवताओं ने ब्रह्म रुद्रादि के साथ मिलकर स्तुति करने के बाद अपने-अपने स्थान चले गये।।43।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वाध में तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौथा

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- उसके बाद सारे गण उच्च स्थान में रहते हुये प्रजापति दैवत सूचक रोहिणी नक्षत्र में, अनुकूल नक्षत्र, ग्रह, तारा युक्त नन्द भद्रादि कुयोग रहित सिंह मांस युक्त श्रावण कृष्णाष्टमी मध्य रात्रि के बहु प्रशस्त समय में श्री कृष्णावतार के सूचक मंगलमय वातावरण का निर्माण हुआ।।1।।

***थम* = अन्नम्। जिस दिन एकादशी के समान अन्न नही खाना है ऐसे कृष्णाष्टमी के दिन यह अर्थ अत शब्द से निकलता है।**

श्री कृष्ण के अवतार समय में भाद्रपद में सिंह मास आया था। उस भाद्रपद कृष्णाष्टमी को रोहिणी योग आया था। इस योग को जयंती योग कहते हैं। श्रावण मास में सिंह मास आये तो श्रावण कृष्णाष्टमी को रोहिणी योग आने के कारण जयंती उसी समय होती है।

दशों दिशायें प्रसन्न हो गयीं आकाश में नक्षत्र प्रकाशमान थे, शहर ग्राम और यादवों का कुटीर सहित समग्र भूमण्डल मंगलमय हो गया।।2।।

नदी में शुद्ध जल तेजी से बहने लगा, सरोवर में कमल के फूल खिले, जंगल में वृक्षों में फूल फलित हुये। रात के समय में भी पक्षी मंजुल निनाद किये।।3।।

शुद्ध हवा सुगंधित सुखस्पर्श देते हुये मन्दगति से चलने लगी। ब्राह्मणों के यज्ञकुण्ड में अग्नि सौम्य और सुन्दर रूप से जलने लगी।।4।।

सज्जनों का मन सन्तोष से खिले, दुर्जन घबड़ा गये। अंतरिक्ष में देव दुंदुभि आवाज करने लगे।।5।।

***अंशुरद्रुहाम* इस का अर्थ असुर से द्वेष करने वाले यह होता है। असुर को द्रोह करने वाले ऐसा अर्थ नही करना।**

रात में कमल खिलना, पक्षियों का गूंजना, याग की अग्नि जलना, दुंदुभि का स्वयं स्वर करना, ये सब भगवान कृष्ण के अवतार का सूचक हैं। आगे चलकर वसुदेव के हाथ पाँव को बंधे हुये दण्डाबेड़ि स्वयं खुल जाता

था कारागृह का दरवाजा स्वयं खुल जाता है, यमुना जी पार करने के लिए रास्ता देती हैं ये सारे कृष्णावतार की लीला है।

किन्नर-गन्धर्व गायन करने लगे, सिद्ध-चारण स्तुति करने लगे, विद्याधर-अप्सरसायें आनन्द विभोर होकर नाचने लगे।।6।।

मुनि देवतागण आनन्द-भरित होकर पुष्प वृष्टि किये। मेघ समुद्र के ऊपर खड़े होकर मंद गर्जना किये।।7।।

मध्यरात्रि के गाढ़ अन्धःकार में भगवान श्री कृष्ण के अवतार समय में दुंदुभि का निनाद हुआ। सबके हृदय गुहा में रहने वाले विष्णु देवता स्वरूपी देव के गर्भ से पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान प्रादुर्भूत हुये।।8,9।।

जनार्दने अतमे उदभूते इसका अर्थ रात में कामी जनों को दुःख देने वाले चन्द्र के उदय के समय यह अर्थ होता है। दूसरा अर्थ दुष्ट जनों को कष्ट देने वाले भगवान कंसादि दुष्टों के नाश के लिए अवतार लिए यह भी होता है।

उस अद्भुत बालक को वसुदेव ने देखा। उसको कमल के समान आँख है। चार हाथ हैं, चारों में शंख, चक्र, गदा, पद्म को धारण किये हैं, छाती में श्री वत्स चिन्ह शोभित है, गले में कौस्तुभमणि शोभित है। पीतांबर धारण किये हैं। नील मेघ के समान शरीर की कांति है, अमूल्य रत्न वज्र जटित किरीट कुण्डल से युक्त सुशोभित रुप है, कटि में मेखला शोभती है, हाथ में और बाहु मे सोने के कंकण हैं। वह नवजात बालक ऐसे सुशोभित है।।10,11।।

बाल यानी कृष्ण केश से उत्पन्न हुआ कः चतुर्मुख ब्रह्म जिसका पुत्र है ऐसा अद्भुत बालक यह है। प्रकृति में बालक को बालक उत्पन्न नही होता है। इसके लिए यह बालक अद्भुत है, यह अर्थ अद्भुत बालक शब्द से होता है।

चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारी यह रूप इन देवताओं से युक्त है। शंख = श्रीदेवी, चक्र = दुर्गा, गदा=वायु, पद्म = भूदेवी, इन अभिमानी देवताओं को स्वतंत्र रूप से धारण किया हुआ शिशु यह अर्थ है।

चतुर्भुज = चार विधि के आहुति को यज्ञ रूप में स्वीकार करने वाले। पूतना इत्यादि दैत्य भगवान की प्रथम आहुति बने। दूध, दधि, मक्खन भगवान की दूसरी आहुति। गोवर्धन उद्धार के समय के समस्त भक्ष्य तृतीय आहुति। दावानल को पीना चतुर्थ आहुति है।

चतुर्भुज धर्म, अर्थ काम मोक्ष चारों का भुजः पालकः।

अम्बुजेक्षण = क्षीर सागर में जन्म लिया हुआ चन्द्र वंश में जन्म लेने वाले और लक्ष्मी जी के ऊपर विशेष कृपा कटाक्ष रखने वाला यह अर्थ भी होता है।

श्री कृष्ण के जन्म समय के जातक का विवरण इस प्रकार है- विरोधी संवत्सर - दक्षिणायन - वर्षऋतु -

श्रावण (भाद्रपद) कृष्ण पक्ष - अष्टमी - बुद्धवासर - वज्र योग - बवकरण में, जम्बूद्वीप में, भरत खण्ड में, यमुना तट के मथुरा नगरी में कारागार में भगवान का आविर्भाव हुआ। दक्षिक्षा के पति होने से भगवान दक्षिणायन हैं, सज्जनों को सही अर्थ बताने वाले गीतोपदेशक भगवान वर्षाऋतु हैं। अपनी कथा श्रवण से नवधा भक्ति देने वाले भगवान का पक्ष श्रावण कृष्ण पक्ष है। अष्ट महिषियों को उद्धार करने के लिए, अष्ट दिशा में रहने वाले दैत्यों को नाश करने के लिए, अष्ट महामंत्र प्रतिपाद्य होकर, अष्टाक्षर मंत्र से प्राप्य होने वाले, अष्ट वसुओं में प्रधान अवतारी भीष्म से स्तुति पाने वाले, देवकी के अष्टम पुत्र होकर, अष्ट कर्तृत्व को रखने वाले उडुपि में अष्ट यतियों से पूजित होने वाले, अष्टऐश्वर्य से न मिलने वाले, ओंकार से प्राप्त अष्टाक्षर मंत्र जप से मिलने वाले भगवान अष्टम मास श्रावण में जन्म लिए।

भक्तों को दुःख देने वाले कंस को मारने वाला वज्र रूप भगवान बवकरण और वज्र योग में जन्म लिए बुध लोगों को ज्ञान देते हुए उनके साथ रहने वाले भगवान बुधवासर में जन्म लिए। द्वीप रूपी द्वारका में आगे वास करने वाले हैं। इसके प्रतीक जम्बूद्वीप में भगवान जन्म लिए। इक्कीस मत का खण्डन करते हुए ब्रह्म सूत्र के अर्थ को मण्डन करने वाले जगद्गुरू मध्वाचार्य जी के श्रेष्ठ गुरु होकर भगवान भरत खण्ड में जन्म लिए। मथुरा नाम को पलट कर बीच में का थ अक्षर को हटा कर मै ही राम हूँ यह दिखाने वाले श्री हरि रमण द्वीप को कालिय को भेजने वाले मथुरा में जन्म लिए। भगवान वृषभ लग्न में जन्म लिए इसका अर्थ वे ब्रह्मादियों से श्रेष्ठ हैं, यह होता है। चन्द्र उनके राशि में उच्च है इसका अर्थ सूर्य चन्द्र को उच्च स्थान में रखते हुए उनकी रक्षा करते हैं।

लग्न में चन्द्र रहने से चन्द्र मुखियों से लग्न करना भी अवतार का एक उद्देश्य है यह बताता है। द्वितीय वाक् स्थान में कोई ग्रह नही है इसका अर्थ ब्रह्मादि लोगों के लिए उपदेशक भगवान हैं, किन्तु भगवान के लिए उपदेशक कोई नही है। चतुर्थ लाभस्थान में रवि उच्च हैं इसका अर्थ रवि से प्राप्त स्यमन्तक मणि और जाम्वती कन्या मणि लाभ को दर्शाता है। पुत्र स्थान पंचम में बुध मूल त्रिकोण में अपने घर में वास करता है। इससे पुत्र सन्तान का आधिक्य होता है। भगवान अपने सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों में प्रत्येक से दस-दस पुत्रों को जन्म देते हैं यह दर्शाता है। षष्ठम स्थान शत्रु का स्थान है। कंस आदि अनेक शत्रुओं को भगवान राहु रूप में हैं। पाण्डवों के वंश की रक्षा का भार वहन करने वाले भगवान सर्प भय से भयभीत (राहु = सर्प) परीक्षित को शुकाचार्य से भागवत अमृत पिलाकर उद्धार करने वाले इसको दर्शाता है। सप्तम् भाव कलत्र भाव होते हुए कुज का घर होने से भूमि से उत्पन्न हुआ नरकासुर से लाकर रखी हुयी सोलह हजार एक सौ पत्नियों को पाने का सूचक है। कुज का घर शून्य होने से किसी स्त्री से भगवान को कुछ भी होने वाला नही हैं वे स्वरमण हैं इसको दर्शाता है। अष्टम भाव मरण का स्थान है, वह शून्य होकर किसी ग्रह की दृष्टि न होने के कारण भगवान को मरण और देहत्याग कुछ नही है, वह सब उन्ही के अधीन है इसको दर्शाता है।

कुज भाग्य स्थान में उच्च होने के कारण उच्चवंश के कन्याओं के साथ विवाह भाग्य दर्शाता है। दशम स्थान कर्म स्थान है, शनि अपने स्थान में है। अपने घर में करने का अनेक गृहस्थ कार्यो को करते हुए, लोक

शिक्षण करने वाले, स्थिर बुद्धि होकर क्रोध के वश होकर कुछ भी करने का स्वभाव नही है इसको दर्शाता है। एका-दश स्थान लाभ स्थान होते हुए क्षेत्र के अधिपति गुरु वही हैं। इससे भगवान को केवल लाभ ही होता है कभी नष्ट नही होता इसको दर्शाता है। मोक्ष कारक केतु व्यय स्थान में होने के कारण अर्जुन को उद्दिष्ट करते हुए सकल भक्तों को ज्ञानोपदेश देते हैं इसका प्रतीक है।

इस प्रकार भगवान श्री हरि को अपने पुत्र रूप में खड़े हुये देखकर वसुदेव आश्चर्य चकित हुआ आँख फाड़-फाड़कर उसको देखते रहे। कृष्णावतार के इस उत्सव के सम्भ्रम में आनन्द विभोर होकर मन में ब्राह्मणों को दस हजार गोदान करने का संकल्प किया।।12।।

श्री कृष्ण जन्म नही लिये। पूर्व की दिशा में सूर्य चन्द्र जैसे उदय होते हैं वैसे श्री हरि आविर्भाव हुये। पीतांबर आयुध आभरण और श्री वत्स चिन्ह इन सबको धारण करते हुये मूल रूप से आकर वसुदेव और देवकी के आँखों के सामने आकर खड़े हुये हैं।

यह बालक साक्षात परम पुरुष नारायण हैं। वसुदेव इस निर्धारण के सङ्गथ कारागृह को अपने प्रकाश से प्रकाशित किए हुए इस शिशु को सिर झुकाकर नमस्कार करते हुये दोनों हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। वसुदेव ज्ञानी था। सामने भगवान खड़े है, उनके सामर्थ्य को वसुदेव जानता है।कंस का भय मन से उड़ गया है।।13।।

वसुदेव कहते हैं- भगवान! आप शुद्ध ज्ञानानंद स्वरूप हैं। आप सबको परोक्ष अपरोक्ष ज्ञान देने वाले प्रकृति विलक्षण रूप वाले लक्ष्मी पति साक्षात आप हैं,यह मैं ठीक तरह से जानता हूँ।।14।।

वसुदेव भवान् कहते हैं विदितोसि भवान् यहाँ भवान् का अर्थ तू या तुम नही होता। भो अस्तयाति= भवान इस रीति से विग्रह करते हुए पूज्य नरहरि तीर्थ स्वामी जी भ शब्द को अठ्ठाईस अर्थो को लिखे हैं ये सारे भगवान श्री कृष्ण को अन्वय करना है। विस्तार भय से हम उनको यहाँ नही दे रहे हैं। कुतूहल एवं आस्था रखने वाले इनको जानने के लिए हमसे सम्पर्क करें।

आप अपनी इच्छा के अनुसार अपने अधीन प्रकृति से इस त्रिगुणात्मक प्रकृति को सृष्टि करते हुये उसमें प्रवेश कर नियामक होकर रहते हैं। अन्दर बाहर दोनों जगह रहने से आप प्रवृष्ट होकर भी अप्रविष्ट रहते हैं।।15।।

श्री हरि इस प्रपंच में रहते भी हैं और न रहते भी हैं। प्रविष्ट क्योंकि प्रपंच के सभी जगह व्याप्त होकर रहते हैं। अप्रविष्ट क्योंकि इस ब्रह्माण्ड के बाहर भी रहते हैं। इसी कारण वे प्रविष्ट भी हैं अप्रविष्ट भी हैं यह ब्रह्मतर्क का वाक्य है।

प्रकृति से थोड़ा ही परिणाम पाने वाले बड़े शक्ति वाले महत्तत्व, अहंकार तत्व, पंचतन्मात्रा ये सात तत्व, प्रकृति से ज्यादा परिणाम पाने वाले इससे ज्यादा विकृत होने वाले एकादश

इन्द्रिय, पंच महाभूतों से मिलकर आपका आवास स्थान बना हुआ इस ब्रह्माण्ड का उत्पादक कारण बनते हैं।बाद में ये सारे उसी में आकर रहते हैं। वे सारे ब्रह्माण्ड में पहले सूक्ष्म रूप से रहते हैं अब व्यक्त होकर अन्दर प्रवेश करते हैं। ये नये रूप से उत्पन्न नही होते।।16,17।।

आप केवल ब्रह्माण्ड का निर्माण करके उसमें रहते हैं इतना ही नही पिण्डांड निर्माण में भी आप स्वतंत्र हैं। शरीर में जीव को रूपादि गुणों को जानने की इच्छा होते हुये भी इसकी जानकारी उसको नही रहती। इसी कारण वह अस्वतंत्र है।उसको वह ज्ञान आपसे ही मिलता है, इसी से मालूम होता है कि आप स्वतंत्र हैं। आप सबको स्वयं साक्षात देखते हैं। आपको अन्तर्बाह्य भेद नही है, आप सर्वशक्त हैं लय-काल में सबको खा डालते हैं। उस समय आप केवल अपने में रमते हैं।।18।।

भगवान सब कुछ देखते हैं किन्तु जीवात्मा उनको देख नही सकता। जीवात्मा का ज्ञान उसके अधीन नही रहता वह स्वतंत्र रूप में रहने वाले भगवान के अधीन होता है। जीव को शरीर देने वाले भी भगवान ही हैं। वे ही स्वतंत्र है, सर्वशक्त है, सर्व भक्षक हैं, सर्वात्मा हैं दूसरों के आश्रय के बिना स्वयं अपने में रहने के कारण उनको आत्म वस्तु कहते हैं। यह तन्त्र भागवत का वाक्य है।

विषय पदार्थों का ज्ञान होने वाला साधन रूप शरीर इन्द्रियों में सारे कार्यो के प्रेरक होकर आप रहते हुये भी अज्ञानी लोग अहंकार से अपने से छोड़कर और देव नही ऐसे समझते हैं। किन्तु कोई भी श्रुति इस बात को समर्थन नही देती, इसके लिए कोई प्रमाण नही मिलता। इसके लिए इसको नही मानता। वेद पुरुष इन्द्र नामक वैकुण्ठ नारायण **अभीदमेकम** इस ऋग्वेद के मंत्र में स्पष्ट रूप से जीव और ईश्वर के भेद को दिखाते हैं। इसके लिए अभेद को मान्यता नही है।

अभीदमेकोमेक अस्मि निष्पाळ् अभीद्वा किमु त्रयः करन्ति।
खलेन पर्षान् प्रतिहन्मि भूरि किं मां निन्दन्ति शत्रवो ऽनिन्द्राः।।(ऋग्वेद 10-48-7)

ये सारे जगत एक होकर मेरे ऊपर आक्रमण करें तो मैं अकेला इसका सामना करूँगा। एक, दो या तीन जगत मिले तो भी वे मुझे कुछ कर नही सकते। मैं उनको ओखली मे धान को कूटने जैसे मैं उनको कूट-कूटकर नाश करता हूँ। शक्ति रहित वे शत्रु मेरी निन्दा भी करने की ताकत वाले नही हैं।।19।।

इस श्लोक में जीव से अलग भगवान रहे तो भगवान के स्वतंत्र और अस्वतंत्र का प्रश्न आता है। इस शंका का निवारण करते हुए जीव और ईश का भेद स्पष्ट व्यक्त होता है।

ज्ञानी लोग कहते हैं कि प्रभु इस जगत में सृष्टि स्थिति लय जो होते हैं वे आपसे होते है। किन्तु जगत जो सृष्ट होता है वह आप से होते हुये भी आप निर्विकारी हैं। कुम्हार के घट के करने से कष्ट नही होता, उसके समान आपको कष्ट नही होता। आप त्रिगुण बद्ध नही हैं किन्तु

त्रिगुणों से ही इस जगत का निर्माण करते हैं। इस जगत में ऐसा कर्तृत्व और किसी में नही है।आप सर्वशक्त और गुण पूर्ण होने के कारण यह विरुद्ध स्वभाव आश्चर्य कारक नही है। आप सत्वादि गुण से बद्ध नही हैं किन्तु उन गुणों के आधार आप ही होने के कारण आपको गुण वाले ऐसे गौण रूप का व्यवहार होता है।।20।।

सज्जनों को ज्ञान भक्ति को देते हुये तीनों लोकों की रक्षा करने हेतु स्वेच्छा से शुद्ध सत्व को बढ़ाते हुये अपने शुद्ध वर्ण को दिखाते हैं, सज्जनों को ज्ञानासक्ति उत्पन्न करने के लिए रजो नामक शुद्ध सत्व को परिवर्तन करते हुये रक्त रंग को दिखाते हैं। दुर्जन के तमो नाशक शुद्ध सत्व प्रवर्तक आप कृष्ण रंग का परिवर्तन करते हैं।।21।।

श्री हरि जीवों में सत्व गुण को बढ़ाते हुये लोक रक्षण करते समय सत्वगुण स्वरुप शुक्ल वर्ण धारण करते हैं। तमो गुण को बढ़ाकर प्रलय करते समय कृष्ण वर्ण वाले होते हैं। सज्जनों को ज्ञान उत्पन्न करने के लिए धारण किया हयग्रीवादि रूप शुक्लवर्ण का होकर रक्षण करता है। ज्ञान में आसक्ति उत्पन्न करने के लिए परशुराम रूप रक्तवर्ण का है। दुर्जनों में तमोवृद्धि करते हुये उनको तमस में डालने का कार्य कृष्ण रूप का लय कार्य है। यहाँ बताये गये सत्व रज तमस ये गुण शुद्ध सत्व से होते हैं। शुद्ध सत्व ज्ञान उत्पादन करने के कारण सत्व माना जाता है। वही ज्ञान में इच्छा उत्पन्न करने के कारण रज होता है। अज्ञान में द्वेष उत्पन्न करने के कारण वही तमस कहा जाता है। मुक्त लोगों को शुद्ध सत्व नही होती। उनके स्वरूप भूत सत्व जो है वही तीनों नामों से कहा जाता है। श्री हरि के ये सारे रूप सृष्टि आदि सकल कार्य करते हैं। यह ब्रह्मतर्क का वाक्य है। श्री हरि स्वं माया यानी अपनी इच्छा से ही हयग्रीव आदि रूप धारण करते हैं। वे रजो गुण तमो गुण को केवल आश्रय देते हैं।

हे सर्वेश्वर प्रभु! आप इस सात्विक लोक की रक्षा करते हैं, इसी उद्देश्य से यानी सज्जन को सुख देने के संकल्प से मेरी पत्नी में अवतार लिये हैं। अब नाम के वास्ते राज्य करने वाले असुर राजाओं और हजारों उनके नायक और करोड़ों उनके सैनिकों का आप अकेले नाश करने वाले हैं।।22।।

तामस कार्य करने वाला कंस, आप मेरे पत्नी में अवतार लेने वाले हैं, इस बात को नारद जी से सुनकर, आपसे पहले जन्म लिये हुये आपके छः भाईयों को आप ही मानकर मार डाला है। हे देवेश वह आपका अवतार हुआ इस बात को अपने सैनिकों से सुनकर शस्त्र धारण करके आपको मारने आयेगा।।23।।

कस यदि मारने आया तो उससे भगवान को कुछ भय नही है। किन्तु कंस भगवान से मर जाता है।उसका पाप का घड़ा अभी भरा नही है। वह अकेले मर गया तो उनके हजारों, लाखों दुष्ट लोग वैसे ही रह जाते हैं इसके लिए वसुदेव चिन्तित हैं।

श्री शुकदेव कहते हैं- बाद में श्री देवकी अपने पुत्र को देखकर उनमें विष्णु के सारे लक्षण को देखते हुये कंस का डर रहते हुये भी हंसमुख होकर स्तुति करती है।।24।।

देवकी बोलती है - भगवान तुम्हारे अनुग्रह के बिना तुम्हारा स्वरूप किसी को व्यक्त नही होता। तुम इस जगत के आदि कारण हो। आपकी व्याप्ति देश काल परिमिति से परे है। त्रिगुण-वर्जित निर्विकारी निर्दोष गुण रूप वाले हे भगवान! तुमसे बढ़कर उत्तम वस्तु और कोई नही है। यह रूप अपने के लिए कुछ नही करता है। मुक्ति में जीवात्मा स्वरूप को प्रकाशित करता है। तुम ऐसे स्वरूप वाले हो, स्वयं विष्णु भगवान हो। सारे वेद आपके गुणगान करते हैं।।25।।

मानव मान के चार सौ बत्तीस करोड़ वर्ष ब्रह्ममान का एक दिन होता है। इस गणना मे ब्रह्मा जी का पचास वर्ष एक परार्ध माना जाता है। ऐसे दो परार्ध के अंत में लय मूर्ति तुम्हारी प्रेरणा से सकल लोक नाश पाते हैं। उस समय पंचमहाभूत अहंकार तत्व में अहंकार तत्व महत्तत्व मे, महत्तत्व प्रकृति तत्व में लीन होते हैं। उस समय अंत में केवल सर्वशब्द वाच्य तुम अकेले रह जाते हो। एक वट-पत्र में सोये रहते हो उस समय सारे वेद तुम्हारी ही कीर्ति का गायन करते रहते हैं।।26।।

हे लक्ष्मी-पति! एक निमिष से आरम्भ होकर ब्रह्ममान के सौ वर्ष पर्यन्त जो अपरिमित होकर काल चलता है वह आपके लिए केवल क्रीड़ा साधन है। यह ज्ञानियों का मत है क्योंकि उसी काल में इस जगत का सारा क्रिया कारित्व चलता है। आप सर्व प्रेरक हैं। मुक्ति धाम रूप आपके मैं शरण में आती हूँ।।27।।

इस जगत में जो कुछ चलता है वह काल के अधीन है किन्तु काल भगवान के आधीन है। हे आदि पुरुष, मानव मृत्यु नाम शाप के भय से सारे जगत में फिरते हुये भय रहित स्थान को कभी भी नही पाता है। अंत में अदृष्ट प्रेरक आपकी प्रेरणा से आपके पाद कमल को पाकर निर्भय होकर सोता है। जो आपके पाद कमल को पाता है उससे मृत्यु दूर भागती है।।28।।

आप भय निवारक हैं। हम कंस के भय से पीड़ित हैं। उससे आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं। पहले केवल योगियों को ध्यान में गोचर होने वाले इस चतुर्भुज रूप को हमारे जैसे करते हुए लोगों से छिपाकर रखिए।।29।।

हे मधुसूदन, आप मेरे पेट से अवतार लिए हैं यह कंस को मालूम न हो आप को कंस से कुछ न हो इसके लिए मैं डर रही हूँ। आप सर्वशक्त भगवान हैं, किन्तु यह प्रज्ञा मुझमें सदाकाल नही रहती। मैं बहुत चंचल बुद्धि वाली हूँ।।30।।

हे विश्वेश, आप शंख, चक्र, गदा, पद्म से शोभायमान इस लोक विलक्षण चतुर्भुज अपने रूप को छिपाकर रखिये।।31।।

लय काल में आप समस्त ब्रह्माण्ड को अपने पेट में किसी स्थान में रखते हैं। ऐसे महापुरुष आप मेरे इस छोटे पेट में थे यह कैसी विडम्बना है।।32।।

कृष्णावतार श्रावण मास के कृष्ण पक्ष अष्टमी तिथि मध्य रात्रि में रोहिणी नक्षत्र युक्त जयन्ती मूहूर्त में

चन्द्र के समान विराजमान भगवान चन्द्र के साथ प्रकट हुए।

श्री भगवान कहते हैं- देवकी! पिछले जन्म में तुम स्वायंभुव मन्वंतर में पृश्नि नाम से जन्म ली थी। उस समय दोष रहित यह वसुदेव सुतप नाम के प्रजापति थे।।33।।

चतुर्मुख ब्रह्मा जी ने तुम दोनों को प्रजा सृष्टि करने के लिए आदेश दिये।उस समय तुम दोनों इन्द्रिय निग्रह करते हुये श्रेष्ठ तप किये।।34।।

वर्षा, गर्मी, आधी, ठण्डी और गर्मी को सहन करते हुये कालगुण के अनुसार प्राणायाम करते हुये मन के मल को धो दिये।।35।।

वृक्षों से गिर कर जमीन पर गिरे हुये केवल पत्ती को खाकर मुझमें मन रखते हुये मुझसे वर चाहते हुये मेरी आराधना किये।।36।।

हे मंगलमयी, मुझमें मन रखने वाली तुम्हारे तप करते-करते देव मान के बारह हजार वर्ष बीत गये।।37।।

हे पाप रहित कल्याणी,श्रद्धा भक्ति से आपके तप करने के कारण और अपने हृदय में मेरा ध्यान करने के कारण मैं आपके सामने इस रूप से आविर्भूत हुआ। वर देने वालों में श्रेष्ठ मैं आपकी मनोकामना की पूर्ति करने के लिए आपसे बोला जो चाहे वह वर माँगो।उस समय तुम बोली कि मेरे जैसे एक पुत्र हो।।38,39।।

तुम दोनों दंपति होकर भी विषय भोग नही किये थे।तुमको पुत्र नही हुये थे।पुत्र वर माँगने की अभिलाषा मेरी माया से मैंने ही उत्पन्न किया था।इसी कारण उस समय तुम लोग मोक्ष की कामना नही की।।40।।

वर देकर मेरे जाने के बाद मेरा जैसा और दूसरा नही होने कारण मैं ही तुम्हारा पुत्र बना।तुम अपने मनोरथ को पूर्ण करते हुये सुख भोगों को भोग लिये।।41।।

ज्ञानी को भी अपने प्रारब्ध कर्म का भोग करना पड़ता है।दाम्पत्य सुख प्रारब्ध को पाने का वर माँगने के लिए भगवान ने ही उनको प्रेरणा दी थी।

शील औदार्य इत्यादि गुणों में मेरे समान और कोई न होने के कारण मैं ही प्रश्नि गर्भ नाम से तुम्हारा पुत्र होकर अवतार लिया।।42।।

अगले जन्म में तुम अदिति और कश्यप रूप से जन्म लिये, उस समय में उपेन्द्र नाम से आपका पुत्र बना।छोटा और सुन्दर होने से मेरा नाम वामन भी है।।43।।

हे पाप रहित देवकी,पिछले जन्म में पृश्नि सुतप और अदिति कश्यप नाम वाले तुमको मैं इस जन्म में भी वही चतुर्भुज रूप में आपके पुत्र होकर अवतार लिया हूँ।हे पतिव्रते! यह मेरा वाक्य सत्य है।।44।।

मैंने तुमको यह रूप दिखाया है वह आपका पूर्व जन्म याद आने के लिए और मेरे पूर्व अवतारों की याद दिलाने के लिए। यदि मैं केवल मनुष्य शरीर से अवतार लिया तो आपको मैं परम पुरुष हूँ यह ज्ञान नही होता था।।45।।

तुम लोग मुझको पुत्र मानते हुये कभी-कभी परब्रह्म समझते हुये पुनःपुनः चिन्तन करते हुये वात्सल्य और भक्ति से युक्त होकर अंत में मेरे लोक को पाओगे।।46।।

श्री शुकदेव कहते हैं- इतना बताकर श्री हरि चुप हो गये। अपनी इच्छा से माता-पिता देखते-देखते एक लौकिक शिशु का रूप धारण किये।।47।।

इसके बाद वसुदेव भगवान के आदेश से पुत्र रूप में रहते हुये उनको लेकर कारागार के बाहर जाने की इच्छा किये। उधर नन्द गोकुल में जनन रहित योगमाया दुर्गा देवी यशोदा में अवतार लीं।।48।।

विष्णु माया, योग माया, दुर्गा इन शब्दों से हमें दुर्गा देवी को विष्णु शक्ति मानना चाहिए। इसको पार्वती नही समझना चाहिए। पार्वती का नाम भी दुर्गा है किन्तु वह भगवान की योग माया नही हैं। पार्वती के अंश वाली दुर्गा को भगवान की बहन माना जाता है। दुर्गा विष्णु माया रूप में भगवान की पत्नी हैं। यहाँ दुर्गा पार्वती अंश रूप में भगवान की बहन लगती हैं। भविष्योत्तर पुराण में श्री निवास कल्याण के समय दुर्गा भगवान की बहन होकर कलश लेकर चलती थी यह वर्णन आता है।

भगवान वसुदेव को दिया हुआ आदेश इस प्रकार था।
यदि कंसाद् विभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय।
यशोदायाश्च ताम् कन्यां मन्मायामान्य दृतम्।
स्वयं स्युर्विवृता द्वारो यमुनाच सुदुस्तरा।।

वसुदेव! यदि तुम्हारे लिये कंस का भय है तो मुझको गोकुल को ले जायें। वहाँ यशोदा से शिशु होकर जन्म लिये हुये मेरी माया दुर्गा को यहाँ ले आओ। कारागार के द्वार और न पार करने वाला जमुना तुमको रास्ता देंगे। यह हरिवंश की बात है। हरिवंश में आगे लिखा है

वसुदेव वचःश्रुत्वा रूपं संहरदच्युतः
अनुज्ञाप्य पितृत्वेन नन्दगोप गृहं नय।

नन्द गोप को मेरा पिता बनने के लिए कहो और मुझको वहाँ ले जाओ।

कृष्णावतार होने के बाद एक मुहूर्त तक अष्टमी तिथि थी। उसके बाद नवमी तिथि आने के बाद यशोदा दुर्गा को जन्म दी। गर्भ काल में नव मास भरने के पहले आठवें महीने में एक ही समय में देवकी और यशोदा दोनों बच्चों को दिये। **अनुज्ञाप्य पितृत्वेन नन्दगोप गृहं** नय इस वचन के अनुसार नन्द गोप को श्री कृष्ण क्रीत पुत्र होता है वसुदेव चोर जैसे जाकर बच्चों का अदल-बदल नही किया है। यशोदा को प्रसव श्रम से और विष्णु माया से मूर्छा

अथवा योग निद्रा आई थी उसको बदलाव के बारे में कुछ नही मालूम था। यह बच्चों के बदलाव वसुदेव, देवकी, उग्रसेन और नन्द केवल चार लोगों को मालूम था। ये चारों मिलकर यदुवंश की रक्षा के लिए बच्चों की अदल-बदल करने का निर्णय पहले किये थे। यह विषय वायु पद्म और ब्रह्माण्ड पुराणों मे आता है।

दुर्गा देवी कंस के हाथ से निकल कर आकाश में जाने के बाद वापस आकर देवकी के पास बच्ची बनकर रही। इस पुत्री को माता-पिता को छोड़कर और कोई देख नही पाते थे।

वह दुर्गा की माया से कारागार के रक्षक और नगर के अन्य लोगों को घोर निद्रा में रखते हुये उनके सारे कार्य कारित्व को स्तब्ध की थी। कारागार के द्वार बड़े-बड़े लोहे के जंजीर से बंधे हुये थे और उनके ऊपर बड़े-बड़े ताला लगे हुये थे उनको खोलना किसी से नही होता था।।49।।

उस समय भगवान श्री कृष्ण को हाथ मे लिया हुआ वसुदेव जैसे आये उसी क्षण सूर्य आने के बाद जैसे अन्धेरा चला जाता है वैसे द्वार स्वयं खुल गये। बाहर मेघों की गर्जना होती रही और तुषारापात बरसात होती रही। आदिशेष अपने हजार फणों के छतरी लगाते हुये बच्चे के ऊपर न छिड़कने दिया।।50।।

कारागार का द्वार लकड़ी से बना हुआ था। वनस्पति के अभिमानी चन्द्र सामने उदय होकर भगवान को आते देखकर भय भक्ति से श्री कृष्ण दर्शन पाने के लिए स्वयं दरवाजों को खोला। मेघ गर्जना भगवान के प्रयाण के आरंभ में मंगल वाद्य का काम किये। छोटी वर्षा भगवान के मार्गायास के परिहार के लिए। आदिशेष छतरी लगाये। इस प्रकार समस्त देवतागण भगवान की सेवा मे तत्पर थे। शेष शैया, ओढ़नी छत्र चामर सारे लेकर चले थे। यह ब्रह्माण्ड पुराण का विवरण है।

मुसलाधार वर्षा होने के कारण यमुना जी में भारी प्रवाह तेज धारा से बह रही थी। आधी से लहर लहराते हुये भयंकर प्रवाह आ गया था। उसमें भवर होकर प्रवाह को और गम्भीर बनाये थे। किन्तु उस दिन समुद्र राजा जैसे श्री राम जी को मार्ग दिया वैसे जमुना जी ने श्री कृष्ण को मार्ग दिया।।51।।

वसुदेव नन्दगोकुल को जाकर वहाँ के यादव सब श्री हरि की योग निद्रा के वश होकर सोये थे। उस समय श्री कृष्ण को यशोदा के बगल में रखते हुये उसकी पुत्री को हाथ मे लेते हुये अपने स्थान को वापस आया।।52।।

देवकी के बगल में कन्या को रखते हुये पहले के समान अपने दण्डा बेड़ी से हाथ पाँव को बाँधते हुये कुछ भी नही हुआ ऐसे मौन से रहा।।53।।

नन्द की रानी यशोदा को अपने के लिए एक शिशु हुआ है इतना मात्र ज्ञान रहा। जन्म लिया शिशु पुरुष है या स्त्री इसका भी उसको ध्यान नही रहा। वह योग निद्रा के प्रभाव में पूर्ण रीति से सबको भूल चूकी थी।।54।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में चौथा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पाँचवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- वसुदेव के वापस जेल के अन्दर आते ही कारागार के बाहर के और अन्दर के सारे द्वार अपने आप बन्द हो गये।बच्चे के रोने की आवाज सुनकर रक्षक जाग उठे।।1।।

वे दौड़ते हुये कंस के पास जाकर बोले कि देवकी बच्चे को जन्म दी है।कंस इसी समाचार को सुनने के लिए आतुर था।।2।।

कंस उसी समय झट से अपने शैया से उठकर यह बच्चा ही मेरा मृत्यु है इस भय से सिर के बाल को भी न संभालते हुये लुढ़कते गिरते जेल के पास आ गया।।3।।

कंस को देखकर देवकी कहती है - दुःख से संतप्त देवकी बोलती है,हे मंगलकर भाई देखो यह बेटी है।यह तुम्हारी बहन की पुत्री है। तुम इसके प्यारे मामा हो सकते हो। कृपा करके उसको मत मारो।।4।।

भाई, मेरे दुर्दैव से तुमने आग के समान प्रज्ज्वलित रहने वाले मेरे छः पुत्रों को मार डाला है।मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ इस एक बेटी को मेरे लिए छोड़ दो।।5।।

भाई कंस, मैं तेरी बहन हूँ।इतने दिन छः बच्चों को खोकर रोज-रोज रोती रहती हूँ।अभागिन मेरी यह अखैर की बच्ची इसको तो जीने दो।।6।।

श्री शुकदेव कहते हैं- देवकी अपनी पुत्री को दोनों बाहों में पकड़कर रोते-रोते भाई की याचना करते हुये कितने भी प्रयास की तो भी दुष्ट कंस आक्रोश से उसके हाथ से बच्ची को छीन लिया।।7।।

अभी जन्म लिया हुआ अपनी बहन की पुत्री के दोनों पाँव पकड़ कर ऊपर उठाकर बड़े पत्थर के ऊपर जोर से मार दिया।वह अपने स्वार्थ के लिए अपने बन्धु प्रेम को पूर्ण तरह से भूल चुका था।।8।।

उसी समय श्री कृष्ण की भगिनी दुर्गा कंस के हाथ से उछलकर आकाश में खड़ी हो

गई।वह देवी आठ बाहु वाली और आठों हाथों में आठ तरह के शस्त्र धारण की थी।।9।।

वह दुर्गा दिव्य मालाओं को धारण की थी, सुन्दर वस्त्र परिधारण की थी, रत्नाभरण से विभूषित थी। आठ हाथों में धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, खडग, शंख, चक्र, गदा के धारण की थी।।10।।

हरिवंश में दुर्गा को चन्द्रवत्रा,चतुर्भुजा कहा है।बायें तरफ चार और दाहिने तरफ चार समझे तो भागवत और हरिवंश में अन्तर नही आता।

सिद्ध,चारण,गन्धर्व,अप्सरा,किन्नर,नाग ये सारे देवी का उपचार करते हुये स्तोत्र किये।देवी कंस को उद्देश्य करते हुये बोली।।11।।

हे मूर्ख,मुझको मारकर तुम क्या पाने वाले हो,तुम्हारा मृत्यु तुम्हारे जन्म जन्मांतर का शत्रु अभी जन्म ले चुका है,किसी और स्थान पर उसका पालन हो रहा है। इधर तुम अपनी प्यारी बहन को व्यर्थ रीति से हिंसा कर रहे हो।।12।।

इस प्रकार बोलते हुये - दुर्गा देवी अदृश्य हो गई।अनेक नाम से अनेक क्षेत्र मे प्रसिद्ध होकर आज भी वह वहाँ रहती हैं।।13।।

एक रूप से दुर्गा देवी अन्य लोगों को न दिखते हुये देवकी के पास भी रहती थी।

देवी की बात सुनकर कंस को आश्चर्य हुआ।वह तुरंत देवकी और वसुदेव को बन्धन से मुक्त करते हुये विनय से बोलने लगा।।14।।

कंस में दुष्ट तामस कालनेमि और सात्विक भृगुमुनि दोनों का अंश के होने कारण कभी-कभी वह सात्विक भी होता था। पूतना, कंस, नरक, शिशुपाल आदि मे इस प्रकार जीवद्वायावेश था।सज्जीव के आवेश में वे कभी सद्बुद्धि दिखाते थे और दुर्जीव के आवेश में दुर्बुद्धि दिखाते थे।जीवन के अंत में उनमें रहने वाला सज्जीव को भगवत प्राप्ति और दुर्जीव को तम प्राप्ति यह गरुड पुराण का वाक्य है।

बहन यह क्या आश्चर्य है-जीजा जी यह क्या हो गया। मैं बड़ा पापी हूँ।राक्षस के समान आपके सारे बच्चों को मार दिया।।15।।

मैं निष्करुणि हूँ।अपने के लिए अपने बन्धुमित्रों को कष्ट दिया,ब्रह्महत्या करने वाला किस नरक को जाता है ? मैं अब जीते जी मर चुका हूँ।।16।।

दैव भी झूठ बोलता है।मैं मनुष्य की बातों पर विश्वास नही रखता।किन्तु मुझसे दैव भी झूठ बोल दिया।पापी मैं दैव के ऊपर विश्वास रखते हुये अपनी प्यारी बहन के सारे बच्चों को व्यर्थ में मार डाला।।17।।

हे पूज्य वसुदेव-देवकी,आप बच्चों के बारे में शोक नही कीजिए।वे अपने किये हुये कर्म का फल भोग चुके।सारे जीव राशि सदा के लिए परस्पर मिलते हुये एक ही स्थान पर रह नही

सकते। हम सारे दैव के आधीन हैं।।18।।

कंस में इस सद्बुद्धि को देखकर आश्चर्य होता है। असुर कंस में यह सद्बुद्धि कैसे आयी इसका विवरण जगद्गुरु मध्वाचार्य जी अपने तात्पर्य निर्णय में देते हैं।

पूतना, कंस, नरक, शिशुपाल ये सारे मोक्ष योग्य सज्जीव होते हुए भी कई पाप कर्मों के कारण शाप प्राप्त कर वे भू लोक में आ चुके हैं। पाप के कारण उनमें तमो योग्य दुर्जीव भी साथ रहते हैं। सज्जीव के कारण कभी कभी ये सत्कार्य भी करते हैं, और दुष्ट जीव होने से दुष्कार्य करते रहते हैं।

कंस में भृगु आविष्ट होकर रहते थे इसी कारण कभी कभी कंस अच्छा काम करता था। देवकी के बच्चों को मारने वाला कालनेमि असुर कंस में रहने के कारण कंस बच्चों को मारता था।

जमीन में वृक्ष पैदा होते हैं, मर जाते हैं किन्तु परस्पर एक साथ नही रख सकते। जमीन वही रहती है, वृक्षों को आश्रय देता है किन्तु वृक्ष उगते हैं नाश होते हैं। वैसे जीव भी भगवान से जन्म लेते हैं नाश होते हैं, भगवान के आश्रय में रहते हैं, नाश पाते हैं किन्तु भगवान सदा के लिए सबको आश्रय देते हुये सबके साथ रहते हैं।।19।।

दुष्ट लोग दुष्ट भावना से अपने को भगवान या देवता समझ लेते हैं, भगवान और अपने में रहने वाले भेद को नही समझते हैं। उसके फलस्वरूप नरकादि अनेक अनर्थ को भगवान के प्रेरणा से ही पाते हैं। मध्यम जीव अपने को गलत समझते हुये देह से जीव को अनेक रीति से अभेद समझते हुये जीवन व्यतीत करते हैं। वे इस जनन-मरण रूप संसार में जन्म लेते मरते रहते हैं, उनको कभी संसार निवृत्ति नही होती है, यह भी भगवान की प्रेरणा से ही। उन्ही की प्रेरणा से उत्तम जीव सही तत्वज्ञान को समझते हुये मोक्ष पाते हैं। सबको प्रेरणा देने वाले भगवान सदाकाल सबके साथ रहते हैं। उनके लिए उत्पत्ति नाश नही है।।20।।

हमसे जन्म दिये हुये पुत्र सदाकाल हमारे साथ नही रहते हैं। केवल भगवान हमारे साथ रहते हैं इसी के लिए आप सदाकाल भगवान में प्यार करते हुये हो गये दुःख को सहन कीजिए। हे देवकी, सारे जीव भगवान के अधीन होकर कर्म करते हैं और उसका फल भोगते हैं, इसी के लिए तुम मैं तुम्हारे बच्चों को मारने के बाद भी उनके बारे में दुःख नही करना।।21।।

भगवान की प्रेरणा से ही जीवात्मा को मै स्वतंत्र, मैं भगवान, मुझमें और भगवान में भेद नही है ऐसा ऐक्यभ्रम होता है। इससे तम प्राप्त होता है। भगवान को उत्पत्ति नाश नही हैं। वे सदा हमारे साथ रहते है। पुत्रादि अन्य लोग जनन मरण वाले होते हैं। इस विचार को समझते हुये भगवान में विश्वास रखते हुये पुत्रादि विरह दुःख को सहन करना चाहिए। यह ब्रह्म पुराण का वाक्य है।

जब तक मैं इसको मारता हूँ, मैं इससे मरता हूँ, मैं ही इसको काट डालूँगा, अज्ञानी इस

प्रकार समझता रहता है तब तक वह भगवान के स्वतंत्र कर्तृत्व को न समझते हुये दूसरों में स्वतंत्रता को हो समझते हुये बाध्य और बाधक दोनों बन जाता है।अन्यों से अपने को हिंसा अथवा नाश है यह विचार करते हुये कोप को पाता है और स्वयं शिक्षा देकर पाप को पाता है।।22।।

आप सज्जन हैं। मेरे इस दौर्जन्य को क्षमा कीजिए।बन्धु को प्यार से मुझको क्षमा कीजिए ऐसे कहते हुये कंस आँसू बहाते हुये वसुदेव देवकी का पाँव पकड़कर नमस्कार किया।।23।।

देवकी वस्तुतः कंस की बहन है। किन्तु वह दत्तक होने से उसकी बुआ भी लगती है। इसके लिए कंस उनके पाँव को पकड़ कर क्षमा प्रार्थना करता है।

वसुदेव और देवकी दो हैं। संस्कृत में दो के लिए प्रत्येक द्विवचन है किन्तु यहाँ **क्षमध्वं** बहुवचन का क्रियापद है। इसके लिए वसुदेव देवकी और बन्धु बान्धव इन सबसे कंस क्षमा प्रार्थना कर रहा है।

दुर्गा देवी की बातों में विश्वास रखते हुये कंस अपने स्नेह को दिखाते हुये वसुदेव देवकी को बन्धन से मुक्त किया।।24।।

कंस के पश्चात्ताप की बातें सुनकर देवकी उसको क्षमा कर दी।अपने क्रोध को भूल गई।हसन्मुख से वसुदेव कंस से कहता है।।25।।

महाराज, आपके कथनानुसार भगवान स्वतंत्र हैं,जीवों के साथ रहते हैं। जीव अस्वतंत्र है, सदाकाल एक साथ रह नही सकता यह सत्य है। जीव और परमात्मा का यह भेद देह रहने वाले जीव को होने वाला नरकादि दुःख को रोक सकता है।।26।।

शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह, मद से युक्त होकर परस्पर हिंसा करने में रहने वाले विपरीत ज्ञानी बनकर भगवान को परब्रह्म,अन्य देवता उनसे भिन्न इस प्रकार उनके गुण धर्मों से उनके व्यक्तित्व को ठीक तरह से जानते नही। शास्त्र इनको पृथुग्दृष्टि वाले कहता है।।27।।

पृथ्दृशः इसका अर्थ भगवद तत्व को विरोध करते हुये सद असद ज्ञान को ठीक तरह से नही जानना,भगवान के गुण रूप में भेद है, प्रपंच उसके अधीन नही है,जीवों में भगवान शत्रु मित्र भाव रखते हैं,शास्त्र में निषिद्ध भेद नही है,सारे असद भेद हैं इनको नही मानना, पंच भेद सद्भेद है, असद् भेद तमोदायक है, सद् भेद मोक्षदायक है यह विचार भविष्यत पुराण मे आता है।

वसुदेव की बात से कंस को समाधान हुआ।वह प्रसन्न देवकी-वसुदेव की अनुमति पाकर अपने राजगृह को चला गया।।28।।

उस रात बीताने के बाद सुबह होते ही कंस अपने मंत्रियों को बुलाकर दुर्गा देवी द्वारा कही हुई बातों को उनके सामने रखा।।29।।

कंस के मंत्री दैत्य हैं,देवताओं के शत्रु हैं।सदाकाल देवताओं के बारे में क्रोध का व्यवहार करते रहते थे।वे ठीक तरह से राजनीति को नही जानते थे।प्रभु कंस की बातों को सुनकर वे कहे।।30।।

हे महाराजा, आप चिन्ता न करिये।हम शहर, गाँव, गोकुल सारे जगहों में रहने वाले इन दस दिनों मे जो जन्म लिये हैं उन सारे बच्चों को मार डालेंगे।।31।।

देवतागण युद्ध से डरते हैं, उसमें भी आपके धनुष के टंकार से उनका दिल पिघल जाता है।उनसे युद्ध करने में हमें कुछ आपत्ति नही है।।32।।

यदि आप बाण छोड़ने लगेंगे तो देवता समूह उन बाणों से आहत होकर प्राण भय से युद्ध को छोड़कर भाग जाते हैं।।33।।

उनमें कई लोग डरकर अपने हाथ के आयुध को जमीन पर फेंककर हाथ जोड़कर शरण आते हैं। और कई लोगों का कमरबन्ध छूट जाता है,कई लोगों का बाल बिखरता है,और कई भय से चिल्लाते हैं।।34।।

किन्तु आप शत्रु भय से शस्त्रास्त्र को प्रयोग न किये, रथ को खो दिये, भय से सिर झुका दिये युद्ध को समाप्त कर अनमनस्क हो गये तो वे मार नही पाते।।35।।

देवता लोग भगवान की रक्षा के अधीन सुरक्षित हैं,युद्ध नही रहता तब तक शूर हैं,अपने शौर्य की बड़ाई करते रहते हैं। उनसे और क्या हो सकता है। आपसे डरकर सदाकाल लोगों के दिल में छिपकर रहने वाले हरि से क्या मतलब है। कैलाश पहाड़ के वनवास में रहने वाले शिव से क्या होने वाला है।।36।।

दैत्य वस्तुतः शिव भक्त हैं, वह भक्ति केवल तात्कालिक रहती है।वर पाने के बाद उन्ही के ऊपर मार करना चाहते हैं। भस्मासुर ने वही किया,रावण पार्वती को माँगा,हिरण्यकश्यप कालनेमि पुत्रों को अवध्य होते हुये भी मरने का शाप दिया।

अल्प शक्ति वाले इन्द्र से क्या होने वाला है।सदाकाल तप में रहने वाले ब्रह्मा क्या कर सकते हैं। तो भी शत्रु की उपेक्षा नही करना है।देवतागण हमारे शत्रु हैं।उनको निर्मूल करने की आज्ञा हमें दें।।37।।

शरीर में रोग आने के बाद उनको अलक्ष्य किये तो वह बढ़कर वैद्यों की चिकित्सा के बाहर हो जाता है।इन्द्रियों को अलक्ष्य करे तो वे हमारे नियन्त्रण में नही रहती हैं।वैसे ही शत्रु को अलक्ष्य करे तो वह बढ़कर बलिष्ठ हो जाने के बाद हम उसको हिला भी नही सकते।।38।।

भगवान विष्णु देवताओं के साथ सदाकाल होते हैं। सनातन धर्म के साथ वे रहते हैं।उनके प्रमुख आश्रय वाले हैं, गाय, वेद, ब्रह्माण तप और बहुत दान देने वाला यज्ञ।।39।।

इसी कारण राजा हम वेदाध्यन करने वाले तप और यज्ञ में निरत ब्राह्मणों को और यज्ञ के लिए आवश्यक हविष्य देने वाले गायों को मार डालेंगे।।40।।

ब्राह्मण, गाय, तप, सत्य, इन्द्रिय निग्रह, भगवन्निष्ठा, श्रद्धा, दया, द्वंद्वसहिष्णुता ये सारे हरि के शरीर हैं।।41।।

श्री हरि सारे देवताओं के अधिपति हैं, वे दैत्यों के शत्रु हैं। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि सकल देवताओं के लिए वे ही मूल आश्रय हैं। हृदय-गुफा में रहने के कारण किसी को दृष्टिगोचर नही होते। उनको हम साक्षात् रूप से मार नही सकते।उनको मारना चाहते हो तो उनके शरीर रूपी गो ब्राह्मणों का नाश करना ही एकमेव उपाय है।।42।।

दुर्बुद्धिवाला कंस अपने दुष्ट मंत्रियों के साथ मंत्रणा करने के बाद ब्राह्मण हिंसा करना अपना प्रथम कार्य मान लिया।वह असुरों के वाक्यो से बद्ध था।।43।।

दूसरों को हिंसा देने में ही आनन्द मानने वाले, अपने इच्छानुरूप धारण रूपकरने वाले दानव लोग सज्जनों की हिंसा करते हैं।ऐसे दैत्यों को सज्जनों की हिंसा में नियुक्त करते हुये उनको दशों दिशाओं मे भेजकर कंस अपने राज्य गृह को चला गया।।44।।

वे दानव रजोगुण वाले,तमोगुण से उनकी बुद्धि मंद हो गयी है।अपने कृत्य से वे प्रतिदिन मृत्यु के पास बढ़ रहे हैं।इसको न जानते हुये वे सज्जनों की हिंसा कर रहे हैं।।45।।

बड़े लोगों से अपचार किये तो मनुष्य का आयुष्य,ऐश्वर्य,कीर्ति,पुण्य,परलोक और सारे श्रेयः साधनों का नाश होता है।।46।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - छटवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव बोलते हैं- महात्मा नन्दगोप अपने लिए पुत्र पाकर बहुत संतोष पाया।स्नान करके शुद्ध होकर वस्त्र और आभरण धारण करते हुये वेदज्ञ ब्राह्मणों को घर बुलाकर स्वस्ति और पुण्याह वाचन किया।विधि पूर्वक नवजात शिशु को जात कर्म करते हुये पितृ और देवताओं की आराधना की।।1,2।।

पूर्ण रूप से अलंकृत दो लाख गायों को दान दिया। सात तिल के पहाड़, सोना, चाँदी ब्राह्मणों को दान दिया।।3।।

तिल का पहाड़ यानी तिल के अलग-अलग बड़ी-बड़ी राशि। दस, पाँच अथवा तीन द्रोण परिणाम वाला बीच में मेरु पर्वत को तिल से रचना करना, उसके चारों तरफ उसके एक पाद (1/4)तिल से मन्दर,विष्कम्भ इत्यादि पर्वतों को रचाकर पूजना और उसको दान देना यह तिल का पहाड़ दान होता है।एक द्रोण का प्रमाण आज के करीब तीस किलो होता है।

नन्दगोप पवित्र होकर तिल पर्वतों को दान दिया।नया पानी बरसात के दिन में बहते हुये अशुचि रहता है।किन्तु कई दिन के बाद वह शुद्ध होता है।स्नान से शरीर शुद्ध होता है।तपस्वी लोग स्नान करे तो जल शुद्ध होता है,विधि पूर्वक संस्कार से गर्भ की शुद्धि होती है,तप से इन्द्रिय शुद्धि होती है,पूजा से प्रतिमा, ब्राह्मण शुद्ध होते हैं, दान और संतोष से द्रव्य की शुद्धि होती है,भगवान के तत्वज्ञान से मन और आत्मा शुद्धि पाते हैं।।4।।

यहाँ शुद्धि का अर्थ इच्छा के अनुसार फल पाना।दान देने वाले गो,भूमि,हिरण्य,तिल इत्यादि द्रव्य इष्टार्थ सिद्धि के लिए शुद्ध होना चाहिए।शुद्धि संतोष से मिलता है।दान देने वाला संतोष से देना चाहिए,स्वीकार करने वाला संतुष्ट होना चाहिए।स्नान शौच से जैसे शुद्धि होती है वैसे दान संतोष से शुद्धि होती है।इससे बढ़कर आत्मतत्वज्ञान से पूर्ण शुद्धि होती है यह जानने वाला नन्दगोप ब्राह्मणों को संतोष हो इतना दान दिया।

ब्राह्मण, सुत, वन्धि मागध मंगल स्तुति किये।गायक गान गाये,भेरी और दुंदुभि आवाज दिये।।5।।

ब्राह्मण मंगलाष्टक बोले,सुत स्तुति किये,मागध संकीर्तन किये,बन्दी नन्द राजा के साधनाओं की गाथा गाये। भेरी दुंदुभि ये सारे मानव और देव वाद्य मंद्र और उच्च स्वर में इन सबके साथ अपना आवाज मिला दिये।

गोकुल के निवासी सारे अपने-अपने घर को श्रृंगार किये,सुगंधित जल का सिंचन किये। घर के ऊपर ध्वजपताका फूल माला वस्त्र और तोरणों को फहराये।।6।।

गाय,बैल और बछड़ो को हल्दी और तेल लगाते हुये सोना, चाँदी के आभूषण से अलंकार किये।।7।।

यादव लोग बहुत मौल्यवाले वस्त्र,आभरण और सिरोभूषण से अलंकृत होकर नन्द को सम्मानित करने के लिए हाथ में पारितोषिक देने वाली वस्तुओं को पकड़कर नन्द के घर में प्रवेश किये।।8।।

यादव स्त्रियाँ यशोदा को पुत्रोपत्ति हुआ यह समाचार सुनते ही जल्दी से स्वयं अलंकृत होने लगी।।9।।

बड़े नितंब और हिलते हुए स्तन वाली यादव स्त्रियाँ कुंकुम, चन्दन केसर से अपने मुख कांति को बढ़ाते हुये प्रसव गृह के लिए आवश्यक वस्तुओं को अपने हाथ में लेकर जल्दी से नन्द के घर पर आये।।10।।

कानों में प्रकाशित रत्न कुण्डलों को, हाथ में सोने की चूड़ियाँ, गले में सोने की माला पहने हुये सुन्दर और भारी साड़ी पहने हुये गोपस्त्रियाँ नन्द के घर को जल्दी में आते समय उनके सिर से गिरे हुये फूल की वृष्टि हो रही थी।सिर हिलने से चलने वाले कर्ण कुण्डलों की कांति और स्तन के ऊपर हिलने वाली सोने की मालायें उनके स्वाभाविक शोभा को और भी बढ़ाते थे।।11।।

वे गोपस्त्रियाँ उस बालक की सदाकाल भगवान रक्षा करें इस प्रकार संकीर्तन करते हुये हल्दी पानी और तेल का प्रोक्षण करते हुये जनन रहित श्री कृष्ण का जन्म समय में गुणगान किये।।12।।

जगदीश्वर, अनंत, भगवान श्री कृष्ण नन्द गोकुल को आये हैं। इस समय में इस सुन्दर महोत्सव में विचित्र सुन्दर और बहुविध वाद्यों का निनाद आकाश मे गूँज उठा।।13।।

गोपालक आनंद विभोर होकर दही दूध, घी को एक के ऊपर एक फेकते हुये शरीर में मक्खन का लेप करते हुये होली जैसे उत्सव मनाये।।14।।

महात्मा नन्दगोप विष्णु की आराधना के लिए,पुत्र की अभ्युदय के लिए,यादव सुत मागध बन्दी और अन्य कलाविदो को वस्त्र आभरण अथवा वे जो चाहते थे उन वस्तुओं को देकर उनका भी सत्कार किया।।15,16।।

नन्दगोप से सम्मानित महासौभाग्यवती रोहिणी उत्कृष्ट वस्त्र और मालाओं को धारण कर उत्साह से इधर-उधर चलते हुये सारी व्यवस्था करती रही।।17।।

उस दिन से नन्दगोप की यह व्रज भूमि लक्ष्मीपति के आवास योग्य स्थान हो गयी। वहाँ लक्ष्मी देवी अपने ऐश्वर्यादि गुणों से युक्त होकर लक्ष्मी विहार स्थान बन गया। समग्र नन्दगोकुल सर्व समृद्ध होकर यथार्थ रीति से नन्दगोकुल हो गया।।18।।

हे राजा! उसके बाद नन्दगोप गोकुल की रक्षा के लिए गोपालकों की नियुक्ति करते हुये कंस को वार्षिक कर देने के लिए मथुरा चला गया।।19।।

नन्दगोप राजा था। नन्द गोकुल बहुत समृद्ध था। नन्दगोप का राज्य कंस के अधीन होने के कारण प्रतिवर्ष नन्दगोप कंस को कर देता था।

नन्दगोप कर चुकाने मथुरा आ गया है इस समाचार को सुनकर वसुदेव अपने भाई को भेंटने के लिए उसके पास गया।।20।।

राजा नन्द कंस केअधीन राजा था। कंस को नजराना देने के लिए बृहद्वन से मथुरा को जा रहा था। बीच में जमुना के तट पर शिविर लगा कर रहना पड़ा। उसी समय यशोदा उसी शिविर में दुर्गा को जन्म दिया।

वसुदेव के पिता शूर राजा क्षत्रिय था। वह द्रोण नाम के वसु का अवतार है। उसकी पत्नी यशोधरा धरा देवी का अवतार है। वसुदेव और नन्द गोप दोनों शूर राजा के पुत्र हैं। किन्तु नन्द गोप वैश्य स्त्री का पुत्र होने के कारण माता के अनुसार वैश्य जाति का है। इस प्रकार वसुदेव नन्द गोप अलग अलग माता के पुत्र और अलग अलग जात में पैदा होते हुए भी एक पिता के कारण भाई थे।

अपने प्रिय वसुदेव आया है इसको देखकर नन्दगोप आनंद विभर होकर, प्रेमपरवशता से, शरीर में प्राण आये तो कैसे उठता है वैसे झट से उठकर अपने भाई का आलिंगन किया।।21।।

नन्दगोप का आदर पाकर आसन पर बैठा हुआ वसुदेव उसके योग-क्षेम के बारे मे पूछने के बाद अपने पुत्र बलराम, कृष्ण के बारे में विचार करते हुये बोला।।22।।

भाई! बहुत दिनों से आपको पुत्र नही हुये थे। वृद्धाप्य के कारण आगे बच्चे होने की आशा कम हो गई थी। ऐसे सन्दर्भ में तुमको पुत्रोत्पत्ति हो गई है। यह बड़ा संतोषजनक है।।23।।

बार-बार जनन-मरण वाला इस संसार में तुम और हम बन्धित हैं। विधि वश से भेंट हुआ है। यह संतोष देता है। अपने इष्ट के लोग बार-बार नही भेंट सकते। भगवान की केवल कृपा के कारण ही यह भेंट साध्य हो सकता है।।24।।

परस्पर विचित्र अदृष्ट वाले बन्धु मित्र मिले तो भी साथ रहना और कष्ट है। जैसे नदी की धारा में चल रही नौकायें कभी मिले तो थोड़े ही समय मे अलग-अलग होती हैं।।25।।

तुम्हारे द्वारा इस समय अपने बन्धु बान्धवों के साथ वास किया जाने वाला रहा **बृहद् वन** आपकी गायों के लिए अनुकूलकर है न। वहाँ आपके पशुओं को रोगादि कुछ उपद्रव तो नही है न? वहाँ पानी चारा की उपलब्धि पर्याप्त है न।।26।।

मथुरा के चारों तरफ वाला प्रदेश **व्रज** और **बृहदवन** कहलाता है। यहाँ का राजा नन्द है।

भाई, मेरा पुत्र बलराम आपके गोकुल मे माँ रोहिणी के साथ सुख से है न ? आपके पालन में रहने वाला वह आपको पिता के समान मानता है न।।27।।

लोगों को धर्म अर्थ काम से सुख अपने बन्धुवों के साथ मिलने के बाद ही होता है। बन्धु यदि कष्ट में है तो सुख का अनुभव कैसे होगा। इसी कारण मैं इन प्रश्नों का उत्तर चाहता हूँ।।28।।

नन्द बोलता है- हे भाई, आप और देवकी के बहुत पुत्र कंस ने नाश किये। आखिर को जन्म लिये हुये एक पुत्री बची तो भी वह आकाश मे उड़ गई।।29।।

केवल वसुदेव समझे और किसी को संशय न आये इसके लिए नन्द गोप रहस्य बोलता है। वह ठीक तरह से जानता है कि आकाश में उड़ गई दुर्गा वापस आकर वसुदेव के साथ रहती है।

सामान्यतः लोग आँखों को जो दिखता है उसी के ऊपर विश्वास रखते हैं, आँख को न दिखने वाले भगवान के ऊपर विश्वास नही रखते। जो लोग न दिखने वाले भगवान के ऊपर विश्वास रखते हैं वे कभी भी दुःख भागी नही बनते। तुम भगवान के तत्व को जानते हो इसके लिए तुम सुख से रहते हो।।30।।

नन्दगोप के इन बातों का अर्थ यह होता है कि भगवान श्री कृष्ण को तुम आँखों से देख नही सकते। किन्तु भगवद तत्व के ऊपर विश्वास रखते हुये तुम निश्चिन्त रहो। वहाँ भगवान श्री कृष्ण बलराम के साथ सुरक्षित है।

वसुदेव कहता है- भाई, तुमने वार्षिक शुल्क दे चुके हो, हमारी भेंट भी हो चुकी है। तुम यहाँ ज्यादा समय गवाना नही। जल्दी यहाँ से चले जाओ। तुम्हारे बिना गोकुल में गड़बड़ हो सकता है।।31।।

इस प्रकार नन्दगोप आदि गोपालकों ने वसुदेव की बातें सुनकर उसकी अनुज्ञा से अपनी बैल गाड़ियों में बैठकर गोकुल के प्रति प्रस्थान किए।।32।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में छठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

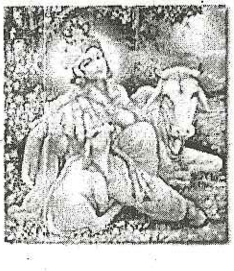

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सातावाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- नन्द प्रयाण करते-करते रास्ते में चिन्तन करने लगा। वसुदेव ने कहा कि गोकुल में उत्पात हो सकता है। उनकी बात झूठ नही होता ऐसा विचार करते हुये उत्पात के भय से श्री हरि की शरण में आया।।1।।

तब कंस द्वारा भेजी हुयी पूतना नाम की बालघातिनी क्रूर राक्षसी, शहर में, गाँवों में और गलियों में बच्चों को मारते हुये चल रही थी।।2।।

पूतना का अर्थ होता है अच्छे लोगों को भी प्रयत्न पूर्वक मारने की स्वभाव वाली स्त्री। दुसरा अर्थ अपवित्र स्त्री होता है। पूतना, रेवती, जेष्ठा, कोटरा, मात्रुका ये सारे रक्तपीने वाले और बच्चों की बलि देने वाली दुष्ट मारिका ग्रह हैं, इनको बाल ग्रह भी कहते हैं। पूतना में उर्वशी का अंश होने के कारण वह आकाश में चलने की शक्ति वाली थी। रामायण काल में वह ताटकी बन कर जन्म ली थी।

सभी कर्म करने के समय, राक्षसों को नाश करने वाली श्री कृष्ण कथा का श्रवण जो नही करते वहाँ राक्षस लोग बाधा रहित होकर हिंसाचार में लगे रहते हैं।।3।।

जहाँ कृष्ण कथा होती है और लोग उसको सुनते हैं वहाँ राक्षसों की चाल नही चलती। यहाँ तो स्वयं श्री कृष्ण हैं वहाँ राक्षस लोग क्या कर सकते हैं। वे स्वयं नाश पाते हैं। इसका प्रथम निदर्शन पूतना होने वाली है।

वह राक्षसी पूतना आसुरीमाया से अपने राक्षस रूप को छिपाकर सुन्दरी बनकर चल रही थी। वह चलते-चलते नन्द गोकुल के अन्दर घुस गई।।4।।

वह सिर में फूल की माला पहनी थी। उसके नितंब बड़े थे, छोटे कटि वाली, बड़े स्तन से शोभित वह पूतना अच्छी सुन्दर साड़ी पहनी थी। उसकी शरीर की कांति को उसके कर्ण कुण्डलों ने और बढ़ा दिया था, घुंघराले बाल मुख की शोभा को मुखरित की थी।।5।।

आकर्षक हसन्मुख वाली वह स्त्री अपनी तिरछी नजर से गोकुल के लोगों के मन को छीन ली। वह एक हाथ में कमल के फूल को पकड़ रखी थी तो लगाती थी कि अपने पति श्री कृष्ण को देखने श्री लक्ष्मी मूर्तिमंत होकर आई है। गोपियों को यही भावना हुई।।6।।

बच्चों को मारने वाली पूतना बच्चो को ढूंढते हुये नन्द के घर को आकर बिस्तर के ऊपर सोए हुए श्री कृष्ण को देखी। राख से ढका हुआ आग के समान अपने तेज को छिपाए हुए दुर्जनों का मर्दन करने वाले भगवान श्री हरि शिशु रूप से वहाँ खेलते लेटे थे।।7।।

वे ठीक तरह से जानते थे कि यह महामारी बच्चों को मारने वाली भूत है। फिर भी स्वयं भूमि में राक्षसों को मारने के लिए अवतार लिये हुये वे सबको छिपाकर लय काल में इस सारे विश्व के चराचर सबको खा डालने वाले भगवान अपने बाल भाव को छिपाते हुये आँखें मूद कर सोये थे, पूतना से कुछ भी नही बोले।।8।।

भगवान रामावतार के ताटका को भगवान पहचान लिए। आँखों को खोल कर देखें तो उनके प्रकाश के कारण यह राक्षसी मरने के बाद सूर्य मार्ग अथवा चन्द्र मार्ग पकड़ कर सद्गति पायेगी इस विचार से भगवान सूर्य चन्द्र मार्ग को दिखाने वाले अपनी दोनों आँखों को बन्द कर ली।

वह राक्षसी उस शिशु को भगवान के रूप में न देख पाई। यह भगवान स्वाभाविक रूप से इस जगत में जो होता है उसको ठीक तरह से जानते हैं, इन्ही से मुझे मृत्यु होती है यह न समझते हुये अनंत रूपी उस बालक को उठाकर अपने जंघे के ऊपर बिठा लिया। वह सोया हुआ साँप को रस्सी मानकर जैसे लिया जाता है वैसे शिशु को उठा ली।।9।।

कोश मे रखा हुआ तीक्ष्ण धारा वाला खड्ग के समान पूतना बाहर देखने के लिए बहुत प्यार से बच्चे को गोद मे ले ली। अन्दर बच्चे को मारने का क्रूर मन रखती है। इसको देखते हुये भी यशोदा राक्षसी माया के वश होकर उसको साध्वी स्त्री मानते हुये चुपके से देखती रही।।10।।

उस समय वह घोर राक्षसी आगे झुकते हुये कोई पचा न सके ऐसे घोर विष से युक्त स्तन को शिशु के मुँह मे रखी। भगवान अपने दोनों हाथों से उस स्तन को जोर से पकड़कर मुँह से चूसते हुये दूध विष और प्राण को एक साथ खींचने लगे।।11।।

सारे बच्चों का जीव हरण करने वाली स्वयं मरण वेदना से जोर से छोड़ो-छोड़ो बोलते हुये श्री कृष्ण के मुँह से अपने को छुड़ाने का प्रयास किया। उसमें असफल हुई आँखें पूर्ण रूप से खुली हुयी थीं, दोनों हाथ पैरों को जमीन के ऊपर टपकाते हुये पसीना-पसीना होकर जोर से रोने लगी।।12।।

उसकी अतिभयंकर, अतितीव्र आवाज से पर्वत सहित भूमि, ग्रह और आकाश हिलने लगे। सारे पाताल लोक तक दस दिशा और आकाश प्रति ध्वनित हुये। लोगों को आकाश की बिजली गिरी ऐसे लगा। वे भय से जमीन पर लेट गये।।13।।

हे राजा, इस प्रकार दर्द को न सहते हुये जमीन के ऊपर अपने पाँव और हाथों को पसारते हुये बिखरे बालों से युक्त अपने सहज राक्षसी रूप को धारण कर वज्रायुध से मरा हुआ

वृत्रासुर के समान पूतना गोकुल में गिर कर मर गई।।14।।

भगवान, भक्त लोग उनके सामने भोग रूप में जो समर्पित करते हैं उसको खाते नही किन्तु उसको दुगुना करते हुए भक्त एक हाथ से दिए तो दो हाथ से उसको वापस करते है। यहाँ पूतना भगवान को विष का भोग लगाई, भगवान उसको दुगुना करते हुए पूतना को वापस दे दिए। उस विष को पाकर पूतना मर गयी।

हे राजा, सुनो, पूतना का देह शव होकर गिरने के समय उसके नीचे तीन कोस पर्यन्त प्रदेश के वृक्ष और वस्तुओं को चकना चूर किया।यह अत्यन्त अद्भुत था।।15।।

कंस को वार्षिक शुल्क देने के लिए नन्द वृहदवन से मथुरा को चला, साथ में गर्भिणी यशोदा को भी लिया था। रास्ते में नदी को पार करना था। इतने में यशोदा प्रसव वेदना का अनुभव करने लगी। इसी कारण नन्दगोप वहीं शिविर डालकर वास करने लगा। प्रसव होकर एक महीने के बाद नन्द अकेले नदी पार करते हुये मथुरा को जाकर शुल्क को देकर वापस आया। इतने में पूतना आकर अपने जान को खो चुकी थी।यह घटना जमुना जी के तट के ऊपर होने के कारण वृहदवन के लोगों को पूतना का शरीर गिरने से कोई अपाय नही हुआ।

पूतना को महाभारत में एक पक्षी रूप में आई थी कहा गया है।हरिवंश, विष्णु पुराण में मानव रूप में आई थी यह बात आती है।भागवत में इसको घोर राक्षसी रूप प्राप्त है, इसको कई लोग संदेह से देखते हैं।किन्तु भागवत में भी उसके नाम के साथ पक्षी का नाम जोड़ दिया है। **तोकेन जीवहरणं यदलुकिकायाः**(2-7-27)**अहो बकीयं स्तनकालकूटं** (3-2-23) यहाँ उलूकी बोले तो उल्लू और बकी यानी बक पक्षी ऐसे होता है।भागवत के श्रीधरी पाठ मे **कंसानुशिष्टः बकी बकानुजः** (10-12-14) बकी,बकासुर और उसके भाई अघासुर ये नाम आते हैं। यहाँ भी पूतना को बकपक्षी कहा गया है।पूतना अपने सहज रूप में राक्षसी है,वह पक्षी रूप मे अपनी माया से रूप धारण करती थी। हरिवंश में यह स्पष्ट है।

पूतना सामान्य मनुष्य नही थी।तप करके पार्वती से अवध्य वर पाकर घोर राक्षसी बन गई थी।उसके शव गिरने से बारह मील पर्यन्त प्रदेश के वृक्षों का चकनाचूर होना स्वाभाविक है। महाभारत के दक्षिणांत पाठ में सभापर्व के 38 अध्याय में पूतना का वर्णन आता है। **पूतना चापि निहता महाकाया महास्तनी**। पूतना बड़ी शरीर वाली थी उसके स्तन भी बहुत भारी थे।पूतना केवल पक्षी नही, केवल मानव भी नही।

हल के समान बड़े-बड़े दाँत वाली पहाड़ में रहने वाले गुफा के समान दो नाक वाली।बड़े पत्थर के समान स्तन वाली, बिखरे हुये लाल बाल वाली, अन्धेरे से घिरे हुए कुएँ के समान दो आँख वाली बड़े बालू के गड्ढे के समान नितंब वाली,नदी के बाँध के समान हाथ और पाँव वाली और सूखा हुआ बड़े तालाब के समान पेट वाली पूतना चित होकर मर कर गिरी थी।।16,17।।

पूतना के इस भयंकर शरीर को देखकर गोप गोपिकायें डर गयीं। पहले उसके स्वर से ही उनका दिल पिघल गया था,कान फट गये थे,सिर दर्द लग गया था।।18।।

बालक श्री कृष्ण इन सबकी परवाह न करते हुये उसकी छाती के ऊपर खेल रहे थे।गोपियाँ

उसको देखकर डर से चिल्लाते हुये दौड़कर श्री कृष्ण को उठाये।।19।।

यशोदा और रोहिणी के साथ सारी गोपिकास्त्री मिलकर बालक की रक्षा कीं। गाय के पूँछ से बच्चे को न्योछावर कर लीं।।20।।

गौमूत्र से श्री कृष्ण को स्नान करवायीं। गोपाद से मिले धूल को शरीर को ठीक तरह से लगायीं। गोमय से माथे और शरीर पर केशवादि नाम से अभिमन्त्रण करते हुये तिलक लगायीं। दिग्बन्धन किये।।21।।

महाभारत के शान्ति पर्व में गो और लक्ष्मी संवाद में आता है कि गायों की अपेक्षा के अनुसार लक्ष्मी देवी गोमय और गोमूत्र में विशेष सन्निधान से रहती हैं। अथर्वण वेद के श्री सूक्त में आता है कि **गन्धद्वारां दुराधर्षाम नित्य पुष्टां करीषणीम्** यहाँ करीषणीम का अर्थ गोमय होता है। श्री कृष्ण के शरीर को लक्ष्मी को छोड़कर अन्य किसी का संग नही हो सकता।इसके लिए श्री कृष्ण को गोमय गोमूत्र से लेपन किये।भगवान के लिए गोपियों का अलिंगन और गोमय और गोमूत्र लेपन एक समान है।

बारह अवयवों में केशवादि नाम से तिलक लगाने की विधि पद्मपुराण में लिखी है।

ललाटेकेशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे ।
वक्षस्थलेमाधवंतु गोविन्दंकण्ठ कूवरे ।
विष्णुंच दक्षिणेकुक्षौ बाहौच मधुसूदनम् ।
त्रिविक्रमं कन्धरे तु वामनं वामपार्श्वके ।
श्रीधरं वाम बाहौतु हृषीकेशं तु कन्धरे ।
पृष्ठेतु पद्मनाभंच ककुद्दामोदरं न्यसेत् ।।

गोपिकाओं ने हाथ पाँव धोकर आचमन करते हुये अपने हृदय,सिर,शिखा,भुज,आँख,दो हाथ और देह के मध्य भाग इन सात स्थानों मे नारायण अष्टाक्षर मंत्र से बीजन्यास करते हुये शिशु के माँथे और अन्य पहले कहे हुये भागों मे **ओम् नमो भगवते वासुदेवाय** इस द्वादशाक्षर मंत्र से न्यास किये।।22।।

बीज मंत्रों में गोपस्त्रियों के अधिकार के बारे में यह मंत्र है।**आहुरप्युत्तमस्त्रीणामधिकारं तु वैदिके**।गोपिकायें उत्तम देवता स्त्री होने के कारण उनको अधिकार है।

अज आपकी पाद की रक्षा करे,अणिमंत आपकी घुटने की रक्षा करे,यज्ञ नामक भगवान आपकी जंघा की रक्षा करे,अच्युत आपकी कमर को,हयवदन पेट को,केशव मन को,सर्वस्वामी छाती को सूर्य नारायण कंठ को, विष्णु बाहुओं को उरूक्रम मुख को,और इस जगत के स्वामी सिर की रक्षा करें।।23।।

यहाँ गोपिकाओं ने पाद से सिर तक विष्णु कवच मंत्र से न्यास किया है।यह लयन्यास होता है।सिर से

पाद तक न्यास किये तो सृष्टिन्यास होता है। सिर से हृदय तक और पाद से हृदय तक का न्यास स्थिति न्यास होता है। ब्रह्मचारी को सृष्टिन्यास, गृहस्थ को स्थिति न्यास और यति को लयन्यास विहित हैं। यहाँ गोपियों ने लयन्यास किया है, भगवान अनादि ब्रह्मचारी हैं, वे गृहस्थ भी हैं, वे यति भी हो सकते हैं। उनके लिये तीनो अन्वय हो जाते हैं। यहाँ तो गोपिकाओं ने केवल अंग रक्षा की है।

चक्रधारी आपके सामने से रक्षा करे, गदाधर पीछे से, धनुर्धारी और खडगधारी दोनों बाजू में, मधुसूदन जनार्दन शंखधारी और उरूगाय, चारों दिशाओं में, उपेन्द्र ऊपर से गरूड़ारुढ़ और शेषान्तर्गत अधोदिशा में, परम पुरुष सारी दिशाओं में आपकी रक्षा करे ।।24।।

हृषीकेश इन्द्रियों की, नारायण पंच प्राणों को, श्वेतद्वीपाधिपति वासुदेव चित्त की, योगेश्वर कपिल मन की रक्षा करें।।25।।

पृश्निी गर्भ बुद्धि को, सर्वोत्तम भगवान अहंकार की रक्षा करें। खेलते समय गोविन्द ग्रह बाधाओं को हटायें, सोते समय माधव रक्षा करें।।26।।

खेलते समय वैकुण्ठ, बैठते समय श्रीपति, भोजन करते समय सारे ग्रहों को भय करने वाले यज्ञभोक्ता रक्षा करे।।27।।

डाकिनी, यातुधानी, कूष्माण्ड, बालग्रह, भूत प्रेत पिशाच, यक्ष राक्षस, विनायक, कोटरा, रेवती, जेष्ठा, पूतना मातृका इत्यादि देह प्राण और इन्द्रियों को पीड़ा देने वाले, उन्माद, अपस्मार, दुष्टस्वप्न, महाउत्पात, बृहद ग्रह बाल ग्रह इत्यादि विष्णुनामोच्चार से डरने वाले सारी दुष्ट शक्तियाँ नाश हो जायें।।28,29,30।।

इस प्रकार गोपियों ने प्रेमपाश से बन्धित होकर श्रीकृष्ण को विष्णु कवच मंत्र से रक्षा की। बाद में यशोदा अपने पुत्र को स्तनपान कराते हुये झूले में सुला दिया।।31।।

इतने में मथुरा गये हुये नन्दगोप और अन्य गोपालक गोकुल को वापस आ गये। वे पूतना के मरे हुए बड़े शरीर को देखकर बहुत आश्चर्य चकित हो गये।।32।।

वे अपने मन में कहे- वसुदेव प्रायशः पूर्व जन्म में त्रिकालज्ञ ऋषि अथवा योगेश्वर हुआ होगा। वह अपने निज रूप को न दिखाते हुये यहाँ जन्म लिया है। वह मथुरा में उत्पात के बारे में कहा था। यहाँ हमारे आने के पहले ही उत्पात हो चुका है।।33।।

गोकुल में रहने वाली पूतना के शरीर को कुल्हाड़ियों से काटते हुये टुकड़ा-टुकड़ा कर लकड़ी के साथ जला दिये।।34।।

शव को दहन करते समय वहाँ एक सुगन्ध के साथ धुआँ निकला। श्रीकृष्ण के स्तन पान करने के कारण पूतना के सारे पाप नष्ट हो गये थे।।35।।

वहाँ रहने वाले बच्चों को मारकर रक्त पान करने वाली एक राक्षसी पूतना श्री कृष्ण को

मारने के उद्देश्य से स्तन पान करवाया था तो भी श्री कृष्ण की कृपा से वह सद्गति पाई।।36।।

पूतना का पूर्व जन्म वृतांत इस प्रकार है। उर्वशी एक बार कुबेर के साथ थी। उस समय उसने तुम्बुरू नाम के साथ गन्धर्व के संग किया। अप्सराओं को नियत पति नही होते हैं। एक समय जिसके साथ वे रहती हैं उतना समय तक वह ही उनके पति बनता है। उस समय उसकी अनुमति के बिना अन्य संग किये तो वह व्यभिचार होता है। इसी कारण उर्वशी शाप से राक्षसी बन गई। राक्षस जन्म में देवताओं ने अपने स्वभाव सिद्ध ज्ञान भक्ति के विरुद्ध भगवान में द्वेष करने के लिए उस सज्जीव के साथ एक राक्षस जीव भी रहता है। पूतना के शरीर में उर्वशी के साथ रामायण की त्राटिका भी मिल गई थी। द्वेष से विष पान कराया वह राक्षसी नरक को चली गई। उर्वशी श्री कृष्ण के करस्पर्श से पवित्र होकर पाप मुक्ति और शाप मुक्ति पाकर स्वर्ग सिधार गई। यहाँ पूतना को सद्गति का अर्थ उर्वशी को सदगति मिली यही कहना चाहिए।

द्वेष करने वाली पूतना को सद्गति मिला, तो श्रद्धाभक्ति से भगवान को प्रिय पत्र पुष्पादि किसी वस्तु से आराधना करने वाले को सदगति होती है इसके बारे में क्या कहना है। प्यार से जो भगवान में भक्ति करते हैं वे सभी सद्गति पाते है।।37।।

सभी लोगों से वंदित भगवान श्री कृष्ण को अपने हृदय में रखने वाले भक्त और रमा ब्रह्मादि जिनकी स्तुति करते हैं वह स्वामी पूतना के शरीर के ऊपर आक्रमण करते हुये उसका स्तनपान किये थे।।38।।

वह राक्षसी ही स्वर्ग पा ली तो भगवान श्री कृष्ण को अपने दूध को पिलाने वाले गाय और स्तनों से दूध पिलाने वाली सारी मातायें स्वर्ग पायीं इसके बारे में भी अलग क्या कहें?।।39।।

क्योंकि पुत्र वात्सल्य से पिलाया हुआ वह दूध को मोक्षादि पुरुषार्थ देने वाला भगवान स्वयं प्यार से उस दूध को पिया।।40।।

त्राटिका के साथ रहने वाली उर्वशी शुद्ध भक्ति कर नही पाई। वह कभी-कभी द्वेष भी करती थी। उसको संग- दोष मानते हुये भगवान उसको क्षमा कर दिये। पूतना से किए हुए द्वेष को भूलते हुये उर्वशी से किए हुए भक्ति को भगवान मान लिये हैं। इस प्रकार उर्वशी की द्वेष युक्त भक्ति को भगवान सद्गति दिये तो निर्मल भक्ति करने वाली माताओं और गायों को भगवान सद्गति दिये इसके बारे में अलग क्या कहना है?

श्री कृष्ण की माताएँ श्री कृष्ण को पुत्र वात्सल्य से अविरत भक्ति किये हैं। हे राजा! ऐसी माताएँ अज्ञान से पुनः इस संसार मे जन्म नही लेते।।41।।

गोकुल में रहने वाले अन्य लोग शव दहन से आने वाली सुगन्ध को पाकर उस सुगन्ध का कारण ढूंढ़ते हुए शव के पास आये।।42।।

गोपालक उनके सामने पूतना का आगमन, स्तन पान, पूतना का मरण और श्री कृष्ण के क्षेम की बातें सुनकर आश्चर्य चकित हो गये।।43।।

हे राजा,मथुरा से आया हुआ नन्दगोप शिशु को हाथ में उठाते हुये, उसके सिर को आघ्राणित करते हुये यह पुत्र सामान्य नही है,स्वयं भगवान है यह मानते हुयें परमानन्द भरित हुआ।।44।।

बाल कृष्ण के पूतना मोक्ष की इस लीला को जो मानव श्रद्धायुक्त होकर सुनकर आनंद पाता है वह भगवान श्री कृष्ण में उत्कृष्ट श्रद्धा भक्ति पाता है।।45।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में सतवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

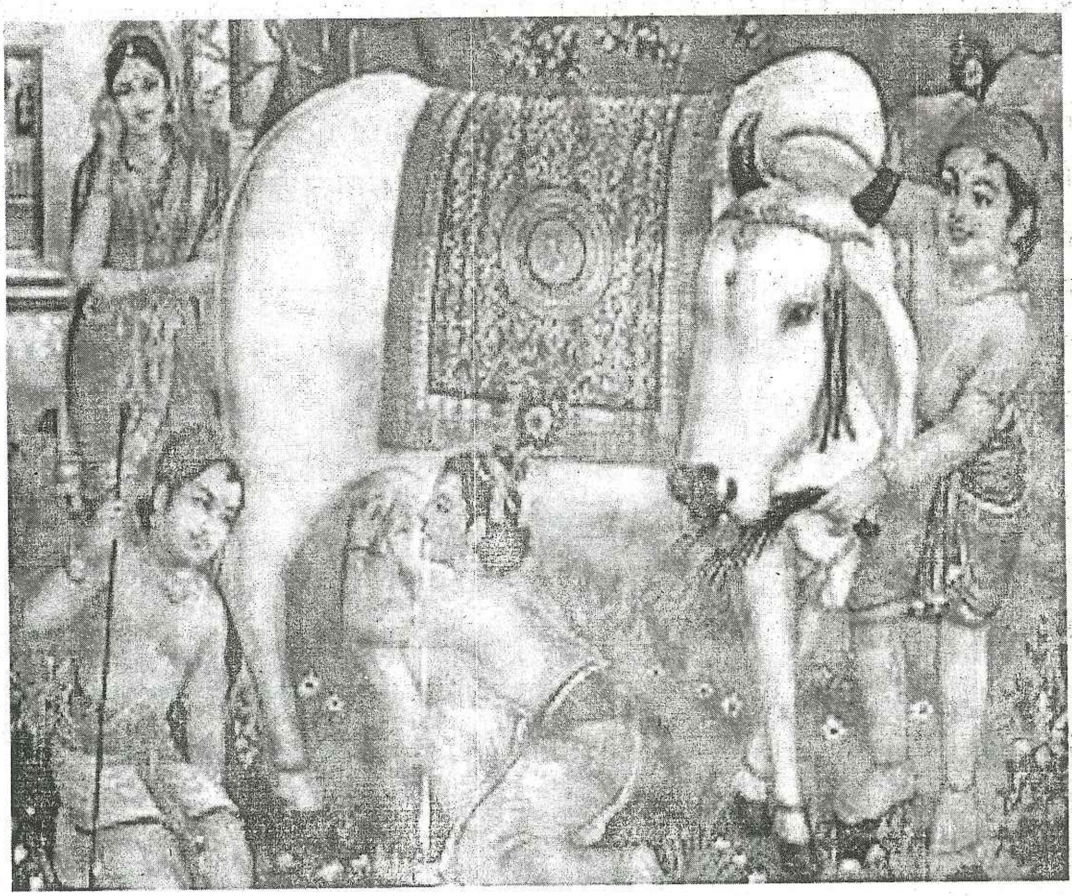

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - आठवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण गोप गोपियों को आनन्द देते हुये नन्दगोप के घर में चन्द्र के समान रोज-रोज अभिवृद्धि पाये।।1।।

राजा परीक्षित पूछता हैं- हे प्रभु! सर्वशक्त भगवान किसी भी अवतार में जो लीला करते हैं वह लीला सुनने के लिए कान को अच्छा लगता है,मन को आनन्द देता है।भगवान की लीला सदाकाल सुख देने वाली होती है।।2।।

भगवान की लीलाओं को सुनते रहे तो सांसारिक दुःख दूर हो जाता है, और विषय लालसा भाग जाती है, जल्दी ही अंतःकरण निर्मल होता है, भगवान श्री हरि में भक्ति होती है, उनके भक्तों में मैत्री होती है। भगवान के चरित्र का श्रवण ही संसार का सार है। यदि आप मुझे उसको सुनने के योग्य ठहराते हैं तो कृपा करके उसको हमें बताइए।।3।।

भगवान श्री कृष्ण मनुष्य के समान शरीर धारण करते हुये,मानव जाति के अनुसार अन्य जो अद्भुत लीलाओं को किए हैं उन सबको हमारे लिये बताइये।।4।।

धर्म को ठीक तरह से समझने वाले आप परम दयालु हैं, कृपा करके हमें सर्व पाप का हरण करने वाले भगवान की कथा को विस्तार पूर्वक बताइये।।5।।

श्री शुकदेव कहते हैं- तीन महीने के शिशु बाल कृष्ण पहली बार करवट बदलने के बाद बहिर्निष्क्रमण करने के लिए, नदी में मंगल स्नान करने के लिए गोकुल की सभी गोपिकास्त्रियों ने नन्द के घर में इकठ्टा हो गयीं। वाद्यगीत गाते हुये,ब्राह्मण मंत्र घोष करते हुये यशोदा बाल कृष्ण के ऊपर जमुना जी के पवित्र जल से अभिषेक किये।।6।।

शिशु के जन्म लेने के बाद बारहवाँ, पन्द्रहवाँ एक महीना अथवा तीन महीने के बाद एक शुभ दिन में घर से बाहर लाकर शिशु को सूर्य दर्शन करवाते हुये, नजदीक के मन्दिर को जाने के बाद मामा के घर जाना परम्परा में है। इससे शिशु को आयु,बल और गुण की वृद्धि होती है। इसको उत्थान कर्म अथवा उपनिष्क्रमण बोलते हैं। श्री कृष्ण के प्रथम बार करवट बदलने के दिन चौथे महीने में उनका जन्म नक्षत्र रोहिणी आया था।इससे बड़े पैमाने से गोप लोग उत्थान कर्म किये।

ब्राह्मणों को अन्न वस्त्र फूल माला इत्यादि अभीष्ट दान देते हुये यशोदा उनसे पुत्र को पुण्याह स्वतिवाचन करवायी। अभ्यंजन और धूप लगने के आयास से बालकृष्ण के आँखों में नींद आते देखकर यशोदा उसको नदी तट के समीप खड़ी हुयी एक बैलगाड़ी के नीचे उसको सुलवा दी।।7।।

समारम्भ को आये हुये गोकुलवासियों को सत्कार करने मे यशोदा मग्न थी।वहाँ शिशु बाल कृष्ण नींद से जागकर रोने लगा।यशोदा लोगों के साथ बातों मे मग्न होने के कारण सुन न सकी। बाल कृष्ण भूख से रोते हुये अपना हाथ-पाँव फैलाते हुये खड़ी हुयी बैलगाड़ी के पहिये को अपने पाँव से मारा।।8।।

सोए हुए शिशु के लाल-लाल कोमल और मृदु छोटे पाँव से भगवान जब बैलगाड़ी को लात मारे तब उस गाड़ी में रखे हुये दूध-दही, खाने-पीने के सारे सामान अस्त व्यस्त होकर गिर गये, बैलगाड़ी के पहिये टूट गये,कूबर टुकड़ा हो गया और अरा मुड़ गया।।9।।

शकटाक्ष नाम का पापी दैत्य पार्वती से अवध्य वर पाकर,मदमत्त होकर गाड़ी के पहियों में छिपकर बैठा था। वह कंस की तरफ से आया था। वह गाड़ी में प्रयाण करते समय बच्चों को गिराकर मारने के विचार से वहाँ आया था। उसी समय भगवान के पाँव से मार खाने से सिर नीचे करते हुये गिरकर मर गया।

यशोदा इत्यादि सारी गोपिकाओं ने और समारम्भ के लिए आये हुये गोपालक इस विचित्रता को देखकर चिन्तित हुये। उनकी समझ में नही आया कि गाड़ी कैसे गिर गयी। विषण्ण वदन से व्याकुल चित्त से कुछ न समझते हुये आपस में बाते करने लगे ।।10।।

यह गाड़ी क्यों गिरी इसको हम ठीक तरह से जानते नही।तब वहाँ खड़े हुये गोपालक बालकों ने कहा "यह बच्चा अपने पाँव से उसको लात मारा,रोते-रोते हाथ पाँव पसार रहा था।उसके पाँव लगने से यह गाड़ी पलट गई। हमने अपनी आँखों से देखा है। इसमें सशय नही"।।11।।

गोपालक बच्चों की इन बातों के ऊपर विश्वास नही किये, बच्चों की बात मानकर चुप हो गये। अचिन्त्य और अपरिमित शक्ति वाले श्री कृष्ण के बल को वे समझ नही पाये।।12।।

भगवान एक ही पाद से शकटासुर का वध किए। हरिवंश में अंगुष्ठ के स्पर्श मात्र से शकटासुर मर गया ऐसा कहा है। जगद्गुरू मध्वाचार्य भी अपने यमक भारत में पादांगुष्टेन कहे हैं।

यशोदा इससे और ज्यादा घबड़ा गई।ग्रह चेष्टा मानते हुये बच्चे को लेकर ब्राह्मणों से ग्रह पीड़ा शान्ति और स्वस्तिवाचन करते हुये अपने स्तन से दूध पिलाई।।13।।

गोपालक गाड़ी को ठीक करते हुये दूध दही इत्यादि सामानों को पुनः लाते हुये गाड़ी में भरकर रखे।ब्राह्मण लोग यज्ञ करने के बाद दही, अक्षत कुश और जल से पूजा की।।14।।

असूया, असत्य, दम्भाचार, ईर्ष्या, हिंसा और दुरभिमान रहित ब्राह्मणों का आशीर्वाद कदापि व्यर्थ नही होता।।15।।

नन्दगोप अपने पुत्र को ब्राह्मणों के सामने जमीन पर सुलवाया।ब्राह्मण सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद मंत्र से, आम, कटहल, अश्वत्थ इत्यादि वनस्पतियों से युक्त अभिमंत्रित जल से सिंचन स्नान करवाये।स्वस्तिवाचन के बाद एकाग्र चित्त से अग्नि में होम करते हुये ब्राह्मणों को षड्रस युक्त अन्न से भोजन करवाये।।16,17।।

कृष्ण और बलराम के अभ्युदय चाहते हुये वस्त्र फूल माला और सोने की मालाओं से अलंकृत श्रेष्ठ गायों को दान दिया।।18।।

वेद जानने वाले ब्राह्मण मिलकर आशीर्वचन मंत्र कहे।श्रेष्ठ विप्र जो बोलते हैं, जो आशीर्वाद देते हैं वह कभी व्यर्थ नही होता।।19।।

एक वर्ष के बाद एक दिन यशोदा अपने पुत्र को जंघे के ऊपर सुलवाकर उसके साथ खेल रही थीं, उस समय श्री कृष्ण उसको बहुत भारी लगने लगे।वह उस वजन को सहन नही कर सकीं। उसको लगा वह पहाड़ के शिखर के समान हैं।।20।।

यशोदा उस भार से पीड़ित होकर आश्चर्य से पुत्र को जमीन के ऊपर रख दीं। ग्रहबाधा न हो इस दृष्टि से नारायण का ध्यान करते हुये घर के काम में लग गईं।।21।।

तृणावर्त नाम का कंस का दूत दैत्य मृत्यु से प्रेरित होकर चक्रवात के रूप में आकर जमीन के ऊपर बैठे हुए कृष्ण को ऊपर उठाया।।22।।

तृणावर्त समग्र गोकुल को धूल से भर दिया। उस धूल में कोई आँख खोलकर देख नही सकते थे। दशों दिशायें हवा के भयंकर शब्द से भर गये थे।।23।।

एक मुहूर्त (47 मिनिट) तक गोकुल धूल और अधेरे से आवृत हो गया।यशोदा अपने रखे हुये स्थान पर श्री कृष्ण को देख नहीं पाईं।।24।।

हवा के साथ बालू के कण जोर से चलकर गोकुल के निवासी गोपालकों को मार रही थी।तृणावर्त के इस आघात से गोकुल के लोग एक-दूसरे को या स्वयं को देख न पा रहे थे।।25।।

आंधी और तूफान के साथ बरसात होने लगी, उस समय अपने बच्चे को खोयी हुयी गाय के समान यशोदा अपने पुत्र को न देखते हुये बच्चे के बारे में चिन्ता करते हुये जमीन के ऊपर गिर कर रोने लगी।।26।।

यशोदा की रोती हुयी आवाज को सुनकर गोपिकास्त्रियाँ ने मन में अनुताप करते हुये वे भी आँखों से आंसू बहाये।थोड़ी देर बाद धूल और वर्षा का वेग कम हो गया।ढूँढ़ने के बाद भी कृष्ण नही मिले। सारे लोग हताश होकर जोर से रोने लगे।।27।।

तृणावर्त झंझावात का रूप धारण कर कृष्ण को उठाकर आकाश में ले चला।कृष्ण का भार बढ़ता रहा। उनके वजन से तृणावर्त का वेग कम होता रहा।वह आगे बढ़ नही सका।।28।।

वात रूपी दैत्य बहुत वेग से ऊपर उड़ रहा था किन्तु भगवान का वजन वह वहन नही कर सकता। यह सही है हवा को कितना भी वेग हो वह विश्वंभर को वहन नही कर सकता।

कृष्ण के वजन को न सहते हुये उसको पत्थर के समान अपने से फेंक देना चाहता था। किन्तु तृणावर्त उसको फेंक नही सका।वह अद्भुत बालक उसके गले को दबाकर पकड़ लिया था।।29।।

श्री कृष्ण दैत्य के गला को और जोर से दबाने लगे। उससे दैत्य निश्चेष्टित हो गया। उसकी आँखें बाहर निकल आयीं। छोड़ो-छोड़ो कहने लगा।किन्तु वह आवाज भी बाहर नही आ पायी। राक्षस के प्राण पक्षी उड़ गये।बालकृष्ण के साथ उसका शरीर गोकुल के बीच में गिर गया।।30।।

इकठ्टा होकर रो रही गोपिकाओं ने आकाश से गिरे हुए पहाड़ रूप वाले भयावह आकार के तृणावर्त दैत्य के शरीर को देखे। उसके सारे अंगांग जर्जरित हो गये थे। पार्वती वर से अवध्य उस दैत्य का शरीर शिव के बाण से जर्जरित हुए त्रिपुरासुर के समान हो गया था।।31।।

तृणावर्त के शरीर के ऊपर उसके गले में दोनों हाथ लगाए हुये भगवान श्री कृष्ण उसकी छाती पर खेल रहे थे। उसको देखकर गोपियाँ विस्मित हो गयीं। नरभक्षक राक्षस कृष्ण को आकाश को उड़ा ले गया था तो भी कृष्ण उस राक्षस से लड़ते हुये मृत्यु से अपने को छुड़ाते हुये कुशल रूप से उनको वापस आया हुआ देखकर आनंद विभोर होकर गोपियों ने उसको उठाकर माँ की गोद मे सौंप दिये।।32।।

गोप-गोपियाँ श्री कृष्ण को वापस पाकर धन्य हो गये।"यह अद्भुत है,राक्षस के हाथ में पड़कर हमारा कृष्ण अदृश्य हो गया था।हमारे भाग्य से वह पुनःहमें मिल गया है"।इन बातों से वे अपने आनन्द को व्यक्त कर रहे थे।।33।।

"सबको हिंसा करने के स्वभाव वाला अपने पाप से ही वह स्वयं नाश होता है।सज्जन लोग सदाकाल जिसके साथ जैसे रहना चाहिए उसके साथ वैसे ही रहने से आपत्ति से उनकी रक्षा हो जाती है। अब देखो, राक्षस मर गया।हम अपने कन्हैया को खोने के अपाय से दूर हो गये। यह हमारा भाग्य है। पूर्व जन्म में हम बड़ी तपस्या, हरि पूजा, जन सेवा,यज्ञ दान और अन्य लोगों का उपकार किये होगें। हमारे सौभाग्य से, मरने को सम्भव रही इस आपत्ति से हमारा बालक वापस आकर हम सबको आनन्द दे रहा है। यह हमारा भाग्य है, यह हमारा अदृष्ट है।।34।।

इस प्रकार गोकुल में होने वाले अद्भुत उत्पातों को देखकर विस्मित होकर नन्दगोप, वसुदेव की कही हुयी बातों के ऊपर और ज्यादा विश्वास किया।।35।।

एक बार यशोदा श्री कृष्ण को वह न चाहते हुये स्वयं प्यार से अपने स्तन का दूध पिलाने लगी।।36।।

दूध पीने लगा पुत्र को देखकर प्यार से भरी हुई यशोदा उसको उठाकर उसके मुँह को चुम्बन दी।उस समय श्री कृष्ण जम्भुआई लगाया।यशोदा अपने पुत्र के छोटे मुँह में भरा हुआ ब्रह्माण्ड को देखी।।37।।

श्री कृष्ण के मुँह में यशोदा पञ्च महाभूत, मन तत्व, अहंकार तत्व, महत्त्व, प्रकृति इत्यादि तत्वों से मिला हुआ ब्रह्माण्ड, रूद्रादि से युक्त चतुर्मुख, मानव दानव युक्त जगत को देखी।

माँ जी! मेरा पेट ब्रह्माण्ड से भरा है। आपका दूध किस कोने में रहेगा? लगता था छोटा मुन्ना यह बड़ी बात कर रहा है।

आकाश, भूमि, अंतरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, सारी दिशाये, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, वहाँ से बहने वाली नदियाँ, अरण्य, स्थावर जगम जीवजात इन सबको यशोदा ने अपने छोटे से पुत्र के नन्हे से मुँह मे देखी।।38।।

छोटे बच्चे के मुँह में इस प्रकार विश्व रूप के दर्शन करते हुये यशोदा काँपने लगी।हरिणाक्षी विस्मय से अपने आँखों को बन्द कर दी।।39।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - नौवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री बादरायण शुकदेव कहते हैं - हे राजा! यादवों के कुल पुरोहित महा तपस्वी गर्ग मुनि वसुदेव की प्रार्थना के अनुसार नन्द गोकुल को चले गये।।1।।

उनको देखकर नन्दगोप परमानन्द से भर गया।सामने आकर दण्डवत प्रणाम करते हुये उनमें श्री हरि के अधिष्ठान को देखते हुये उनका सत्कार किया।।2।।

अतिथि-सत्कार को स्वीकार करते हुये सुखासीन मुनि को नन्द गोप ने अपने प्यार भरे मृदुल भाषा से स्वागत करते हुये कहा, कहिये, महराज! मैं पूर्णकाम आपकी क्या सेवा करूँ।।3।।

हे महात्मा! आप लोगों। के संचार से दीन मन वाले गृहस्थ मानवों के इह-पर का श्रेय साधन होता है।वह कभी भी व्यर्थ नही होता।।4।।

आप द्वारा रचाया हुआ ज्योतिष्य इत्यादि शास्त्र ग्रन्थ,ग्रह नक्षत्र आदि ज्योतियों को आश्रय होने वाला ज्योतिश्चक्र का परिचय देता है।अतीन्द्रिय प्राचीन कर्म को जातक के बल से परिचय देता है।इससे मनुष्य अपने भूत और भविष्यत के बारे में जान लेता है।।5।।

आप ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं, यादवों के कुलपुरोहित हैं।आप बालक बल राम कृष्ण को जातकर्मादि संस्कारों को करवाइये।सारे वर्ण के लोगों का ब्राह्मण जन्म जात गुरु होता है।।6।।

श्री कृष्ण बलराम क्षत्रिय पुत्र हैं, नन्द वैश्य है। जन्म के समय सारे शूद्र होते हैं, संस्कार से जाति दृढ़ होता है। कर्ण कुन्ती पुत्र होते हुए भी संस्कार वश से सूत बन गया। यहाँ बलराम कृष्ण को वसुदेव-पुत्र न समझते हुए संस्कार किए तो वे वैश्य बनते हैं। इसी कारण वसुदेव अपने कुलगुरु गर्गाचार्य को भेजकर उनको क्षत्रिय योग्य संस्कार करवाए।

गर्ग मुनि बोले-यह प्रसिद्ध है कि हम यादवों के कुल पुरोहित है। मैं तुम्हारे पुत्रों का संस्कार करूँगा तो दुष्ट कंस इसको जान लिया तो वह समझ लेगा कि तुम्हारा पुत्र देवकी का पुत्र है। देवकी की पुत्री दुर्गा की बात सुनकर कंस आज भी विचार कर रहा है कि देवकी के आठवें गर्भ में पुत्री का जन्म होना असाध्य है,वह पुत्र ही हुआ होगा,वह किसी अन्य स्थान पर

जीवित रह सकता है। तुम और वसुदेव दोनों में आपस में रहने वाले स्नेह और बन्धुत्व को वह ठीक तरह से जानता है। आप दोनों में बच्चों का विनिमय हुआ होगा यह संशय भी उसको आने लगता है।यादव कुलपुरोहित मैं तुम्हारे पुत्रों को नामकरण किया तो इसको जानते ही वह संशय रहित होकर तुम्हारे पुत्रों को मार डालता है।इसके लिए नामकरण करना आगे अनर्थकारी हो सकता है।।7,8,9,।।

नन्दगोप कहता हैं- ऐसा है तो गोकुलवासी हमारे लोगों को भी न मालूम हो ऐसे गुप्त रीति से रहस्य मय स्वस्तिवाचन पूर्वक अपने बच्चों को द्विज को योग्य संस्कार दीजिये।।10।।

द्विज यानी दुबारा जन्म लेना।एक बार मातृगर्भ से और दूसरी बार गायत्रीमंत्रोपदेश से।इससे द्विज शब्द का अर्थ दो बार जन्म लेने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य होता है।किन्तु यहाँ वह अर्थ उचित नही है।द्वि यानी दूसरा,दूसरा जाति क्षत्रिय होता है।नन्दगोप वैश्य है,इसके लिए वह क्षत्रिय जाति में पैदा हुये राम कृष्ण को क्षत्रियोचित संस्कार करना चाहता है,अपने के अनुसार वैश्य जाति का नही।त्रिदश,त्रिविष्टप यहाँ त्रि का अर्थ तीसरा होता है।वैसे ही यहाँ द्वि का अर्थ दो होता है।

श्री शुकदेव कहते हैं- नन्दगोप की इस प्रार्थना के अनुसार और स्वयं की इच्छा वही होते हुये गर्ग मुनि और कोई नही जाने ऐसे एकांत स्थान में बालक राम तथा कृष्ण को नाम करण इत्यादि संस्कार किये ।।11।।

रोहिणी के पुत्र अपने बन्धु मित्रों को अपने गुणों से आनन्द करने वाला हो इसके कारण उसका नाम राम रहे। वह महाबलशाली होने के कारण राम शब्द बल के साथ प्रयोग मे आये। इसका दूसरा नाम संकर्षण रहे, क्योंकि वह सारे यादवों को आत्मीयता से अपनी ओर खींचता है। अन्यान्य प्रदेशों में बिखर कर बसे हुये यादवों को यह आगे इकठ्टा करने वाला है। रोहिणी देवकी गर्भ से इसको बाहर खींचकर लाई है।इसके लिए इसका नाम संकर्षण रहेगा।।12।।

अपृथग्भाव यह शब्द संकर्षण का इन तीनों अर्थों को बताता है।पृथक् परकीयताभाव अ न हो यह अर्थ अन्य देशों में रहने वाले यादवों को वापस लाना।दुर्गा **पृथक्** =देवकी गर्भ से इसको बाहर लाई है, तीसरा लोगों का आकर्षण स्वरूप से सामान्यतः होता है।

हे नन्दगोप,तुम्हारा यह यशोदातनय युग के अनुसार अलग-अलग रंग रूप धारण करता है, अलग-अलग शरीर वाला होता है।पहले शुक्ल,रक्त,पीत नाम के तीन रंग वाला हो गया था अब वह काले रंग वाला हुआ है।इसके लिए वह कृष्ण नाम से प्रसिद्ध होगा।।13।।

कृतयुग में श्रीहरि के हयग्रीवादि रूप शुक्ल यानी सफेद वर्ण के, त्रेतायुग में परशुराम आदि रक्त वर्ण के रूप, द्वापर युग में नरसिंहादि पीत यानी हल्दी रंग वाले शरीर, द्वापरांत में यह कृष्ण वर्ण का शरीर धारण किये है।

पहले एक बार यह और एक स्थान पर और एक वासुदेव के पुत्र होने के कारण इसका

नाम वासुदेव भी है।ज्ञानी लोग इनको वासुदेव कहते हैं। उसका अर्थ वे सर्वत्र वास करते हैं।।14।।

तुम्हारे पुत्र को उनके गुण कर्म के अनुसार अनंत रूप और अनंत नाम हैं। उनको मैं जानता हूँ,सामान्य लोग उनको नही जानते।।15।।

कृष्ण का नाम कृष्ण रूप नाम के गुण से आया है।इसके साथ कृष्ण का अर्थ इस भूमि को सुख देने वाला कर्म के अनुसार भी होता है।कृष् का अर्थ भूमि होता है, ण का अर्थ सुख होता है। भगवान के नाम गुण रूप और कर्म के अनुसार अनंत होते है।

कृष्ण नाम के बहुत अर्थ होते हैं। पाठको की सुविधा के लिए यत्किञ्चित, यथा शक्ति अर्थ लिखते हैं।

1. कृषि का अर्थ उत्कर्ष = भक्तों को उत्कर्ष देने वाले ।

2. कर्षति, अपहर्ति = भक्तों को आकर्षण करने वाले, भक्तों के पाप को हरण करने वाले।

3. परिपूर्ण गुण वाले।

4. कृष्णः, क = ब्रह्म, ऋ अनन्त वाचक है, ष कार रुद्र वाचक है, ण कार वैकुंठ वाचक है, अ कार श्वेतद्वीप पति विष्णु वाचक है। विसर्ग नर नारायण वाचक है।

5. कर्षति उलूखंलम् इति = ओखली को खीचने वाला।

6. कृष्यते भक्तैः सर्वदा।

7. भक्तों के शत्रुओं को नाश करने वाला।

8. राधया सार्धम् रमते = राधा के साथ रमण करने वाले।

9. कृष्ण यानी कृष्ण पक्ष। कृष्ण पक्ष के चन्द्र के समान शत्रु के नाश से उनकी पत्नियों के मुख कलाओं को नाश करने वाले।

10. दर्शन मात्र से शत्रु मित्र को आकर्षण करने वाले। दुर्योधन के पक्ष के कर्ण को आकर्षित किए।

11. कृषि भू देवी की प्रार्थना के अनुसार अवतार लेने वाले।

कृष्ण का अर्थ हरि, अग्नि, कोयल होता है।

12. हरि पाप को हरण करने वाले। 13. अग्नि = अग्नि के समान दुर्योधनादि दुष्ट अरण्य को नाश करने वाले, दो बार अग्नि को खाने वाले। 14. कोयल = कोयल के समान मंजुल गान गाने वाले, वंशी बजाने वाले।

15. कृष्ण केश के रूप से जन्म लेने वाले।

16. कृषि भूमि को सुख देने वाले - ण = स्वयं सुख रूप।

17. कृ = मृत्यु, ष = ज्ञान, ण = आनन्द, सज्जनों को तीनों देने वाले कृ + ष + ण = कृष्ण

18. कर्म को निर्मूलन करते हुए दास्यत्व को देने वाले।

19. संसार मोह को नाश करने वाले।

20. जगत का नियमन करने वाले, बल इत्यादि अनन्त गुण वाले।

21. कृष = भूमि के समान निश्चल, न = नमस्कार अथवा भक्ति। अ = प्राप्ति। निश्चल भक्ति वाले भक्तों को सुख देने वाले।

22. कृष = निर्वाण, ण = मोक्षानन्द, अकार देने वाले, मोक्षानन्द देने वाले।

23. जड़ रहित स्वरूप देह को मोक्ष देने वाले।

24. कृष्ण = उत्कृष्ट बलिष्ट। चाणूर, मुष्टिक नाम के बलिष्ठ कुस्ती पटु को नाश करने वाले।

25. क कार उच्चारण से यम दूत काँपते हैं, ऋ कार से उनके भय से भागते हैं, ष कार से सारे पाप नाश होते हैं, ण कार से सारे रोग नष्ट होते हैं, अकार से सातविध की मृत्यु नष्ट होते है।

ऐसे 108, 1008 नाम का अर्थ भी हो सकते हैं विस्तार भय से यहीं विराम लेते हैं।

यह बालक गोपालकों को और गायों को आनन्द देते हुये तुम लोगों का कल्याण करने वाला है।इसकी सहायता से आप आने वाले सारे आपदाओं को अनायास से पार कर सकते हैं।।16।।

हे नन्दगोप सुनो- प्राचीन काल में इस देश में सही राजा न होने के कारण सज्जन लोग रक्षक न होते हुये दुष्ट लोगों से पीड़ित हो गये थे।तब इसने राजा पृथु होकर आवेश रूप से अवतार लेकर सज्जनों की रक्षा की है।उस समय सज्जनों की अभिवृद्धि होकर चोर उचक्के नष्ट हो गये।।17।।

इसमें प्यार करने वाले मानव भाग्यशाली होते हैं। इनके शत्रु कुछ कर नही सकते जैसे विष्णु पक्ष के लोगों को असुर कुछ भी नही कर पाते।।18।।

इसी कारण नन्दगोप तुम्हारा यह पुत्र गुण कीर्ति,कान्ति,शक्ति सामर्थ्य में नारायण के समान होता है। इनकी तुम्हें बहुत जाग्रत होकर रक्षा करनी चाहिए।।19।।

इस प्रकार उपदेश देकर गर्ग मुनि अपने आश्रम को चले गये।नन्दगोप अपने पुत्र के भविष्य के बारे में सुनकर आनन्द विभोर होकर अपनी इच्छायें आज ही पूर्ण हो गयीं ऐसे मनोभाव में रहा।।20।।

नारायण के समान नारायण ही हो सकता है और कोई नही। गर्ग मुनि की भावना यही थी।इसको समझते हुये नारायण को इस कारण संतोष हुआ कि नारायण स्वयं अपने घर में अवतार ले चुके हैं।

थोड़े समय के बाद राम और कृष्ण अपने हाथ और घुटने के बल से गोकुल में चलने लगे।।21।।

उनके पाँव में बंधे हुये घुंघुरू के मंजुल स्वर से गोकुल गूंज उठा। उस आवाज को सुनते ही गोकुल के लोग आनन्द से तुंदिल होकर गोपाल कृष्ण के पास ही रह जाते थे। राम कृष्ण घर के आँगन के कीचड़ में पाँव खींचते हुये आगे जाते-जाते तुरन्त मुड़कर लोक विडम्बना करते हुये माँ के पास भाग आते थे।।22।।

उनकी माता यशोदा रोहिणी प्यार से आकर उनको अपनी गोद में उठा लेती थी। उस समय उनको पाँव में लगा हुआ कीचड़ और शरीर का धूल लग जाता था।उसको भी वे आनन्द से स्वीकारते हुये अपने बच्चों को स्तन का दूध पिलाते थे।अभी आ रहे छोटे-छोटे दाँत वाले अपने मंदहासयुक्त मुग्ध अपने बच्चों के मुख को आँख फाड़कर देखते हुये आनन्द लूटते थे।।23।।

अत्यन्त रमणीय बाल लीला करने वाले,दिखाने वाले राम कृष्ण गाय के बच्चों के पास जाकर उनकी पूँछ को पकड़ते हुये इधर-उधर खींचते थे,तब गाय के बच्चे उनसे छुड़वाकर भागना चाहते थे।इस सुन्दर दृश्य को देखते हुये गोपिकाएँ अपने घर के काम को छोड़कर उनको देखते ही रह जाती थीं।।24।।

जैसे दिन बीतते रहे, राम कृष्ण खेलते रहे, वे बहुत नटखट हो गये। किसी के वश में नही रहते थे। वे घुटने से चलते ही बैल, आग, बन्दर, साँप, पानी, पक्षी और कीटों के साथ अपायकारी खेलों में मग्न होते थे। इससे यशोदा-रोहिणी इधर अपने बच्चे के इस नटखटपन को नियमन नही कर सकती थी, उधर घर का काम भी नही कर पाती थीं। उनको यह समझ में ही नही आता था कि क्या इन बच्चों को देखती रहें और उनकी रक्षा करती रहें, अथवा घर का काम करने के लिए अन्दर चली जायें। इस दुविधा में वे बहुत चिन्तित रहती थीं।।25।।

यहाँ बैल, आग, इत्यादि के साथ खेल उनके आगे का भूभार हरण का कार्य वैखरी के बारे में सूचना मिलती है। बैल वृषभासुर, आग, जंगल में लगा हुआ दावानल, बन्दर केशी नाम के दानव, साँप काली नाग, पानी इन्द्र द्वारा की गयी अखण्ड वर्षा, पक्षी बकासुर अन्य कीटों के समान उपद्रव करने वाले चारुण मुष्टिक के समान क्षुद्र जन्तुयें।

हे महराजा! भगवान श्री कृष्ण बलराम के साथ जमीन पर खड़े होकर चलने लगे, घुटने से चलना छोड़ दिये। वे खेलते-कूदते दौड़ते रहे।।26।।

तब भगवान श्री कृष्ण अपने भाई बलराम के साथ और गोकुल के अपने समवयस्क गोकुल के बच्चों के साथ खेलते हुये गोपस्त्रियों को आनन्द देते रहे।।27।।

प्रतिदिन यशोदा अपने कोमल उँगलियों से श्री कृष्ण के गाल के ऊपर स्पर्श करती रहती थी। भगवान के मन्दस्मित मुख को प्यार से पुचकारती और चुम्बन देती थी। अपने बढ़ते हुए प्यार से खेलने वाले श्री कृष्ण को खींच कर स्तन पान करवाती थी।

गोपिकाएँ श्री कृष्ण की इन नयनाभिराम मनोहर बाल लीलाओं को और नटखटपन को देखते हुये, सहन करते हुये क्रोध का बहाना करते हुये यशोदा के सामने बाल लीला के बारे में शिकायत किया करती थीं।।28।।

श्री कृष्ण कभी-कभी हमारी गोशाला में आकर गैर समय में गाय के बच्चों को छुड़वा देता है। बच्चे हमारे न जानते हुये अपनी गाय के दूध पी लेते हैं। हम उसे डाटे तो हमको चिढ़ाता है। हमारे रखे हुये दूध दही मक्खन को चोरी करके खाता है, बिल्ली को और अपने साथियों को खिलाता है, पेट भर खाने के बाद मिट्टी के उन बर्तनों को तोड़ता है। हम दूध दही मक्खन ऊपर रखे तो किसी तंत्र से वहाँ तक पहुँच जाता है, तो भी नही मिले तो हमारे बच्चों को मारते हुये उनको रुलवाता है।।29।।

भगवान श्री हरि शंख चक्रधारी श्री कृष्ण अब बाल रूप में वायु देव के ऊपर चढ़ के संचार कर रहे हैं। भूमि में घुटने से चलते हुए अपने किए हुए मक्खन की चोरी की स्तुति करने वालों को अनुग्रह कर रहे हैं। वायु वाहन श्री कृष्ण पीठ ओखली इत्यादियों पर चढ़कर दूध दही मक्खन की चोरी करते थे। उस समय उनकी सहायता के लिए पीठ ओखली इत्यादि में वायु देव प्रवेश करते थे। बालक के कन्धे पर चढ़ते समय वायु देव बच्चों में प्रवेश करते थे। श्री हरि लक्ष्मी और वायु के सम्पर्क रहित किसी वस्तु को छूते तक नही। यह विचार को जगद्गुरु मध्वाचार्य जी ने अपने यमक भारत में कहे हैं।

दही का बर्तन ऊपर रहे, हाथ को न मिले तो वहाँ रखे हुये तीपायें को रखते हुये उसके ऊपर चढ़कर लेता है, मटकी में रखा हुआ मक्खन हाथ को नही मिला तो, वह मिले इतना ही छोटा सा छेद करते हुये मक्खन खा लेता है। हम काम में जब लगे रहते हैं उसी समय दबे पाँव से बिल्ली की तरह आ जाता है, अंधेरे में भी अपने शरीर से और मुख से प्रकाश डालते हुये चोरी करता है, उसके लिये अंधेरे में और कोई प्रकाश की आवश्यकता नही है। वह हमको अंधेरे में न दिखे इसके लिये अपने गले से प्रकाश देने वाले सारे मणि माला को निकाल कर आता है।।30।।

घर में मक्खन को चोरी से खाना गोपाल बच्चों का सहज स्वभाव है। लोभ से माता ज्यादा मक्खन नही

दिये तो बच्चे उसको चोरी से खाते हैं। यह कोई अपराध नही, पाप नही। देवता लोगों को अवतार लेते समय भगवान उनको आदेश दिये थे कि आप लोगों को मानव के इस स्वभाव का आचरण करना चाहिए। श्री कृष्ण अपने घर में चोरी से मक्खन खाया यह गोपस्त्रियों को आनन्द ही देता था। वे केवल क्रोध का बहाना करते हुये यशोदा के सामने शिकायत करते थे। जो कृष्ण के कार्य से क्रोधित हुये और मक्खन देने में तकरार किये, श्री कृष्ण उनके मक्खन के साथ उनके अधिक पुण्य का हरण भी करते हुये उनके ऊपर अनुग्रह किये हैं।

भगवान मक्खन दूध दही की चोरी किए क्या? दूसरों की वस्तु को लेना चोरी होता है। इस जगत में भगवान का, ऐसी कौन सी वस्तु नही है। उपनिषद कहता है - ईशावास्यमिदं सर्वम् - इस जगत की सारी वस्तुओं में भगवान आवास करते हैं। अपनी वस्तुओं को लेने से चोरी कैसे होती है। श्री कृष्ण को दूध दही की क्या आवश्यकता है? क्षीर सागर में वास करने वाले को क्या दूध दही की कमी होती है? वे दूध की चोरी नही किए वरन दूध दिए हुए लोगों के पाप को छीन लिए। यह विचार रूक्मिणीश विजय में आता है।

कृष्ण के ऊपर गोपिकाएँ यशोदा के सामने तकरार करती थीं। एक गोपी आकर बोली कि तुम्हारा लड़का जादूगर है। उसके आते ही हमारे घर के दरवाजे खुल जाते हैं। दूसरी बोली गाय के बच्चों को कृष्ण रस्सी से छुड़ा कर गाय के पास ले जाते हैं, पूछे तो मैं बन्धित लोगों का बन्धन छुड़ाने आया हूँ कहता है। तीसरी बोली तेरा पुत्र माखन चोरी करते समय उसे पकड़ने के लिए हम उसके पीछे भागे तो हिरण के समान छलांग मारते हुए वह भाग जाता है। इन तकरारों के उत्तर रूप में श्री कृष्ण बोलते हैं माँ जी! मैं इनके घर का पूरा दूध पीने के लिए मेरा पेट क्या तालाब है? आपसे दिया हुआ एक लोटा दूध को भी मैं पूरा पी नही सकता, आधा बिल्ली को दे देता हूँ। इनको मेरा जैसा बच्चा नही हुआ है इसके लिए वे ईर्ष्या से आपके सामने तकरार कर रहे हैं।

श्री कृष्ण भय रहित होकर हमारे घर में प्रवेश करता है,हम मना किये तो हमारे देहली के ऊपर मल मूत्र का विसर्जन करता है।चोरी करने के सारे उपायों का प्रयोग करने के बाद भी कुछ भी न हुआ हो ऐसे सभ्य जैसे रह जाता है।हम उसको चोरी करते पकड़ा तो भय से डरा हुआ जैसे खड़ा हुआ तेरे पुत्र के मुँह को देखकर हमें आनन्द हो जाता है। ऐसे तुम्हारा पुत्र हमें तंग कर रहा है।इस प्रकार गोपियों ने यशोदा के सामने तकरार किया। इसको सुनकर यशोदा को हँसी आई।इन बातों को सुनकर उसको अपने पुत्र को डाटने का मन नही हुआ।।31।।

यशोदा को हँसी इसके लिए आई कि यह गोपिका स्त्री सच नही बोल रही हैं। मेरे घर में सोलह हजार गायें हैं। रोज पहाड़ के इतना मक्खन यहाँ होता है। इसको छोड़कर मेरे कन्हैया को और दूसरों के घर में चोरी करने की क्या आवश्यकता है।

एक बार सारे बच्चे मिलकर खेल खेल रहे थे।तब बलराम अन्दर आकर माँ के सामने शिकायत किया कि कृष्ण खेलते-खेलते मिट्टी को खा लिया।।32।।

माँ यशोदा दौड़कर बाहर आई, कृष्ण को हाथ से पकड़ते हुये उसके हित मे डाटने

लगी।श्री कृष्ण अपने चंचल आँखों को फाड़-फाड़कर यशोदा को देखते हुये डर का प्रदर्शन करता रहा।।33।।

हे मेरे लाल, सोने की गुड़ियाँ, तुम क्यों चोरी से मिट्टी खाये। घर में मक्खन का ढेर है।जितने चाहे उतना देती हूँ। सच बोलो, देखो, ये सारे बच्चे और तुम्हारा भाई कह रहा है।।34।।

भगवान श्री कृष्ण बोले-माँ जी, मैं मिट्टी नही खाया।ये सारे झूठ बोल रहे हैं।चाहे तो मेरा मुँह देखो।।35।।

ना हं भक्षितवानंब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः भागवत में नौवाँ अध्याय के पैतीसवाँ श्लोक का यह प्रथम पाद है। इसका सामान्य अर्थ मैंने मिट्टी नही खाया यह होता है। यहाँ एक संशय आ जाता है, भगवान झूठ बोलते हैं क्या? एक समाधान ऐसा है, भगवान बच्चे के रूप मे हैं, बच्चे डर के मारे झूठ बोल सकते हैं। इसका यह अनुसरण है। किन्तु वेदव्यास जी भगवान कहते हैं ऐसे बोलने से और एक विशिष्ट अर्थ होता है कि भगवान आगे गोपिकास्त्रियों के सामने बोलते हैं कि **न मयोदितपूर्वं वा अनृतम्** मैंनें कभी झूठ नही बोला है। इस वाक्य से यहाँ विरोध आता है। इसके लिए यहाँ दूसरे तरह से अर्थ करना पड़ता है, **ना अहं भक्षितवान्,** मैं परम पुरुष हूँ मैं मिट्टी को खा लिया। **सर्वे अमिथ्याभिशंसिनः,** ये सारे सत्य बोल रहे हैं। मैं मिट्टी खाया हूँ इसको आपही देखिए बोलते हुये भगवान अपने मुँह खोल के दिखाए। वहाँ वे मिट्टी को नही दिखाये, बदले में ब्रह्माण्ड को दिखाये। यहाँ भी हमें लगता है कि भगवान झूठ बोले, यदि सत्य बोले होते तो मुँह में मिट्टी को दिखाना था। भगवान मिट्टी खाये यह सत्य है।उस मिट्टी से ही वे अपने मुँह में ब्रह्माण्ड को बनाकर दिखाये।

एक मूठीभर मिट्टी में प्रकृति महतत्व इत्यादि चौबीस तत्व सूक्ष्म रूप से रहते हैं।श्री हरि अपने अचिंत्य शक्ति से ब्रह्माण्ड की सृष्टि किये।इस सृष्टि को दिखाने के लिए ही वे मिट्टी खाये।

मिट्टी को न खाते हुये अपने अचिन्त्याद्भुत शक्ति से वे ब्रह्माण्ड की रचना कर सकते हैं, वे एक बार अपने अन्दर के ब्रह्माण्ड को माँ को दिखाये थे। श्री हरि शून्य से प्रपंच की सृष्टि नही करते हैं, इसके लिए मिट्टी को उपादान करते हुये स्वयं निमित्त कारण बनकर अपने मुँह में माँ को ब्रह्माण्ड दिखाये हैं। दूसरी बार ब्रह्माण्ड दिखाने का मन्तव्य यही है कि भगवान ऐसे अनंत कोटि ब्रह्माण्डों को सृजन कर सकते हैं, इसको बताने के लिए यह दूसरी बार विश्वरूप का दर्शन दिये। भू देवी के भार हरण के लिए भगवान स्वयं अवतार लिये हैं। भू माता भगवान को थोड़ी सी मिट्टी को समर्पण किये भगवान उसी से ब्रह्माण्ड बनाये।हरि को हम छोटा सा भी समर्पण किये तो भगवान अनंत फल देते हैं।

भगवान माँ को अपनी इस क्रिया से ही उत्तर देते हैं। माँ! आपसे दिया जाने वाला मक्खन मेरे लिए इस मिट्टी के समान है। मैं प्यार को छोड़कर और किसी वस्तु को ग्रहण नही करता।

यशोदा बोली-यदि तुमने मिट्टी नही खाया है तो मुँह खोलो, देखूँगी। यशोदा की इस

बात को सुनकर महाधैर्यशाली भगवान डरा हुआ बच्चे जैसे सामान्य मनुष्य के समान डरकर अपना मुँह खोले।।36।।

यशोदा अपने नन्हे से पुत्र के मुँह में इस चराचर सर्व वस्तु युक्त ब्रह्माण्ड को देखी,उसने वहाँ अव्याकृत आकाश, सारी दिशायें, पर्वत, द्वीप, समुद्र से मिला हुआ यह ब्रह्माण्ड, वायु, अग्नि, चंद्र नक्षत्र, ज्योतिष्चक्र, जल, तेज, अंतरिक्ष, स्वर्ग, भूताकाश, सर्वेन्द्रिय, देवताओं, मन, तन्मात्राऐं, गुणत्रय, जीव, काल, स्वभाव, अदृष्ट, संस्कार, लिंग शरीर इनको और इनके साथ इनके गुणधर्मों को और समस्त विचित्र प्रपंच को, उसमें रहने वाले गोकुल को, उसमें रहने वाली बैठी हुई अपने को, अपने जंघे के ऊपर सोया हुआ मुँह खोला हुआ छोटा कन्हैया कृष्ण को देखकर बहुत गड़बड़ में पड़ी।।37,38,39।।

यह क्या स्वप्न है,भगवान की इच्छा के अनुसार एक नयी सृष्टि है? क्या मेरी बुद्धि बिगड़ गई? अथवा यह मेरा बेटा जन्म से ही पाया हुआ योग सिद्धि है?।।40।।

यह मेरा बेटा समझा हुआ यह वस्तु जीव, मन, कर्म, वचन इनके अभिमानी ब्रह्मादि देवताओं को भी समझने में कष्ट है, वे भी पूर्ण रूप से समझ नही सकते ऐसे मेरे लाल की लीला को मैं और अन्य सामान्य लोग कैसे समझ सकते हैं। इस प्रपंच को जन्म देने वाला, इसकी रक्षा करने वाला, प्रलय काल में सबको मुक्ति देने वाला इस परब्रह्म स्वरूप को मैं नमस्कार करती हूँ।।41।।

नन्दगोप मेरा पति है, यह श्री कृष्ण मेरा पुत्र है, ये गोकुल के नन्द के सारे साम्राज्य और संपत्ति की मैं मालकिन हूँ, मैं ही इसकी रक्षा करती हूँ, ये सारे गोप और गोपिकायें मेरे हैं यह समझते हुये मैं और मेरी इस नीच बुद्धि से मैं श्री हरि की इच्छा मात्र से और मेरे कर्मानुसार यह होता है इसको न समझने वाली मेरी नीच बुद्धि को श्री भगवान ही हटा के मुझे सद्गति दें।।42।।

इस प्रकार यशोदा एक क्षण परतत्व को समझते हुये उसकी शरण होती है, दूसरे क्षण ही वह उस सर्वशक्त सर्वेश्वर श्री कृष्ण को अपने पुत्र के मोह में देखने लगती है। यही भगवान की माया है।।43।।

उसी क्षण यशोदा को विश्वरूप दर्शन से मिला हुआ तत्वज्ञान का विस्मरण हुआ।पहले जैसे पुत्र वात्सल्य दिल में भर गया। घबड़ाया सा, खुले हुये आँखों में आंसू भरा हुआ श्री कृष्ण को उठाकर अपने गोद में ले ली।।44।।

तीन वेद, सारे उपनिषद् ,सांख्ययोगशास्त्र,पंचरात्रागम इनसे सदाकाल गीयमान कीर्ति वाले महामहिम श्री हरि को अपना पुत्र मानते हुये झूले में डालकर सुलाती रही,गाना गाती रही।।45।।

राजा परीक्षित कहता हैं-हे मुनिवर्य, भगवान को पुत्र रूप में पाने का महाभाग्य पाया हुआ नन्दगोप पूर्व जन्म में क्या पुण्य किया था। महाभाग्यशालिनी यशोदा श्री हरि को स्तनपान करायी और लालन की यह कितना बड़ा भाग्य है।।46।।

ज्ञानी लोग आज भी जिनका संकीर्तन करते हैं, जिनकी सुखसंकथा के श्रवण मात्र से पाप चला जाता है ऐसी लीलाओं को देखना सुनना भी जन्म दिये वसुदेव देवकी के भाग्य में नही मिला।।47।।

श्री शुकदेव नन्द की पूर्व कथा कहते हैं- नन्द गोप पूर्व जन्म में द्रोण नाम के एक श्रेष्ठ वसु थे। उसकी धरादेवी अब यशोदा बनी है। भूमि में गोप-गोपी होकर जन्म लेने के लिए जब ब्रह्मा जी का आदेश मिला तब उनके आज्ञानुसार ये भी जन्म लिये।।48।।

उन्होंने ब्रह्मा जी से वर माँगे, हम भूमि में जन्म लेते हैं तब देवोत्तम जगन्नाथ में हमें उत्तम भक्ति प्राप्त हो, उससे और उनके प्यार को पाकर हम इस दुष्तर संसार सागर को पार कर सकें।।49।।

ब्रह्मा जी तथास्तु कहे। बाद मे महायश्स्वी द्रोण गोकुल में जन्म लेकर नन्द नाम से प्रसिद्ध हुआ। धरा देवी यशोदा का रूप धारण की।।50।।

हे राजा! भगवान जनार्दन ही अपने पुत्र होने के कारण सारे गोप-गोपियों में सबसे ज्यादा भक्ति इन दम्पतियों मे बढ़ गई।।51।।

ब्रह्मा जी का दिया हुआ वर को सार्थक बनाने के लिए भगवान श्री कृष्ण बलराम के साथ गोकुल में रहते हुये नन्द यशोदा को साथ-साथ गोपालक और गोपिका-गण को अपने लीला से परमानन्द देते थे।।52।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में नौवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - दस

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- एक बार घर में काम करने वाली नौकरानियों के अन्य कामों में व्यस्त होने के कारण नन्द की रानी यशोदा स्वयं दही को मंथने लगी।।1।।

मैंने जिन बाल लीलाओं को बताया है उन सारे श्री कृष्ण की बाल लीलाओं की गाथा गाते हुये यशोदा दही मंथन कर रही थी।।2।।

विशाल नितंब के ऊपर कढ़ाई की हुई रेशम की साड़ी यशोदा पहनी थी। उसके हिलने वाले स्तन से पुत्र वात्सल्य से दूध आता था। मंथनी की रस्सी को खींचने से बाहों को श्रम होता था।हाथ के सोने की चूड़ियाँ और कान के कुण्डल हिलते थे।आया हुआ पसीना मुँह के ऊपर दिखता था।सिर के ऊपर पहने हुये फूल मंथन के समय एक-एक करके गिर रहे थे। सुन्दर भव्य यशोदा इस प्रकार दही मंथन कर रही थी।।3।।

स्तनपान की इच्छा से माँ के पास आया हुआ श्री कृष्ण मंथनी को पकड़कर मंथन कार्य में बाधा डाल दिया।यशोदा इससे सन्तोष पाकर कृष्ण की ओर देखी।।4।।

अपने जंघे के ऊपर बच्चे को लेकर हँसते हुये माँ यशोदा पुत्र को स्तनपान कराने लगी। इतने में चूल्हे पर रखा हुआ दूध उबलने लगा। जल्दी में यशोदा कृष्ण को भूमि पर पटकते हुये दूध के पास दौड़ गई।श्री कृष्ण अभी स्तनपान कर तृप्त नही हुआ था।।5।।

श्री कृष्ण यशोदा का स्तन पान किया। कृष्ण को दूध की आवश्यकता नही थी। उसको देखते ही यशोदा के स्तन से पुत्रवात्सल्य से दूध बहता था। माता के प्यार से उसको व्यर्थ न करते हुए भगवान पीते थे। भगवान जन्म रहित है। जो जन्म नही लेता है, माता के गर्भ से नही आता है उसको कौन दूध पिलाएगी? मत्स्य, कूर्म नरसिंह अवतार में किसने दूध पिलाया। कृष्णावतार में माँ का दूध नया लगा। जो नया होता है वह प्रिय होता है। उसको कितने बार पीने के बाद भी तृप्ति कैसे आयेगी? एक वस्तु के स्थान में और एक वस्तु को रखना है। तो पहले वाले को वहाँ से हटाना पड़ता है। यहाँ श्री कृष्ण दूध के साथ यशोदा के पाप हरण करते हुए उसके हृदय में पुण्य विशेष को भर रहे हैं।

यशोदा को मुँह में ब्रह्माण्ड को दिखाने में यही तात्पर्य है। कितना दूध पीते हो बस करो। माता की इस बात के उत्तर रूप में भगवान बोलना चाहते हैं, मैं अकेला नही पी रहा हूँ। सारा जगत मेरे पेट में रह कर दूध पी रहा है।

श्री कृष्ण को माँ की इस अलक्ष्य से क्रोध आ गया।उसके सुन्दर होठ हिलने लगे।आँखों मे आंसू आये,दाँतों से होठ को काटते हुये मलाई से भरी हुयी मटकी को एक छोटे पत्थर से मार कर अन्दर नया मक्खन को खा लिया।।6।।

दूध को आग से उतार कर यशोदा आकर देखती है दही का भांड टूट गया था।श्री कृष्ण वहाँ नही था।यशोदा समझ ली यह उसी का काम है। वह हँसने लगी।।7।।

अन्य एक दिन श्री कृष्ण उल्लूख को पलटकर उसके ऊपर खड़े होकर स्वयं मक्खन खाते हुये बिल्ली को खूब मक्खन खिला रहा था। माँ न देखे इसके लिए वह बार-बार फिर कर देखता था।पीछे से आई हुई यशोदा कृष्ण के पास आई।।8।।

हाथ में लाठी लेकर आने वाली माँ को देखकर श्री कृष्ण उल्लूख से कूदकर डरा हुआ लड़के जैसे भागने लगा।योगियों ने अपने तपोबल लगाकर जिनको पकड़ने में असमर्थ होते हैं उस भगवान को पकड़ने के लिए मुग्ध गोपिका उसके पीछे दौड़ने लगी।।9।।

कुमार के पीछे दौड़ने वाली गोपिका की कृश कटि हिलती थी, बड़े नितंब चलते थे,उनके भार से शरीर झुका था,वेणी से फूल गिरते थे।बहुत वेग से दौड़कर अंत में यशोदा कृष्ण को पकड़ ली।।10।।

भगवान के पीछे बहुत श्रम करते हुये दौड़कर यशोदा बड़ी यात्रा करते हुये बहुत पुण्य पा ली।उस पुण्य के अधीन होकर भगवान यशोदा के हाथ में मिल गये।

श्री कृष्ण अब अपराधी बना है,रो रहा है,दोनों हाथों से आँखों को मल रहा है, आँख में लगाया गया काजल मुँह पर पसर रहा है,भय विह्वल होकर माँ को देख रहा है।यशोदा लाठी लेकर मारने का नाटक करते हुये कुमार को डाँट रही है।।11।।

भयभीत हुआ पुत्र को देखकर ममता युक्त माँ लाठी को दूर फेंक दी। उसके हाथ को छोड़ते हुये उल्लूख को बाँधने के लिए रस्सी ले आई।बेचारी माँ अपने पुत्र की अगाध महिमा कैसे जानती है।।12।।

भगवान अन्दर बाहर सर्वत्र व्याप्त होने के कारण उसको अन्दर और बाहर कोई अलग नही है।वह अनादि नित्य होने के कारण उसके आगे-पीछे कुछ नही है,सबके अन्दर वही है और बाहर भी है,सबसे पुराने वे हैं और सबसे आगे भी वे ही हैं। इस प्रकार इस जगत में व्याप्त होकर राज्य करने वाले भगवान श्री कृष्ण हैं।।13।।

भगवान श्री कृष्ण अभिव्यक्त स्वभाव वाले हैं, अपने अनुग्रह के बिना वे किसी को दृष्टिगोचर होने वाले नही हैं। किन्तु मनुष्य और बालक के रूप में दिखने वाले उनको अपने पुत्र समझते हुये यशोदा एक रस्सी से उसको उल्लूख से बाँधने लगी।।14।।

पुत्र गलती किया है, दण्ड रूप मे माँ उसको बाँधना चाहती है।किन्तु रस्सी दो अंगुल कम पड़ी। यशोदा दूसरी रस्सी लेकर उसको जोड़ दी।।15।।

रस्सी तीन धागा से बनता है, वह सत्व, रज, तमो गुण का संकेत है। इनसे हमको छुड़ाने वाले भगवान को क्या कोई रस्सी से बांध सकता है? यशोदा कितने भी रस्सी जोड़ दे बांधने का प्रयास करने के बाद भी रस्सी दो अंगूल कम पड़ता था। यशोदा के घर में सोल हजार गायें थीं। कितने रस्सी वहाँ हो सकते हैं। कम पड़ने में भगवान हमें एक शिक्षा देना चाहते हैं। भगवान भक्तों के बन्धन को छुड़ाते समय तीन गुण वाली रस्सी की आवश्यकता है। ज्ञान भक्ति और वैराग्य ये तीन रस्सी के गुण होना चाहिए। यशोदा को भगवान के ठीक तरह का ज्ञान नही है। वह भगवान को अपना पुत्र समझ बैठी है। ज्ञान न रहने वाली यशोदा में भक्ति और वैराग्य भी नही है।

वह भी दो अंगुल कम हो गया। उसको और एक रस्सी जोड़ दी वह भी दो अंगुल कम पड़ी। ऐसे घर में जितने रस्सियाँ हैं उन सबको लाने के बाद भी दो अंगुल कम ही पड़ा।।16।।

यशोदा के घर में सोलह हजार गायें थीं। उनको बाँधने के लिए बहुत सी रस्सियाँ लगती हैं। आवश्यकतानुसार उपयोग के लिए उतनी ही रस्सियाँ घर में अलग रखे जाते हैं। उन सबको लाकर बाँधने का प्रयास करने के बाद भी दो अंगुल मात्र रस्सी कम होती रही। यह भगवान की विशेष लीला है।

यशोदा कृष्ण को अत्यन्त प्यार करती थी। किन्तु उसमें ज्ञान और वैराग्य की कमी थी। वह ज्ञान के बिना भगवान को बाँधने आई। अपने दही नुकसान के बारे में असहना थी, वैराग्य नही था।

इस प्रकार घर मे रहने वाले सारे रस्सी को लाने के बाद भी कृष्ण को यशोदा बाँध नही सकी। इसको देखकर अन्य गोपिका स्त्री के साथ यशोदा भी हँसने लगी।।17।।

यशोदा को अब तक की श्रम से पसीना आई थी, बाल के फूल मुरझा गये थे। माँ की थकान को देखते हुये श्री कृष्ण कृपा से स्वयं बंधन के अधीन बन गये। स्वयं दामोदर बने।।18।।

हे राजा इस जग के स्वामी, रमा ब्रह्मादि के साथ ये सारा ब्रह्माण्ड किसके अधीन रहता है वह स्वयं श्री हरि भक्तों के अधीन होता है, उनके बंधन को स्वीकारता है इसके लिए यह एक दृष्टांत है।।19।।

श्री हरि मुक्ति देने वाले, इस अनुग्रह को न ब्रह्म पाये, न रुद्र पाये, न छाती मे सदाकाल रहने वाले लक्ष्मी पाई किन्तु गोपिकाओं ने इस अनुग्रह को पाया।।20।।

यशोदा पुत्र श्री कृष्ण अपने को नौका बनाते हुये भक्तों को लेकर इस संसार सागर को सुलभ रीति से पार करवाते हैं। यह लाभ भक्तिभरित ज्ञानी लोगों के लिए मिलता है, ज्ञान भक्ति रहित मंद लोगों को कभी नही मिलता।।21।।

रस्सी से बाँधकर माँ घर के कामों मे व्यस्त हो गई। इधर उल्लूख को बँधा हुआ श्री कृष्ण वहाँ से बाहर जाने की इच्छा किया। वहाँ आँगन में दो अर्जुन के वृक्ष जोड़ी में खड़े थे, उनको देखा। ये दोनों वृक्ष पूर्व जन्म में कुबेर गुह्यक नाम के पुत्र थे।।22।।

नल कूबर, मणिग्रीव नाम से ये दोनों प्रख्यात थे, बहुत सम्पन्न थे, नारद जी के शाप के कारण ये दोनों अर्जुन वृक्ष होकर जन्म लिये थे।।23।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दसम स्कन्धः

अध्याय - ग्यारहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं- हे पूज्य मुनि! यह नलकूबर और मणिग्रीव को नारद से शाप मिलने का कारण क्या है। देवर्षि नारद क्रोध करने वाले नही हैं। उनको क्रोध क्यों आया।उसके लिए वे दोनों क्या अपराध किये थे।।1।।

श्री शुकदेव कहते हैं- नलकूबर और मणिग्रीव कुबेर के पुत्र थे। वे रुद्र की सेवा में नियुक्त थे। इससे उनका अहंकार बढ़ता रहा। एक बार गंगा तट पर कैलाश के एक रम्य उपवन में फूल से भरा हुआ प्रदेश में सुरापान करने के बाद वहाँ गाते रहे स्त्रियों के साथ मिलकर ये भी गाने लगे।मदिरा से मत्त होने के कारण उनकी आँखें गिर रही थीं।।2,3।।

वे कमल से भरे हुये सुशोभित गंगा जल में उतर कर हाथी हाथिनी के साथ जैसे विहार करता है वैसे वहाँ के स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा में मग्न थे।।4।।

हे राजा! उस समय श्री हरि की इच्छा के अनुसार वहाँ नारद जी पधारे,वे मदोन्मत्त नलकूबर को देखे।।5।।

नारद जी को देखकर वस्त्र रहित अप्सरा स्त्रियों ने लज्जा से और महर्षि शाप देंगे इस भय से जल्दी में आकर कपड़ा पहन लिये। किन्तु विवस्त्र रहे गुह्यक दोनों कपड़ा नही पहने।।6।।

वे दोनों पहले ही हम देव पुत्र हैं और श्रीमंत हैं इससे मदभरित थे,अब मदिरा पीकर और भी मत्त हो गये हैं। इसको देखकर उनके मद का नाश हो और भगवान में भक्ति हो इस दृष्टि से अनुग्रह रूप में शाप देकर कहे।।7।।

नारद जी कहते हैं- विषय पदार्थों को आशक्ति से सेवन करने वाले को रजोगुण के कारण धनमद कुलमद इत्यादि बुद्धि नाशक कार्य होते हैं। ये साथ होने के कारण स्त्री संग,द्यूत प्राणी हिंसा और काम्ययज्ञों में आशक्ति स्वयं आती है।।8।।

धनमद से अन्धे, विषयासक्त लोग मनोनिग्रह न करते हुये उनका पार्थिव शरीर अनेक तरह का भोग भोगता रहता है।वे नित्य खाने के लिए यज्ञ के नाम से पशु की हिंसा करते हैं।उनके पार्थिव शरीर को राजा हो तो नर देव बोलते हैं,ब्राह्मण हो तो भू देव बोलते हैं,ऐसे देव

शब्द से संज्ञित यह शरीर मरने के बाद सड़ गया तो कृमि कीट का आहार बनता है, वैसे ही कुत्ता सूअर खाये तो मल बन जाता है, जलाये तो राख बन जाता है। ऐसे नश्वर शरीर को ये मूर्ख लोग जरा-मरण रहित समझते हैं। विषयासक्त धनी लोग इस शरीर के पोषण के लिए प्राणि हिंसा करते हैं, अन्य लोगों को कष्ट देते हैं और पुनर्जन्म में ऐसे ही शरीर मिलने के लिए यज्ञों में प्राणि हिंसा करते हैं। भूतदया को भूलकर भूतद्रोह करने वाले ये स्वार्थी लोग इस हिंसा के कारण उत्तम लोक को नही पाते किन्तु नरक में गिर जाते हैं। इस भूमण्डल में अपने सम्पत्ति के कारण उसको थोड़ा सा सुख मिलता है। किन्तु वह भी सुखकर नही है।रोगादि उपद्रव से दुःख ही होता है।वह मूढ़ मानव अपने सही हित को नही समझता।।9,10।।

यह शरीर अन्नदाता के अन्न खाकर पोषित होता है तो यह अन्नदाता का है क्या? गर्भाधान करके शरीर को देने वाले पिता का हो सकता है क्या? अथवा माता का हो सकता है क्या ? अथवा शक्ति से काम कराने वाला मालिक का होता है क्या? अथवा जो पैसा देकर खरीदता है उसका होता है क्या? अथवा जलकर राख बनाने वाली अग्नि का होता है क्या? अथवा खाने वाला कुत्ता और सूअर का होता है क्या? यह शरीर किसका है और किसको मिले यह निर्णय जब स्पष्ट नही है तब इस शरीर के ऊपर इतनी आसक्ति क्यों? विषयासक्ति क्यों?।।11।।

इस प्रकार अन्नदाता माता पिता द्वारा अपना मानने वाला इस शरीर को भगवान प्रकृति से निर्माण करते हैं और पुनः प्रकृति में विलीन करते हैं। उसको अपना मानते हुये अपने के लिए अन्य प्राणियों की हिंसा करने वाला तामसी होता है और कोई नही।।12।।

धनमद से अन्धा हुआ सज्जन को दारिद्य ही आँखों को खुलवाता है। दरिद्र आदमी सारे प्राणियों को अपने समान देखता है। वह प्राणि हिंसा नही करता।।13।।

काँटे चुभने से होने वाला दुःख केवल चुभने वाले को ही मालूम होता है, वह चाहता है कि वह दुःख और अन्य लोगों को न हो।बाह्य चिह्नों से दुःख को पहचानने वाला वह दुःखी गरीब आदमी,अपने समान अन्य लोगों को भी दुःख होता है, इसके लिए अन्यों को दुःख नही देना, यह विचार करता है। जिसको काँटा चुभा नही उसको स्वयं दुःख का अनुभव नही है और वह दूसरे के दुःखों के बारे मे क्या समझता है।।14।।

दरिद्र आदमी को अहंकार और गर्व नही होते।वह सारे मद से दूर रहता है।कष्ट जो आते हैं वे भगवान की इच्छा से ही आते हैं।उसको ठीक तरह से समझते हुये भगवान के ऊपर श्रद्धा रखना ही तप है।।15।।

आधि व्याधि जो आते हैं, उसको भगवान का अनुग्रह मानकर धैर्य न खोते हुये अनुभव करना एक रीति से तप है। अंत में होने वाले शरीर दाह को भी भगवान को समर्पित करना, आधि व्याधि को भी भगवान को समर्पित

करना योग्य है। यह बृहदारण्यक उपनिषद का वाक्य है (7-13),

नित्य भूखा रहने के कारण कृष शरीर वाले गरीब इन्द्रिय विषय सुखों को नही चाहते हैं, पेट भरे तो उसको आनंद हो जाता है। जीव की इच्छा के अनुसार वह खाने के लिए अन्य दूसरों को कष्ट नही देता, हिंसा नही करता।।16।।

तद्धि तस्य परं तपः - दारिद्र, दुःख , रोगादि उपद्रव को अनुभव करते समय, यह भगवान ने हमारे कर्म के अनुसार दिया हुआ फल है यह समझ कर उसको सन्तोष से स्वीकार करना एक तप होता है। यह उपनिषद का वाक्य है।

दरिद्र को अहंकार नही रहता है, जो विनीत है उसको साधु संग मिलता है। सत्संग के कारण उसकी विषयासक्ति नष्ट होती है, वैराग्य बढ़ता है। ऐसे आदमी को अपरोक्ष प्राप्त होने के बाद वह मुक्ति को पाता है।।17।।

श्री मुकुंद के चरणारविन्द में भक्ति करने वाला वह गरीब मिट्टी और सोने को समान देखता है। ऐसे साधु लोग दुर्जनों की उपेक्षा करते हैं। धन से गर्वित होकर दुष्टों को आश्रय देने वाले दुर्जन के सहवास में क्या साधना हो सकती है।।18।।

इस प्रकार धनमद से अंधे बने, मद्यपान किये हुये, स्त्रीलोलुप, मनोनिग्रह न करने वाले ये नलकूबर मणिग्रीव को शाप देता हूँ। इससे तमोगुण कार्य रूप उनके मद को नाश करता हूँ।।19।।

ये लोक पालक कुबेर के पुत्र हैं। किन्तु तमोगुण से भरकर मदोन्मत्त हैं, हमारे सामने नग्न होकर खड़े हैं। उनको उसका ज्ञान भी नही है।।20।।

इस कारण ये दोनों वृक्ष का जन्म पाये। जीवन में पुनः वे मदमत्त न हो जाये। वृक्षजन्म में भी तुमको मेरे अनुग्रह से पूर्व जन्म का स्मरण रहे। वृक्षरूप में खड़े होकर वे तप करे।।21।।

देवमान में सौ वर्ष बीतने के बाद वे श्री कृष्ण के स्पर्श से पुनः देवत्व को पाकर भगवान के भक्त बनकर वापस स्वर्ग में आये।।22।।

इस प्रकार देवर्षि नारद शाप देकर वापस नारायणाश्रम चले गये। नलकूबर मणिग्रीव दोनों अर्जुन वृक्ष होकर गोकुल में जन्म लिये।।23।।

भगवद्भक्ताग्रणी नारद जी के शाप को सत्य करने के लिए श्री कृष्ण दोनों यमलार्जुन वृक्ष के पास उल्लूख को खींचते हुये चले।।24।।

देवर्षि नारद मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। ये नलकूबर मणिग्रीव मेरे भक्त कुबेर के पुत्र हैं। मैं महाज्ञानी नारद जी की भविष्यवाणी को सत्य करता हूँ।।25।।

इस प्रकार संकल्प करते हुये श्री कृष्ण उल्लूख के साथ साथ-साथ खड़े हुये दोनों वृक्षों के बीच में से घुस कर आगे चले गये। उल्लूख दोनों वृक्षों के आड़ मे फँस गया।।26।।

उल्लूख दोनों वृक्षों के बीच में से नही आ रहा है। दामोदर अपने कटि को बंधा हुआ रस्सी को जोर से खींच रहे हैं। भगवान के जोर देने के कारण वृक्ष की शाखायें, टहनियाँ और पत्तियाँ जोर से हिलने लगी। सारे लोग सुन सके, ऐसे बड़ा आवाज करते हुये दोनों वृक्ष मूल के साथ गिर गये।।27।।

नारद जी का शाप था। श्री कृष्ण के स्पर्श मात्र से शाप विमोचन हो गया। श्री कृष्ण दोनो वृक्षों को मूल सहित उखाड़ दिये। उनमें धुनि और चमुक नाम के पार्वती से अवध्य वर प्राप्त दो दैत्य थे। उनको भी मारना था। इसके लिए भगवान वृक्षों को उखाड़ फेंके।

तब उन वृक्षों से नलकूबर मणिग्रीव उठकर आये। वे अग्नि के समान प्रकाशमान शरीर वाले अपने प्रकाश से दिशाओं को प्रकाशित करते हुये श्री कृष्ण को दण्डवत प्रणाम किये। हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।।28।।

यशोदा से कमर को रस्सी से बद्ध होने के कारण भगवान दामोदर नाम पाए।

हे भगवान श्री कृष्ण! आप इस जगत को अपने पास आकर्षित करते हैं,इसके लिए आपका नाम कृष्ण है,साथ में आप इस उल्लूख को खीचते हुये हमारा कल्याण किये,इसके लिए आपका कृष्ण नाम सार्थक है। हे योगेश्वर,आप इस जगत के आदि कारण परम पुरुष हैं। कार्यकारण सम्बन्ध वाला यह प्रपंच आपके प्रतिमा रूप है। यह ब्रह्मज्ञानियों का मत है।।29।।

आप स्वगत भेद रहित हैं। आप सारे जीवियों में नियामक होकर रहते हुये उनके मन इन्द्रियों का नियन्त्रण करते हैं। आप सकल गुण परिपूर्ण हैं,इसके लिए काल कहलाते हैं। आप नाश रहित हैं। आप इस जगत के सृष्टि नाश करने वाले ब्रह्म रुद्रादि से उत्तम हैं,आप स्वयं विष्णु भगवान हैं।।30।।

आप महत्तत्व के नियामक हैं। रजसत्व और तमोगुणमय सूक्ष्म प्रकृति के भी आपही नियामक हैं। सारे शरीरों मे रहकर आप इन्द्रियों का कार्यकारितत्व को नियामन करते हैं। सर्वसाक्षी परमपुरुष आप हैं।।31।।

इस जगत को सृष्टि करने के बाद भगवान उसमें प्रवेश करते हैं। भगवान ही इसकी रक्षा करते हैं। इसी कारण यह प्रकृति भगवान का रूप कहलाती है किन्तु वह भगवान का मूल स्वरूप नही है। भगवान का मूल स्वरूप नित्य सुखात्मक है-भगवान सर्व गुण पूर्ण होने के कारण काल कहलाता है। यह वामन पुराण की बात है।

सैनिक जीतता है। उसको राजा की जय कहते हैं उसी प्रकार अपने अधीन वाले शरीर को अपना ही मानते हैं, इसी प्रकार भगवान के अधीन रहने वाले प्रकृति इत्यादि को भगवान ही बोलना रुढ़ी में है। यह पद्म पुराण का वचन है।

भगवान का नाम काल है। वे काल नियामक शिंशुमार देव है। काल शब्द का अर्थ इस प्रकार होता है

1. कं, सुखं आलीयते इति कालः - सुख देने वाले चेतना है।

2. कल = छेदने = दुष्ट संहारक

3. कल = बन्धने = संसार बन्धन में रखने वाले।

4. कल = ज्ञाने = ज्ञान देने वाले।

5. कल = काम धेनु।

6. सर्वान् गुणान् आत्मनि कलयतीति कालः।

भगवान आपको केवल आपही जान सकते हैं।आपके अनुग्रह से आपके भक्त लोग आपको जान सकते हैं। अन्य कोई आपको जान नही सकता।प्राकृत और त्रिगुणात्मक,इन्द्रियवृत्ति को आप गोचर नही होते।आप इस त्रिगुणात्मक सृष्टि से भी पहले से रहने वाले हैं।आपके अनुग्रह के बिना केवल इन्द्रियों की सहाय से आपको कौन जान सकता है।।32।।

आप स्वयं प्रकाशमान हैं।आपके गुण भी स्वयं प्रकाशमान हैं। फिर भी आपको अन्य लोग नही देख सकते।आपकी महिमा विचित्र है।आप गुण पूर्ण और सृष्टिकर्ता हैं। हे वासुदेव! आपको नमस्कार।।33।।

आप शरीर में अन्तर्यामी होकर रहते हैं। आपके अवतार दो विध के होते हैं, एक शरीर के रूप धारण करके किया हुआ अवतार, दूसरा शरीर न धारण करते हुये अशरीरी मत्स्यादि अवतार। आप अन्तर्यामी अवतार में मन इन्द्रियादि रूप को नियमन करने वाले अद्भुत सामर्थ्य वाले होते हैं। बाह्य मत्स्यकूर्मादि रूप में उनमें असाध्य होने वाला असम्भावित महिमाओं को हम देखते हैं।।34।।

जीव के ऊपर आच्छाद रहने के कारण वे भगवान को देख नही पाते।इसका अर्थ भगवान किसी आवरण के अन्दर नही रहते।वे सदाकाल अपने को और अन्य लोगों को देख सकते हैं। यह महाकूर्म पुराण का वाक्य है।

आप सारे लोगों के अभीष्टप्रद हैं, अब इस समस्त लोगों को क्षेम और मंगल करने के लिए एक अंश से अवतार ले चुके हैं।।35।।

इस जगत को मंगल करने वाले आप हमको मंगल किये हैं।हे शान्तमूर्ति,यदुपति वासुदेव आपको नमस्कार।।36।।

हे गुण पूर्ण भगवान! नारद महर्षि की कृपा से हमें आपका दर्शन हुआ।हम आपके दास रुद्र के हम दास हैं। सदाकाल के लिए आपके दासानुदास होने के लिए हमें आज्ञा दीजिए।।37।।

हे देवोत्तम! हम अपनी वाणी से सदाकाल आपका ही संकीर्तन करें। हमारे कान आपके गुणगान को सुनें, हाथ आपकी सेवा करें, मन में सदाकाल आपके चरणस्मरण होते रहे, सिर

आपका नमन करे,आँख आपके प्रतिमा रूप को सज्जनों के दर्शन करें।।38।।

श्री शुकदेव कहते हैं- इस प्रकार नलकूबर मणिग्रीव की स्तुति को सुनते हुये रस्सी से उल्लूख को बँधे हुये भगवान गोकुलनाथ हँसते हुये कहे।।39।।

श्री भगवान कहते हैं- धनमद से अन्धे हुये तुमको दयालु नारद मुनि शाप देकर अनुग्रह किये हैं। इस विषय को मैं पहले से जानता था।।40।।

सज्जन लोग सदाकाल शत्रु-मित्रों को समान रूप से देखते हैं। वे सदाकाल मुझमें ही अपने मन को रखते हैं। उनके दर्शन से संसार बन्धन सूर्य के उदय से अन्धकार जैसे चला जाता है वैसे टूट जाता है।।41।।

तुम लोगों द्वारा चाही जाने वाली परम मंगलकर भक्ति तुममें उत्पन्न हो चुकी है। मुझमें मन रखे तुम लोग यहाँ से सीधा कुबेर लोक को चलो।।42।।

श्री शुकदेव कहते हैं- श्री कृष्ण की इन बातों को सुनकर नलकूबर मणिग्रीव उल्लूख से बन्धित श्री कृष्ण की परिक्रमा करते हुये बार-बार दण्डवत नमस्कार करने के बाद उनकी अनुज्ञा से उत्तर दिशा में यात्रा की।।43।।

नलकूबर मणिग्रीव यहाँ जीव की प्रतिनिधित्व करते हैं। उनको दो वृक्ष आच्छादन किए थे। हमको भी जीवाच्छादिका, और परमाच्छादिका नाम के दो आच्छादन हैं। वृक्ष जैसे नल कूबरों को ज्ञान सुख को ढ़क कर रखे थे वैसे ही यह दो आच्छादन हमारे स्वरूप भूत चिदानन्द को ढ़क कर रखे हैं। इस कथा को सुनकर हम श्री कृष्ण भगवान से प्रार्थना करें कि हे भगवान हमारे ऊपर के स्वरूपाच्छादन और परमाच्छादन को कृपा कर के हटाइए।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवॉ स्कन्ध पूर्वार्ध में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

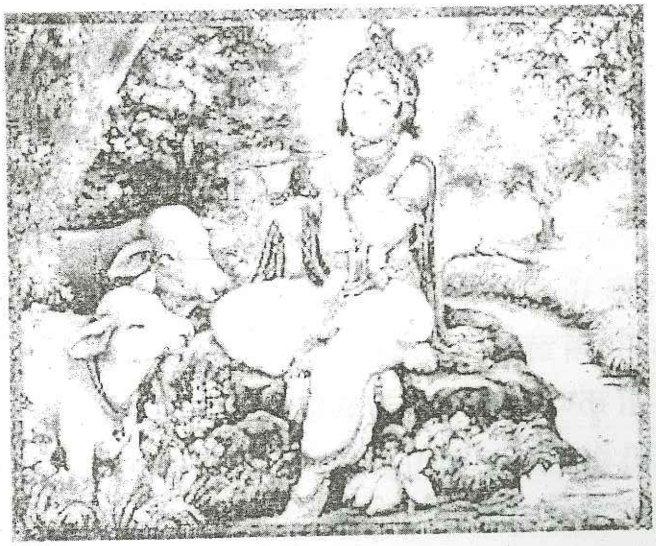

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बारहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- हे राजा परीक्षित! सुनो-वृक्ष गिरने की आवाज सुनकर नन्दगोप सहित अन्य गोपालक आकाश की बिजली गिर गई होगी इस आशंका से उस स्थान को दौड़कर आये।।1।।

वहाँ देखते हैं,जमीन के ऊपर दो अर्जुन वृक्ष मूल सहित गिर गये हैं।रस्सी से उल्लूख को बँधा हुआ श्री कृष्ण को उन्होंने देखा।केवल देखने से यह स्पष्ट होता था कि उल्लूख को खींचकर दोनों अर्जुन वृक्षों को समूल उखाड़ फेंका है किन्तु किसी को इस पर विश्वास नही होता था।उनको लगा यह भी एक उत्पात ही हो सकता है।इससे वे डर गये,यह कैसे हुआ इसको जानने में वे बहुत कातर रहे।।2,3।।

वहाँ खेलते रहे गोप बालकों ने कहा-हमने देखा है,कृष्ण ही इन वृक्षों को गिराया है।उलूख को खींचते-खींचते कृष्ण दोनों वृक्षों के बीच में से आ गया किन्तु उलूख अटक गया।कृष्ण ने जोर से खींचा।दोनों वृक्ष गिर गये।उनमें से दो पुरुष निकल आये। इसको हमने अपनी आँखों से देखा है।।4।।

छोटा बालक बालकृष्ण इन दो मोटे वृक्षों को उखाड़ दिया है इसके ऊपर किसी का विश्वास नही हुआ। उसके मन में लगता था कि यह कैसे साध्य होता है।कई लोग पूतना संहार को याद करते हुये यह भी एक ऐसी लीला हो सकती है।इस अन्दाज में संशय व्यक्त करते रहे।।5।।

श्री कृष्ण उलूख को अब भी खींचते रहे।इसको देखते हुये नन्दगोप श्री कृष्ण को उलूख से हँसते हुये छुड़वाकर अपने गोद में ले लिया।।6।।

इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण देखने वाले को एक सामान्य मुग्ध लड़के के समान दिखता थे। गोपियों के साथ खेलता था।उनके कथानानुसार खेलता था,गाता था और नृत्य करता था।एक-एक बार गोपियों के वश में होकर लकड़ी की गुड़ियाँ के समान चुप रहता था,लगता था यह लड़का कुछ नही जानता है।।7।।

कभी-कभी उनकी आज्ञानुसार उनके आसन और पादुकाओं को लाकर देता था।कभी-कभी पहलवानों के समान हाथ पाँव मारते हुये कुश्ती लड़ता था।।8।।

श्री कृष्ण को भगवान मानने वाले इस रहस्य को जानने वाले नारदादि भक्तों को भगवान अपनी बाल लीलाओं को दिखाते हुये भगवान भक्तों के वशवर्ती हैं इसको दिखाता था।अपने खेलों से वह सारे गोकुल के आनन्द को बढ़ा दिया था।।9।।

किन्तु बृहदवन मे बार-बार होने वाले इन उत्पातों के बारे में चिन्ता करते हुये नन्दगोप इत्यादि बड़े यादव लोग सारे एक साथ मिलकर गोकुल के हित के लिए आगे क्या करना चाहिए इसके बारे में मंत्रणा की।।10।।

गोपालकों में ज्ञान और वय में वृद्ध,देशकाल के अनुसार योग्य व्यवहार को जानने वाला उपनन्द नाम के गोप श्री राम कृष्ण के हित को चिन्तन करते हुये अपने विचार को व्यक्त किया।।11।।

वह कहता है-यहाँ प्रजा को विनाश होने वाले उत्पात बार-बार होते हैं। गायों के हित की दृष्टि से हमें यहाँ से और किसी दूसरे स्थान को जाना अच्छा लगता है।हम यहाँ से दूर चले जायें।।12।।

कृष्ण हमारा शिशु है, शिशु मानकर राक्षसी पूतना से कैसे ही वह बच गया,गाड़ी गिर गयी उससे भी बचा। भगवान के अनुग्रह से वह गाड़ी इसके ऊपर नही गिरा।।13।।

आधी और तूफान के रूप में आया हुआ दैत्य इसको उठाकर आकाश में ले गया।वहाँ के पत्थर के ऊपर इसको फेंक दिया तो भी देवतागण की कृपा से कृष्ण सुरक्षित रहा।।14।।

दो वृक्ष गिर गये उनके बीच में यह नन्हा सा सुकुमार था।अच्युत ही इसकी रक्षा करता था इसीलिए वह बच गया।अच्युत की आज्ञा के बिना कोई मर भी नही सकता।।15।।

आगे ऐसे उत्पात न हो।यह गोकुल उत्पात और अनर्थों का स्थान बन गया है। अब हमें यहाँ रहना नही है। आज ही हम इन बच्चों को लेकर परिवार सहित अन्य किसी स्थान पर चले जायेंगे।।16।।

वृन्दावन गायों के लिए हितकारक स्थान है।गोवृन्द को अवति रक्षणा देता है इसके लिए इसका नाम वृन्दावन है।यह नाम सार्थक है।वहाँ पवित्र गोवर्धन पर्वत है,वहाँ हरा-भरा घास और लता है।गोप-गोपियों के लिए और गायों के लिए वास करने योग्य स्थान नये-नये जंगलों से मिला हुआ यह स्थान है।।17।।

हम आज ही वहाँ चले जायेंगे।जल्दी से बैलगाड़ियों को तैयार करे। मै जो बोलता हूँ उसको तुम लोग मानते हो तो आज ही हम चले जायेंगे।।18।।

हे राजा! उपनन्द के इन बातों को सुनकर सारे नन्द एक मत से उसको स्वीकार किये। वे सारे उसके विचार की सराहना करते हुये अपने घर चले गये।।19।।

श्री कृष्ण मथुरा में अवतार लिए, नन्द गोकुल में अभिवृद्ध हुए, अब वृन्दावन जा रहे हैं। यह भगवान श्वेत द्वीप अनन्तासन तथा वैकुन्ठ में रहते हैं इसका प्रतीक है और मथुरा, गोकुल और वृन्दावन इन त्रिधामों के प्रतीक हैं।

इस श्लोक के बाद औत्तरेय पाठ में दो श्लोक ज्यादा हैं, उनको वीर राघवाचार्य और विश्वनाथ चक्रवर्ती व्याख्यान किये हैं। उसका अर्थ इस प्रकार है। एक बार एक फल बेचने वाली फल ले लो फल ऐसे आवाज दे रही थी उसको सुनकर बाल कृष्ण अपने दोनों हाथों मे हाथ भर धान्य को लेकर उसके पास आया। दौड़ते आने से हाथ में रहा हुआ धान्य गिरते रहा। इसको देखकर मनमोहक कन्हैया के खाली हाथ में दोनों हाथ भरे इतने फल को बेचने वाली भर गई। बाल मुकुन्द को फल देने के कारण उसकी फल की टोकरी रत्नों से भर गई। (आज भी गाँवों में धान्य देकर वस्तुओं को खरीदने की प्रथा है)।

यमल वृक्षों को तोड़ने के बाद श्री कृष्ण अपने साथ बच्चों को लेकर एक दिन यमुना तट पर खेलने के लिए गया। बहुत देर तक बच्चों को न आते देखकर रोहिणी देवी राम कृष्ण को पुकारने वहाँ आई।।20।।

खेल में मग्न हो गये बच्चों को कितनी बार बुलाने के बाद भी नही आये। बच्चे के ऊपर प्यार करने वाली रोहिणी यशोदा को बच्चों को बुलाने के लिए बोली।।21।।

पुत्र वात्सल्य से यशोदा के स्तन द्रवित हो गये थे। कृष्ण राम अन्य बच्चों के साथ बहुत समय से खेलते रहे। उसको देखकर यशोदा उनको बुला रही थी।।22।।

हे कृष्ण, काले रंग वाले, हे कमल के समान आँख वाले आओ। स्तनपान करो, खेल बन्द करो, तुम लोग थक गये होगे, आओ भोजन करो।।23।।

हे राम, सबको आनन्द देने वाले छोटे भइया को लेकर जल्दी आओ, तुम सुबह जल्दी भोजन किये हो, अब देर हो गया है, खेलते हुये थक गये होगे, आओ जल्दी आओ।।24।।

दशार्ह कुल के स्वामी नन्दगोप तुम्हारे साथ भोजन करने के लिए राह देख रहे हैं आओ, हमें सन्तोष पैदा करो। हे बच्चो, तुम सब अपने-अपने घर भोजन करने के लिए चले जाओ।।25।।

कृष्णा! आज तेरी वर्षगाँठ है, सुनों बेटा, तुम अभ्यंजन करो, ब्राह्मणों को गोदान देना है। देखो तेरा बदन धूल से घिरा हुआ है, चलो स्नान करें।।26।।

देखो-देखो तुम्हारे साथियों ने अपने माँ के हाथ से नहा रहे हैं, देखो उन्होंने ठीक तरह से श्रृंगार किये हैं। तुम भी चलो नहाओ और भोजन करने के बाद खेलने के लिए जाओ।।27।।

हे राजा! यशोदा इस प्रकार सर्वोत्तम श्रीहरि को अपना पुत्र मानते हुये पुत्रप्रेमपाश से बध

अन्तः करण से हाथ से पकड़ते हुये बलराम के साथ घर में आकर ठीक-ठाक से उसकी वर्षगाँठ को मनाई।।28।।

नन्दगोप सारे गोपालकों को अपने पास बुलाकर उनको आदेश दिया।कल हम सब यहाँ से वृन्दावन चलेंगे। सब लोग तैयार हो जाइये। देर मत कीजिए।।29।।

इस बात को सुनकर सारे एक साथ ठीक सही बोलते हुये अपने बैलगाड़ियों को तैयार करते हुये उनमे सारे पदार्थों को भरकर यात्रा प्रारम्भ किये।।30।।

वृन्दावन के कई अर्थ है - ये सारे अर्थ श्री कृष्ण भगवान का भी होते हैं।

1. गोप गोपी वृन्द को रक्षा करने वाला।

2. गोपी गो वृन्दों से सेवा लेने वाले।

3. ब्रह्मादि देवता वृन्द से वन्द्य।

4. वृन्दावन की अधिष्ठात्री वृन्दा से प्रार्थित भगवान।

5. श्री कृष्ण की परम प्रिय वृन्दा ने वास किया हुआ स्थान - वह वृन्दा की रक्षा करने वाले भगवान।

6. वृन्दा भगवद्भक्त केदार राजा की पुत्री। दुर्वासा से विष्णु मंत्र की दिक्षा ली थी। विरक्त होकर साठ हजार वर्ष तप की । फल स्वरूप लक्ष्मी का आवेश पाकर श्री कृष्ण के साथ अरण्य में विहार की। इसके लिए इस स्थान का नाम वृन्दावन है। वृन्दा की रक्षा करने वाले भगवान का नाम भी वृन्दावन है।

हे राजा! गोपालक वृद्ध और बालक स्त्री और सारे सामान को गाड़ी मे चढ़ाकर गाड़ी के साथ हाथ में धनुष पकड़ते हुये चलने लगे।।31।।

सारे गायों को आगे-आगे चलाते हुये,अनेक तरह के वाद्यों को बजाते हुये पुरोहितों के साथ निकल पड़े।।32।।

गोपियाँ अच्छी और सुन्दर साड़ियों को पहनकर गाड़ी में बैठी हैं। गाड़ी चलने से उनके स्तन हिलते थे, कुमकुम की कान्ति से शोभायमान थे।सुश्राव्यकण्ठ से वे श्री कृष्ण की गाथाओं को गा रही थीं।।33।।

यशोदा रोहिणी राम कृष्ण के साथ एक ही गाड़ी में बैठी थीं। यात्रा में भी वे कृष्ण राम के मधुर बोली को सुनने के लिए उत्सुक थीं।।34।।

सर्व ऋतुओं में सुख देने वाले वृन्दावन में गोपालक लोग प्रवेश किये। वहाँ एक रम्य स्थान में अपने गाड़ियों को अर्धचन्द्राकार स्थिति में खड़ाकर वहाँ गायों के लिए और गोपालकों के लिए रहने के लिए कुटिया और गोशाला तैयार करने लगे।।35।।

राजा वृन्दावन का यह सुन्दर परिसर,पहाड़ गोवर्धन और यमुना नदी के बालू युक्त किनारे को देखकर रामकृष्ण को बहुत आनन्द हुआ।।36।।

इस प्रकार दिन बिताते रहे,वहाँ बच्चों के बाल लीला गोकुल वासियों को आनन्द देता था, काल के अनुसार बच्चे बढ़ रहे थे।यादवों के क्रम के अनुसार वे गायों के बच्चे को पालने लगे।।37।।

गोपालकों में एक सामान्य नियम होता है कि बच्चे तीन वर्ष तक खेलते रहते हैं। तीन वर्ष के बाद गाय को बड़े गोपालकों के चराने को ले जाने के बाद गोपालक बच्चे घर से नजदीक के क्षेत्र में गाय के बच्चों को चराने ले जाते हैं। पाँच वर्ष होते तक बच्चों को गाय के बच्चों को चराने का काम करना पड़ता है। पाँच वर्ष के बाद वे बड़ों के साथ गाय चराने में लगते हैं।

गोकुल के आस-पास के क्षेत्रों में राम कृष्ण अनेक खेल-कूद के सामान के सहित निकल कर गाय के बच्चों को चराने जाते थे।।38।।

वे कभी-कभी बंशी बजाते थे,कभी-कभी गुलेल से पत्थर मारने का खेल तो कभी पाँव में घुँघुरू बाँध के नाचते थे,फिर कभी-कभी जमुना के रेत से गाय और बैल की गुड़ियाँ बना के उससे खेलते थे।।39।।

वे सांड़ के समान आवाज करते हुये शौर्य से लड़ाई करते थे,कभी शेर भालू जैसे आवाज करते हुये अन्य बच्चों के साथ दौड़ते गिरते खेलते थे।।40।।

एक बार राम कृष्ण यमुना के तट पर गाय के बच्चों को चराते खेल रहे थे उस समय उनको मारने के उद्देश्य से कंस से प्रेषित रुद्र से अवध्य वर प्राप्त एक दैत्य वहाँ आया।।41।।

वह गाय के बच्चे का रूप धारण कर उन गाय के बच्चों में मिल गया, कृष्ण ने उसको देख लिया। बलराम को उसको दिखाते हुये, कोई हुआ नही वैसे उस दैत्य के पास चुपक़े से चला गया।।42।।

कृष्ण वत्सासुर नाम के उस असुर के पीछे के दो पाँव और पूँछ को एक हाथ में पकड़ कर जमीन से ऊपर उठाकर आकाश में उसको गिराते रहे। उससे वह दैत्य मर गया।श्री कृष्ण उस असुर के बड़े शरीर को वहाँ के बेल के वृक्षों के ऊपर फेंक दिया।।43।।

नीचे गिरते समय वह असुर गाय के बच्चे के रूप को छोड़कर अपना निज रूप धारण करते हुये बड़ा शरीर वाला वृक्ष के ऊपर से जमीन पर गिर गया।गिरते समय बहुत से बेल के फलों को भी गिरा दिया।श्री कृष्ण के इस पराक्रम को देखकर गो बालक भला-भला कहे और श्री कृष्ण की प्रशंसा की।।44।।

श्री कृष्ण, देव-दानव-मानव को समान रूप से देखते हैं। महादानव वत्सासुर को वे ऊर्ध्वगति पाने के लिए ऊपर आकाश में भेजे। किन्तु तापस जीवी असुर अपने कर्म के अनुसार अधोगति पाकर नीचे गिर गया। नीचे रहने वाले को भी ऊपर उठाना भगवान का स्वभाव है किन्तु अधःपतन पाना तामस जीवी का स्वभाव होता है। यह

रुक्मिणीश विजय की बात है।

आकाश में रहने वाले देवतागण श्री कृष्ण के पराक्रम के इस कार्य को देखकर संतुष्ट होकर पुष्प वृष्टि किये।।45।।

सकल लोक के पालक और मुख्य स्वामी श्री राम कृष्ण सामान्य गोपालक की तरह यहाँ गाय के बच्चों को चराते थे। एक बार सुबह के भोजन करने के बाद वे बच्चों को चराने के लिए ले चले।दोपहर तक चराने के बाद उनको पानी पिलाने के लिए एक जलाशय के पास उनको ले गये।वहाँ बछड़े के साथ स्वयं भी पानी पी लिये।।46,47।।

संसार वृक्ष में परस्पर प्यार और अभिमान नाम के जाल को पसारते हुए सारे जीव राशि को पक्षी के समान प्रलय काल में पकड़ने वाले, छोटी मछली को खाने वाला बड़ा मछली के (मत्स्यावतार के) रूप वाला यह बड़ा व्याध है इसको न समझते हुए छोटा मत्स्य मान कर यह असुर उन्हे खाने आया है। इसको मूर्ख न बोलते हुए और क्या बोलना है। यह श्री वादिराज जी का अभिप्राय है।

तब वे वहाँ एक बड़ा बक पक्षी को देखा। वज्रायुध से मार खाकर नीचे गिरा हुआ पहाड़ के एक शिखर के समान दृश्यमान उस पक्षी को देखकर गो बालक डर गये।।48।।

बक नाम का महाअसुर कंस से प्रेषित होकर बक पक्षी के रूप में वहाँ आया था।वह षण्मुख से अवध्य वर पाया था,बहुत बलिष्ठ था।उसको बड़ा चोंच था।वह जल्दी से आकर श्री कृष्ण को निगल गया।।49।।

श्री कृष्ण को न देखते हुये,दैत्य के मुँह में गया हुआ उनको देखकर गोपालक बालक डर के मारे स्तब्ध हो गये।प्राण जाने के बाद इन्द्रिय जैसे चल नही सकते वैसे कृष्ण के बिना गोपालक बालक रह नही सकते।।50।।

श्री कृष्ण अवतार लेने से सज्जन लोग सद्गति पाकर स्वर्ग मोक्षादि सुख पाए। किन्तु दैत्य लोग अन्धन् तमस के लिए अपनी यात्रा आरम्भ किए। शकटासुर नाम की गाड़ी में, पूतना को सारथी बना कर, धेनुकासुर (गधा), केशी (घोड़ा), अरिष्टासुर (बैल) और वत्सासुर (बछड़ा) को गाड़ी के वाहक बने। बक को रथ का ध्वज बनाए। उस गाड़ी में चाणूर, मुष्टिक, कंस और उनके रक्षकों को बैठा कर अन्धन् तमस को भेज रहे हैं।

इस जगत के पितामह ब्रह्मा जी को जन्म देने वाले पिता भगवान श्री कृष्ण हैं। उनको इस बकासुर ने निगल लिया है किन्तु उसको वह कैसे पचा सकता है।असुर का पेट जलने लगा तो असुर उनको अन्दर रख नही सका।इसके लिए वह मुँह खोलकर श्री कृष्ण को बाहर थूक दिया।श्री कृष्ण को कुछ भी घाव नही हुआ था।क्रोध से वह असुर कृष्ण को अपने चोंच से मारने आया।।51।।

कंस का मित्र वह बकासुर अपने ऊपर आक्रमण करने आ रहा है इसको देखकर सज्जनों

को आश्रय देने वाले भगवान श्री कृष्ण सारे लोगों के देखते-देखते बक के दोनों चोंचों को हाथ में पकड़ते हुये छाती के ऊपर पाँव रखते हुये हाथ से खींचते हुये चीर कर दो टुकड़े कर दिये।।52।।

श्री कृष्ण पूतना को मारते समय सात दिन के थे। शकटासुर को मारते समय वे चार महीने के थे। तृणावर्त और बकासुर को अपने किशोर बय में यानी एक से पाँच वर्ष की आयु में मार डाले। गोपी वस्त्रापहार, धनुकासुर हनन और कालिया मर्दन पाँच से दस वर्ष के बीच वाली पौगंड वय में किए। सातवें वर्ष में गोवर्धनोद्धार किए। आठवें वर्ष में रास रचाए। ये सभी भगवान की बचपन की लीलाएँ हैं। पन्द्रह वर्ष होने के पहले ही वे कंस को मार डाले।

इससे देवतागण को सन्तोष हुआ। वे इस बकासुर के संहार को देखकर नन्दन वन के पारिजातादि पुष्पों से पुष्प वृष्टि किये। देव दुंदुभि आनक शंख इत्यादि वाद्यों को बजाते हुये स्तोत्रों से स्तुति किये। इसको देखकर गोप-बालक अचंभित रहे, विस्मित रहे।।53।।

बकासुर के मुँह से बाहर आये हुये भगवान के बाल रूप को गोप-बालक आलिंगन किये। उनके गये हुये प्राण पुनः शरीर में आ गये। बालक की आँखों में आनन्दवाष्प बह गया। गाय के बच्चों को लेकर वे गोप - बालक वापस गोकुल को आकर बड़े लोगों के सामने श्री कृष्ण की इस बीर गाथा को कहे।।54।।

इसको सुनकर गोप-गोपियों को कृष्ण के ऊपर का प्यार और ज्यादा हो गया। मर कर पुनः जीवित होने वाले कृष्ण को वे सब आँख फाड़ कर देखते रहे।।55।।

यह क्या है। बहुत राक्षस लोग इस छोटे बच्चे को मारने आये लेकिन मार नही सके। जिनसे इस ब्रह्माण्ड का मरण होता है उसका मरण और कौन ला सकता है। अन्त में वे राक्षस स्वयं मरण पाये।।56।।

अब तो यह सिद्ध हो गया कि आगे और कितना भी बड़ा और घोर राक्षस हो वह कृष्ण का कुछ भी नही कर सकता। आग को बुझाने के लिए आये हुये पतंग के समान वे स्वयं मर जाते हैं। श्री कृष्ण की हिंसा कोई नही कर सकता है।।57।।

ब्रह्मज्ञानी जो बोलते हैं वह सत्य होता है। भगवान गर्ग मुनि पहले ही इसको बताये थे, उसी प्रकार हो रहा है।।58।।

इस प्रकार नन्दगोप और गोपालक राम कृष्ण के बारे में अपने में बातें करते हुये सुख पाते रहे। इसमें उन्हें अपने संसार के दुःख का अनुभव नही हुआ।।59।।

इधर राम कृष्ण जैसे कुछ भी नही हुआ हो ऐसे लुका-छिपी, बालू से घर बनाना, वृक्ष और बन्दर इत्यादि बच्चों के खेल खेलते हुये गोकुल में अपना बाल्य काल बिताते रहे।।60।।

इसके बाद तीन अध्याय अघासुर वध, वत्सहरण, और ब्रह्मस्तुति श्रीधरि पाठ में ज्यादा हैं। इन तीनों अध्याय के बाद यह साठवाँ श्लोक और एक बार आता है। उन अध्यायों की कथासार इस प्रकार हैं-

अघासुर, पूतना और बकासुर का भाई है। उसको भी कंस ने ही भेजा था। अघासुर अजगर का रूप धारण करके गोप बालकों के आने के रास्ते में अपना बड़ा मुँह खोल के सोया था। गोप बालक उसको गुफा समझते हुये कुतूहल से उसमें प्रवेश किये। श्री कृष्ण के अन्दर प्रवेश करने के बाद वह अजगर अपने मुँह को बन्द किया। आकाश में रहने वाले देवगण इसको देखकर हाहाकर किये। किन्तु अन्दर आये हुये श्री कृष्ण उसके गले में ही डटे रहे। उनको वह अपने पेट के अन्दर नही खींच सका। कृष्ण के कारण अजगर का श्वाशोच्छ्वाश बन्द होकर वह अजगर मर गया। अजगर से निकली हुयी एक ज्योति भगवान में विलिन हुयी। अघ यानी पाप। कृष्ण के स्पर्श मात्र से उसके पाप की निवृत्ति हो गयी और वह सायुज्य मुक्ति को पाया। देवताओं ने पुष्प वृष्टि किया और जयघोष किये। वह ध्वनि ब्रह्म लोक तक पहुँची ब्रह्मा जी उसको सुनकर भगवान श्री कृष्ण के पास आकर स्तुति किये। यह घटना जब घटी तब श्री कृष्ण की आयु पाँच वर्ष की थीं।

यह तीनों अध्यायों का सार है। इसके अन्त में यह साठवाँ श्लोक और एक बार आता है। इससे यह लगता है कि बीच में आने वाले ये तीन अध्याय प्रक्षिप्त हैं। श्रीधर स्वामी इत्यादि अनेक व्याख्यानकार इसको प्रक्षिप्त मानकर व्याख्यान किये हैं। वल्लभाचार्य की **सुबोधिनी व्याख्यान** मे ऐसे लिखते हैं।

योजयत्वाधुनिका अध्याय त्रितयं जगुः।
शब्दार्थ संगती नाम स्पष्टःतत्र विरूद्धता।
लोकप्रसिद्धेस्तच्चापि कथंचित रूप्यते स्फुटम्।।

इसका अर्थ इस प्रकार है कि आधुनिक लोग भागवत में इन तीन अध्यायों को जोड़ दिए हैं। ये शब्द अर्थ और संगति के अनुसार मूल से विरुद्ध हैं। यह यहाँ स्पष्ट है, किन्तु ये लोक प्रसिद्ध हैं। इसके लिए हम भी उनका व्याख्यान करते हैं। किन्तु जीव गोस्वामी कहते हैं कि इनके प्राचीन व्याख्यान मिलते हैं इसके लिये यह प्रक्षिप्त नही हो सकते। विजयध्वबि व्याख्यान में यह तीन अध्याय नही हैं।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तेरहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- अब श्री कृष्ण छः वर्ष के हो चुके हैं,बलराम सात वर्ष के। पौगण्ड वय प्राप्त होने के कारण गोपालक इनको गाय चराने के लिए साथ लेकर चलने लगे। इससे राम कृष्ण गाय चराते पुण्य भूमि वृन्दावन को अपने पादस्पर्श से और पवित्र बनाये।।1।।

पाँच वर्ष के पहले की आयु बाल्य माना जाता है। छः से दस तक पौगण्ड वय,दस से सोलह तक किशोर,सोलह के बाद यौवन माना जाता है। कृष्ण राम अब पौगण्ड वय के हो चुके हैं।

श्री कृष्ण बलराम और गोप बालकों के साथ विहार करते हुये गायों को आगे चराते हुये बंशी बजाते एक सुन्दर और फूलों से भरे हुए वन में प्रवेश किये।।2।।

वह प्रदेश सुमधुर गुंजन करने वाले भौंरों और मृग पक्षियों से भरा था। वहाँ महात्माओं के मन के समान स्वच्छ जल से भरे हुए सरोवर में खिले हुये कमलों की सुगंध को लेकर मंद वायु बहती थी। इसको देखकर भगवान वहाँ विहार करने की इच्छा प्रकट किए।।3।।

वन में लाल और मृदुल कोमल पत्ती की कान्ति से वृक्षों ने श्री कृष्ण की आरती उतारी। फल और फूलों के भार से भरा हुआ वृक्ष अपने दोनों हाथों को जोड़कर जमीन को लगाते हुये श्री कृष्ण को फल समर्पण करते हुये नमन किये। उनको देखकर आदि पुरुष भगवान श्री कृष्ण हँसते हुये अपने भाई बलराम जी को बोलते हैं।।4।।

वृक्ष अपनी टहनियों नाम के हाथों में फल पुष्प को पकड़कर अपने समीप आए हुए श्री राम कृष्ण के पद तलों में सिर को रखकर नमस्कार करते हुए उन फल फूलों को समर्पण कर रहे हैं ऐसा लगता था। भगवान राम-कृष्ण दोनों के अवतार लेते समय उनकी सेवा करने के लिए देवतागण वृक्ष रूप धारण कर आए थे।

श्री भगवान बोलते हैं- हे देवोत्तम,ये उत्तम वृक्ष अपने जन्म के कारण बना हुआ पाप को धोने के लिए आपको फल समर्पण करते हुये,देवताओं की आराधना के लिए योग्य आपके पाँवों में अपनी टहनियों से नमस्कार करते हैं, यह आश्चर्य है न?।।5।।

यहाँ श्री कृष्ण बड़े भाई होने के कारण लोक को आदर्श व्यवहार का निदर्शन देते हुये अपने बड़े भाई राम

की स्तुति करते हैं। यह लोकाचार है। वस्तुतः वे बलराम में आविष्ट अपने शुक्लकेश के रूप की ही स्तुति कर रहे हैं। श्री कृष्ण स्वयं रमण हैं।आगे के दो श्लोकों में और स्तुति करते हैं।

हे आदि पुरुष! ये भौंरे आपके पीछे-पीछे आते हुये सकल लोक पावन आपकी कीर्ति का गुणगान करते हैं। ये सारे आपके भक्त शिखामणि ऋषिगण हैं। आप वेश बदल कर मानव रूप में इस भूमि में संचार कर रहे हैं। आपके शिष्य ऋषिगण आपको छोड़कर नही रह सकते हैं। इसके लिए वे वृक्ष रूप में आकर यहाँ आपकी सेवा के लिए खड़े हैं।।6।।

ये हिरन अपनी आँखों से आपको अपना प्यार गोपियों जैसे दिखा रहे हैं। कोयलें अपने मंजुल गान से आपका सन्तोष बढ़ा रही हैं। घर आये हुये अतिथि का वन्य जीवों द्वारा किया जा रहा सत्कार अभिनन्दनीय है।यह सज्जनों का स्वभाव है।।7।।

श्री शुकदेव कहते हैं- इस प्रकार वन सम्पत्ति से भरा हुआ समृद्ध वृन्दावन को देखकर सन्तुष्ट होकर श्री कृष्ण गोवर्धन पहाड़ के पास और यमुना नदी के तट पर गायों को चराते हुये मित्रों के साथ खेलते रहे।।8।।

पुष्प रस को चखकर मदमत्त हुये भौंरों के गान करते समय कृष्ण उनके साथ गाते थे।उस अमृत तुल्य गान को सुनकर देवता गण कृष्ण बलराम और उनके मित्रों के गुणगान करते थे।।9।।

कभी-कभी श्री कृष्ण हंस पक्षी के आवाज को अनुसरण करते,कभी मोर के समान नाचते थे, कृष्ण की इन लीलाओं को देखकर मित्र लोग प्रमोद से हँसते थे।।10।।

खेलते समय गायें दूर गयीं तो मेघ के समान गम्भीर आवाज में उनको प्यार से बुलाते थे। श्री कृष्ण की इस आवाज से गो और गोपालक सन्तोष पाते थे।।11।।

चकोर, चक्रवाक, क्रौंच, भरद्वाज, भ्रमर, मयूरादि पक्षियों की आवाज का अनुसरण करने वाले कृष्ण शेर और सिंह की आवाज से अपने को डरा हुआ सा दिखाते थे।।12।।

कभी-कभी खेल खेलते, थके हुये से दिखाते हुये बलराम गोपालकों के जंघे के ऊपर सिर रखकर सोये हुये भाई के पाँव दबाना आदि सेवा करते हुये उसके थकान को निवारण करते हैं।।13।।

गोपालक नृत्य करने लगे,गाने लगे,कूदने लगे अथवा कुश्ती करने लगे तो राम कृष्ण उनके हाथ पकड़कर उनकी प्रशंसा करते हैं।।14।।

कभी कुश्ती से थका हुआ जैसे दिखाते हुये वृक्ष के नीचे पत्तियों को फैला कर उसके ऊपर गोपलकों के जंघों में सिर रखते हुये सो जाते थे।।15।।

पाप-रहित गोपालक भगवान के पाँव दबाकर अपने को धन्य मानते थे,कई लोग पंखे से

हवा करते थे।।16।।

महाराजा और कई गोपालक भगवान की लीलाओं को सुन्दर अपनी योग्यतानुसार अन्तःकरण में भक्ति भरे मंद स्वर में गाते थे।।17।।

श्री हरि इस प्रकार अपनी स्वरूप प्रज्ञा को अपनी ही इच्छा से लोगों से छिपाकर रखते हुये अपने चाल चलन से सामान्य गोपालक के समान बर्ताव करते हुये साक्षात रमादेवी जिन कोमल पादों की सेवा करती हैं वैसे पाँव वाले भगवान मुग्ध ग्वालों के साथ खेलते रहे।मनुष्य होकर अवतार लिए भगवान, मानव सहज नटना करते हैं।।18।।

श्री कृष्ण के अवतार के बाद यह स्थल जल, फूल-फल, लता इत्यादि उनके पाद स्पर्श से धन्य हो गये। पेड़ और वृक्ष उनके करस्पर्श से धन्यता माने।उनके कृपावलोकन से नदी पर्वत और मृग पक्षी धन्य हो गये। श्रीदेवी से भी चाहने वाले उनके वक्षस्थल के स्पर्श से गोपिकायें धन्य हो गयीं।।19।।

कई भागवतों मे इस श्लोक मे आने वाले **तत्पादस्पृशः** इसको **त्वत् पादस्पृशः** ऐसे बदल करते हुये इस अध्याय का आठवाँ श्लोक माने हैं।तब यह बलराम की स्तुति हो सकती है, शुकवाक्य नही बनेगा।तब बलराम के वक्षस्थल का आलिंगन लक्ष्मी कैसे चाहती हैं ? इसके लिए यह सही प्रयोग नही होता। चौथे श्लोक में **अग्रजमादि पूरुषः** इसके बदले में अग्रजादिपुरुषं ऐसे करके बदल किये हैं। तब ये सारी बातें बलराम के लिए होकर अर्थ सही हो जाता है। वस्तुतः यहाँ **तत्पाद स्पर्श** यह ठीक प्रयोग है और इसे शुकदेव जी का वाक्य माने तो कोई समस्या नही आती।

श्री दाम नाम का राम कृष्ण का मित्र गोपाल सुबल,स्तोक कृष्ण इत्यादि गोपालकों के साथ कहते हैं।।20।।

हे महाबाहु,बलशाली बलराम,दुष्टनाशक श्री कृष्ण, यहाँ नजदीक में तालवृक्षों से भरा हुआ एक सुन्दर वन है।।21।।

वहाँ वृक्ष सारे फल से भरे हैं।बहुत फल नीचे गिरे भी हैं।हम उनको उठाने गये तो वहाँ एक दुरात्मा धेनुकासुर नाम का दैत्य हमको लेने नही देता।।22।।

हे राम कृष्ण वह असुर गधा का रूप धारण कर और अनेक बलिष्ठ गधों के साथ, आने जाने में हमे कष्ट देता है।यह धेनुकासुर गधे का रूप धारण किया है इसके लिए उसको धरासुर भी बोलते हैं।।23।।

हे शत्रु नाशक! नरभक्षक उस राक्षस के डर से मानव, पशु-पक्षी कोई वहाँ के फल को खाने का धैर्य नही करता। वृक्षों के ऊपर पक्षी भी वहाँ वास नही करते।।24।।

वहाँ हमारे द्वारा कभी न देखा हुआ, न खाया हुआ सुगंध-भरित और रुचिकर फल हैं।

उनकी सुगंध यहाँ तक आकर हमारे नाक को लगती है।।25।।

उनके सुगंध से हम आकर्षित हैं। वे फल पूर्ण रूप से पक चुके हैं। आप उन फलों को हमें दीजिए। हमें उनको खाने की लालसा बढ़ रही है। आप हमारी बात मानते हैं तो हम सभी वहाँ चलेंगे।।26।।

मित्रों की बातों को सुनकर उनका हित करने वाले श्री कृष्ण धेनुक को तृण समान मानते हुये हँसते हुये समर्थ राम कृष्ण गोपालकों के साथ उस ताल वन में प्रवेश किये।।27।।

वन में प्रवेश करते ही बलराम ने अपने बाहुबल से हाथी के समान वृक्षों को हिलाया।इससे वृक्ष में से पके फल जमीन पर गिर गये।।28।।

फल गिरने के शब्द को सुनते हुये गधा के रूप का असुर वृक्ष के साथ जमीन को भी हिलाते हुये दौड़कर आया।।29।।

बलिष्ठ राक्षस बलराम के पास आकर पीछे मुड़कर अपने पीछे के पाँव से बलराम की छाती पर लात मार कर गधे के समान चिल्लाता हुआ चक्कर काटने लगा।।30।।

हे राजा, धेनुकासुर बलराम को और एक बार लात मारने के लिए तैयार होकर पीछे मुड़कर क्रोध से पीछे के अपने दोनों पाँवों को उछाला।।31।।

उसी क्षण बलराम अपने एक ही हाथ में उन दोनों पाँवों को पकड़ते हुये हवा में उसको घुमाया।इसी से वह राक्षस मर गया। बलराम ने उसके शरीर को वृक्ष के ऊपर फेंक दिया।।32।।

वह वृक्ष विशाल और ऊँचा था। धेनुक के शरीर के आघात से वह वृक्ष गिर गया।गिरते समय वह अपने बगल के वृक्ष के साथ हिला,ऐसे एक के ऊपर एक बहुत से वृक्ष हिल गये।।33।।

बलराम द्वारा बिना प्रयास से फेंके हुए धेनुक के शरीर के आघात से मार पाकर उस वन के बहुत से तालवृक्ष आंधी से जैसे काँप गये।इससे गोपालकों को खाने के लिए बहुत से फल मिले।।34।।

जगदीश्वर भगवान अनंत के बारे में इसमें आश्चर्य की बात कोई नही है। धागे से सिले हुये कपड़े धागे के आधार से एक से एक जैसे बन्धे रहते हैं वैसे ही सारा विश्व अनंत फण वाले आदिशेष में संलग्न हुये हैं।।35।।

बाद में अपने बन्धु धेनुक के मरने से उनके साथी सभी गधे एक साथ बुरी आवाज करते हुये कृष्ण राम को लात मारने आये।।36।।

हे महाराजा! इनकै आक्रमण करते ही रामकृष्ण उनके पीछे के पाँव पकड़कर जोर से वृक्ष के ऊपर उन्हें फेंकते रहे।।37।।

इससे वह मैदान फल के ढेर, मरे हुये दैत्यों के शव और टुकड़े हुये वृक्ष की टहनियों से

बादलों से घिरे हुए आकाश के समान दीखता था।।38।।

ताड़ के फल काले होते हैं। दैत्यों के शव लालमय थे, वृक्षों की टहनियाँ सफेद रंग की थीं। इन तीनों रंगों से भरा हुआ मैदान मेघों से घिरा हुआ आकाश के समान लगता था।

कृष्ण तथा राम इन दोनों के इस बड़े असुर वध के कार्य को देखते हुये देवताओं ने उन पर पुष्प वृष्टि किया, मंगल वाद्य बजायें, स्तोत्र किये।।39।।

धेनुकासुर और उसका परिवार गणेश के वर से अवध्य बने थे।

धेनुकासुर के मरने के बाद उस जंगल में रहने वाले लोग भय रहित होकर ताड़ के फलों को खाने लगे। इधर गायें अपने मन से चरती रहीं।।40।।

अपनी लीलाओं से, उनके श्रवण कीर्तन से ही पुण्य देने वाले कमल दल के समान बड़े आँख वाले श्री कृष्ण गोप-बालकों की स्तुति को सुनते हुये गोकुल को वापस चले।।41।।

उनके घुंघराले बाल गो रज से आवृत हो गये हैं। उनमें एक मोर के पूँछ को बाँध रखा है, जंगलों के फूलों से सिर अलंकृत है। उनकी तिरछी नजर, मंदहास सबको मोहित करती है। बंशी बजाते बाँके बिहारी विजय यात्रा कर रहे हैं। गोपालक उनके गुणगान कर रहे हैं। गोपिकास्त्रियाँ पलक न झपकाते हुये कृष्ण को देख रही हैं। वे सारे मिलकर कृष्ण का स्वागत किये।।42।।

गोपांगनायें अपनी आँखों से कमल के मधु को भौंरे जैसे पीते हैं वैसे पी लिये। दिनभर उसको न देखने के विरह से वे तप्त हो गये थे। वह ताप दर्शन मात्र से चला गया। लज्जा भरे मुँह से, तिरछी नजर से श्री कृष्ण का सत्कार किये। कृष्ण उस सत्कार को स्वीकारते हुये गोकुल में प्रवेश किये।।43।।

यशोदा तथा रोहिणी पुत्र वात्सल्य से भरकर श्री राम और कृष्ण को कालोचित इष्टार्थ वस्तुओं को देकर उपचार किये।।44।।

अभ्यंजन कराते हुये हाथ पाँव को तेल से मालिश करते हुये गरम पानी से नहला कर उनके मार्गायास का निवारण किये। अच्छे वस्त्रों को पहनाये। मालागन्धादि से अलंकार किये।।45।।

राम कृष्ण अपनी माँ द्वारा दिए हुए मिष्ठान्न का भोजन कर मृदुल शैया में सुख से सो गये।।46।।

इस तरह समय बीतता रहा। एक बार बलराम को छोड़कर भगवान श्री कृष्ण अकेले यमुना तट पर गये।।47।।

कालीय मर्दन करने चले हैं कृष्ण। पानी के गर्त में कूदने का समाचार सुनकर यशोदा नन्दगोप घबराते हैं।

उस समय उनको समाधान करने के लिए बलराम वहाँ रहे, इस उद्देश्य से श्री कृष्ण भाई को छोड़कर अकेले गये। बलराम शेषावतार हैं, उसके सामने ही कालीयसर्प का दमन करना अच्छा नही लगता, यह एक संकोच भी कृष्ण के मन में था। इसके लिए बलराम को छोड़कर अकेले जा रहे हैं।

गर्मी के दिन थे। दोपहर के धूप में प्यासी गायें और गोपाल यमुना का पानी पिये। वह पानी विष से कलुषित हुआ था।।48।।

गोपालक इस विषय को नही जानते थे।विषाक्त जल को पीकर वे सारे मरे जैसे जमीन पर गिर गये।।49।।

योगेश्वरों के स्वामी भगवान श्री कृष्ण अपने को रक्षक मानकर उन्हें जो भजते हैं, उनकी रक्षा करने वाले हैं, ऐसे श्री कृष्ण भगवान इन गोपालकों को केवल अपने अमृत बहाने वाले दृष्टि से उन गोपालकों को पुनर्जीवित किये।।50।।

वे जागृत होकर जल को छोड़कर ऊपर आये।परस्पर देखते हुये जीवित हैं इसका अनुभव करने लगे,आश्चर्य से स्तंभित रहे।।51।।

हे राजा! स्वयं विष मिश्रित जलपान करके मरी हुयी स्थिति में थे। उससे अपने को पुनर्जीवित किये, गायों को पुन जगाये, यह गोविन्द का ही अनुग्रह है, ऐसा आपस में वे बातें करने लगे।।52।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौदहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - सर्व शक्त भगवान श्री कृष्ण यमुना का जल कृष्ण सर्प के कारण प्रदूषित हुआ हैं, इसे देख कर उसको स्वच्छ करने हेतु वहाँ बैठे हुए कृष्ण नाग को और दूसरे स्थान पर भेज दिए।।1।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे मुनि! भगवान कृष्ण यमुना के अगाध जल में छिपे हुए काल सर्प को कैसे दमन किए? वह सर्प वहाँ बहुत युगों से कैसे वास किया था इसके बारे में कृपया मुझे बताइए।।2।।

हे मुने पूर्णानन्द और स्वतंत्र भगवान गोपालक बनकर अदभुत लीलाएँ की हैं। उस लीलामृत को सुनते हुए कोई उसको बस पर्याप्त है ऐसे बोल सकता हैं?।।3।।

श्री शुकदेव कहते हैं - यमुना नदी में एक भवर में कालिया नाम का कृष्ण सर्प रहता था। उस भवर को उसी के नाम से पुकारते थे। विषाग्नि के कारण वहाँ का जल उबलता था। उसके ऊपर से उड़ने वाले पक्षी भी मर कर उसी में गिर जाते थे।।4।।

विष जल के ऊपर से आने वाली हवाँ जो विष को लाती थी उससे नदी के तट पर रहने वाले स्थावर जंगम सारी वस्तुएँ मर जाती थीं।।5।।

ब्रह्म के वर बल से अवध्य उस कालियाँ नाग के विष को गरुड़ को छोड़ कर अन्य कोई टाल नही सकता था।

दुष्टों के दमन करने के लिए अवतार लिए हुए भगवान श्री कृष्ण अति तीव्र विष से नदी का जल प्रदूषित हुआ है देखकर उसको शुद्ध करने के लिए वे कमर कस लिए। तट पर रहने वाले एक कदंब वृक्ष के ऊपर चढ़ गये। अपने दोनों हाथों से दोनों भुजाओं के ऊपर मारते हुए, आवाज करते हुए ऊँचे वाले वृक्ष से भवर के अन्दर कूद गये।।6।।

गरुण नागमाता कद्रूदेवी को अमृत लाते समय रास्ते में भूख के कारण मछली को खाने के लिए अमृत कलश को इस कदंब वृक्ष के ऊपर रखकर भोजन और विश्रान्ति पाए थे इस प्रकार गरुड़ बैठा हुआ और अमृत कलश रखा हुआ यह एक मात्र वृक्ष विष की बाधा को सहन करते हुए वहाँ खड़ा था। यह मत्स्य पुराण का कथन हैं। हरिवंश पुराण

के अनुसार कालिया के वहाँ विहार के लिए उसके मंत्री ने इस वृक्ष को विष बाधा से रक्षित किया था।

पुरुषोत्तम भगवान के जल में कूदने से उस भवर में रहने वाली जल-राशि में उथल पुथल हो गया। इससे क्रोधित होकर काल सर्पों ने विष का फूफ्कार ज्यादा किया। इस ज्यादा हुए विष से और तीव्र तरंगों से वह भवर और भयानक बन गया। पानी ऊपर उठकर तट को पार करते हुए सौ धनुष प्रमाण पसर गया। अनन्त बल वाले भगवान के लिए यह क्या बड़ा विषय है? ।।7।।

हे राजा! बड़े हाथी से भी ज्यादा बल वाले भगवान श्री कृष्ण भवर में खेलते हुए अपने दोनों हाथों से पानी में आवाज करते हुए आनन्द से तैरने लगे, तब कालिया अपने वास स्थान को खराब करने वाले इस आवाज को न सहते हुए अपने सैन्य सहित श्री कृष्ण के पास आया।।8।।

श्री कृष्ण का अत्यन्त कोमल मेघश्यामल वर्ण वाला शरीर, देखने वाले में उन्हे बार बार देखने की इच्छा को उत्पन्न करती थी। वह शरीर श्री वत्सलांछन से और पहने हुए पीताम्बर से शोभायमान था। उनको हसंमुख तथा कमल के समान रंग के पाद वाले भगवान बाल कृष्ण किसी के भय के बिना जल में खेल रहे हैं। इसको देख कर कालिया का क्रोध बढ़ गया। वह क्रोध से श्री कृष्ण के मर्म स्थान को काटते हुए उनके शरीर को अपने पूछ से लपेट लिया।।9।।

श्री हरि को लोग देखते थे किन्तु उनके इस कार्य को कोई नही देख पाया। कालिया श्री कृष्ण को अपनी पूछ से लपेट रहा है। इसको तो लोग देख रहे हैं। किन्तु श्री कृष्ण उसके लिए क्या कर रहे हैं इसको कोई नही देख पाया। इसको न समझते हुए कृष्ण-प्रियगोपालक दु:खित हुए। वे अपना शरीर, बन्धु-बान्धव, धन-सम्पदा, पत्नी-पुत्रों को श्री कृष्ण को अर्पित किए हैं। श्री कृष्ण की इस आपदा को देख कर उन्हे मन में दर्द हो रहा है, आँखों से आँसू बह रहा है। किन्तु क्या करना यह न समझते हुए दिग्मूढ होकर मूर्छित होकर गिर गये। गाय, बैल, बछड़े भी रोते हुए भय के मारे चिल्लाते हुए इधर उधर दौड़ने लगे।।10,11।।

भूमि, अन्तरिक्ष, शरीर में, गोकुल में अनर्थ सूचक उत्पात इत्यादि दिखने लगे।।12।।

नन्दगोप इत्यादि गोपालक इन उत्पातों को देखे। बलराम को छोड़ कर श्री कृष्ण गाय चराने अकेले गये हैं और यह उत्पात हो रहे हैं। इससे गोपालक समझ गये कि श्री कृष्ण को कोई आपत्ति आ गयी है। वे श्री कृष्ण में अपने मन रखे हुए हैं। उनके सारे इन्द्रिय व्यपार उन्ही के साथ जुड़े हुए हैं। किन्तु वे उनके सामर्थ्य को न जानते हुए मुग्ध पशु के समान व्यवहार करते थे। आबाल वृद्ध स्त्री पुरुष सारे दु:ख शोक भय से आवृत्त होकर दीन भाव से श्री कृष्ण को देखने की इच्छा से गोकुल के बाहर भाग आए।।13,14,15।।

इसको देख कर मधुकुलोद्भव बलराम हँसते हुए चुप रहे। अपने कान्हा की ताकत को वे ठीक तरह से जानते थे।।16।।

सारे गोपालक अपने प्यार भरे नजरों से श्री कृष्ण के पद चिन्ह के पद्म, ध्वज, वज्र, अंकुशादि चिह्नों को पहचानते हुए श्री कृष्ण से गए हुए रास्ता को पकड़ कर जमुना तट पर आए।।।7।।

हे राजा! वे गायों के पद चिह्नों के और गोपालको के पाँव के चिन्हो के बीच में भगवान के लक्षण युक्त पद चिह्नों को देखते हुए तीव्र गति से चल कर जमुना तट पर पहुँचे।।।8।।

भवर के बीच में कालिया नाग से घिरा हुआ न हिलने वाले भगवान श्री कृष्ण को दूर से ही देखे। तट पर दिग्मूढ होकर खड़े हुए गोपालकों को देखे। चारों ओर चिल्लाते हुए दौड़ते रहे गाय को देखे। इसको देख कर दु:खित होकर बेहोश होकर गिर पड़े।।।9।।

गोपिकाओं को भगवान श्री कृष्ण में मन लगा था। वे अपने प्यार को अपने आँखो से व्यक्त करते हुए उन्ही के स्मरण करने वाले अब अपना प्रिय कृष्ण सर्प से पकड़ा हुआ देख कर प्रियतम् के बिना यह तीनों लोक उनको शून्य जैसा अनुभव हुआ। वे दु:ख से तपने लगे।।20।।

श्री कृष्ण की माता यशोदा अपने पुत्र का अनुशरण करते हुए भवर में कूदने का प्रयास करे तो उसी के समान दु:खित अन्य गोपिका स्त्रियाँ ने उनको पकड़ कर रोने लगे। वे श्री कृष्ण के प्रियकर लीलाओं को अपने में कहते हुए खड़े थे। श्री कृष्ण के मुख को अपलक नेत्र से देखते हुए भय के मारे निश्चेष्टित होकर खड़े हो गये।।21।।

श्री कृष्ण को बहिर्प्राण मानने वाले नन्दगोपादि यादवगण स्वयं भवर में कूदने के लिए तैयार हो गये। उसको देख कर भगवान बलराम उनको रोक दिए। केवल वे ही श्री कृष्ण के सामर्थ को जानते थे।।22।।

इस प्रकार केवल अपने आश्रय में रहने वाले गोकुल के इस दुरवस्था को और स्त्री बाल पुरुषादि लोग अपने के लिए दु:ख करते हैं यह देख कर भगवान श्री कृष्ण मनुष्य स्वभाव को अनुकरण करते हुए एक मुहूर्त पर्यन्त चुप रहे। बाद में तीव्रता से शर्प बन्धन से ऊपर उठकर आए।।23।।

इस सन्दर्भ में बलराम कालिया के ऊपर के क्रोध से श्री कृष्ण को कहते हैं कि उस कालिया का दमन करो यहाँ के लोग तुमको सामान्य मनुष्य समझते हुए तुम्हारे क्षेम के बारे में चिन्तित हैं। इसको सुनकर श्री कृष्ण अपने को कालिया से छुड़ाकर ऊपर आए। यह हरिवंश की बात है।

श्री कृष्ण अपने शरीर को बढ़ाए उससे उनके शरीर को बाँध कर रखा हुआ कालिया के शरीर में दर्द होने लगा। श्री कृष्ण के ऊपर उसका पकड़ खत्म होने लगा। वह श्री कृष्ण को छोड़कर अपने फणों का विस्तार करते हुए कोध से फुफकारते हुए नाको से विष की ज्वाला पसारते हुए मुँह से आग उगलने लगा। आँखों को न हिलाते हुए भगवान श्री कृष्ण को घूर कर देखने लगा।।24।।

अपने कटे हुए दो दो जीभों से अपने मुँह से चाटते हुए विषाग्नि से भरी हुयी आँखो से घूरने वाले कालिया को पकड़ने के लिए भगवान श्री कृष्ण गरुड़ के समान कालिया के चारों ओर चक्कर काटे। श्री कृष्ण खेलते रहे। कालिया डर के मारे उन्ही की ओर देखते हुए श्री कृष्ण के पीछे - पीछे अपना नजर दौड़ाया।।25।।

श्री कृष्ण के पीछे दौड़ते हुए नरम हुआ कालिया का लम्बे शरीर को आदि पुरुष भगवान श्री कृष्ण अपने हाथ से पकड़ कर रस्सी के समान गोलियाए। उसके विशाल फणों के ऊपर चढ़ कर खड़े हो गये। फणों में रहने वाले रत्न के सम्पर्क के कारण श्री कृष्ण के लाल रंग वाले पाद और ज्यादा लालीमय हो गये। नाट्य सहित सारे ललित कलाओं के स्वामी जगदादि गुरु श्री कृष्ण कालिया के फणों के ऊपर नृत्य करने लगे।।26।।

कालिया भगवान का भक्त है। अज्ञान से यशोदा जैसे श्री कृष्ण को रस्सी से बाँधने का प्रयास की वैसे ही कालिया उनको बाँधने का प्रयत्न किया, काट कर विष से मारने का प्रयास किया। भगवान भक्त के इन सारे अपराधों को क्षमा कर दिए।

श्री कृष्ण के इस नाट्य को देखते हुए उनके भक्त गन्धर्व, सिद्ध, देवता, चारण, देवांगनाएँ आनन्द से मृदंग, पडव, आनक इत्यादि वाद्यों को बजाते हुए गीत गाते हुए पुष्प वृष्टि करते भगवान श्री कृष्ण के पास आए।।27।।

ब्रह्मा जी मृदंग का वादन किए। हनुमान जी गाना गाए, शिव जी ताल बजाए यह रुक्मिणीश विजय का वाक्य है। आधुनिक विमर्शक इसकी हँसी उड़ाते हैं कि भारत में सर्प के फ़णों का प्रस्ताव नही है, विष्णु पुराण में तीन फ़णों का प्रस्ताव, हरिवंश में पाँच और भागवत में हजार फ़ण सृष्ट हुए। महाभारत के सभा पर्व के दाक्षिणात्य पाठ के 38 अध्याय में कालिया मर्दन का इतिहास इस प्रकार है।

ह्रदे नीपवने तत्र क्रीड़ीतम् नाग मूर्धनि। कालियं शासयित्वा विजहार ततः कृष्णः।।

महाभारत और विष्णु पुराणों में फ़णों की संख्या का प्रस्ताव नही है, हरिवंश में पाँच फ़णों का प्रस्ताव आता हैं, भागवत में फ़णों की संख्या का प्रस्ताव नही है। श्रीधरीय पाठ में ।0। फ़णों का प्रस्ताव है। हरिवंश के विरोध के कारण यह ग्राह्य नही है। पाँच फ़ण मानना ही सही है।

श्री कृष्ण कालिया के पूछ को अपने हाथ से ऊपर उठाए। (वह पूछ कुछ अपराध नही किया है।) विष से काला रंग वाला कालिया के काला सिर के ऊपर भगवान अपने पादों के आघात से मर्दन किए। जिस फ़ण को कालिया ऊपर उठाता था भगवान उसको अपने पदाघात से नीचा करते थे। भगवान दुष्टो को शिक्षा देने के लिए अवतार लिए हैं। विष उगलने का अपराध किया हुआ मुख को भगवान दण्ड दिए और कुछ अपराध न किया हुआ पूछ को ऊपर उठाए। भगवान के पदाघात से कालिया का बल क्षीण हो गया। वह मुँह

से रक्त वमन करते हुए मूर्छित हो गया।।28।।

श्री कृष्ण वामनावतार में आकाश में रहने वाले चन्द्र को लात मारने के लिए पाँव पसारे तो वह पाँव त्रिविक्रम रूप पाकर गंगा जी से चुम्बित हुआ। शिशु होकर सोते हुए अपने छोटी सी पाव से शकटासुर का नाश किए। कालिया नाग के फड़ के ऊपर नाच करने वाले भगवान उसके विष का नाश किए। किन्तु उनके लिए न सर्प का भय है न विष का भय है। कमल के समान मुख वाले विशाल नेत्र वाले भगवान अत्यन्त सुन्दर रूप से सुशोभित हैं। जगद्गुरु मध्वाचार्य अपने कन्दुक स्तुति नाम के ग्रन्थ में वर्णन किए हैं।

कालिया थोड़ा सा सुधारने के बाद अपने क्रोध को न छोड़ते हुए आँखो से विष उगलने लगा। रोष से जोर से फुफकारा। कालिया जिस फण को काटने के लिए उठाता था उसी के ऊपर पाँव से दबाते हुए उसको झुका कर भगवान श्री कृष्ण उसके ऊपर नृत्य किए। तब देवताओं ने पुराण पुरुष भगवान श्री कृष्ण के ऊपर पुष्प वृष्टि की।।29।।

हे राजा अद्भुत इस सुन्दर तांडव नृत्य से कालिया का छतरी के समान फण टूट गये, शरीर जर्जरित हो गया। सारे मुखों से लहू बहने लगा। तब कालिया को याद आया ये ही इस चराचर प्रपंच को पिता रूप पुराण पुरुष श्रीमननारायण ही श्री कृष्ण के रूप में अवतार लिए हैं। तुरन्त वह भगवान की शरण में आया।।30।।

भगवान कालिया के फणों के ऊपर नृत्य किए इसका कारण उसमें जो विष था उस विष के निवारण के लिए। गरुड़ विष परिहार करता है। गरुड़मंत्र से ही विष परिहार होता है। यह गरुड़ भगवान के दोनों पावों को अपने हाथ में पकड़ कर रखता हैं। सदाकाल गरुडज्ञ के सम्पर्क से विष्णु पाद भी विष हर बन गये हैं। इसी कारण भगवान नरतन कर के कालिया के विष का हरण किए।

अपने पेट में सारे ब्रह्माण्ड को रखे हुए श्री कृष्ण के बड़े बोझ के कारण कालिया का फण बन्द किया हुआ छतरी के समान मुड़ गये। श्री कृष्ण के एड़ी के आघात से बहुत पीड़ित हुए। इसको देख कर कालिया की पत्नियाँ आर्त होकर श्री कृष्ण के पास दौड़ कर आयीं। आते समय उनके वस्त्रालंकार, पेशालंकार अस्त व्यस्त हुए।।31।।

उन साध्वियों ने भगवान को चढ़ाने के लिए भेट की वस्तुओं को लाकर खिन्न मन से उनको जमीन पर रखते हुए जमीन पर झुक कर प्रणाम किए। जगत्पति नारायण हमारे पति का विमोचन करे यह प्रार्थना करते हुए उन्ही के शरण में आए।।32।।

भगवान अपने भक्त को शिक्षा करे तो भी वह वर के समान होता है। कालिया नाग अपराध किया है। भगवान श्री कृष्ण उसके फणों पर मार-मार कर उसको दण्ड दिए हैं। वह और पुनः फणों को ऊपर न उठाए ऐसे मारे हैं। किन्तु भगवान के पाद के चिन्ह के कारण कालिया नाग को गरुड़ का भय शास्वत रूप से चला गया।

नागपत्नी कहती हैं - महाप्रभु! हमारे पति अपराध किए हैं। आप उनको दण्ड दे रहे हैं यह उचित ही है। आप दुष्ट दमन के लिए ही अवतार लिए हैं। शत्रु हो या मित्र हो, उसके अपराध के अनुसार, अपराध के फल को अनुग्रह रूप दण्ड के रूप में आप देते रहते हैं।।33।।

आप द्वारा दिया हुआ यह दण्ड हमको अनुग्रह ही बन गया है। सज्जन लोग अन्य कारणो से दौर्जन्य किए तो आप उनको जो दण्ड देते हैं उससे उनके पाप का परिमार्जन होता है। पाप के कारण ही हमारे पति को यह सर्प का जन्म आया है न? आप द्वारा किए हुए क्रोध के नाटक को हम अनुग्रह मानते हैं।।34।।

भगवान हमारी गलतियों के कारण हमें जो शिक्षा देते हैं उसको अनुग्रह मानकर स्वीकार किए तो हमारा कल्याण होता है। बदले में उसको अन्याय मानते हुए विरोध किए तो उससे अन्धंतमस होता है। यह महाकूर्म पुराण का वाक्य हैं।

सारे जीवों को जीवन देने वाले आप हमें यह अनुग्रह किए हैं, इसका अर्थ यही होता है कि हमारे पति पूर्व जन्म में आपके प्यार को पाने के लिए बड़ी तपस्या किए होंगे अथवा सारे जीवियों के ऊपर अनुकम्पा से बहुत दानादि सत्कर्म किया होगा। अब हमारे पति अहंकार छोड़कर आपके चरण में विनीत होकर खड़े हैं।।35।।

हे देवेश! आपके पाद धुलि का स्पर्श करने का भाग्य हमारे पति को मिला है। वह किस पुण्य का प्रभाव है यह नही जानती इस योग्यता को पाकर आपके साथ सदाकाल रहते हुए नित्यावियोगिनी लक्ष्मी देवी **नूनं तपो यस्य** इत्यादि आलोचना रूप तप की। ब्रह्मादि देवताओं को पाने के लिए अन्य स्त्रियों आतुर रहती हैं। महालक्ष्मी उन सबको न चाहते हुए नित्य नित्य आपके साथ ही रहने का व्रत धारण की हैं।।36।।

आपके पादधूली का आश्रय पाए हुए भक्त सार्वभौम पद को नही चाहते, उनको न स्वर्ग चाहिए न ब्रह्मपद। उनको पाताल के स्वामित्व की भी आकांक्षा नही है, वे योग-सिद्धि को नही चाहते इतना ही नही वे मुक्ति की इच्छा को भी नही रखते।।37।।

मुक्ति की चाह न रखने का भाव इस प्रकार है। अल्पाधिकारी लिंग भग के बाद पुनर्जन्म न होने के कारण मुक्ति को पाते हैं। उत्तमाधिकारी मोक्ष में भगवान का अंग स्पर्श सुख को भी पाते हैं। वे इस संसार में रहते हुए भगवान की पाद धूली का महा संग मिलने के कारण अल्पाधिकारी के मोक्ष सुख को नही चाहते हैं। यह पद्म पुराण का वाक्य है।

हे लक्ष्मीपति, जगन्नाथ, जनन-मरण के चक्र के चक्कर में फिरने वाला जीव आपके अपरोक्ष ज्ञान को चाहता है। अन्य लोगों को न मिलने वाले इस दुर्लभ अपरोक्ष ज्ञान को तमो गुण से जन्म लिए हुए असक्त और क्रोध के वशीभूत हमारे पति आपकी कृपा से पाए हैं।।38।।

हे भगवान! आप सारे जीवियों में नियामक होकर वास करते हैं, सर्वदा सर्वत्र रहते हैं, सबसे विलक्षण और सर्वोत्तम हैं। ऐसे परम पुरुष महात्मा भगवान श्री हरि आपको नमस्कार।।39।।

यहाँ **भूताय नमः** इसका अर्थ भगवान को नमस्कार यह होता है।

सामान्य ज्ञान और देवताओं में दिखने वाला विशेषज्ञान की आप निधि हैं। आप गुण पूर्ण अनन्त शक्तिशाली, गुणत्रय रहित, निर्विकार और अप्राकृत हैं। ऐसे आपको हमारा नमस्कार।।40।।

यहाँ **नमस्तेऽप्राकृताय** इसका पद विभाग करते समय नमस्ते अप्राकृताय ऐसा करना सही है।

हे भगवान! आप काल नियामक हैं, कालाधार हैं। आप काल के सूक्ष्मताओं को प्रत्यक्ष देखने वाले हैं। विश्वाधीन, विश्वज्ञ, विश्वकर्ता, विश्व का मूल कारण आप हैं। आप हमारा प्रणाम स्वीकार करें।।41।।

कालनाभ का अर्थ कालाश्रय होता है। भगवान इस जगत का हेतु इसका अर्थ जगत का मूल कारण होना है। कर्तु का अर्थ प्रत्येक वस्तु को निर्माण करते समय उनके कर्ताओं के अन्दर रहते हुए उनको प्रेरणा देने वाला कर्ता भगवान हैं। इन कर्तु और हेतु शब्द का अर्थ अग्नि पुराण में बताया है।

जीव पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चप्राण, मन बुद्धि अहंकार इनका आश्रय है। आप ऐसे जीवों को आश्रय देते हैं किन्तु तीनों गुणों से रहित हैं। अपनी इच्छा से जीव के बिम्ब रूप हैं यह निगूढ़ अर्थ है, अपरोक्ष देने वाले हैं। आपको नमस्कार।।42।।

बुद्धि यह अन्तः करण का प्रभेद है। अन्तः करण मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, चेतना इस प्रकार पाँच विध हैं। कार्याकार्य विवेचन बुद्धि है, अभिमान, मैं किया हूँ, मैंने ही किया हैं यह अहंकार हैं। स्मरण देने वाला चित्त है। बहु स्मरण शक्ति चेतना है। स्थूल मन का अभिमानी इन्द्र हैं, सूक्ष्म मन का अभिमानी गरुड़ शेष रुद्र हैं। ज्ञान के लिए सूक्ष्म मन ही कारण है। ध्यान के करने वाले मन का अभिमानी गरुड हैं। देव पूजादि सत्कार्य के अभिमानी, प्रेरक रुद्र हैं, मनन करने के लिए नियामक रुद्र हैं। वायु देव इन सबका नियामक हैं। चित्त के सात्विक भाग के अभिमानी ब्रह्मा है, वासुदेव सर्व नियामक हैं।

नाशरहित, अव्यक्त, निर्विकार, सर्वज्ञ, वेदों के मूल, वाच्य वाचक बन्द कर दोनों को शक्ति देने वाले आपको नमस्कार।।43।।

आप प्रत्यक्षादि तीनों प्रमाणों के मूल आधार हैं। सर्वज्ञ, शास्त्रवेद्य, प्रवृत्त - निवृत्त दोनों धर्मो को फल दने वाले, विधिनिषेध रूप समस्त शास्त्रों का नियामक भगवान आपको नमस्कार।।44।।

भगवान आप सारे लोकों के नियामक, आनन्द रूप, वसुदेव पुत्र श्री कृष्ण, कान्तियुक्त, किसी से निरोध न करने वाला, यादवों के स्वामी, आपको नमस्कार।।45।।

यहाँ **रामाय** शब्द से बलराम को ग्रहण नही करना। रमते इति रामः = आनन्द रूप।

अपने गुणों को स्वयं अपने भक्तों को दिखाने वाले, त्रिगुणात्मक प्रकृति में रहते हुए उसके परिणाम के अधीन न होते हुए प्रकाश रूप रहने वाले, आनन्द आदि गुणों के लक्षण से अपने सर्वोत्तमत्व को दर्शाने वाले, जीवों के इन्द्रिय में रहते हुए भी विषयानुभव को न पाने वाले, स्वयं प्रकाश वाले भगवान आपको नमस्कार।।46।।

गुणप्रदीप का अर्थ आनन्दादि गुणों को सज्जनों के सामने व्यक्त करने वाला होता है। **गुणात्मस्थोदय** इसका अर्थ गुणात्मक प्रकृति में उदय रुप प्रकाशमान होता है।

आपकी लीलाओं को सम्पूर्ण रीति से कोई वर्णन नही कर सकता। किन्तु आपके अनुग्रह से भक्त लोग अपनी योग्यतानुसार आपके स्वरूप ज्ञान का वर्णन कर सकते हैं। आप इन्द्रिय नियामक हैं, आप सारे वेदों का दृष्टार ऋषि हैं। लोक शिक्षण के लिए आप मनन करते रहते हैं। आपको हमारा नमन है।।47।।

कार्य-कारण वस्तुओं की स्थिति को केवल आप जानते हैं। आप सर्वाधिपति, जीव से विलक्षण, जीव का नियामक, जीव को देखने वाला और समझने वाला, जीव को जन्मादि अनेक रूप देने वाला आपको हमारा नमन।।48।।

यहाँ **अविश्व** का अर्थ जीव विलक्षण भगवान होता है। भगवान का जीव के शरीरों में प्रवेश करने से जीव विश्व बन जाता है। यह विश्व विष्णु के अधीन होता है। इसके लिए विष्णु भी विश्व कहलाते हैं। विश्व को जन्म देने के कारण विष्णु विश्व हेतु कहलाते हैं। यह मत्स्य पुराण का वाक्य है।

हे सर्वशक्त, क्लेशरहित, अनादि स्वरूप भूत दुर्गा रूप वायु रूप शक्तियों को धारण करने वाले इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति संहार कार्यो को त्रिगुणों से चलाने वाले आप हैं। आपकी लीला अमोघ हैं। आप हमारे ऊपर कारुण्य रखते हुए हमारे सर्प स्वभाव से हमारा उद्धार करें।।49।।

तीनों लोकों में रहने वाले देव मानव दानव आपके प्रतिमा रूप बनकर सन्निधान पात्र बने हैं। आप मुख्य प्राण की सहायता से उनसे कर्म कराने के लिए उनके शरीरो में रहते हैं। सज्जन रक्षक आपको देवताओं से ज्यादा प्यार हैं। देह स्वभाव वाले हमारे पति देव का आपही संरक्षण करे।।50।।

भगवान श्री हरि सज्जनों से ज्यादा प्यार रखते हैं। सामान्य जनों से, अन्यों से, उनका प्यार है ही। लय काल में दुर्जन भी भगवान को थोड़ा सा प्रिय होते हैं। इस प्रकार षाड़गुण्य ग्रन्थ में लिखा हैं। स्वयोग्य सुख की पराकाष्ठा को देवता लोग मुक्ति में पाते हैं। इसके लिए उनको शान्त कहते हैं। मध्यम लोग इस संसार में दुःखमिश्रित सुख को पाने के कारण अशान्त माने जाते हैं। तामस लोग मोह के कारण दुःखी होते हैं। इसके लिए विमूढ़ कहलाते हैं। सारे जीवों से मुख्य प्राण की वजह से कर्म कराने के लिए श्री हरि उनके शरीर में रहते हुए प्राण का भी प्राण कहलाते हैं। यह प्रकाश संहिता का वाक्य है।

हे देव देवेश:, राजा अपनी प्रजा लोग जो अपराध करते हैं उसको सहन करते हुए उन्हे क्षमा करते हैं। आपको परम पुरुष न समझते हुए मूढ़ता से हमारे पति द्वारा किए हुए अपराध को आप एक बार क्षमा कर दीजिए।।51।।

हे भगवान! आप कृपा करें। आपके वजन से नागराज मर रहा है। सज्जन लोग विशेष कर स्त्रियों में अन्त: करण दिखाते हैं। हमारे पति हमारे प्राण हैं। हम याचना करते हैं। आप हमें पति-भिक्षा दें।।52।।

हम आपकी चरण दासी हैं। मेरे पति क्या करें इसके बारे में आप आज्ञा दें। आपकी आज्ञा को पूर्ण रूप से हमारे पति मानेगें, और सारे अनर्थों से छुटकारा पायेंगे।।53।।

श्री शुकदेव कहते हैं- इस प्रकार कालिया की पत्नियाँ श्री हरि की स्तुति कीं। तब श्री हरि अपने पदा-घातों से त्रस्त हुए कालिया को छोड़कर यमुना के तट पर आए।।54।।

कालिया का इन्द्रिय और प्राण धीमे धीमे सुधर गये। कष्ट से श्वास लेते हुए वह हाथ जोड़ कर दैन्यता से भगवान की प्रार्थना करता है।।55।।

प्रभु! हम जन्म से तमो गुण वाले, दीर्घ क्रोध वाले दुष्ट होते हैं। दुराग्रह प्राणी का एक स्वभाव है। उसको छोड़ना बहुत कष्ट होता है।।56।।

अनेक तरह के स्वभाव, वीर्य, बल, बीज, योनि, पुण्य, पाप और आकारों से अलग अलग रहने वाला इस विचित्र जगत को आपने ही सृष्ट किया है, चतुर्मुख ब्रह्म की सृष्टि इसमें अमुख्य है।।57।।

धातुः गुण विसर्जनं का अर्थ चतुर्मुख ब्रह्मा जी द्वारा की हुयी सृष्टि गौड़ होती है। श्री हरि से की हुयी सृष्टि मुख्य होती है। यह नारद पुराण में स्पष्ट किया गया है।

हे प्रभु! आपकी इस सृष्टि में हम सर्प बनकर जन्म लिए हैं। सर्प जन्म से ही कोपिष्ठ होते हैं। आपकी ही इच्छा से निर्मित सर्प जाति के इस स्वभाव को अज्ञान मोह के वस में रहने वाले हम कैसे त्यागते हैं? कभी नही छोड़ सकते।।58।।

हे सर्वज्ञ जगदीश्वर हमे अपने स्वभाव सिद्ध क्रोध को त्यागना है तो उसका भी मूल कारण आपही होने से आपका अनुग्रह अथवा निग्रह से यह हो सकता है। आप जो चाहते हैं वैसा करें।।59।।

यहाँ एक संशय आता है, साँप बातें करते हैं क्या? वे दर्शन शास्त्र में तज्ञ हैं क्या? कश्यप ऋषि से कद्रु में जन्म लिया हुआ ऋषि सन्तति ही सर्प कुल हैं। उनको भी षोडश संस्कार पूर्वक अध्ययनादि कर्म होते हैं। शेष नाग स्वयं प्रवचन करते हैं। इतना ही नही, प्रवचन करने वाले के अन्दर प्रवेश करते हुए उनसे प्रवचन कराते हैं।

नाग राज की इन बातों को सुनकर देवताओं के कार्य करने में मानव सहज व्यवहार करने वाले

भगवान कहते हैं - तुम्हे यहाँ नहीं रहना चाहिए, तुम जल्दी ही अपने बन्धु मित्र, पुत्र-पत्नी के साथ समुद्र को चले जाओ जिससे गाय और मानव के सेवन करने के लिए यह नदी योग्य बने। मैने तुमको जो आज्ञा दी है उसको सुबह शाम दोनों सन्ध्या के समय में जो स्मरण पठन करता है उसको सर्पों की बाधा न हो।।60,61।।

मेरे द्वारा लीला किए हुए इस भवर में जो लोग स्नान करके देवादि तर्पण करते हैं, उपवास रहकर मेरा स्मरण करते हुए आराधना करते हैं। वह सकल पापों से मुक्त हो जाते हैं।।62।।

तुम गरुड़ के भय से रमणक द्वीप को छोड़कर यमुना के इस भवर में बसे हो। अब मेरे पद-चिह्न को धारण किया हुआ तुमको गरुड़ खा नही सकता।।63।।

साँप के विष उलबण के लिए गरुड़ के हाथ में रहने वाला भगवान को पद चिह्न ही कारण है। अब कालिया के सिर के ऊपर उन्ही पद चिन्हो को अंकित कर उसके अन्दर के विष को वमन करवाए हैं। बाद में भक्त के ऊपर वात्सल्य रखने वाले भगवान अपने अमृत हस्त को उसके सिर पर रखते हुए वहाँ अपने पद चिह्न से अंकित करते हुए गरुड़ भय से उसे मुक्त कर दिए। भगवान श्री कृष्ण की अपने भक्तों को देने वाली शिक्षा भी उनकी रक्षा के लिए ही होती है। गरुड़ के भय से कालिया को पहले यमुना के भवर में छिप कर रहना पड़ता था। अब श्री हरि के अनुग्रह से निर्भय होकर वह समुद्र के द्वीप में सुख पूर्वक वास कर सकता है। कालिया गरुड़ से अपराध किया था। उसको शिक्षा देने से गरुड़ को आनन्द हो गया। गरुड़ के भय से मुक्त होकर सर्प राज कालिया भी सुख की श्वास लिया।

श्री शुकदेव कहते हैं - अद्भुत लीला करने वाले भगवान श्री कृष्ण के आदेश के अनुसार कालिया ने अपनी पत्नियों के साथ सन्तोष से भगवान की पूजा करते हुए वहाँ से समुद्र को जाने के लिए हो गया।।64।।

कालिया अपनी पत्नियों के साथ बहुमूल्य, दिव्य, वस्त्र, माला और रत्नाभरण से, दिव्य गन्ध के लेप से, बड़े-बड़े कमल के फूलों से गरुड़ध्वज जगन्नाथ श्री कृष्ण की पूजा की। उनसे अनुज्ञा पाकर परिक्रमा करते हुए अपने पत्नी, बन्धु, पुत्र आदि से मिलकर रमणक द्वीप को चला गया। लीला के लिए मानव रूप से अवतार लिए हुए भगवान श्री कृष्ण के अनुग्रह से यमुना का जल विष से मुक्त हुआ। उसका जल अमृत समान रहा।।65।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पन्द्रहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - साँपों के वासस्थान रमणक द्वीप को छोड़ कर कालिया यमुना में क्यों आया। सारे साँपों को छोड़कर वह गरुड से क्या अपराध किया।।1।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा! सुनो, हर अमावस्या को सर्प लोग अन्न सहित आकर गरुड़ की पूजा करते हुए उसको अन्न समर्पण करना यह साँपों की रक्षा के लिए गरुड़ से नियम बनाया गया था।।2।।

उसके अनुसार सारे नाग अपनी रक्षा के लिए हर अमावस्या को महात्मा गरुड़ को अपना अपना भाग बारी-बारी से देते थे।।3।।

विष-बल से मत्त कालिया नाग गरुड़ को तिरस्कार करते हुए उसको देने के अन्न को स्वयं खा लिया।।4।।

उसको सुनकर श्री हरि प्रिय गरुड़ क्रोध से बलशाली कालिया को मारने के लिए उसके पीछे पड़े।।5।।

अपने ऊपर आक्रमण करने वाले गरुड़ को कालिया ने अपने फणों को विस्तार करते हुए जीभ को बाहर हिलाते हुए, फूफ्कार करते हुए, गरुड़ को अपने विष के दाँतों से काटा।।6।।

भगवान के वाहन गरुड़ अत्यन्त पराक्रमी हैं, प्रचन्ड वेगवान हैं। क्रोध से कालिया का सामना करते हुए अलक्ष्य भाव से ये क्या शूर है ऐसे मन में विचार करते हुए अपने बाएँ पंख से जोर से मारा।।7।।

गरुड़ के सोने के जैसे पंखे से मार खाया हुआ कालिया डर से भाग कर यमुना के भवर में छिप गया। उस भवर में गरुड़ आ नही सकता था। अन्य कोई भी उसमें आने की ताकत नही रखता था।।8।।

एक बार गरुड़ यमुना के भवर में अपनी इष्ट मछली को खाने के लिए गया था। उस समय सौभरी ऋषि हिंसा के इस प्रक्रिया को मना किया। भूखा गरुड़ इसे न मानते हुए एक बड़ी मछली को खा लिया।।9।।

बड़ी मछली के मर जाने के बाद छोटी मछलियाँ रोने लगीं। उनके दुख को देख कर सौभरी मुनि वहाँ की मछली को क्षेम से रखने के लिए गरुड़ को बोल दिए।।10।।

हे गरुड़! अब तुम यहाँ आकर मछली इत्यादि जलचर को खाए तो तुमको मरण आ जाए। मैं इस बात को सत्य रूप से कह रहा हूँ।।11।।

कालिया मर्दन से और एक नीति निकलती है। हम भी कालिया के समान काम क्रोध नाम के विष से भरे हैं, सज्जनों के ऊपर विष का वमन करते हैं। आचार्य मध्व के शास्त्र को पढ़कर हम भगवान के पद चिह्नों को अपने सिर पर रखे तो हमारा विष जाता है, इतना ही नही हमे अविद्या का डर नही रहता।

इस शाप को कालिया ही जानता था। इसी कारण कालिया गरुड़ के भय से इस भवर में छिपकर रहता था। श्री कृष्ण ने उसको वहाँ से हटा दिया।।12।।

बलिष्ठ दुष्ट लोगों से अन्य लोगों को पीड़ा न हो इसके लिए अपने को मिला हुआ शाप को विष्णु भक्त मानते हैं। यह उनकी अशक्तता का लक्षण नही है। किन्तु शाप देने से ऋषियों का पुण्य नष्ट होता है। इसको न समझते हुए असुरावेश से वे शाप देते हैं। इसी कारण गरुड़ सौभरी के शाप का अतिक्रमण नही किए। छोटे लोग शाप दिए तो बड़े लोग छोटे नही बनते। बड़े लोग वर देने मात्र से छोटे-बड़े नही होते। वर तथा शाप से जीव की योग्यता में बदलाव नही आता। बदलाव करने का सामर्थ्य श्री हरि में होते हुए भी वे ऐसे वर शाप नही देते। यह ब्रह्माण्ड पुराण का वाक्य हैं।

श्री कृष्ण यमुना के भवर से बाहर आए। दिव्य माला गन्धों से अलंकृत, सोने के गहने से शोभाय-मान श्री कृष्ण के बाहर आते ही सारे गोपालकों के जीव में जीव आ गया। सारे लोग खड़े हो गये। आनन्द से भरे हुए अन्तःकरण से गोपालक उनका आलिंगन किए।।13,14।।

हे राजा, यशोदा, रोहिणी, नन्दगोप, सारे गोपालक, गोपस्त्रियाँ, श्री कृष्ण से पुनः पुनः मिल कर वे सब नव चैतन्य युक्त हो गये। अब उनका मनोरथ पूर्ण हो गया था।।15।।

बलराम श्री कृष्ण का आलिंगन करते हुए हँस दिए । वे श्री कृष्ण भगवान की ताकत को जानते थे। उनके लिए इसमें कोई डर या विशेषता की बात नही लगी। वहाँ खड़े हुए मानव, गाय, बैल और गाय के बछड़े सभी परमानन्द पाए।।16।।

ब्राह्मण, बड़े लोग अपनी पत्नियों के साथ आकर नन्द गोप का अभिनन्दन किए और कहे आपका पुत्र कालिया के बन्धन से पार होकर आए यह हमारे लिए बहुत आनन्द का विषय है।।17।।

महा भाग्यवती साध्वी यशोदा खोए हुए अपने पुत्र को पुनः पाकर आनन्द से उसको अपने गले से लगा लिया। ज़ंघे पर बैठाकर उसके ऊपर आनन्द वाष्प बहाया।।18।।

इतने में सूर्यास्त हो गया। उस रात गोकुल को न जाते हुए कृष्ण बलराम और अन्य सारे लोगों के साथ, गो और गोपालकों के साथ यमुना के तट पर रहे।।19।।

उस रात को गोकुलवासी गोपालक, गाय और अन्य सारे लोग भूख और प्यास से पीड़ित होने के बाद भी वहीं रह गये।।20।।

हे राजा! इसी समय गर्मी के कारण उस जंगल में भयानक आग लग गयी। वह इस गो और गोपालक संकुल को चारों ओर से घेर लिया। मध्य रात्रि में भूख से पीड़ित लोग गाढ़ निद्रा में जब सोए थे तब आग उनके चारों ओर जलने लगी।।21।।

आग के लपेट में आए हुए वे लोग गर्मी का अनुभव करते हुए अपनी इच्छा से मानव रूप धारण किए सर्वेश्वर भगवान श्री कृष्ण की शरण में गये।।22।।

हे महाभाग्यशाली श्री कृष्ण, हे अमित पराक्रमी बलराम, यह भंयकर दावानल हमें खा रहा है।।23।।

हे प्रभु! आपके अत्यन्त प्यारे हम लोगों को आप इस दुस्तर मृत्यु रूप आग से रक्षा करे। आपके श्री चरण में हमें भय रहित रक्षा दें। हम उनको कभी नही त्यागते।।24।।

इस प्रकार अपने भक्तों के दु:ख को देखते हुए अनन्त शक्तिशाली भगवान श्री कृष्ण उस अग्नि को पान कर लिए।25।।

बाद में सुबह होते ही श्री कृष्ण प्रसन्न मन वाले अपने बन्धुओं से घिरे हुए गायों से सुशोभित व्रज में प्रवेश किए।।26।।

श्री कृष्ण दावाग्नि को आसानी से पिए। पति के घर आयी हुई व्याहिता स्त्री अपने मैके को जैसे जाती है, वैसे ही भगवान के मुँह से जन्म लिया हुआ अग्नि पुनः भगवान के मुँह में आ गयी है।

पानी में बहुत समय तक रहा हुआ आदमी पानी से बाहर आने के बाद आग के सामने जैसे बैठता है वैसे भगवान कालिया भवर से उठने के बाद आराम से अग्नि पान किए।

भगवान मिट्टी खाए, जल में विहार किए, आग को पिए इसका अर्थ यह होता है कि तेजोवारि मृदां यथा विनिमयः यत्र त्रिसर्गो मृषा।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सोलहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - गोपाल के वेष में रहने वाले राम कृष्ण के इस प्रकार व्रज में विहार करते समय ग्रीष्म ऋतु का आरम्भ हुआ। अपनी गर्मी से ताप देने वाली यह ऋतु बहुत लोगों को अच्छी नही लगती।।1।।

किन्तु वृन्दावन की मिट्टी के स्वभाव के अनुसार मानो ग्रीष्म वसन्त के समान हितकर ही लगी क्योंकि वहाँ साक्षात् भगवान श्री कृष्ण बलराम के साथ क्रीड़ा करते थे।।2।।

वहाँ पानी के बहने के निनाद से कान को आनन्द होता था। बहने वाली छोटी सी नहरें हवा को ठंढा करती थीं। अश्वत्थ इत्यादि बड़े बड़े वृक्ष छाया देते हुए वन की शोभा को बढ़ा दिए थे।।3।।

सरोवरों में सौगन्धिक फूल खिलने से, वहाँ से और यमुना जी के ऊपर से बहनें वाली मन्द मरूत वहाँ रहने वाले वनवासियों को सुख देता था। वहाँ के हरे-भरे बड़े बड़े मैदान गर्मी के कष्ट को नहीं के समान सा कर दिए थे।।4।।

गहरा पानी वाला यमुना जी के तट पर बड़े बड़े वृक्षों की घनी छाया से, बालू के बाजू में ही बहने वाले नदी के कारण भीगा हुआ बाल से, विष से भी क्रूर सूर्य किरण हरित वृक्षों से आच्छादित जमीन का शोषण करने में असमर्थ थी।।5।।

कूजने वाले पक्षी और मृग नाच करने वाले मोर और भौंरे, मधुर ध्वनि करने वाली कोयल तथा सारस और फूल फलों से भरा हुआ सुन्दर वन मन को बहुत प्रसन्नता देता था।।6।।

ऐसे परिसर में विहार करने की इच्छा से भगवान श्री कृष्ण बलराम के साथ वंसी बजाते हुए वन में प्रवेश किए। गाय और गोपालक उनको घेर लिए।।7।।

कनखी, मोर के पंख, फूलमाला, सिन्दूर इत्यादि से अलंकृत राम-कृष्ण गोपालको के साथ खेल कूद करते हुए, गाते और कुस्ती करते हुए विहार करने लगे।।8।।

श्री कृष्ण जब नाचने लगे तब कई गोपालक गाने लगे। कई वंसी बजाए, कई ताल बजाए कई वाद्य बजाए अन्य गोपालक हर्षोद्गार किए।।9।।

देवता लोग गोपालक के वंश में जन्म लेते हुए गोपालक का वेश धारण कर अपने निज रूप को छिपाए थे। रंगस्थल में प्रधान नट के साथ अन्य नट के समान गोप गोपालक भगवान कृष्ण की स्तुति किए।।10।।

बालक कृष्ण राम के कान के बगल में, अपने गाल में बाल बिखेरे थे। वे परस्पर हाथ पकड़ते हुए चक्कर लगाना , कूदना, कुस्ती करना, पत्थर से निशान को मारना, एक को एक खींचना, ऐसे अनेक तरह के खेल खेले।।11।।

हे महाराजा, सुनो - कई नाचे तो कई गाये, कई खेले तो कई वाह बोले। इस प्रकार खेल चलता रहा।।12।।

कभी - कभी बेल के फल से खेल होता था, कभी गुग्गुल से, मुस्टि युद्ध, परस्पर दौड़ते हुए छूना, कभी लुका - छिपी का खेल, खेलते थे। कभी कभी मृग पक्षियों का अनुकरण करते थे, कभी मेंढ़क की तरह कूदते थे, झुले में झूलते थे और कभी राजा-मंत्री का खेल खेलते थे।।13,14।।

इस प्रकार लोकरूढ़ि में रहने वाले बच्चों के खेल को श्री कृष्ण तथा राम नदी के तट पर, पहाड़ों के ऊपर वृक्षों के नीचे, बालू के मैदान, सरोवर के पानी में विहार किए।।15।।

इस प्रकार राम कृष्ण गोपालको के साथ उस वन में गायों को चराते हुए खेलते थे। उस समय प्रलम्ब नाम का एक असुर कंस से प्रेरित होकर उनको मारने के लिए गोपालकों के वेष में आया।।16।।

लम्ब नाम का दैत्य प्रलम्ब नाम से जन्म लेकर षणमुख के वर से अवध्य होकर रावण के समान बलशाली बन गया था। वह भाडीर वट नाम के वृक्ष में वास करता था। कंश के आदेश से वह राम कृष्ण को मारने के लिए समय देख रहा था।

श्री कृष्ण सर्वज्ञ होते हुए भी उसको मार डालने के उद्देश्य से उसके मित्रत्व को स्वीकार किए।।17।।

सारे खेलों के नियमों को जानने वाले श्री कृष्ण गोपालकों को बुलाकर खेल के नियमों का विवरण देते हैं। हे गोपालक, सुनो, हम अपने दल में दो भाग करेंगे। आमने-सामने होकर स्पर्धा से खेलेंगे।।18।।

कृष्ण राम को मारने के लिए प्रयत्न करने वाला लम्बासुर को किस खेल में मारने का अवसर मिलता है यह विचार सारे खेलो के नियमो को जानने वाले श्री कृष्ण ठीक तरह से जानते थे।

गोपालक श्री कृष्ण की बातों को मानते हुए अपने में दो भाग किए। एक भाग के प्रमुख बलराम बने तो दूसरे भाग का प्रमुख श्री कृष्ण बने।।19।।

इन दो विभागों में वे अनेक तरह के खेल खेले। खेल के अन्त में जो हारता है उसे जीतने वाले को अपने कन्धे के ऊपर बैठा कर नियत दूर तक दौड़ना पड़ता था।।20।।

इस प्रकार किसी के कन्धे पर बैठते हुए, किसी को अपने कन्धे पर बैठाते हुए वहाँ खेल चलता रहा। गायें चरती रही, ऐसे होते समय श्री कृष्ण बलराम को उठा कर भाण्डीर नाम के वट वृक्ष के पास गये।।21।।

बलराम के पक्ष में श्री दाम, वृषभ थे, विरुद्ध पक्ष में श्री कृष्ण इत्यादि थे। खेल में जो हारे वे जीतने वाले को अपने कन्धे के ऊपर बैठाकर भागने लगे।।22।।

श्री दाम हार कर भगवान श्री कृष्ण को अपने कन्धे के ऊपर बैठाया। भद्र से पराजित होकर वृषभ को उठाया, प्रलम्बासुर हार कर बलराम को उठाया।।23।।

श्री कृष्ण-पक्ष में प्रलम्ब और भद्रसेन हार गये। बलराम के पक्ष में वृषभ और बलराम को छोड़ कर सारे हार गये। श्री राम कृष्ण के साथ स्पर्धा करते हुए हार गया। भद्रसेन वृषभ से हारा। प्रलम्बासुर बलराम से हारा। विष्णु पुराण और हरिवंश इस खेल का नाम हरिणाक्रीड़ ऐसा नाम रखा है। दो दो स्पर्धी जो पहले भाण्डीर वृक्ष को हिरण के समान कूदते हुए पहले छूते हैं, वे जीतते हैं।

यहाँ हरिवंश कहता है कि पराजित श्री दाम श्री कृष्ण को उठाया। विष्णु, ब्रह्मा, वायु और उनकी पत्नियाँ अनिरुक्त देवताएँ हैं। उनकी महिमा को जहाँ धक्का पहुँचता है वहाँ का अर्थ बदल कर बोलना पड़ेगा। यह ब्रह्म तर्क की बात हैं।

श्री कृष्ण को उठा नही सकता था इसके लिए प्रलम्ब बलराम को उठाया। हार को निमित्त करते हुए वह बलराम को अपने ऊपर उठाकर सबसे तेज दौड़ते हुए भाण्डीर वृक्ष की दिशा में दौड़ा। वृक्ष के नीचे बलराम को खेल के नियमानुसार उतारना था। किन्तु वह दैत्य उनको लेकर आगे बढ़ा।।24।।

बलराम अपने वजन को बढ़ाते रहे। पहाड़ के समान वजन के कारण उस असुर का वेग कम होता रहा। तब वह असुर अपना निज रूप धारण करते हुए बलराम को आकाश में लेकर चला।।25।।

बलराम का वर्ण चन्द्र के समान सफेद (शुभ्र) है। काला बादल के समान शरीर वाला राक्षस बलराम को अपने ऊपर लेकर आकाश में चल रहा है। यह दृश्य मेघ के बीच दिखने वाला चन्द्र के समान है।

अब प्रलम्बासुर बलराम को लेकर जमीन पर दौड़ना छोड़कर आकाश में उड़ रहा है। उसकी आँख आग के समान प्रज्वलित हैं। भय करने वाले उसकी भौह, बाहर दिखने वाले दाँत, खड़ा हुआ लाल लाल

बाल, हाथ में कड़ा किरीट और और कुंडल धारण किया हुआ अद्भुत दिखने वाले राक्षस के शरीर को देख कर बलराम को थोड़ा सा भय हो गया।।26।।

बाद में श्री कृष्ण की कृपा से बलराम को अपनी ताकत की याद आयी। भय चला गया। शत्रु उनको आकाश में ऊपर-ऊपर लेकर चल रहा है इसको देख कर आक्रोश से उसके सिर के ऊपर अपने मूठी से इन्द्र के वज्रायुद्ध के समान आघात किए।।27।।

पहाड़ के समान उनके भार को प्रलम्भ लेकर जा रहा है और अपना भयंकर रूप धारण किया है। इसको देखकर बलराम में थोड़ा सा भय उत्पन्न हुआ। कृष्णा, राक्षस मुझको लेकर जा रहा हैं, ऐसे जोर से चिल्लाए। तुम्हारे में मेरे शुक्ल केश रूप का आवेश है। उसकी ताकत को याद करो, भय को छोड़ो। श्री कृष्ण की इन बातों को सुनकर बलराम की ताकत बढ़ गयी और एक ही आघात से उसको मार दिया। यह विष्णु पुराण का वाक्य है।

बलराम के मूठी के प्रहार से राक्षस का सिर फूट कर दो टुकड़ा हो गया। मुह से रक्त बहने लगा। राक्षस वज्रायुध की मार खाकर गिरने वाला पहाड़ जैसे जमीन पर गिर गया।।28।।

बलशाली बलराम से प्रलम्बासुर मर गया इसको देखकर गोपालक आश्चर्यचकित हो गये। बलराम का कीर्ति गान करने लगे।।29।।

गोपालकों ने अपने प्रेम परवस हृदय से मर कर जीने वाले जैसे पुनः मिले हुए बलराम को आलिंगन करते हुए आशीर्वाद दिए। उसके बल की गाथा गाये।।30।।

पापी प्रलम्ब को मरा हुआ देख कर देवताओं ने राम कृष्ण के ऊपर फूलों की वर्षा की तथा बलराम का संकीर्तन किए।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सत्ररहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - गोपालक इस प्रकार खेल में मग्न थे। उस समय गाये चरते चरते उनसे बहुत दूर जंगल में चली गयी।।1।।

बकरी, गाय, भैस इत्यादि पशुगण एक जंगल से दूसरे जंगल में घास को खाते हुए, पानी को पीते हुए घनघोर जंगल में प्रवेश किए।।2।।

कृष्ण राम और गोपाल अपने खेल को समाप्त कर देखते हैं तो गायों का नाम निशान भी वहाँ नही है। वे उनको ढूढ़ने लगे। खेल में मग्न होकर गाय के बारे में ध्यान न देने से पछताने लगे। बहुत ढूढ़ने के बाद भी गायें नही मिले।।3।।

गायों के पद चिन्ह और उनके द्वारा खाकर छोड़े हुए अथवा मुह से गिरे हुए घास को देखते हुए उसी से गायों के गये हुए रास्ता को पहचाने। उसी को पकड़ कर वे आगे बढ़े। उनको लगता था कि उनका प्राण ही चला गया है।।4।।

घनघोर जंगल में बहुत ढूढ़ने के बाद भी गाय को न पाते हुए प्यासे थके हुए गोपालक रोते रोते कृष्ण के पास आए।।5।।

श्री कृष्ण मुँह के सामने हाथ रखते हुए अपने मेघ गंभीर स्वर से गायों को एक-एक करके नाम से पुकारे। अपने नाम को श्री कृष्ण के मुँह से सुनकर वे गायें प्रति आवाज दीं।।6।।

इसके बीच में वहाँ जंगली आग (वडवानल) चारों ओर घिर कर जलने लगी। हवा जोर से चल रही थी। बढ़ती हुयी आग वन्य जन्तु और वृक्षों को जलाते हुए आगे बढ़ रही थी।।7।।

चारों ओर से अपनी तरफ घिर रही आग को देखकर गोपालक और गायें भयभीत होकर कृष्ण राम की शरण में आए। मृत्यु भय वाले हरि की प्रार्थना करते हैं।।8।।

हे कृष्ण, हे महावीर कृष्ण, हे बलराम हे अमित पराक्रमी बलराम, हम लोग आग में जल रहे हैं।

आपकी शरण में हैं। रक्षा करें।।9।।

हे कृष्ण! हम आपके बन्धु हैं। हमारा नाश न हो, बन्धु की रक्षा करने वाला ही धर्म की रक्षा कर सकता है। हम आपके भक्त हैं। आपही हमारे रक्षक हैं।।10।।

श्री शुकदेव कहते हैं - अपने बन्धुओं की दीन वाणी को सुनते हुए भगवान श्री कृष्ण कहे - डरो मत। अपनी आँखों को बन्द कर लीजिए।।11।।

सारे लोगों के श्री कृष्ण की आज्ञा के अनुसार आँख बन्द करने के बाद योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण उस भयावह वडवानल को मुँह से खा लिया।।12।।

गोपालक आँख खोल कर देखते हैं कि आग गायब हो गयी है। वे अपने गायों के साथ प्रथमत: जहाँ से चले थे उसी वट वृक्ष के नीचे खड़े हैं। इसको देखकर वे सब आश्चर्य चकित हो गये।।13।।

भगवान श्री कृष्ण ने उन सबकी बडवानल से रक्षा की। खोयी हुइ गायों को वापस बुलाए। इन सब को देखते हुए इसको भगवान के योग सामर्थ और श्री कृष्ण साक्षात श्री हरि हैं इसको अवगत किए।।14।।

शाम को राम कृष्ण गायों को वापस लाते हुए, बंशी को बजाते हुए आगे आगे चले। उनके पीछे उनका गुणगान करते हुए गोपालक उनका पीछा करते रहे।।15।।

गोविन्द का दर्शन गोपियों के लिए परमानन्दकारक बना। उनके बिना उनको एक एक छण सौ युग के समान लगता था।।16।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - राम कृष्ण के उस दिन किया हुआ प्रलम्बासुर का वध और आग से बचाने की अद्भुत लीला को गोपालक अपनी पत्नियों के सामने विस्तार रूप से वर्णन करते हुए कहे। बड़े लोगों को भी बताए।।17।।

बड़े गोपालक इस गाथा को सुनकर विस्मित हो गये। उनके मन की धारणा दृढ़ हो गयी कि राम और कृष्ण गोकुल में अवतार लिए हुए देवोत्तम हैं।।18।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में सत्ररहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अठ्ठारहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इसके बाद वर्षा काल आरम्भ हुआ। इस समय सारे जन्तु जन्म लेते हैं। सूर्य चन्द्र के प्रभाव लय बार बार देखने को मिलते हैं। आकाश में मेघ गर्जन होने लगी।।1।।

गुणपूर्ण परब्रह्म, पूर्ण गुण वाली लक्ष्मी, ब्रह्मादि गुण बद्ध जीव भी बहुत आवाज करने वाले दुर्मतों से ढक जाते हैं। वेदों का अर्थ स्पष्ट नही होता। ऐसे ही आकाश में बिजली और आवाज से युक्त घनघोर काले बादल सूर्य चन्द्र और नक्षत्र आदि को ढ़क लिए। इससे सारा अस्पष्ट हो गया।।2।।

सूर्य आठ महीने तक अपनी किरणों से भूमि में रहने वाली जल सम्पदा को खींच लेता है। अब वर्षा काल में उसको वापस जमीन के ऊपर वर्षा करने लगता है।।3।।

दयालु तेजस्वी महात्मा लोग अपने को होने वालीं आपदाओं को न देखते हुए दीन लोगों की रक्षा के लिए अपने जीवन को समर्पित करते हैं। वैसे ही झंझावात से टकराते हुए बिजली से भरा हुआ मेघ अपने सर्वस्व जल को प्यासी भूमि को समर्पित करते हैं।।4।।

इष्टार्थ सिद्धि के लिए तप करने वाले साधु लोगों का शरीर तप के कारण कृश होता है, किन्तु तप के फल को पाने के तुरन्त बाद उनकी शरीर हृष्टपुष्ट होता है। वैसे ही गर्मी में सूखी हुयी जमीन वर्षा से सन्तुष्ट होकर हरी भरी दिखने लगती है।।5।।

कलियुग में पापाचार से वेद विरुद्ध मत प्रबल होते हैं, वैदिक मत अपने बल को खो देते हैं। वैसे ही वर्षा काल में सन्ध्या समय में काले बादलों के कारण अन्धेरा छा जाता है। जुगुनू चमकने लगते हैं, नक्षत्र छिप जाते हैं।।6।।

मौन तोड़ कर आदेश देने वाले गुरु की आज्ञा सुनकर ब्रह्मचारी जैसे वेदाध्ययन करने लगते हैं, वैसे ही अब तक चुप रहे मेढ़क मेघ की आवाज को सुनकर आवाज करने लगते हैं।।7।।

इन्द्रिय निग्रह न रहने वाले दरिद्र को यदि धन मिल गया तो वह बिगड़ जाता है, वैसे ही गर्मी के दिनों

में सूखी हुआ छोटी नदियाँ वर्षा के कारण अपने तट को पार कर जहाँ चाहे वहाँ वहने लगती हैं।।8।।

मनुष्य को अमीरी आये तो वह काला तमोगुण, लाल रजोगुण और सफेद सत्वगुण के अधीन होता है वैसे ही वर्षा के कारण जमीन सस्यों से शाम, फूलों से लाल और कलियों से सफेद रंग पायी।।9।।

पुण्य क्षेत्र को गये हुए ज्ञानी लोग पुण्य पाते हैं वहीं अज्ञानी अपने दुष्कर्म के कारण अनर्थ पाते हैं। वैसे ही जमीन में खेती करने वाले अच्छे लोगों को सस्य सम्पत्ति मिलती है। ठीक तरह से खेती को न जानने वाला कृषि से हानि पाता है, उससे उसको दु:ख होता है।।10।।

भगवान की सेवा करने से मुक्ति में जीव सुन्दर और चिन्मय रूप को धारण करता है वैसे ही जल-चर और भूचर प्राणी नया जल को पाकर नव नवीन सुन्दर रूप को पाते हैं।।11।।

योगाभ्यास से पक्व न हुआ योगी का मन विषय के सम्पर्क से कामनाओं से भर कर क्षोभ पाता है वैसे ही तूफान से हिलने वाले समुद्र में नदियों से अधिक पानी आने से उथल पुथल होता रहता है।।12।।

सदाकाल हरि-ध्यान करने वाला व्यसन और आघात से दु:ख नही पाता वैसे ही मुसलधार वर्षा होते हुए भी पहाड़ किञ्चित भी विचलित नही होता।।13।।

पन्द्रह दिन में क्यों न हो एक बार पूर्ण रीति से वेद का पाठ करना चाहिए। इसी के लिए वेद को पक्ष ग्रन्थ बोलते हैं। बहुत समय तक पाठ करना छोड़ दिए तो पाठ संदिग्ध होता है। वैसे ही लोगों के आना जाना बन्द होने के कारण रास्ते में घास फैलती है और उनको (मार्ग को) पहचानना संदिग्ध होता है।।14।।

चंचल प्यार वाली कामिनी स्त्रियाँ गुणवान पुरुष के साथ बहुत दिन तक नही रहतीं वैसे ही चंचल रहने वाला बिजली लोकोप करने वाले मेघों में स्थिर रूप से नही रहती।।15।।

इस त्रिगुणात्मक प्रपंच में त्रिगुण रहित भगवान शोभायमान हैं वैसे ही गुणयुक्त आकाश में गुण रहित (धनुष को बाधने वाली रस्सी को गुण कहते हैं।) इन्द्र धनुष दिखता है।।16।।

जीव अपने अनुभव से प्रकाश दिखने के अहंकार से आवृत्त होकर अपने निज स्वरूप को नही पहचानता है वैसे ही चन्द्र अपने प्रकाश से दिखने वाले मेघ से आवृत्त होकर अदृश्य हो जाता है।।17।।

घर के झंझटो से आहत होकर हतास हो गये सज्जन लोग साधुजन के संग से आनन्द पाते हैं। उनकी प्रशंसा करते हैं। वैसे ही गर्मी के दिन में त्रस्त हुए मोर मेघ के दर्शन से सन्तोष पाते हैं और नाचने लगते हैं।।18।।

तप से थके हुए और दुबले हुए लोग पायी हुयी वस्तु मिलने के बाद उन भोग वस्तुओं के भार से जैसे झुक जाते हैं वैसे वर्षा काल में पानी पिए हुए वृक्ष फल फूल से भर कर झुक जाते हैं।।19।।

कामादि विषय से हुआ श्रम से इन्द्रिय दौर्बल्य को (जब कुटुम्बासक्त थे) तब पाए हुए तपस्वी उनके दुःख से झुकते हुए तप करने के बाद इन्द्रिय निग्रह को पाकर भगवद् दर्शन से जैसे नम्र होते हैं वैसे वृक्ष भी वर्षा ऋतु में जल पाकर फल पुष्प से भरित हो गये हैं।

घर के हजार कामों से त्रस्त हुए संसारी लोग विषयासक्ति को छोड़ नही सकने के कारण घर छोड़कर जैसे नही जाते वैसे ही वर्षा होते समय सरोवर के तट में जल वहते रहे तो भी सारस पक्षी वहीं रहते हैं (सारस पक्षी बहते जल में वास नही करते)।।20।।

कलियुग में बौद्ध साक्त आदि वादों से वेद मार्ग जैसे नाश हुआ वैसे वर्षा के प्रवाह से बांध और सेतु भी टूट जाते हैं।।21।।

ब्राह्मणों की प्रेरणा से राजा अपनी प्रजा को अमृत (वे जो चाहते हैं उसको) देते हैं। वैसे ही वर्षा काल में हवा से प्रेरित बादल प्राणियों को अमृत समान जल देते हैं।।22।।

वर्षा काल में इस प्रकार खूब पानी बरसने से खजूर, जामुन और अमरूद से वृन्दावन की शोभा बढ़ी वहाँ विहार करने के लिए गाय-गोपालों के साथ बलराम कृष्ण आ गये।।23।।

थन में भरा हुआ दूध के कारण गाय मन्द गति से चली। श्री कृष्ण जिसकी नाम प्यार से पुकारे तो वह गाय अपने थन से दूध बहाते हुए दौड़कर आती थी।।24।।

वन्दावन में वास करने वाले मृग पक्षी आनन्द से कूजते थे। वृक्षों से शहद बहता था। श्री कृष्ण के गम्भीर आवाज को पर्वत गुहाएँ प्रति ध्वनि दिए। गोपालक इसको देखकर हर्षित हुए।।25।।

कभी-कभी पानी बरसते समय श्री कृष्ण वृक्षों के कोटर में अथवा पहाड़ की गुफाओं में बैठकर कन्द मूल फल को खाते हुए क्रीड़ा करते थे।।26।।

कभी-कभी पानी के पास वाले बड़े पत्थर के ऊपर बलराम और अन्य साथियों के साथ बैठकर घर से लाए हुए दही भात को खाते थे।।27।।

बैल, बछड़ा और थन के भार से थकी हुयी गायें घास खाने के बाद उसी के ऊपर आँख को मूदकर सोते हैं। अपने शक्ति से उत्तेजित वर्षा के कारण यह अरण्य सम्पदा सारे प्राणियों को सन्तोष देने वाली बन गयी है। भगवान श्री कृष्ण इसकी प्रशंसा करते हैं।।28,29।।

इस प्रकार राम कृष्ण के व्रज में वास करते समय शरत्काल का आरम्भ हुआ। आकाश मेघ के बिना निरभ्र हो गया। जल स्वच्छ हो गया। स्वच्छ जल के ऊपर से बहने वाली हवा सुख कारक लगने लगा।।30।।

योगभ्रष्ट लोगों का चित्त पुनः योग का अभ्यास करने से जैसे स्वभाविक रीति से निर्मलता को पाता

है वैसे वर्षा में मटमैला पानी शरत काल में अपनी स्वच्छता को पाकर कमलों की उत्पत्ति के लिए सहजता को पाया।।31।।

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी नाम के चारों आश्रमों वाले को श्री कृष्ण नाम जैसे अशुभ का निवारण करता है वैसे शरत काल का आकाश अपने काले रंग और जमीन का कीचड़पन और पानी मटमैला को खो दिया।।32।।

बाल-बच्चे, घर-बार के बारे में अपनी सारी कामनाओं को छोड़े हुए मुनि जन भगवद्भक्त बनकर रागादि दोषों से मुक्त होकर शोभते हैं। वैसे आकाश में मेघ अपने सारे जल को खाली करते हुए सफेद रंग पाकर शोभायमान हुए।।33।।

ज्ञानी लोग तत्व ज्ञानामृत को योग्य काल में केवल योग्यों को उपदेश देते हैं, अयोग्यों को नही वैसे ही पर्वत पहाड़ वर्षा काल में जल प्रवाह को सारे जगह में छोड़ते हैं। किन्तु शरत्काल में केवल नदीपात्र में छोड़ते हैं, अन्य स्थानों में नही।।34।।

संसार सुखभोग में आसक्त मूढ़ लोग प्रति दिन अपना आयुस्य व्यर्थ जाता है इसको नही समझते। वैसे ही गहरा न रहने वाले जलाशय में रहने वाले जलचर प्राणी जलाशय का पानी प्रतिदिन घट रहा है इसको नही जानते।।35।।

दरिद्र और दीन होते हुए भी इन्द्रिय निग्रह न रखने वाला गृहस्थ संसार में दुःख का अनुभव करता है वैसे गहरा पानी न होने वाले सरोवर में वास करने वाले जलचर शरत्काल के सूर्य के ताप का अनुभव करते हैं।।36।।

मनोबल वाले लोग इस शरीर आदि जड़ पदार्थों में मैं और मेरा का अभिमान त्यागने से धीर कहलाते हैं। वैसे ही शरत्काल की जमीन कीचड़ से छुटकारा पाकर सस्य लताओं से सुन्दर बनती है।।37।।

विषयासक्ति को छोड़ा हुआ मुनि लौकिक कार्यों से निवृत्त होता है, वैसे शरत्काल में समुद्र निश्चल रहता है आवाज न करते हुए शान्त रहता है।।38।।

योगी जन इन्द्रिय निग्रह करते हुए उनकी सहायता से भगवान के ध्यान को पाते हैं। वैसे कृषक लोग नदी को बड़ा बांध बांधते हुए प्रवाह को रोंक कर अपने खेत को पानी लेते हैं।।39।।

देह के कारण होने वाले सन्ताप को तत्व ज्ञान मिटा देता है वैसे ही गोकुल की स्त्रियों के विरह-ताप को मुकुन्द मिटाते हैं। वैसे ही शरत्काल के सूर्य की प्रखर किरणों से दिन में होने वाले ताप को रात में चन्द्र निवारण करता है।।40।।

सत्वगुण भरित मन से वेदवेद्य भगवान का साक्षात्कार मिलता है। वैसे मेघरहित शरत्काल का आकाश नक्षत्रों से शोभायमान हुआ।।41।।

यदुपति श्री कृष्ण यादवों के साथ इस भूमि में जैसे शोभायमान हैं वैसे शरत्काल के आकाश में पूर्ण बिम्ब चन्द पूर्णमासी के दिन नक्षत्रों के साथ शोभा देते हैं।।42।।

फूलों के बगीचों के ऊपर से बहने वाली वायु अपने समशीतोष्ण हवा से लोगों का सन्ताप निवारता हैं। किन्तु गोपियों के मन का ताप इससे नही गया क्योंकि श्री कृष्ण पहले ही उनके मन को चुराए हैं।।43।।

जैसे बैल की सहायता से कृषक लोग बीज बोकर फल पाते हैं वैसे ही गाय, मृग, पक्षी, नारी, ऋतुमती होकर शरत्काल में अपने पुरुषों के संग से गर्भ धारण किए।।44।।

हे राजा परीक्षित! चोरों के अतिरिक्त अन्य लोग राजा से जैसे भय रहित रहते हैं। वैसे रात के कमल को छोड़कर सारे कमल सूर्य से विकसित हुए।।45।।

भगवान के स्वरूप और आवेश के अवतार रूप श्री कृष्ण और बलराम से जैसे भूमि की शोभा बढ़ गयी वैसे शहर और गाँवों में रहने वाले गृहस्थ आश्रमी लोगों द्वारा करने वाले इन्द्र देवता याग और महोत्सवों से भूमि पक्व सस्य सम्पद्भरित हो गयी।।46।।

जीवन्मुक्त हुए ज्ञानी लोग प्रारब्ध कटते समय आविर्भूत स्वरूप देहों को जैसे पाते हैं, वैसे वर्षा के कारण घर से बाहर न जाने वाले व्यापारी लोग शरत्काल में घर से बाहर जाकर पैसा कमाने लगे।।47।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में अठ्ठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

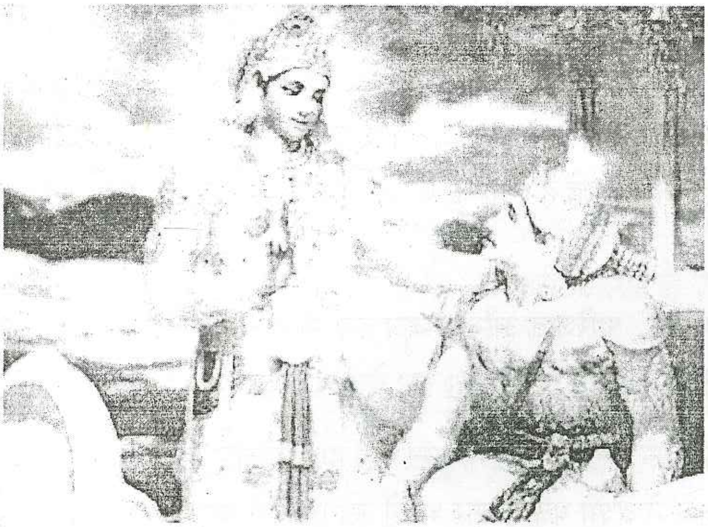

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - उन्नीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - इस प्रकार स्वच्छ जल वाले कमल के फूलों से भरे हुए सरोवरों के ऊपर से बहने वाली हवा से मन को आनन्द देने वाली वृन्दावन में गाय और गोपालकों के साथ श्री कृष्ण प्रवेश किए।।1।।

वृन्दावन सरोवर, नदी, पहाड़, भौंरे और पक्षियों के गुंजन से भरा हुआ था। सारे वृक्ष फल फूलों से शोभित थे। ऐसे वन में श्री कृष्ण गोपालकों के साथ बलराम से मिलकर गायों को चराते हुए अपने बंशी को बजाने लगे।।2।।

गोपियों को प्रणयोद्दीपन करने वाली उस वेणुध्वनि को सुनकर समीप रहने वाली गोपियाँ दूर में रहने वाली अपनी सहेलियों को उसका वर्णन करने लगीं।।3।।

हे राजा! श्री कृष्ण की लीलाओं को याद करती हुयी वे स्त्रियाँ उस वेणु गान का वर्णन करती रहीं तो भी प्रणय के आवेग से मन विक्षिप्त होने के कारण वे वर्णन करने में असमर्थ रहीं।।4।।

नाट्य करने वाले नट के आकृति वाले श्री कृष्ण गोपालों के साथ वृन्दावन में प्रवेश किए हैं। उनके सिर पर मोर की पंखी, कानों में फूल सुशोभित है। सोने के समान उज्वल रंग वाले पीताम्बर को धारण किए हैं। सिर से लेकर पाँव तक वैजयन्ती माला धारण किए हैं। अपने बंशी के छेदों में अधरामृत को भर रहे हैं। देवता लोग उनका गुण गान कर रहे हैं। श्री कृष्ण के वृन्दावन में अंकित पद चिह्न ही आँखों को आनन्द देता है।।5।।

तुलसी, कुन्द, मन्दार, पारिजात और अम्बुज इन पाँच फूलों से बनायी गयी माला वैजयन्ती कहलाती है। बंशी के रंध्रों में अधरामृत भरते हैं यह उत्प्रेक्षा है। रमा देवी यहाँ स्वयं बंशी बनकर उस अधरामृत को पीती हैं।

सिर के ऊपर मोर की पंखी, कान में फूल रखे हुए भगवान गोपालको के वेष में अपने सिर को दाहिने ओर झुकाते हुए बाएँ हाथ में बंशी पकड़ कर भौवों को हिलाते हुए अंगुलियों से बंशी की आवाज करते हुए

गोपालको से गीत गवाते हुए श्री कृष्ण वृन्दावन को प्रवेश किए हैं। इससे समस्त प्राणियों को आनन्द मिला है।।6।।

हे राजा! सारे जीव कुल के मन को आकर्षण करने वाले श्रीकृष्ण के वेणु गान को सुनकर गोकुल में रहने वाला नारी लोग अपने में उसका वर्णन करते हुए आनन्द पाता हैं।।7।।

श्री कृष्ण के मुखारबिन्द से बहता हुआ अधर रस को और गान सुधा को वेणु में रहकर श्री देवी पीकर आनन्द पायीं अन्य आभरणों में , वृक्षों में, कुश में, रहकर अन्यान्य देवदेवता गान रस का अनुभव किए यह तंत्र भागवत की वाक्य हैं।

गोपिकाएँ आपस में कहती हैं - हे सखी! नन्द गोप के पुत्र राम कृष्ण शाम को गायों को लेकर वापस आते समय अपने मित्रों के साथ मिलकर वेणुगान करते तीरछी नजर से देखते हैं। उस सुन्दर दृश्य को देखने वाली आँखें ही सही रीति से आँखें हैं। ऐसे आँख वाले ही आँख से सही फल को पाते हैं। इस भूमि में श्री कृष्ण के उस रूप को देखने के बिना अन्य फल कुछ नही है।।8।।

राम कृष्ण आम की नई कलियों से, मोर के पंखों से, कमल की मालाओं से भूसित होकर बहुत सुन्दर लगते हैं। उनके पीछे गोपालक गाना गाते आते हैं। ये सारे रंग मंडप में अभिनय करने वाले श्रेष्ठ नट के समान बहुत शोभायमान लगते है।।9।।

ये सभी दामोदर के श्रेष्ठ वेणु गान से, उनके अधरामृत से मिलकर और रस पूर्ण बनते हैं। उसके उस अमृत को केवल वह वंशी ही पी लेती है। वह कितनी भाग्यशाली है? कितना पूण्य किया है। उसके पी कर बचने वाली अमृत रस को रास्ते में मिलने वाले वृक्ष, कुश आदि सस्य पीकर रोमांचित होते हुए आनन्द वाष्प को बहाते हैं।।10।।

यह ब्रज मण्डल इनके कारण भू मण्डल को कीर्ति देने वाली है। यह भूमि प्रतिदिन देवकी पुत्र के पादस्पर्श से शोभा पाई है। वहाँ गोविन्द के वेणु गान का अनुसरण करते हुए मोर नाचते हैं, अन्य पशु पक्षी प्राणी अलग अलग व्राद्यों का अनुसरण करते हैं, अनुकरण करते हैं।।11।।

बिल्कुल ज्ञान रहित स्त्री मृग अपने पुरुषों के साथ खड़े होकर सुन्दर वेषधारी नन्द कुमार के सुन्दर रूप को अपने आँखों से पीते हैं। कानों से वेणु गान को पीते हैं। प्यार भरी आँखो से उनकी आराधना बार बार करते हुए धन्य होते हैं।।12।।

स्त्रियों की आँखों के आनन्द को बढ़ाने वाले श्री कृष्ण की वंशी के मधुर गान को सुनकर विमान में चलने वाली स्त्री देवता भी रति बाधा से अधीर हो गये, मोहित हो गये। उनके केशपाश खुल गये, उनसे

फूल बिखर गये, साड़ी ढीली हो गयी। वे ही धन्य हैं।।।3।।

श्री कृष्ण के मुख से बजने वाली बंशी के गान सुधा को खड़े कान सुनने वाली गाये अपने कान से वह अमृत पी लिए।उनके थन से बहने वाले दूध को श्री कृष्ण के गान सुधा में भूल कर बछड़े पूरा पी नही सके उनके मुह में दूध नही रहा। माँ के दूध से भी बढ़ कर उनको श्री कृष्ण का मधुर गान ही ज्यादा इष्ट रहा। यहाँ के पक्षी भी ऋषि मुनि बन गये हैं। वे सदा काल श्री कृष्ण के बंशी गान को सुनते हुए खाना पीना छोड़ दिए हैं।।।5।।

श्री कृष्ण के वेणु गान को सुनकर नदियाँ मन्मथ बाण से आहत होकर मंद गति से बह रही हैं। नदी में भवर उत्पन्न होकर नदी का जल आगे नही जाना चाहता। फिर कर वापस आना चाहते हैं। नदियों ने अपने तरंगों को हाथ के समान ऊपर उठाते हुए श्री कृष्ण का आलिगंन करने में अपना उत्साह प्रदर्शित करती हैं। अपने में विकसित हुए कमलों को उनके पाद में समर्पित करना चाहते हैं। इसी इच्छा से उनका पाद स्पर्श करती हैं।।।6।।

बलराम और गोपालकों के साथ श्री कृष्ण धूप में गाय चराते समय अपनी बंशी बजाते चले तो उसके मोह से मेघ भी प्रेम से रोमांचित होता है, अपने समान नील रंग वाला अपने समान लोक को शीतलता देने वाले श्री कृष्ण को अपना मित्र मानते हुए उनके गान से आकर्षित होकर उनके ऊपर पीछे पीछे चलने लगता है। उसके ऊपर बौछार करते हुए खुले हुए छत्त के समान उनके ऊपर फैलकर अपनी कृतज्ञता को समर्पित करता है।।।7।।

जंगल में रहने वाली पुलिंग स्त्रियाँ श्री कृष्ण के दर्शन मात्र से काम पीड़ित होती हैं क्योंकि उनकी प्रेयसियों के छाती को लगा हुआ लाल रंग श्री कृष्ण के पादों को लगा है। उनके पाद कमलों से रंगित होकर पुन: वह उनके छाती में शोभायमान होता है। वन में संचार करते समय वह रंग वहाँ घास में लगता है। उस कुकुंम को उठाकर वह पुलिंग स्त्री अपने माथा और स्तन को लगाकर अपने विरह ताप को शमन करते हैं, वे ही धन्य हैं।।।8।।

श्री कृष्ण गोपियों के साथ प्रणयरूप हैं। भू देवी भगवान की प्रेयसी हैं। पर्वत ही उनका स्तन है। श्री कृष्ण के पहाड़ पर चढ़ते-उतरते उनका पाद रज भूदेवी के स्तन को लेपित होता है। पुलिंग स्त्री उसको उठाती हैं।

यह गोवर्धन पर्वतराज भगवद्भक्तों को आदर्श बना है। देखो, सखी! रोज-रोज वह भगवान श्री कृष्ण के पाद स्पर्श से सुख पाता है। उनको और उनके साथ आए हुए गायों को पानी चारा देता है। विश्राम के लिए उसके पास गुफाएँ हैं। खाने पीने के लिए कन्द मूल फल हैं। उनको देखकर सदा काल उनका सत्कार करते रहता है, वह धन्य है।।।9।।

राम कृष्ण गायों को बाँधने की रस्सियों को अपने कन्धे के ऊपर रखते हुए गोपालकों के साथ जंगल- जंगल में मधुर गान गाते हुए, वेणु नाद करते हुए जंगम को (चलने वाले जीव को), स्थावर जैसे (न चलने वाले पत्थर जैसे) स्तब्ध करते हैं, स्थावर को जंगम जैसे रोमांचित करते हैं। यह क्या विचित्र है। भगवान सारे जीवियों को प्यार करते हैं। इसी कारण यह साध्य है।।20।।

इस प्रकार व्रज भूमि में विहार करते हुए भगवान की लीलाओं के बारे में व्रज स्त्रियाँ आपस में वर्णन करते हुए तन्मयता से आनन्द विभोर हो गये।।21।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक देव कहते हैं - हेमन्त ऋतु के पहले मास में नन्द गोकुल के कुमारियों ने (जिनकी शादी नही हुयी है) कुमारियाँ हविष्यान्न को लेते हुए कात्यायनी पूजाव्रत को करने लगीं।।1।।

हेमन्त के प्रथम मास को विजयध्वजी में कार्तिक कहा गया है। सत्य धर्मीय व्याख्या में मार्गशीर्ष माना है। दोनों सही है। **चान्द्रः शुक्लादि दर्शान्तः पौर्णमास्यान्तो मासो भूयान** महीने को अमावस्या के बाद अथवा पूर्णिमा के बाद आरम्भ करने की प्रथा है। दोनों को श्रुति स्मृति सही कहते हैं। अमावस्या के बाद मास प्रारम्भ होता है तो मार्ग शीर्ष पुष्य हेमन्त ऋतु होता है। इसमें मार्गशिर्ष मास पहला मास होता है। पूर्णिमा पक्ष में अश्वयुज कृष्ण प्रतिपदा से मार्ग शीर्ष पूर्णिमा पर्यन्त हेमन्त ऋतु बनता है। इसमें पहला मास अश्वयुज कृष्ण प्रतिपदा से कार्तिक पूर्णिमा तक एक महीना होता है। इसको कार्तिक मास मानते हैं। इस मास में कार्तिक स्नान करते हैं। कार्तिक मास के नियामक भगवान दामोदर मूर्ति हैं। कार्तिक स्नान के लिए इसी मास को ग्रहण करते हैं। इस मास में गोप लड़कियों ने व्रत का आचरण किए।

कात्यायनी महामाये *इस मंत्र से गोपियों ने लक्ष्मी की आराधना करते हुए श्री कृष्ण को अपना पति बनाने के लिए उनकी आराधना की। रमा के आवेश के बिना कोई स्त्री भगवान के अंग संग के लिए योग्य नही बनती। इसी कारण गोपियों ने अपने में रमा वेश होने के लिए रमादेवी के कात्यायनी रूप की आराधना की। पिछले जन्म में ये सारे अप्सरा स्त्री थीं। उपनयन से पहले ही हमको अंग संग दो यह प्रार्थना करते हुए वर पा चुकी थीं। श्री कृष्ण उपनयन के पूर्व उन गोपियों से गान्धर्व विधि से विवाह कर उनमें दस लाख बच्चों को पैदा करते हैं। गोपी वस्त्रापहार की कथा को इसके पीछे अर्थ कर लेना चाहिए।* ***कृष्णलीला*** *मान कर व्यंग नही करना चाहिए। श्री कृष्ण लड़कियों से ज्यादा प्यार रखते हैं ऐसा अर्थ नही करना। गोपिका स्त्री भगवान के इष्ट भक्त हैं।*

हे राजा! अरुणोदय के समय में कुमारियों ने जमुना जल में नहाते हुए तट पर बालू से देवी की मूर्ति रचा कर परिमल युक्त गन्ध, माला, धूप, दीप, नैवेद्य और छोटे मोटे पूजा द्रव्यों से प्रति दिन पूजा की।।2,3।।

यहाँ गोपिका बालिकाओं ने लक्ष्मी देवी को गन्ध चढ़ाते हुए श्री कृष्ण के आलिंगन से उनके शरीर की सुगन्ध

पाने की प्रार्थना किए। पुष्पों को चढ़ाते हुए श्री कृष्ण अपने सिर में फूल चढ़ाए यह कामना किए। धूप देकर अपने बालों को श्री कृष्ण धूप से सुखाने की कामना किए। दूध का भोग लगाते हुए अधरामृत माँगे। आभरण समर्पण से रति के बाद अपने को आभरण चढ़ाने की माँग रखे। ताम्बूल देकर श्री कृष्ण से खाया हुआ ताम्बूल लाभ को मागे, पूजा के बाद नमस्कार करते हुए, भगवान के साथ विहार करने में हुआ अपराधों को क्षमा करने को माँगे।

कात्यायनी महामाये महायोगिन्यधीश्वरी।

नन्द गोप सुतम देवी पतिं मे कुरु ते नमः।।

इसका अर्थ - हे देवी कात्यायनी, हे महामाये, हे महायोगिनी, हे जगदीश्वरी, नन्द गोप कुमार भगवान श्री कृष्ण को हमारा पति बनाइए। आप अनुग्रह करें, आपको नमस्कार, इस प्रकार मंत्र का ज़ाप करते हुए गोपिकाओं ने एक मास पर्यन्त पूजा की।।4,5।।

आज भी अनेक कुमारी कन्याएँ इस मंत्र का गुरूमुख से सीखकर उसे अनुष्ठान करके पति को प्रायी हैं।

सुबह ब्राह्म मूहूर्त में अपनी इच्छा से ही उठकर परस्पर हाथों को पकड़ते हुए यमुना जी को जाते समय रास्ते में उच्च स्वर में श्री कृष्ण का नाम संकीर्तन करते हुए जाते थे।।6।।

इस प्रकार श्री कृष्ण में मन को स्थिर रूप से रखते हुए नन्द गोप की बहू बनने की इच्छा से देवी की आराधना की।।7।।

इस श्लोक में भद्रकाली नाम से लक्ष्मी को पुकारा है। भद्र का अर्थ मंगलकर होता है। काली का अर्थ काले रंग वाली दुर्गा नाम की रमारूप हैं। वह विष्णुपत्नी नंद गोप की पत्नी होकर श्री कृष्ण की बहन बन कर अवतार लेकर विन्ध्याचल में निवास करते हुए शुम्भ निशुम्भ दानवों का नाश कर दीं।

एक बार कुमारियों ने प्रति दिन के अनुसार नदी को आकर पहने हुए कपडे को उतार कर पानी में उतरीं और श्री कृष्ण नाम का संकीर्तन करते हुए जल में आनन्द से विहार किए।।8।।

जल क्रीड़ा में उनको आनन्द लेना नही है। वह आनन्द श्री कृष्ण नाम के संकीर्तन से मिलने वाला आनन्द है। वैसे तो जाड़े के दिन में ब्राह्म मुहूर्त में जल और वायु दोनों ठण्ठक से शरीर को काटते हैं।

भगवान श्री कृष्ण योगेश्वर हैं, योगियों के भी स्वामी हैं। कुमारियों के मनोरथ को जानने वाले उनके व्रताचरण सफल हों इस उद्देश्य से वर देने के लिए अपने **साथियों** के साथ वहाँ आए।।9।।

श्री कृष्ण को और दूसरा उद्देश्य हुआ होता तो उनको साथियों को साथ लाने की कोई आवश्यकता नही थी। हमें और एक बात याद रखें किं कात्यायनी व्रत केवल छोटी बालिकाएँ करती हैं। जो बड़ी हो गयी हैं वह पूजा योग्य नही बनती।

श्री कृष्ण उनके कपड़े को उठाकर जल्दी से कदम्ब वृक्ष के ऊपर चढ़े। परिहास करते हुए ठहाका मारकर हँसे, साथी भी हँसे।।10।।

यहाँ कपड़े को उठाने मात्र से वह वस्त्रापहरण नही होता। किन्तु व्यवहार में इसका नाम **वस्त्रापहार** पड़ गया है। यह केवल सांकेतिक है। भगवान जीव के ऊपर छाए हुए अज्ञान के आवरक को योग्य समय में अपहार करते हैं। वस्तुत: अज्ञान से अपने कपड़े को उतार कर नग्न हुई लड़कियों को मर्यादा रक्षक भगवान कपड़े को वापस दे दिए। राघवेन्द्र स्वामी जी अपने **श्री कृष्ण चारित्र मंजरी** में इस बात को लिखते हैं।

हे बालिकाओं! आप लोग यदि अपने वस्त्र को चाहते हैं, तो स्वयं यहाँ तक आकर अपने-अपने कपड़े ले लो मै सत्य बोलतां हूँ, यह हँसी नही है। तुम लोग व्रताचार करती हुयी दुबली हो गयी हो। तुम्हारे साथ हम चेष्टा क्यों करें।।11।।

कठिन व्रत से गोपिकाएँ दुबली बनी थी। केवल दो बार भोजन करना, सूर्यास्त होने के बाद जल भी नही पीना। ब्राह्मी मुहूर्त में उठना, ठंडे जल में नहाना, सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय तक मौन व्रत करना। इन सारे कठिन नियमों को गोपिकाएँ पालन करती थीं। यह श्री राघवेन्द्र स्वामी जी ने अपने कृष्ण चारित्र मंजरी में लिखा है।

मैंने कभी झूठ नही कहा है, चाहे तो इन बालकों से पूछे। आप एक-एक करके आइए अथवा एक साथ आएँ और अपने-अपने कपड़े पाएँ।।12।।

भगवान के परिहास युक्त इस बात को सुनकर गोपियों को अपने तप का फल प्राप्त हुआ मानकर सन्तोष हुआ। वे आनन्द विभोर हो गयीं किन्तु लज्जा से परस्पर मुँह देखते हुए पानी से बाहर नहीं आयीं।।13।।

व्रत समाप्ति के समय में भगवान स्वयं आए हैं, व्रत फल दिया। इससे गोपियों को आनन्द हुआ और लड़के आए हैं। इसके लिए लज्जा से संकोच हुआ।

ऐसा कहते हुए श्री कृष्ण अपने परिहास की प्यार भरी बातों से उनके मन को मोह लिए। आकंठ ठण्डे पानी में खड़ी हुयी बालिकाएँ ठण्डक से काँपती हुयी बोलीं।।14।।

हे कृष्ण! तुम ऐसा अन्यज्ञय नही करना। हम जानते हैं कि तुम नन्द गोप के लाडले पुत्र हो, सारे गोकुल को प्यारे लगते हो। तुम हमारे लिए भी प्यारे हो, थोड़ा हमाी तरफ देखो, हम ठंडक से काँप रहे हैं।।15।।

नील वर्ण के हे सुन्दरांग, हम आपकी चरणदासी हैं। तुम जो कहते हो उसको हम पालते हैं। तुम धर्माधर्म को जानने वाले हो। कृपा करके हमारे कपड़े दे दो। हे महा बली! हम लड़कियाँ ठंडक से पीड़ित

होकर काँप रहे हैं। ये देखो, तुम कपड़े नही दिए तो हम राजा नन्द के पास फरियाद करेंगे।।।6।।

हे सुन्दरी! तुम हमारी दासी है तो, हम जो कहते हैं उसका पालन करना है। यहाँ आकर अपने कपड़े ले लो नही तो मैं देने वाला नही हूँ। राजा को बोलना है तो अभी बोलो। क्रोधित राजा क्या करता है (कपड़े के बिना तुम लोग राजा के पास कैसे जाते हो।।।7।।

तब सारी कन्यायें अपनी मर्यादा को अपने दोनों हाथों से छिपाते हुए ठंढी से लड़खड़ाते हुये जल से ऊपर आयीं।।।8।।

गोपियों के इस मुग्ध मनोहर चर्या को देखकर श्री कृष्ण कपड़े को वृक्ष के ऊपर रखते हुए प्रसन्न हो कर हंसमुख से बोले।।।9।।

तुम लोग व्रत ग्रहण किए हो, किन्तु नग्न होकर जल में उतरी हो। यह आपने देवताओ का अपचार किया है। इस पाप के परिहार के लिए दोनों हाथ सिर कर ऊपर रख के नमस्कार करें और अपने कपड़े ले लें।।20।।

व्रत करते समय नग्न होकर जल में उतरना गलत हो गया। इससे व्रत में लोप हुआ। इसको गोपियों ने समझ लिया। वे व्रत-पूर्ति को चाहने वाली सकल कर्म साक्षी भगवान को दोनों हाथ जोड़ कर नमन किए।।21।।

स्नानं दानं तथा होमं शयनं गमनं भुजिम्।

विवस्त्रो न प्रकुर्वीत कुर्वाणः पापकृद् भवेत्।

स्नान, दान, होम, शयन, गमन, भोजन वस्त्र रहित होकर नही करना चाहिए। किए तो पाप आता है, शास्त्र में इनके लिए निषेध हैं। निषिद्ध कर्म करना देवताओं में अपचार होता है। नदियों में देवताएँ अदृश्य होकर पवित्र स्नान करते रहते हैं। उनके सामने नग्न होकर स्नान करना अपचार होता है। साढ़े तीन करोड़ तीर्थाभिमानी देवताएँ पवित्र जल में सन्निहित रहते हैं। नग्न होकर जल में नहाने उतरे तो उतने देवताओं का अपचार होता है।

नाप्सु मूत्र पुरीषे कुर्यात्। न निष्ठीवेत्। न विवसनः स्नायात्। गुह्यो वा एषोऽग्निः। एतस्याग्नेरनति दाहाय। जल में अग्नि देव का विशेष सन्निधान रहने के कारण उसमें मल मूत्र विसर्जन नही करना, थूकना नही और नग्न होकर नहाना नही यह श्रुति वाक्य हैं। इससे देवता क्रोधित होते हैं। इससे जगन्माता रमा देवी का आवेश हमारे में नही होता, इससे भगवान हमारे से शादी नही करेगा । इस भय से लज्जा छोड़कर वे दोनों हाथों को जोड़ कर भगवान को नमस्कार किए। वे ठीक तरह से जानते थे कि हरि नमस्कार सारे पापों का प्रायश्चित है।

इस श्लोक के बाद कई ग्रन्थों में और तीन श्लोक आते हैं। वे प्रक्षिप्त लगते हैं। उनका अर्थ होता है कि

गोपिका ने एक हाथ से गुप्तांग को छिपा कर एक हाथ से नमन किए। इसके उत्तर रूप में श्री कृष्ण बताए कि एक हाथ से अच्युत को नमस्कार किए तो उस हाथ को काट डालना ही सही शिक्षा होता है। इसके लिए दोनों हाथ जोड़ कर नमन करे। गोपिकाएँ व्रत लोप के भय से नमस्कार कर रही हैं, इसके लिए उनका दोनों हाथों को जोड़ना स्वाभाविक है। आगे के श्लोक में भागवत ही कहता है कि भक्ति-भाव से वे दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किए। इसी कारण इन तीनों श्लोको का विवरण हमने नही दिया है।

लड़कियों ने भक्ति से हमारे कथनानुसार दोनों हाथ जोड़कर हमे नमस्कार किए, इससे सन्तुष्ट भगवान श्री कृष्ण उनको कपड़े दे दिए। वे परम दयालु हैं, उनकी भक्ति से वे सन्तुष्ट हैं।।22।।

गोपिकाओं के नग्न होकर जल विहार करते समय उनकी जानकारी के बिना श्री कृष्ण ने वस्त्रों को उठाकर बड़ी वंचना की है, वे लोग अन्य बालकों के सामने वस्त्र विहीन होकर जल से ऊपर आने के लिए विवश बनी हैं। खेल की गुड़ियाँ की तरह करते हुए लोगों के सामने हँसी उड़ायी है। ये सारे करने के बाद भी गोपिकाओं को श्री कृष्ण के ऊपर क्रोध नही आया। स्वयं जो व्रत ग्रहण किए थे, जिस व्रत से वे भगवान श्री कृष्ण को पति रूप में पाना चाहती थीं, वही प्रियकर साक्षात् आकर व्रत पूर्ति फल रूप अनुग्रह करते हुए अनायास ही उनका सहवास मिलने के कारण क्रोध के बदले में वे आनन्द को ही पायीं।।23।।

भगवान की पूजा, अर्चा, स्तोत्र, नमस्कार करते समय लज्जा को छोड़ना चाहिए। इस लज्जा को छुड़ाने के लिए भगवान श्री कृष्ण अपने साथियों को लाए हैं। जीव को जीवाच्छादक, परमाच्छादक नाम के दो आच्छादन कपड़े के रूप में आवृत्त रहते हैं। भगवान का अनुग्रह हुआ तो, उनकी आज्ञा को मानने वाले का दोनों आच्छादन भगवान अपहरण करते हैं। उस समय भगवान के समाने नग्न होने के लिए कोई लज्जा का अनुभव नही करता। भगवान से छिपा हुआ कुछ भी हमारे पास और हमारे शरीर में नहीं रहता है। लौकिक में संकोच लगने वाला यह नग्नत्व भगवान के स्मरण आने से उनका अनुग्रह होने से चला जाता है। बच्चों को लज्जा रहना स्वभाविक है। उसका निवारण करने के लिए ही भगवान अपने मित्रों को लाए थे। इस विचार को समझ गये तो हमे इस रूपक का अर्थ ठीक तरह से समझ में आता है।

अपने प्रियकर भगवान श्रीकृष्ण काअपने हाथ से छूकर प्रसाद रूप में दिए हुए कपड़े को पहनकर गोपियाँ मोहित होकर वहीं खड़ी रहीं। वे वहाँ से हिलने का विचार भी मन में नहीं लायीं। उनके मन को भगवान श्री हरि चुराये थे। अपने प्रियकर का दर्शन स्पर्शनादि अंग संग को पाने की इच्छा से लज्जा युक्त होकर उनको ही अपलक देखते हुये खड़ी रहीं। ।।24।।

अपने पादस्पर्श की इच्छा से व्रत करने वाली इन अबलाओं के मन के संकल्प को जानते हुये भगवान कहते हैं। ।।25।।

हे साध्वियाँ, मुझको पति रूप में पाने के लिए आप संकल्प करते हुए व्रत कर रही हैं, यह मैं जानता हूँ। मैं आपकी इच्छा को अनुमोदित करता हूँ। वह पूर्ण होना चाहिए।।26।।

मया अनुमोदितः इस शब्द से यहाँ दो अर्थ होते हैं। मैं अनुमोदन करता हूँ इसका अर्थ यह विचार रमा से पहले ही अनुमोदित है क्योंकि उन सारी गोपियों में रमा का अंश है। रमा अंश के बिना श्रीहरि और किसी का संपर्क नहीं करते।

मुझमें जो मन रखते हैं, उनकी लौकिक कामनाएँ भूना हुआ बीज के समान अंकुरित नहीं होतीं। वैसे ही आपके मन में सांसारिक भोगासक्ति उत्पन्न नहीं होगी।।27।।

हे बालिकाओं! आपके व्रत का फल दिया है। आप अब अपने घर को चले जाएँ। आगे आने वाले शरत काल के पूर्णमासी की रात्र में तुम हमारे साथ विहार कर सकेंगी। इसी के लिए अब आप व्रत कर रही हैं ना।।28।।

भगवान की आराधना करने हेतु देवता स्त्रियाँ उनके लिए प्रिय मधुर भक्ति से आराधना करने के लिए भगवान अवतार ले चुके हैं। यह भगवान की आज्ञा से ही हुआ है। इसका अनुसरण कोई कर नहीं सकता।

उस समय भगवान श्री कृष्ण सात वर्ष के हुए थे। दस बारह वर्ष की कन्याओंसे खेले हैं। उनमें एक लड़की भी बड़ी नही हुई थी। श्री कृष्ण अकेले नही आए थे। उनके साथ उनके बहुत से मित्र थे। भागवत, ब्रह्म सम्मत माना जाता है। भागवत के प्रति श्लोक में प्रति पद में वेद का अर्थ भरा हुआ है। भगवान की लीला को हमें वेद के गौरव से देखना है।

श्री शुकदेव जी कहते है- इस प्रकार कुमारियों ने अपनी इच्छा को पाकर भगवान की आज्ञा लेकर उनकी पाद कमल का ध्यान करते हुये मन न होते हुए भी अपने घर को चली गई। ।।29।।

एक दिन भगवान श्रीकृष्ण, बलराम और गोपालकों के साथ गाय को चराते हुए वृंदावन से बहुत दूर निकल गये। ।।30।।

गर्मी के कड़क धूप में खड़े होकर स्वयं धूप को सहते हुये लोगों को छतरी के रूप में छाया को देने वाले वृक्षों को देखते हुये श्रीकृष्ण अपने साथियों से कहते हैं। ।।31।।

हे स्तोककृष्ण, अंशु, श्रीदाम, सुबल, अर्जुन, विशाल, ऋषभ, तेजस्वी, देवप्रस्थ, वरूथप तुम सब लोग देखो कि ये वृक्ष अन्य लोगों के हित के लिए जीवित रहते हैं। स्वयं धूप, वर्षा और ठंडक को सहते हुए हमको उनसे रक्षा करते हैं। ।।32, 33।।

यह विप्रपत्नियाँ विप्रों का विरोध सहते हुए गोपालकों को अन्न देने वाली हैं। इस बात की पूर्व पीठिका में

भगवान श्रीकृष्ण इन बातों को कह रहे हैं।

सारे प्राणियों को आश्रय देने वाले इनका जीवन धन्य है। सज्जनों के पास आये हुये कोई याचक खाली हाथ से नही जाता। वैसे ही इन वृक्षों के पास कोई भी आये तो अपनी चाह को पाए बिना नहीं जाता।।34।।

पत्ती, फूल, फल, छाया, मूल, छाल, लकड़ी, सुगन्ध, गोंद, राख, अंकुर ये सारे वस्तु वृक्षों से लोगों को मिलते हैं। वृक्ष संकुल मानव जाति का उपकार करता रहता है।।35।।

अन्य वृक्षों के लिए ज्ञान नहीं रहता, किन्तु वृंदावन में रहने वाले वृक्ष देवताओं के अवतार होने के कारण वे ज्ञानपूर्वक उपकार करते हैं।

प्राण, धन संपद, बुद्धि और बातों से अन्य लोगों को उपकार करना ही देह लेकर जन्म लेने की सार्थकता है।।36।।

इस प्रकार कहते हुए श्रीकृष्ण नीचे झुका हुआ पत्ती, फूल, फलों से भरे हुए वृक्ष के बीच में से यमुना तट को चले गये। लगता था कि ये वृक्ष श्रीकृष्ण को गोपिकाओं की तरह छूना चाहते हैं।।37।।

राजा वहाँ गोपालकों ने मधुर शीतल, आरोग्यकर और स्वादु यमुना जल को यथेच्छ पिये और गायों को पिलायें।।38।।

यमुना तट पर हरे-भरे प्रदेश में गायों को चराते हुए गोपालकों को भूख लग गयी। वे श्रीकृष्ण के पास आकर भूख के बारे में बतलाए।।39।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

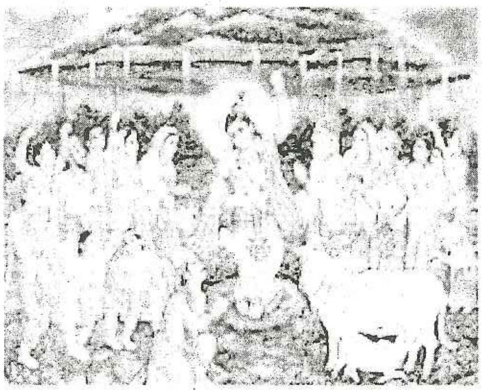

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - इक्कीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

गोपालक कहते हैं - हे महाबलशाली राम, दुष्ट संहारक कृष्ण, हमें बहुत भूख लगी है। इस भूख को मिटाने के लिए आप कुछ उपाय कीजिये।।1।।

गोपालकों की इन बातों को सुनकर श्रीकृष्ण कहते हैं। इस बहाने से भगवान को विप्र पत्नियों के ऊपर अनुग्रह करना है।।2।।

श्रीकृष्ण कहते हैं- यहाँ एक यज्ञ चल रहा है। वहाँ वेद जानने वाले ब्राह्मण स्वर्ग को पाने की इच्छा से आंगिरस नाम का एक सत्रयाग चला रहे है। तुम वहाँ जाओ।।3।।

वहाँ जाकर तुम लोग उन ब्राह्मणों से अन्न की याचना करो। वहाँ पूज्य बड़े भाई का और मेरा नाम बतलाइये। हम आपको भेजें है इस बात को उनको समझाइए।।4।।

क्या भगवान को भूख लगता है? भगवान यहाँ अन्न माँगते हैं। रामकृष्णावतार में भगवान जिद्द से हठ से माँ का दूध पिए हैं। प्रलयकाल में ब्रह्मा जी के सौ वर्ष तक सोने वाले भगवान को क्या भूख प्यास होता है। भगवान को जनम ही नही है तो भूख प्यास कहाँ का है यह केवल लीला मात्र है।

भगवान की इस आज्ञा को सुनकर वे गोपालक हाथ जोड़ते हुए नमस्कार करने के बाद ब्राह्मणों के पास चले गये। वहाँ वे उनको दंडवत नमस्कार करते हुए राम-कृष्ण के नाम से अन्न का याचन किये।।5।।

हे ब्राह्मण देवता! आपका कल्याण हो। सुनिये, हम गोपालक हैं। श्रीकृष्ण के और श्रीराम के आज्ञा पालन करने वाले हैं। इनके कथनानुसार आपके पास आये है। इसको आप जानिये।।6।।

राम कृष्ण यहाँ नजदीक में गाय चरा रहे हैं। वे बहुत भूखे हैं। आपसे अन्न पाना चाहते हैं। आप ब्राह्मण लोग धर्म में बहुत ज्ञान रखते हैं। आपको यदि अन्न दान में श्रद्धा है तो अन्न चाहने वाले उनको और हमको अन्न दान दीजिए।।7।।

यज्ञ में पशुबलि देते हैं। ऐसे यज्ञों में वपाहोम के पहले यज्ञदीक्षित यजमान के अन्न को स्वीकारना

नहीं। वैसे ही सौत्रामणि याग में दीक्षित के अन्न को ग्रहण करना निषिद्ध है। अन्य यागों में दीक्षित का अन्न ग्रहण करने से कोई दोष नहीं है।।8।।

यज्ञदीक्षित के अन्न को ग्रहण नहीं करना चाहिए, उनसे दिए हुए वस्त्र को नहीं पहनना, उसकी निंदा नहीं करना। श्रौत्र सूत्र में यह सामान्य नियम है। किन्तु इसको संकोच करते हैं। पशुबलि यज्ञ में यज्ञ के अंत में वपा होम तक दीक्षित का अन्न ग्रहण निषेध है, बाद में ग्राह्य है। सौत्रमणि यज्ञ में मद्य को आहुति देने से दीक्षित का अन्न सदा के लिए निषिद्ध होता है।

गाय को चराने वाले बच्चों को क्या यह सारे ज्ञान होता है? ये गाय चराने वाले बच्चे वैश्य है। वैश्यों को सांग वेद अध्ययन करने का अधिकार है। वेदाध्ययन करने में उन्हें पीछे पड़ने की कोई जरूरत नहीं। किन्तु वेद शिक्षण देने में उनको अधिकार नहीं। ब्राह्मण वेद शिक्षा दे सकते हैं। ये बालक देवांश जात होने के कारण सकल शास्त्रों का प्रमेय उनको प्रतिभा से ही मालूम होता है। यही देवांश सम्भूत का लक्षण है।

इस प्रकार भगवान गोपालकों के मुखान्तर ब्राह्मणों से अन्न याचना करने के बाद भी ब्राह्मण उसको अनसुना कर दिये। वे मूर्ख हैं, वे स्वर्गादि फल की कामना करते हुए यज्ञ करने वाले मोक्ष देने वाले भगवान को भूल गये।।9।।

सत्कर्म आचरण करने वाला देश, काल, हविष् इत्यादि पदार्थ, मंत्र, उसके अनुष्ठान, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, संकल्प इनसे मिलने वाले पुण्य ये सारे जिसके अधीन हैं वह स्वयं भगवान अन्न याचना कर रहे हैं। ये ब्राह्मण उनको सामान्य गाय चराने वाला समझ रहे हैं। अपने देहाभिमान से मिथ्याज्ञान वाले हैं।।11।।

अपनी कामना को सुनते हुए हाँ, ना, दोनों ना कहते हुए ब्राह्मण मौन रहे। इसको देखकर निराश होकर श्रीकृष्ण के पास आकर कह दिये।।12।।

यहाँ ब्राह्मण चुप रहे यह गलती हो गयी। बाद में पश्चाताप से यह गलती को स्वीकार करते हैं। वे ब्राह्मण सज्जन होते हुए भी भगवान की लीला को न समझते हुए अपराध किये हैं। देवेन्द्र भी एक बार श्रीकृष्ण को मानव समझते हुए अपराध किया। पश्चात्ताप से मन शुद्ध होता है। ये ब्राह्मण भी पश्चात्ताप से शुद्ध हुए।

भूखे बच्चे को अन्न ना देना कठिन हृदय का लक्षण नही है। उनकी दृष्टि से यज्ञ दीक्षित का यज्ञ समाप्ति के पहले अन्न देने से यज्ञ में लोप होता है। इस भय से वे अन्न नहीं दिये। किन्तु निष्ठुरता से नहीं बोल सके। इसके लिए वे चुप हैं। भगवान को विप्र पत्नियों की सेवा लेना है।

जगदीश्वर भगवान श्रीकृष्ण गोपालकों की बातों को सुनकर हँसते हुए उनको कहे।।13।।

तुम एक बात करो। उन ब्राह्मणों की पत्नियों के पास जाओ। मैं और बड़े भाई दोनों यहाँ आए हैं। इस बात को उनको समझाओ और उनसे अन्न माँगो। वे हमसे प्यार करते हैं। मुझमें सदाकाल मन रखने वाले वे तुमको अन्न दे देंगे।।।4।।

भूखे को अन्न देने में स्त्रियाँ पुरुष से ज्यादा उदार होती हैं। **विप्राः पश्चिम बुद्धयः** ब्राह्मण को देरी से बुद्धि आती है। यह लोकोक्ति है।

श्रीकृष्ण के आदेशानुसार गोपबालक यज्ञशाला को पुन: जाकर ब्राह्मण स्त्री जहाँ अलंकृत होकर बैठी थीं वहाँ जाकर नमस्कार करते हुए विनीत होकर बोले।।।5।।

हे बाह्मण की पत्नियों! आपको हम नमस्कार करते हैं। हमारी बातों को सुनिये। यहाँ पास में श्रीकृष्ण जी पधार चुके हैं। वे ही हमको यहाँ भेजे हैं।।।6।।

बलराम और गोपालकों के साथ गायों को चराते-चराते वृन्दावन से बहुत दूर यहाँ आ चुके हैं। वे बहुत भूखे हैं। उनको और उनके साथी हमको भी अन्न दान दीजिए।।।7।।

विप्रपत्नी ज्ञानी थीं, वे श्रीकृष्ण को भगवान मानती थीं। बहुत पहले से श्रीकृष्ण कथा को सुनते हुए उनसे मोहित थीं। सदाकाल उनके दर्शन करना चाहती थीं। अब स्वयं भगवान श्रीकृष्ण अपने पास आये हैं। उसको सुनकर वे संभ्रम से उठकर खड़ी हो गयीं।।।8।।

वे भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय नाम के चार तरह के छ: रसयुक्त वाले अन्न को पात्रों में भरकर समुद्र के प्रति नदी जैसे बहती हैं वैसे अपने प्रियकर गोपाल के प्रति दौड़ती आयीं। वे केवल अन्न को गोपालकों के हाथ में देकर नहीं भेजे।।।9।।

तब उनके पति, पुत्र, सहोदर, बन्धु सारे रुकाने का प्रयास किए। किन्तु वे कीर्तिशाली भगवान के बारे में बहुत काल से सुन चुकी थीं, उन्ही में मन रखी थीं।।20।।

अशोक वृक्ष की नई पत्तियों से शोभायमान यमुना तट के उपवन में गोपालकों से परिवृत्त होकर चलने वाले श्रीकृष्ण को उन्होंने देखा।।21।।

श्रीकृष्ण पीताम्बर धारण किए हैं। उनके श्यामवर्ण से पीताम्बर को ज्यादा शोभा आ गयी है। वनमाला, मोर के पंख, नये पत्ती से अलृकंत होकर नट के समान सुन्दर वेष धारण किये हैं। एक हाथ को गोपालकों के ऊपर रखे हैं, दूसरे हाथ में एक कमल के फूल को पकड़े हैं, कानों में दो सुन्दर कमल के फूल और घूघंरू से शोभायमान मुँह, उसमें मंदहास वाले भगवान श्रीकृष्ण को विप्रपत्नियों ने देखा।।22।।

हे राजा! सुनो, ब्राह्मण पत्नियों ने बहुत दिनों से कान को प्रिय लगने वाली श्रीकृष्ण की कथाओं को

वे सुन चुकी थीं। अब वे उसी कृष्ण को अपने आँखों से देख रही हैं। वे आँखों के महाद्वार से श्रीकृष्ण को अपने हृदय मंदिर में स्वागत करते हुए वहाँ उस मूर्ति को तृप्ति होते पर्यन्त आंलिगन करते हुए इतने दिनों के विरह के ताप से मुक्त हो गयीं। पूर्ण ज्ञान पाए हुयें ज्ञानी भगवान को अपने हृदय में आंलिगन करते हुए अपने संसार के ताप को मिटा देते हैं।।23।।

पति, पुत्र आदि सर्वस्य को त्याग कर अपने पास केवल उनके दर्शन हेतु आए हुये उन विप्र पत्नियों को श्रीकृष्ण हंसमुख से स्वागत किए।।24।।

भगवान कहते हैं-हे भाग्यवती! आपका स्वागत है, बैठिये। कहिये, मैं आपके लिए क्या करूँ, हमको देखने के लिए आप आयी हैं, यह युक्त ही है।।25।।

अपनी उन्नति को चाहने वाले बुद्धिमान लोग अपने प्रिय लोगों की तरह मुझमें भी निर्निमित्त निरन्तर प्यार करते हैं।।26।।

सबको अपने प्राण, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, शरीर, पत्नी, पुत्र, धन, कनक सारी वस्तु प्रिय लगती हैं, उसका कारण उनसे भी प्रियतम मेरा सन्निधान उसमें रहता है। तो मुझसे ज्यादा और किसको प्यार करते हैं।।27।।

इसी कारण आप लोग प्यार से यहाँ आकर मेरा दर्शन किए हैं। आप लोग जल्दी यज्ञ शाला को चलिए। आपके पति गृहस्थ ब्राह्मण आपके बिना सत्र याग को कैसे पूरा करेंगे।।28।।

विप्रपत्नी कहती हैं- प्रभु, आपको इतना निष्ठुर नहीं होना चाहिए। हमारे हाथ को नहीं छोड़ना। आप चाहिए ही कहें हैं कि, **ये भजन्ति तु मां भक्तया, तां स्तथैव भजाम्यहम्** । भक्ति से मेरा भजन करने वाले को मैं पाता हूँ। अपने वचन की रक्षा करें। हम अपने सारे बन्धुओं का विरोध को न गणना करते हुए आपके पाँव से गिरा हुआ निर्माल्य तुलसी को उठाकर सिर में रखने के उद्देश्य से यहाँ तक दौड़कर आए हैं।।29।।

हे शत्रुदमन करने वाले वीरवर, अब हमको हमारे माता-पिता अथवा पति-पुत्र वापस नहीं लेगें। बन्धु बान्धव भी छोड़ दिये हैं। आपके चरण में शरण आये हमको हमारे ऊपर आप अनुग्रह करें। अब हमको आपका पादकमल छोड़कर अन्य कहीं आश्रय नहीं हैं।।30।।

पति की आज्ञा के उल्लंघन से जो पाप आता है उसका भी निवारण हो इस प्रार्थना को सुनकर भगवान उनको मोक्ष देने वाले है। तब नरक की चिन्ता करने की आवश्यकता नही।

श्रीकृष्ण कहते हैं- हमारे पास आने के कारण आपके बन्धु बान्धव आपका तिरस्कार नहीं करेंगे।

अन्य लोग भी आपसे घृणा नहीं रखेंगे। देवता लोग भी आपको साध्वी मानेंगे। आप वापस जाइये।।3।।।

इस जगत में मनुष्य को प्यार और अनुराग बढ़ाने के लिए शरीर संबंध ही कारण नहीं बनता। मेरा प्यार आपके साथ है। मुझमें मन रखे हुए आप मुझको जल्दी ही पायेंगे।।32।।

शुकदेव जी कहते हैं- श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर ब्राह्मण पत्नियाँ यज्ञशाला को वापस चली गये। उनके पतियों ने उनके ऊपर क्रोध नहीं किये। वे उनके साथ यज्ञ समाप्ति किए।।33।।

श्रीकृष्ण की माया शक्ति से ब्राह्मण उनको ठीक तरह से नहीं जान सके थे। जब भगवान उस माया शक्ति को हटा दिये तब वे श्रीकृष्ण को भगवान के रूप में देखे। यज्ञ का अन्न पूर्णाहुति के पहले कोई नहीं खाना यह शास्त्रों का यानी भगवान का ही आदेश है। मैं भूखा हूँ, मुझे अन्न दीजिये यह भी भगवान का ही आदेश है। पहले वाला आदेश सामान्य है तो दूसरा वाला विशेष है। जब विशेष रहता है, तब सामान्य को संकोच करना पड़ता है। यहाँ श्रीकृष्ण को अन्न देने के कारण यज्ञ में कोई लोप नहीं हुआ। बदले में ज्यादा फल ही मिला।

एक विप्रपत्नी उसका पति के बलात्कार के कारण श्रीकृष्ण के पास जा नहीं सकी। वह भगवान का ध्यान करते हुए मन में उनका आलिंगन करते हुए अपने कर्मबन्ध रूप शरीर को त्याग दी।।34।।

विप्रपत्नियों द्वारा दिए हुए चार विध के अन्न को भगवान गोपालकों को खिलाते हुए स्वयं ग्रहण किए।।35।।

भगवान स्थूल अन्न को ग्रहण नहीं करते। किन्तु अवतारों में भगवान को विषयभोग रहता है। यह गीताभाष्य और प्रमेय दीपिका में आया है।

इस प्रकार लीलामानुष विग्रह वाले भगवान श्रीकृष्ण मनुष्य अवतार में मनुष्य के समान लीला करते हुए अपने आकार चाल चलन से गोप गाय और गोप बालिकाओं को संतोष देते हुए विहार किए।।36।।

इसके बाद वे ब्राह्मण भगवान कृष्ण को साक्षात् अवतार मानते हुए अपने कृति से पश्चात्ताप किए। वे मनुष्य के समान लीला करते हुए हमारे अन्न की कामना करते समय हम उनका तिरस्कार करते हुए बड़ी भूल की।।38।।

हमारी पत्नियाँ भगवान श्रीकृष्ण में अलौकिक भक्ति रखती हैं। हममें वह भक्ति नहीं है। ऐसे विचार करते हुए अपनी भर्त्सना की।।38।।

हम भगवान के विमुख बने, हमारे जन्म के लिए धिक्कार हो, हमारे बुद्धि को, हमारे चाल-चलन को धिक्कार हो। हमारे पाण्डित्य को धिक्कार हो। हमारे याग कर्म कौशल्य को धिक्कार, हमारे कुल को धिक्कार हो।।39।।

भगवान की मोहक शक्ति ज्ञानियों को भी मोहित करती है। वैसे तो हम ब्राह्मण अन्य लोगों को कर्तव्य के बारे में उपदेश देना हमारा काम है। किन्तु हम अपने कर्म को ही छोड़ दिये, अज्ञ बन गये।।40।।

यहाँ देखिये, हमारी पत्नियाँ स्त्री होते हुये भी संसार के मृत्यु पास को नाश करने वाले जगद्गुरु श्रीकृष्ण में उनकी परिपूर्ण भक्ति है।।41।।

हमारे जैसे इनको उपनयन नहीं है, गुरुकुल वास नहीं है, तप, ब्रह्म विचार, आचार, सत्कर्मानुष्ठान ये सारे नहीं हैं।।42।।

ये सारे होते हुए भी इन लोगों की योगेश्वर, ब्रह्मादि देवताओं के स्वामी, देव-देवताओं के स्तुति पात्र श्रीकृष्ण में अनन्य भक्ति है। ये सारे करने वाले हमें वह भक्ति नहीं मिली है।।43।।

हम संसार सुख पाने के होड़ में अपने कर्तव्य को भूल गये। भगवान श्रीकृष्ण सज्जनों के रक्षक इन गोपालकों की बातों से वह ज्ञान हमें दिये।।44।।

नही तो पूर्ण काम, अन्यों को मोक्ष देने वाले जगदीश्वर को हमारे से क्या होने वाला है। यह केवल भगवान की लीला है।।45।।

महालक्ष्मी भी भगवान के पादस्पर्श करने हेतु अपने चांचल्य को दूर रखकर बार-बार सेवा करती हैं, ऐसे भगवान श्रीकृष्ण का हमारा अन्न माँगना केवल हमको मोहित करने के लिए है।।46।।

देश,काल, द्रव्य, मंत्र, अनुष्ठान, ऋत्विज, अग्नि, देवताओं, यजमान, संकल्प, पुण्य ये सारे उन्ही के ही अधीन है। योगेश्वरों का स्वामी भगवान विष्णु कृष्ण रूप में अवतार लिए हैं, इसको सुनने के बाद भी हम मूढ बनकर उनको नही पहचाने।।47-48।।

भगवान, श्रीकृष्ण रूप से आये हुए नित्य ज्ञानी आपको हमारा नमन। आपके मोहक शक्ति से हम बुद्धि खोकर काम्य कर्म में मग्न रहते हैं। आपके प्रभाव को न जानने वाले हमको क्षमा करें।।49-50।।

श्रीकृष्ण में अपराध किए ब्राह्मण उस अपराध के परिमार्जन के लिए उन्हीं का ध्यान किए। मन में राम कृष्ण का दर्शन करने की इच्छा होते हुए भी कंस के भय के कारण नहीं गये।।51।।

पश्चात्ताप से भक्ति और बढ़े, इस उद्देश्य से भगवान ब्राह्मणों में अपने मोहक शक्ति से अज्ञान बढ़ा दिये। ब्राह्मण ज्ञान को पाने के बाद भी भगवान के पास जाने के लिए कंस के कारण डरते रहे। इससे यह व्यक्त होता है कि, पूर्णज्ञान पाने के लिए हमारे प्रयत्न की भी आवश्यकता होती है।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बाँईसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुखदेव कहते हैं - भगवान श्रीकृष्ण बलराम जी के साथ वृंदावन में वास करते समय एक दिन गोपालक इन्द्र यज्ञ करने की तैयार करने में लगे थे।।1।।

उसको जानते हुए भी सर्वज्ञ भगवान श्रीकृष्ण विनय से नंदगोप आदि बड़े लोगों को नमस्कार करते हुए पूछे।।2।।

पिताजी ये क्या हो रहा है, यह उत्सव क्यों कर रहे हैं। इसका फल क्या है? किस देवता के उद्देश्य से इसको कर रहे हैं। इससे क्या साधना होती है।।3।।

पिताजी, मुझे यह बतलाइये। मैं इसको सुनना चाहता हूँ। सज्जन लोग किसी बात को छुपाते नहीं। उनको हमारा और अन्य लोगों से ऐसे भेदभाव नहीं रहता। अपने मित्र शत्रु और तटस्थ ऐसे भी व्यत्यास नहीं करते। व्यक्ति के स्वभाव और योग्यता के अनुसार भेद होता है। अन्यथा भेद नहीं करना चाहिए। शत्रु को दूर रखना चाहिए। तटस्थ से अन्तर रखना चाहिए। इष्ट मित्रों में कुछ छुपाना नहीं चाहिए। उनको अपने के समान समझना चाहिए।।4, 5।।

कई लोग ठीक तरह से समझ कर कर्माचरण करते हैं। बहुत से लोग न समझते हुये कर्माचरण करते हैं। जो समझ कर करता है, उसको कर्मफल पूर्ण रीति से मिलता है। जो बिना समझ के कर्म करता है उसको फल नहीं मिलेता।।6।।

अब आप मुझे यह ठीक तरह से समझाइये कि आप करने वाले इस कर्म को अपने विचार के अनुसार कर रहे हैं अथवा अन्य लोग करते हैं उसका अनुसरण कर रहे हैं।।7।।

नंदगोप कहते हैं, भगवान देवेन्द्र हमें जल देने के कारण उनको वर्षा का देव मानते हैं। मेघ उनके शरीर होते हैं। वह मेघ हमारे जीवन के कार्यकारिता को आवश्यक जल देते हैं।।8।।

बेटा, इसके लिए हम मेघों के राजा देवेन्द्र की आराधना करते हैं। वे पानी बरसाने का और न

बरसाने की शक्ति रखते हैं। पानी बरसने से आहार वस्तु उत्पन्न होता है। उन्हीं की आराधना में लोग यज्ञ करते हैं।।9।।

यज्ञ करने वाले यज्ञशेष अन्न को खाकर जीवित रहते हैं। धर्म, अर्थ और काम नाम के त्रिवर्ग नाम के फल को साधते हैं। उनके यत्न को फल देने वाले भी देवेन्द्र हैं।।10।।

कुल परम्परा से आया हुआ इस धर्म कार्य को काम लोभ भय अथवा द्वेष से छोड़ना क्षेम कारक नहीं है।।11।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- पिता की इन बातों को गोकुल वासियों ने भी सिर हिलाते हुए स्वीकार किया। इसको देखकर श्रीकृष्ण इन्द्र के क्रोध को बढ़ाने के उद्देश्य से अपने पिता से कहें।।12।।

श्री भगवान जी कहते हैं- कर्म फल देने वाले भगवान नारायण होते हैं। उन्हीं से जीव जन्म पाता है। उन्हीं से सृष्टि का लय होता है। उन्हीं से सुख व दुःख भय व क्लेश को जीव पाता है।।13।।

उत्पत्ति, स्थिति, लय, सुख - दुःख, भय - क्षेम ये सारे कर्म के कारण होता है, यह भागवत का मन्तव्य है ऐसा लगता है। मानव प्रवृत्ति बुद्धि पूर्वक होती है, बुद्धि केवल चेतन में होती है, जड़ कर्म नियमन नही कर सकता। कर्म चेतन के अधीन यह मानने के बाद भी सामान्य चेतन सारे नियमन नही कर सकता, यह नित्य अनुभव की बात है इसका अर्थ चेतनाचेतन से विलक्षण भगवान ही पूरा नियमन कर सकता है। यही सही मन्तव्य भागवत का है।

कर्म फल देने वाले अन्य छोटे देवतागण हैं, किन्तु वे अमुख्य हैं। वृक्ष से उत्पन्न हुए फल वृक्ष के ही आश्रय से जैसे रहते हैं। वैसे अन्य देवतागण नारायण से जन्म लेते हैं और उन्हीं के आश्रय में रहते हैं। काम्य कर्म करने वाले अज्ञानी को वे काम्य कर्म फल देते हैं। किन्तु निष्काम कर्म करने वाले ज्ञानी को वे मोक्ष देने में समर्थ नहीं होते।।14।।

लोग अपने-अपने कर्मानुसार भगवान से फल पाते हैं। उनके कर्म को स्वतंत्र रहने वाले भगवान जो फल देते हैं उसको देवेन्द्र अपनी इच्छानुसार बदल नहीं सकते। ऐसे देवेन्द्र से हमें क्या मिलने वाला है।।15।।

कर्म करने वाले सर्वतंत्र स्वतंत्र श्रीहरि के अधीन होते हैं, उनके अनुसार वे काम करते रहते हैं। इसी कारण देव, दानव मानव से भरा हुआ यह जगत स्वतंत्र हरि के अधीन होकर रहता है।।16।।

जीव के लिए अच्छा और बुरा कर्म करने में समर्थ शरीर को भगवान ही देते हैं और अंत में वे ही लेते हैं। जीव का हरि ही शत्रु मित्र होते हैं, वे ही सुख व दुःख को उत्पन्न करते हुए बंधक बनाते हैं। निष्काम कर्म के फलदायक होकर, गुरु होकर, ज्ञान देते हुए अन्त में मोक्ष को भी देते हैं।।17।।

इसी कारण सर्वतंत्र स्वतंत्र श्रीहरि के अधीन होकर कर्म करते हुए कर्मनियामक हरि की आराधना करना चाहिए। स्वयं को उपकारक बनने वाले श्रीहरि की आराधना ही श्रेष्ठ है।।18।।

ब्राह्मण अध्यापन वृत्ति से, क्षत्रिय राजकारण से, वैश्य कृषि वाणिज्य, पशुपालन से, शूद्र परिचर्या से अपना जीवन करना चाहिए।।19।।

कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा, कर्जा देना ये चार वैश्यों का जीवनोपाय है। हम गोरक्षा से अपना जीवन व्यतीत करते हैं।।20।।

सत्व रज तम ये तीन गुणों के नियमन करने वाले विष्णु के तीन रूप सृष्टि स्थिति और लय के लिए कारण होते हैं। रजोनियामक रूप से अनेक रूप वाला यह प्रपंच एक से एक दीप जैसे जन्म लेते हैं।।21।।

विष्णु भगवान के रजोनियामक रूप के प्रेरणा से मेघ सारे स्थानों में पानी को बरसाते हैं। वर्षा से मिलने वाला पानी से लोग जीवित रहते हैं। इसके बीच में इन्द्र का क्या काम है।।22।।

पिताजी, हमारे लिए न गाँव है, न ही घर है, न शहर है। हम कहीं भी घर बाँधते नहीं। सदाकाल जंगल में फिरने वाले वनवासी लोग हैं।।23।।

अपने जीवन के लिए किसी एक को मुख्य रूप से आश्रय करने के बाद उसको बदलने वाला क्षेम नहीं पाता है। जैसे पति को पाने के बाद स्त्री परपुरुष की आश्रय करे तो नाश होता है।।24।।

इसी कारण हमारे जीवन के मुख्य आधार गो, ब्राह्मण और इस गोवर्धन पर्वत को प्रतीक करते हुए हम इसमें हरि की आराधना करेंगे। इन्द्र की आराधना के लिए आप जो सामान लाए हैं उन्हीं से हम यह पूजा करेंगे।।25।।

अनेक रीति से पाक, अन्न, सूप इत्यादि और मिष्ठान और छप्पन भोग कर सकते हैं। सारी गायों के दूध का उपयोग यहीं हो।।26।।

वेद पाठ करने वाले ब्राह्मण अग्नि में होम करें। उनको छह रसयुक्त अन्न दान दीजिए। गोदान के साथ बहुत दक्षिणा दीजिए।।27।।

कुत्ता, चंडाल, पतित से लेकर सबको उनको यथायोग्य अन्न दान करिये। गाय को चारा दीजिए, गोवर्धन पर्वत को अन्न बलि दीजिये।।28।।

आप भी प्रसाद ग्रहण करने के बाद अपने को अलंकार करते हुए सुगन्ध को लगाकर अच्छे वस्त्र धारण किये हुए गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा करिये।।29।।

पिताजी, यह मेरा अभिप्राय है। यह आपको पसंद आया तो वैसे करिये। यज्ञ, गो, ब्राह्मण पर्वत ये सारे मुझे प्रिय हैं।।30।।

श्री शुकदेव कहते हैं- सकल गुणपरिपूर्ण भगवान श्रीकृष्ण इन्द्र के अहंकार को नाश करने हेतु अपनी इच्छा को नंद गोप के सामने रखे। वे उसको मान्य किए।।31।।

श्रीकृष्ण के कथनानुसार वे स्वस्तिवाचन करते हुए इन्द्र यज्ञ के लिए एकत्रित की हुयी वस्तुओं से पूजा करते हुए गो ब्राह्मण पर्वत को भोग समर्पण किये। प्यार से गायों को खिलाये। गायों के साथ गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा किए।।32, 33।।

गोपालक अपने को ठीक तरह से सजधज के ब्राह्मणों से आशीर्वाद पाकर बैलगाड़ी में बैठकर पर्वत की परिक्रमा प्रारंभ किए। गोपिकाएँ कृष्ण लीला को गाते हुए उनका साथ दिये।।34।।

भगवान श्रीकृष्ण गोपालकों में विश्वास पैदा करने के लिए गोवर्धन से भी बड़ा रूप धारण कर मैं ही गोवर्धन हूँ, बोलते हुए पर्वत को दिया हुआ अन्न बलि को खा लिये।।35।।

स्वयं श्रीकृष्ण रूप से अपने पर्वत रूप को गोकुलवासियों के साथ नमस्कार किए। गोवर्धन पर्वत देवता बनकर हमें अनुग्रह किया है। भगवान की यह बात सबको आश्चर्यकारक है ना?।।36।।

अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाला भगवान पर्वत का रूप धारण कर हमारे सामने आए हैं। अपने को अवमानना करने वाले को वे मार डालते हैं। चलो, हम अपनी और अपनी गायों की क्षेम के लिए इस पर्वत भगवान को नमस्कार करेंगे।।37।।

श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर सारे गोपालक पर्वतराज को नमस्कार करते हुए यज्ञ समाप्ति के बाद इस कृष्ण के साथ गोकुल को वापस आए।।38।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में बाँइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

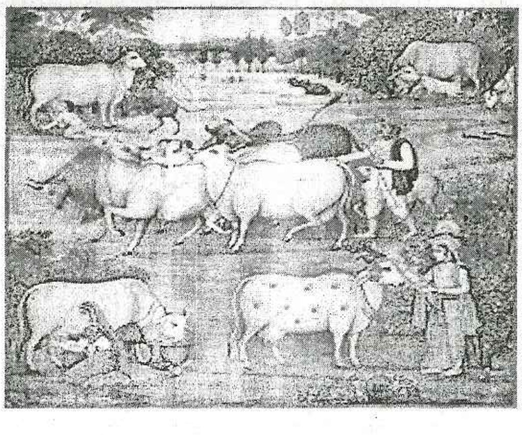

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तेईसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा परीक्षित, देवेन्द्र अपनी पूजा रुकने के कारण श्रीकृष्ण की रक्षा में रहने वाले नंदगोप इत्यादि ग्वालों के ऊपर क्रोधित हुआ।।1।।

क्रुद्ध देवेन्द्र जल प्रलय करने वाले प्रलय के मेघ समूह को गोकुल के ऊपर आक्रमण करने के लिए भेज दिया। श्रीकृष्ण के ऊपर आक्रोश करते हुए कहा।।2।।

ये वनवासी गोपाल ऐश्वर्य से मत्त हो गये हैं। एक सामान्य मानव कृष्ण के ऊपर भरोसा रखते हुए वे देव देवोत्तम मेरी अवज्ञा किए हैं।।3।।

अल्प ज्ञान वाले अहंकारी लोग अपरोक्ष देने वाले पर विद्या को छोड़ते हुए काम्य कर्म नाम के टूटा-फूटा नाव से इस संसार सागर को पार करना चाहते हैं। वैसे यह गोपालजन मेरी पूजा को छोड़कर पहाड़ की पूजा की हैं।।4।।

देवताओं में अपने तारतम्य के अनुसार थोड़ा सा असुरावेश आता रहता है। मुख्य प्राण असुरावेश से रहित होते हैं। इसके लिए उनको **आखणाश्मसमः** कहते हैं। यानि असुरों के आक्रमणों के सामने अभेद्य पत्थर के समान रहने वाले हैं। सामान्यतः अन्य समयों में देवता असुरावेश रहित सत्वयुक्त सज्जन होते हैं। यह तंत्र भागवत का वाक्य है।

कृष्ण बहुत बोलते हैं। महा गर्विष्ठ है। वह मेरे सामर्थ्य को ठीक तरह से नहीं जानता है। स्वयं को बड़ा ज्ञानी मानते हुए अहंकार कर रहा है। ऐसे मानव की आश्रय पाकर ये अनपढ़ लोग मुझे इष्ट न होने वाले गिरि यज्ञ को किए हैं।।5।।

इन गोपालकों को ऐश्वर्य का अहंकार आया है। कृष्ण के उपदेश से वह और बढ़ गया है। हे मेघराशि तुम जाकर इनके ऐश्वर्य मद का नाश करो, इनकी गायों का नाश करो।।6।।

मैं नंद गोप के गोशाला को नाश करने के लिए अति वेग वाले मरुद्गणों से मिलकर ऐरावत के ऊपर

चढ़कर तुम्हारे पीछे आ जाऊँगा। आपके डरने की कोई बात नहीं।।7।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - देवेन्द्र की इस आज्ञा को सुनकर मेघ संकुल निरंकुश होकर नंदगोकुल के ऊपर मूसलाधार वर्षा अपनी ताकत लगाकर बरसाये।।8।।

आकाश के बिजली, मेघगर्जना से युक्त होकर ओला युक्त पानी बरसाये।।9।।

घर में रहने वाले खंभ्स के समान मोटे-मोटे गात्र वाले जलधारा को बिना रुके हुए मेघ जब पानी बरसाने लगे तब नंद गोकुल में हाहाकार मच गया। जल प्रवाह से जमीन भर गई। गड्ढे व जमीन सब पानी में डूबकर एक समान हो गये।।10।।

अतिवृष्टि और चण्डमारूत से पीड़ित गायें काँपने लगीं। गोप व गोपिकाएँ ठंडक से पीड़ित होकर श्रीकृष्ण की शरण में गये।।11।।

पानी से पीड़ित होकर बच्चों को अपने शरीर और कपड़े से छिपाते हुए ठंडक से काँपते हुए, गिड़गिड़ाते हुए भगवान के पादमूल में शरण आये।।12।।

हे भगवान कृष्ण, आप ऐश्वर्यशाली हैं, प्रभु हैं। हे भक्तवत्सल, आपही इस गोकुल के रक्षक हैं। क्रोधित इन्द्र से आपही हमारी रक्षा करने वाले हैं।।13।।

वर्षा, झंझावात, और ठंडक से पीड़ित होकर सारा गोकुल चेष्ठा रहित हो गया है। इसको देखकर भगवान श्रीहरि कुपित इन्द्र का कृत्य मानकर विचार किए।।14।।

हम इन्द्र यज्ञ को रुका दिए। उसके विरुद्ध इन्द्र ने गोकुल के नाश के लिए चंडमारूत वाले ओला युक्त पानी अकाल में बरसा रहा है।।15।।

इसका योग्य प्रतिकार मैं अभी अपने सामर्थ्य से करूँगा। इन्द्र अपनी मूर्खता से स्वयं को भगवान मान रहा है। ऐश्वर्य के अहंकार से उत्पन्न उसके अज्ञान को हटा दूँगा।।16।।

यस्यानुग्रहमिच्छामि तस्य वित्तं हराम्यहम् जिसको अनुग्रह करना चाहता हूँ, पहले उसके संम्पत्ति का हरण करता हूँ, यह भगवान का वाक्य है। यहाँ पानी को बरसाना ही इन्द्र की सम्पत्ति है।

इन्द्र मेरा भक्त है। किन्तु इन्द्र समान देवताओं को मैं ही सर्व शक्त हूँ यह अहंकार नहीं आना चाहिए। मैं उनके अहंकार को, गर्व को भंग किए तो उनकी भक्ति और बढ़ जाती है।।17।।

इसी कारण मेरी शरण में आये हुए, मुझसे प्रार्थना करने वाले, मुझे अपना मानने वाले इन गोकुल-वासियों को अपने सामर्थ्य से मैं रक्षा करुँगा। शरणागतों की रक्षा करना मेरा धर्म है।।18।।

अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम। वाल्मीकि रामायण में श्रीराम जी कहते हैं, सकल प्राणी को अभय देना मेरा धर्म है। भागवत् में श्रीकृष्ण जी कहते हैं **परित्राणाय साधूनां संभवामि युगे-युगे।** सज्जनों की रक्षा के लिए मैं युग-युग में अवतार लेता हूँ।

इस प्रकार मन में विचार करते हुए श्रीकृष्ण भगवान एक हाथ से गोर्वधनगिरि को उखाड़कर छतरी के समान बिना कष्ट के ऊपर उठाये।।।9।।

भगवान गोपालकों को उद्देश्य करते हुए बोलते हैं - माता-पिता जी और गोकुलवासी सारे लोग अपने गाय, बकरी, बैल सहित इस पहाड़ के नीचे आकर वर्षा समाप्त होने तक आराम से रहिये।।20।।

यह पहाड़ मेरे हाथ से गिर जायेगा ऐसे डरने की कोई बात नही है। यहाँ झंझावात का, बरसात का और बिजली का कोई भय नहीं है। उन सबसे मैंने आपकी रक्षा करने की व्यवस्था की है।।21।।

श्रीकृष्ण के ऊपर पूर्ण भरोसा रखते हुए उनकी बातों को मन में भरते हुए गोपालक उनके कथनानुसार अपने बाल-बच्चे, गाय-बैल, बकरी-बछड़े के साथ आवश्यक जीवन सामग्री को लेकर पहाड़ के नीचे निश्चिंत होकर रहने लगे।।22।।

भूख-प्यास सुख भोग की आसक्ति को छोड़ते हुए वे श्रीकृष्ण को अपलक नेत्र से देखते हुए खड़े रहे। श्रीकृष्ण भी एक बार भी पाँव न उठाते हुए हाथ को न बदलते हुए सात दिन तक एक प्रकार से पहाड़ को उठाकर खड़े रहे।।23।।

शुकदेव जी कहते हैं- श्रीकृष्ण के इस योग सामर्थ्य को देखकर देवेन्द्र आश्चर्य चकित हो गये। उनके अहंकार का नाश हो गया। श्रीकृष्ण को डराने की अपनी योजना असफल होते देखकर वर्षा को रुकाने के लिए मेघों को आज्ञा दी।।24।।

निरभ्र आकाश में सूर्य का दर्शन हुआ। झंझावात और बरसात थम गई। उसको सुनकर गोवर्धन गिरधारी श्रीकृष्ण गोपालकों से कहते हैं।।25।।

श्री कृष्ण गोपालकों से पूछते हैं कि बाहर पानी और भी बरस रहा है। गोपालक बाहर देखकर बोलते हैं वर्षा बन्द हो गयी है। गोपालकों की आँखों से आनन्दाश्रु गिर रहे हैं। श्री कृष्ण पूछते हैं क्या बादल गर्ज रहे हैं, उत्तर में गोपालक बोलते हैं बादल गर्जते नही किन्तु सिद्ध्र गन्धर्व आपकी स्तुति में आवाज कर रहे हैं। क्या बिजली चमकती है? नहीं यह चमक अमर कन्याओं के गहने के है। आँधी चल रही है क्या? नहीं, किन्तु देवता के पुष्प वृष्टि से आकर्षित भँवरे के गूजने की आवाज सुनाई दे रही है। क्या आकाश काला है? नही, केवल इन्द्र के मुख लज्जा से काला हुआ है। क्या मेघ हैं? नही किन्तु आपके दर्शन के लिए आए हुए देवता के विमानों से आकाश भरा है। क्या अंधेरा है? नहीं, प्रकाशमान सूर्य प्रकाश दे रहे हैं। किन्तु आपको सामान्य मनुष्य मानने वाले के हृदय में अंधेरा है।

क्या ठंढक से कोई काँप रहा है? नही , सारे आनन्द से भरे हैं। आपके भय से केवल इन्द्र काँप रहा है। गोपाल और श्री कृष्ण के इन संवादों को पूज्य वादिराज स्वामी जी अपने रुक्मिणीश विजय में वर्णन किए हैं।

हे गोपालको! भय को त्याग दीजिए। पत्नी पुत्र धन कनक के साथ गाय को लेकर घर को चलिए। बाहर बरसात और चण्डमारूत रुक गये हैं। नदी में पानी कम हो रहा है।।26।।

श्रीकृष्ण की इन बातों के अनुसार गोपालक अपने पत्नी पुत्र गाय वृद्ध सबके साथ अपने सामानों को गाड़ी में भरकर घर की तरफ चले गये। ।।27।।

भगवान श्रीकृष्ण सारे लोगों के देखते हुए गोवर्धन गिरि को पहले जैसे उसी स्थान पर रख दिये। सर्व शक्त भगवान की यह लीला मात्र है।।28।।

गोकुल में रहने वाले पुरुष लोग अपने भक्ति भाव के उद्रेक से श्रीकृष्ण को आलिंगन और चुबंन करते हुए सत्कार किए। गोपियाँ प्यार से दही अक्षत और जल से अभिनन्दन करते हुए। उनको अलंकृत किये।।29।।

यशोदा, रोहिणी, नंदगोप और महा बलशाली राम सभी लोग श्रीकृष्ण को आलिंगन करते हुए आशीर्वाद दिए।।30।।

हे राजा! सिद्ध गंधर्व, चारण इत्यादि देवता समूह अंतरिक्ष में खड़े होकर श्रीकृष्ण जी की स्तुति करते हुए पुष्प वृष्टि किए।।31।।

आकाश में देव दुंदुभि और शंखवादन की ध्वनि किए। तुंबुरु, गन्धर्व, गीत गाये।।32।।

बाद में श्रीकृष्ण बलराम के साथ अपने प्यार के गोपालकों के साथ गोकुल में प्रवेश किए। संतुष्ट हुयी सुन्दरी गोपिकाएँ श्रीकृष्ण जी की लीला को गाते हुए उनके पीछे-पीछे चली। ।।33।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में तेइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

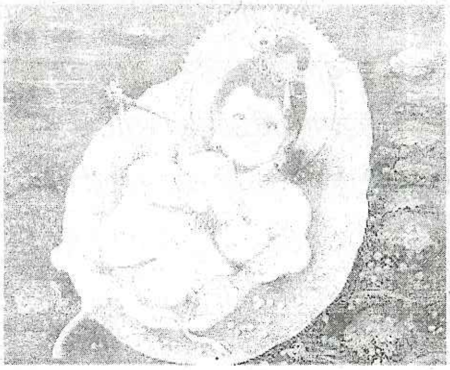

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौबीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्रीकृष्ण के इन आश्चर्यकारक अद्भुत कार्यों को देखकर उनकी महिमा को न समझने वाले गोपालक एकत्र होकर आपस में बातें करने लगे।।1।।

गोपालक बोलते हैं, श्रीकृष्ण बालक है, हमसे भी छोटा है किन्तु उससे किया हुआ कार्य बहुत अद्भुत है। हमारे जैसे अबोध मुग्ध लोगों में ऐसा महापुरुष कैसे जन्म लिया? हमारे साथ ऐसे रहना उनको शोभा देने वाला नहीं है।।2।।

आपने देखा कि एक बड़ा हाथी एक कमल के फूल को जैसे अनायास उठाता है, वैसे ही यह सात वर्ष का बालक एक ही उंगली से महापर्वत को सात दिन तक उठाकर खड़ा रहा। यह कैसे हो गया।।3।।

छोटा बच्चा, आँख भी पूरे खुले नही थे, उस समय महाबलिष्ठ पूतना का स्तनपान करते हुए उसके प्राण को ही हरण किया। हमें लगा कि जैसे काल ही शरीर के आयुष को हरण कर रहा हो। ऐसे अत्यन्त सुलभता से उन्होंने पूतना के प्राण का हरण किया।।4।।

चार महीने का यह बच्चा गाड़ी के नीचे सोया था, रोते-रोते पाँव हिलाया, उंगुली गाड़ी को लगा। केवल इससे वह बड़ी गाड़ी पलटकर चकनाचूर हो गयी। यह कैसे हो गया।।5।।

एक वर्ष का यह बालक घर के सामने जमीन पर बैठा था, तृणावर्त नाम का दैत्य जोश से उनको हवा में उठा लिया। यह लड़का उसके गले को दबाकर मार दिया। यह कैसे हुआ।।6।।

माखन चोरी करने वाले इसको माँ सीखकर उलूख से बाँध रखी थी। उलूख के साथ चलने वाला यह छोटा बालक दो यमल अर्जुन वृक्षों के बीच में जाकर जोर से खींच कर दोनों वृक्षों को गिरा दिया। यह भी कैसे हुआ।।7।।

गोपबालकों के साथ बलराम सहित जंगल में गाय के बच्चों को खिलाते समय यह तीन वर्ष का बालक अपने को मारने आया हुआ शत्रु बकासुर के दोनों चोंच को पकड़कर चीरते हुए उसके दो टुकड़े कर

दिये।।8।।

अपने को मारने आया हुआ बछड़े के रूप में गाय के बच्चों में मिला हुआ वत्सासुर को मारकर पाँव पकड़कर उसको बेल के वृक्ष के ऊपर फेकने से अनायास बेल व फलों को पर्याप्त मात्रा में गिरा दिया। उस दिन हम फल खाते ही रहे।।9।।

बलराम के साथ तालवन में खेलते समय गधे के रूप में आया हुआ धेनुकासुर को व उनके बंधुओं को मारकर हमें बारबार खाने के लिए तालवन को मुक्त कर दिया।।10।।

इनकी लीला हम क्या कहें। अत्यंत उग्र प्रलंबासुर को बलशाली बलराम के द्वारा मरवा दिये और हम और गायों को आग से रक्षा किये।।11।।

अति विषकारी क्रूर कालिया नाग का दमन करते हुए उसके विष के अहंकार को दूर करते हुए जबरदस्ती उसको यमुना के भँवर से हटा दिया।।12।।

हे वसुदेव! सुनो, हम और तुम्हारे पुत्र में न छोड़ने वाला प्यार का संबंध है। वे भी हमारे से प्यार करते हैं। इन दोनों का क्या कारण हो सकता है? ।।13।।

सात वर्ष का यह बालक कहाँ, वह बड़ा पहाड़ को उठाया कैसे? इसी कारण आपके पुत्र के बारे में उनकी योग्यता के बारे में हमें सन्देह आता है।।14।।

राजा नंद जी बोलते हैं, हे गोपालको, मेरी बात सुनो। मेरे पुत्र के बारे में तुमको जो भी संदेह हो उसका निवारण इससे होगा। गर्गाचार्य मुनि हमारे पुत्र के बारे में पहले ही कह चुके हैं।।15।।

गर्गाचार्य ने कहा - स्वयं भगवान यहाँ बालक के रूप में अवतार लिए हैं, प्रतियुग में वे अवतार लेते रहते हैं। पहले के अवतारों में ये सफेद, लाल और पीला रंग के होते हैं। अब नील वर्ण धारण किए हैं।।16।।

हे वसुदेव! आपके पुत्र पिछली बार भी एक वसुदेव नाम वाले के पेट से जन्म लिया था। इसके लिए इसको श्रीवासुदेव कहते हैं।।17।।

तुम्हारे पुत्र को अनेक रूप और अनेक नाम हैं। मैं उन रूप नामों को जानता हूँ। सामान्य लोग इनको जानते नहीं।।18।।

यह बालक गोपालकों को और गो समूह को सुख देने वाला बनता है, तुमको श्रेय देता है।।19।।

पूर्व में जब अराजकता से देश चोर उचक्कों से पीड़ित था, सज्जनों के लिए कोई रक्षा नहीं थी। तब

इन्होंने राजा पृथु के नाम से आवेश रूप में अवतार लेकर सज्जनों की रक्षा किए। सज्जन लोग उनसे बल पाकर दुर्जनों का नाश किए।।20।।

महाभाग्यशाली इनमें प्यार करने वाले लोग शत्रु से कभी हारते नहीं। क्या विष्णु पक्ष के देवता कभी हारते हैं।।21।।

हे नंदगोप! आपका यह पुत्र गुण, कांति, कीर्ति और सामर्थ्य में नारायण के समान है। उनकी लीलाओं को देखकर आश्चर्य चकित नहीं होना।।22।।

इस प्रकार मुझको उपदेश करते हुए गर्गमुनि अपने घर को चले गये। तब से मैं देख रहा हूँ, श्रीकृष्ण सारी लीलाओं को बिना कष्ट से करते हैं। इसी कारण श्रीकृष्ण को नारायण का अवतार मानता हूँ।।23।।

गोवर्धन पर्वत के उद्धार की लीला को सारे गोकुलवासी लोग अपनी आँखों से देखे हैं। अन्य अनेक लीलाओं को जो देखे हैं उनसे सुने हैं। गर्गमुनि श्रीकृष्ण जी के बारे में जो कहे हैं इसको नंदगोप के मुख से सुनकर उनको बहुत आनंद हुआ। अमित पराक्रमी श्रीकृष्ण नारायण का अवतार हैं। यह समझकर उनके बारे में मन में रहने वाले सारे संदेह नष्ट हो गये। वे नंदगोप व उनके पुत्र भी श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे।।24।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- इन्द्र याग रुकने के कारण इन्द्र मूसलाधार वर्षा किए। तब अपने पर विश्वास रखे हुए गोपालकों को, उनके बाल-बच्चों, गाय संकुल को ओले वर्षा से पीड़ित देखकर श्रीकृष्ण अनुकम्पा से हँसते हुए बच्चें जैसे खेल में आसानी से मश्रूम को उठाते हैं वैसे गोवर्धन पर्वत को एक उँगली से उठाकर गोकुल की रक्षा किए। इन्द्र के अहंकार को समाप्त कर दिये। ऐसे गोपाल कृष्ण हमारी रक्षा करें।।25।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

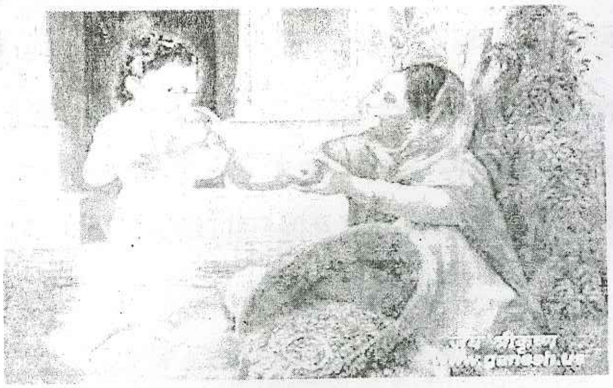

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पच्चीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक देव कहते हैं - भगवान श्री कृष्ण के गोवर्धन पर्वत को उठाकर सम्पूर्ण गोकुल को वर्षा से रक्षा करने के बाद, गो लोक से कामधेनु भगवान को देखने आयी। स्वर्ग लोक से इन्द्र भी भगवान के दर्शन करने आये।।1।।

भू लोक में पर्वत को उठा कर गायों की रक्षा करने से आनन्द पायी हुई कामधेनु भगवान को कृतज्ञता को समर्पित करने कामधेनु गो लोक से आयी। गों लोक सत्य लोक के ऊपर है। विष्णु पर्व के उन्नीसवाँ अध्याय के उनतीसवाँ श्लोक में इस विषय को बताया गया है।

देवेन्द्र अपने किए हुए अपराध से लज्जित होकर भगवान के पास एकान्त में आकर सूर्य के समान प्रकाशमान अपने किरिट को श्री कृष्ण भगवान के पाद में रखते हुए माथा लगाते हुए उन्हे दण्डवत प्रणाम किया।।2।।

इन्द्र भगवान के अपरिमित शक्तिशाली महिमाओं को सुन चुके थे। अब उनको आखों के समक्ष देखने के बाद अपने तीन लोकों के स्वामित्व के अहंकार को छोड़ते हुए हाथ जोड़कर स्तोत्र करने लगे।।3।।

इन्द्र स्तुति करते हैं - हे भगवान! आपका शरीर रजो गुण और तमो गुण से नही बना है। आप विशुद्ध सत्व कहे जाते हैं। इसी कारण आप में शुद्ध सत्व गुण के लिए भी अवकाश नही है। आप का शरीर केवल ज्ञानात्मक आनन्द मय रूप है। इसी कारण आपकी अपनी इच्छा से ही संसारी जीवों को चिपका हुआ अज्ञान जन्य त्रिगुण बन्ध रूप संसार का अनुबन्ध आपको नही है।।4।।

यहाँ **शान्तम्** का अर्थ सुख पूर्ण और आनन्द मय हैं। भक्त लोगों के असुरावेश से अपराध करने के बाद भी उन पर क्रोध न करते हुए शान्त रहना भगवान का स्वभाव है। इसी कारण यहाँ शान्त शब्द का प्रयोग किया गया है। इन्द्र के अपराध करने के बाद भी भगवान उसके ऊपर क्रोध नही किए बल्कि अनुग्रह ही किए, यह इन्द्र का मन्तव्य है।

विशुद्धसत्वम *इसका अर्थ भगवान का शरीर शुद्धसत्व मय भी नही है। भगवान त्रिगुण रहित हैं।* *ज्ञ*
ानानन्द स्वरूप वाले उनको अज्ञान निमित्त संसार बन्ध नही है।

हे प्रभु! आपको त्रिगुणात्मक शरीर और उसका बन्ध नही है। इसी कारण शरीर जन्य और शरीर अन्तर से होने वाला अज्ञान रूप क्रोध लोभ इत्यादि गुण आपके पास कैसे आ सकते हैं। आप पूज्य हैं, धर्म रक्षा करने और दुष्ट निग्रह करने के लिए हमारे जैसे दुरहंकारियों को शिक्षा देते रहते हैं।।5।।

क्रोध, मोह इत्यादि गुण शरीर के सम्बन्ध के कारण होते हैं। वे ही पुनर्जन्म के और बार बार शरीर पाने के कारण होने के कारण यहाँ **तद्धेतव:** शब्द का प्रयोग है।

भगवान श्री हरि! आप इस जगत के पिता, ज्ञानोपदेशक और नियामक हैं। आप किसी के अधीन न होने वाले काल रूपी हैं। सृष्टि संहार के समय में आप अपराधियों को उनके लिए योग्यदण्ड देने वाले हैं। सज्जनों की रक्षा करने के लिए दुर्जनों को दण्ड देने के लिए अवतार रूप धारण करते हैं। स्वयं को इस जगत का मालिक मानने वाले का अहंकार को खण्डित करते हुए अपनी लीलाओं को करते रहते हैं।।6।।

हे जगन्नाथ! असुरावेश के समय में अहंकार करने वाले हमारे जैसे लोग सदा निर्भय रहने वाले आपके दर्शन करने से अहंकार को त्याग कर निरहंकारी बन कर ज्ञानियों के भक्ति मार्ग का आश्रय लेते हैं। आप मेरे समान औरों को भी यह शिक्षा जो देते हैं वह सज्जनों के लिए हितकारक है, वह दुर्जनों के लिए शिक्षा लगता है और अहितकारक बनता है।।7।।

भगवान सज्जन और दुर्जनों के अहंकार को समान रूप से दण्ड देते हैं। सज्जनों के लिए वह श्रेयस्कर बनता हैं। दुर्जन लोग उसका उल्लंघन करते हुए अनर्थ भागी बनते हैं। यह अग्नि पुराण का वचन है।

हे प्रभु! मैं ऐश्वर्य मद से भर कर आपकी महिमा को न जानते हुए अपराध किया हूँ। मूढ़ बुद्धि वाले मुझको आप क्षमा करें। हे स्वामी! ऐसी दुर्बद्धि मुझमें पुन: कभी भी उत्पन्न न हो।।8।।

हे अधोक्षज, हे भगवान, राजाओं में जो दुष्ट होकर भू भार बनकर रहने वाले हैं और ऐसे दुष्ट संतति को जन्म देते हैं उनके लिए आपका यह अवतार विनाशकारी है, आपके चरण सेवको के लिए अभ्युदय कारी है।।9।।

हे पूज्य परम पुरुष महात्मा नारायण! आपको नमस्कार। हे भक्तजन पालक वसुदेव पुत्र भगवान श्री कृष्ण मैं बार-बार आपको नमस्कार करता हूँ।।10।।

हे परमेश्वर! आप स्वेच्छा से शरीर धारण करते हैं। आप अप्राकृत ज्ञान रूपी शरीर वाले हैं। आप सबके स्वामी, सकल जीव राशि का मूलकारण, सर्वजीवान्तर्यामी हैं। आपको पुन: नमस्कार।।11।।

श्री हरि का देह धारण का अर्थ अपने स्वरूप देह से ही वसुदेव देवकी आदियों के शरीर में होकर बाहर आना हैं। अन्य जीवों को जन्म पाने के लिए अलग अलग शरीर पाना पड़ता है। यह पद्म पुराण का वाक्य है।

यहाँ इन्द्र भगवान को गोविन्द नाम से पुकारते हुए अपनी विशेष भक्ति को दर्शाते हैं। अपने हीन कृत्य से

लज्जित इन्द्र काम धेनु के क्षीर से भगवान को गोविन्द कहते हुए अभिषेक किए। गोविन्द का अर्थ बहुत होते हैं। गो =गाय, गो रक्षण करने वाला गोविन्द, गो = गोवर्धन पर्वत, उसको उठाने वाले गोविन्द। गो = वेद, वेद को अभिव्यक्त करने वाले गोविन्द। गो = शब्द राशि, प्रथम शब्द राशि को उत्पन्न करने वाले गोविन्द। गो = भूमि, भूमि के उद्धार करने वाले गोविन्द (महाजल में डूबने वाले इस ब्रह्माण्ड को भगवान दो बार उठा कर लाए हैं)। विष्णु सहस्र नाम में गोविन्द शब्द दो बार आया है। 1. गोविन्दों गोविदांपतिः 2. महावराहो गोविन्दः इससे यह स्पष्ट होता है कि गोविन्द नाम विष्णु का है। गोविन्द नामोच्चारण करते समय अच्युताय नमः, अनन्तायः नमः, गोविन्दाय नमः इस प्रकार नामत्रय का उच्चारण करना चाहिए।

हे भगवान! मेरे लिए करने वाला यज्ञ आपके कारण रुक गया। इसको देखकर महाकोपिष्ठ मैं आँधी और तूफान से गोकुल को नाश करने का प्रयास किया।।।2।।

हे प्रभु! आप मेरे इस प्रयत्न को विफल करते हुए मेरे अहंकार को ठोकर मारते हुए मेरे ऊपर अनुग्रह किए हैं। आप मेरे स्वामी, मेरे गुरु और अन्तर्यामी हैं। मैं आपके शरण में आया हूँ।।।3।।

श्री शुकदेव कहते हैं- इस प्रकार देवेन्द्र से की हुई स्तुति को सुनते हुए भगवान श्री कृष्ण हंस कर अपने मेघ गम्भीर स्वर से कहने लगे।।।4।।

श्री भगवान कहते हैं - हे देवेन्द्र! स्वर्ग के ऐश्वर्य के मद से तुम बहुत अहंकारी बन गये थे।तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करने हेतु, उनको सदा काल मेरी याद दिलाने के लिए मैंने। तुम्हारे यज्ञ का भंग किया।।।5।।

स्वामित्व और धन सम्पत्ति के मद से जो अन्धा बना है। वह ऐसे लोगों का नियमन करने वाला मुझको देख नही पाता। मैं जिस अहंकारी भक्त के ऊपर अनुग्रह करना चाहता हूँ उसके स्वामित्व और धन सम्पत्ति को नाश करता हूँ।।।6।।

देवेन्द्र! तुम वापस स्वर्ग को जाओ, तुम्हारा कल्याण हो। तुम सदा काल मेरी आज्ञा का पालन करो। तुम सारे भक्त अपने अधिकार को शास्वत न मानते हुए अपने-अपने अधिकार-स्थानों में कर्तव्य कर्म करते रहो और कभी भी उससे च्युत न हो जाय।।।7।।

इन्द्र के स्वर्ग जाने के बाद कामधेनु अपने सन्तान रूप गो सन्तति से समालोचना करते हुए गोपाल रूपी जगदीश्वर श्री कृष्ण को शुद्ध मन से नमन करते हुए कहती है।।।8।।

कामधेनु कहती है - हे महायोगी कृष्ण! कृष्ण, आप इस जगत के मालिक हैं, इस जगत को जन्म देने वाले हैं। आप अच्युत जगन्नाथ हैं। नाथ रूप से आप को पाकर हम कभी भी अनाथ नही हो सकते। हम सनाथ हैं। यह सिद्ध हो गया है।।।9।।

हे भगवान! आप ही हमारी सर्व श्रेष्ठ देव हो। आप जगतपति हैं, आपही हमारे लिए इन्द्र हैं। आप

सदा काल के लिए गो, ब्राह्मण, देवता और सकल सज्जनों का अभ्युदय करने वाले हैं।।20।।

हे इस जगत के अन्तर्यामी आप इस भूमि का भार हरण करने के लिए अवतार लिए हैं। ब्रह्मा जी के कथनानुसार हम आपको अपना स्वामी मानते हुए आपका पट्टाभिषेक करेंगे।।21।।

इस प्रकार कहते हुए कामधेनु ने अपने अमृत तुल्य दूध से भगवान श्री कृष्ण का अभिषेक किया। देवेन्द्र भी देवता और ऋषि मुनियों की अपेक्षा के अनुसार देव माता अदिति के साथ आकर ऐरावत के शूड़ से आकाश गंगा के पवित्र जल को उठा कर भगवान श्री कृष्ण का अभिषेक किए। उच्च स्वर में गोविन्द नाम का उद्घोष किए।।22,23।।

भगवान का नाम गोविन्द है। गो शब्द का अर्थ गाय और स्वर्ग भी होता है। इन्द्र का यहाँ गोविन्द बोलने का अर्थ यही होता है कि सही अर्थ में आप ही स्वर्ग के स्वामी हैं, मैं अस्वतंत्र हूँ यह अर्थ होता है। कामधेनु के गोविन्द बोलने से आप गायों के रक्षक हैं यह अर्थ होता है। गोविन्द का अर्थ गोवर्धनगिरि का उद्धार करने वाले, वेद रक्षक इत्यादि अन्य बहुत अर्थ होते हैं। यहाँ देवेन्द्र अपने पाप के प्रायश्चित रूप में गोविन्द नाम स्मरण किया है। ऋषि मुनियों ने वेदोद्धारक गोविन्द का नाम स्मरण किए हैं। सारे गो संकुल, यदु कुल, गोकुल वासी अपने किए हुए पापों के प्रायश्चित रूप में गोविन्द नाम का उच्चरण किए। गोविन्द नाम सकल पाप के लिए प्रायश्चित रूप तथा पाप परिहारक है।

तब वहाँ आये हुए तुम्बुरु, नारद, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध और चारण लोग सन्तोष से समस्त लोक के पाप परिहारक हरि नाम संकीर्तन करते हुए गोविन्द नाम का उदघोष किए। अप्सरा स्त्रियों ने नाट्य किए।।24।।

देवता समूह में श्रेष्ठ चतुर्मुख ब्रह्मा जी देव गण सन्तोष से भगवान के ऊपर पुष्प वृष्टि किए। इससे तीनों लोक आनन्द भरित हो गये। गायों के स्तन से दूध गिर कर नीचे की जमीन भींग गयीं।।25।।

श्री कृष्ण को पट्टाभिषेक करते समय अनेक स्थानों में बहने वाली नदियाँ संयुक्त स्वर में गाते हुए गोविन्द नाम का संकीर्तन किए। वृक्षों से मधु का प्रवाह बहने लगा। जमीन कृषि कार्य न करते हुए फल दिए। पहाड़ों से रत्न स्वयं उभर कर आये।।26।।

हे राजा परीक्षित! श्री कृष्ण के इस पट्टाभिषेक के समय में स्वभाव से क्रूर रहने वाले शेर, भेड़िया इत्यादि प्राणी भी अपने वैर को भूल कर गोविन्द नाम के प्रभाव से स्नेह भाव से एकत्र आ गये।।27।।

इस प्रकार गायों के और गोकुल के अधिपति श्री कृष्ण को पट्टाभिषेक करके, उनकी अनुमति से देवेन्द्र, देवता और देवता स्त्रियाँ कामधेनु के साथ स्वर्ग को चले गये।।28।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्धमें पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - छबीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - एक बार एकादशी व्रत किए हुए नन्द गोप पारण करंने हेतु द्वादशी के दिन स्नान करने यमुना नदी में उतर गये।।1।।

मध्य रात्रि में नहाने के लिए पानी में उतरे नन्द को वरुण का भट एक राक्षस असुर समय को न समझते हुए उनको पकड़ते हुए वरुण के पास ले आया।।2।।

साधन द्वादशी के दिन सूर्योदय के बाद अर्धकला मात्र द्वादशी रहती है तो उस समय प्रातः स्नान से आरम्भ करते हुए मध्याह्न तक के अनुष्ठान के लिए मध्य रात्रि के दो बजने के बाद स्नान करना निषिद्ध नही है। त्रिंशत् **काष्टाः कला** इस कथनानुसार कलार्ध यानी एक निमिष और छत्तीस सेकेन्ड का समय होता है। सूर्योदय के बाद कलार्ध समय में गंगा जी में गंगोदक से पारण करना पड़ता है। इसके लिए नन्द गोप रात्रि के दो बजने के बाद यमुना जी में स्नान करने उतरा था। अन्य दिनों में इसको असुर काल माना जाता है। यह समय स्नान के लिए निषिद्ध है। इसको न जानते हुए वरुण दूत नन्द को पकड़ कर ले गया। बाद में श्री कृष्ण के सामने **अजानता माम केन** इस शब्द से वरुण इसको कबूल करता है। इसलिए इस लोक में रहने वाला **अविज्ञाय** शब्द को **प्रविष्टम्** के साथ न जोड़ते हुए **अनयत्** के साथ जोड़ना है।

वरूण के दूत ज्ञानी हैं। किन्तु तत्कांल में भगवान की लीला से नन्द गोप स्नान करने गये और असुर भी भगवती माया से उसको न जानते हुए नन्द को पकड़कर ले गया। भगवान श्री कृष्ण इन सब को ज्ञानोदय करवाए।

गोपालक नन्द को न देखते हुए घबड़ा कर श्री कृष्ण और बलराम के सामने कहे। भक्तों को अभय देने वाले भगवान श्री कृष्ण वरुण अपहृत नन्द को देखने के लिए वरुण के पास चले।।3।।

श्री कृष्ण के दर्शन करते हुए आश्चर्य चकित किन्तु दर्शन से परमानन्द भरित लोक पालक वरुण सभ्रम से भगवान का बहुत बड़ा सत्कार किया।।4।।

वरुण कहता है - प्रभु! आज मेरा जन्म सार्थक हुआ। मेरे सकल अभीष्ट प्राप्त हुए। हे भगवान

आप के सभी चरण सेवक निश्चित रूप से संसार के उस तट को आसानी से पाते हैं।।5।।

अपने चमक से इस जगत की आँखों को अन्धा बनाने वाले आप के बन्धक शक्ति का प्रभाव स्वयं आपके ऊपर कभी भी नही होगा, कोई भी नही देखा। ऐसे गुणपूर्ण भगवान नारायण आपको मेरा नमस्कार।।6।।

प्रभु मेरा सेवक यह राक्षस न जानते हुए आपके पिता को हमारे पास पकड़ कर लाया है। वह मूर्ख है, किसके साथ कैसा व्यवहार करना है इसको वह नही जानता। आप कृपा करके इसको क्षमा करें।।7।।

हे गोविन्द कृष्ण! आप ठीक तरह से सबको जानते हैं। मेरे सेवक द्वारा पकड़ कर लाए हुए अपने पिता जी को आप वापस ले चले। आप मेरे ऊपर अनुग्रह करें।।8।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार वरुण सर्वेश्वर भगवान श्री कृष्ण को अपने विनय पूर्वक बातों से अपना कर। श्री कृष्ण के पिता को लाकर उनके बन्धुओं को समर्पित किया।।9।।

नन्दगोप, वरुण की दिव्य और अतीन्द्रिय अपार सम्पदा को देखकर, देखने के बाद ऐसे अमीर लोक पाल भी श्री कृष्ण में दिखायी हुयी विधेयता से विस्मित होकर बन्धुओं के सामने उनके बारे में बताए।।10।।

प्रजा जन और बन्धु कुतूहल से नन्द से पूछते हैं कि हे राजा! भगवान श्री कृष्ण सर्वेश्वर हैं। वे कृपा करके हमें वैकुण्ठधाम का दर्शन कराते हैं क्या?।।11।।

इस प्रकार सर्वतंत्र स्वतंत्र भगवान भक्तों के अभीष्ठ को जानते हुए उनके इष्टार्थ को पूर्ण करने की इच्छा से उनके ऊपर कृपा करते हुए ऐसे मन में चिन्तन करते हैं।।12।।

भगवान का चिन्तन इस प्रकार है - इस लोक में सज्जन लोग अविद्या काम और कर्म से बन्धित होकर अच्छे बुरे योनियों में जन्म लेते हुए जनन मरण चक्र में फंसे रहते हैं। इसी कारण परम गति वैकुण्ठ धाम को वे देख नही सकते। मैं ही उनको वैकुण्ठ को दर्शाऊँगा।।13।।

इस प्रकार चिन्तन करने वाले परम दयालु प्रभु श्री कृष्ण अपने अप्राकृत स्वरूप और वैकुण्ठ लोक को उन सारे गोपलकों को दिखाए।।14।।

सत्य ज्ञान रूप वाला,देश काल परिमिति का बन्धन न रहने वाला, प्रकाश रूप गुणपूर्ण सत्य सनातन, हृदय गुहान्तर्गत जिस रूप को ज्ञानी लोग मुक्तावस्था में अपने आँखों से स्वयं देखते हैं, उस मुक्ति नियामक रूप को उसके साथ अपने लोक को भगवान श्री कृष्ण गोपालको को दर्शाए।।15।।

अध्याय – 26

उनको यमुना नदी के तट पर ब्रह्महृद नाम के भवर के पास श्री कृष्ण ले चले। यह वही स्थान है जहाँ अक्रूर को वैकुंठ का दर्शन हुआ था। उसी स्थान में गोपालक भी वैकुंठ का दर्शन किए।।16।।

ब्रह्म हृद में गोपालको को नहला कर भगवान श्री कृष्ण उनको दिव्य चक्षुष् देकर वैकुण्ठ का दर्शन करवाए। अक्रूर राम कृष्ण को मथुरा को लेते समय मार्ग मध्य में यमुना के इसी स्थान में जल में वैकुण्ठ का दर्शन करता है। इस श्लोक में पूरा **अध्यगात्** इस शब्द का अर्थ आगे देखने वाला है यह अर्थ करना पड़ता है। आगे निश्चित रूप से दर्शन होने वाला है इस अर्थ से यहाँ भूतकाल का प्रयोग किया है। अथवा पिछले कल्प में अन्य एक अक्रूर वैकुण्ठ को देखा है ऐसे भूत काल का प्रयोग हो सकता है।

नन्द गोप सहित अन्य लोग भी वहीं वैकुण्ठ लोक को और वहाँ वेदवेद्य भगवान श्री कृष्ण को देखकर परमानन्द से तृप्ति पाए और बहुत आश्चर्य चकित हो गये।।17।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में छबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध का पूर्व भाग में पहला भाग समाप्त होता है।।

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

गोपियों के संग रासलीला

दशम स्कन्धः भाषानुवादः

पूर्वार्द्ध अध्याय २७ से ५९ तक

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण
वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री विजयध्वज टीकानुसारी

श्री मद्भागवत महापुराणम्

दशम् स्कंधः
(भाषानुवादः)

(पूर्वार्द्ध अध्याय 27 से 59 तक)

अनुवादक
श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

प्रकाशक
तत्व संशोधन संसत्
जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

श्रीमद्भागवत महापुराणम् दशम् स्कन्धः

लेखक-
श्री 1008 श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी

प्रकाशक
तत्व संशोधन संसत्
जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण 1000 प्रतियाँ
सहयोग राशि
पुस्तकालय संस्करण 150 रुपये
सामान्य संस्करण 100 रुपये
03-05-2012

ग्राफिक्स :- श्री दिलीप मैसूर।

अक्षर विन्यास
श्री सुनील कुमार (राजा) एवम्
प्रशान्त शुक्ल

मुद्रक -
श्री वैष्णव प्रेस
मोरी, दारागंज, इलाहाबाद
फोन नं0- 0532-2501463 मो0- 09415235637

श्री राम श्री

अनुग्रह संदेश

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी उडुपि

हमारे विशेष अभिमान पात्र **श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी** द्वारा किए हुए आठ शास्त्र ग्रंथों का हिन्दी भाषानुवाद को देखकर हमें सन्तोष हुआ है। श्री स्वामी जी अपने पूर्वाश्रम में अनेक वर्षों से सामाजिक सेवा में रचनात्मक कार्यों को किये हैं। हमारे साथ अकाल, भूकम्प, बाढ़ इत्यादि कार्यों में सम्पूर्ण समर्पण भाव से काम किए हैं। अब अपने अस्सी वर्ष के समय में आठ शास्त्र ग्रन्थों का अनुवाद और प्रकाशन का स्तुत्य काम अपने हाथ में लिए हैं। मध्व तत्वज्ञान को अभ्यास करने के जिज्ञासुओं को अनुकूल होने वाली यह एक विशिष्ट सेवा किए हैं।

वे अपने सत्तर वर्ष की आयु में कन्नड़ भाषियों के अनुग्रह रूप में अनेक शास्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किए थे। अब प्रयाग में रहकर मध्व सिद्धान्त का प्रसार कार्य करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा मध्व तत्वज्ञान को हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचार करने का महान कार्य कर रहे हैं।

श्री कृष्ण, श्री वेद व्यास जी, अस्मदुपास्य श्री रामविट्ठल जी इनको विशेष अनुग्रह करते हुए इनकी सेवा विस्तार रूप से सारी जनता को मिले यही हमारा आशीर्वाद है।

इति नारायण स्मरण

श्री श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी महाराज
पेजावर मठ, उडुपि

अनुग्रह संदेश

श्री राम श्री

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महा संस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी, उडुपी

आठ सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरू मध्वाचार्य जी ने मध्व सिद्धान्त का प्रचार प्रसार बहुत पैमाने से आरम्भ किया। इस प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए उडुपी में आठ पीठ और उत्तर कर्नाटक में एक पीठ की स्थापना किए। श्री जयतीर्थ मुनि, श्री श्रीपाद राज स्वामी, श्री व्यासराजमहामुनि, श्री वादिराजयोगी, श्री रघूत्तम स्वामी जी, श्री राघवेन्द्र तीर्थ जी इत्यादि महामहिमों ने उस सिद्धान्त को और विकसित किया।

हमारे दीक्षा शिक्षा गुरु युगपुरुष श्री श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी उत्तर भारत में श्री मध्व तत्वज्ञान को प्रसार करने हेतु **बीस वर्ष** पहले श्री प्रयाग क्षेत्र में श्री मध्व पीठ की स्थापना की है। उन दिनों से प्रयाग का हमारा मठ मध्वसिद्धान्त का प्रसार करता आ रहा है।

श्री वेदव्यास जी की इस सुसंस्कृत भागवत को हमारे शिष्य श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी ने समर्थ सुन्दर और सबके मन को मिले ऐसी सुन्दर हिन्दी में अनुवाद कर साधक सज्जनों का परमोपकार किए हैं। कन्नड़, संस्कृत न समझने वाले हिन्दी भाषी साधकों को जगद्गुरु मध्वाचार्य जी के शास्त्र का परिचय कराने वाले इस कार्य को हम अपने हृदय भरकर अभिनन्दन करते हैं। अन्य सारे कार्यों को बाजू में रखते हुए **तद्धितप - तद्धितप** के जैसे दिन-रात किया हुआ यह शास्त्र सेवा अनुपम है। हमारे गुरु श्री श्री 1008 विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी से स्थापित तत्व संशोधन संसत से मुद्रण किया गया है। यह हरि गुरु का अनुग्रह प्राप्त कराने वाला है। उत्तर भारत के हिन्दी भाषी लोग इस ग्रन्थ को पढ़ें और अपने बन्धु बान्धवों से पढ़ाएँ तो यह प्रयत्न सार्थक हो जाता है। इनसे भागवत के अन्य भाग भी जल्दी से जल्दी अनुवादित होकर साधकों के हाथ में विराजमान हो, यही हमारी अपेक्षा है। श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य जी से प्रतिष्ठापित श्री कृष्ण, श्री राम जी के अनुग्रह से हम अपने शिष्य को शुभ कामना देते हैं।

श्री श्री 1008 श्री विद्याधीशतीर्थ
स्वामी जी महाराज

अनुग्रह संदेश

श्री दिग्विजय रामो विजयते

श्री मद्जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

उत्तरादि मठ

भगवान के गुणों का चिन्तन करना प्रत्येक आदमी का मुख्य कर्तव्य है। अनन्त गुणपरिपूर्ण भगवान की महिमा को जानने के लिए सबको भागवत के प्रकाश की आवश्यकता है। भागवत के पाठ प्रवचन श्रवण सारे बहुत पुण्य देने वाले हैं। ऐसे श्रेष्ठ महाभागवत पुराण को वैष्णव सिद्धान्त के अनुसार श्री श्री विद्यात्मतीर्थ जी ने हिन्दी में सब के मन मोहित करने वाले उत्कृष्ट व्याख्यान किए हैं। प्रयाग के त्रिवेणी तट पर रहते हुए अपनी स्वयं साधना करते हुए उत्तर भारत में वैष्णव सिद्धान्त का प्रचार प्रसार कार्य करते हुए अपने को समर्पित किए हैं। वे जो इस प्रयास में रत हैं उसको सहकार देते हुए श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी उन्हें बल दे रहे हैं यह संतोष का विषय है।

मध्व मत का प्रसार समग्र भारत में उज्वल रीति से होना चाहिए। उत्तर भारत के परिसर में यह प्रसार कार्य करने वाले श्री श्री विद्याधीश तीर्थ और श्री श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी का हम अभिनन्दन करते हैं।

इसी प्रकार श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी और अनेक कृति और व्याख्यान करते हुए तत्वप्रचार कार्य को इससे भी अधिक रूप से करें इस प्रकार हम अपने उपास्य मूर्ति श्री दिग्विजय राम और वेदव्यास जी से प्रार्थना करते हैं।

बैगलूरु

श्री सत्यात्म तीर्थ स्वामिनः
उत्तरादि मठ

श्रीमद् अच्युत प्रेक्षाचार्य संस्थानम्

भीम सेतु मुनिवरेन्द्रमठ भीमनकट्टे

अनुग्रह संदेश

([illegible])

SRIMAD ACHUTYA PREKSHACHARYA SAMSTHANAM

BHIMASETHU MUNIVRUNDA MUTT, BHIMANAKATTE.

SRI 1008 SRI SRI. RAGHUMANYATEERTHA SWAMIJI
PEETHADHIPATHI

Doorvasapuram Post, Taluk: Teerthahalli, District: Shimoga. Pincode: 577432
Phone: 08181-228281, Mobile: [illegible], [illegible]. Email: [illegible]@gmail.com

Branch: BHIMANAKATTE SRI RAGHAVENDRA SWAMY MUTT
No.10, 6th Block, Doddabommasandra, Vidyaranyapura Main Road, Bangalore : 560097. Phone: 080-23483471.

[illegible]

[illegible]

शुभ कामना

।। श्री निम्बार्को जयति ।।

।। श्रीमद् गोपीजनवल्लभाय नमः ।।

अनन्त श्री जगद्गुरु निम्बार्काचार्य

गोस्वामी श्री विष्णुकान्त जी महाराज, पीठाधिपति

श्री निम्बार्काचार्य पीठ, 18/12, महाजनी टोला प्रयाग - 211 003 फोन : 2404298

श्री निम्बार्क प्रभास्थली व्यास गद्दी नैमिषारण्य (उ0 प्र0)

कर्नाटक के अन्तर्गत उडुपी माध्व पीठ प्रयाग के अधिपति श्री 1008 श्री स्वामी विद्यात्म तीर्थ जी महराज के लोक भाषा में अनुवादित भागवत के ग्रन्थ और अन्य भगवद्गीतादि ग्रन्थ देखने को मिले। इक्यासी वर्ष की अवस्था में अदम्य स्फूर्ति, वैदुष्य एवं सार्थक जीवन के धनी महा पुरुष अभिनन्दनीय हैं। कई अवसर में हम लोग एक रहे हैं।

इस अवस्था में भी कई ग्रन्थों के लेखन, सामाजिक एवं पारमार्थिक कार्यों को एक युवक की भाँति करते हुए संलग्न हैं।

आप का जीवन अमृततत्व की ओर अग्रसित है आप सकल कुशल पात्र हैं।

आचार्य विष्णु कान्त गोस्वामी
इलाहाबाद

प्रस्तावना

हमारे गुरु जी पूर्व प्रयाग पीठाधिपति श्री 1008 श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी ने लगभग दस वर्ष पूर्व भागवत के पहले तीन स्कन्धों का अनुवाद कर प्रकाशित किए थे। उनका महानिर्वाण आकस्मिक रीति से होने के कारण वह कार्य वहीं अवरुद्ध हो गया था।

हमारे दीक्षा गुरु उडुपि श्री पलिमारु मठ के पीठाधिपति जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी महाराज ने उस अवरुद्ध कार्य का पुनरारम्भ करने का आदेश दिया। मैं अल्प शक्ति और अल्प ज्ञान वाला हूँ। किन्तु अपने गुरुवर्य की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मैं यह कार्य कर रहा हूँ।

विद्यावतां भागवते परीक्षा यह पूर्णत: सत्य है। श्री गुरु जी का अनुग्रह ही मुझसे यह कार्य करवा रहा है। दक्षिण भारत में जन्म लेने के कारण मुझे अच्छी हिन्दी नही आती। पण्डित न होने के कारण शास्त्र का गहन और विस्तृत ज्ञान प्राप्त नही है। केवल गुरु का अनुग्रह ही मुझे प्रेरणा दे रहा है। पाठकों द्वारा निर्दिष्ट त्रुटियों को अगले अंक में सुधारने का प्रयास करेंगे।

दशम् स्कन्ध भागवत का किरीट प्राय है। वे व्यास जी इसको भक्ति रस से पूर्ण रूप से भिगो दिए हैं। कई कथाकार इसको ऊपर ऊपर से पढ़ते हुए अपने गलत अर्थ प्रसार किए हैं। इस स्कन्ध में भक्ति को छोड़ कर काम इत्यादि अन्य भावों का विचार करना गलत है। मूल भागवत में दशम स्कन्ध में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध इस प्रकार दो भाग कर चुके हैं। दोनों भाग सौ - सौ अध्यायों से भर कर फल पुष्प से भरा हुआ वृक्ष के समान अपने बोझ से बहुत झुके हैं। पाठक की सुविधा के लिए हम पूर्वार्द्ध में भी और भाग करना चाहते हैं। उसमें से प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है। इसका विस्तार अध्याय एक से अध्याय छब्बीस तक सीमित है। अब हम पूर्वार्द्ध में आगे का भाग अध्याय सत्ताईस से अध्याय उनसठ तक (पूर्वार्द्ध का अन्त तक) अब प्रकाशित कर रहे हैं।

विस्तृत रूप से जानकारी देने के उद्देश्य से हमने क्रम में भी थोड़ा सा बदलाव किया है। पहले के समान श्लोकार्थ मोटा अक्षरों में दिया गया है, अर्थ थोड़ा सा छोटे अक्षरों में दिया गया है। इस भाग में विशेषार्थ के लिए और थोड़ा अवकाश किया है। प्रत्येक श्लोक का नही तो जहाँ आवश्यक है वहाँ विशेषार्थ, उससे भी छोटे अक्षरों में देने का प्रयास किया है। आशा है कि यह पाठकों को सुविधाजनक होगा।

इस द्वितीय भाग में भगवान श्रीकृष्ण की गोपियों के साथ रास-लीला, जल क्रीड़ा आदि लीलाएँ आती हैं। रसिक कवियों ने इन लीलाओं को उत्प्रेक्षा करते हुये भावुक होकर बहुत सुन्दर ढंग से वर्णन किये हैं। इन लीलाओं में भक्ति रस और भक्ति भाव ओत-प्रोत होकर बहता है, बहना चाहिये। किन्तु रासिकता में यह भक्ति भाव लुप्त हो गया है। लोगों को श्रीकृष्ण की इन लीलाओं में भक्ति भाव के बदले में रसिकता और काम भाव का अनुभव आये इस प्रकार बहुत बदलाव हो चुका है। भागवत रचनाकार वेदव्यास जी ने शुद्ध भक्ति भाव से भागवत की रचना की है। इसमें कोई मत-भेद नही रखते हैं। विशेषकर मुसलमानों के राज्याधिकार के समय में उनके सभा में रहने वाले कवि लोग उनके मनोरंजन के लिये भागवत का उपयोग किए है। तब से भागवत में भक्ति भाव से अलग और विचार करने की परम्परा प्रारम्भ हो गई। अब हमें उसको त्याग कर वेदव्यास जी को

सम्मत शुद्ध भक्ति भाव को ही लेना है। यहाँ हमारा प्रयास यही है कि भागवत के प्रत्येक श्लोक से जो भक्ति रस प्रवाहित होता आ रहा है, पाठकगण उसको पाये, सद्भक्त बनें। इस दृष्टि से हमारे पारम्परिक व्याख्यनाकारों ने जो सुन्दर अर्थ लिखे है उसी का हम अनुसरण करने का प्रयास किये हैं। अन्य शृंगारी कवियों के शृंगारमय वर्णनों से हम दूर रहने का प्रयास किये है। हम चाहते हैं कि हमारे पाठकगण भी केवल भक्ति भाव से भागवत को देखें, भागवत के सद्भक्त बनें, भगवान के निजी भक्त बनें।

तीन सौ साठ वर्ष के पहले मंत्रालय के श्री राघवेन्द्र स्वामी जी ने अनेक शास्त्र ग्रथों की रचना की वे थोड़े श्लोको में दशम स्कन्ध की श्री कृष्ण की कथा को बता दिए हैं। रोज इन श्लोकों के पाठ करने से नित्य दशम स्कन्ध पाठ का पुण्य मिलता है। हम इन श्लोकों को अर्थ के साथ यहाँ दिए हैं।

बड़े लोगों का कहना है कि नित्य पाठ करते समय नाम, रूप, गुण इन तीनों की अवश्यकता है। हमारे पाठकों को यह तीनों लाभ प्राप्त हो इस दृष्टि से इन श्लोकों के पाठ करते समय भगवान के **नाम** फोटो में भगवान के **रूप,** श्लोक में और चित्र की सहायता से कथा को याद करते हुए भगवान का **गुण** इन तीनों का चिन्तन एक साथ मिले। ग्रन्थ के प्रारम्भ में फोटों को अर्थ सहित दिया है। आशा रखतें है कि पाठकगण नित्य पाठ करके भगवान का प्रीति पात्र बने।

हमारे परम गुरु श्री विद्यामान्य जी से संस्थापित और हमारे गुरु जी श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महाराज से पोषित श्री तत्व संशोधन संसत् ने इस ग्रन्थ प्रकाशन की जिम्मेदारी ले लिए हैं। तत्व संशोधन संसत् दक्षिण भारत में एक प्रसिद्ध संशोधन और प्रकाशन की बड़ी संस्था है। बहुत श्रेष्ठ विद्वान और पंडित संशोधकों के ग्रन्थ यहाँ से प्रकाशित हुए हैं। मेरे जैसे अल्प बुद्धि वाले की इस छोटी सी कृति को वे प्रकाशित कर रहे हैं, यह मेरा बड़ा भाग्य है। इसके लिए मैं अपने श्री गुरु जी को शत शत नमन करता हूँ।

इस ग्रन्थ को हमारे परम गुरु विद्यामान्य जी की आराधना वैशाख शुक्ल एकादशी गुरुवार को हो रही है। उस सन्दर्भ में हमारा यह भागवत प्रकाशित हो रहा है। यह मेरा बड़ा भाग्य है। परम पूज्य विद्यामान्य जी चाहते थे कि उत्तर भारत में मध्व सिद्धान्त का प्रचार-प्रसार हो। उन्ही की इच्छानुसार यह भागवत आदि सद् गन्थों का प्रकाशन कार्य हो रहा है। उन्ही के अनुग्रह से यह कार्य आगे बढ़े यह कामना उन्ही के श्रीचरणों में इस ग्रन्थ को समर्पित करते हुये कामना करते हैं।

इस ग्रन्थ के लिए आवश्यक फोटो के लिए हमे बहुत प्रयास करना पड़ा। वैसे तो श्री कृष्ण के लाखों फोटों प्राप्त हैं, तो भी कथा में आए हुए सन्दर्भ को संगति देने वाला फोटो मिलने में कष्ट हुआ। इस समय हमें आवश्यक फोटो देकर श्री रामचन्द्र सिंह सहायता किए हैं। हम यहाँ उनका याद करते हैं।

इस ग्रन्थ के अक्षर विन्यास किए हुए श्री सुनील कुमार जी (राजा) और प्रशान्त शुक्ल जी अक्षर संशोधन किए हुए श्री गिरधारी लाल मिश्र और मुद्रण किए श्री वैष्णव प्रेस के श्री पुरुषोत्तम लाल जी और सारे कर्मचारियों के सहयोग का स्मरण हम करते हैं। सूधी सद्भक्त इस ग्रन्थ का सदुपयोग करें यही आकांक्षा है।

इति शम्

पालिमारु उडुपि
03-05-2012

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज

दसवाँ स्कन्ध की विषय सूची

क्र0		विषय	पृष्ठ संख्या
1.	अध्याय 27	शरद के रात में श्रीकृष्ण वेणु गान करते है। गोपियों के संगत रासलीला	1-8
2.	अध्याय 28	पश्चात्ताप से गोपियाँ श्रीकृष्ण को ढूढ़ती है।	9-13
3.	अध्याय 29	गोपी गीता	14-17
4.	अध्याय 30	श्रीकृष्ण का दर्शन, गोपियों का प्रश्न, श्रीकृष्ण का उत्तर	18-21
5.	अध्याय 31	रासलीला	22-28
6.	अध्याय 32	अजगर नन्द को पकड़ा, श्रीकृष्ण से मोचन, शंखचूड़ वध	29-31
7.	अध्याय 33	वेणुगीता	32-35
8	अध्याय 34	वृषभासुर वध, अक्रूर को श्रीकृष्ण को लाने के लिए गोकुल को कंस ने भेजा।	36-41
9.	अध्याय 35	व्योमासुर वध, केशी वध,	42-45
10.	अध्याय 36	अक्रूर गोकुल आए, कंस सन्देश कथन,	46-50
11.	अध्याय 37	मथुरा गमनारम्भ: गोपियों के खेद, अक्रूर को यमुना में विश्वरूप दर्शन	51-56
12.	अध्याय 38	अक्रूर ने स्रोत किया	57-61
13.	अध्याय 39	मथुरा प्रवेश, रजक हनन, सुदामा से श्रीकृष्ण सेवा	62-67
14.	अध्याय 40	त्रिवक्रा से भेंट, धनुषशाला में धर्नुभंग	68-72
15.	अध्याय 41	कुवयलापीढ़ हनन, राम कृष्ण रंगाप्रवेश, चाणूर मुष्टिक हनन	73-76
16.	अध्याय 42	कंस वध, वसुदेव का बन्ध विमोचन	77-82
17.	अध्याय 43	उग्रसेन का अभिषेक, राम कृष्ण के उपनयन, सान्दीपिनी आश्रमवास	83-87
18.	अध्याय 44	उद्धव को गोकुल को भेजे, नन्द से भेंट	88-92
19.	अध्याय 45	उद्धव से गोपियों का संवाद, भ्रमर गीता	93-99
20.	अध्याय 46	बहुत दिन के बाद उद्धव वापस चले,	100-101
21.	अध्याय 47	श्रीकृष्ण से त्रिवक्रा का अनुग्रह, अक्रूर के घर गये एवं उनको हस्तिनापुर भेजे।	102-105
22.	अध्याय 48	अक्रूर से धृतराष्ट्र को हितोपदेश, पाण्डवों से मिलन।	106-108
23.	अध्याय 49	जरासंध से मथुरा आक्रमण, जरासंध प्रथम पराजय	109-115
24.	अध्याय 50	तीन माह के बाद पुन: जरासंध से युद्ध, यमुना तट स्थित सैन्य का उच्चाटन।	116-118
25.	अध्याय 51	जरासंध बाण का सहाय याचना करता है, उनके सेनापतियों के साथ पुन: आक्रमण	119-123
26.	अध्याय 52	जरासंध का सैन्य नाश हुआ, सारी सेना युद्ध स्थल से भाग गई,	124-127
27.	अध्याय 53	चार माह राम कृष्ण गोमान्तक में वास किये, गरुड़ से मिलन, द्वारिका निर्माण	128-131
28.	अध्याय 54	कालयवन का आक्रमण। मथुरा से बाहर आकर श्रीकृष्ण भागे। मुचुकुन्द से कालयवन का नाश	132-138
29.	अध्याय 55	वापस आये श्रीकृष्ण से जरासंध का युद्ध। राम कृष्ण गोमान्त के प्रति दौड़ गये। जलते गोमान्तक पर्वत को बुझा कर द्वारका आये।	139-141
30.	अध्याय 56	कृतवर्म को हस्तिनापुर भेजे, पाण्डवों के समाचार पाये।	142-143
31.	अध्याय 57	रेवती बलराम विवाह। रुक्मिणी स्वयंवर योजना, ब्राह्मण से श्रीकृष्ण को पत्र।	144-149
32.	अध्याय 58	श्रीकृष्ण कुण्डिनपुर गये, रुक्मिणी हरण, बलराम से राजाओं के साथ युद्ध।	150-155
33.	अध्याय 59	शिशुपाल की पराजय, श्रीकृष्ण द्वारा अपमान, रुक्मिणी श्रीकृष्ण का विवाह	156-164

श्री राम श्री

श्रीमध्वतत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

हमारे प्रकाशित ग्रन्थ

क्र0.	ग्रन्थनाम	मौल्य
1.	श्रीमद्भगवद्गीता प्रतिश्लोक का हिन्दी भावानुवाद	70.00
2.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्कंधः भाषानुवादः	100.00
3.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् चतुर्थ स्कंधः भाषानुवादः	60.00
4.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् पंचम एवं षष्ठ स्कंधौ भाषानुवादः	60.00
5.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् सप्तम् स्कंधः भाषानुवादः	60.00
6.	श्रीमद्भागवत अष्टम् स्कन्धः भाषानुवादः	60.00
7.	श्रीमद्भागवत नवम्स्कंधः भाषानुवादः	60.00
8.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः पूर्वार्द्ध अध्याय छब्बीस तक	100.00
9.	श्री रामायणपात्र चित्रणम् एवम् नीतिकथा	50.00

पुस्तक प्राप्ति स्थान

1. श्री मध्वमठ
   63 मीरागली, दारागंज इलाहाबाद
2. तत्व संशोधन संसत् श्री हृषीकेशतीर्थ संस्थानम्, श्री पलिमारुमठ, रथ बीदि उडुपि कर्नाटक
3. श्री स्वामी सीता वल्लभ शरण
   श्री मध्वमठ बड़ा अखाड़ा मैहर (म. प्र.)
4. श्री स्वामी ललित मोहन ओझा
   प्रेमपीठ मध्वमठ तिजारा, जिला अलवर, राजस्थान
5. डॉ रवि,
   1st फ्लोवर, नीयर लक्ष्मी भगवन, सेन्ट्रल बाजार रोड़, नागपूर,
6. श्री G. R. Kulakarni
   2041 B wing Mahesh Tower
   Charkop, Sector 2, Kambivali (W)
   Mumbai 67.
   Ph - 9867251783

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी

यह एक अनोखा स्तोत्र है जिसमें **श्री राघवेन्द्र स्वामी जी** ने केवल थोड़े ही श्लोकों में दशम स्कन्ध की श्री कृष्ण कथा को जोड़ दिए हैं। हमारे गुरु जी उडुपि पीठाधीश्वर श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य पीठाधिपति ***श्री 1008श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी*** इन श्लोको को सरल भाषा में अनुवाद किए है। हम इन दोनों को मिलाते हुए साथ साथ बत्तीस रंगीन चित्रों में इन अध्यायों की कथा को फोटों के द्वारा आपके सामने प्रस्तुत करते हैं। शास्त्र जानने वाले कहते है कि केवल नाम स्मरण करने के बजाय भगवान का नाम रूप गुण चिन्तन करना श्रेष्ठ हैं। इससे प्रथमतः हमारे मन को आनन्द होता है साथ साथ भगवत्प्रीति भी ज्यादा होती है। आगे के पृष्ठों में हम नाम रूप गुण के चिन्तन के लिए कथानुसारी फोटो, मूल श्लोक और उसका अर्थ दिए हैं। इससे नाम रूप गुण चिन्तन एक ही समय में एक साथ होगा। आग्रह है, पाठक इसका प्रयोग करते हुए नित्य प्रति नाम रूप गुण चिन्तन से पाठ करें।

आपका

प्रकाशक

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय छब्बीस, सत्ताईस की कथा

गोविन्दाख्योऽथ तातम् जलपतिहृतमानीय लोकं स्वकीयम् । नन्दादीनां प्रदर्श्य व्रजगतवनितागानकृष्टार्तचित्ताः ।

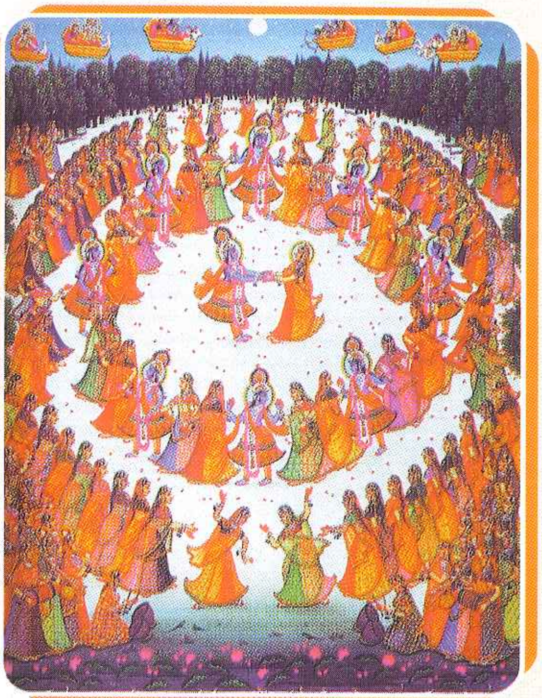

यः कालिन्द्यां निशायाम् अरमयदमलज्योत्स्नया दीपितायां चार्वंगीर्नर्मवाक्यैः स्तनभरनमिताः प्रीणयन् प्रीयतां नः।।7।।

बाल कृष्ण गोविन्द के नाम पाये। नन्द गोप को वरुण ने अपहार किया। उनको वापस लाये। अपने वैकुण्ठ लोक को नन्दगोप को दिखाया। स्तन के भार से झुके हुये गोकुल के सुन्दरांगियों को अपने वेणुगान से आकर्षित किये। काम से आकर्षित चित्त वाले उनको पूर्णमासी की निर्मल चाँदनी में यमुना तीर में सरस सम्भाषण से सन्तोष दिये। ऐसे श्रीकृष्ण हमें अनुग्रहीत करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय अट्ठाइस से बत्तीस तक की कथा

अन्तर्धत्ते स्म तासां मदहरणकृतेत्वेकया क्रीडमानः स्वस्कन्धारोहणाद्यैः पुनरपि पिहितो गर्वशान्त्यै मृगाक्ष्याः।

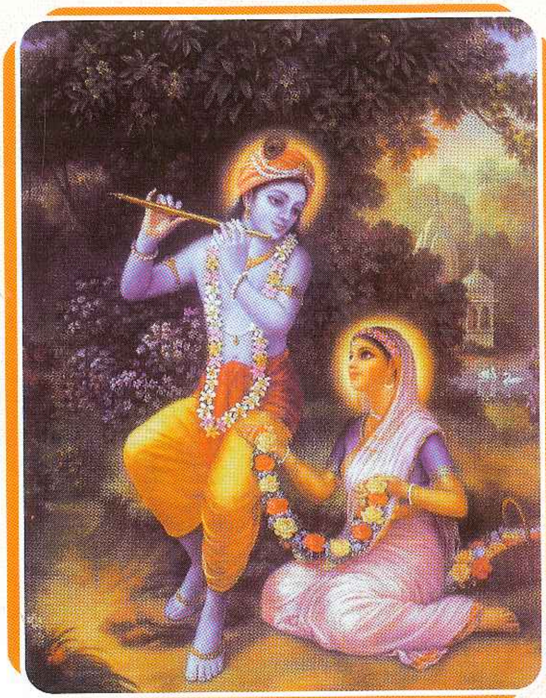

खिन्नानां गोपिकानां बहुविध नुतिभिर्यो वहन् प्रीतिमाविः प्राप्तोरासोत्सवेनन्यरमयदबलाः प्रीयतां मे हरिः सः ।। 8 ।।

गोपियों के दर्प को नाश करने के लिये भगवान अदृश्य हो गये। एक गोपी को कन्धे के ऊपर लेकर उसके साथ विहार करके उसकी भी गर्व शान्ति के लिये अदृश्य हो गये। खिन्न हो गये, उनके अनेक विध के स्तोत्र से आविर्भूत हो गये। रासोत्सव से अबलाओं को आनन्द दिये। ऐसे श्रीहरि हमारे ऊपर कृपा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय तैंतीस से पैंतीस की कथा

हत्वा यः शंखचूड़ं मणिमथ समदादग्रजयार्तगोपी गीतानेकस्वलीलो हृतवृषभमहापूर्वदेवोऽमरेड्यः ।

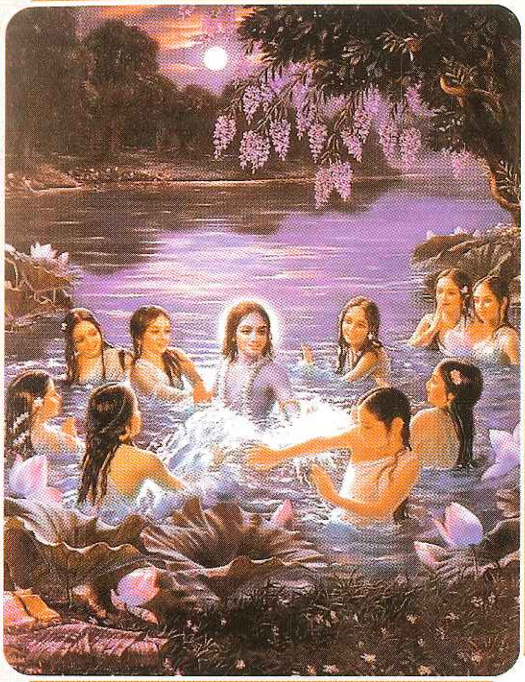

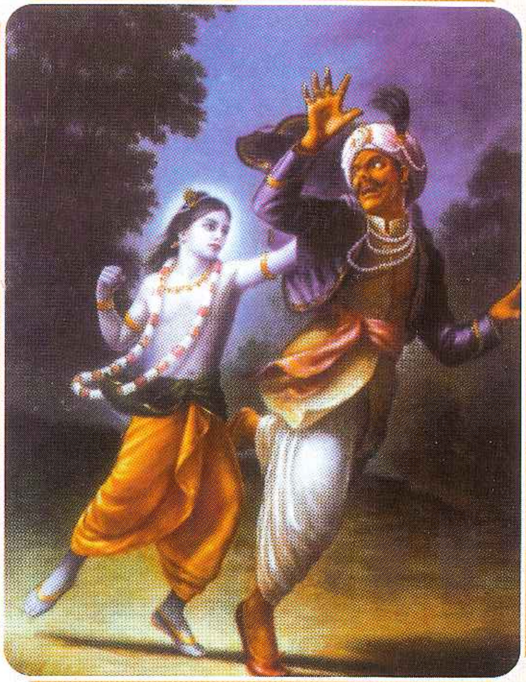

केशिप्राणापहारी सुरमुनिवदनप्रार्थिताशेषकृत्यो हत्वा पुत्रं मयस्य स्वजनमपिहितं मोचयन् मोक्षदस्यात् ।। 9 ।।

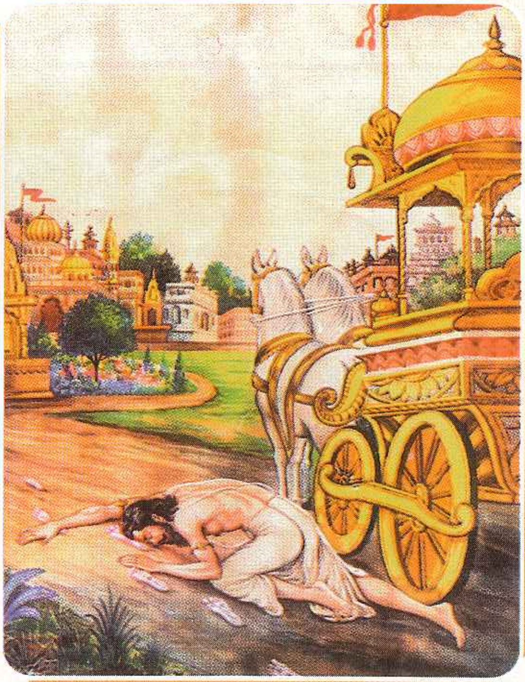

शंखचूड़ नाम के राक्षस को मार कर उसके सिर में रहने वाली मणि को भाई बलराम को दे दिये। दिन में भगवान के दर्शन राहित्य से दुःखित गोपियों ने उनकी अनेक लीलाएँ गाई। वृषभ नाम के महादैत्य को मारे। देवताओं ने स्तुति की। केशी दैत्य को मारे। नारद जी आगे की लीलाओं को दर्शाने की प्रार्थना किये। मयपुत्र व्योमासुर को नाश कर उसके द्वारा छिपाये गए मित्रों को छुड़ाये। ऐसे श्रीकृष्ण हमारे संसार बन्ध का विमोचन करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय छत्तीस से उनतालीस तक की कथा

अक्रूराकारितो यान् व्रजयुवतिजनान् सान्तयित्वाऽभितप्तान् स्वं रूपं मज्जतेऽस्मै विलसितमहिगं दर्शयंस्तेन वन्द्यः।

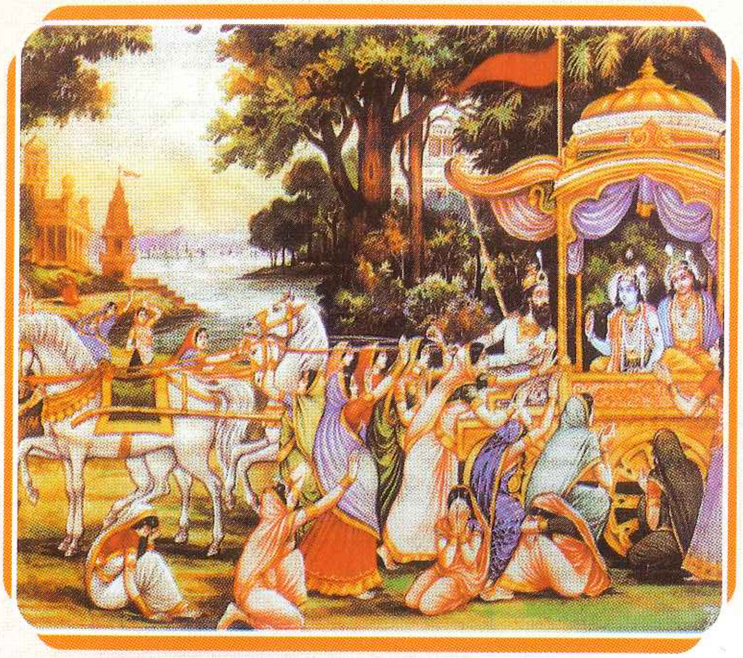

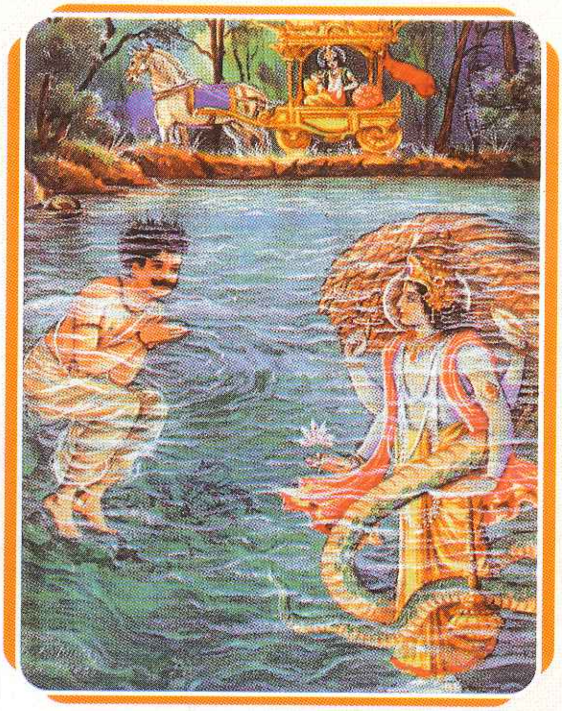

यो गत्वा कंसधानीं हृतरजकशिराश्चारुवेषः सुदाम्नः प्रीतिं कुर्वंस्त्रिवक्रां व्यतनुतरुचिरां पौरमह्योऽवातात् सः ॥ 10 ॥

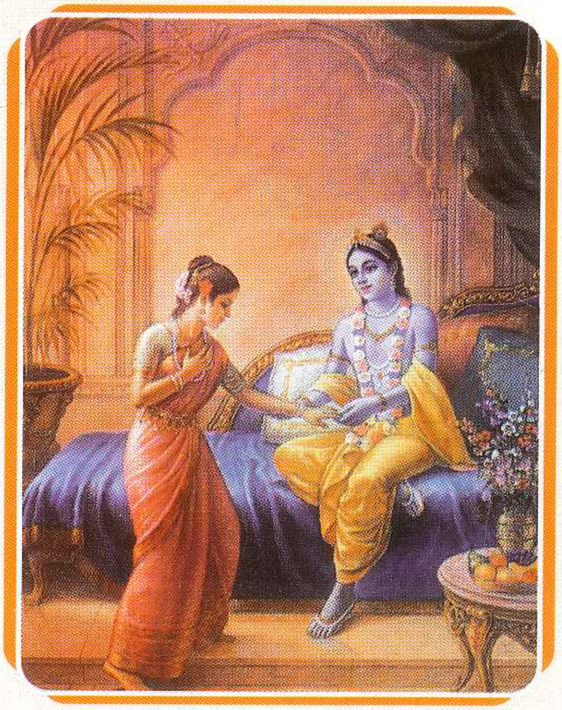

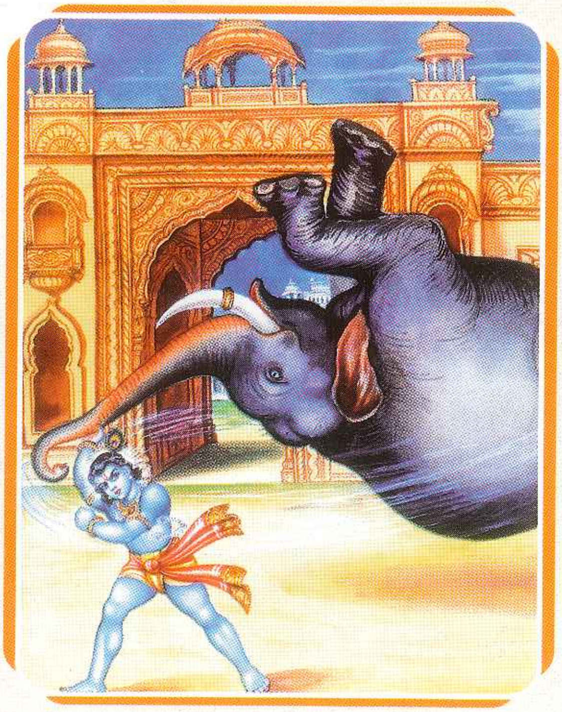

अक्रूर मथुरा को बुलाये। दुःखतप्त गोकुल की स्त्रियों को समाधान कर श्रीकृष्ण मथुरा को चले। पथ मध्य में यमुना में अवगाहन किये अक्रूर को श्रीकृष्ण जल में अपने विश्वरूप को दिखाये। अक्रूर उनकी स्तुति किये। कंस की मथुरा को जाकर धोबी के सिर काटे। सुन्दर वेष धारण कर मालाकार को सन्तोष किये। त्रिवक्रा कुब्जा को सुन्दरी बनाये। नगरवासी स्तुति किये। ऐसे श्रीकृष्ण सदैव हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय चालीस से तिरालीस की कथा

शार्वं भंक्त्वाधनुर्यो बलमापि धनुषो रक्षकं कुंजरं तं मल्लाश्चाणूर पूर्वान् अपि सहसहजो मर्दयंस्तुंगमंचात् ।

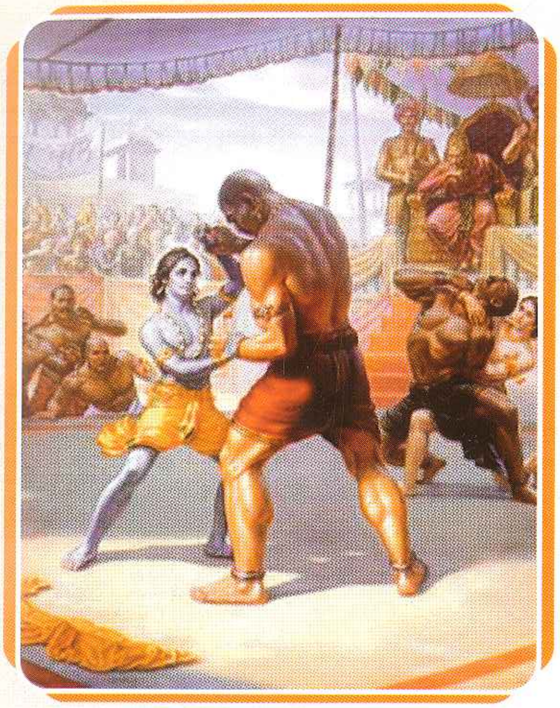

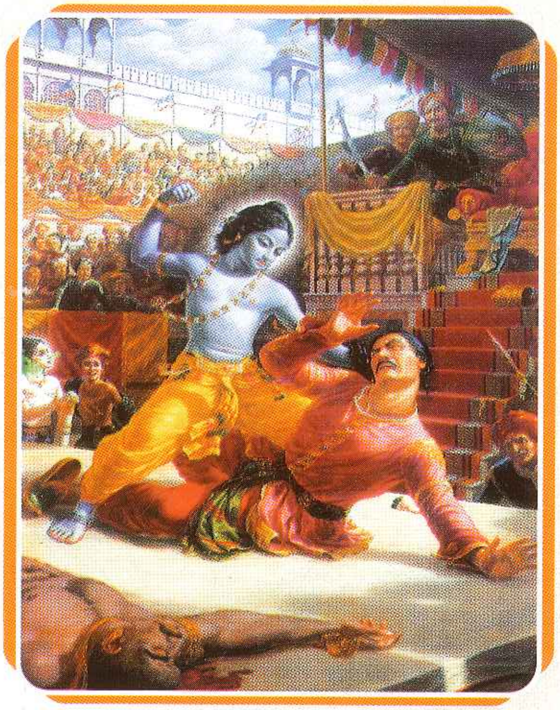

भोजेशं पातयित्वा व्यसुमकृत निजान् नन्दयान् प्राप्य गर्गात् द्वैजं संस्कारमाप्तो गुरुमथ विदिताशेषविद्योऽवतान्नः ।। 11 ।।

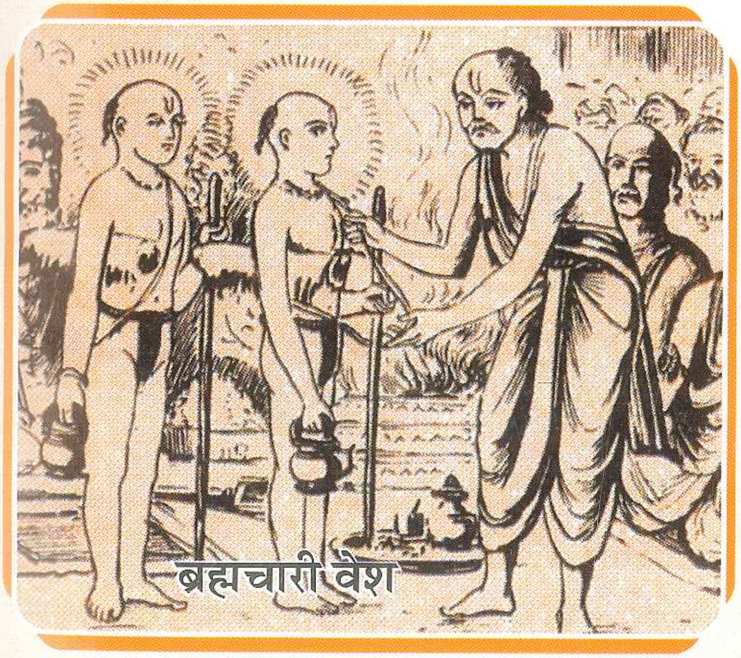

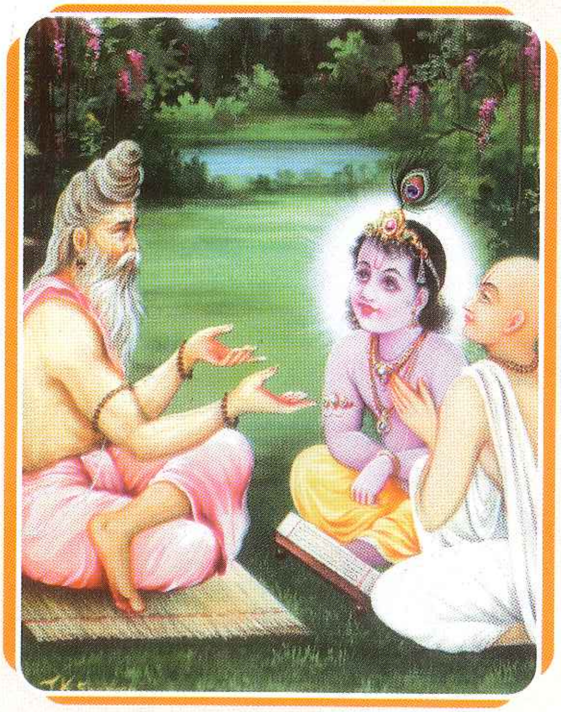

श्रीकृष्ण शिव धनुष को भंग किये। उसकी रक्षा के लिये खड़े हुये सैन्य को, कुवलयापीड नाम के हाथी को, चाणूर इत्यादि मल्लों को, बलराम के साथ होकर संहार किये। ऊपर के सिंहासन से नीचे गिराकर कंस को मारे। यादव कुल को आनन्द दिये। गर्ग मुनि से उपनयन संस्कार पाकर गुरु सांदीपिनि के पास जाकर सकल विद्या को पा लिये। ऐसे श्रीकृष्ण सदैव हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय चौवालीस से इक्यावन तक की कथा

दत्वापुत्रं प्रवक्त्रे प्रतिगतमधुरः सान्त्वयन्नुद्धवास्याद् गोष्ठस्थान्नन्दपूर्वान् अरमयदबलां प्रीतिकृद्यः शुभस्य।

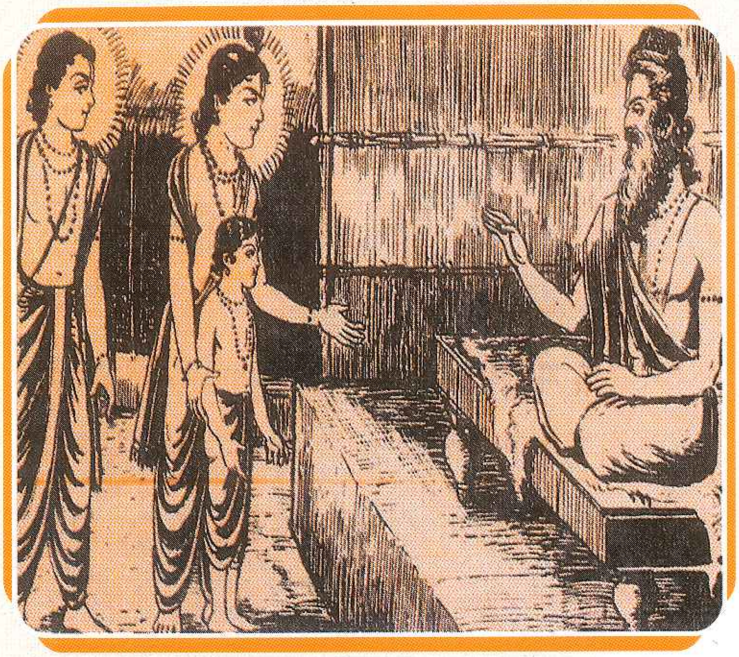

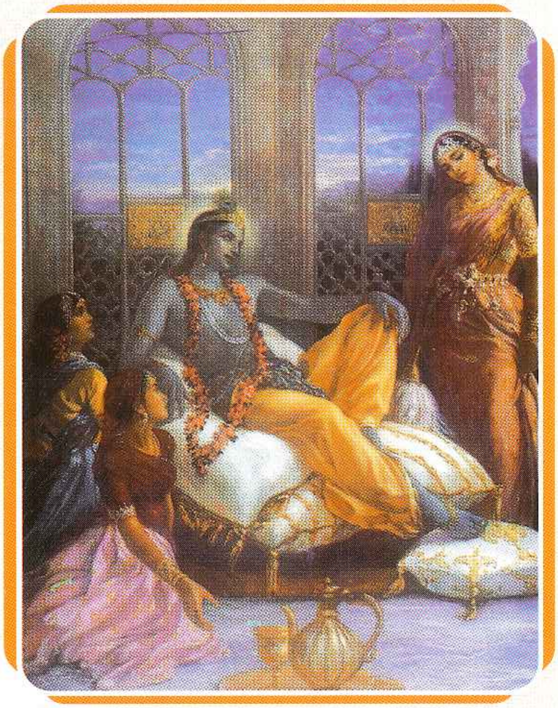

अक्रूरस्याथ तेन प्रतिविदितपृथापुत्रकृत्यो जरायाः सूनुं निर्भिन्नसेनं व्यतनुतबहुशो विद्रुतं नः स पायात्॥ 12॥

श्रीकृष्ण अपने गुरु के मृत पुत्र को वापस लाकर दिये। शिक्षण पाकर वापस मथुरा को आये। उद्धव के मुखान्तर गोकुल में रहे, नन्दादि लोगों को समाधान किये। त्रिवक्रा के साथ रमण किये। सज्जन अक्रूर के घर में सत्कार पाये। उनसे पाण्डवों का समाचार पाये। जरासंध के साथ बहुत बार युद्ध करके उनके सैन्य का नाश कर भगा दिये। ऐसे श्रीकृष्ण सदैव हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय बावन से चौवन तक की कथा

पुर्या निर्गत्य रामाद् अथ सहमुसली प्राप्य कृष्णोऽभ्यनुज्ञां गोमंतं चापिमौलिं खगपतिविहितं वासुदेवं सृगालम्।

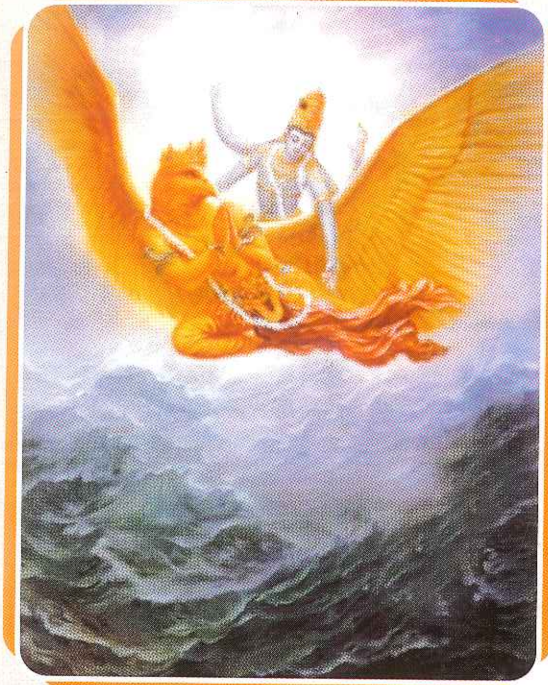

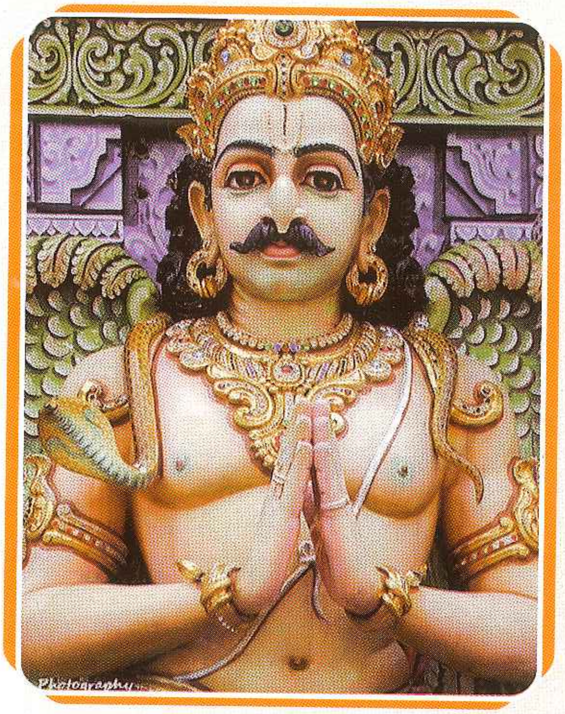

हत्वाशत्रुंच पुर्यां अधिजलधिपुरीं निर्मितां बन्धुवर्गान् निन्ये यः सोऽवतान्नः प्रमथितयवनो मौचुकुन्दाक्षिवह्नेः ।। 13 ।।

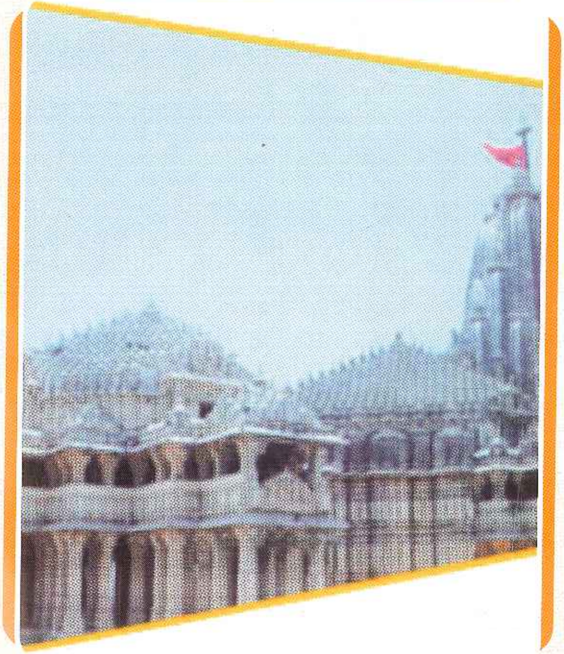

बलराम के साथ मथुरा से जाकर परशुराम की आज्ञा पाकर गोमान्तक पर्वत को जाकर वहाँ गरुड़ से अर्पित किरीट को स्वीकार किये। शत्रु सृगाल वासुदेव को करवीरपुर में मारे। समुद्र में द्वारका निर्माण करते हुये सारे बन्धु वर्ग को वहाँ ले गए। मुचुकुन्द की आँखो से निकली अग्नि से कालयवन को मारने वाले भगवान श्रीकृष्ण सदैव हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय पचपन से उनसठ तक की कथा

राज्ञा संस्तूयमानो हतयवनबलो भीतवन्मागधेशाद् गोमन्तं प्राप्यभूयो जितमगधपतिर्जातशान्ताग्निशैलः ।

आगत्य द्वारकां यो हृदिकसुतगिरा ज्ञातकौन्तेयकृत्यः पश्यत्स्वादाय भैष्मीं नृषु युधि जितवान् भूभृतः प्रीयतां नः ।।14 ।।

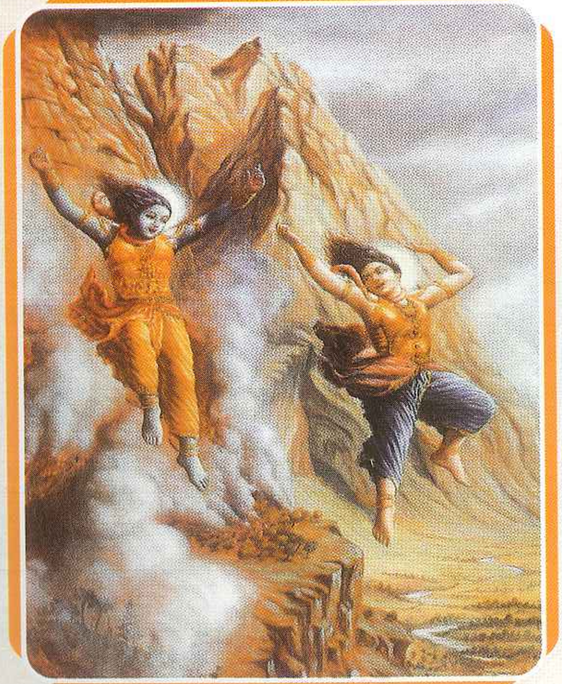

राजा मुचुकुन्द ने श्रीकृष्ण की स्तुति की। श्रीकृष्ण कालयवन के सैन्य का संहार किये। जरासंध से डरा हुआ जैसे गोमान्तक पर्वत को दौड़ कर भागे। इस तंत्र से जरासंध को हराये। गोमान्तक पर्वत को जरासंध द्वारा जलायी हुयी आग को बुझाये। द्वारका को आकर कृतवर्मा से पाण्डवों का समाचार पाये। जरासंध इत्यादि के आँखों के सामने रुक्मिणी का अपहरण कर युद्ध में राजाओं को जीत लिये। ऐसे श्रीकृष्ण सदैव हमारे ऊपर कृपा करें।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सत्ताईसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - शरत् काल आ गया, फूल खिले, चमेली के फूल के सुगंध और शरत् काल के चन्द्र की चाँदनी दोनों मिलकर मन को प्रसन्नता दे रहे थे। भगवान इसको देखे और समझे यह रासक्रीड़ा के लिए योग्य समय है। पहले वे कात्यायनी व्रत करने वाली और गोपिकाओं को आश्वासन दिये थे। उनके साथ अपने स्वरूप सामर्थ्य से लीला करना चाहे।।1।।

योग माया का अर्थ है भगवान की अचिन्त्य अद्भुत शक्ति। भगवान इस शक्ति से अनेक रूप धारण करते हैं। गोपिकाओं में अपनी पत्नी महालक्ष्मी का सन्निधान रखते हैं, उनको तृप्ति देते हैं। साथ साथ गोपिकाएँ उसी समय अपने पतियों के साथ भी रहती हैं। इससे उनके पतियों ने अपनी पत्नियों के बारे में आक्षेप भी नहीं किये। भगवान स्वरमण हैं। उनके लिए लक्ष्मी से भी आनंद पाने का मतलब नहीं है। भगवान की यह लीला देवताओं के लिए एक अव्यक्त आनंद का अनुभव है। इसके बारे में वे भी कुछ बोल नहीं सकते। इसके लिए इसे भगवान की योग माया कहते हैं।

युज्यते अनेन इति योगः भगवान अपने से अभिन्न अपनी माया से ही अपनी इच्छा से रममाण हुये। यह काम विकास से नहीं।

रासक्रीड़ा के समय श्रीकृष्ण का वय -

1. गोपीका वस्त्रापहरण के समय भगवान सात वर्ष के थे।

2. सातवां वर्ष के भाद्रपद के अमावस्या को इन्द्र याग भंग।

3. आश्वयुज प्रतिपदा को गो ब्राह्मण गोवर्धन पूजा।

4. भ्रातृ द्वितीया को भाई का भोजन उत्सव। तृतीया को मूंसलाधार वर्षा। नवमी तक गोवर्धनोद्धार।

5. दशमी के दिन इन्द्र से भगवान को पट्टाभिषेक।

6. एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी के दिन नंद को वरुण लोक से वापस लाना।

7. वैकुण्ठ चर्तुदशी को गोपालकों को वैकुण्ठ दर्शन।

8. आश्वयुज पौर्णमासी को रासक्रीड़ा - उस समय भगवान दस वर्ष के थे।

बाल्य में भगवान कामवासना के बिना ही वस्त्रापहरण किये हैं। यौवन में द्रौपदी को अक्षयवस्त्र दिये हैं। दोनों

में भगवान को किसी से कोई भेद भाव नहीं है। भगवान सोलह हजार पत्नियों के रहते हुए भी ब्रह्मचारी माने गए। काम भाव न रहने वाले भगवान में काम की उत्पत्ति कहाँ होती है ? जहाँ राम हैं वहाँ काम नहीं।

पूर्णमासी का चन्द्रोदय हो गया। बहुत समय के बाद पति के आने से पत्नी का मुख जैसे लाल होता है वैसे चन्द्रमा पूर्व दिशा नाम की अपनी पत्नी के मुंह के ऊपर अपने हाथ फेरते हुए उसको लाल-लाल किये। पूर्वागंना का मुख अरुण किरण से लाल बनाते हुए दिन के सूर्य के उग्र प्रताप के कारण मुख लाल किये हुए वनस्पतियों के दुःख को दूर किये।।2।।

चन्द्रोदय के अरुण रंग से रंगा हुआ वृंदावन पति के आगमन से लज्जित सुंदर स्त्री के मुख जैसे लाल बनकर सुशोभित वृंदावन को भगवान देखें। चन्द्र ऊपर उठने के बाद अपने शुभ्र किरण से शुभ्र वसन धारी वृंदावन गोप-गोपिकाओं के मन को अपहरण करने वाला लगता था, उस समय भगवान श्रीकृष्ण अपने सुंदर सुमधुर वेणुगान को आरम्भ किये।।3।।

यहाँ अनंगवर्द्धनं इसका अर्थ दो प्रकार का होता है। अनंग यानी काम, वर्द्धन का दो अर्थ होता है, वर्द्धनं छेदने वृद्धौ। वर्द्धन का अर्थ छेदन और वृद्धि करना होता है। यहाँ दोनों अर्थ विवक्षित हैं। गोपिकाएं श्रीकृष्ण के पास आते तक काम से उद्दीपित रहीं। भगवान के संग से उनके काम के दर्प का छेदन हुआ।

श्रीकृष्ण का वह वेणुगान सुनने वाले के मन में दैविक कामनाओं (इच्छाओं) को उत्पन्न करने वाला बना। उस मधुर गान को सुनते ही गोपिकाएँ वे जहाँ थीं वहाँ से भगवान के पास एक-एक दो-दो होकर आने लगीं। वे वेणु के मधुर गान से आकर्षित होकर कहाँ जाती हैं, क्या करती हैं इसका परिज्ञान न रहते हुए चंचलता से पाँवों को इधर-उधर रखते हुए सुंदर कर्णाभरण वाली जहाँ श्रीकृष्ण हैं वहाँ दौड़ते-दौड़ते पहुँच गयीं।।4।।

वेणुगान को सुनते ही दूध दुहने वाली कई गोपिकाएँ दुहने को छोड़कर भाग आयीं और कई ने दूध को गरम करने के लिये रखा था उसको न उतारते हुए दौड़कर आयीं और कई गोपिकाएं चूल्हा के ऊपर रखे अन्न को न उतारते हुए वैसे ही आ गयीं।।5।।

पति को भोजन परोसने वाली उन्हें वहीं छोड़कर आयीं, बच्चे को दूध पिलाने वाली बीच में छोड़कर भाग आयीं और कई पति की सेवा करने वाली अपने पतियों को छोड़कर चली आयीं, और कई भोजन करने वाली भोजन को छोड़कर भाग आयीं।।6।।

शरीर को गंध लेप करने वाली, पति को अंग लेप करने वाली, घर को गोबर से लीपने वाली, स्नान करने वाली शरीर को न पोंछते हुए दौड़कर-दौड़कर आयीं। एक आँख को काजल लगाने वाली दूसरे को न लगाते हुए दौड़ीं। कई आतुरता से कपड़े को उल्टा पहनकर भागीं और कई कान के आभूषण को नाक में, नाक के आभरण को कान में पहनकर श्रीकृष्ण के समीप में आयीं।।7।।

उसको न मानते हुए भगवान के पास सब कुछ छोड़कर आ गयीं। उनके मन भगवान के मुरली निनाद से मोहित हो गए थे। उन स्त्रियों को कोई रोक नहीं सका। नागिन जैसे बंशी स्वर से मोहित होकर सबको भूल जाती हैं वैसे ही ये गोपिकाएँ भी अपना सब कुछ भगवान में मन रखते हुए गिरते उठते दौड़ते भागते चली आयीं।।8।।

योग माया लक्ष्मी जी की अंशवाली वे एक रूप से श्रीकृष्ण के साथ रहीं, और एक रूप से अपने घर में रहीं। इससे उनके पति को उनके बारे में कुछ भी संशय नहीं आया।

कई अन्य गोपियों को घर में रहना पड़ा। उनके घर वाले उनको बाहर जाने के लिए निर्बन्ध किये थे। वे वहीं रहते हुए आँखों को बंद कर तन्मयता से श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगीं।।9।।

न सहन होने वाले प्रियतम के विरह के तीव्र ताप से उनका प्रारब्ध कर्म दग्ध हो गया। ध्यान से मिले हुए श्रीकृष्ण के आलिंगन सुख से प्रारब्ध सुख भी नष्ट हो गया।।10।।

ध्यान में आलिंगन दिये परमात्मा को वे जार समझकर उनसे ध्यान में ही सुख पाये। वे अप्सराएँ हैं, वे भगवान की आराधना जार रूप से कर सकती हैं। अन्य स्त्री लोग ऐसी आराधना कर नहीं सकतीं हैं। उनके ध्यान के कारण वे अपने प्राकृत शरीर को यहीं छोड़कर स्वर्ग को पाकर वहाँ विशेष ज्ञान को पाकर प्रारब्ध बंध से बाहर हो गये। बाद में वे मोक्ष को पाये।।11।।

इस जगत के परम पितामह भगवान को जार बुद्धि से आराधना करना नहीं है। किन्तु घर में बंधित गोपिका स्त्रियों ने पूर्व जन्म में अप्सरा होने के कारण जार रूप से ध्यान कर सकीं। यहाँ **सं - गताः** ठीक तरह से जानकर वे स्वर्ग और अंत में मोक्ष पायीं। ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं मिलता। इस अर्थ को **नान्यः पंथाः** यह श्रुति स्पष्ट रूप से बोलती है। अप्सराओं को काम -भक्ति -ज्ञान से मोक्ष मिलता है। गोपी बनकर वे काम साधना करते हुए अप्सरा बनकर भक्ति और ज्ञान का संपादन किये। इस लोक में काम दुख देने वाला होता है तो बाद में भक्ति से मिलकर वह निष्काम कर्म बन जाता है। ज्ञान से मिलने के बाद वही मोक्ष का साधन बनता है। यह स्कन्दपुराण का वाक्य है।

*प्रारब्ध कर्म भोग से ही नाश होता है। दोनों पाप और पुण्य दोनों को एक ही समय में भोग करना असाध्य है। इसके लिए यहाँ **प्रक्षीणबन्धनाः** यानी सहन करने में असाध्य प्रिय के विरह ताप से पाप का नाश होता है। साथ-साथ अच्युत के ध्यान से, अच्युत के आलिंगन से होने वाले अनुभव से प्रारब्ध पुण्य नाश होता है। इस प्रकार अनेक जन्म में भोगने वाले दुःख और सुख प्रारब्ध को केवल भगवान के विरह और आलिंगन में एक जन्म में एक साथ पाये। ब्रह्मसूत्र में कहा गया है **भोगेन तु इतरे**।*

राजा परीक्षित पूछते है - हे महामुने, गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण को परब्रह्म न समझते हुए जार समझकर आराधना की। ऐसी परिस्थिति में विषयासक्त उनको संसार निवृत्ति कैसे हुई ?।।12।।

यहाँ गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण को भगवान के रूप में न देखीं इस प्रश्न को पूछने में राजा परीक्षित का अभिप्राय

यह था कि वे बिल्कुल भगवान को जानती नहीं ऐसा नहीं। वे अपनी योग्यता के अनुसार ठीक तरह से नहीं समझी थीं ऐसा होता है। वे सारे अपरोक्ष ज्ञानी ही थीं। इसी कारण श्रीकृष्ण को वे सब के अन्तर्यामि, लक्ष्मीरमण, इन नामों से स्तुति करती हैं।

द्वेष करने वाले को मुक्ति नहीं मिलेगी, उनको अंधःतमस ही मिलेगा। लिंग भंग होने के कारण उसको भी मुक्ति कह सकते हैं। शिशुपाल कंस आदि द्वेषी राक्षसों को यही अंधःतम नाम की मुक्ति ही मिली। किन्तु उनमें आविष्ट विष्णु भक्त के रूप को मोक्ष मिला। द्वेष जैसे काम भी भक्ति रहित रहे तो अनर्थ का कारण बनता है। गोपियों में भक्ति युक्त काम था इसी कारण वह भगवदनुग्रह का कारण बना। द्वेषी जीव के साथ रहने पर भी भक्त को मुक्ति देना यह भगवान के अपार करुणा को दिखाती है। इसके लिए शिशुपाल आदि साक्षी हैं। यह स्कंदपुराण का वाक्य है।

शुकदेव कहते हैं - हम आपको पहले ही कह चुके हैं कि शिशुपाल को मुक्ति कैसे हुई। उसके अनुसार श्रीकृष्ण को प्यार किये हुए गोपिकाओं ने मोक्ष पाया। इसमें आश्चर्य क्या है ?।।13।।

काम सदा के लिए अशुभकारी है। किन्तु वह काम भगवान की भक्ति से जुड़े तो वह हरि प्रसाद देने वाला बनता है। गीता में काम को नरक का द्वार बताया गया है। विषमिश्रित अन्न के समान अनर्थकारी है। किन्तु यहाँ गोपिका स्त्री सामान्य नहीं हैं वे अप्सरा स्त्री हैं। सामान्य मनुष्य का भी कामयुक्त होकर पत्नी पुत्रों को प्यार करना स्वाभाविक है। किन्तु इसी प्यार को भगवान के ऊपर करें तो वह भक्ति में बदल जाता है। जगद्‌गुरु मध्वाचार्य जी **महात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सर्वतोधिक सुदृढ़ स्नेहः भक्तिः** इन शब्दों से भक्ति का व्याख्यान किये हैं। इसका अर्थ यह होता है कि हम पत्नी पुत्र और बंधु बांधव में जो प्यार रखते हैं उससे भी ज्यादा प्यार भगवान के माहात्म्य को ठीक तरह से जानते हुए उनमें रखना। सबसे ज्यादा प्यार भगवान में रखना ही भक्ति होती है। अप्सरा के अवतार गोपिकाओं ने सबसे ज्यादा प्यार भगवान से किये। वह प्यार ही भक्ति बनकर उनको मोक्ष दिलाया।

हे राजा! भगवान स्वरूप से और स्वभाव से अव्यक्त रहते हैं। उनके अनुग्रह के बिना कोई उनको न जान सकता है, और न देख सकता है। त्रिगुण रहित ज्ञानानंद गुणरूप भगवान अवतार करते हैं, यह केवल दैत्यों का संहार करने के लिए नहीं किन्तु ज्ञान भक्ति द्वारा भक्तों को मोक्ष देने के लिए अवतार लेते हैं। भगवान गीता में कहे हैं- **परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्** ।।14।।

भगवान श्री हरि में सदाकाल काम, क्रोध, भय, मोह, भक्ति, मैत्री और प्यार करने वाले उसी रास्ते में चलते हुए भगवद ज्ञान को पाकर मुक्ति पाते हैं। भगवान के उसी रूप को पाते हैं।।15।।

यहाँ **यान्ति तन्मयतां** इसका अर्थ भगवान में ऐक्य पाते हैं ऐसा नहीं होता। संसार में कामी रहे तो भी काम से भक्ति पाकर उसी को पाता है। वैसे ही क्रोधी क्रोध को पाता है। इसके लिए निदर्शन इस प्रकार होता है। श्रीकृष्ण को

काम रूप से आराधना किये हुए गोपिकाओं में मुक्ति में भी भगवान के काम रूप की आराधना करते हैं। उसी प्रकार सदाकाल भगवान से द्वेष करने वाले असुर अंत में तमस में भी भगवान का द्वेष ही करते हैं। यह स्कंदपुराण का वाक्य है। मुक्ति में काममय बनने के लिए उसके साथ भक्ति रहना आवश्यक है। अप्सराओं में पिंगला आदि स्त्रियों ने कामयुक्त भक्ति से मोक्ष पाया। वह उनकी योग्यता के कारण मिला। उर्वशी इत्यादि अप्सराएं केवल भक्ति से ही उनसे उत्तम मोक्ष पाये। भक्ति के बिना किसी को मुक्ति नहीं मिलती। यह पद्म पुराण का वाक्य है। केवल अप्सरा स्त्रियाँ श्री हरि के जार रूप की उपासना कर सकती हैं। अन्य लोगों को यह उपासना करने से अनर्थ होता है। श्री हरि को लक्ष्मी देवी के पति के रूप में उपासना करना अन्य सारे स्त्रियों के लिए योग्य है। भगवान को ब्रह्मा जी के पिता अन्य देवताओं के पितामह और अन्यों के प्रपितामह मानकर उपासना करना चाहिए। रमा ब्रह्मादि को भगवान श्री हरि गुरु होते हैं। अन्य देवताओं को परम गुरु और अन्यों को मूल गुरु बनते हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा जी इस जगत के गुरु होते हैं। विष्णु भगवान देवता हैं। यह उपासना क्रम होता है। अन्य तरीका नहीं अपनाना। यह वराह पुराण का वाक्य है।

सामान्य योगी जन के लिए दोष का लेप नहीं होता है। तो योगीश्वर, इस जगत के ईश्वर जनन मरण न रहने वाले, जगत को मोक्ष देने वाले भगवान श्रीकृष्ण दोषरहित है, उनको दोष का लेप नहीं होता। इस विषय में आश्चर्य करने की कोई बात नहीं।।16।।

अपने पास आये हुए गोकुल के नारीवृंद को देखकर बातें करने में चतुर और अगण्य भगवान श्रीकृष्ण अपनी बातों से उनको मोहित करते हुए आगे की बात बोलते हैं।।17।।

श्रीकृष्ण कहते हैं - हे महाभाग्यशाली गोकुलवासी महिलाएं ! आपका स्वागत हो। कहिये, मैं आपके लिए क्या करूँ ? आपके घर में सारे कुशल हैं ? हमारे पास आप क्यों आए हैं इसका कारण बताओ।।18।।

यह भीषण रात है। भयंकर प्राणी इस समय संचार करते हैं। हे सुंदरांगी, आप लोग वापस चले जाइये। स्त्री लोग का इस रात में यहाँ रहना योग्य नहीं है।।19।।

आपके माता-पिता, पति-पुत्र, बंधु आपको न देखते हुए ढूंढ रहे होंगे। उनको आतंकित न करें। आप सारे अपने घर चले जाएँ।।20।।

आप आये हैं। अब आप चन्द्रमा के प्रकाश में शोभायमान पुष्पवाले इस वन का सौन्दर्य को देख चुके हैं। जमुना जी के ऊपर से बहने वाली शीतल वायु से हिलने वाली शोभायमान इन वृक्षों के सौन्दर्य को आप देख चुकी हैं।।21।।

अब आप जल्दी ही गोकुल को चली जाये। आप अपने पतियों की सेवा करें। आपके बच्चे रोते होंगे, गाय के बच्चे आवाज करते होंगे, उनको दूध पिलाओ।।22।।

मेरे ऊपर के अनुराग के कारण मनमोहित होकर आप यहाँ आये होंगे। यह ठीक भी है।

क्योंकि समस्त जीव राशि स्वाभाविकता से मुझसे प्यार करते हैं।।**23**।।

आप स्त्री लोग हैं, बिना कपट से पति की सेवा करना, उनके बंधुओं का ख्याल रखना और बच्चों की सेवा करना स्त्री लोगों के लिए प्रथम कर्तव्य है। वही श्रेय देने वाला है।।**24**।।

पति महापातकी न हो, किन्तु दुराचारी, निर्वीर्य, वृद्ध, मूर्ख, रोगी, दरिद्र है तो भी परलोक चाहने वाली स्त्री को उसके संग को नहीं छोड़ना चाहिए।।**25**।।

आप सब लोग सत्कुल में जन्म लिये हैं। ऐसे आपको जार पुरुष का संग निंदनीय है। वह स्वर्ग का साधन नहीं बनता। वह तुच्छ है, दुःखकारक और भयकारक है।।**26**।।

यदि आप समझती हैं कि मेरे अंग संग से आपकी भक्ति बढ़ सकती है, तो वह गलत है। मेरे श्रवण दर्शन मनन ध्यान और नाम संकीर्तन से आपकी भक्ति बढ़ सकती है। इस कारण आप अपने घर को वापस चले जाइये।।**27**।।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्रीकृष्ण की इन बातों से गोपियाँ निराश हो गयीं। शरद काल की रात्रियों में आप लोग मेरे साथ सुख प्रायें ऐसा श्रीकृष्ण ने ही वचन दिया था। अब वही उसके विरुद्ध बोल रहे हैं। उसको सुनकर गोपियां दुःखित हो गयीं। अपनी आशा पूर्ण न होने के कारण वे चिन्तित हो गयीं।।28।।

वे सारे अपने मुँह को नीचे कर लिये। दुःख के कारण उनके होंठ सूख गये, पांव से जमीन को कुरेदने लगीं। आँखों से आँसू बहकर काजल से मिलकर स्तन के ऊपर गिरते हुए वहाँ के कुमकुम को धो दिया। वे दुःख से निश्वास करते हुए चुप खड़े हो गए।।**29**।।

अपना प्रिय कन्हैया निष्ठुर बातों से दुःखित कर रहा है। उनके संग के लिए सारे सुख भोग को त्याग कर उनमें अनुरक्त गोपिकाएं रोने से लाल हुई आँखों को पोंछते हुए थोड़ा सा नाराज होकर बोलने लगीं।।31।।

गोपिकाएँ बोली - हे प्रभु, निरंतर प्रेमधारा बहाने वाले आपको ऐसी कठिन दयाहीन बातों को करना ठीक नहीं। हम इस संसार के सारे विषय भोग को त्याग कर परम भक्ति से आपके पाद मूल के शरण आये हैं। अपने भजन करने वाले मुमुक्षु लोगों को आदि पुरुष नारायण न छोड़ते हुए अपने पास रखते हैं। वैसे आप भी हमको अपने पास रहने दो।।**31**।।

हे प्रिय देव, आपने कहा कि स्त्री के लिए पति सुत और बान्धवों की सेवा करना विहित धर्म है, यह सही है। किन्तु हम उस सेवा को आपको समर्पित करने आये हैं। आप सबके शरीर में रहते हुए अंतरंग के मित्र बने हैं। हम आपको पति सुत बान्धव मानकर भजन करने यहाँ आए हैं। हमारे लिए यही विहित धर्म है।।32।।

हमारे पति सुत बान्धव हमारे मुख्य बंधु नहीं हो सकते। वे अप्रिय होकर हमें दुःख भी

देते रहते हैं। उनसे हम शाश्वत सुख को पा नहीं सकते हैं। बुद्धिमान लोग सर्वतंत्र स्वतंत्र आप में प्यार करते हैं। वर देने में सबसे श्रेष्ठ हे कमलाक्ष, आप प्रसन्न होकर हमें अनुग्रह करें। हम आप में श्रद्धा रखकर बड़ी आशा से आपके पास आये हैं। उस आशा को आप नहीं ठुकराइये।।33।।

हे मित्र! आप हमारे मन को छीन लिये हैं। वह मन पुनः इस संसार में आसक्ति नहीं रखती है। हमारे हाथ घर के काम नहीं करेंगे। हमारे पांव आपको छोड़कर कहीं नहीं चलेंगे। हम आपको छोड़कर गोकुल को कैसे जाएं। वहाँ हम क्या करें ?34।।

हे प्राणसखा, आप के हसन्मुख, तिरछी नजर और मधुर गान से हमारे हृदय में तीव्र प्रणयाग्नि उत्पन्न हुयी है। आप अपने अधरामृत से सींच कर उसको बुझाना चाहिए नहीं तो हम उसी विरहाग्नि में जल जायेंगे।।35।।

हे कमल के समान आँख वाले स्वामी, आपके पाद रमा देवी को देखने में आनन्द देने वाले हैं। यह होते हुए भी आप हमारे ऊपर प्यार करते हैं। ऐसे पाद वाले आपके स्पर्श के बाद हम अन्य पुरुष का विचार कर नहीं सकते।।36।।

हे भगवान, आपके श्रीपाद तुलसी के लिए आश्रय देते हैं। आपके पाद धूलि को भक्तगण सदाकाल सेवन करते हैं। अन्य देवता और अन्य लोग लक्ष्मी के कटाक्ष लाभ के लिए प्रयत्न करते रहते हैं। वह लक्ष्मी आपके हृदय में स्थान पाते हुए भी आपके पाद धूलि का सेवन करना चाहती हैं। हम भी आपके पाद रज के शरण आये हैं।।37।।

हे पाप नाशक स्वामी पुरुषोत्तम, आपकी आराधना करने हेतु हम घर बार छोड़कर आपके पाद मूल का आश्रय पाये हैं। आपका सुंदर मंदहास, तिरछी नजर से उत्पन्न हुयी प्रणयाग्नि हमारे शरीर को जला रही है। आप कृपा करके हमें आपकी सेवा करने दो।।38।।

घुंघराले बाल वाले आपके श्रीमुख में रहने वाले कर्णकुण्डल से आपका गाल प्रकाशित हो रहा है। आपकी आँख फूल जैसे खिलीं है। शरण आने वाले को अभय देने वाले आपके दोनों बाहु शोभा दे रहे हैं। आपके वक्षस्थल में सदा के लिए श्रीदेवी रहती है। इन सबको देखकर हम आपकी चरणदासी बनी हैं।।39।।

हे प्यारे मोहन! अव्यक्त सुरीली आपके वेणुगान को सुनने के बाद, आपके सुंदर मोहक रूप को देखने के बाद इन तीनों लोकों में रहने वाली कौन स्त्री अपने पातिव्रत्य धर्म से च्युत नहीं होती। आपसे केवल मानव ही नहीं गाय, पक्षी, वृक्ष और मृग भी आकर्षित होकर रोमांचित हो गये है।।40।।

भगवान आप वस्तुतः जार नहीं हैं। आप आदि पुरुष देवाधिदेव हैं। आप उस समय देवलोक की रक्षा के लिए वामन रूप धारण कर अवतार लिए थे। वैसे ही आज गोकुलवासियों के भय और दुःख को दूर करने

के लिए अवतार लिये हैं। हे दीनबंधु, आपकी दासी बनी हुयी हमारे सिर पर अपने करकमल रखें, प्रणयाग्नि से दहने वाले हमारे स्तनों के ऊपर अपने कर कमलों को रखने की कृपा करें।।41।।

श्री शुकदेव बोले - इस प्रकार गोपिकाओं से दैन्य भरे हुए स्वर में की हुयी प्रार्थना को सुनकर योगेश्वर श्रीकृष्ण स्वयं स्वरमण होते हुए हसन्मुख से उनके ऊपर कृपा करते हुए प्यार का अमृत वर्षण किये।।42।।

मुरझाया हुआ गोपियों का मुंह श्रीकृष्ण के इस प्यार से खिल गया। उन लोगों ने श्रीकृष्ण को चारों ओर से घेर लिया। श्रीकृष्ण अपनी लीलाओं से उनके साथ हँसते हुए, अपनी दांतों की प्रभा से सुशोभित हुए, नक्षत्र से घिरे हुआ चन्द्रमा जैसे वह सुशोभित हुए।।43।।

वैजयन्ती माला को धारण किये हुए भगवान मधुर गान करते हुए वृंदावन को गुंजित किये। गोपियों के बीच में एकमेव नायक बनकर वह विहार किये। गोपियों ने मिलकर उनका गुणगान किया।।44।।

यमुना जी के लहर में खिले हुए कमल पुष्प के सुगंध को बहने वाली वायु से शीतल हुए यमुना जी के बालों में प्रवेश करते हुए श्रीकृष्ण गोपियों के साथ विहार किये।।45।।

हाथ से खींचकर आलिंगन करना, घुघराले बालों को हाथ से संवारना, छाती के ऊपर के पल्लू को खींचना, नखक्षत करना, अनुराग से भरी हुयी तिरछी नजर से देखना इत्यादि लीला करते हुए गोकुल के कामिनियों के काम को और बढ़ा दिये।।46।।

भगवान श्रीकृष्ण को चारों ओर से घेरे हुए गोपिकाओं ने उनसे अधिक प्रेम करते हुए अपने को अन्य स्त्रियों से बड़ा मानने लगीं।।47।।

रासक्रीड़ा के समय श्रीकृष्ण की आयु आठ वर्ष की थी, लोग जैसे समझते हैं वैसे रासलीला काम के लिये नहीं है। भगवान की अलौकिक लीला है। भक्त वत्सल श्रीकृष्ण अनन्य भक्त क्या चाहता है, उसको देने के लिए सदाकाल सिद्ध रहते हैं। गोपिकाएं पूर्व जन्म की अप्सराएँ थीं, अपने कर्म के अनुसार वे भगवान से विहार करना चाहती थीं। उनमें लक्ष्मी जी का अंश था, श्रीकृष्ण स्वरमण हैं उनके लिए अन्य कोई सुख देने वाले नहीं होते है, गोपिका स्त्रियों से उनको कोई लाभ नहीं है। केवल उनके उद्धार करने हेतु उनके साथ खेले हैं।

श्रीकृष्ण के साथ हुये प्यार के कारण अपने को बड़ा मानने वाली, मद और अहंकार से भरी हुयी उन गोपिकाओं को पाठ सिखाकर उनके अहंकार को नष्ट कर के अनुग्रह करने श्रीकृष्ण उनके सामने से अदृश्य हो गए।।48।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अट्ठाईसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

भगवान श्रीकृष्ण गोपियों को देखते - देखते अदृश्य हो गए। हाथी से दूर हुयी हथिनी के समान गोकुल की स्त्रियाँ कृष्ण को न देखते हुए दुःखित हुयीं।।1।।

श्रीकृष्ण के प्रेमपूर्ण मंदहास से, उनके सरस सल्लाप से, विहार प्रणय की चेष्टा से मुदित हुयी प्रमोदाओं ने उनमें तादात्म्य पाकर अपने को कृष्ण मानने लगीं। उनकी लीलाओं का अनुसरण करने लगीं।।2।।

श्रीकृष्ण की नजर, चाल और सल्लाप से विभोर हुयी नारियाँ सामने वाली सखी को ही कृष्ण समझने लगीं। अपने और अपनेपन को भूली हुयी वे सामने कृष्ण हैं ऐसा समझते हुए उनसे विहार करने की चेष्टा करने लगीं।।3।।

सारे मिलकर जोर से श्रीकृष्ण का नाम संकीर्तन करती हुयी बुद्धि भ्रमित होकर जंगल में फिरने लगीं। इस जगत के अंदर बाहर सारे स्थानों में आकाश के समान सर्वत्र व्यापक भगवान को इधर - उधर ढूंढने लगीं, वृक्ष लताओं से कृष्ण के बारे में पूछने लगीं।।4।।

वृक्षों में गन्धर्व और अप्सराएं रहती हैं। मंत्र ब्राह्मण में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है। इसी कारण गोपिकाओं ने गन्धर्व और अप्सराओं की प्रार्थना करते हुए उनकी कृपा से पुनः श्रीकृष्ण के दर्शन पाये।

हे अश्वत्थ वृक्ष, हे पीपल वृक्ष, हे पलाश, हे वट वृक्ष, आपने हमारे नंद के कंद मुकुंद को देखा है क्या ? हमारा लला यहाँ आया था क्या ? तुम लोगों ने उनको देखा हैं क्या ?।।5।।

न्यग्रोधौदुंबरश्वत्थ ये सारे भगवान के नाम हैं, विष्णु सहस्त्र नाम में ये आते हैं। इन वृक्षों के पूजन करने से उनमें रहने वाले देवता प्रीत होकर भगवान का अनुग्रह प्राप्त कराते हैं। भगवान के विभूति रूप में **अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां** कहा गया है। अश्वत्थ वृक्ष के मूल में ब्रह्मा जी, मध्य में भगवान विष्णु और अग्र में रुद्र वास करते हैं। यहाँ गोपिकाएं मध्य में विष्णु को रहने के लिए स्थान देने वाले अश्वत्थ से पूछते हैं। हे अश्वत्थ, हमारे प्रिय कृष्ण तुम्हारे मध्य में रहते हैं। उनको हमारे यह विरह को बताओ (वृक्ष चुप रहता है)। आगे गोपिका कहती हैं तुम असूया से हमको उत्तर नहीं दे रहे हो। इसके लिए तुम्हारे पेट में रहने वाली अग्नि को हम अपने विरह दुःख से शमन करेंगे। कोई व्यक्ति भीगा कपड़ा पहनकर तुमको जल देते हुए परिक्रमा करता है तो वह जो चाहता है उसको पाता है। हम श्रीकृष्ण को ढूंढते हुए

तुम्हारे पास आये हैं। पसीना से हमारे कपड़े भींग गए हैं। आंखों से जो पानी बहता है, उसको हम तुमको दे रहे हैं। इतना करने के बाद भी तुम कृष्ण के बारे में न बोलते हुए बैठे हो। इसके लिए तुमको हम शाप देते हैं। हे वृक्ष! तुम्हारे फल को सज्जन लोग न खायें। केवल कौवे का आहार बने और कौवे के मल से तुम्हारा जन्म हो। विरह के दुःख से गोपिकाएं ऐसी असम्बद्ध बातें करती थीं।

हे अशोक, हे पुन्नाग, हे चंपक, हे नाग केसर, आपने बलराम के छोटे भाई सबको आनंद देने वाला मुकुंद का मुखारविंद देखा है क्या ?।।6।।

हे मंगलांगि गोविंद के अंग-अंग को प्यार करने वाली मंगल तुलसी ! आप गोविंद के पादाम्बुज को प्यार करती है। हमारा अच्युत तुमको धारण करता है। तुम्हारे बिना वह रहता नहीं है। तुमने मुकुंद के चरणारविन्द को देखा है।।7।।

यतियों से पूजित वंदित तुलसी माता तुम सदाकाल श्रीकृष्ण के पाद में रहती हो। तुम हमें श्रीकृष्ण का दर्शन करवाइये। तुम्हारे बिना श्रीकृष्ण की पूजा पूरी नहीं होती। इस प्रकार गोपियाँ जिन वृक्ष लतादि को देखती थीं। उन्हीं को श्रीकृष्ण को दिखाने के लिए प्रार्थना करती थीं और लोगों के लिए यह काम मूर्ख जैसे लगता है। किन्तु अनन्य भक्ति वाली गोपियों का यह सहज स्वभाव हैं।

हे चमेली, हे रातरानी, आपको हाथ से संवरण करते हुए प्रसन्नता देने वाले माधव कहीं अदृश्य हो गए हैं। आप लोगों ने देखा है क्या ?।।8।।

हे आम, हे कटहल, हे श्रीगंध, हे जामुन, हे बेल, हे महुआ, आप लोग अन्यों का उपकार करने के लिए खड़े हो। आप कृपा करके हमारे श्रीकृष्ण कहाँ चले गए वह राह हमें दिखाइये।।9।।

हे भू देवी! आपने केशव के पाद से जन्म लिया हैं। आप बहुत पुण्य किये हैं इसी कारण वराह स्वामी का आलिंगन पायी हैं, त्रिविक्रम जी का पाद स्पर्श करके पुलकित हो गयी है। तुम्हारे आनंद को यह फलपुष्प भरित वृक्ष दर्शाते हैं। कृपया बताओ हमारे केशव कहाँ हैं ?।।**10**।।

हे हिरन, श्रीकृष्ण यहाँ से किसी एक प्रिया के साथ गुजर गया क्या ? तुम्हारी आँखें उनकी आँख के समान हैं। आपकी आँख देखकर हमें कृष्ण की याद आती है। बताओ तुमने श्रीकृष्ण को देखा है क्या ? देखो, उसने यहाँ अपने प्रेयसी का आलिंग किया है। उसके सिर में रखा हुआ फूल माला यहाँ गिरकर अपने सुगंध को बिखेर रहा है।।**11**।।

यहाँ गोपिकाएँ हिरण को देखकर श्रीकृष्ण को याद कर रही हैं। देवता लोग हिरण्य लोग श्रीकृष्ण की सेवा के लिए आये हैं।

हे वृक्ष ! श्रीकृष्ण एक हाथ को अपने प्रिया के कंधे के ऊपर रखते हुए दूसरे हाथ में कमल के फूल को लेकर चल रहा है। तुलसी के मकरंद से मत्त हुए मधुकर उन दोनों के पीछे-पीछे दौड़

रहे थे न ? फल-फूल को पकड़कर आप लोग के अपने टहनियों से झुककर नमस्कार करते समय प्यार भरी आँखों से भगवान आपके प्रणाम को स्वीकार करते हुए आपका अभिनंदन किया है न ? इसके लिए आप संतुष्ट हैं। कहिये वह श्रीकृष्ण कन्हैया कहाँ है ?।।12।।

हे सखी, यहाँ देखो ! ये लता बहुत संतोष से खिले हुए फूल से भरी है। श्रीकृष्ण के हाथ के स्पर्श के कारण इसको संतोष हुआ है। यह निश्चय है।।13।।

उस लता को मिला हुआ श्रीकृष्ण का करस्पर्श हमको भी मिले। यह आशा रखते हुए गोपिकाएँ लता से जलती हैं।

इस प्रकार गोपियाँ वृंदावन में रहने वाले वृक्ष, लता, पशु-पक्षी से श्रीकृष्ण के बारे में पूछते हुए जंगल में भटकती रहीं। इतने में वे एक जगह पर भगवान के पदचिह्न को पहचानती हैं।।14।।

ये निश्चित रूप से श्रीकृष्ण भगवान के पद चिह्न हैं। यहाँ देखो, इसमें ध्वज, पद्म, वज्र, अंकुश इत्यादि चिह्न भरे हैं। श्रीकृष्ण के बिना और किसी के पदचिह्न में यह चिह्न हो सकता है ?।15।।

वे पुण्य पदचिह्नों के साथ ढूंढते हुए आगे बढ़ीं। तब श्रीकृष्ण के साथ और एक स्त्री के पदचिह्नों को देखकर वे दुःखित होकर आपस में बोलने लगीं।।16।।

यह किसका पद चिह्न हो सकता है ? श्रीकृष्ण के कंधे के ऊपर अपना हाथ रखते हुए, हथिनी - हाथी के साथ जैसे चलती है, वैसे वह आनंद से चली हैं। वह कौन हैं ?।।17।।

हमारे नाथ प्राणनाथ भगवान श्रीकृष्ण को यह बहुरीति से आराधना की है। गोविंद इसकी आराधना से संतुष्ट होकर हमको छोड़कर अकेले उसके साथ विहार कर रहे हैं।।18।।

इसी स्त्री को कई लोग राधा मानते हैं। भागवत में कहीं भी राधा का नाम नहीं आता। किन्तु ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा का नाम आता है।

हे सखी ! देखो गोविन्द के पाद कमल से लगी हुयी यह धूल ही परम पवित्र हैं। ब्रह्म, रुद्र, लक्ष्मी और सकल देवता अपने अभीष्ट सिद्धि के लिए अपने सिर पर इस पाद रज को धारण करते हैं।।19।।

उस स्त्री के पाद चिह्न हमें दुःखी कर रहे हैं। हम सब गोपियों को मिलने वाला अच्युत के अधरामृत को वह अकेली एकान्त में पी रही है।।20।।

यहाँ देखो, उसके पदचिह्न गायब हो गए हैं। उसके मुलायम पांव को कुश और कांटे से आघात न हो इसके लिए भगवान श्रीकृष्ण उसको अपने कंधे के ऊपर लेकर चला है।।21।।

हे सखि, यहाँ देखो, श्री कृष्ण के पदचिह्न बहुत गहरे हो गए हैं। ये कामुक श्रीकृष्ण के अपने प्रेयसी को कंधे के ऊपर लेने के कारण पदचिन्ह गहरे हैं।।22।।

जगत को अपने पेट में रखने वाले भगवान श्रीकृष्ण को एक कृशांगी का भार कितना हो सकता है। यहाँ प्रत्येक गोपी स्वयं को श्रीकृष्ण का एकमेव प्रीतिपात्र समझती थी। इस अहंकार को नाश करने के लिए श्रीकृष्ण यह नाटक रचाये।

श्रीकृष्ण यहाँ उसको नीचे उतार दिया है। यहाँ फूलों को वृक्षों से निकालकर उसको दिया है। इसी कारण उसका पदचिह्न यहाँ गहरा नहीं है।।**23**।।

यहाँ देखो, श्रीकृष्ण अपनी प्रिया के लिए फूल तोड़ा है। देखो, उनके पदचिह्न यहाँ पूरा नहीं दिखता है। केवल उंगली के ऊपर खड़े होकर उसने फूल को तोड़ा है।।24।।

यह कामुक अपनी प्रियकरी को यहाँ केशालंकार किया है। उसको फूल चढ़ाने के लिए वह यहाँ बैठा है।।**25**।।

स्वयं स्वरमण और स्वरूपानंद को भोगने वाला और कभी भी कामवश न होने वाला कृष्ण यहाँ उसके साथ सुख पाया है।।**26**।।

इस प्रकार अनेक तरह से प्रलाप करते हुए (योग्य अयोग्य जो मन में आया उसको बोलते हुए) ज्ञानशून्य होकर गोपियाँ इधर उधर टहलती रहें। कामुक लोग स्त्रीवश होकर क्या कष्ट सहते हैं, उससे स्त्री लोग कैसे अहंकार पाती हैं इसको दिखाने के लिए भगवान यह लीला किये।।27।।

और स्त्रियों को छोड़कर केवल अकेले अपने को ही श्रीकृष्ण ले रहा है। इससे वह स्वयं को सबसे बड़ा मानने लगी।।28।।

श्रीकृष्ण को चाहने वाली अन्य सारी स्त्रियों को छोड़कर भगवान केवल मुझको ही प्यार करता है। इस प्रकार विचार करते हुए जंगल के एकान्त में वह दर्प से श्रीकृष्ण को आदेश देती है।।29।।

हे प्रियकर, मैं थक गयी, आगे चल नहीं सकती। आप मुझको कहीं ले जाना चाहते हैं वहाँ तक मैं चल नहीं सकती। आप मुझको कंधे पर उठा लो। उसकी बात मानते हुए श्रीकृष्ण उसको कंधे पर चढ़ने के लिए बोले।।**30**।।

जब वह चढ़ने लगी तब श्रीकृष्ण वहाँ से अदृश्य हो गए। वह गोपी पश्चात्ताप से रोने लगी। हे नाथ, हे प्रियकर, हे सुखकर, आप कहाँ हैं ? हे महाबाहु, इस दीन दासी को छोड़कर आप कहाँ गए ? हे सखा, आप कृपया दर्शन दें। इतना बोलते हुए वह मूर्छित होकर गिर पड़ी।।**31**।।

कृष्ण के गये हुए रास्ते को ढूंढते हुए अन्य गोपियों ने थोड़ी दूरी पर प्रियकर के वियोग से इ ानशून्य हुए अपनी सहेली को देखा।।**32**।।

पुनः ज्ञान पाये हुए वह सखी, बोलती है, श्रीकृष्ण मुझे मिला था। किन्तु मैंने अहंकार से उनका अपमान किया। मुझको यहीं छोड़कर वह अदृश्य हो गया। भगवान की इस लीला को

सुनकर सारी गोपियाँ आश्चर्य चकित हो गयीं।।33।।

चाँदनी रात में वन-वन टहलते हुए वे श्रीकृष्ण को ढूंढे। चन्द्रास्त होकर अंधेरे के कारण वे ढूंढने का प्रयत्न छोड़ दिये।।34।।

वे सारे एक जगह पर बैठ गये। श्रीकृष्ण के गुणगान करने लगे। उनको प्रभु मानकर संकीर्तन करने लगे। उस समय उनको अपने शरीर का ज्ञान नहीं रहा। तो घर, बाल-बच्चे के बारे में उनका लक्ष्य कैसे जाएगा।।35।।

कृष्ण को याद करते हुए, गीत गाते हुए वे सारे मिलकर एकत्र होकर यमुना के बालू में फिर आकर बैठ गए। वहाँ श्रीकृष्ण का नाम संकीर्तन अत्यंत भक्ति से करने लगे।।36।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - उनतीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

गोपी गीत

गोपिकाएं गा रही हैं - हे प्रियकर, तुम गोकुल में जन्म लिये इससे गोकुल का शान बढ़ा। कभी भी आपसे दूर न रहने वाली लक्ष्मी यहाँ सदाकाल के लिए रहने लगी है। इससे गोकुल सदाकाल सम्पद्धरित हुआ। हम अपने प्राणों को आपके लिए समर्पित किये हैं। आपके दर्शनाकांक्षी हमको दर्शन दीजिए।।1।।

यह सुप्रसिद्ध गीत है। घर-घर में यह आज भी गायी जाती है।

यहाँ **दिदृक्षताम्** यह शब्द का प्रयोग किया है। यह पुल्लिंग प्रयोग है। पुरुष को वश में न लाने वाली स्त्री, स्त्री कैसे हो सकती है? यह भाव यहाँ व्यक्त होता है।

यहाँ के सारे पद्य नगण, रगण, रगण एक लघु और एक गुरु से युक्त ग्यारह अक्षर का त्रिष्टुप छंद के किसी वृत्त में है। इस वृत्त का नाम छंदः शास्त्र में नहीं मिलता है। इसका अर्थ यही होता है कि श्रीकृष्ण की महिमा अज्ञात ही रहती है। नगण में तीन लघु होते हैं, रगण में मध्य लघु होता है। यहाँ एक नगण और दो रगण हैं। एक पंक्ति में पांच लघु आने से यह व्यक्त होता है कि गोपियों की कटि बहुत छोटी है। रगण में र का अर्थ विरहाग्नि को दिखाता है। प्रति पाद के प्रारंभ में लघु और अंत में गुरु हैं। यह इस भाव को दर्शाता है कि भगवान श्रीकृष्ण गोपियों के दर्प को नाश करने के लिए अदृश्य हो गए। इससे वे लघु हो गए। अंत में भगवान उनको दर्शन दिए। इसके लिए हर्ष से वे बड़े गुरु हो गए।

जयति, श्रयत, दयित इत्यादि द्वितीयाक्षर प्रास संस्कृत में कई लभ्य नहीं हैं। यह विशेष है। श्रय - साधु दयि - त्वादि समान शब्दों का अनुप्रास गीत के माधुर्य को बढ़ा दिया है।

हे गोकुल वासियों के कष्ट को नष्ट करने वाले वीर, अपने मृदु हास्य से स्त्रियों के दर्प को दूर करने वाले प्रभु, जन्म - जन्म में आपकी दासी बनी हुयी हमारी रक्षा सदाकाल करते रहें। हे प्यारे, अपने सुंदर मुख को फिर से दिखाओ।।2।।

शरद काल में सरोवर में पूर्ण रुप से खिले हुए कमल को भी हराने वाली आपकी दृष्टि क्षेप है। वह हमको खरीदकर आपकी दासी बना चुकी है। हम उससे लुब्ध होकर आपके पास आये हैं।

हे प्रणयकेला में निपुण रहने वाले भगवान श्रीकृष्ण आप कृपण न होकर हमारे आशाओं को पूर्ण करें। इस घोर रात्रि में आपका अदृश्य होकर दासी बने हमको वंचन करना जान से मारने से भी बड़ा होता है।।3।।

आप इसके पहले बहुत बार हमारी रक्षा किए हैं। कालिया के विष जल से, क्रूर तृणावर्त से, इन्द्र से प्रेषित मुसलधारा से, आकाश की बिजली से, वत्सासुर के भय से ऐसे अनेक आपत्तियों से केवल आपने ही हमारी रक्षा बार-बार की है।।4।।

हे मित्र, इस जगत की रक्षा के लिए ब्रह्मा जी के प्रार्थना के अनुसार यदुकुल में आप अवतार ले चुके हैं। आप सारे जीवियों के शरीर में अन्तरात्मा होकर रहने वाले हैं। आप कैसे यशोदा के पुत्र हो सकते हैं।।5।।

हे प्रियकर, हे यदुकुल तिलक, आप श्री लक्ष्मी जी का पाणिग्रहण किये हैं। आप भक्तों के अभीष्ट को पूर्ण करने वाले हैं। संसार भय से आपके शरण आने वाले को अभय देने वाले आप अपने कर कमल को हमारे सिर के ऊपर रखिये।।6।।

आपके पाद कमल नमन करने वाले के पाप को कर्षण करते हुए छीन लेने के कारण आप का नाम कृष्ण है। आप गाय के पीछे चलते हैं, तो लगता है सौन्दर्य ही गाय के पीछे चल रहा है। आपके पाद का सौन्दर्य, सौन्दर्य की रानी लक्ष्मी को भी प्रसन्नता देता है। आपके चरण कालिया के फणी को मार-मार के उसके दर्प को दूर किया है। ऐसा आपका पदस्पर्श हमारे हृदय में रहने वाले काम को नष्ट करे।।7।।

यहाँ **कृंधि हृच्छयं** यह शब्द का प्रयोग है। पाठान्तर में **छिन्दि** शब्द का भी प्रयोग है। कई लोग इसका अर्थ हमारे छाती के ऊपर के कपड़े को हटाओ अथवा चीर लो। ऐसे अर्थ करते हैं। गोपिकाओं की प्रार्थना ऐसी नहीं हो सकती। वे अपने हृदय के अंदर रहने वाले काम को नष्ट करते हुए वहाँ अव्यभिचरित भक्ति को भी भरने की प्रार्थना करती हैं।

हे कमल नयन, हे धीर शूर, आपकी मधुर ध्वनि पण्डितों को भी मण्डित करती है, मोहित करती है। उसी से मोहित होकर हम आपकी चरण दासी बने हैं। अब हम मूर्छित हो रहे हैं, आपके अधरामृत देकर हमको पुनर्जीवित करें।।8।।

हे भगवान, संसार ताप से जले हुए लोगों को आपका कथामृत पुनर्जीवित करता है। इस जगत में रहने वाले पण्डित और कवि लोग आपकी कथामृत का गुणगान करते हैं। वह कथामृत श्रवण मात्र से सबको मंगल करता है। आपके संकीर्तन करने का पात्र होने के लिए पूर्वजन्म में बहुत दान-धर्म और सत्कर्म करना पड़ता है। आपके इस कथामृत को पान करते-करते हम जीवित रहते हैं।।9।।

हे प्रियकर, आप वंचक हैं, आपके अनुरागपूर्ण एक दृष्टि क्षेप से हम मोहित हो जाते हैं। उसकी याद से ही हमारा दिल पिघलता है। आपकी मंगल लीलाएं दिल को आंनद देने वाली होती हैं। एकान्त में बोलने वाले हृदय को स्पर्श करने वाली आपकी बात हमारे मन को विचलित करती है।।10।।

यहाँ श्रीकृष्ण को गोपिकाओं ने **कुहक** शब्द से सम्बोधित किया है। कुहक का अर्थ वंचक होता है। सोलहवां श्लोक में कितव शब्द का प्रयोग किये हैं। भागवत के मंगलाचरण श्लोक में वेदव्यास जी भगवान को निरस्त **कुहकं** वंचन न करने वाले कहे हैं। यह दोनों विरुद्ध होता है। किन्तु गोपियाँ अपने प्रणय कोप को दिखा रही हैं। अपने प्यार की उत्कंठा में प्रणय कोप में वे भगवान को कुहक और कितव शब्द से बोलती हैं। किन्तु यह दिखावटी हैं, सच नहीं है।

आप गोकुल से बाहर गाय चराने जाते हैं। उस समय कमल के समान कोमल रंग वाले आपके पाद कंकड़ पत्थरों से, कांटे से पीड़ित होते हैं। इसके लिए हमारा दिल दहलता है। क्योंकि आप हमारे प्यारे हैं, प्रियकर हैं ।।11।।

श्री हरि के इन पादों को पुरुष सूक्त वर्णन करता है। **त्रिपादस्यामृतं दिवि। त्रेधानिधधे पदम्** इस प्रकार नारायण उपनिषद वर्णन करता है। वेद और उपनिषद गोपियों के अभिप्रायः को बल देते हैं।

हे वीर, शाम के समय में आप गाय के साथ जंगल से वापस आ रहे हैं। आपके काले घुघराले बाल गोधूली से लिप्त होकर देखने वाले को और आनंद देते है। आप अपने सुंदर मुख कमल को दर्शाते हुए हमारे मन में प्रणय के आग को और बढ़ाते हैं।।12।।

हे दिल के दुःख को दूर करने वाले, हे प्रियकर, कमल के समान रहने वाले आपके चरण को नमन करने वाले को जो चाहते हैं उन्हें वह मिलता है। ब्रह्मा जी उनकी पूजा करते हैं। रास्ते की धूल में अंकित हुआ आपका पदचिह्न ध्यान करने वाले योगी को ध्येय वस्तु बन जाते हैं। परमानंद देने वाले उन पद कमलों को हमारे स्तन के ऊपर रखते हुए हमें आनंद देते रहे।।13।।

यहाँ श्रीकृष्ण के पाद को **प्रणतकामदं, पद्मजार्चितं, धरणीमण्डलं** ऐसे तीन विशेषण दिये गये हैं। धरणीमण्डलं में रहने वाला पाद **गया** में भूषित है। वह भूमण्डल में रहने वाले लोगों से पूजित हैं। प्रणत **कामदं स्वर्ग** में रहने वाला पाद इन्द्र से अर्चित है। स्वर्ग में रहने वाले को वह जो चाहते हैं वह देता है। तीसरा ब्रह्म से अर्चित पाद **सत्य** लोक में है। ब्रह्मा जी से पूजित होकर सकल जगत के लिए कल्याणकारी बना है। त्रिविक्रम के ये तीनों पाद हैं। इन पादों को गोपियाँ अपने स्तनमण्डल के ऊपर रखने के लिए मांग रही हैं। यह थोड़ा सा विचित्र लगता है। किन्तु थोड़ा सोचने के बाद यह स्पष्ट होता है। सारी गोपियों में लक्ष्मी का अंश है। लक्ष्मी जी का तीन रूप श्री, भू, दुर्गा होते हैं। यह तीनों रूप भू लोक स्वर्ग लोक और सत्य लोक में रहते हुए सदाकाल श्रीविष्णु के चरण कमल को दबाते रहते हैं। यहाँ केवल यही अर्थ है। आपके चरण पद को दबाने के लिए लक्ष्मी रूप के हमारे हाथ में वे मिल जायें। यहाँ लौकिक कामुक कोई अर्थ नहीं है।

हे वीर, आप कृपया हमें आपका अधरामृत दें। वह प्रणयानंद को और ज्यादा करता है, शोक का नाश करता है, आपके बंशी को वह चूमता रहता है। एक बार पान किये हुए लोगों को अन्य भोग वस्तु में आसक्ति नहीं होती है।।14।।

आप दिन में जंगल में फिरते रहते हैं। यहां हम आपको न देखते हुए एक-एक क्षण को एक-एक युग के समान अनुभव करते हैं। आपके घुंघराले बाल वाले सुंदर मुख को हम आँखों को न मींचते हुए देखना चाहते हैं। किन्तु पलक उसको व्यर्थ करते हैं।।15।।

हे अच्युत, हम अपने पति सुत साथ सम्बन्धियों को छोड़कर आपके पास आये हैं। हे वंचक, सुनने वाले को मोहित कर अपने वश में लेने वाली गान विद्या को आप जानते हैं। आपके गान से मोहित होकर आए हुये हमारे जैसे स्त्रियों को रात में छोड़कर केवल आप ही जा सकते हैं।।16।।

यहाँ पति सुतान्वय भ्रातृ बान्धवान् यहाँ पति का अर्थ पशुपति रुद्र देव। सुत उनके पुत्र गणपति और स्कंध अन्वय इसका अर्थ पत्नी पार्वती (इनकी पूजा न करते हुए) इनको त्यागकर यानी इनको प्रधान बोलने वाले शैव, शाक्त, स्कांद, गाणपत्य मत को **अतिविलंघ्य** उपासना न करते हुए केवल आपकी उपासना के लिए आये हैं। यहाँ भगवान में अनन्य भक्ति दिखाया गया है। अपने पति को छोड़कर आपके पास गलत तरीके से आये हैं यह अर्थ नहीं होता।

हम आपके एकान्त में कहे हुए सुमधुर बातों को बार-बार सुनना चाहते हैं। आपके अनुराग पूर्ण हसन्मुख चेहरे को देखकर लक्ष्मी भी मोहित होती है। लक्ष्मी जी का निवास - स्थान बना हुआ आपके विशाल वक्षस्थल को देखकर हमारा मन मोहित होकर पागल बन गया है।।17।।

रहसिसंविदं इस शब्द का प्रयोग यहाँ है। भगवान किसी के पास कभी भी अकेले नहीं रहते हैं, वे सर्वत्र सदाकाल सबके साथ रहते हैं। आठवां श्लोक में **बुधमनोज्ञया मधुरयागिरा** शब्द आते हैं। भगवान का एकान्त में विद्वान लोगों को भी मोहित करने वाला वह वाक्य क्या था ? यह थोड़ा सा विचित्र लगता है। भगवान केवल प्रलय काल में एकान्त में रहते हैं। उस समय वे विद्वान लोगों को मोहित करने का वाक्य ब्रह्मा जी को कहते हैं **तद्धितप- तद्धितप**। यह तो विद्वानों के लिए केवल मोहित नहीं करता है। बहुत अर्थ पूर्ण है। सर्वज्ञ ब्रह्मा जी को भी इसको अर्थ करने में बहुत समय लगा। एक बार वे बहुत दिन तक तप किये। उसके बाद भी इन शब्दों के ऊपर चिंतन करने के बाद इस सृष्टि का आरंभ किये। भगवान के ये शब्द पण्डितों को मोहित करने वाले हैं। इसमें एकान्त में पुरुष स्त्री को बोलने वाली कोई बात नहीं है।

गोकुल में रहने वाले हम लोगों को आप का यह अवतार हमारे सारे अनिष्ट को दूर करने वाला है, इस जगत को मंगल करने वाला है, भक्तों के हृदय के दर्द को दूर करने वाला है। आपको देखने की इच्छा को मन में भरे हम लोगों को आप अपने उस दिव्य रूप का सुंदर दर्शन थोड़ा सा ही क्यों न हो, कृपा करके दिखाओ।।18।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में उनतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा, श्री कृष्ण के दर्शन के लिए आतुर गोपियों ने अनेक रीति से विलाप करते हुए बहुत उच्च स्वर से गान करती रहीं। उनके आंखों से आंसू बहता रहा।।1।।

यहाँ **रुरुदुः सुस्वरं** अच्छे स्वर में रोए ऐसा प्रयोग है। रोना भी अच्छे स्वर में होता है क्या ? यह प्रश्न उठ सकता है। **रूदिर** शब्द का अर्थ आंखों से आंसू बहाना होता है। इसका सही अर्थ यह होता है कि गोपियाँ आंखों से आंसू बहाते हुए सुंदर स्वर में गाना गाती रहीं। स्वरमण भगवान के बारे में अश्रु बहाना परम भक्ति के कारण होता है। पति पुत्रों के लिए आंसू बहाना, दुस्वर होता है। यहाँ गोपियां विशेष अधिकार वाली अप्सरा स्त्रियों की अंश हैं। वे वेद के मंत्रों को अपने सुखवर से गाये हैं।

गोपियों को श्रीकृष्ण दर्शन दिए। कमल के समान हसन्मुख वाले, पीताम्बर धारण कर वनमाला पहने थे। मन्मथ के पिता मन्मथ से भी बढ़कर सुंदर हैं। मन्मथ को मथन करके जलाएँ हुए रुद्र को अपने मोहिनी रूप से मनश्चंचलता को लाने वाले भगवान श्री कृष्ण गोपियों के सामने हंसते हुए खड़े हैं।।2।।

मन्मथ काम को शिव अपनी तीसरी आंख खोलकर जला दिये। उस दिन से मन्मथ शरीर विहीन होकर अनंग बन गया, सारे लोगों के अंगों में रहने लगा। जब भगवान नारायण अमृत वितरण के लिए मोहिनी रूप को धारण किये तो उस समय यह अनंग मन्मथ शिव के मन में प्रवेश कर उस मोहिनी रूप की कामना करते हुए शिव को उसके पीछे-पीछे भगाया। मन्मथ का यह महात्म्य है। मन्मथ के भी पिता परम सुंदर नारायण के बारे में क्या कहना है। वे मन्मथ को भी कामत्व देने वाले हैं। वे कामवश कभी नहीं होते। गोपियों की भक्ति के कारण उनको दर्शन दिए।

अपने प्यारे कन्हैया को देखकर गोपियों का गया हुआ प्राण वापस आ गया। निर्जीव शरीर पुनः जीवन पाया। सारे उठकर खड़े हो गए। संतोष से विभोर होकर आंखों को फाड़-फाड़ कर देखने लगे।।3।।

एक गोपिका दौड़कर आगे आई, श्रीकृष्ण के दायें हाथ को दोनों हाथ से पकड़ ली, दूसरी चंदन से लिप्त उसके बाएं बाहु को अपने कंधे के ऊपर ले ली।।4।।

और एक ने श्रीकृष्ण से खाए हुए ताम्बूल शेष को अपने दोनों हाथों में स्वीकार किया।

पुनः एक गोपिका ने आगे बढ़कर उनके दोनों पादों को विरहाग्नि से जलते हुए स्तनों के ऊपर रख ली। पुनश्च एक ने प्रणयकोप से भौं को सिकोड़कर होंठ को काटते हुए तिरछी नजर से देखा।।5-6।।

और भी एक गोपिका ने श्रीकृष्ण के मुखारविंद के सौन्दर्य को अपनी आँखों को न झपकाते हुए देखकर अमृत पान करने लगी। कितने समय तक पीने के बाद भी उसको तृप्ति नहीं हुई। सज्जनों को भगवान के पाद कमल को देखने के बाद कभी भी तृप्ति नहीं होती।।7।।

योगी जन भगवान के रूप को अपने हृदय में भरकर आनंद विभोर हो जाते हैं। वैसे ही एक गोपिका ने श्रीकृष्ण को नेत्र रंध्र मार्ग से खींचकर अपने हृदय में भरकर कभी बाहर न जाये इसके लिए दोनों आंखों को बंद कर लिया। मन में ही उसका आलिंगन किया। रोमांचित होकर आनंद से पागल बन गयी।।8।।

लोग निद्रा में **प्राज्ञ** नामक भगवान को आलिंगन करते हुए सारे दुःखों को भूल जाते हैं। वैसे ही गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण भगवान को देखकर परमानंद से तृप्त होकर विरह से हुआ दुःख को दूर किया।।9।।

हे राजा, सुनो, शोक रहित श्री, भू, दुर्गादि रूप से परम पुरुष भगवान से शोभायमान होते हैं। वैसे भगवान श्रीकृष्ण दुःख रहित गोपियों के मध्य में शोभायमान रहे।।**10**।।

श्री हरि के रूपों में भेद नहीं है। उनके रूप के लिए वे ही दृष्टांत हैं।

श्रीकृष्ण गोपियों को साथ लेकर जमुना तट के सुंदर बालू युक्त प्रदेश को जा पहुंचे। वहाँ खिले हुए वुंद्मंदार और चमेली के फूलों से ऊपर चलती हुई हवा मन को प्रसन्नता देती थी।।**11**।।

शरद काल के चंद्रमा की चांदनी में रात में भी उजाला हो गया था। जमुना के तरंगों के कारण विस्तृत हुआ वह प्रदेश अत्यंत मंगल लगता था।।**12**।।

पीछे अठ्ठाईसवां अध्याय के चौतिस श्लोक में **गत्वा वनाद् वनम्** शब्द से जब तक चांदनी थी तब तक वन-वन में गोपियाँ श्रीकृष्ण को ढूंढती रही। चांदनी लुप्त होने के बाद गोपिकाओं ने जमुना तट को आकर गोपी गीत गाये ऐसा विवरण आया है। इसका अर्थ ऐसा होता है कि उस समय चन्द्रास्त हो गया। अब पुनः चांदनी कहां आयी। ऐसा संशय आ सकता है। महाभारत के युद्ध में सैंधव वध के समय में भगवान श्रीकृष्ण सूर्य को छिपाकर रात किये थे। ऐसे यहाँ भी चन्द्र रहते हुए श्रीकृष्ण अंधेरा किये हुए थे। अब रास लीला के लिए अंधेरा को हटाते हुए पुनः चांदनी को लाये हैं।

पुनः पुलिनमाविश्य (28-36) गोपियों ने पुनः यमुना तीर को आकर गोपी गीत को गाये हैं। भगवान श्रीकृष्ण वहीं उनको दर्शन दिये हैं। अब इस श्लोक में पुनः भगवान उनको यमुना तीर में लाये। यह विरुद्ध लगता है। इसका

अर्थ इतना है कि यमुना तट में और भी अच्छा और प्रशस्त स्थान को भगवान उनको ले चले।

सज्जन लोग वेदों से भगवान के संकीर्तन को श्रवण करते हुए भगवान के दर्शन पायें। यह वेदाभिमानियों का अभिप्राय होता है। उस प्रकार सज्जन लोग जब साक्षात्कार करते हैं तब उनका मनोरथ पूर्ण होता है। वैसे ही गोपिकाओं को श्रीकृष्ण का दर्शन करना ही प्रमुख उद्देश्य था। दर्शन से उनका मनोरथ पूर्ण हुआ। हृदय में भरा हुआ विरह दुःख दूर हो गया। वे अपने छाती के कुंकुमकेसर लिप्त अपनी ओढ़नी को बालू के ऊपर पसार कर अपने प्राणनाथ के लिए आसन बनाये।।13।।

महायोगी जन अपने हृदय में जिनको आसन बनाते हैं वह भगवान गोपियों से बिछाए हुए आसन के ऊपर आनंद से बैठे। तीनों लोक के समस्त सौंदर्य के एक मात्र आश्रय बालगोपाल नंद लाल वहाँ गोपियों के बीच में विराजे। गोपियों द्वारा दिए हुए स्वागत को स्वीकार किये।।14।।

गोपियों ने प्रणयभरित आँखों से, तिरछे नजर से, भौंवो को आकुंचन करते हुए प्रणयोद्दीपक हाव-भाव से श्री भगवान की आराधना की। प्रणय के आवेग से वे उत्कंठित होकर उनको छूने की चाह होते हुए भी उसको सहन करते हुए थोड़ा सा कोप को दिखाते हुए बोलती हैं।।15।।

यहाँ गोपियों का क्रोध व्यक्त करना अपने काम को हटाकर ज्ञान भक्ति को पाने के लिए भगवान के मुखारविंद से तत्वोपदेश पाना है।

गोपियों ने कहा - भगवन, इस लोक में कई लोग अपने सेवकों को सुख से रखते हैं। अन्य कई लोग सेवा न करने वाले को भी सुख देते हैं। अन्य कई हैं। वे दोनों को सुख नहीं देते हैं। इन तीनों में से कौन श्रेष्ठ है बताओ।।16।।

यहाँ तीन तरह के लोगों के बारे में गोपिकाएं श्रीकृष्ण से पूछती हैं। वे हैं कृतज्ञ, कृतघ्न और उदासीन। भगवान श्रीकृष्ण इन तीनों में एक नहीं हो सकते हैं।

भगवान कहते हैं, हे सखी लोग, परस्पर एक दूसरे को सुख देने वाले स्वार्थ साधना में निरत होते हैं। उनमें स्वाभाविक प्यार नाम का गुण नहीं है, पुण्य कर्म नहीं है। वह शुद्ध स्वार्थ है। वह प्यार नहीं होता।।17।।

ये दोनों श्लोक व्यंग्यार्थ वाले हैं। गोपियों का प्रश्न का अर्थ यह है कि हम आपके पाद सेवक होते हुए भी आप हमको छोड़कर चले गए यह ठीक है क्या ? इस प्रश्न के उत्तर रूप में भगवान कहते हैं यदि मैं तुम लोगों के सेवा के फलरूप में सुख दिया होता तो वह प्यार और भक्ति का परिणाम नहीं होता था। केवल स्वार्थ का फल होता था।

हे सुंदरीगण, सेवा जो नहीं करते हैं उनको भी सुख देने वाले माता पिता के समान दयालु होते हैं। उनमें प्यार है और पुण्य कर्म हैं। वे दोनों अत्यंत शुद्ध हैं।।**18**।।

इस श्लोक का अर्थ है सेवा न करने वाले को भी सुख देना इस लोक की नीति हैं। माता पिता के समान अपने बच्चों में प्यार रखते हुए सेवा को न चाहते हुए उनका कल्याण चाहना। यह पुण्य कर्माचरण होता है। लोक विलक्षण मुझमें यह होना सही नहीं है। मैं केवल सेवा करने वाले को फल देने वाला हूँ।

सेवा करने को भी सुख देने वाले होते हैं। वे सेवा न करने वाले को क्यों सुख देते हैं। ये दो तरह के होते हैं। भगवान का ध्यान करते हुए स्वरूपानंदानुभवः में डूबकर इस जगत को जो भूल चुके हैं, ऐसे जीवन्मुक्त एक होते हैं। दूसरे हैं किया हुआ उपकार को भी भूल जाने वाले कृतघ्न हैं।।19।।

यह इस जगत की नीति है। मैं न कृतघ्न हूँ अथवा योगी के समान जीवन्मुक्त हूँ। मैं योगी के समान स्वरूपानंदानुभवः में मग्न होते हुए भी उनके समान भूलकर चुप नहीं रहता। मैं सदाकाल सज्जनों की रक्षा करते रहता हूँ।

हे सखी लोग, मेरी सेवा करने वाले को भी मैं सुख न देने वाला और कृतघ्न हूँ ऐसे तुमको लगा तो यह गलत धारणा है। सेवा करने वाले को तत्क्षण में फल दिया तो वे तुम लोगों जैसे अहंकार को पाते हैं। सेवा को एक बार करना पर्याप्त नहीं। बार-बार सेवा करते रहना। प्यार केवल दिखाने के लिए न हो। वह स्वाभाविक होना चाहिए। स्वाभाविक प्यार ही भक्ति होती है। ऐसे भक्तों को मैं कल्पवृक्ष के समान वे जो-जो चाहते हैं छोटे बड़े उनके सारे अभीष्टों को पूर्ण करता हूँ।।20।।

दरिद्र को एक बार मिली हुयी संपत्ति खो गयी तो वह उसी के लिए तपता रहता है और किसी के बारे में विचार नहीं करता। आप लोग भी उसी तरह सकल लौकिक वैदिक कर्मो को और सकल भोग भाग्य को मुझको समर्पित करते हुए मेरी ही सेवा करने योग्य बनें इसके लिए मैं स्वभावतः अव्यक्त होने के कारण आप को नहीं दिखा। हे प्यारियों, मैं आपका प्रियकर हूँ आप मेरे ऊपर क्रोध न करें।।**21**।।

भगवान अव्यक्त कहे जाते हैं। उनको अपरोक्ष से पूजा करने से ज्यादा श्रेयस्कर होने से गोपिकाओं ने परोक्ष में पूजा किये। इसके लिए भगवान अदृश्य हुए थे। वे वहीं थे, लेकिन गोपियों के आंखों को नहीं दिख पड़ते थे। **परोक्ष प्रिया ही देवाः** यह वाक्य भगवान की इस बात को पुष्टि करता है।

कल्मष रहित प्यार करने वाले आप लोग निर्मल भक्ति के लिए देवता आयुर्मान से बहुत वर्ष तप किये तो भी होने वाला नहीं है क्योंकि मेरी सेवा करने वाला अपने आप से इस प्राकृत देह का बंधन छोड़ नहीं सकता। केवल मेरी कृपा से वह (आप लोग भी) प्राकृत देह का सम्बन्ध छोड़कर शाश्वत मोक्ष के आनंद को पा सकता है। मेरी कृपा से वह (आप लोग भी) यहाँ ऐहिक आनंद भी पा सकता है।।22।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - एकतीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

रासलीला

श्री शुकदेव कहते हैं - श्री कृष्ण जी की इन सुमधुर बातों को सुनकर गोपियाँ विरह से हुए ताप को भूल गईं। उनके संग को पाकर अपनी मनोकामना पूर्ण किये।।1।।

अपनी आराधना करने वाली उन संतुष्ट स्त्री रत्नों के साथ श्रीकृष्ण रासलीला आरंभ किये। वे परस्पर हाथ पकड़ लिये।।2।।

गोपियों के समूह से रासोत्सव आरंभ हुआ। वे सारे एक के हाथ एक पकड़ते हुए वृत्ताकार में गाना गाते हुए लीला आरंभ किये। भगवान श्रीकृष्ण अनेक रूप धारण करते हुए प्रत्येक स्त्री के बीच में होते हुए हर एक कंधे पर हाथ रखते हुए लीला के प्रमुख बने। प्रत्येक स्त्री को लगता था कि योगेश्वर श्रीकृष्ण केवल अपने पास हैं।।3।।

नर्तन करने वाली नर्तकियों को परस्पर हाथ पकड़कर वृत्ताकार में खड़े रहना चाहिए। उनके कंधे पर हाथ रखते हुए नर्तक चक्र के समान वर्तुलाकार में फिरते हुए ताल लयबद्ध होकर नाचना चाहिए। इस क्रम को रास नाम से बोलते हैं। इस प्रकार भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में लिखा है। भगवान श्रीकृष्ण गोपिकाओं से जो रास रचे वह गाय चराने वाले गवाँर लोगों का अथवा लोकगीत नृत्य नहीं था। वह शास्त्रीय नृत्य था। देवलोक की नर्तकी अप्सराओं ने वैश्य जाति में जन्म लेकर संगीत नाट्य शास्त्र में शिक्षण पाकर गोपियों के रूप में अवतार लिया था। वे ध्रुव ताल में पांव रखते हुए भुज, नेत्र, हाथ, मुंह से नाट्य मुद्राओं को दिखाते हुए सप्तस्वर में गाते हुए नाट्य शास्त्र के अनुसार भगवान को नृत्य सेवा समर्पित कर रही हैं। भरत नाट्य शास्त्र में इस तरह के नाट्य को **हल्लीशकं** इस नाम से कहा गया है। रास शब्द से आज उसमें जुड़ा हुआ अश्लीलता यहां कुछ नहीं है। गोपियों की शुद्ध भक्ति यहाँ व्यक्त होती है।

श्रीकृष्ण भगवान रास रचने लगे तब सारे देवताओं को उसको देखने की इच्छा हुई। वे

सारे विमानों में बैठकर आकाश में आ गये। पूरा आकाश देवताओं के विमानों से भर गया।।4।।

गोपियों ने प्यार से रोमांचित होकर श्रीकृष्ण के दोनों बाजू में होते हुए उनके बाहुओं को जोर से पकड़ी थीं। लगता था श्रीकृष्ण पुनः एक बार अदृश्य न हो इसके लिए श्रीकृष्ण को जोर से पकड़ी थीं।

तब देव दुन्दुभियां बजने लगीं। आकाश से पुष्पवृष्टि हुयी। गन्धर्व लोग अपनी पत्नियों के साथ मिलकर भगवान के निर्मल कीर्ति का गुणगान किये।।5।।

रासमण्डल में प्रियकर कृष्ण के साथ नाचने वाली गोपियों के हाथ के कंगन, पांव के पायल और कटि में रहने वाली कटिबंध के छोटी-छोटी घूंघरू के आवाज वहाँ गूंज उठी।।6।।

लाल-लाल गाल वाली गोपियों के बीच में नीलमेघ श्याम भगवान श्रीकृष्ण सोने के बीच वाला इन्द्रनील मणि के समान शोभित रहे।।7।।

ताल के अनुसार पांव रखना, हाथों को हिलाना, हसन्मुख से भौं को सिकोड़ना, कटि को हिलाना, स्तन को हिलाना, कानों में रहने वाला कुण्डलों को हिलाकर उनके प्रकाश को गालों में दिखाना इस प्रकार अन्यान्य लीला करते हुए गोपियों ने श्रीकृष्ण की लीला को गाते हुए नर्तन किये। उनके मुंह से आये हुये पसीने की बूंद मोती के समान शोभा दे रहे थे। उनका बालों का जूड़ा खुल गया। द्रुतगति से नृत्य करने वाली गोपियां श्रीकृष्ण के अनेक रूपों में मेघ के बीच में दिखने वाली बिजली के समान दिखीं।।8।।

श्रीकृष्ण के अंग संग से आनंदित होकर प्रणयाकेली को चाहने वाली गोपियों ने अपने सुमधुर कंठ से उच्च स्वर से गीत गाये। उनका गायन सारे विश्व में गुंज उठा ।।9।।

एक गोपी श्रीकृष्ण के साथ मिलकर शुद्ध सात स्वरों को अपस्वर के बिना आरोह और अवरोह में अलाप करने से श्रीकृष्ण संतुष्ट होकर खूब और बढ़िया शब्दों से प्रशंसा की।।10।।

बाद में उसी राग को भगवान श्रीकृष्ण ध्रुव और ताल में गाये। गाये हुए गोपियों का सम्मान भी किये। रासनृत्य से थकी हुई एक गोपी श्रीकृष्ण का सहारा लेकर खड़ी थी।।11।।

श्रीकृष्ण का हाथ कमल का सुगंध देता है। उसके ऊपर श्रीगंध भी लेपित था। एक गोपी ने उस हाथ को सूंघ कर रोमांचन से उसको चूम लिया।।12।।

एक गोपी नाचते-नाचते कर्ण कुण्डल के शोभा से शोभायमान अपने गाल को श्रीकृष्ण के गाल को जोड़ दिया। इतने में एक गोपी ने श्रीकृष्ण द्वारा आधा चबाया हुआ ताम्बूल को प्यार से

स्वीकार किया।।13।।

महाभारत में गोपियों के बारे में कुछ नहीं कहा है। विष्णु पुराण में यह सारे श्रद्धा भक्ति से कहा गया है। इसको कई लोगों ने गलत रीति से अर्थ करते हुए गोपियों ने परमात्मा से एक हो गये, अभेद हो गये ऐसा बोलते हैं। रास भगवान और जीव के अभेदत्व को नहीं बताता है। भक्ति योग द्वारा भगवान के साथ एकात्म पाना है। ऐसे कई विमर्शकों का अभिप्राय है। वास्तविक सत्य अलग है। महाभारत में द्रौपदी के वस्त्रापहार के समय में द्रौपदी भगवान को बुलाती है। उस समय बोलती है, हे गोविंद, द्वारकावासी कृष्ण और **गोपीजनप्रिय** कहती हैं। गोपियों के श्रीकृष्ण में एकात्मता को पाने का अंश हरिवंश विष्णु पर्व में (20-26-27-28) आया है। भागवत के (10-28-2) में भी आया है। यह एकात्मता जीव भगवान का अभेद ज्ञान नहीं है। यह विप्रलंभ श्रृंगार में एक अवस्था है।

और एक गोपिका पांव के घुंघरू और कटि के बंध से आवाज करते हुए गाते हुए नृत्य की। नृत्य में थकने के बाद श्रीकृष्ण के मंगलकारी करकमलों को उठाकर अपने छाती के ऊपर रखी।।14।।

गोपियों ने लक्ष्मी को अत्यंत प्रिय श्रीकृष्ण को उनके ही आवेश बल से पति रूप में पाया। उनके हाथों को अपने कंधे के ऊपर लेते हुए उनके चारों ओर घेरते हुए उनके गुणगान करते हुए नाट्य किये।।15।।

उनके कानों में पहने हुए रात के कमल के फूलों ने, घुघराते हुए बालों ने, थकान के कारण मुंह के ऊपर आया पसीना मोती के समान होकर शोभायमान हुए। उनके बालों के जूड़ा से फूल नीचे गिरते रहे। भगवान के साथ नाचने के समय इस रासक्रीड़ा में उनको अपने हाथ के कंगन और पांव के घूंघरू यही वाद्य बन गये। बाल के जूड़े में धारण किये फूल को आने वाले मधुमक्खी के गुंजन ही गायन हुआ।।16।।

भगवान स्वतंत्र हैं, काम, क्रोध, रहित हैं। किन्तु स्वयं लक्ष्मीरमण होते हुए भी गोपियों ने काम परवशता को दिखाते हैं, क्रोध की नटना करते हैं। उनका आलिंगन करना, हाथ पकड़ना, अनुराग भरे आंखों से देखना, अनेक हाव भाव करना, हंसना इत्यादि लीलाओं से उनको आनंद दिये।।17।।

हे राजा! श्रीकृष्ण के अंग संग के सुख से गोपियों की इन्द्रियां परवश हो गयीं। उनके शरीर से फूल माला और आभूषण गिर गये थे। अब सर्वांग से श्रीकृष्ण के साथ मिलने में उनको उनसे कपड़े का बंधन भी छूट गया।।18।।

श्रीकृष्ण की इस रास लीला को देखते हुए आकाश में विमान में रहने वाली देवता स्त्रियों ने स्वयं भी गोपियों जैसे भगवान के साथ मिलने की चाह करते हुए अपने को भूल गयीं। चन्द्र मन्मथ वसंत और अपने परिवार के साथ रास को देखकर विस्मृत हो गये।।19।।

अपनी चंद्रिका का सदुपयोग करते हुए निर्विकार भगवान के विहार को देखकर चंद्र को आनंद और आश्चर्य एक साथ हुआ।

जितनी गोपिकाएँ हैं, उतने रूप धारण करते हुए स्वरमण भगवान अपनी लीला से गोपियों के साथ क्रीड़ा किये।।20।।

यहाँ **रेमे** आत्मनी पद के बदले में **रराम** यह परस्मै पद का प्रयोग भगवान श्रीकृष्ण स्वरमण हैं, यह क्रीड़ा केवल गोपियों के सुख के लिए हैं, अपने के लिए नहीं हैं, इसके सूचनार्थ है।

रास क्रीड़ा से सारी गोपियां थक गईं, करूणामय श्रीकृष्ण थकी हुयी उन सखियों के मुंह के ऊपर अपने सुख देने वाले हाथ से सहलाए।।21।।

गोपियाँ श्रीकृष्ण के नखस्पर्श से परमानंद भरित हुयीं। चलने वाले मकर कुण्डल, हिलने वाले घुघराले बाल और शोभन वाले कपोल की कांति से हंसते हुए तिरछी आंखों से उनकी आराधना की। उनकी पुण्य गाथाओं को गाये।।22।।

वपक्रीड़ा से थका हुआ हाथी हथिनियों को लेकर जैसे जल में खेलता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण गोपियों के श्रम को दूर करने के लिए उनके साथ यमुना जी में उतरे। उनके पीछे गंधर्व के समान गाना गाते हुए मधुमक्खी भी चलते आये। यमुना का जल नारियों के फूल माला को उनके शरीर से हटाये। उनके कुचकुंकुम केसर को लेकर स्वयं काले से लाल बन गये। लगता था, यमुना जी रासलीला से लज्जित हो गयी है। लज्जा के कारण उनके गाल लाल हो गये हैं।।23।।

स्वरमण श्रीकृष्ण ने यमुना के मध्य में मदमत्त हाथी के समान जलक्रीड़ा की। युवतियों ने उसके ऊपर अपने हाथों से पानी फेंका। अनुराग से हंसे। उनके शरीर सौन्दर्य का संकीर्तन किये। आकाश में विमान में खड़े हुए देवताओं ने फूलों को बरसाते हुए स्त्रोत किये।।24।।

जलक्रीड़ा के बाद भगवान श्रीकृष्ण वनविहार किये। जमीन में, पानी में विकसित फूलों की सुंगध को लेकर मंद वायु बहती थी। वहाँ हथिनियों के साथ विहार करने वाले मद जल को छिड़काने वाले हाथी को जैसे भौरे अनुसरण करते हैं वैसे ही गोपिकाएँ भगवान को चारों ओर

से घेरे थीं।।25।।

कवियों ने शरद काल की चांदनी रातों में जो जो सौन्दर्य देखे वो सारे सौन्दर्य - रस श्रीकृष्ण द्वारा विहार किए हुए उस रात में भर गये थे। पूरा कानन चांदनी से सफेद हो गया था। अपने में सारे सौन्दर्य को भरे हुए श्रीकृष्ण ने अपने में अनुरक्त गोपियों के साथ पूरी रात विहार किया। भगवान सत्य काम हैं, स्वरमण हैं, वे गोपियों की इच्छा को रासलीला से पूर्ण किये । ।26।।

राजा परीक्षित पूछता है - भगवान का अवतार अधर्म का नाश करते हुए धर्म की स्थापना के लिए होता है। भगवान इस जगत के स्वामी हैं।।27।।

वे धर्म के नियम को बताते हैं। उसके अनुसार करके दिखाते हैं। उसकी रक्षा करते हैं। ऐसे भगवान धर्म के विरूद्ध होकर परनारी संग को क्यों किये ? आप मननशील हैं। आप ही इसको बताने में समर्थ हैं।।28।।

भगवान स्वरमण हैं। उनको आनंद के लिए और किसी की सहायता अथवा सहयोग की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसे होते हुए भगवान ऐसे निम्न कर्म क्यों किये ? इसमें उनका अभिप्राय क्या है ? हे मुनि, इस संशय को आप ही निरस्त करिये।।29।।

श्रीशुकदेव कहते है , योगैश्वर्यशाली महात्मा लोग स्वेच्छा से धर्म के नियमों का उल्लघंन कर सकते हैं। ज्ञानाग्नि से जलने वाले उन महा तेजस्वियों को पाप का लेप नहीं होता। आग में अशुचि वस्तु डाले तो उसको जलाकर आग शुद्ध ही रहती है। वैसे ही सदाकाल पवित्र रहने वाले भगवान को अपवित्रता होती नहीं।।30।।

श्रीकृष्ण स्वतंत्र हैं, परमात्मा हैं, तेजस्वी हैं। गोपियां अपरोक्ष ज्ञानी होकर अप्सरा के अवतार होने के कारण वे भी तेजस्विनी हैं। दोनों तेजस्वी रहने के कारण धर्म नियम का उल्लंघन उनको पाप लेप का कारण नहीं बनता। रास को अधर्म समझकर यह समाधान दिया जाता है। किन्तु यहाँ अप्सराओं के लिए कामयुक्त भक्ति ही मुक्ति का साधन होने के कारण उनके लिए यह धर्म है। यहाँ **तेजीयसां नदोपायः** बड़े लोग करें तो पाप नहीं होता है। यह अर्थ होता है। यानी बड़े लोग भगवान की आज्ञा अथवा भगवान के प्रीत्यर्थ किये तो उससे पाप संघटना नहीं होती। इन्द्र देव का अहल्यागमन सप्तर्षियों से शव का मांस भक्षण, विश्वामित्र का कुत्ते का मांस खाना, अजीगर्त का अपने पुत्र को बेचना हमारे दृष्टि से अब हमको धर्म के विरुद्ध लगते हुए भी पाप देने वाले नहीं होते। इसमें दो प्रकार है। भगवान के आदेश मानकर करने से पाप संघटना होती ही नहीं और बड़े लोग कभी-कभी अधर्म कार्य करने के बाद भी उससे पाप नहीं आता। किन्तु उनके निश्चित मोक्ष के आनंद में थोड़ी सी कमी होती है।

गोपियाँ विवाह होने के बाद अपने पति का संग नहीं किये थीं, योग शक्ति से अपने अलग रूप बनाकर उसको अपने पति के पास भेजती थीं। ऐसे कई व्याख्यानकार कहे हैं। इसकी आवश्यकता नहीं है। रासलीला के समय में गोपियां दो रूप धारण किये थीं। विवाह होने के कारण गृहस्थ धर्म के अनुसार उनका पति के साथ संग करना गलत नहीं है। भगवान के साथ रास रचते समय वे शुद्ध अप्सरा रूप ग्रहण किये थी।

योग को प्राप्त न किया हुआ मानव मनसा भी कभी अधर्म नहीं करना चाहिये। भगवान रुद्र हालाहल पीकर जीवित हैं। इसको देखकर कोई विष पीकर जीवित रह सकता है क्या ? इसी के लिए ये वाक्य प्रस्तुत हैं। **न देवचरितं चरेत**।।31।।

रुद्र विष पीकर उसको जीर्ण कर लिये। भगवान श्रीकृष्ण बाल्य में पूतना से विषपान किये। परनारि गमन वस्त्रापहरण के बारे में बोलने वाले श्रीकृष्ण के समान विष पान, आग को खाना गोवर्धन पर्वत उठाना यह कर सकते हैं क्या ? जो हम कर नहीं सकते उसके बारे में व्यर्थ बातें नहीं करना।

तो भगवान श्रीकृष्ण लोग कहें ऐसे कार्य को क्यों किये ? श्री वादिराजतीर्थ स्वामी जी इसके लिए एक परिहार बताये हैं - कलियुग के लोग जारत्व और चोरत्व करते रहते हैं। करने वाले कम होंगे, लेकिन उसके बारे में बोलने वाले, उसका प्रचार करने वाले बहुत लोग होते हैं। पत्रिका समाचार - पत्र खोले तो उसमें जारत्व और चोरत्व का विशाल विवरण मिलता है। अन्य दुष्ट लोगों से किए हुए जारत्व चोरत्व की दुष्ट वार्ता की चर्चा करते हुए पाप संचयन करने के बदले में भगवान के गोपी जन जारत्व और नवनीत चोरत्व की कथा कहकर पुण्य संपादना करें। इसके लिए भगवान ने अनुग्रह करते हुए इन लीलाओं को किया है।

योगेश्वर जो बोलते हैं वह सत्य होता है, वे जो खेलते हैं वह भी योग्य होता है। दैत्य मोह के लिए वे जो करते हैं और न करते हैं दोनों सत्य ही होता है। अपनी बातों के विरूद्ध अकस्मात् वे कर्म करे तो भी बुद्धिमान लोगों को उसको मानना चाहिये, अनुसरण नहीं करना है।।32।।

हे राजा, योगेश्वर श्रीकृष्ण को सत्कर्माचरण से कुछ प्रयोजन नहीं है। दुष्कर्म करने से उनको नरक नहीं होता है क्योंकि वे अभिनिवेश न होते हुए, मैं करता हूँ यह अहंकार न रखते हुए कर्म करते हैं।।33।।

प्राणी, मुनष्य, देवता इन सबको नियमन करने वाले भगवान को क्या नियम होते हैं ? उनको धर्माचरण से प्रयोजन, दुष्कर्म से अनर्थ नहीं होता है। इसको और प्रत्येक बोलने की आवश्यकता नहीं है।।34।।

योग सामर्थ्य से सारे कर्मबंधों से मुक्त हुये मुनि लोग भगवान के पादकमल सेवा करते हुए उसके रज से संतृप्त रहते हैं। वे कर्म लेप न होते हुए स्वेच्छा से कर्म कर सकते हैं। अप्राकृत शरीर वाले भगवान श्रीकृष्ण को कहां का कर्म बंध आता है।।35।।

गोपियों के उनके पतियों के, और समस्त जीवों के नियमन करने वाले उनके सर्वसाक्षी लीला मानुषविग्रह रूपी भगवान श्रीकृष्ण को कर्मबंध कहां से आता है ?।।36।।

यहाँ **योन्तश्चरति** शब्द का प्रयोग है। यहाँ ई + अ संधि होकर य हो गया है। **ईं लक्ष्म्यामब्जलदे** इस कोष के अनुसार ई+अ का अर्थ लक्ष्मी नारायण होता है। सारे पुरुष स्त्रियों में रहने वाले लक्ष्मी नारायण ही यहाँ रमण किये। बिम्ब से ही क्रिया ही होती है। बिम्ब के बिना प्रतिबिम्ब से क्रिया नहीं होती। सारे गोपालकों में रहने वाले श्रीकृष्ण गोपियों में रहने वाली लक्ष्मी से संपर्क किये।

भक्तों के अनुग्रह के लिए भगवान मनुष्य सदृश देह को धारण करते हुए लीला करते हैं। मानव उन लीलाओं को सुनते हुए उसकी उपासना करें।।37।।

हे राजा, भगवदिच्छा से मोहित गोपाल अपनी पत्नियों को अपने साथ ही देखे। उनको श्रीकृष्ण के ऊपर क्रोध नहीं आया।।38।।

सुप्रभात के ब्राह्मी मूहर्त के सुसमय में भगवान श्रीकृष्ण अपने सखि गोपिकाओं को विदा किए। इच्छा न होते हुए भी श्रीकृष्ण की आज्ञा को मानकर वे अपने - अपने घर को चली गयीं।।39।।

श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों के साथ की हुयी रासक्रीड़ा, जलक्रीड़ा आदि विनोद लीलाओं को परम ब्रह्मचारी श्री शुकदेव जी तन्मयता से वर्णन किये हैं। देवतागण इसको समूह में खड़े होकर देखे हैं। इस क्रीड़ा का श्रवण मनन करने से मिलने वाले फल के बारे में बताते है। इसे श्रवण मनन करने वाले का हृदय रोग परिहार होता है। कामादि रोग नाश होते हैं। यह वेदव्यास जी का वाक्य है। इसके लिए यह क्रीड़ा कामुक क्रीड़ा नहीं। रास क्रीड़ा से श्रीकृष्ण को कोई दोष नहीं आता।

तत्वज्ञानी गोपियों के साथ श्रीकृष्ण द्वारा रचायी हुयी इस अलौकिक सुंदर रासलीला को लौकिक दृष्टि से नहीं देखना है। श्रद्धा भक्ति रखते हुए इसको सुनने वाला और सुनाने वाला दोनों भगवान में विशेष भक्ति पाकर लौकिक विषय भोग की आशा से मुक्त होकर सारे दोषों को दूर करते हुए ज्ञानी होता है, मुक्त होता है।।40।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में इकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बत्तीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - एक बार महादेव के उत्सव के समय पार्वती की कथा को सुने हुए गोपालकों ने दुर्गारण्य को जाने के लिए प्रस्तुत हुए। गाड़ी को बैल जोड़ते हुए यात्रा में चले।।1।।

वे दुर्गारण्य में सरस्वती नदी में नहा धोकर शिव-पार्वती को गंध फूल चढ़ाते हुए पूजा द्रव्यों से पूजा किये।।2।।

सारे लोग गाय, सोना, शहद और मिष्ठान दान से ब्राह्मण का भोजन कराते हुए वासुदेव की प्रीति पाने के लिए कृष्णार्पण बोलकर समस्त कार्य को भगवान को अर्पित किये।।3।।

सरस्वती तट पर जलप्राशन करते हुए वे तीर्थोपवास किये। हे राजा, नंद, सनंद आदि सारे गोपाल उस रात को वहीं रहे।।4।।

उस जंगल में एक बड़ा अजगर रहता था। उसको बहुत भूख लगा था। वह सोया हुआ नंद को निगलने लगा।।5।।

अपने को सांप निगल रहा है, इसका अनुभव करते हुए नंद चिल्लाने लगा। हे कृष्ण, हे कृष्ण, यह बड़ा सांप मुझको निगल रहा है। हे बेटा, बहुत बड़ी विपदा में फंस गया हूँ। आकर मेरी रक्षा करो।।6।।

उसकी आवाज को सुनकर सारे गोपाल जागृत हो गये। वे हाथ में मशाल लेकर उससे बड़े सांप को मारने लगे। तो भी वह सांप नंद को नहीं छोड़ा। तब भगवान श्रीकृष्ण वहां आकर अपने पांव से उस सांप को लात मारे।।7-8।।

भगवान श्रीकृष्ण के पाद स्पर्श मात्र से सांप मुक्त हुआ। वह अजगर अपने शरीर को छोड़कर विद्याधर से पूजित अपने निज रूप को धारण किया।।9।।

वह एक विद्याधर था, उसका शरीर शोभायमान था। वह सोने का हार धारण किया था। सामने आकर श्रीकृष्ण को नमस्कार किया। श्रीकृष्ण उससे पूछते हैं।।10।।

तुम कौन हो ? अब सुंदर और शोभायमान लगते हो, किन्तु तुम्हें ऐसे हीन सांप के जन्म को क्यों लेना पड़ा ? कारण बताओ।।11।।

सांप बोलता है, मैं विद्याधर हूँ, सुदर्शन नाम से प्रसिद्ध था। धन संपत्ति के अहंकार से रूप सौन्दर्य से युक्त मैं विमान में संचार करता था। अपने सौन्दर्य के बारे में बहुत अहंकार रखता था। अपने तप से सौन्दर्य को खोकर कृश हुए आंगिरस नाम के ऋषि को देखकर अपहास्य किया। वे मुझको शाप दिये। उसी दिन से मुझे यह सांप का शरीर प्राप्त हुआ। अपने प्रारब्ध के कारण मैं अजगर बन गया।।12-13।।

वे ऋषि करुणालु थे। मेरे अनुग्रह के लिए ही वे शाप दिये। उनके अनुग्रह के कारण आप के पादस्पर्श से मेरे सारे पाप मिट गये।।14।।

हे दोष नाश करने वाले श्रीश केशव, आपके पादस्पर्श से मैं शाप मुक्त हो चुका हूँ। संसार भय से डरकर जो आपके शरण में आते हैं उनके भय को दूर करने वाले हैं आप। मैं अपने निवास को जाने के लिए आपकी आज्ञा को मानता हूँ।।15।।

हे महायोगी, महापुरूष, हे सज्जन पालक, सर्वलोकपालकों के पालक, मैं आपके शरण में हूँ कृपा करके मुझे जाने की अनुज्ञा दीजिये।।16।।

आपके अद्भुत दर्शन से मैं ब्रह्म शाप से मुक्त हो गया हूँ, इसमें आश्चर्य क्या है ? आपका नामोच्चारण करने वाला स्वयं पवित्र होता है और सुनने वालों को भी पवित्र करता हैं। आपने मुझको पाद से स्पर्श करते हुए परम पवित्र बनाया है।।17।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार वह सुदर्शन विद्याधर भगवान की आज्ञा पाकर उनकी परिक्रमा करते हुए दण्डवत् प्रणाम करने के बाद स्वर्ग लोक चला गया।।18।।

यह संसार एक बड़ा अजगर है। इसको आनंद रूप वाले नंद नाम का जीव ग्रास बना है। गोपालक नंद को छुड़ा नहीं सके। संसार में बंधक बना जीव को और देवताओं भी मुक्त नहीं कर सकते। श्रीकृष्ण के पाद स्पर्श मात्र से नंद मुक्त हो गया। इस प्रकार संसार में बद्ध रहने वाला जीव केवल श्रीहरि की कृपा मात्र से मुक्ति पाता है।

नंद अपने लोगों के साथ अन्य देवताओं के भजन के लिए यहाँ आया था, उसको सही ज्ञानोदय होना था। अन्य देवता यजन के समय में ही आपत आना, श्रीकृष्ण का उसका परिहार करना, विद्याधर का श्रीकृष्ण को सर्वोत्तम भगवान मानकर स्तुति करना ये सारे नंद को भगवान के बारे में सही ज्ञान उत्पन्न करने के लिए हैं।

हे राजा, श्रीकृष्ण के इस स्वरूपभूत सामर्थ्य को देखकर नंद गोप सहित सारे गोपालक आश्चर्य चकित हुए। अपने उपवास व्रत को समाप्त करते हुए बहुत आदर से श्रीकृष्ण की लीलाओं को गाते हुए वहाँ से गोकुल को वापस आये।।19।।

एक बार रात्रि में अद्भुत पराक्रमी श्रीकृष्ण बलराम दोनों जंगल में गोकुल की स्त्रियों के साथ विहार कर रहे थे।।20।।

उनके स्नेहपाश से बद्ध उन स्त्रियों ने सुन्दर तरीके से उनका गुणगान किये। उनके शरीर

को वे सुगंध का लेप किये। उनको पहनने के लिए स्वच्छ और सुंदर वस्त्र दिये, फूल माला चढ़ाए।।21।।

उस समय चन्द्र और नक्षत्रों का उदय हुआ। चमेली की सुगंध से आकृष्ट होकर भौरे वहाँ आये। कमल के सुगंध को लेकर हवा मंद मंद रीति से बह रही थी। श्रीकृष्ण और बलराम उस संध्या का स्वागत किये।।22।।

दोनों मिलकर सप्तस्वरों का शास्त्रबद्ध तरीके से आरोहण अवरोहण किये। उसको सुनकर सारे जीव राशि को सुख हुआ, मन को आनंद हुआ।।23।।

गोपियाँ उस गान माधुर्य से आनंद विभोर हो गयीं। वे अपने को और अपने पहने हुए कपड़े की भी खबर न रखते हुए संगीत में मस्त हो गयीं। उनके बालों के जूड़ा से फूल गिर रहे थे।।24।।

श्रीकृष्ण तथा राम के संगीत में मग्न होकर उन्मत्त के समान विहार करते समय वहाँ शंख चूड़ नाम के प्रसिद्ध कुबेर के अनुचर आ गया। वह शिव के वर के बल से अवध्य बना था।।25।।

वह राम कृष्ण की आंखों के सामने ही उनकी रक्षा में रहे हुए गोपियों को पकड़कर उत्तर की दिशा में खींचकर ले जाने लगा। गोपियाँ चिल्लाने लगीं।।26।।

जैसे बाघ के वश में पड़ी हुयी गाय चिल्लाती है, वैसे ही गोपियाँ राम कृष्ण के नाम को लेकर चिल्लाने लगीं। उसको सुनकर दोनों भाई उनका पीछा करने लगे।।27।।

दृढ़चित्त राम कृष्ण तालवृक्ष को उखाड़कर उसे अपने हाथ में लेकर, मुंह से डरने की कोई बात नहीं ऐसे अभय देते हुए एक क्षण में दुष्ट यक्ष के नजदीक चले गये।।28।।

मृत्यु के समान अपना पीछा करते हुए दोनों भाइयों को देखकर भयभीत हुआ वह यक्ष क्या करना इसको न समझते हुए गोपियों को वहीं छोड़कर अपने प्राण बचाने के लिए जोर से भागने लगा।।29।।

श्रीकृष्ण ने उसका पीछा करते हुए उसके पास जाकर उसको पकड़ लिया। बलराम गोपियों के साथ उनकी रक्षा के लिए खड़े हुए।।30।।

श्रीकृष्ण उस असुर यक्ष को अपने दोनों हाथों से पकड़कर अपने वज्र मुष्टि से उस दुष्ट के सिर पर आघात किये। शंखचूड़ का सिर फट गया, उसमें रहने वाली चूड़ामणि नाम के रत्न को उठा लिए।।31।।

श्रीकृष्ण ने उसे मारकर उसके सिर से चूड़ामणि को उठाकर गोपियों के समक्ष उस मणि को बलराम को दे दिये। बलराम प्यार से उसको धारण किये।।32।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तैतीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

वेणुगीता

श्री शुकदेव कहते हैं - श्रीकृष्ण दिन में गाय को चराने के लिए वन को चले जाते हैं। गोपियों का मन उनका पीछा करता है। उनको समय बीतना कष्ट होता है। वे श्रीकृष्ण के लीला के बारे में गाते हुए कष्ट से समय बिताती हैं।।1।।

गोपस्त्रियाँ आपस में बोलती हैं। हे सखि, सुनो, हमारे कन्हैया अपने बाएं गाल को बाएं कंधे के ऊपर रखते हुए ओष्ठ के पास बंशी को रखते हुए अपनी कोमल अंगुलियों से उसके रंध्रों के ऊपर फिराते हुए, सप्त स्वरों के अनुसार अपने भौ को भी हिलाते हुए वेणुगान करते हैं।।2।।

उस समय विमान में संचार करने वाली देवता स्त्रियाँ सिद्धों के साथ उस गान को सुनकर आश्चर्य चकित होती हैं। स्वयं उसका अनुकरण करने में असमर्थ होकर लज्जित होते हैं। मदन के पंचबाण से आहत हुयी अपने कपड़े का भी ख्याल न रखते हुए संगीत में मग्न होती हैं।।3।।

हे अबलागण, यह सुनो, यह आश्चर्य की बात है कि केयूर हार से अपने छाती में विद्युत के समान चमकने वाली लक्ष्मी को रखा हुआ नारायण वेणुगान करते हुए दुःखितों को सुख देता है।।4।।

उस समय गोकुल के गाय, बैल, हिरन और बच्चे सारे वेणुगान के सुमधुर गान से आकर्षित होकर मुंह में रखा हुआ घास को भी न खाते हुए कान ऊपर करके चित्र में लिखा हुआ प्राणी के समान निश्चल रहते हैं।।5।।

हे सखि, श्रीकृष्ण मोर के पंख से और नव नवीन फूल पत्ती से अपना किरीट बनाकर, पहलवान के समान कटिबंध बांधकर बलराम के साथ मिलकर गोपालकों के साथ खड़े हुए गायों को अपने वेणुध्वनि से बुलाते हैं।।6।।

तब वहाँ बहने वाली नदियां रूककर इस गान को सुनती हैं, बहने वाली हवा गान माधुर्य से रूक जाती है। ये नदी और हवा श्रीकृष्ण के पाद रज को अपने साथ लेकर आगे चलते हैं। उनको श्रीकृष्ण के अंग संग की चाह होती है। वे तरंग नाम के अपने हाथ से श्रीकृष्ण को छूने का प्रणय प्रयास करती हैं। उससे उनका बहने का वेग कम होता है। वे निश्चल होकर मधुर गान सुनने लगते हैं। इस प्रकार वे भी पुण्य भागी होते हैं।।7।।

आदिपुरूष श्री पद्मनाभ के अनुचर ब्रह्मा और सनकादि देवताओं ने वेद घोष से उनकी महिमा का संकीर्तन करते हैं। वह नारायण नित्यावियोगिनी लक्ष्मी को अपने छाती में धारण कर जल के मध्य में सोया है। वैसे ही भगवान श्रीकृष्ण ब्रह्मादियों के संकीर्तन सुनते हुए छाती में श्रीवत्स लांचन को धारण करते हुए वन में संचार करते हैं। पहाड़ के ऊँचे स्थान पर खड़े होकर वेणुगान से गायों को बुलाते हैं।।8।।

तब जंगल में रहने वाले वृक्ष लताएँ अपने हृदय में रहने वाले भगवान के इस व्यक्त रूप को अपने फलपुष्प भरित टहनियों से झुककर प्रणाम करते हैं। भक्ति रस से रोमांचित होकर आनंदाश्रु बहाते हुए अमृत के समान रस वाले फल पुष्प को समर्पित करते हैं।।9।। सुंदर विकसित कमल की मालाओं से और दिव्य गंध युक्त तुलसी के मधुर मधु से मत्त हुए मधुकर समूह मंदध्वनि से गाने लगते हैं। उनके अनुसार श्रीकृष्ण भगवान अपने वंशी से मधुरस्वर सुनाते हैं।।10।।

उस समय सरोवर में विहार करने वाले सारस और हंस पक्षियों श्रीकृष्ण के उस मधुर सुंदर गान को सुनकर मनमोहित होते हैं, एकाग्र मन से अन्य मुनियों के साथ मौन होकर आंखें मूंदकर भगवान के ध्यान में मग्न होते हैं।।11।।

हे गोकुल की देवियाँ, बलराम के साथ श्रीकृष्ण फूलमाला और किरीट कुण्डल को धारण कर गोवर्धन पर्वत के ऊपरी भाग में खड़े होकर हर्ष से अपने वेणुध्वनि से गायों को बुलाये तो सारे विश्व के समस्त जीव राशि उनके मधुर गान को सुनने के लिए अपने कान को खोलकर खड़े होते हैं।।12।।

उस समय चलने वाले मेघ श्रीकृष्ण के इस वेणुगान को विरोध न आये इसके लिए ज्यादा आवाज न करते हुए मंद्रस्वर में श्रीकृष्ण के डर से उनके वेणुगान के अनुसार आवाज करते हैं। यह भी श्याम सुंदर है। इसी के कारण वह हमारा मित्र है मानकर उसके ऊपर फूल की वृष्टि

करते हैं। छाता के समान ऊपर खड़े होकर सूर्य की छाया से रक्षा करते हैं।।13।।

यशोदा तेरे पुत्र को अनेक तरह कीं गंधर्व विद्या में पाण्डित्य है। वह अनेक विद्याओं में पारंगत है। वह स्वाभाविक है, इन विद्याओं को किसी से सीखा नहीं है। लाल लाल सेब की तरह गाल वाले श्रीकृष्ण अपने होंठ के नीचे बंशी को रखकर अपने गान कला की अभिव्यक्ति करते हुए उस छोटी सी बंशी से षड्ज मंद्र और तीक्ष्ण स्वरों से सुनने वाले का मन मोहित करते हैं। यह विद्या केवल उसी का है।।14।।

उस समय गान कला में तज्ञ देवागनाएं इंद्र रुद्र ब्रह्म इत्यादि देवोत्तम इस वेणुगान को सुनकर उसमें छिपा हुआ अपूर्व सौन्दर्य तत्व को पूर्ण तरह से न जानते हुए सिर झुकाकर स्वयं को भूलकर खड़े रहते हैं।।15।।

गायों के पीछे-पीछे पुष्ट सांड जैसे गंभीर पांव रखते हुए श्रीकृष्ण बंशी बजाते चलते हैं। उससे गायों से त्रस्त भू देवी श्रीकृष्ण के ध्वज, वज्र, कमल, अकुंश आदि सुंदर चिन्ह से शोभायमान उसके पदकमलों से आनंद पाती है।।16।।

रात में रास लीला होने के बाद पांव पटकते भगवान हमें गोकुल को भेज देता है। पूरे दिन में हम उसके विरह से तपते रहते है। शाम को गाय चराकर जब वह वापस आता है। उस समय उसके बंशी के निनाद, मुख के हावभाव और कातर भरी हुयी उसकी दृष्टि को देखकर हम प्यार से विभोर होकर अपने बाल के जूड़ा और पहने हुए कपड़े का भी ख्याल नहीं रख सकती हैं।।17।।

कौस्तुभ मणि को धारण करने वाला श्रीकृष्ण अपने अत्यंत प्यार की तुलसी माला को धारण करते हुए किसी एक गोपाल के कंधे के ऊपर हाथ रखते हुए जंगल से आते हुए सुंदर गाना गाता है।।18।।

मणिधरः इस शब्द का प्रयोग है, इससे ब्रह्मा जी में प्यार रखने वाला भगवान मणि को धारण करते हुए भक्त वात्सल्य दिखाये हैं। यहाँ **दइत तुलस्याः** इस शब्द का प्रयोग है। इससे तुलसी माला को धारण करते हुए लक्ष्मी जी के ऊपर प्यार को भगवान दिखाये हैं।

इस समय हम उस वेणुगान से मोहित होकर जैसे हिरन गान से मोहित होकर श्रीकृष्ण के पास आ जाते हैं वैसे हम भी गुणगण के समुद्र श्रीकृष्ण के पास अपने घर पति और पुत्रों को भूलकर जाते हैं।।19।।

हे पाप रहित यशोदा, आपका प्रणयी पुत्र हमको आनंद देता है। नंद के कंद के फूल्लारविन्द से शोभायमान माला को धारण किए हुए रूप को देखकर हमारा मन मोहित होता है। वह गोविंद यमुना तट पर गायों के साथ विहार करते हैं।।20।।

उस समय मंद वायु अपने साथ लायी हुयी श्रीगंध को उनको समर्पित करते हुए उनके पास ही विहार करता है,(मंद मंद सी हवा चलती है)। गंधर्व वाद्यघोष करते हैं, संगीत के साधनों को समर्पित करते हुए उनके चारों ओर घेर लेते हैं।।21।।

गोकुल और गायों के बारे में प्यार करने वाला अचिन्त्य महिमा वाले अच्युत रास्ते पर दौड़ते समय ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध सभी के पांव पकड़कर नमस्कार करते हैं। संध्या समय में गायों के साथ बंशी बजाते हुए कानन से वापस आने वाले श्रीकृष्ण की कीर्ति को गोपालबाल संकीर्तन करते हैं।।22।।

गायों के पावों से उठी हुयी धूल श्रीकृष्ण की वनमाला को ढक लेती है। तब वह देवकी गर्भ से उदित हुआ चन्द्र के सामान देखने वाले के आंखों के ताप को निवारण करते हुए सुख को देने वाली बनती है। अपने बधुंओं को इच्छित अर्थ देने वाला भगवान उसी इच्छा से हमारे पास आता है।।23।।

मादक मंद हास से फूले हुए कमल के समान आंख वाले श्रीकृष्ण अपने प्यार से गोपियों के प्रणयदर्प का अपहरण करता है। सोने के कर्णकुण्डल से शोभायमान उनके गाल को रंग लगाते हुए उदयमान चन्द्र के समान शुभ्र प्रकाश वाले वनमाली हमारे पास आते हैं।।24।।

संध्या के समय के नवोदित चंद्र के समान मुख कांति वाले यदुपति श्रीकृष्ण हाथी के समान गंभीर पांव रखते हुए हमारे पास आता है। गोकुल के गायों को दिन में सूर्य प्रकाश से हुआ ताप को चन्द्र के समान सुख देने वाला भगवान हमारे भी ताप को नष्ट करते हैं ।।25।।

श्रीशुकदेव कहते हैं - हे राजा, महाभाग्यशाली गोपिकाएँ इस प्रकार दिन भर श्रीकृष्ण की लीलाओं की गाथाओं को गाते हुए उन्हीं की याद में उन्हीं के प्यार से, उन्हीं से आनंद पाते हुए आनंद विभोर हो जाती हैं।।26।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में तैतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौतीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - शंखचूड़ासुर के वध के बाद शिव वर से अवध्यता प्राप्त किया हुआ अरिष्ट नाम का वृषभरूपी असुर कंस से प्रेषित होकर गोकुल को आ गया। बड़े सांड के रूप वाला वह अपने पांव से जमीन को कुरेदते हुए जोर से आवाज करते हुए, जमीन को हिलाते हुए वह गोकुल को आया।।1।।

अत्यन्त क्रूर रीति से आवाज करने वाला वह अपनी पूंछ को ऊपर उठाकर, मुंह को हिलाते हुए चला तो लगता था कि आकाश में रहने वाले मेघ को सींग और पूंछ से ऊपर उठा रहा है।।2।।

हे राजा, सुनो वह थोड़ा थोड़ा गोबर डालते हुए, बार बार, मूत्र विसर्जन करते हुए, आंखों से घूरकर देखते हुए भयानक गर्जना करने लगा। उस गर्जना से गर्भिणी गायों का और स्त्रियों का गर्भ स्राव होता था, गर्भ पात होता था। इस प्रकार वह भयंकर आवाज करते हुए गोकुल में प्रवेश किया।।3-4।।

चार महीने तक रहने वाला गर्भ गिर गया तो गर्भस्राव बोलते हैं। पांच से सात माह तक रहने वाला गर्भपतन को गर्भपात बोलते हैं। सात से नौ अथवा दसवां माह तक रहने वाला गर्भ और होने वाला स्राव को प्रसव बोलते है।

हे राजा, तीक्ष्ण सींग वाले उस सांड को देखकर गोप गोपियाँ भयभीत हो गए। गाय इधर उधर दौड़ने लगीं।।5।।

सारे लोग कृष्ण कहते हुए श्रीकृष्ण के शरण में आये। घबड़ाए हुये और भय से इधर उधर दौड़ रही गाय और गोपालकों, डरो मत इन शब्दों से अभय देते हुए भगवान श्रीकृष्ण उस वृषभासुर के सामने आकर उसको आह्वान देते हुए बोले - हे मूर्ख, दुरात्मा इन पशुओं को डराने से तुमको क्या होने वाला है।।6-7।।

तुम्हारे जैसे दुष्ट के डर और बल को नष्ट करने के लिए शिष्ट रूप से मैं यहाँ खड़ा हूँ। यह कहते हुए श्रीकृष्ण हाथ पांव को मारते हुए उस सांड़ के क्रोध को उकसाते हैं। अपने गोल नीले हाथ को अपने मित्र के कंधे के ऊपर रखकर खड़े हो गये।।8।।

इस प्रकार उकसाया हुआ अरिष्टासुर अपने पांव से जमीन को कुरेदते हुए पूंछ को ऊपर उठाकर अपने सींग को नीचे करते हुए श्रीकृष्ण के पास दौड़ा।।9।।

अपने सींग को आगे करते हुए आंखों को न मिलाते हुए लाल आंखों वाला इन्द्र के वज्रायुद्ध के समान श्रीकृष्ण के ऊपर जोर से आघात किया।।10।।

श्रीकृष्ण उसके दोनों सींग को पकड़ते हुए एक हाथी गजयुद्ध में दूसरे हाथी को जैसे पीछे हटाता है वैसे कृष्ण उस बैल को अठारह पांव पीछे हटाए।।11।।

भगवान के आघात से वह दैत्य गिर गया। किन्तु पुनः उठकर भगवान के ऊपर पुनः आघात करने को तैयार हो गया। वह थक कर पसीना-पसीना हो गया था, आक्रोश से भुस-भुस - भुस आवाज करते हुए श्रीकृष्ण के ऊपर आक्रमण किया।।12।।

अपने ऊपर गिरने वाले उस असुर के दोनों सींगों को पकड़कर पांव से मारकर श्रीकृष्ण उसको जमीन पर गिरा दिये। उसके दोनों सींगों को पकड़कर कपड़े को निचोड़ते जैसे निचोड़कर गले को शरीर से काट दिये। उसके सींगों को काटकर उसी से उसको मारे। इस आघात से वह राक्षस मर गया।।13।।

कृष्ण के नाम स्मरण मात्र से एक अरिष्ट नहीं सारे अरिष्ट नष्ट होते हैं। ऐसे भगवान के सामने इस अरिष्ट का क्या महत्व है। उसके सींग से ही भगवान उसको मार डाले। विश्वास से प्यार करते हुए किसी को बढ़ाने के बाद भी अपने लोग शत्रुओं के वश में चले गए तो अन्त काल में वही अपने शत्रु बन जाते हैं। इसके दृष्टान्त रुप में वृषभासुर के सिर के ऊपर के सींग ही उसके मृत्यु का कारण बन गए। यह रूक्मिणीश विजय में कहा गया है।

वृषभासुर रक्त का वमन करते हुए गोबर और मूत्र करते हुए चारों पावों को झाड़ने लगा। आंखों को न बंद करते हुए प्राणसंकट का अनुभव किया। श्रीकृष्ण उसको यमालय को भेज दिये। देवता लोग पुष्प वृष्टि करते हुए श्रीकृष्ण का गुणगान किये।।14।।

भगवान श्रीकृष्ण वृषभासुर को मारकर गोपालकों के और प्रिय बन गए। गोपियों के आंखों को आनंद देने वाले भगवान गोकुल में प्रवेश किये।।15।।

इस प्रकार अद्भुत लीला करने वाले भगवान श्रीकृष्ण के अरिष्टासुर के वध करने के बाद पूज्य नारद जी कंस के पास जाकर उसके बारे में बोलने लगे।।16।।

हे कंस, देवकी के आठवां गर्भ से जो लड़की जन्म ली ऐसा तुमने समझा है वह गलत है। वह बच्ची यशोदा की थी, यशोदा के पास रहने वाला कृष्ण यशोदा का नहीं देवकी का पुत्र है। बलराम रोहिणी का पुत्र है। वसुदेव तुम्हारे डर से अपने दोनों पुत्रों को अपने मित्र नंद गोप के घर में रखा है। ये कृष्ण बलराम ही तुम्हारे भेजे हुए सारे राक्षसों को मारे हैं।।17।।

इसको सुनकर कंस का क्रोध बढ़ गया। वह वसुदेव को मारने के लिए अपने खड्ग को खींच लिया।।18।।

नारद जी उसको मारने से रुकवा दिये। कंस वसुदेव - देवकी को अपनी मृत्यु का कारण मानकर उनको पुनः जेल में डाल दिया।

कंस, वसुदेव - देवकी के सामने ही श्रीकृष्ण को मारकर उसका बदला लेना चाहता था। इसी कारण उनको बंधन में रख दिया। नारद भी यही चाहते थे। महत्तर अपराध के बिना अपने बंधु कंस को मारना श्रीकृष्ण के लिए सही नहीं होता है। वसुदेव देवकी को बंधन बनाने के बाद कंस अपराधी होता है। इसी कारण भगवान उसको मार डालते हैं। इसी कारण नारद जी यह तंत्र रचाये।

नारद जी के जाने के बाद कंस केशी नाम के बड़े राक्षस को कृष्ण को मारने के लिए भेजा।।20।।

बाद में चाणूर मुष्टिक आदि कुश्तीपटु और अपने मंत्रियों को और हाथी को चलाने वाले महावत को अपने पास बुलाकर बोला।।21।।

हे वीर, सुनिये। सुना है वसुदेव के पुत्र नंद गोकुल में हैं।।22।।

वे राम - कृष्ण हमारी मृत्यु हैं। हमको ये बात दुर्गा ने बतायी है। हम उनको यहाँ मथुरा में बुलाते हैं। उस समय आप लोगों को कुश्ती खेलते हुए उनको मारना है।।23।।

मल्लयुद्ध के लिए योग्य रंगस्थल का निर्माण हो। उसके चारों ओर लोगों को बैठने के लिए उन्नत आसन बनाये जायें। सारे नगरवासी और ग्रामवासी इस पंज को देखें।।24।।

हे बुद्धिशाली महावत, मेरी बात सुनो। गंडस्थल से सदाकाल मद जल को स्रवित करने वाले कुवलयापीड़ नाम के बड़े हाथी को रंगस्थल के द्वार पर खड़ा करो। उसके सूंड़ में मुद्गरायुध को दे दो। उसकी सहायता से तुम वसुदेव के दोनों बच्चों को मार डालना।।25-26।।

इस बात को सुनकर वह महावत घबड़ाकर पूछा - महाराज, आपकी बहन के पुत्रों को मैं कैसे मारूँ।।27।।

हे राजन्, महावत की इस बात को सुनकर दुर्बुद्धि वाला कंस अपने जन्म के रहस्य को विवरण पूर्वक कहता है।।28।।

हे सभासद, हमारी बातों को सारे लोग लक्ष्य देकर सुनें। सुनकर याद रखें, मैं पहले से ही हमारे बंधु बोलने वाले इन लोगों से द्वेष करता हूँ। इसका कारण बताता हूँ।।29।। मेरी माँ बहुत अच्छी थी, कमल के समान उनकी आंखें थीं। एक बार वह राजमहल के उद्यान में संचार कर रही थी। उस समय मंद - मंद वायु चल रही थी।।30।।

अशोक बकुल आदि फूल से वह उद्यान भरी थी। उनके सुमधुर सुगंध से आकृष्ट होकर भौंरे गूंज रहे थे। कोयले कूंज रही थीं।।31।।

मोर मिलकर नाच रहे थे। बंदर इधर-उधर उथल पुथल कर रहे थे। अर्जुन वृक्ष की पंक्ति से वह उद्यान बहुत सुशोभित हो गया था।।32।।

उस समय मेरी माता जी को अपने पति की याद आयी। वह पतिव्रता थी। ऋतुस्नान करने के बाद वह अपने को बहुत सुंदर तरीके से अलंकृत की थी।।33।।

उस समय में द्रुमिल नाम का एक गंधर्व वहां टहल रहा था। वह अपनी माया से अदृश्य होकर टहलते हुए मेरी माँ को देखा।।34।।

लोगों के मन के अंदर के अभिप्राय को समझने वाली योगसिद्धि उसको प्राप्त थी। वह मेरी माँ के अन्तरंग भाव को समझकर मेरे पिता उग्रसेन का रूप धारण कर हसन्मुख से तिरछे नजर से मेरी माँ को देखते हुए प्रत्यक्ष हुआ।।35।।

पति की इच्छा करने वाली पतिव्रता मेरी माँ के पास वह काम पीड़ित होकर आया। सत्य स्थिति को न जानने वाली माँ उस उद्यान में उसके साथ रमण की।।36।।

हरिवंश में लिखा है उग्रसेन की पत्नी औग्रसेनी सुयामना पहाड़ को देखने के लिए गयी थी। वहाँ किन्नर लोग कामोद्धोदक गीत गा रहे थे। तब वह काम पीड़ित होकर अपने पति के बारे में विचार कर रही थी। दूसरों के मन में क्या है, इसको समझने वाला द्रुमिल उग्रसेन का रूप धारण कर उसके पास आया।

बाद में रतिक्रीड़ा में अन्तर पाकर वह अपना पति नहीं है यह समझकर वह दुःखित हो गयी। उसके आंखों से आंसू बहने लगे। उससे पूछी हे वंचक, तुम कौन हो। दुरात्मा, तुमने सज्जनों से निंदित यह कृत्य किया।।37।।

मेरी माँ को उत्तर रूप में वह सुंदर देह वाला द्रुमिल उसको समाधान करते हुए बोला - हे प्रिये, हम गंधर्व कुल में जन्म लिये है। हम देवता के समान होते हैं, देवता के प्रिय भृत्य हैं।।38।।

तुम्हारे जैसे मनुष्य शरीर वाले को सुलभता से मिलने वाले नहीं हैं। जरा - मरण इत्यादि अनिष्ट के भागी बनने वाले मानव और देवताओं में बहुत अंतर होता है।।39।।

द्रुमिल की इन बातों को सुनकर मेरी माँ का क्रोध भभक उठा। वह क्रोध से कांपती थी। और बोली हे दुष्ट तुम दुष्टकार्य करने के बाद भी मुझको समाधान कर रहे हो।40।।

जल, अग्नि, भूमि, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य, दिग्देवताएं धर्म देवता ये सारे मानवों के पुण्य पाप कर्म के साक्षी बनते हैं। उन सबको देखते-देखते दुरात्मा तुम उनका अनादर करते हुए अतिक्रमण कर मुझको कलंकिंत किया।।41।।

मदोन्मत्त होकर बंधन से मुक्त हाथी निर्मल सरोवर में रहने वाले कमल को जैसे नाश करता है वैसे तुमने मेरे शील का नाश किया है। हे गंधर्वाधम, इसके बाद भी तुम मुझको सांत्वना दे रहे हो।।42।।

मेरी माँ की इन बातों को सुनकर उनके शाप से भयभीत द्रुमल कहने लगा। हे कमल नयन वाले, कमल के समान सुगंध के शरीर वाले, देवता मनुष्य स्त्री के साथ संग करें तो वह अधर्म नहीं होता। मानव लोग यदि देवस्त्री संग करें तो अधर्म होता है। तुम ठीक तरह से समझ लो मैंने कुछ अधर्म नहीं किया है।।43-44।।

मेरे इस कार्य से तुमको श्रीमंत धीमंत और महाउत्साहशाली पुत्र जन्म लेता है। मेरा वीर्य

कभी व्यर्थ नहीं होता। मेरी बातें कभी झूठ नहीं होती।।45।।

ऐसी बात करने वाले द्रुमिल को अपने दुर्लभ पातिव्रत्य को नष्ट करके संताप करने वाली दुःखित मेरी माँ क्रोध से शाप दी।।46।।

तुम पापी हो, दुर्मार्गी हो, धर्म का नियम तुम्हारे लिए नहीं है। तुम्हारा पुत्र भी तुम्हारी तरह धर्म मार्ग को छोड़ने वाला बनेगा, वह क्रूर, अकार्य करने वाला, निर्दयी होगा।।47।।

वह देवऋषि और तपस्वियों के अनुग्रह के लिए अपात्र होता है। इस प्रकार अपने पुत्र को शाप देने वाली वह द्रुमिल को भी शाप दे सकती है। इस भय से 'वह अपने लोगों के लिए भी शत्रु बनेगा' कहते हुए वहीं अदृश्य हो गया। द्रुमिल के वहाँ से जाने के बाद दुःखित मेरी माँ उद्यान से राजगृह चली गयी। गर्भ धारण के दसवें महीने में वह मुझको जन्म दिया।।48-49-50।।

इस प्रकार पूज्य नारद जी एक बार मुझको मेरे जन्म वृतान्त के बारे में कहे थे। उस दिन से मैं अपने बंधु बने हुए सारे यादवों से द्वेष करता हूँ।।51।।

तुम लोग जानते ही हो कि ये लोग मुझसे द्वेष करते रहते हैं। इसी कारण मैंने उग्रसेन को, दुष्ट अभिप्राय वाले आहुक को, वंचक वसुदेव को और इनके आश्रय में रहने वाले अन्य लोगों को जेल में रखा है। इनको मार डालने से बंधु हत्या दोष नहीं आता है क्योंकि मैं उग्रसेन पुत्र नहीं हूँ। मैं गंधर्व का पुत्र हूँ।।52-53।।

इसी कारण राम कृष्ण को मारने के लिए केशी को भेजा है। केशी से यह काम नहीं हुआ तो हाथी से मैं उन दोनों को कुचल डालना चाहता हूँ। वसुदेव उग्रसेन नंद देवक आदि लोगों उनके श्राद्ध कर्म करके उन्हीं का मार्ग पकड़ने दो।।54-55।।

इन दोनों पुत्रों को मैं मारने वाला हूँ। उसको सारे यादव और उनके पक्ष वाले आंखें खोलकर देखें।।56।।

इस कार्यक्रम के लिए सारे देशवासियों को निमत्रंण दो। वे सारे मेरे पौरुष को देखें। हे मंगलकारी महावत, तुम रंगस्थल क़े द्वार में कुवलया हाथी को खड़ा करो। मुझको अहितकारी राम कृष्णों को उस हाथी से कुचल डालो। आने वाली चतुर्दशी के दिन से यह धनुर्याग आरंभ हो।।57-58।।

हमारे अभीष्ट को देने वाले रुद्र को पशु बलि दिया जाए। कंस की इस आज्ञा को सुनकर सारे लोग आश्चर्य चकित हो गए। इस कार्य को साधने के लिए कंस ने यदुश्रेष्ठ अक्रूर को निमंत्रित किया। उसके दोनों हाथ को पकड़कर बोलता है।।59।।

हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ अक्रूर, आप मेरे मित्र हो। आप मेरा एक काम करें। भोज यादवों में आपसे बढ़कर मेरा हित करने वाला अन्य कोई नहीं है।।60।।

हे सुंदर मित्र इन्द्र वामन की सहायता से बलि का निग्रह कर अपने स्वार्थ को साधा। वैसे मैं

भी अपने एक स्वार्थ को साधना चाहता हूँ। आप बड़े से बड़े कार्य करने में कुशल हैं।।61।।

आप यहाँ से नंद गोकुल को चलें। वहाँ वसुदेव के पुत्र हैं। उनको रथ में बिठाकर जल्दी ले आयें।।62।।

हरि के पक्ष वाले मुझे बताये हैं, उन दोनों से मेरी मृत्यु होने वाली है। आप जाकर उन दोनों को ले आइये। धनुर्याग के लिए अपने नजराना के साथ नंद इत्यादि लोगों को भी बुला लाना।।63।।

उन दोनों को आपके ले आने के बाद काल मृत्यु के समान रहने वाला कुवलयापीड हाथी से उनको मार डालूंगा। उससे भी वे बचे तो, आकाश की बिजली के समान रहने वाले पहलवानों से उनको मरवा देता हूँ।।64।।

वे बच्चे मर जाने के बाद उनके बंधु वसुदेव इत्यादि वृष्णि भोज और दाशार्ह कुलवाले दुःख करें। उनको भी बाद में मार डालता हूँ।।65।।

राज्य सिंहासन के लिए आशा करने वाला मेरा बूढ़ा पिता उग्रसेन को, उसके भाई देवक को और अन्य शत्रुओं को नाश करता हूँ।।66।।

हे मित्र, उसके बाद यह सारा भूमि निष्कटंक हो जायेगा। जरासंध मेरा गुरू है विविद मेरा मित्र है। शम्बर, नरक, बाण ये सारे मुझसे प्यार करते हैं। उनकी सहायता से मैं विष्णु पक्षपाती इन सारे राजाओं को मारकर इस भूमण्डल का प्रभु बनूंगा।।67-68।।

इसको मन में रखते हुए बालक रामकृष्ण को मथुरा और धनुर्याग को दिखाने का बहाना सा करते हुए उपाय से उनको यहाँ ले आना।।69।।

अक्रूर कहता है, हे राजा, आपने अपने को मृत्यु से बचाने के लिए जो कुछ विचार किया है वह सही है। फल मिलना हमारे हाथ में नहीं है, वह दैव के अधीन है। कार्यसिद्धि न हो या हो हम दोनों को समान रीति से देखते हुए समान रीति से प्रयत्न करना चाहिए।।70।।

लोग बड़ी-बड़ी आशा रखते हैं, भगवान उसको भंग कर सकते हैं। हमारे प्रयत्न से हर्ष आ सकता है, दुःख हो सकता है। आपकी आज्ञा का मैं पालन करूँगा।।71।।

कंस इस प्रकार अक्रूर और अन्य मंत्रियों को आदेश देते हुए वह अपने निजी धाम को चला गया। अक्रूर अपने घर का रास्ता पकड़ा।।72।।

भगवान की विशेष सेवा करने के लिए किशोर नाम का गंधर्व गायक अक्रूर बनकर अवतार लिया। वह स्वायम्भुव मनु से आविष्ट था। उनमें ब्रह्मा जी का आवेश था। वृष्णिवंश में जन्म लिए वे धर्म कार्य करते थे। कंस के मंत्री थे।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में चौतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पैतीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - कंस द्वारा भेजा हुआ केशी नामक दैत्य बड़ा घोड़ा बनकर अपने पांवों से जमीन को कुरेदते हुए गर्दन के बालों से आकाश में रहने वाले बादल और विमानों को दूर हटाते हुए जोर से आवाज करते हुए सबको डराते हुए गोकुल को आ गया।।1।।

पहले हयग्रीवासुर बना था। अब भी उसका रूप घोड़े का बना है। नरभक्षक था। पार्वती वर से और किसी से अवध्य था। भगवान श्रीकृष्ण केशी को मारकर अपना नाम केशव बनाये। इस प्रकार नारद जी श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं।

वह राक्षस बड़े बड़े आंख वाला और बड़े तालाब के समान मुंह वाला था। काला रंग वाला बड़े काले मेघ के समान दिखता था। दुष्ट विचार करने वाला वह कंस का हित करने की इच्छा से नंद गोकुल को हिलाते हुए अंदर आया।।2।।

वह अपनी पूंछ से बादलों को हटाता था। वह अपनी ध्वनि से गोकुल में रहने वाले सारे गायों को घबड़ा दिया। वह श्रीकृष्ण को ढूंढता रहा। उसके सामने भगवान श्रीकृष्ण स्वयं आकर उससे युद्ध का आह्वान देते हुए सिंह गर्जना की।।3।।

उस गर्जना को सुनकर केशी बहुत क्रोध से आकाश तक मुंह खोलकर श्रीकृष्ण के सामने आया। प्रचण्ड वेग से आगे आकर कमल के समान आंख वाले भगवान श्रीकृष्ण को अपने पीछे के दोनों पावों से मारने का प्रयास किया।।4।।

श्रीकृष्ण उस मार से दूर होकर रोष से वहीं दोनों पांवों को पकड़कर उसको उठाके आकाश में घुमाते रहे। दोनों हाथों से उसको सौ हाथ दूर फेंककर खड़े रहे। गरुड़ सांप के साथ जैसे खेलता हैं वैसे ही भगवान श्रीकृष्ण केशी के साथ खेल रहे हैं।।5।।

बेहोश हुआ केशी होश आने पर उठकर अपने मुंह को पूर्णरूप से खोलकर भगवान के ऊपर गिरा। श्रीकृष्ण उसके मुंह में अपने बाएं हाथ को घुसाकर हंसते खड़े हो गए। सांप जैसे बिल में जाता है वैसे भगवान का हाथ केशी के मुंह में घुस गया।।6।।

केशी दैत्य घोड़े का रूप धारण करके आया। वादिराज स्वामी जी इसको चमत्कार से वर्णन किये हैं। संस्कृत में अश्व इसका अर्थ अशाश्वत ऐसा भी होता है। केशी जानता था कि श्रीकृष्ण से युद्ध करने से वह रह नहीं सकता था। आगे और कहते हैं। श्रीकृष्ण अपने बाएं हाथ को केशी के मुंह में घुसा दिये। वह हाथ वहाँ बढ़ने लगा। त्रिविक्रमावतार में भगवान अपने वाम पाद को बढ़ाये थे। वामन बनकर अपने छोटे रूप दिखाये थे। केशी को मारते समय भगवान अपने बाएं हाथ को बढ़ाए हैं। इससे भगवान अणोरणीयान् और महतोमहीयान् हैं। वे अपने छोटे मुंह में चौदह लोकों को दिखाये हैं। विश्व रूप में बाहर सारे विश्व को एकत्र लाकर दिखाये हैं।

भगवान के हाथ को केशी अपने दांतों से काटना चाहा। लोहा भले गरम हो लेकिन उसको काटने वाले के दांत ही मार खाते हैं। केशी के सारे दांत गिर गये। भगवान का हाथ केशी के पेट में बढ़ता रहा। पेट में रहने वाला रोग अलक्ष्य से बढ़ता है।।7।।

श्रीकृष्ण का हाथ बढ़ता रहा केशी का श्वासोछ्वास बंद हो गया। वह अपने पांवों को इधर उधर झाड़ने लगा। शरीर में पसीना बहने लगा। आंख फिरने लगे। मल विसर्जन करते हुए वह जमीन के ऊपर गिरकर मर गया।।8।।

ककड़ी के समान केशी का शरीर दो टुकड़ा हो गया। तब महाबाहु श्रीकृष्ण अपने हाथ को उसके मुंह से वापस खींच लिये। देवता लोग श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए पुष्पवृष्टि किए।।9।।

श्रीकृष्ण के केशी के मुंह में अपने हाथ रखने के कारण केशी का शरीर दो टुकड़ा हुआ। प्रत्येक टुकड़े में केशी के दो पांव, आधा पीठ, आधा पूंछ, एक कान, एक आंख और एक नाक का हिस्सा था।

हे राजन् , पूज्य ऋषियों में पूज्य देवर्षि नारद सकल कार्यो को बिनायास करने वाले भगवान के सामने आकर उनकी स्तुति करते हुए ये बात बोले।।10।।

हे कृष्ण आप अपरिमित गात्र वाले योगेश जगदीश वासुदेव हैं। आप सबको आश्रय देने वाले यादवों के श्रेष्ठ प्रभु हैं।।11।।

आप सभी जीवों के अन्तर्यामी हैं, सर्वोत्तम हैं। लकड़ी में रहने वाली आग के समान बुद्धिमान विचार मंथन करने के बाद ही आप व्यक्त होने वाले हैं। आप प्रत्येक जीव के हृदय में निगूढ़ रूप से रहते हैं। जीवों के पुण्य पाप कर्म के प्रत्यक्ष साक्षी हैं। आप पुरूषोत्तम, स्वामियों के स्वामी हैं।।12।।

आपको आप ही आश्रय रूप हैं, अमोघ संकल्प वाले आप अपनी इच्छा से प्रकृति में सत्व रज तमो गुण की सृष्टि करते हुए इस जगत की रक्षा करते हुए अंत में लय भी करते हैं। आप कर्तुं, अकर्तुं अन्यथा कर्तुं सर्वथा शक्त हैं।।13।।

भूमि के भार बने हुए दैत्य, राक्षस और प्रमथों के विनाश के लिए, सज्जन की रक्षा के लिए आप अवतार लिए हैं।।14।।

इस केशी दानव की आवाज सुनकर देवतागण घबड़ाकर स्वर्ग को छोड़कर भाग जाते थे। घोड़े के रूप में रहने वाले इस बड़े दैत्य को आपने थोड़ा भी कष्ट न सहते हुए खेल-खेलते मार दिये। इससे बहुत संतोष हुआ।।15।।

हे प्रभु, मैं आपका कल या परसों मथुरा में आकर दर्शन लेता हूँ। वहाँ आप के हाथी चाणूर मुष्टिक और अन्य पहलवानों को मारने का खेल देखता हूँ।।16।।

उसके बाद आप के पंचजनासुर, कालयवन, मुरासुर, नरकासुर, इत्यादि असुरों का वध करते हुए पारिजात हरण करते हुए इन्द्र को हराने का दृश्य देखना चाहता हूँ।।17।।

हे जगत के स्वामी, वीर आप कन्या शुल्क से अथवा स्वयंवर से, पण से क्षत्रियों के वीर कन्याओं के साथ आपकी होने वाली शादी को देखना चाहता हूँ। द्वारिका में आप द्वारा नृगराज को शाप विमुक्त करने का दृश्य देखना चाहता हूँ।।18।।

जाम्बवती के साथ स्यमन्तकमणि को जाम्बवान आपको अर्पित करता है। आप द्वारा ब्राह्मण के मृत पुत्र को अनंतासन से लाने के कार्य को देखना चाहता हूँ।।19।।

पौंड्रक वध, काशी को जलाना, दंत वक्र का वध, राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का वध इत्यादि रहते हुए आप द्वारा किए हुए पराक्रम कर्मो को मैं देखते रहना चाहता हूँ। आप इन जिन कार्यो को कर रहे हैं उसका संकीर्तन भूमि में रहने वाले ज्ञानी लोगों को करना चाहिए। मैं उनका संकीर्तन करना चाहता हूँ।।20-21।।

उसके बाद आप काल रूप धारण करते हुए कुरु क्षेत्र के दोनों पक्ष के सैन्यों को नाश करने की इच्छा से आप अर्जुन के सारथी होकर अठारह अक्षोहिणी सैन्यों को केवल अपने दृष्टि क्षेप से नाश करने वाले कर्म को देखना चाहता हूँ।।22।।

अप्राकृत ज्ञान स्वरूप वाले आप अपने सामर्थ्य से जो चाहते हैं उसको पाते रहते हैं, जो कार्य स्वीकारते हैं उसमें यश पाते हैं। आप अपने सामर्थ्य से ही प्राकृत गुण प्रवाह को शाश्वत रीति से पार करके ऊपर खड़े हैं। ऐसे श्रेष्ठ भगवान आपके चरण में हम निरंतर रहना चाहते हैं।।23।।

हे राक्षस - कुल वैरी, आप चर्तुमुख ब्रह्मा जी के ऊपर भी अपनी आज्ञा चलाते हैं। आप स्वतंत्र हैं। आप अपनी इच्छा से देवासुर वाले इस प्रपंच की सृष्टि करते हैं। अपनी लीला के अनुसार मनुष्य के समान दिखने वाले इस शरीर को स्वीकार किये हैं। यादवों के लिए वृष्णियों के लिए और सात्वताओं के लिए आप नायक हैं। आपको मैं नमन करता हूँ।।24।।

इस प्रकार यादव कुलपति श्रीकृष्ण के होने वाले अवतार लीलाओं को देखने में उत्सुक नारद जी उनको नमस्कार करते हुए उनकी आज्ञा से चले गए।।25।।

भगवान श्रीकृष्ण युद्ध में केशी को मारकर संतुष्ट हुए अपने गोपालक मित्रों के साथ गायों

को चराते थे। गोकुल को सुख देते थे।।26।।

एक बार गोवर्धन पर्वत के ऊपर गोपालक अपनी गाय और बकरी को चराते समय वे खेल-खेल खेलने लगे। उनमें से कई बकरी बन गए। आधे लोग उनको चोरी कराने वाले बन गए। कई लोग उनकी खोज करते हुए वापस लाने वाले पुलिस बन गए। इस प्रकार तीन भाग में खेल खेलते रहे।।27।।

गोपालकों में एक भाग चोर, एक भाग बकरी और एक भाग पुलिस, इस प्रकार तीन भाग होते हुए भयमुक्त होकर आनंद से खेल-खेल खेलते रहे।।28।।

इतने में मयासुर के पुत्र महामायावी व्योमासुर नाम वाला दैत्य स्वभाव से ही चोर वह गोपालकों का रूप लेकर चोर के समूह में घुस गया। बकरी का रूप धारण किये हुए गोपालकों का अपहरण करने लगा।।29।।

वह महासुर इस प्रकार गोपालकों की चोरी करते हुए उनको उस पर्वत में रहने वाली गुफा में छिपाकर रखता था। गुफा का द्वार एक बड़े पत्थर से ढककर रखता था। इससे बकरी बने हुए गोपालकों के समूह में तीन-चार लोग बच गए।।30।।

सज्जनों के रक्षक भगवान श्रीकृष्ण व्योमासुर के इस नीच कृत्य को समझकर जब वह गोपालकों को पकड़कर ले जा रहा था उस समय उसके ऊपर वृक जैसे आक्रमण कर उसको पकड़ लिये।।31।।

वह राक्षस बहुत बलशाली था। ब्रह्मा जी से वर पाकर वह अवध्य बना था। कृष्ण के हाथ से छुटकारा पाने के लिए वह अपने शरीर को पर्वत के समान बढ़ाता रहा। किन्तु श्रीकृष्ण के चंगुल से बाहर नहीं हो पाया। उसको बहुत कष्ट होने लगा।।32।।

श्रीकृष्ण ने उसको अपने दोनों हाथों से पकड़कर भूमि के ऊपर पटक दिया। यज्ञ में पशु को जैसे मारते हैं वैसे गर्दन मरोड़कर मार दिया। आकाश में खड़े देवतागण इसको देखकर महाआनंद पाये।।33।।

भगवान श्रीकृष्ण ने गुहा को बंद किया हुआ बड़ा पत्थर को हटाकर वहाँ रहने वाले गोपालकों को संकट से मुक्त किया। देवता गोपालक श्रीकृष्ण की विजय गाथा को गाते रहे। श्रीकृष्ण ने गोकुल में प्रवेश किया।।34।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में पैतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - छत्तीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - महाज्ञानी अक्रूर कंस की आज्ञा को सुनकर पौ फटते ही मथुरा छोड़कर रथ में बैठकर नंद गोकुल को चले।।1।।

भाग्यशाली अक्रूर भगवान श्रीकृष्ण के परम् भक्त हैं। रास्ते में वे भगवान श्रीकृष्ण के बारे में चिंतन करते हुए चले।।2।।

अक्रूर अपने मन में कहते हैं। मैंने पूर्व जन्म में बहुत पुण्य किया होगा, बहुत तप किया होगा। बहुत दान दिया होगा। इसी के कारण मैं आज भगवान के दर्शन के लिए चल रहा हूँ।।3।।

शूद्र को मिला हुआ वेदाध्यन के समान विषयाभिलाषी मुझको भगवान का यह दुर्लभ दर्शन मिलने वाला है।।4।।

मैं इस प्रकार मुझको अपमान करना उचित नहीं है। भगवान का दर्शन मेरे कर्म की वजह से मिलने वाला है। काल प्रवाह में जाने वाला ज्ञानी एक न एक दिन उस प्रवाह को पार करता है।।5।।

आज मेरे सारे अमंगल मंगल में बदलते हैं, मेरा जन्म सार्थक होता है। योगियों द्वारा सदाकाल ध्यान किए जाने वाले भगवान के पद कमल को मैं आज नतमस्तक होकर नमन करने वाला हूँ।।6।।

पार करने में असाध्य अज्ञान को ब्रह्मादि देवताओं ने श्रीहरि के नाखून के प्रकाश के बल से पार किये हैं। मैं उस भगवान के पाद कमल को देखने वाला हूँ। वह श्रीहरि ही श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लिये हैं। कंस मुझको उनके पास भेज रहा है। उसका मेरे ऊपर किया हुआ यह बड़ा अनुग्रह है। यह आश्चर्य है किन्तु सत्य है।।7।।

श्रीकृष्ण के पादकमलों को ब्रह्मादि देवता आराधना करते हैं, श्री देवी पूजा करती है,

त्रिक मुनि सतत सेवा करते हैं। इतना होते हुए भी वे पाद कमल गोपालकों के साथ गाय जंगल जाते हैं, गोपियों की छाती के कुंकुम केसर से लिप्त होते हैं।।8।।

सुंदर कपोल और नासिका युक्त, खिले हुए कमल के समान लाल रंग आंखों वाले, घुंघराले काले बाल वाले सुंदर श्रीकृष्ण के मुखारविंद को मैं निश्चित रूप से देखने वाला हूँ। शुभ हो रहे हैं। हिरन मेरे दाहिने बाजू से जा रहे हैं।।9।।

शकुन - बिल्ली, नेवला, कौवा इत्यादि बाएं से दाहिने गये तो शुभ शकुन माने जाते हैं। गरुड़ पक्षी दाहिने से जाना चाहिए। गाय सामने से आना चाहिए। पानी से भरा हुआ घड़ा को लेकर सौभाग्यवती स्त्री सामने आना दो ब्राह्मण आयें। ये सारे शुभ शकुन होते हैं।एक ब्राह्मण आना, एक छींक आना, बिल्ली सामने से जाना ये शुभ माने जाते हैं।

भू भार का हरण करने के लिए अपनी इच्छा से मानव रूप धारण किये हुए सौन्दर्य निधि श्रीकृष्ण के दर्शन का भाग्य मेरा है। मेरे आंख आज धन्य होने वाले हैं।।10।।

श्री हरि अभिमान रहित हैं। जीव के शुभाशुभ कर्म के लिए साक्षी बनकर रहते हैं। वे अपने सामर्थ्य से अज्ञान, मिथ्या ज्ञान देने वाला इस संसार से परे हैं। अपनी इच्छा से अपने में सहित रहने वाले जीवों को सृष्टि करते हुए, उनमें रहकर उन्हीं से कर्म कराते हुए स्वयं ार होकर पूज्य - पूजक, याज्य - याजक, भोज्य - भोक्तृ, भोग - साधन इत्यादि अनेक रण करते हुए ज्ञानियों को दर्शन देते रहते हैं।।11।।

यहां **तत्सन्** शब्द का प्रयोग है, तथैव सन् यानी जीव की सृष्टि करते हुए उनमें उन्हीं के स्वरूप में रहते हुए र रहना भगवान का स्वरुप है।

श्री हरि के गुण, लीला और अवतार ये सारे पाप परिहारक हैं, परम मंगलदायक हैं। उनके न करते हुए मंगलकर बातें जगत जीवन कर बनते हैं, जीवन को सुखकर बनाते हैं। पावन हैं। अन्य सारी बातें अमंगलकर होती हैं।।12।।

श्री हरि जो धर्म नियमों को बनाये हैं, उनका पालन स्वयं करते हैं, और अन्यों से करवाने ए यदुकुल में अवतार लिये हैं। वह जगदीश्वर आज गोकुल में हैं। सारे जगत में अपने कर कीर्ति को पसार रहे हैं। उनको देव देवता नमन कर रहे हैं।।13।।

वे सबके गुरु हैं, तीनों लोकों में उनका रूप अत्यंत सुंदर है। उनको देखना ही आंखों वालों

को आनंद देने वाला है। साक्षात् लक्ष्मी देवी उस रूप से सदाकाल रहना चाहती हैं। उस रूप को मैं आज निश्चित रूप से देखने वाला हूँ क्योंकि आज सुबह से मुझे शुभ शकुन हो रहे हैं।।14।।

मैं श्रीकृष्ण के पाद को जब नमस्कार करता हूँ तब वे अपने कर कमल को मेरे सिर के ऊपर रखते हैं। काल सर्प के वेग से भयभीत होकर शरण में आने वाले को अभय देने वाले करकमल वही हैं।।15।।

यहाँ अक्रूर अपने को **प्रणतस्य** न बोलते हुए **पतितस्य** कहे हैं। दोनों का अर्थ नमस्कार करने वाला यह होता है। किन्तु संस्कृत में और एक अर्थ है, पतितस्य इसका अर्थ दुष्ट कंस के संपर्क से पतित यानी नीचे गिरा हुआ यह अर्थ होता है।

उस कर कमल में सर्वस्व दान संकल्प पूर्वक अर्घ्य जल देकर किये हुए देवेन्द्र और बलि चक्रवर्ती तीनों लोकों के स्वामी बन गए हैं। कल्हारकुसुम के समान सुमधुर सुगंध को देने वाला कर कमल अब रासक्रीड़ा से थके हुए व्रजसुंदरियों को स्पर्श करते हुए उनके श्रम का परिहार कर रहा है।।16।।

मैं कंस का दूत हूँ, उसने मुझे भेजा है। यह देखकर श्रीकृष्ण मुझको अप्रिय नहीं मानेगे। वे सर्वज्ञ हैं, उनको क्षेत्रज्ञ कहते हैं, वे सारे जीव राशियों के अंदर बाहर रहते हुए निर्मल आंखों से हमारे मन की आलोचनाओं को सीधे स्वयं देखते हैं।।17।।

क्षेत्रज्ञ शब्द का प्रयोग है। अव्यक्त, महत्तत्व, अहंकार इत्यादि तत्वों से परिणाम होने वाला यह शरीर अथवा प्रकृति क्षेत्र माना जाता है। इसमें रहने वाला भगवान क्षेत्रज्ञ है। भगवद् गीता के तेरहवां अध्याय में इसका विवरण आता है। आगे **अमलेन चक्षुसा ईक्षति।** अ मल इस शब्द से थोड़ा सा कलंक रहने वाला चंद्र और इन शब्द से सूर्य इस प्रकार सूर्य चंद्र दोनों से इस जगत का पूर्ण ज्ञान रखने वाले भगवान यह अर्थ होता है।

अपने पाद को दंडवत प्रणाम किये हुए मुझको श्रीकृष्ण दयापूर्ण दृष्टि से देखते हैं। उसी क्षण से मेरे सारे पाप नष्ट होते हैं, सारे संशय विनष्ट होते हैं। मैं परमानंद भरित होता हूँ।।18।।

मैं उनका आप्त बंधु हूँ, उन्हीं के कुल में जन्म लिया हूँ। उनको छोड़कर और कोई दैव को मैं नहीं देखता। वह भगवान मुझको देखते ही अपने बड़े बाहुओं को पसारते हुए आलिंगन देते हैं, मुझको घर के अंदर ले चलते हैं। तभी यह मेरा शरीर पवित्र हो जाता है, विषयाभिलाषा का बंधन छूट जाता है।।19।।

मैं भगवान श्री कृष्ण के अंग संग को पाकर नमन करने के बाद हाथ जोड़कर खड़ा हुआ तो

वे प्यार से हे तात अक्रूर नाम से बुलाते हैं। उनके इस प्रकार बोलने से मेरा जन्म सार्थक होता है। उससे आदर न पाने वाले के जन्म को धिक्कार हो।।20।।

भगवान को कोई अतिप्रिय और अप्रिय नहीं है। वे किसी से द्वेष नहीं करते हैं, उपेक्षा भी नहीं करते। कल्प वृक्ष के समान अपनी सेवा करने वाले के सारे इच्छितार्थ पूरा करते हैं। उनकी योग्यता के अनुसार भक्तों को सुख देते हैं।।21।।

यदु श्रेष्ठ उनके बड़े भाई बलराम जी को मैं नमस्कार करता हूँ। वे अपने सारे कामों को छोड़कर मुझको आलिंगन देते हुए अंदर ले जाते हैं, मुझको सारे सत्कार देते हैं। कंस द्वारा अपने बंधुओं को करने वाले दुष्कृत्यों के बारे में पूछते हैं।।22।।

इस प्रकार चिंतन करते हुए अक्रूर रथ में बैठकर आ रहा था। शाम का समय हो रहा था। उसी समय सूर्यास्त हो गया, अक्रूर गोकुल में आ गया।।23।।

श्रीकृष्ण की पादधूलि सारे लोकपालों के किरीट में चूड़ामणि के समान शोभा देती है। उस पाद के पद्म, यव अंकुश आदि चिन्हों से शोभित होकर भूमि को शोभा दे रहे थे। गोकुल में प्रवेश करते ही अक्रूर उनके दर्शन किये।।24।।

उन पद चिन्हों को देखकर होने वाले आनंद से अक्रूर का संभ्रम बढ़ गया, प्यार से शरीर रोमांचित हुआ। आंखों में आंसू भर आये। ये प्रभु के श्रीचरण हैं कहते हुए उनके ऊपर लोटने लगे।।25।।

बाद में गोशाला में दूध दुहाने वाले श्रीराम कृष्णा से मिले। दोनों शरद काल के कमल के समान आंख वाले, श्रीकृष्ण पीताम्बर धारण किये थे, बलराम नीलाम्बर पहने थे।।26।।

दोनों दस वर्ष के थे, एक श्यामल वर्ण वाले, दूसरे शुभ्र वर्ण वाले, दोनों सौंदर्य निधि थे, आजानु बाहु, प्रसन्न मुख वाले सुंदर, और हाथी के बच्चे के समान चलते थे।।27।।

ये दोनों अपने ध्वज, वज्र, अंकुश और कमल के चिन्हों से शोभायमान पादों से गोकुल की जमीन को मंगल किये थे, सदाकाल दयापूरित हसन्मुख वाले थे।।28।।

वे दोनों मनोहर लीला करने वाले गले में फूल माला पहने थे। स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण कर शरीर को सुंगध लगाये थे।।29।।

वे दोनों उत्तम पुरुष हैं, सृष्टि के प्रारंभ से रहने वाले हैं, इस जगत को निर्माण करने वाले

स्वामी हैं, जगत के कल्याण के लिए भगवान के शुक्ल केश और कृष्ण केश से अवतार लिये हुए बलराम कृष्ण हैं।।30।।

पृथु, अर्जुन, बलराम, रुद्र और इन्द्रों में उनमें न रहने वाले महिमाओं को श्रीहरि के विशेष सन्निधान पात्र होने के कारण उनकी महिमा के रूप में वर्णन करना पुराणों में प्रथा बन गया है। यह माहात्म्य नाम के ग्रंथ में बताया गया है।

हे राजा वे अपने कांति से दशोदिशाओं को उज्जवल करते हैं। एक इन्द्रमणि के पहाड़ जैसे दूसरे चांदी के पहाड़ जैसे शोभते हैं। सोने के आभूषण पहने हैं।।31।।

ऐसे रूप वाले राम कृष्ण को देखते ही अक्रूर रथ से नीचे कूदकर प्रेम और भक्ति से विह्वल होकर उनके श्रीचरणों में दण्डवत प्रणाम किये।।32।।

भगवान के दर्शन से अक्रूर के आंखों में आंनद वाष्प भर गये, उर रोमांचित हो गये। उत्कंठा से वे ठीक तरह से बोल नहीं पाये।।33।।

भक्ति की परवशता से अक्रूर बोल नहीं पा रहे हैं। यह समझकर भगवान चक्र को धारण किया हुआ अपने हाथ से उनको खींचकर आलिंगन दिये। भक्तवत्सल भगवान भक्त के भक्ति से अनुग्रह किये।।34।।

नमस्कार किये हुए अक्रूर को श्रीराम कृष्ण अपने हाथों से पकड़कर घर के अंदर ले चले।।35।।

वहाँ उनका उत्तम स्वागत करते हुए आसन देकर पादप्रक्षालन, मधुपर्क इत्यादि उपचार दिये।।36।।

अतिथि अक्रूर को मधुपर्क के अंग में एक गाय को दे दिये। उसके पांव दबाकर आदर किये, षटड्रस से युक्त पवित्र अन्न को श्रद्धा से खिलाये।।37।।

अक्रूर के भोजन होने के बाद अतिथि सत्कार के सारे विधियों को जानने वाले रामकृष्ण उनको मुखवास के लिए ताम्बूल देकर गंध माला से अलंकार करते हुए विशेष संतोष पैदा किये।।38।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सैंतीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - बाद में श्रीराम कृष्ण की अनुज्ञा पाकर अक्रूर मंच के ऊपर सुखासीन हो गये। आते समय जो-जो दिवास्वप्न में जो-जो देखे थे उन सबको पा लिये।।1।।

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्री निकेतने भगवान श्रीनिवास संतुष्ट हुये तो क्या नहीं मिलता (सबकुछ मिलता है)। हे राजा, भगवान के भक्त उनसे कुछ भी नहीं चाहते।।2।।

रात्रि के भोजन के बाद श्रीराम कृष्ण अक्रूर के पास आये। उनसे अपने बंधुओं के बारे में कंस का बर्ताव क्या है इसके बारे में पूछे। कंस आगे क्या करने वाला है उसके बारे में विशेष रूप से पूछे।।3।।

भगवान के प्रश्न का उत्तर देते हुए अक्रूर यादवों के विषय में कंस की द्वेष प्रवृत्ति, वह वसुदेव को मारने गया था इन सबको विस्तार रूप से वर्णन किये।।4।।

वे कहे कि मैं स्वयं कंस का दूत बनकर आया हूँ। इसको कहते हुए अपने निजी उद्देश्य को भी बताया। श्रीकृष्ण का जन्म वसुदेव से हुआ है इस विषय को नारद जी कंस को बता दिये हैं।।5।।

अक्रूर की इन बातों को सुनकर शत्रु संहारक वीर राम कृष्ण हंस दिये। पिता नंद गोप को कंस के आदेश को समझाये।।6।।

नंदगोप उसके अनुसार सारे गोपालकों को आज्ञा सुनायें। सारे लोग राजा को देने वाले नजराना दूध, दही, मक्खन लेकर तैयार हो जायें। गाड़ी को बैल बांधकर तैयार हो जायें।।7।।

हम कल मथुरा को जा रहे हैं। राजा को देने के लिए दूध दही नजराना इत्यादि लेकर चलेंगे। वहाँ बड़ा उत्सव लगेगा। उसको देखने के लिए सारे देशवासी वहाँ आ रहे हैं।।8।।

कंस धनुर्याग का आयोजन किया था। वह भगवान रुद्र से एक धनुष को पाया था। जिस दिन इसको पाया था। प्रतिवर्ष उसी दिन उसका त्यौहार मनाता था। अब कंस चाहता है कृष्ण बलराम को यहाँ बुलाया जाये। अपने दैत्य गण एक-एक जाकर उनका वध कर नहीं पाए जिसके लिए उनको यहाँ बुलाये तो सब मिलकर मार सकते हैं। यही

भ्रमा से उनको बुलाया।

इस प्रकार डुग्गी बजा के नंदगोप इस समाचार को सबको सुनाये। इसको सुनते ही गोपियों ने राम कृष्ण मथुरा जा रहे हैं, यह अंदाजा करते हुए मन में दुःखित हुये।।9।।

राम कृष्ण को मथुरा को ले जाने के लिए अक्रूर आया है। इसको सुनकर गोपियों की मनोव्यथा बढ़ गई। उनकी मुख कांति बुझ गई।।10।।

वे कृष्णध्यान में स्तब्ध होकर बैठ गयीं। उनको अपने साड़ी श्रृंगार की भी परवाह नहीं हुआ।।11।।

कई लोग यह लोक को भूलकर परलोक को पाने वाले जैसे हो गये और कई श्रीकृष्ण के प्यार भरे हृदयंगम सुंदर बातों को याद करने में अपने को भूल गये। और कई लोग श्रीकृष्ण के सुंदर श्रृंगार भंगी वाले रूप, दृष्टि, हंसी को याद करने में अपने को भूल गये।।12-13।।

शोक को दूर करने वाले, कृष्ण के हास्यभरित बातों को, उनके अनुपम कार्यों को याद करते हुए उनको विरह होने वाला है, इस भय से वे भयभीत हो गये।।14।।

सारी गोपियां अलग-अलग समूह में मिलकर श्रीकृष्ण की याद में आंसू बहाने लगी।।15।।

गोपियां कहती हैं - हे ब्रह्मदेव, आप दयाहीन निष्करुणि हैं। आप पहले शरीरों को प्यार से जुड़ाते हैं। उनके इष्टार्थ पूर्ण होने के पहले ही उनको अलग करते हैं। आपकी यह सृष्टि निरर्थक है। यह बच्चों का खेल बन गया है।।16।।

हे ब्रह्मदेव, आप काले-काले घुंघराले बाल से सुशोभित लाल गाल वाले, उन्नत नाक वाले, शोक को मिटाने वाले हंसी से युक्त श्रीकृष्ण के मुखारविंद को थोड़े ही समय के लिए दिखाते हैं और छिपा देते हैं। आप ये क्या गलती कर रहे हैं।।17।।

हे अक्रूर! आप अपने नाम के विरुद्ध बहुत क्रूर है क्योंकि भगवान द्वारा दिया हुआ एक आंख को आप अपहरण कर रहे हैं। श्रीकृष्ण के एक-एक अंग में हम इस सृष्टि के समस्त सौन्दर्य को एक ही स्थान पर उसी आंखों से देख रहे थे। अब हमको वह दृष्टि नहीं मिलेगी।।18।।

हे राम, अब भगवान श्रीकृष्ण हमारी तरफ नहीं देखेगा। उसका प्यार बहुत क्षणिक है। वह नये-नये प्रेयसियों को पाना चाहता है। हम उसकी लीला से परवश होकर पति सुत बंधु बांधव को छोड़कर घर संसार को त्यागकर पूरे-पूरे उनकी दासी बने हैं।।19।।

आज की यह रात चली गयी तो मथुरा के महिलाओं के लिए सुप्रभात होगा। उनके सारे अभीष्ट पूर्ण होंगे क्योंकि श्रीकृष्ण के नगर प्रवेश करते ही वे अपनी तिरछी नजरों से श्रीकृष्ण के मुख में रहने वाली अमर सुधा का पान करते हैं।।20।।

श्रीकृष्ण स्थिर चित्त हैं, किन्तु वह मथुरा के शहद के समान मधुकर मथुरा के माननीयों की बातों को मन समर्पित करते हुए उनके वश में हो जाते हैं। बाद में हंसते - हंसते अपने भौंवों को हिलाते हुए लज्जा को त्यागे हुए श्री कृष्ण के साथ मिलती हैं। तब श्रीकृष्ण हम गंवार लड़कियों को एक बार फिर से नहीं देखेगा।।21।।

आज सुबह होने के बाद मथुरा के दाशार्ह, भोज, अंधक, वृष्णि और सात्वत कुलों के लोगों के आंखें धन्य हो रही हैं। मथुरा को जाने वाले रास्ते में मिलने वाले को भी वही भाग्य मिलने वाला है। वे सारे सकल गुण संपन्न, सारे लोगों को आनंद देने वाले लक्ष्मी रमण देवकी सुत को आंखें फाड़ फाड़ कर देखने वाले हैं।।22।।

यह निष्करुणि अक्रूर का नाम अक्रूर रहना योग्य नहीं है। वह उसको शोभा नहीं देता है। कृष्ण विरह से दुःखित हम लोगों के बारे में एक बार भी नहीं बोलते हैं। इस जगत के सारे वस्तुओं से बढ़कर हमें अत्यंत प्रिय हमारे कृष्ण को यह क्रूरी मानद हमारे से बहुत दूर खींच ले जा रहा है।।23।।

श्रीकृष्ण को भी हमारे लिए मन विचलित नहीं होता। वह जल्दी से रथ में बैठता है। गोपालकों का अहंकार बढ़ गया है। वे श्रीकृष्ण को जल्दी से रथ में बैठाते हैं। सारे वृद्ध लोग हो रहे इस अन्याय को देखते हुए न देखने वाले जैसे रह जाते हैं। दैव ही हमारे विरूद्ध बन गया हैं तो और कौन क्या करने वाला है।।24।।

अथवा हम श्रीकृष्ण के पास जाकर उसको रूकवा देंगे। उसको रथ चढ़ने नहीं देंगे। इससे हमारे कुल बांधव हमारे बारे में शील रहित लज्जा रहित ऐसे समझ सकते हैं। समझने दो, वे हमारे लिए क्या करने वाले हैं, आधा निमिष भी हम श्रीकृष्ण को छोड़ नहीं सकते। उनसे दूर रहने से हमारे दिल में दर्द होता है। हम श्रीकृष्ण से दूर रहने से मरण को भी ज्यादा अच्छा मानते हैं। इससे बढ़कर यह कुल के प्रमुख हमें और क्या शिक्षा देने वाले हैं।।25।।

हे गोपियां, रास क्रीड़ा में भगवान श्रीकृष्ण का अनुराग हमें मिला था। उनके सुंदर मंद हास मधुर रहस्य भरित भाषण, क्रीड़ा, तिरछा नजर और आलिंगन ये सारे हमें मिले थे। रात्रि क्षण के समान गुजर जाती थी। इसके बाद उनके अपार विरह दुःख को हम कैसे सहन करें।।26।।

यहाँ **तमोदुरन्तं** शब्द का प्रयोग किया गया है। उसको तमः अदुः अंतम् ऐसे विभाग किये तो जिन रातों में हम सुख पाये थे श्रीकृष्ण के बिना वे ही हमारे अंत को यानि नाश को ला रहे हैं। यह अर्थ होता है।

शाम को बलराम के साथ गोपालकों से मिलकर श्रीकृष्ण गोकुल को वापस आते समय उनके घुघराले बाल सुंदर वन माला गायों के पदघात से उठी हुयी धूल से ढककर और सुंदर दिखते थे। बंशी बजाते हुए तिरछा नजर हमारे ऊपर फेंकते हुए वह हमारे मन को विचलित करते थे।

सखि, बताओं ऐसे श्रीकृष्ण को छोड़कर हम कैसे जीवित रहें ।।27।।

इस प्रकार कृष्ण में मन रखे हुए गोकुल की स्त्रियां उसके विरह से दुःखित होकर लज्जा को छोड़कर रोते हुए उच्च स्वर में गाने लगीं, **हे गोविन्द दामोदर माधवेति**।।28।।

गोपियाँ इस प्रकार सारी रात गाती रहीं, रोती रहीं। सूर्योदय हो गया। अक्रूर क्रम प्रकार से संध्या गायत्री करने के बाद रथ को चलाये।।29।।

नंदगोप आदि गोपालक नजराना दूध, दही, मक्खन से भरा हुआ गाड़ियों में बैठकर अक्रूर के पीछे - पीछे चले।।30।।

गोपीजन श्रीकृष्ण का पीछे करते हुए थोड़ी दूरी पर चल रही हैं। श्रीकृष्ण पीछे मुड़कर उनको देखे। गोपियों को आनंद हुआ, वे समझ लिये श्रीकृष्ण जल्दी आने के बारे में बोलेगा। यह इच्छा करते हुए वहीं खड़ी हो गयीं।।31।।

अपने मथुरा गमन से गोपियों को संताप होता है। यह देखकर श्रीकृष्ण अपने आप्त दूतों से जल्दी वापस आने वाला हूँ। यह संदेश भेज दिये।।32।।

रथ के ध्वज और उससे उत्पन्न हुयी धूल जब तक दिखती थी तब तक गोपियाँ चित्र के समान खड़ी हो गयीं। लेकिन उनके मन श्रीकृष्ण के पीछे दौड़ रहा था।।33।।

यहाँ वादिराज जी ने अपने **रुक्मिणीश** विजय नाम के ग्रंथ में श्रीकृष्ण और गोपियों के संवाद को विशेष रूप से लिखा है। जहाँ गोपियाँ कहती हैं - श्रीकृष्ण तुम मधुपुरी को जा रहे हो लेकिन वह मथुरा मधुपुरी नहीं है। हमारे लिए वह बहुत कटुकाषाय पुरी है। यह बुलाने के लिए आया हुआ अक्रूर महा क्रूर है। श्रीकृष्ण हम आपके केवल अधरामृत पाकर जीवित रहते हैं। ऐसे हमको छोड़कर मथुरा जाने से हम कैसे जीवित रह सकते हैं ?

तब श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं - तुम्हारे पूर्व जन्म का पाप अभी नहीं कटा है। इसके लिए मैं छोड़ जाता हूँ। मेरे विरह से वह पाप कट जायेगा। गोपिका बोलती हैं। हे कृष्ण, आपके दर्शन मात्र से सारे पाप नष्ट होते हैं। ऐसे संदर्भ में हमारा पाप कहाँ रहेगा ?

कृष्ण उत्तर देते हैं - केवल वही कारण नहीं है। कंस महापापी है - उसको मारना मेरा कर्तव्य है। मैं नहीं गया तो वह भक्तों को कष्ट देता रहता है।

गोपिका कहती हैं - भक्तों को कष्ट देने वाला पापी कंस को यहाँ से ही अपने दृष्टि मात्र से मार डालो। केवल आपके तिरछी नजर से हम यहाँ मर रहे हैं। आप चले गये तो वह नजर को भी न देख पाने से मर ही जायेंगे। अक्रूर कंस का दूत बना है। हमें अक्रूर को कोसने से क्या होता है ? कंस को ही शाप देते हैं। वह कंस जल्दी मर जाये और हम आपसे जल्दी ही मिलें।

वे चाहती थीं कि थोड़ी दूर जाकर वापस आ जायें। किन्तु श्रीकृष्ण नहीं आये। इससे उनको

निराशा हुई। वे वापस आकर अपने मन को समाधान करने के लिए दिन-रात उनकी प्रिय लीलाओं के बारे में गाती रहीं।।34।।

हे राजन्, भगवान श्रीकृष्ण, बलराम को लेकर अक्रूर वायुवेग वाले रथ से तीव्र गति से चलते हुए यमुना नदी को जा पहुंचे।।35।।

यहाँ यमुना नदी की स्तुति इस प्रकार करते हैं। हे यमुने - आप अपने काले जल में स्नान करने वाला की कालिख (पाप) को निकालते हुए उसे शुभ्र (पाप रहित) कर देती हैं। काले देह वाले अपने के भाई यम के पास न भेजते हुए शुभ्र रंग वाले श्वेतद्वीप वाले वेद व्यास जी के पास भेज देती हैं।

वहाँ श्रीकृष्ण और बलराम दोनों आचमन करके पानी पीकर इन्द्र नीलमणि के समान शोभायमान निर्मल वृक्षों के नीचे रथ को खड़ाकर उसमें बैठे रहे।।36।।

अक्रूर रथ से उतरकर नहाने के लिए ब्रह्महृद नाम के यमुना के पानी में उतरकर विधि पूर्वक स्नान करने लगे।।37।।

स्नान करते समय विधिपूर्वक अघमर्षण, देवतर्पण इत्यादि कर्मों से स्नान करें तो पच्चीस तत्वों के अभिमानियों से भरा हुआ पच्चीस अंग शुद्ध हो जाते हैं।

*अघमर्षण पानी में डूबकर **ऋतंच सत्यं च** इस मंत्र को तीन बार जप करना चाहिए। अक्रूर इस मंत्र को जपते हुए सिद्धि पा चुके थे। भक्तों में श्रेष्ठ भक्त हैं अक्रूर। श्रीकृष्ण अपने पास होते हुए भी नित्य कर्मानुष्ठान को न त्यागते हुए वह अपनी साधना करता रहा। हर रूप में वह भगवान का विश्व रूप दर्शन को पाया।*

पानी में डूबकर अपौरुषेय प्रणव मंत्र और अघमर्षण मंत्रों का जाप करने लगा। उस समय अक्रूर को उस पानी में ही श्रीरामकृष्ण का दर्शन हुआ।।38।।

अक्रूर को आश्चर्य हुआ। श्रीरामकृष्ण रथ में हैं, वे पानी में कैसे होते हैं इस संशय से पानी से उठकर रथ की ओर देखा।।39।।

रथ में पहले जैसे श्रीरामकृष्ण बैठे हैं, उसको और आश्चर्य हुआ। मैं उनको पानी में देखा। वह क्या सही नहीं था। इस संशय से वह और पानी में डूबा।।40।।

पुनः पानी में उनको दोनों का दर्शन हुआ। इसके पहले उसको स्नान काल में बलराम अकेले शेष रूप में दर्शन देते थे। उस समय सिद्ध नाग असुर उनकी स्तुति करते थे।।41।।

हजार फनाह वाले नीलाम्बर को धारण किये हुए शेष देव के हजार सिर के ऊपर किरीट धारण किये हुए थे। कमल के नाल के समान बलराम शुभ्र वर्ण वाले हैं। शिखर से युक्त श्वेत पर्वत के समान दिखते थे।।42।।

किन्तु आज शेष देव के ऊपर बैठकर भगवान श्रीकृष्ण दर्शन दे रहे हैं। वे पीताम्बर धारण

किये हैं, चतुर्भुज वाले कमल के समान लाल आंख वाले मेघ श्याम शांतरुपी परम पुरुष के रूप में दर्शन दे रहे हैं।।43।।

सुंदर प्रसन्न मुख वाले मनोहर हास्य पूर्ण दृष्टि वाले, सुंदर भौं वाले उन्नत नाक सुमनोहर कान, सुंदर लाल-लाल गाल वाले लाल मणि के तरह रंग वाले होंठ वाले परम पुरुष भगवान श्री हरि शेष के ऊपर विराजे हैं।।44।।

उनके जंघे तक रहने वाले लंबे पुष्टबाहु, उन्नत और लक्ष्मी जी के संन्निधान युक्त छाती, शंख के समान कंठ, गूढ़ नाभि तीन रेखायुक्त अत्यंत कोमल उदर वाले, विशाल कटिनितंब वाले हाथी के समान जंघे वाले, सुंदर पांव वाले, उन्नत एड़ी वाले, लाल और सुशोभित नाक वाले, पाद के अंगूठा से पसरता हुआ प्रकाश वाले भगवान अपने सुंदर रूप से सुशोभित हैं।।45-46-47।।

भगवान के सिर पर बहुमूल्य रत्नखचित किरीट हैं। हाथ में सोने का कड़ा है, कटि में सोने की मेखला, सोने का जनेऊ, हार नूपुर कुण्डलों से परम पुरुष शोभायमान हैं।।48।।

हाथों में पद्म शंख चक्र गदा को धारण किये हुए भगवान के छाती में श्रीवत्सकौस्तुभ शोभायमान हैं। वे पाद तक लम्बाई वाला वनमाला को धारण किये हैं।।49।।

नंद सुनंद आदि पार्षद, सनकादिक मुनि, ब्रह्म रुद्र आदि देवोत्तम मरीचि इत्यादि नव प्रजापति प्रह्लाद नारद वसु इत्यादि भागवतोत्तम, वेद पंचरात्र इत्यादि ज्ञान कर्म, इत्यादि अलग-अलग मार्गो से निर्मल मन से परम पुरूष की स्तुति कर रहे हैं।।50-51।।

श्री, पुंष्टि, ह्री, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, इला, अजा, विद्या, अविद्या, शक्ति माया नाम के महालक्ष्मी के नाना रूप वाले परम पुरुष की सेवा में रत हैं।।52।।

अक्रूर ऐसे परमपुरुष भगवान श्रीकृष्ण को देखकर परम संतुष्ट हो गया। परम भक्ति से पुलकित हो गया। भक्ति भाव से आंखों में वाष्पजल भर गया।।53।।

भक्त अक्रूर सिर झुकाकर हाथ जोड़कर धैर्य लाकर एकाग्रता से गदगद ध्वनि से परम पुरुष का स्त्रोत करने लगा।।54।।

भक्त अक्रूर के श्रीराम कृष्ण को भक्ति से रथ में बैठाकर ले जाने के पुण्य के फल के कारण ही उसको यह विश्व रूप का दर्शन मिला। श्री वादिराज जी का यह अभिप्राय है।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में सैतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अड़तीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - अक्रूर इस प्रकार श्रीकृष्ण के विश्व रूप को देखकर मस्ती से प्रसन्न मन और इन्द्रियों से पुण्डरीकाक्ष पाण्डुरंग की स्तुति करने लगे।।1।।

अक्रूर कहते हैं, हे सारे प्रपंच के सृष्टि करने वाले आदि पुरुष, नाश रहित नारायण आपको मैं नमस्कार करता हूँ, आपके नाभि नाम के पद्म कोश से इस जगत को रचाने वाले ब्रह्मा जी का आविर्भाव हुआ है।।2।।

यहाँ **पूरुषं** शब्द का प्रयोग है। पुरी शेते इति पुरूषः - इस देह में वास करने वाला पुरुष कहा जाता है। इससे जीव का बोध होता है। किन्तु यह वहीं शरीर में रहने वाले भगवान के बारे में प्रयोग किया जाता है। पुरी यानी जगन्नाथ पुरी, श्रीरंग पुरी, बदरी और द्वारका पुरी भी होता है। वहाँ रहने वाले भगवान पुरुषः इस शब्द से पहचाना जाता है।

पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश और भूतों के इन्द्रियों के कारणी भूत अहंकार महत्तत्व, प्रकृति मन इन्द्रियां शब्दादि विषय और इन सारे जड़ तत्वों के अभिमानी देवता ये सारे जगत सृष्टि के कारण बनते हैं। ये सारे आपके अंग से जन्म लिये हैं।।3।।

पंचमहाभूत के पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश इनके अभिमानी क्रमशः पृथ्वी देवी, वरुण देव, भूत वायु देव, अग्नि देव, गणपति ये अभिमानी देवता होते हैं।

महत्तत्व के अभिमानि चतुर्मुख ब्रह्म सरस्वती और भारती ये होते हैं।

रुद्र, गरुड़, शेष, चन्द्र, स्कंद, इन्द्र ये मनोअभिमानी देवता होते हैं। शब्द स्पर्श रूप रस गंध इनके अभिमानि देवता क्रमशः वायु पुत्र प्राण अपान समान व्यान और उदान होते हैं।

अंगभूताः यानी ये सारे अभिमानीगण भगवान के अंग से जन्म ले चुके हैं। इन सबको देवतागण शब्द से कहा जाता है।

रमा ब्रह्मादि ये सारे देवताएं आपके जगत कर्तृत्व के रूप को पूर्ण रूप से नहीं जानते हैं। वे उस स्वरूप को कभी भी नहीं पा सकते। आप उनको अपने से अलग हैं इस विषय को ठीक तरह से जानते हैं। नित्य मुक्त रहने वाली रमादि आपके स्वरूप को ठीक तरह से नहीं जानती है। तो गुणबद्ध हुए ब्रह्मा जी आपके गुणातीत स्वरूप को कैसे जान सकते हैं। इसी कारण से रमा ब्रह्मादि

देवतागण आपके स्वरूप को पा नहीं सकते।।4।।

अन्यात्मतया गृहीताः ब्रह्मादि देवगण और सारी जीव राशि आपसे अलग हैं। केवल आप इसको ठीक तरह से जानते हैं। भगवान सर्वज्ञ हैं, सर्वोत्तम हैं, ये सारे जीवगण उनसे अलग हैं, अल्प हैं, उनके अधीन हैं। इसको श्रीहरि ठीक तरह से जानते हैं। यह स्कंदपुराण का वाक्य है, श्रीहरि अपने को पूर्ण रूप से ठीक तरह से स्वतंत्र रूप से जानते हैं। रमा ब्रह्मादि देवतागण भी उनको पूर्ण रूप से, ठीक तरह से, जान नहीं सकते। अन्य लोग उनको कैसे जानते हैं ? उनकी दया से अपनी योग्यता के अनुसार उनको समझकर वे उपासना करते हैं। यह महात्म्य नाम के ग्रंथ में बताया गया है।

जीवात्मों में, आकाश, समस्त भूत और ब्रह्मादि देवताओं में उनसे श्रेष्ठ होकर उनमें रहने वाले परम पुरुष जगदीश्वर आपको आपके रूपों के साथ ज्ञान योगी सज्जन ठीक तरह से उपासना करते हैं।।5।।

साध्यात्म का अर्थ ज्यादा श्रेष्ठ। भगवान जीवात्म में निष्ठ भगवत रूप से रहते हैं। ब्रह्मादि रूपों में रहने वाले उनके उत्तम रूप साधिदैव कहलाता है। पंचभूतों में रहने वाला उनके उत्तम रूप को साधिभूत कहते हैं।

कर्मयोगी यज्ञ करने वाले याज्ञिक ब्राह्मण तीनों वेदों से विस्तारपूर्वक अनेक यज्ञ करते हुए आपके अनेक नाम और रूपों की अराधना करते हैं।।6।।

यहाँ **नानारूपामराख्या** शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका अर्थ यह भी होता है सारे देवताओं में रहने वाले चतुर्मुख ब्रम्हा जी के चार मुख होने का, तीन आँख वाले रुद्र देव के त्रिनेत्रत्व का अभिमानी चतुर्मुख रुद्र आदि देवताओं के नियामक होकर उनमें रहते हुए उन्हीं के नाम से बुलाया जाते है।

यहाँ **वैतानिका** शब्द का प्रयोग है। इसका अर्थ होता है यज्ञ करने वाले। वितान का अर्थ तुच्छ और अल्प फल देने वाला यह अर्थ होता है। यज्ञ से स्वर्गादि अल्प फल मिलता है। यज्ञादि कर्म में रत जो है उनको वैतानिक कहते हैं।

मुख्य रूप से उनमें रहते हुए भगवान श्री हरि सारे देवताओं के उन्हीं के नाम से जानते हुए उनके किया हुआ आराधना को मुख्य रूप से वे ही स्वीकार करते हैं। यह आध्यात्म ग्रंथ में उक्त है।

निवृत्त कर्म करने वाले अन्य कई ज्ञानी एकांत भक्त सारे काम्य कर्मो को छोड़कर लौकिक वैदिक सारे कर्मो को आपको समर्पित करते हुए सर्वोत्तम आप में सदाकाल निष्ठा रखते हुए ज्ञान यज्ञ से ज्ञान शरीर वाले आपकी आराधना करते हैं।।7।।

और कई भक्त पंचरात्र विधि से शरीर मन को संस्कार करते हुए विहित विधान से आपको ही सर्वोत्तम मानते हुए बहुमूर्ति रूप वाले एक मूर्ति आपकी अराधना करते हैं।।8।।

तप्त मुद्रा धारण, द्वादश पुंड्र धारण, वैष्णव नाम रखते हुए, विष्णु जप करते हुए, विष्णु का, वैष्णवों की पूजा करते हुए भगवान की सेवा करना पांच विधि की वैष्णव दीक्षा होती है। ये शारीरिक संस्कार हैं। हरि सर्वोत्तम और वायु जीवोत्तम में निष्ठा रखना मन के संस्कार हैं। ये सारे पंचरात्रागम में उक्त हैं।

बहुमूर्ति रूप वाले एक मूर्ति का अर्थ इस प्रकार है। भगवान के हाथ पांव इत्यादि प्रत्येक अवयव भगवान के एक मूर्ति बनती हैं। दृष्टांत के लिए पद्मनाभ के कृष्ण केश श्रीकृष्ण के रूप बने, शुक्ल केश बलराम के रूप लिये। ये सारे बहुमूर्ति के रूप पुनः एक-एक अंग से बहुमूर्ति हो जाते हैं। नवनारियों के चित्र को उनको मिलाकर लिखे तो वह एक नवनारी कुंजर चित्र बनता है। वैसे ही बहुमूर्ति रूप वाले भगवान एक मूर्ति और एक मूर्ति वाले भगवान बहुमूर्ति होकर अपने अचिंत्य शक्ति से आविर्भूत होते हैं। ***अद्वैतम् परमार्थतः*** *उपनिषद् में कही गयी अद्वैत की यह उपासना है।*

हे भगवान, मोहक सेवागम के विधान से शिव दधीचि इत्यादि अनेक मताचार अनेक उपदेश करते हुए शिव के रूप धारण किये हुए (शिव के प्रतिमा रूप वाले) शिवान्तर्गत शिव रूप वाले आपकी उपासना करते हैं।।9।।

हे प्रभु, अन्य देवताओं के भजन करने वाले वस्तुतः उन सारे देवताओं के स्वामी आपका ही अराधना करते हैं। उनमें करने वाली आराधना उनका है ऐसे समझने वाले गलती करते हैं।।10।।

भगवद्गीता के नौवां अध्याय के 23 और 24 श्लोक में यही बात बतायी गयी है। भगवान वहाँ कहते हैं जो लोग श्रद्धा से अन्य देवताओं की पूजा करते हैं वे विधि पूर्वक नहीं किन्तु मेरी ही पूजा करते हैं। उनसे किया हुआ अराधना को मैं ही स्वीकार करता हूँ। अन्य देवताओं को समर्पित किया हुआ पूजा (आराधना) मुझको समर्पित होता है किन्तु वे लोग उसको जानते नहीं हैं। नश्वर स्वर्गादिफल को पाकर वे लोग पुनः भूमि के ऊपर जन्म लेते हैं। किन्तु जो लोग मेरी आराधना करते हैं वे मुझको ही पाकर मोक्ष में आनंद पाते हैं।

हे प्रभु, वर्षा काल में बरसा हुआ पानी पहाड़ से बहकर जैसे समुद्र में मिल जाता है। वैसे सारी आराधना शास्त्र वचन देवनाम सारे आपको समर्पित होते हैं।।11।।

आकाशात्पतितं तोयं यथागच्छति सागरम् ।
सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति ।।

इस श्लोक का अर्थ इस ग्यारहवां श्लोक से मिलता है।

सत्व, रज, तम नाम के प्रकृति के गुण आपसे जन्म लेते हैं। तृण से आरंभ होकर ब्रह्मा पर्यन्त सारे जीव इन तीन गुणों से बद्ध हैं, सारे प्राकृत हैं। गुण के अनुसार उनकी उपासना और फल भी अलग-अलग होता है। भगवद्गीता कहती है - **त्रिभिर्गुणमयैभावैरेभिः सर्वमिदम् जगत** ।।12।।

इस प्रकृति के गुण कार्य ज्ञान आदि से संसार बन्ध उत्तम मध्यम अधम जीवों में अलग-अलग तरीके से बार-बार आपके ही इच्छा से होती रहती है। किन्तु उसका परिणाम आपके ऊपर नहीं होता। आपका ज्ञान सबसे श्रेष्ठ हैं क्योंकि आप सर्वेश्वर हैं। इस जगत के ज्ञान के आप साक्षी हैं। आपके लिए नमस्कार।।13।।

अविद्या का अर्थ भगवान की इच्छा होती है।

अग्नि आपके मुख से, पृथ्वी पाद से, सूर्य आंख से, आकाश नाभि से, दिशायें कानों से, द्युलोक सिर से, बाहु से देवोत्तम, पेट से समुद्र, प्राण से वायु, इस प्रकार सारे आपसे ही सृष्ट हुए हैं।।14।।

वृक्ष, औषधि और वनस्पति आपके रोम से, बादल आपके सिर के बाल से, पर्वत अस्थि नाखून से, दिवारात्र आंखों को मिचलने से, जननेन्द्रिय से दक्ष प्रजापति, वीर्य से बरसा हुआ पानी, ये सारे आपसे ही सृजित हुआ है।।15।।

हे नाश रहित स्वरूप वाले नारायण पानी में आपने जल जन्तु का निर्माण किया। औदुम्बर के फल से जैसे मच्छर होते हैं। आपसे अनेक जीव राशियुक्त लोग और लोक पालक निर्माण होते हैं।।16।।

त्वयि प्रकल्पि इस शब्द से सारे देवतागण आपसे सृष्टि हुए यही अर्थ होता है। विष्णु के अंग प्रत्यंग से उत्पन्न हुए देवतागण स्वरूप से उनसे अलग हैं। किन्तु उनके अंग हैं, उनको वेदों में गौण रूप से वर्णन किया है। यह बात आध्यात्म नाम के ग्रंथ में उल्लिखित हैं।

भगवान आप जो अवतार और जिस रूप को क्रीड़ा के लिए स्वीकार करते हो उन्हीं रूप के सामने लोग अपने कष्ट को निवेदन करते हुए समाधान पाते हैं। आपकी कीर्ति का गुणगान करते हैं।।17।।

श्री हरि अवतार रूपों को धारण करना इसका अर्थ वे अनादि काल से इन रूपों को धारण करते ही रहते है।समय और संदर्भ में उनकी अभिव्यक्ति होती रहती है। इसी को पुराणों और कथाओं में अवतार लेना इस रूप से वर्णित है।

प्रलय काल में समुद्र में संचार करते हुए सत्यव्रत राजा की रक्षा किये हुए मत्स्य मूर्ति को नमस्कार। मधु कैटभ नाम के दैत्यों के संहार रूपी हयग्रीव को नमस्कार।।18।।

गुण पूर्ण मंदरधारी कूर्म रूप को नमस्कार। भूमि का उद्धार करने वाले लीला रूपी वराह मूर्ति को नमस्कार।।19।।

सज्जनों के भय को दूर भगाने वाले नरसिंह को नमस्कार। तीनों लोकों को अपने छोटे पादों से नापने वाले वामनमूर्ति को नमस्कार।।20।।

अहंकार से मत्त क्षत्रिय नाम के जंगल को नाश करने वाले परशुराम को नमस्कार। रावण को मारने वाले रघुराम को नमस्कार।।21।।

यादवों के स्वामी वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण को नमस्कार, बलराम में रहने वाले संकर्षण मूर्ति, प्रद्युम्नांतर्गत प्रद्युम्न मूर्ति, अनिरुद्धांर्गत अनिरुद्ध मूर्ति आपको नमस्कार।।22।।

प्रद्युम्न अनिरुद्ध संकर्षण इत्यादि नाम उनमें रहने वाले भगवान के होते हैं। अन्यों में वह केवल औपचारिक

होते हैं।

दैत्य दावनों को मोहित करने वाले दोषरहित बुद्ध को नमस्कार। धर्मभ्रष्ट होकर म्लेच्छ बने हुए क्षत्रियों का नाश करने वाले कल्किरूप भगवान आपको नमस्कार।।23।।

श्री हरि आपकी इच्छा से जीवियों ने आपके अधीन होकर प्रकृति से मोहित होकर मैं और मेरा मानते हुए दुरभिमान से अपने और अपने लोगों की रक्षा करने के लिए कर्म मार्ग में व्यस्त रहते हैं। आपकी याद नहीं करते हैं।।24।।

प्रभु, मैं भी मूढ़ होकर स्वप्न के समान नाश होने वाला मेरा शरीर, मेरी पत्नी, पुत्र और सुख साधनो, बंधु जन इनको सुख देने वाले समझते हुए भ्रांति में हूँ।।25।।

अनित्य को सुख मानते हुए जड़शरीर को चेतन समझते हुए दुःख कारण बनने वाले को सुख साधन मानते हुए शीत उष्ण आदि द्वंद्व वाले विषयों में सुख को ढूंढ रहा हूँ। हे विश्व के स्वामी, अज्ञान से अभी तक मैं आपको नहीं समझ सका।।26।।

अज्ञानी लोग पानी के ऊपर की काई को देखते हुए उसके अंदर रहने वाला पानी को न देखते हुए दूर दिखने वाली मृगमरीचिका के पीछे दौड़ते हैं। मैं भी उनके समान आप को छोड़कर दूर हो गया हूँ।।27।।

काम और कर्म से दूषित मेरा मन, मेरी इन्द्रियां आकर्षित होकर मुझे इधर-उधर खींचती हैं। विषय सुख को भोगते हुए बलहीन बुद्धि वाला मैं अपने मन को अपने वश में रख नहीं सकता।।28।।

प्रभु, मैं आज आपके शरण में आया हूँ। आपके अनुग्रह से दुर्जनों को न मिलने वाली आपकी पादसेवा मुझको मिली है। हे पद्मनाभ, जीवों को आपकी उपासना से अपरोक्ष ज्ञान हुआ तो उनको मोक्ष मिलता है।।29।।

हे शुद्ध ज्ञान रूप, आप जीवियों के ज्ञान के मूल कारण हैं। ब्रह्म रुद्र आदि से उत्तम और गुण पूर्ण हैं। आप सर्वशक्त हैं। आपको नमस्कार।।30।।

हे मोक्ष देने वाले वासुदेव आपको नमस्कार, लय काल में सारे जीवियों का लय करने वाले आपको नमस्कार। हे प्रभु, हे हृषीकेश, आपको मैं बार-बार नमन करता हूँ। शरण में आया हुआ मेरी आप रक्षा करें।।31।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - उनतालीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - भगवान श्रीकृष्ण अक्रूर को जल में अपने विश्व रूप को दिखाये। नाटक के बाद नट जैसे अपने वेष को छोड़ देता है, वैसे ही भगवान उस रूप को अपने में विलीन कर लिये।।1।।

अक्रूर पानी में दिखने वाला भगवान का विश्वरूप अदृश्य होते ही पानी से ऊपर उठकर वह संध्यादि नित्य कर्म को पूर्ण करते हुए आश्चर्य चकित होकर रथ में बैठ गए।।2।।

भगवान श्रीकृष्ण उनसे पूछते हैं - आप जल में, आकाश में, अथवा जमीन में कुछ अद्भुत चीज देखे हैं क्या ? आपको देखे तो हमको वैसा ही लगता है।।3।।

अक्रूर बोलते हैं, भगवान जमीन में, आसमान में, जल में जो सारे हैं, वे सारे आपके विश्व रूप में हैं। उसको देखने के बाद और दिखने वाली अद्भुत चीज क्या रहेगी ?।।4।।

अर्जुन जो विश्व रूप को देखा था वह विश्व के आधार वाला रूप था। अर्जुन भगवान में विश्व को देखते हैं। यहाँ अक्रूर विश्व में भगवान के अनंत रूप को देखते हैं। भगवान श्रीकृष्ण एक ही रूप में स्थल में और जल में देखने को मिले। इसी तरह के विश्व रूप को धृतराष्ट्र की सभा में सारे लोग देखे। यहाँ अक्रूर श्रीकृष्ण को भगवान मानकर चले। किन्तु दुर्योधन की सभा में उसको माया जाल समझा गया।

परब्रह्म ! जल स्थल आकाश में दिखने वाले सारे अद्भुत आप में जो हैं ऐसे रथ में रहने वाले रूप को मैंने जल में भी देखा। बाद में रथ में देखा। इससे बढ़कर और दिखने वाला अद्भुत इस जगत में क्या रहता है।।5।।

यहाँ **आश्चर्यो भगवान्** इस शब्द का प्रयोग किया गया है। भगवान के समान अद्भुत रूप और कहीं नहीं दिखता। भगवान अणु - महत् आदि विरूद्ध धर्म वाले होते हैं। भगवद् गीता में भगवान के रूप को कहते हुए **आश्चर्य वत् पश्यति कश्चिदेनम्** इत्यादि कहा गया है (2-29)। **काठकोपनिषद् में (1-27) आश्चर्योवक्ता, आश्चर्योस्यज्ञाता** इत्यादि कहा गया है। हरिवंश में (2-110-20) नारद जी कहते हैं **आश्चर्योसि, धन्योसि**। महाभारत में **आश्चर्य रत्नेष्वधिकं** कहा गया है।

श्री शुकदेव कहते हैं - अक्रूर इस प्रकार कहते हुए रथ को आगे चलाये। अपराह्न होते तक

मथुरा को ले आये।।6।।

प्रयाण के समय में रास्ते में सारे ग्रामवासी श्रीकृष्ण के पास आ जाते थे। उनको देखकर संतोष विभोर हो जाते थे। उनके ऊपर से अपनी दृष्टि को हटा नहीं सकते थे।।7।।

नंद गोप इत्यादि व्रजवासी पहले ही मथुरा पहुंच चुके थे। वे मथुरा के लगे हुए उद्यान में राम कृष्ण के रथ की राह देख रहे थे।।8।।

भगवान श्रीकृष्ण उनके पास पहुंचकर अक्रूर के हाथ को पकड़कर रथ से नीचे उतरे। हाथ जोड़ के खड़े हुए अक्रूर को हंसते हुए कहते हैं।।9।।

अक्रूर, आप रथ के साथ नगर में प्रवेश करें। अपने घर चलें। हम अपने गाड़ियों के साथ यहीं रहेंगे। बैलों को विश्राम देगें। रात होते तक हम इस नगर का संदर्शन करेंगे।।10।।

अक्रूर कहते हैं, प्रभु मैं आपको छोड़कर मथुरा प्रवेश कर नहीं सकता। हे भक्त वत्सल भगवान, आप मेरा हाथ आप कभी भी न छोड़ें।।11।।

चलिये, हमारे घर चलेंगे। हे अधोक्षज, अनाथ हमको सनाथ कीजिये। हमारे अत्यंत प्रिय भगवान आप बलराम और इन बंधुओं के साथ हमारे घर आइये।।12।।

हम लोग गृहस्थ हैं। हमारे घर आकर अपने पावन पद धूलि से हमारे घर को पवित्र करें। आपके पादों को धोने से हमारे पितृ, देवता और अग्नि तृप्त होते हैं।।13।।

बहुत दिन पहले बलि चक्रवर्ती आपके मंगलमय ये पादों को धोकर कीर्तिशाली बना, अनुपम ऐश्वर्य को पाया, एकांत भक्त को मिलने वाला परम् पद को प्राप्त किया।।14।।

बलि वामन के पाँव को धोकर धन्य हो गया। श्री हरि के पाँव धोने वाले ब्रह्मा जी हैं। श्री हरि ब्रह्मा जी से अपने पांव धुलवाकर गंगा जी को उत्पन्न किये। उस जल को शिव जी उठाकर मस्तक पर धारण किये।

आपके पाद को धोया हुआ पानी पवित्र गंगा बनकर तीनों लोकों को पावन किया। उसको परम शिव अपने सिर में धारण किये, सगर पुत्र स्पर्श मात्र से मुक्ति पाये।।15।।

हे देवदेव, हे जगन्नाथ, केवल अपने नाम के श्रवण कीर्तन मात्र से सबको पावन करने वाले हे यदुकुलोत्तम कीर्तिशाली नारायण, आपको नमस्कार।।16।।

श्री वादिराज जी अपने रूक्मिणीश विजय में अक्रूर की स्तुति को इस प्रकार लिखते हैं। भगवान पुण्य लेश भी न रहने वाला मैं सज्जनों की निंदा करूँ तो मुझको गूंगा बनाओं। **मूकं सतां दूषणेषु**। सुंदरियों को देखने लगूँ तो मुझको अंधा बनाओं। **अंधं मीन दृगीक्षणेषु।** आपकी पुण्य कथा के सिवाय अन्य कथा सुनने लगूँ तो मुझको बहरा बनाओं। **बधिरं त्वद् भिन्न गोष्ठीषु माम्** पापाचरण करने चलूँ तो मुझको लंगड़ा बनाओं **पंगुम् पाप कर प्रयाण करणे।** शास्त्र निषिद्ध रति में नपुंसक बनाओं **क्लीबं ग्राम्य रतौ मुकुंद कुरू मां।**

अक्रूर आगे प्रार्थना करते हैं - आपके पादारविन्द्र की पूजा करने में मुझे काम हो। पुण्य संपादन करने में

तृप्ति न होकर मुझे अति आशा हो। आपके पुण्य - संपादन में दूसरों से असू या हो, आपके कथामृत को पान करने में मद, आपसे द्वेष करने वाले में क्रोध और अपने भक्तों में अनुराग दो।

रुद्र देव आप मनोभिमानी हैं। मेरे मन को आपके शत्रु काम कें साथ मित्रत्व न हो। बदले में अच्युत का चिंतन निरंतर हो। हे सूर्य देव, आप आँखों के अभिमानी हैं। मेरी आंखों को खिला हुआ कमल के समान करना नहीं है। उनसे भगवान के रूप और शास्त्र ग्रंथ के पाठ करने में जोड़ दों। हे विठ्ठल, आपके नाम में तीन अक्षर हैं। **वि** का अर्थ विलय होता है। **ठ्** से चूना और **ल** से सुपारी। आपका नाम ही ताम्बूल है। ताम्बूल सन्यासी और ब्रह्मचारी के लिए निषिद्ध है। किन्तु आपका नाम निषिद्ध नहीं, कामोत्तेजक नहीं, भक्ति उद्रेक करने वाला है। आपके नाम का ताम्बूल बिना पैसे मिलता है। उसको खाने वाला संसार से मुक्त होता है।

श्री भगवान बोले, मैं अपने भाई के साथ आपके घर को आने वाला हूँ, उसके पहले मैं इस यदुकुलद्रोही कंस को मारकर अपने बंधुओं को संतोष दूंगा।।17।।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर अक्रूर मन में न चाहते हुए भी मथुरा में प्रवेश कर कंस के पास जाकर श्रीकृष्ण के आगमन का समाचार कहकर अपने घर को चले गए।।18।।

बाद में श्रीकृष्ण संध्या समय में बलराम और गोपालकों के साथ नगर संदर्शन के लिए मथुरा में प्रवेश करते हैं।।19।।

मथुरा नगरी में स्फटिक से निर्माण हुए उन्नत गोपुर थे, उनको विशाल और शोभा देने वाले सोने का किटकी लगाये थे। ताम्र और पीतल से बरामदे की दीवार बनी थी। इस नगरी में शत्रु सुलभता से प्रवेश नहीं पाते थे। शहर के बीच-बीच में उद्यान और बाग-बगीचे थे।।20।।

सोने से निर्माण किया हुआ चौक, अमीर लोगों के घर और सभा स्थान शोभायमान थे। वज्र हीरा मोती से निर्माण किया हुआ मणिखचित किटकी के छोटे रंध्रों में बैठकर कबूतर और मोर शब्द करते थे। रथ के मार्ग और बाजार के रास्ते को पानी छिड़काया गया था। फूल अंकुर और अक्षत बिखेरे गये थे।।21-22।।

घर के द्वार सुगंध से अलंकृत पूर्ण कुम्भ, फूल दीप से सुशोभित थे। नव पल्लव और फल सहित केले के वृक्ष, सुपारी के गुच्छ ध्वज और वस्त्रों से अलंकृत थे।।23।।

हे राजा, ऐसे मथुरा नगरी के राजमार्ग से राम कृष्ण अपने साथियों के साथ अंदर आये। उनको देखने के लिए नगर के नर-नारी उत्सुक होकर घर मंदिर के छत के ऊपर चढ़े थे।।24।।

जल्दी आने में नगर की नारियां गलत रीति से कपड़ा और गहने पहने थे। उनके एक कान में झुमका, एक पांव में घुंघरू और एक आंख में काजल पहने थे। दूसरों को भूल गये थे।।25।।

भोजन करने वाले आधे में भोजन छोड़ के आये, अभ्यंजन करने वाले स्नान न करते हुए

मानकर सेवा की। भगवान स्वयं वृद्ध के वेष में आये थे। तब आशीर्वाद किये। अगले जन्म में तुम मेरे साथ क्रीड़ा करोगी। यही पिंगला द्वापर में कुब्जा बन गयी।

अगले जन्म में वह एक ब्राह्मण स्त्री बन गई। वह व्रत-उपवास से भगवान की भक्त बनी। एक बार उसको अकाल मृत्यु आ गई। चार ब्राह्मण उसको विस्तर सहित उठा कर ले जा रहे थे। उस समय उसको पुनः जीव आ गया। वह चारों पुरुषों को देखते हुये उनके स्पर्श से आनन्द पाई। इसी कारण मरने के बाद अगले जन्म में वही पिंगला त्रिवक्रा बनी।

त्रिवक्रा केवल गन्ध के उपचार से भगवान की पूजा करने से सुन्दर देह पाई नाई बाल बनाकर मोक्ष पाया, मालाकार माला देकर विप्र पत्नी नैवेद्य दिये। यशोदा केवल दूध दी। ऐसे एक एक पूजा करने वाले मोक्ष पाये हैं। भगवान के सोलह उपचार से पूजा करने वाले तो मोक्ष पाते ही हैं। इसको और एक बार कहने की क्या जरूरत है।

त्रिवक्रा बाहर वक्र थी। किन्तु अन्दर भक्ति से युक्त थी। इसी कारण वह सुन्दर बनी। धोबी बाहर सरल था किन्तु मन में वक्र था। इसके लिये उसको मरना पड़ा।

कुब्जा की भक्ति से सन्तुष्ट भगवान अपने अपरोक्ष ज्ञानी को मिलने वाले फल को उसको देने की इच्छा किए हैं। कुब्जा सुन्दर मुखी थी किन्तु कुबडी थी। त्रिवक्रा अपने नाम के अनुसार अपने शरीर में तीन जगह पर टेढ़ी हो गई थी। श्रीकृष्ण उसको ठीक करने का संकल्प किये ।। 6 ।

श्री कृष्ण उसके पांव के ऊपर अपने दोनो पांव को रखते हुये गालों को पकड़ते हुये मुख से उसको ऊपर उठाये ।।7।।

श्रीकृष्ण के करस्पर्श मात्र से उसका शरीर सीधा हो गया, उन्नत हो गया, सारे अंग सम्प्रमाण हो गये। वह विशाल नितम्बवाली पुष्ट स्तन वाली सुन्दर स्त्री बन गयी ।।8।।

पिछले जन्म में कुब्जा एक सुन्दर अप्सरा थी। विदेह नगर में पिंगला नाम की वेश्या होकर जन्म लेकर वेश्या वृत्ति में वैराग्य पाकर हरि को पति रूप में उपासना करते हुये शरीर त्याग की थी। बाद में मथुरा में त्रिवक्रा नाम की सैरांध्रि होकर जन्म ली थी। हरि भक्ति की महिमा से वह सुन्दरी होते हुये पिछले जन्म की वेश्या वृत्ति के कारण गाल, छाती, कटि इन तीनों भागों में वक्र होकर त्रिवक्रा कही जाती थी। उसके भक्ति से श्रीकृष्ण का दर्शन करने के कारण भगवान उसके दोष को दूर कर दिये। श्रीकृष्ण उसके अन्यथा रूप को दूर करते हुये उसके स्वभाव सुन्दर शरीर को व्यक्त कर दिये। श्रीकृष्ण के दर्शन से उसको यह फल मिला ।।

उत्तम रूप और गुण से सम्पन्न कुब्जा काम पीड़ित होकर कृष्ण की अचला को खींचते हुये हँस कर बोली ।।9।।

हे वीर! - चलो, हम घर चलेंगे। मैं आपको छोड़कर अकेले घर नही जा सकती। हे पुरुषोत्तम! आप मेरे चित्त का हरण किये हैं। मेरे ऊपर कृपा कर के प्रसन्न हो जायें ।। 10 ।।

पिछले जन्म में यह अप्सरा थी। वेश्या जन्म में भी अन्त में भगवान को ही पति मानकर आराधना करते हुये शरीर त्याग की थी। इसी कारण अब भगवान को काम पूर्वक भक्ति से आग्रह से बुला रही है।

इस प्रकार कुब्जा प्रार्थना करती रही। श्रीकृष्ण बलराम और साथियों के मुँह देखते हुये हस कर के बोले ।।**11**।।

हे सुन्दरी, अब तुम अपने घर चली जाओ। मैं एक बार तुम्हारे घर को आने वाला हूँ। पुरुषों को तुम्हारे जैसे लोगों के घर में ही तृप्ति मिलती है। हमें घर नहीं है और हमारा विवाह नही हुआ है। ऐसे प्रवासी लोगों के लिये आपका घर अच्छा आसरा बनेगा। अभी हम किसी काम पर आये हैं कार्य पूर्ति के बाद आयेंगे ।।**12**।।

यहाँ **अगृह** शब्द है। इसके अनेक अर्थ होते हैं - घर न होने वाले, प्रवासी लोग, विवाह न होने वाले, पत्नी के साथ न आने वाले ऐसे बहुत से अर्थ होते हैं। यहाँ बलराम के साथ होने और गोपालकों के साथ होने के कारण भगवान बहुत अर्थ वाले एक शब्द का प्रयोग किये हैं। यहाँ सारे अर्थ प्रस्तुत हैं।

इस प्रकार अपने मधुर वाक्यों से कुब्जा की विदाई करते हुये भगवान श्रीकृष्ण आगे चले। रास्ते के दोनो बाजू रहने वाले दुकानदार अपने दुकान से उपहार, ताम्बूल, फूल-माला, गन्ध इत्यदि से श्रीराम कृष्ण का सत्कार किये ।। 13 ।।

बाद में शिवधनुष को जहाँ रक्खा है उस स्थान की ओर लोगों से पूछ कर श्रीकृष्ण वहाँ चले। इन्द्रधनुष के समान रहने वाले सुन्दर और अद्भुत उस धनुष को गौर से देखे।।**14**।।

बहुत सैनिक उस धनुष की रक्षा के लिये नियुक्त थे। वहाँ उसकी पूजा होती थी। वह धनुष बहुत सम्पत भरित थी। रक्षकों के रोकने के बाद भी श्रीकृष्ण बलात् से उस धनुष को उठा लिये ।।**15**।।

सारे लोग देखते रहे। भगवान बिना आयास उस धनुष को बायें हाथ से उठा कर दाहिने हाथ से सिंजनी को बाँधने का प्रयास किये। क्षणार्ध में हाथी गन्ने के दंड को जैसे टुकड़ा करता है वैसे धनुष को भगवान दो टुकड़े कर दिये ।।**16**।।

धनुष को तोड़ते समय जो ध्वनि हुई उसकी प्रतिध्वनि आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष में भर गयी। उसको सुनकर कंस भय से काँपने लगा ।।**17**।।

आकाश में प्रकाशमान रहने वाला इन्द्रचाप के समान बड़ा वह शिवधनुष शिव से कंस को मिला था। इन्द्रादि देवता भी उसको उठाने में असमर्थ थे। कंस केवल उसकी पूजा करता था। बहुत यज्ञयागों से उसकी आराधना करता था। शिवलिंग के समान उसकी पूजा करता था। **तालत्रयम् महासारम** ताल विजयध्वजी टीका अनुसार एक सौ हाथ होता है। वल्लभाचार्य उसको तीन सौ हाथ बोले हैं। ऐसा तीन ताल रहने वाला धनुष को तोड़ने से भूकम्प होकर कंस का अन्तःपुर हिल गया। इसमें अतिशयोक्ति नही है। कंस उस शब्द से डर कर अपने सिंहासन से नीचे गिर गया। वह उस ध्वनि से काँप रहा था।

कंस के भय का वर्णन वादिराज जी ऐसे करते हैं। सूर्य अस्त होते ही सारे दसों दिशा जैसे अन्धेरे से भर जाती हैं वैसे कंस का मन भय से भर गया। वहाँ भय का दूत कंस के सामने आकर खड़ा हो गया। कंस उससे पूछता

है तुम कौन हो ? दूत उत्तर देता है :- मैं काल हूँ, यम का दूत हूँ, भय मेरा नाम है। श्रीकृष्ण तेरी मृत्यु है। कंस पूछता है मैं उसका नाम सुना ही नही। तब दूत बोलता है। वसुदेव देवकी का पुत्र, उसको तुम जानते हो। वही तुम्हारी मृत्यु है। कंस बोलता है। देवकी पुत्रों को मैं मार डाला हूँ। तुम मूर्ख हो। अब देवकी पुत्र कहाँ से आयेगा। दूत बोलता है, मूर्ख, तुमने अपने मृत्यु देवता को मारा नही, वह पूतना, शकट, तृणावर्त, केशी इत्यादि दुष्टों को उसी ने मारा है। वही तुम्हारी मृत्यु है।

कंस आगे बोलता है। मेरे पास चाणूर, मुष्टिक आदि मल्ल हैं। हजार हाथी के बल वाला कुवलयापीड है। मैं जगत प्रसिद्ध मल्ल हूँ। मुझको मृत्यु कैसे आयेगी।

दूत बोलता है :- भय तेरे मन में घुस गया है। भय से ही तुम मर जाने वाले हो। यदि जीना चाहते हो तो कृष्ण की शरण में आओ।

धनुष के रक्षक और उनके अनुचर सभी क्रोध से आयुध लेकर एक साथ होकर कृष्ण राम की घेरा बन्दी की। पकड़ो, मारो, इस शब्द से उनको पकड़ने का प्रयास किये ।। 18 ।।

दुष्ट विचार से दुष्ट कार्यों को करने आये उन दुष्ट लोगों को देखकर श्रीराम कृष्ण उस धनुष के टुकड़े से मार कर उन सबकी जान ले ली ।। 19 ।।

उनकी रक्षा हेतु कंस के भेजे हुए सैन्य का भी नाश किये। धनुषशाला के बाहर आकर नगर की सम्पत्ति और सौन्दर्य को देखते हुये संचार किये ।। 20 ।।

श्रीराम कृष्ण के इस अद्भुत पराक्रम, तेज, प्रौढ़िमान, रूप और सौन्दर्य को देखकर मथुरा नगरवासी उनको देवोत्तम मान लिये ।। 21 ।।

श्रीराम कृष्ण अपनी इच्छानुसार नगर में सूर्यास्त होते तक संचार किये । बाद में वे नगर के बाहर जहाँ अपनी गाड़ियाँ थीं वहाँ पर आ गये ।। 22 ।।

हाथ - मुह धोकर वे क्षीरान्न भोजन किये। आगे कंस क्या करता है यह पूरा मालूम होते हुये भी उस रात को आराम से सोये ।। 23 ।।

रात में दही-भात खाना निषिद्ध होने के कारण वे क्षीरान्न भोजन किये।

इधर कंस ने पूरी रात नींद न आने के कारण दीर्घ जागरण किया। कृष्ण राम खेलते-खेलते शिवधनुष को तोड़ दिये। रक्षक और उसकी सहायता के लिये आई हुयी सैन्य को मार भगाये। यह सुनकर वह डर गया था। उसके कारण उसको नींद नही आई। आई हुई थोड़ी सी नींद में अनेक दुःशकुन देखा ।।24-25।।

सूर्यादि ज्योति न रहते हुये भी उसको दो-दो दिखे। शीशे में उसका प्रतिबिम्ब दिखा किन्तु उसका सिर नही दिखा। उसकी छाया में रन्ध्र दिखे। कानों को बन्द करे तो मुख्य प्राण के जपध्वनि का आवाज नही सुना। वृक्ष सोने के जैसे दिखे। धूल के ऊपर चलने के बाद भी पद चिन्ह

नही दिखा ।। 26-27 ।।

आँख बन्द करे तो स्वप्न में शव का आलिंगन किया हुआ जैसा लगा। गधे के ऊपर बैठकर यात्रा कर रहा है ऐसा लगा। लाल फूल माला पहन कर तेल लगाकर दिगम्बर होकर दक्षिण की दिशा में चलने का स्वप्न देखा ।। 28 ।।

स्वप्न में और जागृति में ऐसे ही दृश्यों को देखता रहा। मरण भय के कारण पूरी रात उसको नींद नही आई ।। 29 ।।

श्रीकृष्ण ने जब धनुर्भंग किया तो उसकी आवाज सुनकर कंस के हृदय में भय भर गया। वह उसी के कारण पसीना पसीना हो गया। पूरी रात नींद नही। थोड़ी सी आँखें बन्द करे तो मरण सूचक दुःस्वप्न दिखते थे। घबरा कर उठ कर चले तो अनेक अरिष्ट चिह्न दिखते थे।

हे राजा सुनो - वह रात बीत जाने के बाद सूर्य उदय के अनन्तर स्नानादि करके कंस मल्लक्रीड़ा महा उत्सव को आरम्भ किया ।। 30 ।।

राजभट रंगमण्डप की पूजा किये। पणव, आनक, गोमुख, तूर्य, भेरी आवाज करने लगे। प्रेक्षक लोग आकर आसनों को फूल माला पताका और तोरणों से अलंकृत किये ।। 31 ।।

आसन में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नागरिक, देशवासी, राजा लोग यथा योग्य स्थान में आकर सुखासीन हो गये ।। 32 ।।

राजा कंस मंत्रियों के साथ माण्डलिक राजाओं के बीच में अपने सिंहासन पर राजासन में बैठ गया। उसका दिल भय से हिल रहा था ।। 33 ।।

तूर्य का घोष होते ही बड़े-बड़े मल्ल अपने गुरु के साथ रंगस्थल में उतर कर जाँघ ठोक कर कुश्ती का आह्वान दिये ।। 34 ।।

उनमें चाणूर, मुष्टिक, कूट, छल, कौशल नाम के मुख्य पहलवानों ने वाद्य घोषों से उत्साहित होकर रंगस्थल में फेरे लगाने लगे ।। 35 ।।

यहाँ चाणूर श्रीकृष्ण के सामने ही कंस के प्रीति के लिये हम युद्ध करें ऐसा कहता है। उसे श्रीकृष्ण के प्रेरणया श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थं कहना था। कंस के प्रीति के लिये बोलना उसके दैत्य स्वभाव को दिखाता है।

कंस के आमंत्रण के अनुसार आये हुये नन्दगोप आदि गोपालक अपने लाये हुये नजराना को कंस को अर्पण करते हुये अपने आसन पर बैठ गये ।। 36 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

आये थे। नींद करने वाले गड़बड़ी से आये थे, बच्चों को दूध पिलाने वाली माँ उन्हें छोड़कर, दौड़ते हुए आयी थीं।।26।।

कमलनयन लक्ष्मीरमण श्रीकृष्ण हाथी के समान अपने प्रौढ़ पद को रखते हुए आंख से हाव-भाव करते हुए देखने वाले को आनंद करते हुए मथुरा के मानवों को मुदित कर दिये।।27।।

हे राजा परीक्षित! मथुरा की नारियाँ बहुत दिन से श्रीकृष्ण की कथा सुन रही थीं। उनका मन श्रीकृष्ण से आकृष्ट हुआ था। वैसे अनंत को अब उनको अपनी आंखों से देखने का भाग्य बन गया है। वे तिरछी नजर से उनको देखते हुए श्रीकृष्ण के हसन्मुख से अमृतसिंचन पाती हुयी उररोमांचित होकर अपने को धन्य मानने लगीं। आंखों से उस आनंद मूर्ति को अपने हृदय में भरकर आलिंगन करते हुए विरह ताप से मुक्त हुयीं।।28।।

घर के छत के ऊपर से राम कृष्ण को देखने वाली ने महिलाएँ आनंद से मुकुलित हुयीं। वे राम कृष्ण के ऊपर फूल की वर्षा किए।।29।।

सारे जगहों में ब्राह्मण उनको दही, अक्षत, पानी से भरे हुए कलश और फूल माला से सत्कार किये। संतोष से उनका स्वागत किये।।30।।

उसी समय एक धोबी वहाँ कपड़े को रंग भी डालता था, एक हाथी के ऊपर बैठकर आ रहा था। वह कंस के लिए साफ किया हुआ कपड़ा लेकर चल रहा था। उन शुभ्र वस्त्रों को श्रीकृष्ण ने मांगा।।31।।

गर्ग संहिता में उस धोबी का नाम ध्वज कहा गया है।

हे भाई, सुनो - तुम हम दोनों को योग्य कपड़ा दे दो। हम उसके लिए योग्य हैं। तुम कपड़े दिए तो तुम्हारा कल्याण होगा। इसमें संशय नहीं है।।32।।

कृष्ण बलराम कंस के भांजे लगते हैं। मामा के कपड़े को भांजे को लेना अधिकार बनता है। **अर्हतः** इस शब्द से यह बोध होता है।

सारी संपदाओं से परिपूर्ण भगवान केवल कपड़े मांग रहे हैं। किन्तु वह धोबी उसको न समझते हुए कंस के सेवक होने के कारण अहंकार से क्रोधित होकर गाली देने लगा।।33।।

पहाड़ों में चलने वाले आप गंवार लोग हैं। आप कभी ऐसे कपड़े को पहने हैं क्या ? ये राजा महाराजा के लिए योग्य कपड़े हैं। आप लोग उद्धतता से उसको मांग रहे हैं ?।।34।।

हे मूर्ख, आपको जीने की आशा है क्या ? जल्दी यहाँ से चले जाओ। नहीं तो राजदूत अहंकार वाले तुमको बांधकर मारते हैं, तुम्हारे पास जो हैं उस सबको छीन लेते हैं।।35।।

इस प्रकार वह धोबी असंबद्ध बातें कर रहा है। वह पार्वती के वर बल से अवध्य माना जाता था। कंस का आप्त सेवक बनने से अहंकार से भरा था। श्रीराम कृष्ण कंस के विशेष आमत्रंण से गण्य नागरिक के रूप में मथुरा

आये हैं। स्वयं भगवान होकर भी रजक से कपड़ा मांग रहे हैं। किन्तु धोबी कपड़ा नहीं दिया, इतना ही नहीं उनको धमकी दे रहा है। इस अपमान को क्षत्रिय कभी नहीं सह सकता है। नगर के सारे स्त्री पुरुष इनके सत्कार किये हैं।

कंस के सारे परिवार को मारने का संकल्प किये भगवान उस धोबी के सिर को अपने हाथ से काटकर प्रथम बलि लेते हैं।

धोबी के मरने के बाद उसके साथ आने वाले उनके नौकर कपड़े को वहीं छोड़कर भाग गये।।37।।

राम कृष्ण अपने को जो चाहिये वह कपड़े लेकर अन्य कपड़ों को गोपालकों को दिये। गोपालक उनको रास्ते में बिछाकर श्रीकृष्ण का स्वागत किये।।38।।

भगवान के आते समय रास्ते पर सफेद कपड़ा बिछाना क्रम प्राप्त पद्धति हैं। कंस के दूत इसको नहीं किये। इसके बदले में गोपालक उनको यह सेवा किए।

बाद में एक नाई सामने आया। श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार वह उनके बाल को संवारा। गैरिक वस्तुओं से और गहने से राम कृष्ण का वेषालंकार किया। वे दोनों त्यौहार के दिन श्रृंगार किये हुए हाथी के बच्चे के समान वे दोनो शोभायमान हुए रहे।।39-40।।

उस नाई से प्रसन्न होकर भगवान श्रीकृष्ण यहाँ आरोग्य, ऐश्वर्य इत्यादि सुख देते हुए उसे सदाकाल अपने स्मरण सुख को देकर अंत में अपने सारूप्य नाम का मोक्ष दिये।।41।।

उसके बाद सुदामा नाम का फूल वाला उनके सामने आया। वह श्रीराम कृष्ण को दण्डवत् नमस्कार किया।।42।।

यह मालाकार मूलतः भगवान का द्वारपालक था। उसका नाम गुणक था। भागवत् में उसको सुदामा नाम से कहा गया है। मूल रूप में वह सुदामा रजक जन्म में उसका नाम गुणक इस प्रकार दोनों हो सकते हैं। यह बात हरिवंश की है। (2-27-19)

परिवार के साथ आये हुए श्रीकृष्ण को वह सुदामा आसन और पाद्य दिया। फूल माला ताम्बूल, गंध इत्यादि से सत्कार किया।।43।।

फूल वाला कहता है, हे प्रभु, आपके आगमन से मेरा जन्म सार्थक हुआ, कुल पवित्र हुआ। पितृ, देवता, ऋषिगण संतृप्त हो गये, प्रसन्न हो गये।।44।।

इस सारे प्रपंच के लिए आप स्वतंत्र कारण बने हैं। इस जगत के क्षेम और मंगल के लिए आप अवतार लेकर यहाँ आये हैं।।45।।

आप दोनों इस जगत के लिए मालिक हैं। सारे जीवियों में उनके मन में रहते हुए उनके योग्यतानुसार उनको प्रेरणा देते हैं। आप सेवा करने वाले को सुख देने का स्वभाव वाले हैं। आपके लिए पक्षपात दृष्टि नहीं है।।46।।

यहाँ समयोः **सर्वभूतेषु** यह शब्द है। भगवान को जो जिस रीति से उपासना करता है, भगवान उसी तरह से उसे फल देते हैं। यही भगवान का **समत्व** है। गीता में भगवान कहते हैं, **समोहं सर्वभूतेषु**।

धोबी कपड़ा नहीं दिया जिसके लिए उसको मारा, नाई बाल संवारा उसको वर दिया। इसको पक्षपात नहीं कह सकता। इस विश्व के मालिक पूर्णकाम भगवान को कौन क्या देता है ? भगवान उनके योग्यतानुसार कर्म कराते हुए उसके लिए योग्य फल देते हैं।

भगवान, मैं आपका दास हूँ। मुझको आप उपदेश दीजिये। कहिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ। आपकी सेवा करना आपका आज्ञा पालन करना हमें परमानुग्रह कारक है।।47।।

हे राजा, सुदामा इस प्रकार बोलते हुए श्रीराम कृष्ण की अपेक्षा को जानते हुए संतोष भरा हुआ मन से उत्तम सुगंध देने वाले फूलों की माला को समर्पित किया।।48।।

उन मालाओं से अलंकृत राम कृष्ण, उनके परिवार के सारे लोग संतुष्ट हो गये। अपने को नमस्कार किये हुए उस सुदामा को श्रीकृष्ण अनेक वर दिये।।49।।

वह भगवान श्रीकृष्ण में निश्चल भक्ति और उनके भक्तों में अविरत प्रीति, सारे जीवों में निरंतर दया का वर मांगा और उसको पा लिया।।50।।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्रीकृष्ण सुदामा को इस प्रकार उसके वंशज वाले सबको उनके जीवन काल में अव्याहत रीति से मिलने वाला बल कीर्ति देकर मोक्ष रूप फल को देकर वहाँ से बलराम के साथ आगे चले।।51।।

इस मालाकार के साथ केशालंकार नखालंकार करने वाले को भी भगवान अपना पार्षद बनाये। यह भागवत तात्पर्य निर्णय में लिखा है। श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य जी कहते हैं - जय विजय के समान ये दोनों भगवान के पार्षद थे। भगवान के साथ वे भी नाई और मालाकार बनकर अवतार लिये हैं। भगवान का शरीर अप्राकृत और चिदानंद रूप है। उनके सारे अवयव ज्ञानानंद रूप होते हैं। उनके शरीर में अनपेक्षणीय ऐसी कोई चीज नहीं रहती। भगवान लोकाचार के लिए केशालंकार नखालंकार करवाते हैं।

भगवान के कृष्णकेश श्रीकृष्ण होकर अवतार लेकर अनेक दैत्यों का वध किए है। भगवान के केवल एक केश को इतनी शक्ति है तो उनके केश समूह में कितनी शक्ति होगी। उनको कोई भी नाई काट सकता है क्या। भगवान के एक नाखून त्रिविक्रम अवतार में घनघोर ब्रह्माण्ड के खर्पर को काट लिया। वहीं से देवगंगा प्रवहित हुईं। उस समय भगवान के नाखून को कुछ नहीं हुआ। भगवान के बाल हों, नाखून हों, उनमें कितनी शक्ति है। इसके लिए उपनिषद कहती है, **नेह नानास्ति किंचन**।

भगवान को फूल माला देने से धन-कनक संपद और शारीरिक सामर्थ्य, अपार यश और दीर्घ आयुष्य मिलता है।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चालीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इसके बाद राज्यपथ में चलते हुये श्री कृष्ण ने अंग लेप के गन्ध को लेकर चलती हुयी एक सुन्दर युवती को देखा। वह कुबड़ी थी। वह कंस की सैरांध्रि थी। शृंगार रस प्रधान श्रीकृष्ण उससे पूछते हैं।।1।।

रुक्मिणीश विजय में कुब्जा के बारे में और आगे लिखा है। कुब्जा धनुष के समान तीन स्थान पर टेढ़ी थी। धनुष को बीच में हाथ से पकड़ सकते हैं वैसे कुब्जा की कटि बहुत छोटी थी। धनुष की सिंजनी को कान तक खींचना पड़ता है। कुब्जा का गुण सारे लोगों के कान तक पहुँच गया है। धनुष बाणों को सभी जगह छोड़ता है। वैसे कुब्जा अपनी आँखों से काम बाणों को सभी जगह फेकती है।

हे सुन्दर तरुणी, तुम कौन हो। इस गन्ध को किसके लिये ले जा रही हो। सच बोलो। इस सुगन्ध को हमें दे दो। इससे तुम्हे जल्दी ही कल्याण होगा ।।2।।

सैरांध्रि कहती है - देवोत्तम, मैं त्रिवक्रा नाम की कंस के अन्तःपुर की दासी हूँ। मैं कंस के लिये गन्ध लेप को तैयार करती हूँ। मैं जो गन्ध तैयार करती हूँ कंस उसको बहुत प्यार करता है। मैं इस गन्ध को आपको समर्पित करती हूँ। आपको छोड़कर और कौन इसके लिये योग्य हो सकता है ।।3।।

भगवान के रूप, सौन्दर्य, सुकुमारता, रसिकता, हंसी और तिरछी दृष्टि से कुब्जा का मन आकर्षित हो गया था। वह राम कृष्ण दोनो को अपने हाथ की सुगन्ध समर्पित किया ।। 4।।

तब श्रीराम-कृष्ण उस श्रीगन्ध को अपने शरीर में लेप किए। उनके शरीर के रंग के अलग चमकते रंग वाला श्रीगन्ध उनके रंग से मिलकर उनमें और अपूर्व शोभा आ गई ।।5।।

श्रीकृष्ण का रंग श्यामल वर्ण है। उससे पीत वर्ण का गन्ध लेपन करने से श्याम पीतल रंग से गन्ध और शोभायमान हुआ। वैसे ही श्रीबलराम अपने शुक्ल वर्ण के रंग में रक्त वर्ण के गन्ध को लगने से शुक्ल रक्त वर्ण का अपूर्ण क्रान्ति गन्ध को आ गया।

पूर्व जन्म में कुब्जा मिथिला नगर की एक वेश्या थी। वह अलंकार करके रास्ते पर परपुरुष को ढूढ़ते हुये खड़ी रहती थी। एक दिन उसके पास कोई नही आया। इससे निराश होकर अब पर पुरुष का सम्बन्ध नही करूंगी। परम पुरष को ही पति मानकर सेवा करूंगी। एक दिन एक बूढ़ा आदमी आया। वह उससे नाराज न होते हुये उसी को पति

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बयालीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते है - भगवान श्रीकृष्ण चाणूर की बात के अनुसार अपने अभीष्ट को पूर्ण करने के लिये चाणूर के पास चले। बलराम मुष्टिक के साथ कुश्ती करने के लिये उसके पास गये।। 1 ।।

दोनो स्पर्धी हाथ से बाहू पर और जांघों पर मारते हुये एक के पास एक आकर हाथ जोड़ते हुये वहाँ से दूर जाते हुये, फिर मिलते हुये, चारों ओर चक्कर लगाते हुये, हाथों से हाथ, पाँवों से पाँव को मारते हुये जीतने के छल से एक दूसरे को खीचतें हुये कुश्ती खेलने लगे।। 2।।

मुष्टि को मुष्टि से, जाँघ को जाँघ से, सिर को सिर से, छाती से छाती को मारे।।3।।

दोनों हाथों से ऊपर उठाकर आकाश में घूमाते हुये नीचे टपकाते हुये, ऊपर छलांग मारते हुये परस्पर युद्ध किये।।4।।

गिरे हुये को उठाते हुये, सामने आने वाले को गिराते हुये, न हिले ऐसे दबाकर रखते हुये, परस्पर जीतने की इच्छा से कुश्ती खेले।।5।।

बालक और बलिष्ठ के बीच में का यह युद्ध देखकर वहाँ की स्त्रियों ने अनुकम्पा से आपस में बोलने लगीं।।6।।

अरे ये क्या अधर्म है। राज्यसभा में ऐसा अधर्म नही होना चाहिये। राजा के सामने छोटे बालक और बड़े पहलवानों के बीच में यह युद्ध हो रहा है। राजा इसको कैसे अनुमोदन करता है।।7।।

सर्वांगो में वज्र के समान कठोर शरीर वाले बड़े पहाड़ के जैसे रहने वाले ये मल्ल कहाँ ? अभी मूछे न दिखने वाले अत्यन्त कोमल शरीर वाले ये बच्चे कहाँ ?।।8।।

यहाँ बैठे सारे लोगों को अधर्म का दोष आयेगा यह निश्चित है। जहाँ अधर्म होता है वहाँ नही रहना चाहिये।।9।।

सभासदों के दोषों को पहले से जानने वाले ज्ञानियों को ऐसी सभा में प्रवेश नही करना चाहिए। न जानते हुये प्रवेश किये है तो वहाँ चलते हुये अधर्म को देखकर चुप नही रहना चाहिये। उसी को धर्म मानकर विपरीत समर्थन नही देना चाहिये। ऐसे करने वाले बड़े पाप के भागी बनते हैं ।। 10 ।।

यह मनुस्मृति का वाक्य है। यहाँ स्त्रियाँ उसी को बोलती हैं।

रंगस्थल में मल्ल कुश्ती करना चाहिये। बल और विद्या का प्रदर्शन करना चाहिये। उनको मारना नही चाहिये। यह मारे तो मारने वाले को सद्गति नही मिलती। युद्ध में मारे तो वीर को स्वर्ग होता है। कुश्ती में समान बल वालों को कुश्ती करना चाहिये। इसका निर्णय करने के लिये प्राश्निक की नियुक्ति होनी चाहिये। यह सारे न होने वाली यह स्पर्धा अधर्म है। चाणूर और मुष्टिक, वारह और किशोर नाम के दानव है। हरिवंश कहता है :- ये दोनो मल्ल स्पर्धा में सामने वाले को वंचना से मारने वाले दुष्ट है। कंस इसी को चाहता है। इसके लिये यह स्पर्धा चलाया है।

स्त्री लोग कहती है शत्रु के सभी ओर फिरने वाले श्रीकृष्ण के मुख को देखो। पसीना आ गया है। वह कमल के फूल के ऊपर के पानी के समान मोती बनकर उनको शोभा दे रहा है।। 11 ।।

अरे यहाँ देखो बलराम के लाल लाल आँख। मुष्टिक के ऊपर के क्रोध से उसका मुख लाल-लाल हो गया है। कितना सुन्दर लगता है वह ।। 12 ।।

गोकुल की मिट्टी ही पवित्र है क्योंकि वहाँ यह पुराण पुरुष श्रीकृष्ण बलराम अपने देव शरीर को मानव रूप में छिपा कर सुन्दर वर्णमाला धारण करते हुये गोवर्धन पर्वत में गाय को चराते हुये वेणुगान करते संचार करते हैं ।। 13 ।।

गोपियों ने क्या तप किया है, वे प्रतिदिन सर्वेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के इस रूप को अपनी आँखों से पान करती हैं। उनके शरीर को देखो, लावण्य रस को मन्थन करते हुये निर्माण किया हुआ मूर्ति के समान है। यह आभूषण से अथवा सौन्दर्य साधनों से मिलने वाला सौन्दर्य नही है। वह स्वभाव सिद्ध सौन्दर्य है। प्रतिक्षण और सुन्दर लगता है। इसको देखने के लिये भी उसका अनुग्रह चाहिये। यह कीर्ति और ऐश्वर्य का मुख्य आश्रय है ।। 14 ।।

गाय का दूध दुहते हुये, धान को कूटते हुये, दही का मंथन करते हुये, गप्प-गोष्ठी के समय, झूला झूलते हुये, बच्चो को खिलाते हुये, नहाते हुये, स्नान करते हुये घर के अन्य कामों में व्यस्त होते हुये भी गोपियाँ श्रीकृष्ण में मन रखते हुये, आँखों से आनन्द वाष्प को बहाते हुये गद्गदित कण्ठ से उनकी लीला का गुणगान करती रहती हैं। श्रीकृष्ण में अपना मन रखते हुये कार्य करने वाली गोपिका स्त्रियाँ पुण्यशाली हैं ।। 15 ।।

श्रीकृष्ण प्रातः के समय गाय को लेकर गोकुल से बाहर जाते समय शाम को वापस आते समय गोपियाँ उनकी मुरली की नाद सुनते हुये घर से बाहर आकर रास्ते में खड़ी होकर दया दृष्टि को बिखेरने वाली उसकी मुख दर्शन करती हैं। वे ही बड़ी भाग्यशाली हैं ।। 16 ।।

इस प्रकार स्त्रियाँ आपस में बातें करती रहीं। अब योगेश्वर श्रीकृष्ण चाणूर को मारने का संकल्प किये ।। 17 ।।

कृष्ण चाणूर के साथ और बलराम मुष्टिक के साथ अनेक तरह से मल्ल युद्ध करते हुये उन दोनो को थका दिये ।। 18 ।।

वज्रायुध से भी कठोर श्रीकृष्ण के हाथ की मार से चाणूर जजरित हुआ। बार बार श्रीकृष्ण से मार खाकर उसको प्राण संकट होने लगा। वह क्रोध से अपने दोनो मुष्टिका को बांधकर गिद्ध के वेग से वासुदेव के छाती को मारा ।। 19-20 ।।

वह मार श्रीकृष्ण के लिये फूल माला के मार के समान हुआ। चाणूर के उस मार से श्रीकृष्ण विचलित नही हुये। श्रीकृष्ण उसके दोनो हाथों को पकड़ कर ठीक तरह से मर्दन किये। उसके दोनो पांवों को पकड़ कर आकाश में फिराते हुये जमीन के ऊपर टपका दिये। इससे नारियल के समान उसका सिर फूट कर वह मर गया। उनके सारे आभूषण चकानाचूर हो गए। वायु से गिरने वाले इन्द्रध्वज के समान वह मर कर जमीन पर गिर पड़ा ।। 21-22।।

भागवत में बाह्वोर्निगृह्य है। किन्तु महाभारत तात्पर्य निर्णय में और रुक्मिणीश से विजय में **पदोर्जगृह्य** कहा गया है। कंस की परलोक गमन यात्रा शुरु होने वाली है। उसके लिये चाणूर का वध प्रथम नारियल का फोड़ना है।

चाणूर और मुष्टिक युद्ध करते समय बलराम का आलिंगन करना, पाद पकड़ना, परिक्रम करना, सामने झुकना इत्यादि भक्त करने का सारे व्यापार करते रहे। तो भी भगवान उनके वश में नही आये। भक्ति के बिना जो कुछ करे उससे भगवान का प्रेम नही मिलेगा। हमारी सारी क्रियायें भक्ति से युक्त होनी चाहिये।

भगवान उन दुष्टों के विरुद्ध सिंह के समान आ पड़े। उसका पांव पकड़ कर आकाश में घुमाते हुये भूमि के ऊपर सिर के बल पटक दिये। राजा महाराजाओं का शुभ कार्य के पहले नरियल फोड़ना मंगलमय माना जाता है। कंस को मारने के कार्य के लिये चाणूर का सिर फोड़ना मंगलमय प्रारम्भ है। कंस श्रीकृष्ण के जन्म के पहले छः बच्चों को पांव पकड़कर भूमि पर पटक कर उन्हें मारा था। उसके प्रतिकार में श्रीकृष्ण चाणूर को पांव पकड़ कर भूमि पर पटक दिये।

मुष्टिक पहले बलराम को मारा। बलिष्ठ बलराम के अपने दोनो हाथों से मुष्टिक के सिर पर जोर से मारने से वह राक्षस तीन बार चक्कर लगाकर मुँह से रक्त बहते हुये गिर कर मर गया ।। 23-24 ।।

हे राजा, उस समय कूट नाम का मल्ल क्रोध से बलराम के ऊपर आक्रमण किया। बलराम ने अपने बांये हाथ से एक ही मार से उसको मार दिया ।। 25 ।।

उसी समय श्रीकृष्ण छल नाम के मल्ल को अपने पांव की मार से मार दिया। कोशल नाम के मल्ल के दो पांव पकड़ कर दोनों टुकड़ों में फाड़ दिया ।। 26 ।।

इस प्रकार चाणूर, मुष्टिक, कूट, छल और कोशल नाम के पाँच प्रधान मल्ल मारे गये। इसको देखकर बाकी के मल्ल वहाँ से भाग गये ।। 27 ।।

उसके बाद श्रीराम कृष्ण अपने साथी गोपालकों को रंगस्थल में खींचकर उनके साथ सुन्दर मल्ल युद्ध करते हुये अच्छी कुश्ती का प्रदर्शन किए। वाद्यों के निनाद के अनुसार, तालों के साथ पांव रखते हुये पांव के पैजनीया से आवाज करते हुये नृत्य किये ।। 28 ।।

कंस अतिरिक्त सारी प्रजाजन राम कृष्ण की इस लीला से बहुत आनन्द पाये। सभा में बैठे हुये ब्राह्मण, क्षत्रिय बहुत खूब बोलते हुये अपने सन्तोष को व्यक्त किये ।। 29 ।

प्रधान मल्ल मर गये, बाकी के बचे हुये भाग गये। इसको देखकर कंस वाद्य घोष को रुकवा दिया। और अपने आदेश को सुनाया ।। 30 ।।

हरिवंश में चाणूर और मुष्टिक के मरने के पहले ही कंस वाद्य घोष को रुकवा दिया ऐसा लिखा है। कंस के वाद्य घोष रुकने के बाद राम कृष्ण ने चाणूर मुष्टिक का वध किये। उस समय आकाश में देव वाद्य की आवाज हुई। देवता ऋषियों ने श्रीकृष्ण की जयकार किया। चाणूर के वध के लिये कृष्ण ने अपना बल दिखाया। उससे भूमि हिलने लगी। सभा के आसन गिरने लगे। कंस के सिर के ऊपर का किरीट गिर गया। चाणूर और मुष्टिक मर गये। भागवत में चाणूर मुष्टिक के मरने के बाद वाद्य घोष रुकने की बात आती है। दोनो में विरोध नही है। मल्ल रंगस्थल में आते समय अपने वाद्यों को बजाते हैं। चाणूर मुष्टिक हारने लगे तब कंस वाद्य घोष बन्द करा दिया। यह हरिवंश में उक्त है। बाद में कृष्ण बलराम चाणूर मुष्टिक को मार दिये। तब देवता लोगों का वाद्य बजने लगा। यह भागवत में उक्त है। **न्यवारयत स्वतूर्याणि** यहाँ स्व शब्द से यह अर्थ निकलता है।

कंस कहता है :- दुष्ट कार्य करने वाले वसुदेव के दोनों पुत्रों को नगर से बाहर हटा दें। गोपालकों को पकड़ कर उनके पास के पैसे लूट लें। दुर्बुद्धि वाले नन्द को कैद करे ।। 31 ।।

कुश्ती पंथ में सामने वाले को हराना रहता है। उनको मारना नही। पंज के सारे नियमो को उल्लंघन करने वाला कंस अब नियमों के बारे में बोल रहा है। चाणूर मुष्टिक को मारने से कोई अपराध नही होता।

दुष्ट बुद्धि वाले वसुदेव को, शत्रु पक्ष को सहाय करने वाले हमारे पिता उग्रसेन और उसके इस परिवार के सारे लोगों को मार डाले ।। 32 ।।

कंस रुद्र वर से अवध्य अपने बीस अक्षोंहिणी सैन्य को यह आज्ञा दे रहा है। इसके लिये कंस वाद्य घोष को बन्द किया था।

इस प्रकार कंस असम्बद्ध रीति से बोल रहा है। उसको सुनकर भगवान श्रीकृष्ण ऊपर कूदकर कंस के उन्नत आसन के ऊपर चढ़े ।। 33 ।।

यहाँ अन्य कथाओं में कंस वध के पहले देवेन्द्र से भेजे हुये रथ में बैठकर उसके भाई और उसके बीस अक्षोंहिणी मूल सैन्य को नाश करने की कथा आती है। भागवत में कंस वध के बाद में कहा जाता है। काल व्यत्यास करते हुये बोलना पुराण की एक शैली है।

कृष्ण की चढ़ाई को देखकर कंस जल्दी से उठ कर खड़ा हो गया। अपनी मृत्यु रूप कृष्ण से

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - इक्तालिसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक उवाच - सूर्य उदय होने के बाद शत्रु ताप करने वाले राम कृष्ण स्नानादि से निवृत्त होकर मल्ल युद्ध के नगाड़े की ध्वनि सुनकर रंग क्षेत्र में आ पहुँचे ।। 1 ।।

रंगस्थल के द्वार पर महावत की प्रेरणा के अनुसार कुवलयापीड नाम का हाथी खड़ा हुआ है। उसको भगवान श्रीकृष्ण देखे ।। 2 ।।

कटिबन्ध को कसते हुये घुंघराले बाल को बाँधते हुये श्रीकृष्ण मेघध्वनि के अनुसार अवाज करते हुये महावत को आज्ञा दी ।। 3 ।।

हे अम्बष्ट, (महावत का नाम) हमको रास्ता दे दो। तुम यहाँ से हट जाओ नहीं तो तुमको और तुम्हारे हाथी को यम के पास भेज देंगे ।। 4 ।।

श्रीकृष्ण की ललकार को सुनकर महावत कुपित हो गया। मृत्यु के समान दिखने वाले हाथी को अंकुश से मार कर श्रीकृष्ण के ऊपर छोड़ दिया ।। 5 ।।

मदभरित वह हाथी श्रीकृष्ण की ओर जोर से दौड़कर उनको अपने शूंड़ में पकड़ लिया। श्रीकृष्ण उसके बन्धन से छुटकारा पाकर दोनों पाँवो के बीच में घुसते हुये उसके शूंड़ को पकड़ लिये ।। 6 ।।

हाथी और क्रोध से श्वास से ही श्रीकृष्ण की जानकारी लेते हुये अपने शूंड़ से उनको एक बार पकड़ने का प्रयास किया। श्रीकृष्ण उसके चंगुल में न जाते हुये शूंड़ को जोर से खींचते हुये डटे रहे ।। 7 ।।

गरुड़ साँप को पूछ से पकड़ कर जैसे खींचता है वैसे ही उस बड़े हाथी को श्रीकृष्ण बीस धनुष की दूरी तक पीछे खींचते हुये चले। यह उनको छोटे बच्चे के खेल जैसा था ।। 8 ।।

एक धनुष का मान चार हाथ होता है। एक हाथ चौबीस अंगुलियों का होता है।

गाय के बच्चे की पूँछ पकड़ कर बचपन में श्रीकृष्ण जैसे खेलते थे वैसे ही इस प्रचण्ड हाथी का शूंड़ पकड़ कर श्रीकृष्ण खेल रहे हैं। वह श्रीकृष्ण को पकड़ने के लिये बाहरी तरफ मुड़े तो दाहिने को फिराते हुये, दाहिने ओर मुड़े तो बाँये तरफ फिराते हुये श्रीकृष्ण उसके साथ खेलते रहे ।। 9 ।।

बाद में श्रीकृष्ण हाथी को छोड़कर उसके माँथे पर जोर से एक बार मारकर वहाँ से दौड़ने लगे। हाथी पीछा करता रहा। उसको लगता था श्रीकृष्ण अभी मिले। लेकिन श्रीकृष्ण एक बार नजदीक और एक बार दूर होकर हाथी के हाथ में नही मिलते थे ।। 10 ।।

एक बार दौड़ते-दौड़ते श्रीकृष्ण अपनी लीला से जमीन पर गिरे किन्तु तुरन्त उठकर दौड़ गये। पड़ा हुआ श्रीकृष्ण को मरने के लिये हाथी अपने आगे के दोनो पांवो को रख कर घुटने के बल से श्रीकृष्ण को अपने दांतों से मारा। उतने में श्रीकृष्ण उठकर भागे इसके लिये हाथी के दांत जमीन में घुस गये। उसके मुख में मिट्टी लग गई ।। 11 ।।

श्रीकृष्ण अपने तंत्र से गिरा जैसा नाटक किये। जल्दी में उठकर भाग गये। हाथी श्रीकृष्ण को मारने के बदले में जमीन को जोर से मारा। इससे उसके दाँत जमीन में गड़ गये। मुह में मिट्टी लग गयी। वह हाथी पूर्व जन्म में रिष्ट नाम का राक्षस था। दैत्यों को भ्रम स्वभाव सिद्ध है। उसके फलस्वरूप मिथ्याज्ञानी के मुह में मिट्टी ही गिरती है।

हाथी का यह पराक्रम विफल होने से हाथी का क्रोध और बढ़ गया। महावत भी उसको अंकुश से मारा। हाथी रोष से श्रीकृष्ण के पीछे पड़ा ।। 12 ।।

भगवान मधूसूदन अपने पास दौड़ते आ रहे हाथी के सामने से आते हुये उसकी शूंड़ को पकड़ कर उसको जमीन पर गिरा दिया ।। 13 ।।

हाथी के कुम्भस्थल को पांव से मारते हुये जोर से पकड़ कर उसके एक दांत को मोड़ कर अपने हाथ में लेते हुये उसी से बिना कष्ट हाथी को मार दिये। उसी दांत से महावत अम्बष्ट को भी मार डाले ।। 14 ।।

श्री राम कृष्ण दोनों अपने हाथों में हाथी के दोनों दांतों को पकड़े हुये शोभायमान हुये। वे अपने कंधे पर दांतों को रख कर चले। उन दांतों से रक्त और मदजल टपक रहा था। उससे वे भीग गये। पसीने की बूंद से उनके मुखारविन्द शोभित रहे। हे राजा, मरे हुये कुवलयापीड़ नाम के हाथी के शरीर को छोड़कर दोनो दांतों को अपने कंधे पर रखते हुये दोनो भाई अत्यन्त शोभायमान रहे। वे दाँत ही उनके आयुध बने। अन्य गोपालकों के साथ वे रंगस्थल में प्रवेश किये ।। 15-16 ।।

वे दोनों पहाड़ के समान पहलवान को आकाश की विद्युत के समान रुद्र रूप दिखाकर रौद्र रस का निर्माण किये। सामान्य लोगों के लिये महापुरुष बनकर अद्भुत रस का दर्शन कराये। स्त्रियों के लिये साक्षात् मन्मथ होकर शृंगार रस को पिलाये। गाँव के गाय चराने वाले को अनेक वेष धारण करते हुये हास्य नट के समान हास्य रस को दिखाये। दुष्ट राजाओं के शासन करने वाले वीर रस की मूर्ति बन गये। माता-पिता को लाडला पुत्र बनकर प्रेम रस बहाये। कंस को विधाता द्वारा भेजा हुआ मृत्यु देव बनकर भयानक रस को दिखाये। नारदादि योगियों को परातत्व बनकर शान्त रस से नहाये। यादव को बालक बनकर दया रस बरसाये। ऐसे भगवान श्री कृष्ण

नव रसों को दिखाते हुये रंगस्थल में भाई बलराम के साथ शोभायमान हुये ।। 17 ।।

कुल रस ग्यारह होते हैं।

रौद्रो अद्भुताश्च श्रृंगारों हास्यं वीरो दया तथा

भयानकाश्च बीभत्सः शान्तः सप्रेम भक्ति कः

रौद्र, अद्भुत, श्रृंगार, हास्य, वीर, दया, भयानक, वीभत्स, शान्त, प्रेम और भक्ति ऐसे ग्यारह रसों में नौ रसों को श्रीकृष्ण दिखाये है।

हे राजा :- कुवलयापीड जैसे बलिष्ठ हाथी को मारने वाले श्रीराम कृष्ण को हम कैसे हरायें इस पर विचार करते हुये कंस बहुत घबरा गया ।। 18 ।।

श्रीराम कृष्ण दोनो आजानुबाहु सुन्दर रूप वाले, सुन्दर आभूषण और वस्त्र को पहन कर नट के समान वे साधारण कर अपने कान्ति से प्रेक्षकों का मन मुदित करते हुये रंगस्थल को शोभा लाये ।। 19 ।।

वे दोनो प्रेक्षक के आसनों में बैठे हैं। नगरवासी और देशवासी लोग उन श्रेष्ठ पुरुषों को देखकर आनन्द विभोर होकर आँखे फाड़ फाड़ कर देख रहे हैं। लगता है वे आँखों से उनके सौन्दर्य को पीना चाहते हैं। कितने पीने के बाद भी वे तृप्ति नही पाये ।। 20 ।।

सारी जनता राम कृष्ण के रूप को आँखों से पीते हुये जीभ से चखते हुये, नाक से सूंघतें हुये, हाथों से आलिंगन करना चाहते थे ।। 21 ।।

श्रीराम कृष्ण के सौन्दर्य, कान्ति, कण्ठमाधुर्य, प्रौढ़िमा से प्रेक्षकों को उनकी लीला स्मरण में आई। पीछे देखे हुये, सुनी हुई लीलाओं के बारे में आपस में कहने लगे ।। 22 ।।

ये दोनो साक्षात् श्रीहरि नारायण के अंश से वसुदेव के घर में अवतार लिये हुये है ।। 23 ।।

श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ से जन्म लिया। वसुदेव उनको नन्द गोकुल को ले चले। इतने दिन तक वे दोनो नन्द के घर में गुप्त रीति से बड़े हो गये ।। 24 ।।

पूतना, तृणावर्त, यमलार्जुन, धेनुकासुर, केशीदानव, शंखचूड़ इत्यादि दैत्यों को नाश किये ।। 25 ।।

गाय और गोपालको को दावानल से बचाये। कालिया नाग का दमन करते हुये इन्द्र के दर्प को नष्ट किये ।। 26 ।।

सात दिन तक एक ही हाथ से बड़े पहाड़ को उठा कर गोकुल और गायों को पानी, आकाश की बिजली और कोहरे से रक्षा की ।। 27 ।।

गोपियाँ सदाकाल हँसते हुये उसके मुख को देखकर अपने समस्त तापों से मुक्त हो गयीं ।। 28 ।।

सुप्रसिद्ध यदुवंश इनसे रक्षित होकर बहुत बड़ा कीर्तिशाली होने वाला है। ज्ञानी लोग इसके बारे में बोलते रहते हैं ।। 29 ।।

कान्तियुक्त कमलनयन श्रीकृष्ण के बड़े भाई यह बलराम हैं। इसने प्रलंबासुर, धेनुकासुर इत्यादि राक्षसों का वध किया है ।। 30 ।।

लोग इस प्रकार बोल रहे थे। बीच में तूर्य नाम के वाद्य से उच्च स्वर होने लगा। चाणूर नाम का बड़े मल्ल आकर श्रीकृष्ण राम को आह्वान करता है ।। 31 ।।

हे नन्द पुत्र कृष्ण, राम लोग कहते हैं आप दोनो बहुत पराक्रमी हैं, मल्लयुद्ध में कुशल हैं। इसको सुनकर तुमको देखने की इच्छा से राजा ने तुमको बुलाया है ।। 32 ।।

प्रजा लोग राजा को जो इष्ट होता है, उसी को करने से श्रेय भागी होते हैं। वैसे नही किये तो शिक्षार्ह होते हैं ।। 33 ।।

आप जैसे गाय चराने वाले लोग, गाय के बच्चों को पालने वाले लोग जंगल में कुश्ती खेलते हुये गाय को चराते है। सारे लोग उसको जानते हैं ।। 34 ।।

इसी कारण हम और आप मिलकर कुश्ती खेलेंगे। राजा सहित सारी प्रजा लोग इससे सन्तुष्ट होंगे। राजा प्रजा का मालिक होता है ।। 35 ।।

इसको सुनकर श्रीकृष्ण बोले :- हम भी कुश्ती में रुचि रखते हैं। और लोग सुने वैसे जोर से बोले ।। 36 ।।

भगवान बोलते हैं - शहरवासी आप और वनवासी हम सारे लोग राजा कंस की प्रजा हैं। उनको जो इष्ट लगता है उसी को हम करेंगे चलो उसी में हमारा भला है ।। 37 ।।

किन्तु चाणूर यह सुनो हम छोटे बच्चे हैं। हमारे समान बल वाले छोटे के साथ हम कुश्ती करेंगे। कुश्ती सामान्यतः समान बल वालों में होती है। वैसे हुआ तो सभा में रहने वाले प्रेक्षकों को पाप नही आता ।। 38 ।।

चाणूर कहता है :- अरे श्रीकृष्ण तुम छोटे नही, लड़का भी नही। तुम और बलराम बलिष्ठ हो, बड़े से बड़े हो। हजार हाथी के बल वाले कुवलयापीड को तुमने बिना कष्ट मार दिया ।। 39 ।।

इसी कारण तुम लोगों को बलिष्ठों के साथ लड़ना है। इसमें कुछ अन्याय नही है। तुम अपने पराक्रम को मुझको दिखाओ। बलराम मुष्टिक के साथ लड़े ।। 40 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में इक्तालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

युद्ध करने के लिये हाथ में खड्ग और ढाल को उठा लिया ।। 34 ।।

कंस हाथ में खड्ग ढाल पकड़ते हुये गिद्ध के समान दांये-बांये उसको फिराता रहा। अतुल पराक्रमी भगवान श्रीकृष्ण गरुड़ नाग को जैसे पकड़ता है वैसे कंस को पकड़ लिया।।35।।

कंस का किरीट गिर गया। श्रीकृष्ण उसकी चोटी को पकड़ कर सिंहासन से केश खींचते हुये रंगस्थल की भूमि पर गिरा दिया। स्वतंत्र रूपी सर्व समर्थ पद्मनाथ उसकी छाती पर दोनों पांवों से मारते हुये उसके छाती के ऊपर बैठ गये ।। 36 ।।

कंस गिर गया। भगवान दोनों पांवों से उसकी छाती पर मारे। पूर्व जन्म में जो भृगु मुनि था वह अपने एक पांव से भगवान की छाती को मारा था। भगवान इस समय दोनों पांवों से उसको मारे। भक्त एक हाथ से जो देता है भगवान उसको दो-दो हाथों से वापस करते हैं। भृगु के साथ रहने वाला राक्षस रूप भगवान के पाद के आघात से मर गया। यहाँ कंस भगवान से युद्ध नही किया। भगवान उसको शस्त्र से नही मारे। यदि युद्ध में मरा होता थोड़े समय के लिये ही क्यों न हो उसको वीररस स्वर्ग मिलता था। पांव के आघात से मरने के कारण वह राक्षस अंश सीधा अन्धः तमस को चला गया।

हे राजा सुनो :- तीनों लोक के आश्रय देने वाले स्वतंत्र रूपी भगवान कृष्ण कंस को खीच कर भूमि पर फेक कर उसके छाती को पांव से मारने के कारण कंस ने प्राण त्याग किया। ।। 37 ।।

कंस प्राण त्याग किया इसका अर्थ मुख्य प्राण उसको छोड़ दिया। कंस के शरीर में कालनेमि नामक दैत्य था। उसके साथ भृगु ऋषि का एक अंश भी था। काल नेमि को मुख्य प्राण ने अन्धःतम को आवश्यक साधन करवाते हुये भृगु ऋषि को मोक्ष के लिये जो साधन आवश्यक था उससे करवा दिये। कंस से बाहर आकर मुख्य प्राण भगवान से मिल गये।

हे राजा :- कंस के इस प्रकार मरने के बाद सिंह हाथी को जैसे घसीटता है वैसे कंस के शरीर को श्रीकृष्ण सबके सामने रंगमण्डप के मैदान में खीचते रहे ।। 38 ।।

कंस भय से पानी पीते समय, अन्न खाते समय, चलते-सोते, श्वांस लेते सदाकाल निरन्तर चक्रधारी, जगदीश्वर श्रीकृष्ण को याद करता रहा। भय से मुक्ति पाकर वह भगवान के शरीर में प्रवेश किया ।। 39 ।।

भगवान के सर्वोत्तमत्व को न जानने वाला अन्धंतम को जाता है। भगवान के सर्वोत्तमत्व को जानने वाला मोक्ष को जाता है। कंस के शरीर में रहने वाला भृगु ऋषि मोक्ष पाया। उसमें रहने वाला राक्षस ब्रह्मा जी की पूजा करके वर पाने के बाद भी भगवान से द्वेष करते हुये अन्धंतमस को गया। भृगु बैठते, उठते, चलते, फिरते, सोते, जागते, प्रतीक्षा करते भगवान के भजन करता रहा। दुर्लभ मोक्ष को पाया।

कंस के कंक, न्यग्रोध इत्यादि आठ भाईयों ने अपने भाई की हत्या का बदला चुकाने के लिये बहुत क्रोध से कृष्ण बलराम पर आ पड़े ।। 40 ।।

बलराम जोर से आक्रमण करने वाले उन शत्रुओं को, सिंह जैसे हिरण के बच्चों को काट डालता है वैसे उनको अपने दोनो हाथों से मारे। कंस के मूल बल को भी उनके साथ दोनो भाई मार डाले ।। 41 ।।

आकाश में देवदुंदुभि गूंज उठी। भगवान के विशेष सन्निधान वाले ब्रह्मा, रुद्रादि देवता सन्तुष्ट होकर पुष्प वृष्टि किये। श्रीकृष्ण की स्तुति किये। अप्सरायें सन्तोष से नृत्य की ।।42।।

कंस की धर्मपत्नी रंगस्थल में आकर अपने पति के मरण को देखकर छाती और सिर को मारते हुये रोती रही ।।43।।

वीर शैय्या में सोए हुये पति को देखकर गला फाड़कर रोने लगी। आँखों से आँसू बहने लगे ।।44।।

हे नाथ, हे प्रिय, हे धर्मज्ञ, हे करुणालु, अनाथवत्सल आप मर गये। हमको और हमारे बच्चों को अनाथ कर दिये ।।45।।

हे पुरुषश्रेष्ठ राजा, आपके बिना हम कैसे जियें। इस नगर में अब मंगल कार्य नही होगा।। 46।।

आपने निरपराधी जीवों को कष्ट दिये। बहुत जीवों का नाश किये। उस पाप से आपको यह गति आई। जीवों को बिना कारण द्रोह करने वाला कैसे सुख पाता है।।47।।

सारे जीवियों का सृष्टि कर्ता, पालनकर्ता और लयकर्ता यह श्रीकृष्ण भगवान ही हैं। उसको अलक्ष्य कर कौन जीवित रह सकता है।।48।।

श्री शुक देव कहते हैं :- जगत के पिता भगवान श्रीकृष्ण उन राजमहिषियों को सांत्वना देते हुये मृतकों के लिये विहित अन्त्यःसंस्कार करवाये।।49।।

भगवान श्रीरामचन्द्र भी रावण वध के बाद विभीषण से रावण के अपर कर्म को करवाये। पहले विभीषण कर्म करने के लिये सिद्ध नही था। किन्तु राम ने मरण के बाद द्वेष नही करना। तुम यदि कर्म नही करोगे तो मैं करता हूँ। इस प्रकार कहने के बाद विभीषण ने अन्त्येष्टि किया।

बाद में अपने माता-पिता को बन्धन से निवृत्त करते हुये राम कृष्ण सिर झुका कर पांव छू कर दण्डवत प्रमाण किये ।।50।।

देवकी वसुदेव अपने पुत्र राम कृष्ण द्वारा पांव छू कर नमस्कार करने के बाद भी उनको भगवान मानते हुये भय से आलिंगन न किये, दोनो हाथ जोड़ कर नमस्कार किये ।।51।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में बयालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तिरालीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - वसुदेव अपने को (श्रीकृष्ण को) भगवान मानते हुये हाथ जोड़ दिये हैं। इसको यहीं समाप्त करते हुये भगवान अपने बन्धक शक्ति से उनको मोहित कर दिये।।1।।

देवकी और वसुदेव श्रीकृष्ण के इन अमानुष कार्यों को देखकर उनको भगवान मान लिये। इससे वे उनको अपने पुत्र न समझते हुये उनसे दूर रहे। भगवान इसको सहन न करते हुये उनको अपनी माया से आविष्ट करते हुये उनके सामने उनके पुत्र रूप में खड़े हो गये। उनके मन में माता-पिता का स्नेह जागृत हुआ। उससे वे आगे बढ़कर उनको गले लगा लिये। इससे भगवान को देखने का आनन्द उनसे दूर हुआ। किन्तु पुत्र वात्सल्य से वे आनन्द विभोर हो गये।

श्रीकृष्ण बलराम नम्रता से माता-पिता के पांवो को नमस्कार कर रहे हैं। देवकी वसुदेव उनको हाथों से पकड़ कर अपने गले लगा लिये ।। 2 ।।

श्रीकृष्ण बोलते हैं :- माँ जी और पिता जी हम सदाकाल आपसे मिलना चाहते थे। किन्तु अपने बाल्य, पौगाण्ड, कैशोर आयु में आपके पास आ नही पाये ।। 3 ।।

बच्चे अपने छोटेपन में माता-पिता के साथ रहते हुये उनको पालन पोषण में वे (माता-पिता) सुख पाते है। हम भाग्यहीन हैं आपके पास रहने का एक भी अवसर नही मिला ।। 4 ।।

सम्पूर्ण पुरुषार्थ के लिये साधनीभूत इस शरीर को देने वाले माता-पिता के ऋण को सौ वर्ष तक उनकी सेवा करने के बाद भी चुकाया नही जा सकता है ।। 5 ।।

पुत्र समर्थ होकर भी अपनी माता-पिता की सेवा तन-मन-धन से नही करता है तो मरने के बाद यमदूत उसके शरीर के मांस को ही उसको खिलाते है ।। 6 ।।

माता, वृद्ध पिता, पतिव्रता पत्नी, छोटे पुत्र, गुरु, ब्राह्मण और शरणागत व्यक्ति इनको समर्थ होते हुये भी जो संरक्षण नही करता है तो वह जीते जी मर चुका है ।। 7 ।।

कंस से रोज-रोज कष्ट सहने वाले आपकी सेवा करने में हम असमर्थ थे। इतने दिन हम आपकी सेवा किए बिना व्यर्थ समय गवाये ।। 8 ।।

माता जी, और पिता जी हम छोटे थे, पराधीन थे इसके कारण आप कष्ट में रहते हुये भी आपके कष्टों को हम दूर नही कर सके। आप दुःखित होते हुये आपकी सेवा नही कर पाये। इसके

लिये आप हमको क्षमा करिये ।। 9 ।।

श्रीकृष्ण अपने को छोटा और सामान्य जीव के रूप में माता-पिता के सामने प्रेषित करते हैं। वे सर्व गुण पूर्ण हैं, आनन्दमय हैं, सर्वेश हैं। उनमें अल्पज्ञत्व, अल्पशक्त्वि इत्यादि दोष कहाँ आते हैं। यह वामन पुराण का वाक्य है।

अपनी इच्छा से मनुष्य रूप धारण किये हुये सर्वांतर्यामी श्रीकृष्ण की इन बातों से वसुदेव देवकी मोह से अपना पुत्र मानकर दोनो को गोद में ले लिये। आनन्द से, आनन्द वाष्प गिरने लगे। उनके गले अवरुद्ध हो गए। वे कुछ भी बोल नही सके। चुप बैठ गये ।। 10-11 ।।

भगवान श्रीकृष्ण अपने माता-पिता को इस प्रकार समाधन करते हुये बाबा उग्रसेन को पुनः यादवों का राजा बनाये ।। 12 ।।

श्रीकृष्ण उग्रसेन को जेल से मुक्त किये। उनसे कहे हे राजा, आप प्रजाओं को सम्भालते हुये ठीक तरह से राज्य चलायें। हमको समय-समय में योग्य आज्ञा देते रहें। ययाति राजा के शाप से हम यादव सिंहासन पर नहीं बैठ सकते। मैं सेवक होकर आपकी सेवा करता हूँ। देवता लोग भी आपको नमन करते हुये नजराना देते हैं। और राजाओं के बारे में क्या कहे ।। 13-14 ।।

सारे जगत के सम्राट को उस मथुरा नगरी का राजा बनने से क्या है। इसी कारण उग्रसेन को मथुरा का राजा बनाये। भगवान जो कार्य करते हैं वह सारे अन्य लोगों के हित के लिये होता है। उनको किसी कार्य में अपनापन स्वार्थ नही है।

श्रीकृष्ण की आज्ञा को मानते हुये उग्रसेन सिंहासन पर बैठ गया। उसके जगतकर्ता भगवान श्रीकृष्ण कंस के भय से दस दिशाओं में भाग गया हुआ यदु, वृष्णि, अन्धक, मधु, दाशार्ह, कुकर इत्यादि अपने ज्ञाति बान्धवों को, कुल सम्बन्धियों को वापस बुलाये। परदेशवास से दुःखित हुये उनका सत्कार करते हुये उनको धन-धान्य सम्पदाओं को देकर उनको घर में ठीक तरह से बसाये।। 15-16 ।।

श्रीकृष्ण अपने माता-पिता को जेल के बन्धन से मुक्त किये। वे भगवान के रूप में श्रीकृष्ण को न देखे केवल अपने पुत्र माने इस दृष्टि से उनको अपनी माया प्यार और ममता के बन्धन में बाँध दिये। माँ के सामने श्रीकृष्ण कहते हैं मुझे केवल आपका पुत्र माना गया है। मैंने आपकी सेवा नही किया। मैं आपका पुत्र कहने के योग्य नही हूँ। तब वसुदेव कहते हैं।तुम हमारे ऊपर के प्यार से यदुवंश में हमारे पेट से जन्म लेकर अवतार लिये हो। यही हमारा बड़ा भाग्य है। दुष्ट कंस को और दैत्यों को मार कर हमको सुख दिये हो। इससे बढ़ कर पुत्र को और क्या सेवा करना है।

देवकी श्रीकृष्ण को आलिंगन करते हुये कमल के समान वाले हाथों को फूल माला के समान उसके गले में डालते हुये आँखों के अश्रु जल से अभिषेक करते हुये, स्तन में निकल आये दूध से नैवैद्य करते हुये प्यार से खुले हुये आंखों से देखते हुये आरती करते हुये मोक्ष योग्य बनी।

उस दिन से सारे यादव श्रीकृष्ण बलराम के भुज पराक्रम की छत्र छाया में सुरक्षित होकर सारे अभीष्ट को पाते हुये उनके अनुग्रह से सारे दुख को दूर किये हुये मुक्त के समान मथुरा में रहने लगे ।। 17 ।।

सदा सन्तोष भरित कान्तियुक्त, दयापूरित, हसन्मुख दृष्टि वाले भगवान श्रीकृष्ण के मुख कमल को देखकर आनन्द भोग में रहे ।। 18 ।।

मुकुन्द के मुख कमल के मधुर रस को आँखों से पुनः पुनः पीकर वृद्ध लोग भी तरुण के समान ओज तेज से युक्त होकर चलने लगे ।। 19 ।।

हे राजा :- एक बार भगवान श्रीकृष्ण बलराम के साथ नन्द गोप के पास आकर उनका अभिवादन करते हुये बोले ।। 20 ।।

हे पिता जी, आप बहुत प्यार से हमारा पालन-पोषण किए हैं।हमारे माता-पिता से भी बढ़कर हमको प्यार से पाले हैं ।। 21 ।।

आप हमारे लालन-पालन को अपने सही माता-पिता से बढ़कर किये है। आप ही हमारे निजी माता-पिता बने है ।। 22 ।।

पिता जी, अब आप गोकुल को वापस चलिये। हम यहाँ सुख से रहते हैं। आप वहाँ सुख से रहें। जब जब आपकी याद आती है तब हम हम आपके पास आ जायेंगे। अथवा जब आपको और आपके लोगों को हमारे विरह का दुख होता है तब निश्चित रूप से आपके दर्शन के लिये अवश्य आयेंगे ।। 23 ।।

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण नन्द गोप को समाधान करते हुये वस्त्राभरण, बर्तन और अन्य आवश्यक साधनों को देते हुये उनके साथ गोपालकों को भी सत्कार किये ।। 24 ।।

श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर नन्द गोप प्रेम से भाव-विभोर होकर श्रीराम कृष्ण को आलिंगन करते हुये आँखों में आंसू भरकर गोपालकों के साथ गोकुल को चले गये ।। 25 ।।

राजा, इसके बाद वसुदेव ने पुरोहित गर्गाचार्य को बुलाकर ब्राह्मणों से सविधि राम कृष्ण का उपनयन करवाया ।। 26 ।।

श्रीकृष्ण के उपनयन के लिये वशिष्ठ, अत्रि, च्यवन, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह इत्यादि ऋषिगण आये थे। श्रीकृष्ण का उपनयन देखने से उपनयन का मूल कारण बनने वाला जन्म को छोड़कर मुक्ति पा सकते हैं। इस विचार से सारे लोग आये थे।

नामकरण किये गर्ग मुनि श्रीकृष्ण को गायत्री मंत्र का उपदेश दिये। इस उपदेश से मुझको सद्बुद्धि दो। इस प्रकार श्रीकृष्ण से प्रार्थना किये।

गायों को रेशम का वस्त्र पहनाते हुये फूल माला को चढ़ा कर सोने के हार को पहना कर अलंकृत गायोंको बच्चे के साथ ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूप में दिया ।। 27 ।।

श्रीकृष्ण राम के जन्मदिन के दिन वसुदेव ने गोदान किया। उसके साथ कंस ने अन्याय से ब्राह्मणों का जो वित्त छीना था उसको वापस दे दिया ।। 28 ।।

श्रीराम कृष्ण उपनीत बनकर विजयत्व को पाये। यदुवंश के कुल पुरोहित गर्गाचार्य उनको गायत्री और ब्रह्मचर्य की दीक्षा दिये। अग्नि सेवा का व्रत भी सिखा दिये ।। 29 ।।

उपनयन के बाद नूतन वटु गुरुकुल को जाने के पहले उसे तीन दिन तक गायत्री मन्त्र का अध्ययन कराना

चाहिये। यह गायत्री ब्रह्मचर्य व्रत होता है। गायत्र, ब्राह्म, प्राजपत्य, बृहद इस प्रकार चार तरह के ब्रह्मचर्य होते हैं। गायत्र ब्रह्मचर्य इसमें एक है।

श्रीकृष्ण प्रतिदिन गायत्री जप अग्नि कार्य करते थे। श्रीकृष्ण को इस बालरूप में देखकर लक्ष्मी लज्जित हो गयीं। सूर्य को व्यथा हो गई। **हृद्रोगं मम सूर्या** इस मंत्र से प्रार्थना करते थे। इससे बड़े लोग से अपनी प्रार्थना करने से सूर्य को दुख होता था। वैसे ही **मयिमेधां, मयि प्रजां, मय्यग्निः तेजो दधतु** इस मंत्र को बोलने से अग्नि को व्यथा होती थी। लोक शिक्षण, लोक विडम्बना के लिये भगवान ये सारे नित्य कार्य बिना चूक करते थे।

राम कृष्ण सर्वज्ञ हैं, जगदीश्वर हैं, सकल विद्या को जानते हैं, निर्मल ज्ञान वाले है। इतने होते हुये भी वे मनुष्य के समान आचारण करते हुये अपने ज्ञान को छिपा कर गुरुकुल वास किये ।। 30 ।।

वे गुरुकुल वास के लिये उज्जयिनी पुरवासी कश्यप गोत्र के सांदीपनि नाम के मुनि के पास आये ।। 31 ।।

विधिपूर्वक गुरूपसत्ति करते हुये इन्द्रिय निग्रह के साथ भक्ति युक्त होकर गुरु को भगवान के समान आदर से देखते हुये गुरु के पास शिष्य कैसे बर्ताव करें। इस एक आदर्श को लोक को दिखाते हुए गुरु के पास रहने लगे ।। 32 ।।

शुद्ध भाव भक्ति से मिली हुयी उनकी सेवा से सन्तुष्ट हुए ब्राह्मण श्रेष्ठ सांदीपनि उनको चारों वेद उनके षडंग, सकल उपनिषद के साथ अस्त्र-शस्त्र विद्या युक्त धनुर्वेद को, न्याय शस्त्र, मीमांसा शास्त्रों को सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय नाम के छः तरह की राजनीति का उपदेश दिये ।। 33-34 ।।

हे राजा :- सारे शास्त्रों के आदि प्रवर्तक देवोत्तम श्रीराम कृष्ण अपने गुरु से एक बार मात्र कहे हुये विद्याओं को पूर्ण रूप से ग्रहण किये ।। 35 ।।

श्रीकृष्ण बलराम हाथ में समिधा लेकर गुरु के पास आकर उसको दे दिये। इस समिधा को पाकर इस संसार नाम के अरण्य को ज्ञान नाम की अग्नि से जलाये। यह अर्थ होता था। विद्या सीखने के निमित्त से गुरु को मोक्ष देना उनका उद्देश्य था।

वे अपने गुरु के पास चौसठ दिन रह कर चौसठ विद्याओं को करगत किये। हे राजा इस प्रकार सारी विद्या और अस्त्रों की जानकारी करने वाले राम कृष्ण अपने गुरु को क्या गुरु दक्षिणा दे इसके बारे में प्रार्थना की ।। 36 ।।

हे राजा :- सांदीपनि मुनि राम कृष्ण की अद्भुत महिमा और अतिमानुष शक्ति को जानकर पत्नी के साथ विचार विमर्श करने के बाद प्रभास क्षेत्र में महासमुद्र में डूब कर मरे हुए अपने पुत्र को वापस लाने के लिये कहे ।। 37 ।।

राम कृष्ण उसको स्वीकार करते हुये महारथी वे दोनो रथ के ऊपर चढ़कर प्रभास को चले गये। वह समुद्र के तट पर बैठ गये। समुद्रराज उनको नजराना लाकर समर्पित किया ।। 38 ।।

तब भगवान बोले :- हमारे गुरु पुत्र को तुम लेकर गये हो। उसको वापस लेकर आओ ।। 39 ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौवालिसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - उद्धव यादव में श्रेष्ठ था। वह वृहस्पति का अवतार था। वह श्रीकृष्ण का स्नेही, मंत्री और शिष्य भी था। वह महाबुद्धिशाली था ।। 1 ।।

एकान्त भक्त अत्यन्त प्रिय उद्धव को शरणागत दुःखित लोगों का दुःख दूर करने वाले भगवान श्रीकृष्ण हाथ पकड़कर कहते हैं।।2।।

श्रीकृष्ण कहते हैं :- हे मित्र, तुम गोकुल को जाओ। वहाँ जाकर हमारे माता-पिता और गोपियों को सुख का सन्देश दो। मेरे सन्देश की बातों को बोलकर मेरे वियोग दुःख को उनसे दूर करो।।3।।

गोपिकाएँ मुझमें ही मन रखी हैं। वे मुझको अपने पाँचों प्राण समझती हैं। मेरे लिये अपने साधन श्रृंगार और लज्जा को भी छोड़कर मेरे पास आने वाली हैं। मुझको इष्टदायक स्वामी और श्रेष्ठ मित्र मानकर मुक्त मन से मेरे पास आयी थीं।।4।।

जो लोग मेरे लिये इस लोक और परलोक के कर्म को करते हुये मुझको ही उनको समर्पण करते हैं मैं उनका पोषण करता हूँ। उन स्त्रियों को मैं सबसे प्रियकर हूँ। अब मैं दैहिक रूप से उनसे दूर रहते हुये भी वे मेरे मन में हैं।।5।।

उद्धव, वे सदाकाल मेरा स्मरण करती रहती हैं। विरह से उत्कण्ठित होकर विह्वलता से स्वयं को भूल जाती हैं। बहुत कष्ट से जीवनयापन कर रही हैं।।6।।

मुझमें तन्मय रहने वाली उन गोपियों के पास मैं वापस आने वाला हूँ, इस सन्देश को बोलते हुये उनको समाधान करो ।।7।।

हे राजा, श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर भाग्यशाली उद्धव आदर से अपने प्रभु के सन्देश को सिर से ढ़ोते हुये रथ के ऊपर चढ़ते हुये सूर्यास्त के समय नन्दकुल में प्रवेश किए।।8।।

गोकुल को वापस आती हुयी गायों के पांव से उठी हुयी धूल से उद्धव का रथ ढ़क गया। गायों का संग चाहने वाले साड़ आपस में स्पर्धा करते थे। गाय और साड़ की ध्वनि सारे गोकुल में

निनादित होती थी।।9।।

गाय थन के भार से मन्द पद रखती हुयी आती थीं। किन्तु अपने बच्चों को देखकर उनको दूध पिलाने के लिये दौड़ रही थीं। इधर-उधर भागने वाले उथल-पुथल करने वाले गाय के बच्चों से गोकुल भर गया था ।। 10 ।।

गायों को दुहाने वाली आवाज सारी ओर ध्वनित होती थी। गोपालकों का वेणुगान गूँज रहा था। सुचारू रूप से अंलकृत गोपिकाएँ श्रीराम कृष्ण के मंगलकारी लीलाओं का गुणगान कर रही थीं। गोपालक अग्नि, सूर्य, अतिथि, गाय, विप्र, पितृ और देवताओं की अर्चना कर रहे थे। गोप-गोपियों से भरा हुआ गोकुल इन्द्रलोक जैसे शोभायमान था ।। 11-12 ।।

गोपालक गाय चराने वाले अनागरिक गँवार लोग हैं। ऐसे समझना गलत है। देव-देवता गोपालक होकर अवतार लिये थे। वे वैश्य थे, वेदाधिकारी थे, शास्त्राध्ययन करते हुये अग्नि, सूर्यादि की उपासना करने वाले थे।

गोपालक धूप-दीप और माला से अग्नि, सूर्यादि की आराधना कर रहे थे। उससे उनका घर शोभायमान हो गया था। पक्षी और भँवरे आवाज करते हुये फूल-फल भरित वन में गुंज रहे थे। हंस, कारण्डो से और कमल पत्रों से भरा हुआ सरोवर वन इत्यादि को देखते हुये गोकुल को श्रीकृष्ण के प्रिय सेवक उद्धव आ गए। उनको देखकर सन्तुष्ट हुए गोकुलवासी आनन्द से उनका आलिंगन किए। श्रीकृष्ण के मित्र उसको कृष्ण ही समझ लिए। उसको परमान्न से भोजन कराते हुये आसन पर बिठा कर कुशल प्रश्न किए।। 13-14-15-16 ।।

नन्द कहते हैं - हे भाग्यशाली उद्धव, हमारे मित्र वसुदेव जेल से मुक्त हो गए हैं न। अपने पत्नी-पुत्र और बन्धु बान्धव के साथ चैन से रह रहे हैं न।।17।।

पापी कंस अपने पाप के फल रूप से, उनके पाप के कारण नष्ट हो गया यह हमारा भाग्य है। वह सज्जन और धार्मिक यादवों को सदाकाल के लिये द्वेष करता था ।। 18 ।।

हमारे श्रीकृष्ण हमको, अपनी माताओं को, बन्धु मित्रों को, गोपालकों को और उन्हीं को रक्षक रूप में विश्वास रखता हुआ गोकुल और गायों को वृन्दावन और गोवर्धनगिरि को याद करते हैं न ।।19।।

गोविन्द हमको और हमारे बन्धुओं को देखने के लिये कभी आ सकते हैं क्या। उसकी सुन्दर नाक, आकर्षक हंसी और तिरछी नजर युक्त उसके मुख को हम पुनः देखना चाहते हैं।।20।।

महात्मा कृष्ण ने हमको दावानल से, बरसते हुये पानी से, वृषभासुर, कालिया नाग और अनेक मृत्युदूतों से हमारी रक्षा की है ।। 21 ।।

उद्धव, हम सदाकाल श्रीकृष्ण के पराक्रम को उसके हास्य भरी बातों को याद करते रहते हैं। उनके यहाँ से जाने से हमारे सारे काम-काज रूक गए हैं।।22।।

वह यमुना का तट, वह गोर्वधन पहाड़, वह वृन्दावन का मैदान, खेलना व कुश्ती करने वाली जमीन ये सारे मुकुन्द मुरारी के सुन्दर पांवों के चिन्हों से सुशोभित हैं। उनको देखते ही हमारा मन उन्हीं में तन्मय हो जाता है ।।23।।

देवोत्तम श्रीकृष्ण यहाँ महान देव कार्य के लिये अवतार लेकर आये हैं यह बात हमें मालूम है। गर्गाचार्य इसको बहुत पहले कह चुके हैं।।24।।

दस हजार हाथी के बल वाले कंस, चाणूर, मुष्टिक और कुवलयापीड आदि को सिंह द्वारा अन्य जीवियों को मारने के समान विनायास से राम कृष्ण मार दिये ।। 25 ।।

तीन सौ हाथ लम्बे वाले बहुत बड़े और बलशाली शिव धनुष को श्रीकृष्ण ने हाथी द्वारा गन्ने को तोड़ने के जैसे तोड़ दिया। वही श्रीकृष्ण एक ही हाथ से गोवर्धन पर्वत को सात दिनों तक उठा कर खड़े थे।।26।।

प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, तृणावर्त, बक इत्यादि दैत्य दानव को वे दोनों जीत लिये। सारे राक्षसों को वे लीला से मार दिये।।27।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - श्रीकृष्ण में अनुरक्त हृदय से नन्द गोप इस प्रकार श्रीकृष्ण को याद करते हुये भाव विभोर होकर चुप हो गए। आगे बोल नही सके।।28।।

यशोदा दोनो के पीछे बैठकर अपने पुत्र की लीलाओं को नन्द गोप द्वारा एक एक करके बोलते वक्त उनको सुनते-सुनते आँखों से आंसू बहा रही थीं। उसके पुत्र वात्सल्य से उसकी छाती में दूध भर गया।।29।।

इस प्रकार नन्द यशोदा को भगवान में रहने वाले प्रागढ़ प्यार को देखकर उद्धव आनन्द विभोर होकर बोलने लगे।।30।।

उद्धव बोलते हैं - हे मान्य, नन्दगोप शरीर धारण किये हुये लोगों में आप ही धन्य हैं। आप लोकगुरु नारायण में अनन्य प्यार करते हैं।।31।।

ये राम कृष्ण इस जगत के बीज रूप में रहने वाली प्रकृति को प्रेरणा देने वाले हैं। मूल प्रकृति को स्वतंत्र प्रेरक हो कर श्रीकृष्ण उससे निर्माण हुए अहंकार तत्व के अभिमानी प्रेरक शेषावतार बलराम ये दोनो कर्तृ हैं । ये दोनो इच्छा-पूर्वक सृष्टि करते हैं। श्रीकृष्ण जीवियों में स्वतंत्र होकर रहते हुये नियंत्रण करते हैं। जीवाभिमानी, मनोभिमानी, शेष उनके अधीन होकर जीवियों का नियंत्रण करते हैं।

शरीर से प्राण बाहर जाते समय ज्ञानी अपने शुद्ध मन को एक क्षण के लिये श्रीकृष्ण में रखे तो सारे बन्धन को तोड़ कर वह परमगति मोक्ष को पाता है। परमब्रह्म नारायण का दास होकर

सूर्य के समान प्रकाशित होता है ।। 33 ।।

ऐसे मोक्ष देने वाले सबके अर्न्तयामी भगवान भूभार हरण के लिये मनुष्य रूप से व्यक्त होकर आये हैं। ऐसे महात्मा नारायण में आप भक्ति कर रहे हैं, इससे बढ़ियाँ काम आपको क्या करना है ।।34।।

यदुपति भगवान श्रीकृष्ण थोड़े समय में गोकुल को आने वाले है। माता पिता आपको सन्तोष करने वाले हैं।।35।।

सारे यादवों के लिये शत्रु बने हुए कंस को रंगस्थल में मारने के बाद आप लोगों को देखने के लिये आपके पास आऊंगा। श्रीकृष्ण इन बातों को आपके सामने पहले ही कहे थे। उनको सत्य करने के लिये वे जल्दी आ रहे हैं।।36।।

हे महाभाग्यशाली, आप दुःखित न हो जायें। आप अपने हृदय में सदा के लिये भगवान को देख सकते हैं। वह लकड़ी में रहने वाली आग के समान सारे जीवियों में रहते हैं।।37।।

वे अभिमान रहित हैं। उनके लिये कोई अतिप्रिय नही है, अप्रिय भी नही है। योग्यता के अनुसार वे सबको समानता से देखते हैं। उनसे बड़ा कोई भी नही है। वे किसी के समान नही हैं। अधम कभी नही हो सकते ।।38।।

शुल्क श्रोणित के मिश्रण से होने वाला पार्थिव शरीर उनका नही है। इसके लिये उनको न माता है, न पिता। वह स्वरमरण हैं इसके लिये उनको न पत्नी है, न पुत्र। इसके लिये उनको न कोई अपना है और न कोई पराया है। उनको न जनन है, न मरण, न देह है, न कर्म है ।।39।।

वसुदेव देवकी भी आपके समान वे नाम मात्र के माता पिता हैं। इसी के कारण वे आपसे श्रेष्ठ या कनिष्ठ नही हैं।

इस लोक में सात्विक देव योनि में, तामस तिर्यग् योनि में, मिश्र जीव में मनुष्य होकर जन्म वे लेते हैं वह केवल लीला के लिये है। वे सज्जनों की रक्षा के लिये ये अवतार लेते है।। 40।।

भगवान का अन्यान्य योनि में अवतार लेने का अर्थ अपने चिन्मय रूप को उस काल में केवल व्यक्त करना है। अन्यों की तरह जन्म लेने जैसा नहीं।

भगवान बिना कष्ट सारे कार्य करते हैं। जनन रहित सर्वोत्तम श्रीहरि त्रिगुण से बद्ध नही हैं। फिर भी वे सत्व रज तम नाम के इन तीन गुणों को सृष्टि कार्य में उपयोग में लाते हैं। खेल खेलते अपने अधीन इन तीन गुणों से सृष्टि स्थिति लय तीनों को करते रहते हैं।।41।।

भगवान श्रीकृष्ण केवल आप दो के लिये ही पुत्र नही हैं। वे सारे लोगों के पुत्र हैं। जो भक्ति से भगवान को याद करते हैं, भगवान उन्ही के मन में व्यक्त होते हैं। वे ही सारे जीवों की आत्मा हैं। माता-पिता के रूप में रहते हुये सभी के सुख देने वाले वे ही प्रभु है।।42।।

पुन्नाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः पुन्नाम नरक से उद्धार करने वाला पुत्र होता है। हमें जन्म दिया हुआ पुत्र हमकों नरक से उद्धार करने में असमर्थ है। भगवान नारायण ही सबकों उद्धार करने वाले प्रभु हैं। इसके लिये वे सब के पुत्र हैं।

लोक में सुना हुआ आगे सुनने वाला भूत, भविष्यत् वर्तमान, स्थावर, जंगम, बड़ा छोटा सारी वस्तु अच्युत् को छोड़कर अलग स्वतंत्र रूप से नही रहती। सबके वे ही स्वामी हैं। केवल वही सर्वोत्तम हैं।।43।।

जिसमें सामर्थ्य नही है उसको अवस्तु कहते हैं। जिसमें शक्ति है उसको वस्तु कहते हैं। यह अमर कोश का वाक्य है। भगवान को छोड़कर कोई वस्तु स्वतंत्र रूप से रह नही सकती, स्वतंत्र रूप से व्यवहार कर नही सकती। इसके लिये परमार्थ का अर्थ ही परम अर्थ यानि उत्तम वस्तु, सर्वोत्तम ही होता है।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा, इस प्रकार उद्धव और नन्दगोप द्वारा श्रीकृष्ण के बारे में परस्पर बातें करने में पूरी रात चली गई। सुबह होने लगी, गोपियाँ उठकर दीप को जला कर रंगोली डाल कर दही का मंथन करने लगीं।।44।।

उनसे धारण किए हुए आभरण में रहने वाले रत्न, दीप के प्रकाश में चमकने लगे। दही को मंथन करते समय रस्सी को खींचते हुये उनके हाथ के कंगन चल कर आवाज किये। उनके नितम्ब स्तन और हार हिलने लगे। कुण्डल से शोभायमान गाल लाल रंग से शोभित हुआ।।45 ।।

कमल नयन श्रीकृष्ण की कीर्ति को गोपियाँ तार स्वर में गाने लगीं। वह स्वर आकाश को छू रहा था। उसके साथ दही को मंथन करने वाला मिलकर सारी दिशाओं के अमंगल को मंगल किया।।46।।

भगवान सूर्य पूरब दिशा में उदित हुए। उस समय में गोकुल के द्वार के सामने खड़ा हुआ सोने के रथ को देखकर गोकुलवासी उसके बारे में पूछने लगे ।। 47 ।।

कमल नयन हमारे कन्हैया को मथुरा को ले जाने वाला कंस का कार्य साधक क्रूर-अक्रूर और दुबाश आया है क्या। हमको यह पहले ही मार कर गया है। अब हमको लेकर उस कंस के प्रेत को खिला कर उसको तृप्ति देने आया है क्या। इस प्रकार गोपियाँ आपस में बात करती रहीं। इतने में उद्धव अपने नित्य कर्मानुष्ठान करने के बाद वहाँ आ गया ।। 48-49 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पैंतालिसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

भ्रमर गीता

श्री शुक जी कहते है - गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण के सेवक उद्धव को देखा। वे उनके आजानुबाहु शरीर, कमल के समान कान्तियुक्त आंख और मुख वाला पीताम्बर धारी कमल की माला को पहने हुये सोने के समान शोभायमान कर्ण-कुण्डलधारी उद्धव को देखा ।।1।।

उनको देखकर गोपियों को आश्चर्य हुआ। यह कौन है ? श्रीकृष्ण के समान वेष-भूशा किए हुए है, सुन्दर है।यह कहाँ से आया होगा। किसका सम्बन्धी है। इन सारे विषयों को जानने के कुतूहल से श्रीकृष्ण के पद कमल के आश्रय में रहने वाले उद्धव को वे घेर लिये ।।2।।

उद्धव श्रीकृष्ण के सन्देश को ले आया है, इसको जानते ही वे लज्जा से नतमस्तक होकर तिरछी आँखों से बार बार उसको देखते हुये प्यार से उससे बाते करते हुये एकान्त में उन्नत स्थान के ऊपर उसको बैठाकर भक्ति भाव से उसके सामने सिर झुककर बैठ गयीं।।3।।

सुना है आप श्रीकृष्ण के उत्तम सेवक और परम भक्त हैं। आप उनकी सेवा सदाकाल करते रहते हैं। अपने माता-पिता को समाधान करने के लिये प्रभु ने आपको यहाँ भेजा है न ?।।4।।

नहीं तो इस गोकुल में उस नन्द लाल को और याद करने के लिये क्या है। हमारी याद उसको कैसे आती है। बन्धुओं की याद तो सन्यासी को भी नही छोड़ती।।5।।

अन्य हमारे जैसे लोगों में करने वाला प्यार स्वार्थ के उद्देश्य से होता है। स्त्रियों में पर पुरुष करने का प्यार, फूलों में भौरे के समान रहता है। जब तक स्त्री - सुख मिलता रहता है, तब तक वह प्यार रहता है। जब तक फूल में मकरन्द रहता है तब तक भौरा फूल से प्यार करता है।।6।।

इसी कारण पैसे न रहने वाले विट को वेश्या छोड़ देती है, दुर्बल राजा को प्रजाजन छोड़ते हैं, शास्त्राध्ययन किए हुए शिष्य को गुरु छोड़ता है, दक्षिणा देने के बाद यजमान को ऋत्विज को छोड़ते है ।। 7 ।।

वृक्ष में फल न रहे तो पक्षी छोड़ देते हैं, भोजन के बाद अतिथि घर से चलते हैं, जंगल जल जाने के बाद मृग अन्य जंगलों में जाते हैं, वैसे ही जारपुरुष स्त्रियों से रमण करने के बाद उनको छोड़ के जाता है ।। 8 ।।

इस प्रकार प्रणय कोप से श्रीकृष्ण से आक्षेप करने वाली गोपियों ने अपनी बात, शरीर के अन्य व्यापार को भी श्रीकृष्ण में समर्पण करते हुये, अन्य पुरुष के सामने अपने कपड़ा का भी ध्यान न रखते हुये कृष्ण में प्यार रखी। गोपियों को देखकर उद्धव को आश्चर्य हुआ ।। 9 ।।

वे श्रीकृष्ण के शैशव और बाल्य काल की लीलाओं को प्यार से याद करते हुये लज्जा छोड़कर गाते हुये आँखों से आंसू बहा रही थीं। उसको उद्धव ने देखा ।। 10 ।।

एक गोपी श्रीकृष्ण के समागम के बारे में विचार करते हुये वहाँ गूँज रहे एक भ्रमर को उद्देश्य करते हुये श्रीकृष्ण से अपने को बुला लाने के लिये भेजा हुआ दूत समझते हुये उसको कहती है।। 11 ।।

गोपिका कहती है कि हे भौरा तू वंचक है, तुम कृष्ण की तरफ से आए हो न। हमारी सौत इन मथुरा की नारियों के कुच में हिलने वाली फूल माला को तुम अपनी मूछों से छूना चाहते हो। उसको छूकर उसी से तुम हमको छुओ मत। छू कर हमको इस कृष्ण के पास लेने का प्रयास मत करो। तू कृष्ण के दूत हो न। तू वही करने हमारे पास आये हो न। वह भले मथुरा की माननीयों से अपने प्यार का खेल खेले। अपने अनुग्रहों से उनका उद्धार करे। वह यादवों के स्त्रियों में उसको बोलने के लिये एक विडम्बना का साधन हो सकता है। गँवार हम लोगों के लिए उससे किया हुआ अनुग्रह को हम बोले तो वह उसके लिये अवमानकर होगा न ।। 12 ।।

गोपियों के हृदय के अन्दर की इस बात का अर्थ इस प्रकार होता है। हे भौरा महालक्ष्मी हमारी सौत होती है। उनके स्तन के ऊपर रहने वाली फूल माला को तुम छू कर आए हो। हमको छूने से तुम्हारा क्या मतलब है। लक्ष्मी जी के आवेश वाली मथुरा की स्त्रियों के ऊपर उसका अनुग्रह रहे। यह प्रणय प्रसंग पवित्र है। इसको रुद्रादि देवताओं की सभा में भी गौरव दिया जाता है। तू भी ज्ञानी है। तुम हम सब में रहने वाले रमारूप को देखों।

तुम्हारे कृष्ण केवल एक बार अपने अधरामृत को दिखाकर हमें मोह में गिराने वाले फिर कभी हमारे पास नही आए। फूल के समान हमको छोड़कर श्रीकृष्ण के सिवाय और कौन जा सकता है। नये नये फूल को ढूढ़ते जाने वाला तुम्हारा श्रीकृष्ण तुम्हारे लिये योग्य मित्र है। ऐसे श्रीकृष्ण के पद कमल की सेवा को श्री महालक्ष्मी सदा के लिये कैसे करती रहती हैं। हाँ सही है, वह भी हमारे जैसे श्रीकृष्ण की सरस बातों से मोहित हो चुकी हैं ।। 13 ।।

हे भृंग, हम घर-जमीन न रहने वाले जंगली लोग है। हमारे सामने तुम्हारे कृष्ण की लीलाओं के बारे में क्यो गा रहे हो। मथुरा में जाकर उसकी नयी सहेलियों के सामने अपना गान गाओ। श्रीकृष्ण उनको आलिंगन देकर उनके हृदय के सन्ताप को दूर कर रहा है। उनके सामने गाने से वे वह कृष्ण के यशोगान को सुनकर सन्तुष्ट होकर तुम जो चाहते हो उसको दे सकती हैं क्योंकि वे नगरवासी हैं। गाँव में रहने वाली हम क्या दे सकते हैं ।। 14 ।।

यहाँ कृष्णलीला इस शब्द से व्यंग्यार्थ में कुकृत यह अर्थ होता है। किन्तु भक्ति युक्त अर्थ में आकर्षण वाला काम करने वाला यह अर्थ होता हैं।

श्रीकृष्ण को उसके कपोल, आकर्षक हंसी और उसके भौं के इशारा को वश न होने वाली स्त्री, स्वर्ग, भू, पाताल इन तीनों लोको में कौन मिलती है। साक्षात् महालक्ष्मी उसकी पादधूलि का सेवन करती है। उनके समान हम कहाँ। वह एक बार भी हमारे पास नही आता है। हम दीन लोग उसके कृष्ण कृष्ण इस नामजप के सिवाय और क्या कर सकती हैं। किन्तु उस नाम जप करते तक हमें कुछ दुख नही रहता ।। 15 ।।

तुम अपने ऊपर रखे हुये मेरे पाद को छोड़ दो। मुझे मालूम हो गया है तुम भी कृष्ण के समान वंचक हो। मुझे मालूम है, अपने रंगोरंग मनमोहक बातों को छोड़ दो, यही बस है। कृष्ण के दूत बनकर आए हो न, तुम उसी के पास चले जाओ। हम अपने पति सुत बान्धव को उसके लिये छोड़कर उसके पास आये तो वह कृतघ्न हमकों छोड़कर चला गया है। उसके साथ राजी करने का क्या है। यहाँ तुम्हारा कुछ नही चलेगा। तू यहाँ से चले जाओ ।। 16 ।।

कृष्ण वंचक है। रामावतार में वृक्ष के पीछे खड़े होकर वाली को मार दिया। पत्नी सीता के वश में होकर इसके प्यार को पाने के लिये आई हुयी शूर्पनखा को विरूप कर दिया। दान माँग कर बलि को पाताल में रख दिया। इस भगवान की कीर्ति को वेद जानने वाले लोग गाते रहते हैं। कृष्ण रंग से केवल काला नही है, उसका गुण भी काला है। इस कृष्ण के साथ हम किसी तरह से राजी करना नही चाहते हैं। किन्तु उसकी लीला के संकीर्तन से मिलने वाले सुख को हम छोड़ नही सकते ।। 17 ।।

भगवान श्रीकृष्ण दुष्टजनों को वंचक बने है। वाली निग्रह इत्यादि कार्य दुष्टों को गलत लगता है। कृष्ण से राजी होने के लिये तैयार नही हैं, यह कहना प्रणय कोप का परिणाम है। यह सारे निन्दा स्तुति हैं। गोपियाँ निन्दा करने जैसे भगवान की स्तुति कर रही हैं। आगे श्रीकृष्ण के वृतान्त को समझने की इच्छा से पूछती है।

श्रीकृष्ण के अवतार से चली आयी उनकी लीलाएँ हमें अमृत समान हैं। अमृत के एक बिन्दु

को एक बार सेवन करने से उनके रागादि दोष द्वन्द्व बुद्धि नाश होकर ज्ञान पाकर तृप्त रहकर मूल घर-गृहस्थी के अभिमान को छोड़ देती है। उनके सारे दुःख नाश होते हैं, वे कभी भी नाश नही होते। ज्ञानभिक्षा पाने के लिये भगवान नाम के आकाश में सदाकाल पक्षी के समान विहार करते है। ऐसे कृष्ण प्रत्यक्ष रूप में आकर हमको अपने हाथों से स्पर्श किया है, अलिंगन दिया है। इससे हमारे ऊपर उसके कारुण्य का प्रदर्शन होता है ।। 18 ।।

व्याध के संगीत से जैसे हिरण मोहित होता है वैसे ही हम श्रीकृष्ण से मोहित हैं। वह हमारे कान में **जिह्म** शब्द को सरस समय में हमारे कान में उसने सुना दिया। इस सरस उक्ति को हम सत्य मान लिये। यह तो सत्य है जीवन में एक बार ही हो हम उससे अपने स्तनों के ऊपर नखक्षती को पाये हैं। हम उसके बारे में सुनाने के लिये आतुर हैं। उसके बारे में कहो ।। 19 ।।

हे प्रिय मित्र तुम हमारे प्रियकर के यहाँ से आये हो न। इसके लिये तुम हमारे से जो चाहते हो हम उसको देते हैं। तुम हमारे सत्कार के लिये योग्य हो। अच्छा बोलो, तुम हमको उसके पास ले जाने वाले हो न। अपने बन्धु उस कृष्ण को छोड़कर रहना हमारे हाथ से नही होता। सदाकाल उसकी छाती में रहने वाली महालक्ष्मी को भी उसको छोड़ना नही होता ।। 20 ।।

हे सौम्य, श्रीकृष्ण अब मथुरा में है न ? वहाँ यहाँ के अपने माता-पिता घर और गोपालकों को याद करते रहते हैं न ? अगरुचन्दन के परिमल से लिप्त उसके हाथ को एक बार हम पकड़े थे। उस हाथ को वहाँ और एक बार दासी हम लोगों के सिर के ऊपर रखता है न ? वहाँ कब रखता है, कहाँ रखता है और कैसे रखता है यह बताओ ।। 21 ।।

हे भँवरा, तुमको देखकर हमको श्रीकृष्ण की याद आती है। उससे सुख होता है, विरह का दुःख भी होता है। इससे हम तुम्हारे साथ रह नही सकते। तुम चले जाओ। तुम्हारे हाथ से हो सकता है तो उस कृष्ण को ले आओ। इस प्रकार असम्बद्ध संभाषण में उद्धव को एक भौंरा मानकर उसके सामने अपने विरह व्यथा को व्यक्त कर रही हैं। उनके विचार हमें असम्बद्ध रहते हुये भी विरह से लिप्त उनके भावों को हमे देखना है। इसके उत्तर रूप में उद्धव कहते हैं :- माताएँ, आपको सन्तोष देने के लिये मुझको भेजा है। मैं आपके हृदय में आपको भगवान का दर्शन कराऊंगा।

श्री शुकदेव जी कहते हैं :- गोपियों की इन बातों को सुनकर उद्धव भगवान के दर्शन की आकांक्षा रखने वाली गोपियों को भगवान का सन्देश सुनाते हुये इस प्रकार कहे ।। 22 ।।

हे माताओ, आपका मन भगवान में इस प्रकार पूर्ण रीति से लग गया है। आपही धान्य हैं। आपही लोक पूज्य हैं ।। 23 ।।

दान, व्रत, तप, होम, जप, यज्ञ, वेद अध्ययन, इन्द्रिय निग्रह और ऐसे ही श्रेय साधनों से श्रीकृष्ण में भक्ति का साधन कर सकते हैं ।। 24 ।।

आप लोग ब्रह्मादि लोगों से वन्दित भगवान श्रीहरि में उत्कट भक्ति किये हैं। यह भक्ति मुनियों के लिये भी दुर्लभ है ।। 25 ।।

गोपियों ने भगवान को पति के रूप में आराधना की । गोपियों की यह मधुर भक्ति मुनियों से या अन्यों से अयोग्य होने के कारण असाध्य है। गोपियों के अप्सराओं के अवतार होने के कारण उनके लिये यह साध्य हुआ।

दैवानुग्रह से आप पति, पुत्र, बान्धव घर शरीर सबको छोड़कर केवल कृष्ण नाम के परम पुरुष को स्वीकार किये हैं ।। 26 ।।

आप भगवान अधोक्षज को अपने पति, पुत्र, मित्र, बन्धु सब कुछ वही हैं इस रूप में सर्वात्मना भाव मिला है। आप महाभाग्यशाली हैं। विरह से आपका प्रेम पक्व हो गया है। भगवान ने आपके ऊपर यह परमानुग्रह किया है ।। 27 ।।

हे मंगलमयी देवताएँ, आपके लिये आपको सुख देने के लिये भगवान श्रीकृष्ण का सन्देश मैं लाया हूँ उसको सुनिये। भगवान ही स्वयं मेरे मुख से ये बाते कह रहे हैं ।। 28 ।।

श्री भगवान उवाच :- हे गोपियों सुनो। किसी काल में किसी तरह से आपको सर्वथा मेरा विरह होने वाला नही है क्योंकि इस स्थावर जंगम शरीरों में, आकाश-वायु, अग्नि-जल नाम के पंचभूतों में व्याप्त होकर मैं रहता हूँ। सबके प्राण मन, बुद्धि, इन्द्रिय इत्यादि में मैं नियामक होकर रहता हूँ। मुझको और किसी का आश्रय नही है। मैं ही अपना आश्रय बना हूँ। अपनी इच्छा के अनुसार देह मन इत्यादि को सृष्टि करता हूँ, रक्षा करता हूँ, संहार करता हूँ ।। 30 ।।

मेरा स्वरूप, इच्छा, सामर्थ्य से मैं पंचभूत इन्द्रिय और पदार्थों में व्याप्त होकर रहता हूँ। मैं सबका स्वामी हूँ, शुद्ध ज्ञानमय, गुणपूर्ण हूँ । इसी कारण स्वभूत इन्द्रियों से भिन्न हूँ। सुषुप्ति, स्वप्न, जागृति में इसका अनुभव आता है क्योंकि ये सारे जीव के अधीन न होते हुये मेरी इच्छा से होते रहते हैं ।। 31-32 ।।

ज्ञानियों की दृष्टि में इन सारे प्रमेयों को जानने के लिये वेद, योगाभ्यास, पंचरात्र, निष्काम कर्म, तप, इन्द्रिय निग्रह, सत्य इत्यादि चले हैं। नदी अन्त में समुद्र को जैसे जा मिलती है वैसे ही ये सारे मुझमें मिलते है ।। 33 ।।

मैं तुम लोगों की आँखों से दूर हो गया हूँ, यह तुम्हारे मन के नजदीक रहने के लिये, तुमको

मेरा ध्यान मिले इस उद्देश्य से ।। 34 ।।

स्त्री पुरुषों के लिये अपने प्यारे लोग जितनी दूर रहते है उतनी आसक्ति उनमें बढ़ती है। आँखों के सामने रहे तो वह बढ़ती नही ।। 35 ।।

इसके लिये सारे विषय पदार्थों की आलोचना छोड़कर सदाकाल मुझमें ही अपना मन रखते हुये मेरा ही ध्यान करने लगो तो आप जल्दी ही मुझको पाती हैं ।। 36 ।।

पिछले जन्म में आप मेरे बारे में बहुत ध्यान किये हैं। इस जन्म में गोकुल में रहते हुये भी घर-बार छोड़ते हुये मेरे साथ वृन्दावन में पूरी रात रास खेली हैं ।। 37 ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं :- भगवान श्रीकृष्ण के इस सन्देश को सुनकर गोपियों को ज्ञानोदय हो गया। वे सन्तुष्ट होकर उद्धव से कहती हैं ।। 38 ।।

गोपियाँ कहती हैं :- यादवों का शत्रु बना हुआ पापी कंस अपने परिवार के साथ मर गया, यह बहुत सन्तोष का विषय है। हमारे बन्धु के लिये इष्टार्थ मिल गया है। उनके साथ रहने वाले भगवान श्रीकृष्ण कुशल रूप से हैं न ? ।। 39 ।।

हे सौम्य मथुरा की स्त्रियों को उनके प्रणय लज्जाओं से शोभायमान हास्य से और आकर्षक दृष्टि से आराधित श्रीकृष्ण उनको सन्तोष देते हैं न ? ।। 40 ।।

प्रणय क्रीडा में अत्यन्त निपुण श्रीकृष्ण मथुरा की उन स्त्रियों के लिए प्रियकर बना हुआ होगा। उनकी बातों, श्रृंगार विलासों से वहाँ की स्त्रियाँ बन्धित हो गयी होगी ।। 41 ।।

हे उद्धव, मथुरा की स्त्रियों के साथ प्रणय क्रीडा करते समय श्रीकृष्ण हमारी भी याद करते हैं क्या ।। 42 ।।

सफेद कमल की चमेली के चन्द्र के प्रकाश के समान शुभ्र रहने वाला, वृन्दावन में हमारे पायल की घुघुरू की ध्वनि से भरे हुए रासलीला में मनोज्ञ भगवान सरस संभाषण करते हुये पूरी रात हमारे साथ विहर करता था। कभी उसकी याद करता है क्या ? ।। 43 ।।

जिनके प्रखर सूर्य के कारण सूखी हुयी जमीन को आकाश से पानी बरसा कर देवेन्द्र पुनः शक्ति देते हैं वैसे ही विरह दुःख से सूखे हुए गोकुल को अपने अंगस्पर्श से पुनः चेतन करने के लिये श्रीकृष्ण आने वाले हैं क्या ? ।। 44 ।।

वह क्यों यहाँ आता है। उनको वहाँ राज्य मिला है, शत्रुओं का नाश हो चुका है। नगर की नारियों के साथ विहार मिला है। सारे बन्धु उनके साथ रहते हैं ।। 45 ।।

वह लक्ष्मीपति स्वयं आप्तकाम हैं, पूर्णरूप हैं। ऐसे महात्मा को वन में रहने वाले हमारे से क्या मतलब है। उनको वह नगरवासी स्त्रियों से भी क्या प्रयोजन है ।। 46 ।।

आशाओं को छोड़ना परम सुख है। वेश्या पिंगला इस बात को कही है। इसको जानते हुये भी हम श्रीकृष्ण की आशा को छोड़ नही सकते ।। 47 ।।

वेश्या, पिंगला अन्तर्यामी रहने वाले भगवान को छोड़कर अन्य विट पुरुषों के लिये कामना कर रही हूँ। यह बात पिंगला नाम की वेश्या भागवत् में (11-08-30) सारे आशाओं को छोड़कर भगवान के बारे में चिन्तन करना ही परम सुख है ऐसे बोलती है। भगवान के शरीर के सम्बन्ध से अन्य आशाओं को वह दूर करती है। गोपियो को भी वैसे ही किये हैं। किन्तु विनय से ऐसा किये नही हैं। ऐसे कहते हैं। श्रीकृष्ण के अंग-संग का सुख इन्द्रिय सुख होने के कारण उसको भी विषय सुख मानते है वस्तुतः यह गोपियों के लिये अनिषिद्ध होने के कारण वह विषय सुख नही होता। उसको उन्हें त्यागने की कोई जरुरत नही है।

भगवान श्रीकृष्ण स्वरमण हैं। वह लक्ष्मी की भी आशा नही करते। तो भी लक्ष्मी उनके छाती से कभी भी दूर नही होती। ऐसे में उसके साथ एकान्त में बाते करने की आशा को कौन छोड़ सकता है ।। 48 ।।

हे उद्धव कृष्ण बलराम के साथ खेले हुये यह नदी, वन, पहाड़, कानन, गाय, वेणुध्वनि ये सारे हमको बार-बार श्रीकृष्ण की याद दिलाते हैं। सौन्दर्य के सागर उनके पाद-कमलों को भूलना हमारे से असाध्य हो गया है ।। 49-50 ।।

हे उद्धव, श्रीकृष्ण की सुन्दर बोल-चाल, आकर्षक हँसी, मोर की चलन, तिरछी नजर हमारे मन को मोहित कर चुके हैं। उनको हम कैसे भूलें ।। 51 ।।

इतना कहते हुये गोपियाँ श्रीकृष्ण के गुण-गान करने लगती हैं। हे नाथ, हे रमानाथ, हे गोकुल नाथ, हे दुःखों को दूर करने वाले गोविन्द आपको न देखते हुये दुःख सागर में डूबे हुये गोकुल को उद्धार करने जल्दी आ जाओ ।। 52 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में पैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - छियालिसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते है - श्रीकृष्ण के सन्देश को सुनकर गोपियों ने अपने विरह दुःख को सहन किये। श्रीकृष्ण में भक्ति करने वाले उद्धव को सत्कार किये ।। 1 ।।

गोपियों के दुःख को दूर करने के लिये उद्धव दो-तीन महीने गोकुल में वास किये। श्रीकृष्ण के कथाओं की गाथाओं को गाते हुये गोकुल को सन्तोष दिये ।। 2 ।।

उद्धव के गोकुल में वास किये हुये दिन गोकुलवासियों को क्षण के समान बीत गये। क्योंकि उद्धव सदाकाल श्रीकृष्ण की कथा का वर्णन करते थे ।। 3 ।।

नदी, जंगल, पहाड़, वृक्ष और गिरि कानन को देखकर उद्धव वह भगवान क्या-क्या लीलाएँ की उसके बारे में पूछते हुये, बार-बार श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुये विहार किये ।। 4 ।।

गोपियों के मन स्थिर रूप से श्रीकृष्ण में रहने के कारण वे परवश रहती हैं इसको देखकर उद्धव सन्तुष्ट होकर उनको नमस्कार करते हुये कहे ।। 5 ।।

उद्धव कहते है :- हे गोपिकाएँ आप भगवान गोविन्द में दृढ़ भक्ति वाली हैं। आप देहधारी मानवों में श्रेष्ठ है। शुभ बुद्धि वाले आपके समान दृढ़ भक्ति को हम भी चाहते हैं। भगवान के कथा श्रवण के बिना ब्राह्मणजनों का भी क्या प्रयोजन है ।। 6 ।।

ये गोपियाँ अप्सराएँ के अवतार होने के कारण व्यभिचार्य स्वभाव वाली हैं। किन्तु इनमें श्रीकृष्ण के बारे में अत्यन्त दृढ़ भक्ति है। इस जन्म में वे शास्त्राभ्यास नही किये हैं। किन्तु पूर्व जन्म के संस्कार के कारण स्वभाव के अनुसार भक्ति करने से वे मोक्ष के योग्य बने हैं। औषधी का गुण स्वभाव न समझते हुये भी उसको सेवन मात्र से आरोग्य मिलता है। वैसे ही इन गोपियों को बिना प्रयत्न अभ्यास से ही भगवान का ज्ञान आ गया है ।। 7 ।।

रासोत्सव के समय में श्रीकृष्ण के लम्बे हाथों को गोपियों ने अपने मन को तृप्ति पाये। भगवान उनके ऊपर जो परमानुग्रह किये उसको लक्ष्मी को और सुन्दर रूप वाले देवता स्त्रियों को भी नही किया है। और स्त्रियों के बारे में क्या कहना है ।। 8 ।।

भगवान का अनुग्रह भक्तों के योग्यतानुसार होता है। उद्धव ने जो कहा वह अतिशय अर्थवाद है। वह गोपियों की स्तुति में आये है। अथवा एक बार भूखे आये हुये अतिथि को अपनी पत्नी पुत्रों के ख्याल न रखते हुये अन्न दान करने वाला गृहस्थ के सामान भगवान कभी कभी अपने विशेष भक्तों में विशेष अनुग्रह करते हैं। सुदामा इसका बड़ा

दृष्टान्त है। इस प्रकार भगवान भक्ति के गरिमा को बड़ा करके दिखाते हैं। वस्तुतः गोपियों के ऊपर किया हुआ अनुग्रह उनमें अविष्ट लक्ष्मी के ऊपर ही है।

छोड़ने के लिये असाध्य बन्धुओं के सम्बन्ध को इन गोपिकाओं ने त्याग दिया। पति सेवा करने का मार्ग भी छोड़ दिया। वेदोक्त हरि भक्ति के मार्ग को अपनाया। ये गोपिकाएँ धन्य है। इनके पाद धूली वंद्य है। इनके पाद रस को धारण करने वाले एक वृक्ष या लता या पौधा बनकर वृन्दावन में मैं जन्म लेना चाहता हूँ ।। 9 ।।

भगवान श्रीकृष्ण के पाद कमल को महालक्ष्मी आराधना करती है। सारे अभीष्ट को पा चुके हुये ब्रह्मादि देवताओं ने योग सिद्धि को पाये हुये योगियों ने अपने हृदय कमल में उस पाद को रखकर आराधना करते हैं। ऐसे पाद कमल को रासक्रीडा में ये गोपियाँ सिर पर रखकर अपने हृदय ताप को हटा दिये है। उनकी पाद धूली भी हमारे लिये परम पवित्र है ।। 10 ।।

नन्द गोकुल के इन स्त्रियों के पदारविन्द को मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ। उनसे गया हुआ श्रीकृष्ण कथा तीनों लोकों को पावन करता है ।। 11 ।।

उद्धव गोपियों से विदा पाकर नन्द यशोदा से अनुज्ञा पाकर गोपालकों से छुटकारा पाकर रथ के ऊपर बैठ गया ।। 12 ।।

जा रहे हुए उद्धव के पास नन्दादि गोपालकों ने अनेक तरह के वस्तुओं को भेंट करते हुये आँखों में आँसू भर कर बोले ।। 13 ।।

हमारे मन में रहने वाले विचारों को श्रीकृष्ण के पाद कमल में निवेदन करें। हमारी बातें उनको न स्मरण हो। हमारा शरीर उनकी पूजा करे ।। 14 ।।

पूर्व कर्म से अनेक योनि में जन्म लेने वाले हमको हमारे कर्म और भगवदिच्छा के अनुसार बहुत जन्म आये। उस जन्म में हमें शुभ कर्म मिले। दानादि से हमें श्रीकृष्ण में भक्ति बनी रहे ।। 15 ।।

राजा इस प्रकार श्रीकृष्ण में भक्ति रखने वाले गोपालकों से बार-बार पूजित उद्धव श्रीकृष्ण की रक्षा में रहने वाला मथुरा को पुनः आ गये ।। 16 ।।

श्रीकृष्ण को प्रणाम करते हुये आपनी आँखों से देखा हुआ गोकुलवासियों का भक्ति का उद्रेक का वर्णन किया। श्रीकृष्ण बलराम को राजा उग्रसेन को गोपालकों से दिया हुआ उपहारों को उनको समर्पित किया ।। 17 ।।

यहाँ रुक्मिणीश विजय के कर्ता श्री वादिराज जी आगे कहते है :- वैष्णवाग्रणि उद्धव गोपियों के भक्ति का वर्णन करते हुये भगवान से प्रार्थना करता है । भगवान उनकी मन की आकांक्षाओं को पूर्ण करें। उसके अनुसार भगवान उनके मन में अभिव्यक्त होकर उनके हृदय में उनके साथ यथेच्छा आनन्द उत्पन्न करते हैं।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में छियालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सैतालिसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते है - बाद में सर्वांतर्यामी सर्वज्ञ भगवान श्रीकृष्ण अपने अंग-संग की आशा से आर्त कुब्जा को सन्तोष देने के लिये उद्धव के साथ उसके घर चले गये ।। 1 ।।

उसका घर बहुत अमूल्य साधनों से सजा हुआ प्रणय उद्दीपक पदार्थों से, मोती की हारों से, पताकाओं से, मंच और पीठ उपकरणों से सुगन्ध भरित धूप, दीप, मालाओं से अंलकृत था ।। 2-3 ।।

श्रीकृष्ण घर आये यह देखकर कुब्जा आसन से उठकर अपनी सखियों के साथ सामने आकर स्वागत किया। उत्तम आसन देकर अनेक विधिओं से उपचार किया ।। 4 ।।

श्रीकृष्ण के साथ आये हुये उद्धव को भी वह आदर से सत्कार किया, उसको बड़ा आसन दिया। उद्धव उस आसन को छूकर प्रभु के सामने उनके समान आसान में न बैठना इसके लिये जमीन के ऊपर बैठ गये। बाद में भगवान श्रीकृष्ण लोकाचार के अनुसार हाथी के दांत से बनाया हुआ बहुमूल्य मंच पर लेट गये ।। 5 ।।

कुब्जा स्नान, अनुलेपन, वस्त्र, आभरण, फूल-माला, गन्ध-ताम्बूल इत्यादि से सुसज्जित होकर लज्जा से मन्द हांस युक्त नजर से श्रीकृष्ण के पास आयी ।। 6 ।।

पहले संग से लज्जा से हिचकिचाने वाले, कुब्जा को श्रीकृष्ण ने कंगन से शोभायमान हाथ को पकड़ कर अपने पास मंच के ऊपर बैठाये। श्रीकृष्ण को थोड़ी सी गन्ध देने से उसको यह भाग्य मिला है ।। 7 ।।

वह कामतप्त, स्तन, छाती, आँख को भगवान के पाद से स्पर्श करते हुये उसकी सुगन्ध को आघ्राण करते हुये बहुत दिन के विरह को दूर की। आनन्द मूर्ति भगवान को अपनी छाती के ऊपर रखकर दोनों बांहो से आलिंगन करते हुये बहुत दिनों से अनुभव किया हुआ कामताप को दूर किये ।। 8 ।।

कुब्जा दुर्लभ, मोक्ष देने वाली भगवान के सामने गन्ध को समर्पण करते समय पुण्य पाने के

बाद भी दुर्दैवि होने के कारण ऐसे प्रार्थना की ।। 9 ।।

हे प्रियतम आप कई दिन यहीं रहें। मेरे साथ सुख भोग करें। हे कमलाक्ष आपको छोड़कर मैं नही रह सकती ।। 10 ।।

सर्वेश्वर श्रीकृष्ण उसको जो चाहती है वह वर देकर वस्त्र आभरण आदि से सत्कार करते हुये उद्धव के साथ सर्वसम्पद् भरित अपने घर को वापस आये ।। 11 ।।

सारे ईश्वरों के ईश्वर भगवान श्रीकृष्ण सुलभ रीति से मिलने वाला नही है। ऐसे भगवान के प्यार को पाने के बाद भी मन से अपेक्षा करने योग्य नही, ऐसे विषय सुख को चाहना कुब्जा के लिये मूर्खता ही थी ।। 12 ।।

श्रीकृष्ण कुब्जा की इच्छानुसार उसके घर जाकर गान्धर्व विधि से उसके साथ विवाह करते हुये एक मास तक वहाँ रहकर उसको विषय अनुग्रह किये। भगवान के अनुग्रह से उसको विशोक नाम का एक पुत्र हुआ। वह नारद जी के शिष्यत्व में पंचरात्रागम, सकल शस्त्रों का अभ्यास किया। भीमसेन के सारथी होकर महाभारत युद्ध में उनका सन्तोष पाया। केवल गन्ध देने वाली कुब्जा को भगवान इतना अनुग्रह किये क्या ? रमा देवी उसमें आकृष्ठ होकर भगवान के अंग सुख को पायी क्या ? वास्तव में कुब्जा एक अपरोक्ष ज्ञानी है, वह अप्सरा है। उसको मोक्ष मिलना निश्चित है। इसी कारण वह भी गोपियों के समान अपने योग्य काम वर को पायी। अन्य लोग ऐसे करे तो वे मूर्ख हो जाते है। योग्य लोग अपने योग्य जो है उसको पाते हैं। ध्रुव, ध्रुव पदवी को प्राप्त करने के बाद भी मोक्ष न मांगा। इसके लिये पश्चात्ताप करता है। वस्तुतः उस समय में उसको वही योग्य था। यहाँ भी कुब्जा को यही योग्य है।

प्रभु श्रीकृष्ण पाण्डवों के समाचार को समझने के लिये हस्तिनावती को उद्धव को भेजना चाहे। अक्रूर पहले ही एक बार अपने यहाँ आने के लिये भगवान से आग्रह किया था। उसको सन्तोष देते हुये भगवान बलराम उद्धव के साथ अक्रूर के घर चले ।। 13 ।।

पुरुषोत्तम में उत्तम अपने बन्धु, ये तीनों अपने घर आ रहे हैं, इसको दूर से देखकर संभ्रम से उनके सामने जाकर आलिंगन करते हुये अक्रूर अभिनन्दन किये ।। 14 ।।

हे राजा अक्रूर श्रीकृष्ण बलराम को नमन किया। उद्धव को अलिंगन दिया। तीनों अक्रूर को नमस्कार किये। उनको आसन पर बैठा कर अक्रूर राम कृष्ण के पांव को धोकर उस जल को अपने सिर के ऊपर धारण किया। दिव्य गन्ध, माला, आभरण और अन्य पूजा द्रव्यों से उनका विधिपूर्वक पूजा किया ।। 15-16 ।।

इस प्रकार राम कृष्ण की पूजा कर पादों को कपड़े से पोंछकर भक्ति पूर्वक बाते की ।। 17 ।।

अक्रूर बोलते हैं :- हमारे पुण्य से आप अवतार लेकर पापी कंस और उसके परिवार का नाश किये, यदुवंश का उद्धार किये। कंस से बहुत दुःख भोग रहे सज्जनों का उद्धार किये ।। 18 ।।

आप सर्वोत्तम है। इस जगत के मूल कारण हैं। जगत भर में व्याप्त हैं। आपसे अलग जड़-चेतन में कोई स्वतंत्र नही है ।। 19 ।।

हे पूर्ण परमब्रह्म परमात्मा, आपने निर्माण किया हुआ विश्व को आपही अपने स्वरूप शक्ति से तत्वाभिमानी देवताओं के साथ प्रवेश करते है। उन पदार्थ के अनुसार उसी का रूप लेते हैं। अणु महत् इत्यादि अनेक रूप पाते हैं। आप श्रुति वेद्य है, ज्ञानियों के लिये प्रत्यक्ष है ।। 20 ।।

अनेक योनि में रहने वाले स्थवर जंगम शरीरों में पृथिव्यादि पंचमहाभूत शरीरों में उन्ही आकारों से व्याप्त होकर जैसे दिखते हैं वैसे आप भी आपसे निर्मित इस प्रपंच में एक, स्वतंत्र और शुद्ध रहते हुये भी अनेक रूप से दिखते हैं ।। 21 ।।

आपने स्वतंत्र शक्ति से सत्व-रज-तमों गुणों से इस जगत को सृष्टि करते हुये रक्षा करते हैं। उन सात्विक गुणों से अथवा कर्म से आप बाध्य नही होते। चिन्मयरूपी आपको उत्पत्ति कारण नही है ।। 22 ।।

आपको देहादि उपाधि को निर्माण करने वाले त्रिगुणों का सम्बन्ध शास्त्र में नही बताया गया है। आपको इस जड़ शरीर से सम्बन्ध नही है। आप चिन्मय है। इसी कारण आपको देह सम्बन्ध वियोग रूप बन्ध मोक्ष नही है। यह विवेक मानव को अपनी योग्यतानुसार होता है ।। 23 ।।

भगवान आप इस जगत के हित के लिये अनादि वेद मार्ग को दिखाये हैं। पाखण्ड मार्ग से दुर्जन से जब वह नष्ट होता है तब आप ही व्यास रूप से आकर सत्व गुण से ज्ञान कार्य की वृद्धि करते हैं ।। 24 ।।

प्रभु अब आपके ही एक केशांश से वसुदेव के घर में अवतार ले चुके है। दैत्य स्वभाव के अनेक अक्षोंहिणी सैन्य और दैत्य स्वभाव के अनेक राजाओं को नाश करते हुये भूभारहरण किये है, यदुकुल की कीर्ति बढ़ाये हैं ।। 25 ।।

हे अधोक्षज, स्वामी आप आज मेरे घर को आकर पवित्र किये हैं। आपके इस विश्वभर शरीर से सकल देवताएँ पितृगण, भूतगण और राजाओं ने आश्रय लिये है। आपके पादोदक तीनों लोकों को पावन करता है ।। 26 ।।

आप सत्य संकल्प, भक्त प्रिय, कृतज्ञ है। आप भक्तों का अभीष्ट पूर्ण करते हैं। आप वृद्धिह्रास रहित आत्मानन्द को मोक्ष में देते है। आपको छोड़कर बुद्धिमान लोग अन्य के पास क्यों जाते है ।। 27 ।।

हे जनार्दन आपकी महिमा को योगेश्वर, सुरेश्वर भी पूर्ण रूप से नही जानते है। मेरे अदृष्ट से मेरे घर आकर आपने मुझे दर्शन दिये है। अब आप मेरा पत्नी, पुत्र, धन सम्पत्ति, बन्धु, शरीर

घर इत्यादि मोहपाश कों अपने बन्धक शक्ति को नाश कर मुझे उससे छुड़वाये ।। 28 ।।

इस प्रकार भक्त अक्रूर भगवान श्रीकृष्ण की प्रार्थना किये। उसको सुनकर श्रीकृष्ण हसन्मुख से उस तत्वज्ञान के लिये यह समय योग्य नही है। इसके लिये उनके सामने लौकिक बाते कहने लगे ।। 29 ।।

श्री भगवान कहते है :- चाचा जी आप हमारे हितोपदेशक है। हम सदा के लिये आपकी रक्षा में रहने वाले आपसे छोटे है। आप हमें दया करें ।। 30 ।।

हे भाग्यवान, सज्जन लोग पूज्यों में पूज्य आप जैसे श्रेयस कामना करने वाले लोगों का सेवा करनी चाहिये और स्वार्थ पर देवताओं की सेवा में क्या है ।। 31 ।।

सारे जलाशय तीर्थ नही बनते। हर एक पत्थर भगवान नही बनता। वह पानी यह पत्थर में रहने वाले देवताएँ बहुत समय तक सेवा करने के बाद ही फल देते है। किन्तु सज्जन लोग केवल दर्शन से ही अन्यों को पावन करते हैं ।। 32 ।।

अब आप हमारे बन्धु पाण्डवों के लिये हित करने के लिये हस्तिनापुर को जाइये। वहाँ जाकर उनके क्षेम समाचार को समझ कर आइये। आप भी उनके बन्धु लगते हैं ।। 33 ।।

पिता के मरण के बाद पाण्डवों ने अपनी माता के साथ शतशृंग नाम के पर्वत में वास करते थे। उनको राजा धृतराष्ट्र ने मुनियों से बुलाकर अपने पास बुलाये है। यह बात मैं अन्य लोगों से सुना है ।। 34 ।।

राजा धृतराष्ट्र अंधा है, दुष्ट बुद्धि वाला है, दुर्बल भी है। अपने भाई के पुत्र पाण्डवों के बच्चों को अपने समान देखता नही। क्योंकि वह दुष्ट दुर्योधन का कठपुतली बन गया है ।। 35 ।।

आप वहाँ जाकर पाण्डवों का हाल क्या है। धृतराष्ट्र उनके बारे में क्या करता है। उन सबको सुनकर हम पाण्डवों के बारे में क्या कर सकते है। इसका विचार करते हुये आइये। आपके कहने के अनुसार हम आगे करेंगे ।। 36 ।।

इस प्रकार अक्रूर को आदेश देकर सर्वशक्ति भगवान श्रीकृष्ण बलराम और उद्धव के साथ अपने राजगृह को वापस आये ।। 37 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में सैतालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अड़तालिसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - पुरु वंश के राजाओं के कीर्ति से विराजमान हास्तिनावति को जाकर अक्रूर धृतराष्ट्र भीष्म, विदुर कुन्ती इनसे भेंट की ।। 1 ।।

बाल्हीक, उसके पुत्र सोमदत्त, द्रोण, कृप, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थाम और पाण्डवों से और अलग बन्धुओं से भेंट किये ।। 2 ।।

अक्रूर उन बन्धुओं को यथायोग्य समय में भेंट करने के बाद उनसे कुशल प्रश्न किये। वे भी वसुदेव इत्यादि के बारे में कुशल वार्ता किये ।। 3 ।।

पाण्डवों के बारे में धृतराष्ट्र का बर्ताव को समझने के लिये अक्रूर हस्तिनावति में कई महीने वास किये। धृतराष्ट्र दुर्बुद्धि वाला है। स्वतः राज्य का व्यवहार संभाल नही सकता। इसी के कारण वह अपने दुष्ट पुत्रों के इच्छानुसार चलता था ।। 4 ।।

पाण्डवों के शरीर, वर्चस्व, अन्तःशक्ति, बल पराक्रम, विनय इत्यादि सद्गुण, और प्रजाओं के साथ उनका अनुराग देखकर सहन न होते हुये कौरवों ने उनको विष खिलायें। ऐसे अन्य बहुत अपाचार किये है, आगे करने वाले है ऐसा लगता हैं। कुन्ती विदुर इन बातों को अक्रूर को बताये ।। 5-6 ।।

अपना भाई अक्रूर जब घर में आ गया तब कुन्ती उसके पास बैठकर मैके के बारे में सारे सुनाते हुये आँखों में आंसू भर कर बोली ।। 7 ।।

कुन्ती बोलती है :- भाई अक्रूर आपके माता-पिता श्वफल्कगांदिनी, भाई वसुदेव आदि लोग उनके भाई-बहन, बाल-बच्चे सारे लोग अच्छे है न ? हमारी याद करते रहते है न ? ।। 8 ।।

अपने शरण आये हुये लोगों की रक्षा करने वाला हमारा भांजा भगवान श्रीकृष्ण और बलराम अपने पाण्डवों को याद करते हैं क्या ? ।। 9 ।।

हम यहाँ भेड़ियों के बीच में फँसाया हुआ बकरी के समान शत्रुओं के बीच में कष्ट भोग रहे हैं। पिता न रहने वाले हमारे पुत्रों को भगवान श्रीकृष्ण अनुग्रह करता है न ? ।। 10 ।।

भगवान श्री कृष्ण महायोगी है, सर्वांतर्यामी हैं, जगद रक्षक गोविन्द मैं आपके शरण में हूँ।

छोटे बच्चों के साथ कष्ट भोगने वाली मेरे ऊपर दया करो ।। 11 ।।

मरण रूप संसार से डरने वाले लोगों को सर्वशक्त आपके मोक्ष देने वाले श्रीचरण के आश्रय के बिना और क्या आश्रय होता है। हम अन्य आश्रय नही चाहते हैं ।। 12 ।।

दोष रहित गुणपूर्ण भगवान आप अचिन्त्य, अद्भुत शक्ति वाले हैं, मुक्ति देने वाले हैं। मैं आपकी शरण में हूँ आप मेरी रक्षा करें ।। 13 ।।

इस प्रकार इस जगत के बन्धु अपने बन्धु श्रीकृष्ण को याद करते हुये हे राजा आपकी बड़ी नानी कुन्ती दुःखित होकर आंसू बहा रही है ।। 14 ।।

सुख-दुख को समान रूप से देखने वाला महाकीर्तिशाली अक्रूर भी दुःख प्रर्दशन करते हुये कुन्ती को सांत्वना की। पाण्डवों भूभारहरण करने के लिये अवतरण किये हुये देव हैं। उनके लिये कुछ भी भय नही है। यह बात कुन्ती को विदुर और अक्रूर कहते हुये पाण्डवों को अवतार का उद्देश्य बतायें ।। 15 ।।

मथुरा के लिये वापस जाने के पहले अक्रूर धृतराष्ट्र के पास आकर उसके सामने पुत्रों के ऊपर के मोह से पाण्डवों में पक्षपात कर रहे उसको कई हित वाक्य कहे ।। 16 ।।

कुरुवंश के कीर्ति को बढ़ाने वाला धृतराष्ट्र तुम्हे अपने भाई पाण्डु के मरने के कारण उसके पुत्र पाण्डवों में निष्पक्षपाती रहना चाहिये ।। 17 ।।

धर्म से राज्य को चलाना चाहिये। शील से प्रजा को सन्तोष कराना चाहिये। अपने और अपने भाई के पुत्र में भेद न देखते हुये सामान्य रीति से व्यवहार करो। तब तुम सुख और कीर्ति को पावोगे ।। 18 ।।

इसके विरुद्ध चले तो तुम लोक निन्दा के पात्र बनोगे, पुत्र नाश से महादुःख भोगोगे। इसके लिये अपने पुत्र और अपने भाई के पुत्र में समान रूप से व्यवहार करो ।। 19 ।।

धृतराष्ट्र ज्ञानी गान्धर्व था। वह तमोयोग्य नही है। किन्तु यहाँ अक्रूर उसको **यास्यसे तमः** घोर दुख को पाओगें कहता है। यह उसमें अविष्ट कली के लिये अन्धंतमः होता है।

आपके पुत्रों के सुख के लिये पाण्डु के पुत्रों को दुःख मत दो। इस लोक में कोई शाश्वत नही रहता है। स्वयं शाश्वत नही रहता। तो अन्य सम्बन्धियों से सम्बन्ध शाश्वत नही होता। इसको अलग बोलने की क्या जरुरत है ।। 20 ।।

जीव जन्म लेते समय अकेले जन्मता है, मरते समय अकेले मरता है। अपना किया हुआ पुण्य पाप का फल को अकेले ही भोगता है ।। 21 ।।

सतीसुत आपके पालन में है बोलते हुये अधर्म से सम्पादन किये हुये सम्पद को जलचर जैसे जल को पीते है वैसे न मालूम होते हुये खा लेते है। मूर्ख उनको अधर्म से उनका पोषण करता

है। लेकिन अधर्म के फल को स्वयं भोगना पड़ता हैं ।। 22 ।।

मूर्ख मानव धर्म-अधर्म से सम्पादन करते हुये पत्नी पुत्रों को अपने मानते हुये संरक्षण करता है। वे उसको अतृप्त छोड़कर बीच में ही उससे दूर चले जाते है ।। 23 ।।

स्वधर्म से विमुख व्यक्ति को अपने सुख साधन पाने के प्रयत्न में फल नही मिलता। वह जीते जी अपनी आशाओं को पूर्ण न करते हुये एक दिन मर जाता है। मरते समय उसके सुख के कारण पत्नी पुत्र, धन-धान्य उसके साथ नही आयेगा। वह धर्म-अधर्म से मिला हुआ पुण्य पाप कर्म को अपने साथ लेकर चलता है। उसी के अनुसार सुख-दुख को भोगता है ।। 24 ।।

इसी कारण हे राजा धृतराष्ट्र इस लोक के धन सतीसुत इत्यादि लोगों को केवल स्वप्न अथवा इन्द्रजाल के समान मानते हुये अपने मनोरथ को क्षणिक समझते हुये उनको त्याग कर मन से भगवान में प्यार करो। उसी में निष्ठा करो। पाण्डव भी आपके पुत्र है। उनमें वैषम्य मत करो ।। 25 ।।

धृतराष्ट्र बोलता है :- अक्रूर आपने मंगलकर ठीक वाक्यों को मेरे लिये कहे हैं। उसको सुनकर मृत्युवश मानव को अमृत पीने जैसे होता है। मुझको कितना सुनने के बाद भी तृप्ति नही होता ।। 26 ।।

किन्तु अक्रूर सत्य और प्रिय आपकी बातें मेरे मन में स्थिर रूप से नही रहते। विद्युत के समान एक बार प्रकाश देकर अदृश्य हो जाते है। मैं पुत्र व्यामोह से बन्धित हूँ। मेरा हृदय वक्र होकर चलता है ।। 27 ।।

भूभार के हरण करने के लिये यदुकुल में अवतार लिये श्रीकृष्ण भगवान के संकल्प को कौन बदल सकता है। उसकी इच्छानुसार सारा होता है ।। 28 ।।

भगवान की इच्छा कहाँ बहती है। इसको समझना किसी के हाथ में नही होता है। वह भगवान अपनी इच्छा से अपने अधीन प्रकृति से सत्वादि गुणों का सृष्टि करता है। उनसे यह बड़ा प्रपंच का सृष्टि करता है। उनमें उनका नियामक होकर प्रवेश करता है। जीवों को उनके अनादि क्रम के अनुसार फल विभाजन कर देता है। अचिन्त्य लीला से यह संसार चक्र को चलाता है। वह परमात्मा को मैं नमन करता हूँ ।। 29 ।।

श्री शुकदेव जी कहते है :- अक्रूर धृतराष्ट्र के अभिप्राय को समझकर बन्धुओं से विदाई पाते हुये मथुरा के लिये प्रस्थान किये ।। 30 ।।

हे राजा परीक्षित सुनो :- अक्रूर पाण्डवों के बारे में धृतराष्ट्र के व्यवहार को श्रीकृष्ण के सामने विस्तृत रूप से बता दिया। श्रीकृष्ण का उद्देश्य भी उनको सुनाना था ।। 31 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में अड़तालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - उनचासवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - अस्ति और प्रास्ति ये दोनों कंस की रानी और जरासंध की पुत्री। कंस मरने के बाद वे दोनो अपने पिता के पास चली गयी ।। 1 ।।

अस्ति का अर्थ सदाकाल रहने वाली होता है। प्रास्ति का अर्थ ठीक तरह से रहने वाली होती है। सामान्यतः सारी स्त्री इसी प्रकार रहती हैं। जरासंध उनको इसी अर्थ में नामकरण किया होगा। किन्तु उनका अलग अर्थ आ गया था। पति कंस को खो जाने के बाद ये दोनो अमंगल बन गयी। पति के सर्वनाश के कारण अमंगला बनने वाले ये अपने अनिष्ट धर्म के कारण पिता का नाश करने के लिये अपने मैंके चली गयी। यह रुक्मिणीश विजय कारक का मत है। विजयध्वजी में इसका अध्यात्म अर्थ बताते है। अस्ति का अर्थ वस्तु ही नही या अज्ञान अथवा संशयाज्ञान। विपरीत ज्ञान प्रास्ति शब्द से होता है। अस्ति और प्रास्ति शास्त्र के बारे में संशय और विपरीत ज्ञान के संकेत होते हैं।

अधर्माभिज्ञानी कालनेमी रूप के कंस मर जाने के बाद यह संशय और विपरीत ज्ञान शैवशास्त्र के गुरु जरासंध के पास आये। जरा का अर्थ बुढ़पा होता है, जो यौवन को नष्ट करता है। यौवन से मिलने वाले बल ज्ञानादि को नष्ट करता है। इसके कारण वाला शैवागम भी जरा बन जाता है। उसमें संधा, उसमें दीक्षा रहने वाला जरासंध है। उसने जो ज्ञान का बोध करता था उसमें संशय विपरीत ज्ञान रह गये। वैष्णवागम के गुरु भीमसेन जरासंध को मार दिये। तब शैवागम का गुरु कोई नही रहा। शैवागम में केवल संशय और विपरीत ज्ञान रह गये।

पति के मरण से दुखित अस्ति और प्रास्ति अपने पिता मगध के राजा जरासंध के पास जाकर अपने पति के मरण के सारे वृतान्तों को बता दिये ।। 2 ।।

अपनी इस वार्ता को सुनकर जरासंध के दुख, द्वेष बढ़ गये। वह क्रोध से इस भूमि में यादव न रहे ऐसा कर डालूंगा। यह प्रतिज्ञा किया ।। 3 ।।

तेइस अक्षोहिणी सैन्य के साथ यादवों के राजधानी मथुरा को आकर चारों ओर से उसको घेरा लिया ।। 4 ।।

योग्य लोगों को मधु के समान आनन्द देने वाला मथुरा है। ऋग्वेद इत्यादि चारों वेद उसके चार द्वार है। उनसे प्रवेश कर उनको नाश करने के लिये शैवागम गुरु जरासंध अपने सैन्य के साथ आता है।

एक अक्षोहिणी सोलह अंको के स्थान वाली होती है। एक हाथी, एक रथ, तीन घोड़ा, पांच सैनिक ये चार अंग

वाले सैन्य को पत्ती कहते है। इसको तीन बार बढ़ाये तो सेनामुख उससे त्रिगुण करे गुल्म, इस अनुपात से गणवाहिनी पृतना, चमू, आनिकिनी होते हैं। आनिकिनी के दस गुण अक्षोहिणी होता है। 21870 हाथी 21870 रथ 65610 घोड़ा और 109350 सैनिक वाला सैन्य समूह अक्षोहिणी कहा जाता है। ऐसे तेइस अक्षोहिणी सैन्य लेकर जरासंध आया था।

बढ़ते आ रहे समुद्र के समान सैन्य को लेकर जरासंध मथुरा को घेरा डाला है। इससे प्रजागण भयभीत हो गये हैं। भूभारहरण के लिये मानव जन्म लिये हुये भगवान इसको देखकर देशकाल के अनुसार अपने अवतार कार्य को कैसे करे इसके बारे में चिन्तन करने लगे ।। 5-6 ।।

जरासंध ने जो लाया है इस सैन्य को सारे राजाओं के आँखों के समक्ष मैं इसका संहार कर डालता हूँ ।। 7 ।।

अनेक अक्षोहिणी सैन्य में रहने वाले पदाति, घोड़ा, रथ, गज वाले सैन्य को संहार करता हूँ। किन्तु जरासंध को अभी नही मारना है। वह जीवित रहा तो क्रोध से और बड़े सैन्य को ले आयेगा। उनमें रहने वाले राक्षसों को भी मारना है ।। 8 ।।

मैं इसी के लिये अवतार लिया हूँ। इस भूमि के भार का हरण करना है, सज्जनों की रक्षा करते हुये दुष्टजनों का नाश के लिये ही मैं अवतार लिया हूँ ।। 9 ।।

अन्य वराहादि अवतार मैं धर्म रक्षा के लिये लिया हूँ। उस समय अधर्म का नाश करते आया हूँ ।। 10 ।।

श्रीकृष्ण इस प्रकार विचार कर रहे थे। इतने में जरासंध वन उपवन से युक्त सुन्दर मथुरा को घेरा लिया ।। 11 ।।

जरासंध मथुरा के ऊपर आक्रमण करने के पहले श्रीकृष्ण को अपनी राजधानी पाटिलीपुत्र में (आज का पाटना) से ही श्रीकृष्ण को मारना चाहता था। शिव के वर से उसने एक गदा को प्राप्त किया था। वह गदा कितने दूर बोलकर मंत्रोच्चार के बाद फेंकने से उतना दूर जाकर निश्चित वस्तु पर गिर जाता था। इसके लिये जरासंध नारद से पूछा मथुरा वहाँ से कितना दूर है। नारद जी उनसे कहे **एक शतम्** इसका अर्थ एक सौ अथवा एक सौ एक ऐसे दोनो अर्थ होते है। जरासंध एक सौ समझ कर अपनी गदा को सौ बार घुमाकर फेंक दिया। गदा सौ योजन जाकर जहाँ जरासंध की माँ बैठी थी उसके ऊपर गिर गयी, और उसके आघात से जरासंध की माँ मर गई। शिव से प्राप्त विशेष शक्ति वाला गदा व्यर्थ हो गया। इसी कारण जरासंध स्वयं उठकर श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने मथुरा आ गया।

दुबुद्धि वाले कलिंग, चेकितान, दन्तवक्र, विधूरथ, उल्मुक, वेणुधारी, साल्व ये सारे जरासंध के आज्ञानुसार पूर्व के द्वार को घेरा लिये। विन्द, अनुविन्द नाम के अवन्ति राजा, दरद, एकलव्य, बाल्हिक, पंचनद ये सारे राजा दक्षिण के द्वार को घेर लिये। महाबलिष्ठ पौण्ड्रक, युधमन्यु, बृहत्क्षत्र, शल्य, भूरिश्रव, उत्तमौज, रुक्मि, द्रुम, सुदक्षिण ये सारे जरासंध से नियुक्त होकर पश्चिम द्वार को घेर लिये ।। 12-13-14-15-16 ।।

द्रुपद, शिशुपाल, त्रिगर्त, जयद्रथ, शकुनी, सोमदत्त, कुलिंद ये सारे अहंकार से युक्त होकर जरासंध के साथ उत्तर द्वार को घेर लिये ।। 17-18 ।।

बढ़ने वाले समुद्र के समान जरासंध का सैन्य चारों द्वारों को घेर कर शंखनाद करते हुये, गर्जन करते हुये, नगाड़ों को बजाये। प्रलयकाल के समुद्र के घोष के सामन गर्जन करने वाले ध्वनि को सुनकर श्रीकृष्ण धैर्य न हारे। सियार की आवाज से क्या सिंह घबरा जाता है ? ।। 19-20-21 ।।

इसी समय आकाश में सूर्य के समान प्रकाश देने वाले दो रथ श्रीकृष्ण के सामने खड़े हो गये। उनमें दो सारथी थे, वे रथ युद्ध सामग्री से भर गये थे ।। 22 ।।

भगवान श्रीकृष्ण की इच्छा से उनके प्राचीन दिव्य आयुध आये थे। उनमें एक हजार दांत वाले शत्रु भयकर, मनोहर सुदर्शन चक्र भी था ।। 23 ।।

उसके साथ कौमोदिकी नाम की गदा, तीन जगह मोड़ वाला शार्ङ धनु नाम के श्रेष्ठ धनुष भी आया था ।। 24 ।।

तीक्ष्ण धार वाला नन्दक नाम का खड्ग, सुन्दर नाल वाले छोटे छोटे अक्षय बाण उनमें थे ।। 25 ।।

रथ को शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प, बलाहक नाम के चार घोड़े रथ को बांधे थे। बलराम को दृढ़ और वजनदार हल और मुसल आये थे ।। 26 ।।

इन शस्त्र और रथ घोड़े को देखकर श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई बलराम को कहते हैं।। 27 ।।

भाई देखो आपके शरण में रहने वाले यादवों के इस विपदा को देखकर देवगण रथ, आयुध, घोड़े और सारथी को भेजे हैं ।। 28 ।।

हे भाई आप इस रथ में चढ़कर शत्रु सैन्य को मार डालो। हमारे लोगों के कष्ट को दूर करो। सज्जन लोगों के लिये आराध्य हमारा अवतार इसी उद्देश्य से हुआ है न ? ।। 29 ।।

तेइस अक्षोहिणी वाला इस सैन्य को क्षण में नाश करेंगे। आपस में इस प्रकार बोलते हुये राम कृष्ण कवचों को धारण किये। कई यादवों के साथ कवचधारी होकर मथुरा से बाहर आये ।। 30-31 ।।

बाहर आते समय वहाँ रहने वाले यादवों के चारों द्वारों को बन्द करते हुये द्वारका की रक्षा करने का आदेश दिये ।। 32 ।।

राजा सुनो :- श्रीकृष्ण वसुदेव, निशठ, कृतवर्म, उद्धव को पूरब द्वार से बाहर भेजे। उग्रसेन, सुदामा, पृथु, विपृथुओं को दक्षिण द्वार से बाहर को भेजे ।। 33-34 ।।

सात्यकी, गद, प्रसेन, अक्रूरों को पश्चिम द्वारा से बाहर भेजे। ये सारे युद्ध के कष्ट को सहन करने वाले हैं ।। 35 ।।

महापराक्रमी श्रीकृष्ण रथ में बैठ गये। दारुक सारथी रथ चलाने लगा। श्रीकृष्ण आयुधों को अपने हाथ में लिये। बलराम दूसरे रथ पर चढ़े दोनो उत्तर द्वार से बाहर आये। महाशक्तिशाली, दैत्य दानवों को भय करने वाले महाशंख को बजाये। श्रीकृष्ण सारथी दारुक को कहते हैं ।। 37 ।।

हे सारथी दारुक :- जरासंध जहाँ है वहाँ हमारे रथ को ले चलो। युद्ध में अहंकार रखने वाले उन सारे राजाओं को बाण से मर्दन करूँगा ।। 38 ।।

श्री शुकदेव जी कहते है :- भगवान श्रीकृष्ण से इस प्रकार आज्ञा पाकर दारुक घोड़ों को जोर से चलाया। शत्रुवीरों को नाश करने वाले भगवान श्रीकृष्ण सिंहनाद किये ।। 39 ।।

बलराम भी शंख बजाकर सिंहनाद किये। उसकी ध्वनि से शत्रु सैन्य का हृदय पिघल गया। वे कांपने लगे ।। 40 ।।

पूरब द्वार में यादव उन लोगों के साथ बहुत बड़ा युद्ध किया। उनमें से वसुदेव इत्यादि चार लोग कलिंग इत्यादि आठ लोगों से जो युद्ध किया वह अद्भुत था ।। 41 ।।

दक्षिण द्वार में श्रीकृष्ण के शंखध्वनि से उत्साह पाकर युद्ध करने वाले उग्रसेन इत्यादि यादवों को विन्द, अनुविन्द से घमासान युद्ध हुआ ।। 42 ।।

पश्चिमी द्वार में दृढ़ धनुर्धारि सात्यकी इत्यादि यादव पौण्ड्रक नाम के राजाओं से रोमांचक युद्ध हुआ ।। 43 ।।

हे राजा परीक्षित सुनो :- इस लोक में साम्राज्य (युद्ध में मरे तो) परलोक में स्वराज्य को पाने के लिये यदुवीर इन्द्र के समान परक्रमियों के साथ मार खाने के बाद भी युद्ध से पीछे नही हटे ।। 44 ।।

तीनों लोकों के लिये प्रिय यादव श्रेष्ठ श्रीकृष्ण महाभयंकारी शिशुपाल और जरासंध जहाँ थे। वह आ गये ।। 45 ।।

सैन्य से, रथ, ध्वज, अश्व, सारथी से युक्त होकर आये हुये राम कृष्ण को देखकर जरासंध मेघ सूर्य को जैसे घेर लेता है, आग को राख जैसे ढ़क देते है वैसे अपने सैन्य समूह से बलिष्ठ राम कृष्ण को घेर लिये ।। 46 ।।

घर के छत के ऊपर गोकुलों के ऊपर और वृक्षों के ऊपर चढ़कर मथुरा वाले गोप-गोपियों ने राम कृष्ण के गरुड़ध्वज युक्त और तालध्वजयुक्त रथों को न देखते हुये दुःखित हो गये ।। 47 ।।

शत्रु सैन्य को मेघ के समान अपने सैन्य के ऊपर बाणों की वृष्टि करते हुये देखकर देवासुर से पूजित भगवान अपने शार्ङ्ग धनु से टंकार किये ।। 48 ।।

श्रीकृष्ण बाण को लेकर धनुष में चढ़ाकर शत्रु समूह के ऊपर निरन्तर छोड़ते हुये शत्रु के रथ, गज, अश्व, पदाति का संहार करते हुये आग के समान शत्रु सैन्य में संचार किये ।। 49 ।।

दैत्य नाशक, महाध्वनि वाला, चन्द्र के समान शुभ्र पांचजन्य शंख को बजाते हुये श्रीकृष्ण यादवों को उत्साहित किये ।। 50 ।।

कर्ण कठोर उस आवाज को सुनकर शत्रु राजाओं हतोसाहित हुये। यादवों ने अपने आयुधों से उनको मारते रहे ।। 51 ।।

चारो द्वारों में घेरे हुये क्षत्रिय राजाओं को यादवों ने पराभव किये। श्रीकृष्ण के धनुष्टंकार से प्रोत्साहित होकर यादव अपने बाण समूह से शत्रु सैन्य को नष्ट करने लगे। क्षत्रियों में केवल राजा रहे, केवल उनके रथ रहे, अन्यों का पूर्ण नाश किये ।। 52 ।।

इसको देखकर शिशुपाल श्रीकृष्ण को आह्वान करते हुये हे कृष्ण खड़े हो जाओ बोलते हुये अपने धनुष से तीक्ष्ण बाणों से मारने लगा ।। 53 ।।

श्रीकृष्ण उसके उत्तर रूप में अपने तीक्ष्ण बाणों से मारते हुये शिशुपाल के सामने आ गये ।। 54 ।।

शिशुपाल अपने भारी पांच बाणों में से चार से चारों घोड़ों को एक से सारथी को मारे ।। 55 ।।

पुनः जल्दी से दस बाणों को श्रीकृष्ण के ऊपर प्रयोग किया। अट्टहास से सिंहनाद किया ।। 56 ।।

उसको देखकर श्रीकृष्ण शिशुपाल को भला बोलते हुये बोले। शिशुपाल तुम शूर हो, बलिष्ठ हो किन्तु दुर्बुद्धि से यहाँ आये हो। अब युद्ध में मेरा पराक्रम देखो ।। 57-58 ।।

ऐसे बोलते समय वहाँ के राजाओं ने श्रीकृष्ण के ऊपर अपने तीक्ष्ण बाणों को फेंके ।। 59 ।।

श्रीकृष्ण उन सारे बाणों को काटते हुये पांच बाणों से शिशुपाल के रथ के घोड़े और सारथी को यम सदन के लिये भेज दिये ।। 60 ।।

पुनः तीन तीन बाणों से प्रत्येक राजा के छाती, मुहँ और बाल के ऊपर बाण से मारे ।। 61 ।।

तीस राजाओं के तीस धनुष को एक ही बाण से काट डाले ।। 62 ।।

हँसते हुये शिशुपाल के धनुष को टुकड़े टुकड़े करते हुये उसके ध्वज, किरीट, छत्र को नष्ट किये ।। 63 ।।

दस शूल को अपने शार्ङ धनु में जोड़कर कान तक खींचकर शिशुपाल के ऊपर छोड़ दिये ।। 64 ।।

इस प्रकार श्रीकृष्ण के बाण से क्षत-विक्षत होकर जरासंध का सैन्य प्रलय मारुत से गिरते हुये वृक्ष के सामन हो गये। उनके अश्व, रथ और सारथियों का नाश होने के कारण उनके रक्षक कोई नही रहे ।। 65 ।।

बाणों को छोड़ते हुये, शंख बजाते हुये, धनुष टंकार करते हुये भगवान श्रीकृष्ण जरासंध

के सैन्य को नाश करते हुये आग के मशाल जैसे श्रीकृष्ण महापराक्रमी रहे ।। 66 ।।

शत्रुसैन्य में इनके बाण के आघात के कारण हाथी मर कर गिरा गये है घोड़े के गले कट गये है। रथ, ध्वज, घोड़े और सारथी उनके उपयोग करने वाले रथिक मर कर गिर गये पदाति का हाथ-पांव कटकर सिर के बिना रणरंग में शवों का ढेर लग गया है ।। 67 ।।

टुकड़े-टुकड़े हुये पदाति गज-अश्व के शरीर से बहने वाले रक्त नदी बन गया है। उनमें सैनिकों का हाथ सांप जैसे लगते हैं। मानवों के सिर कछुआ के जैसे दिखते हैं। मरे हुये हाथी बीच में का द्वीप बने है। मरे हुये घोड़े मगर जैसे लग रहे हैं ।। 68 ।।

उस रक्त के जल में कटा हुआ सैनिकों का हाथ पांव मछली बने है। सिर का बाल काई बना है। धनुष लहर बने है। आयुध किनारे के वृक्ष बने है। राजाओं के गले में शोभने वाला रत्नहार बालू और पत्थर बना है। लाल जल और भँवर से वह नदी भयानक बन गयी है ।। 69 ।।

अपरिमित शक्ति वाले बलराम मद से उन्मत्त शत्रुओं को अपने मुसल से मार-मार कर जीव से मार दिये। धैर्य वाले क्षत्रियों को मनोरंजन करते हुये भीरु क्षत्रियों को डराते हुये युद्धरंग में रक्त की नदी बहाये ।। 70 ।।

हे राजा समुद्र के समान विस्तर और भीकर जरासंध के अपार सैन्य को वसुदेव के दोनों पुत्र नष्ट कर दिये। जगत के स्वामी, उनको यह केवल खेल था ।। 71 ।।

अनन्तगुणपूर्ण वाले भगवान, लीला से सृष्टि का स्थिति पालन और संहार करते हैं। उनके लिये यह शत्रु सैन्य का नाश कार्य बड़ा नही है। वे मानव रूप धारण कर करने वाला लीला का वर्णन करना पड़ता है ।। 72 ।।

अपने सारे सैन्य नष्ट होते देखकर अन्य राजा वहाँ से भाग गये। तब महाबलिष्ठ जरासंध बलराम के सामने आता है ।। 73 ।।

दो पहाड़ के समान देखने वाले जरासंध और बलराम मद से मत्त महागजों के समान आमने-सामने होकर परस्पर मारे ।। 74 ।।

जरासंध आक्रोश से अपने बड़े गदा को सौ बार घुमाकर बलराम की छाती के ऊपर मारा ।। 75 ।।

पर्वत के शिखर के समान अपने ऊपर आ रहे उस गदा से बलराम अपने को बचाते हुये हँसते हुये खड़े रहे ।। 76 ।।

जरासंध के गदा को व्यर्थ करने के बाद बलराम क्रोध से अपने मुसल से जरासंध के रथ को चूर-चूर किये, सारथी को मार दिये। महाबलिष्ट जरासंध विरथ हो गया। उसका सैन्य नाश हो गया है। शरीर में प्राण मात्र रहा है। ऐसे जरासंध को एक सिंह जैसे दूसरे को पकड़ता है वैसे

बलराम ने पकड़ लिया ।। 77-78 ।।

इस प्रकार जरासंध के पूरे सैन्य को बलराम नाश करते हुये जरासंध को वरुण पाश से बाँध कर श्रीकृष्ण के सामने लाये। श्रीकृष्ण शस्त्ररहित जरासंध को पाश से मुक्त कर छुड़वा दिये। वह जरासंध और सैन्य लेकर आये तो उससे भूभारहरण कार्य सरल होगा इस विचार से श्रीकृष्ण ने जरासंध को छोड़ दिये ।। 79 ।।

वीर, शूर, धीर नामों से पुकारे जाने वाला जरासंध श्रीराम कृष्ण से मुक्त होकर आने के बाद लज्जा से किसी को मुँह न दिखाते हुये तप करने के लिये जंगल के रास्ते को पकड़ लिया। किन्तु अन्य राजाओं ने उससे रास्ते में भेंट कर आग्रह से वापस राजधानी को ले आये ।। 80 ।।

इस प्रकार जरासंध अपने सैन्य को खोने के बाद श्रीकृष्ण कृपा और उपेक्षा से छोड़ने के बाद दुःखित होकर मगध राज्य को वापस आया ।। 81 ।।

श्रीकृष्ण अपनें सैन्य को नाश न होने देते हुये शत्रु सैन्य का नाश किये। जरासंध के बचे हुये धन, स्त्री, कोष, वाहन को अपने वश में ले लिये ।। 82 ।।

श्रीकृष्ण के ऊपर देवताओं ने फूल की वृष्टि किये। मथुरा की प्रजा, सूत, मागध बन्दियों ने सन्तुष्ट होकर, भयभीत होकर श्रीकृष्ण की विजय गाथा को गाये ।। 83 ।।

प्रभु श्रीकृष्ण जब विजयी होकर पुरप्रवेश किये तब शंख दुंदुभी, भेरी, तूर्य, वेणु-वीणा, मृदंग सुन्दर ध्वनि किये ।। 84 ।।

मथुरा के रास्तों को जल सिंचन से शुद्ध किये, पताका से श्रृंगार किये। पण्डितों ने वेद घोष किये। सारे लोग अपने घरो तोरणों से अलंकृत किये ।। 85 ।।

नगर की नारियों ने प्यार से खिले हुये फूल के समान आँखों से श्रीकृष्ण को देखते हुये फूल, दही, लाई को श्रीकृष्ण के ऊपर बरसाये ।। 86 ।।

श्रीकृष्ण रणभूमि से अपराधियों को, वीरों के आभूषणों को, यदुराजा उग्रसेन को समर्पित किये ।। 87 ।।

यह जरासंध का पहले युद्ध का समाचार है। उसका दूसरा युद्ध गोमन्त पर्वत के पास होता है। भागवत में उसको बावनवाँ अध्याय में कहते हैं। पचास और इक्यावन अध्याय में तीसरा और चौथा युद्ध का वर्णन है। हरिवंश और भागवत में इस क्रम में थोड़ा सा अदल-बदल है।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में उनचसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पचासवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते है - जरासंध पिछले युद्ध में हुई पराजय को दिन-रात याद करता रहा। दुःख का अनुभव करते हुये तीन महीने में अन्य राजाओं को मिलते हुये मत्स्य, मालव, चेदि, कुरु, पांचाल, केरल राजाओं को बुलाकर उनके सहयोग से युद्ध की सिद्धता की ।। 1-2 ।।

कुलिंद, कुन्तल, अवन्ती, काशी, गांधार, सृंजय, कलिंग, केकया, आन्ध्र, दशार्ण, वंग, सैंधव, माद्र, त्रिगर्त, सौवीर, पार्वतीय इत्यादि राजाओं को जमा कर पुनः तेइस अक्षोहिणी सैन्य को तैयार किया ।। 3-4 ।।

गज, अश्व, रथ और सैन्य वाले राजाओं को जबरदस्ती से अपना कर उनके साथ मगध पार करते हुये पश्चिम की दिशा में प्रयाण किया ।। 5 ।।

मथुरा को बहुत देर रात में आकर यमुना तट पर राजाओं के साथ वास किया ।। 6 ।।

सूत, मगध, बंदियों के स्तुति को सुनते हुये आराम से विश्राम किया। इधर बलिष्ठ जरासंध का युद्ध के सिद्धताओं के बारे में सुनते हुये श्रीकृष्ण ने उसी रात बलराम, वसुदेव, उद्धव, अक्रूर, सात्यकी, आहुक, सारण इत्यादि लोगों से मिलकर मंत्रालोचना की ।। 7-8 ।।

रात के मंत्रालोचना में आगे करने का कर्तव्य कर्म के बारे में निर्धारण किये। उस प्रकार सूर्य उदय के पहले अपने सेनापतियों को बुला कर चतुरंग सैन्य को तीन भाग करते हुये जरासंध के सैन्य के ऊपर युद्ध करने चले गये ।। 9-10 ।।

बलराम कृतवर्म, गद और सारय को जरासंध के शिविर के बाँये ओर से आक्रमण करने के लिये भेजे ।। 11 ।।

सात्यकि, विपृथु और उद्धवों को दाहिने बाजू से आक्रमण करने के लिये भेज दिये ।। 12 ।।

स्वयं श्रीकृष्ण रथ और सैन्य से युक्त होकर जरासंध के सामने उसके बड़े सैन्य का सामना किये ।। 13 ।।

जरासंध का सैन्य बहुत रथ, हाथी, गज, पादतियों से भरा हुआ था। जरासंध ने समझा

था कि जमुना तट पर कोई आपत्ति नही रहेगी। इस भाव से वे निश्चिंत होकर सोये थे। वे सुबह की गहरी नींद में अपने को भूल गये थे ।। 14 ।।

सूर्य उदय होकर पर्वत के ऊपर चढ़ रहे हैं। अन्धेरा अदृश्य हो रहा है। पक्षियों का कल-कलरव आरम्भ हो रहा है ।। 15 ।।

कमल के फूल खिल रहे है। भौरे गुंजन कर रहे हैं। इतने में श्रीकृष्ण जरासंध के अतिभयंकर सैन्य में प्रवेश किये ।। 16 ।।

जरासंध के सैनिक घबरा गये। वे घोड़े को अभी लगाम नही डाले हैं। हाथियों के ऊपर हौद नही चढ़ाये गये हैं ।। 17 ।।

पदाति लोगों ने अपने बाल को नही बांधे थे, कवच नही पहने थे। घुड़सवार, रथिक अभी नही चढ़े थे, हाथों में आयुधों को नही लिये थे ।। 18 ।।

रथों को घोड़ों से नही जोड़े थे, ध्वज को नही बांधे थे। जरासंध के सैन्य अनिरीक्षित रूप से तीनों बाजू से आक्रमण किया हुआ सैन्य को देखकर घबरा गये। क्या करना उनको मालूम नही हुआ ।। 19-20 ।।

कई लोग भाग गये। कई भागते हुये गिर गये, और कई को डर कर शत्रुओं का सामना करने लगे ।। 21 ।।

और कई लोग कवच पहनते ही थे इतने में बाण लगकर मर गये। कई सैनिकों के हाथ-पांव कट गये। और कई लोग क्रोध से लाल-लाल आँखों से शत्रु को देखते हुये सामना करने लगे ।। 22 ।।

कई पराक्रमी लोग बिना आसन वाले घोड़े पर चढ़कर युद्ध प्रारम्भ किये। कई बिना लगाम वाले घोड़े को वैसे ही चलते हुये युद्ध में भाग लेकर कीर्तिशाली बने ।। 23 ।।

राजाओं ने घबराकर नींद से उठकर अपने सैनिक का मरण होम को देखते हुये युद्ध सामग्री के बिना ही युद्ध करने लगे ।। 24 ।।

कई लोग राजा के शिविर को छोड़ कर अरण्य में भाग गये। कई अक्रोश से जरासंध के पास जाकर जय हो का उद्घोष किये ।। 25 ।।

श्रीकृष्ण एकमात्र अपने रथ से शत्रु सैन्य के सामने के भाग में घुस गये। शस्त्र लेकर युद्ध करते हुये अनेक वीरों को मार दिये ।। 26 ।।

बलिष्ठ बलराम बड़े सैन्य से बाँये तरफ से जरासंध के सैन्य का मर्दन करने लगे ।। 27 ।।

जैसे किसान अपने हल से भूमि को चीरकर मिट्टी के ढेले को फाड़ कर भूमि में बीज को बो कर कृषि करता है वैसे बलराम युद्ध भूमि में अपने हल से शत्रुओं के हृदय को चीरकर शत्रुओं के सिर नाम के ढेले को अपने मुसल से

चूर कर यश नाम के बीज को बो कर श्रीकृष्ण के प्यार नाम के अंकुर पाये।

महाबाहुशाली सात्यकि बड़ी चतुरंग सैन्य के साथ दाहिने ओर से आक्रमण करते हुये सैन्य का नाश किये ।। 28 ।।

जरासंध से रक्षित सैन्य इस आक्रमण से भयभीत होकर दसों दिशाओं में जहाँ रास्ता मिलता है वहाँ भाग गये ।। 29 ।।

सात्यकि उनका पीछा करते हुये पाँच योजन तक उनको भगाकर जयशाली होकर वापस आये ।। 30 ।।

श्रीकृष्ण तोमर, अंकुश से युक्त बड़े-बड़े हाथी, अनेक घोड़े, शस्त्र, ध्वज युक्त रथ इन सारे जरासंध के साधनों को अपने सैनिकों के साथ मथुरा भेज दिये ।। 31 ।।

इस प्रकार इस युद्ध में लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण सोना-चाँदी से बनाये हुये साधन, छत्र, चामर किरीट और अनेक तरह के वस्त्र, केयूर कुण्डल और रेशम के बहुत से कपड़े पा लिये ।। 32 ।।

श्रीकृष्ण के आदेशानुसार बलराम युद्ध में अपनाये हुये जरासंध के कोष वाहन डेरा, आयुध, आभरण इत्यादि सकल साधनों को राजा उग्रसेन को समर्पित किये ।। 33 ।।

जरासंध का सैन्य इस प्रकार बार-बार युद्ध करता रहा। श्रीकृष्ण उसको हराते रहे है। यह वेद विद्या के ऊपर होने वाला अवैदिक मत का आक्रमण है। अन्त में वे हार जाते है। यही इस युद्ध का सन्देश है। मथुरा को नाश करने के लिये जरासंध जो प्रयत्न करता था वह प्रयत्न उपनिषदों को गलत अर्थ बोल कर नाश करने का प्रयत्न के समान है। उपनिषद में श्रीकृष्ण का कोई प्रतिपादन नही है। बोलने जैसे मथुरा में श्रीकृष्ण नही है। इसको सिद्ध करने के लिये जरासंध के सैन्य प्रयत्न करते थे। भूमि में यादव न रहे यह जरासंध का प्रयत्न था। वैसे ही इस जगत में वैष्णव न रहे यह दुर्वादि का प्रयत्न रहता है। इस प्रकार जरासंध का तीन युद्ध होते रहे और जरासंध अपयश पाता रहा।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में पचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - इक्यावनवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते है - श्रीकृष्ण से पराजित जरासंध श्रीकृष्ण के साथ और युद्ध करना चाहता था। किन्तु सैन्य बल कम था। उसको बढ़ाने के लिये सहायता के लिये बलिचक्रवर्ती के पुत्र बाणासुर को देखने श्रोणितपुर को जाता है ।। 1 ।।

अपने मित्र जरासंध युद्ध में हार कर अपने पास बचे हुये राजाओं के साथ आ रहा है। यह समाचार सुनकर आगे बढ़ कर बाण उसका स्वागत किया ।। 2 ।।

अलंकारित हाथी, घोड़ा, रथ, सेवक, वेश्याएँ, सूत, मागध, बन्दी, ध्वज-पताका, छत्र चामर, मंगल वाद्य, सोने के तोरण, सुन्दर दीप, कलश, दर्पण के साथ हजार हाथों वाला बाणासुर जरांसध का स्वागत किया। दोनों परस्पर मिलकर हाथ पकड़ कर परस्पर अपने मन में क्या है इसको जानने वाले होने के कारण परस्पर सत्कार किये। बाद में सभा में बणा को उद्देश्य कर जरासंध भाषण करता है ।। 3-4-5-6 ।।

हे दानवश्रेष्ठ, अधर्माचरण करने वाला, दुरात्मा, वह गाय चराने वाले रात में अपने प्रताप से हमको वंचित किया ।। 7 ।।

हमारे हाथी, घोड़ा, युद्ध सामग्री से भरा हुआ रथ को अपहार किया ।। 8 ।।

जरासंध की ये बात सच नही है। श्रीकृष्ण रात में युद्ध नही किये। सूर्य उदय के समय में सूर्य जैसे अन्धकार का नाश करता है वैसे भगवान श्रीकृष्ण ने जरासंध के सैन्य को नाश किये। सूर्योदय तक सोना जरासंध की गलती है। उसके लिये उसको दण्ड भोगना पड़ा।

श्रीकृष्ण के साथ मैं द्वन्द्व युद्ध करना चाहा। तब इन राजाओं ने द्वन्द्व युद्ध करने नही दिया ।। 9 ।।

इसी कारण हम वहाँ से आपके पास आये हैं। भाई अब आप ही हमारी सहायता करें ।। 10 ।।

जरासंध के इन बातों को सुनकर बाणासुर उसको अपने नगर के अन्दर राजघर को ले

चला। उनको और उनके साथ आये हुये राजाओं को बड़ा सत्कार किया ।। 11 ।।

भोजन, स्नान, शयन, गन्ध, तांबूल इत्यादि उपचारों से बाणा उनका सत्कार किया ।। 12।।

भोजन और विश्रान्ति के बाद जरासंध बाण का सम्पद वैभव का दर्शन किया। अलंकृत होकर सिंहासन पर बैठा हुआ जरासंध को बाणासुर कहता है ।। 13 ।।

हे जरासंध सुनो :- मैं झूठ नही बोलता। मेरे हाथी, घोड़े, यह राज्य, ये प्रजा और जो जो मेरा है वह सारा आपका है। ।। 14 ।।

श्री शुकदेव जी कहते है :- इस प्रकार कह कर जरासंध को बणासुर साठ हजार हाथी, एक लाख रथ का सैन्य और दस लाख मनोवेग वाले, वायुवेग वाले, घोड़े को दिया ।। 15 ।।

माया युद्ध जानने वाले अपने समान तीन सौ प्रसिद्ध दानवों को जरासंध के वश में दिया ।। 16 ।।

हे राजा अनेक तरह के पालकी, छत्र, व्यंजन, आभूषण, वस्त्र-पात्र, शैया-आसन ऐसे असंख्य वस्तुओं को दिया ।। 17 ।।

बाणासुर अपने कुभाण्ड और कूपर्ण नाम के मंत्रियों को जरासंध के सहायता के लिये दे दिया ।। 18 ।।

लयकाल में सुर-असुर, मानव-दानव सबको संहार करने में शक्त श्रीकृष्ण के सामने ये कुभाण्ड, कूपर्ण क्या कर सकते हैं ।। 19 ।।

श्रीकृष्ण के सामर्थ्य के ज्ञान न रहने वाले इन राजाओं ने जरासंध के आज्ञा से पुनः श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने के लिये तैयार हो गये ।। 20 ।।

जरासंध शिव भक्तों के गुरु थे। बाणा शिव भक्त होने के कारण उसका शिष्यत्व लिया था। शिष्य के साथ सहायता लेना गलत नही है। महास्वाभिमानी जरासंध और किसी की सहायता नही चाहता है। अपनी आज्ञा से सारे राजाओं को युद्ध के लिये बुलाता था।

बाणा के अनुज्ञा के साथ जरासंध अनेक राजा और चातुरंग बल समेत शोणितपुर से चल कर थोड़े दिन के बाद मथुरा नगरी को घेरा लिया ।। 21 ।।

नगर के द्वार को बन्द करते हुये प्राकार, उद्यान, कुएँ इत्यादि मथुरा के अलंकार भूत साधनों को कुल्हाड़ी, फलुहा इत्यादि साधनों से नाश करने लगा ।। 22-23 ।।

जरासंध को पुनः आकर नष्ट करने का दुष्ट कार्य में जुड़ा हुआ देखकर राम कृष्ण का क्रोध और बढ़ गया। वे युद्ध की सिद्धता के लिये नगाड़ा बजाये। आयुध और युद्ध सामग्री के साथ सिद्ध

हुये रथ, अश्व, गज और सैन्य के साथ सात्यकि, कृतवर्म, उग्रसेन, गद, आहुक और वसुदेव के साथ निर्भय होकर मथुरा से बाहर आये। लगता था दो सिंह उग्र रूप धारण कर बाहर आये है ।। 24-25-26 ।।

कमल के समान आँख वाले श्रीकृष्ण मथुरा नगर के महाद्वार से बाहर आकर पांचजन्य नाम के महाशंख से ध्वनि किये ।। 27 ।।

यादव और राजाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ। बाणासुर के मंत्री कुभाण्ड कूपर्ण बड़े सैन्य के साथ यादव के साथ माया युद्ध किये। वे माया युद्ध में निपुण थे और पराक्रमी थे ।। 28-29 ।।

श्रीकृष्ण अपना सैन्य मायायुद्ध से त्रस्त हो रहा है इसको देखकर विज्ञानास्त्र से एक ही निमिष में माया को हटा दिये। युद्ध कर रहे सात्यकि कृतवर्म को यह आदेश दिये ।। 30 ।।

आप लोग युद्ध करने में रासिक है। दुष्ट दर्प वाले इन दैत्यों के युद्ध करने में आप अपनी रासिकता को दर्शाये। श्रीकृष्ण के इन बातों को सुनकर महाबलिष्ठ सात्यकि और कृतवर्म घनघोर युद्ध करने लगे ।। 31 ।।

हे राजा परीक्षित सुनो :- भगवान श्री कृष्ण अपने एक ही धनुष से अनेक राजाओं से युद्ध किये। जगत के स्वामी श्रीहरि को यह कोई आश्चर्य की बात नही है ।। 34 ।।

हे राजा रणांगण में अनेक हाथी अपने सूंड़ कटने से गिर कर मर गये। घोड़े के सिर कट गये थे ।। 33 ।।

बन्धन कटने से रथ टुकड़े-टुकड़े होकर भूमि पर गिरे थे ।। 34 ।।

सैनिक रक्त से लतपथाते हुये हाथ पांव कटने के बाद मूल को कटा हुआ वृक्ष के समान गिरते रहे ।। 35 ।।

श्रीकृष्ण के शार्ङ धनुष से निकले गिद्ध और मोर के पंख लगे हुये बाण एक से दस, दस से सौ बनते हुये एक घोड़े के ऊपर सौ, रथ के ऊपर हजार, हाथी के ऊपर दस हजार बनकर शत्रुओं को मारते रहे। उन बाणों के नाम थे, नतपर्व, स्वर्णपुंख, अयोमुख और तैलाक्त ।। 36-37 ।।

श्रीकृष्ण पादति के ऊपर दस बाण, घोड़ के ऊपर सौ, रथ के ऊपर हजार और हाथी के ऊपर दस हजार बाण मारे। श्रीहरि के धनुष से निकला हुआ एक बाण इस प्रकार दशक के गुण में वृद्धि होकर शत्रु सेना के ऊपर समुद्र के तरंग जैसे विस्तार होते थे।

श्रीकृष्ण के इन बाणों से अपना चतुरंग सैन्य नष्ट हो रहा है। इसको देखकर जरासंध अपने वराह चिन्ह युक्त ध्वज वाला रथ से बलराम के सामने आ गया ।। 38 ।।

बलराम के बड़े ताल वृक्ष के चिन्ह वाले ध्वज को दूर से देखते हुये बलराम को पहचान कर पिछले युद्ध में उसने मारा हुआ मार को याद करते हुये अपने गदा को जोर से घुमाते हुये सामने आया ।। 39 ।।

बलराम मैं मेरी इस गदा को तुम्हारे ऊपर फेंकने के पहले तुम अपने मुसल को उठा लो, नही तो ये गदा तुम्हारे ऊपर गिरा तो तुम उसको सहन नही सकते। तुम उस मुसल से युद्ध करना चाहते हो न। आओ तुम अपने बाहुबल को हमें दिखाओं ।। 40 ।।

जरासंध की इन बातों को सुनकर बलराम का आक्रोश बढ़ गया। आँख लाल हो गयी। प्रलयकाल के यम के समान बलराम अपने मुसल को उठा लिये ।। 41 ।।

शत्रु के दर्प को मिटाने वाले धुआँ को उगाने वाला मुसल को बलराम एक हजार बार घुमाकर जरासंध के ऊपर फेक दिये। सिंह के समान गर्जना की ।। 42 ।।

बलराम के हाथ से आया हुआ मुसल जरासंध के रथ घोड़े और सारथी का सत्यानाश किया। जरासंध उससे बाल बाल बचा ।। 43 ।।

पहाड़ के शिखर के सामान बड़े लोहे की गदा को उठाकर अपने कंधे के ऊपर रख कर जरासंध पांव से धरती को हिलाते हुये बलराम के नजदीक आ गया ।। 44 ।।

रथ के बिना पांव के बल से चलकर आने वाले जरासंध को देखकर बलराम अपने रथ को छोड़कर पैदल चलते हुये जरासंध का सामना किये ।। 45 ।।

सारे लोगों के सामने जरासंध क्रोध से अपने वजन वाला लोहे की गदा से बलराम को मार कर सिंहनाद किया ।। 46 ।।

अपने ऊपर गिरने वाले पत्थर को काटने वाला छेनी के सामान गदा को बलराम अपने बांये हाथ से पकड़ लिये ।। 47 ।।

बलिष्ठ बलराम वह गदा को दूर फेक कर जरासंध के पत्थर के सामान बड़े छाती को अपनी मुष्टि से मार दिये। जोर से उसको पकड़ लिये ।। 48 ।।

जरासंध के पेट को उनके पांव से बांधकर सिर को पेट से जोड़ दिये। इस दांव पेंच में दोनो जमीन पर गिर गये ।। 49 ।।

उस समय बलराम जरासंध के छाती पर थे। अमित पराक्रमी जरासंध उनको वहाँ से हटाकर जमीन पर गिरा दिया ।। 50 ।।

उसके बाद वह दोनो वीर खड़े होकर क्रोध से लाल लाल आँख वाले वे दोनो मदभरित हाथी के समान परस्पर पकड़ लिये ।। 51 ।।

दोनो का क्रोध बढ़ता रहा। युद्ध में प्रतिद्वंदि को मारने की इच्छा से दोनो एक के छाती पर घूसा दूसरो ने मारे। एक दूसरे को घसीट लिये ।। 52 ।।

राजा वे इस प्रकार एक सौ धनुष दूर घसीटते हुये पास में रहने वाले वृक्ष और पहाड़ को चकनाचुर किये ।। 53 ।।

दुष्ट जरासंध बलराम को छोड़कर अपनी गदा को उठाकर खड़ा हो गया। इतने में बलराम भी मुसल को उठाकर जरासंध को मारने लगे ।। 54 ।।

सिर के ऊपर दोनो बाहु के ऊपर, पेट, जांघ, छाती में बार बार अपने मुसल से मारते रहे ।। 55 ।।

दुरभिमानी जरासंध बलराम के छाती, गला, मुख, भाल, गाल, पेट, पीठ और दोनो बाहुओं पर एक ही समय में मारता रहा ।। 56 ।।

इस प्रकार युद्ध भूमि में परस्पर मारते रहे। उसको देखकर अन्य राजाओं भयभीत हो गये। दुःख करने लगे ।। 57 ।।

अब जरासंध मरने वाला है, समझकर दुख से युद्ध करना छोड़ दिये ।। 58 ।।

उधर सात्यकि युद्ध क्षेत्र में महापराक्रम से युद्ध किया। बणासुर के मंत्री कुभाण्ड ने तीन बाणों से उसको मारा ।। 59 ।।

मार खाकर क्रुद्ध हुआ सात्यकि सांप के समान आवाज करते हुये कुभाण्ड को मारने के लिये लम्बे वाले पाँच बाणों को उठा लिया ।। 60 ।।

तब कुभाण्ड के सैन्य में हाहाकार मचा। महाबाहु सात्यकि धनुष को कान तक खींच कर कुभाण्ड को नाभि, कण्ठ, भाल, छाती और सिर के ऊपर मार दिया ।। 61-62 ।।

कुभाण्ड मार खाकर प्रज्ञा खोकर रथ के बीच में गिर गया। उसके सारथी उसको युद्ध क्षेत्र से दूर ले गये ।। 63 ।।

कूपकर्ण कृतवर्म के साथ युद्ध कर रहा था। कुभाण्ड की स्थिति को देखकर वह भी युद्ध छोड़कर चला गया ।। 64 ।।

वे दोनो दैत्य न बोलते हुये युद्ध क्षेत्र से पलायन करने के बाद जरासंध बचे हुये सैन्य को लेकर युद्ध क्षेत्र को छोड़कर आये हुये मार्ग से वापस शोणितपुर को चला गया ।। 65 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बावनवाँ

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ॥

श्री शुक जी कहते है - हे राजा परीक्षित सुनो :- यादव के शस्त्रों से मार खाये हुये क्षत्रिय राजाओं और बाणासुर के सैन्य भाग गये। इसको देखकर जरासंध के लोग दुःखित हुये ।। 1 ।।

दानव सैन्य भाग गया। सारे राजा थक गये हैं। जरासंध हतवीर्य हो गया है। श्रीकृष्ण उत्साह से युद्ध कर रहे हैं। इसको देखकर बलराम का उत्साह बढ़ गया। वे जरासंध को अपने बांये हाथ से पकड़ कर दाहिने हाथ से मुसल को लेकर सिर पर मारने के लिये सिद्ध हो गये ।। 2-3 ।।

तब मेघों मे से एक अशरीर वाणी सुनाई दी। बलराम उसको स्पष्ट रूप से सुने। हे बलराम जरासंध तुम्हारे हाथ से मरने वाला नही है। उनको मारने वाला अलग है। तुम युद्ध को छोड़कर वापस चलो ।। 4 ।।

इन बातों को सुनकर बलिष्ठ बलराम जरासंध को छोड़कर रथ के ऊपर चढ़ कर सिद्ध मागध, सूत, बन्दियों की स्तुति को सुनते हुये युद्ध भूमि से चले गये ।। 5 ।।

जरासंध नतमस्तक होकर युद्ध क्षेत्र को छोड़कर हारे हुये राजाओं के साथ बचे हुये सैन्य को लेकर अपने नगर के ओर चला गया ।। 6 ।।

अशरीर वाणी का अर्थ शरीर न रहने वाला वायु का वाणी है। जरासंध को ब्रह्म रुद्र और रुद्रावतारी दुर्वासा, अवध्यात्व का वर दिये थे। शेषावतारी बलराम को रुद्र अथवा रुद्र वर सामान होने के कारण बलराम उसको छोड़ना पड़ा। बाद में ब्रह्म के समान वायुदेव भीम बन कर अवतार लेकर जरासंध को मारना है। यह भगवान का संकल्प है।

श्री शुक जी कहते है :- महापराक्रमी श्रीकृष्ण रणांगण में शत्रु राजाओं को बाणों के समूहों से ढ़क कर अनेक योद्धाओं के संहार किये, अनेक लोग भाग गये। श्रीकृष्ण भगवान सन्तुष्ट होकर सूत मागधों से और महाज्ञानी मुनियों से स्तुति पाते हुये महाद्वार और बड़ा किला वाला मथुरा नगरी में प्रवेश किये ।। 9 ।।

श्रीकृष्ण नगर प्रवेश करते समय राजमार्ग के दोनों बाजू में घर की छत और ऊपरी स्थानों में खड़े हुये स्त्री पुरुष अपने हाथों से भगवान के ऊपर फूलों की वृष्टि की ।। 10 ।।

नगर के लोग श्रीराम कृष्ण को अनेक उपहार फूल-माला गन्ध को समर्पित किये ।। 11 ।।

श्रीकृष्ण राजमार्ग से चल कर विशाल सभा में प्रवेश कर श्रेष्ठ आसन के ऊपर बैठ गये। उनके दाहिने बाजू बलराम, बांये बाजू सात्यकि बैठे हैं। यादवों मुनिगण उनके सत्कार किये। लगता था देवलोक में देवराज इन्द्र सत्कृत हो रहे हैं ।। 12-13 ।।

उस सभा में यादव में श्रेष्ठ बुद्धिशाली और बड़े लोग अक्रूर, उग्रसेन, उद्धव इनके साथ समालोचना करते हुये मथुरा को छोड़कर शत्रु के लिये दुर्गम गोमान्तक पर्वत को देखने चले। बलराम के साथ प्रातः दक्षिण की दिशा में प्रयाण किये ।। 14-15-16 ।।

जरासंध और युद्ध करने के लिये आने वाला है। उसके साथ बार बार युद्ध करके अपने सैन्य को क्यों खोना है। इस प्रकार विचार करते हुये कितने भी सैन्य आने दो मैं अकेला उसको नाश करता हूँ। इसके लिये मुझको सैन्य की आवश्यकता नही है। यहाँ रह कर हमारे सैन्य को क्यों संकट में डालना है। इस प्रकार आलोचना करते हुये श्रीकृष्ण बलराम के साथ गोमान्तक पर्वत के तरफ चलने लगे। बलिष्ठ सैन्य बहुत शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर दुर्बल और शस्त्र की कमी रहने वाले सैन्य पर युद्ध करने आये तो क्या तंत्र करना इसको दिखाने हेतु श्रीकृष्ण यह तंत्र अपनाये। श्रीकृष्ण के इस नई चाल को न समझते हुये जरासंध श्रीकृष्ण को अपने सैन्य से डरा रहा है। इस लिये श्रीकृष्ण भाग रहा है। यह समझते हुये मथुरा के ऊपर और एक बार चढ़ाई करने के लिये आया हुआ जरासंध श्रीकृष्ण का पीछा करने लगा।

बलराम के साथ श्रीकृष्ण यमुना पार कर बहुत देश पहाड़ नदियों को पार करते हुये महेन्द्र पर्वत के पास आ गये। वहाँ उनको परशुराम जी का दर्शन हुआ। महेन्द्र पर्वत के एक वन प्रदेश में जटा वल्कल धारण किये हुये, कमण्डल धारण कर कन्द मूल फल को खाते हुये रहने वाले हजारों शिष्यों के साथ लोक विलक्षण मुनिपुंगव परशुराम एक वृक्ष के मूल में बैठे हैं। उनको देखकर जगत के मालिक मधुकुल में अवतार किये हुये राम कृष्ण सन्तुष्ट हुये। वे क्षिप्रगति से आकर उनको नमस्कार किये। श्रीकृष्ण कहते है ।। 17-18-19-20-21 ।।

गुरुकुल में अवतार लिये हुये जमदग्नि पुत्र श्री परशुराम जी आपको नमस्कार। हम यदुकुल के बलराम और कृष्ण हैं। आप हमारे नाम सुने होंगे । 22 ।।

भगवान श्रीकृष्ण भगवान परशुराम जी को नमस्कार कर रहे हैं। यह केवल लीला है। असुर मोहन के लिये भगवान यह लीला कर रहे हैं। वास्तव में सारे अवतारों में भगवान के रूप एक समान, अभिन्न समान शक्ति वाले होते हैं। परस्पर पूज्य पूजक उच्च-नीच दिखाने वाला केवल असुर मोहन के लिये है। यह षाड्गुण्य नाम के ग्रन्थ में कहा गया है।

श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर धर्म स्वरूप भार्गव राम बलराम और कृष्ण को देखकर सन्तोष से बाते करते हैं ।। 23 ।।

हे कृष्ण तुमको और तुम्हारे भाई महात्मा बलराम का स्वागत है। तुम यदुकुल में अवतार

लिये भगवान अधोक्षक हो यह मैं जानता हूँ ।। 24 ।।

यह कार्य कारण प्रपंच के मूल कारण तुम आदि पुरुष नारायण के रूप हो। यह मैं जानता हूँ। सारे कार्य के लिये स्वतंत्र कर्ता पुण्डरीकाक्ष आपको मेरा नमन ।। 25 ।।

जगद्वंद्य आप दोनो यहाँ क्यों आये हैं ? कहाँ जा रहे हैं ? परशुराम के इस प्रश्न को राम कृष्ण उत्तर दिये। प्रभु शत्रु के लिये दुर्गम हो ऐसे एक क्षेत्र को देखने के लिये हम गोमांतक पर्वत को जा रहे हैं। इन बातों को सुनकर परशुराम जी बोलते है ।। 27 ।।

हे महाबाहु वैसे ही हो। भाई के साथ गोमांतक पर्वत जाओ। उसके नीचे सृगाल वसुदेव का नगर कोल्हापुर है। वह वासुदेव आप लोगों के विरुद्ध है। युद्ध में उसको मार कर आप लोग गोमांतक को जाइये ।। 28-29 ।।

परशुराम जी की यह बात सुनकर सर्वज्ञ भगवान उनकी आज्ञा से बलराम के साथ दक्षिण की ओर प्रयाण किये ।। 30 ।।

श्रीकृष्ण बलराम दक्षिणा पथ में प्रयाण करते हुये आकाश को चूमने वाली महावृक्ष वाले गोमांतक पर्वत को देखे। वह पहाड़ के तल में बड़े प्राकार और विशाल द्वार वाले बड़े बड़े उन्नत मकान और गोपुर वाले कोल्हापुर नगर को देखे। उसको देखकर शंख चक्र गदाधारी श्रीकृष्ण अपने पांचजन्य शंख को बजाये। उसको सुनकर सृगाल वासुदेव क्रोध से आग बबूला हो गया। अपने पदाति अश्व , रथ, गज युक्त चतुरंग सैन्य को लेकर राम कृष्ण के साथ युद्ध करने आया ।। 31-32-33-34 ।।

कश्यप की पत्नी दनुदेवी, वह दानवों की माता। करवीरपुर के राजा की पुत्री होकर जन्म ली। वासुदेव यात्रा करते हुये जब गया था तब करवीरपुर के राजा ने अपनी बेटी से उसका विवाह किया। अपने को पुत्र न होने के कारण बेटी के पेट में जन्म लिया हुआ सृगाल को दत्तक पुत्र रूप में ले लिया। यह सृगाल पूर्व जन्म में मधु दानव के पुत्र धुंधु। पुत्र के जन्म के बाद वसुदेव मथुरा में देवकी इत्यादि के साथ शादी करके मथुरा में ही रहने लगा। कंस उसको जेल में रखने के कारण वह पुनः कोल्हापुर को जा नही सका। इससे सृगाल वासुदेव अपने पिता, माता को छोड़ दिया है समझकर यादवों से दीर्घ द्वेष करने लगा। सूर्य की आराधना से अवध्यत्व वर को एक दिव्य रथ को प्राप्त किया। श्रीकृष्ण को देखते ही उनके साथ युद्ध करने के लिये सैन्य समेत आ गया। बन्धुत्व में दोनो वासुदेव के पुत्र होने के कारण भाई भाई होते हैं। किन्तु सृगाल दानव हैं।

सृगाल वासुदेव के बाणों से राम कृष्ण दोनो ढ़क गये। सृगाल के बड़े सैन्य को देखने के बाद भी राम कृष्ण दोनो रथ रहित होते हुये भी भीषण युद्ध करने लगे। उनके बाण से सृगाल का सैन्य बहुत त्रस्त हो गया। उसको देखकर क्रोधित सृगाल रथ में बैठ कर धनुष को लेकर राम कृष्ण के पास समुद्र की बड़ी लहर जैसे आ धमका। तट जैसे समुद्र को रोक देता है वैसे श्रीकृष्ण

सृगाल को रोक दिये ।। 35-36-37 ।।

वसुदेव के दोनो पुत्र महाबलिष्ठ हैं, वे महाक्रोध से परस्पर वध करने की दृष्टि से युद्ध कर रहे हैं ।। 38 ।।

रणरंग में रथ में बैठे हुये सृगाल के किरीट से शोभायमान सिर को श्रीकृष्ण अपने एक बाण से काट दिये ।। 39 ।।

श्रीराम कृष्ण रथ के बिना जमीन पर खड़े हैं। सृगाल भी रथ छोड़कर उनके सामने पैदल आकर युद्ध करना था। यह युद्धधर्म है। अधर्मी सृगाल युद्धधर्म का पालन नही किया।

हे परीक्षित सुनो :- श्रीकृष्ण से अपना राजा मर गया इसको देखकर बचे हुये सैनिक दस दिशाओं में भाग गये ।। 40 ।।

बाद में श्रीराम कृष्ण करवीरनगर में प्रवेश किये। वहाँ के ब्राह्मण और वैश्य प्रजा उनका सत्कार किये ।। 41 ।।

सृगाल वासुदेव को मणिभद्र नाम का गन्धर्व पुत्र होकर जन्म लिया था। उसका नाम शक्रदे था। श्रीकृष्ण अपने पुत्र लगने वाला शक्रदे को सिंहासन के ऊपर बैठा कर प्रजा का सन्तोष भागी बना।

सृगाल के हाथी, घोड़ा, सैन्य, कोश इत्यादि युद्ध प्राप्त धन को सेवक के साथ मथुरा को भेज दिये ।। 42 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में बावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

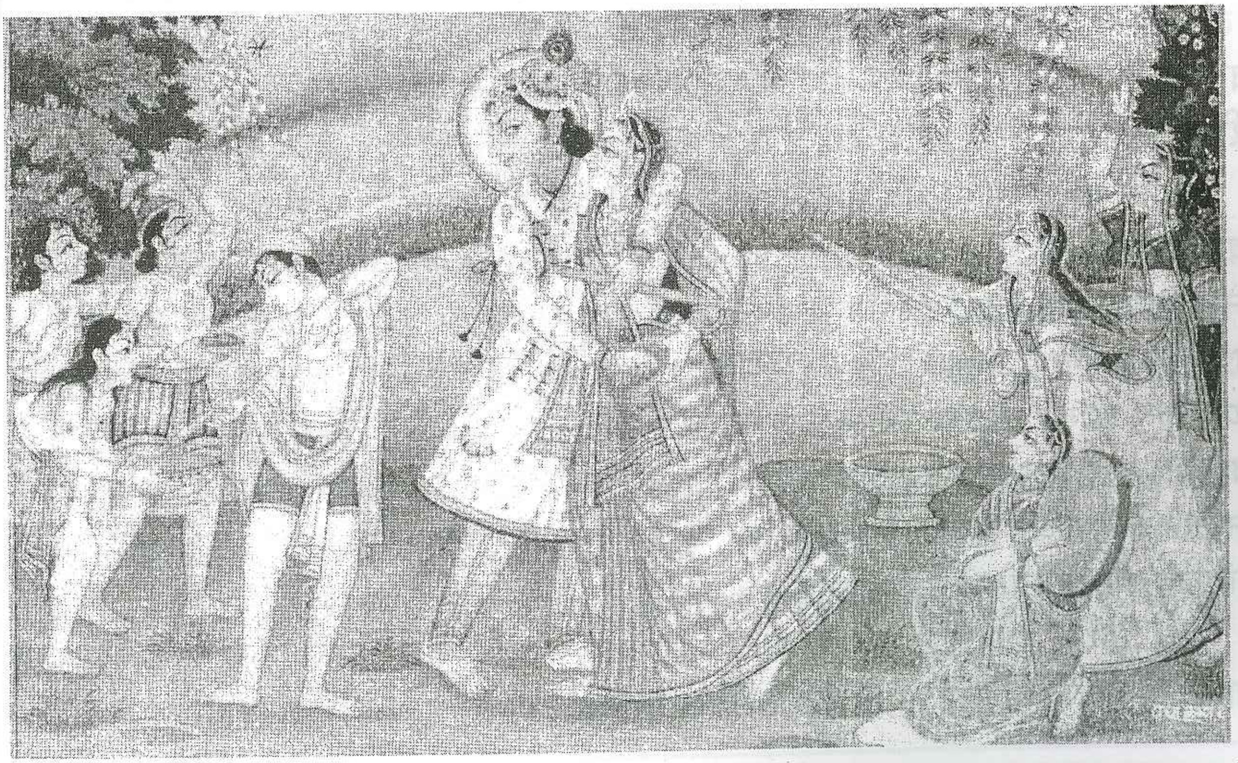

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तिरपनवाँ

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ॥

श्री शुक जी कहते है - पराक्रमी राम कृष्ण ऊँचे ऊँचे वृक्षों से लताओं से घिरा हुआ श्रेष्ठ गोमान्तक पर्वत के ऊपर चढ़े। वहाँ वह पर्वत श्रेष्ठ ताल, कदम्ब, नीम, सगोना इत्यादि वृक्षों से भरा हुआ था। पहाड़ के ऊपर चढ़ कर वहाँ एक सुन्दर विशाल प्रदेश को देखे। वहाँ केले के वन सुशोभित थे। मदमत्त कोयल, गुंजन करने वाले भौरे, वृक्ष को हिलाने वाले बन्दर, फल के भार से झुके हुये वृक्ष, फलों से भरा हुआ नारियल इनको देखते हुये आनन्द पाये। वहाँ वृक्ष की छाया में अत्यन्त स्वच्छ जल से भरा हुआ छोटे छोटे झीले बह रही थी ।। 1-2-3-4 ।।

उस क्षेत्र का नाम प्रवर्षण था। वहाँ प्रतिदिन मेघ बिना आंतक पानी बरसाते थे। इसके लिये उसका नाम प्रवर्षण पड़ा है। राम कृष्ण वहाँ आ गये। वहाँ चढ़कर दस दिशाओं को देखते हुये अपनी इच्छा के अनुसार विहार करते हुये राम कृष्ण रहने लगे ।। 5-6 ।।

इसी समय में सागरों में श्रेष्ठ क्षीरसागर के श्वेतद्वीप में शंख, चक्र, गदाधारी श्रीहरि के निवास में बैठा हुआ विलोचन पुत्र महाबलशाली बलिचक्रवर्ती देव देव वासुदेव का रत्न खचित किरीट की चोरी किया ।। 7-8 ।।

गोमान्तक पर्वत में श्रीकृष्ण राम विहार कर रहे थे। इतने में क्षीर सागर के अमुक्त स्थान में रहने वाले भगवान को देखने के लिये बलिचक्रवर्ती वहाँ आ गया। उस समय उसमें असुरावेश में आ गया। इसको लोक को बताने के लिये भगवान नींद करने का बहाना करने लगे। उस समय बलि भगवान के किरीट को लेकर सुतल लोक के लिये जा रहा था। गरुड उसको देखकर उसका पीछा करते हुये उस किरीट को अपने वश में ले लिया। वापस आते समय भगवान को गोमान्तक पर्वत के ऊपर विहार करते देखकर उस किरीट को वहीं समर्पित किया। वह किरीट भगवान श्रीकृष्ण के सिर पर ठीक तरह से बैठ गया। उसको देने के बाद गरुड़ उनकी स्तुति करता है। क्षीरसागर में शयन करने वाले भगवान नारायण के सिर के ऊपर भी वही किरीट दिखने लगा। यह माहाम्य नाम के ग्रन्थ में कहा गया है। यह कथा श्रीधरी पाठ में नही है। किन्तु हरिवंश में है।

वह किरीट हजारों इन्द्रनील, सैकड़ो गोमेध, पद्मराग मणियों से सफेद मोती पुष्पराग इत्यादि रंग बिरंगे मणियों से जटित सोने से बनाया गया है। इसको दानवीर बलिंचक्रवर्ती ने

अपहरण किया। इसको जानते हुये उसके रक्षक पक्षिराज गरुड़ तीव्र गति से बलि का पीछा किया ।। 9-10।।

गरुड़ पाताल लोक में बलि के साथ घन घोर युद्ध किया। दानव श्रेष्ठ, दानव राज बलि को हराकर श्रेष्ठ रत्नों से युक्त सूर्य के सामान प्रकाश वाले किरीट को लेकर वापस आ रहा था। इतने में वह भगवान श्रीकृष्ण को गोमान्तक शिखर में विहार करते देखा ।। 11-12 ।।

रम्य गोमान्तक पर्वत में भाई के साथ रहने वाले भगवान श्रीकृष्ण को देखकर गरुड़ उनके सामने आकर वह दिव्य किरीट को श्रीकृष्ण के सिर पर रखकर उनको दण्डवत् नमन करते हुये स्तुति करने लगा ।। 13 ।।

गरुड़ कहता है :- भगवान नारायण को मैं नमन करता हूँ। आप भूभारहरण करने के लिये अवतार लेकर यहाँ आये है। असुर का संहार करते हुये सकल गुण से पूर्ण आप सकल कर्मों के साक्षी बनकर यहाँ खड़े हैं ।। 14 ।।

इस सृष्टि के प्रारम्भ में आप ब्रह्मा जी के नियमन करते हुये ब्रह्मा जी में रहते हुये ब्रह्म के नाम धारण करते हुये सारे जगत का सृष्टि करते हैं। स्वयं नारायण रूप से उस सृष्टि का पालन करते है। रुद्र के अन्दर रहते हुये रुद्र नाम को धारण करते हुये रुद्र रूप धारण कर संहार करते हैं ।। 15 ।।

भगवान मैं आपका सेवक गरुड़ हूँ। आप देवोत्तम विष्णु हैं, यदुवंश के वर्द्धक होकर इस भूमि में अवतार लिये हैं। कहिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ।। 16 ।।

श्री शुक देव जी कहते है :- इसप्रकार कहते हुये देवाधिदेव श्रीकृष्ण को प्रणाम करने के बाद उनके सामने दोनो घुटने के बल पर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया ।। 17 ।।

भगवान श्रीकृष्ण खुली आँखों से प्यार से गरुड़ को देखकर अपने दोनो हाथों से उसको पकड़ कर आशीर्वाद देते हुये कहे ।। 18 ।।

हे गरुड़ अब तुम अपनी इच्छानुसार जहाँ मन आता है वहाँ जा सकते हो। जब काम पड़ेगा तब मैं तुम्हारी याद करता हूँ। तब आ जाओ। इस प्रकार गरुड़ को विदा करते हुये राम कृष्ण वहाँ कन्द मूल फल खाते हुये वर्षाकाल के चार महीने वास किये। वहाँ से बड़ी सेना लेकर मथुरा को चले ।। 19-20-21 ।।

राजा करवीरपुर में सृगाल वासुदेव मर गया। यह वार्ता सुनकर जरासंध क्रोध से बड़ी सेना लेकर श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने आया ।। 22 ।।

राम कृष्ण उनके साथ सात दिन युद्ध किये। जरासंध इस युद्ध में मार खाकर भाग गया ।। 23।।

हार कर भागते हुये राजा को मारना धर्म नही यह जानकर राम कृष्ण उनको छोड़ दिये। जरासंध मगध देश को वापस चला गया। सूत, मागध, बन्दी स्तुति करते समय श्रीकृष्ण मथुरा पुरी में प्रवेश किये। इस प्रकार जरासंध सत्तरह बार प्रत्येक बार तेइस अक्षोहिणी सैन्य के साथ आकर श्रीकृष्ण से रक्षित यादवों के साथ युद्ध किया। प्रत्येक बार श्रीकृष्ण से उसका सैन्य मारा गया ।। 24-25-26 ।।

सतरहवें युद्ध में इस प्रकार अपने सैन्य को खोने वाले जरासंध को अट्ठारहवें युद्ध के लिये आओ बोलते हुये उसको न मरते हुये छोड़ दिये। जरासंध चल गया ।। 27 ।।

इस बीच नारद से प्रेरणा लेकर वीर कालयावन तीन करोड़ म्लेच्छों के साथ मथुरा को घेरा लिया ।। 28 ।।

कुण्डिनपुर में भीष्मक राजा की पुत्री रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ करने की इच्छा जरासंध रुक्मी, और साल्व की थी। श्रीकृष्ण इसके बीच में आते हैं। इसके लिये विवाह के पूर्व श्रीकृष्ण को मारने के लिये वे कालयवन से प्रार्थना कर उसको मथुरा भेजे। कालयवन श्रीकृष्ण को मारने के लिये शिव वर से जन्म लिया है। ये कथा हरिवंश में आती है। यादव कुलों के पुरोहित गर्ग मुनि बहुत विरक्त थे। वे अपनी पत्नी के संग भी नही रहते थे। इसके लिये यादव लोग उनको नंपुसक बोल कर हास्य करने लगे। इसमें श्रीकृष्ण भी मिला गया। इससे वह मुनि क्रुद्ध होकर शिव के पास तप करते हुये श्रीकृष्ण को मारने वाला एक पुत्र को शिव से वर रूप में प्राप्त किये। यवन राजा ने एक यवन स्त्री को गर्ग मुनि के पास भेजा। उसी के गर्भ में काल यावन जन्म लिया। श्रीकृष्ण को मारने के लिये समय का इन्तजार करने के कारण उसका नाम कालयवन पड़ा। नारद जी उसको मथुरा को भेजे।

कालयवन समझता था कि इस मनुष्य लोक में उसका सामना करने वाला कोई नही है। यादव शूर हैं, कालयवन के समान हैं, इसको सुनकर उसका क्रोध बढ़ता था। वह मथुरा को चारो ओर से घेरने के लिये आगे बढ़ा। इस समाचार को पाकर श्रीकृष्ण बलराम से समालोचना की ।। 29 ।।

हे भाई देखो, इधर जरासंध युद्ध के लिये आ रहा है। उधर महाबलशाली कालयवन हमको घेरने आ रहा है। दोनो ओर से आपत्ति आ रही है ।। 30 ।।

जरासंध बड़ा पापी है। वह हमारे ऊपर आक्रमण करेगा। जब हम कालयवन के साथ लड़ रहे हैं उसी समय जरासंध हमारे लोगों से युद्ध करते हुये उनको मारेगा और बन्धक बनायेगा। इसके पहले हमें मानव-दानवों को अगम्य एक सुरक्षित नगर का निर्माण करें ।। 31-32 ।।

वहाँ हमारे बन्धुओं को रखते हुये यहाँ हम कालयवन का नाश करेंगे। इस प्रकार समालोचना करने के बाद श्रीकृष्ण बारह योजन विस्तार वाला अद्भुत नगर को समुद्र के बीच में निर्माण किये ।। 33 ।।

यहाँ प्राचीन पाण्डुलिपियों में सात श्लोक ज्यादा है। उनका विवरण इस प्रकार है। सत्ताईस चतुर्युग के पूर्व शर्याति राजा के पुत्र अनर्त राज्य करता था। उसका पुत्र रेवत। वह समुद्र के बीच में कुशस्थली नाम का नगर का निर्माण किया। रेवत के पुत्र ककुद्मि, इसकी पुत्री रेवती को वर ढूंढने निकला। ककुद्मि सत्य लोक को जाकर ब्रह्मा जी से अपनी पुत्री के लिये योग्य वर माँगा। उस समय ब्रह्मा जी गन्धर्व गायन को सुनने में व्यस्त थे। एक क्षण के बाद ककुद्मि की बात सुनकर ब्रह्मा जी हँसे। अब हमारे एक क्षण में भूलोक के सत्ताईस चतुर्युग बीत चुके हैं। अट्ठाइसवाँ द्वापर युग आ रहा है। वहाँ बलराम को तुम्हारे पुत्री को विवाह में दे दो। यह कथा भागवत के सतावन अध्याय में आता है। ककुद्मि की अनुपस्थिति में कुशस्थली का नाश हो गया। उसी स्थान में श्रीकृष्ण वरुण को आज्ञा देकर बारह योजन लम्बा, आठ योजन चौड़ा, द्वारका नगर का निर्माण किये। यह कथा ऊपर के सात श्लोकों में आती है।

विश्वकर्मा इस द्वारका का निर्माण किये। उसमें उसका शिल्पकला नैपुण्य पाण्डित्य व्यक्त होता था। बड़े बड़े रास्ते, चौक, बाजार, सुन्दर उद्यान, उपवनों से युक्त द्वारका वास्तु नियमों से बाध्य था ।। 34-35 ।।

आकाश को चूमने वाली सोने की शिखर के राजगृह सोना चाँदी से अंलकृत घरों से द्वारका शोभायमान था ।। 36 ।।

रत्न के शिखर वाले सोने के घर नील मणि का जमीन, मन्दिर, चन्द्रशाला, द्वारका इनसे भरा हुआ था ।। 37 ।।

द्वारका में चारो वर्ण के लोग आनन्द से रहते थे। यादव पैमाने से द्वारका में रहने लगे। सुशर्म नाम के सभागृह और पारिजात वृक्ष को देवेन्द्र कृष्ण को भेज दिया ।। 38 ।।

द्वारका में रहने वाले लोगों के लिये सहज मरण, वृद्धावस्था और रोग नही होता था। यह नगर क्षीरसागर में सोने वाले देवाधिदेव श्रीकृष्ण का प्रिय नगर रहा ।। 39 ।।

एक कान से काले अच्छे, सुन्दर, मनोवेग वाले एक हजार सफेद घोड़ों को वरुण देव ने अर्पण किया ।। 40 ।।

रत्न से जटित आठ अक्षय निधि को कुबेर ने दिया। अन्य लोकपालक अपने आधीन रहने वाला सम्पत्ति को अर्पण किये ।। 41 ।।

हे राजा लोकपालकों को भगवान जो सम्पदाओं को दिये थे उनके अवतार समय में वे लोक पालक उनको लाकर श्रीकृष्ण को अर्पण किये ।। 42 ।।

भगवान श्रीकृष्ण अपने लोगों को अपने अचिन्त्य, अद्भुत शक्ति से द्वारका को लेकर वहाँ उनको रखते हुये बलराम को वहीं रख कर कालयवन के संहार के लिये कमल की माला को धारण किये हुये श्रीहरि निरायुध होकर मथुरा के द्वार से बाहर चले गये ।। 43-44 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में तिरपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौवनवाँ

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ॥

श्री शुक जी कहते हैं - मथुरा दुर्ग के महाद्वार से निरायुध होकर आने वाले श्रीकृष्ण को कालयवन ने देखा। उदय होने वाले चन्द्र के समान सुन्दर मुख वाले मनोहर श्यामल वर्ण वाले पीताम्बरधारी.................. ||1||

छाती में श्रीवत्स चिन्ह, गले में प्रकाशमान कौस्तुभ्मणि, पुष्ट लम्बे चार बाहु, कमल के समान दिखने वाली आँख..................||2||

सदा सन्तुष्ट कान्तियुक्त सुन्दर लाल गाल वाला मन्दहास युक्त मुख, चमकने वाले मकर कुण्डल.....................||3||

इन अलंकारों से शोभायमान श्रीकृष्ण को देखा। यही श्रीकृष्ण हैं इसके छाती में श्रीवत्स चिन्ह है। चार हाथ वाला है। कमलाक्ष वनमाली अतिसुन्दर है ||4||

नारद जी इनके लक्षण के बारे में बोले थे। यह अन्य और कोई नही हो सकता। किन्तु निरायुध होकर आ रहा है। मैं भी इसके साथ आयुधहीन होकर युद्ध करूँ।||5||

इस प्रकार निश्चय करते हुये श्रीकृष्ण को पकड़ने के लिये उसके पीछे दौड़ने लगा। कालयवन को आते देखकर श्रीकृष्ण जोर से दौड़ने लगे। कालयवन श्रीकृष्ण को पकड़ नही सका। श्रीकृष्ण योगियों को छोड़कर अन्यों को मिलने वाले नही हैं।||6||

उत्सवों में भाग लेकर भगवान के रथ के पीछे चलने वाले भक्तों को एक एक पग को अश्वमेध फल मिलता है। इस प्रकार शास्त्र बताते हैं। यहाँ कालयवन भगवान श्रीकृष्ण के पीछे मथुरा से बदरी में रहने वाले मुचुकुन्द गुहा तक अनुसरण करते हुये भी भगवान के अनुग्रह को नही पाया। इससे स्पष्ट होता है कि भक्ति के बिना किसी प्रयत्न को भगवान का अनुग्रह नही मिलता। यह कालयवन भक्ति से पीछा नही कर रहा है। मारने के उद्देश्य से पीछे पीछे दौड़ रहा है।

कालयवन को लगता था श्रीकृष्ण मिल गया। किन्तु कृष्ण दूर होता था। दूर होने के बाद

कालयवन उसके पीछे और जोर से दौड़ता था। तब लगता था कि कृष्ण हाथ लगने वाला है। किन्तु कभी हाथ नही लगा ।। 7 ।।

कालयवन बोलता है :- यदुवंश में जन्म लिये तुम कृष्ण ऐसे भाग रहे हो। यह यदुवंश के लोगों को उचित नही है। ऐसे आक्रोश करते हुये उसके पीछे दौड़ता रहा। पापी लोगों को भगवान मिलते नही। भगवान कालयवन को नही मिले।।8।।

कालयवन के देखते देखते श्रीकृष्ण उस पहाड़ की एक गुफा में प्रवेश किए। श्रीकृष्ण के पीछे पीछे कालयवन भी में गुफा प्रवेश किया। वहाँ एक आदमी सोया है। कालयवन उसको देखा। उसके ऊपर श्रीकृष्ण के वस्त्र हैं। कालयवन वहाँ कृष्ण को नही देखा।। 9 ।।

अरे श्रीकृष्ण इतना दूर दौड़ कर मुझको भी अपने पीछे पीछे लाकर अब यह सज्जन के समान सो गया है। ऐसा विचार करते हुये वह मूर्ख सोया हुआ व्यक्ति को अपने पांव से मारा।।10।।

वहाँ महाराजा मुचुकुन्द सोया था। वहाँ बहुत समय से वह नींद करता था। वह उठ कर सावकाश से अपनी आँखें खोल कर चारों दिशाओं में देखा। सामने खड़ा हुआ कालयवन के ऊपर उसका दृष्टिक्षेप हुआ।।11।।

निद्रा भंग से मुचुकुन्द को क्रोध आया। सोए हुए मुझको बिना गलती के पांव से मारा है इससे और आक्रोशित होकर क्रोध से उसको देखा। मुचुकुन्द की दृष्टिक्षेप से कालयवन एक क्षण में जल कर राख हो गया।।12।।

कालयवन आ रहा है। यह समाचार पाते हुये श्रीकृष्ण एक घड़े में काले सांप को भरकर उसके ऊपर कपड़े बांधकर कालयवन के पास भेजे थे। इसका अर्थ था कि मैं अकेले तुमको मार डालता हूँ। उसके उत्तर रूप में कालयवन उसी घड़े में बहुत चीटीं को भरकर वापस भेजा था। इसका अर्थ यह था कि हम बहुत लोग हैं तुमको मार डालेंगे। श्रीकृष्ण के पास जब वह घड़ा आया तब कृष्ण सर्प मरा था। इससे कालयवन समझा कृष्ण मर गया है। वह अपने को बहुत होशियार समझता था। किन्तु वह मूर्ख था। कालयवन के कृत्य से कृष्ण सर्प नाश हुआ। शिव से दिए हुये वर से कृष्ण नाश सत्य हो गया। किन्तु श्रीकृष्ण नही मरे। इधर श्रीकृष्ण नही मरा उधर शिव वर भी सत्य हुआ।

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे मुनि सोया हुआ वह मनुष्य कौन था ? वह किस कुल का है। उसकी शक्ति क्या है। वह उस गुफा मे क्यों सोया था। कालयवन को जलाने की शक्ति उसमें कैसे आयी ।।13।।

श्री शुक देव जी कहते हैं - इक्ष्वाकु कुल में जन्म लिया हुआ मान्धातृ राजा के पुत्र महात्मा मुचुकुन्द राजा था। वह बहुत प्रसिद्ध था। भगवान श्रीहरि में निष्ठा और ब्राह्मणों में भक्ति रखता था, सत्संगी था।।14।।

एक बार असुरों से युद्ध में मार खाये हुये देवताओं ने इसकी सहायता की याचना की। उस समय मुचुकुन्द उनके सेनापति बनकर उनकी रक्षा की थी।।15।।

षण्मुख देवताओं के लिये सेनापति बनने के बाद देवताओं ने राजा को कृतज्ञता अर्पण करते हुये रक्षणा कार्य को षण्मुख को सौंपे। वे राजा से बोले।।16।।

हे राजा तुम नरलोक के राज्य को छोड़कर हमारी रक्षा करने हेतु सारे सुखभोग को त्याग दिए हो, अनेक कष्ट को सहन किया है ।। 17 ।।

अब भू लोक में तुम्हारे पुत्र, पत्नी, बन्धु, मंत्री, प्रजा, तुम्हारे काल के लोग मर गये हैं। (स्वर्ग में देव गणना के अनुसार समय चलता है।) ।। 18 ।।

काल नामक श्रीहरि सबसे बलवान हैं। वे बलिष्ठों से बलिष्ठ हैं। वे सर्वेश्वर नाशरहित हैं। पशु को चराने वाला जैसे खेलते खेलते उनको चराता है, वैसे कष्ट न करते हुये क्रीड़ा करते हुये भगवान इस जगत का नियमन करते है ।। 19 ।।

तुम्हारा कल्याण हो। तुम मोक्ष छोड़कर जो कुछ चाहते हो उसको देने के लिये हम प्रस्तुत हैं। मोक्ष देने का सामर्थ्य केवल भगवान विष्णु को है ।। 20 ।।

देवताओं की इस बात को सुनकर महायशस्वी मुचुकुन्द उनको नमस्कार करके कहता है। मैं बहुत थका हुआ हूँ। बहुत दिनों से सोया नही हूँ। मैं इस गुफा में प्रवेश कर दीर्घकाल तक नींद करना चाहता हूँ। कोई भी मानव मेरी नींद को भंग न करे। कोई भंग करे तो वह मेरी दृष्टिक्षेप से भस्म हो जाये। इस प्रकार वर माँगा। देवतागण इस बात को सुनकर ऐसा ही हो। तुमको उठाने वाले मूर्ख कोई भी हो तुम्हारे दृष्टिक्षेप से वह भस्म हो जायेगा ।।21।।

देवतागण के इस प्रकार बोलने के बाद महाबुद्धिशाली मुचुकुन्द हिमालय की एक गुफा में जाकर सो गया। देवता के दिये हुये वर के अनुसार उसके नींद को भंग करने वाला कालयवन भस्म हो गया। कालयवन के मरण के बाद भगवान श्रीकृष्ण ज्ञानी मुचुकुन्द को अपना दर्शन देते हैं ।। 22-23 ।।

मेघश्याम, पीताम्बरधारी, श्रीवत्स और कौस्तुभ को धारण किये हुये श्रीकृष्ण को मुचुकुन्द ने देखा। चतुर्भुज, वैजयंती माला से शोभने वाला सुन्दर मुखारविन्द वाला, शोभायमान मकर कुण्डल वाला, तीनों लोको में अत्यन्त सुन्दर रूप वाला अनुराग से नौयवन भरित सिंह के समान पराक्रम वाला श्रीकृष्ण को मुचुकुन्द ने देखा ।। 24-25-26 ।।

श्रीकृष्ण के कान्ति को देखकर बुद्धिशाली मुचुकुन्द राजा राजाओं से भी ज्यादा शोभायमान उनके तेज को देखते हुये उनके बारे में सन्देह से प्रश्न करता है ।। 27 ।।

मुचुकुन्द कहता है :- आप कौन हैं ? जंगल में कांटेदार प्रदेश में जिस गुफा में आप आये हैं आपके कमल पत्र के समान पाद को यहाँ आने में कष्ट हुआ होगा ।। 28 ।।

आप तेजस्वी स्त्रियों को भी तेज देने वाले भगवान हैं क्या ? क्या आप अग्नि, सूर्य, चन्द्र, देवेन्द्र अथवा लोकपालक हैं ।।29।।

भगवान मुझको लगता है आप तीन देवताओं में सबसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तम विष्णु हैं। आपकी प्रभा से यह गुफा प्रज्ज्वलित हो गयी है ।।30।।

हे पुरुषोत्तम आपके अवतार कार्य गोत्र के बारे में क्या उचित लगता है उसको कहिये, मै उसको सुनना चाहता हूँ ।।31।।

हे प्रभु पुरुषोत्तम, मैं इक्ष्वाकु वंश के क्षत्रिय राजा मान्धाता का पुत्र मुचुकुन्द नाम वाला हूँ।। 32।।

कालयवन भ्रम से मानव रस्सी को सांप जैसे मानता है वैसे मुचुकुन्द को मुकुन्द मानने के कारण सर्वनाश पाया। दोनो में एक अक्षर के फरक पड़ने से कितना अनर्थ होता है। यह मालूम होता है। ऐसे होने मे मैं ही भगवान बोलने वाले को कितना अनर्थ होता है। इसको अलग क्या कहना।

मैं थक गया था, बहुत काल नींद नही किया था। इसके लिये यहाँ सोया था। कोई आकर मुझको यहाँ से उठाया ।।33।।

वह अपने पाप से भस्म हो गया। बाद में शत्रु नाशक कान्ति युक्त आपका दर्शन हुआ।।34।।

आपके तेज से मेरी आँखो की शक्ति क्षीण हो रही है। मैं आपको आँख उठा कर देख नही सकता आप सज्जनों से मान्य हैं।।35।।

इस प्रकार राजा मुचुकुन्द विनय से बोला। तब सृष्टिकर्ता भगवान श्रीकृष्ण हँसते हुये मेघ गम्भीर ध्वनि से बोले ।।36।।

श्रीकृष्ण कहते हैं - मुचुकुन्द, मेरे अवतार और कर्म व नाम हजारों हैं। वे असंख्य होने के कारण मैं भी उसको बता नही सकता ।।37।।

भगवान बता नही सकते। इसका अर्थ बताने की शक्ति उनमें नही है ऐसा नही होता। वे असंख्य है। गिनकर एक संख्या में बोल नही सकते क्योंकि वैसे एक संख्या ही नही है। गणित वहाँ रुक जाती है।

कोई जमीन में रहने वाला धूलिकण को अनेक जन्मों में मिलकर गिन सकता है। किन्तु वह भी मेरे गुण, कर्म, नाम के बारे में पूरा बोल नही सकता।।38।।

हे राजा, तीनो युगों में मैं जो अवतार कार्य करता हूँ, महर्षि गण उसको निरन्तर बोलते रहे तो भी पूरा बोल नही सकते ।। 39 ।।

तो भी मैं अभी अपने इस अवतार कार्य के बारे में बोलता हूँ, सुनो। मैं धर्म की रक्षा के लिये इस भूमि को भार बने हुये असुरों को नाश करने के लिये ब्रह्मा जी की प्रार्थना से यदुकुल में वसुदेव की पत्नी के गर्भ से अवतार लिया हूँ ।। 40-41 ।।

वसुदेव के पुत्र मुझको वासुदेव नाम से पुकारते हैं। यह कालनेमि कंस होकर जन्म लिया था। उसको मैंने मारा। प्रलम्बासुर इत्यादि दैत्य मारे गये। वे सज्जनों का द्वेष करते थे।।42।।

हे राजा, आपकी आँखों के तीक्ष्ण दृष्टि से यह कालयवन जल गया। आपको अनुग्रह करने के लिये मैं यहाँ आया हूँ ।।43।।

मुचुकुन्द प्रतिफल की अपेक्षा न करते हुये देवताओं की सेवा किया। फलस्वरूप केवल दीर्घ कालिक नींद को मांगा। मुचुकुन्द की सेवा के फल को देने के लिये भगवान श्रीहरि कालयवन के संहार को उसके हाथ से कराते हुये उसके ऊपर अनुग्रह किये।

तुम पहले भक्तवत्सल मेरे पास आकर मेरा अनुग्रह मांगे थे। हे राजर्षि, अब तुम मुझसे वर मांगो। मैं जो चाहो उसको देता हूँ। जो मेरी शरण में आता है उसको आगे दुःख नही होना चाहिये ।। 44-45 ।।

श्री शुक देव जी कहते हैं - श्रीकृष्ण के इन बातों को सुनकर मुचुकुन्द को पहले गर्ग मुनि ने जो बताया था, उसकी याद आई। वह श्रीकृष्ण को साक्षात् नारायण के रूप में देखकर सन्तोष से नमन करते हुये बोलता है ।। 46 ।।

मुचुकुन्द कहता है - हे प्रभु, आपकी इच्छा से आपके अधीन वाली प्रकृति से मोहित होकर मैं इस अनर्थकारी संसार को कोई पुरुषार्थ मानकर बैठा हूँ। सुख पाने की इच्छा से दुख देने वाले पत्नी पुत्र घर-संसार में मैं आसक्त हुआ हूँ। आपका भजन चिन्तन नही करता। सारे स्त्री पुरुष इसी प्रकार बन गये हैं ।। 47 ।।

हे पाप रहित परम पुरुष, लोग इस कर्म भूमि में कुछ भी प्रयत्न न करते हुये पिछले जन्म के सुकृत के कारण मानव जन्म पाने के बाद भी बुद्धि शून्य होकर पशु जैसे कुएँ में पड़ता है, वैसे घर नाम के अन्धकूप में गिर जाते हैं। आपके पाद कमल की सेवा नही करते ।। 48 ।।

कभी भी किसी से भी पराजित न होने वाले श्री हरि, इस नश्वर देह में मैं और मेरा अभिमान से, राज्य के ऐश्वर्य मद से अन्धा बन गया हूँ। पत्नी, पुत्र, धन, कनक में आसक्त हुआ हूँ। उनकी रक्षा के लिये अविरत चिन्ता करते हुये आज तक अपने आयुष्य को व्यर्थ किया हूँ ।। 49 ।।

मेरा यह शरीर मिट्टी से बना है। मिट्टी से बनाया हुआ घट के समान नश्वर है। फिर भी राजा के गाढ दुरभिमान से रथ, हाथी, घोड़ा, सैन्य लेकर मद भरित होकर भूमि में संचार किया। आपका ख्याल नही रखा ।। 50 ।।

विषय लालसा से, महालोभ से धन सम्पादन करते हुये मोक्ष सम्पादन को भूलकर आपको भी भूल गया। भूखा सांप जैसे चूहे को खा लेता है, ऐसे आप मृत्यु रूप से लोगों को खा लेते हैं।। 51।।

जिस शरीर से पहले राजा बनकर सारे गहनों से सजाकर रथ हाथियों के ऊपर संवार होकर चलता था, वही देह अन्त में मृत्यु के वश में हो जाने के बाद कुत्ता और सियार का आहार बन जाता है। अथवा कृमि कीट का आहार बन जाता है, अथवा जल कर राख हो जाता है।।52।।

हे प्रभु युद्ध में विजयी होकर सिंहासन में बैठकर अन्य राजाओं से वन्दित वही मनुष्य विषय भोग के लालसा में स्त्रियों के हाथ की कठपुतली बनता है ।। 53 ।।

हे भूदेवीरमण, विषय सुख की अभिलाषा से अभिलाषाओं को छोड़कर मानव भोग लालसा से दूर होकर निष्ठा से काम्य-कर्म, तप, दान करता है। इसके फलस्वरूप आगे जन्म में ज्यादा विषय सुख मिलने के बाद भी और ज्यादा अपेक्षा करते हुये काम्य कर्म, तप, दान करता है। इस प्रकार विषय लालसा बढ़ती रहे तो सुख कहाँ मिलेगा।।54।।

हे अच्युत्, इस संसार चक्र में फिरने वाले को मोक्ष काल समीप आया तो सज्जनों का संग मिलता है। सज्जनों के संग से ही सज्जनों के लभ्य मुक्त अमुक्त नियामक आपके बारे में ज्ञान भक्ति उत्पन्न होती है ।। 55 ।।

हे प्रभु, इस अखण्ड ब्रह्माण्ड को पालने वाले राजाएँ अन्त में अकेले होकर मोक्ष साधन के लिये जंगल जाने की इच्छा से राज्य सम्बन्धों को छोड़ना चाहते हैं। आपकी कृपा से यह सम्बन्ध मुझसे पहले से ही कट गया है। मैं इसको आपका अनुग्रह मानता हूँ ।। 56 ।।

त्रेतायुग के आदि में मुचुकुन्द गुफा के अन्दर सो गया था। वह द्वापर युग के अन्त में उठा है। उसका राज्य सम्बन्ध कभी का कालगर्भ में छिप गया था। मुचुकुन्द इसको भगवान का एक अनुग्रह मानता है।

प्रभु श्रीहरि, आप कह रहे हैं, जो चाहिये वह वर माँगो। विषयाभिलाषा न रखने वाला एकान्त भक्त आपके पाद सेवा को छोड़कर अन्य किसी की चाह नही करता। मोक्ष देने वाले आपकी आराधना करने वाला अपना बन्धक होने वाले किस वर को चाहता है ? ।। 57 ।।

इसी कारण प्रभु, मैं बन्धक होने वाली सात्विक राजस, तामस, किसी चीज की अपेक्षा नही करता। सत्व गुण रहित, नाश रहित, ज्ञान स्वरूप परम पुरुष आपको पाने के योग्य शरणागति को मैं चाहता हूँ ।। 58 ।।

हे आश्रयदाता, परमपुरुष स्वामी, मैं बहुत जन्म से अनेक योनियों में दुःख से जन्म लेते हुये सांसारिक तापों से तपते हुये पूर्व जन्म के पुण्य से सारी आशाओं को छोड़कर कष्ट से भरा

हुआ इस संसार को छोड़कर विरक्ति को पाया हूँ। भय, मरण, शोक न रहने वाला आपके पाद कमल की शरण आया हूँ। शरणागत मुझको आप ही रक्षा करें ।। 59 ।।

श्री भगवान कहते हैं - हे सार्वभौम राजा, आपका मन निर्मल है, श्रेष्ठ है। जो चाहो वह वर मांगो बोलने के बाद भी तुम्हारा मन आशाओं की बलि नही बना ।। 60 ।।

वर मांगो यह आपकी मन परीक्षा के लिये मैंने कहा था। किन्तु आपका मन इससे विचलित नही हुआ। मेरे एकान्त भक्तों का मन कभी आशाओं से विचलित नही होता ।। 61 ।।

हे राजा ज्ञानी मेरे एकान्त भक्त प्राणायामादि कार्य करने से अपने मन की विषय वासना को खोते हैं। वे विषय भोग के प्रति आकर्षित नही होते ।।62।।

तुम मुझमें मन रखो। इस भूमि में अपनी इच्छानुसार जहाँ चाहे वहाँ संचार करो। सदाकाल नष्ट न होने वाली भक्ति तुमको मिले ।। 63 ।।

क्षात्रधर्म निरत होकर तुमने शिकार करते हुए अनेक प्राणियों का वध किया है। उस पाप को तप करते हुये समाधि में मुझकों पाकर क्षालन करो ।। 64 ।।

हे राजा, अगले जन्म में सबसे प्यार करने वाला सबका प्रिय ब्राह्मण होकर जन्म पाओगे। बाद में मुझको प्राप्त करोगे ।।65।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में चौवनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पचापनवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - इस प्रकार राजा मुचुकुन्द श्रीकृष्ण से अनुग्रह पाकर उनकी परिक्रमा करते हुये दण्डवत् नमस्कार करने के बाद गुफा के द्वार से बाहर चले गये ।। 1 ।।

बाहर आकर देखते हैं मनुष्य प्राणी, वृक्ष, सस्य सारे पहले से गात्र में छोटे बन गये हैं। यह कलियुग का परिणाम है। समझते हुये तप करने के लिये उत्तर की दिशा में बढ़े ।। 2 ।।

तप में श्रद्धा रखने वाले वीर मुचुकुन्द विषयासक्ति को छोड़कर, संसय से निवृत्त होकर मन को मुकुन्द में रखते हुये गन्धमादन पर्वत के ऊपर चढ़े ।। 3 ।।

वह बदरिकाश्रम के नर नारायण आश्रमों में कटुतर शीत उष्ण को सहते हुये भक्ति से श्रीहरि का तप करने लगे ।।4।।

इधर भगवान श्रीकृष्ण पुनः मथुरा को वापस आकर कालयवन के साथ आया हुआ म्लेच्छ सैन्य को नाश किये। उसके सम्पदा को द्वारका को भेज रहे थे ।। 5 ।।

श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार सारे धनसम्पदा को बैलों के ऊपर लाद कर यादव ले जा रहे थे। उसी समय जरासंध पुनः तेईस अक्षोहिणी सैन्य से युद्ध करने आया ।। 6 ।।

जरासंध आग बबूला होकर क्रोध से जलते हुये रथ, हाथी, घोड़ा वाले अपने सैन्य के बीच में श्रीकृष्ण को रखते हुये एक क्षण में मकर व्यूह की रचना की ।। 7 ।।

उसको देखकर श्रीकृष्ण जो खाली हाथ थे समीप के एक वृक्ष को उखाड़ कर सारे अश्व रथ पदाति को मारने लगे।।8।।

श्रीकृष्ण वृक्ष से मारने लगे तो शत्रु सैन्य के हाथी इन्द्र के व्रजायुध से मार खाये हुये पहाड़ के समान मर कर भूमि पर गिर गये ।। 9 ।।

हे राजा, रथ, रथिक, घोड़ा, सारथी सहित जरासंध का सारा सैन्य चकनाचूर हो गया। जहाँ देखो वहाँ शवों का ढेर लग गया ।। 10 ।।

बलराम क्रोध से आगे बढ़ते हुये शत्रु सैन्य को इन्द्र व्रजायुध से जैसे पहाड़ को मारा वैसे अपने मुष्टि प्रहार से मारने लगे ।।11।।

हे राजा, बलराम के मुष्टि प्रहार से जरासंध के रथ वृक्ष की पत्ती के समान गिर गये ।।12।।

कालयवन के धन-सम्पति को लेकर जाने वाले यादवों को मार कर जरासंध उस धन को अपने वश में लेकर राम कृष्ण के सामने युद्ध करने आया। राम कृष्ण जरासंध के इस आक्रोश को देखकर वहाँ से भागने लगे ।। जरासंध का सैन्य तैयार होकर आया था। यादव का सैन्य यहाँ आयुध, रथ, कवच से विहीन होकर बरसात के पानी से भीगने वाले मनुष्य के समान शत्रुओं के बाण में घिर गये ।। 13-14-15-16 ।।

भयरहित राम कृष्ण लोगों को दिखाने के लिये वे भी डरे हुये जैसे उस धनराशि को वहीं छोड़कर बहुत दूर भाग गये ।। 17 ।।

राम कृष्ण भाग रहे हैं, इसको देखकर बलिष्ठ जरासंध हास्य करते हुये उनके पीछे दौड़ा। वह उनके सामर्थ्य को ठीक तरह से नही जानता था ।। 18 ।।

बहुत दूर तक भागने के बाद रात में कोल्हापुर में विश्रान्ति लेकर सूर्य उदय के समय में वे दोनो गोमान्तक पर्वत के ऊपर चढ़ गये ।। 19 ।।

सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधरों से सेवित गोमान्तक पर्वत के ऊपर श्रीराम कृष्ण दोनों चढ़ गये। वहाँ प्रवर्षण नाम के शिखर पर प्रतिनित्य मेघ पानी बरसाते हैं। वहाँ कन्द, फल, मूल बहुत होता है। उनको खाते हुये वे वहाँ सुख से रहे ।।20-21।।

दुर्बुद्धिवाला जरासंध उनको पीछे करते हुये अपने बड़े सैन्य से पूरे गोमान्तक पहाड़ को घेर लिया ।। 22 ।।

युद्ध में अपने समान न रहने वाले इस अहंकार वाले राजाओं को बुला कर जरासंध उनको पहाड़ पर चढ़ने के लिये आदेश दिया। उन राजाओं में कुंजर देश के अधिपति कलिंग, सौराष्ट्रपति, सिन्धु देशाधिपति, जरासंध, कुरुकुल के सोमदत्त, गान्धार के राजा शकुनी, विदर्भ के राजकुमार रुक्मि, कांबोजाधिपति सुदक्षिण, मत्स्यराज विराट इनको पूर्व की दिशा से पहाड़ चढ़ने के लिये बोला ।। 23-24-25 ।।

पांचाल के राजा द्रुपद, चेदी राजा दमघोष, साल्वराज, ब्रह्मदत्त, निषादराज एकलव्य, कुरुकुल राज बाल्हीक, अजेय युधामन्यु, अवंती राजा, विन्द अनुविन्द, काशी राजा पौंड्रक को दक्षिण से पहाड़ चढ़ने के लिये बोला ।। 26-27-28 ।।

किंपुरुषाधिपति द्रुम, दंतवक्र उसका भाई विदूरथ, वीर विदेहराज, भूरिश्रव, करूशाधिपति बृहच्चाप, दशार्ण राजा शतध्वज, सुवीर राजा शैब्य, महारथ दर्द इनको पश्चिम दिशा से गोमान्तक के ऊपर चढ़ा दिया ।। 29-30-31 ।।

त्रिगर्त के राजा सुशर्म, बलिष्ठ वेणुधारी, महाबली कुलिंद, राजा कैकेय, शिशुपाल, कभी

न हारने वाला भीष्मकराज इनके साथ स्वयं जरासंध उत्तर की दिशा से चढ़ाई की ।।32-33।।

इस प्रकार सारे ऋतुओं में फल देने वाले वृक्ष से युक्त गोमान्तक पहाड़ में सैनिक, प्रवर्षण शिखर तक सभी जगह में राम कृष्ण को ढूंढ़े ।। 34 ।।

वे सारे सैनिक राम कृष्ण को ढूंढ़ते रहे। वे नही मिले। सैन्य क्रोध से वहाँ के वृक्षों को काट डाले। तो भी राम कृष्ण नही मिले। इसको देखकर आक्रोश से जरासंध पूरे पहाड़ को आग से जलाया। उस जलने वाले पहाड़ के ग्यारह योजन वाले शिखर से श्रीराम कृष्ण छलांग मार कर जमीन पर उतर गये। यह समाचार जरासंध को और उनका पीछा करने वाले किसी को भी मालूम नही हुआ ।। 35-36-37-38 ।।

भगवान एक बार पहाड़ को ऊपर उठाकर उसको छतरी बनाते हुये मुसलाधार वर्षा से भक्तों की रक्षा की। इस बार गोमान्तक को पांव से दबा कर नीचे के जल को ऊपर लाकर अग्नि को बुझा दिया। भगवान दोनो तरह के लीला-विनोद कर सकते हैं। दो बार जिसने अग्नि को खाया था उनके लिये अग्नि क्या कर सकती है। भगवान सब कुछ करने की ताकत रखते हैं।

हे राजा परीक्षित श्रीराम कृष्ण समुद्र के मध्य में रहने वाले जलदुर्ग के बीच में रहने वाले द्वारका को सुरक्षित रूप से वापस आये। जरासंध समझ लिया कि वे दोनो वहीं पहाड़ के ऊपर जल गये। इस समाधान से जरासंध अपनी सेना को लेकर मगध को चला गया। उसको सन्तोष हुआ कि यह अट्ठारहवाँ युद्ध को उसने जीत लिया। इस भ्रम से उसका अहंकार और बढ़ गया। महात्मा राम कृष्ण द्वारका नगर में प्रवेश करते हुये दिन रात सूत मागध बन्दियों की स्तुति सुनते हुये परमानन्द में सुखवास करते रहे ।। 39-40-41 ।।

यहाँ भागवत में श्रीराम कृष्ण पहाड़ से कूद कर द्वारका आये इतनी ही कथा है। हरिवंश में इसको विस्तार रूप से कहते हैं। राम कृष्ण प्रवहन से नीचे कूदने से उनके भार से पहाड़ जमीन में धँस गया। जमीन के नीचे का पानी फव्वारे की तरह पहाड़ के ऊपर छिड़का कर आग को बुझ दिया। श्रीराम कृष्ण जरासंध के सैन्य को मार कर ध्वंस किये। पुनः अशरीरवाणी सुनकर बलराम जरासंध को छोड़ दिया। श्रीकृष्ण उसको गदा से मार कर गिराये। मूर्छित उसको वहीं छोड़कर चले गये। जरासंध मूर्छा से उठने के बाद लज्जित होकर अपनी राजधानी को चला गया। इस प्रकार अट्ठारह युद्ध होते हैं। प्रत्येक युद्ध में जरासंध मार खाता है।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में पचपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - छप्पनवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - हे राजा, श्रीकृष्ण एकबार बलराम सात्यकि इत्यादि सभासदों के साथ अनेक देश के राजाओं से गौरव स्वीकार करते समय सत्रयाग करने वाले ब्राह्मण के मुख से कुन्ती पुत्रों ने युद्ध में पांचाल राजा द्रुपद को बन्धक बनाया यह समाचार सुने ।। 1-2 ।।

इसको सुनकर श्रीकृष्ण मन में हर्षित हुये इसके बारे में और ज्यादा जानने के हेतु कृतवर्म को हस्तिनापुर भेजे ।। 3 ।।

कृतवर्म हस्तिनापुर पहुँच गये। वहाँ वृद्ध कुरु पितामह भीष्म, द्रोण, विदुर, धृतराष्ट्र से भेट करने के बाद राजा युधिष्ठिर और उनके चार भाईयों से उनकी माँ कुन्ती से मिलकर उनको योग्य गौरव दिये ।। 4-5 ।।

युधिष्ठिर कंस मर्दन श्रीकृष्ण और उनके बन्धुओं के बारे में कुशल प्रश्न किये। कालयवन को मारना, जरासंध को हराना, करवीरपुर के अधिपति सृगाल वसुदेव को जीव से मरना, समुद्र के बीच में द्वारका नगर निर्माण करना, हंस डिंबक, अजेय ब्रह्मदत्त के मरण के बारे में कृतवर्म के मुख से विवरणो को जानकर धर्मराजा सन्तोष पाये। उनको लगा इस कथा को सुनने से उसको तीनों लोक का साम्राज्य मिल गया है। पाण्डव लोग कुन्ती के साथ कृतवर्म को बहुत आदर करते हुये बातचीत किये। उनकी आँखों में प्यार के आंसू भर गये थे। कृतवर्म कुन्ती और उनके पुत्रों को उनके आयु के अनुसार वन्दन और अभिनन्दन किये। उनसे विदा लिये। बाद में भीष्म, धृतराष्ट्र, विदुर, कर्ण, द्रोण, कृप, ज्ञानी अश्वत्थाम और दुर्योधन की आज्ञा पाकर हस्तिनावती से चलकर एक दिन शाम को द्वारका में प्रवेश

किये ।। 6-7-8-9-10-11-12-13 ।।

यहाँ हंस, डिंभक नाम आये हैं। ब्रह्मदत्त नाम का राजा शिव से तप कर इन दोनो को अपने पुत्र रूप में पाया। मित्रासह नाम के ब्राह्मण पाँच वर्ष तप करके जनार्दन को पुत्र रूप में पाया। दुरहंकारी हंस डिंभक इस जनार्दन को श्रीकृष्ण के पास भेज कर अपने लिये नजराना मांगे। श्रीकृष्ण, तुम समुद्र में रहते हो। इसके लिये हमें समुद्र में रहने वाले रत्नों का नजराना दो। इसके उत्तर रूप में श्रीकृष्ण उनको युद्ध में मार डाले।

बहुत राजाओं के साथ श्रीकृष्ण बैठे हुये सुधर्म सभा में कृतवर्म प्रवेश किये। वहाँ सोने के सिंहासन पर श्रीकृष्ण, वनमाला धारण कर बैठे थे। कृतवर्म उनको नमस्कार करते हुये उनके पास जाकर हस्तिनापुर में जो देखा, जो सुना उसके बारे में सारे कौरव और पाण्डवों का वृतान्त बता दिये। जगदीश्वर श्रीकृष्ण सारे समाचार को सुने। पाण्डवों का पौरुष को सुनकर आनन्द विभोर हो गये ।। 14-15-16-17 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में छप्पनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

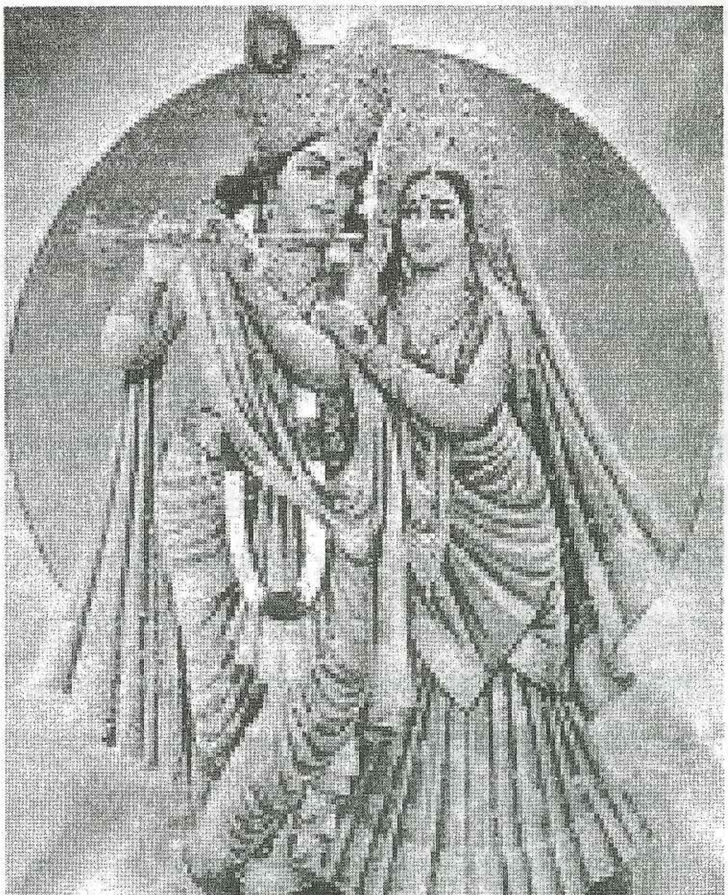

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अध्याय - सत्तावनवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - अनर्त देश के अधिपति श्रीमान् रेवतराज ब्रह्मा जी के आदेश के अनुसार अपनी पुत्री रेवती को बलराम से विवाह किये। इस बात को हम पहले ही कह चुके हैं ।।1।।

अनर्त शर्याति का पुत्र था। द्वारका के समीप देश का राजा बना था। उसी स्थान को आज कुशास्थली कहते हैं। श्रीराम के पुत्र कुश ने इसका निर्माण किया था। बाद में अनर्त राजा इसका पुनः निर्माण किया। उसका पौत्र रेवत इस राज्य में बहुत वर्ष राज्यभार किया। (रामायण, उत्तरकाण्ड 108)

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे महामुनि, रेवतराज ब्रह्माजी के आदेश को कैसे पाये। इस कथा को विस्तार पूर्वक और जानना चाहता हूँ ।। 2 ।।

श्री शुक देव जी कहते हैं - प्राचीन काल में अर्थ तत्वज्ञ रेवत नाम का राजा था। उनको रेवती नाम की बहुत कीर्तिशाली पुत्री जन्म ली ।। 3 ।।

नाना देश के राजाओं ने उसका सौन्दर्य और कीर्ति को सुनकर उसको माँगे। किन्तु रेवत उनको नही दिया। उनसे भी सुन्दर राजा को दूढते हुये योग्य वर को पाने के उद्देश्य से ब्रह्मा जी के पास गया ।। 4 ।।

ब्रह्मा जी की सभा में हाहा हूहू नाम के दोनो बन्धु जुगल बन्दी गा रहे थे। गान्धार राग में सात सुरों में आरोह अवरोह करते हुये गीत गाने में वे बहुत कुशल थे ।। 5 ।।

वह संगीत समाप्त होने तक एक निमिष पर्यन्त राजा बाहर खड़ा रहा। एक निमिष के बाद संगीत समाप्त होने के बाद राजा ब्रह्मा जी को नमस्कार करते हुये प्रश्न किया ।। 6 ।।

हे पूज्य, यह मेरी पुत्री है। अत्यन्त सुन्दरी इसको मैं किसके साथ विवाह करूँ। रेवत के इस बात से ब्रह्मा जी उससे पूछे। तुमको जो राजकुमार पसन्द है उनके नामों को बताओ। उनमें से एक अच्छे वर को मैं बता दूँगा। तब रेवत राजा अनेक देश के राजाओं का नाम बताया ।। 7-8 ।।

उन नामों को सुनकर ब्रह्मा जी हँस कर बोले :- हे रेवत, मानवों को सुनने का अधिकार

जिसमें नहीं है वह गन्धर्व गान तुमने एक निमिष पर्यन्त सुना। सत्य लोक के इस एक निमिष में अनेक चतुर्युग चले गये हैं। वे सारे राजा चले गये हैं। अब वे कोई जीवित नही रहे हैं ।। 9-10 ।।

हे राजा अब अट्ठाइसवां द्वापर युग चल रहा है। यदुवंश के श्रेष्ठ सर्वशक्त युवा राजा श्रीकृष्ण और बलराम हैं।।11।।

तुम इनमें से बलराम को अपनी पुत्री को दे दो। ब्रह्मा जी की इस आज्ञा को पाकर राजा उनको नमस्कार करते हुये अपने नगर को वापस आकर बहुबाहुशाली बलराम को अपनी रूपवती रेवती नाम की कन्या को विवाह में प्रदान किया ।। 12 ।।

रेवतराजा सत्यलोक में अपनी पुत्री के साथ सत्ताईस युगपर्यन्त रहा था। रेवती सुन्दरी और कुँआरी थी। यह ब्रह्मा जी से तय हुआ विवाह है। उस दिन से यह बात प्रसिद्ध हुई की ब्रह्म घटना से ही विवाह तय होते हैं।

रेवती प्रथम चतुर्युग के प्रथम कृत युग में जन्म ली है। उसी के कारण बहुत लम्बे शरीर वाली थी। महाबाहुशाली बलराम उसके कन्धे के ऊपर अपने हलायुध को रखकर अपने कन्धे के समान बनाकर उससे विवाह किये ।। 13 ।।

हे राजा परीक्षित और सुनो - भगवान श्रीकृष्ण लक्ष्मी के स्वरूपांश वाली भीष्मक राजा की पुत्री राजकुमारी रुक्मिणि को स्वयंवर में जीत कर विवाह किये ।।14।।

शिशुपाल के साल्व इत्यादि राजाओं को बलात्कार से हरा कर सारे लोगों के सामने, गरुड़ जैसे देवताओं को हराकर अमृत लाया, वैसे रूक्मिणि को अपहरण कर ले आये ।। 15 ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे मुने - भीष्मक राज की पुत्री अत्यन्त सुन्दरी रुक्मिणि को भगवान श्रीकृष्ण राक्षस विधि से विवाह किये ऐसे मैंने सुना है। क्या यह सत्य है ? ।।16।।

विवाह ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर, राक्षस, पिशाच इसप्रकार आठ विध होते हैं। वर को तय कर निमंत्रण देकर अलंकृत कन्यादान करना ब्राह्म विवाह कहा जाता है। यज्ञ में ऋत्विज बना हुआ ब्राह्मण को दक्षिणा रूप में सालंकृत कन्यादान करना दैव विवाह है। गाय और बैल जोड़ी को कन्या शुल्क में देकर कन्या को ग्रहण करना आर्ष विवाह है। जीवन पर्यन्त धर्माचरण करने के हेतु दान रूप में पुत्री को देना प्राजापत्य विवाह है। वधू वर का परस्पर प्यार करते हुये स्वयं विवाह करना गान्धर्व विवाह है। कन्या पिता को जो चाहे वह धन इत्यादि देकर कन्या को पाणिग्रहण करना आसुर विवाह है। वधू को बलात्कार से अपहरण कर विवाह करना राक्षस विवाह है। वंचना से कन्या के मन के विरुद्ध अपहरण कर विवाह करना पैशाच विवाह है। **गान्धर्व वृत्या मिषताम्** (3-3-3) भागवत में श्रीकृष्ण गान्धर्व विवाह से विवाह किये ऐसा कहा गया है। यहाँ राक्षस विवाह कहते हैं। इनमें विरोध नही है। महाभारत में शकुन्तला के उपाख्यान में आता है। (1-73-30) दुष्यन्त कहते हैं :- गान्धर्व और राक्षस विवाह प्रत्येक को अथवा मित्र हो यह क्षत्रियों के लिये सम्मत है। यहाँ श्रीकृष्ण से रुक्मिणि पहले प्रेम करती थी। बलात्कार

से अपहरण करने से यह गान्धर्व और राक्षस दोनों का मिश्रण है।

हे पूज्य महाबलशाली श्रीकृष्ण जरासंध, साल्व इत्यादि अनेक राजाओं को हराकर अपने उद्दिष्ट को प्राप्त किये। उस कथा को मैं सुनना चाहता हूँ ।।17।।

श्रीकृष्ण की कथा चिरपुरातन होते हुये भी नित्य नूतन है, पुण्यकर, मधुकर, इस लोक के पाप का परिहार करने वाली है। रसाभिज्ञ सुनने वाला कौन इसको छोड़ सकता है ।। 18 ।।

श्री शुक देव जी कहते हैं :- विदर्भाधिपति भीष्मक राजा को पाँच पुत्र और एक सुन्दर पुत्री थी।।19।।

इनमें रुक्मि पहला पुत्र था। बाद में रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्मालि। इनकी प्यारी बहन रुक्मिणि ।।20।।

वह रुक्मिणि राजगृह को आये हुये नारद इत्यादि महर्षियों के मुख से श्रीकृष्ण के पराक्रम रूप, गुण सम्पन्नता को सुनकर उसी को अपने योग्य पति मान ली ।।21।।

रुक्मिणि सम्पत्ति की स्वामी साक्षात् लक्ष्मीदेवी है। इस जगत का पालन करने वाली माँ स्वरूपिणी हैं। सर्वलक्षण सम्पन्न पद्मिनी लक्षण वाली पद्महस्त, पद्मपाद, पद्म के समान आँख वाली, पद्मासन में बैठ कर दोनो हाथों में पद्म को पकड़ी हैं, पद्मनाभ की प्रियकरणी हैं। सदाकाल सोलह वर्ष के रूप वाली भृगुऋषि में भार्गवी नाम के रूप वाली चन्द्र के भगिनी, सागर से उत्पन्न वाली श्री भू दुर्गा रूप से सदाकाल भगवान की सेवा करने वाली है।

श्रीकृष्ण भी बुद्धि, लक्षण, औदार्य, रूपशील और गुणों के लिये आश्रयीभूत रुक्मिणि को अपने योग्य पत्नी निर्धारित करते हुये उससे विवाह करने का निर्णय किये ।। 22 ।।

हे राजा, अपनी बहन को श्रीकृष्ण के साथ विवाह करने के लिये अन्य चारों बन्धु के सम्मत होते हुये भी श्रीकृष्ण से द्वेष करने वाला रुक्मि इससे सहमत नही हुआ। वह रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से करना चाहता था ।। 23 ।।

शिशुपाल दमघोष का पुत्र था। इसके पहले इसका विवाह हो चुका था। उसको देवकी नाम की एक पुत्री भी थी। उस पुत्री का विवाह धर्मराजा से हुआ था। शिशुपाल की वह पत्नी मर गयी थी। अब वह विधुर हो गया था।

जरासंध को सहदेव नाम का एक पुत्र था। वह सज्जन था, इस दुष्टकूट में नही मिलता था। इसके लिये दुष्ट जरासंध शिशुपाल को अपने दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार किया था। अपने दत्तक पुत्र को रुक्मिणि से विवाह कराकर सबको जीतना जरासंध का उद्देश्य था।

श्रीकृष्ण एकबार राजा भीष्मक के पास आकर उसको अपना विश्वरुप दिखा कर लक्ष्मी के स्वरूप रहने वाली रुक्मिणी को अपने को देने के लिये स्वीकार करवाया था। किन्तु असुरावेश से भीष्मक ने स्वयंवर की व्यवस्था की।

काले सुन्दर आँख वाली रुक्मिणी इसको समझकर दुःखित हुई। बहुत सोच समझ कर अपने आत्मीय एक ब्राह्मण को श्रीकृष्ण के पास भेजी ।। 24 ।।

वह ब्राह्मण द्वार को आकर द्वारपालक से अनुमति पाकर सोने के सिंहासन पर बैठे श्रीकृष्ण को देखा ।। 25 ।।

ब्राह्मण को देव मानने वाले श्रीकृष्ण उसको देखकर अपने आसान से उठकर उसी आसान में उसको बैठाकर आदर सत्कार से देवताओं के समान उसकी पूजा की ।। 26 ।।

ब्राह्मण भोजन कर विश्रान्ति पाने के बाद भगवान श्रीकृष्ण ब्राह्मण की पाद सेवा करते हुये शान्त भाव से पूछते हैं ।। 27 ।।

कन्या को निश्चित करने आये हुये लोग निश्चय होने तक उस घर में भोजन नही करते। यहाँ नित्यावियोगिनी दम्पत्ति श्रीकृष्ण-रुक्मिणी का विवाह सदाकाल के लिये निश्चित है। यह समझाकर ब्राह्मण वहाँ भोजन किया।

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, जो मिलता है उससे सन्तुष्ट रहने वाला अपने शरीर को अतिकष्ट दण्डन न करते हुये ज्ञानी को सम्मत धर्माचार को आप सदा के लिये करते रहते है न ? ।। 28 ।।

ब्राह्मण जो मिलता है उससे सन्तुष्ट रहे तो वह धर्म से च्युत नही होता। वह धर्म ही उसको इष्टार्थ देता है ।। 29 ।।

ब्राह्मण जितना भी हो उसे अपर्याप्त बोलने वाला देवताओं का राजा बनने के बाद भी सुख नही पाता। अकिंचन चिन्ता न करते हुये तृप्ति से सोता है ।। 30 ।।

इसी कारण जो मिलता है उसी में सन्तुष्ट रहने वाले अच्छे स्वभाव वाले, सारे जीवियों को अत्यन्त उपकार करने वाले अहंकार न करने वाले, भगवान में निष्ठा वाले ब्राह्मणों को मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ ।। 31 ।।

हे ब्राह्मण, आपके राजा से आपको सुख है न। जिस राजा के राज्य में प्रजा उनसे रक्षा और सुख को पाते हुये वास करती है वह राजा मेरे लिये प्रिय बनता है ।। 32 ।।

आप श्रीहरि की इच्छा से इस दुर्गम समुद्र को पार करके क्यों आये हैं। बोल सकते हो तो कह दीजिये। कहिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ ।। 33 ।।

श्री शुक देव जी कहते हैं :- भगवान के मुख से इन बातों को सुनकर ब्राह्मण रुक्मिणी से लिखकर दिया हुआ पत्र को श्रीकृष्ण के सामने रख कर नमस्कार करता है ।। 34 ।।

विश्व में लिखा हुआ यह प्रथम प्रेम पत्र है। प्राचीन काल में स्त्रियाँ भी पढ़ कर विदुषी बनती थीं। शकुन्तला दुष्यन्त को खत लिखी थी। विजयध्वजी पाठ में इस प्रेम पत्र का उल्लेख भागवत में है। अन्य पाठों में ब्राह्मण अपने मुख से कहते है।

हंसन्मुख के सुन्दर आँख वाले जगन्नाथ धर्मात्मा श्रीकृष्ण उस पत्र को आदर से उठाकर पढ़ने लगे ।। 35 ।।

पत्र में रुक्मिणी कहती हैं :- हे भुवन मोहन सुरसुन्दर श्रीकृष्ण मैंने आपके गुणगान को बहुत सुना है। सुनने वाले कानों में जाकर आपकी कीर्ति शरीर के सन्ताप को नाश करती है। जग के मंगल वस्तुओं के लिये मंगल स्वरूप देने वाले अत्यन्त मंगल रूप वाले आपके सुन्दर रूप के बारे में भी मैं बहुत बार सुना है। हे अच्युत आप मेरे चित्त में निश्चित रूप से बैठ गये है। इसको लिखने में मुझे लज्जा नही आती ।। 36 ।।

इस श्लोक में श्रुत्वा इस शब्द से आरम्भ होता है। रुक्मिणी इस पत्र को लिखी है। इसमें कुल नौ श्लोक है। **श्रुत्वा** इसका अर्थ **श्रवण** करना यह नवविध भक्ति की प्रथम भक्ति होती है। **श्रवण** करना सबसे श्रेष्ठ भक्ति मानी जाती है।

हे पुरुषोत्तम मुकुन्द, सत्कुल में जन्म लिये हुये शालीन वृत्तियाँ वाली लज्जा युक्त उत्तम कुँवारी गुणशील रूप विद्या वय ऐश्वर्य कान्ति से युक्त अपने को अनुरूप मुक्त अमुक्त सकल चेतनाओं का मन को खींचने वाले आपके समान वर को युवा अवस्था में लज्जा छोड़कर विवाह करने के लिये तैयार होती हैं ।। 37 ।।

इस श्लोक में श्रीकृष्ण का गुण वर्णन है। इससे श्रीकृष्ण में **कीर्तन** नाम के भक्ति का वर्णन है।

हे इन्दिरामण, भक्तवत्सल, दीन रक्षक, सर्वशक्त भगवान आपको मैं प्यार से वरण कर चुकी हूँ। हे प्रियतम, मेरे मन की कामना को जानकर आपके चरण कमल की दासी के इस अभीष्ट को पूर्ण करें। मैं आपके पादतल में शरण आई हूँ ।। 38 ।।

प्रणतास्मि तेंघ्रिम् इससे **पाद सेवन** भक्ति व्यक्त होता है।

हे कृष्ण मैं आपको एकबार पति के रूप में स्वीकार कर चुकी हूँ। प्रभु मैं आपको आत्मसमर्पण की हूँ। हे स्वामी, हे वीर मै आपकी हूँ। हे कमलाक्ष, आप ही यहाँ आकर मुझको पत्नी के रूप में स्वीकार करें। सिंह के इष्ट बनने वाले को सियार न खाये। आपको समर्पित मुझको शिशुपाल न छुये ।। 39 ।।

विधेहि इस शब्द से **सख्य** भक्ति व्यक्त होती है। इस श्लोक के सम्पूर्णार्थ से **आत्म निवेदन** व्यक्त होता है।

गोकुल के सारी गोपियों की रक्षा करने वाले आपको मैं एक अधिक भार होने वाली हैं क्या ? यह भाव भी यहाँ व्यक्त होता है।

इष्टपूर्त, दान, व्रत, नियम, देव-ब्राह्मण-गुरु पूजा इत्यादि से यदि मैं भगवान को ठीक तरह से पूजा करते हुये उनको प्रसन्न किया हो तो श्रीकृष्ण स्वयं आकर मेरा हाथ ग्रहण करें। और

ाले जगन्नाथ धर्मात्मा श्रीकृष्ण उस

- हे भुवन मोहन सुरसुन्दर श्रीकृष्ण
जाकर आपकी कीर्ति शरीर के सन्त
रूप देने वाले अत्यन्त मंगल रूप वाल
ुत आप मेरे चित्त में निश्चित रूप से
।

आरम्भ होता है। रुक्मिणी इस पत्र को लि
विध भक्ति की प्रथम भक्ति होती है। **श्रवण**

कुल में जन्म लिये हुये शालीन वृत्तिय
ऐश्वर्य कान्ति से युक्त अपने को अ
ले आपके समान वर को युवा अवस्थ
37 ।।

ण वर्णन है। इससे श्रीकृष्ण में **कीर्तन** नाम के

सल, दीन रक्षक, सर्वशक्त भगवान अ
की कामना को जानकर आपके चर
पादतल में शरण आई हूँ ।। 38 ।।

द सेवन भक्ति व्यक्त होता है।

एकबार पति के रूप में स्वीकार कर
ी, हे वीर मै आपकी हूँ। हे कमलाक्ष,
। सिंह के इष्ट बनने वाले को सियार
39 ।।

भक्ति व्यक्त होती है। इस श्लोक के सम्पूर्णार्थ
रक्षा करने वाले आपको मैं एक अधिक भार होन

नियम, देव-ब्राह्मण-गुरु पूजा इत्यादि
को प्रसन्न किया हो तो श्रीकृष्ण स्वयं आव

र न मिले ।। 40 ।।

ने वाले स्वयंवर में इकट्ठे हुये सेनापतियों के बीच में आप विदर्भ को
को नाश कर कन्या शुल्क के रूप में अपने पराक्रम को दिखाते हुये
से मेरे साथ विवाह करें।।41।।

ने वाले हमारे बन्धुओं को न मारते हुये विवाह कैसे होगा। इसके लिये मैं एक
र्व एक दिन पहले हमारे कुल देवता की बड़ी यात्रा लगती है। वहाँ विवाह होने
जाकर गिरजा देवी का पूजा करने की परम्परा होती है ।। 42 ।।

समय वहाँ अपने रथ पदाति, गज, अश्व, सैन्य समेत आकर साल्व,
को झुकाकर सखियों के साथ वहाँ आई हुई मुझको हाथ पकड़कर रथ
लेकर आपकी ही बनी हुयी मेरा पाणिग्रहण करें ।।43।।

न बड़े देव भी अपने अज्ञान परिहार के लिये आपकी पाद कमल पराग
पके अनुग्रह को यदि मैं पा नही सकी तो व्रतोपवास से कृश होकर इस
भी सौ जन्म के साधन से भी आपको पाकर ही रहूंगी ।। 44 ।।

ते है - इस प्रकार पत्र में लिखा हुआ राजकुमारी के सन्देश को विश्लेषण
त्र को देखते हैं।। 45।।

यदुवंश भूषण श्रीकृष्ण, रुक्मिणी ने आपको गुप्त रूप से भेजा हुआ
ढ़कर जो करना चाहते हैं उसको विलम्ब न करते हुये जल्दी करें।।46।।

ुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

काले सुन्दर आँख वाली रुक्मिणी इसको समझकर दुःखित हुई। बहुत सोच समझ कर अपने आत्मीय एक ब्राह्मण को श्रीकृष्ण के पास भेजी ।। 24 ।।

वह ब्राह्मण द्वार को आकर द्वारपालक से अनुमति पाकर सोने के सिंहासन पर बैठे श्रीकृष्ण को देखा ।। 25 ।।

ब्राह्मण को देव मानने वाले श्रीकृष्ण उसको देखकर अपने आसान से उठकर उसी आसान में उसको बैठाकर आदर सत्कार से देवताओं के समान उसकी पूजा की ।। 26 ।।

ब्राह्मण भोजन कर विश्रान्ति पाने के बाद भगवान श्रीकृष्ण ब्राह्मण की पाद सेवा करते हुये शान्त भाव से पूछते हैं ।। 27 ।।

कन्या को निश्चित करने आये हुये लोग निश्चय होने तक उस घर में भोजन नही करते। यहाँ नित्यावियोगिनी दम्पत्ति श्रीकृष्ण-रुक्मिणी का विवाह सदाकाल के लिये निश्चित है। यह समझाकर ब्राह्मण वहाँ भोजन किया।

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, जो मिलता है उससे सन्तुष्ट रहने वाला अपने शरीर को अतिकष्ट दण्डन न करते हुये ज्ञानी को सम्मत धर्माचार को आप सदा के लिये करते रहते है न ? ।। 28 ।।

ब्राह्मण जो मिलता है उससे सन्तुष्ट रहे तो वह धर्म से च्युत नही होता। वह धर्म ही उसको इष्टार्थ देता है ।। 29 ।।

ब्राह्मण जितना भी हो उसे अपर्याप्त बोलने वाला देवताओं का राजा बनने के बाद भी सुख नही पाता। अकिंचन चिन्ता न करते हुये तृप्ति से सोता है ।। 30 ।।

इसी कारण जो मिलता है उसी में सन्तुष्ट रहने वाले अच्छे स्वभाव वाले, सारे जीवियों को अत्यन्त उपकार करने वाले अहंकार न करने वाले, भगवान में निष्ठा वाले ब्राह्मणों को मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ ।। 31 ।।

हे ब्राह्मण, आपके राजा से आपको सुख है न। जिस राजा के राज्य में प्रजा उनसे रक्षा और सुख को पाते हुये वास करती है वह राजा मेरे लिये प्रिय बनता है ।। 32 ।।

आप श्रीहरि की इच्छा से इस दुर्गम समुद्र को पार करके क्यों आये हैं। बोल सकते हो तो कह दीजिये। कहिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ ।। 33 ।।

श्री शुक देव जी कहते हैं :- भगवान के मुख से इन बातों को सुनकर ब्राह्मण रुक्मिणी से लिखकर दिया हुआ पत्र को श्रीकृष्ण के सामने रख कर नमस्कार करता है ।। 34 ।।

विश्व में लिखा हुआ यह प्रथम प्रेम पत्र है। प्राचीन काल में स्त्रियाँ भी पढ़ कर विदुषी बनती थीं। शकुन्तला दुष्यन्त को खत लिखी थी। विजयध्वजी पाठ में इस प्रेम पत्र का उल्लेख भागवत में है। अन्य पाठों में ब्राह्मण अपने मुख से कहते है।

हंसन्मुख के सुन्दर आँख वाले जगन्नाथ धर्मात्मा श्रीकृष्ण उस पत्र को आदर से उठाकर पढ़ने लगे ।। 35 ।।

पत्र में रुक्मिणी कहती हैं :- हे भुवन मोहन सुरसुन्दर श्रीकृष्ण मैंने आपके गुणगान को बहुत सुना है। सुनने वाले कानों में जाकर आपकी कीर्ति शरीर के सन्ताप को नाश करती है। जग के मंगल वस्तुओं के लिये मंगल स्वरूप देने वाले अत्यन्त मंगल रूप वाले आपके सुन्दर रूप के बारे में भी मैं बहुत बार सुना है। हे अच्युत आप मेरे चित्त में निश्चित रूप से बैठ गये है। इसको लिखने में मुझे लज्जा नही आती ।। 36 ।।

इस श्लोक में श्रुत्वा इस शब्द से आरम्भ होता है। रुक्मिणी इस पत्र को लिखी है। इसमें कुल नौ श्लोक है। **श्रुत्वा** इसका अर्थ **श्रवण** करना यह नवविध भक्ति की प्रथम भक्ति होती है। **श्रवण** करना सबसे श्रेष्ठ भक्ति मानी जाती है।

हे पुरुषोत्तम मुकुन्द, सत्कुल में जन्म लिये हुये शालीन वृत्तियाँ वाली लज्जा युक्त उत्तम कुँवारी गुणशील रूप विद्या वय ऐश्वर्य कान्ति से युक्त अपने को अनुरूप मुक्त अमुक्त सकल चेतनाओं का मन को खींचने वाले आपके समान वर को युवा अवस्था में लज्जा छोड़कर विवाह करने के लिये तैयार होती हैं ।। 37 ।।

इस श्लोक में श्रीकृष्ण का गुण वर्णन है। इससे श्रीकृष्ण में **कीर्तन** नाम के भक्ति का वर्णन है।

हे इन्दिरामण, भक्तवत्सल, दीन रक्षक, सर्वशक्त भगवान आपको मैं प्यार से वरण कर चुकी हूँ। हे प्रियतम, मेरे मन की कामना को जानकर आपके चरण कमल की दासी के इस अभीष्ट को पूर्ण करें। मैं आपके पादतल में शरण आई हूँ ।। 38 ।।

प्रणतास्मि तेंध्रिम् इससे **पाद सेवन** भक्ति व्यक्त होता है।

हे कृष्ण मैं आपको एकबार पति के रूप में स्वीकार कर चुकी हूँ। प्रभु मैं आपको आत्मसमर्पण की हूँ। हे स्वामी, हे वीर मै आपकी हूँ। हे कमलाक्ष, आप ही यहाँ आकर मुझको पत्नी के रूप में स्वीकार करें। सिंह के इष्ट बनने वाले को सियार न खाये। आपको समर्पित मुझको शिशुपाल न छुये ।। 39 ।।

विधेहि इस शब्द से **सख्य** भक्ति व्यक्त होती है। इस श्लोक के सम्पूर्णार्थ से **आत्म निवेदन** व्यक्त होता है।

गोकुल के सारी गोपियों की रक्षा करने वाले आपको मैं एक अधिक भार होने वाली हैं क्या ? यह भाव भी यहाँ व्यक्त होता है।

इष्टपूर्त, दान, व्रत, नियम, देव-ब्राह्मण-गुरु पूजा इत्यादि से यदि मैं भगवान को ठीक तरह से पूजा करते हुये उनको प्रसन्न किया हो तो श्रीकृष्ण स्वयं आकर मेरा हाथ ग्रहण करें। और

शुपाल आदि को अवसर न मिले ।। 40 ।।

हे श्रीकृष्ण कल होने वाले स्वयंवर में इकट्ठे हुये सेनापतियों के बीच में आप विदर्भ को र शिशुपाल के सैन्य को नाश कर कन्या शुल्क के रूप में अपने पराक्रम को दिखाते हुये त्कार से राक्षस विधि से मेरे साथ विवाह करें।।41।।

अन्तःपुर में रक्षा करने वाले हमारे बन्धुओं को न मारते हुये विवाह कैसे होगा। इसके लिये मैं एक य को बताती हूँ। विवाह पूर्व एक दिन पहले हमारे कुल देवता की बड़ी यात्रा लगती है। वहाँ विवाह होने नव वधू उस मन्दिर को जाकर गिरजा देवी का पूजा करने की परम्परा होती है ।। 42 ।।

हे रमेश आप उस समय वहाँ अपने रथ पदाति, गज, अश्व, सैन्य समेत आकर साल्व, ध, चेदि आदि राजाओं को झुकाकर सखियों के साथ वहाँ आई हुई मुझको हाथ पकड़कर रथ ठाकर अपने नगर में लेकर आपकी ही बनी हुयी मेरा पाणिग्रहण करें ।।43।।

पार्वती पति के समान बड़े देव भी अपने अज्ञान परिहार के लिये आपकी पाद कमल पराग त्रोत करते हैं। ऐसे आपके अनुग्रह को यदि मैं पा नही सकी तो व्रतोपवास से कृश होकर इस को छोड़ दूंगी। बाद में भी सौ जन्म के साधन से भी आपको पाकर ही रहूंगी ।। 44 ।।

श्री शुक देव जी कहते है - इस प्रकार पत्र में लिखा हुआ राजकुमारी के सन्देश को विश्लेषण श्रीकृष्ण ब्राह्मण के मुख को देखते हैं।। 45।।

ब्राह्मण कहता है :- हे यदुवंश भूषण श्रीकृष्ण, रुक्मिणी ने आपको गुप्त रूप से भेजा हुआ श यह है इसको आप पढ़कर जो करना चाहते हैं उसको विलम्ब न करते हुये जल्दी करें।।46।।

यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अठ्ठावनवाँ

रुक्मिणी हरण

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्रीकृष्ण रुक्मिणी का यह प्रणय संदेश को पढ़कर ब्राह्मण के हाथ को पकड़कर हंसते हुए बोले ।।1।।

यहाँ **प्रगृह्य पाणिना पाणिं** शब्द का यह भी अर्थ होता है कि पत्र लाने वाले ब्राह्मण के हस्त को भगवान पकड़े हैं। भगवान पत्र लिखा हुआ रुक्मिणी के हस्त को कैसे छोड़ेगे।

भगवान कहते है - मेरा भी मन रुक्मिणी में लगा हुआ है उसी के कारण मुझे नींद नहीं आ रहा है। मैं जानता हूँ कि रुक्मि हमारे द्वेष से यह विवाह नहीं होने दे रहा है।।2।।

अरणी के मंथन से जैसे अग्नि प्रकट होता है वैसे मैं वहाँ प्रकट होकर युद्ध में दुष्ट राजाओं को ठीक तरह से मारते हुए मुझमें मन रखी, दोष रहित रुक्मिणी को पाता हूँ।।3।।

रुक्मिणी के विवाह मुहूर्त को जानकर श्रीकृष्ण अपने सारथी दारूक को जल्दी रथ को तैयार करने की आदेश दिये।।4।।

श्रीकृष्ण को केवल रुक्मिणी ने पत्र लिखा। उसके उत्तर रूप में श्रीकृष्ण प्रेम पत्र नहीं लिखा। इसका अर्थ श्रीकृष्ण को अपने के लिए किसी की आवश्यकता नहीं है। केवल रुक्मिणी के कल्याण के लिए भगवान यह लीला की। भगवान स्वरमण हैं।

शैब्य, सुग्रीव, मेघ पुष्प और बलाहक नाम के चार घोड़े को रथ से जोड़कर दारूक रथ को सामने खड़ाकर हाथ जोड़कर खड़ा हुआ।।5।।

श्रीकृष्ण रथ के ऊपर चढ़कर साथ में ब्राह्मण को लेकर तीव्र गति से दौड़ने वाले घोड़ो से एक ही रात में आर्नत देश से विदर्भ को जा पहुँचे।।6।।

वहाँ कुण्डिन नगर के राजा भीष्मक अपने पुत्र व्यामोह के कारण शिशुपाल को अपने पुत्री

को देने की सर्वसिद्धता किया था।।7।।

नगर के राजमार्गो को सफाई कर पानी छिड़काया गया था। अनेक तरह के ध्वज पताकाओं से अलंकार किये थे।।8।।

स्त्री पुरुष पुष्पमाला, गंध, आवरण वस्त्र, अलंकार के धारण किये थे। घर को सजाकर चंदन और धूप से सुगंधित किये थे।।9।।

राजा भीष्मक विधिपूर्वक नांदी स्थापना करते हुए पितृ देवता की पूजा कर ब्राह्मणों को भोजन करवाकर नियम के अनुसार स्वस्तिवाचन पूर्वक मंगल कार्य आरंभ किया।।10।।

कन्या रुक्मिणी को मंगल स्नान करवाये। हाथ को कंकण बाँधें। नवीन वस्त्रद्वय को पहनाकर पहले ही सुंदरी रुक्मिणी को आभरणों से और सुंदर बनाये।।11।।

श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग कन्या को सामवेद, ऋग्वेद, यर्जुवेद के मंत्र से रक्षा बंधन किये। अथर्वण वेद के तज्ञ पुरोहित ग्रहशांति हवन किये।।12।।

विधि में श्रेष्ठ राजा भीष्मक ब्राह्मणों को सोना चांदी, वस्त्र और गूड़ से मिला हुआ तिल को गायों के साथ दान दिये।।13।।

इसीं प्रकार चेदि देश के राजा दमघोष अपने पुत्र शिशुपाल को मंत्रज्ञ ब्राह्मणों से सारे मांगलिक क्रियाओं को करवाया।।14।।

मद जल को बहाने वाला हाथी की सेना, रथ सेना, पदाति और अश्वसेना के साथ राजा दमघोष अपने पुत्र को लेकर आया।।15।।

राजा भीष्मक उसका स्वागत करते हुए उनके लिए सिद्ध राजग्रह में उनको बिठा दिया ।।16।।

साल्व, जरासंध, दंतवक्र, विदूरथ, पौन्ड्रक इत्यादि हजारों राजाओं ने शिशुपाल के साथ आये थे।।17।।

कृष्णराम के द्वेषियों ने रुक्मिणी को शिशुपाल को देने के लिए बद्ध हो गये थे। बलराम और यादवों के साथ कृष्ण आकर कन्या ग्रहण करने के लिए युद्ध करें तो हम सब उनके साथ युद्ध करेंगे। इस दृष्टि से अपने सैन्य वाहनों को लेकर वे आये थे।।18-19।।

भगवान बलराम शत्रुपक्ष के राजाओं के इस सिद्धता को अपने गुप्तचरों से सुन लिये थे। इसके साथ भगवान श्रीकृष्ण कन्याहरण के लिए अकेले गये है इसको भी जान लिये थे। वे युद्ध

की शंका करते हुए भाई के प्यार से युक्त होकर गज, अश्व, रथ, पदाति से युक्त बड़ा सैन्य को लेकर तीव्र गति से कुंडिनपुर को चले ।।20-21।।

परम सुंदरी भीष्मक की कन्या रुक्मिणी श्रीकृष्ण की राह देखती रही। भेजा हुआ ब्राह्मण अभी नहीं आया। इससे उसको बहुत चिंता हुई।।22।।

मैं अभागी हूँ। मेरी विवाह के लिए केवल एक रात्रि मात्र बची है। श्रीकृष्ण अभी तक नहीं आये। कारण भी मुझे ज्ञात नहीं है।।23।।

मेरे संदेश को लेकर गया हुआ ब्राह्मण भी अभी तक नहीं आया। निर्दोष मुझमें श्रीकृष्ण क्या कमी देखें हैं। वे आयेगे या नहीं ? उनको मुझसे शादी करने की इच्छा है कि नहीं ? दुर्दैवी मुझ पर ब्रह्मा जी भी अनूकुल नहीं है। मनोनयामक रुद्र भी प्रतिकूल बने हैं क्या ?।।24-25।।

रुद्र के सति गिरजा वह भी मेरे प्रतिकूल बनी है क्या ? इस प्रकार कृष्ण में मन रखने वाली रुक्मिणी दुःख करने लगी। उनकी आँखों में पानी भरी थी। वे और दूसरों को न दिखे। इसके लिए वह अपने मुख को ढक ली।।26।।

हे राजा इस प्रकार रुक्मिणी श्रीकृष्ण के आगमन को कातर होकर देख रही थी। उस समय उसको बाई भुज, बाईं आंख हिले, इस शुभ सूचना से वह संतोष पाई।।27।।

उसी समय श्रीकृष्ण के यहाँ भेजा हुआ ब्राह्मण अन्तःपुर में आकर देवी रुक्मिणी से भेंट किया।।28।। ब्राह्मण की आंखें खुली थी। दृढ़ता से वह आ रहा था। इन बाह्य लक्षणों से उनकी मनोभावनाओं को जानने वाली देवी हंसते हुए उनसे पूछी।।29।।

ब्राह्मण उनसे बताया देवी श्रीकृष्ण आये हैं। देवी को ले जाने का शपथ किये है।।30।।

इससे संतुष्ट मनवाली रुक्मिणी कृष्ण आने वाले हैं यह प्रिय समाचार लाने वाले ब्राह्मण को देने प्रिय वस्तु किसी को न देखते हुए खुले मन से उसको नमस्कार की।।31।।

यहाँ रुक्मिणी जी ब्राह्मण को नमस्कार करती हैं। श्री राम जी अपने पति सीता जी को ढूंढकर उनसे चूड़ामणि लाने वाले हनुमान जी श्रीराजी को सहभोग रुप आलिंगन दिये। इस प्रकार यह ब्राह्मण के हाथ को पकड़कर श्रीकृष्ण जी करावलम्बन दिये। इसका अर्थ इस संसार से तुम्हारा उद्धार करता हूँ होता हैं। रुक्मिणी भी किसी लौकिक भोग्य भाग न देते हुए ब्राह्मण को नमस्कार की। इसका अर्थ तुम सबके नमस्कार योग्य बनो यह सूचित होता है। जगत जननी से नमस्कार पाने से और बड़ा वस्तु क्या होता है।

अपने पुत्री के विवाह को देखने के लिए रामकृष्ण आये हैं, यह सुनकर राजा भीष्मक पूजा

सामग्री के साथ वाद्य घोष करते हुए उनका स्वागत किया।।32।।

राजा भीष्मक मधुपर्क और सुंदर वस्त्रों को देकर उनका विध्युक्त सत्कार किया।।33।।

उदार बुद्धि वाला भीष्मक रामकृष्ण को कुण्डिनपुर के बाहर में रहने वाला उद्यान गृह में उनके योग्य वैभव पूर्ण व्यवस्था रहने के लिए किया।।34।।

जरासंध इत्यादि राजाओं ने पहले ही आने के कारण नगर पूरा भर गया है। इसके लिए आपको यहाँ आवास किया गया। इसको विनंती पूर्वक कहा गया। उनके अनुचरों को भी यथा योग्य सत्कार किया।।35।।

राजा भीष्मक आने वाले सारे राजाओं को उनके बल पराक्रम और आयु के अनुसार योग्य सत्कार किया।।36।।

यहाँ जरासंध आदि दुष्ट राजाओं ने पूरे कुण्डिनपुर में श्रीकृष्ण को स्थान न मिले इस दृष्टि से पूरे नगर में भरकर बैठ गये थे। राजा भीष्मक अनिवार्य होकर श्रीकृष्ण को नगर के बाहर बिठा दिया। किन्तु श्रीकृष्ण को रुक्मिणी को लेकर जाने के लिए यह अनुकूल ही बन गया। राजा भीष्मक के इस सत्कार से भगवान संतुष्ट हो गये। शाठ्य अथवा अहंकार से क्यों न हो भगवान की सेवा करने वाले उत्कृष्ट फल को ही पाते हैं।

श्रीकृष्ण आये हैं। यह समाचार सुनते ही कुण्डिनपुर में रहने वाले सारे लोग श्रीकृष्ण के यहाँ आकर अपने आँख नाम के अंजलि से उनके मुख के सौन्दर्य को बार - बार पिये।।37।।

वे बोलते रहे - रुक्मिणी श्रीकृष्ण के पत्नी बनने योग्य हैं। वह और किसी के पत्नी नहीं हो सकती। श्रीकृष्ण के समान और कोई पति नहीं मिलेगा।।38।।

अपने में किंचित यदि पुण्य रहा है तो तीनों लोकों के स्वामी श्रीकृष्ण हमारे ऊपर एक अनुग्रह करें। वह केवल यही हैं कि वे रुक्मिणी से पाणिग्रहण करें।39।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार नगर के वासी लोग प्रेम परवश होकर अपने में बातचीत कर रहे थे। इतने में विवाह होने वाली कन्या रुक्मिणी अंग रक्षकों की रक्षा में अंतःपुर से अम्बिकालय को पूजा के लिए चली।।40।।

देवी रुक्मिणी मुकुंद के पाद कमलों के ध्यान करते हुए भवानी का पाद दर्शन के लिए पैदल चलीं।।41।।

माता के और साथियों के साथ मौन होकर चलीं। आयुधों से सुसज्जित अनेक राजभट्ट उनके चारों ओर घेरे हुए थे।।42।।

हाथ में वेत्र और झर्झर नाम के वाद्य को लिये हुए अन्तःपुर रक्षक साथ में थे। वे मृदंग शंख पणव तूर्य और भेरी को बजाते थे।।43।।

अनेक तरह के पूजा सामग्री को लिये हुए हजारों स्त्रियां रुक्मिणी के साथ थी। पूर्व माला गंध वस्त्र गहनों से अलंकृत ब्राह्मण पत्नी भी साथ थी ।।44।।

गायन करने वाले गायक, वाद्य बजाने वालों के साथ सूत मागध बंदी स्त्रोत करते हुए वधू के साथ चल रहे थे।।45।।

रुक्मिणी देव मंदिर को आकर हाथ पांव धोकर आचमन करते हुए शुद्ध होकर भगवान श्रीकृष्ण को याद करते हुए दुर्गा सन्निधि को प्राप्त की।।46।।

स्त्री लोग करने वाला पूजाक्रम को जानने वाले वृद्ध ब्राह्मणसुमंगलियों ने वधू के साथ रुद्र से युक्त पार्वती को नमस्कार किये, करवायें।।47।।

रुक्मिणी मन में प्रार्थना करती हैं। हे माँ पार्वती जगदम्बे, पुत्रों के साथ बैठी हुई आप मंगलकारी है। आप को मैं पुनः पुनः वंदन करती हूँ। श्रीकृष्ण मेरा पति हो। आप इसका अनुमोदन करें।।48।।

ब्राह्मण पत्नियों ने दिया हुआ पूजा सामग्रियों से रुक्मिणी ने पार्वती की पूजा की। पानी गंध, अक्षता, धूप, वस्त्र, आवरणों से नैवेद्य और दीपों से अर्चना की। इसके साथ नमक, भक्ष्य, ताम्बूल, मंगलसूत्र, फल और गन्ने के टुकड़ों से नैवेद्य किया।।49-50।।

वे ब्राह्मण सुमंगलियों ने रुक्मिणी को देवी के प्रसाद देकर आशीर्वाद दिये। उनको और देवी को रुक्मिणी नमन की। अन्य सखी लोगों से आलिंगन किया।।51।।

बाद में मौन व्रत को छोड़कर दुर्गा मंदिर से बाहर आई। उस मंदिर के बगल में इन्द्र और शचीदेवी का मंदिर था।।52।।

विदर्भ में जन्म लिये हुए राजाओं के इन्द्र शची कुल देवता बनते हैं। रुक्मिणी बहुत समय तक शची का अराधना की थी। उस मंदिर को आकर इन्द्रपत्नी शची देवी को नमन कर आगे चली।।53।।

रत्न मुद्रा वाले अंगूठी को पहने हुए हाथ से सखी के हाथों को पकड़कर वह आगे चली। उस समय अनेक दूतों ने छत्र चामर को ऊपर उठाकर खड़े थे। अनेक लोग चामर चलाये।।54।।

सुंदर छोटी सी कटि, उससे बंधा हुआ सोने के रत्न जड़ित कमरबंद, सुंदर कुण्डलों से अलंकृत मुख, उभरे हुए स्तन, घुंघराले काले बाल चंचल नयन, अभि यौवन पायी हुई षोडसी

रुक्मिणी उन राजाओं को मोहित करने वाले लक्ष्मी के समान लगती थी।।55।।

शुभ्र मंद हास, लाल लाल गाल शोभायमान होंठ, चमेली के कली के समान दिखने वाले दांत, ध्वनि करने वाले पगघुंघरू को पहनकर राजहंसी के समान रुक्मिणी मंद मंद पग रखते हुए चल रही थी। उनको देखकर वहाँ आये हुए धीर वीर उनके दर्शन से मन्मथ से पीड़ित होकर अपने उद्देश्य और अपने को ही भूल गये।।56।।

रुक्मिणी मंदिर से बाहर आने के बाद हाथी के ऊपर बैठकर आगे जाना था। श्रीकृष्ण से मिलने का उद्देश्य होने के कारण वह पैदल चलती रही। नय नाजुक से चलने वाली उनको देखकर राजकुमार काम पीड़ित होकर अपने कर्तव्य को भूल गये। पुत्र अपने जगन्माता पिता रुक्मिणी श्रीकृष्ण का समागम हो इसके लिए मन्मथ उन राजाओं को मोहित कर दिये। साथ में छत्र चामर ऊपर उठने के कारण सबको क्या हुआ यह नही दिखता था।

यहाँ कुलदेवी की यात्रा केवल एक बहाना था, अपने अपार सौन्दर्य को व्यक्त करते हुए प्रत्यक्ष आये श्रीकृष्ण को अपने सौन्दर्य को समर्पण करने के लिए ही राजघर से बाहर देवी आयी थी। उनके मादक हंसी, लज्जा और तिरछे नजरों से मन मुदित होकर वहां इक्कट्टे हुए राजा लोग अपने कर्तव्य को भूल गये। गज अश्व रथ में बैठे हुए राजा लोग जमीन पर गिर गए। जमीन में खड़े सैनिक नीचे बैठ गये। कई बेहोश हो गये।।57।।

रुक्मिणी अपने कमल समान पादों से निदान गति से चलते हुए श्रीकृष्ण आये हैं क्या ? यह इसको आंखे खोलकर देखते हुए, घुंघराले बालों को बाएं हाथ से बाजू करते हुए उन राजाओं को एक बार लज्जा भरी नजर से देखी। वहाँ सुंदर सुकुमार श्रीकृष्ण को देखी।।58।।

अपने रथ को चढ़ने की इच्छा करने वाली रुक्मिणी को श्रीकृष्ण अपने हाथों से उठा लिये। शत्रु राजाओं ने देखते - देखते गरुड़ ध्वज से शोभित अपने रथ में बैठा दिये। सारे राज समूह को अलक्षित करते हुए निदान गति से चलने लगे। बलराम जी सैन्य समेत उनका पीछा करने लगे। हाथी के शिकार किया हुआ सिंह सियार के समूह से जैसे जाता है वैसे मंद गति से आगे बढ़े।।59-60।।

यहाँ रुक्मिणी मंद गति से चलती हैं। श्रीकृष्ण भी पहले अपने रथ को मंद गति से चलाये। इसका कारण एक ही था वे धैर्य से यह काम किये थे। यह काम चोरी से करने वाला नहीं है। अपने हक को लेकर चलने वाला कितने धैर्य से चलता है उसी धैर्य से ये दोनों अपने काम किये।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में अठ्ठानवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - उनसठ

रुक्मि पराभव

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते है - श्रीकृष्ण के रथ वायु वेग मनोवेग को पार करते हुए द्वारका के प्रति दौड़ने लगा। जरासंध के साथ आये हुए दुरभिमानि राजाओं ने इस हार को सहन नहीं कर सके। वे इस हार को अपने यश के लिए कलंक मानें। हे हमें धिक्कार हो। हम सब हाथ में धनुष पकड़कर खड़े हैं। किन्तु ये गाय चराने वाले हमारी कीर्ति का अपहरण किये। सिंह के मुंह से हिरणों ने आहार को लूटा।।1।।

वे सारे क्रोधित होकर कवच धारण करके अपने वाहन के ऊपर चढ़कर अपने सैन्य के साथ श्रीकृष्ण के पीछे दौड़े।।2।।

कामुक और दुरभिमानि जरासंध आदि राजा लोग अपने को न मिलने वाले हरिणाक्षी रुक्मिणी का वियोग नाम के रोग से अपने देह को त्यागने के लिए श्रीकृष्ण से मरने हारने अंधेरा सूर्य का जैसे पीछा करता है वैसे श्रीकृष्ण के पीछे पड़े।

हे राजा शत्रु सैन्य श्रीकृष्ण के पीछे लगा है। इसको देखकर यादव सेना बलराम का नेतृत्व में धनुर्बाण लेकर उनका सामना की।।3।।

घोड़े के ऊपर, हाथी के कंधे पर रथ के बीच में बैठे हुए क्षत्रिय वीर मेघ पहाड़ के ऊपर जैसे पानी बरसाता है वैसे यादवों के ऊपर बाणों को बरसाये।।4।।

आगे जाने वाली रथ में बैठी हुई रुक्मिणी पीछे मुड़कर देखती है, श्रीकृष्ण का सैन्य बाणों की वर्षा में छिप गया है। वे भय विह्वल होकर लज्जा भरी आंखों से श्रीकृष्ण के मुख को देखी।।5।।

भगवान श्रीकृष्ण हंसकर बोले - हे सुंदर आंख वाली डरने की बात नहीं है। यह शत्रु सैन्य तुम्हारे यादवों के हाथ से जल्दी ही नाश हो जायेगा।।6।।

गद, बलराम इत्यादि वीर शत्रु पराक्रम को सहन न करते हुए बाणों से उनके घोड़े हाथियों को मारे।।7।।

थिक, अश्वारोही, गजारोहियों के कीरीट कुण्डल युक्त हजारों सिर जमीन पर गिर
।

ड़्ग, गदा, धनुष को पकड़े हुए हाथ, कटी, पांव, घोड़े और अश्वतरीके, मनुष्यों के सिर यव लाखों संख्या में जमीन पर गिर गये।।9।।

क बार रुक्मिणी को पाकर जीते हुए यादव जय की आकांक्षा रहते हुए जरासंध के सैन्य करने लगे। रुक्मिणी के अपहरण से पहले ही हारे हुए जरासंध के सैन्य युद्ध भूमि से ।।10।।

राम जरासंध को पराभव किया। शिशुपाल को सात्यकि ने मारा। रुक्मि के सहाय के लिए आया हुआ। पने सैन्य को खोकर भाग गया।

शुपाल पत्नी को खोया हुआ आदमी के समान दुःख करने लगा। वह कान्ति हीन होकर खोकर दुःख से रोने लगा। उसके पास जरासंध इत्यादि राजा आकर कहते हैं।।11।।

रुषः श्रेष्ठ दुःख को छोड़ों। देह में रहने वाले किसी को भी सदाकाल सुख अथवा दुःख हीं रहता।।12।।

पुतली चलाने वाले के इच्छा के अधीन होकर नाचता है। वैसे ही जीव का सुख भोग व साधन भगवान के अधीन है। उनकी इच्छा से ही मानव कार्य प्रवृत्त होता है।।13।।

ईस अक्षोहिणी सैन्य सत्रह बार कृष्ण के साथ युद्ध किया। किन्तु पराजित होकर ा। परन्तु अठारहवां बार मैं जीत गया।।14।।

भी दैव के अनुसार ही यह जगत चलती है। मैं इसको ठीक तरह से जानता हूँ। इसी भी न संतोष पाता हूँ कभी दुःख को भी नहीं पाता हूँ।।15।।

हम बड़े - बड़े सेना नायक वीर धीर सूर होते हुए भी श्रीकृष्ण की रक्षा में रहने वाले से पराजित भी हो गये।।16।।

इस बार शत्रु जीते है। काल उनके लिए अनुकूल है। जब हमको अच्छा काल आयेगा गे।।17।।

कदेव कहते हैं - इस प्रकार आप्त जरासंध लोग समाधान करने के बाद शिशुपाल र के साथ अपने नगर को वापस चला गया। अन्य राजाओं अपने अपने राजधानी को 8।।

कृष्णद्वेषी रुक्मि अपनी बहन का यह राक्षस विवाह को सहन नहीं कर सका। वह गी सैन्य को साथ लेकर श्रीकृष्ण के पीछा किया।।19।।

बहुत शूर था किन्तु उसमें सहन गुण नहीं था। अब वह क्रोध से कवच धारण कर

अपने धनुष को उठाकर सबके सामने प्रतिज्ञा करता हैं।।20।।

युद्ध में श्रीकृष्ण को न मारते हुए रुक्मिणी की विवाह को शिशुपाल से नहीं करते हुए मैं वापस इस कुण्डीनपुर नहीं आऊँगा। यह बात सत्य हैं, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।।21।।

इस प्रकार शपथ करते हुए रुक्मि रथ के ऊपर चढ़कर अपने सारथी को आज्ञा देता हैं - कृष्ण के पास जल्दी ले चलो। मुझे उसके साथ युद्ध करना है।।22।।

वह कृष्ण मेरी बहन को जबरन ले चला हैं। उस दुर्बुद्धि वाले ग्वाले का अहंकार को मेरे बाणों से मिटाना हैं।।23।।

सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के सामर्थ्य को न जानने वाला दुर्बुद्धि युक्त रुक्मि ऐसे ही चीखते - चिल्लाते हुए रथ से उनका पीछा करने लगा।।24।।

जब श्रीकृष्ण नर्मदा नदी को पार कर रहे थे। उस समय उनके रथ को रुकाते हुए ठहरो-ठहरो, युद्ध के लिए तैयार हो जाओ रुक्मि ने चिल्लाया।।25।।

श्रीकृष्ण को अपने धनुष से तीन बाणों को छोड़कर मारा। हे यदुकुल को कलंक लगाने वाले भीरू एक क्षण रुक जाओं। क्यों भागते हो ?।।26।।

यहाँ **यदूनां कुलपांसन** शब्द का प्रयोग है। इसका अर्थ यह भी होता है कि हमारे रुक्मिणी को लेकर उनसे रहित हमारे नगरी को, हमारे कुल को उद्ध्वस्त किया है।

यज्ञ में समर्पित हविष्य को जैसे कौवा उठाकर ले जाता है। वैसे कपट बुद्धि वाला तुम्हारे अहंकार को एक निमिष में नष्ट करूँगा।।27।।

यहाँ **स्वसारम** यह शब्द का प्रयोग है। **सु+असारं** इसका अर्थ कौवा जैसे हविष का अपहरण करके अपवित्र करता है। ऐसे तुमने रुक्मिणी को अपवित्र किया है। यह अर्थ होता है। भीष्म जब अम्बिका का अपहरण करते हैं तब साल्व भी अपवित्र मानकर अम्बा का त्याग करता है। **स्व+सारम** शब्द से हमारे बल को हरण किया है। यह भी अर्थ होता है।

मेरे बाण से आहत होकर गिरने के पहले मेरी बहन को छोड़ दो। रुक्मि के इस बात को सुनकर हंसते हुए श्रीकृष्ण अपने बाण से रुक्मि के धनुष को तोड़ दिये। छः बाणों से उसको मारे। आठ बाणों से चारों घोड़े को मारे, दो बाणों से सारथी को मारे। तीन बाणों से ध्वज को काट डाले। रुक्मि इसके उत्तर रूप में पांच बाणों से कृष्ण को मारे।।28-29।।

श्रीकृष्ण उन बाणों से मार खाते हुए रुक्मि का वह दूसरा धनुष को काट डाले।।30।।

परिघ, पट्टिश, शूल खड्ग, ढाल, शक्ति, तोमर इत्यादि अन्यान्य आयुधों से रुक्मि श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने लगा। श्रीकृष्ण उन सारे आयुधों को काट डाले।।31।।

तब रुक्मि रथ से नीचे उतरकर हाथ में खड्ग और ढाल को लेकर श्रीकृष्ण के ऊपर चढ़ाई

की। लगता था पतंग दीप पर आक्रमण कर रहा है।।32।।

रुक्मि श्रीकृष्ण के ऊपर आ रहा था। उतने में श्रीकृष्ण उसके खड्ग और ढाल को तिल के समान चकनाचूर करते हुए बाएं हाथ से रुक्मि को पकड़कर दाहिने हाथ के खड्ग से उसको मारना चाहे ।।33।।

अपने भाई को श्रीकृष्ण मार रहे हैं। इसको देखकर रुक्मिणी भय से कांपते हुए पति के पांव पड़ते हुए दुःख से बोली।।34।।

रुक्मिणी कहती हैं - हे योगेश्वर, अप्रमेयस्वरूप, देव-देव, जगन्नाथ, हे मंगलस्वरूप, हे महाबाहु, मेरे भाई को मत मारिये।।35।।

श्री शुकदेव कहते हैं - भाई को बचाने के लिये दीन रुक्मिणी दैन्य से जगन्नाथ श्रीकृष्ण का पांव को बार - बार पकड़ने लगी।।36।।

भय से रुक्मिणी का शरीर कांप रहा था, मुंह सूख गया था, गला बांध गया था। भय के कारण गले के गहने गिर रहे थे। ऐसे स्वरूप में रुक्मिणी जब श्रीकृष्ण का पांव पकड़ी तब दयालु श्रीकृष्ण रुक्मि को मारने का प्रयत्न छोड़ दिये।।37।।

गलत काम किया हुआ रुक्मि को उनके ही कपड़े से रथ को बांधकर अपने हाथ के खड्ग से उसके सिर के बाल और मूंछ को काटकर विरूप किये। इतने में यादव सैन्य आकर रुक्मि के सैन्य को कमल सरोवर में घुसे हाथी के समान नष्ट किये।।38।।

यादव वीर श्रीकृष्ण के पास आकर रुक्मि की दशा को देखें। पांच स्थानों में रुक्मि के सिर के ऊपर भगवान श्रीकृष्ण पांच चोटी रखे है। अन्य बालों को और मूंछों को काटकर उसको विरूप किये है। जीते जी मरा जैसे रहा रुक्मि को देखकर बलराम अन्तःकरण से उसको बंधन से मुक्त कराये।।39-40।।

बलराम बोलते है, श्रीकृष्ण इसके बारे में आप गलती किये हैं। ये हमारे बंधु हैं। हमारे लोगों को इस प्रकार विरूप करना उचित नहीं है। अब यह रुक्मि जीवित रहते हुए भी मरा जैसा है।।41।।

हे साध्वी रुक्मिणी, श्रीकृष्ण आपके भाई को विरूप किया है। इससे चिंता से दुःख करना अच्छा नहीं है। दुःख दूसरा कोई आदमी दे नहीं सकता। प्रत्येक को अपने करनी को भोगना पड़ता है।।42।।

बंधु वधार्ह अपराध करने के बाद भी वह बंधु ही है। उसको परित्याग करना है, न तु मारना है। अपने दोष से मरा हुआ आदमी को और मारने की क्या जरूरत है।।43।।

क्षत्रिय युद्ध में अपने सोदर को भी मार सकता है। यह क्षत्रियों के लिए ब्रह्म निर्मित धर्म है।

इसी कारण क्षत्रिय धर्म बहुत घोर बन गया है। किन्तु हम उसका अनुसरण करना उचित नहीं है।।44।।

धन मद से अंधे बने दुरहंकारी लोग राज्य भूमि धन मद, स्त्री, सम्मान और पराक्रम के लिए अपने बंधुओं का नाश करते हैं।।45।।

देह और आत्मा का स्पष्ट रूप से भेद को न जानने वाले मूढ़ मनुष्य, मित्र शत्रु उदासीन ऐसे शरीर के गुण धर्मो को आत्म में देखकर मोहित होता है। यह भगवान की बंधक माया शक्ति के कारण होता है।।46।।

सारे देहियों में सूर्य के समान अव्याकृत आकाश के समान रहने वाले अन्तर्यामी स्वामी एक है। अज्ञ लोग उनको अलग-अलग समझते है।।47।।

पंचभूत, पंचप्राण, पंचइन्द्रियां और सत्वादिगुणों से निर्माण हुआ यह शरीर नाशवान है। अज्ञान से होने वाला अभिमान के सम्बन्ध आत्म को लगता है। इससे देह वाले जीव को संसार उत्पन्न होता है।।48।।

जीव अज्ञान से अपने भौतिक शरीर को स्वयं अपने समान मानता है। अभिमान से रागद्वेष युक्त होकर देह वाला जीव देह के लिए कर्म करते हुए कर्म के कारण पुनः देह पाते हुए संसार चक्र में फिरता रहता है। इसी को संसार चक्र कहते है।

स्वप्न में जागृति में दिखने वाला वस्तु न दिखता है। किन्तु स्वप्न में वासनामय क्षणिक स्वाप्न पदार्थो को वह देखता है। उस समय उन्हीं वस्तुओं से सुख दुःख को भोगता है। वैसे जागृति में भी इन नाश होने वाले विषय पदार्थो और उनके सुख दुखों को भोगता है। स्वयं नित्य होते हुए इन अनित्य पदार्थो में अपने को देखता है।।49।।

स्वप्न में जागृति में विषय पदार्थो को जीव देखता है। किन्तु निर्माण करता नहीं। सृष्टि करने के लिए वह स्वतंत्र नहीं है। केवल भगवान ही सृष्टि करता है।

हे शुभ्र मंद हास वाले रुक्मिणी अज्ञान जन्य शोक ज्ञान को छुपाता है। उसको इस तत्वज्ञान से समझकर दुःख को छोड़कर समाधान पाओ ।।50।।

बलराम श्रीकृष्ण के भाई होने से रुक्मिणी को यह उपदेश देते है। उसको सुनकर रुक्मिणी तत्वज्ञान से शोक को हटाकर मन को समाधान करती है।।51।।

श्रीकृष्ण रुक्मि को मारने जाना, रुक्मिणी उनका विरोध करना बलराम कृष्ण रुक्मिणी को उपदेश देना ये सारे बंधुओं आपस में कैसे व्यवहार करना इसको बताना हैं। श्रीकृष्ण सत्य संकल्प है, वे रुक्मि को मारने का मन किये होते तो मारने के बिना नहीं छोड़ते थे। रुक्मिणी का ज्ञान कभी भी तिरोहित (नष्ट) नहीं होता। बलराम बड़े भाई होने के नाते यह उपदेश दे रहे हैं, किन्तु वे आपने पाया हुआ तत्व ज्ञान को लक्ष्मी नारायण को समर्पित

कर रहे हैं।

रुक्मि को उनके शत्रुओं ने उनका बल तेज को नाश करते हुए जीव मात्र से छोड़े है। श्रीकृष्ण को मारने की उसकी इच्छा मनोरथ झूठ निकला है। श्रीकृष्ण ने उसको जो विरूप किये है। उसको तो वह जन्म भर नहीं भूलेगा। सदा उसी को याद करते हुए प्रतिज्ञा के अनुसार अपने राजधानी न जाते हुए अपने वास के लिए भोजकट नाम के एक नगर को निर्माण कर वहीं रहने लगा।।52।।

दुष्ट बुद्धि वाले कृष्ण को मारने के बिना और अपने बहन को वापस लाने के बिना मैं कुण्डिनपुर प्रवेश नहीं करूँगा कहते हुए रुक्मि क्रोध से भोजकट में रहने लगा।।53।।

रुक्मि बहुत दिन तक रुद्र को उद्देश्य कर बड़ी तपस्या की। अपने सारे धनुषों को श्रीकृष्ण ने काट डाला था। इसके लिए किसी से न काटने वाला श्रेष्ठ धनुष को श्री रुद्र जी के अनुग्रह से पा लिया। धनुष को देते समय शिव जी बोले - यह धनुष तुमको सर्वत्र विजय देता है किन्तु श्रीकृष्ण के साथ द्वेष छोड़ दो। यदि श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने में इस धनुष का प्रयोग किये तो यह धनुष तुमको छोड़कर मेरे पास आ जायेगा। रुक्मि को निराशा हो गया। इतने तप करने के बाद भी वह श्रीकृष्ण का विरोध करने में सफल नहीं हुआ। यह इल्वल नाम के दैत्य का अवतार है। इसमें शुचि नाम का अग्निपुत्र का आवेश था।

रुक्मिणी परिणय

हे राजा, भगवान श्रीकृष्ण इस प्रकार जरासंधादि दुष्ट राजाओं को हराते हुए रुक्मिणी को द्वारका लाकर उनसे विधिपूर्वक विवाह किये।।54।।

विध्युक्त विधि में कन्यादान, विवाह होम, सप्तपदि इत्यादि विधि होते है। उसको द्वारका की समीप रहने वाला मूल माधव क्षेत्र में हुआ है। यह विवाह गांधर्व और राक्षस मिश्र विधि का विवाह है। इसमें कन्यादान आदि कार्य शक्य नहीं है। क्योंकि कन्यादान करने वाला कन्या पितृ द्वारका में नहीं है। इस विधि के बारे में देवल स्मृति कहती है।

गांधर्वादि विवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः।
कर्त्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समर्थे न तु साग्निकः।।

गांधर्वादि विवाह विहित हैं। कन्यादानादि कार्य कन्या पिता द्वारा ही करना आवश्वक नहीं है। यादवों के एक भाग कन्या पक्ष में खड़े हो गए और विधिपूर्वक कन्यादानादि कार्य किये।

रुक्मिणी इस विजय में वादिराज जी कन्या पक्ष और वर पक्ष के बीच में हुआ संवाद को अत्यन्त विवरण पूर्वक आनंद देने वाले तरीके से लिखे हैं।

विवाह निश्चितार्थ में वाङ निश्चय होता है। तब वर पक्ष में रहने वाले कहते हैं।

सोना चाँदी की स्रवण करने वाले (सुवर्ण रजत स्रजाम्) सोने के समान प्रकाशमान और कोमल आपके रुक्मिणी को इन्द्र नीलमणि के समान शोभायमान नीलमेघ श्याम को दे दीजिये। इससे सोना और इन्द्रनील मणि का

संयोजन होगा। नील मेघ कृष्ण विद्युत कांति वाली रुक्मिणी से विवाह होना योग्य है।

दोनों के मैत्री भाव के बारे में कहते हैं -

वधू विदर्भ वंश नाम के सागर में मिला हुआ रत्न के समान है। वर चन्द्रवंश में अवतार लिये है। रत्न और चन्द्र दोनों का उत्पत्ति स्थान एक होने के कारण दोनों वंशों में मैत्री भाव परपंरागति से आया है। दोनों का आयु सदा के लिए सोलह वर्ष का होता है।

अब वधू पक्ष वाले विवाह करने के लिए अपने मांग रखते हैं।

अपने कन्या रत्न को आप यदि चाहते हैं तो हमारे इन बातों को मानना पड़ता है।

1. हमारे पद्मि का हाथ कमल के समान कोमल हैं। उनसे किसी बोझ उठाने के लिए नहीं कहना चाहिए। उनके लिए केवल लघु कार्य करने के लिए बोलना है।

2. इनको कभी भी प्रलय के संदर्भ में भी जागना चाहिए।

3. किसी संदर्भ में इसके ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिए। थोड़ा सा अलक्ष करें तो वह उठकर मायके चली आयेगी।

4. हम जब जब उनको देखना चाहते हैं तब समाचार भेजते ही हमारे पास भेजना चाहिए।

5. जब ये मायके में रहती है तब दूसरे स्त्री को आंख उठाकर भी नहीं देखना चाहिए। सुना है तुम्हारे वर बहुत लड़कियों के साथ खेलता है।

6. विवाह के बाद भी हमारा याद करते रहना। इनको आप स्वीकार करते हैं तो विवाह होगा।

इसके उत्तर रूप में वर पक्ष वाले कहते हैं -

गृहणी होने के कारण घर का काम करना ही चाहिए। गृहणी को अपना घर का किसी काम बोझ नहीं होता। हमारे श्रीकृष्ण के घर में ज्यादा नहीं होता। उनके केवल चौदह घर है (चौदह लोक ही उनके घर है) उनमें रहने वाले दूध, दही, बर्तन इत्यादि वस्तु का ख्याल रखना है। सोना तो पहाड़ के समान (मेरूपर्वत) पड़ा है। लक्ष्मी रूप में जब रुक्मिणी जी आती है तो इसमें कष्ट नहीं होगा। वह अपनी आँखों के कृपा कटाक्ष से ही विशाल घर के (ब्रह्माण्ड के) ख्याल रखने का शक्ति वाली है।

हमारा श्रीकृष्ण पूरा ब्रह्माण्ड को, क्रुद्ध होकर ब्रह्मादि देवताओं को भी खा लेने के बाद भी (प्रलय काल में) भीष्मक पुत्री के ऊपर क्रोध नहीं करेगा। एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ेगा। अपने हृदय में रखेगा।

आपने कहा श्रीकृष्ण और किसी को आँख उठाकर भी देखना नहीं है। हमारे कृष्ण आनंद पूर्ण हैं स्वरमण है और कोई स्त्री से इसको क्या होने वाला है। वह अपने नाभि से बच्चों को पैदा कर सकता है। उसके लिए हमारे कृष्ण को और कोई स्त्री की आवश्यकता नहीं है।

इसके उत्तर में कन्या पक्ष वाले बोलते हैं - हम वर दक्षिणा वर उपचार के रूप में कुछ नहीं दे सकते। केवल कन्या रत्न को देते है।

वर पक्ष वाले कहते हैं - ब्रह्माण्ड के स्वामी श्रीकृष्ण के लिए वरोपचार की कोई आवश्यकता नहीं है। हमको वर दक्षिणा भी नहीं चाहिए। किन्तु प्रतिदिन वधू अपने सुंदर तिरछे आँख के दृष्टि को दक्षिणा रूप में देते रहना। तब दोनों पक्ष वाले सहमति से मूर्हूत देखने के लिए ज्योतिषी को बुलाते है।

तब ज्योतिषी कहते हैं - ये अनादिकाल से दंपति हैं। इनका जातक कुण्डली नहीं रहता हैं। ये दंपति यहीं खड़े हैं। इनके विवाह में पांच ग्रह उच्च हैं, चार ग्रह नीचस्थान में है। चन्द्र आल्हादकर है, वह इन दोनों के मुख में है, वृषभ राशि वाला होता है, बुध मंद स्मित के समान है, कन्या राशि में है, कटिभाग दृढ़ हैं वहाँ गुरू है, कटि कवियों से वर्णन योग्य है, इसके लिए काव्यास्पद है। इस प्रकार पाँच ग्रह नाभि के ऊपर उच्च स्थान में है। नाभि के नीचे मंद गमन के कारण इनके चाल चलन में शनि है, पाँव में ध्वज पताका चिन्ह होने के कारण पांव में केतु है, इनकी छाया जमीन पर है, इसका कारण राहु जमीन पर है, इनके पांवों को देखने वालों को मंगल होता है इसके लिए मंगल इनके पांव में हैं। इस प्रकार इनके देह में नवग्रह होने के कारण और मुहूर्त देखने की जरूरत नहीं। जिनकी आराधना से लोगों को ताराबल,चन्द्र बल और गुरूबल आता हैं उनके लिए इनको देखना अनावश्यक है।

काशी यात्रा - विवाह के पूर्व दिन वर काशी यात्रा जाने का सम्प्रदाय होता है। किन्तु यहाँ श्रीकृष्ण के पांवों में सारे तीर्थो का सम्मिलन है। गंगा जी यही से उत्पन्न हुए हैं। सकल तीर्थ क्षेत्र यहाँ रहने के बाद और काशी यात्रा की क्या जरूरत है।

वादिराज जी आगे लिखते हैं - कन्यादान के जलधारा रूप से श्रीकृष्ण कन्या रुक्मिणी के हाथ से अर्घ्य को ग्रहण किये। उनके प्रेम भाष्पजल से अभिषेक करवाएं। रुक्मिणी फूल माला के साथ अपने प्रणय माला को भी अर्पण किया। अपने आंखों के कटाक्ष से आरती की। मंदहास अमृत रस से भोग लगाई। इस प्रकार प्रणयाराधन पूर्वक विवाह महोत्सव सम्पन्न हुआ।

इस स्वयंवर में हाथ में फूल माला लिये हुए रुक्मिणी आती हैं। वहाँ समस्त देवदेवता और राजा सम्मिलित हैं। श्रीदेवी रुक्मिणी एक - एक देवताओं और राजाओं को देखते हुए कहती हैं -

शिव उग्र हैं, वायु चंचल हैं, ब्रह्म जीवराशि में बूढ़ा हैं, शेष को पाँव नहीं हैं, अग्नि जलता है, गरुड़ की नाक भारी है, वरूण जड़ हैं, इन्द्र को गोत्र सहन होता नहीं, सूर्य संचार प्रिय है, शशि क्षय रोगी है, मदन अनंग हैं, ये सारे दोष वाले अपने पत्नी को क्या आनंद देते हैं ? केवल हमारे स्वामी दोष रहित हैं, आनंदादि गुणपूर्ण हैं, ये केवल मुझको नहीं सारे जगत को आनंद देते हैं कहते हुए रुक्मिणी भगवान श्रीकृष्ण के गले में माला चढ़ा दी।

हे राजा परिक्षित - उस समय द्वारका नगर में प्रत्येक घर में श्रीकृष्ण के अनन्य भक्तों के लिए यह बड़ा त्यौहार बना।।55।।

चमकने वाले सुंदर मणिकुण्डलों को धारण किये हुए नर नारी संतोष से सुंदर वस्त्र हीरा मोती, सोना चांदी के उपहार समर्पित किये।।56।।

द्वारका नगर में सारे उन्नत स्थानों में ध्वज पताका फहराने लगे। घर के द्वारों को तोरण

बांधे। मंगलद्रव्य पूर्णकुंभ अगरु धूप दीप से द्वारका जगमगाने लगी।।57।।

आप्त राजा लोग आह्वानित होकर आए थे। उनके हाथियों के मद जल से मथुरा के राजमार्ग भीग गये। केले और सुपारी के गुच्छों से घर मंदिर सुंदर बने।।58।।

कुरु, सृंजय, केकय, विदर्भ, यदु, कुंतल देश के बंधु मित्र आदि सकल जन वहाँ संभ्रम से मिले। विवाह का वह मंगलमय संदर्भ सबको सानंद दिया।।59।।

प्रजाजन इधर उधर मिलकर श्रीकृष्ण का रुक्मिणी हरण का लीला का संकीर्तन किये, गा-गाकर संभ्रम विभोर हो गये। उनको सुनकर वहाँ मिले राजा रानियों ने मूक विस्मित रह गये।।60।।

हे राजा इस प्रकार रुक्मिणी अपने रमण को पा ली। श्रीकृष्ण रमा का रमण बन गया। आँखों भर इस सुंदर दृश्य को देखने वाले द्वारका नगर के नागरिक धन्य हो गये।।61।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में उनसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध के पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ ।।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

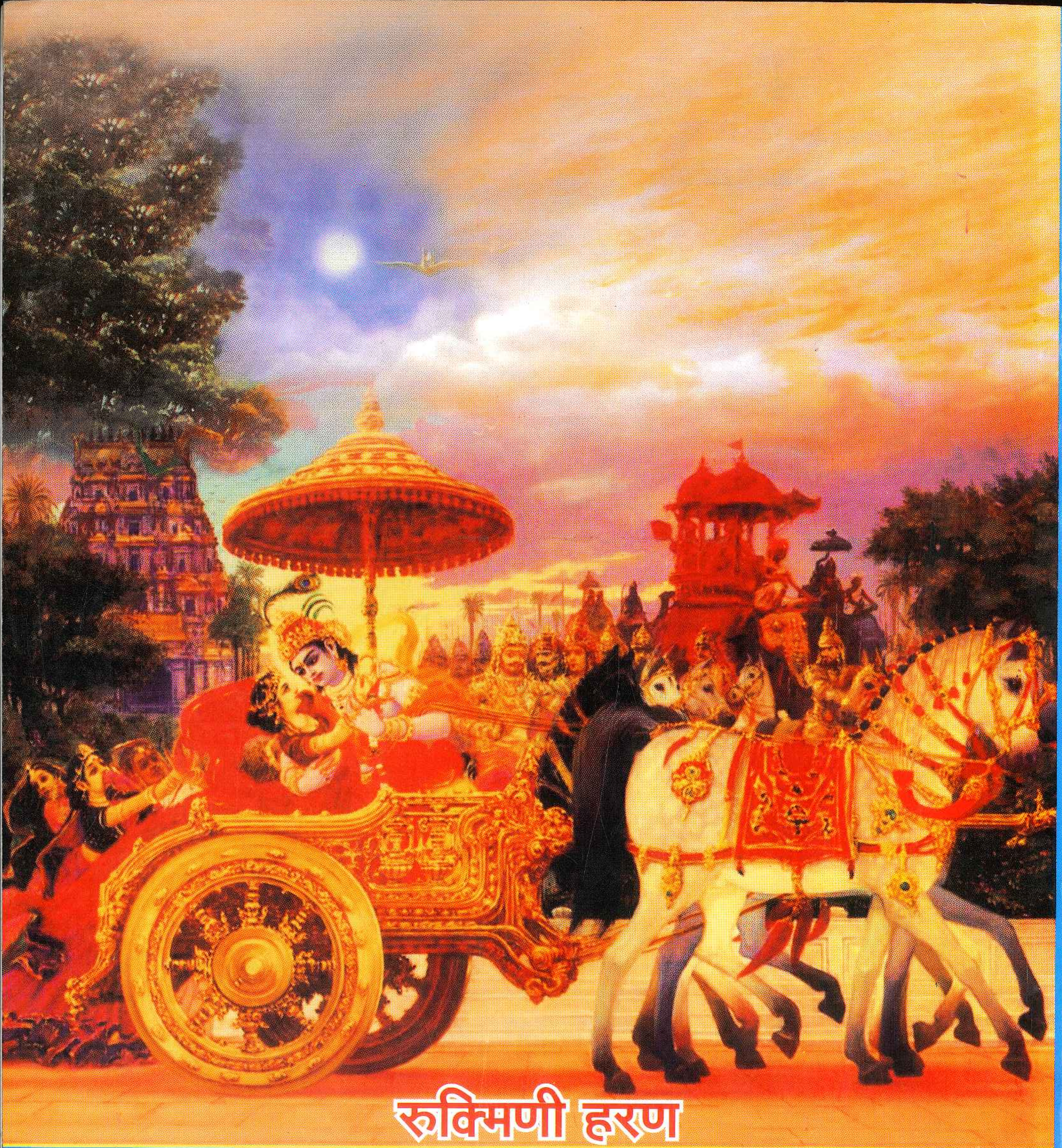

रुक्मिणी हरण

पता : मध्वमठ 63, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद 211 006
फोन नं0 : 0532-2504587

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

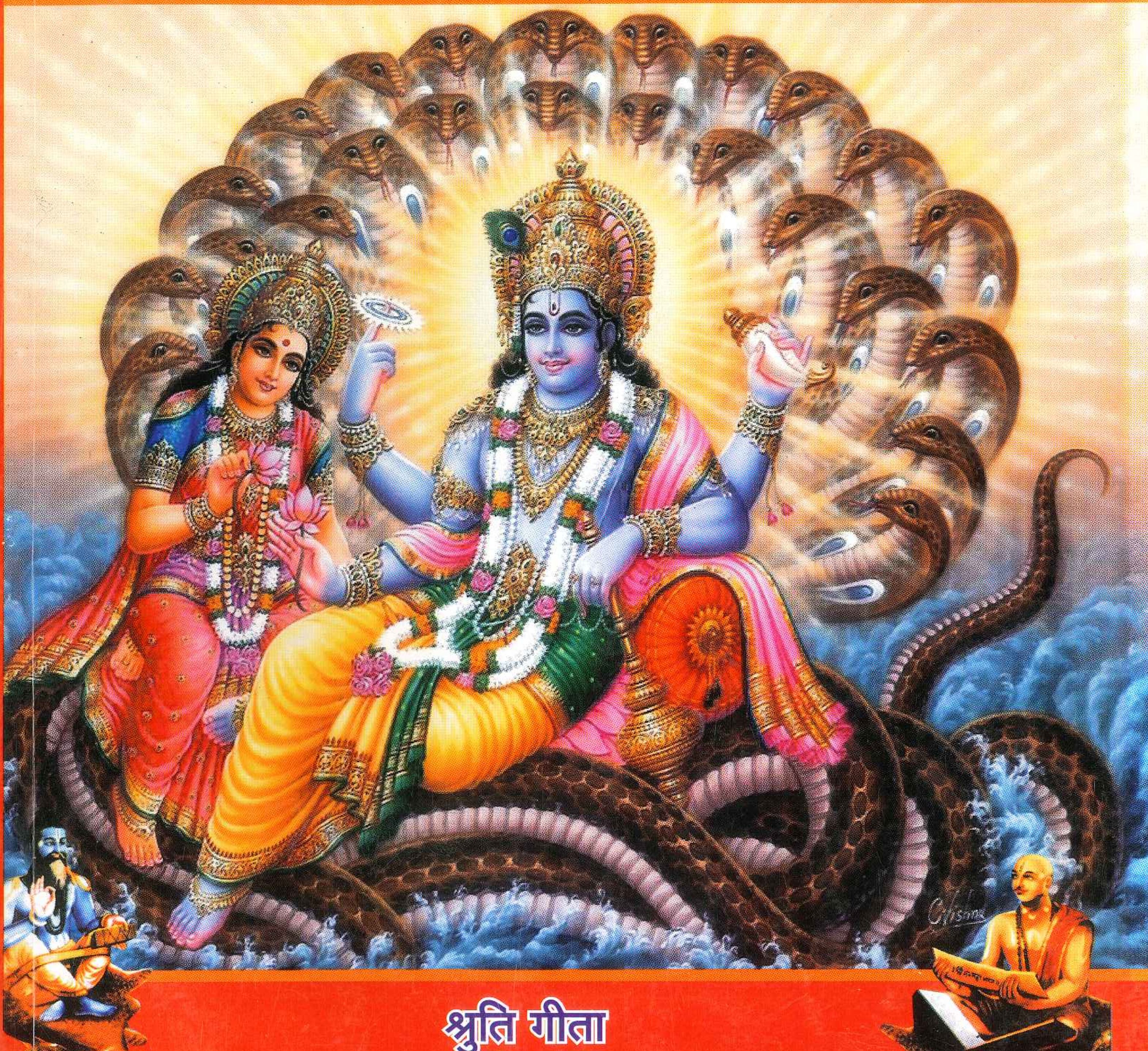

श्रुति गीता

दशम स्कन्धः भाषानुवादः

उत्तरार्ध अध्याय ८३ से १०५ तक

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण
वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री विजयध्वज टीकानुसारी

श्री मद्भागवत महापुराणम्

दशम् स्कंधः
(भाषानुवादः)

(उत्तरार्द्ध अध्याय 83 से 105 तक)

अनुवादक
श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

प्रकाशक
तत्व संशोधन संसत्
जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

श्रीमद्भागवत महापुराणम् दशम् स्कन्धः

लेखक-
श्री 1008 श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी

प्रकाशक
तत्व संशोधन संसत्
जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण 1000 प्रतियाँ
सहयोग राशि
पुस्तकालय संस्करण 150 रुपये
सामान्य संस्करण 100 रुपये
09-12-2013

अक्षर विन्यास
श्री सुनील कुमार (राजा) एवम्
पवन कुमार

मुद्रक -
श्री वैष्णव प्रेस
मोरी, दारागंज, इलाहाबाद

श्री राम श्री

अनुग्रह संदेश

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी उडुपि

हमारे विशेष अभिमान पात्र **श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी** द्वारा किए हुए आठ शास्त्र ग्रंथों का हिन्दी भाषानुवाद को देखकर हमें सन्तोष हुआ है। श्री स्वामी जी अपने पूर्वाश्रम में अनेक वर्षों से सामाजिक सेवा में रचनात्मक कार्यों को किये हैं। हमारे साथ अकाल, भूकम्प, बाढ़ इत्यादि कार्यों में सम्पूर्ण समर्पण भाव से काम किए हैं। अब अपने अस्सी वर्ष के समय में आठ शास्त्र ग्रन्थों का अनुवाद और प्रकाशन का स्तुत्य काम अपने हाथ में लिए हैं। मध्व तत्वज्ञान को अभ्यास करने के जिज्ञासुओं को अनुकूल होने वाली यह एक विशिष्ट सेवा किए हैं।

वे अपने सत्तर वर्ष की आयु में कन्नड़ भाषियों के अनुग्रह रूप में अनेक शास्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किए थे। अब प्रयाग में रहकर मध्व सिद्धान्त का प्रसार कार्य करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा मध्व तत्वज्ञान को हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचार करने का महान कार्य कर रहे हैं।

श्री कृष्ण, श्री वेद व्यास जी, अस्मदुपास्य श्री रामविट्ठल जी इनको विशेष अनुग्रह करते हुए इनकी सेवा विस्तार रूप से सारी जनता को मिले यही हमारा आशीर्वाद है।

इति नारायण स्मरण

श्री श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी महाराज
पेजावर मठ, उडुपि

अनुग्रह संदेश

श्री राम श्री

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महा संस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी, उडुपी

आठ सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरू मध्वाचार्य जी ने मध्व सिद्धान्त का प्रचार प्रसार बहुत पैमाने से आरम्भ किया। इस प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए उडुपी में आठ पीठ और उत्तर कर्नाटक में एक पीठ की स्थापना किए। श्री जयतीर्थ मुनि, श्री श्रीपाद राज स्वामी, श्री व्यासराजमहामुनि, श्री वादिराजयोगी, श्री रघूत्तम स्वामी जी, श्री राघवेन्द्र तीर्थ जी इत्यादि महामहिमों ने उस सिद्धान्त को और विकसित किया।

हमारे दीक्षा शिक्षा गुरु युगपुरुष श्री श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी उत्तर भारत में श्री मध्व तत्वज्ञान को प्रसार करने हेतु **बीस वर्ष** पहले श्री प्रयाग क्षेत्र में श्री मध्व पीठ की स्थापना की है। उन दिनों से प्रयाग का हमारा मठ मध्वसिद्धान्त का प्रसार करता आ रहा है।

श्री वेदव्यास जी की इस सुसंस्कृत भागवत को हमारे शिष्य श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी ने समर्थ सुन्दर और सबके मन को मिले ऐसी सुन्दर हिन्दी में अनुवाद कर साधक सज्जनों का परमोपकार किए हैं। कन्नड़, संस्कृत न समझने वाले हिन्दी भाषी साधकों को जगद्गुरु मध्वाचार्य जी के शास्त्र का परिचय कराने वाले इस कार्य को हम अपने हृदय भरकर अभिनन्दन करते हैं। अन्य सारे कार्यों को बाजू में रखते हुए **तद्धितप - तद्धितप** के जैसे दिन-रात किया हुआ यह शास्त्र सेवा अनुपम है। हमारे गुरु श्री श्री 1008 विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी से स्थापित तत्व संशोधन संसत से मुद्रण किया गया है। यह हरि गुरु का अनुग्रह प्राप्त कराने वाला है। उत्तर भारत के हिन्दी भाषी लोग इस ग्रन्थ को पढ़ें और अपने बन्धु बान्धवों से पढ़ाएँ तो यह प्रयत्न सार्थक हो जाता है। इनसे भागवत के अन्य भाग भी जल्दी से जल्दी अनुवादित होकर साधकों के हाथ में विराजमान हो, यही हमारी अपेक्षा है। श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य जी से प्रतिष्ठापित श्री कृष्ण, श्री राम जी के अनुग्रह से हम अपने शिष्य को शुभ कामना देते हैं।

श्री श्री 1008 श्री विद्याधीशतीर्थ
स्वामी जी महाराज

अनुग्रह संदेश

श्री दिग्विजय रामो विजयते

श्री मद्जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

उत्तरादि मठ

भगवान के गुणों का चिन्तन करना प्रत्येक आदमी का मुख्य कर्तव्य है। अनन्त गुणपरिपूर्ण भगवान की महिमा को जानने के लिए सबको भागवत के प्रकाश की आवश्यकता है। भागवत के पाठ प्रवचन श्रवण सारे बहुत पुण्य देने वाले हैं। ऐसे श्रेष्ठ महाभागवत पुराण को वैष्णव सिद्धान्त के अनुसार श्री श्री विद्यात्मतीर्थ जी ने हिन्दी में सब के मन मोहित करने वाले उत्कृष्ट व्याख्यान किए हैं। प्रयाग के त्रिवेणी तट पर रहते हुए अपनी स्वयं साधना करते हुए उत्तर भारत में वैष्णव सिद्धान्त का प्रचार प्रसार कार्य करते हुए अपने को समर्पित किए हैं। वे जो इस प्रयास में रत हैं उसको सहकार देते हुए श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी उन्हें बल दे रहे हैं यह संतोष का विषय है।

मध्व मत का प्रसार समग्र भारत में उज्वल रीति से होना चाहिए। उत्तर भारत के परिसर में यह प्रसार कार्य करने वाले श्री श्री विद्याधीश तीर्थ और श्री श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी का हम अभिनन्दन करते हैं।

इसी प्रकार श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी और अनेक कृति और व्याख्यान करते हुए तत्वप्रचार कार्य को इससे भी अधिक रूप से करें इस प्रकार हम अपने उपास्य मूर्ति श्री दिग्विजय राम और वेदव्यास जी से प्रार्थना करते हैं।

बैंगलूरु

श्री सत्यात्म तीर्थ स्वामिनः
उत्तरादि मठ

शुभ कामना

।। श्री निम्बार्को जयति ।।

।। श्रीमद् गोपीजनवल्लभाय नमः ।।

अनन्त श्री जगद्गुरु निम्बार्काचार्य

गोस्वामी श्री विष्णुकान्त जी महाराज, पीठाधिपति

श्री निम्बार्काचार्य पीठ, 18/12, महाजनी टोला प्रयाग - 211 003 फोन : 2404298

श्री निम्बार्क प्रभास्थली व्यास ग-ी नैमिषारण्य (उ0 प्र0)

कर्नाटक के अन्तर्गत उँडुपी माध्व पीठ प्रयाग के अधिपति श्री 1008 श्री स्वामी विद्यात्म तीर्थ जी महराज के लोक भाषा में अनुवादित भागवत के ग्रन्थ और अन्य भगवद्गीतादि ग्रन्थ देखने को मिले। इक्यासी वर्ष की अवस्था में अदम्य स्फूर्ति, वैदुष्य एवं सार्थक जीवन के धनी महा पुरुष अभिनन्दनीय हैं। कई अवसर में हम लोग एक रहे हैं।

इस अवस्था में भी कई ग्रन्थों के लेखन, सामाजिक एवं पारमार्थिक कार्यों को एक युवक की भाँति करते हुए संलग्न हैं।

आप का जीवन अमृततत्व की ओर अग्रसित है आप सकल कुशल पात्र हैं।

आचार्य विष्णु कान्त गोस्वामी
इलाहाबाद

प्रस्तावना

हमारे गुरु जी पूर्व प्रयाग पीठाधिपति श्री 1008 श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी ने लगभग दस वर्ष पूर्व भागवत के पहले तीन स्कन्धों का अनुवाद कर प्रकाशित किए थे। उनका महानिर्वाण आकस्मिक रीति से होने के कारण वह कार्य वहीं अवरुद्ध हो गया था।

हमारे दीक्षा गुरु उडुपि श्री पलिमारु मठ के पीठाधिपति जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी महाराज ने उस अवरुद्ध कार्य का पुनरारम्भ करने का आदेश दिया। मैं अल्प शक्ति और अल्प ज्ञान वाला हूँ। किन्तु अपने गुरुवर्य की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मैं यह कार्य कर रहा हूँ।

विद्यावतां भागवते परीक्षा यह पूर्णतः सत्य है। श्री गुरु जी का अनुग्रह ही मुझसे यह कार्य करवा रहा है। दक्षिण भारत में जन्म लेने के कारण मुझे अच्छी हिन्दी नही आती। पण्डित न होने के कारण शास्त्र का गहन और विस्तृत ज्ञान प्राप्त नही है। केवल गुरु का अनुग्रह ही मुझे प्रेरणा दे रहा है। पाठकों द्वारा निर्दिष्ट त्रुटियों को अगले अंक में सुधारने का प्रयास करेंगे।

दशम् स्कन्ध भागवत का किरीट प्राय है। वेदव्यास जी इसको भक्ति रस से पूर्ण रूप से भिगो दिए हैं। कई कथाकार इसको ऊपर ऊपर से पढ़ते हुए अपने गलत अर्थ प्रसार किए हैं। इस स्कन्ध में भक्ति को छोड़ कर काम इत्यादि अन्य भावों का विचार करना गलत है। मूल भागवत में दशम स्कन्ध में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध इस प्रकार दो भाग कर चुके हैं। दोनों भाग सौ - सौ अध्यायों से भर कर फल पुष्प से भरा हुआ वृक्ष के समान अपने बोझ से बहुत झुके हैं। पाठक की सुविधा के लिए हम पूर्वार्द्ध में दो भाग किये हैं। दोनों भाग प्रकाशित हो चुके हैं। अब हम उत्तरार्द्ध में भी दो भाग किसे हैं। प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है। अन्तिम भाग अब प्रकाशित हो रहा है।

विस्तृत रूप से जानकारी देने के उ-ेश्य से हमने क्रम में भी थोड़ा सा बदलाव किया है। पहले के समान श्लोकार्थ मोटा अक्षरों में दिया गया है, अर्थ थोड़ा सा छोटे अक्षरों में दिया गया है। इस भाग में विशेषार्थ के लिए और थोड़ा अवकाश किया है। प्रत्येक श्लोक का तो नही पर जहाँ आवश्यक है वहाँ विशेषार्थ, उससे भी छोटे अक्षरों में देने का प्रयास किया है। आशा है कि यह पाठकों को सुविधाजनक होगा।

इस चतुर्थ भाग में श्री कृष्ण के अनेक गाथायें गायी गयी हैं। उनमें श्रृति गीता सबसे श्रेष्ठ है। यह एक रूपक के स्वरूप में है। ब्रह्मा जी के प्रथम परार्द्ध के अन्तिम साढ़े बारह वर्ष में यह घटना घटी। श्री विष्णु माया इच्छा रूपी दुर्गा देवी श्री विष्णु प्रेरणा से जागृत होकर हाथ जोड़कर भगवान की स्तुति करते हुए उनको जगाती हैं। राजा महाराजाओं के वन्दिमागध सुप्रभात समय में राजा की स्तुति करते हुए उनको जागृत करते थे। उसी प्रकार दुर्गा देवी सृष्टि के प्रारंभ में भगवान की स्तुति कर रही हैं।

वेद उपनिषदों में मिलने वाले इन स्तुतिरूप मंत्रो को वेदव्यास जी ने चुनकर एकत्रित करते हुए एक माला के रूप में जोड़ दिये हैं। ये रुग्मंत्र नित्य पठन के लिये बहुत योग्य हैं, कल्याणकारी हैं, और सबको सुख देने वाली हैं। किन्तु वेद मंत्र होने के कारण उच्चारण क्लिष्ट है, अर्थ होना और भी कठिन है। इसके लिये पूज्य वेदव्यास जी इनको सरल संस्कृत में श्लोकों के रूप में रचाकर भगवान में जोड़ दिये हैं। किन्तु आज हमें वे श्लोक कठिन लग रहें है।

इसके लिये हम मूल संस्कृत शब्दों के साथ उनके विशेषार्थ को देने का प्रयास किये हैं। शब्द समूह के विशेषार्थ को दिखाने के लिये व्याकरण के आधारों को देने का प्रयत्न किया है। सन्धि विग्रह और समासों का विवरण हमारे अनुवाद को पुष्टि देने के लिये दर्शाया गया है। पाठकगण सौजन्यता से इसको पढ़कर देववाणी वेद विद्या का रसास्वादन करें। वहाँ मूल वेद मंत्र का उल्लेख भी किया गया है।

संस्कृत और व्याकरण कि इस झंझट में पड़ना न चाहने वालों को इन सत्ताईस श्लोक वाली श्रुतिगीता का सारांश लिखा गया है। इस सारांश को पढ़कर मूल श्रुतिगीता का लुफ्त उठा सकते हैं।

तीन सौ साठ वर्ष के पहले मंत्रालय के श्री राघवेन्द्र स्वामी जी ने अनेक शास्त्र ग्रथों की रचना की वे थोड़े श्लोको में दशमस्कन्ध की श्री कृष्ण की कथा को बता दिए हैं। प्रतिदिन इन श्लोकों के पाठ करने से नित्य दशमस्कन्ध पाठ का पुण्य मिलता है। हम इन श्लोकों को अर्थ के साथ यहाँ दिए हैं।

बड़े लोगों का कहना है कि नित्य पाठ करते समय नाम, रूप, गुण इन तीनों की अवश्यकता है। हमारे पाठकों को यह तीनों लाभ प्राप्त हो इस दृष्टि से इन श्लोकों के पाठ करते समय भगवान के **नाम** फोटो में भगवान के **रूप,** श्लोक में और चित्र की सहायता से कथा को याद करते हुए भगवान, का **गुण** इन तीनों का चिन्तन एक साथ मिले। ग्रन्थ के प्रारम्भ में फोटों को अर्थ सहित दिया है। आशा रखतें हैं कि पाठकगण नित्य पाठ करके भगवान का प्रीति पात्र बने।

हमारे परम गुरु श्री विद्यामान्य जी से संस्थापित और हमारे गुरु जी श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महाराज से पोषित श्री तत्व संशोधन संसत् ने इस ग्रन्थ प्रकाशन की जिम्मेदारी ले लिए हैं। तत्व संशोधन संसत् दक्षिण भारत में एक प्रसिद्ध संशोधन और प्रकाशन की बड़ी संस्था है। बहुत श्रेष्ठ विद्वान और पंडित संशोधकों के ग्रन्थ यहाँ से प्रकाशित हुए हैं। मेरे जैसे अल्प बुद्धि वाले की इस छोटी सी कृति को वे प्रकाशित कर रहे हैं, यह मेरा बड़ा भाग्य है। इसके लिए मैं अपने श्री गुरु जी को शत शत नमन करता हूँ।

प्रतिवर्ष हम गीता जयन्ति सप्ताह को अलग-अलग स्थानों में मनाते रहते हैं। इस वर्ष हमारा गीता जयन्ती का 30 वाँ सप्ताह हम कर्नाटक के देवनगरी नामक स्थान में हो रहा हैं। वहाँ दिनांक-9.12.2013 सोमवार श्री भीम जयन्ती के शुभ पर्व पर परम पूज्य श्री 1008 श्री पेजावर मठ के विश्वेश तीर्थ स्वामी जी महाराज के शुभ हस्त से इस ग्रंथ का विमोचन हो रहा है यह हमारा बड़ा भाग्य है। हम पूज्य श्री पेजावर स्वामी जी को अनंत नमन करते हैं।

इस ग्रन्थ के लिए आवश्यक फोटो के लिए हमे बहुत प्रयास करना पड़ा। वैसे तो श्री कृष्ण के लाखों फोटों प्राप्त हैं, तो भी कथा में आए हुए संदर्भ को संगति देने वाला फोटो मिलने में कष्ट हुआ। इस समय हमें आवश्यक फोटो देकर श्री रामचन्द्र सिंह सहायता किए हैं। हम यहाँ उनकी याद करते हैं।

इस ग्रन्थ के अक्षर विन्यास किए हुए श्री सुनील कुमार जी (राजा) और पवन कुमार जी अक्षर संशोधन किए हुए श्री गिरधारी लाल मिश्र और गोविन्द शुक्ला जी, मुद्रण किए श्री वैष्णव प्रेस के श्री पुरुषोत्तम लाल जी और सारे कर्मचारियों के सहयोग का स्मरण हम करते हैं। सुधी सद्भक्त इस ग्रन्थ का सदुपयोग करें यही आकांक्षा है।

देवनगरी (डावनगेरे) कर्नाटक | **इति शम्**

09-12-2013 | **श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज**

दसवाँ स्कन्ध की विषय सूची

क्र0	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	अध्याय 83	जरासंध वध के बाद बन्धित राजाओं का विमोचन	01-04
2.	अध्याय 84	राजसूय याग की सिद्धता। श्री कृष्ण की अग्रपूजा, शिशुपाल विरोध। श्रीकृष्ण से शिशुपाल वधा	05-10
3.	अध्याय 85	यज्ञ के बाद अवभृत स्नान, देवताओं से पुष्प वृष्टि	11-13
4.	अध्याय 86	मय निर्मित सभा में दुर्योधन का अवमान, क्रोधित दुर्योधन हस्तिनापुर गया	14-16
5.	अध्याय 87	साल्व, बंधु के साथ द्वारका पर आक्रमण किया, प्रद्युम्न उससे मार खाया	17-18
6.	अध्याय 88	श्री कृष्ण ने साल्व का वध किया	19-23
7.	अध्याय 89	पाण्डव वनगमन, श्रीकृष्ण से सान्त्वना। नृगराज उद्धार	24-29
8	अध्याय 90	बलराम नन्द गोकुल गमन, गोपियों के साथ विहार, यमुना गर्व भंग	30-32
9.	अध्याय 91	बलराम से विविध नाम के वानर वधा	33-35
10.	अध्याय 92	साम्ब, दुर्योधन पुत्री लक्षणा का अपहरण करता है। बलराम से कौरवों का अहंकार नाश	36-39
11.	अध्याय 93	श्रीकृष्ण से श्रुतदेव, राजा बहुलाश्व का संवाद	40-44
12.	अध्याय 94	वृकासुर कथा, भस्मासुर शिव को मारने के लिए पीछा किया। विष्णु से वृकासुर वधा	45-49
13.	अध्याय 95	त्रिमूर्ति दर्शन के लिए भृगुऋषि गमन, ऋषियों ने हरिसर्वोत्तमत्व को सिद्ध किये	50-52
14.	अध्याय 96	श्रुतिगीता अर्थ और सारांश	53-91
15.	अध्याय 97	भू-भार हरण कुरुक्षेत्र युद्ध, गीतोपदेश। दो बार विश्वरूप दर्शन	92-95
16.	अध्याय 98	बलराम जी की तीर्थ यात्रा, रोमहर्षण वध,	96-98
17.	अध्याय 99	बलराम से बलवल नाम के दैत्य का वध	99-101
18.	अध्याय 100	श्री सुदामा की कथा	102-106
19.	अध्याय 101	श्री हरि से सुदामा को सकल सम्पत्त प्रदान	107-111
20.	अध्याय 102	अर्जुन का अहंकार नाश। ब्राह्मण को मृत पुत्र प्राप्ति।	112-119
21.	अध्याय 103	दंतवक्र विदुरथ का वध	120-122
22.	अध्याय 104	द्वारका में श्रीकृष्ण का विहार। सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों से जल विहार	123-124
23.	अध्याय 105	द्वारका में श्री कृष्ण का राज्यभार	125-128

श्री राम श्री

श्रीमध्वतत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

हमारे प्रकाशित ग्रन्थ

क्र0.	ग्रन्थनाम	मौल्य
1.	श्रीमद्भगवद्गीता प्रतिश्लोक का हिन्दी भावानुवाद	70.00
2.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्कंधः भाषानुवादः	100.00
3.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् चतुर्थ स्कंधः भाषानुवादः	60.00
4.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् पंचम एवं षष्ठ स्कंधौ भाषानुवादः	60.00
5.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् सप्तम् स्कंधः भाषानुवादः	60.00
6.	श्रीमद्भागवत अष्टम् स्कन्धः भाषानुवादः	60.00
7.	श्रीमद्भागवत नवम्स्कंधः भाषानुवादः	60.00
8.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः पूर्वार्द्ध अध्याय छब्बीस तक	100.00
9.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः पूर्वार्द्ध सत्ताईस से उनसठ तक	100.00
10.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः उत्तरार्द्ध साठ से बायासी तक	100.00
11.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः अन्तिम भाग	100.00
12.	श्री रामायणपात्र चित्रणम् एवम् नीतिकथा	50.00

पुस्तक प्राप्ति स्थान

1. श्री मध्वमठ

   63 मीरागली, दारागंज इलाहाबाद

2. तत्व संशोधन संसत् श्री हृषीकेशतीर्थ संस्थानम्, श्री पलिमारुमठ, रथ बीदि उडुपि कर्नाटक

3. श्री स्वामी सीता वल्लभ शरण

   श्री मध्वमठ बड़ा अखाड़ा मैहर (म. प्र.)

4. श्री स्वामी ललित मोहन ओझा
   प्रेमपीठ मध्वमठ तिजारा, जिला अलवर, राजस्थान

5. डॉ रवि,

   1st फ्लोवर, नीयर लक्ष्मी भगवन, सेन्ट्रल

   बाजार रोड़, नागपूर,

6. श्री G. R. Kulakarni
   2041 B wing Mahesh Tower
   Charkop, Sector 2, Kambivali (W)
   Mumbai 67.
   Ph - 9867251783

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी

यह एक अनोखा स्तोत्र है जिसमें **श्री राघवेन्द्र स्वामी जी** ने केवल थोड़े ही श्लोकों में दशम स्कन्ध की श्री कृष्ण कथा को जोड़ दिए हैं। हमारे गुरु जी उडुपि पीठाधीश्वर श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य पीठाधिपति ***श्री 1008श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी*** इन श्लोको को सरल भाषा में अनुवाद किए है। हम इन दोनों को मिलाते हुए साथ साथ बत्तीस रंगीन चित्रों में इन अध्यायों की कथा को फोटों के द्वारा आपके सामने प्रस्तुत करते हैं। शास्त्र जानने वाले कहते है कि केवल नाम स्मरण करने के बजाय भगवान का नाम रूप गुण चिन्तन करना श्रेष्ठ हैं। इससे प्रथमतः हमारे मन को आनन्द होता है साथ साथ भगवतप्रीति भी ज्यादा होती है। आगे के पृष्ठों में हम नाम रूप गुण के चिन्तन के लिए कथानुसारी फोटो, मूल श्लोक और उसका अर्थ दिए हैं। इससे नाम रूप गुण चिन्तन एक ही समय में एक साथ होगा। आग्रह है, पाठक इसका प्रयोग करते हुए नित्य प्रति नाम रूप गुण चिन्तन से पाठ करें।

आपका

प्रकाशक

श्री बालाजी

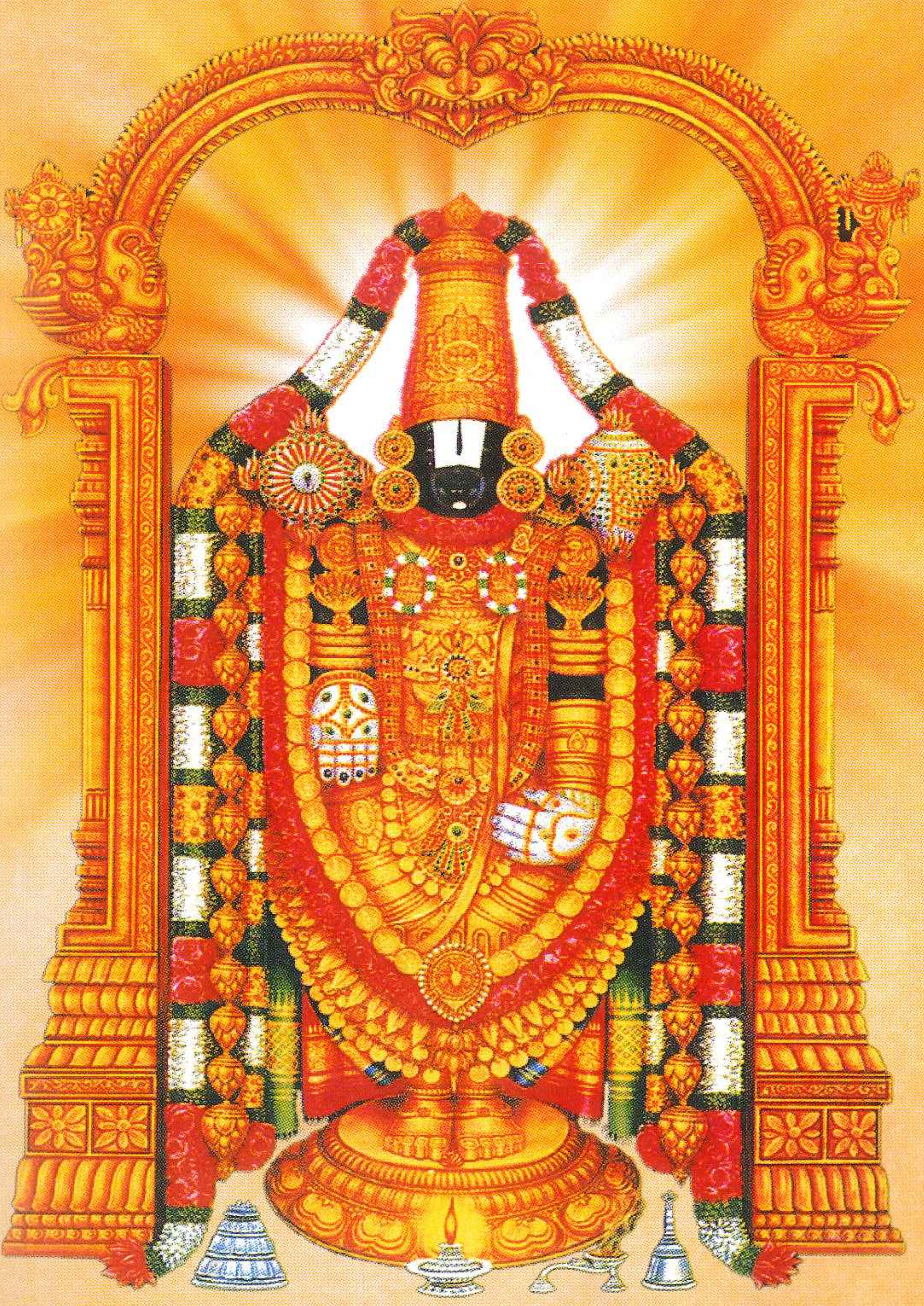

हमारे कुल दैव विश्व के एकमेव बड़ा दैव
श्री वेंकटेश्वर बालाजी के श्री चरणों में
यह ग्रन्थ समर्पित है

संकट मोचन श्री पंचमुखी हनुमान

कपिमुखमपि पूर्वं दक्षिणे नारसिंहम् ।
गरुड़मुखमपि पश्चात् उत्तरे सूकरास्य ।।
ह्यवदनमतोर्ध्वं चिन्तयेद् वायुसूनुम् ।
सकलदुरितहरं रामदूतं नमामि।।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय तिरासी से अट्ठासी तक की कथा

पुत्रं राज्येऽस्य कृत्वा हृतशिरसमथो चेदिराजं विधाय। प्रोद्यन्तं राजसूयं यमसुतविहितं संतस्थतं यो विधाय।

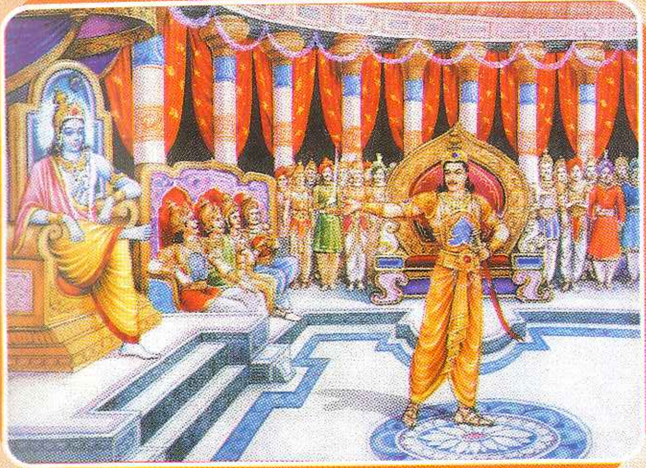

शक्रप्रस्थात्प्रयातो निजनगरमसौ साल्वभग्नं समीक्ष्य। क्रुद्धो तं शिववरबलिनं यान्पुरं पातु नित्यं ।।24।।

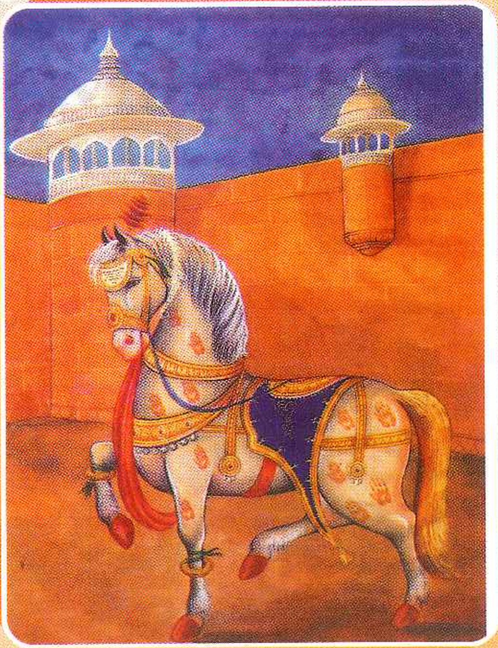

श्री कृष्ण जरासंध के पुत्र सहदेव को मगध सिंहासन पर बिठाये। शिशुपाल के शिरच्छेद के बाद धर्मराजा के यज्ञ को पूर्ण करते हुये इन्द्रप्रस्थ से द्वारका चले। साल्व द्वारका को नष्ट किया था। उस बलिष्ठ को पकड़कर समुद्र के बीच उसको मारकर द्वारका वापस आये। ऐसे श्रीहरि हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय नवासी से छियानवे तक की कथा

विप्रादाकर्ण्य धर्मं वनगतमनुजैः सान्त्वयित्वैत्य सर्वा- नभ्येत्य द्वारकां यो नृगमथ कुजनिं दिव्यरूपं चकार।

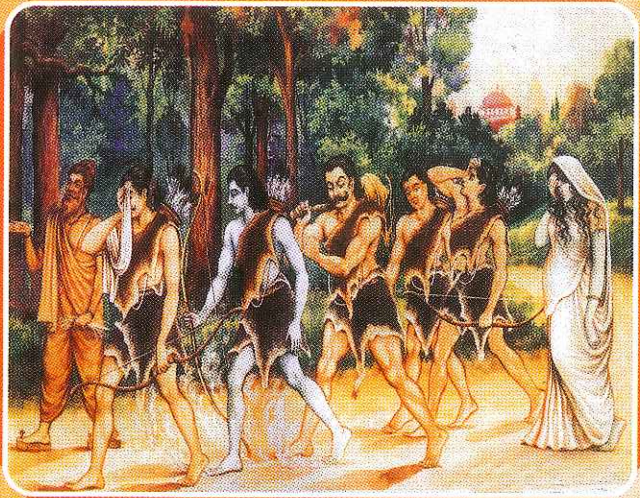

गत्वा वैदेहगेहं कतिपयदिवसांस्तत्र नीत्वाऽतिभक्तौ, सन्तोष्य द्वारकां यान् बहुबलसमितोऽयन्नुपाप्लाव्यमव्यात् ।।25।।

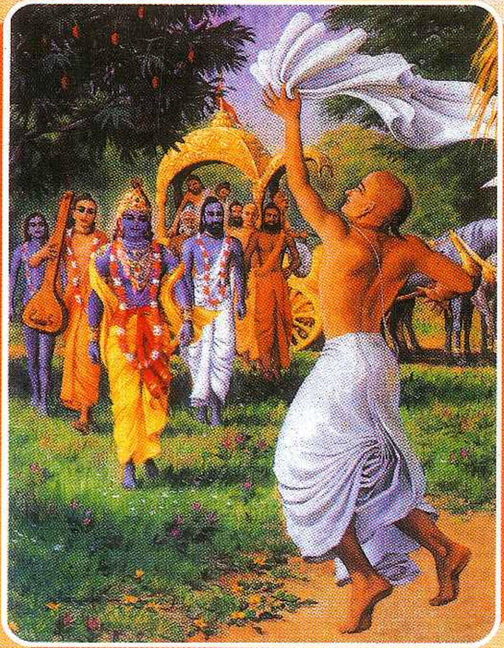

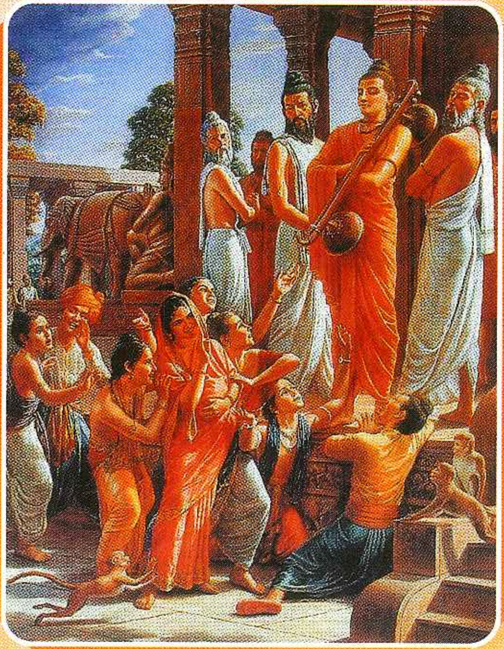

धर्मराज द्यूत में हारकर भाइयों के साथ वनवास गये। इस समाचार को ब्राह्मण मुख से सुनकर श्रीकृष्ण जंगल में जाकर पाण्डवों को समाधान करते हुये द्वारका आये। नृगराज की कुरूपता को हटाकर उसे दिव्यरूपी बनाये। विदेह राजा के राजगृह को जाकर वहाँ कई दिन रहकर बाद में बहुलाश्व और श्रुतदेव को अनुग्रह करते हुये द्वारका आये। वहाँ से बड़ा सैन्य लेकर उपप्लाव्य के नगर को गये। ऐसे श्री कृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय सत्तानवे से निन्यानवे तक की कथा

दौत्यं कुर्वन्ननन्ता निजरुचिरतनूर्दर्शयन् दिव्यदृष्टे- र्गीतातत्वोपदेशाद्रणमुखविजयस्याचरन् सारथित्वम् ।

नीत्वा कैलासमेनं पशुपतिमुखतो दापयित्वाऽस्त्रमस्मै, भीमेनाऽपात्य दुष्टं क्षितिपतिमकरोद्धर्मराजं तमीडे ।।26।।

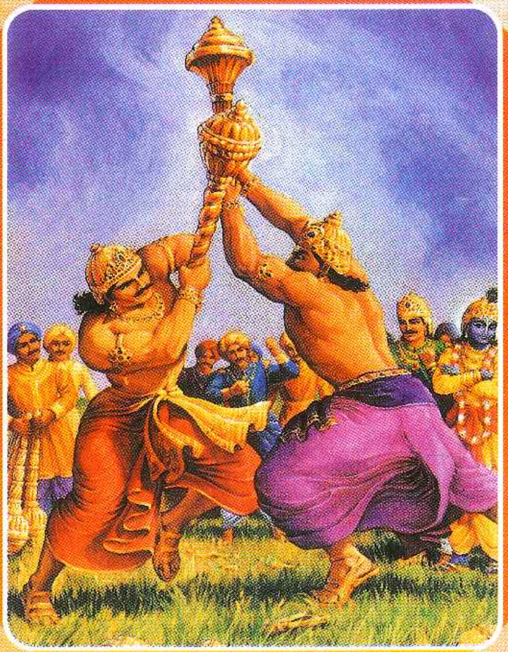

श्रीकृष्ण संधान के लिए कौरवों के पास जाकर धृतराष्ट्र को दिव्य दृष्टि देकर अपना विश्वरूप दिखाये। गीता के तत्वोपदेश को देकर अर्जुन को युद्ध में जोड़ते हुये स्वयं सारथ्य किये। रात में स्वप्न में अर्जुन को कैलास लेकर वहाँ शिव से पाशुपतास्त्र मंत्रोपदेश दिलाये। भीम से दुष्ट दुर्योधन को नाश करते हुये धर्मराजा का सिंहासनारोहण करवाये। ऐसे श्री कृष्ण की स्तुति करता हूँ।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय एक सौ से एक सौ तीन तक की कथा

प्राप्तः स्थानं यदूनां प्रियसखमकृतावाप्तकामं कुचेलं, कुर्वन् कर्माश्वमेधं निजभवनमयो दर्शयित्वाऽर्जुनाय ।

पुत्रान् विप्राय दत्वा सहसहजमसौ दन्तवक्रं निपात्य, प्राप्याथ द्वारकां स्वां समवतु विहरन्नुद्धवायोक्ततत्वः ।।27।।

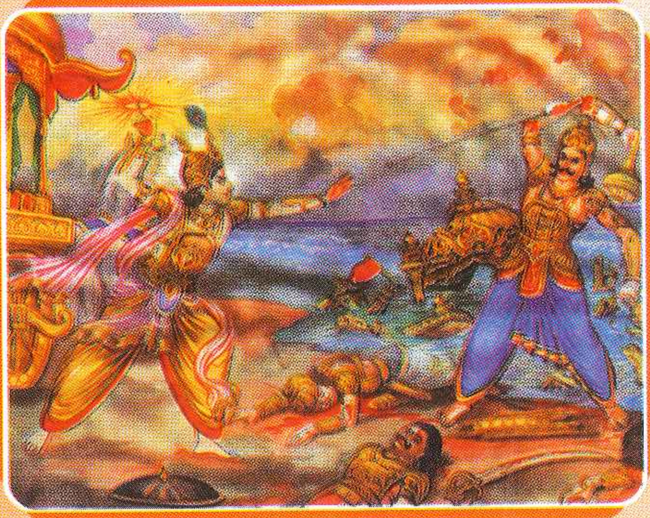
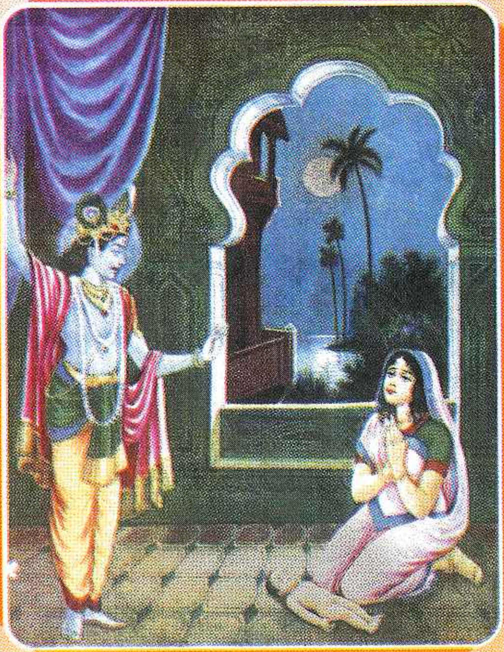

श्री कृष्ण द्वारका को वापस आये। घर को आए हुए कुचेल को सकल अभीष्ट दान दिये। अश्वमेध याग करते हुये बीच में अर्जुन को अनंतासन लोक का दर्शन कराते हुये वहाँ से ब्राह्मण पुत्रों को लाकर ब्राह्मण को दिये। दंतवक्र और विदुरथ को मारकर द्वारका आये और विहार करते हुये उद्धव को तत्वोपदेश दिये। ऐसे भगवान श्रीकृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय एक सौ चार और पाँच की कथा

रक्षन् लोकान्समस्तान्निजजननयनानन्दकारी निरस्ता- वद्यस्सौख्यैकमूर्तिस्सुरतरुकुसुमैः कीर्यमाणोऽमरेन्द्रैः ।

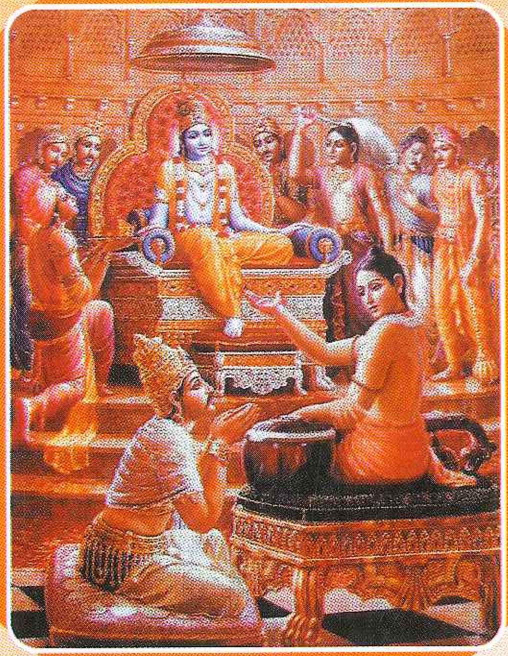

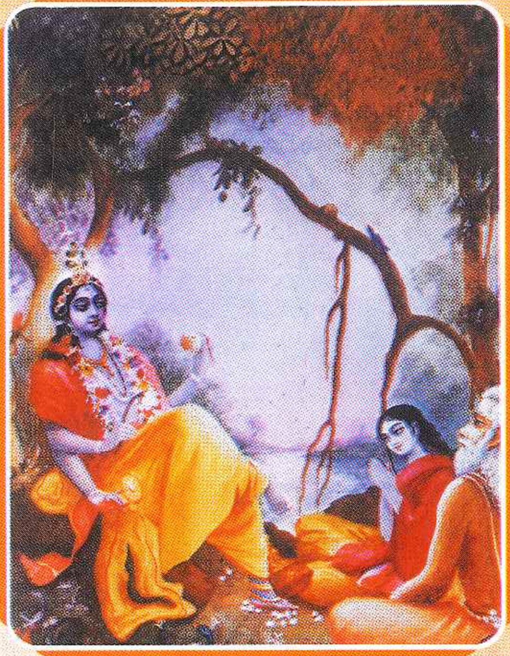

सिद्धैर्गन्धर्वपूर्वैर्जयजयवचनैस्तूयमानोऽत्र कृष्णः, स्त्रीभिः पुत्रैश्च पौत्रेस्स जयति भगवान् सर्वसंपत्समृद्धः ।।28।।

इति श्रीकृष्ण चारित्रमंजरी लेशतः कृता। राघवेन्द्रेणयतिना भूयातकृष्णप्रसाददा

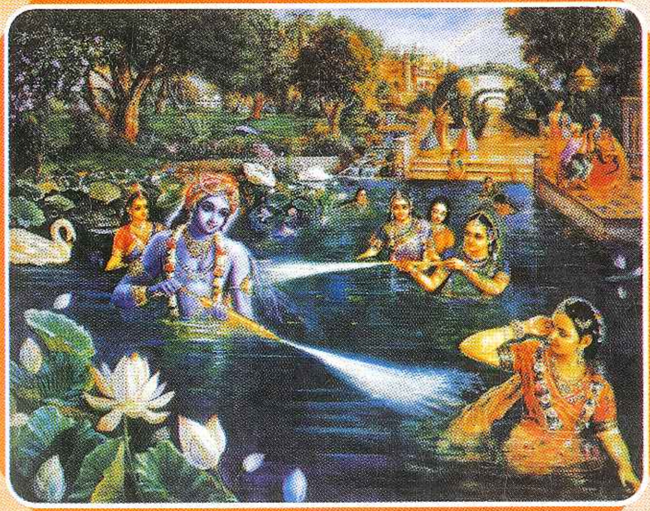

श्री कृष्ण समस्त लोकों की रक्षा करते हुये भक्तों को नयनानंद करते हुये निर्दोषआनन्दमयशरीर धारण करते हुये वैभव से द्वारका में रहे। उत्तम देवतागण पुष्प वृष्टि किये। सिद्ध गन्धर्व जय-जयकार किये। इस प्रकार पत्नी, पुत्र और पौत्रों के साथ सकल सम्पत्त समृद्धि के साथ सर्वोत्तम होकर शोभायमान श्री कृष्ण हमारे ऊपर अनुग्रह करें।

इस प्रकार श्री राघवेन्द्रयति से संक्षिप्त रूप में श्रीकृष्ण चारित्रमंजरी लिखी गयी है। वह श्रीकृष्ण सब के ऊपर अनुग्रह की वर्षा करें।

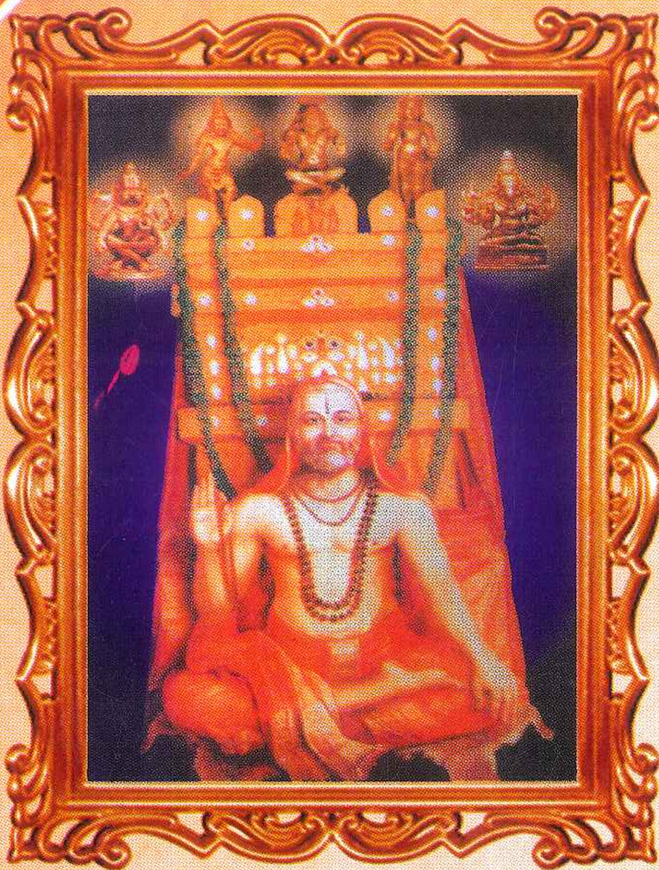

अपेक्षितप्रद मन्त्रालय के
श्री राघवेन्द्र स्वामी जी
श्रीकृष्ण मंजरी कारम्
दशमस्कन्ध बोधकम्
राघवेन्द्र गुरुंवंदे
भाव बोधार्थ सिद्धये

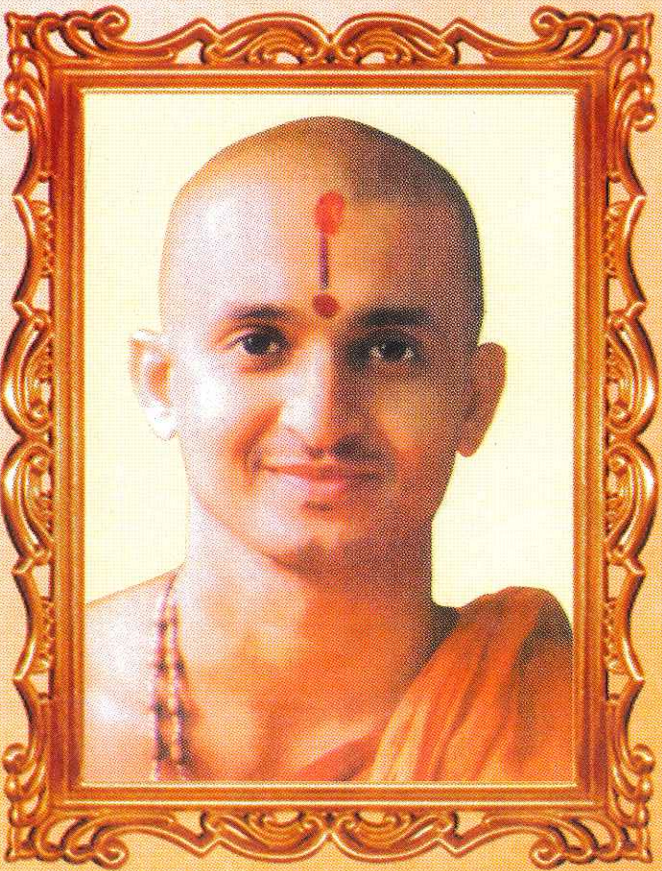

अजात रिपु सद्विजेष्टदायक
व्रजेशपद नीरजाराधकम्
भजेविद्यधीशम् रजतपीठपुराधिवासम्
भजेविद्याधीशम् भजेविद्याधीशम्
श्री 1008 विद्याधीश स्वामी जी महाराज

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तिरासीवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - बाइस हजार आठ सौ राजा युद्ध में जरासंध से हार कर पहाड़ों की गुफाओं में बंधित हो गये थे। उनका शरीर मलिन हो गया था। उनके पहने हुये कपड़े मलिन और फटे हुये थे। जरासंध का वध होने के बाद वे सारे मुक्त हो गये ।।1।।

महाभारत के सभा पर्व के अनुसार (15.19) सौ कुल के राजाओं की बलि देने का संकल्प जरासंध ने किया था। वहाँ छियासी कुलों के राजाओं को एकत्रित किए हुए था, और चौदह कुल के राजा बाकी थे। भागवत के अनुसार बाईस हजार आठ सौ राजा वहाँ बंधित थे। लक्षालंकार के अनुसार छियासी कुलों के कुल बाईस हजार आठ सौ राजा थे। इस प्रकार दोनों में विरोध नहीं आता।

वे राजा भूख से त्रस्त थे। प्यास से उनका मुँह सूख गया था। बंधन में रहने के कारण वे बहुत जीर्ण हो गये थे। उन्होंने पीताम्बर धारी घनश्याम श्री कृष्ण को देखा ।।2।।

श्री हरि के भक्त जीवन में आने वाले सारे कष्टों को तप मानते हुये उनको श्री हरि को ही समर्पित करते हैं। यहाँ राजाओं ने बंधन से हुए कष्ट को तप मानते हुये उसको श्री कृष्ण को अर्पण किया। उस तप के फलस्वरुप श्री कृष्ण का दर्शन उनको मिला था। छाती में श्रीवत्स चिह्न, चार बाहू, कमल के समान सुन्दर आँखें, फूल के समान खिला हुआ मुख और प्रकाशमान मकर कुण्डल तथा शंख चक्र कमल गदा को हाथ में पकड़े हैं। किरीट हार, कटिसूत्र और उँगलियों से शोभायमान भगवान श्री हरि ने गले में सुन्दर कौस्तुभमणि को धारण किया था। वनमाला से उनका रुप और सुन्दर लग रहा था। ऐसे श्री कृष्ण के सौन्दर्य को ये राजा अपनी आँखों से पीना, जीभ से रसास्वादन,नाक से घ्राणन और हाथों से आलिंगन करना चाहते थें। इस प्रकार भगवान

के दर्शन मात्र से सारे पापों का परिहार किये हुये राजाओं ने सिर से लेकर अष्टांगपाद उनकी वन्दना की ।।3-4-5-6।।

श्री कृष्ण के दर्शन से हुए आनन्द से बंधन का उनका सारा दुःख चला गया। हाथ जोड़कर उन्ही की प्रेरणा से आयी हुयी बातों से उनकी स्तुति करने लगे ।।7।।

राजाओ ने स्तुति करते हैं - हे देव-देवेश, शरणागत दुःख परिहारक स्वामी, आप नाश रहित है। हम आप को नमस्कार करते हैं। इस घोर संसार में दुःखित होकर हम आप की शरण में आये है। आप हमारी रक्षा करें ।।8।।

हे नाथ मधुसूदन स्वामी, हम राजाओं के हाथ से राज्य चले गये तो वह केवल आप की कृपा से ही हमें फिर वापस मिल सकता है। इसी कारण हमारे राज्य का अपहरण किए हुए जरासंध के ऊपर अब हमें क्रोध नही है ।।9।।

राज्य सम्पदा से मदोन्मत्त होकर जरासंध के समान राजागण श्रेयस को नही पाये। वे आपकी माया की बंधक शक्ति से मोहित होकर इस जगत की नश्वर सम्पदाओं को ही शाश्वत मानते है ।।10।।

अज्ञ लोग मरु मरीचिका को जलाशय मानकर जैसे भ्रमित होते हैं वैसे ही मनोनिग्रह न रहने वाले लोग माया से इस अनित्य लौकिक सम्पदा को नित्य मानते हैं ।।11।।

पहले हम भी ऐसी ही सम्पदा के अहंकार से बुद्धि को खोकर अन्यों की सम्पदाओं को अपहरण करने की इच्छा से परस्पर स्पर्धा करते थे। हे प्रभु ! इस जगत की सृष्ट होने के पहले से रहते हुये और इस सृष्टि का लय भी करने वाले आप को हम न समझते हुये दुष्ट दर्प से अपनी प्रजा की हम ने ही निर्दयता से हिंसा की ।।12।।

ऐसे राजा लोग हम ! अब राज्य भ्रष्ट हैं। आपकी अनुकम्पा से और काल के प्रभाव से हमारे दर्प अब नष्ट हो चुके हैं। हम आपके चरण-कमल का स्मरण कर रहे हैं ।।13।।

अब आपके चरण कमल के स्मरण के प्रभाव से सदा नीचे गिराने वाले रजोगुण से भारित इस शरीर से मृग मरीचिका के समान रहने वाले राज्य सुख का सेवन करने में हमारा मन नही लगता है। मरने के बाद भी हम अब सुनने के लिए योग्य रोचक, कर्मजन्य स्वर्ग फल को भी सेवन करना नही चाहते हैं ।।14।।

संसार में रहते हुये भी हमें सदाकाल आपके चरणारविन्द का स्मरण होता रहे, इसके लिए हमें योग्य उपाय का उपदेश कीजिए ।।15।।

हे कृष्ण, वासुदेव, हरि, नारायण, परमात्मा, शरणागतों के दुःख निवारक हे गोविन्द, आपको हम बार-बार नमन करते हैं ।16।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजन्! बंधन से छुटकारा पाये हुये उन राजाओं को भगवान श्री कृष्ण ने अपनी मधुर बातों से सान्त्वना दी ।।17।।

श्री भगवान कहते हैं - हे राजापुरुषों! आज से आप सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी मुझमें निश्चल भक्ति उत्पन्न हुई है। अब बहुत काल से अपेक्षित रहने वाली मुक्ति भी निश्चित रुप से मिलने वाली है ।।18।।

आप लोग सदा काल के लिए मेरा स्मरण करना चाहते हैं। यह तो अच्छा ही है। इन भौतिक सम्पदाओं के बारे में आप लोगों ने जो कहा वह सही है। ऐश्वर्य से मानव को अहंकार और मद उत्पन्न होता है। यह तो जगत प्रसिद्ध है ।।19।।

कार्तवीर्यार्जुन परशुराम से, नहुष अगस्त्य के जटाजूट में रहने वाले भृगु मुनि से, वेन ब्राह्मण से, रावण राम से और नरकासुर मुझसे स्थान भ्रष्ट होकर मृत्यु पाये। ऐसे मद में मत्त अनेक लोग अन्य देवताओं और मानवों से स्थान भ्रष्ट होकर 'मृत्यु को प्राप्त हुए',नष्ट हुए हैं ।।20।।

देह इत्यादि एवं सकल ऐश्वर्य उत्पन्न होतें हैं और नष्ट होते है। इसको समझते हुये उन सबको भूलकर मेरा ही ध्यान करते रहो। यज्ञों से मेरी आराधना करते हुये प्रयत्न पूर्वक धर्मानुसार, धर्माचरण से प्रजा की रक्षा करो ।।21।।

सत् - संतानों की अभिवृद्धि करो, सुख-दुःख, शुभ-अशुभ जो कुछ भी आता है उसको समान रीति से अनुभव करते हुये मुझमें मन रखते हुये जीवन चलाओ ।।22।।

देह में, देह सम्बन्धियों में ज्यादा आसक्ति न रखते हुये मेरे स्मरण में ही सुख पाते हुये, व्रतानुष्ठान करते हुये तथा मुझमें ठीक तरह से मन को स्थिर करते हुये अंत में पूर्ण रुप मुझको पाईये ।।23।।

इस प्रकार श्री हरि राजाओं को आदेश देकर उनका अभ्यंजन करने के लिए आवश्यक पुरुष और स्त्रियों को नियुक्त किये ।।24।।

हे राजा परीक्षित! इसके पश्चात वे समस्त राजपुरुष स्नानादि से अलंकृत होकर आ

गये। जरासंध के पुत्र सहदेव ने उनके भोजनादि की उचित व्यवस्था की। राजोचित वस्त्राभूषण, फूल, माला, गंध ताम्बूल इत्यादि भोग वस्तुओं से सहदेव ने उनका उपचार किया ।।25-26।।

दिव्य कुण्डलों को धारण किये हुए श्री कृष्ण से इस प्रकार सत्कृत होकर तथा समस्त दुःखों से मुक्त होकर वे राजा वर्षाकाल के बाद प्रकाशित होने वाले चन्द्रमा के समान शोभायमान हुये ।।27।।

श्री कृष्ण ने उन राजाओं को रत्न, सोने-चाँदी इत्यादि से अलंकृत करते हुए और उत्तम घोड़े से चलने वाले रथों में बैठाते हुये अपने हित वचन से उनको संतुष्ट करते हुये, उनको अपने-अपने प्रदेशों को भेज दिया ।।28।।

इस प्रकार महामहिम श्री कृष्ण के अनुग्रह से कष्ट से मुक्त हुये राजाओं ने उनको और जगत सृष्टि करने वाली उनकी लीलाओं को गाते हुये अपनी यात्रा प्रारम्भ की ।।29।।

राजाओं ने अपने मंत्रियों को महापुरुष श्री कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करने वाली गाथाओं को बताया। आलस्य को छोड़ते हुये वे सभी भगवान के कथनानुसार अपना-अपना जीवन यापन करने लगे ।।30।।

इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण भीमसेन से जरासंध को मरवाकर एवं जरासंध पुत्र सहदेव से सत्कृत होकर भीम और अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ के लिए रवाना हुये ।।31।।

शत्रुजय को पाये हुये श्री कृष्ण ने भीमार्जुन के खाण्डव प्रदेश स्थित इन्द्रप्रस्थ जाकर बन्धुओं में संतोष उत्पन्न करने वाले तथा शत्रुओं को दुःख देने वाले शंख को बजाया ।।32।।

उसको सुनकर इन्द्रप्रस्थ की प्रजा जरासंध की मरण वर्ता को समझकर हर्षित हुयी। राजा युधिष्ठिर अपने मन की अभिलाषा को पूर्ण किये ।।33।।

भीमार्जुन और श्री कृष्ण राजा युधिष्ठिर का अभिवादन करते हुये, किए हुए कार्य के बारे में विस्तार रुप से कहे ।।34।।

श्री कृष्ण के कृपापात्र धर्म राज, जरासंध वध के समाचार को उन्ही के मुख से सुनकर हर्षित हो आनन्दाश्रू बहाने लगे। आनन्द विभोर होकर वे कुछ बोल नही पाये ।।35।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में तिरासीवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौरासीवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजन् ! महाराजा युधिष्ठिर ने जरासंध के वध और श्री कृष्ण की सामर्थ्य को सुनकर संतुष्ट हो श्री कृष्ण से कहा हैं ।।1।।

युधिष्ठिर कहते हैं - तीनों लोकों के गुरु और सारे लोकों के अधिपति ब्रह्मादि देवता भी आपकी दुर्लभनीय आज्ञा को शीर्ष वन्दन करते हुये मानते हैं ।।2।।

आप गुण पूर्ण कमलाक्ष हैं। दीन और स्वयं को राजा मानने वाले हमारे जैसे मूढ़ की आज्ञा को भी आप मानते हैं। यह केवल नटना मात्र है ।।3।।

सर्वोत्तम, आखों को न देखने वाले, परब्रह्म आप हैं। आप बड़ों की आज्ञा पालन करते हैं इससे आपकी सामर्थ्य न तो बढ़ने वाली है और न करने से वह कम भी होने वाली नही है। सूर्य दिन में ज्यादा प्रखर होता है रात्रि में नही। आप उसकी तरह नही है ।।4।।

पराजय रहित हे लक्ष्मीरमण ! अज्ञानी लोगों को पशु के समान, मैं और मेरा, तुम और तुम्हारा इस प्रकार के भेद-भाव होते हैं। परन्तु यह भेद-भाव आप के भक्तों में ही नहीं रहता है तो आप में कैसे रहेगा। आप देहाभिमान से कर्म नही करते हैं तथा कर्मजन्य सुख से न तो बढ़ते हैं और न ही उसके दुःख से छोटे होते हैं। आप केवल लीला मात्र के लिए कर्म करते हैं। हम कर्म के अधीन होते हैं। इस प्रकार मैं अब कर्माधीन होकर राजसूय याग करना चाहता हूँ। आप उसको कराइये ।।5।।

इस प्रकार बोलकर धर्म राज ने राजसूय याग की श्री कृष्ण से अनुमति पाकर श्री वेद व्यास जी और सर्व श्री भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वसिष्ठ, चवन, कण्व, मैत्रेय, कवश, त्रित, विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतु, पराशर, पैल, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्व, कश्यप, धौम्य, परशुराम, आसुरी, वीतिहोत्र, मधुच्छन्द, वीरसेन, अकृतवर्ण इत्यादि वेदवेत्ता ब्रह्मज्ञानी योग्य ब्राह्मणों का पौरोहित्य कार्य हेतु वरण किया। द्रोण, भीष्म, कृप इत्यादि के साथ धृतराष्ट्र तथा उनके पुत्रों और महाज्ञानी विदुर को इस याग के लिए निमंत्रित किया ।।6-7-8-9-10।।

हे राजन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सारे राजा मंत्रियों के साथ इस यज्ञ को देखने के

लिए वहाँ आये ।।11।।

बाद में ब्राह्मणों ने सोने के हल से भू-शोधन करवाने के बाद वहाँ धर्मराज को विधि पूर्वक यज्ञ के लिए दीक्षित किया ।।12।।

पिछले बार वरुण यज्ञ करते समय सारे यज्ञ साधन सोने के थे। इस बार भी सारे साधन सोने के बनाए गये। ब्रह्म, रुद्र, इन्द्रादि लोकपाल अपने अनुचरों के साथ वहाँ आये। सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, महानाग, महामुनि, यक्ष-राक्षस, पक्षी, किन्नर, चारण ये सारे आह्वानित होकर आये। समस्त राजा अपनी पत्नियों के साथ धर्मराज के याग के लिए आये। इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं। श्री कृष्ण के भक्त धर्मराज के लिए यह वैभव योग्य ही है ।।13-14-15-16।।

देवताओं ने जैसे वरुण से राजसूय याग करवाया था वैसे ही धर्मराज से भू लोक के देवगण वर्चस्वी ब्राह्मणों ने राजसूय यज्ञ करवाया। सोम रस को निकालने के दिन महात्माओं राजाओं मुनियों, तथा सभापतियों को श्रद्धा से यथायोग्य सत्कार करने के लिए धर्मराजा खड़े हो गये। उस समय सभापतियों ने अग्रपूजा के लिए उपयुक्त व्यक्ति के बारे में विचार किया ।।17-18।।

सोमलता को निचोड़कर निकाले हुए सोम रस का होम करने के यज्ञ को राजसूय याग कहते हैं। इसके अंत में अभिषेचनीय नाम के सोम याग को करना पड़ता है। उसमें बहुत सारा नदियों और समुद्र से लाये हुये पुण्य जल से राजा को अभिषेक करना पड़ता है। इस याग में पाँचवें दिन सोमलता को निचोड़कर रस निकालकर प्रातः मध्याह्न और सायं इस प्रकार तीनों समय में होम करना पड़ता है। उस दिन गण्यमान व्यक्तियों को अर्घ्य देकर गौरवान्वित करने का कार्यक्रम रहता है। आचार्य, ऋत्विज, गुरु, स्नातक और प्रियजन नाम के छः वर्गों में श्रेष्ठ जो छः लोग होते हैं उनकी विशेष पूजा होती है। उसको अग्र पूजा कहते हैं। इन छः में से सर्व श्रेष्ठ गण्यमान व्यक्ति की अग्रपूजा करनी पड़ती है। इस सभा में किसकी अग्रपूजा होनी है, इस पर विचार किया गया।

इस बारे में वे एकमत न हो सके। प्रत्येक का अभिप्राय अलग-अलग तरह था। तब सहदेव ने खड़े होकर कहा कि यादवों के राजा भगवान श्री कृष्ण ही अग्रपूजा के लिए योग्य व्यक्ति होते हैं ।।19।।

भगवान श्री कृष्ण ही सारे नामों से मुख्य रुप से बुलाये जाते हैं। देश, काल, धन, सम्पदा इतना ही नही पूरा विश्व ही उन्ही के अधीन है। सारे यज्ञ उन्ही की आराधना के लिए होते है ।।20।।

अग्नि, आहुति, मंत्र, ज्ञान, योग और समाधि ये सारे उनको प्रसन्न करने के लिए हैं। वे

ही सर्वोत्तम हैं। पूरा विश्व उनके अधीन है ।।21।।

हे सभासदों लोग - श्री कृष्ण स्वयं अपने आश्रय से रहते हैं। उनके लिए किसी के आश्रय की आवश्यकता नही है। वे उत्पत्ति रहित हैं। सबकी सृष्टि करते हैं, पालन करते हैं और लय भी करते हैं। फलापेक्षा के बिना सारे कर्म करते हैं और मुमुक्षुओं से करवाते हैं ।।22।।

वे धर्मादि चतुर्विध पुरुषार्थों को हमें देते हैं। इसी कारण सर्वोत्तम श्री कृष्ण को ही हम प्रथम गौरवार्पण करें ।।23।।

वे सर्वान्तर्यामी हैं। यदि उनका सत्कार किये तो वह सत्कार सकल जीव राशि को और स्वयं को भी मिलता है। वे ही सर्व चेतनों के अन्तर्यामी हैं। वे अनन्यदर्शी हैं उनके समान और कोई नही है ।।24।।

इसके लिए हमे अपने दान को अनंत फल को प्रदान करने वाले आनन्द पूर्ण, आनन्ददायक भगवान श्री कृष्ण को ही देना चाहिए ।।25।।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्री कृष्ण की सामर्थ्य को ठीक तरह से जानने वाले सहदेव इस प्रकार बोलकर बैठ गये। इसको सुनकर सज्जनों ने साधु-वाद कहते हुए उनकी प्रशंसा की ।।26।।

महाभारत में इन बातों को भीष्माचार्य कहते हैं। इसका अर्थ भीष्माचार्य की अनुज्ञा से सहदेव ही उसको बोला। इस प्रकार अर्थ किये तो विरोध नही आता।

अपने भाई सहदेव ने जो कहा तथा सारे सभासदों का अभिप्राय भी वही है, यह समझते हुये धर्मराज ने संतुष्ट होकर श्री कृष्ण की भक्ति भाव से भरकर अग्रपूजा की ।।27।।

श्री कृष्ण के पाद प्रक्षालन को प्राप्त लोक पावन उस तीर्थ जल को धर्मराज युधिष्ठर सहित उनकी पत्नी, भाइयों, मन्त्रियों और कुटुम्बजनों ने अपने-अपने सिर पर धारण किया।।28।।

रेशमींपीताम्बर और अत्यन्त मूल्यवान अलंकारों को उन्हें अर्पण करते हुये उनका सत्कार करने वाले धर्मराज की आँखों में आँसू भरने के कारण वह उनको आँख खोलकर देख भी नही सका ।।29।।

इस प्रकार श्री कृष्ण की अग्रपूजा को देखकर समस्त अतिथियों, कुटुम्बियों ने खड़े होकर उनको हाथ जोड़ते हुये नमस्कार किया, और जयघोष किया। आकाश से पुष्पवृष्टि हुई ।।30।।

इस प्रकार श्री कृष्ण की अग्रपूजा को देखकर उनके गुण वर्णन से क्रोधित शिशुपाल असूया से आसन से उठकर दोनों हाथ ऊपर करते हुये भयरहित होकर सभा में भगवान के बारे में निष्ठुर गालियों को देते हुये कहने लगा ।।31।।

काल सर्वशक्त है, उसको कोई ठहरा नही सकता, यह सत्य है क्योंकि छोटे लोगों की बात से बड़े लोगों की भी बुद्धि में बदलाव होता है ।।32।।

हे सभापति ! आप गौरव अर्ह लोगों के बारे में ठीक निर्णय कर सकते हैं। श्री कृष्ण अग्रपूजा के लिए अर्ह है, ऐसे यह बालक सहदेव जो बोल रहा है, उसके ऊपर विश्वास नही करें ।।33।।

तप, विद्या, व्रतनिष्ठा रखने वाले ज्ञान से पाप परिहार किये गये ब्रह्मज्ञानी सबसे पूज्य महर्षि के यहाँ होते हुये, अपने कुल को ही कलंकित करने वाले इस गाय चराने वाले को आप कैसे सम्मानित करते हैं ? वह इस सम्मान के लिए कैसे योग्य होता है ? मुझे बताइये कि क्या कौआ यज्ञ के हविर्भाग के लिए योग्य होता है ? ।।35।।

इस गाय चराने वाले का वर्ण, आश्रम और कुल नही है। यह सर्वधर्म से बहिष्कृत है। गुणहीन और स्वेच्छाचारी है। ऐसा कृष्ण पूजा के लिए योग्य कैसे हो सकता है ? ।।36।।

महाभारत में शिशुपाल भीष्म को आक्षेप करते हुये इस प्रकार बोलता है यह कृष्ण गुणहीन, स्वेच्छाचारी और सर्वधर्म बहिष्कृत है। ऐसे मानव की स्तुति सुनकर लोगों को आश्चर्य होता है। आप क्या पूतना हत्या को स्त्री हत्या नही मानते ? धेनुकवधा को गो-हत्या नही बोलते ? इसमें आपको संकोच क्यों ? अथवा अज्ञानी बालक भी कृष्ण को ठीक तरह अपशब्द बोल सकते हैं। आप इस सभा में बड़े होकर यह गाय चराने वाले की स्तुति कर रहे हो, केशव की स्तुति करने वाले तुम्हारी जीभ क्यो टुकड़ा-टुकड़ा नही होती ? शिशुपाल के इन प्रश्नों के उत्तर में भीष्म एक वाक्य में बोलते हैं। **अयं तु पुरुषो बालः शिशुपालो न बुध्यते** यह श्री कृष्ण परम पुरुष हैं। किन्तु शिशुपाल बालक जैसे असम्बद्ध बोल रहा है। वह कुछ नही जानता।

इसका यादव कुल ययाति के शाप से ग्रस्त है। सज्जनों से निन्दाभागी है। पानमत्त रहने का कुल इसका है। यह सम्मान के लिए कैसे योग्य होता है ? ।।37।।

मद्यपान ब्राह्मणों को निषिद्ध है, क्षत्रियों के लिए नही। नित्यं मद्यं ब्राह्मणो वर्जयेत् इस प्रकार गौतम सूत्र (2-20) पिष्ट में कहा गया है सो किया हुआ मद्य तीनों वर्णां के लिए निषिद्ध है। मनुस्मृति कहती है कि अन्न से उत्पन्न किया हुआ मद्य तीनों वर्णो को निषिद्ध है। श्री राम कृष्ण उसको नही पीते थे। शिशुपाल इसको न जानते हुये निन्दा कर रहा है।

ब्रह्मवर्चससे रहित ये यादव ब्रह्मर्षियों के रहने योग्य भू प्रदेश को छोड़कर समुद्र में रचे हुए जलदुर्ग में रहते हुये समुद्र चोरों जैसे अन्य लोगों को कष्ट दे रहे हैं ।।38।।

भाग्यहीन शिशुपाल इस प्रकार गालियाँ देता रहा। उनको सुनते हुये सिंह जैसे सियार की आवाज को अलक्ष्य करता है वैसे ही भगवान श्री कृष्ण चुप रहे ।।39।।

शिशुपाल द्वारा किए हुए इस असहनीय भगवन्निन्दा से त्रस्त कई सभासद अपने कानों को बंद करते हुये, शिशुपाल को कोसते हुये सभा से बाहर गये ।।40।।

भगवान की अथवा उनके भक्त की निन्दा जहाँ होती है वहाँ से उठकर चले जाना चाहिए। जो नही जाता वह अपने पुण्य को खोकर नरकभागी होता है ।।41।।

तब पाण्डव, मत्स्य, केकय, सृंजयवीर अपने आयुधों को उठाकर शिशुपाल को मारने चले ।।42।।

इससे शिशुपाल नही डरा। सभा में कृष्ण के पक्ष के राजाओं को डाँटते हुये खड्ग और ढाल को अपने हाथ में लेकर खड़ा हो गया ।।43।।

भगवान श्री कृष्ण उसको आता देखकर अपने लोगों को मना करते हुये अपने पास मारने आने वाले शत्रु शिशुपाल के सिर को अपने हाथ में रहने वाले तीक्ष्णधार चक्र से काट दिये ।।44।।

भागवत के इस वर्णन से हमें लगता है कि अग्रपूजा यज्ञ मण्डप में ही शिशुपाल का वध हो गया। किन्तु तात्पर्य निर्णय के दाक्षिणात्य पाठ में यह युद्ध रणरंग में चलता है। भीष्म रणरंग में विरोधी राजाओं को आह्वान देकर उनके सामने श्री कृष्ण के हाथ को पकड़कर रथ के ऊपर चढ़ाते हैं। श्री कृष्ण शत्रु राजाओं को हटाते हुये शिशुपाल के साथ युद्ध करने खड़े होते हैं। वहाँ उपस्थित राजाओं के सामने शिशुपाल के अकृत्य के बारे में बोलते हैं। ``मैं इसके सौ अपराधों को क्षमा करता हूँ। उस प्रकार इसकी माँ को वचन दिया हूँ किन्तु यह पापी मेरी होने वाली पत्नी रुक्मिणी को चाहता था। इसको मैं क्षमा नही करूँगा।`` इसके उत्तर रूप में शिशुपाल बोलता है - ``तुम्हारे क्षमा करने या न करने से मुझे क्या है ? किन्तु अपनी पत्नी के ऊपर दूसरे नजर रखते हैं, इसके बारे में बोलने के लिए तुम्हे लज्जा नही आती है ? इस प्रकार बोलते हुये शिशुपाल श्री कृष्ण के साथ घनघोर मायायुद्ध करता है। इस युद्ध को देखकर श्री कृष्ण का सारथी दारुक भय से कहता है - भगवान, मैंने ऐसे युद्ध को कभी नही देखा है। केवल आपके अनुग्रह बल से मैं जिन्दा हूँ। आप जल्दी उसको मार डालिए। तब श्री कृष्ण अपने पाँचजन्य को बजाते हुये चक्र से शिशुपाल का शिरोच्छेद करते हैं।

शिशुपाल के मर जाने के बाद वहाँ महा कोलाहल हुआ। शस्त्र लेकर युद्ध करने आये शत्रु राजा जीने की इच्छा से भाग गये ।।45।।

शिशुपाल के शरीर से वैकुण्ठ के द्वारपालक जय का तेज लोगों के देखते-देखते आकाश से गिरने वाले नक्षत्र के समान श्री कृष्ण के शरीर में प्रवेश किया ।।46।।

हिरण्यकश्यप, रावण और शिशुपाल इन तीनों जन्मों में बढ़ हुए द्वेष से उद्रेकित होकर भक्ति से शिशुपाल श्री कृष्ण का ध्यान करते हुये तन्मय होकर भगवान के शरीर में विलीन हो गया। भावों और अभावों के लिए भगवान ही कारण हैं ।।47।।

शिशुपाल के शरीर में वैकुण्ठ के द्वार पालक जय नाम का धर्मज देवता रहता था। उसी शरीर में उसके साथ वह। शिशुपाल हिरण्यकश्यप और रावण नाम के राक्षस से मिलकर रहता था। दैत्य जब द्वेष करने लगता था तब जय पश्चात्ताप करता था और ज्यादा भक्ति से ध्यान करने लगता था। इन दोनों को जोड़ते हुये यहाँ **द्वेष से उद्रेक हुई भक्ति से** ऐसा शब्द प्रयोग किया गया है। दैत्य द्वेष करता था। उसी समय देव ध्यान करता था। यह द्वेष ध्यान के कारण भक्ति में बदला। यहाँ भावी हि और अभावी हि इस प्रकार दो तरह से पद विभाग करना चाहिए। भाव इसका अर्थ भक्ति होता है। अभाव का अर्थ भक्ति के विरुद्ध द्वेष होता है। भक्ति भव यानि मंगल का कारण होता है। द्वेष अभाव को संसार के दुःख का कारण बनाता है।

हे राजन् वैकुण्ठ में जय-विजय सनकादि मुनियों के शाप से तीन बार भगवान के शत्रु होकर जन्म लेने की कथा को मैं विस्तार रुप से सप्तम स्कन्ध में कहा हूँ ।।48।।

इसके बाद चक्रवर्ती धर्मराज ऋत्विजों को, सदस्यों को, यथेच्छ दक्षिणा देकर सबको विधिवत् सत्कार करते हुये अवभृत यज्ञ किये ।।49।।

इस प्रकार योगेश्वरों के भी स्वामी श्री कृष्ण धर्मराज से यज्ञ करवाते हुये शिशुपाल का संहार करते हुये सुख से विहार किये ।।50।।

राजा युधिष्ठिर राजसूय याग के अवभृत यज्ञ में स्नान करते हुये ब्राह्मण क्षत्रियों से भरी हुयी सभा में देवेन्द्र के समान विराजे ।।51।।

देव, मानव, गन्धर्व इत्यादि धर्मराजा से सतकृत होकर यज्ञ की और यज्ञ में सम्मान पाये हुये श्री कृष्ण की प्रशंसा करते हुये संतोष से अपने- अपने घर वापस चले ।।52।।

श्री कृष्ण के शिशुपाल वध की इस लीला को और बंधित बने हुये राजाओं की इस कथा का संकीर्तन करने वाला सारे पापों से मुक्त होता है ।।53।।

इस श्लोक के बाद श्रीधरी पाठ में एक श्लोक ज्यादा है। उसका अर्थ इस प्रकार है। कलिस्वरुप, कुरुकुल को लगे हुए रोग के समान पापी दुर्योधन को छोड़कर सारे देव, मानव यक्ष, गन्धर्व यज्ञ की स्तुति किये। दुर्योधन पाण्डवों के इस विपुल वैभव को देखकर सह नही सका। इस श्लोक से अगले अध्याय के प्रारम्भ मे राजा परीक्षित जी प्रश्न पूछता है। उसकी संगति यहाँ मिलती है। यह सत्य धर्म तीर्थ का अभिप्राय है।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में चौरासीवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पचासीवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछता है - हे महामुनि ! अजात शत्रु राजा युधिष्ठिर के राजसूय याग के वैभव को देखकर वहाँ आये हुये सारे देव,ऋषि, मानव, गन्धर्व संतोष पाये। केवल दुर्योधन उससे दुःखित हुआ यह बात आपने कही। उसका कारण क्या है, कृपया बताइये ।।1-2।।

श्री शुकदेव कहते हैं - तुम्हारे बाबा महात्मा धर्मराज के राजसूय यज्ञ में उनके प्यार में बंधित सारे राजा तथा उनके प्रिय परिजन सेवा कार्यों मे लगे हुये थे ।।3।।

भीमसेन पाकशाला का निरीक्षक बना था। दुर्योधन धनाध्यक्ष, सहदेव अतिथि सत्कार, नकुल धन संग्रह में नियुक्त थे ।।4।।

अर्जुन सज्जनों की सेवा में, श्री कृष्ण ब्राह्मणों की पाद पूजा में, द्रौपदी भोजन वितरण में उदार बुद्धि वाले कर्ण दान देने में नियुक्त थे ।।5।।

युयुधान, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुर और संतर्दन इत्यादि अनेक कार्यों मे परिणत लोग यज्ञ के कार्य में धर्मराज द्वारा अन्यान्य कार्यों मे नियुक्त होकर धर्मराज को संतुष्ट करने के कार्य में प्रवृत्त हुये थे ।।6-7।।

अत्यन्त ज्ञानी ऋत्विज, सदस्य और बंधु धर्मराज की अच्छी बातों, अमूल्य उपहार, दान और दक्षिणा पाकर संतोष पाये। शिशुपाल के मरकर श्री कृष्ण के पदारविन्द में समाहित होने के बाद सभी गंगा नदी में जाकर अवभृत स्नान किये ।।8।।

अवभृत स्नान के समय में मृदंग, शंख, पणव, दुंदुभि, आनक, गोमुख इत्यादि अन्य विचित्र वाद्यों द्वारा भूमि पर विपुल ध्वनि हुई। उसकी प्रतिध्वनि से अंतरिक्ष भर गया ।।9।।

नर्तकियों ने हर्ष से नृत्य किया। गायकों इकट्ठा होकर गायन किया। वीणा, वंशी और ताल की उच्च और गगनस्पर्शी ध्वनि भूमण्डल में गूँज उठी ।।10।।

सुन्दर ध्वज पताकाओं से अलंकृत रथों और मदभरित हाथियों से चलने वाले भटों के साथ सोने से श्रृंगारित राजा लोग अवभृत स्नान के लिए चले ।।11।।

यादव, श्रृंजय, काम्बोज, कौरव, कौशल, केकय राजा यज्ञ के यजमान धर्मराज के पीछे-

पीछे चलते हुये अवभृत करने चले। उनके पदाघात से भूमि हिलने लगा ।।12।।

सदस्य, ऋत्विज और ब्राह्मणोत्तम वेदघोष के साथ चले, देव, ऋषि पुष्पवृष्टि करते हुये स्तुति किये ।।13।।

गन्ध, माला, आभरणों से अलंकृत नर-नारियाँ ने एक दूसरे के ऊपर एक रंग फेंकते हुये विहार किये ।।14।।

तैल, दूध, हल्दी और कुंकुम केसर मिला हुआ जल को पुरुष और जारस्त्रियों ने एक-दूसरे के ऊपर फेंककर भिगोते हुये विहार किया ।।15।।

इस अवभृत उत्सव को देखने के लिए आकाश में उत्तम विमानों मे बैठकर देवियाँ आ गयीं। उनके साथ राजपत्नियाँ भी आ गयी। उनके ऊपर उनके मामा के पुत्र और सखियों ने रंग और गुलाल फेंके। उससे वे लज्जा से अवनत मुख से हँसती रही ।।16।।

वे इस प्रकार परस्पर एक-दूसरे के साथ रंग खेलने लगे। तब उनके कपड़े भीगकर शरीर से चिपक गये। उससे उनका सौन्दर्य बढ़ गया। जिससे कामियों का चित्त चंचल हुआ ।।17।।

सोने की माला से शोभायमान अपनी पत्नियों के साथ धर्मराज उत्तम घोड़ों वाले श्रेष्ठ रथ में चढ़कर बैठ गये। धर्मराज अंगक्रिया से युक्त प्रधान यज्ञ के समान शोभायमान थे ।।18।।

ऋत्विजों ने धर्मराज की पत्नि से संयोज नाम का हवन और अवभृतेष्टि करवाया। धर्मराज आचमन करने के बाद गंगा नदी में द्रौपदी के साथ स्नान किये ।।19।।

उस समय भू लोक पर मानवों ने दुन्दुभि नाद किया, जिसके साथ देव दुंदुभि भी समवेत हुई। देव, ऋषि, पितृ, मानव पुष्ट वृष्टि किये ।।20।।

तब वहाँ साथ रहने वाले वर्णाश्रम के लोगों ने स्नान किया। बाद मे धर्मराज नवीन रेशम के वस्त्रद्वय को धारण कर अलंकार को भी धारण किये ।।21।।

ऋत्विजों, सदस्यों, ब्राह्मणों, बंधुओं, ज्ञाती अवस्नेहित राजाओं सारे मिलकर नारायण-परायण धर्मराज को अनेक तरह के वस्त्राभरण दिये। धर्मराज ने उनके प्रति अलंकार देकर उनकी पूजा की ।।22-23।।

सारे लोग रत्न, कुण्डल पेटा रेशम का दुकूल और अमूल्य हारों को धारण कर देवताओं के समान विराजे। महिलायें भी फूल मालाओं और घुँघराले बालों से सुशोभित मुख से सभा में विराजी ।24।।

बाद में राजसूय याग के लिए आये हुये अध्ययनशील वेदपाठी ब्राह्मणों ने वहाँ रहने वाले क्षैत्रियों, वैश्यों, शूद्रों के साथ पितृ, अनुचरों समेत सारे लोकपाल धर्मराज से सत्कार पाकर

पुनः आने की बात करते हुये अपने-अपने घर चले गये ।।25-26।।

भगवान श्री कृष्ण के दास राजर्षि धर्मराज के राजसूय याग के वैभव को अनेकों बार गाने के बाद भी लोगों को तृप्ति नही हुई। मनुष्य अमृत को पीकर कभी तृप्त होता है क्या ? ।।27।।

बाद में राजा युधिष्ठिर ने स्नेहित बन्धु-बन्धवों और श्री कृष्ण को वियोग भय से न छोड़ते हुये अपने पास ही रख लिए ।।28।।

भगवान श्री कृष्ण धर्मराज को संतुष्ट करने हेतु अपने समस्त यदुजनों को साम्ब के नेतृत्व में द्वारका भेजकर स्वयं धर्मराजा के साथ वहीं रहे ।।29।।

इस प्रकार धर्मराज अपने मनोरथ नाम के महासागर को श्री कृष्ण के अनुग्रह से समृद्ध रीति से पार करके निश्चिंत होकर रहने लगे ।।30।।

श्री हरि की कृपा से धर्मराज के अंतःपुर में भरी हुयी उसकी धनकनकादि सम्पत्ति को और राजसूय यज्ञ करने से उनको प्राप्त सम्पत्ति और वैभव को देखकर दुर्योधन असूया से अपने मन में आग के समान जलने लगा ।।31।।

सृष्टिकर्ता श्री हरि ने इन्द्रप्रस्थ में ही कुबेर, बलि और देवेन्द्र के समान सकल सम्पत्ति को स्थिर से रहने का प्रबंध किये। उस सारी सम्पत्ति से शोभायमान धर्मराजा की सेवा द्रौपदी कर रही हैं। इसको देखकर दुर्योधन की असूया और बढ़ गई ।।32।।

उस समय इन्द्रप्रस्थ नगर में श्री कृष्ण की हजारों पत्नियाँ इधर-उधर चलती थीं। वे अपने नितम्बों के भार से मंद-मंद पद से चलते थे, पादों घुंघरु की आवाज से शोभा बढ़ाये हुए थी। उनके गले में सुन्दर मोतियों की माला कुछ कुंकुम लेपन से लाल रंग की हो गयी थी। हिलने वाले कुण्डल घुँघरु, बाल उनके मुख की शोभा को बढ़ाते थे। ऐसे इन्द्रप्रस्थ को देखकर दुर्योधन का मत्सर और भी बढ़ा ।।33।।

एक बार धर्मराज अपने बन्धु-बान्धवों व श्री कृष्ण के साथ मयासुर द्वारा निर्मित अपनी सभा में सिंहासन पर विराजमान थे ।।34।।

उस समय वे सोने के सिंहासन पर बैठकर दूसरे इन्द्र के समान दिखते थे। चतुर्मुख ब्रह्मा के समान सम्पत्ति से शोभायमान धर्मराज का वंदिमागध गुणगान करने लगे ।।35।।

नानादेशों से आये हुये श्रेष्ठ ब्राह्मण वेद घोष कर रहे थे। उस समय शुभ्र चामरों से दासियाँ हवा कर रही थीं। तब धर्मराज देव लोक के देव राजा के समान शोभायमान थे ।।36।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में पचासीवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशाम स्कन्धः

अध्याय - छियासीवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - उस समय राजा दुर्योधन फूल,माला और किरीट धारण किये हुये अपने भाइयों के साथ खड्ग लेकर उस सभा भवन में प्रवेश किया ।।1।।

वह सभा मयासुर द्वारा निर्मित था। अनेक मायाओं से इन्द्रनील मणियों से निर्मित उस सभा की जमीन को देखकर दुर्योधन वहाँ जल है समझकर अपने कपड़े को ऊपर उठाते हुये चला। उसको देखकर वहाँ बैठे हुये सारे लोग हँसने लगे ।।2।।

आगे चलकर दुर्योधन एक स्फटिक निर्मित जल कुण्ड के पास आया। उसको जमीन समझकर पानी में गिर गया। सारे लोग उसका अपहास्य करके हँसने लगा ।।3।।

भीमसेन जोर से हँसा। अनेक राजस्त्रियाँ हँसी। धर्मराज उन सबको हँसने से रोकने का प्रयास किये। श्री कृष्ण के मुस्कुराने से अन्यों की हँसी और बढ़ी ।।4।।

महाभारत के सभा पर्व में यह घटना श्री कृष्ण के द्वारका जाने के बाद घटती है। उसकी काल व्यत्यास पुराण शैली मानना चाहिए। भागवत की यह कथा वास्तविक है। तात्पर्य निर्णय में भी यही कहा गया है।

धर्मराज, श्री कृष्ण की प्रेरणा से समाधान कारक बातों को कहते हुये फूल माला दिये। अलंकारों को दुर्योधन को भेंट करते हुये अपने पास बुलाये ।।5।।

दुर्योधन उस सत्कार का तिरस्कार करते हुये मन में आगबबूला होकर लज्जा से नीचे मुँह करके वहाँ से चला गया। धर्मराज के पास नही गया ।।6।।

दुर्योधन लज्जा से अवनित मुख लेकर व क्रोध से जलते हुये धर्मराज से कुछ भी न बोलते हुये हस्तिनावति को चला गया। उस समय सारे लोगों ने हाहाकार किया। अजात शत्रु धर्मराज खिन्न मनस्क हुये ।।7।।

भूभार हरण करने का संकल्प लिए हुये भगवान श्री कृष्ण को अपने मन के अनुसार चलते

हुये घटना को देखकर कुछ भी नही हुआ, ऐसी आलोचना करते हुये बैठे रहे। उस समय देवताओं से पाद कमल की सेवा लेने वाले नारद मुनि जगदीश के सामने आ गये ।।8।।

तब सारे लोगों ने उठकर नारद जी को गौरव देकर नमस्कार किया। श्री कृष्ण ने भी नारद जी को गौरवार्पण किया। धर्मराज नारद जी को अपने सिंहासन के पास बैठाये ।।9।।

धर्मराज मुनि की विधिवत् पूजा करने के बाद पूछे - हे महर्षि ! आप सारे काल और क्षेत्र में निर्लिप्त होकर रहते हैं ।।10।।

अब कहिये इस भूमण्डल में अत्यन्त शूर और सतत युद्ध करने वाली प्रवृत्ति किसकी है ।।11।।

धर्मराज की इस बात को सुनकर नारद जी कहते हैं ।।12।।

नारद जी कहते हैं - इस समय सारे राजा अति पराक्रमशाली श्री कृष्ण से मार खाकर कान्तिहीन होकर कुछ प्रवृत्ति न करते हुये अपने-अपने देश में शान्त रीति से वास कर रहे हैं ।।13।।

किन्तु एक दुराग्रही राजा है। वह सारे क्षत्रियों में अधिक उत्साह दिखा रहा है। उसके पास बहुत वाहन पदाति सैन्य है। वह साल्वदेश का राजा है ।।14।।

लोक विजयी भगवान श्री कृष्ण द्वार यमुना तट पर गदायुद्ध में अपने भाई ब्रह्मदत्त के पुत्र हंस के मारने के बाद यह साल्वराज कृष्णद्वेष से जल रहा। अपने भाई के ऋण को चुकाने की इच्छा से कुण्डिनपुर को आकर रुक्मि के साथ श्री कृष्ण से द्वेष करने वाले अन्य राजाओं के साथ मिलकर, वह युद्ध सिद्धता कर रहा है ।।15-16।।

साल्व एक देश का नाम है। उसके अधिपति ब्रह्मदत्त तथा इसकी बड़ी रानी के पुत्र सौभादिपति को भी साल्व राज कहते हैं। छोटे रानी के पुत्र हंस और डिंभिक हैं। वे साल्व देश के परंपरागत अधिपत्य को नही पाये। इसके लिए उनको साल्वराज नही कहते।

हे राजन्, यह साल्व जब शिशुपाल, द्रुम इत्यादि राजाओं और जरासंध के साथ युद्ध में पराजित हुआ तब दंतवक्र सहित अन्य राजाओं के सामने साल्व राज ने प्रतिज्ञा की कि मैं इस भूमि पर एक यादव को भी रहने नही दूँगा। मेरी इस प्रतिज्ञा को और पौरुष को आप सब देखे।।17-18।।

मूर्ख साल्व इस प्रकार प्रतिज्ञा करके शक्ति संग्रह के लिए, तप करने हेतु अरण्य में प्रवेश किया। वहाँ जाने के बाद बहुत वर्षों तक उसकी पत्नियों ने उसकी प्रतिक्षा की ।।19।।

बहुत दिन तक जब राजा नही आया तो इसको देखकर मंत्रियों ने साल्व के भाई को

सिंहासन पर बिठा दिया। उधर राजा साल्व ने पशुपतिनाथ शिव की घनघोर तपस्या की ।।20।।

वन में राजा साल्व दिन में एक बार एक मूठ भर बालू खाकर तप करते रहा। बहुत वर्षों के बाद भगवान रुद्र तपस्या से संतुष्ट होकर उसके सामने प्रकट हुए ।।21।।

शरणागत साल्व को जो चाहे वह वर देने के लिए भगवान शिव आये। देव, असुर, मानव, गन्धर्व, नाग, राक्षसों द्वारा भी भेदा न जाने वाला, मन की इच्छा के अनुसार चलने वाला और यादवों को भय देने वाले एक विमान को साल्व ने शिव से माँगा। भगवान शिव ने उसको शत्रुओं के नगरों को जीतने वाला एक भयंकर विमान निर्मित कर देने के लिए मय को आज्ञा दी ।।22-23।।

मयासुर ने शिव जी की आज्ञा मानते हुये साल्व को सौंभव नाम के संचारी विमान को निर्मित करके सौंप दिया। अपने मन के अनुसार चलने वाले उस विमान को पाकर साल्व को बहुत आनन्द हुआ ।।24।।

ऐसे विमान को पाकर साल्व अपने समस्त सैन्य और वाहनों से युक्त अपने देश को वापस आया। अब राजकुमारों में युद्ध की प्रवृत्ति रखने वाला वह एक बचा है ।।25।।

इस प्रकार नारद जी की बात सुनकर धर्मराज अपने पास बैठे श्री कृष्ण के मुख को देखे ।।26।।

अत्यन्त धैर्यशाली भगवान श्री कृष्ण नारद जी की बात को सुनकर हँसते हुये तथास्तु बोले। यही बड़े लोगों का लक्षण है ।।27।।

बाद में श्री कृष्ण अपने मधुर वाक्यों से नारद जी का अभिवंदन करते हुये बोले साल्व हमारे मन में बहुत दिन से अपेक्षित है। नारद जी जो कहे हैं, वही ठीक है ।।28।।

इस प्रकार कहते हुये भगवान श्री कृष्ण द्वारका की और यदुराज उग्रसेन की रक्षा के लिए युयुधान, अक्रूर और कृतवर्म आदि मुख्य यादवों की नियोजना करते हुये बड़े सैन्य बल के साथ उनको द्वारका भेजे ।।29-30।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में छियासीवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सतासीवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - इस प्रकार महात्मा श्री कृष्ण अन्यान्य व्यवस्था करते हुये इन्द्रप्रस्थ में ही रहे। राजा युधिष्ठिर कृत-कृत्य भाव से भाइयों के साथ इन्द्रप्रस्थ में राज्य करते रहे ।।1।।

इधर साल्व अपने स्नेहित जरासंध और शिशुपाल की मरण वार्ता सुनकर क्रोधित हुआ। परम वैभव से धर्मराज ने राजसूय यज्ञ किया इसको सुनकर उसका द्वेष और ज्यादा हुआ ।।2।।

उसके भाई हंस और डिंभक को यादवों ने मारा है। इस द्वेष को पुनः-पुनः याद करते हुये साल्व ने द्वारका को युद्ध करने के लिए घेर लिया। वह आकाश में अपने सौभव नाम के विमान मे बैठकर वहीं से युद्ध करने लगा ।।3।।

साल्व ने द्वारकापुरी के उपवन उद्यानों का नाश किया। गोपुर महाद्वारों को गिराते हुये किले के ऊपर रहने वाले ऊँचे मन्दिरों का नाश करने लगा ।।4।।

आकाश से साल्व के महाविमान से आयुधों की वृष्टि होती रही। वहाँ से पत्थर, वृक्ष, साँप, जल, वज्रपात और ओले की वर्षा हुयी। बड़े झंझावात से सारी जगह धूल से भर गयी ।।5।।

इस प्रकार सौभव विमान से श्री कृष्ण की द्वारका नगरी पीड़ित हुयी। पहले त्रिपुरासुर द्वारा भी ऐसा ही कष्ट निर्माण हुआ था ।।6।।

अपनी प्रजा को होने वाले इस कष्ट को देखकर धैर्यशाली प्रद्युम्न अपने पिता श्री कृष्ण का और बलराम का स्मरण करते हुये सबको धैर्य देते रहा ।।7।।

सात्यकि, चारुदेष्ण, अक्रूर, साम्ब, कृतवर्म, भानुविन्द, गद और शुकशारण इत्यादि अनेक वीर महारथी और सेनाधिपति वीर कवच को धारण कर रथों, हाथीयों, घोड़ों और पदाति के साथ प्रद्युम्न के नेतृत्व में युद्ध करने चले ।।8-9।।

देवासुर के समान साल्व और यादवों के बीच अत्यंत रोमांचक तुमुल युद्ध हुआ ।।10।।

साल्व द्वारा रचाए हुए मायायुद्ध को रात के अंधकार को सूर्य जैसे नाश करता है वैसे ही प्रद्युम्न ने अपने दिव्यास्त्रों से एक क्षण में नष्ट कर दिया ।।11।।

सोने के पंख वाले लोहे के नुकीले मुँह वाले पच्चीस बाणों से साल्व के सेनापति को प्रद्युम्न ने मारा ।।12।।

सौ बाणों से साल्व को मारा। एक - एक बाण से उनके सैनिकों को मारा। दस - दस बाणों से उसके सेनापतियों को मारा ।।13।।

महात्मा प्रद्युम्न के इस अद्भुत कार्य को देखकर सारे लोग उनकी जयकार किये ।।14।।

मयासुर की माया से निर्मित वह सौभव विमान एक बार में बहुरुप धारण करता था। अनेको रूप वाला वह कभी एक रुप हो जाता था और कभी अदृश्य हो जाता था। जिसके कारण लोग उसके स्वरुप को ही जान नही पाये ।।15।।

वह विमान एक बार जमीन पर, एक बार आकाश में, एक बार समुद्र में और एक बार पहाड़ के ऊपर आग के समान प्रज्ज्वलित दिखता था। वह एक स्थान पर नही रहता था ।।16।।

उस सौभव का स्वामी साल्व अपनी सेना के साथ जाता था। वहीं यादव लोग अपने बाण फेंकते थे ।।17।।

अग्नि और सूर्य के समान चमकने वाले, सर्प के समान तीव्र गति वाले असाध्य बाणों से यादव वीर उस संचारी नगर को और उसमें रहने वाले सैनिकों को और साल्व को भी कष्ट दे रहे थे। इससे साल्व बार-बार मूर्छित होते रहा ।।18।।

साल्व और उसके सेनापतियों के बाणों से यादव वीर भी बहुत कष्ट पा रहे थे। जीवित रहे तो राज्य मरे तो स्वर्ग मिलेगा, यह समझते हुये यादव लोग युद्ध को आगे बढ़ा रहे थे ।।19।।

साल्व का अत्यंत बलिष्ठ द्युमान नाम का मंत्री आगे आकर प्रद्युम्न के सामने खड़ा होकर अपनी बहुत बड़ी गदा से प्रद्युम्न को मारकर सिंहनाद किया ।।20।।

शत्रुओं का दमन करने वाले प्रद्युम्न की छाती पर गदा से बहुत चोट लगी। प्रद्युम्न मूर्छित हुआ। दारुका का पुत्र, अपने कर्तव्य को जानने वाला प्रद्युम्न का सारथी प्रद्युम्न के रथ को युद्ध भूमि के बाहर ले आया ।।21।।

दो मुहूर्त के बाद प्रद्युम्न को होश आया। रणरंग से अपने को बाहर लाने के लिए सारथी को डाटा। "तुम युद्ध भूमि से मुझको बाहर ले आये, यह गलत है" ।।22।।

यादवों के वंश में ऐसे युद्ध भूमि को छोड़कर बाहर जाने वाला कोई नही है। तुम कायर होकर मुझको रणरंग से बाहर लाए ।।23।।

धर्म साधन करने के लिए योग्य इस युद्ध से मैं भागकर आया हूँ। अपने पिता श्री रामकृष्ण जी को मैं कैसे मुँह दिखाऊँगा। यह अनुचित कार्य करके उनके सामने कैसे खड़ा रहूँ ।।24।।

मेरी छोटी-बड़ी सभी भाभियाँ मेरे इस कायरपन को देखकर हँसेंगी। मुझको वे नपुंसक बोलेंगी ।।25।।

प्रद्युम्न की इस बात को सुनकर उसके सारथी ने उत्तर रुप में इस प्रकार कहा - हे प्रभु ! मैंने, सारथी के धर्म को ठीक तरह से जानकर ही यह कर्म किया है। र[illegible] के प्राण जब अपाय में रहते है, उस समय सारथी को उसकी रक्षा करनी चाहिए ।।26।।

अनुभव से इसको जानकर मैं आपको रणरंग से दूर लेकर आया हूँ क्योंकि शत्रु की गदा से मार खाकर आप मूर्छित हो गये थे। आपत्ति में फँसे हुये आपकी रक्षा के लिए मैं आपको युद्ध क्षेत्र से बाहर लाया हूँ ।।27।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में सतासीवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अठासीवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - इस प्रकार सारथी की बातों को सुनकर प्रद्युम्न युद्ध क्षेत्र की दिशा में देखते हुए अपने शस्त्र को उठाकर सारथी से कहता है ।।1।।

हे सारथी ! ये देखो, वह द्युमान कवच को धारण करते हुये धनुष लेकर युद्ध के लिए सिद्ध होकर खड़ा है। मुझको उसके पास ले चलो ।।2।।

अपने सैन्य के ऊपर आक्रमण करने वाले द्युमन्त को क्रोध से रोकते हुये प्रद्युम्न आठ बाणों से उसके ऊपर प्रहार किया ।।3।।

आठ बाणों में से चार ने द्युमन्त के चार घोड़े को मार डाला। एक बाण से सारथी, दो बाणों से धनुष और ध्वजा को काटकर आखिरी बाण ने उसके सिर को काट दिया ।।4।।

गद, सात्यकि, अक्रूर, साम्ब, शुकसारण, वसुदेव, उग्रसेन आदि ने साल्व के सैन्य के ऊपर आक्रमण करते हुए बहुत लोगों को मारा ।।6।।

इस प्रकार सताईस दिन तक यह रोमांचकारी युद्ध चलता रहा। श्री कृष्ण धर्मराजा के निमन्त्रण से इन्द्रप्रस्थ में ही ठहरे थे ।।7।।

राजसूय याग समाप्त हो गया है। शिशुपाल युद्ध में मर गया है। ऐसे समय में इन्द्रप्रस्थ में रहने वाले श्री कृष्ण ने युद्ध सूचक घोर अपशकुनों को देखा ।।8।।

कुरुवंश के बड़े लोगों और मुनियों से अनुज्ञा पाकर श्री कृष्ण इन्द्रप्रस्थ से द्वारका चले। उनकी विदाई के लिए ब्राह्मण और मंत्रियों के थ वे उनके पीछे चले ।।9।।

थोड़ी दूर आने के बाद श्री कृष्ण समस्त नागरिकों को वहीं खड़ा कर दिये। आँखों में आँसू भर के पुनः आने की बात कहे ।।10।।

अन्तःपुर की स्त्रियाँ सोने से निर्मित पालकी में बैठे थीं। हजारों हाथी, घोड़े, रथ और पदाति के साथ पूरे सैन्य को साथ लेकर श्री कृष्ण पश्चिम दिशा में अपनी यात्रा आरम्भ किये ।।11।।

इधर प्रद्युम्न द्वारा युद्ध से पीड़ित साल्व युद्ध भूमि से वापस होकर विमान से अपने राज्य को चला ।।12।।

साल्व इस प्रकार भाग रहा है। उसको देखकर साम्ब ने साल्व के मंत्री क्षेमधूर्ति को अपने बाण से यमसदन भेजा ।।13।।

साल्व के अत्यन्त प्रिय विविन्द नाम के सेनापति को रास्ते में रोंकते हुए प्रद्युम्न ने बाण मारा ।।14।।

प्रद्युम्न से मार खाया हुआ विविन्द खड्ग और ढाल लेकर प्रद्युम्न का सामना किया। वह युद्ध अद्भुत था ।।15।।

युद्ध मे आश्चर्य जनक रीति से विमान को मण्डराने वाले विविन्द को प्रद्युम्न ने खड्ग से काट डाला ।।16।।

इस प्रकार सारे मुख्य सेनापतियों के मारे जाने से साल्व का सेना अपनी प्राण रक्षा के लिए मन चाहे भाग गई ।।17।।

श्री कृष्ण द्वारका को तीव्र गति से आकर वहाँ भग्न हुयी द्वारका को देखे ।।18।।

द्वारका नगर में तोरण टूट गये हैं। बड़ी-बड़ी दीवार गिर गयी हैं। उपवन, उद्यान नष्ट हो गये हैं। कुएँ पत्थर से भर गये हैं। रास्ते क्षतिग्रस्त हो गये है ।।19।।

वेदाध्ययन और नित्यअग्निहोत्र रुक गये हैं। द्वारकापुरी में हुए उस विध्वंस कार्य को देखकर श्री कृष्ण व्यग्र होकर कृतवर्म से पूछते हैं ।।20।।

साल्व के कुकृत्य के बारे मे कृतवर्म कहता है। उसको सुनकर सारे यादवों के सामने श्री कृष्ण प्रतिज्ञा करते हैं ।।21।।

मैं उस दुरात्मा साल्व का पीछा करते हुये उसको मारकर, उसके सौभव विमान को टुकड़े-टुकड़े करते हुये समुद्र में डालने के बाद ही द्वारका में प्रवेश करूँगा ।।22।।

शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नाम के चार घोड़ों से चलने वाले बहुत आयुधों से भरे हुए रथ में सारथी दारुक बैठा है। गरुड़ से युक्त ध्वजा फहरा रही है। भगवान श्री कृष्ण इस रथ में बैठकर मनोवेग वायु वेग से साल्व का पीछा करने लगे ।।23-24।।

बहुत दूर जाने के बाद समुद्र के बीच में रहने वाले सौभव विमान में बैठे हुए साल्व को उन्होने देखा ।25।।

साल्व का सैन्य प्रायशः नष्ट हो चुका है। साल्व श्री कृष्ण को देखकर उनके सारथी के ऊपर एक बड़ा शक्त्यायुद्ध को फेंक दिया ।।26।।

आकाश में धूमकेतु के समान दिशाओं को प्रकाशित करते हुये बड़े वेग से आने वाली उस शक्ति का श्री कृष्ण ने अपने बाणों से सौ टुकड़े कर दिए ।।27।।

साल्व को सोलह बाणों से मारा। आकाश में चलने वाले विमान को, सूर्य जैसे अपने किरणों से आकाश को भर देता है, वैसे ही विमान को बाणों से भर दिये ।।28।।

शारंगधनुर्धारी श्री कृष्ण के धनुष को पकड़े हुए बायें हाथ में साल्व ने बाण मारा। तब भगवान के हाथ से शारंगधनुष गिर गया। साल्व का यह शौर्य अद्भुत था ।।29।।

उसको देखकर यादव लोग हाहाकार करने लगे। साल्व जोर से गर्जना करते हुये श्री कृष्ण से कहता है ।।30।।

हे दुर्बुद्धि वाले, मूर्ख ! दुरात्मा ! तुमने यमुना तट में महाबलशाली हमारे दोनों भाई हंस और डिंभिक को युद्ध में मारा है। मेरे मित्र शिशुपाल की पत्नी होने वाली रुक्मिणी का अपहरण किया है ।।31।।

हे मंदबुद्धिवाले, सभामध्य में क्षत्रिय लोग व्यग्र होकर देखते रहे और तुम हमारे मित्र शिशुपाल को उस समय काट डाले ।।32।।

तुम समझ रहे हो कि तुमको कोई हराने वाला नही है। किन्तु देखो, अभी अपने बाणों से तुमको यमालय को भेज देता हूँ ।।33।।

साल्व की इन बातों को सुनकर, उसके बाणों से पीड़ित श्री कृष्ण धनुष को उठाते हुये कहते हैं ।।34।।

हे मंदबुद्धिवाले अहंकार की व्यर्थ बातों को छोड़ो। तुम्हारे में यदि आश्चर्य करने वाला अति पौरुष है तो दिखाओ। शूर लोगों को बातों से मतलब नही रहता ।।35।।

इस प्रकार बोलते हुय भगवान श्री कृष्ण आक्रोश से अपनी प्रचण्ड गदा से साल्व के कंधे के ऊपर मार दिये। साल्व रक्त वमन करते हुये काँपने लगा ।।36।।

तब साल्व आकाश में कूदकर खड्ग से वसुदेव के सिर को काटकर तथा उसको अपने साथ लेकर अपने विमान में जाकर बैठा ।।37।।

साल्व के इस कृत्य को देखकर कुछ न समझने वाले आदमी के समान श्री कृष्ण युद्ध क्षेत्र में खड़े रहे। बाद में यह साल्व की आसुरीमाया है। इसको अपने लोगों से समझ लिये ।।38।।

द्वारका में रहने वाले निवासी की तरह दिखने वाला एक मनुष्य अपने को आह्वक का दूत बोलते हुये श्री कृष्ण के सामने कहता है ``साल्व द्वारका में आकर वसुदेव को मार दिया है, आपकी यहाँ युद्ध करके क्या लाभ होने वाला है। वापस आकर बची हुई द्वारका की रक्षा करें।`` उसी समय सौभव विमान से वसुदेव का मृतक शरीर नीचे गिरता है। श्री कृष्ण इसको देखकर मोहित जैसे रथ में बैठ गये। श्री कृष्ण के सैन्य में हाहाकार मचा। एक मुहूर्त पर्यन्त

साल्व की यह माया रही। महाभारत वनपर्व (21-10-30) में इस प्रकार लिखा है।

श्री कृष्ण स्वप्न से जागृत होने वाले जैसे जागृत होकर सामने साल्व को नही देखे। अथवा वसुदेव के शरीर को भी नही देखे। वे आकाश संचारी सौभव विमान में रहने वाले साल्व को देखकर उसको मारना चाहे ।।39।।

स्वप्न पदार्थ मन में रहता है, किन्तु बाहर वह नही दिखता। माया पूर्ण रुप से नही रहता। स्वप्न और माया में यह अन्तर है। इस अन्तर को दिखाते हुये यहाँ स्वप्न और माया दोनों के बारे में कहा है।

श्री कृष्ण माया मूर्छा से जागृत हुये ऐसे दिखाते हैं, किन्तु उनके लिए शोक माया मोह इत्यादि नही है। सारे स्मृतिकार इसको मानते हैं। सारे ऋषि मुनि और उपनिषदों का एकाभिप्राय है कि श्री हरि को शोक, माया, मोह इत्यादि नही होता है ।।40।।

श्री हरि को शोक, माया, मोह होता है, ऐसा कोई स्मृतिकार या देवता कभी नही कहे हैं, वे भगवान को नहीं हैं इस प्रकार दृढ़ता से कहे हैं। अज्ञों मे रहने वाले शोक, मोह, ममता, भय भगवान में कैसे हो सकते हैं भगवान लक्ष्मीपति, अजित हैं। ईश्वर यानि जगत के स्वामी भगवान के साथ ये माया मोह कैसे रह सकते हैं ।।41।।

श्री हरि की पाद सेवा से पाये हुये तत्वज्ञान से भक्त अपनी अनादि होकर रहने वाली अविद्या को दूर करते हुये ज्ञान को पाते हैं। अपने स्वरुपभूत, अक्षय श्रीहरि के अनुग्रह से लभ्य होने वाले मोक्ष सुख को पाते हैं, तो श्रीहरि को शोक मोह कहाँ हो सकता हैं ।।42।।

हे परीक्षित ! भक्तों की बातों को सुनकर कमल नयन श्री कृष्ण सौभव विमान के साथ साल्व का नाश करने में उद्यत हो गये ।।43।।

महाभारत के वनपर्व में सारथी श्री कृष्ण से कहता है - भगवान मृदु युद्ध को छोड़ दीजिए। साल्व को जल्दी मार डालिए।

श्री कृष्ण अपने तीक्ष्णधार वाले सुदर्शन चक्र को उठाकर उसको आग्नेय अस्त्र से अभिमंत्रित करते हुये सौभव विमान नाश के लिए छोड़ देते हैं ।।44।।

आग्नेय अस्त्र से अभिमंत्रित श्री कृष्ण के हाथ से प्रेषित सुदर्शन चक्र ज्वाला से युक्त होकर अति भयंकर रुप से सत्यलोक पर्यन्त प्रज्वलित होने लगा ।।45।।

उस ज्वाला से त्रस्त देवता स्वर्ग छोड़कर भाग गये ।।46।।

हे राजन् ! अनेकों सूर्यों के समान प्रकाश देने वाले सुदर्शन चक्र ने सौभवपुरी के दो टुकड़े कर वापस श्री कृष्ण के पास आ गया ।।47।।

सौभवपुर अपने अवयवों को खोकर समुद्र में गिर गया। अन्यों द्वारा सामना करने में अशक्य साल्व हाथ में गदा लेकर श्री कृष्ण के सामने आया। दुर्बुद्धि साल्व उस गदा को कृष्ण के ऊपर फेंका ।।48।।

दैत्य सैन्य से दिए हुए बहुत आयुधों से युक्त रथ में बैठकर साल्व ने श्री कृष्ण के सिर के ऊपर अनेक आयुधों को फेंककर सिंह के समान गर्जना किया ।।49।।

साल्व द्वारा फेंकी हुयी गदा को अपने एक बाण से तीन टुकड़े कर श्री कृष्ण अपने पञ्च जन्य शंख को बजाते हुये सिंहनाद किये ।।50।।

साल्व द्वारा फेंके हुए शस्त्र समूह को अमोघ पराक्रमी श्री कृष्ण नष्ट करते हुये अपने बाण से साल्व के कवच, किरीट और धनुष को टुकड़े-टुकड़े कर दिये। गदा से उसके रथ को चकनाचूर किये ।।51।।

श्री कृष्ण की गदा से साल्व का रथ हजारों टुकड़े होकर समुद्र में गिर गया। साल्व रथ को छोड़कर जमीन के ऊपर खड़ा होकर गदा लेकर श्री कृष्ण के ऊपर जोर से आक्रमण किया ।।52।।

महागदा को लेकर दौड़ते आने वाले साल्व के हाथ को श्री कृष्ण ने शूल से काट डाला। प्रलय काल के सूर्य के समान अद्भुत प्रकाश देने वाले सुदर्शन चक्र को लेकर श्री कृष्ण उदयाचल के समान प्रकाशित हो साल्व को मारने के लिए आगे बढ़े ।।53।।

उसी चक्र से अत्यन्त मायावी किरीट कुण्डलधारी साल्व के सिर को, इन्द्र द्वारा वज्रायुध से वृत्रासुर के सिर को काटने जैसे, काट डाले। वहाँ उपस्थित सारे लोग हाहाकार कर उठे ।।54।।

पापी साल्व के गिरने के बाद सौभव विमान भी समुद्र मे गिरा है इसको देखकर देव दुंदुभिओं से ध्वनि किये, आकाश पुष्पवृष्टि से भर उठा ।।55।।

ऋषि समूह और सूत वन्दि मागध स्तुति करने लगे। भगवान श्री कृष्ण उनके साथ द्वारकापुरी में आ गये ।।56।।

उस समय द्वारकापुरी ध्वजपताकाओं से अलंकृत हो रही थी। नगर के मार्गों को स्वच्छ करते हुए पानी छिड़कावाये थे। ऐसे सुन्दर सजे हुए नगर में श्री कृष्ण प्रवेश किये ।।57।।

हे राजा परीक्षित ! यादव श्रैष्ठों पुरवासी और देशवासी सबसे पूजित श्री हरि प्रेम परवशा अपनी सोलह हजार पत्नियों के साथ संतोष से द्वारका में वास करने लगे ।।58।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में अठासीवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - नवासीवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - एक बार श्री कृष्ण क्षत्रियों के साथ सुधर्म सभा में बैठे थे। उस समय हाथ में वेत्र को पकड़े हुये द्वारपालक विज्ञापना करता है ।।1।।

हे प्रभु ! यदुश्रेष्ठ ! इन्द्रप्रस्थ से एक ब्राह्मण आकर द्वार पर खड़ा है। आप उसको अन्दर आने की आज्ञा दीजिए ।।2।।

श्री कृष्ण ने उसको अन्दर भेजने के लिए कहा। तब द्वारपालक उस ब्राह्मण को अन्दर भेजा। वह ब्राह्मण अन्दर आकर श्री कृष्ण को प्रणाम करते हुये बोला ।।3।।

मूर्ख, दुराचारी दुर्योधन ने धर्मराज को द्यूत में हरा दिया है। धर्मराज अपने भाइयों के साथ जंगल चला गये हैं ।।4।।

कानों से सुनने में अत्यन्त कष्टसाध्य ब्राह्मण द्वारा कहे हुए उस वाक्य को सुनकर श्री कृष्ण क्रोध वश झट से आसन से उठकर खड़े हो गये ।।5।।

दारुक इशारा समझते हुये रथ को लाया। सत्यभामा के साथ उस रथ से श्री कृष्ण जंगल में जहाँ पाण्डव थे, उनसे भेंट करने के लिए वहाँ चल दिये ।।6।।

ब्राह्मणों से घिरे हुये भाइयों के साथ जंगल में रहने वाले राजा युधिष्ठिर को देखकर श्री कृष्ण को बहुत दुःख हुआ ।।7।।

पाण्डव, श्री कृष्ण को नेत्र से अनुभव किये हुये अपने कष्टों के बारे में विवरण दिये। श्री कृष्ण ने वह रात पाण्डवों के साथ वहीं बितायीं ।।8।।

श्री कृष्ण कहते हैं - सुख- दुःखों के लिए अदृष्ट का नियमन करने वाले श्री हरि ही कारण हैं। इसके इतिहास में बहुत से दृष्टांत मिलते हैं। इस प्रकार अनेको हेतुवाक्यों से धर्म, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव को श्री कृष्ण ने सांत्वना दी। द्रौपदी से सत्यभामा ने समाधान की बातें कही। वहाँ मिले हुये हजारों ब्राह्मणों और पण्डवों की अनुज्ञा लेकर अभिमन्यु और सुभद्रा को रथ में बिठाकर द्वारका वापस आये ।।9-10-11।।

पाण्डवों के वियोग से खिन्न होकर श्री कृष्ण द्वारकापुरी में प्रवेश किये। वे शत्रु निग्रह करते

हुये धर्म से इस भूमि का पालन करते रहे ।।12।।

एक बार साम्ब, प्रद्युम्न, चारु, भानु, गद इत्यादि यादव कुमार विहार करते हुये एक उपवन में प्रवेश किये ।।13।।

वे वहाँ बहुत समय तक विहार करते हुये बाद में क्षुधा से पीड़ित होकर एक कुँए में पानी के लिए झाँककर देखे। उस कुँए में पानी नही था। किन्तु उन्होंने वहाँ एक विचित्र प्राणी को देखे ।।14।।

वे पहाड़ के समान एक बड़े गिरगिट को देखे। आश्चर्य चकित होकर उसको कुँए से ऊपर उठाने का प्रयास किये ।।15।।

कुँए में गिरा हुए उस प्राणी को चमड़े की रस्सियों से और अन्यान्य रस्सियों से बाँधकर ऊपर उठाना चाहे लेकिन उस कार्य में वे विफल रहे। तब वे श्री कृष्ण को कहे ।।16।।

जगज्जनक भगवान श्री कृष्ण वहाँ जाकर उस प्राणी को अपने बाएँ हाथ से उठाकर ऊपर लाये ।।17।।

भगवान के हाथ को स्पर्श होते ही वह गिरगिट अपने शरीर को छोड़कर सोने के रंग वाला अत्यन्त सुन्दर शरीर व स्वर्ग में पहनने योग्य वस्त्र अलंकार से भूषित एक सुन्दर पुरुष हो गया ।।18।।

श्री कृष्ण के पादारविन्द को नमस्कार करने के लिए जमीन पर दण्डवत नमस्कार किया। भगवान श्री कृष्ण उससे प्रश्न करते हुये सरीसृप शरीर धारी प्राणि जन्म प्राप्त करने के लिए कारण हुए उसके पाप कर्म के बारे में पूछा ।।19।।

श्री भगवान कहते हैं - हे भाग्यशाली, सुन्दर रुप वाले, तुम कौन हो, लगता है तुम एक देवोत्तम हो, किस पाप के कारण तुम्हे ऐसी यह दुरवस्था प्राप्त हो गई है ? हे मंगल रुप ! तुम ऐसी अवस्था को पाने के योग्य नही हो ।।20।।

तुम्हारी कथा को सुनने के लिए हम उत्सुक हैं। यदि तुमको पसन्द हो तो अपने बारे में कहो ।21।।

अनंत शरीरी श्री कृष्ण की इन बातों को सुनकर महादानी नाम से प्रसिद्ध वह सूर्य के समान चमकने वाली कीरीट वाला अपने सिर से श्री कृष्ण को नमस्कार करते हुये बोला ।।22।।

नृगराज ने कहा, प्रभु, मैं इक्ष्वाकु वंशीय नृग नाम का प्रसिद्ध राजा था। दानियों के नाम में मेरा भी नाम आप सुने होंगे ।।23।।

हे प्रभु, आप सबके अंतर्यामी कर्मसाक्षी हैं। आपका ज्ञान काल के प्रभाव से नष्ट होने वाला नही है। आपको मालूम नही ऐसा क्या है। तो भी आपके आदेशानुसार मैं बताता हूँ ।।24।।

भूमि में जितने बालू के कण हैं, आकाश में जितने तारे हैं, बरसात में गिरने वाली पानी की

जितनी धाराएं जितने होती हैं। मैं उतना गोदान कर चूँका हूँ ।।25।।

वाल्मीकि रामायण में नृगराज के बारे में ये कथा आती है। वह पुष्कर क्षेत्र में एक करोड़ गोदान किया था। वहाँ एक गोदान करने से करोड़ों गोदान देने का पुण्य आता है। इसी कारण नृगराज को अनंत कोटि गोदान करने का फल मिला। इसको 37 श्लोक में आगे कहते हैं।

वे गाय आयु में छोटी थी और बहुत दूध देने वाले थी। वे सारी शील, रुप, गुण से भरी थी। उनकी सींगें सोने और पाँव चाँदी के आभरण से अलंकृत थे। रेशम के वस्त्र को पहने थी। ऐसी बच्चों के साथ रहने वाली न्याय से सम्पादन किये हुये कपिला गायों का मैनें दान दिया था ।।26।।

सम्पद के साथ रहने वाले गुणशील, व्रतनिष्ठ, तप और अध्ययन करने वाले शिष्य किन्तु संसार में कष्ट सहन करने वाले युवक उत्तम ब्राह्मणों को चुनकर उनको भी वस्त्राभरण से अलंकृत करते हुये उनको उत्कृष्ट गायों को दान दिया था ।।27।।

गो, भूमि, सोना, घर, घोड़ा, हाथी दासियों के साथ तिल, चाँदी, बिस्तर, वस्त्र, रत्न, उपकरण और रथों को भी दान दिया था। यज्ञादि कर्म करते हुये वापीकूपों का निर्माण करते हुये जनोपयोगी सेवा कार्यों को किया था ।।28।।

एक बार एक ब्राह्मण की एक गाय गलती से हमारी गायों में आकर मिल गयी थी। मैं इसको न जानते हुये उस गो समूह को दूसरे ब्राह्मण को दान दिया ।।29।।

दान लिया हुआ वह ब्राह्मण जब गायों को लेकर जा रहा था। तब उस मिली हुयी गाय को उसका पहला मालिक ब्राह्मण उसको माँगने लगा। तब दूसरा ब्राह्मण नृगराज ने मुझे इस गाय को दिया है" इस प्रकार बोला ।।30।।

दोनों ब्राह्मण इस प्रकार वाद करते हुये अपने वादों का समर्थन करते हुये मेरे पास आकर विवाद किये। एक ने मुझसे कहा आपने यह गाय मुझे दान दिया हैं, दूसरे ने कहा आपने मेरी इस गाय को चोरी करके दूसरे को दिया हैं। इन दोनों की बातें सुनकर मैं समस्या में पड़ गया ।।31।।

धर्म संकट में पड़े हुए मैंने दोनों ब्राह्मणों का समाधान करने का प्रयास किया। एक गाय के बदले में एक लाख गायों को देने की बात किया ।।32।।

"पूज्य ब्राह्मण आप मेरे ऊपर अनुग्रह करें। मैं आपका सेवक हूँ। अनजान से यह भूल किया हूँ। इस धर्म संकट से मुझको पार कीजिए। अशुचि नरक में गिरने से मुझको बचाइए" ।।33।।

इसके उत्तर रुप में वह ब्राह्मणवर्य ने मुझको शाप देने की बात बोला। मुझे और दूसरी गाय की आवश्यकता नही। अन्य दस हजार गाय दिये तो भी मैं उसको नही लूँगा। ऐसे बोलकर वह गाय को

छोड़कर वहाँ से चला गया। दूसरा ब्राह्मण भी मुझको कोसते हुये वहाँ से चला गया ।।34।।

``एक लाख गाय को देता हूँ।`` राजा की इस बात का अर्थ लाख नही किन्तु हजारों इस प्रकार अर्थ होता है। एक के बदले में हजारों को स्वीकार करने से वह गाय का दान नही होता वरन् गाय का व्यापार होता है। गाय का व्यापार शास्त्र से निषिद्ध है। यह पाप कर्म मैं नही करूँगा। यह बोलते हुये या तो गाय को मुझको दो नही तो तुम ही उसको रख लो। यह बोलते हुये वह ब्राह्मण चला गया। दान लिया हुआ दूसरा ब्राह्मण राजा से कहता है - हे राजन् वह गाय तुमने अपहृत किया है। उसको मैं दान में स्वीकार किया तो वह भी अपहरण होगा। उसके बदले में और गाय लिया तो भी प्रतिग्रह दोष से वह भी अनुचित होती है। इस पाप की गाय को तुम ही रखो। इस प्रकार बोलते हुये दोनों ब्राह्मण जाते वक्त इस पाप कर्म के लिए तुम गिरगिट बनकर हजार वर्ष भूमि मे रहो। इस प्रकार वैर से शाप देते हैं। यह महाभारत में आता है। वाल्मीकि रामायण में है कि ब्राह्मणों के विवाद का निर्णय करने के लिए राजा उनको दर्शन नही दिया। इसी कारण वे ब्राह्मण हजार वर्ष काल तक अदृश्य होकर भूमि में रहने का शाप देते हैं। (उत्तरकाण्ड अध्याय - 53) भागवत के अनुसार राजा दर्शन देता है किन्तु न्याय निर्णय करने में विफल होता है। एक हजार वर्ष इस प्रकार अदृश्य होकर रहने के बाद श्री कृष्ण के अवतार के काल में गिरगिट के रुप में दिखता है।

उंछ वृत्ति से जीवन चलाने वाला एक दरिद्र ब्राह्मणोत्तम अपनी एक मात्र होमधेनु खो जाने के बाद अनेक देशों में अनेक वर्ष तक उसको ढूंढता रहा। अंत में उसने उस गाय को नृगराज के गो समूह में पाया। नाम से पुकारा तो वह गाय अपने पहले यजमान के पास दौड़कर आया। दोनों ब्राह्मणों में इसके बारे में विवाद हुआ। राजा उसका परिहार करने में असमर्थ हुआ। धर्म संकट में पड़ा हुआ राजा उन्हीं ब्राह्मणों से रक्षा करने के लिए प्रार्थना किया। वे ब्राह्मण गिरगिट का जन्म लेने का शाप देते हुये राजा के ऊपर अनुग्रह ही किये, क्योंकि हजार वर्ष के बाद श्री कृष्ण के दर्शन से उसको मोक्ष मिला। इस बारे में नृगराज आगे कहता है।

"मेरे अंत काल में भगवान आपकी इच्छा के अनुसार मैं मर गया। उस संदर्भ में यमदूत मुझको लेकर यमालय को चले गये" ।।35।।

हे देव-देव जगत्पति ! वहाँ यमराज ने मुझसे पूछा - तुम पहले पुण्य का फल भोगते हो या पाप का ? ।।36।।

तुमने बहुत दान दिया है। उसका फल बहुत है लेकिन पाप भी किया है। इसके लिए मै पहले पाप के फल को भोगने के लिए सिद्ध हुआ। यमराज ने मुझको उस कुँए में गिरा दिया ।।37।।

राजा के पुण्य कर्म की यम धर्म पहले स्तुति किये, बाद में कहे - अज्ञान से किये हुए पाप कर्म के फल को पहले भोगो। यह वाल्मीकि रामायण में आता है।

प्रभु मैं उस दिन से गिरगिट बनकर इस कुँए में गिर गया था। हे केशव, देव-देव, जगन्नाथ, गोविन्द, पुरुषोत्तम आप ब्राह्मणों के प्रिय हैं, बड़े दानी हैं मैं दास होकर आपके दर्शन करना चाहता था। उस दिन से आपका स्मरण करता था। कभी भी मुझे आपका विस्मरण नही हुआ ।।38।।

हे नारायण, हृषीकेश, पुण्यश्लोक, अच्युत, अव्यय, प्रभु, हे श्री कृष्ण, देव लोक जाने के लिए मुझे अनुज्ञा दीजिए। मैं कही भी रहूँ सदाकाल मेरा मन आपका पादस्मरण करता रहे ।।39-40-41।।

सारे जगत के सृष्टि करने वाले गुणपूर्ण, सर्वशक्त, गोपालक, वसुदेव के पुत्र आपको मैं नमस्कार करता हूँ ।।42।।

नृगराज इस प्रकार बोलकर श्री कृष्ण की परिक्रमा करते हुये उनके चरणों को अपने सिर से छूते हुये उनकी आज्ञानुसार सारे लोग के देखते-देखते विमान पर चढ़कर स्वर्ग चले गये ।।43।।

ब्राह्मणों को इष्ट दैव मानने वाला धर्म स्वरुप देवकीसुत श्री कृष्ण क्षत्रियों को और अपने परिवार को नीति नियम सिखाते हुये बोले ।।44।।

ब्राह्मणों की सम्पत्ति कितनी भी छोटी हो उसको कोई अपहृत नही करे। वह छोटी हो तो भी तेजस्वी अग्नि भी उसका पाचन नही कर सकता। तो अहंकारी राजा लोग उसको कैसे कर सकते हैं ।।45।।

मैं हलाहल को विष नही मानता। हलाहल का भी एक परिहार है। किन्तु ब्राह्मणों की सम्पत्ति विष से भी बढ़कर है। उसका अपहरण करने वाले को कोई परिहार नही है ।।46।।

विष खाने वाले एक को मारता है। आग को पानी से बुझा सकते हैं किन्तु ब्राह्मणों की सम्पत्ति अरणिकाष्ठ मूल बनकर पूरे कुल को नाश करती है ।।47।।

चाहे तो ले लो ऐसे दाक्षिण्य को यदि स्वीकार किये तो भी वह ब्राह्मणत्व उसको, उसके पिता को और उसके बाबा को भी नरक में ढकेल देता है। सम्मति के बिना ब्राह्मणस्व को बलात्कार से उपभोग किया तो पीछे और आगे की दस-दस पीढ़ी नरक में गिर जाती हैं ।।48।।

राजा लोग राज्य और अधिकार के मद से अंधे बनके स्वयं नरक में गिरने का विचार नही

करते। ब्राह्मणस्व को अपना समझने वाले बड़े मूर्ख होते हैं ।।49।।

पत्नी, पुत्र वाले उत्तम श्रेष्ठ ब्राह्मण की सम्पत्ति को अपहरण करे तो उनकी आँखों के आँसू जितने धूलि कणों को भिगोते है, उतने वर्ष तक ब्राह्मण की सम्पत्ति का अपहरण करने वाले राज वंशज नरक में ताप का अनुभव करते हैं ।।50-51।।

स्वयं राजा द्वारा ब्राह्मणों को दी हुई अथवा अन्य राजाओं से दी सम्पत्ति को अपहरण करने वाला साठ हजार वर्ष मल में रहने वाले कीट का जन्म पाता है ।।52।।

हे राजाओं, याद रखो, ब्राह्मण की सम्पद को खाने वाला अल्पायुषि होता है, पराजय पाता है, स्थान भ्रष्ट होता है। वे उद्वेग के वश होकर दुःख भोगते हैं। ऐसे ब्राह्मण की सम्पद को मैं नही चाहता ।।53।।

हे मेरे प्यारों, ब्राह्मण अपराध करे तो भी उससे द्रोह मत करो। वह हिंसा करे अथवा शाप दें तो भी उनका सम्मान करें ।।54।।

जैसे मैं सदाकाल समाधान से सारे ब्राह्मणों को नमस्कार करता हूँ, वैसे तुम भी नमस्कार करते रहो। जो नमस्कार नही करते वह शिक्षार्ह हैं ।।55।।

यदि ब्राह्मणों की सम्पद को अनजान में अपहरण किये तो भी वह अपहरण करने वाले को नृगराज के समान उनको नीचे गिराता है ।।56।।

इस प्रकार सकल लोकपावन भगवान मुकुंद द्वारका वासियों को उपदेश देकर अपने राजगृह में प्रवेश किये ।।57।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजन् !, सज्जनों का संग कभी भी निष्फल नही होता। सज्जन ब्राह्मणों के संग से नृगराज श्री कृष्ण का दर्शन पाया। नरक से विमुक्त हो गया ।।58।।

सज्जनों का स्पर्श, दर्शन, नामोच्चारण और स्मरण ये सारे गंगादि तीर्थ जल के समान पाप नाशक हैं ।।59।।

हे शत्रुनाशक परीक्षित ! नृगराज के इस चरित्र को सुनने के बाद तुम भी सदा के लिए सज्जनों की सेवा करते रहो। यदि तुम सद्गति को चाहते हो तो ब्राह्मणों की सम्पदाओं का कभी भी अपहरण न करो ।।60।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में नवासीवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - नब्बे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे परीक्षित ! पूज्य बलराम नन्द गोकुल में रहने वाले बन्धुओं को देखने के कुतूहल से रथ में सवार होकर वहाँ चले ।।1।।

उनको बहुत दिनों से देखने के लिए आतुर रहे गोप-गोपियों ने उनका आलिंगन किया। अपने माता-पिता यशोदा और नन्द के पास जाकर उनको प्रणाम किये। वे आशिर्वाद देते हुये उनका अभिनन्दन किये ।।2।।

जगदीश्वर बलराम ! तुम अपने भाई के साथ हमारी सदाकाल के लिए रक्षा करते रहो। इस प्रकार बोलते हुये अपने जंघे के ऊपर बिठाकर आलिंगन करते हुये आँखों की आसुओं से उनका अभिषेक किये ।।3।।

बड़े लोगों को बलराम विधिपूर्वक प्रणाम किये, छोटे का अभिवादन स्वीकार किये। अपने वय और प्रीति के अनुसार परस्पर अभिवादन-प्रतिवादन किये ।।4।।

विश्रांति लेने के बाद आराम से बैठे हुये बलराम के साथ गोपालक हास्यविनोद करते हुये योगक्षेम के बारे में पूछे ।।5।।

कमल के समान बड़ी-बड़ी आँखों वाले श्री कृष्ण में अपना सर्वस्व अर्पण किये हुये गोपालक प्यार के आवेग से अवरुद्ध हुये कण्ठ से कुशल क्षेम का प्रश्न किये। तब बलराम ने उन गोपालकों से अपनेपन से सकुशलता का वार्ता किये ।।6।।

गोपालक पूछते हैं - हे बलराम ! वहाँ हमारे सारे बंधु क्षेम से हैं न ? आप भी अपनी पत्नी-पुत्रों सहित क्षेम से रहकर हमारी याद करते हैं न ? ।।7।।

दैवी कृपा से पापी कंस मर गया। उसी दैवी कृपा से हमारे बंधु जन उसकी पीड़ा से मुक्त हो गये। शत्रुओं को जीतकर या तो उनको मारकर हम आराम से अब द्वारका में रहते हैं। इस प्रकार बलराम कहे ।।8।।

बलराम के इस संदर्शन से गोपिकाएँ पुलकित होकर हँसते हुये पूछीं - श्री कृष्ण सुख से हैं न? नगर की स्त्रियों से उसका प्यार बढ़ गया है न ? ।।9।।

कृष्ण यहाँ रहने वाले बंधुओं की, अपने माता-पिता की याद करते हैं क्या ? उस महाबाहु की हमने जो सेवा की है उसकी याद रखी है क्या ? ।।10।।

माता-पिता, सहोदर-सहोदरी, पति-पुत्र इत्यादि न छोड़ सकने वाले सम्बन्धों को हमने जिसके प्यार के लिए छोड़ा था, वह एक ही क्षण में हम सब को छोड़कर, हमारे प्यार को भूलकर यहाँ से चला गया। उसके बातों के ऊपर हम विश्वास रखे। हम गरीब गाँव वाली गवार स्त्रियाँ हैं। उसकी बात के ऊपर कौन विश्वास नही करेगा ? ।।11-12।।

किन्तु अन्य नगर की स्त्रियाँ उसकी सुन्दर मंदहास्य युक्त एक नजर से कामातुर होती हैं। विचित्र बात करने वाले चंचल स्वभाव वाले कृतघ्न श्री कृष्ण की बातों को कैसे विश्वास करतीं हैं ।।13।।

हे सखी, हमारा उसके बारे में बाते करने का क्या प्रयोजन होता है ? हमारे बिना ही यदि उसका समय गुजरता है तो हम भी उसके बिना ही समयाव्यय करें ।।14।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार गोपियाँ श्री कृष्ण की बात, हँसी, तिरछा नजर, चाल-चलन, प्रेम-आलिंगन के बारे में याद करते हुये रोने लगीं ।।15।।

पूज्य बलराम स्त्रियों का समाधान करने में भी निपुण हैं। वे अपना मन लुभाने वाले श्री कृष्ण के संदेशों को उनको बताते हुये संतुष्ट किए ।।16।।

चैत्र, वैशाख ये दो मास पूज्य बलराम गोपियों के साथ दिन-रात संतोष से गोकुल में वास किये ।।17।।

पूर्णिमा की चाँदनी में श्वेत कमल की सुगंध युक्त वायु से भरे हुए यमुना नदी के तटवर्ती उद्यानों में बलराम गोपियों के साथ विहार किये ।।18।।

वरुण ने वहाँ वारुणि देवी को भेजा। वह देवी वृक्ष के कोटरों को विभिन्न मद्यों से भर दीं। उस वारुणि नाम के मद्य की सुगंध उस उद्यान में सम्पूर्ण रीति से भर गया ।।19।।

क्षीर सागर के मथन काल में वारुणि नाम का मद्य समुद्र से उत्पन्न हुआ था। उसकी अभिमानी वारुणि देवी सागर राज बरुण की पुत्री है। यह वारुणि शेषदेव की नियत पत्नी है। उसको सागर राज ने यहाँ भेजा था। वह वारुणि देवी अपने पति रुप बलराम के उदेश्य से सुगंध भरित वारुणि मद्य को वृक्षों के कोटरों मे भर कर रखी।

उस मद्य का सुगंध हवा में फैल रही थी। बलराम उसको सूँघते हुये वृक्षों के पास आकर गोपियों के साथ स्वयं भी मद्यपान किये ।।20।।

आकाश में दुंदुभियों ने मंद्रस्वर किया। गन्धर्वों ने सुन्दर करों से पुष्प बरसाये। ऋषि-मुनियों ने संतोष से बलराम के पराक्रम की स्तुति की ।।21।।

हलायुधधारी बलराम के सच्चरित्र को स्त्रियों ने गान रुप मे गाया। बलराम मद्यपान से मदमत्त होकर इन्द्र के ऐरावत के समान वन में संचार किये। मंगलकर एकमेव कर्ण कुण्डल को बलराम धारण किये हैं। गले में वैजन्ती माला धारण किये हैं। हिम कण के समान ललाट पर स्वेदकण मोती के समान बलराम के मुख को शोभायमान कर रहा है, ऐसे बलराम वन में मत्त होकर संचार किये ।।23।।

सर्वशक्त बलराम जलक्रीड़ा करने हेतु वे जहाँ खड़े हैं उसी स्थान पर यमुना जी को बुलाये। यमुना जी मत्त बलराम के पास नही गई। उससे क्रुद्ध बलराम अपनी बात को न मानने वाली यमुना जी को अपने हल से खींचने लगे। वे बोले, हे पापिनी, मेरे बुलाने पर भी तुम नही आ रही हो ।।24-25।।

तुम स्वेच्छाचारी हो। इस हल से तुम्हे टुकड़े-टुकड़े करूँगा। बलराम की इस गर्जना को सुनकर यमुना डर गई। बलराम के पास आकर भय भक्ति से उनकी स्तुति करने लगी ।।26-27।।

हे महाबाहु बलराम जी ! मैं आपके पराक्रम को जान नही पाई। हे जगत्पति ! आप अपने सिर में इस भूमण्डल को धारण करने वाले आदिशेष हैं ।।28।।

हे पूज्य भक्त वत्सल जगत्पति ! मैंने आपकी महिमा को न जानते हुये आपका अपमान किया है। मैं आपकी शरण मे आई हूँ। कृपा करके मुझे छोड़ दीजिए ।।29।।

इस प्रकार यमुना जी की प्रार्थना को सुनकर पूज्य बलराम उनको क्षमा करते हुये छोड़ दिये। मदभरित हाथी जैसे अन्य हाथियों के साथ जलक्रीड़ा करता है वैसे ही उन्होंने गोपियों के साथ जलक्रीड़ा की ।।30।।

मनों तृप्तिपर्यन्त जलक्रीड़ा करने के बाद बाहर आये बलराम को यमुना ने नीलाम्बर प्रदान किया। लक्ष्मी जी ने बहु-मूल्यवान आभूषण और कमल का हार दिया ।।31।।

कभी भी न मुरझाने वाली कमल की माला को वरुण लक्ष्मी के हाथ से बलराम को भेजते हैं। कान्ति शब्द यहाँ लक्ष्मी का अर्थ होता है। यह विष्णु पुराण और हरिवंश की बात है।

नीलाम्बर को धारण करते हुये सोने के रंग का कमल माला को पहनकर बलराम गोपियों की सभा में इन्द्र के ऐरावत के समान दिखे ।।32।।

हे राजन् ! महापराक्रमी बलराम पराक्रम को दिखाने के लिए जिस मार्ग से यमुना को खींचे थे उसी मार्ग से आज भी यमुना बहती हैं। कोई भी आज इसको देख सकता हैं ।।33।।

इस प्रकार गोकुल की स्त्रियों के संग विहारों से आकृष्ट मन वाले बलराम के दो महीने एक ही दिन के समान मथुरा में बीत गये ।।34।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में नब्बेवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - इक्यानबे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - बलराम अद्भुत शक्ति वाले, अद्भुत कार्य करते हैं। वे अप्रमेय शेष के अवतार रुप हैं। वे बहुत समर्थ हैं। उनके अन्य शौर्य भरित कार्यों के बारे में सुनना चाहता हूँ ।।1।।

श्री शुकदेव कहते हैं - विविद नाम का एक वानर रहता था। वह मयंद का छोटा भाई और बहुत पराक्रमी था। त्रेतायुग में वह सुग्रीव का मंत्री था। अब वह नरकासुर का मित्र बना है ।।2।।

नरकासुर जब मर गया। तब अपने मित्र के रण के परिहार के लिए वह वानर क्रोध से यादवों के पुरों, ग्रामों, घरों, घोषों को आग से जलाने लगा। कई स्थानों से पहाड़ों को उठा लाकर श्री कृष्ण की आवास भूमि आनर्त देश का नाश करने लगा ।।4।।

कई बार समुद्र के बीच में खड़े होकर दस हजार हाथी के बल वाला वह वानर दोनों हाथों से पानी को फेंकते हुये समुद्र के तट पर रहने वाले गाँवों को डुबाने लगा ।।5।।

वह दुष्ट आश्रमों में रहने वाले ऋषियों द्वारा उत्पन्न की हुई वनस्पतियों को उखाड़कर नष्ट करते हुये यज्ञ कुण्डो में मलमूत्र डालकर विनाश करने लगा ।।6।।

स्त्री और पुरुषों को दुष्टता पूर्वक पकड़कर पहाड़ों में, गुफाओं में रखते हुये उनके प्रवेश द्वारों दरवाजों को पत्थरों से, पर्वतों के शिखरों से बन्द करके रखा। कुड्य नाम का कीट ऐसे ही अन्य कीटों को बन्द करके रखता है ।।7।।

इस प्रकार आनर्त देश में हिंसा करते हुये कुलीन स्त्रियों की लज्जा हरण करते हुये एक बार मधुर संगीत को सुनकर रैवत पर्वत पर आया ।।8।।

वहाँ सर्वांग यदुपति बलराम कमल माला धारण करके स्त्री समूह में बैठे थे ।।9।।

उस समय बलराम मद्यपान किये थे। उनकी आँखें मदमत्त होकर बोझिल हो गई थी। उनका शरीर मदजल को बहाने वाले हाथी के समान दिखता था। बलराम सुन्दर गायन कर रहे थे ।।10।।

वह दुष्ट वानर विविद वहाँ आकर वृक्ष के ऊपर बैठकर मुख से किल-किल शब्द करते हुये

वृक्षों को हिलाकर आवाज करते हुये अपने को प्रदर्शित किया।।11।।

हास्य प्रिय बलराम की प्रिय गोपिकाएँ उस कपि की स्वाभाविक चपलताओं को और उध्दटपन को देखकर हँसने लगीं ।।12।।

इससे प्रोत्साहित वह विविद उनके सामने भौंहों को नचाने, आगे खड़े होने और अपने पृष्ठ को दिखाने इस प्रकार का अवहेलना पूर्ण कार्य करने लगा ।।13।।

बलराम क्रुद्ध होकर उस वानर को पत्थर से मारे। बलराम आयुध फेकने में तज्ञ हैं, तो भी वह बन्दर उससे बचकर बलराम के पास आकर उनके मद्य के कलश को उठाकर फाड़ दिया, जलक्रीड़ा के बाद स्त्रियों द्वारा सुखने को डाले हुये वस्त्रों को फाड़ दिया। हाथ को जंघा पर मारते हुये बलराम को युद्ध का आह्वान देते हुये उनके क्रोध को और बढ़ाया ।।14-15।।

मयंद और विविद दोनों नासत्यदस्त्र नाम के अश्विनी देवता के अंश से उत्पन्न होकर श्री राम जी की बहुत बड़ी सेवा किये। उससे अपनी योग्यता से ज्यादा पुण्य का सम्पादन किये। उसका नाश करने के लिए उनमें असुरावेश उत्पन्न हुआ। समुद्र मंथन के समय देवताओं को दैत्यों के साथ युद्ध करना पड़ा। उस समय बचे हुए अमृत को मयंद और विविद के हाथ में दिया गया था। उस समय दोनो ने देवताओं की अनुज्ञा के बिना उसमें से थोड़े अमृत पी लिया। इस अपराध के कारण उनमें असुरावेश हुआ। ब्रह्मवर के कारण और अमृत पीने के बल से वे अवध्य बने हुए थे। उनको मारने के लिए भगवान श्री कृष्ण बलराम को भेजे। श्री कृष्ण के वर बल से बलराम पहले मयंद को और दूसरे दिन विविद को मार डाले। उनमें आविष्ट असुरांश तमस में गिर गये। वे शुद्ध ही अधिक पुण्य को खोकर अपने मूल रुप को पा लिये। यह कथा तात्पर्य निर्णय में आती है। (22-235) भागवत में केवल विविद की कथा आती है। उसका द्विविविद नाम भी है।

ब्रह्मवर और अमृत प्राशन के कारण से बलिष्ठ और मदोन्मत्त विविद बलराम के सामने अपचार करने लगा। उसकी इस अविनय व उसके किए हुए विनाश को देखते हुये बलराम क्रुद्ध होकर शत्रु के नाश की इच्छा से अपने हलायुध और मुसल को उठाये। महापराक्रमी विविद एक पहाड़ को हाथ में उठाकर बलराम के सामने आकर उस पहाड़ को बलराम के सिर के ऊपर फेंका। अपने सिर के ऊपर आने वाले उस पहाड़ को देखकर मुसल से उस पहाड़ को बलराम ने चकनाचूर

कर दिया। बाद में आक्रोश से बलराम ने अपने मुसल से विविद के सिर पर मारा। उस मुसल की मार से विविद का सिर फट गया और उसके अन्दर रहने वाला मस्तिष्क बाहर निकल आया। विविद इस वार को भी सहन करते हुये बलराम के सामने आया। उस वक्त विविद लाल वस्त्र पहने हुए पहाड़ के समान दिखता था। सिर से रक्त बह रहा था। विविद ने आक्रोश से एक पहाड़ को उठाकर बलराम के ऊपर फेंक दिया, बलराम ने उस पहाड़ के सौ टुकड़े कर डाले। विविद एक वृक्ष को मूल सहित उठाकर उससे बलराम को मारा बलराम उस वृक्ष को भी चकनाचूर किये ।।16-17-18-19-20-21।।

इस प्रकार विविद पूज्य बलराम के साथ युद्ध करता रहा। वह एक-एक वृक्ष को उखाड़कर बलराम के ऊपर फेंकता था। बलराम उनको अपने मुसल से नष्ट करते थे। इस प्रकार विविद ने उस वन के सारे वृक्षों को उखाड़कर बलराम के ऊपर फेंक दिया। बलराम उन सबका नाश किये। इस प्रकार उस जंगल के सारे वृक्ष नष्ट हो गये ।।22।।

बाद में आक्रोशित विविद बलराम के ऊपर बड़े-बड़े पत्थरों को फेकनें लगा। बलराम उन सबको निरायास चूर-चूर कर दिये ।।23।।

विविद अपने ताड़वृक्ष के समान लम्बे-लम्बे दोनों हाथों से मुट्ठी बाँधकर बलराम की छाती पर जोर से मारा ।।24।।

बलराम भी आक्रोशित होकर अपने मुसल और हल को छोड़कर दोनों हाथ से विविद के दोनों कंधों के ऊपर अपने बल का प्रयोग करते हुये मारे। उससे विविद के मुख से रक्त बहने लगा। विविद भूमि पर गिर कर मर गया ।।25।।

हे राजन्! विविद जब गिर गया तब महा पर्वत रैवत समुद्र में हवा से पीड़ित नौका के समान हिलने लगा ।।26।।

इस युद्ध को देखने वाले आकाश मे एकत्र हुये देवतागण, सिद्धगण और महर्षियों ने फूल बरसाये, जय घोष किये, नमो कहते हुये बलराम की स्तुति किये ।।27।।

इस प्रकार इस जगत में रहने वालों को उपद्रव करने वाले विविद को मार कर बलराम मुक्त किये तथा लोगों द्वारा अपना संकीर्तन किए जाते हुए द्वारका मे प्रवेश किये ।।28।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में इक्यानबे अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बानबे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजन्, युद्ध में विजयी होने वाला जाम्बवति पुत्र शाम्ब स्वयंवर मे दुर्योधन की पुत्री लक्षणा का अपहार किया ।।1।।

साम्ब मन्मथ का अवतार है। मन्मथ ही षण्मुख बनकर अवतार लेता है। वही ब्रह्माजी के आवेश युक्त होकर श्री कृष्ण द्वारा जाम्बवति से साम्ब नाम से जन्म लिया था। दुर्योधन की पुत्री लक्षणा रति की अवतार मानी जाती है। वह साम्ब की नियत पत्नी है। जब दुर्योधन लक्षणा के स्वयंवर की घोषणा किया तब साम्ब इसको सहन न करते हुये बलपूर्वक लक्षणा का अपहरण किया। क्षत्रियों के लिए बलपूर्वक कन्या का परिग्रहण करना भूषण माना जाता है। लक्षणा का लक्ष्मणे नाम भी है।

इससे कौरवों में यादवों के प्रति क्रोध बढ़ गया। वे परस्पर बोले - ये बालक दुर्विनीत है। हमको धिक्कारते हुये उसने अपने चाहने वाली लड़की को बलपूर्वक से अपहरण किया है ।।2।।

इस दुर्विनीत को बंधन में रखना चाहिए। ये यादव हमारे लिए क्या करने वाले हैं। वे हमारे अनुग्रह से ही बड़े हो गये हैं। हम जो भूमि छोड़े हैं, उसके राजा बने हैं ।।3।।

अपने पुत्र को जेल में रखा है। यह समाचार सुनकर यादव यदि आये तो उनको हम दन्त विहीन साँप जैसे बनायेंगे ।।4।।

इस प्रकार कर्ण के साथ एकांत मे दुरालोचना करते हुये भूरीश्रव, दुर्योधन, दुःशासन, और शकुनी कीर्तिशाली विदुर अथवा गान्धारी से न पूछते हुये, कुरुवंश के बड़े लोगों से समालोचना न करते हुये साम्ब को बंदी बनाने के लिए पीछा किये ।।5-6।।

महारथी साम्ब अपना पीछा करने वाले कौरवों को देखकर अकेले ही अपने बड़े धनुष को लेकर सिंह के समान कौरवों के सामने खड़ा हो गया ।।7।।

कर्ण को आगे करते हुये सारे कौरव धनुष लेकर क्रोध से साम्ब के सामने आये और उसको घेर कर ठहरो ! खड़े हो जाओ ! बोलते हुये बाणों की वृष्टि किये ।।8।।

हे राजन् ! कौरवों के इस विरोध को साम्ब सहन नही कर सका। दण्ड से मार खाए हुये साँप के समान आक्रोश करने लगा ।।9।।

साम्ब अपने बड़े धनुष से टंकार करते हुये अश्व दल के साथ आये हुये कर्ण इत्यादि प्रत्येक महावीर के ऊपर एक साथ बाणों की वृष्टि किया ।।10।।

चार-चार बाणों से उनके घोड़ों को, एक बाण से उनके सारथी को मारा। महारथियों ने, रथी साम्ब के इस साहस की प्रशंसा की ।।11।।

वे चारों मिलकर साम्ब के चारों घोड़ों को मार दिये, एक ने सारथी को मारा। एक ने उसके धनुष को टुकड़ा कर दिया। इस प्रकार उसके रथ, सारथी इत्यादि का नाश किये ।।12।।

कौरव इस प्रकार युद्ध में साम्ब को बहुत कष्ट से रथहीन करते हुये बंधक बनाकर अपनी लड़की के साथ विजयशाली होते हुये उसको लेकर अपने नगर में प्रवेश किये ।।13।।

हे राजन् ! नारद जी से इस समाचार को पाये यादवों ने क्रोधित होकर आक्रोश से उग्रसेन का आदेश पाकर कौरवों के साथ युद्ध करने चले ।।14।।

युद्ध करने से और भी विरस हो जाता है। इसलिए बलराम कौरवों से युद्ध करना नही चाहे। कौरवों के मन में भी यही विचार था। इसलिए यादवों को समझाते हुये सैन्य को पीछे छोड़ ब्राह्मण और कुल के प्रमुखों के साथ मिलकर ग्रहों से घिरे हुए चंद्र के समान शोभायमान बलराम सूर्य के समान रथ में बैठकर हस्तिनापुर चले ।।15-16।।

बलराम हस्तिनापुर पहुँचकर नगर के बाहर स्थित उद्यान में ठहरकर कलह को समाप्त करने के उ-श्य से शान्ति दूत बनकर उद्धव को धृतराष्ट्र के पास भेजे। उद्धव धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, बाल्हिक और दुर्योधन को प्रणाम करते हुये बलराम के आगमन के बारे में बतायें ।।17-18।।

अपना प्रिय बलराम आया है। यह समाचार सुनकर संतुष्ट हुये कौरव लोग उद्धव का सत्कार करते हुये मंगलद्रव्यों के साथ बलराम के पास आये ।।19।।

बलराम से भेंटकर विधिपूर्वक उनको अर्घ्य पाद्य दिये। बलराम के सामर्थ्य को जानने वाले उनको प्रणाम किये ।।20।।

बंधुओं के परस्पर योगक्षेम की बातों के बाद बलराम धैर्य से अपनी बातों को रखते हैं ।।21।।

प्रभु उग्रसेन महाराज की आज्ञा को आप लोग ध्यान पूर्वक सुनें, सुनकर उसको जल्दी से आचरण में लायें ।।22।।

महाराज ने कहा हैं - तुम बहुत लोगों ने मिलकर अधर्म पूर्वक धर्मनिष्ठ, एकांगी हमारे साम्ब को बंधक बनाया है। आप हमारे बांधव हैं। इसी कारण हम उसको सहन कर रहे हैं ।।23।।

वीर्य, शौर्य और बल से भरे हुए अपने सामर्थ्य के लिए योग्य बलराम की बातों को सुनकर कौरव लोग कोपाविष्ट हुये ।।24।।

हम यह क्या सुन रहे हैं। यह काल का प्रभाव है। इसको कोई पार नही कर सकता। पाँव में रहने वाला जूता सिर पर चढ़ना चाहता है ।।25।।

यह यादव हमारे बांधव बन गये हैं। इसी कारण वे हमारे साथ बैठते हैं, खाते हैं, सोते हैं। हम ही उनको राज्यसिंहासन देकर अपने समान बना दिये ।।26।।

ये हमारे संबंधी हैं इसलिए हम सहन करते रहे। हमारे कारण इनको छत्र चामर व्यजन, शंख, किरीट, आसन इत्यादि लभ्य है। हमारे निमित्त इनका उपभोग वे कर रहे हैं ।।27।।

अब इन लोगों को इन राज्य चिह्नों से बस है। साँप को अमृत के समान दूध पिलाये तो वह दूध पिलाने वाले को ही अपाय करता है। ऐसे राज्य चिह्नों को दिये हुये, हमे ये विरोध कर रहे हैं। हमारे अनुग्रह से अभिवृद्धि पाये हुये ये लोग आज निर्लज्ज होकर हमारे ऊपर शासन् कर रहे हैं ।।28।।

इस प्रकार के राज्यवैभव को भीष्म, द्रोण, अर्जुन आदि कुरू प्रमुख नही दिये तो अन्य लोग कैसे पाते हैं। सिंह के मुँह में गिरी हुयी बकरी स्वयं क्या खा सकती है ।।29।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजन्, उत्तम कुल में जन्म पाये हुये शूरवीर बन्धुओं को और बड़े राजसम्पद को पाये हुये कौरव अति अहंकार में बलराम से नगर के बाहर के अरण्य में ही दुष्ट वचनों को कहकर नगर में वापस चले गये ।।30।।

कौरवों के इस दुर्वर्तन को देखकर, जिन बातों को नही सुनना था ऐसी बातों को बार-बार सुनकर क्रोध से आग बबूला हुए बलराम अट्टहास करते हुये कहते हैं ।।31।।

निश्चय ही ये दुष्ट अहंकार से मत्त हो गये हैं। वे शान्ति नही चाहते। भैंसा केवल डण्डों की बात सुनता है। ऐसे लोगों के साथ दण्ड नीति को व्यवहार में लाना पड़ता है ।।32।।

छी ! मैने अच्छा नही किया। हमारे लोग कुपित थे। स्वयं श्री कृष्ण भी कुपित थे। मैं उनका समाधान न करते हुये यहाँ इन लोगों का समाधान करने आ गया। यह गलती हुई ।।33।।

इन कौरवों की बुद्धि ठीक नही है। वे युद्ध चाहने वाले हैं, दुष्ट और दुरभिमानी हैं। शान्ति को चाहते हुये अपने पास आये हुये मुझको ये बुरी बात बोल चुके हैं ।।34।।

इन्द्रादि लोक पालक भी राजा उग्रसेन की आज्ञा को मानते हैं। भोज, वृष्णि, अंधक इन सबके अधिपति राजा उग्रसेन इनको मान्य नही हैं ।।35।।

देव लोक की सुधर्म सभा में बैठने वाले देवताओं के पारजात वृक्ष को अनुभव करने वाले भगवान श्री कृष्ण, इनकी आँखों में सिंहासन के लिए अनर्ह हैं ।।36।।

जिनके पादद्वय का साक्षात् अखिलेश्वरी लक्ष्मी देवी पूजन करती हैं, वह लक्ष्मीपति श्री कृष्ण राज्य चिह्न पाने के लिए इनकी दृष्टि में अयोग्य हैं ।।37।।

जिसके पाद कमल के धूलि को समस्त लोक पालक मस्तक पर धारण करते हैं, जिनका पाद जल गंगादि तीर्थ बनता है, ब्रह्मा, रूद्र और शेष इत्यादि उनके एक अंश से बनते हैं और उनकी निरन्तर श्रद्धा से सेवा करते हैं, ऐसे राजा कृष्ण को सिंहासन के योग्य ये नही मानते ।।38।।

ये कहते हैं - यादवों को इन्होंने राज्य दिया हैं। हम पादत्राण हैं, वे सिर बन गये हैं ।।39।।

ऐश्वर्य के मद में मत्त ये अहंकारी जो असम्बद्ध बातें करते हैं, उसको कौन सह सकता है? उसमें भी उनको शिक्षित करने में जो समर्थवान् है, वह भला कैसे सहन करेगा ।।40।।

मैं अब इस भूमण्डल पर एक भी कौरव को नही रहने दूँगा। ऐसा कहते हुये अग्नि के समान

प्रज्वलित बलराम अपने हल को हाथ में लेकर खड़े हो गये ।।41।।

बलराम अपने हल से हस्तिनापुर को उखाड़कर गंगा में फेकना चाहते थे ।।42।।

पानी में जैसे नाव हिलता है, ऐसे ही हस्तिनापुर हिलने लगा। लगता था वह गंगा जी में समा जायेगा। कौरव देख रहे हैं कि बलराम अपने हल से हस्तिनापुर को खींच रहे है। इससे कौरव डर गये ।।43।।

डरे हुये कौरव जीने की आशा से लक्षणा और साम्ब को आगे करते हुये दोनों हाथ जोड़कर बलराम के सामने आये ।।44।।

हे राम-राम, आप सर्वाधार सर्वेश्वर हैं। आपके सामर्थ्य को हम समझ नही पाये। हम कुटुम्बी मूर्ख हैं। हमें हमारे अपराधों के लिए क्षमा करें ।।45।।

हे प्रभु ! आप इस जगत की स्थिति, उत्पत्ति और लय के एक मात्र कारण हैं। आप स्वयं निराधार हैं। इस लोक के आधार भूत आपके लिए ये लोग खिलौने बन गये हैं ।।46।।

हे हजार फणा वाले शेष ! आप इस ब्रह्माण्ड को अपने एक फण के ऊपर बिना आयास के उठाए रखे हैं। लयकाल में आप ही इस जगत को अपने पेट में रख लेते हैं। आप अकेले अद्वितीय होकर शयन करते हैं ।।47।।

हे पूज्य ! आपका क्रोध द्वेष से, मत्सर से नही आया है। आप सत्वगुण को धारण करने वाले हैं। आपका क्रोध इस जगत के अस्तित्व और रक्षा के लिए है, और सबको शिक्षा देने वाला है ।।48।।

आप सारे प्राणियों की देह में रहते हैं। आप रुद्र के समान शक्ति धारण करते हैं, नाश रहित कर्मकारक हैं। हम आपकी शरण में हैं, आपको नमस्कार ।।49।।

कौरव जहाँ खड़े थे, वह भूमि हिल रही थी। वह भयभीत होकर बलराम की शरण में आये। तब बलराम प्रसन्न होकर अभय दिये ।।50।।

दुर्योधन पुत्री के वात्सल्य मे साठ वर्ष वाले बीस हजार हाथी, एक लाख घोड़े, सूर्य के समान शोभायमान छः हजार सोने के रथ और सोने की माला को पहने हुये एक हजार दासियों को यादवों को समर्पण किया ।।51-52।।

इन सबको स्वीकार करते हुये पूज्य बलराम बंधुओं का अभिवादन स्वीकार करते हुये बहू-बेटे के साथ द्वारका चल पड़े ।।53।।

द्वारका में प्रवेश करते हुये बलराम ने अपने बंधुओं के पास आकर यादव श्रेष्ठों के बीच अपने किए हुए शौर्य कर्म के बारे में बताया ।।54।।

हे राजन् ! आपका हस्तिनापुर गंगा जी के तट पर दक्षिण दिशा मे ऊँचा तथा उत्तर की तरफ नीचे रहते हुये आज भी बलराम के पराक्रम का प्रतीक होकर खड़ा है ।।55।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में बानबे अध्याय समाप्त होता हैं ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तिरानबे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - यादवों के साथ श्रुतदेव नाम का कृष्णभक्त ब्राह्मण रहता था। वह केवल श्री कृष्ण की भक्ति से ही संतृप्त होकर कामना रहित और शान्त स्वभाव वाला बन गया था। विषय सुख का अभिलाषा न करते हुये भगवान श्री कृष्ण के बारे में काव्य रचना व गायन करते हुये,जीवन चलाता था ।।1।।

वह विदेहराज्य में स्थित मिथिला नगर में वास करता था। प्रयत्न न करते हुये जो आहार मिलता था उसी को खाकर जप यज्ञ करते हुये समय बिताता था ।।2।।

प्रतिदिन के लिए जितना आवश्यक है उतना ही लेता था। उससे ज्यादा न लेते हुये अपरिग्रह प्रवृत्ति व तप से ही संतुष्ट होकर वर्णाश्रम के उचित कर्म करते रहता था ।।3।।

उस नगर का राजा बहुलाश्व, राजा जनक का वंशज था। वह मिथिला नगर का प्रभु अहंकार रहित होकर श्री कृष्ण में भक्ति करते हुये भगवान श्री कृष्ण को प्रिय बना था ।।4।।

एक बार उसकी भक्ति से संतुष्ट भगवान उससे भेंट करने के लिए इन्द्रिय निग्रही, वेद-विद् तत्वज्ञानी ब्रह्मर्षियों के साथ दारुक के लाए हुए रथ में बैठकर विदेह नगरी को चले ।।5-6।।

नारद, वामदेव, अत्रि, कृष्णद्वैपायन, परशुराम, अशित, आरुणि, शुकदेव, बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय, पराशर, वसिष्ठ, कश्यप, भारद्वाज और गौतम इत्यादि श्री कृष्ण के साथ मिथिला चले ।।7।।

उगते हुये सूर्य को लोग जैसे हाथ से अर्घ्य देकर उपासना करते हैं, वैसे रास्ते में मिलने वाले नगरवासी, देशवासी अर्घ्य देकर श्री कृष्ण भगवान का सत्कार करते थे ।।8।।

हे राजन् ! आनर्त, धन्व, कुरुजांगल, टंक, मत्स्य, पांचाल, कुन्ती, मधु, केकय, कोशल, दशार्णव के नर नारी और अन्य लोग अपने उत्कृष्ट मंद हासय और स्नेहपूरित दृष्टि से श्री कृष्ण के मुखारविन्द का अपनी आँखों से पान किये ।।9।।

तीनो लोको के गुरू श्री कृष्ण अपने दर्शन से अज्ञान का नाश करते हुए परोक्षानुभूत ज्ञानियों को अपरोक्षानुभूति देते हुए, देवगणों व मानवों द्वारा अशुभ परिहारक और दिक्-दिशाओं को पावन करने वाली अपनी कीर्ति का संकीर्तन सुनते हुए विदेहराज्य के लिए प्रयाण किये ।।10।।

हे राजन् ! श्री कृष्ण के आगमन की वार्ता सुनते ही पुरवासी और देशवासी संतोष से हाथों में पूजा सामग्री लेकर पूजा किये ।।11।।

ब्रह्मादि लोग सदाकाल करने वाले श्री कृष्ण के संकीर्तन को ये लोग पहले सुने थे। अब श्री कृष्ण जी के प्रत्यक्ष दर्शन से उनका निर्मल अन्तःकरण आनन्द विभोर हो गया। वे मुनियों के साथ आये हुये श्री कृष्ण को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किये ।।12।।

अपने ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही सुदूर द्वारका से मिथिला को आ रहे निर्दुष्ट ज्ञान स्वरुप जगत गुरु श्री कृष्ण को देखकर मिथिला के राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव दोनों प्रभु के चरणों में दण्डवत प्रणाम किये ।।13।।

बहुलाश्व और श्रुतदेव दोनों हाथ जोड़ते हुये अपने-अपने घर पर श्राद्ध भोजन के लिए समस्त मुनियों के साथ पधारने के लिए श्री कृष्ण को एक साथ निमन्त्रण दिये ।।14।।

बड़े लोग जब घर पर पधारते हैं उसी समय को पर्व काल माना जाता है। उस समय श्राद्ध किये तो पितृगण तृप्त होते हैं। उसी को मुहूर्त माना जाता है। ऐसे बड़े लोगों को देखते ही श्राद्ध भोजन के लिए आह्वान देना उत्कृष्ट होता है, इसके लिए दोनों आमंत्रण दिये।

भगवान श्री कृष्ण दोनों का आमंत्रण स्वीकार किये। दोनों को तुष्ट करने के उदेश्य से दो रुप धारण कर दोनों के घर पर जाकर दोनों का आतिथ्य स्वीकार किये। इसको न जानते हुये प्रत्येक समझता था कि भगवान श्री कृष्ण केवल मेरे घर पर आये हैं ।।15।।

उदार मन वाले जनक राजा सज्जनों को सुनने के लिए भी न मिलने वाले बड़े-बड़े मुनि अपने घर आये हैं इसको देखकर उनको सुखासन देते हुये अर्घ्य पाद्यादि से उपचार किया ।।16।।

इक्ष्वाकु का पुत्र राजा निमि वसिष्ठ ऋषि के शाप से मर गया। तब उसकी देह के मंथन से राजा जनक का जन्म हुआ। उसी को मैथिल, विदेह नाम से जानते हैं। इस राजा जनक के वंश मे बहुलाश्व ने जन्म लिया। उसको भी जनक, मैथिल, वैदेह नाम से पुकारते थे। इस वंश में जन्मे राजाओं में बहुत सारे तत्वज्ञानी बने। बहुलाश्व का पुत्र कृति। उससे इस वंश की समाप्ति होती है।

उत्तम भक्ति व अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञान वाले, आँखों से आनन्दाश्रु को बहाने वाले राजा बहुलाश्व माथ पर श्री कृष्ण और ऋषियों के चरण धोकर परम पवित्र उस पावन जल को अपने लोगों के साथ धारण करते हुये गंध माला, वस्त्र आभरण, धूप-दीप, अर्घ्य देते हुये श्रेष्ठ गायों का दान देकर उनकी पूजा किये ।।17-18।।

षड्रसोपेत,अन्न इत्यादि भोजन से तृप्त करते हुये मृदु बचनों को बोलते हुये श्री कृष्ण के

चरणों को अपने जंघे के ऊपर रखते हुये पाद सेवन् करने लगे ।।19।।

राजा श्री कृष्ण से कहते है - भगवान आप सब प्राणियों के लिए स्वामी, सर्वकर्मसाक्षी अनिमित्त बंधु होकर सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। आपके चरण कमलों का स्मरण करने वाले मुझको आपका दर्शन मिला है ।।20।।

आप सर्वान्तर्यामी, सर्वगुण पूर्ण, सर्वदोष रहित हैं। एकांतिक भक्त आपको प्रिय लगते हैं। आप ही गीता में कहे हैं कि "एकांकि भक्त मुझको ज्यादा प्रिय हैं, और मैं उनको प्रिय हूँ।" **प्रियो हि ज्ञानीनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।** अपनी इस बात को सत्य करने के लिये आप आज हमारे द्रिगोचर हुये हैं ।।21।।

प्रभु ! आपको छोड़कर अन्य किसी को न चाहने वाले भक्तजनों को आप स्वयं को प्रदान करते हैं। इसको जानने वाला आपके चरण कमलों को क्यों छोड़ेगा है ? ।।22।।

इस लोक में, संसार में दुःखित जनों के दुःख का परिहार करने के लिए आपने यदुवंश में अवतार लेकर तीनों लोको के पाप का निवारण करते हुये अपनी कीर्ति को बढ़ाया हैं ।।23।।

हे भगवान श्री कृष्ण ! आपको नमस्कार। अप्रतिहत ज्ञान स्वरुप, नारायण, पूर्णानन्द स्वरुप, सर्व ज्ञान पाये हुये प्रभु को नमस्कार ।।24।।

हे पूर्ण रुप ! आप अपनों के साथ कई दिन हमारे घर में रहते हुये अपनी चरण धूलि से निमि राज्य के हमारे श्रेष्ठ वंश को पावन करें ।।25।।

राजा के इस आग्रहपूर्ण आमंत्रण के अनुसार भगवान श्री कृष्ण मिथिला के नर-नारियों का मंगल करते हुये वहीं वास किये ।।26।।

इधर बहुलाश्व के समान श्रुतदेव भी अपने घर पर श्री कृष्ण ऋषि मुनियों के साथ आये हैं इसको देखकर संतुष्ट होकर परवशता से अपने अंगवस्त्र को हिलाते हुये नर्तन किया ।।27।।

पन्द्रहवें श्लोक में आयी हुई कथा के अनुसार भगवान श्री कृष्ण दो रुप धारण कर बहुलाश्व और श्रुतदेव के घर पर एक ही समय में आये हैं। सोलहवे श्लोक के अनुसार मुनि भी दो-दो होकर अथवा दो विभाग होकर श्री कृष्ण के साथ आतिथ्य ग्रहण किये हैं अथवा श्री कृष्ण ही मुनियों के रुप में गये होंगे अथवा गोपियों को जैसे दिखाये वैसे योगबल से सबको दो-दो रुप दिखाये होंगे। भगवान की लीला कोई नही जानता।

तृण से बनाये हुए आसन के ऊपर ऋषियों के साथ श्री कृष्ण को बिठाकर सुदामा से भी गरीब श्रुतदेव नमस्कार करते हुये पत्नी के हाथ के जल से सबका पाद पूजन किया ।।28।।

महाभाग्यशाली श्रुतदेव उस पादोदक को पत्नी, पुत्र और घर का प्रोक्षण करते हुये आनन्द

विभोर होकर बोला - मेरे सारे अभीष्ट पूर्ण हो गये हैं ।।29।।

सफेद सरसों, लावंच, आँवला और अमृतवल्लि जल को पीने के लिए देकर सुगंध भरित मृत्तिका, तुलसी, दर्भ, कमल इत्यादि उस समय में सुलभता से मिलने वाले सामग्रियों से आत्मबल से सर्वोत्कृष्ट पूजन् किया। इससे भगवान श्री कृष्ण अत्यंत संतुष्ट हुये ।।30।।

श्रुतदेव मन में चिन्तन करता है। इस संसार रुपी अन्धकूप में गिरे हुए मुझको भगवान श्री कृष्ण और परम तत्वज्ञानियों का सत्संग और सकल तीर्थों को आश्रयभूत उनकी चरण धूलि कैसे मिल सकती है ? मैंने ऐसा बड़ा पुण्य क्या किया है ? यह केवल श्री हरिगुरु कृपा से मिला है ।।31।।

आतिथ्य को स्वीकार करने के बाद भगवान श्री कृष्ण सुखासन में बैठे। श्रुतदेव अपनी पत्नी- पुत्रों और बंधु-बांधवों के साथ श्री कृष्ण और ऋषि मुनियों का पाद सेवा करने लगा ।।32।।

यहाँ श्रुतदेव श्री कृष्ण का और परिवार के लोग ऋषि मुनियों का पादसंवहन किये। ऐसा समझ लेना चाहिए।

श्रुतदेव कहता है - आज मेरे भाग्य से हमको परम पुरुष परमात्मा का दर्शन मिला। प्रकृति विलक्षण वाले यह परम पुरुष इस प्रकृति के गुण से इस जगत को **सृष्ट्वा आत्मसत्तया विभजति** अपनी स्वतंत्र शक्ति के बल से विविध रीति में विलक्षण रुप में रचते हैं, और इसको सदाकाल के लिए अपने अधीन रखते हैं। यह प्रकृति कभी भी स्वतंत्र नही होता ।।33।।

सोया हुआ आदमी मन के संस्कार वश और भगवान की इच्छा से विलक्षण स्वप्न को सृष्ट करते हुये उसको स्वयं द्रष्टा होकर स्वतंत्र रुप से देखता है। वैसे ही भगवान श्री हरि इस अस्वतंत्र जगत को रचते हुये स्वयं स्वतंत्र होकर उससे दूर रहते हैं ।।34।।

सदाकाल सुनने, कहने, देखने, और उसका अनुमोदन करने वाले को सुनते, कहते देखते, करने वाले जन के मनन निर्मल मन मे, जन के हृदय में, अत्यन्त समीप में भगवान श्री कृष्ण रहते हैं ।।35।।

भगवान् निर्मल हृदय में रहते हैं,किन्तु कर्म कलुषित मन वाले से दूर रहते हैं। वे उनको दिखते नही। निर्मल मन वाले को भी उनके स्व शक्ति से वे गोचर नही होते। **अर्थाकार** यानी सारे चाहने वाले, ज्ञानानन्दादि सद्गुण उनकी देह बनता है। इसको छोड़कर अगुणात्मक प्राकृत देह उनको नही है। इसी कारण वे बाहर के चक्षु को नही दिखते ।।36।।

अध्यात्म ज्ञान वाले को सकल पुरुषार्थ देने वाले सर्व व्यापक परमात्मा अपने विशेष बल से अपनी इच्छा के अनुसार अलग-अलग रुप धारण करते हैं। कारण रहे या न रहे भगवान अपनी इच्छा से प्रकृति के रुपों में व्याप्त होकर रहते हैं। अपने अधीन रहने वाली प्रकृति से आवृत्त न

होने वाले ज्ञानपूर्ण भगवान आपको मेरा नमस्कार ।।37।।

कहिए हम आपकी क्या सेवा करें ? हम आपके क्रीत दास हैं। आप आज्ञा दें। आप जिनको दिखते हैं उसी समय से उसके सारे दुःख का निवारण हो जाता है ।।38।।

श्री शुकदेव कहते हैं - भक्तों के दुःख को दूर करने वाले भगवान, श्रुतदेव की बात सुनकर उसके हाथों को अपने हाथों में लेते हुये हँसते हुये कहते हैं ।।39।।

श्री भगवान कहते हैं - हे ब्राह्मण, तुम्हारे अनुग्रह के लिए ये मुनिजन यहाँ पधारें हैं। ये लोग जहाँ जाते हैं,वहाँ मेरे सन्निधान युक्त चरण धूलि से वे जगत को पावन करते हैं ।।40।।

देवताओं, तीर्थक्षेत्रों इनके दर्शन-स्पर्शन और अर्चन से लोक पवित्र होता है। किन्तु इसके लिए समय की आवश्यकता होती है। वह भी पूज्य मुनियों के दर्शन से होता है ।।41।।

ब्राह्मण जन्म से ही सारे प्राणियों में श्रेष्ठ माने जाते हैं। उनमें जो तप, विद्या मिलती है। उसी से संतुष्ट होने वाले और मेरी कथा का संकीर्तन करने वाले ब्राह्मण और भी श्रेष्ठ माने जाते हैं ।।42।।

मेरा यह चतुर्भुज रुप भी मुझको ब्राह्मणों से ज्यादा प्रिय नही है। क्योंकि ब्राह्मण सकल वेदों को जानते हैं। मैं, उन्ही वेदों से मिलने वाले ज्ञान से जानने योग्य सर्वदेवोत्तम हूँ ।।43।।

ब्राह्मणों से असूया करने वाले, अज्ञानी उनको गुरु न मानते हुये गुरु के समान ब्राह्मण का अवमान करते हैं। किन्तु वे प्रतिमादि रुपों में मुझको देखते हुये मेरा ही अवमान करते हैं ।।44।।

इस चराचर प्रपंच के स्वामी मुझको ब्राह्मण ही श्रेष्ठ देवता लगते हैं। ब्राह्मण मुझको सारे जीवों में देखते हुये, चराचर प्राणियों में रहने वाले मेरे रुपों को श्रुतियों द्वारा प्रतिपाद्य मानकर मेरी उपासना करते हैं ।।45।।

इसी कारण ब्रह्मज्ञानी बने हुये इन ब्रह्मर्षियों की आराधना श्रद्धा से करो। उनकी आराधना करने से तो मेरी ही पूजा होती है। उसको छोड़कर कितने ही वैभव से मेरी पूजा करें परन्तु वह मेरी आराधना नही होता ।।46।।

शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार प्रभु श्री कृष्ण से आज्ञा पाये हुये श्रुतदेव और बहुलाश्व उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों की और श्री कृष्ण की आराधना अनन्य भक्ति से करते हुये सद्गति को पाये ।।47।।

हे राजन् ! इस प्रकार भक्तो से प्यार करने वाले भगवान अपने भक्तों के पास रहकर उनको सन्मार्ग दिखाते हुये, योग्य उपदेश देकर द्वारका वापस आये ।।48।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में तिरानबे अध्याय समाप्त होता हैं ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौरानबे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछता है - हे महामुनि ! देव, मानव, दानव इनमें जो अमंगल के समान दिखने वाले मंगलकारी शिव का भजन करते हैं वे ही श्री सम्पद वाले बनते हैं। किन्तु लक्ष्मीपति श्री हरि का भजन करने वाले प्रायशः धनिक नही बनते ।।1।।

विरुद्ध शील स्वभाव वाले, विरुद्ध फल देने वाले किन्तु समर्थ हरि हर के बारे में हमे बहुत संदेह होता है। इस बारे में मैं जानना चाहता हूँ ।।2।।

श्री शुकदेव कहते हैं - शिव प्रकृति से बद्ध हैं। वैकारिक, तैजस और तामस नाम के तीन अहंकार ही उनके शरीर बने हैं। वे त्रिगुणों से बद्ध हैं ।।3।।

इन अहंकारों के परिणाम से सोलह तत्व बन गये। इसी कारण इस प्रपंच में रहने वाले पंच भूतों में शिव की आराधना करने वाले सकल भोग ऐश्वर्यों को पाते हैं ।।4।।

शिव जी अहंकार तत्व के अभिमानी हैं। जैसे अहंकार तत्व वैकारिक, तैजस और तामस नाम से तीन तरह के हैं, वैसे ही शिव के तीन शरीर है। इन तीनों शरीरों मे तीनों अहंकार, तीनों गुणों से बद्ध होने के कारण शिव तीनों गुणों से बद्ध होते हैं। वैकारिक अहंकार से मन, तैजस अहंकार से पंचज्ञानेन्द्रिय और पंचकर्मेन्द्रिय और तामस अहंकार से पंचतन्मात्राओं से बने हुए पंच महाभूत इस प्रकार अहंकार के सोलह रुप हुये। इनमे शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गंध नाम के पाँच विषयों के भोग और ऐश्वर्य को चाहने वाले को आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी नाम के पंचभूतात्मक शरीर से शिव की आरधना करनी चाहिए। तब शिव के अनुग्रह से वे सारे भोग-ऐश्वर्य सुलभता से प्राप्त होते हैं।

भौतिक शरीर अमंगलकारक होता है। क्योंकि वह विषय भोग करते हुये संसार का कारण बनता है। ऐसा अमंगलकारक शरीर शिव का होता है। शरीर द्वारा होने वाले उपचार अपचार से शरीर के अन्दर रहने वाले को सुख-दुःख होते हैं। इसी कारण शिव जल्दी संतुष्ट होते हैं। उतनी ही जल्दी क्रोधित भी होते हैं। श्री हरि का शरीर पांच भौतिक नही है। इसी कारण भगवान श्री हरि, सेवा के अनुरुप देर से संतुष्ट होते हैं। योग्यता के अनुसार योग्य फल देते

हैं। इस प्रकार शिव देखने में शरीर से अमंगल दिखे तो भी स्वतः सर्वज्ञ और वैष्णवाग्रसर होने के कारण वे मंगल ही हैं।

देव, दानव और मानवों से अधिक असुर लोग, ज्यादा भौतिक भोग के लिए शिव की आराधना करते हैं और जो चाहते हैं उसको पाते हैं। श्री लक्ष्मीपति हरि की देवस्वभाव वाले चंद लोग आराधना करते हुये वैराग्य भाव को चाहने के कारण श्री हरि भक्त उतना धनिक नही रहते। शिव की आराधना से आने वाली सम्पदा के विवरण के बारे मे वृकासुर की कथा आती है। वह शिव के वर के बल से मस्त होकर शिव को ही मारकर उनके शिव पद को पाने की शक्ति पा लेता है। किन्तु वह क्षणिक है और उससे उसका अनर्थ ही हो गया।

केवल श्री हरि प्रकृति से श्रेष्ठ हैं, त्रिगुण से बद्ध नही हैं, इसलिए निर्गुण कहलाते हैं। वे स्वतंत्र पुरुष हैं। उपद्रष्टा यानी रमादि सारे चेतनों से ज्यादा ज्ञानी हैं। इसलिए भगवान का भजन करने वाला भी निर्गुण होता है, सत्वादि गुणात्मक लिंग शरीर से मुक्त होता है ।।5।।

यहाँ पाँचों पाण्डवों के पाँच अश्वमेघ यज्ञ होने के बाद तुम्हारे बाबा राजा धर्मराज ने भगवान श्री कृष्ण से भागवत धर्म के बारे मे उपदेश पाने के समय, अब जो तुमने यह प्रश्न पूछा है उसी प्रश्न को भगवान श्री कृष्ण से पूछा था ।।6।।

लोगों को मोक्ष देने वाले यदुकुल में अवतार लिये हुये भगवान श्री कृष्ण धर्मराजा के इस प्रश्न से संतुष्ट होकर उसके बारे में उनसे कहने लगे ।।7।।

श्री भगवान कहते हैं - मैं जिसके ऊपर अनुग्रह करना चाहता हूँ उस समय उसको धन का अहंकार न हो इस के लिये उसके धन का अपहरण करता हूँ। निदान रीति से निर्धन हुआ वह भक्त दुःखी होता है। धन न होने के कारण उसके बंधु उसको त्याग देते हैं ।।8।।

फल पाने के लिए वह प्रयत्न करे तो भी उसको फल नही मिलता। तब उसको फल से विरक्ति आ जाती है। धन कामना दुःख का मूल है। यह समझकर उस कामना को छोड़ देता है। बाद में मेरे भक्तों का संग बढ़ता है। तब मैं उस पर अनुग्रह करता हूँ ।।9।।

मैं सर्वत्र व्याप्त परब्रह्म हूँ। मेरा रूप अत्यन्त सूक्ष्म, चिन्मय, निर्दुष्ट किन्तु अनंत होने के कारण उसकी आराधना करना कष्ट कर होता है। मेरा भक्त यदि धन कीं कामना करता है और उसको अपने वश में रखना चाहता है तो मैं उस धन का उससे आहरण कर लेता हूँ। इसी कारण आसुरी स्वभाव वाले मुझको छोड़कर अन्य देवताओं की उपासना करते हैं ।।10।।

अन्य देवता बहुत जल्दी से अनुग्रह करते हैं। इसलिए उनसे राज्य और सम्पदाओं को पाते हैं। **वृकासुर** के समान अपने सर्वस्व का नाश न देखते हुये वे उद्धत होकर उन्मत्तता से वर देने

वाले देवता को भूलते हैं, अवमानना करते हैं ।।11।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा, ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ हैं। किन्तु इनमें से शिव और ब्रह्मा जल्दी अनुग्रह करते हैं। विष्णु नही ।।12।।

इस बारे में वृककी कथा को जानने वाले इस प्रकार बोलते हैं। वृकासुर को वर देकर स्वयं शिव ही कष्ट भाजन हो गये ।।13।।

वृक नाम का असुर, शकुनि नामक हिरण्याक्ष का पौत्र है, बहुत दुर्बुद्धि वाला है। वह एक बार तप करने के लिए जंगल में जा रहा था। रास्ते मे मिले नारद जी से पूछता है - त्रिमूर्तियों में बहुत जल्दी से कौन अनुग्रह करता है ? ।।14।।

तब नारद जी कहते हैं - अपने इष्टार्थ को पाने के लिए तुम शिव की आराधना करो। शिव जी छोटी सेवा से भी जल्द संतुष्ट होते हैं, वैसे ही छोटे से अपराध से बहुत जल्द क्रुद्ध भी होते है ।।15।।

रावण और बाणासुर स्तुति पाठक के समान स्तुति करते हुये शिव को संतुष्ट किये। उनसे संतुष्ट शिव जी उनको सकल ऐश्वर्य देकर बाद में उन्ही से कष्ट पाये ।।16।।

रावण और बाणासुर पर अनुग्रह किये रुद्र को बाद में उनके नगरों की रक्षा करनी पड़ी।

नारद जी की बातों को सुनकर वृकासुर केदार क्षेत्र मे नियम बद्ध होकर तप करने लगा। वह अपने शरीर के मांस को निकालते हुये उसको अग्नि मुख से प्रत्येक आहुति देते हुये उनकी आराधना किया ।।17।।

इतना करने के बाद भी जब शिव प्रगट नही हुये तब सातवे दिन केदार क्षेत्र में भीगे हुये बाल वाला वह अपने सिर को अपने खड्ग से काटने के लिए उद्धत हो गया ।।18।।

तब परम दयालु शंकर प्रत्यक्ष अग्नि के समान प्रकाश देते हुये अग्नि से प्रगट होकर वृकासुर के पास आये। अपने हाथों से उसके हाथों को पकड़कर उसको अपने कार्य को करने नही दिये। श्री शिव जी के करस्पर्श मात्र से उनके अंगांग पहले जैसे ठीक हो गये। यज्ञ करते समय वृकासुर उनको काट-काटकर अग्नि में डाल चुका था ।।19।।

शिव जी कहते हैं - हे पुत्र,तप करना बन्द करो, तुम जो चाहते हो उस वर को मुझसे माँगो, मै सब कुछ देने के लिए आया हूँ। तुम यह क्या कर रहे हो ? अन्य लोग सुख साधन को देने वाले और अनुभव करने वाले इस शरीर से बहुत प्यार करते हैं। तुम शरीर को व्यर्थ ही कष्ट दे रहे हो। यह आश्चर्य है ।।20।।

किन्तु वह दुष्ट महापापी, शिव जी से वर चाहता है कि मैं जिसके सिर के ऊपर हाथ रखूँ वह मरना चाहिए। इस प्रकार अन्य जीवों में भय उत्पन्न करने के लिए दुष्ट वर की प्रार्थना किया ।।21।।

हे परीक्षित ! भगवान रुद्र इस बात को सुनकर थोड़ा हिचकिचाये। किन्तु भगवान से प्रार्थना करते हुये हँस कर ॐ कह कर वर प्रदान किये ।।22।।

वृकासुर उस वर को परीक्षा करने हेतु शिव के सिर के ऊपर ही अपने हाथ रखने को आगे बढ़ा। तब शिव को अपनी की हुयी भूल अनुभूत होने लगी। वे भयभीत हो गये ।।23।।

वह दुष्ट वर परीक्षण का एक बहाना बनाया। वस्तुतः वह पार्वती का अपहरण करना चाहता था। श्रीधरीय पाठ में राक्षस की **गौरी हरण लालसः** इस प्रकार विशेषण दिया गया है।

वृकासुर दौड़ते हुये शिव का पीछा कर रहा है। शिव भयभीत होकर काँपते हुये भूमि अंतरिक्ष के अंत तक नीचे पाताल तक दौड़े ।।24।।

रूद्र के इस संकष्ट को देखकर देवतागण घबड़ा गये। किन्तु इसके परिहार का उपाय उनके पास नही था। इसलिए वे कुछ कर नही पाये। बाद में शिव प्रकृति से परे सुदूर प्रकाशमान वैकुण्ठ की ओर दौड़ने लगे ।।25।।

वैकुण्ठ लोक में, प्राणियों को हिंसा न करने वाले, फल कामना न करने वाले और केवल भगवान विष्णु में निष्ठा वाले मुक्तों को आश्रय देने वाले साक्षात् श्रीमन्नारायण वास करते हैं। वहाँ जो जाते हैं वे पुनः इस संसार में नही आते ।।26।।

हे राजन् सुनो ! शिव के आये हुए कष्ट को देखकर दुःख का नाश करने वाले भगवान विष्णु अपनी इच्छा से दूर से दौड़ते हुए आने वाले वृकासुर को बालक के रुप में दर्शन दिये ।।27।।

वह बालक ब्रह्मचारी मेखला, अजिन, दण्ड, अक्षमाला इत्यादि से सुशोभित अग्नि के समान कांति से प्रज्ज्वलित होकर हाथ में दर्भ को लेते हुये विनीत भाव से वृकासुर का अभिवादन किया ।।28।।

श्री भगवान कहते हैं - हे शकुनी पुत्र ! क्यों दौड़ रहे हो ? क्यों इतना दूर आये हो ? तुम थक गये हो। एक क्षण के लिए विश्राम करो। यह शरीर जीव की सारी इच्छाओं को पूर्ण करने का साधन है। उसको इस प्रकार दण्डित नही करना चाहिए ।।29।।

हे समर्थशाली ! तुम यहाँ क्यों आये हो ? क्या इसका कारण हम जान सकते हैं ? हे साधु पुरुष इस लोक में सारे लोग दूसरों की सहायता से अपने उ-श्य को पूर्ण कर लेते हैं। मैं अब तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ। तुमको क्या चाहिए उसको उसके बारे में बोलो ।।30।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार भगवान की अमृत के समान आनन्द देने वाली बातों से वृकासुर का समाधान हो गया। थोड़ा सा विश्राम लेकर उस वंचक ब्रह्मचारी से यहाँ तक जो-जो किया था उसके बारे में बोला ।।31।।

यहाँ तस्मै शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमे त का अर्थ वंचक अथवा चोर इस प्रकार होता है। कस्मै देवाय हविशाविधेम इस प्रकार यहाँ तस्मै यह सर्वनाम विभक्ति का कार्य करता है।

श्री भगवान कहते हैं - हे असुर सुनो ! रुद्र ने तुमको वंचना किया है। वह जो वर दिया है उसमें हमारा विश्वास नही है क्योंकि दक्ष प्रजापति ने उसको शाप दिया है, उसी कारण वह पिशाच बन गया है, भूतप्रेत पिशाचों का प्रभु बन गया है ।।32।।

उसके शरीर में क्रोध भर गया है। वह कभी सत्य नही कहता। जिसके मन में क्रोध भरा है। वह सत्य बोल नही सकता। हे असुर तुम इसको समझ नही सके। इससे तुम मूढ़ बन गये ।।33।।

हे दानव राज ! जगद्गुरु कहलाने वाले शिव के बारे में हमें विश्वास नही है। तुम कैसे उसके ऊपर विश्वास करते हो ? पहले हमें यह देखना चाहिए कि रुद्र ने जो वर दिया है वह तुम्हारे कहने के अनुसार क्या सत्य है अथवा हम जैसे कहते हैं उसके अनुसार झूठ है ? इसकी परीक्षा अभी होने दो। हम अभी इसकी परीक्षा करेंगे। तुम एक काम करो। अपना हाथ तुम अपने सिर पर रखकर देखो। इससे परीक्षा हो जायेगी। तब हम जो कहे हैं, शिव झूठा वर देता है, वह तुमको भी अनुभव में ज़ायेगा ।।34।।

हे दानवेन्द्र, जब यह सत्य होगा है कि शम्भु जो वर दिया है वह झूठ है तो तुम शिव को मार डालो। उससे वह आगे झूठ बोल नही पायेगा ।।35।।

भगवान की आश्चर्यकर और मनमोहक बातों को सुनकर वृकासुर की बुद्धि मन्द हो गयी। वह वर विचार भूल गया। वह दुर्बुद्धि वाला असुर अपने हाथ को अपने सिर के ऊपर रख लिया ।।36।।

उसी क्षण वृकासुर का सिर टुकड़े-टुकड़े हो गया। आकाश की बिजली मारने के समान वह जमीन पर गिर गया। देवतागण आकाश से घोष किये। **श्रीहरि की जय हो, हरि के लिए नमस्कार। श्री हरि ने ठीक किया।** इन तीनों शब्दों से आकाश गूँज उठा ।।37।।

पापी वृकासुर के मरने से देव, ऋषि, पितृ, गन्धर्व, यक्ष सारे सन्तोष से पुष्प वृष्टि किये। इस प्रकार शिव को श्री हरि संकट से मुक्त किये ।।38।।

संकट से बाहर हुये रुद्र को भगवान पुरुषोत्तम कहते है कि हे शिव, आप क्रीड़ा विनोद से वर दिये। यह पापी अपने पाप के कारण मर गया। दूसरों को अपचार करने वाला कैसे जीवित रह सकता है ? उसमें भी जगद्गुरु विश्वेश आपका अपचार करने वाला कैसे क्षेम से रह सकता है ? ।।39-40।।

सदाकाल के लिए शक्ति के सागर सर्वोत्तम साक्षात् परमात्मा श्री हरि के यह गिरीश मोक्ष को जो कहता है, जो सुनता है वह सारे शुत्रओं से इतना ही नही ये संसार सागर से मुक्त हो जाता है ।।41।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में चौरानबे अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पंचानबे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

त्रिमूर्ति में कौन श्रेष्ठ है ?

राजा परीक्षित पूछता है कि इन तीनों मूर्तियों में कौन श्रेष्ठ है। इस पर श्री शुकदेव जी कहते हैं- राजन् सुनो ! सरस्वती नदी के तट पर सारे ऋषियों ने मिलकर एक सत्र याग किया। उस समय उनके मन में संशय आ गया कि इन त्रिमूर्तियों में कौन श्रेष्ठ है ? ।।1।।

हे राजन् ! उस जिज्ञासा के समाधान हेतु सारे ऋषियों ने ब्रह्मापुत्र भृगु मुनि को इसका निर्णय करने के लिए भेजा। वे भृगु मुनि पहले ब्रह्मा जी की सभा में गए ।।2।।

मुनि उस सभा में ब्रह्मा जी के क्षमा गुण की परीक्षा करने हेतु उनकी स्तुति न करते हुये खड़े हो गये। अपने तेज से प्रकाशमान ब्रह्मदेव अपने पुत्र मुनि के ऊपर कुपित हो गये ।।3।।

अपने मनस से उत्पन्न भृगु मुनि पर उत्पन्न हुए क्रोध का शमन करने में ब्रह्मा जी समर्थ थे। अग्नि के ऊपर पानी डालकर जैसे अग्नि का शमन होता है वैसे ब्रह्मा जी अपने क्रोध का शमन किये ।।4।।

बाद में भृगु मुनि कैलाश गये। वहाँ रुद्र देव उठकर अपने छोटे भाई का आलिंगन करने लगे ।।5।।

रुद्र के क्षमा गुण के परीक्षण हेतु मुनि ने रुद्र को अमंगल अभ्यासी कहते हुये उनके आलिंगन को त्याग दिया। इससे रुद्र तीक्ष्ण दृष्टि से मुनि को देखते हुये अपने शूल को उठाकर ऋषि को मारने दौड़े।।6।।

उसको देखकर देवी पार्वती पति के चरणों को प्रणाम करते हुये उनका समाधान की। इस प्रकार आये कष्ट से दूर होकर वह मुनि कैलास नाम के रजत शिखर को छोड़कर वैकुण्ठ को चले गये। वैकुण्ठ में श्रीमन्नारायण वास करते हैं ।।7।।

वहाँ वैकुण्ठ में नारायण देवी लक्ष्मी के जँघों पर सिर रखकर सोये थे। उसको देखकर

क्रोध में मुनि नारायण की छाती पर लात मारी ।।8।।

सज्जनों को आश्रय देने वाले भगवान श्री हरि ने ब्राह्मण की इस क्रिया पर अपनी शैया से उठकर पत्नी लक्ष्मी के साथ खड़े होकर ऋषि की मान वंदना की ।।9।।

नारायण कहते हैं - हे मुनि ! आप का स्वागत है। इस आसन पर क्षणकाल के लिए विराजिये। हे ज्ञान देने वाले ब्राह्मण अनजाने में किया हुआ अपराध क्षमा करें ।।10।।

गंगादि तीर्थों को पवित्र करने वाले अपने पादोदक से मुझको, लोक को और मेरे आश्रय में रहने वाले सारे लोकपालकों को पवित्र करें ।।11।।

हे पूज्य ! आज मैं लक्ष्मी के लिए कभी न छोड़ने वाला आश्रयस्थान बन गया। क्योंकि आपकी चरणधूलि से पाप मुक्त हुयी मेरी छाती में वह सदाकाल वास करती है ।।12।।

मेरे छाती में लगे हुए तुम्हारे चरण चिन्ह श्री वत्स नाम से प्रसिद्ध होकर मेरी छाती पर सदा के लिए रहे ।।13।।

श्री कृष्ण कुरुक्षेत्र में (89-54) कहे थे। ब्राह्मण यदि अपराध करे तो भी उसको नमस्कार करना चाहिए। इस बात को प्रभु श्री हरि यहाँ सच करके दिखा रहे हैं।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्री हरि की दया और रसपूर्ण बाते सुनकर संतुष्ट हुए मुनि भक्ति उद्रेक से अवरुद्ध कण्ठ व भर आई आँखों के साथ मौन हो चुप-चाप रहे। ।।14।।

हे राजन् ! सुनो, इस प्रकार त्रिमूर्तियो का दर्शन और परीक्षण करते हुये पुनः सत्र याग स्थल पर आकर भृगु मुनि ने जो कुछ स्वयं अनुभव किया और देखा उसका ब्रह्मज्ञानी उन ऋषियों के सामने वर्णन किये ।।15।।

उसको सुनकर वहाँ के ऋषि मुनियों का संशय दूर हो गया। वे विस्मित हो गये। शान्ति और अभय को देने वाले विष्णु को सर्वोत्तम मानते हुये श्रद्धा से उनकी सेवा करने लगे ।।16।।

धर्म, ज्ञान आदि चार तरह के वैराग्य और आठ तरह के ऐश्वर्य, अपना पाप नाश करने वाली कीर्ति यह सारा साक्षात् जिनसे मिलता हैं उन विष्णु को सर्वोत्तम मानते हुये श्रद्धा से उनकी सेवा की ।।17।।

यतमान, व्यतिरिक, एकेन्द्रिय, वशीकार इस प्रकार वैराग्य चार तरह के होते है। विषय सुख की न

चाहने वाला उसकी आदर न करने वाला यतमान वैराग्य माना जाता है। अलवण यानी नमक की न खाना इत्यादि कई वस्तुओं की खाना छोड़ देना व्यतिरिक वैराग्य होता है। अन्य वस्तुओं की न चाहते हुये मन में केवल भगवान के बारे में आदर रखना एकेन्द्रिय वैराग्य होता है। बाह्येन्द्रियों से सेवन करने में औदासीन्य भाव रखना वशीकृत वैराग्य होता है। अणिमादि आठ तरह की सिद्धि आठ ऐश्वर्य होते हैं।

मनन करने वाले, प्राणियों की हिंसा न करने वाले, भगवान में निष्ठा रखने वाले, सहिष्णुचित्त, अन्य लौकिक सम्पदाओं को न चाहने वाले सज्जन होते हैं। इनकी परम मात्र गति विष्णु हैं। वे ही सर्वोत्तम हैं। इस प्रकार ऋषि मुनियों ने निर्णय किया ।।18।।

सत्वगुण श्री हरि को इष्ट है, ब्राह्मण इष्ट देवता हैं। वैराग्यशाली, भक्ति सम्पन्न, विवेक बुद्धि वाले,वे श्री हरि का भजन करते हैं। ऐसे श्री हरि को ऋषि मुनियों ने सर्वोत्तम मानकर उद्घोष किया ।।19।।

राक्षस, असुर, सुर इस प्रकार श्री हरि की तीन तरह की प्रतिमाएं है। ये तीनों गुण भगवान की इच्छानुसार इस प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। उनमें विद्यमान सत्वगुण प्रभु श्री हरि के दर्शन का साधन बनता है। ऐसे श्री हरि सर्वोत्तम हैं। इस प्रकार मुनियों ने उपासना की ।।20।।

शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार सरस्वती नदी के तट पर रहने वाले समस्त मुनि सज्जन अपने संशय के परिहार का प्रयत्न करते हुये परम पुरुष श्री हरि के चरण कमलों की सेवा करते हुये श्री हरि को पाये ।।21।।

सूत पौराणिक कहते हैं - श्री व्यास पुत्र शुक मुनि के मुख कमल रुपी गर्भ से निकलकर आया हुआ यह अमृत समान कथामृत संसार भय का नाश करता है। यह परम पुरुष श्री हरि की उत्तम कीर्ति को बताने वाला है। उसको कान नाम की अंजलियों से भर-भर कर पान करने वाला संसार मार्ग में संचार करते हुए उस मार्ग संचार के श्रम को खोकर आनन्द पाता है, मुक्त होता हैं ।।22।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में पंचानबे अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - छियानबे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्रुति गीता

राजा परीक्षित कहते हैं - हे मुनि, श्री हरि शब्द से मिलने वाले नही हैं। इस प्रकार श्रुति कहती है। भगवान गुणत्रय रहित हैं। गुणत्रयी वस्तु जो हैं शब्द उसी का वर्णन कर सकते हैं। कार्य कारणात्मक प्रपंच को ''यह वस्तु गुण वाली है'' ऐसा कहते हैं। प्रपंच विलक्षण गुण रहित भगवान को श्रुति कैसे कहती है ? ।।1।।

लय काल में विधि निषेध योग्य जीव भगवान के उदर में गाढ़ निद्रा में रहते हैं। उस समय वेद विधि निषेध से किसका बोधन करते हैं ? गुण रहित होने के कारण भगवान गुण कथन रुप स्तुति के योग्य नही हैं। स्तुति करने वाले लय काल में जागृत नही रहते। ऐसे समय में स्तुति रुप अथवा विधि निषेध रुप वेद लय काल में प्रवृत्त नही हो सकता। स्तुति रुप का सृष्टि काल में भी प्रवर्तन नही होता।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्री हरि मोक्ष योग्य जीवों की मात्रार्थ रुप में प्रवृत्ति पैदा करने के लिए भव, वेदाध्ययन पुण्य पाने के लिए कल्पना ध्यान इत्यादि के लिए उसमें आत्म स्वरुपता और आत्म स्वरुप अभिव्यक्ति के लिए बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणों की सृष्टि किये ।।2।।

बुद्धि, इन्द्रिय और मन द्वारा मुमुक्षुओं की मुक्ति पाने के लिए ज्ञानसाधन करना चाहिए। इस प्रकार वेद विधिकरता है। वेद की इस प्रवृत्ति के लिए भगवान सृष्टि काल में बुद्धि इत्यादि सारे प्रपंच की सृष्टि करते हैं। भगवान में प्राकृत गुण नही हैं किन्तु अप्राकृत गुण हैं। अप्राकृत गुण वाले भगवान का श्रुति वर्णन करने के कारण श्रुति की अभिमानी रमादेवी प्रलय काल में भी पद समन्वय से स्तुति करती हैं। विधि-निषेध रुप वेद प्रवृत्ति भी वाक्य समन्वय से स्तुति ही हैं। लय काल में यह नही दिखता है। किन्तु सृष्टि काल में रहता ही है। इस प्रकार स्तुति रुप प्रवृत्ति सदाकाल रहने से वेद कभी व्यर्थ नही होते। भगवान बातों से मिलने वाले नहीं हैं। इस लिए भगवान के अनन्त गुण होने के कारण सारे गुणों को कोई भी बताकर पूर्ण नही कर सकता। इस अभिप्राय से यह बात कही गयी है। यथाशक्ति सारे शब्द भगवान के बारे में ही कहते हैं और वह शक्य भी है।

परब्रह्म की स्तुति रुप अत्यन्त गूढ़ इस वेद का अध्ययन प्राचीन लोग किये हैं। विरक्त होकर श्रद्धा से वेद का अध्ययन करने वाला मोक्ष को पाता है ।।3।।

भगवान अनन्त वेदो से वेद्य हैं। इस विषय में बद्री नारायण ऋषि और नारद के बीच हुए संवाद रुप कथा को सुनाता हूँ, सुनो ।।4।।

एक बार भगवान के परम प्रिय नारद लोक संचार करते -करते सनातन नारायण ऋषि को देखने के लिए बदरीनाथ स्थित आश्रम को गये ।।5।।

वहाँ नारायण ऋषि सज्जनों के क्षेम और सुख के लिए पूर्ण धर्मज्ञान तथा शम-दम से युक्त होकर इस भारतवर्ष में तप कर रहे हैं ।।6।।

जैसे साक्षात् नारायण ही अपने स्वरूपानन्द में मग्न होकर लोक दृष्टि से तप करने बैठे हैं। यह सज्जनों को तप का शिक्षण देने के लिए है। तप करते हुये सारे लोगों के क्षेम और सुख पाने के उद्देश्य से भगवान तप कर रहे हैं।

हे राजा परीक्षित ! नारायण अपने आश्रम में कलाप ग्रामवासी ऋषियों से परिवृत्त होकर बैठे थे। ऐसे नारायण ऋषि को नारद जी नमस्कार करते हुये वेद की प्रवृत्ति के बारे में प्रश्न पूछते हैं ।।7।।

भगवान नारायण ऋषि को और वहाँ रहने वाले अन्य ऋषियों को नारद जी प्राचीन जनों और जनलोक निवासी सनकादि ऋषियों ने ब्रह्म विचार के बारे में उनसे जो कहा उसके बारे में नारद जी कहे ।।8।।

श्री भगवान कहते हैं - प्राचीन काल में जन लोक में वहाँ के ऋषियों को चतुर्मुख ब्रह्मा जी के मानस पुत्र परमहंस सनकादि ऋषियों ने ब्रह्मा जी से उपदेश पर ब्रह्म विचार की चर्चा चली ।।9।।

श्वेतद्वीप में श्रुतियाँ अन्य कुछ न कहते हुए केवल भगवान के बारे में कहती हैं। वहाँ स्थित भगवान के दर्शन के लिए जब तुम (नारद) वहाँ गये थे तब इस जनलोक में ब्रह्मविचार की चर्चा चली थी ।।10।।

उस ब्रह्म विचार में अभी तुमने जो प्रश्न किया है वही विचार चर्चा में आ गया। सनकादि ऋषि सनत कुमार मन्मथ के अवतार होने के कारण उनको छोड़कर अन्य सारे श्रवण, तप, आचारों द्वारा मित्र, शत्रु, तटस्थों में भेद न करने वाले परस्पर समान तो भी श्री हरि के विशेष आवेश होने के कारण सनन्दन जी को प्रवचनकार बनाये। अन्य सारे श्रोता बने ।।11,12।।

सनन्दन मुनि कहते हैं - श्री हरि इस जगत की स्वयं सृष्टि किये। लयकाल में इसका भक्षण कर अपनी पत्नी लक्ष्मी, श्रीदेवी और भू-देवी के साथ वटपत्र के ऊपर सो गये। लयकाल के अन्तिम भाग में वेदाभिमानी दुर्गा देवी उनका गुणगान करने वाले वेद मंत्रों से उनकी स्तुति करने लगी ।।13।।

सोते समय उषःकाल में सेवक स्तुति कर जैसे राजा को उसके पराक्रम की स्तुति वचनों द्वारा संकीर्तन करते हुये उठाते हैं वैसे दुर्गा देवी ने वेद मंत्र से भगवान की स्तुति की ।।14।।

यह स्तुति वचन **श्रुति गीता** नाम से प्रसिद्ध है। भगवद्गीता और विष्णुसहस्त्र नाम के समान ये भी

भगवान की उत्तम स्तुति मानी जाती हैं। इसका नित्य पाठ करने वाले अनेक लोग हैं। पाठकों के अवगाहन के लिए हम इसके प्रत्येक शब्द का विवरण सहित अर्थ लिखने का प्रयास किये हैं। पाठकगण इसका लाभ उठायें। मूल संस्कृत में रहने वाली इस गीता का विवरण देने में अनेक संस्कृत शब्दों का अर्थ देना पड़ता है। उस अर्थ की अनेक व्याख्याकारों ने अनेको व्याख्याएं की हैं। हमें लिखे हुये अर्थ का निष्कर्ष देने के लिए कभी-कभी अनिवार्य रुप में व्याकरण की सहायता लेनी पड़ती है। जन सामान्य को इसको जानने में कष्ट होता है लेकिन वे थोड़ा-सा प्रयत्न करें तो उसमें निहित आनन्द उनको प्राप्त होगा।

एक

वेदाभिमानी दुर्गा देवी कहती हैं - हे कभी- भी पराजित न होने वाले प्रभु ! आपकी जय हो! पुनः पुनः जय हो ! जीवों को उनके स्वरुपभूत आनन्दादि गुणों के साथ आपके कल्याणमय गुणों को ढकने वाली जीवाच्छादक - परमाच्छादक प्रकृति का नाश करो, दूर हटाओ। आपमें रहने वाले सद्गुण जीव के समान प्रकृति से आवृत नही हुये हैं। अनादि काल से आप स्वतंत्र होकर ऐसे ही रहे हैं। रमा, ब्रह्मादि सारे जीवों में आप ही बिम्ब रुप से रहते हुये आप ही उनकी सारी शक्तियों को व्यक्त करते हैं। हे भगवान ! आप जगें, नींद से जागृत हो जाए। जीव जड़ की सृष्टि करनी है। हम सारे वेदाभिमानी वेद के विधि निषेधों के साथ आपके प्रेम के लिए कर्म करने हेतु जीवों में प्रेरणा कर सकते हैं ||15|| **मूलश्रुतिः**- शाण्डील्य श्रुतिः

हे अजित ! जय –जय

कभी भी पराजित न होने के कारण आप अजित नाम से पुकारे जाते हैं। हे हरि ! आपकी जय हो, आपकी जय हो। आप सदाकाल जयशाली हैं। रमा, ब्रह्मादि में भी न रहने वाली सर्वोत्कृष्ट महिमा जो है उसी को **जय** बोलते हैं। वह आप में है। इस लयकाल में जीवों को यह समझ में नही आता। इसलिए आप को उठकर उनको भी नींद से जगाना है। स्थूल शरीर की सृष्टि करते हुये उन शरीरों को जीवों को देते हुये आपकी अपनी महिमा को दिखानी है। जय हो- इसका अर्थ यही होता है। यह अर्थ नही हुआ तो कभी भी पराजय को न प्राप्त होने वाले अजित को जय हो कहने का क्या तात्पर्य होता है।

दोषगृहीत गुणां अजां जहि

जीव के अनादि स्वरुपभूत आनन्दादि गुणों को प्रकृति दुःख से ढक लेती है। उसका आप नाश करें।

भगवान की इच्छा ही अनादिकाल से स्वरुपानन्द के आविर्भाव को न होने देने का मुख्य आवरण है। प्रकृति के कारण ही जीव अनादि काल से नाशवान न होते हुये रहता है। यह भी उसके आनन्दादि गुणों का अव्यक्त रहना ही भगवान की इच्छा होने के कारण इस प्रकार

अर्थ होता है। भगवान की इस इच्छा के अनुसार प्रकृति भी जीव के गुणों का आवरण करते हुये अव्यक्त करती है। सूर्य को जैसे राहु ग्रहण करता है वैसे जीव को जीवाच्छादक और परमाच्छादक इस प्रकार दो प्रकृतियों का आवरण है। प्रकृति से जीव के बाह्य मन में सुख-दु:ख होते है। इससे उसका स्वरुपभूतानन्द व्यक्त नही होता। व्यक्त करने वाले भगवान का अपरोक्ष ज्ञान न हो इस प्रकार प्रकृति बाधक बनती है। उसको भगवान अपना अपरोक्ष ज्ञान देकर प्रकृति के उस आवरण को हटाते है। जीव के स्वरुपभूत आनन्दादि गुण को व्यक्त होना चाहिए। जीवाच्छादक प्रकृति तमो योग्य चेतन अभिमानी होती है। वह जीव के स्वरुपभूत आनन्दादि गुणों को दु:खादि दोषों से ढक देती है। यह परमाच्छादक प्रकृति नित्य संसारी चेतन की अभिमानी होती है। वह परमात्मा का परोक्ष नहीं होने देती। किन्तु भगवान जिनको अपरोक्षानुभूति देते हैं उनके जीवाच्छादन को हटा देते हैं। उनको तम में नही जाने देते क्योंकि यह तम नित्य संसारी के लिये के लिये है।

अपरोक्षज्ञ रुद्रादि देवताओं को भी कभी-कभी भगवान नही दिखते। प्रारब्ध कर्म से वे भी कभी-कभी भगवान का विरोध करते हैं। इस कारण उस समय परमाच्छादकता वापस आकर परमात्म के अपरोक्ष को रोकने का काम करता है। इसी कारण भगवान आप उस परमाच्छादक को नाश करते हुये दूर हटाइये। इस प्रकार वेदाभिमानी दुर्गा देवी प्रार्थना करती हैं। **जहि** शब्द से दोनों अर्थ होता है। हनन करो और दूर हटाओ (इन) दोनों प्रकृतियों के लिए मुख्य अभिमानी रमा देवी हैं तो भी वह रमा दोनों जीवों को उनकी साधना के लिए उन दोनों को निमित्त कर लेती हैं। जड़ प्रकृति के सहयोग से श्री रमा जीवों को आच्छादित करने का काम करती हैं।

यत् त्वं आत्मना समवरुद्ध भग असि

भगवान आप स्वत: सद्गुणों को अपने में व्यक्त करते हुये स्थिर रूप से रख रहे हैं।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञान-विज्ञान योश्चैव षण्णां भग इतीरितः ॥

भग इसका अर्थ - ऐश्वर्य, वीर्य, यशश, श्री, ज्ञान और विज्ञान ये छः गुण होते हैं। जीव में ये गुण प्रकृति से आवृत होते हैं। किन्तु भगवान में वे कभी भी आवृत नही होते, अव्यक्त नही होते, नष्ट नही होते, इनको षड्गुण कहते हैं।

अज जगदोकसां अखिल शक्त्यव बोधक !

हे जनन रहित भगवान ! आप इस जगत के आधार बने हुये ब्रह्मादि देवताओं को भी उनकी सारी शक्तियों को व्यक्त करके देने वाले हैं। ब्रह्मादि जीवों में प्रकृति से आवृत्त होकर सुप्त

हुई शक्तियों को व्यक्त करने वाले आपकी शक्तियों का प्रकृति से आवृत्त होना साध्य नही है।

क्वचिदजया आत्मना अनुचरतो निगमोऽनुचरेत्

वेद के अनुसार सृष्टिकाल में आप प्रकृति और जीव को मिलाकर सृष्टि करते हैं। आप की इच्छा के अनुसार वेद विधि निषेधों द्वारा आपकी प्रीति के लिए जीवों से कर्म करवाता है।

अवतारों में आप महालक्ष्मी के साथ मिलकर वेद के अनुसार यज्ञादि कर्मानुष्ठान को करके दिखाते हैं तो वेद आपकी इच्छानुसार विधि निषेधों द्वारा जीव से आपके प्रीत्यार्थ वेद करवाता है। इसी कारण आप निद्रा से उठकर वेद की उक्तियोग्य सृष्टि करे। अवतार लेते हुये वेदोक्त कर्मों की सृष्टि करते हुये सज्जनों का मार्ग दर्शन करिए। इस प्रकार वेदाभिमानी दुर्गा प्रार्थना करती हैं।

दो

हे भगवान ! वेदों के अनुसार आपका स्वरुप समस्त गुण परिपूर्ण है। प्रकृति की अभिमानी दुर्गा देवी से भी आप उत्तम हैं, निर्विकार हैं। इसी कारण एक से एक बड़ा ऐसा कहने वाले तारतम्य में सबसे ऊपर सर्वोत्तम रहने वाले आप हैं। इसी कारण ज्ञानी लोग आपको मन से समझते हैं। वाणी से स्तुति करते हैं, आचरण से सेवा करते हैं। वे आपके स्वरुप में रहने वाले पूर्णत्व के एक अंश को समझें तो एक अंश पर्यन्त वे आपको समझ लेते हैं। मानव इस भूमि पर परिक्रमा के लिए कई पद रखते हैं। पद एक भाग में रखने के कारण छोटी परिक्रमा होने के बाद भी उसको भू संचार नहीं, ऐसा कह नही सकते। वह एक अंश में भू संचार ही है ।।16।। **मूलश्रुतिः-** बृह- दृष्टमवशेषितं इस प्रकार प्रारम्भ होने वाले **औ-लकायन** श्रुति।

बृहदुपलब्धमेतद्

भगवान आपका स्वरुप वेद में सर्वाधिक कहा गया है। **बृहि वृद्धौ** इस धातु का ``पूर्ण`` इस प्रकार अर्थ होता है। इससे ``ब्रह्म`` व ``बृहत`` इन दोनों शब्दों से वेद भगवान को गुण पूर्ण कहते हैं।

अविकृते तमसि उदगाः

अविकृत यानि लयकाल में विकार को कार्य रुप परिणाम में बदलने वाली मूल प्रकृति है। उसको तमस नाम से पुकारते हैं। उसकी अभिमानी ``तमो`` नामक दुर्गा देवी हैं। उसी कारण दुर्गा देवी को अविकृत कहते हैं। ``**तम आसीत् तमसा गूह्हमग्रे**`` का अर्थ प्रलयकाल में तमो नामक दुर्गादेवी व्याप्त होकर रहती हैं, इस प्रकार है। उस दुर्गा से भी श्री हरि श्रेष्ठ हैं। अविकृते तमसि यहाँ सप्तमी विभक्ति का पंचमी में अर्थ ग्रहण करना है।

अवशेषतया बृहत्

इससे यह बड़ा, उससे वह बड़ा ऐसा बोलने वाले तारतम्य में श्री हरि सबसे बड़े हैं।

उनसे बड़ा और कोई नही है। ``**पुरुषान्न परं किंचित् सा काष्टा सा परा गतिः**`` वेद इस प्रकार भगवान के सर्वोत्तमत्व को गाता है। इसी कारण भगवान सर्वोत्तम हैं।

अविकृतः

मूल प्रकृति की सृष्टिकाल में विकृति कार्य रुप में परिणाम होने के कारण वह सदैव अविकृत नही होती। किन्तु भगवान कभी भी विकृत नही होते। वे कभी दूसरों के अधीन नही होते अथवा काल, अदृष्ट इत्यादि अधीनता मूलक गुणधर्म उनको नहीं होते इसी कारण केवल भगवान अविकृत माने जाते हैं। रमा, ब्रह्मादि सारे उनके अधीन होकर पराधीनता मूलक विशेष को पाते हैं। इसके लिए वे सारे अविकृत नही होते। नित्य समझने वाले वर्ण और अव्याकृत आकाश इत्यादि अभिव्यक्ति विशेष श्री हरि के अधीन होते हैं। इसलिए केवल श्री हरि ही मात्र अविकृत हैं। इसलिए वे सर्वोत्तम हैं।

अत ऋषयो मनोवचनाचरितं त्वयि ददुः

इसी कारण ज्ञानी लोग आपको पूर्ण मानते हैं। वे आप में अपने मन वचन और कर्म का समर्पण करते हैं। मन में आपका ध्यान करते हैं। वाणी से आपका गुणगान करते हैं। कर्मों से आपकी आराधना करते हैं।

अतः भुवि नृणां दत्तपदानि कथमयथा भवन्ति ?

भू परिक्रमा का संकल्प करने वाले को भूमि के थोड़े हिस्से पर चलने से जैसे उसका संचार व्यर्थ नही होता, उसको भू संचार माना जाता है। वैसे ही आपके अनन्त गुणों में यथा शक्ति थोड़े गुणों को जानने पर यथार्थ भगवान का ज्ञान नही होता है, ऐसा नही होता है। वे समझते है कि वे गुण आपके हैं और वे भी आपके स्वरुप हैं। ये उसी प्रकार है जैसे भू परिक्रमा करने वाले बीच-बीच में जल मार्ग, वायु मार्ग से संचार करे तो भी वह भू परिक्रमा ही कहलाएगी, ये नही कहा जा सकता कि ये भू परिक्रमा नही है। जल, वायु, भूमिक्षेत्र का आधारभूत ``भूमि`` ही है, इस कारण वह भू परिक्रमा ही मानी जायेगी। इसी प्रकार आपके कुछ गुणों को जानने वाले आपके पूर्णत्व को जानने को उ-श्य से युक्त होने के कारण वह परमात्मज्ञानी कहलाता है।

तीन

उत्तम, मध्यम, अधम तीनों प्रकार के लोगों के स्वामी हे सर्वोत्तम ! श्री हरि ! ज्ञानी जो संसार रत हैं वे भी सकल लोक पावन आपके कथामृत नाम के समुद्र में डुबकी लगाकर सारे तापों को खो देते हैं। बर्हिर्मन न रहने वाले मुक्त लोग तो दुःख शोक से बहुत दूर रहते हैं। उनको जड़ शरीर नही होता हैं। उनको काल का परिणाम नही होता। आपके अनुग्रह से जनन-मरण इत्यादि से वे परे हैं। वे आपके

नित्यानन्दानुभव स्वरुप को सदा के लिए प्रत्यक्ष देखते, भजन करते हुए सारे तापों से निवृत्ति पाते हैं। इसको अलग कहने की आवश्यकता नही हैं ।।17।। **मूलश्रुतिः-** त्यजन्ति तापम् इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली इन्द्र द्युम्न श्रुतिः।

त्यधिपते ! परम !

भगवान आप उत्तम, मध्यम, अधम तीनों प्रकार के जीवों के स्वामी हैं। आप सर्वोत्तम हैं। आप उत्तम जीवों से शुद्ध भक्ति को, द्वेष मिश्रित भक्ति के मध्यम जीवों से और केवल द्वेष को अधम जनों से पाते हुये उनको अनुक्रम से नित्य सुख, मिश्रित दुःख-सुख, नित्य दुःखों को उनके स्वरुप में व्यक्त करते हुये देते हैं। इसके लिए आप तीनों प्रकार के लोगों के लिए स्वामी हैं, सर्वोत्तम हैं।

सूरयः अखिल लोक मलक्षपणं कथामृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः !

ज्ञानी लोग संसार में रहते हुये आपके पावन कथामृत नाम के समुद्र में डूब कर तीनों तरह के पापों से मुक्त होते हैं।

इति किमुत पुनः स्वधाम विधुताशयकालगुणाः ?

इस प्रकार मुक्त लोग स्वधाम में दूसरों के विघ्न के बिना स्वयं अपने आश्रय से स्वतंत्र पुरुष श्री हरि के अनुग्रह से ``**विद्युत आशय काल गुण** यहाँ आशय का अर्थ बाह्य अन्तःकरण होता है यह लिंग शरीर में रहता है लिंग भंग होने वाले मुक्त जीव को यह बाह्य अन्तःकरण नही होता है वे मानसिक दुःख, शोक आदि अन्तःकरण के परिणाम गुण-रुप दुःख, शोक, ``विद्युत यानि`` दूर हो गये हैं। काल गुण यानि काल के परिणाम रुप जनन-मरण भी विद्युत हो गये हैं यानी नाश हो गये हैं। उनका लिंग भंग हो जाने के कारण उनको पुनः जड़ शरीर न आने वाला है। इसी कारण उनको जनन-मरण प्रसक्ति नही है। ऐसे मुक्त लोग अपने तापत्रय को दूर कर लेते हैं। इस प्रकार अलग बताने की आवश्यकता नही है।

अजस्र सुखानुभवं पदं भजन्ति।

सदा सुख का अनुभव करने वाले मुक्त लोग श्री हरि के स्वरुप को प्रत्यक्ष देखते हुये उनका भजन करते हैं। ऐसा होने से उनको तापत्रय से दुःख कहाँ होता है ? इस संसार में जीवाच्छादक होने के कारण वर्हिमिन को दु;ख, शोक इत्यादि होना स्वाभाविक है। जब अपरोक्ष ज्ञान होता है तब जीवाच्छादक शिथिल होने लगता है। बहुशः जले हुए वस्त्र के समान निष्क्रिय होता है। किन्तु स्वरुपानन्द की अभिव्यक्ति अभी नही होती। इसके लिए वे भक्त अपने दुःख शोकादि के आघात को भगवान कथामृत का पान करते हुये कम कर लेते हैं, क्योंकि उस समय उनके हृदय में तात्कालिक रुप से भगवान का दर्शन होता रहता है। किन्तु

मुक्तों के लिए जीवाच्छादक नही है। वे वर्हिर्मिन नही रहते हैं। इसी कारण उनको दुःख, शोक का अनुभव नही होता। भगवान सदाकाल प्रत्यक्ष दर्शन देते रहते हैं। सदा सुख स्वरुप भगवान को प्रत्यक्ष देखते हुये उनमें स्वरूपानन्द व्यक्त होता है। ऐसे लोगों को तापत्रय की बाधा नही होती है।

चार

महत्तत्व अहंकार इत्यादि के लिए अभिमानी देवता चतुर्मुख ब्रह्मा, रुद्र आदि भी आपके अनुग्रह से इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि किये। ऐसे आपका, द्वेष करने वाला उसके परिणाम स्वरुप अंधंतमस में पड़ कर लोहार की धौकनी की तरह श्वास छोड़ता रहता है। उत्तम देवगण, मध्यम ऋषि, गन्धर्व आदि और अन्तिम मानवोत्तम इनमें कोई भी हो आपसे द्वेष न करते हुये आपके बारे में, योग्य लोगों को ज्ञानोपदेश करते हैं। वे आपको निश्चित रुप से पाते हैं। आप मूर्त-अमूर्त, विलक्षण होते हुये सदाकाल एकरस रहते हैं। आप सर्वोत्तम हैं ।।18।। **मूलश्रुतिः**- अनिशमुच्छवसन्त्य इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली पैगीय श्रुतिः।

महदहमादयः यदनुग्रहतः अण्डमसृजन् ।

महत्, अहंकार आदि के अभिमानी ब्रह्मादि देवता आपके अनुग्रह से ही इस ब्रह्माण्ड का निर्माण किये हैं। उनकी प्रार्थना के अनुसार आप उन तत्वों में प्रवेश करते हुये उनकी शक्ति को जागृत करते हैं। इसी कारण उन तत्वों से ब्रह्माण्ड का निर्माण करने के लिए ब्रह्मादि का साध्य सम्पन्न हुआ।

यदि ते असु हृदः दृतय इवोच्छ्वसन्ति ।

आपसे द्वेष करने वाले तमो योग्य होने के कारण तमरन्धकार में गिरते हुये लोहार की धौकनी के समान जोर से श्वास छोड़ते हैं। धौकनी जितनी अधिक वायु प्रक्षेपित करती है उतनी ज्वाला ज्यादा होती है। उसी प्रकार ये लोग जितनी श्वास छोड़ते हैं उतना दुःख होता है।

अत्र चरमोत्तम मध्यमादिषु यः प्रथयेत् सः पुरुष विधान्वयः (भवति) ।

इन मुक्ति योग्य जीवों में उत्तम मनुष्य अन्त में आता हैं। मध्यम ऋषि गन्धर्व, और उत्तम देवता ये सारे मिलकर इनमें सबसे श्रेष्ठ चतुर्मुख हैं। इनमें जिन-जिन योग्य लोगों को आपके तत्व का उपदेश करते हैं वही पुरुष विद् आपको पाता है। आप पुरुष रुपी जीव के समान उसके शरीर में उसके साथ बिम्बरुप बनकर रहने से पुरुष **विध** कहलाते हैं।

तवः सदसतः परं अविशोषं ऋतं प्रथयेत् ।

आप मूर्तामूर्त विलक्षण होते हुये भी एक प्रकार रहते हुये सर्वोत्तम हैं। मुमुक्षु को इस प्रकार, योग्य लोगों को आपके बारे में उपदेश देना चाहिए। **<u>सत् मूर्त</u>, <u>असत् अमूर्त</u>** इन दोनों

से **परं** विलक्षण, **ऋत** एकप्रकार क्योंकि श्री हरि जगद रुप बनकर परिणाम नही होते। वे नाना प्रकार के प्रपंच का प्रकृति से निर्माण करते हैं। **अविशेष** आपसे बढ़कर आपसे श्रेष्ठ और कोई व्यक्ति नही है। आप ही सर्वोत्तम हैं। इस प्रकार आपके बारे में उपदेश करना चाहिए। इसका अर्थ इतना ही है कि स्वाध्याय और प्रवचन एक साथ करने की आवश्यकता है।

पाँच

ब्रह्म विचार के मार्ग में सूक्ष्मदृष्टिवाले शार्कराक्ष मुनि **उदर** नामक भगवान की उपासना करते हैं। आरुणि नाम के मुनि सूक्ष्म रुप **हृदय** नाम के भगवान की उपासना करते हैं। श्री हरि हृदय से ब्रह्मनाड़ी मार्ग से ऊपर चढ़ते हुये सहस्रार कमल को जाकर वहाँ **चक्षुरादि** इन्द्रिय देवताओं से उपासना पाते हैं। वे मुख्य प्राण को आगे रखते हुये इस जगत के क्रिया कारित्व को जारी रखते हैं, वे मुख्य प्राण के नियामक हैं। इस प्रकार सारे लोग उनकी उपासना करते हैं। जो इस प्रकार उपासना करते हैं, वे इस संसार में पुनः नही आते ।।19।। **मूलश्रुतिः**- तम् प्रपदाभ्याम इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली आद्या श्रुतिः। (ऐतरेय उपनिषद्)

यर्हि वर्त्मनि सूक्ष्मदृशः उदरमुपासते यत् समेत्य न पतन्ति ।

ब्रह्म चिन्तन के मार्ग में सूक्ष्म दृष्टि वाले शार्कराक्ष ऋषि उदर नामक श्री हरि की उपासना करते है। वे ब्रह्मनाड़ी से उत्क्रमरण करते हुये श्री हरि को पाते हैं। **शर्करा** बालू के अति सूक्ष्म कण के समान आँखों के कारण उनको शर्कराक्ष बोलते थे। वे पेट में रहने वाले उदर नामक सूक्ष्म हरि की उपासना करते हुये ब्रह्मनाड़ी से उत्क्रमण करके श्री हरि को पाने के कारण पुनः इस संसार में नही आते।

यर्हि आरुणयः दहरं हृदयं उपासते न पतन्ति ।

आरुणि ऋषि सूक्ष्म हृदय नामक हरि की उपासना करने से हरि को पाकर पुनः इस संसार में नही गिरते। **दहर** यानी सूक्ष्म किन्तु **अरुण** उदय होने वाले सूर्य के समान लाल रंग वाले हृदय में रहने के कारण हृदय नाम वाले नारायण की आरुणि मुनि उपासना करने के कारण उनका आरुणि नाम है।

अथ ततः नन्दनपथा शिरः उदगाच्च पुनरिह ।

चतुर्मुख के शरीर में श्री हरि पाँव से प्रवेश करते हुये ऊपर आकर **अथ** बाद में **ततः** हृदय से भी उठकर ऊपर **नन्दनपथा** यानी ब्रह्मनाड़ी मार्ग से भगवान सिर के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र तक चढ़ते हैं। वहाँ चक्षुरादि इन्द्रियों के अभिमानी देवताओं से पूजा पाते हैं। **पुनरिह** यानि और पाँव से लेकर हृदय तक सारे स्थानों में उपासकों से पूजा स्वीकार करते हैं। अपरोक्ष ज्ञानी भी ब्रह्मनाड़ी मार्ग से हृदय से सिर तक जाकर वहाँ के ब्रह्मरन्ध्र से उत्क्रमण पाकर श्री हरि को पाते

हैं। इसी कारण वे पुनः संसार में नही गिरते।

परिसर पद्धतिं उपासते ।

सारे उपासक मुख्य प्राण, में उनके नियामक और उनको आगे रखते हुये ब्रह्माण्ड में सारे कार्य-कारित्व की प्रेरणा देने वाले श्री हरि की उपासना करते हैं। जीवों के शरीर में श्री हरि प्राण को आगे रखते हुये प्रवेश करते हैं। उसी प्रकार निष्क्रमण भी करते हैं। भगवान श्री हरि इन्द्रियों में रहकर विषय भोगों से स्वयं अपने सुख की अभिव्यक्ति करते हुये प्राण की सुखाभिव्यक्ति किया करते हैं। **मुख्य प्राण परिसर** कहलाते हैं, क्योंकि वह **परितः** यानी सर्वत्र **सरति** संचार करते हैं। इसी कारण सब कुछ जानते हैं। **परित्यज्य** इन्द्रियाभिमान को छोड़कर स्वतंत्र रुप से **सरति** जीव के शरीर में प्रवेश निष्क्रमण करते हैं। ऐसे मुख्य प्राण श्री हरि का **पद्धति** मार्ग बनते हैं। उनको आगे रखते हुये श्री हरि चलते हैं। वे ही प्राण के नियामक होने के कारण प्राण की वह **पद्धति** मार्ग बनते है। इस प्रकार दो अर्थों में **परिसर पद्धति** नाम वाले श्री हरि मुख्य प्राण के अधिष्ठान पेट, हृदय इत्यादि स्थानों में उपासना कर पाते हैं।

यत् परमं समेत्य पुनरिह कृतान्तमुखे न पतन्ति ।

शरीर में इस प्रकार श्री हरि की उपासना करते हुये उसको पाने से वे उपासक पुनः इस संसार गर्त में नही गिरते हैं।

छः

श्री हरि आप निर्माण किये हुये जीवों के अनेक तरह के शरीर में रहते हुये लकड़ी में रहने वाली आग की तरह रहते हुये लकड़ी की समझ में पडते ही आते। उसी प्रकार आप जीवों में रहते हुये, हर प्रकार के व्यवहार करते हुये जीवों को मालूम नही होते हैं। जीव के अनुसार सुखी और दुःखी जैसे लगते हैं। किन्तु आप सर्वकर्ता हैं इसको मुख्य प्राण ठीक तरह से जानते हैं। प्रतिक्षण बदलने वाले शरीर में रहते हुये आप मात्र ही एक ही प्रकार रहते हैं। किन्तु नाना रुप धारण किये हैं। ऐसे आपके सामीप्य को चाहने वाले ज्ञानी चिन्तन करते हुये आप को अपने मन में रख लेते हैं ।।20।। **मूलश्रुतिः-** योजीववद्योनिषो इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली कमठ श्रुतिः।

स्वकृत विचित्रयोनिषु ।

आप निर्माण किए हुए जीवों के अनेकों तरह के शरीरों में रहते हैं।

अनलवत् स्वकृतानुकृतिः ।

आग स्वयं ही निर्माण किए हुए लकड़ी में रहते हुये लकड़ी की तरह वर्तन करता है। आप भी इसी प्रकार जीवियों में रहते हुये जीवी की तरह बर्ताव करते हैं। लकड़ी पंच भौतिक है। पंचभूतों में एक अग्नि से लकड़ी की उत्पत्ति होती है। उसमें रहने वाली अग्नि लकड़ी के

समान रहती है। इसी प्रकार भगवान स्वयं निर्माण किये हुये जीवियों के शरीर में रहते हुये जीव के समान बर्तावि करते हैं। उन्ही के समान अपने को सुखी-दुःखी दिखवाते हैं।

विशन्निव चकास्सि ।

शरीर से सुख-दुःख पाने के लिए, कर्म करने के लिए जीव उसमें प्रवेश करता है। **विशति** प्रवेश करने से **विसन्** यानी जीव **बिसन इव** आप जीव के समान अन्यों को दिखते हैं। इसलिए अन्य खुद अपने को छोड़कर और भगवान नही हैं, इस प्रकार भ्रम में रहते हैं।

हेतुतया भरतमतः ।

भरत का अर्थ मुख्य प्राण होता है। भ यानी प्रकाश स्वरुप श्री हरि में **रत** यानी आसक्त रहने वाले वही आपमे आप ही सबके हेतु रुप मे है इसको जानते है। उनसे आप **मत** ठीक तरह से जाने जाते हैं।

वितथास्वपि अमूषु अवितथोरुविधम् ।

पंचभूतों से बना हुआ शरीर कभी-भी एक ही तरह नही रहता। हर क्षण बदलता रहता हैं। इसी कारण वह **वि-तथ** बना है। उनमें रहने वाले आप **अ-वितथ** यानी रुपान्तर न पाने वाले हैं। इसके कारण आप अनन्त शरीरों में **उरु-विध** यानी अनन्त रुप बनें हैं

तव निकटधियः अभिविपत्य मनसि न्यन्ति ।

आपके सामीप्य को चाहने वाले, यानी सामीप्य, सारुप्य इत्यादि मोक्ष को चाहने वाले **निकटधियः** कहलाते हैं। वे **अभिविपत्य** आपके बारे में ठीक तरह से चिन्तन मंथन करते हुये, मन में आपको सदाकाल रखते हुये ध्यान करते हैं।

सात

हे पुरुष ! आप तारतम्य से रहने वाले सारे जीवों की सारी ज्ञानेन्द्रियों में, सन्निधान तारतम्य से रहते हुये उनसे अपनी पूजा करवाते हैं। दुराचारियों में भी आप रहते हैं। चतुर्मुख ब्रह्मादि देवता उनसे कर्म के अनुसार पापाचरण करवाते हैं। आप उसी को अपनी पूजा रुप में स्वीकार करते हैं। हमारी सारी क्रियाऐं सारी इन्द्रियों के इन्द्रियाभिमानी देवताओं के शक्ति प्रेरक होकर आप ही उनमें रहते हुये स्वतंत्र रुप से करते हैं। इस प्रकार ज्ञानी लोग कहते हैं। बाहर देवताओं के लिए वेदव्यास इत्यादि रुपों से, दैत्यों को बुद्धादि अवतार रुपों से आप जो-जो उपदेश करते हैं और सबके अन्दर अन्तर्यामी होकर जो-जो प्रेरणा देते हैं वे सारे आप द्वारा करवाने वाली पूजा है। ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं। इस प्रकार पूजा ग्रहण करने के लिए आपको निद्रा त्यागकर जगना पड़ता है। आप उठकर इस सृष्टि की रचना करे ।।21।। **मूलश्रुतिः**- निषुसीद गणपते इति आद्या श्रुतिः।

हे पुरुष प्रक्रमवत् पुरुषेषु धीषु स्वसत् कृतं वदन्ति ।

हे परम पुरुष ! तारतम्य क्रम के अनुसार आप जीव में और उनकी इन्द्रियों में रहते हुए आप ही अपनी पूजा करवाते हैं। प्र-क्रम = प्रकर्षक्रम यानी तारतम्यक्रम से बड़े लोगों में रहते हुए बड़ी पूजा और छोटे में रहते हुये छोटी पूजा करवाते हैं। जीव छोटे होते हैं। उनमें रहने वाले तत्वाभिमानी देवता बड़े होते है। ब्रह्मा, रुद्रादि देवताओं से और भी बड़े होते हैं।

असच्चरणे तव स्वसत्कृतं वदन्ति ।

असच्चरणों में = दुराचारियों में चलने वाला सारा कर्म भी आपके लिए पूजा रुप है। ऐसा ज्ञानी लोग मानते हैं। दुराचारी जो पाप कर्म करता है उसको करने में वह स्वयं शक्त नही है। इन्द्रियाभिमानी देवता उसी से कर्म कराते हैं। इसी कारण दुराचारी को नरक होता है। यह उसकी योग्यता के अनुसार होने के कारण भगवान को इष्ट होता है। हरि को इष्ट उस पाप कर्म को जो देवता कराते हैं, वह भी श्री हरि की पूजा रूप में है। सज्जन लोग जो करते हैं वह पूरा पुण्य कर्म श्री हरि की पूजा होती है। वह कर्म उनकी योग्यता के अनुसार होता है। भगवान के इष्ट के अनुसार होता है। इस प्रकार तत्व देवता द्वारा पुण्य करवाना, मोक्ष दिलवाना और सज्जन लोगों का पुण्य कर्म करना ये सारा श्री हरि की पूजा ही है। सज्जन लोग इसका अनुसन्धान करते हैं इसके लिए उनको मोक्ष मिलता है। दुर्जन लोग पाप कर्म करते समय अहंकार पूर्वक करने से और कर्म करते समय वह पाप नही है। इसके लिए उसका फल स्वरुप मिलने वाला नरक भी उनका अनुगुण नही है। इस प्रकार भ्रम करने से उनका पाप कर्म उनको नरक का फल देता है। तत्वाभिमानी देवता इस प्रकार का भ्रम नही करते हैं इसलिए उनको उस फल से मोक्ष मिलता है।

अखिलशक्तिधृतः तव स्वकृतं ।

जीवों की सारी शक्ति, सारी इन्द्रियों को प्रेरणा देने वाले और सारे विषयों में शक्ति देने वाले, उसको आपने किए हुए स्वतंत्र कर्म ही होते हैं।

बहिरंतः स्वकृतं स्वसत् कृतं वदन्ति ।

अन्दर-बाहर रहकर आप प्रेरणा देते हुये जीव द्वारा किए जाने वाले सारे कर्म आपकी ही पूजा होती है। इस प्रकार ज्ञानी लोग कहते हैं। बाहर आप देवताओं को वेदव्यासादि रूप से तत्वोपदेश देते हैं। दैत्यों को बुद्धादिरूपों से दुर्बोधना करते हैं। सबके अन्तर्यामी रहकर उनकी योग्यता के अनुसार सत्कर्म और दुष्कर्म करवाते हैं। यह आप अपने ही कर्म के रूप में करते हैं। सत्कर्म हो या दुष्कर्म हो दोनों उन जीवियों के योग्यतानुसार होने के कारण आपके लिए इष्ट होते हुये आपकी पूजा ही है। इस प्रकार ज्ञानी लोग कहते हैं।

आठ

आपके अनुग्रह के बिना किसी को कुछ समझ में नही आता है। संसार के दुःख से निश्वास करने वाले विवेकी लोग आपके बारे में चिन्तन करते हैं। वे वेद शास्त्रों में ही विशेषकर अपने मन और बातों को विनिमय करते हैं। आपका चरितामृत समुद्र के समान हैं। वेदों की सहायता से वे चिन्तन - मंथन करने में परिश्रम करते हैं। वेदों में कहे हुए कर्म के बीज को बोने में योग्य क्षेत्र बने हुये आपको कर्म से आराधना करते हुये ध्यान करते हैं। अपरोक्ष अनुभूति पाते हुये संसार से विरक्त होकर आपका भजन करके इस संसार से मुक्त होते हैं। उनसे ऐसा करवाने के लिए आप जग और सृष्टि का निर्माण करें ।।22।। **मूलश्रुतिः-** विमथ्य वेदाब्धि इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली कुशीक श्रुतिः।

हे दुरवगमात्मतत्व ।

अपने अनुग्रह से ही, किन्तु जीव की योग्यतानुसार आप उनके ज्ञान के लिए अल्प मात्र गोचर होते हैं। स्वतंत्र होकर किसी रीति से प्रयत्न करने के बाद भी कोई आपको तिल मात्र भी समझ नही सकता। ऐसी आपकी महिमा है।

भवमध्यविनिःश्वसिता इति कवयः त्वां विमृशन्ति ।

संसार में विविध तरह के दुःखों को भोगने वाले, निःश्वास छोड़ने वाले विवेकी आपके अनुग्रह से आपके बारे में शास्त्रों का विचार विमर्श करते हैं।

निगमायत वांङमनसः ।

वेदों मे और वेदवेद्य आप में विशेषकर मन और वचन के साथ सारी इन्द्रियों को ज्ञ ानी लोग जोड़ देते है।

चरितमहामृताब्धि परिवर्त परिश्रमणाः ।

आपके चरित्र नाम के महासमुद्र को अपने मन नाम के मंदर पर्वत से मंथन करने के महाश्रम को, वे हाथ में लेते हुए। आपके परीक्षज्ञान को पा लेते हैं।

निगमावपनं भजन्त उपासते ।

वेद नाम के बीज को बोने के लिए भगवान एक उत्कृष्ट जमीन बनाते है क्योंकि वेद मुख्य रूप से उन्ही के बारे में बताते हैं। विधि-निषेध वाले वेदों में और विषय आने पर भी वे सारे भगवान के ज्ञान के लिए सहायक होते हैं। इसी कारण वेदों का अर्थ करते समय भगवान के बारे में ही अध्ययन करना चाहिए।

वेदोक्तकर्म नाम के बीज को बोने के लिए भगवान ही क्षेत्र होते हैं। उनमें कर्म का बीज बोने से (अर्पण करने से) वह अंकुर बनकर बाद में बड़ा वृक्ष होकर उत्तम फल देता है। किन्तु अर्पण नही करे तो वह व्यर्थ होता है। अन्य देवताओं की आराधना करने के बाद भी उनमें रहने

वाले भगवान को ही अर्पण करना पड़ता है।

वेद वृक्ष भी भगवान नाम के क्षेत्र में खड़ा है। कल्प के प्रारम्भ में भगवान ब्रह्मा जी को उपदेश देते हुये वेद वृक्ष को खड़ा किये है। इसके अनुसार ब्रह्म सूत्र, महाभारत इत्यादि का व्याख्यान करते हुये उसको अत्यन्त स्थिर कर दिये हैं। शाखा भेद से विभाग करते हुये विशाल विस्तार किये हैं। इसी कारण श्री हरि को वेद वृक्ष का क्षेत्र मानकर आराधना करते हुये उनके अनुग्रह से उनको जान लेना चाहिए।

इति भवमध्यविनिःश्वसिताः भजन्त उपासते ।

इसी कारण संसार में विरक्त रहते हुये आपकी यज्ञादि कर्मों से भजन करते हुये ध्यान रूप उपासना ज्ञानी लोग करते हैं और अपरोक्ष ज्ञान पाकर संसार से मुक्त होते हैं। मुक्त होने के बाद भी वैकुण्ठ में रहते हुये यज्ञादि कर्म और ध्यानोपासना करते रहते हैं। ये कर्म और उपासना फल का साधन रूप नही हैं। किन्तु वे फल रूप होते हैं। आनन्द के उद्रेक से हँसते हैं, नाचते हैं और यागादि कर्मों को और ध्यानादि उपासनाओं को मुक्त लोग आनन्द के उद्रेक से करते हैं।

नौ

प्रभु आपके एकान्त भक्तों में कई आपकी आराधना के फल रूप मोक्ष को भी नही चाहते हैं। आपके चरण कमलों में हंस के समान रहने वाले ज्ञानी समूह आपकी सेवा के लिए अपने घर बार को त्याग कर बाहर आते हैं। अपने इस जड़ शरीर को भी आपकी आराधना का साधन समझते हुये आपके चिन्मय शरीर को आनन्द से देखते हैं। अपने से, अपने शरीर से और अपने सकल साधन सम्पत्ति से बढ़कर आप प्रिय हैं, स्वामी हैं, यह मानते हुये वे आप में ही सदाकाल मन लगाते रहते हैं। आपकी सेवा के लिए सदाकाल सिद्ध रहते हैं ।।23।। **मूलश्रुतिः**- न किंचिदभि वांछन्ति इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली विमद श्रुतिः।

हे ईश्वर केचिद् अपवर्गमपि न परिलषन्ति ।

हे प्रभु ! आपके कई एकान्तिक भक्त केवल आपके सामीप्य को चाहते हैं, और कुछ नही माँगते हुये आपमें भक्ति करते हैं। उसके फलस्वरुप आप मोक्ष देने को कहें तो वे उसको भी नही चाहते। वे केवल आपके समीप रहने के उद्देश्य से मोक्ष को स्वीकार करते हैं। किन्तु मोक्ष को अपने कष्ट परिहार और नित्य सुख की अभिलाषा में कभी नही चाहते।

ते चरण सरोज हंसकुल संगविसृष्टगृहाः।

आपके चरण कमल की इच्छा करने वाले हंस, परमहंस इत्यादि ज्ञानी लोग आपको पाने के लिए अपने घर बार छोड़कर आते हैं। उन ज्ञानी परमहंसों की सेवा करे तो वह सेवा

आपकी इष्ट बनती है। इसकी आपके एकान्त भक्त ठीक तरह से जानते हैं।

त्वदनुपथमिदं कुलायमात्म सुहृत् प्रियवच्चरन्ति ।

आपकी सेवा ही इस शरीर का प्रयोजन है, इसी कारण वे अपनी देह की रक्षा करते हैं, किन्तु शरीर रक्षा विषय भोग के साधन रूप नही करते। ये शरीर भगवद् प्राप्ति के लिए योग्य होता है, यह जानकर वे आपके चिन्मय शरीर से प्यार करते हैं। उसी प्रकार यह शरीर का आपके ज्ञान पाने में आपकी प्राप्ति में साधन होकर बन्धु के समान सदाकाल साथ रहता है यह मानकर पार्थिव शरीर को प्यार करते हैं। वस्तुतः अन्य लोग जैसे शरीर को, शरीर के लिए प्यार नही करते वरन् प्रिय वस्तु व्यर्थ न हो इसके लिए पार्थिव शरीर की वे रक्षा करते हैं।

प्रिये आत्मनि च त्वयि तथाहि ते उन्मुखाः ।

आप श्रवण, स्मरण और दर्शन से दिव्य सुख देते हुये भक्तों के लिए प्रियकर बने हैं। बिम्बरूप में हमारे में रहते हुये हमारे स्वामी बने हैं। इस प्रकार आपके बारे में चिन्तन करते हुये अपनी इन्द्रियों को और प्रवृत्तियों को आप में ही लगाते हुये आपके बारे में सदाकाल चिन्तन करते हैं। (उन्मुख होते हैं।) आपकी सेवा के लिए सदा सिद्ध रहने वाले एकान्त भक्त अपने सुख के लिए मोक्ष को भी नही चाहते।

दस

आपकी अन्यथा उपासना करने वाले को होने वाले महा अनर्थ को देखकर आश्चर्य होता है। क्योंकि अन्यथा उपासना करने वाले आत्महत्या पातकी के समान हैं। भगवान के सर्वोत्तम स्वरूप के विरुद्ध बोलने वाले आत्महत्या के समान पाप भोगते हैं। ऐसे आत्मघाती तमस में पड़कर केवल दुःख का अनुभव करते हैं। उनके लिए सुख का लवलेश भी नही रहता है। वे तम से बाहर नही आ पाते, वहीं पलटते रहते हैं। उस समय भी वे अन्यथोपासना ही करते रहते हैं। उनके लिए न मरण का भय है, न पुनर्जन्म का। नरक में दुःख का अनुभव करने के लिए उनको एक दुष्ट यातनामय शरीर मिलता है। भगवान से द्वेष करने वाले और भगवान के भक्तों से द्वेष करने वाले अन्त में तमस में गिर जाते हैं।

मोक्ष साधन सामर्थ्य वाले ज्ञान को वायुदेव पूर्ण रूप से पाये हैं। उनका अनुग्रह पाकर सज्जन लोग मननशील होकर हृदयस्थ भगवान का ध्यान करते हैं। उनका द्वेष करने वाले आत्मघाती होते हैं, तमस को पाते हैं भगवान गीता में कहे हैं कि **ज्ञानी त्वात्मैव मे मतः**।ज्ञानी मुझसे अलग नही। उनसे मेरा बहुत प्यार है। इसी कारण ज्ञानी से द्वेष करने वाला मुझसे द्वेष करता है और अपनी हत्या का फल भोगता है। इस प्रकार श्री हरि मानते हैं ।।24।। **मूलश्रुतिः-** असूर्या वामते लोका इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली बृहदारण्यक और ईशावास्य श्रुतिः।

अहो !

अन्यथा उपासना करने से होने वाले अनर्थ को देखकर आश्चर्य होता है।

असदुपासनया आत्महनः न च रमन्ति ।

अन्यथा उपासना से आत्मघाती बनने वाले लोग लिंग भंग के बाद किंचित् सुख का भी अनुभव नही करते, इतना ही नही वे केवल अपार दुःख का ही अनुभव करते हैं।

यदनुशाया भ्रमंति ।

अन्यथा उपासक तमस में पड़े होकर पलटते रहते हैं। केवल दुःख का अनुभव करते हुये द्वेष और प्रतिकार की भावना से युक्त होकर पुनः अन्यथोपासना में डूब जाते हैं।

अभवा कुशरीरभृतः ।

भव शब्द के मंगल और संसार इस प्रकार दो अर्थ होते हैं। इसके अनुसार यहाँ अभवा: अमंगलकारी स्वरूप वाले लिंग भंग के बाद पुनः संसार में न आने के कारण उनको तमस से मुक्ति नही है। वहाँ मरण और पुनर्जन्म नही है। **कु-शरीर** दुष्ट यातना शरीर उनको मिलते रहते हैं। उनको शिक्षा देने के लिए नियुक्त वायुदूत अपनी इच्छानुसार उनको शुद्ध तमोमय शरीर देते हैं। वे उन शरीर से दुःख भोगते हैं।

निभृत मोक्ष हृदय योगयुजः ।

पूर्ण मोक्ष साधन रूप ज्ञान वाले निभृत मोक्ष हृदय वाले मुख्य प्राण हैं। **हृदय** का अर्थ **हृत** = हृदय से अथवा प्रतिभा से आने वाला **अय** ज्ञान, मुख्य प्राण को स्वयं होता है। उनको वेद पढ़ने से ज्ञान आने की आवश्यकता नही है। उनकी स्वाभाविक प्रतिभा से आने वाला ज्ञान वेद सम्मत है। वह **भृत** यानी पूर्ण मोक्ष साधन रूप सामर्थ्य से पूर्ण हैं इस प्रकार अर्थ होता है। ऐसे पूर्णप्रज्ञ के अनुग्रह वाले सज्जन लोग मोक्ष के योग्य होते हैं।

हृदयमुपासते ।

पूर्णप्रज्ञ के अनुग्रह पात्र जो हैं वे तंत्रसारोक्त क्रम से हृदय में रहने वाले बिम्ब की उपासना करते हुये मोक्ष पाते हैं।

तदरयोऽपि ययुः (स्मरणात्)

हरि वायु के भक्तों को द्वेष करने वाले भी तम को जाते हैं। **ययुः** पीछे वाले तम को गये हैं आगे वाले को भी जाना पड़ता है। **तद्भक्त द्वेष एव च** । इस प्रकार वे भी विष्णु द्वेषी होकर आत्मघाती बनते हैं। यहाँ **स्मरणात्** शब्द को आगे वाले श्लोक से जोड़ देना चाहिए।

ग्यारह

भक्तों के अनुग्रह के लिए केवल आप का स्मरण करना पर्याप्त है, इसी कारण आप अपने

भक्तों में अनुराग करते हैं। शेष देव द्वारा की हुयी भक्ति से सन्तुष्ट होकर, उनके लम्बे और शीतल शरीर के ऊपर सर्वसमर्थ आप सोते हैं। ऐसे आपके स्वरूप को केवल आप ही पूर्ण रूप से समझ सकते हैं। हम आपके पदकमल के मकरन्द की सुधा और उसकी महिमा की उँचाई के सामने खड़े नही हो सकते। किन्तु अपनी शक्ति की सामर्थ्य से हम कह रहे हैं। नित्य मुक्त कौन है ? क्योंकि सर्वज्ञ अनुसार कहलाने वाले ब्रह्मा जी भी आपसे जन्म लिये हैं। देव पद को प्राप्त अन्य और देवत्व को चाहने वाले अन्य देव समूह भी ब्रह्मा जी के बाद ही जन्म लिए हैं। तो वे कैसे आपके बारे में बोल सकते हैं ? ।।25।। **मूलश्रुतिः**- त्वम् वेत्थ नापरस्ते इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली संस्कृति श्रुतिः।

स्मरणात्स्वनुराग !

केवल स्मरण भक्ति मात्र से भक्तों से प्यार करने वाले आप हैं।

पिछले श्लोक के अंत में आया हुआ **स्मरणात्** इस शब्द को इस श्लोक के पहले वाला **स्वानुराग** इस शब्द से जोड़कर **स्मरणात्स्वनुराग** इस प्रकार एक ही शब्द हो गया है। यहाँ अलुक् समास होकर पंचमी लोप नही हुआ है। वैदिक साहित्य में ऐसा प्रयोग अपरूप होकर कभी दिखता है। दृष्टान्त में ऐतरेय उपनिषद् में (2-2-5-3) **इति हस्माहा** इस मंत्र के साथ आगे वाले मंत्र के पहले शब्द **कृत्स्नो होषः** इस शब्द के साथ जोड़ता है। इसका अर्थ छन्दसों में अनुष्टुप छन्द सबसे श्रेष्ठ हैं। वेद की इस पद्धति के अनुसार यहाँ भी **स्मरणात्स्वनुराग** इसको एक ही शब्द मानकर अर्थ करना चाहिए।

उरगेन्द्र भोग दण्ड विषक्तधियः ।

उरगेन्द्र यानी बड़ा साँप नागराज शेषदेव हैं। उसका **भोग** यानी शरीर **दण्ड** के समान लम्बा है। सर्वशक्त स्वतंत्र श्री हरि इन शेष के शरीर पर प्यार से सोते हैं। इसके लिए का नाम **विषक्तधी** है। उनकी भक्ति से सन्तुष्ट हुये भगवान उनकी साधना की पूर्ति हेतु उनकी अपनी शय्या और आसन बनाये हैं। ऐसे श्री हरि की महिमा अचिन्त्य है।

तद् भवान् वेद ।

अपनी अचिन्त्य महिमा और अपने भक्त वात्सल्य को केवल आप ही जानते हैं।

अंघ्रि सरोज सुधांवयमपि समासमदृशः ।

आपके अंघ्रि कमल की सुधा को हम वेदाभिमानी लक्ष्मी रूप भी पूर्ण रूप से समझ नही सकते। हम केवल **सम-असम** होकर समझ सकते हैं। इसका अर्थ यहीं है कि हमारी जितनी शक्ति है उसके अनुसार समझ सकते हैं। यद्यपि पक्षी आकाश में उड़ता है किन्तु वह पूरे आकाश में नही उड़ सकता। उसके पंख में जितनी शक्ति है उतना ही उड़ सकता है।

वस्तुत: आपकी भक्त महिमा वात्सल्य के बारे में देखें तो हमारा ज्ञान उतना ऊँचा नही हो सकता। वह **असम** बनता है। ऐसा होते हुये भी इसको श्री, भू, दुर्गा रूप में केवल हम ही बोल सकते हैं और कौन बोलेगा ?

क इह नु वेद व्यक्तुमपेत जन्मलयः ?

ऋषि, ज्ञानी, सर्वज्ञ चतुर्मुख ब्रह्मा जी भी आपसे **उदगात्** जन्म लिए। **उभय विध** देव समूह भी अपने योग्य देव पदवी को जो पाये हैं, अभी पाने वाले हैं ऐसे दोनों तरह के देव समूह **अनु** ब्रह्मा जी के बाद ही उन्ही से जन्म लिए हैं। इनमें कोई नित्य मुक्त नहीं हैं। किन्तु नित्य मुक्त मैं भी आपके बारे में पूरा बता नही सकती। तो और कौन जान सकता हैं ?

बारह

हे जनन रहित ! आप वेद को केवल अपनी स्तुति के लिए रखते हुये लयकाल में जब सो जाते हैं उस समय यह स्थूल ब्रह्माण्ड, पंचमहाभूत और सूक्ष्म महदादितत्व नही थे। काल के कारण होने वाले जरा-मरण नही थे। स्थूल प्रपंच का लय हो गया था। बाद में सृष्टि के समय सूक्ष्म रूप में रहने वाले आपसे स्थूल प्रपंच जन्म लेता है। स्थूल प्रपंच के इन जनन-मरणों को आप में रहने वाले जीव-जड़ पंचभेदों को वेदोपदेशक वायु के अनुग्रह से ज्ञानी लोग फलापेक्षा न करते हुये उपासना करते हुये पाते हैं। इसी कारण आप उनके वाक्यों में सन्निहित होकर रहें ।।26।।

मूलश्रुतिः- नासदासीन्नो इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली आद्या श्रुतिः।

अज ! शास्त्रमपकृष्य यदा शयीत ।

हे जनन रहित स्वामी ! आप लयकाल में वेद शास्त्र को अपने प्रति खींचते हुये सोते हैं। सृष्टिकाल में वेद शास्त्र जीवों का विधि निषेध करते हुये वाक्य समन्वय से आपकी स्तुति करते रहते हैं। किन्तु लय काल में जीव आपके उदर में गाढ़ निद्रा में सोते रहते हैं। इसी कारण वे वेद का विधि-निषेध न करते हुये केवल पदसमन्वय से आपकी ही स्तुति करते रहते हैं। इसी कारण भगवान आप वेद शास्त्र को जीवों से खींचकर अपने पास रखते हैं।

तर्हि सत् न असत् न उभयं कालजवश्च न ।

उस समय प्रलय काल में **सत्** स्थूल ब्रह्माण्ड नही था। **असत्** सूक्ष्म महत आदि तत्व नही थे। **उभयं** अग्नि, जल नही थे, अथवा पंचभूत नही थे। उसी प्रकार **कालजवश्च न** काल के परिणाम से होने वाले बुढ़ापा और मृत्यु भी नही थे।

किमपि न ।

जीवों के लिए आवश्यक कोई सुख साधन उस लय काल में नही थे। अगाध समुद्र नही था। जब जल ही नही था तब समुद्र कहाँ से आता है। केवल चेतनप्रकृत्यात्मक समुद्र में

चेतन और प्रकृति से युक्त वटपत्र के ऊपर श्री हरि पाद सोते हैं।

असतः सतो जनिं मृतिं आत्मनि भिदां च स्मरन्ति ।

असत् सूक्ष्म रूप वाले भगवान **सत्** स्थूल प्रपंच भगवान से इस प्रपंच का **जनि-मृति** जनन-मरण होते हैं। इसको ज्ञानी लोग **स्मरन्ति** ध्यान करते रहते हैं। **आत्मनि भिदां च** वे भगवान और जीव जड़ प्रपंच में रहने वाले भेद का ध्यान करते रहते हैं।

आरुवतो विपणमृते स्मरन्ति ।

आ-रुवतः सुन्दर रीति से वेदोच्चारण करने वाले, वेदोपदेश देने वाले मुख्य प्राण की दया से ज्ञानी लोग **विपणं ऋते** फल की अपेक्षा न करते हुये केवल भक्ति पूर्वक उपासना करते हैं।

ध्वनिमुपविश ।

इसी कारण ज्ञानियों की **ध्वनि** बातों में आप **उपविश** सन्निहित होकर रहें। **विप्रवाक्ये जनार्दनः** इस प्रकार उनकी बातों में आप रहते हुये उनको शापानुग्रह शक्ति दें, और उनके वचन से उनके लिए दर्शन देते हुये उनसे हुयी प्रार्थना को स्वीकार करें। वे जो उपदेश देते हैं उन उपदेशों में वेद ध्वनि के साथ सन्निहित होकर श्रोताओं को तत्वज्ञान मिले ऐसी कृपा करें।

तेरह

जीवों में त्रिगुण बद्धत्व भगवान के तत्वज्ञान के अभाव के कारण होता है। आप ज्ञान स्वरूप ही होने के कारण त्रिगुण बद्धत्व आपके समीप भी नही आता। मूलरूप में वह न होतें हुये भी अवतारों में वह हो सकता है, ऐसा दुर्जन लोग कहते हैं। देवतापक्ष इसको नही मानता। क्योंकि देवतागण परमात्मा को और उनके अवतारों को ठीक तरह से जानते हैं। इसी कारण वे विमर्शा करते हुये भगवान से भिन्न जीवात्म को त्रिगुण बद्ध और दुःखी मानते हैं ।।27।। **मूलश्रुतिः**- सत्वादिजं देहमथो इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली शुकरायण श्रुतिः।

त्रिगुणमयः पुमानिति यत् अबोधकृता ।

पुमान जीव त्रिगुणमय सत्व, रज, तम नाम के तीनों गुणों से बद्ध होता है। इसी कारण **अबोधकृता** भगवान के तत्वज्ञान को ठीक तरह से नही समझने से ऐसे होता है। यह जीव का स्वभाव नही है। सही ज्ञान आने के बाद भगवान उसके त्रिगुण बन्ध का नाश करते हैं।

त्वयि नतु भवेत तदवबोधरसे ।

भगवान आप में त्रिगुण बद्धता नही रह सकती क्योंकि उसके कारणरूप भगवान के तत्वज्ञान का अभाव आपको कभी नही होता। आप पूर्णज्ञानस्वरूप और नित्य मुक्त हैं। आपका पूर्णज्ञान आपको है। इसके लिए आप में त्रिगुण बद्धत्व नही रहता। जीव भी ज्ञानस्वरूप है। किन्तु वह ज्ञान सासारिक अवस्था में व्यक्त नही होता है। इसी कारण वह त्रिगुण बद्ध है।

सद्दिव मनस्त्रिवृत् त्वयिभवत्यसताम् ।

मन, इन्द्रिय, शरीर आपके अवतारों में **त्रिवृत्** त्रिगुणात्मक होते हैं ऐसा वाद दुर्जन रखते हैं। भगवान मूलरूप में आप निर्गुण हैं। इसलिए हम, मूलरूप में ``भगवान त्रिगुण बद्ध नही हैं`` इसको मानते हैं। किन्तु राम-कृष्णादि अवतारों में उनका जनन-मरण दिखता है। इसके लिए वह त्रिगुण बद्ध हैं उनके मन-इन्द्रिय, शरीर माया निर्मित होकर त्रिगुणात्मक होते हैं इस प्रकार त्रिगुण बद्धत्व **सद्दिव** रहता है, और नही भी रहता है। यह दोनों सत्य है। अवतार में रहता है मूलरूप में नही रहता है इस प्रकार दुर्जन अपने वाद रखते हैं। किन्तु यह सही नही है क्योंकि अवतार में जो जनन-मरण होते हैं वह केवल प्रदर्शन के लिए होता है। वह दुर्जन मोहक हैं। (कंस की जेल में जन्म लिए श्री कृष्ण को माता-पिता दोनों कहते हैं - आप हमारे पुत्र नही।)

आत्मविदः मनुजादयः इदमशेषमार्ततया विमृशन्ति ।

मनुष्यों के पहले सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी जन्म लिये। वे **आत्मविदः** यानी भगवद् तत्व को ठीक तरह से जानते हैं। उनको भगवान का स्वरूप मालूम है। उसी प्रकार वे जीव के स्वरूप को भी जानते हैं। उसकी विमर्शा करते हुये वे कहते हैं - अकेले भगवान को छोड़कर इस चेतन जगत में जो कुछ रहता है वह **आर्त** दु;खी है, त्रिगुण बद्ध है। भगवान मूलरूप में तथा अवतार रूप में कभी-भी त्रिगुण बद्ध नही हैं।

चौदह

इस जगत में कोई ''हमारे पास सोना है किन्तु उससे बना हुआ गहना नही है, इस प्रकार नही बोलता है क्योंकि दोनों में रहने वाला सोना एक ही है। उसी प्रकार भगवान इस विश्व का सृष्टि करते हुये उसमें प्रवेश किये। तब हम यह नही कह सकते कि हमें उपासना के लिए आपका मूलरूप ही, प्रविष्ट हुआ अवतार रूप नही चाहिए। ऐसा नही बोलना चाहिए क्योंकि दोनों एक ही हैं। सदा के लिए स्वगतभेद वर्जित होकर सारे तत्वों में आप ही रहते हैं। इस प्रकार आपकी उपासना करने वाले इस संसार का मोह रखने वाले के सिर को अपने पाँवों से कुचलते हैं।।28।।

मूलश्रुतिः- सर्वंगये प्रपश्यन्ति इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली शुकरायण श्रुतिः।

न हि कनकस्य विकृतं त्यजन्ति तदात्मतया ।

सोना चाहिए, गहना नही ऐसा बोलने वाला कोई नही है क्योंकि दोनों समान रूप से सोना ही है।

स्वकृतं रसितं इदं आत्मतया अनुप्रविष्टः ।

स्वकृतं स्वयं किया हुआ **रसितं लसितं** अनेक प्रकार से शोभा देने वाला यह जगत

आत्मतया मूलरूप से अभिन्न होते हुये उस वस्तु में उसके आकार के अनुसार आप आकार लेते हुये उनमें प्रवेश करते हैं। प्रविष्ट आकार और आपके मूलरूप में कुछ भेद नही है। निर्दोष, निर्दुष्ट आपकी उपासना हम करते हैं। आपके अवतार अथवा आकार में भेद नही है। दोष हैं इसलिए मैं उपासना नही करता, यह बोलना गलत है।

ये तव अखिल तत्वनिकेततया परिचरन्ति ।

इस प्रकार ज्ञानी लोग आपको सारे तत्वों में रहने वाला इस प्रकार समझते हुये आपकी पूजा करते हैं।

ते ऋतेः शिरोऽविगणय्य पदाऽऽक्रमन्ति ननु ।

ऐसे ज्ञानी संसार में अभिमान रखने वाले के सिर को निरातंक होकर अपने पाँवों से कुचलते हैं। **निऋति** का अर्थ संसार है। **ऋति** का अर्थ सदाकाल एक प्रकार सर्वोत्तम होकर रहने वाला भगवान है। इस प्रकार अर्थ रूढ़ि में है। **ऋ गतौ** धातु से प्राप्ति इस प्रकार भी अर्थ होता है। यहाँ दोनों प्रकार के अर्थ किये गये हैं। इस प्रकार निऋति का अर्थ भगवद् प्राप्ति यह भी अर्थ होता है। **तंत्रेण** यानी आवृत्ति न करते हुये दोनों अर्थ बताकर उनको परस्पर अन्वय कर सकते हैं। निर् - ऋति इसका अर्थ परमात्म प्राप्ति के विरुद्ध रहने वाला यह संसार होता है। उसके अभिमानी जीव के सिर के ऊपर पाँव रखते हुये ज्ञानी वैकुण्ठ को जाता है। इसका अर्थ संसार में पड़े रहने वाले से आगे ज्ञानी मोक्ष को जाता है।

पन्द्रह

बैलों को नथनी डाल कर रस्सी से बाँधकर जैसे रखते हैं, वैसे आप देवताओं को ब्रह्म रुद्रादि नामों को देकर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नथनी को डालकर उनको विधि निषेध बन्धन में बाँधकर कर्म बन्धन करके रखते हैं। कर्म बन्धन से बाँधते हैं। आपमें दृढ़ भक्ति वाले लोकपावन सज्जन लोग आपके बन्धन को मानते हुये आपमें भक्ति करते हैं। किन्तु आपसे द्वेष करने वाले बन्धन में होते हुये भी आपके बन्धन को मानते नही। आप स्वतंत्र हैं और सारे जगत के क्रिया कारित्व के धारक हैं। आपकी प्रेरणा से सारे देवता आपकी आराधना करते हुये सुख पाते हैं ।।29।। **मूलश्रुतिः-** वयति गा इव यः इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली आरूणि श्रुतिः।

तान विभुदानपि पशूनिव गिरा परिवयसे ।

सुप्रसिद्ध चतुर्मुख ब्रह्मादि देवताओं को भी आप, पशु को जैसे रस्सी से बाँधते हैं ऐसे वेद वचन से बाँधकर रखे हैं। ब्रह्म, रुद्रादि देवतागण जितने भी बड़े हों पर वे अस्वतंत्र होकर आपके अधीन हैं। आपकी प्रीति के पात्र हैं। इसी से आप वेद के विधि-निषेधों को बताते हुये दुष्कर्म न करते हुये सत्कर्म करने के लिए प्रेरणा देते हैं तथा अनिष्ट परिहार करते हुये इष्ट

प्रदान करते हैं। पशुपालक अपने पशु का अनिष्ट न हो इष्टानुसार चले इसके लिए नथनी डालता है। उसी प्रकार आप देवताओं और सारे सज्जनों को ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादि नाम की नथनी डालते हैं तथा आप नियमन करते हैं कि ब्राह्मण इस प्रकार व्यवहार करे, क्षत्रिय इस प्रकार रहें। आप विधि निषेध करते हुये उनका कोई अतिक्रमण न करें इस प्रकार सबको बाँधकर रखते है। यहाँ विधि निषेध रस्सी के समान हैं, नाम नथनी है।

त्वयि दृढ़सौहृदाः पुनन्ति, न तु ते विमुखाः ।

वेद विधि बद्ध होकर आप में दृढ़ भक्ति रखते हुये वेदोक्त कर्मों का आचरण करने वाले देवता लोग लोकपावन होते हैं। इस लोक का मार्ग दर्शन करते हुये लोगों से सत्कर्म करवाते हैं। आपके विमुख होकर रहने वाले असुर वेदविधि-निषेधों का उल्लंघन करते हुये स्वयं अशुचि होते हैं। वे विहित कर्मानुष्ठान नही करते और अन्यों को न करने देते हुये उनको भी अशुचि करते हैं। **संध्याहीनोऽशुचि** इस बात के अनुसार विहित कर्म करने वाले शुचि होते हैं, न करने वाला अशुचि होता है।

त्वमेकः स्वराट् अखिलकारक शक्तिधरः ।

आप अकेले स्वतंत्र और अन्तर्यामी होकर सबके कर्म कारित्व को नियंत्रण करने वाले हैं। इसी कारण अशक्त जीव के प्रति निष्ठुर होकर विधि निषेधों को कहते हुये, डराते, बल पूर्वक कर्म करवाने वाले निष्करुणि राजा जैसे आप नहीं हैं। किन्तु आप प्यार से विधि निषेधों का आचरण अपनी पूजा रूप में करवाते हुये आप ही स्वयं उनमें खड़े होकर उनसे सत्कर्म करवाकर सत्फल देते हैं, कर्म करने के लिए उनमें कर्म शक्ति को जागृत करते हुये नियन्त्रण करते हैं।

ये अनिमिषाः ते तव बलिमुद्वहन्ति ।

अनिमिष जो आँखों को झपकाते नही यानी देवतागण सदा काल जागृत रहते हुये, समय-समय पर वेद में कहे गए कर्मों को करते हुये उत्तम कल्प से कर्म करते हुये, भगवान की आराधना करते हुए परमानुग्रह के भागी होते हैं।

समदन्ति च

वेदोक्त कर्मों से अपने बिम्बमूर्ति की आराधना करतेहुये सन्तुष्टहुये भगवान के प्रतिबिम्बरूपी लोग स्वयं भी सन्तुष्ट हो जाते हैं। जैसे बैल यजमान की सेवा करते हुये उसके प्यार का भाजन बनता हैं यजमान से अपने लिए अन्न को पाकर सुख से रहता है वैसे भक्त लोग भगवान की कृपा से आनन्द से रहते हैं।

सोलह

सामन्त राजा सार्वभौम राजा को उपहार देते हैं वैसे इस प्रपंच के स्वामी ब्रह्मादि सकल

देवतागण आपकी पूजा करते हैं। आप उनको जो अधिकार देकर जिस काम में नियोजन करते है उसी अधिकार में रहते हुये आपके भय से वे आपकी आराधना करते हैं। मोक्ष के बारे में तमेवं **विद्वानमृत इव भवति** मोक्ष केवल आपसे ही मिलने वाला है। इस प्रकार आपके सहायता से बता रहे हैं। ज्ञानी लोग इसको ठीक तरह से समझकर अन्यों को उपदेश देते हैं आप ही मोक्ष देने वाले हैं। अन्य सारी चराचर सकल जीव राशि आपसे ही संसार बन्धन में बंधित है ।।30।। **मूलश्रुतिः-** खंडाधीशाः इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली उदार शाण्डिल्य श्रुतिः।

वर्षभुजः अखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजः भवतः विदधति ।

भारत, हरिवर्ष, किम्पुरुष आदि देशों के राजा सार्वभौम राजा के डर से उपहार जैसे देते हैं, वैसे प्रपंच के सृष्टिकर्ता आपको एक-एक लोक के अधिपति ब्रह्मादि देवता सकल लोकाधिपति आपकी पूजा करते हुये मुक्ती भागी बनते हैं।

ये यत्र अधिकृताः चकिताः भवतः विदधति ।

आप देवताओं को जिस अधिकार में नियुक्त करते हैं वे उसी अधिकार में रहते हुये आपके भय से आपकी पूजा करते हैं। हरि प्रसन्न नही हुए तो इस दुःख से वे डरते हैं। जैसे माँ बच्चा न रोये इस डर से बच्चो का पालन करती है वैसे आप पालन करते हैं। यह भय, प्यार और वात्सल्य का कारण है, द्वेष के कारण नही।

अज यदि विमुक्तसतः परस्य विरहे उदीक्षयेत् ।

हे जनन रहित भगवान् सज्जनों को संसार विमुक्त करने वाला मोक्ष आपके अनुग्रह से ही मिलता है। **विरहे** संसार विरह रूप मोक्ष के बारे में **यदि परः उदीक्षयेत्** भगवान आपको पूर्ण रूप से समझने वाले केवल आप हैं। इसी बात को वेद **तमेवं विद्वानमृत इह भवति** इस बात से समझाता है।

ये स्थिर चर जातयः ते तु अनिमित्तयुजः स्युः ।

जो स्थावर जंगम जीव हैं वे सारे **अ-निमित्त** अकार नामक आप से **युजः** संसार में रत हैं। इसमें थोड़ा सा भी संशय नही है। यदि संसार किसी दूसरे से प्राप्त होता है तो उसकी निवृत्ति आपसे नही होती। इसी से यह स्पष्ट होता है कि जैसे आप मोचक हैं वैसे बन्धक भी हैं। संसार बन्धन का अर्थ यही है कि नया-नया शरीर आता जाता रहता है। यह आपका अनुग्रह ही है। आप साधन शरीर देते हैं उससे साधन करवाते हैं, और उसके फलस्वरूप मोक्ष देते हैं।

सत्रह

हे श्री हरि ! आप परिपूर्ण हैं। इसके साथ ही आपके समान और कोई नही है। आप प्राण से

भी उत्तम हैं, आप ही सर्वाधार हैं। आपसे श्रेष्ठ स्वतंत्र और कोई नही है। वायु जैसे जीवोत्तम हैं वैसे आप सर्वोत्तम हैं। जीव अपने स्वरूप से नित्य और असंख्य हैं, यह सही है। किन्तु वे सारे प्राण के कारण देह में रहते हैं, वे स्वतंत्र रूप से रह नही सकते। **एकमेवाद्वितीयं** श्रुति इस प्रकार कहती है कि जीव आपके अधीन नही, आपसे अभिन्न है यह नियम नही कहा गया है क्योंकि **अतोन्यदार्तं** इस प्रकार श्रुति, जीव जात आपके अधीन हैं, ऐसा कहती है ।।31।। **मूलश्रुतिः**- तव स्वतंत्रो इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली महाशालीन श्रुतिः।

हे सर्व ! शून्यतुल !

परिपूर्ण असदृश हे श्री हरि।

अन परस्य सन्दधतः परमस्य यस्य ते कश्चिदपरो नहि भवेत् ।

अन-परस्य मुख्य प्राण से भी श्रेष्ठ। **सन्दधतः** सर्व लोक के आधारभूत **परमस्य** सर्वोत्तम आपसे **कश्चिद परः** और कोई स्वतंत्र **न हि** नही हैं। आप ही सर्वोत्तम हैं।

अत्र व्यत इव सन्दधतः ते कश्चिदपरो नहि भवेत् ।

अत्र जीवों में **व्यत इव** सर्वज्ञ प्राण से और कोई स्वतंत्र नही हैं। उसी प्रकार सर्वाधार आपसे अलग स्वतंत्र सर्वाधार और कोई नही है। उत्तम जीवों में सर्वज्ञ केवल प्राण ही हैं। उनसे बड़ा और कोई नही है। उसी प्रकार सर्वों में सर्वाधार आप श्री हरि एक मात्र हैं। आपसे बढ़कर सर्वाधार और कोई नही है, और कोई सर्वोत्तम नही है। **वि -अय** विविध विशेष ज्ञान वाले **व्ययत** सर्वज्ञ।

यदि तनुभृतः ध्रुवाः अपरिमिताः ततः तनुभृतः ।

जड़ शरीर धारी जीव **ध्रुवाः** नित्य हैं, असंख्यात हैं। किन्तु वे सारे **ततः** प्राण से ही **तनुभृतः** शरीर धारण करते हुये रहते हैं। प्राण शरीर से बाहर चला गया तो शरीर मुर्दा होते हैं।

न शास्यतेति नियमः नहि ।

एकमेवाद्वितीयं इस श्रुति के अनुसार एव शब्द से `अधीन होकर जीव नही रहते सारे अभिन्न हैं।` यहअर्थ नही होता। **शास्यता** अधीनत्व नही हैं ऐसा नियम **न हि** नही बताया गया है।

ब्रुवते च तथा ।

अतोऽन्यदार्तं और अन्य आत्मा दुःखी, अधीन, और अस्वतंत्र है इस प्रकार श्रुतियाँ कहती हैं।

अट्ठारह

हे जनन रहित भगवान ! आप सर्वत्र व्याप्त हैं। तथैव दोषरहित, नाशरहित, और समान हैं। ऐसे आपको ठीक तरह से जानने वाले गुरु के उपदेश से इस अनादि संसार से मुक्ति साध्य

होती है। **अज** कहलाने वाले आप लक्ष्मी नारायण को जनन-मरण नही है। दोनों देशकाल में समान व्याप्त हैं। जैसे पानी में बुलबुले उठते और फटते हैं उसी प्रकार जीव आपसे जन्म लेते हैं और मरते हैं ।।32।। **मूलश्रुतिः**- मुच्यते तत्व संबंधा इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली कौण्डरव्य श्रुतिः।

अज न ! अत्र अदुष्टतया अनंतं समं ततं ।

हे जनन वर्जित ! आप सारे स्थानों में दोषरहित, नाशरहित होकर समान रूप से व्याप्त होकर रहते हैं। सर्वत्र व्याप्त होते हुये भी उन वस्तुओं के सम्बन्ध से आप में दोष नही आते। वस्तु नाश हो सकता है। किन्तु उसमें रहने वाले आप कभी भी नाश नही पाते। दोषरहित, नाशरहित होकर सर्वत्र आप समान रीति से रहते हैं।

अनु जानता सततात् भवात् परिमुच्यते ।

इस प्रकार आपको ठीक तरह से जानने वाले गुरु के उपदेश से ही अनादि काल से सतत पीड़ित इस अनादि संसार से जीव मुक्ति को पाता है।

अजयोः प्रकृति पूरुषयोः उद्भवः न घटते ।

चित् प्रकृति रमादेवी **अजा** कहलाती हैं। परम पुरुष आप **अज** हैं। अज कहलाने वाले रमानारायण आप दोनों जनन-मरण रहित हैं नित्य मुक्त हैं। ऐसे आपकी उत्पत्ति कैसे होती है।

उभययुजोः असुभृतः जलबुद्बुदवत् भवन्ति ।

आप रमानारायण सतत् बहने वाली गंगा जी के समान एक प्रकार रहने वाले हैं। गंगा प्रवाह में बुलबुले उठते हैं एक क्षण में अदृश्य होते हैं। उसी प्रकार आप में सकल जीव राशि जन्म लेती हैं और मरती हैं। यह निरन्तर जनन-मरण ही संसार कहलाता है। जीवों के इस संसार के लिए रमानारायण आधारभूत होते हैं। ये दोनों **उभय** देशकाल दोनों में **युजो** समान रीति से सर्वत्र व्याप्त होते हैं। इसको जानने वाले गुरु से जो उपदेश पाता है वह संसारी, मुक्त होता है।

उन्नीस

हे जगत के स्वामी ! आनन्द रूपी सर्वोत्तम ! सारे देवताओं के नाम उनकी महिमा ये सारे आप में हैं। सु मधुर अमृत, रस जैसे समुद्र में छिपा हुआ है ऐसे इस जगत के सारे रस आप में छिपे हैं। उसी तरह आपका अनुग्रह ज्ञानी को मिलता है किन्तु अन्यों को दीखता नही। उस अनुग्रह से वे आप में रहने वाले सारे मंगलकर सर्व वैलक्षण्य को ठीक तरह से समझने में समर्थ होते हैं। ऐसे आपके भक्त ज्ञानी लोगों को आपके भृकुटी संचार (भौंहों की हिलन) पुनः संसार का कारण नही बनता ।।33।। **मूलश्रुतिः**- योनः पिता जनिता यो इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली ऋगादिस्मृतिः ।

हे ततो !

हे तत = तात = जगत के पिता **अ** ! आनन्दपूर्ण, ओ उत्तम होने के कारण **उ** नाम वाले आप इस जगत के मालिक हैं। अ,उ ये दोनों सकल पाप परिहार करने वाले विष्णु के नाम हैं।

ते इमे विभुद नामगुणाः त्वयि निलिल्युः ।

इन देवताओं के **नाम** और **गुण** की महिमा सारी मुख्य होकर आपमें हैं। उनमें अमुख्य रूप में है।

मधुनि परमे अमृते अर्णवे अशेष रसा इव ।

क्षीरसगार में महाअमृत के साथ और अन्य रस छिपकर रहते हैं। उसी प्रकार सभी देवताओं की महिमा मुख्य रूप से आपमें है। अमुख्य रूप से उनमें है। इसी कारण सारे देवताओं के नाम मुख्य रूप से आपके नाम हैं।

अंग, नृषु सुधियः स्वगतयाः तव मायया ।

हे प्रियकर, जीवों में ज्ञानी लोग आपके **मायया** अनुग्रह से युक्त होते हैं। वह अनुग्रह **सु-अगतया** अन्यों को दीखता नही। **अगत** अनवगत **सु-अनवगत** कुछ भी अन्यो को समझ नही सकता। किन्तु अमोघ रूप जीवेश्वर भेदज्ञान योग्यों को होता है। इसको देखने से भगवान का **माया** = अनुग्रह उनमें स्पष्ट होता है।

अनुकुशलं त्वयि भेदं अनुधातुं प्रभवः ।

भगवान के अनुग्रह के बाद **कुशलं** आपके मंगलकर जीवभेद को **अनु** योग्यतानुसार ज्ञानी लोग समझने में **प्रभु** समर्थ होते हैं।

तवभृकुटि अनुवर्तनां नृणां मुहूः भवभयं कथं सृजति ?

जीवेश्वरभेद को आपके भक्त आपके अनुग्रह से समझ लेने के बाद उनको पुनः इस संसार का भय नही है। आप अपनी भृकुटि को हिलाये तो वह सारा जगत डर जाता है। किन्तु आपके भक्तों को उसका भय नही हैं। क्योंकि वे मोक्ष पा चुके हैं।

यहाँ ततो इस शब्द का त+त+अ+उ इनके सन्धि बन गया तो ततो होना चाहिए था किन्तु यहाँ वृद्धि सन्धि न होते हुये परसवर्ण सन्धि होता है। यह केवल वेदों में प्रयोग किया जाता है। **मधुनि निनिल्युः** इस प्रकार दो समान अक्षर आये तो एक अक्षर लोप होना नियम है। **समानेलोपः** इस सूत्र से यह नियम व्यक्त होता है। उसी के अनुसार मधु निनिल्युः शब्द की उत्पत्ति हुई है।

बीस और इक्कीस

आपके श्री चरणों में स्थान पाने योग्य देवता प्राणायाम, इन्द्रिय निग्रह, मनोनिग्रह करते

हुये मोक्ष साधन का प्रयत्न करते रहते हैं। एक बार यदि वे इस संसार सागर में आने वाले सैकड़ों दुःखों से पार करने वाले गुरु के चरण को छोड़कर प्रयत्न करे तो स्वजन, सुत, शरीर, पत्नी,धन, सहित समुद्र में नौका मे बैठे वाले बिना नाविक नौका में प्रयाण करने वाले वर्तको के समान दुःख भोगना पड़ता है क्योंकि गुरु के बिना किए हुए उनके साधनाओं को निर्दुष्ट और सुख पूर्ण आप, ग्रहण नही करतें। जीवन्मुक्त एक नियत गुरु मिलने के बाद ही उन भक्तों की साधना को सर्वोत्तम आप स्वीकार करते हैं ।।34,35।। **मूलश्रुतिः**- यस्य देवे पराभक्तिः श्वेताश्वतर श्रुतिः ।

इह भवच्चरणेषु सुजात भुवः ।

अपने उत्पत्ति स्थान हृदय में रहने वाले आपके पाद इत्यादि अवयवों में स्थान पाने की योग्यता रखने वाले, तत्वाभिमानी देवता होते हैं। उनको उन्ही अवयवों में सायुज्य मिलता है।

जित हृषीक वायुभिः उदात्त महत्तुरंगैः ।

शरीर नाम के इस रथ के सारथी के रूप मे रहने वाले प्राणवायु को वे अपने प्राणायाम से जीत चुके हैं। उत्तम बड़े घोड़े के समान रहने वाली इन्द्रियों को प्रत्याहार से जीत चुके हैं। वैसे ये तत्वाभिमानी देवता रथ में बैठकर आपके यहाँ मुक्ति मार्ग में प्रयाण करते हैं।

अमतिलोलं ।

वे मनोनिग्रह करते हुये चित्त-चांचल्य को जीत चुके हैं। किन्तु -

इह व्यसनशताब्धितारं गुरोश्चरणमपहाय यतन्ति ।

इह इस संसार में आने वाले, सैकड़ों दुःख समुद्रों से तारने वाले गुरू की चरण सेवा को छोड़कर प्रयत्न करे तो -

स्वजन सुतात्मदारधन धामधराः ।

बन्धुजन, पुत्र,मित्र, शरीर, पत्नी, धन सम्पद, घर इत्यादि में रत होकर -

उपायविदः

स्वजन इत्यादि रक्षणोपाय चतुर होते हुये भी -

जलधौ अकृत कर्णधराःवणिज इव इह उच्छ्वसन्ति ।

सागर के बीच में नाविक के बिना नौका में प्रयाण करने वाले वर्तक के समान मोक्ष मार्ग में आगे न बढ़ते हुये निःश्वास करना पड़ता है। क्योंकि-

नृणां तानि सुखशान्तिमत्वय नहि सन्ति ।

देवता पुरुषों की वे साधनाए निर्दुष्ट सुखपूर्ण आपको पहुँचती नही। आप उनको स्वीकारते नही।

विभवे उद्यति सर्व सर्वरसे आत्मनि श्रयते ।

वि-भव संसाररहित जीवन मुक्त गुरु का उदय होते ही उसकी चरण सेवा करने से

मोक्ष साधन होता है। ये सारे **सर्वरस** सर्वोत्तम **आत्मनि** परमात्मा में **श्रयते** जाकर मिलते है। उसका अर्थ यह है आप उनको स्वीकार करते है इसके लिए आप गुरु के मुखांतर **प्रसादकृत** प्रसाद करने वाले होते है।

आत्म आप पूर्ण शक्ति वाले हैं। इसी कारण आपको गुरु अनुग्रहसाधन की आवश्यकता नही है। किन्तु सुख **शान्तिमान** आप निर्दोष सुखपूर्ण होने के कारण उन साधनों से आपको कुछ नही होने वाला है। आपको किसी की इच्छा नही रहती। आप अपनी इच्छा के अनुसार गुरु के अनुग्रह रहित साधनों को नकारते हैं। गुरु के अनुग्रह से मिले हुए साधनों को आप स्वीकार करते हैं। इस प्रकार **शिष्यादष्टगुणं गुरोः** इस प्रकार गुरु के विशेष साधन के लिए आप गुरू अनुग्रह को विशेष महत्व देते हैं।

भागवत कहता है कि गुरु सेवा के बिना की हुयी इन्द्रियजयादि साधना को भगवान स्वीकारते ही नही, अनुग्रह करते नही इस प्रकार नही है। भगवान उनको भी स्वीकारते हैं किन्तु अल्प अनुग्रह करते हैं, मोक्ष नही देते। गुरु सेवा प्रधान साधना होने के कारण गुरु सेवा के साथ इन्द्रियजयादि अन्य साधन रहे तो उनको श्री हरि स्वीकार करते हुये पूर्णानुग्रह करते हुये मोक्ष देते हैं।

बाईस

इस प्रकार दोषरहित भगवान को न समझते हुये स्त्री सुख के पीछे दौड़ने वालों नित्य ऐश्वर्य युक्त जनन-मरण रहित मोक्ष को देकर कौन सुख देते हैं ? इसी कारण ज्ञानी जन कर्मभूमि में पुण्य तीर्थ में वास करते हुये, शास्त्राभ्यास करते हुये पाप परिहारक आपके चरण कमलों का अपने हृदय में ध्यान करते हैं। नित्यानन्द ज्ञानात्मक आप में निरन्तर मन रखते हुये बिजली के समान क्षणिक प्रकाश देने वाले, आपका, अपरोक्ष दर्शन होने के बाद वे फिर पहले के अपने स्वातंत्र्य का दुरभिमान त्यागते हुये मुक्त होते हैं ।।36।। **मूलश्रुतिः-** ब्रह्मज्ञात्वेति इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली महारव श्रुतिः।

हे पुरूषसार ! इति सदजानताम् मिथुनतो रतये चरताम् !

हे पुरुषोत्तम आप दोषरहित हैं। इसको न समझते हुये आपको छोड़कर स्त्री सुख को ढूढ़ते हुये भागने वाले को -

आद्य ! स्वनिरस्तभगे विजने को न्विह सुखयति ?

हे **सुअनिरस्तभग** नित्य ऐश्वर्यशाली **वि-जन** जनन को प्राप्त न होने वाले मोक्ष में रखकर कौन सुख देता है ? इसके लिए -

ऋषय इह भुवि पुण्यतीर्थ सदनाः ।

ऋषियों, ज्ञानियों और ज्ञानी होना चाहने वाले **इह भुवि** इस कर्म भूमि में भागीरथी इत्यादि पुण्य तीर्थों में अथवा सच्छास्त्र नाम के तीर्थों में **सदन** घर करके रहने वाले तीर्थ यात्रा करते हुये निष्काम कर्म से अंतःकरण शुद्धि को पाते हुये शास्त्राभ्यास करने वाले -

अघभिदं भवतः पदांबुजं हृदा निविशन्ति ।

पाप परिहार करने वाले आपके चरण कमल को मन में धारण करते हुये निरन्तर ध्यान करते हैं।

नित्यसुखे चिदात्मनि त्वयि सकृत् मनःदधति ।

नित्यानन्द, ज्ञानात्मक शरीर वाले आप में मन लगाए रखते हैं। एक बार किसी क्षण में आकाश की बिजली के समान आपका दर्शन एक क्षण के लिए पाते हैं।

पुनः हरावसथं नोपासते ।

पुनः पहले जैसे **हर-अवसथं** शिव के अभिमानास्पद अहंकार को यानी स्वातंत्राभिमान को नही करते, मोक्ष को ही पाते हैं।

तेईस

यह जगत मिथ्या है। उसका जीव को छोड़कर अन्य पालक नही है। इस प्रकार कुतर्क करने वाले भी आपकी ही इच्छा से वाद करते हैं क्योंकि उनका तर्क कभी-कभी व्यभिचरित होता है,कभी-कभी बाधित होता है। अद्वैत श्रुति भी अनेकार्थक पदप्रयोगों से तत्व निर्णय करने में स्थिर चित्त न होने वाली भ्रांति को पैदा करती है। आपके बहुत गुणों को वे अल्प शब्दों से कहते हैं। उसके तात्पर्य को ठीक तरह से न जानने वाले वंचित होते हैं। इस प्रकार वे वेद विरुद्ध कल्पना से अंध परम्परा को इस जगत में प्रसार करते हैं ।।37।। **मूलश्रुतिः**- ये जीवमीशं प्रवदन्ति इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली विपरीत श्रुतिः।

इदं अपि वदंति चेद् अथो ।

इस जगत में कई लोग **अ-पि** जीव से अलग पालक नही है, ऐसे मिथ्यावाद कुतर्क से कहे तो वह **अथो** पालक आपकी इच्छा से ही होता है।

तर्का व्यभिचरंति ननुक्वचित्, क्वचित् मृषा च ।

कई स्थानों में उनके तर्क व्यभिचरित होते हैं, और कई स्थानों में बाधित होते हैं। प्रत्यक्ष आगमों के सहाय नही मिले तो व्यभिचार और बाधा होना स्वाभाविक है।

भारती च भयदृग् व्यवहितये ।

भारती वेद वाणी भी **भयदृक्** डरपोक लोगों को, बुद्धिहीनों को, कही गयी बातों को ठीक तरह से न समझने वाले स्थिरचित्त न रहने वाले लोगों को **व्यवहिति** भ्रांति उत्पन्न करने के

लिए उत्प्रेरक है इस प्रकार लगता है।

तवोरु वृत्तिभिरूढ़जवा भ्रमति ।

उरुवृत्तिभिः आपके बड़े (प्रचुर, अत्यधिक) गुणों को अल्प शब्दों में कहने के लिए **ऊढ़जवा** जोर से दौड़ते हुये **भ्रमति** अनेक अर्थ वाले ब्रह्मार्थक शब्दों का प्रयोग करते हैं।

ततो विकल्पः परंपरया अन्वहं उषितः ।

इसी कारण **वि-कल्प** वेद विरूद्ध कल्पना करते हुये अंध परम्परा का **अन्वहं** सदाकाल के लिए **उषितः** विस्तार होता रहता है।

चौबीस

जीव जन्म लेने के पहले गर्भवास करता है। उस समय गर्भ में उसको दुःख होता है। इसी कारण उसको ईश्वरत्व नही हो सकता। मरण के बाद नरकादि दुःख का अनुभव करने के कारण वहाँ भी ईश्वरत्व नही है। ऐसे रहने वाले जीव को आगे पीछे न रहने वाला ईश्वरत्व बीच में जीवन काल में कहाँ से आता है ? ईश्वर में जीव अभेद की प्रेरणा कई लोगों को ईश्वर से ही होती है। सर्वोत्तम आप और जीव में अभेद बोलना सफेद झूठ है। इस अभेद भ्रांति से जीव को श्रीमान् सत्कुलज इत्यादि साक्षी विरुद्ध कल्पना मार्गों से कई लोग स्तुति करते हैं। यह आसुरी बुद्धि कल्पना जाल है। इसको ज्ञानी जानते हैं ।।38।। **मूलश्रुतिः- स्मरन् ब्रह्म** गुणान्नित्यं इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली कौशिक श्रुतिः।

यदिदमग्रे नास,निधनात् भविष्यत् न अतोऽन्तरा मृषा ।

जीव को जन्म के पहले गर्भावास में दुःख होता है। उस समय उसको ईश्वरत्व नही होता। मरण के बाद नरकादि दुःख होता है। तब भी ईश्वरत्व नही आता। दोनों के बीच के काल में ईश्वरत्व कहाँ दिखता है। यदि दिखता है तो वह **मृषा** सफेद झूठ है।

अनिमित्तकं विभाति मृषा एकरसे त्वयि ।

तो भी जीव में जो ईश्वरत्व हो सकता है, वह **अ-निमितकं** अकार वाच्य ईश्वर की प्रेरणा से ही उसका भास होता है क्योंकि जीव **मृषा एकरस** और **मृषात्वं** हैं। उसका **एकरस** सर्वोत्तम होना असत्य है। वह **त्वं** तुम ही हो यह भी असत्य है। ऐसा होते हुये उसमें ईश्वरत्व को देखने के लिए ईश्वर की प्रेरणा के बिना और कारण नही है। उसको **तमः** तमका साधन हो इसके लिए भगवान उस रीति से प्रेरणा देते हैं।

अतः द्रविणजाति विकल्पथैः उपगीयते ।

ईश्वर से अभेद भ्रांति से जीव श्रीमान् और श्रेष्ठकुल वाला ऐसे **वि-कल्पपथ** अपने मन के विरूद्ध कल्पना मार्गों से स्तुति करते, कराते रहता है। वास्तव में केवल भगवान सही अर्थ में श्रीमान् और उत्तम कुल वाले हैं। क्योंकि उसके लिए योग्य तप इत्यादि सद्गुण वाले हैं।

अतो वितथमनोविलासमिदमिति बुधा अवयन्ति ।

इस कारण से यह मिथ्या, आसुरी बुद्धि का केवल कल्पना और विलास मात्र है। इसको ज्ञानी ठीक तरह से समझता है।

पच्चीस

वेदों द्वारा स्तुति किए जाने वाले आपके गुणकर्मों को उपासना करने वाला ज्ञानी, गुरु द्वारा बताए गये श्रवण, मनन व ध्यान को करने वाला अपरोक्ष को पाते हुये प्रारब्ध भोगने के बाद मुक्त होता है और अपनी योग्यता के अनुसार सारूप्य आदि मोक्ष पाता है। इसके लिए भी वह स्वतंत्र नही है। आप ही उसके जीवाच्छादक, परमाच्छादक बंध को हटाते हुये जैसे साँप अपने केंचुल को छोड़ देता है, जीव के दोनों आच्छादको का नाश करने के लिए अनुग्रह करते हैं। आप अष्ट ऐश्वर्य वाले हैं। अपरिमित सद्गुण वाले आप उनमें रहकर उन्ही से अपनी पूजा करवाते है ।।39।।

मूलश्रुतिः- स्मरन् ब्रह्म गुणान्नित्यं इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली कौशिक श्रुतिः।

पुमान अनुगीत गुणांश्च जुषन् अनुउदगात् ।

जीव **अनुगीत** वेद में बताये गये आपके गुणों को गुरुमुख से **जुषन** श्रवण करते हुये मनन और ध्यान से अपरोक्ष को पाकर **उदगात्** मुक्त होता है।

तदनु स्वरूपतां भजति ।

तदनु अपरोक्ष से लिंग भंग होने के बाद गुणोपासना के अनुसार **सरूपताम्** सारव्य आदि मोक्ष को **भजति** पाता है।

परमात्त भगा तां त्वं अहिरिव त्वचं जहासि उत जिहासि ।

श्री हरि **परम** परमात्मा से **अत्त** खींचे हुए **भग** आच्छादन शक्ति वाले जीवाच्छादक, परमाच्छादक प्रकृति को (दुर्गा देवी को) ज्ञानी **अहिरिव त्वचं** साँप जैसे अपने ऊपर की केंचुल को छोड़ता है वैसे **जहासि** छोड़ने के लिए प्रेरणा देते हैं। **जिहासि** नाश करने के लिए प्रेरणा देते हैं।

अष्टगुणः अपरिमेयभगः त्वं महसि महीयसे च ।

आप अष्ट ऐश्वर्य सम्पन्न हैं, अपरिमित सद्गुण वाले होकर अज्ञानी में रहते हुये आपकी पूजा आप ही करवाते हैं।

छब्बीस

हे भगवन ! कई सन्यास वेष धारण करते हुये सन्यासी बन जाते हैं। किन्तु हृदय में विषयों की कामना करते हुये ज्ञान शून्य होकर उनको छोड़कर ऊपर न उठे तो उनके हृदय में रहते हुये भी आप उनको सरलता से नही दीखते। तब दुर्जनों का हाल क्या होगा ? आप उनको सर्वथा दिखने वाले नही हैं। अपने गले में धारण की हुई माला भूलने पर स्वयं वह दीखती नही। यह भी उसी प्रकार है। विवेक

ज्ञान से विषयभोग को त्यागते हुये जो मिलता है उसी से तृप्ति पाने वाले योगी को आप यम के भय से दूर रखते हैं। क्योंकि इस संसार में जो विषयासक्त हैं उनको यम पूर्व सूचना के बिना कोई न जान पाए ऐसे खींच लेते हैं। आपके वैकुण्ठ में उसका प्रवेश ही नही होता है ।।40।। **मूलश्रुतिः-** स यथा कामो भवति इति आद्य श्रुतिः।

हे भगवान् यतयो यदि हृदि कामजड़ाः ।

हे भगवन ! सज्जनता को दिखाने वाले यतिवेष धारण करते हुये हृदय में विष कामना भर के जड़ हुये ज्ञान शून्य बने, तो -

हृदिगतोऽपि दुरधिगमः असताम् ।

हृदय में रहते हुये भी आप उनको सुलभता से नही दीखती। दुर्जनों को कदापि नही दीखते।

अस्मृत कंठमणिः ।

अपने गले में रहने वाली माला भूलने से अपने को जैसे नही दीखती वैसे ही दुर्जन को आप दीखते नही।

अनुतृप्त योगिनामभयः ।

विषय भोग को अलं बुद्धि से त्याग कर जो मिला है उससे तृप्ति पाए हुए योगी को में आप ज्ञानी को मोक्ष में अभ को देते हैं।

भवतः अनवगतांतकात् अनधिरूढ़ पदात् ।

भवतः आपकी आज्ञा से **अनवगत** यहाँ कोई भी न समझे ऐसे आने वाले यम को **अनधिरूढ़ पद** वहाँ वैकुण्ठ में क्या काम है ? ऐसे **अन्तकात्** यमधर्म से ज्ञानी को आप अभय देते हैं।

सत्ताईस

सबसे अधिक श्री हरि को समझने वाली लक्ष्मी देवी हैं। श्री हरि उनके भी स्वामी हैं श्री हरि के बिना अन्य कोई लक्ष्मी देवी के ऊपर स्वामित्व नही रखता है। श्री हरि के ऊपर कोई स्वामित्वन ही रखता ऐसे श्री लक्ष्मी नारायण के विषय में केवल शरीर की बातें अथवा केवल वेदों की बातें बोधक नही हो सकती हैं। यदि उनको समझना है तो ऋजुयोगियों के उपदेश की परम्परा की सहायता से उनको समझ सकते हैं क्योंकि ऐसे ऋजुयोगियों की सहायता के बिना कितने ही समय तक अध्ययन करे तो भी वे प्रकाश में आ नही पाते।साथ ही साथ इसके लिए योग्यता की भी आवश्यकता है। छिलके में रहने वाला धान सुरक्षित रहता है, और उसको धूल का सम्पर्क नही होता। इसी प्रकार तामस लोगों को श्रुतियों का हृदय कभी मालूम नही होता। राजस लोगों को कभी-कभी थोड़ा-थोड़ा दृष्टिपथ होता है। सात्विकों को केवल उनकी योग्यता के कारण ऋजुयोगी श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य जी का सर्वमूल उपदेश

परम्परा की सहायता से ठीक तरह से मिलता है। केवल वे लोग वेदोक्त कर्मों को करते हुये मोक्ष भागी होते हैं ।।41।। **मूलश्रुतिः**- जानाति प्रकृतिर्विष्णुं महोपनिषद् श्रुतिः।

तदवगमार्थसितासितयोः ।

त्रिगुणाभिमानी होने के कारण **गुण** मानने वाली रमा और **वि-गुण** त्रिगुण रहित नारायण ये दोनों मिलकर गुण-विगुण होते हैं।

देहभृतां सगिरः न अनुयुयुः ।

स-गिरः = गीः यानि वागेन्द्रिय। उससे युक्त पंचज्ञानेन्द्रिय और **गीः** यानी वाक् वेद वाणी भी हैं। देहधारी में पंचेन्द्रिय, वाक् और वेदवाक्य मध्व शास्त्र के अनुसारी न हो तो **न अनुयुयुः** रमानारायण की योग्यता के अनुसार नही समझा सकते।

अत्र हंस कुल गीत परंपरया अनुयुयुः ।

`**अत्र**` इस संसार में `**हंस**` कहलाने वाले ऋजुयोगियों के वंश वाले, सनकादि परम्परा से आने वाले जो उपदेश देते हैं, परम्परा के सहकार से **अनुयुयुः** उनके योग्यतानुसार निश्चित रूप से बोध होता हैं।

श्रुतयः तुषावरणा इव वयसा सह रजांसि वान्ति ।

तुषावरणाः छिलके में रहने वाले धान **वयसा सह** बहुत दिन के बाद भी **रजांसि न वान्ति** धूल के सम्पर्क में नही आता। उसी प्रकार श्रुति का कितने ही वर्ष अभ्यास करे तो भी राजसिक तामसिक लोगों को वे बोधक नही बनती।

बन्धनाः त्वयि सफलं पतन्ति, न पतन्ति, पतन्ति, न पतन्ति ।

विधि निषेध रूप बंधक बनने वाली श्रुतियों ने सात्विकों को **त्वयि** आप का यथार्थ बोधन करते हुये मुक्ति फल देते हैं। **सफलं पतन्ति** सात्विकों को योग्य फल देते हैं। तामसिक को `न पतन्ति` सफल फल नही देते हैं। राजसिकों को **पतन्ति न पतन्ति** एक बार बोध होता है और एक बार बोध नही होता।

श्री भगवान नारायण कहते हैं - योगसिद्ध ब्रह्मा जी के पुत्र सनकादि ने भगवान के इस तत्व शास्त्र को सुनकर परमात्मतत्व को जानकर सनन्दन की प्रशंसा की ।।42।।

उनसे पूर्विक सनकादि ऋषि आकाश नामक भगवान के आश्रय में रहने वाले महात्मा हैं। वे इस प्रकार सकल वेद पुराण और उपनिषदों के सार को निकालकर रखें हैं ।।43।।

ब्रह्मापुत्र हे नारद जी ! इस परमात्मा को जानने का तत्वशास्त्र लोगों की दुष्ट कामनाओं का **निधनं** नाश करता है। सात्विक कामनाओं के **निधनं** आश्रय देता है। ऐसे इस शास्त्र को मुझसे उपदेश रूप में पाया हुए तुम श्रद्धायुक्त होकर उसको सदाकाल मन में धारण करते हुये भगवान की आराधना

करो ।।44।।

शुकदेव कहते हैं - हे राजा परीक्षित ! इस प्रकार नारद जी गुरु नारायण मुनि से उपदेश पाकर श्रद्धा से मनोनिग्रह करते हुये परलोक साधना में वीर व्रत की धारणा करते हुये कृतकृत्य होकर गुरू के सामने कहते हैं ।।45।।

नारद जी कहते हैं - अपने प्रतिबिम्ब रूपी समस्त प्राणियों को जो धारक होकर अभयदान करते रहते हैं ऐसे निर्मल स्वरूप भगवान श्री कृष्ण को नमस्कार ।।46।।

इस प्रकार नारद जी आदिऋषि नारायण मुनि को नमस्कार करते हुये निर्मल अन्तःकरण वाले अपने शिष्यों से विदाई लेकर मेरे साक्षात् पिता बादरायण आश्रम को आ गये ।।47।।

भगवान वेदव्यास जी नारद जी का सत्कार किये। नारद जी आसन ग्रहण करते हुये नारायण मुनि के मुँह से जो उपदेश पाये थे उसे **श्रुतिगीता** नाम के ज्ञान सागर को कहते हुये वेदव्यास जी की स्तुति किये ।।48।।

हे राजा परीक्षित, त्रिगुण रहित अवाच्य भगवान को मन कैसे जान सकता है, श्रुति कैसे कह सकती है। इस प्रकार तुमने हमारे सामने प्रश्न रखा था। तुम्हारे प्रश्न को हम समाधान कारक उत्तर दे चुके हैं ।।49।।

भगवान नारायण इस जगत की उत्पत्ति स्थिति और संहार को करने वाले हैं। प्रकृति पुरुष के नियामक हैं, जगत की सृष्टि करते हुये नियमन करते हुये अन्दर प्रवेश करके रहते हैं। ऋषि रूप से भागवत पुराण की रचना किए हैं। भगवान के अपरोक्ष ज्ञान को पाया हुआ संसारी जीव, रात में घोसले में सोये हुए पक्षी के समान सुबह होते ही उसको छोड़कर चला जाता है, उसी प्रकार अपरोक्ष ज्ञान को पाकर, बंधक बना हुआ जीव दोनों विध की प्रकृति को छोड़ देता है। भगवान सर्वोत्तम हैं, उनकी सृष्टि कोई नही करता। वे भयरहित हैं, भय निवारक हैं। ऐसे श्री हरि का निरन्तर ध्यान करते रहना चाहिए ।।50।।

श्रुति गीता सारांश

दशम स्कन्ध के अन्तिम भाग में आने वाली श्रुति गीता साधक समाज के लिए भागवत की एक अनूठी देन है। हमने उसको यहाँ विस्तार रूप से संस्कृत भाषा के सौंदर्य को नष्ट न करते हुये व्याकरण के विषयों के साथ विषय को समझाने का प्रयास किया है। किन्तु संस्कृत न जानने वाले और खासकर व्याकरण के नियमों को याद रखना कष्ट होने वाले लोगों के लिए आगे आने वाले तीन चार पन्नों में श्रुति गीता का सारांश भाषा में देने का प्रयास हम कर रहे हैं। यह केवल अर्थ की इच्छा करने वाले मुख्य विषय का स्वाद पा सकें इस दृष्टि से हम पाठकों के सामने यह सारांश प्रस्तुत करते हैं।

भगवान अनन्त वेदों से वेद्य हैं। इस विषय में नारद और नारायण के बीच संवाद रूप श्रुति गीता सारे संशयों का परिहार करती है। नारद जी बदरीनाथ के नारायण ऋषि के सामने वेदों के प्रवृत्ति के बारे में जब पूछे तब नारायण जनलोक में सनन्दन मुनि सनकादियों को दिये हुये प्रवचन के विवरण को कहते हैं।

सनन्दन मुनि इस प्रकार कहते हैं - श्री हरि लय काल में लक्ष्मी के साथ और लक्ष्मी के श्री भू रूपों के साथ वटपत्र के ऊपर सोये थे। लयकाल के अन्तिम भाग में लक्ष्मी देवी वेदाभिमानी दुर्गा के रूप में श्री हरि का स्तोत्र की हैं। सोये हुये राजा को उषःकाल में जैसे स्तुति पाठक स्तुति करते हुये जगाते हैं, वैसे दुर्गा देवी श्री हरि की स्तुति कर रही हैं।

एक - हे अजीत, आपकी जय हो, आप जगें, आपको जीव जड़ की सृष्टि करनी हैं। आप द्वारा सृष्टि करने के बाद हम वेदाभिमानी दुर्गा रूप वाले विधि निषेध के सहयोग से आपके प्रीत्यर्थ कर्म करने के लिए जीव को प्रेरित कर सकते हैं।

दो - प्रकृति की अभिमानी दुर्गा से भी आप बड़े हैं, आप सर्वोत्तम हैं। ज्ञानी त्रिकरण पूर्वक आपकी सेवा करते हैं। वे अपने मन से आपके अनेक गुणों को समझने के लिए शक्त न होते हुये भी अपने शक्ति के अनुसार कई गुणों को जान सकते हैं। आपके स्वरूप में से पूर्णत्व का एक अंश को जान लिया तो वे आपको समझ लिए यही अर्थ होता है क्योंकि मानव सारे भूमण्डल की परिक्रमा कर नही सकता तो भी थोड़े भाग की यात्रा करने से उसको भू परिक्रमा का फल मिलता ही है।

तीन - संसार में रहने वाले जीव आपकी कथामृत में डुबकी मार कर अपने सारे तापों का परिहार कर लेते हैं तो मुक्त लोग आपको प्रत्यक्ष देखकर भजन करने वाले अपने सारे तापों से परिहार पाते हैं इसको प्रत्येक रूप से क्यों कहना है ।

चार - ब्रह्मादि देवताओं को नियमन करने वाले आपसे द्वेष करने वाले तमस में गिरकर लोहार की भाँथी की तरह दुःख से श्वांस छोड़ना पड़ता है। आपका द्वेष न करने वाले आपके बारे में योग्य उपदेश देने वाले मुक्ति पाते हैं।

पाँच - आप पेट में उदर नाम से शार्कराक्ष्य मुनियों से हृदय में रहते हुये हृदय नामक आरूणि मुनियों से सिर में चक्षुरादि नियामक होकर चक्षुरादि इन्द्रिय देवताओं से आराधना पाने वाले मुख्यप्राण को सामने रखते हुये इस जगत के सारे क्रिया कारित्व को चलाते हैं। इस प्रकार जो आपकी उपासना करते हैं वे सारे मुक्ति पाते हैं।

छः - लकड़ी में रहने वाला आग लकड़ी के जैसे रहता है। उसी प्रकार जीवों में रहने वाले

आप जीवों की तरह बर्ताव करते हैं। अन्य लोग उसको देखकर आप जीवीं की तरह दुःखी हैं। ऐसा समझते हैं। किन्तु आप सर्व कर्ता हैं इसको केवल मुख्य प्राण जानते हैं। प्रतिक्षण बदलने वाले इन शरीरों में रहने वाले आप न बदलते हुये सदाकाल एक प्रकार से रहते हैं। इस प्रकार समझने वाले मुक्ति पाते हैं।

सात - जीवों के तारतम्य के अनुसार उसी तारतम्य से ही आपका सन्निधान उनमें रहता है। दुराचारियों में आप रहते हुये वे जो दुराचार करते हैं उसी को आप उनमें रहने वाले ब्रह्मादि देवताओं के पूजा रूप में उसको स्वीकार करते हैं। बाहर व्यास, बुद्ध इत्यादि रूपों से देव और असुरों को आप जो प्रेरणा देते हैं वह आपने करने वाला आपकी पूजा है। आप सबके अन्तर्यामी होकर जो प्रेरणा देते हैं वह आपकी ही पूजा है।

आठ - आपको वेदों से जानकर वेदोक्त कर्मों से आराधना करते हुये ध्यान करे तो अपरोक्ष ज्ञान होता है। बाद में ज्ञान पूर्वक वैराग्य से आपका भजन करे तो मुक्ति मिल जाती है।

नौ - आपके एकान्त भक्त आपकी आराधना के फल स्वरूप में मोक्ष को भी नही चाहते। आपकी आराधना के लिए वे अपने लौकिक घर इत्यादि सकल सम्पदाओं को त्याग कर आते हैं। वे अपने इस बाह्य जड़ शरीर को भी आपकी आराधना के साधन रूप में लभ्य होता है। इसके लिए अपने शरीर की रक्षा करते हैं। इसको वे अपने स्वरूप शरीर के समान देखते है। वे आपको प्रियकर स्वामी समझते हुये आराधना करते हैं।

दस - आपके स्वरूप को अपलाप करते हुये अन्यथोपासना करना आपकी हत्या के समान है। ऐसे पापियों को तिल मात्र सुख न रहने वाला नित्य दुःखरूप अंधःतमही एक मात्र गति है। तम में गिरने के बाद भी वे वहाँ भी अन्यथोपासना करते हैं। इस प्रकार आपसे द्वेष करने वाले और आपके भक्तों से द्वेष करने वाले तमोभागी होते हैं। वे सारे आत्महन्ता पापी होते हैं क्योंकि भक्तों में करने वाले द्वेष को आप अपना द्वेष ही समझते हैं। आप अत्यन्त भक्त वत्सल हैं। मोक्ष साधन रूप ज्ञान को पूर्ण प्रमाण में वायुदेव पाये हैं। उनके अनुग्रह से आपको हृदय में जो ध्यान करते हैं वे ही आपके भक्त हैं।

ग्यारह - आप अपने भक्तों से केवल भक्ति की अपेक्षा करते हैं। अन्य कुछ आप चाहते नहीं। शेष देव के भक्ति से प्रसन्न आप उनके ऊपर सोते हैं। इस प्रकार की आपकी महिमा को हम उसके उन्नति के अनुसार में नही स्तुति कर सकते हैं। किन्तु वेदाभिमानी हम अपने शक्ति के अनुसार स्तुति करते हैं। इतना स्तुति हम कर रहे हैं इसको सुनने के लिए और कोई नित्य मुक्त नही है। ब्रह्मादि देवता आपसे जन्म पाते हैं वे भी नित्य मुक्त नही हैं। हम दो को छोड़कर और कोई नित्य मुक्त नही है।

आप जीवों की तरह बर्ताव करते हैं। अन्य लोग उसको देखकर आप जीवों की तरह दुःखी हैं। ऐसा समझते हैं। किन्तु आप सर्व कर्ता हैं इसको केवल मुख्य प्राण जानते हैं। प्रतिक्षण बदलने वाले इन शरीरों में रहने वाले आप न बदलते हुये सदाकाल एक प्रकार से रहते हैं। इस प्रकार समझने वाले मुक्ति पाते हैं।

सात - जीवों के तारतम्य के अनुसार उसी तारतम्य से ही आपका सन्निधान उनमें रहता है। दुराचारियों में आप रहते हुये वे जो दुराचार करते हैं उसी को आप उनमें रहने वाले ब्रह्मादि देवताओं के पूजा रूप में उसको स्वीकार करते हैं। बाहर व्यास, बुद्ध इत्यादि रूपों से देव और असुरों को आप जो प्रेरणा देते हैं वह आपने करने वाला आपकी पूजा है। आप सबके अन्तर्यामी होकर जो प्रेरणा देते हैं वह आपकी ही पूजा है।

आठ - आपको वेदों से जानकर वेदोक्त कर्मों से आराधना करते हुये ध्यान करे तो अपरोक्ष ज्ञान होता है। बाद में ज्ञान पूर्वक वैराग्य से आपका भजन करे तो मुक्ति मिल जाती है।

नौ - आपके एकान्त भक्त आपकी आराधना के फल स्वरूप में मोक्ष को भी नही चाहते। आपकी आराधना के लिए वे अपने लौकिक घर इत्यादि सकल सम्पदाओं को त्याग कर आते हैं। वे अपने इस बाह्य जड़ शरीर को भी आपकी आराधना के साधन रूप में लभ्य होता है। इसके लिए अपने शरीर की रक्षा करते हैं। इसको वे अपने स्वरूप शरीर के समान देखते है। वे आपको प्रियकर स्वामी समझते हुये आराधना करते हैं।

दस - आपके स्वरूप को अपलाप करते हुये अन्यथोपासना करना आपकी हत्या के समान है। ऐसे पापियों को तिल मात्र सुख न रहने वाला नित्य दुःखरूप अंधःतमही एक मात्र गति है। तम में गिरने के बाद भी वे वहाँ भी अन्यथोपासना करते हैं। इस प्रकार आपसे द्वेष करने वाले और आपके भक्तों से द्वेष करने वाले तमोभागी होते हैं। वे सारे आत्महन्ता पापी होते हैं क्योंकि भक्तों में करने वाले द्वेष को आप अपना द्वेष ही समझते हैं। आप अत्यन्त भक्त वत्सल हैं। मोक्ष साधन रूप ज्ञान को पूर्ण प्रमाण में वायुदेव पाये हैं। उनके अनुग्रह से आपको हृदय में जो ध्यान करते हैं वे ही आपके भक्त हैं।

ग्यारह - आप अपने भक्तों से केवल भक्ति की अपेक्षा करते हैं। अन्य कुछ आप चाहते नहीं। शेष देव के भक्ति से प्रसन्न आप उनके ऊपर सोते हैं। इस प्रकार की आपकी महिमा को हम उसके उन्नति के अनुसार में नही स्तुति कर सकते हैं। किन्तु वेदाभिमानी हम अपने शक्ति के अनुसार स्तुति करते हैं। इतना स्तुति हम कर रहे हैं इसको सुनने के लिए और कोई नित्य मुक्त नही है। ब्रह्मादि देवता आपसे जन्म पाते हैं वे भी नित्य मुक्त नही हैं। हम दो को छोड़कर और कोई नित्य मुक्त नही है।

बारह - लयकाल में यह स्थूल प्रपंच नही रहता है। सृष्टिकाल में आप उसकी सृष्टि करते हैं। आपको सृष्टि और लय नही है। इसके लिए आप प्रपंच विलक्षण हैं। इस रहस्य को वायु के अनुग्रह से ज्ञानी लोग समझकर उपासना करते हैं। आप उनकी बातों से गोचर होकर उनकी स्तुति को स्वीकार करें।

तेरह - जीव इस जगत में त्रिगुणों से बधे रहते हैं। इसका कारण परमात्म के तत्वज्ञान का अभाव ही है। भगवान को यह तत्वज्ञान सदा के लिए जागृत रहता है। इसके लिए आप में त्रिगुण बंधत्व कैसे रह सकता है। अवतारों में भगवान को वह तत्वज्ञान नही रहता है। इसके लिए आपकों उस समय त्रिगुण बंधत्व रहता है। इसको अवतार तत्व को जानने वाले सज्जन स्वीकार नहीं करते हैं। अवतारों में भी आपको त्रिगुण बंधत्व नही रहता।

चौदह - हमें सोना चाहिए, किन्तु सोने से बने हुये गहने नही चाहिए। ऐसे कोई कह नही सकता क्योंकि दोनों एक ही हैं। आपके मूल रूप और अवतार रूपों में भी ऐसे ही समानता है, भेद नही है। इस प्रकार स्वगतभेद रहित होकर आप सारे तत्वों में अन्तर्गत होकर रहते हैं। इस प्रकार आपकी उपासना करने वाले मुक्ति पाते हैं।

पन्द्रह - बैल का यजमान उनको नाक में नथनी डाल के प्यार से उनकी रक्षा करते हैं। उनसे सेवा लेते हैं। उसी प्रकार आप मोक्ष पाने की इच्छा वाले को प्यार से वेदोक्त विधि निषेधों से बन्धित रखकर उनसे कर्म करवाते हुये उनके ऊपर अनुग्रह करते हैं। इसी कारण मुमुक्षु लोग आपकी आराधना करते हुये सुख पाते हैं।

सोलह - सामन्त राजा ने जैसे सार्वभौम राजा को उपहार देते हैं वैसे ही ब्रह्मादि देवता आपकी पूजा करते हैं। आप मोक्ष देने वाले हैं। इस प्रकार वेदों में आपने ही बताया है। आप ही मोक्षदायक हैं तो बन्धक भी आप ही हैं।

सत्रह - वायु जीवोत्तम और आप सर्वोत्तम हैं। अन्य सारे जीव स्वरूप से अनादि नित्य होते हुये भी वायु के कारण देह धारण करके जन्म लेते हैं, वे स्वतंत्र नही हैं। एकमेवाद्वितीयं इस प्रकार श्रुति जो कहती है उसका अर्थ जीव आपसे अभिन्न हैं, अधीन नही ऐसा नही होता। क्योंकि **अतोऽन्य दार्तं** इस श्रुति वाक्य से सारे जीव आपके अधीन हैं यह अर्थ होता हैं।

अट्ठारह - हे रमा नारायण आप दोनों कभी जन्म नही लेते इसके लिए आप **अज** हैं। बाकी अन्य जीव पानी के ऊपर बुलबुले के समान आपसे जन्म लेते हैं। आपको ठीक तरह से जानने वाले गुरु के उपदेश से वे जीव जनन-मरण रूप इस संसार से मुक्ति पाते हैं।

उन्नीस - अमृत रस के समुद्र में सारे रस जैसे रहते हैं। उस प्रकार सारे देवों के नाम और

उनकी महिमा आप में छिपी है। आपके ये सर्व विलक्षणों को ज्ञानी लोग आपके अनुग्रह से ही आकर मुक्ति पाते हैं।

बीस- इक्कीस - आपके अंग सायुज्य को पाने वाले योग्यता के देवता भी गुरु के अनुग्रह के बिना संसार सागर को पार कर आपको नही पा सकते हैं। बिना कप्तान वाले जहाज में प्रयाण करने वाले व्यापारी जैसे दुःख का निश्वास छोड़ते हैं वैसे गुरु के अनुग्रह के बिना निश्वास छोड़ना पड़ता है। क्योंकि आप उनकी साधनाओं को नही स्वीकारते हैं। नियत गुरु मिलने के बाद ही आप उनके साधनाओं को स्वीकारते हैं।

बाईस - आपको न समझते हुये लौकिक सुख को ढूँढ़ने वाले को मोक्ष भी नही मिलता सुख भी नही मिलता। आप को ठीक तरह से समझकर उपासना करते हुये एक बार आकाश के बिजली के समान रहने वाले आपके अपरोक्ष को पाने के बाद वे पुनः अपने स्वातंत्र्य के अभिमान को पुनः नही मानते वे मुक्त हो जाते हैं।

तेईस - यह जगत मिथ्या है। उसको जीव को छोड़कर और कोई पालक नही है। इस प्रकार कुतर्क से कई लोग वाद करते हैं। यह भी आपकी इच्छा से ही होता है। क्योंकि शुष्क तर्क से कुछ भी साधित नही होता। वह कई जगह व्यभिचरित होता है, कई जगह बाधित होता है। अद्वैत श्रुति भी तत्व निर्णय में स्थिर बुद्धि जिनको नही है उसको भ्रामक बनती है। उसके तात्पर्य को न जानने वाले उससे वंचित होते हैं। इस प्रकार वेद विरूद्ध कल्पनाएँ अंध परंपरा से इस जगत में प्रसारित होती हैं।

चौबीस - जीव को जन्म पाते समय गर्भवास दुःख को अनुभव करना पड़ता है तो तब वह भगवान नही है। मरने के बाद जीव को नरक दुःख रहता है, तब भी वह भगवान नही है। इस प्रकार आगे-पीछे जो भगवान नही है, वैसे वह बीच में कैसे भगवान बनता है। भगवान ही जीव बनता है ऐसे कई लोग मानते हैं। यह भी भगवान आपकी प्रेरणा से ही होता है। इस प्रकार सर्वोत्तम आप में जीव का अभेद बोलना गलत है। अभेद भ्रांति जीव को साक्षी विरूद्ध कल्पना मार्ग से ले चलता है। यह आसुरी बुद्धि के कल्पना विलास हैं। इस प्रकार ज्ञानी लोग समझ लेते हैं।

पच्चीस - वेदोक्त आपके गुणों को गुरू मुख से क्रम से उपासना करने वाले अपरोक्ष को पाकर प्रारब्ध कर्म छूटने के बाद मोक्ष को पाते हैं। इसमें भी जीव स्वतंत्र नही है। उसके ऊपर के जीवाच्छादक परमाच्छादक ये दोनों बंधक शक्तियों को आप द्वारा खींचने के बाद ही वह जीव जैसे साँप अपने केचुल को छोड़कर क्रियाकारी बनता है वैसे जीव दोनों आच्छादकों से प्रकृति के सम्बन्ध को नाश करता है। वह आपकी पूजा करने में भी स्वतंत्र रीति से समर्थ नही है। आप ही उसके अन्दर रहते हुये उससे अपनी पूजा आप ही करवाते है।

छब्बीस - सज्जन लोग विषयों की आशाओं को न त्यागते हुये यतिवेश धारण करे तो आप उनके हृदय में रहते हुये भी उनके दृष्टि को नही मिलते। दुर्जनों को तो आप मिलने वाले ही नही हैं। गले में मणि को धारण करने वाला उसको भूलकर उसको ढूँढ़ते रहता है। मणि उसको दिखती नहीं इसी प्रकार विषय लालसा में लिप्त सज्जन को आप दिखते नहीं। विषयों की आशा को त्यागने वाले योगी को आप यम का भय दूर करते हुये रक्षा करते हैं। यहाँ संसार में विषयासक्त जो हैं उसको यम एक दिन किसी को न देखते हुये आकर उठाकर ले जाते हैं किन्तु यहाँ वैकुण्ठ में यम का दरबार नही चलता।

सत्ताईस - लक्ष्मी नारायण के बारे में सही ज्ञान केवल श्रुतियों से ही नही आता है। उसके लिए ऋषि योगियों के व्याख्यान के उपदेश की परम्परा का सहाय अवश्य चाहिए। इसके साथ ही जीव की योग्यता भी आवश्यक है। जब तक धान छिलका में रहता है, तब तक सुरक्षित रहता है। उसके लिए धूल का सम्पर्क नही आता। उसी प्रकार वेद में बताया गया तत्व राजस तामस लोगों के समझ में नही आता। सात्विक लोग उसको समझ सकते है। वे वेदोक्त मोक्ष के साधनों को साधते हुये मोक्ष पाते हैं।

इस प्रकार सनन्दन मुनि श्रुतिगीता का प्रवचन किये। उसको सुनकर सनकादि ऋषि उनकी प्रशंसा करते हैं। यह श्रुतिगीता सकल वेद, पुराण, उपनिषदों का सारसंग्रह है। यह दुष्ट कामनाओं को दूर करते हुये सात्विक कामनाओं को बढ़ाती हैं। नारद जी नारायण मुनि से इसको सुनकर कृतकृत्य बने।

यहाँ श्रुतिगीता समाप्त होती है। सनन्दन मुनि के अनुसार यह सकल वेदोपनिषद् पुराणों का सार है। नित्य इसका पाठ, प्रवचन करने वाले सज्जन बनते हैं, सद्भक्त बनते हैं। उनकी मनोकामना पूर्ण होती है और वे नारद जी के समान कृतकृत्य होते हैं।

।। इति श्रुतिगीता समाप्ता ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में छियानबे अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सत्तानबे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे महामुने, राजा बहुलाश्व और निर्धन श्रुतदेव को अनेक तरह से सन्तोष दिलाकर भगवान श्री कृष्ण द्वारका को वापस आने के बाद और क्या लीला किये। उसको मेरे लिए कहिये ।।1।।

श्री शुकदेव कहते हैं - पाण्डव बारह वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञात वास को पूर्ण कर उत्तरगोग्रहण के समय कौरवों को जीत कर **बलेन महता** सैन्य संख्या दृष्टि से देखें तो कौरवों से कम होते हुये भी शरीर सामर्थ्य दृष्टि से **बलेन महता** बल से अत्यन्त महिष्ठ उपप्लाव नगर में शिविर बनाकर रह रहे हैं। यह समाचार श्री कृष्ण सुने ।।2।।

वे भू-भार हरण करने का समय आ चुका है, यह समझकर मन में सन्तोष पाकर सात्यकि कृतवर्म, उद्धव, शठ, सारण और सुभद्रातनय अभिमन्यु सहित बड़े सैन्य को लेकर चल पड़े। सत्य प्रतिज्ञ सर्वज्ञ श्री कृष्ण युधिष्ठिर को देखने के लिए एक अक्षोहिणी सैन्य के साथ शंख दुंदुभि का नाद घोष करते हुये उपप्लाव को चले। मरण के समीप रहने वाला मूर्ख दुर्योधन कुरू पाण्डवों में सन्धि कराने आये श्री कृष्ण को बन्धक बनाने का प्रयत्न किया। उस समय महाबाहू श्री कृष्ण ने अपने विश्व रूप को सबको दिखाया ।।3,4,5,6।।

विश्वरूप दर्शन से कौरवों में घोरभय उत्पन्न करने के बाद भगवान श्री कृष्ण पाण्डवों के पास आये। कौरव पक्ष में रहने वाले राजा पाण्डवों के साथ मात्सर्य बढ़ाते हुये क्रोध से युद्ध करने एक साथ मिलकर आये। वे सन्धि को मान्य नही किए धर्मराज युधिष्ठिर श्री कृष्ण को सामने रखते हुये युद्ध के लिए अपने भाइयों के साथ कुरुक्षेत्र गये। वहाँ महाबुद्धिशाली मद्रराज विराट अपने पुत्र समेत एक अक्षोहिणी सैन्य सहित युधिष्ठिर के साथ चले। युद्ध प्रिय सात्यकि श्री कृष्ण के आदेशानुसार एक अक्षोहिणी सैन्य को युधिष्ठिर के पीछे किये ।।7,8,9,10,11।।

धर्मराज के मामा पाँच केकेय राजा एक अक्षोहिणि सैन्य सहित उनके साथ चले। राजा धृष्टकेतु शैब्य ये दोनों एक अक्षोहिणि सैन्य को धर्मराज के पीछे किये ।।12,13।।

श्री कृष्ण को सामने रखते हुये पाण्डवों का यह सारा सैन्य कुरूक्षेत्र की पावन स्थली में दुर्योधन की राह देखते हुये शिविर में रहने लगे। इधर अहंकारी दुर्योधन अपने सौ भाईयों, द्रोण, भीष्म, कृप, अश्वत्थाम, कर्ण, बाल्हिक, शकुनि, हार्दिक्य, साल्व, शल्य, भगदत्त, जयद्रथ के साथ कुरुक्षेत्र में आया ।।14,15,16।।

वीर दुर्योधन अनेक देशों से आये हुये बहुत से राजाओं के साथ शंख, दुंदुभि, भेरि, पटह इत्यादि वाद्यों से दसों दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए भूमि को हिलाते हुये कुरुक्षेत्र में आया। इस प्रकार कुरु पाण्डव कुरुक्षेत्र में मिलकर समन्त पंचक में सूर्योदय काल में व्यूह रचना कर युद्ध के लिए सिद्ध हुए। दुरात्मा कौरवों के पक्ष में ग्यारह अक्षोहिणी सैन्य था ।।17,18,19।।

वनवास में बहुत कष्ट भोगे पाण्डवों का सैन्य केवल सात अक्षोहिणी था। पाण्डव-कौरव अपने-अपने सैन्यों के साथ व्यूह रचना कर सिद्ध होकर खड़े थे। उस समय गाण्डीवधारी अर्जुन कवच तुरीय,दोनों हाथों में चर्म का रक्षा कवच धारण कर रथ पर सवार शत्रु सैन्य का निरीक्षण किये ।।20,21।।

सैन्य में द्रोण आदि गुरू, पिता और बाबा के समान भीष्म, बाल्हिक आदि राजा, भाई जैसे कौरव, शकुनि, सल्य जैसे मामा, बहन के पुत्र, शिष्य, पौत्र, बहनोई और अतिथि बन्धुओं को देखकर अर्जुन उनको मारने के लिए सिद्ध नही हुआ। युद्ध करने से अपने मन को हटा लिया ।।22।।

मन बुद्धि में विषाद लेकर बन्धु कारूण्य से शत्रुवध करने के लिए सिद्ध नही हुआ ऐसे अर्जुन को श्री कृष्ण अपने स्वरुप सामर्थ्य से उसके सामने खड़े होकर गीतोपदेश करते हुये, अन्दर रहते हुये अन्तर्यामित्व रूप से प्रेरणा देते हुये युद्ध के लिए सिद्ध किये ।।23।।

अर्जुन द्वारा की बन्धुओं के प्रति करूणा से शस्त्र को जमीन पर रखते हुये युद्ध रंग में निष्क्रिय होकर बैठने के समय भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को विश्वरूप का दर्शन दिये ।।24।।

श्री कृष्ण के उपदेश को सुनकर अर्जुन उन्ही की सामर्थ्य से युद्ध करने के लिए गाण्डीव, कोदण्ड को हाथ में उठाया ।।25।।

महाभारत युद्ध प्रारम्भ हो रहा है।यह सुनकर उसको रोंकने में असमर्थ बलराम आगे क्या करें। इस चिन्ता में डूब गये ।।26,।।

महाभारत युद्ध प्रारम्भ हो गया यह देखकर बलराम उद्वेग से दुःखित होकर तीर्थ यात्रा का बहाना करते हुये सबको त्याग कर बहुत दूर चले गये ।।27।।

पाण्डव पक्ष का महारथी धृष्टद्युम्न सेनापति बना। कौरव सैन्य के कुरु पितामह वृद्ध श्रेष्ठ भीष्म सेनापति बने। वे दस दिन पर्यन्त घनघोर युद्ध करते हुये दसवें दिन युद्धक्षेत्र में गिर गये ।।28।।

उसके बाद दुर्योधन ने भारद्वाज के पुत्र द्रोणाचार्य को सेनापति बनाया। हे राजा परीक्षित ! सुनो। द्रोणाचार्य पाँच दिन तक युद्ध किये ।।29।।

शत्रु द्वारा सामना करने में असाध्य बल वाले द्रोणाचार्य युद्ध करते समय दुरात्मा जयद्रथ द्वारा तुम्हारे पिता अभिमन्यु को युद्धक्षेत्र में वंचना से मरवा दिया ।।30।।

हे राजा ! पुत्र शोक से दुःखित अर्जुन ने दूसरे दिन सायंकाल होने के पहले जयद्रथ को मार डालने की प्रतिज्ञा की ।।31।।

उसी रात नींद में सोए हुए अर्जुन के स्वप्न में श्री कृष्ण आकर उनको अपने दाहिने कंधे के ऊपर बिठाकर गरूड़ के ऊपर बैठ कर कैलास पर्वत को ले गये ।।32।।

श्री कृष्ण द्वारा स्वयं समर्थ होते हुये भी अनुग्रह करने वाले नियत गुरू से ही उपदेश दिलवाना चाहते है। अर्जुन के नियत गुरू भगवान रूद्र हैं। अर्जुन को रूद्र से उपदेश दिलाने का संकल्प श्री कृष्ण किये थे। पहली बार वनवास के समय अर्जुन को इन्द्रकिल पर्वत पर उपदेश मिला था। अब दूसरी बार उपदेश पाने से अस्त्र का बल ज्यादा हो जाता है। इसके लिए रात के स्वप्न में अर्जुन के एक अंश को भगवान श्री कृष्ण उठाकर अपने कंधे के ऊपर रखते हुये गरूड़ारूढ़ होकर कैलास पर जाकर शिव से पाशुपतास्त्र का उपदेश दिलवा दिये। उसके पहले एक सरोवर में एक हजार फणा से युक्त सर्प रूप में रहने वाले शिव अपने धनुष बाणों को लाने के लिए अर्जुन को बताए। अर्जुन को वे धनुष बाण केवल स्पर्श मात्र से हाथ में आये। गुरू शिष्य दोनों अपने-अपने धनुष में बाण जोड़े। गुरू मंत्र का उपदेश दिये। शिष्य गुरु के धनुष उसके शिंजनी पकड़ा हुआ रूद्र की मुष्टि को ठीक तरह से देखते हुये गुरू ने बताया हुआ मंत्र का उच्चार किया और प्रार्थना किया कि मंत्र को द्विगुण शक्ति मिले। गुरू तथास्तु बोलकर आशिर्वाद दिये। बाद में अर्जुन धनुष बाणों को उसी सरोवर में डाल दिया। इस प्रकार अर्जुन अस्त्रोपदेश को पाकर शिविर में सोए हुए अपने शरीर के साथ हो गया। यह भगवान श्री कृष्ण की अचिन्त्य, अद्भुत शक्ति है।

स्वप्न देखते समय एक नियम है। **मनस्यंतस्तु तैजसहः** । मन के अन्दर रहने वाले तैजस नामक श्री हरि देह में रहने वाले वासनामय मन में अनेक पदार्थों को स्वप्न में दिखाते

हैं। यह माण्डूक उपनिषद् का वाक्य है। किन्तु बृहादरण्यक उपनिषद् में (6.3.12) **बहिष्कुलायादमृतश्चरित्वा** जीव एक अंश से सोए हुए शरीर की रक्षा करते हुये दूसरे अंश से उसको शरीर से बाहर निकालते हुये स्वप्न को दिखाकर पुनः उसको पहले अंश में जोड़ देते हैं। यह काम तैजस नामक श्री हरि करते हैं। भाष्य में यह स्पष्ट होता है। इसी कारण हम स्वप्न में अपने ही शरीर रूप क्रिया आदि को देखते हैं।

अस्त्रोपदेश स्वप्न में पाने के बाद जागृत में वह मंत्र कैसे आया इस प्रश्न का उत्तर भी यहाँ मिल जाता है।

कैलास पर्वत पर जाकर वहाँ शिव को देखकर श्री कृष्ण उनसे बाते करते हुये अर्जुन को पाशुपतास्त्र का उपदेश दिलवा देते हैं। इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण अपने संकल्प के अनुसार कार्य करते हुये अपने अचिन्त्याद्भुत शक्ति से साधना करते हुये सुबह होने के पहले रणरंग में दोनों आ जाते हैं ।।33।।

दूसरे दिन जन नाश करने वाला घनघोर युद्ध हुआ उसमें महाबलशाली बहुत से राजा मरण पाये ।।34।।

युद्ध निपुण बहुत से राजकुमारों को मारने के बाद उस दिन के शाम होने के समय अर्जुन जयद्रथ को मार डाले ।।35।।

द्रोणाचार्य आलस्य न करते हुये पाँच दिन घनघोर युद्ध करते हुये पाँचवे दिन शाम को धृष्टद्युम्न से मरण पाये ।।36।।

बाद में कर्ण सेनापति बनकर दो दिन महायुद्ध किया। तीसरे दिन दोपहर में ही अर्जुन उसको युद्ध में संहार किया ।।37।।

हे राजा परीक्षित सुनो, आधा दिन के लिए शल्य सेनाधिपति बना। दोपहर में धर्मराज ने उसका हनन किया ।।38।।

अन्त में बहुत दीर्घकाल से परस्पर युद्ध करने वाले वीर भीम और दुर्योधन क्रोध से परस्पर एक-दूसरे को मारने लिए गदा को लेकर युद्ध किये ।।39।।

इतने में - अटठारह दिन के इस युद्ध में अटठारह अक्षोहिणी सैन्य का नाश हुआ था। उनके अधिपति सारे राजाधिराज महाविनाश पा चुके थे। यह सारा युद्ध साढ़े सत्रह दिन में हो चुका था ।।40।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में सत्तानबे अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अट्ठानबे

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ॥

राजा परीक्षित कहते हैं - अट्ठारह अक्षोहिणी सैन्य को केवल अट्ठारह दिन में इच्छा मात्र से नष्ट करने वाले विश्वलयमूर्ति श्री कृष्ण को नमस्कार ।।1।।

श्री कृष्ण की कथाओं में उनकी लीलाएँ भरी रहती हैं। उनको सुनते-सुनते आनन्द में परवाशता हो जाता है, आश्चर्य और भय भी होता है ।।2।।

नाश न होने वाले मेरे सारे पाप इस कथा श्रवण से नष्ट हो गए हैं ऐसे मैं समझता हूँ। मेरी इन्द्रिय जागृत हो गयी हैं। मन स्वच्छ हो गया है ।।3।।

भूख,प्यास भाग गयी है, आत्मा आनन्दविभोर हो गयी है। हे धर्मज्ञ महामुने ! आपके अनुग्रह से मेरा जन्म सफल हो गया ।।4।।

हे तपोधन ! मैं आपसे और भी अंशों में कथा को सुनना चाहता हूँ। आपने कहा कि बन्धुओं को युद्ध करते देखकर उनको रोक सकने में असमर्थ बने बलराम तीर्थ यात्रा को चले गये। वे क्या किये उसके बारे में कहिये ।।5,6।।

श्री शुकदेव कहते हैं - बलराम कौरवों, पाण्डवों के बीच में किसी का पक्ष न लेते हुये तटस्थ होकर तीर्थ यात्रा करने द्वारका से निकल पड़े। वे प्रभास क्षेत्र में स्नान करते हुये देव, ऋषि पितृ मानवओं को तृप्त करने के बाद ब्राह्मणों के साथ सरस्वती प्रवाह के अभिमुख होकर आगे बढ़े। पृथूदक, बिन्दु सरोवर, त्रितकूप सुदर्शन तीर्थों में अवगाहन किये ।।7,8।।

हे राजा, बलराम बाद में विशाल तीर्थ, चक्रतीर्थ, प्राचीन सरस्वती तीर्थों में स्नान करने के पश्चात यमुना और गंगा जी के तट पर संचार किये ।।9।।

बाद में बलराम नैमिषारण्य गये। वहाँ शौनकादि महर्षि दीर्घकाल का सत्र यज्ञ कर रहे थे। बलराम को देखकर सत्र चला रहे सारे ऋषिमुनि खड़े होकर स्तोत्र करते हुये विधि पूर्वक उनका स्वागत सत्कार किये। बलराम वहाँ अपने ब्राह्मण परिवारों के साथ सत्कार पाकर आसन के ऊपर बैठ गये ।।10,11।।

वहाँ महामुनि वेदव्यास जी के शिष्य रोमहर्षण नाम का सूत पौराणिक बैठा था। वह

बलराम जी को देखकर न उठा और न नमस्कार किया। इसको देखकर बलराम कुपित हो गये और बोले - यह सूत है तो भी ब्राह्मणों के सामने उनसे भी बड़े एक उच्चासन में बैठा है ।।12,13।।

धर्मरक्षक हमारे से भी उन्नत आसन में बैठा है। दुरहंकारि है, व्यासमुनि का शिष्य होकर बहुत अध्ययन करने के बाद भी ऐसा कर रहा है ।।14,15।।

मनोनिग्रह न करने वाले इसके लिए ये सारा पुराण प्रवचन नाटक के रंगमंच पर नटना करने वाले नट के जैसे है। ये सारे प्रयोजन के लिए नही है। लोक में दिखने वाले ऐसे दुष्टों के निग्रह के लिए मैं अवतार लिया हूँ ।।16।।

धर्म का मुखौटा पहने हुये ऐसे बड़े पाप करने वाले को मैं मार डालूँगा यह कहते हुये भगवान बलराम तीर्थ यात्रा काल में दुष्ट निग्रह छोड़ देना था तो भी हाथ में रहने वाले कुश से उसका वध कर दिये। भगवद् इच्छा के अनुसार यह होने वाला था। इसको देखकर ऋषि मुनियों ने मन में दुःखित होकर हाहाकार किया ।।17,18।।

ऋषिगण संकर्षण रूपी बलराम को कहते हैं - हे प्रभु आपने जो किया वह धर्म सम्मत नही है। हमने ही सूत पौराणिक को अपने लिए पुराण की कथा सुनाने के लिए आग्रह पूर्वक योग्य और ब्राह्मण से उन्नत स्थान दिये था ।।19।।

सत्र समाप्ति तक दीर्घायुष रहे इसका भी वर दिये थे। आप अज्ञ के समान इसको मारकर ब्रह्महत्या दोष पाये हैं। स्वयं योगेश्वर होने के कारण वस्तुतः वेद का विधि निषेधों का बन्धन आप को नही है ।।20।।

किन्तु हे लोक पावन ! आप इस ब्रह्म हत्या के लिए प्रायश्चित् दूसरों की प्रेरणा के बिना करे तो इस जगत के लिए उत्तम आदर्श बनेगा ।।21।।

रोमहर्षण का अर्थ रोमांचन होता है। इनके द्वारा पुराण को सुनकर लोगों के रोम खड़े हो जाये इस उ-श्य से वेदव्यास जी अपने शरीर के रोमों से रोमहर्षण को जन्म दिये।

ब्राह्मण स्त्री में क्षत्रिय से जन्म लिया हुयी प्रतिलोम जाति को सूत कहते हैं। रोमहर्षण उस प्रकार जन्म नही लिए थे तो भी व्यास जी की इच्छा से सूत बने थे। सूत क्षत्रिय से कम माना जाता है। किन्तु यहाँ ब्राह्मणों ने उसको उन्नत स्थान में बैठाया था, और दीर्घायुष भी दी थी। बलराम इसको जानते थे तो भी भगवान की इच्छा के अनुसार कुपित होकर वध किये यह ब्रह्म हत्या हो गयी। अपरोक्ष ज्ञानी देवोत्तम बलराम को इससे दोष नही है। किन्तु अज्ञानी भी ऐसा न करें इसके लिए नैमिषारण्य वासी ब्राह्मण बलराम को प्रायश्चित्त करने की प्रार्थना किए।

बलराम कहते हैं - लोक कल्याण की इच्छा को रखते हुये मैं इस ब्रह्म हत्या का प्रायश्चित् करता हूँ। उत्तम कल्प के प्रायश्चित् के लिए क्या-क्या नियम है वो सारे बता दीजिए ।।22।।

मैं इस रोमहर्षण को दीर्घायुष्य, व्रतप्रवचन, सामर्थ्य दूर श्रवण, इन्द्रिय पाटव इत्यादि आपकी इच्छा के अनुसार सारे वरों को योग बल से दे देता हूँ ।।23।।

बलराम की बातों को सुनकर ऋषियों ने कहा - आपके दर्भास्त्र और योग सामर्थ्य दोनों सत्य हो। इसका मरण और हमारे द्वारा इसको दिये हुये दीर्घायुष्य ये भी सत्य हो। इनमें कोई भी असत् न हो इस प्रकार आप वर दें ।।24।।

बलराम कहते हैं - ऐसा है तो रोमहर्षण का पुत्र आज से पुराण कथा चालू रखें। उसके आयुष, इन्द्रिय, पाटव और प्रवचन सामर्थ्य पिता के समान आगे बढ़े। श्रुति कहती है - **आत्मावै पुत्र नामासि** पिता ही अपने पुत्र के रूप में जन्म लेता है ।।25।।

यहाँ बलराम जी कहते हैं कि - रोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रव आगे कथा चलायें। रोमहर्ष का आयुष समाप्त हुआ था। उसके मरण का समय आ गया था। यदि मैं उसको पुनर्जीवित करूँ तो मेरा दर्भास्त्र व्यर्थ होता है। आप लोगों द्वारा इसको दिए दीर्घायुष को मैं इसके पुत्र को दिया तो पिता का कार्य पुत्र आगे बढ़ाता है। पिता का ज्ञान पुत्र में आये इस प्रकार मेरा वर और आपका वर दोनों के बल से यह उग्रश्रव कथा वाचक बने।

हे मुनिवर्य ! इससे ज्यादा आपकी अपेक्षा क्या है ? बोलिये। मैं उसको पूर्ण करता हूँ। साथ में आप लोग मेरे द्वारा प्रायश्चित् के बारे में क्या करना है उसको बोलिये ।।26।।

तब ऋषि कहते हैं- इल्वल का पुत्र बल्वल नाम का घोर दानव हर वर्ष पर्व काल में हमारे सत्र में आकर यज्ञ का नाश करता है ।।27।।

आप उस पापी का संहार करें। बलराम जी, आप द्वारा उसका संहार करना हमारे लिए बड़ी सेवा होगी। वह यहाँ आकर हमारे यज्ञ कुण्ड में मल-मूत्र, मद्य मांस, और रक्त को डालता है ।।28।।

बल्वल के संहार के बाद आप अपना मनोनिग्रह करते हुये समग्र भारत खण्ड में संचार करते हुये बारह मास पर्यन्त सकल तीर्थों में स्नान करें तब आप पाप निवृत्ति होकर पुण्यवान बन जायेंगे ।।29।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में अट्ठानबे अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - निन्यानेबे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा परीक्षित ! पर्वकाल आ गया था। उसी समय प्रचण्ड वेग से धूल उड़ाने वाली आँधी और तूफान चला। मल की दुर्गन्ध वाला झंझावात चारों ओर फैल गया ।।1।।

बाद में यज्ञशाला परिसर में बल्वल मल बरसाने की इच्छा से शूल धारण करते हुये वहाँ आया ।।2।।

बल्वल का काला देह बड़े पहाड़ के समान दिखती थी। गर्माये हुये ताँबे के तार के समान उसके लाल-लाल बाल, दाढ़ी और मूँछ दिखाई देते थे। उसकी उग्र भौंहे और तप्तमुख को बलराम ने देखा ।।3।।

उस समय बलराम अपने मुसल और हल का याद किये। यह दोनो आयुध शत्रु सैन्य के दैत्यों का संहार करने वाले हैं। वे दोनों बलराम के अगल-बगल में आकर खड़े हो गये ।।4।।

बलराम तीर्थ यात्रा में थे। व्रतस्थ होकर संचार करने के कारण आयुध धारण नही करते थे। हाथ में केवल कुश को धारण किये थे। अब राक्षस के वध के लिए अपने शस्त्रों की याद किये। जब-जब बलराम उनकी याद करते थे तब वे बलराम के हाथ में आ जाते थे।

क्रोध से लाल हुये बलराम ने ब्राह्मण द्रोही गगन संचारी बल्वल को अपने हल से नीचे जमीन पर गिराकर मुसल से उसके सिर पर प्रहार किया ।।5।।

बलराम उस प्रहार से बल्वल का सिर फट गया। मुँह से रक्त गिरने लगा। उस समय वह राक्षस इन्द्र के वज्रायुध से जैसे पहाड़ गिर जाता है वैसे जमीन पर गिर गया ।।6।।

इन्द्र जैसे वृत्रासुर का वध किये उसी प्रकार बल्वल को बलराम मार डाले। यह देखकर ऋषि मुनियों ने संतुष्ट होकर बलराम की स्तुति की हीरे-मोती की माला पहनाते हुये अमूल्य वस्तुओं से अभिषेक किया ।।7।।

उन्होंने अत्यन्त सुन्दर कभी भी न मुरझाने वाले कमलों से बनी हुयी वैजयंतीमाला, दिव्य वस्त्रों, और दिव्याभरणों को समर्पित किये ।।8।।

बाद में बलराम मुनियों की आज्ञा पाकर ब्राह्मण परिवारों के साथ चल कर कौशिकी नदी में स्नान किये। बाद में सरयू नदी के उद्गस्थान मानस सरोवर में स्नान किये ।।9।।

वहाँ से सरयू किनारे से चल कर प्रयाग तीर्थ पहुँचे। वहाँ त्रिवेणी संगम में स्नानकर देवों

ऋषियों, पितरों की आराधना करते हुये पुलहाश्रम को चले ।।10।।

गोमती, गण्डकी, विपाशा नदियोंमें स्नान करने के बाद शोण नाम की महानदी में स्नान किये। बाद में गया क्षेत्र जाकर पितृयज्ञ किये। तदनन्तर गंगासागर संगम में स्नान किये ।।11।।

बलराम के माता-पिता, बाबा-नाना सारे जीवित हैं। ऐसे होते हुये वे कैसे गया श्राद्ध किये इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है। बलराम वहाँ पितृ श्राद्ध नही किये। पितृनिष्ठा, पितृयज्ञ, चातुर्मास इस प्रकार अग्निहोत्र के समान पितृयज्ञ एक नित्यकर्म है। उसमें साकमेध नाम के पर्व में महापितृयज्ञ कर्म आता है। सोम पितृमान्, सात अग्निष्वात् और छः बर्हिषपाद नाम के पितृगण इस यज्ञ के देवता बनते हैं। उनको इस अग्नि में आहुति देनी होती है। जिनके माता-पिता जीवित हैं उन्हे भी इस यज्ञ को करना चाहिए जिनके माता-पिता चले गये हैं उनके लिए पितृ, पितामह, प्रपितामह इनको पिण्ड देने का अवकाश है। जिनको अधिकार नही है, उन्हे इसको नही करना चाहिए।

अथवा पिता की आज्ञा से वैराज, अग्निष्वात्, बर्हिषद, शुकाल, अंगिरस, सुस्वधा, सोमप नाम के सप्त पितृगण को सारे लोग आराधना कर सकते हैं। अथवा पिता की आज्ञा के अनुसार पितामह, प्रपितामह की आराधना कर सकते हैं। जीवत पितृ हों तो गया यात्रा नही करना चाहिए इसका अर्थ श्राद्ध करने के लिए नही जाना। किन्तु विष्णुपाद दर्शन के लिए यात्रा कर सकते हैं।

महेन्द्र पर्वत पर परशुराम के दर्शन करके उनको नमस्कार करने के बाद गोदावरी जहाँ सात भागों में समुद्र से मिलती हैं वहाँ स्नान करने के बाद दक्षिण के कृष्ण वेणी, पंपा सरोवर में स्नान कर भीमरथी नदी में पुण्य स्नान किये ।।12।।

षणमुख के दर्शन करने के बाद मल्लिकार्जुन के शिवक्षेत्र श्रीशैल का दर्शन करने के बाद द्राविड़ देश में स्थित महापुण्यकर वेंकटाद्री जाकर वहाँ प्रभु श्री बाला जी का दर्शन किये ।।13।।

कामकोटि, कांचीपुरी का दर्शन करते हुये श्रेष्ठ नदी कावेरी में स्नान करने के बाद श्री हरि के विशेष सन्निधान वाले श्री रंग क्षेत्र का दर्शन किये ।।14।।

हरि क्षेत्र ऋषभाचल, दक्षिण के मदुरै और महापातक नाश करने वाले समुद्र सेतु का दर्शन किये ।।15।।

वहाँ बलराम ने ब्राह्मणों को दस हजार गायों का दान दिया। कृतमाला, ताम्रपर्णी नदियों में स्नान करके मलय नाम के कुल पर्वत का दर्शन किये ।।16।।

मलय पर्वत पर रहने वाले अगस्त्य मुनि को नमन करते हुये नामगोत्र पूर्वक नमस्कार करके उनसे आशीर्वाद पाये। उनकी आज्ञा के अनुसार वे दक्षिण समुद्र की ओर चले गये ।।17।।

वहाँ कन्याकुमारी नाम से प्रसिद्ध दुर्गा देवी का दर्शन किये। वहाँ से आगे बढ़कर श्रेष्ठ फल्गुन तीर्थ और पंचाप्सर तीर्थ में स्नान किये ।।18।।

पंचाप्सर तीर्थ में विष्णु का विशेष सन्निधान है। वहाँ स्नान करके दस हजार गायों का दान दिये। वहाँ से आगे चलकर अनन्तशयन क्षेत्र को चले। वहाँ भी हरि का विशेष सन्निधान है ।।19।।

वहाँ से केरल इत्यादि क्षेत्रों से त्रिगर्त देश में संचार करते हुए कर्नाटक के गोकर्ण नाम के शिव क्षेत्र का संदर्शन किये। वहाँ महाबलेश्वर का सन्निधान है ।।20।।

गोकर्ण में वेदव्यास जी से मिलकर वहाँ से शूर्पाली को चले। तदनन्तर तापि, पयोष्णी, निर्विद्या नदियों में स्नान करते हुये दण्डकारण्य में प्रवेश किये ।।21।।

वहाँ से रेवाक्षेत्र स्थित नर्मदा नदी तट पर आये जहाँ कार्तिवीर्यार्जुन का माहिष्मती नाम का शहर है। वहाँ अनुतीर्थ में स्नान करके पुनः वापस प्रभास क्षेत्र आये ।।22।।

वहाँ के ब्राह्मणों से कौरव पाण्डव युद्ध में सारे क्षत्रिय नष्ट हुये यह वार्ता सुने। तब समझे कि भू-भार हरण के लिए श्री कृष्ण ने यह युद्ध रचाया है ।।23।।

ब्राह्मणों ने आगे बताया कि भीम दुर्योधन गदा युद्ध में लगे हैं। इसको सुनकर उस युद्ध को रोकने के उ‌द्देश्य से युद्ध भूमि में चले आये ।।24।।

वहाँ युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, श्री कृष्ण और अर्जुन सहित सारे लोग बलराम को नमस्कार किये। बाद में बलराम क्या कहना चाहते हैं इसको सुनने के लिए चुप होकर खड़े रहे ।।25।।

वहाँ भीम और दुर्योधन दोनों हाथ में गदा लेकर विजय पाने की इच्छा से क्रोध युक्त होकर विचित्र रूप का युद्ध कर रहे थे। उनको देखकर बलराम कहे ।।26।।

हे राजा दुर्योधन ! हे भीम ! तुम दोनों समान वीर और समान बलशाली हो। भीम प्राण माना जाता है और सबसे श्रेष्ठ हैं। यहाँ दुर्योधन जीवन भर अत्याधिक श्रमपूर्वक गदा युद्ध का अभ्यास किया है ।।27।।

इसी कारण पराक्रम में समान तुम दोनों युद्ध में न जीतते, न हारते। ऐसे होते हुये व्यर्थ यह युद्ध क्यों करते हो, रूक जाओ ।।28।।

बलराम की इन बातों के अनुसार युद्ध रुका तो भीम को कुछ लाभ नही होता किन्तु राजा दुर्योधन को लाभ होता था। नृपार्थवत् इस शब्द का अर्थ यही होता है। किन्तु इसको न मानते हुये वे दोनों अपने युद्ध को आगे बढ़ाये ।।29।।

इनका प्रारब्ध यही हैं, भगवान की इच्छा यही है। इसको कोई बदल नही सकता। इस प्रकार निश्चय करते हुये बलराम द्वारका को वापस जाते हैं। उग्रसेन इत्यादि बन्धु उनको आदर सत्कार देते हैं ।।30।।

अद्भुत कार्यों को करने वाले अप्रमेय, अनंत बलशाली बलराम के इस प्रकार असंख्य कार्यों को भक्ति पुरस्सर जो कहता है और जो सुनता है वह विष्णु का प्रिय होता है ।।31।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में निन्यानबे अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सौवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - भगवान श्री कृष्ण अपने संकल्प के अनुसार भू-भार हरण के कार्य को इस प्रकार कौरव, पाण्डव युद्ध के रूप में पूर्ण करते हुये महाबाहु दुर्योधन गदा की मार खाकर गिर जाने के बाद उस रणभूमि को छोड़कर हस्तिनावती को जाने की सिद्धता करने लगे। उस समय रथियों में श्रेष्ठ कृप, कृतवर्म और अश्वत्थाम ये तीनों दुर्योधन के सैन्य में बचे हुए थे। पाण्डवों के सैन्य में श्री कृष्ण को आगे करते हुये युद्ध करने वाले पाँचों पाण्डव महाबलिष्ठ सात्यकि और धृतराष्ट्र के दासी पुत्र युयुत्सु ये सात जीवित रहे थे। इनको लेकर मुनियों और बड़े लोगों के साथ श्री कृष्ण हस्तिनावति को चले। वे वहाँ धृतराष्ट्र से मिलना चाहते थे। वहाँ गांधारि, धृतराष्ट्र और महाज्ञानी विदुर से समाधान की बाते कहीं। पाण्डवों को उनके प्रयत्न के फल स्वरूप हस्तिनावती के सिंहासन पर बिठा कर मुनियों, सूतमागध वन्दीयों से की हुयी स्तुति को सुने ।।1,2,3,4,5,6।।

अपनों से विरह के कारण दुःख में निमग्न पाण्डवों से विदा लेकर भगवान श्री कृष्ण सूर्य के समान चमकने वाले अपने रथ में बैठकर द्वारका चले। पाण्डवों ने आँखों में प्रेमामृत भरे हुये उनके पीछे-पीछे बहुत दूर तक जाकर उनकी विदाई की ।।7।।

शंख दुंदुभियों के नाद, वेद की मंगल ध्वनि और पुण्याह मंत्र के घोष के साथ श्री कृष्ण द्वारका की दिशा में प्रस्थान किये ।।8।।

द्वारका नगरी को श्री कृष्ण के स्वागत हेतु सुन्दर रूप से सजाया गया था। तोरण हवा से लहरा रहे थे। केले के वृक्ष घर-घर के दरवाजों के सामने शोभा देते थे। नगर के सारे लोग पूरे शहर को साफ-सुथरा रखते हुये पानी छिड़क कर प्रत्येक घर को सजाये थे ।।9।।

नगर के महाजन हाथ में नये बोए हुए अंकुरों को पकड़ते हुये श्री कृष्ण का स्वागत किये। आभूषणों से भूषित वैश्यों ने दीप, दर्पण, फूल-माला, फल और अक्षता हाथ में लेकर भगवान का स्वागत किया। पुत्र-पौत्रों के साथ आये हुए पण्डित, ब्राह्मण अपने स्वजनों के साथ आकर श्री कृष्ण का स्वागत किये ।।10,11।।

इस प्रकार दिन में श्री कृष्ण सबकी पूजा स्वीकार करते हुये द्वारका नगर में प्रवेश किये। जगत प्रसिद्ध सुन्दर और दिव्य सुधर्म सभा में प्रवेश करते हुये आहुक, वसुदेव, बलराम और अपनी माताओं को प्रणाम करते हुये अपने लिए रखे हुए सोने के सिंहासन पर सुख पूर्वक बैठ गये। आकाश में ग्रह-नक्षत्रों के बीच शोभायमान पूर्णिमा के चन्द्र के समान वे यादवों की सभा में

भोज, वृष्णी और अंधक इस प्रकार तीन तरह के यादवों के राजा बनकर श्री कृष्ण द्वारका में राज्य कर रहे हैं। वे अपने चरणकमल को स्मरण करने वाले को अपने को ही दे देते है ।।27।।

उनके भजन करने वाले को वे अर्थ, काम को देते है, इस प्रकार अलग क्या बोलना है ? परम पुरुष जगद्गुरु भगवान वे अंत में मोक्ष को भी देते हुये अभीष्ठ को पूर्ण करते हैं। इस प्रकार सुदामा की पत्नी उनसे बहुत प्रार्थना की ।।28।।

इसको सुनकर सुदामा अपने मन में विचार करने लगे। ब्रह्मादि देवताओं से प्रार्थित भगवान श्री कृष्ण का दर्शन करना ही एक बड़ा लाभ है। उसको क्यों छोड़ा जाय इस प्रकार चिन्तन करते हुये वे द्वारका जाने के लिए मन से सिद्ध हुये ।।29।।

हे सुमंगली ! बड़े लोगों के दर्शन को जाना है तो खाली हाथ नही जाना है। इसलिए उनको देने के लिए घर में जो कुछ है उसी को थोड़ा दे दो। लेकिन सुदामा के घर में कुछ नही था। उनकी पत्नी पड़ोसी के घर से चार मूठ भर चावल माँगकर लाई। उनको फटे हुये कपड़े में बाँधकर जगत पति नारायण को देने के लिए पति के हाथ में दे दी। वह ब्राह्मणोत्तम उसी को अपने हाथ में रखते हुये द्वारका को चले ।।30,31।।

श्री कृष्ण का दर्शन अपने को कैसे मिलेगा, सुदामा इस बारे में चिन्तन करते हुये तीन सैनिक शिविरों को और तीन पहरेदारी को पार किये ।।32।।

विष्णु धर्म में रत अंधक व वृष्णियों के बीच में रहने वाली श्री कृष्ण की सोलह हजार रानियों के घर की ओर मुड़कर स्वरूपानन्द अभिव्यक्ति को पाये हुए मुक्त ब्रह्म में प्रवेश करने वाले के समान एक घर में प्रवेश किये। श्री कृष्ण पत्नी के साथ मंच पर बैठे थे। दूर से ही उनको देखकर आदर पूर्वक झट से उठकर सन्तोष से सामने आकर उनके दोनों हाथों को पकड़ते हुये आनन्द पूर्वक आलिंगन किये। प्रिय मित्र ब्राह्मण के आलिंगन से वह अत्यन्त सन्तुष्ट हुये ।।33,34,35।।

कमलाक्ष श्री कृष्ण आनन्दविभोर होकर दोनों आँखों से आँसुओं को बहाते हुये उनको हाथ से पकड़कर अपने मंच पर बैठाये। स्वयं दौड़कर पूजा सामग्री लाकर ब्राह्मण के पाँव धोकर उस पवित्र पादोदक को अपने मस्तक पर धारण किये ।।36,37।।

भगवान श्री कृष्ण दिव्य सुगन्ध अपने हाथ में लेकर सुदामा के शरीर पर लगाये। गन्ध अगरु, कुमकुम इत्यादि सुगन्धभरित धूप दीप से अर्चा करते हुये मित्र का सन्तोष पूर्वक सत्कार किये। तांबूल देकर स्वागत करते हुये सुमधुर बातों को कहे। सुदामा फटे हुये और मलिन वस्त्रों को धारण किये थे। दूर से चलकर आने से थके हुए थे। गरीबी और भूख से अत्यन्त दुबले पतले हो गये थे। शरीर की सारी नसें ऊपर उठकर दिखते थे। मित्रविन्दा देवी उनको चामर से हवा करने लगी ।।38,39,40।।

निर्मल कीर्ति वाले भगवान श्री कृष्ण अवधूत के समान रहने वाले उन ब्राह्मणोत्तम का सत्कार कर रहे हैं, इसको देखकर अन्तः पुरवासी लोग विस्मित हो गये और कहे यह ब्राह्मण अवधूत के समान है। भिखारी लगता है, इस जगत के लोगों का तिरस्कारपात्र है। बिल्कुल छोटा लगता है ऐसे आदमी को तीनों लोको के गुरु श्री निवास इसको इतना बड़ा गौरव दे रहे हैं। बहुशः यह ब्राह्मण पिछले जन्म में बहुत बड़ा पुण्य किया होगा ।।41,42।।

मंच में साथ में रहने वाली लक्ष्मी को त्याग कर भाई बलराम के समान इस ब्राह्मण को आलिंगन दिये हैं। इस प्रकार अन्तःपुरवासी लोग बातें कर रहे थे। उस समय श्री कृष्ण और सुदामा दोनों अपने पीछे के गुरुकुल वास के अनुभव के बारे में आपस में बातें करने लगे ।।43।।

हे राजा परीक्षित, सुनो - श्री कृष्ण, सुदामा दोनों बहुत उल्लसित थे। परस्पर हाथ पकड़े थे बाद में श्री कृष्ण सुदामा से कहते हैं - हे मुनि, तुम गुरु को दक्षिणा देकर समावर्तन करने के बाद योग्य और धर्मज्ञ पत्नी से विवाह किया क्या ? किन्तु लौकिक लोगों की तरह आपका धार्मिक मन पत्नी पुत्रों में आसक्त नही हुआ होगा ।।44,45।।

रामकृष्ण सांदीपनि आश्रम में चौसठ विद्या को पाने के लिए केवल चौसठ दिन मात्र आश्रम में थे। उनके वहाँ से चलने के बाद भी सुदामा और बहुत दिन तक गुरुकुलवास में थे। उनके गृहस्थ जीवन के बारे में कुछ भी मालूम नही है ऐसे इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण पूछ रहे हैं।

घर जमीन आदि सम्पदाओं में तुम्हारा मन अति आसक्ति नही रखता है यह मुझे मालूम है क्योंकि तुम्हारे समान थोड़े लोग विषयों की आशा से मन को खराब न करते हुये दैवाधीन होकर आए हुए देहाभिमान को भी छोड़कर लोगों को अच्छा पाठ सिखाने के लिए धन की आशा न करते हुये मेरे समान निष्काम कर्म करते हैं ।।46,47।।

हे मुनि, हमारे उन दिनों के आश्रमवास के बारे में तुम्हे स्मरण आ रहा है न। त्रैवर्णिक गुरु के पास जानने योग्य विषय को जान लिया तो अज्ञान के परे रहने वाला वैकुण्ठ को पाता है ।।48।।

सारे आश्रम वालों को मेरे समान ज्ञान देने वाला जो ब्राह्मण होता है वह गुरु कहलाता है। इस प्रकार किसी से सत्कर्माचरण होना है तो उसके लिए गुरुकुलवास में रहते समय ब्राह्मण गुरु द्वारा दिये गये अनुग्रह मात्र से यह साध्य होने वाला है ।।49।।

हे महामुने ! गुरु और उनमें रहने वाले मेरे उपदेश पाकर इस संसार सागर को जो ठीक तरह से पार करते हैं वर्णाश्रम में रहने वाले लोगों में वे ही पुरुषार्थ को पाते हैं। सही अर्थ में वे ही ज्ञानी हैं ।।50।।

सर्व जीवान्तर्गत मैं गुरु सेवा से जितना प्रसन्न हो जाता हूँ। यज्ञ से, पुत्र प्राप्ति से, तप से अथवा इन्द्रिय निग्रह से मैं उतना प्रसन्न नही होता ।।51।।

हे मुनि ! हम गुरुकुल में जब वास करते थे उस समय हवन करने हेतु लकड़ी लाने के लिए गुरु पत्नी ने आदेश दिया उनके आदेशानुसार हम लकड़ी लाने गये उस समय जो घटना घटी उसके बारे में तुम्हें याद दिलाता हूँ ।।52।।

मुनि ! हम उस समय बड़े अरण्य में घुस गये। यद्यपि वो बरसात का महीना नही था। तो भी वहाँ घोर आवाज से बिजली चमकने लगी, बादल चलने लगे और तूफान के बाद मुसला धार वर्षा होने लगी ।।53।।

इतने में सूर्यास्त भी हो गया। सारी दिशाएँ अन्धःकार से आवृत हो गयी। जल प्रवाह के कारण भूमि सतह की ऊँचाई-निचाई भी समझ नही आ रही थी ।।54।।

तूफान और वर्षा से त्रस्त हम दोनों जल प्रवाह में परस्पर हाथ पकड़े हुये पूरी रात मार्ग भूलकर जंगल में फिरते रहे ।।55।।

जब सूर्योदय हुआ तब हमको ढूढ़ँते हुये गुरु सांदीपनि हम दोनों के न मिलने के कारण रोने लगे ।।56।।

वे बोले हे मेरे प्यारे बेटों ! तुम लोगों को वर्षा प्रारम्भ होते ही दौड़कर आश्रम में आना था। हमारे लिए तुम कष्ट भोग रहे हो। सबको अपना शरीर बहुत प्रिय लगता हैं। ऐसे में शारिरिक कष्ट को सहते हुये तुम हमारी सेवा कर रहे हो ।।57।।

गुरु की सेवा करने वाले योग्य शिष्य का प्रत्युपकार करना होता है। उन्हे अपनी सकल इच्छाओं को पूर्ण करने वाले अपने शरीर को निर्मल मन से गुरु सेवा के लिए ही उपयोग करना है ।।58।।

हे उत्तम ब्राह्मण पुत्र ! मैं आप से प्रसन्न हूँ। आप जो इच्छा करते हैं वह पूर्ण हो। आपने जो वेदों का अध्ययन किया है वो आपको इह और पर में फल देने में समर्थ बने। इस प्रकार गुरु जी अनुग्रह किये ।।59।।

गुरुकुलवास में ऐसे कष्ट स्वाभाविकरुप से आते हैं। गुरु के अनुग्रह से शिष्य को उनको पार करते हुये योग्य भागी होकर धन्य होना चाहिए ।।60।।

श्री कृष्ण की इन बातों को सुनकर सुदामा कहते हैं -

हे देव-देव, जगद्गुरु, सत्यसंकल्प आपके साथ मैंने गुरुकुलवास किया इससे बढ़कर और पुण्य क्या हो सकता ? ।।61।।

प्रभु ! आपके स्वरुप की स्तुति सकल वेद करते हैं। आप इस जगत की उत्पत्ति के कारण हैं। ऐसे आप वेदों से पाठ किए जाने वाले हमारे साथ गुरुकुलवास किये इससे और बड़ी विडंबना क्या हो सकती है ? ।।62।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में सौवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - एक सौ एक

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

एक मूठ भर चूड़ा (चिउड़ा)

श्री शुकदेव जी कहते हैं - ब्राह्मणोत्तम सुदामा से हँसते-हँसते सम्भाषण करने के पश्चात् सारे जीवियों के मनोगत को समझने वाले, ब्राह्मण प्रिय सज्जनो के पालक भगवान श्री कृष्ण प्यार भरी आँखों से सुदामा को देखते हुये कहे ।।1,2।।

श्री भगवान कहते हैं - हे मुने ! तुम घर से मेरे लिए क्या लाए हो। मेरे भक्त मेरे लिए प्यार से जो कुछ लाते हैं वह कितना भी छोटा क्यों न हो पर मेरे लिए वह बहुत बड़ा है ।।3।।

जो मेरे भक्त नही है वे कितना भी बड़ा उपहार दिये तो भी मुझे उससे सन्तोष नही होता। पत्र-पुष्प फल अथवा जल भक्ति से दिये तो मैं उस को प्यार से ग्रहण करता हूँ ।।4।।

हे राजा परीक्षित ! इस प्रकार श्री कृष्ण के कहने के बाद भी सुदामा लज्जा से अपना मुँह नीचा करते हुये बैठ गये। लाया हुआ चिवड़ा भगवान को नही दिये ।।5।।

सारे जीवियों के मन को समझने वाले साक्षात् भगवान श्री कृष्ण सुदामा के आगमन के उ-श्य को समझते हुये विचार किये। यह मित्र कभी भी सम्पदा को चाहते हुये मेरी आराधना नही किया है ।।6।।

अब भी अपनी पतिव्रता पत्नी के मन के समाधान के लिए मेरे पास यहाँ आया है। अब मैं इसको देवताओं के लिए भी लभ्य न हो ऐसी सम्पत्ति दूँगा ।।7।।

भगवान इस प्रकार चिन्तन करते हुये सुदामा के कपड़ो में छिपे हुए फटे कपड़े में बाँधकर रखे गए चिवड़े को ढूँढ़ कर, ये क्या है ? इस प्रकार विचार करते हुये सुदामा के हाथ से उसको छीन लिए।।8।।

उस चिवड़े से एक मूठी भर कर भगवान उसे अपने मुँह में डालकर खाने लगे। वे दूसरी मूठी चिवड़ा लेने के लिए चले तो महालक्ष्मी रूक्मिणि उनके हाथ को पकड़ लेती हैं ।।9।।

भगवान की घर-घर में जो पूजा की जाती है। वहाँ जो भोग लगता है उसमे रहने वाले अति सूक्ष्म स्वास्थ्यरस को चख लेते हैं। बचे हुए अन्य सूक्ष्मरस को ब्रह्मादि देवताओं को देते हैं। स्थूल अन्न को भक्तों के लिए छोड़ देते हैं। किन्तु अवतारों में स्थूल अन्न में ही एक भाग को ग्रहण करते हुये बचा हुआ अन्न को भक्तों को देते हैं। कृष्णावतार में बचा हुआ पूरा अन्न

की भगवान स्वयं ग्रहण करने चले हैं। इसलिए भगवती श्री लक्ष्मी देवी भक्तों के ऊपर कृपा हेतु उसमें रूकावट लाती हैं। सुदामा के ऊपर रहने वाले स्नेह और वात्सल्य को यह घटना दर्शाती है।

रूक्मिणि कहती हैं - हे जगदीश आप अब तक जितना खाये हैं वह पर्याप्त है जब इस भक्त को सर्व सम्पत की समृद्धि पाने के लिए और आपके सन्तोष के लिए अन्य कोई कारण की आवश्कता नही है ।।10।।

उस रात सुदामा श्री कृष्ण जी के भव्य राजगृह में वास किये। मिष्ठान्न को खाकर उत्कृष्ट जल पीकर सुख पूर्वक शैया में सुखनिद्रा पाये। मन में इन्द्र समान भोग रहा हूँ ऐसा चिन्तन करते हुये आनन्द विभोर हो गये ।।11।।

दूसरे दिन सुबह जगत्पिता स्नेही श्री कृष्ण अपने मित्र सुदामा को नमस्कार करते हुये थोड़ी दूर तक उसके साथ चलकर मार्ग मध्य में उससे विदाई लेकर वापस अपने घर लौटे ।।12।।

मित्र से अपने को कुछ धन-सम्पत नही मिला, भोजन के बाद दक्षिणा भी नही मिली। इस बारे में सुदामा तनिक भी विचार नही किया, मित्र स्नेह में उनको छोड़कर और किसी का विचार ही नही आया। वो भगवान से कुछ नही माँगा। पत्नी पूँछी तो क्या कहुँगा ऐसा विचार जब आया तब लज्जित हो गया। किन्तु भगवान के दर्शन का भाग्य ही बहुत बड़ा है। इसी से मैं सन्तुष्ट हूँ, मुझे और किसी चीज की आवश्यकता नही है ।।13।।

सुदामा मन में चिन्तन करता है। क्या आश्चर्य की बात हैं ? ब्राह्मण प्रिय श्री कृष्ण के ब्राह्मण वात्सल्य को मैने अपनी आँखों से देखा। लक्ष्मी को धारण करने वाली छाती से अत्यन्त दरिद्र मुझको आलिंगन दिये ।।14।।

महापापी दरिद्र कहाँ मैं और श्री रमण भगवान श्री कृष्ण कहाँ? मैं केवल एक दरिद्र ब्राह्मण हूँ, बन्धु और स्नेहितों से दूर हूँ। इसके लिए भगवान मुझको अपने दोनों हाथ से पकड़कर गले लगा लिये ।।15।।

भगवान अपनी प्यारी पत्नी के साथ झूले पर बैठे थे। अपने भाई के समान मुझको पकड़ कर भगवान अपने साथ मुझको झूले पर बैठाये। मैं थका हूँ इसको देखकर उनकी पत्नियाँ अपने हाथ से पंखा चला के मेरी सेवा की ।।16।।

ब्राह्मणों की स्तुति करने वाले देवाधिदेव मेरे आराध्य देव श्री कृष्ण मेरे पाँव को प्यार से दबाये और उत्तम उपचारों से आराधना किये ।।17।।

भक्तों को इस भूमि में, अंतरिक्ष में जो-जो सुख सम्पत मिलती है उनके लिए, इतना ही नही स्वर्ग और मोक्ष के लिए श्री कृष्ण की पाद पूजा ही मूल कारण है ।।18।।

भगवान परम करूणावान् हैं। इस दरिद्र को सम्पत दिया तो यह मत्त होकर मुझको भूल जाता

है। इसी कारण वे मुझे थोड़ा सा भी नही दिये। उनकी कृपा विशेष रूप से मेरे लिए मिली है ।।19।।

इस प्रकार सुदामा मन में **आलोचना** करते हुये हृदय में भगवान श्री कृष्ण का चिन्तन करते रहे। उसी अवस्था में चलते हुये अपने घर को आये। वहाँ देखते हैं। उनका घर बदल गया है। सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा के समान जगमगाने वाले सोने, चाँदी, हीरे, मोती से निर्मित अनेक विशाल विमानों से निर्मित हुए अपने घर को देखा। उस घर के अन्दर उत्कृष्ट सरोवर, उपवन और उद्यान हैं, वहाँ बैठे पक्षी कलरव कर रहे हैं। सरोवर कुमुद, अम्भोज, कह्लार, उत्पल इत्यादि विभिन्न प्रकार के कमल पुष्पों से विकसित हैं ।।20,21।।

भव्य श्रृंगार किये हुये सेवक, हिरण के समान आँखों वाली दासियाँ सामने आये। सुदामा आश्चर्य से पूछता है - अरे ये क्या हुआ है ? यह राजगृह किसका है। यहाँ मेरा जो पुराना घर था वह कहाँ गया? ।।22।।

महाभाग्यशाली सुदामा इस प्रकार **आलोचना** के बीच देवताओं के समान शोभा वाले नर-नारी संगीत और वाद्यों से उनका स्वागत करते हैं ।।23।।

पति की आगमन वार्ता को सुनकर बहुत सन्तोष और सम्भ्रम से भरी हुयी उनकी पत्नी शीघ्रता से घर के बाहर आई। अपने घर नाम के कमल से उठकर आयी हुयी लक्ष्मी के समान वह दिखती थी ।।24।।

वह पतिव्रता पत्नी अपने पति को देखते हुये प्यार की उत्कंण्ठा से अपनी आँखों में आँसू भर कर भरे हृदय से पति को नमन कर, मन में आलिंगन की ।।25।।

सुदामा देखता है कि उनकी पत्नी आनन्द से विमान में संचार करने वाली देव स्त्री के समान दिख रही है। गले में, हाथों में सोने का आभरण धारण किए है। दासियों के बीच में से आकर सुदामा का स्वागत करती है। यह देखकर सुदामा आश्चर्य से विस्मित हो गया ।।26।।

सन्तुष्ट सुदामा पत्नी के साथ घर में प्रवेश करता है। हीरे, सोने, चाँदी से बनाये हुए सैकड़ों खम्भों से निर्मित वह घर देवेन्द्र की सभा के समान दिखता था ।।27।।

उस घर में अनेक कक्ष थे। वहाँ दूध की मलाई के समान श्वेत हाथी दाँत से निर्मित पीठोपकरण, तखत, शैया थे। वहाँ सोने के हत्थे वाले चामर दीखते थे ।।28।।

सोने के सिंहासन, माला, वस्त्र-आभरण और मोती की मालाओं से वह भवन सुसज्जित था ।।29।।

महामरकत मणियों से चित्रित स्वच्छ स्फटिक से बनी हुई दीवारों में निर्मित, स्त्री विग्रहों के हाथों में रत्नों से उत्पन्न हुयी ज्योति प्रकाशमान थी ।।30।।

इस सारे वैभव और समृद्धि के लिए प्रत्यक्ष अलग कारण नही है" इसको देखकर व्यग्र न

होते हुये सुदामा उस समृद्धि के कारण का विचार करता है ।।31।।

दूर्दैवी जन्म से दरिद्र्य मुझको यह समृद्धि मिली है। इसके लिए महा ऐश्वर्यशाली श्री कृष्ण के दर्शन के बिना अन्य कारण कुछ नही है। केवल दर्शन ही कारण है, यह निश्चय है ।।32।।

मेरे मित्र महा प्रभावशाली हैं। भगवान श्री कृष्ण, जो उनके पास माँगने आता है संकल्प मात्र से उसके मन की आकांक्षा को स्वयं समझते हुये सामने कुछ न बोलते हुये पीछे से मेघ जैसे पानी बरसाता है ऐसे दरिद्र मुझ पर प्यार से सकल सम्पदाओं को बरसाये हैं ।।33।।

जैसे आकाश में बहुत गरजने वाले बादल से न गरजने वाला बादल बहुत पानी देता है वैसे ही वर देने के लिए अन्य देवता सकल पुरुषार्थ को नही दे सकते, किन्तु भगवान श्री हरि कुछ न बोलते हुये भक्तों को ऐहिक सुख देते हैं, अन्त में मोक्ष देते है।

श्री हरि **स्वदत्तं** भक्त को जो देते हैं वह कितना भी बड़ा हो उनको छोटा मानते हैं। उसी प्रकार **सु-अदत्तं** भक्ति पूर्वक भक्त जो अर्पित करता है उसको छोटा होते हुये भी बहुत बड़ा मानते हैं। मैं दरिद्र एक मूठ भर चिवड़ा को ही समर्पित किया। उसको भगवान अत्यन्त प्यार से पूरा खा लिये ।।34।।

श्री कृष्ण का प्यार, सख्य, दास्य और मैत्री मुझे जन्म-जन्म में मिले। सर्वगुण संपन्न, महानुभाव उनके साथ मैं जन्म भर रहूँ, उनका संग न मिले तो उनके भक्तों का संग मिले ।।35।।

धनिक लोगों का धन के मद से अधःपतन होता है। दीर्घ आलोचना न रहने वाले भक्त इसको देख नही पाता किन्तु सर्वज्ञ भगवान पहले ही इसको देखकर हमको नाना तरह का सम्पत, राज्य, ऐश्वर्य इत्यादि को नही देते हैं ।।36।।

सुदामा विवेक से यह विचार करते हुये मिले हुये सारे विषयभोग पदार्थों को श्री हरि को ही अनन्य भक्ति से समर्पण करते हुये उनमें ज्यादा आसक्ति न रखते हुये पत्नी के साथ जीवन चलाये ।।37।।

देव-देवोत्तम यज्ञेश्वर प्रभु श्री कृष्ण के लिए ब्राह्मण ही प्रभु हैं। उनको छोड़कर उनके लिए और भगवान नही हैं ।।38।।

श्री कृष्ण का मित्र सुदामा भगवान श्री कृष्ण के बारे में चिन्तन करता है। किसी से हार न मानने वाले भगवान, भक्तों के सामने हारते हैं। उस भगवान के चिन्तन से, ध्यान से मैं इस संसार बन्धन से मुक्त होने का प्रयास करूँगा। इस प्रकार चिन्तन करते हुये सुदामा सज्जनों के रक्षक श्री हरि के वैकुण्ठ को जीवन के अन्त में पाये ।।39।।

सुदामा पूर्व जन्म में तारण नाम का एक दरिद्र ब्राह्मण था। उसके घर में कुछ नही था। उस समय उसके पिता का श्राद्ध दिन आ गया। पत्नी से वह पूछता है - कल पिता जी का

श्राद्ध करना है। ब्राह्मण भोजन के लिए घर में क्या है ? देखो उसी से श्राद्ध करना है तब पत्नी बोलती है -घर में थोड़ा सा सरसों को छोड़कर कुछ नही है। यह सुनकर वह रोने लगा तब पत्नी बोलती है - श्री राम जी जब वनवास में थे तब दशरथ का श्राद्ध दिन आया। उस दिन लक्ष्मण जंगल में ढूँढ़ने पर फल इत्यादि कुछ न मिलने के कारण श्री राम जी के सामने दुःख करने लगा। तब श्री राम जी कहते हैं - बहुशः हम पूर्व जन्म में ब्राह्मणों की आराधन नही किए होगें। उसी प्रकार हम भी पूर्व जन्म में कुछ पुण्य नही किए हैं इसके लिए यह दुःख भोग रहे हैं।

तारण उस दिन दो ब्राह्मणों को भोजन के लिए आमंत्रित किया। सरसों को ही अन्न बनाकर उसी से पिण्डदान करते हुये ब्राह्मणों को भक्ति पूर्वक भोजन कराया। ब्राह्मण उसी से सन्तुष्ट होकर उनको आशीर्वाद दिये। तब वैकुण्ठ में क्षीर सागर में सोये हुये नारायण से लक्ष्मी देवी कहती है - भगवान यह तारण आप का भक्त है, भक्ति से श्राद्ध किया है। मैं उसको सकल ऐश्वर्य देती हूँ। तब श्री रमण बोले - अभी नही थोड़े समय के बाद देना है।

बाद में लक्ष्मी की कृपा से तारण को निधि मिली। उस निधि से धन मद आ गया। उस अहंकार के कारण उसको लक्ष्मी का अनुग्रह रुक गया। चोर उस घर में घुसकर सारी सम्पत्ति को लूट लिये। अब तारण को ज्ञानोदय हो गया। वैराग्य पाकर जो कुछ बचा था उसको दान देकर जंगल में जाकर तप करने लगा। नारायण अष्टाक्षर मंत्र की उपासना के फल रूप उसको सुदामा का जन्म मिला। वहाँ श्री कृष्ण का मित्र और बाद में भक्त बन गया। भगवान से कुछ भी याचना न करते हुये दरिद्री में ही अपना जीवन बिताते रहा। भगवान श्री कृष्ण उसकी भक्ति की परिपिक्वता होने के समय का निरीक्षण करते रहे। अपरिपक्व अवस्था में यदि सम्पत्ति दिया तो पुनः यह धनमद से अधःपतन पा सकता है इसलिए उसकी भक्ति परिपूर्णता पाने तक श्री कृष्ण उसको कुछ नही दिये। अन्त में देवता भी असूया करें, इतना दिव्य सम्पत्ति को दे दिये।

जो दरिद्र ब्राह्मण सुदामा और ब्राह्मण प्रिय श्री हरि और उनके ब्राह्मण वात्सल्य गुण वाली इस कथा को सुनते हैं, लिखते हैं, और प्रचार करते हैं उनको भगवान श्री कृष्ण में परिपक्व भक्ति होती है। उसके परिणाम स्वरूप वह अन्त में कर्म बन्धन से छुटकारा पाते हैं ।।40।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में एक सौ एक अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - एक सौ दो

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - एक बार श्री कृष्ण अश्वमेघ यज्ञ करने का विचार किये। उस विचार के अनुसार यज्ञाश्व को मंत्र पूर्वक प्रोक्षण करते हुये भू प्रदक्षिणा के लिए उस अश्व को भेजे ।।1।।

हृदिक पुत्र कृतवर्म, उत्तम योद्धा सात्यकि, चारूदेष्ण, सुदेष्ण, प्रद्युम्न, साम्ब, अंशुमान और सुभानु नाम के अपने पुत्रों को बहुत बड़ी यादवों की सेना के साथ यज्ञाश्व की रक्षा के लिए भगवान श्री कृष्ण भेजे ।।2,3।।

महाभारत तात्पर्य निर्णय में बताया गया है कि श्री कृष्ण घोड़े के साथ भीम और अर्जुन को भी भेजे थे।

हे राजा ! वे सारे मंत्रस्नान करके घोड़े के साथ भू प्रदक्षिणा करते हुये बहुत अल्प समय में वापस आये ।।4।।

अल्पकाल का विवरण देते हुये केवल एक याम का काल इस प्रकार निर्णय में लिखा गया है क्योंकि यह अश्वमेघ यज्ञ वर्षों तक चलने वाला नही था। एक ही दिन में करते हुये समाप्त करने का एकाह याग था।

हे राजा परीक्षित ! श्री कृष्ण अश्वमेघ यज्ञ कर रहे हैं। इसको सुनकर व्रतनिष्ठ और दीर्घ तपस्वी सारे मुनि वहाँ आ गये ।।5।।

होतृ, अर्ध्यु, उद्गातृ इस प्रकार अलग-अलग ऋत्विजों को शास्त्र के अनुसार चुनकर अरणि देते हुये यज्ञ करने में श्रेष्ठ ब्राह्मणोत्तम ऋषियों द्वारा पुण्याहवाचन मंगल करते हुये भगवान श्री कृष्ण यज्ञ में दीक्षित होकर बैठे ।।6,7।।

इस यज्ञ के मुख्य ऋत्विज भगवान श्री वेदव्यास जी थे।

उस समय भगवान श्री कृष्ण की सेवा करने श्रेष्ठ किरीट धारण कर शोभा में देवताओं के समान दिखने वाले अनेक देशों के राजाधिराज वहा आ गये थे ।।8।।

हे राजा ! यज्ञ देखने की इच्छा करने वाले राजा, पाण्डव श्री कृष्ण से आमंत्रण पाकर

द्वारका आ गये ।।9।।

श्री कृष्ण अश्वमेघ यज्ञ करते हुये बड़े संभ्रम में थे। उस समय ब्राह्मण लोग आकर अन्न वस्त्र, गो, भू, हिरण्य इत्यादि दान पाकर सम्प्रीत हो गये ।।10।।

श्री कृष्ण यज्ञ दीक्षित होकर ब्राह्मणों को उनके इष्टार्थ के अनुसार दान देकर उनको तृप्त करते हुये उनके भोजन होने के बाद उनसे आशीर्वाद लिये ।।11।।

समस्त राजा अपने के लिए योग्य स्थानों में बैठे थे। राजभट हाथ में छड़ी लेकर शान्ति पालन का आग्रह करते थे। तब यज्ञशाला के द्वार पर हाथ में कुश पकड़े हुए एक ब्राह्मण दौड़ते हुये आया और दोनों हाथ ऊपर करते हुये जोर के आवाज से बोलने लगा ।।12,13।।

भूख से और प्यास से उसका गला सूख गया था। मुख सूखा था, ऑखों में आँसू भरे थे। दुःखित होकर आतुरता से बोलने लगा ।।14।।

ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले धूर्त, लोभी, विषयलम्पट, दुष्ट, क्षत्रिय राजा के पाप कर्म से मेरे सारे पुत्र मर गये ।।15।।

हिंसा परायण, दुःशील, इन्द्रियनिग्रह न करने वाले राजा की सेवा करने वाली प्रजा इस लोक में दरिद्र होते हैं, परलोक में भी दुःखी होती है ।।16।।

वह ब्राह्मण दूसरी बार भी ऐसे ही बोला, तीसरी बार और चौथी बार भी ऐसे ही बोलने लगा। वह दुःखित होकर जोर-जोर से चिल्लाता था ।।17।।

इस ब्राह्मण की पत्नी के प्रसव के दिन ही शिशु गायब ही जाता था। इस प्रकार तीन बार ही चुका था। अब चौथे प्रसव का समय आ गया था। इसी कारण वह ब्राह्मण आतंकित ही आया था। हरिवंश के विष्णु पर्व में यह विवरण स्पष्ट रूप से मिलता है। (111-11)

यह सुनकर अर्जुन अहंकार से श्री कृष्ण के पास से उठकर स्वतः ब्राह्मण के पास जाकर पूछता है ।।18।।

श्री कृष्ण यज्ञ में दीक्षित होने के कारण यज्ञशाला छोड़कर बाहर नही जा सकते थे। उस समय अर्जुन का उठकर उस ब्राह्मण से पूछताछ करना सही है। किन्तु श्री कृष्ण से अनुमति न पाते हुये अहंकार से अर्जुन ब्राह्मण के पास आता है।

हे ब्राह्मण ! कहो ! आपके पुत्रों को क्या हुआ ? तुम क्यों दुःख से पीड़ित हो ? सही समाचार ठीक तरह से बोलो। मैं अभी तुम्हारे दुःख को दूर करते हुये तुमको सुख दिला दूँगा ।।19।।

अर्जुन की बात सुनकर वह ब्राह्मण बोलता है - हे अर्जुन ! सुनो, मेरे सारे पुत्रों को जन्म लेते

जन्म लेने के उसी क्षण में कोई सूतिकाग्रह से उठाकर ले जाता है ।।20।।

इसको सुनकर अर्जुन हँसते हुये कहते हैं - क्या आपकी गली में कोई धनुर्धारी नही है ? ।।21।।

निकम्मे राजाओं के लिए ब्राह्मण सत्र यज्ञ करते रहते हैं। राजा की सेवा करते समय ही अपने पत्नी पुत्रों को खो कर दुःख करने समय आ जाय तो वे राजा, राजा बनने के योग्य नही हैं। वे राज वेष धारण किए हुये अपनी इन्द्रियों का पोषण कर पेट भरने के लिए वेषधारी नट के समान जी रहे हैं ऐसे कहना पड़ता है ।।22,23।।

इसी कारण हे पूज्य ब्राह्मण ! मैं दुःखित हुये आपके पुत्रों की रक्षा करता हूँ। यदि मैं इस प्रतिज्ञा को पूर्ण नही करता तो अन्य प्रायश्चित्त न होते हुये अग्नि प्रवेश करूँगा ।।24।।

ब्राह्मण कहता है - संकर्षण , वासुदेव, धनुर्धारियों में श्रेष्ठ प्रद्युम्न, अप्रतिरथ अनिरूद्ध ये सारे मेरे बच्चों की रक्षा नही कर पाये। ये तो तीनों लोकों के स्वामी हैं। यदि ये कार्य इनके हाथ से नही हुआ तो मूर्ख जैसे बाते करने वाले आपसे यह कार्य होता है क्या ? इस विषय में हम आपके ऊपर विश्वास कैसे रखें ? ।।25,26।।

यह ब्राह्मण इसके पहले आया था। बलराम, कृष्ण इसको न बोलते हुये उसको कोई आश्वासन नही दिए थे। अब अर्जुन के प्रतिज्ञा की परीक्षा करने के लिए वह ब्राह्मण इस प्रकार कहा है।

तब अर्जुन कहता है - हे ब्राह्मण ! देखों, मैं बलराम नही, कृष्ण नही, प्रद्युम्न भी नही। किन्तु मैं अर्जुन हूँ ,मेरा यह प्रसिद्ध गाण्डीव धनुष को देखों ।।27।।

हे ब्राह्मण ! रूद्रदेव को युद्ध में हराने वाला मैं हूँ। मेरे पराक्रम को देखो, उसका अपमान मत करो। युद्ध में यम को भी हराने वाला मैं तुम्हारे सारे पुत्रों को वापस लाकर देता हूँ ।।28।।

अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर तप करते हुये किरात रूपी रूद्र से युद्ध करते हुये उनके प्रेम को पाकर उनसे पाशुपतास्त्र पाया है। पाण्डव जब वनवास में रहते हैं उस समय होने वाला वह विषय है। किन्तु इसको पुराण में भूतकाल की कथा बनाकर कहा गया है। इसको व्यत्यस्त शैली कहते हैं। अर्जुन आगे बोलने वाला निवातकवच कालकेय दानवों का वध भी इस प्रकार काल व्यत्यास कहा गया है।

हे राजा ! अर्जुन ब्राह्मण को आश्वासन देने के बाद भगवान श्री कृष्ण के पास आता है और ब्राह्मण के कार्य करने के लिए आज्ञा माँगता है ।।29।।

भगवान आप यहीं बैठे हुये ऋत्विजों की सहायता से अश्वमेध यज्ञ जारी रखें। ऐसे कहते हुये अर्जुन श्री कृष्ण की अनुमति लेकर पीठ पर तूणीर को बाँधते हुये गाण्डिव को उठाकर चलने लगा। तब श्री कृष्ण हँसते हुये बोलते हैं ।।30।।

श्री भगवान कहते हैं - हे अर्जुन ! सुनो यह कार्य तुम्हारे द्वारा होने वाला नही है। बच्चे को उठाकर लेने वाला वह भूत समान्य नही है, ऐसे मुझे लगता है ।।31।।

अर्जुन कहता है - मैंने खाण्डव वन में लोकपालकों के साथ युद्ध करने वाले देवेन्द्र को जीता है। किरात रूप से आने वाले रूद्र मेरा युद्ध देखकर सन्तुष्ट हुये हैं ।।32।।

देवेन्द्र भी जीत न सके ऐसे निवातकवच दानवों को, हिरण्यपुर वासी के कालकी पौलोम इत्यादि दानवों का भी मैंने अकेले युद्ध में संहार किया है ।।33।।

निवातकवच दानव तीन करोड़ थे। प्रह्लाद के भाई, सह्लाद के ये पुत्र थे। समुद्र गर्भ में देवताओं की राजधानी अमरावती से भी ज्यादा सुन्दर राजाधानी इनकी थी। उसको वे ब्रह्मा के वर बल से प्राप्त किये थे। वे ब्रह्मा द्वारा मानव को छोड़कर और किसी से मरण न हो इस प्रकार वर पाये थे। मानवों को वे, दुर्बल होने के कारण उनको जीतना सरल है ऐसे समझकर उनसे न हारने का वर नही पाये। ब्रह्मा इन्द्र से कहे कि तुम मानव का अवतार लेकर इनका नाश करो। उसी के अनुसार इन्द्र के मानव रूप अर्जुन वनवास काल में स्वर्ग जाकर वहाँ देवेन्द्र सभा में पाँच वर्ष रहते हुये अस्त्र विद्या सीखकर गुरु दक्षिणा रूप में निवातकवचों का संहार किये। कश्यप मुनि द्वारा कालकेय और पुलोम नाम की उनकी पत्नियों से साठ हजार कालकेय और पौलोम जन्म लिये। वे जल-स्थल आकाश जहाँ चाहें वहाँ चलने वाले हिरण्यपुर नाम के विमान में वास करते थे। उनका अर्जुन ने मनुष्य होने के कारण नाश कर दिया।

इन सारे दानवों से बढ़कर और कोई भूत होगा क्या ? मुझको क्यों डराते हैं आज्ञा दीजिए ।।34।।

शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार अर्जुन श्री कृष्ण की अनुज्ञा पाकर गाण्डीव ले यज्ञशाला से बाहर चला ।।35।।

अत्यन्त ऊँचे कपिध्वज वाले विशाल रथ में बैठकर आगे उस ब्राह्मण को बिठाकर उसके घर की दिशा में अर्जुन अपना प्रयाण आरम्भ किया ।।36।।

हे राजा ! अर्जुन ब्राह्मण के साथ उसके गाँव को पहुँच गया। उसकी पत्नी के प्रसव का समय आ गया था। वहाँ उस ब्राह्मण को रथ से उतार दिया ।।37।।

अर्जुन कहता है - हे ब्राह्मण, तुम निश्चिन्त होकर घर के अन्दर चलो। कातरता में रही

अपनी पत्नी को शान्त्वना दो। मैं चहु दिशाओं से तुम्हारे घर को रक्षा दिया हूँ ।।38।।

हे राजा ! इस प्रकार अर्जुन से आश्वस्त वह ब्राह्मण, उनके सामर्थ्य के बारे में उन्ही के मुख से सुनकर उनके ऊपर विश्वास रखते हुये सन्तोष से अपने घर के अन्दर प्रवेश किया ।।39।।

पत्नी का प्रसव काल सन्निकट आ गया है। इसको देखकर वह शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ अर्जुन के पास आकर कहता है ।।40।।

हे महाबाहू ! योद्धाओं में श्रेष्ठ अर्जुन सिद्ध होकर यहाँ आ जाओ। आपके पौरूष के निदर्शन होने का समय आ रहा है ।।41।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार ब्राह्मण की बात सुनकर अर्जुन रथ के पर चढ़कर बाण को प्रत्यंचा पर चढ़ाते हुये जल्दी से घर के पास आये ।।42।।

वह ब्राह्मण अपने घर में प्रवेश करता है, प्रसव काल समीप आ गया। यह समझते हुये जोन-जोर से चिल्लाते हुये अर्जुन से प्रार्थना करता है। हे अर्जुन ! मृत्यु से रक्षा करो, रक्षा करो ।।43।।

अर्जुन उस समय निर्मल जल से आचमन कर भूतनाथ रूद्र जी को नमन कर दिव्यास्त्र का स्मरण करते हुये गाण्डीव धनुष को हाथ में उठाता है ।।44।।

अर्जुन घर के चारों ओर अनेक मंत्रों से अभिमंत्रित बाणों को छोड़ते हैं। ऊपर-नीचे, अगल-बगल चारों तरफ से दिग्बन्धन करते हुये शर-पिंजर का निर्माण किये ।।45।।

उस ब्राह्मण के पत्नी को पुत्र जन्म हुआ। जन्म लेते ही वह बच्चा रोते हुये आकाश मार्ग से अदृश्य हो गया ।।46।।

वह ब्राह्मण अर्जुन की निन्दा करते हुये कहता है - हे नपुंसक ! तुम श्री कृष्ण के सामने अपने पौरूष के बारे में बहुत बताये। उसको सुनकर मैं मूर्खता से तुम्हारे में विश्वास रखा ।।47।।

मेरे पुत्र की रक्षा प्रद्युम्न, अनिरूद्ध, बलराम, श्री कृष्ण नही कर पाये। तुम उनसे बढ़कर शक्तिशाली हो क्या ? ।।48।।

व्यर्थ बातें करने वाले अर्जुन को धिक्कार। अपनी डींग मारने वाले, आपके इस धनुष को धिक्कार। हम दैव से पीड़ित हैं। दुर्बुद्धि अर्जुन की मूर्खता से हम अपने बच्चे को खो दिये ।।49।।

इस प्रकार निन्दा करते रहा। उस समय अर्जुन अपने योग बल से पूज्य यमधर्म राजा सम्यमनि के नगर को दौड़े ।।50।।

वहाँ ब्राह्मण के पुत्र को न देख इन्द्र की अमरावती अग्नि, निऋति, सोम, वायु, वरूण

इत्यादि सारे ऊर्ध्व लोकों में दौड़-दौड़कर देखा ।।51।।

अर्जुन ब्राह्मण पुत्र को ढूँढ़ने के लिए नागवास करने वाले रसातल इत्यादि सारे प्रदेशों को ढूँढ़ा। ब्राह्मण पुत्र नही मिला। अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण न करने वाला अर्जुन अग्नि प्रवेश के लिए सिद्ध हुआ ।।52।।

अग्नि प्रवेश के लिए सिद्ध हुए अर्जुन को श्री कृष्ण रोंकाते हैं। मैं उन सारे ब्राह्मण पुत्रों को लाकर तुमको और उस ब्राह्मण को दिखाता हूँ। आत्महत्या मत करो, मनुष्य लोक में अपने निर्मल कीर्ति की रक्षा करो। इस प्रकार बोलते हुये भगवान श्री कृष्ण अर्जुन और ब्राह्मण के साथ रथ में बैठते हुये पूर्व दिशा में प्रयाण करके सप्तद्वीप और सप्तसागर को पार करते हुये महातमस नाम के प्रदेश में प्रवेश करते हैं ।।53,54,55।।

यहाँ **प्राचीं दिशं** इस प्रकार है। किन्तु वादिराजीय पाठ में सहैव रथमास्ताय **प्रतीचीं दिशमाविशत्** इस प्रकार है। तात्पर्य निर्णय में **आशामुदीचीं** इस प्रकार है। यहाँ प्राची इसका अर्थ पूर्व होता है, प्रतीची का अर्थ पश्चिम है, उदीची का अर्थ उत्तर है। यह विचित्र सा लगता है। किन्तु वादिराज जी कहते हैं इसमें कोई विरोध नही है। **वायव्यामदिशि अनन्तासनो लोकः** इसका अर्थ यह वायव्य की दिशा में अनन्तासन लोक है। पश्चिम-उत्तर मध्य में आने वाली दिशा को वायव्य कहते है। इसलिए उसको पश्चिम और उत्तर इस प्रकार दोनों रीति से बताये तो गलत नही होगा। हरिवंश में उत्तर बताया गया है। भागवत में पश्चिम कहा गया है। हमारे विजयध्वजी पाठ में प्राचीं दिशं इस प्रकार है। पहले कहे गयी बातों के अनुसार इसको व्यत्यस्त पुराण शैली मानना चाहिए।

हे राजा ! महातमस में प्रयाण करते समय भगवान के रथ के शैब्य, सुग्रीव, मेघ-पुष्प और बलाहक नाम के चारों घोड़े तमस में आगे न दौड़ते हुये रूक गये ।।56।।

यह देखकर भगवान श्री कृष्ण हजार सूर्यों के समान प्रकाश देने वाले अपने सुदर्शन चक्र को आगे बढ़ाये ।।57।।

कमान से निकले हुए श्री राम जी के तीर के समान वह सुदर्शन चक्र आकाश को ढके हुए भयंकर तम को अपनी ज्वाला से चीरते हुये मनोवेग से आगे चला ।।58।।

तार्किक लोग कहते हैं कि प्रकाश का अभाव ही अंधेरा है। यह सही नही है। भागवत और हरिवंश में कहा गया है कि अंधेरा एक अलग द्रव्य है क्योंकि अर्जुन का रथ अंधेरे के बड़े कीचड़ जैसे लगने वाले तमस में फँस जाने से घोड़े आगे चल नही पाये और आगे बढ़े

तो तमस का महापर्वत ही सामने था। किन्तु सुदर्शन चक्र इस तमस को चीरते हुये रास्ता बनाया। हम लोकालोक पहाड़ के उत्तर के भाग में रहते हैं। यहाँ सूर्य की किरणों से बर्फ के समान तमस गल कर पतला होता है। रात में आँखों को दिखता है। दिन में सूर्य प्रकाश में दिखता नही।

सुदर्शन चक्र के पीछे उससे बनाए हुए रास्ते पर अपार, परात्पर, ज्योति श्री कृष्ण यात्रा कर रहे हैं। उस समय उनके प्रकाश को देखने में असमर्थ हुआ अर्जुन दोनों हाथों से अपनी आँखों को बन्द कर लेता है ।।59।।

इस प्रकार तमस को पार करने के बाद अर्जुन का रथ घनोदक समुद्र को पार करने लगा। प्रचण्ड वायु के कारण उठने वाली बड़ी-बड़ी लहरों से वह समुद्र बड़ा भयंकर लगता था। उसके बीच अनन्तासन लोक में हजारों रत्नों से सुशोभित स्तम्भों वाले उज्जवल प्रकाश से प्रकाशित अद्भुत और सुन्दर राजगृह को देखे ।।60।।

वह मुक्त स्थान था। अर्जुन का रथ दूर खड़ा हुआ है। ब्राह्मण और अर्जुन दूर से उस राजगृह को देखे। श्री कृष्ण अकेले उस मुक्ती मन्दिर में प्रवेश किये। अपने मूलरूप में ऐक्य पाये और एक मुहूर्त के बाद बाहर आये और वहाँ रहने वाले नन्द, सुनन्दन इत्यादि द्वार पालकों को शिशु रूप में लेकर आये। उनको अर्जुन को दिखाये। अर्जुन में जो अहंकार आया था उसका परिहार करना था। इसलिए स्वयं वो बच्चों को लाकर दिखाये।

उस राजघर में अर्जुन ने आदिशेष को देखा। हजारों फड़ वाले आदिशेष प्रत्येक फड़ में रत्नों को धारण किए हैं। दो हजार आँखों वाले उनको देखने से डर लगता है। वह आकाश के समान श्वेत शरीर वाले थे। नीलकंठ था और मुक्ति पाए हुए आदिशेष का यह रूप था ।।61।।

आदिशेष के शरीर के ऊपर प्रभु श्री हरि आनन्द से बैठे हैं। नीलमेघ के समान रंग है, पीताम्बर धारण किये हैं। फूल सा खिला हुआ मुँह, सुन्दर नयन, मंदमुस्कान् वाले पुरुषोत्तम, उत्तम पुरूषों से उत्तम श्री हरि को अर्जुन ने देखा ।।62।।

हजारों महारत्न राशियुक्त किरीट और कुण्डल की प्रभा से आवृत्त हजारों घुँघराले बाल वाले लम्बे-लम्बे सुडौल आठ हाथों वाले, कौस्तुभ मणि को धारण किये हुये, श्रीवत्स लांछन वाले वनमाला धारण किये हुये सुन्दर रूप वाले भगवान को अर्जुन ने देखा ।।63।।

सुनन्द-नन्द इत्यादि द्वार पालकों से मूर्तिमान होकर खड़े हुये, चक्रादि आयुध समेत, पुष्टि, श्री, कीर्ति, अजा नाम वाली रमा के रूपों से सकल ऐश्वर्य के साथ सेवा लेने वाले अनन्त

मुक्त चतुर्मुख ब्रह्मा से युक्त भगवान को अर्जुन ने देखा। इतने में भगवान श्री कृष्ण बाहर आकर अर्जुन से मिले ।।64।।

वहाँ श्री कृष्ण अपने स्वरूप भगवत् मूर्ति को नमस्कार किये। अर्जुन इस दर्शन से मन ही मन विचलित हुआ। श्री कृष्ण को देखकर वह भी नमस्कार किया। मुक्त चतुर्मुख समूहों के स्वामी सर्वगुण सम्पन्न प्रभु हाथ जोड़े हुये श्री कृष्ण को कहते हैं ।।65।।

हे श्री कृष्ण ! हम तुमको देखने के लिए इस ब्राह्मण के चारों पुत्रों को यहाँ लाये। भूमि पर धर्म संस्थापना करने हेतु मेरे अंश रूपी होकर तुम अवतार लिए हो। भू-भार बने हुये असुरों का संहार करने के बाद तुरन्त यहाँ वापस आना ।।66।।

तुम दोनों नर-नारायण हो, श्रेष्ठ ऋषि हो, पूर्ण काम हो। इस जगत को बचाकर लोगों को धर्माचार सिखाकर तुम लोग धर्म का आचरण करें ।।67।।

इस प्रकार मूलरूपी श्री हरि के आदेश को पाकर कृष्णार्जुन आनन्द पूर्ण श्री हरि से वैसा ही हो कहते हुये ब्राह्मण पुत्रों को उठाकर वापस आये ।।68।।

कृष्णार्जुन सन्तुष्ट होकर पूर्व मार्ग का अनुसरण करते वापस आये। जन्म लेते समय वे बच्चे जितने छोटे थे उसी रूप में उन चारों बच्चों को ब्राह्मण को समर्पित किये ।।69।।

विष्णु लोक को देखकर अर्जुन बहुत विस्मित था। अर्जुन ने समझ लिया कि लोगों में रहने वाला बल और पौरूष केवल भगवान श्री कृष्ण के अनुग्रह के कारण ही होता है ।।70।।

श्री कृष्ण यज्ञशाला में पुनः प्रवेश करते हुये **क्षत्रियोत्तम**, श्रेष्ठ ब्राह्मण पुरोहित और ऋत्विजों के साथ मिलकर यज्ञ को पूर्ण किये ।।71।।

यज्ञ दीक्षा में रहने वाला यजमान यज्ञशाला से बाहर गया तो ऐसा करने के प्रायश्चित्त को ब्राह्मणों की अनुज्ञा पाकर शास्त्रोक्त रीति से श्री कृष्ण अनुष्ठान द्वारा पूर्ण किये ।।72।।

हे राजा ! श्री कृष्ण यज्ञ को विधि पूर्वक पूर्ण करते हुये याचक ब्राह्मणों को दान देकर तृप्त करते हुये अन्य ऋषि और ऋत्विजों का सत्कार किये ।।73।।

यमुना, महानदी में महर्षियों के साथ अवभृत स्नान करके श्री कृष्ण इच्छानुसार विहार किये ।।74।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में एक सौ दो अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - एक सौ तीन

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - यज्ञ के अवभृत स्नान करने के लिए श्री कृष्ण यमुना तट पर आये हैं। यह बात सुनकर कलिंगराज्य के राजा दंतवक्र अपने भाई विदूरथ के साथ हाथी, घोड़े युक्त बड़े सैन्य के साथ द्वारका जाने वाले श्री कृष्ण के सामने युद्ध करने आया। यह दंतवक्र शिशुपाल का भाई है ।।1,2।।

उस समय श्री कृष्ण यादवों के साथ अपने सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों के साथ पालकियों में बैठकर प्रयाण करते थे ।।3।।

क्षत्रियों का समूह उनके पीछे-पीछे आता था। महर्षियों का समूह उनकी सेवा में था ऋत्विज पुरोहित और आचार्य लोग उनके साथ यात्रा में थे ।।4।।

सिंह के पर आक्रमण करने आये हुए सियार के समान मूढ़ दंतवक्र श्री कृष्ण के साथ युद्ध करने आया। रूक्मि, शिशुपाल और दुर्बुद्धि वाली पौंद्रक आदि श्री कृष्ण के कारण परलोक गये हैं। उनको सन्तोष देने के लिए महाबलशाली दंतवक्र गदा को अपने कंधे के पर रखते हुये पाँव से जमीन को हिलाते हुये सामने आया। ऐसे आये हुए दंतवक्र को देखकर श्री कृष्ण शीघ्रता से गदा उठाकर रथ से कूदकर बाँध के ऊपर चढ़ते जल प्रवाह के समान दंतवक्र के ऊपर आक्रमण किये। दुरहंकारी दंतवक्र कहता है ।।5,6,7,8।।

हे कृष्ण ! आज तुम मेरे आँखों के सामने मिले तो, मुझे बहुत सन्तोष हुआ है। आज ही मैं द्वन्द्वयुद्ध करते हुये तुरन्त तुमको मार डालूँगा ।।9।।

शिशुपाल-दंतवक्र पूर्व जन्म में वैकुण्ठ के द्वार पालक थे। सनकादि मुनियों के शाप से भूमि में तीन बार जन्म लेकर श्री हरि का विरोध करते हुये श्री हरि के हाथ से मारे जाते हैं। इस प्रकार श्री हरि उनको वर दिये हैं। करूषाधिपति वृद्धशर्मा की रानी श्रुतदेवी वसुदेव की बहन है।

उसका पुत्र दंतवक्र श्री कृष्ण के हाथ से मरने के लिए ही सामने आया है। शिशुपाल इत्यादि लोग बाद में मरने वाले हैं। भागवत कालव्यत्यास से आगे की कथा को पीछे की बनाकर निरूपण करती है।

हे कृष्ण ! तुम हमारे मामा का पुत्र हो। किन्तु मित्र द्रोही, परस्त्री लंपट, विश्वासघातक, बन्धुनाशक और सदाकाल झगड़ा करने वाले हो ।।10।।

तुमने मेरे दूसरे मामा के पुत्र पौंड्रक को युद्ध में मारा है। हमारी छोटी माँ के पुत्र रूक्मि और शिशुपाल का वध किया है ।।11।।

इसके लिए हे मूर्ख, अज्ञ, तुमको मैं अपने वज्रायुध के समान इस गदा से मार डालूँगा। मैं मित्रों से ज्यादा प्यार करता हूँ। उनके ऋणों से मुझे जल्दी मुक्त होना है ।।12।।

हमारे शरीर से जन्म लिया है मानकर रोग को वैसे ही छोड़ नही सकते। तुम बन्धु रूपी शत्रु हो, तुमको मारने से मुझको पाप नही आयेगा ।।13।।

हाथी को जैसे अंकुश से मारते हैं, वैसे दंतवक्र श्री कृष्ण को अपने तीखी बातों से भेदते हुये हाथ की गदा से मारा और सिंह के समान गर्जना किया ।।14।।

युद्ध में दंतवक्र से मार खाने पर भी श्री कृष्ण थोड़ा सा भी विचलित नही हुये अपनी भारी कौमोद की गदा से उसके छाती के ऊपर मारे ।।15।।

उस भारी गदा की मार खाकर दंतवक्र मुँह से रक्त का वमन करते हुये हाथ पाँव पसार गिर कर मर गया ।।16।।

सारे लोगों के देखते-देखते उस युद्धक्षेत्र में शिशुपाल के समान दंतवक्र के शरीर से भी अद्भुत अतिसूक्ष्म चैतन्य युक्त प्रकाश श्री कृष्ण में विलीन हुआ ।।17।।

दंतवक्र के शरीर में हिरण्याक्ष नाम के दैत्य के साथ विजय नाम के वैकुण्ठ का द्वार पालक था। वह द्वारपालक श्री कृष्ण में प्रवेश किया। वह दैत्य नरक में गिर गया।

भाई दंतवक्र के मरण को देखकर विदूरथ दुःख से विमूढ़ हो गया। किन्तु एक क्षण में उठकर खड्ग और ढाल को लेकर खड़ा हो गया ।।18।।

अपने श्रेष्ठ खड्ग को हिलाते हुये विदूरथ रथ से कूदकर अपनी गति से पृथ्वी को हिलाते

हुये श्री कृष्ण के ऊपर आक्रमण किया ।।19।।

श्री कृष्ण अपने बाण से उसके खड्ग के टुकड़े कर दिये। तब विदूरथ अपने बड़े शक्याध को उठाया ।।20।।

युद्ध में शक्त्यायुध को लेकर श्री कृष्ण को मारने के उ‌द्देश्य से अज्ञ विदूरथ धनुष से छुटे हुए बाण के समान आगे बढ़ा ।।21।।

विदूरथ के इस आक्रमण को देखकर श्री कृष्ण अपने तीक्ष्ण अरावाले चक्र से किरीट कुण्डल सहित उसके सिर को काट डाले ।।22।।

इस प्रकार युद्ध में श्री कृष्ण दंतवक्र और विदूरथ को मार कर उनके सैन्य को भगा दिये। उनके हाथी, घोड़े और रथों को अपने वश में लिये ।।23।।

बाद में श्री कृष्ण अपने दिव्य सुन्दर अलंकृत रथ में बैठकर यादव समूहों के साथ देव और मानवों से स्तुति पाते हुये द्वारका के ओर प्रयाण किये ।।24।।

वहाँ मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, नाग, अप्सरायें, पितृगण, यक्ष, किन्नर, चारण ये सारे श्री कृष्ण के विजय का संकीर्तन करते हुये उनके ऊपर पुष्प वृष्टि किए। यादवोत्तमों से मिलकर श्री कृष्ण श्रृंगारित द्वारकापुरी में प्रवेश किये ।।25,26।।

इस प्रकार योगेश्वर देवकी सुत भगवान श्री कृष्ण अज्ञ दृष्टि वाले लोगों से एक बार युद्ध में जीतते कभी एक बार हारते जैसे दिखते हैं। किन्तु सदा के लिए वे विजयी ही हैं ।।27।।

हे राजा परीक्षित ! पुण्य कीर्तिशाली श्री कृष्ण की सारी लीलाएँ उत्कृष्ट हैं, अद्भुत हैं। हजार वर्ष कहते रहे तो भी पूर्ण होने वाली नही हैं ।।28।।

हे राजा ! इस प्रकार राक्षसी पूतना के संहार से आरम्भ हुआ भू-भार हरण यज्ञ में सारे असुरों का संहार करते हुये मधु दैत्य को संहार करने वाले श्री कृष्ण सुशोभित रहे ।।29।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - एक सौ चार

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

द्वारका में श्री कृष्ण

श्री शुकदेव जी कहते हैं - लक्ष्मी रमण, यादवोत्तमों से सेवित सर्व सम्पत समृद्ध अपने द्वारकापुरी में भगवान श्री कृष्ण वास कर रहे हैं ।।1।।

उस द्वारका में स्त्रियाँ अपने यौवन और कांति से युक्त होकर उत्तम वेशभूषा में बिजली के समान चमकते हुये ऊँचे सौधों के ऊपर गेंद खेल रही हैं ।।2।।

द्वारका नगर के राजमार्ग सदाकाल मद जल को स्रवण करने वाले हाथियों से, अलंकृत पदातियों से, सुन्दर घोड़ों से और सोने से चमकने वाले रथों से भरे हुये थे ।।3।।

वह द्वारका नगरी उद्यान, पुष्पवाटिकाओं से शोभायमान थी। फूलों से भरे हुये वृक्ष में पक्षी कलकलरव करते थे, भृंग गूँजते थे ।।4।।

सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों के एक ही पति श्री कृष्ण अपने योग सामर्थ्य को दिखाते हुये सोलह हजार एक सौ आठ रूपों को धारण करते हुये उनके महासम्पद्भरित घरों में विहार करते थे ।।5।।

वहाँ खिले कुन्द मंदार, उत्पल, कल्हार, कुमुद, आम्भोज पुष्पों के धूलि से सुगंध भरित निर्मल जल में विहार करने वाले जल पक्षियों के ध्वनि से भरा हुआ नदियों में पूर्णानन्द श्री हरि अपनी पत्नियों से आलिंगित होकर उनके स्तन से लिप्त कुमकुम रंग से लेपित होकर जल विहार किये ।।6,7।।

श्री कृष्ण के जल विहार को आकाश मार्ग में देखते हुये गन्धर्व, सूत, मागध और बन्दियों ने

मृदंग, पणव, आनक और वीणा को बजाते हुये सन्तोष से गाते हुये नृत्य किये ।।8।।

पिचकारी से पानी फेंकने वाली पत्नियों को श्री कृष्ण उनसे ज्यादा पानी को हाथ से उनके ऊपर छिड़कते रहे ।।9।।

भीगा कपड़ा बदन को चिपक गया है। स्त्रियों के जघन, घन स्तनों को व्यक्त कर रहे हैं। उनके बनाया हुआ कुबर से छुटकर फूल पानी में गिर रहे हैं। पति के हाथ से पिचकारी को छीनने के उ-श्य से उनके ऊपर गिरे स्त्रियों ने कामोद्रेक से आलिंगन करते थे। उस समय उनके मुख शोभायमान थे ।।10।।

श्री कृष्ण की वनमाला स्त्रियों के स्तन के कुमकुम केसर से लाल बन गया। जलक्रीड़ा के संभ्रम में उनके घुँघराले बाल हिलने लगे। शरीर का कुन्द पुष्प सुगन्ध जल में मिल गया। भगवान स्त्रियों के ऊपर पानी फेंके वे सारे मिलकर भगवान के ऊपर पानी छिड़काये। हथिनियों के साथ घिरा हुआ गजराज के समान श्री कृष्ण जल में विहार किये ।।11।।

उन स्त्रियों के घर में अद्विितीय, अनिर्बन्ध क्रीड़ा वाले सर्वेश्वर श्री कृष्ण अपने स्वरूप सुख में मग्न होते हुये भी रमावेश युक्त उन स्त्रियों के साथ अन्य गृहस्थों के समान गृहस्थ कर्माचरण करते हुये लीला विनोद किये ।।12।।

ब्रह्मादि देवता भी न जान सकें ऐसे स्वरूप वाले रमारमण को पति रूप में पाये हुये उन स्त्रियों ने सन्तोष से सदा उभर कर आने वाले अनुराग से, हँसते हुये तिरछी नजर से देखते हुये चिर नूतन अंग-संग से लजाते हुये उनकी सेवा की ।।13।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में एक सौ चार अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - एक सौ पाँच

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - सज्जनों के आश्रयीभूत श्रीकृष्ण अपने राजघर में वेदोक्त धर्म का अनुष्ठान करते हुये धर्म, अर्थ, काम नाम के त्रिवर्ग को गृहस्थ का कैसे आश्रय देना चाहिये इसको लोगों को दिखाते हुये द्वारिका में वास किये।। 1 ।।

हे राजा! चक्रपाणि जनार्दन भूमण्डल का राज्य चलाये। बारह योजन विस्तार यादवों का वासस्थान द्वारिका मुनियों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, बन्दियों से भरकर सदा के लिये सुन्दर दिखता था। ।। 2-3 ।।

पिण्डा क्षेत्र कुरुक्षेत्र, शालिग्राम, पुष्कर, वाराणसी, प्रयाग, वेंकटाद्रि, श्रीशैल, गोकर्ण, मंगलाकर चन्द्रतीर्थ, भृगुक्षेत्र, सह्यद्रि, कुमाराद्रि, पुष्कर गोदावरी तट, नर्मदा तट, शूर्पारक, प्रभास, पुण्यकार बदरिकाश्रम, पावन नैमिषारण्य, दुर्गम ब्रह्मापर्वत इन सारे पुण्य क्षेत्रों से मुनिगण द्वारिका को आते थे। भगवान में निष्ठा रखते हुये नित्य व्रत परायण होते थे।। 4-5-6-7 ।।

उनमें से कई लोग केवल हवा और पानी खाकर जीवित रहते थे, अन्य कई लोग जल और आहार को त्याग दिए थे, सारे व्रतनिष्ठ थे। सारे वेदाध्ययन करते थे, सारे लोग स्तुति स्तोत्र जप करने में मग्न थे।। 8-9 ।।

कई लोगों का मन केवल ध्यान में आसक्त रहता था, कई लोग समाधि में ही रहते थे। उनके शरीर में केवल चर्म और अस्थि बचे थे। उनके शरीर के ऊपर नस और नाड़ी उभर कर आये थे।। 10 ।।

हे राजा परीक्षित शान्त मन के ऐसे मुनि लोग देश के नाना भाग से आकर द्वारिका में रहते हुये तत्व विचार करते हुये सदा के लिये श्रीकृष्ण की उपासना करते थे ।। 11 ।।

हे राजा ! महापराक्रमी राजाओं ने तपोधन ऋषि मुनियों ने, श्लोक-स्तुति परायण सूत मागधों ने द्वारका में श्रीकृष्ण की उपासना करते हुये पूर्ण मंगलमय ध्वनि प्रस्तुत करते थे। वेद घोष वाद्यघोष से द्वारका नित्य प्रतिध्वानित होती थी ।। 13 ।।

इस प्रकार देवाधिदेव श्रीकृष्ण अपने सन्निधान विशेष से द्वारका को सकल तीर्थों में अग्रगण्य

बनाये ।। 14 ।।

श्रेष्ठ धर्माचरण करने वाले श्रीकृष्ण गृहस्थाश्रमी थे। उनके सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियाँ थीं।। 15 ।।

हे राजा! उन स्त्रियों में रत्न के सामान रुक्मिणी इत्यादि आठ पत्नी और उनके पुत्रों के बारे में पहले ही हम बता चुके हैं।। 16 ।।

अमोघज्ञानी सर्वेश्वर श्रीकृष्ण अपनी सारी पत्नियों में एक एक में दस-दस पुत्रों को जन्म दिये।। 17 ।।

वे सारे पुत्र महापराक्रमी थे, उनमें अट्ठारह पुत्र महारथी थे, बहुत बड़े कीर्तिशाली थे। उनका नाम बताता हूँ।। 18 ।।

दस हजार धनुधरियों के साथ एक अकेले युद्ध करने वाले को महारथी बोलते हैं।

उनका नाम इस प्रकार है - प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, दीप्तिमंत, भानु, सांब, मित्र, बृहद्भानु, भानुविन्द, वृक, अरुण, पुष्कर, देवबाहू, चक्रदेव, सुनन्दन, चित्रभानु, वरूथ, कवि, न्यग्रोध ये अट्ठारह महारथी पुत्र थे ।। 19-20 ।।

त्रिवक्रा का पुत्र विशोक, श्रीकृष्ण के भक्त नारद जी का शिष्य बना। वे उसको पूर्ण ज्ञान दिये।। 21 ।।

नारद जी विशोक को पंचरात्र का उपदेश दिये। जो पंचरात्र को जानता है उसको मोक्ष मिलता है, स्वरूप शरीर व्यक्त होता है। उस शास्त्र में स्त्री, शूद, मछुवारा को भी वैष्णव संस्कार बताये गये हैं।। 22 ।।

हे राजा! श्रीकृष्ण के पुत्रों में रुक्मिणीसुत, प्रद्युम्न पहले हैं। वह ठीक श्रीकृष्ण के अनुरुप था ।। 23 ।।

प्रद्युम्न महारथी, रुक्मी की पुत्री रुक्मवती से विवाह किया। उसके गर्भ से दस हजार हाथी के बल वाला अनिरुद्ध जन्म लिया।। 24 ।।

रुक्मि के पुत्री के पुत्र अनिरुद्ध रुक्मि के पुत्र के पुत्री रोचना से विवाह किया। उनका पुत्र वज्र था। आगे यादवी कलह में सारे यादव के मरने के बाद श्रीकृष्ण की इच्छानुसार केवल वज्र मात्र बचा। अर्जुन उसको उग्रसेन के सिहांसन पर अभिषेक किए।। 25 ।।

वज्र से प्रतिबाहु जन्म लिया, उनका पुत्र सुबाहु के पुत्र उग्रसेन उसका पुत्र शतसेन।। 26 ।।

इस यादव कुल में दरिद्र, सन्ततिविहीन, अल्पयुषि, अल्पशक्ति वाले ब्राह्मणों में भक्ति न करने वाले कोई जन्म नही लिये।। 27 ।।

हे राजा! यदुकुल में जन्म लिये हुये, लोगों की संख्या दस हजार वर्ष गणना किये तो भी

पूर्ण नही हो सकती।। 28 ।।

यदुकुल में तैंतीस करोड देवताएँ जन्म लिये। किन्तु प्रति देवता अपने अनेक अंशों से जन्म लेने के कारण द्वारका में उनकी गणना असाध्य थी। यह श्रीकृष्ण की अचिन्त्य अद्भुत शक्ति है।

इन यादवों के बच्चों को सिखाने के लिये तीन करोड़ छियासी हजार तीन सौ शिक्षक थे ऐसे हमने सुना है।। 29 ।।

ऐसे महात्मा यादवों की संख्या कौन कर सकता है। क्योंकि उग्रसेन का पिता अहूक दस दस हजार यादवों के ऊपर राज्य करता था।। 30 ।।

पीछे काल में देवासुर संग्राम में मरण पाये अत्यन्त क्रूर दानव लोग मनुष्य होकर जन्म लेकर गर्विष्ठ होकर सज्जनों को दुःख देने लगे।। 31 ।।

उन दानवों का निग्रह करने के लिये श्रीहरि की आज्ञा से सारे देवतागण यादव कुल में अवतार लिये। यादव कुल एक सौ एक थे।। 32 ।।

यादवों में अवतार लिये हुये देवताओं को भगवान श्रीकृष्ण सामर्थ्य दिये थे। वे सारे श्रीकृष्ण के परिवार के बनकर सारे प्रवर्धमान बने।। 33 ।।

सोना, बैठना, चलना, बोलना, खेलना, नहाना, भोजन करना इन समस्त कालों में यादवों के साथ में सदाकाल श्रीकृष्ण रहते थे। इसके लिये उनके मन में श्रीकृष्ण सदाकाल रहने के कारण वे अपने को भी भूलते थे।। 34 ।।

श्री कृष्ण सारे वेदोर्थों के विधि निषेधों को अपने के लिये बना दिये। इतना होते हुये भी कुरुक्षेत्र में बारह वर्ष काल अपने सामर्थ्य से यज्ञ करते हुये अपनी पूजा स्वयं किये।। 35 ।।

वेद में आने वाले विधि निषेध सारे हरि के बारे में अर्थ देते हैं। विहित कर्म करना मुख्य रूप से हरि स्मरण पाने के लिये है। निषिद्ध कर्म का त्याग हरि विस्मरण न होने के लिये। इतना होते हुये भी श्रीहरि स्वयं विहित कर्माचरण करते हैं। अपने को अपने कर्मों से आराधना करते हैं। स्वरमण होने के कारण और जन को कर्माचरण के बारे में सिखाने के लिये श्रीहरि यह कर्म करते हैं।

श्री वेदव्यास जी, विश्वामित्र, असितमुनि, सान्दिपनी और परशुराम ये सारे श्रीकृष्ण के पुरोहित थे। उद्धव मंत्री था। पुण्यकीर्ति शाली श्रीकृष्ण इनकी सहायता से मुख्य महिषियों के साथ यज्ञ दीक्षित होते थे।। 36 ।।

श्रीकृष्ण मानवों के बीच में अवतार लेकर यज्ञ के अनुष्ठान किये। उनके पाँव को धोया हुआ पानी गंगा बनकर बहने लगी। उनके स्वरूप में समग्र ऐश्वर्य और षड्गुण रहते हैं। छाती में लक्ष्मी

सदाकाल विराजमान हैं। उनका प्रतिपादन करने वाले शास्त्र प्रमाण बनते हैं। वे ही सारे कार्य कारण वस्तुओं के उत्पादक हैं। ऐसे श्रीकृष्ण भूभार हरण के लिये कार्य किये। इसमें आश्चर्य क्या है। लयकारक उनके चक्र श्रीकृष्ण के आयुध बना इसमें आश्चर्य क्या है।। 37 ।।

जगन्निवास देवकी पुत्र कीर्तिशाली श्रीकृष्ण सर्वोत्तम हैं। वे भूमि के ऊपर अपने पाँव रखते हुये भूमि का भार हरण किये। अपने हाथों से दानवों को उत्पीडन किये। अन्दर बाहर उनके देखने वाले मुनियों को आनन्द दिये। लक्ष्मी के आवास बने अपने घर से अपने तिरछी नजरों से अबलाओं की काममूर्ति बन गये।। 38 ।।

श्रीकृष्ण भगवान इस जगत के सृष्टि स्थिति और लय के लिये कारण हैं। प्रकृति पुरुषों के नियामक हैं। इस जग को सृष्ट करते हुये उसमें प्रवेश किये हैं। व्यास मुनि के रुप से भागवत पुराण की रचना की है। उनके अपरोक्ष ज्ञान को पाये हुये जीव संसार नाम के घोसला में सोकर सुबह होते ही जैसे पक्षी घोसला को छोड़ देता है वैसे ही बन्धक बनाया हुये इस प्रकृति को छोड़ देता है। ऐसे भगवान किसी से जन्म लेने वाले नही हैं। भयरहित हैं, और भय निवारक हैं। ऐसे श्रीकृष्ण का निरन्तर ध्यान करना चाहिये।। 39 ।।

भक्तों की धर्मरक्षा के लिये श्रीहरि अपनी लीला से अवतार लेकर अपने अवतार के अनुगुण लोक विडम्बना करते हुये भक्तों के दुष्कर्म को नाश करने का कर्म करते हैं। ज्ञानानन्द स्वरुप वाले उनके दो पादों के सेवा करने से मुक्ति में भी ज्ञानानन्द स्वरुप होकर रहने के लिये इच्छा करने वाले भक्त को श्रीकृष्ण के उन कर्मो का संकीर्तन करना चाहिये।। 40 ।।

मानव निरन्तर बढ़ने वाली हरि भक्ति से मंगलकर श्रीहरि का कथन, श्रवण, ध्यान करे तो बस है। अत्यन्त कठिन तप से भी बड़े तप से, उसको पाने की इच्छा से राजाधिराज लोग अपने राज्य को छोड़कर जंगल में जाते थे। ऐसे तपों से मिलने वाले दुष्कर विष्णु लोक को भगवान अत्यन्त सुलभ रुप से देते हैं।। 41 ।।

सूत पुराणिक कहते हैं - व्यास पुत्र शुकमुनि जो उपदेश दिये हैं ऐसे अमृतस्वरुप कीर्तिशाली श्रीकृष्ण का यह कथामृत इस जगत के पाप को ठीक तरह से धो देता है। यह भक्तों के कान का आभूषण है। इसको सुनने वाला, कहने वाला, भगवान में मन रखते हुये क्षेम धाम कहने वाला उनके वैकुण्ठ लोक को पाता है।। 42 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

।। यहाँ दशमस्कन्ध समाप्त होता है ।।

।। श्री कृष्णार्पणमस्तु ।।

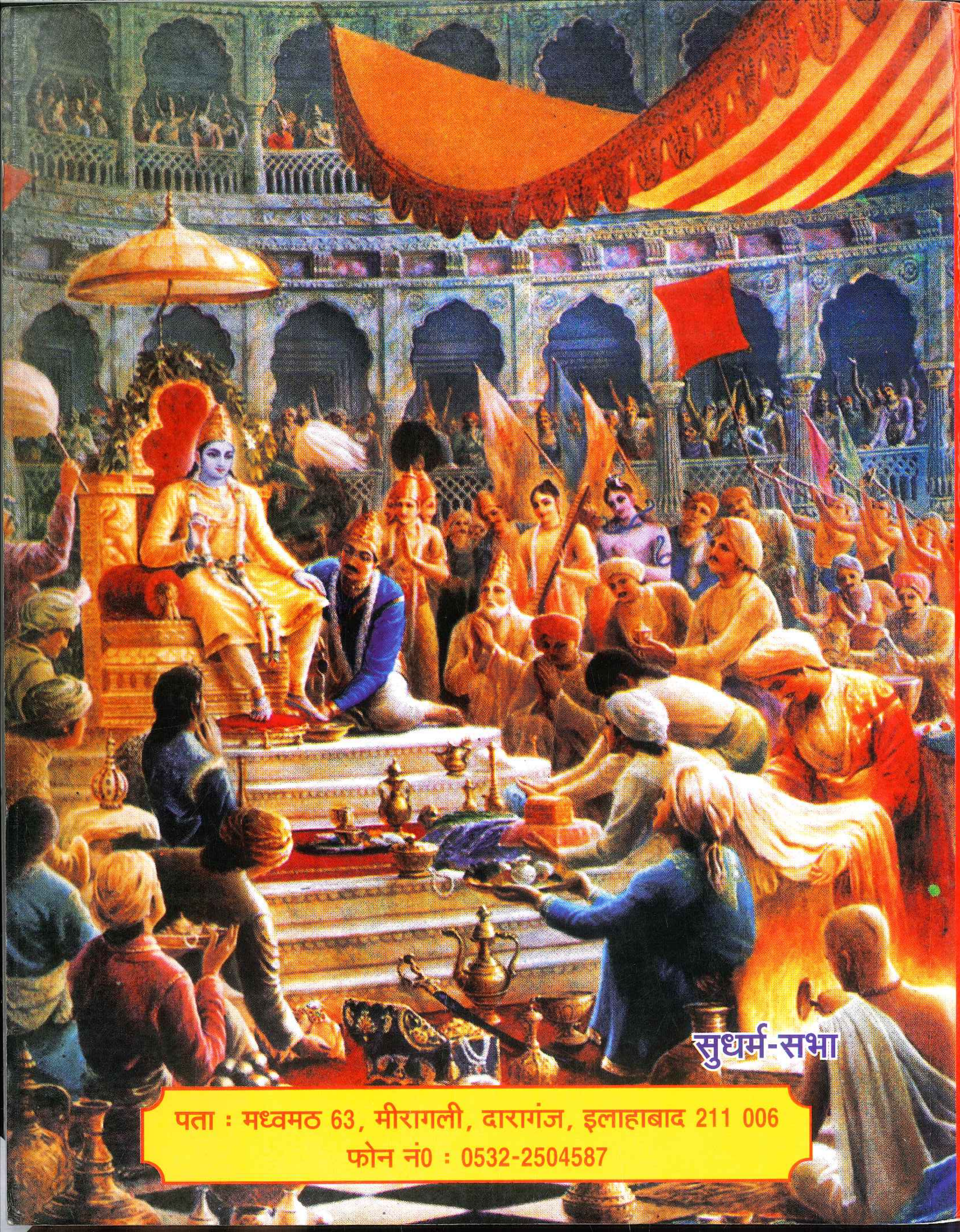

पता : मध्वमठ 63, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद 211 006
फोन नं0 : 0532-2504587

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

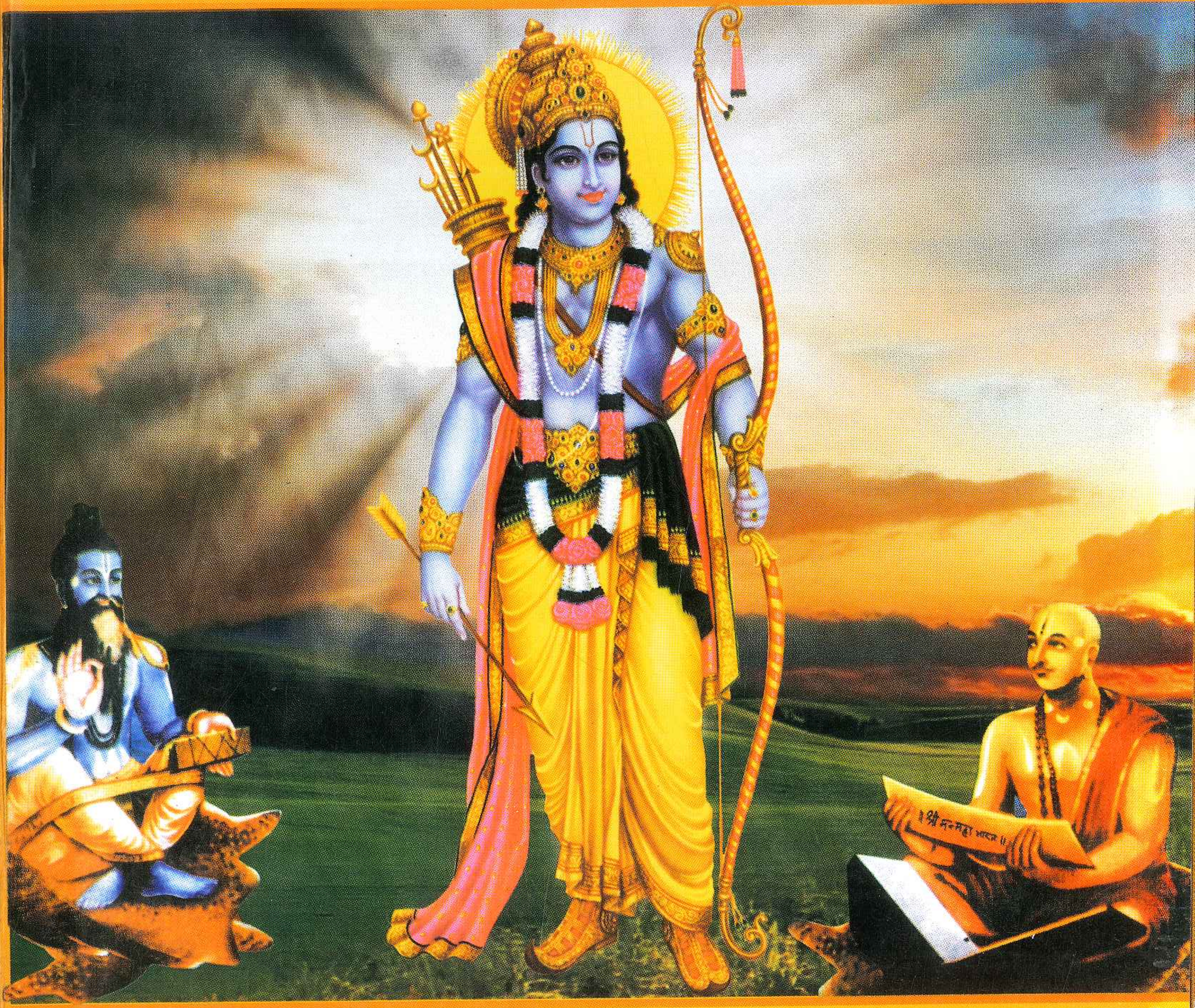

रामावतार

नवम स्कन्धः भाषानुवादः

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण

वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री विजयध्वज टीकानुसारी

श्री मद्भागवत महापुराणम्

नवम स्कंधः

(भाषानुवादः)

अनुवादक

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

प्रकाशक

तत्व संशोधन संसत्

जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

श्रीमद्भागवत महापुराणम् नवम स्कन्धः

लेखक-

श्री 1008 श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी

प्रकाशक

तत्व संशोधन संसत्

जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम मुद्रण 1000 प्रतियाँ

सहयोग राशि

पुस्तकालय संस्करण 100 रुपये

सामान्य संस्करण 60 रुपये

21-10-2011

अक्षर विन्यास

श्री प्राणेश कुमार शुक्ल

मुद्रक -

श्री वैष्णव प्रेस

मोरी, दारागंज, इलाहाबाद

अनुग्रह संदेश
श्री राम श्री

श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य मूल महा संस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी, उडुपी

आठ सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरू मध्वाचार्य जी ने मध्व सिद्धान्त का प्रचार प्रसार बहुत पैमाने से आरम्भ किया। इस प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए उडुपी में आठ पीठ और उत्तर कर्नाटक में एक पीठ की स्थापना किए। श्री जयतीर्थ मुनि, श्री श्रीपाद राज स्वामी, श्री व्यासराजमहामुनि, श्री वादिराजयोगी, श्री रघूत्तम स्वामी जी, श्री राघवेन्द्र तीर्थ जी इत्यादि महामहिमों ने उस सिद्धान्त को और विकसित किए। इसके बारे में यह श्लोक प्रसिद्ध है।

व्यासेन व्युप्तबीजः श्रृतिभुवि भगवत्पाद लब्धांकुरश्रीः।
प्रत्यैरीषत् प्रभिन्नोऽजनिजयमुनिना सम्यगुद्भिन्न शाखाः।।
मौनीशव्यासराजात् उदित किसलयः पुष्पितोयं जयीन्द्रात्।
अद्य श्री राघवेन्द्रात् विलसति फलितो मध्व सिद्धान्तशाखे।।

हमारे दीक्षा शिक्षा गुरु युगपुरुष श्री श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी उत्तर भारत में श्री मध्व तत्वज्ञान को प्रसार करने हेतु **बीस वर्ष** पहले श्री प्रयाग क्षेत्र में श्री मध्व पीठ की स्थापना की है। उन दिनों से प्रयाग का हमारा मठ मध्वसिद्धान्त का प्रसार करता आ रहा है।

श्री वेदव्यास जी की इस सुसंस्कृत भागवत को हमारे शिष्य श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी ने समर्थ सुन्दर और सबके मन को मिले ऐसी सुन्दर हिन्दी में अनुवाद कर साधक सज्जनों का परमोपकार किए हैं। कन्नड़, संस्कृत न समझने वाले हिन्दी भाषी साधकों को जगद्गुरू मध्वाचार्य जी के शास्त्र का परिचय कराने वाले इस कार्य को हम अपने हृदय भर कर अभिनन्दन करते हैं। अन्य सारे कार्यों को बाजू में रखते हुए **तद्धितप - तद्धितप** के जैसे दिन-रात किया हुआ यह शास्त्र सेवा अनुपम है। हमारे गुरु श्री श्री 1008 विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी से स्थापित तत्व संशोधन संसत से मुद्रण किया गया है। यह हरि गुरु का अनुग्रह प्राप्त करने वाला है। उत्तर भारत के हिन्दी भाषी लोग इस ग्रन्थ को पढ़ें और अपने बन्धु बान्धवों से पढ़ाएँ तो यह प्रयत्न सार्थक हो जाता है। इनसे भागवत के अन्य भाग भी जल्दी से जल्दी अनुवादित होकर साधकों के हाथ में विराजमान हो, यही हमारी अपेक्षा है। श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य जी से प्रतिष्ठापित श्री कृष्ण, श्री राम जी के अनुग्रह से हम अपने शिष्य को शुभ कामना करते हैं।

श्री श्री 1008 श्री विद्याधीशतीर्थ
स्वामी जी महाराज

अनुग्रह संदेश

श्री दिग्विजय रामो विजयते

श्री मद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

उत्तरादि मठ

भगवान के गुणों का चिन्तन करना प्रत्येक आदमी का मुख्य कर्तव्य है। अनन्त गुणपरिपूर्ण भगवान के महिमा को जानने के लिए सब को भागवत के प्रकाश की आवश्यकता है। भागवत के पाठ प्रवचन श्रवण सारे बहुत पुण्य देने वाले हैं। ऐसे श्रेष्ठ महाभागवत पुराण को वैष्णव सिद्धान्त के अनुसार श्री श्री विद्यात्मतीर्थ जी ने हिन्दी में सब के मन मोहित करने वाले उत्कृष्ट व्याख्यान किए हैं। प्रयाग के त्रिवेणी तट पर रहते हुए अपनी स्वयं साधना करते हुए उत्तर भारत में वैष्णव सिद्धान्त के प्रचार प्रसार कार्य अपने को समर्पित किए हैं। वे जो इस प्रयास में रत हैं उसको सहकार देते हुए श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी उन्हें बल दे रहे हैं यह संतोष का विषय है।

मध्व मत का प्रसार समग्र भारत में उज्वल रीति से प्रसार होना चाहिए। उत्तर भारत के परिसर में यह प्रसार कार्य करने वाले श्री श्री विद्याधीश तीर्थ और श्री श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी को हम अभिनन्दन करते हैं।

इसी प्रकार श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी और अनेक कृति और व्याख्यान करते हुए तत्वप्रचार कार्य को इससे भी अधिक रूप से करे इस प्रकार हम अपने उपास्य मूर्ति श्री दिग्विजय राम और वेदव्यास जी से प्रार्थना करते हैं।

बैंगलूरु

श्री सत्यात्म तीर्थ स्वामिनः
उत्तरादि मठ

श्रीमद् अच्युत प्रेक्षाचार्य संस्थानम्
भीम सेतु मुनिवरेन्द्रमठ भीमनकट्टे
अनुग्रह संदेश

|| [illegible] ||

SRIMAD ACHUYTA PREKSHACHARYA SAMSTHANAM

BHIMASETHU MUNIVRUNDA MUTT, BHIMANAKATTE.

SRI 1008 SRI SRI. RAGHUMANYATEERTHA SWAMIJI
PEETHADHIPATHI

[illegible] Post, Taluk: Teerthahalli, District: Shimoga. Pincode: [illegible]
Phone: [illegible], Mobile: [illegible]. Email: [illegible]

Branch: BHIMANAKATTE SRI RAGHAVENDRA SWAMY MUTT
No.16, 6th Block, Doddabommasandra, Vidyaranyapura Main Road, Bangalore : [illegible]. Phone: 080-23483471.

[illegible]

शुभ कामना

श्री निम्बार्को जयति

श्रीमद् गोपीजनवल्लभाय नमः

अनन्त श्री जगद्गुरु निम्बार्काचार्य

गोस्वामी श्री विष्णुकान्त जी महाराज, पीठाधिपति

श्री निम्बार्काचार्य पीठ, 18/12, महाजनी टोला प्रयाग - 211 003 फोन : 2404298

श्री निम्बार्क प्रभास्थली व्यास गद्दी नैमिषारण्य (उ० प्र०)

कर्नाटक के अन्तर्गत उडुपी माध्व पीठ प्रयाग के अधिपति श्री 1008 श्री स्वामी विद्यात्म तीर्थ जी महराज के लोक भाषा में अनुवादित भागवत के ग्रन्थ और अन्य भगवद्गीतादी ग्रन्थ देखने को मिले। इक्यासी वर्ष की अवस्था में अदम्य स्फूर्ति, वैदुष्य एवं सार्थक जीवन के धनी महा पुरुष अभिनन्दनीय हैं। कई अवसर में हम लोग एक रहे हैं।

इस अवस्था में भी कई ग्रन्थों के लेखन, सामाजिक एवं पारमार्थिक कार्यो को एक युवक की भांति करते हुए संलग्न हैं।

आप का जीवन अमृतत्व की ओर अग्रसित है सकल कुशल पात्र हैं।

भगवान श्री गोपीजन बल्लभ देव जी से दीर्घ जीवन की कामना करते हैं।

आचार्य विष्णु कान्त गोस्वामी
16-06-2011
इलाहाबाद

प्रस्तावना

हमारे गुरु जी पूर्व प्रयाग पीठाधिपति श्री 1008 श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी ने लगभग दस वर्ष पूर्व भागवत के पहले तीन स्कन्धों का अनुवाद कर प्रकाशित किए थे। उनका महानिर्वाण आकस्मिक रीति से होने के कारण वह कार्य वहीं अवरुद्ध हो गया था।

हमारे दीक्षा गुरु उडुपि श्री पलिमारु मठ के पीठाधिपति जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महराज जी ने उस अवरुद्ध कार्य का पुनरारम्भ करने का आदेश दिया। मैं अल्प शक्ति और अल्प ज्ञान वाला हूँ। किन्तु अपने गुरुवर्य की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मैं यह कार्य कर रहा हूँ।

विद्यावतां भागवते परीक्षा यह पूर्णतः सत्य है। श्री गुरु जी का अनुग्रह ही मुझसे यह कार्य करवा रहा है। दक्षिण भारत में जन्म लेने के कारण मुझे अच्छी हिन्दी नही आती। पण्डित न होने के कारण शास्त्र का गहन और विस्तृत ज्ञान प्राप्त नही है। केवल गुरु का अनुग्रह ही मुझे प्रेरणा दे रहा है। पाठकों द्वारा निर्दिष्ट त्रुटियों को अगले अंक में सुधारने का प्रयास करेंगे।

नवम स्कन्ध में वेदव्यास जी ने सूर्यवंश और चन्द्रवंश की कथा कहे हैं। ये दोनों वंश साक्षात सूर्य और चन्द्र से चलते आए हैं, यह श्रद्धा विश्वास समग्र भारतीयों में फैला है। ये दोनों राज वंश भारत के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हैं। अनेक लोगों की धारणा है कि ये वंश एक के बाद एक अपने राज्य चलाए। किन्तु इतिहासकारों को यह मान्य नही है। दोनों वंश अलग अलग क्षेत्र में अपना राज्य चलाते थे। कभी सूर्य वंश तो कभी चन्द्र वंश में श्रेष्ठ राजा होते थे तब उस वंश की प्रसिद्धि होती थी। दोनों वंश में बड़े बड़े त्यागी, शूर, तपस्वी और श्रेष्ठ राजाओं ने राज्य चलाए।

वेदव्यास जी विस्तार रूप से पहले सूर्य वंश का इतिहास कहते हैं। सूर्य वंश में इक्ष्वाकु, रघु, अज, दिलीप आदि बड़े बड़े राजा हो चुके, उनके राज्य काल में भारत अत्यन्त वैभव का स्थान पाया। इसका विवरण देते हुए वेद व्यास जी श्री राम जी की कथा थोड़ा विस्तार रूप से कहते हैं। मूल वाल्मीकि कथा को वेद व्यास जी थोड़ा बदलाव करते हुए लिखे हैं। इस राम कथा में सीता जी के अग्निप्रवेश की कथा नही है। राम रावण युद्ध के बाद, रावण के संहार के बाद श्री राम जी हनुमान समेत अशोक वन को जाते हैं और स्वयं सीता जी को हाथ पकड़ कर उठा लेते हैं, और अपने शिविर को ले आते हैं। यह दृश्य हृदय स्पर्शी है, पाठक भाव विभोर हो जाता है। सन्त महात्माओं ने ऐसे बदलाव लाकर पाठकों का भक्ति भाव बढ़ाते हैं। जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य जी अपने रामायण तात्पर्य (महाभारत तात्पर्य निर्णय नाम के ग्रन्थ में) छायासीता की कथा जोड़ कर हमारे मन को प्रसन्नता देते हैं। भगवती लक्ष्मी की अवतार सीता देवी में हमारी

श्रद्धा और बढ़ती है। सन्त तुलसी दास जी इसका अनुकरण करते हुए अपने मानस ग्रन्थ में छायासीता प्रसंग को उद्बोधक बनाये हैं।

श्री राम जी का दर्शन हम रामायण में दो रूप से कर सकते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम मानव सहज रूप धारण करते हुए मानव सहज लीलाओं को किए हैं। दूसरी दृष्टि से स्वयं लक्ष्मी नारायण श्री राम सीता के रूप में अवतार लेकर हमारे लिए एक आदर्श जीवन की प्रस्तुति किए हैं। ये दोनों समान रीति से आदरणीय हैं।

वेदव्यास जी के रामायण में हम इन दोनों रूपों को देख सकते हैं। इस दृष्टि से हमें रामायण में वेद व्यास जी द्वारा किए हुए सुधार को स्वीकारना है। अथवा इसमें एक और अर्थ है। युग भेद कल्प भेद से भगवान की यह दोनों लीला हो सकती है।

नवमस्कन्ध के अन्त में संक्षेप में वेद व्यास जी चन्द्रवंश की कथा बोलते हुए श्री कृष्णचन्द्र की कथा की प्रस्तुति करते हैं। अन्त में राजा परीक्षित के आग्रह के कारण श्री कृष्ण कथा को विस्तार रूप से कहने लगते हैं। यह दशम स्कन्ध का विषय बनता है।

इस नवम स्कन्ध के अनुवाद के समय पूर्णप्रज्ञ विद्यापीठ के पूर्व प्रांशुपाल और तिरुपति संस्कृत विश्वविद्यालय के संदर्शक प्राध्यापक श्री हयवदन पुराणिक जी द्वारा लिखा हुआ और श्री श्री 1008 श्री विद्येश तीर्थ स्वामी जी के भागवताश्रम प्रतिष्ठान श्री भण्डार केरी मठ से प्रकाशित सुललित भागवत का उपयोग हमें बहुत हुआ है। हम उनके आभारी हैं।

हमारे परम गुरु श्री विद्यामान्य जी से संस्थापित और हमारे गुरु जी श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महराज से पोषित श्री तत्व संशोधन संसत् ने इस ग्रन्थ प्रकाशन की जिम्मेदारी ले लिए हैं। तत्व संशोधन संसत् दक्षिण भारत में एक प्रसिद्ध संशोधन और प्रकाशन की बड़ी संस्था है। बहुत श्रेष्ठ विद्वान और पण्डित संशोधकों के ग्रन्थ यहाँ से प्रकाशित हुए हैं। मेरे जैसे अल्प बुद्धि वाले इस छोटी सी कृति को वे प्रकाशित कर रहे हैं, यह मेरा बड़ा भाग्य है। इसके लिए मैं अपने श्री गुरु जी को शत शत नमन करता हूँ।

वृहती सहस्र याग और सहस्र चन्द्र दर्शन शान्ति याग के सन्दर्भ में आये हुए दस माध्व पीठाधिपतियों के अमृत हस्त से इस ग्रन्थ का विमोचन हो रहा है यह मेरा और एक बड़ा भाग्य है।

इस ग्रन्थ के अक्षर विन्यास किए हुए **श्री प्राणेश कुमार शुक्ला**, अक्षर संशोधन किए हुए श्री गिरधारी लाल मिश्रा और मुद्रण किए श्री वैष्णव प्रेस के सारे कर्मचारियों के सहयोग का स्मरण हम करते हैं। सूज्ञ सदभक्त इस ग्रन्थ का सदुपयोग करें यही आकांक्षा है। **इति शम्**

तीर्थ राज प्रयाग
21-10-2011

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज

नवम स्कन्ध की विषय सूची

क्र0	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	अध्याय एक	वैवस्वत मनु से यज्ञ करना। इळा बदल कर सुद्युम्न होगया	01-03
2.	अध्याय दो	इळावर्त महिमा। पुरूरव उत्पत्ति। वशिष्ठ महिमा। पुरूरव का राज्य ग्रहण	04-05
3.	अध्याय तीन	पुत्र के लिए मनु की तपस्या। करूष वंश दिष्ट वंश की कथा	06-09
4.	अध्याय चार	सुकन्या की कथा। च्यवन महिमा। रेवती कथा	10-13
5.	अध्याय पॉच	नाभाग कथा। आगिरस सत्रयाग	14-15
6.	अध्याय छ:	नाभाग पुत्र अम्बरीष कथा। कादशी महिमा	16-24
7.	अध्याय सात	अम्बरीष वंश की कथा यौवनाश्व और सौभरी कथा। त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र कथा	25-33
8	अध्याय आठ	रोहित वंश में सगर जन्म। भागीरथी कथा। रघु जन्म और रामावतार	34-47
9.	अध्याय नौ	श्री राम द्वारा अश्वमेध यज्ञ, सीता परित्याग, कुश लव उत्पत्ति, राम शासन प्रशंसा	48-51
10.	अध्याय दस	कुश से सौमित्र तक मनु वंश की कथा	52-53
11.	अध्याय ग्यारह	इक्ष्वाकु पुत्र निमी कथा। वशिष्ठ शाप। राजा जनक और उसका वंश	54-56
12.	अध्याय बारह	चन्द्र वंश की कथा। बुध पुरूरव कथा। उर्वशी प्रणय कथा	57-62
13.	अध्याय तेरह	गाधि राजा की कथा। परशुराम अवतार।	63-66
14.	अध्याय चौदह	परशुराम कथा। शुन:शेप कथा, धन्वन्तरी अवतार।	67-72
15.	अध्याय पन्द्रह	नहुष वंश। ययाति देवयानी कथा।	73-78
16.	अध्याय सोलह	ययाति से कथा निरूपण। हरि के आश्रय के लिए वन गमन	79-81
17.	अध्याय सत्रह	पुरू वंश वर्णन। दुष्यन्त की कथा। भरत की कथा, भरद्वाज जन्म।	82-85
18.	अध्याय अठ्ठारह	रंति देव महिमा। अहल्या, शतानन्द कथा। कृप कृपी का जन्म।	86-89
19.	अध्याय उन्नीस	दिवोदास वंश में द्रुपद जन्म। कुरू जन्म। शंतनु, धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर की उत्पत्ति।	90-93
20.	अध्याय बीस	यदु वंश का वर्णन। कार्तिवीर्याजुन महिमा। शैब्य का जन्म।	94-97
21.	अध्याय इक्कीस	यदुवंश में वसुदेव देवकी से श्री कृष्ण सुभद्र का जन्म।	98-102

श्री बालाजी

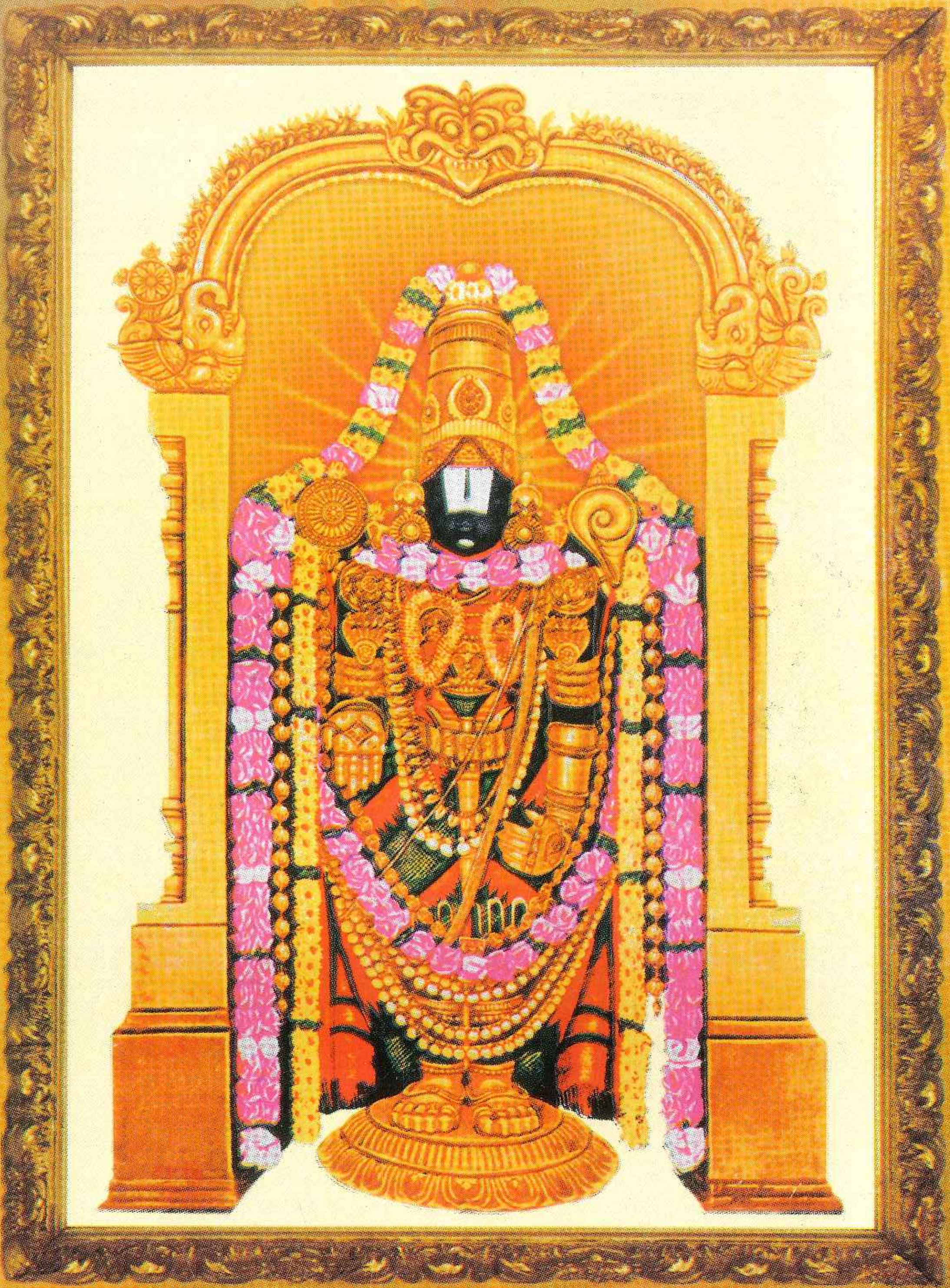

हमारे कुल देव विश्व के एकमेव बड़ा देव
श्री वेंकटेश्वर बालाजी के श्री चरणों में
यह ग्रन्थ समर्पित है

श्रीमद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मुलमहासंस्थान
पलिमारु श्री हृषीकेश शाखा पीठ के प्रधान देव
श्री सीता समेत श्री राम भगवान

संकट मोचन श्री पंचमुखी हनुमान

कपिमुखमपि पूर्वं दक्षिणे नारसिंहम् ।
गरुड़मुखमपि पश्चात् उत्तरे सूकरास्यम् ।
ह्यवदनमतोर्ध्वं चिन्तयेद् वायुसूनुम् ।
सकलदुरितहरं रामदूतं नमामि ।।

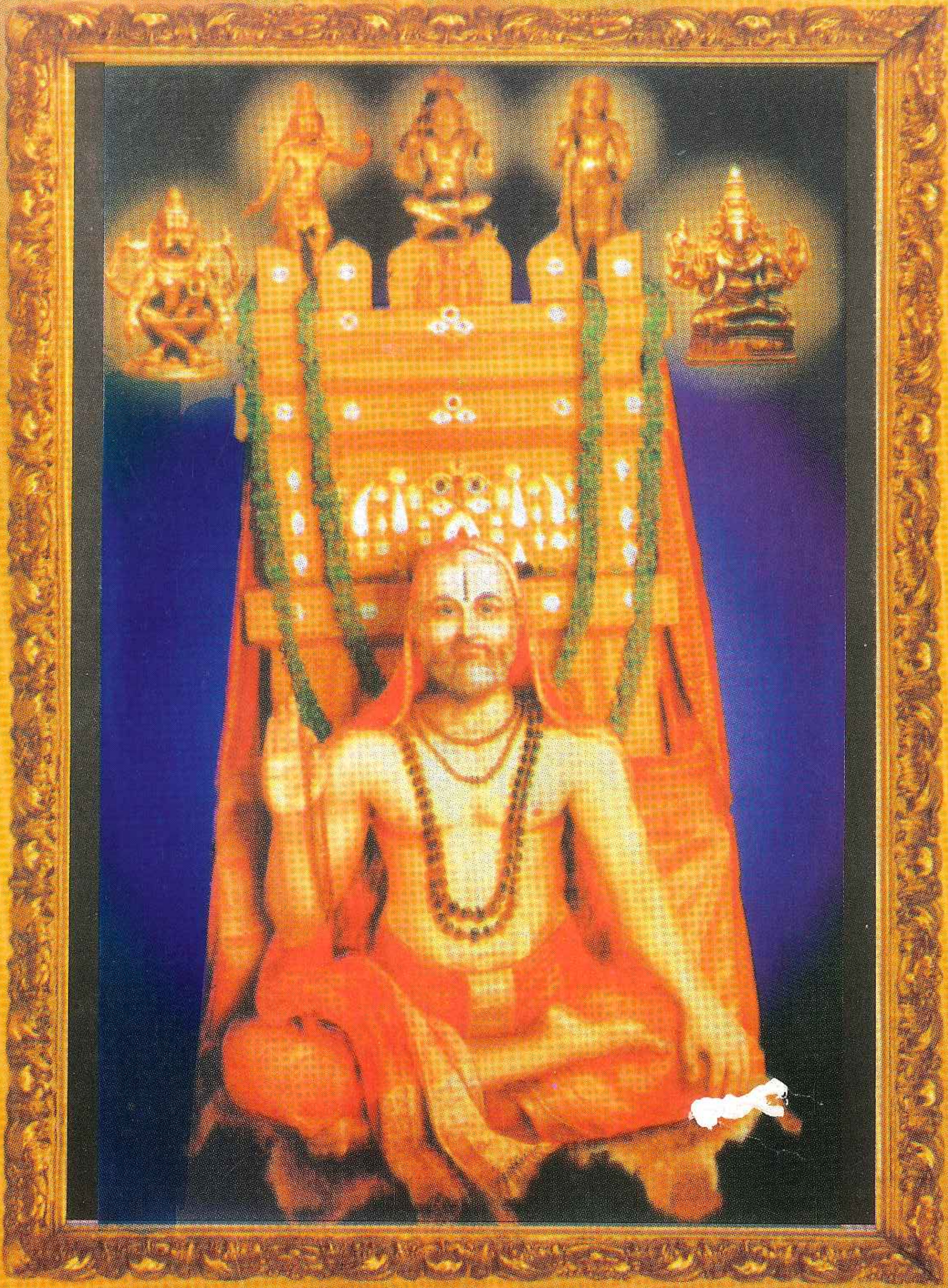

अपेक्षितप्रद मन्त्रालय के श्री राघवेन्द्र स्वामी जी

पूज्याय राघवेन्द्राय सत्यधर्मरताय च।
भजतां कल्पवृक्षाय नमतां कामधेनवे।।

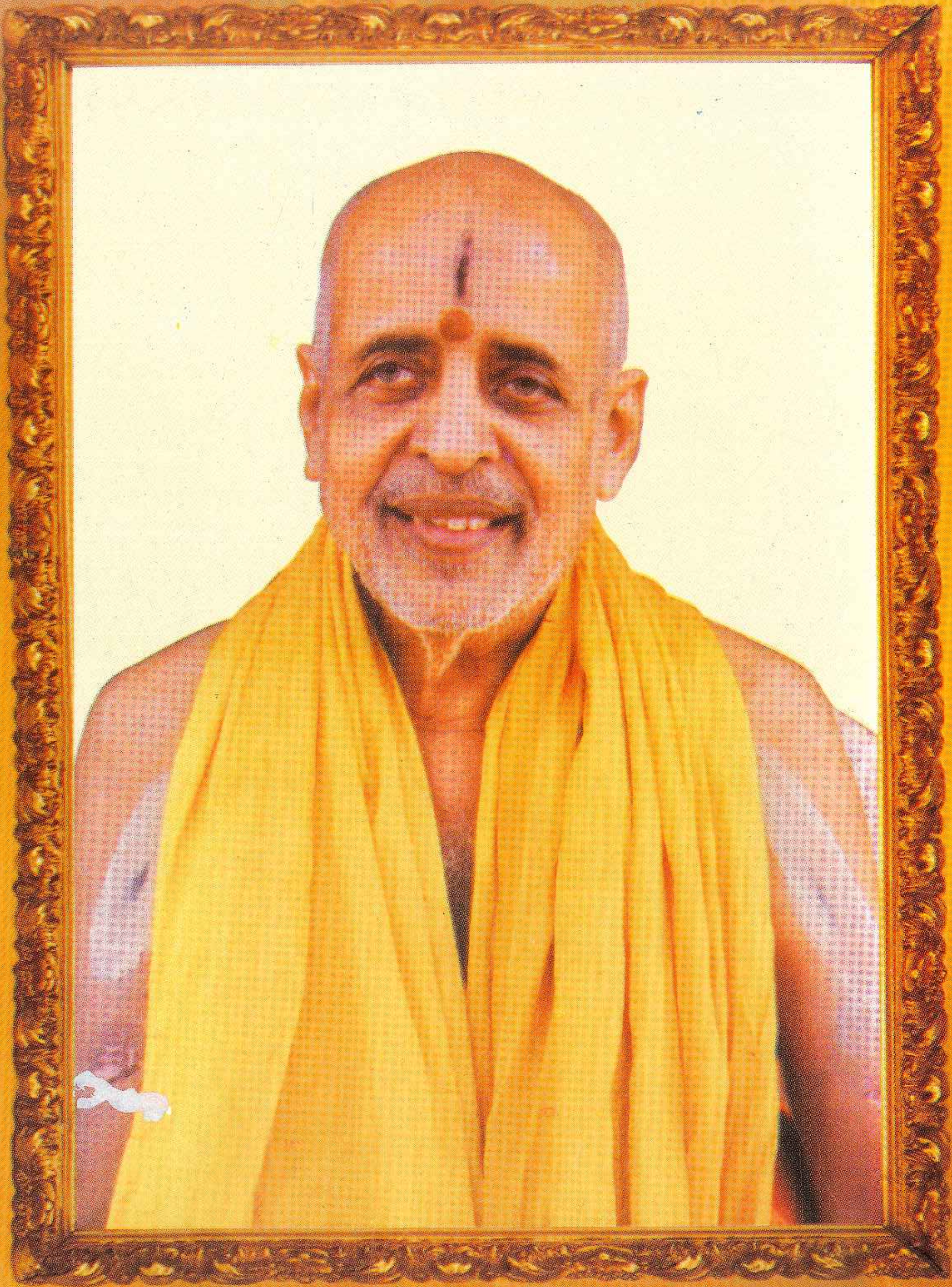

सर्वमान श्री १००८ श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी

ब्रह्मचर्य हरि प्रीति सुविद्या वादशालिनः ।
इष्टदान कष्टहर्तृन्नः विद्यामान्यान् मुनीन्नुमः ॥

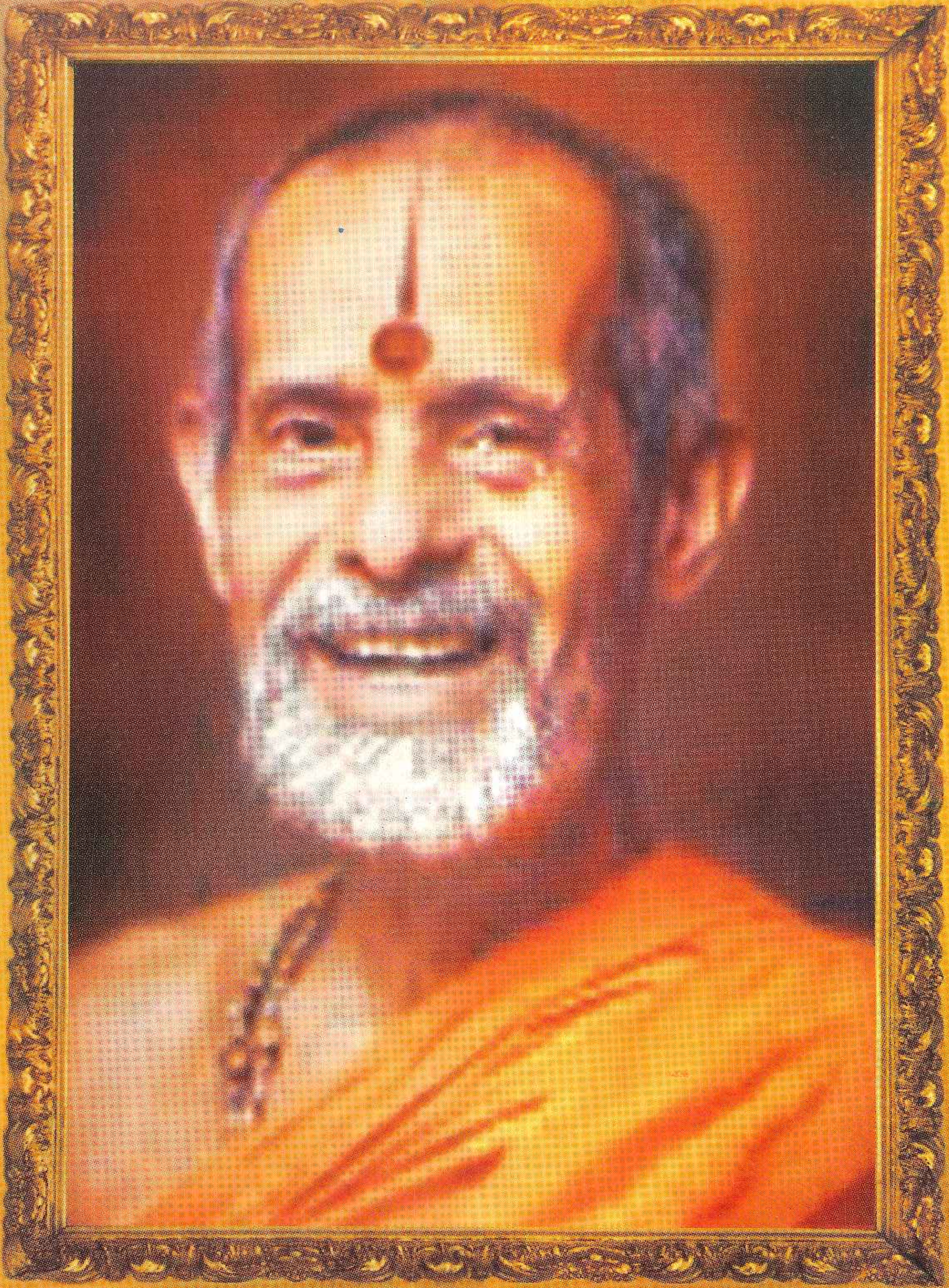

श्रीमद् जगद्गुरुमध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधीश
श्री १००८ श्री विश्वेशतीर्थ जी महाराज

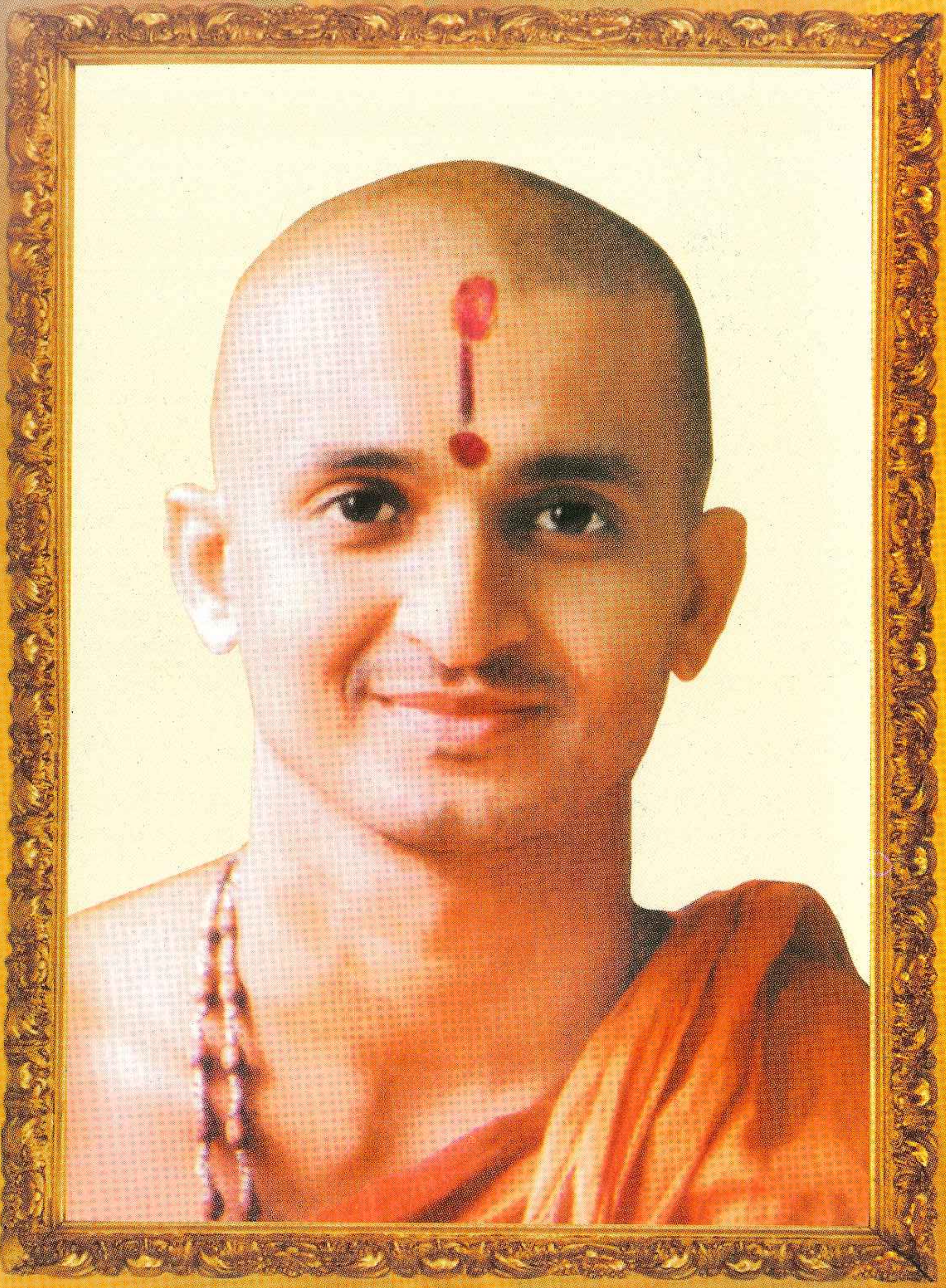

हमारे स्वरूपोद्धारक एवं दीक्षा गुरु
श्रीमद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधीश
श्री 1008 विद्याधीश स्वामी जी महाराज

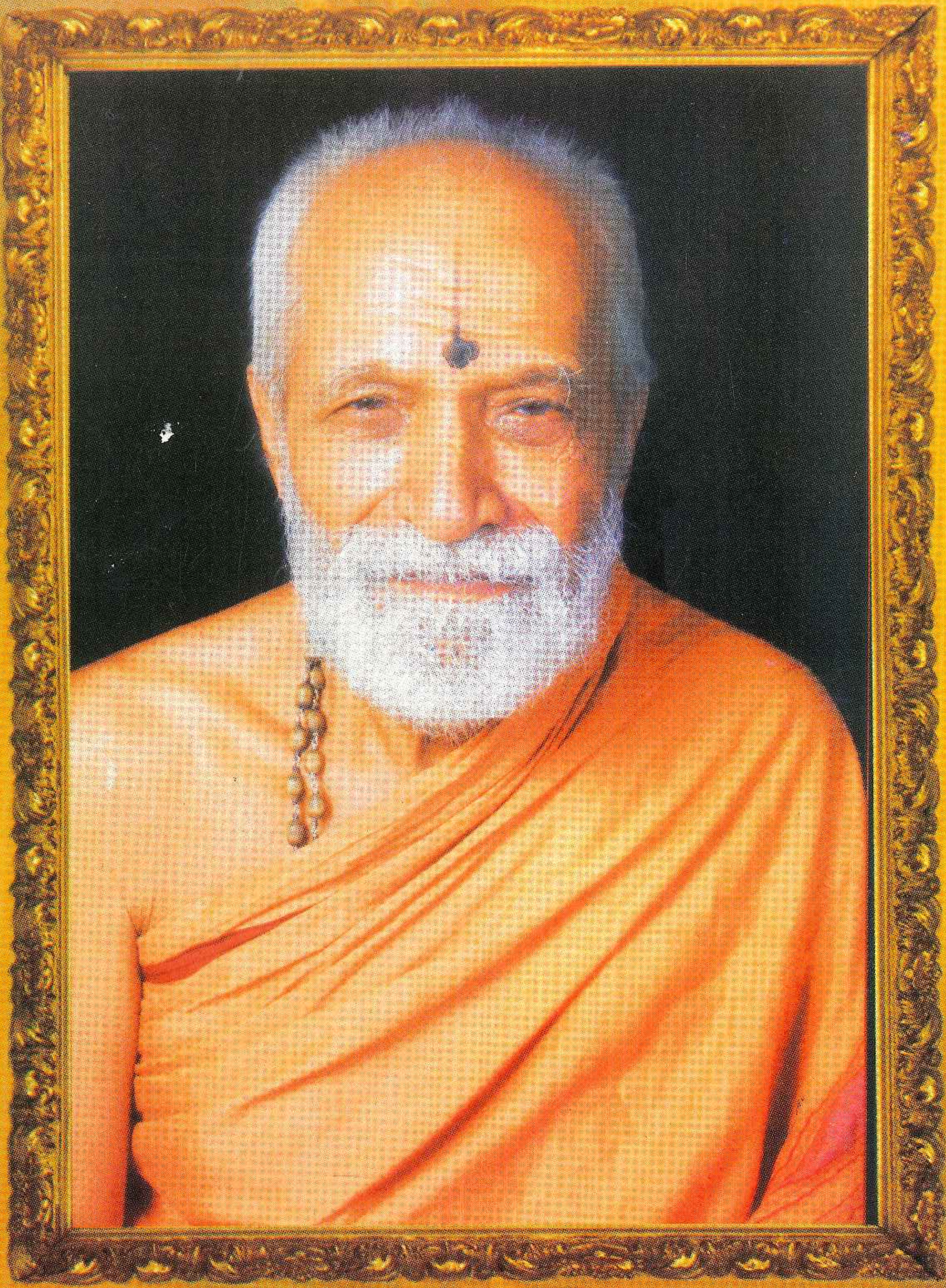

ग्रंथकर्ता प्रयागपीठाधिपति

श्री १००८ श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी महाराज

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - एक

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - सारे मन्वन्तर और उनमें सर्वसमर्थ और अनन्तशक्ति वाले भगवान नारायण द्वारा किए हुए कार्यों के बारे में आपने अब तक कहा। उसको सुनकर मुझे बहुत आनन्द हुआ।।1।।

द्रविड़ देश के राजर्षि सत्यव्रत ने पिछले मन्वन्तर में मत्स्यमूर्ति की सेवा से तत्वज्ञान को पाकर दूसरे जन्म में वे ही विवस्वान नाम के सूर्य के पुत्र होकर जन्म लिए। उनका नाम वैवस्वत मनु था। उनके पुत्र राजा इक्ष्वाकु इत्यादि हुए यह बात भी मैंने आपसे सुना।।2,3।।

हे महामुने - उस राजा के वंश के राजाओं की कथा को आप हमें सुनाइए। उसको सुनने के लिए हम बहुत आतुर हैं।।4।।

पूर्व के राजाओं की अब जो राजा बने हैं उनके और आने वाले राजाओं के पराक्रम के बारे में बताइए। वैवस्वत मनु वंश के सारे राजा पवित्र कीर्ति वाले हैं।।5।।

सूत जी कहते हैं - सारे वेदों को जानने वाले मुनियों की सभा में राजा परीक्षित से वेदवेत्ता भगवान शुकदेव जी कहते हैं।।6।।

शुकदेव जी कहे - हे शत्रुसंहार करने वाले राजा, मैं वैवस्वत मनु के वंश के बारे में संक्षिप्त रूप में कहता हूँ। उसको विस्तार रूप से कहने के लिए सौ वर्ष भी पर्याप्त नही होगा।।7।।

इस प्रपंच की सृष्टि होने के पहले पूर्व कल्प के अन्त में उत्तम मध्यम अधम सारे युगों के अधिपति परम पुरुष नारायण स्वतन्त्र और अकेले थे और कोई स्वतन्त्र रूप से नही था। इसके लिए उसका अस्तित्व नहीं सा लगता था।।8।।

श्री मन्नारायण के नाभिकमल से सोने का कमल उत्पन्न हुआ। उस पद्म में स्वयंभू चतुर्मुख ब्रह्मा जी जन्म लिए।।9।।

ब्रह्मा जी के मानस पुत्र होकर मरीचि जन्म लिए। उनके पुत्र कश्यप। उनसे दक्षपुत्री अदिति के पेट से

विवस्वान नाम के सूर्य जन्म लिए।।10।।

विवस्वान से संज्ञादेवी में वैवस्वत नाम के पुत्र जन्म लिए। हे राजा! सुनो, अच्छे दिल वाले वैवस्वत मनु अपनी पत्नी श्रद्धा देवी में दस पुत्रों को जन्म दिए।।11।।

उनके नाम हैं - क्रमशः इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त, वृषध्र, नाभाग और नभ।।12।।

इन पुत्रों के जन्म लेने के पहले, सन्तति न होने के कारण वैवस्वत मनु पुत्र प्राप्ति के लिए भगवान वशिष्ठ, मित्र और वरुणों को पुरोहित बनाकर देवताओं को उद्देश्य करते हुए एक यज्ञ किए।।13।।

उस समय पयोव्रत करने वाली मनुपत्नी श्रद्धादेवी ने होतृ नाम के ऋत्विज के पास आकर नमस्कार करते हुए अपने लिए पुत्र के बदले पुत्री का वर मांगा।।14।।

होतर्यज इस मंत्र से अध्वर्यु होतृ को प्रैष को देते हुए हवन करने के लिए देने के बाद होतृ **वौषट्** इस मंत्र से वषट्कार का उच्चारण करते हुए एकाग्र मन से पुत्री की कामना की।।15।।

होतृ द्वारा किए हुए इस व्यत्यास के फल स्वरूप इला नाम की पुत्री का जन्म हुआ। उसको देखकर मनु को पूर्ण संतोष नही हुआ। राजा ने गुरु वशिष्ठ के पास जाकर पूछा।।16।।

हे पूज्य महोदय - आप द्वारा किए हुए इस याग के फल में व्यत्यास क्यों हुआ? यहाँ पुत्री का जन्म हुआ। यह नही होना था। आप बड़े वेद मंत्रज्ञ हैं। आपके यज्ञ में यह फल व्यत्यास क्यों हुआ? यह मुझे बहुत आश्चर्य लगता है।।17।।

आप योगी हैं। तप के कारण आपके सारे पाप जल गये हैं। आप मंत्रज्ञ हैं। देवतागण जो बोलते हैं वह कभी भी असत्य नही होता। आपका संकल्प भी बदलता नही। इतना होते हुए भी यह बदलाव कैसे हुआ।।18।।

मैत्रा वरूणेष्टिं कुर्यात् पुत्र कामः। पुत्र को चाहने वाला मैत्रावरूणि नाम के इष्टि को करना चाहिए। जिस देवता को उद्देश्य कर हविष अध्वर्यु उठाता है, वही देवता फल दे, इस वषट्कार मंत्र से होतृ को ध्यान करना चाहिए। ऐसा करे तो व्यत्यास हो ही नही सकता। इतना होते हुए भी व्यत्यास क्यों हुआ, मनु का यह संशय है।

वैवस्वत मनु को इस बात को सुनकर उनके पूर्वज वशिष्ठ ऋषि होतृ से किए हुए व्यत्यास को दिव्य ज्ञान से समझते हुए मनु को बता दिए।।19।।

हे राजा! संकल्पित फल में जो व्यत्यास हुआ वह होतृ के ध्यान में बदलाव होने के कारण। किन्तु मैं अपने सामर्थ्य से तुम्हारी इस पुत्री को पुत्र बना दूगाँ।।20।।

हे राजा परीक्षित - महाकीर्तिशाली श्रेष्ठऋषि वशिष्ठ जी इस प्रकार निर्धारण करते हुए इला नाम की उस कन्या को पुरुषत्व आने के लिए इच्छा करते हुए भगवान नारायण का स्तोत्र करने लगे।।21।।

सर्वशक्त भगवान श्री हरि उस स्तुति से संतुष्ट होकर मुनि की इच्छा के अनुसाार इला को श्रेष्ठ पुरुष बना दिये। उस पुत्र का नाम सुद्युम्न रखे।।22।।

वह सुद्युम्न बड़ा होने के बाद एक दिन सिंधु देश के उत्कृष्ट घोड़े पर सवार होते हुए अपने मंत्री और अन्य लोगों के साथ जंगल में शिकार करने चला।।23।।

उत्कृष्ट धनुष और बाण लेकर कवच और कुण्डल को धारण किये हुआ वह वीर एक हिरण के पीछे -पीछे दौड़ते हुए उत्तर दिशा में चला गया।।24।।

मेरु पर्वत के निचले हिस्से में स्थित सुकुमार नाम के वन में प्रवेश किया। वहाँ भगवान शम्भु उमा के साथ वन विहार करते रहते हैं।।25।।

उस वन में प्रवेश करते ही शत्रु संहारक राजा सुद्युम्न स्त्री बन गया। आश्चर्य की बात है कि उसका घोड़ा भी घोड़ी बन गयी।।26।।

इसके साथ राजा के साथ आने वाले सारे लोगो में लिंग परिवर्तन हो चुका था। उसको देखकर वे सारे दुःखित हो गये।।27।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में पहला अध्याय समाप्त हुआ।।

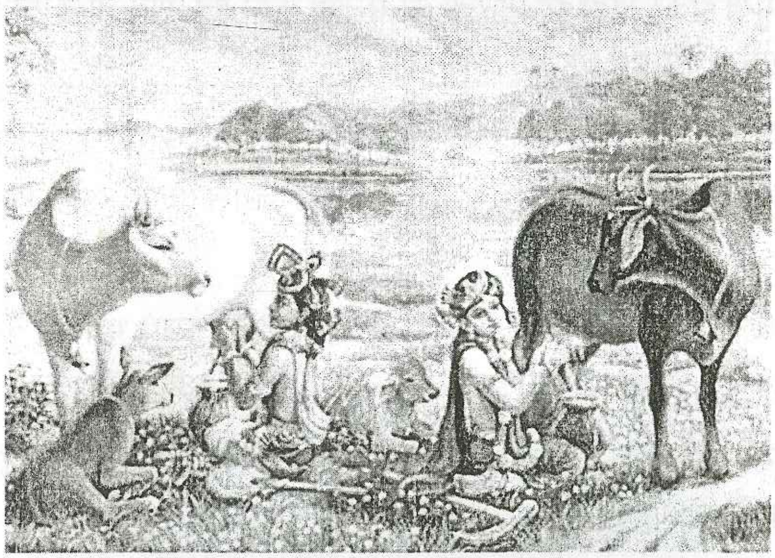

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - दो

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे पूज्य महोदय! उस जंगल का क्या विशेष है। उसमें प्रवेश करने वाले स्त्री क्यों बनते हैं? इसको किसने बनाया। इस विषय में हमें कुतूहल हो रहा है। आप हमारे इस संशय का निवारण करें।।1।।

श्री शुकदेव बोले - एक बार कई व्रतनिष्ठ ऋषियों ने अपने दिव्य प्रभा से सारे दिशाओं को शोभित करते हुए उस सुकुमार वन में शिव जी के दर्शन के लिए आये।।2।।

उस समय शिव पार्वती रतिकेलि में थे। उस समय नग्न रहीं अम्बिका देवी लज्जा करते हुए पति को छोड़कर साड़ी से अपने शरीर को ढ़क लीं।।3।।

ऋषियों ने भी रतिकेलि में रहे हुए शिव पार्वती को देखकर अपने रतिविघ्न के पाप को परिहार करने के लिए बद्रि के नरनारायण आश्रम को चले गये।।4।।

लज्जा से अवनत मुख होकर खड़ी हुई गिरिजा को सन्तोष करने हेतु शिव जी ने एक नियम बनाया। आज से इस जंगल में जो प्रवेश करता है वह स्त्री बने।।5।।

इसके बाद उस वन में कोई पुरुष प्रवेश करे तो स्त्री बन जाते थे। इसी कारण के अनुसार राजा सुद्युम्न अपने घोड़े और परिवार के साथ स्त्री हो गया। वह लज्जा से जंगल-जंगल फिरता रहा। अपने घर को जाना नही चाहता था।।6।।

एक बार ऐसे संचार करते हुए वह स्त्री रूप का सुद्युम्न (पहले की इला) भगवान बुध के आश्रम के पास गया। वहाँ सुन्दर पुरुष बुध अत्यन्त सुन्दरी इला को देख कर मोहित हुआ।।7।।

सुन्दरी इला भी सुन्दर पुरुष बुध को देखकर उससे शादी करने के लिए इच्छा प्रकट की। उन दोनों से पुरूरव नाम का पुत्र जन्म लिया।।8।।

मनु पुत्र राजा सुद्युम्न सुन्दर पुत्र को पाने के बाद भी अपने स्त्रित्व से दु:खित रहता था। सुना है वह

अपने कुल पुरोहित वशिष्ठ जी का स्मरण किया।।9।।

प्रत्यक्ष आये हुए वशिष्ठ जी सुद्युम्न की उस दुर्दशा को देखकर दु:खित होकर उसको पुन: पुरुषत्व प्रदान के लिए शंकर के बारे में तप किए।।10।।

उनके तप से शिव जी सन्तुष्ट हुए। ऋषि को सन्तोष हो और अपना वाक्य भी स्थिर रहे इसके लिए उन्होने एक सुवर्ण माध्यम ढूंढ़ निकाले।।11।

भगवान शंकर बोले, हे ऋषि, तुम्हारे तप के फल स्वरूप यह सुद्युम्न एक महीने के लिए पुरूष बने और एक महीने के लिए स्त्री हो जाय। इस व्यवस्था से वह अपनी इच्छा के अनुसार अपने इस भूमि का राजा बने।।12।।

श्री शुकदेव बोले - वशिष्ठ जी के इस अनुग्रह से सुद्युम्न एक महीना स्त्री और एक महीना पुरुष होते हुए इस भूमि का राजा बनकर राज्य चलाया। जब वह स्त्री बनता था तब एक मास पर्यन्त वह घर छोड़ कर बाहर नही आता था। एक महीने तक अपने राजा को न देखते हुए प्रजा जन दु:खित होते थे।।13।।

संग्रह रामायण में यह कथा आती है। वहाँ राजा सारे यज्ञों में श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ करते हुए स्थिर रूप से पुरुषत्व को पा लिया। किन्तु उनके अनुचर किंपुरुषों के पत्नी बनकर अन्त तक स्त्री ही रहे।

सुद्युम्न को उत्कल, गय, विमल नाम के तीन पुत्र हुए। वे सारे धर्मिष्ठ होकर दक्षिणापथ के राजा बने।।14।।

प्रतिष्ठान नगरी के राजा सुद्युम्न अपने बुढ़ापन में इला रूप में पाया हुआ पुरूरव नाम के पुत्र को राज्याधिकार को सौंपकर तप करने के लिए वन को चला गया।।15।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

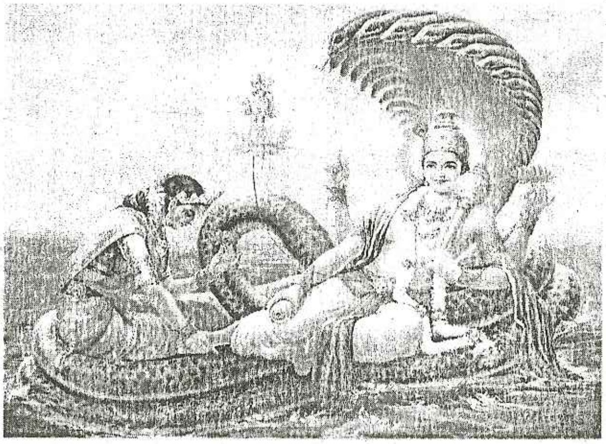

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - तीन

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव बोले - पुत्र सुद्युम्न के जाने के बाद वैवस्वत मनु और पुत्रों को पाने की इच्छा से यमुना जी के तट पर सौ वर्ष पर्यन्त तप किए।।1।।

बाद में पुत्र प्राप्ति के लिए भगवान श्री हरि की विशेष रीति से पूजा की। फल स्वरूप अपने के लिए अनुरूप इक्ष्वाकु आदि दस पुत्रों को पाए।।2।।

मनु के अष्टम पुत्र वृषध्र वशिष्ठ के आश्रम में गुरुकुल वास करता था। वह रात में जागरण करते हुए खींचे तलवार को हाथ में पकड़ते हुए वीरासन में खड़े होकर गायों की रक्षा करता था।।3।।

एक बार रात में बहुत वर्षा हुई। बरसात के कारण आहार न पाया हुआ एक शेर गौ शाला में प्रवेश किया। उससे घबड़ाई हुई गायें भय से उठकर इधर उधर हिलने लगीं।।4।।

वह बलिष्ठ शेर एक गाय को पकड़ लिया। वह गाय भय से चिल्लाने लगी। उसकी आवाज सुनकर वृषध्र उसके पास दौड़ कर गया।।5।।

अंधेरी रात और मेघ से आच्छादित होने के कारण और भी अंधेरा था। उसमे वृषध्र शेर मान कर गलती से गाय को ही काट डाला।।6।।

गाय के सिर के साथ शेर का कान भी कट गया। शेर घबरा कर रक्त बहाते हुए दौड़ गया।।7।।

शत्रु का संहार करने वाला वृषध्र समझ लिया कि शेर मर गया। किन्तु सुबह उठकर देखता है कि गाय की हत्या हो गयी है। इसको देख कर वृषध्र बहुत दुःखित हुआ।।8।।

वृषध्र बुद्धिपूर्वक अपराध नही किया था तो भी कुलपुरोहित वशिष्ठ उसको शाप दिए। गो वध करने के कारण तुम्हारा क्षत्रियत्व नष्ट हो गया है। गो वध के पाप के कारण तुम आज से शूद्र बन गये।।9।।

गौ हत्या बड़ा पाप होता है। अज्ञान से भी पाप कर्म करने के बाद प्रायश्चित न करने से वेदाधिकार चला जाता है। इसी कारण वशिष्ठ शाप दिए। गुरु का शाप भी अनुग्रह होता है। आगे के घटनाओं से यह स्पष्ट होता है।

गुरु के शाप को सुनकर वीर वृषध्र हाथ जोड़ कर उस शाप को विनय से स्वीकार किया। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए व्रत नियम उपवास आदि किया।।10।।

सारे प्राणियों में समान रूप से रहने वाले सर्वस्वामी, दोष रहित भगवान पर वासुदेव में भक्ति करते हुए एकान्त में रहने लगा।।11।।

लौकिक लोगों का संग छोड़ते हुए साधु लोगों का संग करने वाला वह वृषध्र आनन्द में भगवान नारायण में चित्त को रखते हुए अयोग्य विषयों को आँख उठाकर भी न देखते हुए, भगवदिच्छा से जो मिलता है उसी को पाकर शरीर धारण करता रहा। वह किसी से कुछ भी नही लेते हुए जीवन यापन करता था।।12।।

भगवान में एकाग्र चित्त रहने वाला वृषध्र एकाग्रचित्त से मिलने वाले ज्ञानानन्द से ही तृप्त होकर लौकिक में अन्धा और बहरा जैसा रहता था।।13।।

ऐसे जंगल में वास करते समय एक घने दावाग्नि में (जंगल में लगा हुआ आग में) आत्मार्पण किया। इस तप के कारण गौ हत्या पाप से मुक्त होकर वह परब्रह्म को ही प्राप्त किया।।14।।

इस प्रकार ज्ञानी वृषध्र विषय भोगों में वैराग्य रखते हुए नि:स्पृह होकर बन्धु बान्धवों को और सर्व संग को परित्याग करते हुए जंगल में जाकर स्वप्रकाश रूप परम पुरुष श्री हरि को निरन्तर ध्यान करते हुए छोटे वय में ही परब्रह्म को प्राप्त किया।।15।।

मनु का छठा पुत्र करुष अन्त तक क्षत्रिय रहा। उनके पुत्र कारुष नाम से प्रसिद्ध हैं। वे ब्राह्मणों में निष्ठा धर्म में श्रद्धा रखते हुए पूरे उत्तरापथ के राजा बने।।16।।

मनु का पाँचवाँ पुत्र दृष्ठ से **धार्षट** नाम के पुत्र उत्पन्न हुए। वे जन्म से क्षत्रिय होते हुए भी कर्म से ब्राह्मणत्व को स्वीकार किए। मनु का दूसरा पुत्र **नृग** नाम का राजा बना। उसकी पुत्री स्वाती। उनका पुत्र ज्योति। ज्योति के पुत्र का नाम वसु था।।17।।

वसु से प्रतीक जन्म लिया। उनके पुत्र का नाम है ओघवान्। ओघवन्त के बहन का नाम ओघवती उसके पति का नाम सुदर्शन था।।18।।

मनु के सातवे पुत्र नरिष्यन्त। उसका पुत्र का नाम चित्रसेन। चित्रसेन का पुत्र दक्ष। दक्ष के पुत्र मीढ्वान्। मीढ्वान् के पुत्र कूर्च, उसका पुत्र इन्द्रसेन।।19।।

इन्द्रसेन से वीतिहोत्र, उसका पुत्र सत्यश्रव, उससे उरुश्रव, उससे देवदत्त जन्म लिए।।20।।

देवदत्त के पुत्र होकर भगवान अग्नि जन्म लिए। यह अग्नि कानीन पुत्र नाम से प्रसिद्ध जातूकर्ण नाम

के महाऋषि।।21।।

जातुकर्ण से **अग्निवैश्वा** नाम का ब्राह्मण वंश उत्पन्न हुआ। हे राजा, मैं पहले ही नरिष्यन्त के वंश की कथा कह चुका हूँ। मनु के चतुर्थ पुत्र दिष्ट के वंश के बारे में अब कहूगाँ।।22।।

दिष्ट का पुत्र नाभाग। मनु का पुत्र एक नाभाग था। यह नाभाग इससे अलग है। यह वैश्यकर्म करने लगा इसी कारण वैश्य बना। उसका पुत्र हलन्दन। हलन्दन के पुत्र वत्सप्रीति।।23।।

वत्सप्रीति का पुत्र प्रांशु, उसका पुत्र प्रमति। प्रमति के पुत्र खनित्र, उससे चाक्षुष उससे विविंशति जन्म लिए।।24।।

विविंशति के पुत्र का नाम रंह। उसका पुत्र खनमित्र। खनमित्र बहुत धार्मिक था। हे राजा परीक्षित, खनमित्र का पुत्र करंधम।।25।।

करंधम का पुत्र अविच्छित। उसका पुत्र मरुत चक्रवर्तीराजा बना। अंगीरस ऋषि के संवर्त नाम के महायोगी के पुत्र ने राजा मरुत से बड़ा यज्ञ करवाया।।26।।

इसके समान यज्ञ कहीं भी और किसी ने भी नही किया था। वहाँ जो जो साधन उपयोग में लाए थे वे सारे सोने के थे। यज्ञ अत्यन्त मंगलकर रहा।।27।।

इसी यज्ञ से बचे हुए सोने को पाण्डवों ने जमीन शोध कर पाने के बाद अश्वमेघ यज्ञ किए।

मरुत के यज्ञ में इन्द्रादि देव प्रत्यक्ष आकर अग्नि में मंत्र के सहित हवन किए गए सोम रस को पीकर अत्यन्त संतुष्ट हुए। वहाँ दिया हुआ दक्षिणा से ब्राह्मण तृप्त हुए। स्वयं मरुद्देवता ने भोजन परोसा। सारे देवताएँ एक साथ बैठ कर सभा में भाग लिए।।8।।

मरुत का पुत्र दम, उसका पुत्र राजवर्धन। उसकी पुत्री सुधृति के पेट से नर नाम का पुत्र जन्म लिया।।29।।

नर का पुत्र केवल, उनका पुत्र बन्धुमान, बन्धुमान से वेगवान, उससे बुध उसका पुत्र तृणबिन्दु राजा बनकर राज्य वहन किए।।30।।

तृणबिन्दु राजा अलम्बुसादेवी नाम की श्रेष्ठ अप्सरा से शादी किया। राजा उस अप्सरा के अनुरूप था। उसको तीन पुत्र और ऐळिविळा नाम की पुत्री हुई।।31।।

ऐळिविळा से जन्म लिया हुआ विश्रवस् नाम का ऋषि कुबेर को जन्म दिया। ऐळिविळा से शादी करने के लिए योगेश्वर पुलस्त्य पुत्र विश्रवस ऋषि उसके पिता को उत्तम विद्या प्रदान किया था।।32।।

विशाल, शून्यबन्धु और धुमकेतु नाम के तीन पुत्र तृणबिन्दु को हुए। विशाल राजा अपना वंश बढ़ाते हुए वैशाली नाम के नगर का निर्माण किया।।33।।

विशाल के पुत्र हेमचन्द्र, उसके पुत्र धूम्राक्ष, उसका पुत्र सहदेव। सहदेव का पुत्र कृशाश्व।।34।।

कृशाश्व से सोमरत जन्म लिया। अन्नाधिपति, वाक्पति, इढ़स्पति नाम से यज्ञ में आवाहित करने वाले श्री हरि को यह राजा अश्वमेध यज्ञों से आराधना करते हुए योगेश्वर पाने योग्य वैकुण्ठ को पा लिया।।35।।

सोमरत की बेटी सुमति, पुत्र जनमेजय। ये सारे विशाल राजा के वंश में प्रसिद्ध होकर तृणबिन्दु राजा के कीर्ति का वर्धन किए।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - चौथा

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा! वैवस्वत मनु का तीसरा पुत्र शर्याति चारों वेदों में तज्ञ था। एक बार अंगीरस नाम के ऋषि के सत्र में यज्ञ के दूसरे दिन किस मंत्र का पठन करना है इसके बारे में विवाद उत्पन्न हुआ तो शर्याति सही मंत्र का पठन किया, यह प्रसिद्ध है।।1।।

शर्याति की पुत्री का नाम सुकन्या, वह बहुत सुन्दरी थी। उसके आँख कमल के समान सुन्दर थे। राजा एक बार शिकार को जाते समय अपनी इस पुत्री को साथ लिया। संचार के समय में वह च्यवन ऋषि के आश्रम में गया।।2।।

वहाँ सुकन्या अपनी सहेलियों के साथ फूल और फल का चयन करने के लिए फिरते समय एक वल्मीक के दो रध्रों में प्रकाशित होने वाले दो वस्तुओं को देखी।।3।।

दैव प्रेरणा से वह मासूम लड़की कुतूहल से काटे से उन वस्तुओं को चुभा दिया। वहाँ से रक्त बहने लगा। उससे घबरा कर सुकन्या वहाँ से भाग कर अपने पिता के पास आयी।।4।।

यहाँ राजा के सैनिक और परिवार का मल मूत्र अवरुद्ध हो गया। इसको देख कर राजा आश्चर्य चकित होकर अपने सैनिकों से पूछा।।5।।

हमारे लोगों में कोई यहाँ के ऋषि च्यवन जी को अपचार किए है, क्या? मुझे लगता है कि हमारे में से कोई आश्रम को अपवित्र किया होगा।।6।।

तब सुकन्या भयभीत होकर पिता को बोलती है - पिता जी, मैंने एक गलती किया है। क्या है यह न समझते हुए वाल्मीक में प्रकाशित होने वाले दो वस्तु को काँटे से चुभा दिया है। वहाँ से रक्त बह रहा है।।7।।

पुत्री की यह बात सुनते हुए शर्याति भय से डरते हुए वाल्मीक के अन्दर बैठे हुए च्यवन ऋषि के पास जाकर उनसे समाधान से बाते करने लगा।।8।।

च्यवन मुनि की इच्छा समझ कर उसको अपनी पुत्री को शादी में दे दिया। अपने सैनिको का दुःख

निवारण होने के बाद अपने नगरी को वापस चला गया।।9।।

च्यवन मुनि शीघ्र कोपी थे। उससे शादी होने के बाद सुकन्या बहुत लक्ष्य देते हुए उसके अनुकूल अनुवर्तन करते हुए उसके मन को समझते हुए प्यार से उनको जीत लिए।।10।।

कई दिन व्यतीत होने के बाद एक बार अश्विनी देवता आदि उस आश्रम को आए। मुनि उनका बड़ा आदर सत्कार किए। बाद में पूछे आप मुझे तारुण्य दे दीजिए, आप इसमे समर्थ हैं।।11।।

आपको यज्ञ में सोम का भाग नही मिलता। किन्तु मै आपको यज्ञ में सोमाहुति दूँगा। इसके बदले में आप मुझे स्त्रीयौ को चाहने वाला यौवन और सुन्दर रूप दीजिए।।12।।

अश्विनी देवताओं के वैद्य हैं। वे हीन जाति के कारण सोमाहुति से बहिष्कृत थे।

श्रेष्ठ वैद्य अश्विनीयों ने तथास्तु कहते हुए, मुनि की प्रसंशा किए। तुम सिद्ध पुरुषों से निर्माण हुए इस सरोवर में डुबकी मार कर स्नान करो।।13।।

मुनी का शरीर बुढ़ापे से शक्ति हीन हुआ था। शरीर में रक्तनाल उभर कर आँख को दिखते थे। मुनि अकेले सरोवर में भी उतर नही सकते थे। तप के कारण वे इतना अशक्त हो गये थे दोनों अश्विनी देवताओं ने उस ऋषि के हाथ को पकड़ कर सरोवर में उनके साथ स्वयं भी डुबकी मारे।।14।।

जब ऊपर उठे तब तीन सुन्दर पुरुष, नवतारुण्य वाले, स्त्रियों को आकर्षक रूप वाले और चीताम्बर पहन कर सोने का हार कुण्डल धारण किए थे।।15।।

वह सुन्दरी पतिव्रता, सुकन्या सूर्य के समान प्रकाशित तीनों को देखकर उनमें से अपने पति को पहचान नही सकी। वह अपने पति को दिखाने के लिए अश्विनी कुमारों से प्रार्थना की।।16।।

उसके पातिव्रत्य से सन्तुष्ट हुए अश्विनी देवताओं ने अपने से अलग उसके पति को दिखाते हुए मुनि से विदा लेते हुए विमान से स्वर्ग चले गये।।17।।

बहुत दिन के बाद राजा शर्याति एक बड़ा यज्ञ करने का संकल्प करते हुए बेटी और दामाद को बुलाने के लिए च्यवन ऋषि के आश्रम पर चले आये। वहाँ अपनी पुत्री के बाजू में एक सुन्दर युवक पुरुष को देखा।।18।।

पिता के पाँव को प्रणाम करने वाली बेटी को आशीर्वाद न देते हुए राजा अपनी पुत्री के शील के बारे में संशय करते हुए असमाधान से आच्क्षेप किया।।19।।

हे दुष्टे, तुमने ये क्या किया? अपने पति को वंचना कर रही हो। तेरे पति समस्त लोक में पूज्य मुनि

वर्य हैं। वृद्ध और बलहीन उनको छोड़ कर तुम यह दूसरे पुरुष के साथ कैसे रहती हो।।20।।

हे पुत्री! तू गलत रास्ता पकड़ी है। यह हमारे वंश को कलंक है। तुमने परपुरुष से सम्बन्ध किया है। तुम लज्जा को छोड़ दी है। तुम्हारे इस कर्म से पिता और पति दोनों के वंश नरक में जाते हैं।।21।।

पिता की इन बातों को सुनकर सदा हसन्मुख वाली सुकन्या हँसते हुए बोली - पिता जी, ये आपके दामाद हैं, ये ही च्यवन ऋषि हैं।।22।।

सुकन्या अपने पिता को मुनि ने तारुण्य और सौन्दर्य को कैसे पाया उसकी कथा को पूर्ण रूप से सुनवाई। इस बात को सुनकर राजा परमानन्द से आश्चर्य चकित होकर पुत्री का आलिंगन किया।।23।।

शर्याति राजा से सोमयज्ञ कराने वाले च्यवन ऋषि तब तक सोमाधिकार न रहने वाले अश्विनी देवताओं को अपने तपप्रभाव से सोमाहुति दिए।।24।।

इस क्रम विरुद्ध कर्म को देखकर इन्द्र आक्रोश से च्यवन को मारने के लिए दाहिने हाथ से वज्र ाायुध को उठाये। च्यवन ऋषि अपने तप बल से इन्द्र के उस बाहु को निश्चल बनाए।।25।।

बाद में इन्द्र ने सकल देवताओं के साथ अश्विनी देवताओं को भी सारे यज्ञों में सोमाहुति देने के लिए अनुज्ञादि वैद्य होने के कारण देवताओं ने अश्विनी देवताओं को सोमाहुति से बहिष्कृत किए थे।।26।।

उत्तान बर्हि, आतर्थ और भूरीषेण नाम के शर्याति के तीन पुत्र थे। इनमें आनर्त से रेवत जन्म लिया।।27।।

हे शत्रु नाशक परीक्षित, वह रेवत समुद्र के बीच में कुशस्थली नाम की नगरी का निर्माण किया और वहीं रहने लगा। आनर्त इत्यादि अन्य देशों के ऊपर भी वह अपना राज्य वहीं से चलाता था।।28।।

रेवत को ककुद्मि के साथ सौ पुत्र थे। रैवत अपनी पुत्री रेवती को लेकर ब्रह्मा जी के पास गया।।29।।

वह चाहता था कि उसे अपनी सुन्दर पुत्री के लिए योग्य वर मिले। वहाँ गन्धर्व गान चलता था। इसके लिए ब्रह्मा जी के साथ समालोचना करने के लिए समय न मिलने के कारण एक क्षण रुक गया।।30।।

वह गान समाप्त होने के बाद ब्रह्मा जी को नमस्कार करते हुए अपने उद्देश्य को उनके सामने बता दिया। उसको सुनकर ब्रह्मा जी हँस कर बोले।।31।।

ब्रह्मा जी कहते हैं - हे राजा, तुम्हारे मन में रहने वाले कन्यार्थी राजा काल क्रम से चले गये हैं। उनके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और उनके गोत्र के नाम भी नही सुनायी देते।।32।।

तुम आकर मानवों द्वारा न सुनने वाला गन्धर्व गान को यहाँ ब्रह्म लोक में एक क्षण के लिए सुनते

रहे। इस समय भू लोक में 27 चतुर्युग मान का दीर्घकाल बीत गया है।।33।।

हे राजा, तुम अब वापस चले जाओ। देव देवोत्तम भगवान श्री हरि अपने शुक्ल केश के आवेश वाले महाबलिष्ठ बलराम रुप में 28 वाँ द्वापर में अवतार ले चुके हैं। उस पुरुष रत्न को अपनी कन्या रत्न से शादी करवाओ।।34।।

अपना नाम संकीर्तन करने वाले लोगों को पवित्र करने वाले सर्व कर्ता भगवान श्री हरि अपने अंश से शेष में आविष्ट होकर भूभार हरण के लिए बलराम रूप में अवतार लिए हैं।।35।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- ब्रह्मा जी से इस प्रकार आज्ञप्त रेवत उनको नमस्कार करते हुए अपने नगर को वापस आया। राक्षसों के भय से उनके सारे बन्धु नगर को छोड़ कर अन्यान्य दिशाओं में रहने लगे थे।।36।।

अपनी सुन्दरी पुत्री को बलशाली बलराम से शादी करने के बाद राजा रैवत तप के लिए बद्रिनारायण आश्रम को चला गया।।37।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में चौथा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - पाँच

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव बोले - दिष्ट पुत्र नाभाग से अलग नाभाग मनु के नौवें पुत्र हैं। यह नाभाग बहुत बड़ा ज्ञानी था। वह गुरुकुल में पाठ करता था। उसके वहाँ ज्यादा दिन तक रहने के कारण उसके भाई वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर रहता है समझ कर उसको राज्याधिकार न देते हुए आपस में पिता का राज्य बाँट लिए। गुरुकुलवास को पूर्ण किया हुआ नाभाग आकार अपने भाइयों से पूछा।।1।।

"हे भाइयो, मेरे लिए आपने किस राज्य को दिया हैं"। उससे घबराए हुए भाई बोले " यदि तुम राज्य में अपना हिस्सा चाहते हो तो पिता जी से पूछो" पिता जी से पूछने से वे कहे "पुत्र, तुम इस राज्य में हिस्सा मत मागो। इससे भी बढ़िया सम्पदा मैं तुमको दे दूँगा"।।2।।

"ज्ञानी अंगिरा ऋषि सत्र याग कर रहे हैं। नाभाग, तुम ज्ञानी हो। हर बार छठा सोमाहुती दिन में वे वैश्व देव कर्म में पठन करने वाले मंत्र के बारे में वे नासमझ में पढ़ते हैं"।।3।।

"उस समय उन्हे जिसे मंत्र को बोलना है वह विश्वदेव देवताके बाद दो सूक्तों का पाठ तुम करो। उससे उनको स्वर्ग मिलता है"।।4।।

"स्वर्ग को जाते समय वे यज्ञ से बचे हुए सारे धन को तुमको देते हैं। वह धन पूरे राज्य से भी बढ़कर बढ़िया होता है" नाभाग उसी प्रकार किया। वे यज्ञ में बचे हुए सारे सम्पत्ति को नाभाग को देकर स्वर्ग को चले गये।।5।।

यह कथा ऐतरेय ब्राह्मण में विस्तार रूप से आती है।

नाभाग जब उस धन को उठाने लगा तब यज्ञशाला के उत्तरी भाग से एक काला मोटा आदमी आकर बोला "यह सारा धन मेरा है। इसको मै ले लूँगा"।।6।।

नाभाग ने कहा "ऋषि ने इसको मुझे दिया है"। "हे मनुपुत्र, इस विवाद के बारे में तुम अपने पिता से पूछ लो।" नाभाग अपने पिता के पास जाकर वैसे ही प्रश्न पूछा।।7।।

पिता उत्तर दिए "यज्ञ शाला में जो धन बचता है उसके बारे में दक्ष-यज्ञ के समय में भगवान नारायण स्वयं निर्णय लिये हैं कि यज्ञ शेष जो होता है उसके ऊपर रूद्र का अधिकार है। वह काला आदमी रुद्र हैं। उस सम्पत्ति के ऊपर रुद्र का अधिकार है। किन्तु भगवान रुद्र उसको तुमको ही दे देंगे।" ।।8।।

नाभाग पीछे आकर काला रंग के रुद्र जी को नमस्कार करते हुए कहा "प्रभु, इस यज्ञ में बचा हुआ सब कुछ आपका ही है इस प्रकार पिता जी कहे हैं। आप गुणपूर्ण हैं। मै आपसे सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए प्रार्थना करता हूँ कि आप अनुग्रह पूर्वक उसको मुझे दे देंगे" ।।9।।

रुद्र जी कहते हैं- "तुम्हारे पिता धर्म की बात कहे हैं। तुम भी सत्य बोलते हो। तुम वैश्वदेवसूक्त के द्रष्ट्रार हो। इसी कारण तुमको सनातन ब्रह्म तत्व के बारे में बताने वाले मंत्र और उसका अर्थ अध्ययन के बिना ही तुमको प्राप्त हो" ।।10।।

"इसके साथ यज्ञ में बची हुयी इस सम्पत्ति को भी तुझको दे देते हैं। मंत्र के साथ तुम इसको भी स्वीकार करो" इस प्रकार बोलते हुए सत्यप्रिय भगवान रुद्र वहीं अन्तर्ध्यान हुए।।11।।

सुबह-शाम एकाग्र मन से नाभाग की पितृ भक्ति की इस कथा को जो स्मरण करता है, पठन करता है वह मंत्रार्थ का ज्ञानी बनता है और परम तत्वज्ञान को पाकर अन्त में भगवान को पाता है।।12।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - छः

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - नाभाग को अम्बरीष नाम का पुत्र हुआ। वह बड़ा भगवद्भक्त था। एक बार उसको ब्राह्मण शाप लगा, किन्तु विष्णु चक्र के प्रभाव के कारण उसको कुछ भी हानि नही हुआ।।1।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे महामुने, ब्राह्मण शाप किसी से टाला नही जा सकता। वैसा शाप अम्बरीष को कुछ भी नही किया यह सुनकर आश्चर्य होता है। उस ज्ञानी राजर्षि की कथा को मैं सुनना चाहता हूँ।।2।।

श्री शुकदेव कहते हैं - राजा अम्बरीष महाभाग्यशाली था। सातों द्वीप वाली अखण्ड भू-मण्डल की सारी साधन सम्पत्ति उसके हाथ में थी। उत्कृष्ट सेवक वर्ग था। मानवों को अत्यन्त दुर्लभ सकल सम्पत्ति उनके वश मे थी किन्तु राजा इसको स्थिर नही मानता था। इस सम्पत्ति के मोह के कारण ही मानव माया जाल में मग्न होता है, इस बात को वह ठीक तरह से समझा था।।4।।

भगवान वासुदेव में और उनके भक्त साधु सज्जनों में वह बहुत भक्ति करता था। सारी सम्पत्ति को वह मिट्टी के ढ़ेले के समान मानता था।।5।।

वह अपने मन को सदा काल भगवान श्री कृष्ण के पाद कमल में रखते हुए ध्यान में मग्न रहता था। केवल हरिस्तुति और उनके गुण वर्णना के लिए बातें करता था। हाथ केवल हरि मन्दिर का शुद्धिकरण करते थे। कान सदा के लिए विष्णु शास्त्र सुनते थे।।6।।

उनकी आँख हरिविग्रह और देवमन्दिर के दर्शन करते थे। त्वगिंद्रिय हरि दासों के अंगसंग के लिए ही था। नाक को भगवान के पाद कमल में समर्पित उत्कृष्ट तुलसी का सुवास लेने में प्रयोग करते थे। उसकी जीभ केवल हरिनैवेद्य का आस्वादन करती थी।।7।।

उनके पाद श्री विष्णु क्षेत्र की यात्रा करते थे, सिर हरिपाद वन्दन के लिए था। सारी इच्छाएँ भगवान की सेवा में रखता था। विषय पदार्थ का सेवन उसके लिए निषेध था। हरिभक्तों के संग में वह सुखानुभव पाता

था।।8।।

जिस रीति से सदा काल जो कुछ करता था उन सब को यज्ञपुरुष भगवान अधोक्षज को ही समर्पित करता था। सम्पूर्ण भक्ति उनमें ही करता था। भगवान के भक्त ऋषि मुनियों की सलाह के अनुसार राज्य भार करता था।।9।।

सरस्वती नदी के तट पर यज्ञशाला में मिले हुए वशिष्ठ, असित, गौतम इत्यादि ऋषियों की सहायता से अश्वमेधादि यज्ञ करते हुए पुराणपुरुष भगवान की आराधना करता था। महाज्ञानी अम्बरीष इन यज्ञों में देने वाले दान को अपनी सम्पत्ति के अनुसार बढ़ाता था।।10।।

उसके यज्ञ में सदस्य होकर, ऋत्विज होकर बैठे हुए लोग उनके दिए हुए वस्त्र को पहन कर देवता के समान दिखते थे। देवता लोग आँखो को झपकाते नही। वैसे ही ये ब्राह्मण कर्मलोप न हो इसके लिए आँख भी न झपकाते थे।।11।।

उनकी प्रजा हरि लीला की कथाओं को सुनते गाते उसके राज्य में आनन्द से रहते थे। उस राज्य को छोड़ कर वे स्वर्ग को जाने के लिए भी तैयार नही थे।।12।।

सिद्धों को दुर्लभ लगने वाला समृद्ध विषय भोग पदार्थों को भी अम्बरीष सदा के लिए दूर रखता था। अपने हृदय में मुकुन्द को देखने वाले उसको उनसे क्या मतलब है? हृदय में मुकुन्द को देखने में होने वाला स्वरूपानन्द के सामने ये क्षुद्र विषयपदार्थ नीरस बन गये।।13।।

हे राजा, अम्बरीष इस प्रकार तपोयुक्त भक्तियोग से और स्वधर्माचरण रूप प्रजापालन से हरि के प्यार को पाकर विषयासक्ति से दूर रहा।।14।।

घर, पत्नी, पुत्र, बन्धु, श्रेष्ठ, हाथी, रथ, घोड़ा, सैन्य, रत्नाभरण, शस्त्र और भरा हुआ भण्डार इन सबको अम्बरीष अनर्थकारी है, ऐसा समझता था।।15।।

उसके इस एकान्त भक्ति से सन्तुष्ट श्री हरि उसकी रक्षा के लिए शत्रु को भयप्रद सुदर्शन चक्र का नियोजन किए थे।।16।।

उसकी पत्नी अनुरूप थी। वह भगवान को और आराधना करने के लिए एक वर्ष पर्यन्त आचरण करने वाले (एकादशी) द्वादशी व्रत ग्रहण किया।।17।।

अम्बरीष केवल एक वर्ष मात्र एकादशी व्रत किया ऐसा नही। यह एक वर्ष तक आचार करने वाला एकादशी है। इसको सांवत्सरिक एकादशी कहते हैं। द्वादशी के पारण के बाद पुनः एक वर्ष तक व्रत करना सांवत्सरिक एकादशी होता है।

अम्बरीष के ऐसे सांवत्सरिक एकादशी को करने के बाद द्वादशी के दिन यह घटना घटी। वह संवत्सर के अन्त के कार्तिक मास में तीन दिन उपवास कर यमुना नदी में स्नान कर मधुवन में भगवान नारायण की अर्चना की।।18।।

तीन दिन उपवास का नियम इस प्रकार होता हैं। दशमी रात्रि उपवास रहना एकादशी के दिन सम्पूर्ण उपवास रहते हुए द्वादशी के सुबह पारण करना। पुनः द्वादशी के रात में कुछ न खाते हुए त्रयोदशी के दिन अनुपारण करना। इससे द्वादशी का व्रत पूर्ण होता है।

सकल सामग्री को जुटा कर भगवान श्री हरि को विधि के अनुसार अभिषेक करते हुए श्रेष्ठ गन्ध माला धूप दीप नैवेद्य को समर्पण करते हुए तदेकचित्त से भगवान की पूजा किया। पूजा न चाहने वाले महा पुण्यशाली ब्राह्मणों की भी भक्ति से पूजा किया।।19,20।।

साधु ब्राह्मणों को 60 करोड़ गायों का दान दिया। उन गायों के सींग को सोने के आभरण, पाँव को चाँदी का घुँघरू, शरीर पर उत्तम पीताम्बर चढ़ाकर दान दिया। ये सारी गाय अच्छे दूध देने वाली साधु स्वभाव वाली छोटे आयु वाली सुन्दर रूप वाली और बच्चों के साथ थी। राजा इन गायों के साथ उनके लिए खाने का पात्र और दुहाने का बर्तन भी दान दिया। पहले ब्राह्मणों को उत्कृष्ट भोजन कराने के बाद दक्षिणा सहित इन गायों को उनके घर भेज दिया।।21,22।।

सारे ब्राह्मणों का इच्छितार्थ पूर्ण करने के बाद उनकी अनुज्ञा से पारण करने के लिए राजा सिद्ध हुआ। इसी समय उसके अतिथि रूप में साक्षात भगवान दुर्वासा मुनि आ गये।।23।।

अतिथि दुर्वासा को आसन आदि सत्कार करते हुए उनके पाद मूल को नमस्कार करते हुए भोजन करने के लिए प्रार्थना किया।।24।।

मुनि उसकी याचना की प्रसंशा करते हुए स्नान के लिए यमुना जी चले गये। वहाँ शुद्ध और पावन यमुना जल में परब्रह्म नारायण के ध्यान में लग गये। उनको समय का ध्यान नही रहा।।25।।

इधर राजा अम्बरीष को पारण के लिए द्वादशी तिथि केवल आधा मुहूर्त बचने के कारण राजा धर्म संकट में पड़ा। धर्मज्ञ राजा ब्राह्मणों से समालोचन किया।।26।।

दुर्वासा के पहले स्वयं भोजन किया तो ब्राह्मणातिक्रम होता है। वह दोष है। द्वादशी तिथि समाप्त होने के पहले पारण न करे तो भी दोष होता है। अब क्या करे, किस कर्म से पाप नही आएगा? राजा इस दुविधा में पड़ा।।27।।

राजा ने विचार किया अब मैं केवल जल को पीकर पारण करता हूँ। जल पीने से पारण भी होता है

और भोजन नही होता। यह बड़े लोगों का वाक्य है।।28।।

इस प्रकार निर्णयं करते हुए ब्राह्मणों की अनुज्ञा पाकर राजा अम्बरीष मन में अच्युत का ध्यान करते हुए थोड़ा सा जल पीकर दुर्वासा ऋषि के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए बैठ गया।।29।।

दुर्वासा ऋषि अपने नित्य कर्म को समाप्त करते हुए यमुना तीर से राज घर आये। राजा उनको आदर और श्रद्धा से स्वागत किया। महायोगी दुर्वासा राजा जलपान किया है इसको योग बल से समझ लिए।।30।।

क्रोध से उनका शरीर काँपने लगा। भौंह सिकुड़ गये। भूख भी लगी थी। हाथ जोड़े हुए राजा को बोले।।31।।

यह देखिए, यह राजा धर्म के नियमों का अतिक्रमण किया है। यह क्रूर है। सम्पत्ति के मद से उन्मत्त है। स्वयं अकेले अपने को विष्णु भक्त समझता है। किन्तु भगवान में भक्ति नही है।।32।।

मैं यहाँ अतिथि होकर आया हूँ। यह राजा मुझे आमन्त्रण दिया है। इतना होते हुए भी मुझको देने के पहले स्वयं भोजन कर चुका है। उसके फल को मैं उसको अभी दिखाता हूँ।।33।।

यहाँ अम्बरीष का जल पारण दुर्वासा ऋषि ने देखा नही। योग दृष्टि से देखे हैं। केवल जल पान किया तो भी उसको ऋषि आग्रह से भोजन कह रहे हैं। इस अहंकार से विष्णु भक्त अम्बरीष उनको तुच्छ लग रहा है। विष्णु भक्त के इस अपमान के कारण दुर्वासा ऋषि को अपनी करनी का फल भोगना पड़ेगा है।

ऐसे बोलते हुए क्रोध से जलते हुए दुर्वासा अपनी जटा से एक बाल को खींच कर जमीन के ऊपर गिराते हुए अम्बरीष के वध के लिए एक कृत्रिम देवता की सृष्टि किए।।34।।

वह कृत्रिम देवता आग के समान जलते हुए हाथ में तलवार को पकड़ते हुए जमीन हिलते जैसे पाँव रखते हुए अम्बरीष के प्रति दौड़ कर आने लगी। तो भी अम्बरीष अपने स्थल से नही हिला।।35।।

अपना दोष न रहते हुए भी बड़े लोग कष्ट दिए तो उनको मारने से पाप नही आता। किन्तु उनके हाथ से यदि मर जाय तो एक अश्वमेघ यज्ञ का फल आता है। इसी कल्पना के साथ अपने को विष्णु चक्र की रक्षा होने के कारण वह नही डरा।

परम पुरुष नारायण के भक्त अम्बरीष की रक्षा के लिए भेजा हुआ चक्र रोषपूर्ण साँप के आग जैसे जलता था। वह कृत्रिम देवता को जला दिया।।36।।

दुर्वासा ऋषि अपना प्रयत्न निष्फल होते देखकर और चक्र को अपने पास आते हुए देखकर भयभीत होकर अपनी रक्षा के लिए दशों दिशा में दौड़ते रहे।।37।।

अम्बरीष के ऐसे सांवत्सरिक एकादशी को करने के बाद द्वादशी के दिन यह घटना घटी। वह संवत्सर के अन्त के कार्तिक मास में तीन दिन उपवास कर यमुना नदी में स्नान कर मधुवन में भगवान नारायण की अर्चना की।।18।।

तीन दिन उपवास का नियम इस प्रकार होता हैं। दशमी रात्रि उपवास रहना एकादशी के दिन सम्पूर्ण उपवास रहते हुए द्वादशी के सुबह पारण करना। पुनः द्वादशी के रात में कुछ न खाते हुए त्रयोदशी के दिन अनुपारण करना। इससे द्वादशी का व्रत पूर्ण होता है।

सकल सामग्री को जुटा कर भगवान श्री हरि को विधि के अनुसार अभिषेक करते हुए श्रेष्ठ गन्ध माला धूप दीप नैवेद्य को समर्पण करते हुए तदेकचित्त से भगवान की पूजा किया। पूजा न चाहने वाले महा पुण्यशाली ब्राह्मणों की भी भक्ति से पूजा किया।।19,20।।

साधु ब्राह्मणों को 60 करोड़ गायों का दान दिया। उन गायों के सींग को सोने के आभरण, पाँव को चाँदी का घुँघरू, शरीर पर उत्तम पीताम्बर चढ़ाकर दान दिया। ये सारी गाय अच्छे दूध देने वाली साधु स्वभाव वाली छोटे आयु वाली सुन्दर रूप वाली और बच्चों के साथ थी। राजा इन गायों के साथ उनके लिए खाने का पात्र और दुहाने का बर्तन भी दान दिया। पहले ब्राह्मणों को उत्कृष्ट भोजन कराने के बाद दक्षिणा सहित इन गायों को उनके घर भेज दिया।।21,22।।

सारे ब्राह्मणों का इच्छितार्थ पूर्ण करने के बाद उनकी अनुज्ञा से पारण करने के लिए राजा सिद्ध हुआ। इसी समय उसके अतिथि रूप में साक्षात भगवान दुर्वासा मुनि आ गये।।23।।

अतिथि दुर्वासा को आसन आदि सत्कार करते हुए उनके पाद मूल को नमस्कार करते हुए भोजन करने के लिए प्रार्थना किया।।24।।

मुनि उसकी याचना की प्रसंशा करते हुए स्नान के लिए यमुना जी चले गये। वहाँ शुद्ध और पावन यमुना जल में परब्रह्म नारायण के ध्यान में लग गये। उनको समय का ध्यान नही रहा।।25।।

इधर राजा अम्बरीष को पारण के लिए द्वादशी तिथि केवल आधा मुहूर्त बचने के कारण राजा धर्म संकट में पड़ा। धर्मज्ञ राजा ब्राह्मणों से समालोचन किया।।26।।

दुर्वासा के पहले स्वयं भोजन किया तो ब्राह्मणातिक्रम होता है। वह दोष है। द्वादशी तिथि समाप्त होने के पहले पारण न करे तो भी दोष होता है। अब क्या करे, किस कर्म से पाप नही आएगा? राजा इस दुविधा में पड़ा।।27।।

राजा ने विचार किया अब मैं केवल जल को पीकर पारण करता हूँ। जल पीने से पारण भी होता है

और भोजन नही होता। यह बड़े लोगों का वाक्य है।।28।।

इस प्रकार निर्णय करते हुए ब्राह्मणों की अनुज्ञा पाकर राजा अम्बरीष मन में अच्युत का ध्यान करते हुए थोड़ा सा जल पीकर दुर्वासा ऋषि के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए बैठ गया।।29।।

दुर्वासा ऋषि अपने नित्य कर्म को समाप्त करते हुए यमुना तीर से राज घर आये। राजा उनको आदर और श्रद्धा से स्वागत किया। महायोगी दुर्वासा राजा जलपान किया है इसको योग बल से समझ लिए।।30।।

क्रोध से उनका शरीर काँपने लगा। भौंह सिकुड़ गये। भूख भी लगी थी। हाथ जोड़े हुए राजा को बोले।।31।।

यह देखिए, यह राजा धर्म के नियमों का अतिक्रमण किया है। यह क्रूर है। सम्पत्ति के मद से उन्मत्त है। स्वयं अकेले अपने को विष्णु भक्त समझता है। किन्तु भगवान में भक्ति नही है।।32।।

मैं यहाँ अतिथि होकर आया हूँ। यह राजा मुझे आमन्त्रण दिया है। इतना होते हुए भी मुझको देने के पहले स्वयं भोजन कर चुका है। उसके फल को मैं उसको अभी दिखाता हूँ।।33।।

यहाँ अम्बरीष का जल पारण दुर्वासा ऋषि ने देखा नही। योग दृष्टि से देखे हैं। केवल जल पान किया तो भी उसको ऋषि आग्रह से भोजन कह रहे हैं। इस अहंकार से विष्णु भक्त अम्बरीष उनको तुच्छ लग रहा है। विष्णु भक्त के इस अपमान के कारण दुर्वासा ऋषि को अपनी करनी का फल भोगना पड़ेगा है।

ऐसे बोलते हुए क्रोध से जलते हुए दुर्वासा अपनी जटा से एक बाल को खींच कर जमीन के ऊपर गिराते हुए अम्बरीष के वध के लिए एक कृत्रिम देवता की सृष्टि किए।।34।।

वह कृत्रिम देवता आग के समान जलते हुए हाथ में तलवार को पकड़ते हुए जमीन हिलते जैसे पाँव रखते हुए अम्बरीष के प्रति दौड़ कर आने लगी। तो भी अम्बरीष अपने स्थल से नही हिला।।35।।

अपना दोष न रहते हुए भी बड़े लोग कष्ट दिए तो उनको मारने से पाप नही आता। किन्तु उनके हाथ से यदि मर जाय तो एक अश्वमेघ यज्ञ का फल आता है। इसी कल्पना के साथ अपने को विष्णु चक्र की रक्षा होने के कारण वह नही डरा।

परम पुरुष नारायण के भक्त अम्बरीष की रक्षा के लिए भेजा हुआ चक्र रोषपूर्ण साँप के आग जैसे जलता था। वह कृत्रिम देवता को जला दिया।।36।।

दुर्वासा ऋषि अपना प्रयत्न निष्फल होते देखकर और चक्र को अपने पास आते हुए देखकर भयभीत होकर अपनी रक्षा के लिए दशों दिशा में दौड़ते रहे।।37।।

जंगल को जलाने वाली आग चारों तरफ से जैसे घेर लेती है, वैसे अपने पीछे पीछे आने वाले आग को देख कर मुनि घबरा गये। वे मेरु पर्वत की गुफा में छिपने का प्रयास किए।।38।।

विष्णु चक्र वहाँ भी पीछा करते आया, तब भूमि आकाश, पाताल, समुद्र, स्वर्ग, नरक कहीं भी जायँ विष्णु चक्र छोड़ने वाला नही है। वे जहाँ जहाँ जाते थे विष्णु चक्र वहाँ वहाँ उनका पीछा करता रहा।।39।।

सभी जगह अपनी रक्षा करने वाले किसी को न देखते हुए ऋषि भयभीत होकर ब्रह्मा जी के शरण में आये। वे दोनों हाथ जोड़कर ब्रह्मा जी से प्रार्थना की कि हे परम पुरुष! आप इस पराजय विहीन विष्णु चक्र के तेज से मेरी रक्षा करें।।40।।

श्री ब्रह्मा जी कहते हैं - मेरे दो परार्ध आयु के अन्त में इस प्रपंच का अन्त करने वाले कालरूपी श्री हरि अपने **भौंह** के एक छोटी सी चलन से मेरे स्थान को जला देते हैं। ऐसे श्री हरि के संकल्प के सामने मैं क्या कर सकता हूँ।।41।।

मैं, रुद्र, दक्ष, भृगु, कश्यप प्रजापति, कुबेर, इन्द्र सारे उनके शरण में रहते हुए वे हमें जो काम देते हैं उसको सिर झुकाते हुए काम करते हैं। हम असहाय हैं।।42।।

श्री शुकदेव कहते हैं - विष्णु चक्र की गर्मी से ऊबगये दुर्वासा ब्रह्मदेव से रक्षा न मिलने के कारण शिव जी की रक्षा पाने के लिए कैलास चले।।43।।

शिव जी बोले - भगवान नारायण के सुदर्शन चक्र से हम रक्षा कर नही सकते। गुणपूर्ण श्री हरि ऐसे हजारों ब्रह्माण्ड की सृष्टि और नाश करते रहते हैं। हम ऐसे एक ब्रह्माण्ड में उन्ही के आश्रय के आधार पर चलते रहते हैं।।44।।

मैं सनत कुमार, नारद, ब्रह्मदेव, कपिल ऋषि, **अपान्तरतम**, देवल, धर्म, आसुरी, मरीची इत्यादि शस्त्र पारंगत, सिद्ध श्रेष्ठ ये सारे लोग उनके संकल्प को जान नही सकते, क्योंकि हम प्रकृति से बद्ध हैं।।45,46।।

जगन्नाथ श्री हरि के उस चक्र को हम नही रुकवा सकते। तुम उसी श्री हरि की शरण में जाओ भगवान तुम्हारा भला करेगा।।47।।

शिव की इन बातों से हताश होकर दुर्वासा ऋषि भगवान नारायण के धाम वैकुंठ को चले। वहाँ श्री हरि श्रीदेवी के साथ रहते हैं।।48।।

किसी से न हारने वाला श्री हरि के चक्र के भय से काँपते हुए ऋषि श्री हरि के चरण में दण्डवत

प्रणाम किए। हे अच्युत, अनन्त सज्जनों के स्वामी, हे प्रभु, हे विश्वकर्ता मैं अपराध किया हूँ। मुझको क्षमा करते हुए रक्षा करिए।।49।।

मैं आपके महासार्थ्य को न जानते हुए आपका भक्त का अपचार किया है। हे जगदीश! केवल आप के नामोच्चारण मात्र से नरक में गिरा हुआ आदमी भी मुक्त होता है। आप मुझको प्रायश्चित दे के रक्षा करें।।50।।

श्री भगवान कहते हैं - हे मुने, मैं भक्तपराधीन हूँ। मैं स्वतन्त्र होते हुए भी भक्त के हाथ में हूँ, मैं भक्त जनों का प्रिय हूँ। साधु सज्जन भक्त लोग अपनी भक्ति से मुझको अपने वश में रख लेते हैं।।51।।

सज्जन भक्तों को छोड़कर मैं अपने को अलग रखना नहीं चाहता । नित्य मेरे साथ रहने वाली और कभी भी मुझको न छोड़ने वाली लक्ष्मी से भी मैं दूर रह सकता हूँ। किन्तु मुझको ही परमगति मानने वाले अपने भक्तों का हाँथ मैं कैसे छोड़ू।।52,53।।

मेरे भक्त अपनी पत्नी, पुत्र, घर इत्यादि ऐहिक, पारत्रिक, सकल सम्पदा को और अपने प्राण की भी चिन्ता न करते हुए मेरे शरण में आते हैं। ऐसे भक्तों को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ।।54।।

पतिव्रता स्त्री अपने अच्छे पति को भक्ति से जैसे अपने वश में कर लेती है, वैसे मुझमें ही अपने मन रखे हुए, सर्वत्र मुझको देखने वाले साधु भक्त मुझको अपने वश में रखते हैं।।55।।

मेरी सेवा करते हुए उसके फल रूप में मैं सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य नाम के चार तरह के मोक्ष को देने के लिए तैयार रहे तो भी मेरे भक्त उनको नही चाहतें। वे मेरी सेवा से ही तृप्त हैं। ऐसे लोग काल की गति से नष्ट होने वाले स्वर्गादि लोकों को कभी भी नही चाहते। ऐसे साधु लोग मेरे प्रिय हैं, मैं उनका प्रिय हूँ। मैं उनको कैसे छोड़ सकता हूँ।।56।।

मेरे भक्त मुझको छोड़ कर अन्य से प्यार नही करतें। मैं उनसे ज्यादा प्यार और किसी से नही करता। हे मुने तुम्हारी रक्षा के लिए एक उपाय बोलता हूँ। सुनो।।57।।

तुमने जिसके ऊपर कृत्रिम देवता का प्रयोग किया था। उसी की शरण में जाओ। साधु सज्जनों के ऊपर शक्ति प्रयोग किए तो वह शक्ति प्रयोग करने वाले को ही नाश करता है।।58।।

तप और विद्या ब्राह्मणों को दोनों श्रेय देने वाले बनते हैं। किन्तु अहंकार से उनका दुष्ट प्रयोग करने वाले को वे अनर्थकारी बनते हैं।।59।।

हे मुने! - तुम्हारा कल्याण होगा। तुम राजा अम्बरीष के पास जाओ। उससे क्षमा मांगो। उससे

तुम्हारा भला होगा।।60।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - भगवान के इस आदेश को सुनकर चक्र के ताप से जलने वाले दुर्वासा ऋषि दु:ख से अम्बरीष के पास जाकर उनके पाँव पड़े।।61।।

ब्राह्मण ऋषि मुझ क्षत्रिय के पाँव को पकड़ रहा है इससे अम्बरीष लज्जित हो गया। मुनि के दु:ख को देखकर कृपा पूर्ण हृदय से दु:खित होकर श्री हरि के सुदर्शन चक्र की स्तुति करने लगा।।62।।

अम्बरीष कहता है - हे चक्र के अन्तर्यामी श्री हरि, यह सारा ब्रह्माण्ड आपके वश में है। भगवान अग्नि, सूर्य, नक्षत्र, चन्द्र, जल, पृथ्विआकाश, वायु, शब्दादि विषय और दशेन्द्रिय ये सारे आपके वश में हैं।।63।।

हे हजार दाँतवाले, सारे अस्त्र शस्त्रों को नाश करने वाले, अच्युत को प्रिय, सुदर्शन चक्र के अभिमानी नारायण आपको नमस्कार। दुर्वासा ऋषि का कल्याण हो।।64।।

हे चक्र के अन्तर्यामी आप धर्म, धृति, सत्य और यज्ञ के प्रेरक हैं। सर्व यज्ञों का फल भोगने वाले आप हैं। सकल लोकपालकों को और सारे प्रपंच को नियमन करने वाले आप हैं। आप श्री हरि के अपार तेज और पौरुष रूप हैं।।65।।

हे सुदर्शन अभिमानी, सारे धर्मों की रक्षा करने वाले, पाप करने वाले दैत्यों का नाश करने वाले, तीनों लोकों की रक्षा करने वाले, निर्मल कान्ति वाले, मनोवेग वाले, अद्भुत कार्य करने वाले आपको यह नमस्कार।।66।।

हे सुदर्शन अभिमानी आप दोष से दूर हैं। भगवान श्री हरि युद्ध में जब प्रयोग करते हैं, तब आप महा दैत्यों से भरा हुआ असुर सैन्यों में घुस कर उनके बाहु, पेट, जंघा, पाँव और गले को काटते हुए सदा काल विराजमान रहते हैं।।67।।

आप के उज्वल तेज से तमस का नाश होता है, महात्माओं के आँखों के लिए प्रकाश मिलता है। हे वेदपति! आप की महिमा को कोई नही जानता। आप मूर्त, अमूर्त, चेतन, अचेतन इस प्रपंच का मूर्तरूप हैं।।68।।

हे जगद्रक्षक, आप गदाधर से दुष्टों के नाश के लिए नियुक्त हैं। आप भक्तों के लिए भय कारक नही बनते। भक्तों के सारे अपराधों को आप सहन करते हैं। हमारे कुल देवता के प्यार के लिए आप मुनि के लिए कल्याण करिए। उससे हमारा भी कल्याण होगा।।69।।

मैंने जो दान दिया है, याग किया है, स्वधर्माचरण ठीक तरह से किया है, अपने कुल ब्राह्मणों को

देवता के समान देखा है तो उस पुण्य से इस मुनि का ताप शान्त हो।।70।।

भगवान सारे जीवों में रहते हैं, इस भाव और भक्ति से मैं सर्वगुण के आश्रय, सर्वोत्तम भगवान की आराधना की है और उससे भगवान संप्रीत हो गए हैं तो उस पुण्य से इस मुनि का ताप शान्त हो।।71।।

शुकदेव कहते हैं - इस रीति से राजा अम्बरीष स्तोत्र करते रहे। उसके परिणाम स्वरूप चारों दिशाओं से मुनि को जलाने वाला सुदर्शन चक्र शान्त हो गया।।72।।

ऋषि दुर्वासा चक्र के ताप से मुक्त होकर क्षेम को प्राप्त किए। राजा को आशीर्वाद देते हुए उसकी प्रशंसा करने लगे।।73।।

दुर्वासा कहते हैं - भगवद्भक्तों की महिमा कितनी आश्चर्यकारक है। इसको मैंने अपनी आँखों से देखा। राजा मैंने तुमसे अपराध किया था किन्तु तुमने मेरा कल्याण ही किया।।74।।

महात्मा, साधु लोग चाहें तो कुछ भी कर सकते हैं, क्योंकि वे अपनी भक्ति से भक्तों के स्वामी भगवान नारायण को अपने वश में रखते हैं।।75।।

केवल जिसके नाम स्मरण मात्र से मानव सारे पापों को धोकर निर्मल हो जाता है ऐसे पवित्रपाद श्री हरि के दासों में पाप कहाँ रह सकता है।।76।।

हे राजा! तुमने मेरे ऊपर अनुग्रह किया है। तुम परम दयालु हो। मेरे अपराध की गणना न करते हुए मेरे प्राण की रक्षा की है।।77।।

दुर्वासा जी इस प्रकार स्तुति करते रहे। अम्बरीष उनके दोनों पाँव के ऊपर नतमस्तक होकर उनको सन्तुष्ट किया। बाद में उनको भोजन करवाया। तब तक वह अन्न आहार और एक बूँद पानी भी नही लिया था।।78।।

दुर्वासा ऋषि राजा द्वारा आदर पूर्वक दिए हुए सकल लोक से चाहने वाले उत्कृष्ट अन्न को खाकर तृप्त हुए और राजा से बोले अब तुम भोजन करो।।79।।

दुर्वासा बोले - हे राजा! तुम भगवद्भक्त हो, तुम्हारे दर्शन, स्पर्शन, बातचीत और आतिथ्य सत्कार से मैं सन्तुष्ट हूँ। भगवान के तत्वज्ञान को सुनकर अनुगृहीत हूँ।।80।।

हे राजा! देवता, स्त्रियाँ तुम्हारे इस निर्मल चरित्र को बार बार गाती हैं। भू लोक में तुम्हारी कीर्ति दशों दिशाओं में प्रसारित होगी।।81।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस रीति से सत्कार पाकर दुर्वासा ऋषि राजा की स्तुति करते हुए उससे

बिदा होकर अन्य दुर्जनों के लिए अलभ्य ब्रह्म लोक को आकाश मार्ग से चले गये।।82।।

जिस दिन दुर्वासा ऋषि राजा से क्रोधित होकर चक्र के भय से जब चले गये थे तब से अब वापस आने में एक वर्ष बीत गया था। राजा मुनि की राह देखते हुए एक वर्ष पर्यन्त अन्न ग्रहण न करते हुए केवल पानी पी के रहा।।83।।

दुर्वासा ऋषि के जाने के बाद राजा अम्बरीष, मुनि के अत्यन्त पवित्र उच्छिष्ट का भोजन किया। मन में चिन्तन करने लगा कि भगवान की कृपा से मुनि का संकट दूर हुआ। यह सारी भगवान की कृपा है। मेरे हाथ से क्या होने वाला है। ऐसे विचार करते रहे।।84।।

अनेक गुणवाले राजा अम्बरीष अश्वमेध आदि अनेक सत्कार्य करते हुए किया हुआ कर्म को परब्रह्म परवासुदेव में अपर्ण करते हुए अपनी भक्ति को बढ़ाते रहे। भक्ति में ब्रह्मादि देवताओं से भी आगे बढ़ा।।85।।

अम्बरीष भगवान का बड़ा भक्त है। किन्तु ब्रह्मादि देवता के सामने वह लेश मात्र भी समान नही होता। जैसे प्रह्लाद को अपने को ज्यादा प्रिय है इसको दिखाने के लिए भगवान नरहरी प्रह्लाद को जेष्ठता और श्रेष्ठता दी, वैसे ही यहाँ अम्बरीष की महिमा को दिखाने के लिए अम्बरीष को श्रेष्ठता दी है। अम्बरीष की कीर्ति को बढ़ाने के लिए और विष्णु के अधीनत्व को दिखाते हुए ब्रह्म और रुद्र अम्बरीष की कीर्ति को बढ़ाए। दुर्वासा ऋषि रुद्रावतार होते हुए भी असुरावेश के कारण भक्त अम्बरीष का द्रोह प्राप्त किए। उनके अहंकार को नाश करने के लिए और दोनों पर अनुग्रह करने के लिए भगवान विष्णु अम्बरीष के मुखान्तर ही उसको संकट से दूर किए।

इसके बाद महाज्ञानी अम्बरीष अपने योग्य पुत्रों को राज्य भार को समर्पित करते हुए वासुदेव में मन रखते हुए तीनों गुणों से उत्पन्न होने वाले रागद्वेषादि प्रवाह को पार करते हुए तप करने चले गये।।86।।

यह राजा अम्बरीष का पुण्यकारी कथानक है। प्रतिदिन संकीर्तन करना, याद करना और दूसरों को कहते रहना बहुत पुण्य कारक है। जो इसको करता है वह भगवद्भक्त बनता है।।87।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में छठा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - सातवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - अम्बरीष को विरूप, शम्भू और केतुमान नाम के तीन पुत्र हुए। विरूप से पृषध्वज जन्म लिया। उसका पुत्र रथीतर हुआ।।1।।

रथीतर को पुत्र नही हुए। उसने सन्तति के लिए अंगिरा ऋषि से प्रार्थना की। वे उसकी पत्नी में ब्रह्मवर्चस्व वाले पुत्रों को जन्म दिए।।2।।

ये पुत्र क्षत्रिय क्षेत्र में अंगिरा से जन्म लेने के कारण उनका नाम आंगीरस पड़ा। वे रथीतर में मुख्य माने जाते हैं। वे क्षत्रिय होने के साथ ब्राह्मण भी माने जाते थे।।3।।

प्राचीन काल में उत्तम सन्तति के लिए निचली जाति में सन्तान उत्पत्ति करने के लिए उच्च वर्ण वालों से प्रार्थना करने की पद्धति थी। जैसे जमीन में कृषि काम के लिए दूसरों को लगाने से उससे किए हुए काम से जो उत्पन्न होता है वह खेत के मालिक का होता है वैसे ही पत्नी में दूसरों से प्राप्त किया हुआ उनका बनता है।पति से जन्म लेने वाला पुत्र **औरस** कहलाता है, दूसरों से जन्म लेने वाला पुत्र **क्षेत्रज** कहलाता है।

वैवस्वत मनु के छींकते समय उसके नाक से इक्ष्वाकु नाम का पुत्र जन्म लिया। उसको सौ पुत्र हुए। उनमें विकुक्षी, निमि और दण्डक ये तीनों श्रेष्ठ हैं।।4।।

इसके पहले भागवत में (9-1-11) वैवस्वत मनु को श्रद्धा देवी में इक्ष्वाकु मिलकर दस पुत्र हुए ऐसी कथा आती है। अब मनु के नाक से इक्ष्वाकु के जन्म की बात है। इसका विवरण ऐसा है मनु को श्रद्धा देवी में नौ और इक्ष्वाकु मिल कर दस पुत्र हुए ऐसे कहना ठीक होता है। मनु के सारे पुत्रों की श्रद्धा देवी माँ होने के कारण इक्ष्वाकु को भी श्रद्धा का पुत्र मानना क्षात्रिन्याय से सही होता है अथवा दक्ष प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र होकर जन्म लेने के बाद प्रचेतस का भी पुत्र बनता है। वैसे यहाँ इक्ष्वाकु का दुबारा जन्म लेने की बात सही हो सकती है। तीसरा यह भी हो सकता है कि वह इक्ष्वाकु और यह इक्ष्वाकु अलग अलग पुत्र हैं। ऐसा समझने से कोई समस्या नही आती।

उन सौ पुत्रों में पच्चीस लोग आर्यावर्त के पूर्व भाग के राजा बने, और पच्चीस लोग पश्चिम भाग के राजा बने। तीन पुत्र मध्य भाग के राजा बने। बाकी के सैतालिस पुत्र उत्तर दक्षिण भाग के राजा बने।।5।।

एक बार इक्ष्वाकु अष्टक श्राद्ध के लिए अपने पुत्र विकुक्षी को जल्दी जाकर शुद्ध मांस को लाने के लिए आदेश दिया।।6।।

विकुक्षी उसके अनुसार जंगल जाकर श्राद्ध के लिए योग्य मृगों को मारकर थक गया। वह बहुत भूखा भी था। उसने उनमें से एक खरगोश के मांस को खा लिया। उसके इस मांस को खाने से वह उच्चिष्ट हो जाता है इसको वशिष्ठ आदि ऋषियों को परोसने योग्य नही होता यह विवेक उसमें नही रहा।।8।।

विकुक्षी से किए हुए इस कृत्य को ज्ञान दृष्टि से जानकर वशिष्ठ ऋषि इस बात को इक्ष्वाकु राजा को बता दिए। राजा इसको समझ कर सदाचार को छोड़े हुए अपने पुत्र को क्रोध से अपने राज्य से बाहर किया।।9।।

आगे इक्ष्वाकु जापक नाम के ऋषि से चर्चा करते हुए ज्ञान को पाकर योगाभ्यास करके शरीर त्याग करते हुए परब्रह्म को पा लिया।।10।।

पिता के मरने के बाद सबसे बड़ा पुत्र विकुक्षी राज्य को वापस आकर इस भूमि का राजा बना। वह श्री हरि की आराधना करते हुए अनेक यज्ञ किया। खरगोश का मांस खाने से उसका नाम शशाद भी था।।11।।

शशाद पहले दुराचारी था। किन्तु बाद में श्री हरि की उपासना से अपने पाप को धोकर वह प्रख्यात राजा बना। कलियुग में श्राद्ध में मांस भोजन निषिद्ध है। किन्तु पिछले युगों में उसके लिए अनुमति थी।

विकुक्षी का पुत्र पुरंजय। उसका इन्द्रवाह नाम भी था, उसको ककुतस्थ भी बोलते थे। उसको तीन नाम क्यों आये, उससे किए हुए महत्कार्य के बारे में बताता हूँ सुनो।।12।।

कृतयुग के अन्त में देव और दानवों के बीच में युद्ध हुआ। उस समय दैत्यों से पराजित देवता गण वीर पुरंजय का सहायता पा लिए।।13।।

सर्वेश्वर प्रभु देव भगवान विष्णु के आदेश से इन्द्र महावृषभ रूप धारण करते हुए पुरंजय का वाहन बन गया क्यों कि पुरंजय इन्द्र को वाहन बनने के लिए माँगा था।।14।।

पुरंजय कवच धारण कर दिव्य धनु और तीक्ष्ण बाण को धारण कर उस वृषभ के कंधे के ऊपर बैठ कर युद्ध के लिए सिद्ध हुआ। उस समय देवता लोग उसका यशोगान गाये। वृषभ के कंधे के ऊपर बैठने के कारण उसका नाम ककुतस्थ पड़ा।।15।।

परम पुरुष परमात्मा विष्णु के तेज को भरकर देवताओ के साथ पश्चिम दिशा से दैत्यों के नगर को घेर लिया। इन्द्र को वाहन बनने से उसका नाम इन्द्रवाह पड़ा।।16।।

हे राजा परीक्षित सुनो - दैत्यों के साथ पुरंजय का रोमांचकारी युद्ध हुआ। उस युद्ध में पुरंजय अपने बाण से युद्ध करने वाले सारे दैत्यों को यमपुरी भेजा।।17।।

उसके बाण प्रलयाग्नि के समान जलते हुए आगे खड़े हुए दैत्यों को मारता हुआ देखकर, पीछे के दैत्य अपना नगर छोड़ कर भाग गये।।18।।

दैत्यों के नगर को उनके सैन्य सम्पत्ति के साथ सारे धन संपत्ति के साथ इस राजर्षि द्वारा पुर को जीतने के कारण इसका नाम पुरंजय पड़ा। जीती हुयी सारी सम्पत्ति को पुरंजय इन्द्र को सौंप दिया। इस तरह उसको ककुतस्थ, इन्द्र, वाह और पुरंजय ऐसे तीन नाम पड़े।।19।।

पुरंजय को अनेनस नाम का पुत्र हुआ। उसका पुत्र पृथु, पृथु का पुत्र विश्वगन्धि, उसका पुत्र चन्द्र। चन्द्र का कुमार युवनाश्व।।20।।

युवनाश्व का पुत्र **श्रावस्ति**। उसने ही श्रावस्ति नगर का निर्माण किया। उसका पुत्र बृहदश्व उसका पुत्र कुवलयाश्व।।21।।

कुवलयाश्व बहुत बलिष्ठ था। उदंक नाम के ऋषि को कष्ट देने वाला दुन्धु नाम के दैत्य को अपने इक्कीस हजार पुत्रों के साथ जाकर वध किया।।22।।

इसी कारण कुवलयाश्व दुन्धुमार नाम से प्रख्यात हुआ। किन्तु उनके तीन बच्चों को छोड़कर अन्य सारे बच्चे दुन्धुमार के मुख से आयी हुयी आग में जल गये।।23।।

दृढ़ाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व ये तीन बचे थे। इनमें से सबसे जेष्ठ दृढ़ाश्व का पुत्र हर्यश्व उसका पुत्र निकुम्भ।।24।।

निकुम्भ के पुत्र बर्हिणाश्व, उसका पुत्र कृषाश्व, उसको सेनजित, उसको युवनाश्व पुत्र हुए। युवनाश्व को पुत्र नही हुआ। सौ पत्नी होते हुए भी वह पुत्र न होने के कारण वैराग्य से तप करने जंगल गया।।25।।

वहाँ के ऋषियों ने दया पूर्ण होकर इससे इन्द्रयाग करवाया। वह एकाग्रचित्त होकर यज्ञ करता रहा।।26।।

एक दिन रात में राजा प्यास लगने से यज्ञ शाला में जाकर सारे ऋषियों को सोया हुआ देख कर वहाँ रखा हुआ मंत्र से युक्त जल को उठा कर पी लिया। ऋषि गण उस जल को उसकी पत्नी को देने के लिए रखे थे।।27।।

ऋषि गण सुबह उठ कर देखे तो मंत्र जल पूरित कलश खाली हो गया है। वे पूछे, अरे पुत्र संतती को

देने वाला जल को किसने पी लिया है।।28।।

अन्त में उनको मालूम हुआ कि भगवान की प्रेरणा से राजा ने ही उस जल को पी लिया है। दैव बल ही ऐसा रहे तो मानव क्या कर सकता है। यह भगवान की प्रेरणा है। वैसा ही ही बोलते हुए नमो कहते हुए वे भगवान को नमस्कार किए।।29।।

मंत्र जल को पीने के कारण राजा गर्भ धारण किया। नौ महीने बीत जाने के बाद युवनाश्व अपने नाम का पुत्र पिता के पेट को चीर कर बाहर आया।।30।।

बच्चा बहुत रोने लगा। तब रोते हुए इस बच्चे को किसका दूध पिलाए? ऋषि गण इस बात से चिन्तित थे। तब यज्ञ से सन्तुष्ट हुआ इन्द्र आकर अपने अंगुली को उस बच्चे के मुह में रखते हुए **मान्धाता** तुम मेरे इस अंगुली से दूध पिओ। उस दिन से उस बच्चे का नाम मान्धाता पड़ा।।31।।

पिता के पेट से बच्चा बाहर आने के बाद भी पिता नही मरा। ऋषि मुनियों ने उसके बारे में देवताओं से प्रार्थना की थी। उनके अनुग्रह से युवनाश्व नही मरा। बाद में वह यज्ञशाला में तप करते हुए सिद्धि पा लिया।।32।।

मान्धाता को इन्द्र ने त्रसद्दस्यु नाम रखा। दस्यु यानि राक्षस लोग त्रसद यानि डराते हैं। राक्षस लोग मान्धाता से डरते थे इसके लिए उसका नाम त्रसद्दस्यु पड़ा।।33।।

युवनाश्व का पुत्र मान्धाता चक्रवर्ती बना। अच्युत भगवान के तेज से आविष्ट होकर एकचक्राधिपति होकर सात द्वीप वाली इस समग्र भूमि का राजा बना।।34।।

सर्व देवमय, सर्वेश्वर, अतीन्द्रिय, यज्ञ नामक भगवान नारायण को परमात्म ज्ञानी राजा मान्धाता बहुत दक्षिणा देते हुए अनेक यज्ञ करते हुए आराधना की।।35।।

द्रव्य, मंत्र, विधान, यज्ञ कार्य, यजमान, ऋत्विज, धर्म, देश, काल ये सारे हरि के आधीन हैं। इसके ऊपर मान्धाता का दृढ़ विश्वास था।।36।।

सूर्य जहाँ उदय होता है, चन्द्र जहाँ प्रकाश देता है वह सारा प्रदेश यौवनाश्व मान्धाता का राज्य बना था।।37।।

शशबिन्दु की पुत्रि बिन्दुमति से राजा मान्धाता की शादी हुई। उस पत्नी में पुरुकुत्स, अम्बरीष और योगी मुचुकुन्द नाम के पुत्र हुए।।38।।

इनकी पचास बहने थीं। उन सब को सौभरी ऋषि से शादी करवा दिया।।39।।

सौभरी मुनि यमुना जी के गहरे पानी के अन्दर डूबकर वहीं महातप का आचरण करते थे। उस समय एक बड़ा नरमछली अनेक मादामछलियों के साथ खेलते हुए महानन्द पाता था। उसको देखकर वह ऋषि उसी तरह का आनन्द पाने की इच्छा से जल को छोड़ कर बाहर आया। वह मान्धाता राजा के पास जाकर पचास में से एक पुत्री को अपने के लिए शादी में देने की माँग रखा। ऋषि के रूप को देख कर राजा को पुत्री देने का मन नहीं हुआ। किन्तु बोला आपही इनमें से कोई लड़की जो आपको पसन्द करे तो उससे स्वयंबर करो।।40,41।।

इनको स्त्री लोग कैसे पसन्द करते हैं? ये बूढ़े हो गये हैं, बाल पके हैं, चमड़ी सिकुड़ गयी है, सिर हिलता है इससे कौन लड़की विवाह करना चाहेगी। यह सोच कर राजा ने मुझसे ऐसा कहा है।।42।।

इसके लिए मेरे शरीर को देवता स्त्री भी चाहे ऐसे तपोबल से इसको बदल दूँगा। यह निर्धारण करते हुए योगशक्ति वाले वह सौभरी ऋषि अत्यन्त सुन्दर युवक बने।।43।।

इसके परिणाम से सम्पद्धरित अन्त:पुर में रहने वाली सभी पचास कन्याएँ उसी के साथ शादी करने के लिए सिद्ध हो गयी।।44।।

सभी उसी को चाहते हुए मैं इससे शादी करूँगी, मुझे यह योग्य पति बनेगा, तेरे लिए नही, ऐसे बोलते हुए अपने प्यार को घोल कर झगड़ा करने लगी। तब राजा ने उन सबको उन्ही से शादी करवाए।।45।।

ऋग्वेद मंत्र के द्रष्टार वह सौभरी मुनि मंत्र के सामर्थ्य से, अपने तप सामर्थ्य के साथ सारे सम्पदाओं से युक्त अलग अलग सुन्दर पचास घरों को बनवाये। उन घरो में उद्यान, सरोवर, सरोवर में सुन्दर पुष्प और बाग बगीचा बनाकर स्वयं पचास रूप धारण कर उनके साथ विहार किए।।46।।

बहुत महंगे सस्य, आसन, वस्त्र, अलंकार, स्नान, अनुलेप, खाद्य, फूलमाला इनसे सारे घर भरे हुए थे। उत्तमरीति से अलंकृत दास दासियाँ वहाँ सेवा के लिए थे। मृग पक्षियाँ सुस्वर से कूंजते थे। लगता था वे इनके गुणगान कर रहे हैं। इन घरों में उद्यानों में मुनि अपने पचास रूप से पचास पत्नियों के साथ विहार किए, अपना गृहस्थ धर्म चलाए।।47।।

दामाद का यह गृहस्थ धर्म देख कर सप्तद्वीप युक्त इस समग्र भूमि के राजा सार्वभौम, साम्राज्य लक्ष्मी से सुशोभायमान राजा मान्धाता दंग रह गया। इस लोक में केवल मैं ही सुख समृद्ध गृहस्थ धर्म को चलाने वाला यह अहंकार को छोड़ दिया।।48।।

सौभरी मुनि इस प्रकार अपने घरों में कितना भी सुख भोग करते रहने के बाद भी उसको तृप्ति नही मिली। आग में घी को कितना भी डाले वह कम ही होता है।।49।।

एक बार वह बैठ कर विचार करने लगा। अरे, मैं ऋग्वेद मंत्र का द्रष्टार और आचार्य हूँ। किन्तु केवल मछली का संग देखकर अपने आत्मनाश को मैने ही स्वयं किया है।।50।।

अरे मेरे इस तपो नाश को देखिए। मैं तपस्वी था, श्रेष्ठ व्रताचरण करता था। एक बार मैं पानी में अपने पत्नियों के साथ विहार करने वाले मछली को देखकर आसक्ति रखने से बहुत काल किया हुआ तप को नाश कर दिया।।51।।

मोक्ष चाहने वाले को कभी भी रतिकेलि का दर्शन नही करना चाहिए, उसका संग ही छोड़ना चाहिए, इन्द्रियों को विषय वासनाओं के पास बाहर नही छोड़ना चाहिए। मैं अकेला एकान्त में सर्वेश अनन्त नामक भगवान में मन लगाकर तप करता था, वैसा ही करना चाहिए। यदि संग करना है तो साधु संग करना है, सद्भक्तों का संग करना चाहिए।।52।।

एकांगी होकर अकेला तप करने वाला मैं पानी में रहने वाला मछली के बारे में आसक्ति दिखाया। इसका परिणाम देखो। पचास शरीर को धारण किया है, पचास पत्नियों में पाँच हजार बच्चों को जन्म देते हुए संसार के गर्त में गिर गया हूँ। अब लड़कियों की शादी, लड़कों का उपनयन और अभ्यास करवाना है। ये सारी चिन्ता में डूब गया हूँ। रागादि मनोरथ में मेरी बुद्धि ही खराब हो गयी हैं। विषय पदार्थों को ही पुरुषार्थ मान रहा हूँ।।53।।

सौभरि महा योगी थे। मुक्ति उनकी सिद्ध हो गयी थी, केवल प्रारब्ध कर्म को भोगना था। उनका प्रारब्ध बहुत बड़ा था, पचास जन्म में पचास पत्नियों के साथ प्रारब्ध कर्म का भोग करना था। सौभरि एक ही जन्म में प्रारब्ध को भोगने के लिए पचास रूप धारण कर पचास राजकुमारियों से शादी करके प्रारब्ध का भोग किया। प्रारब्ध को भोगना ही पड़ता है। इससे सौभरि मुनि को योगभ्रष्ट बोलना गलत होता है। वह ज्ञानी और मोक्ष योग्य होते हुए भी प्रारब्ध कर्म वश संसार में आसक्त रहा।

इस प्रकार बहुत वर्ष संसार में रहते हुए भोग करने के बाद सौभरि विरक्त होकर जंगल को गया। पति को भगवान मानकर आराधना करने वाली उनकी पचास पत्नियाँ उनके साथ चली। जंगल में सौभरि ऋषि सकल विषय भोग त्याग कर वानप्रस्थाश्रम में गये।।54।।

वहाँ शरीर शोषण करने वाले तीव्र तप को करते हुए भगवान के ज्ञान को पाया हुआ सौभरि भगवान में ही अपने अन्त:करण को मिला दिये और अपने पचास शरीरों को श्रौताग्नि से जला दिए।।55।।

हे राजापरिक्षित अपने पति को शरीर त्याग कर भगवान से लते देख कर उनकी पत्नियाँ भी आग बुझाते समय ज्वाला भी जैसे बुझाते हैं वैसे वे भी उनके साथ चली गयी।।56।।

मान्धाता के पुत्रों में जेष्ठ अम्बरीष को उसके नाना जी शशबिन्दु दत्तक लेकर पुत्र बना दिया।

अम्बरीष का पुत्र युवनाश्व।।57।।

युवनाश्व के पुत्र हरित। अम्बरीष, युवनाश्व और हरित मान्धातृ गोत्र के अवान्तर विशेष प्रवर्तक बने। पुरुकुत्स को नाग कन्या नर्मादा से विवाह किया गया। यह विवाह नर्मादा के सोदर नागों ने किया।।58।।

भाईयों के प्रेरणा से नर्मादा पुरुकुत्स को रसातल को ले गयी। विष्णुशक्ति के आवेश रहने वाला वह वहाँ नागों के शत्रु वध्रश्व नाम के गन्धर्व जाती के दुष्टों का हनन किया।।59।।

पुरुकुत्सक को स्मरण करने वाले को सर्प का भय न हो इस रीति से पुरुकुत्सक नाग राजा से वर पाया। इसका पुत्र अनरण्य।।60।।

अनरण्य के पुत्र हर्यश्व, उसका पुत्र अरुण, अरुण का पुत्र त्रिबन्धुर, उसका पुत्र सत्यव्रत। यह सत्य व्रत ही त्रिशंकु नाम से प्रसिद्ध है।।61।।

एक बार त्रिशंकु ने शादी होने वाली एक ब्राह्मण लड़की का अपहरण किया। इससे क्रुद्ध होकर गुरु वशिष्ठ जी और उनके पुत्र इसको शाप दिए। उस शाप के कारण वह चाण्डाल बन गया। पुन: विश्वामित्र के तप: प्रभाव से उसी शरीर से त्रिशंकु स्वर्ग पाया। आज भी आकाश में हम त्रिशंकु नाम का नक्षत्र को देखते हैं।।62।।

राजा परीक्षित पूछा-त्रिशंकु आज भी आकाश में कैसे हैं। उत्तर में शुकदेव कहते है - विश्वामित्र जी तपो बल से उसको स्वर्ग को चढ़ाए। किन्तु स्वर्ग द्वार में वशिष्ठ के शाप के कारण देवताओं ने उसको वहीं से ढ़केल दिया। त्रिशंकु सिर नीचे होकर गिरने लगा। तब विश्वामित्र जी अपने तपो बल से आकाश में ही उसी स्थिति में खड़ा कर दिए और वहीं एक अलग स्वर्ग का निर्माण किए। इस त्रिशंकु का पुत्र ही हरिश्चन्द्र है। हरिश्चन्द्र के बारे में विश्वामित्र और वशिष्ठ परस्पर शाप देकर पक्षी बनकर बहुत वर्ष तक युद्ध किए। हरिश्चन्द्र को पुत्र नही हुआ। वह दु:खित होकर नारद जी के सलाह के अनुसार वरुण के शरण में आया और प्रार्थना किया कि यदि मुझे एक वीर पुत्र जन्म लिया तो उसी को बलि देकर आप के प्यार में एक यज्ञ करुगाँ।।63,64,65।।

जन्म लिए हुए बच्चे को बलि देने से पुत्र होने का क्या लाभ है ऐसा लगता है। किन्तु यहाँ हरिश्चन्द्र पुत्र होते ही उनका बलि देने का बात नही किया है। पुत्र होने के बाद देखेंगे, भगवान है इस भाव से वह वरुण को आश्वासन दिया था। भगवान की कृपा से उसको अपने पुत्र रोहित को बलि देने का सन्दर्भ नही आया। बच्चा जन्म लेते ही वरुण बलि चाहा तो राजा ने कहा कि इस छोटे बलि से तुम्हारा पेट भरने वाला नही है, इसको बड़े होने दो कहते हुए हरिश्चन्द्र यज्ञ को आगे ढकेलता है।

वरुण इस बात को मानकर पुत्र बड़े होते तक रुक गया।।66।।

दस दिन के बाद पशु बलि योग्य बनता है, हरिश्चन्द्र बोले तो उसी के अनुसार वरुण दस दिन के बाद आते हैं, और पूछते है अब बलि दो।।67।।

तब हरिश्चन्द्र बोलता है दाँत आने के बाद पशु बलि के लिए योग्य बनता है। तब वरुण दाँत आने के बाद बलि माँगने आता है।।68।।

हरिश्चन्द्र कहता है - दाँत गिरने के बाद बलि ठीक होता है। तब वरुण पूछता है अब दाँत गिर गये हैं बलि दो।।69।।

हरिचन्द्र ने कहा, गिरा हुआ दाँत पुनः आने से बलि योग्य बनता है। वरुण पूछता है अब दाँत आए हैं बलि दो।।70।।

तब हरिश्चन्द्र कहता है - यह शिशुपशु छोटा है। क्षत्रिय शस्त्र धारण करने के बाद शुद्ध होता है। तब बलि दूँगा। इस प्रकार पुत्र प्रेम से हरिश्चन्द्र काल वंचना करता रहा। हरिश्चन्द्र जैसे बोलता था वैसे वरुण बलि मागने आता था।।71।।

बाद में बलि के लिए पुनः माँगा। बलि की बात सुनकर बड़ा हुआ रोहित राज घर को छोड़कर जंगल में चला गया। ।72।।

इधर हरिश्चन्द्र वरुण के आग्रह के कारण महोदर रोग का रोगी बना। इसको सुनकर रोहित अपने घर जाने लगा। बीच में इन्द्र वृद्ध ब्राह्मण के रूप में आकर उसको रोका।।73।।

तीर्थक क्षेत्र यात्रा करते भूमि में संचार करने से पुण्य मिलता है कह कर इन्द्र देव ने रोहित को उपदेश दिए। उसके अनुसार रोहित एक वर्ष पर्यन्त यात्रा में रहा।।74।।

इस प्रकार दूसरा, तीसरा, चौथा और पाँचवा वर्ष इन्द्र के उपदेश के अनुसार रोहित यात्रा करता रहा।।75।।

छ:ठा वर्ष जंगल में संचार समाप्त कर अपने घर को जा रहा रोहित बीच में अजीगर्त मुनि से उसके मध्यम पुत्र शुनःशेप को खरीद कर अपने पिता को बलि पशु के रूप में दे दिया। इससे शुनःशेप हरिश्चन्द्र का क्रीत पुत्र बना।।76।।

महायश को पाया हुआ हरिश्चन्द्र राजसूय महायज्ञ के अभिषेचनीय काल में पुरुषबलि देकर वरुणादि देवताओं को सन्तुष्ट कर महोदर रोग से मुक्त हो गया।।77।।

उस महायाग में विश्वामित्र होतृ बना। परमज्ञानी जमदग्नि अध्वर्यु बने, वसिष्ठ ब्रह्मा बने, अयास्य उद्गातृ बने।।78।।

शुन:शेप को इन्द्र ने सन्तुष्ट होकर सोने के रथ दिए। उसकी कथा हम चौदहवाँ अध्याय में बोलेंगे।।79।।

राजा हरिश्चन्द्र पत्नी समेत सत्य निष्ठा में आपत्काल में भी दिखाया हुआ धैर्य को देख कर विश्वामित्र बहुत सन्तुष्ट होकर विचलित न होने वाला दृढ़ तत्व ज्ञान का उपदेश दिए।।80।।

राजसूययाग में दक्षिणा के निमित्त में हरिश्चन्द्र के सम्पूर्ण राज्य को विश्वा मित्र ने अपने वश में ले लिया। हरिश्चन्द्र को अपने पत्नी पुत्र को बेचना पड़ा। हरिश्चन्द्र सत्य निष्ठा के लिए अपने को भी बेचना पड़ा। इसके सत्य निष्ठा को देख कर सन्तुष्ट हुए विश्वामित्र उनको परमपद को पाने का तत्वोपदेश दिए।

बहुत दिनों के बाद अपने जीवन के अन्तिम समय में हरिश्चन्द्र ने लय का चिन्तन किया। अन्न को पृथ्वि में, पृथ्वि को जल में, जल को तेज में, तेजस को वायु में, वायु को आकाश में, आकाश को अहंकार में अहंकार को महत्तत्व में, महत्तत्व को अव्यक्त में लय करना, (उन तत्वाभिमानि देवता इस प्रकार कनिष्ट देवता अपने ऊपर के श्रेष्ठ देवता में विलीन होना लय चिन्तन होता है।) इस प्रकार ध्यान करते हुए सारे तत्व और उनके अभिमानी देवताओं को मुख्य नियामक श्री हरि में अपने योग्य ज्ञानादि गुणांशों को ध्यान करते हुए श्री हरि को प्रत्यक्ष देखते हुए उस अपरोक्ष के कारण लिंग शरीर को नाश करते हुए अविद्या बन्धन से मुक्त हुए। प्राकृत शरीर से न मिलने वाले स्वरूपसुखज्ञानयुक्त चिन्तन के स्वरूप सुख को पाते हुए जीवन मुक्त होगया।।81।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

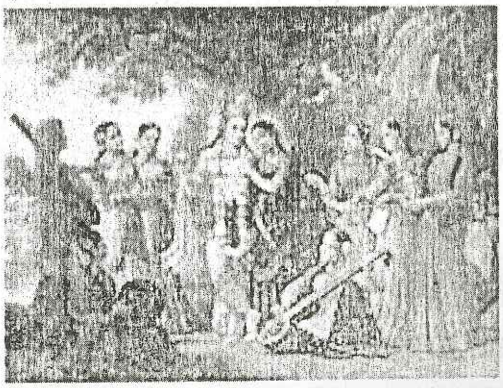

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - आठवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

शुकदेव कहते हैं - रोहित के पुत्र हरित, हरित का पुत्र चम्प। इसी ने चम्पापुरी नाम का नगर का निर्माण किया, उसका पुत्र सुदेव, सुदेव का पुत्र विजय।।1।।

विजय का पुत्र भरुख उससे वृक जन्म लिया, वृक से बाहुक, बाहुक के राज्य को शत्रुओं ने अपहरण किया। राजा पत्नियों के साथ जंगल चला गया।।2।।

बाहुक जंगल में ही मर गया। उसके साथ उसकी एक रानी सहगमन करने के लिए सिद्ध हो गयी। तब वह गर्भिणी थी। उसको देखकर और्व नाम के मुनि सहगमन से उसको मना किया।।3।।

रानी के गर्भ में शिशु है इसको समझकर मत्सर से उसके सौत ने उसको तीव्र विष खिला दिया। भाग्यवश रानी नही मरी। गर्भ में रहने वाला बच्चा विष के साथ जन्म लिया। आगे बड़ा कीर्तिशाली हुआ वह सगर नाम से प्रसिद्ध हुआ। **स - गर** इसका अर्थ विष के साथ ऐसे होता है।।4।।

सगर चक्रवर्ती बना। उनके एक हजार पुत्र भूमि में विशाल गढ्ढा खोद करसमुद्र का विस्तार बढ़ाए। उस दिन से समुद्र को सागर नाम पड़ा। सगर राजा अनागरिक लोग तालजंघ, यवन, शक, हैहय, बर्बर इन जातियों के लोगों को दुष्ट होने के बाद भी अपने गुरु और्व मुनि के आदेश से नही मारा। उनको विचित्र वेष पहनाया। कई लोगों का मुंडन करते हुए दाढ़ी को रखा। कई लोगों को लम्बा बाल रखवाया। कई लोगों को आधा मुंडन करवाया।।5,6।।

कई लोगों को अन्दर के कपड़े पहनने से मना किया, और कई को बाहर के कपड़े पहनने नही दिया। ये सारे पाखण्ड मत के अनुयायी बने हैं। स्वयं सगर राजा ने सारे वेद और देवताओं में रहने वाले भगवान को अश्वमेध इत्यादि यज्ञों को करते हुए आराधना की।।7।।

और्व मुनि के उपदेश के अनुसार सर्व जीवि के स्वामी परमात्मा परमेश्वर श्री हरि की आराधना अश्वमेध यज्ञ से किया। उस यज्ञ के समय भू प्रदक्षिणा के लिए छोड़ा हुआ यज्ञाश्व को देवेन्द्र ने अपहरण किया।।8।।

सगर राजा के सुमति और केशिनी नाम की दो रानी थीं। उसमें पहले वाली सुमति के पेट से साठ हजार पुत्र जन्म लिए। ये सारे अहंकारी थे। पिता के आदेश के अनुसार यज्ञाश्व को ढुढ़ते हुए पाताल को जाने के लिए जमीन में खुदाई किए।।9।।

पाताल में इशान्य दिशा में कपिल मुनि तप करते बैठे थे। देवेन्द्र उनके पास यज्ञाश्व को छिपा कर रखा था। यज्ञाश्व को मुनि के पास देखकर उसी को चोर समझ कर चिल्लाते हुए साठ हजार सगर पुत्र आयुध लेकर मुनि के ऊपर मारने के लिए आक्रमण किए। तब मुनि आँख खोले।।10,11।।

मनोभिमानी इन्द्र उनके मन का अपहरण किया था। इसी कारण अज्ञ सगर पुत्र महात्मा कपिल को मारने को गये थे। किन्तु ऋषि से किए हुए अपचार के कारण भस्म हो गये।।12।।

सगर पुत्र कपिल मुनि के क्रोधाग्नि से जल गये। ऐसे कहना सही नही है। बल ज्ञान को आश्रय देने वाले कपिल में क्रोध के कारण बनने वाला अज्ञान कैसे रहेगा? जगत को पवित्र करने वाला साधु सज्जनों में अपवित्र अज्ञान और कोप उनके स्वभाव में कैसे रहता है? इस भूमि से उड़ा हुआ धूल आकाश में क्या रह सकता है।।13।।

शुद्ध भगवत्तत्वज्ञान रूप सांख्य दर्शन को निरूपण करने वाले कपिल ऋषि हैं। पार करने के लिए असाध्य इस मृत्यु मार्ग वाला संसार सागर को मुमुक्षु पार करने के लिए यह सांख्य दर्शन एक बड़ा नौका के रूप में है। ऐसे शुद्ध ज्ञान वाले परमात्म के स्वरूप श्री कपिल देव में रोष और दूषित बुद्धि कैसे रहती है।।14।।

केशनी के पुत्र असमंजस उसका पुत्र अंशुमान। अंशुमान अपने बाबा सगर चक्रवर्ती के हित के कार्य में सदा काल निरत था।।15।।

असमंजस पूर्व जन्म में योगी था। जन सम्पर्क के कारण वह योगभ्रष्ट हुआ था। इस जन्म में भी उसको पूर्व जन्म का स्मरण रहा। इससे वह पश्चाताप से लोगों से दूर रहने के लिए दुष्ट कार्यों में अपने को लगाया।।16।।

लोकों में निन्दित, अन्धोंओ को भी असहनीय होने वाला दुष्कर्म को करते हुए लोगों को भय निर्माण करता था। खेलते बच्चों को सरयू नदी में फेकता था।।17।।

इसकी दुष्टता को देखते हुए राजा सगर, पुत्रवात्सल्य को छोड़कर अपने पौत्र का परित्याग किया। वह भी उसी को चाहता था। राजा के आज्ञा के अनुसार वह जंगल चला गया। जाते समय अपने योगशक्ति से नदी में डूबे हुआ सारे बच्चों को उठाकर उनके घर को वापस भेज दिया।।18।।

अयोध्यावासी जन के मरे हुए बच्चे वापस आये हैं इसको देखकर बहुत आश्चर्य चकित हुए। राजा सगर भी उसको परित्याग करने से पश्चाताप किया।।19।।

सगर चक्रवर्ती अपने पौत्र अंशुमान को घोड़े के अन्वेषण के लिए भेजा। वह अपने छोटे पिता लोगों द्वारा जहाँ जमीन को काटकर गुफा बनाए थे उसी मार्ग से पाताल जाकर अपने घोड़े को देखा। उसके बगल में एक बड़े राख के ढेर को देखा।।20।।

वहाँ बैठे हुए विष्णु के अवतार रूप कपिल मुनि को देखा। उनको हाथ जोड़कर नमन करते हुए तदेक चित्त होकर स्तोत्र करने लगा।।21।।

ब्रह्मा जी भी अपने से बड़े और श्रेष्ठ लक्षण वाले आपको पूर्ण रीति से साक्षात्कार नही कर सकते। आज भी वे अपने ध्यान योग से भी आपको पूर्ण रीति से जान नही सकते। अन्य मरीचि इत्यादि ब्रह्मा जी के मन और शरीर से सृष्ट हुए ऋषि मुनि आपको कैसे जान सकते हैं। हम तो पूर्ण अंज्ञ हैं।।22।।

त्रिगुणों से प्रधान रूप से सृष्ट हुए जीव तीन तरह के होते हैं। क्रमश: वे हैं सत्वप्रधान, रज:प्रधान और तम:प्रधान। इनमें आपके माया से **अमोहित,** मोहित न होने वाले केवल सत्व प्रधान मात्र होता हैं। वे अपने में रहने वाले आपको अपने शक्ति के अनुसार जान सकते हैं। **अमोहित,** किंचिन्मात्र मोहित होने वाले राजस लोग आपको देख नही सकते। वे बाहर रहने वाले विषय पदार्थ को ही देखते रहते हैं। वे त्रिगुण जन्य स्वर्गादि सुखों को भोगते हैं। **अमोहित,** पूर्ण रूप से मोहित अन्त: करण वाले तामस लोग अपने अन्दर रहने वाले आपको देख नही सकते और तमस को भोगते रहते हैं।।23।।

आप पूर्णानन्द स्वरूप हैं। सनन्दानादि ऋषि अविद्या से उत्पन्न होने वाले भेद विषय में होने वाला मोह को नाश किए हैं। वे आपका ध्यान कर सकते हैं। मैं तो मूढ़ हूँ, मैं कैसे आपका ध्यान कर सकता हूँ।।24।।

प्रकृति के गुण हों, उनसे बनने वाले कर्म हों, उनके साधन रूप शरीर हों आपके लिए नही हैं। आप के नाम प्राकृत नही हैं। आपको पूण पापकर्म का लेप नही हैं। ज्ञानोंपदेश के लिए आप अपने स्वरूप को व्यक्त करते हैं। ऐसे पुराणपुरुष आपको हम नमन करते हैं।।25।।

आप अपनी इच्छा से प्रकृति से निर्माण करते हैं। लोग भ्रमित होकर घर जमीन इत्यादि लौकिक साधनों को शास्वत समझते हैं। काम लोभ मत्सर मोह से उनका मन भ्रमाधीन रहता है।।26।।

हे सारे जीव राशि के अन्तर्यामी भगवान श्री हरि। हम आज आप के दर्शन से काम्यकर्म और इन्द्रियों के निमित्त रहने वाला अज्ञान को मिटा दिए। सारे पापों का मूल अज्ञान को उत्पन्न करने वाला स्नेह पाश आज कट गया।।27।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार अंशुमान द्वारा की हुयी हुई प्रार्थना को सुनकर कपिल मुनि उसके ऊपर पूर्ण अनुग्रह करते हुए बोले।।28।।

कपिल जी कहते हैं - हे बेटा, सुनो! यह घोड़ा आप लोगों का है। यह तुम्हारे बाबा का यज्ञपशु है। यहाँ राख का ढेर जो है वह तुम्हारे पितृ लोगों का है। इनका उद्धार केवल गंगा जल से हो सकता है। अन्य किसी से वे मुक्त नही होंगे।।29।।

अंशुमान कपिल मुनि को परिक्रमा करने के बाद दण्डवत् प्रणाम करते हुए अपने घोड़े को लेकर सगर चक्रवर्ती के सामने आया। सगर चक्रवर्ती उस घोड़े से अपने यज्ञ की समाप्ति किया।।30।।

राजा सगर अपने राज्य भार को अंशुमान को देकर विषय वासना से सम्बन्ध छोड़ते हुए संसार बन्ध को दूर करते हुए और मुनि के उपदेश से उत्तम गति को पा लिया।।31।।

अंशुमान देव गंगा को भूमि और पाताल को लाने के लिए कई वर्ष तप किया। वह उसमें यश नही पाया। काल बीतने के बाद वह मरण पाया।।32।।

अंशुमान के पुत्र दिलीप भी पिता के समान तप करने के बाद भी यश न पाते हुए मरण पाया। उसके पुत्र भगीरथ। वह इन दोनों से भी बढ़ कर तप किया।।33।।

भगीरथ के तप से सन्तुष्ट होकर गंगाजी उनको दर्शन दीं और कहीं जो चाहे वह वर माँगो भक्ति से नम्र हुआ राजा अपने मनोकामना को बताया।।34।।

गंगा जी कहती हैं - हे राजा, मैं स्वर्ग से भूमि के ऊपर आ जाऊँगी। किन्तु मेरी प्रबल शक्ति वाली धारा को रोकने वाला कौन है। मेरी धारा के आघात से यह भूमि टुकड़ा टुकड़ा हो सकती है।।35।।

इतना ही नही मैं भूमि पर उतरी तो मेरी दुर्गति हो जायेगी। पापी लोग अपने सारे पापों को मुझमें धो डालेंगे हैं। हे राजा, उस पाप को मैं कहाँ धोऊँ। तुम इसके बारे में विचार करो।।36।।

राजा भगीरथ कहते हैं - विरक्त, भगवद्भक्त, ब्रह्मज्ञानी, साधु सज्जन लोग इस जगत को पावन करते हैं। अपने हृदय में भगवान के प्यार को भरे हुए वे लोग अपने पाद धोना इत्यादि अंग संग करने वाले लोगों के पाप का परिहार करते हैं। हरिध्यान बल से वे ही पाप निवारण का यह काम करते हैं तो सदा काल हरिचरण तल में रहने वाले आपको पाप लेप कहाँ से होता है? तो भी आप पाप की चिन्ता नही करना क्योंकि साधु सज्जन लोग स्नानादि अंग संग से सारे पापों का परिहार करते हैं।।37।।

आपकी धारा के वेग को शंकर जी रोकते हैं। वे शरीर में रहने वाले अहंकार तत्व के अभिमानी हैं। कपड़े को सूत से सिलाई करने से दोनों कपड़े जैसे मिल कर रहते हैं वैसे ही सारे शरीर रुद्र जी के आश्रय में

रहता है।।38।।

गंगा जी को इस प्रकार आश्वासन देने के तुरन्त बाद राजा भगीरथ तप करते हुए शिव को प्रसन्न किए। शिव भगवान तप से बहुत जल्दी सन्तुष्ट होते हैं।।39।।

राजा की प्रार्थना को सुनकर उसके अनुसार सारे जगत के हितकारी भगवान रुद्र श्री हरि के पाद के संग से पवित्र जल वाले गंगा जी को अपने सिर पर रखे।।40।।

राजर्षि भगीरथ अपने पूर्वजों का शरीर जहाँ भष्म होकर गिरे थे वहाँ परम पावनी गंगा जी को लेकर चला।।41।।

वायुवेग वाला रथ से राजा भगीरथ आगे आगे दौड़ते थे। गंगा जी वेग से उनका पीछा करती थीं। गंगा जी चलते चलते रास्ते में मिलने वाले सारे प्रदेश को पावन करते हुए अन्त में जाकर सगर पुत्रों के भस्म के ढेर को भीगो दिए।।42।।

देह के इस भस्मराशि को गंगा जी का जल का स्पर्श होते ही सगर के पुत्र जिन्होने कपिल परब्रह्म में किया हुआ अपचार से नरक पाए थे वे स्वर्ग सिधार गये।।43।।

भस्म हुए वे राजपुत्र केवल गंगा स्पर्श से स्वर्ग पाये तो व्रत निष्ठ होकर गंगा जी का रोज आराधना करने वाले के बारे में और क्या कहना है।।44।।

भवबन्धन को नाश करते हुए हरि पाद कमल से आये हुए गंगा जी के लिए पापियों का पाप निवारण करना बड़ा आश्चर्य की बात नही है।।45।।

गंगा जी हरि के श्रीचरणकमलों से उत्पन्न होकर बहती हुई हमारे तक आयी हैं। गंगा जी में श्रद्धा रखते हुए ऋषि मुनियों ने छूटने वाला त्रिगुण बन्धन से जल्दी छुटकारा पाकर हरि सायुज्य रूप मोक्ष को पाते हैं।।46।।

भगीरथ के पुत्र श्रुत। श्रुत का पुत्र नाभाग। यह नाभाग मनुपुत्र नाभाग से अलग हैं। नाभाग का पुत्र सिंधुद्विप। उसका पुत्र अयुतायु।।47।।

अयुतायु से ऋतुपर्ण जन्म लिया। यह नल महराज का मित्र। उसने नल को शूतविद्या को सिखा कर अश्वविद्या को उससे सीख लिया।।48।।

कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्यच।

ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनम् कलिनाशनम्।।

इस प्रकार ऋतुपर्ण का नाम कलि नाश करने में प्रसिद्ध है।

सर्वकाम का पुत्र सुदास उसके पुत्र सौदास राजा। उसकी पत्नी का नाम मदयन्ती। उसके कारण इसका नाम मदयन्ती पति इस प्रकार प्रसिद्ध था। उसको कल्माष पाद भी कहते हैं।।49।।

प्रारब्ध कर्म वश से अपने पाप कर्म से भी वशिष्ठ से शाप पाकर राक्षस बन गया। उसको सन्तति भी नही हुयी।।50।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - महात्मा सुदास के पुत्र को किस कारण से अपने गुरु से शाप मिला, मै इसको जानना चाहता हूँ। यदि यह गूढ़ नही है तो कृपया बताइए।।51।।

शुकदेव कहते हैं - राजा सौदास एक बार शिकार करने गया था। उस समय उसने एक राक्षस को मार दिया। उसका भाई वहाँ से भाग गया। वह भाई के वध का बदला लेने के लिए राज-घर में आ गया।।52।।

अपने भाई के वध को मन में रखते हुए वह राक्षस धद्म वेष में भण्डार में घुस कर भण्डारी जैसे रूप धारण कर नर मांस को पका कर भूख से आये हुए गुरु वशिष्ठ जी को नर मांस को परोसा।।53।।

भण्डारी द्वारा किए गए इस अपवित्र कार्य को देखकर कुपित हुए वशिष्ठ जी राजा को नरभक्षक राक्षस बनने का शाप दिए।।54।।

बाद में यह राक्षस का काम है इसको समझने के बाद राजा की गलती न होने के कारण शाप को बारह वर्ष के लिए सीमित किए। तब राजा ने भी क्रोध से हाथ में जल लेकर अपने गुरु को शाप देने के लिए सिद्ध हो गया।।55।।

तब रानी मदयन्ति आकर उसको रोक ली। राजा मन्त्र से शक्तियुक्त अपने हाथ के जल को अपने पाँव के ऊपर छोड़ दिया क्योंकि प्राण हरण करने वाले वह मंत्रजल और किसी के ऊपर छोडे तो वे प्राणी मर जाते थे। इस भूमण्डल में पूरा जगह जीवियों से भरा है। अन्य जीवि का नाश न हो इसके लिए पानी को अपने पाँव के ऊपर डाल दिया।।56।।

इस रीति से मंत्र जल को अपने पाँव के ऊपर डालने के कारण उसके पाँव काले होगये। गुरु के शाप के कारण राक्षस रूपवाला और पानी डालने के कारण काले पाँव वाला राजा सौदास एक बार वन में संचार करते समय ब्राह्मण दम्पति को उनके सम्भोग समय में देखा।।57।।

भूखा राजा अपने आहार के लिए ब्राह्मणों को पकड़ लिया। उसकी पत्नी बोली हे राजा, तुम जन्म से राक्षस नही हो। तुम इक्ष्वाकु वंश में आया हुआ श्रेष्ठ महारथिक हो।।58।।

तुम मदयन्ति के पति हो तुम पाप नही करना। मैं एक पुत्र को चाहती हूँ। हम उस काम में लगे थे। हमारी इच्छा पूर्ण नही हुयी है ऐसी स्थति में तुम कृपा करके मेरे पति को छोड़ दो।।59।।

हे राजा, मनुष्य के लिए यह शरीर सकल पुरुषार्थ साधन है। हे वीर, उसी कारण तुम मेरे पति ब्राह्मण का वध करते हो तो तुम्हारे सारे पुरुषार्थ नाश हो जायेंगे।।60।।

मेरे पति ब्राह्मण, ज्ञानी, तप करने वाले और सद्गुणी हैं। यह सदा काल सारे प्राणियों के अन्तर्यामी होकर रहने वाले नारायण को परब्रह्म और गुण पूर्ण समझते हुए उपासना करते रहते हैं। ऐसे श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि को तुम राजर्षि कैसे मारते हो। हे धर्मज्ञ राजा, पिता को उनका ही पुत्र मारने जैसा यह हो रहा है। ये साधु हैं, पाप रहित हैं और वेद के उपदेश करने वाले हैं। स्त्री गर्भ में पुत्र रूप से जन्म न लेने वाले भ्रूणावस्था में रहने वाले इनको वध करना गलत होता है।।61,62,63।।

तुम सज्जन हो। लोगों से गौरव पाने वाले हो। तुम गो हत्या के सामान वाला यह ब्रह्महत्या को कैसे ठीक समझते हो। यदि तुम इनको खाना चाहते हो पहले मुझको खाओ।।64।।

इनके बिना मै एक क्षण जीवित नही रह सकती। मेरा जीवन ही मुर्दे के समान हो जायेगा। इस प्रकार करुणाजनक स्वर में अनाथ होकर वह रोती रही।।65।।

गुरु शाप के कारण दुष्ट बना हुआ सौदास शेर जैसे गाय को खा डालता है वैसे ब्राह्मण को खा लिया। पति को यह नर भक्षक राक्षस खा लिया। उसको देख कर वह ब्राह्मण पत्नी अपने छाती को पत्थर से मारते हुए आक्रोश से रोती हुई राजा को शाप देते हुए बोली - हे पापी, बुद्धि शून्य, तुम मेरे पति को खा लिया। मै कामार्ता थी। तुमने मेरे पति को खा लिया। तुमको भी सुरत काल में गर्भाधान के पहले मृत्यु हो। तुम पापी हो इस प्रकार उसको शाप दिए। बाद में वह पति लोक को पाने का संकल्प की।।66,67,68।।

ब्राह्मण के अस्थि को जलने वाले आग में डालते हुए स्वयं उसमें कूद कर वह सहगमन की। बारह वर्ष के बाद शाप निवृत्ति होने के बाद राजा अपने राज घर वापस आया। एक दिन वह रानी से मिलना चाहा।।69।।

रानी को ब्राह्मण पत्नी का शाप मालूम था। इस कारण वह राजा को रोक लिया। राजा अपने ही पाप के कारण सन्तति रहित रहा।।70।।

राजा की अनुमति से वशिष्ठ मुनि मदयन्ति को गर्भाधान किए। गर्भधारण करने के बाद मदयन्ति सात वर्ष तक प्रसव नही की।।71।।

इससे बेजार होकर रानी पत्थर से अपने पेट को मार लिया। तब उसके गर्भ से जन्म लिया हुआ

सौदास का पुत्र का नाम अश्मक पड़ा। ब्राह्मण पत्नी पत्थर से अपने पेट को मारी थी। उसी अपराध के कारण रानी को अपने पेट के लिए पत्थर से मारना पड़ा। संस्कृत में पत्थर को अश्म कहते हैं। इसी कारण उसका नाम अश्मक पड़ा।।72।।

अश्मक का पुत्र मूलक। मूलक को नारी कवच नाम का और एक नाम था। परशुराम जी क्षत्रिय वंश को नाश करने के लिए जब अश्मक के पास आते थे तब उसके रानियों ने राजा को घेर कर परशुराम जी को बोलते थे कि यहाँ कोई पुरुष नही है। परशुराम जी हँसते हुए जाते थे। इसी कारण उसका नाम नारी कवच पड़ा। अश्मक से क्षत्रिय वंश बढ़ा। मूलक के पुत्र दशरथ। यह दशरथ श्री राम जी के पिता से अलग हैं। इनके पुत्र का नाम ऐलिबिली।।73।।

ऐलिबिली का पुत्र विश्वसह। उसका पुत्र खट्वांग। वह सबको क्षमा करने वाला गुणशील राजा था।देवताओं के इच्छानुसार दैत्यों के साथ युद्ध करते हुए किसी से न मरने वाले दैत्यों का नाश किया।।74।।

उसका आयुष्य का समय एक मुहूर्त मात्र रह गया था। इसके लिए वह अपने नगर में आकर ध्यान करने लगा। वह अपने में कहा कि मुझको और बहुत दिन जीने की इच्छा नही, सतपुत्रों को पाने की इच्छा नही।।75।।

मुझे भूमि, राज्य, स्त्री सुख इत्यादि कोई सुख नही चाहिए। बाल्य से मैं कुछ अधर्म और अकार्य नही किया है।।76।।

श्रेष्ठ, ब्रह्मादि से भी स्तुत्य वासुदेव को छोड़ कर और कोई इस जगत में स्वतंत्र नही है। तीन लोकों अधिपति सारे देवताओं ने मुझे जो चाहे वह वर देने को तैयार हैं।।77।।

जगत सृष्टिकर्ता वासुदेव के ध्यान को छोड़ कर अन्य किसी कर्म को मैं करना नही चाहता। विषय पदार्थों के बीच में आकर्षित न होते हुए इन्द्रिय और मन को जीते हुए देवता गण भी अपने हृदय में रहने वाले भगवान को ठीक तरह से जानते नही। तो अन्य सामान्य लोग कैस जानते है।।78,79।।

इसी कारण हरि की इच्छा से प्रकृति से निर्माण हुआ गन्धर्व नगर के समान क्षणिक इन देह इन्द्रिय और विषयों में रूढ़ मूल मन को न रखते हुए अपनी सारी आसक्ति को जगन्नाथ में भक्ति युक्त होकर उसी के शरण जाना चाहता हूँ।।80।।

इस प्रकार नारायण में अखण्ड मन को रखने वाला खटवांग राजा अज्ञान से अन्य वस्तुओं में आसक्ति न रखते हुए नित्य और स्वतंत्र परमात्मा नारायण के शरण को पाया।।81।।

भगवान सर्वोत्तम, लौकिक इन्द्रिय रहित, गुण पूर्ण ब्रह्म हैं। वे अपने शून्य नामक मूल रूप से

व्यक्त होते हैं। पञ्चरात्र को जानने वाले पण्डित लोग उनको भगवान वासुदेव कहते हैं।।82।।

खटवांग के पुत्र दीर्घबाहू। उसका पुत्र महाकीर्तिशाली रघुराजा। रघु से अज जन्म लिया। अज का पुत्र राजा दशरथ।।83।।

देवताओं से प्रार्थित वेदवेद्य साक्षात् भगवान श्री हरि स्वरूप से एक और अंशांश से तीन इस प्रकार दशरथ के राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चार नाम से चार पुत्र अवतार लिए।।84।।

यहाँ **अंशाशेन चतुर्धा** ऐसा कहा है। इन चार में श्री राम स्वरूपावतार हैं। ब्रह्माण्ड के बाहर वासुदेवादि चार रूप मूलरूपि नारायण से व्यक्त होते हैं। तो भी ब्रह्माण्ड के अन्दर होने वाले सारे अवतार पद्मनाभ रूप से व्यक्त होते हैं। इसी कारण पद्मनाभ से व्यक्त होने वाले वासुदेवादि चार रूप रामादि चार अवतार लिए हैं। वासुदेव स्वयं श्री राम जी बने। संकर्षण शेषावतार लक्ष्मण में आविष्ट हुए, प्रद्युम्न मन्मथावतार भरत में, अनिरुद्ध, अनिरुद्ध नाम के मन्मथ पुत्र के अवतार रूप शत्रुघ्न में आविष्ट हुए।

हे राजा श्री सीतापति श्री रामचन्द्र जी की लीलाओं को तत्वदर्शी वाल्मिकी इत्यादि ऋषियों ने बहुत सुन्दर तरीके से वर्णन किए हैं। उसको तुम सुन चुके हो। संक्षेप रूप से और एक बार कहता हूँ सुनो।।85।।

कौशल देश के अधिपति श्री राम चन्द्र जी हमारी रक्षा करें। वे पितृ वाक्य को पालन करने के लिए राज्य सिंहासन को छोड़कर रानी सीता जी का हस्तस्पर्श को भी सहन न करने वाले कोमल कमल के समान पादों से सारे जंगलो में फिरते रहे तो भी उनको मार्गायास नही हुआ। हनुमान और सुग्रीव, लक्ष्मण के साथ वन संचार किए। शूर्पनखा के कान, नाक काट कर विरूप करने के निमित्त सीता का विरह के साथ जब बड़े क्रोध से भौवों को उठाने के कारण समुद्र राज जब डर गया तब उसी की प्रार्थना से समुद्र के ऊपर पुल बाध कर लंका को जाकर दुष्ट रावण नाम के जंगल को नाश करने वाले दावानल बने। यह संक्षेप में रामायण है।।86।।

विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के समय में लक्ष्मण देखते देखते मारिचादि महाराक्षसों को अकेले राम ने ही मार डाल।।87।।

हे राजा, सीता स्वयंबर के काल में जग के वीरों के सामने जनक राज की सभा में तीन सौ लोगों से लाकर रखा हुआ उग्र शिव धनु को उठाकर जैसे छोटे हाथी गन्ना को तोड़ता है वैसे दो टुकड़े कर दिए।।88।।

अपने रूप, गुण, शील, आयु के लिए अनुरूप, पहले से ही अपने छाती में स्थान पाये हुए सीता नाम से अवतार लिए हुए लक्ष्मी, उनको श्री राम जी ने स्वयंवर में जीत लिए। रास्ते में परशुराम मिले। भूमण्डल में क्षत्रियों का सम्पूर्ण नाश करने वाला मै हूँ। यह अहम परशुराम में था। उस दर्प को श्री राम जी दूर किए।।89।।

व्यावहारिक लोक में इस प्रकार है किन्तु वास्तव सत्य अलग है। दुष्ट क्षत्रियों में रूढ मूल हुआ दर्प को निमित्त करते हुए क्षत्रियों के संतति को इस भूमि से नष्ट किए परशुराम जी के साथ एक साथ होकर श्री राम जी **व्यनयत** अपने को अलग किए। ऐसा अर्थ होता है।

कैकेयी को दिया हुआ वचन के सत्यपाश से बद्ध स्त्री वश अपने पिता के आदेश को श्री राम जी सिरमौल लिए। राज्य को, अपने प्यारे लोगों को, मित्रों को छोड़ कर पत्नी समेत जंगल को चले गये। यह विरक्त, योगी शरीर को छोड़ कर अपने प्राण को लेकर जैसे जाता है वैसे है। श्री राम जी भी विरक्त होकर सब कुछ छोड़ दिए।।90।।

श्री राम जी ने रावण की बहन शूर्पनखा को विरूप किया, क्योंकि उसकी बुद्धि और नीयत ठीक नही थी। बाद में उसके बन्धु खर,त्रिशिर और दूषण इत्यादि राक्षसों को नाश किए। वे राक्षस चौदह हजार होते हुए भी कोई न सामना करने वाला धनुष को पकड़े हुए श्री राम एक ही मुहुर्त में उन सब का नाश किए। इसके कारण उस जंगल में ऋषि मुनियों का कष्ट दूर हो गया।।91।।

शूर्पनखा के मुख से सीता के सौन्दर्य के बारे में सुनने से रावण का काम उद्दीप्त हो गया। उससे भेजा हुआ सोने के रंग वाला अद्भुत हिरण के शरीर वाला मारिच को देखकर सीता जी से प्रार्थित श्री राम उसका पीछा करते हुए आश्रम से दूर चले गये। उग्र नरसिंह हिरण्य कश्यप को, रुद्र अंधकासुर को जैसे मारे वैसे अपने बाण से मारिच को मार दिए।।92।।

कोई नही रहते समय भेड़िया जैसे बकरी को उठा कर ले जाता है वैसे नीच राक्षस रावण के सीता को अपहरण करने के बाद अपने प्रियतमा से वियोग पाये हुए श्री राम लक्ष्मण के साथ दीन मानव की तरह जंगल में फिरते रहे। स्त्री में यदि मानव आसक्त होता है तो उसकी स्थिति क्या होती है उसका एक प्रदर्शन किए।।93।।

सीता-रक्षणा के अपने जीजिकार्य में युद्ध करते हुए रावण से मारा गया जटायु के दाह संस्कार करने के बाद कबन्ध को मारा हुआ श्री राम कपियों से सख्य करते हुए बाली के हनन के बाद हनुमान से सीता जी के समाचार को सुनते हुए ब्रह्म रुद्रादि से अर्चित पाद वाले श्री राम कपि सैन्यों के साथ समुद्र तट तक चले।।94।।

जब श्री राम जी तीक्ष्ण क्रोध से अपने आखों से देखे तो सागर का पानी उबलने लगा। मगरमच्छ और तिमिंगिल जलने लगे। भय से समुद्र का आवाज स्तब्ध हो गया। समुद्रराजा पूजा साधन को सिर पर रखते हुए मूर्तिमन्त होकर श्री राम जी की पादपूजा किया।।95।।

कहता है हे पूर्णपुरुष, आप विकार रहित आदिपुरुष हैं, आप जगन्नाथ, त्रिगुणाधिपति, सत्व गुण से

सात्विक देवताओं को रजो गुण से राजस मानवों को तमो गुण से तामस भूतों को सृष्ट किए हुए भगवान हैं। इसको मन्द बुद्धि वाले हम जान नही पाते। ।96। ।

आप अपनी इच्छानुसार समुद्र मार्ग में पधार सकते हैं। हे वीर, आप विश्रवश मुनि का मल के रूप में रहने वाला तीनों लोकों का कन्टक बना हुआ रावण को मार डालें। अपनी पत्नी सीता जी को पुनः पाएँ। इसके लिए समुद्र के ऊपर सेतु बांधने की आवश्यकता आपको नही है किन्तु आप समुद्र के ऊपर सेतु बांधे। उससे आप की कीर्ति का बोलबाला हो। दिग्विजय करने की इच्छा करने वाले राजा सेतु का दर्शन करते हुए आपका गुण गान करें। ।97। ।

श्री राम जी समुद्र में अनेक गिरिशिखरों को डाल कर सेतु बन्ध करवाए। उनको लाते समय कपिवीरों के हाथ से वृक्ष और उनकी टहनियाँ कापते थे। सेतु बन्ध के बाद सुग्रीव, नील, नल, हनुमान इत्यादि असंख्य कपियों के साथ विभीषण के बुद्धि के बल से लंका पहुँचे। पहले श्री हनुमान जी इसी लंका को जलाए थे। ।98। ।

लंका में रहने वाला घर, भण्डार, महाद्वार, शिखर, सभांगारण, बरामदे यहाँ तक कि कबूतर के छोटे घर भी बन्दरों से भर गये। घर, ध्वज, सोने के कलश, रास्ता और मंजिल सारे कपिवीरों के कारण नष्ट हुए। हाथी के समूह एक बार सरोवर में घुसे तो उसका क्या हाल होगा। ।99। ।

रावण उसको देखकर अपने और कुम्भकरण के पुत्र कुम्भ, निकुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, देवान्तक, नरान्तक, इनको और प्रहस्तन अतिकाय विकम्पन इत्यादि सारे अनुचरों को खोने के बाद कुम्भकर्ण को युद्ध के लिए भेजा। ।100। ।

खड्ग, शूल, धनु, प्रास, ऋष्टि, शक्ति, तोमर और ढाल को पकड़े हुए राक्षस के सैन्य को सुग्रीव, लक्ष्मण, हनुमन्त, गन्धमाधन, नील, अंगद, जांबवन्त, पनस इत्यादि कपिवीरों से श्री राम जी उनको मार दिए। ।101। ।

श्री राम जी के सेनापतियों ने सारे सवण के सैन्य को द्वन्द्व युद्ध के क्रम से आक्रमण करते हुए पहाडों से उन राक्षसों का ही गदा और बाण को छीनकर उसी से उनको मार डाले। रावण का सैन्य हाथी, रथ, घोड़ा, पदाती सारे मिलकर कितने जोर से युद्ध करे तो भी वे सफल नही हुए, क्योंकि वह सैन्य रावण का था, रावण सीता हरण करके जो अपचार किया था उसके पाप के कारण उसके सारे काम काज नष्ट हो गये थे। ।102। ।

राक्षसाधिपति रावण अपने पूरे सैन्य को खोकर कुपित होकर पुष्पक विमान में बैठ कर श्री राम जी के ऊपर आक्रमण किया। तब इन्द्र के सारथी मातली स्वर्ग से सुन्दर रथ को लाया। उज्वल रूप से प्रकाशित

उस रथ में खड़े होकर शोभायमान श्री राम जी को रावण अत्यन्त तीक्ष्ण अपने अर्ध चन्द्र बाणों से मारा।।103।।

श्री राम रावण से कहते हैं - हे नर भक्षक राक्षसों में भी अत्यन्त दुष्ट रावण, तुम हमारे न होते समय साधते हुए मेरी पत्नी का अपहरण स्वयं किया है। तुमको जनलज्जा, मनलज्जा दोनों नही है। तुमको देखकर हमें असह्य लगता है। यम के समान कोई सामना न कर सके ऐसे पराक्रम वाला मै तुमको योग्य शिक्षा देने के लिए यहा आया हूँ।।104।।

इस प्रकार आक्षेप करते हुए श्री राम जी अपने धनुष को बाण जोड़ कर रावण के ऊपर प्रक्षेप किए। वह बाण वज्रायुध से भी बढ़िया होकर रावण की छाती को चीर दिया। दसो मुहों से रक्त का वमन करते हुए पुण्य किया हुआ आदमी पुण्य व्यय के बाद जैसे स्वर्ग से नीचे गिरता है वैसे उनके लोग हाहाकार करते समय विमान से जमीन पर गिर गया।।105।।

तब हजारों राक्षसी मन्दोदरी के साथ लंका से चल कर रोदन करते हुए रण रंग में दौड़कर आयी।।106।।

राम नाम से अंकित बाणों से हत अपने बन्धुओं के आलिंगन करते हुए वे राक्षस स्त्री अपने छाती को मारते हुए आर्त होकर उच्च स्वर में रोती रहीं।।107।।

वे बोले- हे नाथ रावण! आपने हम सब को रुला दिया। आपके बिना हम मर गये। आपके बिना यह लंका शत्रुओं से घिरा हुआ है। इस समय हम किसके शरण में जाएँ।।108।।

हे महा भाग्यशाली! तुम कामवश होकर सीता जी का तेज के प्रभाव को जान नही सके। उसी कारण तुम्हारा यह हाल हो गया है।।109।।

हे राक्षस कुल नन्दन, तुम अब इस लंका को विधवा कर हमको भी विधवा कर चले गये। आपके शरीर को गिद्ध आकर खाने के लिए छोड़ दिए हैं, आत्मा को नरक भेजा है।।110।।

श्री शुकदेव कहते हैं - विभीषण श्री राम जी की आज्ञा से अपने बन्धुओं का शव दाह को विधान रूप से करते हुए शास्त्रोक्त विधि से और्ध्वदैहिक कर्म को ठीक तरह से किया।।111।।

बाद में श्री राम जी ने अशोक वन के आश्रम रूप भाग में अपने विरह से दु:खित, और कृशित (दुबला, पतला हुआ) शिंशूप्मार वृक्ष के नीचे बैठे हुए सीता जी को देखा।।112।।

अपने प्रियतमा, भार्या, दीन दु:खित सीता जी को देखकर श्री राम जी को उसके ऊपर अनुकम्प हुआ। श्री राम जी के सन्दर्शन मात्र से सीता जी का मुखकमल खिल गया।।113।।

भगवान श्री राम विभीषण को राक्षसों का राजा बनाए। लंका राज्य को एक दिन कल्प के अन्त तक राजा होकर राज्य भार करने के लिए आवश्यक आयुर्दान भी दिए। चौदह वर्ष के अपने वनवास व्रत को पूर्ण करते हुए अयोध्या को चले। सीता जी को पुष्पक विमान में बैठाते हुए लक्ष्मण, सुग्रीव के साथ हनुमत्समेत श्री राम स्वयं भी पुष्पक विमान में बैठ कर अयोध्या के ओर निकल पड़े। रास्ते में लोक पालक पुष्पवृष्टि करते रहें।।114,115।।

ब्रह्मादि देवताओं ने उनके गुण गान किए। उनके भाई भरत उनकी अनुपस्थिति में गोमूत्र में पचाहुआ जौव को खाते थे, जमीन पर सोते थे, वृक्ष के छाल को पहनते थे। जटा जूट धारी बने थे यह सारे सुनकर श्री राम जी के आँखों में आँसू आए। श्री राम जी के आगमन की वार्ता सुनकर भरत अपने पौर, अमात्य और पुरोहितों के साथ भाई श्री राम जी का स्वागत करने के लिए उनके सामने आए। सिर के ऊपर श्री राम जी के पादुका को रखते हुए गीतवाद्यघोषों के साथ। नन्दि ग्राम के अपने शिविर से निकल पड़े।।116,117,118।।

वाद्यघोष के साथ वेदघोष होता रहा। ब्रह्मज्ञानि वेदघोष को बारी बारी से करते रहे। सोने के हौदे से सजा हुआ हाथी, ध्वजों से , श्रेष्ठ अश्वों से और सोने के कवच से अलंकृत सोने के रथ, सोने कवच को पहने हुए भट, अंग रक्षक, गीत गाते हुए वेश्यायें और सेवा करने वाले सेवको के साथ भरत जी श्री राम जी के स्वागत के लिए चल पड़े।।119,120।।

राजोपचार के छोटे मोटे सामग्री के साथ प्रीति से भरा हुआ आँख और हृदय वाला भरत श्री राम जी के पाँव पर सिर रखते हुए नमन किए।।121।।

श्री राम जी के पादुकाओं को उनके सामने रखते हुए हाथ जोड़े हुए आँखो से पानी बहाते हुए भरत जी उनको दोनों हाथों से आलिंगन किए, आँखों के जल से अभिषेक किए।।1122।।

श्री राम जी लक्ष्मण और सीता जी के साथ वहाँ रहने वाले ब्राह्मणों को नमस्कार करते हुए प्रजाओं के नमस्कार को स्वयं स्वीकार किए।।123।।

उत्तर कौसल के लोग बहुत दिनों के बाद आये हुए अपने स्वामी को देखकर अपने अंगौछा को हिलाते हुए आनन्द व्यक्त किए। फूल और माला को आकाश भर फेकते हुए परमानन्द से नृत्य किए।।124।।

भरत पादुका का ग्रहण किए, सुग्रीव, विभीषण उत्कृष्ट चामरों को हिलाते रहे। हनुमान स्वेतछत्र पकड़े, शत्रुघ्न तीर कमान लिए, सीता जी तीर्थ कमण्डलू को धारण किए। अंगद सोने के हाथ वाली तलवार को पकड़े तो जांबवन्त ढ़ाल पकड़े थे।।125,126।।

इन सारे लोगों से परिवृत भगवान श्री राम पुष्पक विमान में बैठे थे। स्तुति पाठक संकीर्तन करते थे। इस समय श्री राम जी ग्रह नक्षत्रों से परिवृत उदय मान चन्द्र के समान सुशोभित रहे।।127।।

भरत जी से दिया हुआ स्वागत को स्वीकार करते हुए शादी के लड़की समान सुशोभित अयोध्यापुर में श्री राम जी प्रवेश किए। राज घर में प्रवेश करते हुए अपनी माता कौसल्या और विमाता सुमित्रा और कैकेयी को वन्दना करते हुए गुरु वृन्द को अभिवन्दन करते हुए, समान और छोटे से अभिनन्दित होकर स्वयं उनका अभिनन्दन किए। सीता लक्ष्मण भी यथा योग्य सभी का अभिनन्दन किये।128,129।।

गया हुआ प्राण वापस आये तो शरीर पुनः जैसे उठकर खड़ा होता है वैसे अपने चारों पुत्रों को देखकर माताएँ उनको अपने गोद में उन्हे लेकर अपने भाष्प से उनको भीगोते हुए वियोग दुःख से दूर हुए।।130।।

यहाँ भरत शत्रुघ्न वनवास नही किए किन्तु वनवास के समान व्रताचरण करते हुए नन्दिग्राम में वास किए। वे दोनों राम लक्ष्मण के साथ अयोध्या आने के कारण तीनों माताओं को चारों पुत्रों का दर्शन एक साथ हुआ।

गुरु वशिष्ठ जी कुल के बड़े लोगों के साथ विधि के क्रम में चारों लोगों का जटा जूट को निकालते हुए गुरु बृहस्पति इन्द्र को मंगल स्नान करवाते हैं वैसे श्री राम जी को चारों समुद्र और गंगा सहित एक सौ एक नदीयों के मंगल जल से सुमंगल स्नान करवाये।।131।।

इस प्रकार अभ्यंजन करने के बाद उत्कृष्ट चीताम्बर को धारण किए हुए आभरण को धारण कर शृगांर किए हुए श्री राम सीता सहित अपने भाईयों के साथ शोभायमान रहे।।132।।

भरत दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने के बाद श्री राम जी राज सिंहासन पर बैठे। वर्णाश्रम के अनुसार धर्मानुष्ठान करने वाले श्रह राम जी वर्णाश्री धर्म निरत अपने प्रजाओं को पुत्र के समान रक्षा किए। प्रजा भी उनको पिता मानते थे। यह त्रेता युग की बात रहे तो भी काल कृत युग के समान चलता था।।133,134।।

हे राजा परीक्षित - धर्मज्ञ और सकल प्राणी संकुल को सुख देने वाले भगवान श्री राम राज्य करते समय जंगल में मंगल हुआ। नदी, पहाड़, नवखण्डद्वीप, सागर, सरोवर सारे प्रजाओं के मनोकामनाओं को सम्पूर्ण करते थे। राम राज्य में किसी प्रजा को मानसिक, दैहिक रोग नही होता था। वृद्धावस्था, भूख, प्यास, दुःख, शोक, भय कुछ भी नही होता था। यहाँ तक कि कोई थक नही जाता था।।135,136।।

अधोक्षज श्री राम राज्य करते समय प्रजाओं की इच्छा के विरुद्ध मरण भी नही आता था। श्री राम जी एक पत्निव्रतनिष्ठ होकर राजर्षियों का आचार करते हुए शुचित्व रखकर गृहस्तस्थ के विहित स्वधर्म को स्वयं पालन करते हुए प्रजाओं को भी उसी का पाठ सिखाते थे। सीता जी पति की इच्छा को ठीक तरह से समझते हुए विनय से झुके हुए, प्रेम, शुश्रूषा, शील, भय, लज्जा से पति का मन जीत ली। इस प्रकार श्री राम जी इस भू मण्डल में ग्यारह हजार सात सौ वर्ष राम राज्य चलाए।।137,138।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - नौ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक देव कहते हैं - गुरुकुल में रहकर आचार्य के पास अध्ययन किए हुए भगवान श्री राम उत्तम कल्प से यज्ञ करते हुए सर्व देवोत्तम अपनी आराधना स्वयं किए।।1।।

प्रभु श्री राम पूर्व दिशा को होतृ को दान दिए। दक्षिण भू भाग को ब्रह्मा जी को दिए। पश्चिम भू भाग को अध्वर्यु को दिए, उत्तर भाग को उद्गातृ को दिए।।2।।

बीच में रहने वाला समस्त भू भाग को यज्ञ किया हुआ आचार्य जी को दान दिए। जो मिला है उसी में तृप्ति पाने वाले ब्राह्मणों को समस्त भू मण्डल को दान लेने की अर्हता होती है। श्री राम जी इसको ठीक तरह से जानते थे।।3।।

श्री राम जी अपने पहने हुए दो कपड़े को छोड़ कर सारे आभूषणों का दान दिए। रानी सीता देवी मंगल सूत्र को छोड़कर सब कुछ दान दिए।।4।।

ब्राह्मणों के पूज्य श्री राम जी के ब्राह्मण वात्सल्य को देखकर वे सज्जन ब्राह्मण सुप्रीत होकर भरे हुए दिल से प्राप्त राज्य को श्री राम जी के चरण में समर्पित किए।।5।।

ब्राह्मण बोलते हैं - जगन्नाथ भगवान श्री राम जी, आप स्वयं को हमे दे दिए हैं। इससे ज्यादा हम आपसे क्या माँगे। आप हमारे हृदय में रहते हुए अन्दर का अज्ञान और तम को नष्ट कर रहे हैं।।6।।

ब्राह्मणों का हित करने वाले हे भगवान, आपकी ज्ञान शक्ति किसी से रोका नही जाता। सदा काल महायश को पाने वालों में सबसे श्रेष्ठ भगवान श्री राम आप, भक्त गण अपने शरीर इत्यादि सार सर्वस्व को समर्पण करने वालो के हृदय में आपके दिव्य श्रीचरण रहते हैं। आपको हमारा नमन।।7।।

श्री शुकदेव कहते हैं - एक बार श्री राम जी जनाभिप्राय को समझने के लिए वेष बदलकर अकेले जा रहे थे। उस समय एक आदमी अपनी पत्नी से बोलते हुए बातों को सुने।।8।।

तुम परपुरुष के घर में रहकर आयी हो, तुम कलंकिनी हो, तुम पतिव्रता नही हो। तुमको मैं अपने घर में

रहने नही देगे। मैं स्त्रीलोलुप राम जैसे नही हूँ। भले राम अपनी पत्नी को स्वीकार करें मैं पुनः स्वीकार करने वाला नही हूँ।।9।।

लोग अपने मन में जो आता है ऐसे अर्थहीन बातों को बोलते रहते हैं। कोई इस जग के जन का मुँह बन्द नही कर सकता। उनको वे क्या बोल रहे हैं, इसकी खबर भी नही रहती। किन्तु श्री राम जी लोकापवाद के कारण सीता जी का परित्याग किए। वे वाल्मिकि के आश्रम में रहने लगी।।10।।

आश्रम में आते समय गर्भिणी रहने वाली सीता जी सकाल में दो पुत्रों को जन्म दिए। वाल्मीकी उनका नामकरण इत्यादि क्रिया कलापों को चलाए। वे पुत्र कुश, लव नाम से प्रसिद्ध हुए।।11।।

हे राजा, लक्ष्मण के पुत्र के नाम अंगद और चक्र केतु। भरत को तक्ष और पुष्कल नाम के दो पुत्र हुए।।12।।

शत्रुघ्न के पुत्र सुबाहु और श्रुतसेन। भरत दिग्विजय करते हुए तीन करोड़ असुरों का नाश किए। उनके साधन सम्पत्ति को लाकर श्री राम जी को समर्पण किए।।13।।

शत्रुघ्न मधुदैत्य के पुत्र लवण को मार कर मथुरापुरी और मधुवन का निर्माण किए।।14।।

पति से परित्यक्त सीता देवी दोनों पुत्रों को वाल्मीकी मुनि की रक्षा में रखते हुए श्री राम जी के चरण कमल के स्मरण करते हुए भूमि के अन्दर चली गयीं।।15।।

सीता जी लोक दृष्टि से भूमि में समाहित हुईं किन्तु किसी को न दिखते हुए श्री राम जी के साथ रही। श्री राम जी लोक दृष्टि से विरही रहे। किन्तु परम्धाम जाते समय सारे लोग देखते देखते श्री सीता राम जी इस भूमि को छोड़कर वैकुण्ठ चले गये।

इसको सुनकर सर्वेश्वर भगवान श्री राम लोक निमित्त दुःख को सहन न करते हुए पत्नी सीता के सद्गुणों को याद करते हुए दुःखित सा रहे।।16।।

यह केवल दिखाने के लिए था। वास्तव में पत्नी में अति आसक्ति रखे तो वह इह पर दोनों में दुःख दायी बनता है। बड़े लोगों का हाल यह है तो, कामासक्त, सामान्य गृहस्थ क्या कर सकता है। श्री राम जी इसका निदर्शन बने।।17।।

श्री राम जी देखने वाले को दुःखित लगते थे। यह अज्ञ लोगों के मोह के लिए। **राम शब्द का अर्थ ही होता है नित्य सुख को भोगने वाले।**

सीता जी भूगत होने के बाद श्री राम जी पुनः शादी न करते हुए अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किए। तेरह हजार वर्ष वे सिंहासन पर बैठकर अत्यन्त सुचारू रूप से राम राज्य चलाए। अग्निहोत्रादि होम

को नित्य चलाए।।18।।

वाल्मीकी रामायण में श्री राम जी ग्यारह हजार सात सौ वर्ष राज्य भार किए ऐसा आता है। वह सौरमान हैं। भागवत में तेरह हजार वर्ष यह जो आता है, यह नक्षत्र मान हैं। नक्षत्र मान से सत्ताइस दिन का एक महीना होता है। दोनों बराबर हैं।

बाद में स्मरण करने वाले लोगों के हृदय में सूर्य किरण के समान प्रकाश देने वाले, आम के कली के समान कोमल मन और शरीर वाले और भक्तों के हृदय कमल को खिलाने वाले स्वयं ज्योति श्री राम परमधाम को चले गये।।19।।

समुद्र में सेतु बाँधना, रावणादि राक्षसों का वध करना, श्री राम जी के लिए कोई बड़ी बात नहीं है क्योंकि वे भगवान हैं, विश्वव्यापी हैं, केवल अपनी इच्छा से लीला के लिए शरीर धारण किए हैं। अधिक सुख पूर्ण हैं, नित्य मुक्त स्वरूप वाले हैं। शस्त्र धारण किए हुए उनको शत्रु संहार के लिए बन्दरों की सहायता की क्या आवश्यकता है।।20।।

दिग्गजों का संचार जहाँ होता है, जहाँ सारे दिशाओं में राजा और ऋषि रहते हुए सकल पाप परिहार करने वाले श्री राम जी के यश का संकीर्तन करते हैं वैसे श्री राम जी, देवेन्द्र, कुबेर इत्यादि देवताओं से सेवा पाने वाला उनके किरीटों के प्रकाश से सुशोभित श्री पादों के शरण में मैं नतमस्तक होता हूँ।।21।।

श्री राम जी को हाथ से छूकर, भक्ति से नमन किए हुए, आँखों से देखे हुए, कानों से सुने हुए, उनके पीछे - पीछे चले हुए सारे लोग, अयोध्यावासी योगी लोग विष्णु लोक को पा लिए।।22।।

हे राजा, श्री राम जी के परम पावन कथा को भक्ति पूर्वक बार-बार जो सुनता है और हृदय में धारण करता है वह कभी प्रमाद से अकार्य करे और पाप किए तो भी श्री राम जी की कृपा से इस संसार बन्धन से मुक्त होता है।।23।।

राजा परीक्षित पूछता है - हे भगवन, श्री राम जी अपनी पत्नी के साथ कैसे व्यवहार करते थे। भाई के साथ उनका सम्बन्ध कैसे रहा। उनके भाई उनके प्रति क्या व्यवहार रखे थे। श्री राम जी अपने प्रजा को और पुरवासियों को कैसे पालन करते थे। प्रजा और पौर उनके प्रति क्या भाव रखते थे इसके बारे में विस्तार रूप में मुझे बताइए।।24।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा, देव देवेश भगवान राम अपने भाइयों को दिग्विजय के लिए भेजे। प्रजाओं को अपना दर्शन देने के लिए प्रतिदिन अनुचरों के साथ नगर और ग्रामों का संदर्शन करते थे।।25।।

अयोध्यापति श्री राम जी पधार रहे हैं इसको देखकरप्रजा जन का सन्तोष मदमत्त हथिनी की तरह बढ़ गया। हाथी के परिमल युक्त मद जल सारे मार्गों को भीगा कर दिया था।।26।।

भव्य बड़े महल, मन्दिर, गोपुर, सभांगण और वेदिकाओं को सोने के कलशों से सुशोभित किया था। मन्दिर पताकाओं से अलंकृत थे।।27।।

सुपारी के गुच्छे, कपड़े के झण्डे, आयनों के दीवार, वस्त्र फूल इनसे घर और बाहर के भागों को सुन्दरी किया गया।।28।।

श्री राम जी जैसे पधारे और लोग हाथ में पूजा सामग्री को लेकर सामने आए और प्रार्थना करते हुए बोले भगवान आपने वराह अवतार में इस भूमि को उठा कर ले आए थे। अब आप ही इसकी रक्षा करें, इन बातों से अभिवादन करते थे।।29।।

बहुत दिनों के बाद पधारे हुए प्रभु को देखने के उद्देश्य से स्त्री पुरुष कातर होकर दौड़ते हुए घर से बाहर आकर मंजिल और मन्दिरों के ऊपर चढ़कर कमल के समान आँख वाले श्री राम जी के ऊपर फूलों की वृष्टि किए। देखने वाले का दिल न भरे, आँख तृप्ति न पाए।।30।।

बाद में श्री राम जी अपने पूर्वज जहाँ वास करते थे वहाँ प्रवेश किए। उनमें अगनित घर हैं, प्रत्येक घर में गिनती न कर सके उतने खजाना भरे हैं। देहली और दरवाजा हवलो से बना है, स्तम्भ वैडूर्य से बना हैं, जमीन मकरत मणि से बना हैं, दीवार स्फटिक से बना है। वहाँ फूल माला, ऊपर बाँधने वाला वस्त्र, प्रकाश देने वाले मणियों से वे सारे घर केवल देखने से मन को प्रसन्नता देने वाले थे। प्रत्येक घर सुगन्ध मय धूप, दीप फूल माला से अलंकृत था। उनमें सुन्दर आभरण धारण किए हुए देवता के समान स्त्री पुरुष शोभायमान थे।।31,32,33,34।।

ऐसे राज घर में बड़े उद्यान जो है उसमें संचार करने वाले देवता श्रेष्ठ भगवान श्री राम अपने प्रिय और इष्ट सीता जी के साथ परम सुख भोगे।।35।।

केवल भक्तों के ध्यान में गोचर होने वाले मृदुल पाद वाले श्री राम जी हजारों वर्ष धर्म के लिए विरुद्ध न हो ऐसे कामभोगों को यथा इच्छा सेवन करते रहे।।36।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में नौवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - दस

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- कुश के पुत्र अतिथि। उनके पुत्र निषध। निषध का पुत्र नभ। नभ से पुण्डरीक जन्म लिया। उनका पुत्र क्षेमधन्व ।।1।।

क्षेमधन्व से देवानिक जन्म लिया उनका पुत्र अहीन,उनका पुत्र पारियात्र,उनसे बलस्थ,बलस्थ से वज्रनाभ,वज्रनाभ से अर्कसम्भव जन्म लिया ।।2।।

अर्कसम्भव का पुत्र स्वगण,स्वगण से निधृत उससे हिरण्यनाभ। यह योगशास्त्र का उपदेशक बना। जैमिनि इनका शिष्य रहा ।।3।।

हिरण्यनाभ से याज्ञवल्क्य मुनि अज्ञान को नाश करने वाला महा सिद्धि देने वाला परमात्म तत्व को बताने वाला योग को सीख लिया ।।4।।

हिरण्यनाभ का पुत्र पुष्य, उससे ध्रुवसंधि जन्म लिया। ध्रुवसंधि से सुदर्शन,सुदर्शन से अग्निवर्ण,अग्निवर्ण से शीघ्र,शीघ्र से मरूत नाम का पुत्र जन्म लिया ।।5।।

मरूत योग में सिद्धि पाकर कलाप नाम के ग्राम में रहता है। कलियुग के अंत में समाप्त होने वाले सूर्यवंश को यह आगे बढ़ाता है ।।6।।

मरूत का पुत्र सुश्रुत, उसके पुत्र संधि। संधि से मर्षण,उससे महस्वान् , उससे विश्वसाह्व जन्म लिया ।।7।।

विश्वसाह्व का पुत्र बृहद्बल। वह तुम्हारे पिता अभिमन्यु से कुरूक्षेत्र युद्ध में मारा गया। ये सारे इक्ष्वाकु वंश में जन्म लिये और राजा बने। आगे के राजाओं के बारे में बताता हूँ सुनो ।।8।।

बृहद्बल को बृहद्रण नाम का पुत्र जन्म लेगा। उसका पुत्र उरूक्ष्य। उसको वत्सप्रीत नाम का पुत्र होता है ।।9।।

वत्सप्रीत से प्रतिष्योम,उससे भानु,उससे दिवौक,उससे वाहिनी पति, उससे सहदेव,उससे भवि,उससे बृहदश्व,उससे भानुमान जन्म लेते हैं ।।10।।

भानुमान के पुत्र प्रतीकाश्व, उससे सुप्रतीक,उससे मरूदेव,उससे सुनक्षत्र,उससे रुक्षक

जन्म लेने वाले हैं ।।11।।

रुक्षक का पुत्र अंतरिक्ष, उसका सुतप, उससे अमित्रजित, उसको बृहद्भोज, उसको बर्हि, उससे कृतंजय नाम का पुत्र होता है ।।12।।

कृतंजय का पुत्र रणंजय, उसका संजय, उससे शक्य, उससे शुद्धोद, उससे लांगल जन्म लेते हैं ।।13।।

लांगल से प्रसेनजित, उससे कुद्रक जन्म लेने वाले हैं। कुद्रक से कुणक, कुणक से सुरथ, उससे सुमित्र नाम का पुत्र होता है। सुमित्र को पुत्र नही होते। यहाँ बृहदबल की गोत्र संतति समाप्त होती है ।।14।।

इक्ष्वाकुओं का वंश राजा सुमित्र से अंत होता है। उसके बाद कलियुग में उसका वंश नही चलता है

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

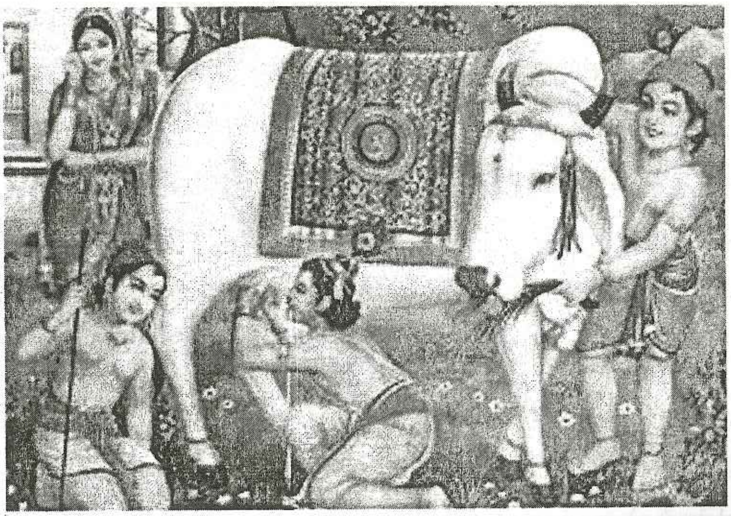

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - ग्यारह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इक्ष्वाकु का पुत्र निमि एक सत्रयाग करना चाहता था उस यज्ञ के ऋत्विज बनने के लिए वशिष्ठ ऋषि से प्रार्थना किया। वे बोले इससे पहले देवेन्द्र मुझको अपने यज्ञ में ऋत्विज बनने के लिए प्रार्थना किए हैं ।।1।।

मैं पहले उस काम को पूरा करके आऊँगा। तब तक तुमको राह देखना पड़ेगा है। निमि कुछ नही कहा। वशिष्ठ ऋषि इन्द्र के यज्ञ को करने के लिए चले गये ।।2।।

जीवन अस्थिर है यह समझते हुए भगवन्निष्ठ निमि गुरु वशिष्ठ जी के आने के पहले अन्य ऋत्विजों से अपना यज्ञ चलाया ।।3।।

इन्द्र के यज्ञ को पूर्ण करने के बाद वशिष्ठ आ गये और देखे अपना शिष्य हमारी आज्ञा का उल्लंघन किया है।इसको देखकर वशिष्ठ जी शाप देते हैं - अपने को स्वयं पण्डित मानने वाला निमि के शरीर का पतन हो ।।4।।

निमि भी अधर्म के अनुसार शाप दिये हुए गुरु को स्वयं शाप दिया - लोभ के कारण निमित्त न रहते हुए शाप देने वाले धर्म को न जानने वाले वशिष्ठ का शरीरपात हो ।।5।।

यह शाप देने के बाद निमि अपने शरीर को छोड़ दिया। परमतत्व को पूर्ण रूप से जानने वाले वशिष्ठ भी मर गये। बाद में हमारे पूर्वज वशिष्ठ मित्रा वरुण से उर्वशी के पुत्र होकर जन्म लिये ।।6।।

इधर निमि का यज्ञ पूर्ण नही हुआ था। इसके लिए निमि के शरीर को सुगंध तैल में रखकर वहाँ के श्रेष्ठ मुनियों ने यज्ञ का समापन किये। उस समय यज्ञ में आये हुए देवताओं से कहते हैं ।।7।।

हे देवतागण! आप समर्थ हैं। आप प्रसन्न हैं तो राजा पुनः जीवित हो। देवतागण तथास्तु कहते हुए अपनी सहमति दिखाये। किन्तु निमि ने कहा मुझे इस शरीर का बंधन नही चाहिए।।8।।

निमि कहता है - तत्वज्ञानी मुनि लोग देह का सम्बन्ध वियोगभय से चाहतें नही। वे दूसरी बार देह प्राप्ति न हो इसके लिए श्रीहरि के पाद कमल का भजन करते हैं। मैं भी ऐसे शरीर

को पाने की इच्छा नही करता हूँ।यह शरीर दुःख,शोक,भय के लिए कारण बनता है। मछली को पानी में जैसे मृत्यु रहता है वैसे इस शरीर को सभी जगह मृत्यु रहता है। छोटी मछली को बड़ी,और बड़ी को उससे बड़ी मछली खा लेती है ।।9,10।।

दुःख शब्द में दो अक्षर है। **दुः** बोलने से ही दुःख का अंश प्रत्यक्ष होता है। उसको पहले बोलने से दुःख ज्यादा होता है। बाद में आने वाला **ख** शब्द से आनन्द ऐसा अर्थ मिलता है। दूसरी बार आने से इसका अर्थ थोड़ा सुख होता है। दुःख बोलने से, ज्यादा दुःख और थोड़ा सुख यह अर्थ होता है। शोक बोलने से थोड़ा भी सुख न होने वाला पूर्ण दुःख यह अर्थ होता है। यहाँ दुःख शोक यह दोनों शब्द में यहाँ दो विशेषार्थ होते हैं, पुनरुक्ति नही होता है। यहाँ मछली का दृष्टांत दिया गया है। आदमी की आँख के पलकें होते हैं किन्तु मछली के आँख के पलके नही होतें। इसके लिए वे आँखे झपकते नही।यह मछली के लिए अनुकूल नही। वे सुखकारक नींद नही कर सकते। राजा निमि यही बोलना चाहता है इस शरीर को पाने से सुख को नही पाते केवल दुःख ही होता है।

देवतागण कहते हैं - निमिराज जीवित हो। उसके इच्छानुसार उसको स्थूल शरीर न हो। वह सूक्ष्म शरीर से ही रहे। बंधक बनने वाला यह स्थूल शरीर उसको न हो। निमि सूक्ष्म शरीर में ही सुख पायें ।।11।।

शुकदेव कहते हैं -निमिराज के मृत देह से ही उसके वंश का विस्तार हुआ। राजा न होने के कारण अराजकता न हो इसके लिए ऋषियों ने निमि राजा के शरीर का मंथन किये। तब एक सुन्दर कुमार उत्पन्न हुआ ।।12।।

विलक्षण रीति से जन्म लेने के कारण उसका नाम जनक रहा। स्थूल शरीर न रहने वाला सूक्ष्म रूप में रहने वाला निमि का पुत्र होने के कारण उसका नाम वैदेह पड़ा। मृत शरीर के मंथन से जन्म लेने के कारण उसको मैथिल भी कहते थे। उसके नगरी में आने वाले राजाओं का मंथन करने के कारण उसके नगरी का नाम मिथिला हो गया ।।13।।

उस जनक से उदावसु जन्म लिया,उसके पुत्र नंदिवर्धन,उसके पुत्र सुकेतु,उसका पुत्र देवरात ।।14।।

देवरात का पुत्र बृहद्रथ,उसका पुत्र सुधृत। सुधृत से दृष्टकेतु,उससे हर्यश्व,उससे मरु उत्पन्न हुऐ ।।15।।

मरु के पुत्र प्रतींधक,उससे कृतिरथ जन्म लिया, उसका पुत्र देवमीढ़,उससे विधृत,उससे महाधृति उत्पन्न हुए ।।16।।

महाधृति के पुत्र कृतिरात,उससे महारोम,उसका स्वर्णरोम और उससे ह्रस्वरोम जन्म पायें ।।17।।

ह्रस्वरोम का पुत्र सीरध्वज। इन सारे राजाओं को जनक,मिथिल और विदेह नाम कुल

के नाम होकर सबके साथ लगते थे। यह सीरध्वज राजा सोने के नांगर से जमीन जोतते समय नांगर के नोक से सीता देवी का प्रादुर्भाव हुआ। इसके लिए उसको सीरध्वज जनक राजा कहते हैं ।।18।।

सीरध्वज का पुत्र कुशध्वज,उसका पुत्र धर्मध्वज। धर्मध्वज को कृतध्वज और मितध्वज नाम के दो पुत्र हुए ।।19।।

कृतध्वज से केशिध्वज और मितध्वज से खांडिक्य नाम का पुत्र जन्म लिए। कृतध्वज का पुत्र भगवान को जानने की विद्या में बड़ा तज्ञ था ।।20।।

खांडिक्य कर्मकाण्डी था,ब्रह्मज्ञानी केशिध्वज के डर से वह वन को चला गया। खांडिक्य का पुत्र भानुमान् । उसका पुत्र शतद्युम्न ।।21।।

शतद्युम्न का पुत्र शुचि,उससे सनद्वाज,सनद्वाज से ऊर्जकेतु,उससे कुरुजित,उससे अज जन्म लिया ।।22।।

अज का पुत्र अरिष्ठनेमि। उसका पुत्र श्रुतायु, उससे सुपार्श्वक,उससे चित्ररथ,उसका पुत्र क्षेमापि जन्म लिये ।।23।।

क्षेमापि का पुत्र हेमरथ, उसका पुत्र सत्यरथ,उससे उपगुरु जन्म लिया। उससे उपगुप्त जन्म पाया। यह अग्नि का अंश बनकर जन्म लिया ।।24।।

उपगुप्त से वैवस्वत,उससे युयुध,उससे सुभाषण,उसका पुत्र श्रुत,उससे जय,उससे विजय,उसका पुत्र ऋत जन्म लिये ।।25।।

ऋत का पुत्र शुनक,उसका पुत्र वीरहव्य,उससे धृति,धृति से बहुलाश्व,उसका पुत्र धृति,धृति के पुत्र कृति,उसका पुत्र महावशी जन्म लिये ।।26।।

हे राजा! ये सारे मिथिल कहलाते हैं। ये सारे परमात्म विद्या में विशारद थे। योगेश्वर याज्ञवल्क के अनुग्रह से गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी शीतोष्ण इत्यादि सारे द्वंद्व को सहन करने के सामर्थ्य वाले थे ।।27।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में ग्यारह अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - बारह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा आगे हम पवित्र चन्द्र के वंश के बारे में कहते हैं, सुनो। उस वंश में पुरूरव इत्यादि बड़े पुण्यशाली राजा बने ।।1।।

हजार सिरवाले परम पुरुष भगवान नारायण के नाभि सरोवर में उत्पन्न हुए कमल से चतुर्मुख ब्रह्मा जी जन्म लिए। वे गुण में अपने पिता के अनुरूप हैं। उनके मानस पुत्र अत्रि ।।2।।

अत्रि के आनन्द भाष्प से अमृतमय सोम का जन्म हुआ। ब्रह्मा जी इसको कुमुदपुष्प और औषधियों के अधिपति बनाये ।।3।।

अत्रि और अनुसूया के पुत्र सोम हैं ऐसे चतुर्थ स्कन्ध में आया है। आँखों का मतलब दम्पति होता है। इससे यहाँ सोम को अत्रि अनुसूया के पुत्र समझने से गलत नही होता।

सोम तीनों लोकों को जीतकर बड़ा राजसूय याग किया। इससे उसको अधिक पुण्य मिला। उसके साथ अहंकार भी बढ़ा। चंद्र अहंकार से बृहस्पति की पत्नी तारा को बालात्कार से अपहरण किया ।।4।।

देव गुरु के बहुत बार याचना करने के बाद भी अहंकार से सोम तारा को उसको नही दिया। इसी कारण बाद मे देवासुरों में युद्ध हुआ ।।5।।

बृहस्पति के ऊपर के द्वेष से शुक्राचार्य जी ने असुर और चंद्र को अपना शिष्य बनाया। शिव अपने गुरु आंगिरा के पुत्र बृहस्पति को अपने शिष्य बनाए। प्यार से अपने भूतगण परिवार सहित उनके सहयोग में खड़े हुए ।।6।।

सारे देवगण से युक्त होकर देवेन्द्र बृहस्पति के सहयोग में खड़े रहे। एक स्त्री तारा के बारे में देव और दानवों मे बड़ा विनाशकारी युद्ध हुआ ।।7।।

आंगिरा ब्रह्मा के पास जाकर अपने दुःख का निवेदन किया। तब ब्रह्मा जी सोम को अपने पास बुलाकर उसको डाटकर बृहस्पति को उनकी पत्नी तारा को दिलवा दिये। उस समय तारा गर्भिणी थी। बृहस्पति इसको जान लिए ।।8।।

हे दुष्ट बुद्धि वाली स्त्री! तुमने दूसरों के गर्भ को धारण कर मेरे पास आई है। मेरे क्षेत्र से

उस गर्भ को बाहर करो। तुम स्त्री हो और गर्भिणी हो इसी कारण मै तुमको नही मारूँगा। नहीं तो मैं तुमको भस्म कर डालता।।9।।

इन बातों को सुनकर तारा को बहुत लज्जा हुयी। दिन पूर्ण होने के बाद तारा सोने के समान उज्ज्वल कांति वाले पुत्र को जन्म दिया ।।10।।

वह पुत्र सुन्दर और अत्यन्त मोहक था। सोम और बृहस्पति दोनों उस पुत्र को अपनाना चाहे। दोनों जोर से आवाज करते हुए यह पुत्र तेरा नही मेरा है ऐसे चिल्लाने लगे। तब वहाँ आ गये सारे ऋषि और देवता उस बच्चे के बारे में तारा से पूछे, सही बोलो यह बच्चा किसका है। किन्तु लज्जा से अवनत मुखी तारा कुछ भी नही बोली। तब वह बच्चा ही आक्षेप युक्त स्वर से अपने माँ से पूछा ।।11,12।।

हे दुराचारी,क्यों बोलती नही। जल्दी बोल दो मेरे पिता कौन हैं। किया हुआ अपराध को छुपाने वाली तुमको मै क्यों नही भस्मसात करूँ ।।13।।

अपने समक्ष चला हुआ इस सन्दर्भ को देखकर भगवान ब्रह्मा जी पुत्र को डाटते हुए तारा को समाधान करते हुए रहस्य में पूछे, बोलो यह पुत्र किससे जन्म लिया है।।14।।

तारा मंदस्वर में बोली यह बच्चा चंद्र का है। इस बात को सुनते ही सोम उस पुत्र को अपनी गोद में उठा लिया। ब्रह्मा जी ने उस सुन्दर लड़के को बुध नाम दिया ।।15।।

नाम के अनुसार बुध अत्यन्त ज्ञानी था। उस ज्ञानी पुत्र के साथ सोम ने बहुत दिनों तक आनन्द का अनुभव किया। उस बुध से इला नाम की अपनी पत्नी से पुरूरव का जन्म हुआ। इस बात को हम पहले ही कह चुके हैं।।16।।

एक बार नारद जी इन्द्र की सभा में राजा पुरूरव का रूप, गुण,शील,औदार्य,सम्पत और पराक्रम के बारे मे कीर्तन किये। उसको सुनकर उर्वशी उनसे मोहित हुयी ।।17।।

एक बार उर्वशी **मित्र** के साथ रहती थी। उस समय उसके भाई वरुण से भी वह प्यार करने की इच्छा प्रकट की। इसी कारण मित्रा और वरुण उर्वशी को शाप दिये।इसलिए उसे कई वर्षों तक भूलोक में रहना पड़ा। उस शाप के कारण वह भू लोक में वास करने के लिए पुरूरव के पास आई।।18।।

उर्वशी, रम्भा, तिलोत्मा ये सारे गन्धर्व होते हैं। गन्धर्व स्त्री देवताओं मे वेश्या जैसे होते हैं। देवता होने के कारण इससे उनको पाप आता नही।

मन्मथ के समान रूप वाले श्रेष्ठ पुरुष पुरूरव को देखते ही उर्वशी का मन चंचल हुआ। वह लज्जा से युक्त होकर पुरूरव के बहुत नजदीक आई ।।19।।

राजा पुरूरव भी देवी उर्वशी को देखकर मोहित हुआ। वह रोमांचित हुआ। अत्यन्त मधुर

बातों से वह उर्वशी से बातें करने लगा।।20।।

राजा पुरूरव बोलता है सुन्दरी तुम्हारा स्वागत है। आओ, यहाँ बैठो और कहो,तुम्हारे लिए मै क्या करूँ। हम दोनों प्यार करें। हमारा रतिविहार बहुत वर्षों तक चलता रहे ।।21।।

उर्वशी बोलती है - हे सुन्दर पुरुष तुमको एक बार देखने के बाद कौन स्त्री अपने आँखों को तुमको छोड़कर अन्य वस्तु पर लगाती है? तुम अत्यन्त सुन्दर हो। सदाकाल जिसके आश्रय में लक्ष्मी रहती है और कहीं भी छोड़कर नही जाती वह श्री हरि तुमको आश्रय देने वाले हैं।।22।।

हे राजा, यह दो बकरी के बच्चे को तुम्हारे पास रखती हूँ। तुम इनकी रक्षा ठीक तरह से करना। स्त्रियों को इष्ट जो होता है वही श्रेष्ठ पति बनता है।।23।।

अप्सराओं को नियत पति नही होते हैं। वे जिसको जितने दिन पति मानती हैं वे उतने दिन तक उनके पति बनते हैं। **स्त्रियों को जो इष्ट होता है वही पति** यह नियम केवल गन्धर्वों के लिए है। उर्वशी शाप के कारण कई वर्ष यहाँ रहने वाली है इसके लिए उसको छोड़ने के लिए निमित्त रूप मे कई निर्बन्ध रखती है। बकरी को ठीक तरह से रखना यह पहला निर्बन्ध है ।

उर्वशी आगे बोलती है- हे वीर, मुझे घी का भोजन देना चाहिए। सम्भोग के समय को छोड़कर कभी भी नग्न होकर मेरे सामने नही आना चाहिए। राजा पुरुरव इन तीनों निर्बन्धों को स्वीकार करता है।।24।।

अमृतम् वा आज्यम् घी इस भूमि का अमृत है। स्वर्ग में देवतागण अमृत खाते हैं। इसके लिए उर्वशी भूलोक में घी खाती है।

राजा पुरूरव कहता है - हे सुन्दरी,नरलोक को मोहित करने वाला तुम्हारा यह आश्चर्य कारक रूप और तुम्हारा यह श्रृंगारभाव को देखकर स्वयं आये हुए देवता को कौन पुरुष त्याग सकता है।।25।।

शुकदेव कहते हैं- पुरुष श्रेष्ठ राजा पुरूरव उर्वशी को राज्ययोग्य भोग पदार्थों को देते हुए अत्यन्त सुख मे रखा। उर्वशी भी नन्दनवन और देवोद्यान में मिलने वाला सुख से राजा को संतोष दिया। राजा सब कुछ भूलकर उसके साथ आनन्द भोग भोगा ।। 26।।

उर्वशी देवी का शरीर कमल केसर के समान सुगंध भरित थी। उसके साथ विहार करते हुए उसके रूप से मोहित राजा पुरूरव सबको भूलकर उसके साथ कई वर्ष सुख भोग में रहा।।27।।

इधर स्वर्ग मे देवेन्द्र उर्वशी को न देखते हुए गन्धर्वों को कहा- उर्वशी के बिना इन्द्र लोक नही शोभता।।28।।

इन्द्र की इच्छानुसार गन्धर्व मध्यरात्रि में आकर उर्वशी राजा के पास न्यासरूप में रखा हुआ बकरी के बच्चे को अपहरण किया।।29।।

उस समय वे बकरी के बच्चे चिल्लाने लगे। उसको देखकर देवी रोने लगी। हाय मै इसको वीर पुरुष मानी थी। किन्तु यह नपुंसक है। इसके ऊपर विश्वास रखते हुए मैं मर गयी।।30।।

इस दुष्ट पति में विश्वास रखने के कारण मेरा सर्वनाश हो गया। चोर मेरे बच्चों को अपहरण किये। तो भी यह वीर पुरुष स्त्री के समान डरकर सोया है। यह केवल दिन का पुरुष है।।31।।

उर्वशी की ये बाते राजा को बाण के समान चुभने लगीं। अंकुश से मारा हुआ हाथी के समान राजा हाथ में खडग लेकर चोर को पकड़ने के लिए बाहर आया। वह भूल गया कि वह नग्न है।।32।।

गन्धर्व बकरी के बच्चों को छोड़ दिये। अपने शरीर के प्रकाश से उस प्रदेश को प्रकाशित किये। उस प्रकाश में उर्वशी,राजा को नग्न रूप मे देखी ।।33।।

घर आकर राजा पुरुरव मंच पर उर्वशी को नही देखा। वह व्याकुल होकर दुःख से रोते हुए पागल के समान गाँव-गाँव फिरने लगा ।।34।।

कुरुक्षेत्र के सरस्वती तट पर राजा ने उर्वशी को देखा। उसके साथ उसके पास सहेलियाँ थीं। राजा संतोष से बोला ।।35।।

हे मेरी पत्नी! खड़ी हो जाओ। तेरे बिना में जीवित नही रहता,तेरे विरह को सह नही सकता। तुम मुझको छोड़कर नही जाओ। हमारे प्यार का समय पूर्ण नही हुआ है।।36।।

ऋग्वेद के अष्टमाष्टक पंचम अध्याय के प्रारम्भ के मंत्र **हये जाये मनसा तिष्ठघोरे** इस मन्त्र(10-95-1) का यह अर्थानुवाद है

हे देवी, अच्छे आहार और विहार का साधन शरीर तुम्हारे बिना यहीं गिर जायेगा। तुम मेरे मन को अपहरण कर अपने पास ले गई हो। यदि तुमने अनुग्रह नही किया तो इस शरीर को भेड़िया और गिद्ध खा जाएँगे।।37।।

सुदेवों अदय (10-95-14) इस मन्त्र के चौदह ऋचा का यह अर्थानुवाद है

उर्वशी बोलती है- राजा तुम मरो मत। तुम वीर पुरुष हो। तुम धैर्य रखो,तुमको भेड़िया न खाये। भेड़िया का हृदय और स्त्री का हृदय कुटिलयुक्त होता है। उनके साथ कभी भी सख्य नही करना चाहिए ।।38।।

यह **पुरुरवो मा मृथा** (10-95-15) ऋग्वेद के पन्द्रहवाँ ऋचा का अर्थानुवाद है

उर्वशी की सखी बोलती है - हे राजा स्त्रियाँ निर्दयी होती हैं। क्रूरु होती हैं। सहन न करने वाले वे किसी भी दुष्ट कार्य को करने में सिद्ध होती हैं। अल्प कारण के लिए विश्वासी पति

और भाई को भी मार डालती हैं।।39।।

अमायक पुरुष में पहले स्नेह करते हुए कपट विश्वास को दिखाकर स्वच्छंदवृत्ति से रहते है। ऐसी स्त्री को पुंश्चली कहते हैं। वे एक के बाद एक नया-नया पुरुष से प्यार करते हैं।।40।।

उर्वशी कहती है- हे पति देव, एक वर्ष के बाद मैं आपके पास आती हूँ। एक रात आपके साथ रहती हूँ।तब तुमको और भी पुत्र होते हैं। पुरुरव समझ गया। एक वर्ष उर्वशी दूर रहना चाहती है इसका अर्थ वह गर्भिणी है। इसको समझकर वह अपने नगर को वापस आया।।41।।

एक वर्ष के बाद पुरुरव कुरुक्षेत्र गया। वहाँ उर्वशी आयु,श्रुतायु इत्यादि छः पुत्रों के साथ रहते देखकर संतुष्ट हो गया। उस दिन राजा वहीं रहा ।।42।।

विरह से दीन रहा राजा को उर्वशी बोलती है - राजा, तुम गन्धर्वों की स्तुति करो। वे तुमको मेरे सालोक्य का अनुग्रह करेंगे ।।43।।

यह इति त्वा देवा (10-95-18) इस मन्त्र का आठवाँ ऋचा का अर्थानुवाद है

हे राजा परीक्षित,उर्वशी के कथनानुसार राजा पुरुरव गन्धर्वों की स्तुति किया। उस स्तुति से संतुष्ट गन्धर्व अग्नि युक्त एक पात्र को यज्ञ करने के लिए दिये। वह पात्र उर्वशी लोक को पाने का साधन है, यह समझते हुए पुरुरव उस पात्र को पकड़कर जंगल मे चलते समय उर्वशी लोक प्राप्ति के लिए यज्ञ करने को विचार करते हुए यज्ञ के मंत्रों को पाने का विचार किया।।44।।

उस पात्र को जंगल मे छिपाकर रखते हुए राजा राजघर को वापस आकर उस रात्रि को ध्यान मे बिताया। दूसरे दिन त्रेतायुग आरम्भ हुआ। तब मन मे उर्वशी का ध्यान करते हुए उर्वशी लोक पाने का साधन अग्न्याधान इत्यादि सांगयज्ञ प्रतिपादक तीनों वेदों का मंत्र ध्यान मे आये।।45।।

इन मंत्रों से यज्ञ करने के उद्देश्य से राजा अग्निपात्र को जहाँ रखा था उस स्थल को गया। वहाँ देखे तो पात्र शमी वृक्ष बन गया है और अग्नि अश्वत्थ वृक्ष बन गया है। इन दोनों को अरणी बनाते हुए उर्वशी लोक प्राप्ति के लिए उर्वशी को नीचे के अरणी में और स्वयं को ऊपर के अरणी मे आवाहन करते हुए मंथन करने लगा। अग्नि के बगल मे पुत्रोत्पादन के उद्देश्य बनाते हुए उर्वशी मंत्र पूर्वक अनुसंधान करते हुए मंथन किया ।।46,47।।

पुरूरव को कई व्याख्यानकार यहाँ अतिकामी मानकर व्याख्यान किये हैं। भागवत का अभिप्राय यह नही हो सकता। उर्वशी पुरूरव को देखते ही **हरिराश्रयः** इस शब्द से वर्णन करती है।पुरूरव सदाकाल हरि आश्रय से जीने वाला है।वह कभी भी अतिकामी नही होता। यहाँ पुरुरव गन्धर्व प्रीत्यर्थ यज्ञ करके गन्धर्व लोक पाकर अंत में

विष्णु लोक को पा लिया। उर्वशी लोक, गन्धर्व लोक एक ही है। देवता लोग गन्धर्व लोक के मुखान्तर सालोक्य द्वारा विष्णु लोक को पाते हैं। पत्नी न रहने के कारण राजा पुरुरव आरणी मे उर्वशी का आवाहन किया। श्री राम जी ऐसे ही सीता जी न होने के कारण सोने की सीता को रखकर यज्ञ किये थे। अनियन्त्रित काम को नियन्त्रण मे लेकर उसको वैराग्य मे परिवर्तन करने का तरीका यह है। ऋग्वेद मे इस प्रसंग को यज्ञ के रूपक मे बताया है। वहाँ का उर्वशी मंत्र यह है।

विद्युन्न या पतंती दविद्योद्भरंती मे अप्याकाम्यानि।
जनिष्टो अपोर्नयः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः (10-95-10)

पुरूरव जब आरणी का मंथन किया तब वेदविद्या से जातवेद नाम का अग्नि का प्रादुर्भाव हुआ। आहवनिय, गाह्यापत्य, दक्षिणाग्नि नाम की इन तीनों अग्नियों को अपने के लिए मोक्ष देने के उद्देश्य से अपना पुत्र माना ।।48।।

इन तीनों विध के अग्नि से यज्ञपति सर्वदेवोत्तम अधोक्षज नाम के श्रीहरि को उर्वशी लोक प्राप्ति की इच्छा से आराधना किया ।।49।।

त्रेतायुग में केवल भगवान श्रीहरि की ही आराधना करते थे। सारे शब्दराशि और ओंकार प्रतिपाद्य श्रीहरि की महिमा के लिए सीमित था। सारे यज्ञों मे केवल श्रीहरि को ही आहुति देते थे। ब्रह्मादि देवताओं को गुरु मानकर आराधना करते थे। अग्नि में ब्रह्मादि नाम से जो हविष्य देते थे उसको श्रीहरि को ही समर्पित करते थे। ब्राह्मणादि चारों वर्ण वाले विष्णु को ही देव मानकर आराधना करते थे ।।50।।

हे राजा त्रेतायुग के आरम्भ मे पुरूरव तीनों वेदों का प्रचार किया। तीन अग्नि को पुत्र मानकर गन्धर्व लोक को पाया हुआ पुरूरव गन्धर्व मानकर विष्णु लोक को प्राप्त किया ।।51।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

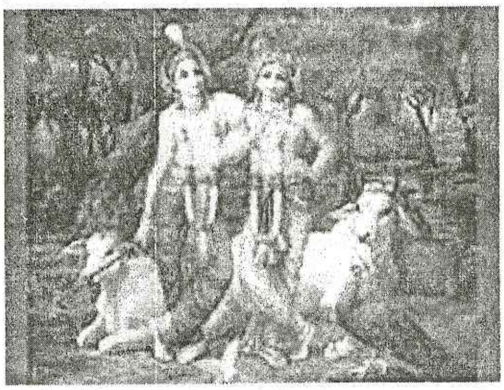

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - तेरह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- परीक्षित सुनो। राजा पुरूरव को उर्वशी से आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय, जय नाम के छः पुत्र हुये।।1।।

इसमे श्रुतायु का पुत्र वशुमान,सत्यायु का पुत्र श्रुतंजय,रय का पुत्र अद्भुत, जय का पुत्र अमित ।।2।।

विजय का पुत्र भीम,भीम से कांचन, कांचन से होत्रक,होत्रक से जन्हु जन्म लिये। यह जन्हु गंगा जल को एकापोशन पी लिया था ।।3।।

जन्हु एक बार मेधवा नाम का सत्रयाग कर रहा था। भगीरथ के तप से तुष्ट हुई गंगा माता उसके पीछे आते हुए जन्हु की यज्ञशाला में घुस गई। क्रोध से जन्हु गंगा नदी को पी लिया। बाद मे ऋषियों के और भगीरथ की प्रार्थना को सुनकर गंगा जी को अपनी पुत्री मान दाहिने कान से बाहर छोड़ दिया। उस दिन से गंगा जी का नाम जान्हवी पड़ा।

जन्हु के पुत्र पूरु,उसके पुत्र बलाक,उसका पुत्र अजक,उससे कुश, कुश से कुशांबु,तनय,वसु,कुशनाभ नाम के चार पुत्र हुये। इसमे कुशांबु का पुत्र कुशांबुज। इसका दूसरा नाम गाधी था। कुश के पौत्र होने कारण इसको कौशिक भी बोलते हैं। इसकी पुत्री सत्यवती को रुचिक नाम के मुनि आकर शादी कर देने के लिए याचना किए ।।5।।

अपने पुत्री को योग्य न समझकर किन्तु शाप भय से डरते हुए एक कान काले रहने वाले एक हजार सफेद घोड़े को कन्या शुल्क में दिये तो मैं शादी करता हूँ ऐसे कह दिया।ऐसे घोड़े अलभ्य होते हैं यह समझते हुय रुचीक मुनि वरुण के पास गया ।।6,7।।

वरुण से उसी तरह के एक हजार घोड़े पाकर रुचीक मुनि उनको गाधी को देकर सत्यवती से शादी किया।सत्यवती और उसकी माँ दोनों तपस्वी रुचीक के पास आकर पुत्र संतान के वर को देने के लिए प्रार्थना की। उनकी बातें सुनकर उनको मानते हुए ऋचीक ऋषि दो अलग-अलग चरु को अभिमंत्रित करके रखकर स्नान करने चला गया ।।8।।

मुनि जब स्नान के लिए गया तब सत्यवती की माँ अपने दामाद उसकी पत्नी के लिए

अच्छा चरू रखा है, मेरा उससे कम होगा यह समझकर पुत्री के चरू को स्वयं पाई और पुत्री को अपना चरू दे दी। दोनों चरू को भक्ति से स्वीकार किये ।।9।।

मुनि अपने तपोबल से इस चरू व्यत्यास को समझ गया और पत्नी को बताया-तुमने बहुत बड़ी भूल किया। चरू व्यत्यास के कारण तुम्हारा पुत्र भयंकर करने वाला होगा है और-लोगों को अपने जीवनावधि मे दंडित करता रहेगा है ।।10।।

सत्यवती मुनि को प्रसन्न करती हुई बोली स्वामी, मेरा पुत्र हिसंक न हो। पत्नी के इस बात को मानते हुए ऋषि कहते हैं तो तेरा पौत्र वैसा होगा।इसके अनुसार जमदग्नि सत्यवती के पुत्र बनकर जन्म लिया ।।11।।

उसके बाद सत्यवती महापुण्यकारी लोक पावन करने वाली कौशिकी नदी बन गई।इक्ष्वाकु वंश के रेणु नाम के राजा की पुत्री रेणुका से जमदग्नि की शादी हुयी ।।12।।

उनको वसुमान इत्यादि पुत्र जन्म लिये। इनमे सबसे छोटे का नाम परशुराम है ।।13।।

परशुराम श्रीहरि का साक्षात रूप हैं। पद्मनाभ के अंश हैं।इन्होनें हैहय वंश का नाश किये।इक्कीस बार भू प्रदक्षिणा करते हुए दुष्ट क्षत्रियों का संहार किये ।।14।।

ब्राह्मणों के विरोध करने वाले, धर्माचरण न करने वाले, भूमि का भार बने हुये क्षत्रिय उस समय रज और तमोगुण से युक्त होकर मदोन्मत्त हो गये थे। हम ब्राह्मणों की रक्षा करते हैं इसके लिए उन्हें हमारे अधीन होना चाहिए। इस विचार को जानकर परशुराम एक छोटी सी गलती के कारण क्षत्रिय कुल को नाश करने लगे।।15।।

राजा परीक्षित कहते हैं- क्षत्रिय लोग अपने मनोनिग्रह को खोते हुए क्या गलती किये। उस गलती के लिए परशुराम जी क्षत्रिय कुल को क्यों बार-बार नाश किये ।।16।।

श्री शुकदेव कहते हैं- क्षत्रिय श्रेष्ठ हैहय के राजा कार्तिवीर्यार्जुन नारायण के अंश दत्तात्रेय की नानाविध सेवा से आराधना करते हुए एक हजार बाहु पा लिया। उसके साथ शत्रु के मध्य में (अजययत बिना रूप धाम के इन्द्रिय शक्ति) शरीर सौन्दर्य, अस्त्रबल, कीर्ति और अणिमादि अष्ट सिद्धि से युक्त योग शक्ति को पाकर बिना रोकथाम हवा के समान सारे दिशा में दिग्विजय किया ।।17,18,19।।

वह मदोन्मत्त होकर स्त्रियों के साथ नर्मदा नदी में जल क्रीड़ा कर रहा था। अपने हजार बाहुओं से बहती हुई नदी को रोक लिया ।।20।।

रावण उसी नदी के तट पर अपना शिविर रखा था। कार्तिवीर्यार्जुन जल प्रवाह को रोकने के कारण रावण का शिविर जलावृत्त हो गया।इससे रावण क्रुद्ध हो गया ।।21।।

वह कार्तिवीर्यार्जुन के साथ युद्ध किया।उसके पत्नियों के सामने उसको अपना बंदी बना

लिया। कार्तिवीर्यार्जुन रावण को बंदी बनाकर माहिष्मती नगर में जेल में रखा। बाद में पुलस्त्य मुनि के आदेश के अनुसार बंधितबंदर को जैसे छोड़ते हैं वैसे छोड़ दिया ।।22।।

वह कार्तिवीर्यार्जुन एक बार निर्जन अरण्य में शिकार करते हुए दैववशात् जमदग्नि आश्रम में प्रवेश किया ।।23।।

वहाँ तपोधन जमदग्नि ऋषि ने राजा, उसके सैन्य, मंत्री और सारे सहायकों को अपने कामधेनु की सहायता से यथेच्छ सत्कार किया ।।24।।

अपने सारे ऐश्वर्य से बड़ा उस गोरत्न को देखकर दंग हुआ राजा उस गोरत्न को चाहते हुए उसको लेकर जाने के लिए अपने नौकरों को आदेश दिया। उस समय वह कामधेनु आक्रन्दन करती रही। तो भी जोर जुल्म से उस गाय को बच्चे के साथ माहिष्मति नगर को ले गये।।25,26।।

राजा के जाने के बाद बाहर गया हुआ परशुराम अपने आश्रम को आकर राजा ये किसे हुए दौर्जन्य को देखा। मार खाया हुआ साँप के समान फूत्कार करते हुये अपने शस्त्रास्त्र और अपने परशु लेकर हाथी को पकड़ने के लिए सिंह जैसे आक्रमण करता है वैसे हैहय राजा की राजधानी माहिष्मति के प्रति दौरा किया ।।।28।।

नगर प्रवेश करते ही धनुर्बाण और परशु को धारण किया हुआ जटाधारी मृगछाल को पहना हुआ परशुराम कार्तिवीर्यार्जुन को देखा ।।29।।

परशुराम को देखकर कार्तिवीर्यार्जुन गदा, खड्ग, बाण, शक्ति इत्यादि आयुध से युक्त हाथी,रथ,घोड़ा और पदातियुक्त सत्रह अक्षोहिणी सैन्य को उसके ऊपर युद्ध करने के लिए भेज दिया। भगवान परशुराम अकेले ही उस सारे सैन्य को समाप्त कर दिये।।30।।

एक अक्षोहिणी सैन्य में 21870 रथ,21870 हाथी,65610 घोड़े,109350 पदाति सैन्य होते हैं। ऐसे सत्रह अक्षोहिणी सैन्य को भगवान परशुराम अकेले मार दिये। वे साक्षात् भगवान हैं, सर्वशक्त हैं।

शत्रु सैन्य को मारने वाले परशुराम अपने परशु को लेकर मनोवेग वायु वेग से सैन्य में जहाँ-जहाँ आक्रमण किये वहाँ शत्रुओं ने अपने रथ और सारथी को खोते हुए हाथ पैर सिर कटे हुये जमीन पर गिर जाते थे।।31।।

रण रंग में परशुराम अपने सैन्य को काट डाल रहे हैं, अपने सैन्य को चूर-चूर होकर रक्त से बना हुआ कीचड़ में पड़ते देखकर कार्तिवीर्यार्जुन आक्रोश से परशुराम का सामना करने स्वयं आ गया।।32।।

हजार बाहु वाला कार्तिवीर्यार्जुन परशुराम के ऊपर एक ही समय में एक साथ पांच सौ कमानों में बाण जोड़ते हुए छोड़ दिया। परशुराम उन सब बाणों को अपने एक ही कमान से एक ही बाण छोड़कर सबको एक साथ काट दिये।।33।।

कार्तिवीर्यार्जुन अपने हजार हाथों से पहाड़ और वृक्षों को परशुराम के ऊपर फेक दिया। जोर से अपने ऊपर आने वाले इन पहाड़ और वृक्षों को परशुराम हँसते हुए अपने तीक्ष्ण धारा वाले कुल्हाड़ी से उनको चकना चूर किया। उसी कुल्हाड़ी से कार्तिवीर्यार्जुन के हजार बाहुओं को एक ही मार से काट डाला।।34।।

कार्तिवीर्यार्जुन के बाहुओं को काटने के बाद परशुराम उसके सिर को भी काट डाला। उसका सिर एक पहाड़ जैसे गिर गया। मरा हुआ पिता को देखकर उसके दस हजार पुत्र भय से युद्ध भूमि को छोड़कर भाग गये ।।35।।

अग्निहोत्र के लिए उपयोग में आने वाली कामधेनु इन दुष्टों के कारण दुःखित हुई थी। बच्चों के साथ उसको लेकर परशुराम जी आश्रम में अपने पिता को समर्पण किये ।।36।।

पिता और भाइयों को अपने किए हुए पराक्रम का वर्णन किये। उसको सुनकर जमदग्नि कहे।।37।।

हे राम! तुमने क्या किया। सारे देवताओं के सानिध्य वाले एक राजा को मार डाला। इससे तुम पापी बन गए।।38।।

हम ब्राह्मण लोगों को सारे अपराधों को क्षमा करना चाहिए। क्षमा के कारण ही हमें पूज्यत्व मिलता है। क्षमा करने के कारण ही जगद्गुरु ब्रह्मा जी ब्रह्म पदवी को पाये हैं।।39।।

क्षमा से ब्रह्मवर्चस् सूर्य प्रकाश के समान बढ़ता है। क्षमा गुण वाले को भगवान श्री हरि जल्दी कृपा करते हैं।।40।।

सिंहासन पर बैठने वाले राजा को मारना ब्रह्महत्या से भी बढ़कर पाप होता है। इस पाप को निवारण करने के लिए अच्युत में निष्ठा रखते हुए तीर्थ यात्रा करो ।।41।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

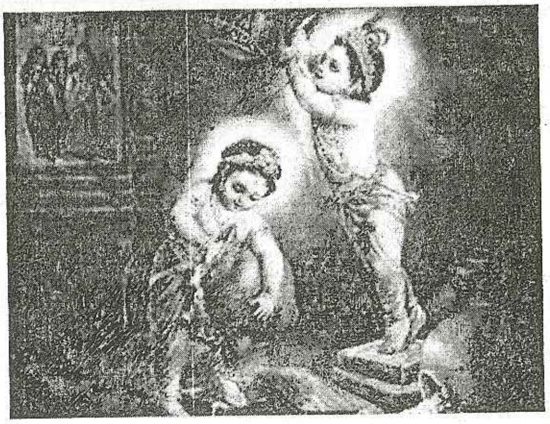

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - चौदह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- हे राजा, पिता के इस उपदेश को मानते हुए परशुराम जी एक वर्ष पर्यंत भूमण्डल मे संचार करते हुए तीर्थ यात्रा करने के बाद आश्रम को वापस आये ।।1।।

एक बार परशुराम की माता रेणुका देवी पानी लाने के लिए नदी गई थी। वहाँ एक गन्धर्व राजा नदी में अप्सराओं के साथ जलक्रीड़ा कर रहा था।।2।।

पानी के लिए नदी आई हुई रेणुका गन्धर्व राजा की इस क्रीड़ा को देखते हुए उसी में आसक्त होकर वहीं खड़ी रही।पति के यज्ञ के लिए देर होता है इसको भूल गई ।।3।।

थोड़ा समय बीतने के बाद देर हुआ इसको जानते हुए पानी लेकर भय से उसको ऋषि के सामने रखते हुए हाथ जोड़कर खड़ी हुई।।4।।

पत्नी के इस मानसिक व्यभिचार को समझते हुए मुनि क्रोधाविष्ट होकर उसको मार डालने के लिए अपने पुत्रों को आदेश दिये। उनके पुत्र उसको नही माने ।।5।।

परशुराम अपने पिता के तप और समाधि के प्रभाव को ठीक तरह से जानते थे। वे पिता की आज्ञानुसार अपनी माता और भ्राताओं को अपने कुल्हाड़ी से मार डाला ।।6।।

इससे संतुष्ट सत्यवतीसुत जमदग्नि ऋषि अपने पुत्र को चाहे जो वर माँगने के लिए कहा।परशुराम जिनको मैं मारा हूँ वे सब पुनः जीवित हों और उनको मैने मारा है इसकी याद न हो।।7।।

परशुराम अपने ही शक्ति से माता और भाइयों को पुनर्जीवित कर सकते थे। वे स्वयं नारायण के अवतार हैं। किन्तु पिता के ऊपर के आदर से उन्होंने पिता से वर माँगे।

तब वे सारे नींद से जगने वाले जैसे उठते हैं वैसे उठकर खड़े हो गये। पिता की इस तपःशक्ति को जानते ही परशुराम अपने बन्धुओं की हत्या की थी ।।8।।

इधर कार्तिवीर्यार्जुन के पुत्र परशुराम से हार कर भाग गये। वे अपने पिता के वध को बार-बार याद करते रहे। उनको शान्ति और समाधान नही मिला ।।9।।

एक बार जब परशुराम अपने भाइयों के साथ आश्रम छोड़कर जंगल गये थे उसी समय

को साधते हुए कार्तिवीर्यार्जुन के पुत्र ईर्ष्या से जमदग्नि के आश्रम में आये।।10।।

वहाँ जमदग्नि यज्ञशाला में श्रेष्ठ कीर्तिवाले भगवान में दृढचित्त होकर समाधि लगा कर बैठे थे। पाप कार्य करने के लिए आये वे जमदग्नि का वध किये।।11।।

असहायक राममाता रेणुका बहुत प्रार्थना करने के बाद भी क्रूर और क्षत्रियाधम कार्तिवीर्यार्जुन के पुत्र बलात्कार से ऋषि के सिर को काट कर ले चले ।।12।।

साध्वी रेणुका दुःख और शोक से आकुल होकर आर्तनाद करते हुए अपने पेट और छाती को मारते हुए हाय राम-हाय राम बोलते हुए रोती रही ।।13।।

माता की आर्त ध्वनि को दूर से ही सुनते सारे पुत्र दौड़कर आश्रम आये। वहाँ मरे हुये पिता को देखे ।।14।।

दुःख,रोष,असहन और शोक के आवेग से वे रोते रहे और कहते थे, हे पिता जी, आप सत्पुरुष हैं,धार्मिक हैं,हमको छोड़कर आप क्यों स्वर्ग सिधार गये ।।15।।

परशुराम लोक मोहनार्थ विलाप करते हुए पिता के शरीर को अपने भाईयों का सौंप कर, कुल्हाड़ी को लेकर क्षत्रिय वंश का नाश करने के उद्देश्य से आश्रम से बाहर आये ।।16।।

वहाँ से सीधा वे माहिष्मति नगरी आये। ब्रह्म हत्या के पाप से पहले ही अपनी शान को खोया हुआ नगरी के मध्य में परशुराम जी ने राजाओं के सिर से एक बड़ा ढेर का निर्माण किये।।17।।

ब्राह्मण विरोधी क्षत्रियों को नाश करते हुए उनको डराते हुए उनके लहू की नदी बहा दिये। उन दिनों क्षत्रिय लोग मदोन्मत्त होकर पाप कार्य में निरत हुये थे। पिता के मारने का बदला को चुकाना केवल एक निमित्त था। पापनिरत क्षत्रियों का नाश करना ही मुख्य उद्देश्य था।।18।।

सर्व शक्त भगवान परशुराम जी इक्कीस बार भू प्रदक्षिण करते हुए क्षत्रियों का नाश कर समंतपंचक में नौ रक्त का तालाब निर्माण किये ।।19।।

अपने पिता के सिर को लाकर कुश के ऊपर रखते हुए अंतेष्टी कार्य करने के बाद देव देवोत्तम भगवान श्री राम अपनी ही पूजा को स्वयं किये ।।20।।

पूर्व की दिशा को होतृ को ,दक्षिण दिशा को ब्रह्मा जी को पश्चिम दिशा को अध्वर्यु को उत्तर दिशा को उद्गातृ को दक्षिणा पूर्वक दान दिये ।।21।।

अन्य ऋत्विजों को ईशान्य,आग्नेय,नैरुत्य,वायव्य,नाम के अवान्तर दिशाओं को दान दिये। मध्य में बचा हुआ भूभाग को कश्यप को दान दिये। न्यूनातिरिक्त को सुधारते हुए कर्म साक्षि को आर्यावर्त को दान दिये। वचा हुआ सम्पदा को सदस्यों को दिये।।22।।

बाद में अवभृतस्नान करते हुए सारे लोगों की पाप राशि को नाश किये। ब्रह्मा जी के सान्निध्य युक्त सरस्वती नदी के तट पर बिना बादल के आकाश में शोभायमान सूर्य के समान विराजे।।23।।

इस यज्ञ के फल के कारण जमदग्नि ज्योतिर्मय शरीर को पाकर राम से पूजित होकर सप्तर्षि मण्डल में सातवाँ ऋषि होकर रहते हैं।।24।।

आकाश में ध्रुव नक्षत्र की परिक्रमा सप्तर्षि मण्डल करवा है। इसमें इस वैवस्वत मन्वन्तर में कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, भरद्वाज ये सात वेद प्रवर्तक ऋषि हैं।

जमदग्नि पुत्र भगवान परशुराम आगे आने वाले आठवाँ सावर्णी मन्मतर में सप्तर्षियों में एक बनने वाले हैं।।25।।

आज भी महेन्द्र पर्वत में शस्त्र और क्रोध को त्याग दिये हुए परशुराम जी रहते हैं।वहाँ सिद्ध,गन्धर्व और चारण लोग उनकी गाथा गाते रहते हैं।।26।।

इस प्रकार इस जगत के स्वामी सर्वेश्वर भगवान श्री हरि भृगु वंश में अवतार लेकर भूमि को भार बने हुए राजाओं की भूमि पर बहुत बार संचार करते हुए संहार किये ।।27।।

गाधि महराज से, जलने वाला आग के समान तेजस्वी विश्वामित्र का जन्म हुआ वे क्षत्रिय जाति को छोड़कर ब्राह्मण बने।।28।।

हे राजा! विश्वामित्र जी को एक सौ एक पुत्र थे। उनमें से बीच में आने वाला मधुच्छन्द। उससे पचास बड़े और पचास छोटे भाई थे। उनको मधुच्छन्दस् कहते हैं ।।29।।

शुनःशेप मुनि अजीगर्त मुनि का पुत्र है,भृगु वंश मे जन्म लिया है।देवताओं ने इसको पुत्र रूप में विश्वामित्र को दिये। इसी कारण इसका नाम देवरात पड़ा।विश्वामित्र उसको पुत्र रूप मे स्वीकार करते हुए अपने एक सौ एक पुत्रों को बोले यह शुनःशेप को अपना बड़ा भाई समझो।।30।।

हरिशचन्द्र ने यज्ञ किया उस समय इसका पिता अजीगर्त मुनि इसको नर बली देने के लिए बेचा था।बाद में प्रजापति इत्यादि देवताओं की स्तुति करते हुए उसने बंधपाश से मुक्ति पाया।।31।।

हरिशचन्द्र को अपने पुत्र रोहित को यज्ञ मे बलि देना था। किन्तु रोहित शुनःशेप के पिता से उसको खरीद कर अपने पिता को दे दिया। शुनःशेप के पिता को तीन पुत्र थे शुनःशेप उनमे बीच वाला। पहले वाला पिता के प्यार का था,आखिर वाला माता का प्यार का था। इसी कारण पिता ने बीच वाले को बेच दिया था। शुनःशेप को बलि देने के लिए उसके पिता ने यूपस्तम्भ को रस्सी से बाँध दिया। मारने के लिए खड्ग को भी सिद्ध किया। तब शुनःशेप प्रजापति इत्यादि देवताओं की वेद मन्त्र से स्तुति किया। तब उसका बन्धन देवताओं के अनुग्रह से नाश होकर वह बंध मुक्त हो गया। बलि के बिना ही यज्ञ का समापन हो गया। हरिश्चन्द्र भी वरुणपाश से आया हुआ जलोदर रोग

से मुक्त हुआ। राजसूय यज्ञ के अंग में अभिषेचनीय याग में राजा के सामने यह शुनःशेप कथा को कहने की विधि बन गयी है।

यज्ञ समापन के बाद शुनःशेप जन्म देने वाला पिता अजीगर्त का पुत्र है अथवा खरीद किया हुआ हरिशचन्द्र का पुत्र यह समस्या आ गई। तब शुनःशेप दोनों को छोड़कर विश्र्वामित्रको अपने पिता के रूप मे स्वीकार किया। प्रथम पिता अजीगर्त दयारहित होकर बली देने के लिए बेचा था इसके लिए उसको छोड़ा, विश्वामित्र को ही पिता के रूप मे पाया। मध्यम पुत्र होने से पिता मुझको त्याग दिया है यह समझकर वह विश्वामित्र के प्रथम पुत्र बनने की इच्छा प्रकट किया। तब विश्वामित्र जी अपने एक सौ एक पुत्रों को उसको बड़ा भाई मानने के लिए बोल दिये।

देवताओं की आराधना के लिए किया हुआ यज्ञ मे देवताओं ने मुझको इसको दे दिया है। इसी कारण भृगु वंश का यह शुनःशेप आज से देवरात नाम से प्रसिद्ध होता है ।।32।।

विश्वामित्र के इस बात को सुनकर मधुच्छन्द से बड़े पचास पुत्रों ने उसको सही नही माने। इससे विश्वामित्र क्रोधित होकर तुम दुर्जन हो, तुम चंडाल बनो ऐसे शाप दिये ।।33।।

मधुच्छन्द के नीचे वाले पचास पुत्रों ने मधुच्छन्द से कहे, इस बात मे हम आपके आदेश के अनुसार चलते है ।।34।।

मधुच्छन्द के बात के अनुसार ऋग्वेद मंत्र के द्रष्टार शुनःशेप के - और आपके हम छोटे भाई बनते हैं। आप हमारे बड़े भाई हो। इस बात को सुनकर विश्वामित्र संतुष्ट होकर उनसे कहे तुम अच्छे पुत्र हो। तुम अच्छे संतान वाले हो इस प्रकार उनको आशीर्वाद दिये ।।35।।

तुम लोग मेरे आदेश को मानते हुए मुझको इस शुनःशेप का पिता बना दिये हो। इसके बाद यह देवरात कौशिक गोत्र का होता है और आप लोगों मे एक बनता है, मेरा पुत्र बनता है। तुम लोगों को इनके अधीन होना चाहिए।।36।।

विश्वामित्र जी की यह बात, यह श्लोक ऋग्वेद का मंत्र है। इसके लिए शुक जी कहते हैं अब तक मैंने जो कहा है वह वेद का ही भाग है।

विश्वामित्र को इनको छोड़कर अष्टक, हारित, जय, क्रतुमत इत्यादि अन्य पुत्र भी थे। इस प्रकार कौशिक गोत्र वाले मे कई लोग शाप ग्रस्त, कई वर पाने वाले और एक दत्तक स्वीकार किया हुआ ऐसे अनेक विध का गोत्र पुत्र बने ।।37।।

प्रवरांतरमापन्नं तद्धीत्येवम् प्रकल्पितम्। कौशिक गोत्र मे देवरात प्रवर इस प्रकार आता है। ऋषि जो-जो प्रवर मे आते है वें सारे प्रवर एक गोत्र के बनते हैं। यह नियम है। भार्गव और अंगिरस गोत्र को यह नियम लागू नही होता। इसके लिए कौशिक गोत्र वाले को देवरात भी एक प्रवर ऋषि हैं।

पुरुरव के पुत्र आयु को नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजि, रम्भ और अनेन्स नाम के पाँच पुत्र थे। इनमे से क्षत्रवृद्ध के वंश की आगे की कथा बोलते हैं, सुनो ।।38,39।।

क्षत्रवृद्ध के पुत्र सुहोत्र को तीन पुत्र थे।उनका नाम काश्य,कुश,गृत्समद हैं। गृत्समद का पुत्र शुनक। उससे शौनक नाम के ऋग्वेद प्रवर्तकों में ज्येष्ठ पुत्र जन्म लिया।काश्य का पुत्र काशी,उसके पुत्र सुराष्ट्र।उसको दीर्घतम नाम का पुत्र हुआ ।।40,41।।

दीर्घतम से धन्वंतरि जन्म लिया।यह आयुर्वेद का प्रवर्तक बना।यह यज्ञ के फल भोगने वाले हरि के अंश रुप मे है। इनके स्मरण मात्र से सारे दुःख दूर होते हैं।।42।।

धन्वंतरि के पुत्र केतुमान् ,उसके पुत्र भीमरथ।भीमरथ से दिवोदास,उसके पुत्र द्युमान।इसको प्रतर्दन भी कहते हैं ।।43।।

प्रतर्दन से वत्स का जन्म हुआ।इसका नाम शत्रुजित,ऋतध्वज और कुवलयाश्व भी है।वत्स से अलर्क इत्यादि पुत्र जन्म लिये ।।44।।

हे राजा परीक्षित, सुनो- छाछठ हजार वर्ष तक अलर्क राजा ने राज्य चलाया। उसके जीवित रहते तक इस देश में और कोई युवा राजा नही था ।।45।।

अलर्क के पुत्र सन्नति, उससे सुनीथ, उससे सुकेतन, उससे धर्मकेतु, उससे सत्यकेतु जन्म लिये।।46।।

उससे धृष्टकेतु, उससे राजा सुकुमार, उससे वीतिहोत्र, उससे भर्ग, उससे भार्गभूमि पुत्र होकर राजा बने।।47।।

ये सारे काश्य वंश के राजा हैं। वे क्षत्रवृद्ध के वंशज है। इनके भाई रम्भ का पुत्र रभस, उसके पुत्र गम्भीर, गम्भीर के पुत्र चक्रक जन्म लिये।।48।।

चक्रक की पत्नी में ब्राह्मण वंश जन्म लिया और आगे बढ़ा।अब अनेनस का वंश के बारे में बताता हूँ, सुनो। अनेनस का पुत्र शुद्ध,उसका पुत्र शुचि,शुचि से त्रिककुप,उससे धर्मसारथि पैदा हुये।।49।।

धर्मसारथि से शान्तरज जन्म लिया। वह बहुत बड़ा ज्ञानी था,सदाकाल भगवद ध्यान में रहता था, उसको पुत्र न हुये तो भी वह मोक्ष पाया। आयु के तीसरा पुत्र रजि को अत्यन्त पराक्रमशाली पाँच सौ, पुत्र हुए।।50।।

देवताओं की विनती के अनुसार रजि दैत्यों को नाशकर इन्द्र को स्वर्ग का आधिपत्य दिलाया। इन्द्र उस राज्य को पुनः रजि को अर्पण करते हुए उसका पाँव पकड़कर स्वयं को समर्पण किया। इन्द्र प्रह्लाद से डरता था। रजि मरने के बाद उनके पुत्र स्वर्ग की कामना करें तो भी इन्द्र उनको नही दिया। रजि के पुत्र यज्ञ मे इन्द्र को देने वाले आहुति को स्वयं लेने लगे। तब इन्द्र के गुरु बृहस्पत्याचार्य रजि पुत्रों के नाश के लिए अभिचारिक यज्ञ किये। इसके कारण वे धर्ममार्ग को छोड़ दिये। इसी कारण इन्द्र ने उन सबको मार डाला। क्षत्रवृद्ध के प्रतिक्षत्र नाम के

और एक पुत्र था। उसका पुत्र संजय,उसी से जय जन्म लिया ।।51,52,53,54।।

जय से कृत,कृत से वीर्यधन,उससे सहदेव,सहदेव का पुत्र अहीन,उससे जयत्सेन जन्म लिया ।।55।।

जयत्सेन का पुत्र संकृति,उसका पुत्र जय,उसका पुत्र क्षत्रधर्म। ये सारे क्षत्रवृद्ध वंश के राजा बने। आगे नहुष वंश के बारे में बोलता हूँ सुनो -

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में चौदह अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - पन्द्रह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- राजा नहुष को यति, ययाति, संयाति, आयाति, वियति, कृति इस प्रकार जीव के छः इन्द्रियों के समान छः पुत्र थे ।।1।।

प्रथम पुत्र यति ने पिता के दिए हुए राज्य को स्वीकार नही किया।वह ठीक तरह से जानता था कि राज्यादि विषयों मे जो आसक्त है वह भगवान को जान नही सकता इसके लिए वह राज्याधिकार को स्वीकार नही किया ।।2।।

पिता देवेन्द्र के रानी शचि के ऊपर दौर्जन्य करने जाते समय ऋषि शाप से स्वर्ग छोड़कर अजगर बनने के बाद ययाति राजा बना ।।3।।

चार दिशाओं मे अपने चार भाईयों को राजा बनाकर वह। शुक्राचार्य जी के और दैत्यराज वृषपवा के पुत्रियों से शादी किया।।4।।

राजा परीक्षित पूछते हैं- भगवान शुक्राचार्य ब्रह्मर्षि हैं। ययाति क्षत्रिय है। ब्राह्मण और क्षत्रियों मे यह प्रतिलोम विवाह कैसे हुआ। उसका कारण बताइए।।5।।

शुकदेव कहते हैं- यह दैव के वश में अकस्मात हुआ।एक बार दानव राज वृषपर्व की पुत्री शर्मिष्ठा तथा उसकी हजार सहेलियाँ और गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी के साथ अपने नगर के उद्यान में संचार कर रही थीं। उस उद्यान में सारे वृक्ष फूल से भरे थे। सरोवर में रहने वाले कमल पुष्पों में भौंरे गुंजन करते थे ।।6,7।।

कमल के समान आँख वाली वे सारी कन्याएँ अपनी साड़ी को उतार कर सरोवर के तट पर रखते हुए पानी में उतर कर जल विहार करती रहीं। एक के ऊपर एक पानी फेंकते हुए आनन्द मनायीं ।।8।।

इसी समय आकाश में नंदी के ऊपर बैठे शिव पार्वती उसी रास्ते से जा रहे थे। उनको देखकर लज्जित होकर वे सारी कन्याएँ दौड़ कर तट पर आकर साड़ी पहनी।।9।।

राजपुत्रि शर्मिष्ठा गड़बड़ी में अपना मानकर गुरु पुत्री देवयानी की साड़ी को पहन ली।इससे देवयानी क्रुद्ध होकर बोली।।10।।

ये देखो इस दासी ने क्या किया है। यज्ञ के हविष को जैसे कुत्ता ले जाता है वैसे ही यह अल्पस्त्री मेरी साड़ी को पहन चुकी है ।।11।।

ब्राह्मण लोग अपने तप से इस लोक का निर्माण किये हैं। वे परम पुरुष भगवान नारायण के मुख से जन्म लिये हैं। वे परम्ज्योति तत्व को अपने हृदय में ध्यान करते हैं। मंगलकर वेद मार्ग को दिखाते हैं।।12।।

लोक पालक बने हुए देवोत्तम भी उनको नमन करते हैं परम पावन सर्वेश्वर भगवान श्री-निवास भी उनकी स्तुति करते है ।।13।।

ऐसे ब्राह्मणों में हम भृगु वंश के हैं, श्रेष्ठ हैं। शर्मिष्ठा का पिता हमारे पिता का शिष्य है। इतना होते हुए भी शूद्र के वेद का अध्ययन करने के समान यह दुष्ट शर्मिष्ठा हमारी साड़ी को पहनी है।।14।।

देवयानी की इन बातों को सुनकर शर्मिष्ठा पाँव से दबा हुआ साँप के समान रोष से फूत्कार करते हुए बोली ।।15।।

हे भीख माँगने वाली, हम जो अन्न देते हैं उसको खाने के लिए कौए के समान हमारे घर के सामने वाली तुम्हारे अपने जीवन का उपाय क्या है इसको न समझते हुए डींग मार रही हो।।16।।

इस प्रकार कटु शब्दों से शर्मिष्ठा देवयानी को डाटते हुए क्रोध से उसके हाथ में रहने वाले कपड़े को छीनते हुए नंगे शरीर वाली देवयानी को पास में रहने वाले कुएँ मे ढकेल दिया।।17।।

इसके बाद शर्मिष्ठा अपने घर चली गई। उसी समय उसी रास्ते से शिकार करने आया हुआ ययाति राजा पानी पीने के लिए उसी कुएँ को आया।।18।।

नंगी देवयानी को अपना अंगौछा देते हुए राजा हाथ पकड़कर देवयानी को ऊपर खींचा।।19।।

देवयानी अपने प्यार भरे शब्दों से राजा को बोली - हे महाराज, आप शत्रुओं के नगरों को जीतने वाले हैं, आप मेरा हाथ पकड़े हैं। इस हाथ को और कोई दूसरा न पकड़े ।।20।।

हे वीर हमारे सम्बन्ध को भगवान ही निर्माण किये हैं। यह पुरुष प्रयत्न का फल नही है। कुँए में रहने से मुझको तुम्हारा दर्शन हो गया है ।।21।।

हे महाबाहु, कोई ब्राह्मण मेरे हाथ को पकड़ नही सकता क्योंकि बहुत पहले बृहस्पति के पुत्र कच ने मुझको शाप दिया है। मैं भी उसको शाप दी थी ।।22।।

बृहस्पति के पुत्र शुक्राचार्य के पास मृत संजीवनी विद्या को सीखने के उद्देश्य से उनके पास आया और कहा मैं आपको गुरु मानकर एक हजार वर्ष सेवा करूँगा। मुझे अनुज्ञा दीजिए। शुक्राचार्य मान लिए। कच गुरु पुत्री

देवयानी को भी नृत्य, वाद्य, गायन इत्यादि से संतुष्ट किया। इस प्रकार पाँच सौ वर्ष चले गये। मंत्रोपदेश नही मिला। कच के उद्देश्य को समझते हुए असुरगण उसको मार कर भेड़ियों को खिलाये। गाय चराने गया हुआ कच क्यों नही आया ? इससे आतंकित देवयानी पिता से आग्रह करते हुए कच को जीवित करवाया। असुरों ने दूसरी बार उसको मारकर समुद्र में फेंक दिये। फिर भी गुरु के मृत संजीवनी मंत्र से वह पुनः जीवित हुआ। असुरों ने तीसरी बार उसको मारकर जलाकर राख बनाकर उस राख को मद्य में मिलाकर गुरु शुक्राचार्य जी को पिला दिया। देवयानी के आग्रह के कारण शुक्राचार्य उसको पुनर्जीवित किये। वह शुक्राचार्य के पेट के अन्दर रहते हुए वहीं से अभिवादन किया।अब कच बाहर आया तो शुक्राचार्य मर जाते हैं। शुक्राचार्य जी पुत्री को बोले तुम हम दो में से किसी एक को चाह सकती हो। अभी मैं कच को बुलाऊँ तो मेरा पेट चीरकर वह बाहर आता है। मैं मर जाऊँगा। देवयानी ने कहा मुझको दोनों चाहिए। आप पेट में रहने वाले कच को मृत संजीविनी विद्या को उपदेश दें। बाहर आया हुआ कच उसी मंत्र से आपको जीवित करे। इससे कच को संजीविनी मंत्र मिला। कृतार्थ होकर कच शुक्राचार्य को नमस्कार करते हुए अपने घर जाने की तैयारी की। तब देवयानी उससे शादी करना चाही। कच इसका निराकरण करता है। आपके पिता के पेट में रहने के कारण तुम मेरी बहन हो जाती हो। हमारी शादी नही होगी। इससे क्रुद्ध हुई देवयानी मंत्र का फल तुमको न मिले इस प्रकार शाप दिया। इसके बदले में कच भी तुमको ब्राह्मण पति न मिले ऐसे शाप दिया। मंत्र के फल के बारे में कहते हुए मुझको भले फल न मिले किन्तु मैं दूसरों को उपदेश दूँगा। उनको तो मंत्र का फल मिलेगा।

उच्च वर्ण के वधू को निम्न के वर्णवाला से शादी करना प्रतिलोम विवाह होता है। यह शास्त्र से निषेध है।ययाति इसको जानता था।किन्तु दैव संकल्प मानकर वह उसको अपनाया। उसका मन भी देवयानी मे आसक्त हो गया था।वह उसकी इच्छा को स्वीकार कर लिया।।23।।

राजा से अनुमति पाकर देवयानी अपने घर चली गई।पिता के सामने शर्मिष्ठा द्वारा किए हुए कर्म के बारे में रोते-रोते सारी बाते कह दी ।।24।।

भगवान शुक्राचार्य जी को यह बात बहुत बुरी लगी। वे भिक्षुक वृत्ति के समान वाला पौरोहित्य जीवन की निन्दा करते हुए, जमीन में गिरा हुआ धान्य को पाकर जीवन चलाने वाला शिलोंछ वृत्ति को श्रेष्ठ मानते हुए उस प्रदेश को छोड़कर बेटी के साथ चले गये।।25।।

राजा इस विषय को समझकर शुक्राचार्य के देवताओं के पक्ष में होने की निरीक्षा से उनको रास्ते में मिलकर पाँवों पर सिर रखते हुए उनको संतुष्ट किया ।।26।।

शुक्राचार्य जी को क्षणिक क्रोध आया था।वे राजा से बोले राजा, यदि मुझको समाधान करना चाहता है तो मेरी बेटी की बातें मानो।बच्चे झगड़ा करते हैं। मै अपनी अकेली बेटी को छोड़कर जीवित रह नही सकता ।।27।।

राजा शुक्राचार्य जी की बात को मानकर नगर को वापस आ गये। देवयानी अपना शर्त

रखी। मैं शादी करके जहाँ जाती हूँ वहाँ शर्मिष्ठा को मेरी दासी बनकर आना होगा।।28।।

शुक्राचार्य जी यदि नगर छोड़ दिये तो दैत्यों के लिए वह हानिकारक होगा इसको जानकर राजा ने देवयानी की बात को माना और दासियों को साथ में लेकर शर्मिष्ठा देवयानी की दासी बनने के लिए तैयार हो गई।।29।।

ययाति के साथ अपनी पुत्री की शादी करते हुए शुक्राचार्य उसको कहते हैं - हे राजा, तुम कभी भी शर्मिष्ठा को अपने बिस्तर में भाग लेने नही देना।।30।।

देवयानी को उत्तम पुत्र प्राप्त हुआ। उसको देखकर शर्मिष्ठा को भी पुत्र पाने की इच्छा हुई। वह गर्भधारण के योग्य समय में अपनी सहेली के पति राजा से गुप्त रीति से शादी की।।31।।

संतती की कामना करते हुए गर्भधारण समय में आयी हुई स्त्री को निरादर करना अधर्म होता है। यह समझकर धर्मज्ञ राजा शुक्राचार्य की बात याद आने पर भी दैवेच्छा के अनुसार हो, कहते हुए शर्मिष्ठा को स्वीकार लिया।।32।।

देवयानी यदु और तुर्वसु नाम के दो पुत्रों को जन्म दिया।शर्मिष्ठा के पेट से द्रुह्यु,अनु और पूरू नाम के तीन पुत्र जन्म लिये ।।33।।

अपने पति से शर्मिष्ठा को पुत्र हुये हैं यह समझकर देवयानी क्रोध से पतिघर को छोड़कर मायके चली गई ।।34।।

देवयानी को चाहने वाला राजा ययाति उसके पीछे-पीछे जाकर उसको बहुत प्यारी-प्यारी बातों से, पाँव पकड़ना और पाँव दबाना इत्यादि कर्मों से भी देवयानी को संतुष्ट नही कर सका।।35।।

इस बात को समझकर शुक्राचार्य जी क्रोधवश में बोले, हे स्त्री लोलुप, झूठ बोलने वाला और बुद्धिहीन राजा तुमको मानव के रूप को मिटाने वाला घोर वृद्धत्व आ जाय।तुम बूढ़ा बुजुर्ग बन जाओ।।36।।

ययाति गिड़गिड़ाते हुए बोलता है- हे मुनि, मैं अभी युवा हूँ। आपकी पुत्री के साथ मेरी कामेच्छा पूर्ण नही हुयी है।मेरे ऊपर दया करो। मैं अपने पुत्रों में से किसी से यौवन का विनिमय करके काम सुख को भोगना चाहता हूँ। आप कृपा करें।।37।।

शुक्राचार्य जी इस बात को तथास्तु बोले।राजा ययाति अपने वृद्धत्व को विनिमय करने के लिए अपने ज्येष्ठ पुत्र को कहता है-हे पुत्र तुम मेरा यह वृद्धत्व स्वीकार करो। बदले में अपने यौवन को मुझे दो। यह वृद्धत्व तेरे नाना से मुझे मिला है। तुम उसको स्वीकार कर अपने यौवन को मुझे दो। मै उसको पाकर कई वर्षो तक सुख पाऊँगा।।38,39।।

इसके उत्तर में यदु बोला- मैं आपके अभिप्राय से सहमत नही हूँ। यौवन में आने वाले वृद्धत्व से विरक्त होकर मैं रहना नही चाहता।स्त्री सुख के अनुभव के बिना मानव को वैराग्य पाना बहुत कठिन है।।40।।

इस प्रकार राजा ययाति की बात को तुर्वसु, द्युहु और अनु तीनों पिता की आज्ञा को तिरस्कार किये।ये सारे धर्म की प्रज्ञा न रहने वाले है। अनित्य यौवन के विषय सुख को ही वे शाश्वत मानकर रखे हैं।।41।।

अंत में ययाति अपने अंतिम पुत्र पुरुरव को पूछा। पुरूरुव वय में छोटा होते हुए भी गुण में सबसे श्रेष्ठ था। राजा ने कहा बेटा, अपने भाइयों की तरह तुम मेरे आदेश का तिरस्कार मत करो ।।42।।

पुरूरुव कहता है - हे राजा, जन्म दिया हुआ पिता का ऋण इस लोक में कौन चुका सकता है। उनके अनुग्रह से ही पुत्र भगवान को पा सकता है।।43।।

पिता जी की इच्छा को समझकर चलने वाला पुत्र श्रेष्ठ माना जाता है। पिता जी की बात को सुनकर उसके अनुसार करने वाला मध्यम माना जाता है और पिता जी की बात में श्रद्धा न रखते हुए उसको न मानने वाला अधम होता है। उसका निराकरण करने वाला पुत्र ही नही होता है।वह केवल मल है।।44।।

इस प्रकार बोलते हुए पुरू अपने पिता जी के वृद्धत्व को स्वीकार किया। पिता अपने पुत्र के यौवन से विषय सुखों को यथा योग्य अनुभव किया।।45।।

सात द्वीपों के अधिपति ययाति अपनी प्रजाओं को पिता के समान पालन करते हुए शक्ति न खोने वाले इन्द्रियों से बहुत तरह की सुख को अनुभव करता रहा।।46।।

देवयानी भी अपने प्रियकर ययाति की प्यारी बनकर एकांत में मन, बात और शरीर से, अन्यान्य वस्तुओं से परमानन्द दिये ।।47।।

भूमि दक्षिणा देते हुए ययात्ति सर्व देवोत्तम, सर्ववेदवेद्य, सर्वयज्ञभोक्ता श्रीहरि को, अनेक यज्ञों के साथ ने आराधना किया।।48।।

यज्ञ करते समय वह इस रीति से अनुसंधान करता था यह सारा प्रपंच श्री हरि में आश्रय पाता है, आकाश में दिखने वाले मेघ के समान, स्वप्न के बीच मे दिखने वाली वस्तु के समान, इन्द्र जाल के समान, मन की कल्पना के समान, एक क्षण रहकर दूसरे क्षण नाश होने वाला यह संसार अनित्य है, अल्प है और श्री हरि के अधीन है ।।49।।

भगवान सर्वत्र व्याप्त हैं, वैसे ही सूक्ष्म रुप से अपने हृदय गुहा में रहने वाले नारायण को फलेच्छारहित होकर निष्काम कर्म से ययाति ने यज्ञ किया।।50।।

इस प्रकार एक हजार वर्ष काल तक अपने दुष्ट पंचेन्द्रिय और छठा इन्द्रिय मन के साथ कितने भी सुख भोगने के बाद भी ययाति तृप्ति को नही पाया ।।51।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

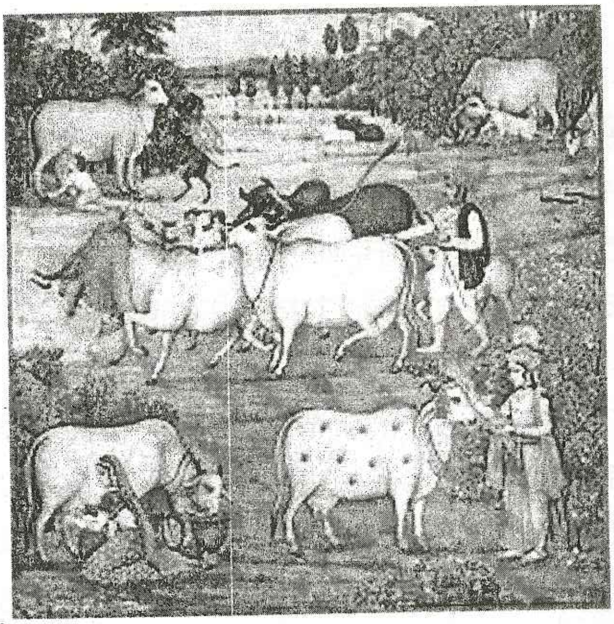

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - सोलह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- ययाति स्त्री लोलुप होकर अनित्य विषय सुखों को भोगते-भोगते नित्यसुखों से वंचित हो रहा हूँ इसको समझकर विरक्त होकर देवयानी को एक कथा कहा।।1।।

हे देवयानी सुनो- ज्ञानी वनवासी लोग मेरे जैसे गृहस्थ जीवी के जीवन को देखकर परिताप से एक कथा बोलते हैं। मै उस कथा को तुम्हारे लिए कहता हूँ सुनो।।2।।

एक बार एक बकरा ने जंगल मे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कुएँ में पड़ी हुई एक बकरी को देखा।।3।।

उसको ऊपर उठाने के लिए अपने सींग से कुएँ की दीवार मे सीढ़ी बनाया। उससे ऊपर आयी हुई वह बकरी, बकरे से प्यार करने लगी।।4।।

उस बकरी के साथ और कई बकरी आ गई।वे सारे इस बकरे के साथ शादी करना चाहते थे।वह उन सबके साथ प्यार से रहने लगा।वह बकरा समर्थ था और सुन्दर भी था।वह पेट भर खाता था ।।5।।

वह बलिष्ठ बकरा खूब खाता था और अनेक बकरियों के साथ खूब खेलता था,और खूब रतिक्रिया करता था ।।6।।

वह सुन्दर बकरा और किसी एक सुन्दरी बकरी के साथ प्यार करने लगा। इसको देखकर पहली बकरी उसको सहन नही कर सकी ।।7।।

बाहर प्यार दिखाते हुए अन्दर दुष्ट मन वाला स्त्री लोलुप और अपनी इन्द्रियों की तृप्ति चाहने वाले उस बकरा को छोड़कर वह बकरी अपने पिता के घर चली गई ।।8।।

स्त्री वश वह बकरा दुःख के साथ बकरी का पीछा करते हुए उसके साथ चला। सारे प्रयत्न करने के बाद भी वह बकरी को जीत नही सका।।9।।

बकरी का यजमान क्रोध से बकरे के वृषण को काट डाला बाद में बकरे के दुःख को सुनकर उनको पुनः जोड़ दिया।।10।।

उस दिन से पुनः अपने वृषण को पाया हुआ वह बकरा कुएँ में मिली हुयी अपनी बकरी के साथ बहुत काल उपभोग करने के बाद आज भी अतृप्त रहता है।।11।।

वैसे मैं भी तेरा वियोग को न सहते हुए दुःखित होकर, तेरे प्रेम वश होकर, तेरे सौंदर्य से मोहित होकर रहा। किन्तु भगवान के बारे में थोड़ा भी विचार नही किया।।12।।

भू लोक में यह गेहूँ,धान,सोना,चाँदी,पशु,स्त्री ये सारे विषय भोग तृष्णा से पीड़ित मेरे मन की इच्छा को पूर्ण करने वाले नही हैं।।13।।

विषय भोग लालसा कभी भी तृप्त नही होती।हविष्य से जैसे आग ज्यादा प्रज्वलित होता है, वैसे यह मन भी विषय लालसा से तृप्त नही होता ।।14।।

सारे जीवियों में अमंगलकर रागद्वेष भावना को न करते हुए सारे जीवि को भगवान के अधीन मानकर समान दृष्टि से जो देखता है उसके लिए सारी दिशाएँ मंगलकर बनती हैं।।15।।

अविवेकियों को भोग लालसा नही छोड़ती।शरीर बूढ़ा होता है किन्तु मन बूढ़ा नही बनता सुख चाहने वालो को दुःखों को लाने वाली दुराशाओं को, छोड़ना चाहिए।।16।।

माँ, बहन, पुत्री के साथ एकांत मे साथ नही बैठना चाहिए।इन्द्रिय बहुत बलशाली होती हैं।वे विद्वान को भी मोहित करती है।।17।।

एक हजार वर्ष तक पुनःबार-बार विषय सुख का अनुभव करने के बाद भी आशा बुझाने के बदले में रोज-रोज बढ़ता जा रहा है ।।18।।

इसके लिए मैं इन विषय लालसाओं को छोड़कर परब्रह्म में मन लगाते हुए द्वंद्व से दूर रहते हुए,अहंकार को त्याग कर ज्ञानियों के साथ रहना चाहता हूँ ।।19।।

ऐहिक,पारत्रिक विषय सुख को क्षण भंगुर मानना चाहिए।उनका चिन्तन नही करना चाहिए,अनुभव नही करना चाहिए।चिन्तन करने से,अनुभव करने से वह संसार बंधन का कारण बनता है,शाश्वत सुख का नाश करता है,इसको जो जानता है वही आत्मज्ञानी बनता है।।20।।

श्री शुकदेव बोलते हैं- ययाति राजा देवयानी को कहकर पुरूरुव को अपने यौवन को वापस देते हुए अपने बुढ़ापे को स्वीकार किया।विषय वासना को छोड़ दिया ।।21।।

आग्नेय दिशा में द्युहु को दक्षिण में यदु को पश्चिम में तुर्वसु को उत्तर में अनु को इस प्रकार ययाति राजा अपने चारों पुत्रों को राजा बनाये।।23।।

वह हजारों वर्ष विषय भोग में रहते हुए उसी को अभ्यास किये हुए अपनी छः इन्द्रियों की आकांक्षाओं को एक क्षण में त्याग दिए।पंखे बढ़ने के बाद जैसे पक्षी अपना घोसले को छोड़कर उड़ जाता है वैसे राजा अपने सुख त्याग दिया ।।24।।

राजा अपने सारे संग को छोड़कर भगवान के अपरोक्ष ज्ञान से सत्वादि त्रिगुणों से आने वाले अभिमान को छोड़कर निर्दुष्ट परब्रह्म वासुदेव की आराधना करते हुए उसी में तज्ञ होकर

जीवन्मुक्तावस्था को पा लिया ।।25।।

ययाति की कथा वास्तव में स्त्री पुरुष अपने स्नेह भंग से किया हुआ वंचना है। देखने के लिए परिहास लगने वाली राजा ययाति की यह कथा विषय वासना को त्यागने के विचार की है इस भाव को देवयानी समझ ली ।।26।।

बन्धुओं के साथ मिलकर रहना भगवान के अधीन की बात है।जो कुछ होता है वह उन्ही के संकल्प से होता है। इस जगत में शाश्वत कोई नही है। जैसे प्याऊ में मिले हुए यात्रिक एक क्षण बैठकर बातें करते है। बाद में उठकर अपनी-अपनी राह पकड़ लेते हैं, वैसे इस जगत में पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री का सम्बन्ध है ।।27।।

स्वप्न के समान ये सारा अस्थिर है। इसमें मन लगाने का उपयोग नही है समझते हुए देवयानी इस संसार में अपनी आसक्ति को छोड़कर श्री कृष्ण में मन रखते हुए लिंग शरीर के बन्धन को तोड़ दिया ।।28।।

हे ज्ञानात्मक भगवान वासुदेव आपको नमस्कार। सारे जीवियों को आश्रय देने वाले, आनन्दमय गुण पूर्ण श्रीहरि आपको नमस्कार ।।29।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - सत्रह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- हे राजा परीक्षित, तुमको जन्म दिया हुआ पुरू वंश की कथा बोलता हूँ। इसके बारे में सुनो।इस वंश में अनेक राजर्षि बने,कई ब्रह्मर्षि बने ।।1।।

पुरू से जनमेजय, उससे प्रचिन्वान,उससे प्रविर,उससे नमस्यु,उससे चारुपद जन्म लिए।।2।।

चारुपद का पुत्र सुद्यु,उससे बहुगव,उसका पुत्र शंयाति,उसके पुत्र हंयाति,उसके पुत्र रौद्राश्व जन्म लिये ।।3।।

रौद्राश्व को ऋतेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, कृतेयु, जलेयु, संतनेयु, धर्मेयु, सतेयु और व्रतेयु नाम के पुत्र हुये ।।4।।

इनमें सबसे छोटा वनेयु नाम का दसवाँ पुत्र है। इनकी माँ है घृताचि नाम की अप्सरा। सम्पूर्ण जगत में व्याप्त रहने वाले मुख्य प्राण को जैसे दस इन्द्रिय हैं वैसे राजा को ये दस पुत्र थे।।5।।

ऋतेयु से रंतिनार जन्म लिया।उनको सुमति,धृव,और अप्रतिरथ नाम के तीन पुत्र हुये। इनमें अप्रतिरथ का पुत्र कण्व ।।6।।

कण्व के पुत्र मेधातिथि।मेधातिथि से प्रस्कण आदि ब्राह्मण पुत्र जन्म लिये।सुमति के पुत्र रैभ्य, उसके दुष्यंत ।।7।।

दुष्यन्त एक बार शिकार करने कण्व ऋषि के आश्रम में प्रवेश किया। वहाँ लक्ष्मी के समान शोभा वाली एक सुन्दर स्त्री को देखा। अपने सेवकों को दूर रखते हुए राजा उस सुन्दरी से बातें करने लगा ।।8,9।।

हे सुन्दरी! तुम्हारे दर्शन से मेरा शिकार करने का श्रम चला गया।काम ताप से जलता हुआ राजा हँसते हुये और बोलता है ।।10।।

कमल के समान आँख वाली हे सुन्दरी! तुम कौन हो। इस जन रहित जंगल में क्या कर

रही हो।।11।।

सुन्दरी ! मैं निश्चित रूप से मानता हूँ कि तुम क्षत्रिय कन्या हो क्योंकि मेरा मन तेरा सहारा चाहता है। पुरू वंश के किसी राजा का मन अधर्म में आसक्त नही होता ।।12।।

शकुन्तला कहती है- मैं विश्वामित्र की बेटी हूँ। माँ मेनका मुझको जंगल मे छोड़कर चली गयी। मेरी जन्म की यह कथा भगवान कण्व ऋषि जानते हैं। हे राजा, कहिये, हम आप लोग की क्या सेवा करें ।।13।।

हे कमल के समान आँख वाले राजा, आप यहाँ विश्राम करें। हम आपको नीवार का चावल से बना हुआ अन्न को परोसेंगे।आप उसको ग्रहण करें और आप इच्छा करते हैं तो यहाँ विश्राम ले सकते हैं।।14।।

दुष्यन्त कहता हैं- हे सुन्दरी, विश्वामित्र की पुत्री होकर जन्म लिए,तुम्हारे लिए यह बात योग्य लगता है,तुम्हारे वंश के लिए सही है।राज्यकन्याओं में यह प्रथा है कि वे अपने पति को स्वयं चुनती हैं ।।15।।

शुकदेव कहते हैं- राजा की बात को शकुन्तला अनुमोदन करते हुए **ओम्** कह दी। देशकाल और विधि विधान को जानने वाला राजा दुष्यन्त शकुन्तला को धर्म के अनुसार गान्धर्व विधि से शादी किया।।16।।

अमोघ वीर्य वाला राजर्षि दुष्यन्त रानी शकुन्तला मे वीर्याधान किया।दूसरे दिन अपने नगर को चला गया।नौ महीने के बाद शकुन्तला पुत्र रत्न को जन्म दिया ।।17।।

कण्व ऋषि उस राजकुमार को जंगल में ही जातकर्मादि संस्कार दिये।बालक जैसे बड़ा हो गया वह सिंह और शेर के साथ,उनके बच्चों के साथ खेलता था ।।18।।

बहुत दिन होने के बाद भी पति के न बुलाने के कारण शकुन्तला अजेय और पराक्रमशाली हरि के अंश युक्त पुत्र को साथ लेकर अपने पति के पास चली आयी ।।19।।

निर्दोषी पत्नी और पुत्र को जनभय से राजा नही स्वीकार किया।तब सब लोग सुन सके इतने आवाज से आकाश से आकाशवाणी सुनाई दिया ।।20।।

यह पुत्र तुम्हारा है। **माँ केवल भायाती जैसे** पुत्र को ग्रहण करती है। बच्चा बाहर आने से पुत्र पिता का बनता है। **आत्मा वै पुत्रनामासि** पिता ही अपने पुत्र का रूप धारण करता है। यह पुत्र भरत तुम्हारा पुत्र है। यह शकुन्तला तुम्हारी पत्नी है। उसकी अवमानना ठीक नही है।।21।।

पुत्र पिता को यमलोक से उठाकर अक्षय विष्णु लोक को ले जाता है।राजा तुमने इस गर्भ को आधान किया है।शकुन्तला जो कहती है वह सत्य है ।।22।।

कालिदास के शाकुन्तल नाटक में दुर्वासा के शाप के कारण शकुन्तला को दुष्यन्त भूल जाता है। पहचान के लिए दिया हुआ अंगूठी को देखने से उसको पुनः शकुन्तला की याद आती है। पद्म पुराण में ऐसे ही कथा आती है। किन्तु भागवत में और महाभारत में शकुन्तला को दुष्यन्त नही भूलता है किन्तु प्रजा के भय से पहले निराकरण करता है। किन्तु अशरीर वाणी को सुनकर शकुन्तला की क्षमा प्रार्थना करने के बाद उसको स्वीकार करता है।

पिता दुष्यन्त मरने के बाद कीर्तिशाली भरत चक्रवर्ती बना। भगवान हरि के अंशयुक्त भरत की महिमा पूरे भू प्रदेश में **तदप्येते श्लोकाः अभिगीताः** इस ऐतरेय ब्राह्मण वेद मंत्र से गाया जाता है।।23।।

भरत के दाहिने हाथ में चक्र का चिन्ह और पाँव मे पद्म रेखा थे। उसने महाभिषेक से अभिषिक्त राजा होकर, सारे राजाधिराजाओं का प्रभु होकर बड़ा यज्ञ किया।।24।।

दीर्घतम मुनि के पौरोहित्य में भरत चक्रवर्ती गंगा तट पर एक्यावन, यमुना तट पर अठहत्तर अश्वमेध याग किये। उन यागों में अग्नि मंथन करें तो अग्नि बहुत जल्दी मिल जाती थी।।25,26।।

सहस्र वद्व संख्या में गायों को ब्राह्मणों के लिए दान दिये। इस प्रकार एक सौ तैंतीस अश्वमेघ याग करके अपने महा वैभव से देवता के वैभव को भी पार किया ।।27।।

तेरह हजार चौरासी संख्या को एक वद्व कहते हैं। भरत ऐसे एक हजार वद्व गो दान किया है।

मष्णार नाम के क्षेत्र मे याग करके सोने से अलंकृत सफेद और काला **वीर** दाँत वाले चौदह लाख हाथी को दान दिया ।।28।।

भरत ने जो महत्व कार्य किया वह कार्य और कोई नही किया है और कोई आगे आने वाला राजा भी नही कर सकता। स्वर्ग को हाथ से छूना जैसे असाध्य है वैसे भरत के अनुसार यज्ञ करना भी असाध्य है।।29।।

भरत दिग्विजय करते हुए किरात, हूण, यवन, आंध्र, कंक, कष, शक इत्यादि ब्रह्मविरोधी म्लेच्छ राजाओं का संहार किया ।।30।।

भरत की सहायता से देवता लोग असुरों को जीत लिये। खोया हुआ अपने स्थान को पुनः प्राप्त किये। असुर लोग जिन देवता स्त्रियों को रसातल को ले गये थे उनको छुड़वाकर वापस ले आये।।31।।

भूमि और आकाश भरत के प्रजाओं ने जो चाहते थे उसको मिलवा दिये। इस प्रकार राजा भरत सत्ताइस हजार वर्ष राज्य भार करते हुये दशों दिशा में अपने राज्य का विस्तार किया।।32।।

सम्राट राजा भरत लोकपालकों की सम्पत्ति और राजाधिराजाओं का वैभव और न रोकने वाले सैन्य के होते हुये भी इन सबको अशाश्वत मानकर विरक्त हो गया।।33।।

हे राजा परीक्षित, भरत को विदर्भ राजा की तीन पुत्रियाँ रानी बनी थी। वे सारे रूप गुण शील में उनके योग्य थीं। किन्तु पुत्र पिता के समान न दिखे तो अपने ऊपर व्यभिचार के आरोप की शंका करते हुये अपने पुत्रों को स्वयं मार दिये ।।34।।

इस प्रकार पुत्र हीन होकर राजा उत्तम पुत्र प्राप्ति के लिए मरुस्तोम नाम का यज्ञ किया। तब मरुद्देवताओं ने पुत्र रूप में भरद्वाज को दिये ।।35।।

अब भरद्वाज की जन्म की कथा बोलता हूँ। उचथ्य मुनि की पत्नी ममता से संग करने के लिए बृहस्पति प्रवृत्त हुआ। तब गर्भिणि होने के कारण वह बृहस्पति को रोकना चाही। बोली मैं तुम्हारे बड़े भाई की पत्नी हूँ। तो भी बृहस्पति रुका नही। गर्भ में रहने वाले दीर्घत्म नाम वाले शिशु का इसका विरोध करने से उसको अंधा होने का शाप देकर वहीं अपने वीर्य को छोड़ दिये। उस वीर्य से भरद्वाज मुनि जन्म लिया।।36।।

भरद्वाज ऋषि ऋग्वेद के छठा मण्डल के द्रष्टार ऋषि हैं।

ममतादेवी, पति अपने को त्याग कर सकता है इस भय से शिशु भरद्वाज को त्याग करने का विचार किया। तब मरु देवताओं वैसा मत करो बोलने से शिशु का नाम भरद्वाज पड़ा ।।37।।

वे आगे बोलते हैं- हे मूर्ख स्त्री! यह भरद्वाज उचथ्य और बृहस्पति दोनों का पुत्र है। यह बृहस्पति के वंश की अभिवृद्धि करता है। दोनों को **पुत्** नाम के नरक से त्र पार करता है इसी के लिए इसका नाम भरद्वाज है। तुम इसकी रक्षा करो।।38।।

इस प्रकार देवताओं से उपदेश पाकर ममता देवी ब्रह्मवर्चस से प्रकाशमान भरद्वाज को पुत्र मानते हुये पति के डर से त्याग दिया। बाद में मरुद्देवताओं ने उनका पालन पोषण किये। भरत चक्रवर्ती वंश के रुक जाने की स्थिति में यानी वितथ होते समय, देवताओं ने भरद्वाज को उनको दिये। इसी कारण भरद्वाज का नाम वितथ भी है ।।39।।

ममता के पुत्र को पहले वेद ही भरद्वाज नाम दिये थे। उस नाम का अर्थ ही दो पिताओं का पुत्र होता है। भरद्वाज उचथ्य के क्षेत्रज पुत्र हैं, बृहस्पति के औरस पुत्र हैं। **तेजस्विनाम् न दोषाय** इस बात के अनुसार बृहस्पति को गर्भिणी संग दोष नही बना। **देवराच्च सुतोत्पत्तिः** इस बात के अनुसार उस युग के नियम के अनुसार सोदर पत्नी का संग दोष कारक नही बना। मूढ़ ममता पति भय से शिशु को त्याग किये तो भी देवताओं ने उसका पालन पोषण किये। उसी से भरत चक्रवर्ती का वंश आगे बढ़ा।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - अठ्ठारह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक देव कहते हैं - भरत चक्रवर्ती के पुत्र का नाम वितथ उसका पुत्र मन्यु, मन्यु से बृहत क्षेत्र, जय, महाविर्य, नर, गर्ग नाम के पाँच पुत्र जन्म लिए।।1।।

नर का पुत्र संस्कृति नाम का राजा बना।

हे राजा! उनमें गुरु और रन्ति देव ये दो संस्कृति के पुत्र हैं। रन्तिदेव की कीर्ति इस लोक और परलोक में प्रसिद्ध है।।2।।

रन्ति देव युद्ध में शत्रुओं का नाश करता था। वह बड़ा दानशूर भी था। बड़े अकाल के समय में भूखे लोगों के, ब्राह्मण के और अतिथियों की आराधना के लिए दो लाख भण्डारियों की नियुक्ति किया था।

अपनी सारी सम्पत्ति को दान कर राजा रन्तिदेव दरिद्र हो गया। अपनी पत्नि पुत्र और कुटुम्ब सहित अन्न न मिलने से कृश होकर किन्तु हरिध्यान में सन्तोष पाता था।।3।।

एक बार उन सारे लोगों को पीने के लिए पानी भी नही मिला। ऐसे अढ़तालिस दिन चले गये, उनचासवें दिन सुबह उनको घी, खीर और दलिया का जल सहित भोजन को किसी ने दिया।।4।।

उसको खाने के लिए राजा अपने घर वालो के साथ बैठे थे। वे स्वयं भूख और प्यास के कारण काप रहे थे। भोजन प्रारम्भ करने के पहले एक ब्राह्मण अतिथि होकर वहाँ आ गया।।5।।

रन्तिदेव उस ब्राह्मण को श्रद्धा से भोजन दिया। सारे अतिथियों में राजा रन्तिदेव भगवान को देखते थे। राजा के आतिथ्य से तृप्त होकर ब्राह्मण चला गया।।6।।

बचा हुआ अन्न को खाने की इच्छा से बैठते समय एक शूद्र अतिथि आ गया। उसमें भी भगवान का चिन्तन करते हुए उसको भी अन्न दान दिए।।7।।

वह शूद्र जाते जाते और एक शूद्र दो कुत्तों के साथ आ गया। महाराजा, मैं और मेरे कुत्ते बहुत भूखे है। दो दिन से खाए नही हैं।।8।।

राजा बचा हुआ अन्न को आदर के साथ उसको और उसके कुत्ते को भी अन्न दिए। राजा उनमें भी भगवान नारायण को देख कर उनको नमस्कार किया।।9।।

अन्त में थोड़ा सा पानी केवल एक को पर्याप्त हो इतना बचा था। उस समय एक अन्त्यज आया। महाराज मै नीच कुल में जन्म लिया हूँ बहुत प्यासा हूँ। थोड़ा सा पानी दीजिए।।10।।

प्यास से थका हुआ कारूण्य पूर्ण बातों से याचना करने वाला उसको देखकर राजा पानी देकर करुणा से अमृत समान बातों से भगवान की प्रार्थना की।।11।।

हे भगवान, मैं राज्य नही चाहता, योगेश्वरों से पाने वाले महरादि लोकों को भी नही चाहता हूँ। मुझे मोक्ष की कामना नही है। सारे जीवियों को होने वाला दु:ख वह मुझे हो और वे सुखी रहें। केवल यही मेरी कामना है।।12।।

जीवन में संघर्ष करते हुए जीने वाले दु:खित जीव को तृप्ति देने वाला थोड़ा सा जल, एक दो कवल देने वाले को भूख, प्यास, शरीर के अन्द्रर रहने वाले दु:ख, आलस्य और बाहर रहने वाले विषाद ये सारे नष्ट हो जाते हैं।।13।।

इस प्रकार बोलते हुए स्वभाव से अत्यन्त करुणाशाली राजा स्वयं मरने की स्थिति में रहते हुए भी हरि ध्यान में सुख देखते हुए बचा हुआ जल को उस अन्तज को पिला दिया।।14।।

फलकामना करने वाले को फल देने वाले तीनों लोको के अधिपति ब्रह्मादि देवताएँ भगवान की आज्ञानुसार ब्राह्मण, शूद्र और कुत्ते के रुप में आकर अपने स्वशक्ति का प्रदर्शन किए थे। ये सारे रन्तिदेव की दानशूरता की परीक्षा के लिए था। इस परीक्षा में राजा पूर्ण रूप से उत्तीर्ण होने के कारण अपने निज रूप में दर्शन दिए।।15।।

राजा उनको नमस्कार किया, कुछ नही माँगा। वासुदेव में स्थिर मन और भक्ति की कामना रखा। वह स्वयं फलाशक्ति न रखने वाला उनका कुटुम्ब भी फल में आसक्त नही था।।16।।

और किसी को कुछ भी न चाहते हुए श्री हरि में मन रखने वाला राजा का संसार बन्धन स्वप्न जैसे होते हुए भी नही सा हो गया।।17।।

रन्तिदेव के सहवास के कारण उसके अनुसरण करने वाले सारे योगी बन गये। नारायणपर बन गये। अन्त में मोक्ष को पाए।।18।।

गर्ग से शिनि का जन्म हुआ। क्षत्रिय शिनि के वंश ब्राह्मण बना। मन्यु के दूसरे पुत्र महावीर्य से दुरितक्ष्य जन्म लिया। उससे त्रय्यारूणि, कवि, पुष्करारूणि नाम के तीन पुत्र हुए। ये तीनों ब्राह्मण बने।।19।।

मन्यु के जेष्ठ पुत्र बृहतक्षेत्र, उसका होत्र, होत्र से हस्ति। आज का हस्तिनावति को इसी ने निर्माण किया।।20।।

इसके पुत्र अजमीढ़, द्वमीढ़ और पुरमीढ़। अजमीढ़ के वंश के प्रियमेध इत्यादि पुत्र ब्राह्मण बने।।21।।

अजमीढ़ से बृहदिषु जन्म लिया। उसका पुत्र बृहद्धनु उससे बृहत्कार्य, उससे जयद्रथ जन्म लिए।।22।।

उसका पुत्र विशद, विशद से श्येनजित जन्म लिए। श्येनजित का पुत्र रुचिराश्व, दृढ़धनु, काश्य और वत्स।।23।।

रूचिराश्व का पुत्र याज, उसका पुत्र पृधुसेन, उससे पार, पार से नीप पुत्र हुए। नीप को एक सौ पुत्र हुए।।24।।

उन सौ में से सबसे बड़ा अणुह भगवद् ध्यान में रहता था। वह शुक मुनि की पुत्रि कृत्वीदेवी में ब्रह्म दत्त नाम के पुत्र को पाया।।25।।

शूकमुनि जन्मजात ब्रह्मचारी, अवधूत और सन्यासी हैं इनको पुत्री कैसे यह समस्या आती है। किन्तु रुद्रांश शुक मुनि एक रूप से यति और एक रूप से गृहस्थ होकर रह सकते हैं। उनके गृहस्त रूप की पुत्री कृत्वीदेवी हो सकती हैं।

योगेश्वर ब्रह्मदत्त गो नाम के अपनी पत्नी में विष्वक्सेन नाम के पुत्र को पाया। रूद्रावतार जैगीषव्यमुनि के उपदेश से योग शास्त्र को रचाया।।26।।

विष्वक्सेन का पुत्र उदक्सेन, उससे भल्लाद ये सारे बृहदिषु के वंश के हैं। द्विमीढ़ के पुत्र यवीनर, उसका पुत्र कृतिमान।।27।।

कृतिमान से सत्यधृति, उससे धृढ़ नेमी, उससे सुपार्श्व, उससे सुमति, उसका पुत्र सन्ततिमान बने।।28।।

सन्ततिमन्त से कृति जन्म लिया। यह हिरण्यनाभ से योगशास्त्र को सीख कर प्राच्यशाम के बारह संहिता को शिष्यों के लिए उपदेश दिया। इसका पुत्र उग्रायुध, उसका नीप पुत्र हुए।।29।।

नीप को क्षेम्य, उसको सुवीर, उससे रिपुंजय, उससे बहुरथ पुत्र हुए। पुरमीढ़ को पुत्र नही हुए।।30।।

अजमीढ़ के वंश में प्रियमेध इत्यादि कई ब्राह्मण बने, ब्रहदिषु इत्यादि कई क्षत्रिय होकर रहे अजमीढ़ का वंश आगे ऐसे बढ़ा। अजमीढ़ के नलिनी नाम की पत्नी में नील नाम का पुत्र जन्म लिया। उससे शन्ति, शन्ति से सुशान्ति, उससे पुराज, उससे अर्क नाम के पुत्र बने।।31।।

अर्क के पुत्र हमर्याश्व, उससे मुदग्ल, यवीनर, बृहदिषु, कांपिल्य, संजय नाम के पाँच पुत्र हुए।।32।।

अपने पाँच देश की रक्षा के लिए और स्वयं को शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध नाम के पाँच विषयों से अपनी रक्षा के लिए ये पाँच पुत्र समर्थ हो इसके लिए उन पाँचों को मिलकर **पंचाल** नाम से पुकारता था।।33।।

मुद्गल से एक ब्राह्मण जाति का निर्माण हुआ, मौद्गल्य नाम का एक गोत्र भी हुआ। उसको जुड़वा बच्चे हुए उनमें से पुरुष पुत्र का नाम दियोदास है।।34।।

बेटी का नाम अहिल्या। उसको गौतम मुनि से शतानन्द नाम का पुत्र हुआ। वह जनक राजा का पुरोहित रहा। सीता राम जी का विवाह इसी ने करवाया। उनके पुत्र शतधृति। यह धनुर्वेद विद्या में बड़ा विशारद था।।35।।

शतधृति के पुत्र शरद्वान। इसको उर्वशी के दर्शन मात्र से वीर्यस्खलन होकर काई में गिर गया। उससे वहाँ ये जुड़वा बच्चे जन्म लिए।।36।।

शिकार के लिए आया हुआ राजा शान्तनु (यह भीष्माचार्य के पिता हैं) इन दोनों बच्चों को प्यार से गोद लिया। उसमे पुरुष बच्चा कृपाचार्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। वे कुरुपाण्डवों के प्रथम शस्त्रास्त्र गुरु हैं। चिरंजीवि होने के कारण महाभारत के युद्ध के बाद भी जीवित रहे हैं। कन्या शिशु का नाम कृपि, वह द्रोणाचार्य की पत्नी बनी।।37।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में अठ्ठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

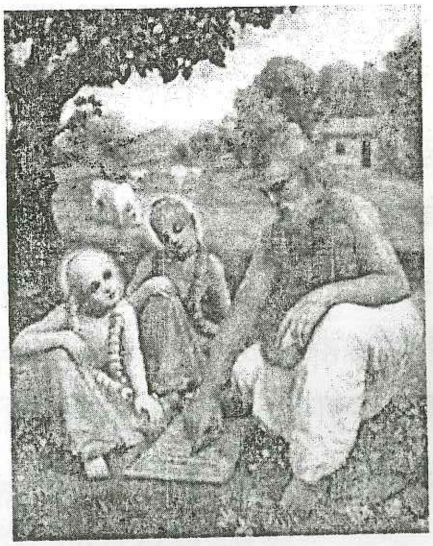

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - उन्नीस

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक देव कहते हैं - हे राजा परीक्षित, सुनो। देवोदोस से मित्रायु जन्म लिया। मित्रायु का पुत्र च्यवन, उससे सुदास, उससे सहदेव, उससे सोमक जन्म लिए सोमक को जन्तु इत्यादि सौ पुत्र जन्म लिए।।1।।

इन सौ में से आखिर का नाम है पृषत। उसका पुत्र द्रुपद। उसको द्रौपदी, दृष्टद्युम्न और सिखन्डि नाम के पुत्र हुए।।2।।

धृष्टद्युम्न से दृष्ट केतु हुआ। हर्म्यश्व के वंश के ये राजा पांचाल नाम से प्रसिद्ध हैं। अजमीढ़ के और एक पुत्र ऋक्ष, उससे संवर्ण जन्म लिया।।3।।

संवर्ण से सूर्यकन्या तपति में कुरुक्षेत्र के अधिपति कुरु नाम का राजा बना। परिक्षित, सुधनु, जन्हु, निषध ये कुरु के पुत्र हैं।।4।।

सुधनु से सुहोत्र, उससे च्यवन, उससे कृति, उससे उपरिचरवसु, उससे बृहद्रथ, कुशाम्बु, मत्स्य, प्रत्यग्र, वेदिष, इत्यादि पुत्र जन्म लिए। ये सारे चेदी देश के राजा बने इन्ही के वंश में शिशुपाल जन्म लेता हैं। वृहद्रथ से कुश, उससे ऋषभ जन्म लिए।।5,6।।

ऋषभ का पुत्र सत्यहित, उसका पुत्र पुष्पवान। उससे जहु नाम का पुत्र हुआ। वृहद्रथ के और एक पत्नी में एक शिशु जन्म लिया। विचित्र है वह शिशु दो टुकड़ो में हुआ था।।7।

उसको देख कर उसकी माँ उन दोनों टुकड़ों को बाहर फेंका। जरा नाम की राक्षसी वहाँ आकर उन दोनों को जोड़कर तुम जीवित हो, तुम जीवित हो ऐसे गाते हुए खेलती रही। उससे जरासंध उसी का पुत्र बन कर जीवित हो गया। यह जरासंध भीम जी के हाथ से युद्ध में मरता है।।8।।

जरासंध का पुत्र सहदेव, उससे सोमापि, उससे शतश्रव। परिक्षित को पुत्र नही हुए। जन्हु का पुत्र सुरथ।।9।।

सुरथ से विदूरथ, उससे सार्वभौम, उससे जयत्सेन उसका पुत्र राचीक, उससे द्युमान जन्म लिए।।10।।

द्युमन्त से क्रोधन, उससे देवातिथि, उससे ऋक्ष, उससे दिलीप, उससे प्रतीप पुत्र हुए।।11।।

प्रतीप के देवापि, शन्तनु और बाल्हीक नाम के पुत्र हुए। देवापि पिता द्वारा दिया हुआ राज्य को छोड़ कर तप करने जंगल गया।।12।।

शान्तनु राजा बना, उसने पूर्व जन्म में ब्रह्मा जी के शाप से महाभिषक नाम से जन्म लिया था। इस जन्म में वह किसी को दोनों हाथों से छुए तो वह वृद्ध होते हुए भी युवा बन जाता था और शान्ति सुख से जीता था। इसके लिए इसका नाम शन्तनु पड़ा। उसके राज्य में एक बार बारह वर्ष का बड़ा अकाल पड़ा।।13,14।।

उस समय ब्राह्मण बोले - राजा, तुम अपने भाई का राज्य भोग रहे हो, यहाँ वृष्टि होकर समृद्धि पाना है तो बड़े भाई को राज्य दे दो।।15।।

ब्राह्मणों के उपदेश के अनुसार शन्तनु बड़े भाई देवापि को बुलाकर राज्य को स्वीकार करने के लिए कहा किन्तु शन्तनु के एक मंत्री ने पहले ही कई ब्राह्मणों को भेजकर उनसे देवापि को अधर्म बोलकर वेद धर्म से उसको विमुख किया था। शन्तनु प्रजा पालन ही धर्म मानकर राज्य भार किया किन्तु देवापि प्रजा पीड़ा ही धर्म मान कर चला। इससे वह राज्य चलाने के लिए अनर्ह बना। देवताओं ने अर्ह शन्तनु को राजा बनाए। इससे सन्तुष्ट होकर इन्द्रदेव वर्षा किए।।16।।

बाद में देवापि हरि ध्यान करते हुए कलाप ग्राम में वास करता है। कलियुग में चन्द्र वंश नाश होने के कारण कृत युग के आदि में यह पुन: राजा बनकर चन्द्र वंश को आगे बढ़ाता है।।17।।

बाल्हिक से सोमदत्त, उससे भूरी, भूरिश्रव और शल्य नाम के तीन पुत्र हुए। शन्तनु से गंगा देवी में प्रबल मन निग्रह करने वाला भीष्म जन्म लिए।।18।।

भीष्म सर्व धर्मज्ञ थे, वे भगवद्भक्त, श्रेष्ठ ज्ञानी और वीर समूह में अग्रेसर थे। अम्बा से शादी न करने के कारण परशुराम जी से युद्ध करते हुए उनको भी हरा कर उनको सन्तोषित किए।।19।।

शन्तनु से मछुआरों की पुत्री सत्यवति में चित्रांगद और विचित्रवीर्य नाम के दो पुत्र हुए। पहला पुत्र चित्रांगद उसी नाम के गन्धर्व से युद्ध में मारा गया।।20।।

इसके पहले सत्यवती से वेद रक्षा के लिए साक्षात भगवान हरि के अंश रूप से पाराशर से कृष्ण द्वैपायन मुनि अवतार लिए। मैं उनका पुत्र हूँ, उन्ही से यह भागवत पुराण का अध्ययन किया हूँ।।21।।

भगवान बादरायण अपने प्यारे शिष्य पैल, जैमनी इत्यादियों को छोड़कर पुत्र और भक्त मुझको अत्यन्त गूढ़ इस भागवत का उपदेश दिए।।22।।

भीष्माचार्य द्वारा स्वयंवर मंडप से जीत कर लाए हुए काशीराज की पुत्री अम्बिका और अम्बालिका से विचित्रवीर्य ने शादी किया।।23।।

इन दोनों में वह विपरीत अनुरक्त होकर जीवन करने से विचित्र वीर्य क्षय रोग से मरण पाया।।24।।

छोटा भाई विचित्र वीर्य के निपुत्रक होकर मरने के कारण माता जी के आदेश के अनुसार बादरायण वेदव्यास जी उसकी पत्नी में धृतराष्ट्र, पाँडु और विदुर को जन्म दिए।।25।।

हे राजा, धृतराष्ट्र को अपनी गांधारी नाम की पत्नी से एक सौ पुत्र जन्म लिए। उनमें दुर्योधन सबसे बड़ा पुत्र। दुश्यला नाम की कन्या भी जन्म ली।।26।।

किन्दम मुनि के शाप से पाँडु स्त्री संग नही कर सकता था। उसकी पत्नी कुन्ती में यम, वायु, इन्द्र ने महारथी युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन को जन्म दिये।।27।।

नासत्य और दश्र नाम के अश्विनी कुमारों से पाँडु की दूसरी पत्नी माद्री में नकुल, सहदेव जन्म लिए। उन पाँचों से द्रौपती में पाँच पुत्र जन्म लिए। वे तुम्हारे बड़े पिता होते हैं।।28।।

युधिष्ठिर के प्रतिविन्ध्य, भीम के श्रुतसेन, अर्जुन के शतकीर्ति, नकुल के शतानीक, सहदेव के श्रुतकीर्ति ये भी तुम्हारे अलग बड़े पिता हैं। युधिष्ठिर के पौरवि नाम की पत्नी में देवक, भीमसेन के हिडम्बा नाम की पत्नी में घटोत्कच और काली में शर्वगत, सहदेव के विजया नाम की पत्नी में सुहोत्र नाम के जो पुत्र बने वे भी तुम्हारे बड़े पिता हैं।।31।।

नकुल की पत्नी करेणुमति निरमित्र को जन्म दी। अर्जुन उलूपि में इरावन्त, मणलूर राजा की पुत्री चित्रांगदा में बब्रुवाहन को पुत्र रूप में पाया। मणलूरा राजा के पुत्री के पुत्र को अपने पुत्र रूप में ग्रहण किया। तुम्हारे पिता अभिमन्यु सुभद्रा में जन्म लिए।।32,33।।

अभिमन्यु सारे अतिरथ महारथों को जीतने वाला, उससे उसकी पत्नी उत्तरा के गर्भ से तुम्हारा जन्म हुआ। कुरुवंश में रहने वाले सारे अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से सारे मर जाने के कारण तुम अकेले श्री कृष्ण से रक्षित होकर मरण से छुटकारा पाकर अकेले रह गये। तुम्हारे पुत्र जनमेजय इत्यादि।।34,35।।

श्रुतसेन, भीमसेन, उग्रसेन और वीर्यवान ये सारे जनमेजय के छोटे भाई। आगे तक्षक से तुम्हारे मरण को सुनकर क्रोध से जनमेजय सर्प याग करते हुए सारे सर्पो का हवन करने वाला हैं उस समय कवषा पुत्र तुरनाम के मुनि को पुरोहित करते हुए अश्वमेध याग में सारे भूमि को जीत कर सकल पुण्य क्षेत्रों में यज्ञ करने वाला है। उसका पुत्र शतानीक याज्ञवल्क से वेद का अध्ययन, कृपाचार्य से अस्त्रज्ञान और शौनक से भगवान के तत्व ज्ञान को पा लेता हैं उसका पुत्र सहस्त्रानीक, अश्वमेध याग के फल रूप में उसका जन्म होता

है।।37,38,39।।

सहस्त्रानीक का पुत्र विश्रम्भ कृष्ण, उसका पुत्र नेमिचक्र। हस्तिनावति जमुना जी में डूब जाने के कारण इसने कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाता है।।40।।

नेमीचक्र का पुत्र उक्त, उसका पुत्र चित्र रथ, उसका पुत्र सुचिरथ, उससे दृष्टिमान, उससे सुषेण जन्म लेंगे।।41।।

उस सुषेण से सुनीथ जन्म लेने वाला है, उसका पुत्र नृचक्षु, उससे सुखीनल, उससे परिप्लव, उससे मेधावी उसका पुत्र सुनय जन्म लेने वाले हैं।।42।।

सुनयन से नृपंजय, उससे दूर्व, उससे तिमि, उससे वृहद्रथ, उससे सुदास, सुदास से शतानीक जन्म लेने वाले हैं।।43।।

शतानीक के पुत्र दुर्दमन,उसका पुत्र बहीनर, उससे दण्डपाणि, उससे निमि, निमि से क्षेमक जन्म लेने वाले हैं।।44।।

ब्राह्मण और क्षत्रियों के लिए मूल, देवता और ऋषियों के लिए पूज्य चन्द्र वंश, क्षेमक राजा के अन्त से इस कलियुग में अवसान पाने वाला है।।45।।

इन राजाओं का नाम संकीर्तन से सारे पाप नाश होते हैं। इसके आगे मैं मगध राजवंश की कथा को बोलता हूँ।।46।।

सहदेव से सोमापि, उससे श्रुतश्रव, उससे अयुतायु, उससे निरमित्र जन्म लेने वाले हैं।।47।।

निरमित्र का पुत्र सुनक्षत्र, उससे बृहत्सेन, उससे कर्मजित, उससे श्रुतंजय, उससे विप्र , विप्र से शुचि पुत्र होते हैं।।48।।

सुचि से क्षेम, उससे सूरत, उससे धर्मसत्र, उससे सम, उससे दृढ़सेन, उससे सुमति, सुमति से सुबल जन्म लेते हैं।।49।।

सुबल से सुनीथ, उससे सत्यजित, उससे विश्वजित, उससे रिपुंजय पुत्र होते है। इस प्रकार बृहद्रथ के वंश के राजा हजार वर्ष राज्य भार करते हैं।।50।।

आगे के राज वंश के बारे में द्वादश स्कन्ध में कहते हैं।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - बीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - ययाति पुत्र पुरू के बारे में बता दिए अब ययाति का और एक पुत्र अनु के वंश के बारे में बताते हैं। अनु को सभानर, चक्षु, परेक्षु नाम के तीन पुत्र हुए। सभानर से कालनर उससे संजय जन्म लिए।।1।।

संजय का पुत्र जनमेजय, उसका महाशील उससे महामन, महामन का पुत्र उसीनर अड्डौर तितिक्षु।।2।।

उसीनर के चार पुत्र थे शिवी, वन, शमी, दक्ष नाम के। शिवी को भी वृषदर्भ, सुवीर, मद्र, कैकय नाम के चार पुत्र हुए तितिक्षु से पृषद्रथ, उससे हेम, उससे सुतप, सुतप से बलि जन्म लिया।।3,4।।

बलि की पत्नी में दीर्घतमा ऋषि की कृपा से अंग, वंग कलिंग नामके प्रधान राजा और सुह्म, पुण्ड्र और आन्ध्र नाम के अन्य राजा भी जन्म लिए।।5।।

ये छः राजाओं ने अपने अपने नाम से पूर्व की दिशा में अलग छः राज्य बनाए। अंग से खनपान जन्म लिया, उससे दिविरथ।।6।।

दिविरथ से धर्मरथ, उससे मित्ररथ जन्म लिए। मित्ररथ को पुत्र नही हुए। उसको रामपाद भी कहते थे। उसको केवल शान्ता नाम की एक बेटी हुई। उसको वह अपने मित्र दशरथ को दत्तक दे दिया। उसका विवाह ऋष्यशृंग मुनि से हुआ।।7।।

रोमपाद के राज्य में जब बारह वर्ष वर्षा नही हुआ तब हिरण के पेट से जन्म लिया हुआ ऋष्यशृंग को राज्य में बुलाये तो पानी बरसेगा ऐसा ऋषि मुनियों ने कहा, उसके अनुसार रोमपाद ने ऋष्यशृंग को लाने के लिए वेश्यास्त्रियों को भेज दिया। वे अपने संगीत, वाद्य, नृत्य, शृंगारविलास, आलिंगन और सत्कारों से अपने वश में लेते हुए रोमपाद के राज्य में लाए। उनके आते ही वहाँ मूसलाधार वर्षा हुई। राजा शान्ता से मुनि का विवाह किया।।8।।

सन्तान न होने के कारण राजा रोमपाद से ऋष्यशृंग ऋषि इन्द्रेष्टि नाम यज्ञ को करवाए। उससे राजा

को पुत्र हुआ। दशरथ भी इसी यज्ञ को करते हुए चार पुत्रों को पाया।।9।।

रोमपाद से चतुरंग जन्म लिया। उसका पुत्र पृथुलाक्ष उसके बृह्द्रथ, बृहद्कर्म, बृहद्भानु ये तीन पुत्र हुए। बृहद्भानु से बृहन्मन, उससे जयद्रथ जन्म लिए।।10,11।।

जयद्रथ का पुत्र विजय, विजय से उसके सम्भूति नाम की पत्नी में धृति जन्म लिया। धृति से धृतव्रत, उससे सद्धर्म, उससे अधिरथ जन्म लिया।।12।।

अधिरथ गंगा तीर में विहार करते समय नदी में एक पेटी बहता हुआ देखा। उसमें कुन्ती से अपनी कन्यावस्था में त्याग किया हुआ शिशु को पाया। उसका नाम कर्ण पड़ा।।13।।

कर्ण का पुत्र वृषसेन, ययाति के और पुत्र दृह्यु उसका पुत्र बभ्रू, उसका पुत्र सेतु।।14।।

सेतु से आरब्ध, उससे गान्धार, उससे धर्म, उससे धृत, धृत से कर्दम, उससे प्रचेत जन्म लिए। प्रचेत को एक सौ पुत्र हुए। उनको प्राचेतस कहते हैं।।15।।

ये सौ पुत्र उत्तर दिशा में म्लेच्छाधिपति बने। तुर्वसु, ययाति के और एक पुत्र हैं। उसका पुत्र वन्हि, उससे भग, भग से भूनुमान् जन्म लिए।।16।।

उसको नृभानु, उससे करन्धम, उससे मरुत जन्म लिये। मरुत को पुत्र नही हुए। उसके लिए वह पूरुवंश के दुष्यन्त को दत्तक लिया।।17।।

किन्तु दुष्यन्त साम्राज्य की अपेक्षा से अपने जन्म दिए हुए पुत्र के पास ही चला गया। यह दुष्यन्त भरत के पिता दुष्यन्त से अलग हैं।।18।।

ययाति के ज्येष्ठपुत्र यदु के वंश के बारे में कहता हूँ। राजा यह कथा सारे पाप को हरण करती है और महापुण्य कारक है।।19।।

इस यदु वंश में भगवान नारायण स्वयं मानव रूप में अवतार लिए। इसके लिए यदु वंश की कथा को सुने तो सारे पाप चले जाते हैं।।20।।

यदु को सहस्त्रजित, क्रोष्टु, नल, रिपु नाम में चार पुत्र हुए। उसमें प्रथम पुत्र सहस्त्रजित का पुत्र शतजित, उसके पुत्र महाहय, वेणुहय और हैहय।।21।।

हैहय का पुत्र धर्म, उससे नेत्र, उससे कुन्ती, उससे सोहंजि, उससे महिष्मान, उससे भद्रसेनक, उससे दुर्मद और धनक पुत्र हुए। धनक के पुत्र कृतवीर्य, कृत्याग्नि, कृतवर्म और कृतौज।।22,23।।

कृतवीर्य के पुत्र कार्तवीर्याजुन। यह सात द्वीपों का राजा बना। हरि के अंश दत्त त्रेय से अणिमादि

अष्ट सिद्धि को पाकर शौर्यादि महागुणों को पा लिया। यम, दान, तपस, योगों से, अध्ययन, पराक्रम इत्यादि में कार्तीवीर्यार्जुन को हराने वाला और कोई नही था। पचासी वर्ष तक अपने न घटने वाले शरीर बल से वह सदा हरि स्मरण करते हुए राज्य भार किया।।24,25,26।।

वह सदा काल हरि स्मरण करता था। भगवान विष्णु को न भूलते हुए अपने छः इन्द्रियों से भोग भाग्य, सुख सम्पदाओं का अनुभव किया। उनको दस हजार पुत्र थे। रणरंग में युद्ध करते उनमें केवल पाँच बचे।।27।।

जयध्वज, शूरसेन, ऋषभ, मधु, ऊर्जीत उनका नाम हैं। जयध्वज से ताल जंघ जन्म लिया। उसको सौ पुत्र हुए। तालजंघ के सौ पुत्रों को राजा सगर चक्रवती ने युद्ध में मारा। उनमें ज्येष्ठ का पुत्र वीतहोत्र, मधु का पुत्र वृष्णि।।29।।

मधु को सौ पुत्र थे। वृष्णि उसमें ज्येष्ठ हैं। यह मधु और वृष्णि से यदु कुल का विस्तार हुआ इन कुलों के राजाओं को माधव, वृष्णि और यादव कहते हैं।।30।।

यदु पुत्र क्रोष्टु का पुत्र वृजिवान, उससे वाहि, उससे रुकेषु, उससे चित्ररथ, जन्म लिए।।31।।

चित्ररथ से शशबिन्दु जन्म लिया, उसको महाभोज भी कहते हैं। यह महायोगी और महात्मा था। इसकी सभा में चौदह पंण्डित रत्न थे। वह चक्रवर्ती बना, उसको कोई हरा नही सकता था।।32।।

शशबिन्दु महाराज को दस हजार पत्नियाँ थीं। उसमें प्रत्येक पत्नी में एक लाख के अनुसार कुल सौ करोड़ पुत्रों को पाया।।33।।

उनमे छः अत्यन्त प्रधान थे। उनमे से प्रथम पृथुश्रवस का पुत्र धर्म, धर्म से उशनस। इसने सौ अश्वमेध याग किया।।34।।

उशनस का पुत्र रुचक। उनको पुरुजित, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु, ज्यामघ नाम के पाँच पुत्र हुए।।35।।

ज्यामघ को पुत्र नही हुए। उसकी पत्नी का नाम शैब्या, वह बाँझ थी। पत्नी के भय से राजा दूसरी शादी नही किया। एक बार युद्ध करते समय शत्रु के घर से एक सुन्दरी कन्या को जबरन लाकर अपने रथ में बैठा दिया।।36।।

रथ में आया हुआ उस कन्या को देखते हुए क्रोध से शैब्या अपने पति से पूछी - हे वञ्चक, यह लड़की कौन है। मेरे रथ में इसको क्यों बैठाया है?।।37।।

राजा घबरा गया और भय में कुछ नही बोल पाया। अन्त में बोला यह तेरी बहू बनने वाली है। पति को देखते हुए हँस कर शैब्या बोली - मै तो बाँझ हूँ, मुझको कोई सौत भी नही है, बोलिए यह मेरी बहू कैसे

बनेगी।।38।।

राजा झट से बोला - रानी ऐसा मत बोलो तुम एक पुत्र की माँ बनेगी। तब यह स्त्री तुम्हारी बहू बनेगी। राजा की इस दुर्दशा को देखकर विश्वेदेवताओं ने और पितृओं ने तथास्तु बोले।।39।।

दैवानुग्रह से शैब्या गर्भवती बनी। समय के बाद एक सुन्दर सुकुमार को जन्म दी। उसका नाम विदर्भ था। पिता के आदेश के अनुसार वह उसी कन्या से शादी किया।।40।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

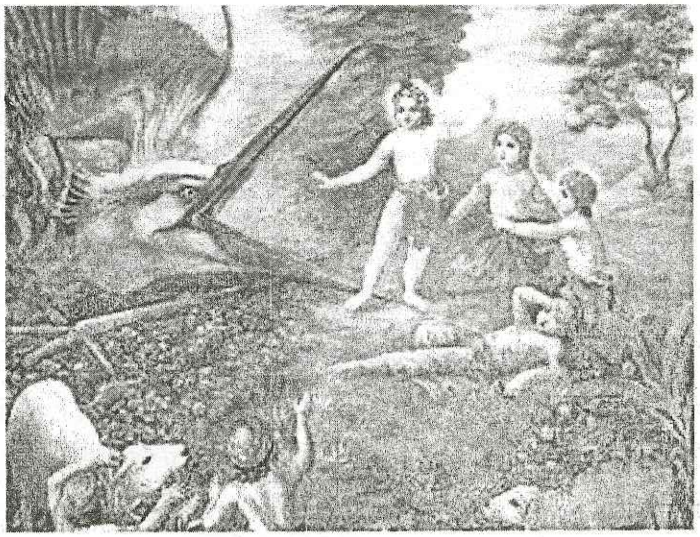

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

नवम स्कन्धः

अध्याय - इक्कीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- राजा विदर्भ के उस पत्नी में कुश और क्रथ नाम के दो पुत्र हुये। बाद में विदर्भ कुल की समृद्धि देकर वैभव करने वाला रोमपाद नाम के तीसरे पुत्र को भी पाया।।1।।

रोमपाद के पुत्र बभ्रु, बभ्रु से कृति, उससे उशिक, उशिक से चेदि, चेदि से शिशुपालादि जन्म लिये।।2।।

क्रथ के पुत्र कुन्ति, उसका पुत्र बली, बली का पुत्र निर्वृति, उससे दशार्ह, उसका पुत्र व्योम।।3।।

व्योम से जीमूत, उसका पुत्र विकृति, उससे भीमरथ, उससे नवरथ और उससे दशरथ जन्म लिये।।4।।

दशरथ से शकुनि, शकुनि से करंभि, उससे देवरात, उससे देवक्षत्र, उससे मधु उससे कुरुवश उससे अनु जन्म लिये।।5।।

अनु के पुत्र पुरुहोत्र, उससे आयु, आयु से सात्वत जन्म लिये। सात्वत को भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अंधक और महाभोज नाम के सात पुत्र हुये। भजमान को एक पत्नी मे निम्लोचि, किंकिण और दृष्टि नाम के तीन पुत्र हुये, दूसरी पत्नी में शताजित, सहस्राजित, अयुताजित नाम के तीन पुत्र हुये।।6,7,8,।।

देवावृध के पुत्र बभ्रु। ये पिता पुत्र के कीर्ति की गाथा दोनो लोकों से की गई है। भागवत कहता है कि इन पिता पुत्रों की कीर्ति दूर से जैसे सुनते हैं वैसे समीप में भी देखते हैं। मनुष्यों में बभ्रु श्रेष्ठ है, देवाधृत देवताओं के समान है।।9।।

दूर से बहुत सुन सकते हैं। समीप जाने से वहाँ कुछ नही रहता। इन पिता पुत्र के बारे में वैसा नही है। उनके समीप जाने के बाद भी उनकी कीर्ति यथा रीति है।

छः हजार तिहत्तर लोग बभ्रु और देवावृध के उपदेश से मोक्ष पाये ।।10।।

महाभोज बड़ा धर्मात्मा था।उसके वंश के लोगों को भोज बोलते हैं ।।11।।

वृष्णि के पुत्र सुमित्र और युधाजित। सुमित्र का पुत्र शिनि, शिनि का पुत्र अनमित्र, उससे निम्न जन्म लिया।।12।।

निम्न के पुत्र सत्राजित और प्रसेनजित। सत्राजित श्री कृष्ण की पत्नी सत्यभामा के पिता। अनमित्र के दूसरे पुत्र शिनि से सत्यक जन्म लिया।।13।।

सत्यक के पुत्र सात्यकि, उसका नाम युयुधान भी था।उसका पुत्र जय, जय से कुणि, उससे युगंधर पुत्र हुये। अनमित्र के और एक पुत्र पृश्नि।।14।।

इस प्रकार अनमित्र को निम्न,शिनि,पृश्नि नाम के तीन पुत्र हुये।

पृश्नि के दो पुत्र थे श्वफल्क और चित्ररथ नाम के।श्वफल्क से गांदिनि नाम की पत्नी में अक्रूर और अन्य बारह पुत्र हुये।।15।।

अक्रूर के उन बारह भाईयों के नाम हैं - आसंघ, सारमेय, मृदूर, मृदुवित, गिरि, धर्म, विदृष्टकर्म, क्षेत्रोपेक्ष, अरिमर्दन, शत्रुधन, गंधमोद, प्रतिबाहु। इनको सुसारा नाम की एक बहन थी।अक्रूर को दो पुत्र थे।।16,17।।

उनका नाम था देववान और उपदेव।चित्ररथ के पुत्र पृथु,विपृथु इत्यादि बहुत पुत्र हुये।ये सारे सात्वत पुत्र वृष्णि के वंश की कीर्ति को बढ़ाये ।।18।।

सात्वत पुत्र अंधक के पुत्र हैं कुकुर,भजमान,शुचि और कंबलबर्हिष। कुकुर के पुत्र धृष्णु,उसका पुत्र विलोम ।।19।।

विलोम से कपोतरोम, उसका पुत्र अनु।तुम्बुर गन्धर्व उसके मित्र थे। अनु के पुत्र दुदुंभि, उसका पुत्र परिद्योत, उसका पुत्र पुनर्वसु।।20।।

पुनर्वसु के दो पुत्र आहुक और आहुकि। आहुक के दो पुत्र देवक और उग्रसेन। देवक को चार पुत्र हुये।।21।।।

उनके नाम हैं- देववान, उपदेव, सुदेव और देववर्धन। इनके धृतदेवा इत्यादि सात बहन थीं।।22।।

उनके नाम हैं- धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी। इन सातों से वसुदेव ने शादी किया।।23।।

कंस, सुनाम, न्यग्रोध, कंक, शंकु,सुभ्रू, राष्ट्रपाल, अब्दसृष्टि और तुष्टिमान ये सारे उग्रसेन के पुत्र थे।।24।।

कंसा, कंसवती, कंका, सुरभू, राष्ट्रपालिका ये सारे उग्रसेन की पुत्री। ये वसुदेव के भाइयों के साथ शादी किये।।25।।

अंधक पुत्र भजमान से विदूरथ जन्म लिया। विदूरथ से शूर जन्म लिया। यह वसुदेव के पिता से अलग हैं। इससे शिनि जन्म लिया,उससे स्वयंभोज,उससे हृदिक जन्म लिया ।।26।।

देवबाहु, शतधनु, कृतवर्म और देवमीढ़ ये चार हृदिक के पुत्र। इनमे देवमीढ़ का पुत्र शूर। इसकी पत्नी का नाम मारिषा।।27।।

शूर मारिषा में पाप रहित दस पुत्रों को पाया। वे हैं- वसुदेव, देवभाग, देवश्रवस, आनक, सृंजय, शामक, कंक, अनीक, वत्सक, वृक। इनमे वसुदेव के जन्मकाल मे देवदुंदुभि और आनक का आवाज हुये। श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव इसका नाम आनकदुंदुभि यह भी पड़ा। इन दस शूर पुत्रों को पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा, राजाधिदेवी ये पाँच भगिनी थे। इसमें पहली पुत्री पृथा को शूर राजा के मित्र कुन्तिभोज को बच्चे न होने के कारण दत्तक दिया।।28,29,30,31।।

पृथा दुर्वासा ऋषि की सेवा करते हुये उसको संतुष्ट कर देवताओं की आवाहन करने का मंत्रोपदेश पा ली। मंत्र की शक्ति को परीक्षा करने के लिये स्नान करके शुचिर्भूत होकर मंत्र से सूर्य का आवाहन की।।32।।

भगवान सूर्यदेव आ गये।उसको देखकर मन में आश्चर्य चकित होकर कुन्ती बोली- भगवान क्षमा करें। मैं केवल मंत्र शक्ति की परीक्षा करने के लिए आपको बुलाई। कृपा करके आप वापस चले जायें।।33।।

इससे सूर्य बोले - देव का दर्शन व्यर्थ नही होता। मैं तुमको एक पुत्र को देता हूँ। तुम्हारी कन्यात्व नष्ट नही होगा।।34।।

इस प्रकार कहते हुये सूर्य उसमे गर्भाधान करते हुये अंतरिक्ष को चले गये। तब दूसरे सूर्य के समान उससे एक पुत्र जन्म लिया।।35।।

लोकापवाद के भय से कुन्ती उस शिशु को नदी के पानी में पेटी में रखकर बहा दी। बाद मे महापराक्रमी तुम्हारे बाबा के पिता पाण्डु राज ने पृथा से शादी किया।।36।।

श्रुतदेवी को करूषाधिपति वृद्धशर्म व्याह लिया। उसमे सनकादि मुनि से शाप पाया हुआ विजय रावण होने के बाद दंतवक्र नाम से जन्म लिया।।37।।

केकय देश के अधिपति दृष्टकेतु श्रुतकीर्ति से शादी किया। उसको संतर्दन इत्यादि पाँच पुत्र हुये। उनको कैकय भी कहते हैं।।38।।

राजाधिदेवी में अवंति देश के अधिपति जयत्सेन, विंद, अनुविंद नाम के पुत्रों को पाया। श्रुतश्रवा से चेदिराज के दमघोष शादी कर लिया।।39।।

इन दोनो के पुत्र शिशुपाल इसके जन्म के बारे मे सातवाँ स्कन्ध मे कहे हैं। वसुदेव का भाई देवभाग और उसकी पत्नी कंसा इन दोनों चित्रकेतु और बृहद्बल नाम के दो पुत्रों को पाये।।40।।

वसुदेव के भाई देवश्रव से कंसवती मे सुवीर और इषुमान जन्म लिये। आनक से कंका में

सत्यजित, पुरजित जन्म लिये।।41।।

सृंजय से राष्ट्रपाली में वृष और दुर्मर्षण नाम के पुत्र जन्म लिये। श्यामक से सूरभूमि में हरिकेश और हिरण्याक्ष जन्म पाये।।42।।

वत्सक मित्रकेशी नाम की अप्सरा में वृक इत्यादि पुत्रों को उत्पन्न किया। वृक ने ऊर्वशी में तक्ष, पुष्कर और शाल इत्यादि पुत्रों को पाया।।43।।

अनिक ने सुदामिनी में सुमित्र, अर्जुन, बाण इत्यादि पुत्रों को पाया। कंक कर्णिका में ऋतुधाम, जय नाम के पुत्रों को पाया।।44।।

आनकदुंदुभि (वसुदेव) को पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला, देवकी इत्यादि बहुत पत्नियाँ थीं।।45।।

वह बलराम, गद, सारण, दुर्मद, विपुल और ध्रुव नाम के पुत्रों को रोहिणी में उत्पन्न किया।।46।।

सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद,भद्र, भूत इत्यादि बारह पुत्र पौरवी में जन्म लिये।।47।।

नंद, उपनंद, कृतक, शूर इत्यादि पुत्र वसुदेव से मदिरा नाम की पत्नी में जन्म लिये।कोसल देश के राज कुमारी भद्रा में केशी नाम के एक कुलदीपक पुत्र जन्म लिया।।48।।

रोचना नाम के पत्नी में हस्त, हेमांगद नाम के पुत्र जन्म लिये। इला नाम के पत्नी में पुरुवल्क इत्यादि मुख्य यादव जन्म लिये।।49।।

धृतदेवा में वसुदेव से त्रिपृष्ठ जन्म लिया, शान्तिदेवी में प्रश्रम, प्रश्रित इत्यादि जन्म लिये।।50।।

उपदेवी में कल्प, वर्ष इत्यादि दस पुत्र जन्म लिये। बाद में वे राजा बने। वसु हंस सुधन्व इत्यादि छः पुत्र श्रीदेवी में जन्म लिये।।51।।

देवरक्षिता में गद इत्यादि नव पुत्र जन्म लिये। सहदेवी में आठ पुत्र जन्म लिये।।52।।

धर्मनाम वसु अपनी पत्नी में अष्टावसु को जैसे जन्म दिया वैसे वसुदेव अपनी पत्नी सहदेवा से पुरु, विश्रुत इत्यादि आठ पुत्रों को पाया। वैसे देवकी से भी आठ पुत्रों को पाया।।53।।

कीर्तिमान, शुशेण, भद्रसेन, ऋजु, संमर्दन, भद्र और शेषावतारी संकर्षण ये सात जन्म लिये।।54।।

आठवाँ पुत्र वसुदेव और देवकी में स्वयं भगवान श्रीहरि जन्म लिये। तुम्हारी दादी सुभद्रा भी उनकी बहन होकर जन्म ली।।55।।

जब-जब धर्म का नाश होता है और अधर्म बढ़ता है तब सर्व शक्त भगवान श्री हरि स्वयं इस लोक में दृश्यमान होते हैं।।56।।

हे राजा सर्व शक्त सर्वज्ञ भगवान के अवतार के लिये और लीला के लिए उनकी इच्छा के

बिना और कारण नही रहता।।57।।

भगवान की इच्छा के अनुसार इस ब्रह्माण्ड में जीव जगत की उत्पत्ति स्थिति लय होते हैं। उन्ही के अनुग्रह से संसार की निवृत्ति और स्वरुपानंद का आविर्भाव होता है।।58।।

हे राजा, वेषधारी असुर लोग असंख्य अक्षोहिणी सैन्य बल से भूमि का आक्रमण करने के कारण भगवान श्री हरि भूभार के हरण के लिए अवतार लिये।।59।।

तब मधुसूदन भगवान अपने भाई बलराम से युक्त होकर ब्रह्मादि लोक के कल्पना में भी न रहने वाले लीलाओं को करते हुये भक्तों का मन मोहन किये।।60।।

कलियुग में जन्म लेने वाले भक्तों को अनुग्रह करने के लिये उनके दुःख शोक और अज्ञान को दूर करने वाला अपने पुण्यकर कीर्ति को जगत में प्रसारित किये।।61।।

सज्जनों के श्रवणेन्द्रियों को अमृत समान रहने वाले अपार लीला वाले इस समुद्र से एक बार क्यों न हो कान नाम के हाथों में लेकर जो पान करता है उसका संसार के सारे दोष नाश हो जाते हैं।।62।।

भोज, वृष्णि, अंधक, मधु, शूरसेन, दशार्ह, कुरु, सृंजय, पाण्डु ये वंश के सारे लोग सदाकाल श्रीकृष्ण की लीलाओं की गाथा गाते रहे।।63।।

प्यार से भरा हुआ दृष्टिक्षेप, हसन्मुख, मधुर मीठी बाते, पराक्रम लीलाएँ सर्वांग सुन्दर रुप से भगवान देखने वाले आँखों को त्योहार बनाये।।64।।

श्री कृष्ण के मुख, मकर कुण्डल से दिखने वाले सुन्दर कान, आइना जैसे दिखने वाले सुन्दर गाल, सदाकाल हँसता हुआ मुख ऐसे सुन्दर रूप वाला श्रीहरि का संग सदाकाल संतोष देने वाला था। उनके रूप को नारियों ने अपनी आँखों से पीना चाहते थे। कितनी बार पिये तो भी तृप्ति न पाते हुये अपलक नेत्रों (न मूंदने वाले आँख) को न देने के कारण ब्रह्मा जी को कोसते थे।।65।।

श्री कृष्ण के जन्म लेते ही पिता के घर से गोकुल चले। वहाँ बढ़ते-बढ़ते हजारों शत्रुओं का नाश किये, हजारों पत्नियों से लाखों पुत्रों को पाते हुये यज्ञ करते हुये यज्ञ में अपनी आराधना को स्वयं ही करते हुये, स्वयं उपदेश दिये हुये वेद मार्ग के अनुष्ठान करके दिखाने के लिए।।66।।

भूभार हरण करने के लिये पाण्डव कौरवों के अंतःकलह के निमित दुष्टराजाओं को रणरंग में दर्शन मात्र से नाश करते हुये अर्जुन को जय देते हुये उद्धव को परतत्व का प्रबोधन करते हुये भगवान श्रीहरि इस भूमि में अपने एक रूप को रखते हुये परमधाम को चले गये।।67।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध में इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में नौवाँ स्कन्ध समाप्त होता है।।

श्री राम श्री

श्रीमध्वतत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

हमारे प्रकाशित ग्रन्थ

क्र0.	ग्रन्थनाम	मौल्य
1.	श्रीमद्भागवद्गीता प्रतिश्लोकका हिन्दी भावानुवाद	70.00
2.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् प्रथम, द्वितीय, तृतिय स्कंधाः भाषानुवादः	100.00
3.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् चतुर्थ स्कंधः भाषानुवादः	60.00
4.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् पंचम एवं षष्ट स्कंधौ भाषानुवादः	60.00
5.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् सप्तम स्कंधः भाषानुवादः	60.00
6.	श्री रामायणपात्रचित्रणम् एवम् नीतिकथा	50.00

पुस्तक प्राप्ति स्थान

1. श्री मध्वमठ
   63 मीरागलि, दारागंज इलाहाबाद
2. तत्व संशोधन संसत् श्री हृषीकेशतीर्थ संस्थानम्, श्री पलिमारूमठ, रथ बीदि उडुपि कर्नाटक
3. श्री स्वामी सीता वल्लभ शरण
   श्री मध्वमठ बड़ा अखाड़ा मैहर (म. प्र.)
4. श्री स्वामी ललित मोहन ओझा
   प्रेमपीठ मध्वमठ तिजारा जिला अलवार, राजस्थान
5. डॉ.रवि,
   1st फ्लोवर, नीयर लक्ष्मी भगवन, सेन्ट्रल बाजार रोड़, नागपूर,
6. श्री G. R. Kulakarni
   2041 B wing Mahesh Tower
   Charkop, Sector 2, Kambivali (W)
   Mumbai 67.
   Ph - 9867251783

गंगावतरण

पता : मध्वमठ 63, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद 211 006
फोन नं0 : 0532-2504587

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

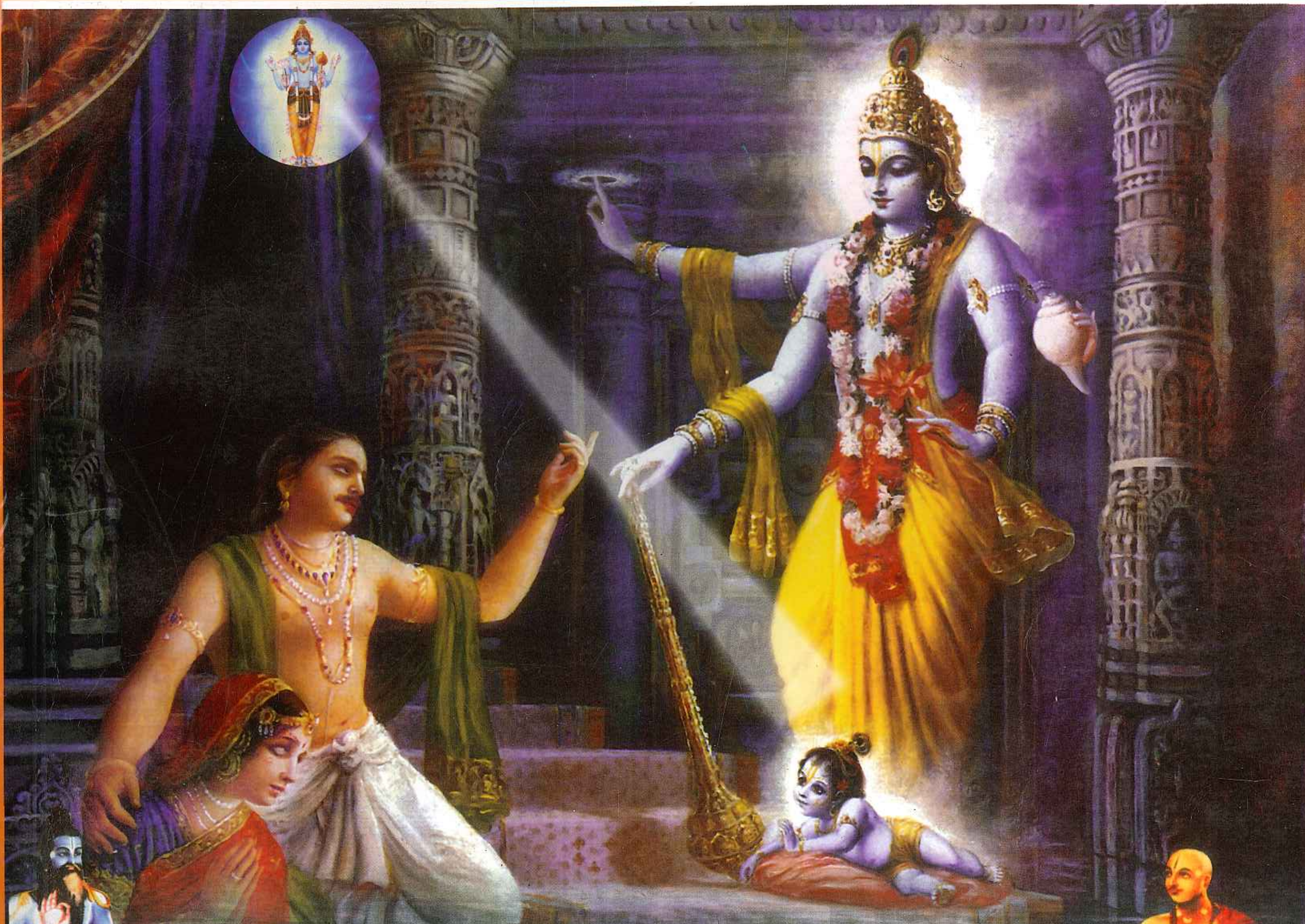

श्रीकृष्णावतार

दशम स्कन्धः भाषानुवादः

पूर्वार्द्ध अध्याय १ से २६ तक

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण

वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री विजयध्वज टीकानुसारी

श्री मद्भागवत महापुराणम्

दशम् स्कंधः

(भाषानुवादः)

अनुवादक

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

प्रकाशक

तत्व संशोधन संसत्

जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

श्रीमद्भागवत महापुराणम् दशम् स्कन्धः

लेखक-

श्री 1008 श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी

प्रकाशक

तत्व संशोधन संसत्

जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम मुद्रण 1000 प्रतियाँ

सहयोग राशि

पुस्तकालय संस्करण 150 रुपये

सामान्य संस्करण 100 रुपये

13-11-2011

अक्षर विन्यास

श्री प्राणेश कुमार शुक्ल

मुद्रक -

श्री वैष्णव प्रेस

मोरी, दारागंज, इलाहाबाद

श्री राम श्री

अनुग्रह संदेश

श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य मूल महासंस्थान श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी उडुपि

हमारे विशेष अभिमान पात्र **श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी** द्वारा किए हुए आठ शास्त्र ग्रंथों का हिन्दी भाषानुवाद को देखकर हमें सन्तोष हुआ है। श्री स्वामी जी अपने पूर्वाश्रम में अनेक वर्षो से सामजिक सेवा में रचनात्मक कार्यो को किये हैं। हमारे साथ अकाल, भूकम्प, बाढ़ इत्यादि कामों में सम्पूर्ण समर्पण भाव से काम किए हैं। अब अपने अस्सी वर्ष के समय में आठ शास्त्र ग्रन्थों का अनुवाद और प्रकाशन का स्तुत्य काम अपने हाथ में लिए हैं। मध्व तत्वज्ञान को अभ्यास करने के जिज्ञासुओं को अनुकूल होने वाली यह एक विशिष्ट सेवा किए हैं।

वे अपने सत्तर वर्ष की आयु में कन्नड़ भाषियों के अनुग्रह रूप में अनेक शास्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किए थे। अब प्रयाग में रहकर मध्व सिद्धान्त का प्रसार कार्य करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा मध्व तत्वज्ञान को हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचार करने का महान कार्य कर रहे हैं।

श्री कृष्ण, श्री वेद व्यास जी, अस्मदुपास्य श्री रामविट्ठल जी इनको विशेष अनुग्रह करते हुए इनकी सेवा विस्तार रूप से सारी जनता को मिले यही हमारा आशीर्वाद है।

इति नारायण स्मरण

श्री श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी महाराज
पेजावर मठ, उडुपि

अनुग्रह संदेश
श्री राम श्री

श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य मूल महा संस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी, उडुपी

आठ सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरू मध्वाचार्य जी ने मध्व सिद्धान्त का प्रचार प्रसार बहुत पैमाने से आरम्भ किया। इस प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए उडुपी में आठ पीठ और उत्तर कर्नाटक में एक पीठ की स्थापना किए। श्री जयतीर्थ मुनि, श्री श्रीपाद राज स्वामी, श्री व्यासराजमहामुनि, श्री वादिराजयोगी, श्री रघूत्तम स्वामी जी, श्री राघवेन्द्र तीर्थ जी इत्यादि महामहिमों ने उस सिद्धान्त को और विकसित किए। इसके बारे में यह श्लोक प्रसिद्ध है।

व्यासेन व्युप्तबीजः श्रुतिभुवि भगवत्पाद लब्धांकुरश्रीः।
प्रत्यैरीषत् प्रभिन्नोऽजनिजयमुनिना सम्यगुद्भिन्न शाखाः।।
मौनीशव्यासराजात् उदित किसलयः पुष्पितोयं जयीन्द्रात्।
अद्य श्री राघवेन्द्रात् विलसति फलितो मध्व सिद्धान्तशाखे।।

हमारे दीक्षा शिक्षा गुरु युगपुरुष श्री श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी उत्तर भारत में श्री मध्व तत्वज्ञान को प्रसार करने हेतु **बीस वर्ष** पहले श्री प्रयाग क्षेत्र में श्री मध्व पीठ की स्थापना की है। उन दिनों से प्रयाग का हमारा मठ मध्वसिद्धान्त का प्रसार करता आ रहा है।

श्री वेदव्यास जी की इस सुसंस्कृत भागवत को हमारे शिष्य श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी ने समर्थ सुन्दर और सबके मन को मिले ऐसी सुन्दर हिन्दी में अनुवाद कर साधक सज्जनों का परमोपकार किए हैं। कन्नड़, संस्कृत न समझने वाले हिन्दी भाषी साधकों को जगद्गुरू मध्वाचार्य जी के शास्त्र का परिचय कराने वाले इस कार्य को हम अपने हृदय भर कर अभिनन्दन करते हैं। अन्य सारे कार्यों को बाजू में रखते हुए **तद्धितप - तद्धितप** के जैसे दिन-रात किया हुआ यह शास्त्र सेवा अनुपम है। हमारे गुरु श्री श्री 1008 विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी से स्थापित तत्व संशोधन संसत से मुद्रण किया गया है। यह हरि गुरु का अनुग्रह प्राप्त करने वाला है। उत्तर भारत के हिन्दी भाषी लोग इस ग्रन्थ को पढ़ें और अपने बन्धु बान्धवों से पढ़ाएँ तो यह प्रयत्न सार्थक हो जाता है। इनसे भागवत के अन्य भाग भी जल्दी से जल्दी अनुवादित होकर साधकों के हाथ में विराजमान हो, यही हमारी अपेक्षा है। श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य जी से प्रतिष्ठापित श्री कृष्ण, श्री राम जी के अनुग्रह से हम अपने शिष्य को शुभ कामना करते हैं।

श्री श्री 1008 श्री विद्याधीशतीर्थ
स्वामी जी महाराज

अनुग्रह संदेश

श्री दिग्विजय रामो विजयते

श्री मद् जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

उत्तरादि मठ

भगवान के गुणों का चिन्तन करना प्रत्येक आदमी का मुख्य कर्तव्य है। अनन्त गुणपरिपूर्ण भगवान की महिमा को जानने के लिए सब को भागवत के प्रकाश की आवश्यकता है। भागवत के पाठ प्रवचन श्रवण सारे बहुत पुण्य देने वाले हैं। ऐसे श्रेष्ठ महाभागवत पुराण को वैष्ण सिद्धान्त के अनुसार श्री श्री विद्यात्मतीर्थ जी ने हिन्दी में सब के मन मोहित करने वाले उत्कृष्ट व्याख्यान किए हैं। प्रयाग के त्रिवेणी तट पर रहते हुए अपनी स्वयं साधना करते हुए उत्तर भारत में वैष्णव सिद्धान्त का प्रचार प्रसार कार्य करते हुए अफ्ने को समर्पित किए हैं। वे जो इस प्रयास में रत हैं उसको सहकार देते हुए श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी उन्हें बल दे रहे हैं यह संतोष का विषय है।

मध्व मत का प्रसार समग्र भारत में उज्वल रीति से होना चाहिए। उत्तर भारत के परिसर में यह प्रसार कार्य करने वाले श्री श्री विद्याधीश तीर्थ और श्री श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी का हम अभिनन्दन करते हैं।

इसी प्रकार श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी और अनेक कृति और व्याख्यान करते हुए तत्वप्रचार कार्य को इससे भी अधिक रूप से करें इस प्रकार हम अपने उपास्य मूर्ति श्री दिग्विजय राम और वेदव्यास जी से प्रार्थना करते हैं।

बैगलूरु

श्री सत्यात्म तीर्थ स्वामिनः
उत्तरादि मठ

श्रीमद् अच्युत प्रेक्षाचार्य संस्थानम्

भीम सेतु मुनिवरेन्द्रमठ भीमनकट्टे

अनुग्रह संदेश

|| [illegible] ||

SRIMAD ACHUTYA PREKSHACHARYA SAMSTHANAM

BHIMASETHU MUNIVRUNDA MUTT, BHIMANAKATTE.

SRI 1008 SRI SRI. RAGHUMANYATIRTHA SWAMIJI
PEETHADHIPATHI

Doorvasapuram Post, Taluk: Teerthahalli, District: Shimoga. Pincode: 577432
Phone: [illegible], Mobile: [illegible]. Email: [illegible]

Branch: BHIMANAKATTE SRI RAGHAVENDRA SWAMY MUTT
No.10, 5th Block, Doddabommasandra, Vidyaranyapura Main Road, Bangalore : 560097. Phone: 080-23483471.

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

शुभ कामना

श्री निम्बार्को जयति

श्रीमद् गोपीजनवल्लभाय नमः

अनन्त श्री जगद्गुरु निम्बार्काचार्य

गोस्वामी श्री विष्णुकान्त जी महाराज, पीठाधिपति

श्री निम्बार्काचार्य पीठ, 18/12, महाजनी टोला प्रयाग - 211 003 फोन : 2404298

श्री निम्बार्क प्रभास्थली व्यास गद्दी नैमिषारण्य (उ० प्र०)

कर्नाटक के अन्तर्गत उऊपी माध्व पीठ प्रयाग के अधिपति श्री 1008 श्री स्वामी विद्यात्म तीर्थ जी महराज के लोक भाषा में अनुवादित भागवत के ग्रन्थ और अन्य भगवद्गीतादि ग्रन्थ देखने को मिले। इक्यासी वर्ष की अवस्था में अदम्य स्फूर्ति, वैदुष्य एवं सार्थक जीवन के धनी महा पुरुष अभिनन्दनीय हैं। कई अवसर में हम लोग एक रहे हैं।

इस अवस्था में भी कई ग्रन्थों के लेखन, सामाजिक एवं पारमार्थिक कार्यों को एक युवक की भाति करते हुए संलग्न हैं।

आप का जीवन अमृतत्व की ओर अग्रसित है आप सकल कुशल पात्र हैं।

भगवान श्री गोपीजन बल्लभ देव जी से हम आपके दीर्घ जीवन की कामना करते हैं।

आचार्य विष्णु कान्त गोस्वामी
इलाहाबाद

प्रस्तावना

हमारे गुरु जी पूर्व प्रयाग पीठाधिपति श्री 1008 श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी ने लगभग दस वर्ष पूर्व भागवत के पहले तीन स्कन्धों का अनुवाद कर प्रकाशित किए थे। उनका महानिर्वाण आकस्मिक रीति से होने के कारण वह कार्य वहीं अवरुद्ध हो गया था।

हमारे दीक्षा गुरु उडुपि श्री पलिमारु मठ के पीठाधिपति जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महराज जी ने उस अवरुद्ध कार्य का पुनरारम्भ करने का आदेश दिया। मैं अल्प शक्ति और अल्प ज्ञान वाला हूँ। किन्तु अपने गुरुवर्य की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मैं यह कार्य कर रहा हूँ।

विद्यावतां भागवते परीक्षा यह पूर्णत: सत्य है। श्री गुरु जी का अनुग्रह ही मुझसे यह कार्य करवा रहा है। दक्षिण भारत में जन्म लेने के कारण मुझे अच्छी हिन्दी नही आती। पण्डित न होने के कारण शास्त्र का गहन और विस्तृत ज्ञान प्राप्त नही है। केवल गुरु का अनुग्रह ही मुझे प्रेरणा दें रहा है। पाठकों द्वारा निर्दिष्ट त्रुटियों को अगले अंक में सुधारने का प्रयास करेंगे।

दशम् स्कन्ध भागवत का कीरीट प्राय है। वे व्यास जी इसको भक्ति रस से पूर्ण रूप से भिगो दिए हैं। कई कथाकार इसको ऊपर ऊपर से पढ़ते हुए अपने गलत अर्थ प्रसार किए हैं। इस स्कन्ध में भक्ति को छोड़ कर काम इत्यादि अन्य विचार करना गलत है। मूल भागवत में दशम स्कन्ध में पूर्वार्ध और उत्तरार्ध इस प्रकार दो भाग कर चुके हैं। दोनों भाग सौ - सौ अध्यायों से भर कर फल पुष्प से भरा हुआ वृक्ष के समान अपने बोझ से बहुत झुके हैं। पाठक की सुविधा के लिए हम पूर्वार्ध में भी और भाग करना चाहते हैं। उसमें से प्रथम भाग अब प्रस्तुत है। इसका विस्तार अध्याय एक से अध्याय छब्बीस तक सीमित है।

विस्तृत रूप से जानकारी देने के उद्देश्य से हमने क्रम में भी थोड़ा सा बदलाव किया है। पहले के समान श्लोकार्थ मोटा अक्षरों में दिया गया है, अर्थ थोड़ा सा छोटे अक्षरों में दिया गया है। इस भाग में विशेषार्थ के लिए और थोड़ा अवकाश किया है। प्रत्येक श्लोक का नही तो जहाँ आवश्यक है वहाँ विशेषार्थ, उससे भी छोटे अक्षरों में देने का प्रयास किया है। आशा है कि यह पाठकों को सुविधा जनक होगा।

तीन सौ साठ वर्ष के पहले मंत्रालय के श्री राघवेन्द्र स्वामी जी ने अनेक शास्त्र ग्रथों की रचना की वे थोड़े श्लोको में दशम स्कन्ध की श्री कृष्ण की कथा को बता दिए हैं। रोज इन श्लोकों के पाठ करने से नित्य दशम स्कन्ध पाठ का पुण्य मिलता है। हम इन श्लोकों को अर्थ के साथ यहाँ दिए हैं।

बड़े लोगों का कहना है कि नित्य पाठ करते समय नाम रूप गुण इन तीनों की अवश्यकता है। हमारे पाठकों को यह तीनों लाभ प्राप्त हो इस दृष्टि से इन श्लोकों के पाठ करते समय भगवान के **नाम** फोटो में भगवान के **रूप,** श्लोक में और चित्र की सहायता से कथा को याद करते हुए भगवान का **गुण** इन तीनों का चिन्तन एक साथ मिले। ग्रन्थ के प्रारम्भ में फोटों को अर्थ सहित दिया हैं। आशा रखतें है कि पाठक गण नित्य पाठ कर के भगवान का प्रीत पात्र बने।

हमारे परम गुरु श्री विद्यामान्य जी से संस्थापित और हमारे गुरु जी श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महराज से पोषित श्री तत्व संशोधन संसत् ने इस ग्रन्थ प्रकाशन की जिम्मेदारी ले लिए हैं। तत्व संशोधन संसत् दक्षिण भारत में एक प्रसिद्ध संशोधन और प्रकाशन की बड़ी संस्था है। बहुत श्रेष्ठ विद्वान और पंडित संशोधकों के ग्रन्थ यहाँ से प्रकाशित हुए हैं। मेरे जैसे अल्प बुद्धि वाले इस छोटी सी कृति को वे प्रकाशित कर रहे हैं, यह मेरा बड़ा भाग्य है। इसके लिए मैं अपने श्री गुरु जी को शत शत नमन करता हूँ।

पंजाब के जालंधर में इस ग्रन्थ का लोकार्पण हम अपने प्रिय शिष्य श्री ध्रुवकुमार खेरा जीके आग्रह के कारण और भारत के दस दिशाओं में भागवत का प्रसार हो, प्रत्येक व्यक्ति श्री कृष्ण का भक्त हो, इस उद्देश्य से इस ग्रन्थ का लोकार्पण जालंधर में कर रहे हैं। यह हमे बहुत संतोष दे रहा है।

इस ग्रन्थ के लिए आवश्यक फोटो के लिए हमे बहुत प्रयास करना पड़ा। वैसा तो श्री कृष्ण के लाखों फोटों प्राप्त हैं, तो भी कथा में आए हुए संगग को संगति देने वाला फोटो मिलने में कष्ट हुआ। इस समय श्री रामचन्द्र सिंह जी और ईश्वर शरण श्रीवास्तव हमें आवश्यक फोटो देकर सहायता किए है। हम यहाँ उनकी याद करते हैं।

इस ग्रन्थ के अक्षर विन्यास किए हुए श्री प्राणेश कुमार शुक्ला, अक्षर संशोधन किए हुए श्री गिरधारी लाल मिश्रा और मुद्रण किए श्री वैष्णव प्रेस के सारे कर्मचारियों के सहयोग का स्मरण हम करते हैं। सूज्ञ सद्भक्त इस ग्रन्थ का सदुपयोग करें यही आकांक्षा है। **इति शम्**

जालंधर पंजाब
13-11-2011

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज

दशवाँ स्कन्ध की विषय सूची

क्र0	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	अध्याय एक	भू-भार हरण के लिए देवकी के गर्भ से भगवान का अवतार लेना।	01-09
2.	अध्याय दो	कंस का देवकी को मारना। देवकी-वसुदेव को जेल में रखा। प्रथम पुत्र को मारा।	10-11
3.	अध्याय तीन	छः पुत्रों को कंस ने मार डाला सप्तम बलराम बच गये। देवकी अष्टम् गर्भ धारणा की, ब्रह्मादि देवताओं से गर्भ स्तुति।	12-20
4.	अध्याय चार	श्री कृष्ण का जन्म, उनको नन्द के पास पहुँचाए	21-30
5.	अध्याय पॉच	दुर्गा-जनन, शत्रु अलग पल रहा है, सारे बच्चों को मारने का निर्णय	31-36
6.	अध्याय छः	नन्द वशुदेव की भेंट, जल्दी वृन्दावन जाने के लिए आग्रह	37-40
7.	अध्याय सात	पूतना संहार, गोपालकों का हर्ष।	41-47
8	अध्याय आंठ	शंकटासुर संहार, तृणावर्त संहार, मुख में विश्व रूप दर्शन।	48-52
9.	अध्याय नौ	गर्ग मुनि से राम कृष्ण का नाम करण	53-62
10.	अध्याय दस	दही भाण्ड फोड़ने से कृष्ण को ओखली से बाँधना।	63-65
11.	अध्याय ग्यारह	यमळार्जुन विमोचन	66-71
12.	अध्याय बारह	वृन्दावन गमन, वत्सासुर हनन, बकासुर भंजन	72-79
13.	अध्याय तेरह	धेनुकासुर हनन	80-85
14.	अध्याय चौदह	कालिया मर्दन।	86-95
15.	अध्याय पन्द्रह	कालियावृत्तान्त। दावानल भक्षण।	96-98
16.	अध्याय सोलह	प्रलम्बासुर वध।	99-102
17.	अध्याय सत्रह	और एक बार दावानल भक्षण।	103-104
18.	अध्याय अठ्ठारह	ऋतुओं का वर्णन।	105-109
19.	अध्याय उन्नीस	श्री कृष्ण का वेणु गान। जन-मन, पशु पक्षी भी आकर्षित।	110-113
20.	अध्याय बीस	गोपिका वस्त्रापहरण।	114-120
21.	अध्याय इक्कीस	विप्र पत्नियों से अन्न निवेदन।	121-126
22.	अध्याय बाइस	इन्द्र यज्ञ भंग।	127-130
23.	अध्याय तेइस	गोवर्धनोद्धार।	131-134
24.	अध्याय चौबीस	श्री कृष्ण साक्षात नारायण, गोपालकों की स्तुति।	135-137
25.	अध्याय पचीस	इन्द्र से क्षमा प्रार्थना।	138-141
26.	अध्याय छब्बीस	वरुण से नन्द गोप का मोचन।	142-144

श्री राम श्री

श्रीमध्वतत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

हमारे प्रकाशित ग्रन्थ

क्र0.	ग्रन्थनाम	मौल्य
1.	श्रीमद्भगवद्गीता प्रतिश्लोक का हिन्दी भावानुवाद	70.00
2.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्कंधा: भाषानुवाद:	100.00
3.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् चतुर्थ स्कंध: भाषानुवाद:	60.00
4.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् पंचम एवं षष्ठ स्कंधौ भाषानुवाद:	60.00
5.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् सप्तम् स्कंध: भाषानुवाद:	60.00
6.	श्रीमद्भागवत अष्टम् स्कन्ध: भाषानुवद:	60.00
7.	श्रीमद्भागवत नवम्स्कंध: भाषानुवाद:	60.00
8.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्ध: पूर्वार्ध अध्याय छब्बीस तक	100.00
9.	श्री रामायणपात्र चित्रणम् एवम् नीतिकथा	50.00

पुस्तक प्राप्ति स्थान

1. श्री मध्वमठ
   63 मीरागलि, दारागंज इलाहाबाद
2. तत्व संशोधन संसत् श्री हृषीकेशतीर्थ संस्थानम्, श्री पलिमारूमठ, रथ बीदि उडुपि कर्नाटक
3. श्री स्वामी सीता वल्लभ शरण
   श्री मध्वमठ बड़ा अखाड़ा मैहर (म. प्र.)
4. श्री स्वामी ललित मोहन ओझा
   प्रेमपीठ मध्वमठ तिजारा जिला अलवर, राजस्थान
5. डॉं रवि,
   1st फ्लोवर, नीयर लक्ष्मी भगवन, सेन्ट्रल बाजार रोड़, नागपूर,
6. श्री G. R. Kulakarni
   2041 B wing Mahesh Tower
   Charkop, Sector 2, Kambivali (W)
   Mumbai 67.
   Ph - 9867251783

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी

यह एक अनोखी स्तोत्र है जिसमें **श्री राघवेन्द्र स्वामी जी** ने केवल थोड़े ही श्लोकों में दशम स्कन्ध की श्री कृष्ण कथा को जोड़ दिए हैं। हमारे गुरू जी उडुपि पीठाधीश्वर श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य पीठाधिपति **श्री 1008श्री विध्याधीश तीर्थ स्वामी जी** इन श्लोको को सरल भाषा में अनुवाद किए है। हम इन दोनों को मिलाते हुए साथ साथ तीस रंगीन चित्रों में इन अध्यायों की कथा को फोटों के द्वारा आप के सामने प्रस्तुत करते है। शास्त्र जानने वाले कहते है कि केवल नाम स्मरण करने के बजाय भगवान का नाम रूप गुण चिन्तन करना श्रेष्ठ हैं। इससे प्रथमत: हमारे मन को आनन्द होता है साथ साथ भगवत्प्रीति भी ज्यादा होती है। आगे के पृष्ठों में हम नाम रूप गुण के चिन्तन के लिए कथानुसारी फोटों, मूल श्लोक और उसका अर्थ दिए हैं। इससे नाम रूप गुण चिन्तन एक ही समय में एक साथ होगा। आग्रह है, पाठक इसका प्रयोग करते हुए प्रतिनित्य नाम रूप गुण चिन्तन से पाठ करें।

आपका

प्रकाशक

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय एक से आठ तक की कथा

ॐ विष्णु ब्रह्मादि देवैः क्षितिभरहरणे प्रार्थितः प्रादुरासीद्। देवक्याम् नन्द नन्दी शिशुवध निहिताम् पूतनाम् योजघान।

उत्थानौत्सुक्यकाले रथ चरणगतम् चासुरम् पादघातैः। चक्रावर्तं च मात्रा गुरुरिति निहतो भूतले सोवतान्माम्।।1।।

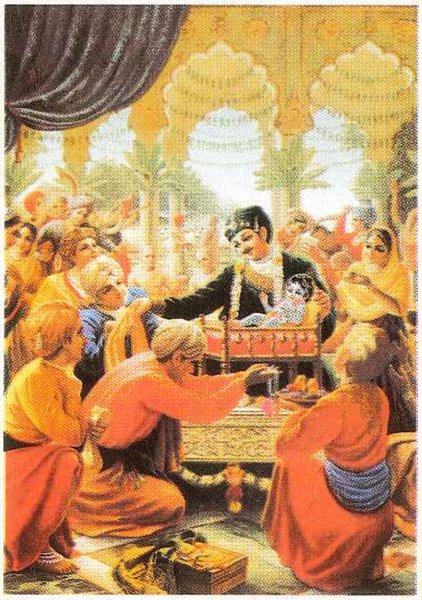

भूमि के लिए भार बने हुए कंस जरासंधादि दैत्यों के संहार के लिए ब्रह्मादि देवताओं से प्रार्थित श्री विष्णु देवकी गर्भ से श्री कृष्ण होकर अवतार लिए। नन्द नन्दन बने। शिशु वध के कंस से प्रेषित पूतना को मार दिए। बहिर्निनिष्क्रमण उत्सव के समय में बैलगाड़ी के पहिए में रहने वाले शकटासुर को अपने छोटे पाँवों से लात मारते हुए जीव से मारे। शिशु के भार को न सहते हुए यशोदा उनको जमीन पर रखीं तो, उस समय चक्रवात के रूप में आये तृणावर्त को भी मार दिए। ऐसे श्री कृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी

अध्याय नौ की कथा

योमातु जृंभमाणो जगदिदमखिलम् दर्शयन्नंकरूदो। गर्गेणाचीर्णनामा कृत रुचिर महा बाललीलो वयस्यैः।

गोपिगेहेसु भांड़स्थित मरुदयया क्षीर दध्यादि मुष्णन्। मृदां भंक्षीती मातुःस्ववदनगजगद् भासयन्भासतां मे।।2।।

माँ की गोद में सोए हुए श्री कृष्ण जम्भुहाइ लेते हुए मुँह में ब्रह्माण्ड का दर्शन कराए। गर्ग मुनि से नामकरण कराए। बलराम के साथ नामकरण कराए। बलराम के साथ सुन्दर महान बाल लीलाएँ की। मित्रों के साथ गोपियों के घर में दूध, दही, मक्खन को कृपा कर के चोरी से खाए। मिट्टी को खा कर मैंने मिट्टी नही खाया, देखो, कहते हुए अपने मुह में माँ को ब्रह्माण्ड का दर्शन कराए। ऐसे श्री कृष्ण हमें दर्शन दें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी

अध्याय दस से बारह तक की कथा

दध्नोंपात्रस्य भंगाद् उपगमितरुषा नन्दपत्याथ बद्धः। कृच्छ्रेणोंलूखलेयो धनपति तनयौ मोचयामास शापात्।

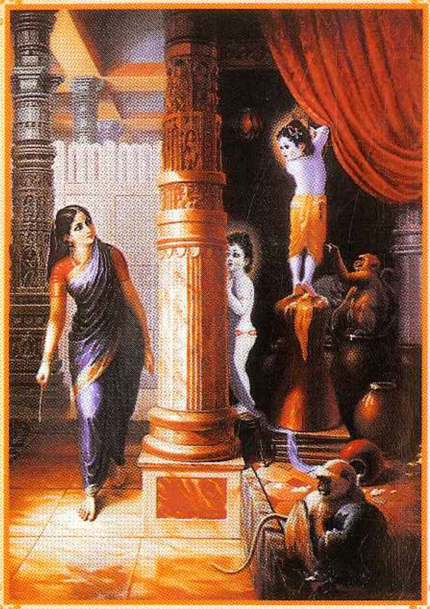

नन्दाद्यैः प्राप्यवृन्दावनमिहरमयन् वेणुनादादिभिर्यो। वत्सान् पान् वत्स रूपम् क्रतुभूगरिमथो पोथयन् सोवतान् मामा।3।।

दही की मटकी को फूटी हुयी देखकर क्रोध से यशोदा बहुत प्रयत्न से श्री कृष्ण को ओखली में बाँध दिया। नारद के शाप से वृक्ष बने कुबेर के पुत्रों को श्री कृष्ण मुक्त किए। नन्द इत्यादि सारे लोगों के साथ वृन्दावन चले गये। वहाँ वंसी बजाते हुए सबको आनन्द देते हुए गाय के बच्चों को चराते समय गाय के बच्चें के रूप में आए हुए वत्सासुर को मार दिए। ऐसे श्री कृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय तेरह से सौलह तक की कथा

रक्षन् वत्सान् वयस्यैः बकमभिनदथो तिग्मतुंड़े गृहीत्वा। प्रीतिं कर्तुम् सखीनाम् खरमपिबलतो घातयन् कालियाहिम्।

उन्मथ्योद्वास्य कृष्णां अतिविमल जलां यो व्यधाद् दाववन्हिम्। सुप्ता नावृत्य गोष्ठे स्थितमपि बदसौ दुष्ट वृक्षच्छिदव्यात्।।4।।

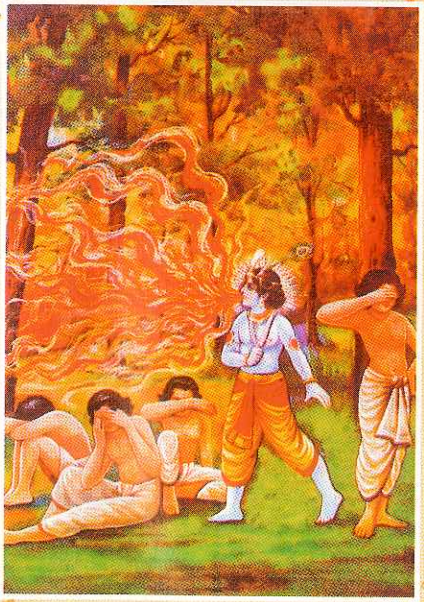

बाद में मित्रों के साथ गाय के बच्चों को चराते समय बकासुर को उसके तीक्ष्ण चोचों से पकड़ कर उसे चीर कर दो टुकड़े किए। मित्रों को संतोष करने के लिए बलराम से धेनुकासुर का वध करवाए। कालिय नाग को अपने पाँवों से दबाकर उसको बाहर भेजकर यमुना नदी के जल को शुद्ध किए। रात के समय गायों के साथ सोए हुए गोपालकों को घेरा हुआ आग को पान किए। दुष्ट विष वृक्ष रूप उग्रासुर को नाश किए। ऐसे श्री कृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय सत्रह से उन्नीस तक की कथा

दुर्गारण्यं प्रवेशाच्युत निज सरणीन् गो गणानाहवयद् यो। दावाग्निम् तत्रपीत्वा समवपुष दनुगान् गोपकानाविषण्णान्।

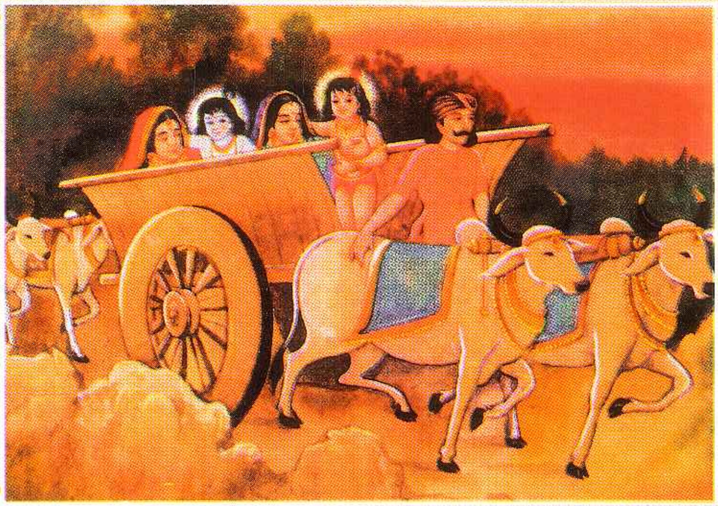

गोभिर्गोपैः परितः सरिदुदकतटस्थोपले भोज्यमन्नम्। भूक्वावेणोंर्निदाद् व्रजगत वनिताचित्तहारी समाव्यात्।।5।।

गायों के चरते चरते बहुत दूर घने जंगल में प्रवेश करने के कारण दिखायी नही पड़ रही थी। तब श्री कृष्ण उनके नाम से पुकारे तो सारे गायें आ गयीं। उसी समय भयंकर दावाग्नि को खा लिए। गोप-गोपियों के साथ नदी तट में पत्थर के ऊपर बैठकर घर से लाए हुए दही भात को खाए। वेणु गान से गोकुल की महिलाओं के मन मोहित करने वाले ऐसे श्री कृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय बीस से पच्चीस तक की कथा

कृष्णोस्माकं पतिःस्याद् इतिकृत तपसां मज्जने गोपिकानाम्। नग्नानाम् वस्त्रदाता द्विजवरवनिता नीत मन्नं समश्नन्।

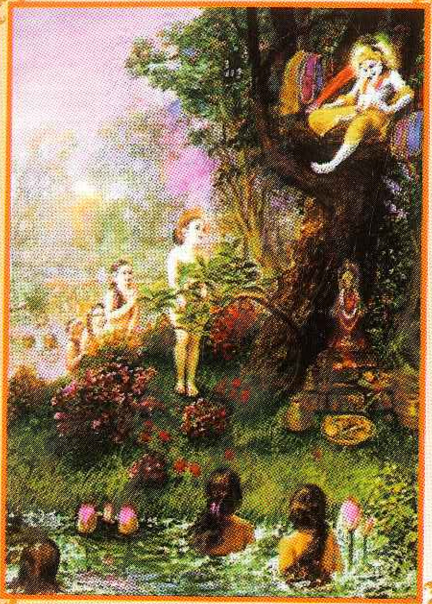

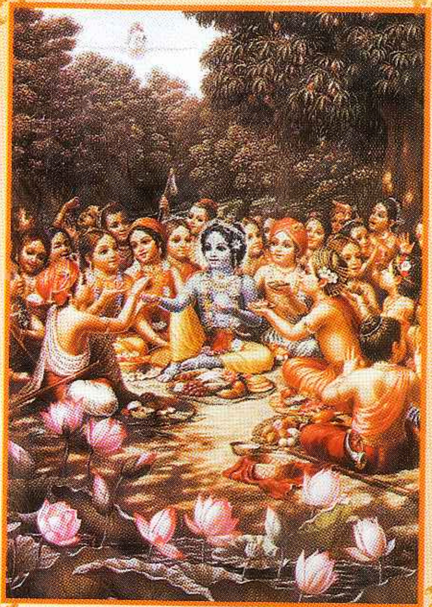

श्रान्तैर्गोपैः समं यो बलमथनबलावाह्यतेस्मिन् सवृष्टौ। प्रोद्धृत्याहार्यवर्यं निज जल मखिलं पालयन् पात्वसौ माम्।।6।।

श्री कृष्ण अपना पति बने इस उद्देश्य से कठिन व्रत करने वाली गोपिकाएँ स्नान करते समय निर्वस्त्र हो गयी थीं उनको वस्त्र देने वाले विप्र पत्नियों से लाए हुए अन्न को भूख से पीड़ित साथियों के साथ भोजन किए, इन्द्र को देने वाली यज्ञाहुति को स्वयं ग्रहण किए। इससे इन्द्र रुष्ट होकर अतिवृष्टि किया। उस समय बड़ा गोवर्धन पर्वत को एक हाथ से उठाकर श्री कृष्ण सब की रक्षा किए। ऐसे श्री कृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी

योग माया द्वारा कंस बध के लिए आकाशवाणी करना

ग्वालबालों एवं गौओं के साथ श्रीकृष्ण एवं बलराम

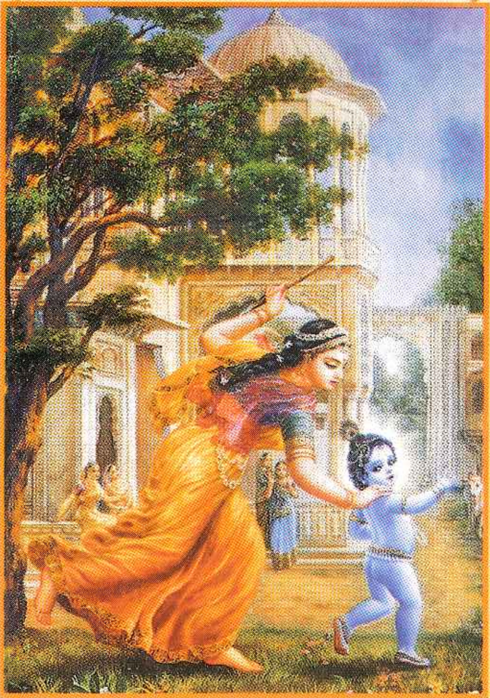

यशोदा मैया एवं श्रीकृष्ण

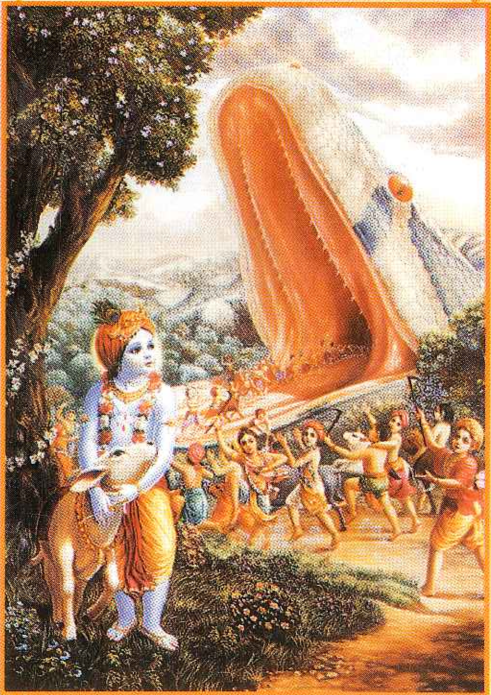

अधासुर के मुख में ग्वालबालों का हँसते हुए प्रवेश

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी

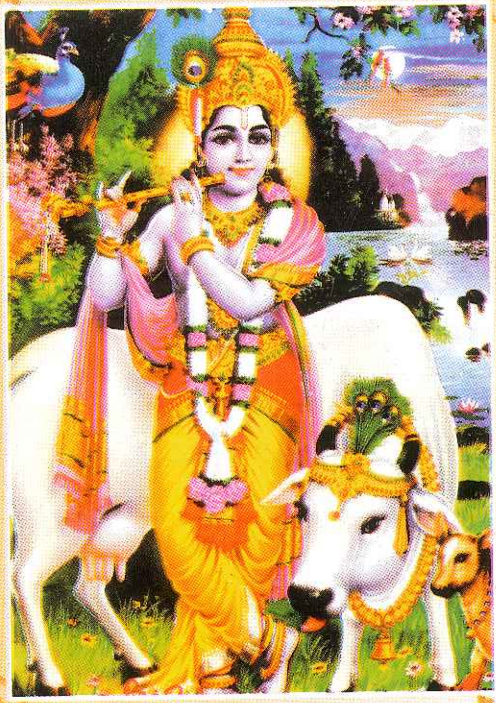

सुन्दर रूपवाले श्रीकृष्ण

मक्खन खाते श्रीकृष्ण

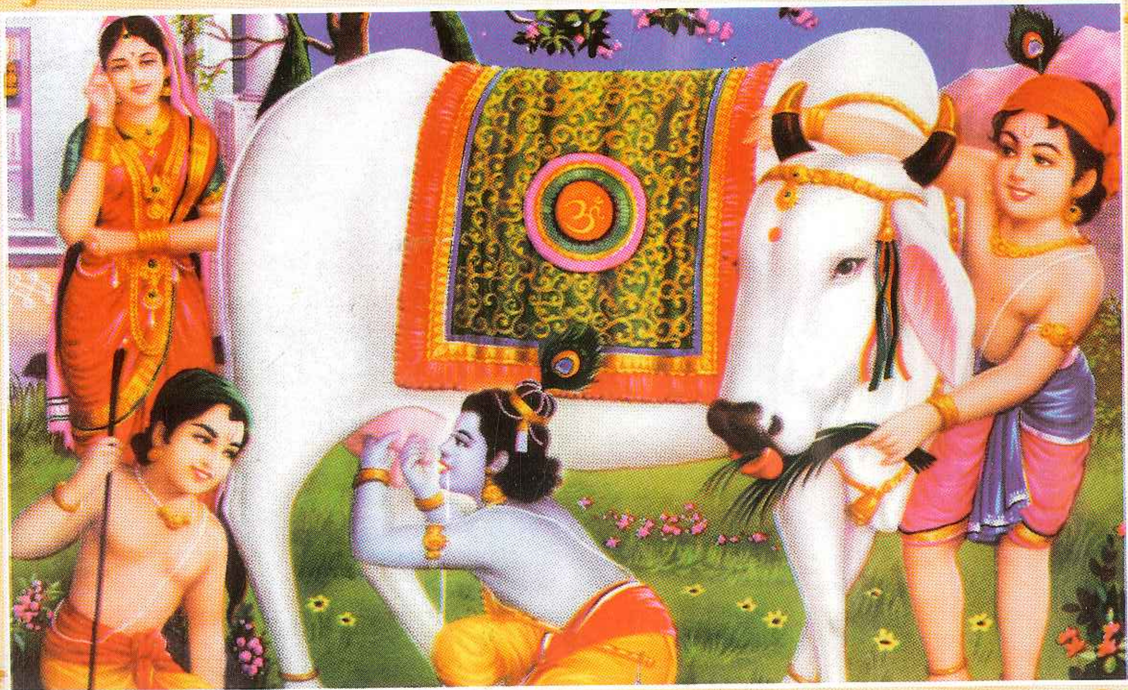

गाय दुहते श्रीकृष्ण

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - एक

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं- हे मुनि वर्य! आप मुझको अब तक चन्द्र वंश और सूर्य वंश के राजाओं के बारे मे कहे हैं।उनका चरित्र बहुत अद्भुत है। उससे मुझे आनन्द हुआ है।।1।।

यहाँ शुकदेव को भवतः शब्द से राजा सम्बोधन करता है। भव इसका अर्थ रुद्र भी होता है। शुक देव रुद्रांश हैं इसके लिए भागवत दशम स्कन्ध उन्हीं के मुँह से सुनना बहुत श्रेष्ठ है यह अभिप्राय भी इससे होता है।

धर्मात्मा यदु का वंश बहुत बड़ा अदभुत है। उसमें अपने अंश से अवतार लिए हुये भगवान श्री विष्णु का मैं वीरता और पराक्रम के बारे में सुनना चाहता हूँ।।2।।

यहाँ यदु को धर्मशील शब्द से सम्बोधन किया गया है।अपने यौवन को पिता को देकर उनसे वृद्धत्व को न लेने वाला यदु कैसे धर्मज्ञ होता है ऐसा संशय का आना सम्भव है। किन्तु अपने यौवन से अपनी ही माँ के साथ सुख भोगने की पिता की इच्छा को पुत्र पूर्ण नही किया। इससे यदु को पाप नहीं आता। इस धर्म सूक्ष्म के कारण आगे नितराम् शब्द का प्रयोग है। यदु के वंश में भगवान श्री कृष्ण अवतार लेकर इस धर्मशील शब्द को सार्थक किये हैं। पुरु ने अपना यौवन दिया उसको यह दोष नहीं आता क्योंकि उसकी माँ अलग है। यहाँ यदोः शब्द विष्णु के साथ अन्वय करना सही होता है। इसका अर्थ विद्यमान पदार्थों में सबसे श्रेष्ठ भगवान विष्णु यह एक विशेष अर्थ यहाँ मिलता है।

इस जगत के जनक और सब जीवों के कल्याणकारक भगवान श्री हरि यदु वंश में जन्म लेकर क्या-क्या लीलाएँ किए हैं उनको मेरे लिए कृपा करके बताइये।।3।।

नौवाँ अध्याय के अंत में आपने मुझे श्री कृष्ण कथा को अत्यन्त संक्षेप मे कहा है उससे तृप्ति नही होती है इसके लिए विस्तार पूर्वक कहें।

विषयों की आशा को जो त्यागदिये हैं, और जीवन्मुक्त हुये हैं। उन्हें भी भगवान का संकीर्तन करना है। यह भव रोग के लिए औषधि रूप है। केवल सुनने से ही आनन्द देने वाली है। पशु हिंसा करने वाले को छोड़कर अन्य कौन हरि गुणगान करना छोड़ देता है।।4।।

पशु हिंसा का अर्थ केवल स्वर्ग के लिए यज्ञ करने में किया जाने वाला पशु वध मात्र नही है। प यानी इस जगत का पालन करने वाला और शु का अर्थ सुख देने वाला दोनों मिलकर पशु कहे तो भगवान नारायण होता है।

स्वर्ग के लिए प्राणी हिंसा करने वाला भगवान का नाम संकीर्तन नही करता है। वैसे कुतर्क करने वाला भी भगवान के अस्तित्व को न मानने वाला अथवा स्वयं को भगवान मानने वाला प्राणी हिंसक होता है।

युद्ध में देवताओं को भी हराने वाले भीष्म आदि अतिरथ तिमी तिमींगिलों से भरे हुए पार करने में असाध्य कौरव सेना को हमारे पूर्वज पाण्डवों ने जिन भगवान श्री कृष्ण नाम के नौका की सहायता से बिना कष्ट से पार किये उन भगवान की कथा मैं सुनना चाहता हूँ।।5।।

दश योजन विस्तार रहने वाली मछली को तिमि बोलते हैं। उसको भी खाने वाली बडी मछली को तिमिंगिल कहते हैं।

केवल हमारे पूर्वजों को भगवान रक्षा करते हैं ऐसा नही। मुझको भी वे ही रक्षा किये हैं। इसके लिए उनकी कथा सुनने में मुझे आतुरता है। इस विचार को आगे के श्लोक में व्यक्त करते हैं।

उन दिनों में अपनी शरण में आयी हुयी मेरी माँ उत्तरा के गर्भ को भगवान श्री कृष्ण चक्रधारी होकर अंदर प्रवेश करते हुये मेरी रक्षा किए हैं। वे रक्षा नही किये होते तो पाण्डव वंश का एक मात्र संतान मै अश्वत्थाम के अस्त्र से जल जाता।।6।।

पाण्डव, मेरी माँ और मैं केवल इनका रक्षक ही भगवान नही है, किन्तु सकल जीव राशि के रक्षक वे ही हैं। इस बात को आगे के श्लोक में कहते हैं।

सारे जीवों के अन्दर बिम्ब रूप में अन्दर और काल नियामक रूप में खड़े होकर उनकी योग्यता के अनुसार संसार और मुक्ति देने वाले भगवान श्री कृष्ण अपनी इच्छा से मानव रूप में आकर अपने शौर्य और पराक्रम को दिखाये हैं उस कथा को आप विवरण पूर्वक बताइये।।7।।

आप पूर्व कथा में संकर्षण के अवतार बलराम जी को एक़ बार रोहिणी पुत्र और एक बार देवकी तनय कहे हैं। एक ही जीव दो माँ के पुत्र होकर दो गर्भों में कैसे रहता है इस संशय का निवारण करें।।8।।

नवम स्कन्ध के अंत में वसुदेव के पुत्र के बारे में बोलते हुये वसुदेव को रोहिणी में बलराम, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव ये पुत्र जन्म लिये कहे हैं। देवकी में कीर्तिमंत, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, सम्मर्दन, भद्र, बलराम और कृष्ण ये जन्म लिये ऐसा कहे हैं। इस संशय का निवारण करने के लिए परीक्षित पूछते हैं।

भगवान श्री कृष्ण अपने घर को छोड़कर नन्द गोकुल को क्यों छोड़ दिये। अपने बंधुओं के साथ कहाँ रहने लगे।।9।।

नन्द गोकुल में भगवान श्री कृष्ण क्या-क्या लीलाएँ की। वहाँ से वे मथुरा क्यों गये। अपने मामा को क्यों मारे? मामा को भांजा कभी नही मारना। तो भी भगवान उसको मारे इसके बारे में हमारे संशय का निवारण करें।।10।।

मनुष्य के समान रूप धारण किये हुये भगवान श्री कृष्ण यादवों के साथ कब तक रहे उनको कितनी पत्नियाँ थीं? इसको भी विवरण पूर्वक बताइये।।11।।

हे मुनिवर्य, आप श्री कृष्ण की अन्यान्य लीलाओं को भी मुझे अवगत कराइए। मैं उनको श्रद्धा से सुनता हूँ। रुद्रावतार आप मुझको कहने में समर्थ हैं।।12।।

आपके मुखारविन्द से बहकर आने वाली अमृत कथा को मैं पीना चाहता हूँ। पानी को भी न पीते हुये कथा सुनने वाले मुझको न भूख लगती है, न प्यास लगती है।।13।।

कमल से अमृत बहना कहीं नहीं सुना गया है। यह कवि समय गलत होता है ऐसे विचार करना सही नही होता। यहाँ मुख कमल से अमृत धारा बहना यह शब्द एक मुख्य उद्देश्य से कहा गया है। कमल सदाकाल पानी में रहता है। किन्तु उसको पानी नही लगता है। वैसे ही वेदव्यास जी से भागवत कथा को शुकदेव जी अपने कान से सुने हैं। उसमें एक बूँद भी शेष न रखते हुये पूरी कथा को सुनाइये यही भाव यहाँ व्यक्त किया गया है।

सूत जी कहते हैं - हे शौनकादि ऋषिगण, परीक्षित की इन बातों को सुनकर भगवद्भक्त शिरोमणि व्यास पुत्र शुकदेव जी राजा को अभिनंदन करते हुये कलिमल को नाश करने वाली भगवान श्री कृष्ण की कथा कहने लगे।।14।।

श्री शुकदेव कहते हैं- हे राजश्रेष्ठ,श्री कृष्ण की कथा में तुम्हारी आसक्ति बढ़ रही है। इससे सिद्ध होता है कि तुम्हारा निर्धार सही है।।15।।

तुम श्री कृष्ण की कथा को सुनना चाहते हो। वह कथा हरि पादों के समान पावनमयी है। सुनने वाला कहने वाला और कहलाने वाला इन तीनों को यह पवित्र करती है।।16।।

यहाँ तत्पाद सलिलं यथा इस शब्द में और एक अर्थ निकलता हैं। यहाँ भागवत की कथा करने वाले शुकदेव रुद्रांश हैं। उनके सिर पर गंगा जी बैठी हैं। कथा सुनने वाला राजा परिक्षित गंगा जी के बीच में बैठा है। अन्य सूत पूराणिक इत्यादि श्रोता गण गंगा जी में नहा कर आए हैं। इसी कारण यहाँ गंगा जी के समान इस शब्द का प्रयोग किया गया है। तत् सृष्टि करने वाले चतुर्मुख ब्रह्मा, प् यानि विष्णु, अद यानि सर्व संहारक यानि रुद्र। गंगा जी विष्णु के पाद से उत्पन्न हुई हैं। ब्रह्मा जी के कमंडलु में प्रवेश की हैं। रुद्र के जटा जूट से बहकर आने वाली विष्णु पाद से उत्पन्न हुआ जल। सालिग्राम तीर्थ भी होता है। भागवत की कथा जहाँ होती है वहाँ गंगा जी त्रिमूर्ति और सालिग्राम का सन्निधान होता है।

बहुत पूर्व काल मे दर्पिष्ठ राजा लोग असंख्य संख्या में असुरों के साथ मिल गये थे। उनके भार से पीड़ित भू देवी दुःख को न सहन करते हुये ब्रह्मा जी के शरण में गईं।।17।।

गोरूप को धारण करने वाली भू देवी आँखों से आंसू बहाती हुई करुणाजनक रूप में रोते हुये ब्रह्मा जी के सामने खड़ी हुयीं।।18।।

यहाँ भू देवी का गाय का रूप धारण करना एक विशेष है। गाय सभ्य होती है। स्वयं सूखा हुआ घास को खाकर अमृत समान दूध देती है। सदाकाल गाय का रूप करूणाजनक होता है। इसी प्रकार भू देवी अन्य सज्जन लोगों के भार को कितना भी हो धारण करती हैं। किन्तु दुष्ट लोगो का भार वह सहन नही करती हैं।

ब्रह्मा जी भू देवी के दुःख को सुने। उनको लेकर और शिव सहित सारे देवताओं को साथ में लेते हुये क्षीर सागर के तट पर गये।।19।।

वहाँ जाकर सकल लोकों के स्वामी देवदेवोत्तम परम पुरुष नारायण को पुरुष सूक्त से देवताओं के साथ मिलकर स्तुति किये।।20।।

पुण्य कर्म करने वाले सज्जन लोगों को भगवान मोक्ष देते हैं। किन्तु थोड़ा सा पुण्य करने वाले दैत्यों को उत्तम लोक देना व्यर्थ होता है। उनके तमस को जाना है। इसी कारण कंस को आकाशवाणी, नारद जी के वचन के अनुसार दुर्गा के मुखांतर, अलग - अलग रीति से कंस में भगवान के विरुद्ध द्वेष उत्पन्न करना है। पूतनादियों से पाप कर्म करवाना है। ऐसे करते हुये सज्जनों की रक्षा करना है इसी के लिए ब्रह्मा जी भगवान की स्तुति करते हैं।

तब भू देवी और अन्य देवताओं को समाधान करने के लिए भगवान श्री हरि आकाश में रहते हुये बोले। उसको केवल ब्रह्मा जी सुने।वे अन्य देवताओं को बोलते हैं। हे देवतागण! सुनिये। भगवान परम पुरुष जो कहे हैं उसको आपके लिए कहता हूँ। इस प्रकार आप बिना विलम्ब करते हुये अनुसरण करिये।।21।।

श्री हरि अदृश्य होकर आकाश में खड़े हुये बोले उसको केवल ब्रह्मा जी सुने। ब्रह्मा जी देवताओं के साथ मेरु शिखर पर आये। वहाँ भरी सभा में भगवान के वचन को सबको सुनाये। मेरु शिखर में बोलने का उद्देश्य एक ही था कि दैत्य लोग भी इसको सुनें और वे भी भूमि में जन्म लेकर अपने पाप की साधना करें। इस दृष्टि से उनको दुर्गम श्वेतद्वीप को छोड़कर मंत्रालोचन की सभा का आयोजन मेरु शिखर में किया गया था। यह विचार हरि वंश पुराण में व्यक्त किया गया है।

ब्रह्मा जी कहे- भू देवी का दुःख परम पुरुष परमात्मा भगवान श्री हरि पहले से ही जानते हैं। उनके दुःख को दूर करने के लिए वे यदुकुल में जन्म लेने वाले हैं। उनकी सेवा के लिए आप सब लोग अपने अंश से यादव बनकर जन्म लीजिए। भगवान अपने स्वरूप भूत दैत्यसंहारक शक्ति से भू भार नाश करते हुये भूमण्डल में जितने दिन तक रहते हैं आप लोगों को भी उतने दिन भूमि में रहना चाहिए।।22।।

वसुदेव की पत्नी देवकी देवी के पेट से भगवान परम पुरुष स्वयं प्रादुर्भत होते हैं। उनकी सेवा और प्यार के लिए देवता स्त्रियाँ भी अवतार लें।।23।।

देवतास्त्री और अप्सरायें गोपी बनकर भगवान की सेवा भक्ति रूप काम से आराधना करने के लिए वे अवतार लेती हैं। उनमें रमावेश होने के कारण वे भगवान की आराधना योग्य रीति से कर सकती हैं।

भगवान के शय्यासन आदि शेष बलराम रूप में अवतार लें। वह हजार मुँहवाले, सदाकाल स्वतंत्र श्री हरि के बिस्तर बनकर उनको अपने ऊपर लेकर रहते हैं। वह भगवान श्री हरि के शुक्लकेशावेश युक्त होकर श्री हरि के प्यार को प्राप्त करें।।24।।

अनन्त अग्रतो भविता इसका विशेष अर्थ है, मूल रूप में शेष भगवान नारायण की शय्या बनकर सेवा करते हैं। भगवान के अवतार में वेंकट गिरि, करिगिरि बनकर उनके मन्दिरों के आधार बनते हैं। जब भगवान मानव रूप धारण करते हैं तब बड़ा या छोटा भाई होकर सेवा करते हैं। राजा महाराजा अपने प्रयाण के पहले अपने विस्तर को भेज देते हैं। यह उनके वैभव का प्रदर्शन है। यहाँ बलराम जी का श्री कृष्ण से पहले जन्म लेना इसी अर्थ को देता है।

लक्ष्मण होकर श्री राम जी की सेवा अपनी योग्यता से बढ़कर करने के कारण भगवान के बड़े भाई बनकर उनसे सेवा लेने का भाग्य उनको प्राप्त है। इस प्रकार उस पाए हुए अधिक पुण्य का क्षय हो सकता है। यह भी श्री हरि के लिए प्रीतिकर है।

सारे जगत को अपनी माया से मोहित करने वाली योग्य माया दुर्गा देवी को अपने स्वामी के कार्य करने के लिए आज्ञा मिली है। वह भी अपने एक अंश से भूमि में अवतार लेने वाली हैं।।25।।

श्री शुकदेव कहते हैं- प्रजापति के स्वामी चतुर्मुख ब्रह्मा जी इस प्रकार देवताओं को आज्ञा देकर, भू देवी को अपनी बातों से सान्त्वना देते हुये अपने उत्तम सत्यलोक के प्रति गमन किये।।26।।

यादव कुल का अधिपति शूरसेन नाम का राजा मथुरा नगर में स्वतंत्र रूप से अपना राज्य चलाता था। वह मथुरा मण्डल और शूर मण्डल का अधिपति था।।27।।

उन दिनों से मथुरा नगरी यादव राजाओं की राजधानी बनी। वहाँ भगवान श्री हरि आज भी शाश्वत रूप से सन्निहित हैं।।28।।

परशुराम के क्रोध का बलि होकर कार्तिवीर्यार्जुन के दस हजार पुत्र बलि बन गये। उनमें जयध्वज, शूरसेन, ऋषभ, मधु और ऊर्जित नाम के पाँच पुत्र बचे थे। उनमे शूरसेन एक है। दूसरा मधु मथुरा नगर में राज्य किया। इनके वंश के सभी लोग विष्णु भक्त होने के कारण यदु वंश इनसे आगे बढ़ा।

वसंति वैष्णवा यत्र तत्र सन्निहितो हरिः।

इस बात के अनुसार मथुरा नगरी पुण्य क्षेत्र बन गई। श्री हरि के प्रतिमा रूप सान्निध्य को प्राप्त की। यह पूर्व कथा को याद करना है।

मथुरा नगरी में उग्रसेन राजा राज्य करता था। शूरसेन के पुत्र वसुदेव का विवाह देवकी के साथ हुआ। नव वधू के साथ बारात चली थी।।29।।

वसुदेव देवकी रथ में बैठे थे। उग्रसेन राजा का पुत्र कंस अपनी बहन देवकी को संतोष देने हेतु रथ को स्वयं चला रहा था। उसके साथ सौ से ज्यादा रथ सोने से अलंकृत होकर चल रहे थे।।30।।

यदु वंश के शूर राजा के पुत्र वसुदेव। वसु का अर्थ सम्पद्धरित देव यानी प्रकाशमान। वसुदेव गो सम्पत्ति

से प्रकाशित था। ब्रह्मा जी के शाप के कारण शूर के पुत्र होकर जन्म लिया हुआ यह कश्यप मुनि है। एक बार कश्यप ऋषि अपने यज्ञ के लिए अपने पुत्र वरुण के पास रहने वाली गायों को यज्ञ के लिए पाया था। अपनी पत्नी अदिति और सुरभि की बात सुनकर वह उनको वापस नही भेजा। इसके फल स्वरूप अदिति और सुरभि भी देवकी और रोहिणी होकर जन्म लिये थी।

यदुवंश में दूसरा राजा आहुक के पुत्र देवक और उग्रसेन। देवक की पुत्री देवकी। उग्रसेन का कंस। इस रीति से देवकी कंस बहन बनती हैं।

सोने की माला से श्रृंगारित चार सौ हाथी, पन्द्रह हजार घोड़े और एक हजार आठ सौ रथ दहेज रूप में बारात में मिले थे।।31।।

सुन्दर और अलंकृत दो सौ दासियों को पुत्री के प्यार से देवक ने दिया था।।32।।

बारात प्रारम्भ होते ही शंख, तूर्य, मृदंग और भेरी का वादन हुआ। यह मंगल निनाद आकाश में गूँज उठा।।33।।

उस समय आकाशवाणी सुनी। हे मूर्ख कंस! तुमको मालूम नही। तुम जिन दंपति को ले जा रहे हो उनका आठवाँ पुत्र तुमको मारने वाला है।।34।।

कंस स्वभाव से ही दुष्ट, पापी और यादव कुल को कलंक करने वाला। वह इस बात को सुनकर खड्ग को खींचकर अपनी बहन को काटने के लिए उसके केश को पकड़ लिया।।35।।

दुष्कर्मी, क्रूर और कोई बुरा काम करने में न हिचकिचाने वाले निर्लज्ज कंस को महाभाग्यशाली वसुदेव समाधान करते हुये बोले।।36।।

वसुदेव कहता हैं- हे कंस! तुम यदु वंश को कीर्ति देने वाले हो, शूर लोग तुम्हारा गुणगान करते हैं। तुम एक स्त्री को, वह भी अपनी बहन को, और उसकी शादी के समय उसको मारने के लिए तैयार हो गए हो। यह तुमको शोभा देने वाला नही है।।37।।

सम्बन्ध लाभोपकृतिरभेदो गुणकीर्तनम्।
नाम पंचविधं भेदो दृष्टादृष्टो भयं वचः।।

सम्बन्ध, लाभ, उपकार, अभेद, गुणकीर्तन ये पाँच शमोपाय होते हैं। दृष्टभय अदृष्टभय ये दो भेदोपाय होते हैं। यहाँ वसुदेव इन शमभेदों का प्रयोग कर रहा है। बहन बोलकर सम्बन्ध को दिखाता है, भोजयशस्करः बोल कर लाभ के बारे में बताता है, विवाह सम्बन्ध बताकर उपकार के बारे में बोलता है, विवाह सम्बन्ध को दिखाकर अभेद का बोध कराता है, शूर से गुण गान गाने वाले इससे गुण कीर्तन करता है, अपकीर्ति से दृष्टभय दिखाता है, नरक से अदृष्टभय दिखाता है। इससे मालूम होता है कि वसुदेव बड़ा ज्ञानी था।

हे वीर! जो जन्म लेता है उसको एक न एक दिन मरना है। सौ वर्ष जीने के बाद भी एक दिन मरना जीव पाया हुआ प्रत्येक जीवों को निश्चित है।।38।।

यहाँ वीर शब्द से और एक अर्थ निकलता हैं। अपने बहन को मारने वाले तुम कैसे वीर हो सकते हो।

उपहास का यह काकुस्वर इसमें आता हैं। जीव शरीर छोड़ने के पहले ही अगले शरीर का प्रबन्ध हो जाता हैं। पुराने घर में रहकर ही नये घर की रचना बनती हैं।

इस पंचभूत शरीर मृत्यु के बाद पुनः पंचभूत मे मिल जाता है इसके बाद देह पाने वाला जीव दूसरा देह पाने के बाद ही पहले शरीर का अभिमान को छोड़ देता है।।39।।

चलने वाला आदमी एक पाँव को धृढ़ रूप से रखने के बाद ही दूसरा पाँव उठा लेता है। तृण के ऊपर चलने वाला कीट दूसरे तृण को पकड़ने के बाद ही पहले वाला तृण को छोड़ देता है। वैसे ही कर्म प्रवाह मे बहने वाला जीव भी अन्य देह मिलने के बाद ही पहले देह को छोड़ देता है।।40।।

जागृत अवस्था मे देखा सुना विषयों को संस्कार के वश अनेक आशा आकांक्षा को मन मे भरा हुआ मानव उन्ही के चिन्तन करते हुये नींद करते समय स्वप्न मे उसी तरह का वासनामय शरीर को देखता है, उसी मे अभिमान रखता है। उसी प्रकार जीव अपने जीवित काल मे जो देखा सुना है उसी मे आशा और मन रखते हुये मरने के समय उसी की चिन्ता करते हुये अपस्मृति (मरण) पाता है। बाद मे पुनर्जन्म लेकर उस चिन्तन के अनुसार नया पंचभौतिक शरीर पाता है।।41।।

अपस्मृति का अर्थ होता है भूल जाना। मरा हुआ आदमी अपने पूर्व शरीर का अभिमान खो देता है। शरीर मरता है किन्तु जीव कभी भी मरता नही। अपने पूर्व शरीर को भूल जाने के कारण यहाँ अपस्मृति को मरण इस प्रकार अर्थ होता है। मरा हुआ व्यक्ति मरने के पहले किस आशा से किसकी चिन्ता करते हुये मरता है दूसरे जन्म मे उसी शरीर को पाता है। इस दृष्टांत मे यहाँ सोने के पहले आदमी जो गाढ़ चिन्तन करता है उसी को स्वप्न मे पाता है।

संकल्प विकल्प इत्यादि अनेक परिणाम होने वाला मन मरण के समय मे देव, गन्धर्व, पितृ, मानव, असुर इस प्रकार पाँच तरह का शरीर मे अपने योग्यता के अनुसार स्वरूप गुण के अनुसार पाकर भगवान के साथ जन्म लेता है। उस देह मे भगवान की इच्छा से ही प्रकृति के गुण धर्म के अनुसार काम करता है।।42।।

अधिकारी के अनुसार उत्तम जीव को देव शरीर मध्यम पितृ शरीर अधम गन्धर्व शरीर नित्य संसारी मनुष्य शरीर तमो योग्य को असुर शरीर सामान्यता पुनर्जन्म मे योग्यतानुसार शरीर मिलता है। अपने योग्यता के ज्यादा चिन्तन करने से उत्तम शरीर मिलने वाला नही है। किन्तु मरण काल मे उत्तम देवता के चिन्तन से देवादियों का सानिधय मिलेगा।

सूर्य चन्द्र पानी से भरे हुए पात्र में प्रतिफलित होकर बहुरूप में दिखते हैं। हवा चले तो पानी हिलने से उसमें बिम्बित प्रतिबिम्ब हिलता है। वैसे ही जीव भगवान की इच्छा से निर्मित त्रिगुणात्मक शरीर में रहता है। विषय पदार्थों की इच्छा के कारण अनेक मोह से बन्धित होता

है। इनसे मुक्त जीव विषय वासना रहित होने के कारण स्थिर मन वाला होता है। पात्र का सम्बन्ध न रहता हुआ सरोवर का पानी हवा के सम्बन्ध से विचलित नही होता है। उसमे प्रति फलित होने वाला बिम्ब भी चंचल नही होता है और सदाकाल निश्चल रूप से एकप्रकार रहता है। वैसे ही मुक्त जीव त्रिगुणात्मक रहित शरीर में मोह रहित होकर रहता है।।43।।

इस प्रकार आत्मा कभी मरता नही। देह तो एक दिन मरने वाला है। एक देह गये तो भी दूसरा देह भगवान की इच्छा के अनुसार मिलता ही है। इसके लिए स्वयं जीवित रहने के उद्देश्य से दूसरो को हिंसा देना व्यर्थ होता है। यह शरीर देने वाले भगवान और हमारे माता पिता को द्रोह होता है। अपने शरीर की रक्षा चाहने वाले दूसरों के शरीर का नाश करना गलत होता है क्योंकि वे भी अपने शरीर का रक्षण करना चाहते हैं। तुम्हारे द्वारा किसी को मारने से इस जगत में द्रोह होता है और परलोक में भी पाप होता है।।44।।

जीव कभी भी नाश नहीं होता है अतः केवल नश्वर शरीर के लिए अन्यों का द्रोह नही करना है। इसी कारण हे दीन वत्सल कंस, मेरी पत्नी तेरी बहन है। यह बारह वर्ष की लड़की है। दीन है तुम्हारे पुत्री के समान है। अभी नवविवाहिता है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम इसको जीव से मारना नही।।45।।

श्री शुकदेव कहते हैं- वसुदेव इस प्रकार कंस को पाँच तरह के साम और दो तरह के भेदोपाय का उपदेश दिया। किन्तु क्रूर स्वभाव का कंस नर भक्षक राक्षस के समान है, उनसे भी नीच है, वह देवकी को मारने की इच्छा से बिल्कुल नही हटा।।46।।

कंस के इस जिद को देखकर वसुदेव विचार करके आई हुई इस आपदा से एक मार्ग मन में तय किए।।47।।

बुद्धिमान आदमी को अपने बुद्धि बल के अनुसार आयी हुई अपमृत्यु के परिहार करने का प्रयास करना चाहिए।प्रयत्न करने के बाद भी एक बार मृत्यु आती है तो कौन क्या कर सकता है।।48।।

आया हुआ विपदा वापस चले जाने तथा अश्वत्थामा के अस्त्र से भी नष्ट न होने वाले परीक्षित साक्षी हैं। पाण्डवों को सूई को लगने वाली मिट्टी को नही दूँगा बोलने वाला दुर्योधन का क्या हाल हुआ। इससे हमें धर्म सूक्ष्म को ठीक तरह से जान लेना पड़ता है। देह त्याग करने के बाद लोकान्तर को पाकर बाद में पुनः जन्म लेना, रोगादि उपद्रव बार बार आना ये इसके लिए दृष्टान्त हैं। मृत्यु के बाद भी सान्दीपनी गुरु के पुत्र जन्म लेकर आए। जंगल में रहने वाली लकड़ी भी होम कुण्ड में गिरने के लिए जड़ होने के कारण असमर्थ होता है। उसके अदृष्ट का निर्णय भगवान ही करते हैं।

देवकी में जन्म लेने वाले बच्चों को कंस को देकर देवकी के मरण का परिहार करना चाहिए। मुझे देवकी में पुत्र नही हुआ अथवा कंस बीच में मर जाये तो भय नही है। यदि कंस

जीवित रहा और मुझे बच्चे भी हुये तो उनको कंस को देना अनिवार्य होता है। इसमें भगवान की इच्छा जो है उसी के अनुसार हो।।49।।

इसके बदले में मेरे पुत्रों से यदि कंस का मरण निश्चित है तो दैव गति को कोई नहीं बदल सकता। आयी हुई मृत्यु वैसे ही चली जा सकती है अथवा गयी हुयी मृत्यु वापस आ सकती है।।50।।

घर के अन्दर रहने वाला यज्ञ कुण्ड और जंगल में रहने वाली लकड़ी से क्या सम्बन्ध है? किन्तु उस लकड़ी के होमकुण्ड का आहार बनना अदृष्ट के कारण ही होता है। लकड़ी स्वयं चलकर आग के वश में नही होती है। जीव को एक शरीर मिलना अदृष्ट के कारण होता है वैसे एक शरीर का चले जाना वह भी अदृष्ट नियामक भगवान के बिना और कोई नही करता है। अदृष्ट के कारण आकाशवाणी सत्य हो सकती है।।51।।

यहाँ अग्नि, होमकुण्ड और चूल्हा इनको स्वतः प्रवृत्ति नही है। आग को अदृष्टवश से लकड़ी मिलती है। वैसे ही अदृष्ट के कारण जीव को शरीर का आना जाना रहता है। यह वामन पुराण की बात है।

इस प्रकार विचार करते हुये वसुदेव अपनी बुद्धि से कंस को समाधान करते हुये गौरव दिखाते हुये अपने विचार को व्यक्त करता है।।52।।

कंस क्रूर, दुष्कर्म करने के लिए लज्जा रखने वाला नही है। वसुदेव इसको ठीक तरह से जानता था, मन के अन्दर बहुत तड़फड़ाहट थी। बाहर उसको न दिखाते हुये प्रसन्न मन से हँसते-हँसते कहा।।53।।

वसुदेव कहता है - हे सौम्य-स्वभाव वाले कंस! अशरीर वाणी के अनुसार देवकी से तुमको कोई भय होने वाला नही है। मैं एक वादा करता हूँ कि देवकी से जन्म लेने वाले सारे बच्चों को जन्म लेते ही तुम्हारे हाथ में दे देता हूँ। तुमको भय उन बच्चों से है। मुझसे और देवकी से तुम्हें भय कैसे होता है।।54।।

इस बात से हमें लगता है कि वसुदेव बहुत स्वार्थी है, बच्चों को बलिदान देकर पत्नी को बचाना चाहता है। पहले बच्चों को जन्म देकर बाद में उनको बलि देने के बदले में बच्चों को पैदा ही न करें तो अच्छा होता है ऐसा विचार आ सकता है। किन्तु ऋतुकाल को व्यर्थ करना भ्रूण हत्या समान पाप होता है। यहाँ कंस शिशु हत्या करने वाला है। इससे शिशु हत्या दोष कंस को जाता है।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध में पहला पूर्वाध मे अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - दूसरा

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- वसुदेव के अभिप्राय को सुनकर कंस उनके विचार के अनुसार देवकी की हत्या करना छोड़ दिया। इससे वसुदेव संतुष्ट होकर कंस की स्तुति किया। गृह प्रवेश का कार्यक्रम यथासांग पूर्ण हुआ।।1।।

भगवान के अवतार के स्थान रूप देवकी सारे देव देवता के सन्निधान पात्र होकर बड़ी होने के बाद प्रतिवर्ष एक -एक ऐसे आठ पुत्रों को जन्म दिये। सुभद्रा नाम की एक पुत्री को भी बाद में जन्म दिया।।2।।

जन्म नक्षत्र से कीर्तिमान नाम वाले पहले पुत्र को जन्म लेते ही वसुदेव अपने दिए हुए वचन के अनुसार, असत्य से डरते हुये बहुत कष्ट से उस पुत्र को लाकर कंस को सौंप दिए।।3।।

सत्य से इतना डरने वाला, अष्टम पुत्र कृष्ण को कंस के वंश मे क्यों नही दिया यह संशय यहाँ आता है। किन्तु भगवान श्री कृष्ण की आज्ञानुसार ही वह उनको जमुना पार ले गया। भगवान का आज्ञा पालन सत्य से भी बड़ा सत्य है।

वसुदेव ज्ञानी और सज्जन था। ज्ञानी लोग मरण से नही डरते, दुःख नहीं करते। वैसे ही वसुदेव ऐहिक सुख की अपेक्षा न करते हुये आये हुये दुःख को सहन करते हुये पुत्र को दुष्ट कंस के हाथ मे रखा। कंस दुष्ट था उसको शिशु हत्या से न भय है और न अकार्य करने का डर है। सज्जन लोग सत्य वचन को पालने के लिए त्याग करने के लिए सिद्ध रहते हैं।।4।।

पुत्रोत्पत्ति और पुत्र नाश दोनों को समान देखने वाले वसुदेव की मनःस्थिति और सत्य निष्ठा को देखकर कंस मोहित होकर हँसते हुये कहता है।।5।।

वसुदेव! तुम्हारा पुत्र अपनी माँ की गोद में चला जाये। इससे मुझे कुछ दिक्कत नही है। मुझे आठवें गर्भ से आपत्ति आने वाली है। यही अशरीर वाणी का मन्तव्य था न?।।6।।

वैसा ही हो कहते हुये वसुदेव पुत्र को उठाते हुये अपने घर चला गया। चंचल मन वाला दुष्ट कंस के ऊपर उसका विश्वास नही था। कंस का मन स्वाधीन में नही रहता है। वह किस

समय क्या कर सकता है। इसको कोई नही जान सकता। कंस की इस बात पर वसुदेव का विश्वास नही हुआ,वह इससे सन्तोष नही पाया।।7।।

नन्द इत्यादि यादव, यशोदा इत्यादि गोपिका स्त्री, वसुदेव इत्यादि यादव प्रमुख, देवकी इत्यादि यादव स्त्री, इस प्रकार वसुदेव नन्द गोप के दोनों कुल के ज्यादातर लोग देवांश से जन्म लिए हैं।।8।।

कंस के नजदीकी बन्धु अनुचर सेवक ये सारे लोक को उपद्रव करने वाले असुरांश से जन्म पाये हैं।।9।।

वसुदेव पुत्र को उठाकर अपने घर गया। इतने में नारद जी कंस के पास आकर रहस्यमय बातें की। भू भार हरण के लिए, जन्म लिए हुये दैत्यों का नाश करने के लिए देवता लोग अवतार लिये हैं। दैत्यों के हाथ से पाप की घटना हो इस दृष्टि से नारद जी आठ नौ इन दोनों श्लोकों मे कहे हुये रहस्य को बता दिये।इससे भगवान के भूभार हरण कार्य में अपना भी किंचित सहयोग दिये।।10,11।।

देवता प्राया: इससे वसुदेवादि कई देवता अंश वाले हैं। शतधन्व इत्यादि देवता नही हैं। यह अर्थ होता है।

कंसमनुव्रता: यहाँ क माने ब्रह्म वायु, सम शब्द से विष्णु यह अर्थ होता हैं। इन दोनों को अनुसरण करते हुए हरि वायु भक्त अवतार लिए। यह अर्थ स्पष्ट होता है।

नारद जी के चले जाने के बाद कंस विचार करने लगा, ये यादव सारे हमारे शत्रु देवतागण हैं। विष्णु मेरा वध करने के लिए ही देवकी के गर्भ से जन्म लेने वाला है। विष्णु की माया समझ में आने वाली नही है यह समझकर वसुदेव देवकी को कारागृह में डाल दिया। वापस दिए हुये बच्चे को पुनः लाकर अपने हाथ से उसको मार डाला। विष्णु की माया के संशय से आगे जन्म लिये हुये बच्चों को भी मारते रहा।।12,13।।

अन्य लोगों के जीव को लेकर अपने इन्द्रियों के तृप्ति को पाने वाले स्वार्थी लोग प्रायशः अपने माँ-बाप, भाई-बहन, स्नेही-मित्र, सबको मारने के लिए तत्पर होते हैं।।14।।

समुद्र मंथन करते समय हुए देवासुर युद्ध में कालनेमि नाम के दैत्य को विष्णु ने मार डाला। वह असुर ही अब कंस रूप में जन्म लिया है। इस बात को नारद जी से सुनकर देवांश से जन्म लिये हुये यादवों से कंस द्वेष करने लगा।।15।।

यदु, भोज, अंधक इन तीनों कुलों के नायक अपने पिता राजा उग्रसेन को जेल में डालते हुये उसके शूरसेन राज्य पर स्वयं शासन करने लगा। बलिष्ठ कंस से सारे लोग डरने लगे।।16।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तीसरा

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - कंस बड़ा बलिष्ठ था। मगध के राजा जरासंध का आश्रय उसको मिला था, प्रलम्ब, बक, चारुण, तृणावर्त, मुष्टिक, अरिष्ट इत्यादि दुष्ट मल्लों को पोषण करते हुये उनसे दुष्ट कार्य करवाता था। पूतना, केशी, धेनुक इत्यादि अपने सेवकों, बाण, नरक इत्यादि असुर राजाओं से मिलकर कुवलयापीड़ नाम के मत्तगज के सहयोग से यादवों के साथ सदाकाल विरोध करता था।।1,2।।

महाशन नाम का कोई कंस का साथी नही था। महा यानी बहुत असन खाने वाले कुवलयापीड़ को महाशन कह सकते हैं।

कंस से पीड़ित यादव लोग मथुरा छोड़कर चले गये। वे कुरु, पांचाल, केकय, साल्व, विदर्भ कोसल देशों में रहने लगे।।3।।

अक्रूर जैसे कंस के कई सम्बन्धी यादव मथुरा में ही रहते थे। वे बहिरंग में कंस में निष्ठा दिखाते हुये भगवान की सेवा करते हुये मथुरा में ही वास करते थे।।4।।

देवकी के किसी गर्भ में विष्णु अवतार लेकर अपना वध कर सकता है, इस भय से कंस देवकी के छः बच्चों को मार दिया। सातवाँ होकर विष्णु के शुक्ल केश के आवेश वाले शेषावतारी बलराम जन्म लिये। वे अपनी माँ को सन्तोष और कंस को दुःख देते रहे। कंस का वह दुःख दिन-दिन बलराम जी के साथ बढ़ता रहा।।5।।

महर्षि नारद कंस को भविष्य बता दिये थे कि विष्णु तुमको मारने वाला है। आकाशवाणी ने सुनवाया था देवकी के अष्टम पुत्र से तुम्हारा मरण होगा। कंस यह ठीक तरह से समझ लिया था कि उसको मारने वाला तो केवल विष्णु हो सकता है। एक क्रम से आठ पुत्र एक के बाद एक जन्म लिये किन्तु अष्टम को गिनना सरल नही है। कोई भी पुत्र गिनने का क्रम बदल करने से अष्टम हो सकता है।

इसका मुख्य कारण हिरण्यकश्यप से दिया हुआ शाप। वह इस प्रकार है। कश्यप मुनि का पुत्र असित देवल मुनि तप करते-करते बहुत कृश हो गया था। मरीचि ऋषि के छः पुत्र उनको देखकर हास्य किये। असित देवल क्रोध से उनको शाप दिये। शाप पाकर वे छः स्मर, उद्गीत, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रभृद, घृणी नाम से ये सभी

कालनेमि नाम के दैत्य के पुत्र बने। वे ब्रह्मा जी से तप करने लगे। पानी में डूबकर वहाँ गर्भगृह में वास करने के कारण उनको षड्गर्भ कहते हैं। कालनेमि हिरण्याक्ष का पुत्र था। ब्रह्मा जी के बारे में तप कर रहे उनको देखकर हिरण्यकश्यप को क्रोध आया। जो चाहे उसको देने की ताकत वाला मेरे रहते हुये अन्य देवों की उपासना करने वाले तुम अपने पिता के हाथ से मरण पाओ। इस प्रकार शाप दे दिया। इन वर और शाप को भगवान की आज्ञानुसार देवी दुर्गा अनुष्ठान में लाईं। कालनेमि अब कंस बनकर जन्म लिया है। षड्गर्भों को एक एक करके देवकी-गर्भ में दुर्गा देवी रखती थी। बच्चा के जन्म लेते ही कंस रूप में रहने वाला कालनेमि उस बच्चे को मार डालता था। इस प्रकार कंस द्वारा उनको मारने से हिरण्यकश्यप का शाप भी पूर्ण हुआ। बलराम श्री विष्णु के शुक्ल केश से अवतार लेने वाले शेष हैं। यह हमने पहले ही बताया है।

भगवान को ही रक्षक मानने वाले यादवों को कंस से होने वाले संकट को समझते हुये सर्वांतर्यामी श्री हरि दुर्गा देवी को आज्ञा दिए।।6।।

हे देवी,मंगलकारिणी तुम यादव और गायों से भरा हुआ नन्द गोकुल को जाओ। वहाँ वसुदेव की पत्नी रोहिणी रहती है।।7।।

वसुदेव की और अन्य पत्नियाँ कंस के भय से दूर-दूर अलग-अलग गुप्त स्थानों में रहती हैं। तुम देवकी के गर्भ में रहने वाले मेरे आवेश युक्त आदिशेष के भ्रूण शरीर को खींचते हुये रोहिणी के गर्भ में बैठा दो। बाद में मैं अपने सिर में से एक काले बाल के स्वरूपांश से देवकी पुत्र होकर अवतार लेने वाला हूँ। तुम भी नन्द गोप की पत्नी यशोदा के गर्भ से जन्म लो। हे मंगलकारी, तुम श्रेष्ठ हो, सबके अभिष्टों को पूर्ण करने वाली हो। तुम ही बड़े लोगों की बड़ी आकांक्षाओं को भी पूर्ण करने वाली हो। मनुष्य लोग मन्दिर निर्माण कर तुम्हारी पूजा अलग-अलग नाम और अलग-अलग विधि से, धूप दीप नैवेद्य से करें।।8,9,10,11।।

रोहिणी बाह्लीक राजा की पुत्री और वसुदेव की ज्येष्ठ पत्नी थी। उसके गर्भ धारण करते ही कंस के देवकी के बच्चों को पहचानने के लिए, बच्चे अदल बदल न हों इसके निश्चय करने के लिए रोहिणी को दूर भेजा था।

दुर्गा-दुष्ट जनों को न मिलने वाली, **भद्रकाली**-मंगल स्वरूप वाली, कालीरंग वाली, **विजया** सर्वत्र जय देने वाली, **वैष्णवी**-विष्णु पत्नी, **कुमुदा**-भू लोक में सुख देने वाली, **चंडिका**-दुष्ट जनों को शिक्षा देने वाली, **कृष्णा**-सज्जनों को आनन्द देने वाली, **माधवी**-मधु नाम के यादव वंश में यशोदा के पेट से जन्म लेने वाली, **कन्या**-सुख देने वाली, शादी न करते हुए कन्या कुमारी होकर समुद्र तट पर रहने वाली, **माया**-सम्पदा देने वाली, **नारायणी**-नारायण की पत्नी, **ईशाना**-सबकी ईश्वरी, **शारदा**-प्रपंच को लय करने वाली, **अम्बिका**-इस जगत की माँ रूप धारण करने वाली, इस प्रकार लोग तुमको अलग-अलग नाम से आराधना करते हैं।।12,13।।

भक्तों की रक्षा करने वाले दुर्ग के सम्मान करती हैं इसके लिए लक्ष्मी को दुर्गा बोलते हैं। वैसे ही दुःख को दूर करने वाली यह अर्थ भी होता है। माया का अर्थ माम् (भगवान को) या आश्रय लेती है यह अर्थ होता है। शारदा का अर्थ हिंसा का खण्डन करने वाली यह होता है।

दिति, अदिति, दनु, काष्टा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा, तिमि ये तेरह दक्ष पुत्री मरीचि मुनि के पुत्र कश्यप ऋषि की पत्नियाँ बनी। कश्यप जब वसुदेव होकर जन्म लिया तब सुरभि दिति, दनु ये तीन काशी के राजा बाह्लीक करवीर राजा की पुत्रियाँ, रोहिणी, सुतनु, वडवा नाम से वसुदेव की पत्नी बनीं। अदिती देवकी बनी और छः पुत्री जो कश्यप की पत्नी थीं वे धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा नाम से देवकी की बहन बनकर वसुदेव की पत्नी बनी। रोहिणी, मदिरा, वैशाखी, भद्रा, सुनामुनि ये पाँच पुत्रियाँ पुरु वंश में जन्म लेकर वसुदेव की पत्नी बनी।

शूर नाम के यादव राजा को भोजादेवी नाम की क्षत्रिय पत्नी में वसुदेव जन्म लिया, उसी की वैश्य पत्नी में नन्द गोप जन्म लिया। अष्टवसु में एक द्रोण श्री हरि को पुत्र रूप में पाने के लिए वर पाकर शूर के पुत्र यादवों के राजा नन्द गोप होकर जन्म लिया।

देवकी के अलावा वसुदेव की अन्य पत्नियाँ गर्भधारण किये तो कंस उनको दूर भेजता था। यदि वे यहीं रहे तो अपने पुत्र को बदल सकते हैं इसके लिये उनको दूर भेजता था। रोहिणी वसुदेव से गर्भ पाने के बाद नन्दगोप वसुदेव के भाई होने के कारण उन्ही के घर में रहती थी। उसके पेट में रहने वाले बलराम को बदल करने के लिए भगवान ने दुर्गा को आज्ञा दी। यहाँ भगवान **स्वांशभागेन** कहते हैं। इसका अर्थ वे बलराम की तरह **भिन्नांश** से नही। यह अर्थ होता है।

देवकी के गर्भ से बाहर निकाल कर लाने से बलराम का नाम संकर्षण भी है। इस जग को आनंद देने वाले हैं इसके लिए उनका नाम राम हो। बल और बल के निमित्त श्रेष्ठत्व होने के कारण वे बलभद्र भी हैं।।14।।

श्री शुकदेव कहते हैं - भगवान की आज्ञा को दुर्गा देवी वैसा ही करूँगी बोलते हुये भगवान नारायण को परिक्रमा करते हुये इस भूमि में आकर वे जैसे कहे थे वैसे ही किये।।15।।

दुर्गा देवी देवकी-गर्भ को खींचकर रोहिणी के गर्भ में रख दीं। तब लोग समझे कि देवकी को गर्भस्राव हो गया।।16।।

दुर्गा देवी योग निद्रा की अभिमानी, उनके प्रभाव से देवकी और रोहिणी दोनों को एक ही समय गर्भस्राव हुआ। उस समय देवी के कारण उन दोनों को गाढ़ निद्रा आई थी। रोहिणी स्वप्न में ही गर्भपात का अनुभव करती दुःखित हो गई। तब दुर्गादेवी ने उसको बता दिया कि तुम्हारे गर्भ में और एक दूसरा गर्भ को लाकर रखी हूँ। संकर्षण नाम का पुत्र तुम्हारे गर्भ से जन्म लेने वाला है। इसी कारण तुम्हे दुःख करने की कोई बात नही। जब नींद खुली तो रोहिणी पहले जैसे तीन माह की गर्भिणी थी। उधर देवकी का गर्भपात कंस ने ही करवाया ऐसा लोगों का अभिप्राय

बन गया था। यह कथा हरिवंश मे आती है।

विश्वव्यापी भगवान भक्तों को अभय देने के लिए साक्षात अपने सिर के एक काले बाल के रूप से वसुदेव के शरीर में प्रवेश किये।।17।।

जीव पहले पिता के उदर में प्रवेश करता है। वहाँ से माता के पेट में आकर नौ महीना वहाँ रहते हुए दसवें महीने में बाहर आता है। यह मानव का क्रम है। भगवान श्री कृष्ण होकर पहले प्राणि रूप में वसुदेव में प्रवेश करते हुए उसी भूतावेश से माँ देवकी के गर्भ में प्रवेश किए हैं। यह शुक्र शोणित के सम्बन्ध से होने वाला नही है।

बलराम देवकी गर्भ में तीन महीने रहे, बाद में रोहिणी गर्भ में सात महीने रहे। कुल मिलाकर दस महीने रहे। श्री कृष्ण इस श्रुति मर्यादा को रखते हुए वसुदेव के पेट में तीन महीना और शेष बचा हुआ सात महीना देवकी के गर्भ में रहे। दसवें महीने में जन्म लिए। यहाँ मध्वाचार्य जी केवल साढ़ेसात महीने का गर्भावास की बात बताए हैं और कई लोग बलराम के तीन मास मिलकर दस मास बोलते हैं। हरिवंश में लिखा है कि भगवान आठवें महीने में जन्म लिए हैं। ये सारे विवक्षा भेद से सही होते हैं।

काले बाल के रूप में आये तो भी वह मूलरूप का शरीर पुरुष रूप में ही था। इसका वर्णन करते हुये भागवतकार आगे कहते हैं कि वह साक्षात मन्मथ से बढ़कर मन्मथ रूप था। भगवान के सारे अवयव और इन्द्रिय पुरुष रूप में पुरुष के अवयव धारण करते हुये सर्वशक्त और सर्वसमर्थ हैं।

परम पुरुष पुरुषाकार्य में तेजोरूप से वसुदेव के अन्दर प्रवेश करने से वसुदेव सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा था, अतः वसुदेव के पास कोई भी अपायकर प्राणी आ नही सकता था। कोई भी दुष्ट उसको बुरी नज़र से देख नही सकता था।।18।।

श्री हरि अपने स्वरूप शरीर से ही माता पिता के शरीर में प्रवेश कर वहाँ से बाहर आते हुये व्यक्त होते हैं। उसी को लोग भगवान जन्म लिये ऐसे कहते हैं लेकिन भगवान प्राकृत रूप से जन्म नही लेते। यह बात वामन पुराण की है।

इसके बाद वसुदेव लोक कल्याणकारी और सज्जनों को सुख देने वाले अच्युत रूपी भगवान श्री कृष्ण को अपने पेट से देवकी-गर्भ में रख दिया। तब भगवान वहाँ स्वेच्छा से अपने स्वरूप से ही आविर्भाव हुये। आकाश मार्ग में चलते हुये आने वाले आह्लादकर चन्द्र पूर्व दिशा मे दिखने लगे तो लोग चन्द्रोदय हो गया ऐसे कहते हैं। वैसे ही भगवान श्री कृष्ण देवकी-गर्भ में उदित हुये।।19।।

जुआ के स्थान में सत्य जैसे झूठ से छिपा रहता है वैसे ही जेल में देवकी पहले कान्तिहीन होकर बन्धित स्थिति में दुःखित रहती थी।अब जगदाधार स्वामी को आधार देने वाली देवकी अग्नि की ज्वाला के समान ज्वाज्वल्यमान होकर प्रकाशित होने लगी थी।।20।।

कभी भी न हारने वाले भगवान श्री कृष्ण को पेट में धारण करने वाली देवकी अपनी

कांति से पूरा कारागृह को प्रकाशित करती थी। उसके हर्षोत्फुल्ल वदनारविन्द को देखकर कंस को संशय आने लगा। वह अपने में विचार करने लगा-निश्चित रूप से मुझको मारने के लिए ही श्री हरि इसके पेट नाम की गुफा में छिप कर बैठा है। इसी कारण देवकी शोभायमान है। इसके पहले वह कभी भी इतना उज्ज्वल नही दिखती थी।।21।।

अपना कार्य साधना करने वाले अपने पराक्रम को कभी भी कलंकित नही करना चाहिए। अब मैं क्या करूँ, जल्दी में हरि के बारे में क्या निर्णय करूँ? गर्भिणी स्त्री वह भी मेरी बहन इसको मैंने मार दिया तो मेरी कीर्ति, सम्पत और आयुष सबका नाश हो जाता है।।22।।

व्यक्ति अत्यन्त क्रूर हुआ तो वह जीते जी मरा जैसे हो जाता है। वह मरता है तो उसके साथ उसकी निर्मल कीर्ति, कमायी हुयी सारी सम्पत्ति,भोग भाग्य और परलोक सुख सब नष्ट हो जाते हैं।।23।।

ऐसे विचार करते हुये कंस अपनी आलोचना के अनुसार स्वयं की प्रेरणा से श्री हरि के जन्म लेने के समय का निरीक्षण करता रहा। कंस समर्थ था, उसी समय देवकी को मार सकता था किन्तु लोक भय से स्वयं प्रेरित होकर पुत्र जन्म लेने की राह देखता रहा।।24।।

कंस में जीवद्वय का आवेश होने से उसको अच्छे बुरे दोनों विचार आते थे।

कंस गन्धर्व कुल में जन्म लिया हुआ द्रुमिल नाम के असुर से उग्रसेन की रानी में वंचना से जन्म लिया हुआ है। कालनेमि स्वयं मनोभिमानी असुर है। वही कंस रूप से जन्म लिया है। इस अंश को नारद जी कंस को बताते हैं। वंचना किए हुए द्रुमिल के बारे में क्रोधित होकर उग्रसेन की पत्नी शाप देती है कि तुम जिन पुत्रों को जन्म देते हो उनको मेरे पति के कुल में जन्म लेने वाली संतति नाश करे।इसी कारण जन्म से कंस श्रीकृष्ण से बद्धद्वेष करता था। कंस के सहायक जरासन्ध, नराकासुर, बाणासुर ये सारे तत्वाभिमानी दैत्य हैं। जरासन्ध नरकासुर मनोभिमानी है, बाणासुर चक्षुरिन्द्रियाभिमानी। केशी धेनुक वाक इन्द्रियाभिमानी, तृणावर्त पादाभिमानी, साल्व श्रोत्रेन्द्रियाभिमानी दैत्य थे। कालनेमि रूद्र के वर के कारण अजेय था।उसके साथ-साथ उसमें भृगु मुनि और मुख्य प्राण के अंश थे। जरासंध अपनी पुत्रियों की रक्षा के लिए रखे हुये अनेक यक्षों को जीत कर उनकी पुत्रियों से शादी किया था। शिव के बल के कारण इन्द्र और वरुण को भी जीत चुका था।

बैठे हुये,सोते समय,फिरते चलते,खाते पीते सभी समय वह हरि का चिन्तन करता रहा।उसको जहाँ देखे वहाँ हरि ही दिखता था।।25।।

ब्रह्म, रुद्र आदि देव नारदादि मुनियों के साथ और देवतागण सहित अनुचरों के साथ देवकी के पास आ गये।वे अर्थ गर्भित बातों से देवकी के गर्भ में रहने वाले श्री हरि की स्तुति करने लगे।।26।।

<u>ब्रह्मा भवश्च</u> इसका अर्थ इस जगत में अवतार न लेने वाले चतुर्मुख ब्रह्मा जी ऐसे होता है।

ब्रह्म-रुद्र बोलते हैं भगवान श्री हरि! आप सदाकाल पूर्णानन्द ज्ञान रूप हैं। पंच महाभूतों से आप विलक्षण हैं। आप तीनों वेदों से प्रतिपाद्य हैं। इस सत्य प्रपंच के आप मूलकारण हैं। सत्य प्रपंच के नियामक होकर उसके अन्दर आप व्याप्त होकर रहते हैं। निर्दुष्ट आनन्दरूप ज्ञान वाले सात्विक लोगों को आप आनन्द ज्ञान देने वाले हैं। आप इस सत्य प्रपंच के नेता है, इसके संहारक भी आपही हैं। ऐसे आपके शरण में हम आये हैं।।27।।

भगवान! आपके वश में रहने वाला यह प्राणि प्रपंच एक अदभुत पीपल के वृक्ष के समान है। **एकायन,** आपके वश मे रहने वाले वृक्ष को मूल प्रकृति नाम की एक प्रमुख जड़ है। **द्विफल**-प्रवृत्ति निवृत्ति नाम के दो फल, **त्रिमूल**-सत्व रज़ तम नाम के तीन अन्य जड़। **चतुरस्र**-प्रवृत्ति कर्म नाम के फल में धर्म, अर्थ, काम नाम के तीन रस, निवृत्ति कर्म नाम के फल में मोक्ष नामक एक रस कुल मिलकर चार रस, **पंचशिफा**-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध नाम के पाँच बाहर के जड़, **षड़ात्मा**- 1. अस्ति-शरीर जन्म लेने के पहले रहने वाला भ्रूणावस्था, 2. जायते -जन्म लेना 3.वर्धते- अंकुर शरीर रूप में बढ़ते रहना 4.विपरिणमते - क्रमशः शरीर बदलता रहता है 5.अपक्षीयते -बुढ़ापे के कारण शरीर क्रमशःक्षय होता है 6.नश्यति - मरण पाना, यह शरीर के होने वाले छः स्वभाव अथवा ऊर्मि होते है, **सप्तत्वक्**-इस शरीर को त्वक, चर्म, मांस, रक्त मज्जा, मेधस्, अस्ति नाम के सात आवरण होते हैं, **अष्टविटप**- इस वृक्ष को देव, गन्धर्व, दानव, राक्षस पिशाच, प्राणि, मनुष्य और स्थावर नाम के आठ डाल होते हैं, **नवाक्ष**-दो आँख, दो कान, दो नाक, मुहँ, मल और मूत्र द्वार नाम के नौ घोसले होते हैं। (काठकोपनिषद में इन द्वारों को नाभि और सिर को जोड़ते हुये एकादश द्वार कहे हैं। लेकिन इन दो द्वारों से प्रवेश और निर्गमन न होने के कारण नौ द्वार को ही यहाँ कहा गया है) **दशच्छद**-पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय नाम के दस पत्तियाँ हैं, (नव द्वार इन्द्रिय नही हैं, वे केवल इन्द्रियों का स्थान हैं) इस प्रकार यह शरीर रूपी वृक्ष है। इसमें **द्विखग**-प्रवृत्त कर्मी और निवृत्त कर्मी नाम के दो पक्षी इस वृक्ष मे हैं। वे अपने कर्म के अनुसार मिलने वाले चार तरह के रस को खाते हैं। यह आदि वृक्ष है, प्रवाहतःयह अनादि वृक्ष है।।28।।

इस सत्य प्रपंच के आपही सृष्टि कर्ता, स्थितिकर्ता और लयकर्ता है। लयकाल में यह सृष्टि आप में प्रवेश करती है। आप इसके आधार रूप हैं। आपकी इच्छानुसार प्रकृति से आवृत अन्य लोग सृष्टि के लिए अलग स्थिति के लिए अलग और नाश के लिए अलग ऐसे अलग-अलग रूप में आपको देखते हैं। किन्तु ज्ञानी लोग तीनों में आपके एक ही रूप को देखते हैं।।29।।

प्रभु आप ज्ञानस्वरूप हैं। इस चराचर लोक के कल्याण करने के लिए, सज्जन को सुख देने के लिए, दुर्जनों का नाश करने के लिए सदाकाल आप अपने सकल सद्गुण पूर्ण अवतार

रूपों को बार-बार धारण करते रहते हैं।।30।।

<u>सत्वोपपन्नानि</u> इसका अर्थ भगवान के सारे रूप सत्य हैं और स्वतंत्र हैं यह होता है। भगवान <u>सर्वगुण समाहार हैं</u> सारे गुण उनमें मिल गये हैं।

हे कमलाक्ष! आप सकल चेतन जगत के आधार रूप हैं। आपमें मन रखते हुये ध्यान करने वाले भक्त अपने पूर्वजों द्वारा दिखाये हुये आपके पाद कमल नाम की नौका में बैठकर इस संसार सागर को छोटी गाय बछड़े के पाँव के खड्डे में खड़ा हुआ पानी को जैसे आसानी से पार करते हैं।।31।।

हे ज्ञान मूर्ति! आपमें भक्ति करने वाले परम ज्ञानी लोग अन्यों को असाध्य और भयानक इस संसार सागर को ठीक तरह से पार करते हैं। पार करने के बाद भी उस नौका को छोड़ते नही, अपने शिष्यगण को दे देते हैं। वे स्वयं उसी में बैठकर मोक्ष पाते हैं। इन गुरु शिष्यों को परमानुग्रह करने वाले, आपको छोड़कर और कौन हो सकता है।।32।।

हे कमलाक्ष, अन्य ज्ञानी लोग आपमे भक्ति न करते हुये,आपके पाद के शरण में न आते हुये आधा ज्ञान पाकर स्वयं को मुक्त समझते हैं। वे कष्टकारक और श्रमसाध्य काम्य कर्म करते हुये स्वर्गादि स्थान पाकर पुण्य क्षय के बाद नीचे गिरते हैं।।33।।

संसार सागर को पार करने के लिए भगवान का पाद ही एकमेव नौका है, वह अन्य नौका के समान सामान्य नही है। उसमें यात्रा करने वाले स्वयं संसार सागर पार करने के बाद भी, शिष्यों के लिए उसका सहारा देते हुये स्वयं उनके साथ उसमें बैठकर मोक्ष पाते हैं, यह वामन पुराण का वाक्य है।

हे लक्ष्मीरमण, हे प्रभु, आपके लोग, आपमें गाढ़भक्ति करने वाले ज्ञानी लोग कभी भी मोक्ष मार्ग से नही गिरते। उनके लिए आपकी रक्षा है। कितने भी विघ्न आये उनके शिर पर पाँव रखते हुये भय रहित होकर वे आगे बढ़ते हैं।।34।।

आप स्थिति काल में शुद्ध सत्व वाले ब्रह्मादि देवताओं के शरीर में रहते हैं। वह शरीर उनको ज्ञानोपदेश का श्रेयः साधन हैं। इसी कारण लोग वेद के अध्ययन, यागादि कर्म, योग, तप इत्यादि से आपकी आराधना करने में शक्त होते हैं।।35।।

<u>सत्वं विशुद्धम्</u> सत्व प्रचुर ब्रह्मादि देवता भगवान के शरीर में रहते हैं। इसके कारण यहाँ विशुद्ध सत्वम् शब्द का प्रयोग किया है। इसका अर्थ यह नही होता है कि भगवान को शुद्ध सत्वात्मक शरीर है।

सत्व सत्व महासत्व सूक्ष्मसत्व श्चतुर्मुख इस वाक्य के अनुसार ब्रह्मादि देवताओं का शरीर शुद्धसत्वमय है। भगवान के आवेश बल से वे शरीर अन्यों को ज्ञानोपदेश देते हैं।

शुद्धसत्वात्मक शरीर को श्री हरि आश्रय करता है इसका अर्थ उनके शरीर मे प्रवेश करते हैं। उनके आवेश बल से देवता उपदेश देते हैं, सज्जन लोग उसके अनुसार चलते हैं यह भागवत तंत्र का वाक्य हैं।

हे जगदाधार स्वामी! ब्रह्मादियों के शरीर को आपका सन्निधान न मिले तो अज्ञान को नाश करने वाला उत्कृष्ट ज्ञान इस जगत से लुप्त हो जाता है। शुद्ध सत्व गुण से ज्ञान के प्रकाश पाये हुये ब्रह्मादि देवताओं से उपदेश पाये हुये जिज्ञासु लोग आपको ठीक तरह से न जानते हुये, ठीक तरह से उपासना नही कर पाते क्योंकि ब्रह्मादियों के उपदेश के बिना गुणत्रय रहित आपका दर्शन किस साधन से हो सकता है?।।36।।

सत्वमय ब्रह्मादि देवता श्री हरि के आवेश से ज्ञानोपदेश नही किये तो त्रिगुण रहित हरि को सज्जन लोग कैसे समझते हैं? यह तंत्र भागवत का वाक्य है।

हे देव! आपके गुण कर्म अवतार के साथ आपके नाम रूप सारे अलौकिक होते हैं। उनको आपके कृपा के बिना हम केवल अपने मन से समझ नही सकते,मुहँ से बोल नही सकते। आप इस नाम रूपात्मक प्रपंच को सदाकाल देखते रहते हैं। हमें आपके स्वरूप को ज्ञानियों के मन और मुहँ से निकले हुए शब्दों से जानने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए भी आपके अनुग्रह की आवश्यकता है। ज्ञानी लोग भी आपके अनुग्रह से ही आपको जानते हैं।।37।।

भगवान को इस जगत के जैसे अल्प शब्दार्थ वाले, नाम वाले न होने के कारण और निरवधिक स्वतंत्र सम्पदा होने के कारण न नाम रूपे शब्द का प्रयोग किया गया है। भगवान सत्वादि तीनों गुणों से रहित होने के कारण उनको अगुण कहते हैं। अनायास कर्म करते हैं, इसके लिए उनका नाम अकर्म भी हैं। भगवान को अनन्त, अलौकिक नाम रूप होने के कारण उनका श्रवण मनन करना चाहिए।

इस लोक में व्यक्ति का नाम वह अस्वतंत्र होने के कारण उसके अल्पगुणधर्मों के बारे में कहते हैं, कभी-कभी नाम और गुण धर्म का सम्बन्ध ही नही रहता है। लौकिक दृष्टांत के लिए एक का नाम क्षीरसागर भट्ट है किन्तु घर मे एक लोटा भी दूध नही है क्योंकि उसके घर में गाय ही नही है। प्राकृत गुण धर्म रहित श्री हरि को ये नाम योग्य नही होते, इसके कारण उनको **अनाम** कहते हैं, प्राकृत रूप न रहने के कारण उनको **अरूप** कहते हैं। सत्वादि गुण रहित होने के कारण वे **निर्गुण** हैं, बिनायास सारे कर्म करने के कारण **अकर्म** हैं, जनन न होने के कारण वे **अज** हैं। इसी कारण यहाँ भागवत में **न नाम रूपे गुणकर्म जन्मभिः निरूपितव्ये** कहा गया है। वस्तुतः भगवान परम मुख्यवृत्ति से स्वतंत्र पूर्ण धर्म वाले सारे अनंत नाम होने के कारण श्री हरि अनंत नाम हैं, अप्राकृत अनंत रूप वाले हैं, पूर्ण अनंत गुण वाले हैं। अपने से भिन्न गुणक्रिया रहित होने के कारण वे अगुण अक्रिय हैं। वे अभिन्न गुण क्रिया वाले हैं यह ब्रह्मतर्क की बात है।

आपके नाम और रूप से मंगलकर वाले श्रवण कीर्तन, रूप से स्मरण ध्यान जो करते हैं और जो आप श्री चरणों में मन और मस्तक रखते हैं वे आपको ठीक तरह से समझते हैं। उपासक आपही हैं, उपास्य भी आपही हैं, मैं केवल निमित्त मात्र हूँ, यह अनुसंधान जो करता है वह पुनः इस संसार का भागी नही बनता है।।38।।

आपके रूप भूमि बोलने का अर्थ यह भूमि भगवान के पाद से हुआ है, उसमे पाद का सादृश्य भी है यह ब्रह्मतर्क की बात है।

हे श्री हरि! आप जगदीश हैं। आपके इस अवतार से आपके पाद रूपी इस भूमि के ऊपर हुआ दुष्ट लोगों का भार नाश हो जाता है, इसमे संशय नही है यह हमे संतोष देने वाला विषय है। आपके सुन्दर, सुकोमल और ध्वज, वज्र, अंकुश इत्यादि शुभ चिन्ह वाले पादों से यह भूमि चिन्हांकित होती है। स्वर्ग में आपकी कारूण्य नदी बहती है, इसको हम देखने वाले हैं, यह हमारे लिए संतोषदायक है।।39।

यह जमीन भगवान का पाद है, आकाश नाभि है, इसका अर्थ भगवान के उस अवयव से उनका निर्माण हुआ है। पुरुष सूक्त इसी को बताता है। इसका अर्थ हमें यह नही समझना चाहिए कि भूमि और भगवान के पाद में या आकाश और भगवान के नाभि में भेद नही हैं। मानव चलते समय हुए उसके पद चिह्नों को जैसे पाद मानता है वैसे भगवान के पाद से भूमि जन्म लेने के कारण उसको विष्णु पाद कहते हैं।

हे जगदीश! आप जनन मरण रहित हैं।अब आप जन्म लेने वाले हैं, यह केवल आपके लीला विनोद के लिए है, इसमें और कुछ कारण नही हो सकता है। आपको भी जनन मरण है ऐसा समझना और आपके लिए भी किसी की रक्षा की आवश्यकता है यह समझना अज्ञानी और कुहकियों की कल्पना है। इस संसार में रहने वाले सबको जनन मरण देने वाले और उनको जनन-मरण चक्र से मुक्ति देने वाले और मुक्ति में भी उनको आश्रय देने वाले आपको जनन-मरण कैसे हो सकता है? आपकी इच्छा मात्र से जनन-मरण इस लोक में संभव होता है।।40।।

जीव को जनन-मरण हरि की इच्छा से होते हैं तो श्री हरि को जनन मरण कैसे होता है? अज्ञानी लोग हरि में इनकी कल्पना करते हैं। यह ब्रह्मतर्क की बात है।

हे भगवान, हे यदुकुलोत्तम, आप इसके पहले मत्स्य, हयग्रीव, नरसिंह, वराह, हंस, परशुराम, राम, वामन इत्यादि अवतार लेकर तीनों लोको की रक्षा की है। हे भगवान, इस बार भी आप इस भूमि के भार को निवारण करते हुये जगत कल्याण करें, यही हमारी प्रार्थना है। आपको नमस्कार।।41।।

हे माँ देवकी, हमारे भाग्यवश से परम पुरुष भगवान साक्षात् अपने स्वरूपांश से हमारे कल्याण करने के लिए आपके पेट में प्रवेश किये हैं। अब कंस जल्दी मरने वाला है। आपका भय निवारण हो गया।आपका पुत्र सम्पूर्ण यदुकुल की रक्षा करेगा।।42।।

जिनके रूप लोक विलक्षण हैं ऐसे परम पुरुष श्री हरि को देवताओं ने ब्रह्म रुद्रादि के साथ मिलकर स्तुति करने के बाद अपने-अपने स्थान चले गये।।43।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वाध में तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौथा

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- उसके बाद सारे गण उच्च स्थान में रहते हुये प्रजापति दैवत सूचक रोहिणी नक्षत्र में, अनुकूल नक्षत्र, ग्रह, तारा युक्त नन्द भद्रादि कुयोग रहित सिंह मांस युक्त श्रावण कृष्णाष्टमी मध्य रात्रि के बहु प्रशस्त समय में श्री कृष्णावतार के सूचक मंगलमय वातावरण का निर्माण हुआ।।1।।

***थम* = अन्नम्। जिस दिन एकादशी के समान अन्न नही खाना है ऐसे कृष्णाष्टमी के दिन यह अर्थ अत शब्द से निकलता है।**

श्री कृष्ण के अवतार समय में भाद्रपद में सिंह मास आया था। उस भाद्रपद कृष्णाष्टमी को रोहिणी योग आया था। इस योग को जयंती योग कहते हैं। श्रावण मास में सिंह मास आये तो श्रावण कृष्णाष्टमी को रोहिणी योग आने के कारण जयंती उसी समय होती है।

दशों दिशायें प्रसन्न हो गयीं आकाश में नक्षत्र प्रकाशमान थे, शहर ग्राम और यादवों का कुटीर सहित समग्र भूमण्डल मंगलमय हो गया।।2।।

नदी में शुद्ध जल तेजी से बहने लगा, सरोवर में कमल के फूल खिले, जंगल में वृक्षों में फूल फलित हुये। रात के समय में भी पक्षी मंजुल निनाद किये।।3।।

शुद्ध हवा सुगंधित सुखस्पर्श देते हुये मन्दगति से चलने लगी। ब्राह्मणों के यज्ञकुण्ड में अग्नि सौम्य और सुन्दर रूप से जलने लगी।।4।।

सज्जनों का मन सन्तोष से खिले, दुर्जन घबड़ा गये। अंतरिक्ष में देव दुंदुभि आवाज करने लगे।।5।।

***अंशुरद्रुहाम* इस का अर्थ असुर से द्वेष करने वाले यह होता है। असुर को द्रोह करने वाले ऐसा अर्थ नही करना।**

रात में कमल खिलना, पक्षियों का गूंजना, याग की अग्नि जलना, दुंदुभि का स्वयं स्वर करना, ये सब भगवान कृष्ण के अवतार का सूचक हैं। आगे चलकर वसुदेव के हाथ पाँव को बंधे हुये दण्डाबेड़ि स्वयं खुल जाता

था कारागृह का दरवाजा स्वयं खुल जाता है, यमुना जी पार करने के लिए रास्ता देती हैं ये सारे कृष्णावतार की लीला है।

किन्नर-गन्धर्व गायन करने लगे, सिद्ध-चारण स्तुति करने लगे, विद्याधर-अप्सरसायें आनन्द विभोर होकर नाचने लगे।।6।।

मुनि देवतागण आनन्द-भरित होकर पुष्प वृष्टि किये। मेघ समुद्र के ऊपर खड़े होकर मंद गर्जना किये।।7।।

मध्यरात्रि के गाढ़ अन्धःकार में भगवान श्री कृष्ण के अवतार समय में दुंदुभि का निनाद हुआ। सबके हृदय गुहा में रहने वाले विष्णु देवता स्वरूपी देव के गर्भ से पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान प्रादुर्भूत हुये।।8,9।।

जनार्दने अतमे उदभूते इसका अर्थ रात में कामी जनों को दुःख देने वाले चन्द्र के उदय के समय यह अर्थ होता है। दूसरा अर्थ दुष्ट जनों को कष्ट देने वाले भगवान कंसादि दुष्टों के नाश के लिए अवतार लिए यह भी होता है।

उस अद्भुत बालक को वसुदेव ने देखा। उसको कमल के समान आँख है। चार हाथ हैं, चारों में शंख, चक्र, गदा, पद्म को धारण किये हैं, छाती में श्री वत्स चिन्ह शोभित है, गले में कौस्तुभमणि शोभित है। पीतांबर धारण किये हैं। नील मेघ के समान शरीर की कांति है, अमूल्य रत्न वज्र जटित किरीट कुण्डल से युक्त सुशोभित रुप है, कटि में मेखला शोभती है, हाथ में और बाहु मे सोने के कंकण हैं। वह नवजात बालक ऐसे सुशोभित है।।10,11।।

बाल यानी कृष्ण केश से उत्पन्न हुआ कः चतुर्मुख ब्रह्म जिसका पुत्र है ऐसा अद्भुत बालक यह है। प्रकृति में बालक को बालक उत्पन्न नही होता है। इसके लिए यह बालक अद्भुत है, यह अर्थ अद्भुत बालक शब्द से होता है।

चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारी यह रूप इन देवताओं से युक्त है। शंख = श्रीदेवी, चक्र = दुर्गा, गदा=वायु, पद्म = भूदेवी, इन अभिमानी देवताओं को स्वतंत्र रूप से धारण किया हुआ शिशु यह अर्थ है।

चतुर्भुज = चार विधि के आहुति को यज्ञ रूप में स्वीकार करने वाले। पूतना इत्यादि दैत्य भगवान की प्रथम आहुति बने। दूध, दधि, मक्खन भगवान की दूसरी आहुति। गोवर्धन उद्धार के समय के समस्त भक्ष्य तृतीय आहुति। दावानल को पीना चतुर्थ आहुति है।

चतुर्भुज धर्म, अर्थ काम मोक्ष चारों का भुजः पालकः।

अम्बुजेक्षण = क्षीर सागर में जन्म लिया हुआ चन्द्र वंश में जन्म लेने वाले और लक्ष्मी जी के ऊपर विशेष कृपा कटाक्ष रखने वाला यह अर्थ भी होता है।

श्री कृष्ण के जन्म समय के जातक का विवरण इस प्रकार है- विरोधी संवत्सर - दक्षिणायन - वर्षाऋतु -

श्रावण (भाद्रपद) कृष्ण पक्ष - अष्टमी - बुद्धवासर - वज्र योग - बवकरण में, जम्बूद्वीप में, भरत खण्ड में, यमुना तट के मथुरा नगरी में कारागार में भगवान का आविर्भाव हुआ। दक्षिक्षा के पति होने से भगवान दक्षिणायन हैं, सज्जनों को सही अर्थ बताने वाले गीतोपदेशक भगवान वर्षाऋतु हैं। अपनी कथा श्रवण से नवधा भक्ति देने वाले भगवान का पक्ष श्रावण कृष्ण पक्ष है। अष्ट महिषियों को उद्धार करने के लिए, अष्ट दिशा में रहने वाले दैत्यों को नाश करने के लिए, अष्ट महामंत्र प्रतिपाद्य होकर, अष्टाक्षर मंत्र से प्राप्य होने वाले, अष्ट वसुओं में प्रधान अवतारी भीष्म से स्तुति पाने वाले, देवकी के अष्टम पुत्र होकर, अष्ट कर्तृत्व को रखने वाले उडुपि में अष्ट यतियों से पूजित होने वाले, अष्टऐश्वर्य से न मिलने वाले, ओंकार से प्राप्त अष्टाक्षर मंत्र जप से मिलने वाले भगवान अष्टम मास श्रावण में जन्म लिए।

भक्तों को दुःख देने वाले कंस को मारने वाला वज्र रूप भगवान बवकरण और वज्र योग में जन्म लिए बुध लोगों को ज्ञान देते हुए उनके साथ रहने वाले भगवान बुधवासर में जन्म लिए। द्वीप रूपी द्वारका में आगे वास करने वाले हैं। इसके प्रतीक जम्बूद्वीप में भगवान जन्म लिए। इक्कीस मत का खण्डन करते हुए ब्रह्म सूत्र के अर्थ को मण्डन करने वाले जगद्गुरू मध्वाचार्य जी के श्रेष्ठ गुरु होकर भगवान भरत खण्ड में जन्म लिए। मथुरा नाम को पलट कर बीच में का थ अक्षर को हटा कर मै ही राम हूँ यह दिखाने वाले श्री हरि रमण द्वीप को कालिय को भेजने वाले मथुरा में जन्म लिए। भगवान वृषभ लग्न में जन्म लिए इसका अर्थ वे ब्रह्मादियों से श्रेष्ठ हैं, यह होता है। चन्द्र उनके राशि में उच्च है इसका अर्थ सूर्य चन्द्र को उच्च स्थान में रखते हुए उनकी रक्षा करते हैं।

लग्न में चन्द्र रहने से चन्द्र मुखियों से लग्न करना भी अवतार का एक उद्देश्य है यह बताता है। द्वितीय वाक् स्थान में कोई ग्रह नही है इसका अर्थ ब्रह्मादि लोगों के लिए उपदेशक भगवान हैं, किन्तु भगवान के लिए उपदेशक कोई नही है। चतुर्थ लाभस्थान में रवि उच्च हैं इसका अर्थ रवि से प्राप्त स्यमन्तक मणि और जाम्वती कन्या मणि लाभ को दर्शाता है। पुत्र स्थान पंचम में बुध मूल त्रिकोण में अपने घर में वास करता है। इससे पुत्र सन्तान का आधिक्य होता है। भगवान अपने सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों में प्रत्येक से दस-दस पुत्रों को जन्म देते हैं यह दर्शाता है। षष्ठम स्थान शत्रु का स्थान है। कंस आदि अनेक शत्रुओं को भगवान राहु रूप में हैं। पाण्डवों के वंश की रक्षा का भार वहन करने वाले भगवान सर्प भय से भयभीत (राहु = सर्प) परीक्षित को शुकाचार्य से भागवत अमृत पिलाकर उद्धार करने वाले इसको दर्शाता है। सप्तम् भाव कलत्र भाव होते हुए कुज का घर होने से भूमि से उत्पन्न हुआ नरकासुर से लाकर रखी हुयी सोलह हजार एक सौ पत्नियों को पाने का सूचक है। कुज का घर शून्य होने से किसी स्त्री से भगवान को कुछ भी होने वाला नही है वे स्वरमण हैं इसको दर्शाता है। अष्टम भाव मरण का स्थान है, वह शून्य होकर किसी ग्रह की दृष्टि न होने के कारण भगवान को मरण और देहत्याग कुछ नही है, वह सब उन्ही के अधीन है इसको दर्शाता है।

कुज भाग्य स्थान में उच्च होने के कारण उच्चवंश के कन्याओं के साथ विवाह भाग्य दर्शाता है। दशम स्थान कर्म स्थान है, शनि अपने स्थान में है। अपने घर में करने का अनेक गृहस्थ कार्यो को करते हुए, लोक

शिक्षण करने वाले, स्थिर बुद्धि होकर क्रोध के वश होकर कुछ भी करने का स्वभाव नही है इसको दर्शाता है। एका-दश स्थान लाभ स्थान होते हुए क्षेत्र के अधिपति गुरु वही हैं। इससे भगवान को केवल लाभ ही होता है कभी नष्ट नही होता इसको दर्शाता है। मोक्ष कारक केतु व्यय स्थान में होने के कारण अर्जुन को उद्दिष्ट करते हुए सकल भक्तों को ज्ञानोपदेश देते है इसका प्रतीक है।

इस प्रकार भगवान श्री हरि को अपने पुत्र रूप में खड़े हुये देखकर वसुदेव आश्चर्य चकित हुआ आँख फाड़-फाड़कर उसको देखते रहे। कृष्णावतार के इस उत्सव के सम्भ्रम में आनन्द विभोर होकर मन में ब्राह्मणों को दस हजार गोदान करने का संकल्प किया।।12।।

श्री कृष्ण जन्म नही लिये। पूर्व की दिशा में सूर्य चन्द्र जैसे उदय होते हैं वैसे श्री हरि आविर्भाव हुये। पीतांबर आयुध आभरण और श्री वत्स चिन्ह इन सबको धारण करते हुये मूल रूप से आकर वसुदेव और देवकी के आँखों के सामने आकर खड़े हुये हैं।

यह बालक साक्षात परम पुरुष नारायण हैं। वसुदेव इस निर्धारण के सङ्गथ कारागृह को अपने प्रकाश से प्रकाशित किए हुए इस शिशु को सिर झुकाकर नमस्कार करते हुये दोनों हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। वसुदेव ज्ञानी था। सामने भगवान खड़े है, उनके सामर्थ्य को वसुदेव जानता है।कंस का भय मन से उड़ गया है।।13।।

वसुदेव कहते हैं- भगवान! आप शुद्ध ज्ञानानंद स्वरूप हैं। आप सबको परोक्ष अपरोक्ष ज्ञान देने वाले प्रकृति विलक्षण रूप वाले लक्ष्मी पति साक्षात आप हैं,यह मैं ठीक तरह से जानता हूँ।।14।।

वसुदेव भवान् कहते हैं विदितोसि भवान् यहाँ भवान् का अर्थ तू या तुम नही होता। भो अस्तयाति= भवान इस रीति से विग्रह करते हुए पूज्य नरहरि तीर्थ स्वामी जी भ शब्द को अठ्ठाईस अर्थो को लिखे हैं ये सारे भगवान श्री कृष्ण को अन्वय करना है। विस्तार भय से हम उनको यहाँ नही दे रहे हैं। कुतूहल एवं आस्था रखने वाले इनको जानने के लिए हमसे सम्पर्क करें।

आप अपनी इच्छा के अनुसार अपने अधीन प्रकृति से इस त्रिगुणात्मक प्रकृति को सृष्टि करते हुये उसमें प्रवेश कर नियामक होकर रहते हैं। अन्दर बाहर दोनों जगह रहने से आप प्रवृष्ट होकर भी अप्रविष्ट रहते हैं।।15।।

श्री हरि इस प्रपंच में रहते भी हैं और न रहते भी हैं। प्रविष्ट क्योंकि प्रपंच के सभी जगह व्याप्त होकर रहते हैं। अप्रविष्ट क्योंकि इस ब्रह्माण्ड के बाहर भी रहते हैं। इसी कारण वे प्रविष्ट भी हैं अप्रविष्ट भी हैं यह ब्रह्मतर्क का वाक्य है।

प्रकृति से थोड़ा ही परिणाम पाने वाले बड़े शक्ति वाले महत्तत्व, अहंकार तत्व, पंचतन्मात्रा ये सात तत्व, प्रकृति से ज्यादा परिणाम पाने वाले इससे ज्यादा विकृत होने वाले एकादश

इन्द्रिय, पंच महाभूतों से मिलकर आपका आवास स्थान बना हुआ इस ब्रह्माण्ड का उत्पादक कारण बनते हैं।बाद में ये सारे उसी में आकर रहते हैं। वे सारे ब्रह्माण्ड में पहले सूक्ष्म रूप से रहते हैं अब व्यक्त होकर अन्दर प्रवेश करते हैं। ये नये रूप से उत्पन्न नही होते।।16,17।।

आप केवल ब्रह्माण्ड का निर्माण करके उसमें रहते हैं इतना ही नही पिण्डांड निर्माण में भी आप स्वतंत्र हैं। शरीर में जीव को रूपादि गुणों को जानने की इच्छा होते हुये भी इसकी जानकारी उसको नही रहती। इसी कारण वह अस्वतंत्र है।उसको वह ज्ञान आपसे ही मिलता है, इसी से मालूम होता है कि आप स्वतंत्र हैं। आप सबको स्वयं साक्षात देखते हैं। आपको अन्तर्बाह्य भेद नही है, आप सर्वशक्त हैं लय-काल में सबको खा डालते हैं। उस समय आप केवल अपने में रमते हैं।।18।।

भगवान सब कुछ देखते हैं किन्तु जीवात्मा उनको देख नही सकता। जीवात्मा का ज्ञान उसके अधीन नही रहता वह स्वतंत्र रूप में रहने वाले भगवान के अधीन होता है। जीव को शरीर देने वाले भी भगवान ही हैं। वे ही स्वतंत्र है, सर्वशक्त है, सर्व भक्षक हैं, सर्वात्मा हैं दूसरों के आश्रय के बिना स्वयं अपने में रहने के कारण उनको आत्म वस्तु कहते हैं। यह तन्त्र भागवत का वाक्य है।

विषय पदार्थों का ज्ञान होने वाला साधन रूप शरीर इन्द्रियों में सारे कार्यो के प्रेरक होकर आप रहते हुये भी अज्ञानी लोग अहंकार से अपने से छोड़कर और देव नही ऐसे समझते हैं। किन्तु कोई भी श्रुति इस बात को समर्थन नही देती, इसके लिए कोई प्रमाण नही मिलता। इसके लिए इसको नही मानता। वेद पुरुष इन्द्र नामक वैकुण्ठ नारायण **अभीदमेकम** इस ऋग्वेद के मंत्र में स्पष्ट रूप से जीव और ईश्वर के भेद को दिखाते हैं। इसके लिए अभेद को मान्यता नही है।

अभीदमेकोमेक अस्मि निष्पाळ् अभीद्वा किमु त्रयः करन्ति।
खलेन पर्षान् प्रतिहन्मि भूरि किं मां निन्दन्ति शत्रवो ऽनिन्द्राः।।(ऋग्वेद 10-48-7)

ये सारे जगत एक होकर मेरे ऊपर आक्रमण करें तो मैं अकेला इसका सामना करूँगा। एक, दो या तीन जगत मिले तो भी वे मुझे कुछ कर नही सकते। मैं उनको ओखली मे धान को कूटने जैसे मैं उनको कूट-कूटकर नाश करता हूँ। शक्ति रहित वे शत्रु मेरी निन्दा भी करने की ताकत वाले नही हैं।।19।।

इस श्लोक में जीव से अलग भगवान रहे तो भगवान के स्वतंत्र और अस्वतंत्र का प्रश्न आता है। इस शंका का निवारण करते हुए जीव और ईश का भेद स्पष्ट व्यक्त होता है।

ज्ञानी लोग कहते हैं कि प्रभु इस जगत में सृष्टि स्थिति लय जो होते हैं वे आपसे होते है। किन्तु जगत जो सृष्ट होता है वह आप से होते हुये भी आप निर्विकारी हैं। कुम्हार के घट के करने से कष्ट नही होता, उसके समान आपको कष्ट नही होता। आप त्रिगुण बद्ध नही हैं किन्तु

त्रिगुणों से ही इस जगत का निर्माण करते हैं। इस जगत में ऐसा कर्तृत्व और किसी में नही है।आप सर्वशक्त और गुण पूर्ण होने के कारण यह विरुद्ध स्वभाव आश्चर्य कारक नही है। आप सत्वादि गुण से बद्ध नही हैं किन्तु उन गुणों के आधार आप ही होने के कारण आपको गुण वाले ऐसे गौण रूप का व्यवहार होता है।।20।।

सज्जनों को ज्ञान भक्ति को देते हुये तीनों लोकों की रक्षा करने हेतु स्वेच्छा से शुद्ध सत्व को बढ़ाते हुये अपने शुद्ध वर्ण को दिखाते हैं, सज्जनों को ज्ञानासक्ति उत्पन्न करने के लिए रजो नामक शुद्ध सत्व को परिवर्तन करते हुये रक्त रंग को दिखाते हैं। दुर्जन के तमो नाशक शुद्ध सत्व प्रवर्तक आप कृष्ण रंग का परिवर्तन करते हैं।।21।।

श्री हरि जीवों में सत्व गुण को बढ़ाते हुये लोक रक्षण करते समय सत्वगुण स्वरुप शुक्ल वर्ण धारण करते हैं। तमो गुण को बढ़ाकर प्रलय करते समय कृष्ण वर्ण वाले होते हैं। सज्जनों को ज्ञान उत्पन्न करने के लिए धारण किया हयग्रीवादि रूप शुक्लवर्ण का होकर रक्षण करता है। ज्ञान में आसक्ति उत्पन्न करने के लिए परशुराम रूप रक्तवर्ण का है। दुर्जनों में तमोवृद्धि करते हुये उनको तमस में डालने का कार्य कृष्ण रूप का लय कार्य है। यहाँ बताये गये सत्व रज तमस ये गुण शुद्ध सत्व से होते हैं। शुद्ध सत्व ज्ञान उत्पादन करने के कारण सत्व माना जाता है। वही ज्ञान में इच्छा उत्पन्न करने के कारण रज होता है। अज्ञान में द्वेष उत्पन्न करने के कारण वही तमस कहा जाता है। मुक्त लोगों को शुद्ध सत्व नही होती। उनके स्वरूप भूत सत्व जो है वही तीनों नामों से कहा जाता है। श्री हरि के ये सारे रूप सृष्टि आदि सकल कार्य करते हैं। यह ब्रह्मतर्क का वाक्य है। श्री हरि स्वं माया यानी अपनी इच्छा से ही हयग्रीव आदि रूप धारण करते हैं। वे रजो गुण तमो गुण को केवल आश्रय देते हैं।

हे सर्वेश्वर प्रभु! आप इस सात्विक लोक की रक्षा करते हैं, इसी उद्देश्य से यानी सज्जन को सुख देने के संकल्प से मेरी पत्नी में अवतार लिये हैं। अब नाम के वास्ते राज्य करने वाले असुर राजाओं और हजारों उनके नायक और करोड़ों उनके सैनिकों का आप अकेले नाश करने वाले हैं।।22।।

तामस कार्य करने वाला कंस, आप मेरे पत्नी में अवतार लेने वाले हैं, इस बात को नारद जी से सुनकर, आपसे पहले जन्म लिये हुये आपके छः भाईयों को आप ही मानकर मार डाला है। हे देवेश वह आपका अवतार हुआ इस बात को अपने सैनिकों से सुनकर शस्त्र धारण करके आपको मारने आयेगा।।23।।

कस यदि मारने आया तो उससे भगवान को कुछ भय नही है। किन्तु कंस भगवान से मर जाता है।उसका पाप का घड़ा अभी भरा नही है। वह अकेले मर गया तो उनके हजारों, लाखों दुष्ट लोग वैसे ही रह जाते हैं इसके लिए वसुदेव चिन्तित हैं।

श्री शुकदेव कहते हैं- बाद में श्री देवकी अपने पुत्र को देखकर उनमें विष्णु के सारे लक्षण को देखते हुये कंस का डर रहते हुये भी हंसमुख होकर स्तुति करती है।।24।।

देवकी बोलती है - भगवान तुम्हारे अनुग्रह के बिना तुम्हारा स्वरूप किसी को व्यक्त नही होता।तुम इस जगत के आदि कारण हो। आपकी व्याप्ति देश काल परिमिति से परे है। त्रिगुण-वर्जित निर्विकारी निर्दोष गुण रूप वाले हे भगवान! तुमसे बढ़कर उत्तम वस्तु और कोई नही है। यह रूप अपने के लिए कुछ नही करता है। मुक्ति में जीवात्मा स्वरूप को प्रकाशित करता है। तुम ऐसे स्वरूप वाले हो, स्वयं विष्णु भगवान हो। सारे वेद आपके गुणगान करते हैं।।25।।

मानव मान के चार सौ बत्तीस करोड़ वर्ष ब्रह्ममान का एक दिन होता है। इस गणना मे ब्रह्मा जी का पचास वर्ष एक परार्ध माना जाता है। ऐसे दो परार्ध के अंत में लय मूर्ति तुम्हारी प्रेरणा से सकल लोक नाश पाते हैं। उस समय पंचमहाभूत अहंकार तत्व में अहंकार तत्व महत्तत्व मे, महत्तत्व प्रकृति तत्व में लीन होते हैं। उस समय अंत में केवल सर्वशब्द वाच्य तुम अकेले रह जाते हो। एक वट-पत्र में सोये रहते हो उस समय सारे वेद तुम्हारी ही कीर्ति का गायन करते रहते हैं।।26।।

हे लक्ष्मी-पति! एक निमिष से आरम्भ होकर ब्रह्ममान के सौ वर्ष पर्यन्त जो अपरिमित होकर काल चलता है वह आपके लिए केवल क्रीड़ा साधन है। यह ज्ञानियों का मत है क्योंकि उसी काल में इस जगत का सारा क्रिया कारित्व चलता है। आप सर्व प्रेरक हैं। मुक्ति धाम रूप आपके मैं शरण में आती हूँ।।27।।

इस जगत में जो कुछ चलता है वह काल के अधीन है किन्तु काल भगवान के आधीन है। हे आदि पुरुष, मानव मृत्यु नाम शाप के भय से सारे जगत में फिरते हुये भय रहित स्थान को कभी भी नही पाता है। अंत में अदृष्ट प्रेरक आपकी प्रेरणा से आपके पाद कमल को पाकर निर्भय होकर सोता है। जो आपके पाद कमल को पाता है उससे मृत्यु दूर भागती है।।28।।

आप भय निवारक हैं। हम कंस के भय से पीड़ित हैं। उससे आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं। पहले केवल योगियों को ध्यान में गोचर होने वाले इस चतुर्भुज रूप को हमारे जैसे करते हुए लोगों से छिपाकर रखिए।।29।।

हे मधुसूदन, आप मेरे पेट से अवतार लिए हैं यह कंस को मालूम न हो आप को कंस से कुछ न हो इसके लिए मैं डर रही हूँ। आप सर्वशक्त भगवान हैं, किन्तु यह प्रज्ञा मुझमें सदाकाल नही रहती। मैं बहुत चंचल बुद्धि वाली हूँ।।30।।

हे विश्वेश,आप शंख, चक्र, गदा, पद्म से शोभायमान इस लोक विलक्षण चतुर्भुज अपने रूप को छिपाकर रखिये।।31।।

लय काल में आप समस्त ब्रह्माण्ड को अपने पेट में किसी स्थान में रखते हैं। ऐसे महापुरुष आप मेरे इस छोटे पेट में थे यह कैसी विडम्बना है।।32।।

कृष्णावतार श्रावण मास के कृष्ण पक्ष अष्टमी तिथि मध्य रात्रि में रोहिणी नक्षत्र युक्त जयन्ती मूहूर्त में

चन्द्र के समान विराजमान भगवान चन्द्र के साथ प्रकट हुए।

श्री भगवान कहते हैं- देवकी! पिछले जन्म में तुम स्वायंभुव मन्वंतर में पृश्नि नाम से जन्म ली थी। उस समय दोष रहित यह वसुदेव सुतप नाम के प्रजापति थे।।33।।

चतुर्मुख ब्रह्मा जी ने तुम दोनों को प्रजा सृष्टि करने के लिए आदेश दिये।उस समय तुम दोनों इन्द्रिय निग्रह करते हुये श्रेष्ठ तप किये।।34।।

वर्षा, गर्मी, आधी, ठण्डी और गर्मी को सहन करते हुये कालगुण के अनुसार प्राणायाम करते हुये मन के मल को धो दिये।।35।।

वृक्षों से गिर कर जमीन पर गिरे हुये केवल पत्ती को खाकर मुझमें मन रखते हुये मुझसे वर चाहते हुये मेरी आराधना किये।।36।।

हे मंगलमयी, मुझमें मन रखने वाली तुम्हारे तप करते-करते देव मान के बारह हजार वर्ष बीत गये।।37।।

हे पाप रहित कल्याणी,श्रद्धा भक्ति से आपके तप करने के कारण और अपने हृदय में मेरा ध्यान करने के कारण मैं आपके सामने इस रूप से आविर्भूत हुआ। वर देने वालों में श्रेष्ठ मैं आपकी मनोकामना की पूर्ति करने के लिए आपसे बोला जो चाहे वह वर माँगो।उस समय तुम बोली कि मेरे जैसे एक पुत्र हो।।38,39।।

तुम दोनों दंपति होकर भी विषय भोग नही किये थे।तुमको पुत्र नही हुये थे।पुत्र वर माँगने की अभिलाषा मेरी माया से मैने ही उत्पन्न किया था।इसी कारण उस समय तुम लोग मोक्ष की कामना नही की।।40।।

वर देकर मेरे जाने के बाद मेरा जैसा और दूसरा नही होने कारण मैं ही तुम्हारा पुत्र बना।तुम अपने मनोरथ को पूर्ण करते हुये सुख भोगों को भोग लिये।।41।।

ज्ञानी को भी अपने प्रारब्ध कर्म का भोग करना पड़ता है।दाम्पत्य सुख प्रारब्ध को पाने का वर माँगने के लिए भगवान ने ही उनको प्रेरणा दी थी।

शील औदार्य इत्यादि गुणों में मेरे समान और कोई न होने के कारण मैं ही प्रश्नि गर्भ नाम से तुम्हारा पुत्र होकर अवतार लिया।।42।।

अगले जन्म में तुम अदिति और कश्यप रूप से जन्म लिये, उस समय में उपेन्द्र नाम से आपका पुत्र बना।छोटा और सुन्दर होने से मेरा नाम वामन भी है।।43।।

हे पाप रहित देवकी,पिछले जन्म में पृश्नि सुतप और अदिति कश्यप नाम वाले तुमको मैं इस जन्म में भी वही चतुर्भुज रूप में आपके पुत्र होकर अवतार लिया हूँ।हे पतिव्रते! यह मेरा वाक्य सत्य है।।44।।

मैंने तुमको यह रूप दिखाया है वह आपका पूर्व जन्म याद आने के लिए और मेरे पूर्व अवतारों की याद दिलाने के लिए।यदि मैं केवल मनुष्य शरीर से अवतार लिया तो आपको मैं परम पुरुष हूँ यह ज्ञान नही होता था।।45।।

तुम लोग मुझको पुत्र मानते हुये कभी-कभी परब्रह्म समझते हुये पुनःपुनः चिन्तन करते हुये वात्सल्य और भक्ति से युक्त होकर अंत में मेरे लोक को पाओगे।।46।।

श्री शुकदेव कहते हैं- इतना बताकर श्री हरि चुप हो गये।अपनी इच्छा से माता-पिता देखते-देखते एक लौकिक शिशु का रूप धारण किये।।47।।

इसके बाद वसुदेव भगवान के आदेश से पुत्र रूप में रहते हुये उनको लेकर कारागार के बाहर जाने की इच्छा किये।उधर नन्द गोकुल में जनन रहित योगमाया दुर्गा देवी यशोदा में अवतार लीं।।48।।

विष्णु माया, योग माया, दुर्गा इन शब्दों से हमें दुर्गा देवी को विष्णु शक्ति मानना चाहिए। इसको पार्वती नही समझना चाहिए। पार्वती का नाम भी दुर्गा है किन्तु वह भगवान की योग माया नही हैं। पार्वती के अंश वाली दुर्गा को भगवान की बहन माना जाता है। दुर्गा विष्णु माया रूप में भगवान की पत्नी हैं। यहाँ दुर्गा पार्वती अंश रूप में भगवान की बहन लगती हैं। भविष्योत्तर पुराण में श्री निवास कल्याण के समय दुर्गा भगवान की बहन होकर कलश लेकर चलती थी यह वर्णन आता है।

भगवान वसुदेव को दिया हुआ आदेश इस प्रकार था।
यदि कंसाद् विभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय।
यशोदायाश्च ताम् कन्यां मन्मायामान्य दृतम् ।
स्वयं स्युर्विवृता द्वारो यमुनाच सुदुस्तरा ।।

वसुदेव! यदि तुम्हारे लिये कंस का भय है तो मुझको गोकुल को ले जायें। वहाँ यशोदा से शिशु होकर जन्म लिये हुये मेरी माया दुर्गा को यहाँ ले आओ। कारागार के द्वार और न पार करने वाला जमुना तुमको रास्ता देंगे। यह हरिवंश की बात है। हरिवंश में आगे लिखा है

वसुदेव वचःश्रुत्वा रूपं संहरदच्युतः
अनुज्ञाप्य पितृत्वेन नन्दगोप गृहं नय।

नन्द गोप को मेरा पिता बनने के लिए कहो और मुझको वहाँ ले जाओ।

कृष्णावतार होने के बाद एक मुहूर्त तक अष्टमी तिथि थी।उसके बाद नवमी तिथि आने के बाद यशोदा दुर्गा को जन्म दी।गर्भ काल में नव मास भरने के पहले आठवें महीने में एक ही समय में देवकी और यशोदा दोनों बच्चों को दिये। **अनुज्ञाप्य पितृत्वेन नन्दगोप गृहं** नय इस वचन के अनुसार नन्द गोप को श्री कृष्ण क्रीत पुत्र होता है वसुदेव चोर जैसे जाकर बच्चों का अदल-बदल नही किया है। यशोदा को प्रसव श्रम से और विष्णु माया से मूर्छा

अथवा योग निद्रा आई थी उसको बदलाव के बारे में कुछ नही मालूम था। यह बच्चों के बदलाव वसुदेव, देवकी, उग्रसेन और नन्द केवल चार लोगों को मालूम था। ये चारों मिलकर यदुवंश की रक्षा के लिए बच्चों की अदल-बदल करने का निर्णय पहले किये थे। यह विषय वायु पद्म और ब्रह्माण्ड पुराणों मे आता है।

दुर्गा देवी कंस के हाथ से निकल कर आकाश में जाने के बाद वापस आकर देवकी के पास बच्ची बनकर रही। इस पुत्री को माता-पिता को छोड़कर और कोई देख नही पाते थे।

वह दुर्गा की माया से कारागार के रक्षक और नगर के अन्य लोगों को घोर निद्रा में रखते हुये उनके सारे कार्य कारित्व को स्तब्ध की थी। कारागार के द्वार बड़े-बड़े लोहे के जंजीर से बंधे हुये थे और उनके ऊपर बड़े-बड़े ताला लगे हुये थे उनको खोलना किसी से नही होता था।।49।।

उस समय भगवान श्री कृष्ण को हाथ मे लिया हुआ वसुदेव जैसे आये उसी क्षण सूर्य आने के बाद जैसे अन्धेरा चला जाता है वैसे द्वार स्वयं खुल गये। बाहर मेघों की गर्जना होती रही और तुषारापात बरसात होती रही। आदिशेष अपने हजार फणों के छतरी लगाते हुये बच्चे के ऊपर न छिड़कने दिया।।50।।

कारागार का द्वार लकड़ी से बना हुआ था। वनस्पति के अभिमानी चन्द्र सामने उदय होकर भगवान को आते देखकर भय भक्ति से श्री कृष्ण दर्शन पाने के लिए स्वयं दरवाजों को खोला। मेघ गर्जना भगवान के प्रयाण के आरंभ में मंगल वाद्य का काम किये। छोटी वर्षा भगवान के मार्गायास के परिहार के लिए। आदिशेष छतरी लगाये। इस प्रकार समस्त देवतागण भगवान की सेवा मे तत्पर थे। शेष शैया, ओढ़नी छत्र चामर सारे लेकर चले थे। यह ब्रह्माण्ड पुराण का विवरण है।

मुसलाधार वर्षा होने के कारण यमुना जी में भारी प्रवाह तेज धारा से बह रही थी। आधी से लहर लहराते हुये भयंकर प्रवाह आ गया था। उसमें भवर होकर प्रवाह को और गम्भीर बनाये थे। किन्तु उस दिन समुद्र राजा जैसे श्री राम जी को मार्ग दिया वैसे जमुना जी ने श्री कृष्ण को मार्ग दिया।।51।।

वसुदेव नन्दगोकुल को जाकर वहाँ के यादव सब श्री हरि की योग निद्रा के वश होकर सोये थे। उस समय श्री कृष्ण को यशोदा के बगल में रखते हुये उसकी पुत्री को हाथ मे लेते हुये अपने स्थान को वापस आया।।52।।

देवकी के बगल में कन्या को रखते हुये पहले के समान अपने दण्डा बेड़ी से हाथ पाँव को बाँधते हुये कुछ भी नही हुआ ऐसे मौन से रहा।।53।।

नन्द की रानी यशोदा को अपने के लिए एक शिशु हुआ है इतना मात्र ज्ञान रहा। जन्म लिया शिशु पुरुष है या स्त्री इसका भी उसको ध्यान नही रहा। वह योग निद्रा के प्रभाव में पूर्ण रीति से सबको भूल चूकी थी।।54।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में चौथा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पाँचवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- वसुदेव के वापस जेल के अन्दर आते ही कारागार के बाहर के और अन्दर के सारे द्वार अपने आप बन्द हो गये।बच्चे के रोने की आवाज सुनकर रक्षक जाग उठे।।1।।

वे दौड़ते हुये कंस के पास जाकर बोले कि देवकी बच्चे को जन्म दी है।कंस इसी समाचार को सुनने के लिए आतुर था।।2।।

कंस उसी समय झट से अपने शैया से उठकर यह बच्चा ही मेरा मृत्यु है इस भय से सिर के बाल को भी न संभालते हुये लुढ़कते गिरते जेल के पास आ गया।।3।।

कंस को देखकर देवकी कहती है - दुःख से संतप्त देवकी बोलती है,हे मंगलकर भाई देखो यह बेटी है।यह तुम्हारी बहन की पुत्री है। तुम इसके प्यारे मामा हो सकते हो। कृपा करके उसको मत मारो।।4।।

भाई, मेरे दुर्दैव से तुमने आग के समान प्रज्ज्वलित रहने वाले मेरे छः पुत्रों को मार डाला है।मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ इस एक बेटी को मेरे लिए छोड़ दो।।5।।

भाई कंस, मैं तेरी बहन हूँ।इतने दिन छः बच्चों को खोकर रोज-रोज रोती रहती हूँ।अभागिन मेरी यह अखैर की बच्ची इसको तो जीने दो।।6।।

श्री शुकदेव कहते हैं- देवकी अपनी पुत्री को दोनों बाहों में पकड़कर रोते-रोते भाई की याचना करते हुये कितने भी प्रयास की तो भी दुष्ट कंस आक्रोश से उसके हाथ से बच्ची को छीन लिया।।7।।

अभी जन्म लिया हुआ अपनी बहन की पुत्री के दोनों पाँव पकड़ कर ऊपर उठाकर बड़े पत्थर के ऊपर जोर से मार दिया।वह अपने स्वार्थ के लिए अपने बन्धु प्रेम को पूर्ण तरह से भूल चुका था।।8।।

उसी समय श्री कृष्ण की भगिनी दुर्गा कंस के हाथ से उछलकर आकाश में खड़ी हो

गई। वह देवी आठ बाहु वाली और आठों हाथों में आठ तरह के शस्त्र धारण की थी।।9।।

वह दुर्गा दिव्य मालाओं को धारण की थी, सुन्दर वस्त्र परिधारण की थी, रत्नाभरण से विभूषित थी। आठ हाथों में धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, खडग, शंख, चक्र, गदा के धारण की थी।।10।।

हरिवंश में दुर्गा को चन्द्रवत्रा, चतुर्भुजा कहा है। बायें तरफ चार और दाहिने तरफ चार समझे तो भागवत और हरिवंश में अन्तर नही आता।

सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर, नाग ये सारे देवी का उपचार करते हुये स्तोत्र किये। देवी कंस को उद्देश्य करते हुये बोली।।11।।

हे मूर्ख, मुझको मारकर तुम क्या पाने वाले हो, तुम्हारा मृत्यु तुम्हारे जन्म जन्मांतर का शत्रु अभी जन्म ले चुका है, किसी और स्थान पर उसका पालन हो रहा है। इधर तुम अपनी प्यारी बहन को व्यर्थ रीति से हिंसा कर रहे हो।।12।।

इस प्रकार बोलते हुये - दुर्गा देवी अदृश्य हो गई। अनेक नाम से अनेक क्षेत्र मे प्रसिद्ध होकर आज भी वह वहाँ रहती हैं।।13।।

एक रूप से दुर्गा देवी अन्य लोगों को न दिखते हुये देवकी के पास भी रहती थी।

देवी की बात सुनकर कंस को आश्चर्य हुआ। वह तुरंत देवकी और वसुदेव को बन्धन से मुक्त करते हुये विनय से बोलने लगा।।14।।

कंस में दुष्ट तामस कालनेमि और सात्विक भृगुमुनि दोनों का अंश के होने कारण कभी-कभी वह सात्विक भी होता था। पूतना, कंस, नरक, शिशुपाल आदि मे इस प्रकार जीवद्वायावेश था। सज्जीव के आवेश में वे कभी सद्बुद्धि दिखाते थे और दुर्जीव के आवेश में दुर्बुद्धि दिखाते थे। जीवन के अंत में उनमें रहने वाला सज्जीव को भगवत प्राप्ति और दुर्जीव को तम प्राप्ति यह गरुड पुराण का वाक्य है।

बहन यह क्या आश्चर्य है-जीजा जी यह क्या हो गया। मैं बड़ा पापी हूँ। राक्षस के समान आपके सारे बच्चों को मार दिया।।15।।

मैं निष्करुणि हूँ। अपने के लिए अपने बन्धुमित्रों को कष्ट दिया, ब्रह्महत्या करने वाला किस नरक को जाता है ? मैं अब जीते जी मर चुका हूँ।।16।।

दैव भी झूठ बोलता है। मैं मनुष्य की बातों पर विश्वास नही रखता। किन्तु मुझसे दैव भी झूठ बोल दिया। पापी मैं दैव के ऊपर विश्वास रखते हुये अपनी प्यारी बहन के सारे बच्चों को व्यर्थ में मार डाला।।17।।

हे पूज्य वसुदेव-देवकी, आप बच्चों के बारे में शोक नही कीजिए। वे अपने किये हुये कर्म का फल भोग चुके। सारे जीव राशि सदा के लिए परस्पर मिलते हुये एक ही स्थान पर रह नही

सकते। हम सारे दैव के आधीन हैं।।18।।

कंस में इस सद्बुद्धि को देखकर आश्चर्य होता है। असुर कंस में यह सद्बुद्धि कैसे आयी इसका विवरण जगद्गुरु मध्वाचार्य जी अपने तात्पर्य निर्णय में देते हैं।

पूतना, कंस, नरक, शिशुपाल ये सारे मोक्ष योग्य सज्जीव होते हुए भी कई पाप कर्मों के कारण शाप प्राप्त कर वे भू लोक में आ चुके हैं। पाप के कारण उनमें तमो योग्य दुर्जीव भी साथ रहते हैं। सज्जीव के कारण कभी कभी ये सत्कार्य भी करते हैं, और दुष्ट जीव होने से दुष्कार्य करते रहते हैं।

कंस में भृगु आविष्ट होकर रहते थे इसी कारण कभी कभी कंस अच्छा काम करता था। देवकी के बच्चों को मारने वाला कालनेमि असुर कंस में रहने के कारण कंस बच्चों को मारता था।

जमीन में वृक्ष पैदा होते हैं, मर जाते हैं किन्तु परस्पर एक साथ नही रख सकते। जमीन वही रहती है, वृक्षों को आश्रय देता है किन्तु वृक्ष उगते हैं नाश होते हैं। वैसे जीव भी भगवान से जन्म लेते हैं नाश होते हैं, भगवान के आश्रय में रहते हैं, नाश पाते हैं किन्तु भगवान सदा के लिए सबको आश्रय देते हुये सबके साथ रहते हैं।।19।।

दुष्ट लोग दुष्ट भावना से अपने को भगवान या देवता समझ लेते हैं, भगवान और अपने में रहने वाले भेद को नही समझते हैं। उसके फलस्वरूप नरकादि अनेक अनर्थ को भगवान के प्रेरणा से ही पाते हैं। मध्यम जीव अपने को गलत समझते हुये देह से जीव को अनेक रीति से अभेद समझते हुये जीवन व्यतीत करते हैं। वे इस जनन-मरण रूप संसार में जन्म लेते मरते रहते हैं, उनको कभी संसार निवृत्ति नही होती है, यह भी भगवान की प्रेरणा से ही। उन्ही की प्रेरणा से उत्तम जीव सही तत्वज्ञान को समझते हुये मोक्ष पाते हैं। सबको प्रेरणा देने वाले भगवान सदाकाल सबके साथ रहते हैं। उनके लिए उत्पत्ति नाश नही है।।20।।

हमसे जन्म दिये हुये पुत्र सदाकाल हमारे साथ नही रहते हैं। केवल भगवान हमारे साथ रहते हैं इसी के लिए आप सदाकाल भगवान में प्यार करते हुये हो गये दुःख को सहन कीजिए। हे देवकी, सारे जीव भगवान के अधीन होकर कर्म करते हैं और उसका फल भोगते हैं, इसी के लिए तुम मैं तुम्हारे बच्चों को मारने के बाद भी उनके बारे में दुःख नही करना।।21।।

भगवान की प्रेरणा से ही जीवात्मा को मै स्वतंत्र, मैं भगवान, मुझमें और भगवान में भेद नही है ऐसा ऐक्यभ्रम होता है। इससे तम प्राप्त होता है। भगवान को उत्पत्ति नाश नही हैं। वे सदा हमारे साथ रहते है। पुत्रादि अन्य लोग जनन मरण वाले होते हैं। इस विचार को समझते हुये भगवान में विश्वास रखते हुये पुत्रादि विरह दुःख को सहन करना चाहिए। यह ब्रह्म पुराण का वाक्य है।

जब तक मैं इसको मारता हूँ, मैं इससे मरता हूँ, मैं ही इसको काट डालूँगा, अज्ञानी इस

प्रकार समझता रहता है तब तक वह भगवान के स्वतंत्र कर्तृत्व को न समझते हुये दूसरों में स्वतंत्रता को हो समझते हुये बाध्य और बाधक दोनों बन जाता है।अन्यों से अपने को हिंसा अथवा नाश है यह विचार करते हुये कोप को पाता है और स्वयं शिक्षा देकर पाप को पाता है।।22।।

आप सज्जन हैं। मेरे इस दौर्जन्य को क्षमा कीजिए।बन्धु को प्यार से मुझको क्षमा कीजिए ऐसे कहते हुये कंस आँसू बहाते हुये वसुदेव देवकी का पाँव पकड़कर नमस्कार किया।।23।।

देवकी वस्तुतः कंस की बहन है। किन्तु वह दत्तक होने से उसकी बुआ भी लगती है। इसके लिए कंस उनके पाँव को पकड़ कर क्षमा प्रार्थना करता है।

वसुदेव और देवकी दो हैं। संस्कृत में दो के लिए प्रत्येक द्विवचन है किन्तु यहाँ **क्षमध्वं** बहुवचन का क्रियापद है। इसके लिए वसुदेव देवकी और बन्धु बान्धव इन सबसे कंस क्षमा प्रार्थना कर रहा है।

दुर्गा देवी की बातों में विश्वास रखते हुये कंस अपने स्नेह को दिखाते हुये वसुदेव देवकी को बन्धन से मुक्त किया।।24।।

कंस के पश्चात्ताप की बातें सुनकर देवकी उसको क्षमा कर दी।अपने क्रोध को भूल गई।हसन्मुख से वसुदेव कंस से कहता है।।25।।

महाराज, आपके कथनानुसार भगवान स्वतंत्र हैं,जीवों के साथ रहते हैं। जीव अस्वतंत्र है, सदाकाल एक साथ रह नही सकता यह सत्य है। जीव और परमात्मा का यह भेद देह रहने वाले जीव को होने वाला नरकादि दुःख को रोक सकता है।।26।।

शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह, मद से युक्त होकर परस्पर हिंसा करने में रहने वाले विपरीत ज्ञानी बनकर भगवान को परब्रह्म,अन्य देवता उनसे भिन्न इस प्रकार उनके गुण धर्मों से उनके व्यक्तित्व को ठीक तरह से जानते नही। शास्त्र इनको पृथुग्दृष्टि वाले कहता है।।27।।

पृथग्दृशः इसका अर्थ भगवद तत्व को विरोध करते हुये सद असद ज्ञान को ठीक तरह से नही जानना,भगवान के गुण रूप में भेद है, प्रपंच उसके अधीन नही है,जीवों में भगवान शत्रु मित्र भाव रखते हैं,शास्त्र में निषिद्ध भेद नही है,सारे असद भेद हैं इनको नही मानना, पंच भेद सद्भेद है, असद् भेद तमोदायक है, सद् भेद मोक्षदायक है यह विचार भविष्यत पुराण मे आता है।

वसुदेव की बात से कंस को समाधान हुआ।वह प्रसन्न देवकी-वसुदेव की अनुमति पाकर अपने राजगृह को चला गया।।28।।

उस रात बीताने के बाद सुबह होते ही कंस अपने मंत्रियों को बुलाकर दुर्गा देवी द्वारा कही हुई बातों को उनके सामने रखा।।29।।

कंस के मंत्री दैत्य हैं,देवताओं के शत्रु हैं।सदाकाल देवताओं के बारे में क्रोध का व्यवहार करते रहते थे।वे ठीक तरह से राजनीति को नही जानते थे।प्रभु कंस की बातों को सुनकर वे कहे।।30।।

हे महाराजा, आप चिन्ता न करिये।हम शहर, गाँव, गोकुल सारे जगहों में रहने वाले इन दस दिनों मे जो जन्म लिये हैं उन सारे बच्चों को मार डालेंगे।।31।।

देवतागण युद्ध से डरते हैं, उसमें भी आपके धनुष के टंकार से उनका दिल पिघल जाता है।उनसे युद्ध करने में हमें कुछ आपत्ति नही है।।32।।

यदि आप बाण छोड़ने लगेंगे तो देवता समूह उन बाणों से आहत होकर प्राण भय से युद्ध को छोड़कर भाग जाते हैं।।33।।

उनमें कई लोग डरकर अपने हाथ के आयुध को जमीन पर फेंककर हाथ जोड़कर शरण आते हैं। और कई लोगों का कमरबन्ध छूट जाता है,कई लोगों का बाल बिखरता है,और कई भय से चिल्लाते हैं।।34।।

किन्तु आप शत्रु भय से शस्त्रास्त्र को प्रयोग न किये, रथ को खो दिये, भय से सिर झुका दिये युद्ध को समाप्त कर अनमनस्क हो गये तो वे मार नही पाते।।35।।

देवता लोग भगवान की रक्षा के अधीन सुरक्षित हैं,युद्ध नही रहता तब तक शूर हैं,अपने शौर्य की बड़ाई करते रहते हैं। उनसे और क्या हो सकता है। आपसे डरकर सदाकाल लोगों के दिल में छिपकर रहने वाले हरि से क्या मतलब है। कैलाश पहाड़ के वनवास में रहने वाले शिव से क्या होने वाला है।।36।।

दैत्य वस्तुतः शिव भक्त हैं, वह भक्ति केवल तात्कालिक रहती है।वर पाने के बाद उन्ही के ऊपर मार करना चाहते हैं। भस्मासुर ने वही किया,रावण पार्वती को माँगा,हिरण्यकश्यप कालनेमि पुत्रों को अवध्य होते हुये भी मरने का शाप दिया।

अल्प शक्ति वाले इन्द्र से क्या होने वाला है।सदाकाल तप में रहने वाले ब्रह्मा क्या कर सकते हैं। तो भी शत्रु की उपेक्षा नही करना है।देवतागण हमारे शत्रु हैं।उनको निर्मूल करने की आज्ञा हमें दें।।37।।

शरीर में रोग आने के बाद उनको अलक्ष्य किये तो वह बढ़कर वैद्यों की चिकित्सा के बाहर हो जाता है।इन्द्रियों को अलक्ष्य करे तो वे हमारे नियन्त्रण में नही रहती हैं।वैसे ही शत्रु को अलक्ष्य करे तो वह बढ़कर बलिष्ठ हो जाने के बाद हम उसको हिला भी नही सकते।।38।।

भगवान विष्णु देवताओं के साथ सदाकाल होते हैं। सनातन धर्म के साथ वे रहते हैं।उनके प्रमुख आश्रय वाले हैं, गाय, वेद, ब्रह्माण तप और बहुत दान देने वाला यज्ञ।।39।।

इसी कारण राजा हम वेदाध्यन करने वाले तप और यज्ञ में निरत ब्राह्मणों को और यज्ञ के लिए आवश्यक हविष्य देने वाले गायों को मार डालेंगे।।40।।

ब्राह्मण, गाय, तप, सत्य, इन्द्रिय निग्रह, भगवन्निष्ठा, श्रद्धा, दया, द्वंद्वसहिष्णुता ये सारे हरि के शरीर हैं।।41।।

श्री हरि सारे देवताओं के अधिपति हैं, वे दैत्यों के शत्रु हैं। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि सकल देवताओं के लिए वे ही मूल आश्रय हैं। हृदय-गुफा में रहने के कारण किसी को दृष्टिगोचर नही होते। उनको हम साक्षात् रूप से मार नही सकते।उनको मारना चाहते हो तो उनके शरीर रूपी गो ब्राह्मणों का नाश करना ही एकमेव उपाय है।।42।।

दुर्बुद्धिवाला कंस अपने दुष्ट मंत्रियों के साथ मंत्रणा करने के बाद ब्राह्मण हिंसा करना अपना प्रथम कार्य मान लिया।वह असुरों के वाक्यो से बद्ध था।।43।।

दूसरों को हिंसा देने में ही आनन्द मानने वाले, अपने इच्छानुरूप धारण रूपकरने वाले दानव लोग सज्जनों की हिंसा करते हैं।ऐसे दैत्यों को सज्जनों की हिंसा में नियुक्त करते हुये उनको दशों दिशाओं मे भेजकर कंस अपने राज्य गृह को चला गया।।44।।

वे दानव रजोगुण वाले,तमोगुण से उनकी बुद्धि मंद हो गयी है।अपने कृत्य से वे प्रतिदिन मृत्यु के पास बढ़ रहे हैं।इसको न जानते हुये वे सज्जनों की हिंसा कर रहे हैं।।45।।

बड़े लोगों से अपचार किये तो मनुष्य का आयुष्य,ऐश्वर्य,कीर्ति,पुण्य,परलोक और सारे श्रेयः साधनों का नाश होता है।।46।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - छटवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव बोलते हैं- महात्मा नन्दगोप अपने लिए पुत्र पाकर बहुत संतोष पाया। स्नान करके शुद्ध होकर वस्त्र और आभरण धारण करते हुये वेदज्ञ ब्राह्मणों को घर बुलाकर स्वस्ति और पुण्याह वाचन किया। विधि पूर्वक नवजात शिशु को जात कर्म करते हुये पितृ और देवताओं की आराधना की।।1,2।।

पूर्ण रूप से अलंकृत दो लाख गायों को दान दिया। सात तिल के पहाड़, सोना, चाँदी ब्राह्मणों को दान दिया।।3।।

तिल का पहाड़ यानी तिल के अलग-अलग बड़ी-बड़ी राशि। दस, पाँच अथवा तीन द्रोण परिणाम वाला बीच में मेरु पर्वत को तिल से रचना करना, उसके चारों तरफ उसके एक पाद (1/4)तिल से मन्दर, विष्कम्भ इत्यादि पर्वतों को रचाकर पूजना और उसको दान देना यह तिल का पहाड़ दान होता है। एक द्रोण का प्रमाण आज के करीब तीस किलो होता है।

नन्दगोप पवित्र होकर तिल पर्वतों को दान दिया। नया पानी बरसात के दिन में बहते हुये अशुचि रहता है। किन्तु कई दिन के बाद वह शुद्ध होता है। स्नान से शरीर शुद्ध होता है। तपस्वी लोग स्नान करे तो जल शुद्ध होता है, विधि पूर्वक संस्कार से गर्भ की शुद्धि होती है, तप से इन्द्रिय शुद्धि होती है, पूजा से प्रतिमा, ब्राह्मण शुद्ध होते हैं, दान और संतोष से द्रव्य की शुद्धि होती है, भगवान के तत्वज्ञान से मन और आत्मा शुद्धि पाते हैं।।4।।

यहाँ शुद्धि का अर्थ इच्छा के अनुसार फल पाना। दान देने वाले गो, भूमि, हिरण्य, तिल इत्यादि द्रव्य इष्टार्थ सिद्धि के लिए शुद्ध होना चाहिए। शुद्धि संतोष से मिलता है। दान देने वाला संतोष से देना चाहिए, स्वीकार करने वाला संतुष्ट होना चाहिए। स्नान शौच से जैसे शुद्धि होती है वैसे दान संतोष से शुद्धि होती है। इससे बढ़कर आत्मतत्वज्ञान से पूर्ण शुद्धि होती है यह जानने वाला नन्दगोप ब्राह्मणों को संतोष हो इतना दान दिया।

ब्राह्मण, सुत, वन्धि मागध मंगल स्तुति किये। गायक गान गाये, भेरी और दुंदुभि आवाज दिये।।5।।

ब्राह्मण मंगलाष्टक बोले, सुत स्तुति किये, मागध संकीर्तन किये, बन्दी नन्द राजा के साधनाओं की गाथा गाये। भेरी दुंदुभि ये सारे मानव और देव वाद्य मंद्र और उच्च स्वर में इन सबके साथ अपना आवाज मिला दिये।

गोकुल के निवासी सारे अपने-अपने घर को श्रृंगार किये, सुगंधित जल का सिंचन किये। घर के ऊपर ध्वजपताका फूल माला वस्त्र और तोरणों को फहराये।।6।।

गाय, बैल और बछड़ो को हल्दी और तेल लगाते हुये सोना, चाँदी के आभूषण से अलंकार किये।।7।।

यादव लोग बहुत मौल्यवाले वस्त्र, आभरण और सिरोभूषण से अलंकृत होकर नन्द को सम्मानित करने के लिए हाथ में पारितोषिक देने वाली वस्तुओं को पकड़कर नन्द के घर में प्रवेश किये।।8।।

यादव स्त्रियाँ यशोदा को पुत्रोपत्ति हुआ यह समाचार सुनते ही जल्दी से स्वयं अलंकृत होने लगी।।9।।

बड़े नितंब और हिलते हुए स्तन वाली यादव स्त्रियाँ कुंकुम, चन्दन केसर से अपने मुख कांति को बढ़ाते हुये प्रसव गृह के लिए आवश्यक वस्तुओं को अपने हाथ में लेकर जल्दी से नन्द के घर पर आये।।10।।

कानों में प्रकाशित रत्न कुण्डलों को, हाथ में सोने की चूड़ियाँ, गले में सोने की माला पहने हुये सुन्दर और भारी साड़ी पहने हुये गोपस्त्रियाँ नन्द के घर को जल्दी में आते समय उनके सिर से गिरे हुये फूल की वृष्टि हो रही थी। सिर हिलने से चलने वाले कर्ण कुण्डलों की कांति और स्तन के ऊपर हिलने वाली सोने की मालायें उनके स्वाभाविक शोभा को और भी बढ़ाते थे।।11।।

वे गोपस्त्रियाँ उस बालक की सदाकाल भगवान रक्षा करें इस प्रकार संकीर्तन करते हुये हल्दी पानी और तेल का प्रोक्षण करते हुये जनन रहित श्री कृष्ण का जन्म समय में गुणगान किये।।12।।

जगदीश्वर, अनंत, भगवान श्री कृष्ण नन्द गोकुल को आये हैं। इस समय में इस सुन्दर महोत्सव में विचित्र सुन्दर और बहुविध वाद्यों का निनाद आकाश मे गूँज उठा।।13।।

गोपालक आनंद विभोर होकर दही दूध, घी को एक के ऊपर एक फेकते हुये शरीर में मक्खन का लेप करते हुये होली जैसे उत्सव मनाये।।14।।

महात्मा नन्दगोप विष्णु की आराधना के लिए, पुत्र की अभ्युदय के लिए, यादव सुत मागध बन्दी और अन्य कलाविदो को वस्त्र आभरण अथवा वे जो चाहते थे उन वस्तुओं को देकर उनका भी सत्कार किया।।15,16।।

नन्दगोप से सम्मानित महासौभाग्यवती रोहिणी उत्कृष्ट वस्त्र और मालाओं को धारण कर उत्साह से इधर-उधर चलते हुये सारी व्यवस्था करती रही।।17।।

उस दिन से नन्दगोप की यह व्रज भूमि लक्ष्मीपति के आवास योग्य स्थान हो गयी। वहाँ लक्ष्मी देवी अपने ऐश्वर्यादि गुणों से युक्त होकर लक्ष्मी विहार स्थान बन गया। समग्र नन्दगोकुल सर्व समृद्ध होकर यथार्थ रीति से नन्दगोकुल हो गया।।18।।

हे राजा! उसके बाद नन्दगोप गोकुल की रक्षा के लिए गोपालकों की नियुक्ति करते हुये कंस को वार्षिक कर देने के लिए मथुरा चला गया।।19।।

नन्दगोप राजा था। नन्द गोकुल बहुत समृद्ध था। नन्दगोप का राज्य कंस के अधीन होने के कारण प्रतिवर्ष नन्दगोप कंस को कर देता था।

नन्दगोप कर चुकाने मथुरा आ गया है इस समाचार को सुनकर वसुदेव अपने भाई को भेंटने के लिए उसके पास गया।।20।।

राजा नन्द कंस केअधीन राजा था। कंस को नजराना देने के लिए बृहद्वन से मथुरा को जा रहा था। बीच में जमुना के तट पर शिविर लगा कर रहना पड़ा। उसी समय यशोदा उसी शिविर में दुर्गा को जन्म दिया।

वसुदेव के पिता शूर राजा क्षत्रिय था। वह द्रोण नाम के वसु का अवतार है। उसकी पत्नी यशोधरा धरा देवी का अवतार है। वसुदेव और नन्द गोप दोनों शूर राजा के पुत्र हैं। किन्तु नन्द गोप वैश्य स्त्री का पुत्र होने के कारण माता के अनुसार वैश्य जाति का है। इस प्रकार वसुदेव नन्द गोप अलग अलग माता के पुत्र और अलग अलग जात में पैदा होते हुए भी एक पिता के कारण भाई थे।

अपने प्रिय वसुदेव आया है इसको देखकर नन्दगोप आनंद विभर होकर,प्रेमपरवशता से,शरीर में प्राण आये तो कैसे उठता है वैसे झट से उठकर अपने भाई का आलिंगन किया।।21।।

नन्दगोप का आदर पाकर आसन पर बैठा हुआ वसुदेव उसके योग-क्षेम के बारे मे पूछने के बाद अपने पुत्र बलराम,कृष्ण के बारे में विचार करते हुये बोला।।22।।

भाई! बहुत दिनों से आपको पुत्र नही हुये थे। वृद्धाप्य के कारण आगे बच्चे होने की आशा कम हो गई थी। ऐसे सन्दर्भ में तुमको पुत्रोत्पत्ति हो गई है। यह बड़ा संतोषजनक है।।23।।

बार-बार जनन-मरण वाला इस संसार में तुम और हम बन्धित हैं। विधि वश से भेंट हुआ है। यह संतोष देता है। अपने इष्ट के लोग बार-बार नही भेंट सकते। भगवान की केवल कृपा के कारण ही यह भेंट साध्य हो सकता है।।24।।

परस्पर विचित्र अदृष्ट वाले बन्धु मित्र मिले तो भी साथ रहना और कष्ट है। जैसे नदी की धारा में चल रही नौकायें कभी मिले तो थोड़े ही समय मे अलग-अलग होती हैं।।25।।

तुम्हारे द्वारा इस समय अपने बन्धु बान्धवों के साथ वास किया जाने वाला रहा **बृहद् वन** आपकी गायों के लिए अनुकूलकर है न। वहाँ आपके पशुओं को रोगादि कुछ उपद्रव तो नही है न? वहाँ पानी चारा की उपलब्धि पर्याप्त है न।।26।।

मथुरा के चारों तरफ वाला प्रदेश **व्रज** और **बृहदवन** कहलाता है। यहाँ का राजा नन्द है।

भाई, मेरा पुत्र बलराम आपके गोकुल मे माँ रोहिणी के साथ सुख से है न ? आपके पालन में रहने वाला वह आपको पिता के समान मानता है न।।27।।

लोगों को धर्म अर्थ काम से सुख अपने बन्धुवों के साथ मिलने के बाद ही होता है। बन्धु यदि कष्ट में है तो सुख का अनुभव कैसे होगा। इसी कारण मैं इन प्रश्नों का उत्तर चाहता हूँ।।28।।

नन्द बोलता है- हे भाई, आप और देवकी के बहुत पुत्र कंस ने नाश किये। आखिर को जन्म लिये हुये एक पुत्री बची तो भी वह आकाश मे उड़ गई।।29।।

केवल वसुदेव समझे और किसी को संशय न आये इसके लिए नन्द गोप रहस्य बोलता है। वह ठीक तरह से जानता है कि आकाश में उड़ गई दुर्गा वापस आकर वसुदेव के साथ रहती है।

सामान्यतः लोग आँखों को जो दिखता है उसी के ऊपर विश्वास रखते हैं, आँख को न दिखने वाले भगवान के ऊपर विश्वास नही रखते। जो लोग न दिखने वाले भगवान के ऊपर विश्वास रखते हैं वे कभी भी दुःख भागी नही बनते। तुम भगवान के तत्व को जानते हो इसके लिए तुम सुख से रहते हो।।30।।

नन्दगोप के इन बातों का अर्थ यह होता है कि भगवान श्री कृष्ण को तुम आँखों से देख नही सकते। किन्तु भगवद तत्व के ऊपर विश्वास रखते हुये तुम निश्चिन्त रहो। वहाँ भगवान श्री कृष्ण बलराम के साथ सुरक्षित है।

वसुदेव कहता है- भाई, तुमने वार्षिक शुल्क दे चुके हो, हमारी भेंट भी हो चुकी है। तुम यहाँ ज्यादा समय गवाना नही। जल्दी यहाँ से चले जाओ। तुम्हारे बिना गोकुल में गड़बड़ हो सकता है।।31।।

इस प्रकार नन्दगोप आदि गोपालकों ने वसुदेव की बातें सुनकर उसकी अनुज्ञा से अपनी बैल गाड़ियों में बैठकर गोकुल के प्रति प्रस्थान किए।।32।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में छठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

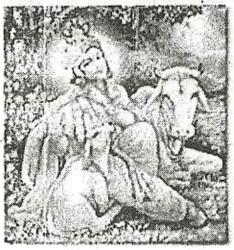

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सातावाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- नन्द प्रयाण करते-करते रास्ते में चिन्तन करने लगा। वसुदेव ने कहा कि गोकुल में उत्पात हो सकता है। उनकी बात झूठ नही होता ऐसा विचार करते हुये उत्पात के भय से श्री हरि की शरण में आया।।1।।

तब कंस द्वारा भेजी हुयी पूतना नाम की बालघातिनी क्रूर राक्षसी, शहर में, गाँवों में और गलियों में बच्चों को मारते हुये चल रही थी।।2।।

पूतना का अर्थ होता है अच्छे लोगों को भी प्रयत्न पूर्वक मारने की स्वभाव वाली स्त्री। दुसरा अर्थ अपवित्र स्त्री होता है। पूतना, रेवती, जेष्ठा, कोटरा, मात्रुका ये सारे रक्तपीने वाले और बच्चों की बलि देने वाली दुष्ट मारिका ग्रह हैं, इनको बाल ग्रह भी कहते हैं। पूतना में उर्वशी का अंश होने के कारण वह आकाश में चलने की शक्ति वाली थी। रामायण काल में वह ताटकी बन कर जन्म ली थी।

सभी कर्म करने के समय, राक्षसों को नाश करने वाली श्री कृष्ण कथा का श्रवण जो नही करते वहाँ राक्षस लोग बाधा रहित होकर हिंसाचार में लगे रहते हैं।।3।।

जहाँ कृष्ण कथा होती है और लोग उसको सुनते हैं वहाँ राक्षसों की चाल नही चलती। यहाँ तो स्वयं श्री कृष्ण हैं वहाँ राक्षस लोग क्या कर सकते हैं। वे स्वयं नाश पाते हैं। इसका प्रथम निदर्शन पूतना होने वाली है।

वह राक्षसी पूतना आसुरीमाया से अपने राक्षस रूप को छिपाकर सुन्दरी बनकर चल रही थी। वह चलते-चलते नन्द गोकुल के अन्दर घुस गई।।4।।

वह सिर में फूल की माला पहनी थी। उसके नितंब बड़े थे, छोटे कटि वाली, बड़े स्तन से शोभित वह पूतना अच्छी सुन्दर साड़ी पहनी थी। उसकी शरीर की कांति को उसके कर्ण कुण्डलों ने और बढ़ा दिया था, घुंघराले बाल मुख की शोभा को मुखरित की थी।।5।।

आकर्षक हसन्मुख वाली वह स्त्री अपनी तिरछी नजर से गोकुल के लोगों के मन को छीन ली। वह एक हाथ में कमल के फूल को पकड़ रखी थी तो लगती थी कि अपने पति श्री कृष्ण को देखने श्री लक्ष्मी मूर्तिमंत होकर आई है। गोपियों को यही भावना हुई।।6।।

बच्चों को मारने वाली पूतना बच्चो को ढूंढते हुये नन्द के घर को आकर बिस्तर के ऊपर सोए हुए श्री कृष्ण को देखी। राख से ढका हुआ आग के समान अपने तेज को छिपाए हुए दुर्जनों का मर्दन करने वाले भगवान श्री हरि शिशु रूप से वहाँ खेलते लेटे थे।।7।।

वे ठीक तरह से जानते थे कि यह महामारी बच्चों को मारने वाली भूत है। फिर भी स्वयं भूमि में राक्षसों को मारने के लिए अवतार लिये हुये वे सबको छिपाकर लय काल में इस सारे विश्व के चराचर सबको खा डालने वाले भगवान अपने बाल भाव को छिपाते हुये आँखें मूद कर सोये थे,पूतना से कुछ भी नही बोले।।8।।

भगवान रामावतार के ताटका को भगवान पहचान लिए। आँखों को खोल कर देखें तो उनके प्रकाश के कारण यह राक्षसी मरने के बाद सूर्य मार्ग अथवा चन्द्र मार्ग पकड़ कर सद्गति पायेगी इस विचार से भगवान सूर्य चन्द्र मार्ग को दिखाने वाले अपनी दोनों आँखों को बन्द कर ली।

वह राक्षसी उस शिशु को भगवान के रूप में न देख पाई। यह भगवान स्वाभाविक रूप से इस जगत में जो होता है उसको ठीक तरह से जानते हैं,इन्ही से मुझे मृत्यु होती है यह न समझते हुये अनंत रूपी उस बालक को उठाकर अपने जंघे के ऊपर बिठा लिया। वह सोया हुआ साँप को रस्सी मानकर जैसे लिया जाता है वैसे शिशु को उठा ली।।9।।

कोश मे रखा हुआ तीक्ष्ण धारा वाला खड्ग के समान पूतना बाहर देखने के लिए बहुत प्यार से बच्चे को गोद मे ले ली। अन्दर बच्चे को मारने का क्रूर मन रखती है। इसको देखते हुये भी यशोदा राक्षसी माया के वश होकर उसको साध्वी स्त्री मानते हुये चुपके से देखती रही।।10।।

उस समय वह घोर राक्षसी आगे झुकते हुये कोई पचा न सके ऐसे घोर विष से युक्त स्तन को शिशु के मुँह मे रखी। भगवान अपने दोनों हाथों से उस स्तन को जोर से पकड़कर मुँह से चूसते हुये दूध विष और प्राण को एक साथ खींचने लगे।।11।।

सारे बच्चों का जीव हरण करने वाली स्वयं मरण वेदना से जोर से छोड़ो-छोड़ो बोलते हुये श्री कृष्ण के मुँह से अपने को छुड़ाने का प्रयास किया। उसमें असफल हुई आँखें पूर्ण रूप से खुली हुयी थीं, दोनों हाथ पैरों को जमीन के ऊपर टपकाते हुये पसीना-पसीना होकर जोर से रोने लगी।।12।।

उसकी अतिभयंकर, अतितीव्र आवाज से पर्वत सहित भूमि, ग्रह और आकाश हिलने लगे। सारे पाताल लोक तक दस दिशा और आकाश प्रति ध्वनित हुये। लोगों को आकाश की बिजली गिरी ऐसे लगा। वे भय से जमीन पर लेट गये।।13।।

हे राजा, इस प्रकार दर्द को न सहते हुये जमीन के ऊपर अपने पाँव और हाथों को पसारते हुये बिखरे बालों से युक्त अपने सहज राक्षसी रूप को धारण कर वज्रायुध से मरा हुआ

वृत्रासुर के समान पूतना गोकुल में गिर कर मर गई।।14।।

भगवान, भक्त लोग उनके सामने भोग रूप में जो समर्पित करते हैं उसको खाते नही किन्तु उसको दुगुना करते हुए भक्त एक हाथ से दिए तो दो हाथ से उसको वापस करते है। यहाँ पूतना भगवान को विष का भोग लगाई, भगवान उसको दुगुना करते हुए पूतना को वापस दे दिए। उस विष को पाकर पूतना मर गयी।

हे राजा, सुनो, पूतना का देह शव होकर गिरने के समय उसके नीचे तीन कोस पर्यन्त प्रदेश के वृक्ष और वस्तुओं को चकना चूर किया।यह अत्यन्त अद्भुत था।।15।।

कंस को वार्षिक शुल्क देने के लिए नन्द वृहदवन से मथुरा को चला, साथ में गर्भिणी यशोदा को भी लिया था। रास्ते में नदी को पार करना था। इतने में यशोदा प्रसव वेदना का अनुभव करने लगी। इसी कारण नन्दगोप वहीं शिविर डालकर वास करने लगा। प्रसव होकर एक महीने के बाद नन्द अकेले नदी पार करते हुये मथुरा को जाकर शुल्क को देकर वापस आया। इतने में पूतना आकर अपने जान को खो चुकी थी।यह घटना जमुना जी के तट के ऊपर होने के कारण वृहदवन के लोगों को पूतना का शरीर गिरने से कोई अपाय नही हुआ।

पूतना को महाभारत में एक पक्षी रूप में आई थी कहा गया है।हरिवंश, विष्णु पुराण में मानव रूप में आई थी यह बात आती है।भागवत में इसको घोर राक्षसी रूप प्राप्त है, इसको कई लोग संदेह से देखते हैं।किन्तु भागवत में भी उसके नाम के साथ पक्षी का नाम जोड़ दिया है। **तोकेन जीवहरणं यदलुकिकायाः**(2-7-27)**अहो बकीयं स्तनकालकूटं** (3-2-23) यहाँ उलूकी बोले तो उल्लू और बकी यानी बक पक्षी ऐसे होता है।भागवत के श्रीधरी पाठ मे **कंसानुशिष्टः बकी बकानुजः** (10-12-14) बकी,बकासुर और उसके भाई अघासुर ये नाम आते हैं। यहाँ भी पूतना को बकपक्षी कहा गया है।पूतना अपने सहज रूप में राक्षसी है,वह पक्षी रूप मे अपनी माया से रूप धारण करती थी। हरिवंश में यह स्पष्ट है।

पूतना सामान्य मनुष्य नही थी।तप करके पार्वती से अवध्य वर पाकर घोर राक्षसी बन गई थी।उसके शव गिरने से बारह मील पर्यन्त प्रदेश के वृक्षों का चकनाचूर होना स्वाभाविक है। महाभारत के दक्षिणांत पाठ में सभापर्व के 38 अध्याय में पूतना का वर्णन आता है। **पूतना चापि निहता महाकाया महास्तनी**। पूतना बड़ी शरीर वाली थी उसके स्तन भी बहुत भारी थे।पूतना केवल पक्षी नही, केवल मानव भी नही।

हल के समान बड़े-बड़े दाँत वाली पहाड़ में रहने वाले गुफा के समान दो नाक वाली।बड़े पत्थर के समान स्तन वाली, बिखरे हुये लाल बाल वाली, अन्धेरे से घिरे हुए कुएँ के समान दो आँख वाली बड़े बालू के गड्ढे के समान नितंब वाली,नदी के बाँध के समान हाथ और पाँव वाली और सूखा हुआ बड़े तालाब के समान पेट वाली पूतना चित होकर मर कर गिरी थी।।16,17।।

पूतना के इस भयंकर शरीर को देखकर गोप गोपिकायें डर गयीं। पहले उसके स्वर से ही उनका दिल पिघल गया था,कान फट गये थे,सिर दर्द लग गया था।।18।।

बालक श्री कृष्ण इन सबकी परवाह न करते हुये उसकी छाती के ऊपर खेल रहे थे।गोपियाँ

उसको देखकर डर से चिल्लाते हुये दौड़कर श्री कृष्ण को उठाये।।19।।

यशोदा और रोहिणी के साथ सारी गोपिकास्त्री मिलकर बालक की रक्षा कीं। गाय के पूँछ से बच्चे को न्योछावर कर लीं।।20।।

गौमूत्र से श्री कृष्ण को स्नान करवायीं। गोपाद से मिले धूल को शरीर को ठीक तरह से लगायीं। गोमय से माथे और शरीर पर केशवादि नाम से अभिमन्त्रण करते हुये तिलक लगायीं। दिग्बन्धन किये।।21।।

महाभारत के शान्ति पर्व में गो और लक्ष्मी संवाद में आता है कि गायों की अपेक्षा के अनुसार लक्ष्मी देवी गोमय और गोमूत्र में विशेष सन्निधान से रहती हैं। अथर्वण वेद के श्री सूक्त में आता है कि **गन्धद्वारां दुराधर्षाम नित्य पुष्टां करीषणीम्** यहाँ करीषणीम का अर्थ गोमय होता है। श्री कृष्ण के शरीर को लक्ष्मी को छोड़कर अन्य किसी का संग नही हो सकता। इसके लिए श्री कृष्ण को गोमय गोमूत्र से लेपन किये। भगवान के लिए गोपियों का अलिंगन और गोमय और गोमूत्र लेपन एक समान है।

बारह अवयवों में केशवादि नाम से तिलक लगाने की विधि पद्मपुराण में लिखी है।

ललाटेकेशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे।
वक्षस्थलेमाधवंतु गोविन्दंकण्ठ कूवरे।
विष्णुंच दक्षिणेकुक्षौ बाहौच मधुसूदनम्।
त्रिविक्रमं कन्धरे तु वामनं वामपार्श्वके।
श्रीधरं वाम बाहौतु हृषीकेशं तु कन्धरे।
पृष्ठेतु पद्मनाभंच ककुद्दामोदरं न्यसेत्।।

गोपिकाओं ने हाथ पाँव धोकर आचमन करते हुये अपने हृदय, सिर, शिखा, भुज, आँख, दो हाथ और देह के मध्य भाग इन सात स्थानों मे नारायण अष्टाक्षर मंत्र से बीजन्यास करते हुये शिशु के माँथे और अन्य पहले कहे हुये भागों मे **ओम् नमो भगवते वासुदेवाय** इस द्वादशाक्षर मंत्र से न्यास किये।।22।।

बीज मंत्रों में गोपस्त्रियों के अधिकार के बारे में यह मंत्र है। **आहुरप्युत्तमस्त्रीणामधिकारं तु वैदिके**। गोपिकायें उत्तम देवता स्त्री होने के कारण उनको अधिकार है।

अज आपकी पाद की रक्षा करे, अणिमंत आपकी घुटने की रक्षा करे, यज्ञ नामक भगवान आपकी जंघा की रक्षा करे, अच्युत आपकी कमर को, हयवदन पेट को, केशव मन को, सर्वस्वामी छाती को सूर्य नारायण कंठ को, विष्णु बाहुओं को उरूक्रम मुख को, और इस जगत के स्वामी सिर की रक्षा करें।।23।।

यहाँ गोपिकाओं ने पाद से सिर तक विष्णु कवच मंत्र से न्यास किया है। यह लयन्यास होता है। सिर से

पाद तक न्यास किये तो सृष्टिन्यास होता है। सिर से हृदय तक और पाद से हृदय तक का न्यास स्थिति न्यास होता है। ब्रह्मचारी को सृष्टिन्यास, गृहस्थ को स्थिति न्यास और यति को लयन्यास विहित हैं। यहाँ गोपियों ने लयन्यास किया है, भगवान अनादि ब्रह्मचारी हैं, वे गृहस्थ भी हैं, वे यति भी हो सकते हैं। उनके लिये तीनो अन्वय हो जाते हैं। यहाँ तो गोपिकाओं ने केवल अंग रक्षा की है।

चक्रधारी आपके सामने से रक्षा करे, गदाधर पीछे से, धनुर्धारी और खडगधारी दोनों बाजू में, मधुसूदन जनार्दन शंखधारी और उरूगाय, चारों दिशाओं में, उपेन्द्र ऊपर से गरूड़ारुढ़ और शेषान्तर्गत अधोदिशा में, परम पुरुष सारी दिशाओं में आपकी रक्षा करे ।।24।।

हृषीकेश इन्द्रियों की, नारायण पंच प्राणों को, श्वेतद्वीपाधिपति वासुदेव चित्त की, योगेश्वर कपिल मन की रक्षा करें।।25।।

पृश्निी गर्भ बुद्धि को, सर्वोत्तम भगवान अहंकार की रक्षा करें। खेलते समय गोविन्द ग्रह बाधाओं को हटायें, सोते समय माधव रक्षा करें।।26।।

खेलते समय वैकुण्ठ, बैठते समय श्रीपति, भोजन करते समय सारे ग्रहों को भय करने वाले यज्ञभोक्ता रक्षा करे।।27।।

डाकिनी, यातुधानी, कूष्माण्ड, बालग्रह, भूत प्रेत पिशाच, यक्ष राक्षस, विनायक, कोटरा, रेवती, जेष्ठा, पूतना मातृका इत्यादि देह प्राण और इन्द्रियों को पीड़ा देने वाले, उन्माद, अपस्मार, दुष्टस्वप्न, महाउत्पात, बृहद ग्रह बाल ग्रह इत्यादि विष्णुनामोच्चार से डरने वाले सारी दुष्ट शक्तियाँ नाश हो जायें।।28,29,30।।

इस प्रकार गोपियों ने प्रेमपाश से बन्धित होकर श्रीकृष्ण को विष्णु कवच मंत्र से रक्षा की। बाद में यशोदा अपने पुत्र को स्तनपान कराते हुये झूले में सुला दिया।।31।।

इतने में मथुरा गये हुये नन्दगोप और अन्य गोपालक गोकुल को वापस आ गये। वे पूतना के मरे हुए बड़े शरीर को देखकर बहुत आश्चर्य चकित हो गये।।32।।

वे अपने मन में कहे- वसुदेव प्रायशः पूर्व जन्म में त्रिकालज्ञ ऋषि अथवा योगेश्वर हुआ होगा। वह अपने निज रूप को न दिखाते हुये यहाँ जन्म लिया है। वह मथुरा में उत्पात के बारे में कहा था। यहाँ हमारे आने के पहले ही उत्पात हो चुका है।।33।।

गोकुल में रहने वाली पूतना के शरीर को कुल्हाड़ियों से काटते हुये टुकड़ा-टुकड़ा कर लकड़ी के साथ जला दिये।।34।।

शव को दहन करते समय वहाँ एक सुगन्ध के साथ धुआँ निकला। श्रीकृष्ण के स्तन पान करने के कारण पूतना के सारे पाप नष्ट हो गये थे।।35।।

वहाँ रहने वाले बच्चों को मारकर रक्त पान करने वाली एक राक्षसी पूतना श्री कृष्ण को

मारने के उद्देश्य से स्तन पान करवाया था तो भी श्री कृष्ण की कृपा से वह सद्गति पाई।।36।।

पूतना का पूर्व जन्म वृतांत इस प्रकार है। उर्वशी एक बार कुबेर के साथ थी। उस समय उसने तुम्बुरू नाम के साथ गन्धर्व के संग किया। अप्सराओं को नियत पति नही होते हैं। एक समय जिसके साथ वे रहती हैं उतना समय तक वह ही उनके पति बनता है। उस समय उसकी अनुमति के बिना अन्य संग किये तो वह व्यभिचार होता है। इसी कारण उर्वशी शाप से राक्षसी बन गई। राक्षस जन्म में देवताओं ने अपने स्वभाव सिद्ध ज्ञान भक्ति के विरुद्ध भगवान में द्वेष करने के लिए उस सज्जीव के साथ एक राक्षस जीव भी रहता है। पूतना के शरीर में उर्वशी के साथ रामायण की त्राटिका भी मिल गई थी। द्वेष से विष पान कराया वह राक्षसी नरक को चली गई। उर्वशी श्री कृष्ण के करस्पर्श से पवित्र होकर पाप मुक्ति और शाप मुक्ति पाकर स्वर्ग सिधार गई। यहाँ पूतना को सद्गति का अर्थ उर्वशी को सदगति मिली यही कहना चाहिए।

द्वेष करने वाली पूतना को सद्गति मिला, तो श्रद्धाभक्ति से भगवान को प्रिय पत्र पुष्पादि किसी वस्तु से आराधना करने वाले को सदगति होती है इसके बारे में क्या कहना है। प्यार से जो भगवान में भक्ति करते हैं वे सभी सद्गति पाते है।।37।।

सभी लोगों से वंदित भगवान श्री कृष्ण को अपने हृदय में रखने वाले भक्त और रमा ब्रह्मादि जिनकी स्तुति करते हैं वह स्वामी पूतना के शरीर के ऊपर आक्रमण करते हुये उसका स्तनपान किये थे।।38।।

वह राक्षसी ही स्वर्ग पा ली तो भगवान श्री कृष्ण को अपने दूध को पिलाने वाले गाय और स्तनों से दूध पिलाने वाली सारी मातायें स्वर्ग पायीं इसके बारे में भी अलग क्या कहें?।।39।।

क्योंकि पुत्र वात्सल्य से पिलाया हुआ वह दूध को मोक्षादि पुरुषार्थ देने वाला भगवान स्वयं प्यार से उस दूध को पिया।।40।।

त्राटिका के साथ रहने वाली उर्वशी शुद्ध भक्ति कर नही पाई। वह कभी-कभी द्वेष भी करती थी। उसको संग- दोष मानते हुये भगवान उसको क्षमा कर दिये। पूतना से किए हुए द्वेष को भूलते हुये उर्वशी से किए हुए भक्ति को भगवान मान लिये हैं। इस प्रकार उर्वशी की द्वेष युक्त भक्ति को भगवान सद्गति दिये तो निर्मल भक्ति करने वाली माताओं और गायों को भगवान सद्गति दिये इसके बारे में अलग क्या कहना है?

श्री कृष्ण की माताएँ श्री कृष्ण को पुत्र वात्सल्य से अविरत भक्ति किये हैं। हे राजा! ऐसी माताएँ अज्ञान से पुनः इस संसार मे जन्म नही लेते।।41।।

गोकुल में रहने वाले अन्य लोग शव दहन से आने वाली सुगन्ध को पाकर उस सुगन्ध का कारण ढूंढ़ते हुए शव के पास आये।।42।।

गोपालक उनके सामने पूतना का आगमन, स्तन पान, पूतना का मरण और श्री कृष्ण के क्षेम की बातें सुनकर आश्चर्य चकित हो गये।।43।।

हे राजा,मथुरा से आया हुआ नन्दगोप शिशु को हाथ में उठाते हुये, उसके सिर को आघ्राणित करते हुये यह पुत्र सामान्य नही है,स्वयं भगवान है यह मानते हुयें परमानन्द भरित हुआ।।44।।

बाल कृष्ण के पूतना मोक्ष की इस लीला को जो मानव श्रद्धायुक्त होकर सुनकर आनंद पाता है वह भगवान श्री कृष्ण में उत्कृष्ट श्रद्धा भक्ति पाता है।।45।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में सतवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

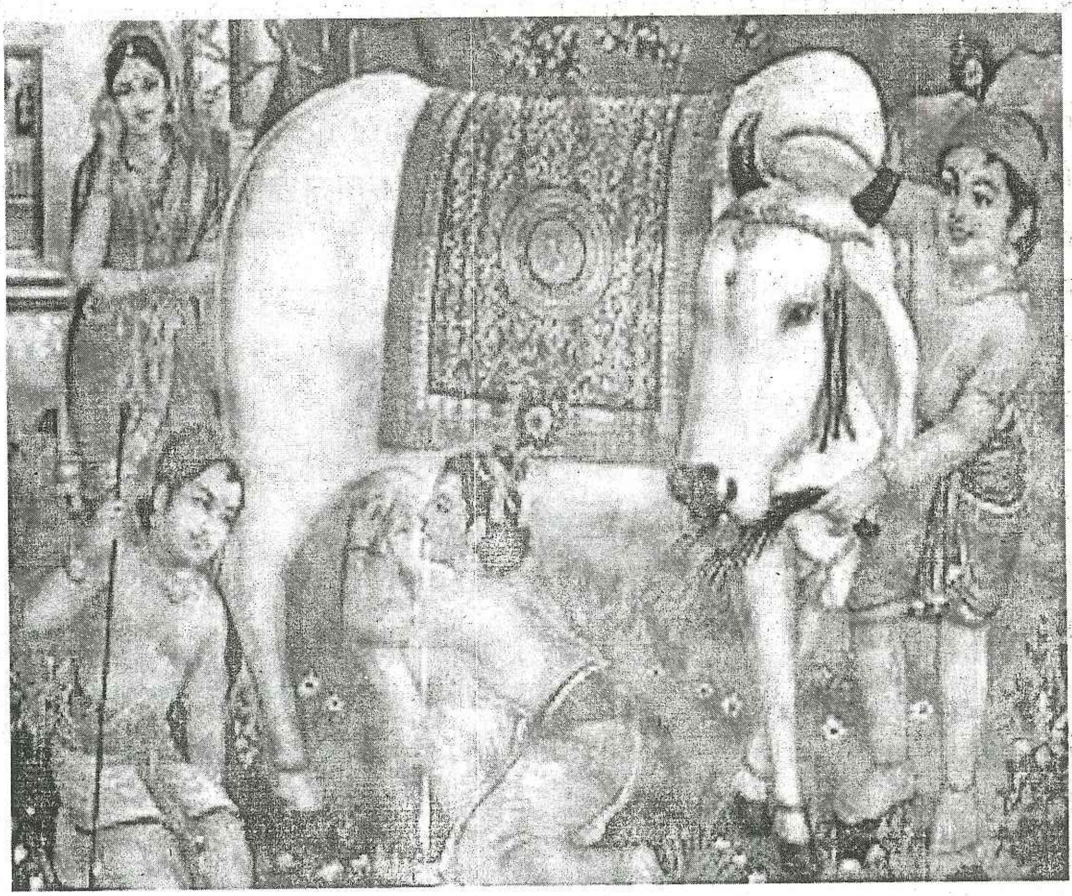

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - आठवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण गोप गोपियों को आनन्द देते हुये नन्दगोप के घर में चन्द्र के समान रोज-रोज अभिवृद्धि पाये।।1।।

राजा परीक्षित पूछता हैं- हे प्रभु! सर्वशक्त भगवान किसी भी अवतार में जो लीला करते हैं वह लीला सुनने के लिए कान को अच्छा लगता है,मन को आनन्द देता है।भगवान की लीला सदाकाल सुख देने वाली होती है।।2।।

भगवान की लीलाओं को सुनते रहे तो सांसारिक दुःख दूर हो जाता है, और विषय लालसा भाग जाती है, जल्दी ही अंतःकरण निर्मल होता है, भगवान श्री हरि में भक्ति होती है, उनके भक्तों में मैत्री होती है। भगवान के चरित्र का श्रवण ही संसार का सार है। यदि आप मुझे उसको सुनने के योग्य ठहराते हैं तो कृपा करके उसको हमें बताइए।।3।।

भगवान श्री कृष्ण मनुष्य के समान शरीर धारण करते हुये,मानव जाति के अनुसार अन्य जो अद्भुत लीलाओं को किए हैं उन सबको हमारे लिये बताइये।।4।।

धर्म को ठीक तरह से समझने वाले आप परम दयालु हैं, कृपा करके हमें सर्व पाप का हरण करने वाले भगवान की कथा को विस्तार पूर्वक बताइये।।5।।

श्री शुकदेव कहते हैं- तीन महीने के शिशु बाल कृष्ण पहली बार करवट बदलने के बाद बहिर्निष्क्रमण करने के लिए, नदी में मंगल स्नान करने के लिए गोकुल की सभी गोपिकास्त्रियों ने नन्द के घर में इकठ्टा हो गयीं। वाद्यगीत गाते हुये,ब्राह्मण मंत्र घोष करते हुये यशोदा बाल कृष्ण के ऊपर जमुना जी के पवित्र जल से अभिषेक किये।।6।।

शिशु के जन्म लेने के बाद बारहवाँ, पन्द्रहवाँ एक महीना अथवा तीन महीने के बाद एक शुभ दिन में घर से बाहर लाकर शिशु को सूर्य दर्शन करवाते हुये, नजदीक के मन्दिर को जाने के बाद मामा के घर जाना परम्परा में है। इससे शिशु को आयु,बल और गुण की वृद्धि होती है। इसको उत्थान कर्म अथवा उपनिष्क्रमण बोलते हैं। श्री कृष्ण के प्रथम बार करवट बदलने के दिन चौथे महीने में उनका जन्म नक्षत्र रोहिणी आया था।इससे बड़े पैमाने से गोप लोग उत्थान कर्म किये।

ब्राह्मणों को अन्न वस्त्र फूल माला इत्यादि अभीष्ट दान देते हुये यशोदा उनसे पुत्र को पुण्याह स्वतिवाचन करवायी। अभ्यंजन और धूप लगने के आयास से बालकृष्ण के आँखों में नींद आते देखकर यशोदा उसको नदी तट के समीप खड़ी हुयी एक बैलगाड़ी के नीचे उसको सुलवा दी।।7।।

समारम्भ को आये हुये गोकुलवासियों को सत्कार करने मे यशोदा मग्न थी।वहाँ शिशु बाल कृष्ण नींद से जागकर रोने लगा।यशोदा लोगों के साथ बातों मे मग्न होने के कारण सुन न सकी। बाल कृष्ण भूख से रोते हुये अपना हाथ-पाँव फैलाते हुये खड़ी हुयी बैलगाड़ी के पहिये को अपने पाँव से मारा।।8।।

सोए हुए शिशु के लाल-लाल कोमल और मृदु छोटे पाँव से भगवान जब बैलगाड़ी को लात मारे तब उस गाड़ी में रखे हुये दूध-दही, खाने-पीने के सारे सामान अस्त व्यस्त होकर गिर गये, बैलगाड़ी के पहिये टूट गये,कूबर टुकड़ा हो गया और अरा मुड़ गया।।9।।

शकटाक्ष नाम का पापी दैत्य पार्वती से अवध्य वर पाकर, मदमत्त होकर गाड़ी के पहियों में छिपकर बैठा था। वह कंस की तरफ से आया था। वह गाड़ी में प्रयाण करते समय बच्चों को गिराकर मारने के विचार से वहाँ आया था। उसी समय भगवान के पाँव से मार खाने से सिर नीचे करते हुये गिरकर मर गया।

यशोदा इत्यादि सारी गोपिकाओं ने और समारम्भ के लिए आये हुये गोपालक इस विचित्रता को देखकर चिन्तित हुये। उनकी समझ में नही आया कि गाड़ी कैसे गिर गयी। विषण्ण वदन से व्याकुल चित्त से कुछ न समझते हुये आपस में बाते करने लगे ।।10।।

यह गाड़ी क्यों गिरी इसको हम ठीक तरह से जानते नही।तब वहाँ खड़े हुये गोपालक बालकों ने कहा "यह बच्चा अपने पाँव से उसको लात मारा,रोते-रोते हाथ पाँव पसार रहा था।उसके पाँव लगने से यह गाड़ी पलट गई। हमने अपनी आँखों से देखा है। इसमें सशय नही"।।11।।

गोपालक बच्चों की इन बातों के ऊपर विश्वास नही किये, बच्चों की बात मानकर चुप हो गये। अचिन्त्य और अपरिमित शक्ति वाले श्री कृष्ण के बल को वे समझ नही पाये।।12।।

भगवान एक ही पाद से शकटासुर का वध किए। हरिवंश में अंगुष्ठ के स्पर्श मात्र से शकटासुर मर गया ऐसा कहा है। जगद्गुरू मध्वाचार्य भी अपने यमक भारत में पादांगुष्टेन कहे हैं।

यशोदा इससे और ज्यादा घबड़ा गई।ग्रह चेष्टा मानते हुये बच्चे को लेकर ब्राह्मणों से ग्रह पीड़ा शान्ति और स्वस्तिवाचन करते हुये अपने स्तन से दूध पिलाई।।13।।

गोपालक गाड़ी को ठीक करते हुये दूध दही इत्यादि सामानों को पुनः लाते हुये गाड़ी में भरकर रखे।ब्राह्मण लोग यज्ञ करने के बाद दही, अक्षत कुश और जल से पूजा की।।14।।

असूया, असत्य, दम्भाचार, ईर्ष्या, हिंसा और दुरभिमान रहित ब्राह्मणों का आशीर्वाद कदापि व्यर्थ नही होता।।15।।

नन्दगोप अपने पुत्र को ब्राह्मणों के सामने जमीन पर सुलवाया।ब्राह्मण सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद मंत्र से, आम, कटहल, अश्वत्थ इत्यादि वनस्पतियों से युक्त अभिमंत्रित जल से सिंचन स्नान करवाये।स्वस्तिवाचन के बाद एकाग्र चित्त से अग्नि में होम करते हुये ब्राह्मणों को षड्रस युक्त अन्न से भोजन करवाये।।16,17।।

कृष्ण और बलराम के अभ्युदय चाहते हुये वस्त्र फूल माला और सोने की मालाओं से अलंकृत श्रेष्ठ गायों को दान दिया।।18।।

वेद जानने वाले ब्राह्मण मिलकर आशीर्वचन मंत्र कहे।श्रेष्ठ विप्र जो बोलते हैं, जो आशीर्वाद देते हैं वह कभी व्यर्थ नही होता।।19।।

एक वर्ष के बाद एक दिन यशोदा अपने पुत्र को जंघे के ऊपर सुलवाकर उसके साथ खेल रही थीं, उस समय श्री कृष्ण उसको बहुत भारी लगने लगे।वह उस वजन को सहन नही कर सकीं। उसको लगा वह पहाड़ के शिखर के समान हैं।।20।।

यशोदा उस भार से पीड़ित होकर आश्चर्य से पुत्र को जमीन के ऊपर रख दीं। ग्रहबाधा न हो इस दृष्टि से नारायण का ध्यान करते हुये घर के काम में लग गईं।।21।।

तृणावर्त नाम का कंस का दूत दैत्य मृत्यु से प्रेरित होकर चक्रवात के रूप में आकर जमीन के ऊपर बैठे हुए कृष्ण को ऊपर उठाया।।22।।

तृणावर्त समग्र गोकुल को धूल से भर दिया। उस धूल में कोई आँख खोलकर देख नही सकते थे। दशों दिशायें हवा के भयंकर शब्द से भर गये थे।।23।।

एक मुहूर्त (47 मिनिट) तक गोकुल धूल और अधेरे से आवृत हो गया।यशोदा अपने रखे हुये स्थान पर श्री कृष्ण को देख नहीं पाईं।।24।।

हवा के साथ बालू के कण जोर से चलकर गोकुल के निवासी गोपालकों को मार रही थी।तृणावर्त के इस आघात से गोकुल के लोग एक-दूसरे को या स्वयं को देख न पा रहे थे।।25।।

आंधी और तूफान के साथ बरसात होने लगी, उस समय अपने बच्चे को खोयी हुयी गाय के समान यशोदा अपने पुत्र को न देखते हुये बच्चे के बारे में चिन्ता करते हुये जमीन के ऊपर गिर कर रोने लगी।।26।।

यशोदा की रोती हुयी आवाज को सुनकर गोपिकास्त्रियाँ ने मन में अनुताप करते हुये वे भी आँखों से आंसू बहाये।थोड़ी देर बाद धूल और वर्षा का वेग कम हो गया।ढूँढ़ने के बाद भी कृष्ण नही मिले। सारे लोग हताश होकर जोर से रोने लगे।।27।।

तृणावर्त झंझावात का रूप धारण कर कृष्ण को उठाकर आकाश में ले चला।कृष्ण का भार बढ़ता रहा। उनके वजन से तृणावर्त का वेग कम होता रहा।वह आगे बढ़ नही सका।।28।।

वात रूपी दैत्य बहुत वेग से ऊपर उड़ रहा था किन्तु भगवान का वजन वह वहन नही कर सकता। यह सही है हवा को कितना भी वेग हो वह विश्वंभर को वहन नही कर सकता।

कृष्ण के वजन को न सहते हुये उसको पत्थर के समान अपने से फेंक देना चाहता था। किन्तु तृणावर्त उसको फेंक नही सका।वह अद्भुत बालक उसके गले को दबाकर पकड़ लिया था।।29।।

श्री कृष्ण दैत्य के गला को और जोर से दबाने लगे। उससे दैत्य निश्चेष्टित हो गया। उसकी आँखें बाहर निकल आयीं। छोड़ो-छोड़ो कहने लगा।किन्तु वह आवाज भी बाहर नही आ पायी। राक्षस के प्राण पक्षी उड़ गये।बालकृष्ण के साथ उसका शरीर गोकुल के बीच में गिर गया।।30।।

इकठ्ठा होकर रो रही गोपिकाओं ने आकाश से गिरे हुए पहाड़ रूप वाले भयावह आकार के तृणावर्त दैत्य के शरीर को देखे। उसके सारे अंगांग जर्जरित हो गये थे। पार्वती वर से अवध्य उस दैत्य का शरीर शिव के बाण से जर्जरित हुए त्रिपुरासुर के समान हो गया था।।31।।

तृणावर्त के शरीर के ऊपर उसके गले में दोनों हाथ लगाए हुये भगवान श्री कृष्ण उसकी छाती पर खेल रहे थे। उसको देखकर गोपियाँ विस्मित हो गयीं। नरभक्षक राक्षस कृष्ण को आकाश को उड़ा ले गया था तो भी कृष्ण उस राक्षस से लड़ते हुये मृत्यु से अपने को छुड़ाते हुये कुशल रूप से उनको वापस आया हुआ देखकर आनंद विभोर होकर गोपियों ने उसको उठाकर माँ की गोद मे सौंप दिये।।32।।

गोप-गोपियाँ श्री कृष्ण को वापस पाकर धन्य हो गये।''यह अद्भुत है,राक्षस के हाथ में पड़कर हमारा कृष्ण अदृश्य हो गया था।हमारे भाग्य से वह पुनःहमें मिल गया है''।इन बातों से वे अपने आनन्द को व्यक्त कर रहे थे।।33।।

''सबको हिंसा करने के स्वभाव वाला अपने पाप से ही वह स्वयं नाश होता है।सज्जन लोग सदाकाल जिसके साथ जैसे रहना चाहिए उसके साथ वैसे ही रहने से आपत्ति से उनकी रक्षा हो जाती है। अब देखो, राक्षस मर गया।हम अपने कन्हैया को खोने के अपाय से दूर हो गये। यह हमारा भाग्य है। पूर्व जन्म में हम बड़ी तपस्या, हरि पूजा, जन सेवा,यज्ञ दान और अन्य लोगों का उपकार किये होगें। हमारे सौभाग्य से, मरने को सम्भव रही इस आपत्ति से हमारा बालक वापस आकर हम सबको आनन्द दे रहा है। यह हमारा भाग्य है, यह हमारा अदृष्ट है।।34।।

इस प्रकार गोकुल में होने वाले अद्भुत उत्पातों को देखकर विस्मित होकर नन्दगोप, वसुदेव की कही हुयी बातों के ऊपर और ज्यादा विश्वास किया।।35।।

एक बार यशोदा श्री कृष्ण को वह न चाहते हुये स्वयं प्यार से अपने स्तन का दूध पिलाने लगी।।36।।

दूध पीने लगा पुत्र को देखकर प्यार से भरी हुई यशोदा उसको उठाकर उसके मुँह को चुम्बन दी।उस समय श्री कृष्ण जम्भुआई लगाया।यशोदा अपने पुत्र के छोटे मुँह में भरा हुआ ब्रह्माण्ड को देखी।।37।।

श्री कृष्ण के मुँह में यशोदा पञ्च महाभूत, मन तत्व, अहंकार तत्व, महत्त्व, प्रकृति इत्यादि तत्वों से मिला हुआ ब्रह्माण्ड, रूद्रादि से युक्त चतुर्मुख, मानव दानव युक्त जगत को देखी।

माँ जी! मेरा पेट ब्रह्माण्ड से भरा है। आपका दूध किस कोने में रहेगा? लगता था छोटा मुन्ना यह बड़ी बात कर रहा है।

आकाश, भूमि, अंतरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, सारी दिशाये, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, वहाँ से बहने वाली नदियाँ, अरण्य, स्थावर जगम जीवजात इन सबको यशोदा ने अपने छोटे से पुत्र के नन्हे से मुँह मे देखी।।38।।

छोटे बच्चे के मुँह में इस प्रकार विश्व रूप के दर्शन करते हुये यशोदा काँपने लगी।हरिणाक्षी विस्मय से अपने आँखों को बन्द कर दी।।39।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - नौवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री बादरायण शुकदेव कहते हैं - हे राजा! यादवों के कुल पुरोहित महा तपस्वी गर्ग मुनि वसुदेव की प्रार्थना के अनुसार नन्द गोकुल को चले गये।।1।।

उनको देखकर नन्दगोप परमानन्द से भर गया। सामने आकर दण्डवत प्रणाम करते हुये उनमें श्री हरि के अधिष्ठान को देखते हुये उनका सत्कार किया।।2।।

अतिथि-सत्कार को स्वीकार करते हुये सुखासीन मुनि को नन्द गोप ने अपने प्यार भरे मृदुल भाषा से स्वागत करते हुये कहा, कहिये, महराज! मैं पूर्णकाम आपकी क्या सेवा करूँ।।3।।

हे महात्मा! आप लोगों। के संचार से दीन मन वाले गृहस्थ मानवों के इह-पर का श्रेय साधन होता है। वह कभी भी व्यर्थ नही होता।।4।।

आप द्वारा रचाया हुआ ज्योतिष्य इत्यादि शास्त्र ग्रन्थ,ग्रह नक्षत्र आदि ज्योतियों को आश्रय होने वाला ज्योतिश्चक्र का परिचय देता है। अतीन्द्रिय प्राचीन कर्म को जातक के बल से परिचय देता है। इससे मनुष्य अपने भूत और भविष्यत के बारे में जान लेता है।।5।।

आप ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं, यादवों के कुलपुरोहित हैं। आप बालक बल राम कृष्ण को जातकर्मादि संस्कारों को करवाइये। सारे वर्ण के लोगों का ब्राह्मण जन्म जात गुरु होता है।।6।।

श्री कृष्ण बलराम क्षत्रिय पुत्र हैं, नन्द वैश्य है। जन्म के समय सारे शूद्र होते हैं, संस्कार से जाति दृढ़ होता है। कर्ण कुन्ती पुत्र होते हुए भी संस्कार वश से सूत बन गया। यहाँ बलराम कृष्ण को वसुदेव-पुत्र न समझते हुए संस्कार किए तो वे वैश्य बनते हैं। इसी कारण वसुदेव अपने कुलगुरु गर्गाचार्य को भेजकर उनको क्षत्रिय योग्य संस्कार करवाए।

गर्ग मुनि बोले-यह प्रसिद्ध है कि हम यादवों के कुल पुरोहित है। मैं तुम्हारे पुत्रों का संस्कार करूँगा तो दुष्ट कंस इसको जान लिया तो वह समझ लेगा कि तुम्हारा पुत्र देवकी का पुत्र है। देवकी की पुत्री दुर्गा की बात सुनकर कंस आज भी विचार कर रहा है कि देवकी के आठवें गर्भ में पुत्री का जन्म होना असाध्य है,वह पुत्र ही हुआ होगा,वह किसी अन्य स्थान पर

जीवित रह सकता है। तुम और वसुदेव दोनों में आपस में रहने वाले स्नेह और बन्धुत्व को वह ठीक तरह से जानता है। आप दोनों में बच्चों का विनिमय हुआ होगा यह संशय भी उसको आने लगता है।यादव कुलपुरोहित मैं तुम्हारे पुत्रों को नामकरण किया तो इसको जानते ही वह संशय रहित होकर तुम्हारे पुत्रों को मार डालता है।इसके लिए नामकरण करना आगे अनर्थकारी हो सकता है।।7,8,9,।।

नन्दगोप कहता हैं- ऐसा है तो गोकुलवासी हमारे लोगों को भी न मालूम हो ऐसे गुप्त रीति से रहस्य मय स्वस्तिवाचन पूर्वक अपने बच्चों को द्विज को योग्य संस्कार दीजिये।।10।।

द्विज यानी दुबारा जन्म लेना।एक बार मातृगर्भ से और दूसरी बार गायत्रीमंत्रोपदेश से।इससे द्विज शब्द का अर्थ दो बार जन्म लेने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य होता है।किन्तु यहाँ वह अर्थ उचित नही है।द्वि यानी दूसरा,दूसरा जाति क्षत्रिय होता है।नन्दगोप वैश्य है,इसके लिए वह क्षत्रिय जाति में पैदा हुये राम कृष्ण को क्षत्रियोचित संस्कार करना चाहता है,अपने के अनुसार वैश्य जाति का नही।त्रिदश,त्रिविष्टप यहाँ त्रि का अर्थ तीसरा होता है।वैसे ही यहाँ द्वि का अर्थ दो होता है।

श्री शुकदेव कहते हैं- नन्दगोप की इस प्रार्थना के अनुसार और स्वयं की इच्छा वही होते हुये गर्ग मुनि और कोई नही जाने ऐसे एकांत स्थान में बालक राम तथा कृष्ण को नाम करण इत्यादि संस्कार किये ।।11।।

रोहिणी के पुत्र अपने बन्धु मित्रों को अपने गुणों से आनन्द करने वाला हो इसके कारण उसका नाम राम रहे। वह महाबलशाली होने के कारण राम शब्द बल के साथ प्रयोग मे आये। इसका दूसरा नाम संकर्षण रहे, क्योंकि वह सारे यादवों को आत्मीयता से अपनी ओर खींचता है। अन्यान्य प्रदेशों में बिखर कर बसे हुये यादवों को यह आगे इकठ्टा करने वाला है। रोहिणी देवकी गर्भ से इसको बाहर खींचकर लाई है।इसके लिए इसका नाम संकर्षण रहेगा।।12।।

अपृथग्भाव यह शब्द संकर्षण का इन तीनों अर्थों को बताता है।पृथक् परकीयताभाव अ न हो यह अर्थ अन्य देशों में रहने वाले यादवों को वापस लाना।दुर्गा **पृथक्** =देवकी गर्भ से इसको बाहर लाई है, तीसरा लोगों का आकर्षण स्वरूप से सामान्यतः होता है।

हे नन्दगोप,तुम्हारा यह यशोदातनय युग के अनुसार अलग-अलग रंग रूप धारण करता है, अलग-अलग शरीर वाला होता है।पहले शुक्ल,रक्त,पीत नाम के तीन रंग वाला हो गया था अब वह काले रंग वाला हुआ है।इसके लिए वह कृष्ण नाम से प्रसिद्ध होगा।।13।।

कृतयुग में श्रीहरि के हयग्रीवादि रूप शुक्ल यानी सफेद वर्ण के, त्रेतायुग में परशुराम आदि रक्त वर्ण के रूप, द्वापर युग में नरसिंहादि पीत यानी हल्दी रंग वाले शरीर, द्वापरांत में यह कृष्ण वर्ण का शरीर धारण किये है।

पहले एक बार यह और एक स्थान पर और एक वासुदेव के पुत्र होने के कारण इसका

नाम वासुदेव भी है।ज्ञानी लोग इनको वासुदेव कहते हैं। उसका अर्थ वे सर्वत्र वास करते हैं।।14।।

तुम्हारे पुत्र को उनके गुण कर्म के अनुसार अनंत रूप और अनंत नाम हैं। उनको मैं जानता हूँ,सामान्य लोग उनको नही जानते।।15।।

कृष्ण का नाम कृष्ण रूप नाम के गुण से आया है।इसके साथ कृष्ण का अर्थ इस भूमि को सुख देने वाला कर्म के अनुसार भी होता है।कृष् का अर्थ भूमि होता है, ण का अर्थ सुख होता है। भगवान के नाम गुण रूप और कर्म के अनुसार अनंत होते है।

कृष्ण नाम के बहुत अर्थ होते हैं। पाठको की सुविधा के लिए यत्किञ्चित, यथा शक्ति अर्थ लिखते हैं।

1. कृषि का अर्थ उत्कर्ष = भक्तों को उत्कर्ष देने वाले ।

2. कर्षति, अपहर्ति = भक्तों को आकर्षण करने वाले, भक्तों के पाप को हरण करने वाले।

3. परिपूर्ण गुण वाले।

4. कृष्णः, क = ब्रह्म, ऋ अनन्त वाचक है, ष कार रुद्र वाचक है, ण कार वैकुंठ वाचक है, अ कार श्वेतद्वीप पति विष्णु वाचक है। विसर्ग नर नारायण वाचक है।

5. कर्षति उलूखंलम् इति = ओखली को खीचने वाला।

6. कृष्यते भक्तैः सर्वदा।

7. भक्तों के शत्रुओं को नाश करने वाला।

8. राधया सार्धम् रमते = राधा के साथ रमण करने वाले।

9. कृष्णं यानी कृष्ण पक्ष। कृष्ण पक्ष के चन्द्र के समान शत्रु के नाश से उनकी पत्नियों के मुख कलाओं को नाश करने वाले।

10. दर्शन मात्र से शत्रु मित्र को आकर्षण करने वाले। दुर्योधन के पक्ष के कर्ण को आकर्षित किए।

11. कृषि भू देवी की प्रार्थना के अनुसार अवतार लेने वाले।

कृष्ण का अर्थ हरि, अग्नि, कोयल होता है।

12. हरि पाप को हरण करने वाले। 13. अग्नि = अग्नि के समान दुर्योधनादि दुष्ट अरण्य को नाश करने वाले, दो बार अग्नि को खाने वाले। 14. कोयल = कोयल के समान मंजुल गान गाने वाले, वंशी बजाने वाले।

15. कृष्ण केश के रूप से जन्म लेने वाले।

16. कृषि भूमि को सुख देने वाले - ण = स्वयं सुख रूप।

17. कृ = मृत्यु, ष = ज्ञान, ण = आनन्द, सज्जनों को तीनों देने वाले कृ + ष + ण = कृष्ण

18. कर्म को निर्मूलन करते हुए दास्यत्व को देने वाले।

19. संसार मोह को नाश करने वाले।

20. जगत का नियमन करने वाले, बल इत्यादि अनन्त गुण वाले।

21. कृष = भूमि के समान निश्चल, न = नमस्कार अथवा भक्ति। अ = प्राप्ति। निश्चल भक्ति वाले भक्तों को सुख देने वाले।

22. कृष = निर्वाण, ण = मोक्षानन्द, अकार देने वाले, मोक्षानन्द देने वाले।

23. जड़ रहित स्वरूप देह को मोक्ष देने वाले।

24. कृष्ण = उत्कृष्ट बलिष्ट। चाणूर, मुष्टिक नाम के बलिष्ठ कुस्ती पटु को नाश करने वाले।

25. क कार उच्चारण से यम दूत काँपते हैं, ऋ कार से उनके भय से भागते हैं, ष कार से सारे पाप नाश होते हैं, ण कार से सारे रोग नष्ट होते हैं, अकार से सातविध की मृत्यु नष्ट होते है।

ऐसे 108, 1008 नाम का अर्थ भी हो सकते हैं विस्तार भय से यहीं विराम लेते हैं।

यह बालक गोपालकों को और गायों को आनन्द देते हुये तुम लोगों का कल्याण करने वाला है।इसकी सहायता से आप आने वाले सारे आपदाओं को अनायास से पार कर सकते हैं।।16।।

हे नन्दगोप सुनो- प्राचीन काल में इस देश में सही राजा न होने के कारण सज्जन लोग रक्षक न होते हुये दुष्ट लोगों से पीड़ित हो गये थे।तब इसने राजा पृथु होकर आवेश रूप से अवतार लेकर सज्जनों की रक्षा की है।उस समय सज्जनों की अभिवृद्धि होकर चोर उचक्के नष्ट हो गये।।17।।

इसमें प्यार करने वाले मानव भाग्यशाली होते हैं। इनके शत्रु कुछ कर नही सकते जैसे विष्णु पक्ष के लोगों को असुर कुछ भी नही कर पाते।।18।।

इसी कारण नन्दगोप तुम्हारा यह पुत्र गुण कीर्ति,कान्ति,शक्ति सामर्थ्य में नारायण के समान होता है। इनकी तुम्हें बहुत जाग्रत होकर रक्षा करनी चाहिए।।19।।

इस प्रकार उपदेश देकर गर्ग मुनि अपने आश्रम को चले गये।नन्दगोप अपने पुत्र के भविष्य के बारे में सुनकर आनन्द विभोर होकर अपनी इच्छायें आज ही पूर्ण हो गयीं ऐसे मनोभाव में रहा।।20।।

नारायण के समान नारायण ही हो सकता है और कोई नही। गर्ग मुनि की भावना यही थी।इसको समझते हुये नारायण को इस कारण संतोष हुआ कि नारायण स्वयं अपने घर में अवतार ले चुके हैं।

थोड़े समय के बाद राम और कृष्ण अपने हाथ और घुटने के बल से गोकुल में चलने लगे।।21।।

उनके पाँव में बंधे हुये घुंघुरू के मंजुल स्वर से गोकुल गूंज उठा। उस आवाज को सुनते ही गोकुल के लोग आनन्द से तुंदिल होकर गोपाल कृष्ण के पास ही रह जाते थे। राम कृष्ण घर के आँगन के कीचड़ में पाँव खींचते हुये आगे जाते-जाते तुरन्त मुड़कर लोक विडम्बना करते हुये माँ के पास भाग आते थे।।22।।

उनकी माता यशोदा रोहिणी प्यार से आकर उनको अपनी गोद में उठा लेती थी। उस समय उनको पाँव में लगा हुआ कीचड़ और शरीर का धूल लग जाता था।उसको भी वे आनन्द से स्वीकारते हुये अपने बच्चों को स्तन का दूध पिलाते थे।अभी आ रहे छोटे-छोटे दाँत वाले अपने मंदहासयुक्त मुग्ध अपने बच्चों के मुख को आँख फाड़कर देखते हुये आनन्द लूटते थे।।23।।

अत्यन्त रमणीय बाल लीला करने वाले,दिखाने वाले राम कृष्ण गाय के बच्चों के पास जाकर उनकी पूँछ को पकड़ते हुये इधर-उधर खींचते थे,तब गाय के बच्चे उनसे छुड़वाकर भागना चाहते थे।इस सुन्दर दृश्य को देखते हुये गोपिकाएँ अपने घर के काम को छोड़कर उनको देखते ही रह जाती थीं।।24।।

जैसे दिन बीतते रहे, राम कृष्ण खेलते रहे, वे बहुत नटखट हो गये। किसी के वश में नही रहते थे। वे घुटने से चलते ही बैल, आग, बन्दर, साँप, पानी, पक्षी और कीटों के साथ अपायकारी खेलों में मग्न होते थे। इससे यशोदा-रोहिणी इधर अपने बच्चे के इस नटखटपन को नियमन नही कर सकती थी, उधर घर का काम भी नही कर पाती थीं। उनको यह समझ में ही नही आता था कि क्या इन बच्चों को देखती रहें और उनकी रक्षा करती रहें, अथवा घर का काम करने के लिए अन्दर चली जायें। इस दुविधा में वे बहुत चिन्तित रहती थीं।।25।।

यहाँ बैल, आग, इत्यादि के साथ खेल उनके आगे का भूभार हरण का कार्य वैखरी के बारे में सूचना मिलती है। बैल वृषभासुर, आग, जंगल में लगा हुआ दावानल, बन्दर केशी नाम के दानव, साँप काली नाग, पानी इन्द्र द्वारा की गयी अखण्ड वर्षा, पक्षी बकासुर अन्य कीटों के समान उपद्रव करने वाले चारुण मुष्टिक के समान क्षुद्र जन्तुयें।

हे महराजा! भगवान श्री कृष्ण बलराम के साथ जमीन पर खड़े होकर चलने लगे,घुटने से चलना छोड़ दिये। वे खेलते-कूदते दौड़ते रहे।।26।।

तब भगवान श्री कृष्ण अपने भाई बलराम के साथ और गोकुल के अपने समवयस्क गोकुल के बच्चों के साथ खेलते हुये गोपस्त्रियों को आनन्द देते रहे।।27।।

प्रतिदिन यशोदा अपने कोमल उँगलियों से श्री कृष्ण के गाल के ऊपर स्पर्श करती रहती थी। भगवान के मन्दस्मित मुख को प्यार से पुचकारती और चुम्बन देती थी। अपने बढ़ते हुए प्यार से खेलने वाले श्री कृष्ण को खींच कर स्तन पान करवाती थी।

गोपिकाएँ श्री कृष्ण की इन नयनाभिराम मनोहर बाल लीलाओं को और नटखटपन को देखते हुये, सहन करते हुये क्रोध का बहाना करते हुये यशोदा के सामने बाल लीला के बारे में शिकायत किया करती थीं।।28।।

श्री कृष्ण कभी-कभी हमारी गोशाला में आकर गैर समय में गाय के बच्चों को छुड़वा देता है। बच्चे हमारे न जानते हुये अपनी गाय के दूध पी लेते हैं। हम उसे डाटे तो हमको चिढ़ाता है। हमारे रखे हुये दूध दही मक्खन को चोरी करके खाता है, बिल्ली को और अपने साथियों को खिलाता है,पेट भर खाने के बाद मिट्टी के उन बर्तनों को तोड़ता है।हम दूध दही मक्खन ऊपर रखे तो किसी तंत्र से वहाँ तक पहुँच जाता है,तो भी नही मिले तो हमारे बच्चों को मारते हुये उनको रुलवाता है।।29।।

भगवान श्री हरि शंख चक्रधारी श्री कृष्ण अब बाल रूप में वायु देव के ऊपर चढ़ के संचार कर रहे हैं। भूमि में घुटने से चलते हुए अपने किए हुए मक्खन की चोरी की स्तुति करने वालों को अनुग्रह कर रहे हैं। वायु वाहन श्री कृष्ण पीठ ओखली इत्यादियों पर चढ़कर दूध दही मक्खन की चोरी करते थे। उस समय उनकी सहायता के लिए पीठ ओखली इत्यादि में वायु देव प्रवेश करते थे। बालक के कन्धे पर चढ़ते समय वायु देव बच्चों में प्रवेश करते थे। श्री हरि लक्ष्मी और वायु के सम्पर्क रहित किसी वस्तु को छूते तक नही। यह विचार को जगद्गुरु मध्वाचार्य जी ने अपने यमक भारत में कहे हैं।

दही का बर्तन ऊपर रहे,हाथ को न मिले तो वहाँ रखे हुये तीपाये को रखते हुये उसके ऊपर चढ़कर लेता है,मटकी में रखा हुआ मक्खन हाथ को नही मिला तो,वह मिले इतना ही छोटा सा छेद करते हुये मक्खन खा लेता है। हम काम में जब लगे रहते हैं उसी समय दबे पाँव से बिल्ली की तरह आ जाता है, अंधेरे में भी अपने शरीर से और मुख से प्रकाश डालते हुये चोरी करता है, उसके लिये अंधेरे में और कोई प्रकाश की आवश्यकता नही है। वह हमको अंधेरे में न दिखे इसके लिये अपने गले से प्रकाश देने वाले सारे मणि माला को निकाल कर आता है।।30।।

घर में मक्खन को चोरी से खाना गोपाल बच्चों का सहज स्वभाव है। लोभ से माता ज्यादा मक्खन नही

दिये तो बच्चे उसको चोरी से खाते हैं। यह कोई अपराध नही, पाप नही। देवता लोगों को अवतार लेते समय भगवान उनको आदेश दिये थे कि आप लोगों को मानव के इस स्वभाव का आचरण करना चाहिए। श्री कृष्ण अपने घर में चोरी से मक्खन खाया यह गोपस्त्रियों को आनन्द ही देता था। वे केवल क्रोध का बहाना करते हुये यशोदा के सामने शिकायत करते थे। जो कृष्ण के कार्य से क्रोधित हुये और मक्खन देने में तकरार किये, श्री कृष्ण उनके मक्खन के साथ उनके अधिक पुण्य का हरण भी करते हुये उनके ऊपर अनुग्रह किये हैं।

भगवान मक्खन दूध दही की चोरी किए क्या? दूसरों की वस्तु को लेना चोरी होता है। इस जगत में भगवान का, ऐसी कौन सी वस्तु नही है। उपनिषद कहता है - ईशावास्यमिदं सर्वम् - इस जगत की सारी वस्तुओं में भगवान आवास करते हैं। अपनी वस्तुओं को लेने से चोरी कैसे होती है। श्री कृष्ण को दूध दही की क्या आवश्यकता है? क्षीर सागर में वास करने वाले को क्या दूध दही की कमी होती है? वे दूध की चोरी नही किए वरन दूध दिए हुए लोगों के पाप को छीन लिए। यह विचार रूक्मिणीश विजय में आता है।

कृष्ण के ऊपर गोपिकाएँ यशोदा के सामने तकरार करती थीं। एक गोपी आकर बोली कि तुम्हारा लड़का जादूगर है। उसके आते ही हमारे घर के दरवाजे खुल जाते हैं। दूसरी बोली गाय के बच्चों को कृष्ण रस्सी से छुड़ा कर गाय के पास ले जाते हैं, पूछे तो मैं बन्धित लोगों का बन्धन छुड़ाने आया हूँ कहता है। तीसरी बोली तेरा पुत्र माखन चोरी करते समय उसे पकड़ने के लिए हम उसके पीछे भागे तो हिरण के समान छलांग मारते हुए वह भाग जाता है। इन तकरारों के उत्तर रूप में श्री कृष्ण बोलते हैं माँ जी! मैं इनके घर का पूरा दूध पीने के लिए मेरा पेट क्या तालाब है? आपसे दिया हुआ एक लोटा दूध को भी मैं पूरा पी नही सकता, आधा बिल्ली को दे देता हूँ। इनको मेरा जैसा बच्चा नही हुआ है इसके लिए वे ईर्ष्या से आपके सामने तकरार कर रहे हैं।

श्री कृष्ण भय रहित होकर हमारे घर में प्रवेश करता है,हम मना किये तो हमारे देहली के ऊपर मल मूत्र का विसर्जन करता है।चोरी करने के सारे उपायों का प्रयोग करने के बाद भी कुछ भी न हुआ हो ऐसे सभ्य जैसे रह जाता है।हम उसको चोरी करते पकड़ा तो भय से डरा हुआ जैसे खड़ा हुआ तेरे पुत्र के मुँह को देखकर हमें आनन्द हो जाता है। ऐसे तुम्हारा पुत्र हमें तंग कर रहा है।इस प्रकार गोपियों ने यशोदा के सामने तकरार किया। इसको सुनकर यशोदा को हँसी आई।इन बातों को सुनकर उसको अपने पुत्र को डाटने का मन नही हुआ।।31।।

यशोदा को हँसी इसके लिए आई कि यह गोपिका स्त्री सच नही बोल रही हैं। मेरे घर में सोलह हजार गायें हैं। रोज पहाड़ के इतना मक्खन यहाँ होता है। इसको छोड़कर मेरे कन्हैया को और दूसरों के घर में चोरी करने की क्या आवश्यकता है।

एक बार सारे बच्चे मिलकर खेल खेल रहे थे।तब बलराम अन्दर आकर माँ के सामने शिकायत किया कि कृष्ण खेलते-खेलते मिट्टी को खा लिया।।32।।

माँ यशोदा दौड़कर बाहर आई, कृष्ण को हाथ से पकड़ते हुये उसके हित मे डाटने

लगी।श्री कृष्ण अपने चंचल आँखों को फाड़-फाड़कर यशोदा को देखते हुये डर का प्रदर्शन करता रहा।।33।।

हे मेरे लाल, सोने की गुड़ियाँ, तुम क्यों चोरी से मिट्टी खाये। घर में मक्खन का ढेर है।जितने चाहे उतना देती हूँ। सच बोलो, देखो, ये सारे बच्चे और तुम्हारा भाई कह रहा है।।34।।

भगवान श्री कृष्ण बोले-माँ जी, मैं मिट्टी नही खाया।ये सारे झूठ बोल रहे हैं।चाहे तो मेरा मुँह देखो।।35।।

ना हं भक्षितवानंब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः भागवत में नौवाँ अध्याय के पैतीसवाँ श्लोक का यह प्रथम पाद है। इसका सामान्य अर्थ मैंने मिट्टी नही खाया यह होता है। यहाँ एक संशय आ जाता है, भगवान झूठ बोलते हैं क्या? एक समाधान ऐसा है, भगवान बच्चे के रूप मे हैं, बच्चे डर के मारे झूठ बोल सकते हैं। इसका यह अनुसरण है। किन्तु वेदव्यास जी भगवान कहते हैं ऐसे बोलने से और एक विशिष्ट अर्थ होता है कि भगवान आगे गोपिकास्त्रियों के सामने बोलते हैं कि **न मयोदितपूर्वं वा अनृतम्** मैनें कभी झूठ नही बोला है। इस वाक्य से यहाँ विरोध आता है। इसके लिए यहाँ दूसरे तरह से अर्थ करना पड़ता है, **ना अहं भक्षितवान्,** मैं परम पुरुष हूँ मैं मिट्टी को खा लिया। **सर्वे अमिथ्याभिशंसिनः,** ये सारे सत्य बोल रहे हैं। मैं मिट्टी खाया हूँ इसको आपही देखिए बोलते हुये भगवान अपने मुँह खोल के दिखाए। वहाँ वे मिट्टी को नही दिखाये, बदले में ब्रह्माण्ड को दिखाये। यहाँ भी हमें लगता है कि भगवान झूठ बोले, यदि सत्य बोले होते तो मुँह में मिट्टी को दिखाना था। भगवान मिट्टी खाये यह सत्य है।उस मिट्टी से ही वे अपने मुँह में ब्रह्माण्ड को बनाकर दिखाये।

एक मूठीभर मिट्टी में प्रकृति महतत्व इत्यादि चौबीस तत्व सूक्ष्म रूप से रहते हैं।श्री हरि अपने अचिंत्य शक्ति से ब्रह्माण्ड की सृष्टि किये।इस सृष्टि को दिखाने के लिए ही वे मिट्टी खाये।

मिट्टी को न खाते हुये अपने अचिन्त्याद्भुत शक्ति से वे ब्रह्माण्ड की रचना कर सकते हैं, वे एक बार अपने अन्दर के ब्रह्माण्ड को माँ को दिखाये थे। श्री हरि शून्य से प्रपंच की सृष्टि नही करते हैं, इसके लिए मिट्टी को उपादान करते हुये स्वयं निमित्त कारण बनकर अपने मुँह में माँ को ब्रह्माण्ड दिखाये हैं। दूसरी बार ब्रह्माण्ड दिखाने का मन्तव्य यही है कि भगवान ऐसे अनंत कोटि ब्रह्माण्डों को सृजन कर सकते हैं, इसको बताने के लिए यह दूसरी बार विश्वरूप का दर्शन दिये। भू देवी के भार हरण के लिए भगवान स्वयं अवतार लिये हैं। भू माता भगवान को थोड़ी सी मिट्टी को समर्पण किये भगवान उसी से ब्रह्माण्ड बनाये।हरि को हम छोटा सा भी समर्पण किये तो भगवान अनंत फल देते हैं।

भगवान माँ को अपनी इस क्रिया से ही उत्तर देते हैं। माँ! आपसे दिया जाने वाला मक्खन मेरे लिए इस मिट्टी के समान है। मैं प्यार को छोड़कर और किसी वस्तु को ग्रहण नही करता।

यशोदा बोली-यदि तुमने मिट्टी नही खाया है तो मुँह खोलो, देखूँगी। यशोदा की इस

बात को सुनकर महाधैर्यशाली भगवान डरा हुआ बच्चे जैसे सामान्य मनुष्य के समान डरकर अपना मुँह खोले।।36।।

यशोदा अपने नन्हे से पुत्र के मुँह में इस चराचर सर्व वस्तु युक्त ब्रह्माण्ड को देखी,उसने वहाँ अव्याकृत आकाश, सारी दिशायें, पर्वत, द्वीप, समुद्र से मिला हुआ यह ब्रह्माण्ड, वायु, अग्नि, चंद्र नक्षत्र, ज्योतिष्चक्र, जल, तेज, अंतरिक्ष, स्वर्ग, भूताकाश, सर्वेन्द्रिय, देवताओं, मन, तन्मात्राऐं, गुणत्रय, जीव, काल, स्वभाव, अदृष्ट, संस्कार, लिंग शरीर इनको और इनके साथ इनके गुणधर्मों को और समस्त विचित्र प्रपंच को, उसमें रहने वाले गोकुल को, उसमें रहने वाली बैठी हुई अपने को, अपने जंघे के ऊपर सोया हुआ मुँह खोला हुआ छोटा कन्हैया कृष्ण को देखकर बहुत गड़बड़ में पड़ी।।37,38,39।।

यह क्या स्वप्न है,भगवान की इच्छा के अनुसार एक नयी सृष्टि है? क्या मेरी बुद्धि बिगड़ गई? अथवा यह मेरा बेटा जन्म से ही पाया हुआ योग सिद्धि है?।।40।।

यह मेरा बेटा समझा हुआ यह वस्तु जीव, मन, कर्म, वचन इनके अभिमानी ब्रह्मादि देवताओं को भी समझने में कष्ट है, वे भी पूर्ण रूप से समझ नही सकते ऐसे मेरे लाल की लीला को मैं और अन्य सामान्य लोग कैसे समझ सकते हैं। इस प्रपंच को जन्म देने वाला, इसकी रक्षा करने वाला, प्रलय काल में सबको मुक्ति देने वाला इस परब्रह्म स्वरूप को मैं नमस्कार करती हूँ।।41।।

नन्दगोप मेरा पति है, यह श्री कृष्ण मेरा पुत्र है, ये गोकुल के नन्द के सारे साम्राज्य और संपत्ति की मैं मालकिन हूँ, मैं ही इसकी रक्षा करती हूँ, ये सारे गोप और गोपिकायें मेरे हैं यह समझते हुये मैं और मेरी इस नीच बुद्धि से मैं श्री हरि की इच्छा मात्र से और मेरे कर्मानुसार यह होता है इसको न समझने वाली मेरी नीच बुद्धि को श्री भगवान ही हटा के मुझे सद्गति दें।।42।।

इस प्रकार यशोदा एक क्षण परतत्व को समझते हुये उसकी शरण होती है, दूसरे क्षण ही वह उस सर्वशक्त सर्वेश्वर श्री कृष्ण को अपने पुत्र के मोह में देखने लगती है। यही भगवान की माया है।।43।।

उसी क्षण यशोदा को विश्वरूप दर्शन से मिला हुआ तत्वज्ञान का विस्मरण हुआ।पहले जैसे पुत्र वात्सल्य दिल में भर गया। घबड़ाया सा, खुले हुये आँखों में आंसू भरा हुआ श्री कृष्ण को उठाकर अपने गोद में ले ली।।44।।

तीन वेद, सारे उपनिषद् ,सांख्ययोगशास्त्र,पंचरात्रागम इनसे सदाकाल गीयमान कीर्ति वाले महामहिम श्री हरि को अपना पुत्र मानते हुये झूले में डालकर सुलाती रही,गाना गाती रही।।45।।

राजा परीक्षित कहता हैं-हे मुनिवर्य, भगवान को पुत्र रूप में पाने का महाभाग्य पाया हुआ नन्दगोप पूर्व जन्म में क्या पुण्य किया था। महाभाग्यशालिनी यशोदा श्री हरि को स्तनपान करायी और लालन की यह कितना बड़ा भाग्य है।।46।।

ज्ञानी लोग आज भी जिनका संकीर्तन करते हैं, जिनकी सुखसंकथा के श्रवण मात्र से पाप चला जाता है ऐसी लीलाओं को देखना सुनना भी जन्म दिये वसुदेव देवकी के भाग्य में नही मिला।।47।।

श्री शुकदेव नन्द की पूर्व कथा कहते हैं- नन्द गोप पूर्व जन्म में द्रोण नाम के एक श्रेष्ठ वसु थे। उसकी धरादेवी अब यशोदा बनी है। भूमि में गोप-गोपी होकर जन्म लेने के लिए जब ब्रह्मा जी का आदेश मिला तब उनके आज्ञानुसार ये भी जन्म लिये।।48।।

उन्होंने ब्रह्मा जी से वर माँगे, हम भूमि में जन्म लेते हैं तब देवोत्तम जगन्नाथ में हमें उत्तम भक्ति प्राप्त हो, उससे और उनके प्यार को पाकर हम इस दुष्तर संसार सागर को पार कर सकें।।49।।

ब्रह्मा जी तथास्तु कहे। बाद मे महायश्स्वी द्रोण गोकुल में जन्म लेकर नन्द नाम से प्रसिद्ध हुआ। धरा देवी यशोदा का रूप धारण की।।50।।

हे राजा! भगवान जनार्दन ही अपने पुत्र होने के कारण सारे गोप-गोपियों में सबसे ज्यादा भक्ति इन दम्पतियों मे बढ़ गई।।51।।

ब्रह्मा जी का दिया हुआ वर को सार्थक बनाने के लिए भगवान श्री कृष्ण बलराम के साथ गोकुल में रहते हुये नन्द यशोदा को साथ-साथ गोपालक और गोपिका-गण को अपने लीला से परमानन्द देते थे।।52।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में नौवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - दस

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- एक बार घर में काम करने वाली नौकरानियों के अन्य कामों में व्यस्त होने के कारण नन्द की रानी यशोदा स्वयं दही को मंथने लगी।।1।।

मैंने जिन बाल लीलाओं को बताया है उन सारे श्री कृष्ण की बाल लीलाओं की गाथा गाते हुये यशोदा दही मंथन कर रही थी।।2।।

विशाल नितंब के ऊपर कढ़ाई की हुई रेशम की साड़ी यशोदा पहनी थी। उसके हिलने वाले स्तन से पुत्र वात्सल्य से दूध आता था। मंथनी की रस्सी को खींचने से बाहों को श्रम होता था।हाथ के सोने की चूड़ियाँ और कान के कुण्डल हिलते थे।आया हुआ पसीना मुँह के ऊपर दिखता था।सिर के ऊपर पहने हुये फूल मंथन के समय एक-एक करके गिर रहे थे। सुन्दर भव्य यशोदा इस प्रकार दही मंथन कर रही थी।।3।।

स्तनपान की इच्छा से माँ के पास आया हुआ श्री कृष्ण मंथनी को पकड़कर मंथन कार्य में बाधा डाल दिया।यशोदा इससे सन्तोष पाकर कृष्ण की ओर देखी।।4।।

अपने जंघे के ऊपर बच्चे को लेकर हँसते हुये माँ यशोदा पुत्र को स्तनपान कराने लगी। इतने में चूल्हे पर रखा हुआ दूध उबलने लगा। जल्दी में यशोदा कृष्ण को भूमि पर पटकते हुये दूध के पास दौड़ गई।श्री कृष्ण अभी स्तनपान कर तृप्त नही हुआ था।।5।।

श्री कृष्ण यशोदा का स्तन पान किया। कृष्ण को दूध की आवश्यकता नही थी। उसको देखते ही यशोदा के स्तन से पुत्रवात्सल्य से दूध बहता था। माता के प्यार से उसको व्यर्थ न करते हुए भगवान पीते थे। भगवान जन्म रहित है। जो जन्म नही लेता है, माता के गर्भ से नही आता है उसको कौन दूध पिलाएगी? मत्स्य, कूर्म नरसिंह अवतार में किसने दूध पिलाया। कृष्णावतार में माँ का दूध नया लगा। जो नया होता है वह प्रिय होता है। उसको कितने बार पीने के बाद भी तृप्ति कैसे आयेगी? एक वस्तु के स्थान में और एक वस्तु को रखना है। तो पहले वाले को वहाँ से हटाना पड़ता है। यहाँ श्री कृष्ण दूध के साथ यशोदा के पाप हरण करते हुए उसके हृदय में पुण्य विशेष को भर रहे हैं।

यशोदा को मुँह में ब्रह्माण्ड को दिखाने में यही तात्पर्य है। कितना दूध पीते हो बस करो। माता की इस बात के उत्तर रूप में भगवान बोलना चाहते हैं, मैं अकेला नही पी रहा हूँ। सारा जगत मेरे पेट में रह कर दूध पी रहा है।

श्री कृष्ण को माँ की इस अलक्ष्य से क्रोध आ गया।उसके सुन्दर होठ हिलने लगे।आँखों मे आंसू आये,दाँतों से होठ को काटते हुये मलाई से भरी हुयी मटकी को एक छोटे पत्थर से मार कर अन्दर नया मक्खन को खा लिया।।6।।

दूध को आग से उतार कर यशोदा आकर देखती है दही का भांड टूट गया था।श्री कृष्ण वहाँ नही था।यशोदा समझ ली यह उसी का काम है। वह हँसने लगी।।7।।

अन्य एक दिन श्री कृष्ण उल्लूख को पलटकर उसके ऊपर खड़े होकर स्वयं मक्खन खाते हुये बिल्ली को खूब मक्खन खिला रहा था। माँ न देखे इसके लिए वह बार-बार फिर कर देखता था।पीछे से आई हुई यशोदा कृष्ण के पास आई।।8।।

हाथ में लाठी लेकर आने वाली माँ को देखकर श्री कृष्ण उल्लूख से कूदकर डरा हुआ लड़के जैसे भागने लगा।योगियों ने अपने तपोबल लगाकर जिनको पकड़ने में असमर्थ होते हैं उस भगवान को पकड़ने के लिए मुग्ध गोपिका उसके पीछे दौड़ने लगी।।9।।

कुमार के पीछे दौड़ने वाली गोपिका की कृश कटि हिलती थी, बड़े नितंब चलते थे,उनके भार से शरीर झुका था,वेणी से फूल गिरते थे।बहुत वेग से दौड़कर अंत में यशोदा कृष्ण को पकड़ ली।।10।।

भगवान के पीछे बहुत श्रम करते हुये दौड़कर यशोदा बड़ी यात्रा करते हुये बहुत पुण्य पा ली।उस पुण्य के अधीन होकर भगवान यशोदा के हाथ में मिल गये।

श्री कृष्ण अब अपराधी बना है,रो रहा है,दोनों हाथों से आँखों को मल रहा है, आँख में लगाया गया काजल मुँह पर पसर रहा है,भय विह्वल होकर माँ को देख रहा है।यशोदा लाठी लेकर मारने का नाटक करते हुये कुमार को डाँट रही है।।11।।

भयभीत हुआ पुत्र को देखकर ममता युक्त माँ लाठी को दूर फेंक दी। उसके हाथ को छोड़ते हुये उल्लूख को बाँधने के लिए रस्सी ले आई।बेचारी माँ अपने पुत्र की अगाध महिमा कैसे जानती है।।12।।

भगवान अन्दर बाहर सर्वत्र व्याप्त होने के कारण उसको अन्दर और बाहर कोई अलग नही है।वह अनादि नित्य होने के कारण उसके आगे-पीछे कुछ नही है,सबके अन्दर वही है और बाहर भी है,सबसे पुराने वे हैं और सबसे आगे भी वे ही हैं। इस प्रकार इस जगत में व्याप्त होकर राज्य करने वाले भगवान श्री कृष्ण हैं।।13।।

भगवान श्री कृष्ण अभिव्यक्त स्वभाव वाले हैं, अपने अनुग्रह के बिना वे किसी को दृष्टिगोचर होने वाले नही हैं। किन्तु मनुष्य और बालक के रूप में दिखने वाले उनको अपने पुत्र समझते हुये यशोदा एक रस्सी से उसको उल्लूख से बाँधने लगी।।14।।

पुत्र गलती किया है, दण्ड रूप मे माँ उसको बाँधना चाहती है।किन्तु रस्सी दो अंगुल कम पड़ी। यशोदा दूसरी रस्सी लेकर उसको जोड़ दी।।15।।

रस्सी तीन धागा से बनता है, वह सत्व, रज, तमो गुण का संकेत है। इनसे हमको छुड़ाने वाले भगवान को क्या कोई रस्सी से बांध सकता है? यशोदा कितने भी रस्सी जोड़ दे बांधने का प्रयास करने के बाद भी रस्सी दो अंगूल कम पड़ता था। यशोदा के घर में सोल हजार गायें थीं। कितने रस्सी वहाँ हो सकते हैं। कम पड़ने में भगवान हमें एक शिक्षा देना चाहते हैं। भगवान भक्तों के बन्धन को छुड़ाते समय तीन गुण वाली रस्सी की आवश्यकता है। ज्ञान भक्ति और वैराग्य ये तीन रस्सी के गुण होना चाहिए। यशोदा को भगवान के ठीक तरह का ज्ञान नही है। वह भगवान को अपना पुत्र समझ बैठी है। ज्ञान न रहने वाली यशोदा में भक्ति और वैराग्य भी नही है।

वह भी दो अंगुल कम हो गया। उसको और एक रस्सी जोड़ दी वह भी दो अंगुल कम पड़ी। ऐसे घर में जितने रस्सियाँ हैं उन सबको लाने के बाद भी दो अंगुल कम ही पड़ा।।16।।

यशोदा के घर में सोलह हजार गायें थीं। उनको बाँधने के लिए बहुत सी रस्सियाँ लगती हैं। आवश्यकतानुसार उपयोग के लिए उतनी ही रस्सियाँ घर में अलग रखे जाते हैं। उन सबको लाकर बाँधने का प्रयास करने के बाद भी दो अंगुल मात्र रस्सी कम होती रही। यह भगवान की विशेष लीला है।

यशोदा कृष्ण को अत्यन्त प्यार करती थी। किन्तु उसमें ज्ञान और वैराग्य की कमी थी। वह ज्ञान के बिना भगवान को बाँधने आई। अपने दही नुकसान के बारे में असहना थी, वैराग्य नही था।

इस प्रकार घर मे रहने वाले सारे रस्सी को लाने के बाद भी कृष्ण को यशोदा बाँध नही सकी। इसको देखकर अन्य गोपिका स्त्री के साथ यशोदा भी हँसने लगी।।17।।

यशोदा को अब तक की श्रम से पसीना आई थी, बाल के फूल मुरझा गये थे। माँ की थकान को देखते हुये श्री कृष्ण कृपा से स्वयं बंधन के अधीन बन गये। स्वयं दामोदर बने।।18।।

हे राजा इस जग के स्वामी, रमा ब्रह्मादि के साथ ये सारा ब्रह्माण्ड किसके अधीन रहता है वह स्वयं श्री हरि भक्तों के अधीन होता है, उनके बंधन को स्वीकारता है इसके लिए यह एक दृष्टांत है।।19।।

श्री हरि मुक्ति देने वाले, इस अनुग्रह को न ब्रह्म पाये, न रुद्र पाये, न छाती मे सदाकाल रहने वाले लक्ष्मी पाई किन्तु गोपिकाओं ने इस अनुग्रह को पाया।।20।।

यशोदा पुत्र श्री कृष्ण अपने को नौका बनाते हुये भक्तों को लेकर इस संसार सागर को सुलभ रीति से पार करवाते हैं। यह लाभ भक्तिभरित ज्ञानी लोगों के लिए मिलता है, ज्ञान भक्ति रहित मंद लोगों को कभी नही मिलता।।21।।

रस्सी से बाँधकर माँ घर के कामों मे व्यस्त हो गई। इधर उल्लूख को बँधा हुआ श्री कृष्ण वहाँ से बाहर जाने की इच्छा किया। वहाँ आँगन में दो अर्जुन के वृक्ष जोड़ी में खड़े थे, उनको देखा। ये दोनों वृक्ष पूर्व जन्म में कुबेर गुह्यक नाम के पुत्र थे।।22।।

नल कूबर, मणिग्रीव नाम से ये दोनों प्रख्यात थे, बहुत सम्पन्न थे, नारद जी के शाप के कारण ये दोनों अर्जुन वृक्ष होकर जन्म लिये थे।।23।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दसम स्कन्धः

अध्याय - ग्यारहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं- हे पूज्य मुनि! यह नलकूबर और मणिग्रीव को नारद से शाप मिलने का कारण क्या है। देवर्षि नारद क्रोध करने वाले नही हैं। उनको क्रोध क्यों आया।उसके लिए वे दोनों क्या अपराध किये थे।।1।।

श्री शुकदेव कहते हैं- नलकूबर और मणिग्रीव कुबेर के पुत्र थे। वे रुद्र की सेवा में नियुक्त थे। इससे उनका अहंकार बढ़ता रहा। एक बार गंगा तट पर कैलाश के एक रम्य उपवन में फूल से भरा हुआ प्रदेश में सुरापान करने के बाद वहाँ गाते रहे स्त्रियों के साथ मिलकर ये भी गाने लगे।मदिरा से मत्त होने के कारण उनकी आँखें गिर रही थीं।।2,3।।

वे कमल से भरे हुये सुशोभित गंगा जल में उतर कर हाथी हाथिनी के साथ जैसे विहार करता है वैसे वहाँ के स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा में मग्न थे।।4।।

हे राजा! उस समय श्री हरि की इच्छा के अनुसार वहाँ नारद जी पधारे,वे मदोन्मत्त नलकूबर को देखे।।5।।

नारद जी को देखकर वस्त्र रहित अप्सरा स्त्रियों ने लज्जा से और महर्षि शाप देंगे इस भय से जल्दी में आकर कपड़ा पहन लिये। किन्तु विवस्त्र रहे गुह्यक दोनों कपड़ा नही पहने।।6।।

वे दोनों पहले ही हम देव पुत्र हैं और श्रीमंत हैं इससे मदभरित थे,अब मदिरा पीकर और भी मत्त हो गये हैं। इसको देखकर उनके मद का नाश हो और भगवान में भक्ति हो इस दृष्टि से अनुग्रह रूप में शाप देकर कहे।।7।।

नारद जी कहते हैं- विषय पदार्थों को आशक्ति से सेवन करने वाले को रजोगुण के कारण धनमद कुलमद इत्यादि बुद्धि नाशक कार्य होते हैं। ये साथ होने के कारण स्त्री संग,द्यूत प्राणी हिंसा और काम्ययज्ञों में आशक्ति स्वयं आती है।।8।।

धनमद से अन्धे, विषयासक्त लोग मनोनिग्रह न करते हुये उनका पार्थिव शरीर अनेक तरह का भोग भोगता रहता है।वे नित्य खाने के लिए यज्ञ के नाम से पशु की हिंसा करते हैं।उनके पार्थिव शरीर को राजा हो तो नर देव बोलते हैं,ब्राह्मण हो तो भू देव बोलते हैं,ऐसे देव

शब्द से संज्ञित यह शरीर मरने के बाद सड़ गया तो कृमि कीट का आहार बनता है, वैसे ही कुत्ता सूअर खाये तो मल बन जाता है, जलाये तो राख बन जाता है। ऐसे नश्वर शरीर को ये मूर्ख लोग जरा-मरण रहित समझते हैं। विषयासक्त धनी लोग इस शरीर के पोषण के लिए प्राणि हिंसा करते हैं, अन्य लोगों को कष्ट देते हैं और पुनर्जन्म में ऐसे ही शरीर मिलने के लिए यज्ञों में प्राणि हिंसा करते हैं। भूतदया को भूलकर भूतद्रोह करने वाले ये स्वार्थी लोग इस हिंसा के कारण उत्तम लोक को नही पाते किन्तु नरक में गिर जाते हैं। इस भूमण्डल में अपने सम्पत्ति के कारण उसको थोड़ा सा सुख मिलता है। किन्तु वह भी सुखकर नही है।रोगादि उपद्रव से दुःख ही होता है।वह मूढ़ मानव अपने सही हित को नही समझता।।9,10।।

यह शरीर अन्नदाता के अन्न खाकर पोषित होता है तो यह अन्नदाता का है क्या? गर्भाधान करके शरीर को देने वाले पिता का हो सकता है क्या? अथवा माता का हो सकता है क्या ? अथवा शक्ति से काम कराने वाला मालिक का होता है क्या? अथवा जो पैसा देकर खरीदता है उसका होता है क्या? अथवा जलकर राख बनाने वाली अग्नि का होता है क्या? अथवा खाने वाला कुत्ता और सूअर का होता है क्या? यह शरीर किसका है और किसको मिले यह निर्णय जब स्पष्ट नही है तब इस शरीर के ऊपर इतनी आसक्ति क्यों? विषयासक्ति क्यों?।।11।।

इस प्रकार अन्नदाता माता पिता द्वारा अपना मानने वाला इस शरीर को भगवान प्रकृति से निर्माण करते हैं और पुनः प्रकृति में विलीन करते हैं। उसको अपना मानते हुये अपने के लिए अन्य प्राणियों की हिंसा करने वाला तामसी होता है और कोई नही।।12।।

धनमद से अन्धा हुआ सज्जन को दारिद्य ही आँखों को खुलवाता है। दरिद्र आदमी सारे प्राणियों को अपने समान देखता है। वह प्राणि हिंसा नही करता।।13।।

काँटे चुभने से होने वाला दुःख केवल चुभने वाले को ही मालूम होता है, वह चाहता है कि वह दुःख और अन्य लोगों को न हो।बाह्य चिह्नों से दुःख को पहचानने वाला वह दुःखी गरीब आदमी,अपने समान अन्य लोगों को भी दुःख होता है, इसके लिए अन्यों को दुःख नही देना, यह विचार करता है। जिसको काँटा चुभा नही उसको स्वयं दुःख का अनुभव नही है और वह दूसरे के दुःखों के बारे मे क्या समझता है।।14।।

दरिद्र आदमी को अहंकार और गर्व नही होते।वह सारे मद से दूर रहता है।कष्ट जो आते हैं वे भगवान की इच्छा से ही आते हैं।उसको ठीक तरह से समझते हुये भगवान के ऊपर श्रद्धा रखना ही तप है।।15।।

आधि व्याधि जो आते हैं, उसको भगवान का अनुग्रह मानकर धैर्य न खोते हुये अनुभव करना एक रीति से तप है। अंत में होने वाले शरीर दाह को भी भगवान को समर्पित करना, आधि व्याधि को भी भगवान को समर्पित

करना योग्य है। यह बृहदारण्यक उपनिषद का वाक्य है (7-13),

नित्य भूखा रहने के कारण कृष शरीर वाले गरीब इन्द्रिय विषय सुखों को नही चाहते हैं, पेट भरे तो उसको आनंद हो जाता है। जीव की इच्छा के अनुसार वह खाने के लिए अन्य दूसरों को कष्ट नही देता, हिंसा नही करता।।16।।

तद्धि तस्य परं तपः - दारिद्र, दुःख , रोगादि उपद्रव को अनुभव करते समय, यह भगवान ने हमारे कर्म के अनुसार दिया हुआ फल है यह समझ कर उसको सन्तोष से स्वीकार करना एक तप होता है। यह उपनिषद का वाक्य है।

दरिद्र को अहंकार नही रहता है, जो विनीत है उसको साधु संग मिलता है। सत्संग के कारण उसकी विषयासक्ति नष्ट होती है, वैराग्य बढ़ता है। ऐसे आदमी को अपरोक्ष प्राप्त होने के बाद वह मुक्ति को पाता है।।17।।

श्री मुकुंद के चरणारविन्द में भक्ति करने वाला वह गरीब मिट्टी और सोने को समान देखता है। ऐसे साधु लोग दुर्जनों की उपेक्षा करते हैं। धन से गर्वित होकर दुष्टों को आश्रय देने वाले दुर्जन के सहवास में क्या साधना हो सकती है।।18।।

इस प्रकार धनमद से अंधे बने, मद्यपान किये हुये, स्त्रीलोलुप, मनोनिग्रह न करने वाले ये नलकूबर मणिग्रीव को शाप देता हूँ। इससे तमोगुण कार्य रूप उनके मद को नाश करता हूँ।।19।।

ये लोक पालक कुबेर के पुत्र हैं। किन्तु तमोगुण से भरकर मदोन्मत्त हैं, हमारे सामने नग्न होकर खड़े हैं। उनको उसका ज्ञान भी नही है।।20।।

इस कारण ये दोनों वृक्ष का जन्म पाये। जीवन में पुनः वे मदमत्त न हो जाये। वृक्षजन्म में भी तुमको मेरे अनुग्रह से पूर्व जन्म का स्मरण रहे। वृक्षरूप में खड़े होकर वे तप करे।।21।।

देवमान में सौ वर्ष बीतने के बाद वे श्री कृष्ण के स्पर्श से पुनः देवत्व को पाकर भगवान के भक्त बनकर वापस स्वर्ग में आये।।22।।

इस प्रकार देवर्षि नारद शाप देकर वापस नारायणाश्रम चले गये। नलकूबर मणिग्रीव दोनों अर्जुन वृक्ष होकर गोकुल में जन्म लिये।।23।।

भगवद्भक्ताग्रणी नारद जी के शाप को सत्य करने के लिए श्री कृष्ण दोनों यमलार्जुन वृक्ष के पास उल्लूख को खींचते हुये चले।।24।।

देवर्षि नारद मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। ये नलकूबर मणिग्रीव मेरे भक्त कुबेर के पुत्र हैं। मैं महाज्ञानी नारद जी की भविष्यवाणी को सत्य करता हूँ।।25।।

इस प्रकार संकल्प करते हुये श्री कृष्ण उल्लूख के साथ साथ-साथ खड़े हुये दोनों वृक्षों के बीच में से घुस कर आगे चले गये। उल्लूख दोनों वृक्षों के आड़ मे फँस गया।।26।।

उल्लूख दोनों वृक्षों के बीच में से नही आ रहा है। दामोदर अपने कटि को बंधा हुआ रस्सी को जोर से खींच रहे हैं। भगवान के जोर देने के कारण वृक्ष की शाखायें, टहनियाँ और पत्तियाँ जोर से हिलने लगी। सारे लोग सुन सके, ऐसे बड़ा आवाज करते हुये दोनों वृक्ष मूल के साथ गिर गये।।27।।

नारद जी का शाप था। श्री कृष्ण के स्पर्श मात्र से शाप विमोचन हो गया। श्री कृष्ण दोनो वृक्षों को मूल सहित उखाड़ दिये। उनमें धुनि और चमुक नाम के पार्वती से अवध्य वर प्राप्त दो दैत्य थे। उनको भी मारना था। इसके लिए भगवान वृक्षों को उखाड़ फेंके।

तब उन वृक्षों से नलकूबर मणिग्रीव उठकर आये। वे अग्नि के समान प्रकाशमान शरीर वाले अपने प्रकाश से दिशाओं को प्रकाशित करते हुये श्री कृष्ण को दण्डवत प्रणाम किये। हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।।28।।

यशोदा से कमर को रस्सी से बद्ध होने के कारण भगवान दामोदर नाम पाए।

हे भगवान श्री कृष्ण! आप इस जगत को अपने पास आकर्षित करते हैं,इसके लिए आपका नाम कृष्ण है,साथ में आप इस उल्लूख को खीचते हुये हमारा कल्याण किये,इसके लिए आपका कृष्ण नाम सार्थक है। हे योगेश्वर,आप इस जगत के आदि कारण परम पुरुष हैं। कार्यकारण सम्बन्ध वाला यह प्रपंच आपके प्रतिमा रूप है। यह ब्रह्मज्ञानियों का मत है।।29।।

आप स्वगत भेद रहित हैं। आप सारे जीवियों में नियामक होकर रहते हुये उनके मन इन्द्रियों का नियन्त्रण करते हैं। आप सकल गुण परिपूर्ण हैं,इसके लिए काल कहलाते हैं। आप नाश रहित हैं। आप इस जगत के सृष्टि नाश करने वाले ब्रह्म रुद्रादि से उत्तम हैं,आप स्वयं विष्णु भगवान हैं।।30।।

आप महत्तत्व के नियामक हैं। रजसत्व और तमोगुणमय सूक्ष्म प्रकृति के भी आपही नियामक हैं। सारे शरीरों मे रहकर आप इन्द्रियों का कार्यकारितत्व को नियामन करते हैं। सर्वसाक्षी परमपुरुष आप हैं।।31।।

इस जगत को सृष्टि करने के बाद भगवान उसमें प्रवेश करते हैं। भगवान ही इसकी रक्षा करते हैं। इसी कारण यह प्रकृति भगवान का रूप कहलाती है किन्तु वह भगवान का मूल स्वरूप नही है। भगवान का मूल स्वरूप नित्य सुखात्मक है-भगवान सर्व गुण पूर्ण होने के कारण काल कहलाता है। यह वामन पुराण की बात है।

सैनिक जीतता है। उसको राजा की जय कहते हैं उसी प्रकार अपने अधीन वाले शरीर को अपना ही मानते हैं, इसी प्रकार भगवान के अधीन रहने वाले प्रकृति इत्यादि को भगवान ही बोलना रुढ़ी में है। यह पद्म पुराण का वचन है।

भगवान का नाम काल है। वे काल नियामक शिंशुमार देव है। काल शब्द का अर्थ इस प्रकार होता है

1. कं, सुखं आलीयते इति कालः - सुख देने वाले चेतना है।

2. कल = छेदने = दुष्ट संहारक

3. कल = बन्धने = संसार बन्धन में रखने वाले।

4. कल = ज्ञाने = ज्ञान देने वाले।

5. कल = काम धेनु।

6. सर्वान् गुणान् आत्मनि कलयतीति कालः।

भगवान आपको केवल आपही जान सकते हैं।आपके अनुग्रह से आपके भक्त लोग आपको जान सकते हैं। अन्य कोई आपको जान नही सकता।प्राकृत और त्रिगुणात्मक,इन्द्रियवृत्ति को आप गोचर नही होते।आप इस त्रिगुणात्मक सृष्टि से भी पहले से रहने वाले हैं।आपके अनुग्रह के बिना केवल इन्द्रियों की सहाय से आपको कौन जान सकता है।।32।।

आप स्वयं प्रकाशमान हैं।आपके गुण भी स्वयं प्रकाशमान हैं। फिर भी आपको अन्य लोग नही देख सकते।आपकी महिमा विचित्र है।आप गुण पूर्ण और सृष्टिकर्ता हैं। हे वासुदेव! आपको नमस्कार।।33।।

आप शरीर में अन्तर्यामी होकर रहते हैं। आपके अवतार दो विध के होते हैं, एक शरीर के रूप धारण करके किया हुआ अवतार, दूसरा शरीर न धारण करते हुये अशरीरी मत्स्यादि अवतार। आप अन्तर्यामी अवतार में मन इन्द्रियादि रूप को नियमन करने वाले अद्भुत सामर्थ्य वाले होते हैं। बाह्य मत्स्यकूर्मादि रूप में उनमें असाध्य होने वाला असम्भावित महिमाओं को हम देखते हैं।।34।।

जीव के ऊपर आच्छाद रहने के कारण वे भगवान को देख नही पाते।इसका अर्थ भगवान किसी आवरण के अन्दर नही रहते।वे सदाकाल अपने को और अन्य लोगों को देख सकते हैं। यह महाकूर्म पुराण का वाक्य है।

आप सारे लोगों के अभीष्टप्रद हैं, अब इस समस्त लोगों को क्षेम और मंगल करने के लिए एक अंश से अवतार ले चुके हैं।।35।।

इस जगत को मंगल करने वाले आप हमको मंगल किये हैं।हे शान्तमूर्ति,यदुपति वासुदेव आपको नमस्कार।।36।।

हे गुण पूर्ण भगवान! नारद महर्षि की कृपा से हमें आपका दर्शन हुआ।हम आपके दास रुद्र के हम दास हैं। सदाकाल के लिए आपके दासानुदास होने के लिए हमें आज्ञा दीजिए।।37।।

हे देवोत्तम! हम अपनी वाणी से सदाकाल आपका ही संकीर्तन करें। हमारे कान आपके गुणगान को सुनें, हाथ आपकी सेवा करें, मन में सदाकाल आपके चरणस्मरण होते रहे, सिर

आपका नमन करे, आँख आपके प्रतिमा रूप को सज्जनों के दर्शन करें।।38।।

श्री शुकदेव कहते हैं- इस प्रकार नलकूबर मणिग्रीव की स्तुति को सुनते हुये रस्सी से उल्लूख को बँधे हुये भगवान गोकुलनाथ हँसते हुये कहे।।39।।

श्री भगवान कहते हैं- धनमद से अन्धे हुये तुमको दयालु नारद मुनि शाप देकर अनुग्रह किये हैं। इस विषय को मैं पहले से जानता था।।40।।

सज्जन लोग सदाकाल शत्रु-मित्रों को समान रूप से देखते हैं। वे सदाकाल मुझमें ही अपने मन को रखते हैं। उनके दर्शन से संसार बन्धन सूर्य के उदय से अन्धकार जैसे चला जाता है वैसे टूट जाता है।।41।।

तुम लोगों द्वारा चाही जाने वाली परम मंगलकर भक्ति तुममें उत्पन्न हो चुकी है। मुझमें मन रखे तुम लोग यहाँ से सीधा कुबेर लोक को चलो।।42।।

श्री शुकदेव कहते हैं- श्री कृष्ण की इन बातों को सुनकर नलकूबर मणिग्रीव उल्लूख से बन्धित श्री कृष्ण की परिक्रमा करते हुये बार-बार दण्डवत नमस्कार करने के बाद उनकी अनुज्ञा से उत्तर दिशा में यात्रा की।।43।।

नलकूबर मणिग्रीव यहाँ जीव की प्रतिनिधित्व करते हैं। उनको दो वृक्ष आच्छादन किए थे। हमको भी जीवाच्छादिका, और परमाच्छादिका नाम के दो आच्छादन हैं। वृक्ष जैसे नल कूबरों को ज्ञान सुख को ढ़क कर रखे थे वैसे ही यह दो आच्छादन हमारे स्वरूप भूत चिदानन्द को ढ़क कर रखे हैं। इस कथा को सुनकर हम श्री कृष्ण भगवान से प्रार्थना करें कि हे भगवान हमारे ऊपर के स्वरूपाच्छादन और परमाच्छादन को कृपा कर के हटाइए।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवॉ स्कन्ध पूर्वार्ध में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

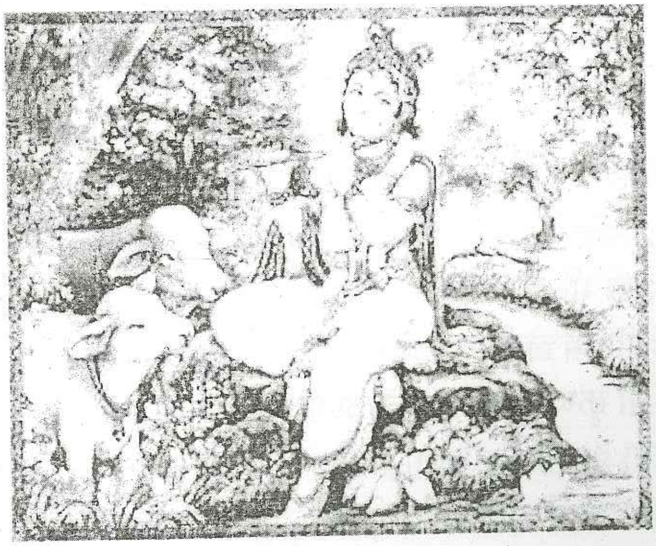

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बारहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- हे राजा परीक्षित! सुनो-वृक्ष गिरने की आवाज सुनकर नन्दगोप सहित अन्य गोपालक आकाश की बिजली गिर गई होगी इस आशंका से उस स्थान को दौड़कर आये।।1।।

वहाँ देखते हैं,जमीन के ऊपर दो अर्जुन वृक्ष मूल सहित गिर गये हैं।रस्सी से उल्लूख को बँधा हुआ श्री कृष्ण को उन्होंने देखा।केवल देखने से यह स्पष्ट होता था कि उल्लूख को खींचकर दोनों अर्जुन वृक्षों को समूल उखाड़ फेंका है किन्तु किसी को इस पर विश्वास नही होता था।उनको लगा यह भी एक उत्पात ही हो सकता है।इससे वे डर गये,यह कैसे हुआ इसको जानने में वे बहुत कातर रहे।।2,3।।

वहाँ खेलते रहे गोप बालकों ने कहा-हमने देखा है,कृष्ण ही इन वृक्षों को गिराया है।उलूख को खींचते-खींचते कृष्ण दोनों वृक्षों के बीच में से आ गया किन्तु उलूख अटक गया।कृष्ण ने जोर से खींचा।दोनों वृक्ष गिर गये।उनमें से दो पुरुष निकल आये। इसको हमने अपनी आँखों से देखा है।।4।।

छोटा बालक बालकृष्ण इन दो मोटे वृक्षों को उखाड़ दिया है इसके ऊपर किसी का विश्वास नही हुआ। उसके मन में लगता था कि यह कैसे साध्य होता है।कई लोग पूतना संहार को याद करते हुये यह भी एक ऐसी लीला हो सकती है।इस अन्दाज में संशय व्यक्त करते रहे।।5।।

श्री कृष्ण उलूख को अब भी खींचते रहे।इसको देखते हुये नन्दगोप श्री कृष्ण को उलूख से हँसते हुये छुड़वाकर अपने गोद में ले लिया।।6।।

इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण देखने वाले को एक सामान्य मुग्ध लड़के के समान दिखता थे। गोपियों के साथ खेलता था।उनके कथानानुसार खेलता था,गाता था और नृत्य करता था।एक-एक बार गोपियों के वश में होकर लकड़ी की गुड़ियाँ के समान चुप रहता था,लगता था यह लड़का कुछ नही जानता है।।7।।

कभी-कभी उनकी आज्ञानुसार उनके आसन और पादुकाओं को लाकर देता था।कभी-कभी पहलवानों के समान हाथ पाँव मारते हुये कुश्ती लड़ता था।।8।।

श्री कृष्ण को भगवान मानने वाले इस रहस्य को जानने वाले नारदादि भक्तों को भगवान अपनी बाल लीलाओं को दिखाते हुये भगवान भक्तों के वशवर्ती हैं इसको दिखाता था।अपने खेलों से वह सारे गोकुल के आनन्द को बढ़ा दिया था।।9।।

किन्तु बृहदवन मे बार-बार होने वाले इन उत्पातों के बारे में चिन्ता करते हुये नन्दगोप इत्यादि बड़े यादव लोग सारे एक साथ मिलकर गोकुल के हित के लिए आगे क्या करना चाहिए इसके बारे में मंत्रणा की।।10।।

गोपालकों में ज्ञान और वय में वृद्ध,देशकाल के अनुसार योग्य व्यवहार को जानने वाला उपनन्द नाम के गोप श्री राम कृष्ण के हित को चिन्तन करते हुये अपने विचार को व्यक्त किया।।11।।

वह कहता है-यहाँ प्रजा को विनाश होने वाले उत्पात बार-बार होते हैं। गायों के हित की दृष्टि से हमें यहाँ से और किसी दूसरे स्थान को जाना अच्छा लगता है।हम यहाँ से दूर चले जायें।।12।।

कृष्ण हमारा शिशु है, शिशु मानकर राक्षसी पूतना से कैसे ही वह बच गया,गाड़ी गिर गयी उससे भी बचा। भगवान के अनुग्रह से वह गाड़ी इसके ऊपर नही गिरा।।13।।

आधी और तूफान के रूप में आया हुआ दैत्य इसको उठाकर आकाश में ले गया।वहाँ के पत्थर के ऊपर इसको फेंक दिया तो भी देवतागण की कृपा से कृष्ण सुरक्षित रहा।।14।।

दो वृक्ष गिर गये उनके बीच में यह नन्हा सा सुकुमार था।अच्युत ही इसकी रक्षा करता था इसीलिए वह बच गया।अच्युत की आज्ञा के बिना कोई मर भी नही सकता।।15।।

आगे ऐसे उत्पात न हो।यह गोकुल उत्पात और अनर्थों का स्थान बन गया है। अब हमें यहाँ रहना नही है। आज ही हम इन बच्चों को लेकर परिवार सहित अन्य किसी स्थान पर चले जायेंगे।।16।।

वृन्दावन गायों के लिए हितकारक स्थान है।गोवृन्द को अवति रक्षणा देता है इसके लिए इसका नाम वृन्दावन है।यह नाम सार्थक है।वहाँ पवित्र गोवर्धन पर्वत है,वहाँ हरा-भरा घास और लता है।गोप-गोपियों के लिए और गायों के लिए वास करने योग्य स्थान नये-नये जंगलों से मिला हुआ यह स्थान है।।17।।

हम आज ही वहाँ चले जायेंगे।जल्दी से बैलगाड़ियों को तैयार करे। मै जो बोलता हूँ उसको तुम लोग मानते हो तो आज ही हम चले जायेंगे।।18।।

हे राजा! उपनन्द के इन बातों को सुनकर सारे नन्द एक मत से उसको स्वीकार किये। वे सारे उसके विचार की सराहना करते हुये अपने घर चले गये।।19।।

श्री कृष्ण मथुरा में अवतार लिए, नन्द गोकुल में अभिवृद्ध हुए, अब वृन्दावन जा रहे हैं। यह भगवान श्वेत द्वीप अनन्तासन तथा वैकुन्ठ में रहते हैं इसका प्रतीक है और मथुरा, गोकुल और वृन्दावन इन त्रिधामों के प्रतीक हैं।

इस श्लोक के बाद औत्तरेय पाठ में दो श्लोक ज्यादा हैं, उनको वीर राघवाचार्य और विश्वनाथ चक्रवर्ती व्याख्यान किये हैं। उसका अर्थ इस प्रकार है। एक बार एक फल बेचने वाली फल ले लो फल ऐसे आवाज दे रही थी उसको सुनकर बाल कृष्ण अपने दोनों हाथों मे हाथ भर धान्य को लेकर उसके पास आया। दौड़ते आने से हाथ में रहा हुआ धान्य गिरते रहा। इसको देखकर मनमोहक कन्हैया के खाली हाथ में दोनों हाथ भरे इतने फल को बेचने वाली भर गई। बाल मुकुन्द को फल देने के कारण उसकी फल की टोकरी रत्नों से भर गई। (आज भी गाँवों में धान्य देकर वस्तुओं को खरीदने की प्रथा है)।

यमल वृक्षों को तोड़ने के बाद श्री कृष्ण अपने साथ बच्चों को लेकर एक दिन यमुना तट पर खेलने के लिए गया। बहुत देर तक बच्चों को न आते देखकर रोहिणी देवी राम कृष्ण को पुकारने वहाँ आई।।20।।

खेल में मग्न हो गये बच्चों को कितनी बार बुलाने के बाद भी नही आये। बच्चे के ऊपर प्यार करने वाली रोहिणी यशोदा को बच्चों को बुलाने के लिए बोली।।21।।

पुत्र वात्सल्य से यशोदा के स्तन द्रवित हो गये थे। कृष्ण राम अन्य बच्चों के साथ बहुत समय से खेलते रहे। उसको देखकर यशोदा उनको बुला रही थी।।22।।

हे कृष्ण, काले रंग वाले, हे कमल के समान आँख वाले आओ। स्तनपान करो, खेल बन्द करो, तुम लोग थक गये होगे, आओ भोजन करो।।23।।

हे राम, सबको आनन्द देने वाले छोटे भइया को लेकर जल्दी आओ, तुम सुबह जल्दी भोजन किये हो, अब देर हो गया है, खेलते हुये थक गये होगे, आओ जल्दी आओ।।24।।

दशार्ह कुल के स्वामी नन्दगोप तुम्हारे साथ भोजन करने के लिए राह देख रहे हैं आओ, हमें सन्तोष पैदा करो। हे बच्चो, तुम सब अपने-अपने घर भोजन करने के लिए चले जाओ।।25।।

कृष्णा! आज तेरी वर्षगाँठ है, सुनों बेटा, तुम अभ्यंजन करो, ब्राह्मणों को गोदान देना है। देखो तेरा बदन धूल से घिरा हुआ है, चलो स्नान करें।।26।।

देखो-देखो तुम्हारे साथियों ने अपने माँ के हाथ से नहा रहे हैं, देखो उन्होंने ठीक तरह से श्रृंगार किये हैं। तुम भी चलो नहाओ और भोजन करने के बाद खेलने के लिए जाओ।।27।।

हे राजा! यशोदा इस प्रकार सर्वोत्तम श्रीहरि को अपना पुत्र मानते हुये पुत्रप्रेमपाश से बध

अन्तः करण से हाथ से पकड़ते हुये बलराम के साथ घर में आकर ठीक-ठाक से उसकी वर्षगाँठ को मनाई।।28।।

नन्दगोप सारे गोपालकों को अपने पास बुलाकर उनको आदेश दिया।कल हम सब यहाँ से वृन्दावन चलेंगे। सब लोग तैयार हो जाइये। देर मत कीजिए।।29।।

इस बात को सुनकर सारे एक साथ ठीक सही बोलते हुये अपने बैलगाड़ियों को तैयार करते हुये उनमे सारे पदार्थों को भरकर यात्रा प्रारम्भ किये।।30।।

वृन्दावन के कई अर्थ हैं - ये सारे अर्थ श्री कृष्ण भगवान का भी होते हैं।

1. गोप गोपी वृन्द को रक्षा करने वाला।

2. गोपी गो वृन्दों से सेवा लेने वाले।

3. ब्रह्मादि देवता वृन्द से वन्द्य।

4. वृन्दावन की अधिष्ठात्री वृन्दा से प्रार्थित भगवान।

5. श्री कृष्ण की परम प्रिय वृन्दा ने वास किया हुआ स्थान - वह वृन्दा की रक्षा करने वाले भगवान।

6. वृन्दा भगवद्भक्त केदार राजा की पुत्री। दुर्वासा से विष्णु मंत्र की दिक्षा ली थी। विरक्त होकर साठ हजार वर्ष तप की। फल स्वरूप लक्ष्मी का आवेश पाकर श्री कृष्ण के साथ अरण्य में विहार की। इसके लिए इस स्थान का नाम वृन्दावन है। वृन्दा की रक्षा करने वाले भगवान का नाम भी वृन्दावन है।

हे राजा! गोपालक वृद्ध और बालक स्त्री और सारे सामान को गाड़ी मे चढ़ाकर गाड़ी के साथ हाथ में धनुष पकड़ते हुये चलने लगे।।31।।

सारे गायों को आगे-आगे चलाते हुये,अनेक तरह के वाद्यों को बजाते हुये पुरोहितों के साथ निकल पड़े।।32।।

गोपियाँ अच्छी और सुन्दर साड़ियों को पहनकर गाड़ी में बैठी हैं। गाड़ी चलने से उनके स्तन हिलते थे, कुमकुम की कान्ति से शोभायमान थे।सुश्राव्यकण्ठ से वे श्री कृष्ण की गाथाओं को गा रही थीं।।33।।

यशोदा रोहिणी राम कृष्ण के साथ एक ही गाड़ी में बैठी थीं। यात्रा में भी वे कृष्ण राम के मधुर बोली को सुनने के लिए उत्सुक थीं।।34।।

सर्व ऋतुओं में सुख देने वाले वृन्दावन में गोपालक लोग प्रवेश किये। वहाँ एक रम्य स्थान में अपने गाड़ियों को अर्धचन्द्राकार स्थिति में खड़ाकर वहाँ गायों के लिए और गोपालकों के लिए रहने के लिए कुटिया और गोशाला तैयार करने लगे।।35।।

राजा वृन्दावन का यह सुन्दर परिसर,पहाड़ गोवर्धन और यमुना नदी के बालू युक्त किनारे को देखकर रामकृष्ण को बहुत आनन्द हुआ।।36।।

इस प्रकार दिन बिताते रहे,वहाँ बच्चों के बाल लीला गोकुल वासियों को आनन्द देता था, काल के अनुसार बच्चे बढ़ रहे थे।यादवों के क्रम के अनुसार वे गायों के बच्चे को पालने लगे।।37।।

गोपालकों में एक सामान्य नियम होता है कि बच्चे तीन वर्ष तक खेलते रहते हैं। तीन वर्ष के बाद गाय को बड़े गोपालकों के चराने को ले जाने के बाद गोपालक बच्चे घर से नजदीक के क्षेत्र में गाय के बच्चों को चराने ले जाते हैं। पाँच वर्ष होते तक बच्चों को गाय के बच्चों को चराने का काम करना पड़ता है। पाँच वर्ष के बाद वे बड़ों के साथ गाय चराने में लगते हैं।

गोकुल के आस-पास के क्षेत्रों में राम कृष्ण अनेक खेल-कूद के सामान के सहित निकल कर गाय के बच्चों को चराने जाते थे।।38।।

वे कभी-कभी बंशी बजाते थे,कभी-कभी गुलेल से पत्थर मारने का खेल तो कभी पाँव में घुँघुरू बाँध के नाचते थे,फिर कभी-कभी जमुना के रेत से गाय और बैल की गुड़ियाँ बना के उससे खेलते थे।।39।।

वे सांड़ के समान आवाज करते हुये शौर्य से लड़ाई करते थे,कभी शेर भालू जैसे आवाज करते हुये अन्य बच्चों के साथ दौड़ते गिरते खेलते थे।।40।।

एक बार राम कृष्ण यमुना के तट पर गाय के बच्चों को चराते खेल रहे थे उस समय उनको मारने के उद्देश्य से कंस से प्रेषित रुद्र से अवध्य वर प्राप्त एक दैत्य वहाँ आया।।41।।

वह गाय के बच्चे का रूप धारण कर उन गाय के बच्चों में मिल गया, कृष्ण ने उसको देख लिया। बलराम को उसको दिखाते हुये, कोई हुआ नही वैसे उस दैत्य के पास चुपके से चला गया।।42।।

कृष्ण वत्सासुर नाम के उस असुर के पीछे के दो पाँव और पूँछ को एक हाथ में पकड़ कर जमीन से ऊपर उठाकर आकाश में उसको गिराते रहे। उससे वह दैत्य मर गया।श्री कृष्ण उस असुर के बड़े शरीर को वहाँ के बेल के वृक्षों के ऊपर फेंक दिया।।43।।

नीचे गिरते समय वह असुर गाय के बच्चे के रूप को छोड़कर अपना निज रूप धारण करते हुये बड़ा शरीर वाला वृक्ष के ऊपर से जमीन पर गिर गया।गिरते समय बहुत से बेल के फलों को भी गिरा दिया।श्री कृष्ण के इस पराक्रम को देखकर गो बालक भला-भला कहे और श्री कृष्ण की प्रशंसा की।।44।।

श्री कृष्ण, देव-दानव-मानव को समान रूप से देखते हैं। महादानव वत्सासुर को वे ऊर्ध्वगति पाने के लिए ऊपर आकाश में भेजे। किन्तु तापस जीवी असुर अपने कर्म के अनुसार अधोगति पाकर नीचे गिर गया। नीचे रहने वाले को भी ऊपर उठाना भगवान का स्वभाव है किन्तु अधःपतन पाना तामस जीवी का स्वभाव होता है। यह

रुक्मिणीश विजय की बात है।

आकाश में रहने वाले देवतागण श्री कृष्ण के पराक्रम के इस कार्य को देखकर संतुष्ट होकर पुष्प वृष्टि किये।।45।।

सकल लोक के पालक और मुख्य स्वामी श्री राम कृष्ण सामान्य गोपालक की तरह यहाँ गाय के बच्चों को चराते थे। एक बार सुबह के भोजन करने के बाद वे बच्चों को चराने के लिए ले चले।दोपहर तक चराने के बाद उनको पानी पिलाने के लिए एक जलाशय के पास उनको ले गये।वहाँ बछड़े के साथ स्वयं भी पानी पी लिये।।46,47।।

संसार वृक्ष में परस्पर प्यार और अभिमान नाम के जाल को पसारते हुए सारे जीव राशि को पक्षी के समान प्रलय काल में पकड़ने वाले, छोटी मछली को खाने वाला बड़ा मछली के (मत्स्यावतार के) रूप वाला यह बड़ा व्याध है इसको न समझते हुए छोटा मत्स्य मान कर यह असुर उन्हे खाने आया है। इसको मूर्ख न बोलते हुए और क्या बोलना है। यह श्री वादिराज जी का अभिप्राय है।

तब वे वहाँ एक बड़ा बक पक्षी को देखा। वज्रायुध से मार खाकर नीचे गिरा हुआ पहाड़ के एक शिखर के समान दृश्यमान उस पक्षी को देखकर गो बालक डर गये।।48।।

बक नाम का महाअसुर कंस से प्रेषित होकर बक पक्षी के रूप में वहाँ आया था।वह षण्मुख से अवध्य वर पाया था,बहुत बलिष्ठ था।उसको बड़ा चोंच था।वह जल्दी से आकर श्री कृष्ण को निगल गया।।49।।

श्री कृष्ण को न देखते हुये,दैत्य के मुँह में गया हुआ उनको देखकर गोपालक बालक डर के मारे स्तब्ध हो गये।प्राण जाने के बाद इन्द्रिय जैसे चल नही सकते वैसे कृष्ण के बिना गोपालक बालक रह नही सकते।।50।।

श्री कृष्ण अवतार लेने से सज्जन लोग सद्गति पाकर स्वर्ग मोक्षादि सुख पाए। किन्तु दैत्य लोग अन्धन् तमस के लिए अपनी यात्रा आरम्भ किए। शकटासुर नाम की गाड़ी में, पूतना को सारथी बना कर, धेनुकासुर (गधा), केशी (घोड़ा), अरिष्टासुर (बैल) और वत्सासुर (बछड़ा) को गाड़ी के वाहक बने। बक को रथ का ध्वज बनाए। उस गाड़ी में चाणूर, मुष्टिक, कंस और उनके रक्षकों को बैठा कर अन्धन् तमस को भेज रहे हैं।

इस जगत के पितामह ब्रह्मा जी को जन्म देने वाले पिता भगवान श्री कृष्ण हैं। उनको इस बकासुर ने निगल लिया है किन्तु उसको वह कैसे पचा सकता है।असुर का पेट जलने लगा तो असुर उनको अन्दर रख नही सका।इसके लिए वह मुँह खोलकर श्री कृष्ण को बाहर थूक दिया।श्री कृष्ण को कुछ भी घाव नही हुआ था।क्रोध से वह असुर कृष्ण को अपने चोंच से मारने आया।।51।।

कंस का मित्र वह बकासुर अपने ऊपर आक्रमण करने आ रहा है इसको देखकर सज्जनों

को आश्रय देने वाले भगवान श्री कृष्ण सारे लोगों के देखते-देखते बक के दोनों चोंचों को हाथ में पकड़ते हुये छाती के ऊपर पाँव रखते हुये हाथ से खींचते हुये चीर कर दो टुकड़े कर दिये।।52।।

श्री कृष्ण पूतना को मारते समय सात दिन के थे। शकटासुर को मारते समय वे चार महीने के थे। तृणावर्त और बकासुर को अपने किशोर बय में यानी एक से पाँच वर्ष की आयु में मार डाले। गोपी वस्त्रापहार, धनुकासुर हनन और कालिया मर्दन पाँच से दस वर्ष के बीच वाली पौगंड वय में किए। सातवें वर्ष में गोवर्धनोद्वार किए। आठवें वर्ष में रास रचाए। ये सभी भगवान की बचपन की लीलाएँ हैं। पन्द्रह वर्ष होने के पहले ही वे कंस को मार डाले।

इससे देवतागण को सन्तोष हुआ। वे इस बकासुर के संहार को देखकर नन्दन वन के पारिजातादि पुष्पों से पुष्प वृष्टि किये। देव दुंदुभि आनक शंख इत्यादि वाद्यों को बजाते हुये स्तोत्रों से स्तुति किये। इसको देखकर गोप-बालक अचंभित रहे, विस्मित रहे।।53।।

बकासुर के मुँह से बाहर आये हुये भगवान के बाल रूप को गोप-बालक आलिंगन किये। उनके गये हुये प्राण पुनः शरीर में आ गये। बालक की आँखों में आनन्दवाष्प बह गया। गाय के बच्चों को लेकर वे गोप - बालक वापस गोकुल को आकर बड़े लोगों के सामने श्री कृष्ण की इस बीर गाथा को कहे।।54।।

इसको सुनकर गोप-गोपियों को कृष्ण के ऊपर का प्यार और ज्यादा हो गया। मर कर पुनः जीवित होने वाले कृष्ण को वे सब आँख फाड़ कर देखते रहे।।55।।

यह क्या है। बहुत राक्षस लोग इस छोटे बच्चे को मारने आये लेकिन मार नही सके। जिनसे इस ब्रह्माण्ड का मरण होता है उसका मरण और कौन ला सकता है। अन्त में वे राक्षस स्वयं मरण पाये।।56।।

अब तो यह सिद्ध हो गया कि आगे और कितना भी बड़ा और घोर राक्षस हो वह कृष्ण का कुछ भी नही कर सकता। आग को बुझाने के लिए आये हुये पतंग के समान वे स्वयं मर जाते हैं। श्री कृष्ण की हिंसा कोई नही कर सकता है।।57।।

ब्रह्मज्ञानी जो बोलते हैं वह सत्य होता है। भगवान गर्ग मुनि पहले ही इसको बताये थे, उसी प्रकार हो रहा है।।58।।

इस प्रकार नन्दगोप और गोपालक राम कृष्ण के बारे में अपने में बातें करते हुये सुख पाते रहे। इसमें उन्हें अपने संसार के दुःख का अनुभव नही हुआ।।59।।

इधर राम कृष्ण जैसे कुछ भी नही हुआ हो ऐसे लुका-छिपी, बालू से घर बनाना, वृक्ष और बन्दर इत्यादि बच्चों के खेल खेलते हुये गोकुल में अपना बाल्य काल बिताते रहे।।60।।

इसके बाद तीन अध्याय अघासुर वध, वत्सहरण, और ब्रह्मस्तुति श्रीधरि पाठ में ज्यादा हैं। इन तीनों अध्याय के बाद यह साठवाँ श्लोक और एक बार आता है। उन अध्यायों की कथासार इस प्रकार हैं-

अघासुर, पूतना और बकासुर का भाई है। उसको भी कंस ने ही भेजा था। अघासुर अजगर का रूप धारण करके गोप बालकों के आने के रास्ते में अपना बड़ा मुँह खोल के सोया था। गोप बालक उसको गुफा समझते हुये कुतूहल से उसमें प्रवेश किये। श्री कृष्ण के अन्दर प्रवेश करने के बाद वह अजगर अपने मुँह को बन्द किया। आकाश में रहने वाले देवगण इसको देखकर हाहाकर किये। किन्तु अन्दर आये हुये श्री कृष्ण उसके गले में ही डटे रहे। उनको वह अपने पेट के अन्दर नही खींच सका। कृष्ण के कारण अजगर का श्वाशोच्छ्वाश बन्द होकर वह अजगर मर गया। अजगर से निकली हुयी एक ज्योति भगवान में विलिन हुयी। अघ यानी पाप। कृष्ण के स्पर्श मात्र से उसके पाप की निवृत्ति हो गयी और वह सायुज्य मुक्ति को पाया। देवताओं ने पुष्प वृष्टि किया और जयघोष किये। वह ध्वनि ब्रह्म लोक तक पहुँची ब्रह्मा जी उसको सुनकर भगवान श्री कृष्ण के पास आकर स्तुति किये। यह घटना जब घटी तब श्री कृष्ण की आयु पाँच वर्ष की थीं।

यह तीनों अध्यायों का सार है। इसके अन्त में यह साठवाँ श्लोक और एक बार आता है। इससे यह लगता है कि बीच में आने वाले ये तीन अध्याय प्रक्षिप्त हैं। श्रीधर स्वामी इत्यादि अनेक व्याख्यानकार इसको प्रक्षिप्त मानकर व्याख्यान किये हैं। वल्लभाचार्य की **सुबोधिनी व्याख्यान** मे ऐसे लिखते हैं।

योजयत्वाधुनिका अध्याय त्रितयं जगुः।
शब्दार्थ संगती नाम स्पष्टःतत्र विरूद्धता।
लोकप्रसिद्धेस्तच्चापि कथंचित रूप्यते स्फुटम्।।

इसका अर्थ इस प्रकार है कि आधुनिक लोग भागवत में इन तीन अध्यायों को जोड़ दिए हैं। ये शब्द अर्थ और संगति के अनुसार मूल से विरुद्ध हैं। यह यहाँ स्पष्ट है, किन्तु ये लोक प्रसिद्ध हैं। इसके लिए हम भी उनका व्याख्यान करते हैं। किन्तु जीव गोस्वामी कहते हैं कि इनके प्राचीन व्याख्यान मिलते हैं इसके लिये यह प्रक्षिप्त नही हो सकते। विजयध्वबि व्याख्यान में यह तीन अध्याय नही हैं।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तेरहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं- अब श्री कृष्ण छः वर्ष के हो चुके हैं, बलराम सात वर्ष के। पौगण्ड वय प्राप्त होने के कारण गोपालक इनको गाय चराने के लिए साथ लेकर चलने लगे। इससे राम कृष्ण गाय चराते पुण्य भूमि वृन्दावन को अपने पादस्पर्श से और पवित्र बनाये।।1।।

पाँच वर्ष के पहले की आयु बाल्य माना जाता है। छः से दस तक पौगण्ड वय, दस से सोलह तक किशोर, सोलह के बाद यौवन माना जाता है। कृष्ण राम अब पौगण्ड वय के हो चुके हैं।

श्री कृष्ण बलराम और गोप बालकों के साथ विहार करते हुये गायों को आगे चराते हुये बंशी बजाते एक सुन्दर और फूलों से भरे हुए वन में प्रवेश किये।।2।।

वह प्रदेश सुमधुर गुंजन करने वाले भौंरों और मृग पक्षियों से भरा था। वहाँ महात्माओं के मन के समान स्वच्छ जल से भरे हुए सरोवर में खिले हुये कमलों की सुगंध को लेकर मंद वायु बहती थी। इसको देखकर भगवान वहाँ विहार करने की इच्छा प्रकट किए।।3।।

वन में लाल और मृदुल कोमल पत्ती की कान्ति से वृक्षों ने श्री कृष्ण की आरती उतारी। फल और फूलों के भार से भरा हुआ वृक्ष अपने दोनों हाथों को जोड़कर जमीन को लगाते हुये श्री कृष्ण को फल समर्पण करते हुये नमन किये। उनको देखकर आदि पुरुष भगवान श्री कृष्ण हँसते हुये अपने भाई बलराम जी को बोलते हैं।।4।।

वृक्ष अपनी टहनियों नाम के हाथों में फल पुष्प को पकड़कर अपने समीप आए हुए श्री राम कृष्ण के पद तलों में सिर को रखकर नमस्कार करते हुए उन फल फूलों को समर्पण कर रहे हैं ऐसा लगता था। भगवान राम-कृष्ण दोनों के अवतार लेते समय उनकी सेवा करने के लिए देवतागण वृक्ष रूप धारण कर आए थे।

श्री भगवान बोलते हैं- हे देवोत्तम, ये उत्तम वृक्ष अपने जन्म के कारण बना हुआ पाप को धोने के लिए आपको फल समर्पण करते हुये, देवताओं की आराधना के लिए योग्य आपके पाँवों में अपनी टहनियों से नमस्कार करते हैं, यह आश्चर्य है न?।।5।।

यहाँ श्री कृष्ण बड़े भाई होने के कारण लोक को आदर्श व्यवहार का निदर्शन देते हुये अपने बड़े भाई राम

की स्तुति करते हैं। यह लोकाचार है। वस्तुतः वे बलराम में आविष्ट अपने शुक्लकेश के रूप की ही स्तुति कर रहे हैं। श्री कृष्ण स्वयं रमण हैं।आगे के दो श्लोकों में और स्तुति करते हैं।

हे आदि पुरुष! ये भौंरे आपके पीछे-पीछे आते हुये सकल लोक पावन आपकी कीर्ति का गुणगान करते हैं। ये सारे आपके भक्त शिखामणि ऋषिगण हैं। आप वेश बदल कर मानव रूप में इस भूमि में संचार कर रहे हैं। आपके शिष्य ऋषिगण आपको छोड़कर नही रह सकते हैं। इसके लिए वे वृक्ष रूप में आकर यहाँ आपकी सेवा के लिए खड़े हैं।।6।।

ये हिरन अपनी आँखों से आपको अपना प्यार गोपियों जैसे दिखा रहे हैं। कोयलें अपने मंजुल गान से आपका सन्तोष बढ़ा रही हैं। घर आये हुये अतिथि का वन्य जीवों द्वारा किया जा रहा सत्कार अभिनन्दनीय है।यह सज्जनों का स्वभाव है।।7।।

श्री शुकदेव कहते हैं- इस प्रकार वन सम्पत्ति से भरा हुआ समृद्ध वृन्दावन को देखकर सन्तुष्ट होकर श्री कृष्ण गोवर्धन पहाड़ के पास और यमुना नदी के तट पर गायों को चराते हुये मित्रों के साथ खेलते रहे।।8।।

पुष्प रस को चखकर मदमत्त हुये भौंरों के गान करते समय कृष्ण उनके साथ गाते थे।उस अमृत तुल्य गान को सुनकर देवता गण कृष्ण बलराम और उनके मित्रों के गुणगान करते थे।।9।।

कभी-कभी श्री कृष्ण हंस पक्षी के आवाज को अनुसरण करते,कभी मोर के समान नाचते थे, कृष्ण की इन लीलाओं को देखकर मित्र लोग प्रमोद से हँसते थे।।10।।

खेलते समय गायें दूर गयीं तो मेघ के समान गम्भीर आवाज में उनको प्यार से बुलाते थे। श्री कृष्ण की इस आवाज से गो और गोपालक सन्तोष पाते थे।।11।।

चकोर, चक्रवाक, क्रौंच, भरद्वाज, भ्रमर, मयूरादि पक्षियों की आवाज का अनुसरण करने वाले कृष्ण शेर और सिंह की आवाज से अपने को डरा हुआ सा दिखाते थे।।12।।

कभी-कभी खेल खेलते, थके हुये से दिखाते हुये बलराम गोपालकों के जंघे के ऊपर सिर रखकर सोये हुये भाई के पाँव दबाना आदि सेवा करते हुये उसके थकान को निवारण करते हैं।।13।।

गोपालक नृत्य करने लगे,गाने लगे,कूदने लगे अथवा कुश्ती करने लगे तो राम कृष्ण उनके हाथ पकड़कर उनकी प्रशंसा करते हैं।।14।।

कभी कुश्ती से थका हुआ जैसे दिखाते हुये वृक्ष के नीचे पत्तियों को फैला कर उसके ऊपर गोपलकों के जंघों में सिर रखते हुये सो जाते थे।।15।।

पाप-रहित गोपालक भगवान के पाँव दबाकर अपने को धन्य मानते थे,कई लोग पंखे से

हवा करते थे।।16।।

महाराजा और कई गोपालक भगवान की लीलाओं को सुन्दर अपनी योग्यतानुसार अन्तःकरण में भक्ति भरे मंद स्वर में गाते थे।।17।।

श्री हरि इस प्रकार अपनी स्वरूप प्रज्ञा को अपनी ही इच्छा से लोगों से छिपाकर रखते हुये अपने चाल चलन से सामान्य गोपालक के समान बर्ताव करते हुये साक्षात रमादेवी जिन कोमल पादों की सेवा करती हैं वैसे पाँव वाले भगवान मुग्ध ग्वालों के साथ खेलते रहे। मनुष्य होकर अवतार लिए भगवान, मानव सहज नटना करते हैं।।18।।

श्री कृष्ण के अवतार के बाद यह स्थल जल, फूल-फल, लता इत्यादि उनके पाद स्पर्श से धन्य हो गये। पेड़ और वृक्ष उनके करस्पर्श से धन्यता माने। उनके कृपावलोकन से नदी पर्वत और मृग पक्षी धन्य हो गये। श्रीदेवी से भी चाहने वाले उनके वक्षस्थल के स्पर्श से गोपिकायें धन्य हो गयीं।।19।।

कई भागवतों मे इस श्लोक मे आने वाले **तत्पादस्पृशः** इसको **त्वत् पादस्पृशः** ऐसे बदल करते हुये इस अध्याय का आठवाँ श्लोक माने हैं। तब यह बलराम की स्तुति हो सकती है, शुकवाक्य नही बनेगा। तब बलराम के वक्षस्थल का आलिंगन लक्ष्मी कैसे चाहती हैं? इसके लिए यह सही प्रयोग नही होता। चौथे श्लोक में **अग्रजमादि पूरुषः** इसके बदले में अग्रजादिपुरुषं ऐसे करके बदल किये हैं। तब ये सारी बातें बलराम के लिए होकर अर्थ सही हो जाता है। वस्तुतः यहाँ **तत्पाद स्पर्श** यह ठीक प्रयोग है और इसे शुकदेव जी का वाक्य माने तो कोई समस्या नही आती।

श्री दाम नाम का राम कृष्ण का मित्र गोपाल सुबल, स्तोक कृष्ण इत्यादि गोपालकों के साथ कहते हैं।।20।।

हे महाबाहु, बलशाली बलराम, दुष्टनाशक श्री कृष्ण, यहाँ नजदीक में तालवृक्षों से भरा हुआ एक सुन्दर वन है।।21।।

वहाँ वृक्ष सारे फल से भरे हैं। बहुत फल नीचे गिरे भी हैं। हम उनको उठाने गये तो वहाँ एक दुरात्मा धेनुकासुर नाम का दैत्य हमको लेने नही देता।।22।।

हे राम कृष्ण वह असुर गधा का रूप धारण कर और अनेक बलिष्ठ गधों के साथ, आने जाने में हमे कष्ट देता है। यह धेनुकासुर गधे का रूप धारण किया है इसके लिए उसको धरासुर भी बोलते हैं।।23।।

हे शत्रु नाशक! नरभक्षक उस राक्षस के डर से मानव, पशु-पक्षी कोई वहाँ के फल को खाने का धैर्य नही करता। वृक्षों के ऊपर पक्षी भी वहाँ वास नही करते।।24।।

वहाँ हमारे द्वारा कभी न देखा हुआ, न खाया हुआ सुगंध-भरित और रुचिकर फल हैं।

उनकी सुगंध यहाँ तक आकर हमारे नाक को लगती है।।25।।

उनके सुगंध से हम आकर्षित हैं। वे फल पूर्ण रूप से पक चुके हैं। आप उन फलों को हमें दीजिए। हमें उनको खाने की लालसा बढ़ रही है। आप हमारी बात मानते हैं तो हम सभी वहाँ चलेंगे।।26।।

मित्रों की बातों को सुनकर उनका हित करने वाले श्री कृष्ण धेनुक को तृण समान मानते हुये हँसते हुये समर्थ राम कृष्ण गोपालकों के साथ उस ताल वन में प्रवेश किये।।27।।

वन में प्रवेश करते ही बलराम ने अपने बाहुबल से हाथी के समान वृक्षों को हिलाया।इससे वृक्ष में से पके फल जमीन पर गिर गये।।28।।

फल गिरने के शब्द को सुनते हुये गधा के रूप का असुर वृक्ष के साथ जमीन को भी हिलाते हुये दौड़कर आया।।29।।

बलिष्ठ राक्षस बलराम के पास आकर पीछे मुड़कर अपने पीछे के पाँव से बलराम की छाती पर लात मार कर गधे के समान चिल्लाता हुआ चक्कर काटने लगा।।30।।

हे राजा, धेनुकासुर बलराम को और एक बार लात मारने के लिए तैयार होकर पीछे मुड़कर क्रोध से पीछे के अपने दोनों पाँवों को उछाला।।31।।

उसी क्षण बलराम अपने एक ही हाथ में उन दोनों पाँवों को पकड़ते हुये हवा में उसको घुमाया।इसी से वह राक्षस मर गया। बलराम ने उसके शरीर को वृक्ष के ऊपर फेंक दिया।।32।।

वह वृक्ष विशाल और ऊँचा था। धेनुक के शरीर के आघात से वह वृक्ष गिर गया।गिरते समय वह अपने बगल के वृक्ष के साथ हिला,ऐसे एक के ऊपर एक बहुत से वृक्ष हिल गये।।33।।

बलराम द्वारा बिना प्रयास से फेंके हुए धेनुक के शरीर के आघात से मार पाकर उस वन के बहुत से तालवृक्ष आंधी से जैसे काँप गये।इससे गोपालकों को खाने के लिए बहुत से फल मिले।।34।।

जगदीश्वर भगवान अनंत के बारे में इसमें आश्चर्य की बात कोई नही है। धागे से सिले हुये कपड़े धागे के आधार से एक से एक जैसे बन्धे रहते हैं वैसे ही सारा विश्व अनंत फण वाले आदिशेष में संलग्न हुये हैं।।35।।

बाद में अपने बन्धु धेनुक के मरने से उनके साथी सभी गधे एक साथ बुरी आवाज करते हुये कृष्ण राम को लात मारने आये।।36।।

हे महाराजा! इनकै आक्रमण करते ही रामकृष्ण उनके पीछे के पाँव पकड़कर जोर से वृक्ष के ऊपर उन्हें फेंकते रहे।।37।।

इससे वह मैदान फल के ढेर, मरे हुये दैत्यों के शव और टुकड़े हुये वृक्ष की टहनियों से

बादलों से घिरे हुए आकाश के समान दीखता था।।38।।

ताड़ के फल काले होते हैं। दैत्यों के शव लालमय थे,वृक्षों की टहनियाँ सफेद रंग की थीं।इन तीनों रंगों से भरा हुआ मैदान मेघों से घिरा हुआ आकाश के समान लगता था।

कृष्ण तथा राम इन दोनों के इस बड़े असुर वध के कार्य को देखते हुये देवताओं ने उन पर पुष्प वृष्टि किया, मंगल वाद्य बजायें, स्तोत्र किये।।39।।

धेनुकासुर और उसका परिवार गणेश के वर से अवध्य बने थे।

धेनुकासुर के मरने के बाद उस जंगल में रहने वाले लोग भय रहित होकर ताड़ के फलों को खाने लगे। इधर गायें अपने मन से चरती रहीं।।40।।

अपनी लीलाओं से,उनके श्रवण कीर्तन से ही पुण्य देने वाले कमल दल के समान बड़े आँख वाले श्री कृष्ण गोप-बालकों की स्तुति को सुनते हुये गोकुल को वापस चले।।41।।

उनके घुंघराले बाल गो रज से आवृत हो गये हैं। उनमें एक मोर के पूँछ को बाँध रखा है, जंगलों के फूलों से सिर अलंकृत है। उनकी तिरछी नजर, मंदहास सबको मोहित करती है। बंशी बजाते बाँके बिहारी विजय यात्रा कर रहे हैं। गोपालक उनके गुणगान कर रहे हैं। गोपिकास्त्रियाँ पलक न झपकाते हुये कृष्ण को देख रही हैं। वे सारे मिलकर कृष्ण का स्वागत किये।।42।।

गोपांगनायें अपनी आँखों से कमल के मधु को भौंरे जैसे पीते हैं वैसे पी लिये। दिनभर उसको न देखने के विरह से वे तप्त हो गये थे। वह ताप दर्शन मात्र से चला गया। लज्जा भरे मुँह से, तिरछी नजर से श्री कृष्ण का सत्कार किये। कृष्ण उस सत्कार को स्वीकारते हुये गोकुल में प्रवेश किये।।43।।

यशोदा तथा रोहिणी पुत्र वात्सल्य से भरकर श्री राम और कृष्ण को कालोचित इष्टार्थ वस्तुओं को देकर उपचार किये।।44।।

अभ्यंजन कराते हुये हाथ पाँव को तेल से मालिश करते हुये गरम पानी से नहला कर उनके मार्गायास का निवारण किये।अच्छे वस्त्रों को पहनाये।मालागन्धादि से अलंकार किये।।45।।

राम कृष्ण अपनी माँ द्वारा दिए हुए मिष्ठान्न का भोजन कर मृदुल शैया में सुख से सो गये।।46।।

इस तरह समय बीतता रहा।एक बार बलराम को छोड़कर भगवान श्री कृष्ण अकेले यमुना तट पर गये।।47।।

कालीय मर्दन करने चले हैं कृष्ण।पानी के गर्त में कूदने का समाचार सुनकर यशोदा नन्दगोप घबराते हैं।

उस समय उनको समाधान करने के लिए बलराम वहाँ रहे, इस उद्देश्य से श्री कृष्ण भाई को छोड़कर अकेले गये। बलराम शेषावतार हैं, उसके सामने ही कालीयसर्प का दमन करना अच्छा नही लगता, यह एक संकोच भी कृष्ण के मन में था। इसके लिए बलराम को छोड़कर अकेले जा रहे हैं।

गर्मी के दिन थे। दोपहर के धूप में प्यासी गायें और गोपाल यमुना का पानी पिये। वह पानी विष से कलुषित हुआ था।।48।।

गोपालक इस विषय को नही जानते थे।विषाक्त जल को पीकर वे सारे मरे जैसे जमीन पर गिर गये।।49।।

योगेश्वरों के स्वामी भगवान श्री कृष्ण अपने को रक्षक मानकर उन्हें जो भजते हैं, उनकी रक्षा करने वाले हैं, ऐसे श्री कृष्ण भगवान इन गोपालकों को केवल अपने अमृत बहाने वाले दृष्टि से उन गोपालकों को पुनर्जीवित किये।।50।।

वे जागृत होकर जल को छोड़कर ऊपर आये।परस्पर देखते हुये जीवित हैं इसका अनुभव करने लगे,आश्चर्य से स्तंभित रहे।।51।।

हे राजा! स्वयं विष मिश्रित जलपान करके मरी हुयी स्थिति में थे। उससे अपने को पुनर्जीवित किये, गायों को पुन जगाये, यह गोविन्द का ही अनुग्रह है, ऐसा आपस में वे बातें करने लगे।।52।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौदहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - सर्व शक्त भगवान श्री कृष्ण यमुना का जल कृष्ण सर्प के कारण प्रदूषित हुआ हैं, इसे देख कर उसको स्वच्छ करने हेतु वहाँ बैठे हुए कृष्ण नाग को और दूसरे स्थान पर भेज दिए।।1।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे मुनि! भगवान कृष्ण यमुना के अगाध जल में छिपे हुए काल सर्प को कैसे दमन किए? वह सर्प वहाँ बहुत युगों से कैसे वास किया था इसके बारे में कृपया मुझे बताइए।।2।।

हे मुने पूर्णानन्द और स्वतंत्र भगवान गोपालक बनकर अदभुत लीलाएँ की हैं। उस लीलामृत को सुनते हुए कोई उसको बस पर्याप्त है ऐसे बोल सकता हैं?।।3।।

श्री शुकदेव कहते हैं - यमुना नदी में एक भवर में कालिया नाम का कृष्ण सर्प रहता था। उस भवर को उसी के नाम से पुकारते थे। विषाग्नि के कारण वहाँ का जल उबलता था। उसके ऊपर से उड़ने वाले पक्षी भी मर कर उसी में गिर जाते थे।।4।।

विष जल के ऊपर से आने वाली हवाँ जो विष को लाती थी उससे नदी के तट पर रहने वाले स्थावर जंगम सारी वस्तुएँ मर जाती थीं।।5।।

ब्रह्म के वर बल से अवध्य उस कालियाँ नाग के विष को गरुड़ को छोड़ कर अन्य कोई टाल नही सकता था।

दुष्टों के दमन करने के लिए अवतार लिए हुए भगवान श्री कृष्ण अति तीव्र विष से नदी का जल प्रदूषित हुआ है देखकर उसको शुद्ध करने के लिए वे कमर कस लिए। तट पर रहने वाले एक कदंब वृक्ष के ऊपर चढ़ गये। अपने दोनों हाथों से दोनों भुजाओं के ऊपर मारते हुए, आवाज करते हुए ऊँचे वाले वृक्ष से भवर के अन्दर कूद गये।।6।।

गरुण नागमाता कद्रूदेवी को अमृत लाते समय रास्ते में भूख के कारण मछली को खाने के लिए अमृत कलश को इस कदंब वृक्ष के ऊपर रखकर भोजन और विश्रान्ति पाए थे इस प्रकार गरुड़ बैठा हुआ और अमृत कलश रखा हुआ यह एक मात्र वृक्ष विष की बाधा को सहन करते हुए वहाँ खड़ा था। यह मत्स्य पुराण का कथन हैं। हरिवंश पुराण

के अनुसार कालिया के वहाँ विहार के लिए उसके मंत्री ने इस वृक्ष को विष बाधा से रक्षित किया था।

पुरुषोत्तम भगवान के जल में कूदने से उस भवर में रहने वाली जल-राशि में उथल पुथल हो गया। इससे क्रोधित होकर काल सर्पों ने विष का फूफ्कार ज्यादा किया। इस ज्यादा हुए विष से और तीव्र तरंगों से वह भवर और भयानक बन गया। पानी ऊपर उठकर तट को पार करते हुए सौ धनुष प्रमाण पसर गया। अनन्त बल वाले भगवान के लिए यह क्या बड़ा विषय है?।।7।।

हे राजा! बड़े हाथी से भी ज्यादा बल वाले भगवान श्री कृष्ण भवर में खेलते हुए अपने दोनों हाथों से पानी में आवाज करते हुए आनन्द से तैरने लगे, तब कालिया अपने वास स्थान को खराब करने वाले इस आवाज को न सहते हुए अपने सैन्य सहित श्री कृष्ण के पास आया।।8।।

श्री कृष्ण का अत्यन्त कोमल मेघश्यामल वर्ण वाला शरीर, देखने वाले में उन्हे बार बार देखने की इच्छा को उत्पन्न करती थी। वह शरीर श्री वत्सलांछन से और पहने हुए पीताम्बर से शोभायमान था। उनको हसंमुख तथा कमल के समान रंग के पाद वाले भगवान बाल कृष्ण किसी के भय के बिना जल में खेल रहे हैं। इसको देख कर कालिया का क्रोध बढ़ गया। वह क्रोध से श्री कृष्ण के मर्म स्थान को काटते हुए उनके शरीर को अपने पूछ से लपेट लिया।।9।।

श्री हरि को लोग देखते थे किन्तु उनके इस कार्य को कोई नही देख पाया। कालिया श्री कृष्ण को अपनी पूछ से लपेट रहा है। इसको तो लोग देख रहे हैं। किन्तु श्री कृष्ण उसके लिए क्या कर रहे हैं इसको कोई नही देख पाया। इसको न समझते हुए कृष्ण-प्रियगोपालक दु:खित हुए। वे अपना शरीर, बन्धु-बान्धव, धन-सम्पदा, पत्नी-पुत्रों को श्री कृष्ण को अर्पित किए हैं। श्री कृष्ण की इस आपदा को देख कर उन्हे मन में दर्द हो रहा है, आँखों से आँसू बह रहा है। किन्तु क्या करना यह न समझते हुए दिग्मूढ होकर मूर्छित होकर गिर गये। गाय, बैल, बछड़े भी रोते हुए भय के मारे चिल्लाते हुए इधर उधर दौड़ने लगे।।10,11।।

भूमि, अन्तरिक्ष, शरीर में, गोकुल में अनर्थ सूचक उत्पात इत्यादि दिखने लगे।।12।।

नन्दगोप इत्यादि गोपालक इन उत्पातों को देखे। बलराम को छोड़ कर श्री कृष्ण गाय चराने अकेले गये हैं और यह उत्पात हो रहे हैं। इससे गोपालक समझ गये कि श्री कृष्ण को कोई आपत्ति आ गयी है। वे श्री कृष्ण में अपने मन रखे हुए हैं। उनके सारे इन्द्रिय व्यपार उन्ही के साथ जुड़े हुए हैं। किन्तु वे उनके सामर्थ्य को न जानते हुए मुग्ध पशु के समान व्यवहार करते थे। आबाल वृद्ध स्त्री पुरुष सारे दु:ख शोक भय से आवृत्त होकर दीन भाव से श्री कृष्ण को देखने की इच्छा से गोकुल के बाहर भाग आए।।13,14,15।।

इसको देख कर मधुकुलोद्भव बलराम हँसते हुए चुप रहे। अपने कान्हा की ताकत को वे ठीक तरह से जानते थे।।16।।

सारे गोपालक अपने प्यार भरे नजरों से श्री कृष्ण के पद चिन्ह के पद्म, ध्वज, वज्र, अंकुशादि चिह्नों को पहंचानते हुए श्री कृष्ण से गए हुए रास्ता को पकड़ कर जमुना तट पर आए।।17।।

हे राजा! वे गायों के पद चिह्नों के और गोपालको के पाँव के चिन्हो के बीच में भगवान के लक्षण युक्त पद चिह्नों को देखते हुए तीव्र गति से चल कर जमुना तट पर पहुँचे।।18।।

भवर के बीच में कालिया नाग से घिरा हुआ न हिलने वाले भगवान श्री कृष्ण को दूर से ही देखे। तट पर दिग्मूढ होकर खड़े हुए गोपालकों को देखे। चारों ओर चिल्लाते हुए दौड़ते रहे गाय को देखे। इसको देख कर दु:खित होकर बेहोश होकर गिर पड़े।।19।।

गोपिकाओं को भगवान श्री कृष्ण में मन लगा था। वे अपने प्यार को अपने आँखो से व्यक्त करते हुए उन्ही के स्मरण करने वाले अब अपना प्रिय कृष्ण सर्प से पकड़ा हुआ देख कर प्रियतम् के बिना यह तीनों लोक उनको शून्य जैसा अनुभव हुआ। वे दु:ख से तपने लगे।।20।।

श्री कृष्ण की माता यशोदा अपने पुत्र का अनुशरण करते हुए भवर में कूदने का प्रयास करे तो उसी के समान दु:खित अन्य गोपिका स्त्रियाँ ने उनको पकड़ कर रोने लगे। वे श्री कृष्ण के प्रियकर लीलाओं को अपने में कहते हुए खड़े थे। श्री कृष्ण के मुख को अपलक नेत्र से देखते हुए भय के मारे निश्चेष्टित होकर खड़े हो गये।।21।।

श्री कृष्ण को बहिर्प्राण मानने वाले नन्दगोपादि यादवगण स्वयं भवर में कूदने के लिए तैयार हो गये। उसको देख कर भगवान बलराम उनको रोक दिए। केवल वे ही श्री कृष्ण के सामर्थ को जानते थे।।22।।

इस प्रकार केवल अपने आश्रय में रहने वाले गोकुल के इस दुरवस्था को और स्त्री बाल पुरुषादि लोग अपने के लिए दु:ख करते हैं यह देख कर भगवान श्री कृष्ण मनुष्य स्वभाव को अनुकरण करते हुए एक मुहूर्त पर्यन्त चुप रहे। बाद में तीव्रता से शर्प बन्धन से ऊपर उठकर आए।।23।।

इस सन्दर्भ में बलराम कालिया के ऊपर के क्रोध से श्री कृष्ण को कहते हैं कि उस कालिया का दमन करो यहाँ के लोग तुमको सामान्य मनुष्य समझते हुए तुम्हारे क्षेम के बारे में चिन्तित हैं। इसको सुनकर श्री कृष्ण अपने को कालिया से छुड़ाकर ऊपर आए। यह हरिवंश की बात है।

श्री कृष्ण अपने शरीर को बढ़ाए उससे उनके शरीर को बाँध कर रखा हुआ कालिया के शरीर में दर्द होने लगा। श्री कृष्ण के ऊपर उसका पकड़ खत्म होने लगा। वह श्री कृष्ण को छोड़कर अपने फणों का विस्तार करते हुए कोध से फुफकारते हुए नाको से विष की ज्वाला पसारते हुए मुँह से आग उगलने लगा। आँखों को न हिलाते हुए भगवान श्री कृष्ण को घूर कर देखने लगा।।24।।

अपने कटे हुए दो दो जीभों से अपने मुँह से चाटते हुए विषाग्नि से भरी हुयी आँखो से घूरने वाले कालिया को पकड़ने के लिए भगवान श्री कृष्ण गरुड़ के समान कालिया के चारों ओर चक्कर काटे। श्री कृष्ण खेलते रहे। कालिया डर के मारे उन्ही की ओर देखते हुए श्री कृष्ण के पीछे - पीछे अपना नजर दौड़ाया।।25।।

श्री कृष्ण के पीछे दौड़ते हुए नरम हुआ कालिया का लम्बे शरीर को आदि पुरुष भगवान श्री कृष्ण अपने हाथ से पकड़ कर रस्सी के समान गोलियाए। उसके विशाल फणों के ऊपर चढ़ कर खड़े हो गये। फणों में रहने वाले रत्न के सम्पर्क के कारण श्री कृष्ण के लाल रंग वाले पाद और ज्यादा लालीमय हो गये। नाट्य सहित सारे ललित कलाओं के स्वामी जगदादि गुरु श्री कृष्ण कालिया के फणों के ऊपर नृत्य करने लगे।।26।।

कालिया भगवान का भक्त है। अज्ञान से यशोदा जैसे श्री कृष्ण को रस्सी से बाँधने का प्रयास की वैसे ही कालिया उनको बाँधने का प्रयत्न किया, काट कर विष से मारने का प्रयास किया। भगवान भक्त के इन सारे अपराधों को क्षमा कर दिए।

श्री कृष्ण के इस नाट्य को देखते हुए उनके भक्त गन्धर्व, सिद्ध, देवता, चारण, देवांगनाएँ आनन्द से मृदंग, पडव, आनक इत्यादि वाद्यों को बजाते हुए गीत गाते हुए पुष्प वृष्टि करते भगवान श्री कृष्ण के पास आए।।27।।

ब्रह्मा जी मृदंग का वादन किए। हनुमान जी गाना गाए, शिव जी ताल बजाए यह रुक्मिणीश विजय का वाक्य है। आधुनिक विमर्शक इसकी हँसी उड़ाते हैं कि भारत में सर्प के फ़णों का प्रस्ताव नही है, विष्णु पुराण में तीन फ़णों का प्रस्ताव, हरिवंश में पाँच और भागवत में हजार फ़ण सृष्ट हुए। महाभारत के सभा पर्व के दाक्षिणात्य पाठ के 38 अध्याय में कालिया मर्दन का इतिहास इस प्रकार है।

ह्रदे नीपवने तत्र क्रीड़ीतम् नाग मूर्धनि। कालियं शासयित्वा विजहार ततः कृष्णः।।

महाभारत और विष्णु पुराणों में फ़णों की संख्या का प्रस्ताव नही है, हरिवंश में पाँच फ़णों का प्रस्ताव आता हैं, भागवत में फ़णों की संख्या का प्रस्ताव नही है। श्रीधरीय पाठ में ।0। फ़णों का प्रस्ताव है। हरिवंश के विरोध के कारण यह ग्राह्य नही है। पाँच फ़ण मानना ही सही है।

श्री कृष्ण कालिया के पूछ को अपने हाथ से ऊपर उठाए। (वह पूछ कुछ अपराध नही किया है।) विष से काला रंग वाला कालिया के काला सिर के ऊपर भगवान अपने पादों के आघात से मर्दन किए। जिस फ़ण को कालिया ऊपर उठाता था भगवान उसको अपने पदाघात से नीचा करते थे। भगवान दुष्टो को शिक्षा देने के लिए अवतार लिए हैं। विष उगलने का अपराध किया हुआ मुख को भगवान दण्ड दिए और कुछ अपराध न किया हुआ पूछ को ऊपर उठाए। भगवान के पदाघात से कालिया का बल क्षीण हो गया। वह मुँह

से रक्त वमन करते हुए मूर्छित हो गया।।28।।

श्री कृष्ण वामनावतार में आकाश में रहने वाले चन्द्र को लात मारने के लिए पाँव पसारे तो वह पाँव त्रिविक्रम रूप पाकर गंगा जी से चुम्बित हुआ। शिशु होकर सोते हुए अपने छोटी सी पाव से शकटासुर का नाश किए। कालिया नाग के फड़ के ऊपर नाच करने वाले भगवान उसके विष का नाश किए। किन्तु उनके लिए न सर्प का भय है न विष का भय है। कमल के समान मुख वाले विशाल नेत्र वाले भगवान अत्यन्त सुन्दर रूप से सुशोभित हैं। जगद्गुरु मध्वाचार्य अपने कन्दुक स्तुति नाम के ग्रन्थ में वर्णन किए हैं।

कालिया थोड़ा सा सुधारने के बाद अपने क्रोध को न छोड़ते हुए आँखो से विष उगलने लगा। रोष से जोर से फुफकारा। कालिया जिस फण को काटने के लिए उठाता था उसी के ऊपर पाँव से दबाते हुए उसको झुका कर भगवान श्री कृष्ण उसके ऊपर नृत्य किए। तब देवताओं ने पुराण पुरुष भगवान श्री कृष्ण के ऊपर पुष्प वृष्टि की।।29।।

हे राजा अद्भुत इस सुन्दर तांडव नृत्य से कालिया का छतरी के समान फण टूट गये, शरीर जर्जरित हो गया। सारे मुखों से लहू बहने लगा। तब कालिया को याद आया ये ही इस चराचर प्रपंच को पिता रूप पुराण पुरुष श्रीमननारायण ही श्री कृष्ण के रूप में अवतार लिए हैं। तुरन्त वह भगवान की शरण में आया।।30।।

भगवान कालिया के फणों के ऊपर नृत्य किए इसका कारण उसमें जो विष था उस विष के निवारण के लिए। गरुड़ विष परिहार करता है। गरुड़मंत्र से ही विष परिहार होता है। यह गरुड़ भगवान के दोनों पावों को अपने हाथ में पकड़ कर रखता हैं। सदाकाल गरुडत्र के सम्पर्क से विष्णु पाद भी विष हर बन गये हैं। इसी कारण भगवान नरतन कर के कालिया के विष का हरण किए।

अपने पेट में सारे ब्रह्माण्ड को रखे हुए श्री कृष्ण के बड़े बोझ के कारण कालिया का फण बन्द किया हुआ छतरी के समान मुड़ गये। श्री कृष्ण के एड़ी के आघात से बहुत पीड़ित हुए। इसको देख कर कालिया की पत्नियाँ आर्त होकर श्री कृष्ण के पास दौड़ कर आयीं। आते समय उनके वस्त्रालंकार, पेशालंकार अस्त व्यस्त हुए।।31।।

उन साध्वियों ने भगवान को चढ़ाने के लिए भेट की वस्तुओं को लाकर खिन्न मन से उनको जमीन पर रखते हुए जमीन पर झुक कर प्रणाम किए। जगत्पति नारायण हमारे पति का विमोचन करे यह प्रार्थना करते हुए उन्ही के शरण में आए।।32।।

भगवान अपने भक्त को शिक्षा करे तो भी वह वर के समान होता है। कालिया नाग अपराध किया है। भगवान श्री कृष्ण उसके फणों पर मार-मार कर उसको दण्ड दिए हैं। वह और पुनः फणों को ऊपर न उठाए ऐसे मारे हैं। किन्तु भगवान के पाद के चिन्ह के कारण कालिया नाग को गरुड़ का भय शास्वत रूप से चला गया।

नागपत्नी कहती हैं - महाप्रभु! हमारे पति अपराध किए हैं। आप उनको दण्ड दे रहे हैं यह उचित ही है। आप दुष्ट दमन के लिए ही अवतार लिए हैं। शत्रु हो या मित्र हो, उसके अपराध के अनुसार, अपराध के फल को अनुग्रह रूप दण्ड के रूप में आप देते रहते हैं।।33।।

आप द्वारा दिया हुआ यह दण्ड हमको अनुग्रह ही बन गया है। सज्जन लोग अन्य कारणो से दौर्जन्य किए तो आप उनको जो दण्ड देते हैं उससे उनके पाप का परिमार्जन होता है। पाप के कारण ही हमारे पति को यह सर्प का जन्म आया है न? आप द्वारा किए हुए क्रोध के नाटक को हम अनुग्रह मानते हैं।।34।।

भगवान हमारी गलतियों के कारण हमें जो शिक्षा देते हैं उसको अनुग्रह मानकर स्वीकार किए तो हमारा कल्याण होता है। बदले में उसको अन्याय मानते हुए विरोध किए तो उससे अन्धंतमस होता है। यह महाकूर्म पुराण का वाक्य हैं।

सारे जीवों को जीवन देने वाले आप हमें यह अनुग्रह किए हैं, इसका अर्थ यही होता है कि हमारे पति पूर्व जन्म में आपके प्यार को पाने के लिए बड़ी तपस्या किए होंगे अथवा सारे जीवियों के ऊपर अनुकम्पा से बहुत दानादि सत्कर्म किया होगा। अब हमारे पति अहंकार छोड़कर आपके चरण में विनीत होकर खड़े हैं।।35।।

हे देवेश! आपके पाद धुलि का स्पर्श करने का भाग्य हमारे पति को मिला है। वह किस पुण्य का प्रभाव है यह नही जानती इस योग्यता को पाकर आपके साथ सदाकाल रहते हुए नित्यावियोगिनी लक्ष्मी देवी **नूनं तपो यस्य** इत्यादि आलोचना रूप तप की। ब्रह्मादि देवताओं को पाने के लिए अन्य स्त्रियों आतुर रहती हैं। महालक्ष्मी उन सबको न चाहते हुए नित्य नित्य आपके साथ ही रहने का व्रत धारण की हैं।।36।।

आपके पादधूली का आश्रय पाए हुए भक्त सार्वभौम पद को नही चाहते, उनको न स्वर्ग चाहिए न ब्रह्मपद। उनको पाताल के स्वामित्व की भी आकांक्षा नही है, वे योग-सिद्धि को नही चाहते इतना ही नही वे मुक्ति की इच्छा को भी नही रखते।।37।।

मुक्ति की चाह न रखने का भाव इस प्रकार है। अल्पाधिकारी लिंग भग के बाद पुनर्जन्म न होने के कारण मुक्ति को पाते हैं। उत्तमाधिकारी मोक्ष में भगवान का अंग स्पर्श सुख को भी पाते हैं। वे इस संसार में रहते हुए भगवान की पाद धूली का महा संग मिलने के कारण अल्पाधिकारी के मोक्ष सुख को नही चाहते हैं। यह पद्म पुराण का वाक्य है।

हे लक्ष्मीपति, जगन्नाथ, जनन-मरण के चक्र के चक्कर में फिरने वाला जीव आपके अपरोक्ष ज्ञान को चाहता है। अन्य लोगों को न मिलने वाले इस दुर्लभ अपरोक्ष ज्ञान को तमो गुण से जन्म लिए हुए असक्त और क्रोध के वशीभूत हमारे पति आपकी कृपा से पाए हैं।।38।।

हे भगवान! आप सारे जीवियों में नियामक होकर वास करते हैं, सर्वदा सर्वत्र रहते हैं, सबसे विलक्षण और सर्वोत्तम हैं। ऐसे परम पुरुष महात्मा भगवान श्री हरि आपको नमस्कार।।39।।

यहाँ **भूताय नमः** इसका अर्थ भगवान को नमस्कार यह होता है।

सामान्य ज्ञान और देवताओं में दिखने वाला विशेषज्ञान की आप निधि हैं। आप गुण पूर्ण अनन्त शक्तिशाली, गुणत्रय रहित, निर्विकार और अप्राकृत हैं। ऐसे आपको हमारा नमस्कार।।40।।

यहाँ **नमस्तेऽप्राकृताय** इसका पद विभाग करते समय नमस्ते अप्राकृताय ऐसा करना सही है।

हे भगवान! आप काल नियामक हैं, कालाधार हैं। आप काल के सूक्ष्मताओं को प्रत्यक्ष देखने वाले हैं। विश्वाधीन, विश्वज्ञ, विश्वकर्ता, विश्व का मूल कारण आप हैं। आप हमारा प्रणाम स्वीकार करें।।41।।

कालनाभ का अर्थ कालाश्रय होता है। भगवान इस जगत का हेतु इसका अर्थ जगत का मूल कारण होना है। कर्तु का अर्थ प्रत्येक वस्तु को निर्माण करते समय उनके कर्ताओं के अन्दर रहते हुए उनको प्रेरणा देने वाला कर्ता भगवान हैं। इन कर्तु और हेतु शब्द का अर्थ अग्नि पुराण में बताया है।

जीव पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चप्राण, मन बुद्धि अहंकार इनका आश्रय है। आप ऐसे जीवों को आश्रय देते हैं किन्तु तीनों गुणों से रहित हैं। अपनी इच्छा से जीव के बिम्ब रूप हैं यह निगूढ़ अर्थ है, अपरोक्ष देने वाले हैं। आपको नमस्कार।।42।।

बुद्धि यह अन्तः करण का प्रभेद है। अन्तः करण मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, चेतना इस प्रकार पाँच विध हैं। कार्याकार्य विवेचन बुद्धि है, अभिमान, मैं किया हूँ, मैंने ही किया हैं यह अहंकार हैं। स्मरण देने वाला चित्त है। बहु स्मरण शक्ति चेतना है। स्थूल मन का अभिमानी इन्द्र है, सूक्ष्म मन का अभिमानी गरुड़ शेष रुद्र हैं। ज्ञान के लिए सूक्ष्म मन ही कारण है। ध्यान के करने वाले मन का अभिमानी गरुड हैं। देव पूजादि सत्कार्य के अभिमानी, प्रेरक रुद्र हैं, मनन करने के लिए नियामक रुद्र हैं। वायु देव इन सबका नियामक हैं। चित्त के सात्विक भाग के अभिमानी ब्रह्मा है, वासुदेव सर्व नियामक हैं।

नाशरहित, अव्यक्त, निर्विकार, सर्वज्ञ, वेदों के मूल, वाच्य वाचक बन्द कर दोनों को शक्ति देने वाले आपको नमस्कार।।43।।

आप प्रत्यक्षादि तीनों प्रमाणों के मूल आधार हैं। सर्वज्ञ, शास्त्रवेद्य, प्रवृत्त - निवृत्त दोनों धर्मो को फल दने वाले, विधिनिषेध रूप समस्त शास्त्रों का नियामक भगवान आपको नमस्कार।।44।।

भगवान आप सारे लोकों के नियामक, आनन्द रूप, वसुदेव पुत्र श्री कृष्ण, कान्तियुक्त, किसी से निरोध न करने वाला, यादवों के स्वामी, आपको नमस्कार।।45।।

यहाँ **रामाय** शब्द से बलराम को ग्रहण नही करना। रमते इति रामः = आनन्द रूप।

अपने गुणों को स्वयं अपने भक्तों को दिखाने वाले, त्रिगुणात्मक प्रकृति में रहते हुए उसके परिणाम के अधीन न होते हुए प्रकाश रूप रहने वाले, आनन्द आदि गुणों के लक्षण से अपने सर्वोत्तमत्व को दर्शाने वाले, जीवों के इन्द्रिय में रहते हुए भी विषयानुभव को न पाने वाले, स्वयं प्रकाश वाले भगवान आपको नमस्कार।।46।।

गुणप्रदीप का अर्थ आनन्दादि गुणों को सज्जनों के सामने व्यक्त करने वाला होता है। **गुणात्मस्थोदय** इसका अर्थ गुणात्मक प्रकृति में उदय रुप प्रकाशमान होता है।

आपकी लीलाओं को सम्पूर्ण रीति से कोई वर्णन नही कर सकता। किन्तु आपके अनुग्रह से भक्त लोग अपनी योग्यतानुसार आपके स्वरूप ज्ञान का वर्णन कर सकते हैं। आप इन्द्रिय नियामक हैं, आप सारे वेदों का दृष्टार ऋषि हैं। लोक शिक्षण के लिए आप मनन करते रहते हैं। आपको हमारा नमन है।।47।।

कार्य-कारण वस्तुओं की स्थिति को केवल आप जानते हैं। आप सर्वाधिपति, जीव से विलक्षण, जीव का नियामक, जीव को देखने वाला और समझने वाला, जीव को जन्मादि अनेक रूप देने वाला आपको हमारा नमन।।48।।

यहाँ **अविश्व** का अर्थ जीव विलक्षण भगवान होता है। भगवान का जीव के शरीरों में प्रवेश करने से जीव विश्व बन जाता है। यह विश्व विष्णु के अधीन होता है। इसके लिए विष्णु भी विश्व कहलाते हैं। विश्व को जन्म देने के कारण विष्णु विश्व हेतु कहलाते हैं। यह मत्स्य पुराण का वाक्य है।

हे सर्वशक्त, क्लेशरहित, अनादि स्वरूप भूत दुर्गा रूप वायु रूप शक्तियों को धारण करने वाले इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति संहार कार्यो को त्रिगुणों से चलाने वाले आप हैं। आपकी लीला अमोघ हैं। आप हमारे ऊपर कारुण्य रखते हुए हमारे सर्प स्वभाव से हमारा उद्धार करें।।49।।

तीनों लोकों में रहने वाले देव मानव दानव आपके प्रतिमा रूप बनकर सन्निधान पात्र बने हैं। आप मुख्य प्राण की सहायता से उनसे कर्म कराने के लिए उनके शरीरो में रहते हैं। सज्जन रक्षक आपको देवताओं से ज्यादा प्यार हैं। देह स्वभाव वाले हमारे पति देव का आपही संरक्षण करे।।50।।

भगवान श्री हरि सज्जनों से ज्यादा प्यार रखते हैं। सामान्य जनों से, अन्यों से, उनका प्यार है ही। लय काल में दुर्जन भी भगवान को थोड़ा सा प्रिय होते हैं। इस प्रकार षाड़गुण्य ग्रन्थ में लिखा हैं। स्वयोग्य सुख की पराकाष्ठा को देवता लोग मुक्ति में पाते हैं। इसके लिए उनको शान्त कहते हैं। मध्यम लोग इस संसार में दुःखमिश्रित सुख को पाने के कारण अशान्त माने जाते हैं। तामस लोग मोह के कारण दुःखी होते हैं। इसके लिए विमूढ़ कहलाते हैं। सारे जीवों से मुख्य प्राण की वजह से कर्म कराने के लिए श्री हरि उनके शरीर में रहते हुए प्राण का भी प्राण कहलाते हैं। यह प्रकाश संहिता का वाक्य है।

हे देव देवेश:, राजा अपनी प्रजा लोग जो अपराध करते हैं उसको सहन करते हुए उन्हे क्षमा करते हैं। आपको परम पुरुष न समझते हुए मूढ़ता से हमारे पति द्वारा किए हुए अपराध को आप एक बार क्षमा कर दीजिए।।51।।

हे भगवान! आप कृपा करें। आपके वजन से नागराज मर रहा है। सज्जन लोग विशेष कर स्त्रियों में अन्त: करण दिखाते हैं। हमारे पति हमारे प्राण हैं। हम याचना करते हैं। आप हमें पति-भिक्षा दें।।52।।

हम आपकी चरण दासी हैं। मेरे पति क्या करें इसके बारे में आप आज्ञा दें। आपकी आज्ञा को पूर्ण रूप से हमारे पति मानेगें, और सारे अनर्थो से छुटकारा पायेंगे।।53।।

श्री शुकदेव कहते हैं- इस प्रकार कालिया की पत्नियाँ श्री हरि की स्तुति कीं। तब श्री हरि अपने पदा-घातों से त्रस्त हुए कालिया को छोड़कर यमुना के तट पर आए।।54।।

कालिया का इन्द्रिय और प्राण धीमे धीमे सुधर गये। कष्ट से श्वास लेते हुए वह हाथ जोड़ कर दैन्यता से भगवान की प्रार्थना करता है।।55।।

प्रभु! हम जन्म से तमो गुण वाले, दीर्घ क्रोध वाले दुष्ट होते हैं। दुराग्रह प्राणी का एक स्वभाव है। उसको छोड़ना बहुत कष्ट होता है।।56।।

अनेक तरह के स्वभाव, वीर्य, बल, बीज, योनि, पुण्य, पाप और आकारों से अलग अलग रहने वाला इस विचित्र जगत को आपने ही सृष्ट किया है, चतुर्मुख ब्रह्म की सृष्टि इसमें अमुख्य है।।57।।

धातुः गुण विसर्जनं का अर्थ चतुर्मुख ब्रह्मा जी द्वारा की हुयी सृष्टि गौड़ होती है। श्री हरि से की हुयी सृष्टि मुख्य होती है। यह नारद पुराण में स्पष्ट किया गया है।

हे प्रभु! आपकी इस सृष्टि में हम सर्प बनकर जन्म लिए हैं। सर्प जन्म से ही कोपिष्ठ होते हैं। आपकी ही इच्छा से निर्मित सर्प जाति के इस स्वभाव को अज्ञान मोह के वस में रहने वाले हम कैसे त्यागते हैं? कभी नही छोड़ सकते।।58।।

हे सर्वज्ञ जगदीश्वर हमे अपने स्वभाव सिद्ध क्रोध को त्यागना है तो उसका भी मूल कारण आपही होने से आपका अनुग्रह अथवा निग्रह से यह हो सकता है। आप जो चाहते हैं वैसा करें।।59।।

यहाँ एक संशय आता है, साँप बातें करते हैं क्या? वे दर्शन शास्त्र में तज्ञ हैं क्या? कश्यप ऋषि से कद्रु में जन्म लिया हुआ ऋषि सन्तति ही सर्प कुल हैं। उनको भी षोडश संस्कार पूर्वक अध्ययनादि कर्म होते हैं। शेष नाग स्वयं प्रवचन करते हैं। इतना ही नही, प्रवचन करने वाले के अन्दर प्रवेश करते हुए उनसे प्रवचन कराते हैं।

नाग राज की इन बातों को सुनकर देवताओं के कार्य करने में मानव सहज व्यवहार करने वाले

भगवान कहते हैं - तुम्हे यहाँ नहीं रहना चाहिए, तुम जल्दी ही अपने बन्धु मित्र, पुत्र-पत्नी के साथ समुद्र को चले जाओ जिससे गाय और मानव के सेवन करने के लिए यह नदी योग्य बने। मैने तुमको जो आज्ञा दी है उसको सुबह शाम दोनों सन्ध्या के समय में जो स्मरण पठन करता है उसको सर्पो की बाधा न हो।।60,61।।

मेरे द्वारा लीला किए हुए इस भवर में जो लोग स्नान करके देवादि तर्पण करते हैं, उपवास रहकर मेरा स्मरण करते हुए आराधना करते हैं। वह सकल पापों से मुक्त हो जाते हैं।।62।।

तुम गरुड़ के भय से रमणक द्वीप को छोड़कर यमुना के इस भवर में बसे हो। अब मेरे पद-चिह्न को धारण किया हुआ तुमको गरुड़ खा नही सकता।।63।।

साँप के विष उलबण के लिए गरुड़ के हाथ में रहने वाला भगवान को पद चिह्न ही कारण है। अब कालिया के सिर के ऊपर उन्ही पद चिन्हो को अंकित कर उसके अन्दर के विष को वमन करवाए हैं। बाद में भक्त के ऊपर वात्सल्य रखने वाले भगवान अपने अमृत हस्त को उसके सिर पर रखते हुए वहाँ अपने पद चिह्न से अंकित करते हुए गरुड़ भय से उसे मुक्त कर दिए। भगवान श्री कृष्ण की अपने भक्तों को देने वाली शिक्षा भी उनकी रक्षा के लिए ही होती है। गरुड़ के भय से कालिया को पहले यमुना के भवर में छिप कर रहना पड़ता था। अब श्री हरि के अनुग्रह से निर्भय होकर वह समुद्र के द्वीप में सुख पूर्वक वास कर सकता है। कालिया गरुड़ से अपराध किया था। उसको शिक्षा देने से गरुड़ को आनन्द हो गया। गरुड़ के भय से मुक्त होकर सर्प राज कालिया भी सुख की श्वास लिया।

श्री शुकदेव कहते हैं - अद्भुत लीला करने वाले भगवान श्री कृष्ण के आदेश के अनुसार कालिया ने अपनी पत्नियों के साथ सन्तोष से भगवान की पूजा करते हुए वहाँ से समुद्र को जाने के लिए हो गया।।64।।

कालिया अपनी पत्नियों के साथ बहुमूल्य, दिव्य, वस्त्र, माला और रत्नाभरण से, दिव्य गन्ध के लेप से, बड़े-बड़े कमल के फूलों से गरुड़ध्वज जगन्नाथ श्री कृष्ण की पूजा की। उनसे अनुज्ञा पाकर परिक्रमा करते हुए अपने पत्नी, बन्धु, पुत्र आदि से मिलकर रमणक द्वीप को चला गया। लीला के लिए मानव रूप से अवतार लिए हुए भगवान श्री कृष्ण के अनुग्रह से यमुना का जल विष से मुक्त हुआ। उसका जल अमृत समान रहा।।65।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पन्द्रहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - साँपों के वासस्थान रमणक द्वीप को छोड़ कर कालिया यमुना में क्यों आया। सारे साँपों को छोड़कर वह गरुड से क्या अपराध किया।।1।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा! सुनो, हर अमावस्या को सर्प लोग अन्न सहित आकर गरुड़ की पूजा करते हुए उसको अन्न समर्पण करना यह साँपों की रक्षा के लिए गरुड़ से नियम बनाया गया था।।2।।

उसके अनुसार सारे नाग अपनी रक्षा के लिए हर अमावस्या को महात्मा गरुड़ को अपना अपना भाग बारी-बारी से देते थे।।3।।

विष-बल से मत्त कालिया नाग गरुड़ को तिरस्कार करते हुए उसको देने के अन्न को स्वयं खा लिया।।4।।

उसको सुनकर श्री हरि प्रिय गरुड़ क्रोध से बलशाली कालिया को मारने के लिए उसके पीछे पड़े।।5।।

अपने ऊपर आक्रमण करने वाले गरुड़ को कालिया ने अपने फणों को विस्तार करते हुए जीभ को बाहर हिलाते हुए, फूफ्कार करते हुए, गरुड़ को अपने विष के दाँतों से काटा।।6।।

भगवान के वाहन गरुड़ अत्यन्त पराक्रमी हैं, प्रचन्ड वेगवान हैं। क्रोध से कालिया का सामना करते हुए अलक्ष्य भाव से ये क्या शूर है ऐसे मन में विचार करते हुए अपने बाएँ पंख से जोर से मारा।।7।।

गरुड़ के सोने के जैसे पंखे से मार खाया हुआ कालिया डर से भाग कर यमुना के भवर में छिप गया। उस भवर में गरुड़ आ नही सकता था। अन्य कोई भी उसमें आने की ताकत नही रखता था।।8।।

एक बार गरुड़ यमुना के भवर में अपनी इष्ट मछली को खाने के लिए गया था। उस समय सौभरी ऋषि हिंसा के इस प्रक्रिया को मना किया। भूखा गरुड़ इसे न मानते हुए एक बड़ी मछली को खा लिया।।9।।

बड़ी मछली के मर जाने के बाद छोटी मछलियाँ रोने लगीं। उनके दुख को देख कर सौभरी मुनि वहाँ की मछली को क्षेम से रखने के लिए गरुड़ को बोल दिए।।10।।

हे गरुड़! अब तुम यहाँ आकर मछली इत्यादि जलचर को खाए तो तुमको मरण आ जाए। मैं इस बात को सत्य रूप से कह रहा हूँ।।11।।

कालिया मर्दन से और एक नीति निकलती है। हम भी कालिया के समान काम क्रोध नाम के विष से भरे हैं, सज्जनों के ऊपर विष का वमन करते हैं। आचार्य मध्व के शास्त्र को पढ़कर हम भगवान के पद चिह्नों को अपने सिर पर रखे तो हमारा विष जाता है, इतना ही नही हमे अविद्या का डर नही रहता।

इस शाप को कालिया ही जानता था। इसी कारण कालिया गरुड़ के भय से इस भवर में छिपकर रहता था। श्री कृष्ण ने उसको वहाँ से हटा दिया।।12।।

बलिष्ठ दुष्ट लोगों से अन्य लोगों को पीड़ा न हो इसके लिए अपने को मिला हुआ शाप को विष्णु भक्त मानते हैं। यह उनकी अशक्तता का लक्षण नही है। किन्तु शाप देने से ऋषियों का पुण्य नष्ट होता है। इसको न समझते हुए असुरावेश से वे शाप देते हैं। इसी कारण गरुड़ सौभरी के शाप का अतिक्रमण नही किए। छोटे लोग शाप दिए तो बड़े लोग छोटे नही बनते। बड़े लोग वर देने मात्र से छोटे-बड़े नही होते। वर तथा शाप से जीव की योग्यता में बदलाव नही आता। बदलाव करने का सामर्थ्य श्री हरि में होते हुए भी वे ऐसे वर शाप नही देते। यह ब्रह्माण्ड पुराण का वाक्य हैं।

श्री कृष्ण यमुना के भवर से बाहर आए। दिव्य माला गन्धों से अलंकृत, सोने के गहने से शोभायमान श्री कृष्ण के बाहर आते ही सारे गोपालकों के जीव में जीव आ गया। सारे लोग खड़े हो गये। आनन्द से भरे हुए अन्त:करण से गोपालक उनका आलिंगन किए।।13,14।।

हे राजा, यशोदा, रोहिणी, नन्दगोप, सारे गोपालक, गोपस्त्रियाँ, श्री कृष्ण से पुन: पुन: मिल कर वे सब नव चैतन्य युक्त हो गये। अब उनका मनोरथ पूर्ण हो गया था।।15।।

बलराम श्री कृष्ण का आलिंगन करते हुए हँस दिए । वे श्री कृष्ण भगवान की ताकत को जानते थे। उनके लिए इसमें कोई डर या विशेषता की बात नही लगी। वहाँ खड़े हुए मानव, गाय, बैल और गाय के बछड़े सभी परमानन्द पाए।।16।।

ब्राह्मण, बड़े लोग अपनी पत्नियों के साथ आकर नन्द गोप का अभिनन्दन किए और कहे आपका पुत्र कालिया के बन्धन से पार होकर आए यह हमारे लिए बहुत आनन्द का विषय है।।17।।

महा भाग्यवती साध्वी यशोदा खोए हुए अपने पुत्र को पुन: पाकर आनन्द से उसको अपने गले से लगा लिया। ज़ंघे पर बैठाकर उसके ऊपर आनन्द वाष्प बहाया।।18।।

इतने में सूर्यास्त हो गया। उस रात गोकुल को न जाते हुए कृष्ण बलराम और अन्य सारे लोगों के साथ, गो और गोपालकों के साथ यमुना के तट पर रहे।।19।।

उस रात को गोकुलवासी गोपालक, गाय और अन्य सारे लोग भूख और प्यास से पीड़ित होने के बाद भी वहीं रह गये।।20।।

हे राजा! इसी समय गर्मी के कारण उस जंगल में भयानक आग लग गयी। वह इस गो और गोपालक संकुल को चारों ओर से घेर लिया। मध्य रात्रि में भूख से पीड़ित लोग गाढ़ निद्रा में जब सोए थे तब आग उनके चारों ओर जलने लगी।।21।।

आग के लपेट में आए हुए वे लोग गर्मी का अनुभव करते हुए अपनी इच्छा से मानव रूप धारण किए सर्वेश्वर भगवान श्री कृष्ण की शरण में गये।।22।।

हे महाभाग्यशाली श्री कृष्ण, हे अमित पराक्रमी बलराम, यह भंयकर दावानल हमें खा रहा है।।23।।

हे प्रभु! आपके अत्यन्त प्यारे हम लोगों को आप इस दुस्तर मृत्यु रूप आग से रक्षा करे। आपके श्री चरण में हमें भय रहित रक्षा दें। हम उनको कभी नही त्यागते।।24।।

इस प्रकार अपने भक्तों के दु:ख को देखते हुए अनन्त शक्तिशाली भगवान श्री कृष्ण उस अग्नि को पान कर लिए।25।।

बाद में सुबह होते ही श्री कृष्ण प्रसन्न मन वाले अपने बन्धुओं से घिरे हुए गायों से सुशोभित व्रज में प्रवेश किए।।26।।

श्री कृष्ण दावाग्नि को आसानी से पिए। पति के घर आयी हुई व्याहिता स्त्री अपने मैके को जैसे जाती है, वैसे ही भगवान के मुँह से जन्म लिया हुआ अग्नि पुनः भगवान के मुँह में आ गयी है।

पानी में बहुत समय तक रहा हुआ आदमी पानी से बाहर आने के बाद आग के सामने जैसे बैठता है वैसे भगवान कालिया भवर से उठने के बाद आराम से अग्नि पान किए।

भगवान मिट्टी खाए, जल में विहार किए, आग को पिए इसका अर्थ यह होता है कि तेजोवारि मृदां यथा विनिमयः यत्र त्रिसर्गो मृषा।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सोलहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - गोपाल के वेष में रहने वाले राम कृष्ण के इस प्रकार व्रज में विहार करते समय ग्रीष्म ऋतु का आरम्भ हुआ। अपनी गर्मी से ताप देने वाली यह ऋतु बहुत लोगों को अच्छी नही लगती।।1।।

किन्तु वृन्दावन की मिट्टी के स्वभाव के अनुसार मानो ग्रीष्म वसन्त के समान हितकर ही लगी क्योंकि वहाँ साक्षात् भगवान श्री कृष्ण बलराम के साथ क्रीड़ा करते थे।।2।।

वहाँ पानी के बहने के निनाद से कान को आनन्द होता था। बहने वाली छोटी सी नहरें हवा को ठंढा करती थीं। अश्वत्थ इत्यादि बड़े बड़े वृक्ष छाया देते हुए वन की शोभा को बढ़ा दिए थे।।3।।

सरोवरों में सौगन्धिक फूल खिलने से, वहाँ से और यमुना जी के ऊपर से बहनें वाली मन्द मरूत वहाँ रहने वाले वनवासियों को सुख देता था। वहाँ के हरे-भरे बड़े बड़े मैदान गर्मी के कष्ट को नहीं के समान सा कर दिए थे।।4।।

गहरा पानी वाला यमुना जी के तट पर बड़े बड़े वृक्षों की घनी छाया से, बालू के बाजू में ही बहने वाले नदी के कारण भीगा हुआ बाल से, विष से भी क्रूर सूर्य किरण हरित वृक्षों से आच्छादित जमीन का शोषण करने में असमर्थ थी।।5।।

कूजने वाले पक्षी और मृग नाच करने वाले मोर और भौंरे, मधुर ध्वनि करने वाली कोयल तथा सारस और फूल फलों से भरा हुआ सुन्दर वन मन को बहुत प्रसन्नता देता था।।6।।

ऐसे परिसर में विहार करने की इच्छा से भगवान श्री कृष्ण बलराम के साथ वंसी बजाते हुए वन में प्रवेश किए। गाय और गोपालक उनको घेर लिए।।7।।

कनखी, मोर के पंख, फूलमाला, सिन्दूर इत्यादि से अलंकृत राम-कृष्ण गोपालको के साथ खेल कूद करते हुए, गाते और कुस्ती करते हुए विहार करने लगे।।8।।

श्री कृष्ण जब नाचने लगे तब कई गोपालक गाने लगे। कई वंसी बजाए, कई ताल बजाए कई वाद्य बजाए अन्य गोपालक हर्षोद्गार किए।।9।।

देवता लोग गोपालक के वंश में जन्म लेते हुए गोपालक का वेश धारण कर अपने निज रूप को छिपाए थे। रंगस्थल में प्रधान नट के साथ अन्य नट के समान गोप गोपालक भगवान कृष्ण की स्तुति किए।।10।।

बालक कृष्ण राम के कान के बगल में, अपने गाल में बाल बिखेरे थे। वे परस्पर हाथ पकड़ते हुए चक्कर लगाना , कूदना, कुस्ती करना, पत्थर से निशान को मारना, एक को एक खींचना, ऐसे अनेक तरह के खेल खेले।।11।।

हे महाराजा, सुनो - कई नाचे तो कई गाये, कई खेले तो कई वाह बोले। इस प्रकार खेल चलता रहा।।12।।

कभी - कभी बेल के फल से खेल होता था, कभी गुग्गुल से, मुस्टि युद्ध, परस्पर दौड़ते हुए छूना, कभी लुका - छिपी का खेल, खेलते थे। कभी कभी मृग पक्षियों का अनुकरण करते थे, कभी मेंढ़क की तरह कूदते थे, झुले में झूलते थे और कभी राजा-मंत्री का खेल खेलते थे।।13,14।।

इस प्रकार लोकरूढ़ि में रहने वाले बच्चों के खेल को श्री कृष्ण तथा राम नदी के तट पर, पहाड़ों के ऊपर वृक्षों के नीचे, बालू के मैदान, सरोवर के पानी में विहार किए।।15।।

इस प्रकार राम कृष्ण गोपालको के साथ उस वन में गायों को चराते हुए खेलते थे। उस समय प्रलम्ब नाम का एक असुर कंस से प्रेरित होकर उनको मारने के लिए गोपालकों के वेष में आया।।16।।

लम्ब नाम का दैत्य प्रलम्ब नाम से जन्म लेकर षण्मुख के वर से अवध्य होकर रावण के समान बलशाली बन गया था। वह भाडीर वट नाम के वृक्ष में वास करता था। कंश के आदेश से वह राम कृष्ण को मारने के लिए समय देख रहा था।

श्री कृष्ण सर्वज्ञ होते हुए भी उसको मार डालने के उद्देश्य से उसके मित्रत्व को स्वीकार किए।।17।।

सारे खेलों के नियमों को जानने वाले श्री कृष्ण गोपालकों को बुलाकर खेल के नियमों का विवरण देते हैं। हे गोपालक, सुनो, हम अपने दल में दो भाग करेंगे। आमने-सामने होकर स्पर्धा से खेलेंगे।।18।।

कृष्ण राम को मारने के लिए प्रयत्न करने वाला लम्बासुर को किस खेल में मारने का अवसर मिलता है यह विचार सारे खेलो के नियमो को जानने वाले श्री कृष्ण ठीक तरह से जानते थे।

गोपालक श्री कृष्ण की बातों को मानते हुए अपने में दो भाग किए। एक भाग के प्रमुख बलराम बने तो दूसरे भाग का प्रमुख श्री कृष्ण बने।।19।।

इन दो विभागों में वे अनेक तरह के खेल खेले। खेल के अन्त में जो हारता है उसे जीतने वाले को अपने कन्धे के ऊपर बैठा कर नियत दूर तक दौड़ना पड़ता था।।20।।

इस प्रकार किसी के कन्धे पर बैठते हुए, किसी को अपने कन्धे पर बैठाते हुए वहाँ खेल चलता रहा। गायें चरती रही, ऐसे होते समय श्री कृष्ण बलराम को उठा कर भाण्डीर नाम के वट वृक्ष के पास गये।।21।।

बलराम के पक्ष में श्री दाम, वृषभ थे, विरुद्ध पक्ष में श्री कृष्ण इत्यादि थे। खेल में जो हारे वे जीतने वाले को अपने कन्धे के ऊपर बैठाकर भागने लगे।।22।।

श्री दाम हार कर भगवान श्री कृष्ण को अपने कन्धे के ऊपर बैठाया। भद्र से पराजित होकर वृषभ को उठाया, प्रलम्बासुर हार कर बलराम को उठाया।।23।।

श्री कृष्ण-पक्ष में प्रलम्ब और भद्रसेन हार गये। बलराम के पक्ष में वृषभ और बलराम को छोड़ कर सारे हार गये। श्री राम कृष्ण के साथ स्पर्धा करते हुए हार गया। भद्रसेन वृषभ से हारा। प्रलम्बासुर बलराम से हारा। विष्णु पुराण और हरिवंश इस खेल का नाम हरिणाक्रीड़ ऐसा नाम रखा है। दो दो स्पर्धी जो पहले भाण्डीर वृक्ष को हिरण के समान कूदते हुए पहले छूते हैं, वे जीतते हैं।

यहाँ हरिवंश कहता है कि पराजित श्री दाम श्री कृष्ण को उठाया। विष्णु, ब्रह्मा, वायु और उनकी पत्नियाँ अनिरुक्त देवताएँ हैं। उनकी महिमा को जहाँ धक्का पहुँचता है वहाँ का अर्थ बदल कर बोलना पड़ेगा। यह ब्रह्म तर्क की बात हैं।

श्री कृष्ण को उठा नही सकता था इसके लिए प्रलम्ब बलराम को उठाया। हार को निमित्त करते हुए वह बलराम को अपने ऊपर उठाकर सबसे तेज दौड़ते हुए भाण्डीर वृक्ष की दिशा में दौड़ा। वृक्ष के नीचे बलराम को खेल के नियमानुसार उतारना था। किन्तु वह दैत्य उनको लेकर आगे बढ़ा।।24।।

बलराम अपने वजन को बढ़ाते रहे। पहाड़ के समान वजन के कारण उस असुर का वेग कम होता रहा। तब वह असुर अपना निज रूप धारण करते हुए बलराम को आकाश में लेकर चला।।25।।

बलराम का वर्ण चन्द्र के समान सफेद (शुभ्र) है। काला बादल के समान शरीर वाला राक्षस बलराम को अपने ऊपर लेकर आकाश में चल रहा है। यह दृश्य मेघ के बीच दिखने वाला चन्द्र के समान है।

अब प्रलम्बासुर बलराम को लेकर जमीन पर दौड़ना छोड़कर आकाश में उड़ रहा है। उसकी आँख आग के समान प्रज्वलित हैं। भय करने वाले उसकी भौह, बाहर दिखने वाले दाँत, खड़ा हुआ लाल लाल

बाल, हाथ में कड़ा किरीट और और कुंडल धारण किया हुआ अद्भुत दिखने वाले राक्षस के शरीर को देख कर बलराम को थोड़ा सा भय हो गया।।26।।

बाद में श्री कृष्ण की कृपा से बलराम को अपनी ताकत की याद आयी। भय चला गया। शत्रु उनको आकाश में ऊपर-ऊपर लेकर चल रहा है इसको देख कर आक्रोश से उसके सिर के ऊपर अपने मूठी से इन्द्र के वज्रायुद्ध के समान आघात किए।।27।।

पहाड़ के समान उनके भार को प्रलम्भ लेकर जा रहा है और अपना भयंकर रूप धारण किया है। इसको देखकर बलराम में थोड़ा सा भय उत्पन्न हुआ। कृष्णा, राक्षस मुझको लेकर जा रहा हैं, ऐसे जोर से चिल्लाए। तुम्हारे में मेरे शुक्ल केश रूप का आवेश है। उसकी ताकत को याद करो, भय को छोड़ो। श्री कृष्ण की इन बातों को सुनकर बलराम की ताकत बढ़ गयी और एक ही आघात से उसको मार दिया। यह विष्णु पुराण का वाक्य है।

बलराम के मूठी के प्रहार से राक्षस का सिर फूट कर दो टुकड़ा हो गया। मुह से रक्त बहने लगा। राक्षस वज्रायुध की मार खाकर गिरने वाला पहाड़ जैसे जमीन पर गिर गया।।28।।

बलशाली बलराम से प्रलम्बासुर मर गया इसको देखकर गोपालक आश्चर्यचकित हो गये। बलराम का कीर्ति गान करने लगे।।29।।

गोपालकों ने अपने प्रेम परवस हृदय से मर कर जीने वाले जैसे पुनः मिले हुए बलराम को आलिंगन करते हुए आशीर्वाद दिए। उसके बल की गाथा गाये।।30।।

पापी प्रलम्ब को मरा हुआ देख कर देवताओं ने राम कृष्ण के ऊपर फूलों की वर्षा की तथा बलराम का संकीर्तन किए।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सत्रहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - गोपालक इस प्रकार खेल में मग्न थे। उस समय गाये चरते चरते उनसे बहुत दूर जंगल में चली गयी।।1।।

बकरी, गाय, भैस इत्यादि पशुगण एक जंगल से दूसरे जंगल में घास को खाते हुए, पानी को पीते हुए घनघोर जंगल में प्रवेश किए।।2।।

कृष्ण राम और गोपाल अपने खेल को समाप्त कर देखते हैं तो गायों का नाम निशान भी वहाँ नही है। वे उनको ढूढ़ने लगे। खेल में मग्न होकर गाय के बारे में ध्यान न देने से पछताने लगे। बहुत ढूढ़ने के बाद भी गायें नही मिले।।3।।

गायों के पद चिन्ह और उनके द्वारा खाकर छोड़े हुए अथवा मुह से गिरे हुए घास को देखते हुए उसी से गायों के गये हुए रास्ता को पहचाने। उसी को पकड़ कर वे आगे बढ़े। उनको लगता था कि उनका प्राण ही चला गया है।।4।।

घनघोर जंगल में बहुत ढूढ़ने के बाद भी गाय को न पाते हुए प्यासे थके हुए गोपालक रोते रोते कृष्ण के पास आए।।5।।

श्री कृष्ण मुँह के सामने हाथ रखते हुए अपने मेघ गंभीर स्वर से गायों को एक-एक करके नाम से पुकारे। अपने नाम को श्री कृष्ण के मुँह से सुनकर वे गायें प्रति आवाज दीं।।6।।

इसके बीच में वहाँ जंगली आग (वडवानल) चारों ओर घिर कर जलने लगी। हवा जोर से चल रही थी। बढ़ती हुयी आग वन्य जन्तु और वृक्षों को जलाते हुए आगे बढ़ रही थी।।7।।

चारों ओर से अपनी तरफ घिर रही आग को देखकर गोपालक और गायें भयभीत होकर कृष्ण राम की शरण में आए। मृत्यु भय वाले हरि की प्रार्थना करते हैं।।8।।

हे कृष्ण, हे महावीर कृष्ण, हे बलराम हे अमित पराक्रमी बलराम, हम लोग आग में जल रहे हैं।

आपकी शरण में हैं। रक्षा करें।।9।।

हे कृष्ण! हम आपके बन्धु हैं। हमारा नाश न हो, बन्धु की रक्षा करने वाला ही धर्म की रक्षा कर सकता है। हम आपके भक्त हैं। आपही हमारे रक्षक हैं।।10।।

श्री शुकदेव कहते हैं - अपने बन्धुओं की दीन वाणी को सुनते हुए भगवान श्री कृष्ण कहे - डरो मत। अपनी आँखों को बन्द कर लीजिए।।11।।

सारे लोगों के श्री कृष्ण की आज्ञा के अनुसार आँख बन्द करने के बाद योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण उस भयावह वडवानल को मुँह से खा लिया।।12।।

गोपालक आँख खोल कर देखते हैं कि आग गायब हो गयी है। वे अपने गायों के साथ प्रथमत: जहाँ से चले थे उसी वट वृक्ष के नीचे खड़े हैं। इसको देखकर वे सब आश्चर्य चकित हो गये।।13।।

भगवान श्री कृष्ण ने उन सबकी बडवानल से रक्षा की। खोयी हुइ गायों को वापस बुलाए। इन सब को देखते हुए इसको भगवान के योग सामर्थ और श्री कृष्ण साक्षात श्री हरि हैं इसको अवगत किए।।14।।

शाम को राम कृष्ण गायों को वापस लाते हुए, बंशी को बजाते हुए आगे आगे चले। उनके पीछे उनका गुणगान करते हुए गोपालक उनका पीछा करते रहे।।15।।

गोविन्द का दर्शन गोपियों के लिए परमानन्दकारक बना। उनके बिना उनको एक एक छण सौ युग के समान लगता था।।16।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - राम कृष्ण के उस दिन किया हुआ प्रलम्बासुर का वध और आग से बचाने की अद्भुत लीला को गोपालक अपनी पत्नियों के सामने विस्तार रूप से वर्णन करते हुए कहे। बड़े लोगों को भी बताए।।17।।

बड़े गोपालक इस गाथा को सुनकर विस्मित हो गये। उनके मन की धारणा दृढ़ हो गयी कि राम और कृष्ण गोकुल में अवतार लिए हुए देवोत्तम हैं।।18।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में सत्ररहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अठ्ठारहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इसके बाद वर्षा काल आरम्भ हुआ। इस समय सारे जन्तु जन्म लेते हैं। सूर्य चन्द्र के प्रभाव लय बार बार देखने को मिलते हैं। आकाश में मेघ गर्जन होने लगी।।1।।

गुणपूर्ण परब्रह्म, पूर्ण गुण वाली लक्ष्मी, ब्रह्मादि गुण बद्ध जीव भी बहुत आवाज करने वाले दुर्मतों से ढक जाते हैं। वेदों का अर्थ स्पष्ट नही होता। ऐसे ही आकाश में बिजली और आवाज से युक्त घनघोर काले बादल सूर्य चन्द्र और नक्षत्र आदि को ढ़क लिए। इससे सारा अस्पष्ट हो गया।।2।।

सूर्य आठ महीने तक अपनी किरणों से भूमि में रहने वाली जल सम्पदा को खींच लेता है। अब वर्षा काल में उसको वापस जमीन के ऊपर वर्षा करने लगता है।।3।।

दयालु तेजस्वी महात्मा लोग अपने को होने वालीं आपदाओं को न देखते हुए दीन लोगों की रक्षा के लिए अपने जीवन को समर्पित करते हैं। वैसे ही झंझावात से टकराते हुए बिजली से भरा हुआ मेघ अपने सर्वस्व जल को प्यासी भूमि को समर्पित करते हैं।।4।।

इष्टार्थ सिद्धि के लिए तप करने वाले साधु लोगों का शरीर तप के कारण कृश होता है, किन्तु तप के फल को पाने के तुरन्त बाद उनकी शरीर हृष्टपुष्ट होता है। वैसे ही गर्मी में सूखी हुयी जमीन वर्षा से सन्तुष्ट होकर हरी भरी दिखने लगती है।।5।।

कलियुग में पापाचार से वेद विरुद्ध मत प्रबल होते हैं, वैदिक मत अपने बल को खो देते हैं। वैसे ही वर्षा काल में सन्ध्या समय में काले बादलों के कारण अन्धेरा छा जाता है। जुगुनू चमकने लगते हैं, नक्षत्र छिप जाते हैं।।6।।

मौन तोड़ कर आदेश देने वाले गुरु की आज्ञा सुनकर ब्रह्मचारी जैसे वेदाध्ययन करने लगते हैं, वैसे ही अब तक चुप रहे मेढ़क मेघ की आवाज को सुनकर आवाज करने लगते हैं।।7।।

इन्द्रिय निग्रह न रहने वाले दरिद्र को यदि धन मिल गया तो वह बिगड़ जाता है, वैसे ही गर्मी के दिनों

में सूखी हुआ छोटी नदियाँ वर्षा के कारण अपने तट को पार कर जहाँ चाहे वहाँ वहने लगती हैं।।8।।

मनुष्य को अमीरी आये तो वह काला तमोगुण, लाल रजोगुण और सफेद सत्वगुण के अधीन होता है वैसे ही वर्षा के कारण जमीन सस्यों से शाम, फूलों से लाल और कलियों से सफेद रंग पायी।।9।।

पुण्य क्षेत्र को गये हुए ज्ञानी लोग पुण्य पाते हैं वहीं अज्ञानी अपने दुष्कर्म के कारण अनर्थ पाते हैं। वैसे ही जमीन में खेती करने वाले अच्छे लोगों को सस्य सम्पत्ति मिलती है। ठीक तरह से खेती को न जानने वाला कृषि से हानि पाता है, उससे उसको दु:ख होता है।।10।।

भगवान की सेवा करने से मुक्ति में जीव सुन्दर और चिन्मय रूप को धारण करता है वैसे ही जल-चर और भूचर प्राणी नया जल को पाकर नव नवीन सुन्दर रूप को पाते हैं।।11।।

योगाभ्यास से पक्व न हुआ योगी का मन विषय के सम्पर्क से कामनाओं से भर कर क्षोभ पाता है वैसे ही तूफान से हिलने वाले समुद्र में नदियों से अधिक पानी आने से उथल पुथल होता रहता है।।12।।

सदाकाल हरि-ध्यान करने वाला व्यसन और आघात से दु:ख नही पाता वैसे ही मुसलधार वर्षा होते हुए भी पहाड़ किञ्चित भी विचलित नही होता।।13।।

पन्द्रह दिन में क्यों न हो एक बार पूर्ण रीति से वेद का पाठ करना चाहिए। इसी के लिए वेद को पक्ष ग्रन्थ बोलते हैं। बहुत समय तक पाठ करना छोड़ दिए तो पाठ संदिग्ध होता है। वैसे ही लोगों के आना जाना बन्द होने के कारण रास्ते में घास फैलती है और उनको (मार्ग को) पहचानना संदिग्ध होता है।।14।।

चंचल प्यार वाली कामिनी स्त्रियाँ गुणवान पुरुष के साथ बहुत दिन तक नही रहतीं वैसे ही चंचल रहने वाला बिजली लोकोप करने वाले मेघों में स्थिर रूप से नही रहती।।15।।

इस त्रिगुणात्मक प्रपंच में त्रिगुण रहित भगवान शोभायमान हैं वैसे ही गुणयुक्त आकाश में गुण रहित (धनुष को बाधने वाली रस्सी को गुण कहते हैं।) इन्द्र धनुष दिखता है।।16।।

जीव अपने अनुभव से प्रकाश दिखने के अहंकार से आवृत्त होकर अपने निज स्वरूप को नही पहचानता है वैसे ही चन्द्र अपने प्रकाश से दिखने वाले मेघ से आवृत्त होकर अदृश्य हो जाता है।।17।।

घर के झंझटो से आहत होकर हतास हो गये सज्जन लोग साधुजन के संग से आनन्द पाते हैं। उनकी प्रशंसा करते हैं। वैसे ही गर्मी के दिन में त्रस्त हुए मोर मेघ के दर्शन से सन्तोष पाते हैं और नाचने लगते हैं।।18।।

तप से थके हुए और दुबले हुए लोग पायी हुयी वस्तु मिलने के बाद उन भोग वस्तुओं के भार से जैसे झुक जाते हैं वैसे वर्षा काल में पानी पिए हुए वृक्ष फल फूल से भर कर झुक जाते हैं।।19।।

कामादि विषय से हुआ श्रम से इन्द्रिय दौर्बल्य को (जब कुटुम्बासक्त थे) तब पाए हुए तपस्वी उनके दुःख से झुकते हुए तप करने के बाद इन्द्रिय निग्रह को पाकर भगवद् दर्शन से जैसे नम्र होते हैं वैसे वृक्ष भी वर्षा ऋतु में जल पाकर फल पुष्प से भरित हो गये हैं।

घर के हजार कामों से त्रस्त हुए संसारी लोग विषयासक्ति को छोड़ नही सकने के कारण घर छोड़कर जैसे नही जाते वैसे ही वर्षा होते समय सरोवर के तट में जल वहते रहे तो भी सारस पक्षी वहीं रहते हैं (सारस पक्षी बहते जल में वास नही करते)।।20।।

कलियुग में बौद्ध साक्त आदि वादों से वेद मार्ग जैसे नाश हुआ वैसे वर्षा के प्रवाह से बांध और सेतु भी टूट जाते हैं।।21।।

ब्राह्मणों की प्रेरणा से राजा अपनी प्रजा को अमृत (वे जो चाहते हैं उसको) देते हैं। वैसे ही वर्षा काल में हवा से प्रेरित बादल प्राणियों को अमृत समान जल देते हैं।।22।।

वर्षा काल में इस प्रकार खूब पानी बरसने से खजूर, जामुन और अमरूद से वृन्दावन की शोभा बढ़ी वहाँ विहार करने के लिए गाय-गोपालों के साथ बलराम कृष्ण आ गये।।23।।

थन में भरा हुआ दूध के कारण गाय मन्द गति से चली। श्री कृष्ण जिसकी नाम प्यार से पुकारे तो वह गाय अपने थन से दूध बहाते हुए दौड़कर आती थी।।24।।

वन्दावन में वास करने वाले मृग पक्षी आनन्द से कूजते थे। वृक्षों से शहद बहता था। श्री कृष्ण के गम्भीर आवाज को पर्वत गुहाएँ प्रति ध्वनि दिए। गोपालक इसको देखकर हर्षित हुए।।25।।

कभी-कभी पानी बरसते समय श्री कृष्ण वृक्षों के कोटर में अथवा पहाड़ की गुफाओं में बैठकर कन्द मूल फल को खाते हुए क्रीड़ा करते थे।।26।।

कभी-कभी पानी के पास वाले बड़े पत्थर के ऊपर बलराम और अन्य साथियों के साथ बैठकर घर से लाए हुए दही भात को खाते थे।।27।।

बैल, बछड़ा और थन के भार से थकी हुयी गायें घास खाने के बाद उसी के ऊपर आँख को मूदकर सोते हैं। अपने शक्ति से उत्तेजित वर्षा के कारण यह अरण्य सम्पदा सारे प्राणियों को सन्तोष देने वाली बन गयी है। भगवान श्री कृष्ण इसकी प्रशंसा करते हैं।।28,29।।

इस प्रकार राम कृष्ण के व्रज में वास करते समय शरत्काल का आरम्भ हुआ। आकाश मेघ के बिना निरभ्र हो गया। जल स्वच्छ हो गया। स्वच्छ जल के ऊपर से बहने वाली हवा सुख कारक लगने लगा।।30।।

योगभ्रष्ट लोगों का चित्त पुनः योग का अभ्यास करने से जैसे स्वभाविक रीति से निर्मलता को पाता

है वैसे वर्षा में मटमैला पानी शरत काल में अपनी स्वच्छता को पाकर कमलों की उत्पत्ति के लिए सहजता को पाया।।31।।

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी नाम के चारों आश्रमों वाले को श्री कृष्ण नाम जैसे अशुभ का निवारण करता है वैसे शरत काल का आकाश अपने काले रंग और जमीन का कीचड़पन और पानी मटमैला को खो दिया।।32।।

बाल-बच्चे, घर-बार के बारे में अपनी सारी कामनाओं को छोड़े हुए मुनि जन भगवद्भक्त बनकर रागादि दोषों से मुक्त होकर शोभते हैं। वैसे आकाश में मेघ अपने सारे जल को खाली करते हुए सफेद रंग पाकर शोभायमान हुए।।33।।

ज्ञानी लोग तत्व ज्ञानामृत को योग्य काल में केवल योग्यों को उपदेश देते हैं, अयोग्यों को नही वैसे ही पर्वत पहाड़ वर्षा काल में जल प्रवाह को सारे जगह में छोड़ते हैं। किन्तु शरत्काल में केवल नदीपात्र में छोड़ते हैं, अन्य स्थानों में नही।।34।।

संसार सुखभोग में आसक्त मूढ़ लोग प्रति दिन अपना आयुस्य व्यर्थ जाता है इसको नही समझते। वैसे ही गहरा न रहने वाले जलाशय में रहने वाले जलचर प्राणी जलाशय का पानी प्रतिदिन घट रहा है इसको नही जानते।।35।।

दरिद्र और दीन होते हुए भी इन्द्रिय निग्रह न रखने वाला गृहस्थ संसार में दु:ख का अनुभव करता है वैसे गहरा पानी न होने वाले सरोवर में वास करने वाले जलचर शरत्काल के सूर्य के ताप का अनुभव करते हैं।।36।।

मनोबल वाले लोग इस शरीर आदि जड़ पदार्थों में मैं और मेरा का अभिमान त्यागने से धीर कहलाते हैं। वैसे ही शरत्काल की जमीन कीचड़ से छुटकारा पाकर सस्य लताओं से सुन्दर बनती है।।37।।

विषयासक्ति को छोड़ा हुआ मुनि लौकिक कार्यों से निवृत्त होता है, वैसे शरत्काल में समुद्र निश्चल रहता है आवाज न करते हुए शान्त रहता है।।38।।

योगी जन इन्द्रिय निग्रह करते हुए उनकी सहायता से भगवान के ध्यान को पाते हैं। वैसे कृषक लोग नदी को बड़ा बांध बांधते हुए प्रवाह को रोंक कर अपने खेत को पानी लेते हैं।।39।।

देह के कारण होने वाले सन्ताप को तत्व ज्ञान मिटा देता है वैसे ही गोकुल की स्त्रियों के विरह-ताप को मुकुन्द मिटाते हैं। वैसे ही शरत्काल के सूर्य की प्रखर किरणों से दिन में होने वाले ताप को रात में चन्द्र निवारण करता है।।40।।

सत्वगुण भरित मन से वेदवेद्य भगवान का साक्षात्कार मिलता है। वैसे मेघरहित शरत्काल का आकाश नक्षत्रों से शोभायमान हुआ।।41।।

यदुपति श्री कृष्ण यादवों के साथ इस भूमि में जैसे शोभायमान हैं वैसे शरत्काल के आकाश में पूर्ण बिम्ब चन्द पूर्णमासी के दिन नक्षत्रों के साथ शोभा देते हैं।।42।।

फूलों के बगीचों के ऊपर से बहने वाली वायु अपने समशीतोष्ण हवा से लोगों का सन्ताप निवारता हैं। किन्तु गोपियों के मन का ताप इससे नही गया क्योंकि श्री कृष्ण पहले ही उनके मन को चुराए हैं।।43।।

जैसे बैल की सहायता से कृषक लोग बीज बोकर फल पाते हैं वैसे ही गाय, मृग, पक्षी, नारी, ॠतुमती होकर शरत्काल में अपने पुरुषों के संग से गर्भ धारण किए।।44।।

हे राजा परीक्षित! चोरों के अतिरिक्त अन्य लोग राजा से जैसे भय रहित रहते हैं। वैसे रात के कमल को छोड़कर सारे कमल सूर्य से विकसित हुए।।45।।

भगवान के स्वरूप और आवेश के अवतार रूप श्री कृष्ण और बलराम से जैसे भूमि की शोभा बढ़ गयी वैसे शहर और गाँवों में रहने वाले गृहस्थ आश्रमी लोगों द्वारा करने वाले इन्द्र देवता याग और महोत्सवों से भूमि पक्व सस्य सम्पद्भरित हो गयी।।46।।

जीवन्मुक्त हुए ज्ञानी लोग प्रारब्ध कटते समय आविर्भूत स्वरूप देहों को जैसे पाते हैं, वैसे वर्षा के कारण घर से बाहर न जाने वाले व्यापारी लोग शरत्काल में घर से बाहर जाकर पैसा कमाने लगे।।47।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में अठ्ठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

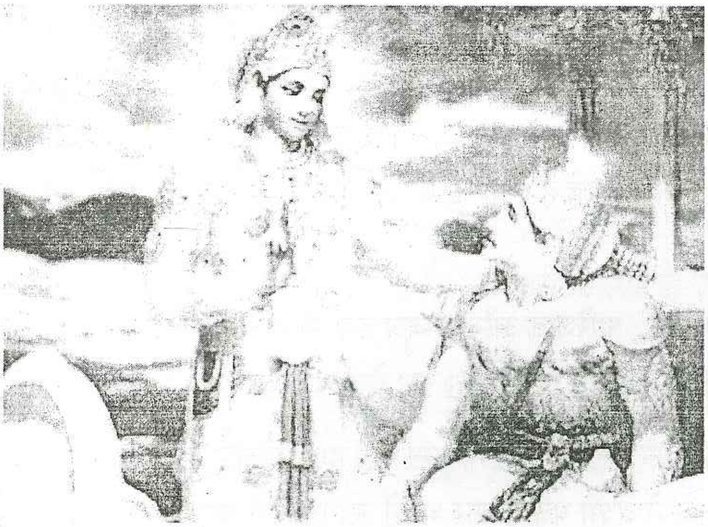

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - उन्नीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - इस प्रकार स्वच्छ जल वाले कमल के फूलों से भरे हुए सरोवरों के ऊपर से बहने वाली हवा से मन को आनन्द देने वाली वृन्दावन में गाय और गोपालकों के साथ श्री कृष्ण प्रवेश किए।।1।।

वृन्दावन सरोवर, नदी, पहाड़, भौंरे और पक्षियों के गुंजन से भरा हुआ था। सारे वृक्ष फल फूलों से शोभित थे। ऐसे वन में श्री कृष्ण गोपालकों के साथ बलराम से मिलकर गायों को चराते हुए अपने बंशी को बजाने लगे।।2।।

गोपियों को प्रणयोद्दीपन करने वाली उस वेणुध्वनि को सुनकर समीप रहने वाली गोपियाँ दूर में रहने वाली अपनी सहेलियों को उसका वर्णन करने लगीं।।3।।

हे राजा! श्री कृष्ण की लीलाओं को याद करती हुयी वे स्त्रियाँ उस वेणु गान का वर्णन करती रहीं तो भी प्रणय के आवेग से मन विक्षिप्त होने के कारण वे वर्णन करने में असमर्थ रहीं।।4।।

नाट्य करने वाले नट के आकृति वाले श्री कृष्ण गोपालों के साथ वृन्दावन में प्रवेश किए हैं। उनके सिर पर मोर की पंखी, कानों में फूल सुशोभित है। सोने के समान उज्वल रंग वाले पीताम्बर को धारण किए हैं। सिर से लेकर पाँव तक वैजयन्ती माला धारण किए हैं। अपने बंशी के छेदों में अधरामृत को भर रहे हैं। देवता लोग उनका गुण गान कर रहे हैं। श्री कृष्ण के वृन्दावन में अंकित पद चिह्न ही आँखों को आनन्द देता है।।5।।

तुलसी, कुन्द, मन्दार, पारिजात और अम्बुज इन पाँच फूलों से बनायी गयी माला वैजयन्ती कहलाती है। बंशी के रंध्रों में अधरामृत भरते हैं यह उत्प्रेक्षा है। रमा देवी यहाँ स्वयं बंशी बनकर उस अधरामृत को पीती हैं।

सिर के ऊपर मोर की पंखी, कान में फूल रखे हुए भगवान गोपालको के वेष में अपने सिर को दाहिने ओर झुकाते हुए बाएँ हाथ में बंशी पकड़ कर भौवों को हिलाते हुए अंगुलियों से बंशी की आवाज करते हुए

गोपालको से गीत गवाते हुए श्री कृष्ण वृन्दावन को प्रवेश किए हैं। इससे समस्त प्राणियों को आनन्द मिला है।।6।।

हे राजा! सारे जीव कुल के मन को आकर्षण करने वाले श्रीकृष्ण के वेणु गान को सुनकर गोकुल में रहने वाला नारी लोग अपने में उसका वर्णन करते हुए आनन्द पाता हैं।।7।।

श्री कृष्ण के मुखारबिन्द से बहता हुआ अधर रस को और गान सुधा को वेणु में रहकर श्री देवी पीकर आनन्द पायीं अन्य आभरणों में , वृक्षों में, कुश में, रहकर अन्यान्य देवदेवता गान रस का अनुभव किए यह तंत्र भागवत की वाक्य हैं।

गोपिकाएँ आपस में कहती हैं - हे सखी! नन्द गोप के पुत्र राम कृष्ण शाम को गायों को लेकर वापस आते समय अपने मित्रों के साथ मिलकर वेणुगान करते तीरछी नजर से देखते हैं। उस सुन्दर दृश्य को देखने वाली आँखें ही सही रीति से आँखें हैं। ऐसे आँख वाले ही आँख से सही फल को पाते हैं। इस भूमि में श्री कृष्ण के उस रूप को देखने के बिना अन्य फल कुछ नही है।।8।।

राम कृष्ण आम की नई कलियों से, मोर के पंखों से, कमल की मालाओं से भूसित होकर बहुत सुन्दर लगते हैं। उनके पीछे गोपालक गाना गाते आते हैं। ये सारे रंग मंडप में अभिनय करने वाले श्रेष्ठ नट के समान बहुत शोभायमान लगते है।।9।।

ये सभी दामोदर के श्रेष्ठ वेणु गान से, उनके अधरामृत से मिलकर और रस पूर्ण बनते हैं। उसके उस अमृत को केवल वह वंशी ही पी लेती है। वह कितनी भाग्यशाली है? कितना पूण्य किया है। उसके पी कर बचने वाली अमृत रस को रास्ते में मिलने वाले वृक्ष, कुश आदि सस्य पीकर रोमांचित होते हुए आनन्द वाष्प को बहाते हैं।।10।।

यह ब्रज मण्डल इनके कारण भू मण्डल को कीर्ति देने वाली है। यह भूमि प्रतिदिन देवकी पुत्र के पादस्पर्श से शोभा पाई है। वहाँ गोविन्द के वेणु गान का अनुसरण करते हुए मोर नाचते हैं, अन्य पशु पक्षी प्राणी अलग अलग व्राद्यों का अनुसरण करते हैं, अनुकरण करते हैं।।11।।

बिल्कुल ज्ञान रहित स्त्री मृग अपने पुरुषों के साथ खड़े होकर सुन्दर वेषधारी नन्द कुमार के सुन्दर रूप को अपने आँखों से पीते हैं। कानों से वेणु गान को पीते हैं। प्यार भरी आँखो से उनकी आराधना बार बार करते हुए धन्य होते हैं।।12।।

स्त्रियों की आँखों के आनन्द को बढ़ाने वाले श्री कृष्ण की वंशी के मधुर गान को सुनकर विमान में चलने वाली स्त्री देवता भी रति बाधा से अधीर हो गये, मोहित हो गये। उनके केशपाश खुल गये, उनसे

फूल बिखर गये, साड़ी ढीली हो गयी। वे ही धन्य हैं।।।3।।

श्री कृष्ण के मुख से बजने वाली बंशी के गान सुधा को खड़े कान सुनने वाली गाये अपने कान से वह अमृत पी लिए।उनके थन से बहने वाले दूध को श्री कृष्ण के गान सुधा में भूल कर बछड़े पूरा पी नही सके उनके मुह में दूध नही रहा। माँ के दूध से भी बढ़ कर उनको श्री कृष्ण का मधुर गान ही ज्यादा इष्ट रहा। यहाँ के पक्षी भी ऋषि मुनि बन गये हैं। वे सदा काल श्री कृष्ण के बंशी गान को सुनते हुए खाना पीना छोड़ दिए हैं।।।5।।

श्री कृष्ण के वेणु गान को सुनकर नदियाँ मन्मथ बाण से आहत होकर मंद गति से बह रही हैं। नदी में भवर उत्पन्न होकर नदी का जल आगे नही जाना चाहता। फिर कर वापस आना चाहते हैं। नदियों ने अपने तरंगों को हाथ के समान ऊपर उठाते हुए श्री कृष्ण का आलिगंन करने में अपना उत्साह प्रदर्शित करती हैं। अपने में विकसित हुए कमलों को उनके पाद में समर्पित करना चाहते हैं। इसी इच्छा से उनका पाद स्पर्श करती हैं।।।6।।

बलराम और गोपालकों के साथ श्री कृष्ण धूप में गाय चराते समय अपनी बंशी बजाते चले तो उसके मोह से मेघ भी प्रेम से रोमांचित होता है, अपने समान नील रंग वाला अपने समान लोक को शीतलता देने वाले श्री कृष्ण को अपना मित्र मानते हुए उनके गान से आकर्षित होकर उनके ऊपर पीछे पीछे चलने लगता है। उसके ऊपर बौछार करते हुए खुले हुए छत्त के समान उनके ऊपर फैलकर अपनी कृतज्ञता को समर्पित करता है।।।7।।

जंगल में रहने वाली पुलिंग स्त्रियाँ श्री कृष्ण के दर्शन मात्र से काम पीड़ित होती हैं क्योंकि उनकी प्रेयसियों के छाती को लगा हुआ लाल रंग श्री कृष्ण के पादों को लगा है। उनके पाद कमलों से रंगित होकर पुन: वह उनके छाती में शोभायमान होता है। वन में संचार करते समय वह रंग वहाँ घास में लगता है। उस कुकुंम को उठाकर वह पुलिंग स्त्री अपने माथा और स्तन को लगाकर अपने विरह ताप को शमन करते हैं, वे ही धन्य हैं।।।8।।

श्री कृष्ण गोपियों के साथ प्रणयरूप हैं। भू देवी भगवान की प्रेयसी हैं। पर्वत ही उनका स्तन है। श्री कृष्ण के पहाड़ पर चढ़ते-उतरते उनका पाद रज भूदेवी के स्तन को लेपित होता है। पुलिंग स्त्री उसको उठाती हैं।

यह गोवर्धन पर्वतराज भगवद्भक्तों को आदर्श बना है। देखो, सखी! रोज-रोज वह भगवान श्री कृष्ण के पाद स्पर्श से सुख पाता है। उनको और उनके साथ आए हुए गायों को पानी चारा देता है। विश्राम के लिए उसके पास गुफाएँ हैं। खाने पीने के लिए कन्द मूल फल हैं। उनको देखकर सदा काल उनका सत्कार करते रहता है, वह धन्य है।।।9।।

राम कृष्ण गायों को बाँधने की रस्सियों को अपने कन्धे के ऊपर रखते हुए गोपालकों के साथ जंगल- जंगल में मधुर गान गाते हुए, वेणु नाद करते हुए जंगम को (चलने वाले जीव को), स्थावर जैसे (न चलने वाले पत्थर जैसे) स्तब्ध करते हैं, स्थावर को जंगम जैसे रोमांचित करते हैं। यह क्या विचित्र है। भगवान सारे जीवियों को प्यार करते हैं। इसी कारण यह साध्य है।।20।।

इस प्रकार व्रज भूमि में विहार करते हुए भगवान की लीलाओं के बारे में व्रज स्त्रियाँ आपस में वर्णन करते हुए तन्मयता से आनन्द विभोर हो गये।।21।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक देव कहते हैं - हेमन्त ऋतु के पहले मास में नन्द गोकुल के कुमारियों ने (जिनकी शादी नही हुयी है) कुमारियाँ हविष्यान्न को लेते हुए कात्यायनी पूजाव्रत को करने लगीं।।1।।

हेमन्त के प्रथम मास को विजयध्वजी में कार्तिक कहा गया है। सत्य धर्मीय व्याख्या में मार्गशीर्ष माना है। दोनों सही है। **चान्द्रः शुक्लादि दर्शान्तः पौर्णमास्यान्तो मासो भूयान** महीने को अमावस्या के बाद अथवा पूर्णिमा के बाद आरम्भ करने की प्रथा है। दोनों को श्रुति स्मृति सही कहते हैं। अमावस्या के बाद मास प्रारम्भ होता है तो मार्ग शीर्ष पुष्य हेमन्त ऋतु होता है। इसमें मार्गशिर्ष मास पहला मास होता है। पूर्णिमा पक्ष में अश्वयुज कृष्ण प्रतिपदा से मार्ग शीर्ष पूर्णिमा पर्यन्त हेमन्त ऋतु बनता है। इसमें पहला मास अश्वयुज कृष्ण प्रतिपदा से कार्तिक पूर्णिमा तक एक महीना होता है। इसको कार्तिक मास मानते हैं। इस मास में कार्तिक स्नान करते हैं। कार्तिक मास के नियामक भगवान दामोदर मूर्ति हैं। कार्तिक स्नान के लिए इसी मास को ग्रहण करते हैं। इस मास में गोप लड़कियों ने व्रत का आचरण किए।

__कात्यायनी महामाये__ इस मंत्र से गोपियों ने लक्ष्मी की आराधना करते हुए श्री कृष्ण को अपना पति बनाने के लिए उनकी आराधना की। रमा के आवेश के बिना कोई स्त्री भगवान के अंग संग के लिए योग्य नही बनती। इसी कारण गोपियों ने अपने में रमा वेश होने के लिए रमादेवी के कात्यायनी रूप की आराधना की। पिछले जन्म में ये सारे अप्सरा स्त्री थीं। उपनयन से पहले ही हमको अंग संग दो यह प्रार्थना करते हुए वर पा चुकी थीं। श्री कृष्ण उपनयन के पूर्व उन गोपियों से गान्धर्व विधि से विवाह कर उनमें दस लाख बच्चों को पैदा करते हैं। गोपी वस्त्रापहार की कथा को इसके पीछे अर्थ कर लेना चाहिए। __कृष्णलीला__ मान कर व्यंग नही करना चाहिए। श्री कृष्ण लड़कियों से ज्यादा प्यार रखते हैं ऐसा अर्थ नही करना। गोपिका स्त्री भगवान के इष्ट भक्त हैं।

हे राजा! अरुणोदय के समय में कुमारियों ने जमुना जल में नहाते हुए तट पर बालू से देवी की मूर्ति रचा कर परिमल युक्त गन्ध, माला, धूप, दीप, नैवेद्य और छोटे मोटे पूजा द्रव्यों से प्रति दिन पूजा की।।2,3।।

यहाँ गोपिका बालिकाओं ने लक्ष्मी देवी को गन्ध चढ़ाते हुए श्री कृष्ण के आलिंगन से उनके शरीर की सुगन्ध

पाने की प्रार्थना किए। पुष्पों को चढ़ाते हुए श्री कृष्ण अपने सिर में फूल चढ़ाए यह कामना किए। धूप देकर अपने बालों को श्री कृष्ण धूप से सुखाने की कामना किए। दूध का भोग लगाते हुए अधरामृत माँगे। आभरण समर्पण से रति के बाद अपने को आभरण चढ़ाने की माँग रखे। ताम्बूल देकर श्री कृष्ण से खाया हुआ ताम्बूल लाभ को मागे, पूजा के बाद नमस्कार करते हुए, भगवान के साथ विहार करने में हुआ अपराधों को क्षमा करने को माँगे।

कात्यायनी महामाये महायोगिन्यधीश्वरी।

नन्द गोप सुतम देवी पतिं मे कुरु ते नमः।।

इसका अर्थ - हे देवी कात्यायनी, हे महामाये, हे महायोगिनी, हे जगदीश्वरी, नन्द गोप कुमार भगवान श्री कृष्ण को हमारा पति बनाइए। आप अनुग्रह करें, आपको नमस्कार, इस प्रकार मंत्र का ज़ाप करते हुए गोपिकाओं ने एक मास पर्यन्त पूजा की।।4,5।।

आज भी अनेक कुमारी कन्याएँ इस मंत्र का गुरूमुख से सीखकर उसे अनुष्ठान करके पति को पायी हैं।

सुबह ब्राह्म मूहूर्त में अपनी इच्छा से ही उठकर परस्पर हाथों को पकड़ते हुए यमुना जी को जाते समय रास्ते में उच्च स्वर में श्री कृष्ण का नाम संकीर्तन करते हुए जाते थे।।6।।

इस प्रकार श्री कृष्ण में मन को स्थिर रूप से रखते हुए नन्द गोप की बहू बनने की इच्छा से देवी की आराधना की।।7।।

इस श्लोक में भद्रकाली नाम से लक्ष्मी को पुकारा है। भद्र का अर्थ मंगलकर होता है। काली का अर्थ काले रंग वाली दुर्गा नाम की रमारूप हैं। वह विष्णुपत्नी नंद गोप की पत्नी होकर श्री कृष्ण की बहन बन कर अवतार लेकर विन्ध्याचल में निवास करते हुए शुम्भ निशुम्भ दानवों का नाश कर दीं।

एक बार कुमारियों ने प्रति दिन के अनुसार नदी को आकर पहने हुए कपडे को उतार कर पानी में उतरीं और श्री कृष्ण नाम का संकीर्तन करते हुए जल में आनन्द से विहार किए।।8।।

जल क्रीड़ा में उनको आनन्द लेना नही है। वह आनन्द श्री कृष्ण नाम के संकीर्तन से मिलने वाला आनन्द है। वैसे तो जाड़े के दिन में ब्राह्म मुहूर्त में जल और वायु दोनों ठण्ठक से शरीर को काटते हैं।

भगवान श्री कृष्ण योगेश्वर हैं, योगियों के भी स्वामी हैं। कुमारियों के मनोरथ को जानने वाले उनके व्रताचरण सफल हों इस उद्देश्य से वर देने के लिए अपने **साथियों** के साथ वहाँ आए।।9।।

श्री कृष्ण को और दूसरा उद्देश्य हुआ होता तो उनको साथियों को साथ लाने की कोई आवश्यकता नही थी। हमें और एक बात याद रखें किं कात्यायनी व्रत केवल छोटी बालिकाएँ करती हैं। जो बड़ी हो गयी हैं वह पूजा योग्य नही बनती।

श्री कृष्ण उनके कपड़े को उठाकर जल्दी से कदम्ब वृक्ष के ऊपर चढ़े। परिहास करते हुए ठहाका मारकर हँसे, साथी भी हँसे।।10।।

यहाँ कपड़े को उठाने मात्र से वह वस्त्रापहरण नही होता। किन्तु व्यवहार में इसका नाम **वस्त्रापहार** पड़ गया है। यह केवल सांकेतिक है। भगवान जीव के ऊपर छाए हुए अज्ञान के आवरक को योग्य समय में अपहार करते हैं। वस्तुत: अज्ञान से अपने कपड़े को उतार कर नग्न हुई लड़कियों को मर्यादा रक्षक भगवान कपड़े को वापस दे दिए। राघवेन्द्र स्वामी जी अपने **श्री कृष्ण चारित्र मंजरी** में इस बात को लिखते हैं।

हे बालिकाओं! आप लोग यदि अपने वस्त्र को चाहते हैं, तो स्वयं यहाँ तक आकर अपने-अपने कपड़े ले लो मै सत्य बोलतां हूँ, यह हँसी नही है। तुम लोग व्रताचार करती हुयी दुबली हो गयी हो। तुम्हारे साथ हम चेष्टा क्यों करें।।11।।

कठिन व्रत से गोपिकाएँ दुबली बनी थी। केवल दो बार भोजन करना, सूर्यास्त होने के बाद जल भी नही पीना। ब्राह्मी मुहूर्त में उठना, ठंडे जल में नहाना, सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय तक मौन व्रत करना। इन सारे कठिन नियमों को गोपिकाएँ पालन करती थीं। यह श्री राघवेन्द्र स्वामी जी ने अपने कृष्ण चारित्र मंजरी में लिखा है।

मैंने कभी झूठ नही कहा है, चाहे तो इन बालकों से पूछे। आप एक-एक करके आइए अथवा एक साथ आएँ और अपने-अपने कपड़े पाएँ।।12।।

भगवान के परिहास युक्त इस बात को सुनकर गोपियों को अपने तप का फल प्राप्त हुआ मानकर सन्तोष हुआ। वे आनन्द विभोर हो गयीं किन्तु लज्जा से परस्पर मुँह देखते हुए पानी से बाहर नहीं आयीं।।13।।

व्रत समाप्ति के समय में भगवान स्वयं आए हैं, व्रत फल दिया। इससे गोपियों को आनन्द हुआ और लड़के आए हैं। इसके लिए लज्जा से संकोच हुआ।

ऐसा कहते हुए श्री कृष्ण अपने परिहास की प्यार भरी बातों से उनके मन को मोह लिए। आकंठ ठण्डे पानी में खड़ी हुयी बालिकाएँ ठण्डक से काँपती हुयी बोलीं।।14।।

हे कृष्ण! तुम ऐसा अन्यज्ञय नही करना। हम जानते हैं कि तुम नन्द गोप के लाडले पुत्र हो, सारे गोकुल को प्यारे लगते हो। तुम हमारे लिए भी प्यारे हो, थोड़ा हमारी तरफ देखो, हम ठंडक से काँप रहे हैं।।15।।

नील वर्ण के हे सुन्दरांग, हम आपकी चरणदासी हैं। तुम जो कहते हो उसको हम पालते हैं। तुम धर्माधर्म को जानने वाले हो। कृपा करके हमारे कपड़े दे दो। हे महा बली! हम लड़कियाँ ठंडक से पीड़ित

होकर काँप रहे हैं। ये देखो, तुम कपड़े नही दिए तो हम राजा नन्द के पास फरियाद करेंगे।।।6।।

हे सुन्दरी! तुम हमारी दासी है तो, हम जो कहते हैं उसका पालन करना है। यहाँ आकर अपने कपड़े ले लो नही तो मैं देने वाला नही हूँ। राजा को बोलना है तो अभी बोलो। क्रोधित राजा क्या करता है (कपड़े के बिना तुम लोग राजा के पास कैसे जाते हो।।।17।।

तब सारी कन्यायें अपनी मर्यादा को अपने दोनों हाथों से छिपाते हुए ठंढी से लड़खड़ाते हुये जल से ऊपर आयीं।।।8।।

गोपियों के इस मुग्ध मनोहर चर्या को देखकर श्री कृष्ण कपड़े को वृक्ष के ऊपर रखते हुए प्रसन्न हो कर हंसमुख से बोले।।।9।।

तुम लोग व्रत ग्रहण किए हो, किन्तु नग्न होकर जल में उतरी हो। यह आपने देवताओ का अपचार किया है। इस पाप के परिहार के लिए दोनों हाथ सिर कर ऊपर रख के नमस्कार करें और अपने कपड़े ले लें।।20।।

व्रत करते समय नग्न होकर जल में उतरना गलत हो गया। इससे व्रत में लोप हुआ। इसको गोपियों ने समझ लिया। वे व्रत-पूर्ति को चाहने वाली सकल कर्म साक्षी भगवान को दोनों हाथ जोड़ कर नमन किए।।21।।

स्नानं दानं तथा होमं शयनं गमनं भुजिम्।

विवस्त्रो न प्रकुर्वीत कुर्वाणः पापकृद् भवेत्।

स्नान, दान, होम, शयन, गमन, भोजन वस्त्र रहित होकर नही करना चाहिए। किए तो पाप आता है, शास्त्र में इनके लिए निषेध हैं। निषिद्ध कर्म करना देवताओं में अपचार होता है। नदियों में देवताएँ अदृश्य होकर पवित्र स्नान करते रहते हैं। उनके सामने नग्न होकर स्नान करना अपचार होता है। साढ़े तीन करोड़ तीर्थाभिमानी देवताएँ पवित्र जल में सन्निहित रहते हैं। नग्न होकर जल में नहाने उतरे तो उतने देवताओं का अपचार होता है।

नाप्सु मूत्र पुरीषे कुर्यात्। न निष्ठीवेत्। न विवसनः स्नायात्। गुह्यो वा एषोऽग्निः। एतस्याग्नेरनति दाहाय। जल में अग्नि देव का विशेष सन्निधान रहने के कारण उसमें मल मूत्र विसर्जन नही करना, थूकना नही और नग्न होकर नहाना नही यह श्रुति वाक्य हैं। इससे देवता क्रोधित होते हैं। इससे जगन्माता रमा देवी का आवेश हमारे में नही होता, इससे भगवान हमारे से शादी नही करेगा । इस भय से लज्जा छोड़कर वे दोनों हाथों को जोड़ कर भगवान को नमस्कार किए। वे ठीक तरह से जानते थे कि हरि नमस्कार सारे पापों का प्रायश्चित है।

इस श्लोक के बाद कई ग्रन्थों में और तीन श्लोक आते हैं। वे प्रक्षिप्त लगते हैं। उनका अर्थ होता है कि

गोपिका ने एक हाथ से गुप्तांग को छिपा कर एक हाथ से नमन किए। इसके उत्तर रूप में श्री कृष्ण बताए कि एक हाथ से अच्युत को नमस्कार किए तो उस हाथ को काट डालना ही सही शिक्षा होता है। इसके लिए दोनों हाथ जोड़ कर नमन करे। गोपिकाएँ व्रत लोप के भय से नमस्कार कर रही हैं, इसके लिए उनका दोनों हाथों को जोड़ना स्वाभाविक है। आगे के श्लोक में भागवत ही कहता है कि भक्ति-भाव से वे दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किए। इसी कारण इन तीनों श्लोको का विवरण हमने नही दिया है।

लड़कियों ने भक्ति से हमारे कथनानुसार दोनों हाथ जोड़कर हमे नमस्कार किए, इससे सन्तुष्ट भगवान श्री कृष्ण उनको कपड़े दे दिए। वे परम दयालु हैं, उनकी भक्ति से वे सन्तुष्ट हैं।।22।।

गोपिकाओं के नग्न होकर जल विहार करते समय उनकी जानकारी के बिना श्री कृष्ण ने वस्त्रों को उठाकर बड़ी वंचना की है, वे लोग अन्य बालकों के सामने वस्त्र विहीन होकर जल से ऊपर आने के लिए विवश बनी हैं। खेल की गुड़ियाँ की तरह करते हुए लोगों के सामने हँसी उड़ायी है। ये सारे करने के बाद भी गोपिकाओं को श्री कृष्ण के ऊपर क्रोध नही आया। स्वयं जो व्रत ग्रहण किए थे, जिस व्रत से वे भगवान श्री कृष्ण को पति रूप में पाना चाहती थीं, वही प्रियकर साक्षात् आकर व्रत पूर्ति फल रूप अनुग्रह करते हुए अनायास ही उनका सहवास मिलने के कारण क्रोध के बदले में वे आनन्द को ही पायीं।।23।।

भगवान की पूजा, अर्चा, स्तोत्र, नमस्कार करते समय लज्जा को छोड़ना चाहिए। इस लज्जा को छुड़ाने के लिए भगवान श्री कृष्ण अपने साथियों को लाए हैं। जीव को जीवाच्छादक, परमाच्छादक नाम के दो आच्छादन कपड़े के रूप में आवृत्त रहते हैं। भगवान का अनुग्रह हुआ तो, उनकी आज्ञा को मानने वाले का दोनों आच्छादन भगवान अपहरण करते हैं। उस समय भगवान के समाने नग्न होने के लिए कोई लज्जा का अनुभव नही करता। भगवान से छिपा हुआ कुछ भी हमारे पास और हमारे शरीर में नहीं रहता है। लौकिक में संकोच लगने वाला यह नग्नत्व भगवान के स्मरण आने से उनका अनुग्रह होने से चला जाता है। बच्चों को लज्जा रहना स्वभाविक है। उसका निवारण करने के लिए ही भगवान अपने मित्रों को लाए थे। इस विचार को समझ गये तो हमे इस रूपक का अर्थ ठीक तरह से समझ में आता है।

अपने प्रियकर भगवान श्रीकृष्ण काअपने हाथ से छूकर प्रसाद रूप में दिए हुए कपड़े को पहनकर गोपियाँ मोहित होकर वहीं खड़ी रहीं। वे वहाँ से हिलने का विचार भी मन में नहीं लायीं। उनके मन को भगवान श्री हरि चुराये थे। अपने प्रियकर का दर्शन स्पर्शनादि अंग संग को पाने की इच्छा से लज्जा युक्त होकर उनको ही अपलक देखते हुये खड़ी रहीं। ।।24।।

अपने पादस्पर्श की इच्छा से व्रत करने वाली इन अबलाओं के मन के संकल्प को जानते हुये भगवान कहते हैं। ।।25।।

हे साध्वियाँ, मुझको पति रूप में पाने के लिए आप संकल्प करते हुए व्रत कर रही हैं, यह मैं जानता हूँ। मैं आपकी इच्छा को अनुमोदित करता हूँ। वह पूर्ण होना चाहिए।।26।।

मया अनुमोदितः इस शब्द से यहाँ दो अर्थ होते हैं। मैं अनुमोदन करता हूँ इसका अर्थ यह विचार रमा से पहले ही अनुमोदित है क्योंकि उन सारी गोपियों में रमा का अंश है। रमा अंश के बिना श्रीहरि और किसी का संपर्क नहीं करते।

मुझमें जो मन रखते हैं, उनकी लौकिक कामनाएँ भूना हुआ बीज के समान अंकुरित नहीं होतीं। वैसे ही आपके मन में सांसारिक भोगासक्ति उत्पन्न नहीं होगी।।27।।

हे बालिकाओं! आपके व्रत का फल दिया है। आप अब अपने घर को चले जाएँ। आगे आने वाले शरत काल के पूर्णमासी की रात्र में तुम हमारे साथ विहार कर सकेंगी। इसी के लिए अब आप व्रत कर रही हैं ना।।28।।

भगवान की आराधना करने हेतु देवता स्त्रियाँ उनके लिए प्रिय मधुर भक्ति से आराधना करने के लिए भगवान अवतार ले चुके हैं। यह भगवान की आज्ञा से ही हुआ है। इसका अनुसरण कोई कर नहीं सकता।

उस समय भगवान श्री कृष्ण सात वर्ष के हुए थे। दस बारह वर्ष की कन्याओंसे खेले हैं। उनमें एक लड़की भी बड़ी नही हुई थी। श्री कृष्ण अकेले नही आए थे। उनके साथ उनके बहुत से मित्र थे। भागवत, ब्रह्म सम्मत माना जाता है। भागवत के प्रति श्लोक में प्रति पद में वेद का अर्थ भरा हुआ है। भगवान की लीला को हमें वेद के गौरव से देखना है।

श्री शुकदेव जी कहते है- इस प्रकार कुमारियों ने अपनी इच्छा को पाकर भगवान की आज्ञा लेकर उनकी पाद कमल का ध्यान करते हुये मन न होते हुए भी अपने घर को चली गई। ।।29।।

एक दिन भगवान श्रीकृष्ण, बलराम और गोपालकों के साथ गाय को चराते हुए वृंदावन से बहुत दूर निकल गये। ।।30।।

गर्मी के कड़क धूप में खड़े होकर स्वयं धूप को सहते हुये लोगों को छतरी के रूप में छाया को देने वाले वृक्षों को देखते हुये श्रीकृष्ण अपने साथियों से कहते हैं। ।।31।।

हे स्तोककृष्ण, अंशु, श्रीदाम, सुबल, अर्जुन, विशाल, ऋषभ, तेजस्वी, देवप्रस्थ, वरूथप तुम सब लोग देखो कि ये वृक्ष अन्य लोगों के हित के लिए जीवित रहते हैं। स्वयं धूप, वर्षा और ठंडक को सहते हुए हमको उनसे रक्षा करते हैं। ।।32, 33।।

यह विप्रपत्नियाँ विप्रों का विरोध सहते हुए गोपालकों को अन्न देने वाली हैं। इस बात की पूर्व पीठिका में

भगवान श्रीकृष्ण इन बातों को कह रहे हैं।

सारे प्राणियों को आश्रय देने वाले इनका जीवन धन्य है। सज्जनों के पास आये हुये कोई याचक खाली हाथ से नही जाता। वैसे ही इन वृक्षों के पास कोई भी आये तो अपनी चाह को पाए बिना नहीं जाता।।34।।

पत्ती, फूल, फल, छाया, मूल, छाल, लकड़ी, सुगन्ध, गोंद, राख, अंकुर ये सारे वस्तु वृक्षों से लोगों को मिलते हैं। वृक्ष संकुल मानव जाति का उपकार करता रहता है।।35।।

अन्य वृक्षों के लिए ज्ञान नहीं रहता, किन्तु वृंदावन में रहने वाले वृक्ष देवताओं के अवतार होने के कारण वे ज्ञानपूर्वक उपकार करते हैं।

प्राण, धन संपद, बुद्धि और बातों से अन्य लोगों को उपकार करना ही देह लेकर जन्म लेने की सार्थकता है।।36।।

इस प्रकार कहते हुए श्रीकृष्ण नीचे झुका हुआ पत्ती, फूल, फलों से भरे हुए वृक्ष के बीच में से यमुना तट को चले गये। लगता था कि ये वृक्ष श्रीकृष्ण को गोपिकाओं की तरह छूना चाहते हैं।।37।।

राजा वहाँ गोपालकों ने मधुर शीतल, आरोग्यकर और स्वादु यमुना जल को यथेच्छ पिये और गायों को पिलायें।।38।।

यमुना तट पर हरे-भरे प्रदेश में गायों को चराते हुए गोपालकों को भूख लग गयी। वे श्रीकृष्ण के पास आकर भूख के बारे में बतलाए।।39।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

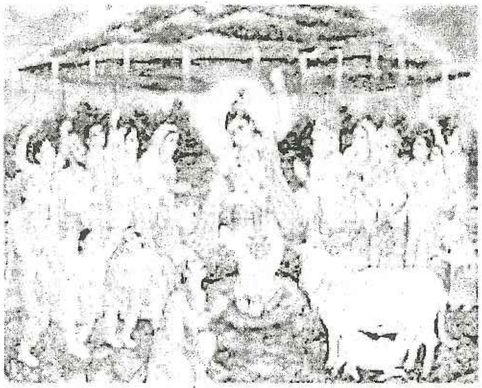

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - इक्कीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

गोपालक कहते हैं - हे महाबलशाली राम, दुष्ट संहारक कृष्ण, हमें बहुत भूख लगी है। इस भूख को मिटाने के लिए आप कुछ उपाय कीजिये।।1।।

गोपालकों की इन बातों को सुनकर श्रीकृष्ण कहते हैं। इस बहाने से भगवान को विप्र पत्नियों के ऊपर अनुग्रह करना है।।2।।

श्रीकृष्ण कहते हैं- यहाँ एक यज्ञ चल रहा है। वहाँ वेद जानने वाले ब्राह्मण स्वर्ग को पाने की इच्छा से आंगिरस नाम का एक सत्रयाग चला रहे है। तुम वहाँ जाओ।।3।।

वहाँ जाकर तुम लोग उन ब्राह्मणों से अन्न की याचना करो। वहाँ पूज्य बड़े भाई का और मेरा नाम बतलाइये। हम आपको भेजें है इस बात को उनको समझाइए।।4।।

क्या भगवान को भूख लगता है? भगवान यहाँ अन्न माँगते हैं। रामकृष्णावतार में भगवान जिद्द से हठ से माँ का दूध पिए हैं। प्रलयकाल में ब्रह्मा जी के सौ वर्ष तक सोने वाले भगवान को क्या भूख प्यास होता है। भगवान को जनम ही नही है तो भूख प्यास कहाँ का है यह केवल लीला मात्र है।

भगवान की इस आज्ञा को सुनकर वे गोपालक हाथ जोड़ते हुए नमस्कार करने के बाद ब्राह्मणों के पास चले गये। वहाँ वे उनको दंडवत नमस्कार करते हुए राम-कृष्ण के नाम से अन्न का याचन किये।।5।।

हे ब्राह्मण देवता! आपका कल्याण हो। सुनिये, हम गोपालक हैं। श्रीकृष्ण के और श्रीराम के आज्ञा पालन करने वाले हैं। इनके कथनानुसार आपके पास आये है। इसको आप जानिये।।6।।

राम कृष्ण यहाँ नजदीक में गाय चरा रहे हैं। वे बहुत भूखे हैं। आपसे अन्न पाना चाहते हैं। आप ब्राह्मण लोग धर्म में बहुत ज्ञान रखते हैं। आपको यदि अन्न दान में श्रद्धा है तो अन्न चाहने वाले उनको और हमको अन्न दान दीजिए।।7।।

यज्ञ में पशुबलि देते हैं। ऐसे यज्ञों में वपाहोम के पहले यज्ञदीक्षित यजमान के अन्न को स्वीकारना

नहीं। वैसे ही सौत्रामणि याग में दीक्षित के अन्न को ग्रहण करना निषिद्ध है। अन्य यागों में दीक्षित का अन्न ग्रहण करने से कोई दोष नहीं है।।8।।

यज्ञदीक्षित के अन्न को ग्रहण नहीं करना चाहिए, उनसे दिए हुए वस्त्र को नहीं पहनना, उसकी निंदा नहीं करना। श्रौत्र सूत्र में यह सामान्य नियम है। किन्तु इसको संकोच करते हैं। पशुबलि यज्ञ में यज्ञ के अंत में वपा होम तक दीक्षित का अन्न ग्रहण निषेध है, बाद में ग्राह्य है। सौत्रमणि यज्ञ में मद्य को आहुति देने से दीक्षित का अन्न सदा के लिए निषिद्ध होता है।

गाय को चराने वाले बच्चों को क्या यह सारे ज्ञान होता है? ये गाय चराने वाले बच्चे वैश्य है। वैश्यों को सांग वेद अध्ययन करने का अधिकार है। वेदाध्ययन करने में उन्हें पीछे पड़ने की कोई जरूरत नहीं। किन्तु वेद शिक्षण देने में उनको अधिकार नहीं। ब्राह्मण वेद शिक्षा दे सकते हैं। ये बालक देवांश जात होने के कारण सकल शास्त्रों का प्रमेय उनको प्रतिभा से ही मालूम होता है। यही देवांश सम्भूत का लक्षण है।

इस प्रकार भगवान गोपालकों के मुखान्तर ब्राह्मणों से अन्न याचना करने के बाद भी ब्राह्मण उसको अनसुना कर दिये। वे मूर्ख हैं, वे स्वर्गादि फल की कामना करते हुए यज्ञ करने वाले मोक्ष देने वाले भगवान को भूल गये।।9।।

सत्कर्म आचरण करने वाला देश, काल, हविष् इत्यादि पदार्थ, मंत्र, उसके अनुष्ठान, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, संकल्प इनसे मिलने वाले पुण्य ये सारे जिसके अधीन हैं वह स्वयं भगवान अन्न याचना कर रहे हैं। ये ब्राह्मण उनको सामान्य गाय चराने वाला समझ रहे हैं। अपने देहाभिमान से मिथ्याज्ञान वाले हैं।।11।।

अपनी कामना को सुनते हुए हाँ, ना, दोनों ना कहते हुए ब्राह्मण मौन रहे। इसको देखकर निराश होकर श्रीकृष्ण के पास आकर कह दिये।।12।।

यहाँ ब्राह्मण चुप रहे यह गलती हो गयी। बाद में पश्चाताप से यह गलती को स्वीकार करते हैं। वे ब्राह्मण सज्जन होते हुए भी भगवान की लीला को न समझते हुए अपराध किये हैं। देवेन्द्र भी एक बार श्रीकृष्ण को मानव समझते हुए अपराध किया। पश्चात्ताप से मन शुद्ध होता है। ये ब्राह्मण भी पश्चात्ताप से शुद्ध हुए।

भूखे बच्चे को अन्न ना देना कठिन हृदय का लक्षण नही है। उनकी दृष्टि से यज्ञ दीक्षित का यज्ञ समाप्ति के पहले अन्न देने से यज्ञ में लोप होता है। इस भय से वे अन्न नहीं दिये। किन्तु निष्ठुरता से नहीं बोल सके। इसके लिए वे चुप हैं। भगवान को विप्र पत्नियों की सेवा लेना है।

जगदीश्वर भगवान श्रीकृष्ण गोपालकों की बातों को सुनकर हँसते हुए उनको कहे।।13।।

तुम एक बात करो। उन ब्राह्मणों की पत्नियों के पास जाओ। मैं और बड़े भाई दोनों यहाँ आए हैं। इस बात को उनको समझाओ और उनसे अन्न माँगो। वे हमसे प्यार करते हैं। मुझमें सदाकाल मन रखने वाले वे तुमको अन्न दे देंगे।।।4।।

भूखे को अन्न देने में स्त्रियाँ पुरुष से ज्यादा उदार होती हैं। **विप्राः पश्चिम बुद्धयः** ब्राह्मण को देरी से बुद्धि आती है। यह लोकोक्ति है।

श्रीकृष्ण के आदेशानुसार गोपबालक यज्ञशाला को पुन: जाकर ब्राह्मण स्त्री जहाँ अलंकृत होकर बैठी थीं वहाँ जाकर नमस्कार करते हुए विनीत होकर बोले।।।5।।

हे ब्राह्मण की पत्नियों! आपको हम नमस्कार करते हैं। हमारी बातों को सुनिये। यहाँ पास में श्रीकृष्ण जी पधार चुके हैं। वे ही हमको यहाँ भेजे हैं।।।6।।

बलराम और गोपालकों के साथ गायों को चराते-चराते वृन्दावन से बहुत दूर यहाँ आ चुके हैं। वे बहुत भूखे हैं। उनको और उनके साथी हमको भी अन्न दान दीजिए।।।7।।

विप्रपत्नी ज्ञानी थीं, वे श्रीकृष्ण को भगवान मानती थीं। बहुत पहले से श्रीकृष्ण कथा को सुनते हुए उनसे मोहित थीं। सदाकाल उनके दर्शन करना चाहती थीं। अब स्वयं भगवान श्रीकृष्ण अपने पास आये हैं। उसको सुनकर वे संभ्रम से उठकर खड़ी हो गयीं।।।8।।

वे भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय नाम के चार तरह के छ: रसयुक्त वाले अन्न को पात्रों में भरकर समुद्र के प्रति नदी जैसे बहती हैं वैसे अपने प्रियकर गोपाल के प्रति दौड़ती आयीं। वे केवल अन्न को गोपालकों के हाथ में देकर नहीं भेजे।।।9।।

तब उनके पति, पुत्र, सहोदर, बन्धु सारे रुकाने का प्रयास किए। किन्तु वे कीर्तिशाली भगवान के बारे में बहुत काल से सुन चुकी थीं, उन्ही में मन रखी थीं।।20।।

अशोक वृक्ष की नई पत्तियों से शोभायमान यमुना तट के उपवन में गोपालकों से परिवृत्त होकर चलने वाले श्रीकृष्ण को उन्होंने देखा।।21।।

श्रीकृष्ण पीताम्बर धारण किए हैं। उनके श्यामवर्ण से पीताम्बर को ज्यादा शोभा आ गयी है। वनमाला, मोर के पंख, नये पत्ती से अलृकंत होकर नट के समान सुन्दर वेष धारण किये हैं। एक हाथ को गोपालकों के ऊपर रखे हैं, दूसरे हाथ में एक कमल के फूल को पकड़े हैं, कानों में दो सुन्दर कमल के फूल और घूघंरू से शोभायमान मुँह, उसमें मंदहास वाले भगवान श्रीकृष्ण को विप्रपत्नियों ने देखा।।22।।

हे राजा! सुनो, ब्राह्मण पत्नियों ने बहुत दिनों से कान को प्रिय लगने वाली श्रीकृष्ण की कथाओं को

वे सुन चुकी थीं। अब वे उसी कृष्ण को अपने आँखों से देख रही हैं। वे आँखों के महाद्वार से श्रीकृष्ण को अपने हृदय मंदिर में स्वागत करते हुए वहाँ उस मूर्ति को तृप्ति होते पर्यन्त आंलिगन करते हुए इतने दिनों के विरह के ताप से मुक्त हो गयीं। पूर्ण ज्ञान पाए हुयें ज्ञानी भगवान को अपने हृदय में आंलिगन करते हुए अपने संसार के ताप को मिटा देते हैं।।23।।

पति, पुत्र आदि सर्वस्य को त्याग कर अपने पास केवल उनके दर्शन हेतु आए हुये उन विप्र पत्नियों को श्रीकृष्ण हंसमुख से स्वागत किए।।24।।

भगवान कहते हैं-हे भाग्यवती! आपका स्वागत है, बैठिये। कहिये, मैं आपके लिए क्या करूँ, हमको देखने के लिए आप आयी हैं, यह युक्त ही है।।25।।

अपनी उन्नति को चाहने वाले बुद्धिमान लोग अपने प्रिय लोगों की तरह मुझमें भी निर्निमित्त निरन्तर प्यार करते हैं।।26।।

सबको अपने प्राण, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, शरीर, पत्नी, पुत्र, धन, कनक सारी वस्तु प्रिय लगती हैं, उसका कारण उनसे भी प्रियतम मेरा सन्निधान उसमें रहता है। तो मुझसे ज्यादा और किसको प्यार करते हैं।।27।।

इसी कारण आप लोग प्यार से यहाँ आकर मेरा दर्शन किए हैं। आप लोग जल्दी यज्ञ शाला को चलिए। आपके पति गृहस्थ ब्राह्मण आपके बिना सत्र याग को कैसे पूरा करेंगे।।28।।

विप्रपत्नी कहती हैं- प्रभु, आपको इतना निष्ठुर नहीं होना चाहिए। हमारे हाथ को नहीं छोड़ना। आप चाहिए ही कहें हैं कि, **ये भजन्ति तु मां भक्तया, तां स्तथैव भजाम्यहम्**। भक्ति से मेरा भजन करने वाले को मैं पाता हूँ। अपने वचन की रक्षा करें। हम अपने सारे बन्धुओं का विरोध को न गणना करते हुए आपके पाँव से गिरा हुआ निर्माल्य तुलसी को उठाकर सिर में रखने के उद्देश्य से यहाँ तक दौड़कर आए हैं।।29।।

हे शत्रुदमन करने वाले वीरवर, अब हमको हमारे माता-पिता अथवा पति-पुत्र वापस नहीं लेगें। बन्धु बान्धव भी छोड़ दिये हैं। आपके चरण में शरण आये हमको हमारे ऊपर आप अनुग्रह करें। अब हमको आपका पादकमल छोड़कर अन्य कहीं आश्रय नहीं हैं।।30।।

पति की आज्ञा के उल्लंघन से जो पाप आता है उसका भी निवारण हो इस प्रार्थना को सुनकर भगवान उनको मोक्ष देने वाले है। तब नरक की चिन्ता करने की आवश्यकता नही।

श्रीकृष्ण कहते हैं- हमारे पास आने के कारण आपके बन्धु बान्धव आपका तिरस्कार नहीं करेंगे।

अन्य लोग भी आपसे घृणा नहीं रखेंगे। देवता लोग भी आपको साध्वी मानेंगे। आप वापस जाइये।।3।।।

इस जगत में मनुष्य को प्यार और अनुराग बढ़ाने के लिए शरीर संबंध ही कारण नहीं बनता। मेरा प्यार आपके साथ है। मुझमें मन रखे हुए आप मुझको जल्दी ही पायेंगे।।32।।

शुकदेव जी कहते हैं- श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर ब्राह्मण पत्नियाँ यज्ञशाला को वापस चली गये। उनके पतियों ने उनके ऊपर क्रोध नहीं किये। वे उनके साथ यज्ञ समाप्ति किए।।33।।

श्रीकृष्ण की माया शक्ति से ब्राह्मण उनको ठीक तरह से नहीं जान सके थे। जब भगवान उस माया शक्ति को हटा दिये तब वे श्रीकृष्ण को भगवान के रूप में देखे। यज्ञ का अन्न पूर्णाहुति के पहले कोई नहीं खाना यह शास्त्रों का यानी भगवान का ही आदेश है। मैं भूखा हूँ, मुझे अन्न दीजिये यह भी भगवान का ही आदेश है। पहले वाला आदेश सामान्य है तो दूसरा वाला विशेष है। जब विशेष रहता है, तब सामान्य को संकोच करना पड़ता है। यहाँ श्रीकृष्ण को अन्न देने के कारण यज्ञ में कोई लोप नहीं हुआ। बदले में ज्यादा फल ही मिला।

एक विप्रपत्नी उसका पति के बलात्कार के कारण श्रीकृष्ण के पास जा नहीं सकी। वह भगवान का ध्यान करते हुए मन में उनका आलिंगन करते हुए अपने कर्मबन्ध रूप शरीर को त्याग दी।।34।।

विप्रपत्नियों द्वारा दिए हुए चार विध के अन्न को भगवान गोपालकों को खिलाते हुए स्वयं ग्रहण किए।।35।।

भगवान स्थूल अन्न को ग्रहण नहीं करते। किन्तु अवतारों में भगवान को विषयभोग रहता है। यह गीताभाष्य और प्रमेय दीपिका में आया है।

इस प्रकार लीलामानुष विग्रह वाले भगवान श्रीकृष्ण मनुष्य अवतार में मनुष्य के समान लीला करते हुए अपने आकार चाल चलन से गोप गाय और गोप बालिकाओं को संतोष देते हुए विहार किए।।36।।

इसके बाद वे ब्राह्मण भगवान कृष्ण को साक्षात् अवतार मानते हुए अपने कृति से पश्चात्ताप किए। वे मनुष्य के समान लीला करते हुए हमारे अन्न की कामना करते समय हम उनका तिरस्कार करते हुए बड़ी भूल की।।38।।

हमारी पत्नियाँ भगवान श्रीकृष्ण में अलौकिक भक्ति रखती हैं। हममें वह भक्ति नहीं है। ऐसे विचार करते हुए अपनी भर्त्सना की।।38।।

हम भगवान के विमुख बने, हमारे जन्म के लिए धिक्कार हो, हमारे बुद्धि को, हमारे चाल-चलन को धिक्कार हो। हमारे पाण्डित्य को धिक्कार हो। हमारे याग कर्म कौशल्य को धिक्कार, हमारे कुल को धिक्कार हो।।39।।

भगवान की मोहक शक्ति ज्ञानियों को भी मोहित करती है। वैसे तो हम ब्राह्मण अन्य लोगों को कर्तव्य के बारे में उपदेश देना हमारा काम है। किन्तु हम अपने कर्म को ही छोड़ दिये, अज्ञ बन गये।।40।।

यहाँ देखिये, हमारी पत्नियाँ स्त्री होते हुये भी संसार के मृत्यु पास को नाश करने वाले जगद्गुरु श्रीकृष्ण में उनकी परिपूर्ण भक्ति है।।41।।

हमारे जैसे इनको उपनयन नहीं है, गुरुकुल वास नहीं है, तप, ब्रह्म विचार, आचार, सत्कर्मानुष्ठान ये सारे नहीं हैं।।42।।

ये सारे होते हुए भी इन लोगों की योगेश्वर, ब्रह्मादि देवताओं के स्वामी, देव-देवताओं के स्तुति पात्र श्रीकृष्ण में अनन्य भक्ति है। ये सारे करने वाले हमें वह भक्ति नहीं मिली है।।43।।

हम संसार सुख पाने के होड़ में अपने कर्तव्य को भूल गये। भगवान श्रीकृष्ण सज्जनों के रक्षक इन गोपालकों की बातों से वह ज्ञान हमें दिये।।44।।

नही तो पूर्ण काम, अन्यों को मोक्ष देने वाले जगदीश्वर को हमारे से क्या होने वाला है। यह केवल भगवान की लीला है।।45।।

महालक्ष्मी भी भगवान के पादस्पर्श करने हेतु अपने चांचल्य को दूर रखकर बार-बार सेवा करती हैं, ऐसे भगवान श्रीकृष्ण का हमारा अन्न माँगना केवल हमको मोहित करने के लिए है।।46।।

देश,काल, द्रव्य, मंत्र, अनुष्ठान, ॠत्विज, अग्नि, देवताओं, यजमान, संकल्प, पुण्य ये सारे उन्ही के ही अधीन है। योगेश्वरों का स्वामी भगवान विष्णु कृष्ण रूप में अवतार लिए हैं, इसको सुनने के बाद भी हम मूढ बनकर उनको नही पहचाने।।47-48।।

भगवान, श्रीकृष्ण रूप से आये हुए नित्य ज्ञानी आपको हमारा नमन। आपके मोहक शक्ति से हम बुद्धि खोकर काम्य कर्म में मग्न रहते हैं। आपके प्रभाव को न जानने वाले हमको क्षमा करें।।49-50।।

श्रीकृष्ण में अपराध किए ब्राह्मण उस अपराध के परिमार्जन के लिए उन्हीं का ध्यान किए। मन में राम कृष्ण का दर्शन करने की इच्छा होते हुए भी कंस के भय के कारण नहीं गये।।51।।

पश्चात्ताप से भक्ति और बढ़े, इस उद्देश्य से भगवान ब्राह्मणों में अपने मोहक शक्ति से अज्ञान बढ़ा दिये। ब्राह्मण ज्ञान को पाने के बाद भी भगवान के पास जाने के लिए कंस के कारण डरते रहे। इससे यह व्यक्त होता है कि, पूर्णज्ञान पाने के लिए हमारे प्रयत्न की भी आवश्यकता होती है।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बाँईसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुखदेव कहते हैं - भगवान श्रीकृष्ण बलराम जी के साथ वृंदावन में वास करते समय एक दिन गोपालक इन्द्र यज्ञ करने की तैयार करने में लगे थे।।1।।

उसको जानते हुए भी सर्वज्ञ भगवान श्रीकृष्ण विनय से नंदगोप आदि बड़े लोगों को नमस्कार करते हुए पूछे।।2।।

पिताजी ये क्या हो रहा है, यह उत्सव क्यों कर रहे हैं। इसका फल क्या है? किस देवता के उद्देश्य से इसको कर रहे हैं। इससे क्या साधना होती है।।3।।

पिताजी, मुझे यह बतलाइये। मैं इसको सुनना चाहता हूँ। सज्जन लोग किसी बात को छुपाते नहीं। उनको हमारा और अन्य लोगों से ऐसे भेदभाव नहीं रहता। अपने मित्र शत्रु और तटस्थ ऐसे भी व्यत्यास नहीं करते। व्यक्ति के स्वभाव और योग्यता के अनुसार भेद होता है। अन्यथा भेद नहीं करना चाहिए। शत्रु को दूर रखना चाहिए। तटस्थ से अन्तर रखना चाहिए। इष्ट मित्रों में कुछ छुपाना नहीं चाहिए। उनको अपने के समान समझना चाहिए।।4, 5।।

कई लोग ठीक तरह से समझ कर कर्माचरण करते हैं। बहुत से लोग न समझते हुये कर्माचरण करते हैं। जो समझ कर करता है, उसको कर्मफल पूर्ण रीति से मिलता है। जो बिना समझ के कर्म करता है उसको फल नहीं मिलेता।।6।।

अब आप मुझे यह ठीक तरह से समझाइये कि आप करने वाले इस कर्म को अपने विचार के अनुसार कर रहे हैं अथवा अन्य लोग करते हैं उसका अनुसरण कर रहे हैं।।7।।

नंदगोप कहते हैं, भगवान देवेन्द्र हमें जल देने के कारण उनको वर्षा का देव मानते हैं। मेघ उनके शरीर होते हैं। वह मेघ हमारे जीवन के कार्यकारिता को आवश्यक जल देते हैं।।8।।

बेटा, इसके लिए हम मेघों के राजा देवेन्द्र की आराधना करते हैं। वे पानी बरसाने का और न

बरसाने की शक्ति रखते हैं। पानी बरसने से आहार वस्तु उत्पन्न होता है। उन्हीं की आराधना में लोग यज्ञ करते हैं।।9।।

यज्ञ करने वाले यज्ञशेष अन्न को खाकर जीवित रहते हैं। धर्म, अर्थ और काम नाम के त्रिवर्ग नाम के फल को साधते हैं। उनके यत्न को फल देने वाले भी देवेन्द्र हैं।।10।।

कुल परम्परा से आया हुआ इस धर्म कार्य को काम लोभ भय अथवा द्वेष से छोड़ना क्षेम कारक नहीं है।।11।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- पिता की इन बातों को गोकुल वासियों ने भी सिर हिलाते हुए स्वीकार किया। इसको देखकर श्रीकृष्ण इन्द्र के क्रोध को बढ़ाने के उद्देश्य से अपने पिता से कहें।।12।।

श्री भगवान जी कहते हैं- कर्म फल देने वाले भगवान नारायण होते हैं। उन्हीं से जीव जन्म पाता है। उन्हीं से सृष्टि का लय होता है। उन्हीं से सुख व दुःख भय व क्लेश को जीव पाता है।।13।।

उत्पत्ति, स्थिति, लय, सुख - दुःख, भय - क्षेम ये सारे कर्म के कारण होता है, यह भागवत का मन्तव्य है ऐसा लगता है। मानव प्रवृत्ति बुद्धि पूर्वक होती है, बुद्धि केवल चेतन में होती है, जड़ कर्म नियमन नही कर सकता। कर्म चेतन के अधीन यह मानने के बाद भी सामान्य चेतन सारे नियमन नही कर सकता, यह नित्य अनुभव की बात है इसका अर्थ चेतनाचेतन से विलक्षण भगवान ही पूरा नियमन कर सकता है। यही सही मन्तव्य भागवत का है।

कर्म फल देने वाले अन्य छोटे देवतागण हैं, किन्तु वे अमुख्य हैं। वृक्ष से उत्पन्न हुए फल वृक्ष के ही आश्रय से जैसे रहते हैं। वैसे अन्य देवतागण नारायण से जन्म लेते हैं और उन्हीं के आश्रय में रहते हैं। काम्य कर्म करने वाले अज्ञानी को वे काम्य कर्म फल देते हैं। किन्तु निष्काम कर्म करने वाले ज्ञानी को वे मोक्ष देने में समर्थ नहीं होते।।14।।

लोग अपने-अपने कर्मानुसार भगवान से फल पाते हैं। उनके कर्म को स्वतंत्र रहने वाले भगवान जो फल देते हैं उसको देवेन्द्र अपनी इच्छानुसार बदल नहीं सकते। ऐसे देवेन्द्र से हमें क्या मिलने वाला है।।15।।

कर्म करने वाले सर्वतंत्र स्वतंत्र श्रीहरि के अधीन होते हैं, उनके अनुसार वे काम करते रहते हैं। इसी कारण देव, दानव मानव से भरा हुआ यह जगत स्वतंत्र हरि के अधीन होकर रहता है।।16।।

जीव के लिए अच्छा और बुरा कर्म करने में समर्थ शरीर को भगवान ही देते हैं और अंत में वे ही लेते हैं। जीव का हरि ही शत्रु मित्र होते हैं, वे ही सुख व दुःख को उत्पन्न करते हुए बंधक बनाते हैं। निष्काम कर्म के फलदायक होकर, गुरु होकर, ज्ञान देते हुए अन्त में मोक्ष को भी देते हैं।।17।।

इसी कारण सर्वतंत्र स्वतंत्र श्रीहरि के अधीन होकर कर्म करते हुए कर्मनियामक हरि की आराधना करना चाहिए। स्वयं को उपकारक बनने वाले श्रीहरि की आराधना ही श्रेष्ठ है।।18।।

ब्राह्मण अध्यापन वृत्ति से, क्षत्रिय राजकारण से, वैश्य कृषि वाणिज्य, पशुपालन से, शूद्र परिचर्या से अपना जीवन करना चाहिए।।19।।

कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा, कर्जा देना ये चार वैश्यों का जीवनोपाय है। हम गोरक्षा से अपना जीवन व्यतीत करते हैं।।20।।

सत्व रज तम ये तीन गुणों के नियमन करने वाले विष्णु के तीन रूप सृष्टि स्थिति और लय के लिए कारण होते हैं। रजोनियामक रूप से अनेक रूप वाला यह प्रपंच एक से एक दीप जैसे जन्म लेते हैं।।21।।

विष्णु भगवान के रजोनियामक रूप के प्रेरणा से मेघ सारे स्थानों में पानी को बरसाते हैं। वर्षा से मिलने वाला पानी से लोग जीवित रहते हैं। इसके बीच में इन्द्र का क्या काम है।।22।।

पिताजी, हमारे लिए न गाँव है, न ही घर है, न शहर है। हम कहीं भी घर बाँधते नहीं। सदाकाल जंगल में फिरने वाले वनवासी लोग हैं।।23।।

अपने जीवन के लिए किसी एक को मुख्य रूप से आश्रय करने के बाद उसको बदलने वाला क्षेम नहीं पाता है। जैसे पति को पाने के बाद स्त्री परपुरुष की आश्रय करे तो नाश होता है।।24।।

इसी कारण हमारे जीवन के मुख्य आधार गो, ब्राह्मण और इस गोवर्धन पर्वत को प्रतीक करते हुए हम इसमें हरि की आराधना करेंगे। इन्द्र की आराधना के लिए आप जो सामान लाए हैं उन्हीं से हम यह पूजा करेंगे।।25।।

अनेक रीति से पाक, अन्न, सूप इत्यादि और मिष्ठान और छप्पन भोग कर सकते हैं। सारी गायों के दूध का उपयोग यहीं हो।।26।।

वेद पाठ करने वाले ब्राह्मण अग्नि में होम करें। उनको छह रसयुक्त अन्न दान दीजिए। गोदान के साथ बहुत दक्षिणा दीजिए।।27।।

कुत्ता, चंडाल, पतित से लेकर सबको उनको यथायोग्य अन्न दान करिये। गाय को चारा दीजिए, गोवर्धन पर्वत को अन्न बलि दीजिये।।28।।

आप भी प्रसाद ग्रहण करने के बाद अपने को अलंकार करते हुए सुगन्ध को लगाकर अच्छे वस्त्र धारण किये हुए गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा करिये।।29।।

पिताजी, यह मेरा अभिप्राय है। यह आपको पसंद आया तो वैसे करिये। यज्ञ, गो, ब्राह्मण पर्वत ये सारे मुझे प्रिय हैं।।30।।

श्री शुकदेव कहते हैं- सकल गुणपरिपूर्ण भगवान श्रीकृष्ण इन्द्र के अहंकार को नाश करने हेतु अपनी इच्छा को नंद गोप के सामने रखे। वे उसको मान्य किए।।31।।

श्रीकृष्ण के कथनानुसार वे स्वस्तिवाचन करते हुए इन्द्र यज्ञ के लिए एकत्रित की हुयी वस्तुओं से पूजा करते हुए गो ब्राह्मण पर्वत को भोग समर्पण किये। प्यार से गायों को खिलाये। गायों के साथ गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा किए।।32, 33।।

गोपालक अपने को ठीक तरह से सजधज के ब्राह्मणों से आशीर्वाद पाकर बैलगाड़ी में बैठकर पर्वत की परिक्रमा प्रारंभ किए। गोपिकाएँ कृष्ण लीला को गाते हुए उनका साथ दिये।।34।।

भगवान श्रीकृष्ण गोपालकों में विश्वास पैदा करने के लिए गोवर्धन से भी बड़ा रूप धारण कर मैं ही गोवर्धन हूँ, बोलते हुए पर्वत को दिया हुआ अन्न बलि को खा लिये।।35।।

स्वयं श्रीकृष्ण रूप से अपने पर्वत रूप को गोकुलवासियों के साथ नमस्कार किए। गोवर्धन पर्वत देवता बनकर हमें अनुग्रह किया है। भगवान की यह बात सबको आश्चर्यकारक है ना?।।36।।

अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाला भगवान पर्वत का रूप धारण कर हमारे सामने आए हैं। अपने को अवमानना करने वाले को वे मार डालते हैं। चलो, हम अपनी और अपनी गायों की क्षेम के लिए इस पर्वत भगवान को नमस्कार करेंगे।।37।।

श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर सारे गोपालक पर्वतराज को नमस्कार करते हुए यज्ञ समाप्ति के बाद इस कृष्ण के साथ गोकुल को वापस आए।।38।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में बाँइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

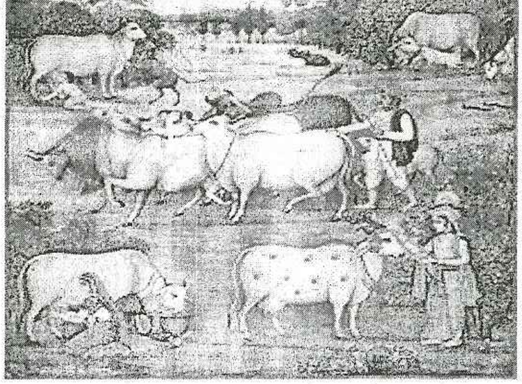

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तेईसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा परीक्षित, देवेन्द्र अपनी पूजा रुकने के कारण श्रीकृष्ण की रक्षा में रहने वाले नंदगोप इत्यादि ग्वालों के ऊपर क्रोधित हुआ।।1।।

क्रुद्ध देवेन्द्र जल प्रलय करने वाले प्रलय के मेघ समूह को गोकुल के ऊपर आक्रमण करने के लिए भेज दिया। श्रीकृष्ण के ऊपर आक्रोश करते हुए कहा।।2।।

ये वनवासी गोपाल ऐश्वर्य से मत्त हो गये हैं। एक सामान्य मानव कृष्ण के ऊपर भरोसा रखते हुए वे देव देवोत्तम मेरी अवज्ञा किए हैं।।3।।

अल्प ज्ञान वाले अहंकारी लोग अपरोक्ष देने वाले पर विद्या को छोड़ते हुए काम्य कर्म नाम के टूटा-फूटा नाव से इस संसार सागर को पार करना चाहते हैं। वैसे यह गोपालजन मेरी पूजा को छोड़कर पहाड़ की पूजा की हैं।।4।।

देवताओं में अपने तारतम्य के अनुसार थोड़ा सा असुरावेश आता रहता है। मुख्य प्राण असुरावेश से रहित होते हैं। इसके लिए उनको **आखणाश्मसमः** कहते हैं। यानि असुरों के आक्रमणों के सामने अभेद्य पत्थर के समान रहने वाले हैं। सामान्यतः अन्य समयों में देवता असुरावेश रहित सत्वयुक्त सज्जन होते हैं। यह तंत्र भागवत का वाक्य है।

कृष्ण बहुत बोलते हैं। महा गर्विष्ठ है। वह मेरे सामर्थ्य को ठीक तरह से नहीं जानता है। स्वयं को बड़ा ज्ञानी मानते हुए अहंकार कर रहा है। ऐसे मानव की आश्रय पाकर ये अनपढ़ लोग मुझे इष्ट न होने वाले गिरि यज्ञ को किए हैं।।5।।

इन गोपालकों को ऐश्वर्य का अहंकार आया है। कृष्ण के उपदेश से वह और बढ़ गया है। हे मेषराशि तुम जाकर इनके ऐश्वर्य मद का नाश करो, इनकी गायों का नाश करो।।6।।

मैं नंद गोप के गोशाला को नाश करने के लिए अति वेग वाले मरुद्गणों से मिलकर ऐरावत के ऊपर

चढ़कर तुम्हारे पीछे आ जाऊँगा। आपके डरने की कोई बात नहीं।।7।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - देवेन्द्र की इस आज्ञा को सुनकर मेघ संकुल निरंकुश होकर नंदगोकुल के ऊपर मूसलाधार वर्षा अपनी ताकत लगाकर बरसाये।।8।।

आकाश के बिजली, मेघगर्जना से युक्त होकर ओला युक्त पानी बरसाये।।9।।

घर में रहने वाले खंभ्स के समान मोटे-मोटे गात्र वाले जलधारा को बिना रुके हुए मेघ जब पानी बरसाने लगे तब नंद गोकुल में हाहाकार मच गया। जल प्रवाह से जमीन भर गई। गड्ढे व जमीन सब पानी में डूबकर एक समान हो गये।।10।।

अतिवृष्टि और चण्डमारूत से पीड़ित गायें काँपने लगीं। गोप व गोपिकाएँ ठंडक से पीड़ित होकर श्रीकृष्ण की शरण में गये।।11।।

पानी से पीड़ित होकर बच्चों को अपने शरीर और कपड़े से छिपाते हुए ठंडक से काँपते हुए, गिड़गिड़ाते हुए भगवान के पादमूल में शरण आये।।12।।

हे भगवान कृष्ण, आप ऐश्वर्यशाली हैं, प्रभु हैं। हे भक्तवत्सल, आपही इस गोकुल के रक्षक हैं। क्रोधित इन्द्र से आपही हमारी रक्षा करने वाले हैं।।13।।

वर्षा, झंझावात, और ठंडक से पीड़ित होकर सारा गोकुल चेष्ठा रहित हो गया है। इसको देखकर भगवान श्रीहरि कुपित इन्द्र का कृत्य मानकर विचार किए।।14।।

हम इन्द्र यज्ञ को रुका दिए। उसके विरुद्ध इन्द्र ने गोकुल के नाश के लिए चंडमारूत वाले ओला युक्त पानी अकाल में बरसा रहा है।।15।।

इसका योग्य प्रतिकार मैं अभी अपने सामर्थ्य से करूँगा। इन्द्र अपनी मूर्खता से स्वयं को भगवान मान रहा है। ऐश्वर्य के अहंकार से उत्पन्न उसके अज्ञान को हटा दूँगा।।16।।

यस्यानुग्रहमिच्छामि तस्य वित्तं हराम्यहम् जिसको अनुग्रह करना चाहता हूँ, पहले उसके संम्पत्ति का हरण करता हूँ, यह भगवान का वाक्य है। यहाँ पानी को बरसाना ही इन्द्र की सम्पत्ति है।

इन्द्र मेरा भक्त है। किन्तु इन्द्र समान देवताओं को मैं ही सर्व शक्त हूँ यह अहंकार नहीं आना चाहिए। मैं उनके अहंकार को, गर्व को भंग किए तो उनकी भक्ति और बढ़ जाती है।।17।।

इसी कारण मेरी शरण में आये हुए, मुझसे प्रार्थना करने वाले, मुझे अपना मानने वाले इन गोकुल-वासियों को अपने सामर्थ्य से मैं रक्षा करुँगा। शरणागतों की रक्षा करना मेरा धर्म है।।18।।

अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम। वाल्मीकि रामायण में श्रीराम जी कहते हैं, सकल प्राणी को अभय देना मेरा धर्म है। भागवत् में श्रीकृष्ण जी कहते हैं **परित्राणाय साधूनां संभवामि युगे-युगे।** सज्जनों की रक्षा के लिए मैं युग-युग में अवतार लेता हूँ।

इस प्रकार मन में विचार करते हुए श्रीकृष्ण भगवान एक हाथ से गोर्वधनगिरि को उखाड़कर छतरी के समान बिना कष्ट के ऊपर उठाये।।19।।

भगवान गोपालकों को उद्देश्य करते हुए बोलते हैं - माता-पिता जी और गोकुलवासी सारे लोग अपने गाय, बकरी, बैल सहित इस पहाड़ के नीचे आकर वर्षा समाप्त होने तक आराम से रहिये।।20।।

यह पहाड़ मेरे हाथ से गिर जायेगा ऐसे डरने की कोई बात नही है। यहाँ झंझावात का, बरसात का और बिजली का कोई भय नहीं है। उन सबसे मैंने आपकी रक्षा करने की व्यवस्था की है।।21।।

श्रीकृष्ण के ऊपर पूर्ण भरोसा रखते हुए उनकी बातों को मन में भरते हुए गोपालक उनके कथनानुसार अपने बाल-बच्चे, गाय-बैल, बकरी-बछड़े के साथ आवश्यक जीवन सामग्री को लेकर पहाड़ के नीचे निश्चिंत होकर रहने लगे।।22।।

भूख-प्यास सुख भोग की आसक्ति को छोड़ते हुए वे श्रीकृष्ण को अपलक नेत्र से देखते हुए खड़े रहे। श्रीकृष्ण भी एक बार भी पाँव न उठाते हुए हाथ को न बदलते हुए सात दिन तक एक प्रकार से पहाड़ को उठाकर खड़े रहे।।23।।

शुकदेव जी कहते हैं- श्रीकृष्ण के इस योग सामर्थ्य को देखकर देवेन्द्र आश्चर्य चकित हो गये। उनके अहंकार का नाश हो गया। श्रीकृष्ण को डराने की अपनी योजना असफल होते देखकर वर्षा को रुकाने के लिए मेघों को आज्ञा दी।।24।।

निरभ्र आकाश में सूर्य का दर्शन हुआ। झंझावात और बरसात थम गई। उसको सुनकर गोवर्धन गिरधारी श्रीकृष्ण गोपालकों से कहते हैं।।25।।

श्री कृष्ण गोपालकों से पूछते हैं कि बाहर पानी और भी बरस रहा है। गोपालक बाहर देखकर बोलते हैं वर्षा बन्द हो गयी है। गोपालकों की आँखों से आनन्दाश्रु गिर रहे हैं। श्री कृष्ण पूछते हैं क्या बादल गर्ज रहे हैं, उत्तर में गोपालक बोलते हैं बादल गर्जते नही किन्तु सिद्ध्र गन्धर्व आपकी स्तुति में आवाज कर रहे हैं। क्या बिजली चमकती है? नहीं यह चमक अमर कन्याओं के गहने के हैं। आँधी चल रही है क्या? नहीं, किन्तु देवता के पुष्प वृष्टि से आकर्षित भँवरे के गूजने की आवाज सुनाई दे रही है। क्या आकाश काला है? नही, केवल इन्द्र के मुख लज्जा से काला हुआ है। क्या मेघ हैं? नही किन्तु आपके दर्शन के लिए आए हुए देवता के विमानों से आकाश भरा है। क्या अंधेरा है? नहीं, प्रकाशमान सूर्य प्रकाश दे रहे हैं। किन्तु आपको सामान्य मनुष्य मानने वाले के हृदय में अंधेरा है।

क्या ठंढक से कोई काँप रहा है? नही , सारे आनन्द से भरे हैं। आपके भय से केवल इन्द्र काँप रहा है। गोपाल और श्री कृष्ण के इन संवादों को पूज्य वादिराज स्वामी जी अपने रुक्मिणीश विजय में वर्णन किए हैं।

हे गोपालको! भय को त्याग दीजिए। पत्नी पुत्र धन कनक के साथ गाय को लेकर घर को चलिए। बाहर बरसात और चण्डमारूत रुक गये हैं। नदी में पानी कम हो रहा है।।26।।

श्रीकृष्ण की इन बातों के अनुसार गोपालक अपने पत्नी पुत्र गाय वृद्ध सबके साथ अपने सामानों को गाड़ी में भरकर घर की तरफ चले गये। ।।27।।

भगवान श्रीकृष्ण सारे लोगों के देखते हुए गोवर्धन गिरि को पहले जैसे उसी स्थान पर रख दिये। सर्व शक्त भगवान की यह लीला मात्र है।।28।।

गोकुल में रहने वाले पुरुष लोग अपने भक्ति भाव के उद्रेक से श्रीकृष्ण को आलिंगन और चुबंन करते हुए सत्कार किए। गोपियाँ प्यार से दही अक्षत और जल से अभिनन्दन करते हुए। उनको अलंकृत किये।।29।।

यशोदा, रोहिणी, नंदगोप और महा बलशाली राम सभी लोग श्रीकृष्ण को आलिंगन करते हुए आशीर्वाद दिए।।30।।

हे राजा! सिद्ध गंधर्व, चारण इत्यादि देवता समूह अंतरिक्ष में खड़े होकर श्रीकृष्ण जी की स्तुति करते हुए पुष्प वृष्टि किए।।31।।

आकाश में देव दुंदुभि और शंखवादन की ध्वनि किए। तुंबुरु, गन्धर्व, गीत गाये।।32।।

बाद में श्रीकृष्ण बलराम के साथ अपने प्यार के गोपालकों के साथ गोकुल में प्रवेश किए। संतुष्ट हुयी सुन्दरी गोपिकाएँ श्रीकृष्ण जी की लीला को गाते हुए उनके पीछे-पीछे चली। ।।33।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में तेइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

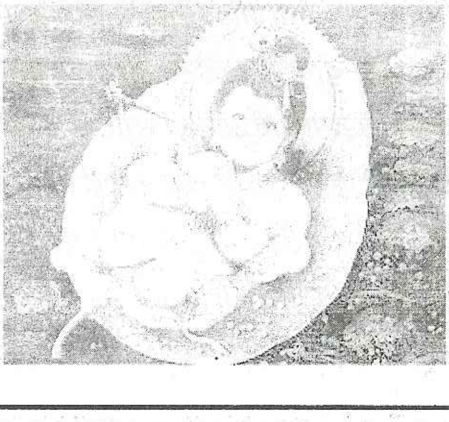

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौबीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्रीकृष्ण के इन आश्चर्यकारक अद्भुत कार्यों को देखकर उनकी महिमा को न समझने वाले गोपालक एकत्र होकर आपस में बातें करने लगे।।1।।

गोपालक बोलते हैं, श्रीकृष्ण बालक है, हमसे भी छोटा है किन्तु उससे किया हुआ कार्य बहुत अद्भुत है। हमारे जैसे अबोध मुग्ध लोगों में ऐसा महापुरुष कैसे जन्म लिया? हमारे साथ ऐसे रहना उनको शोभा देने वाला नहीं है।।2।।

आपने देखा कि एक बड़ा हाथी एक कमल के फूल को जैसे अनायास उठाता है, वैसे ही यह सात वर्ष का बालक एक ही उंगली से महापर्वत को सात दिन तक उठाकर खड़ा रहा। यह कैसे हो गया।।3।।

छोटा बच्चा, आँख भी पूरे खुले नही थे, उस समय महाबलिष्ठ पूतना का स्तनपान करते हुए उसके प्राण को ही हरण किया। हमें लगा कि जैसे काल ही शरीर के आयुष को हरण कर रहा हो। ऐसे अत्यन्त सुलभता से उन्होंने पूतना के प्राण का हरण किया।।4।।

चार महीने का यह बच्चा गाड़ी के नीचे सोया था, रोते-रोते पाँव हिलाया, उंगुली गाड़ी को लगा। केवल इससे वह बड़ी गाड़ी पलटकर चकनाचूर हो गयी। यह कैसे हो गया।।5।।

एक वर्ष का यह बालक घर के सामने जमीन पर बैठा था, तृणावर्त नाम का दैत्य जोश से उनको हवा में उठा लिया। यह लड़का उसके गले को दबाकर मार दिया। यह कैसे हुआ।।6।।

माखन चोरी करने वाले इसको माँ सीखकर उलूख से बाँध रखी थी। उलूख के साथ चलने वाला यह छोटा बालक दो यमल अर्जुन वृक्षों के बीच में जाकर जोर से खींच कर दोनों वृक्षों को गिरा दिया। यह भी कैसे हुआ।।7।।

गोपबालकों के साथ बलराम सहित जंगल में गाय के बच्चों को खिलाते समय यह तीन वर्ष का बालक अपने को मारने आया हुआ शत्रु बकासुर के दोनों चोंच को पकड़कर चीरते हुए उसके दो टुकड़े कर

दिये।।8।।

अपने को मारने आया हुआ बछड़े के रूप में गाय के बच्चों में मिला हुआ वत्सासुर को मारकर पाँव पकड़कर उसको बेल के वृक्ष के ऊपर फेकने से अनायास बेल व फलों को पर्याप्त मात्रा में गिरा दिया। उस दिन हम फल खाते ही रहे।।9।।

बलराम के साथ तालवन में खेलते समय गधे के रूप में आया हुआ धेनुकासुर को व उनके बंधुओं को मारकर हमें बारबार खाने के लिए तालवन को मुक्त कर दिया।।10।।

इनकी लीला हम क्या कहें। अत्यंत उग्र प्रलंबासुर को बलशाली बलराम के द्वारा मरवा दिये और हम और गायों को आग से रक्षा किये।।11।।

अति विषकारी क्रूर कालिया नाग का दमन करते हुए उसके विष के अहंकार को दूर करते हुए जबरदस्ती उसको यमुना के भँवर से हटा दिया।।12।।

हे वसुदेव! सुनो, हम और तुम्हारे पुत्र में न छोड़ने वाला प्यार का संबंध है। वे भी हमारे से प्यार करते हैं। इन दोनों का क्या कारण हो सकता है? ।।13।।

सात वर्ष का यह बालक कहाँ, वह बड़ा पहाड़ को उठाया कैसे? इसी कारण आपके पुत्र के बारे में उनकी योग्यता के बारे में हमें सन्देह आता है।।14।।

राजा नंद जी बोलते हैं, हे गोपालको, मेरी बात सुनो। मेरे पुत्र के बारे में तुमको जो भी संदेह हो उसका निवारण इससे होगा। गर्गाचार्य मुनि हमारे पुत्र के बारे में पहले ही कह चुके हैं।।15।।

गर्गाचार्य ने कहा - स्वयं भगवान यहाँ बालक के रूप में अवतार लिए हैं, प्रतियुग में वे अवतार लेते रहते हैं। पहले के अवतारों में ये सफेद, लाल और पीला रंग के होते हैं। अब नील वर्ण धारण किए हैं।।16।।

हे वसुदेव! आपके पुत्र पिछली बार भी एक वसुदेव नाम वाले के पेट से जन्म लिया था। इसके लिए इसको श्रीवासुदेव कहते हैं।।17।।

तुम्हारे पुत्र को अनेक रूप और अनेक नाम हैं। मैं उन रूप नामों को जानता हूँ। सामान्य लोग इनको जानते नहीं।।18।।

यह बालक गोपालकों को और गो समूह को सुख देने वाला बनता है, तुमको श्रेय देता है।।19।।

पूर्व में जब अराजकता से देश चोर उचक्कों से पीड़ित था, सज्जनों के लिए कोई रक्षा नहीं थी। तब

इन्होंने राजा पृथु के नाम से आवेश रूप में अवतार लेकर सज्जनों की रक्षा किए। सज्जन लोग उनसे बल पाकर दुर्जनों का नाश किए।।20।।

महाभाग्यशाली इनमें प्यार करने वाले लोग शत्रु से कभी हारते नहीं। क्या विष्णु पक्ष के देवता कभी हारते हैं।।21।।

हे नंदगोप! आपका यह पुत्र गुण, कांति, कीर्ति और सामर्थ्य में नारायण के समान है। उनकी लीलाओं को देखकर आश्चर्य चकित नहीं होना।।22।।

इस प्रकार मुझको उपदेश करते हुए गर्गमुनि अपने घर को चले गये। तब से मैं देख रहा हूँ, श्रीकृष्ण सारी लीलाओं को बिना कष्ट से करते हैं। इसी कारण श्रीकृष्ण को नारायण का अवतार मानता हूँ।।23।।

गोवर्धन पर्वत के उद्धार की लीला को सारे गोकुलवासी लोग अपनी आँखों से देखे हैं। अन्य अनेक लीलाओं को जो देखे हैं उनसे सुने हैं। गर्गमुनि श्रीकृष्ण जी के बारे में जो कहे हैं इसको नंदगोप के मुख से सुनकर उनको बहुत आनंद हुआ। अमित पराक्रमी श्रीकृष्ण नारायण का अवतार हैं। यह समझकर उनके बारे में मन में रहने वाले सारे संदेह नष्ट हो गये। वे नंदगोप व उनके पुत्र भी श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे।।24।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं- इन्द्र याग रुकने के कारण इन्द्र मूसलाधार वर्षा किए। तब अपने पर विश्वास रखे हुए गोपालकों को, उनके बाल-बच्चों, गाय संकुल को ओले वर्षा से पीड़ित देखकर श्रीकृष्ण अनुकम्पा से हँसते हुए बच्चें जैसे खेल में आसानी से मश्रूम को उठाते हैं वैसे गोवर्धन पर्वत को एक उँगली से उठाकर गोकुल की रक्षा किए। इन्द्र के अहंकार को समाप्त कर दिये। ऐसे गोपाल कृष्ण हमारी रक्षा करें।।25।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्ध में चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

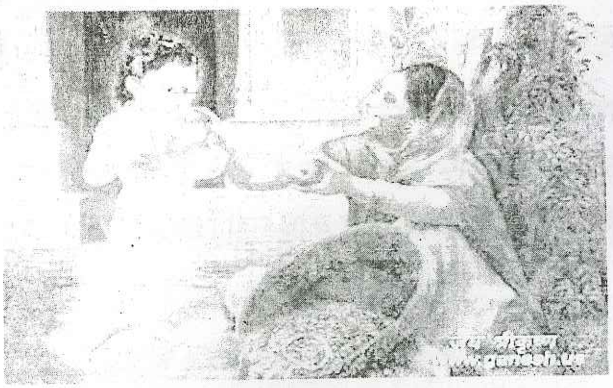

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पच्चीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक देव कहते हैं - भगवान श्री कृष्ण के गोवर्धन पर्वत को उठाकर सम्पूर्ण गोकुल को वर्षा से रक्षा करने के बाद, गो लोक से कामधेनु भगवान को देखने आयी। स्वर्ग लोक से इन्द्र भी भगवान के दर्शन करने आये।।1।।

भू लोक में पर्वत को उठा कर गायों की रक्षा करने से आनन्द पायी हुई कामधेनु भगवान को कृतज्ञता को समर्पित करने कामधेनु गो लोक से आयी। गों लोक सत्य लोक के ऊपर है। विष्णु पर्व के उन्नीसवाँ अध्याय के उनतीसवाँ श्लोक में इस विषय को बताया गया है।

देवेन्द्र अपने किए हुए अपराध से लज्जित होकर भगवान के पास एकान्त में आकर सूर्य के समान प्रकाशमान अपने किरिट को श्री कृष्ण भगवान के पाद में रखते हुए माथा लगाते हुए उन्हे दण्डवत प्रणाम किया।।2।।

इन्द्र भगवान के अपरिमित शक्तिशाली महिमाओं को सुन चुके थे। अब उनको आखों के समक्ष देखने के बाद अपने तीन लोकों के स्वामित्व के अहंकार को छोड़ते हुए हाथ जोड़कर स्तोत्र करने लगे।।3।।

इन्द्र स्तुति करते हैं - हे भगवान! आपका शरीर रजो गुण और तमो गुण से नही बना है। आप विशुद्ध सत्व कहे जाते हैं। इसी कारण आप में शुद्ध सत्व गुण के लिए भी अवकाश नही है। आप का शरीर केवल ज्ञानात्मक आनन्द मय रूप है। इसी कारण आपकी अपनी इच्छा से ही संसारी जीवों को चिपका हुआ अज्ञान जन्य त्रिगुण बन्ध रूप संसार का अनुबन्ध आपको नही है।।4।।

यहाँ **शान्तम्** का अर्थ सुख पूर्ण और आनन्द मय हैं। भक्त लोगों के असुरावेश से अपराध करने के बाद भी उन पर क्रोध न करते हुए शान्त रहना भगवान का स्वभाव है। इसी कारण यहाँ शान्त शब्द का प्रयोग किया गया है। इन्द्र के अपराध करने के बाद भी भगवान उसके ऊपर क्रोध नही किए बल्कि अनुग्रह ही किए, यह इन्द्र का मन्तव्य है।

विशुद्धसत्वम् *इसका अर्थ भगवान का शरीर शुद्धसत्व मय भी नही है। भगवान त्रिगुण रहित हैं। ज्ञ*
ानानन्द स्वरूप वाले उनको अज्ञान निमित्त संसार बन्ध नही है।

हे प्रभु! आपको त्रिगुणात्मक शरीर और उसका बन्ध नही है। इसी कारण शरीर जन्य और शरीर अन्तर से होने वाला अज्ञान रूप क्रोध लोभ इत्यादि गुण आपके पास कैसे आ सकते हैं। आप पूज्य हैं, धर्म रक्षा करने और दुष्ट निग्रह करने के लिए हमारे जैसे दुरहंकारियों को शिक्षा देते रहते हैं।।5।।

क्रोध, मोह इत्यादि गुण शरीर के सम्बन्ध के कारण होते हैं। वे ही पुनर्जन्म के और बार बार शरीर पाने के कारण होने के कारण यहाँ **तद्धेतव:** शब्द का प्रयोग है।

भगवान श्री हरि! आप इस जगत के पिता, ज्ञानोपदेशक और नियामक हैं। आप किसी के अधीन न होने वाले काल रूपी हैं। सृष्टि संहार के समय में आप अपराधियों को उनके लिए योग्यदण्ड देने वाले हैं। सज्जनों की रक्षा करने के लिए दुर्जनों को दण्ड देने के लिए अवतार रूप धारण करते हैं। स्वयं को इस जगत का मालिक मानने वाले का अहंकार को खण्डित करते हुए अपनी लीलाओं को करते रहते हैं।।6।।

हे जगन्नाथ! असुरावेश के समय में अहंकार करने वाले हमारे जैसे लोग सदा निर्भय रहने वाले आपके दर्शन करने से अहंकार को त्याग कर निरहंकारी बन कर ज्ञानियों के भक्ति मार्ग का आश्रय लेते हैं। आप मेरे समान औरों को भी यह शिक्षा जो देते हैं वह सज्जनों के लिए हितकारक है, वह दुर्जनों के लिए शिक्षा लगता है और अहितकारक बनता है।।7।।

भगवान सज्जन और दुर्जनों के अहंकार को समान रूप से दण्ड देते हैं। सज्जनों के लिए वह श्रेयस्कर बनता हैं। दुर्जन लोग उसका उल्लंघन करते हुए अनर्थ भागी बनते हैं। यह अग्नि पुराण का वचन है।

हे प्रभु! मैं ऐश्वर्य मद से भर कर आपकी महिमा को न जानते हुए अपराध किया हूँ। मूढ़ बुद्धि वाले मुझको आप क्षमा करें। हे स्वामी! ऐसी दुर्बद्धि मुझमें पुन: कभी भी उत्पन्न न हो।।8।।

हे अधोक्षज, हे भगवान, राजाओं में जो दुष्ट होकर भू भार बनकर रहने वाले हैं और ऐसे दुष्ट संतति को जन्म देते हैं उनके लिए आपका यह अवतार विनाशकारी है, आपके चरण सेवको के लिए अभ्युदय कारी है।।9।।

हे पूज्य परम पुरुष महात्मा नारायण! आपको नमस्कार। हे भक्तजन पालक वसुदेव पुत्र भगवान श्री कृष्ण मैं बार-बार आपको नमस्कार करता हूँ।।10।।

हे परमेश्वर! आप स्वेच्छा से शरीर धारण करते हैं। आप अप्राकृत ज्ञान रूपी शरीर वाले हैं। आप सबके स्वामी, सकल जीव राशि का मूलकारण, सर्वजीवान्तर्यामी हैं। आपको पुन: नमस्कार।।11।।

श्री हरि का देह धारण का अर्थ अपने स्वरूप देह से ही वसुदेव देवकी आदियों के शरीर में होकर बाहर आना हैं। अन्य जीवों को जन्म पाने के लिए अलग अलग शरीर पाना पड़ता है। यह पद्म पुराण का वाक्य है।

यहाँ इन्द्र भगवान को गोविन्द नाम से पुकारते हुए अपनी विशेष भक्ति को दर्शाते हैं। अपने हीन कृत्य से

लज्जित इन्द्र काम धेनु के क्षीर से भगवान को गोविन्द कहते हुए अभिषेक किए। गोविन्द का अर्थ बहुत होते हैं। गो =गाय, गो रक्षण करने वाला गोविन्द, गो = गोवर्धन पर्वत, उसको उठाने वाले गोविन्द। गो = वेद, वेद को अभिव्यक्त करने वाले गोविन्द। गो = शब्द राशि, प्रथम शब्द राशि को उत्पन्न करने वाले गोविन्द। गो = भूमि, भूमि के उद्धार करने वाले गोविन्द (महाजल में डूबने वाले इस ब्रह्माण्ड को भगवान दो बार उठा कर लाए हैं)। विष्णु सहस्र नाम में गोविन्द शब्द दो बार आया है। 1. गोविन्दों गोविदांपतिः 2. महावराहो गोविन्दः इससे यह स्पष्ट होता है कि गोविन्द नाम विष्णु का है। गोविन्द नामोच्चारण करते समय अच्युताय नमः, अनन्तायः नमः, गोविन्दाय नमः इस प्रकार नामत्रय का उच्चारण करना चाहिए।

हे भगवान! मेरे लिए करने वाला यज्ञ आपके कारण रुक गया। इसको देखकर महाकोपिष्ठ मैं आँधी और तूफान से गोकुल को नाश करने का प्रयास किया।।।2।।

हे प्रभु! आप मेरे इस प्रयत्न को विफल करते हुए मेरे अहंकार को ठोकर मारते हुए मेरे ऊपर अनुग्रह किए हैं। आप मेरे स्वामी, मेरे गुरु और अन्तर्यामी हैं। मैं आपके शरण में आया हूँ।।।3।।

श्री शुकदेव कहते हैं- इस प्रकार देवेन्द्र से की हुई स्तुति को सुनते हुए भगवान श्री कृष्ण हंस कर अपने मेघ गम्भीर स्वर से कहने लगे।।।4।।

श्री भगवान कहते हैं - हे देवेन्द्र! स्वर्ग के ऐश्वर्य के मद से तुम बहुत अहंकारी बन गये थे।तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करने हेतु, उनको सदा काल मेरी याद दिलाने के लिए मैंने। तुम्हारे यज्ञ का भंग किया।।।5।।

स्वामित्व और धन सम्पत्ति के मद से जो अन्धा बना है। वह ऐसे लोगों का नियमन करने वाला मुझको देख नही पाता। मैं जिस अहंकारी भक्त के ऊपर अनुग्रह करना चाहता हूँ उसके स्वामित्व और धन सम्पत्ति को नाश करता हूँ।।।6।।

देवेन्द्र! तुम वापस स्वर्ग को जाओ, तुम्हारा कल्याण हो। तुम सदा काल मेरी आज्ञा का पालन करो। तुम सारे भक्त अपने अधिकार को शास्वत न मानते हुए अपने-अपने अधिकार-स्थानों में कर्तव्य कर्म करते रहो और कभी भी उससे च्युत न हो जाय।।।7।।

इन्द्र के स्वर्ग जाने के बाद कामधेनु अपने सन्तान रूप गो सन्तति से समालोचना करते हुए गोपाल रूपी जगदीश्वर श्री कृष्ण को शुद्ध मन से नमन करते हुए कहती है।।।8।।

कामधेनु कहती है - हे महायोगी कृष्ण! कृष्ण, आप इस जगत के मालिक हैं, इस जगत को जन्म देने वाले हैं। आप अच्युत जगन्नाथ हैं। नाथ रूप से आप को पाकर हम कभी भी अनाथ नही हो सकते। हम सनाथ हैं। यह सिद्ध हो गया है।।।9।।

हे भगवान! आप ही हमारी सर्व श्रेष्ठ देव हो। आप जगतपति हैं, आपही हमारे लिए इन्द्र हैं। आप

सदा काल के लिए गो, ब्राह्मण, देवता और सकल सज्जनों का अभ्युदय करने वाले हैं।।20।।

हे इस जगत के अन्तर्यामी आप इस भूमि का भार हरण करने के लिए अवतार लिए हैं। ब्रह्मा जी के कथनानुसार हम आपको अपना स्वामी मानते हुए आपका पट्टाभिषेक करेंगे।।21।।

इस प्रकार कहते हुए कामधेनु ने अपने अमृत तुल्य दूध से भगवान श्री कृष्ण का अभिषेक किया। देवेन्द्र भी देवता और ऋषि मुनियों की अपेक्षा के अनुसार देव माता अदिति के साथ आकर ऐरावत के शूड़ से आकाश गंगा के पवित्र जल को उठा कर भगवान श्री कृष्ण का अभिषेक किए। उच्च स्वर में गोविन्द नाम का उद्घोष किए।।22,23।।

भगवान का नाम गोविन्द है। गो शब्द का अर्थ गाय और स्वर्ग भी होता है। इन्द्र का यहाँ गोविन्द बोलने का अर्थ यही होता है कि सही अर्थ में आप ही स्वर्ग के स्वामी हैं, मैं अस्वतंत्र हूँ यह अर्थ होता है। कामधेनु के गोविन्द बोलने से आप गायों के रक्षक हैं यह अर्थ होता है। गोविन्द का अर्थ गोवर्धनगिरि का उद्धार करने वाले, वेद रक्षक इत्यादि अन्य बहुत अर्थ होते हैं। यहाँ देवेन्द्र अपने पाप के प्रायश्चित रूप में गोविन्द नाम स्मरण किया है। ऋषि मुनियों ने वेदोद्धारक गोविन्द का नाम स्मरण किए हैं। सारे गो संकुल, यदु कुल, गोकुल वासी अपने किए हुए पापों के प्रायश्चित रूप में गोविन्द नाम का उच्चरण किए। गोविन्द नाम सकल पाप के लिए प्रायश्चित रूप तथा पाप परिहारक है।

तब वहाँ आये हुए तुम्बुरु, नारद, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध और चारण लोग सन्तोष से समस्त लोक के पाप परिहारक हरि नाम संकीर्तन करते हुए गोविन्द नाम का उदघोष किए। अप्सरा स्त्रियों ने नाट्य किए।।24।।

देवता समूह में श्रेष्ठ चतुर्मुख ब्रह्मा जी देव गण सन्तोष से भगवान के ऊपर पुष्प वृष्टि किए। इससे तीनों लोक आनन्द भरित हो गये। गायों के स्तन से दूध गिर कर नीचे की जमीन भींग गयीं।।25।।

श्री कृष्ण को पट्टाभिषेक करते समय अनेक स्थानों में बहने वाली नदियाँ संयुक्त स्वर में गाते हुए गोविन्द नाम का संकीर्तन किए। वृक्षों से मधु का प्रवाह बहने लगा। जमीन कृषि कार्य न करते हुए फल दिए। पहाड़ों से रत्न स्वयं उभर कर आये।।26।।

हे राजा परीक्षित! श्री कृष्ण के इस पट्टाभिषेक के समय में स्वभाव से क्रूर रहने वाले शेर, भेड़िया इत्यादि प्राणी भी अपने वैर को भूल कर गोविन्द नाम के प्रभाव से स्नेह भाव से एकत्र आ गये।।27।।

इस प्रकार गायों के और गोकुल के अधिपति श्री कृष्ण को पट्टाभिषेक करके, उनकी अनुमति से देवेन्द्र, देवता और देवता स्त्रियाँ कामधेनु के साथ स्वर्ग को चले गये।।28।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्धमें पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - छबीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - एक बार एकादशी व्रत किए हुए नन्द गोप पारण करंने हेतु द्वादशी के दिन स्नान करने यमुना नदी में उतर गये।।।।।

मध्य रात्रि में नहाने के लिए पानी में उतरे नन्द को वरुण का भट एक राक्षस असुर समय को न समझते हुए उनको पकड़ते हुए वरुण के पास ले आया।।2।।

साधन द्वादशी के दिन सूर्योदय के बाद अर्धकला मात्र द्वादशी रहती है तो उस समय प्रात: स्नान से आरम्भ करते हुए मध्याह्न तक के अनुष्ठान के लिए मध्य रात्रि के दो बजने के बाद स्नान करना निषिद्ध नही है। त्रिंशत् **काष्टाः कला** इस कथनानुसार कलार्ध यानी एक निमिष और छत्तीस सेकेन्ड का समय होता है। सूर्योदय के बाद कलार्ध समय में गंगा जी में गंगोदक से पारण करना पड़ता है। इसके लिए नन्द गोप रात्रि के दो बजने के बाद यमुना जी में स्नान करने उतरा था। अन्य दिनों में इसको असुर काल माना जाता है। यह समय स्नान के लिए निषिद्ध है। इसको न जानते हुए वरुण दूत नन्द को पकड़ कर ले गया। बाद में श्री कृष्ण के सामने **अजानता माम केन** इस शब्द से वरुण इसको कबूल करता है। इसलिए इस लोक में रहने वाला **अविज्ञाय** शब्द को **प्रविष्टम्** के साथ न जोड़ते हुए **अनयत्** के साथ जोड़ना है।

वरूण के दूत ज्ञानी हैं। किन्तु तत्कांल में भगवान की लीला से नन्द गोप स्नान करने गये और असुर भी भगवती माया से उसको न जानते हुए नन्द को पकड़कर ले गया। भगवान श्री कृष्ण इन सब को ज्ञानोदय करवाए।

गोपालक नन्द को न देखते हुए घबड़ा कर श्री कृष्ण और बलराम के सामने कहे। भक्तों को अभय देने वाले भगवान श्री कृष्ण वरुण अपहृत नन्द को देखने के लिए वरुण के पास चले।।3।।

श्री कृष्ण के दर्शन करते हुए आश्चर्य चकित किन्तु दर्शन से परमानन्द भरित लोक पालक वरुण सभ्रम से भगवान का बहुत बड़ा सत्कार किया।।4।।

वरुण कहता है - प्रभु! आज मेरा जन्म सार्थक हुआ। मेरे सकल अभीष्ट प्राप्त हुए। हे भगवान

आप के सभी चरण सेवक निश्चित रूप से संसार के उस तट को आसानी से पाते हैं।।5।।

अपने चमक से इस जगत की आँखों को अन्धा बनाने वाले आप के बन्धक शक्ति का प्रभाव स्वयं आपके ऊपर कभी भी नही होगा, कोई भी नही देखा। ऐसे गुणपूर्ण भगवान नारायण आपको मेरा नमस्कार।।6।।

प्रभु मेरा सेवक यह राक्षस न जानते हुए आपके पिता को हमारे पास पकड़ कर लाया है। वह मूर्ख है, किसके साथ कैसा व्यवहार करना है इसको वह नही जानता। आप कृपा करके इसको क्षमा करें।।7।।

हे गोविन्द कृष्ण! आप ठीक तरह से सबको जानते हैं। मेरे सेवक द्वारा पकड़ कर लाए हुए अपने पिता जी को आप वापस ले चले। आप मेरे ऊपर अनुग्रह करें।।8।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार वरुण सर्वेश्वर भगवान श्री कृष्ण को अपने विनय पूर्वक बातों से अपना कर। श्री कृष्ण के पिता को लाकर उनके बन्धुओं को समर्पित किया।।9।।

नन्दगोप, वरुण की दिव्य और अतीन्द्रिय अपार सम्पदा को देखकर, देखने के बाद ऐसे अमीर लोक पाल भी श्री कृष्ण में दिखायी हुयी विधेयता से विस्मित होकर बन्धुओं के सामने उनके बारे में बताए।।10।।

प्रजा जन और बन्धु कुतूहल से नन्द से पूछते हैं कि हे राजा! भगवान श्री कृष्ण सर्वेश्वर हैं। वे कृपा करके हमें वैकुण्ठधाम का दर्शन कराते हैं क्या?।।11।।

इस प्रकार सर्वतंत्र स्वतंत्र भगवान भक्तों के अभीष्ठ को जानते हुए उनके इष्टार्थ को पूर्ण करने की इच्छा से उनके ऊपर कृपा करते हुए ऐसे मन में चिन्तन करते हैं।।12।।

भगवान का चिन्तन इस प्रकार है - इस लोक में सज्जन लोग अविद्या काम और कर्म से बन्धित होकर अच्छे बुरे योनियों में जन्म लेते हुए जनन मरण चक्र में फंसे रहते हैं। इसी कारण परम गति वैकुण्ठ धाम को वे देख नही सकते। मैं ही उनको वैकुण्ठ को दर्शाऊँगा।।13।।

इस प्रकार चिन्तन करने वाले परम दयालु प्रभु श्री कृष्ण अपने अप्राकृत स्वरूप और वैकुण्ठ लोक को उन सारे गोपलकों को दिखाए।।14।।

सत्य ज्ञान रूप वाला, देश काल परिमिति का बन्धन न रहने वाला, प्रकाश रूप गुणपूर्ण सत्य सनातन, हृदय गुहान्तर्गत जिस रूप को ज्ञानी लोग मुक्तावस्था में अपने आँखों से स्वयं देखते हैं, उस मुक्ति नियामक रूप को उसके साथ अपने लोक को भगवान श्री कृष्ण गोपालको को दर्शाए।।15।।

उनको यमुना नदी के तट पर ब्रह्महृद नाम के भवर के पास श्री कृष्ण ले चले। यह वही स्थान है जहाँ अक्रूर को वैकुंठ का दर्शन हुआ था। उसी स्थान में गोपालक भी वैकुंठ का दर्शन किए।।16।।

ब्रह्म हृद में गोपालको को नहला कर भगवान श्री कृष्ण उनको दिव्य चक्षुष् देकर वैकुण्ठ का दर्शन करवाए। अक्रूर राम कृष्ण को मथुरा को लेते समय मार्ग मध्य में यमुना के इसी स्थान में जल में वैकुण्ठ का दर्शन करता है। इस श्लोक में पूरा **अध्यगात्** इस शब्द का अर्थ आगे देखने वाला है यह अर्थ करना पड़ता है। आगे निश्चित रूप से दर्शन होने वाला है इस अर्थ से यहाँ भूतकाल का प्रयोग किया है। अथवा पिछले कल्प में अन्य एक अक्रूर वैकुण्ठ को देखा है ऐसे भूत काल का प्रयोग हो सकता है।

नन्द गोप सहित अन्य लोग भी वहीं वैकुण्ठ लोक को और वहाँ वेदवेद्य भगवान श्री कृष्ण को देखकर परमानन्द से तृप्ति पाए और बहुत आश्चर्य चकित हो गये।।17।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में छबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशवाँ स्कन्ध का पूर्व भाग में पहला भाग समाप्त होता है।।

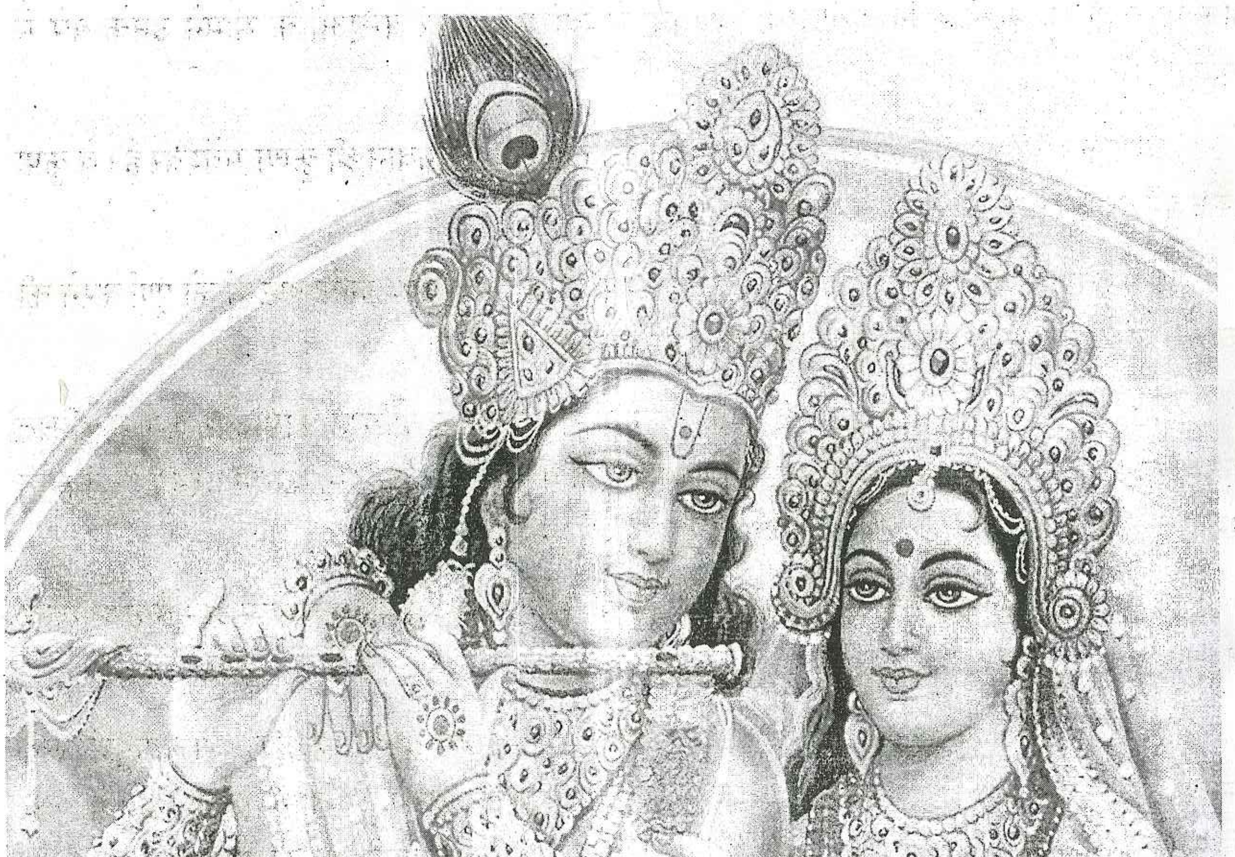

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

गोपियों के संग रासलीला

दशम स्कन्धः भाषानुवादः

पूर्वार्द्ध अध्याय २७ से ५९ तक

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण
वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री विजयध्वज टीकानुसारी

श्री मद्भागवत महापुराणम्

दशम् स्कंधः
(भाषानुवादः)

(पूर्वार्द्ध अध्याय 27 से 59 तक)

अनुवादक
श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

प्रकाशक
तत्व संशोधन संसत्
जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

श्रीमद्भागवत महापुराणम् दशम् स्कन्धः

लेखक-

श्री 1008 श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी

प्रकाशक

तत्व संशोधन संसत्

जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण 1000 प्रतियाँ

सहयोग राशि

पुस्तकालय संस्करण 150 रुपये

सामान्य संस्करण 100 रुपये

03-05-2012

ग्राफिक्स :- श्री दिलीप मैसूर।

अक्षर विन्यास

श्री सुनील कुमार (राजा) एवम्

प्रशान्त शुक्ल

मुद्रक -

श्री वैष्णव प्रेस

मोरी, दारागंज, इलाहाबाद

फोन नं0- 0532-2501463 मो0- 09415235637

श्री राम श्री

अनुग्रह संदेश

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी उडुपि

हमारे विशेष अभिमान पात्र **श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी** द्वारा किए हुए आठ शास्त्र ग्रंथों का हिन्दी भाषानुवाद को देखकर हमें सन्तोष हुआ है। श्री स्वामी जी अपने पूर्वाश्रम में अनेक वर्षों से सामाजिक सेवा में रचनात्मक कार्यों को किये हैं। हमारे साथ अकाल, भूकम्प, बाढ़ इत्यादि कार्यों में सम्पूर्ण समर्पण भाव से काम किए हैं। अब अपने अस्सी वर्ष के समय में आठ शास्त्र ग्रन्थों का अनुवाद और प्रकाशन का स्तुत्य काम अपने हाथ में लिए हैं। मध्व तत्वज्ञान को अभ्यास करने के जिज्ञासुओं को अनुकूल होने वाली यह एक विशिष्ट सेवा किए हैं।

वे अपने सत्तर वर्ष की आयु में कन्नड़ भाषियों के अनुग्रह रूप में अनेक शास्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किए थे। अब प्रयाग में रहकर मध्व सिद्धान्त का प्रसार कार्य करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा मध्व तत्वज्ञान को हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचार करने का महान कार्य कर रहे हैं।

श्री कृष्ण, श्री वेद व्यास जी, अस्मदुपास्य श्री रामविट्ठल जी इनको विशेष अनुग्रह करते हुए इनकी सेवा विस्तार रूप से सारी जनता को मिले यही हमारा आशीर्वाद है।

इति नारायण स्मरण

श्री श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी महाराज
पेजावर मठ, उडुपि

अनुग्रह संदेश

श्री राम श्री

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महा संस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी, उडुपी

आठ सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरू मध्वाचार्य जी ने मध्व सिद्धान्त का प्रचार प्रसार बहुत पैमाने से आरम्भ किया। इस प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए उडुपी में आठ पीठ और उत्तर कर्नाटक में एक पीठ की स्थापना किए। श्री जयतीर्थ मुनि, श्री श्रीपाद राज स्वामी, श्री व्यासराजमहामुनि, श्री वादिराजयोगी, श्री रघूत्तम स्वामी जी, श्री राघवेन्द्र तीर्थ जी इत्यादि महामहिमों ने उस सिद्धान्त को और विकसित किया।

हमारे दीक्षा शिक्षा गुरु युगपुरुष श्री श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी उत्तर भारत में श्री मध्व तत्वज्ञान को प्रसार करने हेतु **बीस वर्ष** पहले श्री प्रयाग क्षेत्र में श्री मध्व पीठ की स्थापना की है। उन दिनों से प्रयाग का हमारा मठ मध्वसिद्धान्त का प्रसार करता आ रहा है।

श्री वेदव्यास जी की इस सुसंस्कृत भागवत को हमारे शिष्य श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी ने समर्थ सुन्दर और सबके मन को मिले ऐसी सुन्दर हिन्दी में अनुवाद कर साधक सज्जनों का परमोपकार किए हैं। कन्नड़, संस्कृत न समझने वाले हिन्दी भाषी साधकों को जगद्गुरु मध्वाचार्य जी के शास्त्र का परिचय कराने वाले इस कार्य को हम अपने हृदय भरकर अभिनन्दन करते हैं। अन्य सारे कार्यों को बाजू में रखते हुए **तद्धितप - तद्धितप** के जैसे दिन-रात किया हुआ यह शास्त्र सेवा अनुपम है। हमारे गुरु श्री श्री 1008 विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी से स्थापित तत्व संशोधन संसत से मुद्रण किया गया है। यह हरि गुरु का अनुग्रह प्राप्त कराने वाला है। उत्तर भारत के हिन्दी भाषी लोग इस ग्रन्थ को पढ़ें और अपने बन्धु बान्धवों से पढ़ाएँ तो यह प्रयत्न सार्थक हो जाता है। इनसे भागवत के अन्य भाग भी जल्दी से जल्दी अनुवादित होकर साधकों के हाथ में विराजमान हो, यही हमारी अपेक्षा है। श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य जी से प्रतिष्ठापित श्री कृष्ण, श्री राम जी के अनुग्रह से हम अपने शिष्य को शुभ कामना देते हैं।

श्री श्री 1008 श्री विद्याधीशतीर्थ
स्वामी जी महाराज

अनुग्रह संदेश

श्री दिग्विजय रामो विजयते

श्री मद्जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

उत्तरादि मठ

भगवान के गुणों का चिन्तन करना प्रत्येक आदमी का मुख्य कर्तव्य है। अनन्त गुणपरिपूर्ण भगवान की महिमा को जानने के लिए सबको भागवत के प्रकाश की आवश्यकता है। भागवत के पाठ प्रवचन श्रवण सारे बहुत पुण्य देने वाले हैं। ऐसे श्रेष्ठ महाभागवत पुराण को वैष्णव सिद्धान्त के अनुसार श्री श्री विद्यात्मतीर्थ जी ने हिन्दी में सब के मन मोहित करने वाले उत्कृष्ट व्याख्यान किए हैं। प्रयाग के त्रिवेणी तट पर रहते हुए अपनी स्वयं साधना करते हुए उत्तर भारत में वैष्णव सिद्धान्त का प्रचार प्रसार कार्य करते हुए अपने को समर्पित किए हैं। वे जो इस प्रयास में रत हैं उसको सहकार देते हुए श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी उन्हें बल दे रहे हैं यह संतोष का विषय है।

मध्व मत का प्रसार समग्र भारत में उज्वल रीति से होना चाहिए। उत्तर भारत के परिसर में यह प्रसार कार्य करने वाले श्री श्री विद्याधीश तीर्थ और श्री श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी का हम अभिनन्दन करते हैं।

इसी प्रकार श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी और अनेक कृति और व्याख्यान करते हुए तत्वप्रचार कार्य को इससे भी अधिक रूप से करें इस प्रकार हम अपने उपास्य मूर्ति श्री दिग्विजय राम और वेदव्यास जी से प्रार्थना करते हैं।

बैगलूरु

श्री सत्यात्म तीर्थ स्वामिनः
उत्तरादि मठ

श्रीमद् अच्युत प्रेक्षाचार्य संस्थानम्
भीम सेतु मुनिवरेन्द्रमठ भीमनकट्टे
अनुग्रह संदेश

[illegible]

SRIMAD ACHUYTA PREKSHACHARYA SAMSTHANAM

BHIMASETHU MUNIVRUNDA MUTT, BHIMANAKATTE.

SRI 1008 SRI SRI. RAGHUMANYATEERTHA SWAMIJI
PEETHADHIPATHI

Doorvasapuram Post, Taluk: Teerthahalli, District: Shimoga. Pincode: 577432
Phone: 08181-[illegible], Mobile: [illegible]. Email: [illegible]@gmail.com

Branch: BHIMANAKATTE SRI RAGHAVENDRA SWAMY MUTT
No.10, 5th Block, Doddabommasandra, Vidyaranyapura Main Road, Bangalore : 560097. Phone: 080-23463471.

[illegible]

[illegible]

शुभ कामना

।। श्री निम्बार्को जयति ।।

।। श्रीमद् गोपीजनवल्लभाय नमः ।।

अनन्त श्री जगद्गुरु निम्बार्काचार्य
गोस्वामी श्री विष्णुकान्त जी महाराज, पीठाधिपति

श्री निम्बार्काचार्य पीठ, 18/12, महाजनी टोला प्रयाग - 211 003 फोन : 2404298

श्री निम्बार्क प्रभास्थली व्यास गद्दी नैमिषारण्य (उ० प्र०)

कर्नाटक के अन्तर्गत उडुपी माध्व पीठ प्रयाग के अधिपति श्री 1008 श्री स्वामी विद्यात्म तीर्थ जी महराज के लोक भाषा में अनुवादित भागवत के ग्रन्थ और अन्य भगवद्गीतादि ग्रन्थ देखने को मिले। इक्यासी वर्ष की अवस्था में अदम्य स्फूर्ति, वैदुष्य एवं सार्थक जीवन के धनी महा पुरुष अभिनन्दनीय हैं। कई अवसर में हम लोग एक रहे हैं।

इस अवस्था में भी कई ग्रन्थों के लेखन, सामाजिक एवं पारमार्थिक कार्यों को एक युवक की भाँति करते हुए संलग्न हैं।

आप का जीवन अमृततत्व की ओर अग्रसित है आप सकल कुशल पात्र हैं।

आचार्य विष्णु कान्त गोस्वामी
इलाहाबाद

प्रस्तावना

हमारे गुरु जी पूर्व प्रयाग पीठाधिपति श्री 1008 श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी ने लगभग दस वर्ष पूर्व भागवत के पहले तीन स्कन्धों का अनुवाद कर प्रकाशित किए थे। उनका महानिर्वाण आकस्मिक रीति से होने के कारण वह कार्य वहीं अवरुद्ध हो गया था।

हमारे दीक्षा गुरु उडुपि श्री पलिमारु मठ के पीठाधिपति जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी महाराज ने उस अवरुद्ध कार्य का पुनरारम्भ करने का आदेश दिया। मैं अल्प शक्ति और अल्प ज्ञान वाला हूँ। किन्तु अपने गुरुवर्य की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मैं यह कार्य कर रहा हूँ।

विद्यावतां भागवते परीक्षा यह पूर्णतः सत्य है। श्री गुरु जी का अनुग्रह ही मुझसे यह कार्य करवा रहा है। दक्षिण भारत में जन्म लेने के कारण मुझे अच्छी हिन्दी नही आती। पण्डित न होने के कारण शास्त्र का गहन और विस्तृत ज्ञान प्राप्त नही है। केवल गुरु का अनुग्रह ही मुझे प्रेरणा दे रहा है। पाठकों द्वारा निर्दिष्ट त्रुटियों को अगले अंक में सुधारने का प्रयास करेंगे।

दशम् स्कन्ध भागवत का किरीट प्राय है। वे व्यास जी इसको भक्ति रस से पूर्ण रूप से भिगो दिए हैं। कई कथाकार इसको ऊपर ऊपर से पढ़ते हुए अपने गलत अर्थ प्रसार किए हैं। इस स्कन्ध में भक्ति को छोड़ कर काम इत्यादि अन्य भावों का विचार करना गलत है। मूल भागवत में दशम स्कन्ध में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध इस प्रकार दो भाग कर चुके हैं। दोनों भाग सौ - सौ अध्यायों से भर कर फल पुष्प से भरा हुआ वृक्ष के समान अपने बोझ से बहुत झुके हैं। पाठक की सुविधा के लिए हम पूर्वार्द्ध में भी और भाग करना चाहते हैं। उसमें से प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है। इसका विस्तार अध्याय एक से अध्याय छब्बीस तक सीमित है। अब हम पूर्वार्द्ध में आगे का भाग अध्याय सत्ताईस से अध्याय उनसठ तक (पूर्वार्द्ध का अन्त तक) अब प्रकाशित कर रहे हैं।

विस्तृत रूप से जानकारी देने के उद्देश्य से हमने क्रम में भी थोड़ा सा बदलाव किया है। पहले के समान श्लोकार्थ मोटा अक्षरों में दिया गया है, अर्थ थोड़ा सा छोटे अक्षरों में दिया गया है। इस भाग में विशेषार्थ के लिए और थोड़ा अवकाश किया है। प्रत्येक श्लोक का नही तो जहाँ आवश्यक है वहाँ विशेषार्थ, उससे भी छोटे अक्षरों में देने का प्रयास किया है। आशा है कि यह पाठकों को सुविधाजनक होगा।

इस द्वितीय भाग में भगवान श्रीकृष्ण की गोपियों के साथ रास-लीला, जल क्रीड़ा आदि लीलाएँ आती हैं। रसिक कवियों ने इन लीलाओं को उत्प्रेक्षा करते हुये भावुक होकर बहुत सुन्दर ढंग से वर्णन किये हैं। इन लीलाओं में भक्ति रस और भक्ति भाव ओत-प्रोत होकर बहता है, बहना चाहिये। किन्तु रासिकता में यह भक्ति भाव लुप्त हो गया है। लोगों को श्रीकृष्ण की इन लीलाओं में भक्ति भाव के बदले में रसिकता और काम भाव का अनुभव आये इस प्रकार बहुत बदलाव हो चुका है। भागवत रचनाकार वेदव्यास जी ने शुद्ध भक्ति भाव से भागवत की रचना की है। इसमें कोई मत-भेद नही रखते हैं। विशेषकर मुसलमानों के राज्याधिकार के समय में उनके सभा में रहने वाले कवि लोग उनके मनोरंजन के लिये भागवत का उपयोग किए है। तब से भागवत में भक्ति भाव से अलग और विचार करने की परम्परा प्रारम्भ हो गई। अब हमें उसको त्याग कर वेदव्यास जी को

सम्मत शुद्ध भक्ति भाव को ही लेना है। यहाँ हमारा प्रयास यही है कि भागवत के प्रत्येक श्लोक से जो भक्ति रस प्रवाहित होता आ रहा है, पाठकगण उसको पाये, सद्भक्त बनें। इस दृष्टि से हमारे पारम्परिक व्याख्यनाकारों ने जो सुन्दर अर्थ लिखे है उसी का हम अनुसरण करने का प्रयास किये हैं। अन्य शृंगारी कवियों के शृंगारसय वर्णनों से हम दूर रहने का प्रयास किये है। हम चाहते हैं कि हमारे पाठकगण भी केवल भक्ति भाव से भागवत को देखें, भागवत के सद्भक्त बनें, भगवान के निजी भक्त बनें।

तीन सौ साठ वर्ष के पहले मंत्रालय के श्री राघवेन्द्र स्वामी जी ने अनेक शास्त्र ग्रथों की रचना की वे थोड़े श्लोको में दशम स्कन्ध की श्री कृष्ण की कथा को बता दिए हैं। रोज इन श्लोकों के पाठ करने से नित्य दशम स्कन्ध पाठ का पुण्य मिलता है। हम इन श्लोकों को अर्थ के साथ यहाँ दिए हैं।

बड़े लोगों का कहना है कि नित्य पाठ करते समय नाम, रूप, गुण इन तीनों की अवश्यकता है। हमारे पाठकों को यह तीनों लाभ प्राप्त हो इस दृष्टि से इन श्लोकों के पाठ करते समय भगवान के **नाम** फोटो में भगवान के **रूप,** श्लोक में और चित्र की सहायता से कथा को याद करते हुए भगवान का **गुण** इन तीनों का चिन्तन एक साथ मिले। ग्रन्थ के प्रारम्भ में फोटों को अर्थ सहित दिया है। आशा रखतें है कि पाठकगण नित्य पाठ करके भगवान का प्रीति पात्र बने।

हमारे परम गुरु श्री विद्यामान्य जी से संस्थापित और हमारे गुरु जी श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महाराज से पोषित श्री तत्व संशोधन संसत् ने इस ग्रन्थ प्रकाशन की जिम्मेदारी ले लिए हैं। तत्व संशोधन संसत् दक्षिण भारत में एक प्रसिद्ध संशोधन और प्रकाशन की बड़ी संस्था है। बहुत श्रेष्ठ विद्वान और पंडित संशोधकों के ग्रन्थ यहाँ से प्रकाशित हुए हैं। मेरे जैसे अल्प बुद्धि वाले की इस छोटी सी कृति को वे प्रकाशित कर रहे हैं, यह मेरा बड़ा भाग्य है। इसके लिए मैं अपने श्री गुरु जी को शत शत नमन करता हूँ।

इस ग्रन्थ को हमारे परम गुरु विद्यामान्य जी की आराधना वैशाख शुक्ल एकादशी गुरुवार को हो रही है। उस सन्दर्भ में हमारा यह भागवत प्रकाशित हो रहा है। यह मेरा बड़ा भाग्य है। परम पूज्य विद्यामान्य जी चाहते थे कि उत्तर भारत में मध्व सिद्धान्त का प्रचार-प्रसार हो। उन्ही की इच्छानुसार यह भागवत आदि सद् गन्थ्रों का प्रकाशन कार्य हो रहा है। उन्ही के अनुग्रह से यह कार्य आगे बढ़े यह कामना उन्ही के श्रीचरणों में इस ग्रन्थ को समर्पित करते हुये कामना करते हैं।

इस ग्रन्थ के लिए आवश्यक फोटो के लिए हमे बहुत प्रयास करना पड़ा। वैसे तो श्री कृष्ण के लाखों फोटों प्राप्त हैं, तो भी कथा में आए हुए सन्दर्भ को संगति देने वाला फोटो मिलने में कष्ट हुआ। इस समय हमें आवश्यक फोटो देकर श्री रामचन्द्र सिंह सहायता किए हैं। हम यहाँ उनका याद करते हैं।

इस ग्रन्थ के अक्षर विन्यास किए हुए श्री सुनील कुमार जी (राजा) और प्रशान्त शुक्ल जी अक्षर संशोधन किए हुए श्री गिरधारी लाल मिश्र और मुद्रण किए श्री वैष्णव प्रेस के श्री पुरुषोत्तम लाल जी और सारे कर्मचारियों के सहयोग का स्मरण हम करते हैं। सूधी सद्भक्त इस ग्रन्थ का सदुपयोग करें यही आकांक्षा है।

इति शम्

पालिमारु उडुपि
03-05-2012

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज

दसवाँ स्कन्ध की विषय सूची

क्र0	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	अध्याय 27	शरद के रात में श्रीकृष्ण वेणु गान करते है। गोपियों के संगत रासलीला	1-8
2.	अध्याय 28	पश्चात्ताप से गोपियाँ श्रीकृष्ण को ढूढ़ती है।	9-13
3.	अध्याय 29	गोपी गीता	14-17
4.	अध्याय 30	श्रीकृष्ण का दर्शन, गोपियों का प्रश्न, श्रीकृष्ण का उत्तर	18-21
5.	अध्याय 31	रासलीला	22-28
6.	अध्याय 32	अजगर नन्द को पकड़ा, श्रीकृष्ण से मोचन, शंखचूड़ वध	29-31
7.	अध्याय 33	वेणुगीता	32-35
8	अध्याय 34	वृषभासुर वध, अक्रूर को श्रीकृष्ण को लाने के लिए गोकुल को कंस ने भेजा।	36-41
9.	अध्याय 35	व्योमासुर वध, केशी वध,	42-45
10.	अध्याय 36	अक्रूर गोकुल आए, कंस सन्देश कथन,	46-50
11.	अध्याय 37	मथुरा गमनारम्भः गोपियों के खेद, अक्रूर को यमुना में विश्वरूप दर्शन	51-56
12.	अध्याय 38	अक्रूर ने स्रोत किया	57-61
13.	अध्याय 39	मथुरा प्रवेश, रजक हनन, सुदामा से श्रीकृष्ण सेवा	62-67
14.	अध्याय 40	त्रिवक्रा से भेंट, धनुषशाला में धर्नुभंग	68-72
15.	अध्याय 41	कुवयलापीढ़ हनन, राम कृष्ण रंगाप्रवेश, चाणूर मुष्टिक हनन	73-76
16.	अध्याय 42	कंस वध, वसुदेव का बन्ध विमोचन	77-82
17.	अध्याय 43	उग्रसेन का अभिषेक, राम कृष्ण के उपनयन, सान्दीपिनी आश्रमवास	83-87
18.	अध्याय 44	उद्धव को गोकुल को भेजे, नन्द से भेंट	88-92
19.	अध्याय 45	उद्धव से गोपियों का संवाद, भ्रमर गीता	93-99
20.	अध्याय 46	बहुत दिन के बाद उद्धव वापस चले,	100-101
21.	अध्याय 47	श्रीकृष्ण से त्रिवक्रा का अनुग्रह, अक्रूर के घर गये एवं उनको हस्तिनापुर भेजे।	102-105
22.	अध्याय 48	अक्रूर से धृतराष्ट्र को हितोपदेश, पाण्डवों से मिलन।	106-108
23.	अध्याय 49	जरासंध से मथुरा आक्रमण, जरासंध प्रथम पराजय	109-115
24.	अध्याय 50	तीन माह के बाद पुनः जरासंध से युद्ध, यमुना तट स्थित सैन्य का उच्चाटन।	116-118
25.	अध्याय 51	जरासंध बाण का सहाय याचना करता है, उनके सेनापतियों के साथ पुनः आक्रमण	119-123
26.	अध्याय 52	जरासंध का सैन्य नाश हुआ, सारी सेना युद्ध स्थल से भाग गई,	124-127
27.	अध्याय 53	चार माह राम कृष्ण गोमान्तक में वास किये, गरुड़ से मिलन, द्वारिका निर्माण	128-131
28.	अध्याय 54	कालयवन का आक्रमण। मथुरा से बाहर आकर श्रीकृष्ण भागे। मुचुकुन्द से कालयवन का नाश	132-138
29.	अध्याय 55	वापस आये श्रीकृष्ण से जरासंध का युद्ध। राम कृष्ण गोमान्त के प्रति दौड़ गये। जलते गोमान्तक पर्वत को बुझा कर द्वारका आये।	139-141
30.	अध्याय 56	कृतवर्म को हस्तिनापुर भेजे, पाण्डवों के समाचार पाये।	142-143
31.	अध्याय 57	रेवती बलराम विवाह। रुक्मिणी स्वयंवर योजना, ब्राह्मण से श्रीकृष्ण को पत्र।	144-149
32.	अध्याय 58	श्रीकृष्ण कुण्डिनपुर गये, रुक्मिणी हरण, बलराम से राजाओं के साथ युद्ध।	150-155
33.	अध्याय 59	शिशुपाल की पराजय, श्रीकृष्ण द्वारा अपमान, रुक्मिणी श्रीकृष्ण का विवाह	156-164

श्री राम श्री

श्रीमध्वतत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

हमारे प्रकाशित ग्रन्थ

क्र0.	ग्रन्थनाम	मौल्य
1.	श्रीमद्भगवद्गीता प्रतिश्लोक का हिन्दी भावानुवाद	70.00
2.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्कंधः भाषानुवादः	100.00
3.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् चतुर्थ स्कंधः भाषानुवादः	60.00
4.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् पंचम एवं षष्ठ स्कंधौ भाषानुवादः	60.00
5.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् सप्तम् स्कंधः भाषानुवादः	60.00
6.	श्रीमद्भागवत अष्टम् स्कन्धः भाषानुवादः	60.00
7.	श्रीमद्भागवत नवम्स्कंधः भाषानुवादः	60.00
8.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः पूर्वार्द्ध अध्याय छब्बीस तक	100.00
9.	श्री रामायणपात्र चित्रणम् एवम् नीतिकथा	50.00

पुस्तक प्राप्ति स्थान

1. श्री मध्वमठ
   63 मीरागली, दारागंज इलाहाबाद

2. तत्व संशोधन संसत् श्री हृषीकेशतीर्थ संस्थानम्, श्री पलिमारुमठ, रथ बीदि उडुपि कर्नाटक

3. श्री स्वामी सीता वल्लभ शरण
   श्री मध्वमठ बड़ा अखाड़ा मैहर (म. प्र.)

4. श्री स्वामी ललित मोहन ओझा
   प्रेमपीठ मध्वमठ तिजारा, जिला अलवर, राजस्थान

5. डॉ रवि,
   1st फ्लोवर, नीयर लक्ष्मी भगवन, सेन्ट्रल बाजार रोड़, नागपूर,

6. श्री G. R. Kulakarni
   2041 B wing Mahesh Tower
   Charkop, Sector 2, Kambivali (W)
   Mumbai 67.
   Ph - 9867251783

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी

यह एक अनोखा स्तोत्र है जिसमें **श्री राघवेन्द्र स्वामी जी** ने केवल थोड़े ही श्लोकों में दशम स्कन्ध की श्री कृष्ण कथा को जोड़ दिए हैं। हमारे गुरु जी उडुपि पीठाधीश्वर श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य पीठाधिपति ***श्री 1008श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी*** इन श्लोको को सरल भाषा में अनुवाद किए है। हम इन दोनों को मिलाते हुए साथ साथ बत्तीस रंगीन चित्रों में इन अध्यायों की कथा को फोटों के द्वारा आपके सामने प्रस्तुत करते हैं। शास्त्र जानने वाले कहते है कि केवल नाम स्मरण करने के बजाय भगवान का नाम रूप गुण चिन्तन करना श्रेष्ठ हैं। इससे प्रथमतः हमारे मन को आनन्द होता है साथ साथ भगवतप्रीति भी ज्यादा होती है। आगे के पृष्ठों में हम नाम रूप गुण के चिन्तन के लिए कथानुसारी फोटो, मूल श्लोक और उसका अर्थ दिए हैं। इससे नाम रूप गुण चिन्तन एक ही समय में एक साथ होगा। आग्रह है, पाठक इसका प्रयोग करते हुए नित्य प्रति नाम रूप गुण चिन्तन से पाठ करें।

आपका

प्रकाशक

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय छब्बीस, सत्ताईस की कथा

गोविन्दाख्योऽथ तातम् जलपतिहृतमानीय लोकं स्वकीयम् । नन्दादीनां प्रदर्श्य व्रजगतवनितागानकृष्टार्तचित्ताः ।

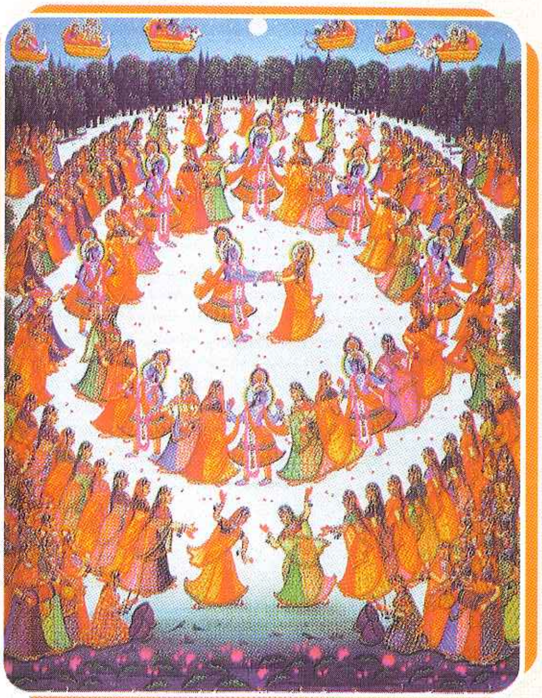

यः कालिन्द्यां निशायाम् अरमयदमलज्योत्स्नया दीपितायां चार्वंगीर्नर्मवाक्यैः स्तनभरनमिताः प्रीणयन् प्रीयतां नः।।7।।

बाल कृष्ण गोविन्द के नाम पाये। नन्द गोप को वरुण ने अपहार किया। उनको वापस लाये। अपने वैकुण्ठ लोक को नन्दगोप को दिखाया। स्तन के भार से झुके हुये गोकुल के सुन्दरांगियों को अपने वेणुगान से आकर्षित किये। काम से आकर्षित चित्त वाले उनको पूर्णमासी की निर्मल चाँदनी में यमुना तीर में सरस सम्भाषण से सन्तोष दिये। ऐसे श्रीकृष्ण हमें अनुग्रहीत करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय अट्ठाइस से बत्तीस तक की कथा

अन्तर्धत्ते स्म तासां मदहरणकृतेत्वेकया क्रीडमानः स्वस्कन्धारोहणाद्यैः पुनरापि पिहितो गर्वशान्त्यै मृगाक्ष्याः।

खिन्नानां गोपिकानां बहुविध नुतिभिर्यो वहन् प्रीतिमाविः प्राप्तोरासोत्सवेनन्यरमयदबलाः प्रीयतां मे हरिः सः ।। 8 ।।

गोपियों के दर्प को नाश करने के लिये भगवान अदृश्य हो गये। एक गोपी को कन्धे के ऊपर लेकर उसके साथ विहार करके उसकी भी गर्व शान्ति के लिये अदृश्य हो गये। खिन्न हो गये, उनके अनेक विध के स्तोत्र से आविर्भूत हो गये। रासोत्सव से अबलाओं को आनन्द दिये। ऐसे श्रीहरि हमारे ऊपर कृपा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय तैंतीस से पैंतीस की कथा

हत्वा यः शंखचूड़ं मणिमथ समदादग्रजयार्तगोपी गीतानेकस्वलीलो हृतवृषभमहापूर्वदेवोऽमरेड्यः ।

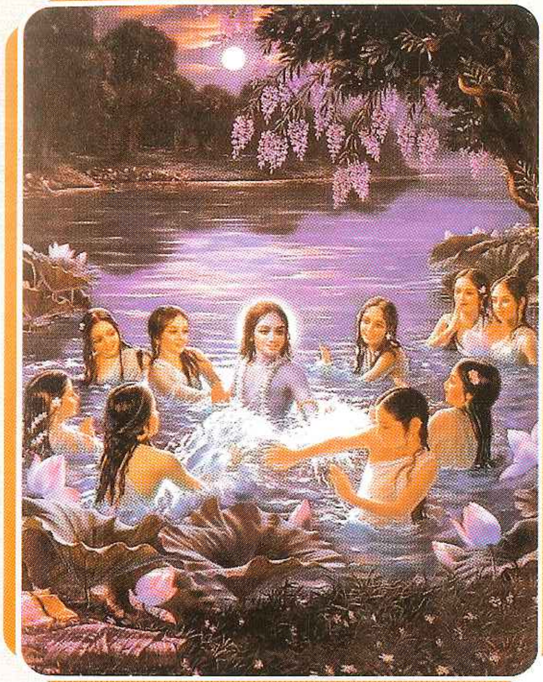

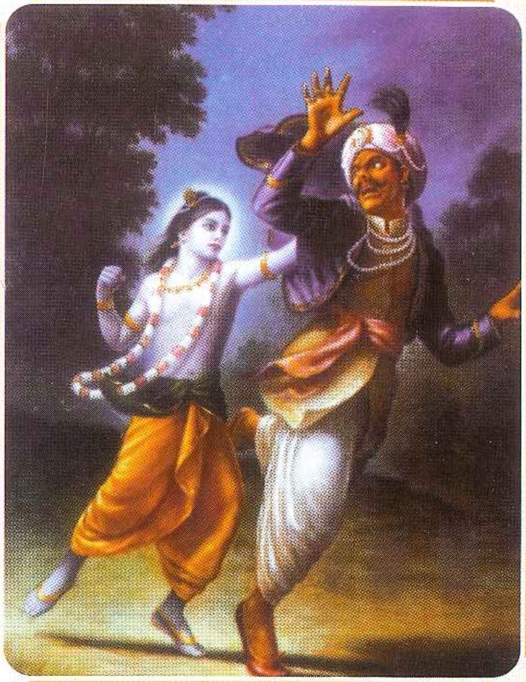

केशिप्राणापहारी सुरमुनिवदनप्रार्थिताशेषकृत्यो हत्वा पुत्रं मयस्य स्वजनमपिहितं मोचयन् मोक्षदस्यात् ।। 9 ।।

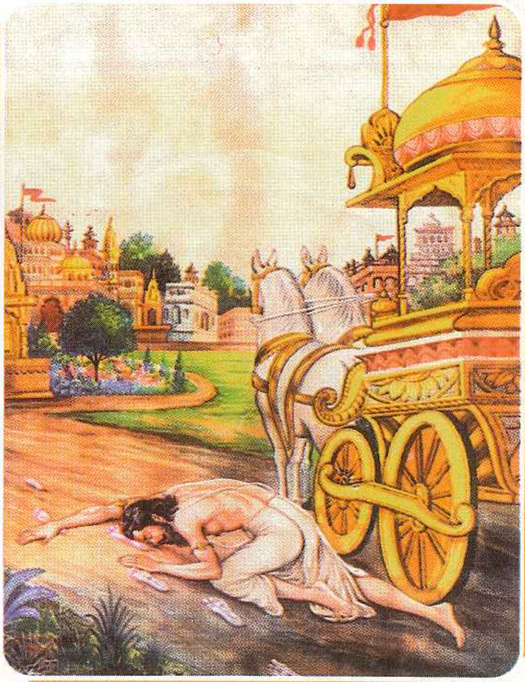

शंखचूड़ नाम के राक्षस को मार कर उसके सिर में रहने वाली मणि को भाई बलराम को दे दिये। दिन में भगवान के दर्शन राहित्य से दुःखित गोपियों ने उनकी अनेक लीलाएँ गाई। वृषभ नाम के महादैत्य को मारे। देवताओं ने स्तुति की। केशी दैत्य को मारे। नारद जी आगे की लीलाओं को दर्शाने की प्रार्थना किये। मयपुत्र व्योमासुर को नाश कर उसके द्वारा छिपाये गए मित्रों को छुड़ाये। ऐसे श्रीकृष्ण हमारे संसार बन्ध का विमोचन करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय छत्तीस से उनतालीस तक की कथा

अक्रूराकारितो यान् व्रजयुवतिजनान् सान्तयित्वाऽभितप्तान् स्वं रूपं मज्जतेऽस्मै विलसितमहिगं दर्शयंस्तेन वन्द्यः।

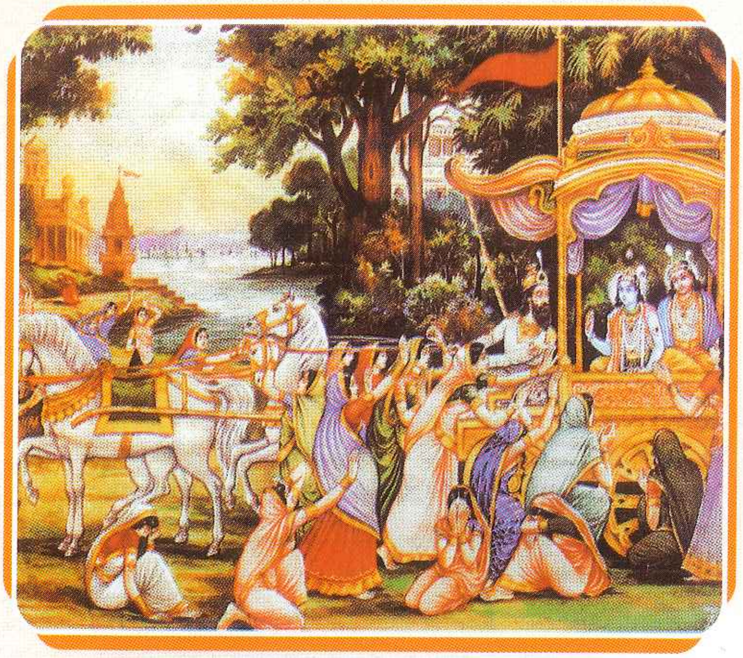

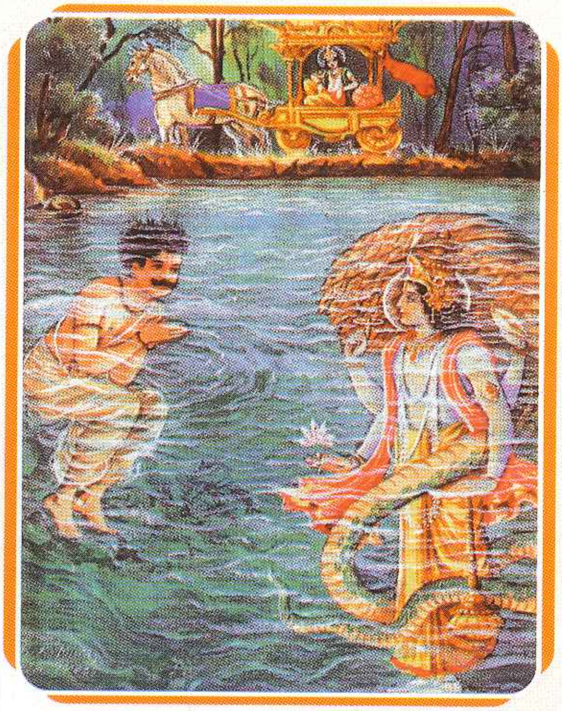

यो गत्वा कंसधानीं हृतरजकशिराश्चारुवेषः सुदाम्नः प्रीतिं कुर्वंस्त्रिवक्रां व्यतनुतरुचिरां पौरमह्योऽवातात् सः ।। 10 ।।

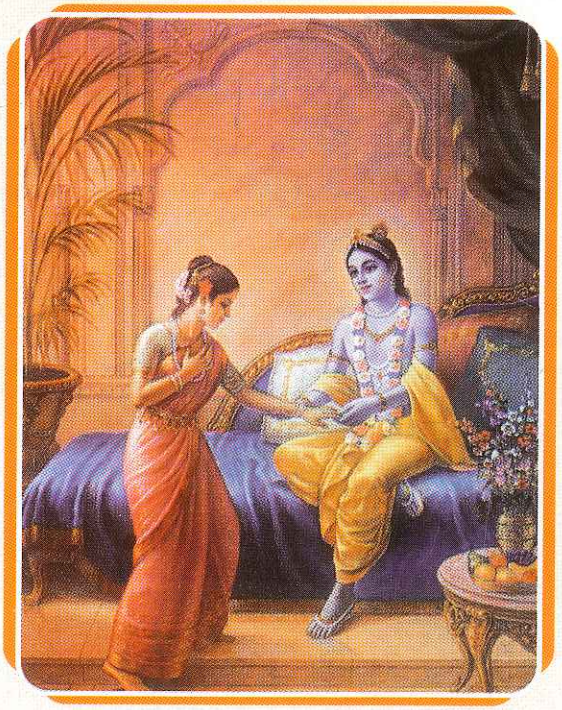

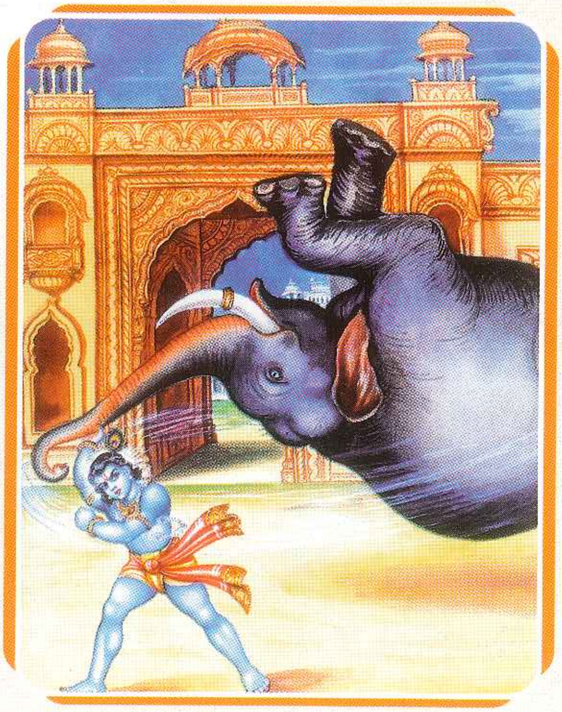

अक्रूर मथुरा को बुलाये। दुःखतप्त गोकुल की स्त्रियों को समाधान कर श्रीकृष्ण मथुरा को चले। पथ मध्य में यमुना में अवगाहन किये अक्रूर को श्रीकृष्ण जल में अपने विश्वरूप को दिखाये। अक्रूर उनकी स्तुति किये। कंस की मथुरा को जाकर धोबी के सिर काटे। सुन्दर वेष धारण कर मालाकार को सन्तोष किये। त्रिवक्रा कुब्जा को सुन्दरी बनाये। नगरवासी स्तुति किये। ऐसे श्रीकृष्ण सदैव हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय चालीस से तिरालीस की कथा

शार्वं भंक्त्वाधनुर्यो बलमापि धनुषो रक्षकं कुंजरं तं मल्लाश्चाणूर पूर्वान् अपि सहसहजो मर्दयंस्तुंगमंचात् ।

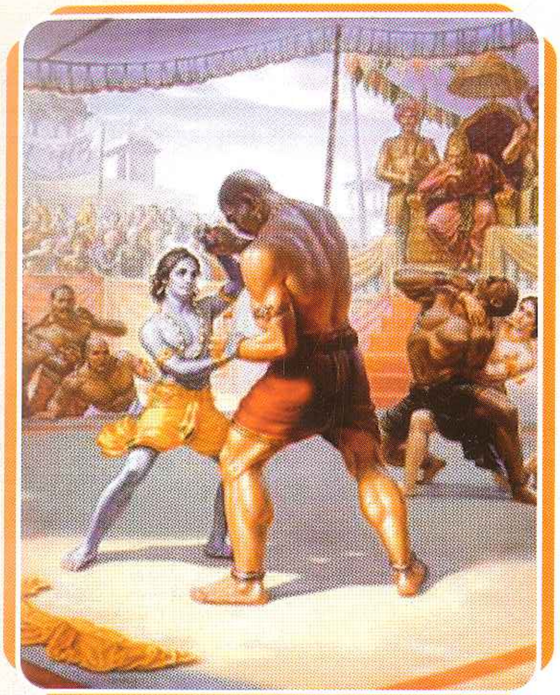

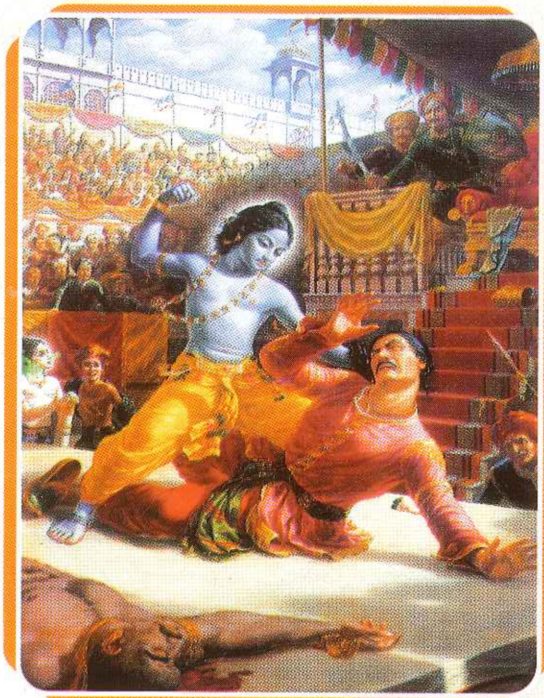

भोजेशं पातयित्वा व्यसुमकृत निजान् नन्दयान् प्राप्य गर्गात् द्वैजं संस्कारमाप्तो गुरुमथ विदिताशेषविद्योऽवतान्नः ।। 11 ।।

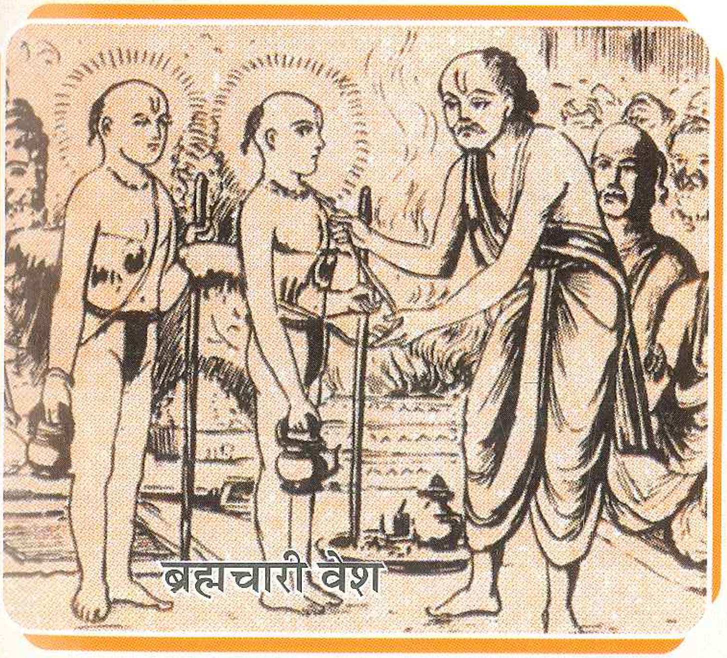

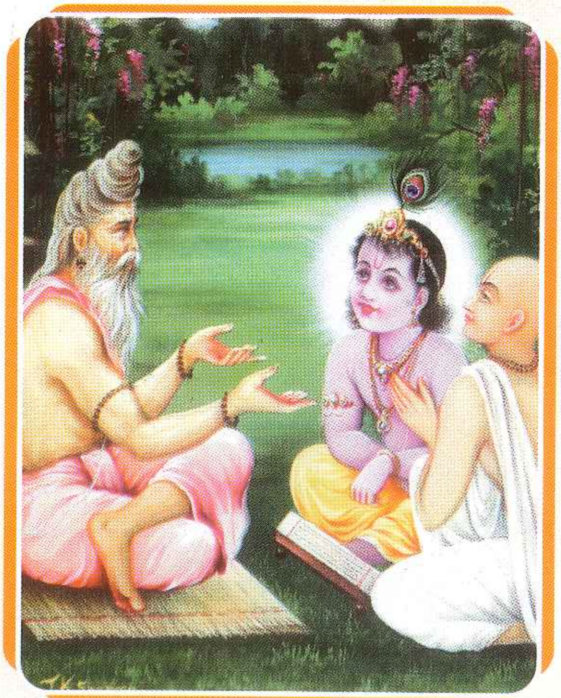

श्रीकृष्ण शिव धनुष को भंग किये। उसकी रक्षा के लिये खड़े हुये सैन्य को, कुवलयापीड नाम के हाथी को, चाणूर इत्यादि मल्लों को, बलराम के साथ होकर संहार किये। ऊपर के सिंहासन से नीचे गिराकर कंस को मारे। यादव कुल को आनन्द दिये। गर्ग मुनि से उपनयन संस्कार पाकर गुरु सांदीपिनि के पास जाकर सकल विद्या को पा लिये। ऐसे श्रीकृष्ण सदैव हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय चौवालीस से इक्यावन तक की कथा

दत्वापुत्रं प्रवक्त्रे प्रतिगतमधुरः सान्त्वयन्नुद्धवास्याद् गोष्ठस्थान्नन्दपूर्वान् अरमयदबलां प्रीतिकृद्यः शुभस्य ।

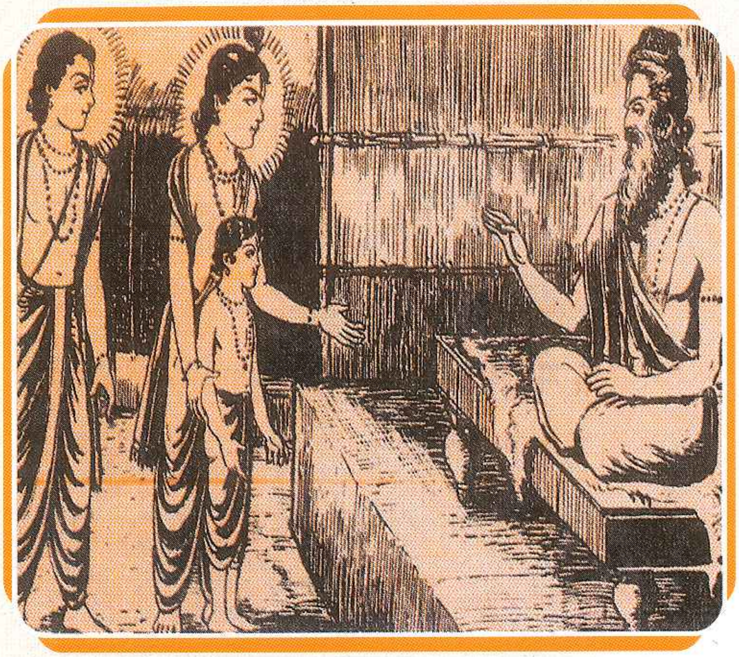

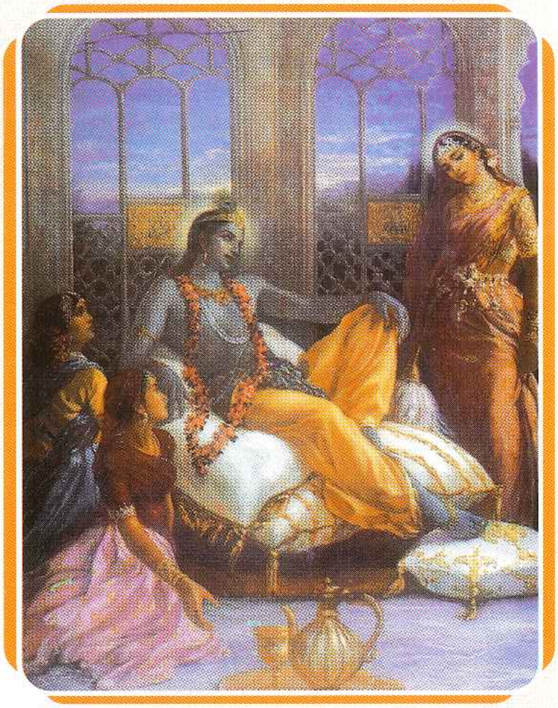

अक्रूरस्याथ तेन प्रतिविदितपृथापुत्रकृत्यो जरायाः सूनुं निर्भिन्नसेनं व्यतनुतबहुशो विद्रुतं नः स पायात् ।। 12 ।।

श्रीकृष्ण अपने गुरु के मृत पुत्र को वापस लाकर दिये। शिक्षण पाकर वापस मथुरा को आये। उद्धव के मुखान्तर गोकुल में रहे, नन्दादि लोगों को समाधान किये। त्रिवक्रा के साथ रमण किये। सज्जन अक्रूर के घर में सत्कार पाये। उनसे पाण्डवों का समाचार पाये। जरासंध के साथ बहुत बार युद्ध करके उनके सैन्य का नाश कर भगा दिये। ऐसे श्रीकृष्ण सदैव हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय बावन से चौवन तक की कथा

पुर्या निर्गत्य रामाद् अथ सहमुसली प्राप्य कृष्णोऽभ्यनुज्ञां गोमंतं चापिमौलिं खगपतिविहितं वासुदेवं सृगालम्।

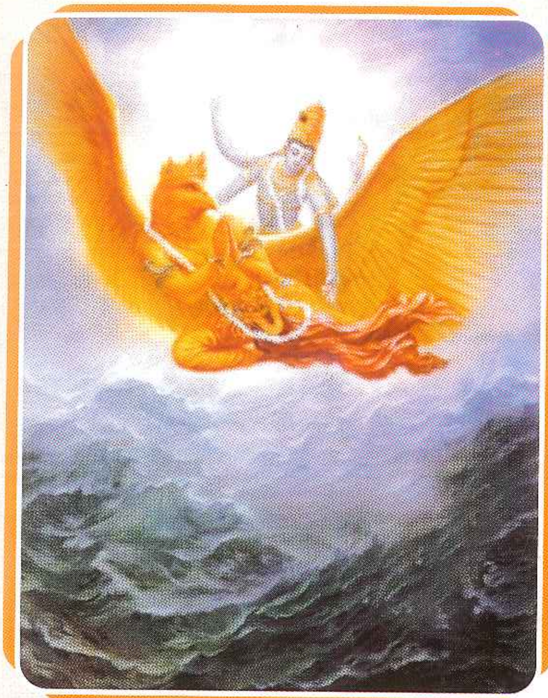

हत्वाशत्रुंच पुर्यां अधिजलधिपुरीं निर्मितां बन्धुवर्गान् निन्ये यः सोऽवतान्नः प्रमथितयवनो मौचुकुन्दाक्षिवहनेः ।। 13 ।।

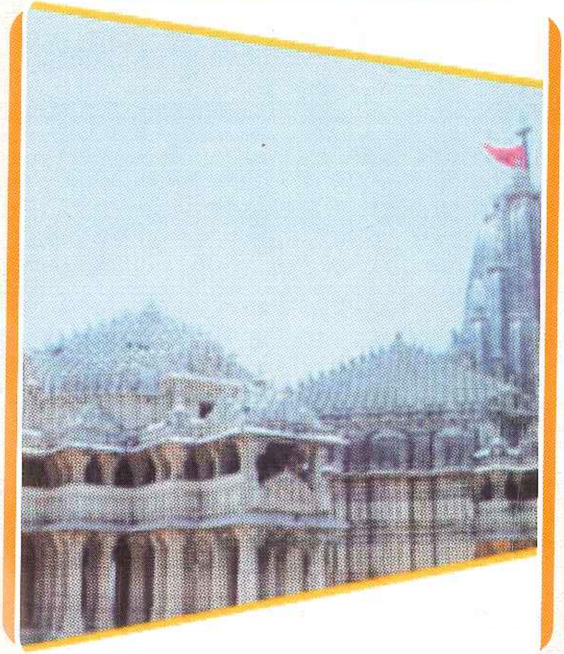

बलराम के साथ मथुरा से जाकर परशुराम की आज्ञा पाकर गोमान्तक पर्वत को जाकर वहाँ गरुड़ से अर्पित किरीट को स्वीकार किये। शत्रु सृगाल वासुदेव को करवीरपुर में मारे। समुद्र में द्वारका निर्माण करते हुये सारे बन्धु वर्ग को वहाँ ले गए। मुचुकुन्द की आँखो से निकली अग्नि से कालयवन को मारने वाले भगवान श्रीकृष्ण सदैव हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय पचपन से उनसठ तक की कथा

राज्ञा संस्तूयमानो हतयवनबलो भीतवन्मागधेशाद् गोमन्तं प्राप्यभूयो जितमगधपतिर्जातशान्ताग्निशैलः ।

आगत्य द्वारकां यो हृदिकसुतगिरा ज्ञातकौन्तेयकृत्यः पश्यत्स्वादाय भैष्मीं नृषु युधि जितवान् भूभृतः प्रीयतां नः ।।14 ।।

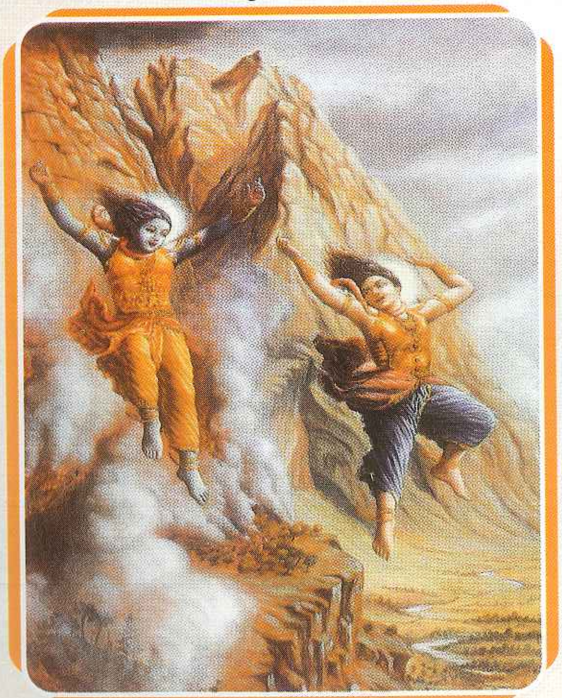

राजा मुचुकुन्द ने श्रीकृष्ण की स्तुति की। श्रीकृष्ण कालयवन के सैन्य का संहार किये। जरासंध से डरा हुआ जैसे गोमान्तक पर्वत को दौड़ कर भागे। इस तंत्र से जरासंध को हराये। गोमान्तक पर्वत को जरासंध द्वारा जलायी हुयी आग को बुझाये। द्वारका को आकर कृतवर्मा से पाण्डवों का समाचार पाये। जरासंध इत्यादि के आँखों के सामने रुक्मिणी का अपहरण कर युद्ध में राजाओं को जीत लिये। ऐसे श्रीकृष्ण सदैव हमारे ऊपर कृपा करें।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सत्ताईसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - शरत् काल आ गया, फूल खिले, चमेली के फूल के सुगंध और शरत् काल के चन्द्र की चाँदनी दोनों मिलकर मन को प्रसन्नता दे रहे थे। भगवान इसको देखे और समझे यह रासक्रीड़ा के लिए योग्य समय है। पहले वे कात्यायनी व्रत करने वाली और गोपिकाओं को आश्वासन दिये थे। उनके साथ अपने स्वरूप सामर्थ्य से लीला करना चाहे।।1।।

योग माया का अर्थ है भगवान की अचिन्त्य अद्भुत शक्ति। भगवान इस शक्ति से अनेक रूप धारण करते हैं। गोपिकाओं में अपनी पत्नी महालक्ष्मी का सन्निधान रखते हैं, उनको तृप्ति देते हैं। साथ साथ गोपिकाएँ उसी समय अपने पतियों के साथ भी रहती हैं। इससे उनके पतियों ने अपनी पत्नियों के बारे में आक्षेप भी नहीं किये। भगवान स्वरमण हैं। उनके लिए लक्ष्मी से भी आनंद पाने का मतलब नहीं है। भगवान की यह लीला देवताओं के लिए एक अव्यक्त आनंद का अनुभव है। इसके बारे में वे भी कुछ बोल नहीं सकते। इसके लिए इसे भगवान की योग माया कहते हैं।

युज्यते अनेन इति योगः भगवान अपने से अभिन्न अपनी माया से ही अपनी इच्छा से रममाण हुये। यह काम विकास से नहीं।

रासक्रीड़ा के समय श्रीकृष्ण का वय -

1. गोपीका वस्त्रापहरण के समय भगवान सात वर्ष के थे।

2. सातवां वर्ष के भाद्रपद के अमावस्या को इन्द्र याग भंग।

3. आश्वयुज प्रतिपदा को गो ब्राह्मण गोवर्धन पूजा।

4. भ्रातृ द्वितीया को भाई का भोजन उत्सव। तृतीया को मूंसलाधार वर्षा। नवमी तक गोवर्धनोद्धार।

5. दशमी के दिन इन्द्र से भगवान को पट्टाभिषेक।

6. एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी के दिन नंद को वरुण लोक से वापस लाना।

7. वैकुण्ठ चर्तुदशी को गोपालकों को वैकुण्ठ दर्शन।

8. आश्वयुज पौर्णमासी को रासक्रीड़ा - उस समय भगवान दस वर्ष के थे।

बाल्य में भगवान कामवासना के बिना ही वस्त्रापहरण किये हैं। यौवन में द्रौपदी को अक्षयवस्त्र दिये हैं। दोनों

में भगवान को किसी से कोई भेद भाव नहीं है। भगवान सोलह हजार पत्नियों के रहते हुए भी ब्रह्मचारी माने गए। काम भाव न रहने वाले भगवान में काम की उत्पत्ति कहाँ होती है ? जहाँ राम हैं वहाँ काम नहीं।

पूर्णमासी का चन्द्रोदय हो गया। बहुत समय के बाद पति के आने से पत्नी का मुख जैसे लाल होता है वैसे चन्द्रमा पूर्व दिशा नाम की अपनी पत्नी के मुंह के ऊपर अपने हाथ फेरते हुए उसको लाल-लाल किये। पूर्वागंना का मुख अरुण किरण से लाल बनाते हुए दिन के सूर्य के उग्र प्रताप के कारण मुख लाल किये हुए वनस्पतियों के दुःख को दूर किये।।2।।

चन्द्रोदय के अरुण रंग से रंगा हुआ वृंदावन पति के आगमन से लज्जित सुंदर स्त्री के मुख जैसे लाल बनकर सुशोभित वृंदावन को भगवान देखें। चन्द्र ऊपर उठने के बाद अपने शुभ्र किरण से शुभ्र वसन धारी वृंदावन गोप-गोपिकाओं के मन को अपहरण करने वाला लगता था, उस समय भगवान श्रीकृष्ण अपने सुंदर सुमधुर वेणुगान को आरम्भ किये।।3।।

यहाँ अनंगवर्द्धनं इसका अर्थ दो प्रकार का होता है। अनंग यानी काम, वर्द्धन का दो अर्थ होता है, वर्द्धनं छेदने वृद्धौ। वर्द्धन का अर्थ छेदन और वृद्धि करना होता है। यहाँ दोनों अर्थ विवक्षित हैं। गोपिकाएं श्रीकृष्ण के पास आते तक काम से उद्दीपित रहीं। भगवान के संग से उनके काम के दर्प का छेदन हुआ।

श्रीकृष्ण का वह वेणुगान सुनने वाले के मन में दैविक कामनाओं (इच्छाओं) को उत्पन्न करने वाला बना। उस मधुर गान को सुनते ही गोपिकाएँ वे जहाँ थीं वहाँ से भगवान के पास एक-एक दो-दो होकर आने लगीं। वे वेणु के मधुर गान से आकर्षित होकर कहाँ जाती हैं, क्या करती हैं इसका परिज्ञान न रहते हुए चंचलता से पाँवों को इधर-उधर रखते हुए सुंदर कर्णाभरण वाली जहाँ श्रीकृष्ण हैं वहाँ दौड़ते-दौड़ते पहुँच गयीं।।4।।

वेणुगान को सुनते ही दूध दुहने वाली कई गोपिकाएँ दुहने को छोड़कर भाग आयीं और कई ने दूध को गरम करने के लिये रखा था उसको न उतारते हुए दौड़कर आयीं और कई गोपिकाएं चूल्हा के ऊपर रखे अन्न को न उतारते हुए वैसे ही आ गयीं।।5।।

पति को भोजन परोसने वाली उन्हें वहीं छोड़कर आयीं, बच्चे को दूध पिलाने वाली बीच में छोड़कर भाग आयीं और कई पति की सेवा करने वाली अपने पतियों को छोड़कर चली आयीं, और कई भोजन करने वाली भोजन को छोड़कर भाग आयीं।।6।।

शरीर को गंध लेप करने वाली, पति को अंग लेप करने वाली, घर को गोबर से लीपने वाली, स्नान करने वाली शरीर को न पोंछते हुए दौड़कर-दौड़कर आयीं। एक आँख को काजल लगाने वाली दूसरे को न लगाते हुए दौड़ीं। कई आतुरता से कपड़े को उल्टा पहनकर भागीं और कई कान के आभूषण को नाक में, नाक के आभरण को कान में पहनकर श्रीकृष्ण के समीप में आयीं।।7।।

उसको न मानते हुए भगवान के पास सब कुछ छोड़कर आ गयीं। उनके मन भगवान के मुरली निनाद से मोहित हो गए थे। उन स्त्रियों को कोई रोक नहीं सका। नागिन जैसे बंशी स्वर से मोहित होकर सबको भूल जाती हैं वैसे ही ये गोपिकाएँ भी अपना सब कुछ भगवान में मन रखते हुए गिरते उठते दौड़ते भागते चली आयीं।।8।।

योग माया लक्ष्मी जी की अंशवाली वे एक रूप से श्रीकृष्ण के साथ रहीं, और एक रूप से अपने घर में रहीं। इससे उनके पति को उनके बारे में कुछ भी संशय नहीं आया।

कई अन्य गोपियों को घर में रहना पड़ा। उनके घर वाले उनको बाहर जाने के लिए निर्बन्ध किये थे। वे वहीं रहते हुए आँखों को बंद कर तन्मयता से श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगीं।।9।।

न सहन होने वाले प्रियतम के विरह के तीव्र ताप से उनका प्रारब्ध कर्म दग्ध हो गया। ध्यान से मिले हुए श्रीकृष्ण के आलिंगन सुख से प्रारब्ध सुख भी नष्ट हो गया।।10।।

ध्यान में आलिंगन दिये परमात्मा को वे जार समझकर उनसे ध्यान में ही सुख पाये। वे अप्सराएँ हैं, वे भगवान की आराधना जार रूप से कर सकती हैं। अन्य स्त्री लोग ऐसी आराधना कर नहीं सकतीं हैं। उनके ध्यान के कारण वे अपने प्राकृत शरीर को यहीं छोड़कर स्वर्ग को पाकर वहाँ विशेष ज्ञान को पाकर प्रारब्ध बंध से बाहर हो गये। बाद में वे मोक्ष को पाये।।11।।

इस जगत के परम पितामह भगवान को जार बुद्धि से आराधना करना नहीं है। किन्तु घर में बंधित गोपिका स्त्रियों ने पूर्व जन्म में अप्सरा होने के कारण जार रूप से ध्यान कर सकीं। यहाँ **सं - गताः** ठीक तरह से जानकर वे स्वर्ग और अंत में मोक्ष पायीं। ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं मिलता। इस अर्थ को **नान्यः पंथाः** यह श्रुति स्पष्ट रूप से बोलती है। अप्सराओं को काम -भक्ति -ज्ञान से मोक्ष मिलता है। गोपी बनकर वे काम साधना करते हुए अप्सरा बनकर भक्ति और ज्ञान का संपादन किये। इस लोक में काम दुख देने वाला होता है तो बाद में भक्ति से मिलकर वह निष्काम कर्म बन जाता है। ज्ञान से मिलने के बाद वही मोक्ष का साधन बनता है। यह स्कन्दपुराण का वाक्य है।

*प्रारब्ध कर्म भोग से ही नाश होता है। दोनों पाप और पुण्य दोनों को एक ही समय में भोग करना असाध्य है। इसके लिए यहाँ **प्रक्षीणबन्धनाः** यानी सहन करने में असाध्य प्रिय के विरह ताप से पाप का नाश होता है। साथ-साथ अच्युत के ध्यान से, अच्युत के आलिंगन से होने वाले अनुभव से प्रारब्ध पुण्य नाश होता है। इस प्रकार अनेक जन्म में भोगने वाले दुःख और सुख प्रारब्ध को केवल भगवान के विरह और आलिंगन में एक जन्म में एक साथ पाये। ब्रह्मसूत्र में कहा गया है **भोगेन तु इतरे**।*

राजा परीक्षित पूछते है - हे महामुने, गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण को परब्रह्म न समझते हुए जार समझकर आराधना की। ऐसी परिस्थिति में विषयासक्त उनको संसार निवृत्ति कैसे हुई ?।।12।।

यहाँ गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण को भगवान के रूप में न देखीं इस प्रश्न को पूछने में राजा परीक्षित का अभिप्राय

यह था कि वे बिल्कुल भगवान को जानती नहीं ऐसा नहीं। वे अपनी योग्यता के अनुसार ठीक तरह से नहीं समझी थीं ऐसा होता है। वे सारे अपरोक्ष ज्ञानी ही थीं। इसी कारण श्रीकृष्ण को वे सब के अन्तर्यामि, लक्ष्मीरमण, इन नामों से स्तुति करती हैं।

द्वेष करने वाले को मुक्ति नहीं मिलेगी, उनको अंधःतमस ही मिलेगा। लिंग भंग होने के कारण उसको भी मुक्ति कह सकते हैं। शिशुपाल कंस आदि द्वेषी राक्षसों को यही अंधःतम नाम की मुक्ति ही मिली। किन्तु उनमें आविष्ट विष्णु भक्त के रूप को मोक्ष मिला। द्वेष जैसे काम भी भक्ति रहित रहे तो अनर्थ का कारण बनता है। गोपियों में भक्ति युक्त काम था इसी कारण वह भगवदनुग्रह का कारण बना। द्वेषी जीव के साथ रहने पर भी भक्त को मुक्ति देना यह भगवान के अपार करूणा को दिखाती है। इसके लिए शिशुपाल आदि साक्षी हैं। यह स्कंदपुराण का वाक्य है।

शुकदेव कहते हैं - हम आपको पहले ही कह चुके हैं कि शिशुपाल को मुक्ति कैसे हुई। उसके अनुसार श्रीकृष्ण को प्यार किये हुए गोपिकाओं ने मोक्ष पाया। इसमें आश्चर्य क्या है ?।।13।।

काम सदा के लिए अशुभकारी है। किन्तु वह काम भगवान की भक्ति से जुड़े तो वह हरि प्रसाद देने वाला बनता है। गीता में काम को नरक का द्वार बताया गया है। विषमिश्रित अन्न के समान अनर्थकारी है। किन्तु यहाँ गोपिका स्त्री सामान्य नहीं हैं वे अप्सरा स्त्री हैं। सामान्य मनुष्य का भी कामयुक्त होकर पत्नी पुत्रों को प्यार करना स्वाभाविक है। किन्तु इसी प्यार को भगवान के ऊपर करें तो वह भक्ति में बदल जाता है। जगद्गुरू मध्वाचार्य जी **महात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सर्वतोधिक सुदृढ़ स्नेहः भक्तिः** इन शब्दों से भक्ति का व्याख्यान किये हैं। इसका अर्थ यह होता है कि हम पत्नी पुत्र और बंधु बांधव में जो प्यार रखते हैं उससे भी ज्यादा प्यार भगवान के माहात्म्य को ठीक तरह से जानते हुए उनमें रखना। सबसे ज्यादा प्यार भगवान में रखना ही भक्ति होती है। अप्सरा के अवतार गोपिकाओं ने सबसे ज्यादा प्यार भगवान से किये। वह प्यार ही भक्ति बनकर उनको मोक्ष दिलाया।

हे राजा! भगवान स्वरूप से और स्वभाव से अव्यक्त रहते हैं। उनके अनुग्रह के बिना कोई उनको न जान सकता है, और न देख सकता है। त्रिगुण रहित ज्ञानानंद गुणरूप भगवान अवतार करते हैं, यह केवल दैत्यों का संहार करने के लिए नहीं किन्तु ज्ञान भक्ति द्वारा भक्तों को मोक्ष देने के लिए अवतार लेते हैं। भगवान गीता में कहे हैं- **परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्** ।।14।।

भगवान श्री हरि में सदाकाल काम, क्रोध, भय, मोह, भक्ति, मैत्री और प्यार करने वाले उसी रास्ते में चलते हुए भगवद ज्ञान को पाकर मुक्ति पाते हैं। भगवान के उसी रूप को पाते हैं।।15।।

यहाँ **यान्ति तन्मयतां** इसका अर्थ भगवान में ऐक्य पाते हैं ऐसा नहीं होता। संसार में कामी रहे तो भी काम से भक्ति पाकर उसी को पाता है। वैसे ही क्रोधी क्रोध को पाता है। इसके लिए निदर्शन इस प्रकार होता है। श्रीकृष्ण को

काम रूप से आराधना किये हुए गोपिकाओं में मुक्ति में भी भगवान के काम रूप की आराधना करते हैं। उसी प्रकार सदाकाल भगवान से द्वेष करने वाले असुर अंत में तमस में भी भगवान का द्वेष ही करते हैं। यह स्कंदपुराण का वाक्य है। मुक्ति में काममय बनने के लिए उसके साथ भक्ति रहना आवश्यक है। अप्सराओं में पिंगला आदि स्त्रियों ने काम्युक्त भक्ति से मोक्ष पाया। वह उनकी योग्यता के कारण मिला। उर्वशी इत्यादि अप्सराएं केवल भक्ति से ही उनसे उत्तम मोक्ष पाये। भक्ति के बिना किसी को मुक्ति नहीं मिलती। यह पद्म पुराण का वाक्य है। केवल अप्सरा स्त्रियाँ श्री हरि के जार रूप की उपासना कर सकती हैं। अन्य लोगों को यह उपासना करने से अनर्थ होता है। श्री हरि को लक्ष्मी देवी के पति के रूप में उपासना करना अन्य सारे स्त्रियों के लिए योग्य है। भगवान को ब्रह्मा जी के पिता अन्य देवताओं के पितामह और अन्यों के प्रपितामह मानकर उपासना करना चाहिए। रमा ब्रह्मादि को भगवान श्री हरि गुरु होते हैं। अन्य देवताओं को परम गुरु और अन्यों को मूल गुरु बनते हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा जी इस जगत के गुरु होते हैं। विष्णु भगवान देवता हैं। यह उपासना क्रम होता है। अन्य तरीका नहीं अपनाना। यह वराह पुराण का वाक्य है।

सामान्य योगी जन के लिए दोष का लेप नहीं होता है। तो योगीश्वर, इस जगत के ईश्वर जनन मरण न रहने वाले, जगत को मोक्ष देने वाले भगवान श्रीकृष्ण दोषरहित है, उनको दोष का लेप नहीं होता। इस विषय में आश्चर्य करने की कोई बात नहीं।।**16**।।

अपने पास आये हुए गोकुल के नारीवृंद को देखकर बातें करने में चतुर और अगण्य भगवान श्रीकृष्ण अपनी बातों से उनको मोहित करते हुए आगे की बात बोलते हैं।।**17**।।

श्रीकृष्ण कहते हैं - हे महाभाग्यशाली गोकुलवासी महिलाएं ! आपका स्वागत हो। कहिये, मैं आपके लिए क्या करूँ ? आपके घर में सारे कुशल हैं ? हमारे पास आप क्यों आए हैं इसका कारण बताओ।।**18**।।

यह भीषण रात है। भयंकर प्राणी इस समय संचार करते हैं। हे सुंदरांगी, आप लोग वापस चले जाइये। स्त्री लोग का इस रात में यहाँ रहना योग्य नहीं है।।**19**।।

आपके माता-पिता, पति-पुत्र, बंधु आपको न देखते हुए ढूंढ रहे होंगे। उनको आतंकित न करें। आप सारे अपने घर चले जाएँ।।**20**।।

आप आये हैं। अब आप चन्द्रमा के प्रकाश में शोभायमान पुष्पवाले इस वन का सौन्दर्य को देख चुके हैं। जमुना जी के ऊपर से बहने वाली शीतल वायु से हिलने वाली शोभायमान इन वृक्षों के सौन्दर्य को आप देख चुकी हैं।।**21**।।

अब आप जल्दी ही गोकुल को चली जाये। आप अपने पतियों की सेवा करें। आपके बच्चे रोते होंगे, गाय के बच्चे आवाज करते होंगे, उनको दूध पिलाओ।।**22**।।

मेरे ऊपर के अनुराग के कारण मनमोहित होकर आप यहाँ आये होंगे। यह ठीक भी है।

क्योंकि समस्त जीव राशि स्वाभाविकता से मुझसे प्यार करते हैं।।**23**।।

आप स्त्री लोग हैं, बिना कपट से पति की सेवा करना, उनके बंधुओं का ख्याल रखना और बच्चों की सेवा करना स्त्री लोगों के लिए प्रथम कर्तव्य है। वही श्रेय देने वाला है।।**24**।।

पति महापातकी न हो, किन्तु दुराचारी, निर्वीर्य, वृद्ध, मूर्ख, रोगी, दरिद्र है तो भी परलोक चाहने वाली स्त्री को उसके संग को नहीं छोड़ना चाहिए।।**25**।।

आप सब लोग सत्कुल में जन्म लिये हैं। ऐसे आपको जार पुरुष का संग निंदनीय है। वह स्वर्ग का साधन नहीं बनता। वह तुच्छ है, दुःखकारक और भयकारक है।।**26**।।

यदि आप समझती हैं कि मेरे अंग संग से आपकी भक्ति बढ़ सकती है, तो वह गलत है। मेरे श्रवण दर्शन मनन ध्यान और नाम संकीर्तन से आपकी भक्ति बढ़ सकती है। इस कारण आप अपने घर को वापस चले जाइये।।**27**।।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्रीकृष्ण की इन बातों से गोपियाँ निराश हो गयीं। शरद काल की रात्रियों में आप लोग मेरे साथ सुख प्रायें ऐसा श्रीकृष्ण ने ही वचन दिया था। अब वही उसके विरुद्ध बोल रहे हैं। उसको सुनकर गोपियां दुःखित हो गयीं। अपनी आशा पूर्ण न होने के कारण वे चिन्तित हो गयीं।।28।।

वे सारे अपने मुँह को नीचे कर लिये। दुःख के कारण उनके होंठ सूख गये, पांव से जमीन को कुरेदने लगीं। आँखों से आँसू बहकर काजल से मिलकर स्तन के ऊपर गिरते हुए वहाँ के कुमकुम को धो दिया। वे दुःख से निश्वास करते हुए चुप खड़े हो गए।।**29**।।

अपना प्रिय कन्हैया निष्ठुर बातों से दुःखित कर रहा है। उनके संग के लिए सारे सुख भोग को त्याग कर उनमें अनुरक्त गोपिकाएं रोने से लाल हुई आँखों को पोंछते हुए थोड़ा सा नाराज होकर बोलने लगीं।।31।।

गोपिकाएँ बोली - हे प्रभु, निरंतर प्रेमधारा बहाने वाले आपको ऐसी कठिन दयाहीन बातों को करना ठीक नहीं। हम इस संसार के सारे विषय भोग को त्याग कर परम भक्ति से आपके पाद मूल के शरण आये हैं। अपने भजन करने वाले मुमुक्षु लोगों को आदि पुरुष नारायण न छोड़ते हुए अपने पास रखते हैं। वैसे आप भी हमको अपने पास रहने दो।।**31**।।

हे प्रिय देव, आपने कहा कि स्त्री के लिए पति सुत और बान्धवों की सेवा करना विहित धर्म है, यह सही है। किन्तु हम उस सेवा को आपको समर्पित करने आये हैं। आप सबके शरीर में रहते हुए अंतरंग के मित्र बने हैं। हम आपको पति सुत बान्धव मानकर भजन करने यहाँ आए हैं। हमारे लिए यही विहित धर्म है।।32।।

हमारे पति सुत बान्धव हमारे मुख्य बंधु नहीं हो सकते। वे अप्रिय होकर हमें दुःख भी

देते रहते हैं। उनसे हम शाश्वत सुख को पा नहीं सकते हैं। बुद्धिमान लोग सर्वतंत्र स्वतंत्र आप में प्यार करते हैं। वर देने में सबसे श्रेष्ठ हे कमलाक्ष, आप प्रसन्न होकर हमें अनुग्रह करें। हम आप में श्रद्धा रखकर बड़ी आशा से आपके पास आये हैं। उस आशा को आप नहीं ठुकराइये।।33।।

हे मित्र! आप हमारे मन को छीन लिये हैं। वह मन पुनः इस संसार में आसक्ति नहीं रखती है। हमारे हाथ घर के काम नहीं करेंगे। हमारे पांव आपको छोड़कर कहीं नहीं चलेंगे। हम आपको छोड़कर गोकुल को कैसे जाएं। वहाँ हम क्या करें ?34।।

हे प्राणसखा, आप के हसन्मुख, तिरछी नजर और मधुर गान से हमारे हृदय में तीव्र प्रणयाग्नि उत्पन्न हुयी है। आप अपने अधरामृत से सींच कर उसको बुझाना चाहिए नहीं तो हम उसी विरहाग्नि में जल जायेंगे।।35।।

हे कमल के समान आँख वाले स्वामी, आपके पाद रमा देवी को देखने में आनन्द देने वाले हैं। यह होते हुए भी आप हमारे ऊपर प्यार करते हैं। ऐसे पाद वाले आपके स्पर्श के बाद हम अन्य पुरुष का विचार कर नहीं सकते।।36।।

हे भगवान, आपके श्रीपाद तुलसी के लिए आश्रय देते हैं। आपके पाद धूलि को भक्तगण सदाकाल सेवन करते हैं। अन्य देवता और अन्य लोग लक्ष्मी के कटाक्ष लाभ के लिए प्रयत्न करते रहते हैं। वह लक्ष्मी आपके हृदय में स्थान पाते हुए भी आपके पाद धूलि का सेवन करना चाहती हैं। हम भी आपके पाद रज के शरण आये हैं।।37।।

हे पाप नाशक स्वामी पुरुषोत्तम, आपकी आराधना करने हेतु हम घर बार छोड़कर आपके पाद मूल का आश्रय पाये हैं। आपका सुंदर मंदहास, तिरछी नजर से उत्पन्न हुयी प्रणयाग्नि हमारे शरीर को जला रही है। आप कृपा करके हमें आपकी सेवा करने दो।।38।।

घुंघराले बाल वाले आपके श्रीमुख में रहने वाले कर्णकुण्डल से आपका गाल प्रकाशित हो रहा है। आपकी आँख फूल जैसे खिलीं है। शरण आने वाले को अभय देने वाले आपके दोनों बाहु शोभा दे रहे हैं। आपके वक्षस्थल में सदा के लिए श्रीदेवी रहती है। इन सबको देखकर हम आपकी चरणदासी बनी हैं।।39।।

हे प्यारे मोहन! अव्यक्त सुरीली आपके वेणुगान को सुनने के बाद, आपके सुंदर मोहक रूप को देखने के बाद इन तीनों लोकों में रहने वाली कौन स्त्री अपने पातिव्रत्य धर्म से च्युत नहीं होती। आपसे केवल मानव ही नहीं गाय, पक्षी, वृक्ष और मृग भी आकर्षित होकर रोमांचित हो गये है।।40।।

भगवान आप वस्तुतः जार नहीं हैं। आप आदि पुरुष देवाधिदेव हैं। आप उस समय देवलोक की रक्षा के लिए वामन रूप धारण कर अवतार लिए थे। वैसे ही आज गोकुलवासियों के भय और दुःख को दूर करने

के लिए अवतार लिये हैं। हे दीनबंधु, आपकी दासी बनी हुयी हमारे सिर पर अपने करकमल रखें, प्रणयाग्नि से दहने वाले हमारे स्तनों के ऊपर अपने कर कमलों को रखने की कृपा करें।।41।।

श्री शुकदेव बोले - इस प्रकार गोपिकाओं से दैन्य भरे हुए स्वर में की हुयी प्रार्थना को सुनकर योगेश्वर श्रीकृष्ण स्वयं स्वरमण होते हुए हसन्मुख से उनके ऊपर कृपा करते हुए प्यार का अमृत वर्षण किये।।42।।

मुरझाया हुआ गोपियों का मुंह श्रीकृष्ण के इस प्यार से खिल गया। उन लोगों ने श्रीकृष्ण को चारों ओर से घेर लिया। श्रीकृष्ण अपनी लीलाओं से उनके साथ हँसते हुए, अपनी दांतों की प्रभा से सुशोभित हुए, नक्षत्र से घिरे हुआ चन्द्रमा जैसे वह सुशोभित हुए।।43।।

वैजयन्ती माला को धारण किये हुए भगवान मधुर गान करते हुए वृंदावन को गुंजित किये। गोपियों के बीच में एकमेव नायक बनकर वह विहार किये। गोपियों ने मिलकर उनका गुणगान किया।।44।।

यमुना जी के लहर में खिले हुए कमल पुष्प के सुगंध को बहने वाली वायु से शीतल हुए यमुना जी के बालों में प्रवेश करते हुए श्रीकृष्ण गोपियों के साथ विहार किये।।45।।

हाथ से खींचकर आलिंगन करना, घुघराले बालों को हाथ से संवारना, छाती के ऊपर के पल्लू को खींचना, नखक्षत करना, अनुराग से भरी हुयी तिरछी नजर से देखना इत्यादि लीला करते हुए गोकुल के कामिनियों के काम को और बढ़ा दिये।।46।।

भगवान श्रीकृष्ण को चारों ओर से घेरे हुए गोपिकाओं ने उनसे अधिक प्रेम करते हुए अपने को अन्य स्त्रियों से बड़ा मानने लगीं।।47।।

रासक्रीड़ा के समय श्रीकृष्ण की आयु आठ वर्ष की थी, लोग जैसे समझते हैं वैसे रासलीला काम के लिये नहीं है। भगवान की अलौकिक लीला है। भक्त वत्सल श्रीकृष्ण अनन्य भक्त क्या चाहता है, उसको देने के लिए सदाकाल सिद्ध रहते हैं। गोपिकाएं पूर्व जन्म की अप्सराएँ थीं, अपने कर्म के अनुसार वे भगवान से विहार करना चाहती थीं। उनमें लक्ष्मी जी का अंश था, श्रीकृष्ण स्वरमण हैं उनके लिए अन्य कोई सुख देने वाले नहीं होते है, गोपिका स्त्रियों से उनको कोई लाभ नहीं है। केवल उनके उद्धार करने हेतु उनके साथ खेले हैं।

श्रीकृष्ण के साथ हुये प्यार के कारण अपने को बड़ा मानने वाली, मद और अहंकार से भरी हुयी उन गोपिकाओं को पाठ सिखाकर उनके अहंकार को नष्ट कर के अनुग्रह करने श्रीकृष्ण उनके सामने से अदृश्य हो गए।।48।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अट्ठाईसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

भगवान श्रीकृष्ण गोपियों को देखते - देखते अदृश्य हो गए। हाथी से दूर हुयी हथिनी के समान गोकुल की स्त्रियाँ कृष्ण को न देखते हुए दुःखित हुयीं।।1।।

श्रीकृष्ण के प्रेमपूर्ण मंदहास से, उनके सरस सल्लाप से, विहार प्रणय की चेष्टा से मुदित हुयी प्रमोदाओं ने उनमें तादात्म्य पाकर अपने को कृष्ण मानने लगीं। उनकी लीलाओं का अनुसरण करने लगीं।।2।।

श्रीकृष्ण की नजर, चाल और सल्लाप से विभोर हुयी नारियाँ सामने वाली सखी को ही कृष्ण समझने लगीं। अपने और अपनेपन को भूली हुयी वे सामने कृष्ण हैं ऐसा समझते हुए उनसे विहार करने की चेष्टा करने लगीं।।3।।

सारे मिलकर जोर से श्रीकृष्ण का नाम संकीर्तन करती हुयी बुद्धि भ्रमित होकर जंगल में फिरने लगीं। इस जगत के अंदर बाहर सारे स्थानों में आकाश के समान सर्वत्र व्यापक भगवान को इधर - उधर ढूंढने लगीं, वृक्ष लताओं से कृष्ण के बारे में पूछने लगीं।।4।।

वृक्षों में गन्धर्व और अप्सराएं रहती हैं। मंत्र ब्राह्मण में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है। इसी कारण गोपिकाओं ने गन्धर्व और अप्सराओं की प्रार्थना करते हुए उनकी कृपा से पुनः श्रीकृष्ण के दर्शन पाये।

हे अश्वत्थ वृक्ष, हे पीपल वृक्ष, हे पलाश, हे वट वृक्ष, आपने हमारे नंद के कंद मुकुंद को देखा है क्या ? हमारा लला यहाँ आया था क्या ? तुम लोगों ने उनको देखा हैं क्या ?।।5।।

न्यग्रोधौदुंबरश्वत्थ ये सारे भगवान के नाम हैं, विष्णु सहस्त्र नाम में ये आते हैं। इन वृक्षों के पूजन करने से उनमें रहने वाले देवता प्रीत होकर भगवान का अनुग्रह प्राप्त कराते हैं। भगवान के विभूति रूप में **अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां** कहा गया है। अश्वत्थ वृक्ष के मूल में ब्रह्मा जी, मध्य में भगवान विष्णु और अग्र में रुद्र वास करते हैं। यहाँ गोपिकाएं मध्य में विष्णु को रहने के लिए स्थान देने वाले अश्वत्थ से पूछते हैं। हे अश्वत्थ, हमारे प्रिय कृष्ण तुम्हारे मध्य में रहते हैं। उनको हमारे यह विरह को बताओ (वृक्ष चुप रहता है)। आगे गोपिका कहती हैं तुम असूया से हमको उत्तर नहीं दे रहे हो। इसके लिए तुम्हारे पेट में रहने वाली अग्नि को हम अपने विरह दुःख से शमन करेंगे। कोई व्यक्ति भीगा कपड़ा पहनकर तुमको जल देते हुए परिक्रमा करता है तो वह जो चाहता है उसको पाता है। हम श्रीकृष्ण को ढूंढते हुए

तुम्हारे पास आये हैं। पसीना से हमारे कपड़े भींग गए हैं। आंखों से जो पानी बहता है, उसको हम तुमको दे रहे हैं। इतना करने के बाद भी तुम कृष्ण के बारे में न बोलते हुए बैठे हो। इसके लिए तुमको हम शाप देते हैं। हे वृक्ष! तुम्हारे फल को सज्जन लोग न खायें। केवल कौवे का आहार बने और कौवे के मल से तुम्हारा जन्म हो। विरह के दुःख से गोपिकाएं ऐसी असम्बद्ध बातें करती थीं।

हे अशोक, हे पुन्नाग, हे चंपक, हे नाग केसर, आपने बलराम के छोटे भाई सबको आनंद देने वाला मुकुंद का मुखारविंद देखा है क्या ?।।6।।

हे मंगलांगि गोविंद के अंग-अंग को प्यार करने वाली मंगल तुलसी ! आप गोविंद के पादाम्बुज को प्यार करती है। हमारा अच्युत तुमको धारण करता है। तुम्हारे बिना वह रहता नहीं है। तुमने मुकुंद के चरणारविन्द को देखा है।।7।।

यतियों से पूजित वंदित तुलसी माता तुम सदाकाल श्रीकृष्ण के पाद में रहती हो। तुम हमें श्रीकृष्ण का दर्शन करवाइये। तुम्हारे बिना श्रीकृष्ण की पूजा पूरी नहीं होती। इस प्रकार गोपियाँ जिन वृक्ष लतादि को देखती थीं। उन्हीं को श्रीकृष्ण को दिखाने के लिए प्रार्थना करती थीं और लोगों के लिए यह काम मूर्ख जैसे लगता है। किन्तु अनन्य भक्ति वाली गोपियों का यह सहज स्वभाव हैं।

हे चमेली, हे रातरानी, आपको हाथ से संवरण करते हुए प्रसन्नता देने वाले माधव कहीं अदृश्य हो गए हैं। आप लोगों ने देखा है क्या ?।।8।।

हे आम, हे कटहल, हे श्रीगंध, हे जामुन, हे बेल, हे महुआ, आप लोग अन्यों का उपकार करने के लिए खड़े हो। आप कृपा करके हमारे श्रीकृष्ण कहाँ चले गए वह राह हमें दिखाइये।।9।।

हे भू देवी! आपने केशव के पाद से जन्म लिया हैं। आप बहुत पुण्य किये हैं इसी कारण वराह स्वामी का आलिंगन पायी हैं, त्रिविक्रम जी का पाद स्पर्श करके पुलकित हो गयी है। तुम्हारे आनंद को यह फलपुष्प भरित वृक्ष दर्शाते हैं। कृपया बताओ हमारे केशव कहाँ हैं ?।।**10**।।

हे हिरन, श्रीकृष्ण यहाँ से किसी एक प्रिया के साथ गुजर गया क्या ? तुम्हारी आँखें उनकी आँख के समान हैं। आपकी आँख देखकर हमें कृष्ण की याद आती है। बताओ तुमने श्रीकृष्ण को देखा है क्या ? देखो, उसने यहाँ अपने प्रेयसी का आलिंग किया है। उसके सिर में रखा हुआ फूल माला यहाँ गिरकर अपने सुगंध को बिखेर रहा है।।**11**।।

यहाँ गोपिकाएँ हिरण को देखकर श्रीकृष्ण को याद कर रही हैं। देवता लोग हिरण्य लोग श्रीकृष्ण की सेवा के लिए आये हैं।

हे वृक्ष ! श्रीकृष्ण एक हाथ को अपने प्रिया के कंधे के ऊपर रखते हुए दूसरे हाथ में कमल के फूल को लेकर चल रहा है। तुलसी के मकरंद से मत्त हुए मधुकर उन दोनों के पीछे-पीछे दौड़

रहे थे न ? फल-फूल को पकड़कर आप लोग के अपने टहनियों से झुककर नमस्कार करते समय प्यार भरी आँखों से भगवान आपके प्रणाम को स्वीकार करते हुए आपका अभिनंदन किया है न ? इसके लिए आप संतुष्ट हैं। कहिये वह श्रीकृष्ण कन्हैया कहाँ है ?।।12।।

हे सखी, यहाँ देखो ! ये लता बहुत संतोष से खिले हुए फूल से भरी है। श्रीकृष्ण के हाथ के स्पर्श के कारण इसको संतोष हुआ है। यह निश्चय है।।13।।

उस लता को मिला हुआ श्रीकृष्ण का करस्पर्श हमको भी मिले। यह आशा रखते हुए गोपिकाएँ लता से जलती हैं।

इस प्रकार गोपियाँ वृंदावन में रहने वाले वृक्ष, लता, पशु-पक्षी से श्रीकृष्ण के बारे में पूछते हुए जंगल में भटकती रहीं। इतने में वे एक जगह पर भगवान के पदचिह्न को पहचानती हैं।।14।।

ये निश्चित रूप से श्रीकृष्ण भगवान के पद चिह्न हैं। यहाँ देखो, इसमें ध्वज, पद्म, वज्र, अंकुश इत्यादि चिह्न भरे हैं। श्रीकृष्ण के बिना और किसी के पदचिह्न में यह चिह्न हो सकता है ?।15।।

वे पुण्य पदचिह्नों के साथ ढूंढते हुए आगे बढ़ीं। तब श्रीकृष्ण के साथ और एक स्त्री के पदचिह्नों को देखकर वे दुःखित होकर आपस में बोलने लगीं।।16।।

यह किसका पद चिह्न हो सकता है ? श्रीकृष्ण के कंधे के ऊपर अपना हाथ रखते हुए, हथिनी - हाथी के साथ जैसे चलती है, वैसे वह आनंद से चली हैं। वह कौन हैं ?।।17।।

हमारे नाथ प्राणनाथ भगवान श्रीकृष्ण को यह बहुरीति से आराधना की है। गोविंद इसकी आराधना से संतुष्ट होकर हमको छोड़कर अकेले उसके साथ विहार कर रहे हैं।।18।।

इसी स्त्री को कई लोग राधा मानते हैं। भागवत में कहीं भी राधा का नाम नहीं आता। किन्तु ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा का नाम आता है।

हे सखी ! देखो गोविन्द के पाद कमल से लगी हुयी यह धूल ही परम पवित्र हैं। ब्रह्म, रुद्र, लक्ष्मी और सकल देवता अपने अभीष्ट सिद्धि के लिए अपने सिर पर इस पाद रज को धारण करते हैं।।19।।

उस स्त्री के पाद चिह्न हमें दुःखी कर रहे हैं। हम सब गोपियों को मिलने वाला अच्युत के अधरामृत को वह अकेली एकान्त में पी रही है।।20।।

यहाँ देखो, उसके पदचिह्न गायब हो गए हैं। उसके मुलायम पांव को कुश और कांटे से आघात न हो इसके लिए भगवान श्रीकृष्ण उसको अपने कंधे के ऊपर लेकर चला है।।21।।

हे सखि, यहाँ देखो, श्री कृष्ण के पदचिह्न बहुत गहरे हो गए हैं। ये कामुक श्रीकृष्ण के अपने प्रेयसी को कंधे के ऊपर लेने के कारण पदचिन्ह गहरे हैं।।22।।

जगत को अपने पेट में रखने वाले भगवान श्रीकृष्ण को एक कृशांगी का भार कितना हो सकता है। यहाँ प्रत्येक गोपी स्वयं को श्रीकृष्ण का एकमेव प्रीतिपात्र समझती थी। इस अहंकार को नाश करने के लिए श्रीकृष्ण यह नाटक रचाये।

श्रीकृष्ण यहाँ उसको नीचे उतार दिया है। यहाँ फूलों को वृक्षों से निकालकर उसको दिया है। इसी कारण उसका पदचिह्न यहाँ गहरा नहीं है।।**23**।।

यहाँ देखो, श्रीकृष्ण अपनी प्रिया के लिए फूल तोड़ा है। देखो, उनके पदचिह्न यहाँ पूरा नहीं दिखता है। केवल उंगली के ऊपर खड़े होकर उसने फूल को तोड़ा है।।24।।

यह कामुक अपनी प्रियकरी को यहाँ केशालंकार किया है। उसको फूल चढ़ाने के लिए वह यहाँ बैठा है।।**25**।।

स्वयं स्वरमण और स्वरूपानंद को भोगने वाला और कभी भी कामवश न होने वाला कृष्ण यहाँ उसके साथ सुख पाया है।।**26**।।

इस प्रकार अनेक तरह से प्रलाप करते हुए (योग्य अयोग्य जो मन में आया उसको बोलते हुए) ज्ञानशून्य होकर गोपियाँ इधर उधर टहलती रहें। कामुक लोग स्त्रीवश होकर क्या कष्ट सहते हैं, उससे स्त्री लोग कैसे अहंकार पाती हैं इसको दिखाने के लिए भगवान यह लीला किये।।27।।

और स्त्रियों को छोड़कर केवल अकेले अपने को ही श्रीकृष्ण ले रहा है। इससे वह स्वयं को सबसे बड़ा मानने लगी।।28।।

श्रीकृष्ण को चाहने वाली अन्य सारी स्त्रियों को छोड़कर भगवान केवल मुझको ही प्यार करता है। इस प्रकार विचार करते हुए जंगल के एकान्त में वह दर्प से श्रीकृष्ण को आदेश देती है।।29।।

हे प्रियकर, मैं थक गयी, आगे चल नहीं सकती। आप मुझको कहीं ले जाना चाहते हैं वहाँ तक मैं चल नहीं सकती। आप मुझको कंधे पर उठा लो। उसकी बात मानते हुए श्रीकृष्ण उसको कंधे पर चढ़ने के लिए बोले।।**30**।।

जब वह चढ़ने लगी तब श्रीकृष्ण वहाँ से अदृश्य हो गए। वह गोपी पश्चात्ताप से रोने लगी। हे नाथ, हे प्रियकर, हे सुखकर, आप कहाँ हैं ? हे महाबाहु, इस दीन दासी को छोड़कर आप कहाँ गए ? हे सखा, आप कृपया दर्शन दें। इतना बोलते हुए वह मूर्छित होकर गिर पड़ी।।**31**।।

कृष्ण के गये हुए रास्ते को ढूंढते हुए अन्य गोपियों ने थोड़ी दूरी पर प्रियकर के वियोग से इ ानशून्य हुए अपनी सहेली को देखा।।**32**।।

पुनः ज्ञान पाये हुए वह सखी, बोलती है, श्रीकृष्ण मुझे मिला था। किन्तु मैंने अहंकार से उनका अपमान किया। मुझको यहीं छोड़कर वह अदृश्य हो गया। भगवान की इस लीला को

सुनकर सारी गोपियाँ आश्चर्य चकित हो गयीं।।33।।

चाँदनी रात में वन-वन टहलते हुए वे श्रीकृष्ण को ढूंढे। चन्द्रास्त होकर अंधेरे के कारण वे ढूंढने का प्रयत्न छोड़ दिये।।34।।

वे सारे एक जगह पर बैठ गये। श्रीकृष्ण के गुणगान करने लगे। उनको प्रभु मानकर संकीर्तन करने लगे। उस समय उनको अपने शरीर का ज्ञान नहीं रहा। तो घर, बाल-बच्चे के बारे में उनका लक्ष्य कैसे जाएगा।।35।।

कृष्ण को याद करते हुए, गीत गाते हुए वे सारे मिलकर एकत्र होकर यमुना के बालू में फिर आकर बैठ गए। वहाँ श्रीकृष्ण का नाम संकीर्तन अत्यंत भक्ति से करने लगे।।36।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - उनतीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

गोपी गीत

गोपिकाएं गा रही हैं - हे प्रियकर, तुम गोकुल में जन्म लिये इससे गोकुल का शान बढ़ा। कभी भी आपसे दूर न रहने वाली लक्ष्मी यहाँ सदाकाल के लिए रहने लगी है। इससे गोकुल सदाकाल सम्पद्धरित हुआ। हम अपने प्राणों को आपके लिए समर्पित किये हैं। आपके दर्शनाकांक्षी हमको दर्शन दीजिए।।1।।

यह सुप्रसिद्ध गीत है। घर-घर में यह आज भी गायी जाती है।

यहाँ **दिदृक्षताम्** यह शब्द का प्रयोग किया है। यह पुल्लिंग प्रयोग है। पुरुष को वश में न लाने वाली स्त्री, स्त्री कैसे हो सकती है? यह भाव यहाँ व्यक्त होता है।

यहाँ के सारे पद्य नगण, रगण, रगण एक लघु और एक गुरु से युक्त ग्यारह अक्षर का त्रिष्टुप छंद के किसी वृत्त में है। इस वृत्त का नाम छंदः शास्त्र में नहीं मिलता है। इसका अर्थ यही होता है कि श्रीकृष्ण की महिमा अज्ञात ही रहती है। नगण में तीन लघु होते हैं, रगण में मध्य लघु होता है। यहाँ एक नगण और दो रगण हैं। एक पंक्ति में पांच लघु आने से यह व्यक्त होता है कि गोपियों की कटि बहुत छोटी है। रगण में र का अर्थ विरहाग्नि को दिखाता है। प्रति पाद के प्रारंभ में लघु और अंत में गुरु हैं। यह इस भाव को दर्शाता है कि भगवान श्रीकृष्ण गोपियों के दर्प को नाश करने के लिए अदृश्य हो गए। इससे वे लघु हो गए। अंत में भगवान उनको दर्शन दिए। इसके लिए हर्ष से वे बड़े गुरु हो गए।

जयति, श्रयत, दयित इत्यादि द्वितीयाक्षर प्रास संस्कृत में कई लभ्य नहीं हैं। यह विशेष है। श्रय - साधु दयि - त्वादि समान शब्दों का अनुप्रास गीत के माधुर्य को बढ़ा दिया है।

हे गोकुल वासियों के कष्ट को नष्ट करने वाले वीर, अपने मृदु हास्य से स्त्रियों के दर्प को दूर करने वाले प्रभु, जन्म - जन्म में आपकी दासी बनी हुयी हमारी रक्षा सदाकाल करते रहें। हे प्यारे, अपने सुंदर मुख को फिर से दिखाओ।।2।।

शरद काल में सरोवर में पूर्ण रुप से खिले हुए कमल को भी हराने वाली आपकी दृष्टि क्षेप है। वह हमको खरीदकर आपकी दासी बना चुकी है। हम उससे लुब्ध होकर आपके पास आये हैं।

हे प्रणयकेला में निपुण रहने वाले भगवान श्रीकृष्ण आप कृपण न होकर हमारे आशाओं को पूर्ण करें। इस घोर रात्रि में आपका अदृश्य होकर दासी बने हमको वंचन करना जान से मारने से भी बड़ा होता है।।**3**।।

आप इसके पहले बहुत बार हमारी रक्षा किए हैं। कालिया के विष जल से, क्रूर तृणावर्त से, इन्द्र से प्रेषित मुसलधारा से, आकाश की बिजली से, वत्सासुर के भय से ऐसे अनेक आपत्तियों से केवल आपने ही हमारी रक्षा बार-बार की है।।**4**।।

हे मित्र, इस जगत की रक्षा के लिए ब्रह्मा जी के प्रार्थना के अनुसार यदुकुल में आप अवतार ले चुके हैं। आप सारे जीवियों के शरीर में अन्तरात्मा होकर रहने वाले हैं। आप कैसे यशोदा के पुत्र हो सकते हैं।।**5**।।

हे प्रियकर, हे यदुकुल तिलक, आप श्री लक्ष्मी जी का पाणिग्रहण किये हैं। आप भक्तों के अभीष्ट को पूर्ण करने वाले हैं। संसार भय से आपके शरण आने वाले को अभय देने वाले आप अपने कर कमल को हमारे सिर के ऊपर रखिये।।**6**।।

आपके पाद कमल नमन करने वाले के पाप को कर्षण करते हुए छीन लेने के कारण आप का नाम कृष्ण है। आप गाय के पीछे चलते हैं, तो लगता है सौन्दर्य ही गाय के पीछे चल रहा है। आपके पाद का सौन्दर्य, सौन्दर्य की रानी लक्ष्मी को भी प्रसन्नता देता है। आपके चरण कालिया के फणी को मार-मार के उसके दर्प को दूर किया है। ऐसा आपका पदस्पर्श हमारे हृदय में रहने वाले काम को नष्ट करे।।**7**।।

यहाँ **कृंधि हृच्छयं** यह शब्द का प्रयोग है। पाठान्तर में **छिन्दि** शब्द का भी प्रयोग है। कई लोग इसका अर्थ हमारे छाती के ऊपर के कपड़े को हटाओ अथवा चीर लो। ऐसे अर्थ करते हैं। गोपिकाओं की प्रार्थना ऐसी नहीं हो सकती। वे अपने हृदय के अंदर रहने वाले काम को नष्ट करते हुए वहाँ अव्यभिचरित भक्ति को भी भरने की प्रार्थना करती हैं।

हे कमल नयन, हे धीर शूर, आपकी मधुर ध्वनि पण्डितों को भी मण्डित करती है, मोहित करती है। उसी से मोहित होकर हम आपकी चरण दासी बने हैं। अब हम मूर्छित हो रहे हैं, आपके अधरामृत देकर हमको पुनर्जीवित करें।।8।।

हे भगवान, संसार ताप से जले हुए लोगों को आपका कथामृत पुनर्जीवित करता है। इस जगत में रहने वाले पण्डित और कवि लोग आपकी कथामृत का गुणगान करते हैं। वह कथामृत श्रवण मात्र से सबको मंगल करता है। आपके संकीर्तन करने का पात्र होने के लिए पूर्वजन्म में बहुत दान-धर्म और सत्कर्म करना पड़ता है। आपके इस कथामृत को पान करते-करते हम जीवित रहते हैं।।9।।

हे प्रियकर, आप वंचक हैं, आपके अनुरागपूर्ण एक दृष्टि क्षेप से हम मोहित हो जाते हैं। उसकी याद से ही हमारा दिल पिघलता है। आपकी मंगल लीलाएं दिल को आंनद देने वाली होती हैं। एकान्त में बोलने वाले हृदय को स्पर्श करने वाली आपकी बात हमारे मन को विचलित करती है।।10।।

यहाँ श्रीकृष्ण को गोपिकाओं ने **कुहक** शब्द से सम्बोधित किया है। कुहक का अर्थ वंचक होता है। सोलहवां श्लोक में कितव शब्द का प्रयोग किये हैं। भागवत के मंगलाचरण श्लोक में वेदव्यास जी भगवान को निरस्त **कुहकं** वंचन न करने वाले कहे हैं। यह दोनों विरुद्ध होता है। किन्तु गोपियाँ अपने प्रणय कोप को दिखा रही हैं। अपने प्यार की उत्कंठा में प्रणय कोप में वे भगवान को कुहक और कितव शब्द से बोलती हैं। किन्तु यह दिखावटी हैं, सच नहीं है।

आप गोकुल से बाहर गाय चराने जाते हैं। उस समय कमल के समान कोमल रंग वाले आपके पाद कंकड़ पत्थरों से, कांटे से पीड़ित होते हैं। इसके लिए हमारा दिल दहलता है। क्योंकि आप हमारे प्यारे हैं, प्रियकर हैं ।।11।।

श्री हरि के इन पादों को पुरुष सूक्त वर्णन करता है। **त्रिपादस्यामृतं दिवि। त्रेधानिधधे पदम्** इस प्रकार नारायण उपनिषद वर्णन करता है। वेद और उपनिषद गोपियों के अभिप्रायः को बल देते हैं।

हे वीर, शाम के समय में आप गाय के साथ जंगल से वापस आ रहे हैं। आपके काले घुघराले बाल गोधूली से लिप्त होकर देखने वाले को और आनंद देते है। आप अपने सुंदर मुख कमल को दर्शाते हुए हमारे मन में प्रणय के आग को और बढ़ाते हैं।।12।।

हे दिल के दुःख को दूर करने वाले, हे प्रियकर, कमल के समान रहने वाले आपके चरण को नमन करने वाले को जो चाहते हैं उन्हें वह मिलता है। ब्रह्मा जी उनकी पूजा करते हैं। रास्ते की धूल में अंकित हुआ आपका पदचिह्न ध्यान करने वाले योगी को ध्येय वस्तु बन जाते हैं। परमानंद देने वाले उन पद कमलों को हमारे स्तन के ऊपर रखते हुए हमें आनंद देते रहे।।13।।

यहाँ श्रीकृष्ण के पाद को **प्रणतकामदं, पद्मजार्चितं, धरणीमण्डलं** ऐसे तीन विशेषण दिये गये हैं। धरणीमण्डलं में रहने वाला पाद **गया** में भूषित है। वह भूमण्डल में रहने वाले लोगों से पूजित हैं। प्रणत **कामदं स्वर्ग** में रहने वाला पाद इन्द्र से अर्चित है। स्वर्ग में रहने वाले को वह जो चाहते हैं वह देता है। तीसरा ब्रह्म से अर्चित पाद **सत्य** लोक में है। ब्रह्मा जी से पूजित होकर सकल जगत के लिए कल्याणकारी बना है। त्रिविक्रम के ये तीनों पाद हैं। इन पादों को गोपियाँ अपने स्तनमण्डल के ऊपर रखने के लिए मांग रही हैं। यह थोड़ा सा विचित्र लगता है। किन्तु थोड़ा सोचने के बाद यह स्पष्ट होता है। सारी गोपियों में लक्ष्मी का अंश है। लक्ष्मी जी का तीन रूप श्री, भू, दुर्गा होते हैं। यह तीनों रूप भू लोक स्वर्ग लोक और सत्य लोक में रहते हुए सदाकाल श्रीविष्णु के चरण कमल को दबाते रहते हैं। यहाँ केवल यही अर्थ है। आपके चरण पद को दबाने के लिए लक्ष्मी रूप के हमारे हाथ में वे मिल जायें। यहाँ लौकिक कामुक कोई अर्थ नहीं है।

हे वीर, आप कृपया हमें आपका अधरामृत दें। वह प्रणयानंद को और ज्यादा करता है, शोक का नाश करता है, आपके बंशी को वह चूमता रहता है। एक बार पान किये हुए लोगों को अन्य भोग वस्तु में आसक्ति नहीं होती है।।14।।

आप दिन में जंगल में फिरते रहते हैं। यहां हम आपको न देखते हुए एक-एक क्षण को एक-एक युग के समान अनुभव करते हैं। आपके घुंघराले बाल वाले सुंदर मुख को हम आँखों को न मींचते हुए देखना चाहते हैं। किन्तु पलक उसको व्यर्थ करते हैं।।15।।

हे अच्युत, हम अपने पति सुत साथ सम्बन्धियों को छोड़कर आपके पास आये हैं। हे वंचक, सुनने वाले को मोहित कर अपने वश में लेने वाली गान विद्या को आप जानते हैं। आपके गान से मोहित होकर आए हुये हमारे जैसे स्त्रियों को रात में छोड़कर केवल आप ही जा सकते हैं।।16।।

यहाँ पति सुतान्वय भ्रातृ बान्धवान् यहाँ पति का अर्थ पशुपति रुद्र देव। सुत उनके पुत्र गणपति और स्कंध अन्वय इसका अर्थ पत्नी पार्वती (इनकी पूजा न करते हुए) इनको त्यागकर यानी इनको प्रधान बोलने वाले शैव, शाक्त, स्कांद, गाणपत्य मत को **अतिविलंघ्य** उपासना न करते हुए केवल आपकी उपासना के लिए आये हैं। यहाँ भगवान में अनन्य भक्ति दिखाया गया है। अपने पति को छोड़कर आपके पास गलत तरीके से आये हैं यह अर्थ नहीं होता।

हम आपके एकान्त में कहे हुए सुमधुर बातों को बार-बार सुनना चाहते हैं। आपके अनुराग पूर्ण हसन्मुख चेहरे को देखकर लक्ष्मी भी मोहित होती है। लक्ष्मी जी का निवास - स्थान बना हुआ आपके विशाल वक्षस्थल को देखकर हमारा मन मोहित होकर पागल बन गया है।।17।।

रहसिसंविदं इस शब्द का प्रयोग यहाँ है। भगवान किसी के पास कभी भी अकेले नहीं रहते हैं, वे सर्वत्र सदाकाल सबके साथ रहते हैं। आठवां श्लोक में **बुधमनोज्ञया मधुरयागिरा** शब्द आते हैं। भगवान का एकान्त में विद्वान लोगों को भी मोहित करने वाला वह वाक्य क्या था ? यह थोड़ा सा विचित्र लगता है। भगवान केवल प्रलय काल में एकान्त में रहते हैं। उस समय वे विद्वान लोगों को मोहित करने का वाक्य ब्रह्मा जी को कहते हैं **तद्धितप- तद्धितप**। यह तो विद्वानों के लिए केवल मोहित नहीं करता है। बहुत अर्थ पूर्ण है। सर्वज्ञ ब्रह्मा जी को भी इसको अर्थ करने में बहुत समय लगा। एक बार वे बहुत दिन तक तप किये। उसके बाद भी इन शब्दों के ऊपर चिंतन करने के बाद इस सृष्टि का आरंभ किये। भगवान के ये शब्द पण्डितों को मोहित करने वाले हैं। इसमें एकान्त में पुरुष स्त्री को बोलने वाली कोई बात नहीं है।

गोकुल में रहने वाले हम लोगों को आप का यह अवतार हमारे सारे अनिष्ट को दूर करने वाला है, इस जगत को मंगल करने वाला है, भक्तों के हृदय के दर्द को दूर करने वाला है। आपको देखने की इच्छा को मन में भरे हम लोगों को आप अपने उस दिव्य रूप का सुंदर दर्शन थोड़ा सा ही क्यों न हो, कृपा करके दिखाओ।।18।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में उनतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा, श्री कृष्ण के दर्शन के लिए आतुर गोपियों ने अनेक रीति से विलाप करते हुए बहुत उच्च स्वर से गान करती रहीं। उनके आंखों से आंसू बहता रहा।।1।।

यहाँ **रुरुदुः सुस्वरं** अच्छे स्वर में रोए ऐसा प्रयोग है। रोना भी अच्छे स्वर में होता है क्या ? यह प्रश्न उठ सकता है। **रूदिर** शब्द का अर्थ आंखों से आंसू बहाना होता है। इसका सही अर्थ यह होता है कि गोपियाँ आंखों से आंसू बहाते हुए सुंदर स्वर में गाना गाती रहीं। स्वरमण भगवान के बारे में अश्रु बहाना परम भक्ति के कारण होता है। पति पुत्रों के लिए आंसू बहाना, दुस्वर होता है। यहाँ गोपियां विशेष अधिकार वाली अप्सरा स्त्रियों की अंश हैं। वे वेद के मंत्रों को अपने सुखवर से गाये हैं।

गोपियों को श्रीकृष्ण दर्शन दिए। कमल के समान हसन्मुख वाले, पीताम्बर धारण कर वनमाला पहने थे। मन्मथ के पिता मन्मथ से भी बढ़कर सुंदर हैं। मन्मथ को मथन करके जलाएँ हुए रुद्र को अपने मोहिनी रूप से मनश्चंचलता को लाने वाले भगवान श्री कृष्ण गोपियों के सामने हंसते हुए खड़े हैं।।2।।

मन्मथ काम को शिव अपनी तीसरी आंख खोलकर जला दिये। उस दिन से मन्मथ शरीर विहीन होकर अनंग बन गया, सारे लोगों के अंगों में रहने लगा। जब भगवान नारायण अमृत वितरण के लिए मोहिनी रूप को धारण किये तो उस समय यह अनंग मन्मथ शिव के मन में प्रवेश कर उस मोहिनी रूप की कामना करते हुए शिव को उसके पीछे-पीछे भगाया। मन्मथ का यह महात्म्य है। मन्मथ के भी पिता परम सुंदर नारायण के बारे में क्या कहना है। वे मन्मथ को भी कामत्व देने वाले हैं। वे कामवश कभी नहीं होते। गोपियों की भक्ति के कारण उनको दर्शन दिए।

अपने प्यारे कन्हैया को देखकर गोपियों का गया हुआ प्राण वापस आ गया। निर्जीव शरीर पुनः जीवन पाया। सारे उठकर खड़े हो गए। संतोष से विभोर होकर आंखों को फाड़-फाड़ कर देखने लगे।।3।।

एक गोपिका दौड़कर आगे आई, श्रीकृष्ण के दायें हाथ को दोनों हाथ से पकड़ ली, दूसरी चंदन से लिप्त उसके बाएं बाहु को अपने कंधे के ऊपर ले ली।।4।।

और एक ने श्रीकृष्ण से खाए हुए ताम्बूल शेष को अपने दोनों हाथों में स्वीकार किया।

पुनः एक गोपिका ने आगे बढ़कर उनके दोनों पादों को विरहाग्नि से जलते हुए स्तनों के ऊपर रख ली। पुनश्च एक ने प्रणयकोप से भौं को सिकोड़कर होंठ को काटते हुए तिरछी नजर से देखा।।5-6।।

और भी एक गोपिका ने श्रीकृष्ण के मुखारविंद के सौन्दर्य को अपनी आँखों को न झपकाते हुए देखकर अमृत पान करने लगी। कितने समय तक पीने के बाद भी उसको तृप्ति नहीं हुई। सज्जनों को भगवान के पाद कमल को देखने के बाद कभी भी तृप्ति नहीं होती।।7।।

योगी जन भगवान के रूप को अपने हृदय में भरकर आनंद विभोर हो जाते हैं। वैसे ही एक गोपिका ने श्रीकृष्ण को नेत्र रंध्र मार्ग से खींचकर अपने हृदय में भरकर कभी बाहर न जाये इसके लिए दोनों आंखों को बंद कर लिया। मन में ही उसका आलिंगन किया। रोमांचित होकर आनंद से पागल बन गयी।।8।।

लोग निद्रा में **प्राज्ञ** नामक भगवान को आलिंगन करते हुए सारे दुःखों को भूल जाते हैं। वैसे ही गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण भगवान को देखकर परमानंद से तृप्त होकर विरह से हुआ दुःख को दूर किया।।9।।

हे राजा, सुनो, शोक रहित श्री, भू, दुर्गादि रूप से परम पुरुष भगवान से शोभायमान होते हैं। वैसे भगवान श्रीकृष्ण दुःख रहित गोपियों के मध्य में शोभायमान रहे।।**10**।।

श्री हरि के रूपों में भेद नहीं है। उनके रूप के लिए वे ही दृष्टांत हैं।

श्रीकृष्ण गोपियों को साथ लेकर जमुना तट के सुंदर बालू युक्त प्रदेश को जा पहुंचे। वहाँ खिले हुए वुंदमंदार और चमेली के फूलों से ऊपर चलती हुई हवा मन को प्रसन्नता देती थी।।**11**।।

शरद काल के चंद्रमा की चांदनी में रात में भी उजाला हो गया था। जमुना के तरंगों के कारण विस्तृत हुआ वह प्रदेश अत्यंत मंगल लगता था।।**12**।।

पीछे अठ्ठाईसवां अध्याय के चौतिस श्लोक में **गत्वा वनाद् वनम्** शब्द से जब तक चांदनी थी तब तक वन-वन में गोपियाँ श्रीकृष्ण को ढूंढती रही। चांदनी लुप्त होने के बाद गोपिकाओं ने जमुना तट को आकर गोपी गीत गाये ऐसा विवरण आया है। इसका अर्थ ऐसा होता है कि उस समय चन्द्रास्त हो गया। अब पुनः चांदनी कहां आयी। ऐसा संशय आ सकता है। महाभारत के युद्ध में सैंधव वध के समय में भगवान श्रीकृष्ण सूर्य को छिपाकर रात किये थे। ऐसे यहाँ भी चन्द्र रहते हुए श्रीकृष्ण अंधेरा किये हुए थे। अब रास लीला के लिए अंधेरा को हटाते हुए पुनः चांदनी को लाये हैं।

पुनः पुलिनमाविश्य (28-36) गोपियों ने पुनः यमुना तीर को आकर गोपी गीत को गाये हैं। भगवान श्रीकृष्ण वहीं उनको दर्शन दिये हैं। अब इस श्लोक में पुनः भगवान उनको यमुना तीर में लाये। यह विरुद्ध लगता है। इसका

अर्थ इतना है कि यमुना तट में और भी अच्छा और प्रशस्त स्थान को भगवान उनको ले चले।

सज्जन लोग वेदों से भगवान के संकीर्तन को श्रवण करते हुए भगवान के दर्शन पायें। यह वेदाभिमानियों का अभिप्राय होता है। उस प्रकार सज्जन लोग जब साक्षात्कार करते हैं तब उनका मनोरथ पूर्ण होता है। वैसे ही गोपिकाओं को श्रीकृष्ण का दर्शन करना ही प्रमुख उद्देश्य था। दर्शन से उनका मनोरथ पूर्ण हुआ। हृदय में भरा हुआ विरह दुःख दूर हो गया। वे अपने छाती के कुंकुमकेसर लिप्त अपनी ओढ़नी को बालू के ऊपर पसार कर अपने प्राणनाथ के लिए आसन बनाये।।13।।

महायोगी जन अपने हृदय में जिनको आसन बनाते हैं वह भगवान गोपियों से बिछाए हुए आसन के ऊपर आनंद से बैठे। तीनों लोक के समस्त सौंदर्य के एक मात्र आश्रय बालगोपाल नंद लाल वहाँ गोपियों के बीच में विराजे। गोपियों द्वारा दिए हुए स्वागत को स्वीकार किये।।14।।

गोपियों ने प्रणयभरित आँखों से, तिरछे नजर से, भौंवो को आकुंचन करते हुए प्रणयोद्दीपक हाव-भाव से श्री भगवान की आराधना की। प्रणय के आवेग से वे उत्कंठित होकर उनको छूने की चाह होते हुए भी उसको सहन करते हुए थोड़ा सा कोप को दिखाते हुए बोलती हैं।।15।।

यहाँ गोपियों का क्रोध व्यक्त करना अपने काम को हटाकर ज्ञान भक्ति को पाने के लिए भगवान के मुखारविंद से तत्वोपदेश पाना है।

गोपियों ने कहा - भगवन, इस लोक में कई लोग अपने सेवकों को सुख से रखते हैं। अन्य कई लोग सेवा न करने वाले को भी सुख देते हैं। अन्य कई हैं। वे दोनों को सुख नहीं देते हैं। इन तीनों में से कौन श्रेष्ठ है बताओ।।16।।

यहाँ तीन तरह के लोगों के बारे में गोपिकाएं श्रीकृष्ण से पूछती हैं। वे हैं कृतज्ञ, कृतघ्न और उदासीन। भगवान श्रीकृष्ण इन तीनों में एक नहीं हो सकते हैं।

भगवान कहते हैं, हे सखी लोग, परस्पर एक दूसरे को सुख देने वाले स्वार्थ साधना में निरत होते हैं। उनमें स्वाभाविक प्यार नाम का गुण नहीं है, पुण्य कर्म नहीं है। वह शुद्ध स्वार्थ है। वह प्यार नहीं होता।।17।।

ये दोनों श्लोक व्यंग्यार्थ वाले हैं। गोपियों का प्रश्न का अर्थ यह है कि हम आपके पाद सेवक होते हुए भी आप हमको छोड़कर चले गए यह ठीक है क्या ? इस प्रश्न के उत्तर रूप में भगवान कहते हैं यदि मैं तुम लोगों के सेवा के फलरूप में सुख दिया होता तो वह प्यार और भक्ति का परिणाम नहीं होता था। केवल स्वार्थ का फल होता था।

हे सुंदरीगण, सेवा जो नहीं करते हैं उनको भी सुख देने वाले माता पिता के समान दयालु होते हैं। उनमें प्यार है और पुण्य कर्म हैं। वे दोनों अत्यंत शुद्ध हैं।।**18**।।

इस श्लोक का अर्थ है सेवा न करने वाले को भी सुख देना इस लोक की नीति हैं। माता पिता के समान अपने बच्चों में प्यार रखते हुए सेवा को न चाहते हुए उनका कल्याण चाहना। यह पुण्य कर्माचरण होता है। लोक विलक्षण मुझमें यह होना सही नहीं है। मैं केवल सेवा करने वाले को फल देने वाला हूँ।

सेवा करने को भी सुख देने वाले होते हैं। वे सेवा न करने वाले को क्यों सुख देते हैं। ये दो तरह के होते हैं। भगवान का ध्यान करते हुए स्वरूपानंदानुभवः में डूबकर इस जगत को जो भूल चुके हैं, ऐसे जीवन्मुक्त एक होते हैं। दूसरे हैं किया हुआ उपकार को भी भूल जाने वाले कृतघ्न हैं।।19।।

यह इस जगत की नीति है। मैं न कृतघ्न हूँ अथवा योगी के समान जीवन्मुक्त हूँ। मैं योगी के समान स्वरूपानंदानुभवः में मग्न होते हुए भी उनके समान भूलकर चुप नहीं रहता। मैं सदाकाल सज्जनों की रक्षा करते रहता हूँ।

हे सखी लोग, मेरी सेवा करने वाले को भी मैं सुख न देने वाला और कृतघ्न हूँ ऐसे तुमको लगा तो यह गलत धारणा है। सेवा करने वाले को तत्क्षण में फल दिया तो वे तुम लोगों जैसे अहंकार को पाते हैं। सेवा को एक बार करना पर्याप्त नहीं। बार-बार सेवा करते रहना। प्यार केवल दिखाने के लिए न हो। वह स्वाभाविक होना चाहिए। स्वाभाविक प्यार ही भक्ति होती है। ऐसे भक्तों को मैं कल्पवृक्ष के समान वे जो-जो चाहते हैं छोटे बड़े उनके सारे अभीष्टों को पूर्ण करता हूँ।।20।।

दरिद्र को एक बार मिली हुयी संपत्ति खो गयी तो वह उसी के लिए तपता रहता है और किसी के बारे में विचार नहीं करता। आप लोग भी उसी तरह सकल लौकिक वैदिक कर्मो को और सकल भोग भाग्य को मुझको समर्पित करते हुए मेरी ही सेवा करने योग्य बनें इसके लिए मैं स्वभावतः अव्यक्त होने के कारण आप को नहीं दिखा। हे प्यारियों, मैं आपका प्रियकर हूँ आप मेरे ऊपर क्रोध न करें।।**21**।।

भगवान अव्यक्त कहे जाते हैं। उनको अपरोक्ष से पूजा करने से ज्यादा श्रेयस्कर होने से गोपिकाओं ने परोक्ष में पूजा किये। इसके लिए भगवान अदृश्य हुए थे। वे वहीं थे, लेकिन गोपियों के आंखों को नहीं दिख पड़ते थे। **परोक्ष प्रिया ही देवाः** यह वाक्य भगवान की इस बात को पुष्टि करता है।

कल्मष रहित प्यार करने वाले आप लोग निर्मल भक्ति के लिए देवता आयुर्मान से बहुत वर्ष तप किये तो भी होने वाला नहीं है क्योंकि मेरी सेवा करने वाला अपने आप से इस प्राकृत देह का बंधन छोड़ नहीं सकता। केवल मेरी कृपा से वह (आप लोग भी) प्राकृत देह का सम्बन्ध छोड़कर शाश्वत मोक्ष के आनंद को पा सकता है। मेरी कृपा से वह (आप लोग भी) यहाँ ऐहिक आनंद भी पा सकता है।।22।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - एकतीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

रासलीला

श्री शुकदेव कहते हैं - श्री कृष्ण जी की इन सुमधुर बातों को सुनकर गोपियाँ विरह से हुए ताप को भूल गईं। उनके संग को पाकर अपनी मनोकामना पूर्ण किये।।1।।

अपनी आराधना करने वाली उन संतुष्ट स्त्री रत्नों के साथ श्रीकृष्ण रासलीला आरंभ किये। वे परस्पर हाथ पकड़ लिये।।2।।

गोपियों के समूह से रासोत्सव आरंभ हुआ। वे सारे एक के हाथ एक पकड़ते हुए वृत्ताकार में गाना गाते हुए लीला आरंभ किये। भगवान श्रीकृष्ण अनेक रूप धारण करते हुए प्रत्येक स्त्री के बीच में होते हुए हर एक कंधे पर हाथ रखते हुए लीला के प्रमुख बने। प्रत्येक स्त्री को लगता था कि योगेश्वर श्रीकृष्ण केवल अपने पास हैं।।3।।

नर्तन करने वाली नर्तकियों को परस्पर हाथ पकड़कर वृत्ताकार में खड़े रहना चाहिए। उनके कंधे पर हाथ रखते हुए नर्तक चक्र के समान वर्तुलाकार में फिरते हुए ताल लयबद्ध होकर नाचना चाहिए। इस क्रम को रास नाम से बोलते हैं। इस प्रकार भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में लिखा है। भगवान श्रीकृष्ण गोपिकाओं से जो रास रचे वह गाय चराने वाले गवाँर लोगों का अथवा लोकगीत नृत्य नहीं था। वह शास्त्रीय नृत्य था। देवलोक की नर्तकी अप्सराओं ने वैश्य जाति में जन्म लेकर संगीत नाट्य शास्त्र में शिक्षण पाकर गोपियों के रूप में अवतार लिया था। वे ध्रुव ताल में पांव रखते हुए भुज, नेत्र, हाथ, मुंह से नाट्य मुद्राओं को दिखाते हुए सप्तस्वर में गाते हुए नाट्य शास्त्र के अनुसार भगवान को नृत्य सेवा समर्पित कर रही हैं। भरत नाट्य शास्त्र में इस तरह के नाट्य को **हल्लीशकं** इस नाम से कहा गया है। रास शब्द से आज उसमें जुड़ा हुआ अश्लीलता यहां कुछ नहीं है। गोपियों की शुद्ध भक्ति यहाँ व्यक्त होती है।

श्रीकृष्ण भगवान रास रचने लगे तब सारे देवताओं को उसको देखने की इच्छा हुई। वे

सारे विमानों में बैठकर आकाश में आ गये। पूरा आकाश देवताओं के विमानों से भर गया।।4।।

गोपियों ने प्यार से रोमांचित होकर श्रीकृष्ण के दोनों बाजू में होते हुए उनके बाहुओं को जोर से पकड़ी थीं। लगता था श्रीकृष्ण पुनः एक बार अदृश्य न हो इसके लिए श्रीकृष्ण को जोर से पकड़ी थीं।

तब देव दुन्दुभियां बजने लगीं। आकाश से पुष्पवृष्टि हुयी। गन्धर्व लोग अपनी पत्नियों के साथ मिलकर भगवान के निर्मल कीर्ति का गुणगान किये।।5।।

रासमण्डल में प्रियकर कृष्ण के साथ नाचने वाली गोपियों के हाथ के कंगन, पांव के पायल और कटि में रहने वाली कटिबंध के छोटी-छोटी घूंघरू के आवाज वहाँ गूंज उठी।।6।।

लाल-लाल गाल वाली गोपियों के बीच में नीलमेघ श्याम भगवान श्रीकृष्ण सोने के बीच वाला इन्द्रनील मणि के समान शोभित रहे।।7।।

ताल के अनुसार पांव रखना, हाथों को हिलाना, हसन्मुख से भौं को सिकोड़ना, कटि को हिलाना, स्तन को हिलाना, कानों में रहने वाला कुण्डलों को हिलाकर उनके प्रकाश को गालों में दिखाना इस प्रकार अन्यान्य लीला करते हुए गोपियों ने श्रीकृष्ण की लीला को गाते हुए नर्तन किये। उनके मुंह से आये हुये पसीने की बूंद मोती के समान शोभा दे रहे थे। उनका बालों का जूड़ा खुल गया। द्रुतगति से नृत्य करने वाली गोपियां श्रीकृष्ण के अनेक रूपों में मेघ के बीच में दिखने वाली बिजली के समान दिखीं।।8।।

श्रीकृष्ण के अंग संग से आनंदित होकर प्रणयाकेली को चाहने वाली गोपियों ने अपने सुमधुर कंठ से उच्च स्वर से गीत गाये। उनका गायन सारे विश्व में गुंज उठा ।।9।।

एक गोपी श्रीकृष्ण के साथ मिलकर शुद्ध सात स्वरों को अपस्वर के बिना आरोह और अवरोह में अलाप करने से श्रीकृष्ण संतुष्ट होकर खूब और बढ़िया शब्दों से प्रशंसा की।।10।।

बाद में उसी राग को भगवान श्रीकृष्ण ध्रुव और ताल में गाये। गाये हुए गोपियों का सम्मान भी किये। रासनृत्य से थकी हुई एक गोपी श्रीकृष्ण का सहारा लेकर खड़ी थी।।11।।

श्रीकृष्ण का हाथ कमल का सुगंध देता है। उसके ऊपर श्रीगंध भी लेपित था। एक गोपी ने उस हाथ को सूंघ कर रोमांचन से उसको चूम लिया।।12।।

एक गोपी नाचते-नाचते कर्ण कुण्डल के शोभा से शोभायमान अपने गाल को श्रीकृष्ण के गाल को जोड़ दिया। इतने में एक गोपी ने श्रीकृष्ण द्वारा आधा चबाया हुआ ताम्बूल को प्यार से

स्वीकार किया।।13।।

महाभारत में गोपियों के बारे में कुछ नहीं कहा है। विष्णु पुराण में यह सारे श्रद्धा भक्ति से कहा गया है। इसको कई लोगों ने गलत रीति से अर्थ करते हुए गोपियों ने परमात्मा से एक हो गये, अभेद हो गये ऐसा बोलते हैं। रास भगवान और जीव के अभेदत्व को नहीं बताता है। भक्ति योग द्वारा भगवान के साथ एकात्म पाना है। ऐसे कई विमर्शकों का अभिप्राय है। वास्तविक सत्य अलग है। महाभारत में द्रौपदी के वस्त्रापहार के समय में द्रौपदी भगवान को बुलाती है। उस समय बोलती है, हे गोविंद, द्वारकावासी कृष्ण और **गोपीजनप्रिय** कहती हैं। गोपियों के श्रीकृष्ण में एकात्मता को पाने का अंश हरिवंश विष्णु पर्व में (20-26-27-28) आया है। भागवत के (10-28-2) में भी आया है। यह एकात्मता जीव भगवान का अभेद ज्ञान नहीं है। यह विप्रलंभ श्रृंगार में एक अवस्था है।

और एक गोपिका पांव के घुंघरू और कटि के बंध से आवाज करते हुए गाते हुए नृत्य की। नृत्य में थकने के बाद श्रीकृष्ण के मंगलकारी करकमलों को उठाकर अपने छाती के ऊपर रखी।।14।।

गोपियों ने लक्ष्मी को अत्यंत प्रिय श्रीकृष्ण को उनके ही आवेश बल से पति रूप में पाया। उनके हाथों को अपने कंधे के ऊपर लेते हुए उनके चारों ओर घेरते हुए उनके गुणगान करते हुए नाट्य किये।।15।।

उनके कानों में पहने हुए रात के कमल के फूलों ने, घुघराते हुए बालों ने, थकान के कारण मुंह के ऊपर आया पसीना मोती के समान होकर शोभायमान हुए। उनके बालों के जूड़ा से फूल नीचे गिरते रहे। भगवान के साथ नाचने के समय इस रासक्रीड़ा में उनको अपने हाथ के कंगन और पांव के घूंघरू यही वाद्य बन गये। बाल के जूड़े में धारण किये फूल को आने वाले मधुमक्खी के गुंजन ही गायन हुआ।।16।।

भगवान स्वतंत्र हैं, काम, क्रोध, रहित हैं। किन्तु स्वयं लक्ष्मीरमण होते हुए भी गोपियों ने काम परवशता को दिखाते हैं, क्रोध की नटना करते हैं। उनका आलिंगन करना, हाथ पकड़ना, अनुराग भरे आंखों से देखना, अनेक हाव भाव करना, हंसना इत्यादि लीलाओं से उनको आनंद दिये।।17।।

हे राजा! श्रीकृष्ण के अंग संग के सुख से गोपियों की इन्द्रियां परवश हो गयीं। उनके शरीर से फूल माला और आभूषण गिर गये थे। अब सर्वांग से श्रीकृष्ण के साथ मिलने में उनको उनसे कपड़े का बंधन भी छूट गया।।18।।

श्रीकृष्ण की इस रास लीला को देखते हुए आकाश में विमान में रहने वाली देवता स्त्रियों ने स्वयं भी गोपियों जैसे भगवान के साथ मिलने की चाह करते हुए अपने को भूल गयीं। चन्द्र मन्मथ वसंत और अपने परिवार के साथ रास को देखकर विस्मृत हो गये।।19।।

अपनी चंद्रिका का सदुपयोग करते हुए निर्विकार भगवान के विहार को देखकर चंद्र को आनंद और आश्चर्य एक साथ हुआ।

जितनी गोपिकाएँ हैं, उतने रूप धारण करते हुए स्वरमण भगवान अपनी लीला से गोपियों के साथ क्रीड़ा किये।।20।।

यहाँ **रेमे** आत्मनी पद के बदले में **रराम** यह परस्मै पद का प्रयोग भगवान श्रीकृष्ण स्वरमण हैं, यह क्रीड़ा केवल गोपियों के सुख के लिए हैं, अपने के लिए नहीं हैं, इसके सूचनार्थ है।

रास क्रीड़ा से सारी गोपियां थक गईं, करूणामय श्रीकृष्ण थकी हुयी उन सखियों के मुंह के ऊपर अपने सुख देने वाले हाथ से सहलाए।।21।।

गोपियाँ श्रीकृष्ण के नखस्पर्श से परमानंद भरित हुयीं। चलने वाले मकर कुण्डल, हिलने वाले घुघराले बाल और शोभन वाले कपोल की कांति से हंसते हुए तिरछी आंखों से उनकी आराधना की। उनकी पुण्य गाथाओं को गाये।।22।।

वपक्रीड़ा से थका हुआ हाथी हथिनियों को लेकर जैसे जल में खेलता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण गोपियों के श्रम को दूर करने के लिए उनके साथ यमुना जी में उतरे। उनके पीछे गंधर्व के समान गाना गाते हुए मधुमक्खी भी चलते आये। यमुना का जल नारियों के फूल माला को उनके शरीर से हटाये। उनके कुचकुंकुम केसर को लेकर स्वयं काले से लाल बन गये। लगता था, यमुना जी रासलीला से लज्जित हो गयी है। लज्जा के कारण उनके गाल लाल हो गये हैं।।23।।

स्वरमण श्रीकृष्ण ने यमुना के मध्य में मदमत्त हाथी के समान जलक्रीड़ा की। युवतियों ने उसके ऊपर अपने हाथों से पानी फेंका। अनुराग से हंसे। उनके शरीर सौन्दर्य का संकीर्तन किये। आकाश में विमान में खड़े हुए देवताओं ने फूलों को बरसाते हुए स्त्रोत किये।।24।।

जलक्रीड़ा के बाद भगवान श्रीकृष्ण वनविहार किये। जमीन में, पानी में विकसित फूलों की सुंगध को लेकर मंद वायु बहती थी। वहाँ हथिनियों के साथ विहार करने वाले मद जल को छिड़काने वाले हाथी को जैसे भौरे अनुसरण करते हैं वैसे ही गोपिकाएँ भगवान को चारों ओर

से घेरे थीं।।25।।

कवियों ने शरद काल की चांदनी रातों में जो जो सौन्दर्य देखे वो सारे सौन्दर्य - रस श्रीकृष्ण द्वारा विहार किए हुए उस रात में भर गये थे। पूरा कानन चांदनी से सफेद हो गया था। अपने में सारे सौन्दर्य को भरे हुए श्रीकृष्ण ने अपने में अनुरक्त गोपियों के साथ पूरी रात विहार किया। भगवान सत्य काम हैं, स्वरमण हैं, वे गोपियों की इच्छा को रासलीला से पूर्ण किये । ।26।।

राजा परीक्षित पूछता है - भगवान का अवतार अधर्म का नाश करते हुए धर्म की स्थापना के लिए होता है। भगवान इस जगत के स्वामी हैं।।27।।

वे धर्म के नियम को बताते हैं। उसके अनुसार करके दिखाते हैं। उसकी रक्षा करते हैं। ऐसे भगवान धर्म के विरूद्ध होकर परनारी संग को क्यों किये ? आप मननशील हैं। आप ही इसको बताने में समर्थ हैं।।28।।

भगवान स्वरमण हैं। उनको आनंद के लिए और किसी की सहायता अथवा सहयोग की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसे होते हुए भगवान ऐसे निम्न कर्म क्यों किये ? इसमें उनका अभिप्राय क्या है ? हे मुनि, इस संशय को आप ही निरस्त करिये।।29।।

श्रीशुकदेव कहते है , योगैश्वर्यशाली महात्मा लोग स्वेच्छा से धर्म के नियमों का उल्लघंन कर सकते हैं। ज्ञानाग्नि से जलने वाले उन महा तेजस्वियों को पाप का लेप नहीं होता। आग में अशुचि वस्तु डाले तो उसको जलाकर आग शुद्ध ही रहती है। वैसे ही सदाकाल पवित्र रहने वाले भगवान को अपवित्रता होती नहीं।।30।।

श्रीकृष्ण स्वतंत्र हैं, परमात्मा हैं, तेजस्वी हैं। गोपियां अपरोक्ष ज्ञानी होकर अप्सरा के अवतार होने के कारण वे भी तेजस्विनी हैं। दोनों तेजस्वी रहने के कारण धर्म नियम का उल्लंघन उनको पाप लेप का कारण नहीं बनता। रास को अधर्म समझकर यह समाधान दिया जाता है। किन्तु यहाँ अप्सराओं के लिए कामयुक्त भक्ति ही मुक्ति का साधन होने के कारण उनके लिए यह धर्म है। यहाँ **तेजीयसां नदोपायः** बड़े लोग करें तो पाप नहीं होता है। यह अर्थ होता है। यानी बड़े लोग भगवान की आज्ञा अथवा भगवान के प्रीत्यर्थ किये तो उससे पाप संघटना नहीं होती। इन्द्र देव का अहल्यागमन सप्तर्षियों से शव का मांस भक्षण, विश्वामित्र का कुत्ते का मांस खाना, अजीगर्त का अपने पुत्र को बेचना हमारे दृष्टि से अब हमको धर्म के विरुद्ध लगते हुए भी पाप देने वाले नहीं होते। इसमें दो प्रकार है। भगवान के आदेश मानकर करने से पाप संघटना होती ही नहीं और बड़े लोग कभी-कभी अधर्म कार्य करने के बाद भी उससे पाप नहीं आता। किन्तु उनके निश्चित मोक्ष के आनंद में थोड़ी सी कमी होती है।

गोपियाँ विवाह होने के बाद अपने पति का संग नहीं किये थीं, योग शक्ति से अपने अलग रूप बनाकर उसको अपने पति के पास भेजती थीं। ऐसे कई व्याख्यानकार कहे हैं। इसकी आवश्यकता नहीं है। रासलीला के समय में गोपियां दो रूप धारण किये थीं। विवाह होने के कारण गृहस्थ धर्म के अनुसार उनका पति के साथ संग करना गलत नहीं है। भगवान के साथ रास रचते समय वे शुद्ध अप्सरा रूप ग्रहण किये थी।

योग को प्राप्त न किया हुआ मानव मनसा भी कभी अधर्म नहीं करना चाहिये। भगवान रुद्र हालाहल पीकर जीवित हैं। इसको देखकर कोई विष पीकर जीवित रह सकता है क्या ? इसी के लिए ये वाक्य प्रस्तुत हैं। **न देवचरितं चरेत**।।31।।

रुद्र विष पीकर उसको जीर्ण कर लिये। भगवान श्रीकृष्ण बाल्य में पूतना से विषपान किये। परनारि गमन वस्त्रापहरण के बारे में बोलने वाले श्रीकृष्ण के समान विष पान, आग को खाना गोवर्धन पर्वत उठाना यह कर सकते हैं क्या ? जो हम कर नहीं सकते उसके बारे में व्यर्थ बातें नहीं करना।

तो भगवान श्रीकृष्ण लोग कहें ऐसे कार्य को क्यों किये ? श्री वादिराजतीर्थ स्वामी जी इसके लिए एक परिहार बताये हैं - कलियुग के लोग जारत्व और चोरत्व करते रहते हैं। करने वाले कम होंगे, लेकिन उसके बारे में बोलने वाले, उसका प्रचार करने वाले बहुत लोग होते हैं। पत्रिका समाचार - पत्र खोले तो उसमें जारत्व और चोरत्व का विशाल विवरण मिलता है। अन्य दुष्ट लोगों से किए हुए जारत्व चोरत्व की दुष्ट वार्ता की चर्चा करते हुए पाप संचयन करने के बदले में भगवान के गोपी जन जारत्व और नवनीत चोरत्व की कथा कहकर पुण्य संपादना करें। इसके लिए भगवान ने अनुग्रह करते हुए इन लीलाओं को किया है।

योगेश्वर जो बोलते हैं वह सत्य होता है, वे जो खेलते हैं वह भी योग्य होता है। दैत्य मोह के लिए वे जो करते हैं और न करते हैं दोनों सत्य ही होता है। अपनी बातों के विरूद्ध अकस्मात् वे कर्म करे तो भी बुद्धिमान लोगों को उसको मानना चाहिये, अनुसरण नहीं करना है।।32।।

हे राजा, योगेश्वर श्रीकृष्ण को सत्कर्माचरण से कुछ प्रयोजन नहीं है। दुष्कर्म करने से उनको नरक नहीं होता है क्योंकि वे अभिनिवेश न होते हुए, मैं करता हूँ यह अहंकार न रखते हुए कर्म करते हैं।।33।।

प्राणी, मुनष्य, देवता इन सबको नियमन करने वाले भगवान को क्या नियम होते हैं ? उनको धर्माचरण से प्रयोजन, दुष्कर्म से अनर्थ नहीं होता है। इसको और प्रत्येक बोलने की आवश्यकता नहीं है।।34।।

योग सामर्थ्य से सारे कर्मबंधों से मुक्त हुये मुनि लोग भगवान के पादकमल सेवा करते हुए उसके रज से संतृप्त रहते हैं। वे कर्म लेप न होते हुए स्वेच्छा से कर्म कर सकते हैं। अप्राकृत शरीर वाले भगवान श्रीकृष्ण को कहां का कर्म बंध आता है।।35।।

गोपियों के उनके पतियों के, और समस्त जीवों के नियमन करने वाले उनके सर्वसाक्षी लीला मानुषविग्रह रूपी भगवान श्रीकृष्ण को कर्मबंध कहां से आता है ?।।36।।

यहाँ **योन्तश्चरति** शब्द का प्रयोग है। यहाँ ई + अ संधि होकर य हो गया है। **ईं लक्ष्म्यामब्जलदे** इस कोष के अनुसार ई+अ का अर्थ लक्ष्मी नारायण होता है। सारे पुरुष स्त्रियों में रहने वाले लक्ष्मी नारायण ही यहाँ रमण किये। बिम्ब से ही क्रिया ही होती है। बिम्ब के बिना प्रतिबिम्ब से क्रिया नहीं होती। सारे गोपालकों में रहने वाले श्रीकृष्ण गोपियों में रहने वाली लक्ष्मी से संपर्क किये।

भक्तों के अनुग्रह के लिए भगवान मनुष्य सदृश देह को धारण करते हुए लीला करते हैं। मानव उन लीलाओं को सुनते हुए उसकी उपासना करें।।37।।

हे राजा, भगवदिच्छा से मोहित गोपाल अपनी पत्नियों को अपने साथ ही देखे। उनको श्रीकृष्ण के ऊपर क्रोध नहीं आया।।38।।

सुप्रभात के ब्राह्मी मूहर्त के सुसमय में भगवान श्रीकृष्ण अपने सखि गोपिकाओं को विदा किए। इच्छा न होते हुए भी श्रीकृष्ण की आज्ञा को मानकर वे अपने - अपने घर को चली गयीं।।39।।

श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों के साथ की हुयी रासक्रीड़ा, जलक्रीड़ा आदि विनोद लीलाओं को परम ब्रह्मचारी श्री शुकदेव जी तन्मयता से वर्णन किये हैं। देवतागण इसको समूह में खड़े होकर देखे हैं। इस क्रीड़ा का श्रवण मनन करने से मिलने वाले फल के बारे में बताते है। इसे श्रवण मनन करने वाले का हृदय रोग परिहार होता है। कामादि रोग नाश होते हैं। यह वेदव्यास जी का वाक्य है। इसके लिए यह क्रीड़ा कामुक क्रीड़ा नहीं। रास क्रीड़ा से श्रीकृष्ण को कोई दोष नहीं आता ।

तत्वज्ञानी गोपियों के साथ श्रीकृष्ण द्वारा रचायी हुयी इस अलौकिक सुंदर रासलीला को लौकिक दृष्टि से नहीं देखना है। श्रद्धा भक्ति रखते हुए इसको सुनने वाला और सुनाने वाला दोनों भगवान में विशेष भक्ति पाकर लौकिक विषय भोग की आशा से मुक्त होकर सारे दोषों को दूर करते हुए ज्ञानी होता है, मुक्त होता है।।40।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में इकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बत्तीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - एक बार महादेव के उत्सव के समय पार्वती की कथा को सुने हुए गोपालकों ने दुर्गारण्य को जाने के लिए प्रस्तुत हुए। गाड़ी को बैल जोड़ते हुए यात्रा में चले।।1।।

वे दुर्गारण्य में सरस्वती नदी में नहा धोकर शिव-पार्वती को गंध फूल चढ़ाते हुए पूजा द्रव्यों से पूजा किये।।2।।

सारे लोग गाय, सोना, शहद और मिष्ठान दान से ब्राह्मण का भोजन कराते हुए वासुदेव की प्रीति पाने के लिए कृष्णार्पण बोलकर समस्त कार्य को भगवान को अर्पित किये।।3।।

सरस्वती तट पर जलप्राशन करते हुए वे तीर्थोपवास किये। हे राजा, नंद, सनंद आदि सारे गोपाल उस रात को वहीं रहे।।4।।

उस जंगल में एक बड़ा अजगर रहता था। उसको बहुत भूख लगा था। वह सोया हुआ नंद को निगलने लगा।।5।।

अपने को सांप निगल रहा है, इसका अनुभव करते हुए नंद चिल्लाने लगा। हे कृष्ण, हे कृष्ण, यह बड़ा सांप मुझको निगल रहा है। हे बेटा, बहुत बड़ी विपदा में फंस गया हूँ। आकर मेरी रक्षा करो।।6।।

उसकी आवाज को सुनकर सारे गोपाल जागृत हो गये। वे हाथ में मशाल लेकर उससे बड़े सांप को मारने लगे। तो भी वह सांप नंद को नहीं छोड़ा। तब भगवान श्रीकृष्ण वहां आकर अपने पांव से उस सांप को लात मारे।।7-8।।

भगवान श्रीकृष्ण के पाद स्पर्श मात्र से सांप मुक्त हुआ। वह अजगर अपने शरीर को छोड़कर विद्याधर से पूजित अपने निज रूप को धारण किया।।9।।

वह एक विद्याधर था, उसका शरीर शोभायमान था। वह सोने का हार धारण किया था। सामने आकर श्रीकृष्ण को नमस्कार किया। श्रीकृष्ण उससे पूछते हैं।।10।।

तुम कौन हो ? अब सुंदर और शोभायमान लगते हो, किन्तु तुम्हें ऐसे हीन सांप के जन्म को क्यों लेना पड़ा ? कारण बताओ।।11।।

सांप बोलता है, मैं विद्याधर हूँ, सुदर्शन नाम से प्रसिद्ध था। धन संपत्ति के अहंकार से रूप सौन्दर्य से युक्त मैं विमान में संचार करता था। अपने सौन्दर्य के बारे में बहुत अहंकार रखता था। अपने तप से सौन्दर्य को खोकर कृश हुए आंगिरस नाम के ऋषि को देखकर अपहास्य किया। वे मुझको शाप दिये। उसी दिन से मुझे यह सांप का शरीर प्राप्त हुआ। अपने प्रारब्ध के कारण मैं अजगर बन गया।।12-13।।

वे ऋषि करुणालु थे। मेरे अनुग्रह के लिए ही वे शाप दिये। उनके अनुग्रह के कारण आप के पादस्पर्श से मेरे सारे पाप मिट गये।।14।।

हे दोष नाश करने वाले श्रीश केशव, आपके पादस्पर्श से मैं शाप मुक्त हो चुका हूँ। संसार भय से डरकर जो आपके शरण में आते हैं उनके भय को दूर करने वाले हैं आप। मैं अपने निवास को जाने के लिए आपकी आज्ञा को मानता हूँ।।15।।

हे महायोगी, महापुरूष, हे सज्जन पालक, सर्वलोकपालकों के पालक, मैं आपके शरण में हूँ कृपा करके मुझे जाने की अनुज्ञा दीजिये।।16।।

आपके अद्भुत दर्शन से मैं ब्रह्म शाप से मुक्त हो गया हूँ, इसमें आश्चर्य क्या है ? आपका नामोच्चारण करने वाला स्वयं पवित्र होता है और सुनने वालों को भी पवित्र करता हैं। आपने मुझको पाद से स्पर्श करते हुए परम पवित्र बनाया है।।17।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार वह सुदर्शन विद्याधर भगवान की आज्ञा पाकर उनकी परिक्रमा करते हुए दण्डवत् प्रणाम करने के बाद स्वर्ग लोक चला गया।।18।।

यह संसार एक बड़ा अजगर है। इसको आनंद रूप वाले नंद नाम का जीव ग्रास बना है। गोपालक नंद को छुड़ा नहीं सके। संसार में बंधक बना जीव को और देवताओं भी मुक्त नहीं कर सकते। श्रीकृष्ण के पाद स्पर्श मात्र से नंद मुक्त हो गया। इस प्रकार संसार में बद्ध रहने वाला जीव केवल श्रीहरि की कृपा मात्र से मुक्ति पाता है।

नंद अपने लोगों के साथ अन्य देवताओं के भजन के लिए यहाँ आया था, उसको सही ज्ञानोदय होना था। अन्य देवता यजन के समय में ही आपत आना, श्रीकृष्ण का उसका परिहार करना, विद्याधर का श्रीकृष्ण को सर्वोत्तम भगवान मानकर स्तुति करना ये सारे नंद को भगवान के बारे में सही ज्ञान उत्पन्न करने के लिए हैं।

हे राजा, श्रीकृष्ण के इस स्वरूपभूत सामर्थ्य को देखकर नंद गोप सहित सारे गोपालक आश्चर्य चकित हुए। अपने उपवास व्रत को समाप्त करते हुए बहुत आदर से श्रीकृष्ण की लीलाओं को गाते हुए वहाँ से गोकुल को वापस आये।।19।।

एक बार रात्रि में अद्भुत पराक्रमी श्रीकृष्ण बलराम दोनों जंगल में गोकुल की स्त्रियों के साथ विहार कर रहे थे।।20।।

उनके स्नेहपाश से बद्ध उन स्त्रियों ने सुन्दर तरीके से उनका गुणगान किये। उनके शरीर

को वे सुगंध का लेप किये। उनको पहनने के लिए स्वच्छ और सुंदर वस्त्र दिये, फूल माला चढ़ाए।।21।।

उस समय चन्द्र और नक्षत्रों का उदय हुआ। चमेली की सुगंध से आकृष्ट होकर भौरे वहाँ आये। कमल के सुगंध को लेकर हवा मंद मंद रीति से बह रही थी। श्रीकृष्ण और बलराम उस संध्या का स्वागत किये।।22।।

दोनों मिलकर सप्तस्वरों का शास्त्रबद्ध तरीके से आरोहण अवरोहण किये। उसको सुनकर सारे जीव राशि को सुख हुआ, मन को आनंद हुआ।।23।।

गोपियाँ उस गान माधुर्य से आनंद विभोर हो गयीं। वे अपने को और अपने पहने हुए कपड़े की भी खबर न रखते हुए संगीत में मस्त हो गयीं। उनके बालों के जूड़ा से फूल गिर रहे थे।।24।।

श्रीकृष्ण तथा राम के संगीत में मग्न होकर उन्मत्त के समान विहार करते समय वहाँ शंख चूड़ नाम के प्रसिद्ध कुबेर के अनुचर आ गया। वह शिव के वर के बल से अवध्य बना था।।25।।

वह राम कृष्ण की आंखों के सामने ही उनकी रक्षा में रहे हुए गोपियों को पकड़कर उत्तर की दिशा में खींचकर ले जाने लगा। गोपियाँ चिल्लाने लगीं।।26।।

जैसे बाघ के वश में पड़ी हुयी गाय चिल्लाती है, वैसे ही गोपियाँ राम कृष्ण के नाम को लेकर चिल्लाने लगीं। उसको सुनकर दोनों भाई उनका पीछा करने लगे।।27।।

दृढ़चित्त राम कृष्ण तालवृक्ष को उखाड़कर उसे अपने हाथ में लेकर, मुंह से डरने की कोई बात नहीं ऐसे अभय देते हुए एक क्षण में दुष्ट यक्ष के नजदीक चले गये।।28।।

मृत्यु के समान अपना पीछा करते हुए दोनों भाइयों को देखकर भयभीत हुआ वह यक्ष क्या करना इसको न समझते हुए गोपियों को वहीं छोड़कर अपने प्राण बचाने के लिए जोर से भागने लगा।।29।।

श्रीकृष्ण ने उसका पीछा करते हुए उसके पास जाकर उसको पकड़ लिया। बलराम गोपियों के साथ उनकी रक्षा के लिए खड़े हुए।।30।।

श्रीकृष्ण उस असुर यक्ष को अपने दोनों हाथों से पकड़कर अपने वज्र मुष्टि से उस दुष्ट के सिर पर आघात किये। शंखचूड़ का सिर फट गया, उसमें रहने वाली चूड़ामणि नाम के रत्न को उठा लिए।।31।।

श्रीकृष्ण ने उसे मारकर उसके सिर से चूड़ामणि को उठाकर गोपियों के समक्ष उस मणि को बलराम को दे दिये। बलराम प्यार से उसको धारण किये।।32।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तैतीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

वेणुगीता

श्री शुकदेव कहते हैं - श्रीकृष्ण दिन में गाय को चराने के लिए वन को चले जाते हैं। गोपियों का मन उनका पीछा करता है। उनको समय बीतना कष्ट होता है। वे श्रीकृष्ण के लीला के बारे में गाते हुए कष्ट से समय बिताती हैं।।1।।

गोपस्त्रियाँ आपस में बोलती हैं। हे सखि, सुनो, हमारे कन्हैया अपने बाएं गाल को बाएं कंधे के ऊपर रखते हुए ओष्ठ के पास बंशी को रखते हुए अपनी कोमल अंगुलियों से उसके रंध्रों के ऊपर फिराते हुए, सप्त स्वरों के अनुसार अपने भौ को भी हिलाते हुए वेणुगान करते हैं।।2।।

उस समय विमान में संचार करने वाली देवता स्त्रियाँ सिद्धों के साथ उस गान को सुनकर आश्चर्य चकित होती हैं। स्वयं उसका अनुकरण करने में असमर्थ होकर लज्जित होते हैं। मदन के पंचबाण से आहत हुयी अपने कपड़े का भी ख्याल न रखते हुए संगीत में मग्न होती हैं।।3।।

हे अबलागण, यह सुनो, यह आश्चर्य की बात है कि केयूर हार से अपने छाती में विद्युत के समान चमकने वाली लक्ष्मी को रखा हुआ नारायण वेणुगान करते हुए दुःखितों को सुख देता है।।4।।

उस समय गोकुल के गाय, बैल, हिरन और बच्चे सारे वेणुगान के सुमधुर गान से आकर्षित होकर मुंह में रखा हुआ घास को भी न खाते हुए कान ऊपर करके चित्र में लिखा हुआ प्राणी के समान निश्चल रहते हैं।।5।।

हे सखि, श्रीकृष्ण मोर के पंख से और नव नवीन फूल पत्ती से अपना किरीट बनाकर, पहलवान के समान कटिबंध बांधकर बलराम के साथ मिलकर गोपालकों के साथ खड़े हुए गायों को अपने वेणुध्वनि से बुलाते हैं।।6।।

तब वहाँ बहने वाली नदियां रूककर इस गान को सुनती हैं, बहने वाली हवा गान माधुर्य से रूक जाती है। ये नदी और हवा श्रीकृष्ण के पाद रज को अपने साथ लेकर आगे चलते हैं। उनको श्रीकृष्ण के अंग संग की चाह होती है। वे तरंग नाम के अपने हाथ से श्रीकृष्ण को छूने का प्रणय प्रयास करती हैं। उससे उनका बहने का वेग कम होता है। वे निश्चल होकर मधुर गान सुनने लगते हैं। इस प्रकार वे भी पुण्य भागी होते हैं।।7।।

आदिपुरूष श्री पद्मनाभ के अनुचर ब्रह्मा और सनकादि देवताओं ने वेद घोष से उनकी महिमा का संकीर्तन करते हैं। वह नारायण नित्यावियोगिनी लक्ष्मी को अपने छाती में धारण कर जल के मध्य में सोया है। वैसे ही भगवान श्रीकृष्ण ब्रह्मादियों के संकीर्तन सुनते हुए छाती में श्रीवत्स लांचन को धारण करते हुए वन में संचार करते हैं। पहाड़ के ऊँचे स्थान पर खड़े होकर वेणुगान से गायों को बुलाते हैं।।8।।

तब जंगल में रहने वाले वृक्ष लताएँ अपने हृदय में रहने वाले भगवान के इस व्यक्त रूप को अपने फलपुष्प भरित टहनियों से झुककर प्रणाम करते हैं। भक्ति रस से रोमांचित होकर आनंदाश्रु बहाते हुए अमृत के समान रस वाले फल पुष्प को समर्पित करते हैं।।9।। सुंदर विकसित कमल की मालाओं से और दिव्य गंध युक्त तुलसी के मधुर मधु से मत्त हुए मधुकर समूह मंदध्वनि से गाने लगते हैं। उनके अनुसार श्रीकृष्ण भगवान अपने वंशी से मधुरस्वर सुनाते हैं।।10।।

उस समय सरोवर में विहार करने वाले सारस और हंस पक्षियों श्रीकृष्ण के उस मधुर सुंदर गान को सुनकर मनमोहित होते हैं, एकाग्र मन से अन्य मुनियों के साथ मौन होकर आंखें मूंदकर भगवान के ध्यान में मग्न होते हैं।।11।।

हे गोकुल की देवियाँ, बलराम के साथ श्रीकृष्ण फूलमाला और किरीट कुण्डल को धारण कर गोवर्धन पर्वत के ऊपरी भाग में खड़े होकर हर्ष से अपने वेणुध्वनि से गायों को बुलाये तो सारे विश्व के समस्त जीव राशि उनके मधुर गान को सुनने के लिए अपने कान को खोलकर खड़े होते हैं।।12।।

उस समय चलने वाले मेघ श्रीकृष्ण के इस वेणुगान को विरोध न आये इसके लिए ज्यादा आवाज न करते हुए मंद्रस्वर में श्रीकृष्ण के डर से उनके वेणुगान के अनुसार आवाज करते हैं। यह भी श्याम सुंदर है। इसी के कारण वह हमारा मित्र है मानकर उसके ऊपर फूल की वृष्टि

करते हैं। छाता के समान ऊपर खड़े होकर सूर्य की छाया से रक्षा करते हैं।।13।।

यशोदा तेरे पुत्र को अनेक तरह कीं गंधर्व विद्या में पाण्डित्य है। वह अनेक विद्याओं में पारंगत है। वह स्वाभाविक है, इन विद्याओं को किसी से सीखा नहीं है। लाल लाल सेब की तरह गाल वाले श्रीकृष्ण अपने होंठ के नीचे बंशी को रखकर अपने गान कला की अभिव्यक्ति करते हुए उस छोटी सी बंशी से षड्ज मंद्र और तीक्ष्ण स्वरों से सुनने वाले का मन मोहित करते हैं। यह विद्या केवल उसी का है।।14।।

उस समय गान कला में तज्ञ देवागनाएं इंद्र रुद्र ब्रह्म इत्यादि देवोत्तम इस वेणुगान को सुनकर उसमें छिपा हुआ अपूर्व सौन्दर्य तत्व को पूर्ण तरह से न जानते हुए सिर झुकाकर स्वयं को भूलकर खड़े रहते हैं।।15।।

गायों के पीछे-पीछे पुष्ट सांड जैसे गंभीर पांव रखते हुए श्रीकृष्ण बंशी बजाते चलते हैं। उससे गायों से त्रस्त भू देवी श्रीकृष्ण के ध्वज, वज्र, कमल, अकुंश आदि सुंदर चिन्ह से शोभायमान उसके पदकमलों से आनंद पाती है।।16।।

रात में रास लीला होने के बाद पांव पटकते भगवान हमें गोकुल को भेज देता है। पूरे दिन में हम उसके विरह से तपते रहते है। शाम को गाय चराकर जब वह वापस आता है। उस समय उसके बंशी के निनाद, मुख के हावभाव और कातर भरी हुयी उसकी दृष्टि को देखकर हम प्यार से विभोर होकर अपने बाल के जूड़ा और पहने हुए कपड़े का भी ख्याल नहीं रख सकती हैं।।17।।

कौस्तुभ मणि को धारण करने वाला श्रीकृष्ण अपने अत्यंत प्यार की तुलसी माला को धारण करते हुए किसी एक गोपाल के कंधे के ऊपर हाथ रखते हुए जंगल से आते हुए सुंदर गाना गाता है।।18।।

मणिधरः इस शब्द का प्रयोग है, इससे ब्रह्मा जी में प्यार रखने वाला भगवान मणि को धारण करते हुए भक्त वात्सल्य दिखाये हैं। यहाँ **दइत तुलस्याः** इस शब्द का प्रयोग है। इससे तुलसी माला को धारण करते हुए लक्ष्मी जी के ऊपर प्यार को भगवान दिखाये हैं।

इस समय हम उस वेणुगान से मोहित होकर जैसे हिरन गान से मोहित होकर श्रीकृष्ण के पास आ जाते हैं वैसे हम भी गुणगण के समुद्र श्रीकृष्ण के पास अपने घर पति और पुत्रों को भूलकर जाते हैं।।19।।

हे पाप रहित यशोदा, आपका प्रणयी पुत्र हमको आनंद देता है। नंद के कंद के फूल्लारविन्द से शोभायमान माला को धारण किए हुए रूप को देखकर हमारा मन मोहित होता है। वह गोविंद यमुना तट पर गायों के साथ विहार करते हैं।।20।।

उस समय मंद वायु अपने साथ लायी हुयी श्रीगंध को उनको समर्पित करते हुए उनके पास ही विहार करता है,(मंद मंद सी हवा चलती है)। गंधर्व वाद्यघोष करते हैं, संगीत के साधनों को समर्पित करते हुए उनके चारों ओर घेर लेते हैं।।21।।

गोकुल और गायों के बारे में प्यार करने वाला अचिन्त्य महिमा वाले अच्युत रास्ते पर दौड़ते समय ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध सभी के पांव पकड़कर नमस्कार करते हैं। संध्या समय में गायों के साथ बंशी बजाते हुए कानन से वापस आने वाले श्रीकृष्ण की कीर्ति को गोपालबाल संकीर्तन करते हैं।।22।।

गायों के पावों से उठी हुयी धूल श्रीकृष्ण की वनमाला को ढक लेती है। तब वह देवकी गर्भ से उदित हुआ चन्द्र के सामान देखने वाले के आंखों के ताप को निवारण करते हुए सुख को देने वाली बनती है। अपने बधुंओं को इच्छित अर्थ देने वाला भगवान उसी इच्छा से हमारे पास आता है।।23।।

मादक मंद हास से फूले हुए कमल के समान आंख वाले श्रीकृष्ण अपने प्यार से गोपियों के प्रणयदर्प का अपहरण करता है। सोने के कर्णकुण्डल से शोभायमान उनके गाल को रंग लगाते हुए उदयमान चन्द्र के समान शुभ्र प्रकाश वाले वनमाली हमारे पास आते हैं।।24।।

संध्या के समय के नवोदित चंद्र के समान मुख कांति वाले यदुपति श्रीकृष्ण हाथी के समान गंभीर पांव रखते हुए हमारे पास आता है। गोकुल के गायों को दिन में सूर्य प्रकाश से हुआ ताप को चन्द्र के समान सुख देने वाला भगवान हमारे भी ताप को नष्ट करते हैं ।।25।।

श्रीशुकदेव कहते हैं - हे राजा, महाभाग्यशाली गोपिकाएँ इस प्रकार दिन भर श्रीकृष्ण की लीलाओं की गाथाओं को गाते हुए उन्हीं की याद में उन्हीं के प्यार से, उन्हीं से आनंद पाते हुए आनंद विभोर हो जाती हैं।।26।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में तैतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौतीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - शंखचूड़ासुर के वध के बाद शिव वर से अवध्यता प्राप्त किया हुआ अरिष्ट नाम का वृषभरूपी असुर कंस से प्रेषित होकर गोकुल को आ गया। बड़े सांड के रूप वाला वह अपने पांव से जमीन को कुरेदते हुए जोर से आवाज करते हुए, जमीन को हिलाते हुए वह गोकुल को आया।।1।।

अत्यन्त क्रूर रीति से आवाज करने वाला वह अपनी पूंछ को ऊपर उठाकर, मुंह को हिलाते हुए चला तो लगता था कि आकाश में रहने वाले मेघ को सींग और पूंछ से ऊपर उठा रहा है।।2।।

हे राजा, सुनो वह थोड़ा थोड़ा गोबर डालते हुए, बार बार, मूत्र विसर्जन करते हुए, आंखों से घूरकर देखते हुए भयानक गर्जना करने लगा। उस गर्जना से गर्भिणी गायों का और स्त्रियों का गर्भ स्राव होता था, गर्भ पात होता था। इस प्रकार वह भयंकर आवाज करते हुए गोकुल में प्रवेश किया।।3-4।।

चार महीने तक रहने वाला गर्भ गिर गया तो गर्भस्राव बोलते हैं। पांच से सात माह तक रहने वाला गर्भपतन को गर्भपात बोलते हैं। सात से नौ अथवा दसवां माह तक रहने वाला गर्भ और होने वाला स्राव को प्रसव बोलते है।

हे राजा, तीक्ष्ण सींग वाले उस सांड को देखकर गोप गोपियाँ भयभीत हो गए। गाय इधर उधर दौड़ने लगीं।।5।।

सारे लोग कृष्ण कहते हुए श्रीकृष्ण के शरण में आये। घबड़ाए हुये और भय से इधर उधर दौड़ रही गाय और गोपालकों, डरो मत इन शब्दों से अभय देते हुए भगवान श्रीकृष्ण उस वृषभासुर के सामने आकर उसको आह्वान देते हुए बोले - हे मूर्ख, दुरात्मा इन पशुओं को डराने से तुमको क्या होने वाला है।।6-7।।

तुम्हारे जैसे दुष्ट के डर और बल को नष्ट करने के लिए शिष्ट रूप से मैं यहाँ खड़ा हूँ। यह कहते हुए श्रीकृष्ण हाथ पांव को मारते हुए उस सांड़ के क्रोध को उकसाते हैं। अपने गोल नीले हाथ को अपने मित्र के कंधे के ऊपर रखकर खड़े हो गये।।8।।

इस प्रकार उकसाया हुआ अरिष्टासुर अपने पांव से जमीन को कुरेदते हुए पूंछ को ऊपर उठाकर अपने सींग को नीचे करते हुए श्रीकृष्ण के पास दौड़ा।।9।।

अध्याय – 34

अपने सींग को आगे करते हुए आंखों को न मिलाते हुए लाल आंखों वाला इन्द्र के वज्रायुद्ध के समान श्रीकृष्ण के ऊपर जोर से आघात किया।।10।।

श्रीकृष्ण उसके दोनों सींग को पकड़ते हुए एक हाथी गजयुद्ध में दूसरे हाथी को जैसे पीछे हटाता है वैसे कृष्ण उस बैल को अठारह पांव पीछे हटाए।।11।।

भगवान के आघात से वह दैत्य गिर गया। किन्तु पुनः उठकर भगवान के ऊपर पुनः आघात करने को तैयार हो गया। वह थक कर पसीना-पसीना हो गया था, आक्रोश से भुस-भुस - भुस आवाज करते हुए श्रीकृष्ण के ऊपर आक्रमण किया।।12।।

अपने ऊपर गिरने वाले उस असुर के दोनों सींगों को पकड़कर पांव से मारकर श्रीकृष्ण उसको जमीन पर गिरा दिये। उसके दोनों सींगों को पकड़कर कपड़े को निचोड़ते जैसे निचोड़कर गले को शरीर से काट दिये। उसके सींगों को काटकर उसी से उसको मारे। इस आघात से वह राक्षसं मर गया।।13।।

कृष्ण के नाम स्मरण मात्र से एक अरिष्ट नहीं सारे अरिष्ट नष्ट होते हैं। ऐसे भगवान के सामने इस अरिष्ट का क्या महत्व है। उसके सींग से ही भगवान उसको मार डाले। विश्वास से प्यार करते हुए किसी को बढ़ाने के बाद भी अपने लोग शत्रुओं के वश में चले गए तो अन्त काल में वही अपने शत्रु बन जाते हैं। इसके दृष्टान्त रुप में वृषभासुर के सिर के ऊपर के सींग ही उसके मृत्यु का कारण बन गए। यह रूक्मिणीश विजय में कहा गया है।

वृषभासुर रक्त का वमन करते हुए गोबर और मूत्र करते हुए चारों पावों को झाड़ने लगा। आंखों को न बंद करते हुए प्राणसंकट का अनुभव किया। श्रीकृष्ण उसको यमालय को भेज दिये। देवता लोग पुष्प वृष्टि करते हुए श्रीकृष्ण का गुणगान किये।।14।।

भगवान श्रीकृष्ण वृषभासुर को मारकर गोपालकों के और प्रिय बन गए। गोपियों के आंखों को आनंद देने वाले भगवान गोकुल में प्रवेश किये।।15।।

इस प्रकार अद्भुत लीला करने वाले भगवान श्रीकृष्ण के अरिष्टासुर के वध करने के बाद पूज्य नारद जी कंस के पास जाकर उसके बारे में बोलने लगे।।16।।

हे कंस, देवकी के आठवां गर्भ से जो लड़की जन्म ली ऐसा तुमने समझा है वह गलत है। वह बच्ची यशोदा की थी, यशोदा के पास रहने वाला कृष्ण यशोदा का नहीं देवकी का पुत्र है। बलराम रोहिणी का पुत्र है। वसुदेव तुम्हारे डर से अपने दोनों पुत्रों को अपने मित्र नंद गोप के घर में रखा है। ये कृष्ण बलराम ही तुम्हारे भेजे हुए सारे राक्षसों को मारे हैं।।17।।

इसको सुनकर कंस का क्रोध बढ़ गया। वह वसुदेव को मारने के लिए अपने खड्ग को खींच लिया।।18।।

नारद जी उसको मारने से रुकवा दिये। कंस वसुदेव - देवकी को अपनी मृत्यु का कारण मानकर उनको पुनः जेल में डाल दिया।

कंस, वसुदेव - देवकी के सामने ही श्रीकृष्ण को मारकर उसका बदला लेना चाहता था। इसी कारण उनको बंधन में रख दिया। नारद भी यही चाहते थे। महत्तर अपराध के बिना अपने बंधु कंस को मारना श्रीकृष्ण के लिए सही नहीं होता है। वसुदेव देवकी को बंधन बनाने के बाद कंस अपराधी होता है। इसी कारण भगवान उसको मार डालते हैं। इसी कारण नारद जी यह तंत्र रचाये।

नारद जी के जाने के बाद कंस केशी नाम के बड़े राक्षस को कृष्ण को मारने के लिए भेजा।।20।।

बाद में चाणूर मुष्टिक आदि कुश्तीपटु और अपने मंत्रियों को और हाथी को चलाने वाले महावत को अपने पास बुलाकर बोला।।21।।

हे वीर, सुनिये। सुना है वसुदेव के पुत्र नंद गोकुल में हैं।।22।।

वे राम - कृष्ण हमारी मृत्यु हैं। हमको ये बात दुर्गा ने बतायी है। हम उनको यहाँ मथुरा में बुलाते हैं। उस समय आप लोगों को कुश्ती खेलते हुए उनको मारना है।।23।।

मल्लयुद्ध के लिए योग्य रंगस्थल का निर्माण हो। उसके चारों ओर लोगों को बैठने के लिए उन्नत आसन बनाये जायें। सारे नगरवासी और ग्रामवासी इस पंज को देखें।।24।।

हे बुद्धिशाली महावत, मेरी बात सुनो। गंडस्थल से सदाकाल मद जल को स्रवित करने वाले कुवलयापीड़ नाम के बड़े हाथी को रंगस्थल के द्वार पर खड़ा करो। उसके सूंड़ में मुद्गरायुध को दे दो। उसकी सहायता से तुम वसुदेव के दोनों बच्चों को मार डालना।।25-26।।

इस बात को सुनकर वह महावत घबड़ाकर पूछा - महाराज, आपकी बहन के पुत्रों को मैं कैसे मारूँ।।27।।

हे राजन्, महावत की इस बात को सुनकर दुर्बुद्धि वाला कंस अपने जन्म के रहस्य को विवरण पूर्वक कहता है।।28।।

हे सभासद, हमारी बातों को सारे लोग लक्ष्य देकर सुनें। सुनकर याद रखें, मैं पहले से ही हमारे बंधु बोलने वाले इन लोगों से द्वेष करता हूँ। इसका कारण बताता हूँ।।29।। मेरी माँ बहुत अच्छी थी, कमल के समान उनकी आंखें थीं। एक बार वह राजमहल के उद्यान में संचार कर रही थी। उस समय मंद - मंद वायु चल रही थी।।30।।

अशोक बकुल आदि फूल से वह उद्यान भरी थी। उनके सुमधुर सुगंध से आकृष्ट होकर भौंरे गूंज रहे थे। कोयले कूंज रही थीं।।31।।

मोर मिलकर नाच रहे थे। बंदर इधर-उधर उथल पुथल कर रहे थे। अर्जुन वृक्ष की पंक्ति से वह उद्यान बहुत सुशोभित हो गया था।।32।।

उस समय मेरी माता जी को अपने पति की याद आयी। वह पतिव्रता थी। ऋतुस्नान करने के बाद वह अपने को बहुत सुंदर तरीके से अलंकृत की थी।।33।।

उस समय में द्रुमिल नाम का एक गंधर्व वहां टहल रहा था। वह अपनी माया से अदृश्य होकर टहलते हुए मेरी माँ को देखा।।34।।

लोगों के मन के अंदर के अभिप्राय को समझने वाली योगसिद्धि उसको प्राप्त थी। वह मेरी माँ के अन्तरंग भाव को समझकर मेरे पिता उग्रसेन का रूप धारण कर हसन्मुख से तिरछे नजर से मेरी माँ को देखते हुए प्रत्यक्ष हुआ।।35।।

पति की इच्छा करने वाली पतिव्रता मेरी माँ के पास वह काम पीड़ित होकर आया। सत्य स्थिति को न जानने वाली माँ उस उद्यान में उसके साथ रमण की।।36।।

हरिवंश में लिखा है उग्रसेन की पत्नी औग्रसेनी सुयामना पहाड़ को देखने के लिए गयी थी। वहाँ किन्नर लोग कामोद्धोदक गीत गा रहे थे। तब वह काम पीड़ित होकर अपने पति के बारे में विचार कर रही थी। दूसरों के मन में क्या है, इसको समझने वाला द्रुमिल उग्रसेन का रूप धारण कर उसके पास आया।

बाद में रतिक्रीड़ा में अन्तर पाकर वह अपना पति नहीं है यह समझकर वह दुःखित हो गयी। उसके आंखों से आंसू बहने लगे। उससे पूछी हे वंचक, तुम कौन हो। दुरात्मा, तुमने सज्जनों से निंदित यह कृत्य किया।।37।।

मेरी माँ को उत्तर रूप में वह सुंदर देह वाला द्रुमिल उसको समाधान करते हुए बोला - हे प्रिये, हम गंधर्व कुल में जन्म लिये है। हम देवता के समान होते हैं, देवता के प्रिय भृत्य हैं।।38।।

तुम्हारे जैसे मनुष्य शरीर वाले को सुलभता से मिलने वाले नहीं हैं। जरा - मरण इत्यादि अनिष्ट के भागी बनने वाले मानव और देवताओं में बहुत अंतर होता है।।39।।

द्रुमिल की इन बातों को सुनकर मेरी माँ का क्रोध भभक उठा। वह क्रोध से कांपती थी। और बोली हे दुष्ट तुम दुष्टकार्य करने के बाद भी मुझको समाधान कर रहे हो।40।।

जल, अग्नि, भूमि, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य, दिग्देवताएं धर्म देवता ये सारे मानवों के पुण्य पाप कर्म के साक्षी बनते हैं। उन सबको देखते-देखते दुरात्मा तुम उनका अनादर करते हुए अतिक्रमण कर मुझको कलंकिंत किया।।41।।

मदोन्मत्त होकर बंधन से मुक्त हाथी निर्मल सरोवर में रहने वाले कमल को जैसे नाश करता है वैसे तुमने मेरे शील का नाश किया है। हे गंधर्वाधम, इसके बाद भी तुम मुझको सांत्वना दे रहे हो।।42।।

मेरी माँ की इन बातों को सुनकर उनके शाप से भयभीत द्रुमल कहने लगा। हे कमल नयन वाले, कमल के समान सुगंध के शरीर वाले, देवता मनुष्य स्त्री के साथ संग करें तो वह अधर्म नहीं होता। मानव लोग यदि देवस्त्री संग करें तो अधर्म होता है। तुम ठीक तरह से समझ लो मैंने कुछ अधर्म नहीं किया है।।43-44।।

मेरे इस कार्य से तुमको श्रीमंत धीमंत और महाउत्साहशाली पुत्र जन्म लेता है। मेरा वीर्य

कभी व्यर्थ नहीं होता। मेरी बातें कभी झूठ नहीं होती।।45।।

ऐसी बात करने वाले द्रुमिल को अपने दुर्लभ पातिव्रत्य को नष्ट करके संताप करने वाली दुःखित मेरी माँ क्रोध से शाप दी।।46।।

तुम पापी हो, दुर्मार्गी हो, धर्म का नियम तुम्हारे लिए नहीं है। तुम्हारा पुत्र भी तुम्हारी तरह धर्म मार्ग को छोड़ने वाला बनेगा, वह क्रूर, अकार्य करने वाला, निर्दयी होगा ।।47।।

वह देवऋषि और तपस्वियों के अनुग्रह के लिए अपात्र होता है। इस प्रकार अपने पुत्र को शाप देने वाली वह द्रुमिल को भी शाप दे सकती है। इस भय से 'वह अपने लोगों के लिए भी शत्रु बनेगा' कहते हुए वहीं अदृश्य हो गया। द्रुमिल के वहाँ से जाने के बाद दुःखित मेरी माँ उद्यान से राजगृह चली गयी। गर्भ धारण के दसवें महीने में वह मुझको जन्म दिया।।48-49-50।।

इस प्रकार पूज्य नारद जी एक बार मुझको मेरे जन्म वृतान्त के बारे में कहे थे। उस दिन से मैं अपने बंधु बने हुए सारे यादवों से द्वेष करता हूँ।।51।।

तुम लोग जानते ही हो कि ये लोग मुझसे द्वेष करते रहते हैं। इसी कारण मैंने उग्रसेन को, दुष्ट अभिप्राय वाले आहुक को, वंचक वसुदेव को और इनके आश्रय में रहने वाले अन्य लोगों को जेल में रखा है। इनको मार डालने से बंधु हत्या दोष नहीं आता है क्योंकि मैं उग्रसेन पुत्र नहीं हूँ। मैं गंधर्व का पुत्र हूँ।।52-53।।

इसी कारण राम कृष्ण को मारने के लिए केशी को भेजा है। केशी से यह काम नहीं हुआ तो हाथी से मैं उन दोनों को कुचल डालना चाहता हूँ। वसुदेव उग्रसेन नंद देवक आदि लोगों उनके श्राद्ध कर्म करके उन्हीं का मार्ग पकड़ने दो।।54-55।।

इन दोनों पुत्रों को मैं मारने वाला हूँ। उसको सारे यादव और उनके पक्ष वाले आंखें खोलकर देखें।।56।।

इस कार्यक्रम के लिए सारे देशवासियों को निमत्रंण दो। वे सारे मेरे पौरुष को देखें। हे मंगलकारी महावत, तुम रंगस्थल के द्वार में कुवलया हाथी को खड़ा करो। मुझको अहितकारी राम कृष्णों को उस हाथी से कुचल डालो। आने वाली चतुर्दशी के दिन से यह धनुर्याग आरंभ हो।।57-58।।

हमारे अभीष्ट को देने वाले रुद्र को पशु बलि दिया जाए। कंस की इस आज्ञा को सुनकर सारे लोग आश्चर्य चकित हो गए। इस कार्य को साधने के लिए कंस ने यदुश्रेष्ठ अक्रूर को निमंत्रित किया। उसके दोनों हाथ को पकड़कर बोलता है।।59।।

हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ अक्रूर, आप मेरे मित्र हो। आप मेरा एक काम करें। भोज यादवों में आपसे बढ़कर मेरा हित करने वाला अन्य कोई नहीं है।।60।।

हे सुंदर मित्र इन्द्र वामन की सहायता से बलि का निग्रह कर अपने स्वार्थ को साधा। वैसे मैं

भी अपने एक स्वार्थ को साधना चाहता हूँ। आप बड़े से बड़े कार्य करने में कुशल हैं।।61।।

आप यहाँ से नंद गोकुल को चलें। वहाँ वसुदेव के पुत्र हैं। उनको रथ में बिठाकर जल्दी ले आयें।।62।।

हरि के पक्ष वाले मुझे बताये हैं, उन दोनों से मेरी मृत्यु होने वाली है। आप जाकर उन दोनों को ले आइये। धनुर्याग के लिए अपने नजराना के साथ नंद इत्यादि लोगों को भी बुला लाना।।63।।

उन दोनों को आपके ले आने के बाद काल मृत्यु के समान रहने वाला कुवलयापीड हाथी से उनको मार डालूंगा। उससे भी वे बचे तो, आकाश की बिजली के समान रहने वाले पहलवानों से उनको मरवा देता हूँ।।64।।

वे बच्चे मर जाने के बाद उनके बंधु वसुदेव इत्यादि वृष्णि भोज और दाशार्ह कुलवाले दुःख करें। उनको भी बाद में मार डालता हूँ।।65।।

राज्य सिंहासन के लिए आशा करने वाला मेरा बूढ़ा पिता उग्रसेन को, उसके भाई देवक को और अन्य शत्रुओं को नाश करता हूँ।।66।।

हे मित्र, उसके बाद यह सारा भूमि निष्कटंक हो जायेगा। जरासंध मेरा गुरू है विविद मेरा मित्र है। शम्बर, नरक, बाण ये सारे मुझसे प्यार करते हैं। उनकी सहायता से मैं विष्णु पक्षपाती इन सारे राजाओं को मारकर इस भूमण्डल का प्रभु बनूंगा।।67-68।।

इसको मन में रखते हुए बालक रामकृष्ण को मथुरा और धनुर्याग को दिखाने का बहाना सा करते हुए उपाय से उनको यहाँ ले आना।।69।।

अक्रूर कहता है, हे राजा, आपने अपने को मृत्यु से बचाने के लिए जो कुछ विचार किया है वह सही है। फल मिलना हमारे हाथ में नहीं है, वह दैव के अधीन है। कार्यसिद्धि न हो या हो हम दोनों को समान रीति से देखते हुए समान रीति से प्रयत्न करना चाहिए।।70।।

लोग बड़ी-बड़ी आशा रखते हैं, भगवान उसको भंग कर सकते हैं। हमारे प्रयत्न से हर्ष आ सकता है, दुःख हो सकता है। आपकी आज्ञा का मैं पालन करूँगा।।71।।

कंस इस प्रकार अक्रूर और अन्य मंत्रियों को आदेश देते हुए वह अपने निजी धाम को चला गया। अक्रूर अपने घर का रास्ता पकड़ा।।72।।

भगवान की विशेष सेवा करने के लिए किशोर नाम का गंधर्व गायक अक्रूर बनकर अवतार लिया। वह स्वायम्भुव मनु से आविष्ट था। उनमें ब्रह्मा जी का आवेश था। वृष्णिवंश में जन्म लिए वे धर्म कार्य करते थे। कंस के मंत्री थे।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में चौतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पैतीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - कंस द्वारा भेजा हुआ केशी नामक दैत्य बड़ा घोड़ा बनकर अपने पांवों से जमीन को कुरेदते हुए गर्दन के बालों से आकाश में रहने वाले बादल और विमानों को दूर हटाते हुए जोर से आवाज करते हुए सबको डराते हुए गोकुल को आ गया।।1।।

पहले हयग्रीवासुर बना था। अब भी उसका रूप घोड़े का बना है। नरभक्षक था। पार्वती वर से और किसी से अवध्य था। भगवान श्रीकृष्ण केशी को मारकर अपना नाम केशव बनाये। इस प्रकार नारद जी श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं।

वह राक्षस बड़े बड़े आंख वाला और बड़े तालाब के समान मुंह वाला था। काला रंग वाला बड़े काले मेघ के समान दिखता था। दुष्ट विचार करने वाला वह कंस का हित करने की इच्छा से नंद गोकुल को हिलाते हुए अंदर आया।।2।।

वह अपनी पूंछ से बादलों को हटाता था। वह अपनी ध्वनि से गोकुल में रहने वाले सारे गायों को घबड़ा दिया। वह श्रीकृष्ण को ढूंढता रहा। उसके सामने भगवान श्रीकृष्ण स्वयं आकर उससे युद्ध का आह्वान देते हुए सिंह गर्जना की।।3।।

उस गर्जना को सुनकर केशी बहुत क्रोध से आकाश तक मुंह खोलकर श्रीकृष्ण के सामने आया। प्रचण्ड वेग से आगे आकर कमल के समान आंख वाले भगवान श्रीकृष्ण को अपने पीछे के दोनों पावों से मारने का प्रयास किया।।4।।

श्रीकृष्ण उस मार से दूर होकर रोष से वहीं दोनों पांवों को पकड़कर उसको उठाके आकाश में घुमाते रहे। दोनों हाथों से उसको सौ हाथ दूर फेंककर खड़े रहे। गरुड़ सांप के साथ जैसे खेलता हैं वैसे ही भगवान श्रीकृष्ण केशी के साथ खेल रहे हैं।।5।।

बेहोश हुआ केशी होश आने पर उठकर अपने मुंह को पूर्णरूप से खोलकर भगवान के ऊपर गिरा। श्रीकृष्ण उसके मुंह में अपने बाएं हाथ को घुसाकर हंसते खड़े हो गए। सांप जैसे बिल में जाता है वैसे भगवान का हाथ केशी के मुंह में घुस गया।।6।।

केशी दैत्य घोड़े का रूप धारण करके आया। वादिराज स्वामी जी इसको चमत्कार से वर्णन किये हैं। संस्कृत में अश्व इसका अर्थ अशाश्वत ऐसा भी होता है। केशी जानता था कि श्रीकृष्ण से युद्ध करने से वह रह नहीं सकता था। आगे और कहते हैं। श्रीकृष्ण अपने बाएं हाथ को केशी के मुंह में घुसा दिये। वह हाथ वहाँ बढ़ने लगा। त्रिविक्रमावतार में भगवान अपने वाम पाद को बढ़ाये थे। वामन बनकर अपने छोटे रूप दिखाये थे। केशी को मारते समय भगवान अपने बाएं हाथ को बढ़ाए हैं। इससे भगवान अणोरणीयान् और महतोमहीयान् हैं। वे अपने छोटे मुंह में चौदह लोकों को दिखाये हैं। विश्व रूप में बाहर सारे विश्व को एकत्र लाकर दिखाये हैं।

भगवान के हाथ को केशी अपने दांतों से काटना चाहा। लोहा भले गरम हो लेकिन उसको काटने वाले के दांत ही मार खाते हैं। केशी के सारे दांत गिर गये। भगवान का हाथ केशी के पेट में बढ़ता रहा। पेट में रहने वाला रोग अलक्ष्य से बढ़ता है।।7।।

श्रीकृष्ण का हाथ बढ़ता रहा केशी का श्वासोछ्वास बंद हो गया। वह अपने पांवों को इधर उधर झाड़ने लगा। शरीर में पसीना बहने लगा। आंख फिरने लगे। मल विसर्जन करते हुए वह जमीन के ऊपर गिरकर मर गया।।8।।

ककड़ी के समान केशी का शरीर दो टुकड़ा हो गया। तब महाबाहु श्रीकृष्ण अपने हाथ को उसके मुंह से वापस खींच लिये। देवता लोग श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए पुष्पवृष्टि किए।।9।।

श्रीकृष्ण के केशी के मुंह में अपने हाथ रखने के कारण केशी का शरीर दो टुकड़ा हुआ। प्रत्येक टुकड़े में केशी के दो पांव, आधा पीठ, आधा पूंछ, एक कान, एक आंख और एक नाक का हिस्सा था।

हे राजन् , पूज्य ऋषियों में पूज्य देवर्षि नारद सकल कार्यो को बिनायास करने वाले भगवान के सामने आकर उनकी स्तुति करते हुए ये बात बोले।।10।।

हे कृष्ण आप अपरिमित गात्र वाले योगेश जगदीश वासुदेव हैं। आप सबको आश्रय देने वाले यादवों के श्रेष्ठ प्रभु हैं।।11।।

आप सभी जीवों के अन्तर्यामी हैं, सर्वोत्तम हैं। लकड़ी में रहने वाली आग के समान बुद्धिमान विचार मंथन करने के बाद ही आप व्यक्त होने वाले हैं। आप प्रत्येक जीव के हृदय में निगूढ़ रूप से रहते हैं। जीवों के पुण्य पाप कर्म के प्रत्यक्ष साक्षी हैं। आप पुरूषोत्तम, स्वामियों के स्वामी हैं।।12।।

आपको आप ही आश्रय रूप हैं, अमोघ संकल्प वाले आप अपनी इच्छा से प्रकृति में सत्व रज तमो गुण की सृष्टि करते हुए इस जगत की रक्षा करते हुए अंत में लय भी करते हैं। आप कर्तुं, अकर्तुं अन्यथा कर्तुं सर्वथा शक्त हैं।।13।।

भूमि के भार बने हुए दैत्य, राक्षस और प्रमथों के विनाश के लिए, सज्जन की रक्षा के लिए आप अवतार लिए हैं।।14।।

इस केशी दानव की आवाज सुनकर देवतागण घबड़ाकर स्वर्ग को छोड़कर भाग जाते थे। घोड़े के रूप में रहने वाले इस बड़े दैत्य को आपने थोड़ा भी कष्ट न सहते हुए खेल-खेलते मार दिये। इससे बहुत संतोष हुआ।।15।।

हे प्रभु, मैं आपका कल या परसों मथुरा में आकर दर्शन लेता हूँ। वहाँ आप के हाथी चाणूर मुष्टिक और अन्य पहलवानों को मारने का खेल देखता हूँ।।16।।

उसके बाद आप के पंचजनासुर, कालयवन, मुरासुर, नरकासुर, इत्यादि असुरों का वध करते हुए पारिजात हरण करते हुए इन्द्र को हराने का दृश्य देखना चाहता हूँ।।17।।

हे जगत के स्वामी, वीर आप कन्या शुल्क से अथवा स्वयंवर से, पण से क्षत्रियों के वीर कन्याओं के साथ आपकी होने वाली शादी को देखना चाहता हूँ। द्वारिका में आप द्वारा नृगराज को शाप विमुक्त करने का दृश्य देखना चाहता हूँ।।18।।

जाम्बवती के साथ स्यमन्तकमणि को जाम्बवान आपको अर्पित करता है। आप द्वारा ब्राह्मण के मृत पुत्र को अनंतासन से लाने के कार्य को देखना चाहता हूँ।।19।।

पौंड्रक वध, काशी को जलाना, दंत वक्र का वध, राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का वध इत्यादि रहते हुए आप द्वारा किए हुए पराक्रम कर्मो को मैं देखते रहना चाहता हूँ। आप इन जिन कार्यो को कर रहे हैं उसका संकीर्तन भूमि में रहने वाले ज्ञानी लोगों को करना चाहिए। मैं उनका संकीर्तन करना चाहता हूँ।।20-21।।

उसके बाद आप काल रूप धारण करते हुए कुरु क्षेत्र के दोनों पक्ष के सैन्यों को नाश करने की इच्छा से आप अर्जुन के सारथी होकर अठारह अक्षोहिणी सैन्यों को केवल अपने दृष्टि क्षेप से नाश करने वाले कर्म को देखना चाहता हूँ।।22।।

अप्राकृत ज्ञान स्वरूप वाले आप अपने सामर्थ्य से जो चाहते हैं उसको पाते रहते हैं, जो कार्य स्वीकारते हैं उसमें यश पाते हैं। आप अपने सामर्थ्य से ही प्राकृत गुण प्रवाह को शाश्वत रीति से पार करके ऊपर खड़े हैं। ऐसे श्रेष्ठ भगवान आपके चरण में हम निरंतर रहना चाहते हैं।।23।।

हे राक्षस - कुल वैरी, आप चर्तुमुख ब्रह्मा जी के ऊपर भी अपनी आज्ञा चलाते हैं। आप स्वतंत्र हैं। आप अपनी इच्छा से देवासुर वाले इस प्रपंच की सृष्टि करते हैं। अपनी लीला के अनुसार मनुष्य के समान दिखने वाले इस शरीर को स्वीकार किये हैं। यादवों के लिए वृष्णियों के लिए और सात्वताओं के लिए आप नायक हैं। आपको मैं नमन करता हूँ।।24।।

इस प्रकार यादव कुलपति श्रीकृष्ण के होने वाले अवतार लीलाओं को देखने में उत्सुक नारद जी उनको नमस्कार करते हुए उनकी आज्ञा से चले गए।।25।।

भगवान श्रीकृष्ण युद्ध में केशी को मारकर संतुष्ट हुए अपने गोपालक मित्रों के साथ गायों

को चराते थे। गोकुल को सुख देते थे।।26।।

एक बार गोवर्धन पर्वत के ऊपर गोपालक अपनी गाय और बकरी को चराते समय वे खेल-खेल खेलने लगे। उनमें से कई बकरी बन गए। आधे लोग उनको चोरी कराने वाले बन गए। कई लोग उनकी खोज करते हुए वापस लाने वाले पुलिस बन गए। इस प्रकार तीन भाग में खेल खेलते रहे।।27।।

गोपालकों में एक भाग चोर, एक भाग बकरी और एक भाग पुलिस, इस प्रकार तीन भाग होते हुए भयमुक्त होकर आनंद से खेल-खेल खेलते रहे।।28।।

इतने में मयासुर के पुत्र महामायावी व्योमासुर नाम वाला दैत्य स्वभाव से ही चोर वह गोपालकों का रूप लेकर चोर के समूह में घुस गया। बकरी का रूप धारण किये हुए गोपालकों का अपहरण करने लगा।।29।।

वह महासुर इस प्रकार गोपालकों की चोरी करते हुए उनको उस पर्वत में रहने वाली गुफा में छिपाकर रखता था। गुफा का द्वार एक बड़े पत्थर से ढककर रखता था। इससे बकरी बने हुए गोपालकों के समूह में तीन-चार लोग बच गए।।30।।

सज्जनों के रक्षक भगवान श्रीकृष्ण व्योमासुर के इस नीच कृत्य को समझकर जब वह गोपालकों को पकड़कर ले जा रहा था उस समय उसके ऊपर वृक जैसे आक्रमण कर उसको पकड़ लिये।।31।।

वह राक्षस बहुत बलशाली था। ब्रह्मा जी से वर पाकर वह अवध्य बना था। कृष्ण के हाथ से छुटकारा पाने के लिए वह अपने शरीर को पर्वत के समान बढ़ाता रहा। किन्तु श्रीकृष्ण के चंगुल से बाहर नहीं हो पाया। उसको बहुत कष्ट होने लगा।।32।।

श्रीकृष्ण ने उसको अपने दोनों हाथों से पकड़कर भूमि के ऊपर पटक दिया। यज्ञ में पशु को जैसे मारते हैं वैसे गर्दन मरोड़कर मार दिया। आकाश में खड़े देवतागण इसको देखकर महाआनंद पाये।।33।।

भगवान श्रीकृष्ण ने गुहा को बंद किया हुआ बड़ा पत्थर को हटाकर वहाँ रहने वाले गोपालकों को संकट से मुक्त किया। देवता गोपालक श्रीकृष्ण की विजय गाथा को गाते रहे। श्रीकृष्ण ने गोकुल में प्रवेश किया।।34।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में पैतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - छत्तीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - महाज्ञानी अक्रूर कंस की आज्ञा को सुनकर पौ फटते ही मथुरा छोड़कर रथ में बैठकर नंद गोकुल को चले।।1।।

भाग्यशाली अक्रूर भगवान श्रीकृष्ण के परम् भक्त हैं। रास्ते में वे भगवान श्रीकृष्ण के बारे में चिंतन करते हुए चले।।2।।

अक्रूर अपने मन में कहते हैं। मैंने पूर्व जन्म में बहुत पुण्य किया होगा, बहुत तप किया होगा। बहुत दान दिया होगा। इसी के कारण मैं आज भगवान के दर्शन के लिए चल रहा हूँ।।3।।

शूद्र को मिला हुआ वेदाध्यन के समान विषयाभिलाषी मुझको भगवान का यह दुर्लभ दर्शन मिलने वाला है।।4।।

मैं इस प्रकार मुझको अपमान करना उचित नहीं है। भगवान का दर्शन मेरे कर्म की वजह से मिलने वाला है। काल प्रवाह में जाने वाला ज्ञानी एक न एक दिन उस प्रवाह को पार करता है।।5।।

आज मेरे सारे अमंगल मंगल में बदलते हैं, मेरा जन्म सार्थक होता है। योगियों द्वारा सदाकाल ध्यान किए जाने वाले भगवान के पद कमल को मैं आज नतमस्तक होकर नमन करने वाला हूँ।।6।।

पार करने में असाध्य अज्ञान को ब्रह्मादि देवताओं ने श्रीहरि के नाखून के प्रकाश के बल से पार किये हैं। मैं उस भगवान के पाद कमल को देखने वाला हूँ। वह श्रीहरि ही श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लिये हैं। कंस मुझको उनके पास भेज रहा है। उसका मेरे ऊपर किया हुआ यह बड़ा अनुग्रह है। यह आश्चर्य है किन्तु सत्य है।।7।।

श्रीकृष्ण के पादकमलों को ब्रह्मादि देवता आराधना करते हैं, श्री देवी पूजा करती है,

त्रिक मुनि सतत सेवा करते हैं। इतना होते हुए भी वे पाद कमल गोपालकों के साथ गाय जंगल जाते हैं, गोपियों की छाती के कुंकुम केसर से लिप्त होते हैं।।8।।

सुंदर कपोल और नासिका युक्त, खिले हुए कमल के समान लाल रंग आंखों वाले, घुंघराले काले बाल वाले सुंदर श्रीकृष्ण के मुखारविंद को मैं निश्चित रूप से देखने वाला हूँ। शुभ हो रहे हैं। हिरन मेरे दाहिने बाजू से जा रहे हैं।।9।।

शकुन - बिल्ली, नेवला, कौवा इत्यादि बाएं से दाहिने गये तो शुभ शकुन माने जाते हैं। गरुड़ पक्षी दाहिने से ू जाना चाहिए। गाय सामने से आना चाहिए। पानी से भरा हुआ घड़ा को लेकर सौभाग्यवती स्त्री सामने आना दो ब्राह्मण आयें। ये सारे शुभ शकुन होते हैं।एक ब्राह्मण आना, एक छींक आना, बिल्ली सामने से जाना ये ुभ माने जाते हैं।

भू भार का हरण करने के लिए अपनी इच्छा से मानव रूप धारण किये हुए सौन्दर्य निधि न श्रीकृष्ण के दर्शन का भाग्य मेरा है। मेरे आंख आज धन्य होने वाले हैं।।10।।

श्री हरि अभिमान रहित हैं। जीव के शुभाशुभ कर्म के लिए साक्षी बनकर रहते हैं। वे अपने सामर्थ्य से अज्ञान, मिथ्या ज्ञान देने वाला इस संसार से परे हैं। अपनी इच्छा से अपने में ों सहित रहने वाले जीवों को सृष्टि करते हुए, उनमें रहकर उन्हीं से कर्म कराते हुए स्वयं ार होकर पूज्य - पूजक, याज्य - याजक, भोज्य - भोक्तृ, भोग - साधन इत्यादि अनेक रण करते हुए ज्ञानियों को दर्शन देते रहते हैं।।11।।

यहां **तत्सन्** शब्द का प्रयोग है, तथैव सन् यानी जीव की सृष्टि करते हुए उनमें उन्हीं के स्वरूप में रहते हुए र रहना भगवान का स्वरूप है।

श्री हरि के गुण, लीला और अवतार ये सारे पाप परिहारक हैं, परम मंगलदायक हैं। उनके ान करते हुए मंगलकर बातें जगत जीवन कर बनते हैं, जीवन को सुखकर बनाते हैं। पावन हैं। अन्य सारी बातें अमंगलकर होती हैं।।12।।

श्री हरि जो धर्म नियमों को बनाये हैं, उनका पालन स्वयं करते हैं, और अन्यों से करवाने ए यदुकुल में अवतार लिये हैं। वह जगदीश्वर आज गोकुल में हैं। सारे जगत में अपने कर कीर्ति को पसार रहे हैं। उनको देव देवता नमन कर रहे हैं।।13।।

वे सबके गुरु हैं, तीनों लोकों में उनका रूप अत्यंत सुंदर है। उनको देखना ही आंखों वालों

को आनंद देने वाला है। साक्षात् लक्ष्मी देवी उस रूप से सदाकाल रहना चाहती हैं। उस रूप को मैं आज निश्चित रूप से देखने वाला हूँ क्योंकि आज सुबह से मुझे शुभ शकुन हो रहे हैं।।14।।

मैं श्रीकृष्ण के पाद को जब नमस्कार करता हूँ तब वे अपने कर कमल को मेरे सिर के ऊपर रखते हैं। काल सर्प के वेग से भयभीत होकर शरण में आने वाले को अभय देने वाले करकमल वही हैं।।15।।

यहाँ अक्रूर अपने को **प्रणतस्य** न बोलते हुए **पतितस्य** कहे हैं। दोनों का अर्थ नमस्कार करने वाला यह होता है। किन्तु संस्कृत में और एक अर्थ है, पतितस्य इसका अर्थ दुष्ट कंस के संपर्क से पतित यानी नीचे गिरा हुआ यह अर्थ होता है।

उस कर कमल में सर्वस्व दान संकल्प पूर्वक अर्घ्य जल देकर किये हुए देवेन्द्र और बलि चक्रवर्ती तीनों लोकों के स्वामी बन गए हैं। कल्हारकुसुम के समान सुमधुर सुगंध को देने वाला कर कमल अब रासक्रीड़ा से थके हुए व्रजसुंदरियों को स्पर्श करते हुए उनके श्रम का परिहार कर रहा है।।16।।

मैं कंस का दूत हूँ, उसने मुझे भेजा है। यह देखकर श्रीकृष्ण मुझको अप्रिय नहीं मानेगे। वे सर्वज्ञ हैं, उनको क्षेत्रज्ञ कहते हैं, वे सारे जीव राशियों के अंदर बाहर रहते हुए निर्मल आंखों से हमारे मन की आलोचनाओं को सीधे स्वयं देखते हैं।।17।।

क्षेत्रज्ञ शब्द का प्रयोग है। अव्यक्त, महत्तत्व, अहंकार इत्यादि तत्वों से परिणाम होने वाला यह शरीर अथवा प्रकृति क्षेत्र माना जाता है। इसमें रहने वाला भगवान क्षेत्रज्ञ है। भगवद् गीता के तेरहवां अध्याय में इसका विवरण आता है। आगे **अमलेन चक्षुसा ईक्षति।** अ मल इस शब्द से थोड़ा सा कलंक रहने वाला चंद्र और इन शब्द से सूर्य इस प्रकार सूर्य चंद्र दोनों से इस जगत का पूर्ण ज्ञान रखने वाले भगवान यह अर्थ होता है।

अपने पाद को दंडवत प्रणाम किये हुए मुझको श्रीकृष्ण दयापूर्ण दृष्टि से देखते हैं। उसी क्षण से मेरे सारे पाप नष्ट होते हैं, सारे संशय विनष्ट होते हैं। मैं परमानंद भरित होता हूँ।।18।।

मैं उनका आप्त बंधु हूँ, उन्हीं के कुल में जन्म लिया हूँ। उनको छोड़कर और कोई दैव को मैं नहीं देखता। वह भगवान मुझको देखते ही अपने बड़े बाहुओं को पसारते हुए आलिंगन देते हैं, मुझको घर के अंदर ले चलते हैं। तभी यह मेरा शरीर पवित्र हो जाता है, विषयाभिलाषा का बंधन छूट जाता है।।19।।

मैं भगवान श्री कृष्ण के अंग संग को पाकर नमन करने के बाद हाथ जोड़कर खड़ा हुआ तो

वे प्यार से हे तात अक्रूर नाम से बुलाते हैं। उनके इस प्रकार बोलने से मेरा जन्म सार्थक होता है। उससे आदर न पाने वाले के जन्म को धिक्कार हो।।20।।

भगवान को कोई अतिप्रिय और अप्रिय नहीं है। वे किसी से द्वेष नहीं करते हैं, उपेक्षा भी नहीं करते। कल्प वृक्ष के समान अपनी सेवा करने वाले के सारे इच्छितार्थ पूरा करते हैं। उनकी योग्यता के अनुसार भक्तों को सुख देते हैं।।21।।

यदु श्रेष्ठ उनके बड़े भाई बलराम जी को मैं नमस्कार करता हूँ। वे अपने सारे कामों को छोड़कर मुझको आलिंगन देते हुए अंदर ले जाते हैं, मुझको सारे सत्कार देते हैं। कंस द्वारा अपने बंधुओं को करने वाले दुष्कृत्यों के बारे में पूछते हैं।।22।।

इस प्रकार चिंतन करते हुए अक्रूर रथ में बैठकर आ रहा था। शाम का समय हो रहा था। उसी समय सूर्यास्त हो गया, अक्रूर गोकुल में आ गया।।23।।

श्रीकृष्ण की पादधूलि सारे लोकपालों के किरीट में चूड़ामणि के समान शोभा देती है। उस पाद के पद्म, यव अंकुश आदि चिन्हों से शोभित होकर भूमि को शोभा दे रहे थे। गोकुल में प्रवेश करते ही अक्रूर उनके दर्शन किये।।24।।

उन पद चिन्हों को देखकर होने वाले आनंद से अक्रूर का संभ्रम बढ़ गया, प्यार से शरीर रोमांचित हुआ। आंखों में आंसू भर आये। ये प्रभु के श्रीचरण हैं कहते हुए उनके ऊपर लोटने लगे।।25।।

बाद में गोशाला में दूध दुहाने वाले श्रीराम कृष्णा से मिले। दोनों शरद काल के कमल के समान आंख वाले, श्रीकृष्ण पीताम्बर धारण किये थे, बलराम नीलाम्बर पहने थे।।26।।

दोनों दस वर्ष के थे, एक श्यामल वर्ण वाले, दूसरे शुभ्र वर्ण वाले, दोनों सौंदर्य निधि थे, आजानु बाहु, प्रसन्न मुख वाले सुंदर, और हाथी के बच्चे के समान चलते थे।।27।।

ये दोनों अपने ध्वज, वज्र, अंकुश और कमल के चिन्हों से शोभायमान पादों से गोकुल की जमीन को मंगल किये थे, सदाकाल दयापूरित हसन्मुख वाले थे।।28।।

वे दोनों मनोहर लीला करने वाले गले में फूल माला पहने थे। स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण कर शरीर को सुंगध लगाये थे।।29।।

वे दोनों उत्तम पुरुष हैं, सृष्टि के प्रारंभ से रहने वाले हैं, इस जगत को निर्माण करने वाले

स्वामी हैं, जगत के कल्याण के लिए भगवान के शुक्ल केश और कृष्ण केश से अवतार लिये हुए बलराम कृष्ण हैं।।30।।

पृथु, अर्जुन, बलराम, रुद्र और इन्द्रों में उनमें न रहने वाले महिमाओं को श्रीहरि के विशेष सन्निधान पात्र होने के कारण उनकी महिमा के रूप में वर्णन करना पुराणों में प्रथा बन गया है। यह माहात्म्य नाम के ग्रंथ में बताया गया है।

हे राजा वे अपने कांति से दशोदिशाओं को उज्जवल करते हैं। एक इन्द्रमणि के पहाड़ जैसे दूसरे चांदी के पहाड़ जैसे शोभते हैं। सोने के आभूषण पहने हैं।।31।।

ऐसे रूप वाले राम कृष्ण को देखते ही अक्रूर रथ से नीचे कूदकर प्रेम और भक्ति से विह्वल होकर उनके श्रीचरणों में दण्डवत प्रणाम किये।।32।।

भगवान के दर्शन से अक्रूर के आंखों में आंनद वाष्प भर गये, उर रोमांचित हो गये। उत्कंठा से वे ठीक तरह से बोल नहीं पाये।।33।।

भक्ति की परवशता से अक्रूर बोल नहीं पा रहे हैं। यह समझकर भगवान चक्र को धारण किया हुआ अपने हाथ से उनको खींचकर आलिंगन दिये। भक्तवत्सल भगवान भक्त के भक्ति से अनुग्रह किये।।34।।

नमस्कार किये हुए अक्रूर को श्रीराम कृष्ण अपने हाथों से पकड़कर घर के अंदर ले चले।।35।।

वहाँ उनका उत्तम स्वागत करते हुए आसन देकर पादप्रक्षालन, मधुपर्क इत्यादि उपचार दिये।।36।।

अतिथि अक्रूर को मधुपर्क के अंग में एक गाय को दे दिये। उसके पांव दबाकर आदर किये, षटड्रस से युक्त पवित्र अन्न को श्रद्धा से खिलाये।।37।।

अक्रूर के भोजन होने के बाद अतिथि सत्कार के सारे विधियों को जानने वाले रामकृष्ण उनको मुखवास के लिए ताम्बूल देकर गंध माला से अलंकार करते हुए विशेष संतोष पैदा किये।।38।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सैतीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - बाद में श्रीराम कृष्ण की अनुज्ञा पाकर अक्रूर मंच के ऊपर सुखासीन हो गये। आते समय जो-जो दिवास्वप्न में जो-जो देखे थे उन सबको पा लिये।।1।।

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्री निकेतने भगवान श्रीनिवास संतुष्ट हुये तो क्या नहीं मिलता (सबकुछ मिलता है)। हे राजा, भगवान के भक्त उनसे कुछ भी नहीं चाहते।।2।।

रात्रि के भोजन के बाद श्रीराम कृष्ण अक्रूर के पास आये। उनसे अपने बंधुओं के बारे में कंस का बर्ताव क्या है इसके बारे में पूछे। कंस आगे क्या करने वाला है उसके बारे में विशेष रूप से पूछे।।3।।

भगवान के प्रश्न का उत्तर देते हुए अक्रूर यादवों के विषय में कंस की द्वेष प्रवृत्ति, वह वसुदेव को मारने गया था इन सबको विस्तार रूप से वर्णन किये।।4।।

वे कहे कि मैं स्वयं कंस का दूत बनकर आया हूँ। इसको कहते हुए अपने निजी उद्देश्य को भी बताया। श्रीकृष्ण का जन्म वसुदेव से हुआ है इस विषय को नारद जी कंस को बता दिये हैं।।5।।

अक्रूर की इन बातों को सुनकर शत्रु संहारक वीर राम कृष्ण हंस दिये। पिता नंद गोप को कंस के आदेश को समझाये।।6।।

नंदगोप उसके अनुसार सारे गोपालकों को आज्ञा सुनायें। सारे लोग राजा को देने वाले नजराना दूध, दही, मक्खन लेकर तैयार हो जायें। गाड़ी को बैल बांधकर तैयार हो जायें।।7।।

हम कल मथुरा को जा रहे हैं। राजा को देने के लिए दूध दही नजराना इत्यादि लेकर चलेंगे। वहाँ बड़ा उत्सव लगेगा। उसको देखने के लिए सारे देशवासी वहाँ आ रहे हैं।।8।।

कंस धनुर्याग का आयोजन किया था। वह भगवान रुद्र से एक धनुष को पाया था। जिस दिन इसको पाया था। प्रतिवर्ष उसी दिन उसका त्यौहार मनाता था। अब कंस चाहता है कृष्ण बलराम को यहाँ बुलाया जाये। अपने दैत्य गण एक-एक जाकर उनका वध कर नहीं पाए जिसके लिए उनको यहाँ बुलाये तो सब मिलकर मार सकते हैं। यही

भ्रमा से उनको बुलाया।

इस प्रकार डुग्गी बजा के नंदगोप इस समाचार को सबको सुनाये। इसको सुनते ही गोपियों ने राम कृष्ण मथुरा जा रहे हैं, यह अंदाजा करते हुए मन में दुःखित हुये।।9।।

राम कृष्ण को मथुरा को ले जाने के लिए अक्रूर आया है। इसको सुनकर गोपियों की मनोव्यथा बढ़ गई। उनकी मुख कांति बुझ गई।।10।।

वे कृष्णध्यान में स्तब्ध होकर बैठ गयीं। उनको अपने साड़ी श्रृंगार की भी परवाह नहीं हुआ।।11।।

कई लोग यह लोक को भूलकर परलोक को पाने वाले जैसे हो गये और कई श्रीकृष्ण के प्यार भरे हृदयंगम सुंदर बातों को याद करने में अपने को भूल गये। और कई लोग श्रीकृष्ण के सुंदर श्रृंगार भंगी वाले रूप, दृष्टि, हंसी को याद करने में अपने को भूल गये।।12-13।।

शोक को दूर करने वाले, कृष्ण के हास्यभरित बातों को, उनके अनुपम कार्यों को याद करते हुए उनको विरह होने वाला है, इस भय से वे भयभीत हो गये।।14।।

सारी गोपियां अलग-अलग समूह में मिलकर श्रीकृष्ण की याद में आंसू बहाने लगी।।15।।

गोपियां कहती हैं - हे ब्रह्मदेव, आप दयाहीन निष्करुणि हैं। आप पहले शरीरों को प्यार से जुड़ाते हैं। उनके इष्टार्थ पूर्ण होने के पहले ही उनको अलग करते हैं। आपकी यह सृष्टि निरर्थक है। यह बच्चों का खेल बन गया है।।16।।

हे ब्रह्मदेव, आप काले-काले घुंघराले बाल से सुशोभित लाल गाल वाले, उन्नत नाक वाले, शोक को मिटाने वाले हंसी से युक्त श्रीकृष्ण के मुखारविंद को थोड़े ही समय के लिए दिखाते हैं और छिपा देते हैं। आप ये क्या गलती कर रहे हैं।।17।।

हे अक्रूर! आप अपने नाम के विरुद्ध बहुत क्रूर है क्योंकि भगवान द्वारा दिया हुआ एक आंख को आप अपहरण कर रहे हैं। श्रीकृष्ण के एक-एक अंग में हम इस सृष्टि के समस्त सौन्दर्य को एक ही स्थान पर उसी आंखों से देख रहे थे। अब हमको वह दृष्टि नहीं मिलेगी।।18।।

हे राम, अब भगवान श्रीकृष्ण हमारी तरफ नहीं देखेगा। उसका प्यार बहुत क्षणिक है। वह नये-नये प्रेयसियों को पाना चाहता है। हम उसकी लीला से परवश होकर पति सुत बंधु बांधव को छोड़कर घर संसार को त्यागकर पूरे-पूरे उनकी दासी बने हैं।।19।।

आज की यह रात चली गयी तो मथुरा के महिलाओं के लिए सुप्रभात होगा। उनके सारे अभीष्ट पूर्ण होंगे क्योंकि श्रीकृष्ण के नगर प्रवेश करते ही वे अपनी तिरछी नजरों से श्रीकृष्ण के मुख में रहने वाली अमर सुधा का पान करते हैं।।20।।

श्रीकृष्ण स्थिर चित्त हैं, किन्तु वह मथुरा के शहद के समान मधुकर मथुरा के माननीयों की बातों को मन समर्पित करते हुए उनके वश में हो जाते हैं। बाद में हंसते - हंसते अपने भौंवों को हिलाते हुए लज्जा को त्यागे हुए श्री कृष्ण के साथ मिलती हैं। तब श्रीकृष्ण हम गंवार लड़कियों को एक बार फिर से नहीं देखेगा।।21।।

आज सुबह होने के बाद मथुरा के दाशार्ह, भोज, अंधक, वृष्णि और सात्वत कुलों के लोगों के आंखें धन्य हो रही हैं। मथुरा को जाने वाले रास्ते में मिलने वाले को भी वही भाग्य मिलने वाला है। वे सारे सकल गुण संपन्न, सारे लोगों को आनंद देने वाले लक्ष्मी रमण देवकी सुत को आंखें फाड़ फाड़ कर देखने वाले हैं।।22।।

यह निष्करुणि अक्रूर का नाम अक्रूर रहना योग्य नहीं है। वह उसको शोभा नहीं देता है। कृष्ण विरह से दुःखित हम लोगों के बारे में एक बार भी नहीं बोलते हैं। इस जगत के सारे वस्तुओं से बढ़कर हमें अत्यंत प्रिय हमारे कृष्ण को यह क्रूरी मानद हमारे से बहुत दूर खींच ले जा रहा है।।23।।

श्रीकृष्ण को भी हमारे लिए मन विचलित नहीं होता। वह जल्दी से रथ में बैठता है। गोपालकों का अहंकार बढ़ गया है। वे श्रीकृष्ण को जल्दी से रथ में बैठाते हैं। सारे वृद्ध लोग हो रहे इस अन्याय को देखते हुए न देखने वाले जैसे रह जाते हैं। दैव ही हमारे विरूद्ध बन गया हैं तो और कौन क्या करने वाला है।।24।।

अथवा हम श्रीकृष्ण के पास जाकर उसको रूकवा देंगे। उसको रथ चढ़ने नहीं देंगे। इससे हमारे कुल बांधव हमारे बारे में शील रहित लज्जा रहित ऐसे समझ सकते हैं। समझने दो, वे हमारे लिए क्या करने वाले हैं, आधा निमिष भी हम श्रीकृष्ण को छोड़ नहीं सकते। उनसे दूर रहने से हमारे दिल में दर्द होता है। हम श्रीकृष्ण से दूर रहने से मरण को भी ज्यादा अच्छा मानते हैं। इससे बढ़कर यह कुल के प्रमुख हमें और क्या शिक्षा देने वाले हैं।।25।।

हे गोपियां, रास क्रीड़ा में भगवान श्रीकृष्ण का अनुराग हमें मिला था। उनके सुंदर मंद हास मधुर रहस्य भरित भाषण, क्रीड़ा, तिरछा नजर और आलिंगन ये सारे हमें मिले थे। रात्रि क्षण के समान गुजर जाती थी। इसके बाद उनके अपार विरह दुःख को हम कैसे सहन करें।।26।।

यहाँ **तमोदुरन्तं** शब्द का प्रयोग किया गया है। उसको तमः अदुः अंतम् ऐसे विभाग किये तो जिन रातों में हम सुख पाये थे श्रीकृष्ण के बिना वे ही हमारे अंत को यानि नाश को ला रहे हैं। यह अर्थ होता है।

शाम को बलराम के साथ गोपालकों से मिलकर श्रीकृष्ण गोकुल को वापस आते समय उनके घुघराले बाल सुंदर वन माला गायों के पदघात से उठी हुयी धूल से ढककर और सुंदर दिखते थे। बंशी बजाते हुए तिरछा नजर हमारे ऊपर फेंकते हुए वह हमारे मन को विचलित करते थे।

सखि, बताओं ऐसे श्रीकृष्ण को छोड़कर हम कैसे जीवित रहें ।।27।।

इस प्रकार कृष्ण में मन रखे हुए गोकुल की स्त्रियां उसके विरह से दुःखित होकर लज्जा को छोड़कर रोते हुए उच्च स्वर में गाने लगीं, **हे गोविन्द दामोदर माधवेति**।।28।।

गोपियाँ इस प्रकार सारी रात गाती रहीं, रोती रहीं। सूर्योदय हो गया। अक्रूर क्रम प्रकार से संध्या गायत्री करने के बाद रथ को चलाये।।29।।

नंदगोप आदि गोपालक नजराना दूध, दही, मक्खन से भरा हुआ गाड़ियों में बैठकर अक्रूर के पीछे - पीछे चले।।30।।

गोपीजन श्रीकृष्ण का पीछे करते हुए थोड़ी दूरी पर चल रही हैं। श्रीकृष्ण पीछे मुड़कर उनको देखे। गोपियों को आनंद हुआ, वे समझ लिये श्रीकृष्ण जल्दी आने के बारे में बोलेगा। यह इच्छा करते हुए वहीं खड़ी हो गयीं।।31।।

अपने मथुरा गमन से गोपियों को संताप होता है। यह देखकर श्रीकृष्ण अपने आप्त दूतों से जल्दी वापस आने वाला हूँ। यह संदेश भेज दिये।।32।।

रथ के ध्वज और उससे उत्पन्न हुयी धूल जब तक दिखती थी तब तक गोपियाँ चित्र के समान खड़ी हो गयीं। लेकिन उनके मन श्रीकृष्ण के पीछे दौड़ रहा था।।33।।

यहाँ वादिराज जी ने अपने **रुक्मिणीश** विजय नाम के ग्रंथ में श्रीकृष्ण और गोपियों के संवाद को विशेष रूप से लिखा है। जहाँ गोपियाँ कहती हैं - श्रीकृष्ण तुम मधुपुरी को जा रहे हो लेकिन वह मथुरा मधुपुरी नहीं है। हमारे लिए वह बहुत कटुकाषाय पुरी है। यह बुलाने के लिए आया हुआ अक्रूर महा क्रूर है। श्रीकृष्ण हम आपके केवल अधरामृत पाकर जीवित रहते हैं। ऐसे हमको छोड़कर मथुरा जाने से हम कैसे जीवित रह सकते हैं ?

तब श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं - तुम्हारे पूर्व जन्म का पाप अभी नहीं कटा है। इसके लिए मैं छोड़ जाता हूँ। मेरे विरह से वह पाप कट जायेगा। गोपिका बोलती हैं। हे कृष्ण, आपके दर्शन मात्र से सारे पाप नष्ट होते हैं। ऐसे संदर्भ में हमारा पाप कहाँ रहेगा ?

कृष्ण उत्तर देते हैं - केवल वही कारण नहीं है। कंस महापापी है - उसको मारना मेरा कर्तव्य है। मैं नहीं गया तो वह भक्तों को कष्ट देता रहता है।

गोपिका कहती हैं - भक्तों को कष्ट देने वाला पापी कंस को यहाँ से ही अपने दृष्टि मात्र से मार डालो। केवल आपके तिरछी नजर से हम यहाँ मर रहे हैं। आप चले गये तो वह नजर को भी न देख पाने से मर ही जायेंगे। अक्रूर कंस का दूत बना है। हमें अक्रूर को कोसने से क्या होता है ? कंस को ही शाप देते हैं। वह कंस जल्दी मर जाये और हम आपसे जल्दी ही मिलें।

वे चाहती थीं कि थोड़ी दूर जाकर वापस आ जायें। किन्तु श्रीकृष्ण नहीं आये। इससे उनको

निराशा हुई। वे वापस आकर अपने मन को समाधान करने के लिए दिन-रात उनकी प्रिय लीलाओं के बारे में गाती रहीं।।34।।

हे राजन्, भगवान श्रीकृष्ण, बलराम को लेकर अक्रूर वायुवेग वाले रथ से तीव्र गति से चलते हुए यमुना नदी को जा पहुंचे।।35।।

यहाँ यमुना नदी की स्तुति इस प्रकार करते हैं। हे यमुने - आप अपने काले जल में स्नान करने वाला की कालिख (पाप) को निकालते हुए उसे शुभ्र (पाप रहित) कर देती हैं। काले देह वाले अपने के भाई यम के पास न भेजते हुए शुभ्र रंग वाले श्वेतद्वीप वाले वेद व्यास जी के पास भेज देती हैं।

वहाँ श्रीकृष्ण और बलराम दोनों आचमन करके पानी पीकर इन्द्र नीलमणि के समान शोभायमान निर्मल वृक्षों के नीचे रथ को खड़ाकर उसमें बैठे रहे।।36।।

अक्रूर रथ से उतरकर नहाने के लिए ब्रह्महृद नाम के यमुना के पानी में उतरकर विधि पूर्वक स्नान करने लगे।।37।।

स्नान करते समय विधिपूर्वक अघमर्षण, देवतर्पण इत्यादि कर्मों से स्नान करें तो पच्चीस तत्वों के अभिमानियों से भरा हुआ पच्चीस अंग शुद्ध हो जाते हैं।

अघमर्षण पानी में डूबकर ऋतंच सत्यं च *इस मंत्र को तीन बार जप करना चाहिए। अक्रूर इस मंत्र को जपते हुए सिद्धि पा चुके थे। भक्तों में श्रेष्ठ भक्त हैं अक्रूर। श्रीकृष्ण अपने पास होते हुए भी नित्य कर्मानुष्ठान को न त्यागते हुए वह अपनी साधना करता रहा। हर रूप में वह भगवान का विश्व रूप दर्शन को पाया।*

पानी में डूबकर अपौरुषेय प्रणव मंत्र और अघमर्षण मंत्रों का जाप करने लगा। उस समय अक्रूर को उस पानी में ही श्रीरामकृष्ण का दर्शन हुआ।।38।।

अक्रूर को आश्चर्य हुआ। श्रीरामकृष्ण रथ में हैं, वे पानी में कैसे होते हैं इस संशय से पानी से उठकर रथ की ओर देखा।।39।।

रथ में पहले जैसे श्रीरामकृष्ण बैठे हैं, उसको और आश्चर्य हुआ। मैं उनको पानी में देखा। वह क्या सही नहीं था। इस संशय से वह और पानी में डूबा।।40।।

पुनः पानी में उनको दोनों का दर्शन हुआ। इसके पहले उसको स्नान काल में बलराम अकेले शेष रूप में दर्शन देते थे। उस समय सिद्ध नाग असुर उनकी स्तुति करते थे।।41।।

हजार फनाह वाले नीलाम्बर को धारण किये हुए शेष देव के हजार सिर के ऊपर किरीट धारण किये हुए थे। कमल के नाल के समान बलराम शुभ्र वर्ण वाले हैं। शिखर से युक्त श्वेत पर्वत के समान दिखते थे।।42।।

किन्तु आज शेष देव के ऊपर बैठकर भगवान श्रीकृष्ण दर्शन दे रहे हैं। वे पीताम्बर धारण

किये हैं, चतुर्भुज वाले कमल के समान लाल आंख वाले मेघ श्याम शांतरुपी परम पुरुष के रूप में दर्शन दे रहे हैं।।43।।

सुंदर प्रसन्न मुख वाले मनोहर हास्य पूर्ण दृष्टि वाले, सुंदर भौं वाले उन्नत नाक सुमनोहर कान, सुंदर लाल-लाल गाल वाले लाल मणि के तरह रंग वाले होंठ वाले परम पुरुष भगवान श्री हरि शेष के ऊपर विराजे हैं।।44।।

उनके जंघे तक रहने वाले लंबे पुष्टबाहु, उन्नत और लक्ष्मी जी के संन्निधान युक्त छाती, शंख के समान कंठ, गूढ़ नाभि तीन रेखायुक्त अत्यंत कोमल उदर वाले, विशाल कटिनितंब वाले हाथी के समान जंघे वाले, सुंदर पांव वाले, उन्नत एड़ी वाले, लाल और सुशोभित नाक वाले, पाद के अंगूठा से पसरता हुआ प्रकाश वाले भगवान अपने सुंदर रूप से सुशोभित हैं।।45-46-47।।

भगवान के सिर पर बहुमूल्य रत्नखचित किरीट हैं। हाथ में सोने का कड़ा है, कटि में सोने की मेखला, सोने का जनेऊ, हार नूपुर कुण्डलों से परम पुरुष शोभायमान हैं।।48।।

हाथों में पद्म शंख चक्र गदा को धारण किये हुए भगवान के छाती में श्रीवत्सकौस्तुभ शोभायमान हैं। वे पाद तक लम्बाई वाला वनमाला को धारण किये हैं।।49।।

नंद सुनंद आदि पार्षद, सनकादिक मुनि, ब्रह्म रुद्र आदि देवोत्तम मरीचि इत्यादि नव प्रजापति प्रह्लाद नारद वसु इत्यादि भागवतोत्तम, वेद पंचरात्र इत्यादि ज्ञान कर्म, इत्यादि अलग-अलग मार्गो से निर्मल मन से परम पुरूष की स्तुति कर रहे हैं।।50-51।।

श्री, पुंष्टि, ह्री, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, इला, अजा, विद्या, अविद्या, शक्ति माया नाम के महालक्ष्मी के नाना रूप वाले परम पुरुष की सेवा में रत हैं।।52।।

अक्रूर ऐसे परमपुरुष भगवान श्रीकृष्ण को देखकर परम संतुष्ट हो गया। परम भक्ति से पुलकित हो गया। भक्ति भाव से आंखों में वाष्पजल भर गया।।53।।

भक्त अक्रूर सिर झुकाकर हाथ जोड़कर धैर्य लाकर एकाग्रता से गदगद ध्वनि से परम पुरुष का स्त्रोत करने लगा।।54।।

भक्त अक्रूर के श्रीराम कृष्ण को भक्ति से रथ में बैठाकर ले जाने के पुण्य के फल के कारण ही उसको यह विश्व रूप का दर्शन मिला। श्री वादिराज जी का यह अभिप्राय है।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में सैतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अड़तीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - अक्रूर इस प्रकार श्रीकृष्ण के विश्व रूप को देखकर मस्ती से प्रसन्न मन और इन्द्रियों से पुण्डरीकाक्ष पाण्डुरंग की स्तुति करने लगे।।1।।

अक्रूर कहते हैं, हे सारे प्रपंच के सृष्टि करने वाले आदि पुरुष, नाश रहित नारायण आपको मैं नमस्कार करता हूँ, आपके नाभि नाम के पद्म कोश से इस जगत को रचाने वाले ब्रह्मा जी का आविर्भाव हुआ है।।2।।

यहाँ **पूरुषं** शब्द का प्रयोग है। पुरी शेते इति पुरूषः - इस देह में वास करने वाला पुरुष कहा जाता है। इससे जीव का बोध होता है। किन्तु यह वहीं शरीर में रहने वाले भगवान के बारे में प्रयोग किया जाता है। पुरी यानी जगन्नाथ पुरी, श्रीरंग पुरी, बदरी और द्वारका पुरी भी होता है। वहाँ रहने वाले भगवान पुरुषः इस शब्द से पहचाना जाता है।

पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश और भूतों के इन्द्रियों के कारणी भूत अहंकार महत्तत्व, प्रकृति मन इन्द्रियां शब्दादि विषय और इन सारे जड़ तत्वों के अभिमानी देवता ये सारे जगत सृष्टि के कारण बनते हैं। ये सारे आपके अंग से जन्म लिये हैं।।3।।

पंचमहाभूत के पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश इनके अभिमानी क्रमशः पृथ्वी देवी, वरुण देव, भूत वायु देव, अग्नि देव, गणपति ये अभिमानी देवता होते हैं।

महत्तत्व के अभिमानि चतुर्मुख ब्रह्म सरस्वती और भारती ये होते हैं।

रुद्र, गरुड़, शेष, चन्द्र, स्कंद, इन्द्र ये मनोअभिमानी देवता होते हैं। शब्द स्पर्श रूप रस गंध इनके अभिमानि देवता क्रमशः वायु पुत्र प्राण अपान समान व्यान और उदान होते हैं।

अंगभूताः यानी ये सारे अभिमानीगण भगवान के अंग से जन्म ले चुके हैं। इन सबको देवतागण शब्द से कहा जाता है।

रमा ब्रह्मादि ये सारे देवताएं आपके जगत कर्तृत्व के रूप को पूर्ण रूप से नहीं जानते हैं। वे उस स्वरूप को कभी भी नहीं पा सकते। आप उनको अपने से अलग हैं इस विषय को ठीक तरह से जानते हैं। नित्य मुक्त रहने वाली रमादि आपके स्वरूप को ठीक तरह से नहीं जानती है। तो गुणबद्ध हुए ब्रह्मा जी आपके गुणातीत स्वरूप को कैसे जान सकते हैं। इसी कारण से रमा ब्रह्मादि

देवतागण आपके स्वरूप को पा नहीं सकते।।4।।

अन्यात्मतया गृहीताः ब्रह्मादि देवगण और सारी जीव राशि आपसे अलग हैं। केवल आप इसको ठीक तरह से जानते हैं। भगवान सर्वज्ञ हैं, सर्वोत्तम हैं, ये सारे जीवगण उनसे अलग हैं, अल्प हैं, उनके अधीन हैं। इसको श्रीहरि ठीक तरह से जानते हैं। यह स्कंदपुराण का वाक्य है, श्रीहरि अपने को पूर्ण रूप से ठीक तरह से स्वतंत्र रूप से जानते हैं। रमा ब्रह्मादि देवतागण भी उनको पूर्ण रूप से, ठीक तरह से, जान नहीं सकते। अन्य लोग उनको कैसे जानते हैं ? उनकी दया से अपनी योग्यता के अनुसार उनको समझकर वे उपासना करते हैं। यह महात्म्य नाम के ग्रंथ में बताया गया है।

जीवात्मों में, आकाश, समस्त भूत और ब्रह्मादि देवताओं में उनसे श्रेष्ठ होकर उनमें रहने वाले परम पुरुष जगदीश्वर आपको आपके रूपों के साथ ज्ञान योगी सज्जन ठीक तरह से उपासना करते हैं।।5।।

साध्यात्म का अर्थ ज्यादा श्रेष्ठ। भगवान जीवात्म में निष्ठ भगवत रूप से रहते हैं। ब्रह्मादि रूपों में रहने वाले उनके उत्तम रूप साधिदैव कहलाता है। पंचभूतों में रहने वाला उनके उत्तम रूप को साधिभूत कहते हैं।

कर्मयोगी यज्ञ करने वाले याज्ञिक ब्राह्मण तीनों वेदों से विस्तारपूर्वक अनेक यज्ञ करते हुए आपके अनेक नाम और रूपों की अराधना करते हैं।।6।।

यहाँ **नानारूपामराख्या** शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका अर्थ यह भी होता है सारे देवताओं में रहने वाले चतुर्मुख ब्रम्हा जी के चार मुख होने का, तीन आँख वाले रुद्र देव के त्रिनेत्रत्व का अभिमानी चतुर्मुख रुद्र आदि देवताओं के नियामक होकर उनमें रहते हुए उन्हीं के नाम से बुलाया जाते है।

यहाँ **वैतानिका** शब्द का प्रयोग है। इसका अर्थ होता है यज्ञ करने वाले। वितान का अर्थ तुच्छ और अल्प फल देने वाला यह अर्थ होता है। यज्ञ से स्वर्गादि अल्प फल मिलता है। यज्ञादि कर्म में रत जो है उनको वैतानिक कहते हैं।

मुख्य रूप से उनमें रहते हुए भगवान श्री हरि सारे देवताओं के उन्हीं के नाम से जानते हुए उनके किया हुआ आराधना को मुख्य रूप से वे ही स्वीकार करते हैं। यह आध्यात्म ग्रंथ में उक्त है।

निवृत्त कर्म करने वाले अन्य कई ज्ञानी एकांत भक्त सारे काम्य कर्मो को छोड़कर लौकिक वैदिक सारे कर्मो को आपको समर्पित करते हुए सर्वोत्तम आप में सदाकाल निष्ठा रखते हुए ज्ञान यज्ञ से ज्ञान शरीर वाले आपकी आराधना करते हैं।।7।।

और कई भक्त पंचरात्र विधि से शरीर मन को संस्कार करते हुए विहित विधान से आपको ही सर्वोत्तम मानते हुए बहुमूर्ति रूप वाले एक मूर्ति आपकी अराधना करते हैं।।8।।

तप्त मुद्रा धारण, द्वादश पुंड्र धारण, वैष्णव नाम रखते हुए, विष्णु जप करते हुए, विष्णु का, वैष्णवों की पूजा करते हुए भगवान की सेवा करना पांच विधि की वैष्णव दीक्षा होती है। ये शारीरिक संस्कार हैं। हरि सर्वोत्तम और वायु जीवोत्तम में निष्ठा रखना मन के संस्कार हैं। ये सारे पंचरात्रागम में उक्त हैं।

*बहुमूर्ति रूप वाले एक मूर्ति का अर्थ इस प्रकार है। भगवान के हाथ पांव इत्यादि प्रत्येक अवयव भगवान के एक मूर्ति बनती हैं। दृष्टांत के लिए पद्मनाभ के कृष्ण केश श्रीकृष्ण के रूप बने, शुक्ल केश बलराम के रूप लिये। ये सारे बहुमूर्ति के रूप पुनः एक-एक अंग से बहुमूर्ति हो जाते हैं। नवनारियों के चित्र को उनको मिलाकर लिखे तो वह एक नवनारी कुंजर चित्र बनता है। वैसे ही बहुमूर्ति रूप वाले भगवान एक मूर्ति और एक मूर्ति वाले भगवान बहुमूर्ति होकर अपने अचिंत्य शक्ति से आविर्भूत होते हैं। **अद्वैतम् परमार्थतः** उपनिषद् में कही गयी अद्वैत की यह उपासना है।*

हे भगवान, मोहक सेवागम के विधान से शिव दधीचि इत्यादि अनेक मताचार अनेक उपदेश करते हुए शिव के रूप धारण किये हुए (शिव के प्रतिमा रूप वाले) शिवान्तर्गत शिव रूप वाले आपकी उपासना करते हैं।।9।।

हे प्रभु, अन्य देवताओं के भजन करने वाले वस्तुतः उन सारे देवताओं के स्वामी आपका ही अराधना करते हैं। उनमें करने वाली आराधना उनका है ऐसे समझने वाले गलती करते हैं।।10।।

भगवद्गीता के नौवां अध्याय के 23 और 24 श्लोक में यही बात बतायी गयी है। भगवान वहाँ कहते हैं जो लोग श्रद्धा से अन्य देवताओं की पूजा करते हैं वे विधि पूर्वक नहीं किन्तु मेरी ही पूजा करते हैं। उनसे किया हुआ अराधना को मैं ही स्वीकार करता हूँ। अन्य देवताओं को समर्पित किया हुआ पूजा (आराधना) मुझको समर्पित होता है किन्तु वे लोग उसको जानते नहीं हैं। नश्वर स्वर्गादिफल को पाकर वे लोग पुनः भूमि के ऊपर जन्म लेते हैं। किन्तु जो लोग मेरी आराधना करते हैं वे मुझको ही पाकर मोक्ष में आनंद पाते हैं।

हे प्रभु, वर्षा काल में बरसा हुआ पानी पहाड़ से बहकर जैसे समुद्र में मिल जाता है। वैसे सारी आराधना शास्त्र वचन देवनाम सारे आपको समर्पित होते हैं।।11।।

आकाशात्पतितं तोयं यथागच्छति सागरम् ।
सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति ।।

इस श्लोक का अर्थ इस ग्यारहवां श्लोक से मिलता है।

सत्व, रज, तम नाम के प्रकृति के गुण आपसे जन्म लेते हैं। तृण से आरंभ होकर ब्रह्मा पर्यन्त सारे जीव इन तीन गुणों से बद्ध हैं, सारे प्राकृत हैं। गुण के अनुसार उनकी उपासना और फल भी अलग-अलग होता है। भगवद्गीता कहती है - **त्रिभिर्गुणमयैभावैरेभिः सर्वमिदम् जगत** ।।12।।

इस प्रकृति के गुण कार्य ज्ञान आदि से संसार बन्ध उत्तम मध्यम अधम जीवों में अलग-अलग तरीके से बार-बार आपके ही इच्छा से होती रहती है। किन्तु उसका परिणाम आपके ऊपर नहीं होता। आपका ज्ञान सबसे श्रेष्ठ हैं क्योंकि आप सर्वेश्वर हैं। इस जगत के ज्ञान के आप साक्षी हैं। आपके लिए नमस्कार।।13।।

अविद्या का अर्थ भगवान की इच्छा होती है।

अग्नि आपके मुख से, पृथ्वी पाद से, सूर्य आंख से, आकाश नाभि से, दिशायें कानों से, द्युलोक सिर से, बाहु से देवोत्तम, पेट से समुद्र, प्राण से वायु, इस प्रकार सारे आपसे ही सृष्ट हुए हैं।।14।।

वृक्ष, औषधि और वनस्पति आपके रोम से, बादल आपके सिर के बाल से, पर्वत अस्थि नाखून से, दिवारात्र आंखों को मिचलने से, जननेन्द्रिय से दक्ष प्रजापति, वीर्य से बरसा हुआ पानी, ये सारे आपसे ही सृजित हुआ है।।15।।

हे नाश रहित स्वरूप वाले नारायण पानी में आपने जल जन्तु का निर्माण किया। औदुम्बर के फल से जैसे मच्छर होते हैं। आपसे अनेक जीव राशियुक्त लोग और लोक पालक निर्माण होते हैं।।16।।

त्वयि प्रकल्पि इस शब्द से सारे देवतागण आपसे सृष्टि हुए यही अर्थ होता है। विष्णु के अंग प्रत्यंग से उत्पन्न हुए देवतागण स्वरूप से उनसे अलग हैं। किन्तु उनके अंग हैं, उनको वेदों में गौण रूप से वर्णन किया है। यह बात आध्यात्म नाम के ग्रंथ में उल्लिखित हैं।

भगवान आप जो अवतार और जिस रूप को क्रीड़ा के लिए स्वीकार करते हो उन्हीं रूप के सामने लोग अपने कष्ट को निवेदन करते हुए समाधान पाते हैं। आपकी कीर्ति का गुणगान करते हैं।।17।।

श्री हरि अवतार रूपों को धारण करना इसका अर्थ वे अनादि काल से इन रूपों को धारण करते ही रहते है।समय और संदर्भ में उनकी अभिव्यक्ति होती रहती है। इसी को पुराणों और कथाओं में अवतार लेना इस रूप से वर्णित है।

प्रलय काल में समुद्र में संचार करते हुए सत्यव्रत राजा की रक्षा किये हुए मत्स्य मूर्ति को नमस्कार। मधु कैटभ नाम के दैत्यों के संहार रूपी हयग्रीव को नमस्कार।।18।।

गुण पूर्ण मंदरधारी कूर्म रूप को नमस्कार। भूमि का उद्धार करने वाले लीला रूपी वराह मूर्ति को नमस्कार।।19।।

सज्जनों के भय को दूर भगाने वाले नरसिंह को नमस्कार। तीनों लोकों को अपने छोटे पादों से नापने वाले वामनमूर्ति को नमस्कार।।20।।

अहंकार से मत्त क्षत्रिय नाम के जंगल को नाश करने वाले परशुराम को नमस्कार। रावण को मारने वाले रघुराम को नमस्कार।।21।।

यादवों के स्वामी वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण को नमस्कार, बलराम में रहने वाले संकर्षण मूर्ति, प्रद्युम्नांतर्गत प्रद्युम्न मूर्ति, अनिरुद्धांर्गत अनिरुद्ध मूर्ति आपको नमस्कार।।22।।

प्रद्युम्न अनिरुद्ध संकर्षण इत्यादि नाम उनमें रहने वाले भगवान के होते हैं। अन्यों में वह केवल औपचारिक

होते हैं।

दैत्य दावनों को मोहित करने वाले दोषरहित बुद्ध को नमस्कार। धर्मभ्रष्ट होकर म्लेच्छ बने हुए क्षत्रियों का नाश करने वाले कल्किरूप भगवान आपको नमस्कार।।23।।

श्री हरि आपकी इच्छा से जीवियों ने आपके अधीन होकर प्रकृति से मोहित होकर मैं और मेरा मानते हुए दुरभिमान से अपने और अपने लोगों की रक्षा करने के लिए कर्म मार्ग में व्यस्त रहते हैं। आपकी याद नहीं करते हैं।।24।।

प्रभु, मैं भी मूढ़ होकर स्वप्न के समान नाश होने वाला मेरा शरीर, मेरी पत्नी, पुत्र और सुख साधनो, बंधु जन इनको सुख देने वाले समझते हुए भ्रांति में हूँ।।25।।

अनित्य को सुख मानते हुए जड़शरीर को चेतन समझते हुए दुःख कारण बनने वाले को सुख साधन मानते हुए शीत उष्ण आदि द्वंद्व वाले विषयों में सुख को ढूंढ रहा हूँ। हे विश्व के स्वामी, अज्ञान से अभी तक मैं आपको नहीं समझ सका।।26।।

अज्ञानी लोग पानी के ऊपर की काई को देखते हुए उसके अंदर रहने वाला पानी को न देखते हुए दूर दिखने वाली मृगमरीचिका के पीछे दौड़ते हैं। मैं भी उनके समान आप को छोड़कर दूर हो गया हूँ।।27।।

काम और कर्म से दूषित मेरा मन, मेरी इन्द्रियां आकर्षित होकर मुझे इधर-उधर खींचती हैं। विषय सुख को भोगते हुए बलहीन बुद्धि वाला मैं अपने मन को अपने वश में रख नहीं सकता।।28।।

प्रभु, मैं आज आपके शरण में आया हूँ। आपके अनुग्रह से दुर्जनों को न मिलने वाली आपकी पादसेवा मुझको मिली है। हे पद्मनाभ, जीवों को आपकी उपासना से अपरोक्ष ज्ञान हुआ तो उनको मोक्ष मिलता है।।29।।

हे शुद्ध ज्ञान रूप, आप जीवियों के ज्ञान के मूल कारण हैं। ब्रह्म रुद्र आदि से उत्तम और गुण पूर्ण हैं। आप सर्वशक्त हैं। आपको नमस्कार।।30।।

हे मोक्ष देने वाले वासुदेव आपको नमस्कार, लय काल में सारे जीवियों का लय करने वाले आपको नमस्कार। हे प्रभु, हे हृषीकेश, आपको मैं बार-बार नमन करता हूँ। शरण में आया हुआ मेरी आप रक्षा करें।।31।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - उनतालीसवाँ

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ॥

श्री शुकदेव कहते हैं - भगवान श्रीकृष्ण अक्रूर को जल में अपने विश्व रूप को दिखाये। नाटक के बाद नट जैसे अपने वेष को छोड़ देता है, वैसे ही भगवान उस रूप को अपने में विलीन कर लिये।।1।।

अक्रूर पानी में दिखने वाला भगवान का विश्वरूप अदृश्य होते ही पानी से ऊपर उठकर वह संध्यादि नित्य कर्म को पूर्ण करते हुए आश्चर्य चकित होकर रथ में बैठ गए।।2।।

भगवान श्रीकृष्ण उनसे पूछते हैं - आप जल में, आकाश में, अथवा जमीन में कुछ अद्भुत चीज देखे हैं क्या? आपको देखे तो हमको वैसा ही लगता है।।3।।

अक्रूर बोलते हैं, भगवान जमीन में, आसमान में, जल में जो सारे हैं, वे सारे आपके विश्व रूप में हैं। उसको देखने के बाद और दिखने वाली अद्भुत चीज क्या रहेगी?।।4।।

अर्जुन जो विश्व रूप को देखा था वह विश्व के आधार वाला रूप था। अर्जुन भगवान में विश्व को देखते हैं। यहाँ अक्रूर विश्व में भगवान के अनंत रूप को देखते हैं। भगवान श्रीकृष्ण एक ही रूप में स्थल में और जल में देखने को मिले। इसी तरह के विश्व रूप को धृतराष्ट्र की सभा में सारे लोग देखे। यहाँ अक्रूर श्रीकृष्ण को भगवान मानकर चले। किन्तु दुर्योधन की सभा में उसको माया जाल समझा गया।

परब्रह्म! जल स्थल आकाश में दिखने वाले सारे अद्भुत आप में जो हैं ऐसे रथ में रहने वाले रूप को मैंने जल में भी देखा। बाद में रथ में देखा। इससे बढ़कर और दिखने वाला अद्भुत इस जगत में क्या रहता है।।5।।

यहाँ **आश्चर्यो भगवान्** इस शब्द का प्रयोग किया गया है। भगवान के समान अद्भुत रूप और कहीं नहीं दिखता। भगवान अणु - महत् आदि विरूद्ध धर्म वाले होते हैं। भगवद् गीता में भगवान के रूप को कहते हुए **आश्चर्य वत् पश्यति कश्चिदेनम्** इत्यादि कहा गया है (2-29)। **काठकोपनिषद् में (1-27) आश्चर्योवक्ता, आश्चर्योस्यज्ञाता** इत्यादि कहा गया है। हरिवंश में (2-110-20) नारद जी कहते हैं **आश्चर्योसि, धन्योसि**। महाभारत में **आश्चर्य रत्नेष्वधिकं** कहा गया है।

श्री शुकदेव कहते हैं - अक्रूर इस प्रकार कहते हुए रथ को आगे चलाये। अपराह्न होते तक

मथुरा को ले आये।।6।।

प्रयाण के समय में रास्ते में सारे ग्रामवासी श्रीकृष्ण के पास आ जाते थे। उनको देखकर संतोष विभोर हो जाते थे। उनके ऊपर से अपनी दृष्टि को हटा नहीं सकते थे।।7।।

नंद गोप इत्यादि व्रजवासी पहले ही मथुरा पहुंच चुके थे। वे मथुरा के लगे हुए उद्यान में राम कृष्ण के रथ की राह देख रहे थे।।8।।

भगवान श्रीकृष्ण उनके पास पहुंचकर अक्रूर के हाथ को पकड़कर रथ से नीचे उतरे। हाथ जोड़ के खड़े हुए अक्रूर को हंसते हुए कहते हैं।।9।।

अक्रूर, आप रथ के साथ नगर में प्रवेश करें। अपने घर चलें। हम अपने गाड़ियों के साथ यहीं रहेंगे। बैलों को विश्राम देगें। रात होते तक हम इस नगर का संदर्शन करेंगे।।10।।

अक्रूर कहते हैं, प्रभु मैं आपको छोड़कर मथुरा प्रवेश कर नहीं सकता। हे भक्त वत्सल भगवान, आप मेरा हाथ आप कभी भी न छोड़ें।।11।।

चलिये, हमारे घर चलेंगे। हे अधोक्षज, अनाथ हमको सनाथ कीजिये। हमारे अत्यंत प्रिय भगवान आप बलराम और इन बंधुओं के साथ हमारे घर आइये।।12।।

हम लोग गृहस्थ हैं। हमारे घर आकर अपने पावन पद धूलि से हमारे घर को पवित्र करें। आपके पादों को धोने से हमारे पितृ, देवता और अग्नि तृप्त होते हैं।।13।।

बहुत दिन पहले बलि चक्रवर्ती आपके मंगलमय ये पादों को धोकर कीर्तिशाली बना, अनुपम ऐश्वर्य को पाया, एकांत भक्त को मिलने वाला परम् पद को प्राप्त किया।।14।।

बलि वामन के पाँव को धोकर धन्य हो गया। श्री हरि के पाँव धोने वाले ब्रह्मा जी हैं। श्री हरि ब्रह्मा जी से अपने पांव धुलवाकर गंगा जी को उत्पन्न किये। उस जल को शिव जी उठाकर मस्तक पर धारण किये।

आपके पाद को धोया हुआ पानी पवित्र गंगा बनकर तीनों लोकों को पावन किया। उसको परम शिव अपने सिर में धारण किये, सगर पुत्र स्पर्श मात्र से मुक्ति पाये।।15।।

हे देवदेव, हे जगन्नाथ, केवल अपने नाम के श्रवण कीर्तन मात्र से सबको पावन करने वाले हे यदुकुलोत्तम कीर्तिशाली नारायण, आपको नमस्कार।।16।।

श्री वादिराज जी अपने रूक्मिणीश विजय में अक्रूर की स्तुति को इस प्रकार लिखते हैं। भगवान पुण्य लेश भी न रहने वाला मैं सज्जनों की निंदा करूँ तो मुझको गूंगा बनाओं। **मूकं सतां दूषणेषु** । सुंदरियों को देखने लगूँ तो मुझको अंधा बनाओं। **अंधं मीन दृगीक्षणेषु।** आपकी पुण्य कथा के सिवाय अन्य कथा सुनने लगूँ तो मुझको बहरा बनाओं। **बधिरं त्वद् भिन्न गोष्ठीषु माम्** पापाचरण करने चलूँ तो मुझको लंगड़ा बनाओं **पंगुम् पाप कर प्रयाण करणे।** शास्त्र निषिद्ध रति में नपुंसक बनाओं **क्लीबं ग्राम्य रतौ मुकुंद कुरू मां।**

अक्रूर आगे प्रार्थना करते हैं - आपके पादारविन्द्र की पूजा करने में मुझे काम हो। पुण्य संपादन करने में

तृप्ति न होकर मुझे अति आशा हो। आपके पुण्य - संपादन में दूसरों से असू या हो, आपके कथामृत को पान करने में मद, आपसे द्वेष करने वाले में क्रोध और अपने भक्तों में अनुराग दो।

रुद्र देव आप मनोभिमानी हैं। मेरे मन को आपके शत्रु काम कें साथ मित्रत्व न हो। बदले में अच्युत का चिंतन निरंतर हो। हे सूर्य देव, आप आँखों के अभिमानी हैं। मेरी आंखों को खिला हुआ कमल के समान करना नहीं है। उनसे भगवान के रूप और शास्त्र ग्रंथ के पाठ करने में जोड़ दों। हे विठ्ठल, आपके नाम में तीन अक्षर हैं। **वि** का अर्थ विलय होता है। **ठ्** से चूना और **ल** से सुपारी। आपका नाम ही ताम्बूल है। ताम्बूल सन्यासी और ब्रह्मचारी के लिए निषिद्ध है। किन्तु आपका नाम निषिद्ध नहीं, कामोत्तेजक नहीं, भक्ति उद्रेक करने वाला है। आपके नाम का ताम्बूल बिना पैसे मिलता है। उसको खाने वाला संसार से मुक्त होता है।

श्री भगवान बोले, मैं अपने भाई के साथ आपके घर को आने वाला हूँ, उसके पहले मैं इस यदुकुलद्रोही कंस को मारकर अपने बंधुओं को संतोष दूंगा।।17।।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर अक्रूर मन में न चाहते हुए भी मथुरा में प्रवेश कर कंस के पास जाकर श्रीकृष्ण के आगमन का समाचार कहकर अपने घर को चले गए।।18।।

बाद में श्रीकृष्ण संध्या समय में बलराम और गोपालकों के साथ नगर संदर्शन के लिए मथुरा में प्रवेश करते हैं।।19।।

मथुरा नगरी में स्फटिक से निर्माण हुए उन्नत गोपुर थे, उनको विशाल और शोभा देने वाले सोने का किटकी लगाये थे। ताम्र और पीतल से बरामदे की दीवार बनी थी। इस नगरी में शत्रु सुलभता से प्रवेश नहीं पाते थे। शहर के बीच-बीच में उद्यान और बाग-बगीचे थे।।20।।

सोने से निर्माण किया हुआ चौक, अमीर लोगों के घर और सभा स्थान शोभायमान थे। वज्र हीरा मोती से निर्माण किया हुआ मणिखचित किटकी के छोटे रंध्रों में बैठकर कबूतर और मोर शब्द करते थे। रथ के मार्ग और बाजार के रास्ते को पानी छिड़काया गया था। फूल अंकुर और अक्षत बिखेरे गये थे।।21-22।।

घर के द्वार सुगंध से अलंकृत पूर्ण कुम्भ, फूल दीप से सुशोभित थे। नव पल्लव और फल सहित केले के वृक्ष, सुपारी के गुच्छ ध्वज और वस्त्रों से अलंकृत थे।।23।।

हे राजा, ऐसे मथुरा नगरी के राजमार्ग से राम कृष्ण अपने साथियों के साथ अंदर आये। उनको देखने के लिए नगर के नर-नारी उत्सुक होकर घर मंदिर के छत के ऊपर चढ़े थे।।24।।

जल्दी आने में नगर की नारियां गलत रीति से कपड़ा और गहने पहने थे। उनके एक कान में झुमका, एक पांव में घुंघरू और एक आंख में काजल पहने थे। दूसरों को भूल गये थे।।25।।

भोजन करने वाले आधे में भोजन छोड़ के आये, अभ्यंजन करने वाले स्नान न करते हुए

मानकर सेवा की। भगवान स्वयं वृद्ध के वेष में आये थे। तब आशीर्वाद किये। अगले जन्म में तुम मेरे साथ क्रीड़ा करोगी। यही पिंगला द्वापर में कुब्जा बन गयी।

अगले जन्म में वह एक ब्राह्मण स्त्री बन गई। वह व्रत-उपवास से भगवान की भक्त बनी। एक बार उसको अकाल मृत्यु आ गई। चार ब्राह्मण उसको विस्तर सहित उठा कर ले जा रहे थे। उस समय उसको पुनः जीव आ गया। वह चारों पुरुषों को देखते हुये उनके स्पर्श से आनन्द पाई। इसी कारण मरने के बाद अगले जन्म में वही पिंगला त्रिवक्रा बनी।

त्रिवक्रा केवल गन्ध के उपचार से भगवान की पूजा करने से सुन्दर देह पाई नाई बाल बनाकर मोक्ष पाया, मालाकार माला देकर विप्र पत्नी नैवेद्य दिये। यशोदा केवल दूध दी। ऐसे एक एक पूजा करने वाले मोक्ष पाये हैं। भगवान के सोलह उपचार से पूजा करने वाले तो मोक्ष पाते ही हैं। इसको और एक बार कहने की क्या जरूरत है।

त्रिवक्रा बाहर वक्र थी। किन्तु अन्दर भक्ति से युक्त थी। इसी कारण वह सुन्दर बनी। धोबी बाहर सरल था किन्तु मन में वक्र था। इसके लिये उसको मरना पड़ा।

कुब्जा की भक्ति से सन्तुष्ट भगवान अपने अपरोक्ष ज्ञानी को मिलने वाले फल को उसको देने की इच्छा किए हैं। कुब्जा सुन्दर मुखी थी किन्तु कुबडी थी। त्रिवक्रा अपने नाम के अनुसार अपने शरीर में तीन जगह पर टेढ़ी हो गई थी। श्रीकृष्ण उसको ठीक करने का संकल्प किये ।। 6 ।

श्री कृष्ण उसके पांव के ऊपर अपने दोनो पांव को रखते हुये गालों को पकड़ते हुये मुख से उसको ऊपर उठाये।।7।।

श्रीकृष्ण के करस्पर्श मात्र से उसका शरीर सीधा हो गया, उन्नत हो गया, सारे अंग समप्रमाण हो गये। वह विशाल नितम्बवाली पुष्ट स्तन वाली सुन्दर स्त्री बन गयी ।।8।।

पिछले जन्म में कुब्जा एक सुन्दर अप्सरा थी। विदेह नगर में पिंगला नाम की वेश्या होकर जन्म लेकर वेश्या वृत्ति में वैराग्य पाकर हरि को पति रूप में उपासना करते हुये शरीर त्याग की थी। बाद में मथुरा में त्रिवक्रा नाम की सैरांध्रि होकर जन्म ली थी। हरि भक्ति की महिमा से वह सुन्दरी होते हुये पिछले जन्म की वेश्या वृत्ति के कारण गाल, छाती, कटि इन तीनों भागों में वक्र होकर त्रिवक्रा कही जाती थी। उसके भक्ति से श्रीकृष्ण का दर्शन करने के कारण भगवान उसके दोष को दूर कर दिये। श्रीकृष्ण उसके अन्यथा रूप को दूर करते हुये उसके स्वभाव सुन्दर शरीर को व्यक्त कर दिये। श्रीकृष्ण के दर्शन से उसको यह फल मिला ।।

उत्तम रूप और गुण से सम्पन्न कुब्जा काम पीड़ित होकर कृष्ण की अचला को खींचते हुये हँस कर बोली ।।9।।

हे वीर! - चलो, हम घर चलेंगे। मैं आपको छोड़कर अकेले घर नही जा सकती। हे पुरुषोत्तम! आप मेरे चित्त का हरण किये हैं। मेरे ऊपर कृपा कर के प्रसन्न हो जायें ।। 10 ।।

पिछले जन्म में यह अप्सरा थी। वेश्या जन्म में भी अन्त में भगवान को ही पति मानकर आराधना करते हुये शरीर त्याग की थी। इसी कारण अब भगवान को काम पूर्वक भक्ति से आग्रह से बुला रही है।

इस प्रकार कुब्जा प्रार्थना करती रही। श्रीकृष्ण बलराम और साथियों के मुँह देखते हुये हस कर के बोले ।।**11**।।

हे सुन्दरी, अब तुम अपने घर चली जाओ। मैं एक बार तुम्हारे घर को आने वाला हूँ। पुरुषों को तुम्हारे जैसे लोगों के घर में ही तृप्ति मिलती है। हमें घर नहीं है और हमारा विवाह नही हुआ है। ऐसे प्रवासी लोगों के लिये आपका घर अच्छा आसरा बनेगा। अभी हम किसी काम पर आये हैं कार्य पूर्ति के बाद आयेंगे ।।**12**।।

यहाँ **अगृह** शब्द है। इसके अनेक अर्थ होते हैं - घर न होने वाले, प्रवासी लोग, विवाह न होने वाले, पत्नी के साथ न आने वाले ऐसे बहुत से अर्थ होते हैं। यहाँ बलराम के साथ होने और गोपालकों के साथ होने के कारण भगवान बहुत अर्थ वाले एक शब्द का प्रयोग किये हैं। यहाँ सारे अर्थ प्रस्तुत हैं।

इस प्रकार अपने मधुर वाक्यों से कुब्जा की विदाई करते हुये भगवान श्रीकृष्ण आगे चले। रास्ते के दोनो बाजू रहने वाले दुकानदार अपने दुकान से उपहार, ताम्बूल, फूल-माला, गन्ध इत्यदि से श्रीराम कृष्ण का सत्कार किये ।। 13 ।।

बाद में शिवधनुष को जहाँ रक्खा है उस स्थान की ओर लोगों से पूछ कर श्रीकृष्ण वहाँ चले। इन्द्रधनुष के समान रहने वाले सुन्दर और अद्भुत उस धनुष को गौर से देखे।।**14**।।

बहुत सैनिक उस धनुष की रक्षा के लिये नियुक्त थे। वहाँ उसकी पूजा होती थी। वह धनुष बहुत सम्पत भरित थी। रक्षकों के रोकने के बाद भी श्रीकृष्ण बलात् से उस धनुष को उठा लिये ।।**15**।।

सारे लोग देखते रहे। भगवान बिना आयास उस धनुष को बायें हाथ से उठा कर दाहिने हाथ से सिंजनी को बाँधने का प्रयास किये। क्षणार्ध में हाथी गन्ने के दंड को जैसे टुकड़ा करता है वैसे धनुष को भगवान दो टुकड़े कर दिये ।।**16**।।

धनुष को तोड़ते समय जो ध्वनि हुई उसकी प्रतिध्वनि आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष में भर गयी। उसको सुनकर कंस भय से काँपने लगा ।।**17**।।

आकाश में प्रकाशमान रहने वाला इन्द्रचाप के समान बड़ा वह शिवधनुष शिव से कंस को मिला था। इन्द्रादि देवता भी उसको उठाने में असमर्थ थे। कंस केवल उसकी पूजा करता था। बहुत यज्ञयागों से उसकी आराधना करता था। शिवलिंग के समान उसकी पूजा करता था। **तालत्रयम् महासारम** ताल विजयध्वजी टीका अनुसार एक सौ हाथ होता है। वल्लभाचार्य उसको तीन सौ हाथ बोले हैं। ऐसा तीन ताल रहने वाला धनुष को तोड़ने से भूकम्प होकर कंस का अन्तःपुर हिल गया। इसमें अतिशयोक्ति नही है। कंस उस शब्द से डर कर अपने सिंहासन से नीचे गिर गया। वह उस ध्वनि से काँप रहा था।

कंस के भय का वर्णन वादिराज जी ऐसे करते हैं। सूर्य अस्त होते ही सारे दसों दिशा जैसे अन्धेरे से भर जाती हैं वैसे कंस का मन भय से भर गया। वहाँ भय का दूत कंस के सामने आकर खड़ा हो गया। कंस उससे पूछता

है तुम कौन हो ? दूत उत्तर देता है :- मैं काल हूँ, यम का दूत हूँ, भय मेरा नाम है। श्रीकृष्ण तेरी मृत्यु है। कंस पूछता है मैं उसका नाम सुना ही नही। तब दूत बोलता है। वसुदेव देवकी का पुत्र, उसको तुम जानते हो। वही तुम्हारी मृत्यु है। कंस बोलता है। देवकी पुत्रों को मैं मार डाला हूँ। तुम मूर्ख हो। अब देवकी पुत्र कहाँ से आयेगा। दूत बोलता है, मूर्ख, तुमने अपने मृत्यु देवता को मारा नही, वह पूतना, शकट, तृणावर्त, केशी इत्यादि दुष्टों को उसी ने मारा है। वही तुम्हारी मृत्यु है।

कंस आगे बोलता है। मेरे पास चाणूर, मुष्टिक आदि मल्ल हैं। हजार हाथी के बल वाला कुवलयापीड है। मैं जगत प्रसिद्ध मल्ल हूँ। मुझको मृत्यु कैसे आयेगी।

दूत बोलता है :- भय तेरे मन में घुस गया है। भय से ही तुम मर जाने वाले हो। यदि जीना चाहते हो तो कृष्ण की शरण में आओ।

धनुष के रक्षक और उनके अनुचर सभी क्रोध से आयुध लेकर एक साथ होकर कृष्ण राम की घेरा बन्दी की। पकड़ो, मारो, इस शब्द से उनको पकड़ने का प्रयास किये ।। 18 ।।

दुष्ट विचार से दुष्ट कार्यों को करने आये उन दुष्ट लोगों को देखकर श्रीराम कृष्ण उस धनुष के टुकड़े से मार कर उन सबकी जान ले ली ।। 19 ।।

उनकी रक्षा हेतु कंस के भेजे हुए सैन्य का भी नाश किये। धनुषशाला के बाहर आकर नगर की सम्पत्ति और सौन्दर्य को देखते हुये संचार किये ।। 20 ।।

श्रीराम कृष्ण के इस अद्भुत पराक्रम, तेज, प्रौढ़िमान, रूप और सौन्दर्य को देखकर मथुरा नगरवासी उनको देवोत्तम मान लिये ।। 21 ।।

श्रीराम कृष्ण अपनी इच्छानुसार नगर में सूर्यास्त होते तक संचार किये । बाद में वे नगर के बाहर जहाँ अपनी गाड़ियाँ थीं वहाँ पर आ गये ।। 22 ।।

हाथ - मुह धोकर वे क्षीरान्न भोजन किये। आगे कंस क्या करता है यह पूरा मालूम होते हुये भी उस रात को आराम से सोये ।। 23 ।।

रात में दही-भात खाना निषिद्ध होने के कारण वे क्षीरान्न भोजन किये।

इधर कंस ने पूरी रात नींद न आने के कारण दीर्घ जागरण किया। कृष्ण राम खेलते-खेलते शिवधनुष को तोड़ दिये। रक्षक और उसकी सहायता के लिये आई हुयी सैन्य को मार भगाये। यह सुनकर वह डर गया था। उसके कारण उसको नींद नही आई। आई हुई थोड़ी सी नींद में अनेक दुःशकुन देखा ।।24-25।।

सूर्यादि ज्योति न रहते हुये भी उसको दो-दो दिखे। शीशे में उसका प्रतिबिम्ब दिखा किन्तु उसका सिर नही दिखा। उसकी छाया में रन्ध्र दिखे। कानों को बन्द करे तो मुख्य प्राण के जपध्वनि का आवाज नही सुना। वृक्ष सोने के जैसे दिखे। धूल के ऊपर चलने के बाद भी पद चिन्ह

नही दिखा ।। 26-27 ।।

आँख बन्द करे तो स्वप्न में शव का आलिंगन किया हुआ जैसा लगा। गधे के ऊपर बैठकर यात्रा कर रहा है ऐसा लगा। लाल फूल माला पहन कर तेल लगाकर दिगम्बर होकर दक्षिण की दिशा में चलने का स्वप्न देखा ।। 28 ।।

स्वप्न में और जागृति में ऐसे ही दृश्यों को देखता रहा। मरण भय के कारण पूरी रात उसको नींद नही आई ।। 29 ।।

श्रीकृष्ण ने जब धनुर्भंग किया तो उसकी आवाज सुनकर कंस के हृदय में भय भर गया। वह उसी के कारण पसीना पसीना हो गया। पूरी रात नींद नही। थोड़ी सी आँखें बन्द करे तो मरण सूचक दुःस्वप्न दिखते थे। घबरा कर उठ कर चले तो अनेक अरिष्ट चिह्न दिखते थे।

हे राजा सुनो - वह रात बीत जाने के बाद सूर्य उदय के अनन्तर स्नानादि करके कंस मल्लक्रीड़ा महा उत्सव को आरम्भ किया ।। 30 ।।

राजभट रंगमण्डप की पूजा किये। पणव, आनक, गोमुख, तूर्य, भेरी आवाज करने लगे। प्रेक्षक लोग आकर आसनों को फूल माला पताका और तोरणों से अलंकृत किये ।। 31 ।।

आसन में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नागरिक, देशवासी, राजा लोग यथा योग्य स्थान में आकर सुखासीन हो गये ।। 32 ।।

राजा कंस मंत्रियों के साथ माण्डलिक राजाओं के बीच में अपने सिंहासन पर राजासन में बैठ गया। उसका दिल भय से हिल रहा था ।। 33 ।।

तूर्य का घोष होते ही बड़े-बड़े मल्ल अपने गुरु के साथ रंगस्थल में उतर कर जाँघ ठोक कर कुश्ती का आह्वान दिये ।। 34 ।।

उनमें चाणूर, मुष्टिक, कूट, छल, कौशल नाम के मुख्य पहलवानों ने वाद्य घोषों से उत्साहित होकर रंगस्थल में फेरे लगाने लगे ।। 35 ।।

यहाँ चाणूर श्रीकृष्ण के सामने ही कंस के प्रीति के लिये हम युद्ध करें ऐसा कहता है। उसे श्रीकृष्ण के प्रेरणया श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थं कहना था। कंस के प्रीति के लिये बोलना उसके दैत्य स्वभाव को दिखाता है।

कंस के आमंत्रण के अनुसार आये हुये नन्दगोप आदि गोपालक अपने लाये हुये नजराना को कंस को अर्पण करते हुये अपने आसन पर बैठ गये ।। 36 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

आये थे। नींद करने वाले गड़बड़ी से आये थे, बच्चों को दूध पिलाने वाली माँ उन्हें छोड़कर, दौड़ते हुए आयी थीं।।26।।

कमलनयन लक्ष्मीरमण श्रीकृष्ण हाथी के समान अपने प्रौढ़ पद को रखते हुए आंख से हाव-भाव करते हुए देखने वाले को आनंद करते हुए मथुरा के मानवों को मुदित कर दिये।।27।।

हे राजा परीक्षित! मथुरा की नारियाँ बहुत दिन से श्रीकृष्ण की कथा सुन रही थीं। उनका मन श्रीकृष्ण से आकृष्ट हुआ था। वैसे अनंत को अब उनको अपनी आंखों से देखने का भाग्य बन गया है। वे तिरछी नजर से उनको देखते हुए श्रीकृष्ण के हसन्मुख से अमृतसिंचन पाती हुयी उररोमांचित होकर अपने को धन्य मानने लगीं। आंखों से उस आनंद मूर्ति को अपने हृदय में भरकर आलिंगन करते हुए विरह ताप से मुक्त हुयीं।।28।।

घर के छत के ऊपर से राम कृष्ण को देखने वाली ने महिलाएँ आनंद से मुकुलित हुयीं। वे राम कृष्ण के ऊपर फूल की वर्षा किए।।29।।

सारे जगहों में ब्राह्मण उनको दही, अक्षत, पानी से भरे हुए कलश और फूल माला से सत्कार किये। संतोष से उनका स्वागत किये।।30।।

उसी समय एक धोबी वहाँ कपड़े को रंग भी डालता था, एक हाथी के ऊपर बैठकर आ रहा था। वह कंस के लिए साफ किया हुआ कपड़ा लेकर चल रहा था। उन शुभ्र वस्त्रों को श्रीकृष्ण ने मांगा।।31।।

गर्ग संहिता में उस धोबी का नाम ध्वज कहा गया है।

हे भाई, सुनो - तुम हम दोनों को योग्य कपड़ा दे दो। हम उसके लिए योग्य हैं। तुम कपड़े दिए तो तुम्हारा कल्याण होगा। इसमें संशय नहीं है।।32।।

कृष्ण बलराम कंस के भांजे लगते हैं। मामा के कपड़े को भांजे को लेना अधिकार बनता है। **अर्हतः** इस शब्द से यह बोध होता है।

सारी संपदाओं से परिपूर्ण भगवान केवल कपड़े मांग रहे हैं। किन्तु वह धोबी उसको न समझते हुए कंस के सेवक होने के कारण अहंकार से क्रोधित होकर गाली देने लगा।।33।।

पहाड़ों में चलने वाले आप गंवार लोग हैं। आप कभी ऐसे कपड़े को पहने हैं क्या ? ये राजा महाराजा के लिए योग्य कपड़े हैं। आप लोग उद्धतता से उसको मांग रहे हैं ?।।34।।

हे मूर्ख, आपको जीने की आशा है क्या ? जल्दी यहाँ से चले जाओ। नहीं तो राजदूत अहंकार वाले तुमको बांधकर मारते हैं, तुम्हारे पास जो हैं उस सबको छीन लेते हैं।।35।।

इस प्रकार वह धोबी असंबद्ध बातें कर रहा है। वह पार्वती के वर बल से अवध्य माना जाता था। कंस का आप्त सेवक बनने से अहंकार से भरा था। श्रीराम कृष्ण कंस के विशेष आमत्रंण से गण्य नागरिक के रूप में मथुरा

आये हैं। स्वयं भगवान होकर भी रजक से कपड़ा मांग रहे हैं। किन्तु धोबी कपड़ा नहीं दिया, इतना ही नहीं उनको धमकी दे रहा है। इस अपमान को क्षत्रिय कभी नहीं सह सकता है। नगर के सारे स्त्री पुरुष इनके सत्कार किये हैं।

कंस के सारे परिवार को मारने का संकल्प किये भगवान उस धोबी के सिर को अपने हाथ से काटकर प्रथम बलि लेते हैं।

धोबी के मरने के बाद उसके साथ आने वाले उनके नौकर कपड़े को वहीं छोड़कर भाग गये।।37।।

राम कृष्ण अपने को जो चाहिये वह कपड़े लेकर अन्य कपड़ों को गोपालकों को दिये। गोपालक उनको रास्ते में बिछाकर श्रीकृष्ण का स्वागत किये।।38।।

भगवान के आते समय रास्ते पर सफेद कपड़ा बिछाना क्रम प्राप्त पद्धति हैं। कंस के दूत इसको नहीं किये। इसके बदले में गोपालक उनको यह सेवा किए।

बाद में एक नाई सामने आया। श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार वह उनके बाल को संवारा। गैरिक वस्तुओं से और गहने से राम कृष्ण का वेषालंकार किया। वे दोनों त्यौहार के दिन श्रृंगार किये हुए हाथी के बच्चे के समान वे दोनो शोभायमान हुए रहे।।39-40।।

उस नाई से प्रसन्न होकर भगवान श्रीकृष्ण यहाँ आरोग्य, ऐश्वर्य इत्यादि सुख देते हुए उसे सदाकाल अपने स्मरण सुख को देकर अंत में अपने सारूप्य नाम का मोक्ष दिये।।41।।

उसके बाद सुदामा नाम का फूल वाला उनके सामने आया। वह श्रीराम कृष्ण को दण्डवत् नमस्कार किया।।42।।

यह मालाकार मूलतः भगवान का द्वारपालक था। उसका नाम गुणक था। भागवत् में उसको सुदामा नाम से कहा गया है। मूल रूप में वह सुदामा रजक जन्म में उसका नाम गुणक इस प्रकार दोनों हो सकते हैं। यह बात हरिवंश की है। (2-27-19)

परिवार के साथ आये हुए श्रीकृष्ण को वह सुदामा आसन और पाद्य दिया। फूल माला ताम्बूल, गंध इत्यादि से सत्कार किया।।43।।

फूल वाला कहता है, हे प्रभु, आपके आगमन से मेरा जन्म सार्थक हुआ, कुल पवित्र हुआ। पितृ, देवता, ऋषिगण संतृप्त हो गये, प्रसन्न हो गये।।44।।

इस सारे प्रपंच के लिए आप स्वतंत्र कारण बने हैं। इस जगत के क्षेम और मंगल के लिए आप अवतार लेकर यहाँ आये हैं।।45।।

आप दोनों इस जगत के लिए मालिक हैं। सारे जीवियों में उनके मन में रहते हुए उनके योग्यतानुसार उनको प्रेरणा देते हैं। आप सेवा करने वाले को सुख देने का स्वभाव वाले हैं। आपके लिए पक्षपात दृष्टि नहीं है।।46।।

यहाँ समयोः **सर्वभूतेषु** यह शब्द है। भगवान को जो जिस रीति से उपासना करता है, भगवान उसी तरह से उसे फल देते हैं। यही भगवान का **समत्व** है। गीता में भगवान कहते हैं, **समोहं सर्वभूतेषु**।

धोबी कपड़ा नहीं दिया जिसके लिए उसको मारा, नाई बाल संवारा उसको वर दिया। इसको पक्षपात नहीं कह सकता। इस विश्व के मालिक पूर्णकाम भगवान को कौन क्या देता है ? भगवान उनके योग्यतानुसार कर्म कराते हुए उसके लिए योग्य फल देते हैं।

भगवान, मैं आपका दास हूँ। मुझको आप उपदेश दीजिये। कहिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ। आपकी सेवा करना आपका आज्ञा पालन करना हमें परमानुग्रह कारक है।।47।।

हे राजा, सुदामा इस प्रकार बोलते हुए श्रीराम कृष्ण की अपेक्षा को जानते हुए संतोष भरा हुआ मन से उत्तम सुगंध देने वाले फूलों की माला को समर्पित किया।।48।।

उन मालाओं से अलंकृत राम कृष्ण, उनके परिवार के सारे लोग संतुष्ट हो गये। अपने को नमस्कार किये हुए उस सुदामा को श्रीकृष्ण अनेक वर दिये।।49।।

वह भगवान श्रीकृष्ण में निश्चल भक्ति और उनके भक्तों में अविरत प्रीति, सारे जीवों में निरंतर दया का वर मांगा और उसको पा लिया।।50।।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्रीकृष्ण सुदामा को इस प्रकार उसके वंशज वाले सबको उनके जीवन काल में अव्याहत रीति से मिलने वाला बल कीर्ति देकर मोक्ष रूप फल को देकर वहाँ से बलराम के साथ आगे चले।।51।।

इस मालाकार के साथ केशालंकार नखालंकार करने वाले को भी भगवान अपना पार्षद बनाये। यह भागवत तात्पर्य निर्णय में लिखा है। श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य जी कहते हैं - जय विजय के समान ये दोनों भगवान के पार्षद थे। भगवान के साथ वे भी नाई और मालाकार बनकर अवतार लिये हैं। भगवान का शरीर अप्राकृत और चिदानंद रूप है। उनके सारे अवयव ज्ञानानंद रूप होते हैं। उनके शरीर में अनपेक्षणीय ऐसी कोई चीज नहीं रहती। भगवान लोकाचार के लिए केशालंकार नखालंकार करवाते हैं।

भगवान के कृष्णकेश श्रीकृष्ण होकर अवतार लेकर अनेक दैत्यों का वध किए है। भगवान के केवल एक केश को इतनी शक्ति है तो उनके केश समूह में कितनी शक्ति होगी। उनको कोई भी नाई काट सकता है क्या। भगवान के एक नाखून त्रिविक्रम अवतार में घनघोर ब्रह्माण्ड के खर्पर को काट लिया। वहीं से देवगंगा प्रवहित हुई। उस समय भगवान के नाखून को कुछ नहीं हुआ। भगवान के बाल हों, नाखून हों, उनमें कितनी शक्ति है। इसके लिए उपनिषद कहती है, **नेह नानास्ति किंचन**।

भगवान को फूल माला देने से धन-कनक संपद और शारीरिक सामर्थ्य, अपार यश और दीर्घ आयुष्य मिलता है।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चालीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इसके बाद राज्यपथ में चलते हुये श्री कृष्ण ने अंग लेप के गन्ध को लेकर चलती हुयी एक सुन्दर युवती को देखा। वह कुबड़ी थी। वह कंस की सैरांध्रि थी। शृंगार रस प्रधान श्रीकृष्ण उससे पूछते हैं।।1।।

रुक्मिणीश विजय में कुब्जा के बारे में और आगे लिखा है। कुब्जा धनुष के समान तीन स्थान पर टेढ़ी थी। धनुष को बीच में हाथ से पकड़ सकते हैं वैसे कुब्जा की कटि बहुत छोटी थी। धनुष की सिंजनी को कान तक खींचना पड़ता है। कुब्जा का गुण सारे लोगों के कान तक पहुँच गया है। धनुष बाणों को सभी जगह छोड़ता है। वैसे कुब्जा अपनी आँखों से काम बाणों को सभी जगह फेकती है।

हे सुन्दर तरुणी, तुम कौन हो। इस गन्ध को किसके लिये ले जा रही हो। सच बोलो। इस सुगन्ध को हमें दे दो। इससे तुम्हे जल्दी ही कल्याण होगा ।।2।।

सैरांध्रि कहती है - देवोत्तम, मैं त्रिवक्रा नाम की कंस के अन्तःपुर की दासी हूँ। मैं कंस के लिये गन्ध लेप को तैयार करती हूँ। मैं जो गन्ध तैयार करती हूँ कंस उसको बहुत प्यार करता है। मैं इस गन्ध को आपको समर्पित करती हूँ। आपको छोड़कर और कौन इसके लिये योग्य हो सकता है ।।3।।

भगवान के रूप, सौन्दर्य, सुकुमारता, रसिकता, हंसी और तिरछी दृष्टि से कुब्जा का मन आकर्षित हो गया था। वह राम कृष्ण दोनो को अपने हाथ की सुगन्ध समर्पित किया ।। 4।।

तब श्रीराम-कृष्ण उस श्रीगन्ध को अपने शरीर में लेप किए। उनके शरीर के रंग के अलग चमकते रंग वाला श्रीगन्ध उनके रंग से मिलकर उनमें और अपूर्व शोभा आ गई ।।5।।

श्रीकृष्ण का रंग श्यामल वर्ण है। उससे पीत वर्ण का गन्ध लेपन करने से श्याम पीतल रंग से गन्ध और शोभायमान हुआ। वैसे ही श्रीबलराम अपने शुक्ल वर्ण के रंग में रक्त वर्ण के गन्ध को लगने से शुक्ल रक्त वर्ण का अपूर्ण क्रान्ति गन्ध को आ गया।

पूर्व जन्म में कुब्जा मिथिला नगर की एक वेश्या थी। वह अलंकार करके रास्ते पर परपुरुष को ढूढ़ते हुये खड़ी रहती थी। एक दिन उसके पास कोई नही आया। इससे निराश होकर अब पर पुरुष का सम्बन्ध नही करूंगी। परम पुरष को ही पति मानकर सेवा करूंगी। एक दिन एक बूढ़ा आदमी आया। वह उससे नाराज न होते हुये उसी को पति

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बयालीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते है - भगवान श्रीकृष्ण चाणूर की बात के अनुसार अपने अभीष्ट को पूर्ण करने के लिये चाणूर के पास चले। बलराम मुष्टिक के साथ कुश्ती करने के लिये उसके पास गये।। 1 ।।

दोनो स्पर्धी हाथ से बाहू पर और जांघों पर मारते हुये एक के पास एक आकर हाथ जोड़ते हुये वहाँ से दूर जाते हुये, फिर मिलते हुये, चारों ओर चक्कर लगाते हुये, हाथों से हाथ, पाँवों से पाँव को मारते हुये जीतने के छल से एक दूसरे को खीचतें हुये कुश्ती खेलने लगे।। 2।।

मुष्टि को मुष्टि से, जाँघ को जाँघ से, सिर को सिर से, छाती से छाती को मारे।।3।।

दोनों हाथों से ऊपर उठाकर आकाश में घूमाते हुये नीचे टपकाते हुये, ऊपर छलांग मारते हुये परस्पर युद्ध किये।।4।।

गिरे हुये को उठाते हुये, सामने आने वाले को गिराते हुये, न हिले ऐसे दबाकर रखते हुये, परस्पर जीतने की इच्छा से कुश्ती खेले।।5।।

बालक और बलिष्ठ के बीच में का यह युद्ध देखकर वहाँ की स्त्रियों ने अनुकम्पा से आपस में बोलने लगीं।।6।।

अरे ये क्या अधर्म है। राज्यसभा में ऐसा अधर्म नही होना चाहिये। राजा के सामने छोटे बालक और बड़े पहलवानों के बीच में यह युद्ध हो रहा है। राजा इसको कैसे अनुमोदन करता है।।7।।

सर्वांगो में वज्र के समान कठोर शरीर वाले बड़े पहाड़ के जैसे रहने वाले ये मल्ल कहाँ ? अभी मूछे न दिखने वाले अत्यन्त कोमल शरीर वाले ये बच्चे कहाँ ?।।8।।

यहाँ बैठे सारे लोगों को अधर्म का दोष आयेगा यह निश्चित है। जहाँ अधर्म होता है वहाँ नही रहना चाहिये।।9।।

सभासदों के दोषों को पहले से जानने वाले ज्ञानियों को ऐसी सभा में प्रवेश नही करना चाहिए। न जानते हुये प्रवेश किये है तो वहाँ चलते हुये अधर्म को देखकर चुप नही रहना चाहिये। उसी को धर्म मानकर विपरीत समर्थन नही देना चाहिये। ऐसे करने वाले बड़े पाप के भागी बनते हैं ।। 10 ।।

यह मनुस्मृति का वाक्य है। यहाँ स्त्रियाँ उसी को बोलती हैं।

रंगस्थल में मल्ल कुश्ती करना चाहिये। बल और विद्या का प्रदर्शन करना चाहिये। उनको मारना नही चाहिये। यह मारे तो मारने वाले को सद्गति नही मिलती। युद्ध में मारे तो वीर को स्वर्ग होता है। कुश्ती में समान बल वालों को कुश्ती करना चाहिये। इसका निर्णय करने के लिये प्राश्निक की नियुक्ति होनी चाहिये। यह सारे न होने वाली यह स्पर्धा अधर्म है। चाणूर और मुष्टिक, वारह और किशोर नाम के दानव है। हरिवंश कहता है :- ये दोनो मल्ल स्पर्धा में सामने वाले को वंचना से मारने वाले दुष्ट है। कंस इसी को चाहता है। इसके लिये यह स्पर्धा चलाया है।

स्त्री लोग कहती है शत्रु के सभी ओर फिरने वाले श्रीकृष्ण के मुख को देखो। पसीना आ गया है। वह कमल के फूल के ऊपर के पानी के समान मोती बनकर उनको शोभा दे रहा है।। 11 ।।

अरे यहाँ देखो बलराम के लाल लाल आँख। मुष्टिक के ऊपर के क्रोध से उसका मुख लाल-लाल हो गया है। कितना सुन्दर लगता है वह ।। 12 ।।

गोकुल की मिट्टी ही पवित्र है क्योंकि वहाँ यह पुराण पुरुष श्रीकृष्ण बलराम अपने देव शरीर को मानव रूप में छिपा कर सुन्दर वर्णमाला धारण करते हुये गोवर्धन पर्वत में गाय को चराते हुये वेणुगान करते संचार करते हैं ।। 13 ।।

गोपियों ने क्या तप किया है, वे प्रतिदिन सर्वेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के इस रूप को अपनी आँखों से पान करती हैं। उनके शरीर को देखो, लावण्य रस को मन्थन करते हुये निर्माण किया हुआ मूर्ति के समान है। यह आभूषण से अथवा सौन्दर्य साधनों से मिलने वाला सौन्दर्य नही है। वह स्वभाव सिद्ध सौन्दर्य है। प्रतिक्षण और सुन्दर लगता है। इसको देखने के लिये भी उसका अनुग्रह चाहिये। यह कीर्ति और ऐश्वर्य का मुख्य आश्रय है ।। 14 ।।

गाय का दूध दुहते हुये, धान को कूटते हुये, दही का मंथन करते हुये, गप्प-गोष्ठी के समय, झूला झूलते हुये, बच्चो को खिलाते हुये, नहाते हुये, स्नान करते हुये घर के अन्य कामों में व्यस्त होते हुये भी गोपियाँ श्रीकृष्ण में मन रखते हुये, आँखों से आनन्द वाष्प को बहाते हुये गद्गदित कण्ठ से उनकी लीला का गुणगान करती रहती हैं। श्रीकृष्ण में अपना मन रखते हुये कार्य करने वाली गोपिका स्त्रियाँ पुण्यशाली हैं ।। 15 ।।

श्रीकृष्ण प्रातः के समय गाय को लेकर गोकुल से बाहर जाते समय शाम को वापस आते समय गोपियाँ उनकी मुरली की नाद सुनते हुये घर से बाहर आकर रास्ते में खड़ी होकर दया दृष्टि को बिखेरने वाली उसकी मुख दर्शन करती हैं। वे ही बड़ी भाग्यशाली हैं ।। 16 ।।

इस प्रकार स्त्रियाँ आपस में बातें करती रहीं। अब योगेश्वर श्रीकृष्ण चाणूर को मारने का संकल्प किये ।। 17 ।।

कृष्ण चाणूर के साथ और बलराम मुष्टिक के साथ अनेक तरह से मल्ल युद्ध करते हुये उन दोनो को थका दिये ।। 18 ।।

वज्रायुध से भी कठोर श्रीकृष्ण के हाथ की मार से चाणूर जजरिंत हुआ। बार बार श्रीकृष्ण से मार खाकर उसको प्राण संकट होने लगा। वह क्रोध से अपने दोनो मुष्टिका को बांधकर गिद्ध के वेग से वासुदेव के छाती को मारा ।। 19-20 ।।

वह मार श्रीकृष्ण के लिये फूल माला के मार के समान हुआ। चाणूर के उस मार से श्रीकृष्ण विचलित नही हुये। श्रीकृष्ण उसके दोनो हाथों को पकड़ कर ठीक तरह से मर्दन किये। उसके दोनो पांवों को पकड़ कर आकाश में फिराते हुये जमीन के ऊपर टपका दिये। इससे नारियल के समान उसका सिर फूट कर वह मर गया। उनके सारे आभूषण चकानाचूर हो गए। वायु से गिरने वाले इन्द्रध्वज के समान वह मर कर जमीन पर गिर पड़ा ।। 21-22।।

भागवत में बाह्वोर्निगृह्य है। किन्तु महाभारत तात्पर्य निर्णय में और रुक्मिणीश से विजय में **पदोर्जगृह्य** कहा गया है। कंस की परलोक गमन यात्रा शुरु होने वाली है। उसके लिये चाणूर का वध प्रथम नारियल का फोड़ना है।

चाणूर और मुष्टिक युद्ध करते समय बलराम का आलिंगन करना, पाद पकड़ना, परिक्रम करना, सामने झुकना इत्यादि भक्त करने का सारे व्यापार करते रहे। तो भी भगवान उनके वश में नही आये। भक्ति के बिना जो कुछ करे उससे भगवान का प्रेम नही मिलेगा। हमारी सारी क्रियायें भक्ति से युक्त होनी चाहिये।

भगवान उन दुष्टों के विरुद्ध सिंह के समान आ पड़े। उसका पांव पकड़ कर आकाश में घुमाते हुये भूमि के ऊपर सिर के बल पटक दिये। राजा महाराजाओं का शुभ कार्य के पहले नरियल फोड़ना मंगलमय माना जाता है। कंस को मारने के कार्य के लिये चाणूर का सिर फोड़ना मंगलमय प्रारम्भ है। कंस श्रीकृष्ण के जन्म के पहले छः बच्चों को पांव पकड़कर भूमि पर पटक कर उन्हें मारा था। उसके प्रतिकार में श्रीकृष्ण चाणूर को पांव पकड़ कर भूमि पर पटक दिये।

मुष्टिक पहले बलराम को मारा। बलिष्ठ बलराम के अपने दोनो हाथों से मुष्टिक के सिर पर जोर से मारने से वह राक्षस तीन बार चक्कर लगाकर मुँह से रक्त बहते हुये गिर कर मर गया ।। 23-24 ।।

हे राजा, उस समय कूट नाम का मल्ल क्रोध से बलराम के ऊपर आक्रमण किया। बलराम ने अपने बांये हाथ से एक ही मार से उसको मार दिया ।। 25 ।।

उसी समय श्रीकृष्ण छल नाम के मल्ल को अपने पांव की मार से मार दिया। कोशल नाम के मल्ल के दो पांव पकड़ कर दोनों टुकड़ों में फाड़ दिया ।। 26 ।।

इस प्रकार चाणूर, मुष्टिक, कूट, छल और कोशल नाम के पाँच प्रधान मल्ल मारे गये। इसको देखकर बाकी के मल्ल वहाँ से भाग गये ।। 27 ।।

उसके बाद श्रीराम कृष्ण अपने साथी गोपालकों को रंगस्थल में खींचकर उनके साथ सुन्दर मल्ल युद्ध करते हुये अच्छी कुश्ती का प्रदर्शन किए। वाद्यों के निनाद के अनुसार, तालों के साथ पांव रखते हुये पांव के पैजनीया से आवाज करते हुये नृत्य किये ।। 28 ।।

कंस अतिरिक्त सारी प्रजाजन राम कृष्ण की इस लीला से बहुत आनन्द पाये। सभा में बैठे हुये ब्राह्मण, क्षत्रिय बहुत खूब बोलते हुये अपने सन्तोष को व्यक्त किये ।। 29 ।

प्रधान मल्ल मर गये, बाकी के बचे हुये भाग गये। इसको देखकर कंस वाद्य घोष को रुकवा दिया। और अपने आदेश को सुनाया ।। 30 ।।

हरिवंश में चाणूर और मुष्टिक के मरने के पहले ही कंस वाद्य घोष को रुकवा दिया ऐसा लिखा है। कंस के वाद्य घोष रुकने के बाद राम कृष्ण ने चाणूर मुष्टिक का वध किये। उस समय आकाश में देव वाद्य की आवाज हुई। देवता ऋषियों ने श्रीकृष्ण की जयकार किया। चाणूर के वध के लिये कृष्ण ने अपना बल दिखाया। उससे भूमि हिलने लगी। सभा के आसन गिरने लगे। कंस के सिर के ऊपर का किरीट गिर गया। चाणूर और मुष्टिक मर गये। भागवत में चाणूर मुष्टिक के मरने के बाद वाद्य घोष रुकने की बात आती है। दोनो में विरोध नही है। मल्ल रंगस्थल में आते समय अपने वाद्यों को बजाते हैं। चाणूर मुष्टिक हारने लगे तब कंस वाद्य घोष बन्द करा दिया। यह हरिवंश में उक्त है। बाद में कृष्ण बलराम चाणूर मुष्टिक को मार दिये। तब देवता लोगों का वाद्य बजने लगा। यह भागवत में उक्त है। **न्यवारयत स्वतूर्याणि** यहाँ स्व शब्द से यह अर्थ निकलता है।

कंस कहता है :- दुष्ट कार्य करने वाले वसुदेव के दोनों पुत्रों को नगर से बाहर हटा दें। गोपालकों को पकड़ कर उनके पास के पैसे लूट लें। दुर्बुद्धि वाले नन्द को कैद करे ।। 31 ।।

कुश्ती पंध में सामने वाले को हराना रहता है। उनको मारना नही। पंज के सारे नियमो को उल्लंघन करने वाला कंस अब नियमों के बारे में बोल रहा है। चाणूर मुष्टिक को मारने से कोई अपराध नही होता।

दुष्ट बुद्धि वाले वसुदेव को, शत्रु पक्ष को सहाय करने वाले हमारे पिता उग्रसेन और उसके इस परिवार के सारे लोगों को मार डाले ।। 32 ।।

कंस रुद्र वर से अवध्य अपने बीस अक्षोंहिणी सैन्य को यह आज्ञा दे रहा है। इसके लिये कंस वाद्य घोष को बन्द किया था।

इस प्रकार कंस असम्बद्ध रीति से बोल रहा है। उसको सुनकर भगवान श्रीकृष्ण ऊपर कूदकर कंस के उन्नत आसन के ऊपर चढ़े ।। 33 ।।

यहाँ अन्य कथाओं में कंस वध के पहले देवेन्द्र से भेजे हुये रथ में बैठकर उसके भाई और उसके बीस अक्षोंहिणी मूल सैन्य को नाश करने की कथा आती है। भागवत में कंस वध के बाद में कहा जाता है। काल व्यत्यास करते हुये बोलना पुराण की एक शैली है।

कृष्ण की चढ़ाई को देखकर कंस जल्दी से उठ कर खड़ा हो गया। अपनी मृत्यु रूप कृष्ण से

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - इक्तालिसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक उवाच - सूर्य उदय होने के बाद शत्रु ताप करने वाले राम कृष्ण स्नानादि से निवृत्त होकर मल्ल युद्ध के नगाड़े की ध्वनि सुनकर रंग क्षेत्र में आ पहुँचे ।। 1 ।।

रंगस्थल के द्वार पर महावत की प्रेरणा के अनुसार कुवलयापीड नाम का हाथी खड़ा हुआ है। उसको भगवान श्रीकृष्ण देखे ।। 2 ।।

कटिबन्ध को कसते हुये घुंघराले बाल को बाँधते हुये श्रीकृष्ण मेघध्वनि के अनुसार अवाज करते हुये महावत को आज्ञा दी ।। 3 ।।

हे अम्बष्ट, (महावत का नाम) हमको रास्ता दे दो। तुम यहाँ से हट जाओ नहीं तो तुमको और तुम्हारे हाथी को यम के पास भेज देंगे ।। 4 ।।

श्रीकृष्ण की ललकार को सुनकर महावत कुपित हो गया। मृत्यु के समान दिखने वाले हाथी को अंकुश से मार कर श्रीकृष्ण के ऊपर छोड़ दिया ।। 5 ।।

मदभरित वह हाथी श्रीकृष्ण की ओर जोर से दौड़कर उनको अपने शूंड़ में पकड़ लिया। श्रीकृष्ण उसके बन्धन से छुटकारा पाकर दोनों पाँवो के बीच में घुसते हुये उसके शूंड़ को पकड़ लिये ।। 6 ।।

हाथी और क्रोध से श्वास से ही श्रीकृष्ण की जानकारी लेते हुये अपने शूंड़ से उनको एक बार पकड़ने का प्रयास किया। श्रीकृष्ण उसके चंगुल में न जाते हुये शूंड़ को जोर से खींचते हुये डटे रहे ।। 7 ।।

गरुड़ साँप को पूछ से पकड़ कर जैसे खींचता है वैसे ही उस बड़े हाथी को श्रीकृष्ण बीस धनुष की दूरी तक पीछे खींचते हुये चले। यह उनको छोटे बच्चे के खेल जैसा था ।। 8 ।।

एक धनुष का मान चार हाथ होता है। एक हाथ चौबीस अंगुलियों का होता है।

गाय के बच्चे की पूँछ पकड़ कर बचपन में श्रीकृष्ण जैसे खेलते थे वैसे ही इस प्रचण्ड हाथी का शूंड़ पकड़ कर श्रीकृष्ण खेल रहे हैं। वह श्रीकृष्ण को पकड़ने के लिये बाहरी तरफ मुड़े तो दाहिने को फिराते हुये, दाहिने ओर मुड़े तो बाँये तरफ फिराते हुये श्रीकृष्ण उसके साथ खेलते रहे ।। 9 ।।

बाद में श्रीकृष्ण हाथी को छोड़कर उसके माँथे पर जोर से एक बार मारकर वहाँ से दौड़ने लगे। हाथी पीछा करता रहा। उसको लगता था श्रीकृष्ण अभी मिले। लेकिन श्रीकृष्ण एक बार नजदीक और एक बार दूर होकर हाथी के हाथ में नही मिलते थे ।। 10 ।।

एक बार दौड़ते-दौड़ते श्रीकृष्ण अपनी लीला से जमीन पर गिरे किन्तु तुरन्त उठकर दौड़ गये। पड़ा हुआ श्रीकृष्ण को मरने के लिये हाथी अपने आगे के दोनो पांवो को रख कर घुटने के बल से श्रीकृष्ण को अपने दांतों से मारा। उतने में श्रीकृष्ण उठकर भागे इसके लिये हाथी के दांत जमीन में घुस गये। उसके मुख में मिट्टी लग गई ।। 11 ।।

श्रीकृष्ण अपने तंत्र से गिरा जैसा नाटक किये। जल्दी में उठकर भाग गये। हाथी श्रीकृष्ण को मारने के बदले में जमीन को जोर से मारा। इससे उसके दाँत जमीन में गड़ गये। मुह में मिट्टी लग गयी। वह हाथी पूर्व जन्म में रिष्ट नाम का राक्षस था। दैत्यों को भ्रम स्वभाव सिद्ध है। उसके फलस्वरूप मिथ्याज्ञानी के मुह में मिट्टी ही गिरती है।

हाथी का यह पराक्रम विफल होने से हाथी का क्रोध और बढ़ गया। महावत भी उसको अंकुश से मारा। हाथी रोष से श्रीकृष्ण के पीछे पड़ा ।। 12 ।।

भगवान मधूसूदन अपने पास दौड़ते आ रहे हाथी के सामने से आते हुये उसकी शूंड़ को पकड़ कर उसको जमीन पर गिरा दिया ।। 13 ।।

हाथी के कुम्भस्थल को पांव से मारते हुये जोर से पकड़ कर उसके एक दांत को मोड़ कर अपने हाथ में लेते हुये उसी से बिना कष्ट हाथी को मार दिये। उसी दांत से महावत अम्बष्ट को भी मार डाले ।। 14 ।।

श्री राम कृष्ण दोनों अपने हाथों में हाथी के दोनों दांतों को पकड़े हुये शोभायमान हुये। वे अपने कंधे पर दांतों को रख कर चले। उन दांतों से रक्त और मदजल टपक रहा था। उससे वे भीग गये। पसीने की बूंद से उनके मुखारविन्द शोभित रहे। हे राजा, मरे हुये कुवलयापीड़ नाम के हाथी के शरीर को छोड़कर दोनो दांतों को अपने कंधे पर रखते हुये दोनो भाई अत्यन्त शोभायमान रहे। वे दाँत ही उनके आयुध बने। अन्य गोपालकों के साथ वे रंगस्थल में प्रवेश किये ।। 15-16 ।।

वे दोनों पहाड़ के समान पहलवान को आकाश की विद्युत के समान रुद्र रूप दिखाकर रौद्र रस का निर्माण किये। सामान्य लोगों के लिये महापुरुष बनकर अद्भुत रस का दर्शन कराये। स्त्रियों के लिये साक्षात् मन्मथ होकर शृंगार रस को पिलाये। गाँव के गाय चराने वाले को अनेक वेष धारण करते हुये हास्य नट के समान हास्य रस को दिखाये। दुष्ट राजाओं के शासन करने वाले वीर रस की मूर्ति बन गये। माता-पिता को लाडला पुत्र बनकर प्रेम रस बहाये। कंस को विधाता द्वारा भेजा हुआ मृत्यु देव बनकर भयानक रस को दिखाये। नारदादि योगियों को परातत्व बनकर शान्त रस से नहाये। यादव को बालक बनकर दया रस बरसाये। ऐसे भगवान श्री कृष्ण

नव रसों को दिखाते हुये रंगस्थल में भाई बलराम के साथ शोभायमान हुये ।। 17 ।।

कुल रस ग्यारह होते हैं।

रौद्रो अद्भुताश्च श्रृंगारों हास्यं वीरो दया तथा

भयानकाश्च बीभत्सः शान्तः सप्रेम भक्ति कः

रौद्र, अद्भुत, श्रृंगार, हास्य, वीर, दया, भयानक, वीभत्स, शान्त, प्रेम और भक्ति ऐसे ग्यारह रसों में नौ रसों को श्रीकृष्ण दिखाये है।

हे राजा :- कुवलयापीड जैसे बलिष्ठ हाथी को मारने वाले श्रीराम कृष्ण को हम कैसे हरायें इस पर विचार करते हुये कंस बहुत घबरा गया ।। 18 ।।

श्रीराम कृष्ण दोनो आजानुबाहु सुन्दर रूप वाले, सुन्दर आभूषण और वस्त्र को पहन कर नट के समान वे साधारण कर अपने कान्ति से प्रेक्षकों का मन मुदित करते हुये रंगस्थल को शोभा लाये ।। 19 ।।

वे दोनो प्रेक्षक के आसनों में बैठे हैं। नगरवासी और देशवासी लोग उन श्रेष्ठ पुरुषों को देखकर आनन्द विभोर होकर आँखे फाड़ फाड़ कर देख रहे हैं। लगता है वे आँखों से उनके सौन्दर्य को पीना चाहते हैं। कितने पीने के बाद भी वे तृप्ति नही पाये ।। 20 ।।

सारी जनता राम कृष्ण के रूप को आँखों से पीते हुये जीभ से चखते हुये, नाक से सूंघतें हुये, हाथों से आलिंगन करना चाहते थे ।। 21 ।।

श्रीराम कृष्ण के सौन्दर्य, कान्ति, कण्ठमाधुर्य, प्रौढ़िमा से प्रेक्षकों को उनकी लीला स्मरण में आई। पीछे देखे हुये, सुनी हुई लीलाओं के बारे में आपस में कहने लगे ।। 22 ।।

ये दोनो साक्षात् श्रीहरि नारायण के अंश से वसुदेव के घर में अवतार लिये हुये है ।। 23 ।।

श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ से जन्म लिया। वसुदेव उनको नन्द गोकुल को ले चले। इतने दिन तक वे दोनो नन्द के घर में गुप्त रीति से बड़े हो गये ।। 24 ।।

पूतना, तृणावर्त, यमलार्जुन, धेनुकासुर, केशीदानव, शंखचूड़ इत्यादि दैत्यों को नाश किये ।। 25 ।।

गाय और गोपालको को दावानल से बचाये। कालिया नाग का दमन करते हुये इन्द्र के दर्प को नष्ट किये ।। 26 ।।

सात दिन तक एक ही हाथ से बड़े पहाड़ को उठा कर गोकुल और गायों को पानी, आकाश की बिजली और कोहरे से रक्षा की ।। 27 ।।

गोपियाँ सदाकाल हँसते हुये उसके मुख को देखकर अपने समस्त तापों से मुक्त हो गयीं ।। 28 ।।

सुप्रसिद्ध यदुवंश इनसे रक्षित होकर बहुत बड़ा कीर्तिशाली होने वाला है। ज्ञानी लोग इसके बारे में बोलते रहते हैं ।। 29 ।।

कान्तियुक्त कमलनयन श्रीकृष्ण के बड़े भाई यह बलराम हैं। इसने प्रलंबासुर, धेनुकासुर इत्यादि राक्षसों का वध किया है ।। 30 ।।

लोग इस प्रकार बोल रहे थे। बीच में तूर्य नाम के वाद्य से उच्च स्वर होने लगा। चाणूर नाम का बड़े मल्ल आकर श्रीकृष्ण राम को आह्वान करता है ।। 31 ।।

हे नन्द पुत्र कृष्ण, राम लोग कहते हैं आप दोनो बहुत पराक्रमी हैं, मल्लयुद्ध में कुशल हैं। इसको सुनकर तुमको देखने की इच्छा से राजा ने तुमको बुलाया है ।। 32 ।।

प्रजा लोग राजा को जो इष्ट होता है, उसी को करने से श्रेय भागी होते हैं। वैसे नही किये तो शिक्षार्ह होते हैं ।। 33 ।।

आप जैसे गाय चराने वाले लोग, गाय के बच्चों को पालने वाले लोग जंगल में कुश्ती खेलते हुये गाय को चराते है। सारे लोग उसको जानते हैं ।। 34 ।।

इसी कारण हम और आप मिलकर कुश्ती खेलेंगे। राजा सहित सारी प्रजा लोग इससे सन्तुष्ट होंगे। राजा प्रजा का मालिक होता है ।। 35 ।।

इसको सुनकर श्रीकृष्ण बोले :- हम भी कुश्ती में रुचि रखते हैं। और लोग सुने वैसे जोर से बोले ।। 36 ।।

भगवान बोलते हैं - शहरवासी आप और वनवासी हम सारे लोग राजा कंस की प्रजा हैं। उनको जो इष्ट लगता है उसी को हम करेंगे चलो उसी में हमारा भला है ।। 37 ।।

किन्तु चाणूर यह सुनो हम छोटे बच्चे हैं। हमारे समान बल वाले छोटे के साथ हम कुश्ती करेंगे। कुश्ती सामान्यतः समान बल वालों में होती है। वैसे हुआ तो सभा में रहने वाले प्रेक्षकों को पाप नही आता ।। 38 ।।

चाणूर कहता है :- अरे श्रीकृष्ण तुम छोटे नही, लड़का भी नही। तुम और बलराम बलिष्ठ हो, बड़े से बड़े हो। हजार हाथी के बल वाले कुवलयापीड को तुमने बिना कष्ट मार दिया ।। 39 ।।

इसी कारण तुम लोगों को बलिष्ठों के साथ लड़ना है। इसमें कुछ अन्याय नही है। तुम अपने पराक्रम को मुझको दिखाओ। बलराम मुष्टिक के साथ लड़े ।। 40 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में इक्तालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

युद्ध करने के लिये हाथ में खड्ग और ढाल को उठा लिया ।। 34 ।।

कंस हाथ में खड्ग ढाल पकड़ते हुये गिद्ध के समान दांये-बांये उसको फिराता रहा। अतुल पराक्रमी भगवान श्रीकृष्ण गरुड़ नाग को जैसे पकड़ता है वैसे कंस को पकड़ लिया।।35।।

कंस का किरीट गिर गया। श्रीकृष्ण उसकी चोटी को पकड़ कर सिंहासन से केश खींचते हुये रंगस्थल की भूमि पर गिरा दिया। स्वतंत्र रूपी सर्व समर्थ पद्मनाथ उसकी छाती पर दोनों पांवों से मारते हुये उसके छाती के ऊपर बैठ गये ।। 36 ।।

कंस गिर गया। भगवान दोनों पांवों से उसकी छाती पर मारे। पूर्व जन्म में जो भृगु मुनि था वह अपने एक पांव से भगवान की छाती को मारा था। भगवान इस समय दोनों पांवों से उसको मारे। भक्त एक हाथ से जो देता है भगवान उसको दो-दो हाथों से वापस करते हैं। भृगु के साथ रहने वाला राक्षस रूप भगवान के पाद के आघात से मर गया। यहाँ कंस भगवान से युद्ध नही किया। भगवान उसको शस्त्र से नही मारे। यदि युद्ध में मरा होता थोड़े समय के लिये ही क्यों न हो उसको वीररस स्वर्ग मिलता था। पांव के आघात से मरने के कारण वह राक्षस अंश सीधा अन्धः तमस को चला गया ।

हे राजा सुनो :- तीनों लोक के आश्रय देने वाले स्वतंत्र रूपी भगवान कृष्ण कंस को खीच कर भूमि पर फेक कर उसके छाती को पांव से मारने के कारण कंस ने प्राण त्याग किया। ।। 37 ।।

कंस प्राण त्याग किया इसका अर्थ मुख्य प्राण उसको छोड़ दिया। कंस के शरीर में कालनेमि नामक दैत्य था। उसके साथ भृगु ऋषि का एक अंश भी था। काल नेमि को मुख्य प्राण ने अन्धःतम को आवश्यक साधन करवाते हुये भृगु ऋषि को मोक्ष के लिये जो साधन आवश्यक था उससे करवा दिये। कंस से बाहर आकर मुख्य प्राण भगवान से मिल गये।

हे राजा :- कंस के इस प्रकार मरने के बाद सिंह हाथी को जैसे घसीटता है वैसे कंस के शरीर को श्रीकृष्ण सबके सामने रंगमण्डप के मैदान में खीचते रहे ।। 38 ।।

कंस भय से पानी पीते समय, अन्न खाते समय, चलते-सोते, श्वांस लेते सदाकाल निरन्तर चक्रधारी, जगदीश्वर श्रीकृष्ण को याद करता रहा। भय से मुक्ति पाकर वह भगवान के शरीर में प्रवेश किया ।। 39 ।।

भगवान के सर्वोत्तमत्व को न जानने वाला अन्धंतम को जाता है। भगवान के सर्वोत्तमत्व को जानने वाला मोक्ष को जाता है। कंस के शरीर में रहने वाला भृगु ऋषि मोक्ष पाया। उसमें रहने वाला राक्षस ब्रह्मा जी की पूजा करके वर पाने के बाद भी भगवान से द्वेष करते हुये अन्धंतमस को गया। भृगु बैठते, उठते, चलते, फिरते, सोते, जागते, प्रतीक्षा करते भगवान के भजन करता रहा। दुर्लभ मोक्ष को पाया।

कंस के कंक, न्यग्रोध इत्यादि आठ भाईयों ने अपने भाई की हत्या का बदला चुकाने के लिये बहुत क्रोध से कृष्ण बलराम पर आ पड़े ।। 40 ।।

बलराम जोर से आक्रमण करने वाले उन शत्रुओं को, सिंह जैसे हिरण के बच्चों को काट डालता है वैसे उनको अपने दोनो हाथों से मारे। कंस के मूल बल को भी उनके साथ दोनो भाई मार डाले ।। 41 ।।

आकाश में देवदुंदुभि गूंज उठी। भगवान के विशेष सन्निधान वाले ब्रह्मा, रुद्रादि देवता सन्तुष्ट होकर पुष्प वृष्टि किये। श्रीकृष्ण की स्तुति किये। अप्सरायें सन्तोष से नृत्य की ।।42।।

कंस की धर्मपत्नी रंगस्थल में आकर अपने पति के मरण को देखकर छाती और सिर को मारते हुये रोती रही ।।43।।

वीर शैय्या में सोए हुये पति को देखकर गला फाड़कर रोने लगी। आँखों से आँसू बहने लगे ।।44।।

हे नाथ, हे प्रिय, हे धर्मज्ञ, हे करुणालु, अनाथवत्सल आप मर गये। हमको और हमारे बच्चों को अनाथ कर दिये ।।45।।

हे पुरुषश्रेष्ठ राजा, आपके बिना हम कैसे जियें। इस नगर में अब मंगल कार्य नही होगा।। 46।।

आपने निरपराधी जीवों को कष्ट दिये। बहुत जीवों का नाश किये। उस पाप से आपको यह गति आई। जीवों को बिना कारण द्रोह करने वाला कैसे सुख पाता है।।47।।

सारे जीवियों का सृष्टि कर्ता, पालनकर्ता और लयकर्ता यह श्रीकृष्ण भगवान ही हैं। उसको अलक्ष्य कर कौन जीवित रह सकता है।।48।।

श्री शुक देव कहते हैं :- जगत के पिता भगवान श्रीकृष्ण उन राजमहिषियों को सांत्वना देते हुये मृतकों के लिये विहित अन्त्यःसंस्कार करवाये।।49।।

भगवान श्रीरामचन्द्र भी रावण वध के बाद विभीषण से रावण के अपर कर्म को करवाये। पहले विभीषण कर्म करने के लिये सिद्ध नही था। किन्तु राम ने मरण के बाद द्वेष नही करना। तुम यदि कर्म नही करोगे तो मैं करता हूँ। इस प्रकार कहने के बाद विभीषण ने अन्त्येष्टि किया।

बाद में अपने माता-पिता को बन्धन से निवृत्त करते हुये राम कृष्ण सिर झुका कर पांव छू कर दण्डवत प्रमाण किये ।।50।।

देवकी वसुदेव अपने पुत्र राम कृष्ण द्वारा पांव छू कर नमस्कार करने के बाद भी उनको भगवान मानते हुये भय से आलिंगन न किये, दोनो हाथ जोड़ कर नमस्कार किये ।।51।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में बयालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तिरालीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - वसुदेव अपने को (श्रीकृष्ण को) भगवान मानते हुये हाथ जोड़ दिये हैं। इसको यहीं समाप्त करते हुये भगवान अपने बन्धक शक्ति से उनको मोहित कर दिये।।1।।

देवकी और वसुदेव श्रीकृष्ण के इन अमानुष कार्यों को देखकर उनको भगवान मान लिये। इससे वे उनको अपने पुत्र न समझते हुये उनसे दूर रहे। भगवान इसको सहन न करते हुये उनको अपनी माया से आविष्ट करते हुये उनके सामने उनके पुत्र रूप में खड़े हो गये। उनके मन में माता-पिता का स्नेह जागृत हुआ। उससे वे आगे बढ़कर उनको गले लगा लिये। इससे भगवान को देखने का आनन्द उनसे दूर हुआ। किन्तु पुत्र वात्सल्य से वे आनन्द विभोर हो गये।

श्रीकृष्ण बलराम नम्रता से माता-पिता के पांवो को नमस्कार कर रहे हैं। देवकी वसुदेव उनको हाथों से पकड़ कर अपने गले लगा लिये ।। 2 ।।

श्रीकृष्ण बोलते हैं :- माँ जी और पिता जी हम सदाकाल आपसे मिलना चाहते थे। किन्तु अपने बाल्य, पौगाण्ड, कैशोर आयु में आपके पास आ नही पाये ।। 3 ।।

बच्चे अपने छोटेपन में माता-पिता के साथ रहते हुये उनको पालन पोषण में वे (माता-पिता) सुख पाते है। हम भाग्यहीन हैं आपके पास रहने का एक भी अवसर नही मिला ।। 4 ।।

सम्पूर्ण पुरुषार्थ के लिये साधनीभूत इस शरीर को देने वाले माता-पिता के ऋण को सौ वर्ष तक उनकी सेवा करने के बाद भी चुकाया नही जा सकता है ।। 5 ।।

पुत्र समर्थ होकर भी अपनी माता-पिता की सेवा तन-मन-धन से नही करता है तो मरने के बाद यमदूत उसके शरीर के मांस को ही उसको खिलाते है ।। 6 ।।

माता, वृद्ध पिता, पतिव्रता पत्नी, छोटे पुत्र, गुरु, ब्राह्मण और शरणागत व्यक्ति इनको समर्थ होते हुये भी जो संरक्षण नही करता है तो वह जीते जी मर चुका है ।। 7 ।।

कंस से रोज-रोज कष्ट सहने वाले आपकी सेवा करने में हम असमर्थ थे। इतने दिन हम आपकी सेवा किए बिना व्यर्थ समय गवाये ।। 8 ।।

माता जी, और पिता जी हम छोटे थे, पराधीन थे इसके कारण आप कष्ट में रहते हुये भी आपके कष्टों को हम दूर नही कर सके। आप दुःखित होते हुये आपकी सेवा नही कर पाये। इसके

लिये आप हमको क्षमा करिये ।। 9 ।।

श्रीकृष्ण अपने को छोटा और सामान्य जीव के रूप में माता-पिता के सामने प्रेषित करते हैं। वे सर्व गुण पूर्ण हैं, आनन्दमय हैं, सर्वेश हैं। उनमें अल्पज्ञत्व, अल्पशक्तित्व इत्यादि दोष कहाँ आते हैं। यह वामन पुराण का वाक्य है।

अपनी इच्छा से मनुष्य रूप धारण किये हुये सर्वांतर्यामी श्रीकृष्ण की इन बातों से वसुदेव देवकी मोह से अपना पुत्र मानकर दोनो को गोद में ले लिये। आनन्द से, आनन्द वाष्प गिरने लगे। उनके गले अवरुद्ध हो गए। वे कुछ भी बोल नही सके। चुप बैठ गये ।। 10-11 ।।

भगवान श्रीकृष्ण अपने माता-पिता को इस प्रकार समाधन करते हुये बाबा उग्रसेन को पुनः यादवों का राजा बनाये ।। 12 ।।

श्रीकृष्ण उग्रसेन को जेल से मुक्त किये। उनसे कहे हे राजा, आप प्रजाओं को सम्भालते हुये ठीक तरह से राज्य चलायें। हमको समय-समय में योग्य आज्ञा देते रहें। ययाति राजा के शाप से हम यादव सिंहासन पर नहीं बैठ सकते। मैं सेवक होकर आपकी सेवा करता हूँ। देवता लोग भी आपको नमन करते हुये नजराना देते हैं। और राजाओं के बारे में क्या कहे ।। 13-14 ।।

सारे जगत के सम्राट को उस मथुरा नगरी का राजा बनने से क्या है। इसी कारण उग्रसेन को मथुरा का राजा बनाये। भगवान जो कार्य करते हैं वह सारे अन्य लोगों के हित के लिये होता है। उनको किसी कार्य में अपनापन स्वार्थ नही है।

श्रीकृष्ण की आज्ञा को मानते हुये उग्रसेन सिंहासन पर बैठ गया। उसके जगतकर्ता भगवान श्रीकृष्ण कंस के भय से दस दिशाओं में भाग गया हुआ यदु, वृष्णि, अन्धक, मधु, दाशार्ह, कुकर इत्यादि अपने ज्ञाति बान्धवों को, कुल सम्बन्धियों को वापस बुलाये। परदेशवास से दुःखित हुये उनका सत्कार करते हुये उनको धन-धान्य सम्पदाओं को देकर उनको घर में ठीक तरह से बसाये।। 15-16 ।।

श्रीकृष्ण अपने माता-पिता को जेल के बन्धन से मुक्त किये। वे भगवान के रूप में श्रीकृष्ण को न देखे केवल अपने पुत्र माने इस दृष्टि से उनको अपनी माया प्यार और ममता के बन्धन में बाँध दिये। माँ के सामने श्रीकृष्ण कहते हैं मुझे केवल आपका पुत्र माना गया है। मैंने आपकी सेवा नही किया। मैं आपका पुत्र कहने के योग्य नही हूँ। तब वसुदेव कहते हैं।तुम हमारे ऊपर के प्यार से यदुवंश में हमारे पेट से जन्म लेकर अवतार लिये हो। यही हमारा बड़ा भाग्य है। दुष्ट कंस को और दैत्यों को मार कर हमको सुख दिये हो। इससे बढ़ कर पुत्र को और क्या सेवा करना है।

देवकी श्रीकृष्ण को आलिंगन करते हुये कमल के समान वाले हाथों को फूल माला के समान उसके गले में डालते हुये आँखों के अश्रु जल से अभिषेक करते हुये, स्तन में निकल आये दूध से नैवैद्य करते हुये प्यार से खुले हुये आंखों से देखते हुये आरती करते हुये मोक्ष योग्य बनी।

उस दिन से सारे यादव श्रीकृष्ण बलराम के भुज पराक्रम की छत्र छाया में सुरक्षित होकर सारे अभीष्ट को पाते हुये उनके अनुग्रह से सारे दुख को दूर किये हुये मुक्त के समान मथुरा में रहने लगे ।। 17 ।।

सदा सन्तोष भरित कान्तियुक्त, दयापूरित, हसन्मुख दृष्टि वाले भगवान श्रीकृष्ण के मुख कमल को देखकर आनन्द भोग में रहे ।। 18 ।।

मुकुन्द के मुख कमल के मधुर रस को आँखों से पुनः पुनः पीकर वृद्ध लोग भी तरुण के समान ओज तेज से युक्त होकर चलने लगे ।। 19 ।।

हे राजा :- एक बार भगवान श्रीकृष्ण बलराम के साथ नन्द गोप के पास आकर उनका अभिवादन करते हुये बोले ।। 20 ।।

हे पिता जी, आप बहुत प्यार से हमारा पालन-पोषण किए हैं।हमारे माता-पिता से भी बढ़कर हमको प्यार से पाले हैं ।। 21 ।।

आप हमारे लालन-पालन को अपने सही माता-पिता से बढ़कर किये है। आप ही हमारे निजी माता-पिता बने है ।। 22 ।।

पिता जी, अब आप गोकुल को वापस चलिये। हम यहाँ सुख से रहते हैं। आप वहाँ सुख से रहें। जब जब आपकी याद आती है तब हम हम आपके पास आ जायेंगे। अथवा जब आपको और आपके लोगों को हमारे विरह का दुख होता है तब निश्चित रूप से आपके दर्शन के लिये अवश्य आयेंगे ।। 23 ।।

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण नन्द गोप को समाधान करते हुये वस्त्राभरण, बर्तन और अन्य आवश्यक साधनों को देते हुये उनके साथ गोपालकों को भी सत्कार किये ।। 24 ।।

श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर नन्द गोप प्रेम से भाव-विभोर होकर श्रीराम कृष्ण को आलिंगन करते हुये आँखों में आंसू भरकर गोपालकों के साथ गोकुल को चले गये ।। 25 ।।

राजा, इसके बाद वसुदेव ने पुरोहित गर्गाचार्य को बुलाकर ब्राह्मणों से सविधि राम कृष्ण का उपनयन करवाया ।। 26 ।।

श्रीकृष्ण के उपनयन के लिये वशिष्ठ, अत्रि, च्यवन, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह इत्यादि ऋषिगण आये थे। श्रीकृष्ण का उपनयन देखने से उपनयन का मूल कारण बनने वाला जन्म को छोड़कर मुक्ति पा सकते हैं। इस विचार से सारे लोग आये थे।

नामकरण किये गर्ग मुनि श्रीकृष्ण को गायत्री मंत्र का उपदेश दिये। इस उपदेश से मुझको सद्बुद्धि दो। इस प्रकार श्रीकृष्ण से प्रार्थना किये।

गायों को रेशम का वस्त्र पहनाते हुये फूल माला को चढ़ा कर सोने के हार को पहना कर अलंकृत गायोंको बच्चे के साथ ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूप में दिया ।। 27 ।।

श्रीकृष्ण राम के जन्मदिन के दिन वसुदेव ने गोदान किया। उसके साथ कंस ने अन्याय से ब्राह्मणों का जो वित्त छीना था उसको वापस दे दिया ।। 28 ।।

श्रीराम कृष्ण उपनीत बनकर विजयत्व को पाये। यदुवंश के कुल पुरोहित गर्गाचार्य उनको गायत्री और ब्रह्मचर्य की दीक्षा दिये। अग्नि सेवा का व्रत भी सिखा दिये ।। 29 ।।

उपनयन के बाद नूतन वटु गुरुकुल को जाने के पहले उसे तीन दिन तक गायत्री मन्त्र का अध्ययन कराना

चाहिये। यह गायत्री ब्रह्मचर्य व्रत होता है। गायत्र, ब्राह्म, प्राजपत्य, बृहद इस प्रकार चार तरह के ब्रह्मचर्य होते हैं। गायत्र ब्रह्मचर्य इसमें एक है।

श्रीकृष्ण प्रतिदिन गायत्री जप अग्नि कार्य करते थे। श्रीकृष्ण को इस बालरूप में देखकर लक्ष्मी लज्जित हो गयीं। सूर्य को व्यथा हो गई। **हृद्रोगं मम सूर्या** इस मंत्र से प्रार्थना करते थे। इससे बड़े लोग से अपनी प्रार्थना करने से सूर्य को दुख होता था। वैसे ही **मयिमेधां, मयि प्रजां, मय्यग्निः तेजो दधतु** इस मंत्र को बोलने से अग्नि को व्यथा होती थी। लोक शिक्षण, लोक विडम्बना के लिये भगवान ये सारे नित्य कार्य बिना चूक करते थे।

राम कृष्ण सर्वज्ञ हैं, जगदीश्वर हैं, सकल विद्या को जानते हैं, निर्मल ज्ञान वाले है। इतने होते हुये भी वे मनुष्य के समान आचारण करते हुये अपने ज्ञान को छिपा कर गुरुकुल वास किये ।। 30 ।।

वे गुरुकुल वास के लिये उज्जयिनी पुरवासी कश्यप गोत्र के सांदीपनि नाम के मुनि के पास आये ।। 31 ।।

विधिपूर्वक गुरूपसत्ति करते हुये इन्द्रिय निग्रह के साथ भक्ति युक्त होकर गुरु को भगवान के समान आदर से देखते हुये गुरु के पास शिष्य कैसे बर्ताव करें। इस एक आदर्श को लोक को दिखाते हुए गुरु के पास रहने लगे ।। 32 ।।

शुद्ध भाव भक्ति से मिली हुयी उनकी सेवा से सन्तुष्ट हुए ब्राह्मण श्रेष्ठ सांदीपनि उनको चारों वेद उनके षडंग, सकल उपनिषद के साथ अस्त्र-शस्त्र विद्या युक्त धनुर्वेद को, न्याय शस्त्र, मीमांसा शास्त्रों को सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय नाम के छः तरह की राजनीति का उपदेश दिये ।। 33-34 ।।

हे राजा :- सारे शास्त्रों के आदि प्रवर्तक देवोत्तम श्रीराम कृष्ण अपने गुरु से एक बार मात्र कहे हुये विद्याओं को पूर्ण रूप से ग्रहण किये ।। 35 ।।

श्रीकृष्ण बलराम हाथ में समिधा लेकर गुरु के पास आकर उसको दे दिये। इस समिधा को पाकर इस संसार नाम के अरण्य को ज्ञान नाम की अग्नि से जलाये। यह अर्थ होता था। विद्या सीखने के निमित्त से गुरु को मोक्ष देना उनका उद्देश्य था।

वे अपने गुरु के पास चौसठ दिन रह कर चौसठ विद्याओं को करगत किये। हे राजा इस प्रकार सारी विद्या और अस्त्रों की जानकारी करने वाले राम कृष्ण अपने गुरु को क्या गुरु दक्षिणा दे इसके बारे में प्रार्थना की ।। 36 ।।

हे राजा :- सांदीपनि मुनि राम कृष्ण की अद्भुत महिमा और अतिमानुष शक्ति को जानकर पत्नी के साथ विचार विमर्श करने के बाद प्रभास क्षेत्र में महासमुद्र में डूब कर मरे हुए अपने पुत्र को वापस लाने के लिये कहे ।। 37 ।।

राम कृष्ण उसको स्वीकार करते हुये महारथी वे दोनो रथ के ऊपर चढ़कर प्रभास को चले गये। वह समुद्र के तट पर बैठ गये। समुद्रराज उनको नजराना लाकर समर्पित किया ।। 38 ।।

तब भगवान बोले :- हमारे गुरु पुत्र को तुम लेकर गये हो। उसको वापस लेकर आओ ।। 39 ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौवालिसवाँ

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ॥

श्री शुक जी कहते हैं - उद्धव यादव में श्रेष्ठ था। वह वृहस्पति का अवतार था। वह श्रीकृष्ण का स्नेही, मंत्री और शिष्य भी था। वह महाबुद्धिशाली था ।। 1 ।।

एकान्त भक्त अत्यन्त प्रिय उद्धव को शरणागत दुःखित लोगों का दुःख दूर करने वाले भगवान श्रीकृष्ण हाथ पकड़कर कहते हैं।।2।।

श्रीकृष्ण कहते हैं :- हे मित्र, तुम गोकुल को जाओ। वहाँ जाकर हमारे माता-पिता और गोपियों को सुख का सन्देश दो। मेरे सन्देश की बातों को बोलकर मेरे वियोग दुःख को उनसे दूर करो।।3।।

गोपिकाएँ मुझमें ही मन रखी हैं। वे मुझको अपने पाँचों प्राण समझती हैं। मेरे लिये अपने साधन शृंगार और लज्जा को भी छोड़कर मेरे पास आने वाली हैं। मुझको इष्टदायक स्वामी और श्रेष्ठ मित्र मानकर मुक्त मन से मेरे पास आयी थीं।।4।।

जो लोग मेरे लिये इस लोक और परलोक के कर्म को करते हुये मुझको ही उनको समर्पण करते हैं मैं उनका पोषण करता हूँ। उन स्त्रियों को मैं सबसे प्रियकर हूँ। अब मैं दैहिक रूप से उनसे दूर रहते हुये भी वे मेरे मन में हैं।।5।।

उद्धव, वे सदाकाल मेरा स्मरण करती रहती हैं। विरह से उत्कण्ठित होकर विह्वलता से स्वयं को भूल जाती हैं। बहुत कष्ट से जीवनयापन कर रही हैं।।6।।

मुझमें तन्मय रहने वाली उन गोपियों के पास मैं वापस आने वाला हूँ, इस सन्देश को बोलते हुये उनको समाधान करो ।।7।।

हे राजा, श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर भाग्यशाली उद्धव आदर से अपने प्रभु के सन्देश को सिर से ढ़ोते हुये रथ के ऊपर चढ़ते हुये सूर्यास्त के समय नन्दकुल में प्रवेश किए।।8।।

गोकुल को वापस आती हुयी गायों के पांव से उठी हुयी धूल से उद्धव का रथ ढ़क गया। गायों का संग चाहने वाले साड़ आपस में स्पर्धा करते थे। गाय और साड़ की ध्वनि सारे गोकुल में

निनादित होती थी।।9।।

गाय थन के भार से मन्द पद रखती हुयी आती थीं। किन्तु अपने बच्चों को देखकर उनको दूध पिलाने के लिये दौड़ रही थीं। इधर-उधर भागने वाले उथल-पुथल करने वाले गाय के बच्चों से गोकुल भर गया था ।। 10 ।।

गायों को दुहाने वाली आवाज सारी ओर ध्वनित होती थी। गोपालकों का वेणुगान गूँज रहा था। सुचारू रूप से अंलकृत गोपिकाएँ श्रीराम कृष्ण के मंगलकारी लीलाओं का गुणगान कर रही थीं। गोपालक अग्नि, सूर्य, अतिथि, गाय, विप्र, पितृ और देवताओं की अर्चना कर रहे थे। गोप-गोपियों से भरा हुआ गोकुल इन्द्रलोक जैसे शोभायमान था ।। 11-12 ।।

गोपालक गाय चराने वाले अनागरिक गँवार लोग हैं। ऐसे समझना गलत है। देव-देवता गोपालक होकर अवतार लिये थे। वे वैश्य थे, वेदाधिकारी थे, शास्त्राध्ययन करते हुये अग्नि, सूर्यादि की उपासना करने वाले थे।

गोपालक धूप-दीप और माला से अग्नि, सूर्यादि की आराधना कर रहे थे। उससे उनका घर शोभायमान हो गया था। पक्षी और भँवरे आवाज करते हुये फूल-फल भरित वन में गुंज रहे थे। हंस, कारण्डो से और कमल पत्रों से भरा हुआ सरोवर वन इत्यादि को देखते हुये गोकुल को श्रीकृष्ण के प्रिय सेवक उद्धव आ गए। उनको देखकर सन्तुष्ट हुए गोकुलवासी आनन्द से उनका आलिंगन किए। श्रीकृष्ण के मित्र उसको कृष्ण ही समझ लिए। उसको परमान्न से भोजन कराते हुये आसन पर बिठा कर कुशल प्रश्न किए।। 13-14-15-16 ।।

नन्द कहते हैं - हे भाग्यशाली उद्धव, हमारे मित्र वसुदेव जेल से मुक्त हो गए हैं न। अपने पत्नी-पुत्र और बन्धु बान्धव के साथ चैन से रह रहे हैं न।।17।।

पापी कंस अपने पाप के फल रूप से, उनके पाप के कारण नष्ट हो गया यह हमारा भाग्य है। वह सज्जन और धार्मिक यादवों को सदाकाल के लिये द्वेष करता था ।। 18 ।।

हमारे श्रीकृष्ण हमको, अपनी माताओं को, बन्धु मित्रों को, गोपालकों को और उन्हीं को रक्षक रूप में विश्वास रखता हुआ गोकुल और गायों को वृन्दावन और गोवर्धनगिरि को याद करते हैं न ।।19।।

गोविन्द हमको और हमारे बन्धुओं को देखने के लिये कभी आ सकते हैं क्या। उसकी सुन्दर नाक, आर्कषक हंसी और तिरछी नजर युक्त उसके मुख को हम पुनः देखना चाहते हैं।।20।।

महात्मा कृष्ण ने हमको दावानल से, बरसते हुये पानी से, वृषभासुर, कालिया नाग और अनेक मृत्युदूतों से हमारी रक्षा की है ।। 21 ।।

उद्धव, हम सदाकाल श्रीकृष्ण के पराक्रम को उसके हास्य भरी बातों को याद करते रहते हैं। उनके यहाँ से जाने से हमारे सारे काम-काज रूक गए हैं।।22।।

वह यमुना का तट, वह गोर्वधन पहाड़, वह वृन्दावन का मैदान, खेलना व कुश्ती करने वाली जमीन ये सारे मुकुन्द मुरारी के सुन्दर पांवों के चिन्हों से सुशोभित हैं। उनको देखते ही हमारा मन उन्हीं में तन्मय हो जाता है ।।23।।

देवोत्तम श्रीकृष्ण यहाँ महान देव कार्य के लिये अवतार लेकर आये हैं यह बात हमें मालूम है। गर्गाचार्य इसको बहुत पहले कह चुके हैं।।24।।

दस हजार हाथी के बल वाले कंस, चाणूर, मुष्टिक और कुवलयापीड आदि को सिंह द्वारा अन्य जीवियों को मारने के समान विनायास से राम कृष्ण मार दिये ।। 25 ।।

तीन सौ हाथ लम्बे वाले बहुत बड़े और बलशाली शिव धनुष को श्रीकृष्ण ने हाथी द्वारा गन्ने को तोड़ने के जैसे तोड़ दिया। वही श्रीकृष्ण एक ही हाथ से गोवर्धन पर्वत को सात दिनों तक उठा कर खड़े थे।।26।।

प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, तृणावर्त, बक इत्यादि दैत्य दानव को वे दोनों जीत लिये। सारे राक्षसों को वे लीला से मार दिये।।27।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - श्रीकृष्ण में अनुरक्त हृदय से नन्द गोप इस प्रकार श्रीकृष्ण को याद करते हुये भाव विभोर होकर चुप हो गए। आगे बोल नही सके।।28।।

यशोदा दोनो के पीछे बैठकर अपने पुत्र की लीलाओं को नन्द गोप द्वारा एक एक करके बोलते वक्त उनको सुनते-सुनते आँखों से आंसू बहा रही थीं। उसके पुत्र वात्सल्य से उसकी छाती में दूध भर गया।।29।।

इस प्रकार नन्द यशोदा को भगवान में रहने वाले प्रागढ़ प्यार को देखकर उद्धव आनन्द विभोर होकर बोलने लगे।।30।।

उद्धव बोलते हैं - हे मान्य, नन्दगोप शरीर धारण किये हुये लोगों में आप ही धन्य हैं। आप लोकगुरु नारायण में अनन्य प्यार करते हैं।।31।।

ये राम कृष्ण इस जगत के बीज रूप में रहने वाली प्रकृति को प्रेरणा देने वाले हैं। मूल प्रकृति को स्वतंत्र प्रेरक हो कर श्रीकृष्ण उससे निर्माण हुए अहंकार तत्व के अभिमानी प्रेरक शेषावतार बलराम ये दोनो कर्तृ हैं । ये दोनो इच्छा-पूर्वक सृष्टि करते हैं। श्रीकृष्ण जीवियों में स्वतंत्र होकर रहते हुये नियंत्रण करते हैं। जीवाभिमानी, मनोभिमानी, शेष उनके अधीन होकर जीवियों का नियंत्रण करते हैं।

शरीर से प्राण बाहर जाते समय ज्ञानी अपने शुद्ध मन को एक क्षण के लिये श्रीकृष्ण में रखे तो सारे बन्धन को तोड़ कर वह परमगति मोक्ष को पाता है। परमब्रह्म नारायण का दास होकर

सूर्य के समान प्रकाशित होता है ।। 33 ।।

ऐसे मोक्ष देने वाले सबके अर्न्तयामी भगवान भूभार हरण के लिये मनुष्य रूप से व्यक्त होकर आये हैं। ऐसे महात्मा नारायण में आप भक्ति कर रहे हैं, इससे बढ़ियाँ काम आपको क्या करना है ।।34।।

यदुपति भगवान श्रीकृष्ण थोड़े समय में गोकुल को आने वाले है। माता पिता आपको सन्तोष करने वाले हैं।।35।।

सारे यादवों के लिये शत्रु बने हुए कंस को रंगस्थल में मारने के बाद आप लोगों को देखने के लिये आपके पास आऊंगा। श्रीकृष्ण इन बातों को आपके सामने पहले ही कहे थे। उनको सत्य करने के लिये वे जल्दी आ रहे हैं।।36।।

हे महाभाग्यशाली, आप दुःखित न हो जायें। आप अपने हृदय में सदा के लिये भगवान को देख सकते हैं। वह लकड़ी में रहने वाली आग के समान सारे जीवियों में रहते हैं।।37।।

वे अभिमान रहित हैं। उनके लिये कोई अतिप्रिय नही है, अप्रिय भी नही है। योग्यता के अनुसार वे सबको समानता से देखते हैं। उनसे बड़ा कोई भी नही है। वे किसी के समान नही हैं। अधम कभी नही हो सकते ।।38।।

शुल्क श्रोणित के मिश्रण से होने वाला पार्थिव शरीर उनका नही है। इसके लिये उनको न माता है, न पिता। वह स्वरमरण हैं इसके लिये उनको न पत्नी है, न पुत्र। इसके लिये उनको न कोई अपना है और न कोई पराया है। उनको न जनन है, न मरण, न देह है, न कर्म है ।।39।।

वसुदेव देवकी भी आपके समान वे नाम मात्र के माता पिता हैं। इसी के कारण वे आपसे श्रेष्ठ या कनिष्ठ नही हैं।

इस लोक में सात्विक देव योनि में, तामस तिर्यग् योनि में, मिश्र जीव में मनुष्य होकर जन्म वे लेते हैं वह केवल लीला के लिये है। वे सज्जनों की रक्षा के लिये ये अवतार लेते है।। 40।।

भगवान का अन्यान्य योनि में अवतार लेने का अर्थ अपने चिन्मय रूप को उस काल में केवल व्यक्त करना है। अन्यों की तरह जन्म लेने जैसा नहीं।

भगवान बिना कष्ट सारे कार्य करते हैं। जनन रहित सर्वोत्तम श्रीहरि त्रिगुण से बद्ध नही हैं। फिर भी वे सत्व रज तम नाम के इन तीन गुणों को सृष्टि कार्य में उपयोग में लाते हैं। खेल खेलते अपने अधीन इन तीन गुणों से सृष्टि स्थिति लय तीनों को करते रहते हैं।।41।।

भगवान श्रीकृष्ण केवल आप दो के लिये ही पुत्र नही हैं। वे सारे लोगों के पुत्र हैं। जो भक्ति से भगवान को याद करते हैं, भगवान उन्ही के मन में व्यक्त होते हैं। वे ही सारे जीवों की आत्मा हैं। माता-पिता के रूप में रहते हुये सभी के सुख देने वाले वे ही प्रभु है।।42।।

पुन्नाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः पुन्नाम नरक से उद्धार करने वाला पुत्र होता है। हमें जन्म दिया हुआ पुत्र हमकों नरक से उद्धार करने में असमर्थ है। भगवान नारायण ही सबकों उद्धार करने वाले प्रभु हैं। इसके लिये वे सब के पुत्र हैं।

लोक में सुना हुआ आगे सुनने वाला भूत, भविष्यत् वर्तमान, स्थावर, जंगम, बड़ा छोटा सारी वस्तु अच्युत् को छोड़कर अलग स्वतंत्र रूप से नही रहती। सबके वे ही स्वामी हैं। केवल वही सर्वोत्तम हैं।।43।।

जिसमें सामर्थ्य नही है उसको अवस्तु कहते हैं। जिसमें शक्ति है उसको वस्तु कहते हैं। यह अमर कोश का वाक्य है। भगवान को छोड़कर कोई वस्तु स्वतंत्र रूप से रह नही सकती, स्वतंत्र रूप से व्यवहार कर नही सकती। इसके लिये परमार्थ का अर्थ ही परम अर्थ यानि उत्तम वस्तु, सर्वोत्तम ही होता है।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा, इस प्रकार उद्धव और नन्दगोप द्वारा श्रीकृष्ण के बारे में परस्पर बातें करने में पूरी रात चली गई। सुबह होने लगी, गोपियाँ उठकर दीप को जला कर रंगोली डाल कर दही का मंथन करने लगीं।।44।।

उनसे धारण किए हुए आभरण में रहने वाले रत्न, दीप के प्रकाश में चमकने लगे। दही को मंथन करते समय रस्सी को खींचते हुये उनके हाथ के कंगन चल कर आवाज किये। उनके नितम्ब स्तन और हार हिलने लगे। कुण्डल से शोभायमान गाल लाल रंग से शोभित हुआ।।45 ।।

कमल नयन श्रीकृष्ण की कीर्ति को गोपियाँ तार स्वर में गाने लगीं। वह स्वर आकाश को छू रहा था। उसके साथ दही को मंथन करने वाला मिलकर सारी दिशाओं के अमंगल को मंगल किया।।46।।

भगवान सूर्य पूरब दिशा में उदित हुए। उस समय में गोकुल के द्वार के सामने खड़ा हुआ सोने के रथ को देखकर गोकुलवासी उसके बारे में पूछने लगे ।। 47 ।।

कमल नयन हमारे कन्हैया को मथुरा को ले जाने वाला कंस का कार्य साधक क्रूर-अक्रूर और दुबाश आया है क्या। हमको यह पहले ही मार कर गया है। अब हमको लेकर उस कंस के प्रेत को खिला कर उसको तृप्ति देने आया है क्या। इस प्रकार गोपियाँ आपस में बात करती रहीं। इतने में उद्धव अपने नित्य कर्मानुष्ठान करने के बाद वहाँ आ गया ।। 48-49 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पैंतालिसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

भ्रमर गीता

श्री शुक जी कहते है - गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण के सेवक उद्धव को देखा। वे उनके आजानुबाहु शरीर, कमल के समान कान्तियुक्त आंख और मुख वाला पीताम्बर धारी कमल की माला को पहने हुये सोने के समान शोभायमान कर्ण-कुण्डलधारी उद्धव को देखा ।।1।।

उनको देखकर गोपियों को आश्चर्य हुआ। यह कौन है ? श्रीकृष्ण के समान वेष-भूशा किए हुए है, सुन्दर है।यह कहाँ से आया होगा। किसका सम्बन्धी है। इन सारे विषयों को जानने के कुतूहल से श्रीकृष्ण के पद कमल के आश्रय में रहने वाले उद्धव को वे घेर लिये ।।2।।

उद्धव श्रीकृष्ण के सन्देश को ले आया है, इसको जानते ही वे लज्जा से नतमस्तक होकर तिरछी आँखों से बार बार उसको देखते हुये प्यार से उससे बाते करते हुये एकान्त में उन्नत स्थान के ऊपर उसको बैठाकर भक्ति भाव से उसके सामने सिर झुककर बैठ गयीं।।3।।

सुना है आप श्रीकृष्ण के उत्तम सेवक और परम भक्त हैं। आप उनकी सेवा सदाकाल करते रहते हैं। अपने माता-पिता को समाधान करने के लिये प्रभु ने आपको यहाँ भेजा है न ?।।4।।

नहीं तो इस गोकुल में उस नन्द लाल को और याद करने के लिये क्या है। हमारी याद उसको कैसे आती है। बन्धुओं की याद तो सन्यासी को भी नही छोड़ती।।5।।

अन्य हमारे जैसे लोगों में करने वाला प्यार स्वार्थ के उद्देश्य से होता है। स्त्रियों में पर पुरुष करने का प्यार, फूलों में भौरे के समान रहता है। जब तक स्त्री - सुख मिलता रहता है, तब तक वह प्यार रहता है। जब तक फूल में मकरन्द रहता है तब तक भौरा फूल से प्यार करता है।।6।।

इसी कारण पैसे न रहने वाले विट को वेश्या छोड़ देती है, दुर्बल राजा को प्रजाजन छोड़ते हैं, शास्त्राध्ययन किए हुए शिष्य को गुरु छोड़ता है, दक्षिणा देने के बाद यजमान को ऋत्विज को छोड़ते है ।। 7 ।।

वृक्ष में फल न रहे तो पक्षी छोड़ देते हैं, भोजन के बाद अतिथि घर से चलते हैं, जंगल जल जाने के बाद मृग अन्य जंगलों में जाते हैं, वैसे ही जारपुरुष स्त्रियों से रमण करने के बाद उनको छोड़ के जाता है ।। 8 ।।

इस प्रकार प्रणय कोप से श्रीकृष्ण से आक्षेप करने वाली गोपियों ने अपनी बात, शरीर के अन्य व्यापार को भी श्रीकृष्ण में समर्पण करते हुये, अन्य पुरुष के सामने अपने कपड़ा का भी ध्यान न रखते हुये कृष्ण में प्यार रखी। गोपियों को देखकर उद्धव को आश्चर्य हुआ ।। 9 ।।

वे श्रीकृष्ण के शैशव और बाल्य काल की लीलाओं को प्यार से याद करते हुये लज्जा छोड़कर गाते हुये आँखों से आंसू बहा रही थीं। उसको उद्धव ने देखा ।। 10 ।।

एक गोपी श्रीकृष्ण के समागम के बारे में विचार करते हुये वहाँ गूँज रहे एक भ्रमर को उद्देश्य करते हुये श्रीकृष्ण से अपने को बुला लाने के लिये भेजा हुआ दूत समझते हुये उसको कहती है।। 11 ।।

गोपिका कहती है कि हे भौरा तू वंचक है, तुम कृष्ण की तरफ से आए हो न। हमारी सौत इन मथुरा की नारियों के कुच में हिलने वाली फूल माला को तुम अपनी मूछों से छूना चाहते हो। उसको छूकर उसी से तुम हमको छुओ मत। छू कर हमको इस कृष्ण के पास लेने का प्रयास मत करो। तू कृष्ण के दूत हो न। तू वही करने हमारे पास आये हो न। वह भले मथुरा की माननीयों से अपने प्यार का खेल खेले। अपने अनुग्रहों से उनका उद्धार करे। वह यादवों के स्त्रियों में उसको बोलने के लिये एक विडम्बना का साधन हो सकता है। गँवार हम लोगों के लिए उससे किया हुआ अनुग्रह को हम बोले तो वह उसके लिये अवमानकर होगा न ।। 12 ।।

गोपियों के हृदय के अन्दर की इस बात का अर्थ इस प्रकार होता है। हे भौरा महालक्ष्मी हमारी सौत होती है। उनके स्तन के ऊपर रहने वाली फूल माला को तुम छू कर आए हो। हमको छूने से तुम्हारा क्या मतलब है। लक्ष्मी जी के आवेश वाली मथुरा की स्त्रियों के ऊपर उसका अनुग्रह रहे। यह प्रणय प्रसंग पवित्र है। इसको रुद्रादि देवताओं की सभा में भी गौरव दिया जाता है। तू भी ज्ञानी है। तुम हम सब में रहने वाले रमारूप को देखों।

तुम्हारे कृष्ण केवल एक बार अपने अधरामृत को दिखाकर हमें मोह में गिराने वाले फिर कभी हमारे पास नही आए। फूल के समान हमको छोड़कर श्रीकृष्ण के सिवाय और कौन जा सकता है। नये नये फूल को ढूढ़ते जाने वाला तुम्हारा श्रीकृष्ण तुम्हारे लिये योग्य मित्र है। ऐसे श्रीकृष्ण के पद कमल की सेवा को श्री महालक्ष्मी सदा के लिये कैसे करती रहती हैं। हाँ सही है, वह भी हमारे जैसे श्रीकृष्ण की सरस बातों से मोहित हो चुकी हैं ।। 13 ।।

हे भृंग, हम घर-जमीन न रहने वाले जंगली लोग है। हमारे सामने तुम्हारे कृष्ण की लीलाओं के बारे में क्यो गा रहे हो। मथुरा में जाकर उसकी नयी सहेलियों के सामने अपना गान गाओ। श्रीकृष्ण उनको आलिंगन देकर उनके हृदय के सन्ताप को दूर कर रहा है। उनके सामने गाने से वे वह कृष्ण के यशोगान को सुनकर सन्तुष्ट होकर तुम जो चाहते हो उसको दे सकती हैं क्योंकि वे नगरवासी हैं। गाँव में रहने वाली हम क्या दे सकते हैं ।। 14 ।।

यहाँ कृष्णलीला इस शब्द से व्यंग्यार्थ में कुकृत यह अर्थ होता है। किन्तु भक्ति युक्त अर्थ में आकर्षण वाला काम करने वाला यह अर्थ होता हैं।

श्रीकृष्ण को उसके कपोल, आकर्षक हंसी और उसके भौं के इशारा को वश न होने वाली स्त्री, स्वर्ग, भू, पाताल इन तीनों लोको में कौन मिलती है। साक्षात् महालक्ष्मी उसकी पादधूलि का सेवन करती है। उनके समान हम कहाँ। वह एक बार भी हमारे पास नही आता है। हम दीन लोग उसके कृष्ण कृष्ण इस नामजप के सिवाय और क्या कर सकती हैं। किन्तु उस नाम जप करते तक हमें कुछ दुख नही रहता ।। 15 ।।

तुम अपने ऊपर रखे हुये मेरे पाद को छोड़ दो। मुझे मालूम हो गया है तुम भी कृष्ण के समान वंचक हो। मुझे मालूम है, अपने रंगोरंग मनमोहक बातों को छोड़ दो, यही बस है। कृष्ण के दूत बनकर आए हो न, तुम उसी के पास चले जाओ। हम अपने पति सुत बान्धव को उसके लिये छोड़कर उसके पास आये तो वह कृतघ्न हमकों छोड़कर चला गया है। उसके साथ राजी करने का क्या है। यहाँ तुम्हारा कुछ नही चलेगा। तू यहाँ से चले जाओ ।। 16 ।।

कृष्ण वंचक है। रामावतार में वृक्ष के पीछे खड़े होकर वाली को मार दिया। पत्नी सीता के वश में होकर इसके प्यार को पाने के लिये आई हुयी शूर्पनखा को विरूप कर दिया। दान माँग कर बलि को पाताल में रख दिया। इस भगवान की कीर्ति को वेद जानने वाले लोग गाते रहते हैं। कृष्ण रंग से केवल काला नही है, उसका गुण भी काला है। इस कृष्ण के साथ हम किसी तरह से राजी करना नही चाहते हैं। किन्तु उसकी लीला के संकीर्तन से मिलने वाले सुख को हम छोड़ नही सकते ।। 17 ।।

भगवान श्रीकृष्ण दुष्टजनों को वंचक बने है। वाली निग्रह इत्यादि कार्य दुष्टों को गलत लगता है। कृष्ण से राजी होने के लिये तैयार नही हैं, यह कहना प्रणय कोप का परिणाम है। यह सारे निन्दा स्तुति हैं। गोपियाँ निन्दा करने जैसे भगवान की स्तुति कर रही हैं। आगे श्रीकृष्ण के वृतान्त को समझने की इच्छा से पूछती है।

श्रीकृष्ण के अवतार से चली आयी उनकी लीलाएँ हमें अमृत समान हैं। अमृत के एक बिन्दु

को एक बार सेवन करने से उनके रागादि दोष द्वन्द्व बुद्धि नाश होकर ज्ञान पाकर तृप्त रहकर मूल घर-गृहस्थी के अभिमान को छोड़ देती है। उनके सारे दुःख नाश होते हैं, वे कभी भी नाश नही होते। ज्ञानभिक्षा पाने के लिये भगवान नाम के आकाश में सदाकाल पक्षी के समान विहार करते है। ऐसे कृष्ण प्रत्यक्ष रूप में आकर हमको अपने हाथों से स्पर्श किया है, अलिंगन दिया है। इससे हमारे ऊपर उसके कारुण्य का प्रदर्शन होता है ।। 18 ।।

व्याध के संगीत से जैसे हिरण मोहित होता है वैसे ही हम श्रीकृष्ण से मोहित हैं। वह हमारे कान में **जिह्म** शब्द को सरस समय में हमारे कान में उसने सुना दिया। इस सरस उक्ति को हम सत्य मान लिये। यह तो सत्य है जीवन में एक बार ही हो हम उससे अपने स्तनों के ऊपर नखक्षती को पाये हैं। हम उसके बारे में सुनाने के लिये आतुर हैं। उसके बारे में कहो ।। 19 ।।

हे प्रिय मित्र तुम हमारे प्रियकर के यहाँ से आये हो न। इसके लिये तुम हमारे से जो चाहते हो हम उसको देते हैं। तुम हमारे सत्कार के लिये योग्य हो। अच्छा बोलो, तुम हमको उसके पास ले जाने वाले हो न। अपने बन्धु उस कृष्ण को छोड़कर रहना हमारे हाथ से नही होता। सदाकाल उसकी छाती में रहने वाली महालक्ष्मी को भी उसको छोड़ना नही होता ।। 20 ।।

हे सौम्य, श्रीकृष्ण अब मथुरा में है न ? वहाँ यहाँ के अपने माता-पिता घर और गोपालकों को याद करते रहते हैं न ? अगरुचन्दन के परिमल से लिप्त उसके हाथ को एक बार हम पकड़े थे। उस हाथ को वहाँ और एक बार दासी हम लोगों के सिर के ऊपर रखता है न ? वहाँ कब रखता है, कहाँ रखता है और कैसे रखता है यह बताओ ।। 21 ।।

हे भँवरा, तुमको देखकर हमको श्रीकृष्ण की याद आती है। उससे सुख होता है, विरह का दुःख भी होता है। इससे हम तुम्हारे साथ रह नही सकते। तुम चले जाओ। तुम्हारे हाथ से हो सकता है तो उस कृष्ण को ले आओ। इस प्रकार असम्बद्ध संभाषण में उद्धव को एक भौंरा मानकर उसके सामने अपने विरह व्यथा को व्यक्त कर रही हैं। उनके विचार हमें असम्बद्ध रहते हुये भी विरह से लिप्त उनके भावों को हमे देखना है। इसके उत्तर रूप में उद्धव कहते हैं :- माताएँ, आपको सन्तोष देने के लिये मुझको भेजा है। मैं आपके हृदय में आपको भगवान का दर्शन कराऊंगा।

श्री शुकदेव जी कहते हैं :- गोपियों की इन बातों को सुनकर उद्धव भगवान के दर्शन की आकांक्षा रखने वाली गोपियों को भगवान का सन्देश सुनाते हुये इस प्रकार कहे ।। 22 ।।

हे माताओ, आपका मन भगवान में इस प्रकार पूर्ण रीति से लग गया है। आपही धान्य हैं। आपही लोक पूज्य हैं ।। 23 ।।

दान, व्रत, तप, होम, जप, यज्ञ, वेद अध्ययन, इन्द्रिय निग्रह और ऐसे ही श्रेय साधनों से श्रीकृष्ण में भक्ति का साधन कर सकते हैं ।। 24 ।।

आप लोग ब्रह्मादि लोगों से वन्दित भगवान श्रीहरि में उत्कट भक्ति किये हैं। यह भक्ति मुनियों के लिये भी दुर्लभ है ।। 25 ।।

गोपियों ने भगवान को पति के रूप में आराधना की । गोपियों की यह मधुर भक्ति मुनियों से या अन्यों से अयोग्य होने के कारण असाध्य है। गोपियों के अप्सराओं के अवतार होने के कारण उनके लिये यह साध्य हुआ।

दैवानुग्रह से आप पति, पुत्र, बान्धव घर शरीर सबको छोड़कर केवल कृष्ण नाम के परम पुरुष को स्वीकार किये हैं ।। 26 ।।

आप भगवान अधोक्षज को अपने पति, पुत्र, मित्र, बन्धु सब कुछ वही हैं इस रूप में सर्वात्मना भाव मिला है। आप महाभाग्यशाली हैं। विरह से आपका प्रेम पक्व हो गया है। भगवान ने आपके ऊपर यह परमानुग्रह किया है ।। 27 ।।

हे मंगलमयी देवताएँ, आपके लिये आपको सुख देने के लिये भगवान श्रीकृष्ण का सन्देश मैं लाया हूँ उसको सुनिये। भगवान ही स्वयं मेरे मुख से ये बाते कह रहे हैं ।। 28 ।।

श्री भगवान उवाच :- हे गोपियों सुनो। किसी काल में किसी तरह से आपको सर्वथा मेरा विरह होने वाला नही है क्योंकि इस स्थावर जंगम शरीरों में, आकाश-वायु, अग्नि-जल नाम के पंचभूतों में व्याप्त होकर मैं रहता हूँ। सबके प्राण मन, बुद्धि, इन्द्रिय इत्यादि में मैं नियामक होकर रहता हूँ। मुझको और किसी का आश्रय नही है। मैं ही अपना आश्रय बना हूँ। अपनी इच्छा के अनुसार देह मन इत्यादि को सृष्टि करता हूँ, रक्षा करता हूँ, संहार करता हूँ ।। 30 ।।

मेरा स्वरूप, इच्छा, सामर्थ्य से मैं पंचभूत इन्द्रिय और पदार्थों में व्याप्त होकर रहता हूँ। मैं सबका स्वामी हूँ, शुद्ध ज्ञानमय, गुणपूर्ण हूँ । इसी कारण स्वभूत इन्द्रियों से भिन्न हूँ। सुषुप्ति, स्वप्न, जागृति में इसका अनुभव आता है क्योंकि ये सारे जीव के अधीन न होते हुये मेरी इच्छा से होते रहते हैं ।। 31-32 ।।

ज्ञानियों की दृष्टि में इन सारे प्रमेयों को जानने के लिये वेद, योगाभ्यास, पंचरात्र, निष्काम कर्म, तप, इन्द्रिय निग्रह, सत्य इत्यादि चले हैं। नदी अन्त में समुद्र को जैसे जा मिलती है वैसे ही ये सारे मुझमें मिलते है ।। 33 ।।

मैं तुम लोगों की आँखों से दूर हो गया हूँ, यह तुम्हारे मन के नजदीक रहने के लिये, तुमको

मेरा ध्यान मिले इस उद्देश्य से ।। 34 ।।

स्त्री पुरुषों के लिये अपने प्यारे लोग जितनी दूर रहते है उतनी आसक्ति उनमें बढ़ती है। आँखों के सामने रहे तो वह बढ़ती नही ।। 35 ।।

इसके लिये सारे विषय पदार्थों की आलोचना छोड़कर सदाकाल मुझमें ही अपना मन रखते हुये मेरा ही ध्यान करने लगो तो आप जल्दी ही मुझको पाती हैं ।। 36 ।।

पिछले जन्म में आप मेरे बारे में बहुत ध्यान किये हैं। इस जन्म में गोकुल में रहते हुये भी घर-बार छोड़ते हुये मेरे साथ वृन्दावन में पूरी रात रास खेली हैं ।। 37 ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं :- भगवान श्रीकृष्ण के इस सन्देश को सुनकर गोपियों को ज्ञानोदय हो गया। वे सन्तुष्ट होकर उद्धव से कहती हैं ।। 38 ।।

गोपियाँ कहती हैं :- यादवों का शत्रु बना हुआ पापी कंस अपने परिवार के साथ मर गया, यह बहुत सन्तोष का विषय है। हमारे बन्धु के लिये इष्टार्थ मिल गया है। उनके साथ रहने वाले भगवान श्रीकृष्ण कुशल रूप से हैं न ? ।। 39 ।।

हे सौम्य मथुरा की स्त्रियों को उनके प्रणय लज्जाओं से शोभायमान हास्य से और आकर्षक दृष्टि से आराधित श्रीकृष्ण उनको सन्तोष देते हैं न ? ।। 40 ।।

प्रणय क्रीडा में अत्यन्त निपुण श्रीकृष्ण मथुरा की उन स्त्रियों के लिए प्रियकर बना हुआ होगा। उनकी बातों, श्रृंगार विलासों से वहाँ की स्त्रियाँ बन्धित हो गयी होगी ।। 41 ।।

हे उद्धव, मथुरा की स्त्रियों के साथ प्रणय क्रीडा करते समय श्रीकृष्ण हमारी भी याद करते हैं क्या ।। 42 ।।

सफेद कमल की चमेली के चन्द्र के प्रकाश के समान शुभ्र रहने वाला, वृन्दावन में हमारे पायल की घुघुरू की ध्वनि से भरे हुए रासलीला में मनोज्ञ भगवान सरस संभाषण करते हुये पूरी रात हमारे साथ विहर करता था। कभी उसकी याद करता है क्या ? ।। 43 ।।

जिनके प्रखर सूर्य के कारण सूखी हुयी जमीन को आकाश से पानी बरसा कर देवेन्द्र पुनः शक्ति देते हैं वैसे ही विरह दुःख से सूखे हुए गोकुल को अपने अंगस्पर्श से पुनः चेतन करने के लिये श्रीकृष्ण आने वाले हैं क्या ? ।। 44 ।।

वह क्यों यहाँ आता है। उनको वहाँ राज्य मिला है, शत्रुओं का नाश हो चुका है। नगर की नारियों के साथ विहार मिला है। सारे बन्धु उनके साथ रहते हैं ।। 45 ।।

वह लक्ष्मीपति स्वयं आप्तकाम हैं, पूर्णरूप हैं। ऐसे महात्मा को वन में रहने वाले हमारे से क्या मतलब है। उनको वह नगरवासी स्त्रियों से भी क्या प्रयोजन है ।। 46 ।।

आशाओं को छोड़ना परम सुख है। वेश्या पिंगला इस बात को कही है। इसको जानते हुये भी हम श्रीकृष्ण की आशा को छोड़ नही सकते ।। 47 ।।

वेश्या, पिंगला अन्तर्यामी रहने वाले भगवान को छोड़कर अन्य विट पुरुषों के लिये कामना कर रही हूँ। यह बात पिंगला नाम की वेश्या भागवत् में (11-08-30) सारे आशाओं को छोड़कर भगवान के बारे में चिन्तन करना ही परम सुख है ऐसे बोलती है। भगवान के शरीर के सम्बन्ध से अन्य आशाओं को वह दूर करती है। गोपियो को भी वैसे ही किये हैं। किन्तु विनय से ऐसा किये नही हैं। ऐसे कहते हैं। श्रीकृष्ण के अंग-संग का सुख इन्द्रिय सुख होने के कारण उसको भी विषय सुख मानते है वस्तुतः यह गोपियों के लिये अनिषिद्ध होने के कारण वह विषय सुख नही होता। उसको उन्हें त्यागने की कोई जरुरत नही है।

भगवान श्रीकृष्ण स्वरमण हैं। वह लक्ष्मी की भी आशा नही करते। तो भी लक्ष्मी उनके छाती से कभी भी दूर नही होती। ऐसे में उसके साथ एकान्त में बाते करने की आशा को कौन छोड़ सकता है ।। 48 ।।

हे उद्धव कृष्ण बलराम के साथ खेले हुये यह नदी, वन, पहाड़, कानन, गाय, वेणुध्वनि ये सारे हमको बार-बार श्रीकृष्ण की याद दिलाते हैं। सौन्दर्य के सागर उनके पाद-कमलों को भूलना हमारे से असाध्य हो गया है ।। 49-50 ।।

हे उद्धव, श्रीकृष्ण की सुन्दर बोल-चाल, आकर्षक हँसी, मोर की चलन, तिरछी नजर हमारे मन को मोहित कर चुके हैं। उनको हम कैसे भूलें ।। 51 ।।

इतना कहते हुये गोपियाँ श्रीकृष्ण के गुण-गान करने लगती हैं। हे नाथ, हे रमानाथ, हे गोकुल नाथ, हे दुःखों को दूर करने वाले गोविन्द आपको न देखते हुये दुःख सागर में डूबे हुये गोकुल को उद्धार करने जल्दी आ जाओ ।। 52 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में पैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - छियालिसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते है - श्रीकृष्ण के सन्देश को सुनकर गोपियों ने अपने विरह दुःख को सहन किये। श्रीकृष्ण में भक्ति करने वाले उद्धव को सत्कार किये ।। 1 ।।

गोपियों के दुःख को दूर करने के लिये उद्धव दो-तीन महीने गोकुल में वास किये। श्रीकृष्ण के कथाओं की गाथाओं को गाते हुये गोकुल को सन्तोष दिये ।। 2 ।।

उद्धव के गोकुल में वास किये हुये दिन गोकुलवासियों को क्षण के समान बीत गये। क्योंकि उद्धव सदाकाल श्रीकृष्ण की कथा का वर्णन करते थे ।। 3 ।।

नदी, जंगल, पहाड़, वृक्ष और गिरि कानन को देखकर उद्धव वह भगवान क्या-क्या लीलाएँ की उसके बारे में पूछते हुये, बार-बार श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुये विहार किये ।। 4 ।।

गोपियों के मन स्थिर रूप से श्रीकृष्ण में रहने के कारण वे परवश रहती हैं इसको देखकर उद्धव सन्तुष्ट होकर उनको नमस्कार करते हुये कहे ।। 5 ।।

उद्धव कहते है :- हे गोपिकाएँ आप भगवान गोविन्द में दृढ़ भक्ति वाली हैं। आप देहधारी मानवों में श्रेष्ठ है। शुभ बुद्धि वाले आपके समान दृढ़ भक्ति को हम भी चाहते हैं। भगवान के कथा श्रवण के बिना ब्राह्मणजनों का भी क्या प्रयोजन है ।। 6 ।।

ये गोपियाँ अप्सराएँ के अवतार होने के कारण व्यभिचार्य स्वभाव वाली हैं। किन्तु इनमें श्रीकृष्ण के बारे में अत्यन्त दृढ़ भक्ति है। इस जन्म में वे शास्त्राभ्यास नही किये हैं। किन्तु पूर्व जन्म के संस्कार के कारण स्वभाव के अनुसार भक्ति करने से वे मोक्ष के योग्य बने हैं। औषधी का गुण स्वभाव न समझते हुये भी उसको सेवन मात्र से आरोग्य मिलता है। वैसे ही इन गोपियों को बिना प्रयत्न अभ्यास से ही भगवान का ज्ञान आ गया है ।। 7 ।।

रासोत्सव के समय में श्रीकृष्ण के लम्बे हाथों को गोपियों ने अपने मन को तृप्ति पाये। भगवान उनके ऊपर जो परमानुग्रह किये उसको लक्ष्मी को और सुन्दर रूप वाले देवता स्त्रियों को भी नही किया है। और स्त्रियों के बारे में क्या कहना है ।। 8 ।।

भगवान का अनुग्रह भक्तों के योग्यतानुसार होता है। उद्धव ने जो कहा वह अतिशय अर्थवाद है। वह गोपियों की स्तुति में आये है। अथवा एक बार भूखे आये हुये अतिथि को अपनी पत्नी पुत्रों के ख्याल न रखते हुये अन्न दान करने वाला गृहस्थ के सामान भगवान कभी कभी अपने विशेष भक्तों में विशेष अनुग्रह करते हैं। सुदामा इसका बड़ा

दृष्टान्त है। इस प्रकार भगवान भक्ति के गरिमा को बड़ा करके दिखाते हैं। वस्तुतः गोपियों के ऊपर किया हुआ अनुग्रह उनमें अविष्ट लक्ष्मी के ऊपर ही है।

छोड़ने के लिये असाध्य बन्धुओं के सम्बन्ध को इन गोपिकाओं ने त्याग दिया। पति सेवा करने का मार्ग भी छोड़ दिया। वेदोक्त हरि भक्ति के मार्ग को अपनाया। ये गोपिकाएँ धन्य है। इनके पाद धूली वंद्य है। इनके पाद रस को धारण करने वाले एक वृक्ष या लता या पौधा बनकर वृन्दावन में मैं जन्म लेना चाहता हूँ ।। 9 ।।

भगवान श्रीकृष्ण के पाद कमल को महालक्ष्मी आराधना करती है। सारे अभीष्ट को पा चुके हुये ब्रह्मादि देवताओं ने योग सिद्धि को पाये हुये योगियों ने अपने हृदय कमल में उस पाद को रखकर आराधना करते हैं। ऐसे पाद कमल को रासक्रीडा में ये गोपियाँ सिर पर रखकर अपने हृदय ताप को हटा दिये है। उनकी पाद धूली भी हमारे लिये परम पवित्र है ।। 10 ।।

नन्द गोकुल के इन स्त्रियों के पदारविन्द को मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ। उनसे गया हुआ श्रीकृष्ण कथा तीनों लोकों को पावन करता है ।। 11 ।।

उद्धव गोपियों से विदा पाकर नन्द यशोदा से अनुज्ञा पाकर गोपालकों से छुटकारा पाकर रथ के ऊपर बैठ गया ।। 12 ।।

जा रहे हुए उद्धव के पास नन्दादि गोपालकों ने अनेक तरह के वस्तुओं को भेंट करते हुये आँखों में आँसू भर कर बोले ।। 13 ।।

हमारे मन में रहने वाले विचारों को श्रीकृष्ण के पाद कमल में निवेदन करें। हमारी बातें उनको न स्मरण हो। हमारा शरीर उनकी पूजा करे ।। 14 ।।

पूर्व कर्म से अनेक योनि में जन्म लेने वाले हमको हमारे कर्म और भगवदिच्छा के अनुसार बहुत जन्म आये। उस जन्म में हमें शुभ कर्म मिले। दानादि से हमें श्रीकृष्ण में भक्ति बनी रहे ।। 15 ।।

राजा इस प्रकार श्रीकृष्ण में भक्ति रखने वाले गोपालकों से बार-बार पूजित उद्धव श्रीकृष्ण की रक्षा में रहने वाला मथुरा को पुनः आ गये ।। 16 ।।

श्रीकृष्ण को प्रणाम करते हुये आपनी आँखों से देखा हुआ गोकुलवासियों का भक्ति का उद्रेक का वर्णन किया। श्रीकृष्ण बलराम को राजा उग्रसेन को गोपालकों से दिया हुआ उपहारों को उनको समर्पित किया ।। 17 ।।

यहाँ रुक्मिणीश विजय के कर्ता श्री वादिराज जी आगे कहते है :- वैष्णवाग्रणि उद्धव गोपियों के भक्ति का वर्णन करते हुये भगवान से प्रार्थना करता है। भगवान उनकी मन की आकांक्षाओं को पूर्ण करें। उसके अनुसार भगवान उनके मन में अभिव्यक्त होकर उनके हृदय में उनके साथ यथेच्छा आनन्द उत्पन्न करते हैं।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में छियालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सैतालिसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते है - बाद में सर्वांतर्यामी सर्वज्ञ भगवान श्रीकृष्ण अपने अंग-संग की आशा से आर्त कुब्जा को सन्तोष देने के लिये उद्धव के साथ उसके घर चले गये ।। 1 ।।

उसका घर बहुत अमूल्य साधनों से सजा हुआ प्रणय उद्दीपक पदार्थों से, मोती की हारों से, पताकाओं से, मंच और पीठ उपकरणों से सुगन्ध भरित धूप, दीप, मालाओं से अंलकृत था ।। 2-3 ।।

श्रीकृष्ण घर आये यह देखकर कुब्जा आसन से उठकर अपनी सखियों के साथ सामने आकर स्वागत किया। उत्तम आसन देकर अनेक विधिओं से उपचार किया ।। 4 ।।

श्रीकृष्ण के साथ आये हुये उद्धव को भी वह आदर से सत्कार किया, उसको बड़ा आसन दिया। उद्धव उस आसन को छूकर प्रभु के सामने उनके समान आसान में न बैठना इसके लिये जमीन के ऊपर बैठ गये। बाद में भगवान श्रीकृष्ण लोकाचार के अनुसार हाथी के दांत से बनाया हुआ बहुमूल्य मंच पर लेट गये ।। 5 ।।

कुब्जा स्नान, अनुलेपन, वस्त्र, आभरण, फूल-माला, गन्ध-ताम्बूल इत्यादि से सुसज्जित होकर लज्जा से मन्द हांस युक्त नजर से श्रीकृष्ण के पास आयी ।। 6 ।।

पहले संग से लज्जा से हिचकिचाने वाले, कुब्जा को श्रीकृष्ण ने कंगन से शोभायमान हाथ को पकड़ कर अपने पास मंच के ऊपर बैठाये। श्रीकृष्ण को थोड़ी सी गन्ध देने से उसको यह भाग्य मिला है ।। 7 ।।

वह कामतप्त, स्तन, छाती, आँख को भगवान के पाद से स्पर्श करते हुये उसकी सुगन्ध को आघ्राण करते हुये बहुत दिन के विरह को दूर की। आनन्द मूर्ति भगवान को अपनी छाती के ऊपर रखकर दोनों बांहो से आलिंगन करते हुये बहुत दिनों से अनुभव किया हुआ कामताप को दूर किये ।। 8 ।।

कुब्जा दुर्लभ, मोक्ष देने वाली भगवान के सामने गन्ध को समर्पण करते समय पुण्य पाने के

बाद भी दुर्दैवि होने के कारण ऐसे प्रार्थना की ।। 9 ।।

हे प्रियतम आप कई दिन यहीं रहें। मेरे साथ सुख भोग करें। हे कमलाक्ष आपको छोड़कर मैं नही रह सकती ।। 10 ।।

सर्वेश्वर श्रीकृष्ण उसको जो चाहती है वह वर देकर वस्त्र आभरण आदि से सत्कार करते हुये उद्धव के साथ सर्वसम्पद् भरित अपने घर को वापस आये ।। 11 ।।

सारे ईश्वरों के ईश्वर भगवान श्रीकृष्ण सुलभ रीति से मिलने वाला नही है। ऐसे भगवान के प्यार को पाने के बाद भी मन से अपेक्षा करने योग्य नही, ऐसे विषय सुख को चाहना कुब्जा के लिये मूर्खता ही थी ।। 12 ।।

श्रीकृष्ण कुब्जा की इच्छानुसार उसके घर जाकर गान्धर्व विधि से उसके साथ विवाह करते हुये एक मास तक वहाँ रहकर उसको विषय अनुग्रह किये। भगवान के अनुग्रह से उसको विशोक नाम का एक पुत्र हुआ। वह नारद जी के शिष्यत्व में पंचरात्रागम, सकल शस्त्रों का अभ्यास किया। भीमसेन के सारथी होकर महाभारत युद्ध में उनका सन्तोष पाया। केवल गन्ध देने वाली कुब्जा को भगवान इतना अनुग्रह किये क्या ? रमा देवी उसमें आकृष्ठ होकर भगवान के अंग सुख को पायी क्या ? वास्तव में कुब्जा एक अपरोक्ष ज्ञानी है, वह अप्सरा है। उसको मोक्ष मिलना निश्चित है। इसी कारण वह भी गोपियों के समान अपने योग्य काम वर को पायी। अन्य लोग ऐसे करे तो वे मूर्ख हो जाते है। योग्य लोग अपने योग्य जो है उसको पाते हैं। ध्रुव, ध्रुव पदवी को प्राप्त करने के बाद भी मोक्ष न मांगा। इसके लिये पश्चात्ताप करता है। वस्तुतः उस समय में उसको वही योग्य था। यहाँ भी कुब्जा को यही योग्य है।

प्रभु श्रीकृष्ण पाण्डवों के समाचार को समझने के लिये हस्तिनावती को उद्धव को भेजना चाहे। अक्रूर पहले ही एक बार अपने यहाँ आने के लिये भगवान से आग्रह किया था। उसको सन्तोष देते हुये भगवान बलराम उद्धव के साथ अक्रूर के घर चले ।। 13 ।।

पुरुषोत्तम में उत्तम अपने बन्धु, ये तीनों अपने घर आ रहे हैं, इसको दूर से देखकर संभ्रम से उनके सामने जाकर आलिंगन करते हुये अक्रूर अभिनन्दन किये ।। 14 ।।

हे राजा अक्रूर श्रीकृष्ण बलराम को नमन किया। उद्धव को अलिंगन दिया। तीनों अक्रूर को नमस्कार किये। उनको आसन पर बैठा कर अक्रूर राम कृष्ण के पांव को धोकर उस जल को अपने सिर के ऊपर धारण किया। दिव्य गन्ध, माला, आभरण और अन्य पूजा द्रव्यों से उनका विधिपूर्वक पूजा किया ।। 15-16 ।।

इस प्रकार राम कृष्ण की पूजा कर पादों को कपड़े से पोंछकर भक्ति पूर्वक बाते की ।। 17 ।।

अक्रूर बोलते हैं :- हमारे पुण्य से आप अवतार लेकर पापी कंस और उसके परिवार का नाश किये, यदुवंश का उद्धार किये। कंस से बहुत दुःख भोग रहे सज्जनों का उद्धार किये ।। 18 ।।

आप सर्वोत्तम है। इस जगत के मूल कारण हैं। जगत भर में व्याप्त हैं। आपसे अलग जड़-चेतन में कोई स्वतंत्र नही है ।। 19 ।।

हे पूर्ण परमब्रह्म परमात्मा, आपने निर्माण किया हुआ विश्व को आपही अपने स्वरूप शक्ति से तत्वाभिमानी देवताओं के साथ प्रवेश करते है। उन पदार्थ के अनुसार उसी का रूप लेते हैं। अणु महत् इत्यादि अनेक रूप पाते हैं। आप श्रुति वेद्य है, ज्ञानियों के लिये प्रत्यक्ष है ।। 20 ।।

अनेक योनि में रहने वाले स्थवर जंगम शरीरों में पृथिव्यादि्र पंचमहाभूत शरीरों में उन्ही आकारों से व्याप्त होकर जैसे दिखते हैं वैसे आप भी आपसे निर्मित इस प्रपंच में एक, स्वतंत्र और शुद्ध रहते हुये भी अनेक रूप से दिखते हैं ।। 21 ।।

आपने स्वतंत्र शक्ति से सत्व-रज-तमों गुणों से इस जगत को सृष्टि करते हुये रक्षा करते हैं। उन सात्विक गुणों से अथवा कर्म से आप बाध्य नही होते। चिन्मयरूपी आपको उत्पत्ति कारण नही है ।। 22 ।।

आपको देहादि उपाधि को निर्माण करने वाले त्रिगुणों का सम्बन्ध शास्त्र में नही बताया गया है। आपको इस जड़ शरीर से सम्बन्ध नही है। आप चिन्मय है। इसी कारण आपको देह सम्बन्ध वियोग रूप बन्ध मोक्ष नही है। यह विवेक मानव को अपनी योग्यतानुसार होता है ।। 23 ।।

भगवान आप इस जगत के हित के लिये अनादि वेद मार्ग को दिखाये हैं। पाखण्ड मार्ग से दुर्जन से जब वह नष्ट होता है तब आप ही व्यास रूप से आकर सत्व गुण से ज्ञान कार्य की वृद्धि करते हैं ।। 24 ।।

प्रभु अब आपके ही एक केशांश से वसुदेव के घर में अवतार ले चुके है। दैत्य स्वभाव के अनेक अक्षोंहिणी सैन्य और दैत्य स्वभाव के अनेक राजाओं को नाश करते हुये भूभारहरण किये है, यदुकुल की कीर्ति बढ़ाये हैं ।। 25 ।।

हे अधोक्षज, स्वामी आप आज मेरे घर को आकर पवित्र किये हैं। आपके इस विश्वभर शरीर से सकल देवताएँ पितृगण, भूतगण और राजाओं ने आश्रय लिये है। आपके पादोदक तीनों लोकों को पावन करता है ।। 26 ।।

आप सत्य संकल्प, भक्त प्रिय, कृतज्ञ है। आप भक्तों का अभीष्ट पूर्ण करते हैं। आप वृद्धिह्रास रहित आत्मानन्द को मोक्ष में देते है। आपको छोड़कर बुद्धिमान लोग अन्य के पास क्यों जाते है ।। 27 ।।

हे जनार्दन आपकी महिमा को योगेश्वर, सुरेश्वर भी पूर्ण रूप से नही जानते है। मेरे अदृष्ट से मेरे घर आकर आपने मुझे दर्शन दिये है। अब आप मेरा पत्नी, पुत्र, धन सम्पत्ति, बन्धु, शरीर

घर इत्यादि मोहपाश कों अपने बन्धक शक्ति को नाश कर मुझे उससे छुड़वाये ।। 28 ।।

इस प्रकार भक्त अक्रूर भगवान श्रीकृष्ण की प्रार्थना किये। उसको सुनकर श्रीकृष्ण हसन्मुख से उस तत्वज्ञान के लिये यह समय योग्य नही है। इसके लिये उनके सामने लौकिक बाते कहने लगे ।। 29 ।।

श्री भगवान कहते है :- चाचा जी आप हमारे हितोपदेशक है। हम सदा के लिये आपकी रक्षा में रहने वाले आपसे छोटे है। आप हमें दया करें ।। 30 ।।

हे भाग्यवान, सज्जन लोग पूज्यों में पूज्य आप जैसे श्रेयस कामना करने वाले लोगों का सेवा करनी चाहिये और स्वार्थ पर देवताओं की सेवा में क्या है ।। 31 ।।

सारे जलाशय तीर्थ नही बनते। हर एक पत्थर भगवान नही बनता। वह पानी यह पत्थर में रहने वाले देवताएँ बहुत समय तक सेवा करने के बाद ही फल देते है। किन्तु सज्जन लोग केवल दर्शन से ही अन्यों को पावन करते हैं ।। 32 ।।

अब आप हमारे बन्धु पाण्डवों के लिये हित करने के लिये हस्तिनापुर को जाइये। वहाँ जाकर उनके क्षेम समाचार को समझ कर आइये। आप भी उनके बन्धु लगते हैं ।। 33 ।।

पिता के मरण के बाद पाण्डवों ने अपनी माता के साथ शतशृंग नाम के पर्वत में वास करते थे। उनको राजा धृतराष्ट्र ने मुनियों से बुलाकर अपने पास बुलाये है। यह बात मैं अन्य लोगों से सुना है ।। 34 ।।

राजा धृतराष्ट्र अंधा है, दुष्ट बुद्धि वाला है, दुर्बल भी है। अपने भाई के पुत्र पाण्डवों के बच्चों को अपने समान देखता नही। क्योंकि वह दुष्ट दुर्योधन का कठपुतली बन गया है ।। 35 ।।

आप वहाँ जाकर पाण्डवों का हाल क्या है। धृतराष्ट्र उनके बारे में क्या करता है। उन सबको सुनकर हम पाण्डवों के बारे में क्या कर सकते है। इसका विचार करते हुये आइये। आपके कहने के अनुसार हम आगे करेंगे ।। 36 ।।

इस प्रकार अक्रूर को आदेश देकर सर्वशक्ति भगवान श्रीकृष्ण बलराम और उद्धव के साथ अपने राजगृह को वापस आये ।। 37 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में सैतालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अड़तालिसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - पुरु वंश के राजाओं के कीर्ति से विराजमान हास्तिनावति को जाकर अक्रूर धृतराष्ट्र भीष्म, विदुर कुन्ती इनसे भेंट की ।। 1 ।।

बाल्हीक, उसके पुत्र सोमदत्त, द्रोण, कृप, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थाम और पाण्डवों से और अलग बन्धुओं से भेंट किये ।। 2 ।।

अक्रूर उन बन्धुओं को यथायोग्य समय में भेंट करने के बाद उनसे कुशल प्रश्न किये। वे भी वसुदेव इत्यादि के बारे में कुशल वार्ता किये ।। 3 ।।

पाण्डवों के बारे में धृतराष्ट्र का बर्ताव को समझने के लिये अक्रूर हस्तिनावति में कई महीने वास किये। धृतराष्ट्र दुर्बुद्धि वाला है। स्वतः राज्य का व्यवहार संभाल नही सकता। इसी के कारण वह अपने दुष्ट पुत्रों के इच्छानुसार चलता था ।। 4 ।।

पाण्डवों के शरीर, वर्चस्व, अन्तःशक्ति, बल पराक्रम, विनय इत्यादि सद्गुण, और प्रजाओं के साथ उनका अनुराग देखकर सहन न होते हुये कौरवों ने उनको विष खिलायें। ऐसे अन्य बहुत अपाचार किये है, आगे करने वाले है ऐसा लगता हैं। कुन्ती विदुर इन बातों को अक्रूर को बताये ।। 5-6 ।।

अपना भाई अक्रूर जब घर में आ गया तब कुन्ती उसके पास बैठकर मैके के बारे में सारे सुनाते हुये आँखों में आंसू भर कर बोली ।। 7 ।।

कुन्ती बोलती है :- भाई अक्रूर आपके माता-पिता श्वफल्कगांदिनी, भाई वसुदेव आदि लोग उनके भाई-बहन, बाल-बच्चे सारे लोग अच्छे है न ? हमारी याद करते रहते है न ? ।। 8 ।।

अपने शरण आये हुये लोगों की रक्षा करने वाला हमारा भांजा भगवान श्रीकृष्ण और बलराम अपने पाण्डवों को याद करते हैं क्या ? ।। 9 ।।

हम यहाँ भेड़ियों के बीच में फँसाया हुआ बकरी के समान शत्रुओं के बीच में कष्ट भोग रहे हैं। पिता न रहने वाले हमारे पुत्रों को भगवान श्रीकृष्ण अनुग्रह करता है न ? ।। 10 ।।

भगवान श्री कृष्ण महायोगी है, सर्वांतर्यामी हैं, जगद रक्षक गोविन्द मैं आपके शरण में हूँ।

छोटे बच्चों के साथ कष्ट भोगने वाली मेरे ऊपर दया करो ।। 11 ।।

मरण रूप संसार से डरने वाले लोगों को सर्वशक्त आपके मोक्ष देने वाले श्रीचरण के आश्रय के बिना और क्या आश्रय होता है। हम अन्य आश्रय नही चाहते हैं ।। 12 ।।

दोष रहित गुणपूर्ण भगवान आप अचिन्त्य, अद्भुत शक्ति वाले हैं, मुक्ति देने वाले हैं। मैं आपकी शरण में हूँ आप मेरी रक्षा करें ।। 13 ।।

इस प्रकार इस जगत के बन्धु अपने बन्धु श्रीकृष्ण को याद करते हुये हे राजा आपकी बड़ी नानी कुन्ती दुःखित होकर आंसू बहा रही है ।। 14 ।।

सुख-दुख को समान रूप से देखने वाला महाकीर्तिशाली अक्रूर भी दुःख प्रर्दशन करते हुये कुन्ती को सांत्वना की। पाण्डवों भूभारहरण करने के लिये अवतरण किये हुये देव हैं। उनके लिये कुछ भी भय नही है। यह बात कुन्ती को विदुर और अक्रूर कहते हुये पाण्डवों को अवतार का उद्देश्य बतायें ।। 15 ।।

मथुरा के लिये वापस जाने के पहले अक्रूर धृतराष्ट्र के पास आकर उसके सामने पुत्रों के ऊपर के मोह से पाण्डवों में पक्षपात कर रहे उसको कई हित वाक्य कहे ।। 16 ।।

कुरुवंश के कीर्ति को बढ़ाने वाला धृतराष्ट्र तुम्हे अपने भाई पाण्डु के मरने के कारण उसके पुत्र पाण्डवों में निष्पक्षपाती रहना चाहिये ।। 17 ।।

धर्म से राज्य को चलाना चाहिये। शील से प्रजा को सन्तोष कराना चाहिये। अपने और अपने भाई के पुत्र में भेद न देखते हुये सामान्य रीति से व्यवहार करो। तब तुम सुख और कीर्ति को पावोगे ।। 18 ।।

इसके विरुद्ध चले तो तुम लोक निन्दा के पात्र बनोगे, पुत्र नाश से महादुःख भोगोगे। इसके लिये अपने पुत्र और अपने भाई के पुत्र में समान रूप से व्यवहार करो ।। 19 ।।

धृतराष्ट्र ज्ञानी गान्धर्व था। वह तमोयोग्य नही है। किन्तु यहाँ अक्रूर उसको **यास्यसे तमः** घोर दुख को पाओगें कहता है। यह उसमें अविष्ट कली के लिये अन्धंतमः होता है।

आपके पुत्रों के सुख के लिये पाण्डु के पुत्रों को दुःख मत दो। इस लोक में कोई शाश्वत नही रहता है। स्वयं शाश्वत नही रहता। तो अन्य सम्बन्धियों से सम्बन्ध शाश्वत नही होता। इसको अलग बोलने की क्या जरुरत है ।। 20 ।।

जीव जन्म लेते समय अकेले जन्मता है, मरते समय अकेले मरता है। अपना किया हुआ पुण्य पाप का फल को अकेले ही भोगता है ।। 21 ।।

सतीसुत आपके पालन में है बोलते हुये अधर्म से सम्पादन किये हुये सम्पद को जलचर जैसे जल को पीते है वैसे न मालूम होते हुये खा लेते है। मूर्ख उनको अधर्म से उनका पोषण करता

है। लेकिन अधर्म के फल को स्वयं भोगना पड़ता हैं ।। 22 ।।

मूर्ख मानव धर्म-अधर्म से सम्पादन करते हुये पत्नी पुत्रों को अपने मानते हुये संरक्षण करता है। वे उसको अतृप्त छोड़कर बीच में ही उससे दूर चले जाते है ।। 23 ।।

स्वधर्म से विमुख व्यक्ति को अपने सुख साधन पाने के प्रयत्न में फल नही मिलता। वह जीते जी अपनी आशाओं को पूर्ण न करते हुये एक दिन मर जाता है। मरते समय उसके सुख के कारण पत्नी पुत्र, धन-धान्य उसके साथ नही आयेगा। वह धर्म-अधर्म से मिला हुआ पुण्य पाप कर्म को अपने साथ लेकर चलता है। उसी के अनुसार सुख-दुख को भोगता है ।। 24 ।।

इसी कारण हे राजा धृतराष्ट्र इस लोक के धन सतीसुत इत्यादि लोगों को केवल स्वप्न अथवा इन्द्रजाल के समान मानते हुये अपने मनोरथ को क्षणिक समझते हुये उनको त्याग कर मन से भगवान में प्यार करो। उसी में निष्ठा करो। पाण्डव भी आपके पुत्र है। उनमें वैषम्य मत करो ।। 25 ।।

धृतराष्ट्र बोलता है :- अक्रूर आपने मंगलकर ठीक वाक्यों को मेरे लिये कहे हैं। उसको सुनकर मृत्युवश मानव को अमृत पीने जैसे होता है। मुझको कितना सुनने के बाद भी तृप्ति नही होता ।। 26 ।।

किन्तु अक्रूर सत्य और प्रिय आपकी बातें मेरे मन में स्थिर रूप से नही रहते। विद्युत के समान एक बार प्रकाश देकर अदृश्य हो जाते है। मैं पुत्र व्यामोह से बन्धित हूँ। मेरा हृदय वक्र होकर चलता है ।। 27 ।।

भूभार के हरण करने के लिये यदुकुल में अवतार लिये श्रीकृष्ण भगवान के संकल्प को कौन बदल सकता है। उसकी इच्छानुसार सारा होता है ।। 28 ।।

भगवान की इच्छा कहाँ बहती है। इसको समझना किसी के हाथ में नही होता है। वह भगवान अपनी इच्छा से अपने अधीन प्रकृति से सत्वादि गुणों का सृष्टि करता है। उनसे यह बड़ा प्रपंच का सृष्टि करता है। उनमें उनका नियामक होकर प्रवेश करता है। जीवों को उनके अनादि क्रम के अनुसार फल विभाजन कर देता है। अचिन्त्य लीला से यह संसार चक्र को चलाता है। वह परमात्मा को मैं नमन करता हूँ ।। 29 ।।

श्री शुकदेव जी कहते है :- अक्रूर धृतराष्ट्र के अभिप्राय को समझकर बन्धुओं से विदाई पाते हुये मथुरा के लिये प्रस्थान किये ।। 30 ।।

हे राजा परीक्षित सुनो :- अक्रूर पाण्डवों के बारे में धृतराष्ट्र के व्यवहार को श्रीकृष्ण के सामने विस्तृत रूप से बता दिया। श्रीकृष्ण का उद्देश्य भी उनको सुनाना था ।। 31 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में अड़तालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - उनचासवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - अस्ति और प्रास्ति ये दोनों कंस की रानी और जरासंध की पुत्री। कंस मरने के बाद वे दोनो अपने पिता के पास चली गयी ।। 1 ।।

अस्ति का अर्थ सदाकाल रहने वाली होता है। प्रास्ति का अर्थ ठीक तरह से रहने वाली होती है। सामान्यतः सारी स्त्री इसी प्रकार रहती हैं। जरासंध उनको इसी अर्थ में नामकरण किया होगा। किन्तु उनका अलग अर्थ आ गया था। पति कंस को खो जाने के बाद ये दोनो अमंगल बन गयी। पति के सर्वनाश के कारण अमंगला बनने वाले ये अपने अनिष्ट धर्म के कारण पिता का नाश करने के लिये अपने मैंके चली गयी। यह रुक्मिणीश विजय कारक का मत है। विजयध्वजी में इसका अध्यात्म अर्थ बताते है। अस्ति का अर्थ वस्तु ही नही या अज्ञान अथवा संशयाज्ञान। विपरीत ज्ञान प्रास्ति शब्द से होता है। अस्ति और प्रास्ति शास्त्र के बारे में संशय और विपरीत ज्ञान के संकेत होते हैं।

अधर्माभिज्ञानी कालनेमी रूप के कंस मर जाने के बाद यह संशय और विपरीत ज्ञान शैवशास्त्र के गुरु जरासंध के पास आये। जरा का अर्थ बुढ़पा होता है, जो यौवन को नष्ट करता है। यौवन से मिलने वाले बल ज्ञानादि को नष्ट करता है। इसके कारण वाला शैवागम भी जरा बन जाता है। उसमें संधा, उसमें दीक्षा रहने वाला जरासंध है। उसने जो ज्ञान का बोध करता था उसमें संशय विपरीत ज्ञान रह गये। वैष्णवागम के गुरु भीमसेन जरासंध को मार दिये। तब शैवागम का गुरु कोई नही रहा। शैवागम में केवल संशय और विपरीत ज्ञान रह गये।

पति के मरण से दुखित अस्ति और प्रास्ति अपने पिता मगध के राजा जरासंध के पास जाकर अपने पति के मरण के सारे वृतान्तों को बता दिये ।। 2 ।।

अपनी इस वार्ता को सुनकर जरासंध के दुख, द्वेष बढ़ गये। वह क्रोध से इस भूमि में यादव न रहे ऐसा कर डालूंगा। यह प्रतिज्ञा किया ।। 3 ।।

तेइस अक्षोहिणी सैन्य के साथ यादवों के राजधानी मथुरा को आकर चारों ओर से उसको घेरा लिया ।। 4 ।।

योग्य लोगों को मधु के समान आनन्द देने वाला मथुरा है। ऋग्वेद इत्यादि चारों वेद उसके चार द्वार है। उनसे प्रवेश कर उनको नाश करने के लिये शैवागम गुरु जरासंध अपने सैन्य के साथ आता है।

एक अक्षोहिणी सोलह अंको के स्थान वाली होती है। एक हाथी, एक रथ, तीन घोड़ा, पांच सैनिक ये चार अंग

वाले सैन्य को पत्ती कहते है। इसको तीन बार बढ़ाये तो सेनामुख उससे त्रिगुण करे गुल्म, इस अनुपात से गणवाहिनी पृतना, चमू, आनिकिनी होते हैं। आनिकिनी के दस गुण अक्षोहिणी होता है। 21870 हाथी 21870 रथ 65610 घोड़ा और 109350 सैनिक वाला सैन्य समूह अक्षोहिणी कहा जाता है। ऐसे तेइस अक्षोहिणी सैन्य लेकर जरासंध आया था।

बढ़ते आ रहे समुद्र के समान सैन्य को लेकर जरासंध मथुरा को घेरा डाला है। इससे प्रजागण भयभीत हो गये हैं। भूभारहरण के लिये मानव जन्म लिये हुये भगवान इसको देखकर देशकाल के अनुसार अपने अवतार कार्य को कैसे करे इसके बारे में चिन्तन करने लगे ।। 5-6 ।।

जरासंध ने जो लाया है इस सैन्य को सारे राजाओं के आँखों के समक्ष मैं इसका संहार कर डालता हूँ ।। 7 ।।

अनेक अक्षोहिणी सैन्य में रहने वाले पदाति, घोड़ा, रथ, गज वाले सैन्य को संहार करता हूँ। किन्तु जरासंध को अभी नही मारना है। वह जीवित रहा तो क्रोध से और बड़े सैन्य को ले आयेगा। उनमें रहने वाले राक्षसों को भी मारना है ।। 8 ।।

मैं इसी के लिये अवतार लिया हूँ। इस भूमि के भार का हरण करना है, सज्जनों की रक्षा करते हुये दुष्टजनों का नाश के लिये ही मैं अवतार लिया हूँ ।। 9 ।।

अन्य वराहादि अवतार मैं धर्म रक्षा के लिये लिया हूँ। उस समय अधर्म का नाश करते आया हूँ ।। 10 ।।

श्रीकृष्ण इस प्रकार विचार कर रहे थे। इतने में जरासंध वन उपवन से युक्त सुन्दर मथुरा को घेरा लिया ।। 11 ।।

जरासंध मथुरा के ऊपर आक्रमण करने के पहले श्रीकृष्ण को अपनी राजधानी पाटिलीपुत्र में (आज का पाटना) से ही श्रीकृष्ण को मारना चाहता था। शिव के वर से उसने एक गदा को प्राप्त किया था। वह गदा कितने दूर बोलकर मंत्रोच्चार के बाद फेंकने से उतना दूर जाकर निश्चित वस्तु पर गिर जाता था। इसके लिये जरासंध नारद से पूछा मथुरा वहाँ से कितना दूर है। नारद जी उनसे कहे **एक शतम्** इसका अर्थ एक सौ अथवा एक सौ एक ऐसे दोनो अर्थ होते है। जरासंध एक सौ समझ कर अपनी गदा को सौ बार घुमाकर फेंक दिया। गदा सौ योजन जाकर जहाँ जरासंध की माँ बैठी थी उसके ऊपर गिर गयी, और उसके आघात से जरासंध की माँ मर गई। शिव से प्राप्त विशेष शक्ति वाला गदा व्यर्थ हो गया। इसी कारण जरासंध स्वयं उठकर श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने मथुरा आ गया।

दुबुद्धि वाले कलिंग, चेकितान, दन्तवक्र, विधूरथ, उल्मुक, वेणुधारी, साल्व ये सारे जरासंध के आज्ञानुसार पूर्व के द्वार को घेरा लिये। विन्द, अनुविन्द नाम के अवन्ति राजा, दरद, एकलव्य, बाल्हिक, पंचनद ये सारे राजा दक्षिण के द्वार को घेर लिये। महाबलिष्ठ पौण्ड्रक, युधमन्यु, बृहत्क्षत्र, शल्य, भूरिश्रव, उत्तमौज, रुक्मि, द्रुम, सुदक्षिण ये सारे जरासंध से नियुक्त होकर पश्चिम द्वार को घेर लिये ।। 12-13-14-15-16 ।।

द्रुपद, शिशुपाल, त्रिगर्त, जयद्रथ, शकुनी, सोमदत्त, कुलिंद ये सारे अहंकार से युक्त होकर जरासंध के साथ उत्तर द्वार को घेर लिये ।। 17-18 ।।

बढ़ने वाले समुद्र के समान जरासंध का सैन्य चारों द्वारों को घेर कर शंखनाद करते हुये, गर्जन करते हुये, नगाड़ों को बजाये। प्रलयकाल के समुद्र के घोष के सामन गर्जन करने वाले ध्वनि को सुनकर श्रीकृष्ण धैर्य न हारे। सियार की आवाज से क्या सिंह घबरा जाता है ? ।। 19-20-21 ।।

इसी समय आकाश में सूर्य के समान प्रकाश देने वाले दो रथ श्रीकृष्ण के सामने खड़े हो गये। उनमें दो सारथी थे, वे रथ युद्ध सामग्री से भर गये थे ।। 22 ।।

भगवान श्रीकृष्ण की इच्छा से उनके प्राचीन दिव्य आयुध आये थे। उनमें एक हजार दांत वाले शत्रु भयकर, मनोहर सुदर्शन चक्र भी था ।। 23 ।।

उसके साथ कौमोदिकी नाम की गदा, तीन जगह मोड़ वाला शार्ङ धनु नाम के श्रेष्ठ धनुष भी आया था ।। 24 ।।

तीक्ष्ण धार वाला नन्दक नाम का खड्ग, सुन्दर नाल वाले छोटे छोटे अक्षय बाण उनमें थे ।। 25 ।।

रथ को शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प, बलाहक नाम के चार घोड़े रथ को बांधे थे। बलराम को दृढ़ और वजनदार हल और मुसल आये थे ।। 26 ।।

इन शस्त्र और रथ घोड़े को देखकर श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई बलराम को कहते हैं।। 27 ।।

भाई देखो आपके शरण में रहने वाले यादवों के इस विपदा को देखकर देवगण रथ, आयुध, घोड़े और सारथी को भेजे हैं ।। 28 ।।

हे भाई आप इस रथ में चढ़कर शत्रु सैन्य को मार डालो। हमारे लोगों के कष्ट को दूर करो। सज्जन लोगों के लिये आराध्य हमारा अवतार इसी उद्देश्य से हुआ है न ? ।। 29 ।।

तेइस अक्षोहिणी वाला इस सैन्य को क्षण में नाश करेंगे। आपस में इस प्रकार बोलते हुये राम कृष्ण कवचों को धारण किये। कई यादवों के साथ कवचधारी होकर मथुरा से बाहर आये ।। 30-31 ।।

बाहर आते समय वहाँ रहने वाले यादवों के चारों द्वारों को बन्द करते हुये द्वारका की रक्षा करने का आदेश दिये ।। 32 ।।

राजा सुनो :- श्रीकृष्ण वसुदेव, निशठ, कृतवर्म, उद्धव को पूरब द्वार से बाहर भेजे। उग्रसेन, सुदामा, पृथु, विपृथुओं को दक्षिण द्वार से बाहर को भेजे ।। 33-34 ।।

सात्यकी, गद, प्रसेन, अक्रूरों को पश्चिम द्वारा से बाहर भेजे। ये सारे युद्ध के कष्ट को सहन करने वाले हैं ।। 35 ।।

महापराक्रमी श्रीकृष्ण रथ में बैठ गये। दारुक सारथी रथ चलाने लगा। श्रीकृष्ण आयुधों को अपने हाथ में लिये। बलराम दूसरे रथ पर चढ़े दोनो उत्तर द्वार से बाहर आये। महाशक्तिशाली, दैत्य दानवों को भय करने वाले महाशंख को बजाये। श्रीकृष्ण सारथी दारुक को कहते हैं ।। 37 ।।

हे सारथी दारुक :- जरासंध जहाँ है वहाँ हमारे रथ को ले चलो। युद्ध में अहंकार रखने वाले उन सारे राजाओं को बाण से मर्दन करूँगा ।। 38 ।।

श्री शुकदेव जी कहते है :- भगवान श्रीकृष्ण से इस प्रकार आज्ञा पाकर दारुक घोड़ों को जोर से चलाया। शत्रुवीरों को नाश करने वाले भगवान श्रीकृष्ण सिंहनाद किये ।। 39 ।।

बलराम भी शंख बजाकर सिंहनाद किये। उसकी ध्वनि से शत्रु सैन्य का हृदय पिघल गया। वे कांपने लगे ।। 40 ।।

पूरब द्वार में यादव उन लोगों के साथ बहुत बड़ा युद्ध किया। उनमें से वसुदेव इत्यादि चार लोग कलिंग इत्यादि आठ लोगों से जो युद्ध किया वह अद्भुत था ।। 41 ।।

दक्षिण द्वार में श्रीकृष्ण के शंखध्वनि से उत्साह पाकर युद्ध करने वाले उग्रसेन इत्यादि यादवों को विन्द, अनुविन्द से घमासान युद्ध हुआ ।। 42 ।।

पश्चिमी द्वार में दृढ़ धनुर्धारि सात्यकी इत्यादि यादव पौण्ड्रक नाम के राजाओं से रोमांचक युद्ध हुआ ।। 43 ।।

हे राजा परीक्षित सुनो :- इस लोक में साम्राज्य (युद्ध में मरे तो) परलोक में स्वराज्य को पाने के लिये यदुवीर इन्द्र के समान परक्रमियों के साथ मार खाने के बाद भी युद्ध से पीछे नही हटे ।। 44 ।।

तीनों लोकों के लिये प्रिय यादव श्रेष्ठ श्रीकृष्ण महाभयंकारी शिशुपाल और जरासंध जहाँ थे। वह आ गये ।। 45 ।।

सैन्य से, रथ, ध्वज, अश्व, सारथी से युक्त होकर आये हुये राम कृष्ण को देखकर जरासंध मेघ सूर्य को जैसे घेर लेता है, आग को राख जैसे ढ़क देते है वैसे अपने सैन्य समूह से बलिष्ठ राम कृष्ण को घेर लिये ।। 46 ।।

घर के छत के ऊपर गोकुलों के ऊपर और वृक्षों के ऊपर चढ़कर मथुरा वाले गोप-गोपियों ने राम कृष्ण के गरुड़ध्वज युक्त और तालध्वजयुक्त रथों को न देखते हुये दुःखित हो गये ।। 47 ।।

शत्रु सैन्य को मेघ के समान अपने सैन्य के ऊपर बाणों की वृष्टि करते हुये देखकर देवासुर से पूजित भगवान अपने शार्ङ्ग धनु से टंकार किये ।। 48 ।।

श्रीकृष्ण बाण को लेकर धनुष में चढ़ाकर शत्रु समूह के ऊपर निरन्तर छोड़ते हुये शत्रु के रथ, गज, अश्व, पदाति का संहार करते हुये आग के समान शत्रु सैन्य में संचार किये ।। 49 ।।

दैत्य नाशक, महाध्वनि वाला, चन्द्र के समान शुभ्र पांचजन्य शंख को बजाते हुये श्रीकृष्ण यादवों को उत्साहित किये ।। 50 ।।

कर्ण कठोर उस आवाज को सुनकर शत्रु राजाओं हतोसाहित हुये। यादवों ने अपने आयुधों से उनको मारते रहे ।। 51 ।।

चारो द्वारों में घेरे हुये क्षत्रिय राजाओं को यादवों ने पराभव किये। श्रीकृष्ण के धनुष्टंकार से प्रोत्साहित होकर यादव अपने बाण समूह से शत्रु सैन्य को नष्ट करने लगे। क्षत्रियों में केवल राजा रहे, केवल उनके रथ रहे, अन्यों का पूर्ण नाश किये ।। 52 ।।

इसको देखकर शिशुपाल श्रीकृष्ण को आह्वान करते हुये हे कृष्ण खड़े हो जाओ बोलते हुये अपने धनुष से तीक्ष्ण बाणों से मारने लगा ।। 53 ।।

श्रीकृष्ण उसके उत्तर रूप में अपने तीक्ष्ण बाणों से मारते हुये शिशुपाल के सामने आ गये ।। 54 ।।

शिशुपाल अपने भारी पांच बाणों में से चार से चारों घोड़ों को एक से सारथी को मारे ।। 55 ।।

पुनः जल्दी से दस बाणों को श्रीकृष्ण के ऊपर प्रयोग किया। अट्टहास से सिंहनाद किया ।। 56 ।।

उसको देखकर श्रीकृष्ण शिशुपाल को भला बोलते हुये बोले। शिशुपाल तुम शूर हो, बलिष्ठ हो किन्तु दुर्बुद्धि से यहाँ आये हो। अब युद्ध में मेरा पराक्रम देखो ।। 57-58 ।।

ऐसे बोलते समय वहाँ के राजाओं ने श्रीकृष्ण के ऊपर अपने तीक्ष्ण बाणों को फेंके ।। 59 ।।

श्रीकृष्ण उन सारे बाणों को काटते हुये पांच बाणों से शिशुपाल के रथ के घोड़े और सारथी को यम सदन के लिये भेज दिये ।। 60 ।।

पुनः तीन तीन बाणों से प्रत्येक राजा के छाती, मुहँ और बाल के ऊपर बाण से मारे ।। 61 ।।

तीस राजाओं के तीस धनुष को एक ही बाण से काट डाले ।। 62 ।।

हँसते हुये शिशुपाल के धनुष को टुकड़े टुकड़े करते हुये उसके ध्वज, किरीट, छत्र को नष्ट किये ।। 63 ।।

दस शूल को अपने शार्ङ्ग धनु में जोड़कर कान तक खींचकर शिशुपाल के ऊपर छोड़ दिये ।। 64 ।।

इस प्रकार श्रीकृष्ण के बाण से क्षत-विक्षत होकर जरासंध का सैन्य प्रलय मारुत से गिरते हुये वृक्ष के सामन हो गये। उनके अश्व, रथ और सारथियों का नाश होने के कारण उनके रक्षक कोई नही रहे ।। 65 ।।

बाणों को छोड़ते हुये, शंख बजाते हुये, धनुष टंकार करते हुये भगवान श्रीकृष्ण जरासंध

के सैन्य को नाश करते हुये आग के मशाल जैसे श्रीकृष्ण महापराक्रमी रहे ।। 66 ।।

शत्रुसैन्य में इनके बाण के आघात के कारण हाथी मर कर गिरा गये है घोड़े के गले कट गये है। रथ, ध्वज, घोड़े और सारथी उनके उपयोग करने वाले रथिक मर कर गिर गये पदाति का हाथ-पांव कटकर सिर के बिना रणरंग में शवों का ढेर लग गया है ।। 67 ।।

टुकड़े-टुकड़े हुये पदाति गज-अश्व के शरीर से बहने वाले रक्त नदी बन गया है। उनमें सैनिकों का हाथ सांप जैसे लगते हैं। मानवों के सिर कछुआ के जैसे दिखते हैं। मरे हुये हाथी बीच में का द्वीप बने है। मरे हुये घोड़े मगर जैसे लग रहे हैं ।। 68 ।।

उस रक्त के जल में कटा हुआ सैनिकों का हाथ पांव मछली बने है। सिर का बाल काई बना है। धनुष लहर बने है। आयुध किनारे के वृक्ष बने है। राजाओं के गले में शोभने वाला रत्नहार बालू और पत्थर बना है। लाल जल और भँवर से वह नदी भयानक बन गयी है ।। 69 ।।

अपरिमित शक्ति वाले बलराम मद से उन्मत्त शत्रुओं को अपने मुसल से मार-मार कर जीव से मार दिये। धैर्य वाले क्षत्रियों को मनोरंजन करते हुये भीरु क्षत्रियों को डराते हुये युद्धरंग में रक्त की नदी बहाये ।। 70 ।।

हे राजा समुद्र के समान विस्तर और भीकर जरासंध के अपार सैन्य को वसुदेव के दोनों पुत्र नष्ट कर दिये। जगत के स्वामी, उनको यह केवल खेल था ।। 71 ।।

अनन्तगुणपूर्ण वाले भगवान, लीला से सृष्टि का स्थिति पालन और संहार करते हैं। उनके लिये यह शत्रु सैन्य का नाश कार्य बड़ा नही है। वे मानव रूप धारण कर करने वाला लीला का वर्णन करना पड़ता है ।। 72 ।।

अपने सारे सैन्य नष्ट होते देखकर अन्य राजा वहाँ से भाग गये। तब महाबलिष्ठ जरासंध बलराम के सामने आता है ।। 73 ।।

दो पहाड़ के समान देखने वाले जरासंध और बलराम मद से मत्त महागजों के समान आमने-सामने होकर परस्पर मारे ।। 74 ।।

जरासंध आक्रोश से अपने बड़े गदा को सौ बार घुमाकर बलराम की छाती के ऊपर मारा ।। 75 ।।

पर्वत के शिखर के समान अपने ऊपर आ रहे उस गदा से बलराम अपने को बचाते हुये हँसते हुये खड़े रहे ।। 76 ।।

जरासंध के गदा को व्यर्थ करने के बाद बलराम क्रोध से अपने मुसल से जरासंध के रथ को चूर-चूर किये, सारथी को मार दिये। महाबलिष्ट जरासंध विरथ हो गया। उसका सैन्य नाश हो गया है। शरीर में प्राण मात्र रहा है। ऐसे जरासंध को एक सिंह जैसे दूसरे को पकड़ता है वैसे

बलराम ने पकड़ लिया ।। 77-78 ।।

इस प्रकार जरासंध के पूरे सैन्य को बलराम नाश करते हुये जरासंध को वरुण पाश से बाँध कर श्रीकृष्ण के सामने लाये। श्रीकृष्ण शस्त्ररहित जरासंध को पाश से मुक्त कर छुड़वा दिये। वह जरासंध और सैन्य लेकर आये तो उससे भूभारहरण कार्य सरल होगा इस विचार से श्रीकृष्ण ने जरासंध को छोड़ दिये ।। 79 ।।

वीर, शूर, धीर नामों से पुकारे जाने वाला जरासंध श्रीराम कृष्ण से मुक्त होकर आने के बाद लज्जा से किसी को मुँह न दिखाते हुये तप करने के लिये जंगल के रास्ते को पकड़ लिया। किन्तु अन्य राजाओं ने उससे रास्ते में भेंट कर आग्रह से वापस राजधानी को ले आये ।। 80 ।।

इस प्रकार जरासंध अपने सैन्य को खोने के बाद श्रीकृष्ण कृपा और उपेक्षा से छोड़ने के बाद दुःखित होकर मगध राज्य को वापस आया ।। 81 ।।

श्रीकृष्ण अपनें सैन्य को नाश न होने देते हुये शत्रु सैन्य का नाश किये। जरासंध के बचे हुये धन, स्त्री, कोष, वाहन को अपने वश में ले लिये ।। 82 ।।

श्रीकृष्ण के ऊपर देवताओं ने फूल की वृष्टि किये। मथुरा की प्रजा, सूत, मागध बन्दियों ने सन्तुष्ट होकर, भयभीत होकर श्रीकृष्ण की विजय गाथा को गाये ।। 83 ।।

प्रभु श्रीकृष्ण जब विजयी होकर पुरप्रवेश किये तब शंख दुंदुभी, भेरी, तूर्य, वेणु-वीणा, मृदंग सुन्दर ध्वनि किये ।। 84 ।।

मथुरा के रास्तों को जल सिंचन से शुद्ध किये, पताका से श्रृंगार किये। पण्डितों ने वेद घोष किये। सारे लोग अपने घरो तोरणों से अलंकृत किये ।। 85 ।।

नगर की नारियों ने प्यार से खिले हुये फूल के समान आँखों से श्रीकृष्ण को देखते हुये फूल, दही, लाई को श्रीकृष्ण के ऊपर बरसाये ।। 86 ।।

श्रीकृष्ण रणभूमि से अपराधियों को, वीरों के आभूषणों को, यदुराजा उग्रसेन को समर्पित किये ।। 87 ।।

यह जरासंध का पहले युद्ध का समाचार है। उसका दूसरा युद्ध गोमन्त पर्वत के पास होता है। भागवत में उसको बावनवाँ अध्याय में कहते हैं। पचास और इक्यावन अध्याय में तीसरा और चौथा युद्ध का वर्णन है। हरिवंश और भागवत में इस क्रम में थोड़ा सा अदल-बदल है।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में उनचसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पचासवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते है - जरासंध पिछले युद्ध में हुई पराजय को दिन-रात याद करता रहा। दुःख का अनुभव करते हुये तीन महीने में अन्य राजाओं को मिलते हुये मत्स्य, मालव, चेदि, कुरु, पांचाल, केरल राजाओं को बुलाकर उनके सहयोग से युद्ध की सिद्धता की ।। 1-2 ।।

कुलिंद, कुन्तल, अवन्ती, काशी, गांधार, सृंजय, कलिंग, केकया, आन्ध्र, दशार्ण, वंग, सैंधव, माद्र, त्रिगर्त, सौवीर, पार्वतीय इत्यादि राजाओं को जमा कर पुनः तेइस अक्षोहिणी सैन्य को तैयार किया ।। 3-4 ।।

गज, अश्व, रथ और सैन्य वाले राजाओं को जबरदस्ती से अपना कर उनके साथ मगध पार करते हुये पश्चिम की दिशा में प्रयाण किया ।। 5 ।।

मथुरा को बहुत देर रात में आकर यमुना तट पर राजाओं के साथ वास किया ।। 6 ।।

सूत, मगध, बंदियों के स्तुति को सुनते हुये आराम से विश्राम किया। इधर बलिष्ठ जरासंध का युद्ध के सिद्धताओं के बारे में सुनते हुये श्रीकृष्ण ने उसी रात बलराम, वसुदेव, उद्धव, अक्रूर, सात्यकी, आहुक, सारण इत्यादि लोगों से मिलकर मंत्रालोचना की ।। 7-8 ।।

रात के मंत्रालोचना में आगे करने का कर्तव्य कर्म के बारे में निर्धारण किये। उस प्रकार सूर्य उदय के पहले अपने सेनापतियों को बुला कर चतुरंग सैन्य को तीन भाग करते हुये जरासंध के सैन्य के ऊपर युद्ध करने चले गये ।। 9-10 ।।

बलराम कृतवर्म, गद और सारय को जरासंध के शिविर के बाँये ओर से आक्रमण करने के लिये भेजे ।। 11 ।।

सात्यकि, विपृथु और उद्धवों को दाहिने बाजू से आक्रमण करने के लिये भेज दिये ।। 12 ।।

स्वयं श्रीकृष्ण रथ और सैन्य से युक्त होकर जरासंध के सामने उसके बड़े सैन्य का सामना किये ।। 13 ।।

जरासंध का सैन्य बहुत रथ, हाथी, गज, पादतियों से भरा हुआ था। जरासंध ने समझा

था कि जमुना तट पर कोई आपत्ति नही रहेगी। इस भाव से वे निश्चिंत होकर सोये थे। वे सुबह की गहरी नींद में अपने को भूल गये थे ।। 14 ।।

सूर्य उदय होकर पर्वत के ऊपर चढ़ रहे हैं। अन्धेरा अदृश्य हो रहा है। पक्षियों का कल-कलरव आरम्भ हो रहा है ।। 15 ।।

कमल के फूल खिल रहे है। भौरे गुंजन कर रहे हैं। इतने में श्रीकृष्ण जरासंध के अतिभयंकर सैन्य में प्रवेश किये ।। 16 ।।

जरासंध के सैनिक घबरा गये। वे घोड़े को अभी लगाम नही डाले हैं। हाथियों के ऊपर हौद नही चढ़ाये गये हैं ।। 17 ।।

पदाति लोगों ने अपने बाल को नही बांधे थे, कवच नही पहने थे। घुड़सवार, रथिक अभी नही चढ़े थे, हाथों में आयुधों को नही लिये थे ।। 18 ।।

रथों को घोड़ों से नही जोड़े थे, ध्वज को नही बांधे थे। जरासंध के सैन्य अनिरीक्षित रूप से तीनों बाजू से आक्रमण किया हुआ सैन्य को देखकर घबरा गये। क्या करना उनको मालूम नही हुआ ।। 19-20 ।।

कई लोग भाग गये। कई भागते हुये गिर गये, और कई को डर कर शत्रुओं का सामना करने लगे ।। 21 ।।

और कई लोग कवच पहनते ही थे इतने में बाण लगकर मर गये। कई सैनिकों के हाथ-पांव कट गये। और कई लोग क्रोध से लाल-लाल आँखों से शत्रु को देखते हुये सामना करने लगे ।। 22 ।।

कई पराक्रमी लोग बिना आसन वाले घोड़े पर चढ़कर युद्ध प्रारम्भ किये। कई बिना लगाम वाले घोड़े को वैसे ही चलते हुये युद्ध में भाग लेकर कीर्तिशाली बने ।। 23 ।।

राजाओं ने घबराकर नींद से उठकर अपने सैनिक का मरण होम को देखते हुये युद्ध सामग्री के बिना ही युद्ध करने लगे ।। 24 ।।

कई लोग राजा के शिविर को छोड़ कर अरण्य में भाग गये। कई अक्रोश से जरासंध के पास जाकर जय हो का उद्घोष किये ।। 25 ।।

श्रीकृष्ण एकमात्र अपने रथ से शत्रु सैन्य के सामने के भाग में घुस गये। शस्त्र लेकर युद्ध करते हुये अनेक वीरों को मार दिये ।। 26 ।।

बलिष्ठ बलराम बड़े सैन्य से बाँये तरफ से जरासंध के सैन्य का मर्दन करने लगे ।। 27 ।।

जैसे किसान अपने हल से भूमि को चीरकर मिट्टी के ढेले को फाड़ कर भूमि में बीज को बो कर कृषि करता है वैसे बलराम युद्ध भूमि में अपने हल से शत्रुओं के हृदय को चीरकर शत्रुओं के सिर नाम के ढेले को अपने मुसल से

चूर कर यश नाम के बीज को बो कर श्रीकृष्ण के प्यार नाम के अंकुर पाये।

महाबाहुशाली सात्यकि बड़ी चतुरंग सैन्य के साथ दाहिने ओर से आक्रमण करते हुये सैन्य का नाश किये ।। 28 ।।

जरासंध से रक्षित सैन्य इस आक्रमण से भयभीत होकर दसों दिशाओं में जहाँ रास्ता मिलता है वहाँ भाग गये ।। 29 ।।

सात्यकि उनका पीछा करते हुये पाँच योजन तक उनको भगाकर जयशाली होकर वापस आये ।। 30 ।।

श्रीकृष्ण तोमर, अंकुश से युक्त बड़े-बड़े हाथी, अनेक घोड़े, शस्त्र, ध्वज युक्त रथ इन सारे जरासंध के साधनों को अपने सैनिकों के साथ मथुरा भेज दिये ।। 31 ।।

इस प्रकार इस युद्ध में लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण सोना-चाँदी से बनाये हुये साधन, छत्र, चामर किरीट और अनेक तरह के वस्त्र, केयूर कुण्डल और रेशम के बहुत से कपड़े पा लिये ।। 32 ।।

श्रीकृष्ण के आदेशानुसार बलराम युद्ध में अपनाये हुये जरासंध के कोष वाहन डेरा, आयुध, आभरण इत्यादि सकल साधनों को राजा उग्रसेन को समर्पित किये ।। 33 ।।

जरासंध का सैन्य इस प्रकार बार-बार युद्ध करता रहा। श्रीकृष्ण उसको हराते रहे है। यह वेद विद्या के ऊपर होने वाला अवैदिक मत का आक्रमण है। अन्त में वे हार जाते है। यही इस युद्ध का सन्देश है। मथुरा को नाश करने के लिये जरासंध जो प्रयत्न करता था वह प्रयत्न उपनिषदों को गलत अर्थ बोल कर नाश करने का प्रयत्न के समान है। उपनिषद में श्रीकृष्ण का कोई प्रतिपादन नही है। बोलने जैसे मथुरा में श्रीकृष्ण नही है। इसको सिद्ध करने के लिये जरासंध के सैन्य प्रयत्न करते थे। भूमि में यादव न रहे यह जरासंध का प्रयत्न था। वैसे ही इस जगत में वैष्णव न रहे यह दुर्वादि का प्रयत्न रहता है। इस प्रकार जरासंध का तीन युद्ध होते रहे और जरासंध अपयश पाता रहा।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में पचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - इक्यावनवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते है - श्रीकृष्ण से पराजित जरासंध श्रीकृष्ण के साथ और युद्ध करना चाहता था। किन्तु सैन्य बल कम था। उसको बढ़ाने के लिये सहायता के लिये बलिचक्रवर्ती के पुत्र बाणासुर को देखने श्रोणितपुर को जाता है ।। 1 ।।

अपने मित्र जरासंध युद्ध में हार कर अपने पास बचे हुये राजाओं के साथ आ रहा है। यह समाचार सुनकर आगे बढ़ कर बाण उसका स्वागत किया ।। 2 ।।

अलंकारित हाथी, घोड़ा, रथ, सेवक, वेश्याएँ, सूत, मागध, बन्दी, ध्वज-पताका, छत्र चामर, मंगल वाद्य, सोने के तोरण, सुन्दर दीप, कलश, दर्पण के साथ हजार हाथों वाला बाणासुर जरांसध का स्वागत किया। दोनों परस्पर मिलकर हाथ पकड़ कर परस्पर अपने मन में क्या है इसको जानने वाले होने के कारण परस्पर सत्कार किये। बाद में सभा में बणा को उद्देश्य कर जरासंध भाषण करता है ।। 3-4-5-6 ।।

हे दानवश्रेष्ठ, अधर्माचरण करने वाला, दुरात्मा, वह गाय चराने वाले रात में अपने प्रताप से हमको वंचित किया ।। 7 ।।

हमारे हाथी, घोड़ा, युद्ध सामग्री से भरा हुआ रथ को अपहार किया ।। 8 ।।

जरासंध की ये बात सच नही है। श्रीकृष्ण रात में युद्ध नही किये। सूर्य उदय के समय में सूर्य जैसे अन्धकार का नाश करता है वैसे भगवान श्रीकृष्ण ने जरासंध के सैन्य को नाश किये। सूर्योदय तक सोना जरासंध की गलती है। उसके लिये उसको दण्ड भोगना पड़ा।

श्रीकृष्ण के साथ मैं द्वन्द्व युद्ध करना चाहा। तब इन राजाओं ने द्वन्द्व युद्ध करने नही दिया ।। 9 ।।

इसी कारण हम वहाँ से आपके पास आये हैं। भाई अब आप ही हमारी सहायता करें ।। 10 ।।

जरासंध के इन बातों को सुनकर बाणासुर उसको अपने नगर के अन्दर राजघर को ले

चला। उनको और उनके साथ आये हुये राजाओं को बड़ा सत्कार किया ।। 11 ।।

भोजन, स्नान, शयन, गन्ध, तांबूल इत्यादि उपचारों से बाणा उनका सत्कार किया ।। 12।।

भोजन और विश्रान्ति के बाद जरासंध बाण का सम्पद वैभव का दर्शन किया। अलंकृत होकर सिंहासन पर बैठा हुआ जरासंध को बाणासुर कहता है ।। 13 ।।

हे जरासंध सुनो :- मैं झूठ नही बोलता। मेरे हाथी, घोड़े, यह राज्य, ये प्रजा और जो जो मेरा है वह सारा आपका है। ।। 14 ।।

श्री शुकदेव जी कहते है :- इस प्रकार कह कर जरासंध को बणासुर साठ हजार हाथी, एक लाख रथ का सैन्य और दस लाख मनोवेग वाले, वायुवेग वाले, घोड़े को दिया ।। 15 ।।

माया युद्ध जानने वाले अपने समान तीन सौ प्रसिद्ध दानवों को जरासंध के वश में दिया ।। 16 ।।

हे राजा अनेक तरह के पालकी, छत्र, व्यंजन, आभूषण, वस्त्र-पात्र, शैया-आसन ऐसे असंख्य वस्तुओं को दिया ।। 17 ।।

बाणासुर अपने कुभाण्ड और कूपर्ण नाम के मंत्रियों को जरासंध के सहायता के लिये दे दिया ।। 18 ।।

लयकाल में सुर-असुर, मानव-दानव सबको संहार करने में शक्त श्रीकृष्ण के सामने ये कुभाण्ड, कूपर्ण क्या कर सकते हैं ।। 19 ।।

श्रीकृष्ण के सामर्थ्य के ज्ञान न रहने वाले इन राजाओं ने जरासंध के आज्ञा से पुनः श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने के लिये तैयार हो गये ।। 20 ।।

जरासंध शिव भक्तों के गुरु थे। बाणा शिव भक्त होने के कारण उसका शिष्यत्व लिया था। शिष्य के साथ सहायता लेना गलत नही है। महास्वाभिमानी जरासंध और किसी की सहायता नही चाहता है। अपनी आज्ञा से सारे राजाओं को युद्ध के लिये बुलाता था।

बाणा के अनुज्ञा के साथ जरासंध अनेक राजा और चातुरंग बल समेत शोणितपुर से चल कर थोड़े दिन के बाद मथुरा नगरी को घेरा लिया ।। 21 ।।

नगर के द्वार को बन्द करते हुये प्राकार, उद्यान, कुएँ इत्यादि मथुरा के अलंकार भूत साधनों को कुल्हाड़ी, फलुहा इत्यादि साधनों से नाश करने लगा ।। 22-23 ।।

जरासंध को पुनः आकर नष्ट करने का दुष्ट कार्य में जुड़ा हुआ देखकर राम कृष्ण का क्रोध और बढ़ गया। वे युद्ध की सिद्धता के लिये नगाड़ा बजाये। आयुध और युद्ध सामग्री के साथ सिद्ध

हुये रथ, अश्व, गज और सैन्य के साथ सात्यकि, कृतवर्म, उग्रसेन, गद, आहुक और वसुदेव के साथ निर्भय होकर मथुरा से बाहर आये। लगता था दो सिंह उग्र रूप धारण कर बाहर आये है ।। 24-25-26 ।।

कमल के समान आँख वाले श्रीकृष्ण मथुरा नगर के महाद्वार से बाहर आकर पांचजन्य नाम के महाशंख से ध्वनि किये ।। 27 ।।

यादव और राजाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ। बाणासुर के मंत्री कुभाण्ड कूपर्ण बड़े सैन्य के साथ यादव के साथ माया युद्ध किये। वे माया युद्ध में निपुण थे और पराक्रमी थे ।। 28-29 ।।

श्रीकृष्ण अपना सैन्य मायायुद्ध से त्रस्त हो रहा है इसको देखकर विज्ञानास्त्र से एक ही निमिष में माया को हटा दिये। युद्ध कर रहे सात्यकि कृतवर्म को यह आदेश दिये ।। 30 ।।

आप लोग युद्ध करने में रासिक है। दुष्ट दर्प वाले इन दैत्यों के युद्ध करने में आप अपनी रासिकता को दर्शाये। श्रीकृष्ण के इन बातों को सुनकर महाबलिष्ठ सात्यकि और कृतवर्म घनघोर युद्ध करने लगे ।। 31 ।।

हे राजा परीक्षित सुनो :- भगवान श्री कृष्ण अपने एक ही धनुष से अनेक राजाओं से युद्ध किये। जगत के स्वामी श्रीहरि को यह कोई आश्चर्य की बात नही है ।। 34 ।।

हे राजा रणांगण में अनेक हाथी अपने सूंड़ कटने से गिर कर मर गये। घोड़े के सिर कट गये थे ।। 33 ।।

बन्धन कटने से रथ टुकड़े-टुकड़े होकर भूमि पर गिरे थे ।। 34 ।।

सैनिक रक्त से लतपथाते हुये हाथ पांव कटने के बाद मूल को कटा हुआ वृक्ष के समान गिरते रहे ।। 35 ।।

श्रीकृष्ण के शार्ङ धनुष से निकले गिद्ध और मोर के पंख लगे हुये बाण एक से दस, दस से सौ बनते हुये एक घोड़े के ऊपर सौ, रथ के ऊपर हजार, हाथी के ऊपर दस हजार बनकर शत्रुओं को मारते रहे। उन बाणों के नाम थे, नतपर्व, स्वर्णपुंख, अयोमुख और तैलाक्त ।। 36-37 ।।

श्रीकृष्ण पादति के ऊपर दस बाण, घोड़ के ऊपर सौ, रथ के ऊपर हजार और हाथी के ऊपर दस हजार बाण मारे। श्रीहरि के धनुष से निकला हुआ एक बाण इस प्रकार दशक के गुण में वृद्धि होकर शत्रु सेना के ऊपर समुद्र के तंरग जैसे विस्तार होते थे।

श्रीकृष्ण के इन बाणों से अपना चतुरंग सैन्य नष्ट हो रहा है। इसको देखकर जरासंध अपने वराह चिन्ह युक्त ध्वज वाला रथ से बलराम के सामने आ गया ।। 38 ।।

बलराम के बड़े ताल वृक्ष के चिन्ह वाले ध्वज को दूर से देखते हुये बलराम को पहचान कर पिछले युद्ध में उसने मारा हुआ मार को याद करते हुये अपने गदा को जोर से घुमाते हुये सामने आया ।। 39 ।।

बलराम मैं मेरी इस गदा को तुम्हारे ऊपर फेंकने के पहले तुम अपने मुसल को उठा लो, नही तो ये गदा तुम्हारे ऊपर गिरा तो तुम उसको सहन नही सकते। तुम उस मुसल से युद्ध करना चाहते हो न। आओ तुम अपने बाहुबल को हमें दिखाओं ।। 40 ।।

जरासंध की इन बातों को सुनकर बलराम का आक्रोश बढ़ गया। आँख लाल हो गयी। प्रलयकाल के यम के समान बलराम अपने मुसल को उठा लिये ।। 41 ।।

शत्रु के दर्प को मिटाने वाले धुआँ को उगाने वाला मुसल को बलराम एक हजार बार घुमाकर जरासंध के ऊपर फेक दिये। सिंह के समान गर्जना की ।। 42 ।।

बलराम के हाथ से आया हुआ मुसल जरासंध के रथ घोड़े और सारथी का सत्यानाश किया। जरासंध उससे बाल बाल बचा ।। 43 ।।

पहाड़ के शिखर के सामान बड़े लोहे की गदा को उठाकर अपने कंधे के ऊपर रख कर जरासंध पांव से धरती को हिलाते हुये बलराम के नजदीक आ गया ।। 44 ।।

रथ के बिना पांव के बल से चलकर आने वाले जरासंध को देखकर बलराम अपने रथ को छोड़कर पैदल चलते हुये जरासंध का सामना किये ।। 45 ।।

सारे लोगों के सामने जरासंध क्रोध से अपने वजन वाला लोहे की गदा से बलराम को मार कर सिंहनाद किया ।। 46 ।।

अपने ऊपर गिरने वाले पत्थर को काटने वाला छेनी के सामान गदा को बलराम अपने बांये हाथ से पकड़ लिये ।। 47 ।।

बलिष्ठ बलराम वह गदा को दूर फेक कर जरासंध के पत्थर के सामान बड़े छाती को अपनी मुष्टि से मार दिये। जोर से उसको पकड़ लिये ।। 48 ।।

जरासंध के पेट को उनके पांव से बांधकर सिर को पेट से जोड़ दिये। इस दांव पेंच में दोनो जमीन पर गिर गये ।। 49 ।।

उस समय बलराम जरासंध के छाती पर थे। अमित पराक्रमी जरासंध उनको वहाँ से हटाकर जमीन पर गिरा दिया ।। 50 ।।

उसके बाद वह दोनो वीर खड़े होकर क्रोध से लाल लाल आँख वाले वे दोनो मदभरित हाथी के समान परस्पर पकड़ लिये ।। 51 ।।

दोनो का क्रोध बढ़ता रहा। युद्ध में प्रतिद्वंदि को मारने की इच्छा से दोनो एक के छाती पर घूसा दूसरो ने मारे। एक दूसरे को घसीट लिये ।। 52 ।।

राजा वे इस प्रकार एक सौ धनुष दूर घसीटते हुये पास में रहने वाले वृक्ष और पहाड़ को चकनाचुर किये ।। 53 ।।

दुष्ट जरासंध बलराम को छोड़कर अपनी गदा को उठाकर खड़ा हो गया। इतने में बलराम भी मुसल को उठाकर जरासंध को मारने लगे ।। 54 ।।

सिर के ऊपर दोनो बाहु के ऊपर, पेट, जांघ, छाती में बार बार अपने मुसल से मारते रहे ।। 55 ।।

दुरभिमानी जरासंध बलराम के छाती, गला, मुख, भाल, गाल, पेट, पीठ और दोनो बाहुओं पर एक ही समय में मारता रहा ।। 56 ।।

इस प्रकार युद्ध भूमि में परस्पर मारते रहे। उसको देखकर अन्य राजाओं भयभीत हो गये। दुःख करने लगे ।। 57 ।।

अब जरासंध मरने वाला है, समझकर दुख से युद्ध करना छोड़ दिये ।। 58 ।।

उधर सात्यकि युद्ध क्षेत्र में महापराक्रम से युद्ध किया। बणासुर के मंत्री कुभाण्ड ने तीन बाणों से उसको मारा ।। 59 ।।

मार खाकर क्रुद्ध हुआ सात्यकि सांप के समान आवाज करते हुये कुभाण्ड को मारने के लिये लम्बे वाले पाँच बाणों को उठा लिया ।। 60 ।।

तब कुभाण्ड के सैन्य में हाहाकार मचा। महाबाहु सात्यकि धनुष को कान तक खींच कर कुभाण्ड को नाभि, कण्ठ, भाल, छाती और सिर के ऊपर मार दिया ।। 61-62 ।।

कुभाण्ड मार खाकर प्रज्ञा खोकर रथ के बीच में गिर गया। उसके सारथी उसको युद्ध क्षेत्र से दूर ले गये ।। 63 ।।

कूपकर्ण कृतवर्म के साथ युद्ध कर रहा था। कुभाण्ड की स्थिति को देखकर वह भी युद्ध छोड़कर चला गया ।। 64 ।।

वे दोनो दैत्य न बोलते हुये युद्ध क्षेत्र से पलायन करने के बाद जरासंध बचे हुये सैन्य को लेकर युद्ध क्षेत्र को छोड़कर आये हुये मार्ग से वापस शोणितपुर को चला गया ।। 65 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बावनवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते है - हे राजा परीक्षित सुनो :- यादव के शस्त्रों से मार खाये हुये क्षत्रिय राजाओं और बाणासुर के सैन्य भाग गये। इसको देखकर जरासंध के लोग दुःखित हुये ।। 1 ।।

दानव सैन्य भाग गया। सारे राजा थक गये हैं। जरासंध हतवीर्य हो गया है। श्रीकृष्ण उत्साह से युद्ध कर रहे हैं। इसको देखकर बलराम का उत्साह बढ़ गया। वे जरासंध को अपने बांये हाथ से पकड़ कर दाहिने हाथ से मुसल को लेकर सिर पर मारने के लिये सिद्ध हो गये ।। 2-3 ।।

तब मेघों मे से एक अशरीर वाणी सुनाई दी। बलराम उसको स्पष्ट रूप से सुने। हे बलराम जरासंध तुम्हारे हाथ से मरने वाला नही है। उनको मारने वाला अलग है। तुम युद्ध को छोड़कर वापस चलो ।। 4 ।।

इन बातों को सुनकर बलिष्ठ बलराम जरासंध को छोड़कर रथ के ऊपर चढ़ कर सिद्ध मागध, सूत, बन्दियों की स्तुति को सुनते हुये युद्ध भूमि से चले गये ।। 5 ।।

जरासंध नतमस्तक होकर युद्ध क्षेत्र को छोड़कर हारे हुये राजाओं के साथ बचे हुये सैन्य को लेकर अपने नगर के ओर चला गया ।। 6 ।।

अशरीर वाणी का अर्थ शरीर न रहने वाला वायु का वाणी है। जरासंध को ब्रह्म रुद्र और रुद्रावतारी दुर्वासा, अवध्यात्व का वर दिये थे। शेषावतारी बलराम को रुद्र अथवा रुद्र वर सामान होने के कारण बलराम उसको छोड़ना पड़ा। बाद में ब्रह्म के समान वायुदेव भीम बन कर अवतार लेकर जरासंध को मारना है। यह भगवान का संकल्प है।

श्री शुक जी कहते है :- महापराक्रमी श्रीकृष्ण रणांगण में शत्रु राजाओं को बाणों के समूहों से ढ़क कर अनेक योद्धाओं के संहार किये, अनेक लोग भाग गये। श्रीकृष्ण भगवान सन्तुष्ट होकर सूत मागधों से और महाज्ञानी मुनियों से स्तुति पाते हुये महाद्वार और बड़ा किला वाला मथुरा नगरी में प्रवेश किये ।। 9 ।।

श्रीकृष्ण नगर प्रवेश करते समय राजमार्ग के दोनों बाजू में घर की छत और ऊपरी स्थानों में खड़े हुये स्त्री पुरुष अपने हाथों से भगवान के ऊपर फूलों की वृष्टि की ।। 10 ।।

नगर के लोग श्रीराम कृष्ण को अनेक उपहार फूल-माला गन्ध को समर्पित किये ।। 11 ।।

श्रीकृष्ण राजमार्ग से चल कर विशाल सभा में प्रवेश कर श्रेष्ठ आसन के ऊपर बैठ गये। उनके दाहिने बाजू बलराम, बांये बाजू सात्यकि बैठे हैं। यादवों मुनिगण उनके सत्कार किये। लगता था देवलोक में देवराज इन्द्र सत्कृत हो रहे हैं ।। 12-13 ।।

उस सभा में यादव में श्रेष्ठ बुद्धिशाली और बड़े लोग अक्रूर, उग्रसेन, उद्धव इनके साथ समालोचना करते हुये मथुरा को छोड़कर शत्रु के लिये दुर्गम गोमान्तक पर्वत को देखने चले। बलराम के साथ प्रातः दक्षिण की दिशा में प्रयाण किये ।। 14-15-16 ।।

जरासंध और युद्ध करने के लिये आने वाला है। उसके साथ बार बार युद्ध करके अपने सैन्य को क्यों खोना है। इस प्रकार विचार करते हुये कितने भी सैन्य आने दो मैं अकेला उसको नाश करता हूँ। इसके लिये मुझको सैन्य की आवश्यकता नही है। यहाँ रह कर हमारे सैन्य को क्यों संकट में डालना है। इस प्रकार आलोचना करते हुये श्रीकृष्ण बलराम के साथ गोमान्तक पर्वत के तरफ चलने लगे। बलिष्ठ सैन्य बहुत शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर दुर्बल और शस्त्र की कमी रहने वाले सैन्य पर युद्ध करने आये तो क्या तंत्र करना इसको दिखाने हेतु श्रीकृष्ण यह तंत्र अपनाये। श्रीकृष्ण के इस नई चाल को न समझते हुये जरासंध श्रीकृष्ण को अपने सैन्य से डरा रहा है। इस लिये श्रीकृष्ण भाग रहा है। यह समझते हुये मथुरा के ऊपर और एक बार चढ़ाई करने के लिये आया हुआ जरासंध श्रीकृष्ण का पीछा करने लगा।

बलराम के साथ श्रीकृष्ण यमुना पार कर बहुत देश पहाड़ नदियों को पार करते हुये महेन्द्र पर्वत के पास आ गये। वहाँ उनको परशुराम जी का दर्शन हुआ। महेन्द्र पर्वत के एक वन प्रदेश में जटा वल्कल धारण किये हुये, कमण्डल धारण कर कन्द मूल फल को खाते हुये रहने वाले हजारों शिष्यों के साथ लोक विलक्षण मुनिपुंगव परशुराम एक वृक्ष के मूल में बैठे हैं। उनको देखकर जगत के मालिक मधुकुल में अवतार किये हुये राम कृष्ण सन्तुष्ट हुये। वे क्षिप्रगति से आकर उनको नमस्कार किये। श्रीकृष्ण कहते है ।। 17-18-19-20-21 ।।

गुरुकुल में अवतार लिये हुये जमदग्नि पुत्र श्री परशुराम जी आपको नमस्कार। हम यदुकुल के बलराम और कृष्ण हैं। आप हमारे नाम सुने होंगे । 22 ।।

भगवान श्रीकृष्ण भगवान परशुराम जी को नमस्कार कर रहे हैं। यह केवल लीला है। असुर मोहन के लिये भगवान यह लीला कर रहे हैं। वास्तव में सारे अवतारों में भगवान के रूप एक समान, अभिन्न समान शक्ति वाले होते हैं। परस्पर पूज्य पूजक उच्च-नीच दिखाने वाला केवल असुर मोहन के लिये है। यह षाड्गुण्य नाम के ग्रन्थ में कहा गया है।

श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर धर्म स्वरूप भार्गव राम बलराम और कृष्ण को देखकर सन्तोष से बाते करते हैं ।। 23 ।।

हे कृष्ण तुमको और तुम्हारे भाई महात्मा बलराम का स्वागत है। तुम यदुकुल में अवतार

लिये भगवान अधोक्षक हो यह मैं जानता हूँ ।। 24 ।।

यह कार्य कारण प्रपंच के मूल कारण तुम आदि पुरुष नारायण के रूप हो। यह मैं जानता हूँ। सारे कार्य के लिये स्वतंत्र कर्ता पुण्डरीकाक्ष आपको मेरा नमन ।। 25 ।।

जगद्वंद्य आप दोनो यहाँ क्यों आये हैं ? कहाँ जा रहे हैं ? परशुराम के इस प्रश्न को राम कृष्ण उत्तर दिये। प्रभु शत्रु के लिये दुर्गम हो ऐसे एक क्षेत्र को देखने के लिये हम गोमांतक पर्वत को जा रहे हैं। इन बातों को सुनकर परशुराम जी बोलते है ।। 27 ।।

हे महाबाहु वैसे ही हो। भाई के साथ गोमांतक पर्वत जाओ। उसके नीचे सृगाल वसुदेव का नगर कोल्हापुर है। वह वासुदेव आप लोगों के विरुद्ध है। युद्ध में उसको मार कर आप लोग गोमांतक को जाइये ।। 28-29 ।।

परशुराम जी की यह बात सुनकर सर्वज्ञ भगवान उनकी आज्ञा से बलराम के साथ दक्षिण की ओर प्रयाण किये ।। 30 ।।

श्रीकृष्ण बलराम दक्षिणा पथ में प्रयाण करते हुये आकाश को चूमने वाली महावृक्ष वाले गोमांतक पर्वत को देखे। वह पहाड़ के तल में बड़े प्राकार और विशाल द्वार वाले बड़े बड़े उन्नत मकान और गोपुर वाले कोल्हापुर नगर को देखे। उसको देखकर शंख चक्र गदाधारी श्रीकृष्ण अपने पांचजन्य शंख को बजाये। उसको सुनकर सृगाल वासुदेव क्रोध से आग बबूला हो गया। अपने पदाति अश्व , रथ, गज युक्त चतुरंग सैन्य को लेकर राम कृष्ण के साथ युद्ध करने आया ।। 31-32-33-34 ।।

कश्यप की पत्नी दनुदेवी, वह दानवों की माता। करवीरपुर के राजा की पुत्री होकर जन्म ली। वासुदेव यात्रा करते हुये जब गया था तब करवीरपुर के राजा ने अपनी बेटी से उसका विवाह किया। अपने को पुत्र न होने के कारण बेटी के पेट में जन्म लिया हुआ सृगाल को दत्तक पुत्र रूप में ले लिया। यह सृगाल पूर्व जन्म में मधु दानव के पुत्र धुंधु। पुत्र के जन्म के बाद वसुदेव मथुरा में देवकी इत्यादि के साथ शादी करके मथुरा में ही रहने लगा। कंस उसको जेल में रखने के कारण वह पुनः कोल्हापुर को जा नही सका। इससे सृगाल वासुदेव अपने पिता, माता को छोड़ दिया है समझकर यादवों से दीर्घ द्वेष करने लगा। सूर्य की आराधना से अवध्यत्व वर को एक दिव्य रथ को प्राप्त किया। श्रीकृष्ण को देखते ही उनके साथ युद्ध करने के लिये सैन्य समेत आ गया। बन्धुत्व में दोनो वासुदेव के पुत्र होने के कारण भाई भाई होते हैं। किन्तु सृगाल दानव हैं।

सृगाल वासुदेव के बाणों से राम कृष्ण दोनो ढ़क गये। सृगाल के बड़े सैन्य को देखने के बाद भी राम कृष्ण दोनो रथ रहित होते हुये भी भीषण युद्ध करने लगे। उनके बाण से सृगाल का सैन्य बहुत त्रस्त हो गया। उसको देखकर क्रोधित सृगाल रथ में बैठ कर धनुष को लेकर राम कृष्ण के पास समुद्र की बड़ी लहर जैसे आ धमका। तट जैसे समुद्र को रोक देता है वैसे श्रीकृष्ण

सृगाल को रोक दिये ।। 35-36-37 ।।

वसुदेव के दोनो पुत्र महाबलिष्ठ हैं, वे महाक्रोध से परस्पर वध करने की दृष्टि से युद्ध कर रहे हैं ।। 38 ।।

रणरंग में रथ में बैठे हुये सृगाल के किरीट से शोभायमान सिर को श्रीकृष्ण अपने एक बाण से काट दिये ।। 39 ।।

श्रीराम कृष्ण रथ के बिना जमीन पर खड़े हैं। सृगाल भी रथ छोड़कर उनके सामने पैदल आकर युद्ध करना था। यह युद्धधर्म है। अधर्मी सृगाल युद्धधर्म का पालन नही किया।

हे परीक्षित सुनो :- श्रीकृष्ण से अपना राजा मर गया इसको देखकर बचे हुये सैनिक दस दिशाओं में भाग गये ।। 40 ।।

बाद में श्रीराम कृष्ण करवीरनगर में प्रवेश किये। वहाँ के ब्राह्मण और वैश्य प्रजा उनका सत्कार किये ।। 41 ।।

सृगाल वासुदेव को मणिभद्र नाम का गन्धर्व पुत्र होकर जन्म लिया था। उसका नाम शक्रदे था। श्रीकृष्ण अपने पुत्र लगने वाला शक्रदे को सिंहासन के ऊपर बैठा कर प्रजा का सन्तोष भागी बना।

सृगाल के हाथी, घोड़ा, सैन्य, कोश इत्यादि युद्ध प्राप्त धन को सेवक के साथ मथुरा को भेज दिये ।। 42 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में बावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

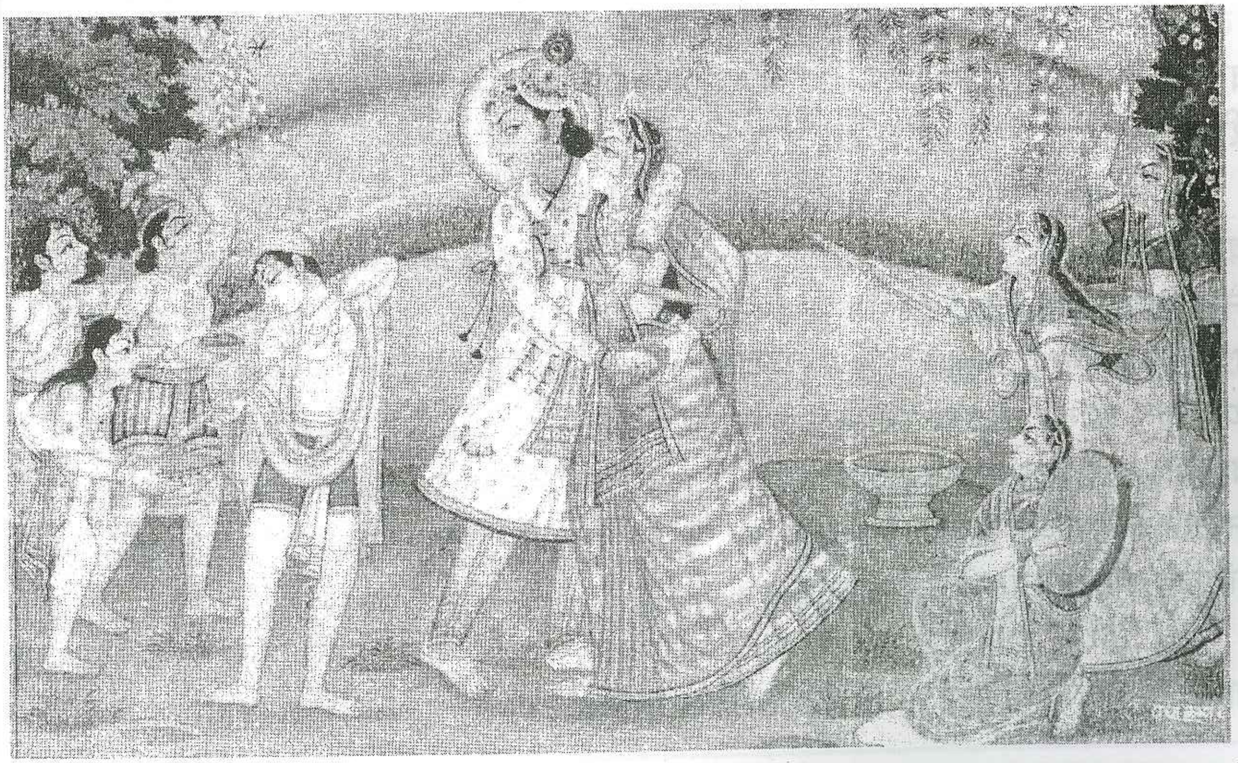

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तिरपनवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते है - पराक्रमी राम कृष्ण ऊँचे ऊँचे वृक्षों से लताओं से घिरा हुआ श्रेष्ठ गोमान्तक पर्वत के ऊपर चढ़े। वहाँ वह पर्वत श्रेष्ठ ताल, कदम्ब, नीम, सगोना इत्यादि वृक्षों से भरा हुआ था। पहाड़ के ऊपर चढ़ कर वहाँ एक सुन्दर विशाल प्रदेश को देखे। वहाँ केले के वन सुशोभित थे। मदमत्त कोयल, गुंजन करने वाले भौरे, वृक्ष को हिलाने वाले बन्दर, फल के भार से झुके हुये वृक्ष, फलों से भरा हुआ नारियल इनको देखते हुये आनन्द पाये। वहाँ वृक्ष की छाया में अत्यन्त स्वच्छ जल से भरा हुआ छोटे छोटे झीले बह रही थी ।। 1-2-3-4 ।।

उस क्षेत्र का नाम प्रवर्षण था। वहाँ प्रतिदिन मेघ बिना आंतक पानी बरसाते थे। इसके लिये उसका नाम प्रवर्षण पड़ा है। राम कृष्ण वहाँ आ गये। वहाँ चढ़कर दस दिशाओं को देखते हुये अपनी इच्छा के अनुसार विहार करते हुये राम कृष्ण रहने लगे ।। 5-6 ।।

इसी समय में सागरों में श्रेष्ठ क्षीरसागर के श्वेतद्वीप में शंख, चक्र, गदाधारी श्रीहरि के निवास में बैठा हुआ विलोचन पुत्र महाबलशाली बलिचक्रवर्ती देव देव वासुदेव का रत्न खचित किरीट की चोरी किया ।। 7-8 ।।

गोमान्तक पर्वत में श्रीकृष्ण राम विहार कर रहे थे। इतने में क्षीर सागर के अमुक्त स्थान में रहने वाले भगवान को देखने के लिये बलिचक्रवर्ती वहाँ आ गया। उस समय उसमें असुरावेश में आ गया। इसको लोक को बताने के लिये भगवान नींद करने का बहाना करने लगे। उस समय बलि भगवान के किरीट को लेकर सुतल लोक के लिये जा रहा था। गरुड उसको देखकर उसका पीछा करते हुये उस किरीट को अपने वश में ले लिया। वापस आते समय भगवान को गोमान्तक पर्वत के ऊपर विहार करते देखकर उस किरीट को वहीं समर्पित किया। वह किरीट भगवान श्रीकृष्ण के सिर पर ठीक तरह से बैठ गया। उसको देने के बाद गरुड़ उनकी स्तुति करता है। क्षीरसागर में शयन करने वाले भगवान नारायण के सिर के ऊपर भी वही किरीट दिखने लगा। यह माहाम्य नाम के ग्रन्थ में कहा गया है। यह कथा श्रीधरी पाठ में नही है। किन्तु हरिवंश में है।

वह किरीट हजारों इन्द्रनील, सैकड़ो गोमेध, पद्मराग मणियों से सफेद मोती पुष्पराग इत्यादि रंग बिरंगे मणियों से जटित सोने से बनाया गया है। इसको दानवीर बलिंचक्रवर्ती ने

अपहरण किया। इसको जानते हुये उसके रक्षक पक्षिराज गरुड़ तीव्र गति से बलि का पीछा किया ।। 9-10।।

गरुड़ पाताल लोक में बलि के साथ घन घोर युद्ध किया। दानव श्रेष्ठ, दानव राज बलि को हराकर श्रेष्ठ रत्नों से युक्त सूर्य के सामान प्रकाश वाले किरीट को लेकर वापस आ रहा था। इतने में वह भगवान श्रीकृष्ण को गोमान्तक शिखर में विहार करते देखा ।। 11-12 ।।

रम्य गोमान्तक पर्वत में भाई के साथ रहने वाले भगवान श्रीकृष्ण को देखकर गरुड़ उनके सामने आकर वह दिव्य किरीट को श्रीकृष्ण के सिर पर रखकर उनको दण्डवत् नमन करते हुये स्तुति करने लगा ।। 13 ।।

गरुड़ कहता है :- भगवान नारायण को मैं नमन करता हूँ। आप भूभारहरण करने के लिये अवतार लेकर यहाँ आये है। असुर का संहार करते हुये सकल गुण से पूर्ण आप सकल कर्मों के साक्षी बनकर यहाँ खड़े हैं ।। 14 ।।

इस सृष्टि के प्रारम्भ में आप ब्रह्मा जी के नियमन करते हुये ब्रह्मा जी में रहते हुये ब्रह्म के नाम धारण करते हुये सारे जगत का सृष्टि करते हैं। स्वयं नारायण रूप से उस सृष्टि का पालन करते है। रुद्र के अन्दर रहते हुये रुद्र नाम को धारण करते हुये रुद्र रूप धारण कर संहार करते हैं ।। 15 ।।

भगवान मैं आपका सेवक गरुड़ हूँ। आप देवोत्तम विष्णु हैं, यदुवंश के वर्द्धक होकर इस भूमि में अवतार लिये हैं। कहिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ।। 16 ।।

श्री शुक देव जी कहते है :- इसप्रकार कहते हुये देवाधिदेव श्रीकृष्ण को प्रणाम करने के बाद उनके सामने दोनो घुटने के बल पर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया ।। 17 ।।

भगवान श्रीकृष्ण खुली आँखों से प्यार से गरुड़ को देखकर अपने दोनो हाथों से उसको पकड़ कर आशीर्वाद देते हुये कहे ।। 18 ।।

हे गरुड़ अब तुम अपनी इच्छानुसार जहाँ मन आता है वहाँ जा सकते हो। जब काम पड़ेगा तब मैं तुम्हारी याद करता हूँ। तब आ जाओ। इस प्रकार गरुड़ को विदा करते हुये राम कृष्ण वहाँ कन्द मूल फल खाते हुये वर्षाकाल के चार महीने वास किये। वहाँ से बड़ी सेना लेकर मथुरा को चले ।। 19-20-21 ।।

राजा करवीरपुर में सृगाल वासुदेव मर गया। यह वार्ता सुनकर जरासंध क्रोध से बड़ी सेना लेकर श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने आया ।। 22 ।।

राम कृष्ण उनके साथ सात दिन युद्ध किये। जरासंध इस युद्ध में मार खाकर भाग गया ।। 23।।

हार कर भागते हुये राजा को मारना धर्म नही यह जानकर राम कृष्ण उनको छोड़ दिये। जरासंध मगध देश को वापस चला गया। सूत, मागध, बन्दी स्तुति करते समय श्रीकृष्ण मथुरा पुरी में प्रवेश किये। इस प्रकार जरासंध सत्तरह बार प्रत्येक बार तेइस अक्षोहिणी सैन्य के साथ आकर श्रीकृष्ण से रक्षित यादवों के साथ युद्ध किया। प्रत्येक बार श्रीकृष्ण से उसका सैन्य मारा गया ।। 24-25-26 ।।

सतरहवें युद्ध में इस प्रकार अपने सैन्य को खोने वाले जरासंध को अट्ठारहवें युद्ध के लिये आओ बोलते हुये उसको न मरते हुये छोड़ दिये। जरासंध चल गया ।। 27 ।।

इस बीच नारद से प्रेरणा लेकर वीर कालयावन तीन करोड़ म्लेच्छों के साथ मथुरा को घेरा लिया ।। 28 ।।

कुण्डिनपुर में भीष्मक राजा की पुत्री रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ करने की इच्छा जरासंध रुक्मी, और साल्व की थी। श्रीकृष्ण इसके बीच में आते हैं। इसके लिये विवाह के पूर्व श्रीकृष्ण को मारने के लिये वे कालयवन से प्रार्थना कर उसको मथुरा भेजे। कालयवन श्रीकृष्ण को मारने के लिये शिव वर से जन्म लिया है। ये कथा हरिवंश में आती है। यादव कुलों के पुरोहित गर्ग मुनि बहुत विरक्त थे। वे अपनी पत्नी के संग भी नही रहते थे। इसके लिये यादव लोग उनको नंपुसक बोल कर हास्य करने लगे। इसमें श्रीकृष्ण भी मिला गया। इससे वह मुनि क्रुद्ध होकर शिव के पास तप करते हुये श्रीकृष्ण को मारने वाला एक पुत्र को शिव से वर रूप में प्राप्त किये। यवन राजा ने एक यवन स्त्री को गर्ग मुनि के पास भेजा। उसी के गर्भ में काल यावन जन्म लिया। श्रीकृष्ण को मारने के लिये समय का इन्तजार करने के कारण उसका नाम कालयवन पड़ा। नारद जी उसको मथुरा को भेजे।

कालयवन समझता था कि इस मनुष्य लोक में उसका सामना करने वाला कोई नही है। यादव शूर हैं, कालयवन के समान हैं, इसको सुनकर उसका क्रोध बढ़ता था। वह मथुरा को चारो ओर से घेरने के लिये आगे बढ़ा। इस समाचार को पाकर श्रीकृष्ण बलराम से समालोचना की ।। 29 ।।

हे भाई देखो, इधर जरासंध युद्ध के लिये आ रहा है। उधर महाबलशाली कालयवन हमको घेरने आ रहा है। दोनो ओर से आपत्ति आ रही है ।। 30 ।।

जरासंध बड़ा पापी है। वह हमारे ऊपर आक्रमण करेगा। जब हम कालयवन के साथ लड़ रहे हैं उसी समय जरासंध हमारे लोगों से युद्ध करते हुये उनको मारेगा और बन्धक बनायेगा। इसके पहले हमें मानव-दानवों को अगम्य एक सुरक्षित नगर का निर्माण करें ।। 31-32 ।।

वहाँ हमारे बन्धुओं को रखते हुये यहाँ हम कालयवन का नाश करेंगे। इस प्रकार समालोचना करने के बाद श्रीकृष्ण बारह योजन विस्तार वाला अद्भुत नगर को समुद्र के बीच में निर्माण किये ।। 33 ।।

यहाँ प्राचीन पाण्डुलिपियों में सात श्लोक ज्यादा है। उनका विवरण इस प्रकार है। सत्ताईस चतुर्युग के पूर्व शर्याति राजा के पुत्र अनर्त राज्य करता था। उसका पुत्र रेवत। वह समुद्र के बीच में कुशस्थली नाम का नगर का निर्माण किया। रेवत के पुत्र ककुद्मि, इसकी पुत्री रेवती को वर ढूंढने निकला। ककुद्मि सत्य लोक को जाकर ब्रह्मा जी से अपनी पुत्री के लिये योग्य वर माँगा। उस समय ब्रह्मा जी गन्धर्व गायन को सुनने में व्यस्त थे। एक क्षण के बाद ककुद्मि की बात सुनकर ब्रह्मा जी हँसे। अब हमारे एक क्षण में भूलोक के सत्ताईस चतुर्युग बीत चुके हैं। अट्ठाइसवाँ द्वापर युग आ रहा है। वहाँ बलराम को तुम्हारे पुत्री को विवाह में दे दो। यह कथा भागवत के सतावन अध्याय में आता है। ककुद्मि की अनुपस्थिति में कुशस्थली का नाश हो गया। उसी स्थान में श्रीकृष्ण वरुण को आज्ञा देकर बारह योजन लम्बा, आठ योजन चौड़ा, द्वारका नगर का निर्माण किये। यह कथा ऊपर के सात श्लोकों में आती है।

विश्वकर्मा इस द्वारका का निर्माण किये। उसमें उसका शिल्पकला नैपुण्य पाण्डित्य व्यक्त होता था। बड़े बड़े रास्ते, चौक, बाजार, सुन्दर उद्यान, उपवनों से युक्त द्वारका वास्तु नियमों से बाध्य था ।। 34-35 ।।

आकाश को चूमने वाली सोने की शिखर के राजगृह सोना चाँदी से अंलकृत घरों से द्वारका शोभायमान था ।। 36 ।।

रत्न के शिखर वाले सोने के घर नील मणि का जमीन, मन्दिर, चन्द्रशाला, द्वारका इनसे भरा हुआ था ।। 37 ।।

द्वारका में चारो वर्ण के लोग आनन्द से रहते थे। यादव पैमाने से द्वारका में रहने लगे। सुशर्म नाम के सभागृह और पारिजात वृक्ष को देवेन्द्र कृष्ण को भेज दिया ।। 38 ।।

द्वारका में रहने वाले लोगों के लिये सहज मरण, वृद्धावस्था और रोग नही होता था। यह नगर क्षीरसागर में सोने वाले देवाधिदेव श्रीकृष्ण का प्रिय नगर रहा ।। 39 ।।

एक कान से काले अच्छे, सुन्दर, मनोवेग वाले एक हजार सफेद घोड़ों को वरुण देव ने अर्पण किया ।। 40 ।।

रत्न से जटित आठ अक्षय निधि को कुबेर ने दिया। अन्य लोकपालक अपने आधीन रहने वाला सम्पत्ति को अर्पण किये ।। 41 ।।

हे राजा लोकपालकों को भगवान जो सम्पदाओं को दिये थे उनके अवतार समय में वे लोक पालक उनको लाकर श्रीकृष्ण को अर्पण किये ।। 42 ।।

भगवान श्रीकृष्ण अपने लोगों को अपने अचिन्त्य, अद्भुत शक्ति से द्वारका को लेकर वहाँ उनको रखते हुये बलराम को वहीं रख कर कालयवन के संहार के लिये कमल की माला को धारण किये हुये श्रीहरि निरायुध होकर मथुरा के द्वार से बाहर चले गये ।। 43-44 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में तिरपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौवनवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - मथुरा दुर्ग के महाद्वार से निरायुध होकर आने वाले श्रीकृष्ण को कालयवन ने देखा। उदय होने वाले चन्द्र के समान सुन्दर मुख वाले मनोहर श्यामल वर्ण वाले पीताम्बरधारी.................. ।।1।।

छाती में श्रीवत्स चिन्ह, गले में प्रकाशमान कौस्तुभ्मणि, पुष्ट लम्बे चार बाहु, कमल के समान दिखने वाली आँख..................।।2।।

सदा सन्तुष्ट कान्तियुक्त सुन्दर लाल गाल वाला मन्दहास युक्त मुख, चमकने वाले मकर कुण्डल...................।।3।।

इन अलंकारों से शोभायमान श्रीकृष्ण को देखा। यही श्रीकृष्ण हैं इसके छाती में श्रीवत्स चिन्ह है। चार हाथ वाला है। कमलाक्ष वनमाली अतिसुन्दर है ।।4।।

नारद जी इनके लक्षण के बारे में बोले थे। यह अन्य और कोई नही हो सकता। किन्तु निरायुध होकर आ रहा है। मैं भी इसके साथ आयुधहीन होकर युद्ध करूँ।।5।।

इस प्रकार निश्चय करते हुये श्रीकृष्ण को पकड़ने के लिये उसके पीछे दौड़ने लगा। कालयवन को आते देखकर श्रीकृष्ण जोर से दौड़ने लगे। कालयवन श्रीकृष्ण को पकड़ नही सका। श्रीकृष्ण योगियों को छोड़कर अन्यों को मिलने वाले नही हैं।।6।।

उत्सवों में भाग लेकर भगवान के रथ के पीछे चलने वाले भक्तों को एक एक पग को अश्वमेध फल मिलता है। इस प्रकार शास्त्र बताते हैं। यहाँ कालयवन भगवान श्रीकृष्ण के पीछे मथुरा से बदरी में रहने वाले मुचुकुन्द गुहा तक अनुसरण करते हुये भी भगवान के अनुग्रह को नही पाया। इससे स्पष्ट होता है कि भक्ति के बिना किसी प्रयत्न को भगवान का अनुग्रह नही मिलता। यह कालयवन भक्ति से पीछा नही कर रहा है। मारने के उद्देश्य से पीछे पीछे दौड़ रहा है।

कालयवन को लगता था श्रीकृष्ण मिल गया। किन्तु कृष्ण दूर होता था। दूर होने के बाद

कालयवन उसके पीछे और जोर से दौड़ता था। तब लगता था कि कृष्ण हाथ लगने वाला है। किन्तु कभी हाथ नही लगा ।। 7 ।।

कालयवन बोलता है :- यदुवंश में जन्म लिये तुम कृष्ण ऐसे भाग रहे हो। यह यदुवंश के लोगों को उचित नही है। ऐसे आक्रोश करते हुये उसके पीछे दौड़ता रहा। पापी लोगों को भगवान मिलते नही। भगवान कालयवन को नही मिले।।8।।

कालयवन के देखते देखते श्रीकृष्ण उस पहाड़ की एक गुफा में प्रवेश किए। श्रीकृष्ण के पीछे पीछे कालयवन भी में गुफा प्रवेश किया। वहाँ एक आदमी सोया है। कालयवन उसको देखा। उसके ऊपर श्रीकृष्ण के वस्त्र हैं। कालयवन वहाँ कृष्ण को नही देखा।। 9 ।।

अरे श्रीकृष्ण इतना दूर दौड़ कर मुझको भी अपने पीछे पीछे लाकर अब यह सज्जन के समान सो गया है। ऐसा विचार करते हुये वह मूर्ख सोया हुआ व्यक्ति को अपने पांव से मारा।।10।।

वहाँ महाराजा मुचुकुन्द सोया था। वहाँ बहुत समय से वह नींद करता था। वह उठ कर सावकाश से अपनी आँखें खोल कर चारों दिशाओं में देखा। सामने खड़ा हुआ कालयवन के ऊपर उसका दृष्टिक्षेप हुआ।।11।।

निद्रा भंग से मुचुकुन्द को क्रोध आया। सोए हुए मुझको बिना गलती के पांव से मारा है इससे और आक्रोशित होकर क्रोध से उसको देखा। मुचुकुन्द की दृष्टिक्षेप से कालयवन एक क्षण में जल कर राख हो गया।।12।।

कालयवन आ रहा है। यह समाचार पाते हुये श्रीकृष्ण एक घड़े में काले सांप को भरकर उसके ऊपर कपड़े बांधकर कालयवन के पास भेजे थे। इसका अर्थ था कि मैं अकेले तुमको मार डालता हूँ। उसके उत्तर रूप में कालयवन उसी घड़े में बहुत चीटीं को भरकर वापस भेजा था। इसका अर्थ यह था कि हम बहुत लोग हैं तुमको मार डालेंगे। श्रीकृष्ण के पास जब वह घड़ा आया तब कृष्ण सर्प मरा था। इससे कालयवन समझा कृष्ण मर गया है। वह अपने को बहुत होशियार समझता था। किन्तु वह मूर्ख था। कालयवन के कृत्य से कृष्ण सर्प नाश हुआ। शिव से दिए हुये वर से कृष्ण नाश सत्य हो गया। किन्तु श्रीकृष्ण नही मरे। इधर श्रीकृष्ण नही मरा उधर शिव वर भी सत्य हुआ।

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे मुनि सोया हुआ वह मनुष्य कौन था ? वह किस कुल का है। उसकी शक्ति क्या है। वह उस गुफा मे क्यों सोया था। कालयवन को जलाने की शक्ति उसमें कैसे आयी ।।13।।

श्री शुक देव जी कहते हैं - इक्ष्वाकु कुल में जन्म लिया हुआ मान्धातृ राजा के पुत्र महात्मा मुचुकुन्द राजा था। वह बहुत प्रसिद्ध था। भगवान श्रीहरि में निष्ठा और ब्राह्मणों में भक्ति रखता था, सत्संगी था।।14।।

एक बार असुरों से युद्ध में मार खाये हुये देवताओं ने इसकी सहायता की याचना की। उस समय मुचुकुन्द उनके सेनापति बनकर उनकी रक्षा की थी।।15।।

षण्मुख देवताओं के लिये सेनापति बनने के बाद देवताओं ने राजा को कृतज्ञता अर्पण करते हुये रक्षणा कार्य को षण्मुख को सौंपे। वे राजा से बोले।।16।।

हे राजा तुम नरलोक के राज्य को छोड़कर हमारी रक्षा करने हेतु सारे सुखभोग को त्याग दिए हो, अनेक कष्ट को सहन किया है ।। 17 ।।

अब भू लोक में तुम्हारे पुत्र, पत्नी, बन्धु, मंत्री, प्रजा, तुम्हारे काल के लोग मर गये हैं। (स्वर्ग में देव गणना के अनुसार समय चलता है।) ।। 18 ।।

काल नामक श्रीहरि सबसे बलवान हैं। वे बलिष्ठों से बलिष्ठ हैं। वे सर्वेश्वर नाशरहित हैं। पशु को चराने वाला जैसे खेलते खेलते उनको चराता है, वैसे कष्ट न करते हुये क्रीड़ा करते हुये भगवान इस जगत का नियमन करते है ।। 19 ।।

तुम्हारा कल्याण हो। तुम मोक्ष छोड़कर जो कुछ चाहते हो उसको देने के लिये हम प्रस्तुत हैं। मोक्ष देने का सामर्थ्य केवल भगवान विष्णु को है ।। 20 ।।

देवताओं की इस बात को सुनकर महायशस्वी मुचुकुन्द उनको नमस्कार करके कहता है। मैं बहुत थका हुआ हूँ। बहुत दिनों से सोया नही हूँ। मैं इस गुफा में प्रवेश कर दीर्घकाल तक नींद करना चाहता हूँ। कोई भी मानव मेरी नींद को भंग न करे। कोई भंग करे तो वह मेरी दृष्टिक्षेप से भस्म हो जाये। इस प्रकार वर माँगा। देवतागण इस बात को सुनकर ऐसा ही हो। तुमको उठाने वाले मूर्ख कोई भी हो तुम्हारे दृष्टिक्षेप से वह भस्म हो जायेगा ।।21।।

देवतागण के इस प्रकार बोलने के बाद महाबुद्धिशाली मुचुकुन्द हिमालय की एक गुफा में जाकर सो गया। देवता के दिये हुये वर के अनुसार उसके नींद को भंग करने वाला कालयवन भस्म हो गया। कालयवन के मरण के बाद भगवान श्रीकृष्ण ज्ञानी मुचुकुन्द को अपना दर्शन देते हैं ।। 22-23 ।।

मेघश्याम, पीताम्बरधारी, श्रीवत्स और कौस्तुभ को धारण किये हुये श्रीकृष्ण को मुचुकुन्द ने देखा। चतुर्भुज, वैजयंती माला से शोभने वाला सुन्दर मुखारविन्द वाला, शोभायमान मकर कुण्डल वाला, तीनों लोको में अत्यन्त सुन्दर रूप वाला अनुराग से नौयवन भरित सिंह के समान पराक्रम वाला श्रीकृष्ण को मुचुकुन्द ने देखा ।। 24-25-26 ।।

श्रीकृष्ण के कान्ति को देखकर बुद्धिशाली मुचुकुन्द राजा राजाओं से भी ज्यादा शोभायमान उनके तेज को देखते हुये उनके बारे में सन्देह से प्रश्न करता है ।। 27 ।।

मुचुकुन्द कहता है :- आप कौन हैं ? जंगल में कांटेदार प्रदेश में जिस गुफा में आप आये हैं आपके कमल पत्र के समान पाद को यहाँ आने में कष्ट हुआ होगा ।। 28 ।।

आप तेजस्वी स्त्रियों को भी तेज देने वाले भगवान हैं क्या ? क्या आप अग्नि, सूर्य, चन्द्र, देवेन्द्र अथवा लोकपालक हैं ।।29।।

भगवान मुझको लगता है आप तीन देवताओं में सबसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तम विष्णु हैं। आपकी प्रभा से यह गुफा प्रज्ज्वलित हो गयी है ।।30।।

हे पुरुषोत्तम आपके अवतार कार्य गोत्र के बारे में क्या उचित लगता है उसको कहिये, मै उसको सुनना चाहता हूँ ।।31।।

हे प्रभु पुरुषोत्तम, मैं इक्ष्वाकु वंश के क्षत्रिय राजा मान्धाता का पुत्र मुचुकुन्द नाम वाला हूँ।। 32।।

कालयवन भ्रम से मानव रस्सी को सांप जैसे मानता है वैसे मुचुकुन्द को मुकुन्द मानने के कारण सर्वनाश पाया। दोनो में एक अक्षर के फरक पड़ने से कितना अनर्थ होता है। यह मालूम होता है। ऐसे होने मे मैं ही भगवान बोलने वाले को कितना अनर्थ होता है। इसको अलग क्या कहना।

मैं थक गया था, बहुत काल नींद नही किया था। इसके लिये यहाँ सोया था। कोई आकर मुझको यहाँ से उठाया ।।33।।

वह अपने पाप से भस्म हो गया। बाद में शत्रु नाशक कान्ति युक्त आपका दर्शन हुआ।।34।।

आपके तेज से मेरी आँखो की शक्ति क्षीण हो रही है। मैं आपको आँख उठा कर देख नही सकता आप सज्जनों से मान्य हैं।।35।।

इस प्रकार राजा मुचुकुन्द विनय से बोला। तब सृष्टिकर्ता भगवान श्रीकृष्ण हँसते हुये मेघ गम्भीर ध्वनि से बोले ।।36।।

श्रीकृष्ण कहते हैं - मुचुकुन्द, मेरे अवतार और कर्म व नाम हजारों हैं। वे असंख्य होने के कारण मैं भी उसको बता नही सकता ।।37।।

भगवान बता नही सकते। इसका अर्थ बताने की शक्ति उनमें नही है ऐसा नही होता। वे असंख्य है। गिनकर एक संख्या में बोल नही सकते क्योंकि वैसे एक संख्या ही नही है। गणित वहाँ रुक जाती है।

कोई जमीन में रहने वाला धूलिकण को अनेक जन्मों में मिलकर गिन सकता है। किन्तु वह भी मेरे गुण, कर्म, नाम के बारे में पूरा बोल नही सकता।।38।।

हे राजा, तीनो युगों में मैं जो अवतार कार्य करता हूँ, महर्षि गण उसको निरन्तर बोलते रहे तो भी पूरा बोल नही सकते ।। 39 ।।

तो भी मैं अभी अपने इस अवतार कार्य के बारे में बोलता हूँ, सुनो। मैं धर्म की रक्षा के लिये इस भूमि को भार बने हुये असुरों को नाश करने के लिये ब्रह्मा जी की प्रार्थना से यदुकुल में वसुदेव की पत्नी के गर्भ से अवतार लिया हूँ ।। 40-41 ।।

वसुदेव के पुत्र मुझको वासुदेव नाम से पुकारते हैं। यह कालनेमि कंस होकर जन्म लिया था। उसको मैंने मारा। प्रलम्बासुर इत्यादि दैत्य मारे गये। वे सज्जनों का द्वेष करते थे।।42।।

हे राजा, आपकी आँखों के तीक्ष्ण दृष्टि से यह कालयवन जल गया। आपको अनुग्रह करने के लिये मैं यहाँ आया हूँ ।।43।।

मुचुकुन्द प्रतिफल की अपेक्षा न करते हुये देवताओं की सेवा किया। फलस्वरूप केवल दीर्घ कालिक नींद को मांगा। मुचुकुन्द की सेवा के फल को देने के लिये भगवान श्रीहरि कालयवन के संहार को उसके हाथ से कराते हुये उसके ऊपर अनुग्रह किये।

तुम पहले भक्तवत्सल मेरे पास आकर मेरा अनुग्रह मांगे थे। हे राजर्षि, अब तुम मुझसे वर मांगो। मैं जो चाहो उसको देता हूँ। जो मेरी शरण में आता है उसको आगे दुःख नही होना चाहिये ।। 44-45 ।।

श्री शुक देव जी कहते हैं - श्रीकृष्ण के इन बातों को सुनकर मुचुकुन्द को पहले गर्ग मुनि ने जो बताया था, उसकी याद आई। वह श्रीकृष्ण को साक्षात् नारायण के रूप में देखकर सन्तोष से नमन करते हुये बोलता है ।। 46 ।।

मुचुकुन्द कहता है - हे प्रभु, आपकी इच्छा से आपके अधीन वाली प्रकृति से मोहित होकर मैं इस अनर्थकारी संसार को कोई पुरुषार्थ मानकर बैठा हूँ। सुख पाने की इच्छा से दुख देने वाले पत्नी पुत्र घर-संसार में मैं आसक्त हुआ हूँ। आपका भजन चिन्तन नही करता। सारे स्त्री पुरुष इसी प्रकार बन गये हैं ।। 47 ।।

हे पाप रहित परम पुरुष, लोग इस कर्म भूमि में कुछ भी प्रयत्न न करते हुये पिछले जन्म के सुकृत के कारण मानव जन्म पाने के बाद भी बुद्धि शून्य होकर पशु जैसे कुएँ में पड़ता है, वैसे घर नाम के अन्धकूप में गिर जाते हैं। आपके पाद कमल की सेवा नही करते ।। 48 ।।

कभी भी किसी से भी पराजित न होने वाले श्री हरि, इस नश्वर देह में मैं और मेरा अभिमान से, राज्य के ऐश्वर्य मद से अन्धा बन गया हूँ। पत्नी, पुत्र, धन, कनक में आसक्त हुआ हूँ। उनकी रक्षा के लिये अविरत चिन्ता करते हुये आज तक अपने आयुष्य को व्यर्थ किया हूँ ।। 49 ।।

मेरा यह शरीर मिट्टी से बना है। मिट्टी से बनाया हुआ घट के समान नश्वर है। फिर भी राजा के गाढ दुरभिमान से रथ, हाथी, घोड़ा, सैन्य लेकर मद भरित होकर भूमि में संचार किया। आपका ख्याल नही रखा ।। 50 ।।

विषय लालसा से, महालोभ से धन सम्पादन करते हुये मोक्ष सम्पादन को भूलकर आपको भी भूल गया। भूखा सांप जैसे चूहे को खा लेता है, ऐसे आप मृत्यु रूप से लोगों को खा लेते हैं।। 51।।

जिस शरीर से पहले राजा बनकर सारे गहनों से सजाकर रथ हाथियों के ऊपर संवार होकर चलता था, वही देह अन्त में मृत्यु के वश में हो जाने के बाद कुत्ता और सियार का आहार बन जाता है। अथवा कृमि कीट का आहार बन जाता है, अथवा जल कर राख हो जाता है।।52।।

हे प्रभु युद्ध में विजयी होकर सिंहासन में बैठकर अन्य राजाओं से वन्दित वही मनुष्य विषय भोग के लालसा में स्त्रियों के हाथ की कठपुतली बनता है ।। 53 ।।

हे भूदेवीरमण, विषय सुख की अभिलाषा से अभिलाषाओं को छोड़कर मानव भोग लालसा से दूर होकर निष्ठा से काम्य-कर्म, तप, दान करता है। इसके फलस्वरूप आगे जन्म में ज्यादा विषय सुख मिलने के बाद भी और ज्यादा अपेक्षा करते हुये काम्य कर्म, तप, दान करता है। इस प्रकार विषय लालसा बढ़ती रहे तो सुख कहाँ मिलेगा।।54।।

हे अच्युत्, इस संसार चक्र में फिरने वाले को मोक्ष काल समीप आया तो सज्जनों का संग मिलता है। सज्जनों के संग से ही सज्जनों के लभ्य मुक्त अमुक्त नियामक आपके बारे में ज्ञान भक्ति उत्पन्न होती है ।। 55 ।।

हे प्रभु, इस अखण्ड ब्रह्माण्ड को पालने वाले राजाएँ अन्त में अकेले होकर मोक्ष साधन के लिये जंगल जाने की इच्छा से राज्य सम्बन्धों को छोड़ना चाहते हैं। आपकी कृपा से यह सम्बन्ध मुझसे पहले से ही कट गया है। मैं इसको आपका अनुग्रह मानता हूँ ।। 56 ।।

त्रेतायुग के आदि में मुचुकुन्द गुफा के अन्दर सो गया था। वह द्वापर युग के अन्त में उठा है। उसका राज्य सम्बन्ध कभी का कालगर्भ में छिप गया था। मुचुकुन्द इसको भगवान का एक अनुग्रह मानता है।

प्रभु श्रीहरि, आप कह रहे हैं, जो चाहिये वह वर माँगो। विषयाभिलाषा न रखने वाला एकान्त भक्त आपके पाद सेवा को छोड़कर अन्य किसी की चाह नही करता। मोक्ष देने वाले आपकी आराधना करने वाला अपना बन्धक होने वाले किस वर को चाहता है ? ।। 57 ।।

इसी कारण प्रभु, मैं बन्धक होने वाली सात्विक राजस, तामस, किसी चीज की अपेक्षा नही करता। सत्व गुण रहित, नाश रहित, ज्ञान स्वरूप परम पुरुष आपको पाने के योग्य शरणागति को मैं चाहता हूँ ।। 58 ।।

हे आश्रयदाता, परमपुरुष स्वामी, मैं बहुत जन्म से अनेक योनियों में दुःख से जन्म लेते हुये सांसारिक तापों से तपते हुये पूर्व जन्म के पुण्य से सारी आशाओं को छोड़कर कष्ट से भरा

हुआ इस संसार को छोड़कर विरक्ति को पाया हूँ। भय, मरण, शोक न रहने वाला आपके पाद कमल की शरण आया हूँ। शरणागत मुझको आप ही रक्षा करें ।। 59 ।।

श्री भगवान कहते हैं - हे सार्वभौम राजा, आपका मन निर्मल है, श्रेष्ठ है। जो चाहो वह वर मांगो बोलने के बाद भी तुम्हारा मन आशाओं की बलि नही बना ।। 60 ।।

वर मांगो यह आपकी मन परीक्षा के लिये मैंने कहा था। किन्तु आपका मन इससे विचलित नही हुआ। मेरे एकान्त भक्तों का मन कभी आशाओं से विचलित नही होता ।। 61 ।।

हे राजा ज्ञानी मेरे एकान्त भक्त प्राणायामादि कार्य करने से अपने मन की विषय वासना को खोते हैं। वे विषय भोग के प्रति आकर्षित नही होते ।।62।।

तुम मुझमें मन रखो। इस भूमि में अपनी इच्छानुसार जहाँ चाहे वहाँ संचार करो। सदाकाल नष्ट न होने वाली भक्ति तुमको मिले ।। 63 ।।

क्षात्रधर्म निरत होकर तुमने शिकार करते हुए अनेक प्राणियों का वध किया है। उस पाप को तप करते हुये समाधि में मुझकों पाकर क्षालन करो ।। 64 ।।

हे राजा, अगले जन्म में सबसे प्यार करने वाला सबका प्रिय ब्राह्मण होकर जन्म पाओगे। बाद में मुझको प्राप्त करोगे ।।65।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में चौवनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

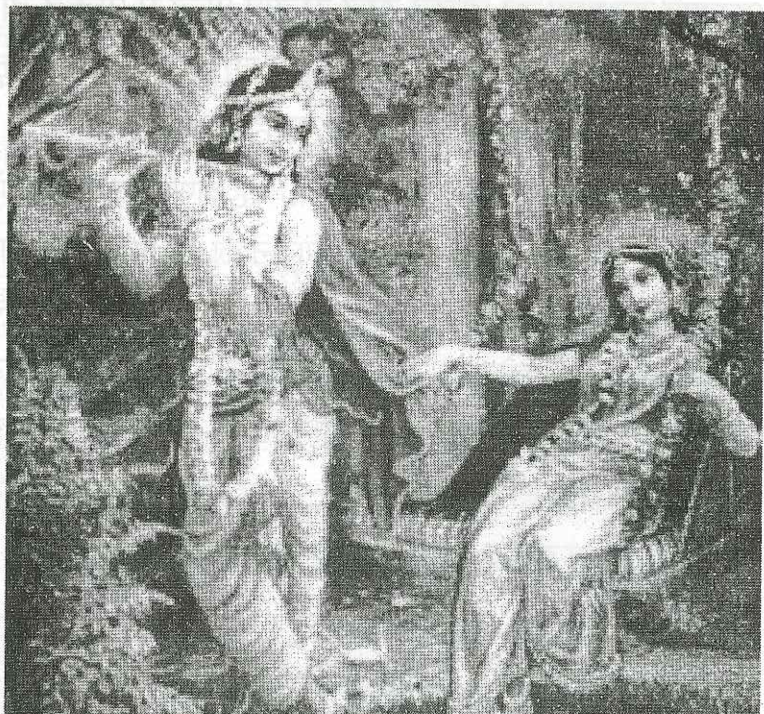

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पचापनवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - इस प्रकार राजा मुचुकुन्द श्रीकृष्ण से अनुग्रह पाकर उनकी परिक्रमा करते हुये दण्डवत् नमस्कार करने के बाद गुफा के द्वार से बाहर चले गये ।। 1 ।।

बाहर आकर देखते हैं मनुष्य प्राणी, वृक्ष, सस्य सारे पहले से गात्र में छोटे बन गये हैं। यह कलियुग का परिणाम है। समझते हुये तप करने के लिये उत्तर की दिशा में बढ़े ।। 2 ।।

तप में श्रद्धा रखने वाले वीर मुचुकुन्द विषयासक्ति को छोड़कर, संसय से निवृत्त होकर मन को मुकुन्द में रखते हुये गन्धमादन पर्वत के ऊपर चढ़े ।। 3 ।।

वह बदरिकाश्रम के नर नारायण आश्रमों में कटुतर शीत उष्ण को सहते हुये भक्ति से श्रीहरि का तप करने लगे ।।4।।

इधर भगवान श्रीकृष्ण पुनः मथुरा को वापस आकर कालयवन के साथ आया हुआ म्लेच्छ सैन्य को नाश किये। उसके सम्पदा को द्वारका को भेज रहे थे ।। 5 ।।

श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार सारे धनसम्पदा को बैलों के ऊपर लाद कर यादव ले जा रहे थे। उसी समय जरासंध पुनः तेईस अक्षोहिणी सैन्य से युद्ध करने आया ।। 6 ।।

जरासंध आग बबूला होकर क्रोध से जलते हुये रथ, हाथी, घोड़ा वाले अपने सैन्य के बीच में श्रीकृष्ण को रखते हुये एक क्षण में मकर व्यूह की रचना की ।। 7 ।।

उसको देखकर श्रीकृष्ण जो खाली हाथ थे समीप के एक वृक्ष को उखाड़ कर सारे अश्व रथ पदाति को मारने लगे।।8।।

श्रीकृष्ण वृक्ष से मारने लगे तो शत्रु सैन्य के हाथी इन्द्र के व्रजायुध से मार खाये हुये पहाड़ के समान मर कर भूमि पर गिर गये ।। 9 ।।

हे राजा, रथ, रथिक, घोड़ा, सारथी सहित जरासंध का सारा सैन्य चकनाचूर हो गया। जहाँ देखो वहाँ शवों का ढेर लग गया ।। 10 ।।

बलराम क्रोध से आगे बढ़ते हुये शत्रु सैन्य को इन्द्र व्रजायुध से जैसे पहाड़ को मारा वैसे अपने मुष्टि प्रहार से मारने लगे ।।11।।

हे राजा, बलराम के मुष्टि प्रहार से जरासंध के रथ वृक्ष की पत्ती के समान गिर गये ।।12।।

कालयवन के धन-सम्पति को लेकर जाने वाले यादवों को मार कर जरासंध उस धन को अपने वश में लेकर राम कृष्ण के सामने युद्ध करने आया। राम कृष्ण जरासंध के इस आक्रोश को देखकर वहाँ से भागने लगे ।। जरासंध का सैन्य तैयार होकर आया था। यादव का सैन्य यहाँ आयुध, रथ, कवच से विहीन होकर बरसात के पानी से भीगने वाले मनुष्य के समान शत्रुओं के बाण में घिर गये ।। 13-14-15-16 ।।

भयरहित राम कृष्ण लोगों को दिखाने के लिये वे भी डरे हुये जैसे उस धनराशि को वहीं छोड़कर बहुत दूर भाग गये ।। 17 ।।

राम कृष्ण भाग रहे हैं, इसको देखकर बलिष्ठ जरासंध हास्य करते हुये उनके पीछे दौड़ा। वह उनके सामर्थ्य को ठीक तरह से नही जानता था ।। 18 ।।

बहुत दूर तक भागने के बाद रात में कोल्हापुर में विश्रान्ति लेकर सूर्य उदय के समय में वे दोनो गोमान्तक पर्वत के ऊपर चढ़ गये ।। 19 ।।

सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधरों से सेवित गोमान्तक पर्वत के ऊपर श्रीराम कृष्ण दोनों चढ़ गये। वहाँ प्रवर्षण नाम के शिखर पर प्रतिनित्य मेघ पानी बरसाते हैं। वहाँ कन्द, फल, मूल बहुत होता है। उनको खाते हुये वे वहाँ सुख से रहे ।।20-21।।

दुर्बुद्धिवाला जरासंध उनको पीछे करते हुये अपने बड़े सैन्य से पूरे गोमान्तक पहाड़ को घेर लिया ।। 22 ।।

युद्ध में अपने समान न रहने वाले इस अहंकार वाले राजाओं को बुला कर जरासंध उनको पहाड़ पर चढ़ने के लिये आदेश दिया। उन राजाओं में कुंजर देश के अधिपति कलिंग, सौराष्ट्रपति, सिन्धु देशाधिपति, जरासंध, कुरुकुल के सोमदत्त, गान्धार के राजा शकुनी, विदर्भ के राजकुमार रुक्मि, कांबोजाधिपति सुदक्षिण, मत्स्यराज विराट इनको पूर्व की दिशा से पहाड़ चढ़ने के लिये बोला ।। 23-24-25 ।।

पांचाल के राजा द्रुपद, चेदी राजा दमघोष, साल्वराज, ब्रह्मदत्त, निषादराज एकलव्य, कुरुकुल राज बाल्हीक, अजेय युधामन्यु, अवंती राजा, विन्द अनुविन्द, काशी राजा पौंद्रक को दक्षिण से पहाड़ चढ़ने के लिये बोला ।। 26-27-28 ।।

किंपुरुषाधिपति द्रुम, दंतवक्र उसका भाई विदूरथ, वीर विदेहराज, भूरिश्रव, करूशाधिपति बृहच्चाप, दशार्ण राजा शतध्वज, सुवीर राजा शैब्य, महारथ दर्द इनको पश्चिम दिशा से गोमान्तक के ऊपर चढ़ा दिया ।। 29-30-31 ।।

त्रिगर्त के राजा सुशर्म, बलिष्ठ वेणुधारी, महाबली कुलिंद, राजा कैकेय, शिशुपाल, कभी

न हारने वाला भीष्मकराज इनके साथ स्वयं जरासंध उत्तर की दिशा से चढ़ाई की ।।32-33।।

इस प्रकार सारे ऋतुओं में फल देने वाले वृक्ष से युक्त गोमान्तक पहाड़ में सैनिक, प्रवर्षण शिखर तक सभी जगह में राम कृष्ण को ढूंढ़े ।। 34 ।।

वे सारे सैनिक राम कृष्ण को ढूंढ़ते रहे। वे नही मिले। सैन्य क्रोध से वहाँ के वृक्षों को काट डाले। तो भी राम कृष्ण नही मिले। इसको देखकर आक्रोश से जरासंध पूरे पहाड़ को आग से जलाया। उस जलने वाले पहाड़ के ग्यारह योजन वाले शिखर से श्रीराम कृष्ण छलांग मार कर जमीन पर उतर गये। यह समाचार जरासंध को और उनका पीछा करने वाले किसी को भी मालूम नही हुआ ।। 35-36-37-38 ।।

भगवान एक बार पहाड़ को ऊपर उठाकर उसको छतरी बनाते हुये मुसलाधार वर्षा से भक्तों की रक्षा की। इस बार गोमान्तक को पांव से दबा कर नीचे के जल को ऊपर लाकर अग्नि को बुझा दिया। भगवान दोनो तरह के लीला-विनोद कर सकते हैं। दो बार जिसने अग्नि को खाया था उनके लिये अग्नि क्या कर सकती है। भगवान सब कुछ करने की ताकत रखते हैं।

हे राजा परीक्षित श्रीराम कृष्ण समुद्र के मध्य में रहने वाले जलदुर्ग के बीच में रहने वाले द्वारका को सुरक्षित रूप से वापस आये। जरासंध समझ लिया कि वे दोनो वहीं पहाड़ के ऊपर जल गये। इस समाधान से जरासंध अपनी सेना को लेकर मगध को चला गया। उसको सन्तोष हुआ कि यह अट्ठारहवाँ युद्ध को उसने जीत लिया। इस भ्रम से उसका अहंकार और बढ़ गया। महात्मा राम कृष्ण द्वारका नगर में प्रवेश करते हुये दिन रात सूत मागध बन्दियों की स्तुति सुनते हुये परमानन्द में सुखवास करते रहे ।। 39-40-41 ।।

यहाँ भागवत में श्रीराम कृष्ण पहाड़ से कूद कर द्वारका आये इतनी ही कथा है। हरिवंश में इसको विस्तार रूप से कहते हैं। राम कृष्ण प्रवहन से नीचे कूदने से उनके भार से पहाड़ जमीन में धँस गया। जमीन के नीचे का पानी फव्वारे की तरह पहाड़ के ऊपर छिड़का कर आग को बुझ दिया। श्रीराम कृष्ण जरासंध के सैन्य को मार कर ध्वंस किये। पुनः अशरीरवाणी सुनकर बलराम जरासंध को छोड़ दिया। श्रीकृष्ण उसको गदा से मार कर गिराये। मूर्छित उसको वहीं छोड़कर चले गये। जरासंध मूर्छा से उठने के बाद लज्जित होकर अपनी राजधानी को चला गया। इस प्रकार अट्ठारह युद्ध होते हैं। प्रत्येक युद्ध में जरासंध मार खाता है।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में पचपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - छप्पनवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - हे राजा, श्रीकृष्ण एकबार बलराम सात्यकि इत्यादि सभासदों के साथ अनेक देश के राजाओं से गौरव स्वीकार करते समय सत्रयाग करने वाले ब्राह्मण के मुख से कुन्ती पुत्रों ने युद्ध में पांचाल राजा द्रुपद को बन्धक बनाया यह समाचार सुने ।। 1-2 ।।

इसको सुनकर श्रीकृष्ण मन में हर्षित हुये इसके बारे में और ज्यादा जानने के हेतु कृतवर्म को हस्तिनापुर भेजे ।। 3 ।।

कृतवर्म हस्तिनापुर पहुँच गये। वहाँ वृद्ध कुरु पितामह भीष्म, द्रोण, विदुर, धृतराष्ट्र से भेट करने के बाद राजा युधिष्ठिर और उनके चार भाईयों से उनकी माँ कुन्ती से मिलकर उनको योग्य गौरव दिये ।। 4-5 ।।

युधिष्ठिर कंस मर्दन श्रीकृष्ण और उनके बन्धुओं के बारे में कुशल प्रश्न किये। कालयवन को मारना, जरासंध को हराना, करवीरपुर के अधिपति सृगाल वसुदेव को जीव से मरना, समुद्र के बीच में द्वारका नगर निर्माण करना, हंस डिंबक, अजेय ब्रह्मदत्त के मरण के बारे में कृतवर्म के मुख से विवरणो को जानकर धर्मराजा सन्तोष पाये। उनको लगा इस कथा को सुनने से उसको तीनों लोक का साम्राज्य मिल गया है। पाण्डव लोग कुन्ती के साथ कृतवर्म को बहुत आदर करते हुये बातचीत किये। उनकी आँखों में प्यार के आंसू भर गये थे। कृतवर्म कुन्ती और उनके पुत्रों को उनके आयु के अनुसार वन्दन और अभिनन्दन किये। उनसे विदा लिये। बाद में भीष्म, धृतराष्ट्र, विदुर, कर्ण, द्रोण, कृप, ज्ञानी अश्वत्थाम और दुर्योधन की आज्ञा पाकर हस्तिनावती से चलकर एक दिन शाम को द्वारका में प्रवेश

किये ।। 6-7-8-9-10-11-12-13 ।।

यहाँ हंस, डिंभक नाम आये हैं। ब्रह्मदत्त नाम का राजा शिव से तप कर इन दोनो को अपने पुत्र रूप में पाया। मित्रासह नाम के ब्राह्मण पाँच वर्ष तप करके जनार्दन को पुत्र रूप में पाया। दुरहंकारी हंस डिंभक इस जनार्दन को श्रीकृष्ण के पास भेज कर अपने लिये नजराना मांगे। श्रीकृष्ण, तुम समुद्र में रहते हो। इसके लिये हमें समुद्र में रहने वाले रत्नों का नजराना दो। इसके उत्तर रूप में श्रीकृष्ण उनको युद्ध में मार डाले।

बहुत राजाओं के साथ श्रीकृष्ण बैठे हुये सुधर्म सभा में कृतवर्म प्रवेश किये। वहाँ सोने के सिंहासन पर श्रीकृष्ण, वनमाला धारण कर बैठे थे। कृतवर्म उनको नमस्कार करते हुये उनके पास जाकर हस्तिनापुर में जो देखा, जो सुना उसके बारे में सारे कौरव और पाण्डवों का वृतान्त बता दिये। जगदीश्वर श्रीकृष्ण सारे समाचार को सुने। पाण्डवों का पौरुष को सुनकर आनन्द विभोर हो गये ।। 14-15-16-17 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में छप्पनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

अध्याय - सत्तावनवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुक जी कहते हैं - अनर्त देश के अधिपति श्रीमान् रेवतराज ब्रह्मा जी के आदेश के अनुसार अपनी पुत्री रेवती को बलराम से विवाह किये। इस बात को हम पहले ही कह चुके हैं ।।1।।

अनर्त शर्याति का पुत्र था। द्वारका के समीप देश का राजा बना था। उसी स्थान को आज कुशास्थली कहते हैं। श्रीराम के पुत्र कुश ने इसका निर्माण किया था। बाद में अनर्त राजा इसका पुनः निर्माण किया। उसका पौत्र रेवत इस राज्य में बहुत वर्ष राज्यभार किया। (रामायण, उत्तरकाण्ड 108)

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे महामुनि, रेवतराज ब्रह्माजी के आदेश को कैसे पाये। इस कथा को विस्तार पूर्वक और जानना चाहता हूँ ।। 2 ।।

श्री शुक देव जी कहते हैं - प्राचीन काल में अर्थ तत्वज्ञ रेवत नाम का राजा था। उनको रेवती नाम की बहुत कीर्तिशाली पुत्री जन्म ली ।। 3 ।।

नाना देश के राजाओं ने उसका सौन्दर्य और कीर्ति को सुनकर उसको माँगे। किन्तु रेवत उनको नही दिया। उनसे भी सुन्दर राजा को ढूढते हुये योग्य वर को पाने के उद्देश्य से ब्रह्मा जी के पास गया ।। 4 ।।

ब्रह्मा जी की सभा में हाहा हूहू नाम के दोनो बन्धु जुगल बन्दी गा रहे थे। गान्धार राग में सात सुरों में आरोह अवरोह करते हुये गीत गाने में वे बहुत कुशल थे ।। 5 ।।

वह संगीत समाप्त होने तक एक निमिष पर्यन्त राजा बाहर खड़ा रहा। एक निमिष के बाद संगीत समाप्त होने के बाद राजा ब्रह्मा जी को नमस्कार करते हुये प्रश्न किया ।। 6 ।।

हे पूज्य, यह मेरी पुत्री है। अत्यन्त सुन्दरी इसको मैं किसके साथ विवाह करूँ। रेवत के इस बात से ब्रह्मा जी उससे पूछे। तुमको जो राजकुमार पसन्द है उनके नामों को बताओ। उनमें से एक अच्छे वर को मैं बता दूँगा। तब रेवत राजा अनेक देश के राजाओं का नाम बताया ।। 7-8 ।।

उन नामों को सुनकर ब्रह्मा जी हँस कर बोले :- हे रेवत, मानवों को सुनने का अधिकार

जिसमें नहीं है वह गन्धर्व गान तुमने एक निमिष पर्यन्त सुना। सत्य लोक के इस एक निमिष में अनेक चतुर्युग चले गये हैं। वे सारे राजा चले गये हैं। अब वे कोई जीवित नही रहे हैं ।। 9-10 ।।

हे राजा अब अट्ठाइसवां द्वापर युग चल रहा है। यदुवंश के श्रेष्ठ सर्वशक्त युवा राजा श्रीकृष्ण और बलराम हैं।।11।।

तुम इनमें से बलराम को अपनी पुत्री को दे दो। ब्रह्मा जी की इस आज्ञा को पाकर राजा उनको नमस्कार करते हुये अपने नगर को वापस आकर बहुबाहुशाली बलराम को अपनी रूपवती रेवती नाम की कन्या को विवाह में प्रदान किया ।। 12 ।।

रेवतराजा सत्यलोक में अपनी पुत्री के साथ सत्ताईस युगपर्यन्त रहा था। रेवती सुन्दरी और कुँआरी थी। यह ब्रह्मा जी से तय हुआ विवाह है। उस दिन से यह बात प्रसिद्ध हुई की ब्रह्म घटना से ही विवाह तय होते हैं।

रेवती प्रथम चतुर्युग के प्रथम कृत युग में जन्म ली है। उसी के कारण बहुत लम्बे शरीर वाली थी। महाबाहुशाली बलराम उसके कन्धे के ऊपर अपने हलायुध को रखकर अपने कन्धे के समान बनाकर उससे विवाह किये ।। 13 ।।

हे राजा परीक्षित और सुनो - भगवान श्रीकृष्ण लक्ष्मी के स्वरूपांश वाली भीष्मक राजा की पुत्री राजकुमारी रुक्मिणि को स्वयंवर में जीत कर विवाह किये ।।14।।

शिशुपाल के साल्व इत्यादि राजाओं को बलात्कार से हरा कर सारे लोगों के सामने, गरुड़ जैसे देवताओं को हराकर अमृत लाया, वैसे रूक्मिणि को अपहरण कर ले आये ।। 15 ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे मुने - भीष्मक राज की पुत्री अत्यन्त सुन्दरी रुक्मिणि को भगवान श्रीकृष्ण राक्षस विधि से विवाह किये ऐसे मैंने सुना है। क्या यह सत्य है ? ।।16।।

विवाह ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर, राक्षस, पिशाच इसप्रकार आठ विध होते हैं। वर को तय कर निमंत्रण देकर अलंकृत कन्यादान करना ब्राह्म विवाह कहा जाता है। यज्ञ में ऋत्विज बना हुआ ब्राह्मण को दक्षिणा रूप में सालंकृत कन्यादान करना दैव विवाह है। गाय और बैल जोड़ी को कन्या शुल्क में देकर कन्या को ग्रहण करना आर्ष विवाह है। जीवन पर्यन्त धर्माचरण करने के हेतु दान रूप में पुत्री को देना प्राजापत्य विवाह है। वधू वर का परस्पर प्यार करते हुये स्वयं विवाह करना गान्धर्व विवाह है। कन्या पिता को जो चाहे वह धन इत्यादि देकर कन्या को पाणिग्रहण करना आसुर विवाह है। वधू को बलात्कार से अपहरण कर विवाह करना राक्षस विवाह है। वंचना से कन्या के मन के विरुद्ध अपहरण कर विवाह करना पैशाच विवाह है। **गान्धर्व वृत्या मिषताम्** (3-3-3) भागवत में श्रीकृष्ण गान्धर्व विवाह से विवाह किये ऐसा कहा गया है। यहाँ राक्षस विवाह कहते हैं। इनमें विरोध नही है। महाभारत में शकुन्तला के उपाख्यान में आता है। (1-73-30) दुष्यन्त कहते हैं :- गान्धर्व और राक्षस विवाह प्रत्येक को अथवा मित्र हो यह क्षत्रियों के लिये सम्मत है। यहाँ श्रीकृष्ण से रुक्मिणि पहले प्रेम करती थी। बलात्कार

से अपहरण करने से यह गान्धर्व और राक्षस दोनों का मिश्रण है।

हे पूज्य महाबलशाली श्रीकृष्ण जरासंध, साल्व इत्यादि अनेक राजाओं को हराकर अपने उद्दिष्ट को प्राप्त किये। उस कथा को मैं सुनना चाहता हूँ ।।17।।

श्रीकृष्ण की कथा चिरपुरातन होते हुये भी नित्य नूतन है, पुण्यकर, मधुकर, इस लोक के पाप का परिहार करने वाली है। रसाभिज्ञ सुनने वाला कौन इसको छोड़ सकता है ।। 18 ।।

श्री शुक देव जी कहते हैं :- विदर्भाधिपति भीष्मक राजा को पाँच पुत्र और एक सुन्दर पुत्री थी।।19।।

इनमें रुक्मि पहला पुत्र था। बाद में रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्मालि। इनकी प्यारी बहन रुक्मिणि ।।20।।

वह रुक्मिणि राजगृह को आये हुये नारद इत्यादि महर्षियों के मुख से श्रीकृष्ण के पराक्रम रूप, गुण सम्पन्नता को सुनकर उसी को अपने योग्य पति मान ली ।।21।।

रुक्मिणि सम्पत्ति की स्वामी साक्षात् लक्ष्मीदेवी है। इस जगत का पालन करने वाली माँ स्वरूपिणी हैं। सर्वलक्षण सम्पन्न पद्मिनी लक्षण वाली पद्महस्त, पद्मपाद, पद्म के समान आँख वाली, पद्मासन में बैठ कर दोनो हाथों में पद्म को पकड़ी हैं, पद्मनाभ की प्रियकरणी हैं। सदाकाल सोलह वर्ष के रूप वाली भृगुऋषि में भार्गवी नाम के रूप वाली चन्द्र के भगिनी, सागर से उत्पन्न वाली श्री भू दुर्गा रूप से सदाकाल भगवान की सेवा करने वाली है।

श्रीकृष्ण भी बुद्धि, लक्षण, औदार्य, रूपशील और गुणों के लिये आश्रयीभूत रुक्मिणि को अपने योग्य पत्नी निर्धारित करते हुये उससे विवाह करने का निर्णय किये ।। 22 ।।

हे राजा, अपनी बहन को श्रीकृष्ण के साथ विवाह करने के लिये अन्य चारों बन्धु के सम्मत होते हुये भी श्रीकृष्ण से द्वेष करने वाला रुक्मि इससे सहमत नही हुआ। वह रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से करना चाहता था ।। 23 ।।

शिशुपाल दमघोष का पुत्र था। इसके पहले इसका विवाह हो चुका था। उसको देवकी नाम की एक पुत्री भी थी। उस पुत्री का विवाह धर्मराजा से हुआ था। शिशुपाल की वह पत्नी मर गयी थी। अब वह विधुर हो गया था।

जरासंध को सहदेव नाम का एक पुत्र था। वह सज्जन था, इस दुष्टकूट में नही मिलता था। इसके लिये दुष्ट जरासंध शिशुपाल को अपने दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार किया था। अपने दत्तक पुत्र को रुक्मिणि से विवाह कराकर सबको जीतना जरासंध का उद्देश्य था।

श्रीकृष्ण एकबार राजा भीष्मक के पास आकर उसको अपना विश्वरुप दिखा कर लक्ष्मी के स्वरूप रहने वाली रुक्मिणी को अपने को देने के लिये स्वीकार करवाया था। किन्तु असुरावेश से भीष्मक ने स्वयंवर की व्यवस्था की।

काले सुन्दर आँख वाली रुक्मिणी इसको समझकर दुःखित हुई। बहुत सोच समझ कर अपने आत्मीय एक ब्राह्मण को श्रीकृष्ण के पास भेजी ।। 24 ।।

वह ब्राह्मण द्वार को आकर द्वारपालक से अनुमति पाकर सोने के सिंहासन पर बैठे श्रीकृष्ण को देखा ।। 25 ।।

ब्राह्मण को देव मानने वाले श्रीकृष्ण उसको देखकर अपने आसान से उठकर उसी आसान में उसको बैठाकर आदर सत्कार से देवताओं के समान उसकी पूजा की ।। 26 ।।

ब्राह्मण भोजन कर विश्रान्ति पाने के बाद भगवान श्रीकृष्ण ब्राह्मण की पाद सेवा करते हुये शान्त भाव से पूछते हैं ।। 27 ।।

कन्या को निश्चित करने आये हुये लोग निश्चय होने तक उस घर में भोजन नही करते। यहाँ नित्यावियोगिनी दम्पत्ति श्रीकृष्ण-रुक्मिणी का विवाह सदाकाल के लिये निश्चित है। यह समझाकर ब्राह्मण वहाँ भोजन किया।

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, जो मिलता है उससे सन्तुष्ट रहने वाला अपने शरीर को अतिकष्ट दण्डन न करते हुये ज्ञानी को सम्मत धर्माचार को आप सदा के लिये करते रहते है न ? ।। 28 ।।

ब्राह्मण जो मिलता है उससे सन्तुष्ट रहे तो वह धर्म से च्युत नही होता। वह धर्म ही उसको इष्टार्थ देता है ।। 29 ।।

ब्राह्मण जितना भी हो उसे अपर्याप्त बोलने वाला देवताओं का राजा बनने के बाद भी सुख नही पाता। अकिंचन चिन्ता न करते हुये तृप्ति से सोता है ।। 30 ।।

इसी कारण जो मिलता है उसी में सन्तुष्ट रहने वाले अच्छे स्वभाव वाले, सारे जीवियों को अत्यन्त उपकार करने वाले अहंकार न करने वाले, भगवान में निष्ठा वाले ब्राह्मणों को मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ ।। 31 ।।

हे ब्राह्मण, आपके राजा से आपको सुख है न। जिस राजा के राज्य में प्रजा उनसे रक्षा और सुख को पाते हुये वास करती है वह राजा मेरे लिये प्रिय बनता है ।। 32 ।।

आप श्रीहरि की इच्छा से इस दुर्गम समुद्र को पार करके क्यों आये हैं। बोल सकते हो तो कह दीजिये। कहिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ ।। 33 ।।

श्री शुक देव जी कहते हैं :- भगवान के मुख से इन बातों को सुनकर ब्राह्मण रुक्मिणी से लिखकर दिया हुआ पत्र को श्रीकृष्ण के सामने रख कर नमस्कार करता है ।। 34 ।।

विश्व में लिखा हुआ यह प्रथम प्रेम पत्र है। प्राचीन काल में स्त्रियाँ भी पढ़ कर विदुषी बनती थीं। शकुन्तला दुष्यन्त को खत लिखी थी। विजयध्वजी पाठ में इस प्रेम पत्र का उल्लेख भागवत में है। अन्य पाठों में ब्राह्मण अपने मुख से कहते है।

हंसन्मुख के सुन्दर आँख वाले जगन्नाथ धर्मात्मा श्रीकृष्ण उस पत्र को आदर से उठाकर पढ़ने लगे ।। 35 ।।

पत्र में रुक्मिणी कहती हैं :- हे भुवन मोहन सुरसुन्दर श्रीकृष्ण मैंने आपके गुणगान को बहुत सुना है। सुनने वाले कानों में जाकर आपकी कीर्ति शरीर के सन्ताप को नाश करती है। जग के मंगल वस्तुओं के लिये मंगल स्वरूप देने वाले अत्यन्त मंगल रूप वाले आपके सुन्दर रूप के बारे में भी मैं बहुत बार सुना है। हे अच्युत आप मेरे चित्त में निश्चित रूप से बैठ गये है। इसको लिखने में मुझे लज्जा नही आती ।। 36 ।।

इस श्लोक में श्रुत्वा इस शब्द से आरम्भ होता है। रुक्मिणी इस पत्र को लिखी है। इसमें कुल नौ श्लोक है। **श्रुत्वा** इसका अर्थ **श्रवण** करना यह नवविध भक्ति की प्रथम भक्ति होती है। **श्रवण** करना सबसे श्रेष्ठ भक्ति मानी जाती है।

हे पुरुषोत्तम मुकुन्द, सत्कुल में जन्म लिये हुये शालीन वृत्तियाँ वाली लज्जा युक्त उत्तम कुँवारी गुणशील रूप विद्या वय ऐश्वर्य कान्ति से युक्त अपने को अनुरूप मुक्त अमुक्त सकल चेतनाओं का मन को खींचने वाले आपके समान वर को युवा अवस्था में लज्जा छोड़कर विवाह करने के लिये तैयार होती हैं ।। 37 ।।

इस श्लोक में श्रीकृष्ण का गुण वर्णन है। इससे श्रीकृष्ण में **कीर्तन** नाम के भक्ति का वर्णन है।

हे इन्दिरामण, भक्तवत्सल, दीन रक्षक, सर्वशक्त भगवान आपको मैं प्यार से वरण कर चुकी हूँ। हे प्रियतम, मेरे मन की कामना को जानकर आपके चरण कमल की दासी के इस अभीष्ट को पूर्ण करें। मैं आपके पादतल में शरण आई हूँ ।। 38 ।।

प्रणतास्मि तेंघ्रिम् इससे **पाद सेवन** भक्ति व्यक्त होता है।

हे कृष्ण मैं आपको एकबार पति के रूप में स्वीकार कर चुकी हूँ। प्रभु मैं आपको आत्मसमर्पण की हूँ। हे स्वामी, हे वीर मै आपकी हूँ। हे कमलाक्ष, आप ही यहाँ आकर मुझको पत्नी के रूप में स्वीकार करें। सिंह के इष्ट बनने वाले को सियार न खाये। आपको समर्पित मुझको शिशुपाल न छुये ।। 39 ।।

विधेहि इस शब्द से **सख्य** भक्ति व्यक्त होती है। इस श्लोक के सम्पूर्णार्थ से **आत्म निवेदन** व्यक्त होता है।

गोकुल के सारी गोपियों की रक्षा करने वाले आपको मैं एक अधिक भार होने वाली हैं क्या ? यह भाव भी यहाँ व्यक्त होता है।

इष्टपूर्त, दान, व्रत, नियम, देव-ब्राह्मण-गुरु पूजा इत्यादि से यदि मैं भगवान को ठीक तरह से पूजा करते हुये उनको प्रसन्न किया हो तो श्रीकृष्ण स्वयं आकर मेरा हाथ ग्रहण करें। और

ाले जगन्नाथ धर्मात्मा श्रीकृष्ण उस

- हे भुवन मोहन सुरसुन्दर श्रीकृष्
जाकर आपकी कीर्ति शरीर के सन्त
रूप देने वाले अत्यन्त मंगल रूप वाल
ुत आप मेरे चित्त में निश्चित रूप से
।

आरम्भ होता है। रुक्मिणी इस पत्र को लि
विध भक्ति की प्रथम भक्ति होती है। **श्रवण**

कुल में जन्म लिये हुये शालीन वृत्तिय
ऐश्वर्य कान्ति से युक्त अपने को अ
ले आपके समान वर को युवा अवस्थ
37 ।।

ण वर्णन है। इससे श्रीकृष्ण में **कीर्तन** नाम के
सल, दीन रक्षक, सर्वशक्त भगवान अ
न की कामना को जानकर आपके चर
क पादतल में शरण आई हूँ ।। 38 ।।

द सेवन भक्ति व्यक्त होता है।

एकबार पति के रूप में स्वीकार कर
ी, हे वीर मै आपकी हूँ। हे कमलाक्ष,
। सिंह के इष्ट बनने वाले को सियार
39 ।।

भक्ति व्यक्त होती है। इस श्लोक के सम्पूर्णार्थ
रक्षा करने वाले आपको मैं एक अधिक भार होन

नियम, देव-ब्राह्मण-गुरु पूजा इत्यादि
को प्रसन्न किया हो तो श्रीकृष्ण स्वयं आव

र न मिले ।। 40 ।।

ने वाले स्वयंवर में इकट्ठे हुये सेनापतियों के बीच में आप विदर्भ को
को नाश कर कन्या शुल्क के रूप में अपने पराक्रम को दिखाते हुये
से मेरे साथ विवाह करें।।41।।

ने वाले हमारे बन्धुओं को न मारते हुये विवाह कैसे होगा। इसके लिये मैं एक
र्व एक दिन पहले हमारे कुल देवता की बड़ी यात्रा लगती है। वहाँ विवाह होने
जाकर गिरजा देवी का पूजा करने की परम्परा होती है ।। 42 ।।

समय वहाँ अपने रथ पदाति, गज, अश्व, सैन्य समेत आकर साल्व,
को झुकाकर सखियों के साथ वहाँ आई हुई मुझको हाथ पकड़कर रथ
ेकर आपकी ही बनी हुयी मेरा पाणिग्रहण करें ।।43।।

न बड़े देव भी अपने अज्ञान परिहार के लिये आपकी पाद कमल पराग
पके अनुग्रह को यदि मैं पा नही सकी तो व्रतोपवास से कृश होकर इस
भी सौ जन्म के साधन से भी आपको पाकर ही रहूंगी ।। 44 ।।

ते है - इस प्रकार पत्र में लिखा हुआ राजकुमारी के सन्देश को विश्लेषण
त्र को देखते हैं।। 45।।

यदुवंश भूषण श्रीकृष्ण, रुक्मिणी ने आपको गुप्त रूप से भेजा हुआ
ढ़कर जो करना चाहते हैं उसको विलम्ब न करते हुये जल्दी करें।।46।।

ुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

काले सुन्दर आँख वाली रुक्मिणी इसको समझकर दुःखित हुई। बहुत सोच समझ कर अपने आत्मीय एक ब्राह्मण को श्रीकृष्ण के पास भेजी ।। 24 ।।

वह ब्राह्मण द्वार को आकर द्वारपालक से अनुमति पाकर सोने के सिंहासन पर बैठे श्रीकृष्ण को देखा ।। 25 ।।

ब्राह्मण को देव मानने वाले श्रीकृष्ण उसको देखकर अपने आसान से उठकर उसी आसान में उसको बैठाकर आदर सत्कार से देवताओं के समान उसकी पूजा की ।। 26 ।।

ब्राह्मण भोजन कर विश्रान्ति पाने के बाद भगवान श्रीकृष्ण ब्राह्मण की पाद सेवा करते हुये शान्त भाव से पूछते हैं ।। 27 ।।

कन्या को निश्चित करने आये हुये लोग निश्चय होने तक उस घर में भोजन नही करते। यहाँ नित्यावियोगिनी दम्पत्ति श्रीकृष्ण-रुक्मिणी का विवाह सदाकाल के लिये निश्चित है। यह समझाकर ब्राह्मण वहाँ भोजन किया।

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, जो मिलता है उससे सन्तुष्ट रहने वाला अपने शरीर को अतिकष्ट दण्डन न करते हुये ज्ञानी को सम्मत धर्माचार को आप सदा के लिये करते रहते है न ? ।। 28 ।।

ब्राह्मण जो मिलता है उससे सन्तुष्ट रहे तो वह धर्म से च्युत नही होता। वह धर्म ही उसको इष्टार्थ देता है ।। 29 ।।

ब्राह्मण जितना भी हो उसे अपर्याप्त बोलने वाला देवताओं का राजा बनने के बाद भी सुख नही पाता। अकिंचन चिन्ता न करते हुये तृप्ति से सोता है ।। 30 ।।

इसी कारण जो मिलता है उसी में सन्तुष्ट रहने वाले अच्छे स्वभाव वाले, सारे जीवियों को अत्यन्त उपकार करने वाले अहंकार न करने वाले, भगवान में निष्ठा वाले ब्राह्मणों को मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ ।। 31 ।।

हे ब्राह्मण, आपके राजा से आपको सुख है न। जिस राजा के राज्य में प्रजा उनसे रक्षा और सुख को पाते हुये वास करती है वह राजा मेरे लिये प्रिय बनता है ।। 32 ।।

आप श्रीहरि की इच्छा से इस दुर्गम समुद्र को पार करके क्यों आये हैं। बोल सकते हो तो कह दीजिये। कहिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ ।। 33 ।।

श्री शुक देव जी कहते हैं :- भगवान के मुख से इन बातों को सुनकर ब्राह्मण रुक्मिणी से लिखकर दिया हुआ पत्र को श्रीकृष्ण के सामने रख कर नमस्कार करता है ।। 34 ।।

विश्व में लिखा हुआ यह प्रथम प्रेम पत्र है। प्राचीन काल में स्त्रियाँ भी पढ़ कर विदुषी बनती थीं। शकुन्तला दुष्यन्त को खत लिखी थी। विजयध्वजी पाठ में इस प्रेम पत्र का उल्लेख भागवत में है। अन्य पाठों में ब्राह्मण अपने मुख से कहते है।

हंसन्मुख के सुन्दर आँख वाले जगन्नाथ धर्मात्मा श्रीकृष्ण उस पत्र को आदर से उठाकर पढ़ने लगे ।। 35 ।।

पत्र में रुक्मिणी कहती हैं :- हे भुवन मोहन सुरसुन्दर श्रीकृष्ण मैंने आपके गुणगान को बहुत सुना है। सुनने वाले कानों में जाकर आपकी कीर्ति शरीर के सन्ताप को नाश करती है। जग के मंगल वस्तुओं के लिये मंगल स्वरूप देने वाले अत्यन्त मंगल रूप वाले आपके सुन्दर रूप के बारे में भी मैं बहुत बार सुना है। हे अच्युत आप मेरे चित्त में निश्चित रूप से बैठ गये है। इसको लिखने में मुझे लज्जा नही आती ।। 36 ।।

इस श्लोक में श्रुत्वा इस शब्द से आरम्भ होता है। रुक्मिणी इस पत्र को लिखी है। इसमें कुल नौ श्लोक है। **श्रुत्वा** इसका अर्थ **श्रवण** करना यह नवविध भक्ति की प्रथम भक्ति होती है। **श्रवण** करना सबसे श्रेष्ठ भक्ति मानी जाती है।

हे पुरुषोत्तम मुकुन्द, सत्कुल में जन्म लिये हुये शालीन वृत्तियाँ वाली लज्जा युक्त उत्तम कुँवारी गुणशील रूप विद्या वय ऐश्वर्य कान्ति से युक्त अपने को अनुरूप मुक्त अमुक्त सकल चेतनाओं का मन को खींचने वाले आपके समान वर को युवा अवस्था में लज्जा छोड़कर विवाह करने के लिये तैयार होती हैं ।। 37 ।।

इस श्लोक में श्रीकृष्ण का गुण वर्णन है। इससे श्रीकृष्ण में **कीर्तन** नाम के भक्ति का वर्णन है।

हे इन्दिरामण, भक्तवत्सल, दीन रक्षक, सर्वशक्त भगवान आपको मैं प्यार से वरण कर चुकी हूँ। हे प्रियतम, मेरे मन की कामना को जानकर आपके चरण कमल की दासी के इस अभीष्ट को पूर्ण करें। मैं आपके पादतल में शरण आई हूँ ।। 38 ।।

प्रणतास्मि तेंघ्रिम् इससे **पाद सेवन** भक्ति व्यक्त होता है।

हे कृष्ण मैं आपको एकबार पति के रूप में स्वीकार कर चुकी हूँ। प्रभु मैं आपको आत्मसमर्पण की हूँ। हे स्वामी, हे वीर मै आपकी हूँ। हे कमलाक्ष, आप ही यहाँ आकर मुझको पत्नी के रूप में स्वीकार करें। सिंह के इष्ट बनने वाले को सियार न खाये। आपको समर्पित मुझको शिशुपाल न छुये ।। 39 ।।

विधेहि इस शब्द से **सख्य** भक्ति व्यक्त होती है। इस श्लोक के सम्पूर्णार्थ से **आत्म निवेदन** व्यक्त होता है।

गोकुल के सारी गोपियों की रक्षा करने वाले आपको मैं एक अधिक भार होने वाली हैं क्या ? यह भाव भी यहाँ व्यक्त होता है।

इष्टपूर्त, दान, व्रत, नियम, देव-ब्राह्मण-गुरु पूजा इत्यादि से यदि मैं भगवान को ठीक तरह से पूजा करते हुये उनको प्रसन्न किया हो तो श्रीकृष्ण स्वयं आकर मेरा हाथ ग्रहण करें। और

ुपाल आदि को अवसर न मिले ।। 40 ।।

हे श्रीकृष्ण कल होने वाले स्वयंवर में इकट्ठे हुये सेनापतियों के बीच में आप विदर्भ को र शिशुपाल के सैन्य को नाश कर कन्या शुल्क के रूप में अपने पराक्रम को दिखाते हुये त्कार से राक्षस विधि से मेरे साथ विवाह करें।।41।।

अन्तःपुर में रक्षा करने वाले हमारे बन्धुओं को न मारते हुये विवाह कैसे होगा। इसके लिये मैं एक य को बताती हूँ। विवाह पूर्व एक दिन पहले हमारे कुल देवता की बड़ी यात्रा लगती है। वहाँ विवाह होने नव वधू उस मन्दिर को जाकर गिरजा देवी का पूजा करने की परम्परा होती है ।। 42 ।।

हे रमेश आप उस समय वहाँ अपने रथ पदाति, गज, अश्व, सैन्य समेत आकर साल्व, ध, चेदि आदि राजाओं को झुकाकर सखियों के साथ वहाँ आई हुई मुझको हाथ पकड़कर रथ ठाकर अपने नगर में लेकर आपकी ही बनी हुयी मेरा पाणिग्रहण करें ।।43।।

पार्वती पति के समान बड़े देव भी अपने अज्ञान परिहार के लिये आपकी पाद कमल पराग स्रोत करते हैं। ऐसे आपके अनुग्रह को यदि मैं पा नही सकी तो व्रतोपवास से कृश होकर इस को छोड़ दूंगी। बाद में भी सौ जन्म के साधन से भी आपको पाकर ही रहूंगी ।। 44 ।।

श्री शुक देव जी कहते है - इस प्रकार पत्र में लिखा हुआ राजकुमारी के सन्देश को विश्लेषण श्रीकृष्ण ब्राह्मण के मुख को देखते हैं।। 45।।

ब्राह्मण कहता है :- हे यदुवंश भूषण श्रीकृष्ण, रुक्मिणी ने आपको गुप्त रूप से भेजा हुआ श यह है इसको आप पढ़कर जो करना चाहते हैं उसको विलम्ब न करते हुये जल्दी करें।।46।।

यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अठ्ठावनवाँ

रुक्मिणी हरण

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्रीकृष्ण रुक्मिणी का यह प्रणय संदेश को पढ़कर ब्राह्मण के हाथ को पकड़कर हंसते हुए बोले ।।1।।

यहाँ **प्रगृह्य पाणिना पाणिं** शब्द का यह भी अर्थ होता है कि पत्र लाने वाले ब्राह्मण के हस्त को भगवान पकड़े हैं। भगवान पत्र लिखा हुआ रुक्मिणी के हस्त को कैसे छोड़ेगे।

भगवान कहते है - मेरा भी मन रुक्मिणी में लगा हुआ है उसी के कारण मुझे नींद नहीं आ रहा है। मैं जानता हूँ कि रुक्मि हमारे द्वेष से यह विवाह नहीं होने दे रहा है।।2।।

अरणी के मंथन से जैसे अग्नि प्रकट होता है वैसे मैं वहाँ प्रकट होकर युद्ध में दुष्ट राजाओं को ठीक तरह से मारते हुए मुझमें मन रखी, दोष रहित रुक्मिणी को पाता हूँ।।3।।

रुक्मिणी के विवाह मुहूर्त को जानकर श्रीकृष्ण अपने सारथी दारूक को जल्दी रथ को तैयार करने की आदेश दिये।।4।।

श्रीकृष्ण को केवल रुक्मिणी ने पत्र लिखा। उसके उत्तर रूप में श्रीकृष्ण प्रेम पत्र नहीं लिखा। इसका अर्थ श्रीकृष्ण को अपने के लिए किसी की आवश्यकता नहीं है। केवल रुक्मिणी के कल्याण के लिए भगवान यह लीला की। भगवान स्वरमण हैं।

शैब्य, सुग्रीव, मेघ पुष्प और बलाहक नाम के चार घोड़े को रथ से जोड़कर दारूक रथ को सामने खड़ाकर हाथ जोड़कर खड़ा हुआ।।5।।

श्रीकृष्ण रथ के ऊपर चढ़कर साथ में ब्राह्मण को लेकर तीव्र गति से दौड़ने वाले घोड़ो से एक ही रात में आर्नत देश से विदर्भ को जा पहुँचे।।6।।

वहाँ कुण्डिन नगर के राजा भीष्मक अपने पुत्र व्यामोह के कारण शिशुपाल को अपने पुत्री

को देने की सर्वसिद्धता किया था।।7।।

नगर के राजमार्गों को सफाई कर पानी छिड़काया गया था। अनेक तरह के ध्वज पताकाओं से अलंकार किये थे।।8।।

स्त्री पुरुष पुष्पमाला, गंध, आवरण वस्त्र, अलंकार के धारण किये थे। घर को सजाकर चंदन और धूप से सुगंधित किये थे।।9।।

राजा भीष्मक विधिपूर्वक नांदी स्थापना करते हुए पितृ देवता की पूजा कर ब्राह्मणों को भोजन करवाकर नियम के अनुसार स्वस्तिवाचन पूर्वक मंगल कार्य आरंभ किया।।10।।

कन्या रुक्मिणी को मंगल स्नान करवाये। हाथ को कंकण बाँधें। नवीन वस्त्रद्वय को पहनाकर पहले ही सुंदरी रुक्मिणी को आभरणों से और सुंदर बनाये।।11।।

श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग कन्या को सामवेद, ऋग्वेद, यर्जुवेद के मंत्र से रक्षा बंधन किये। अथर्वण वेद के तज्ञ पुरोहित ग्रहशांति हवन किये।।12।।

विधि में श्रेष्ठ राजा भीष्मक ब्राह्मणों को सोना चांदी, वस्त्र और गूड़ से मिला हुआ तिल को गायों के साथ दान दिये।।13।।

इसीं प्रकार चेदि देश के राजा दमघोष अपने पुत्र शिशुपाल को मंत्रज्ञ ब्राह्मणों से सारे मांगलिक क्रियाओं को करवाया।।14।।

मद जल को बहाने वाला हाथी की सेना, रथ सेना, पदाति और अश्वसेना के साथ राजा दमघोष अपने पुत्र को लेकर आया।।15।।

राजा भीष्मक उसका स्वागत करते हुए उनके लिए सिद्ध राजग्रह में उनको बिठा दिया ।।16।।

साल्व, जरासंध, दंतवक्र, विदूरथ, पौन्ड्रक इत्यादि हजारों राजाओं ने शिशुपाल के साथ आये थे।।17।।

कृष्णराम के द्वेषियों ने रुक्मिणी को शिशुपाल को देने के लिए बद्ध हो गये थे। बलराम और यादवों के साथ कृष्ण आकर कन्या ग्रहण करने के लिए युद्ध करें तो हम सब उनके साथ युद्ध करेंगे। इस दृष्टि से अपने सैन्य वाहनों को लेकर वे आये थे।।18-19।।

भगवान बलराम शत्रुपक्ष के राजाओं के इस सिद्धता को अपने गुप्तचरों से सुन लिये थे। इसके साथ भगवान श्रीकृष्ण कन्याहरण के लिए अकेले गये है इसको भी जान लिये थे। वे युद्ध

की शंका करते हुए भाई के प्यार से युक्त होकर गज, अश्व, रथ, पदाति से युक्त बड़ा सैन्य को लेकर तीव्र गति से कुंडिनपुर को चले ।।20-21।।

परम सुंदरी भीष्मक की कन्या रुक्मिणी श्रीकृष्ण की राह देखती रही। भेजा हुआ ब्राह्मण अभी नहीं आया। इससे उसको बहुत चिंता हुई।।22।।

मैं अभागी हूँ। मेरी विवाह के लिए केवल एक रात्रि मात्र बची है। श्रीकृष्ण अभी तक नहीं आये। कारण भी मुझे ज्ञात नहीं है।।23।।

मेरे संदेश को लेकर गया हुआ ब्राह्मण भी अभी तक नहीं आया। निर्दोष मुझमें श्रीकृष्ण क्या कमी देखें हैं। वे आयेगे या नहीं ? उनको मुझसे शादी करने की इच्छा है कि नहीं ? र्दुदैवी मुझ पर ब्रह्मा जी भी अनूकुल नहीं है। मनोनयामक रुद्र भी प्रतिकूल बने हैं क्या ?।।24-25।।

रुद्र के सति गिरजा वह भी मेरे प्रतिकूल बनी है क्या ? इस प्रकार कृष्ण में मन रखने वाली रुक्मिणी दुःख करने लगी। उनकी आँखों में पानी भरी थी। वे और दूसरों को न दिखे। इसके लिए वह अपने मुख को ढक ली।।26।।

हे राजा इस प्रकार रुक्मिणी श्रीकृष्ण के आगमन को कातर होकर देख रही थी। उस समय उसको बाई भुज, बाईं आंख हिले, इस शुभ सूचना से वह संतोष पाई।।27।।

उसी समय श्रीकृष्ण के यहाँ भेजा हुआ ब्राह्मण अन्तःपुर में आकर देवी रुक्मिणी से भेंट किया।।28।। ब्राह्मण की आंखें खुली थी। दृढ़ता से वह आ रहा था। इन बाह्य लक्षणों से उनकी मनोभावनाओं को जानने वाली देवी हंसते हुए उनसे पूछी।।29।।

ब्राह्मण उनसे बताया देवी श्रीकृष्ण आये हैं। देवी को ले जाने का शपथ किये है।।30।।

इससे संतुष्ट मनवाली रुक्मिणी कृष्ण आने वाले हैं यह प्रिय समाचार लाने वाले ब्राह्मण को देने प्रिय वस्तु किसी को न देखते हुए खुले मन से उसको नमस्कार की।।31।।

यहाँ रुक्मिणी जी ब्राह्मण को नमस्कार करती हैं। श्री राम जी अपने पति सीता जी को ढूंढकर उनसे चूड़ामणि लाने वाले हनुमान जी श्रीराजी को सहभोग रुप आलिंगन दिये। इस प्रकार यह ब्राह्मण के हाथ को पकड़कर श्रीकृष्ण जी करावलम्बन दिये। इसका अर्थ इस संसार से तुम्हारा उद्धार करता हूँ होता हैं। रुक्मिणी भी किसी लौकिक भोग्य भाग न देते हुए ब्राह्मण को नमस्कार की। इसका अर्थ तुम सबके नमस्कार योग्य बनो यह सूचित होता है। जगत जननी से नमस्कार पाने से और बड़ा वस्तु क्या होता है।

अपने पुत्री के विवाह को देखने के लिए रामकृष्ण आये हैं, यह सुनकर राजा भीष्मक पूजा

सामग्री के साथ वाद्य घोष करते हुए उनका स्वागत किया।।32।।

राजा भीष्मक मधुपर्क और सुंदर वस्त्रों को देकर उनका विध्युक्त सत्कार किया।।33।।

उदार बुद्धि वाला भीष्मक रामकृष्ण को कुण्डिनपुर के बाहर में रहने वाला उद्यान गृह में उनके योग्य वैभव पूर्ण व्यवस्था रहने के लिए किया।।34।।

जरासंध इत्यादि राजाओं ने पहले ही आने के कारण नगर पूरा भर गया है। इसके लिए आपको यहाँ आवास किया गया। इसको विनंती पूर्वक कहा गया। उनके अनुचरों को भी यथा योग्य सत्कार किया।।35।।

राजा भीष्मक आने वाले सारे राजाओं को उनके बल पराक्रम और आयु के अनुसार योग्य सत्कार किया।।36।।

यहाँ जरासंध आदि दुष्ट राजाओं ने पूरे कुण्डिनपुर में श्रीकृष्ण को स्थान न मिले इस दृष्टि स पूरे नगर में भरकर बैठ गये थे। राजा भीष्मक अनिवार्य होकर श्रीकृष्ण को नगर के बाहर बिठा दिया। किन्तु श्रीकृष्ण को रुक्मिणी को लेकर जाने के लिए यह अनुकूल ही बन गया। राजा भीष्मक के इस सत्कार से भगवान संतुष्ट हो गये। शाठ्य अथवा अहंकार से क्यों न हो भगवान की सेवा करने वाले उत्कृष्ट फल को ही पाते हैं।

श्रीकृष्ण आये हैं। यह समाचार सुनते ही कुण्डिनपुर में रहने वाले सारे लोग श्रीकृष्ण के यहाँ आकर अपने आँख नाम के अंजलि से उनके मुख के सौन्दर्य को बार - बार पिये।।37।।

वे बोलते रहे - रुक्मिणी श्रीकृष्ण के पत्नी बनने योग्य हैं। वह और किसी के पत्नी नहीं हो सकती। श्रीकृष्ण के समान और कोई पति नहीं मिलेगा।।38।।

अपने में किंचित यदि पुण्य रहा है तो तीनों लोकों के स्वामी श्रीकृष्ण हमारे ऊपर एक अनुग्रह करें। वह केवल यही हैं कि वे रुक्मिणी से पाणिग्रहण करें।39।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार नगर के वासी लोग प्रेम परवश होकर अपने में बातचीत कर रहे थे। इतने में विवाह होने वाली कन्या रुक्मिणी अंग रक्षकों की रक्षा में अंतःपुर से अम्बिकालय को पूजा के लिए चली।।40।।

देवी रुक्मिणी मुकुंद के पाद कमलों के ध्यान करते हुए भवानी का पाद दर्शन के लिए पैदल चलीं।।41।।

माता के और साथियों के साथ मौन होकर चलीं। आयुधों से सुसज्जित अनेक राजभट्ट उनके चारों ओर घेरे हुए थे।।42।।

हाथ में वेत्र और झर्झर नाम के वाद्य को लिये हुए अन्तःपुर रक्षक साथ में थे। वे मृदंग शंख पणव तूर्य और भेरी को बजाते थे।।43।।

अनेक तरह के पूजा सामग्री को लिये हुए हजारों स्त्रियां रुक्मिणी के साथ थी। पूर्व माला गंध वस्त्र गहनों से अलंकृत ब्राह्मण पत्नी भी साथ थी ।।44।।

गायन करने वाले गायक, वाद्य बजाने वालों के साथ सूत मागध बंदी स्त्रोत करते हुए वधू के साथ चल रहे थे।।45।।

रुक्मिणी देव मंदिर को आकर हाथ पांव धोकर आचमन करते हुए शुद्ध होकर भगवान श्रीकृष्ण को याद करते हुए दुर्गा सन्निधि को प्राप्त की।।46।।

स्त्री लोग करने वाला पूजाक्रम को जानने वाले वृद्ध ब्राह्मणसुमंगलियों ने वधू के साथ रुद्र से युक्त पार्वती को नमस्कार किये, करवायें।।47।।

रुक्मिणी मन में प्रार्थना करती हैं। हे माँ पार्वती जगदम्बे, पुत्रों के साथ बैठी हुई आप मंगलकारी है। आप को मैं पुनः पुनः वंदन करती हूँ। श्रीकृष्ण मेरा पति हो। आप इसका अनुमोदन करें।।48।।

ब्राह्मण पत्नियों ने दिया हुआ पूजा सामग्रियों से रुक्मिणी ने पार्वती की पूजा की। पानी गंध, अक्षता, धूप, वस्त्र, आवरणों से नैवेद्य और दीपों से अर्चना की। इसके साथ नमक, भक्ष्य, ताम्बूल, मंगलसूत्र, फल और गन्ने के टुकड़ों से नैवेद्य किया।।49-50।।

वे ब्राह्मण सुमंगलियों ने रुक्मिणी को देवी के प्रसाद देकर आशीर्वाद दिये। उनको और देवी को रुक्मिणी नमन की। अन्य सखी लोगों से आलिंगन किया।।51।।

बाद में मौन व्रत को छोड़कर दुर्गा मंदिर से बाहर आई। उस मंदिर के बगल में इन्द्र और शचीदेवी का मंदिर था।।52।।

विदर्भ में जन्म लिये हुए राजाओं के इन्द्र शची कुल देवता बनते हैं। रुक्मिणी बहुत समय तक शची का अराधना की थी। उस मंदिर को आकर इन्द्रपत्नी शची देवी को नमन कर आगे चली।।53।।

रत्न मुद्रा वाले अंगूठी को पहने हुए हाथ से सखी के हाथों को पकड़कर वह आगे चली। उस समय अनेक दूतों ने छत्र चामर को ऊपर उठाकर खड़े थे। अनेक लोग चामर चलाये।।54।।

सुंदर छोटी सी कटि, उससे बंधा हुआ सोने के रत्न जड़ित कमरबंद, सुंदर कुण्डलों से अलंकृत मुख, उभरे हुए स्तन, घुंघराले काले बाल चंचल नयन, अभि यौवन पायी हुई षोडसी

रुक्मिणी उन राजाओं को मोहित करने वाले लक्ष्मी के समान लगती थी।।55।।

शुभ्र मंद हास, लाल लाल गाल शोभायमान होंठ, चमेली के कली के समान दिखने वाले दांत, ध्वनि करने वाले पगघुंघरू को पहनकर राजहंसी के समान रुक्मिणी मंद मंद पग रखते हुए चल रही थी। उनको देखकर वहाँ आये हुए धीर वीर उनके दर्शन से मन्मथ से पीड़ित होकर अपने उद्देश्य और अपने को ही भूल गये।।56।।

रुक्मिणी मंदिर से बाहर आने के बाद हाथी के ऊपर बैठकर आगे जाना था। श्रीकृष्ण से मिलने का उद्देश्य होने के कारण वह पैदल चलती रही। नय नाजुक से चलने वाली उनको देखकर राजकुमार काम पीड़ित होकर अपने कर्तव्य को भूल गये। पुत्र अपने जगन्माता पिता रुक्मिणी श्रीकृष्ण का समागम हो इसके लिए मन्मथ उन राजाओं को मोहित कर दिये। साथ में छत्र चामर ऊपर उठने के कारण सबको क्या हुआ यह नही दिखता था।

यहाँ कुलदेवी की यात्रा केवल एक बहाना था, अपने अपार सौन्दर्य को व्यक्त करते हुए प्रत्यक्ष आये श्रीकृष्ण को अपने सौन्दर्य को समर्पण करने के लिए ही राजघर से बाहर देवी आयी थी। उनके मादक हंसी, लज्जा और तिरछे नजरों से मन मुदित होकर वहां इक्कट्टे हुए राजा लोग अपने कर्तव्य को भूल गये। गज अश्व रथ में बैठे हुए राजा लोग जमीन पर गिर गए। जमीन में खड़े सैनिक नीचे बैठ गये। कई बेहोश हो गये।।57।।

रुक्मिणी अपने कमल समान पादों से निदान गति से चलते हुए श्रीकृष्ण आये हैं क्या ? यह इसको आंखे खोलकर देखते हुए, घुंघराले बालों को बाएं हाथ से बाजू करते हुए उन राजाओं को एक बार लज्जा भरी नजर से देखी। वहाँ सुंदर सुकुमार श्रीकृष्ण को देखी।।58।।

अपने रथ को चढ़ने की इच्छा करने वाली रुक्मिणी को श्रीकृष्ण अपने हाथों से उठा लिये। शत्रु राजाओं ने देखते - देखते गरुड़ ध्वज से शोभित अपने रथ में बैठा दिये। सारे राज समूह को अलक्षित करते हुए निदान गति से चलने लगे। बलराम जी सैन्य समेत उनका पीछा करने लगे। हाथी के शिकार किया हुआ सिंह सियार के समूह से जैसे जाता है वैसे मंद गति से आगे बढ़े।।59-60।।

यहाँ रुक्मिणी मंद गति से चलती हैं। श्रीकृष्ण भी पहले अपने रथ को मंद गति से चलाये। इसका कारण एक ही था वे धैर्य से यह काम किये थे। यह काम चोरी से करने वाला नहीं है। अपने हक को लेकर चलने वाला कितने धैर्य से चलता है उसी धैर्य से ये दोनों अपने काम किये।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में अठ्ठानवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - उनसठ

रुक्मि पराभव

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव कहते है - श्रीकृष्ण के रथ वायु वेग मनोवेग को पार करते हुए द्वारका के प्रति दौड़ने लगा। जरासंध के साथ आये हुए दुरभिमानि राजाओं ने इस हार को सहन नहीं कर सके। वे इस हार को अपने यश के लिए कलंक मानें। हे हमें धिक्कार हो। हम सब हाथ में धनुष पकड़कर खड़े हैं। किन्तु ये गाय चराने वाले हमारी कीर्ति का अपहरण किये। सिंह के मुंह से हिरणों ने आहार को लूटा।।1।।

वे सारे क्रोधित होकर कवच धारण करके अपने वाहन के ऊपर चढ़कर अपने सैन्य के साथ श्रीकृष्ण के पीछे दौड़े।।2।।

कामुक और दुरभिमानि जरासंध आदि राजा लोग अपने को न मिलने वाले हरिणाक्षी रुक्मिणी का वियोग नाम के रोग से अपने देह को त्यागने के लिए श्रीकृष्ण से मरने हारने अंधेरा सूर्य का जैसे पीछा करता है वैसे श्रीकृष्ण के पीछे पड़े।

हे राजा शत्रु सैन्य श्रीकृष्ण के पीछे लगा है। इसको देखकर यादव सेना बलराम का नेतृत्व में धनुर्बाण लेकर उनका सामना की।।3।।

घोड़े के ऊपर, हाथी के कंधे पर रथ के बीच में बैठे हुए क्षत्रिय वीर मेघ पहाड़ के ऊपर जैसे पानी बरसाता है वैसे यादवों के ऊपर बाणों को बरसाये।।4।।

आगे जाने वाली रथ में बैठी हुई रुक्मिणी पीछे मुड़कर देखती है, श्रीकृष्ण का सैन्य बाणों की वर्षा में छिप गया है। वे भय विह्वल होकर लज्जा भरी आंखों से श्रीकृष्ण के मुख को देखी।।5।।

भगवान श्रीकृष्ण हंसकर बोले - हे सुंदर आंख वाली डरने की बात नहीं है। यह शत्रु सैन्य तुम्हारे यादवों के हाथ से जल्दी ही नाश हो जायेगा।।6।।

गद, बलराम इत्यादि वीर शत्रु पराक्रम को सहन न करते हुए बाणों से उनके घोड़े हाथियों को मारे।।7।।

थिक, अश्वारोही, गजारोहियों के कीरीट कुण्डल युक्त हजारों सिर जमीन पर गिर ।

ड्ग, गदा, धनुष को पकड़े हुए हाथ, कटी, पांव, घोड़े और अश्वतरीके, मनुष्यों के सिर यव लाखों संख्या में जमीन पर गिर गये।।9।।

क बार रुक्मिणी को पाकर जीते हुए यादव जय की आकांक्षा रहते हुए जरासंध के सैन्य करने लगे। रुक्मिणी के अपहरण से पहले ही हारे हुए जरासंध के सैन्य युद्ध भूमि से ।।10।।

राम जरासंध को पराभव किया। शिशुपाल को सात्यकि ने मारा। रुक्मि के सहाय के लिए आया हुआ। पने सैन्य को खोकर भाग गया।

शुपाल पत्नी को खोया हुआ आदमी के समान दुःख करने लगा। वह कान्ति हीन होकर खोकर दुःख से रोने लगा। उसके पास जरासंध इत्यादि राजा आकर कहते हैं।।11।।

रुषः श्रेष्ठ दुःख को छोड़ो। देह में रहने वाले किसी को भी सदाकाल सुख अथवा दुःख हीं रहता।।12।।

पुतली चलाने वाले के इच्छा के अधीन होकर नाचता है। वैसे ही जीव का सुख भोग व साधन भगवान के अधीन है। उनकी इच्छा से ही मानव कार्य प्रवृत्त होता है।।13।।

ईस अक्षोहिणी सैन्य सत्रह बार कृष्ण के साथ युद्ध किया। किन्तु पराजित होकर ा। परन्तु अठारहवां बार मैं जीत गया।।14।।

मी दैव के अनुसार ही यह जगत चलती है। मैं इसको ठीक तरह से जानता हूँ। इसी भी न संतोष पाता हूँ कभी दुःख को भी नहीं पाता हूँ।।15।।

हम बड़े - बड़े सेना नायक वीर धीर सूर होते हुए भी श्रीकृष्ण की रक्षा में रहने वाले से पराजित भी हो गये।।16।।

इस बार शत्रु जीते है। काल उनके लिए अनुकूल है। जब हमको अच्छा काल आयेगा गे।।17।।

कदेव कहते हैं - इस प्रकार आप्त जरासंध लोग समाधान करने के बाद शिशुपाल र के साथ अपने नगर को वापस चला गया। अन्य राजाओं अपने अपने राजधानी को 8।।

कृष्णद्वेषी रुक्मि अपनी बहन का यह राक्षस विवाह को सहन नहीं कर सका। वह गी सैन्य को साथ लेकर श्रीकृष्ण के पीछा किया।।19।।

बहुत शूर था किन्तु उसमें सहन गुण नहीं था। अब वह क्रोध से कवच धारण कर

अपने धनुष को उठाकर सबके सामने प्रतिज्ञा करता हैं।।20।।

युद्ध में श्रीकृष्ण को न मारते हुए रुक्मिणी की विवाह को शिशुपाल से नहीं करते हुए मैं वापस इस कुण्डीनपुर नहीं आऊँगा। यह बात सत्य हैं, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।।21।।

इस प्रकार शपथ करते हुए रुक्मि रथ के ऊपर चढ़कर अपने सारथी को आज्ञा देता हैं - कृष्ण के पास जल्दी ले चलो। मुझे उसके साथ युद्ध करना है।।22।।

वह कृष्ण मेरी बहन को जबरन ले चला हैं। उस दुर्बुद्धि वाले ग्वाले का अहंकार को मेरे बाणों से मिटाना हैं।।23।।

सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के सामर्थ्य को न जानने वाला दुर्बुद्धि युक्त रुक्मि ऐसे ही चीखते - चिल्लाते हुए रथ से उनका पीछा करने लगा।।24।।

जब श्रीकृष्ण नर्मदा नदी को पार कर रहे थे। उस समय उनके रथ को रुकाते हुए ठहरो-ठहरो, युद्ध के लिए तैयार हो जाओ रुक्मि ने चिल्लाया।।25।।

श्रीकृष्ण को अपने धनुष से तीन बाणों को छोड़कर मारा। हे यदुकुल को कलंक लगाने वाले भीरू एक क्षण रुक जाओं। क्यों भागते हो ?।।26।।

यहाँ **यदूनां कुलपांसन** शब्द का प्रयोग है। इसका अर्थ यह भी होता है कि हमारे रुक्मिणी को लेकर उनसे रहित हमारे नगरी को, हमारे कुल को उद्ध्वस्त किया है।

यज्ञ में समर्पित हविष्य को जैसे कौवा उठाकर ले जाता है। वैसे कपट बुद्धि वाला तुम्हारे अहंकार को एक निमिष में नष्ट करूँगा।।27।।

यहाँ **स्वसारम** यह शब्द का प्रयोग है। **सु+असारं** इसका अर्थ कौवा जैसे हविष का अपहरण करके अपवित्र करता है। ऐसे तुमने रुक्मिणी को अपवित्र किया है। यह अर्थ होता है। भीष्म जब अम्बिका का अपहरण करते हैं तब साल्व भी अपवित्र मानकर अम्बा का त्याग करता है। **स्व+सारम** शब्द से हमारे बल को हरण किया है। यह भी अर्थ होता है।

मेरे बाण से आहत होकर गिरने के पहले मेरी बहन को छोड़ दो। रुक्मि के इस बात को सुनकर हंसते हुए श्रीकृष्ण अपने बाण से रुक्मि के धनुष को तोड़ दिये। छः बाणों से उसको मारे। आठ बाणों से चारों घोड़े को मारे, दो बाणों से सारथी को मारे। तीन बाणों से ध्वज को काट डाले। रुक्मि इसके उत्तर रूप में पांच बाणों से कृष्ण को मारे।।28-29।।

श्रीकृष्ण उन बाणों से मार खाते हुए रुक्मि का वह दूसरा धनुष को काट डाले।।30।।

परिघ, पट्टिश, शूल खड्ग, ढाल, शक्ति, तोमर इत्यादि अन्यान्य आयुधों से रुक्मि श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने लगा। श्रीकृष्ण उन सारे आयुधों को काट डाले।।31।।

तब रुक्मि रथ से नीचे उतरकर हाथ में खड्ग और ढाल को लेकर श्रीकृष्ण के ऊपर चढ़ाई

की। लगता था पतंग दीप पर आक्रमण कर रहा है।।32।।

रुक्मि श्रीकृष्ण के ऊपर आ रहा था। उतने में श्रीकृष्ण उसके खड्ग और ढाल को तिल के समान चकनाचूर करते हुए बाएं हाथ से रुक्मि को पकड़कर दाहिने हाथ के खड्ग से उसको मारना चाहे ।।33।।

अपने भाई को श्रीकृष्ण मार रहे हैं। इसको देखकर रुक्मिणी भय से कांपते हुए पति के पांव पड़ते हुए दुःख से बोली।।34।।

रुक्मिणी कहती हैं - हे योगेश्वर, अप्रमेयस्वरूप, देव-देव, जगन्नाथ, हे मंगलस्वरूप, हे महाबाहु, मेरे भाई को मत मारिये।।35।।

श्री शुकदेव कहते हैं - भाई को बचाने के लिये दीन रुक्मिणी दैन्य से जगन्नाथ श्रीकृष्ण का पांव को बार - बार पकड़ने लगी।।36।।

भय से रुक्मिणी का शरीर कांप रहा था, मुंह सूख गया था, गला बांध गया था। भय के कारण गले के गहने गिर रहे थे। ऐसे स्वरूप में रुक्मिणी जब श्रीकृष्ण का पांव पकड़ी तब दयालु श्रीकृष्ण रुक्मि को मारने का प्रयत्न छोड़ दिये।।37।।

गलत काम किया हुआ रुक्मि को उनके ही कपड़े से रथ को बांधकर अपने हाथ के खड्ग से उसके सिर के बाल और मूंछ को काटकर विरूप किये। इतने में यादव सैन्य आकर रुक्मि के सैन्य को कमल सरोवर में घुसे हाथी के समान नष्ट किये।।38।।

यादव वीर श्रीकृष्ण के पास आकर रुक्मि की दशा को देखें। पांच स्थानों में रुक्मि के सिर के ऊपर भगवान श्रीकृष्ण पांच चोटी रखे है। अन्य बालों को और मूंछों को काटकर उसको विरूप किये है। जीते जी मरा जैसे रहा रुक्मि को देखकर बलराम अन्तःकरण से उसको बंधन से मुक्त कराये।।39-40।।

बलराम बोलते है, श्रीकृष्ण इसके बारे में आप गलती किये हैं। ये हमारे बंधु हैं। हमारे लोगों को इस प्रकार विरूप करना उचित नहीं है। अब यह रुक्मि जीवित रहते हुए भी मरा जैसा है।।41।।

हे साध्वी रुक्मिणी, श्रीकृष्ण आपके भाई को विरूप किया है। इससे चिंता से दुःख करना अच्छा नहीं है। दुःख दूसरा कोई आदमी दे नहीं सकता। प्रत्येक को अपने करनी को भोगना पड़ता है।।42।।

बंधु वधार्ह अपराध करने के बाद भी वह बंधु ही है। उसको परित्याग करना है, न तु मारना है। अपने दोष से मरा हुआ आदमी को और मारने की क्या जरूरत है।।43।।

क्षत्रिय युद्ध में अपने सोदर को भी मार सकता है। यह क्षत्रियों के लिए ब्रह्म निर्मित धर्म है।

इसी कारण क्षत्रिय धर्म बहुत घोर बन गया है। किन्तु हम उसका अनुसरण करना उचित नहीं है।।44।।

धन मद से अंधे बने दुरहंकारी लोग राज्य भूमि धन मद, स्त्री, सम्मान और पराक्रम के लिए अपने बंधुओं का नाश करते हैं।।45।।

देह और आत्मा का स्पष्ट रूप से भेद को न जानने वाले मूढ़ मनुष्य, मित्र शत्रु उदासीन ऐसे शरीर के गुण धर्मो को आत्म में देखकर मोहित होता है। यह भगवान की बंधक माया शक्ति के कारण होता है।।46।।

सारे देहियों में सूर्य के समान अव्याकृत आकाश के समान रहने वाले अन्तर्यामी स्वामी एक है। अज्ञ लोग उनको अलग-अलग समझते है।।47।।

पंचभूत, पंचप्राण, पंचइन्द्रियां और सत्वादिगुणों से निर्माण हुआ यह शरीर नाशवान है। अज्ञान से होने वाला अभिमान के सम्बन्ध आत्म को लगता है। इससे देह वाले जीव को संसार उत्पन्न होता है।।48।।

जीव अज्ञान से अपने भौतिक शरीर को स्वयं अपने समान मानता है। अभिमान से रागद्वेष युक्त होकर देह वाला जीव देह के लिए कर्म करते हुए कर्म के कारण पुनः देह पाते हुए संसार चक्र में फिरता रहता है। इसी को संसार चक्र कहते है।

स्वप्न में जागृति में दिखने वाला वस्तु न दिखता है। किन्तु स्वप्न में वासनामय क्षणिक स्वाप्न पदार्थो को वह देखता है। उस समय उन्हीं वस्तुओं से सुख दुःख को भोगता है। वैसे जागृति में भी इन नाश होने वाले विषय पदार्थो और उनके सुख दुखों को भोगता है। स्वयं नित्य होते हुए इन अनित्य पदार्थो में अपने को देखता है।।49।।

स्वप्न में जागृति में विषय पदार्थो को जीव देखता है। किन्तु निर्माण करता नहीं। सृष्टि करने के लिए वह स्वतंत्र नहीं है। केवल भगवान ही सृष्टि करता है।

हे शुभ्र मंद हास वाले रुक्मिणी अज्ञान जन्य शोक ज्ञान को छुपाता है। उसको इस तत्वज्ञान से समझकर दुःख को छोड़कर समाधान पाओ ।।50।।

बलराम श्रीकृष्ण के भाई होने से रुक्मिणी को यह उपदेश देते है। उसको सुनकर रुक्मिणी तत्वज्ञान से शोक को हटाकर मन को समाधान करती है।।51।।

श्रीकृष्ण रुक्मि को मारने जाना, रुक्मिणी उनका विरोध करना बलराम कृष्ण रुक्मिणी को उपदेश देना ये सारे बंधुओं आपस में कैसे व्यवहार करना इसको बताना हैं। श्रीकृष्ण सत्य संकल्प है, वे रुक्मि को मारने का मन किये होते तो मारने के बिना नहीं छोड़ते थे। रुक्मिणी का ज्ञान कभी भी तिरोहित (नष्ट) नहीं होता। बलराम बड़े भाई होने के नाते यह उपदेश दे रहे हैं, किन्तु वे आपने पाया हुआ तत्व ज्ञान को लक्ष्मी नारायण को समर्पित

कर रहे हैं।

रुक्मि को उनके शत्रुओं ने उनका बल तेज को नाश करते हुए जीव मात्र से छोड़े है। श्रीकृष्ण को मारने की उसकी इच्छा मनोरथ झूठ निकला है। श्रीकृष्ण ने उसको जो विरूप किये है। उसको तो वह जन्म भर नहीं भूलेगा। सदा उसी को याद करते हुए प्रतिज्ञा के अनुसार अपने राजधानी न जाते हुए अपने वास के लिए भोजकट नाम के एक नगर को निर्माण कर वहीं रहने लगा।।52।।

दुष्ट बुद्धि वाले कृष्ण को मारने के बिना और अपने बहन को वापस लाने के बिना मैं कुण्डिनपुर प्रवेश नहीं करूँगा कहते हुए रुक्मि क्रोध से भोजकट में रहने लगा।।53।।

रुक्मि बहुत दिन तक रुद्र को उद्देश्य कर बड़ी तपस्या की। अपने सारे धनुषों को श्रीकृष्ण ने काट डाला था। इसके लिए किसी से न काटने वाला श्रेष्ठ धनुष को श्री रुद्र जी के अनुग्रह से पा लिया। धनुष को देते समय शिव जी बोले - यह धनुष तुमको सर्वत्र विजय देता है किन्तु श्रीकृष्ण के साथ द्वेष छोड़ दो। यदि श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने में इस धनुष का प्रयोग किये तो यह धनुष तुमको छोड़कर मेरे पास आ जायेगा । रुक्मि को निराशा हो गया। इतने तप करने के बाद भी वह श्रीकृष्ण का विरोध करने में सफल नहीं हुआ। यह इल्वल नाम के दैत्य का अवतार है। इसमें शुचि नाम का अग्निपुत्र का आवेश था।

रुक्मिणी परिणय

हे राजा, भगवान श्रीकृष्ण इस प्रकार जरासंधादि दुष्ट राजाओं को हराते हुए रुक्मिणी को द्वारका लाकर उनसे विधिपूर्वक विवाह किये।।54।।

विध्युक्त विधि में कन्यादान, विवाह होम, सप्तपदि इत्यादि विधि होते है। उसको द्वारका की समीप रहने वाला मूल माधव क्षेत्र में हुआ है। यह विवाह गांधर्व और राक्षस मिश्र विधि का विवाह है। इसमें कन्यादान आदि कार्य शक्य नहीं है। क्योंकि कन्यादान करने वाला कन्या पितृ द्वारका में नहीं है। इस विधि के बारे में देवल स्मृति कहती है।

गांधर्वादि विवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः।
कर्त्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समर्थे न तु साग्निकः।।

गांधर्वादि विवाह विहित हैं। कन्यादानादि कार्य कन्या पिता द्वारा ही करना आवश्वक नहीं है। यादवों के एक भाग कन्या पक्ष में खड़े हो गए और विधिपूर्वक कन्यादानादि कार्य किये।

रुक्मिणी इस विजय में वादिराज जी कन्या पक्ष और वर पक्ष के बीच में हुआ संवाद को अत्यन्त विवरण पूर्वक आनंद देने वाले तरीके से लिखे हैं।

विवाह निश्चितार्थ में वाङ निश्चय होता है। तब वर पक्ष में रहने वाले कहते हैं।

सोना चाँदी की स्रवण करने वाले (सुवर्ण रजत स्रजाम्) सोने के समान प्रकाशमान और कोमल आपके रुक्मिणी को इन्द्र नीलमणि के समान शोभायमान नीलमेघ श्याम को दे दीजिये। इससे सोना और इन्द्रनील मणि का

संयोजन होगा। नील मेघ कृष्ण विद्युत कांति वाली रुक्मिणी से विवाह होना योग्य है।

दोनों के मैत्री भाव के बारे में कहते हैं -

वधू विदर्भ वंश नाम के सागर में मिला हुआ रत्न के समान है। वर चन्द्रवंश में अवतार लिये है। रत्न और चन्द्र दोनों का उत्पत्ति स्थान एक होने के कारण दोनों वंशों में मैत्री भाव परपंरागति से आया है। दोनों का आयु सदा के लिए सोलह वर्ष का होता है।

अब वधू पक्ष वाले विवाह करने के लिए अपने मांग रखते हैं।

अपने कन्या रत्न को आप यदि चाहते हैं तो हमारे इन बातों को मानना पड़ता है।

1. हमारे पद्मि का हाथ कमल के समान कोमल हैं। उनसे किसी बोझ उठाने के लिए नहीं कहना चाहिए। उनके लिए केवल लघु कार्य करने के लिए बोलना है।

2. इनको कभी भी प्रलय के संदर्भ में भी जागना चाहिए।

3. किसी संदर्भ में इसके ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिए। थोड़ा सा अलक्ष करें तो वह उठकर मायके चली आयेगी।

4. हम जब जब उनको देखना चाहते हैं तब समाचार भेजते ही हमारे पास भेजना चाहिए।

5. जब ये मायके में रहती है तब दूसरे स्त्री को आंख उठाकर भी नहीं देखना चाहिए। सुना है तुम्हारे वर बहुत लड़कियों के साथ खेलता है।

6. विवाह के बाद भी हमारा याद करते रहना। इनको आप स्वीकार करते हैं तो विवाह होगा।

इसके उत्तर रूप में वर पक्ष वाले कहते हैं -

गृहणी होने के कारण घर का काम करना ही चाहिए। गृहणी को अपना घर का किसी काम बोझ नहीं होता। हमारे श्रीकृष्ण के घर में ज्यादा नहीं होता। उनके केवल चौदह घर है (चौदह लोक ही उनके घर हैं) उनमें रहने वाले दूध, दही, बर्तन इत्यादि वस्तु का ख्याल रखना है। सोना तो पहाड़ के समान (मेरूपर्वत) पड़ा है। लक्ष्मी रूप में जब रुक्मिणी जी आती है तो इसमें कष्ट नहीं होगा। वह अपनी आँखों के कृपा कटाक्ष से ही विशाल घर के (ब्रह्माण्ड के) ख्याल रखने का शक्ति वाली है।

हमारा श्रीकृष्ण पूरा ब्रह्माण्ड को, क्रुद्ध होकर ब्रह्मादि देवताओं को भी खा लेने के बाद भी (प्रलय काल में) भीष्मक पुत्री के ऊपर क्रोध नहीं करेगा। एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ेगा। अपने हृदय में रखेगा।

आपने कहा श्रीकृष्ण और किसी को आँख उठाकर भी देखना नहीं है। हमारे कृष्ण आनंद पूर्ण हैं स्वरमण है और कोई स्त्री से इसको क्या होने वाला है। वह अपने नाभि से बच्चों को पैदा कर सकता है। उसके लिए हमारे कृष्ण को और कोई स्त्री की आवश्यकता नहीं है।

इसके उत्तर में कन्या पक्ष वाले बोलते हैं - हम वर दक्षिणा वर उपचार के रूप में कुछ नहीं दे सकते। केवल कन्या रत्न को देते है।

वर पक्ष वाले कहते हैं - ब्रह्माण्ड के स्वामी श्रीकृष्ण के लिए वरोपचार की कोई आवश्यकता नहीं है। हमको वर दक्षिणा भी नहीं चाहिए। किन्तु प्रतिदिन वधू अपने सुंदर तिरछे आँख के दृष्टि को दक्षिणा रूप में देते रहना। तब दोनों पक्ष वाले सहमति से मूर्हूत देखने के लिए ज्योतिषी को बुलाते है।

तब ज्योतिषी कहते हैं - ये अनादिकाल से दंपति हैं। इनका जातक कुण्डली नहीं रहता हैं। ये दंपति यहीं खड़े हैं। इनके विवाह में पांच ग्रह उच्च हैं, चार ग्रह नीचस्थान में है। चन्द्र आल्हादकर है, वह इन दोनों के मुख में है, वृषभ राशि वाला होता है, बुध मंद स्मित के समान है, कन्या राशि में है, कटिभाग दृढ़ हैं वहाँ गुरू है, कटि कवियों से वर्णन योग्य है, इसके लिए काव्यास्पद है। इस प्रकार पाँच ग्रह नाभि के ऊपर उच्च स्थान में है। नाभि के नीचे मंद गमन के कारण इनके चाल चलन में शनि है, पाँव में ध्वज पताका चिन्ह होने के कारण पांव में केतु है, इनकी छाया जमीन पर है, इसका कारण राहु जमीन पर है, इनके पांवों को देखने वालों को मंगल होता है इसके लिए मंगल इनके पांव में हैं। इस प्रकार इनके देह में नवग्रह होने के कारण और मुहूर्त देखने की जरूरत नहीं। जिनकी आराधना से लोगों को ताराबल,चन्द्र बल और गुरूबल आता हैं उनके लिए इनको देखना अनावश्यक है।

काशी यात्रा - विवाह के पूर्व दिन वर काशी यात्रा जाने का सम्प्रदाय होता है। किन्तु यहाँ श्रीकृष्ण के पांवों में सारे तीर्थो का सम्मिलन है। गंगा जी यही से उत्पन्न हुए हैं। सकल तीर्थ क्षेत्र यहाँ रहने के बाद और काशी यात्रा की क्या जरूरत है।

वादिराज जी आगे लिखते हैं - कन्यादान के जलधारा रूप से श्रीकृष्ण कन्या रुक्मिणी के हाथ से अर्घ्य को ग्रहण किये। उनके प्रेम भाष्पजल से अभिषेक करवाएं। रुक्मिणी फूल माला के साथ अपने प्रणय माला को भी अर्पण किया। अपने आंखों के कटाक्ष से आरती की। मंदहास अमृत रस से भोग लगाई। इस प्रकार प्रणयाराधन पूर्वक विवाह महोत्सव सम्पन्न हुआ।

इस स्वयंवर में हाथ में फूल माला लिये हुए रुक्मिणी आती हैं। वहाँ समस्त देवदेवता और राजा सम्मिलित हैं। श्रीदेवी रुक्मिणी एक - एक देवताओं और राजाओं को देखते हुए कहती हैं -

शिव उग्र हैं, वायु चंचल हैं, ब्रह्म जीवराशि में बूढ़ा हैं, शेष को पाँव नहीं हैं, अग्नि जलता है, गरुड़ की नाक भारी है, वरूण जड़ हैं, इन्द्र को गोत्र सहन होता नहीं, सूर्य संचार प्रिय है, शशि क्षय रोगी है, मदन अनंग हैं, ये सारे दोष वाले अपने पत्नी को क्या आनंद देते हैं ? केवल हमारे स्वामी दोष रहित हैं, आनंदादि गुणपूर्ण हैं, ये केवल मुझको नहीं सारे जगत को आनंद देते हैं कहते हुए रुक्मिणी भगवान श्रीकृष्ण के गले में माला चढ़ा दी।

हे राजा परिक्षित - उस समय द्वारका नगर में प्रत्येक घर में श्रीकृष्ण के अनन्य भक्तों के लिए यह बड़ा त्यौहार बना।।55।।

चमकने वाले सुंदर मणिकुण्डलों को धारण किये हुए नर नारी संतोष से सुंदर वस्त्र हीरा मोती, सोना चांदी के उपहार समर्पित किये।।56।।

द्वारका नगर में सारे उन्नत स्थानों में ध्वज पताका फहराने लगे। घर के द्वारों को तोरण

बांधे। मंगलद्रव्य पूर्णकुंभ अगरु धूप दीप से द्वारका जगमगाने लगी।।57।।

आप्त राजा लोग आह्वानित होकर आए थे। उनके हाथियों के मद जल से मथुरा के राजमार्ग भीग गये। केले और सुपारी के गुच्छों से घर मंदिर सुंदर बने।।58।।

कुरु, सृंजय, केकय, विदर्भ, यदु, कुंतल देश के बंधु मित्र आदि सकल जन वहाँ संभ्रम से मिले। विवाह का वह मंगलमय संदर्भ सबको सानंद दिया।।59।।

प्रजाजन इधर उधर मिलकर श्रीकृष्ण का रुक्मिणी हरण का लीला का संकीर्तन किये, गा-गाकर संभ्रम विभोर हो गये। उनको सुनकर वहाँ मिले राजा रानियों ने मूक विस्मित रह गये।।60।।

हे राजा इस प्रकार रुक्मिणी अपने रमण को पा ली। श्रीकृष्ण रमा का रमण बन गया। आँखों भर इस सुंदर दृश्य को देखने वाले द्वारका नगर के नागरिक धन्य हो गये।।61।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध पूर्वार्द्ध में उनसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दसवाँ स्कन्ध के पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ ।।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

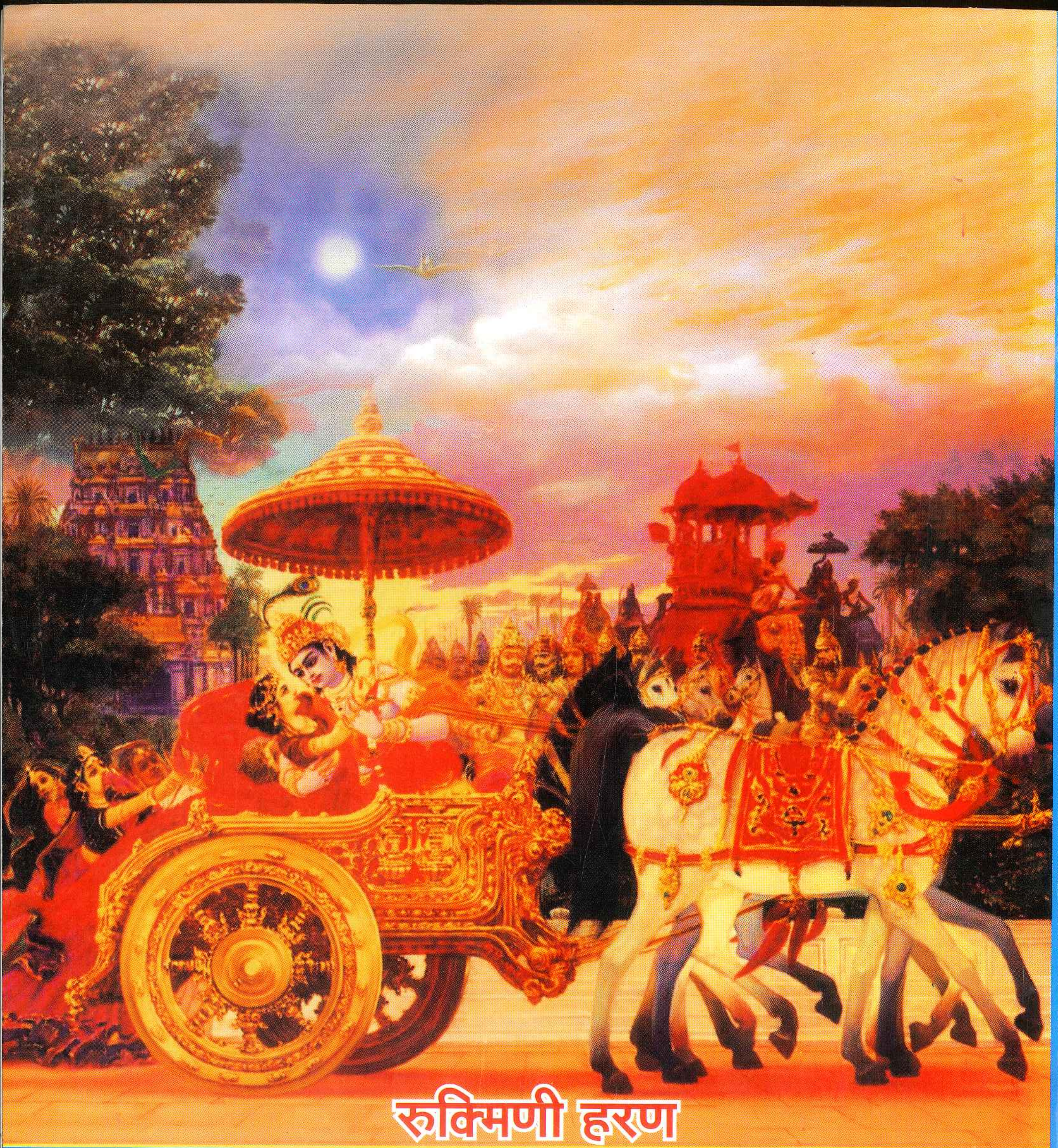

पता : मध्वमठ 63, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद 211 006
फोन नं0 : 0532-2504587

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

श्रुति गीता

दशम स्कन्धः भाषानुवादः

उत्तरार्ध अध्याय ८३ से १०५ तक

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण
वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री विजयध्वज टीकानुसारी

श्री मद्भागवत महापुराणम्

दशम् स्कंधः
(भाषानुवादः)

(उत्तरार्द्ध अध्याय 83 से 105 तक)

अनुवादक
श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

प्रकाशक
तत्व संशोधन संसत्
जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

श्रीमद्भागवत महापुराणम् दशम् स्कन्धः

लेखक-
श्री 1008 श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी

प्रकाशक
तत्व संशोधन संसत्
जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण 1000 प्रतियाँ
सहयोग राशि
पुस्तकालय संस्करण 150 रुपये
सामान्य संस्करण 100 रुपये
09-12-2013

अक्षर विन्यास
श्री सुनील कुमार (राजा) एवम्
पवन कुमार

मुद्रक -
श्री वैष्णव प्रेस
मोरी, दारागंज, इलाहाबाद

श्री राम श्री

अनुग्रह संदेश

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी उडुपि

हमारे विशेष अभिमान पात्र **श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी** द्वारा किए हुए आठ शास्त्र ग्रंथों का हिन्दी भाषानुवाद को देखकर हमें सन्तोष हुआ है। श्री स्वामी जी अपने पूर्वाश्रम में अनेक वर्षों से सामाजिक सेवा में रचनात्मक कार्यों को किये हैं। हमारे साथ अकाल, भूकम्प, बाढ़ इत्यादि कार्यों में सम्पूर्ण समर्पण भाव से काम किए हैं। अब अपने अस्सी वर्ष के समय में आठ शास्त्र ग्रन्थों का अनुवाद और प्रकाशन का स्तुत्य काम अपने हाथ में लिए हैं। मध्व तत्वज्ञान को अभ्यास करने के जिज्ञासुओं को अनुकूल होने वाली यह एक विशिष्ट सेवा किए हैं।

वे अपने सत्तर वर्ष की आयु में कन्नड़ भाषियों के अनुग्रह रूप में अनेक शास्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किए थे। अब प्रयाग में रहकर मध्व सिद्धान्त का प्रसार कार्य करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा मध्व तत्वज्ञान को हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचार करने का महान कार्य कर रहे हैं।

श्री कृष्ण, श्री वेद व्यास जी, अस्मदुपास्य श्री रामविट्ठल जी इनको विशेष अनुग्रह करते हुए इनकी सेवा विस्तार रूप से सारी जनता को मिले यही हमारा आशीर्वाद है।

इति नारायण स्मरण

श्री श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी महाराज
पेजावर मठ, उडुपि

अनुग्रह संदेश

श्री राम श्री

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महा संस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी, उडुपी

आठ सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरू मध्वाचार्य जी ने मध्व सिद्धान्त का प्रचार प्रसार बहुत पैमाने से आरम्भ किया। इस प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए उडुपी में आठ पीठ और उत्तर कर्नाटक में एक पीठ की स्थापना किए। श्री जयतीर्थ मुनि, श्री श्रीपाद राज स्वामी, श्री व्यासराजमहामुनि, श्री वादिराजयोगी, श्री रघूत्तम स्वामी जी, श्री राघवेन्द्र तीर्थ जी इत्यादि महामहिमों ने उस सिद्धान्त को और विकसित किया।

हमारे दीक्षा शिक्षा गुरु युगपुरुष श्री श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी उत्तर भारत में श्री मध्व तत्वज्ञान को प्रसार करने हेतु **बीस वर्ष** पहले श्री प्रयाग क्षेत्र में श्री मध्व पीठ की स्थापना की है। उन दिनों से प्रयाग का हमारा मठ मध्वसिद्धान्त का प्रसार करता आ रहा है।

श्री वेदव्यास जी की इस सुसंस्कृत भागवत को हमारे शिष्य श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी ने समर्थ सुन्दर और सबके मन को मिले ऐसी सुन्दर हिन्दी में अनुवाद कर साधक सज्जनों का परमोपकार किए हैं। कन्नड़, संस्कृत न समझने वाले हिन्दी भाषी साधकों को जगद्गुरु मध्वाचार्य जी के शास्त्र का परिचय कराने वाले इस कार्य को हम अपने हृदय भरकर अभिनन्दन करते हैं। अन्य सारे कार्यों को बाजू में रखते हुए **तद्धितप - तद्धितप** के जैसे दिन-रात किया हुआ यह शास्त्र सेवा अनुपम है। हमारे गुरु श्री श्री 1008 विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी से स्थापित तत्व संशोधन संसत से मुद्रण किया गया है। यह हरि गुरु का अनुग्रह प्राप्त कराने वाला है। उत्तर भारत के हिन्दी भाषी लोग इस ग्रन्थ को पढ़ें और अपने बन्धु बान्धवों से पढ़ाएँ तो यह प्रयत्न सार्थक हो जाता है। इनसे भागवत के अन्य भाग भी जल्दी से जल्दी अनुवादित होकर साधकों के हाथ में विराजमान हो, यही हमारी अपेक्षा है। श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य जी से प्रतिष्ठापित श्री कृष्ण, श्री राम जी के अनुग्रह से हम अपने शिष्य को शुभ कामना देते हैं।

श्री श्री 1008 श्री विद्याधीशतीर्थ
स्वामी जी महाराज

अनुग्रह संदेश

श्री दिग्विजय रामो विजयते

श्री मद्जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

उत्तरादि मठ

भगवान के गुणों का चिन्तन करना प्रत्येक आदमी का मुख्य कर्तव्य है। अनन्त गुणपरिपूर्ण भगवान की महिमा को जानने के लिए सबको भागवत के प्रकाश की आवश्यकता है। भागवत के पाठ प्रवचन श्रवण सारे बहुत पुण्य देने वाले हैं। ऐसे श्रेष्ठ महाभागवत पुराण को वैष्णव सिद्धान्त के अनुसार श्री श्री विद्यात्मतीर्थ जी ने हिन्दी में सब के मन मोहित करने वाले उत्कृष्ट व्याख्यान किए हैं। प्रयाग के त्रिवेणी तट पर रहते हुए अपनी स्वयं साधना करते हुए उत्तर भारत में वैष्णव सिद्धान्त का प्रचार प्रसार कार्य करते हुए अपने को समर्पित किए हैं। वे जो इस प्रयास में रत हैं उसको सहकार देते हुए श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी उन्हें बल दे रहे हैं यह संतोष का विषय है।

मध्व मत का प्रसार समग्र भारत में उज्वल रीति से होना चाहिए। उत्तर भारत के परिसर में यह प्रसार कार्य करने वाले श्री श्री विद्याधीश तीर्थ और श्री श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी का हम अभिनन्दन करते हैं।

इसी प्रकार श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी और अनेक कृति और व्याख्यान करते हुए तत्वप्रचार कार्य को इससे भी अधिक रूप से करें इस प्रकार हम अपने उपास्य मूर्ति श्री दिग्विजय राम और वेदव्यास जी से प्रार्थना करते हैं।

बैगलूरु

श्री सत्यात्म तीर्थ स्वामिनः
उत्तरादि मठ

शुभ कामना

।। श्री निम्बार्को जयति ।।

।। श्रीमद् गोपीजनवल्लभाय नमः ।।

अनन्त श्री जगद्गुरु निम्बार्काचार्य

गोस्वामी श्री विष्णुकान्त जी महाराज, पीठाधिपति

श्री निम्बार्काचार्य पीठ, 18/12, महाजनी टोला प्रयाग - 211 003 फोन : 2404298

श्री निम्बार्क प्रभास्थली व्यास ग-ी नैमिषारण्य (उ0 प्र0)

कर्नाटक के अन्तर्गत उँडुपी माध्व पीठ प्रयाग के अधिपति श्री 1008 श्री स्वामी विद्यात्म तीर्थ जी महराज के लोक भाषा में अनुवादित भागवत के ग्रन्थ और अन्य भगवद्गीतादि ग्रन्थ देखने को मिले। इक्यासी वर्ष की अवस्था में अदम्य स्फूर्ति, वैदुष्य एवं सार्थक जीवन के धनी महा पुरुष अभिनन्दनीय हैं। कई अवसर में हम लोग एक रहे हैं।

इस अवस्था में भी कई ग्रन्थों के लेखन, सामाजिक एवं पारमार्थिक कार्यों को एक युवक की भाँति करते हुए संलग्न हैं।

आप का जीवन अमृततत्व की ओर अग्रसित है आप सकल कुशल पात्र हैं।

आचार्य विष्णु कान्त गोस्वामी
इलाहाबाद

प्रस्तावना

हमारे गुरु जी पूर्व प्रयाग पीठाधिपति श्री 1008 श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी ने लगभग दस वर्ष पूर्व भागवत के पहले तीन स्कन्धों का अनुवाद कर प्रकाशित किए थे। उनका महानिर्वाण आकस्मिक रीति से होने के कारण वह कार्य वहीं अवरुद्ध हो गया था।

हमारे दीक्षा गुरु उडुपि श्री पलिमारु मठ के पीठाधिपति जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी महाराज ने उस अवरुद्ध कार्य का पुनरारम्भ करने का आदेश दिया। मैं अल्प शक्ति और अल्प ज्ञान वाला हूँ। किन्तु अपने गुरुवर्य की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मैं यह कार्य कर रहा हूँ।

विद्यावतां भागवते परीक्षा यह पूर्णतः सत्य है। श्री गुरु जी का अनुग्रह ही मुझसे यह कार्य करवा रहा है। दक्षिण भारत में जन्म लेने के कारण मुझे अच्छी हिन्दी नही आती। पण्डित न होने के कारण शास्त्र का गहन और विस्तृत ज्ञान प्राप्त नही है। केवल गुरु का अनुग्रह ही मुझे प्रेरणा दे रहा है। पाठकों द्वारा निर्दिष्ट त्रुटियों को अगले अंक में सुधारने का प्रयास करेंगे।

दशम् स्कन्ध भागवत का किरीट प्राय है। वेदव्यास जी इसको भक्ति रस से पूर्ण रूप से भिगो दिए हैं। कई कथाकार इसको ऊपर ऊपर से पढ़ते हुए अपने गलत अर्थ प्रसार किए हैं। इस स्कन्ध में भक्ति को छोड़ कर काम इत्यादि अन्य भावों का विचार करना गलत है। मूल भागवत में दशम स्कन्ध में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध इस प्रकार दो भाग कर चुके हैं। दोनों भाग सौ - सौ अध्यायों से भर कर फल पुष्प से भरा हुआ वृक्ष के समान अपने बोझ से बहुत झुके हैं। पाठक की सुविधा के लिए हम पूर्वार्द्ध में दो भाग किये हैं। दोनों भाग प्रकाशित हो चुके हैं। अब हम उत्तरार्द्ध में भी दो भाग किसे हैं। प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है। अन्तिम भाग अब प्रकाशित हो रहा है।

विस्तृत रूप से जानकारी देने के उ-ेश्य से हमने क्रम में भी थोड़ा सा बदलाव किया है। पहले के समान श्लोकार्थ मोटा अक्षरों में दिया गया है, अर्थ थोड़ा सा छोटे अक्षरों में दिया गया है। इस भाग में विशेषार्थ के लिए और थोड़ा अवकाश किया है। प्रत्येक श्लोक का तो नही पर जहाँ आवश्यक है वहाँ विशेषार्थ, उससे भी छोटे अक्षरों में देने का प्रयास किया है। आशा है कि यह पाठकों को सुविधाजनक होगा।

इस चतुर्थ भाग में श्री कृष्ण के अनेक गाथायें गायी गयी हैं। उनमें श्रृति गीता सबसे श्रेष्ठ है। यह एक रूपक के स्वरूप में है। ब्रह्मा जी के प्रथम परार्द्ध के अन्तिम साढ़े बारह वर्ष में यह घटना घटी। श्री विष्णु माया इच्छा रूपी दुर्गा देवी श्री विष्णु प्रेरणा से जागृत होकर हाथ जोड़कर भगवान की स्तुति करते हुए उनको जगाती हैं। राजा महाराजाओं के वन्दिमागध सुप्रभात समय में राजा की स्तुति करते हुए उनको जागृत करते थे। उसी प्रकार दुर्गा देवी सृष्टि के प्रारंभ में भगवान की स्तुति कर रही हैं।

वेद उपनिषदों में मिलने वाले इन स्तुतिरूप मंत्रो को वेदव्यास जी ने चुनकर एकत्रित करते हुए एक माला के रूप में जोड़ दिये हैं। ये रुग्मंत्र नित्य पठन के लिये बहुत योग्य हैं, कल्याणकारी हैं, और सबको सुख देने वाली हैं। किन्तु वेद मंत्र होने के कारण उच्चारण क्लिष्ट है, अर्थ होना और भी कठिन है। इसके लिये पूज्य वेदव्यास जी इनको सरल संस्कृत में श्लोकों के रूप में रचाकर भगवान में जोड़ दिये हैं। किन्तु आज हमें वे श्लोक कठिन लग रहें है।

इसके लिये हम मूल संस्कृत शब्दों के साथ उनके विशेषार्थ को देने का प्रयास किये हैं। शब्द समूह के विशेषार्थ को दिखाने के लिये व्याकरण के आधारों को देने का प्रयत्न किया है। सन्धि विग्रह और समासों का विवरण हमारे अनुवाद को पुष्टि देने के लिये दर्शाया गया है। पाठकगण सौजन्यता से इसको पढ़कर देववाणी वेद विद्या का रसास्वादन करें। वहाँ मूल वेद मंत्र का उल्लेख भी किया गया है।

संस्कृत और व्याकरण कि इस झंझट में पड़ना न चाहने वालों को इन सत्ताईस श्लोक वाली श्रृतिगीता का सारांश लिखा गया है। इस सारांश को पढ़कर मूल श्रृतिगीता का लुफ्त उठा सकते हैं।

तीन सौ साठ वर्ष के पहले मंत्रालय के श्री राघवेन्द्र स्वामी जी ने अनेक शास्त्र ग्रथों की रचना की वे थोड़े श्लोको में दशमस्कन्ध की श्री कृष्ण की कथा को बता दिए हैं। प्रतिदिन इन श्लोकों के पाठ करने से नित्य दशमस्कन्ध पाठ का पुण्य मिलता है। हम इन श्लोकों को अर्थ के साथ यहाँ दिए हैं।

बड़े लोगों का कहना है कि नित्य पाठ करते समय नाम, रूप, गुण इन तीनों की अवश्यकता है। हमारे पाठकों को यह तीनों लाभ प्राप्त हो इस दृष्टि से इन श्लोकों के पाठ करते समय भगवान के **नाम** फोटो में भगवान के **रूप,** श्लोक में और चित्र की सहायता से कथा को याद करते हुए भगवान, का **गुण** इन तीनों का चिन्तन एक साथ मिले। ग्रन्थ के प्रारम्भ में फोटों को अर्थ सहित दिया है। आशा रखतें हैं कि पाठकगण नित्य पाठ करके भगवान का प्रीति पात्र बने।

हमारे परम गुरु श्री विद्यामान्य जी से संस्थापित और हमारे गुरु जी श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महाराज से पोषित श्री तत्व संशोधन संसत् ने इस ग्रन्थ प्रकाशन की जिम्मेदारी ले लिए हैं। तत्व संशोधन संसत् दक्षिण भारत में एक प्रसिद्ध संशोधन और प्रकाशन की बड़ी संस्था है। बहुत श्रेष्ठ विद्वान और पंडित संशोधकों के ग्रन्थ यहाँ से प्रकाशित हुए हैं। मेरे जैसे अल्प बुद्धि वाले की इस छोटी सी कृति को वे प्रकाशित कर रहे हैं, यह मेरा बड़ा भाग्य है। इसके लिए मैं अपने श्री गुरु जी को शत शत नमन करता हूँ।

प्रतिवर्ष हम गीता जयन्ति सप्ताह को अलग-अलग स्थानों में मनाते रहते हैं। इस वर्ष हमारा गीता जयन्ती का 30 वाँ सप्ताह हम कर्नाटक के देवनगरी नामक स्थान में हो रहा हैं। वहाँ दिनांक-9.12.2013 सोमवार श्री भीम जयन्ती के शुभ पर्व पर परम पूज्य श्री 1008 श्री पेजावर मठ के विश्वेश तीर्थ स्वामी जी महाराज के शुभ हस्त से इस ग्रंथ का विमोचन हो रहा है यह हमारा बड़ा भाग्य है। हम पूज्य श्री पेजावर स्वामी जी को अनंत नमन करते हैं।

इस ग्रन्थ के लिए आवश्यक फोटो के लिए हमे बहुत प्रयास करना पड़ा। वैसे तो श्री कृष्ण के लाखों फोटों प्राप्त हैं, तो भी कथा में आए हुए संदर्भ को संगति देने वाला फोटो मिलने में कष्ट हुआ। इस समय हमें आवश्यक फोटो देकर श्री रामचन्द्र सिंह सहायता किए हैं। हम यहाँ उनकी याद करते हैं।

इस ग्रन्थ के अक्षर विन्यास किए हुए श्री सुनील कुमार जी (राजा) और पवन कुमार जी अक्षर संशोधन किए हुए श्री गिरधारी लाल मिश्र और गोविन्द शुक्ला जी, मुद्रण किए श्री वैष्णव प्रेस के श्री पुरुषोत्तम लाल जी और सारे कर्मचारियों के सहयोग का स्मरण हम करते हैं। सुधी सद्भक्त इस ग्रन्थ का सदुपयोग करें यही आकांक्षा है।

देवनगरी (डावनगेरे) कर्नाटक — **इति शम्**

09-12-2013 — **श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज**

दसवाँ स्कन्ध की विषय सूची

क्र0	विषय		पृष्ठ संख्या
1.	अध्याय 83	जरासंध वध के बाद बन्धित राजाओं का विमोचन	01-04
2.	अध्याय 84	राजसूय याग की सिद्धता। श्री कृष्ण की अग्रपूजा, शिशुपाल विरोध। श्रीकृष्ण से शिशुपाल वधा	05-10
3.	अध्याय 85	यज्ञ के बाद अवभृत स्नान, देवताओं से पुष्प वृष्टि	11-13
4.	अध्याय 86	मय निर्मित सभा में दुर्योधन का अवमान, क्रोधित दुर्योधन हस्तिनापुर गया	14-16
5.	अध्याय 87	साल्व, बंधु के साथ द्वारका पर आक्रमण किया, प्रद्युम्न उससे मार खाया	17-18
6.	अध्याय 88	श्री कृष्ण ने साल्व का वध किया	19-23
7.	अध्याय 89	पाण्डव वनगमन, श्रीकृष्ण से सान्त्वना। नृगराज उद्धार	24-29
8	अध्याय 90	बलराम नन्द गोकुल गमन, गोपियों के साथ विहार, यमुना गर्व भंग	30-32
9.	अध्याय 91	बलराम से विविध नाम के वानर वधा	33-35
10.	अध्याय 92	साम्ब, दुर्योधन पुत्री लक्षणा का अपहरण करता है। बलराम से कौरवों का अहंकार नाश	36-39
11.	अध्याय 93	श्रीकृष्ण से श्रुतदेव, राजा बहुलाश्व का संवाद	40-44
12.	अध्याय 94	वृकासुर कथा, भस्मासुर शिव को मारने के लिए पीछा किया। विष्णु से वृकासुर वधा	45-49
13.	अध्याय 95	त्रिमूर्ति दर्शन के लिए भृगुऋषि गमन, ऋषियों ने हरिसर्वोत्तमत्व को सिद्ध किये	50-52
14.	अध्याय 96	श्रुतिगीता अर्थ और सारांश	53-91
15.	अध्याय 97	भू-भार हरण कुरुक्षेत्र युद्ध, गीतोपदेश। दो बार विश्वरूप दर्शन	92-95
16.	अध्याय 98	बलराम जी की तीर्थ यात्रा, रोमहर्षण वध,	96-98
17.	अध्याय 99	बलराम से बलवल नाम के दैत्य का वध	99-101
18.	अध्याय 100	श्री सुदामा की कथा	102-106
19.	अध्याय 101	श्री हरि से सुदामा को सकल सम्पत्त प्रदान	107-111
20.	अध्याय 102	अर्जुन का अहंकार नाश। ब्राह्मण को मृत पुत्र प्राप्ति।	112-119
21.	अध्याय 103	दंतवक्र विदुरथ का वध	120-122
22.	अध्याय 104	द्वारका में श्रीकृष्ण का विहार। सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों से जल विहार	123-124
23.	अध्याय 105	द्वारका में श्री कृष्ण का राज्यभार	125-128

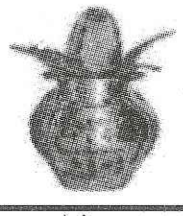

श्री राम श्री

श्रीमध्वतत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

हमारे प्रकाशित ग्रन्थ

क्र0.	ग्रन्थनाम	मौल्य
1.	श्रीमद्भगवद्गीता प्रतिश्लोक का हिन्दी भावानुवाद	70.00
2.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्कंधः भाषानुवादः	100.00
3.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् चतुर्थ स्कंधः भाषानुवादः	60.00
4.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् पंचम एवं षष्ठ स्कंधौ भाषानुवादः	60.00
5.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् सप्तम् स्कंधः भाषानुवादः	60.00
6.	श्रीमद्भागवत अष्टम् स्कन्धः भाषानुवादः	60.00
7.	श्रीमद्भागवत नवम्स्कंधः भाषानुवादः	60.00
8.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः पूर्वार्द्ध अध्याय छब्बीस तक	100.00
9.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः पूर्वार्द्ध सत्ताईस से उनसठ तक	100.00
10.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः उत्तरार्द्ध साठ से बायासी तक	100.00
11.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः अन्तिम भाग	100.00
12.	श्री रामायणपात्र चित्रणम् एवम् नीतिकथा	50.00

पुस्तक प्राप्ति स्थान

1. श्री मध्वमठ

   63 मीरागली, दारागंज इलाहाबाद

2. तत्व संशोधन संसत् श्री हृषीकेशतीर्थ संस्थानम्, श्री पलिमारुमठ, रथ बीदि उडुपि कर्नाटक

3. श्री स्वामी सीता वल्लभ शरण

   श्री मध्वमठ बड़ा अखाड़ा मैहर (म. प्र.)

4. श्री स्वामी ललित मोहन ओझा
   प्रेमपीठ मध्वमठ तिजारा, जिला अलवर, राजस्थान

5. डॉ रवि,

   1st फ्लोवर, नीयर लक्ष्मी भगवन, सेन्ट्रल

   बाजार रोड़, नागपूर,

6. श्री G. R. Kulakarni
   2041 B wing Mahesh Tower
   Charkop, Sector 2, Kambivali (W)
   Mumbai 67.
   Ph - 9867251783

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी

यह एक अनोखा स्तोत्र है जिसमें **श्री राघवेन्द्र स्वामी जी** ने केवल थोड़े ही श्लोकों में दशम स्कन्ध की श्री कृष्ण कथा को जोड़ दिए हैं। हमारे गुरु जी उडुपि पीठाधीश्वर श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य पीठाधिपति ***श्री 1008श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी*** इन श्लोको को सरल भाषा में अनुवाद किए है। हम इन दोनों को मिलाते हुए साथ साथ बत्तीस रंगीन चित्रों में इन अध्यायों की कथा को फोटों के द्वारा आपके सामने प्रस्तुत करते हैं। शास्त्र जानने वाले कहते है कि केवल नाम स्मरण करने के बजाय भगवान का नाम रूप गुण चिन्तन करना श्रेष्ठ हैं। इससे प्रथमतः हमारे मन को आनन्द होता है साथ साथ भगवत्प्रीति भी ज्यादा होती है। आगे के पृष्ठों में हम नाम रूप गुण के चिन्तन के लिए कथानुसारी फोटो, मूल श्लोक और उसका अर्थ दिए हैं। इससे नाम रूप गुण चिन्तन एक ही समय में एक साथ होगा। आग्रह है, पाठक इसका प्रयोग करते हुए नित्य प्रति नाम रूप गुण चिन्तन से पाठ करें।

आपका
प्रकाशक

श्री बालाजी

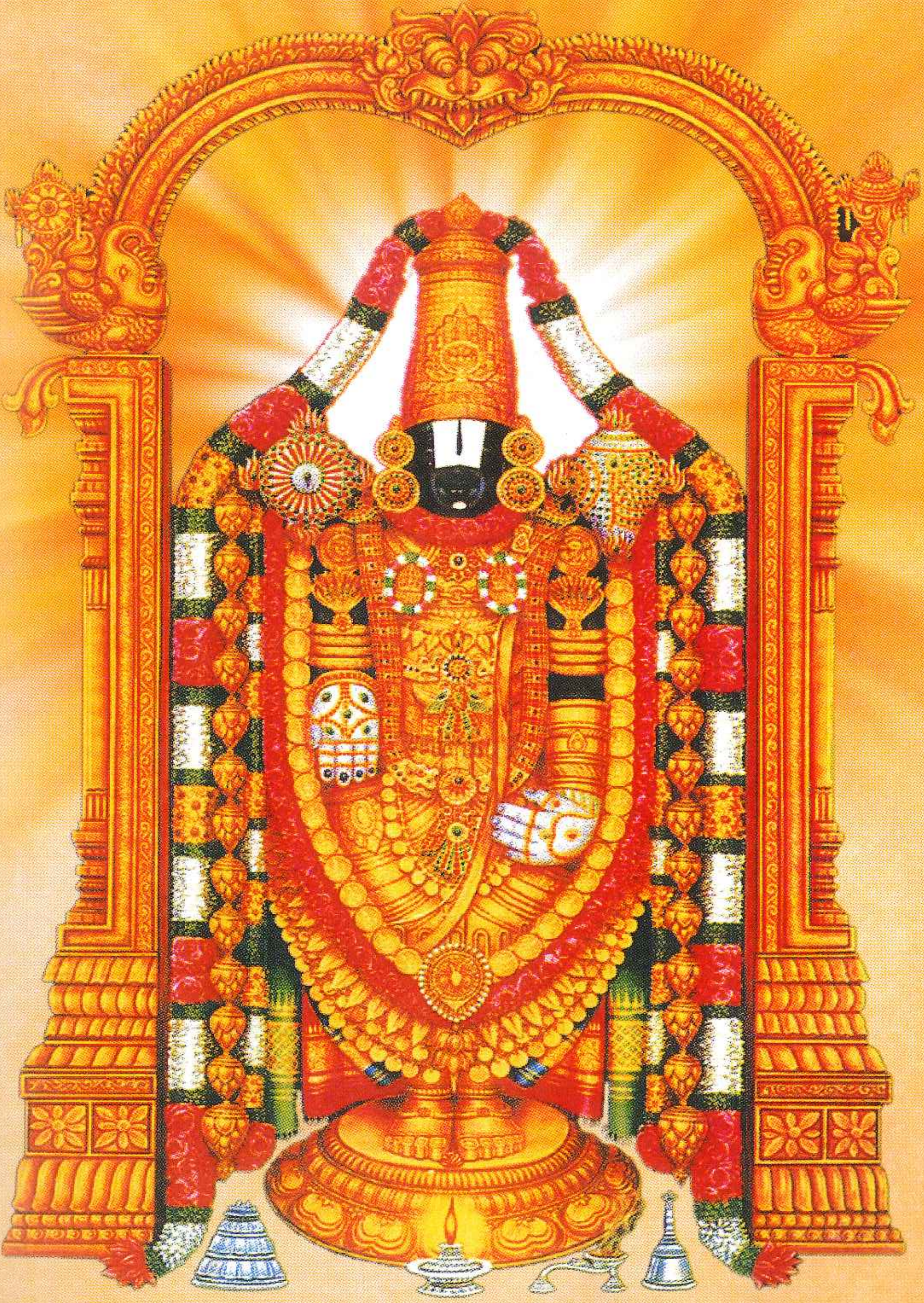

हमारे कुल दैव विश्व के एकमेव बड़ा दैव
श्री वेंकटेश्वर बालाजी के श्री चरणों में
यह ग्रन्थ समर्पित है

संकट मोचन श्री पंचमुखी हनुमान

कपिमुखमपि पूर्वं दक्षिणे नारसिंहम् ।
गरुड़मुखमपि पश्चात् उत्तरे सूकरास्य ।।
ह्यवदनमतोर्ध्वं चिन्तयेद् वायुसूनुम् ।
सकलदुरितहरं रामदूतं नमामि।।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय तिरासी से अट्ठासी तक की कथा

पुत्रं राज्येऽस्य कृत्वा हृतशिरसमथो चेदिराजं विधाय। प्रोद्यन्तं राजसूयं यमसुतविहितं संतस्थतं यो विधाय।

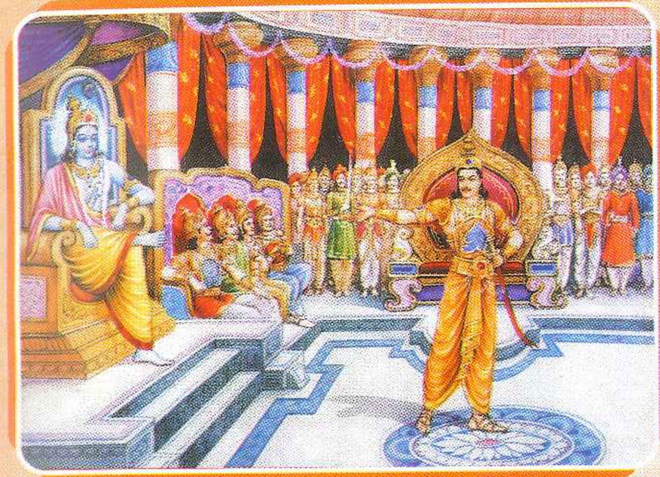

शक्रप्रस्थात्प्रयातो निजनगरमसौ साल्वभग्नं समीक्ष्य। क्रुद्धो तं शिववरबलिनं यान्पुरं पातु नित्यं ।।24।।

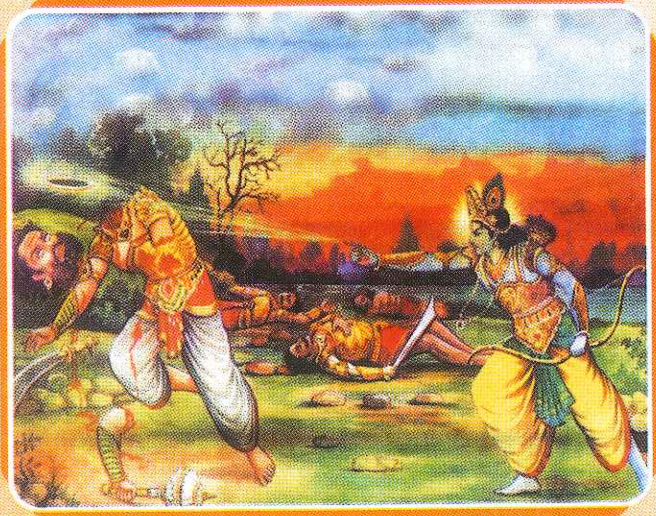

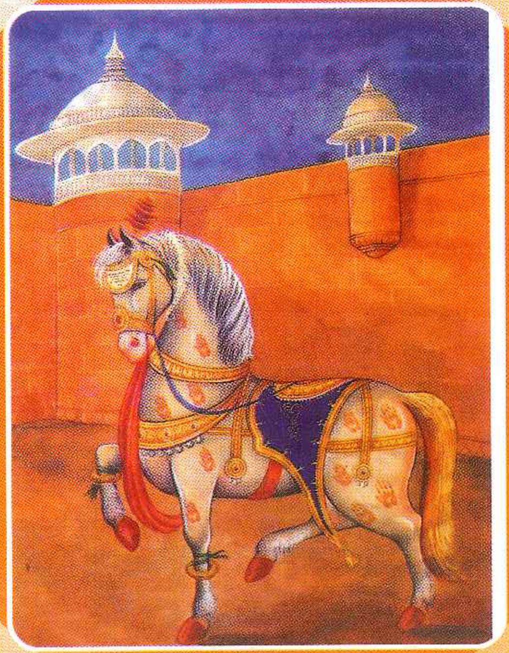

श्री कृष्ण जरासंध के पुत्र सहदेव को मगध सिंहासन पर बिठाये। शिशुपाल के शिरच्छेद के बाद धर्मराजा के यज्ञ को पूर्ण करते हुये इन्द्रप्रस्थ से द्वारका चले। साल्व द्वारका को नष्ट किया था। उस बलिष्ठ को पकड़कर समुद्र के बीच उसको मारकर द्वारका वापस आये। ऐसे श्रीहरि हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय नवासी से छियानवे तक की कथा

विप्रादाकर्ण्य धर्मं वनगतमनुजैः सान्त्वयित्वैत्य सर्वा- नभ्येत्य द्वारकां यो नृगमथ कुजनिं दिव्यरूपं चकार।

गत्वा वैदेहगेहं कतिपयदिवसांस्तत्र नीत्वाऽतिभक्तौ, सन्तोष्य द्वारकां यान् बहुबलसमितोऽयन्नुपाप्लाव्यमव्यात् ।।25।।

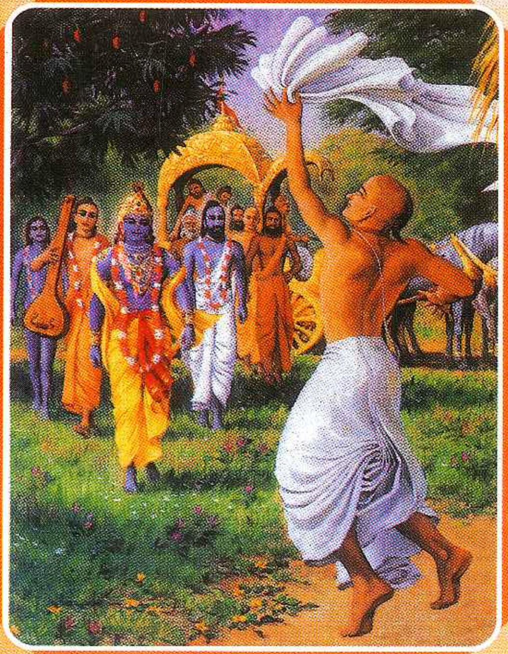

धर्मराज द्यूत में हारकर भाइयों के साथ वनवास गये। इस समाचार को ब्राह्मण मुख से सुनकर श्रीकृष्ण जंगल में जाकर पाण्डवों को समाधान करते हुये द्वारका आये। नृगराज की कुरूपता को हटाकर उसे दिव्यरूपी बनाये। विदेह राजा के राजगृह को जाकर वहाँ कई दिन रहकर बाद में बहुलाश्व और श्रुतदेव को अनुग्रह करते हुये द्वारका आये। वहाँ से बड़ा सैन्य लेकर उपप्लाव्य के नगर को गये। ऐसे श्री कृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय सत्तानवे से निन्यानवे तक की कथा

दौत्यं कुर्वन्ननन्ता निजरुचिरतनूर्दर्शयन् दिव्यदृष्टे- र्गीताततत्वोपदेशाद्रणमुखविजयस्याचरन् सारथित्वम् ।

नीत्वा कैलासमेनं पशुपतिमुखतो दापयित्वाऽस्त्रमस्मै, भीमेनाऽपात्य दुष्टं क्षितिपतिमकरोद्धर्मराजं तमीडे ।।26।।

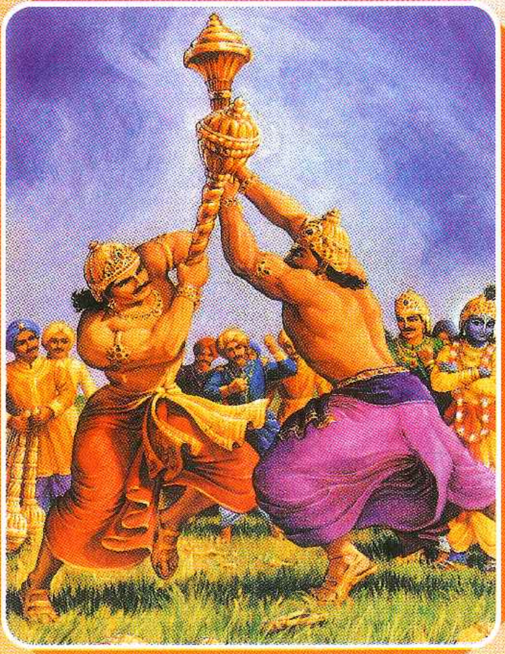

श्रीकृष्ण संधान के लिए कौरवों के पास जाकर धृतराष्ट्र को दिव्य दृष्टि देकर अपना विश्वरूप दिखाये। गीता के तत्वोपदेश को देकर अर्जुन को युद्ध में जोड़ते हुये स्वयं सारथ्य किये। रात में स्वप्न में अर्जुन को कैलास लेकर वहाँ शिव से पाशुपतास्त्र मंत्रोपदेश दिलाये। भीम से दुष्ट दुर्योधन को नाश करते हुये धर्मराजा का सिंहासनारोहण करवाये। ऐसे श्री कृष्ण की स्तुति करता हूँ।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय एक सौ से एक सौ तीन तक की कथा

प्राप्तः स्थानं यदूनां प्रियसखमकृतावाप्तकामं कुचेलं, कुर्वन् कर्माश्वमेधं निजभवनमयो दर्शयित्वाऽर्जुनाय ।

पुत्रान् विप्राय दत्वा सहसहजमसौ दन्तवक्रं निपात्य, प्राप्याथ द्वारकां स्वां समवतु विहरन्नुद्धवायोक्ततत्वः ।।27।।

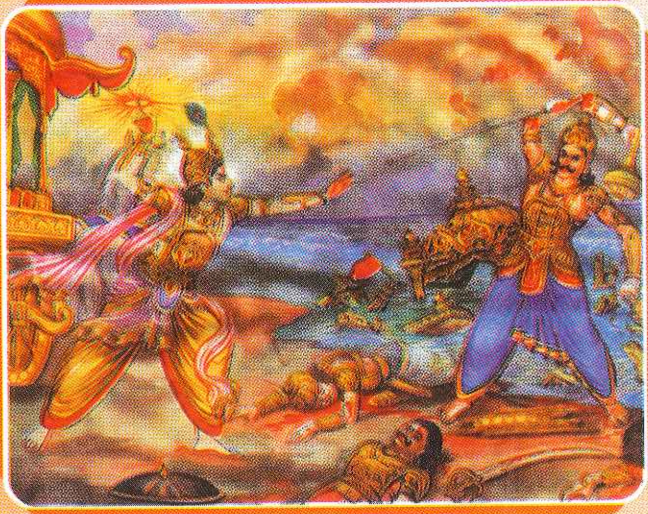

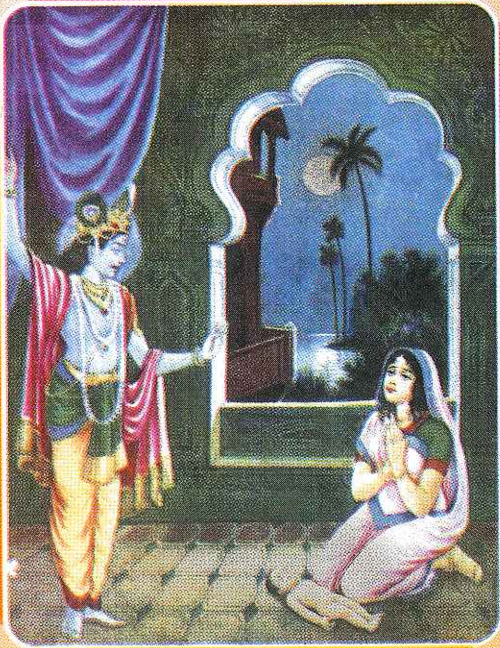

श्री कृष्ण द्वारका को वापस आये। घर को आए हुए कुचेल को सकल अभीष्ट दान दिये। अश्वमेध याग करते हुये बीच में अर्जुन को अनंतासन लोक का दर्शन कराते हुये वहाँ से ब्राह्मण पुत्रों को लाकर ब्राह्मण को दिये। दंतवक्र और विदुरथ को मारकर द्वारका आये और विहार करते हुये उद्धव को तत्वोपदेश दिये। ऐसे भगवान श्रीकृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्र मंजरी
अध्याय एक सौ चार और पाँच की कथा

रक्षन् लोकान्समस्तान्निजजननयनानन्दकारी निरस्ता- वद्यस्सौख्यैकमूर्तिस्सुरतरुकुसुमैः कीर्यमाणोऽमरेन्द्रैः ।

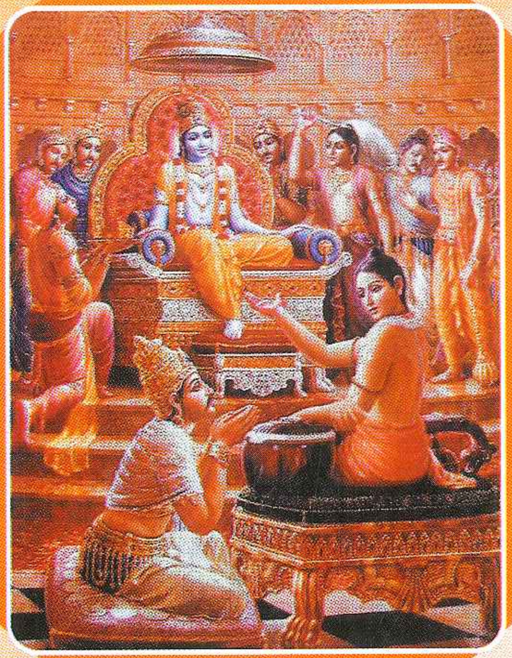

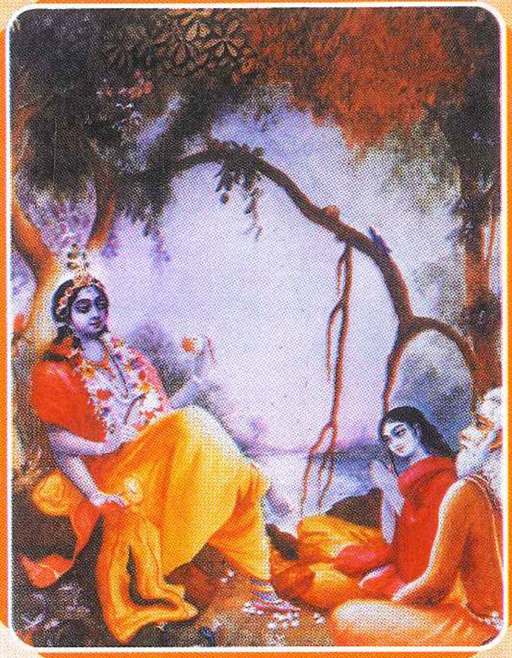

सिद्धैर्गन्धर्वपूर्वैर्जयजयवचनैस्तूयमानोऽत्र कृष्णः, स्त्रीभिः पुत्रैश्च पौत्रेस्स जयति भगवान् सर्वसंपत्समृद्धः ।।28।।

इति श्रीकृष्ण चारित्रमंजरी लेशतः कृता। राघवेन्द्रेणयतिना भूयातकृष्णप्रसाददा

श्री कृष्ण समस्त लोकों की रक्षा करते हुये भक्तों को नयनानंद करते हुये निर्दोषआनन्दमयशरीर धारण करते हुये वैभव से द्वारका में रहे। उत्तम देवतागण पुष्प वृष्टि किये। सिद्ध गन्धर्व जय-जयकार किये। इस प्रकार पत्नी, पुत्र और पौत्रों के साथ सकल सम्पत्त समृद्धि के साथ सर्वोत्तम होकर शोभायमान श्री कृष्ण हमारे ऊपर अनुग्रह करें।

इस प्रकार श्री राघवेन्द्रयति से संक्षिप्त रूप में श्रीकृष्ण चारित्रमंजरी लिखी गयी है। वह श्रीकृष्ण सब के ऊपर अनुग्रह की वर्षा करें।

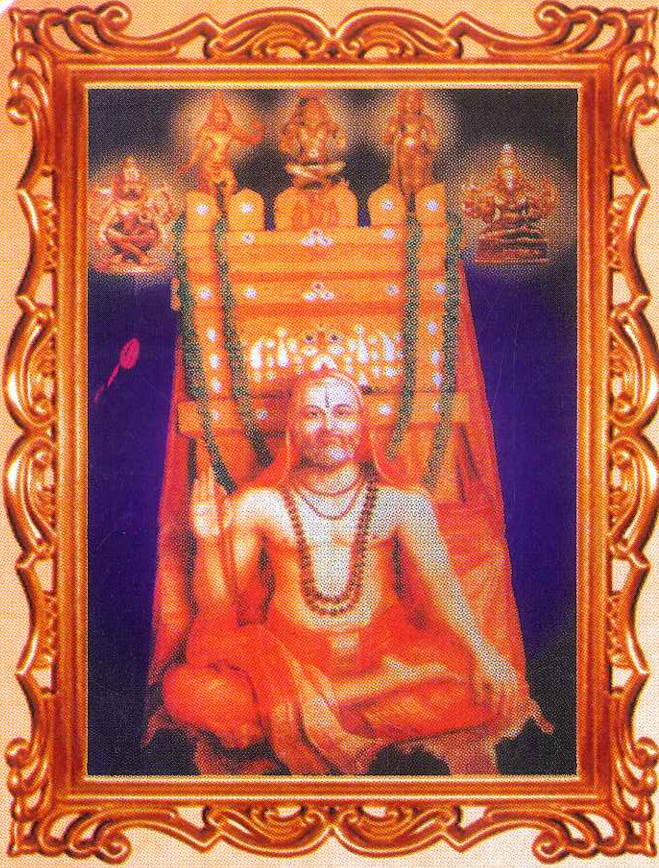

अपेक्षितप्रद मन्त्रालय के
श्री राघवेन्द्र स्वामी जी
श्रीकृष्ण मंजरी कारम्
दशमस्कन्ध बोधकम्
राघवेन्द्र गुरुंवंदे
भाव बोधार्थ सिद्धये

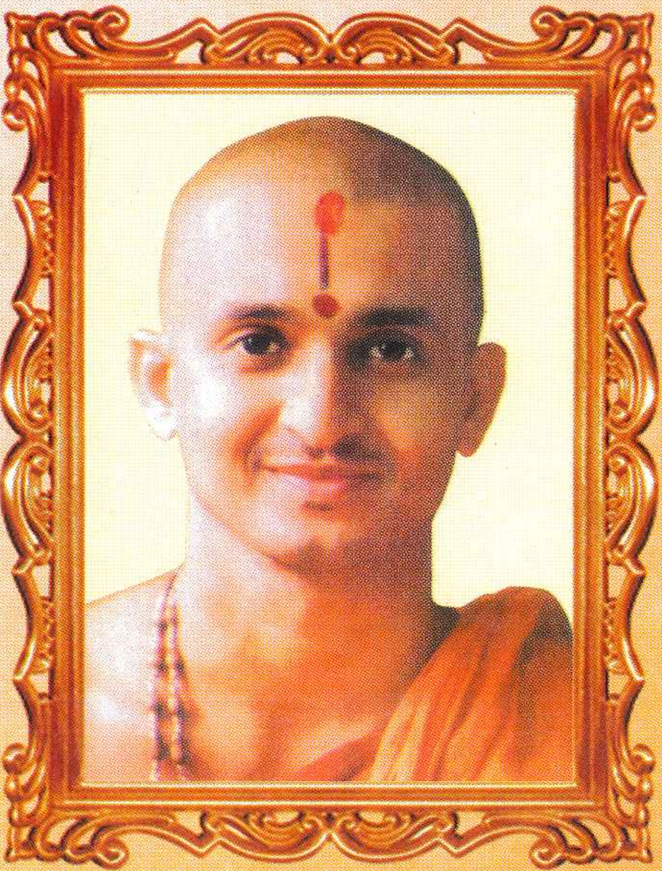

अजात रिपु सद्विजेष्टदायक
व्रजेशपद नीरजाराधकम्
भजेविद्यधीशम् रजतपीठपुराधिवासम्
भजेविद्याधीशम् भजेविद्याधीशम्
श्री 1008 विद्याधीश स्वामी जी महाराज

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तिरासीवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - बाइस हजार आठ सौ राजा युद्ध में जरासंध से हार कर पहाड़ों की गुफाओं में बंधित हो गये थे। उनका शरीर मलिन हो गया था। उनके पहने हुये कपड़े मलिन और फटे हुये थे। जरासंध का वध होने के बाद वे सारे मुक्त हो गये ।।1।।

महाभारत के सभा पर्व के अनुसार (15.19) सौ कुल के राजाओं की बलि देने का संकल्प जरासंध ने किया था। वहाँ छियासी कुलों के राजाओं को एकत्रित किए हुए था, और चौदह कुल के राजा बाकी थे। भागवत के अनुसार बाईस हजार आठ सौ राजा वहाँ बंधित थे। लक्षालंकार के अनुसार छियासी कुलों के कुल बाईस हजार आठ सौ राजा थे। इस प्रकार दोनों में विरोध नहीं आता।

वे राजा भूख से त्रस्त थे। प्यास से उनका मुँह सूख गया था। बंधन में रहने के कारण वे बहुत जीर्ण हो गये थे। उन्होंने पीताम्बर धारी घनश्याम श्री कृष्ण को देखा ।।2।।

श्री हरि के भक्त जीवन में आने वाले सारे कष्टों को तप मानते हुये उनको श्री हरि को ही समर्पित करते हैं। यहाँ राजाओं ने बंधन से हुए कष्ट को तप मानते हुये उसको श्री कृष्ण को अर्पण किया। उस तप के फलस्वरुप श्री कृष्ण का दर्शन उनको मिला था। छाती में श्रीवत्स चिह्न, चार बाहू, कमल के समान सुन्दर आँखें, फूल के समान खिला हुआ मुख और प्रकाशमान मकर कुण्डल तथा शंख चक्र कमल गदा को हाथ में पकड़े हैं। किरीट हार, कटिसूत्र और उँगलियों से शोभायमान भगवान श्री हरि ने गले में सुन्दर कौस्तुभमणि को धारण किया था। वनमाला से उनका रुप और सुन्दर लग रहा था। ऐसे श्री कृष्ण के सौन्दर्य को ये राजा अपनी आँखों से पीना, जीभ से रसास्वादन,नाक से घ्राणन और हाथों से आलिंगन करना चाहते थें। इस प्रकार भगवान

के दर्शन मात्र से सारे पापों का परिहार किये हुये राजाओं ने सिर से लेकर अष्टांगपाद उनकी वन्दना की ।।3-4-5-6।।

श्री कृष्ण के दर्शन से हुए आनन्द से बंधन का उनका सारा दुःख चला गया। हाथ जोड़कर उन्ही की प्रेरणा से आयी हुयी बातों से उनकी स्तुति करने लगे ।।7।।

राजाओ ने स्तुति करते हैं - हे देव-देवेश, शरणागत दुःख परिहारक स्वामी, आप नाश रहित है। हम आप को नमस्कार करते हैं। इस घोर संसार में दुःखित होकर हम आप की शरण में आये है। आप हमारी रक्षा करें ।।8।।

हे नाथ मधुसूदन स्वामी, हम राजाओं के हाथ से राज्य चले गये तो वह केवल आप की कृपा से ही हमें फिर वापस मिल सकता है। इसी कारण हमारे राज्य का अपहरण किए हुए जरासंध के ऊपर अब हमें क्रोध नही है ।।9।।

राज्य सम्पदा से मदोन्मत्त होकर जरासंध के समान राजागण श्रेयस को नही पाये। वे आपकी माया की बंधक शक्ति से मोहित होकर इस जगत की नश्वर सम्पदाओं को ही शाश्वत मानते है ।।10।।

अज्ञ लोग मरु मरीचिका को जलाशय मानकर जैसे भ्रमित होते हैं वैसे ही मनोनिग्रह न रहने वाले लोग माया से इस अनित्य लौकिक सम्पदा को नित्य मानते हैं ।।11।।

पहले हम भी ऐसी ही सम्पदा के अहंकार से बुद्धि को खोकर अन्यों की सम्पदाओं को अपहरण करने की इच्छा से परस्पर स्पर्धा करते थे। हे प्रभु ! इस जगत की सृष्ट होने के पहले से रहते हुये और इस सृष्टि का लय भी करने वाले आप को हम न समझते हुये दुष्ट दर्प से अपनी प्रजा की हम ने ही निर्दयता से हिंसा की ।।12।।

ऐसे राजा लोग हम ! अब राज्य भ्रष्ट हैं। आपकी अनुकम्पा से और काल के प्रभाव से हमारे दर्प अब नष्ट हो चुके हैं। हम आपके चरण-कमल का स्मरण कर रहे हैं ।।13।।

अब आपके चरण कमल के स्मरण के प्रभाव से सदा नीचे गिराने वाले रजोगुण से भारित इस शरीर से मृग मरीचिका के समान रहने वाले राज्य सुख का सेवन करने में हमारा मन नही लगता है। मरने के बाद भी हम अब सुनने के लिए योग्य रोचक, कर्मजन्य स्वर्ग फल को भी सेवन करना नही चाहते हैं ।।14।।

संसार में रहते हुये भी हमें सदाकाल आपके चरणारविन्द का स्मरण होता रहे, इसके लिए हमें योग्य उपाय का उपदेश कीजिए ।।15।।

हे कृष्ण, वासुदेव, हरि, नारायण, परमात्मा, शरणागतों के दुःख निवारक हे गोविन्द, आपको हम बार-बार नमन करते हैं ।16।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजन् ! बंधन से छुटकारा पाये हुये उन राजाओं को भगवान श्री कृष्ण ने अपनी मधुर बातों से सान्त्वना दी ।।17।।

श्री भगवान कहते हैं - हे राजापुरुषों ! आज से आप सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी मुझमें निश्चल भक्ति उत्पन्न हुई है। अब बहुत काल से अपेक्षित रहने वाली मुक्ति भी निश्चित रुप से मिलने वाली है ।।18।।

आप लोग सदा काल के लिए मेरा स्मरण करना चाहते हैं। यह तो अच्छा ही है। इन भौतिक सम्पदाओं के बारे में आप लोगों ने जो कहा वह सही है। ऐश्वर्य से मानव को अहंकार और मद उत्पन्न होता है। यह तो जगत प्रसिद्ध है ।।19।।

कार्तवीर्याजुन परशुराम से, नहुष अगस्त्य के जटाजूट में रहने वाले भृगु मुनि से, वेन ब्राह्मण से, रावण राम से और नरकासुर मुझसे स्थान भ्रष्ट होकर मृत्यु पाये। ऐसे मद में मत्त अनेक लोग अन्य देवताओं और मानवों से स्थान भ्रष्ट होकर 'मृत्यु को प्राप्त हुए' ,नष्ट हुए हैं ।।20।।

देह इत्यादि एवं सकल ऐश्वर्य उत्पन्न होतें हैं और नष्ट होते है। इसको समझते हुये उन सबको भूलकर मेरा ही ध्यान करते रहो। यज्ञों से मेरी आराधना करते हुये प्रयत्न पूर्वक धर्मानुसार, धर्माचरण से प्रजा की रक्षा करो ।।21।।

सत् - संतानों की अभिवृद्धि करो, सुख-दुःख, शुभ-अशुभ जो कुछ भी आता है उसको समान रीति से अनुभव करते हुये मुझमें मन रखते हुये जीवन चलाओ ।।22।।

देह में, देह सम्बन्धियों में ज्यादा आसक्ति न रखते हुये मेरे स्मरण में ही सुख पाते हुये, व्रतानुष्ठान करते हुये तथा मुझमें ठीक तरह से मन को स्थिर करते हुये अंत में पूर्ण रुप मुझको पाईये ।।23।।

इस प्रकार श्री हरि राजाओं को आदेश देकर उनका अभ्यंजन करने के लिए आवश्यक पुरुष और स्त्रियों को नियुक्त किये ।।24।।

हे राजा परीक्षित ! इसके पश्चात वे समस्त राजपुरुष स्नानादि से अलंकृत होकर आ

गये। जरासंध के पुत्र सहदेव ने उनके भोजनादि की उचित व्यवस्था की। राजोचित वस्त्राभूषण, फूल, माला, गंध ताम्बूल इत्यादि भोग वस्तुओं से सहदेव ने उनका उपचार किया ।।25-26।।

दिव्य कुण्डलों को धारण किये हुए श्री कृष्ण से इस प्रकार सत्कृत होकर तथा समस्त दुःखों से मुक्त होकर वे राजा वर्षाकाल के बाद प्रकाशित होने वाले चन्द्रमा के समान शोभायमान हुये ।।27।।

श्री कृष्ण ने उन राजाओं को रत्न, सोने-चाँदी इत्यादि से अलंकृत करते हुए और उत्तम घोड़े से चलने वाले रथों में बैठाते हुये अपने हित वचन से उनको संतुष्ट करते हुये, उनको अपने-अपने प्रदेशों को भेज दिया ।।28।।

इस प्रकार महामहिम श्री कृष्ण के अनुग्रह से कष्ट से मुक्त हुये राजाओं ने उनको और जगत सृष्टि करने वाली उनकी लीलाओं को गाते हुये अपनी यात्रा प्रारम्भ की ।।29।।

राजाओं ने अपने मंत्रियों को महापुरुष श्री कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करने वाली गाथाओं को बताया। आलस्य को छोड़ते हुये वे सभी भगवान के कथनानुसार अपना-अपना जीवन यापन करने लगे ।।30।।

इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण भीमसेन से जरासंध को मरवाकर एवं जरासंध पुत्र सहदेव से सत्कृत होकर भीम और अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ के लिए रवाना हुये ।।31।।

शत्रुजय को पाये हुये श्री कृष्ण ने भीमार्जुन के खाण्डव प्रदेश स्थित इन्द्रप्रस्थ जाकर बन्धुओं में संतोष उत्पन्न करने वाले तथा शत्रुओं को दुःख देने वाले शंख को बजाया ।।32।।

उसको सुनकर इन्द्रप्रस्थ की प्रजा जरासंध की मरण वर्ता को समझकर हर्षित हुयी। राजा युधिष्ठिर अपने मन की अभिलाषा को पूर्ण किये ।।33।।

भीमार्जुन और श्री कृष्ण राजा युधिष्ठिर का अभिवादन करते हुये, किए हुए कार्य के बारे में विस्तार रुप से कहे ।।34।।

श्री कृष्ण के कृपापात्र धर्म राज, जरासंध वध के समाचार को उन्ही के मुख से सुनकर हर्षित हो आनन्दाश्रू बहाने लगे। आनन्द विभोर होकर वे कुछ बोल नही पाये ।।35।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में तिरासीवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौरासीवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजन् ! महाराजा युधिष्ठिर ने जरासंध के वध और श्री कृष्ण की सामर्थ्य को सुनकर संतुष्ट हो श्री कृष्ण से कहा हैं ।।1।।

युधिष्ठिर कहते हैं - तीनों लोकों के गुरु और सारे लोकों के अधिपति ब्रह्मादि देवता भी आपकी दुर्लभनीय आज्ञा को शीर्ष वन्दन करते हुये मानते हैं ।।2।।

आप गुण पूर्ण कमलाक्ष हैं। दीन और स्वयं को राजा मानने वाले हमारे जैसे मूढ़ की आज्ञा को भी आप मानते हैं। यह केवल नटना मात्र है ।।3।।

सर्वोत्तम, आखों को न देखने वाले, परब्रह्म आप हैं। आप बड़ों की आज्ञा पालन करते हैं इससे आपकी सामर्थ्य न तो बढ़ने वाली है और न करने से वह कम भी होने वाली नही है। सूर्य दिन में ज्यादा प्रखर होता है रात्रि में नही। आप उसकी तरह नही है ।।4।।

पराजय रहित हे लक्ष्मीरमण ! अज्ञानी लोगों को पशु के समान, मैं और मेरा, तुम और तुम्हारा इस प्रकार के भेद-भाव होते हैं। परन्तु यह भेद-भाव आप के भक्तों में ही नहीं रहता है तो आप में कैसे रहेगा। आप देहाभिमान से कर्म नही करते हैं तथा कर्मजन्य सुख से न तो बढ़ते हैं और न ही उसके दुःख से छोटे होते हैं। आप केवल लीला मात्र के लिए कर्म करते हैं। हम कर्म के अधीन होते हैं। इस प्रकार मैं अब कर्माधीन होकर राजसूय याग करना चाहता हूँ। आप उसको कराइये ।।5।।

इस प्रकार बोलकर धर्म राज ने राजसूय याग की श्री कृष्ण से अनुमति पाकर श्री वेद व्यास जी और सर्व श्री भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वसिष्ठ, चवन, कण्व, मैत्रेय, कवश, त्रित, विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतु, पराशर, पैल, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्व, कश्यप, धौम्य, परशुराम, आसुरी, वीतिहोत्र, मधुच्छन्द, वीरसेन, अकृतवर्ण इत्यादि वेदवेत्ता ब्रह्मज्ञानी योग्य ब्राह्मणों का पौरोहित्य कार्य हेतु वरण किया। द्रोण, भीष्म, कृप इत्यादि के साथ धृतराष्ट्र तथा उनके पुत्रों और महाज्ञानी विदुर को इस याग के लिए निमंत्रित किया ।।6-7-8-9-10।।

हे राजन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सारे राजा मंत्रियों के साथ इस यज्ञ को देखने के

लिए वहाँ आये ।।11।।

बाद में ब्राह्मणों ने सोने के हल से भू-शोधन करवाने के बाद वहाँ धर्मराज को विधि पूर्वक यज्ञ के लिए दीक्षित किया ।।12।।

पिछले बार वरुण यज्ञ करते समय सारे यज्ञ साधन सोने के थे। इस बार भी सारे साधन सोने के बनाए गये। ब्रह्म, रुद्र, इन्द्रादि लोकपाल अपने अनुचरों के साथ वहाँ आये। सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, महानाग, महामुनि, यक्ष-राक्षस, पक्षी, किन्नर, चारण ये सारे आह्वानित होकर आये। समस्त राजा अपनी पत्नियों के साथ धर्मराज के याग के लिए आये। इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं। श्री कृष्ण के भक्त धर्मराज के लिए यह वैभव योग्य ही है ।।13-14-15-16।।

देवताओं ने जैसे वरुण से राजसूय याग करवाया था वैसे ही धर्मराज से भू लोक के देवगण वर्चस्वी ब्राह्मणों ने राजसूय यज्ञ करवाया। सोम रस को निकालने के दिन महात्माओं राजाओं मुनियों, तथा सभापतियों को श्रद्धा से यथायोग्य सत्कार करने के लिए धर्मराजा खड़े हो गये। उस समय सभापतियों ने अग्रपूजा के लिए उपयुक्त व्यक्ति के बारे में विचार किया ।।17-18।।

सोमलता को निचोड़कर निकाले हुए सोम रस का होम करने के यज्ञ को राजसूय याग कहते हैं। इसके अंत में अभिषेचनीय नाम के सोम याग को करना पड़ता है। उसमें बहुत सारा नदियों और समुद्र से लाये हुये पुण्य जल से राजा को अभिषेक करना पड़ता है। इस याग में पाँचवें दिन सोमलता को निचोड़कर रस निकालकर प्रातः मध्याह्न और सायं इस प्रकार तीनों समय में होम करना पड़ता है। उस दिन गण्यमान व्यक्तियों को अर्घ्य देकर गौरवान्वित करने का कार्यक्रम रहता है। आचार्य, ऋत्विज, गुरु, स्नातक और प्रियजन नाम के छः वर्गों में श्रेष्ठ जो छः लोग होते हैं उनकी विशेष पूजा होती है। उसको अग्र पूजा कहते हैं। इन छः में से सर्व श्रेष्ठ गण्यमान व्यक्ति की अग्रपूजा करनी पड़ती है। इस सभा में किसकी अग्रपूजा होनी है, इस पर विचार किया गया।

इस बारे में वे एकमत न हो सके। प्रत्येक का अभिप्राय अलग-अलग तरह था। तब सहदेव ने खड़े होकर कहा कि यादवों के राजा भगवान श्री कृष्ण ही अग्रपूजा के लिए योग्य व्यक्ति होते हैं ।।19।।

भगवान श्री कृष्ण ही सारे नामों से मुख्य रुप से बुलाये जाते हैं। देश, काल, धन, सम्पदा इतना ही नही पूरा विश्व ही उन्ही के अधीन है। सारे यज्ञ उन्ही की आराधना के लिए होते है ।।20।।

अग्नि, आहुति, मंत्र, ज्ञान, योग और समाधि ये सारे उनको प्रसन्न करने के लिए हैं। वे

ही सर्वोत्तम हैं। पूरा विश्व उनके अधीन है ।।21।।

हे सभासदों लोग - श्री कृष्ण स्वयं अपने आश्रय से रहते हैं। उनके लिए किसी के आश्रय की आवश्यकता नही है। वे उत्पत्ति रहित हैं। सबकी सृष्टि करते हैं, पालन करते हैं और लय भी करते हैं। फलापेक्षा के बिना सारे कर्म करते हैं और मुमुक्षुओं से करवाते हैं ।।22।।

वे धर्मादि चतुर्विध पुरुषार्थों को हमें देते हैं। इसी कारण सर्वोत्तम श्री कृष्ण को ही हम प्रथम गौरवार्पण करें ।।23।।

वे सर्वान्तर्यामी हैं। यदि उनका सत्कार किये तो वह सत्कार सकल जीव राशि को और स्वयं को भी मिलता है। वे ही सर्व चेतनों के अन्तर्यामी हैं। वे अनन्यदर्शी हैं उनके समान और कोई नही है ।।24।।

इसके लिए हमे अपने दान को अनंत फल को प्रदान करने वाले आनन्द पूर्ण, आनन्ददायक भगवान श्री कृष्ण को ही देना चाहिए ।।25।।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्री कृष्ण की सामर्थ्य को ठीक तरह से जानने वाले सहदेव इस प्रकार बोलकर बैठ गये। इसको सुनकर सज्जनों ने साधु-वाद कहते हुए उनकी प्रशंसा की ।।26।।

महाभारत में इन बातों को भीष्माचार्य कहते हैं। इसका अर्थ भीष्माचार्य की अनुज्ञा से सहदेव ही उसको बोला। इस प्रकार अर्थ किये तो विरोध नही आता।

अपने भाई सहदेव ने जो कहा तथा सारे सभासदों का अभिप्राय भी वही है, यह समझते हुये धर्मराज ने संतुष्ट होकर श्री कृष्ण की भक्ति भाव से भरकर अग्रपूजा की ।।27।।

श्री कृष्ण के पाद प्रक्षालन को प्राप्त लोक पावन उस तीर्थ जल को धर्मराज युधिष्ठर सहित उनकी पत्नी, भाइयों, मन्त्रियों और कुटुम्बजनों ने अपने-अपने सिर पर धारण किया।।28।।

रेशमींपीताम्बर और अत्यन्त मूल्यवान अलंकारों को उन्हें अर्पण करते हुये उनका सत्कार करने वाले धर्मराज की आँखों में आँसू भरने के कारण वह उनको आँख खोलकर देख भी नही सका ।।29।।

इस प्रकार श्री कृष्ण की अग्रपूजा को देखकर समस्त अतिथियों, कुटुम्बियों ने खड़े होकर उनको हाथ जोड़ते हुये नमस्कार किया, और जयघोष किया। आकाश से पुष्पवृष्टि हुई ।।30।।

इस प्रकार श्री कृष्ण की अग्रपूजा को देखकर उनके गुण वर्णन से क्रोधित शिशुपाल असूया से आसन से उठकर दोनों हाथ ऊपर करते हुये भयरहित होकर सभा में भगवान के बारे में निष्ठुर गालियों को देते हुये कहने लगा ।।31।।

काल सर्वशक्त है, उसको कोई ठहरा नही सकता, यह सत्य है क्योंकि छोटे लोगों की बात से बड़े लोगों की भी बुद्धि में बदलाव होता है ।।32।।

हे सभापति ! आप गौरव अर्ह लोगों के बारे में ठीक निर्णय कर सकते हैं। श्री कृष्ण अग्रपूजा के लिए अर्ह है, ऐसे यह बालक सहदेव जो बोल रहा है, उसके ऊपर विश्वास नही करें ।।33।।

तप, विद्या, व्रतनिष्ठा रखने वाले ज्ञान से पाप परिहार किये गये ब्रह्मज्ञानी सबसे पूज्य महर्षि के यहाँ होते हुये, अपने कुल को ही कलंकित करने वाले इस गाय चराने वाले को आप कैसे सम्मानित करते हैं ? वह इस सम्मान के लिए कैसे योग्य होता है ? मुझे बताइये कि क्या कौआ यज्ञ के हविर्भाग के लिए योग्य होता है ? ।।35।।

इस गाय चराने वाले का वर्ण, आश्रम और कुल नही है। यह सर्वधर्म से बहिष्कृत है। गुणहीन और स्वेच्छाचारी है। ऐसा कृष्ण पूजा के लिए योग्य कैसे हो सकता है ? ।।36।।

महाभारत में शिशुपाल भीष्म को आक्षेप करते हुये इस प्रकार बोलता है यह कृष्ण गुणहीन, स्वेच्छाचारी और सर्वधर्म बहिष्कृत है। ऐसे मानव की स्तुति सुनकर लोगों को आश्चर्य होता है। आप क्या पूतना हत्या को स्त्री हत्या नही मानते ? धेनुकवधा को गो-हत्या नही बोलते ? इसमें आपको संकोच क्यों ? अथवा अज्ञानी बालक भी कृष्ण को ठीक तरह अपशब्द बोल सकते हैं। आप इस सभा में बड़े होकर यह गाय चराने वाले की स्तुति कर रहे हो, केशव की स्तुति करने वाले तुम्हारी जीभ क्यो टुकड़ा-टुकड़ा नही होती ? शिशुपाल के इन प्रश्नों के उत्तर में भीष्म एक वाक्य में बोलते हैं। **अयं तु पुरुषो बालः शिशुपालो न बुध्यते** यह श्री कृष्ण परम पुरुष हैं। किन्तु शिशुपाल बालक जैसे असम्बद्ध बोल रहा है। वह कुछ नही जानता।

इसका यादव कुल ययाति के शाप से ग्रस्त है। सज्जनों से निन्दाभागी है। पानमत्त रहने का कुल इसका है। यह सम्मान के लिए कैसे योग्य होता है ? ।।37।।

मद्यपान ब्राह्मणों को निषिद्ध है, क्षत्रियों के लिए नही। नित्यं मद्यं ब्राह्मणो वर्जयेत् इस प्रकार गौतम सूत्र (2-20) पिष्ट में कहा गया है से किया हुआ मद्य तीनों वर्णों के लिए निषिद्ध है। मनुस्मृति कहती है कि अन्न से उत्पन्न किया हुआ मद्य तीनों वर्णों को निषिद्ध है। श्री राम कृष्ण उसको नही पीते थे। शिशुपाल इसको न जानते हुये निन्दा कर रहा है।

ब्रह्मवर्चससे रहित ये यादव ब्रह्मर्षियों के रहने योग्य भू प्रदेश को छोड़कर समुद्र में रचे हुए जलदुर्ग में रहते हुये समुद्र चोरों जैसे अन्य लोगों को कष्ट दे रहे हैं ।।38।।

भाग्यहीन शिशुपाल इस प्रकार गालियाँ देता रहा। उनको सुनते हुये सिंह जैसे सियार की आवाज को अलक्ष्य करता है वैसे ही भगवान श्री कृष्ण चुप रहे ।।39।।

शिशुपाल द्वारा किए हुए इस असहनीय भगवन्निन्दा से त्रस्त कई सभासद अपने कानों को बंद करते हुये, शिशुपाल को कोसते हुये सभा से बाहर गये ।।40।।

भगवान की अथवा उनके भक्त की निन्दा जहाँ होती है वहाँ से उठकर चले जाना चाहिए। जो नही जाता वह अपने पुण्य को खोकर नरकभागी होता है ।।41।।

तब पाण्डव, मत्स्य, केकय, सृंजयवीर अपने आयुधों को उठाकर शिशुपाल को मारने चले ।।42।।

इससे शिशुपाल नही डरा। सभा में कृष्ण के पक्ष के राजाओं को डाँटते हुये खड्ग और ढाल को अपने हाथ में लेकर खड़ा हो गया ।।43।।

भगवान श्री कृष्ण उसको आता देखकर अपने लोगों को मना करते हुये अपने पास मारने आने वाले शत्रु शिशुपाल के सिर को अपने हाथ में रहने वाले तीक्ष्णधार चक्र से काट दिये ।।44।।

भागवत के इस वर्णन से हमें लगता है कि अग्रपूजा यज्ञ मण्डप में ही शिशुपाल का वध हो गया। किन्तु तात्पर्य निर्णय के दाक्षिणात्य पाठ में यह युद्ध रणरंग में चलता है। भीष्म रणरंग में विरोधी राजाओं को आह्वान देकर उनके सामने श्री कृष्ण के हाथ को पकड़कर रथ के ऊपर चढ़ाते हैं। श्री कृष्ण शत्रु राजाओं को हटाते हुये शिशुपाल के साथ युद्ध करने खड़े होते हैं। वहाँ उपस्थित राजाओं के सामने शिशुपाल के अकृत्य के बारे में बोलते हैं। ``मैं इसके सौ अपराधों को क्षमा करता हूँ। उस प्रकार इसकी माँ को वचन दिया हूँ किन्तु यह पापी मेरी होने वाली पत्नी रुक्मिणी को चाहता था। इसको मैं क्षमा नही करूँगा।`` इसके उत्तर रुप में शिशुपाल बोलता है - ``तुम्हारे क्षमा करने या न करने से मुझे क्या है ? किन्तु अपनी पत्नी के ऊपर दूसरे नजर रखते हैं, इसके बारे में बोलने के लिए तुम्हे लज्जा नही आती है ? इस प्रकार बोलते हुये शिशुपाल श्री कृष्ण के साथ घनघोर मायायुद्ध करता है। इस युद्ध को देखकर श्री कृष्ण का सारथी दारुक भय से कहता है - भगवान, मैने ऐसे युद्ध को कभी नही देखा है। केवल आपके अनुग्रह बल से मैं जिन्दा हूँ। आप जल्दी उसको मार डालिए। तब श्री कृष्ण अपने पाँचजन्य को बजाते हुये चक्र से शिशुपाल का शिरोच्छेद करते हैं।

शिशुपाल के मर जाने के बाद वहाँ महा कोलाहल हुआ। शस्त्र लेकर युद्ध करने आये शत्रु राजा जीने की इच्छा से भाग गये ।।45।।

शिशुपाल के शरीर से वैकुण्ठ के द्वारपालक जय का तेज लोगों के देखते-देखते आकाश से गिरने वाले नक्षत्र के समान श्री कृष्ण के शरीर में प्रवेश किया ।।46।।

हिरण्यकश्यप, रावण और शिशुपाल इन तीनों जन्मों में बढ़ हुए द्वेष से उद्रेकित होकर भक्ति से शिशुपाल श्री कृष्ण का ध्यान करते हुये तन्मय होकर भगवान के शरीर में विलीन हो गया। भावों और अभावों के लिए भगवान ही कारण हैं ।।47।।

शिशुपाल के शरीर में वैकुण्ठ के द्वार पालक जय नाम का धर्मज देवता रहता था। उसी शरीर में उसके साथ वह। शिशुपाल हिरण्यकश्यप और रावण नाम के राक्षस से मिलकर रहता था। दैत्य जब द्वेष करने लगता था तब जय पश्चात्ताप करता था और ज्यादा भक्ति से ध्यान करने लगता था। इन दोनों को जोड़ते हुये यहाँ **द्वेष से उद्रेक हुई भक्ति से** ऐसा शब्द प्रयोग किया गया है। दैत्य द्वेष करता था। उसी समय देव ध्यान करता था। यह द्वेष ध्यान के कारण भक्ति में बदला। यहाँ भावी हि और अभावी हि इस प्रकार दो तरह से पद विभाग करना चाहिए। भाव इसका अर्थ भक्ति होता है। अभाव का अर्थ भक्ति के विरुद्ध द्वेष होता है। भक्ति भव यानि मंगल का कारण होता है। द्वेष अभाव को संसार के दुःख का कारण बनाता है।

हे राजन् वैकुण्ठ में जय-विजय सनकादि मुनियों के शाप से तीन बार भगवान के शत्रु होकर जन्म लेने की कथा को मैं विस्तार रुप से सप्तम स्कन्ध में कहा हूँ ।।48।।

इसके बाद चक्रवर्ती धर्मराज ऋत्विजों को, सदस्यों को, यथेच्छ दक्षिणा देकर सबको विधिवत् सत्कार करते हुये अवभृत यज्ञ किये ।।49।।

इस प्रकार योगेश्वरों के भी स्वामी श्री कृष्ण धर्मराज से यज्ञ करवाते हुये शिशुपाल का संहार करते हुये सुख से विहार किये ।।50।।

राजा युधिष्ठिर राजसूय याग के अवभृत यज्ञ में स्नान करते हुये ब्राह्मण क्षत्रियों से भरी हुयी सभा में देवेन्द्र के समान विराजे ।।51।।

देव, मानव, गन्धर्व इत्यादि धर्मराजा से सतकृत होकर यज्ञ की और यज्ञ में सम्मान पाये हुये श्री कृष्ण की प्रशंसा करते हुये संतोष से अपने- अपने घर वापस चले ।।52।।

श्री कृष्ण के शिशुपाल वध की इस लीला को और बंधित बने हुये राजाओं की इस कथा का संकीर्तन करने वाला सारे पापों से मुक्त होता है ।।53।।

इस श्लोक के बाद श्रीधरी पाठ में एक श्लोक ज्यादा है। उसका अर्थ इस प्रकार है। कलिस्वरुप, कुरुकुल को लगे हुए रोग के समान पापी दुर्योधन को छोड़कर सारे देव, मानव यक्ष, गन्धर्व यज्ञ की स्तुति किये। दुर्योधन पाण्डवों के इस विपुल वैभव को देखकर सह नही सका। इस श्लोक से अगले अध्याय के प्रारम्भ मे राजा परीक्षित जी प्रश्न पूछता है। उसकी संगति यहाँ मिलती है। यह सत्य धर्म तीर्थ का अभिप्राय है।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में चौरासीवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पचासीवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछता है - हे महामुनि ! अजात शत्रु राजा युधिष्ठिर के राजसूय याग के वैभव को देखकर वहाँ आये हुये सारे देव,ऋषि, मानव, गन्धर्व संतोष पाये। केवल दुर्योधन उससे दुःखित हुआ यह बात आपने कही। उसका कारण क्या है, कृपया बताइये ।।1-2।।

श्री शुकदेव कहते हैं - तुम्हारे बाबा महात्मा धर्मराज के राजसूय यज्ञ में उनके प्यार में बंधित सारे राजा तथा उनके प्रिय परिजन सेवा कार्यों मे लगे हुये थे ।।3।।

भीमसेन पाकशाला का निरीक्षक बना था। दुर्योधन धनाध्यक्ष, सहदेव अतिथि सत्कार, नकुल धन संग्रह में नियुक्त थे ।।4।।

अर्जुन सज्जनों की सेवा में, श्री कृष्ण ब्राह्मणों की पाद पूजा में, द्रौपदी भोजन वितरण में उदार बुद्धि वाले कर्ण दान देने में नियुक्त थे ।।5।।

युयुधान, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुर और संतर्दन इत्यादि अनेक कार्यों मे परिणत लोग यज्ञ के कार्य में धर्मराज द्वारा अन्यान्य कार्यों मे नियुक्त होकर धर्मराज को संतुष्ट करने के कार्य में प्रवृत्त हुये थे ।।6-7।।

अत्यन्त ज्ञानी ऋत्विज, सदस्य और बंधु धर्मराज की अच्छी बातों, अमूल्य उपहार, दान और दक्षिणा पाकर संतोष पाये। शिशुपाल के मरकर श्री कृष्ण के पदारविन्द में समाहित होने के बाद सभी गंगा नदी में जाकर अवभृत स्नान किये ।।8।।

अवभृत स्नान के समय में मृदंग, शंख, पणव, दुंदुभि, आनक, गोमुख इत्यादि अन्य विचित्र वाद्यों द्वारा भूमि पर विपुल ध्वनि हुई। उसकी प्रतिध्वनि से अंतरिक्ष भर गया ।।9।।

नर्तकियों ने हर्ष से नृत्य किया। गायकों इकट्ठा होकर गायन किया। वीणा, वंशी और ताल की उच्च और गगनस्पर्शी ध्वनि भूमण्डल में गूँज उठी ।।10।।

सुन्दर ध्वज पताकाओं से अलंकृत रथों और मदभरित हाथियों से चलने वाले भटों के साथ सोने से श्रृंगारित राजा लोग अवभृत स्नान के लिए चले ।।11।।

यादव, श्रृंजय, काम्बोज, कौरव, कौशल, केकय राजा यज्ञ के यजमान धर्मराज के पीछे-

पीछे चलते हुये अवभृत करने चले। उनके पदाघात से भूमि हिलने लगा ।।12।।

सदस्य, ऋत्विज और ब्राह्मणोत्तम वेदघोष के साथ चले, देव, ऋषि पुष्पवृष्टि करते हुये स्तुति किये ।।13।।

गन्ध, माला, आभरणों से अलंकृत नर-नारियाँ ने एक दूसरे के ऊपर एक रंग फेंकते हुये विहार किये ।।14।।

तैल, दूध, हल्दी और कुंकुम केसर मिला हुआ जल को पुरुष और जारस्त्रियों ने एक-दूसरे के ऊपर फेंककर भिगोते हुये विहार किया ।।15।।

इस अवभृत उत्सव को देखने के लिए आकाश में उत्तम विमानों मे बैठकर देवियाँ आ गयीं। उनके साथ राजपत्नियाँ भी आ गयी। उनके ऊपर उनके मामा के पुत्र और सखियों ने रंग और गुलाल फेंके। उससे वे लज्जा से अवनत मुख से हँसती रही ।।16।।

वे इस प्रकार परस्पर एक-दूसरे के साथ रंग खेलने लगे। तब उनके कपड़े भीगकर शरीर से चिपक गये। उससे उनका सौन्दर्य बढ़ गया। जिससे कामियों का चित्त चंचल हुआ ।।17।।

सोने की माला से शोभायमान अपनी पत्नियों के साथ धर्मराज उत्तम घोड़ों वाले श्रेष्ठ रथ में चढ़कर बैठ गये। धर्मराज अंगक्रिया से युक्त प्रधान यज्ञ के समान शोभायमान थे ।।18।।

ऋत्विजों ने धर्मराज की पत्नि से संयोज नाम का हवन और अवभृतेष्टि करवाया। धर्मराज आचमन करने के बाद गंगा नदी में द्रौपदी के साथ स्नान किये ।।19।।

उस समय भू लोक पर मानवों ने दुन्दुभि नाद किया, जिसके साथ देव दुंदुभि भी समवेत हुई। देव, ऋषि, पितृ, मानव पुष्ट वृष्टि किये ।।20।।

तब वहाँ साथ रहने वाले वर्णाश्रम के लोगों ने स्नान किया। बाद मे धर्मराज नवीन रेशम के वस्त्रद्वय को धारण कर अलंकार को भी धारण किये ।।21।।

ऋत्विजों, सदस्यों, ब्राह्मणों, बंधुओं, ज्ञाती अवस्नेहित राजाओं सारे मिलकर नारायण-परायण धर्मराज को अनेक तरह के वस्त्राभरण दिये। धर्मराज ने उनके प्रति अलंकार देकर उनकी पूजा की ।।22-23।।

सारे लोग रत्न, कुण्डल पेटा रेशम का दुकूल और अमूल्य हारों को धारण कर देवताओं के समान विराजे। महिलायें भी फूल मालाओं और घुँघराले बालों से सुशोभित मुख से सभा में विराजी ।24।।

बाद में राजसूय याग के लिए आये हुये अध्ययनशील वेदपाठी ब्राह्मणों ने वहाँ रहने वाले क्षैत्रियों, वैश्यों, शूद्रों के साथ पितृ, अनुचरों समेत सारे लोकपाल धर्मराज से सत्कार पाकर

पुनः आने की बात करते हुये अपने-अपने घर चले गये ।।25-26।।

भगवान श्री कृष्ण के दास राजर्षि धर्मराज के राजसूय याग के वैभव को अनेकों बार गाने के बाद भी लोगों को तृप्ति नही हुई। मनुष्य अमृत को पीकर कभी तृप्त होता है क्या ? ।।27।।

बाद में राजा युधिष्ठिर ने स्नेहित बन्धु-बन्धवों और श्री कृष्ण को वियोग भय से न छोड़ते हुये अपने पास ही रख लिए ।।28।।

भगवान श्री कृष्ण धर्मराज को संतुष्ट करने हेतु अपने समस्त यदुजनों को साम्ब के नेतृत्व में द्वारका भेजकर स्वयं धर्मराजा के साथ वहीं रहे ।।29।।

इस प्रकार धर्मराज अपने मनोरथ नाम के महासागर को श्री कृष्ण के अनुग्रह से समृद्ध रीति से पार करके निश्चिंत होकर रहने लगे ।।30।।

श्री हरि की कृपा से धर्मराज के अंतःपुर में भरी हुयी उसकी धनकनकादि सम्पत्ति को और राजसूय यज्ञ करने से उनको प्राप्त सम्पत्ति और वैभव को देखकर दुर्योधन असूया से अपने मन में आग के समान जलने लगा ।।31।।

सृष्टिकर्ता श्री हरि ने इन्द्रप्रस्थ में ही कुबेर, बलि और देवेन्द्र के समान सकल सम्पत्ति को स्थिर से रहने का प्रबंध किये। उस सारी सम्पत्ति से शोभायमान धर्मराजा की सेवा द्रौपदी कर रही हैं। इसको देखकर दुर्योधन की असूया और बढ़ गई ।।32।।

उस समय इन्द्रप्रस्थ नगर में श्री कृष्ण की हजारों पत्नियाँ इधर-उधर चलती थीं। वे अपने नितम्बों के भार से मंद-मंद पद से चलते थे, पादों घुंघरु की आवाज से शोभा बढ़ाये हुए थी। उनके गले में सुन्दर मोतियों की माला कुछ कुंकुम लेपन से लाल रंग की हो गयी थी। हिलने वाले कुण्डल घुँघरु, बाल उनके मुख की शोभा को बढ़ाते थे। ऐसे इन्द्रप्रस्थ को देखकर दुर्योधन का मत्सर और भी बढ़ा ।।33।।

एक बार धर्मराज अपने बन्धु-बान्धवों व श्री कृष्ण के साथ मयासुर द्वारा निर्मित अपनी सभा में सिंहासन पर विराजमान थे ।।34।।

उस समय वे सोने के सिंहासन पर बैठकर दूसरे इन्द्र के समान दिखते थे। चतुर्मुख ब्रह्मा के समान सम्पत्ति से शोभायमान धर्मराज का वंदिमागध गुणगान करने लगे ।।35।।

नानादेशों से आये हुये श्रेष्ठ ब्राह्मण वेद घोष कर रहे थे। उस समय शुभ्र चामरों से दासियाँ हवा कर रही थीं। तब धर्मराज देव लोक के देव राजा के समान शोभायमान थे ।।36।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में पचासीवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - छियासीवाँ

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ॥

श्री शुकदेव जी कहते हैं - उस समय राजा दुर्योधन फूल,माला और किरीट धारण किये हुये अपने भाइयों के साथ खड्ग लेकर उस सभा भवन में प्रवेश किया ।।1।।

वह सभा मयासुर द्वारा निर्मित था। अनेक मायाओं से इन्द्रनील मणियों से निर्मित उस सभा की जमीन को देखकर दुर्योधन वहाँ जल है समझकर अपने कपड़े को ऊपर उठाते हुये चला। उसको देखकर वहाँ बैठे हुये सारे लोग हँसने लगे ।।2।।

आगे चलकर दुर्योधन एक स्फटिक निर्मित जल कुण्ड के पास आया। उसको जमीन समझकर पानी में गिर गया। सारे लोग उसका अपहास्य करके हँसने लगा ।।3।।

भीमसेन जोर से हँसा। अनेक राजस्त्रियाँ हँसी। धर्मराज उन सबको हँसने से रोकने का प्रयास किये। श्री कृष्ण के मुस्कुराने से अन्यों की हँसी और बढ़ी ।।4।।

महाभारत के सभा पर्व में यह घटना श्री कृष्ण के द्वारका जाने के बाद घटती है। उसकी काल व्यत्यास पुराण शैली मानना चाहिए। भागवत की यह कथा वास्तविक है। तात्पर्य निर्णय में भी यही कहा गया है।

धर्मराज, श्री कृष्ण की प्रेरणा से समाधान कारक बातों को कहते हुये फूल माला दिये। अलंकारों को दुर्योधन को भेंट करते हुये अपने पास बुलाये ।।5।।

दुर्योधन उस सत्कार का तिरस्कार करते हुये मन में आगबबूला होकर लज्जा से नीचे मुँह करके वहाँ से चला गया। धर्मराज के पास नही गया ।।6।।

दुर्योधन लज्जा से अवनित मुख लेकर व क्रोध से जलते हुये धर्मराज से कुछ भी न बोलते हुये हस्तिनावति को चला गया। उस समय सारे लोगों ने हाहाकार किया। अजात शत्रु धर्मराज खिन्न मनस्क हुये ।।7।।

भूभार हरण करने का संकल्प लिए हुये भगवान श्री कृष्ण को अपने मन के अनुसार चलते

हुये घटना को देखकर कुछ भी नही हुआ, ऐसी आलोचना करते हुये बैठे रहे। उस समय देवताओं से पाद कमल की सेवा लेने वाले नारद मुनि जगदीश के सामने आ गये ।।8।।

तब सारे लोगों ने उठकर नारद जी को गौरव देकर नमस्कार किया। श्री कृष्ण ने भी नारद जी को गौरवार्पण किया। धर्मराज नारद जी को अपने सिंहासन के पास बैठाये ।।9।।

धर्मराज मुनि की विधिवत् पूजा करने के बाद पूछे - हे महर्षि ! आप सारे काल और क्षेत्र में निर्लिप्त होकर रहते हैं ।।10।।

अब कहिये इस भूमण्डल में अत्यन्त शूर और सतत युद्ध करने वाली प्रवृत्ति किसकी है ।।11।।

धर्मराज की इस बात को सुनकर नारद जी कहते हैं ।।12।।

नारद जी कहते हैं - इस समय सारे राजा अति पराक्रमशाली श्री कृष्ण से मार खाकर कान्तिहीन होकर कुछ प्रवृत्ति न करते हुये अपने-अपने देश में शान्त रीति से वास कर रहे हैं ।।13।।

किन्तु एक दुराग्रही राजा है। वह सारे क्षत्रियों में अधिक उत्साह दिखा रहा है। उसके पास बहुत वाहन पदाति सैन्य है। वह साल्वदेश का राजा है ।।14।।

लोक विजयी भगवान श्री कृष्ण द्वार यमुना तट पर गदायुद्ध में अपने भाई ब्रह्मदत्त के पुत्र हंस के मारने के बाद यह साल्वराज कृष्णद्वेष से जल रहा। अपने भाई के ऋण को चुकाने की इच्छा से कुण्डिनपुर को आकर रुक्मि के साथ श्री कृष्ण से द्वेष करने वाले अन्य राजाओं के साथ मिलकर, वह युद्ध सिद्धता कर रहा है ।।15-16।।

साल्व एक देश का नाम है। उसके अधिपति ब्रह्मदत्त तथा इसकी बड़ी रानी के पुत्र सौभादिपति को भी साल्व राज कहते हैं। छोटे रानी के पुत्र हंस और डिंभिक हैं। वे साल्व देश के परंपरागत अधिपत्य को नही पाये। इसके लिए उनको साल्वराज नही कहते।

हे राजन्, यह साल्व जब शिशुपाल, द्रुम इत्यादि राजाओं और जरासंध के साथ युद्ध में पराजित हुआ तब दंतवक्र सहित अन्य राजाओं के सामने साल्व राज ने प्रतिज्ञा की कि मैं इस भूमि पर एक यादव को भी रहने नही दूँगा। मेरी इस प्रतिज्ञा को और पौरुष को आप सब देखे।।17-18।।

मूर्ख साल्व इस प्रकार प्रतिज्ञा करके शक्ति संग्रह के लिए, तप करने हेतु अरण्य में प्रवेश किया। वहाँ जाने के बाद बहुत वर्षों तक उसकी पत्नियों ने उसकी प्रतिक्षा की ।।19।।

बहुत दिन तक जब राजा नही आया तो इसको देखकर मंत्रियों ने साल्व के भाई को

सिंहासन पर बिठा दिया। उधर राजा साल्व ने पशुपतिनाथ शिव की घनघोर तपस्या की ।।20।।

वन में राजा साल्व दिन में एक बार एक मूठ भर बालू खाकर तप करते रहा। बहुत वर्षों के बाद भगवान रुद्र तपस्या से संतुष्ट होकर उसके सामने प्रकट हुए ।।21।।

शरणागत साल्व को जो चाहे वह वर देने के लिए भगवान शिव आये। देव, असुर, मानव, गन्धर्व, नाग, राक्षसों द्वारा भी भेदा न जाने वाला, मन की इच्छा के अनुसार चलने वाला और यादवों को भय देने वाले एक विमान को साल्व ने शिव से माँगा। भगवान शिव ने उसको शत्रुओं के नगरों को जीतने वाला एक भयंकर विमान निर्मित कर देने के लिए मय को आज्ञा दी ।।22-23।।

मयासुर ने शिव जी की आज्ञा मानते हुये साल्व को सौंभव नाम के संचारी विमान को निर्मित करके सौंप दिया। अपने मन के अनुसार चलने वाले उस विमान को पाकर साल्व को बहुत आनन्द हुआ ।।24।।

ऐसे विमान को पाकर साल्व अपने समस्त सैन्य और वाहनों से युक्त अपने देश को वापस आया। अब राजकुमारों में युद्ध की प्रवृत्ति रखने वाला वह एक बचा है ।।25।।

इस प्रकार नारद जी की बात सुनकर धर्मराज अपने पास बैठे श्री कृष्ण के मुख को देखे ।।26।।

अत्यन्त धैर्यशाली भगवान श्री कृष्ण नारद जी की बात को सुनकर हँसते हुये तथास्तु बोले। यही बड़े लोगों का लक्षण है ।।27।।

बाद में श्री कृष्ण अपने मधुर वाक्यों से नारद जी का अभिवंदन करते हुये बोले साल्व हमारे मन में बहुत दिन से अपेक्षित है। नारद जी जो कहे हैं, वही ठीक है ।।28।।

इस प्रकार कहते हुये भगवान श्री कृष्ण द्वारका की और यदुराज उग्रसेन की रक्षा के लिए युयुधान, अक्रूर और कृतवर्म आदि मुख्य यादवों की नियोजना करते हुये बड़े सैन्य बल के साथ उनको द्वारका भेजे ।।29-30।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में छियासीवाँ अध्याय समाप्त होता हैं ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सतासीवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - इस प्रकार महात्मा श्री कृष्ण अन्यान्य व्यवस्था करते हुये इन्द्रप्रस्थ में ही रहे। राजा युधिष्ठिर कृत-कृत्य भाव से भाइयों के साथ इन्द्रप्रस्थ में राज्य करते रहे ।।1।।

इधर साल्व अपने स्नेहित जरासंध और शिशुपाल की मरण वार्ता सुनकर क्रोधित हुआ। परम वैभव से धर्मराज ने राजसूय यज्ञ किया इसको सुनकर उसका द्वेष और ज्यादा हुआ ।।2।।

उसके भाई हंस और डिंभक को यादवों ने मारा है। इस द्वेष को पुनः-पुनः याद करते हुये साल्व ने द्वारका को युद्ध करने के लिए घेर लिया। वह आकाश में अपने सौभव नाम के विमान मे बैठकर वहीं से युद्ध करने लगा ।।3।।

साल्व ने द्वारकापुरी के उपवन उद्यानों का नाश किया। गोपुर महाद्वारों को गिराते हुये किले के ऊपर रहने वाले ऊँचे मन्दिरों का नाश करने लगा ।।4।।

आकाश से साल्व के महाविमान से आयुधों की वृष्टि होती रही। वहाँ से पत्थर, वृक्ष, साँप, जल, वज्रपात और ओले की वर्षा हुयी। बड़े झंझावात से सारी जगह धूल से भर गयी ।।5।।

इस प्रकार सौभव विमान से श्री कृष्ण की द्वारका नगरी पीड़ित हुयी। पहले त्रिपुरासुर द्वारा भी ऐसा ही कष्ट निर्माण हुआ था ।।6।।

अपनी प्रजा को होने वाले इस कष्ट को देखकर धैर्यशाली प्रद्युम्न अपने पिता श्री कृष्ण का और बलराम का स्मरण करते हुये सबको धैर्य देते रहा ।।7।।

सात्यकि, चारुदेष्ण, अक्रूर, साम्ब, कृतवर्म, भानुविन्द, गद और शुकशारण इत्यादि अनेक वीर महारथी और सेनाधिपति वीर कवच को धारण कर रथों, हाथीयों, घोड़ों और पदाति के साथ प्रद्युम्न के नेतृत्व में युद्ध करने चले ।।8-9।।

देवासुर के समान साल्व और यादवों के बीच अत्यंत रोमांचक तुमुल युद्ध हुआ ।।10।।

साल्व द्वारा रचाए हुए मायायुद्ध को रात के अंधकार को सूर्य जैसे नाश करता है वैसे ही प्रद्युम्न ने अपने दिव्यास्त्रों से एक क्षण में नष्ट कर दिया ।।11।।

सोने के पंख वाले लोहे के नुकीले मुँह वाले पच्चीस बाणों से साल्व के सेनापति को प्रद्युम्न ने मारा ।।12।।

सौ बाणों से साल्व को मारा। एक - एक बाण से उनके सैनिकों को मारा। दस - दस बाणों से उसके सेनापतियों को मारा ।।13।।

महात्मा प्रद्युम्न के इस अद्भुत कार्य को देखकर सारे लोग उनकी जयकार किये ।।14।।

मयासुर की माया से निर्मित वह सौभव विमान एक बार में बहुरुप धारण करता था। अनेको रूप वाला वह कभी एक रुप हो जाता था और कभी अदृश्य हो जाता था। जिसके कारण लोग उसके स्वरुप को ही जान नही पाये ।।15।।

वह विमान एक बार जमीन पर, एक बार आकाश में, एक बार समुद्र में और एक बार पहाड़ के ऊपर आग के समान प्रज्ज्वलित दिखता था। वह एक स्थान पर नही रहता था ।।16।।

उस सौभव का स्वामी साल्व अपनी सेना के साथ जाता था। वहीं यादव लोग अपने बाण फेंकते थे ।।17।।

अग्नि और सूर्य के समान चमकने वाले, सर्प के समान तीव्र गति वाले असाध्य बाणों से यादव वीर उस संचारी नगर को और उसमें रहने वाले सैनिकों को और साल्व को भी कष्ट दे रहे थे। इससे साल्व बार-बार मूर्छित होते रहा ।।18।।

साल्व और उसके सेनापतियों के बाणों से यादव वीर भी बहुत कष्ट पा रहे थे। जीवित रहे तो राज्य मरे तो स्वर्ग मिलेगा, यह समझते हुये यादव लोग युद्ध को आगे बढ़ा रहे थे ।।19।।

साल्व का अत्यंत बलिष्ठ द्युमान नाम का मंत्री आगे आकर प्रद्युम्न के सामने खड़ा होकर अपनी बहुत बड़ी गदा से प्रद्युम्न को मारकर सिंहनाद किया ।।20।।

शत्रुओं का दमन करने वाले प्रद्युम्न की छाती पर गदा से बहुत चोट लगी। प्रद्युम्न मूर्छित हुआ। दारुका का पुत्र, अपने कर्तव्य को जानने वाला प्रद्युम्न का सारथी प्रद्युम्न के रथ को युद्ध भूमि के बाहर ले आया ।।21।।

दो मुहूर्त के बाद प्रद्युम्न को होश आया। रणरंग से अपने को बाहर लाने के लिए सारथी को डाटा। "तुम युद्ध भूमि से मुझको बाहर ले आये, यह गलत है" ।।22।।

यादवों के वंश में ऐसे युद्ध भूमि को छोड़कर बाहर जाने वाला कोई नही है। तुम कायर होकर मुझको रणरंग से बाहर लाए ।।23।।

धर्म साधन करने के लिए योग्य इस युद्ध से मैं भागकर आया हूँ। अपने पिता श्री रामकृष्ण जी को मैं कैसे मुँह दिखाऊँगा। यह अनुचित कार्य करके उनके सामने कैसे खड़ा रहूँ ।।24।।

मेरी छोटी-बड़ी सभी भाभियाँ मेरे इस कायरपन को देखकर हँसेंगी। मुझको वे नपुंसक बोलेंगी ।।25।।

प्रद्युम्न की इस बात को सुनकर उसके सारथी ने उत्तर रुप में इस प्रकार कहा - हे प्रभु ! मैंने, सारथी के धर्म को ठीक तरह से जानकर ही यह कर्म किया है। र[illegible] के प्राण जब अपाय में रहते है, उस समय सारथी को उसकी रक्षा करनी चाहिए ।।26।।

अनुभव से इसको जानकर मैं आपको रणरंग से दूर लेकर आया हूँ क्योंकि शत्रु की गदा से मार खाकर आप मूर्छित हो गये थे। आपत्ति में फँसे हुये आपकी रक्षा के लिए मैं आपको युद्ध क्षेत्र से बाहर लाया हूँ ।।27।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में सतासीवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अठासीवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - इस प्रकार सारथी की बातों को सुनकर प्रद्युम्न युद्ध क्षेत्र की दिशा में देखते हुए अपने शस्त्र को उठाकर सारथी से कहता है ।।1।।

हे सारथी ! ये देखो, वह द्युमान कवच को धारण करते हुये धनुष लेकर युद्ध के लिए सिद्ध होकर खड़ा है। मुझको उसके पास ले चलो ।।2।।

अपने सैन्य के ऊपर आक्रमण करने वाले द्युमन्त को क्रोध से रोकते हुये प्रद्युम्न आठ बाणों से उसके ऊपर प्रहार किया ।।3।।

आठ बाणों में से चार ने द्युमन्त के चार घोड़े को मार डाला। एक बाण से सारथी, दो बाणों से धनुष और ध्वजा को काटकर आखिरी बाण ने उसके सिर को काट दिया ।।4।।

गद, सात्यकि, अक्रूर, साम्ब, शुकसारण, वसुदेव, उग्रसेन आदि ने साल्व के सैन्य के ऊपर आक्रमण करते हुए बहुत लोगों को मारा ।।6।।

इस प्रकार सताईस दिन तक यह रोमांचकारी युद्ध चलता रहा। श्री कृष्ण धर्मराजा के निमन्त्रण से इन्द्रप्रस्थ में ही ठहरे थे ।।7।।

राजसूय याग समाप्त हो गया है। शिशुपाल युद्ध में मर गया है। ऐसे समय में इन्द्रप्रस्थ में रहने वाले श्री कृष्ण ने युद्ध सूचक घोर अपशकुनों को देखा ।।8।।

कुरुवंश के बड़े लोगों और मुनियों से अनुज्ञा पाकर श्री कृष्ण इन्द्रप्रस्थ से द्वारका चले। उनकी विदाई के लिए ब्राह्मण और मंत्रियों के थ वे उनके पीछे चले ।।9।।

थोड़ी दूर आने के बाद श्री कृष्ण समस्त नागरिकों को वहीं खड़ा कर दिये। आँखों में आँसू भर के पुनः आने की बात कहे ।।10।।

अन्तःपुर की स्त्रियाँ सोने से निर्मित पालकी में बैठे थीं। हजारों हाथी, घोड़े, रथ और पदाति के साथ पूरे सैन्य को साथ लेकर श्री कृष्ण पश्चिम दिशा में अपनी यात्रा आरम्भ किये ।।11।।

इधर प्रद्युम्न द्वारा युद्ध से पीड़ित साल्व युद्ध भूमि से वापस होकर विमान से अपने राज्य को चला ।।12।।

साल्व इस प्रकार भाग रहा है। उसको देखकर साम्ब ने साल्व के मंत्री क्षेमधूर्ति को अपने बाण से यमसदन भेजा ।।13।।

साल्व के अत्यन्त प्रिय विविन्द नाम के सेनापति को रास्ते में रोंकते हुए प्रद्युम्न ने बाण मारा ।।14।।

प्रद्युम्न से मार खाया हुआ विविन्द खड्ग और ढाल लेकर प्रद्युम्न का सामना किया। वह युद्ध अद्भुत था ।।15।।

युद्ध मे आश्चर्य जनक रीति से विमान को मण्डराने वाले विविन्द को प्रद्युम्न ने खड्ग से काट डाला ।।16।।

इस प्रकार सारे मुख्य सेनापतियों के मारे जाने से साल्व का सेना अपनी प्राण रक्षा के लिए मन चाहे भाग गई ।।17।।

श्री कृष्ण द्वारका को तीव्र गति से आकर वहाँ भग्न हुयी द्वारका को देखे ।।18।।

द्वारका नगर में तोरण टूट गये हैं। बड़ी-बड़ी दीवार गिर गयी हैं। उपवन, उद्यान नष्ट हो गये हैं। कुएँ पत्थर से भर गये हैं। रास्ते क्षतिग्रस्त हो गये है ।।19।।

वेदाध्ययन और नित्यअग्निहोत्र रुक गये हैं। द्वारकापुरी में हुए उस विध्वंस कार्य को देखकर श्री कृष्ण व्यग्र होकर कृतवर्म से पूछते हैं ।।20।।

साल्व के कुकृत्य के बारे मे कृतवर्म कहता है। उसको सुनकर सारे यादवों के सामने श्री कृष्ण प्रतिज्ञा करते हैं ।।21।।

मैं उस दुरात्मा साल्व का पीछा करते हुये उसको मारकर, उसके सौभव विमान को टुकड़े-टुकड़े करते हुये समुद्र में डालने के बाद ही द्वारका में प्रवेश करूँगा ।।22।।

शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नाम के चार घोड़ों से चलने वाले बहुत आयुधों से भरे हुए रथ में सारथी दारुक बैठा है। गरुड़ से युक्त ध्वजा फहरा रही है। भगवान श्री कृष्ण इस रथ में बैठकर मनोवेग वायु वेग से साल्व का पीछा करने लगे ।।23-24।।

बहुत दूर जाने के बाद समुद्र के बीच में रहने वाले सौभव विमान में बैठे हुए साल्व को उन्होने देखा ।25।।

साल्व का सैन्य प्रायशः नष्ट हो चुका है। साल्व श्री कृष्ण को देखकर उनके सारथी के ऊपर एक बड़ा शक्त्यायुद्ध को फेंक दिया ।।26।।

आकाश में धूमकेतु के समान दिशाओं को प्रकाशित करते हुये बड़े वेग से आने वाली उस शक्ति का श्री कृष्ण ने अपने बाणों से सौ टुकड़े कर दिए ।।27।।

साल्व को सोलह बाणों से मारा। आकाश में चलने वाले विमान को, सूर्य जैसे अपने किरणों से आकाश को भर देता है, वैसे ही विमान को बाणों से भर दिये ।।28।।

शारंगधनुर्धारी श्री कृष्ण के धनुष को पकड़े हुए बायें हाथ में साल्व ने बाण मारा। तब भगवान के हाथ से शारंगधनुष गिर गया। साल्व का यह शौर्य अद्भुत था ।।29।।

उसको देखकर यादव लोग हाहाकार करने लगे। साल्व जोर से गर्जना करते हुये श्री कृष्ण से कहता है ।।30।।

हे दुर्बुद्धि वाले, मूर्ख! दुरात्मा! तुमने यमुना तट में महाबलशाली हमारे दोनों भाई हंस और डिंभिक को युद्ध में मारा है। मेरे मित्र शिशुपाल की पत्नी होने वाली रुक्मिणी का अपहरण किया है ।।31।।

हे मंदबुद्धिवाले, सभामध्य में क्षत्रिय लोग व्यग्र होकर देखते रहे और तुम हमारे मित्र शिशुपाल को उस समय काट डाले ।।32।।

तुम समझ रहे हो कि तुमको कोई हराने वाला नही है। किन्तु देखो, अभी अपने बाणों से तुमको यमालय को भेज देता हूँ ।।33।।

साल्व की इन बातों को सुनकर, उसके बाणों से पीड़ित श्री कृष्ण धनुष को उठाते हुये कहते हैं ।।34।।

हे मंदबुद्धिवाले अहंकार की व्यर्थ बातों को छोड़ो। तुम्हारे में यदि आश्चर्य करने वाला अति पौरुष है तो दिखाओ। शूर लोगों को बातों से मतलब नही रहता ।।35।।

इस प्रकार बोलते हुय भगवान श्री कृष्ण आक्रोश से अपनी प्रचण्ड गदा से साल्व के कंधे के ऊपर मार दिये। साल्व रक्त वमन करते हुये काँपने लगा ।।36।।

तब साल्व आकाश में कूदकर खड्ग से वसुदेव के सिर को काटकर तथा उसको अपने साथ लेकर अपने विमान में जाकर बैठा ।।37।।

साल्व के इस कृत्य को देखकर कुछ न समझने वाले आदमी के समान श्री कृष्ण युद्ध क्षेत्र में खड़े रहे। बाद में यह साल्व की आसुरीमाया है। इसको अपने लोगों से समझ लिये ।।38।।

द्वारका में रहने वाले निवासी की तरह दिखने वाला एक मनुष्य अपने को आहुक का दूत बोलते हुये श्री कृष्ण के सामने कहता है ``साल्व द्वारका में आकर वसुदेव को मार दिया है, आपकी यहाँ युद्ध करके क्या लाभ होने वाला है। वापस आकर बची हुई द्वारका की रक्षा करें।`` उसी समय सौभव विमान से वसुदेव का मृतक शरीर नीचे गिरता है। श्री कृष्ण इसको देखकर मोहित जैसे रथ में बैठ गये। श्री कृष्ण के सैन्य में हाहाकार मचा। एक मुहूर्त पर्यन्त

साल्व की यह माया रही। महाभारत वनपर्व (21-10-30) में इस प्रकार लिखा है।

श्री कृष्ण स्वप्न से जागृत होने वाले जैसे जागृत होकर सामने साल्व को नही देखे। अथवा वसुदेव के शरीर को भी नही देखे। वे आकाश संचारी सौभव विमान में रहने वाले साल्व को देखकर उसको मारना चाहे ।।39।।

स्वप्न पदार्थ मन में रहता है, किन्तु बाहर वह नही दिखता। माया पूर्ण रुप से नही रहता। स्वप्न और माया में यह अन्तर है। इस अन्तर को दिखाते हुये यहाँ स्वप्न और माया दोनों के बारे में कहा है।

श्री कृष्ण माया मूर्छा से जागृत हुये ऐसे दिखाते हैं, किन्तु उनके लिए शोक माया मोह इत्यादि नही है। सारे स्मृतिकार इसको मानते हैं। सारे ऋषि मुनि और उपनिषदों का एकाभिप्राय है कि श्री हरि को शोक, माया, मोह इत्यादि नही होता है ।।40।।

श्री हरि को शोक, माया, मोह होता है, ऐसा कोई स्मृतिकार या देवता कभी नही कहे हैं, वे भगवान को नहीं हैं इस प्रकार दृढ़ता से कहे हैं। अज्ञों मे रहने वाले शोक, मोह, ममता, भय भगवान में कैसे हो सकते हैं भगवान लक्ष्मीपति, अजित हैं। ईश्वर यानि जगत के स्वामी भगवान के साथ ये माया मोह कैसे रह सकते हैं ।।41।।

श्री हरि की पाद सेवा से पाये हुये तत्वज्ञान से भक्त अपनी अनादि होकर रहने वाली अविद्या को दूर करते हुये ज्ञान को पाते हैं। अपने स्वरुपभूत, अक्षय श्रीहरि के अनुग्रह से लभ्य होने वाले मोक्ष सुख को पाते हैं, तो श्रीहरि को शोक मोह कहाँ हो सकता हैं ।।42।।

हे परीक्षित ! भक्तों की बातों को सुनकर कमल नयन श्री कृष्ण सौभव विमान के साथ साल्व का नाश करने में उद्यत हो गये ।।43।।

महाभारत के वनपर्व में सारथी श्री कृष्ण से कहता है - भगवान मृदु युद्ध को छोड़ दीजिए। साल्व को जल्दी मार डालिए।

श्री कृष्ण अपने तीक्ष्णधार वाले सुदर्शन चक्र को उठाकर उसको आग्नेय अस्त्र से अभिमंत्रित करते हुये सौभव विमान नाश के लिए छोड़ देते हैं ।।44।।

आग्नेय अस्त्र से अभिमंत्रित श्री कृष्ण के हाथ से प्रेषित सुदर्शन चक्र ज्वाला से युक्त होकर अति भयंकर रुप से सत्यलोक पर्यन्त प्रज्वलित होने लगा ।।45।।

उस ज्वाला से त्रस्त देवता स्वर्ग छोड़कर भाग गये ।।46।।

हे राजन् ! अनेकों सूर्यों के समान प्रकाश देने वाले सुदर्शन चक्र ने सौभवपुरी के दो टुकड़े कर वापस श्री कृष्ण के पास आ गया ।।47।।

सौभवपुर अपने अवयवों को खोकर समुद्र में गिर गया। अन्यों द्वारा सामना करने में अशक्य साल्व हाथ में गदा लेकर श्री कृष्ण के सामने आया। दुर्बुद्धि साल्व उस गदा को कृष्ण के ऊपर फेंका ।।48।।

दैत्य सैन्य से दिए हुए बहुत आयुधों से युक्त रथ में बैठकर साल्व ने श्री कृष्ण के सिर के ऊपर अनेक आयुधों को फेंककर सिंह के समान गर्जना किया ।।49।।

साल्व द्वारा फेंकी हुयी गदा को अपने एक बाण से तीन टुकड़े कर श्री कृष्ण अपने पञ्च जन्य शंख को बजाते हुये सिंहनाद किये ।।50।।

साल्व द्वारा फेंके हुए शस्त्र समूह को अमोघ पराक्रमी श्री कृष्ण नष्ट करते हुये अपने बाण से साल्व के कवच, किरीट और धनुष को टुकड़े-टुकड़े कर दिये। गदा से उसके रथ को चकनाचूर किये ।।51।।

श्री कृष्ण की गदा से साल्व का रथ हजारों टुकड़े होकर समुद्र में गिर गया। साल्व रथ को छोड़कर जमीन के ऊपर खड़ा होकर गदा लेकर श्री कृष्ण के ऊपर जोर से आक्रमण किया ।।52।।

महागदा को लेकर दौड़ते आने वाले साल्व के हाथ को श्री कृष्ण ने शूल से काट डाला। प्रलय काल के सूर्य के समान अद्भुत प्रकाश देने वाले सुदर्शन चक्र को लेकर श्री कृष्ण उदयाचल के समान प्रकाशित हो साल्व को मारने के लिए आगे बढ़े ।।53।।

उसी चक्र से अत्यन्त मायावी किरीट कुण्डलधारी साल्व के सिर को, इन्द्र द्वारा वज्रायुध से वृत्रासुर के सिर को काटने जैसे, काट डाले। वहाँ उपस्थित सारे लोग हाहाकार कर उठे ।।54।।

पापी साल्व के गिरने के बाद सौभव विमान भी समुद्र मे गिरा है इसको देखकर देव दुंदुभिओं से ध्वनि किये, आकाश पुष्पवृष्टि से भर उठा ।।55।।

ऋषि समूह और सूत वन्दि मागध स्तुति करने लगे। भगवान श्री कृष्ण उनके साथ द्वारकापुरी में आ गये ।।56।।

उस समय द्वारकापुरी ध्वजपताकाओं से अलंकृत हो रही थी। नगर के मार्गों को स्वच्छ करते हुए पानी छिड़कावाये थे। ऐसे सुन्दर सजे हुए नगर में श्री कृष्ण प्रवेश किये ।।57।।

हे राजा परीक्षित ! यादव श्रैष्ठों पुरवासी और देशवासी सबसे पूजित श्री हरि प्रेम परवशा अपनी सोलह हजार पत्नियों के साथ संतोष से द्वारका में वास करने लगे ।।58।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में अठासीवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - नवासीवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - एक बार श्री कृष्ण क्षत्रियों के साथ सुधर्म सभा में बैठे थे। उस समय हाथ में वेत्र को पकड़े हुये द्वारपालक विज्ञापना करता है ।।1।।

हे प्रभु ! यदुश्रेष्ठ ! इन्द्रप्रस्थ से एक ब्राह्मण आकर द्वार पर खड़ा है। आप उसको अन्दर आने की आज्ञा दीजिए ।।2।।

श्री कृष्ण ने उसको अन्दर भेजने के लिए कहा। तब द्वारपालक उस ब्राह्मण को अन्दर भेजा। वह ब्राह्मण अन्दर आकर श्री कृष्ण को प्रणाम करते हुये बोला ।।3।।

मूर्ख, दुराचारी दुर्योधन ने धर्मराज को द्यूत में हरा दिया है। धर्मराज अपने भाइयों के साथ जंगल चला गये हैं ।।4।।

कानों से सुनने में अत्यन्त कष्टसाध्य ब्राह्मण द्वारा कहे हुए उस वाक्य को सुनकर श्री कृष्ण क्रोध वश झट से आसन से उठकर खड़े हो गये ।।5।।

दारुक इशारा समझते हुये रथ को लाया। सत्यभामा के साथ उस रथ से श्री कृष्ण जंगल में जहाँ पाण्डव थे, उनसे भेंट करने के लिए वहाँ चल दिये ।।6।।

ब्राह्मणों से घिरे हुये भाइयों के साथ जंगल में रहने वाले राजा युधिष्ठिर को देखकर श्री कृष्ण को बहुत दुःख हुआ ।।7।।

पाण्डव, श्री कृष्ण को नेत्र से अनुभव किये हुये अपने कष्टों के बारे में विवरण दिये। श्री कृष्ण ने वह रात पाण्डवों के साथ वहीं बितायीं ।।8।।

श्री कृष्ण कहते हैं - सुख- दुःखों के लिए अदृष्ट का नियमन करने वाले श्री हरि ही कारण हैं। इसके इतिहास में बहुत से दृष्टांत मिलते हैं। इस प्रकार अनेको हेतुवाक्यों से धर्म, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव को श्री कृष्ण ने सांत्वना दी। द्रौपदी से सत्यभामा ने समाधान की बातें कही। वहाँ मिले हुये हजारों ब्राह्मणों और पण्डवों की अनुज्ञा लेकर अभिमन्यु और सुभद्रा को रथ में बिठाकर द्वारका वापस आये ।।9-10-11।।

पाण्डवों के वियोग से खिन्न होकर श्री कृष्ण द्वारकापुरी में प्रवेश किये। वे शत्रु निग्रह करते

हुये धर्म से इस भूमि का पालन करते रहे ।।12।।

एक बार साम्ब, प्रद्युम्न, चारु, भानु, गद इत्यादि यादव कुमार विहार करते हुये एक उपवन में प्रवेश किये ।।13।।

वे वहाँ बहुत समय तक विहार करते हुये बाद में क्षुधा से पीड़ित होकर एक कुँए में पानी के लिए झाँककर देखे। उस कुँए में पानी नही था। किन्तु उन्होंने वहाँ एक विचित्र प्राणी को देखे ।।14।।

वे पहाड़ के समान एक बड़े गिरगिट को देखे। आश्चर्य चकित होकर उसको कुँए से ऊपर उठाने का प्रयास किये ।।15।।

कुँए में गिरा हुए उस प्राणी को चमड़े की रस्सियों से और अन्यान्य रस्सियों से बाँधकर ऊपर उठाना चाहे लेकिन उस कार्य में वे विफल रहे। तब वे श्री कृष्ण को कहे ।।16।।

जगज्जनक भगवान श्री कृष्ण वहाँ जाकर उस प्राणी को अपने बाएँ हाथ से उठाकर ऊपर लाये ।।17।।

भगवान के हाथ को स्पर्श होते ही वह गिरगिट अपने शरीर को छोड़कर सोने के रंग वाला अत्यन्त सुन्दर शरीर व स्वर्ग में पहनने योग्य वस्त्र अलंकार से भूषित एक सुन्दर पुरुष हो गया ।।18।।

श्री कृष्ण के पादारविन्द को नमस्कार करने के लिए जमीन पर दण्डवत नमस्कार किया। भगवान श्री कृष्ण उससे प्रश्न करते हुये सरीसृप शरीर धारी प्राणि जन्म प्राप्त करने के लिए कारण हुए उसके पाप कर्म के बारे में पूछा ।।19।।

श्री भगवान कहते हैं - हे भाग्यशाली, सुन्दर रुप वाले, तुम कौन हो, लगता है तुम एक देवोत्तम हो, किस पाप के कारण तुम्हे ऐसी यह दुरवस्था प्राप्त हो गई है ? हे मंगल रुप ! तुम ऐसी अवस्था को पाने के योग्य नही हो ।।20।।

तुम्हारी कथा को सुनने के लिए हम उत्सुक हैं। यदि तुमको पसन्द हो तो अपने बारे में कहो ।21।।

अनंत शरीरी श्री कृष्ण की इन बातों को सुनकर महादानी नाम से प्रसिद्ध वह सूर्य के समान चमकने वाली कीरीट वाला अपने सिर से श्री कृष्ण को नमस्कार करते हुये बोला ।।22।।

नृगराज ने कहा, प्रभु, मैं इक्ष्वाकु वंशीय नृग नाम का प्रसिद्ध राजा था। दानियों के नाम में मेरा भी नाम आप सुने होंगे ।।23।।

हे प्रभु, आप सबके अंतर्यामी कर्मसाक्षी हैं। आपका ज्ञान काल के प्रभाव से नष्ट होने वाला नही है। आपको मालूम नही ऐसा क्या है। तो भी आपके आदेशानुसार मैं बताता हूँ ।।24।।

भूमि में जितने बालू के कण हैं, आकाश में जितने तारे हैं, बरसात में गिरने वाली पानी की

जितनी धाराएं जितने होती हैं। मैं उतना गोदान कर चूँका हूँ ।।25।।

वाल्मीकि रामायण में नृगराज के बारे में ये कथा आती है। वह पुष्कर क्षेत्र में एक करोड़ गोदान किया था। वहाँ एक गोदान करने से करोड़ों गोदान देने का पुण्य आता है। इसी कारण नृगराज को अनंत कोटि गोदान करने का फल मिला। इसको 37 श्लोक में आगे कहते हैं।

वे गाय आयु में छोटी थी और बहुत दूध देने वाले थी। वे सारी शील, रुप, गुण से भरी थी। उनकी सींगें सोने और पाँव चाँदी के आभरण से अलंकृत थे। रेशम के वस्त्र को पहने थी। ऐसी बच्चों के साथ रहने वाली न्याय से सम्पादन किये हुये कपिला गायों का मैनें दान दिया था ।।26।।

सम्पद के साथ रहने वाले गुणशील, व्रतनिष्ठ, तप और अध्ययन करने वाले शिष्य किन्तु संसार में कष्ट सहन करने वाले युवक उत्तम ब्राह्मणों को चुनकर उनको भी वस्त्राभरण से अलंकृत करते हुये उनको उत्कृष्ट गायों को दान दिया था ।।27।।

गो, भूमि, सोना, घर, घोड़ा, हाथी दासियों के साथ तिल, चाँदी, बिस्तर, वस्त्र, रत्न, उपकरण और रथों को भी दान दिया था। यज्ञादि कर्म करते हुये वापीकूपों का निर्माण करते हुये जनोपयोगी सेवा कार्यों को किया था ।।28।।

एक बार एक ब्राह्मण की एक गाय गलती से हमारी गायों में आकर मिल गयी थी। मैं इसको न जानते हुये उस गो समूह को दूसरे ब्राह्मण को दान दिया ।।29।।

दान लिया हुआ वह ब्राह्मण जब गायों को लेकर जा रहा था। तब उस मिली हुयी गाय को उसका पहला मालिक ब्राह्मण उसको माँगने लगा। तब दूसरा ब्राह्मण नृगराज ने मुझे इस गाय को दिया है" इस प्रकार बोला ।।30।।

दोनों ब्राह्मण इस प्रकार वाद करते हुये अपने वादों का समर्थन करते हुये मेरे पास आकर विवाद किये। एक ने मुझसे कहा आपने यह गाय मुझे दान दिया हैं, दूसरे ने कहा आपने मेरी इस गाय को चोरी करके दूसरे को दिया हैं। इन दोनों की बातें सुनकर मैं समस्या में पड़ गया ।।31।।

धर्म संकट में पड़े हुए मैंने दोनों ब्राह्मणों का समाधान करने का प्रयास किया। एक गाय के बदले में एक लाख गायों को देने की बात किया ।।32।।

"पूज्य ब्राह्मण आप मेरे ऊपर अनुग्रह करें। मैं आपका सेवक हूँ। अनजान से यह भूल किया हूँ। इस धर्म संकट से मुझको पार कीजिए। अशुचि नरक में गिरने से मुझको बचाइए" ।।33।।

इसके उत्तर रुप में वह ब्राह्मणवर्य ने मुझको शाप देने की बात बोला। मुझे और दूसरी गाय की आवश्यकता नही। अन्य दस हजार गाय दिये तो भी मैं उसको नही लूँगा। ऐसे बोलकर वह गाय को

छोड़कर वहाँ से चला गया। दूसरा ब्राह्मण भी मुझको कोसते हुये वहाँ से चला गया ।।34।।

``एक लाख गाय को देता हूँ।`` राजा की इस बात का अर्थ लाख नही किन्तु हजारों इस प्रकार अर्थ होता है। एक के बदले में हजारों को स्वीकार करने से वह गाय का दान नही होता वरन् गाय का व्यापार होता है। गाय का व्यापार शास्त्र से निषिद्ध है। यह पाप कर्म मैं नही करूँगा। यह बोलते हुये या तो गाय को मुझको दो नही तो तुम ही उसको रख लो। यह बोलते हुये वह ब्राह्मण चला गया। दान लिया हुआ दूसरा ब्राह्मण राजा से कहता है - हे राजन् वह गाय तुमने अपहृत किया है। उसको मैं दान में स्वीकार किया तो वह भी अपहरण होगा। उसके बदले में और गाय लिया तो भी प्रतिग्रह दोष से वह भी अनुचित होती है। इस पाप की गाय को तुम ही रखो। इस प्रकार बोलते हुये दोनों ब्राह्मण जाते वक्त इस पाप कर्म के लिए तुम गिरगिट बनकर हजार वर्ष भूमि मे रहो। इस प्रकार वैर से शाप देते हैं। यह महाभारत में आता है। वाल्मीकि रामायण मे है कि ब्राह्मणों के विवाद का निर्णय करने के लिए राजा उनको दर्शन नही दिया। इसी कारण वे ब्राह्मण हजार वर्ष काल तक अदृश्य होकर भूमि में रहने का शाप देते हैं। (उत्तरकाण्ड अध्याय - 53) भागवत के अनुसार राजा दर्शन देता है किन्तु न्याय निर्णय करने में विफल होता है। एक हजार वर्ष इस प्रकार अदृश्य होकर रहने के बाद श्री कृष्ण के अवतार के काल में गिरगिट के रुप में दिखता है।

उंछ वृत्ति से जीवन चलाने वाला एक दरिद्र ब्राह्मणोत्तम अपनी एक मात्र होमधेनु खो जाने के बाद अनेक देशों में अनेक वर्ष तक उसको ढूंढता रहा। अंत में उसने उस गाय को नृगराज के गो समूह में पाया। नाम से पुकारा तो वह गाय अपने पहले यजमान के पास दौड़कर आया। दोनों ब्राह्मणों में इसके बारे में विवाद हुआ। राजा उसका परिहार करने में असमर्थ हुआ। धर्म संकट में पड़ा हुआ राजा उन्हीं ब्राह्मणों से रक्षा करने के लिए प्रार्थना किया। वे ब्राह्मण गिरगिट का जन्म लेने का शाप देते हुये राजा के ऊपर अनुग्रह ही किये, क्योंकि हजार वर्ष के बाद श्री कृष्ण के दर्शन से उसको मोक्ष मिला। इस बारे में नृगराज आगे कहता है।

"मेरे अंत काल में भगवान आपकी इच्छा के अनुसार मैं मर गया। उस संदर्भ में यमदूत मुझको लेकर यमालय को चले गये" ।।35।।

हे देव-देव जगत्पति ! वहाँ यमराज ने मुझसे पूछा - तुम पहले पुण्य का फल भोगते हो या पाप का ? ।।36।।

तुमने बहुत दान दिया है। उसका फल बहुत है लेकिन पाप भी किया है। इसके लिए मै पहले पाप के फल को भोगने के लिए सिद्ध हुआ। यमराज ने मुझको उस कुँए में गिरा दिया ।।37।।

राजा के पुण्य कर्म की यम धर्म पहले स्तुति किये, बाद में कहे - अज्ञान से किये हुए पाप कर्म के फल को पहले भोगो। यह वाल्मीकि रामायण में आता है।

प्रभु मैं उस दिन से गिरगिट बनकर इस कुँए में गिर गया था। हे केशव, देव-देव, जगन्नाथ, गोविन्द, पुरुषोत्तम आप ब्राह्मणों के प्रिय हैं, बड़े दानी हैं मैं दास होकर आपके दर्शन करना चाहता था। उस दिन से आपका स्मरण करता था। कभी भी मुझे आपका विस्मरण नही हुआ ।।38।।

हे नारायण, हृषीकेश, पुण्यश्लोक, अच्युत, अव्यय, प्रभु, हे श्री कृष्ण, देव लोक जाने के लिए मुझे अनुज्ञा दीजिए। मैं कही भी रहूँ सदाकाल मेरा मन आपका पादस्मरण करता रहे ।।39-40-41।।

सारे जगत के सृष्टि करने वाले गुणपूर्ण, सर्वशक्त, गोपालक, वसुदेव के पुत्र आपको मैं नमस्कार करता हूँ ।।42।।

नृगराज इस प्रकार बोलकर श्री कृष्ण की परिक्रमा करते हुये उनके चरणों को अपने सिर से छूते हुये उनकी आज्ञानुसार सारे लोग के देखते-देखते विमान पर चढ़कर स्वर्ग चले गये ।।43।।

ब्राह्मणों को इष्ट दैव मानने वाला धर्म स्वरुप देवकीसुत श्री कृष्ण क्षत्रियों को और अपने परिवार को नीति नियम सिखाते हुये बोले ।।44।।

ब्राह्मणों की सम्पत्ति कितनी भी छोटी हो उसको कोई अपहृत नही करे। वह छोटी हो तो भी तेजस्वी अग्नि भी उसका पाचन नही कर सकता। तो अहंकारी राजा लोग उसको कैसे कर सकते हैं ।।45।।

मैं हलाहल को विष नही मानता। हलाहल का भी एक परिहार है। किन्तु ब्राह्मणों की सम्पत्ति विष से भी बढ़कर है। उसका अपहरण करने वाले को कोई परिहार नही है ।।46।।

विष खाने वाले एक को मारता है। आग को पानी से बुझा सकते हैं किन्तु ब्राह्मणों की सम्पत्ति अरणिकाष्ठ मूल बनकर पूरे कुल को नाश करती है ।।47।।

चाहे तो ले लो ऐसे दाक्षिण्य को यदि स्वीकार किये तो भी वह ब्राह्मणत्व उसको, उसके पिता को और उसके बाबा को भी नरक में ढकेल देता है। सम्मति के बिना ब्राह्मणस्व को बलात्कार से उपभोग किया तो पीछे और आगे की दस-दस पीढ़ी नरक में गिर जाती हैं ।।48।।

राजा लोग राज्य और अधिकार के मद से अंधे बनके स्वयं नरक में गिरने का विचार नही

करते। ब्राह्मणस्व को अपना समझने वाले बड़े मूर्ख होते हैं ।।49।।

पत्नी, पुत्र वाले उत्तम श्रेष्ठ ब्राह्मण की सम्पत्ति को अपहरण करे तो उनकी आँखों के आँसू जितने धूलि कणों को भिगोते है, उतने वर्ष तक ब्राह्मण की सम्पत्ति का अपहरण करने वाले राज वंशज नरक में ताप का अनुभव करते हैं ।।50-51।।

स्वयं राजा द्वारा ब्राह्मणों को दी हुई अथवा अन्य राजाओं से दी सम्पत्ति को अपहरण करने वाला साठ हजार वर्ष मल में रहने वाले कीट का जन्म पाता है ।।52।।

हे राजाओं, याद रखो, ब्राह्मण की सम्पद को खाने वाला अल्पायुषि होता है, पराजय पाता है, स्थान भ्रष्ट होता है। वे उद्वेग के वश होकर दुःख भोगते हैं। ऐसे ब्राह्मण की सम्पद को मैं नही चाहता ।।53।।

हे मेरे प्यारों, ब्राह्मण अपराध करे तो भी उससे द्रोह मत करो। वह हिंसा करे अथवा शाप दें तो भी उनका सम्मान करें ।।54।।

जैसे मैं सदाकाल समाधान से सारे ब्राह्मणों को नमस्कार करता हूँ, वैसे तुम भी नमस्कार करते रहो। जो नमस्कार नही करते वह शिक्षार्ह हैं ।।55।।

यदि ब्राह्मणों की सम्पद को अनजान में अपहरण किये तो भी वह अपहरण करने वाले को नृगराज के समान उनको नीचे गिराता है ।।56।।

इस प्रकार सकल लोकपावन भगवान मुकुंद द्वारका वासियों को उपदेश देकर अपने राजगृह में प्रवेश किये ।।57।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजन् !, सज्जनों का संग कभी भी निष्फल नही होता। सज्जन ब्राह्मणों के संग से नृगराज श्री कृष्ण का दर्शन पाया। नरक से विमुक्त हो गया ।।58।।

सज्जनों का स्पर्श, दर्शन, नामोच्चारण और स्मरण ये सारे गंगादि तीर्थ जल के समान पाप नाशक हैं ।।59।।

हे शत्रुनाशक परीक्षित ! नृगराज के इस चरित्र को सुनने के बाद तुम भी सदा के लिए सज्जनों की सेवा करते रहो। यदि तुम सद्गति को चाहते हो तो ब्राह्मणों की सम्पदाओं का कभी भी अपहरण न करो ।।60।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में नवासीवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - नब्बे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे परीक्षित ! पूज्य बलराम नन्द गोकुल में रहने वाले बन्धुओं को देखने के कुतूहल से रथ में सवार होकर वहाँ चले ।।1।।

उनको बहुत दिनों से देखने के लिए आतुर रहे गोप-गोपियों ने उनका आलिंगन किया। अपने माता-पिता यशोदा और नन्द के पास जाकर उनको प्रणाम किये। वे आशिर्वाद देते हुये उनका अभिनन्दन किये ।।2।।

जगदीश्वर बलराम ! तुम अपने भाई के साथ हमारी सदाकाल के लिए रक्षा करते रहो। इस प्रकार बोलते हुये अपने जंघे के ऊपर बिठाकर आलिंगन करते हुये आँखों की आसुओं से उनका अभिषेक किये ।।3।।

बड़े लोगों को बलराम विधिपूर्वक प्रणाम किये, छोटे का अभिवादन स्वीकार किये। अपने वय और प्रीति के अनुसार परस्पर अभिवादन-प्रतिवादन किये ।।4।।

विश्रांति लेने के बाद आराम से बैठे हुये बलराम के साथ गोपालक हास्यविनोद करते हुये योगक्षेम के बारे में पूछे ।।5।।

कमल के समान बड़ी-बड़ी आँखों वाले श्री कृष्ण में अपना सर्वस्व अर्पण किये हुये गोपालक प्यार के आवेग से अवरुद्ध हुये कण्ठ से कुशल क्षेम का प्रश्न किये। तब बलराम ने उन गोपालकों से अपनेपन से सकुशलता का वार्ता किये ।।6।।

गोपालक पूछते हैं - हे बलराम ! वहाँ हमारे सारे बंधु क्षेम से हैं न ? आप भी अपनी पत्नी-पुत्रों सहित क्षेम से रहकर हमारी याद करते हैं न ? ।।7।।

दैवी कृपा से पापी कंस मर गया। उसी दैवी कृपा से हमारे बंधु जन उसकी पीड़ा से मुक्त हो गये। शत्रुओं को जीतकर या तो उनको मारकर हम आराम से अब द्वारका में रहते हैं। इस प्रकार बलराम कहे ।।8।।

बलराम के इस संदर्शन से गोपिकाएँ पुलकित होकर हँसते हुये पूछीं - श्री कृष्ण सुख से हैं न? नगर की स्त्रियों से उसका प्यार बढ़ गया है न ? ।।9।।

कृष्ण यहाँ रहने वाले बंधुओं की, अपने माता-पिता की याद करते हैं क्या ? उस महाबाहु की हमने जो सेवा की है उसकी याद रखी है क्या ? ।।10।।

माता-पिता, सहोदर-सहोदरी, पति-पुत्र इत्यादि न छोड़ सकने वाले सम्बन्धों को हमने जिसके प्यार के लिए छोड़ा था, वह एक ही क्षण में हम सब को छोड़कर, हमारे प्यार को भूलकर यहाँ से चला गया। उसके बातों के ऊपर हम विश्वास रखे। हम गरीब गाँव वाली गवार स्त्रियाँ हैं। उसकी बात के ऊपर कौन विश्वास नही करेगा ? ।।11-12।।

किन्तु अन्य नगर की स्त्रियाँ उसकी सुन्दर मंदहास्य युक्त एक नजर से कामातुर होती हैं। विचित्र बात करने वाले चंचल स्वभाव वाले कृतघ्न श्री कृष्ण की बातों को कैसे विश्वास करतीं हैं ।।13।।

हे सखी, हमारा उसके बारे में बाते करने का क्या प्रयोजन होता है ? हमारे बिना ही यदि उसका समय गुजरता है तो हम भी उसके बिना ही समयाव्यय करें ।।14।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार गोपियाँ श्री कृष्ण की बात, हँसी, तिरछा नजर, चाल-चलन, प्रेम-आलिंगन के बारे में याद करते हुये रोने लगीं ।।15।।

पूज्य बलराम स्त्रियों का समाधान करने में भी निपुण हैं। वे अपना मन लुभाने वाले श्री कृष्ण के संदेशों को उनको बताते हुये संतुष्ट किए ।।16।।

चैत्र, वैशाख ये दो मास पूज्य बलराम गोपियों के साथ दिन-रात संतोष से गोकुल में वास किये ।।17।।

पूर्णिमा की चाँदनी में श्वेत कमल की सुगंध युक्त वायु से भरे हुए यमुना नदी के तटवर्ती उद्यानों में बलराम गोपियों के साथ विहार किये ।।18।।

वरुण ने वहाँ वारुणि देवी को भेजा। वह देवी वृक्ष के कोटरों को विभिन्न मद्यों से भर दीं। उस वारुणि नाम के मद्य की सुगंध उस उद्यान में सम्पूर्ण रीति से भर गया ।।19।।

क्षीर सागर के मथन काल में वारुणि नाम का मद्य समुद्र से उत्पन्न हुआ था। उसकी अभिमानी वारुणि देवी सागर राज बरुण की पुत्री है। यह वारुणि शेषदेव की नियत पत्नी है। उसको सागर राज ने यहाँ भेजा था। वह वारुणि देवी अपने पति रुप बलराम के उदेश्य से सुगंध भरित वारुणि मद्य को वृक्षों के कोटरों मे भर कर रखी।

उस मद्य का सुगंध हवा में फैल रही थी। बलराम उसको सूँघते हुये वृक्षों के पास आकर गोपियों के साथ स्वयं भी मद्यपान किये ।।20।।

आकाश में दुंदुभियों ने मंद्रस्वर किया। गन्धर्वों ने सुन्दर करों से पुष्प बरसाये। ऋषि-मुनियों ने संतोष से बलराम के पराक्रम की स्तुति की ।।21।।

हलायुधधारी बलराम के सच्चरित्र को स्त्रियों ने गान रुप मे गाया। बलराम मद्यपान से मदमत्त होकर इन्द्र के ऐरावत के समान वन में संचार किये। मंगलकर एकमेव कर्ण कुण्डल को बलराम धारण किये हैं। गले में वैजन्ती माला धारण किये हैं। हिम कण के समान ललाट पर स्वेदकण मोती के समान बलराम के मुख को शोभायमान कर रहा है, ऐसे बलराम वन में मत्त होकर संचार किये ।।23।।

सर्वशक्त बलराम जलक्रीड़ा करने हेतु वे जहाँ खड़े हैं उसी स्थान पर यमुना जी को बुलाये। यमुना जी मत्त बलराम के पास नही गई। उससे क्रुद्ध बलराम अपनी बात को न मानने वाली यमुना जी को अपने हल से खींचने लगे। वे बोले, हे पापिनी, मेरे बुलाने पर भी तुम नही आ रही हो ।।24-25।।

तुम स्वेच्छाचारी हो। इस हल से तुम्हे टुकड़े-टुकड़े करूँगा। बलराम की इस गर्जना को सुनकर यमुना डर गई। बलराम के पास आकर भय भक्ति से उनकी स्तुति करने लगी ।।26-27।।

हे महाबाहु बलराम जी ! मैं आपके पराक्रम को जान नही पाई। हे जगत्पति ! आप अपने सिर में इस भूमण्डल को धारण करने वाले आदिशेष हैं ।।28।।

हे पूज्य भक्त वत्सल जगत्पति ! मैंने आपकी महिमा को न जानते हुये आपका अपमान किया है। मैं आपकी शरण मे आई हूँ। कृपा करके मुझे छोड़ दीजिए ।।29।।

इस प्रकार यमुना जी की प्रार्थना को सुनकर पूज्य बलराम उनको क्षमा करते हुये छोड़ दिये। मदभरित हाथी जैसे अन्य हाथियों के साथ जलक्रीड़ा करता है वैसे ही उन्होंने गोपियों के साथ जलक्रीड़ा की ।।30।।

मनों तृप्तिपर्यन्त जलक्रीड़ा करने के बाद बाहर आये बलराम को यमुना ने नीलाम्बर प्रदान किया। लक्ष्मी जी ने बहु-मूल्यवान आभूषण और कमल का हार दिया ।।31।।

कभी भी न मुरझाने वाली कमल की माला को वरुण लक्ष्मी के हाथ से बलराम को भेजते हैं। कान्ति शब्द यहाँ लक्ष्मी का अर्थ होता है। यह विष्णु पुराण और हरिवंश की बात है।

नीलाम्बर को धारण करते हुये सोने के रंग का कमल माला को पहनकर बलराम गोपियों की सभा में इन्द्र के ऐरावत के समान दिखे ।।32।।

हे राजन् ! महापराक्रमी बलराम पराक्रम को दिखाने के लिए जिस मार्ग से यमुना को खींचे थे उसी मार्ग से आज भी यमुना बहती हैं। कोई भी आज इसको देख सकता हैं ।।33।।

इस प्रकार गोकुल की स्त्रियों के संग विहारों से आकृष्ट मन वाले बलराम के दो महीने एक ही दिन के समान मथुरा में बीत गये ।।34।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में नब्बेवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - इक्यानबे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - बलराम अद्भुत शक्ति वाले, अद्भुत कार्य करते हैं। वे अप्रमेय शेष के अवतार रुप हैं। वे बहुत समर्थ हैं। उनके अन्य शौर्य भरित कार्यों के बारे में सुनना चाहता हूँ ।।1।।

श्री शुकदेव कहते हैं - विविद नाम का एक वानर रहता था। वह मयंद का छोटा भाई और बहुत पराक्रमी था। त्रेतायुग में वह सुग्रीव का मंत्री था। अब वह नरकासुर का मित्र बना है ।।2।।

नरकासुर जब मर गया। तब अपने मित्र के रण के परिहार के लिए वह वानर क्रोध से यादवों के पुरों, ग्रामों, घरों, घोषों को आग से जलाने लगा। कई स्थानों से पहाड़ों को उठा लाकर श्री कृष्ण की आवास भूमि आनर्त देश का नाश करने लगा ।।4।।

कई बार समुद्र के बीच में खड़े होकर दस हजार हाथी के बल वाला वह वानर दोनों हाथों से पानी को फेंकते हुये समुद्र के तट पर रहने वाले गाँवों को डुबाने लगा ।।5।।

वह दुष्ट आश्रमों में रहने वाले ऋषियों द्वारा उत्पन्न की हुई वनस्पतियों को उखाड़कर नष्ट करते हुये यज्ञ कुण्डो में मलमूत्र डालकर विनाश करने लगा ।।6।।

स्त्री और पुरुषों को दुष्टता पूर्वक पकड़कर पहाड़ों में, गुफाओं में रखते हुये उनके प्रवेश द्वारों दरवाजों को पत्थरों से, पर्वतों के शिखरों से बन्द करके रखा। कुड्य नाम का कीट ऐसे ही अन्य कीटों को बन्द करके रखता है ।।7।।

इस प्रकार आनर्त देश में हिंसा करते हुये कुलीन स्त्रियों की लज्जा हरण करते हुये एक बार मधुर संगीत को सुनकर रैवत पर्वत पर आया ।।8।।

वहाँ सर्वांग यदुपति बलराम कमल माला धारण करके स्त्री समूह में बैठे थे ।।9।।

उस समय बलराम मद्यपान किये थे। उनकी आँखें मदमत्त होकर बोझिल हो गई थी। उनका शरीर मदजल को बहाने वाले हाथी के समान दिखता था। बलराम सुन्दर गायन कर रहे थे ।।10।।

वह दुष्ट वानर विविद वहाँ आकर वृक्ष के ऊपर बैठकर मुख से किल-किल शब्द करते हुये

वृक्षों को हिलाकर आवाज करते हुये अपने को प्रदर्शित किया।।11।।

हास्य प्रिय बलराम की प्रिय गोपिकाएँ उस कपि की स्वाभाविक चपलताओं को और उध्दटपन को देखकर हँसने लगीं ।।12।।

इससे प्रोत्साहित वह विविद उनके सामने भौंहों को नचाने, आगे खड़े होने और अपने पृष्ठ को दिखाने इस प्रकार का अवहेलना पूर्ण कार्य करने लगा ।।13।।

बलराम क्रुद्ध होकर उस वानर को पत्थर से मारे। बलराम आयुध फेकने में तज्ञ हैं, तो भी वह बन्दर उससे बचकर बलराम के पास आकर उनके मद्य के कलश को उठाकर फाड़ दिया, जलक्रीड़ा के बाद स्त्रियों द्वारा सुखने को डाले हुये वस्त्रों को फाड़ दिया। हाथ को जंघा पर मारते हुये बलराम को युद्ध का आह्वान देते हुये उनके क्रोध को और बढ़ाया ।।14-15।।

मयंद और विविद दोनों नासत्यदस्त्र नाम के अश्विनी देवता के अंश से उत्पन्न होकर श्री राम जी की बहुत बड़ी सेवा किये। उससे अपनी योग्यता से ज्यादा पुण्य का सम्पादन किये। उसका नाश करने के लिए उनमें असुरावेश उत्पन्न हुआ। समुद्र मंथन के समय देवताओं को दैत्यों के साथ युद्ध करना पड़ा। उस समय बचे हुए अमृत को मयंद और विविद के हाथ में दिया गया था। उस समय दोनो ने देवताओं की अनुज्ञा के बिना उसमें से थोड़े अमृत पी लिया। इस अपराध के कारण उनमें असुरावेश हुआ। ब्रह्मवर के कारण और अमृत पीने के बल से वे अवध्य बने हुए थे। उनको मारने के लिए भगवान श्री कृष्ण बलराम को भेजे। श्री कृष्ण के वर बल से बलराम पहले मयंद को और दूसरे दिन विविद को मार डाले। उनमें आविष्ट असुरांश तमस में गिर गये। वे शुद्ध हो अधिक पुण्य को खोकर अपने मूल रुप को पा लिये। यह कथा तात्पर्य निर्णय में आती है। (22-235) भागवत में केवल विविद की कथा आती है। उसका द्विविविद नाम भी है।

ब्रह्मवर और अमृत प्राशन के कारण से बलिष्ठ और मदोन्मत्त विविद बलराम के सामने अपचार करने लगा। उसकी इस अविनय व उसके किए हुए विनाश को देखते हुये बलराम क्रुद्ध होकर शत्रु के नाश की इच्छा से अपने हलायुध और मुसल को उठाये। महापराक्रमी विविद एक पहाड़ को हाथ में उठाकर बलराम के सामने आकर उस पहाड़ को बलराम के सिर के ऊपर फेंका। अपने सिर के ऊपर आने वाले उस पहाड़ को देखकर मुसल से उस पहाड़ को बलराम ने चकनाचूर

कर दिया। बाद में आक्रोश से बलराम ने अपने मुसल से विविद के सिर पर मारा। उस मुसल की मार से विविद का सिर फट गया और उसके अन्दर रहने वाला मस्तिष्क बाहर निकल आया। विविद इस वार को भी सहन करते हुये बलराम के सामने आया। उस वक्त विविद लाल वस्त्र पहने हुए पहाड़ के समान दिखता था। सिर से रक्त बह रहा था। विविद ने आक्रोश से एक पहाड़ को उठाकर बलराम के ऊपर फेंक दिया, बलराम ने उस पहाड़ के सौ टुकड़े कर डाले। विविद एक वृक्ष को मूल सहित उठाकर उससे बलराम को मारा बलराम उस वृक्ष को भी चकनाचूर किये ।।16-17-18-19-20-21।।

इस प्रकार विविद पूज्य बलराम के साथ युद्ध करता रहा। वह एक-एक वृक्ष को उखाड़कर बलराम के ऊपर फेंकता था। बलराम उनको अपने मुसल से नष्ट करते थे। इस प्रकार विविद ने उस वन के सारे वृक्षों को उखाड़कर बलराम के ऊपर फेंक दिया। बलराम उन सबका नाश किये। इस प्रकार उस जंगल के सारे वृक्ष नष्ट हो गये ।।22।।

बाद में आक्रोशित विविद बलराम के ऊपर बड़े-बड़े पत्थरों को फेकनें लगा। बलराम उन सबको निरायास चूर-चूर कर दिये ।।23।।

विविद अपने ताड़वृक्ष के समान लम्बे-लम्बे दोनों हाथों से मुट्ठी बाँधकर बलराम की छाती पर जोर से मारा ।।24।।

बलराम भी आक्रोशित होकर अपने मुसल और हल को छोड़कर दोनों हाथ से विविद के दोनों कंधों के ऊपर अपने बल का प्रयोग करते हुये मारे। उससे विविद के मुख से रक्त बहने लगा। विविद भूमि पर गिर कर मर गया ।।25।।

हे राजन्! विविद जब गिर गया तब महा पर्वत रैवत समुद्र में हवा से पीड़ित नौका के समान हिलने लगा ।।26।।

इस युद्ध को देखने वाले आकाश मे एकत्र हुये देवतागण, सिद्धगण और महर्षियों ने फूल बरसाये, जय घोष किये, नमो कहते हुये बलराम की स्तुति किये ।।27।।

इस प्रकार इस जगत में रहने वालों को उपद्रव करने वाले विविद को मार कर बलराम मुक्त किये तथा लोगों द्वारा अपना संकीर्तन किए जाते हुए द्वारका मे प्रवेश किये ।।28।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में इक्यानबे अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बानबे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजन्, युद्ध में विजयी होने वाला जाम्बवति पुत्र शाम्ब स्वयंवर मे दुर्योधन की पुत्री लक्षणा का अपहार किया ।।1।।

साम्ब मन्मथ का अवतार है। मन्मथ ही षण्मुख बनकर अवतार लेता है। वही ब्रह्माजी के आवेश युक्त होकर श्री कृष्ण द्वारा जाम्बवति से साम्ब नाम से जन्म लिया था। दुर्योधन की पुत्री लक्षणा रति की अवतार मानी जाती है। वह साम्ब की नियत पत्नी है। जब दुर्योधन लक्षणा के स्वयंवर की घोषणा किया तब साम्ब इसको सहन न करते हुये बलपूर्वक लक्षणा का अपहरण किया। क्षत्रियों के लिए बलपूर्वक कन्या का परिग्रहण करना भूषण माना जाता है। लक्षणा का लक्ष्मणे नाम भी है।

इससे कौरवों में यादवों के प्रति क्रोध बढ़ गया। वे परस्पर बोले - ये बालक दुर्विनीत है। हमको धिक्कारते हुये उसने अपने चाहने वाली लड़की को बलपूर्वक से अपहरण किया है ।।2।।

इस दुर्विनीत को बंधन में रखना चाहिए। ये यादव हमारे लिए क्या करने वाले हैं। वे हमारे अनुग्रह से ही बड़े हो गये हैं। हम जो भूमि छोड़े हैं, उसके राजा बने हैं ।।3।।

अपने पुत्र को जेल में रखा है। यह समाचार सुनकर यादव यदि आये तो उनको हम दन्त विहीन साँप जैसे बनायेंगे ।।4।।

इस प्रकार कर्ण के साथ एकांत मे दुरालोचना करते हुये भूरीश्रव, दुर्योधन, दुःशासन, और शकुनी कीर्तिशाली विदुर अथवा गान्धारी से न पूछते हुये, कुरुवंश के बड़े लोगों से समालोचना न करते हुये साम्ब को बंदी बनाने के लिए पीछा किये ।।5-6।।

महारथी साम्ब अपना पीछा करने वाले कौरवों को देखकर अकेले ही अपने बड़े धनुष को लेकर सिंह के समान कौरवों के सामने खड़ा हो गया ।।7।।

कर्ण को आगे करते हुये सारे कौरव धनुष लेकर क्रोध से साम्ब के सामने आये और उसको घेर कर ठहरो ! खड़े हो जाओ ! बोलते हुये बाणों की वृष्टि किये ।।8।।

हे राजन् ! कौरवों के इस विरोध को साम्ब सहन नही कर सका। दण्ड से मार खाए हुये साँप के समान आक्रोश करने लगा ।।9।।

साम्ब अपने बड़े धनुष से टंकार करते हुये अश्व दल के साथ आये हुये कर्ण इत्यादि प्रत्येक महावीर के ऊपर एक साथ बाणों की वृष्टि किया ।।10।।

चार-चार बाणों से उनके घोड़ों को, एक बाण से उनके सारथी को मारा। महारथियों ने, रथी साम्ब के इस साहस की प्रशंसा की ।।11।।

वे चारों मिलकर साम्ब के चारों घोड़ों को मार दिये, एक ने सारथी को मारा। एक ने उसके धनुष को टुकड़ा कर दिया। इस प्रकार उसके रथ, सारथी इत्यादि का नाश किये ।।12।।

कौरव इस प्रकार युद्ध में साम्ब को बहुत कष्ट से रथहीन करते हुये बंधक बनाकर अपनी लड़की के साथ विजयशाली होते हुये उसको लेकर अपने नगर में प्रवेश किये ।।13।।

हे राजन्! नारद जी से इस समाचार को पाये यादवों ने क्रोधित होकर आक्रोश से उग्रसेन का आदेश पाकर कौरवों के साथ युद्ध करने चले ।।14।।

युद्ध करने से और भी विरस हो जाता है। इसलिए बलराम कौरवों से युद्ध करना नही चाहे। कौरवों के मन में भी यही विचार था। इसलिए यादवों को समझाते हुये सैन्य को पीछे छोड़ ब्राह्मण और कुल के प्रमुखों के साथ मिलकर ग्रहों से घिरे हुए चंद्र के समान शोभायमान बलराम सूर्य के समान रथ में बैठकर हस्तिनापुर चले ।।15-16।।

बलराम हस्तिनापुर पहुँचकर नगर के बाहर स्थित उद्यान में ठहरकर कलह को समाप्त करने के उ-श्य से शान्ति दूत बनकर उद्धव को धृतराष्ट्र के पास भेजे। उद्धव धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, बाल्हिक और दुर्योधन को प्रणाम करते हुये बलराम के आगमन के बारे में बतायें ।।17-18।।

अपना प्रिय बलराम आया है। यह समाचार सुनकर संतुष्ट हुये कौरव लोग उद्धव का सत्कार करते हुये मंगलद्रव्यों के साथ बलराम के पास आये ।।19।।

बलराम से भेंटकर विधिपूर्वक उनको अर्घ्य पाद्य दिये। बलराम के सामर्थ्य को जानने वाले उनको प्रणाम किये ।।20।।

बंधुओं के परस्पर योगक्षेम की बातों के बाद बलराम धैर्य से अपनी बातों को रखते हैं ।।21।।

प्रभु उग्रसेन महाराज की आज्ञा को आप लोग ध्यान पूर्वक सुनें, सुनकर उसको जल्दी से आचरण में लायें ।।22।।

महाराज ने कहा हैं - तुम बहुत लोगों ने मिलकर अधर्म पूर्वक धर्मनिष्ठ, एकांगी हमारे साम्ब को बंधक बनाया है। आप हमारे बांधव हैं। इसी कारण हम उसको सहन कर रहे हैं ।।23।।

वीर्य, शौर्य और बल से भरे हुए अपने सामर्थ्य के लिए योग्य बलराम की बातों को सुनकर कौरव लोग कोपाविष्ट हुये ।।24।।

हम यह क्या सुन रहे हैं। यह काल का प्रभाव है। इसको कोई पार नही कर सकता। पाँव में रहने वाला जूता सिर पर चढ़ना चाहता है ।।25।।

यह यादव हमारे बांधव बन गये हैं। इसी कारण वे हमारे साथ बैठते हैं, खाते हैं, सोते हैं। हम ही उनको राज्यसिंहासन देकर अपने समान बना दिये ।।26।।

ये हमारे संबंधी हैं इसलिए हम सहन करते रहे। हमारे कारण इनको छत्र चामर व्यजन, शंख, किरीट, आसन इत्यादि लभ्य है। हमारे निमित्त इनका उपभोग वे कर रहे हैं ।।27।।

अब इन लोगों को इन राज्य चिह्नों से बस है। साँप को अमृत के समान दूध पिलाये तो वह दूध पिलाने वाले को ही अपाय करता है। ऐसे राज्य चिह्नों को दिये हुये, हमे ये विरोध कर रहे हैं। हमारे अनुग्रह से अभिवृद्धि पाये हुये ये लोग आज निर्लज्ज होकर हमारे ऊपर शासन् कर रहे हैं ।।28।।

इस प्रकार के राज्यवैभव को भीष्म, द्रोण, अर्जुन आदि कुरू प्रमुख नही दिये तो अन्य लोग कैसे पाते हैं। सिंह के मुँह में गिरी हुयी बकरी स्वयं क्या खा सकती है ।।29।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजन्, उत्तम कुल में जन्म पाये हुये शूरवीर बन्धुओं को और बड़े राजसम्पद को पाये हुये कौरव अति अहंकार में बलराम से नगर के बाहर के अरण्य में ही दुष्ट वचनों को कहकर नगर में वापस चले गये ।।30।।

कौरवों के इस दुर्वर्तन को देखकर, जिन बातों को नही सुनना था ऐसी बातों को बार-बार सुनकर क्रोध से आग बबूला हुए बलराम अट्टहास करते हुये कहते हैं ।।31।।

निश्चय ही ये दुष्ट अहंकार से मत्त हो गये हैं। वे शान्ति नही चाहते। भैंसा केवल डण्डों की बात सुनता है। ऐसे लोगों के साथ दण्ड नीति को व्यवहार में लाना पड़ता है ।।32।।

छी ! मैने अच्छा नही किया। हमारे लोग कुपित थे। स्वयं श्री कृष्ण भी कुपित थे। मैं उनका समाधान न करते हुये यहाँ इन लोगों का समाधान करने आ गया। यह गलती हुई ।।33।।

इन कौरवों की बुद्धि ठीक नही है। वे युद्ध चाहने वाले हैं, दुष्ट और दुरभिमानी हैं। शान्ति को चाहते हुये अपने पास आये हुये मुझको ये बुरी बात बोल चुके हैं ।।34।।

इन्द्रादि लोक पालक भी राजा उग्रसेन की आज्ञा को मानते हैं। भोज, वृष्णि, अंधक इन सबके अधिपति राजा उग्रसेन इनको मान्य नही हैं ।।35।।

देव लोक की सुधर्म सभा में बैठने वाले देवताओं के पारजात वृक्ष को अनुभव करने वाले भगवान श्री कृष्ण, इनकी आँखों में सिंहासन के लिए अनर्ह हैं ।।36।।

जिनके पादद्वय का साक्षात् अखिलेश्वरी लक्ष्मी देवी पूजन करती हैं, वह लक्ष्मीपति श्री कृष्ण राज्य चिह्न पाने के लिए इनकी दृष्टि में अयोग्य हैं ।।37।।

जिसके पाद कमल के धूलि को समस्त लोक पालक मस्तक पर धारण करते हैं, जिनका पाद जल गंगादि तीर्थ बनता है, ब्रह्मा, रूद्र और शेष इत्यादि उनके एक अंश से बनते हैं और उनकी निरन्तर श्रद्धा से सेवा करते हैं, ऐसे राजा कृष्ण को सिंहासन के योग्य ये नही मानते ।।38।।

ये कहते हैं - यादवों को इन्होंने राज्य दिया हैं। हम पादत्राण हैं, वे सिर बन गये हैं ।।39।।

ऐश्वर्य के मद में मत्त ये अहंकारी जो असम्बद्ध बातें करते हैं, उसको कौन सह सकता है? उसमें भी उनको शिक्षित करने में जो समर्थवान् है, वह भला कैसे सहन करेगा ।।40।।

मैं अब इस भूमण्डल पर एक भी कौरव को नही रहने दूँगा। ऐसा कहते हुये अग्नि के समान

प्रज्वलित बलराम अपने हल को हाथ में लेकर खड़े हो गये ।।41।।

बलराम अपने हल से हस्तिनापुर को उखाड़कर गंगा में फेकना चाहते थे ।।42।।

पानी में जैसे नाव हिलता है, ऐसे ही हस्तिनापुर हिलने लगा। लगता था वह गंगा जी में समा जायेगा। कौरव देख रहे हैं कि बलराम अपने हल से हस्तिनापुर को खींच रहे है। इससे कौरव डर गये ।।43।।

डरे हुये कौरव जीने की आशा से लक्षणा और साम्ब को आगे करते हुये दोनों हाथ जोड़कर बलराम के सामने आये ।।44।।

हे राम-राम, आप सर्वाधार सर्वेश्वर हैं। आपके सामर्थ्य को हम समझ नही पाये। हम कुटुम्बी मूर्ख हैं। हमें हमारे अपराधों के लिए क्षमा करें ।।45।।

हे प्रभु ! आप इस जगत की स्थिति, उत्पत्ति और लय के एक मात्र कारण हैं। आप स्वयं निराधार हैं। इस लोक के आधार भूत आपके लिए ये लोग खिलौने बन गये हैं ।।46।।

हे हजार फणा वाले शेष ! आप इस ब्रह्माण्ड को अपने एक फण के ऊपर बिना आयास के उठाए रखे हैं। लयकाल में आप ही इस जगत को अपने पेट में रख लेते हैं। आप अकेले अद्वितीय होकर शयन करते हैं ।।47।।

हे पूज्य ! आपका क्रोध द्वेष से, मत्सर से नही आया है। आप सत्वगुण को धारण करने वाले हैं। आपका क्रोध इस जगत के अस्तित्व और रक्षा के लिए है, और सबको शिक्षा देने वाला है ।।48।।

आप सारे प्राणियों की देह में रहते हैं। आप रुद्र के समान शक्ति धारण करते हैं, नाश रहित कर्मकारक हैं। हम आपकी शरण में हैं, आपको नमस्कार ।।49।।

कौरव जहाँ खड़े थे, वह भूमि हिल रही थी। वह भयभीत होकर बलराम की शरण में आये। तब बलराम प्रसन्न होकर अभय दिये ।।50।।

दुर्योधन पुत्री के वात्सल्य मे साठ वर्ष वाले बीस हजार हाथी, एक लाख घोड़े, सूर्य के समान शोभायमान छः हजार सोने के रथ और सोने की माला को पहने हुये एक हजार दासियों को यादवों को समर्पण किया ।।51-52।।

इन सबको स्वीकार करते हुये पूज्य बलराम बंधुओं का अभिवादन स्वीकार करते हुये बहू-बेटे के साथ द्वारका चल पड़े ।।53।।

द्वारका में प्रवेश करते हुये बलराम ने अपने बंधुओं के पास आकर यादव श्रेष्ठों के बीच अपने किए हुए शौर्य कर्म के बारे में बताया ।।54।।

हे राजन् ! आपका हस्तिनापुर गंगा जी के तट पर दक्षिण दिशा मे ऊँचा तथा उत्तर की तरफ नीचे रहते हुये आज भी बलराम के पराक्रम का प्रतीक होकर खड़ा है ।।55।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में बानबे अध्याय समाप्त होता हैं ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तिरानबे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - यादवों के साथ श्रुतदेव नाम का कृष्णभक्त ब्राह्मण रहता था। वह केवल श्री कृष्ण की भक्ति से ही संतृप्त होकर कामना रहित और शान्त स्वभाव वाला बन गया था। विषय सुख का अभिलाषा न करते हुये भगवान श्री कृष्ण के बारे में काव्य रचना व गायन करते हुये,जीवन चलाता था ।।1।।

वह विदेहराज्य में स्थित मिथिला नगर में वास करता था। प्रयत्न न करते हुये जो आहार मिलता था उसी को खाकर जप यज्ञ करते हुये समय बिताता था ।।2।।

प्रतिदिन के लिए जितना आवश्यक है उतना ही लेता था। उससे ज्यादा न लेते हुये अपरिग्रह प्रवृत्ति व तप से ही संतुष्ट होकर वर्णाश्रम के उचित कर्म करते रहता था ।।3।।

उस नगर का राजा बहुलाश्व, राजा जनक का वंशज था। वह मिथिला नगर का प्रभु अहंकार रहित होकर श्री कृष्ण में भक्ति करते हुये भगवान श्री कृष्ण को प्रिय बना था ।।4।।

एक बार उसकी भक्ति से संतुष्ट भगवान उससे भेंट करने के लिए इन्द्रिय निग्रही, वेद-विद् तत्वज्ञानी ब्रह्मर्षियों के साथ दारुक के लाए हुए रथ में बैठकर विदेह नगरी को चले ।।5-6।।

नारद, वामदेव, अत्रि, कृष्णद्वैपायन, परशुराम, अशित, आरुणि, शुकदेव, बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय, पराशर, वसिष्ठ, कश्यप, भारद्वाज और गौतम इत्यादि श्री कृष्ण के साथ मिथिला चले ।।7।।

उगते हुये सूर्य को लोग जैसे हाथ से अर्घ्य देकर उपासना करते हैं, वैसे रास्ते में मिलने वाले नगरवासी, देशवासी अर्घ्य देकर श्री कृष्ण भगवान का सत्कार करते थे ।।8।।

हे राजन् ! आनर्त, धन्व, कुरुजांगल, टंक, मत्स्य, पांचाल, कुन्ती, मधु, केकय, कोशल, दशार्णव के नर नारी और अन्य लोग अपने उत्कृष्ट मंद हासय और स्नेहपूरित दृष्टि से श्री कृष्ण के मुखारविन्द का अपनी आँखों से पान किये ।।9।।

तीनो लोको के गुरू श्री कृष्ण अपने दर्शन से अज्ञान का नाश करते हुए परोक्षानुभूत ज्ञानियों को अपरोक्षानुभूति देते हुए, देवगणों व मानवों द्वारा अशुभ परिहारक और दिक्-दिशाओं को पावन करने वाली अपनी कीर्ति का संकीर्तन सुनते हुए विदेहराज्य के लिए प्रयाण किये ।।10।।

हे राजन् ! श्री कृष्ण के आगमन की वार्ता सुनते ही पुरवासी और देशवासी संतोष से हाथों में पूजा सामग्री लेकर पूजा किये ।।11।।

ब्रह्मादि लोग सदाकाल करने वाले श्री कृष्ण के संकीर्तन को ये लोग पहले सुने थे। अब श्री कृष्ण जी के प्रत्यक्ष दर्शन से उनका निर्मल अन्तःकरण आनन्द विभोर हो गया। वे मुनियों के साथ आये हुये श्री कृष्ण को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किये ।।12।।

अपने ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही सुदूर द्वारका से मिथिला को आ रहे निर्दुष्ट ज्ञान स्वरुप जगत गुरु श्री कृष्ण को देखकर मिथिला के राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव दोनों प्रभु के चरणों में दण्डवत प्रणाम किये ।।13।।

बहुलाश्व और श्रुतदेव दोनों हाथ जोड़ते हुये अपने-अपने घर पर श्राद्ध भोजन के लिए समस्त मुनियों के साथ पधारने के लिए श्री कृष्ण को एक साथ निमन्त्रण दिये ।।14।।

बड़े लोग जब घर पर पधारते हैं उसी समय को पर्व काल माना जाता है। उस समय श्राद्ध किये तो पितृगण तृप्त होते हैं। उसी को मुहूर्त माना जाता है। ऐसे बड़े लोगों को देखते ही श्राद्ध भोजन के लिए आह्वान देना उत्कृष्ट होता है, इसके लिए दोनों आमंत्रण दिये।

भगवान श्री कृष्ण दोनों का आमंत्रण स्वीकार किये। दोनों को तुष्ट करने के उदेश्य से दो रुप धारण कर दोनों के घर पर जाकर दोनों का आतिथ्य स्वीकार किये। इसको न जानते हुये प्रत्येक समझता था कि भगवान श्री कृष्ण केवल मेरे घर पर आये हैं ।।15।।

उदार मन वाले जनक राजा सज्जनों को सुनने के लिए भी न मिलने वाले बड़े-बड़े मुनि अपने घर आये हैं इसको देखकर उनको सुखासन देते हुये अर्घ्य पाद्यादि से उपचार किया ।।16।।

इक्ष्वाकु का पुत्र राजा निमि वसिष्ठ ऋषि के शाप से मर गया। तब उसकी देह के मंथन से राजा जनक का जन्म हुआ। उसी को मैथिल, विदेह नाम से जानते हैं। इस राजा जनक के वंश मे बहुलाश्व ने जन्म लिया। उसको भी जनक, मैथिल, वैदेह नाम से पुकारते थे। इस वंश में जन्मे राजाओं में बहुत सारे तत्वज्ञानी बने। बहुलाश्व का पुत्र कृति। उससे इस वंश की समाप्ति होती है।

उत्तम भक्ति व अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञान वाले, आँखों से आनन्दाश्रु को बहाने वाले राजा बहुलाश्व माथ पर श्री कृष्ण और ऋषियों के चरण धोकर परम पवित्र उस पावन जल को अपने लोगों के साथ धारण करते हुये गंध माला, वस्त्र आभरण, धूप-दीप, अर्घ्य देते हुये श्रेष्ठ गायों का दान देकर उनकी पूजा किये ।।17-18।।

षड्रसोपेत,अन्न इत्यादि भोजन से तृप्त करते हुये मृदु बचनों को बोलते हुये श्री कृष्ण के

चरणों को अपने जंघे के ऊपर रखते हुये पाद सेवन् करने लगे ।।19।।

राजा श्री कृष्ण से कहते है - भगवान आप सब प्राणियों के लिए स्वामी, सर्वकर्मसाक्षी अनिमित्त बंधु होकर सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। आपके चरण कमलों का स्मरण करने वाले मुझको आपका दर्शन मिला है ।।20।।

आप सर्वान्तर्यामी, सर्वगुण पूर्ण, सर्वदोष रहित हैं। एकांतिक भक्त आपको प्रिय लगते हैं। आप ही गीता में कहे हैं कि "एकांकि भक्त मुझको ज्यादा प्रिय हैं, और मैं उनको प्रिय हूँ।" **प्रियो हि ज्ञानीनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।** अपनी इस बात को सत्य करने के लिये आप आज हमारे द्रिग्गोचर हुये हैं ।।21।।

प्रभु ! आपको छोड़कर अन्य किसी को न चाहने वाले भक्तजनों को आप स्वयं को प्रदान करते हैं। इसको जानने वाला आपके चरण कमलों को क्यों छोड़ेगा है ? ।।22।।

इस लोक में, संसार में दुःखित जनों के दुःख का परिहार करने के लिए आपने यदुवंश में अवतार लेकर तीनों लोको के पाप का निवारण करते हुये अपनी कीर्ति को बढ़ाया हैं ।।23।।

हे भगवान श्री कृष्ण ! आपको नमस्कार। अप्रतिहत ज्ञान स्वरुप, नारायण, पूर्णानन्द स्वरुप, सर्व ज्ञान पाये हुये प्रभु को नमस्कार ।।24।।

हे पूर्ण रुप ! आप अपनों के साथ कई दिन हमारे घर में रहते हुये अपनी चरण धूलि से निमि राज्य के हमारे श्रेष्ठ वंश को पावन करें ।।25।।

राजा के इस आग्रहपूर्ण आमंत्रण के अनुसार भगवान श्री कृष्ण मिथिला के नर-नारियों का मंगल करते हुये वहीं वास किये ।।26।।

इधर बहुलाश्व के समान श्रुतदेव भी अपने घर पर श्री कृष्ण ऋषि मुनियों के साथ आये हैं इसको देखकर संतुष्ट होकर परवशता से अपने अंगवस्त्र को हिलाते हुये नर्तन किया ।।27।।

पन्द्रहवें श्लोक में आयी हुई कथा के अनुसार भगवान श्री कृष्ण दो रुप धारण कर बहुलाश्व और श्रुतदेव के घर पर एक ही समय में आये हैं। सोलहवे श्लोक के अनुसार मुनि भी दो-दो होकर अथवा दो विभाग होकर श्री कृष्ण के साथ आतिथ्य ग्रहण किये हैं अथवा श्री कृष्ण ही मुनियों के रुप में गये होंगे अथवा गोपियों को जैसे दिखाये वैसे योगबल से सबको दो-दो रुप दिखाये होंगे। भगवान की लीला कोई नही जानता।

तृण से बनाये हुए आसन के ऊपर ऋषियों के साथ श्री कृष्ण को बिठाकर सुदामा से भी गरीब श्रुतदेव नमस्कार करते हुये पत्नी के हाथ के जल से सबका पाद पूजन किया ।।28।।

महाभाग्यशाली श्रुतदेव उस पादोदक को पत्नी, पुत्र और घर का प्रोक्षण करते हुये आनन्द

विभोर होकर बोला - मेरे सारे अभीष्ट पूर्ण हो गये हैं ।।29।।

सफेद सरसों, लावंच, आँवला और अमृतवल्लि जल को पीने के लिए देकर सुगंध भरित मृत्तिका, तुलसी, दर्भ, कमल इत्यादि उस समय में सुलभता से मिलने वाले सामग्रियों से आत्मबल से सर्वोत्कृष्ट पूजन् किया। इससे भगवान श्री कृष्ण अत्यंत संतुष्ट हुये ।।30।।

श्रुतदेव मन में चिन्तन करता है। इस संसार रुपी अन्धकूप में गिरे हुए मुझको भगवान श्री कृष्ण और परम तत्वज्ञानियों का सत्संग और सकल तीर्थों को आश्रयभूत उनकी चरण धूलि कैसे मिल सकती है ? मैंने ऐसा बड़ा पुण्य क्या किया है ? यह केवल श्री हरिगुरु कृपा से मिला है ।।31।।

आतिथ्य को स्वीकार करने के बाद भगवान श्री कृष्ण सुखासन में बैठे। श्रुतदेव अपनी पत्नी- पुत्रों और बंधु-बांधवों के साथ श्री कृष्ण और ऋषि मुनियों का पाद सेवा करने लगा ।।32।।

यहाँ श्रुतदेव श्री कृष्ण का और परिवार के लोग ऋषि मुनियों का पादसंवहन किये। ऐसा समझ लेना चाहिए।

श्रुतदेव कहता है - आज मेरे भाग्य से हमको परम पुरुष परमात्मा का दर्शन मिला। प्रकृति विलक्षण वाले यह परम पुरुष इस प्रकृति के गुण से इस जगत को **सृष्ट्वा आत्मसत्तया विभजति** अपनी स्वतंत्र शक्ति के बल से विविध रीति में विलक्षण रुप में रचते हैं, और इसको सदाकाल के लिए अपने अधीन रखते हैं। यह प्रकृति कभी भी स्वतंत्र नही होता ।।33।।

सोया हुआ आदमी मन के संस्कार वश और भगवान की इच्छा से विलक्षण स्वप्न को सृष्ट करते हुये उसको स्वयं द्रष्टा होकर स्वतंत्र रुप से देखता है। वैसे ही भगवान श्री हरि इस अस्वतंत्र जगत को रचते हुये स्वयं स्वतंत्र होकर उससे दूर रहते हैं ।।34।।

सदाकाल सुनने, कहने, देखने, और उसका अनुमोदन करने वाले को सुनते, कहते देखते, करने वाले जन के मनन निर्मल मन मे, जन के हृदय में, अत्यन्त समीप में भगवान श्री कृष्ण रहते हैं ।।35।।

भगवान् निर्मल हृदय में रहते हैं,किन्तु कर्म कलुषित मन वाले से दूर रहते हैं। वे उनको दिखते नही। निर्मल मन वाले को भी उनके स्व शक्ति से वे गोचर नही होते। **अर्थाकार** यानी सारे चाहने वाले, ज्ञानानन्दादि सद्गुण उनकी देह बनता है। इसको छोड़कर अगुणात्मक प्राकृत देह उनको नही है। इसी कारण वे बाहर के चक्षु को नही दिखते ।।36।।

अध्यात्म ज्ञान वाले को सकल पुरुषार्थ देने वाले सर्व व्यापक परमात्मा अपने विशेष बल से अपनी इच्छा के अनुसार अलग-अलग रुप धारण करते हैं। कारण रहे या न रहे भगवान अपनी इच्छा से प्रकृति के रुपों में व्याप्त होकर रहते हैं। अपने अधीन रहने वाली प्रकृति से आवृत्त न

होने वाले ज्ञानपूर्ण भगवान आपको मेरा नमस्कार ।।37।।

कहिए हम आपकी क्या सेवा करें ? हम आपके क्रीत दास हैं। आप आज्ञा दें। आप जिनको दिखते हैं उसी समय से उसके सारे दुःख का निवारण हो जाता है ।।38।।

श्री शुकदेव कहते हैं - भक्तों के दुःख को दूर करने वाले भगवान, श्रुतदेव की बात सुनकर उसके हाथों को अपने हाथों में लेते हुये हँसते हुये कहते हैं ।।39।।

श्री भगवान कहते हैं - हे ब्राह्मण, तुम्हारे अनुग्रह के लिए ये मुनिजन यहाँ पधारें हैं। ये लोग जहाँ जाते हैं,वहाँ मेरे सन्निधान युक्त चरण धूलि से वे जगत को पावन करते हैं ।।40।।

देवताओं, तीर्थक्षेत्रों इनके दर्शन-स्पर्शन और अर्चन से लोक पवित्र होता है। किन्तु इसके लिए समय की आवश्यकता होती है। वह भी पूज्य मुनियों के दर्शन से होता है ।।41।।

ब्राह्मण जन्म से ही सारे प्राणियों में श्रेष्ठ माने जाते हैं। उनमें जो तप, विद्या मिलती है। उसी से संतुष्ट होने वाले और मेरी कथा का संकीर्तन करने वाले ब्राह्मण और भी श्रेष्ठ माने जाते हैं ।।42।।

मेरा यह चतुर्भुज रुप भी मुझको ब्राह्मणों से ज्यादा प्रिय नही है। क्योंकि ब्राह्मण सकल वेदों को जानते हैं। मैं, उन्ही वेदों से मिलने वाले ज्ञान से जानने योग्य सर्वदेवोत्तम हूँ ।।43।।

ब्राह्मणों से असूया करने वाले, अज्ञानी उनको गुरु न मानते हुये गुरु के समान ब्राह्मण का अवमान करते हैं। किन्तु वे प्रतिमादि रुपों में मुझको देखते हुये मेरा ही अवमान करते हैं ।।44।।

इस चराचर प्रपंच के स्वामी मुझको ब्राह्मण ही श्रेष्ठ देवता लगते हैं। ब्राह्मण मुझको सारे जीवों में देखते हुये, चराचर प्राणियों में रहने वाले मेरे रुपों को श्रुतियों द्वारा प्रतिपाद्य मानकर मेरी उपासना करते हैं ।।45।।

इसी कारण ब्रह्मज्ञानी बने हुये इन ब्रह्मर्षियों की आराधना श्रद्धा से करो। उनकी आराधना करने से तो मेरी ही पूजा होती है। उसको छोड़कर कितने ही वैभव से मेरी पूजा करें परन्तु वह मेरी आराधना नही होता ।।46।।

शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार प्रभु श्री कृष्ण से आज्ञा पाये हुये श्रुतदेव और बहुलाश्व उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों की और श्री कृष्ण की आराधना अनन्य भक्ति से करते हुये सद्गति को पाये ।।47।।

हे राजन् ! इस प्रकार भक्तो से प्यार करने वाले भगवान अपने भक्तों के पास रहकर उनको सन्मार्ग दिखाते हुये, योग्य उपदेश देकर द्वारका वापस आये ।।48।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में तिरानबे अध्याय समाप्त होता हैं ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौरानबे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछता है - हे महामुनि ! देव, मानव, दानव इनमें जो अमंगल के समान दिखने वाले मंगलकारी शिव का भजन करते हैं वे ही श्री सम्पद वाले बनते हैं। किन्तु लक्ष्मीपति श्री हरि का भजन करने वाले प्रायशः धनिक नही बनते ।।1।।

विरुद्ध शील स्वभाव वाले, विरुद्ध फल देने वाले किन्तु समर्थ हरि हर के बारे में हमे बहुत संदेह होता है। इस बारे में मैं जानना चाहता हूँ ।।2।।

श्री शुकदेव कहते हैं - शिव प्रकृति से बद्ध हैं। वैकारिक, तैजस और तामस नाम के तीन अहंकार ही उनके शरीर बने हैं। वे त्रिगुणों से बद्ध हैं ।।3।।

इन अहंकारों के परिणाम से सोलह तत्व बन गये। इसी कारण इस प्रपंच में रहने वाले पंच भूतों में शिव की आराधना करने वाले सकल भोग ऐश्वर्यों को पाते हैं ।।4।।

शिव जी अहंकार तत्व के अभिमानी हैं। जैसे अहंकार तत्व वैकारिक, तैजस और तामस नाम से तीन तरह के हैं, वैसे ही शिव के तीन शरीर है। इन तीनों शरीरों मे तीनों अहंकार, तीनों गुणों से बद्ध होने के कारण शिव तीनों गुणों से बद्ध होते हैं। वैकारिक अहंकार से मन, तैजस अहंकार से पंचज्ञानेन्द्रिय और पंचकर्मेन्द्रिय और तामस अहंकार से पंचतन्मात्राओं से बने हुए पंच महाभूत इस प्रकार अहंकार के सोलह रुप हुये। इनमे शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गंध नाम के पाँच विषयों के भोग और ऐश्वर्य की चाहने वाले को आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी नाम के पंचभूतात्मक शरीर से शिव की आरधना करनी चाहिए। तब शिव के अनुग्रह से वे सारे भोग-ऐश्वर्य सुलभता से प्राप्त होते हैं।

भौतिक शरीर अमंगलकारक होता है। क्योंकि वह विषय भोग करते हुये संसार का कारण बनता है। ऐसा अमंगलकारक शरीर शिव का होता है। शरीर द्वारा होने वाले उपचार अपचार से शरीर के अन्दर रहने वाले को सुख-दुःख होते हैं। इसी कारण शिव जल्दी संतुष्ट होते हैं। उतनी ही जल्दी क्रोधित भी होते हैं। श्री हरि का शरीर पांच भौतिक नही है। इसी कारण भगवान श्री हरि, सेवा के अनुरुप देर से संतुष्ट होते हैं। योग्यता के अनुसार योग्य फल देते

हैं। इस प्रकार शिव देखने में शरीर से अमंगल दिखे तो भी स्वतः सर्वज्ञ और वैष्णवाग्रसर होने के कारण वे मंगल ही हैं।

देव, दानव और मानवों से अधिक असुर लोग, ज्यादा भौतिक भोग के लिए शिव की आराधना करते हैं और जो चाहते हैं उसको पाते हैं। श्री लक्ष्मीपति हरि की देवस्वभाव वाले चंद लोग आराधना करते हुये वैराग्य भाव की चाहने के कारण श्री हरि भक्त उतना धनिक नही रहते। शिव की आराधना से आने वाली सम्पदा के विवरण के बारे मे वृकासुर की कथा आती है। वह शिव के वर के बल से मस्त होकर शिव को ही मारकर उनके शिव पद को पाने की शक्ति पा लेता है। किन्तु वह क्षणिक है और उससे उसका अनर्थ ही हो गया।

केवल श्री हरि प्रकृति से श्रेष्ठ हैं, त्रिगुण से बद्ध नही हैं, इसलिए निर्गुण कहलाते हैं। वे स्वतंत्र पुरुष हैं। उपद्रष्टा यानी रमादि सारे चेतनों से ज्यादा ज्ञानी हैं। इसलिए भगवान का भजन करने वाला भी निर्गुण होता है, सत्वादि गुणात्मक लिंग शरीर से मुक्त होता है ।।5।।

यहाँ पाँचों पाण्डवों के पाँच अश्वमेघ यज्ञ होने के बाद तुम्हारे बाबा राजा धर्मराज ने भगवान श्री कृष्ण से भागवत धर्म के बारे मे उपदेश पाने के समय, अब जो तुमने यह प्रश्न पूछा है उसी प्रश्न को भगवान श्री कृष्ण से पूछा था ।।6।।

लोगों को मोक्ष देने वाले यदुकुल में अवतार लिये हुये भगवान श्री कृष्ण धर्मराजा के इस प्रश्न से संतुष्ट होकर उसके बारे में उनसे कहने लगे ।।7।।

श्री भगवान कहते हैं - मैं जिसके ऊपर अनुग्रह करना चाहता हूँ उस समय उसको धन का अहंकार न हो इस के लिये उसके धन का अपहरण करता हूँ। निदान रीति से निर्धन हुआ वह भक्त दुःखी होता है। धन न होने के कारण उसके बंधु उसको त्याग देते हैं ।।8।।

फल पाने के लिए वह प्रयत्न करे तो भी उसको फल नही मिलता। तब उसको फल से विरक्ति आ जाती है। धन कामना दुःख का मूल है। यह समझकर उस कामना को छोड़ देता है। बाद में मेरे भक्तों का संग बढ़ता है। तब मैं उस पर अनुग्रह करता हूँ ।।9।।

मैं सर्वत्र व्याप्त परब्रह्म हूँ। मेरा रूप अत्यन्त सूक्ष्म, चिन्मय, निर्दुष्ट किन्तु अनंत होने के कारण उसकी आराधना करना कष्ट कर होता है। मेरा भक्त यदि धन कीं कामना करता है और उसको अपने वश में रखना चाहता है तो मैं उस धन का उससे आहरण कर लेता हूँ। इसी कारण आसुरी स्वभाव वाले मुझको छोड़कर अन्य देवताओं की उपासना करते हैं ।।10।।

अन्य देवता बहुत जल्दी से अनुग्रह करते हैं। इसलिए उनसे राज्य और सम्पदाओं को पाते हैं। **वृकासुर** के समान अपने सर्वस्व का नाश न देखते हुये वे उद्धत होकर उन्मत्तता से वर देने

वाले देवता को भूलते हैं, अवमानना करते हैं ।।11।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा, ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ हैं। किन्तु इनमें से शिव और ब्रह्मा जल्दी अनुग्रह करते हैं। विष्णु नही ।।12।।

इस बारे में वृककी कथा को जानने वाले इस प्रकार बोलते हैं। वृकासुर को वर देकर स्वयं शिव ही कष्ट भाजन हो गये ।।13।।

वृक नाम का असुर, शकुनि नामक हिरण्याक्ष का पौत्र है, बहुत दुर्बुद्धि वाला है। वह एक बार तप करने के लिए जंगल में जा रहा था। रास्ते मे मिले नारद जी से पूछता है - त्रिमूर्तियों में बहुत जल्दी से कौन अनुग्रह करता है ? ।।14।।

तब नारद जी कहते हैं - अपने इष्टार्थ को पाने के लिए तुम शिव की आराधना करो। शिव जी छोटी सेवा से भी जल्द संतुष्ट होते हैं, वैसे ही छोटे से अपराध से बहुत जल्द क्रुद्ध भी होते है ।।15।।

रावण और बाणासुर स्तुति पाठक के समान स्तुति करते हुये शिव को संतुष्ट किये। उनसे संतुष्ट शिव जी उनको सकल ऐश्वर्य देकर बाद में उन्ही से कष्ट पाये ।।16।।

रावण और बाणासुर पर अनुग्रह किये रुद्र को बाद में उनके नगरों की रक्षा करनी पड़ी।

नारद जी की बातों को सुनकर वृकासुर केदार क्षेत्र मे नियम बद्ध होकर तप करने लगा। वह अपने शरीर के मांस को निकालते हुये उसको अग्नि मुख से प्रत्येक आहुति देते हुये उनकी आराधना किया ।।17।।

इतना करने के बाद भी जब शिव प्रगट नही हुये तब सातवे दिन केदार क्षेत्र में भीगे हुये बाल वाला वह अपने सिर को अपने खड्ग से काटने के लिए उद्धत हो गया ।।18।।

तब परम दयालु शंकर प्रत्यक्ष अग्नि के समान प्रकाश देते हुये अग्नि से प्रगट होकर वृकासुर के पास आये। अपने हाथों से उसके हाथों को पकड़कर उसको अपने कार्य को करने नही दिये। श्री शिव जी के करस्पर्श मात्र से उनके अंगांग पहले जैसे ठीक हो गये। यज्ञ करते समय वृकासुर उनको काट-काटकर अग्नि में डाल चुका था ।।19।।

शिव जी कहते हैं - हे पुत्र,तप करना बन्द करो, तुम जो चाहते हो उस वर को मुझसे माँगो, मै सब कुछ देने के लिए आया हूँ। तुम यह क्या कर रहे हो ? अन्य लोग सुख साधन को देने वाले और अनुभव करने वाले इस शरीर से बहुत प्यार करते हैं। तुम शरीर को व्यर्थ ही कष्ट दे रहे हो। यह आश्चर्य है ।।20।।

किन्तु वह दुष्ट महापापी, शिव जी से वर चाहता है कि मैं जिसके सिर के ऊपर हाथ रखूँ वह मरना चाहिए। इस प्रकार अन्य जीवों में भय उत्पन्न करने के लिए दुष्ट वर की प्रार्थना किया ।।21।।

हे परीक्षित ! भगवान रुद्र इस बात को सुनकर थोड़ा हिचकिचाये। किन्तु भगवान से प्रार्थना करते हुये हँस कर ॐ कह कर वर प्रदान किये ।।22।।

वृकासुर उस वर को परीक्षा करने हेतु शिव के सिर के ऊपर ही अपने हाथ रखने को आगे बढ़ा। तब शिव को अपनी की हुयी भूल अनुभूत होने लगी। वे भयभीत हो गये ।।23।।

वह दुष्ट वर परीक्षण का एक बहाना बनाया। वस्तुतः वह पार्वती का अपहरण करना चाहता था। श्रीधरीय पाठ में राक्षस की **गौरी हरण लालसः** इस प्रकार विशेषण दिया गया है।

वृकासुर दौड़ते हुये शिव का पीछा कर रहा है। शिव भयभीत होकर काँपते हुये भूमि अंतरिक्ष के अंत तक नीचे पाताल तक दौड़े ।।24।।

रूद्र के इस संकष्ट को देखकर देवतागण घबड़ा गये। किन्तु इसके परिहार का उपाय उनके पास नही था। इसलिए वे कुछ कर नही पाये। बाद में शिव प्रकृति से परे सुदूर प्रकाशमान वैकुण्ठ की ओर दौड़ने लगे ।।25।।

वैकुण्ठ लोक में, प्राणियों को हिंसा न करने वाले, फल कामना न करने वाले और केवल भगवान विष्णु में निष्ठा वाले मुक्तों को आश्रय देने वाले साक्षात् श्रीमन्नारायण वास करते हैं। वहाँ जो जाते हैं वे पुनः इस संसार में नही आते ।।26।।

हे राजन् सुनो ! शिव के आये हुए कष्ट को देखकर दुःख का नाश करने वाले भगवान विष्णु अपनी इच्छा से दूर से दौड़ते हुए आने वाले वृकासुर को बालक के रुप में दर्शन दिये ।।27।।

वह बालक ब्रह्मचारी मेखला, अजिन, दण्ड, अक्षमाला इत्यादि से सुशोभित अग्नि के समान कांति से प्रज्ज्वलित होकर हाथ में दर्भ को लेते हुये विनीत भाव से वृकासुर का अभिवादन किया ।।28।।

श्री भगवान कहते हैं - हे शकुनी पुत्र ! क्यों दौड़ रहे हो ? क्यों इतना दूर आये हो ? तुम थक गये हो। एक क्षण के लिए विश्राम करो। यह शरीर जीव की सारी इच्छाओं को पूर्ण करने का साधन है। उसको इस प्रकार दण्डित नही करना चाहिए ।।29।।

हे समर्थशाली ! तुम यहाँ क्यों आये हो ? क्या इसका कारण हम जान सकते हैं ? हे साधु पुरुष इस लोक में सारे लोग दूसरों की सहायता से अपने उ‌े‌श्य को पूर्ण कर लेते हैं। मैं अब तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ। तुमको क्या चाहिए उसको उसके बारे में बोलो ।।30।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार भगवान की अमृत के समान आनन्द देने वाली बातों से वृकासुर का समाधान हो गया। थोड़ा सा विश्राम लेकर उस वंचक ब्रह्मचारी से यहाँ तक जो-जो किया था उसके बारे में बोला ।।31।।

यहाँ **तस्मै** शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमे त का अर्थ वंचक अथवा चोर इस प्रकार होता है। कस्मै देवाय हविशाविधेम इस प्रकार यहाँ तस्मै यह सर्वनाम विभक्ति का कार्य करता है।

श्री भगवान कहते हैं - हे असुर सुनो ! रुद्र ने तुमको वंचना किया है। वह जो वर दिया है उसमें हमारा विश्वास नही है क्योंकि दक्ष प्रजापति ने उसको शाप दिया है, उसी कारण वह पिशाच बन गया है, भूतप्रेत पिशाचों का प्रभु बन गया है ।।32।।

उसके शरीर में क्रोध भर गया है। वह कभी सत्य नही कहता। जिसके मन में क्रोध भरा है। वह सत्य बोल नही सकता। हे असुर तुम इसको समझ नही सके। इससे तुम मूढ़ बन गये ।।33।।

हे दानव राज ! जगद्गुरु कहलाने वाले शिव के बारे में हमें विश्वास नही है। तुम कैसे उसके ऊपर विश्वास करते हो ? पहले हमें यह देखना चाहिए कि रुद्र ने जो वर दिया है वह तुम्हारे कहने के अनुसार क्या सत्य है अथवा हम जैसे कहते हैं उसके अनुसार झूठ है ? इसकी परीक्षा अभी होने दो। हम अभी इसकी परीक्षा करेंगे। तुम एक काम करो। अपना हाथ तुम अपने सिर पर रखकर देखो। इससे परीक्षा हो जायेगी। तब हम जो कहे हैं, शिव झूठा वर देता है, वह तुमको भी अनुभव में ज़ायेगा ।।34।।

हे दानवेन्द्र, जब यह सत्य होगा है कि शम्भु जो वर दिया है वह झूठ है तो तुम शिव को मार डालो। उससे वह आगे झूठ बोल नही पायेगा ।।35।।

भगवान की आश्चर्यकर और मनमोहक बातों को सुनकर वृकासुर की बुद्धि मन्द हो गयी। वह वर विचार भूल गया। वह दुर्बुद्धि वाला असुर अपने हाथ को अपने सिर के ऊपर रख लिया ।।36।।

उसी क्षण वृकासुर का सिर टुकड़े-टुकड़े हो गया। आकाश की बिजली मारने के समान वह जमीन पर गिर गया। देवतागण आकाश से घोष किये। **श्रीहरि की जय हो, हरि के लिए नमस्कार। श्री हरि ने ठीक किया।** इन तीनों शब्दों से आकाश गूँज उठा ।।37।।

पापी वृकासुर के मरने से देव, ऋषि, पितृ, गन्धर्व, यक्ष सारे सन्तोष से पुष्प वृष्टि किये। इस प्रकार शिव को श्री हरि संकट से मुक्त किये ।।38।।

संकट से बाहर हुये रुद्र को भगवान पुरुषोत्तम कहते है कि हे शिव, आप क्रीड़ा विनोद से वर दिये। यह पापी अपने पाप के कारण मर गया। दूसरों को अपचार करने वाला कैसे जीवित रह सकता है ? उसमें भी जगद्गुरु विश्वेश आपका अपचार करने वाला कैसे क्षेम से रह सकता है ? ।।39-40।।

सदाकाल के लिए शक्ति के सागर सर्वोत्तम साक्षात् परमात्मा श्री हरि के यह गिरीश मोक्ष को जो कहता है, जो सुनता है वह सारे शुत्रओं से इतना ही नही ये संसार सागर से मुक्त हो जाता है ।।41।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में चौरानबे अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पंचानबे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

त्रिमूर्ति में कौन श्रेष्ठ है ?

राजा परीक्षित पूछता है कि इन तीनों मूर्तियों में कौन श्रेष्ठ है। इस पर श्री शुकदेव जी कहते हैं- राजन् सुनो ! सरस्वती नदी के तट पर सारे ऋषियों ने मिलकर एक सत्र याग किया। उस समय उनके मन में संशय आ गया कि इन त्रिमूर्तियों में कौन श्रेष्ठ है ? ।।1।।

हे राजन् ! उस जिज्ञासा के समाधान हेतु सारे ऋषियों ने ब्रह्मापुत्र भृगु मुनि को इसका निर्णय करने के लिए भेजा। वे भृगु मुनि पहले ब्रह्मा जी की सभा में गए ।।2।।

मुनि उस सभा में ब्रह्मा जी के क्षमा गुण की परीक्षा करने हेतु उनकी स्तुति न करते हुये खड़े हो गये। अपने तेज से प्रकाशमान ब्रह्मदेव अपने पुत्र मुनि के ऊपर कुपित हो गये ।।3।।

अपने मनस से उत्पन्न भृगु मुनि पर उत्पन्न हुए क्रोध का शमन करने में ब्रह्मा जी समर्थ थे। अग्नि के ऊपर पानी डालकर जैसे अग्नि का शमन होता है वैसे ब्रह्मा जी अपने क्रोध का शमन किये ।।4।।

बाद में भृगु मुनि कैलाश गये। वहाँ रुद्र देव उठकर अपने छोटे भाई का आलिंगन करने लगे ।।5।।

रुद्र के क्षमा गुण के परीक्षण हेतु मुनि ने रुद्र को अमंगल अभ्यासी कहते हुये उनके आलिंगन को त्याग दिया। इससे रुद्र तीक्ष्ण दृष्टि से मुनि को देखते हुये अपने शूल को उठाकर ऋषि को मारने दौड़े।।6।।

उसको देखकर देवी पार्वती पति के चरणों को प्रणाम करते हुये उनका समाधान की। इस प्रकार आये कष्ट से दूर होकर वह मुनि कैलास नाम के रजत शिखर को छोड़कर वैकुण्ठ को चले गये। वैकुण्ठ में श्रीमन्नारायण वास करते हैं ।।7।।

वहाँ वैकुण्ठ में नारायण देवी लक्ष्मी के जँघों पर सिर रखकर सोये थे। उसको देखकर

क्रोध में मुनि नारायण की छाती पर लात मारी ।।8।।

सज्जनों को आश्रय देने वाले भगवान श्री हरि ने ब्राह्मण की इस क्रिया पर अपनी शैया से उठकर पत्नी लक्ष्मी के साथ खड़े होकर ऋषि की मान वंदना की ।।9।।

नारायण कहते हैं - हे मुनि ! आप का स्वागत है। इस आसन पर क्षणकाल के लिए विराजिये। हे ज्ञान देने वाले ब्राह्मण अनजाने में किया हुआ अपराध क्षमा करें ।।10।।

गंगादि तीर्थों को पवित्र करने वाले अपने पादोदक से मुझको, लोक को और मेरे आश्रय में रहने वाले सारे लोकपालकों को पवित्र करें ।।11।।

हे पूज्य ! आज मैं लक्ष्मी के लिए कभी न छोड़ने वाला आश्रयस्थान बन गया। क्योंकि आपकी चरणधूलि से पाप मुक्त हुयी मेरी छाती में वह सदाकाल वास करती है ।।12।।

मेरे छाती में लगे हुए तुम्हारे चरण चिन्ह श्री वत्स नाम से प्रसिद्ध होकर मेरी छाती पर सदा के लिए रहे ।।13।।

श्री कृष्ण कुरुक्षेत्र में (89-54) कहे थे। ब्राह्मण यदि अपराध करे तो भी उसको नमस्कार करना चाहिए। इस बात को प्रभु श्री हरि यहाँ सच करके दिखा रहे हैं।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्री हरि की दया और रसपूर्ण बाते सुनकर संतुष्ट हुए मुनि भक्ति उद्रेक से अवरुद्ध कण्ठ व भर आई आँखों के साथ मौन हो चुप-चाप रहे। ।।14।।

हे राजन् ! सुनो, इस प्रकार त्रिमूर्तियो का दर्शन और परीक्षण करते हुये पुनः सत्र याग स्थल पर आकर भृगु मुनि ने जो कुछ स्वयं अनुभव किया और देखा उसका ब्रह्मज्ञानी उन ऋषियों के सामने वर्णन किये ।।15।।

उसको सुनकर वहाँ के ऋषि मुनियों का संशय दूर हो गया। वे विस्मित हो गये। शान्ति और अभय को देने वाले विष्णु को सर्वोत्तम मानते हुये श्रद्धा से उनकी सेवा करने लगे ।।16।।

धर्म, ज्ञान आदि चार तरह के वैराग्य और आठ तरह के ऐश्वर्य, अपना पाप नाश करने वाली कीर्ति यह सारा साक्षात् जिनसे मिलता हैं उन विष्णु को सर्वोत्तम मानते हुये श्रद्धा से उनकी सेवा की ।।17।।

यतमान, व्यतिरिक, एकेन्द्रिय, वशीकार इस प्रकार वैराग्य चार तरह के होते है। विषय सुख की न

चाहने वाला उसकी आदर न करने वाला यतमान वैराग्य माना जाता है। अलवण यानी नमक की न खाना इत्यादि कई वस्तुओं की खाना छोड़ देना व्यतिरिक वैराग्य होता है। अन्य वस्तुओं की न चाहते हुये मन में केवल भगवान के बारे में आदर रखना एकेन्द्रिय वैराग्य होता है। बाह्येन्द्रियों से सेवन करने में औदासीन्य भाव रखना वशीकृत वैराग्य होता है। अणिमादि आठ तरह की सिद्धि आठ ऐश्वर्य होते हैं।

मनन करने वाले, प्राणियों की हिंसा न करने वाले, भगवान में निष्ठा रखने वाले, सहिष्णुचित्त, अन्य लौकिक सम्पदाओं को न चाहने वाले सज्जन होते हैं। इनकी परम मात्र गति विष्णु हैं। वे ही सर्वोत्तम हैं। इस प्रकार ऋषि मुनियों ने निर्णय किया ।।18।।

सत्वगुण श्री हरि को इष्ट है, ब्राह्मण इष्ट देवता हैं। वैराग्यशाली, भक्ति सम्पन्न, विवेक बुद्धि वाले,वे श्री हरि का भजन करते हैं। ऐसे श्री हरि को ऋषि मुनियों ने सर्वोत्तम मानकर उद्घोष किया ।।19।।

राक्षस, असुर, सुर इस प्रकार श्री हरि की तीन तरह की प्रतिमाएं है। ये तीनों गुण भगवान की इच्छानुसार इस प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। उनमें विद्यमान सत्वगुण प्रभु श्री हरि के दर्शन का साधन बनता है। ऐसे श्री हरि सर्वोत्तम हैं। इस प्रकार मुनियों ने उपासना की ।।20।।

शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार सरस्वती नदी के तट पर रहने वाले समस्त मुनि सज्जन अपने संशय के परिहार का प्रयत्न करते हुये परम पुरुष श्री हरि के चरण कमलों की सेवा करते हुये श्री हरि को पाये ।।21।।

सूत पौराणिक कहते हैं - श्री व्यास पुत्र शुक मुनि के मुख कमल रुपी गर्भ से निकलकर आया हुआ यह अमृत समान कथामृत संसार भय का नाश करता है। यह परम पुरुष श्री हरि की उत्तम कीर्ति को बताने वाला है। उसको कान नाम की अंजलियों से भर-भर कर पान करने वाला संसार मार्ग में संचार करते हुए उस मार्ग संचार के श्रम को खोकर आनन्द पाता है, मुक्त होता हैं ।।22।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में पंचानबे अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - छियानबे

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ॥

श्रुति गीता

राजा परीक्षित कहते हैं - हे मुनि, श्री हरि शब्द से मिलने वाले नही हैं। इस प्रकार श्रुति कहती है। भगवान गुणत्रय रहित हैं। गुणत्रयी वस्तु जो हैं शब्द उसी का वर्णन कर सकते हैं। कार्य कारणात्मक प्रपंच को ''यह वस्तु गुण वाली है'' ऐसा कहते हैं। प्रपंच विलक्षण गुण रहित भगवान को श्रुति कैसे कहती है ? ।।1।।

लय काल में विधि निषेध योग्य जीव भगवान के उदर में गाढ़ निद्रा में रहते हैं। उस समय वेद विधि निषेध से किसका बोधन करते हैं ? गुण रहित होने के कारण भगवान गुण कथन रुप स्तुति के योग्य नही हैं। स्तुति करने वाले लय काल में जागृत नही रहते। ऐसे समय में स्तुति रुप अथवा विधि निषेध रुप वेद लय काल में प्रवृत्त नही हो सकता। स्तुति रुप का सृष्टि काल में भी प्रवर्तन नही होता।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्री हरि मोक्ष योग्य जीवों की मात्रार्थ रुप में प्रवृत्ति पैदा करने के लिए भव, वेदाध्ययन पुण्य पाने के लिए कल्पना ध्यान इत्यादि के लिए उसमें आत्म स्वरुपता और आत्म स्वरुप अभिव्यक्ति के लिए बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणों की सृष्टि किये ।।2।।

बुद्धि, इन्द्रिय और मन द्वारा मुमुक्षुओं की मुक्ति पाने के लिए ज्ञानसाधन करना चाहिए। इस प्रकार वेद विधिकरता है। वेद की इस प्रवृत्ति के लिए भगवान सृष्टि काल में बुद्धि इत्यादि सारे प्रपंच की सृष्टि करते हैं। भगवान में प्राकृत गुण नही हैं किन्तु अप्राकृत गुण हैं। अप्राकृत गुण वाले भगवान का श्रुति वर्णन करने के कारण श्रुति की अभिमानी रमादेवी प्रलय काल में भी पद समन्वय से स्तुति करती हैं। विधि-निषेध रुप वेद प्रवृत्ति भी वाक्य समन्वय से स्तुति ही हैं। लय काल में यह नही दिखता है। किन्तु सृष्टि काल में रहता ही है। इस प्रकार स्तुति रुप प्रवृत्ति सदाकाल रहने से वेद कभी व्यर्थ नही होते। भगवान बातों से मिलने वाले नही हैं। इस लिए भगवान के अनन्त गुण होने के कारण सारे गुणों को कोई भी बताकर पूर्ण नही कर सकता। इस अभिप्राय से यह बात कही गयी है। यथाशक्ति सारे शब्द भगवान के बारे में ही कहते हैं और वह शक्य भी है।

परब्रह्म की स्तुति रुप अत्यन्त गूढ़ इस वेद का अध्ययन प्राचीन लोग किये हैं। विरक्त होकर श्रद्धा से वेद का अध्ययन करने वाला मोक्ष को पाता है ।।3।।

भगवान अनन्त वेदो से वेद्य हैं। इस विषय में बद्री नारायण ऋषि और नारद के बीच हुए संवाद रुप कथा को सुनाता हूँ, सुनो ।।4।।

एक बार भगवान के परम प्रिय नारद लोक संचार करते -करते सनातन नारायण ऋषि को देखने के लिए बदरीनाथ स्थित आश्रम को गये ।।5।।

वहाँ नारायण ऋषि सज्जनों के क्षेम और सुख के लिए पूर्ण धर्मज्ञान तथा शम-दम से युक्त होकर इस भारतवर्ष में तप कर रहे हैं ।।6।।

जैसे साक्षात् नारायण ही अपने स्वरुपानन्द में मग्न होकर लोक दृष्टि से तप करने बैठे हैं। यह सज्जनों को तप का शिक्षण देने के लिए है। तप करते हुये सारे लोगों के क्षेम और सुख पाने के उद्देश्य से भगवान तप कर रहे हैं।

हे राजा परीक्षित ! नारायण अपने आश्रम में कलाप ग्रामवासी ऋषियों से परिवृत्त होकर बैठे थे। ऐसे नारायण ऋषि को नारद जी नमस्कार करते हुये वेद की प्रवृत्ति के बारे में प्रश्न पूछते हैं ।।7।।

भगवान नारायण ऋषि को और वहाँ रहने वाले अन्य ऋषियों को नारद जी प्राचीन जनों और जनलोक निवासी सनकादि ऋषियों ने ब्रह्म विचार के बारे में उनसे जो कहा उसके बारे में नारद जी कहे ।।8।।

श्री भगवान कहते हैं - प्राचीन काल में जन लोक में वहाँ के ऋषियों को चतुर्मुख ब्रह्मा जी के मानस पुत्र परमहंस सनकादि ऋषियों ने ब्रह्मा जी से उपदेश पर ब्रह्म विचार की चर्चा चली ।।9।।

श्वेतद्वीप में श्रुतियाँ अन्य कुछ न कहते हुए केवल भगवान के बारे में कहती हैं। वहाँ स्थित भगवान के दर्शन के लिए जब तुम (नारद) वहाँ गये थे तब इस जनलोक में ब्रह्मविचार की चर्चा चली थी ।।10।।

उस ब्रह्म विचार में अभी तुमने जो प्रश्न किया है वही विचार चर्चा में आ गया। सनकादि ऋषि सनत कुमार मन्मथ के अवतार होने के कारण उनको छोड़कर अन्य सारे श्रवण, तप, आचारों द्वारा मित्र, शत्रु, तटस्थों में भेद न करने वाले परस्पर समान तो भी श्री हरि के विशेष आवेश होने के कारण सनन्दन जी को प्रवचनकार बनाये। अन्य सारे श्रोता बने ।।11,12।।

सनन्दन मुनि कहते हैं - श्री हरि इस जगत की स्वयं सृष्टि किये। लयकाल में इसका भक्षण कर अपनी पत्नी लक्ष्मी, श्रीदेवी और भू-देवी के साथ वटपत्र के ऊपर सो गये। लयकाल के अन्तिम भाग में वेदाभिमानी दुर्गा देवी उनका गुणगान करने वाले वेद मंत्रों से उनकी स्तुति करने लगी ।।13।।

सोते समय उषःकाल में सेवक स्तुति कर जैसे राजा को उसके पराक्रम की स्तुति वचनों द्वारा संकीर्तन करते हुये उठाते हैं वैसे दुर्गा देवी ने वेद मंत्र से भगवान की स्तुति की ।।14।।

यह स्तुति वचन **श्रुति गीता** नाम से प्रसिद्ध है। भगवद्गीता और विष्णुसहस्त्र नाम के समान ये भी

भगवान की उत्तम स्तुति मानी जाती हैं। इसका नित्य पाठ करने वाले अनेक लोग हैं। पाठकों के अवगाहन के लिए हम इसके प्रत्येक शब्द का विवरण सहित अर्थ लिखने का प्रयास किये हैं। पाठकगण इसका लाभ उठायें। मूल संस्कृत में रहने वाली इस गीता का विवरण देने में अनेक संस्कृत शब्दों का अर्थ देना पड़ता है। उस अर्थ की अनेक व्याख्याकारों ने अनेको व्याख्याएं की हैं। हमें लिखे हुये अर्थ का निष्कर्ष देने के लिए कभी-कभी अनिवार्य रुप में व्याकरण की सहायता लेनी पड़ती है। जन सामान्य को इसको जानने में कष्ट होता है लेकिन वे थोड़ा-सा प्रयत्न करें तो उसमें निहित आनन्द उनको प्राप्त होगा।

एक

वेदाभिमानी दुर्गा देवी कहती हैं - हे कभी- भी पराजित न होने वाले प्रभु ! आपकी जय हो! पुनः पुनः जय हो ! जीवों को उनके स्वरुपभूत आनन्दादि गुणों के साथ आपके कल्याणमय गुणों को ढकने वाली जीवाच्छादक - परमाच्छादक प्रकृति का नाश करो, दूर हटाओ। आपमें रहने वाले सद्गुण जीव के समान प्रकृति से आवृत नही हुये हैं। अनादि काल से आप स्वतंत्र होकर ऐसे ही रहे हैं। रमा, ब्रह्मादि सारे जीवों में आप ही बिम्ब रुप से रहते हुये आप ही उनकी सारी शक्तियों को व्यक्त करते हैं। हे भगवान ! आप जगें, नींद से जागृत हो जाए। जीव जड़ की सृष्टि करनी है। हम सारे वेदाभिमानी वेद के विधि निषेधों के साथ आपके प्रेम के लिए कर्म करने हेतु जीवों में प्रेरणा कर सकते हैं ।।15।। **मूलश्रुतिः**- शाण्डील्य श्रुतिः

हे अजित ! जय –जय

कभी भी पराजित न होने के कारण आप अजित नाम से पुकारे जाते हैं। हे हरि ! आपकी जय हो, आपकी जय हो। आप सदाकाल जयशाली हैं। रमा, ब्रह्मादि में भी न रहने वाली सर्वोत्कृष्ट महिमा जो है उसी को **जय** बोलते हैं। वह आप में है। इस लयकाल में जीवों को यह समझ में नही आता। इसलिए आप को उठकर उनको भी नींद से जगाना है। स्थूल शरीर की सृष्टि करते हुये उन शरीरों को जीवों को देते हुये आपकी अपनी महिमा को दिखानी है। जय हो- इसका अर्थ यही होता है। यह अर्थ नही हुआ तो कभी भी पराजय को न प्राप्त होने वाले अजित की जय हो कहने का क्या तात्पर्य होता है।

दोषगृहीत गुणां अजां जहि

जीव के अनादि स्वरुपभूत आनन्दादि गुणों को प्रकृति दुःख से ढक लेती है। उसका आप नाश करें।

भगवान की इच्छा ही अनादिकाल से स्वरुपानन्द के आविर्भाव को न होने देने का मुख्य आवरण है। प्रकृति के कारण ही जीव अनादि काल से नाशवान न होते हुये रहता है। यह भी उसके आनन्दादि गुणों का अव्यक्त रहना ही भगवान की इच्छा होने के कारण इस प्रकार

अर्थ होता है। भगवान की इस इच्छा के अनुसार प्रकृति भी जीव के गुणों का आवरण करते हुये अव्यक्त करती है। सूर्य को जैसे राहु ग्रहण करता है वैसे जीव को जीवाच्छादक और परमाच्छादक इस प्रकार दो प्रकृतियों का आवरण है। प्रकृति से जीव के बाह्य मन में सुख-दु:ख होते है। इससे उसका स्वरुपभूतानन्द व्यक्त नही होता। व्यक्त करने वाले भगवान का अपरोक्ष ज्ञान न हो इस प्रकार प्रकृति बाधक बनती है। उसको भगवान अपना अपरोक्ष ज्ञान देकर प्रकृति के उस आवरण को हटाते है। जीव के स्वरुपभूत आनन्दादि गुण को व्यक्त होना चाहिए। जीवाच्छादक प्रकृति तमो योग्य चेतन अभिमानी होती है। वह जीव के स्वरुपभूत आनन्दादि गुणों को दु:खादि दोषों से ढक देती है। यह परमाच्छादक प्रकृति नित्य संसारी चेतन की अभिमानी होती है। वह परमात्मा का परोक्ष नहीं होने देती। किन्तु भगवान जिनको अपरोक्षानुभूति देते हैं उनके जीवाच्छादन को हटा देते हैं। उनको तम में नही जाने देते क्योंकि यह तम नित्य संसारी के लिये के लिये है।

अपरोक्षज्ञ रुद्रादि देवताओं को भी कभी-कभी भगवान नही दिखते। प्रारब्ध कर्म से वे भी कभी-कभी भगवान का विरोध करते हैं। इस कारण उस समय परमाच्छादकता वापस आकर परमात्म के अपरोक्ष को रोकने का काम करता है। इसी कारण भगवान आप उस परमाच्छादक को नाश करते हुये दूर हटाइये। इस प्रकार वेदाभिमानी दुर्गा देवी प्रार्थना करती हैं। **जहि** शब्द से दोनों अर्थ होता है। हनन करो और दूर हटाओ (इन) दोनों प्रकृतियों के लिए मुख्य अभिमानी रमा देवी हैं तो भी वह रमा दोनों जीवों को उनकी साधना के लिए उन दोनों को निमित्त कर लेती हैं। जड़ प्रकृति के सहयोग से श्री रमा जीवों को आच्छादित करने का काम करती हैं।

यत् त्वं आत्मना समवरुद्ध भग असि

भगवान आप स्वत: सद्गुणों को अपने में व्यक्त करते हुये स्थिर रुप से रख रहे हैं।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशस: श्रिय: ।
ज्ञान-विज्ञान योश्चैव षण्णां भग इतीरित: ।।

भग इसका अर्थ - ऐश्वर्य, वीर्य, यशश, श्री, ज्ञान और विज्ञान ये छ: गुण होते हैं। जीव में ये गुण प्रकृति से आवृत होते हैं। किन्तु भगवान में वे कभी भी आवृत नही होते, अव्यक्त नही होते, नष्ट नही होते, इनको षड्गुण कहते हैं।

अज जगदोकसां अखिल शक्त्यव बोधक !

हे जनन रहित भगवान ! आप इस जगत के आधार बने हुये ब्रह्मादि देवताओं को भी उनकी सारी शक्तियों को व्यक्त करके देने वाले हैं। ब्रह्मादि जीवों में प्रकृति से आवृत्त होकर सुप्त

हुई शक्तियों को व्यक्त करने वाले आपकी शक्तियों का प्रकृति से आवृत्त होना साध्य नही है।

क्वचिदजया आत्मना अनुचरतो निगमोऽनुचरेत्

वेद के अनुसार सृष्टिकाल में आप प्रकृति और जीव को मिलाकर सृष्टि करते हैं। आप की इच्छा के अनुसार वेद विधि निषेधों द्वारा आपकी प्रीति के लिए जीवों से कर्म करवाता है।

अवतारों में आप महालक्ष्मी के साथ मिलकर वेद के अनुसार यज्ञादि कर्मानुष्ठान को करके दिखाते हैं तो वेद आपकी इच्छानुसार विधि निषेधों द्वारा जीव से आपके प्रीत्यार्थ वेद करवाता है। इसी कारण आप निद्रा से उठकर वेद की उक्तियोग्य सृष्टि करे। अवतार लेते हुये वेदोक्त कर्मों की सृष्टि करते हुये सज्जनों का मार्ग दर्शन करिए। इस प्रकार वेदाभिमानी दुर्गा प्रार्थना करती हैं।

दो

हे भगवान ! वेदों के अनुसार आपका स्वरुप समस्त गुण परिपूर्ण है। प्रकृति की अभिमानी दुर्गा देवी से भी आप उत्तम हैं, निर्विकार हैं। इसी कारण एक से एक बड़ा ऐसा कहने वाले तारतम्य में सबसे ऊपर सर्वोत्तम रहने वाले आप हैं। इसी कारण ज्ञानी लोग आपको मन से समझते हैं। वाणी से स्तुति करते हैं, आचरण से सेवा करते हैं। वे आपके स्वरुप में रहने वाले पूर्णत्व के एक अंश को समझें तो एक अंश पर्यन्त वे आपको समझ लेते हैं। मानव इस भूमि पर परिक्रमा के लिए कई पद रखते हैं। पद एक भाग में रखने के कारण छोटी परिक्रमा होने के बाद भी उसको भू संचार नहीं, ऐसा कह नही सकते। वह एक अंश में भू संचार ही है ।।16।। **मूलश्रुतिः-** बृह- दृष्टमवशेषितं इस प्रकार प्रारम्भ होने वाले **औ-लकायन** श्रुति।

बृहदुपलब्धमेतद्

भगवान आपका स्वरूप वेद में सर्वाधिक कहा गया है। **बृहि वृद्धौ** इस धातु का ``पूर्ण`` इस प्रकार अर्थ होता है। इससे ``ब्रह्म`` व ``बृहत`` इन दोनों शब्दों से वेद भगवान को गुण पूर्ण कहते हैं।

अविकृते तमसि उदगाः

अविकृत यानि लयकाल में विकार को कार्य रूप परिणाम में बदलने वाली मूल प्रकृति है। उसको तमस नाम से पुकारते हैं। उसकी अभिमानी ``तमो`` नामक दुर्गा देवी हैं। उसी कारण दुर्गा देवी को अविकृत कहते हैं। ``**तम आसीत् तमसा गूहहमग्रे**`` का अर्थ प्रलयकाल में तमो नामक दुर्गादेवी व्याप्त होकर रहती हैं, इस प्रकार है। उस दुर्गा से भी श्री हरि श्रेष्ठ हैं। अविकृते तमसि यहाँ सप्तमी विभक्ति का पंचमी में अर्थ ग्रहण करना है।

अवशेषतया बृहत्

इससे यह बड़ा, उससे वह बड़ा ऐसा बोलने वाले तारतम्य में श्री हरि सबसे बड़े हैं।

उनसे बड़ा और कोई नही है। ``**पुरुषान्न परं किंचित् सा काष्टा सा परा गतिः**`` वेद इस प्रकार भगवान के सर्वोत्तमत्व को गाता है। इसी कारण भगवान सर्वोत्तम हैं।

अविकृतः

मूल प्रकृति की सृष्टिकाल में विकृति कार्य रुप में परिणाम होने के कारण वह सदैव अविकृत नही होती। किन्तु भगवान कभी भी विकृत नही होते। वे कभी दूसरों के अधीन नही होते अथवा काल, अदृष्ट इत्यादि अधीनता मूलक गुणधर्म उनको नहीं होते इसी कारण केवल भगवान अविकृत माने जाते हैं। रमा, ब्रह्मादि सारे उनके अधीन होकर पराधीनता मूलक विशेष को पाते हैं। इसके लिए वे सारे अविकृत नही होते। नित्य समझने वाले वर्ण और अव्याकृत आकाश इत्यादि अभिव्यक्ति विशेष श्री हरि के अधीन होते हैं। इसलिए केवल श्री हरि ही मात्र अविकृत हैं। इसलिए वे सर्वोत्तम हैं।

अत ऋषयो मनोवचनाचरितं त्वयि ददुः

इसी कारण ज्ञानी लोग आपको पूर्ण मानते हैं। वे आप में अपने मन वचन और कर्म का समर्पण करते हैं। मन में आपका ध्यान करते हैं। वाणी से आपका गुणगान करते हैं। कर्मों से आपकी आराधना करते हैं।

अतः भुवि नृणां दत्तपदानि कथमयथा भवन्ति ?

भू परिक्रमा का संकल्प करने वाले को भूमि के थोड़े हिस्से पर चलने से जैसे उसका संचार व्यर्थ नही होता, उसको भू संचार माना जाता है। वैसे ही आपके अनन्त गुणों में यथा शक्ति थोड़े गुणों को जानने पर यथार्थ भगवान का ज्ञान नही होता है, ऐसा नही होता है। वे समझते है कि वे गुण आपके हैं और वे भी आपके स्वरुप हैं। ये उसी प्रकार है जैसे भू परिक्रमा करने वाले बीच-बीच में जल मार्ग, वायु मार्ग से संचार करे तो भी वह भू परिक्रमा ही कहलाएगी, ये नही कहा जा सकता कि ये भू परिक्रमा नही है। जल, वायु, भूमिक्षेत्र का आधारभूत ``भूमि`` ही है, इस कारण वह भू परिक्रमा ही मानी जायेगी। इसी प्रकार आपके कुछ गुणों को जानने वाले आपके पूर्णत्व को जानने को उ-श्य से युक्त होने के कारण वह परमात्मज्ञानी कहलाता है।

तीन

उत्तम, मध्यम, अधम तीनों प्रकार के लोगों के स्वामी हे सर्वोत्तम ! श्री हरि ! ज्ञानी जो संसार रत हैं वे भी सकल लोक पावन आपके कथामृत नाम के समुद्र में डुबकी लगाकर सारे तापों को खो देते हैं। बर्हिर्मन न रहने वाले मुक्त लोग तो दुःख शोक से बहुत दूर रहते हैं। उनको जड़ शरीर नही होता हैं। उनको काल का परिणाम नही होता। आपके अनुग्रह से जनन-मरण इत्यादि से वे परे हैं। वे आपके

नित्यानन्दानुभव स्वरुप को सदा के लिए प्रत्यक्ष देखते, भजन करते हुए सारे तापों से निवृत्ति पाते हैं। इसको अलग कहने की आवश्यकता नही हैं ।।17।। **मूलश्रुतिः-** त्यजन्ति तापम् इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली इन्द्र द्युम्न श्रुतिः।

त्यधिपते ! परम !

भगवान आप उत्तम, मध्यम, अधम तीनों प्रकार के जीवों के स्वामी हैं। आप सर्वोत्तम हैं। आप उत्तम जीवों से शुद्ध भक्ति को, द्वेष मिश्रित भक्ति के मध्यम जीवों से और केवल द्वेष को अधम जनों से पाते हुये उनको अनुक्रम से नित्य सुख, मिश्रित दुःख-सुख, नित्य दुःखों को उनके स्वरुप में व्यक्त करते हुये देते हैं। इसके लिए आप तीनों प्रकार के लोगों के लिए स्वामी हैं, सर्वोत्तम हैं।

सूरयः अखिल लोक मलक्षपणं कथामृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः ।

ज्ञानी लोग संसार में रहते हुये आपके पावन कथामृत नाम के समुद्र में डूब कर तीनों तरह के पापों से मुक्त होते हैं।

इति किमुत पुनः स्वधाम विधुताशयकालगुणाः ?

इस प्रकार मुक्त लोग स्वधाम में दूसरों के विघ्न के बिना स्वयं अपने आश्रय से स्वतंत्र पुरुष श्री हरि के अनुग्रह से ``**विधुत आशय काल गुण** यहाँ आशय का अर्थ बाह्य अन्तःकरण होता है यह लिंग शरीर में रहता है लिंग भंग होने वाले मुक्त जीव को यह बाह्य अन्तःकरण नही होता है वे मानसिक दुःख, शोक आदि अन्तःकरण के परिणाम गुण-रुप दुःख, शोक, ``विधुत यानि`` दूर हो गये हैं। काल गुण यानि काल के परिणाम रुप जनन-मरण भी विधुत हो गये हैं यानी नाश हो गये हैं। उनका लिंग भंग हो जाने के कारण उनको पुनः जड़ शरीर न आने वाला है। इसी कारण उनको जनन-मरण प्रसक्ति नही है। ऐसे मुक्त लोग अपने तापत्रय को दूर कर लेते हैं। इस प्रकार अलग बताने की आवश्यकता नही है।

अजस्र सुखानुभवं पदं भजन्ति।

सदा सुख का अनुभव करने वाले मुक्त लोग श्री हरि के स्वरुप को प्रत्यक्ष देखते हुये उनका भजन करते हैं। ऐसा होने से उनको तापत्रय से दुःख कहाँ होता है ? इस संसार में जीवाच्छादक होने के कारण बर्हिमन को दु;ख, शोक इत्यादि होना स्वाभाविक है। जब अपरोक्ष ज्ञान होता है तब जीवाच्छादक शिथिल होने लगता है। बहुशः जले हुए वस्त्र के समान निष्क्रिय होता है। किन्तु स्वरुपानन्द की अभिव्यक्ति अभी नही होती। इसके लिए वे भक्त अपने दुःख शोकादि के आघात को भगवान कथामृत का पान करते हुये कम कर लेते हैं, क्योंकि उस समय उनके हृदय में तात्कालिक रुप से भगवान का दर्शन होता रहता है। किन्तु

मुक्तों के लिए जीवाच्छादक नही है। वे वर्हिमन नही रहते हैं। इसी कारण उनको दुःख, शोक का अनुभव नही होता। भगवान सदाकाल प्रत्यक्ष दर्शन देते रहते हैं। सदा सुख स्वरुप भगवान को प्रत्यक्ष देखते हुये उनमें स्वरुपानन्द व्यक्त होता है। ऐसे लोगों को तापत्रय की बाधा नही होती है।

चार

महत्तत्व अहंकार इत्यादि के लिए अभिमानी देवता चतुर्मुख ब्रह्मा, रुद्र आदि भी आपके अनुग्रह से इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि किये। ऐसे आपका, द्वेष करने वाला उसके परिणाम स्वरुप अंधंतमस में पड़ कर लोहार की धौकनी की तरह श्वास छोड़ता रहता है। उत्तम देवगण, मध्यम ऋषि, गन्धर्व आदि और अन्तिम मानवोत्तम इनमें कोई भी हो आपसे द्वेष न करते हुये आपके बारे में, योग्य लोगों को ज्ञानोपदेश करते हैं। वे आपको निश्चित रुप से पाते हैं। आप मूर्त-अमूर्त, विलक्षण होते हुये सदाकाल एकरस रहते हैं। आप सर्वोत्तम हैं ।।18।। **मूलश्रुतिः**- अनिशमुच्छवसन्त्य इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली पैगीय श्रुतिः।

महदहमादयः यदनुग्रहतः अण्डमसृजन् ।

महत्, अहंकार आदि के अभिमानी ब्रह्मादि देवता आपके अनुग्रह से ही इस ब्रह्माण्ड का निर्माण किये हैं। उनकी प्रार्थना के अनुसार आप उन तत्वों में प्रवेश करते हुये उनकी शक्ति को जागृत करते हैं। इसी कारण उन तत्वों से ब्रह्माण्ड का निर्माण करने के लिए ब्रह्मादि का साध्य सम्पन्न हुआ।

यदि ते असु हृदः दृतय इवोच्छ्वसन्ति ।

आपसे द्वेष करने वाले तमो योग्य होने के कारण तमरन्धकार में गिरते हुये लोहार की धौकनी के समान जोर से श्वास छोड़ते हैं। धौकनी जितनी अधिक वायु प्रक्षेपित करती है उतनी ज्वाला ज्यादा होती है। उसी प्रकार ये लोग जितनी श्वास छोड़ते हैं उतना दुःख होता है।

अत्र चरमोत्तम मध्यमादिषु यः प्रथयेत् सः पुरुष विधान्वयः (भवति) ।

इन मुक्ति योग्य जीवों में उत्तम मनुष्य अन्त में आता हैं। मध्यम ऋषि गन्धर्व, और उत्तम देवता ये सारे मिलकर इनमें सबसे श्रेष्ठ चतुर्मुख हैं। इनमें जिन-जिन योग्य लोगों को आपके तत्व का उपदेश करते हैं वही पुरुष विद् आपको पाता है। आप पुरुष रुपी जीव के समान उसके शरीर में उसके साथ बिम्बरुप बनकर रहने से पुरुष **विध** कहलाते हैं।

तवः सदसतः परं अविशेषं ऋतं प्रथयेत् ।

आप मूर्तमूर्त विलक्षण होते हुये भी एक प्रकार रहते हुये सर्वोत्तम हैं। मुमुक्षु को इस प्रकार, योग्य लोगों को आपके बारे में उपदेश देना चाहिए। **सत् मूर्त**, **असत् अमूर्त** इन दोनों

से **परं** विलक्षण, **ऋत** एकप्रकार क्योंकि श्री हरि जगद रुप बनकर परिणाम नही होते। वे नाना प्रकार के प्रपंच का प्रकृति से निर्माण करते हैं। **अविशेष** आपसे बढ़कर आपसे श्रेष्ठ और कोई व्यक्ति नही है। आप ही सर्वोत्तम हैं। इस प्रकार आपके बारे में उपदेश करना चाहिए। इसका अर्थ इतना ही है कि स्वाध्याय और प्रवचन एक साथ करने की आवश्यकता है।

पाँच

ब्रह्म विचार के मार्ग में सूक्ष्मदृष्टिवाले शार्कराक्ष मुनि **उदर** नामक भगवान की उपासना करते हैं। आरुणि नाम के मुनि सूक्ष्म रुप **हृदय** नाम के भगवान की उपासना करते हैं। श्री हरि हृदय से ब्रह्मनाड़ी मार्ग से ऊपर चढ़ते हुये सहस्रार कमल को जाकर वहाँ **चक्षुरादि** इन्द्रिय देवताओं से उपासना पाते हैं। वे मुख्य प्राण को आगे रखते हुये इस जगत के क्रिया कारित्व को जारी रखते हैं, वे मुख्य प्राण के नियामक हैं। इस प्रकार सारे लोग उनकी उपासना करते हैं। जो इस प्रकार उपासना करते हैं, वे इस संसार में पुनः नही आते ।।19।। **मूलश्रुतिः**- तम् प्रपदाभ्याम इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली आद्या श्रुतिः। (ऐतरेय उपनिषद्)

यर्हि वर्त्मनि सूक्ष्मदृशः उदरमुपासते यत् समेत्य न पतन्ति ।

ब्रह्म चिन्तन के मार्ग में सूक्ष्म दृष्टि वाले शार्कराक्ष ऋषि उदर नामक श्री हरि की उपासना करते है। वे ब्रह्मनाड़ी से उत्क्रमरण करते हुये श्री हरि को पाते हैं। **शर्करा** बालू के अति सूक्ष्म कण के समान आँखों के कारण उनको शर्कराक्ष बोलते थे। वे पेट में रहने वाले उदर नामक सूक्ष्म हरि की उपासना करते हुये ब्रह्मनाड़ी से उत्क्रमण करके श्री हरि को पाने के कारण पुनः इस संसार में नही आते।

यर्हि आरुणयः दहरं हृदयं उपासते न पतन्ति ।

आरुणि ऋषि सूक्ष्म हृदय नामक हरि की उपासना करने से हरि को पाकर पुनः इस संसार में नही गिरते। **दहर** यानी सूक्ष्म किन्तु **अरुण** उदय होने वाले सूर्य के समान लाल रंग वाले हृदय में रहने के कारण हृदय नाम वाले नारायण की आरुणि मुनि उपासना करने के कारण उनका आरुणि नाम है।

अथ ततः नन्दनपथा शिरः उदगाच्च पुनरिह ।

चतुर्मुख के शरीर में श्री हरि पाँव से प्रवेश करते हुये ऊपर आकर **अथ** बाद में **ततः** हृदय से भी उठकर ऊपर **नन्दनपथा** यानी ब्रह्मनाड़ी मार्ग से भगवान सिर के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र तक चढ़ते हैं। वहाँ चक्षुरादि इन्द्रियों के अभिमानी देवताओं से पूजा पाते हैं। **पुनरिह** यानि और पाँव से लेकर हृदय तक सारे स्थानों में उपासकों से पूजा स्वीकार करते हैं। अपरोक्ष ज्ञानी भी ब्रह्मनाड़ी मार्ग से हृदय से सिर तक जाकर वहाँ के ब्रह्मरन्ध्र से उत्क्रमण पाकर श्री हरि को पाते

हैं। इसी कारण वे पुनः संसार में नही गिरते।

परिसर पद्धतिं उपासते ।

सारे उपासक मुख्य प्राण, में उनके नियामक और उनको आगे रखते हुये ब्रह्माण्ड में सारे कार्य-कारित्व की प्रेरणा देने वाले श्री हरि की उपासना करते हैं। जीवों के शरीर में श्री हरि प्राण को आगे रखते हुये प्रवेश करते हैं। उसी प्रकार निष्क्रमण भी करते हैं। भगवान श्री हरि इन्द्रियों में रहकर विषय भोगों से स्वयं अपने सुख की अभिव्यक्ति करते हुये प्राण की सुखाभिव्यक्ति किया करते हैं। **मुख्य प्राण परिसर** कहलाते हैं, क्योंकि वह **परितः** यानी सर्वत्र **सरति** संचार करते हैं। इसी कारण सब कुछ जानते हैं। **परित्यज्य** इन्द्रियाभिमान को छोड़कर स्वतंत्र रुप से **सरति** जीव के शरीर में प्रवेश निष्क्रमण करते हैं। ऐसे मुख्य प्राण श्री हरि का **पद्धति** मार्ग बनते हैं। उनको आगे रखते हुये श्री हरि चलते हैं। वे ही प्राण के नियामक होने के कारण प्राण को वह **पद्धति** मार्ग बनते है। इस प्रकार दो अर्थों में **परिसर पद्धति** नाम वाले श्री हरि मुख्य प्राण के अधिष्ठान पेट, हृदय इत्यादि स्थानों में उपासना कर पाते हैं।

यत् परमं समेत्य पुनरिह कृतान्तमुखे न पतन्ति ।

शरीर में इस प्रकार श्री हरि की उपासना करते हुये उसको पाने से वे उपासक पुनः इस संसार गर्त में नही गिरते हैं।

छः

श्री हरि आप निर्माण किये हुये जीवों के अनेक तरह के शरीर में रहते हुये लकड़ी में रहने वाली आग की तरह रहते हुये लकड़ी की समझ में पडते ही आते। उसी प्रकार आप जीवों में रहते हुये, हर प्रकार के व्यवहार करते हुये जीवों को मालूम नही होते हैं। जीव के अनुसार सुखी और दुःखी जैसे लगते हैं। किन्तु आप सर्वकर्ता हैं इसको मुख्य प्राण ठीक तरह से जानते हैं। प्रतिक्षण बदलने वाले शरीर में रहते हुये आप मात्र ही एक ही प्रकार रहते हैं। किन्तु नाना रुप धारण किये हैं। ऐसे आपके सामीप्य को चाहने वाले ज्ञानी चिन्तन करते हुये आप को अपने मन में रख लेते हैं ।।20।। **मूलश्रुतिः-** योजीववद्योनिषो इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली कमठ श्रुतिः।

स्वकृत विचित्रयोनिषु ।

आप निर्माण किए हुए जीवों के अनेकों तरह के शरीरों में रहते हैं।

अनलवत् स्वकृतानुकृतिः ।

आग स्वयं ही निर्माण किए हुए लकड़ी में रहते हुये लकड़ी की तरह वर्तन करता है। आप भी इसी प्रकार जीवियों में रहते हुये जीवी की तरह बर्ताव करते हैं। लकड़ी पंच भौतिक है। पंचभूतों में एक अग्नि से लकड़ी की उत्पत्ति होती है। उसमें रहने वाली अग्नि लकड़ी के

समान रहती है। इसी प्रकार भगवान स्वयं निर्माण किये हुये जीवियों के शरीर में रहते हुये जीव के समान बर्ताव करते हैं। उन्ही के समान अपने को सुखी-दुःखी दिखवाते हैं।

विशन्निव चकास्सि ।

शरीर से सुख-दुःख पाने के लिए, कर्म करने के लिए जीव उसमें प्रवेश करता है। **विशति** प्रवेश करने से **विसन्** यानी जीव **विसन इव** आप जीव के समान अन्यों को दिखते हैं। इसलिए अन्य खुद अपने को छोड़कर और भगवान नही हैं, इस प्रकार भ्रम में रहते हैं।

हेतुतया भरतमतः ।

भरत का अर्थ मुख्य प्राण होता है। भ यानी प्रकाश स्वरुप श्री हरि में **रत** यानी आसक्त रहने वाले वही आपमे आप ही सबके हेतु रुप मे है इसको जानते है। उनसे आप **मत** ठीक तरह से जाने जाते हैं।

वितथास्वपि अमूषु अवितथोरुविधम् ।

पंचभूतों से बना हुआ शरीर कभी-भी एक ही तरह नही रहता। हर क्षण बदलता रहता हैं। इसी कारण वह **वि-तथ** बना है। उनमें रहने वाले आप **अ-वितथ** यानी रुपान्तर न पाने वाले हैं। इसके कारण आप अनन्त शरीरों में **उरु-विध** यानी अनन्त रुप बने हैं

तव निकटधियः अभिविपत्य मनसि न्यन्ति ।

आपके सामीप्य को चाहने वाले, यानी सामीप्य, सारुप्य इत्यादि मोक्ष को चाहने वाले **निकटधियः** कहलाते हैं। वे **अभिविपत्य** आपके बारे में ठीक तरह से चिन्तन मंथन करते हुये, मन में आपको सदाकाल रखते हुये ध्यान करते हैं।

सात

हे पुरुष ! आप तारतम्य से रहने वाले सारे जीवों की सारी ज्ञानेन्द्रियों में, सन्निधान तारतम्य से रहते हुये उनसे अपनी पूजा करवाते हैं। दुराचारियों में भी आप रहते हैं। चतुर्मुख ब्रह्मादि देवता उनसे कर्म के अनुसार पापाचरण करवाते हैं। आप उसी को अपनी पूजा रुप में स्वीकार करते हैं। हमारी सारी क्रियाऐं सारी इन्द्रियों के इन्द्रियाभिमानी देवताओं के शक्ति प्रेरक होकर आप ही उनमें रहते हुये स्वतंत्र रुप से करते हैं। इस प्रकार ज्ञानी लोग कहते हैं। बाहर देवताओं के लिए वेदव्यास इत्यादि रुपों से, दैत्यों को बुद्धादि अवतार रुपों से आप जो-जो उपदेश करते हैं और सबके अन्दर अन्तर्यामी होकर जो-जो प्रेरणा देते हैं वे सारे आप द्वारा करवाने वाली पूजा है। ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं। इस प्रकार पूजा ग्रहण करने के लिए आपको निद्रा त्यागकर जगना पड़ता है। आप उठकर इस सृष्टि की रचना करे ।।21।। **मूलश्रुतिः**- निषुसीद गणपते इति आद्या श्रुतिः।

हे पुरुष प्रक्रमवत् पुरुषेषु धीषु स्वसत् कृतं वदन्ति ।

हे परम पुरुष ! तारतम्य क्रम के अनुसार आप जीव में और उनकी इन्द्रियों में रहते हुए आप ही अपनी पूजा करवाते हैं। प्र-क्रम = प्रकर्षक्रम यानी तारतम्यक्रम से बड़े लोगों में रहते हुए बड़ी पूजा और छोटे में रहते हुये छोटी पूजा करवाते हैं। जीव छोटे होते हैं। उनमें रहने वाले तत्वाभिमानी देवता बड़े होते है। ब्रह्मा, रुद्रादि देवताओं से और भी बड़े होते हैं।

असच्चरणे तव स्वसत्कृतं वदन्ति ।

असच्चरणों में = दुराचारियों में चलने वाला सारा कर्म भी आपके लिए पूजा रुप है। ऐसा ज्ञानी लोग मानते हैं। दुराचारी जो पाप कर्म करता है उसको करने में वह स्वयं शक्त नही है। इन्द्रियाभिमानी देवता उसी से कर्म कराते हैं। इसी कारण दुराचारी को नरक होता है। यह उसकी योग्यता के अनुसार होने के कारण भगवान को इष्ट होता है। हरि को इष्ट उस पाप कर्म को जो देवता कराते हैं, वह भी श्री हरि की पूजा रूप में है। सज्जन लोग जो करते हैं वह पूरा पुण्य कर्म श्री हरि की पूजा होती है। वह कर्म उनकी योग्यता के अनुसार होता है। भगवान के इष्ट के अनुसार होता है। इस प्रकार तत्व देवता द्वारा पुण्य करवाना, मोक्ष दिलवाना और सज्जन लोगों का पुण्य कर्म करना ये सारा श्री हरि की पूजा ही है। सज्जन लोग इसका अनुसन्धान करते हैं इसके लिए उनको मोक्ष मिलता है। दुर्जन लोग पाप कर्म करते समय अहंकार पूर्वक करने से और कर्म करते समय वह पाप नही है। इसके लिए उसका फल स्वरुप मिलने वाला नरक भी उनका अनुगुण नही है। इस प्रकार भ्रम करने से उनका पाप कर्म उनको नरक का फल देता है। तत्वाभिमानी देवता इस प्रकार का भ्रम नही करते हैं इसलिए उनको उस फल से मोक्ष मिलता है।

अखिलशक्तिधृतः तव स्वकृतं ।

जीवों की सारी शक्ति, सारी इन्द्रियों को प्रेरणा देने वाले और सारे विषयों में शक्ति देने वाले, उसको आपने किए हुए स्वतंत्र कर्म ही होते हैं।

बहिरंतः स्वकृतं स्वसत् कृतं वदन्ति ।

अन्दर-बाहर रहकर आप प्रेरणा देते हुये जीव द्वारा किए जाने वाले सारे कर्म आपकी ही पूजा होती है। इस प्रकार ज्ञानी लोग कहते हैं। बाहर आप देवताओं को वेदव्यासादि रूप से तत्वोपदेश देते हैं। दैत्यों को बुद्धादिरूपों से दुर्बोधना करते हैं। सबके अन्तर्यामी रहकर उनकी योग्यता के अनुसार सत्कर्म और दुष्कर्म करवाते हैं। यह आप अपने ही कर्म के रूप में करते हैं। सत्कर्म हो या दुष्कर्म हो दोनों उन जीवियों के योग्यतानुसार होने के कारण आपके लिए इष्ट होते हुये आपकी पूजा ही है। इस प्रकार ज्ञानी लोग कहते हैं।

आठ

आपके अनुग्रह के बिना किसी को कुछ समझ में नही आता है। संसार के दुःख से निश्वास करने वाले विवेकी लोग आपके बारे में चिन्तन करते हैं। वे वेद शास्त्रों में ही विशेषकर अपने मन और बातों को विनिमय करते हैं। आपका चरितामृत समुद्र के समान हैं। वेदों की सहायता से वे चिन्तन - मंथन करने में परिश्रम करते हैं। वेदों में कहे हुए कर्म के बीज को बोने में योग्य क्षेत्र बने हुये आपको कर्म से आराधना करते हुये ध्यान करते हैं। अपरोक्ष अनुभूति पाते हुये संसार से विरक्त होकर आपका भजन करके इस संसार से मुक्त होते हैं। उनसे ऐसा करवाने के लिए आप जग और सृष्टि का निर्माण करें ।।22।। **मूलश्रुतिः**- विमथ्य वेदाब्धि इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली कुशीक श्रुतिः।

हे दुरवगमात्मतत्व ।

अपने अनुग्रह से ही, किन्तु जीव की योग्यतानुसार आप उनके ज्ञान के लिए अल्प मात्र गोचर होते हैं। स्वतंत्र होकर किसी रीति से प्रयत्न करने के बाद भी कोई आपको तिल मात्र भी समझ नही सकता। ऐसी आपकी महिमा है।

भवमध्यविनिःश्वसिता इति कवयः त्वां विमृशन्ति ।

संसार में विविध तरह के दुःखों को भोगने वाले, निःश्वास छोड़ने वाले विवेकी आपके अनुग्रह से आपके बारे में शास्त्रों का विचार विमर्श करते हैं।

निगमायत वांङमनसः ।

वेदों मे और वेदवेद्य आप में विशेषकर मन और वचन के साथ सारी इन्द्रियों को ज्ञानी लोग जोड़ देते है।

चरितमहामृताब्धि परिवर्त परिश्रमणाः ।

आपके चरित्र नाम के महासमुद्र को अपने मन नाम के मंदर पर्वत से मंथन करने के महाश्रम को, वे हाथ में लेते हुए। आपके परीक्षज्ञान को पा लेते हैं।

निगमावपनं भजन्त उपासते ।

वेद नाम के बीज को बोने के लिए भगवान एक उत्कृष्ट जमीन बनाते है क्योंकि वेद मुख्य रूप से उन्ही के बारे में बताते हैं। विधि-निषेध वाले वेदों में और विषय आने पर भी वे सारे भगवान के ज्ञान के लिए सहायक होते हैं। इसी कारण वेदों का अर्थ करते समय भगवान के बारे में ही अध्ययन करना चाहिए।

वेदोक्तकर्म नाम के बीज को बोने के लिए भगवान ही क्षेत्र होते हैं। उनमें कर्म का बीज बोने से (अर्पण करने से) वह अंकुर बनकर बाद में बड़ा वृक्ष होकर उत्तम फल देता है। किन्तु अर्पण नही करे तो वह व्यर्थ होता है। अन्य देवताओं की आराधना करने के बाद भी उनमें रहने

वाले भगवान को ही अर्पण करना पड़ता है।

वेद वृक्ष भी भगवान नाम के क्षेत्र में खड़ा है। कल्प के प्रारम्भ में भगवान ब्रह्मा जी को उपदेश देते हुये वेद वृक्ष को खड़ा किये है। इसके अनुसार ब्रह्म सूत्र, महाभारत इत्यादि का व्याख्यान करते हुये उसको अत्यन्त स्थिर कर दिये हैं। शाखा भेद से विभाग करते हुये विशाल विस्तार किये हैं। इसी कारण श्री हरि को वेद वृक्ष का क्षेत्र मानकर आराधना करते हुये उनके अनुग्रह से उनको जान लेना चाहिए।

इति भवमध्यविनिःश्वसिताः भजन्त उपासते ।

इसी कारण संसार में विरक्त रहते हुये आपकी यज्ञादि कर्मों से भजन करते हुये ध्यान रूप उपासना ज्ञानी लोग करते हैं और अपरोक्ष ज्ञान पाकर संसार से मुक्त होते हैं। मुक्त होने के बाद भी वैकुण्ठ में रहते हुये यज्ञादि कर्म और ध्यानोपासना करते रहते हैं। ये कर्म और उपासना फल का साधन रूप नही हैं। किन्तु वे फल रूप होते हैं। आनन्द के उद्रेक से हँसते हैं, नाचते हैं और यागादि कर्मों को और ध्यानादि उपासनाओं को मुक्त लोग आनन्द के उद्रेक से करते हैं।

नौ

प्रभु आपके एकान्त भक्तों में कई आपकी आराधना के फल रूप मोक्ष को भी नही चाहते हैं। आपके चरण कमलों में हंस के समान रहने वाले ज्ञानी समूह आपकी सेवा के लिए अपने घर बार को त्याग कर बाहर आते हैं। अपने इस जड़ शरीर को भी आपकी आराधना का साधन समझते हुये आपके चिन्मय शरीर को आनन्द से देखते हैं। अपने से, अपने शरीर से और अपने सकल साधन सम्पत्ति से बढ़कर आप प्रिय हैं, स्वामी हैं, यह मानते हुये वे आप में ही सदाकाल मन लगाते रहते हैं। आपकी सेवा के लिए सदाकाल सिद्ध रहते हैं ।।23।। **मूलश्रुतिः**- न किंचिदभि वांछन्ति इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली विमद श्रुतिः।

हे ईश्वर केचिद् अपवर्गमपि न परिलषन्ति ।

हे प्रभु ! आपके कई एकान्तिक भक्त केवल आपके सामीप्य को चाहते हैं, और कुछ नही माँगते हुये आपमें भक्ति करते हैं। उसके फलस्वरुप आप मोक्ष देने को कहें तो वे उसको भी नही चाहते। वे केवल आपके समीप रहने के उ-श्य से मोक्ष को स्वीकार करते हैं। किन्तु मोक्ष को अपने कष्ट परिहार और नित्य सुख की अभिलाषा में कभी नही चाहते।

ते चरण सरोज हंसकुल संगविसृष्टगृहाः।

आपके चरण कमल की इच्छा करने वाले हंस, परमहंस इत्यादि ज्ञानी लोग आपको पाने के लिए अपने घर बार छोड़कर आते हैं। उन ज्ञानी परमहंसों की सेवा करे तो वह सेवा

आपकी इष्ट बनती है। इसको आपके एकान्त भक्त ठीक तरह से जानते हैं।

त्वदनुपथमिदं कुलायमात्म सुहृत् प्रियवच्चरन्ति ।

आपकी सेवा ही इस शरीर का प्रयोजन है, इसी कारण वे अपनी देह की रक्षा करते हैं, किन्तु शरीर रक्षा विषय भोग के साधन रूप नही करते। ये शरीर भगवद् प्राप्ति के लिए योग्य होता है, यह जानकर वे आपके चिन्मय शरीर से प्यार करते हैं। उसी प्रकार यह शरीर का आपके ज्ञान पाने में आपकी प्राप्ति में साधन होकर बन्धु के समान सदाकाल साथ रहता है यह मानकर पार्थिव शरीर को प्यार करते हैं। वस्तुतः अन्य लोग जैसे शरीर को, शरीर के लिए प्यार नही करते वरन् प्रिय वस्तु व्यर्थ न हो इसके लिए पार्थिव शरीर की वे रक्षा करते हैं।

प्रिये आत्मनि च त्वयि तथाहि ते उन्मुखाः ।

आप श्रवण, स्मरण और दर्शन से दिव्य सुख देते हुये भक्तों के लिए प्रियकर बने हैं। बिम्बरूप में हमारे में रहते हुये हमारे स्वामी बने हैं। इस प्रकार आपके बारे में चिन्तन करते हुये अपनी इन्द्रियों को और प्रवृत्तियों को आप में ही लगाते हुये आपके बारे में सदाकाल चिन्तन करते हैं। (उन्मुख होते हैं।) आपकी सेवा के लिए सदा सिद्ध रहने वाले एकान्त भक्त अपने सुख के लिए मोक्ष को भी नही चाहते।

दस

आपकी अन्यथा उपासना करने वाले को होने वाले महा अनर्थ को देखकर आश्चर्य होता है। क्योंकि अन्यथा उपासना करने वाले आत्महत्या पातकी के समान हैं। भगवान के सर्वोत्तम स्वरूप के विरुद्ध बोलने वाले आत्महत्या के समान पाप भोगते हैं। ऐसे आत्मघाती तमस में पड़कर केवल दुःख का अनुभव करते हैं। उनके लिए सुख का लवलेश भी नही रहता है। वे तम से बाहर नही आ पाते, वहीं पलटते रहते हैं। उस समय भी वे अन्यथोपासना ही करते रहते हैं। उनके लिए न मरण का भय है, न पुनर्जन्म का। नरक में दुःख का अनुभव करने के लिए उनको एक दुष्ट यातनामय शरीर मिलता है। भगवान से द्वेष करने वाले और भगवान के भक्तों से द्वेष करने वाले अन्त में तमस में गिर जाते हैं।

मोक्ष साधन सामर्थ्य वाले ज्ञान को वायुदेव पूर्ण रूप से पाये हैं। उनका अनुग्रह पाकर सज्जन लोग मननशील होकर हृदयस्थ भगवान का ध्यान करते हैं। उनका द्वेष करने वाले आत्मघाती होते हैं, तमस को पाते हैं भगवान गीता में कहे हैं कि **ज्ञानी त्वात्मैव मे मतः**।ज्ञानी मुझसे अलग नही। उनसे मेरा बहुत प्यार है। इसी कारण ज्ञानी से द्वेष करने वाला मुझसे द्वेष करता है और अपनी हत्या का फल भोगता है। इस प्रकार श्री हरि मानते हैं ।।24।। **मूलश्रुतिः-** असूर्या वामते लोका इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली बृहदारण्यक और ईशावास्य श्रुतिः।

अहो !

अन्यथा उपासना करने से होने वाले अनर्थ को देखकर आश्चर्य होता है।

असदुपासनया आत्महनः न च रमन्ति ।

अन्यथा उपासना से आत्मघाती बनने वाले लोग लिंग भंग के बाद किंचित् सुख का भी अनुभव नही करते, इतना ही नही वे केवल अपार दुःख का ही अनुभव करते हैं।

यदनुशाया भ्रमंति ।

अन्यथा उपासक तमस में पड़े होकर पलटते रहते हैं। केवल दुःख का अनुभव करते हुये द्वेष और प्रतिकार की भावना से युक्त होकर पुनः अन्यथोपासना में डूब जाते हैं।

अभवा कुशरीरभृतः ।

भव शब्द के मंगल और संसार इस प्रकार दो अर्थ होते हैं। इसके अनुसार यहाँ अभवाः अमंगलकारी स्वरूप वाले लिंग भंग के बाद पुनः संसार में न आने के कारण उनको तमस से मुक्ति नही है। वहाँ मरण और पुनर्जन्म नही है। **कु-शरीर** दुष्ट यातना शरीर उनको मिलते रहते हैं। उनको शिक्षा देने के लिए नियुक्त वायुदूत अपनी इच्छानुसार उनको शुद्ध तमोमय शरीर देते हैं। वे उन शरीर से दुःख भोगते हैं।

निभृत मोक्ष हृदय योगयुजः ।

पूर्ण मोक्ष साधन रूप ज्ञान वाले निभृत मोक्ष हृदय वाले मुख्य प्राण हैं। **हृदय** का अर्थ **हृत** = हृदय से अथवा प्रतिभा से आने वाला **अय** ज्ञान, मुख्य प्राण को स्वयं होता है। उनको वेद पढ़ने से ज्ञान आने की आवश्यकता नही है। उनकी स्वाभाविक प्रतिभा से आने वाला ज्ञ ान वेद सम्मत है। वह **भृत** यानी पूर्ण मोक्ष साधन रूप सामर्थ्य से पूर्ण हैं इस प्रकार अर्थ होता है। ऐसे पूर्णप्रज्ञ के अनुग्रह वाले सज्जन लोग मोक्ष के योग्य होते हैं।

हृदयमुपासते ।

पूर्णप्रज्ञ के अनुग्रह पात्र जो हैं वे तंत्रसारोक्त क्रम से हृदय में रहने वाले बिम्ब की उपासना करते हुये मोक्ष पाते हैं।

तदरयोऽपि ययुः (स्मरणात्)

हरि वायु के भक्तों को द्वेष करने वाले भी तम को जाते हैं। **ययुः** पीछे वाले तम को गये हैं आगे वाले को भी जाना पड़ता है। **तद्भक्त द्वेष एव च** । इस प्रकार वे भी विष्णु द्वेषी होकर आत्मघाती बनते हैं। यहाँ **स्मरणात्** शब्द को आगे वाले श्लोक से जोड़ देना चाहिए।

ग्यारह

भक्तों के अनुग्रह के लिए केवल आप का स्मरण करना पर्याप्त है, इसी कारण आप अपने

भक्तों में अनुराग करते हैं। शेष देव द्वारा की हुयी भक्ति से सन्तुष्ट होकर, उनके लम्बे और शीतल शरीर के ऊपर सर्वसमर्थ आप सोते हैं। ऐसे आपके स्वरूप को केवल आप ही पूर्ण रूप से समझ सकते हैं। हम आपके पदकमल के मकरन्द की सुधा और उसकी महिमा की उँचाई के सामने खड़े नही हो सकते। किन्तु अपनी शक्ति की सामर्थ्य से हम कह रहे हैं। नित्य मुक्त कौन है ? क्योंकि सर्वज्ञ अनुसार कहलाने वाले ब्रह्मा जी भी आपसे जन्म लिये हैं। देव पद को प्राप्त अन्य और देवत्व को चाहने वाले अन्य देव समूह भी ब्रह्मा जी के बाद ही जन्म लिए हैं। तो वे कैसे आपके बारे में बोल सकते हैं ? ।।25।। **मूलश्रुतिः**- त्वम् वेत्थ नापरस्ते इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली संस्कृति श्रुतिः।

स्मरणात्स्वनुराग !

केवल स्मरण भक्ति मात्र से भक्तों से प्यार करने वाले आप हैं।

पिछले श्लोक के अंत में आया हुआ **स्मरणात्** इस शब्द को इस श्लोक के पहले वाला **स्वानुराग** इस शब्द से जोड़कर **स्मरणात्स्वनुराग** इस प्रकार एक ही शब्द हो गया है। यहाँ अलुक् समास होकर पंचमी लोप नही हुआ है। वैदिक साहित्य में ऐसा प्रयोग अपरूप होकर कभी दिखता है। दृष्टान्त में ऐतरेय उपनिषद् में (2-2-5-3) **इति हस्माहा** इस मंत्र के साथ आगे वाले मंत्र के पहले शब्द **कृत्स्नौ होषः** इस शब्द के साथ जोड़ता है। इसका अर्थ छन्दसों में अनुष्टुप छन्द सबसे श्रेष्ठ हैं। वेद की इस पद्धति के अनुसार यहाँ भी **स्मरणात्स्वनुराग** इसको एक ही शब्द मानकर अर्थ करना चाहिए।

उरगेन्द्र भोग दण्ड विषक्तधियः ।

उरगेन्द्र यानी बड़ा साँप नागराज शेषदेव हैं। उसका **भोग** यानी शरीर **दण्ड** के समान लम्बा है। सर्वशक्त स्वतंत्र श्री हरि इन शेष के शरीर पर प्यार से सोते हैं। इसके लिए का नाम **विषक्तधी** है। उनकी भक्ति से सन्तुष्ट हुये भगवान उनकी साधना की पूर्ति हेतु उनकी अपनी शय्या और आसन बनाये हैं। ऐसे श्री हरि की महिमा अचिन्त्य है।

तद् भवान् वेद ।

अपनी अचिन्त्य महिमा और अपने भक्त वात्सल्य को केवल आप ही जानते हैं।

अंघ्रि सरोज सुधांवयमपि समासमदृशः ।

आपके अंघ्रि कमल की सुधा को हम वेदाभिमानी लक्ष्मी रूप भी पूर्ण रूप से समझ नही सकते। हम केवल **सम-असम** होकर समझ सकते हैं। इसका अर्थ यहीं है कि हमारी जितनी शक्ति है उसके अनुसार समझ सकते हैं। यद्यपि पक्षी आकाश में उड़ता है किन्तु वह पूरे आकाश में नही उड़ सकता। उसके पंख में जितनी शक्ति है उतना ही उड़ सकता है।

वस्तुतः आपकी भक्त महिमा वात्सल्य के बारे में देखें तो हमारा ज्ञान उतना ऊँचा नही हो सकता। वह **असम** बनता है। ऐसा होते हुये भी इसको श्री, भू, दुर्गा रूप में केवल हम ही बोल सकते हैं और कौन बोलेगा ?

क इह नु वेद व्यक्तुमपेत जन्मलयः ?

ऋषि, ज्ञानी, सर्वज्ञ चतुर्मुख ब्रह्मा जी भी आपसे **उदगात्** जन्म लिए। **उभय विध** देव समूह भी अपने योग्य देव पदवी को जो पाये हैं, अभी पाने वाले हैं ऐसे दोनों तरह के देव समूह **अनु** ब्रह्मा जी के बाद ही उन्ही से जन्म लिए हैं। इनमें कोई नित्य मुक्त नहीं हैं। किन्तु नित्य मुक्त मै भी आपके बारे में पूरा बता नही सकती। तो और कौन जान सकता हैं ?

बारह

हे जनन रहित ! आप वेद को केवल अपनी स्तुति के लिए रखते हुये लयकाल में जब सो जाते हैं उस समय यह स्थूल ब्रह्माण्ड, पंचमहाभूत और सूक्ष्म महदादितत्व नही थे। काल के कारण होने वाले जरा-मरण नही थे। स्थूल प्रपंच का लय हो गया था। बाद में सृष्टि के समय सूक्ष्म रूप में रहने वाले आपसे स्थूल प्रपंच जन्म लेता है। स्थूल प्रपंच के इन जनन-मरणों को आप में रहने वाले जीव-जड़ पंचभेदों को वेदोपदेशक वायु के अनुग्रह से ज्ञानी लोग फलापेक्षा न करते हुये उपासना करते हुये पाते हैं। इसी कारण आप उनके वाक्यों में सन्निहित होकर रहें ।।26।।

मूलश्रुतिः- नासदासीन्नो इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली आद्या श्रुतिः।

अज ! शास्त्रमपकृष्य यदा शयीत ।

हे जनन रहित स्वामी ! आप लयकाल में वेद शास्त्र को अपने प्रति खींचते हुये सोते हैं। सृष्टिकाल में वेद शास्त्र जीवों का विधि निषेध करते हुये वाक्य समन्वय से आपकी स्तुति करते रहते हैं। किन्तु लय काल में जीव आपके उदर में गाढ़ निद्रा में सोते रहते हैं। इसी कारण वे वेद का विधि-निषेध न करते हुये केवल पदसमन्वय से आपकी ही स्तुति करते रहते हैं। इसी कारण भगवान आप वेद शास्त्र को जीवों से खींचकर अपने पास रखते हैं।

तर्हि सत् न असत् न उभयं कालजवश्च न ।

उस समय प्रलय काल में **सत्** स्थूल ब्रह्माण्ड नही था। **असत्** सूक्ष्म महत आदि तत्व नही थे। **उभयं** अग्नि, जल नही थे, अथवा पंचभूत नही थे। उसी प्रकार **कालजवश्च न** काल के परिणाम से होने वाले बुढ़ापा और मृत्यु भी नही थे।

किमपि न ।

जीवों के लिए आवश्यक कोई सुख साधन उस लय काल में नही थे। अगाध समुद्र नही था। जब जल ही नही था तब समुद्र कहाँ से आता है। केवल चेतनप्रकृत्यात्मक समुद्र में

चेतन और प्रकृति से युक्त वटपत्र के ऊपर श्री हरि पाद सोते हैं।

असतः सतो जनिं मृतिं आत्मनि भिदां च स्मरन्ति ।

असत् सूक्ष्म रूप वाले भगवान **सत्** स्थूल प्रपंच भगवान से इस प्रपंच का **जनि-मृति** जनन-मरण होते हैं। इसको ज्ञानी लोग **स्मरन्ति** ध्यान करते रहते हैं। **आत्मनि भिदां च** वे भगवान और जीव जड़ प्रपंच में रहने वाले भेद का ध्यान करते रहते हैं।

आरुवतो विपणमृते स्मरन्ति ।

आ-रुवतः सुन्दर रीति से वेदोच्चारण करने वाले, वेदोपदेश देने वाले मुख्य प्राण की दया से ज्ञानी लोग **विपणं ऋते** फल की अपेक्षा न करते हुये केवल भक्ति पूर्वक उपासना करते हैं।

ध्वनिमुपविश ।

इसी कारण ज्ञानियों की **ध्वनि** बातों में आप **उपविश** सन्निहित होकर रहें। **विप्रवाक्ये जनार्दनः** इस प्रकार उनकी बातों में आप रहते हुये उनको शापानुग्रह शक्ति दें, और उनके वचन से उनके लिए दर्शन देते हुये उनसे हुयी प्रार्थना को स्वीकार करें। वे जो उपदेश देते हैं उन उपदेशों में वेद ध्वनि के साथ सन्निहित होकर श्रोताओं को तत्वज्ञान मिले ऐसी कृपा करें।

तेरह

जीवों में त्रिगुण बद्धत्व भगवान के तत्वज्ञान के अभाव के कारण होता है। आप ज्ञान स्वरूप ही होने के कारण त्रिगुण बद्धत्व आपके समीप भी नही आता। मूलरूप में वह न होते हुये भी अवतारों में वह हो सकता है, ऐसा दुर्जन लोग कहते हैं। देवतापक्ष इसको नही मानता। क्योंकि देवतागण परमात्मा को और उनके अवतारों को ठीक तरह से जानते हैं। इसी कारण वे विमर्शा करते हुये भगवान से भिन्न जीवात्म को त्रिगुण बद्ध और दुःखी मानते हैं ।।27।। **मूलश्रुतिः-** सत्वादिजं देहमथो इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली शुकरायण श्रुतिः।

त्रिगुणमयः पुमानिति यत् अबोधकृता ।

पुमान जीव त्रिगुणमय सत्व, रज, तम नाम के तीनों गुणों से बद्ध होता है। इसी कारण **अबोधकृता** भगवान के तत्वज्ञान को ठीक तरह से नही समझने से ऐसे होता है। यह जीव का स्वभाव नही है। सही ज्ञान आने के बाद भगवान उसके त्रिगुण बन्ध का नाश करते हैं।

त्वयि नतु भवेत तदवबोधरसे ।

भगवान आप में त्रिगुण बद्धता नही रह सकती क्योंकि उसके कारणरूप भगवान के तत्वज्ञान का अभाव आपको कभी नही होता। आप पूर्णज्ञानस्वरूप और नित्य मुक्त हैं। आपका पूर्णज्ञान आपको है। इसके लिए आप में त्रिगुण बद्धत्व नही रहता। जीव भी ज्ञानस्वरूप है। किन्तु वह ज्ञान सासारिक अवस्था में व्यक्त नही होता है। इसी कारण वह त्रिगुण बद्ध है।

सद्दिव मनस्त्रिवृत् त्वयिभवत्यसताम् ।

मन, इन्द्रिय, शरीर आपके अवतारों में **त्रिवृत्** त्रिगुणात्मक होते हैं ऐसा वाद दुर्जन रखते हैं। भगवान मूलरूप में आप निर्गुण हैं। इसलिए हम, मूलरूप में ``भगवान त्रिगुण बद्ध नही हैं`` इसको मानते हैं। किन्तु राम-कृष्णादि अवतारों में उनका जनन-मरण दिखता हैं। इसके लिए वह त्रिगुण बद्ध हैं उनके मन-इन्द्रिय, शरीर माया निर्मित होकर त्रिगुणात्मक होते हैं इस प्रकार त्रिगुण बद्धत्व **सद्दिव** रहता है, और नही भी रहता है। यह दोनों सत्य है। अवतार में रहता है मूलरूप में नही रहता है इस प्रकार दुर्जन अपने वाद रखते हैं। किन्तु यह सही नही है क्योंकि अवतार में जो जनन-मरण होते हैं वह केवल प्रदर्शन के लिए होता है। वह दुर्जन मोहक हैं। (कंस की जेल में जन्म लिए श्री कृष्ण को माता-पिता दोनों कहते हैं - आप हमारे पुत्र नही।)

आत्मविदः मनुजादयः इदमशेषमार्ततया विमृशन्ति ।

मनुष्यों के पहले सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी जन्म लिये। वे **आत्मविदः** यानी भगवद् तत्व को ठीक तरह से जानते हैं। उनको भगवान का स्वरूप मालूम है। उसी प्रकार वे जीव के स्वरूप को भी जानते हैं। उसकी विमर्शा करते हुये वे कहते हैं - अकेले भगवान को छोड़कर इस चेतन जगत में जो कुछ रहता है वह **आर्त** दु;खी है, त्रिगुण बद्ध है। भगवान मूलरूप में तथा अवतार रूप में कभी-भी त्रिगुण बद्ध नही हैं।

चौदह

इस जगत में कोई ''हमारे पास सोना है किन्तु उससे बना हुआ गहना नही है, इस प्रकार नही बोलता है क्योंकि दोनों में रहने वाला सोना एक ही है। उसी प्रकार भगवान इस विश्व का सृष्टि करते हुये उसमें प्रवेश किये। तब हम यह नही कह सकते कि हमें उपासना के लिए आपका मूलरूप ही, प्रविष्ट हुआ अवतार रूप नही चाहिए। ऐसा नही बोलना चाहिए क्योंकि दोनों एक ही हैं। सदा के लिए स्वगतभेद वर्जित होकर सारे तत्वों में आप ही रहते हैं। इस प्रकार आपकी उपासना करने वाले इस संसार का मोह रखने वाले के सिर को अपने पाँवों से कुचलते हैं।।28।।

मूलश्रुतिः- सर्वंगये प्रपश्यन्ति इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली शुकरायण श्रुतिः।

न हि कनकस्य विकृतं त्यजन्ति तदात्मतया ।

सोना चाहिए, गहना नही ऐसा बोलने वाला कोई नही है क्योंकि दोनों समान रूप से सोना ही है।

स्वकृतं रसितं इदं आत्मतया अनुप्रविष्टः ।

स्वकृतं स्वयं किया हुआ **रसितं लसितं** अनेक प्रकार से शोभा देने वाला यह जगत

आत्मतया मूलरूप से अभिन्न होते हुये उस वस्तु में उसके आकार के अनुसार आप आकार लेते हुये उनमें प्रवेश करते हैं। प्रविष्ट आकार और आपके मूलरूप में कुछ भेद नही है। निर्दोष, निर्दुष्ट आपकी उपासना हम करते हैं। आपके अवतार अथवा आकार में भेद नही है। दोष हैं इसलिए मैं उपासना नही करता, यह बोलना गलत है।

ये तव अखिल तत्वनिकेततया परिचरन्ति ।

इस प्रकार ज्ञानी लोग आपको सारे तत्वों में रहने वाला इस प्रकार समझते हुये आपकी पूजा करते हैं।

ते ऋतेः शिरोऽविगणय्य पदाऽऽक्रमन्ति ननु ।

ऐसे ज्ञानी संसार में अभिमान रखने वाले के सिर को निरातंक होकर अपने पाँवों से कुचलते हैं। **निर्ऋती** का अर्थ संसार है। **ऋति** का अर्थ सदाकाल एक प्रकार सर्वोत्तम होकर रहने वाला भगवान है। इस प्रकार अर्थ रूढ़ि में है। **ऋ गती** धातु से प्राप्ति इस प्रकार भी अर्थ होता है। यहाँ दोनों प्रकार के अर्थ किये गये हैं। इस प्रकार निर्ऋति का अर्थ भगवद् प्राप्ति यह भी अर्थ होता है। **तंत्रेण** यानी आवृत्ति न करते हुये दोनों अर्थ बताकर उनको परस्पर अन्वय कर सकते हैं। निर् - ऋति इसका अर्थ परमात्म प्राप्ति के विरुद्ध रहने वाला यह संसार होता है। उसके अभिमानी जीव के सिर के ऊपर पाँव रखते हुये ज्ञानी वैकुण्ठ को जाता है। इसका अर्थ संसार में पड़े रहने वाले से आगे ज्ञानी मोक्ष को जाता है।

पन्द्रह

बैलों को नथनी डाल कर रस्सी से बाँधकर जैसे रखते हैं, वैसे आप देवताओं को ब्रह्म रुद्रादि नामों को देकर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नथनी को डालकर उनको विधि निषेध बन्धन में बाँधकर कर्म बन्धन करके रखते हैं। कर्म बन्धन से बाँधते हैं। आपमें दृढ़ भक्ति वाले लोकपावन सज्जन लोग आपके बन्धन को मानते हुये आपमें भक्ति करते हैं। किन्तु आपसे द्वेष करने वाले बन्धन में होते हुये भी आपके बन्धन को मानते नही। आप स्वतंत्र हैं और सारे जगत के क्रिया कारित्व के धारक हैं। आपकी प्रेरणा से सारे देवता आपकी आराधना करते हुये सुख पाते हैं ।।29।। **मूलश्रुतिः-** वयति गा इव यः इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली आरूणि श्रुतिः।

तान विभुदानपि पशूनिव गिरा परिवयसे ।

सुप्रसिद्ध चतुर्मुख ब्रह्मादि देवताओं को भी आप, पशु को जैसे रस्सी से बाँधते हैं ऐसे वेद वचन से बाँधकर रखे हैं। ब्रह्म, रुद्रादि देवतागण जितने भी बड़े हों पर वे अस्वतंत्र होकर आपके अधीन हैं। आपकी प्रीति के पात्र हैं। इसी से आप वेद के विधि-निषेधों को बताते हुये दुष्कर्म न करते हुये सत्कर्म करने के लिए प्रेरणा देते हैं तथा अनिष्ट परिहार करते हुये इष्ट

प्रदान करते हैं। पशुपालक अपने पशु का अनिष्ट न हो इष्टानुसार चले इसके लिए नथनी डालता है। उसी प्रकार आप देवताओं और सारे सज्जनों को ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादि नाम की नथनी डालते हैं तथा आप नियमन करते हैं कि ब्राह्मण इस प्रकार व्यवहार करे, क्षत्रिय इस प्रकार रहें। आप विधि निषेध करते हुये उनका कोई अतिक्रमण न करें इस प्रकार सबको बाँधकर रखते है। यहाँ विधि निषेध रस्सी के समान हैं, नाम नथनी है।

त्वयि दृढ़सौहृदाः पुनन्ति, न तु ते विमुखाः ।

वेद विधि बद्ध होकर आप में दृढ़ भक्ति रखते हुये वेदोक्त कर्मों का आचरण करने वाले देवता लोग लोकपावन होते हैं। इस लोक का मार्ग दर्शन करते हुये लोगों से सत्कर्म करवाते हैं। आपके विमुख होकर रहने वाले असुर वेदविधि-निषेधों का उल्लंघन करते हुये स्वयं अशुचि होते हैं। वे विहित कर्मानुष्ठान नही करते और अन्यों को न करने देते हुये उनको भी अशुचि करते हैं। **संध्याहीनोऽशुचि** इस बात के अनुसार विहित कर्म करने वाले शुचि होते हैं, न करने वाला अशुचि होता है।

त्वमेकः स्वराट् अखिलकारक शक्तिधरः ।

आप अकेले स्वतंत्र और अन्तर्यामी होकर सबके कर्म कारित्व को नियंत्रण करने वाले हैं। इसी कारण अशक्त जीव के प्रति निष्ठुर होकर विधि निषेधों को कहते हुये, डराते, बल पूर्वक कर्म करवाने वाले निष्करुणि राजा जैसे आप नहीं हैं। किन्तु आप प्यार से विधि निषेधों का आचरण अपनी पूजा रूप में करवाते हुये आप ही स्वयं उनमें खड़े होकर उनसे सत्कर्म करवाकर सत्फल देते हैं, कर्म करने के लिए उनमें कर्म शक्ति को जागृत करते हुये नियन्त्रण करते हैं।

ये अनिमिषाः ते तव बलिमुद्वहन्ति ।

अनिमिष जो आँखों को झपकाते नही यानी देवतागण सदा काल जागृत रहते हुये, समय-समय पर वेद में कहे गए कर्मों को करते हुये उत्तम कल्प से कर्म करते हुये, भगवान की आराधना करते हुए परमानुग्रह के भागी होते हैं।

समदन्ति च

वेदोक्त कर्मों से अपने बिम्बमूर्ति की आराधना करतेहुये सन्तुष्टहुये भगवान के प्रतिबिम्बरूपी लोग स्वयं भी सन्तुष्ट हो जाते हैं। जैसे बैल यजमान की सेवा करते हुये उसके प्यार का भाजन बनता हैं यजमान से अपने लिए अन्न को पाकर सुख से रहता है वैसे भक्त लोग भगवान की कृपा से आनन्द से रहते हैं।

सोलह

सामन्त राजा सार्वभौम राजा को उपहार देते हैं वैसे इस प्रपंच के स्वामी ब्रह्मादि सकल

देवतागण आपकी पूजा करते हैं। आप उनको जो अधिकार देकर जिस काम में नियोजन करते है उसी अधिकार में रहते हुये आपके भय से वे आपकी आराधना करते हैं। मोक्ष के बारे में तमेवं **विद्वानमृत इव भवति** मोक्ष केवल आपसे ही मिलने वाला है। इस प्रकार आपके सहायता से बता रहे हैं। ज्ञानी लोग इसको ठीक तरह से समझकर अन्यों को उपदेश देते हैं आप ही मोक्ष देने वाले हैं। अन्य सारी चराचर सकल जीव राशि आपसे ही संसार बन्धन में बंधित है ।।30।। **मूलश्रुतिः-** खंडाधीशाः इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली उदार शाण्डिल्य श्रुतिः।

वर्षभुजः अखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजः भवतः विदधति ।

भारत, हरिवर्ष, किम्पुरुष आदि देशों के राजा सार्वभौम राजा के डर से उपहार जैसे देते हैं, वैसे प्रपंच के सृष्टिकर्ता आपको एक-एक लोक के अधिपति ब्रह्मादि देवता सकल लोकाधिपति आपकी पूजा करते हुये मुक्ती भागी बनते हैं।

ये यत्र अधिकृताः चकिताः भवतः विदधति ।

आप देवताओं को जिस अधिकार में नियुक्त करते हैं वे उसी अधिकार में रहते हुये आपके भय से आपकी पूजा करते हैं। हरि प्रसन्न नही हुए तो इस दुःख से वे डरते हैं। जैसे माँ बच्चा न रोये इस डर से बच्चो का पालन करती है वैसे आप पालन करते हैं। यह भय, प्यार और वात्सल्य का कारण है, द्वेष के कारण नही।

अज यदि विमुक्तसतः परस्य विरहे उदीक्षयेत् ।

हे जनन रहित भगवान् सज्जनों को संसार विमुक्त करने वाला मोक्ष आपके अनुग्रह से ही मिलता है। **विरहे** संसार विरह रूप मोक्ष के बारे में **यदि परः उदीक्षयेत्** भगवान आपको पूर्ण रूप से समझने वाले केवल आप हैं। इसी बात को वेद **तमेवं विद्वानमृत इह भवति** इस बात से समझाता है।

ये स्थिर चर जातयः ते तु अनिमित्तयुजः स्युः ।

जो स्थावर जंगम जीव हैं वे सारे **अ-निमित्त** अकार नामक आप से **युजः** संसार में रत हैं। इसमें थोड़ा सा भी संशय नही है। यदि संसार किसी दूसरे से प्राप्त होता है तो उसकी निवृत्ति आपसे नही होती। इसी से यह स्पष्ट होता है कि जैसे आप मोचक हैं वैसे बन्धक भी हैं। संसार बन्धन का अर्थ यही है कि नया-नया शरीर आता जाता रहता है। यह आपका अनुग्रह ही है। आप साधन शरीर देते हैं उससे साधन करवाते हैं, और उसके फलस्वरूप मोक्ष देते हैं।

सत्रह

हे श्री हरि ! आप परिपूर्ण हैं। इसके साथ ही आपके समान और कोई नही है। आप प्राण से

भी उत्तम हैं, आप ही सर्वाधार हैं। आपसे श्रेष्ठ स्वतंत्र और कोई नही है। वायु जैसे जीवोत्तम हैं वैसे आप सर्वोत्तम हैं। जीव अपने स्वरूप से नित्य और असंख्य हैं, यह सही है। किन्तु वे सारे प्राण के कारण देह में रहते हैं, वे स्वतंत्र रूप से रह नही सकते। **एकमेवाद्वितीयं** श्रुति इस प्रकार कहती है कि जीव आपके अधीन नही, आपसे अभिन्न है यह नियम नही कहा गया है क्योंकि **अतोन्यदार्तं** इस प्रकार श्रुति, जीव जात आपके अधीन हैं, ऐसा कहती है ।।31।। **मूलश्रुतिः-** तव स्वतंत्रो इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली महाशालीन श्रुतिः।

हे सर्व ! शून्यतुल !

परिपूर्ण असदृश हे श्री हरि।

अन परस्य सन्दधतः परमस्य यस्य ते कश्चिदपरो नहि भवेत् ।

अन-परस्य मुख्य प्राण से भी श्रेष्ठ। **सन्दधतः** सर्व लोक के आधारभूत **परमस्य** सर्वोत्तम आपसे **कश्चिद परः** और कोई स्वतंत्र **न हि** नही हैं। आप ही सर्वोत्तम हैं।

अत्र व्यत इव सन्दधतः ते कश्चिदपरो नहि भवेत् ।

अत्र जीवों में **व्यत इव** सर्वज्ञ प्राण से और कोई स्वतंत्र नही हैं। उसी प्रकार सर्वाधार आपसे अलग स्वतंत्र सर्वाधार और कोई नही है। उत्तम जीवों में सर्वज्ञ केवल प्राण ही हैं। उनसे बड़ा और कोई नही है। उसी प्रकार सर्वों में सर्वाधार आप श्री हरि एक मात्र हैं। आपसे बढ़कर सर्वाधार और कोई नही है, और कोई सर्वोत्तम नही है। **वि -अय** विविध विशेष ज्ञान वाले **व्ययत** सर्वज्ञ।

यदि तनुभृतः ध्रुवाः अपरिमिताः ततः तनुभृतः ।

जड़ शरीर धारी जीव **ध्रुवाः** नित्य हैं, असंख्यात हैं। किन्तु वे सारे **ततः** प्राण से ही **तनुभृतः** शरीर धारण करते हुये रहते हैं। प्राण शरीर से बाहर चला गया तो शरीर मुर्दा होते हैं।

न शास्यतेति नियमः नहि ।

एकमेवाद्वितीयं इस श्रुति के अनुसार एव शब्द से `अधीन होकर जीव नही रहते सारे अभिन्न हैं।` यहअर्थ नही होता। **शास्यता** अधीनत्व नही हैं ऐसा नियम **न हि** नही बताया गया है।

ब्रुवते च तथा ।

अतोऽन्यदार्तं और अन्य आत्मा दुःखी, अधीन, और अस्वतंत्र है इस प्रकार श्रुतियाँ कहती हैं।

अट्ठारह

हे जनन रहित भगवान ! आप सर्वत्र व्याप्त हैं। तथैव दोषरहित, नाशरहित, और समान हैं। ऐसे आपको ठीक तरह से जानने वाले गुरु के उपदेश से इस अनादि संसार से मुक्ति साध्य

होती है। **अज** कहलाने वाले आप लक्ष्मी नारायण को जनन-मरण नही है। दोनों देशकाल में समान व्याप्त हैं। जैसे पानी में बुलबुले उठते और फटते हैं उसी प्रकार जीव आपसे जन्म लेते हैं और मरते हैं ।।32।। **मूलश्रुतिः**- मुच्यते तत्व संबंधा इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली कौण्डरव्य श्रुतिः।

अज न ! अत्र अदुष्टतया अनंतं समं ततं ।

हे जनन वर्जित ! आप सारे स्थानों में दोषरहित, नाशरहित होकर समान रूप से व्याप्त होकर रहते हैं। सर्वत्र व्याप्त होते हुये भी उन वस्तुओं के सम्बन्ध से आप में दोष नही आते। वस्तु नाश हो सकता है। किन्तु उसमें रहने वाले आप कभी भी नाश नही पाते। दोषरहित, नाशरहित होकर सर्वत्र आप समान रीति से रहते हैं।

अनु जानता सततात् भवात् परिमुच्यते ।

इस प्रकार आपको ठीक तरह से जानने वाले गुरु के उपदेश से ही अनादि काल से सतत पीड़ित इस अनादि संसार से जीव मुक्ति को पाता है।

अजयोः प्रकृति पूरुषयोः उद्भवः न घटते ।

चित् प्रकृति रमादेवी **अजा** कहलाती हैं। परम पुरुष आप **अज** हैं। अज कहलाने वाले रमानारायण आप दोनों जनन-मरण रहित हैं नित्य मुक्त हैं। ऐसे आपकी उत्पत्ति कैसे होती है।

उभययुजोः असुभृतः जलबुद्बुदवत् भवन्ति ।

आप रमानारायण सतत् बहने वाली गंगा जी के समान एक प्रकार रहने वाले हैं। गंगा प्रवाह में बुलबुले उठते हैं एक क्षण में अदृश्य होते हैं। उसी प्रकार आप में सकल जीव राशि जन्म लेती हैं और मरती हैं। यह निरन्तर जनन-मरण ही संसार कहलाता है। जीवों के इस संसार के लिए रमानारायण आधारभूत होते हैं। ये दोनों **उभय** देशकाल दोनों में **युजो** समान रीति से सर्वत्र व्याप्त होते हैं। इसको जानने वाले गुरु से जो उपदेश पाता है वह संसारी, मुक्त होता है।

उन्नीस

हे जगत के स्वामी ! आनन्द रूपी सर्वोत्तम ! सारे देवताओं के नाम उनकी महिमा ये सारे आप में हैं। सु मधुर अमृत, रस जैसे समुद्र में छिपा हुआ है ऐसे इस जगत के सारे रस आप में छिपे हैं। उसी तरह आपका अनुग्रह ज्ञानी को मिलता है किन्तु अन्यों को दीखता नही। उस अनुग्रह से वे आप में रहने वाले सारे मंगलकर सर्व वैलक्षण्य को ठीक तरह से समझने में समर्थ होते हैं। ऐसे आपके भक्त ज्ञानी लोगों को आपके भृकुटी संचार (भौंहों की हिलन) पुनः संसार का कारण नही बनता ।।33।। **मूलश्रुतिः**- योनः पिता जनिता यो इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली ऋगादिस्मृतिः ।

हे ततो !

हे तत = तात = जगत के पिता **अ** ! आनन्दपूर्ण, औो उत्तम होने के कारण **उ** नाम वाले आप इस जगत के मालिक हैं। अ,उ ये दोनों सकल पाप परिहार करने वाले विष्णु के नाम हैं।

ते इमे विभुद नामगुणाः त्वयि निलिल्युः ।

इन देवताओं के **नाम** और **गुण** की महिमा सारी मुख्य होकर आपमें हैं। उनमें अमुख्य रूप में है।

मधुनि परमे अमृते अर्णवे अशेष रसा इव ।

क्षीरसगार में महाअमृत के साथ और अन्य रस छिपकर रहते हैं। उसी प्रकार सभी देवताओं की महिमा मुख्य रूप से आपमें है। अमुख्य रूप से उनमें है। इसी कारण सारे देवताओं के नाम मुख्य रूप से आपके नाम हैं।

अंग, नृषु सुधियः स्वगतयाः तव मायया ।

हे प्रियकर, जीवों में ज्ञानी लोग आपके **मायया** अनुग्रह से युक्त होते हैं। वह अनुग्रह **सु-अगतया** अन्यों को दीखता नही। **अगत** अनवगत **सु-अनवगत** कुछ भी अन्यो को समझ नही सकता। किन्तु अमोघ रूप जीवेश्वर भेदज्ञान योग्यों को होता है। इसको देखने से भगवान का **माया** = अनुग्रह उनमें स्पष्ट होता है।

अनुकुशलं त्वयि भेदं अनुधातुं प्रभवः ।

भगवान के अनुग्रह के बाद **कुशलं** आपके मंगलकर जीवभेद को **अनु** योग्यतानुसार ज्ञानी लोग समझने में **प्रभु** समर्थ होते हैं।

तवभृकुटि अनुवर्तनां नृणां मुहूः भवभयं कथं सृजति ?

जीवेश्वरभेद को आपके भक्त आपके अनुग्रह से समझ लेने के बाद उनको पुनः इस संसार का भय नही है। आप अपनी भृकुटि को हिलाये तो वह सारा जगत डर जाता है। किन्तु आपके भक्तों को उसका भय नही हैं। क्योंकि वे मोक्ष पा चुके हैं।

यहाँ ततो इस शब्द का त+त+अ+उ इनके सन्धि बन गया तो ततौ होना चाहिए था किन्तु यहाँ वृद्धि सन्धि न होते हुये परसवर्ण सन्धि होता है। यह केवल वेदों में प्रयोग किया जाता है। **मधुनि निनिल्युः** इस प्रकार दो समान अक्षर आये तो एक अक्षर लोप होना नियम है। **समानेलोपः** इस सूत्र से यह नियम व्यक्त होता है। उसी के अनुसार मधु निनिल्यु; शब्द की उत्पत्ति हुई है।

बीस और इक्कीस

आपके श्री चरणों में स्थान पाने योग्य देवता प्राणायाम, इन्द्रिय निग्रह, मनोनिग्रह करते

हुये मोक्ष साधन का प्रयत्न करते रहते हैं। एक बार यदि वे इस संसार सागर में आने वाले सैकड़ों दुःखों से पार करने वाले गुरु के चरण को छोड़कर प्रयत्न करे तो स्वजन, सुत, शरीर, पत्नी,धन, सहित समुद्र में नौका मे बैठे वाले बिना नाविक नौका में प्रयाण करने वाले वर्तको के समान दुःख भोगना पड़ता है क्योंकि गुरु के बिना किए हुए उनके साधनाओं को निर्दुष्ट और सुख पूर्ण आप, ग्रहण नही करतें। जीवन्मुक्त एक नियत गुरु मिलने के बाद ही उन भक्तों की साधना को सर्वोत्तम आप स्वीकार करते हैं ।।34,35।। **मूलश्रुतिः**- यस्य देवे पराभक्तिः श्वेताश्वतर श्रुतिः ।

इह भवच्चरणेषु सुजात भुवः ।

अपने उत्पत्ति स्थान हृदय में रहने वाले आपके पाद इत्यादि अवयवों में स्थान पाने की योग्यता रखने वाले, तत्वाभिमानी देवता होते हैं। उनको उन्ही अवयवों में सायुज्य मिलता है।

जित हृषीक वायुभिः उदात्त महत्तुरंगैः ।

शरीर नाम के इस रथ के सारथी के रूप मे रहने वाले प्राणवायु को वे अपने प्राणायाम से जीत चुके हैं। उत्तम बड़े घोड़े के समान रहने वाली इन्द्रियों को प्रत्याहार से जीत चुके हैं। वैसे ये तत्वाभिमानी देवता रथ में बैठकर आपके यहाँ मुक्ति मार्ग में प्रयाण करते हैं।

अमतिलोलं ।

वे मनोनिग्रह करते हुये चित्त-चांचल्य को जीत चुके हैं। किन्तु -

इह व्यसनशताब्धितारं गुरोश्चरणमपहाय यतन्ति ।

इह इस संसार में आने वाले, सैकड़ों दुःख समुद्रों से तारने वाले गुरू की चरण सेवा को छोड़कर प्रयत्न करे तो -

स्वजन सुतात्मदारधन धामधराः ।

बन्धुजन, पुत्र,मित्र, शरीर, पत्नी, धन सम्पद, घर इत्यादि में रत होकर -

उपायविदः

स्वजन इत्यादि रक्षणोपाय चतुर होते हुये भी -

जलधौ अकृत कर्णधराःवणिज इव इह उछ्वसन्ति ।

सागर के बीच में नाविक के बिना नौका में प्रयाण करने वाले वर्तक के समान मोक्ष मार्ग में आगे न बढ़ते हुये निःश्वास करना पड़ता है। क्योंकि-

नृणां तानि सुखशान्तिमत्वय नहि सन्ति ।

देवता पुरुषों की वे साधनाए निर्दुष्ट सुखपूर्ण आपको पहुँचती नही। आप उनको स्वीकारते नही।

विभवे उद्यति सर्व सर्वरसे आत्मनि श्रयते ।

वि-भव संसाररहित जीवन मुक्त गुरु का उदय होते ही उसकी चरण सेवा करने से

मोक्ष साधन होता है। ये सारे **सर्वरस** सर्वोत्तम **आत्मनि** परमात्मा में **श्रयते** जाकर मिलते है। उसका अर्थ यह है आप उनको स्वीकार करते है इसके लिए आप गुरु के मुखांतर **प्रसादकृत** प्रसाद करने वाले होते है।

आत्म आप पूर्ण शक्ति वाले हैं। इसी कारण आपको गुरु अनुग्रहसाधन की आवश्यकता नही है। किन्तु सुख **शान्तिमान** आप निर्दोष सुखपूर्ण होने के कारण उन साधनों से आपको कुछ नही होने वाला है। आपको किसी की इच्छा नही रहती। आप अपनी इच्छा के अनुसार गुरु के अनुग्रह रहित साधनों को नकारते हैं। गुरु के अनुग्रह से मिले हुए साधनों को आप स्वीकार करते हैं। इस प्रकार **शिष्यादष्टगुणं गुरोः** इस प्रकार गुरु के विशेष साधन के लिए आप गुरू अनुग्रह को विशेष महत्व देते हैं।

भागवत कहता है कि गुरु सेवा के बिना की हुयी इन्द्रियजयादि साधना को भगवान स्वीकारते ही नही, अनुग्रह करते नही इस प्रकार नही है। भगवान उनको भी स्वीकारते हैं किन्तु अल्प अनुग्रह करते हैं, मोक्ष नही देते। गुरु सेवा प्रधान साधना होने के कारण गुरु सेवा के साथ इन्द्रियजयादि अन्य साधन रहे तो उनको श्री हरि स्वीकार करते हुये पूर्णानुग्रह करते हुये मोक्ष देते हैं।

बाईस

इस प्रकार दोषरहित भगवान को न समझते हुये स्त्री सुख के पीछे दौड़ने वालों नित्य ऐश्वर्य युक्त जनन-मरण रहित मोक्ष को देकर कौन सुख देते हैं ? इसी कारण ज्ञानी जन कर्मभूमि में पुण्य तीर्थ मे वास करते हुये, शास्त्राभ्यास करते हुये पाप परिहारक आपके चरण कमलों का अपने हृदय में ध्यान करते हैं। नित्यानन्द ज्ञानात्मक आप में निरन्तर मन रखते हुये बिजली के समान क्षणिक प्रकाश देने वाले, आपका, अपरोक्ष दर्शन होने के बाद वे फिर पहले के अपने स्वातंत्र्य का दुरभिमान त्यागते हुये मुक्त होते हैं ।।36।। **मूलश्रुतिः-** ब्रह्मज्ञात्वेति इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली महारव श्रुतिः।

हे पुरूषसार ! इति सदजानताम् मिथुनतो रतये चरताम् !

हे पुरुषोत्तम आप दोषरहित हैं। इसको न समझते हुये आपको छोड़कर स्त्री सुख को ढूढ़ते हुये भागने वाले को -

आद्य ! स्वनिरस्तभगे विजने को न्विह सुखयति ?

हे **सुअनिरस्तभग** नित्य ऐश्वर्यशाली **वि-जन** जनन को प्राप्त न होने वाले मोक्ष में रखकर कौन सुख देता है ? इसके लिए -

ऋषय इह भुवि पुण्यतीर्थ सदनाः ।

ऋषियों, ज्ञानियों और ज्ञानी होना चाहने वाले **इह भुवि** इस कर्म भूमि में भागीरथी इत्यादि पुण्य तीर्थों में अथवा सच्छास्त्र नाम के तीर्थों में **सदन** घर करके रहने वाले तीर्थ यात्रा करते हुये निष्काम कर्म से अंतःकरण शुद्धि को पाते हुये शास्त्राभ्यास करने वाले -

अघभिदं भवतः पदांबुजं हृदा निविशन्ति ।

पाप परिहार करने वाले आपके चरण कमल को मन में धारण करते हुये निरन्तर ध्यान करते हैं।

नित्यसुखे चिदात्मनि त्वयि सकृत् मनःदधति ।

नित्यानन्द, ज्ञानात्मक शरीर वाले आप में मन लगाए रखते हैं। एक बार किसी क्षण में आकाश की बिजली के समान आपका दर्शन एक क्षण के लिए पाते हैं।

पुनः हरावसथं नोपासते ।

पुनः पहले जैसे **हर-अवसथं** शिव के अभिमानास्पद अहंकार को यानी स्वातंत्राभिमान को नही करते, मोक्ष को ही पाते हैं।

तेईस

यह जगत मिथ्या है। उसका जीव को छोड़कर अन्य पालक नही है। इस प्रकार कुतर्क करने वाले भी आपकी ही इच्छा से वाद करते हैं क्योंकि उनका तर्क कभी-कभी व्यभिचरित होता है,कभी-कभी बाधित होता है। अद्वैत श्रुति भी अनेकार्थक पदप्रयोगों से तत्व निर्णय करने में स्थिर चित्त न होने वाली भ्रांति को पैदा करती है। आपके बहुत गुणों को वे अल्प शब्दों से कहते हैं। उसके तात्पर्य को ठीक तरह से न जानने वाले वंचित होते हैं। इस प्रकार वे वेद विरूद्ध कल्पना से अंध परम्परा को इस जगत में प्रसार करते हैं ।।37।। **मूलश्रुतिः**- ये जीवमीशं प्रवदन्ति इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली विपरीत श्रुतिः।

इदं अपि वदंति चेद् अथो ।

इस जगत में कई लोग **अ-पि** जीव से अलग पालक नही है, ऐसे मिथ्यावाद कुतर्क से कहे तो वह **अथो** पालक आपकी इच्छा से ही होता है।

तर्का व्यभिचरंति ननुक्वचित्, क्वचित् मृषा च ।

कई स्थानों में उनके तर्क व्यभिचरित होते हैं, और कई स्थानों में बाधित होते हैं। प्रत्यक्ष आगमों के सहाय नही मिले तो व्यभिचार और बाधा होना स्वाभाविक है।

भारती च भयदृग् व्यवहितये ।

भारती वेद वाणी भी **भयदृक्** डरपोक लोगों को, बुद्धिहीनों को, कही गयी बातों को ठीक तरह से न समझने वाले स्थिरचित्त न रहने वाले लोगों को **व्यवहिति** भ्रांति उत्पन्न करने के

लिए उत्प्रेरक है इस प्रकार लगता है।

तवोरु वृत्तिभिरूढ़जवा भ्रमति ।

उरुवृत्तिभिः आपके बड़े (प्रचुर, अत्यधिक) गुणों की अल्प शब्दों में कहने के लिए **ऊढ़जवा** जोर से दौड़ते हुये **भ्रमति** अनेक अर्थ वाले ब्रह्मार्थक शब्दों का प्रयोग करते हैं।

ततो विकल्पः परंपरया अन्वहं उषितः ।

इसी कारण **वि-कल्प** वेद विरूद्ध कल्पना करते हुये अंध परम्परा का **अन्वहं** सदाकाल के लिए **उषितः** विस्तार होता रहता है।

चौबीस

जीव जन्म लेने के पहले गर्भवास करता है। उस समय गर्भ में उसको दुःख होता है। इसी कारण उसको ईश्वरत्व नही हो सकता। मरण के बाद नरकादि दुःख का अनुभव करने के कारण वहाँ भी ईश्वरत्व नही है। ऐसे रहने वाले जीव को आगे पीछे न रहने वाला ईश्वरत्व बीच में जीवन काल में कहाँ से आता है ? ईश्वर में जीव अभेद की प्रेरणा कई लोगों को ईश्वर से ही होती है। सर्वोत्तम आप और जीव में अभेद बोलना सफेद झूठ है। इस अभेद भ्रांति से जीव को श्रीमान् सत्कुलज इत्यादि साक्षी विरुद्ध कल्पना मार्गों से कई लोग स्तुति करते हैं। यह आसुरी बुद्धि कल्पना जाल है। इसको ज्ञानी जानते हैं ।।38।। **मूलश्रुतिः- स्मरन् ब्रह्म** गुणान्नित्यं इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली कौशिक श्रुतिः।

यदिदमग्रे नास,निधनात् भविष्यत् न अतोऽन्तरा मृषा ।

जीव को जन्म के पहले गर्भवास में दुःख होता है। उस समय उसको ईश्वरत्व नही होता। मरण के बाद नरकादि दुःख होता है। तब भी ईश्वरत्व नही आता। दोनों के बीच के काल में ईश्वरत्व कहाँ दिखता है। यदि दिखता है तो वह **मृषा** सफेद झूठ है।

अनिमित्तकं विभाति मृषा एकरसे त्वयि ।

तो भी जीव में जो ईश्वरत्व हो सकता है, वह **अ-निमितकं** अकार वाच्य ईश्वर की प्रेरणा से ही उसका भास होता है क्योंकि जीव **मृषा एकरस** और **मृषात्वं** हैं। उसका **एकरस** सर्वोत्तम होना असत्य है। वह **त्वं** तुम ही हो यह भी असत्य है। ऐसा होते हुये उसमें ईश्वरत्व को देखने के लिए ईश्वर की प्रेरणा के बिना और कारण नही है। उसको **तमः** तमका साधन हो इसके लिए भगवान उस रीति से प्रेरणा देते हैं।

अतः द्रविणजाति विकल्पथैः उपगीयते ।

ईश्वर से अभेद भ्रांति से जीव श्रीमान् और श्रेष्ठकुल वाला ऐसे **वि-कल्पपथ** अपने मन के विरूद्ध कल्पना मार्गों से स्तुति करते, कराते रहता है। वास्तव में केवल भगवान सही अर्थ में श्रीमान् और उत्तम कुल वाले हैं। क्योंकि उसके लिए योग्य तप इत्यादि सद्गुण वाले हैं।

अतो वितथमनोविलासमिदमिति बुधा अवयन्ति ।

इस कारण से यह मिथ्या, आसुरी बुद्धि का केवल कल्पना और विलास मात्र है। इसको ज्ञानी ठीक तरह से समझता है।

पच्चीस

वेदों द्वारा स्तुति किए जाने वाले आपके गुणकर्मों को उपासना करने वाला ज्ञानी, गुरु द्वारा बताए गये श्रवण, मनन व ध्यान को करने वाला अपरोक्ष को पाते हुये प्रारब्ध भोगने के बाद मुक्त होता है और अपनी योग्यता के अनुसार सारूप्य आदि मोक्ष पाता है। इसके लिए भी वह स्वतंत्र नही है। आप ही उसके जीवाच्छादक, परमाच्छादक बंध को हटाते हुये जैसे साँप अपने केंचुल को छोड़ देता है, जीव के दोनों आच्छादको का नाश करने के लिए अनुग्रह करते हैं। आप अष्ट ऐश्वर्य वाले हैं। अपरिमित सद्गुण वाले आप उनमें रहकर उन्ही से अपनी पूजा करवाते है ।।39।।

मूलश्रुतिः- स्मरन् ब्रह्म गुणान्नित्यं इस प्रकार प्रारम्भ होने वाली कौशिक श्रुतिः।

पुमान अनुगीत गुणांश्च जुषन् अनुउदगात् ।

जीव **अनुगीत** वेद में बताये गये आपके गुणों को गुरुमुख से **जुषन** श्रवण करते हुये मनन और ध्यान से अपरोक्ष को पाकर **उदगात्** मुक्त होता है।

तदनु स्वरूपतां भजति ।

तदनु अपरोक्ष से लिंग भंग होने के बाद गुणोपासना के अनुसार **सरूपताम्** सारव्य आदि मोक्ष को **भजति** पाता है।

परमात्त भगा तां त्वं अहिरिव त्वचं जहासि उत जिहासि ।

श्री हरि **परम** परमात्मा से **अत्त** खींचे हुए **भग** आच्छादन शक्ति वाले जीवाच्छादक, परमाच्छादक प्रकृति को (दुर्गा देवी को) ज्ञानी **अहिरिव त्वचं** साँप जैसे अपने ऊपर की केंचुल को छोड़ता है वैसे **जहासि** छोड़ने के लिए प्रेरणा देते हैं। **जिहासि** नाश करने के लिए प्रेरणा देते हैं।

अष्टगुणः अपरिमेयभगः त्वं महसि महीयसे च ।

आप अष्ट ऐश्वर्य सम्पन्न हैं, अपरिमित सद्गुण वाले होकर अज्ञानी में रहते हुये आपकी पूजा आप ही करवाते हैं।

छब्बीस

हे भगवन ! कई सन्यास वेष धारण करते हुये सन्यासी बन जाते हैं। किन्तु हृदय में विषयों की कामना करते हुये ज्ञान शून्य होकर उनको छोड़कर ऊपर न उठे तो उनके हृदय में रहते हुये भी आप उनको सरलता से नही दीखते। तब दुर्जनों का हाल क्या होगा ? आप उनको सर्वथा दिखने वाले नही हैं। अपने गले में धारण की हुई माला भूलने पर स्वयं वह दीखती नही। यह भी उसी प्रकार है। विवेक

ज्ञान से विषयभोग को त्यागते हुये जो मिलता है उसी से तृप्ति पाने वाले योगी को आप यम के भय से दूर रखते हैं। क्योंकि इस संसार में जो विषयासक्त हैं उनको यम पूर्व सूचना के बिना कोई न जान पाए ऐसे खींच लेते हैं। आपके वैकुण्ठ में उसका प्रवेश ही नही होता है ।।40।। **मूलश्रुतिः**- स यथा कामो भवति इति आद्य श्रुतिः।

हे भगवान् यतयो यदि हृदि कामजड़ाः ।

हे भगवन ! सज्जनता को दिखाने वाले यतिवेष धारण करते हुये हृदय में विष कामना भर के जड़ हुये ज्ञान शून्य बने, तो -

हृदिगतोऽपि दुरधिगमः असताम् ।

हृदय में रहते हुये भी आप उनको सुलभता से नही दीखती। दुर्जनों को कदापि नही दीखते।

अस्मृत कंठमणिः ।

अपने गले में रहने वाली माला भूलने से अपने को जैसे नही दीखती वैसे ही दुर्जन को आप दीखते नही।

अनुतृप्त योगिनामभयः ।

विषय भोग को अलं बुद्धि से त्याग कर जो मिला है उससे तृप्ति पाए हुए योगी को में आप ज्ञानी को मोक्ष में अभ को देते हैं।

भवतः अनवगतांतकात् अनधिरूढ़ पदात् ।

भवतः आपकी आज्ञा से **अनवगत** यहाँ कोई भी न समझे ऐसे आने वाले यम को **अनधिरूढ़ पद** वहाँ वैकुण्ठ में क्या काम है ? ऐसे **अन्तकात्** यमधर्म से ज्ञानी को आप अभय देते हैं।

सत्ताईस

सबसे अधिक श्री हरि को समझने वाली लक्ष्मी देवी हैं। श्री हरि उनके भी स्वामी हैं श्री हरि के बिना अन्य कोई लक्ष्मी देवी के ऊपर स्वामित्व नही रखता है। श्री हरि के ऊपर कोई स्वामित्वन ही रखता ऐसे श्री लक्ष्मी नारायण के विषय में केवल शरीर की बातें अथवा केवल वेदों की बातें बोधक नही हो सकती हैं। यदि उनको समझना है तो ऋजुयोगियों के उपदेश की परम्परा की सहायता से उनको समझ सकते हैं क्योंकि ऐसे ऋजुयोगियों की सहायता के बिना कितने ही समय तक अध्ययन करे तो भी वे प्रकाश में आ नही पाते।साथ ही साथ इसके लिए योग्यता की भी आवश्यकता है। छिलके में रहने वाला धान सुरक्षित रहता है, और उसको धूल का सम्पर्क नही होता। इसी प्रकार तामस लोगों को श्रुतियों का हृदय कभी मालूम नही होता। राजस लोगों को कभी-कभी थोड़ा-थोड़ा दृष्टिपथ होता है। सात्विकों को केवल उनकी योग्यता के कारण ऋजुयोगी श्री जगद्गुरू मध्वाचार्य जी का सर्वमूल उपदेश

परम्परा की सहायता से ठीक तरह से मिलता है। केवल वे लोग वेदोक्त कर्मों को करते हुये मोक्ष भागी होते हैं ।।41।। **मूलश्रुतिः**- जानाति प्रकृतिर्विष्णुं महोपनिषद् श्रुतिः।

तदवगमार्थसितासितयोः ।

त्रिगुणाभिमानी होने के कारण **गुण** मानने वाली रमा और **वि-गुण** त्रिगुण रहित नारायण ये दोनों मिलकर गुण-विगुण होते हैं।

देहभृतां सगिरः न अनुयुयुः ।

स-गिरः = गीः यानि वागेन्द्रिय। उससे युक्त पंचज्ञानेन्द्रिय और **गीः** यानी वाक् वेद वाणी भी हैं। देहधारी में पंचेन्द्रिय, वाक् और वेदवाक्य मध्व शास्त्र के अनुसारी न हो तो **न अनुयुयुः** रमानारायण को योग्यता के अनुसार नही समझा सकते।

अत्र हंस कुल गीत परंपरया अनुयुयुः ।

`**अत्र**` इस संसार में `**हंस**` कहलाने वाले ऋजुयोगियों के वंश वाले, सनकादि परम्परा से आने वाले जो उपदेश देते हैं, परम्परा के सहकार से **अनुयुयुः** उनके योग्यतानुसार निश्चित रूप से बोध होता हैं।

श्रुतयः तुषावरणा इव वयसा सह रजांसि वान्ति ।

तुषावरणाः छिलके में रहने वाले धान **वयसा सह** बहुत दिन के बाद भी **रजांसि न वान्ति** धूल के सम्पर्क में नही आता। उसी प्रकार श्रुति का कितने ही वर्ष अभ्यास करे तो भी राजसिक तामसिक लोगों को वे बोधक नही बनती।

बन्धनाः त्वयि सफलं पतन्ति, न पतन्ति, पतन्ति, न पतन्ति ।

विधि निषेध रूप बंधक बनने वाली श्रुतियों ने सात्विकों को **त्वयि** आप का यथार्थ बोधन करते हुये मुक्ति फल देते हैं। **सफलं पतन्ति** सात्विकों को योग्य फल देते हैं। तामसिक को `न पतन्ति` सफल फल नही देते हैं। राजसिकों को **पतन्ति न पतन्ति** एक बार बोध होता है और एक बार बोध नही होता।

श्री भगवान नारायण कहते हैं - योगसिद्ध ब्रह्मा जी के पुत्र सनकादि ने भगवान के इस तत्व शास्त्र को सुनकर परमात्मतत्व को जानकर सनन्दन की प्रशंसा की ।।42।।

उनसे पूर्विक सनकादि ऋषि आकाश नामक भगवान के आश्रय में रहने वाले महात्मा हैं। वे इस प्रकार सकल वेद पुराण और उपनिषदों के सार को निकालकर रखें हैं ।।43।।

ब्रह्मापुत्र हे नारद जी ! इस परमात्मा को जानने का तत्वशास्त्र लोगों की दुष्ट कामनाओं का **निधनं** नाश करता है। सात्विक कामनाओं के **निधनं** आश्रय देता है। ऐसे इस शास्त्र को मुझसे उपदेश रूप में पाया हुए तुम श्रद्धायुक्त होकर उसको सदाकाल मन में धारण करते हुये भगवान की आराधना

करो ।।44।।

शुकदेव कहते हैं - हे राजा परीक्षित ! इस प्रकार नारद जी गुरु नारायण मुनि से उपदेश पाकर श्रद्धा से मनोनिग्रह करते हुये परलोक साधना में वीर व्रत की धारणा करते हुये कृतकृत्य होकर गुरू के सामने कहते हैं ।।45।।

नारद जी कहते हैं - अपने प्रतिबिम्ब रूपी समस्त प्राणियों को जो धारक होकर अभयदान करते रहते हैं ऐसे निर्मल स्वरूप भगवान श्री कृष्ण को नमस्कार ।।46।।

इस प्रकार नारद जी आदिऋषि नारायण मुनि को नमस्कार करते हुये निर्मल अन्तःकरण वाले अपने शिष्यों से विदाई लेकर मेरे साक्षात् पिता बादरायण आश्रम को आ गये ।।47।।

भगवान वेदव्यास जी नारद जी का सत्कार किये। नारद जी आसन ग्रहण करते हुये नारायण मुनि के मुँह से जो उपदेश पाये थे उसे **श्रुतिगीता** नाम के ज्ञान सागर को कहते हुये वेदव्यास जी की स्तुति किये ।।48।।

हे राजा परीक्षित, त्रिगुण रहित अवाच्य भगवान को मन कैसे जान सकता है, श्रुति कैसे कह सकती है। इस प्रकार तुमने हमारे सामने प्रश्न रखा था। तुम्हारे प्रश्न को हम समाधान कारक उत्तर दे चुके हैं ।।49।।

भगवान नारायण इस जगत की उत्पत्ति स्थिति और संहार को करने वाले हैं। प्रकृति पुरुष के नियामक हैं, जगत की सृष्टि करते हुये नियमन करते हुये अन्दर प्रवेश करके रहते हैं। ऋषि रूप से भागवत पुराण की रचना किए हैं। भगवान के अपरोक्ष ज्ञान को पाया हुआ संसारी जीव, रात में घोसले में सोये हुए पक्षी के समान सुबह होते ही उसको छोड़कर चला जाता है, उसी प्रकार अपरोक्ष ज्ञान को पाकर, बंधक बना हुआ जीव दोनों विध की प्रकृति को छोड़ देता है। भगवान सर्वोत्तम हैं, उनकी सृष्टि कोई नही करता। वे भयरहित हैं, भय निवारक हैं। ऐसे श्री हरि का निरन्तर ध्यान करते रहना चाहिए ।।50।।

श्रुति गीता सारांश

दशम स्कन्ध के अन्तिम भाग में आने वाली श्रुति गीता साधक समाज के लिए भागवत की एक अनूठी देन है। हमने उसको यहाँ विस्तार रूप से संस्कृत भाषा के सौंदर्य को नष्ट न करते हुये व्याकरण के विषयों के साथ विषय को समझाने का प्रयास किया है। किन्तु संस्कृत न जानने वाले और खासकर व्याकरण के नियमों को याद रखना कष्ट होने वाले लोगों के लिए आगे आने वाले तीन चार पन्नों में श्रुति गीता का सारांश भाषा में देने का प्रयास हम कर रहे हैं। यह केवल अर्थ की इच्छा करने वाले मुख्य विषय का स्वाद पा सकें इस दृष्टि से हम पाठकों के सामने यह सारांश प्रस्तुत करते हैं।

भगवान अनन्त वेदों से वेद्य हैं। इस विषय में नारद और नारायण के बीच संवाद रूप श्रुति गीता सारे संशयों का परिहार करती है। नारद जी बदरीनाथ के नारायण ऋषि के सामने वेदों के प्रवृत्ति के बारे में जब पूछे तब नारायण जनलोक में सनन्दन मुनि सनकादियों को दिये हुये प्रवचन के विवरण को कहते हैं।

सनन्दन मुनि इस प्रकार कहते हैं - श्री हरि लय काल में लक्ष्मी के साथ और लक्ष्मी के श्री भू रूपों के साथ वटपत्र के ऊपर सोये थे। लयकाल के अन्तिम भाग में लक्ष्मी देवी वेदाभिमानी दुर्गा के रूप में श्री हरि का स्तोत्र की हैं। सोये हुये राजा को उषःकाल में जैसे स्तुति पाठक स्तुति करते हुये जगाते हैं, वैसे दुर्गा देवी श्री हरि की स्तुति कर रही हैं।

एक - हे अजीत, आपकी जय हो, आप जगें, आपको जीव जड़ की सृष्टि करनी हैं। आप द्वारा सृष्टि करने के बाद हम वेदाभिमानी दुर्गा रूप वाले विधि निषेध के सहयोग से आपके प्रीत्यर्थ कर्म करने के लिए जीव को प्रेरित कर सकते हैं।

दो - प्रकृति की अभिमानी दुर्गा से भी आप बड़े हैं, आप सर्वोत्तम हैं। ज्ञानी त्रिकरण पूर्वक आपकी सेवा करते हैं। वे अपने मन से आपके अनेक गुणों को समझने के लिए शक्त न होते हुये भी अपने शक्ति के अनुसार कई गुणों को जान सकते हैं। आपके स्वरूप में से पूर्णत्व का एक अंश को जान लिया तो वे आपको समझ लिए यही अर्थ होता है क्योंकि मानव सारे भूमण्डल की परिक्रमा कर नही सकता तो भी थोड़े भाग की यात्रा करने से उसको भू परिक्रमा का फल मिलता ही है।

तीन - संसार में रहने वाले जीव आपकी कथामृत में डुबकी मार कर अपने सारे तापों का परिहार कर लेते हैं तो मुक्त लोग आपको प्रत्यक्ष देखकर भजन करने वाले अपने सारे तापों से परिहार पाते हैं इसको प्रत्येक रूप से क्यों कहना है ।

चार - ब्रह्मादि देवताओं को नियमन करने वाले आपसे द्वेष करने वाले तमस में गिरकर लोहार की भाँथी की तरह दुःख से श्वांस छोड़ना पड़ता है। आपका द्वेष न करने वाले आपके बारे में योग्य उपदेश देने वाले मुक्ति पाते हैं।

पाँच - आप पेट में उदर नाम से शार्कराक्ष्य मुनियों से हृदय में रहते हुये हृदय नामक आरूणि मुनियों से सिर में चक्षुरादि नियामक होकर चक्षुरादि इन्द्रिय देवताओं से आराधना पाने वाले मुख्यप्राण को सामने रखते हुये इस जगत के सारे क्रिया कारित्व को चलाते हैं। इस प्रकार जो आपकी उपासना करते हैं वे सारे मुक्ति पाते हैं।

छः - लकड़ी में रहने वाला आग लकड़ी के जैसे रहता है। उसी प्रकार जीवों में रहने वाले

आप जीवों की तरह बर्ताव करते हैं। अन्य लोग उसको देखकर आप जीवों की तरह दुःखी हैं। ऐसा समझते हैं। किन्तु आप सर्व कर्ता हैं इसको केवल मुख्य प्राण जानते हैं। प्रतिक्षण बदलने वाले इन शरीरों में रहने वाले आप न बदलते हुये सदाकाल एक प्रकार से रहते हैं। इस प्रकार समझने वाले मुक्ति पाते हैं।

सात - जीवों के तारतम्य के अनुसार उसी तारतम्य से ही आपका सन्निधान उनमें रहता है। दुराचारियों में आप रहते हुये वे जो दुराचार करते हैं उसी को आप उनमें रहने वाले ब्रह्मादि देवताओं के पूजा रूप में उसको स्वीकार करते हैं। बाहर व्यास, बुद्ध इत्यादि रूपों से देव और असुरों को आप जो प्रेरणा देते हैं वह आपने करने वाला आपकी पूजा है। आप सबके अन्तर्यामी होकर जो प्रेरणा देते हैं वह आपकी ही पूजा है।

आठ - आपको वेदों से जानकर वेदोक्त कर्मों से आराधना करते हुये ध्यान करे तो अपरोक्ष ज्ञान होता है। बाद में ज्ञान पूर्वक वैराग्य से आपका भजन करे तो मुक्ति मिल जाती है।

नौ - आपके एकान्त भक्त आपकी आराधना के फल स्वरूप में मोक्ष को भी नही चाहते। आपकी आराधना के लिए वे अपने लौकिक घर इत्यादि सकल सम्पदाओं को त्याग कर आते हैं। वे अपने इस बाह्य जड़ शरीर को भी आपकी आराधना के साधन रूप में लभ्य होता है। इसके लिए अपने शरीर की रक्षा करते हैं। इसको वे अपने स्वरूप शरीर के समान देखते है। वे आपको प्रियकर स्वामी समझते हुये आराधना करते हैं।

दस - आपके स्वरूप को अपलाप करते हुये अन्यथोपासना करना आपकी हत्या के समान है। ऐसे पापियों को तिल मात्र सुख न रहने वाला नित्य दुःखरूप अंधःतमही एक मात्र गति है। तम में गिरने के बाद भी वे वहाँ भी अन्यथोपासना करते हैं। इस प्रकार आपसे द्वेष करने वाले और आपके भक्तों से द्वेष करने वाले तमोभागी होते हैं। वे सारे आत्महन्ता पापी होते हैं क्योंकि भक्तों में करने वाले द्वेष को आप अपना द्वेष ही समझते हैं। आप अत्यन्त भक्त वत्सल हैं। मोक्ष साधन रूप ज्ञान को पूर्ण प्रमाण में वायुदेव पाये हैं। उनके अनुग्रह से आपको हृदय में जो ध्यान करते हैं वे ही आपके भक्त हैं।

ग्यारह - आप अपने भक्तों से केवल भक्ति की अपेक्षा करते हैं। अन्य कुछ आप चाहते नहीं। शेष देव के भक्ति से प्रसन्न आप उनके ऊपर सोते हैं। इस प्रकार की आपकी महिमा को हम उसके उन्नति के अनुसार में नही स्तुति कर सकते हैं। किन्तु वेदाभिमानी हम अपने शक्ति के अनुसार स्तुति करते हैं। इतना स्तुति हम कर रहे हैं इसको सुनने के लिए और कोई नित्य मुक्त नही है। ब्रह्मादि देवता आपसे जन्म पाते हैं वे भी नित्य मुक्त नही हैं। हम दो को छोड़कर और कोई नित्य मुक्त नही है।

आप जीवों की तरह बर्ताव करते हैं। अन्य लोग उसको देखकर आप जीवीं की तरह दुःखी हैं। ऐसा समझते हैं। किन्तु आप सर्व कर्ता हैं इसको केवल मुख्य प्राण जानते हैं। प्रतिक्षण बदलने वाले इन शरीरों में रहने वाले आप न बदलते हुये सदाकाल एक प्रकार से रहते हैं। इस प्रकार समझने वाले मुक्ति पाते हैं।

सात - जीवों के तारतम्य के अनुसार उसी तारतम्य से ही आपका सन्निधान उनमें रहता है। दुराचारियों में आप रहते हुये वे जो दुराचार करते हैं उसी को आप उनमें रहने वाले ब्रह्मादि देवताओं के पूजा रूप में उसको स्वीकार करते हैं। बाहर व्यास, बुद्ध इत्यादि रूपों से देव और असुरों को आप जो प्रेरणा देते हैं वह आपने करने वाला आपकी पूजा है। आप सबके अन्तर्यामी होकर जो प्रेरणा देते हैं वह आपकी ही पूजा है।

आठ - आपको वेदों से जानकर वेदोक्त कर्मों से आराधना करते हुये ध्यान करे तो अपरोक्ष ज्ञान होता है। बाद में ज्ञान पूर्वक वैराग्य से आपका भजन करे तो मुक्ति मिल जाती है।

नौ - आपके एकान्त भक्त आपकी आराधना के फल स्वरूप में मोक्ष को भी नही चाहते। आपकी आराधना के लिए वे अपने लौकिक घर इत्यादि सकल सम्पदाओं को त्याग कर आते हैं। वे अपने इस बाह्य जड़ शरीर को भी आपकी आराधना के साधन रूप में लभ्य होता है। इसके लिए अपने शरीर की रक्षा करते हैं। इसको वे अपने स्वरूप शरीर के समान देखते है। वे आपको प्रियकर स्वामी समझते हुये आराधना करते हैं।

दस - आपके स्वरूप को अपलाप करते हुये अन्यथोपासना करना आपकी हत्या के समान है। ऐसे पापियों को तिल मात्र सुख न रहने वाला नित्य दुःखरूप अंधःतमही एक मात्र गति है। तम में गिरने के बाद भी वे वहाँ भी अन्यथोपासना करते हैं। इस प्रकार आपसे द्वेष करने वाले और आपके भक्तों से द्वेष करने वाले तमोभागी होते हैं। वे सारे आत्महन्ता पापी होते हैं क्योंकि भक्तों में करने वाले द्वेष को आप अपना द्वेष ही समझते हैं। आप अत्यन्त भक्त वत्सल हैं। मोक्ष साधन रूप ज्ञान को पूर्ण प्रमाण में वायुदेव पाये हैं। उनके अनुग्रह से आपको हृदय में जो ध्यान करते हैं वे ही आपके भक्त हैं।

ग्यारह - आप अपने भक्तों से केवल भक्ति की अपेक्षा करते हैं। अन्य कुछ आप चाहते नहीं। शेष देव के भक्ति से प्रसन्न आप उनके ऊपर सोते हैं। इस प्रकार की आपकी महिमा को हम उसके उन्नति के अनुसार में नही स्तुति कर सकते हैं। किन्तु वेदाभिमानी हम अपने शक्ति के अनुसार स्तुति करते हैं। इतना स्तुति हम कर रहे हैं इसको सुनने के लिए और कोई नित्य मुक्त नही है। ब्रह्मादि देवता आपसे जन्म पाते हैं वे भी नित्य मुक्त नही हैं। हम दो को छोड़कर और कोई नित्य मुक्त नही है।

बारह - लयकाल में यह स्थूल प्रपंच नही रहता है। सृष्टिकाल में आप उसकी सृष्टि करते हैं। आपको सृष्टि और लय नही है। इसके लिए आप प्रपंच विलक्षण हैं। इस रहस्य को वायु के अनुग्रह से ज्ञानी लोग समझकर उपासना करते हैं। आप उनकी बातों से गोचर होकर उनकी स्तुति को स्वीकार करें।

तेरह - जीव इस जगत में त्रिगुणों से बधे रहते हैं। इसका कारण परमात्म के तत्वज्ञान का अभाव ही है। भगवान को यह तत्वज्ञान सदा के लिए जागृत रहता है। इसके लिए आप में त्रिगुण बंधत्व कैसे रह सकता है। अवतारों में भगवान को वह तत्वज्ञान नही रहता है। इसके लिए आपकों उस समय त्रिगुण बंधत्व रहता है। इसको अवतार तत्व को जानने वाले सज्जन स्वीकार नहीं करते हैं। अवतारों में भी आपको त्रिगुण बंधत्व नही रहता।

चौदह - हमें सोना चाहिए, किन्तु सोने से बने हुये गहने नही चाहिए। ऐसे कोई कह नही सकता क्योंकि दोनों एक ही हैं। आपके मूल रूप और अवतार रूपों में भी ऐसे ही समानता है, भेद नही है। इस प्रकार स्वगतभेद रहित होकर आप सारे तत्वों में अन्तर्गत होकर रहते हैं। इस प्रकार आपकी उपासना करने वाले मुक्ति पाते हैं।

पन्द्रह - बैल का यजमान उनको नाक में नथनी डाल के प्यार से उनकी रक्षा करते हैं। उनसे सेवा लेते हैं। उसी प्रकार आप मोक्ष पाने की इच्छा वाले को प्यार से वेदोक्त विधि निषेधों से बन्धित रखकर उनसे कर्म करवाते हुये उनके ऊपर अनुग्रह करते हैं। इसी कारण मुमुक्षु लोग आपकी आराधना करते हुये सुख पाते हैं।

सोलह - सामन्त राजा ने जैसे सार्वभौम राजा को उपहार देते हैं वैसे ही ब्रह्मादि देवता आपकी पूजा करते हैं। आप मोक्ष देने वाले हैं। इस प्रकार वेदों में आपने ही बताया है। आप ही मोक्षदायक हैं तो बन्धक भी आप ही हैं।

सत्रह - वायु जीवोत्तम और आप सर्वोत्तम हैं। अन्य सारे जीव स्वरूप से अनादि नित्य होते हुये भी वायु के कारण देह धारण करके जन्म लेते हैं, वे स्वतंत्र नही हैं। एकमेवाद्वितीयं इस प्रकार श्रुति जो कहती है उसका अर्थ जीव आपसे अभिन्न हैं, अधीन नही ऐसा नही होता। क्योंकि **अतोऽन्य दार्तं** इस श्रुति वाक्य से सारे जीव आपके अधीन हैं यह अर्थ होता हैं।

अट्ठारह - हे रमा नारायण आप दोनों कभी जन्म नही लेते इसके लिए आप **अज** हैं। बाकी अन्य जीव पानी के ऊपर बुलबुले के समान आपसे जन्म लेते हैं। आपको ठीक तरह से जानने वाले गुरु के उपदेश से वे जीव जनन-मरण रूप इस संसार से मुक्ति पाते हैं।

उन्नीस - अमृत रस के समुद्र में सारे रस जैसे रहते हैं। उस प्रकार सारे देवों के नाम और

उनकी महिमा आप में छिपी है। आपके ये सर्व विलक्षणों को ज्ञानी लोग आपके अनुग्रह से ही आकर मुक्ति पाते हैं।

बीस- इक्कीस - आपके अंग सायुज्य को पाने वाले योग्यता के देवता भी गुरु के अनुग्रह के बिना संसार सागर को पार कर आपको नही पा सकते हैं। बिना कप्तान वाले जहाज में प्रयाण करने वाले व्यापारी जैसे दुःख का निश्वास छोड़ते हैं वैसे गुरु के अनुग्रह के बिना निश्वास छोड़ना पड़ता है। क्योंकि आप उनकी साधनाओं को नही स्वीकारते हैं। नियत गुरु मिलने के बाद ही आप उनके साधनाओं को स्वीकारते हैं।

बाईस - आपको न समझते हुये लौकिक सुख को ढूँढ़ने वाले को मोक्ष भी नही मिलता सुख भी नही मिलता। आप को ठीक तरह से समझकर उपासना करते हुये एक बार आकाश के बिजली के समान रहने वाले आपके अपरोक्ष को पाने के बाद वे पुनः अपने स्वातंत्र्य के अभिमान को पुनः नही मानते वे मुक्त हो जाते हैं।

तेईस - यह जगत मिथ्या है। उसको जीव को छोड़कर और कोई पालक नही है। इस प्रकार कुतर्क से कई लोग वाद करते हैं। यह भी आपकी इच्छा से ही होता है। क्योंकि शुष्क तर्क से कुछ भी साधित नही होता। वह कई जगह व्यभिचरित होता है, कई जगह बाधित होता है। अद्वैत श्रुति भी तत्व निर्णय में स्थिर बुद्धि जिनको नही है उसको भ्रामक बनती है। उसके तात्पर्य को न जानने वाले उससे वंचित होते हैं। इस प्रकार वेद विरूद्ध कल्पनाएँ अंध परंपरा से इस जगत में प्रसारित होती हैं।

चौबीस - जीव को जन्म पाते समय गर्भवास दुःख को अनुभव करना पड़ता है तो तब वह भगवान नही है। मरने के बाद जीव को नरक दुःख रहता है, तब भी वह भगवान नही है। इस प्रकार आगे-पीछे जो भगवान नही है, वैसे वह बीच में कैसे भगवान बनता है। भगवान ही जीव बनता है ऐसे कई लोग मानते हैं। यह भी भगवान आपकी प्रेरणा से ही होता है। इस प्रकार सर्वोत्तम आप में जीव का अभेद बोलना गलत है। अभेद भ्रांति जीव को साक्षी विरूद्ध कल्पना मार्ग से ले चलता है। यह आसुरी बुद्धि के कल्पना विलास हैं। इस प्रकार ज्ञानी लोग समझ लेते हैं।

पच्चीस - वेदोक्त आपके गुणों को गुरू मुख से क्रम से उपासना करने वाले अपरोक्ष को पाकर प्रारब्ध कर्म छूटने के बाद मोक्ष को पाते हैं। इसमें भी जीव स्वतंत्र नही है। उसके ऊपर के जीवाच्छादक परमाच्छादक ये दोनों बंधक शक्तियों को आप द्वारा खींचने के बाद ही वह जीव जैसे साँप अपने केचुल को छोड़कर क्रियाकारी बनता है वैसे जीव दोनों आच्छादकों से प्रकृति के सम्बन्ध को नाश करता है। वह आपकी पूजा करने में भी स्वतंत्र रीति से समर्थ नही है। आप ही उसके अन्दर रहते हुये उससे अपनी पूजा आप ही करवाते है।

छब्बीस - सज्जन लोग विषयों की आशाओं को न त्यागते हुये यतिवेश धारण करे तो आप उनके हृदय में रहते हुये भी उनके दृष्टि को नही मिलते। दुर्जनों को तो आप मिलने वाले ही नही हैं। गले में मणि को धारण करने वाला उसको भूलकर उसको ढूँढ़ते रहता है। मणि उसको दिखती नहीं इसी प्रकार विषय लालसा में लिप्त सज्जन को आप दिखते नहीं। विषयों की आशा को त्यागने वाले योगी को आप यम का भय दूर करते हुये रक्षा करते हैं। यहाँ संसार में विषयासक्त जो हैं उसको यम एक दिन किसी को न देखते हुये आकर उठाकर ले जाते हैं किन्तु यहाँ वैकुण्ठ में यम का दरबार नही चलता।

सत्ताईस - लक्ष्मी नारायण के बारे में सही ज्ञान केवल श्रुतियों से ही नही आता है। उसके लिए ऋषि योगियों के व्याख्यान के उपदेश की परम्परा का सहाय अवश्य चाहिए। इसके साथ ही जीव की योग्यता भी आवश्यक है। जब तक धान छिलका में रहता है, तब तक सुरक्षित रहता है। उसके लिए धूल का सम्पर्क नही आता। उसी प्रकार वेद में बताया गया तत्व राजस तामस लोगों के समझ में नही आता। सात्विक लोग उसको समझ सकते है। वे वेदोक्त मोक्ष के साधनों को साधते हुये मोक्ष पाते हैं।

इस प्रकार सनन्दन मुनि श्रुतिगीता का प्रवचन किये। उसको सुनकर सनकादि ऋषि उनकी प्रशंसा करते हैं। यह श्रुतिगीता सकल वेद, पुराण, उपनिषदों का सारसंग्रह है। यह दुष्ट कामनाओं को दूर करते हुये सात्विक कामनाओं को बढ़ाती हैं। नारद जी नारायण मुनि से इसको सुनकर कृतकृत्य बने।

यहाँ श्रुतिगीता समाप्त होती है। सनन्दन मुनि के अनुसार यह सकल वेदोपनिषद् पुराणों का सार है। नित्य इसका पाठ, प्रवचन करने वाले सज्जन बनते हैं, सद्भक्त बनते हैं। उनकी मनोकामना पूर्ण होती है और वे नारद जी के समान कृतकृत्य होते हैं।

।। इति श्रुतिगीता समाप्ता ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में छियानेबे अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सत्तानबे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे महामुने, राजा बहुलाश्व और निर्धन श्रुतदेव को अनेक तरह से सन्तोष दिलाकर भगवान श्री कृष्ण द्वारका को वापस आने के बाद और क्या लीला किये। उसको मेरे लिए कहिये ।।1।।

श्री शुकदेव कहते हैं - पाण्डव बारह वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञात वास को पूर्ण कर उत्तरगोग्रहण के समय कौरवों को जीत कर **बलेन महता** सैन्य संख्या दृष्टि से देखें तो कौरवों से कम होते हुये भी शरीर सामर्थ्य दृष्टि से **बलेन महता** बल से अत्यन्त महिष्ठ उपप्लाव नगर में शिविर बनाकर रह रहे हैं। यह समाचार श्री कृष्ण सुने ।।2।।

वे भू-भार हरण करने का समय आ चुका है, यह समझकर मन में सन्तोष पाकर सात्यकि कृतवर्म, उद्धव, शठ, सारण और सुभद्रातनय अभिमन्यु सहित बड़े सैन्य को लेकर चल पड़े। सत्य प्रतिज्ञ सर्वज्ञ श्री कृष्ण युधिष्ठिर को देखने के लिए एक अक्षोहिणी सैन्य के साथ शंख दुंदुभि का नाद घोष करते हुये उपप्लाव को चले। मरण के समीप रहने वाला मूर्ख दुर्योधन कुरू पाण्डवों में सन्धि कराने आये श्री कृष्ण को बन्धक बनाने का प्रयत्न किया। उस समय महाबाहू श्री कृष्ण ने अपने विश्व रूप को सबको दिखाया ।।3,4,5,6।।

विश्वरूप दर्शन से कौरवों में घोरभय उत्पन्न करने के बाद भगवान श्री कृष्ण पाण्डवों के पास आये। कौरव पक्ष में रहने वाले राजा पाण्डवों के साथ मात्सर्य बढ़ाते हुये क्रोध से युद्ध करने एक साथ मिलकर आये। वे सन्धि को मान्य नही किए धर्मराज युधिष्ठिर श्री कृष्ण को सामने रखते हुये युद्ध के लिए अपने भाइयों के साथ कुरुक्षेत्र गये। वहाँ महाबुद्धिशाली मद्रराज विराट अपने पुत्र समेत एक अक्षोहिणी सैन्य सहित युधिष्ठिर के साथ चले। युद्ध प्रिय सात्यकि श्री कृष्ण के आदेशानुसार एक अक्षोहिणी सैन्य को युधिष्ठिर के पीछे किये ।।7,8,9,10,11।।

धर्मराज के मामा पाँच केकेय राजा एक अक्षोहिणि सैन्य सहित उनके साथ चले। राजा धृष्टकेतु शैब्य ये दोनों एक अक्षोहिणि सैन्य को धर्मराज के पीछे किये ।।12,13।।

श्री कृष्ण को सामने रखते हुये पाण्डवों का यह सारा सैन्य कुरूक्षेत्र की पावन स्थली में दुर्योधन की राह देखते हुये शिविर में रहने लगे। इधर अहंकारी दुर्योधन अपने सौ भाईयों, द्रोण, भीष्म, कृप, अश्वत्थाम, कर्ण, बाल्हिक, शकुनि, हार्दिक्य, साल्व, शल्य, भगदत्त, जयद्रथ के साथ कुरुक्षेत्र में आया ।।14,15,16।।

वीर दुर्योधन अनेक देशों से आये हुये बहुत से राजाओं के साथ शंख, दुंदुभि, भेरि, पटह इत्यादि वाद्यों से दसों दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए भूमि को हिलाते हुये कुरुक्षेत्र में आया। इस प्रकार कुरु पाण्डव कुरुक्षेत्र में मिलकर समन्त पंचक में सूर्योदय काल में व्यूह रचना कर युद्ध के लिए सिद्ध हुए। दुरात्मा कौरवों के पक्ष में ग्यारह अक्षोहिणी सैन्य था ।।17,18,19।।

वनवास में बहुत कष्ट भोगे पाण्डवों का सैन्य केवल सात अक्षोहिणी था। पाण्डव-कौरव अपने-अपने सैन्यों के साथ व्यूह रचना कर सिद्ध होकर खड़े थे। उस समय गाण्डीवधारी अर्जुन कवच तुरीय,दोनों हाथों में चर्म का रक्षा कवच धारण कर रथ पर सवार शत्रु सैन्य का निरीक्षण किये ।।20,21।।

सैन्य में द्रोण आदि गुरू, पिता और बाबा के समान भीष्म, बाल्हिक आदि राजा, भाई जैसे कौरव, शकुनि, सल्य जैसे मामा, बहन के पुत्र, शिष्य, पौत्र, बहनोई और अतिथि बन्धुओं को देखकर अर्जुन उनको मारने के लिए सिद्ध नही हुआ। युद्ध करने से अपने मन को हटा लिया ।।22।।

मन बुद्धि में विषाद लेकर बन्धु कारूण्य से शत्रुवध करने के लिए सिद्ध नही हुआ ऐसे अर्जुन को श्री कृष्ण अपने स्वरुप सामर्थ्य से उसके सामने खड़े होकर गीतोपदेश करते हुये, अन्दर रहते हुये अन्तर्यामित्व रूप से प्रेरणा देते हुये युद्ध के लिए सिद्ध किये ।।23।।

अर्जुन द्वारा की बन्धुओं के प्रति करूणा से शस्त्र को जमीन पर रखते हुये युद्ध रंग में निष्क्रिय होकर बैठने के समय भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को विश्वरूप का दर्शन दिये ।।24।।

श्री कृष्ण के उपदेश को सुनकर अर्जुन उन्ही की सामर्थ्य से युद्ध करने के लिए गाण्डीव, कोदण्ड को हाथ में उठाया ।।25।।

महाभारत युद्ध प्रारम्भ हो रहा है।यह सुनकर उसको रोंकने में असमर्थ बलराम आगे क्या करें। इस चिन्ता में डूब गये ।।26,।।

महाभारत युद्ध प्रारम्भ हो गया यह देखकर बलराम उद्वेग से दुःखित होकर तीर्थ यात्रा का बहाना करते हुये सबको त्याग कर बहुत दूर चले गये ।।27।।

पाण्डव पक्ष का महारथी धृष्टद्युम्न सेनापति बना। कौरव सैन्य के कुरु पितामह वृद्ध श्रेष्ठ भीष्म सेनापति बने। वे दस दिन पर्यन्त घनघोर युद्ध करते हुये दसवें दिन युद्धक्षेत्र में गिर गये ।।28।।

उसके बाद दुर्योधन ने भारद्वाज के पुत्र द्रोणाचार्य को सेनापति बनाया। हे राजा परीक्षित ! सुनो। द्रोणाचार्य पाँच दिन तक युद्ध किये ।।29।।

शत्रु द्वारा सामना करने में असाध्य बल वाले द्रोणाचार्य युद्ध करते समय दुरात्मा जयद्रथ द्वारा तुम्हारे पिता अभिमन्यु को युद्धक्षेत्र में वंचना से मरवा दिया ।।30।।

हे राजा ! पुत्र शोक से दुःखित अर्जुन ने दूसरे दिन सायंकाल होने के पहले जयद्रथ को मार डालने की प्रतिज्ञा की ।।31।।

उसी रात नींद में सोए हुए अर्जुन के स्वप्न में श्री कृष्ण आकर उनको अपने दाहिने कंधे के ऊपर बिठाकर गरूड़ के ऊपर बैठ कर कैलास पर्वत को ले गये ।।32।।

श्री कृष्ण द्वारा स्वयं समर्थ होते हुये भी अनुग्रह करने वाले नियत गुरू से ही उपदेश दिलवाना चाहते है। अर्जुन के नियत गुरू भगवान रूद्र हैं। अर्जुन को रूद्र से उपदेश दिलाने का संकल्प श्री कृष्ण किये थे। पहली बार वनवास के समय अर्जुन को इन्द्रकिल पर्वत पर उपदेश मिला था। अब दूसरी बार उपदेश पाने से अस्त्र का बल ज्यादा हो जाता है। इसके लिए रात के स्वप्न में अर्जुन के एक अंश को भगवान श्री कृष्ण उठाकर अपने कंधे के ऊपर रखते हुये गरूड़ारूढ़ होकर कैलास पर जाकर शिव से पाशुपतास्त्र का उपदेश दिलवा दिये। उसके पहले एक सरोवर में एक हजार फणा से युक्त सर्प रूप में रहने वाले शिव अपने धनुष बाणों को लाने के लिए अर्जुन को बताए। अर्जुन को वे धनुष बाण केवल स्पर्श मात्र से हाथ में आये। गुरू शिष्य दोनों अपने-अपने धनुष में बाण जोड़े। गुरु मंत्र का उपदेश दिये। शिष्य गुरु के धनुष उसके शिंजनी पकड़ा हुआ रूद्र की मुष्टि को ठीक तरह से देखते हुये गुरू ने बताया हुआ मंत्र का उच्चार किया और प्रार्थना किया कि मंत्र को द्विगुण शक्ति मिले। गुरू तथास्तु बोलकर आशिर्वाद दिये। बाद में अर्जुन धनुष बाणों को उसी सरोवर में डाल दिया। इस प्रकार अर्जुन अस्त्रोपदेश को पाकर शिविर में सोए हुए अपने शरीर के साथ हो गया। यह भगवान श्री कृष्ण की अचिन्त्य, अद्भुत शक्ति है।

स्वप्न देखते समय एक नियम है। **मनस्यंतस्तु तैजसहः** । मन के अन्दर रहने वाले तैजस नामक श्री हरि देह में रहने वाले वासनामय मन में अनेक पदार्थों को स्वप्न में दिखाते

हैं। यह माण्डूक उपनिषद् का वाक्य है। किन्तु बृहादरण्यक उपनिषद् में (6.3.12) **बहिष्कुलायादमृतश्चरित्वा** जीव एक अंश से सोए हुए शरीर की रक्षा करते हुये दूसरे अंश से उसको शरीर से बाहर निकालते हुये स्वप्न को दिखाकर पुनः उसको पहले अंश में जोड़ देते हैं। यह काम तैजस नामक श्री हरि करते हैं। भाष्य में यह स्पष्ट होता है। इसी कारण हम स्वप्न में अपने ही शरीर रूप क्रिया आदि को देखते हैं।

अस्त्रोपदेश स्वप्न में पाने के बाद जागृत में वह मंत्र कैसे आया इस प्रश्न का उत्तर भी यहाँ मिल जाता है।

कैलास पर्वत पर जाकर वहाँ शिव को देखकर श्री कृष्ण उनसे बाते करते हुये अर्जुन को पाशुपतास्त्र का उपदेश दिलवा देते हैं। इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण अपने संकल्प के अनुसार कार्य करते हुये अपने अचिन्त्याद्भुत शक्ति से साधना करते हुये सुबह होने के पहले रणरंग में दोनों आ जाते हैं ।।33।।

दूसरे दिन जन नाश करने वाला घनघोर युद्ध हुआ उसमें महाबलशाली बहुत से राजा मरण पाये ।।34।।

युद्ध निपुण बहुत से राजकुमारों को मारने के बाद उस दिन के शाम होने के समय अर्जुन जयद्रथ को मार डाले ।।35।।

द्रोणाचार्य आलस्य न करते हुये पाँच दिन घनघोर युद्ध करते हुये पाँचवे दिन शाम को धृष्टद्युम्न से मरण पाये ।।36।।

बाद में कर्ण सेनापति बनकर दो दिन महायुद्ध किया। तीसरे दिन दोपहर में ही अर्जुन उसको युद्ध में संहार किया ।।37।।

हे राजा परीक्षित सुनो, आधा दिन के लिए शल्य सेनाधिपति बना। दोपहर में धर्मराज ने उसका हनन किया ।।38।।

अन्त में बहुत दीर्घकाल से परस्पर युद्ध करने वाले वीर भीम और दुर्योधन क्रोध से परस्पर एक-दूसरे को मारने लिए गदा को लेकर युद्ध किये ।।39।।

इतने में - अटठारह दिन के इस युद्ध में अटठारह अक्षोहिणी सैन्य का नाश हुआ था। उनके अधिपति सारे राजाधिराज महाविनाश पा चुके थे। यह सारा युद्ध साढ़े सत्रह दिन में हो चुका था ।।40।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में सत्तानबे अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अट्ठानबे

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ॥

राजा परीक्षित कहते हैं - अट्ठारह अक्षोहिणी सैन्य को केवल अट्ठारह दिन में इच्छा मात्र से नष्ट करने वाले विश्वलयमूर्ति श्री कृष्ण को नमस्कार ।।1।।

श्री कृष्ण की कथाओं में उनकी लीलाएँ भरी रहती हैं। उनको सुनते-सुनते आनन्द में परवाशता हो जाता है, आश्चर्य और भय भी होता है ।।2।।

नाश न होने वाले मेरे सारे पाप इस कथा श्रवण से नष्ट हो गए हैं ऐसे मैं समझता हूँ। मेरी इन्द्रिय जागृत हो गयी हैं। मन स्वच्छ हो गया है ।।3।।

भूख,प्यास भाग गयी है, आत्मा आनन्दविभोर हो गयी है। हे धर्मज्ञ महामुने ! आपके अनुग्रह से मेरा जन्म सफल हो गया ।।4।।

हे तपोधन ! मैं आपसे और भी अंशों में कथा को सुनना चाहता हूँ। आपने कहा कि बन्धुओं को युद्ध करते देखकर उनको रोक सकने में असमर्थ बने बलराम तीर्थ यात्रा को चले गये। वे क्या किये उसके बारे में कहिये ।।5,6।।

श्री शुकदेव कहते हैं - बलराम कौरवों, पाण्डवों के बीच में किसी का पक्ष न लेते हुये तटस्थ होकर तीर्थ यात्रा करने द्वारका से निकल पड़े। वे प्रभास क्षेत्र में स्नान करते हुये देव, ऋषि पितृ मानवओं को तृप्त करने के बाद ब्राह्मणों के साथ सरस्वती प्रवाह के अभिमुख होकर आगे बढ़े। पृथूदक, बिन्दु सरोवर, त्रितकूप सुदर्शन तीर्थों में अवगाहन किये ।।7,8।।

हे राजा, बलराम बाद में विशाल तीर्थ, चक्रतीर्थ, प्राचीन सरस्वती तीर्थों में स्नान करने के पश्चात यमुना और गंगा जी के तट पर संचार किये ।।9।।

बाद में बलराम नैमिषारण्य गये। वहाँ शौनकादि महर्षि दीर्घकाल का सत्र यज्ञ कर रहे थे। बलराम को देखकर सत्र चला रहे सारे ऋषिमुनि खड़े होकर स्तोत्र करते हुये विधि पूर्वक उनका स्वागत सत्कार किये। बलराम वहाँ अपने ब्राह्मण परिवारों के साथ सत्कार पाकर आसन के ऊपर बैठ गये ।।10,11।।

वहाँ महामुनि वेदव्यास जी के शिष्य रोमहर्षण नाम का सूत पौराणिक बैठा था। वह

बलराम जी को देखकर न उठा और न नमस्कार किया। इसको देखकर बलराम कुपित हो गये और बोले - यह सूत है तो भी ब्राह्मणों के सामने उनसे भी बड़े एक उच्चासन में बैठा है ।।12,13।।

धर्मरक्षक हमारे से भी उन्नत आसन में बैठा है। दुरहंकारि है, व्यासमुनि का शिष्य होकर बहुत अध्ययन करने के बाद भी ऐसा कर रहा है ।।14,15।।

मनोनिग्रह न करने वाले इसके लिए ये सारा पुराण प्रवचन नाटक के रंगमंच पर नटना करने वाले नट के जैसे है। ये सारे प्रयोजन के लिए नही है। लोक में दिखने वाले ऐसे दुष्टों के निग्रह के लिए मैं अवतार लिया हूँ ।।16।।

धर्म का मुखौटा पहने हुये ऐसे बड़े पाप करने वाले को मैं मार डालूँगा यह कहते हुये भगवान बलराम तीर्थ यात्रा काल में दुष्ट निग्रह छोड़ देना था तो भी हाथ में रहने वाले कुश से उसका वध कर दिये। भगवद् इच्छा के अनुसार यह होने वाला था। इसको देखकर ऋषि मुनियों ने मन में दुःखित होकर हाहाकार किया ।।17,18।।

ऋषिगण संकर्षण रूपी बलराम को कहते हैं - हे प्रभु आपने जो किया वह धर्म सम्मत नही है। हमने ही सूत पौराणिक को अपने लिए पुराण की कथा सुनाने के लिए आग्रह पूर्वक योग्य और ब्राह्मण से उन्नत स्थान दिये था ।।19।।

सत्र समाप्ति तक दीर्घायुष रहे इसका भी वर दिये थे। आप अज्ञ के समान इसको मारकर ब्रह्महत्या दोष पाये हैं। स्वयं योगेश्वर होने के कारण वस्तुतः वेद का विधि निषेधों का बन्धन आप को नही है ।।20।।

किन्तु हे लोक पावन ! आप इस ब्रह्म हत्या के लिए प्रायश्चित् दूसरों की प्रेरणा के बिना करे तो इस जगत के लिए उत्तम आदर्श बनेगा ।।21।।

रोमहर्षण का अर्थ रोमांचन होता है। इनके द्वारा पुराण को सुनकर लोगों के रोम खड़े हो जाये इस उद्देश्य से वेदव्यास जी अपने शरीर के रोमों से रोमहर्षण को जन्म दिये।

ब्राह्मण स्त्री में क्षत्रिय से जन्म लिया हुयी प्रतिलोम जाति को सूत कहते हैं। रोमहर्षण उस प्रकार जन्म नही लिए थे तो भी व्यास जी की इच्छा से सूत बने थे। सूत क्षत्रिय से कम माना जाता है। किन्तु यहाँ ब्राह्मणों ने उसको उन्नत स्थान में बैठाया था, और दीर्घायुष भी दी थी। बलराम इसको जानते थे तो भी भगवान की इच्छा के अनुसार कुपित होकर वध किये यह ब्रह्म हत्या हो गयी। अपरोक्ष ज्ञानी देवोत्तम बलराम को इससे दोष नही है। किन्तु अज्ञानी भी ऐसा न करें इसके लिए नैमिषारण्य वासी ब्राह्मण बलराम को प्रायश्चित्त करने की प्रार्थना किए।

बलराम कहते हैं - लोक कल्याण की इच्छा को रखते हुये मैं इस ब्रह्म हत्या का प्रायश्चित् करता हूँ। उत्तम कल्प के प्रायश्चित् के लिए क्या-क्या नियम है वो सारे बता दीजिए ।।22।।

मैं इस रोमहर्षण को दीर्घायुष्य, व्रतप्रवचन, सामर्थ्य दूर श्रवण, इन्द्रिय पाटव इत्यादि आपकी इच्छा के अनुसार सारे वरों को योग बल से दे देता हूँ ।।23।।

बलराम की बातों को सुनकर ऋषियों ने कहा - आपके दर्भास्त्र और योग सामर्थ्य दोनों सत्य हो। इसका मरण और हमारे द्वारा इसको दिये हुये दीर्घायुष्य ये भी सत्य हो। इनमें कोई भी असत् न हो इस प्रकार आप वर दें ।।24।।

बलराम कहते हैं - ऐसा है तो रोमहर्षण का पुत्र आज से पुराण कथा चालू रखें। उसके आयुष, इन्द्रिय, पाटव और प्रवचन सामर्थ्य पिता के समान आगे बढ़े। श्रुति कहती है - **आत्मावै पुत्र नामासि** पिता ही अपने पुत्र के रूप में जन्म लेता है ।।25।।

यहाँ बलराम जी कहते हैं कि - रोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रव आगे कथा चलायें। रोमहर्ष का आयुष समाप्त हुआ था। उसके मरण का समय आ गया था। यदि मैं उसको पुनर्जीवित करूँ तो मेरा दर्भास्त्र व्यर्थ होता है। आप लोगों द्वारा इसको दिए दीर्घायुष को मैं इसके पुत्र को दिया तो पिता का कार्य पुत्र आगे बढ़ाता है। पिता का ज्ञान पुत्र में आये इस प्रकार मेरा वर और आपका वर दोनों के बल से यह उग्रश्रव कथा वाचक बने।

हे मुनिवर्य ! इससे ज्यादा आपकी अपेक्षा क्या है ? बोलिये। मैं उसको पूर्ण करता हूँ। साथ में आप लोग मेरे द्वारा प्रायश्चित् के बारे में क्या करना है उसको बोलिये ।।26।।

तब ऋषि कहते हैं- इल्वल का पुत्र बल्वल नाम का घोर दानव हर वर्ष पर्व काल में हमारे सत्र में आकर यज्ञ का नाश करता है ।।27।।

आप उस पापी का संहार करें। बलराम जी, आप द्वारा उसका संहार करना हमारे लिए बड़ी सेवा होगी। वह यहाँ आकर हमारे यज्ञ कुण्ड में मल-मूत्र, मद्य मांस, और रक्त को डालता है ।।28।।

बल्वल के संहार के बाद आप अपना मनोनिग्रह करते हुये समग्र भारत खण्ड में संचार करते हुये बारह मास पर्यन्त सकल तीर्थों में स्नान करें तब आप पाप निवृत्ति होकर पुण्यवान बन जायेंगे ।।29।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में अट्ठानबे अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - निन्यानेबे

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा परीक्षित ! पर्वकाल आ गया था। उसी समय प्रचण्ड वेग से धूल उड़ाने वाली आँधी और तूफान चला। मल की दुर्गन्ध वाला झंझावात चारों ओर फैल गया ।।1।।

बाद में यज्ञशाला परिसर में बल्वल मल बरसाने की इच्छा से शूल धारण करते हुये वहाँ आया ।।2।।

बल्वल का काला देह बड़े पहाड़ के समान दिखती थी। गर्माये हुये ताँबे के तार के समान उसके लाल-लाल बाल, दाढ़ी और मूँछ दिखाई देते थे। उसकी उग्र भौंहे और तप्तमुख को बलराम ने देखा ।।3।।

उस समय बलराम अपने मुसल और हल का याद किये। यह दोनो आयुध शत्रु सैन्य के दैत्यों का संहार करने वाले हैं। वे दोनों बलराम के अगल-बगल में आकर खड़े हो गये ।।4।।

बलराम तीर्थ यात्रा में थे। व्रतस्थ होकर संचार करने के कारण आयुध धारण नही करते थे। हाथ में केवल कुश को धारण किये थे। अब राक्षस के वध के लिए अपने शस्त्रों की याद किये। जब-जब बलराम उनकी याद करते थे तब वे बलराम के हाथ में आ जाते थे।

क्रोध से लाल हुये बलराम ने ब्राह्मण द्रोही गगन संचारी बल्वल को अपने हल से नीचे जमीन पर गिराकर मुसल से उसके सिर पर प्रहार किया ।।5।।

बलराम उस प्रहार से बल्वल का सिर फट गया। मुँह से रक्त गिरने लगा। उस समय वह राक्षस इन्द्र के वज्रायुध से जैसे पहाड़ गिर जाता है वैसे जमीन पर गिर गया ।।6।।

इन्द्र जैसे वृत्रासुर का वध किये उसी प्रकार बल्वल को बलराम मार डाले। यह देखकर ऋषि मुनियों ने संतुष्ट होकर बलराम की स्तुति की हीरे-मोती की माला पहनाते हुये अमूल्य वस्तुओं से अभिषेक किया ।।7।।

उन्होंने अत्यन्त सुन्दर कभी भी न मुरझाने वाले कमलों से बनी हुयी वैजयंतीमाला, दिव्य वस्त्रों, और दिव्याभरणों को समर्पित किये ।।8।।

बाद में बलराम मुनियों की आज्ञा पाकर ब्राह्मण परिवारों के साथ चल कर कौशिकी नदी में स्नान किये। बाद में सरयू नदी के उद्गस्थान मानस सरोवर में स्नान किये ।।9।।

वहाँ से सरयू किनारे से चल कर प्रयाग तीर्थ पहुँचे। वहाँ त्रिवेणी संगम में स्नानकर देवों

ऋषियों, पितरों की आराधना करते हुये पुलहाश्रम को चले ।।10।।

गोमती, गण्डकी, विपाशा नदियोंमें स्नान करने के बाद शोण नाम की महानदी में स्नान किये। बाद में गया क्षेत्र जाकर पितृयज्ञ किये। तदनन्तर गंगासागर संगम में स्नान किये ।।11।।

बलराम के माता-पिता, बाबा-नाना सारे जीवित हैं। ऐसे होते हुये वे कैसे गया श्राद्ध किये इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है। बलराम वहाँ पितृ श्राद्ध नही किये। पितृनिष्ठा, पितृयज्ञ, चातुर्मास इस प्रकार अग्निहोत्र के समान पितृयज्ञ एक नित्यकर्म है। उसमें साकमेध नाम के पर्व में महापितृयज्ञ कर्म आता है। सोम पितृमान्, सात अग्निष्वात् और छः बर्हिषपाद नाम के पितृगण इस यज्ञ के देवता बनते हैं। उनको इस अग्नि में आहुति देनी होती है। जिनके माता-पिता जीवित हैं उन्हे भी इस यज्ञ को करना चाहिए जिनके माता-पिता चले गये हैं उनके लिए पितृ, पितामह, प्रपितामह इनको पिण्ड देने का अवकाश है। जिनको अधिकार नही है, उन्हे इसको नही करना चाहिए।

अथवा पिता की आज्ञा से वैराज, अग्निष्वात्, बर्हिषद, शुकाल, अंगिरस, सुस्वधा, सोमप नाम के सप्त पितृगण की सारे लोग आराधना कर सकते हैं। अथवा पिता की आज्ञा के अनुसार पितामह, प्रपितामह की आराधना कर सकते हैं। जीवत पितृ हों तो गया यात्रा नही करना चाहिए इसका अर्थ श्राद्ध करने के लिए नही जाना। किन्तु विष्णुपाद दर्शन के लिए यात्रा कर सकते हैं।

महेन्द्र पर्वत पर परशुराम के दर्शन करके उनको नमस्कार करने के बाद गोदावरी जहाँ सात भागों में समुद्र से मिलती हैं वहाँ स्नान करने के बाद दक्षिण के कृष्ण वेणी, पंपा सरोवर में स्नान कर भीमरथी नदी में पुण्य स्नान किये ।।12।।

षणमुख के दर्शन करने के बाद मल्लिकार्जुन के शिवक्षेत्र श्रीशैल का दर्शन करने के बाद द्राविड़ देश में स्थित महापुण्यकर वेंकटाद्री जाकर वहाँ प्रभु श्री बाला जी का दर्शन किये ।।13।।

कामकोटि, कांचीपुरी का दर्शन करते हुये श्रेष्ठ नदी कावेरी में स्नान करने के बाद श्री हरि के विशेष सन्निधान वाले श्री रंग क्षेत्र का दर्शन किये ।।14।।

हरि क्षेत्र ऋषभाचल, दक्षिण के मदुरै और महापातक नाश करने वाले समुद्र सेतु का दर्शन किये ।।15।।

वहाँ बलराम ने ब्राह्मणों को दस हजार गायों का दान दिया। कृतमाला, ताम्रपर्णी नदियों में स्नान करके मलय नाम के कुल पर्वत का दर्शन किये ।।16।।

मलय पर्वत पर रहने वाले अगस्त्य मुनि को नमन करते हुये नामगोत्र पूर्वक नमस्कार करके उनसे आशीर्वाद पाये। उनकी आज्ञा के अनुसार वे दक्षिण समुद्र की ओर चले गये ।।17।।

वहाँ कन्याकुमारी नाम से प्रसिद्ध दुर्गा देवी का दर्शन किये। वहाँ से आगे बढ़कर श्रेष्ठ फल्गुन तीर्थ और पंचाप्सर तीर्थ में स्नान किये ।।18।।

पंचाप्सर तीर्थ में विष्णु का विशेष सन्निधान है। वहाँ स्नान करके दस हजार गायों का दान दिये। वहाँ से आगे चलकर अनन्तशयन क्षेत्र को चले। वहाँ भी हरि का विशेष सन्निधान है ।।19।।

वहाँ से केरल इत्यादि क्षेत्रों से त्रिगर्त देश में संचार करते हुए कर्नाटक के गोकर्ण नाम के शिव क्षेत्र का संदर्शन किये। वहाँ महाबलेश्वर का सन्निधान है ।।20।।

गोकर्ण में वेदव्यास जी से मिलकर वहाँ से शूर्पाली को चले। तदनन्तर तापि, पयोष्णी, निर्विंद्या नदियों में स्नान करते हुये दण्डकारण्य में प्रवेश किये ।।21।।

वहाँ से रेवाक्षेत्र स्थित नर्मदा नदी तट पर आये जहाँ कार्तिवीर्यार्जुन का माहिष्मती नाम का शहर है। वहाँ अनुतीर्थ में स्नान करके पुनः वापस प्रभास क्षेत्र आये ।।22।।

वहाँ के ब्राह्मणों से कौरव पाण्डव युद्ध में सारे क्षत्रिय नष्ट हुये यह वार्ता सुने। तब समझे कि भू-भार हरण के लिए श्री कृष्ण ने यह युद्ध रचाया है ।।23।।

ब्राह्मणों ने आगे बताया कि भीम दुर्योधन गदा युद्ध में लगे हैं। इसको सुनकर उस युद्ध को रोकने के उ-श्य से युद्ध भूमि में चले आये ।।24।।

वहाँ युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, श्री कृष्ण और अर्जुन सहित सारे लोग बलराम को नमस्कार किये। बाद में बलराम क्या कहना चाहते हैं इसको सुनने के लिए चुप होकर खड़े रहे ।।25।।

वहाँ भीम और दुर्योधन दोनों हाथ में गदा लेकर विजय पाने की इच्छा से क्रोध युक्त होकर विचित्र रूप का युद्ध कर रहे थे। उनको देखकर बलराम कहे ।।26।।

हे राजा दुर्योधन ! हे भीम ! तुम दोनों समान वीर और समान बलशाली हो। भीम प्राण माना जाता है और सबसे श्रेष्ठ हैं। यहाँ दुर्योधन जीवन भर अत्याधिक श्रमपूर्वक गदा युद्ध का अभ्यास किया है ।।27।।

इसी कारण पराक्रम में समान तुम दोनों युद्ध में न जीतते, न हारते। ऐसे होते हुये व्यर्थ यह युद्ध क्यों करते हो, रूक जाओ ।।28।।

बलराम की इन बातों के अनुसार युद्ध रुका तो भीम को कुछ लाभ नही होता किन्तु राजा दुर्योधन को लाभ होता था। नृपार्थवत् इस शब्द का अर्थ यही होता है। किन्तु इसको न मानते हुये वे दोनों अपने युद्ध को आगे बढ़ाये ।।29।।

इनका प्रारब्ध यही हैं, भगवान की इच्छा यही है। इसको कोई बदल नही सकता। इस प्रकार निश्चय करते हुये बलराम द्वारका को वापस जाते हैं। उग्रसेन इत्यादि बन्धु उनको आदर सत्कार देते हैं ।।30।।

अद्भुत कार्यों को करने वाले अप्रमेय, अनंत बलशाली बलराम के इस प्रकार असंख्य कार्यों को भक्ति पुरस्सर जो कहता है और जो सुनता है वह विष्णु का प्रिय होता है ।।31।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में निन्यानबे अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सौवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - भगवान श्री कृष्ण अपने संकल्प के अनुसार भू-भार हरण के कार्य को इस प्रकार कौरव, पाण्डव युद्ध के रूप में पूर्ण करते हुये महाबाहु दुर्योधन गदा की मार खाकर गिर जाने के बाद उस रणभूमि को छोड़कर हस्तिनावती को जाने की सिद्धता करने लगे। उस समय रथियों में श्रेष्ठ कृप, कृतवर्म और अश्वत्थाम ये तीनों दुर्योधन के सैन्य में बचे हुए थे। पाण्डवों के सैन्य में श्री कृष्ण को आगे करते हुये युद्ध करने वाले पाँचों पाण्डव महाबलिष्ठ सात्यकि और धृतराष्ट्र के दासी पुत्र युयुत्सु ये सात जीवित रहे थे। इनको लेकर मुनियों और बड़े लोगों के साथ श्री कृष्ण हस्तिनावति को चले। वे वहाँ धृतराष्ट्र से मिलना चाहते थे। वहाँ गांधारि, धृतराष्ट्र और महाज्ञानी विदुर से समाधान की बाते कहीं। पाण्डवों को उनके प्रयत्न के फल स्वरूप हस्तिनावती के सिंहासन पर बिठा कर मुनियों, सूतमागध वन्दीयों से की हुयी स्तुति को सुने ।।1,2,3,4,5,6।।

अपनों से विरह के कारण दुःख में निमग्न पाण्डवों से विदा लेकर भगवान श्री कृष्ण सूर्य के समान चमकने वाले अपने रथ में बैठकर द्वारका चले। पाण्डवों ने आँखों में प्रेमामृत भरे हुये उनके पीछे-पीछे बहुत दूर तक जाकर उनकी विदाई की ।।7।।

शंख दुंदुभियों के नाद, वेद की मंगल ध्वनि और पुण्याह मंत्र के घोष के साथ श्री कृष्ण द्वारका की दिशा में प्रस्थान किये ।।8।।

द्वारका नगरी को श्री कृष्ण के स्वागत हेतु सुन्दर रूप से सजाया गया था। तोरण हवा से लहरा रहे थे। केले के वृक्ष घर-घर के दरवाजों के सामने शोभा देते थे। नगर के सारे लोग पूरे शहर को साफ-सुथरा रखते हुये पानी छिड़क कर प्रत्येक घर को सजाये थे ।।9।।

नगर के महाजन हाथ में नये बोए हुए अंकुरों को पकड़ते हुये श्री कृष्ण का स्वागत किये। आभूषणों से भूषित वैश्यों ने दीप, दर्पण, फूल-माला, फल और अक्षता हाथ में लेकर भगवान का स्वागत किया। पुत्र-पौत्रों के साथ आये हुए पण्डित, ब्राह्मण अपने स्वजनों के साथ आकर श्री कृष्ण का स्वागत किये ।।10,11।।

इस प्रकार दिन में श्री कृष्ण सबकी पूजा स्वीकार करते हुये द्वारका नगर में प्रवेश किये। जगत प्रसिद्ध सुन्दर और दिव्य सुधर्म सभा में प्रवेश करते हुये आहुक, वसुदेव, बलराम और अपनी माताओं को प्रणाम करते हुये अपने लिए रखे हुए सोने के सिंहासन पर सुख पूर्वक बैठ गये। आकाश में ग्रह-नक्षत्रों के बीच शोभायमान पूर्णिमा के चन्द्र के समान वे यादवों की सभा में

भोज, वृष्णी और अंधक इस प्रकार तीन तरह के यादवों के राजा बनकर श्री कृष्ण द्वारका में राज्य कर रहे हैं। वे अपने चरणकमल को स्मरण करने वाले को अपने को ही दे देते है ||27||

उनके भजन करने वाले को वे अर्थ, काम को देते है, इस प्रकार अलग क्या बोलना है ? परम पुरुष जगद्गुरु भगवान वे अंत में मोक्ष को भी देते हुये अभीष्ठ को पूर्ण करते हैं। इस प्रकार सुदामा की पत्नी उनसे बहुत प्रार्थना की ||28||

इसको सुनकर सुदामा अपने मन में विचार करने लगे। ब्रह्मादि देवताओं से प्रार्थित भगवान श्री कृष्ण का दर्शन करना ही एक बड़ा लाभ है। उसको क्यों छोड़ा जाय इस प्रकार चिन्तन करते हुये वे द्वारका जाने के लिए मन से सिद्ध हुये ||29||

हे सुमंगली ! बड़े लोगों के दर्शन को जाना है तो खाली हाथ नही जाना है। इसलिए उनको देने के लिए घर में जो कुछ है उसी को थोड़ा दे दो। लेकिन सुदामा के घर में कुछ नही था। उनकी पत्नी पड़ोसी के घर से चार मूठ भर चावल माँगकर लाई। उनको फटे हुये कपड़े में बाँधकर जगत पति नारायण को देने के लिए पति के हाथ में दे दी। वह ब्राह्मणोत्तम उसी को अपने हाथ में रखते हुये द्वारका को चले ||30,31||

श्री कृष्ण का दर्शन अपने को कैसे मिलेगा, सुदामा इस बारे में चिन्तन करते हुये तीन सैनिक शिविरों को और तीन पहरेदारी को पार किये ||32||

विष्णु धर्म में रत अंधक व वृष्णियों के बीच में रहने वाली श्री कृष्ण की सोलह हजार रानियों के घर की ओर मुड़कर स्वरूपानन्द अभिव्यक्ति को पाये हुए मुक्त ब्रह्म में प्रवेश करने वाले के समान एक घर में प्रवेश किये। श्री कृष्ण पत्नी के साथ मंच पर बैठे थे। दूर से ही उनको देखकर आदर पूर्वक झट से उठकर सन्तोष से सामने आकर उनके दोनों हाथों को पकड़ते हुये आनन्द पूर्वक आलिंगन किये। प्रिय मित्र ब्राह्मण के आलिंगन से वह अत्यन्त सन्तुष्ट हुये ||33,34,35||

कमलाक्ष श्री कृष्ण आनन्दविभोर होकर दोनों आँखों से आँसुओं को बहाते हुये उनको हाथ से पकड़कर अपने मंच पर बैठाये। स्वयं दौड़कर पूजा सामग्री लाकर ब्राह्मण के पाँव धोकर उस पवित्र पादोदक को अपने मस्तक पर धारण किये ||36,37||

भगवान श्री कृष्ण दिव्य सुगन्ध अपने हाथ में लेकर सुदामा के शरीर पर लगाये। गन्ध अगरु, कुमकुम इत्यादि सुगन्धभरित धूप दीप से अर्चा करते हुये मित्र का सन्तोष पूर्वक सत्कार किये। तांबूल देकर स्वागत करते हुये सुमधुर बातों को कहे। सुदामा फटे हुये और मलिन वस्त्रों को धारण किये थे। दूर से चलकर आने से थके हुए थे। गरीबी और भूख से अत्यन्त दुबले पतले हो गये थे। शरीर की सारी नसें ऊपर उठकर दिखते थे। मित्रविन्दा देवी उनको चामर से हवा करने लगी ||38,39,40||

निर्मल कीर्ति वाले भगवान श्री कृष्ण अवधूत के समान रहने वाले उन ब्राह्मणोत्तम का सत्कार कर रहे हैं, इसको देखकर अन्तः पुरवासी लोग विस्मित हो गये और कहे यह ब्राह्मण अवधूत के समान है। भिखारी लगता है, इस जगत के लोगों का तिरस्कारपात्र है। बिल्कुल छोटा लगता है ऐसे आदमी को तीनों लोको के गुरु श्री निवास इसको इतना बड़ा गौरव दे रहे हैं। बहुशः यह ब्राह्मण पिछले जन्म में बहुत बड़ा पुण्य किया होगा ।।41,42।।

मंच में साथ में रहने वाली लक्ष्मी को त्याग कर भाई बलराम के समान इस ब्राह्मण को आलिंगन दिये हैं। इस प्रकार अन्तःपुरवासी लोग बातें कर रहे थे। उस समय श्री कृष्ण और सुदामा दोनों अपने पीछे के गुरुकुल वास के अनुभव के बारे में आपस में बातें करने लगे ।।43।।

हे राजा परीक्षित, सुनो - श्री कृष्ण, सुदामा दोनों बहुत उल्लसित थे। परस्पर हाथ पकड़े थे बाद में श्री कृष्ण सुदामा से कहते हैं - हे मुनि, तुम गुरु को दक्षिणा देकर समावर्तन करने के बाद योग्य और धर्मज्ञ पत्नी से विवाह किया क्या ? किन्तु लौकिक लोगों की तरह आपका धार्मिक मन पत्नी पुत्रों में आसक्त नही हुआ होगा ।।44,45।।

रामकृष्ण सांदीपनि आश्रम में चौसठ विद्या को पाने के लिए केवल चौसठ दिन मात्र आश्रम में थे। उनके वहाँ से चलने के बाद भी सुदामा और बहुत दिन तक गुरुकुलवास में थे। उनके गृहस्थ जीवन के बारे में कुछ भी मालूम नही है ऐसे इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण पूछ रहे हैं।

घर जमीन आदि सम्पदाओं में तुम्हारा मन अति आसक्ति नही रखता है यह मुझे मालूम है क्योंकि तुम्हारे समान थोड़े लोग विषयों की आशा से मन को खराब न करते हुये दैवाधीन होकर आए हुए देहाभिमान को भी छोड़कर लोगों को अच्छा पाठ सिखाने के लिए धन की आशा न करते हुये मेरे समान निष्काम कर्म करते हैं ।।46,47।।

हे मुनि, हमारे उन दिनों के आश्रमवास के बारे में तुम्हे स्मरण आ रहा है न। त्रैवर्णिक गुरु के पास जानने योग्य विषय को जान लिया तो अज्ञान के परे रहने वाला वैकुण्ठ को पाता है ।।48।।

सारे आश्रम वालों को मेरे समान ज्ञान देने वाला जो ब्राह्मण होता है वह गुरु कहलाता है। इस प्रकार किसी से सत्कर्माचरण होना है तो उसके लिए गुरुकुलवास में रहते समय ब्राह्मण गुरु द्वारा दिये गये अनुग्रह मात्र से यह साध्य होने वाला है ।।49।।

हे महामुने ! गुरु और उनमें रहने वाले मेरे उपदेश पाकर इस संसार सागर को जो ठीक तरह से पार करते हैं वर्णाश्रम में रहने वाले लोगों में वे ही पुरुषार्थ को पाते हैं। सही अर्थ में वे ही ज्ञानी हैं ।।50।।

सर्व जीवान्तर्गत मैं गुरु सेवा से जितना प्रसन्न हो जाता हूँ। यज्ञ से, पुत्र प्राप्ति से, तप से अथवा इन्द्रिय निग्रह से मैं उतना प्रसन्न नही होता ।।51।।

हे मुनि ! हम गुरुकुल में जब वास करते थे उस समय हवन करने हेतु लकड़ी लाने के लिए गुरु पत्नी ने आदेश दिया उनके आदेशानुसार हम लकड़ी लाने गये उस समय जो घटना घटी उसके बारे में तुम्हें याद दिलाता हूँ ।।52।।

मुनि ! हम उस समय बड़े अरण्य में घुस गये। यद्यपि वो बरसात का महीना नही था। तो भी वहाँ घोर आवाज से बिजली चमकने लगी, बादल चलने लगे और तूफान के बाद मुसला धार वर्षा होने लगी ।।53।।

इतने में सूर्यास्त भी हो गया। सारी दिशाएँ अन्धःकार से आवृत हो गयी। जल प्रवाह के कारण भूमि सतह की ऊँचाई-निचाई भी समझ नही आ रही थी ।।54।।

तूफान और वर्षा से त्रस्त हम दोनों जल प्रवाह में परस्पर हाथ पकड़े हुये पूरी रात मार्ग भूलकर जंगल में फिरते रहे ।।55।।

जब सूर्योदय हुआ तब हमको ढूढ़ँते हुये गुरु सांदीपनि हम दोनों के न मिलने के कारण रोने लगे ।।56।।

वे बोले हे मेरे प्यारे बेटों ! तुम लोगों को वर्षा प्रारम्भ होते ही दौड़कर आश्रम में आना था। हमारे लिए तुम कष्ट भोग रहे हो। सबको अपना शरीर बहुत प्रिय लगता हैं। ऐसे में शारिरिक कष्ट को सहते हुये तुम हमारी सेवा कर रहे हो ।।57।।

गुरु की सेवा करने वाले योग्य शिष्य का प्रत्युपकार करना होता है। उन्हे अपनी सकल इच्छाओं को पूर्ण करने वाले अपने शरीर को निर्मल मन से गुरु सेवा के लिए ही उपयोग करना है ।।58।।

हे उत्तम ब्राह्मण पुत्र ! मैं आप से प्रसन्न हूँ। आप जो इच्छा करते हैं वह पूर्ण हो। आपने जो वेदों का अध्ययन किया है वो आपको इह और पर में फल देने में समर्थ बने। इस प्रकार गुरु जी अनुग्रह किये ।।59।।

गुरुकुलवास में ऐसे कष्ट स्वाभाविकरुप से आते हैं। गुरु के अनुग्रह से शिष्य को उनको पार करते हुये योग्य भागी होकर धन्य होना चाहिए ।।60।।

श्री कृष्ण की इन बातों को सुनकर सुदामा कहते हैं -

हे देव-देव, जगद्गुरु, सत्यसंकल्प आपके साथ मैंने गुरुकुलवास किया इससे बढ़कर और पुण्य क्या हो सकता ? ।।61।।

प्रभु ! आपके स्वरुप की स्तुति सकल वेद करते हैं। आप इस जगत की उत्पत्ति के कारण हैं। ऐसे आप वेदों से पाठ किए जाने वाले हमारे साथ गुरुकुलवास किये इससे और बड़ी विडंबना क्या हो सकती है ? ।।62।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में सौवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - एक सौ एक

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

एक मूठ भर चूड़ा (चिउड़ा)

श्री शुकदेव जी कहते हैं - ब्राह्मणोत्तम सुदामा से हँसते-हँसते सम्भाषण करने के पश्चात् सारे जीवियों के मनोगत को समझने वाले, ब्राह्मण प्रिय सज्जनो के पालक भगवान श्री कृष्ण प्यार भरी आँखों से सुदामा को देखते हुये कहे ।।1,2।।

श्री भगवान कहते हैं - हे मुने ! तुम घर से मेरे लिए क्या लाए हो। मेरे भक्त मेरे लिए प्यार से जो कुछ लाते हैं वह कितना भी छोटा क्यों न हो पर मेरे लिए वह बहुत बड़ा है ।।3।।

जो मेरे भक्त नही है वे कितना भी बड़ा उपहार दिये तो भी मुझे उससे सन्तोष नही होता। पत्र-पुष्प फल अथवा जल भक्ति से दिये तो मैं उस को प्यार से ग्रहण करता हूँ ।।4।।

हे राजा परीक्षित ! इस प्रकार श्री कृष्ण के कहने के बाद भी सुदामा लज्जा से अपना मुँह नीचा करते हुये बैठ गये। लाया हुआ चिवड़ा भगवान को नही दिये ।।5।।

सारे जीवियों के मन को समझने वाले साक्षात् भगवान श्री कृष्ण सुदामा के आगमन के उद्देश्य को समझते हुये विचार किये। यह मित्र कभी भी सम्पदा को चाहते हुये मेरी आराधना नही किया है ।।6।।

अब भी अपनी पतिव्रता पत्नी के मन के समाधान के लिए मेरे पास यहाँ आया है। अब मैं इसको देवताओं के लिए भी लभ्य न हो ऐसी सम्पत्ति दूँगा ।।7।।

भगवान इस प्रकार चिन्तन करते हुये सुदामा के कपड़ो में छिपे हुए फटे कपड़े में बाँधकर रखे गए चिवड़े को ढूँढ़ कर, ये क्या है ? इस प्रकार विचार करते हुये सुदामा के हाथ से उसको छीन लिए।।8।।

उस चिवड़े से एक मूठी भर कर भगवान उसे अपने मुँह में डालकर खाने लगे। वे दूसरी मूठी चिवड़ा लेने के लिए चले तो महालक्ष्मी रूक्मिणि उनके हाथ को पकड़ लेती हैं ।।9।।

भगवान की घर-घर में जो पूजा की जाती है। वहाँ जो भोग लगता है उसमे रहने वाले अति सूक्ष्म स्वास्थ्यरस को चख लेते हैं। बचे हुए अन्य सूक्ष्मरस को ब्रह्मादि देवताओं को देते हैं। स्थूल अन्न को भक्तों के लिए छोड़ देते हैं। किन्तु अवतारों में स्थूल अन्न में ही एक भाग को ग्रहण करते हुये बचा हुआ अन्न को भक्तों को देते हैं। कृष्णावतार में बचा हुआ पूरा अन्न

की भगवान स्वयं ग्रहण करने चले हैं। इसलिए भगवती श्री लक्ष्मी देवी भक्तों के ऊपर कृपा हेतु उसमें रूकावट लाती हैं। सुदामा के ऊपर रहने वाले स्नेह और वात्सल्य की यह घटना दर्शाती है।

रूक्मिणि कहती हैं - हे जगदीश आप अब तक जितना खाये हैं वह पर्याप्त है जब इस भक्त को सर्व सम्पत की समृद्धि पाने के लिए और आपके सन्तोष के लिए अन्य कोई कारण की आवश्कता नही है ।।10।।

उस रात सुदामा श्री कृष्ण जी के भव्य राजगृह में वास किये। मिष्ठान्न को खाकर उत्कृष्ट जल पीकर सुख पूर्वक शैया में सुखनिद्रा पाये। मन में इन्द्र समान भोग रहा हूँ ऐसा चिन्तन करते हुये आनन्द विभोर हो गये ।।11।।

दूसरे दिन सुबह जगत्पिता स्नेही श्री कृष्ण अपने मित्र सुदामा को नमस्कार करते हुये थोड़ी दूर तक उसके साथ चलकर मार्ग मध्य में उससे विदाई लेकर वापस अपने घर लौटे ।।12।।

मित्र से अपने को कुछ धन-सम्पत नही मिला, भोजन के बाद दक्षिणा भी नही मिली। इस बारे में सुदामा तनिक भी विचार नही किया, मित्र स्नेह में उनको छोड़कर और किसी का विचार ही नही आया। वो भगवान से कुछ नही माँगा। पत्नी पूँछी तो क्या कहुँगा ऐसा विचार जब आया तब लज्जित हो गया। किन्तु भगवान के दर्शन का भाग्य ही बहुत बड़ा है। इसी से मैं सन्तुष्ट हूँ, मुझे और किसी चीज की आवश्यकता नही है ।।13।।

सुदामा मन में चिन्तन करता है। क्या आश्चर्य की बात हैं ? ब्राह्मण प्रिय श्री कृष्ण के ब्राह्मण वात्सल्य को मैने अपनी आँखों से देखा। लक्ष्मी को धारण करने वाली छाती से अत्यन्त दरिद्र मुझको आलिंगन दिये ।।14।।

महापापी दरिद्र कहाँ मैं और श्री रमण भगवान श्री कृष्ण कहाँ? मैं केवल एक दरिद्र ब्राह्मण हूँ, बन्धु और स्नेहितों से दूर हूँ। इसके लिए भगवान मुझको अपने दोनों हाथ से पकड़कर गले लगा लिये ।।15।।

भगवान अपनी प्यारी पत्नी के साथ झूले पर बैठे थे। अपने भाई के समान मुझको पकड़ कर भगवान अपने साथ मुझको झूले पर बैठाये। मैं थका हूँ इसको देखकर उनकी पत्नियाँ अपने हाथ से पंखा चला के मेरी सेवा की ।।16।।

ब्राह्मणों की स्तुति करने वाले देवाधिदेव मेरे आराध्य देव श्री कृष्ण मेरे पाँव को प्यार से दबाये और उत्तम उपचारों से आराधना किये ।।17।।

भक्तों को इस भूमि में, अंतरिक्ष में जो-जो सुख सम्पत मिलती है उनके लिए, इतना ही नही स्वर्ग और मोक्ष के लिए श्री कृष्ण की पाद पूजा ही मूल कारण है ।।18।।

भगवान परम करूणावान् हैं। इस दरिद्र को सम्पत दिया तो यह मत्त होकर मुझको भूल जाता

है। इसी कारण वे मुझे थोड़ा सा भी नही दिये। उनकी कृपा विशेष रूप से मेरे लिए मिली है ।।19।।

इस प्रकार सुदामा मन में **आलोचना** करते हुये हृदय में भगवान श्री कृष्ण का चिन्तन करते रहे। उसी अवस्था में चलते हुये अपने घर को आये। वहाँ देखते हैं। उनका घर बदल गया है। सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा के समान जगमगाने वाले सोने, चाँदी, हीरे, मोती से निर्मित अनेक विशाल विमानों से निर्मित हुए अपने घर को देखा। उस घर के अन्दर उत्कृष्ट सरोवर, उपवन और उद्यान हैं, वहाँ बैठे पक्षी कलरव कर रहे हैं। सरोवर कुमुद, अम्भोज, कह्लार, उत्पल इत्यादि विभिन्न प्रकार के कमल पुष्पों से विकसित हैं ।।20,21।।

भव्य श्रृंगार किये हुये सेवक, हिरण के समान आँखों वाली दासियाँ सामने आये। सुदामा आश्चर्य से पूछता है - अरे ये क्या हुआ है ? यह राजगृह किसका है। यहाँ मेरा जो पुराना घर था वह कहाँ गया? ।।22।।

महाभाग्यशाली सुदामा इस प्रकार **आलोचना** के बीच देवताओं के समान शोभा वाले नर-नारी संगीत और वाद्यों से उनका स्वागत करते हैं ।।23।।

पति की आगमन वार्ता को सुनकर बहुत सन्तोष और सम्भ्रम से भरी हुयी उनकी पत्नी शीघ्रता से घर के बाहर आई। अपने घर नाम के कमल से उठकर आयी हुयी लक्ष्मी के समान वह दिखती थी ।।24।।

वह पतिव्रता पत्नी अपने पति को देखते हुये प्यार की उत्कंण्ठा से अपनी आँखों में आँसू भर कर भरे हृदय से पति को नमन कर, मन में आलिंगन की ।।25।।

सुदामा देखता है कि उनकी पत्नी आनन्द से विमान में संचार करने वाली देव स्त्री के समान दिख रही है। गले में, हाथों में सोने का आभरण धारण किए है। दासियों के बीच में से आकर सुदामा का स्वागत करती है। यह देखकर सुदामा आश्चर्य से विस्मित हो गया ।।26।।

सन्तुष्ट सुदामा पत्नी के साथ घर में प्रवेश करता है। हीरे, सोने, चाँदी से बनाये हुए सैकड़ों खम्भों से निर्मित वह घर देवेन्द्र की सभा के समान दिखता था ।।27।।

उस घर में अनेक कक्ष थे। वहाँ दूध की मलाई के समान श्वेत हाथी दाँत से निर्मित पीठोपकरण, तखत, शैया थे। वहाँ सोने के हत्थे वाले चामर दीखते थे ।।28।।

सोने के सिंहासन, माला, वस्त्र-आभरण और मोती की मालाओं से वह भवन सुसज्जित था ।।29।।

महामरकत मणियों से चित्रित स्वच्छ स्फटिक से बनी हुई दीवारों में निर्मित, स्त्री विग्रहों के हाथों में रत्नों से उत्पन्न हुयी ज्योति प्रकाशमान थी ।।30।।

इस सारे वैभव और समृद्धि के लिए प्रत्यक्ष अलग कारण नही है" इसको देखकर व्यग्र न

होते हुये सुदामा उस समृद्धि के कारण का विचार करता है ।।31।।

दूर्दैवी जन्म से दरिद्र्य मुझको यह समृद्धि मिली है। इसके लिए महा ऐश्वर्यशाली श्री कृष्ण के दर्शन के बिना अन्य कारण कुछ नही है। केवल दर्शन ही कारण है, यह निश्चय है ।।32।।

मेरे मित्र महा प्रभावशाली हैं। भगवान श्री कृष्ण, जो उनके पास माँगने आता है संकल्प मात्र से उसके मन की आकांक्षा को स्वयं समझते हुये सामने कुछ न बोलते हुये पीछे से मेघ जैसे पानी बरसाता है ऐसे दरिद्र मुझ पर प्यार से सकल सम्पदाओं को बरसाये हैं ।।33।।

जैसे आकाश में बहुत गरजने वाले बादल से न गरजने वाला बादल बहुत पानी देता है वैसे ही वर देने के लिए अन्य देवता सकल पुरुषार्थ को नही दे सकते, किन्तु भगवान श्री हरि कुछ न बोलते हुये भक्तों को ऐहिक सुख देते हैं, अन्त में मोक्ष देते है।

श्री हरि **स्वदत्तं** भक्त को जो देते हैं वह कितना भी बड़ा हो उनको छोटा मानते हैं। उसी प्रकार **सु-अदत्तं** भक्ति पूर्वक भक्त जो अर्पित करता है उसको छोटा होते हुये भी बहुत बड़ा मानते हैं। मैं दरिद्र एक मूठ भर चिवड़ा को ही समर्पित किया। उसको भगवान अत्यन्त प्यार से पूरा खा लिये ।।34।।

श्री कृष्ण का प्यार, सख्य, दास्य और मैत्री मुझे जन्म-जन्म में मिले। सर्वगुण संपन्न, महानुभाव उनके साथ मैं जन्म भर रहूँ, उनका संग न मिले तो उनके भक्तों का संग मिले ।।35।।

धनिक लोगों का धन के मद से अधःपतन होता है। दीर्घ आलोचना न रहने वाले भक्त इसको देख नही पाता किन्तु सर्वज्ञ भगवान पहले ही इसको देखकर हमको नाना तरह का सम्पत, राज्य, ऐश्वर्य इत्यादि को नही देते हैं ।।36।।

सुदामा विवेक से यह विचार करते हुये मिले हुये सारे विषयभोग पदार्थों को श्री हरि को ही अनन्य भक्ति से समर्पण करते हुये उनमें ज्यादा आसक्ति न रखते हुये पत्नी के साथ जीवन चलाये ।।37।।

देव-देवोत्तम यज्ञेश्वर प्रभु श्री कृष्ण के लिए ब्राह्मण ही प्रभु हैं। उनको छोड़कर उनके लिए और भगवान नही हैं ।।38।।

श्री कृष्ण का मित्र सुदामा भगवान श्री कृष्ण के बारे में चिन्तन करता है। किसी से हार न मानने वाले भगवान, भक्तों के सामने हारते हैं। उस भगवान के चिन्तन से, ध्यान से मैं इस संसार बन्धन से मुक्त होने का प्रयास करूँगा। इस प्रकार चिन्तन करते हुये सुदामा सज्जनों के रक्षक श्री हरि के वैकुण्ठ को जीवन के अन्त में पाये ।।39।।

सुदामा पूर्व जन्म में तारण नाम का एक दरिद्र ब्राह्मण था। उसके घर में कुछ नही था। उस समय उसके पिता का श्राद्ध दिन आ गया। पत्नी से वह पूछता है - कल पिता जी का

श्राद्ध करना है। ब्राह्मण भोजन के लिए घर में क्या है ? देखो उसी से श्राद्ध करना है तब पत्नी बोलती है -घर में थोड़ा सा सरसों को छोड़कर कुछ नही है। यह सुनकर वह रोने लगा तब पत्नी बोलती है - श्री राम जी जब वनवास में थे तब दशरथ का श्राद्ध दिन आया। उस दिन लक्ष्मण जंगल में ढूँढ़ने पर फल इत्यादि कुछ न मिलने के कारण श्री राम जी के सामने दुःख करने लगा। तब श्री राम जी कहते हैं - बहुशः हम पूर्व जन्म में ब्राह्मणों की आराधन नही किए होगें। उसी प्रकार हम भी पूर्व जन्म में कुछ पुण्य नही किए हैं इसके लिए यह दुःख भोग रहे हैं।

तारण उस दिन दो ब्राह्मणों को भोजन के लिए आमंत्रित किया। सरसों को ही अन्न बनाकर उसी से पिण्डदान करते हुये ब्राह्मणों को भक्ति पूर्वक भोजन कराया। ब्राह्मण उसी से सन्तुष्ट होकर उनको आशीर्वाद दिये। तब वैकुण्ठ में क्षीर सागर में सोये हुये नारायण से लक्ष्मी देवी कहती है - भगवान यह तारण आप का भक्त है, भक्ति से श्राद्ध किया है। मैं उसको सकल ऐश्वर्य देती हूँ। तब श्री रमण बोले - अभी नही थोड़े समय के बाद देना है।

बाद में लक्ष्मी की कृपा से तारण को निधि मिली। उस निधि से धन मद आ गया। उस अहंकार के कारण उसको लक्ष्मी का अनुग्रह रुक गया। चोर उस घर में घुसकर सारी सम्पत्ति को लूट लिये। अब तारण को ज्ञानोदय हो गया। वैराग्य पाकर जो कुछ बचा था उसको दान देकर जंगल में जाकर तप करने लगा। नारायण अष्टाक्षर मंत्र की उपासना के फल रूप उसको सुदामा का जन्म मिला। वहाँ श्री कृष्ण का मित्र और बाद में भक्त बन गया। भगवान से कुछ भी याचना न करते हुये दरिद्री में ही अपना जीवन बिताते रहा। भगवान श्री कृष्ण उसकी भक्ति की परिपिक्वता होने के समय का निरीक्षण करते रहे। अपरिपक्व अवस्था में यदि सम्पत्ति दिया तो पुनः यह धनमद से अधःपतन पा सकता है इसलिए उसकी भक्ति परिपूर्णता पाने तक श्री कृष्ण उसको कुछ नही दिये। अन्त में देवता भी असूया करें, इतना दिव्य सम्पत्ति को दे दिये।

जो दरिद्र ब्राह्मण सुदामा और ब्राह्मण प्रिय श्री हरि और उनके ब्राह्मण वात्सल्य गुण वाली इस कथा को सुनते हैं, लिखते हैं, और प्रचार करते हैं उनको भगवान श्री कृष्ण में परिपक्व भक्ति होती है। उसके परिणाम स्वरूप वह अन्त में कर्म बन्धन से छुटकारा पाते हैं ।।40।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में एक सौ एक अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - एक सौ दो

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ॥

श्री शुकदेव जी कहते हैं - एक बार श्री कृष्ण अश्वमेघ यज्ञ करने का विचार किये। उस विचार के अनुसार यज्ञाश्व को मंत्र पूर्वक प्रोक्षण करते हुये भू प्रदक्षिणा के लिए उस अश्व को भेजे ।।1।।

हृदिक पुत्र कृतवर्म, उत्तम योद्धा सात्यकि, चारूदेष्ण, सुदेष्ण, प्रद्युम्न, साम्ब, अंशुमान और सुभानु नाम के अपने पुत्रों को बहुत बड़ी यादवों की सेना के साथ यज्ञाश्व की रक्षा के लिए भगवान श्री कृष्ण भेजे ।।2,3।।

महाभारत तात्पर्य निर्णय में बताया गया है कि श्री कृष्ण घोड़े के साथ भीम और अर्जुन को भी भेजे थे।

हे राजा ! वे सारे मंत्रस्नान करके घोड़े के साथ भू प्रदक्षिणा करते हुये बहुत अल्प समय में वापस आये ।।4।।

अल्पकाल का विवरण देते हुये केवल एक याम का काल इस प्रकार निर्णय में लिखा गया है क्योंकि यह अश्वमेघ यज्ञ वर्षों तक चलने वाला नही था। एक ही दिन में करते हुये समाप्त करने का एकाह याग था।

हे राजा परीक्षित ! श्री कृष्ण अश्वमेघ यज्ञ कर रहे हैं। इसको सुनकर व्रतनिष्ठ और दीर्घ तपस्वी सारे मुनि वहाँ आ गये ।।5।।

होतृ, अध्वर्यु, उद्गातृ इस प्रकार अलग-अलग ऋत्विजों को शास्त्र के अनुसार चुनकर अरणि देते हुये यज्ञ करने में श्रेष्ठ ब्राह्मणोत्तम ऋषियों द्वारा पुण्याहवाचन मंगल करते हुये भगवान श्री कृष्ण यज्ञ में दीक्षित होकर बैठे ।।6,7।।

इस यज्ञ के मुख्य ऋत्विज भगवान श्री वेदव्यास जी थे।

उस समय भगवान श्री कृष्ण की सेवा करने श्रेष्ठ किरीट धारण कर शोभा में देवताओं के समान दिखने वाले अनेक देशों के राजाधिराज वहा आ गये थे ।।8।।

हे राजा ! यज्ञ देखने की इच्छा करने वाले राजा, पाण्डव श्री कृष्ण से आमंत्रण पाकर

द्वारका आ गये ।।9।।

श्री कृष्ण अश्वमेघ यज्ञ करते हुये बड़े संभ्रम में थे। उस समय ब्राह्मण लोग आकर अन्न वस्त्र, गो, भू, हिरण्य इत्यादि दान पाकर सम्प्रीत हो गये ।।10।।

श्री कृष्ण यज्ञ दीक्षित होकर ब्राह्मणों को उनके इष्टार्थ के अनुसार दान देकर उनको तृप्त करते हुये उनके भोजन होने के बाद उनसे आशीर्वाद लिये ।।11।।

समस्त राजा अपने के लिए योग्य स्थानों में बैठे थे। राजभट हाथ में छड़ी लेकर शान्ति पालन का आग्रह करते थे। तब यज्ञशाला के द्वार पर हाथ में कुश पकड़े हुए एक ब्राह्मण दौड़ते हुये आया और दोनों हाथ ऊपर करते हुये जोर के आवाज से बोलने लगा ।।12,13।।

भूख से और प्यास से उसका गला सूख गया था। मुख सूखा था, आँखों में आँसू भरे थे। दुःखित होकर आतुरता से बोलने लगा ।।14।।

ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले धूर्त, लोभी, विषयलम्पट, दुष्ट, क्षत्रिय राजा के पाप कर्म से मेरे सारे पुत्र मर गये ।।15।।

हिंसा परायण, दुःशील, इन्द्रियनिग्रह न करने वाले राजा की सेवा करने वाली प्रजा इस लोक में दरिद्र होते हैं, परलोक में भी दुःखी होती है ।।16।।

वह ब्राह्मण दूसरी बार भी ऐसे ही बोला, तीसरी बार और चौथी बार भी ऐसे ही बोलने लगा। वह दुःखित होकर जोर-जोर से चिल्लाता था ।।17।।

इस ब्राह्मण की पत्नी के प्रसव के दिन ही शिशु गायब हो जाता था। इस प्रकार तीन बार हो चुका था। अब चौथे प्रसव का समय आ गया था। इसी कारण वह ब्राह्मण आतंकित हो आया था। हरिवंश के विष्णु पर्व में यह विवरण स्पष्ट रूप से मिलता है। (111-11)

यह सुनकर अर्जुन अहंकार से श्री कृष्ण के पास से उठकर स्वतः ब्राह्मण के पास जाकर पूछता है ।।18।।

श्री कृष्ण यज्ञ में दीक्षित होने के कारण यज्ञशाला छोड़कर बाहर नही जा सकते थे। उस समय अर्जुन का उठकर उस ब्राह्मण से पूछताछ करना सही है। किन्तु श्री कृष्ण से अनुमति न पाते हुये अहंकार से अर्जुन ब्राह्मण के पास आता है।

हे ब्राह्मण ! कहो ! आपके पुत्रों को क्या हुआ ? तुम क्यों दुःख से पीड़ित हो ? सही समाचार ठीक तरह से बोलो। मैं अभी तुम्हारे दुःख को दूर करते हुये तुमको सुख दिला दूँगा ।।19।।

अर्जुन की बात सुनकर वह ब्राह्मण बोलता है - हे अर्जुन ! सुनो, मेरे सारे पुत्रों को जन्म लेते

जन्म लेने के उसी क्षण में कोई सूतिकाग्रह से उठाकर ले जाता है ।।20।।

इसको सुनकर अर्जुन हँसते हुये कहते हैं - क्या आपकी गली में कोई धनुर्धारी नही है ? ।।21।।

निकम्मे राजाओं के लिए ब्राह्मण सत्र यज्ञ करते रहते हैं। राजा की सेवा करते समय ही अपने पत्नी पुत्रों को खो कर दुःख करने समय आ जाय तो वे राजा, राजा बनने के योग्य नही हैं। वे राज वेष धारण किए हुये अपनी इन्द्रियों का पोषण कर पेट भरने के लिए वेषधारी नट के समान जी रहे हैं ऐसे कहना पड़ता है ।।22,23।।

इसी कारण हे पूज्य ब्राह्मण ! मैं दुःखित हुये आपके पुत्रों की रक्षा करता हूँ। यदि मैं इस प्रतिज्ञा को पूर्ण नही करता तो अन्य प्रायश्चित्त न होते हुये अग्नि प्रवेश करूँगा ।।24।।

ब्राह्मण कहता है - संकर्षण , वासुदेव, धनुर्धारियों में श्रेष्ठ प्रद्युम्न, अप्रतिरथ अनिरूद्ध ये सारे मेरे बच्चों की रक्षा नही कर पाये। ये तो तीनों लोकों के स्वामी हैं। यदि ये कार्य इनके हाथ से नही हुआ तो मूर्ख जैसे बाते करने वाले आपसे यह कार्य होता है क्या ? इस विषय में हम आपके ऊपर विश्वास कैसे रखें ? ।।25,26।।

यह ब्राह्मण इसके पहले आया था। बलराम, कृष्ण इसको न बोलते हुये उसको कोई आश्वासन नही दिए थे। अब अर्जुन के प्रतिज्ञा की परीक्षा करने के लिए वह ब्राह्मण इस प्रकार कहा है।

तब अर्जुन कहता है - हे ब्राह्मण ! देखों, मैं बलराम नही, कृष्ण नही, प्रद्युम्न भी नही। किन्तु मैं अर्जुन हूँ ,मेरा यह प्रसिद्ध गाण्डीव धनुष को देखों ।।27।।

हे ब्राह्मण ! रूद्रदेव को युद्ध में हराने वाला मैं हूँ। मेरे पराक्रम को देखो, उसका अपमान मत करो। युद्ध में यम को भी हराने वाला मैं तुम्हारे सारे पुत्रों को वापस लाकर देता हूँ ।।28।।

अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर तप करते हुये किरात रूपी रूद्र से युद्ध करते हुये उनके प्रेम को पाकर उनसे पाशुपतास्त्र पाया है। पाण्डव जब वनवास में रहते हैं उस समय होने वाला वह विषय है। किन्तु इसको पुराण में भूतकाल की कथा बनाकर कहा गया है। इसको व्यत्यस्त शैली कहते हैं। अर्जुन आगे बोलने वाला निवातकवच कालकेय दानवों का वध भी इस प्रकार काल व्यत्यास कहा गया है।

हे राजा ! अर्जुन ब्राह्मण को आश्वासन देने के बाद भगवान श्री कृष्ण के पास आता है और ब्राह्मण के कार्य करने के लिए आज्ञा माँगता है ।।29।।

भगवान आप यहीं बैठे हुये ऋत्विजों की सहायता से अश्वमेध यज्ञ जारी रखें। ऐसे कहते हुये अर्जुन श्री कृष्ण की अनुमति लेकर पीठ पर तूणीर को बाँधते हुये गाण्डिव को उठाकर चलने लगा। तब श्री कृष्ण हँसते हुये बोलते हैं ।।30।।

श्री भगवान कहते हैं - हे अर्जुन ! सुनो यह कार्य तुम्हारे द्वारा होने वाला नही है। बच्चे को उठाकर लेने वाला वह भूत समान्य नही है, ऐसे मुझे लगता है ।।31।।

अर्जुन कहता है - मैंने खाण्डव वन में लोकपालकों के साथ युद्ध करने वाले देवेन्द्र को जीता है। किरात रूप से आने वाले रूद्र मेरा युद्ध देखकर सन्तुष्ट हुये हैं ।।32।।

देवेन्द्र भी जीत न सके ऐसे निवातकवच दानवों को, हिरण्यपुर वासी के कालकी पौलोम इत्यादि दानवों का भी मैंने अकेले युद्ध में संहार किया है ।।33।।

निवातकवच दानव तीन करोड़ थे। प्रह्लाद के भाई, सह्लाद के ये पुत्र थे। समुद्र गर्भ में देवताओं की राजधानी अमरावती से भी ज्यादा सुन्दर राजाधानी इनकी थी। उसको वे ब्रह्मा के वर बल से प्राप्त किये थे। वे ब्रह्मा द्वारा मानव को छोड़कर और किसी से मरण न हो इस प्रकार वर पाये थे। मानवों को वे, दुर्बल होने के कारण उनको जीतना सरल है ऐसे समझकर उनसे न हारने का वर नही पाये। ब्रह्मा इन्द्र से कहे कि तुम मानव का अवतार लेकर इनका नाश करो। उसी के अनुसार इन्द्र के मानव रूप अर्जुन वनवास काल में स्वर्ग जाकर वहाँ देवेन्द्र सभा में पाँच वर्ष रहते हुये अस्त्र विद्या सीखकर गुरु दक्षिणा रूप में निवातकवचों का संहार किये। कश्यप मुनि द्वारा कालकेय और पुलोम नाम की उनकी पत्नियों से साठ हजार कालकेय और पौलोम जन्म लिये। वे जल-स्थल आकाश जहाँ चाहें वहाँ चलने वाले हिरण्यपुर नाम के विमान में वास करते थे। उनका अर्जुन ने मनुष्य होने के कारण नाश कर दिया।

इन सारे दानवों से बढ़कर और कोई भूत होगा क्या ? मुझको क्यों डराते हैं आज्ञा दीजिए ।।34।।

शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार अर्जुन श्री कृष्ण की अनुज्ञा पाकर गाण्डीव ले यज्ञशाला से बाहर चला ।।35।।

अत्यन्त ऊँचे कपिध्वज वाले विशाल रथ में बैठकर आगे उस ब्राह्मण को बिठाकर उसके घर की दिशा में अर्जुन अपना प्रयाण आरम्भ किया ।।36।।

हे राजा ! अर्जुन ब्राह्मण के साथ उसके गाँव को पहुँच गया। उसकी पत्नी के प्रसव का समय आ गया था। वहाँ उस ब्राह्मण को रथ से उतार दिया ।।37।।

अर्जुन कहता है - हे ब्राह्मण, तुम निश्चिन्त होकर घर के अन्दर चलो। कातरता में रही

अपनी पत्नी को शान्त्वना दो। मैं चहु दिशाओं से तुम्हारे घर को रक्षा दिया हूँ ।।38।।

हे राजा ! इस प्रकार अर्जुन से आश्वस्त वह ब्राह्मण, उनके सामर्थ्य के बारे में उन्ही के मुख से सुनकर उनके ऊपर विश्वास रखते हुये सन्तोष से अपने घर के अन्दर प्रवेश किया ।।39।।

पत्नी का प्रसव काल सन्निकट आ गया है। इसको देखकर वह शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ अर्जुन के पास आकर कहता है ।।40।।

हे महाबाहू ! योद्धाओं में श्रेष्ठ अर्जुन सिद्ध होकर यहाँ आ जाओ। आपके पौरूष के निदर्शन होने का समय आ रहा है ।।41।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार ब्राह्मण की बात सुनकर अर्जुन रथ के पर चढ़कर बाण को प्रत्यंचा पर चढ़ाते हुये जल्दी से घर के पास आये ।।42।।

वह ब्राह्मण अपने घर में प्रवेश करता है, प्रसव काल समीप आ गया। यह समझते हुये जोन-जोर से चिल्लाते हुये अर्जुन से प्रार्थना करता है। हे अर्जुन ! मृत्यु से रक्षा करो, रक्षा करो ।।43।।

अर्जुन उस समय निर्मल जल से आचमन कर भूतनाथ रूद्र जी को नमन कर दिव्यास्त्र का स्मरण करते हुये गाण्डीव धनुष को हाथ में उठाता है ।।44।।

अर्जुन घर के चारों ओर अनेक मंत्रों से अभिमंत्रित बाणों को छोड़ते हैं। ऊपर-नीचे, अगल-बगल चारों तरफ से दिग्बन्धन करते हुये शर-पिंजर का निर्माण किये ।।45।।

उस ब्राह्मण के पत्नी को पुत्र जन्म हुआ। जन्म लेते ही वह बच्चा रोते हुये आकाश मार्ग से अदृश्य हो गया ।।46।।

वह ब्राह्मण अर्जुन की निन्दा करते हुये कहता है - हे नपुंसक ! तुम श्री कृष्ण के सामने अपने पौरूष के बारे में बहुत बताये। उसको सुनकर मैं मूर्खता से तुम्हारे में विश्वास रखा ।।47।।

मेरे पुत्र की रक्षा प्रद्युम्न, अनिरूद्ध, बलराम, श्री कृष्ण नही कर पाये। तुम उनसे बढ़कर शक्तिशाली हो क्या ? ।।48।।

व्यर्थ बातें करने वाले अर्जुन को धिक्कार। अपनी डींग मारने वाले, आपके इस धनुष को धिक्कार। हम दैव से पीड़ित हैं। दुर्बुद्धि अर्जुन की मूर्खता से हम अपने बच्चे को खो दिये ।।49।।

इस प्रकार निन्दा करते रहा। उस समय अर्जुन अपने योग बल से पूज्य यमधर्म राजा सम्यमनि के नगर को दौड़े ।।50।।

वहाँ ब्राह्मण के पुत्र को न देख इन्द्र की अमरावती अग्नि, निऋति, सोम, वायु, वरूण

इत्यादि सारे ऊर्ध्व लोकों में दौड़-दौड़कर देखा ।।51।।

अर्जुन ब्राह्मण पुत्र को ढूँढ़ने के लिए नागवास करने वाले रसातल इत्यादि सारे प्रदेशों को ढूँढ़ा। ब्राह्मण पुत्र नही मिला। अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण न करने वाला अर्जुन अग्नि प्रवेश के लिए सिद्ध हुआ ।।52।।

अग्नि प्रवेश के लिए सिद्ध हुए अर्जुन को श्री कृष्ण रोंकाते हैं। मैं उन सारे ब्राह्मण पुत्रों को लाकर तुमको और उस ब्राह्मण को दिखाता हूँ। आत्महत्या मत करो, मनुष्य लोक में अपने निर्मल कीर्ति की रक्षा करो। इस प्रकार बोलते हुये भगवान श्री कृष्ण अर्जुन और ब्राह्मण के साथ रथ में बैठते हुये पूर्व दिशा में प्रयाण करके सप्तद्वीप और सप्तसागर को पार करते हुये महातमस नाम के प्रदेश में प्रवेश करते हैं ।।53,54,55।।

यहाँ **प्राचीं दिशं** इस प्रकार है। किन्तु वादिराजीय पाठ में सैहैव रथमास्ताय **प्रतीचीं दिशमाविशत्** इस प्रकार है। तात्पर्य निर्णय में **आशामुदीचीं** इस प्रकार है। यहाँ प्राची इसका अर्थ पूर्व होता है, प्रतीची का अर्थ पश्चिम है, उदीची का अर्थ उत्तर है। यह विचित्र सा लगता है। किन्तु वादिराज जी कहते हैं इसमें कोई विरोध नही है। **वायव्यामदिशि अनन्तासनो लोकः** इसका अर्थ यह वायव्य की दिशा में अनन्तासन लोक है। पश्चिम-उत्तर मध्य में आने वाली दिशा को वायव्य कहते है। इसलिए उसको पश्चिम और उत्तर इस प्रकार दोनों रीति से बताये तो गलत नही होगा। हरिवंश में उत्तर बताया गया है। भागवत में पश्चिम कहा गया है। हमारे विजयध्वजी पाठ में प्राचीं दिशं इस प्रकार है। पहले कहे गयी बातों के अनुसार इसको व्यत्यस्त पुराण शैली मानना चाहिए।

हे राजा ! महातमस में प्रयाण करते समय भगवान के रथ के शैब्य, सुग्रीव, मेघ-पुष्प और बलाहक नाम के चारों घोड़े तमस में आगे न दौड़ते हुये रूक गये ।।56।।

यह देखकर भगवान श्री कृष्ण हजार सूर्यों के समान प्रकाश देने वाले अपने सुदर्शन चक्र को आगे बढ़ाये ।।57।।

कमान से निकले हुए श्री राम जी के तीर के समान वह सुदर्शन चक्र आकाश को ढके हुए भयंकर तम को अपनी ज्वाला से चीरते हुये मनोवेग से आगे चला ।।58।।

तार्किक लोग कहते हैं कि प्रकाश का अभाव ही अंधेरा है। यह सही नही है। भागवत और हरिवंश में कहा गया है कि अंधेरा एक अलग द्रव्य है क्योंकि अर्जुन का रथ अंधेरे के बड़े कीचड़ जैसे लगने वाले तमस में फँस जाने से घोड़े आगे चल नही पाये और आगे बढ़े

तो तमस का महापर्वत ही सामने था। किन्तु सुदर्शन चक्र इस तमस को चीरते हुये रास्ता बनाया। हम लोकालोक पहाड़ के उत्तर के भाग में रहते हैं। यहाँ सूर्य की किरणों से बर्फ के समान तमस गल कर पतला होता है। रात में आँखों को दिखता है। दिन में सूर्य प्रकाश में दिखता नही।

सुदर्शन चक्र के पीछे उससे बनाए हुए रास्ते पर अपार, परात्पर, ज्योति श्री कृष्ण यात्रा कर रहे हैं। उस समय उनके प्रकाश को देखने में असमर्थ हुआ अर्जुन दोनों हाथों से अपनी आँखों को बन्द कर लेता है ।।59।।

इस प्रकार तमस को पार करने के बाद अर्जुन का रथ घनोदक समुद्र को पार करने लगा। प्रचण्ड वायु के कारण उठने वाली बड़ी-बड़ी लहरों से वह समुद्र बड़ा भयंकर लगता था। उसके बीच अनन्तासन लोक में हजारों रत्नों से सुशोभित स्तम्भों वाले उज्जवल प्रकाश से प्रकाशित अद्भुत और सुन्दर राजगृह को देखे ।।60।।

वह मुक्त स्थान था। अर्जुन का रथ दूर खड़ा हुआ है। ब्राह्मण और अर्जुन दूर से उस राजगृह को देखे। श्री कृष्ण अकेले उस मुक्ती मन्दिर में प्रवेश किये। अपने मूलरूप में ऐक्य पाये और एक मुहूर्त के बाद बाहर आये और वहाँ रहने वाले नन्द, सुनन्दन इत्यादि द्वार पालकों को शिशु रूप में लेकर आये। उनको अर्जुन को दिखाये। अर्जुन में जो अहंकार आया था उसका परिहार करना था। इसलिए स्वयं वो बच्चों को लाकर दिखाये।

उस राजघर में अर्जुन ने आदिशेष को देखा। हजारों फड़ वाले आदिशेष प्रत्येक फड़ में रत्नों को धारण किए हैं। दो हजार आँखों वाले उनको देखने से डर लगता है। वह आकाश के समान श्वेत शरीर वाले थे। नीलकंठ था और मुक्ति पाए हुए आदिशेष का यह रूप था ।।61।।

आदिशेष के शरीर के ऊपर प्रभु श्री हरि आनन्द से बैठे हैं। नीलमेघ के समान रंग है, पीताम्बर धारण किये हैं। फूल सा खिला हुआ मुँह, सुन्दर नयन, मंदमुस्कान् वाले पुरुषोत्तम, उत्तम पुरूषों से उत्तम श्री हरि को अर्जुन ने देखा ।।62।।

हजारों महारत्न राशियुक्त किरीट और कुण्डल की प्रभा से आवृत्त हजारों घुँघराले बाल वाले लम्बे-लम्बे सुडौल आठ हाथों वाले, कौस्तुभ मणि को धारण किये हुये, श्रीवत्स लांछन वाले वनमाला धारण किये हुये सुन्दर रूप वाले भगवान को अर्जुन ने देखा ।।63।।

सुनन्द-नन्द इत्यादि द्वार पालकों से मूर्तिमान होकर खड़े हुये, चक्रादि आयुध समेत, पुष्टि, श्री, कीर्ति, अजा नाम वाली रमा के रूपों से सकल ऐश्वर्य के साथ सेवा लेने वाले अनन्त

मुक्त चतुर्मुख ब्रह्मा से युक्त भगवान को अर्जुन ने देखा। इतने में भगवान श्री कृष्ण बाहर आकर अर्जुन से मिले ।।64।।

वहाँ श्री कृष्ण अपने स्वरूप भगवत् मूर्ति को नमस्कार किये। अर्जुन इस दर्शन से मन ही मन विचलित हुआ। श्री कृष्ण को देखकर वह भी नमस्कार किया। मुक्त चतुर्मुख समूहों के स्वामी सर्वगुण सम्पन्न प्रभु हाथ जोड़े हुये श्री कृष्ण को कहते हैं ।।65।।

हे श्री कृष्ण ! हम तुमको देखने के लिए इस ब्राह्मण के चारों पुत्रों को यहाँ लाये। भूमि पर धर्म संस्थापना करने हेतु मेरे अंश रूपी होकर तुम अवतार लिए हो। भू-भार बने हुये असुरों का संहार करने के बाद तुरन्त यहाँ वापस आना ।।66।।

तुम दोनों नर-नारायण हो, श्रेष्ठ ऋषि हो, पूर्ण काम हो। इस जगत को बचाकर लोगों को धर्माचार सिखाकर तुम लोग धर्म का आचरण करें ।।67।।

इस प्रकार मूलरूपी श्री हरि के आदेश को पाकर कृष्णार्जुन आनन्द पूर्ण श्री हरि से वैसा ही हो कहते हुये ब्राह्मण पुत्रों को उठाकर वापस आये ।।68।।

कृष्णार्जुन सन्तुष्ट होकर पूर्व मार्ग का अनुसरण करते वापस आये। जन्म लेते समय वे बच्चे जितने छोटे थे उसी रूप में उन चारों बच्चों को ब्राह्मण को समर्पित किये ।।69।।

विष्णु लोक को देखकर अर्जुन बहुत विस्मित था। अर्जुन ने समझ लिया कि लोगों में रहने वाला बल और पौरूष केवल भगवान श्री कृष्ण के अनुग्रह के कारण ही होता है ।।70।।

श्री कृष्ण यज्ञशाला में पुनः प्रवेश करते हुये **क्षत्रियोत्तम**, श्रेष्ठ ब्राह्मण पुरोहित और ऋत्विजों के साथ मिलकर यज्ञ को पूर्ण किये ।।71।।

यज्ञ दीक्षा में रहने वाला यजमान यज्ञशाला से बाहर गया तो ऐसा करने के प्रायश्चित्त को ब्राह्मणों की अनुज्ञा पाकर शास्त्रोक्त रीति से श्री कृष्ण अनुष्ठान द्वारा पूर्ण किये ।।72।।

हे राजा ! श्री कृष्ण यज्ञ को विधि पूर्वक पूर्ण करते हुये याचक ब्राह्मणों को दान देकर तृप्त करते हुये अन्य ऋषि और ऋत्विजों का सत्कार किये ।।73।।

यमुना, महानदी में महर्षियों के साथ अवभृत स्नान करके श्री कृष्ण इच्छानुसार विहार किये ।।74।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में एक सौ दो अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - एक सौ तीन

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - यज्ञ के अवभृत स्नान करने के लिए श्री कृष्ण यमुना तट पर आये हैं। यह बात सुनकर कलिंगराज्य के राजा दंतवक्र अपने भाई विदूरथ के साथ हाथी, घोड़े युक्त बड़े सैन्य के साथ द्वारका जाने वाले श्री कृष्ण के सामने युद्ध करने आया। यह दंतवक्र शिशुपाल का भाई है ।।1,2।।

उस समय श्री कृष्ण यादवों के साथ अपने सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों के साथ पालकियों में बैठकर प्रयाण करते थे ।।3।।

क्षत्रियों का समूह उनके पीछे-पीछे आता था। महर्षियों का समूह उनकी सेवा में था ऋत्विज पुरोहित और आचार्य लोग उनके साथ यात्रा में थे ।।4।।

सिंह के पर आक्रमण करने आये हुए सियार के समान मूढ़ दंतवक्र श्री कृष्ण के साथ युद्ध करने आया। रूक्मि, शिशुपाल और दुर्बुद्धि वाली पौंद्रक आदि श्री कृष्ण के कारण परलोक गये हैं। उनको सन्तोष देने के लिए महाबलशाली दंतवक्र गदा को अपने कंधे के पर रखते हुये पाँव से जमीन को हिलाते हुये सामने आया। ऐसे आये हुए दंतवक्र को देखकर श्री कृष्ण शीघ्रता से गदा उठाकर रथ से कूदकर बाँध के ऊपर चढ़ते जल प्रवाह के समान दंतवक्र के ऊपर आक्रमण किये। दुरहंकारी दंतवक्र कहता है ।।5,6,7,8।।

हे कृष्ण ! आज तुम मेरे आँखों के सामने मिले तो, मुझे बहुत सन्तोष हुआ है। आज ही मैं द्वन्द्वयुद्ध करते हुये तुरन्त तुमको मार डालूँगा ।।9।।

शिशुपाल-दंतवक्र पूर्व जन्म में वैकुण्ठ के द्वार पालक थे। सनकादि मुनियों के शाप से भूमि में तीन बार जन्म लेकर श्री हरि का विरोध करते हुये श्री हरि के हाथ से मारे जाते हैं। इस प्रकार श्री हरि उनको वर दिये हैं। करूषाधिपति वृद्धशर्मा की रानी श्रुतदेवी वसुदेव की बहन है।

उसका पुत्र दंतवक्र श्री कृष्ण के हाथ से मरने के लिए ही सामने आया है। शिशुपाल इत्यादि लोग बाद में मरने वाले हैं। भागवत कालव्यत्यास से आगे की कथा को पीछे की बनाकर निरूपण करती है।

हे कृष्ण ! तुम हमारे मामा का पुत्र हो। किन्तु मित्र द्रोही, परस्त्री लंपट, विश्वासघातक, बन्धुनाशक और सदाकाल झगड़ा करने वाले हो ।।10।।

तुमने मेरे दूसरे मामा के पुत्र पौंड्रक को युद्ध में मारा है। हमारी छोटी माँ के पुत्र रूक्मि और शिशुपाल का वध किया है ।।11।।

इसके लिए हे मूर्ख, अज्ञ, तुमको मैं अपने वज्रायुध के समान इस गदा से मार डालूँगा। मैं मित्रों से ज्यादा प्यार करता हूँ। उनके ऋणों से मुझे जल्दी मुक्त होना है ।।12।।

हमारे शरीर से जन्म लिया है मानकर रोग को वैसे ही छोड़ नही सकते। तुम बन्धु रूपी शत्रु हो, तुमको मारने से मुझको पाप नही आयेगा ।।13।।

हाथी को जैसे अंकुश से मारते हैं, वैसे दंतवक्र श्री कृष्ण को अपने तीखी बातों से भेदते हुये हाथ की गदा से मारा और सिंह के समान गर्जना किया ।।14।।

युद्ध में दंतवक्र से मार खाने पर भी श्री कृष्ण थोड़ा सा भी विचलित नही हुये अपनी भारी कौमोद की गदा से उसके छाती के ऊपर मारे ।।15।।

उस भारी गदा की मार खाकर दंतवक्र मुँह से रक्त का वमन करते हुये हाथ पाँव पसार गिर कर मर गया ।।16।।

सारे लोगों के देखते-देखते उस युद्धक्षेत्र में शिशुपाल के समान दंतवक्र के शरीर से भी अद्भुत अतिसूक्ष्म चैतन्य युक्त प्रकाश श्री कृष्ण में विलीन हुआ ।।17।।

दंतवक्र के शरीर में हिरण्याक्ष नाम के दैत्य के साथ विजय नाम के वैकुण्ठ का द्वार पालक था। वह द्वारपालक श्री कृष्ण में प्रवेश किया। वह दैत्य नरक में गिर गया।

भाई दंतवक्र के मरण को देखकर विदूरथ दुःख से विमूढ़ हो गया। किन्तु एक क्षण में उठकर खड्ग और ढाल को लेकर खड़ा हो गया ।।18।।

अपने श्रेष्ठ खड्ग को हिलाते हुये विदूरथ रथ से कूदकर अपनी गति से पृथ्वी को हिलाते

हुये श्री कृष्ण के ऊपर आक्रमण किया ।।19।।

श्री कृष्ण अपने बाण से उसके खड्ग के टुकड़े कर दिये। तब विदूरथ अपने बड़े शक्याध को उठाया ।।20।।

युद्ध में शक्त्यायुध को लेकर श्री कृष्ण को मारने के उ‑श्य से अज्ञ विदूरथ धनुष से छुटे हुए बाण के समान आगे बढ़ा ।।21।।

विदूरथ के इस आक्रमण को देखकर श्री कृष्ण अपने तीक्ष्ण अरावाले चक्र से किरीट कुण्डल सहित उसके सिर को काट डाले ।।22।।

इस प्रकार युद्ध में श्री कृष्ण दंतवक्र और विदूरथ को मार कर उनके सैन्य को भगा दिये। उनके हाथी, घोड़े और रथों को अपने वश में लिये ।।23।।

बाद में श्री कृष्ण अपने दिव्य सुन्दर अलंकृत रथ में बैठकर यादव समूहों के साथ देव और मानवों से स्तुति पाते हुये द्वारका के ओर प्रयाण किये ।।24।।

वहाँ मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, नाग, अप्सरायें, पितृगण, यक्ष, किन्नर, चारण ये सारे श्री कृष्ण के विजय का संकीर्तन करते हुये उनके ऊपर पुष्प वृष्टि किए। यादवोत्तमों से मिलकर श्री कृष्ण श्रृंगारित द्वारकापुरी में प्रवेश किये ।।25,26।।

इस प्रकार योगेश्वर देवकी सुत भगवान श्री कृष्ण अज्ञ दृष्टि वाले लोगों से एक बार युद्ध में जीतते कभी एक बार हारते जैसे दिखते हैं। किन्तु सदा के लिए वे विजयी ही हैं ।।27।।

हे राजा परीक्षित ! पुण्य कीर्तिशाली श्री कृष्ण की सारी लीलाएँ उत्कृष्ट हैं, अद्भुत हैं। हजार वर्ष कहते रहे तो भी पूर्ण होने वाली नही हैं ।।28।।

हे राजा ! इस प्रकार राक्षसी पूतना के संहार से आरम्भ हुआ भू-भार हरण यज्ञ में सारे असुरों का संहार करते हुये मधु दैत्य को संहार करने वाले श्री कृष्ण सुशोभित रहे ।।29।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - एक सौ चार

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

द्वारका में श्री कृष्ण

श्री शुकदेव जी कहते हैं - लक्ष्मी रमण, यादवोत्तमों से सेवित सर्व सम्पत समृद्ध अपने द्वारकापुरी में भगवान श्री कृष्ण वास कर रहे हैं ।।1।।

उस द्वारका में स्त्रियाँ अपने यौवन और कांति से युक्त होकर उत्तम वेशभूषा में बिजली के समान चमकते हुये ऊँचे सौधों के ऊपर गेंद खेल रही हैं ।।2।।

द्वारका नगर के राजमार्ग सदाकाल मद जल को स्रवण करने वाले हाथियों से, अलंकृत पदातियों से, सुन्दर घोड़ों से और सोने से चमकने वाले रथों से भरे हुये थे ।।3।।

वह द्वारका नगरी उद्यान, पुष्पवाटिकाओं से शोभायमान थी। फूलों से भरे हुये वृक्ष में पक्षी कलकलरव करते थे, भृंग गूँजते थे ।।4।।

सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों के एक ही पति श्री कृष्ण अपने योग सामर्थ्य को दिखाते हुये सोलह हजार एक सौ आठ रूपों को धारण करते हुये उनके महासम्पद्भरित घरों में विहार करते थे ।।5।।

वहाँ खिले कुन्द मंदार, उत्पल, कल्हार, कुमुद, आम्भोज पुष्पों के धूलि से सुगंध भरित निर्मल जल में विहार करने वाले जल पक्षियों के ध्वनि से भरा हुआ नदियों में पूर्णानन्द श्री हरि अपनी पत्नियों से आलिंगित होकर उनके स्तन से लिप्त कुमकुम रंग से लेपित होकर जल विहार किये ।।6,7।।

श्री कृष्ण के जल विहार को आकाश मार्ग में देखते हुये गन्धर्व, सूत, मागध और बन्दियों ने

मृदंग, पणव, आनक और वीणा को बजाते हुये सन्तोष से गाते हुये नृत्य किये ।।8।।

पिचकारी से पानी फेंकने वाली पत्नियों को श्री कृष्ण उनसे ज्यादा पानी को हाथ से उनके ऊपर छिड़कते रहे ।।9।।

भीगा कपड़ा बदन को चिपक गया है। स्त्रियों के जघन, घन स्तनों को व्यक्त कर रहे हैं। उनके बनाया हुआ कुबर से छुटकर फूल पानी में गिर रहे हैं। पति के हाथ से पिचकारी को छीनने के उ-श्य से उनके ऊपर गिरे स्त्रियों ने कामोद्रेक से आलिंगन करते थे। उस समय उनके मुख शोभायमान थे ।।10।।

श्री कृष्ण की वनमाला स्त्रियों के स्तन के कुमकुम केसर से लाल बन गया। जलक्रीड़ा के संभ्रम में उनके घुँघराले बाल हिलने लगे। शरीर का कुन्द पुष्प सुगन्ध जल में मिल गया। भगवान स्त्रियों के ऊपर पानी फेंके वे सारे मिलकर भगवान के ऊपर पानी छिड़काये। हथिनियों के साथ घिरा हुआ गजराज के समान श्री कृष्ण जल में विहार किये ।।11।।

उन स्त्रियों के घर में अद्बितीय, अनिर्बन्ध क्रीड़ा वाले सर्वेश्वर श्री कृष्ण अपने स्वरूप सुख में मग्न होते हुये भी रमावेश युक्त उन स्त्रियों के साथ अन्य गृहस्थों के समान गृहस्थ कर्माचरण करते हुये लीला विनोद किये ।।12।।

ब्रह्मादि देवता भी न जान सकें ऐसे स्वरूप वाले रमारमण को पति रूप में पाये हुये उन स्त्रियों ने सन्तोष से सदा उभर कर आने वाले अनुराग से, हँसते हुये तिरछी नजर से देखते हुये चिर नूतन अंग-संग से लजाते हुये उनकी सेवा की ।।13।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में एक सौ चार अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - एक सौ पाँच

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - सज्जनों के आश्रयीभूत श्रीकृष्ण अपने राजघर में वेदोक्त धर्म का अनुष्ठान करते हुये धर्म, अर्थ, काम नाम के त्रिवर्ग को गृहस्थ का कैसे आश्रय देना चाहिये इसको लोगों को दिखाते हुये द्वारिका में वास किये।। 1 ।।

हे राजा! चक्रपाणि जनार्दन भूमण्डल का राज्य चलाये। बारह योजन विस्तार यादवों का वासस्थान द्वारिका मुनियों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, बन्दियों से भरकर सदा के लिये सुन्दर दिखता था। ।। 2-3 ।।

पिण्डा क्षेत्र कुरुक्षेत्र, शालिग्राम, पुष्कर, वाराणसी, प्रयाग, वेंकटाद्रि, श्रीशैल, गोकर्ण, मंगलाकर चन्द्रतीर्थ, भृगुक्षेत्र, सह्याद्रि, कुमाराद्रि, पुष्कर गोदावरी तट, नर्मदा तट, शूर्पारक, प्रभास, पुण्यकार बदरिकाश्रम, पावन नैमिषारण्य, दुर्गम ब्रह्मापर्वत इन सारे पुण्य क्षेत्रों से मुनिगण द्वारिका को आते थे। भगवान में निष्ठा रखते हुये नित्य व्रत परायण होते थे।। 4-5-6-7 ।।

उनमें से कई लोग केवल हवा और पानी खाकर जीवित रहते थे, अन्य कई लोग जल और आहार को त्याग दिए थे, सारे व्रतनिष्ठ थे। सारे वेदाध्ययन करते थे, सारे लोग स्तुति स्तोत्र जप करने में मग्न थे।। 8-9 ।।

कई लोगों का मन केवल ध्यान में आसक्त रहता था, कई लोग समाधि में ही रहते थे। उनके शरीर में केवल चर्म और अस्थि बचे थे। उनके शरीर के ऊपर नस और नाड़ी उभर कर आये थे।। 10 ।।

हे राजा परीक्षित शान्त मन के ऐसे मुनि लोग देश के नाना भाग से आकर द्वारिका में रहते हुये तत्व विचार करते हुये सदा के लिये श्रीकृष्ण की उपासना करते थे ।। 11 ।।

हे राजा ! महापराक्रमी राजाओं ने तपोधन ऋषि मुनियों ने, श्लोक-स्तुति परायण सूत मागधों ने द्वारका में श्रीकृष्ण की उपासना करते हुये पूर्ण मंगलमय ध्वनि प्रस्तुत करते थे। वेद घोष वाद्यघोष से द्वारका नित्य प्रतिध्वानित होती थी ।। 13 ।।

इस प्रकार देवाधिदेव श्रीकृष्ण अपने सन्निधान विशेष से द्वारका को सकल तीर्थों में अग्रगण्य

बनाये ।। 14 ।।

श्रेष्ठ धर्माचरण करने वाले श्रीकृष्ण गृहस्थाश्रमी थे। उनके सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियाँ थीं।। 15 ।।

हे राजा! उन स्त्रियों में रत्न के सामान रुक्मिणी इत्यादि आठ पत्नी और उनके पुत्रों के बारे में पहले ही हम बता चुके हैं।। 16 ।।

अमोघज्ञानी सर्वेश्वर श्रीकृष्ण अपनी सारी पत्नियों में एक एक में दस-दस पुत्रों को जन्म दिये।। 17 ।।

वे सारे पुत्र महापराक्रमी थे, उनमें अट्ठारह पुत्र महारथी थे, बहुत बड़े कीर्तिशाली थे। उनका नाम बताता हूँ।। 18 ।।

दस हजार धनुधारियों के साथ एक अकेले युद्ध करने वाले को महारथी बोलते हैं।

उनका नाम इस प्रकार है - प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, दीप्तिमंत, भानु, सांब, मित्र, बृहद्भानु, भानुविन्द, वृक, अरुण, पुष्कर, देवबाहू, चक्रदेव, सुनन्दन, चित्रभानु, वरूथ, कवि, न्यग्रोध ये अट्ठारह महारथी पुत्र थे ।। 19-20 ।।

त्रिवक्रा का पुत्र विशोक, श्रीकृष्ण के भक्त नारद जी का शिष्य बना। वे उसको पूर्ण ज्ञान दिये।। 21 ।।

नारद जी विशोक को पंचरात्र का उपदेश दिये। जो पंचरात्र को जानता है उसको मोक्ष मिलता है, स्वरूप शरीर व्यक्त होता है। उस शास्त्र में स्त्री, शूद, मछुवारा को भी वैष्णव संस्कार बताये गये हैं।। 22 ।।

हे राजा! श्रीकृष्ण के पुत्रों में रुक्मिणीसुत, प्रद्युम्न पहले हैं। वह ठीक श्रीकृष्ण के अनुरुप था ।। 23 ।।

प्रद्युम्न महारथी, रुक्मी की पुत्री रुक्मवती से विवाह किया। उसके गर्भ से दस हजार हाथी के बल वाला अनिरुद्ध जन्म लिया।। 24 ।।

रुक्मि के पुत्री के पुत्र अनिरुद्ध रुक्मि के पुत्र के पुत्री रोचना से विवाह किया। उनका पुत्र वज्र था। आगे यादवी कलह में सारे यादव के मरने के बाद श्रीकृष्ण की इच्छानुसार केवल वज्र मात्र बचा। अर्जुन उसको उग्रसेन के सिहांसन पर अभिषेक किए।। 25 ।।

वज्र से प्रतिबाहु जन्म लिया, उनका पुत्र सुबाहु के पुत्र उग्रसेन उसका पुत्र शतसेन।। 26 ।।

इस यादव कुल में दरिद्र, सन्ततिविहीन, अल्पयुषि, अल्पशक्ति वाले ब्राह्मणों में भक्ति न करने वाले कोई जन्म नही लिये।। 27 ।।

हे राजा! यदुकुल में जन्म लिये हुये, लोगों की संख्या दस हजार वर्ष गणना किये तो भी

पूर्ण नही हो सकती।। 28 ।।

यदुकुल में तैंतीस करोड देवताएँ जन्म लिये। किन्तु प्रति देवता अपने अनेक अंशों से जन्म लेने के कारण द्वारका में उनकी गणना असाध्य थी। यह श्रीकृष्ण की अचिन्त्य अद्भुत शक्ति है।

इन यादवों के बच्चों को सिखाने के लिये तीन करोड़ छियासी हजार तीन सौ शिक्षक थे ऐसे हमने सुना है।। 29 ।।

ऐसे महात्मा यादवों की संख्या कौन कर सकता है। क्योंकि उग्रसेन का पिता अहूक दस दस हजार यादवों के ऊपर राज्य करता था।। 30 ।।

पीछे काल में देवासुर संग्राम में मरण पाये अत्यन्त क्रूर दानव लोग मनुष्य होकर जन्म लेकर गर्विष्ठ होकर सज्जनों को दुःख देने लगे।। 31 ।।

उन दानवों का निग्रह करने के लिये श्रीहरि की आज्ञा से सारे देवतागण यादव कुल में अवतार लिये। यादव कुल एक सौ एक थे।। 32 ।।

यादवों में अवतार लिये हुये देवताओं को भगवान श्रीकृष्ण सामर्थ्य दिये थे। वे सारे श्रीकृष्ण के परिवार के बनकर सारे प्रवर्धमान बने।। 33 ।।

सोना, बैठना, चलना, बोलना, खेलना, नहाना, भोजन करना इन समस्त कालों में यादवों के साथ में सदाकाल श्रीकृष्ण रहते थे। इसके लिये उनके मन में श्रीकृष्ण सदाकाल रहने के कारण वे अपने को भी भूलते थे।। 34 ।।

श्री कृष्ण सारे वेदोर्थों के विधि निषेधों को अपने के लिये बना दिये। इतना होते हुये भी कुरुक्षेत्र में बारह वर्ष काल अपने सामर्थ्य से यज्ञ करते हुये अपनी पूजा स्वयं किये।। 35 ।।

वेद में आने वाले विधि निषेध सारे हरि के बारे में अर्थ देते हैं। विहित कर्म करना मुख्य रूप से हरि स्मरण पाने के लिये है। निषिद्ध कर्म का त्याग हरि विस्मरण न होने के लिये। इतना होते हुये भी श्रीहरि स्वयं विहित कर्माचरण करते हैं। अपने को अपने कर्मों से आराधना करते हैं। स्वरमण होने के कारण और जन को कर्माचरण के बारे में सिखाने के लिये श्रीहरि यह कर्म करते हैं।

श्री वेदव्यास जी, विश्वामित्र, असितमुनि, सान्दिपनी और परशुराम ये सारे श्रीकृष्ण के पुरोहित थे। उद्धव मंत्री था। पुण्यकीर्ति शाली श्रीकृष्ण इनकी सहायता से मुख्य महिषियों के साथ यज्ञ दीक्षित होते थे।। 36 ।।

श्रीकृष्ण मानवों के बीच में अवतार लेकर यज्ञ के अनुष्ठान किये। उनके पाँव को धोया हुआ पानी गंगा बनकर बहने लगी। उनके स्वरूप में समग्र ऐश्वर्य और षड्गुण रहते हैं। छाती में लक्ष्मी

सदाकाल विराजमान हैं। उनका प्रतिपादन करने वाले शास्त्र प्रमाण बनते हैं। वे ही सारे कार्य कारण वस्तुओं के उत्पादक हैं। ऐसे श्रीकृष्ण भूभार हरण के लिये कार्य किये। इसमें आश्चर्य क्या है। लयकारक उनके चक्र श्रीकृष्ण के आयुध बना इसमें आश्चर्य क्या है।। 37 ।।

जगन्निवास देवकी पुत्र कीर्तिशाली श्रीकृष्ण सर्वोत्तम हैं। वे भूमि के ऊपर अपने पाँव रखते हुये भूमि का भार हरण किये। अपने हाथों से दानवों को उत्पीडन किये। अन्दर बाहर उनके देखने वाले मुनियों को आनन्द दिये। लक्ष्मी के आवास बने अपने घर से अपने तिरछी नजरों से अबलाओं की काममूर्ति बन गये।। 38 ।।

श्रीकृष्ण भगवान इस जगत के सृष्टि स्थिति और लय के लिये कारण हैं। प्रकृति पुरुषों के नियामक हैं। इस जग को सृष्ट करते हुये उसमें प्रवेश किये हैं। व्यास मुनि के रुप से भागवत पुराण की रचना की है। उनके अपरोक्ष ज्ञान को पाये हुये जीव संसार नाम के घोसला में सोकर सुबह होते ही जैसे पक्षी घोसला को छोड़ देता है वैसे ही बन्धक बनाया हुये इस प्रकृति को छोड़ देता है। ऐसे भगवान किसी से जन्म लेने वाले नही हैं। भयरहित हैं, और भय निवारक हैं। ऐसे श्रीकृष्ण का निरन्तर ध्यान करना चाहिये।। 39 ।।

भक्तों की धर्मरक्षा के लिये श्रीहरि अपनी लीला से अवतार लेकर अपने अवतार के अनुगुण लोक विडम्बना करते हुये भक्तों के दुष्कर्म को नाश करने का कर्म करते हैं। ज्ञानानन्द स्वरुप वाले उनके दो पादों के सेवा करने से मुक्ति में भी ज्ञानानन्द स्वरुप होकर रहने के लिये इच्छा करने वाले भक्त को श्रीकृष्ण के उन कर्मों का संकीर्तन करना चाहिये।। 40 ।।

मानव निरन्तर बढ़ने वाली हरि भक्ति से मंगलकर श्रीहरि का कथन, श्रवण, ध्यान करे तो बस है। अत्यन्त कठिन तप से भी बड़े तप से, उसको पाने की इच्छा से राजाधिराज लोग अपने राज्य को छोड़कर जंगल में जाते थे। ऐसे तपों से मिलने वाले दुष्कर विष्णु लोक को भगवान अत्यन्त सुलभ रुप से देते हैं।। 41 ।।

सूत पुराणिक कहते हैं - व्यास पुत्र शुकमुनि जो उपदेश दिये हैं ऐसे अमृतस्वरुप कीर्तिशाली श्रीकृष्ण का यह कथामृत इस जगत के पाप को ठीक तरह से धो देता है। यह भक्तों के कान का आभूषण है। इसको सुनने वाला, कहने वाला, भगवान में मन रखते हुये क्षेम धाम कहने वाला उनके वैकुण्ठ लोक को पाता है।। 42 ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

।। यहाँ दशमस्कन्ध समाप्त होता है ।।

।। श्री कृष्णार्पणमस्तु ।।

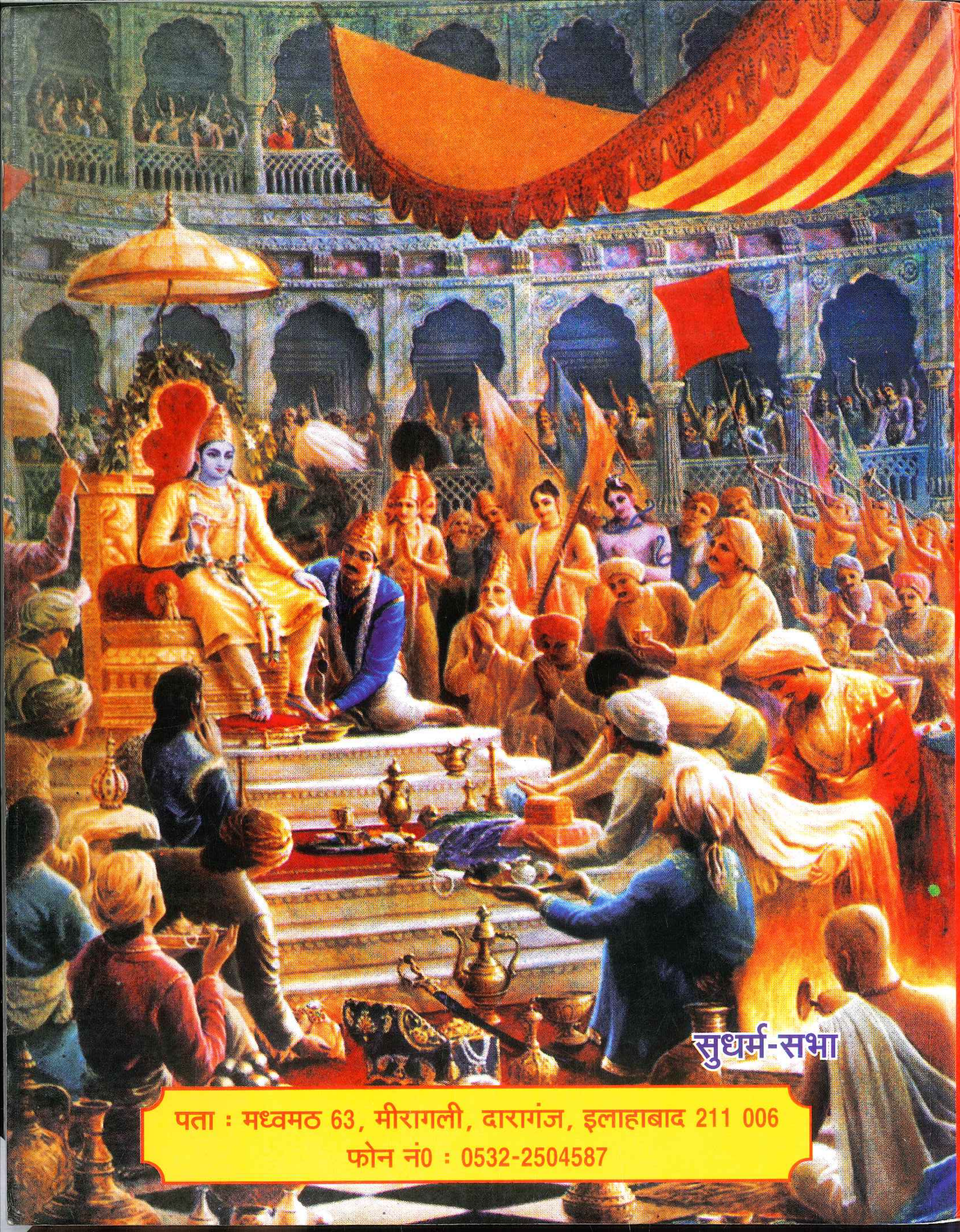

पता : मध्वमठ 63, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद 211 006
फोन नं0 : 0532-2504587

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

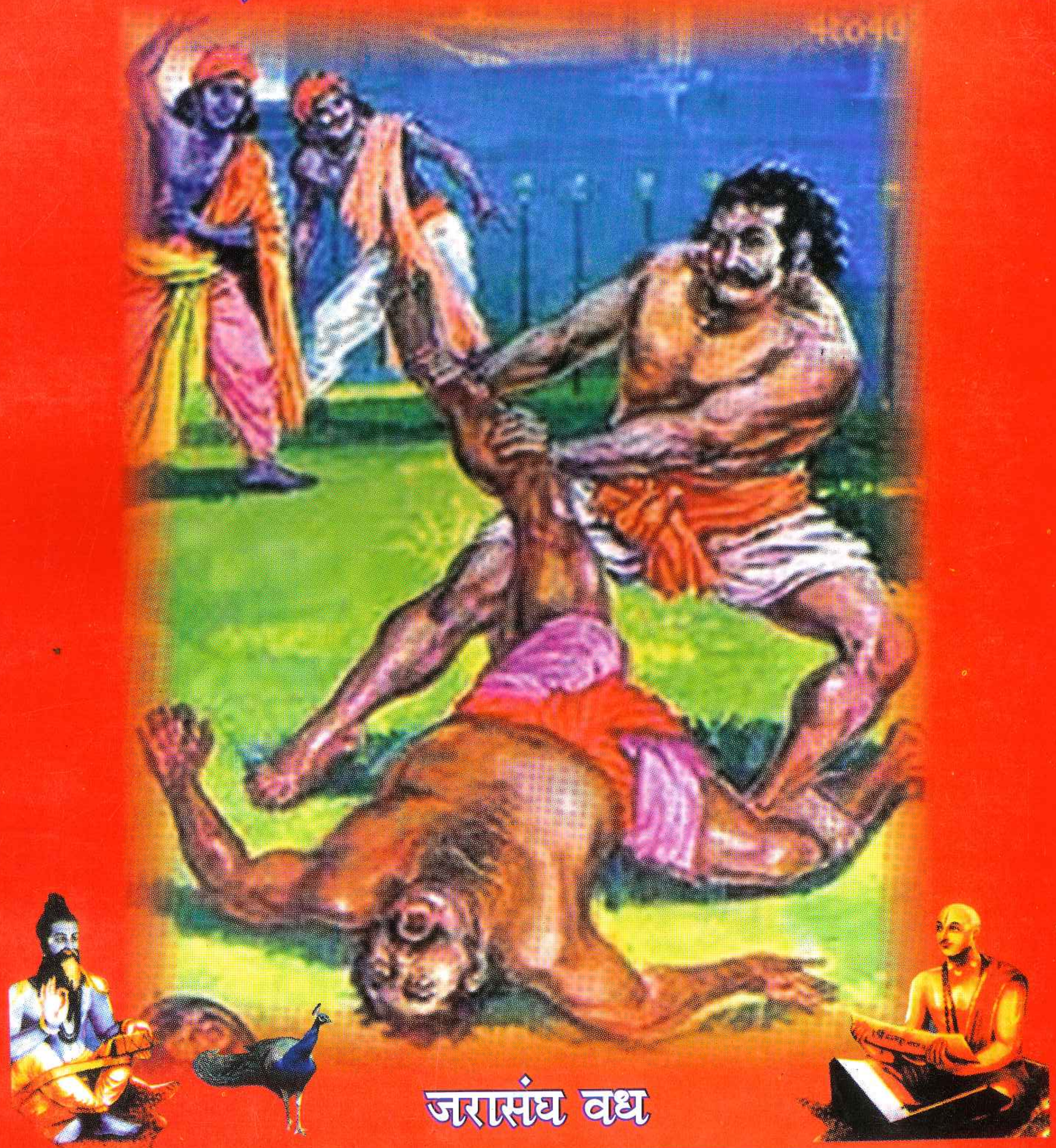

जरासंघ वध

दशम स्कन्धः भाषानुवादः

भाग- ३ उत्तरार्द्ध अध्याय ६० से ८२ तक

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण
वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री विजयध्वज टीकानुसारी

श्रीमद्भागवत महापुराणम्

दशम स्कन्धः
(भाषानुवादः)

(उत्तरार्द्ध अध्याय ६० से ८२ तक)

अनुवादक
श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

प्रकाशक

तत्व संशोधन संसत्
जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

श्रीमद्भागवत महापुराणम् दशम् स्कन्धः

लेखक-
श्री १००८ श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी

प्रकाशक
तत्व संशोधन संसत्
जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण १००० प्रतियाँ
सहयोग राशि
पुस्तकालय संस्करण १५० रुपये
सामान्य संस्करण १०० रुपये
१६-०२-२०१३

अक्षर विन्यास
श्री सुनील कुमार (राजा)
श्री प्रद्युम्न नागपुर

मुद्रक -
श्री वैष्णव प्रेस
मोरी, दारागंज, इलाहाबाद
फोन नं०- ०५३२-२५०१४६३ मो०- ०९४१५२३५६३७

श्री राम श्री

अनुग्रह संदेश

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधिपति

श्री १००८ श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी उडुपि

हमारे विशेष **अभिमान पात्र श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी** द्वारा किए हुए शास्त्र ग्रंथों का हिन्दी भाषानुवाद को देखकर हमें सन्तोष हुआ है। श्री स्वामी जी अपने पूर्वाश्रम में अनेक वर्षों से सामाजिक सेवा में रचनात्मक कार्यों को किये हैं। हमारे साथ अकाल, भूकम्प, बाढ़ इत्यादि कार्यों में सम्पूर्ण समर्पण भाव से काम किए हैं। अब अपने अस्सी वर्ष के समय में आठ शास्त्र ग्रन्थों का अनुवाद और प्रकाशन का स्तुत्य काम अपने हाथ में लिए हैं। मध्व तत्वज्ञान को अभ्यास करने के जिज्ञासुओं को अनुकूल होने वाली यह एक विशिष्ट सेवा किए हैं।

वे अपने सत्तर वर्ष की आयु में कन्नड़ भाषियों के अनुग्रह रूप में अनेक शास्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किए थे। अब प्रयाग में रहकर मध्व सिद्धान्त का प्रसार कार्य करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा मध्व तत्वज्ञान को हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचार करने का महान कार्य कर रहे हैं।

श्री कृष्ण, श्री वेद व्यास जी, अस्मदुपास्य श्री रामविट्ठल जी इनको विशेष अनुग्रह करते हुए इनकी सेवा विस्तार रूप से सारी जनता को मिले यही हमारा आशीर्वाद है।

इति नारायण स्मरण

श्री श्री १००८ श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी महाराज
पेजावर मठ, उडुपि

अनुग्रह संदेश

श्री राम श्री

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महा संस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति

श्री १००८ श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी, उडुपी

आठ सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरु मध्वाचार्य जी ने मध्व सिद्धान्त का प्रचार प्रसार बहुत बड़े पैमाने से आरम्भ किया। इस प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए उडुपी में आठ पीठ और उत्तर कर्नाटक में एक पीठ की स्थापना किए। श्री जयतीर्थ मुनि, श्री श्रीपाद राज स्वामी, श्री व्यासराजमहामुनि, श्री वादिराजयोगी, श्री रघूत्तम स्वामी जी, श्री राघवेन्द्र तीर्थ जी इत्यादि महामहिमों ने उस सिद्धान्त को और विकसित किया।

हमारे दीक्षा शिक्षा गुरु युगपुरुष श्री श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी उत्तर भारत में श्री मध्व तत्वज्ञान को प्रसार करने हेतु **बीस वर्ष** पहले श्री प्रयाग क्षेत्र में श्री मध्व पीठ की स्थापना की है। उन दिनों से प्रयाग का हमारा मठ मध्वसिद्धान्त का प्रसार करता आ रहा है।

श्री वेदव्यास जी की इस सुसंस्कृत भागवत को हमारे शिष्य श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी ने समर्थ सुन्दर और सबके मन को मिले ऐसी सुन्दर हिन्दी में अनुवाद कर साधक सज्जनों का परमोपकार किये हैं। कन्नड़, संस्कृत न समझने वाले हिन्दी भाषी साधकों को जगद्गुरु मध्वाचार्य जी के शास्त्र का परिचय कराने वाले इस कार्य को हम अपने हृदय भरकर अभिनन्दन करते हैं। अन्य सारे कार्यों को बगल में रखते हुए **तद्धितप - तद्धितप** के जैसे दिन-रात किया हुआ यह शास्त्र सेवा अनुपम है। हमारे गुरु श्री श्री १००८ विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी से स्थापित तत्व संशोधन संसत से मुद्रण किया गया है। यह हरि गुरु का अनुग्रह प्राप्त कराने वाला है। उत्तर भारत के हिन्दी भाषी लोग इस ग्रन्थ को पढ़ें और अपने बन्धु बान्धवों से पढ़ाएँ तो यह प्रयत्न सार्थक हो जाता है। इनसे भागवत के अन्य भाग भी जल्दी से जल्दी अनुवादित होकर साधकों के हाथ में विराजमान हो, यही हमारी अपेक्षा है। श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य जी से प्रतिष्ठापित श्री कृष्ण, श्री राम जी के अनुग्रह से हम अपने शिष्य को शुभ कामना देते हैं।

श्री श्री १००८ श्री विद्याधीशतीर्थ
स्वामी जी महाराज

अनुग्रह संदेश

श्री दिग्विजय रामो विजयते

श्री मद्जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

उत्तरादि मठ

भगवान के गुणों का चिन्तन करना प्रत्येक आदमी का मुख्य कर्तव्य है। अनन्त गुणपरिपूर्ण भगवान की महिमा को जानने के लिए सबको भागवत के प्रकाश की आवश्यकता है। भागवत के पाठ प्रवचन श्रवण सारे बहुत पुण्य देने वाले हैं। ऐसे श्रेष्ठ महाभागवत पुराण को वैष्णव सिद्धान्त के अनुसार श्री श्री विद्यात्मतीर्थ जी ने हिन्दी में सब के मन मोहित करने वाले उत्कृष्ट व्याख्यान किए हैं। प्रयाग के त्रिवेणी तट पर रहते हुए अपनी स्वयं साधना करते हुए उत्तर भारत में वैष्णव सिद्धान्त का प्रचार प्रसार कार्य करते हुए अपने को समर्पित किए हैं। वे जो इस प्रयास में रत हैं उसको सहकार देते हुए श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी उन्हें बल दे रहे हैं यह संतोष का विषय है।

मध्व मत का प्रसार समग्र भारत में उज्वल रीति से होना चाहिए। उत्तर भारत के परिसर में यह प्रसार कार्य करने वाले श्री श्री विद्याधीश तीर्थ और श्री श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी का हम अभिनन्दन करते हैं।

इसी प्रकार श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी और अनेक कृति और व्याख्यान करते हुए तत्वप्रचार कार्य को इससे भी अधिक रूप से करें इस प्रकार हम अपने उपास्य मूर्ति श्री दिग्विजय राम और वेदव्यास जी से प्रार्थना करते हैं।

बैगलूरु

श्री सत्यात्म तीर्थ स्वामिनः
उत्तरादि मठ

श्रीमद् अच्युत प्रेक्षाचार्य संस्थानम्
भीम सेतु मुनिवरेन्द्रमठ भीमनकट्टे
अनुग्रह संदेश

[illegible]

SRIMAD ACHUYTA PREKSHACHARYA SAMSTHANAM

BHIMASETHU MUNIVRUNDA MUTT, BHIMANAKATTE.

SRI 1008 SRI SRI. RAGHUMANYATHIRTHA SWAMIJI
PEETHADHIPATHI

[illegible] Post, Taluk: Teerthahalli, District: Shimoga. Pincode: 577432
Phone: [illegible], Mobile: [illegible] Email: [illegible]

Branch: BHIMANAKATTE SRI RAGHAVENDRA SWAMY MUTT
No.19, 5th Block, Doddabommasandra, Vidyaranyapura Main Road, Bangalore : 560097. Phone: 080-23463471.

[illegible]

शुभ कामना

॥ श्री निम्बार्को जयति ॥

॥ श्रीमद् गोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अनन्त श्री जगद्गुरु निम्बार्काचार्य

गोस्वामी श्री विष्णुकान्त जी महाराज, पीठाधिपति

श्री निम्बार्काचार्य पीठ, १८/१२, महाजनी टोला प्रयाग - २११ ००३ फोन : २४०४२९८

श्री निम्बार्क प्रभास्थली व्यास गद्दी नैमिषारण्य (उ० प्र०)

कर्नाटक के अन्तर्गत उडुपी माध्व पीठ प्रयाग के अधिपति श्री १००८ श्री स्वामी विद्यात्म तीर्थ जी महराज के लोक भाषा में अनुवादित भागवत के ग्रन्थ और अन्य भगवद्गीतादि ग्रन्थ देखने को मिले। तिरासी वर्ष की अवस्था में अदम्य स्फूर्ति, वैदुष्य एवं सार्थक जीवन के धनी महा पुरुष अभिनन्दनीय हैं। कई अवसर में हम लोग एक रहे हैं।

इस अवस्था में भी कई ग्रन्थों के लेखन, सामाजिक एवं पारमार्थिक कार्यों को एक युवक की भाँति करते हुए संलग्न हैं।

आपका जीवन अमृततत्व की ओर अग्रसित है आप सकल कुशल पात्र हैं।

आचार्य विष्णु कान्त गोस्वामी
इलाहाबाद

प्रस्तावना

हमारे गुरु जी पूर्व प्रयाग पीठाधिपति श्री १००८ श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी ने लगभग दस वर्ष पूर्व भागवत के पहले तीन स्कन्धों का अनुवाद कर प्रकाशित किए थे। उनका महानिर्वाण आकस्मिक रीति से होने के कारण वह कार्य वहीं अवरुद्ध हो गया था।

हमारे दीक्षा गुरु उडुपि श्री पलिमारु मठ के पीठाधिपति जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य श्री १००८ श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी महाराज ने उस अवरुद्ध कार्य का पुनरारम्भ करने का आदेश दिया। मैं अल्प शक्ति और अल्प ज्ञान वाला हूँ। किन्तु अपने गुरुवर्य की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मैं यह कार्य कर रहा हूँ।

विद्यावतां भागवते परीक्षा यह पूर्णत: सत्य है। श्री गुरु जी का अनुग्रह ही मुझसे यह कार्य करवा रहा है। दक्षिण भारत में जन्म लेने के कारण मुझे अच्छी हिन्दी नही आती। पण्डित न होने के कारण शास्त्र का गहन और विस्तृत ज्ञान प्राप्त नही है। केवल गुरु का अनुग्रह ही मुझे प्रेरणा दे रहा है। पाठकों द्वारा निर्दिष्ट त्रुटियों को अगले अंक में सुधारने का प्रयास करेंगे।

दशम् स्कन्ध भागवत का किरीट प्राय है। वेद व्यास जी इसको भक्ति रस से पूर्ण रूप से भिगो दिए हैं। कई कथाकार इसको ऊपर ऊपर से पढ़ते हुए अपना गलत अर्थ प्रसार किए हैं। इस स्कन्ध में भक्ति को छोड़ कर काम इत्यादि अन्य भावों का विचार करना गलत है। मूल भागवत में दशम स्कन्ध में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध इस प्रकार दो भाग कर चुके हैं। दोनों भाग सौ - सौ अध्यायों से भर कर फल पुष्प से भरा हुआ वृक्ष के समान अपने बोझ से बहुत झुके हैं। पाठक की सुविधा के लिए हम पूर्वार्द्ध में भी और भाग करना चाहते हैं। उसमें से प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है। इसका विस्तार अध्याय एक से अध्याय छब्बीस तक सीमित है। अब हम पूर्वार्द्ध में आगे का भाग अध्याय सत्ताईस से अध्याय उनसठ तक (पूर्वार्द्ध का अन्त तक) अब प्रकाशित कर रहे हैं।

विस्तृत रूप से जानकारी देने के उद्देश्य से हमने क्रम में भी थोड़ा सा बदलाव किया है। पहले के समान श्लोकार्थ मोटा अक्षरों में दिया गया है, अर्थ थोड़ा सा छोटे अक्षरों में दिया गया है। इस भाग में विशेषार्थ के लिए और थोड़ा अवकाश किया है। प्रत्येक श्लोक का नही तो जहाँ आवश्यक है वहाँ विशेषार्थ, उससे भी छोटे अक्षरों में देने का प्रयास किया है। आशा है कि यह पाठकों को सुविधाजनक होगा।

इस तृतीय भाग की कथा मे पौण्ड्रक वासुदेव का वध, जरासन्ध वध की कथायें आती हैं। पौण्ड्रक वासुदेव और शृगाल वासुदेव, वसुदेव की अन्य पत्नियो से जन्म लिए पुत्र हैं, और वासुदेव श्री कृष्ण के सौतेले भाई लगते हैं। कई लोगों के मन में यह संशय आता है कि वे कितने ही दुष्ट क्यों न हों, अपने सौतेले भाईयों को मारना उचित नहीं है ऐसा मानते हैं यह विचार ठीक नही है। भगवान को कोई अपना और पराया नही होता। भगवान स्वयं अपने मुह से कहे हैं 'समोऽहं सर्वभूतेषु ने में द्वेष्योस्तिनप्रिय:'। यहाँ पौण्ड्रक वासुदेव तथा शृगाल वासुदेव, वसुदेव के पुत्र होते हुए भी दुष्ट थे, धर्म-विरुद्ध कार्य करते थे, स्वयं को भगवान मानते थे। इसके लिए वह कृत्रिम दो हाथ बनाकर, उसमें शंख चक्र धारण करते थे। श्री कृष्ण के अवतार का मुख्य उद्देश्य धर्म की रक्षा करना तथा अधर्म का नाश करना तथा सज्जनों की रक्षा करना एवं दुष्टों का नाश करना है। भगवान इसको केवल अपने मुह से न कहते हुये, स्वयं आचार करते हुए, अन्यों को दिखाते हैं।

महाप्रस्थान की पूर्व सन्ध्या में प्रभास क्षेत्र में एक वृक्ष के नीचे भगवान लेटे हैं, उद्धव दौडकर वहाँ आते हैं, और निवेदन करते हैं- भगवान आप यहाँ निश्चिंत होकर सोये हैं, वहाँ गोमती समुद्र संगम तट पर आपके पुत्र-पौत्र आदि आपस में लड़ रहे हैं, मारते हैं, मरते हैं। आप कृपया थोड़ा उस स्थान तक चलें, केवल आपके दर्शन मात्र से वहाँ युद्ध समाप्त हो जाएगा, सारे यादव बच जायेंगे। तब श्री हरि हँसकर कहते हैं, उद्धव मेरे लिए कोई न अपना है और न पराया, मैं किसी से द्वेष नही करता, प्यार भी नही करता, मै केवल भक्तों के वश में रहता हूँ। भक्त मेरे प्रिय हैं।

भगवान श्री कृष्ण, अपने भाई होते हुये भी, शृगाल वासुदेव और पौण्ड्रक वासुदेव को उनके दुष्ट होने के कारण ही उन्हें मारते हैं, परन्तु श्री कृष्ण ने उनके राज्य को नही अपनाया, उनके पुत्रों को सिंहासन पर बैठाया। भगवान ने अधर्म का नाश कर पुन: धर्म की स्थापना किया।

दूसरी कथा जरासन्ध के वध की है। यहाँ भगवान ब्राह्मण वेष धारण करते हुए भीमार्जुन को साथ लेकर, जरासन्ध से युद्ध की भिक्षा माँगते हैं। जरासंध से खुला युद्ध वे कर सकते थे, बहुत बार जरासंध उनके साथ युद्ध किया है, ऐसा होते हुये भी ब्राह्मण वेष में जाकर वंचना करने की क्या जरूरत थी, यह अनेक लोगों का प्रश्न है। यहाँ वंचना करने की बात है ही नहीं। जरासंध के सहयोगी मित्र राजा बहुत थे, उनके साथ युद्ध करने लगे तो वर्षों तक युद्ध करना पड़ता। शत्रु ज्यादा बलशाली रहे तो अनेक रीतियों से उसको बाँधना, वंचित करना, प्रलोभित करना इत्यादि युद्ध तंत्र में आते हैं। यहाँ स्वयं भगवान युद्ध प्रारम्भ करने के पहले तीनो का परिचय देते हुये युद्ध का आह्वान देते हैं। वीर क्षत्रिय होने के नाते जरासंध मल्ल युद्ध को स्वीकार करने के बाद भी वंचना करते हुए गदा-युद्ध से युद्ध प्रारम्भ करता है। साथ में दोनों तरफ के सैन्य यादव ही हैं। उनको कारण बिना व्यर्थ में मरना पड़ता है। इसके लिये श्री कृष्ण मल्ल युद्ध का सुझाव रखते हैं।

तीन सौ साठ वर्ष के पहले मंत्रालय के श्री राघवेन्द्र स्वामी जी ने अनेक शास्त्र ग्रथों की रचना की वे थोड़े श्लोकों में दशम स्कन्ध की श्री कृष्ण की कथा को बता दिए हैं। रोज इन श्लोकों के पाठ करने से नित्य दशम स्कन्ध पाठ का पुण्य मिलता है। हम इन श्लोकों को अर्थ के साथ यहाँ दिए हैं।

बड़े लोगों का कहना है कि नित्य पाठ करते समय नाम, रूप, गुण इन तीनों की आवश्यकता है। हमारे पाठकों को यह तीनों लाभ प्राप्त हो इस दृष्टि से इन श्लोकों के पाठ करते समय भगवान के **नाम** फोटो में भगवान के **रूप,** श्लोक में और चित्र की सहायता से कथा को याद करते हुए भगवान का **गुण** इन तीनों का चिन्तन एक साथ मिले। ग्रन्थ के प्रारम्भ में फोटो को अर्थ सहित दिया है। आशा रखते हैं कि पाठकगण नित्य पाठ करके भगवान का प्रीति पात्र बने।

हमारे परम गुरु श्री विद्यामान्य जी से संस्थापित और हमारे गुरु जी श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महाराज से पोषित श्री तत्व संशोधन संसत् ने इस ग्रन्थ प्रकाशन की जिम्मेदारी ले लिए हैं। तत्व संशोधन संसत् दक्षिण भारत में एक प्रसिद्ध संशोधन और प्रकाशन की बड़ी संस्था है। बहुत श्रेष्ठ विद्वान और पंडित संशोधकों के ग्रन्थ यहाँ से प्रकाशित हुए हैं। मेरे जैसे अल्प बुद्धि वाले की इस छोटी सी कृति को वे प्रकाशित कर रहे हैं, यह मेरा बड़ा भाग्य है। इसके लिए मैं अपने श्री गुरु जी को शत शत नमन करता हूँ।

करीब आठ सौ वर्ष पहले अष्टोत्कृष्ट पलिमारु मठ के मूल महापुरुष श्री श्री हृषीकेशतीर्थ स्वामी जी जो जगद्गुरु मध्वाचार्य के साक्षात् शिष्यों में से हैं, वे उस समय में लगा हुआ महाकुम्भ में लगे ठीक इसी दिन त्रिवेणी के परम पावन संगम में समाहित हुए थे। ऐसे परम पवित्र दिन में उन्ही के वंश में आने वाले उनके उत्तराधिकारी हमारे दीक्षा-शिक्षा और स्वरूपोद्धारक गुरु श्री श्री १००८ श्री विद्याधीशतीर्थ स्वामी जी प्रतिष्ठित प्रशासन पण्डाल में तिरुपति बाला जी श्री श्री निवास कल्याणोत्सव के समय में तिरुपति से आये हुए हजारों सद्भक्तों के सामने लोकार्पण कर रहे हैं इससे बढ़कर और भाग्य कौन सा हो सकता है ?

इस ग्रन्थ के लिए आवश्यक फोटो के लिए हमे बहुत प्रयास करना पड़ा। वैसे तो श्री कृष्ण के लाखों फोटों प्राप्त हैं, तो भी कथा में आए हुए सन्दर्भ को संगति देने वाला फोटो मिलने में कष्ट हुआ। इस समय हमें आवश्यक फोटो देकर श्री रामचन्द्र सिंह सहायता किए हैं। हम यहाँ उनकी प्रशंसा करते हैं।

इस ग्रन्थ के अक्षर विन्यास किए हुए श्री सुनील कुमार जी (राजा) और प्रद्युम्न जी अक्षर संशोधन किए हुए श्री गिरधारी लाल मिश्र और मुद्रण किए श्री वैष्णव प्रेस के श्री पुरुषोत्तम लाल जी और सारे कर्मचारियों के सहयोग का स्मरण हम करते हैं। सुधी सद्भक्त इस ग्रन्थ का सदुपयोग करें यही आकांक्षा है।

तीर्थराज प्रयाग

इति शम्

०६-०२-२०१३

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज

दसवाँ स्कन्ध की विषय सूची

क्र० संख्या	विषय	विषय	पृष्ठ
१.	अध्याय ६०	सत्राजित स्यमन्तक मणि को पाता है। कृष्ण जामवन्त युद्ध, जाम्बवती, सत्यभामा से विवाह	१-५
२.	अध्याय ६१	लाक्षागृह में पाण्डव दह जाने के वृतान्त की प्राप्ति। श्री कृष्ण हस्तिनापुर जाते हैं, सतधन्वा से सत्राजित का वध, अक्रूर के पास मणि को दिखाकर श्री कृष्ण मणि को अक्रूर को वापस देते हैं।	६-११
३.	अध्याय ६२	इन्द्रप्रस्थ में श्री कृष्ण कई दिन वास करते हैं। वहाँ कालिन्दी के साथ विवाह। मित्रविन्दा, नीला के साथ विवाह।	१२-१८
४.	अध्याय ६३	नरकासुर के बारे में इन्द्र कहते हैं। श्री कृष्ण का प्राग् ज्योतिषपुर जाकर नरकासुर के साथ युद्ध।	१९-२३
५.	अध्याय ६४	कृष्ण नरकासुर युद्ध, नरकासुर वध, भगदत्त-राज्याभिषेक।	२४-२७
६.	अध्याय ६५	कृष्ण स्वर्ग भ्रमण। अदिति को कुण्डल अर्पण। सत्यभामा पारिजात वृक्ष को चाहती है। वृक्ष के कारण देवताओं के साथ युद्ध।	२८-३१
७.	अध्याय ६६	दिक्पालकों के साथ युद्ध। पराजित दिक पालकों का पलायन।	३२-३५
८.	अध्याय ६७	युद्ध के लिए इन्द्र का आगमन। मार खाने के बाद, इन्द्र को ज्ञानोदय। भगवान से क्षमा प्रार्थना।	३६-४०
९.	अध्याय ६८	शंकर-पूजन से कृष्ण को पुत्र लाभ। सूतिका गृह से शम्बर द्वारा शिशु का अपहरण। शम्बर, शिशु प्रद्युम्न को समुद्र में फेंकता है। मत्स्य के पेट से प्राप्त शिशु का मायावती द्वारा पालन। कृष्ण, शम्बर को मारकर प्रद्युम्न के साथ द्वारका आते हैं।	४१-४५
१०.	अध्याय ६९	पौण्ड्रक, द्वारका को घेर लेता है। कृष्ण उसका वध करते हैं। कृष्ण चक्र से वाराणसी दहन।	४६-५१
११.	अध्याय ७०	सूर्य ग्रहण पर सभी का कुरुक्षेत्र गमन। कृष्ण गोपिका समागम।	५२-५६
१२.	अध्याय ७१	कृष्ण-युधिष्ठिर कुशल प्रश्न। द्रौपदी-अष्टमहिषी संवाद।	५७-६१
१३.	अध्याय ७२	वेदव्यास जी का आगमन। श्री कृष्ण से सत्कार। वसुदेव से कर्म-निर्हरण का प्रश्न।	६२-६७
१४.	अध्याय ७३	वसुदेव कृत उत्तम कल्प-यज्ञ। नन्द वसुदेव संवाद। सभी का द्वारिका गमन।	६८-७१
१५.	अध्याय ७४	वसुदेव श्री कृष्ण की स्तुति करते हैं। मृत बच्चों को दिखाने के लिए देवकी श्री कृष्ण से बोलती हैं। श्री कृष्ण बली से उन बच्चों को लाकर माँ को दिखाते हैं।	७२-७७
१६.	अध्याय ७५	रुक्मिणी के साथ श्री कृष्ण का प्रेम कलह। रुक्मिणी का श्री कृष्ण को उत्तर।	७८-८८
१७.	अध्याय ७६	श्री कृष्ण को प्रति पत्नी में दस-दस पुत्रों की प्राप्ति। अनिरुद्ध- रोचना का विवाह। द्यूत में बलराम द्वारा रुक्म का वध।	८९-९३
१८.	अध्याय ७७	ऊषा-परिणय। उषा-अनिरुद्ध को देखकर बाण द्वारा अनिरुद्ध का बन्धन।	९४-९८
१९.	अध्याय ७८	श्री कृष्ण शोणितपुर आते हैं। श्री कृष्ण और शिव का युद्ध। शिव का हारकर वापस जाना। श्री हरि बाणासुर के चार हाथ छोड़कर बाकी सारे हाथों को काट डालते हैं। अनिरुद्ध के साथ श्री कृष्ण का द्वारका आगमन।	९९-१०५
२०.	अध्याय ७९	कृष्ण महिमा को देखने नारद जी का आगमन। विभिन्न गृहों में अनेक प्रकार से पत्नियों के साथ श्री कृष्ण का विहार।	१०६-११०
२१.	अध्याय ८०	श्री कृष्ण की नित्य-विधि। जरासन्ध से बन्धित राजाओं स्वर्संरक्षणार्थ प्रेषित दूत का आगमन। धर्मराजा से राजसूय-यज्ञ संकल्प।	१११-११५
२२.	अध्याय ८१	श्री कृष्ण का इन्द्रप्रस्थ गमन। धर्मराजा से कृत पूजा का स्वीकार।	११६-१२०
२३.	अध्याय ८२	धर्मराजा द्वारा यज्ञ संकल्प की घोषणा। जरासन्ध-वध निमित्त, उसके पास ब्राह्मण वेष में श्री कृष्ण का भीमार्जुन सहित गमन। मल्लयुद्ध में भीमसेन के द्वारा जरासंध का वध। बंधित राज पुत्रों का विमोचन।	१२१-१२८

श्री राम श्री

श्रीमध्वतत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

हमारे प्रकाशित ग्रन्थ

क्र०.	ग्रन्थनाम	मूल्य
१.	श्रीमद्भगवद्गीता प्रतिश्लोक का हिन्दी भावानुवाद	७०.००
२.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्कंध: भाषानुवाद:	१००.००
३.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् चतुर्थ स्कंध: भाषानुवाद:	६०.००
४.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् पंचम एवं षष्ठ स्कंधौ भाषानुवाद:	६०.००
५.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् सप्तम् स्कंध: भाषानुवाद:	६०.००
६.	श्रीमद्भागवत अष्टम् स्कन्ध: भाषानुवाद:	६०.००
७.	श्रीमद्भागवत नवम्स्कंध: भाषानुवाद:	६०.००
८.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्ध: पूर्वार्द्ध अध्याय छब्बीस तक	१००.००
९.	श्री रामायणपात्र चित्रणम् एवम् नीतिकथा	५०.००

पुस्तक प्राप्ति स्थान

१. **श्री मध्वमठ**

६३ मीरागली, दारागंज इलाहाबाद

२. **तत्व संशोधन संसत् श्री हृषीकेशतीर्थ संस्थानम्,** श्री पलिमारुमठ, रथ बीदि उडुपि कर्नाटक

३. **श्री स्वामी सीता वल्लभ शरण**

श्री मध्वमठ बड़ा अखाड़ा मैहर (म. प्र.)

४. **श्री स्वामी ललित मोहन ओझा**

प्रेमपीठ मध्वमठ तिजारा, जिला अलवर, राजस्थान

५. **डॉ रवि,**

१st फ्लोवर, नीयर लक्ष्मी भगवन, सेन्ट्रल

बाजार रोड़, नागपुर,

६. श्री G. R. Kulakarni

२०४१ B wing Mahesh Tower

Charkop, Sector २, Kambivali (W)

Mumbai ६७.

Ph-९८६७२५१७८३

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्री कृष्ण चारित्र मंजरी

यह एक अनोखा स्तोत्र है जिसमें **श्री राघवेन्द्र स्वामी जी** ने केवल थोड़े ही श्लोकों में दशम स्कन्ध की श्री कृष्ण कथा को जोड़ दिए हैं। हमारे गुरु जी उडुपि पीठाधीश्वर श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य पीठाधिपति ***श्री १००८ श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी*** इन श्लोको को सरल भाषा में अनुवाद किए हैं। हम इन दोनों को मिलाते हुए साथ साथ बत्तीस रंगीन चित्रों में इन अध्यायों की कथा को फोटों के द्वारा आपके सामने प्रस्तुत करते हैं। शास्त्र जानने वाले कहते हैं कि केवल नाम स्मरण करने के बजाय भगवान का नाम रूप गुण चिन्तन करना श्रेष्ठ है। इससे प्रथमतः हमारे मन को आनन्द होता है साथ साथ भगवत्प्रीति भी ज्यादा होती है। आगे के पृष्ठों में हम नाम रूप गुण के चिन्तन के लिए कथानुसारी फोटो, मूल श्लोक और उसका अर्थ दिए हैं। इससे नाम रूप गुण चिन्तन एक ही समय में एक साथ होगा। आग्रह है, पाठक इसका प्रयोग करते हुए नित्य प्रति नाम रूप गुण चिन्तन से पाठ करें।

आपका

प्रकाशक

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्रमंजरी
अध्याय साठ से तिरसठ तक की कथा

वैरूप्यं रुक्मिणो योऽकृतमणिसहितां जाम्बवद्देजातां। सत्यां तेनैव युक्तामपि परिजगृहे हस्तिनं कुल्य हेतोः।

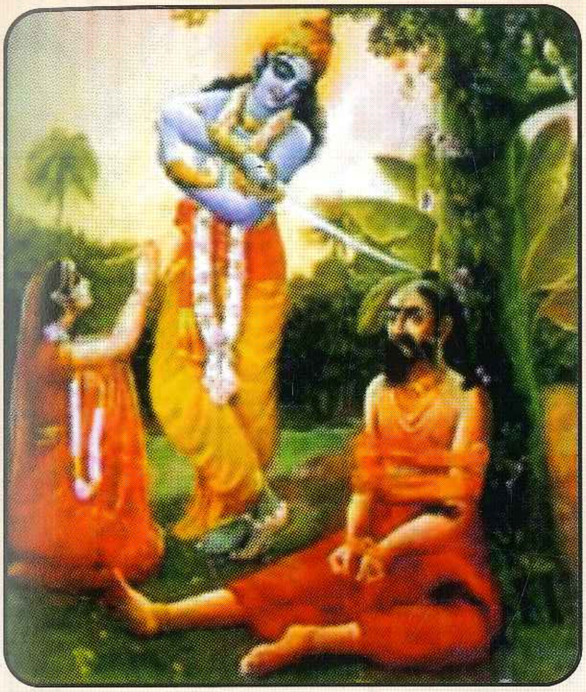

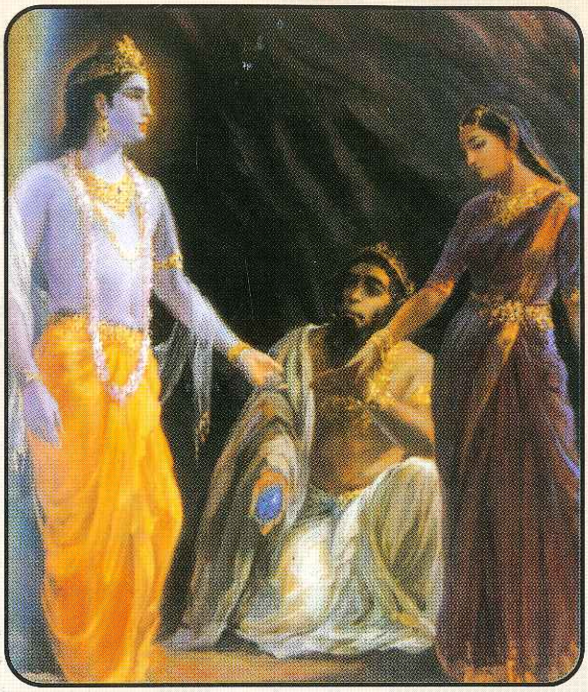

यातो व्यस्याथ सत्या शुचमथ समगाद् द्वारकां सत्य येतो। दुष्टुं पार्थान् सकृष्णान् द्रुपदपुरमागद् विद्धलक्ष्यान् सपायत् ।।२५।।

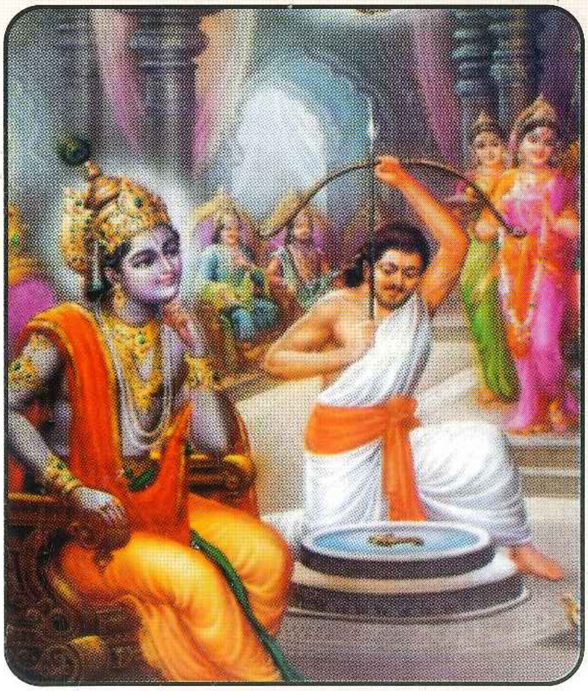

रुक्मि का सिर मुण्डन करते हुए भगवान श्री कृष्ण ने उसको विरूप कर दिया। स्यमंतक मणि सहित जाम्बवती देवी सत्यभामा को स्वीकार किये। पाँचों पाण्डव लाक्षागृह में जल गये, यह समाचार सुनकर धर्मोदक देने हस्तिनापुर गये। सत्राजित के मरण की बात सुनकर सत्यभामा शोक करती आयी। उसको सांत्वना देते हुये द्वारका वापस आये। बाद में द्रुपद राजा के नगर को जाकर, वहाँ लक्ष्यवेध करते हुए द्रौपदी को पाण्डवों ने जीता, इसको श्रीकृष्ण ने देखा। ऐसे श्री कृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्रमंजरी
अध्याय चौसठ और पैंसठ तक की कथा

त्रिंशत पंचावधीद्यः सचिववरसुतान् भूमिजेनातिघोरम् युद्धं कृत्वा गजाधैररिहृतशिरसं तं व्यधाद् भूस्तुतोऽथ।

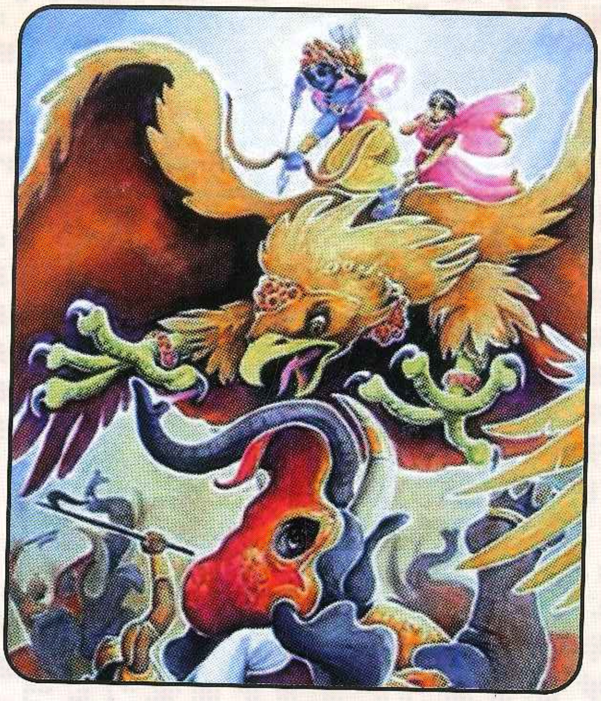

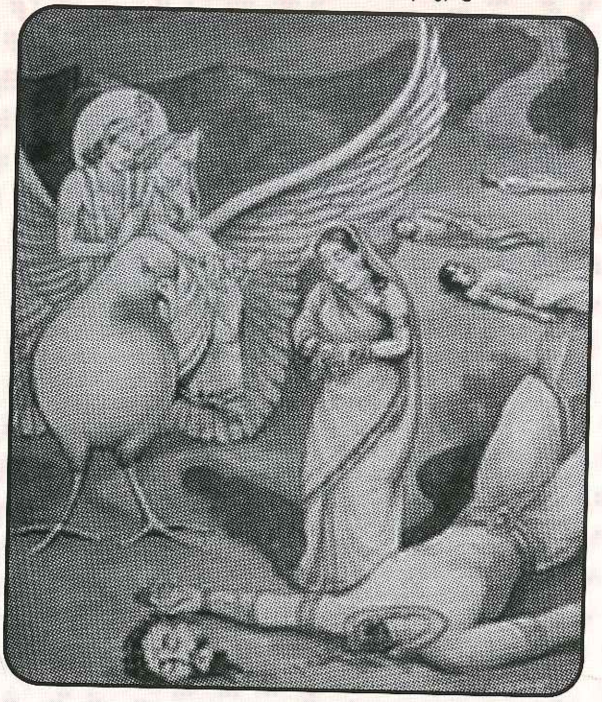

कृत्वा राज्येऽस्यसूनुं वरयुवतिजना भूरिशस्चारुवेषान् प्रापंय्य द्वारकां सोऽकृत मुदमदितेः कुण्डलाभ्यांमवेन्माम् ।।२८।।

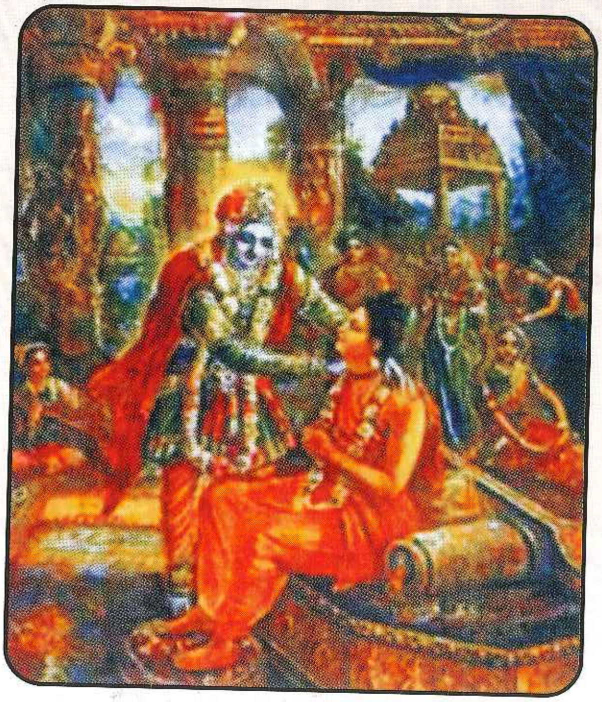

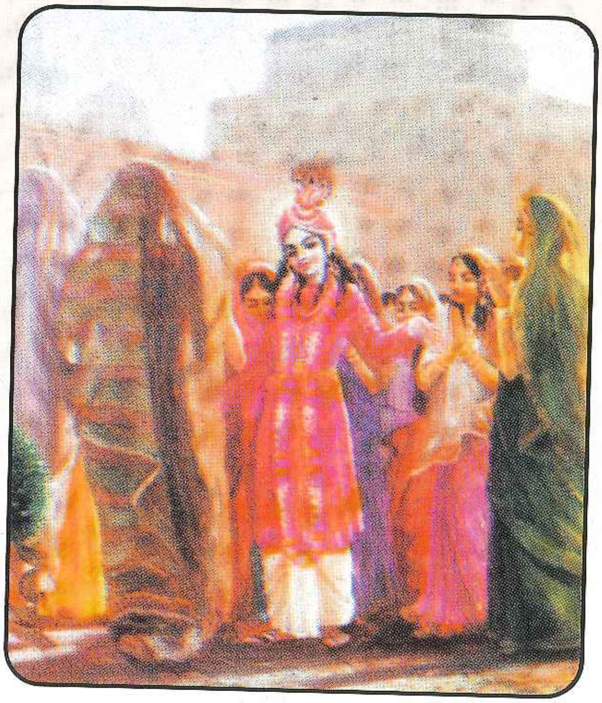

भगवान श्री कृष्ण नरकासुर के पैंतिस मन्त्रि पुत्रों को युद्ध में मार दिये। हाथी, अश्वादि युक्त सैन्य के साथ आये हुए नरकासुर के साथ घनघोर युद्ध करते हुये चक्र से उसके सिर को काट डाले। भू देवी ने श्री कृष्ण की स्तुति की। नरकासुर के पुत्र भगदत्त को सिंहासन पर बिठाकर उसके बन्धन में रह रही सोलह हजार स्त्रियों को मुक्तकर अलंकृत करके द्वारका को भेजे। नरकासुर से अपहृत कर्ण कुण्डलों को अदिति को वापस देकर संतुष्ट किये। ऐसे श्री कृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्रमंजरी
अध्याय छाछठ से उन्हत्तर तक की कथा

इन्द्राराध्योऽमरेन्द्र प्रियतमगमाहृत्य देवान् विजित्य प्राप्याथ द्वारकां यः सुतमति रुचिरं रुक्मिणीतः प्रपेदे।

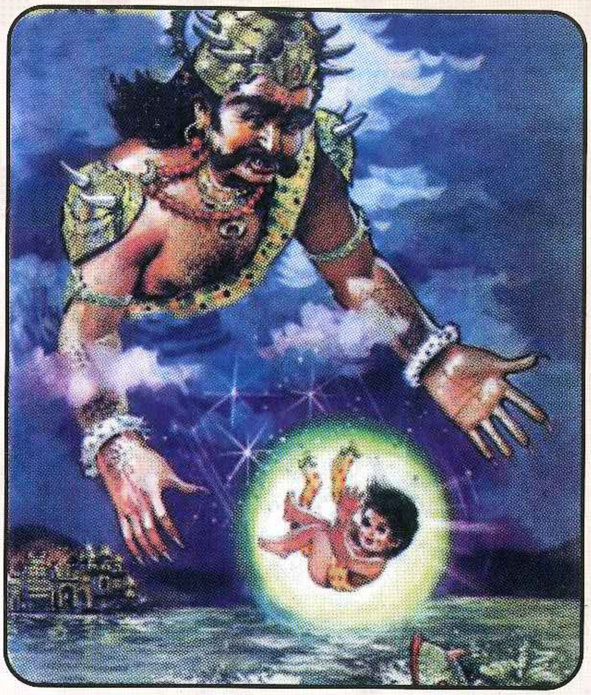

भ्रातृव्यं पौण्ड्रकारव्यं पुररुधमतनोत् कृत्तशीर्षम् तदीया। पत्योत्पन्नां च कृत्यां रथचरणरुचाकालयन् कामधुक स्यात् ।।२९।।

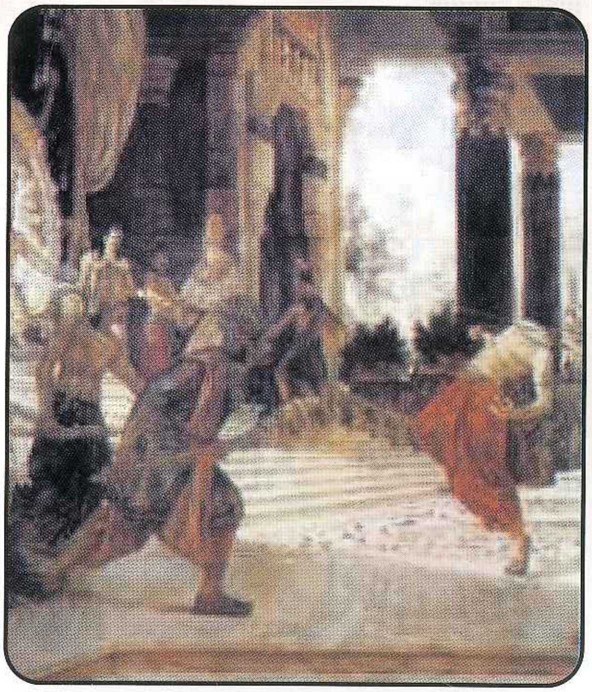

देवेन्द्र से सत्कार पाकर उनके अतिप्रिय पारिजात वृक्ष का अपरहण करते हुये युद्ध में देवताओं को हराकर द्वारका को वापस आये। अत्यन्त सुन्दर प्रद्युम्न नाम के पुत्र को रुक्मिणी से प्राप्त किये। द्वारका को घेरे हुये पौण्ड्रक वासुदेव नाम के शत्रु को युद्ध में पराजित करते हुये उसके सिर को काट डाले। उसके पुत्र सुदक्षिणा ने एक कृत्या को उत्पन्न करते हुए श्री कृष्ण के ऊपर छोड़ा, वह भगवान के सुदर्शन चक्र के तेज से हार गई। ऐसे श्री कृष्ण हमारे सकल इष्टार्थ को कामधेनु जैसे पूर्ण करें।

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्रमंजरी

अध्याय सत्तर से चौहत्तर तक की कथा

कृष्णः सूर्योपरागे निजयुवतिगणैर्भार्गवं क्षेत्रमाप्तः तत्रायातान् स्वबन्धून् मुनिगणमपि संतोष्य यज्ञं स्वपित्रा।

योऽनुष्ठाप्याप्यनैजं पुरमथवदिताऽनेकतत्वानि पित्रे मातुः पुत्रान् प्रदर्श्याकृत हितमहितं मेऽपनुद्यात् स ईशः ।।२०।।

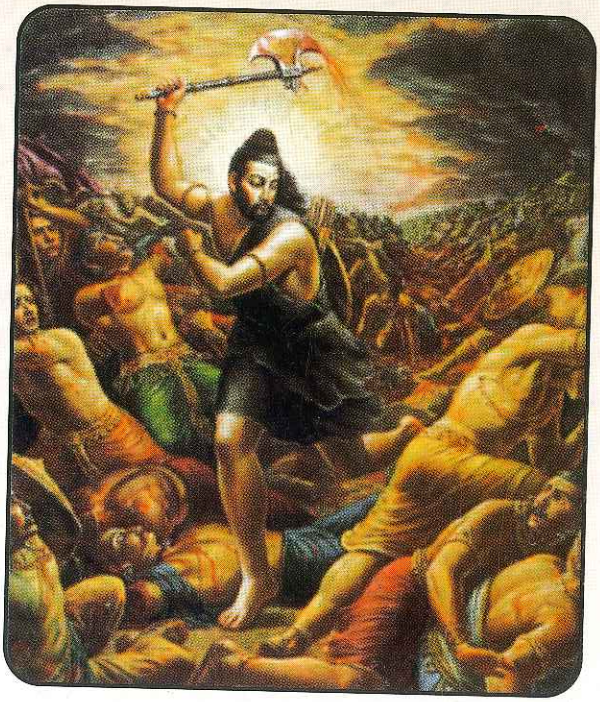

श्री कृष्ण सूर्यग्रहण काल में पत्नियों के साथ परशुराम से निर्मित स्यमंतपंचक क्षेत्र को गये। वहाँ आये हुए बन्धुओं को और मुनिगणों को संतोष दिये। अपने पिता वसुदेव से बड़ा यज्ञ करवाये। द्वारका को वापस आये। वहाँ वसुदेव को तत्वों को उपदेश दिये, माँ देवकी को कंस द्वारा मारे गये बच्चों को लाकर दिखाये, इससे देवकी को आनन्द हुआ। ऐसे श्री कृष्ण हमारी विपदाओं को दूर करें।

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्रमंजरी
अध्याय पचहत्तर से उन्यासी तक की कथा

रुक्मिणयानर्मवाक्यैररमत बहुभिः स्त्रीजनैर्योऽथ पुत्रान् एकैकस्यां प्रपेदे दश-दशरुचिरान् पौत्रकानप्यनेकान्।
पौत्रस्योद्वाहकाले भृशकुपितबलात् रुक्मिणं घातयित्वा नन्दन योषिद्गणेन प्रतिगृहमबला प्रीतिकारी गतिर्मे ।।२१।।

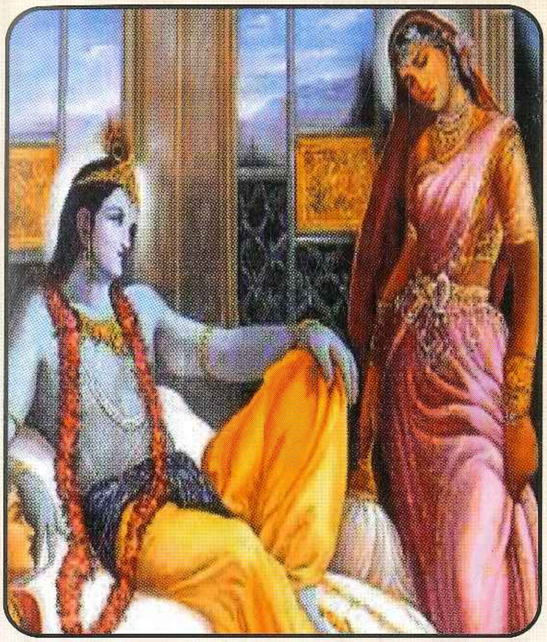

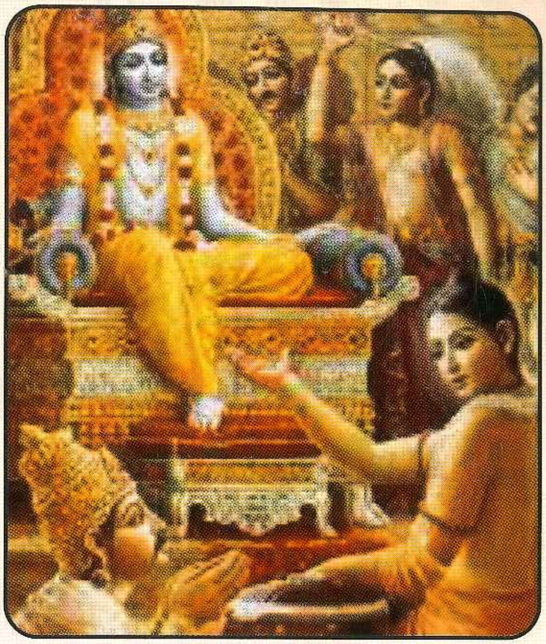

नानारत्न प्रदीप्ता समविभवयुत दृष्टाहस्त्रकान्ता गेहे स्व्वश्नम् शयानः क्वच जपमृगायादीनि कुर्वन क्वचिच्च।
दिव्यन्नक्वैर्ब्रुवाणः प्रवचनमपरैर्मन्त्रयन्नेवमादि व्यापारान् नारदस्य प्रतिसदनमहो दर्शयन्नः सपायात् ।।२२।।

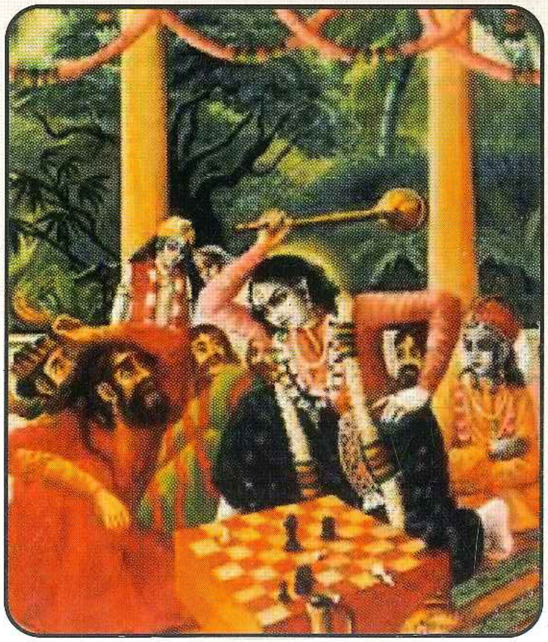

श्री कृष्ण रुक्मिणी के साथ सरस सल्लाप किये। बहुरुप धारण करते हुए अपने हजारों पत्नियों से विहार करते रहे। एक-एक में दस-दस सुन्दर पुत्राकों को पाये। असंख्य पौत्रों को भी पाये। पौत्र अनिरुद्ध के विवाह काल में क्रुद्ध बलराम दुष्ट रुक्मी को मारे। भगवान श्री कृष्ण अनेक रुप धारण करते हुए अपनी पत्नियों के गृह में प्रत्येक के साथ विहार किये।।22।।

अनेक रत्नों से प्रकाशमान अनुपम वैभवयुक्त सोलह हजार पत्नियों के घर में खाते, पीते, सोते, जप करते, शिकार करते हुए इस प्रकार अनेक विध क्रीड़ा करते रहे, और स्थानों में खेलते, बच्चों को पढ़ाते, मंत्रियों से मंत्रणा करते रहे। इस प्रकार अनेक लीलाओं को जिन्होंने नारद जी को दिखाए। ऐसे श्री कृष्ण हमारी रक्षा करें।

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

श्री राघवेन्द्र स्वामी विरचित श्रीकृष्ण चारित्रमंजरी
अध्याय अस्सी से बयासी तक की कथा

प्रातर्ध्यायन् प्रसन्नः कृतनिज विहितः सत्सभां प्राप्य कृष्णो दूतं राज्ञा प्रतोष्यमरमुनिविदिता शेषकृत्यं प्रयातः।

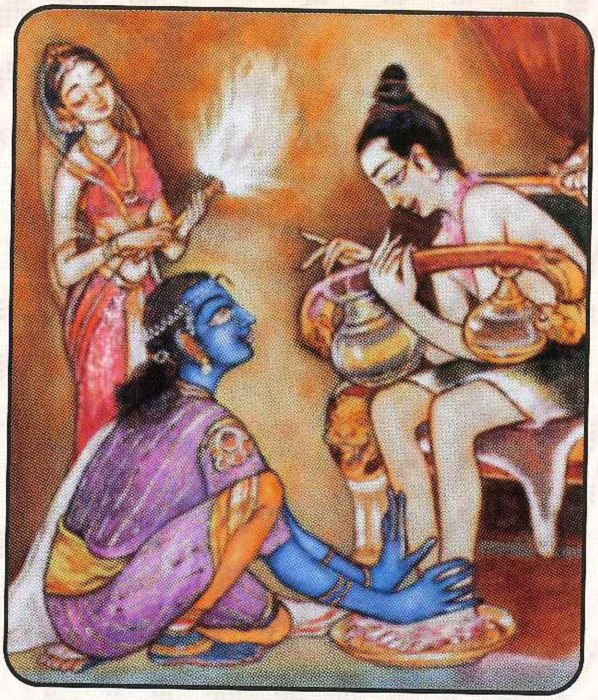

शक्रप्रस्थं चमूभिः बहुविभवयुतं बन्धुभिर्मानितोऽयम् भीमेनापात्य वार्हद्रथमथ नृपतिन् मोचयन्मे प्रसीदेत् ।।२३।।

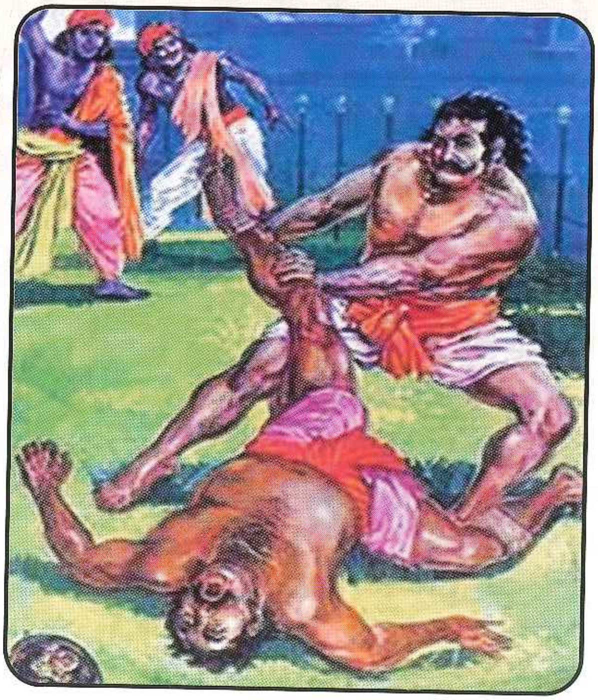

ब्रह्ममुहूर्त में उठकर प्रसन्न होकर ध्यान करने के बाद विहित कर्म को करने के बाद सज्जन युक्त सभा में प्रवेश करते हैं। वहाँ जरासंघ के बन्धन में रहने वाले राजाओं को एक दूत आया था, उसको अभय दिए। नारद जी आगे करने वाले काम के बारे में बताते हैं, उसके अनुसार श्री कृष्ण बड़े सैन्य को लेकर इन्द्रप्रस्थ को जाते हैं। वहाँ पाण्डवों से सत्कार पाते हैं। भीमसेन से जरासन्ध का वध करवाते हैं तथा उसके बन्धन में रहने वाले राजाओं को बन्ध मुक्त करते हैं। ऐसे श्री कृष्ण हमारे ऊपर प्रसन्न हो जाये।

अपेक्षितप्रद मन्त्रालय के
श्री राघवेन्द्र स्वामी जी

पूज्याय राघवेन्द्राय सत्यधर्मरताय च।
भजतां कल्पवृक्षाय नमतां कामधेनवे ।।

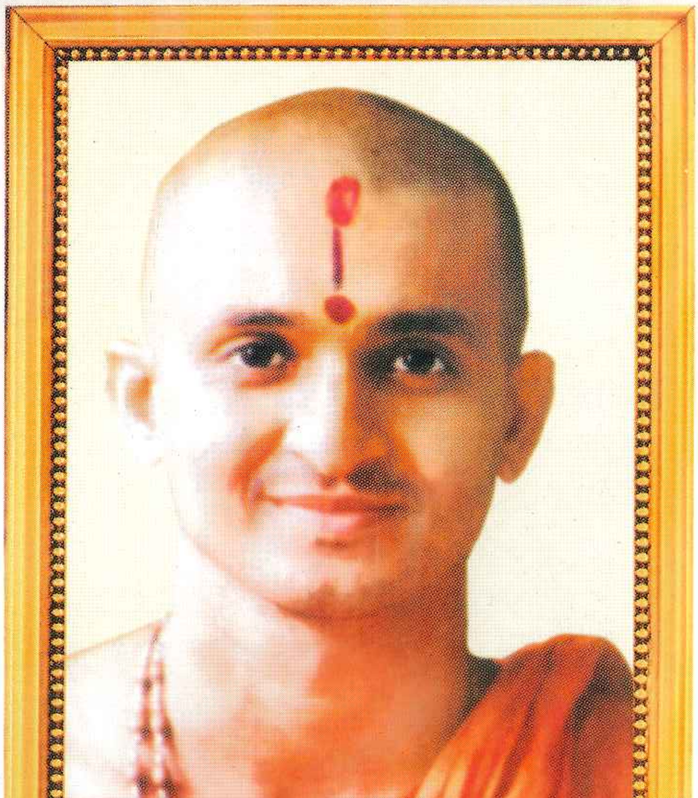

स्मयमान मुखाम्भोजान् सद्विद्या बोधकान् सदा
विद्याधीश गुरुन् वन्दे स्वरुपोद्धारकान् मम।

श्री १००८ विद्याधीश स्वामी जी महाराज

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

झारखण्ड की राजधानी राँची में रहने वाले अपने पिता **श्री हृदय शंकर जी** एवं माता **श्रीमती शोभा शंकर** के कीर्तिवर्धन के लिए उनके सुपुत्र **श्री विवेक श्रीवास्तव जी** ने हमारे प्रकाशन के लिए एक लाख रुपये धनराशि का सहयोग किये हैं। उनके इस सहयोग को सहृदय स्मरण करते हुए माता-पिता और पुत्रों को हमा आराध्य देव श्री पंचमुखी हनुमत्समेत सीताराम जी अनुग्रह करें यह प्रार्थना करते हैं।

- श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी ज

श्री हृदय शंकर जी

श्रीमती शोभा शंकर

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशाम स्कन्धः

अध्याय - साठवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - राजा सत्राजित ने श्रीकृष्ण के साथ अपराध किया। उसके परिमार्जन के लिए स्यमंतक मणि के साथ अपनी पुत्री सुन्दरी सत्यभामा को आग्रह पूर्वक श्रीकृष्ण को देकर विवाह किया।। १ ।।

सत्र का अर्थ दान देने वाली बड़ी तपस्या है। इस तपस्या से सत्राजित सूर्यनारायण को संप्रीत करते हुये स्यमंतक मणि को जीत लिया। इसके लिए उसका नाम सत्राजित हो गया। उस मणि के साथ अपनी पुत्री कन्यामणि सत्यभामा को श्रीकृष्ण को दे दिया। सत्यभामा भूरूप के महालक्ष्मी की अवतार हैं।

राजा परीक्षित पूछता है - हे मुनि राज ! सत्राजित श्रीकृष्ण के साथ क्या अपराध किया ? स्यमंतक मणि उसके पास कैसे आयी ? उसका आग्रह पूर्वक अपनी पुत्री का विवाह श्रीकृष्ण से करने का क्या कारण है ।। २ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - सत्राजित सूर्य भक्त था, वह सूर्य का मित्र बन गया था। वह सूर्य के प्रति बहुत बड़ी तपस्या की। तप करते समय वह सूर्य नाम के वृक्ष की पत्ती को खाकर तपस्या की। उसके तप से संतुष्ट होकर सूर्य भगवान ने उसको स्यमंतक मणि को दे दिया ।। ३ ।।

राजा सत्राजित उस मणि को अपने गले में धारण करते हुये द्वारका में प्रवेश किया। उस मणि सूर्य के समान प्रकाशमान प्रकाश के कारण द्वारका के लोग उसको पहचान नही सके ।। ४-५ ।।

मणि के प्रकाश के कारण लोग उसको आँखे खोलकर नही देख पाए। वे दूर से उसको देखकर स्वयं सूर्य भगवान ही आ रहे हैं इस प्रकार समझे। रुक्मिणी के साथ बैठे हुये श्रीकृष्ण को कहे। हे नारायण ! शंख, चक्र, गदाधारी दामोदर! हे अरविंद नयन,गोविंद यदु नंदन! आपको नमस्कार! हे जगन्नाथ ! आपके दर्शन के लिए प्रखर किरण वाले सूर्य लोगों के आँखों को चकमकाते हुए आ रहे हैं। हे प्रभो ! उत्तम देवतागण आपको तीनों लोकों में ढूढ़ रहे हैं। आप अब यादव कुल में गुप्त होकर अवतार लिये हैं। आपको ढूढ़ने के लिए सूर्य भगवान यहाँ आ रहे हैं।। ६-७-८ ।।

ठीक तरह से न समझते हुए बालक के समान वचनों को सुनकर हंसते हुये श्रीकृष्ण कहते हैं - वह सूर्य नही हैं, सूर्य द्वारा दिए हुए मणि को धारण करते हुये सत्राजित आ रहा है।। ९ ।।

सत्राजित अपने सुन्दर मन्दिर में प्रवेश करते हुये पुण्याहवाचनादि सत्कार्य करने के बाद

ब्राह्मणों के हाथ से मणि को पूजा मन्दिर में प्रतिष्ठापित किया ।। १० ।।

हे राजा ! वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना देती थी। जिस प्रदेश में उसकी पूजा होती थी, वहाँ अकाल दुर्भिक्ष नही होता था, पाप, कपट, वंचना नही रहता था। एक बार श्रीकृष्ण सत्राजित को उस मणि को राजा उग्रसेन को रखने के लिये कहे।। ११-१२ ।।

भार यानी बीस तोला होता है। आठ भार यानी १६० तोला सोना होता है। इतने सोने को वह मणि प्रतिदिन देती थी।

सोने के मोह से श्रीकृष्ण के कहने के अनुसार मणि को देने के लिये सत्राजित कबूल नही हुआ। मणि को नही दे रहा हूँ। इससे मुझको क्या कष्ट होगा। यह विचार सत्राजित के मन में बार-बार आता था। एकदिन सत्राजित का भाई प्रसेनजित उसको अपने गले में पहनकर घोड़े के ऊपर बैठकर शिकार करने गया। जंगल में वह बहुत वन्य प्राणियों का शिकार किया। इतने में एक सिंह उसके ऊपर आक्रमण करते हुए उसको और उसके घोड़े को मारकर मणि को लेकर अपनी गुफा में आ गया। जांबवान उसको देखकर सिंह को मारकर मणि को लेकर अपने गुफा में आया। उस मणि को खिलौना बनाकर अपने पुत्र के हाथ में दिया ।। १३-१४-१५ ।।

जांबवान की सुकुमार नाम का एक छोटा बच्चा था। उसके लिये खिलौने के रूप में इस मणि को सुकुमार की रक्षा करने वाली दादी के हाथ में दिया। यह विष्णु पुराण का वाक्य है।

उसका भाई प्रसेनजित बहुत दिन के बाद भी शिकार से वापस नही आया यह देखकर सत्राजित को दुःख हुआ। उसको कृष्ण के ऊपर संशय आने लगा। वह लोगों के सामने कहने लगा कि मणि को गले में धारण करके शिकार को गये हुये मेरे भाई को मणि को चाहने वाला श्रीकृष्ण ने मारा होगा।। १६ ।।

लोग इसको सुनकर आपस में गुपचुप करने लगे। कानों कानों से यह समाचार श्रीकृष्ण तक पहुँचा। अपने को लगे हुए इस कलंक को मिटाने के लिये भगवान श्रीकृष्ण नगर के प्रमुखों के साथ जंगल में जहाँ प्रसेनजित गया था उसी रास्ते से चले। एक स्थान पर सिंह से मारे गये प्रसेनजित और घोड़े के कंकाल मिले ।। १७-१८ ।।

इन कंकालों को देखने से ही सिंह से प्रसेन का वध हुआ है यह स्पष्ट हो गया। यहाँ **शुचिष्मता सदा धार्य** इस शब्द का प्रयोग है। मणि धारण करने वाले शुचिर्भूत होकर धारण करना चाहिये नही तो उनकी हानि होने वाला है। यहाँ प्रसेनजित शुचित्व नही रखा था। इसके लिये मर गया।

उस सिंह को भी जांबवान ने मारा है। इसको लोगों ने देखा। सामने एक बड़ी गुफा को लोगों ने देखा। वह गुफा अंधःकार से भरा हुआ था। लोगों को गुफा के द्वार में रहने के लिये बोलकर भगवान श्रीकृष्ण गुफा के अन्दर प्रवेश किये। अन्दर दूर जाने के बाद श्रीकृष्ण दादी के हाथ में खेलते हुए जांबवान के पुत्र को देखे। उसके हाथ में वह मणि थी।। १९-२० ।।

श्रीकृष्ण गुफा में प्रवेश करते समय एक श्लोक को सारे लोगों के साथ सुने। वह

श्लोक इस प्रकार है -

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंही जांबवता हतः। सुकुमार कमारोदी स्तवह्येष: स्यमंतकः ।।

दादी बच्चे को खिलाते हुये इस श्लोक को बोल रही हैं। इसका अर्थ इस प्रकार है - सिंह ने राजा प्रसेन को मारा उस सिंह को जांबवान ने मारा है, हे कुमार, रो मत, यह मणि अब आपका है। यह श्लोक हरिवंश (३८-३९) और विष्णु पुराण में (४-१३-४२) आया है। भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी के दिन चंद्र दर्शन करने के दोष की शान्ति के लिये इस श्लोक को २९ बार पाठ करने की प्रथा है। यह मणि जहाँ रहती है वहाँ सुभिक्ष और सुख रहता है, यह मणि अनिष्ठ नही करती है। प्रसेन इसको धारण किया था तो वह कैसे मरा इसका कारण यह है कि सत्राजित श्रीकृष्ण के बारे में अपराध किया था। सत्राजित को स्वयं आकर मणि को कृष्ण भगवान को अर्पण करना था। किन्तु स्वयं प्रभु के माँगने पर भी उनको नही दिया। विष्णु पुराण के अनुसार (४-१३-३०) मणि को धारण करने वाले अंतर्बाह्य शुचित्व रखना चाहिये। प्रसेन को शिकार करते समय अशुचि हो गया। इसी कारण मणि धारण करते हुये भी प्रसेन अपने जीव को खोना पड़ा।

अपरिचित पुरुष को देखकर दादी भय से चिल्लायी। उसको सुनकर महाबलशाली जांबवान दौड़कर आया। श्रीकृष्ण अपने पांचजन्य को बजाये। श्रीकृष्ण को मानव समझते हुये जांबवान उनके सामर्थ्य को न समझते हुये उनके साथ क्रोध से युद्ध करने लगा।। २१-२२ ।।

मांस के लिए युद्ध करने वाले दो गरुड़ के समान दोनो परस्पर को जीतने के इरादे से घनघोर युद्ध किये। वे आयुधों से , पत्थर से, वृक्षों से और अंत में बाहुओं से बहुत बड़ा द्वंद युद्ध किये ।। २३ ।।

अट्ठाईस दिन, दिन-रात यह युद्ध अविरत चला। परस्पर दोनो बड़ा मुष्टि युद्ध किये ।। २४ ।।

द्वारका के लोग गुफा के द्वार में सात दिन खड़े होकर राह देखे। बाद में वे वापस द्वारका चले गये।उसके बाद २९ दिन युद्ध और चला। विष्णु पुराण और हरिवंश में युद्ध की अवधी २९ दिन बतायी गयी है। भागवत २८ दिन कहती है। दोनो सही है।

श्रीकृष्ण के मुष्टि प्रहार से जांबवान के सारे अस्थि संधि टूट गये। श्रीकृष्ण के बल में वृद्धि होती गयी, जांबवान की शक्ति क्षय होती रही। पसीना-पसीना होकर आश्चर्य से जांबवान कहता है।। २५ ।।

विष्णु पुराण के अनुसार (४-१३-५०-५१) गुफा से द्वारका जाकर पुरःप्रमुख श्रीकृष्ण मर गया यह समाचार द्वारका वासियों को बता दिये। सारे यादव श्रीकृष्ण की उत्तर क्रिया करते हुये श्रीकृष्ण के नाम से बहुत अन्न दान किये। इससे गुफा में युद्ध करते समय श्रीकृष्ण की शक्ति में वृद्धि होती रही। जांबवान की शक्ति घटती रही। जांबवान की प्रार्थना के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण उसको राम रूप में दर्शन दिये। इस कथा को जांबवती द्रौपदी को बोलती है। यह भागवत का वाक्य है।

जांबवान प्रार्थना करता है - हे पुरण पुरूष ! आप सकल प्राणियों को प्राण, ओज, सहनशक्ति और बल देने वाले जगज्जनक, सर्वेश विष्णु हैं। यह अब मेरे समझ में आ गया। आप ही भगवान श्रीराम है ।। २६ ।।

आप के द्वारा श्रीराम अवतार में थोड़ी सी तिरछी नजर से देखने से समुद्र जलने लगा। उसके अंदर रहने वाले मगरमच्छ भयभीत हो गये। सागरराज आपको लंका जाने के लिये रास्ता छोड़े। आपके गुणगान करने वाली कीर्ति के रुप में सेतु आज भी समुद्र में खड़ा है। आप हनुमान से लंका जलवाये। अपने बाणों से रावण के दसों सिरों को काटकर जमीन पर गिराया। मैं अब समझ गया कि आप वही श्रीराम हैं ।। २७-२८ ।।

हमें जांबवान ने अपने ज्ञानरूपी चक्षु से विष्णु रुप में पहचाना है यह जानकर देवकी पुत्र कमलनयन भगवान श्रीकृष्ण अपने भक्त जांबवान को अत्यन्त कारुण्य से अपने अमृत हस्त से स्पर्श करते हुये मेघ गम्भीर स्वर से कहे ।। २९-३० ।।

जांबवती का पूर्व इतिहास - जांबवती पूर्व जन्म में सौम पुत्री थी, भगवान की पूजा में ही अपने दिन बिताती थी। निरन्तर श्रवण भक्ति करते हुये, आभूषण को त्याग कर व्रतस्थ रहती थी। उनकी सारी इन्द्रियाँ भगवान की सेवा ही करती थी। तीर्थ यात्रा करने से उनकी पाद सार्थक बन गये। ब्राह्मणों को वस्त्रादि दान देती थी। शालिग्राम के साथ तीन बार तिरुमल यात्रा की थी। हजारों सीढ़ियाँ चढ़कर भगवान का दर्शन की थी। जैगिषव्य नाम के ऋषि उनको भागवतादि पुराण सुनाये थे। महाभारत तात्पर्य निर्णय में जगद्गुरु मध्वाचार्य जी लिखते हैं कि श्रीकृष्ण अपने सुदर्शन चक्र से जांबवान के शरीर को बिना दर्द के चीरकर नवयुवक बनाया। (९६-२९२)

हे जांबवान ! इस मणि के कारण मेरे ऊपर एक गलत अपवाद आ गया है। इस मणि से ही उसको दूर करने के लिए इस गुफा में आ गया हूँ।। ३१ ।।

श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर उनको अर्घ्य पाद्य इत्यादि से पूजा करने के बाद अपनी पुत्री जांबवती को मणि के साथ श्रीहरि को आनन्द से समर्पित किया ।। ३२ ।।

गुफा के बाहर खड़े हुये पुरःप्रमुख सात दिन तक श्रीकृष्ण की राह देखकर सात दिन के बाद भी श्रीकृष्ण बाहर नही आये यह देखकर श्रीकृष्ण मर गये यह समझते हुये दुःख से द्वारका को वापस आए। वहाँ बारह दिन प्रार्थना किये ।। ३३ ।।

यहाँ **दुःखितास्ते पुरम् ययुः** इसके दो अर्थ होते है। एक दुःखित होकर वे द्वारका चले गये। दूसरा अर्थ यह होता है कि ते पुः दुःखित अर्थात् दुःखित होकर वे पुनः बारह दिन तक तप किये। द्वादशा हनी इसके भी दो अर्थ होते हैं। बारहदिन तप किये यह पहला अर्थ है। दूसरा अर्थ यह होता है कि श्रीकृष्ण के बारह दिन तक होने वाले अन्तेष्टि को यह अर्थ भी होता है। महाभारत में ऐसा ही एक सन्दर्भ आता है, श्रीकृष्ण के बारे में विचार करके आने के लिये

धर्मराज अर्जुन को भेजते हैं। अर्जुन सात दिन गया था, लेकिन धर्मराज कहते है - अर्जुन जाकर सात महीने ही गये हैं। भागवत में ही गोपियाँ बोलती है भगवान गाय चारने को आप जाते हैं। उस समय हमको एक एक क्षण एक युग के समान लगता है।

देवकी, देवी रूक्मिणी, वसुदेव और सारे बन्धु मित्र श्रीकृष्ण के न आने से दुःखित हो गये।। ३४ ।।

दुःखित हुए वे लोग द्वारकावासियों के साथ सत्राजित को शाप देने लगे। श्रीकृष्ण की वापसी के लिये महामाया दुर्गा का स्तोत्र करने लगे ।। ३५ ।।

उस स्तोत्र के फलस्वरूप द्वारका निवासी कार्यसिद्धि प्राप्त करते हुये पत्नी और मणि को पाकर वापस आये हुए पूज्य श्री कृष्ण को देखकर वे सारे आनन्द विभोर हो गये ।। ३६ ।।

श्रीकृष्ण द्वारका को वापस आ गये हैं। यह उन लोगों के लिये मरा हुआ बंधु जीवित वापस आया ऐसा हुआ था। इसके साथ भगवान श्रीकृष्ण मणि को गले में धारण किये हैं और साथ में नववधू को ले आये हैं। उन लोगों को यह बड़ा महोत्सव हुआ ।। ३७ ।।

भगवान श्रीकृष्ण राजसभा में राजा के समक्ष सत्राजित को बुलाये। उसके सामने मणि के बारे में सारी कथा को बोलते हुये उस मणि को उसको वापस कर दिये।। ३८ ।।

सत्राजित मणि को ले लिया किन्तु वह बहुत लज्जित था। अपनी गलती को स्वीकार करते हुये सिर झुकाकर पश्चात्ताप से दुःखित होकर अपने महल को चला गया ।। ३९ ।।

श्रीकृष्ण के प्रति किए हुए अपने अपराध को बार बार याद करते हुये और ज्यादा दुःखित हुआ। यादवों में बलिष्ठ श्रीकृष्ण के साथ विरोध से लज्जित होकर अपने अपराध को कैसे निर्मार्जन करे इसके बारे में चिंता करने लगा। पहले जैसे वह श्रीकृष्ण के साथ प्यार को पाना चाहता था ।। ४० ।।

श्रीकृष्ण का प्यार पाने के लिये मैं क्या करूँ। क्या करने से मेरा कल्याण होगा। लोग मेरे बारे में क्या कहेंगे। आगे के बारे में विचार न करते हुये सोने के ऊपर लट्ठ सा रखते हुये मैंने बुरा काम किया है। मुझे धिक्कार हो ।। ४१ ।।

मैं ऐसा करूंगा कि अपनी पुत्री सत्यभामा के साथ ही इस स्यमंतक मणि को भी मैं श्रीकृष्ण को सौंप दूँगा। मुझसे की हुयी गलती को सही करने का रास्ता यही है। यही ठीक है ।। ४२ ।।

इस प्रकार मन में विचार करते हुये सत्राजित मंगल स्वरूपिणी अपनी बेटी सत्यभामा के साथ मणि को भी आग्रह करते हुये श्रीकृष्ण को समर्पित किया ।। ४३ ।।

शील, रूप, औदार्यों से भरी हुयी अनेक यादवों की अपेक्षा का निमित्त बनी हुई सत्यभामा के साथ भगवान श्रीकृष्ण ने विधिपूर्वक विवाह किया ।। ४४ ।।

सत्राजित को भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं - हे राजा ! मैं इस मणि को नही चाहता हूँ। सूर्यदेव ने आपको अनुग्रह करके इस मणि को दिया है। वह आपके ही पास रहे। हम केवल उसके फलभागी होकर रहेंगे ।। ४५ ।।

श्रीकृष्ण की इन बातों का अर्थ यह है कि मणि जहाँ रहती है वहाँ शान्ति, सुभिक्षा होती है। उतने से हम संतुष्ट हैं। मणि आपके पास ही रहे।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में साठवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - इक्सठवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - श्रीकृष्ण पाण्डवों के बारे में वास्तविकता क्या है उसको ठीक तरह से जानते हुये भी कुन्ती के साथ सारे पाण्डव लाक्षागृह में दह (जल) गये। यह समाचार सुनकर दुःख का नटना करते हुये बलराम के साथ सांत्वना देने के लिये कौरवों के पास गये ।। १ ।।

भीष्म, धृतराष्ट्र, विदुर, गांधारी और द्रोणाचार्य से मिलते हुये उनके दुःख में सहभागी हो गये। राम और कृष्ण दुःख करते हुये पाण्डवों के अंत्येष्ठि में भाग लिये ।। २ ।।

इधर द्वारका में राम और कृष्ण दोनों नही हैं, यह समय साधते हुये अक्रूर और कृतवर्म शतधन्वा के पास जाकर विचार-विमर्श करते हैं। अब हम सत्राजित को मारकर उस मणि को क्यों न अपनायें ।। ३ ।।

सत्राजित अपनी पुत्री को हमको देने का वादा किया था। किन्तु हमको दुर्लक्ष्य करते हुये उसका विवाह श्रीकृष्ण के साथ किया है। हम उसको उसके छोटे भाई के पास भेज देंगे ।। ४ ।।

अक्रूर और कृतवर्म के दुष्ट विचार से शतधन्वा की बुद्धि भी भ्रष्ट हो गयी। वह स्वभाव से ही महादुष्ट था। उसमें असुर अंश भी था। उसकी आयु भी क्षीण हो गयी थी। मणि के लोभ से वह रात में सोये हुये सत्राजित को मार डाला ।। ५ ।।

मणि का प्रभाव होते हुये सत्राजित को नही मरना था किन्तु वह भी अशुचि हुआ था। श्रीकृष्ण के योग्य भामा को अन्यों को देने का वचन देना गलत है। वचन देने के बाद उसका पालन नही किया यह दूसरा दोष है। इस अशुचिता के कारण सत्राजित को अकाल मरण आया।

सत्राजित को मारने के लिये शतधन्वा जब उसके अंतःपुर में प्रवेश किया तब अंतःपुर की स्त्रियाँ रोने लगी। उनके अनाथ होकर चिल्लाते समय करुणाहीन शतधन्वा बकरी के जैसे सत्राजित के सिर को काटकर मणि को लेकर भाग गया ।। ६ ।।

सत्यभामा पिता की मृत्यु वार्ता को सुनकर दुःखित होकर रोने लगी। मैं मर गयी बोलते हुये अन्य लोंगों को मोहित करते हुये अपने दुःख का प्रदर्शन किया ।। ७ ।।

सत्यभामा स्वयं लक्ष्मी की अवतार हैं। अन्य लोगों को मोहित करने के लिये वह

सामान्य स्त्री जैसे अपने दुःख का प्रदर्शन करती है।

सत्यभामा अपने पिता के मृत शरीर को तेल में रखकर वारणावत को गयी। सब कुछ जानने वाले भगवान श्रीकृष्ण के सामने अपने पिता के हत्या का विवरण बताती है ।। ८ ।।

श्रीराम व कृष्ण उसको सुनकर लोक विडंबना करते हुये अपने दुःख का प्रदर्शन किए।। ९ ।।

भगवान श्रीकृष्ण पत्नी और बलराम के साथ वारणावत से आने के तुरन्त बाद शतधन्वा को मारकर मणि को वापस लाने के लिये चल पड़े ।। १० ।।

इतने में पांचाल देश के कांपिल्य नगर से एक दूत आया। राजा यज्ञसेन (द्रुपद) ने अपनी पुत्री द्रौपदी के स्वयंवर की घोषणा की थी। वह दूत यह समाचार लाया था ।। ११ ।।

राजा द्रुपद के निमंत्रण के अनुसार श्रीकृष्ण बलराम के साथ पांचालपुर गये। वहाँ नवयौवन युक्त पाँचों पाण्डव ब्राह्मणों के वेष में थे। इस वेष में उनको इसके पहले भगवान श्रीकृष्ण कभी नही देखे थे। तो भी वे उनको ठीक तरह से पहचाने। पाण्डवों ने उस पांचाल नगर में स्वयंवर मण्डप में अपने पौरुष से लक्ष्यवेध करते हुये अपनी मनोकामना को पूर्ण किया, द्रौपदी को पाया। श्रीकृष्ण ने उनसे उस कुंभार के घर में भेट किया। कुन्ती को नमस्कार करते हुये पाण्डवों से बिदा लेकर शतधन्वा को मारने के लिये अतिवेग से द्वारका पहुँचे। श्री कृष्ण उसे मारने के लिये दौड़कर आ रहे है यह समाचार सुनकर भयभीत शतधन्वा अपनी रक्षा के लिये कृतवर्म से सहायता माँगी। श्रीकृष्ण के डर से कृतवर्म सहायक नही बना। उससे कहा कि मैं कहाँ सर्वशक्त स्वामी श्रीकृष्ण के साथ में अपचार नही करूँगा ।। १२-१३-१४-१५-१६ ।।

श्रीकृष्ण के विरुद्ध होकर कौन खड़ा हो सकता है। महापराक्रमी श्रीकृष्ण से द्वेष करने से कंस अपने सकल परिवार और सम्पदा को खोकर मरण पाया ।। १७ ।।

जरासंध सत्रह बार युद्ध किया। वह अपने रथ को भी खोकर, हारकर भाग गया। इस प्रकार कृतवर्म ने निराकरण किया तब शतधन्वा अक्रूर के पास गया ।। १८ ।।

अक्रूर ने भी सहायता करने से इन्कार किया और कहा सर्वेश्वर रामकृष्ण के बल को जानने वाले उनके विरोध को कैसे मोल लेते हैं। कैलासवासी शिव भी उनके सामने नतमस्तक होते हैं ।। १९ ।।

शिव के वर से पुष्ट हुये हंस और डिंचिक को श्रीकृष्ण युद्ध में आसानी से हरा दिये। कालिया नाग के विष को नष्ट करते हुये उसको यमुना के बाहर भेज दिये ।। २० ।।

इस प्रपंच को अपनी इच्छा से सृष्टि करने वाले भगवान श्रीकृष्ण उसकी रक्षा और लय भी वे ही करते हैं। इस जगत को सृष्ट करने वाले अन्य भी उनकी लीला से मोहित होते है ।। २१ ।।

वे जब सात वर्ष के छोटे बच्चे थे उस समय सुमेरु के जैसे गोवर्धन पर्वत को लीला से एक अंगुली से उठाये थे ।। २२ ।।

ऐसे अनेक अद्भुत कार्य करने वाले भगवान श्रीकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ। सबके

कारण, अपार महिमा वाले, निर्विकार, सर्वांतर्यामी श्रीकृष्ण को नमस्कार ।। २३ ।।

इस प्रकार बोलते हुये अक्रूर ने शतधन्वा को सहाय नही दिया। शतधन्वा स्यमंतक मणि को अक्रूर के पास रखते हुये एक दिन में सौ योजन दौड़ने वाली एक घोड़ी के ऊपर बैठकर भाग गया ।। २४ ।।

अपने मामा के हंतक शतधन्वा को श्रीरामकृष्ण ने गरुड़ध्वज वाले रथ में चढ़कर अतिवेग से उसका पीछा किये ।। २५ ।।

शतधन्वा का घोड़ा विचाल के पास एक उपवन में गिर पड़ा और मर गया। उसको वहीं छोड़कर शतधन्वा डर के मारे पैदल ही दौड़ने लगा ।। २६ ।।

एक दिन में सौ योजन दौड़ने वाला घोड़ा सौ से ज्यादा दौड़ने के कारण थक कर मर गया।

पैदल दौड़ते हुये शतधन्वा के पीछे श्रीकृष्ण भी पैदल दौड़े। दो क्रोंश दौड़ने के बाद नजदीक से उसके ऊपर भगवान ने अपना चक्र चलाया। शतधन्वा का सिर गिर गया। उसके वस्त्रों में मणि को ढूढ़े तो मणि नही मिली। इस समय भगवान बलराम को रथ के पास छोड़े थे ।। २७ ।।

श्रीकृष्ण वापस आकर बलराम के सामने बोले कि शतधन्वा की हत्या व्यर्थ हो गयी। उसके पास मणि नही मिली ।। २८ ।।

बलराम कहते हैं कि मणि को वह दूसरों के पास रखा होगा। उसको ढूढना पड़ेगा। इसके लिये आप द्वारका जाइये ।। २९ ।।

मैं अपने प्रिय मित्र विदेहराज के पास जाना चाहता हूँ। इस प्रकार बोलते हुये बलराम तुरन्त पैदल ही मिथिला नगर में प्रवेश किए ।। ३० ।।

विदेहराज को देखने का बहाना करते हुये मिथिला नगर चले गये। किन्तु बलराम को श्रीकृष्ण के ऊपर संशय आया है। मणि उसको मिली है लेकिन श्रीकृष्ण झूठ बोल रहे हैं।

हरिवंश और विष्णु पुराण में इस प्रकार है। कृष्ण तुम वंचक हो, लोभी हो, स्वार्थ के लिये अपने लोगों को मारने वाले हो। तुम्हारे पास कोई बंधु रह नही सकते, भाई हो इसलिये छोड़ देता हूँ। इसके उत्तर रूप में श्रीकृष्ण ने प्रतिज्ञा करते हुये बलराम को समाधान करने का प्रयास किया। किन्तु बलराम श्रीकृष्ण को छोड़कर मिथिला में चले गये। वे वहां पाँच वर्ष तक रहे। महाभारत तात्पर्य निर्णय में जगद्गुरु मध्वाचार्य भी इस बात की पुष्टि करते हैं।

पूज्य बलराम को आते देखकर विदेहराज आदर से उठकर उनको विधिपूर्वक सारे उपचारों को करते हुये भरे हृदय से स्वागत किया ।। ३१ ।।

बलराम मिथिला में कई वर्ष वास किये। उस समय धृतराष्ट्र का पुत्र सुयोधन (दुर्योधन) उनके पास रहकर गदा युद्ध का प्रशिक्षण लिया। महात्मा जनक प्यार से गौरव दिया ।। ३२ ।।

राम कृष्णों में जो फूट हुआ है उसका लाभ उठाने के लिये दुर्योधन वहाँ आया था। भक्तवत्सल भगवान श्रीकृष्ण को अपनाना उसके हाथ का काम नही था। गदाविद्या के शिक्षण के निमित्त बलराम के प्यार को पाकर वह सुभद्रा से विवाह करना चाहता था। इससे

यादवों का सहयोग उसको मिलेगा। पाण्डवों को श्रीकृष्ण के सहाय को खोना पड़ता है। इस आलोचना से वह बलराम के पास आया था।

प्रभु श्रीकृष्ण ने द्वारका को आकर शतधन्वा को मार डालने का समाचार अपनी प्रिय पत्नी को बताकर उसको सान्त्वना दी और कहे कि उसको मारने के बाद भी स्यमंतक नही मिली ।। ३३ ।।

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण मरे हुये सत्राजित का अन्त्यकर्म किए। मरने वाले को मोक्ष प्राप्ति के लिये स्मृतियों में जो बताया गया है उसके अनुसार बंधु मित्रों के साथ मिलकर सारे विधियों का आचरण किए ।। ३४ ।।

शतधन्वा के वध के समाचार को सुनकर उनको अकार्य में सहायक बने अक्रूर और कृतवर्म भय से द्वारका से भाग गये।

अक्रूर श्रीकृष्ण के भय से यज्ञदीक्षित होकर निरंतर यज्ञ करने लगा। यज्ञ दीक्षित ब्रह्मतत्व को पाता है। उसको मारने वाले को ब्रह्म हत्या पाप आता है। यह उपाय करते हुये अक्रूर बासठ वर्ष उस मणि की सहायता से निरंतर यज्ञ करता रहा। वे यज्ञ **अक्रूर यज्ञ** नाम से प्रसिद्ध हैं। बाद में सात्वत के प्रपौत्र शत्रुघ्न को भोज वंश के लोग मार दिये। अक्रूर भी भोज वंश का था। श्रीकृष्ण के भय से वह देशान्तर को भाग गया। यह विष्णु पुराण का वाक्य है ।। ३५ ।।

अक्रूर के देशांतर को जाने के बाद द्वारकावासियों को शारीरिक, मानसिक, दैविक और भौतिक रूप के नाना तरह के ताप बार बार होने लगे ।। ३६ ।।

तब श्रीकृष्ण उग्रसेन इत्यादि बड़े लोगों के पास जाकर पूछते हैं - बहुत समय के बाद यह ताप हमें क्यों हो रहे हैं ।। ३७ ।।

तब अंधक इत्यादि यादव प्रमुख मिलकर विचार विमर्श करते हुये आपस में बोलते हैं,कि भगवान श्रीकृष्ण के पास रहते हुये भी यह कष्ट हमें कैसे होते हैं ? ।। ३८ ।।

वे कृष्ण से कहते हैं - एक बार काशी में पानी नही बरसा। उस समय वहाँ के राजा काशी आए हुए श्वफल्क को अपने पुत्री गांदीनि को देकर विवाह किया और गौ-दान दिया उसके बाद पानी बरसा ।। ३९ ।।

श्वफल्क का पुत्र अक्रूर भी श्वफल्क के समान प्रभावशाली है। वह ज़हाँ जाता हैं वहाँ तापत्रय नही होते हैं, दुष्ट शक्तियों का प्रभाव नही होता है।। ४० ।।

काशी राजकुमारी गांदीनी माँ के गर्भ में बारह वर्ष रही। उसके पिता ने कहा कि हे बेटी गर्भ में बैठकर माँ को क्यों कष्ट देती हो बाहर आ जाओ, मैं तुम्हारे मुंह को देखना चाहता हूँ। तब अन्दर से वह बच्ची बोली कि प्रतिदिन एक गौ-दान करो। तीन वर्ष के बाद मैं बाहर आती हूँ। तीन वर्ष सतत गोदान करने के बाद जन्म ली हुयी उसका गांदीनी नाम पड़ा। काशी नरेश उसको श्वफल्क को दिया ।।

बड़े लोगों की इस बात को सुनकर श्रीकृष्ण केवल इतना ही नही कहते हुये दूतों को भेजकर अक्रूर और बलराम को द्वारका बुला लिए ।। ४१ ।।

पाँच वर्ष के बाद श्रीकृष्ण यादवों के साथ जाकर बलराम को मनाते हुये द्वारका बुला लाये। अक्रूर बासठ वर्ष तक द्वारका में यज्ञ करते रहे थे। बाद में डर के मारे देशांतर कर गए थे। तब दुर्भिक्ष और संकट हो गया। तुम्हारे अपराधों को हमने क्षमा किया है यह सन्देश भेजकर उसको द्वारका बुलाये।

श्रीकृष्ण के ऊपर बलराम के अविश्वास करने के कारण द्वारका में अकाल और संकट हो गया था। श्रीकृष्ण के बातों में आने वाले केवल इतना ही नही इसका अर्थ यही होता है।

अक्रूर द्वारका को आने के बाद भी श्रीकृष्ण के भय से मुक्त नही हुआ था। उनके प्यार को पुनः सम्पादन करने के लिये शील, गुण सम्पन्न अपनी बहन को श्रीकृष्ण को विवाह में दे दिया।

अक्रूर और बलराम को एक साथ सभा में बुलाकर अक्रूर का सत्कार करते हुये श्रीकृष्ण हंसते हुये बोले ।। ४२ ।।

अक्रूर शतधन्वा उस दिन वह प्रकाशमान स्यमंतक मणि को आपके सुपुर्द में रखा था। उसको मैं उसी दिन जानता था ।। ४३ ।।

सत्राजित को पुत्र संतान न होने के कारण उनकी पुत्रियाँ उनका पिण्डदान करते हुए ऋण विमुक्त होने के बाद उनकी सारी सम्पदा के वारिसदार होना था। आप योग्य हैं। आपके बिना कोई व्यक्ति उसको धारण करने योग्य नही है। इसी कारण वह मणि आपके पास ही रहे इस दृष्टि से मैं उसको आपके पास ही छोड़ा था ।। ४४ ।।

किन्तु हमारे भाई बलराम जी उस मणि के बारे में मेरे ऊपर आज भी विश्वास नही रखते। इसके लिये हे पुण्यात्मा ! आप अपने पास रहने वाली उस मणि को खोलकर हमारे भाई को दिखा दें। हम भाईयों में निर्माण हुये मनःस्ताप को दूर करें ।। ४५ ।।

भगवान कहते हैं - सत्राजित को पुत्र संतान नही है। हरिवंश के अनुसार सत्राजित को एक सौ पुत्र थे, तीन पुत्रियाँ थीं। पुत्रों में भंगकार, वातपती, उपस्वावान, नाम के तीन प्रसिद्ध थे। सत्यभामा, व्रतीनी, प्रस्वापिनी नाम की तीन पुत्रियाँ थीं। तीनों को सत्राजित ने श्रीकृष्ण को दिया था। इन दोनों में तालमेल करते हुये सत्यधर्म तीर्थ लिखते हैं - मणि का, अपहरण का अपवाद श्रीकृष्ण के ऊपर करवाने के पाप से सत्राजित के सारे पुत्र और दो पुत्री मर गये। सत्यभामा को श्रीकृष्ण को देने के पुण्य से सत्राजित और थोड़े समय तक जीवित रहा।

सोने से रचा हुआ यज्ञ वेदिका युक्त आपके यज्ञ निरन्तर चलते रहे हैं ना ? श्रीकृष्ण इस प्रकार समाधान से बात कर रहे हैं, यह देखकर अक्रूर को समाधान हो गया, वे अपने कटिबंध को उतारकर उसमें रखे हुए सूर्य के समान प्रकाशमान स्यमंतक मणि को निकालकर श्रीकृष्ण के सामने रखे; भगवान इस मणि को सबको दिखाते हुए बलराम को भी दिखाए ! इसी मणि के

कारण बलराम, श्रीकृष्ण के साथ कलह करके क्रोध से मिथिला को जाकर वहीं पाँच वर्ष रहें ।। ४६-४७-४८ ।।

आप का यज्ञ निरंतर चल रहा है, न, श्रीकृष्ण की इन बातों से अक्रूर समझ गया कि यज्ञ दीक्षित उसे झूठ नही बोलना, तुम बासठ वर्ष से यज्ञ करते रहे हो। मणि इतने दिन से तुम्हारे पास ही है। इसी कारण कुछ न बोलते हुए मणि को दिखा दिया।

अब मणि को देखते ही बलराम अपने को उसके लिये योग्य मानते हुए मणि को अपने पास रखना चाहे। अपने पिता से पा लिया हुआ मणि सहज रूप से मेरी है। इसके लिये सत्यभामा उसको अपनाना चाहती है। हरि चित्त को ठीक तरह से न जानने वाली मेरे पिता इसको मेरे विवाह के समय में वर दक्षिणा के रूप में दिया है, यह मानते हुये जाबंवती उसको अपनाना चाहती थी। इन सबको देखकर श्रीकृष्ण उस मणि के कारण आपस में फूट न हो इसके लिये उस मणि को वापस अक्रूर को ही दे दिए ।। ४९-५०-५१ ।।

हरेश्चित्तमजानाती - हरि, के चित्त को न जानने वाली यह शब्द सत्यभामा के बारे में प्रयोग नही किया गया है। जांबवती के बारे में प्रयोग किया गया है। श्रीकृष्ण जिसको नही चाहते उसको सत्यभामा कभी नही चाहती यह महाभारत तात्पर्य निर्णय का वाक्य है। मणि के महत्व को दिखाने के लिये पुराणों में अतिशयोक्ति होती हैं।

मणि मिलने के बाद उसको अपने वश में रखने के लिये उग्रसेन, बलराम जांबवती चाहते थे। उग्रसेन का मत था जो कुछ मूल्यवान होता है वह राजा के वश में रहना चाहिये। बलराम ने कहा कि इसी कारण मैं पाँच वर्षों तक द्वारका को और श्रीकृष्ण को छोड़कर देशान्तर में रह चुका हूँ, इसके लिये मेरे पास रहना चाहिये। जांबवती कहती है - इस मणि को मेरे पिता ने विवाह में दहेज के रूप में दिया है। इसके लिये यह मणि मेरे पास रहनी चाहिये। तब श्रीकृष्ण कहते हैं। ऐसा आप लोग कहे तो अपने पिता ने दिया है इसके लिये यह मणि मेरे पास रहे ऐसे सत्यभामा भी बोल सकती है। इसके लिये यह मणि हमारे किसी के साथ न रहे अक्रूर योग्य मनुष्य है, शुचित्व रखता है, इसके लिये मणि उसके पास ही रहे। श्रीकृष्ण की इन बातों को सबने मान लिया और मणि अक्रूर के साथ ही रही।

सर्वशक्त, सर्वेश्वर श्रीकृष्ण की महिमा को बोलने वाली मंगलकर गाथा वाली इस पावन चरित्र को बोलने वाले - सुनने वाले सारे लोगों का पाप नष्ट हो जाता है। उनकी अपकीर्ति चली जाती है। वे मोक्षभागी होते हैं।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में एकसठवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बासठवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - भगवद् भक्त पाण्डवों को देखने के लिए एक बार लक्ष्मीरमण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सात्यकी और अन्य लोगों के साथ इन्द्रप्रस्थ को गये ।। १ ।।

इन्द्रप्रस्थ यमुना के तट पर हस्तिनीवती से थोड़ी दूरी पर है। द्रौपदी के विवाह के बाद धृतराष्ट्र पाण्डवों को आधा राज्य देकर उनको इस नगर में रखे थे। श्रीकृष्ण विश्वकर्मा के हाथ से नये नगर का निर्माण करवा कर उसका इन्द्रप्रस्थ नाम रखे। वही दोनो नगर आज पुरानी दिल्ली और नई दिल्ली के नाम से प्रसिद्ध हैं।

सर्वेश भगवान आए हैं इसको देखकर,मुख्य प्राण के शरीर में प्रवेश करने से जैसे सारे इन्द्रियाभिमानी देवताएँ उठते हैं, वैसे ही वीर पाण्डव एक साथ उठकर खड़े हो गए ।। २ ।।

एक बार ब्रह्मा जी के शरीर में मुख्य प्राण के साथ स्पर्धा करने वाले इंद्रियाभिमानी देवता मुख्य प्राण के बाहर जाने से निश्चेष्ट बन गए। मुख्य प्राण के वापस आने से वे सारे पुनःश्चेतन पाकर उठकर खड़े हुए। यह उपनिषद् की कथा है। इसी प्रकार सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के आने से भीम, अर्जुन आदि सारे पाण्डव उत्साह से खड़े होकर उनका स्वागत किए।

वीर पाण्डव प्यार से श्रीकृष्ण के साथ आलिंगन करते हुए उनके अंग संग से अपने सकल पापों को धो दिये। अनुराग भरे उनके मंदस्मित युक्त मुख को देखकर आनन्द पाए ।। ३ ।।

धर्मराजा और भीम को श्रीकृष्ण वंदन किए। अर्जुन आलिंगन करते हुए श्रीकृष्ण को नमस्कार किए, नकुल-सहदेव श्रीकृष्ण को वंदन किए ।। ४ ।।

धर्मराज और भीमसेन आयु में श्रीकृष्ण से बड़े हैं। बड़े के सामने छोटे के व्यवहार को लोगों को दिखाने के लिए श्रीकृष्ण उनके पाद वंदन किये। अर्जुन से छः महीने स्वयम् बड़े होते हुए विशेष प्यार को दिखाने के लिए उसको आलिंगन दिए बाद में उसके नमस्कार को भी स्वीकार किए, नकुल-सहदेव छोटे होने के कारण उनके नमस्कार को स्वीकार किये। भीमसेन, श्रीकृष्ण के नमस्कार को अपने अंदर रहने वाले श्रीकृष्ण को समर्पित करते हैं। इससे उनके भागवत धर्म में च्युति नही आती।

श्रीकृष्ण के उत्तम आसन में बैठने के बाद पाँच पतियों को पाने के बाद भी पवित्र और लोक निंदा से दूर नव-विवाहिता द्रोपदी थोड़ी सी लज्जा से युक्त होकर श्रीकृष्ण को नमस्कार किया ।। ५ ।।

उसी प्रकार पाण्डवों ने श्रीकृष्ण के साथ आए हुए सात्यकी और अन्य यादवों को सत्कार करते हुए उचित आसन में बैठा दिए ।। ६ ।।

श्रीकृष्ण वहाँ से जाकर कुन्ती से मिले और उनको नमस्कार किए। कुन्ती प्यार भरे आँसुओं से श्रीकृष्ण को देखते हुए उनसे आलिंगन किया। वसुदेव आदि बंधुओं के कुशल प्रश्न पूछे, श्रीकृष्ण ने भी कुन्ती के और उनकी बहुओं के कुशल वार्ता पूछे ।। ७ ।।

दर्शन मात्र से सकल दुःखों को दूर करने वाले श्रीकृष्ण के सामने कुन्ती ने लाक्षागृह से चलने के बाद से अनुभव किए हुए दुःखों के याद करते हुए आँखों में आँसू भरकर वात्सल्य से भरा हुए गले से बाते करने लगीं ।। ८ ।।

हे श्रीकृष्ण ! हम सदा आपका स्मरण करते रहते हैं। आप हमारे योगक्षेम को जानने के लिए मेरे भाई अक्रूर को भेजे थे। उसी दिन से हमारे क्षेम में वृद्धि हुई। इससे दुष्ट लोग समझ गए कि हमारे योगक्षेम को देखने वाले आप हैं। आपके होते हुए हमें और किसी का भय नही है ।। ९ ।।

स्वयंवर के समय में जब हम पांचाल देश में थे तब आप हमारी याद करते हुये वहाँ आए। उस दिन से हम बहुत सुख में हैं ।। १० ।।

कुंती की इस बात को सुनकर योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते है - उस समय पांचाल देश में आपके पुत्र ब्राह्मण के वेष में कुम्हार के घर में पत्नी समेत वास करते थे। उनके साथ आपसे भेट करने के बाद मैं उसी दिन द्वारका वहा जाकर सत्यभामा के पिता को मारने वाले शतधन्वा को मारने के लिए दौड़ गया। शतधन्वा को मारने के बाद बड़े भाई बलराम स्यमंतक मणि के निमित्त मेरे साथ झगड़ा करते हुये विदेह नगर को चले गये। उनकी राह देखते हुये ये पाँच वर्ष मुझे द्वारका में ही रहना पड़ा। बहुत कार्यों में जुटा कहीं भी जा नही पाया। श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर कुन्ती प्यार से कहती है ।। ११-१२-१३-१४-१५ ।।

भगवान आप इस विश्व के अनिमित्त बंधु हैं। आपको किसी में मेरा, पराया यह अलग भाव नही है। जो आपकी याद करने वाले हैं उनके मन में रहकर उनके सारे दुःखों को आप दूर करने वाले हैं ।। १६ ।।

इस प्रकार कुन्ती और धर्मराज द्वारा दिए हुए आदरोपचार को स्वीकार करते हुये इंद्रप्रस्थ की जनता की आँखों को आनन्द देते हुये वर्षाकाल के निमित्त चातुर्मास व्रत करते हुये इन्द्रप्रस्थ में रहें ।। १७ ।।

एक बार शत्रुमर्दन अर्जुन कपिध्वजवाले अपने गांडीव धनुष और अक्षय तूणीर को लेकर श्रीकृष्ण के साथ शिकार करने घने अरण्य में प्रवेश किया।। १८-१९ ।।

उस जंगल में शेर जंगली सुअर, जंगली भैस, हिरण, शरभ, खड्गमृग और खरगोश इत्यादियों को दोनों ने शिकार किया ।। २० ।।

साथ आये हुये दूत इन प्राणियों को यज्ञ में प्रयोग करने के लिये धर्मराज को पहुंचाए। श्रीकृष्णा और अर्जुन बात करते हुये प्यास बुझाने के लिए जमुना जी के तट पर गये ।। २१ ।।

आचमन करने के बाद इन्द्र नीलमणि के समान दिखने वाले दूध के समान मधुर यमुना जल को पिया। वहाँ यमुना के तट पर तप करने वाली एक सुन्दर कन्या को देखे ।। २२ ।।

वह कौन है यह जानकारी लेने के लिये श्रीकृष्ण अर्जुन को उसके पास भेजे। अर्जुन सुन्दर दांतवाली, सुन्दर शरीर वाली, सुन्दर मुख वाली उस कन्या से पूछते हैं ।। २३ ।।

तुम कौन हो, किसकी बेटी हो, किस कारण से यहाँ तप कर रही हो। हे मंगलागी मुझे लगता है कि तुम पति को पाने के लिये तप करने वाली कन्या हो, ऐसा मैं समझता हूँ ।। २४ ।।

कालिंदी नाम की वह कन्या बोलती है - मैं सूर्यदेव की पुत्री हूँ। विवाह करने योग्य वरप्रद भगवान विष्णु को पति रूप में पाने के लिये चाहते हुये मैं यहाँ तप कर रही हूँ ।। २५ ।।

हे वीर पुरुष ! मैं उन श्रीनिवास को छोड़कर और किसी को पति के रूप में ग्रहण नही करती वह अनाथ वत्सल भगवान मुकुंद मुझ पर कृपा करें ।। २६ ।।

मेरा नाम कालिंदी है। इस यमुना तट पर मेरे पिता जी द्वारा निर्माण कराए हुये घर में वास करती हूँ। अच्युत के दर्शन होने तक मैं यहीं तप करती रहती हूँ ।। २७ ।।

यह सूर्यपुत्री यमुना की छोटी बहन कालिंदी है। यमुना को भी कालिंदी बोलते हैं। ऐसी सूर्य की पुत्री, कृष्ण की पत्नी कालिंदी और दूसरी वरुण की पत्नी कालिंदी ये अलग-अलग हैं। यह महाभारत तात्पर्य निर्णय का वाक्य है।

अर्जुन को गुडाकेश भी नाम था। गुडाकेश का अर्थ नींद को जीतने वाला। अर्जुन पाशुपतास्त्र पाने के लिये नींद छोड़कर इन्द्रकील पर्वत के ऊपर तीन मास तक तप किया। इसी के कारण उसका नाम गुडाकेश पड़ा। भीमसेन लाक्षागृह में रहते समय छः महीने तक नींद नही किया। इसके लिये वह सही अर्थ में गुडाकेश है। प्रत्येक व्यक्ति के नींद करते समय भी जागृत रह कर २१६०० हंस मंत्र जप करने वाले वायु देव मुख्य अर्थ से गुडाकेश हैं।

कालिंदी का परिचय उसी के कथनानुसार अर्जुन श्रीकृष्ण को कहते हैं। श्रीकृष्ण इस बात को पहले से ही जानते थे। अतः अर्जुन की बात को सुनकर कालिंदी को रथ में बिठाकर धर्मराज के पास ले चले ।। २८ ।।

कालिंदी सुर्यपुत्री होने के कारण यम धर्म की बहन लगती है। धर्मराज यम के अवतार हैं। इस श्लोक में **धर्मराजमुपागमत्** इस शब्द से भाई के पास बहन को ले गये यह अर्थ ध्वनित होता है। इसके बदले में इंद्रप्रस्थ अथवा कुंती के पास ले गये यह भी हो सकता था। यहाँ खासकर कालिंदी और धर्मराज का संबंध दिखाना है।

इंद्रप्रस्थ में श्रीकृष्ण सुखवास करते समय देव शिल्पी विश्वकर्मा को बुलाकर धर्मराजा के

इंद्रप्रस्थ नगर को अमरावती के समान पुनः निर्माण कराया। उस नगर में बहुत सुन्दर मंझिले और द्वारों का निर्माण हुआ। गोपुर और बड़े बड़े मन्दिर निर्माण हुये। इस प्रकार चातुर्मास व्रत को इंद्रप्रस्थ में पूर्ण करते हुये श्रीकृष्ण पांडवों की अनुमति लेकर कालिंदी और सात्यकी इत्यादि अपने लोगों के साथ द्वारका वासियों को मनानंद करने के लिये द्वारका में वापस आये। वहाँ शुभ मुहुर्त में रूपयौवन, सम्पन्न, जन मन हारिणी, सुन्दरी, कालिंदी के साथ विवाह किया और अपने लोगों को परमानंद दिया, परममंगल किया ।। २९-३०-३१-३२-३३ ।।

यहाँ कालिंदी को मनोनयन-नंदिनी कहा गया है। मन के अभिमानी चंद्र हैं। नयन के अभिमानी सूर्य है। सूर्य की पुत्री कालिंदी सूर्य वंश के साथ-साथ चंद्रवंश के श्रीकृष्ण की पत्नी बनने से चंद्रवंश को भी नंदिनी यानी सन्तोष करने वाली है, यह अर्थ होता है। कन्या दोनों कुल को आनन्द देने वाली होनी चाहिये यह अर्थ ध्वनित होता है।

अवंती राजा के पुत्र विंद और अनुविंद दुर्योधन के अनुचर थे, मित्र थे। उनकी भगिनी का नाम मित्रविंदा था। उसके स्वयंवर में भाग लेने के लिये श्रीकृष्ण स्वयं आए थे। मित्रविंदा ने स्वयंवर में श्रीकृष्ण के गले में माला अर्पण किया। किंतु विंद और अनुविंद ने इसका विरोध किया ।। ३४ ।।

हे राजा, सुनो, वसुदेव की एक बहन थी। उसका नाम राजाधि देवी था। मित्रविंदा उसकी बेटी है। दोनों भाइयों के मना करने के बाद भी श्रीकृष्ण सारे राजाओं के देखते समय बलात्कार से मित्रविंदा को द्वारका ले आये, और उसके साथ विवाह किया ।। ३५ ।।

कौसल देश का राजा नग्नजित अत्यन्त धार्मिक था। उसको सत्या नाम की बेटी थी। उसको नीला भी कहते थे। राजा नग्नजित ने नीला का स्वयंवर रचा ।। ३६ ।।

स्वयंवर का नियम इस प्रकार था। राजा ने तीक्ष्ण सींगवाले सात सांड़ों को पाला था। वे सांड़ किसी के वश में नही होते थे। कालेमेघ के समान रंग वाले उन सांड़ों को नियंत्रण करने का साहस करने वाले बहुत से शूर मर गये थे। उन सातों सांड़ो को एक साथ जो वश में कर लेता है और उनको नथनी पहनता है उसी को अपनी बेटी को देने का निर्णय राजा ने किया था ।। ३७ ।।

सांड़ों को जो वश में लेता है उसी को स्वयंवर में नीला मिलती है। यह समाचार सुनकर भगवान श्रीकृष्ण अपनी बड़ी सेना के साथ कौसल की राजधानी पहुँचे ।। ३८ ।।

कौसल को आए हुए श्रीकृष्ण को राजा ने संतोष से स्वागत करते हुये आसनादि उपचार करते हुये सत्कार देकर अभिवंदन किया ।। ३९ ।।

तीनों लोकों के लोगों द्वारा अपेक्षित स्वयं रमापति यहाँ आए हैं। यह सुनकर राजकुमारी नीला ने वे श्रीकृष्ण ही अपने पति बने यह प्रार्थना करने लगी। मैंने अभी तक जो-जो व्रत किया है उसका फल मिलने वाला है तो भगवान श्रीकृष्ण ही मेरे पति बने। यह प्रार्थना करने लगी ।। ४० ।।

राजा कोसल ने श्रीकृष्ण को पुनः सत्कार करते हुये कहा कि हे जगन्नाथ ! आप नारायण हैं, पूर्णकाम हैं, मैं आपका सत्कार कैसे करूँ ? क्या करूँ ? ।। ४१ ।।

आपके पदरज को लक्ष्मी, ब्रह्मा, रुद्र और सारे लोक पालक सिर में धारण करते हैं। आप समय-समय पर धर्म की रक्षा के लिये, धर्म के नियमों की रक्षा करने के लिये लीला से अवतार लेते हैं। आप हमारे अन्दर रहते हुये अपनी पूजा को स्वयं करते हुये आप सन्तुष्ट हो जाइये ।। ४२ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - भगवान श्रीकृष्ण हसन्मुख होकर आसन में बैठते हुये मेघ गम्भीर ध्वनि से बोले ।। ४३ ।।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं - स्वयंवर को छोड़कर अन्य समय में कन्या की याचना न करने वाला उत्तम वर माना जाता है। किन्तु स्वयंवर के समय में सारी मर्यादा को छोड़कर पुरुषार्थ भागी राजाओं से स्वयं आह्वानित होता है। (बिना आह्वानित) ।। ४४ ।।

हे राजा ! क्षत्रिय अपने धर्माचरण करते रहने वाले और एक क्षत्रिय बंधु से मांगना निंदनीय है। मैं आपको स्नेह की अपेक्षा से आपकी बेटी के हाथ को मांग रहा हूँ। इसके लिये कन्या शुल्क देने वाला नही हूँ ।। ४५ ।।

राजन्य बंधु, इसका अर्थ क्षत्रिय का वेष धारण करने वाला यह अर्थ होता है। किन्तु यहाँ बंधुत्व दिखाने के लिये इस शब्द का प्रयोग किया गया है। उसकी स्पष्ट करने के लिये आगे **निजधर्मवर्तिना:** यह शब्द का प्रयोग है।

राजा नग्नजित कहते हैं - हे जगन्नाथ ! आपसे और श्रेष्ठ वर मेरी बेटी के लिये और कौन मिलने वाला है। सद्गुणों के मुख्य आश्रय आपके हृदय में श्रीलक्ष्मी सदा के लिये वास करती हैं ।। ४६ ।।

किन्तु श्रीकृष्ण ! हम अपनी बेटी को योग्य वर को पाने के लिये क्षत्रियो का वीर्य पराक्रम की परीक्षा में एक निर्बंध रखे हैं ।। ४७ ।।

हे वीर हमारे सात सांड़ हैं वे मदमत्त हैं, किसी के वश में नही होते हैं। इन्ही के कारण अनेक राजकुमार हाथ-पाँव की हड्डी तुड़वाकर पराजित हुये हैं ।। ४८ ।।

श्री शुक्रदेव कहते हैं - स्वयंवर के इस नियम को सुनकर भगवान श्रीकृष्ण अपने ऊपर के वस्त्र को कटि में बांधते हुये सात रूप धारण करके सातों सांड़ों को एक साथ विनायास पकड़ते हुये नथनी डालकर एक साथ बांध दिये ।। ४९ ।।

श्री शुकदेव कहत हैं स्वयंवर के इस नियम को सुनकर भगवान श्रीकृष्ण अपने ऊपर के वस्त्र को कटि में बांधते हुये सात रूप धारण करके सातों सांड़ो को एक साथ विनायास पकड़ते हुये नयन डालकर एक साथ बांध दिया ।। ५० ।।

श्रीकृष्ण ने सातों सांड़ों को रस्सी से बांधकर छोटा लड़का जैसे लकड़ी की गुडिया खींचकर ले

जाता है वैसे खीचकर बांध दिये, उनकी ताकत व घमण्ड को चकानचूर किया ।। ५१ ।।

ये सातों सांड़ पिछले जन्म में शिव के वर के बल से अजेय दैत्य थे। हरिवंश में श्रीकृष्ण इन सांड़ों के बारे में बलराम जी को कहते हैं -हे भाई! कालनेमि के पुत्र गोरूप में मुझको मारने के लिए आये थे।

श्रीकृष्ण की अष्टमहिषियों में नग्नजित राजा की पुत्री यह नीला भी एक है। हरिवंश के विष्णु पर्व के (६०-४१) श्लोक से यह स्पष्ट होता है। बहुत पहले गोकुल में कुभक नाम के गोपालक की पुत्री नीला को इसी रीति से सात सांड़ों को एक साथ पकड़कर स्वयंवर के नियम को जीतकर उसके साथ शादी किये थे। यह हरिवंश में आता है। यह दोनो नीला अलग-अलग हैं तो अष्टमहिषियों में बैठ नही पाती। दोनो को एक माने तो समय में फर्क आता है, काल व्यत्यास होता है। जगद्गुरु मध्वाचार्य अपने तात्पर्य निर्णय नाम के ग्रंथ में (२०-४७) एक ही नीला दो रूप में जन्म लेते हुये दो बार शादी की। पहिली नीला दुसरी निल में मिलकर एक हो गयी। विदुर ऐसे ही धर्मराजा में विलीन होता है। पहले नील को ही कई लोग राधा के नाम से पुकारे हैं। भागवत में राधा के नाम का प्रस्ताव नही है।

भगवान श्रीकृष्ण किसी की सहायता के बिना अकेले ही सात सांड़ों को मारने के लिये सात रूप धारण किये थे। स्वयंवर के नियम में राजा ने बताया था कि एक ही आदमी सातों को एक साथ बांधना। श्रीकृष्ण के सातों रूप राजा के नियम के विरुद्ध हुआ ऐसा संशय आता है। यहाँ नग्नजित संतोष से श्रीकृष्ण के विजय को मान लिया है। श्रीकृष्ण ने अपने योग बल से नियम के अनुसार जीत लिया है यह उसको संतोषदायक ही बना। हरिवंश में इसका स्पष्टीकरण मिलता है। सातों रूपों को धारण करने वाला एक ही होने से वहाँ एक ही इस शब्द का प्रयोग किया है इससे विरोध नही आता।

आनन्द और आश्चर्य से राजा नग्नजित ने अपनी पुत्री को श्रीकृष्ण को विवाह में समर्पित किया। अपने अनुरूप उस कन्या को प्रभु श्रीकृष्ण ने विधिपूर्वक स्वीकार किया ।। ५२ ।।

राजपत्नियों ने अपनी पुत्री को पति के रूप में भगवान श्रीकृष्ण को पाने से बहुत आनन्द पाया। वहाँ वैभवशाली विवाह उत्सव हुआ ।। ५३ ।।

यहाँ **लेभिरे** इस शब्द को दो बार लेते हुये सत्यधर्म जी अलग एक अर्थ लिखते हैं। **लेभिरम स्याद् उरूखले** इसका अर्थ राजपत्नियों ने सारे मिलकर विवाह के प्रारम्भ में करने वाले उखा और जाता का पूजन किया। इसी कारण यह कार्य स्त्रियों का ही कार्य होने से यहाँ केवल राज-पत्नियों का नाम लिया गया है।

शंख, भेरी, और नगाड़ा बजने लगे, गीत, वाद्य बजाये गये। ब्राह्मण आशीर्वाद मंत्र बोले। नर-नारी सुन्दर वस्त्र धारण करते हुये आभूषण पहनकर आनन्द से इधर-उधर फिरने लगे ।। ५४ ।।

राजा अपने दामाद को दस हजार गायों का दान दिये। तीन हजार युवा दासियों को सेवा के लिये भेजे, वे दासियाँ अच्छे वस्त्र पहनकर गले में सोने का आभूषण पहने थीं। कई हजार हाथी और उससे सौ गुना रथ और उससे सौ गुना घोड़ा, उससे सौ गुना यानी नव पद्म संख्या में पदाति सैन्य को दिया ।। ५५-५६ ।।

नव दम्पत्ति को रथ में बिठाकर प्यार भरे दिल से राजा ने उनकी विदाई की ।। ५७ ।।

युदकुल श्रेष्ठ भगवान श्रीकृष्ण दिये हुये सारे वस्त्रों को स्वीकारते हुये द्वारका आकर नीला के साथ विहार किये ।। ५८ ।।

भागवत में मित्रविंदा के बाद नीला का विवाह कहा गया है। किन्तु तात्पर्य निर्णय में (२०-४७) पहले नीला का विवाह बाद में (२०-४८) मित्रविंदा का विवाह बताया गया है। विवाह क्रम में भागवत की विवक्षा नही है। भागवत काल को आगे-पीछे करते हुये विषय रखता है।

श्रीकृष्ण इसके बाद भद्रादेवी के साथ विवाह किये। भद्रादेवी कैकय देश के राजा धृष्टकेतु की पुत्री है। श्रीकृष्ण की बुआ श्रुतकीर्ति उसकी माँ है। उनके भाई संतरदन इत्यादि श्रीकृष्ण को कन्यादान कर दिये ।। ५९ ।।

मद्र देश के राजा वृहतसेन की पुत्री लक्षणादेवी अत्यन्त सुसंपन्न और सुन्दर कुमारी थी। गरुड़ जैसे अमृत को जीतकर लाये वैसे लक्षणा देवी को श्रीकृष्ण जीतकर लाये ।। ६० ।।

भद्रादेवी का दूसरा नाम शैब्या है। भगवद्गीता में उसके पिता का नाम शैब्य कहा गया है। कैकय देश के होने के कारण भद्रा का नाम कैकयी भी है।

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण, रुक्मिणी, सत्यभामा, जांबवती, कालिंदी, नीला, मित्रविंदा, भद्रा, लक्षणा इस प्रकार आठ पत्नियों से विवाह किये।

इन अष्ट महषियों के अलावा भगवान श्रीकृष्ण को इन्ही के समान सौन्दर्य वाली हजारों (सोलह हजार) पत्नियाँ मिलीं। नरकासुर को मारकर उसके बंधन से उनको मुक्त करते हुये भगवान उनको द्वारका लाये ।। ६१ ।।

रुक्मिणी और सत्यभामा लक्ष्मी के श्री भू रूप हैं। बाकी के छ: महषियों में लक्ष्मी का आवेश है। उनमें जांबवती में ज्यादा आवेश है। ये छ: पत्नियाँ गरुड, शेष, रुद्र, और सौपर्णी, वारुणी, पार्वती इनके बीच में तारतम्य में मानी जाती है। अग्निपुत्र तप करके बद्रीनारायण के वर से अप्सरा स्त्री बनी। वे लक्ष्मी की आराधना करते हुये लक्ष्मी अंश बनकर गंधर्वो की राजकन्या होकर जन्म लिया। वे भगवान की सोलह हजार पत्नियाँ बनी। तारतम्य में पुष्कर के बाद सत्ताइसवाँ कक्षा में अजानज देवता के समान हैं। रमावेश से किंचित उत्तम है। गोपिका स्त्री इनसे दो गुण में वे कम होते हैं। उन सब ने कात्यायनी व्रत करते हुये श्रीकृष्ण को पति रूप में पाया। अन्य गोपिका स्त्री पूर्वजन्म में अप्सरा थीं। उनमें रमावेश होने के कारण श्रीकृष्ण उनको अंग संग दिए ।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में बासठवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तिरसठवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा पारीक्षित पुछते हैं - श्रीकृष्ण ने नरकासुर का कैसे संहार किया। नरकासुर के बंधन में रहने वाली स्त्रियों को कैसे मुक्त किया। श्रीकृष्ण के उस पराक्रम को हमें बताइए ।। १ ।।

नरकासुर भू-देवी के पुत्र रूप में जन्म लिया। वराह स्वामी रूप में जब भगवान भूमि का उद्धार कर रहे थे तब भगवान के शरीर से एक बूँद पसीना से नरकासुर जन्म लिया। भूमि पुत्र होने के कारण उसको वैष्णवास्त्र भी मिला था। ब्रह्मा जी से अवध्यत्वका वर भी वह पाया था। उसके पाँच मंत्री थे, पाँच अभेद्य किला थे। बहिर्दुर्ग, जलदुर्ग इत्यादि पाँच दुर्ग पार करके अन्दर आना बहुत कष्ट था। उसके मंत्री के नाम थे, पीठ, मुर, निकुम्ब, हयग्रीव और पंचजन। नरकासुर प्रथमत: त्वष्ट्रा की पुत्री कशेरूनाम की चौदह वर्ष की कन्या को अपहरण किया। बाद में गन्धर्व, देव, यक्ष, मानव, अप्सरा स्त्रियों को अपहरण करते रहा। कुल मिलाकर इनकी संख्या चौदह हजार एक सौ थी। नरकासुर अदिति देवी का अमृत बहाने वाली कुण्डलों का अपहरण किया था। नरकासुर आज के असम राज्य के कामरूप प्रदेश के प्रागज्योतिष् पुर नाम की राजधानी में रहता था। नरकासुर के रथ को आठ पहिये थे, वह चार सौ हाथ लम्बा-चौड़ा था। नरकासुर को सात पुत्र थे। ब्रह्मा जी के वर के कारण मुरपाश वैष्णवास्त्र और तीस अक्षौहिणी सैन्य उसके साथ थी।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा ! महाभाग्यशाली श्रीकृष्ण के द्वारका में वास करते समय स्वर्गलोक से देवेन्द्र आकर उनके समक्ष नरकासुर के उपद्रव के बारे में विज्ञापन किये। नरकासुर इन्द्र की रक्षा में रहने वाले वरुण के छत्र का अपहरण किया था। देवमाता अदिति के कुण्डल का अपहरण किया था, मंदर पर्वत के शिखर में एक मणि पर्वत को ले गया था। इसी कारण इंद्र दुःखित और व्याकुल चित्त हुए थे ।। २-३ ।।

श्रीकृष्ण इन्द्र का समाधान करते हुये सत्कार करने के बाद उनको वापस भेज दिए। इसके बाद वे सत्यभामा को साथ में लेकर गरुड़ के ऊपर चढ़कर नरकासुर के प्रागज्योतिषपुर को प्रयाण किए ।। ४ ।।

श्रीकृष्ण का सत्यभामा को अपने साथ लेने के लिये बहुत कारण हैं -

१. सत्यभामा के घर में श्रीकृष्ण जब थे उस समय देवेंद्र आकर नरकासुर वध के लिये उनसे प्रार्थना किए। सत्यभामा को स्वर्ग दिखाने के लिये साथ लिये।

२. रमा के भूरूप आवेश के पात्र भूदेवी का पुत्र नरकासुर है। सत्यभामा भूदेवी की अवतार रूप है। नरकासुर के प्रताप को सत्यभामा को दिखाना है। नरकासुर को जन्म देने वाले वराह भगवान भूदेवी को वर दिये थे। तुम्हारी अनुमति से ही तुम्हारे बेटे का वध करूंगा। इसके लिये उनकी सहमति के लिये भूरुप वाले सत्यभामा को साथ लिये।

३. रुक्मिणी और सत्यभामा श्रीलक्ष्मी के दो रूप है। लीला विनोद में वे सौतन मात्स्यर्थ को दिखाती हैं। एक बार रैवत पर्वत पर सारे राजाओं की महासभा में रुक्मिणी के साथ श्रीकृष्ण सिंहासन पर बैठे थे। उस समय नारद जी आकर रुक्मिणी का गुणगान करने लगे। स्वर्ग से लाये हुये पारिजात वृक्ष को उनको समर्पित किया। उसके साथ पारिजात की महिमा को बताये। रुक्मिणी का यह बोल-बाला देखकर सत्यभामा को क्रोध आ गया। श्रीकृष्ण उसको समाधान करते हुये स्वर्ग से पारिजात लाने का आश्वासन दिये थे। इसी के लिये सत्यभामा को अपने साथ ले गये।

४. अहं रूद्राय धनुरातनोमि, अंभ्रणीसूक्त में अंभ्रणी देवी कहती है कि लय काल में रूद्र को लय करने के लिये धनुष धारण करूंगी। उसके अनुसार सत्यभामा एकबार धनुष धारण करे इसके लिये उसको साथ लिए। रुक्मिणी भी धनुर्धरिण कर सकती हैं। किन्तु नरकासुर के सामने उसके माँ रूप वाली भामा को ही ले गये।

हिमालय के उन्नत शिखर में प्रागज्योतिषपुर बसा हुआ था। वह गिरिदुर्ग, शस्त्रदुर्ग, अग्निदुर्ग इत्यादि से घिरा हुआ था। ये सारे दुर्ग अपने से परस्पर दूर थे। इसके अलावा छः हजार मुपाश दुर्ग भी घिरे हुये थे ।। ५ ।।

गिरिदुर्ग प्रागज्योतिषपुर को चारों ओर पहाड़ के शिखर किले जैसे घेर कर उसकी रक्षा देते थे। शस्त्रदुर्ग का अर्थ होता है राजधानी के चारों ओर शस्त्र थे उनको नष्ट करने के बाद ही शत्रु अंदर प्रवेश कर सकते थे, जलदुर्ग का मतलब नगर के चारों ओर गहरे कंदकों में पानी भरा था। अग्निदुर्ग में सदाकाल आग जलती रहती थी। उसको पार करना असाध्य था। वायुदुर्ग में यंत्रों से आंधी और तुफान उत्पन्न होते थे। इनको पार करने के बाद भी इनके बीच में और नगर के बाहरी हिस्से में लोहे से बने हुए मुरपाश थे। उन पाश को लगा हुआ शस्त्र बहुत तीक्ष्ण धारा वाले होते थे।

नरकासुर के इस महानगरी को उसके सैनिक रक्षा करते थे। श्रीकृष्ण गरुड़ के कंधे के ऊपर बैठकर इन दुर्ग को अपनी गदा से चूरचूर किये ।। ६ ।।

इस प्रकार गिरि दुर्ग को पारकर शस्त्र दुर्ग को अपने बाणों से काट दिए। अपने सुदर्शन चक्र से मुरपाशों को भी काट डाले ।। ७ ।।

शंखासुर का पुत्र मुरासुर, नरकासुर के पाँच मंत्रियों में एक प्रधान मंत्री था। उसको मुरु भी कहते थे। उससे निर्माण किये हुये पाश को मरुपाश कहते है।

मुरुकेपाश में रहने वाले तीक्ष्ण धारा वाले खडग को श्रीकृष्ण अपने नंदक नाम के खडग से काट डाले। वायव्यास्त्र से जल दुर्ग को सुखा दिये। वारुणास्त्र से अग्निदुर्ग को एक ही निमिष में बुझा दिया। प्रलयकाल के वज्रपात के समान अपने पांचजन्य शंख से घोर आवाज किये। उस शंख ध्वनि को सुनकर बड़े ही धैर्यशाली असुरों का भी दिल दहल गया। तब सोया हुआ पाँच सिर वाला मुरासुर पानी से उठकर ऊपर आया ।। ८-९-१० ।।

मुर, पीठ, निकुंभ, हयग्रीव और पंचजन ये पाँच नरकासुर के आप्त मंत्री थे। वे सारे ब्रह्मवर पाए थे। नरकासुर को छोड़कर अन्य कोई उनको मार नही सकते थे। नरकासुर अपने को ब्रह्मदेव मानता था। इन पाँचों को लोकपालक बोलता था। मुरासुर जल स्तंभन विद्या जानता था। वह विश्राम के लिये पानी में सोया था। पाँचजन्य की आवाज को सुनकर वह उठकर ऊपर आया।

मुरासुर लयकाल के सुर के समान प्रकाशमान था। वह अग्नि के समान जलता था। उसको आँख उठाकर देखना भी कष्ट था। लगता था कि वह अपने पांचोमुख से तीनों लोकों को खाएगा। गरुड़ के ऊपर सांप के जैसे वह त्रिशूल लेकर श्रीकृष्ण के ऊपर आ पड़ा ।। ११ ।।

वह त्रिशूल को तीव्र गति से फिराते हुये गरूड़ के ऊपर फेक दिया। अपने पाँचों मुखों से वीर गर्जना किया वह ध्वनि अंतरिक्ष, भूमि, आकाश और दशों दिशाओं में भर गयी। वह महानाद ब्रह्माण्ड में भर गया ।। १२ ।।

गरुड़ के ऊपर गिरने वाले उस त्रिशूल को श्रीकृष्ण ने दो बाणों से काट दिया। मुरासुर के खुले मुँहों को बाणों से भर दिया। वह असुर क्रोधविष्ट होकर श्रीकृष्ण के ऊपर अपने गदा को फेक दिया ।। १३ ।।

श्रीकृष्ण अपनी तरफ आते हुये उस गदा को अपनी गदा से टुकड़े-टुकड़े कर दिये। इसको देखकर असुर भागने लगा तो श्रीकृष्ण ने अपने चक्र से नीलजाल से असुर के पाँचों सिरों को काट डाले ।। १४ ।।

इन्द्र के पराक्रम से जैसे पर्वत अपने पंखों को खोकर गिर गया वैसे ही असुर सिर काटने के बाद पानी में गिर गया। इस प्रकार मुरासुर के मर जाने के बाद देवतागण आनन्द से श्रीकृष्ण के ऊपर पुष्प वृष्टि किए।। १५।।

उसी दिन से श्रीकृष्ण मुरारी नाम से प्रसिद्ध हुये। इसके बाद श्रीकृष्ण पीठ, निशुंभ, हयग्रीव और पंचजन को मार डाले। यह कथा हरिवंश में आती है।

ध्रुव, चरीष्णु, श्रवण, विभावसु, नभ, वसुस्वान और अरुण ये सात मुरासुर के पुत्र हैं। पिता के मरण से वे दुःखित होकर क्रोध के साथ रणरंग में युद्ध करने आये।। १६ ।।

नरकासुर से भेजे हुये ये सारे मंत्रीपुत्र घोड़े और बैल के रथ में बैठकर युद्ध क्षेत्र में आए वे क्रोध से अपने धनुष से श्रीकृष्ण के ऊपर बाण छोड़े। अपने तीक्ष्णधारा वाले खड्ग, शूल, यष्टी और शक्तिआयुधों का प्रयोग श्रीकृष्ण के ऊपर किए।। १७ ।।

मुर के पुत्रों के साथ अन्य चार मंत्रियों के पुत्र भी युद्ध क्षेत्र में युद्ध करने आये वे कुल सात हजार थे। उनमें प्रमुखों को श्रीकृष्ण मारे। अन्यों को गरुड़ ने मार दिया।

अमोघ पराक्रमी भगवान श्रीकृष्ण उनके सारे शस्त्रों को चूरचूर करते हुये आगे आये हुये मंत्री पुत्रों को उनके अवयवयो को अलग-अलग करते हुये सबको यमसदन भेज दिए।। १८ ।।

तब नरकासुर के सैनिक उनके राजा के पास दौड़कर मंत्री पुत्रों के मरण के समाचार को बताए।। १९ ।।

अपने सेनापति और मंत्री श्रीकृष्ण के बाण से मारे गये, यह समाचार सुनकर भुपूत्र नरकासुर जल्दी में घर के ऊपर चढ़कर देखने के बाद हाथियों के सैन्य को लेकर युद्ध करने के लिये चला ।। २० ।।

महालक्ष्मी के भूरूप से आविष्ट पृथ्वी भूताभीमानिनी धरादेवी का पुत्र नरकासुर है। वराहरूपी श्रीहरि के भूमि को ऊपर उठाते समय उनके स्पर्श से धरणीदेवी के पेट से नरकासुर का जन्म हुआ। यह विष्णुपुराण का वाक्य है। (५-२९-२३) इसी कारण उसको भौमासुर भी कहते हैं। ब्रह्मदेव के वर बल से और वायु के आवेश से वह भूमि और स्वर्ग में रहने वाले सारे रत्नों को और सोलह हजार एक सौ स्त्री रत्नों को भी अपहरण कर ले आया। उन स्त्रियों को हिमालय के उन्नत शिखर मणी पर्वत में अलका अथवा औदका नाम के प्रत्येक नगर को निर्माण कर वहाँ पर बंधक बनाकर उनको रखा था। अपने दस पुत्रों को उनकी रक्षा में नियोजन किया था। वे ऋतुमती न हुये अभी कन्याएँ थीं। (विष्णु पर्व ६३-११) एक बार नारद जी ने आकर उन कन्याओं से कहा कि श्रीकृष्ण आकर नरकासुर को मारकर उनका उद्धार करेंगे। तभी से वे सारे एक वेणी होकर गेरुवाँ कपड़ा पहनकर इंद्रिय निग्रह करते हुये तीव्र तप

किया। उससे सन्तुष्ट होकर भगवान श्रीकृष्ण उनको विमोचन करने के लिये आये।

हजारों रथ, हाथी, और घोड़ा सैन्य के साथ नरकासुर युद्ध क्षेत्र में आया ।। २१ ।।

श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ गरुड़ के ऊपर बैठे थे। सूर्य के ऊपर दिखने वाले विद्युत से युक्त मेघ के समान शोभायमान थे। वे चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और धनुष धारण किये थे। नरकासुर ने उनको युद्ध का आह्वान दिया ।। २२ ।।

काले मेघ के समान नरकासुर हाथी के ऊपर बैठकर आया। उसको देखकर श्रीकृष्ण ने अपना पाँचजन्य शंख बजाया ।। २३ ।।

नरकासुर की अजेय सैन्य ने श्रीकृष्ण के ऊपर बाणों की वर्षा किया। नरकासुर ने शतघ्नी नाम के लोहे के शक्त्यायुध को श्रीकृष्ण के ऊपर फेक दिया। श्रीकृष्ण इससे बहुत पीड़ित हुये।। २४ ।।

शतघ्नी नाम के अमोघ अस्त्र को ब्रह्माजी ने नरकासुर को दिया था। यहाँ श्रीकृष्ण ने उस अस्त्र को खा लिया। उसके श्रम से मूर्छित के समान रथ में सो गये। भगवान श्रीकृष्ण ब्रह्मवर से अभेद्य दुर्गों का नाश किये थे। ब्रह्मवर से अवध्य मंत्रियों को भी मारे थे। इससे नरकासुर की ब्रह्मवर के ऊपर का विश्वास चला जाता था। इसके लिये भगवान श्रीकृष्ण ब्रह्मवर से प्राप्त उस शतघ्नी आयुध से मार खाकर मूर्छित जैसे नटना किये। उसी समय अपने शांर्ग धनुष को सत्यभामा को दिया। सत्यभामा ने उस धनुष को लेकर एक क्षण में नरकासुर के रथ और आयुधों का नाश किया। श्रीकृष्ण इसे देखकर उसकी स्तुति करते हुये अपने एक गले के हार को भामा को बहुमान के रूप में दिए। यह हार बलि अपने यज्ञ में भगवान को समर्पित किये थे। रुक्मिणि को यह हार न देते हुये अपने को दिये है इससे भामा गर्व का अनुभव करने लगी, यह कथा हरिवंश में आती है। इस पूरी कथा को भागवत **विव्यथे** इस एक शब्द से सूचित करती है।

बाद में नरकासुर से छोड़े हुये असंख्य बाणों को श्रीकृष्ण ने अपने एक ही बाण से काट डाल यह बहुत अद्भुत था ।। २५ ।।

हे राजा ! बाद में श्रीकृष्ण ने अपने चित्रविचित्र तीक्ष्णधारा वाले बाणों के समूह से अश्व, गज युक्त शत्रु सैनिकों के हाथ, पाव, सिर काट डाले ।। २६ ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में तिरसठवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौसठवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा ! गरुड़ जब अपने पंखों से हाथियों को मार गिराने लगे तब आक्रोश से शत्रुयोद्धाओं ने गरुड़ के ऊपर बैठे श्रीकृष्ण के ऊपर शस्त्र और अस्त्रों की वर्षा की। श्रीकृष्ण उन बाणों को एक को भी न छोड़ते हुये अपने तीक्ष्ण बाणों से सबको काट दिए ।। १ ।।

गरुड़ अपनी चोंच और नखों से घोड़े और हाथियों को मारता रहा। इससे अति बलशाली हजारों घोड़े और हाथी मरकर जमीन पर गिर पड़े ।। २ ।।

अपने सैन्य को गरुड़ नाश कर रहा है इसको देखकर नरकासुर सामने आकर इन्द्र अपने वज्रायुध से जैसे पहाड़ों को मारते हैं वैसे अपने शक्त्यायुध से गरुड़ को जोर से मारा ।। ३ ।।

नरकासुर के सैन्य के एक चर्तुथांश भाग की गरुड़ ने नाश किया। शेष सैन्य डरकर भागने लगी।

नरकासुर के मार से गरुड़ को कुछ नही हुआ। हाथी को फूल माला से मारे तो जितना दर्द होता है गरुड़ को उतना ही हुआ ।। ४ ।।

तब नरकासुर अपने धनुष को उठाकर श्रीकृष्ण के ऊपर बाणों की वर्षा की। उन सारे बाणों को श्रीकृष्ण ने आसानी से अपने बाणों से काट डाले ।। ५ ।।

नरकासुर अर्द्ध चंद्राकार के बाण को अपने धनुष में चढ़ाने लगा। श्रीकृष्ण उसके धुनष को ही काट डाले ।। ६ ।।

नरकासुर अपने लोहे के बड़े गदा को उठा लिया। भगवान श्रीकृष्ण उसको अपने बाणों से चकनाचूर किए ।। ७ ।।

शत्रु के सैन्य का नाश करने वाले अपने तीक्ष्ण धार वाले परशु को उठाकर नरकासुर ने श्रीकृष्ण के ऊपर फेंका। उसको श्रीकृष्ण अपने खड्ग से काट डाले ।। ८ ।।

शत्रुवीर संहारक नरकासुर ने श्रीकृष्ण के ऊपर एक ही बार में एक साथ पचहत्तर भालाओं को फेंका ।। ९ ।।

भगवान श्रीकृष्ण इन सारे भालाओं को अपने एक ही बाण से एक साथ काट डाले। यह बहुत अद्भुत कार्य था ।। १० ।।

नरकासुर बड़े हाथी पर बैठकर श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करते रहे। वह श्रीकृष्ण को मार डालने

का प्रयत्न बहुत साहस से किया। लेकिन उसके सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए। श्रीकृष्ण केवल नरकासुर के अस्त्र-शस्त्रों को काटते रहे। नरक के ऊपर अभी तक वे एक बाण भी नही छोड़े। यह युद्ध उनके लिये एक खेल था। नरकासुर क्रोध से श्रीकृष्ण को मारने के लिये अपने महाशूल को उठाया। उसको फेकने के पहले श्रीकृष्ण ने अपने तीक्ष्ण धारा वाले चक्र से उसके सिर को काट दिया ।। ११ ।।

इसके पहले नरकासुर अपनी गदा को श्रीकृष्ण के ऊपर प्रयोग करता है। उससे भी श्रीकृष्ण को कुछ भी नही होता, तब नरकासुर शताग्नि नाम के अपने अस्त्र को भगवान के ऊपर मारता है। उसको भगवान श्रीकृष्ण अपने मुख में निगल लेते हैं। उससे कष्ट हुआ ऐसा दिखाते हुये भगवान श्रीकृष्ण मुर्छित जैसे रथ में सो जाते हैं। इसको देखकर सत्यभामा शार्ङ्ग धनुष को अपने हाथ में पकड़ कर नरकासुर के साथ युद्ध करने लगी। थोड़े समय के लिये विश्राम लेकर भगवान पुन; धनुष अपने हाथ में लेते हैं और सत्यभामा की प्रशंसा करते हैं। बाद में क्रोध दिखाते हुये नरकासुर के सिर को अपने चक्र से काट डालते हैं।

कुंडलों से और सुन्दर किरीट से शोभायमान नरकासुर का शरीर जमीन के ऊपर गिरकर वहाँ के जमीन को शोभा दिया। राक्षस लोग हाहाकार किये। ऋषिगणों ने स्तुति किया। देवताओं ने फूल-माला अर्पण करते हुये श्रीकृष्ण का गुणगान किया ।। १२ ।।

वहा दैत्य नरकासुर को श्रीकृष्ण ने मार डाला। यह देखकर नगर के प्रमुख लोग उनको नगर में आने के लिये निमंत्रण दिए। भगवान श्रीकृष्ण लोकपालक मरु देवता के साथ पत्नी मामा को लेकर, प्रागज्योतिषपुर को देखने के इच्छा से नगर प्रवेश किये ।। १३ ।।

नरकासुर में जीव द्वयका आवेश था। नरकासुर की माँ भूदेवी श्रीकृष्ण का स्वागत करने आयीं तब भूदेवी को श्रीकृष्ण कहते हैं -

त्वत् प्रभावाच्च ते पुत्रौ लब्धवान् गतिमुत्तमाम् ।

श्रीकृष्ण की इस बात से दो अर्थ निकलते हैं। उत्कृष्टतम वाला अंध:तम लोक दुर्जीव को उत्तम सत्य लोक उत्तम जीव को मिला। वायुदेव को अगले कल्प में सत्यभामा ब्रह्मा जी बनाने वाली हैं यह सुनिश्चित है इसके लिये यहाँ लब्धवान इस प्रकार भूतकाल का प्रयोग किया है।

हे राजा ! भगवान श्रीकृष्ण उस नगर में सुन्दर मणि पर्वत को देखे। अमृत वर्षा करने वाले सुंदर वरूण छत्र को देखे ।। १४ ।।

श्रीकृष्ण मणि पर्वत को स्वयं इन्द्र को दे दिये। वरुण को अपने दूतों से वरुण छत्र भेज दिये ।। १५ ।।

मणिपर्वत और वरुण छत्र को श्रीकृष्ण गरूड़ के ऊपर रखकर स्वर्ग को लेकर चले। वहाँ मणि पर्वत को स्वयं इन्द्र को सौंप दिये। छत्र को दूतों के साथ वरुण को भेजे। यह विष्णु पुराण का वचन है। (५-३०-१)।

देवताओं को बाहर छोड़कर श्रीकृष्ण अकेले इन्द्र भवन के समान दिखने वाले नरकासुर के राजगृह में प्रवेश किये ।। १६ ।।

तब धरादेवी ने श्रीकृष्ण के पास आकर नरकासुर द्वारा लाए हुए हीरा, मोती और सोने से निर्मित अदिति के कुण्डलों को श्रीकृष्ण को अर्पण किया। उसके साथ अपना शूल भगदत्त नाम के पौत्र को समर्पित किया। वैजयन्ती नाम के मालार्पण करते हुये देवोत्तमों से पूजित इस जगत के स्वामी श्रीकृष्ण को हाथ जोड़कर नमन करते हुये भक्ति से, नम्र हुये मन से स्तुति करने लगी ।। १७-१८ ।।

भूदेवी कहती है - हे देवताओं के देवता, ब्रह्मादियों के स्वामी, शंख, चक्र और गदा धारण करने वाले, भक्तों की इच्छा के अनुसार अवतार लेने वाले भगवान आपको मेरा नमस्कार ।। १९ ।।

कमलनाभ को मेरा नमन, कमलकी फूल माला को पहनने वाले आपको मेरा नमन, कमल के समान आँख वाले आप को मेरा नमन, कमल के समान पाद वाले आपको पुनः नमन ।। २० ।।

हे परमपुरुष जगदादिकारण, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, भगवान वासुदेव आपको मेरा नमन ।। २१ ।।

आपको जनन नही है, आप इस जगत की सृष्टि के कारण बने हैं। आप गुणपूर्ण और अनन्त शक्ति वाले हैं। इस जीव जड़ात्मक जगत के आप स्वामी हैं। हे जगदीश परमात्मा आपको नमन ।। २२ ।।

हे जगन्नाथ, हे प्रभु, आप इस जगत की सृष्टि करने के लिये जब चाहते हैं तब कार्योन्मुख रजो गुण का उपयोग करते हैं, लय करने की इच्छा किये तो तमों गुण को कार्योन्मुख करते हैं। उसी प्रकार इस जगत के पालन के लिये सत्व गुण का प्रयोग करते है। जीवों को उनके अदृष्ट के अनुसार आप फल देते है। अपार महिमा वाले आप पुरुषोत्तम हैं ।। २३ ।।

भगवान मैं (पृथ्वी) आप, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्रायें, देवताएँ, मन और इन्द्रियों के अभिमानी देवताएँ, अहंकाराभिमानी रूद्र महत्तत्वाभिमानी चर्तुमुख ब्रह्म, सृष्टि करने वाले ये सारे आपके वश में रहते हैं। यह जगत चक्र परिवर्तन भी आपके ऊपर अवलंबित है ।। २४ ।।

एक वस्तु एक समय में किसी एक के अधीन होकर रहता है। किन्तु यहाँ वैसा नही है। इस जगत के सारे व्यापार भगवान के अवलंबन में हैं, आश्रय में हैं।

यह मेरा पौत्र तथा नरक का पुत्र है। आपकी शरण में आया है। शरणागतों के दुःख को निवारण करने वाले आपके पास आया है। आपके पद कमल के पास आए हुए इसकी रक्षा आप ही करें। अपने पाप परिहारक करकमलों को इसके सिर के ऊपर रखिये ।। २५ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - इस प्रकार भूदेवी भक्ति से झुककर भगवान की वाङ्मय पूजा की। इससे संतुष्ट होकर भगवान भगदत्त को अभय दिये ।। २६ ।।

भगवान भगदत्त को उसके पिता के किरात राज्य का राजा बनाया। वहाँ के मंत्रियों को उन्हीं स्थानों में नियुक्त किया। बाद में नरकासुर ने स्त्रियों को जहाँ बंधन में रखा था उस भवन में प्रवेश किया ।। २७ ।।

विष्णु पुराण कहता है - वे कन्यायें सोलह हजार एक सौ थीं। ये सारी कन्या चौदह,

पंद्रह वर्ष वाली थीं और वे ऋतुमती नही थी। (उन दिनों सोलह वर्ष के पहले स्त्री ऋतुमती नही होती थी, आजकल नौ-दस वर्ष वाली लड़की ऋतुमती होने लगी।) **अक्षता: सद्व्रतस्था:** वे सारी कुवांरी थीं, और व्रतस्थ थीं यह अभिप्राय महाभारत तात्पर्य निर्णय का है (२०-११२)

वहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने नरकासुर द्वारा आक्रमण करके अपहरण कर लाए हुए सोलह हजार राजकुमरियों को देखे ।। २८ ।।

त्रेतायुग में भगवान श्रीराम अपनी पत्नी सीता जी को बाल्मीकि के आश्रम में छोड़ने के बाद सोलह बार यज्ञ किये। उस समय सीता जी के सोने के स्त्री प्रतिमा रखते हुये यज्ञ किये। उसके फलस्वरूप सोने के रंग वाले अग्नि पुत्र सोलह हजार स्त्री बनकर भगवान से विवाह किये। यह कथा आनन्द रामायण में आता है।

ये सारी कुमारियाँ नवयौवन भरीथीं थे। स्वयं अलंकार धारण किये थीं, सुन्दरी थीं। श्रीकृष्ण को देखकर वे सभी मोहित हुईं ।। २९ ।।

ये सारी कुमारियाँ नवयौवन को पाने वाली थी। अभी भी बड़ी नही हुई हैं। गेरुये कपड़े में भी वे सुन्दर लगती थीं। यहाँ राजकन्या शब्द का प्रयोग है। वे सारे देव, सिद्ध और असुर कन्या थीं। वे राजाओं के घर में जन्म ली थीं। श्रीकृष्ण को देखते ही उनमें पति भाव उत्पन्न हुआ। नारद जी उनको पहले ही कहे थे कि भगवान श्रीकृष्ण आकर उनको बन्धन से मुक्त करेंगे और उनसे विवाह करेंगे। यह विष्णु पुराण का वचन है। (५-२९-९)

वे सारे आपस में बोलने लगीं कि हमारे अदृष्ट के वश से भगवान हमें मिले हैं। ये ही हमारे पति बने। इस प्रकार बोलते हुये वे अपने मन से श्रीकृष्ण का वरण किये ।। ३० ।।

ऐसे सर्वेश श्रीकृष्ण में अपने मन रखने वाली उन स्त्री समूहों को भगवान श्रीकृष्ण ने सुन्दर, शुद्ध वस्त्र और आभूषणों को देकर उनको द्वारका भेज दिये ।। ३१ ।।

नरकासुर की महाधनराशि को ऊँट और गधे के ऊपर लादकर द्वारका भेजे, महाकोश को रथ में भरकर द्वारका भेज दिये। चार दांत वाले ऐरावत के कुल के हाथियों को द्वारका भेजे ।। ३२ ।।

नरकासुर के पास चौसठ सफेद रंग वाले बड़े बड़े हाथी थे। उसमें सुप्रतीक नाम के हाथी को भगदत्त को देकर अन्य सारे हाथियों को द्वारका भेजे ।। ३३ ।।

आँठ दिग्गजों में सुप्रतीक भी एक है। वह ईशान्य दिशा का हाथी है। ईशान्यदिकपालक शिव उस हाथी को अपने मित्र कुबेर को दिये थे। नरकासुर उसका अपहरण कर अपने पास ले आया था। उसको पाने के लिये कुबेर ने नरकासुर का पुत्र भगदत्त होकर जन्म लिया। श्रीकृष्ण इसको जानते थे। वे भगदत्त को नरकासुर के सिंहासन पर बैठाते हुये उस सुप्रतीक हाथी को उसको दे दिये।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में चौसठवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पैसठवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा परिक्षित ! सुनो, दानवांतक भगवान श्रीकृष्ण असंत दुष्ट दानव नरकासुर को मारकर गरुड़ के कंधे के ऊपर बैठकर प्रागज्योतिषपुर से बाहर निकले ।। १ ।।

वे देवमाता अदिति की वन्दना करने के लिये आकाश मार्ग में चलते हुये सत्यभामा के साथ स्वर्ग को गये ।। २ ।।

स्वर्गद्वार के पास आये हुये विष्णु अपने महास्वर वाले शंख को बजाए। उसको सुनकर देवतागण अर्घ्य पाद्य लेकर उनके सामने आये ।। ३ ।।

नरकासुर के भय से मुक्त हुये देवताओं ने भक्ति से नम्र होकर श्रीकृष्ण की पूजा की। उनकी पूजा को स्वीकारते हुये भगवान श्रीकृष्ण दिव्य और मनोहर स्वर्ग के अंदर प्रवेश किये ।। ४ ।।

स्वर्ग में देवेन्द्र शची के साथ आकर श्रीकृष्ण को दिव्य, मंगल रत्नाभरण और गंध मालाओं को अर्पण करते हुये उनकी पूजा की ।। ५ ।।

बाद में श्रीकृष्ण माँ अदिति के भव्य भवन को भामा के साथ चले। अपने पुत्र श्रीकृष्ण को देखकर अदिति ने आनन्द से उनका उपचार किया ।। ६ ।।

श्रीकृष्ण अदिति को नमस्कार किए। बहुत समय के बाद आये हुये श्रीकृष्ण को प्रीति और आशीर्वाद युक्त उपचार किये ।। ७ ।।

हे राजा परीक्षित ! श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार भामा सास के पावों में कुण्डलों को रखते हुये नमस्कार की ।। ८ ।।

कश्यप की पत्नी अदिती देवी अपने कुण्डल वापस पाकर संतुष्ट होकर बहू का आलिंगन किया। आनन्द वाष्प बहाते हुये बोली ।। ९ ।।

हे मंगलांगी ! तुम मेरी प्यारी हो ! मेरा अनुग्रह सदाकाल तुम्हारे साथ हो। तुमको वृद्धत्व न आये, तुम कुरूपी न बने। पति के साथ कभी विरस न हो ।। १० ।।

जगत के माता-पिता श्रीकृष्ण सत्यभामा को न पहचानते हुये अदिति उनको अपना पुत्र और बहू मानते हुये आशीर्वाद देती है। देवता भी विष्णु माया से मोहित होते है।

अदिति से इस प्रकार आशीर्वाद पाकर सारे देवताओं से विदाई लेते हुये श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ गरुड़ के ऊपर चढ़कर यात्रा आरम्भ किये ।। ११ ।।

देव और देवी को कंधे के ऊपर लेकर गरुड आकाश मार्ग में चल रहा है। बीच में कृष्ण-भामा सुन्दर नंदनवन को देखे। वह परिमल युक्त वन शची-पति को बहुत प्रिय था। देवभट उसकी

रक्षा करते थे।। १२।।

दिव्य सुगन्ध वाले सुन्दर फूलों से युक्त नंदनवन को देखकर भामा श्रीकृष्ण का हाथ पकड़कर बोलती है - हे भगवान ! हम एक मुहुर्त पर्यन्त इस वन में विहार करें, मेरी इच्छा विहार करनी है।। १३।।

भामा की बात को मानते हुये भगवान गरुड़ के कंधे से उतरकर इन्द्रभट से रक्षित नंदनवन में प्रवेश किए।। १४।।

वहाँ मदमत्त मधुकर गुंजन करते थे। पूरा वन पुष्पों के पराग से आवृत्त था। फल के भार से झुके हुये दिव्य वृक्षों को भगवान ने वहाँ देखा।। १५।।

वे वृक्ष हवा से हिलते थे। वृक्ष के पल्लव हवा से चलकर चामर चलाते हैं ऐसे लगते थे। पक्षी कूंजते थे। उन वृक्षों के बीच में संचार करती हुई भामा वहाँ पारिजात महावृक्ष को देखी। आश्चर्य से भरी हुयी आँखों से देखते हुये श्रीकृष्ण से पूछती है - हे भगवान ! ये कौन सा वृक्ष है ? तीनों लोकों में ऐसा वृक्ष और नही है यह आश्चर्य है।। १६-१७।।

इस वृक्ष के फल को पाने वाले सही रूप से धन्य हैं। इसके मूल मूंगा से बने हैं। इसका कांठ (मध्य भाग) सोने का है, पत्ती इन्द्र नील मणि है, फूल माणिक्य से बने हैं, फल मोती के हैं, नीचे गिरे फूल गोमेद बन गये हैं, केसर वज्र के समान शोभायमान है, चमकने वाले जैसे सैकड़ों टहनियों से विराजमान है।। १८-१९-२०।।

इसका मंतव्य यह है कि पारिजात वृक्ष नवरत्न मय है। नवग्रहों की पूजा के लिये नवरत्नों का फूल चढ़ाना पड़ता है। किन्तु एक पारिजात के फूल को चढ़ाए तो सारे नवरत्नों को चढ़ाने का पुण्य आता है। पारिजात में कमल का फूल भी लभ्य है, मंदार भी लभ्य है। ये फूल वर्ष के सारे दिनों में लभ्य हैं। ये फूल सूखते नही, वर्ष गुजरने के बाद भी वही गंध और वही वर्ण रहता है। रात में दीप के समान प्रकाश देता है। यह फूल संतान का भाग्य देता है, भूख और प्यास को मिटाता है। हरिवंश विष्णु पर्व में (६५-२०-२१) पारिजात फूल का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

समुद्र मंथन के काल में पारिजात का जन्म हुआ। इसको मन्दार वृक्ष भी बोलते हैं। यह वृक्ष सारी इच्छाओं को पूर्ण करता है। इसका फूल इच्छित सुगन्ध देता है। शीतकाल में उष्णता देती है। उष्ण काल में शीतल करती है। इस एक ही वृक्ष में जो जो फूल चाहते हो, वे सारे फूल इनसे मिलते हैं। इसके फूल को धारण करने वाले के मन में दुष्ट विचार नही आता है। इसको पार्वती, अदिति, शची, सावित्री, लक्ष्मी, आदि देव पत्नी धारण करती हैं। एक बार इसको धारण करने वाले एक वर्ष तक इसके फल पाते हैं। यह विष्णु पुराण में है।

सत्यभामा बोलती है - हे जगन्नाथ ! यह वृक्ष मेरे मन को खींच रहा है प्रभु यदि आप मेरे से प्यार करते है तो मेरे लिये इस वृक्ष को हमारे साथ ले चलें।। २१।।

हे पापरहित श्रीकृष्ण ! इस वृक्ष को आप हमारे घर में लगाये। मैं उसकी छाया में बैठी रहती हूँ। उस समय आपकी अन्य पत्नियाँ मेरी सौतने देखकर समझ ले कि मैं ही आपको सबसे प्यारी हूँ।। २२।।

अपनी प्यारी पत्नी भामा की बातों को सुनकर भगवान बोलते हैं - हे सत्या ! इस वृक्ष को

इस नंदनवन के बाहर ले जाना मना है ।। २३ ।।

पूर्वकाल में देव-दानव मिलकर क्षीर समुद्र का मंथन किए। उस समय यह वृक्ष उत्पन्न होकर ऊपर आया। समुद्र से उत्पन्न वस्तुओं के फलनुभवी सारे देवताओं ने इसको इंद्र को दे दिया ।। २४ ।।

हे कमलनयना ! मैं धर्मज्ञ हूँ। अपने मित्र इन्द्र की अवज्ञा करते हुये इस श्रेष्ठ वृक्ष का अपहरण करना सही नही होता ।। २५ ।।

हे सुन्दर मुखवाली ! इस वृक्ष को लेकर चलने से देवताओं के साथ बड़ा युद्ध करना पड़ता है ।। २६ ।।

श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर भामा बोलती है - हे कंसमर्दन आप असत्य बोलकर मुझको डराना चाहते हैं क्या ? आपसे क्या अशक्य है ? ।। २७ ।।

मैं शची के घर गई थी। घमंडी वह घर आयी मेरो सत्कार नही की। उसको इस वृक्ष का धमण्ड है, अपने पति के शौर्य के बारे में गर्व है ।। २८ ।।

सत्यभामा भूलोक से आयी है, मानव है। इसी कारण वह पारिजात फूल पहनने योग्य नही है। स्वयं उन फूलों को पहनकर भी भामा को एक भी फूल नही दी। भागवत के अनुसार यह दुराचार होता है ।

हे नाथ ! अच्युत, यदि आपको मैं प्यारी लगती हूँ तो इस वृक्ष को हमारे साथ लेना ही होगा। एक बार बोल दीजिए, आप मुझसे प्यार नही करते हैं तो मैं आपसे किसी वस्तु के लिये जिद नही करूँगी, आपको कष्ट नही दूँगी ।। २९ ।।

यहाँ अच्युत और यमच्युत इन दो शब्दों को सत्यभामा भगवान को सम्बोधन करते हुये प्रयोग करती है। यदि आपको देवताओं के साथ युद्ध करना पड़ता है ऐसे कहते हैं तो आप अच्युत हैं, आपको युद्ध से क्या होने वाला है, यह अर्थ निकलता है। यमच्युत शब्द से इस वृक्ष को मैंने ही इन्द्र को दिया हैं, उसको हम ही छीन लें तो पाप होता है। ऐसा आप करे तो यम बाधा की भय आपको होने वाला है। ऐसा अर्थ यमच्युत शब्द को पंचमी विभक्ति अर्थ किये तो होता है।

सत्यभामा के इन बातों को सुनकर श्रीकृष्ण वनरक्षकों को अलक्ष करते हुये पारिजात वृक्ष को उठाकर गरुड़ के ऊपर चढ़ा दिये ।। ३० ।।

वन के रक्षक श्रीकृष्ण के इस कार्य को मना किये। उनमें एक-दो देवेन्द्र के पास जाकर इसके बारे में बोलने के लिये दौड़े ।। ३१ ।।

वनपालक कहते हैं - हे कृष्ण, देवतागण इस वृक्ष की पूजा करते हैं, आप इसको नहीं ले जा सकते। लेना चाहते हो तो उसके फल को भोगना पड़ता है ।। ३२ ।।

हे कृष्ण ! इस वृक्ष को लेकर आप अपने नगर पहुँच नही पाते। आपके पीछे वज्रयुध लेकर देवेन्द्र आक्रमण करेगा। ।। ३३ ।।

इधर देवेन्द्र के पास गए वनरक्षक शचि के साथ बैठे हुये इन्द्र से कहते हैं ।। ३४ ।।

वनरक्षक बोलते हैं कि सारे देवताओं को, आपको और शची को अलक्ष्य करते हुये श्रीकृष्ण की पत्नी सत्यभामा पारिजात महावृक्ष को ले गयीं ।। ३५ ।।

हे देवेन्द्र ! हम कई तरह से मना किये किन्तु अपने पति के पराक्रम को बोलने वाली श्री

हरिप्रिया हमको डाटते हुये वृक्ष को ले चलीं ।। ३६ ।।

श्री शुक मुनि जी कहते हैं - इस अप्रिय समाचार को सुनकर देवेन्द्र बाजू में बैठी शची की ओर देखे। डंडे से मारे हुये सर्प जैसे पराभव को सहन न करने वाले देवेन्द्र फुत्कार किये ।। ३७ ।।

युद्ध का घोष किया गया। लोकपालकों के साथ बड़ा सैन्य लेकर युद्ध करने चले ।। ३८ ।।

चार दांतवाले श्रेष्ठ ऐरावत के ऊपर बैठकर वज्रायुध को धारण किया हुआ देवेन्द्र आगे आगे चले। देवतागण उनके पीछे गये ।। ३९ ।।

अग्निदेव कवच धारण करते हुये बकरी के ऊपर बैठकर शतघ्नि नाम के भयानक आयुध को लेकर युद्ध के लिये चले ।। ४० ।।

यमराज यमदंड को लेकर भैसा के ऊपर चढ़कर मृत्युकाल इत्यादि को साथ लेकर युद्ध के लिये इन्द्र के पीछे गये ।। ४१ ।।

हे राजा महाबाहु, महातेजस्वी निऋती भी खड्ग धारण करते हुये भयावह मनुष्य के ऊपर चढ़कर युद्ध के लिये निकले ।। ४२ ।।

भयकारक आकार वाले मगर के ऊपर चढ़कर वरुणपाश को हाथ में पकड़ा हुआ वरूण तीव्र गति से युद्ध करने हेतु इन्द्र के पीछे गये ।। ४३ ।।

वायुदेव कवच पहनकर शूल को लेकर कृष्णमृग के ऊपर चढ़कर चक्रधारी कृष्ण के साथ युद्ध करने इंद्र के पीछे चले ।। ४४ ।।

यह वायु मुख्य वायु नही हैं, किन्तु उनके पुत्र हैं। यह वायव्य दिशा के अधिपति हैं। अपने में थोड़ा सा असुरावेश होने के कारण श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने आए हैं। मुख्य वायु को कभी भी असुरावेश होता नही। रुद्रादि सारे लोकपालक और सारे देवतागण असुरवेश के कारण श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करके हार जाने के बाद सही होश में आये ।।

कुबेर चार लोगों से ढोयी जाने वाली पालकी में बैठकर मुद्गर नाम के शस्त्र को पकड़कर युद्ध करने के लिये समावेश हुये ।। ४५ ।।

शिव ऊँचे नंदी के ऊपर बैठकर शूल को धारण कर कोटि-भूतगणों के साथ इंन्द्र के साथ चले ।। ४६ ।।

भेरी, शंख, मृदंग, पणव, आनक, गोमुख इत्यादि दिव्य वाद्य, सोने की तुहुरी और कासा के मजीरे को बजाते हुये, रथों के **निस्वदन** घोड़ों के **हेषाख** के साथ हजारों देवतागण सिंहनाद किए, जंघा और बाहू को मारते हुये युद्ध को आह्वान देने वाले भयकारक गर्जना किये। ठहरो-ठहरो कहा जाता है, भागो मत, हम छोड़ने वाले नही है। इस रीति से बार बार बोलते हुये शस्त्रों को चलाते हुये एक के सामने एक दौड़ते हुये आगे आगे बढ़े। उनके साथ मिलकर लोकपालक भयावह धनुष टंकार और सिंहनाद करते हुये सिंह के साथ युद्ध करना चाह रहे सियार के समान श्रीकृष्ण को सामना करने बढ़े ।। ४७-४८-४९-५०-५१ ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में पैसठवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - छियासठवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - इस प्रकार देवतागण युद्ध करने के लिये अपने पीछे आ रहे हैं इसको देखकर जगत्पति नारायण भामा को बोलते हैं - देखो, तुम्हारे अतिथि बनकर देवतागण आ गये हैं। ऐसे बोलते हुये भगवान भामा को धनुर्बाण दिये ।। १ ।।

श्रीकृष्ण के इस प्रकार कहते समय इन्द्र से भेजे हुये देवतागणों ने गर्जना करते हुये श्रीकृष्ण के ऊपर बाणों की वर्षा की ।। २ ।।

कभी भी दुःख और खेद का अनुभव न करने वाली भामा शार्ंग धनुष को उठाकर देवताओं द्वारा फेंके हुये बाणों को काट डाला ।। ३ ।।

तब ऐश्वर्यशाली कुबेर अपने साथी गुह्यकों के साथ आक्रमण करते हुये सोने के बने हुए एकताल वृक्ष के धनुष को टंकार करते हुये सोने के पंखे वाले बाणों को छोड़ते हुये सिंहनाद के साथ **ठहरो-ठहरो** कहते हुये युद्ध में आगे बढ़े ।। ४-५ ।।

हे राजा ! तीक्ष्णधार वाले मर्मभेदक पाँच बाणों को सत्यभामा ने कुबेर के बड़े पेट के ऊपर मार दिया ।। ६ ।।

इन बाणों से मार खाकर कुबेर ने भामा के ऊपर तीन भाला को जोर से फेंका ।। ७ ।।

उन, शूलों को अपने पास आने के पहले ही भामा ने अर्द्धचंद्रकार के अपने तीन बाणों से उनको काट डाला। उसके साथ ही मनोवेग से चलने वाले आठ हस्तिदंत बाणों से कुबेर को भाले से मारा। उनसे पीड़ित होकर कुबेर और ज्यादा क्रोध के वश हो गया ।। ८-९ ।।

इस युद्ध में कुबेर ने नोकीले इक्कीस बाणों को अपने धनुष में चढ़ाया। उन बाणों को छोड़ने के पहले ही श्रीकृष्ण-प्रियाभामा ने साँत बाणों से कुबेर के सारे बाणों के तीन-तीन टुकड़े किया। क्रोध से उसके धनुष को अर्द्धचन्द्राकार के बाण से दो टुकड़ा कर दिया। तब कुबेर ने और एक धनुष को उठाया ।। १०-११-१२ ।।

कुबेर ने क्रोध से सांप की तरह फुत्कार करते हुये बाणों की वृष्टि की। उन सब बाणों को भामा ने अपने बाण से टुकड़ा कर दिया। वह बहुत अद्भुत था। तब कुपित कुबेर ने सत्यभामा को

घूर नजर से देखा ।। १३-१४

कुबेर कहता है कि मेरा पौरुष देखो, तुमको भी मैं मार डालूँगा। इस प्रकार बोलते हुये कुबेर ने सारे देवताओं के सामने हुये अपने अपमान को दूर करने की इच्छा से देवी को मारने के लिये अर्द्धचन्द्राकार वाले श्रेष्ठ बाण को अपने बड़े धनुष में जोड़ दिया ।। १५-१६ ।।

हे राजा परीक्षित ! कुबेर के इस उद्देश्य को समझकर सत्यभामा ने अपने खड्ग से उसके धुनष को काट दिया ।। १७ ।।

कुबेर ने दानवों को भय देने वाले महामद्गर को उठाकर सौ बार फिराकर देवी के ऊपर फेंक दिया ।। १८ ।।

हे राजा ! उस महाघोर मुद्गर को देखते हुये श्रीकृष्ण उसको अपने बाएँ हाथ से पकड़ते हुये जोर से हंसे ।। १९ ।।

युद्ध को छोड़कर कुबेर भाग गया। श्रीकृष्ण ने देवी का अभिनंदन किया ।। २० ।।

जब कुबेर श्रीकृष्ण से युद्ध में हारकर भाग गया तब वरुण पाश को उठाकर श्रीकृष्ण के सामने आ गया ।। २१ ।।

आते हुये वरुण को देखकर महाबलशाली गरुड़ ने सांड़ के ऊपर शेर के समान आक्रमण किया ।। २२ ।।

देवासुर युद्ध में बलि और इन्द्र के युद्ध में जैसे युद्ध हुआ वैसे वरुण और गरुड़ के बीच में घनघोर युद्ध हुआ। उस युद्ध में वरुण कुद्ध होकर अपने पाश को गरुड़ के गले में डालते हुये एक सिंह दूसरे सिंह को जैसे खींचता है वैसे जोर से खींचा ।। २३-२४ ।।

तब गरुड़ अपने पंखों से वरूण को उठाकर अपने पांवों से उसके वाहन मगर को पकड़ते हुये उसको समुद्र में फेंक दिया। वाहन के चले जाने के बाद वरुण कष्ट से अपने पाश को उठाकर पैदल ही अपने निवास स्थान समुद्र को कष्ट से चला गया ।। २५-२६ ।।

वरुण के इस प्रकार भाग जाने के बाद वायु, अग्नि एक साथ मिलकर युद्धरंग में श्रीकृष्ण के सामने आये ।। २७ ।।

तब अग्नि पाँच बाणों से और वायु तीन बाणों से श्रीकृष्ण का सामना किया ।। २८ ।।

शत्रुदमन करने वाले श्रीकृष्ण हँसते हुये एक बाण से अग्नि को मारकर सात बाणों से वायु को मारे ।। २९ ।।

एक ही बाण से छाती में मार पाकर श्रीकृष्ण सामान्य नही हैं ऐसे समझते हुये युद्ध से अग्नि ने पलायन किया ।। ३० ।।

भागते हुये अग्नि को वायु ने देखा। अपने शरीर में श्रीकृष्ण के बाण छू रहे हैं और सामने रहने

वाले साक्षात् नारायण हैं इसको समझकर अपने प्राणों की रक्षा के लिये वायु भी भाग गय।। ३१-३२ ।।

उसके बाद यम भैसा के ऊपर बैठकर अपने प्रकाशमान दंड को उठाकर क्रोध से बने लाल आंखों से युद्ध क्षेत्र में श्रीकृष्ण के सामने खड़ा हुआ ।। ३३ ।।

यम अपने बड़े दंड को उठाकर आया है इसको देखकर श्रीकृष्ण अपनी गदा से उस दंड को जमीन पर गिराये ।। ३४ ।।

हे राजा ! अपने दंड को जब श्रीकृष्ण ने गदा से मार गिराया तो यम के हाथ भय से कांपने लगे। अपने भैसा को फिराकर यम भाग गया ।। ३५ ।।

भागते हुये यम को देखकर निऋती श्रीकृष्ण के बल की ऊहा करते हुये भयभीत हुआ। वह युद्ध करने आगे नही आया ।। ३६ ।।

महाभारत तात्पर्य निर्णय में जगद्गुरु मध्वाचार्य जी लिखते हैं कि श्रीकृष्ण के धनुष के टंकार (आवाज) को सुनकर सारे वायु, अग्नि, यम भाग गये। इसका अर्थ यह नही है कि वे युद्ध किये ही नही। श्रीकृष्ण के बाण उनको लगा ही नही यह नही होता। ऐसे समझे तो भागवत से इन वाक्यों का विरोध आता है। इन वाक्यों का मंतव्य इतना ही है कि युद्ध हुआ श्रीकृष्ण उनके ऊपर बाण प्रयोग किये किन्तु वे अपने भक्त हैं यह समझकर प्यार से नाजुकी से बाण प्रयोग किया। किन्तु जोर से धनुष टंकार करते हुये उनको डराकर भगाा दिया।

महापराक्रमी नंदीवाहन त्रिशूलधारी शिव अपने अनेक भूतगणों के साथ युद्ध क्षेत्र में श्रीकृष्ण के सामने आये ।। ३७ ।।

लोक विख्यात बल वीर्य शाली केशव और शिव दोनो परस्पर जीतने की आकांक्षा रखते हुये घनघोर युद्ध किये ।। ३८ ।।

हे राजा ! शिव दस बाणों से श्रीकृष्ण को और पाँच बाणों से गरुड़ को मारे। बीच बीच में **ठहरो, खड़े हो जाओ**, बोलते रहे ।। ३९ ।।

शत्रुओं के पुरों को (शहरों को) नाश करने वाले श्रीकृष्ण अपने शांर्ग धनुष को उठाते हुये एक साथ तीस बाणों से शिव को मारे ।। ४० ।।

शेषनाग के शत्रु गरुड़ ने युद्ध में अपने पांव, पंखे और चोंच से नंदी का मर्दन किया ।। ४१ ।।

इसके तुरन्त बाद श्रीकृष्ण लोक कल्याण करने वाले शिव को पचास बाणों से मारे ।। ४२ ।।

यहाँ शंकर लोक शंकर हैं। भगवान के तत्व को समझकर उसको लोगों को बोलते हुये सकल लोगों का कल्याण करने वाले परम वैष्णवाग्रणी हैं। ऐसे होते हुये भी श्री हरि की इच्छानुसार असुरावेश से श्रीहरि के साथ लड़ रहे हैं। श्रीहरि की इच्छा के सामने और कुछ नही है।

इससे रुष्ट होकर रूद्र अपने भयावह धार वाले त्रिशूल को उठाकर भगवान के ऊपर फेंके ।। ४३ ।।

उस त्रिशूल का निवारण करने के लिये दैत्य मर्दन करने वाले कौमोदकी गदा को श्रीकृष्ण ने फेंका। जलने वाले महाघोर आँख के समान दिख ने वाली वह कौमोदकी गदा और त्रिशुल आकाश में परस्पर टक्कर मारते हुये दोनों एक साथ समुद्र में गिर गए ।। ४४-४५ ।।

वह कौमुदकी गदा त्रिशूल को समुद्र में गिराकर पुनः श्रीकृष्ण के पास आ गयी। त्रिशूल भी रुद्र के हाथ में आ गया ।। ४६ ।।

बाद में शिव अपने तीक्ष्ण धार वाले खड्ग को उठाकर अपने एड़ियों से मारते हुये, नंदी को आगे चलाते हुये युद्ध में श्रीकृष्ण के समीप आये ।। ४७ ।।

गरुड़ से मार खाने के बाद नंदी आगे बढ़ने के लिये डर रहा है। उसके लिये शिव अपने एड़ियों से मारते हुये नंदी को आगे ढ़केल रहे है।

तब गरुड़ ने नंदी के दोनो सींघ को अपने हाथों से पकड़कर शिव के साथ उसको नौ धनुष के प्रमाण के बराबर हटाया ।। ४८ ।।

हे राजा ! तब नंदी वाहन त्रिशूलधारी शिव युद्ध को छोड़कर अपने प्रथम गणों के साथ आए हुये रास्ते से वापस चले गये ।। ४९ ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में छियासठवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सरसठवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - पारिजात को वापस लाना ही होगा। शची की इन बातों को याद करते हुये सुन्दर किरीटधारी इन्द्र अपने उन्नत ऐरावत के ऊपर बैठकर बाण और तुणीर को पकड़कर हाथी जैसे सिंह का सामना करता है वैसे श्रीकृष्ण के सामने आ धमका ।। १-२ ।।

शत्रु के नगर को जीतने वाले श्रीकृष्ण देवेन्द्र के आगमन को देखकर दसों दिशाओं को भरने वाले आवाज वाले अपने शंख को बजाया ।। ३ ।।

युद्ध में श्रीकृष्ण का सामना करते हुये अपने महाधुनष का टंकार करते हुये देवेन्द्र श्रीकृष्ण को अपने तीक्ष्ण बाणों से मारे ।। ४ ।।

इन्द्र छाती के ऊपर बाण से मार रहा है। इसको देखकर हँसते हुये श्रीकृष्ण कहते हैं - इन्द्र तुम्हारे जैसे आदमी को यही शोभा देता है।। ५ ।।

इंद्र श्रीकृष्ण की इन बातों को नही सुना ऐसे करते हुये सांप जैसे बड़े अपने धनुष को दस बाणों को जोड़कर श्रीकृष्ण को मार दिया। जोर से सिंहनाद किया ।। ६ ।।

हे राजा परीक्षित ! महात्मा श्रीकृष्ण इंद्र के इन सारे बाणों को बीच में ही अपने एक ही बाण से बिना आयास से तीन तीन टुकड़ा कर डाले। बाद में श्रीहरि अपने दस नोकीले बाणों से इंद्र को मारे ।। ७ ।।

वे बाण बहु वेग से जाकर इंद्र के कवच को चीरकर उनके शरीर को लगे। इन्द्र रक्त सिक्त हुये ।। ८ ।।

देवेन्द्र अपने धनुष से सोलह बाणों को छोड़े। श्रीकृष्ण उनको अपने तीन बाणों से काटे ।। ९ ।।

पुनः श्रीकृष्ण तीस बाणों से देवेन्द्र को मारे। वे बाण इन्द्र की छाती को लगे ।। १० ।।

तब देवेन्द्र दंड से मारे हुये सांप के समान फूत्कार करते हुये अंकुश से ऐरावत को मारते हुये गरुड़ के ऊपर उसको दौड़ाए ।। ११ ।।

इन्द्र ने ऐरावत को चलाया। वह हाथी गरुड़ के पास आकर उनके दोनो भुजाओं के बीच में अपने चारों दांतों से मारा। उसके बदले में गरुड़ ऐरावत को अपने पंखे, नाखून और चोंचो से मारा ।। १३ ।।

इसी समय इन्द्र ने सारे लोगों के सामने दानवों को भयभीत करने वाले अपने वज्रायुध से श्रीकृष्ण के ऊपर प्रहार किया। श्रीकृष्ण ने उस वज्रायुध को हँसते-हँसते अपने बायें हाथ से पकड़ लिया ।। १४-१५ ।।

श्रीकृष्ण की यह हँसी अट्टहास की नही है। वे प्यार से हंस रहे हैं। **आयुधानां अहं वज्रः** और **वर्जनात् वज्रं** इस अर्थ से दोष दूर होने के कारण भगवान को वज्र कहते हैं। विभूति रूप में वे वज्र में रहते हैं। ऐसे होते हुये उनको वज्रायुध क्या करने वाला है। इसका यह अर्थ भी निकलता है। इस श्लोक में श्रीकृष्ण को मधुरिपु कहे हैं, मधु दानव है। वह भगवान के सामने क्रौर्य को दिखाया था। इसके लिये भगवान ने उसको मार दिया। यहाँ इन्द्र भक्त है। उसके सामने भक्तवत्सल भगवान मधुरिपु बन गये हैं। भक्तवत्सल भगवान निरायुध इन्द्र को कैसे मारते है ?

इंद्र अब निरायुध हो चुका है। उसका वाहन ऐरावत गरुड़ से हताहत हो गया है। इन्द्र लज्जा से सिर नीचे करते हुये युद्ध क्षेत्र से भाग रहे हैं ।। १६ ।।

इन्द्र अपने संकल्प को पूरा न करते हुये भाग रहा है। इसको देखकर हसते हुये सत्यभामा बोलती है ।। १७ ।।

हे इंद्र ! दौड़ो मत वापस आओ। वज्रायुधधारी, हे शचीपति ऐसे भाग जाना तुमको शोभा नही देता ।। १८ ।।

वज्रायुधधारी इन्द्र का वज्रायुध को छोड़कर भागना और शची के पति का एक डरपोक जैसे भाग जाना दोनो इंद्र के लिये शोभा देने वाले नही हैं।

भामा आगे कहती है - शची को ऐश्वर्य का अहंकार है। पति के पराक्रम से उसका अहंकार और बढ़ गया है। अब युद्ध में हार पाये तुमको वह गौरव से नही देखेगी ।। १९ ।।

इस प्रकार देवी का आक्षेप सुनते हुये इन्द्र वापस आकर श्रीकृष्ण को बोलने लगे। भामा उसको हँसते हुये सुनी। इन्द्र कहते हैं, हे श्रीहरि ! आप देव, दानव, नाग, यक्ष, सिद्ध, गंधर्व, किन्नर, पिशाच, राक्षस इत्यादि सबको सृष्टि करने वाले आप तीनों लोकों के गुरु हैं। युद्ध भूमि में आपके सामने कौन खड़ा हो सकता है। युद्ध करने वाले मेरे जैसे का हार जाना स्वाभाविक है ।। २०-२१ ।।

हे देवभोग्य को भोगने वाली भामा, अल्प बल वाला गाय का बच्चा दूध पीते समय माँ को

अपने मुह से मारते हुये दूध पीता है। वैसे ही हम अप्रमेय भगवान श्रीकृष्ण के सामने युद्ध करने के लिए आकर अपने छोटेपन को दिखा रहे हैं ।। २२ ।।

यहाँ सत्यभामा को इन्द्र पिशिताशनी कहते हैं। इसका अर्थ मांस भक्षण करने वाली क्रूर राक्षसी यह भी होता है। इसका और एक अर्थ है। पिशित शब्द का अर्थ यज्ञ का हविष्य रूप से बचा हुआ अमृत स्वरूप अन्न भी होता है। पिशिताशनी इस शब्द का अर्थ अमृतान्न खिलाने वाली माँ यह होता है। गाय के बच्चे के समान हमारा आपसे युद्ध करना अनुचित नही है।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा परीक्षित ! देवेन्द्र इस प्रकार सत्यभामा को बोलते हुये हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुये श्रीकृष्ण से इन्द्र बोलते हैं ।। २३ ।।

हे देवदेवेश, पुण्डरीकाक्ष, माधव जगत्पते मेरे किए हुए सारे अपराधों को क्षमा करें। आपको मैं नमस्कार करता हूँ ।। २४ ।।

हे शरणागत वत्सल ! आप ही मेरे रक्षक हैं। मैं बड़ा मूर्ख हूँ। मैं सहन कर नही सका किन्तु आप मुझको परित्याग न करें ।। २५ ।।

यह ऐरावत, वज्रायुध, पारिजात वृक्ष, देवताओं का राज्य और यह अमरावती, सारे आपके हैं, भगवान मैं आपके आधीन हूँ, मैं आपका आज्ञा धारक हूँ। इनमें से अपनी इच्छानुसार जो चाहते हैं उसको ले लीजिये ।। २६-२७ ।।

किन्तु गोविन्द ! मैं आपका विरोध कर रहा हूँ। इसके लिये एक कारण है। आप अपने अवतार कार्य में मग्न होकर मनुष्य लोक में विहार कर रहे हैं ।। २८ ।।

अब आप मनुष्य लोक को इस पारिजात को ले चले तो भूलोक स्वर्ग से भी ज्यादा हो जायेगा ।। २९ ।।

इन्द्र के कहने का यह अर्थ है कि पारिजात के दर्शन स्पर्शन से लोग स्वर्ग सुख पाते हैं। तब वे स्वर्ग प्राप्ति के लिये सत्कर्म, यज्ञ, हवन इत्यादि किसी पुण्य कार्य को नही करेंगे। देवेन्द्र की यह धारणा गलत है क्योंकि पारिजात की सेवा करने वाले का मन अधर्म में नही लगेगा। यह बात हरिवंश विष्णु पर्व में आता है। (६५-२५) इष्टार्थ को देने वाले धर्म संस्थापक भगवान श्रीकृष्ण भूमि में रहते हुये पारिजात का महत्व क्या है इन्द्र का यह वाद बंधु हत्या रूप युद्ध न करने के लिये किया हुआ अर्जुन के वाद जैसा है। खैर दोनो पिता-पुत्र हैं। श्रीकृष्ण पारिजात को जब तक मनुष्य लोक में रहते हैं तब तक यहाँ रखने वाले हैं।

देवेन्द्र आगे कहते हैं - हे यदुशार्दूल इसी कारण से मैंने आपका विरोध किया। इसके लिये हे

भगवान ! कार्य-अकार्य को न समझने वाले तथा सब चीजों को ठीक तरह जानने वाले आप मुझकों क्षमा करें ।। ३० ।।

पहले भगवान श्रीकृष्ण एक वर्ष के लिये पारिजात वृक्ष को देने के लिये सन्देश भेजे थे, लेकिन इन्द्र अहंकार से उसको नही माना। तो भी भगवान उनको प्यार से क्षमा करते हैं।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा ! सुनो देवेन्द्र की इन बातों को सुनकर देवाधिदेव जनार्दन हसन्मुख से बोले ।। ३१ ।।

श्री भगवान कहते हैं - हे इन्द्र, आप कुछ अपराध किये ही नही। मैंने ही आपसे करवाया। हमारे में कोई भेद नही है ।। ३२ ।।

हे इन्द्र, अब तक भला-बुरा जो तुमने किया है, वह सारा कर्म मैं तुम्हारे अन्दर रहकर सब कुछ किया है। इसमें संशय नही करना है ।। ३३ ।।

इस श्लोक का एक और अर्थ होता है। इन्द्र तुमने स्वयं बुद्धि से यह युद्ध नही किया हैं। पत्नी शची देवी के कथनानुसार तुमने युद्ध किया है। मैं भी स्वयं बुद्धि से यह पारिजात हरण नही किया है। हम दोनो अपनी पत्नियों की बातों को सुनकर यह काम किये हैं। इसके लिये इसमें किसी का अपराध नही है। यह भाव भी होता है।

मैं जब परम धाम को चला जाता हूँ तो मेरी आज्ञानुसार यह वृक्ष स्वयं नंदनवन को आ जाता है ।। ३४ ।।

श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर देवेन्द्र ने श्रीकृष्ण, सत्यभामा और गरुड़ को प्रसन्न होने के लिये याचना की ।। ३५ ।।

आपके बहन के पति मेरा पुत्र है। आप उसकी रक्षा करें, इस प्रकार देवेन्द्र श्रीकृष्ण के सामने बार-बार प्रार्थना करते हुये वापस जाने के लिये आज्ञा मांगा ।। ३६ ।।

भगवान श्रीकृष्ण ने इन्द्र और सारे दिक्पालकों की विदाई की। इन्द्र वज्रायुध को पाकर दिकपालकों के साथ अमरावती चला गया ।। ३७ ।।

श्रीकृष्ण गरुड़ को आज्ञा देते हैं - चलों, हम द्वारका जायेंगे। आदेश का पालन करते हुए गरुड़ भामा, कृष्ण और पारिजात को उठा लिया ।। ३८ ।।

गरुड़ उनको लीला जाल से बहते हुये द्वारका पहुँचे। द्वारका तोरण और फूल मालाओं से सजा हुआ था। श्रीकृष्ण उसमें प्रवेश किए ।। ३९ ।।

गरुड़ लीलाजाल से श्रीकृष्ण को उठाया यह भी भगवान की लीला है। श्रीकृष्ण अपनी लीला से गरुड़ में प्रवेश करते हुये गरुड़, भामा और वृक्ष को उठाये थे।

द्वारका नगरी दिव्य सुन्दरमाला, पताकाओं से अलंकृत थी। जमीन के ऊपर पानी छिड़क कर स्वच्छ किये थे। प्रमुख यादव लोग उपहार, ताम्बूल, सुगन्ध, द्रव्य, फूलमाला और अक्षत् को लेकर श्रीकृष्ण के सामने आकर नमस्कार किये। मंगल वाद्यों के साथ वेद घोष किये ।। ४०-४१ ।।

बड़े लोगों से भरी हुई दिव्य सुधर्म सभा में भगवान श्रीकृष्ण प्रवेश किये। पद्धति के अनुसार आहुक वासुदेव और भाई बलराम को नमस्कार किये ।। ४२ ।।

वे सारे श्रीकृष्ण को योग्य अभिनंदन किये। उनको सभा मध्य में सुन्दर सिंहासन पर बैठाये ।। ४३ ।।

हे राजा ! श्रीकृष्ण यादवों के बीच विराजमान हुये। बृहस्पति इत्यादि मुनि और लोकपालकों के बीच में इंद्र जैसे स्वर्ग में शोभायमान होते हैं, वैसे ही श्रीकृष्ण यादवों के बीच में विराजे ।। ४४ ।।

श्रीकृष्ण भामा के घर के प्रागंण में सभी स्थानों से लाये हुये रत्नों से निर्माण किए हुये जमीन में उस महावृक्ष को लगाए ।। ४५ ।।

श्रीकृष्ण बड़े स्त्री समूह के साथ द्वारका को आये हैं। यह समाचार सुनकर सभी यादव स्त्रियाँ उनको देखने के लिये जल्दी में वहाँ आयीं ।। ४६ ।।

हे कुरुराजा ! शत्रुओं को निग्रह करते हुये क्षेम से आए हुए श्रीकृष्ण को देखने के लिये वसुदेव व रोहिणी अन्य स्त्रियों के साथ आए ।। ४७ ।।

देवकी के साथ आये हुये अन्य माताओं को देखकर भगवान श्रीकृष्ण ने उनको नमन किया तथा सभी माताओं नें आशीर्वाद देते हुए उनका अभिनंदन किया ।। ४८ ।।

दिव्य सौन्दर्यवती और अपने को सुन्दर रीति से अलंकार किये हुये रुक्मिणी इत्यादि सात महिषियों ने श्रीकृष्ण के सामने आकर प्रणाम किया ।। ४९ ।।

बलराम की पत्नी रेवती, कीर्तिशाली त्रिवक्रा, कृशांगी और अभी रजो दर्शन किया हुआ सुभद्रा के साथ भोज वृक्षणी, अंधक वंशों के सारे स्त्री-पुरुष आनन्द से खिले हुये मुँह वाले श्रीकृष्ण को देखने आये। वे श्रीकृष्ण द्वारा लाए हुए स्त्री समूह को और स्वर्ग से महावृक्ष को लाये हुये भामा को कौतुक से देखने आये थे ।। ५०-५१-५२ ।।

सारे मिलकर आनन्द से फूल, माला और अक्षतों से श्रीकृष्ण की पूजा करते हुये गाते-गाते अपने घर को चले गये ।। ५३ ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में सरसठवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अड़सठवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - भगवान श्री कृष्ण ने कैलास गिरिवासी देव-देवेश लोक शंकर की उपासना करते हुये तप से उनका प्यार पाया। पूर्व में शंकर के नेत्र की आहुति बनकर जले हुए मन्मथको पुनः रूप, औदार्य, गुणशाली, वीर, प्रद्युम्न के रूप में पुत्र रूप में रूक्मिणी में श्रीकृष्ण ने पाया ।। १-२ ।।

`**शंकरोसि सदादेव ततः शंकरताम् गताः।**` श्रीकृष्ण आप सबको सुखकर हैं। इसीलिये आपको लोक शंकर कहते हैं। शंकर ने ही इस प्रकार स्तुति की है। भविष्य-पुराण में (८८-४५) यह बात आती है। शं-कर यानी सुख करने वाला रूद्र सारे लोक को सुख करने वाले किन्तु श्रीकृष्ण शंकर को भी सुख देने वाले हैं। श्रीकृष्ण की कैलाश यात्रा से शंकर को आनन्द हुआ। शिव ने जब मन्मथ को जलाया तब उसके ऊपर उनको अनुकम्पा हुआ था। उसको पुनर्जीवित करने के लिये ब्रह्माजी भी आदेश दिये थे। रूद्र कहते हैं `**ब्रह्माच नियुक्तोस्मि**` (भविष्य पुराण (८८-१२) और भी रूद्र जी कहते हैं `**पुत्रोदत्तो मया देव पूर्वमेव जगत्पते**` कैलाश यात्रा के पहले ही मन्मथ को आपका पुत्र होकर जन्म लेने के लिये मैंने अनुग्रह किया था, भविष्य पुराण (८८-५)। इस प्रकार लोक शंकर शंकर कृष्ण को बार-बार नमन करते हैं। (भविष्य पुराण (९०-२८) इस प्रकार कहती है।

श्रीहरि सर्वज्ञ सर्वशक्त होते हुये भी दुर्जनों को मोहित करने के लिये शिवलिंग प्रतिष्ठान करते हैं और अनेक अवतारों में शिवलिंग की पूजा करते हैं।

राजा परीक्षित पूछते हैं - पुत्र को पाने के लिये श्रीकृष्ण स्वयं जाकर शिव के वर से कैसे पुत्र को पाये। उसके नाम की विशेषता क्या है ।। ३ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - पूर्वकाल में मन्मथ रूद्र की कोपाग्नि से जल जाने के बाद पुनः शरीर पाने के लिये उन्ही की शरण में गया। बाद में रूक्मिणि के उदर से श्रीकृष्ण के वीर्य से शरीर पाकर पिता के योग्य पुत्र बने। वासुदेव के अंश होने के कारण प्रद्युम्न नाम उनको शोभा देता है ।। ४-५ ।।

श्रीकृष्ण और उनके वीर्य में भेद नही होता। भगवान का शरीर और वीर्य विकार और

परिणामों से नही होता। किन्तु यहाँ उनका वीर्य पंच भौतिक विकार रूप है। नही तो प्रद्युम्न भी भगवान ही हो जाता था। भगवान वासुदेव के संकर्षण प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इनमें से प्रद्युम्न के आवेश से जनन लेने के कारण इसका नाम प्रद्युम्न बन गया है। `प्रकृष्टेन ज्योतते` =. श्रीकृष्ण के समान अत्यन्त सुन्दर होने के कारण उसका नाम अन्वर्थक पड़ा। यह भगवान का आवेशावतार है, साक्षात् भगवान नही।

अभी दस दिन भी नही हुआ था कि प्रद्युम्न को अपना शत्रु समझते हुये इच्छानुरूप धारण करने वाला मायावी राक्षस शंभरासुर ने सूतिका गृह से अपहरण करते हुये उसे समुद्र में फेक दिया ।। ६ ।।

नारदजी से प्रद्युम्न अपना शत्रु है यह समाचार सुनकर शंभरासुर ने जन्म लेने के सातवे दिन में मध्य रात्रि में प्रसूति गृह से उठाकर समुद्र में फेक कर अपने घर चला गया। सर्वज्ञ श्रीकृष्ण इसको जानते थे। किन्तु प्रद्युम्न से ही उस असुर का वध होना है। इसके लिये चुप रहे।

इस बच्चे को एक मछली ने निगल लिया। अन्य मछलियों के साथ एक दिन वह बड़ी मछली मछुआरों के जाल में फस गयी ।। ७ ।।

उस अद्भुत मछली को मछुआरों ने अपने राजा शंभरासुर को भेट किया। राजा के भण्डारी ने रसोई में उस बड़ी मछली को चीर डाला ।। ८ ।।

वह उस मछली के पेट में एक अद्भुत बच्चे को देखकर आश्चर्यचकित होकर पाकशाला के मुखिया मायावती को दे दिया। उस बच्चे के माता-पिता के बारे में मायावती शंकित थी। तब नारद जी आकर उसके बारे में कहने लगे ।। ९ ।।

बच्चे का मूल-स्वरूप,उसका जनन और वह मछली के पेट में कैसे आया इसके बारे में नारद जी ने उसे बता दिया। वह मायावती और कोई नही है वह मन्मथ की पत्नी रति है ।। १० ।।

पति का शरीर जल जाने के बाद उनको और एक शरीर मिलने वाला है इसको रति जानती थी। अपने पति के दूसरा शरीर पाने का वह राह देखती थी ।। ११ ।।

द्रौपदी की पाँच पति हैं इसके बारे में रति ने इकबार अपहास्य किया था। उससे क्रोधित होकर ब्रह्माजी ने रति को असुर संग होने का शाप दिये। शंभरासुर से अपहृत रति मायावती नाम से शंभरासुर के घर में रहने लगी। अपने समान और एक स्त्री की सृष्टि करके असुर के पास भेजती थी। निज रूप में प्रद्युम्न के जन्म लेने की राह देखती थी। मछली के पेट से मिला हुआ बच्चा वही प्रद्युम्न है। इस रहस्य को नारद जी ने बता दिया।

शंभरासुर ने मायावती को पाकशाला का प्रधान नियुक्त किया था। नारद जी के बात से यह शिशु अपने पति कामदेव है यह जानकर उस बच्चे को सदाकाल प्यार से पालन पोषण किया ।। १२ ।।

श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न थोड़े ही समय में बड़ा होकर युवक बन गया।उसको देखने वाली स्त्रियों के मन में आनन्द मोह था।। १३ ।।

मायावती अपने पति को स्तनपान कराने के लिए एक दायी की नियुक्ति की। रसायन प्रयोग से चार वर्ष में उसको नवयौवन वाला सुन्दर युवक बनाई। साथ-साथ उनको दानवों के सारे माया युद्ध का परिचय कराई।

अपने पति प्रद्युम्न कमल के समान विशाल आँख वाले हैं। आजानुबाहु मनुष्य लोक में अति सुन्दर पुरुष के रूप में खड़े हुये अपने पति को देखकर रति लज्जा से हसते हुये प्रणय विलास से तिरछी नजर से देखते हुये अपने सर्वस्व को उनको समर्पित किया ।। १४ ।।

भगवान प्रद्युम्न उससे पूछते हैं कि माँ आज आपकी बुद्धि बदल गयी है। मेरे पास मातृत्व के भाव के बदले में कामिनी का व्यवहार कर रही हो ।। १५ ।।

उत्तर में रति बोली कि प्रभु, आप श्रीकृष्ण के पुत्र हैं। सूतिका घर से ही यह शंभरासुर ने आपका अपहरण किया। आप कामदेव हैं, मैं आपकी नियत पत्नी रति हूँ ।। १६ ।।

प्रभु, आप जब सात दिन के बच्चे थे उस समय शंभरासुर ने आपका अपहरण करते हुये आपको समुद्र में फेक दिया था। एक मछली आपको निगल ली थी। उसके पेट से आप मेरे पास आये हैं ।। १७ ।।

यह असुर आपका पिता नही है, आपका शत्रु है। यह अजेय है, इसको कोई हरा नही सकता करोड़ों मायाओं को जानता है। आपको उसे मोहन, शोषण, द्रावण इत्यादि मायाओं से नाश करना है ।। १८ ।।

रूक्मिणि देवी आपकी माँ हैं। बच्चे को खोयी हुई कुरु पक्षी के समान अथवा पुत्र को खोयी हुयी गो-माता के समान दीन होकर वह आपके लिये दुःख कर रही हैं ।। १९ ।।

इस प्रकार कहते हुये मायावती के रूप वाली रति ने अपनी जानकारी के सारी मायाओं को नाश करने वाली महामाया विद्या को बता दी ।। २० ।।

पत्नी पति को विद्या का उपदेश कर रही है, यह विशेष है। प्रद्युम्न यहाँ मानव शरीर से जन्म लिया है। इसी कारण सारी दिव्य विद्याओं को भूल गया है। रति अपने पूर्व वाली दिव्यरूप से है। इसी कारण वह जानने वाली विद्याओं को याद कर रही है।

रति की बातों को सुनकर प्रद्युम्न शंभर के सामने आकर तिरस्कार पूर्ण बातों से धिक्कार करते हुये, ओंठ चबाते हुये युद्ध का आह्वान किया ।। २१ ।।

प्रद्युम्न की विरूद्ध बातों को सुनकर पाँव से दबाया हुआ साँप के समान क्रोधयुक्त असुर लाल लाल आँखों से प्रद्युम्न को देखते हुये अपने प्रचण्ड गदा को उठाकर युद्ध प्रारम्भ किया ।। २२ ।।

अपनी गदा को जोर से फिराते हुये महात्मा प्रद्युम्न के ऊपर उसको फेकते हुये कर्कश स्वर

से उस असुर ने गर्जना की ।। २३ ।।

अपने ऊपर गिर रहे गदा को भगवान प्रद्युम्न ने अपनी गदा से उसका निवारण करते हुये क्रोध से गर्जना के साथ असुर के ऊपर अपनी गदा को फेके ।। २४ ।।

शंभरासुर को मयासुर ने जो उपदेश दिया था उस असुर माया का अवलम्बन करते हुये प्रद्युम्न के ऊपर आकाश से पत्थर की वर्षा करने लगा ।। २५ ।।

पत्थर की वर्षा से पीड़ित महारथी प्रद्युम्न सभी मायाओं को नाश करने वाले बल ज्ञान स्वरूपी परशुराम देवता उक्त महाविद्या का प्रयोग किया ।। २६ ।।

उसके बाद गुह्यक, गंधर्व, पिशाच, उरग, राक्षस इत्यादि सैकड़ों मायाओं को शंभर ने प्रयोग किया। उन सबको प्रद्युम्न नाश करते रहे ।। २७ ।।

अंत में अपनी तीक्ष्ण धारावाले खड्ग से लाल-लाल मूछ वाले किरीट कुण्डलधारी शंभर के सिर को उसके शरीर से अलग कर दिया ।। २८ ।।

प्रद्युम्न के ऊपर देवताओं ने पुष्प वृष्टि की, उनका गुणगान किया। आकाश में संचार करने वाली रति आकाश मार्ग से प्रद्युम्न को द्वारका ले आयी ।। २९ ।।

हे राजा ! बिजली के साथ मिला हुआ मेघ के समान दिखने वाला रति समेत प्रद्युम्न ने आकाश से उतर कर सैकड़ों स्त्रियों से भरे हुए श्रीकृष्ण के अंतःपुर में प्रवेश किया ।। ३० ।।

मेघ श्याम पीताम्बरधारी दीर्घबाहु, अंचल में लाल रंग आँख वाले, सुन्दर मुख वाले, घुघराले बाल वाले पीताम्बरधारी प्रद्युम्न को अंतःपुर में रहने वाली स्त्रियों ने श्रीकृष्ण समझकर भ्रम से इधर-उधर छिप गयीं ।। ३१-३२ ।।

बाद में प्रद्युम्न श्रीकृष्ण से अलग है यह निश्चित करते हुये स्त्रीरत्न के साथ आये हुये प्रद्युम्न के पास वे सारी स्त्रियाँ हंसते हुये आ गयीं ।। ३३ ।।

काले काले विशाल आंख वाली मृदुमधुर बात करने वाले रूक्मिणी प्रद्युम्न को देखकर पुत्र प्रेम से अपने स्तनो से दूध गिराते हुये खोए हुये अपने पुत्र के बारे में याद करने लगी ।। ३४ ।।

वज्र के समान प्रकाश देने वाला यह कौन होगा ? कमल के समान आँख वाला यह किसका पुत्र हो सकता है ? इसको किसने अपने गर्भ में धारण किया था ? इसके साथ आने वाली यह लड़की कौन हो सकती है ? इसको उसने कैसे पाया ? ।। ३५ ।।

मुझको भी एक पुत्र था, सूतिका घर से उसको कौन ले गया। उसको जीवित रखा या नाश किया ? वह यदि जीवित है तो इसकी आयु और रूप वाला हो सकता है ।। ३६ ।।

इसको देखे तो इसके अवयव, चाल-चलन, स्वर और हंसी श्रीकृष्ण के समान है। इस साम्य को वह कैसे पाया ।। ३७ ।।

मैंने गर्भ में जिसको धारण किया था वह यही हो सकता है क्या ? इससे मुझमें प्यार उमड़कर आ रहा है। मेरी वाम बाहु फड़क रही है ।। ३८ ।।

इस प्रकार रूक्मिणी विचार कर रही थी। इतने में श्रीकृष्ण, महात्मा नारद, वसुदेव, देवकी और अन्य यादव प्रमुखों के साथ अंतःपुर में प्रवेश किए। सब कुछ जानने वाले, उत्तम कीर्ति वाले, श्रीकृष्ण सब कुछ जानते हुये भी मौन रहे ।। ३९-४० ।।

महर्षि नारद प्रद्युम्न के बारे में शंभरासुर के अपहरण से लेकर सारे वृत्तान्तों को बता दिये। उसको सुनकर श्रीकृष्ण के अंतःपुर में रहने वाली सारी स्त्रियों को बहुत आश्चर्य हुआ ।। ४१ ।।

देवकी, वसुदेव, श्रीकृष्ण, रूक्मिणी, बलराम और अन्य स्त्री समुदाय रति प्रद्युम्न से आंलिगन करते हुये सन्तोष पाए ।। ४२ ।।

खोया हुआ प्रद्युम्न वापस आया है। इसको सुनकर द्वारकावासी यादव लोग 'अरे मरा हुआ हमारा लड़का पुनः जीवित होकर आया है।' इस प्रकार आपस में बाते करने लगे ।। ४३ ।।

प्रद्युम्न के श्रीकृष्ण के समान रूप को देखकर श्रीकृष्ण की पत्नियों ने श्रीकृष्ण के साथ विहार की इच्छा करने लगी। प्रणय भाव से, भरे हुये हृदय से अनेक तरह के श्रृंगार लीला करने लगीं, क्योंकि प्रद्युम्न श्रीनिवास के प्रतिबिम्बरूपी प्रिय कामदेव हैं। केवल स्मरण मात्र से स्त्री-पुरुषों का मन मोहित करने वाला है। अब वह आँखों को दिखाई दे रहा है तो जनमानस में काम-विकार होन में क्या विशेष है ।। ४४ ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में अड़सठवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - उनहत्तरवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - श्रीकृष्ण कैलास यात्रा के लिये गये थे। वे द्वारका में नही थे। यह जानकर पौंड्रक नाम का राजा बहुत बड़ी सेना के साथ आकर रात में द्वारका को घेर लिया। बलराम, सात्यकी, वसुदेव, उद्धव आदि यादव प्रमुख उग्रसेन के नायकत्व में उसका सामना किए। दोपहर में आने वाले अतिथि को यजमान जैसे पर्याप्त अन्न से उपचार करता है वैसे ही बाणों से उनका उपचार किए ।। १-२-३ ।।

परीक्षित राजा पूछते हैं - हे महामुनि ! वह पौंद्रंक कौन है ? किस देश का राजा है ? किसका पुत्र है ? ये सारे मुझको बताइये ।। ४ ।।

शुकदेव कहते हैं - हे राजा ! काशी के राजा को पुत्र संतान नही था। सुतनु नाम की एक कन्या थी। राजा ने अपनी पुत्री का विवाह श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव के साथ कर दिया। वर दक्षिणा में अपने राज्य को भी दिया ।। ५ ।।

सुतनु के विवाह के पहले राजा को पुत्र नही था। सुतनु के पुत्र पौंड्रक को पुत्री का पुत्र धर्म से स्वीकार किया था। बाद में उसको सुदक्षिण नाम का पुत्र भी जन्म लेता है। इस काशी राजा के साथ पौंड्रक और सुदक्षिण तीनों युद्ध में श्रीकृष्ण के हाथ से मर जाते है। कई पुराणों के अनुसार सुदक्षिण पौंड्रक का पुत्र था।

सुतनु के पेट से महाबाहुशाली सूर्य के समान तेजस्वी, बलवीर्य मद से मत्त पौंड्रक नाम के पुत्र का जन्म हुआ ।। ६ ।।

वसुदेव का पुत्र होने के कारण लोग उसको भी वासुदेव बोलते थे। उसके जन्म लेने के बाद वसुदेव राज्यकोश सैन्य और वाहनों को उसको देकर कंस की बहन देवता के समान देवकी के साथ विवाह किया ।। ७ ।।

वसुदेव विवाह में अपने को मिले हुए काशी राज्य का एक हिस्सा पुंड्र देश को अपने इस पुत्र को दे दिया। इसके लिये उसको पौंड्रक वासुदेव बोलते हैं। पौंड्रक स्वयं को विष्णु मानता था और श्रीकृष्ण को सन्देश भेजा था कि तुम श्रीवत्स लांछन, चक्र और वसुदेव नाम

की त्याग दी।

भोजराज कंस ने वसुदेव को बंधन में रखने के बाद वसुदेव पुनः काशी को नही गया। करवीरपुर को भी नही गया ।। ८-९ ।।

करवीरपुर में भी वडवा नाम की और एक पत्नी वसुदेव की थी। उससे भी एक पुत्र था। उसको शृगाल वासुदेव कहते थे।

अपनी माँ को देवकी सौत बन गई। पिता कभी काशी नही आया। इसके कारण अपने को और भाई-बहन नही हुये। पौंड्रक इसको सहन नही कर सका। इसी को याद करते हुये वह सदाकाल यादवों से द्वेष करता था।। १० ।।

पौंड्रक की माँ सुतनु करवीरपुर की शृगाल की माँ वडवा ये दोनो पूर्व जन्म में दिति और दनु नाम की कश्यप ऋषि की भार्या थीं। वसुदेव पिछले जन्म में कश्यप था। पौंड्रक और शृगाल पूर्व जन्म में वेन और धुंधु नाम के दैत्य थे। इसी कारण वे देवांश संभूत यादवों के साथ द्वेष करते थे। पौंड्रक राजा वेन के समान मैं ही भगवान वासुदेव हूँ, मेरे सिवाय और कोई वासुदेव नही है ऐसा कहता था।

जब श्रीकृष्ण द्वारका में नही हैं वह समय साधते हुये रात में पौंड्रक ने द्वारका को घेर लिया। किन्तु बलराम और सात्यकी से वह हार गया ।। ११ ।।

हे राजा ! इस युद्ध में पौंड्रक के हजारों घोड़े, हाथी, सैनिक मर गये। सूर्योदय के पहले पौंड्रक काशी को वापस चला गया ।। १२ ।।

सूर्योदय के साथ भगवान श्रीकृष्ण गरुड़ के ऊपर चढ़कर बद्रिकाश्रम से द्वारका पहुँचे। बलराम की रक्षा में द्वारका सुरक्षित थी ।। १३ ।।

झंडा को लेकर आये हुये यादव,अंधक वंश के प्रमुख लोग श्रीकृष्ण को अर्घ्य, पाद्य देकर स्वागत किए। बाद में पौंड्रक के समाचार को श्रीकृष्ण को बताया। उसको सुनते श्रीकृष्ण सुधर्म सभा में आए ।। १४ ।।

एक दिन प्रतापी किन्तु अज्ञानी काशीराज पौंड्रक,अपने दूत के साथ श्रीकृष्ण को संदेश भेजा। वह कहता था कि मैं ही भगवान वासुदेव हूँ ।। १५ ।।

कई लोग उसकी स्तुति करते थे कि हेस्वामी, आप ही भगवान वासुदेव हैं। आप अवतार लेकर आये हैं। इस स्तुति को सुनकर पौंड्रक अपने को भगवान नारायण समझता था ।। १६ ।।

वह अपने राज्य में सबको कह दिया था कि जो मुझको भगवान नही मानेगा उसको दण्ड देना होगा। उसने जबरदस्ती से लोगों को अपने को भगवान मानने के लिये मजबूर किया। मूर्ख लोग जब उसको भगवान बोलने लगे तो उसी से वह संतुष्ट होकर दृढ़ता से अपने को भगवान समझने लगा ।

पौंड्रक के दूत द्वारका को आकर सुधर्म सभा में बैठे हुये साक्षात् नारायण के रूप कमल के समान आँख वाले भगवान श्रीकृष्ण को राजा पौंड्रक का संदेश बता दिए ।। १७ ।।

प्राणियों में कृपा करने के लिये मैं अवतार लेकर वासुदेव के रूप में आया हुँ। मुझको छोड़कर और कोई वासुदेव नही है। तुम व्यर्थ में रखे हुये अपने वासुदेव नाम को त्याग दो ।। १८ ।।

मेरे चिह्न शंख-चक्र को न डरते हुये तुम उसे धारण कर रहे हो। उनको त्याग कर मेरी शरण में आओ। नही तो मेरे साथ युद्ध करो ।। १९ ।।

अज्ञानी पौंड्रक की इन बातों को सुनकर उग्रसेन के साथ सारे सभासद जोर से हसें ।। २० ।।

भगवान श्रीकृष्ण विनोद से परिहास में बोलते हैं कि हे मूर्ख, तुम शंख-चक्र चिह्न को दंभ से अपना बोल रहे हो। अतः मैं तुमको मार डालता हूँ ।। २१ ।।

मूर्ख, तुम युद्ध भुमि में मरकर गिर जाओगे। तुमको वहाँ कौआ,बक और गिद्ध खा जायेगे। कुत्ता और सियार तुमसे अपना पेट भरेंगे ।। २२ ।।

श्रीकृष्ण के संदेश को दूत एक अक्षर को भी न छोड़ते हुये अपने राजा के सामने कह दिया। श्रीकृष्ण उसके पीछे ही रथ में बैठकर सेना के साथ काशी को गये ।। २३ ।।

श्रीकृष्ण युद्ध के लिये आ रहे हैं इसको सुनकर पौंड्रक अनेक अक्षोहणी सैन्य को लेकर काशी नगर के बाहर आया ।। २४ ।।

पौंड्रक का सैन्य दो अक्षोहिणी। काशी राजा की तीन अक्षोहिणी। एकलव्य अट्ठासी हज़ार किरात सैन्य लाया था। इनको लेकर पौंड्रक युद्ध करने आया।

रथ के बीच में एक सोने के गरुड़ के ऊपर पौंड्रक बैठा है। सोने के दो कृत्रिम हाथ बनाकर उसको अपने को बाँध लिया है। ऐसे पौंड्रक को श्रीहरि ने देखा ।। २५ ।।

पौंड्रक ने शंख, चक्र, नंदक, खड्ग,शांरगधनुष और गदा को धारण किया है। श्रीवत्स चिह्न, कौस्तुभ मणि और वनमाला को धारण किया है ।। २६ ।।

रेशम के पीताम्बर को धारण किया हैं। सुन्दर आभरण और मकर कुण्डल को धारण किया हैं। गरुड़ध्वज को रखा है ।। २७ ।।

इस प्रकार पौंड्रक अपने में न रहने वाले कृत्रिम वस्तुओं को धारण करते हुये श्रीकृष्ण का नकल करने का प्रयास करते हुये रंग स्थल के नट के समान आये हुये उसे देखकर श्रीकृष्ण जोर से हंसे ।। २८ ।।

दृढ़ धनुर्धारी पौंड्रक के सैनिक जैसे मेघ पर्वत को अपने पानी से ढक लेते हैं वैसे एक क्षण में अपने बाणों से श्रीकृष्ण को ढक लिये ।। २९ ।।

शत्रु सैन्य में कई लोग हाथी, कई रथ और कई घोड़े के ऊपर बैठकर शूल, गदा, परिघ, शक्ति, ऋष्ठि, प्रास, तोमर, खड्ग, पट्टश और बाणों से श्रीकृष्ण के ऊपर मारे ।। ३० ।।

हे राजा परीक्षित ! काशी के राजा पौंड्रक के रक्षक के रूप में उसके पितामह काशीराज जी तीन अक्षोहिणी के साथ उसके पीछे खड़ा था ।। ३१ ।।

प्रलय काल के प्रज्ज्वलित अग्नि के समान श्रीकृष्ण पौंड्रक और काशीराज के हाथी, रथ, घोड़े और पदाति सैन्य को अपने गदा, खड्ग, चक्र, बाण से ठीक तरह से मारे ।। ३२ ।।

पौंड्रक काशीराज के उनके शत्रु श्रीकृष्ण, उनके घोड़े, हाथी, सैनिक, गधे और ऊँट इन सबको मार डाले। उस समय वह रणरंग रुद्र के विहार स्थान स्मशान के समान भयानक लगता था। साथ में धीर, वीर और शूरों के लिये वह अभिमानकर बन गया ।। ३३ ।।

श्रीकृष्ण पौंड्रक को बोलते हैं - हे पौंड्रक ! सुनो, तुमने दूत के साथ संदेश भेज दिया था उसके अनुसार मैं अपने चक्र इत्यादि आयुधों को तुम्हारे सामने, तुम्हारे ऊपर छोड़ देता हूँ ।। ३४ ।।

तुमसे व्यर्थ में रखे हुये मेरे नाम को तुम्हारे से छुड़वा देता हूँ। यदि मैं तुम्हारे साथ युद्ध करना नही चाहता तो मैं शरण आता हूँ ।। ३५ ।।

इन आक्षेपों के साथ श्रीकृष्ण ने अपने तीक्ष्ण बाणों से पौंड्रक के रथ को चकनाचूर किया। इंद्र अपने वज्रायुधो से पहाड़ के पंखों को जैसे काट दिया वैसे ही अपने चक्र से भगवान ने पौंड्रक के सिर को भी काट दिया ।। ३६ ।।

उसी के साथ अपने बाणों से काशी राजा के सिर को काटकर हवा जैसे कमल के फूलों को लेकर उड़ जाता है वैसे ही उसको काशी नगर के मुख्य द्वार पर गिरा दिया ।। ३७ ।।

इस प्रकार श्रीकृष्ण ने मात्सर्य से भरे हुये पौंड्रक को और उसके मित्र काशीराजा को मार दिया। इस कृष्णकथामृत को सिद्ध लोग गीत बनाकर गाए। उसको सुनते सुनते श्रीकृष्ण ने द्वारका में प्रवेश किया ।। ३८ ।।

कर्ण कुण्डल से विराजित काशी राजा के सिर को देखकर काशी के लोग आश्चर्यचकित हुये। संशय से उसको देखने लगे ।। ३९ ।।

हे राजा ! वह सिर अपने राजा का है यह समझकर उसकी पत्नी, पुत्र, बांधव और पुरजन शोक संतृप्त होकर प्रभु प्रभु कहते हुये रोने लगे ।। ४० ।।

काशीराजा का पुत्र सुदक्षिण अपने पिता का अपर कर्म करते हुये मैं अपने पिता के अंतक को मार डालूँगा, इससे अपना पितृऋण चुकाऊंगा। इस प्रकार मन में निश्चिय करते हुये अपने पुरोहित के साथ समालोचना के बाद एक चित्त से महेश्वर की आराधना करने लगा ।। ४१-४२ ।।

अविमुक्त क्षेत्र काशी के स्वामी भगवान शिव संतुष्ट होकर उसको वर मांगने के लिये कहे। मेरे पिता को मारने वाले को मारने का उपाय मुझे बताइये ।। ४३ ।।

हे राजा परीक्षित ! भगवान शिव कहते हैं तुम श्रेष्ठ ऋत्विज और ब्राह्मणों के साथ मिलकर वेदोक्त मंत्रों से दक्षिणाग्नि में शत्रु मारण यज्ञ करो। ब्राह्मणों में जिनको भक्ति नही है उसके ऊपर

उस दक्षिणाग्नि का प्रयोग करो,मेरे प्रमुखगण तुम्हारे संकल्प को पूर्ण करेंगे। राजा सुदक्षिण इस प्रकार हवन करते हुये दक्षिणाग्नि को श्रीकृष्ण के ऊपर प्रयोग किया ।। ४४-४५ ।।

गार्हपत्य, आवाहनीय और दक्षिणाग्नि ये तीन यज्ञ करने के प्रमुख अग्नि होते है। शत्रु मरण के लिये सैनयाग, संदशयाग, दक्षिणाग्नि में करना पड़ता है। अन्य अग्निहोत्रादि कर्म को आवाहनीय अग्नि में करने की विधि है।

तब सुदक्षिण के दक्षिणाग्नि कुण्ड से दक्षिणाग्नि देव जलते हुये तांबे के समान लाल, जटा और मूछे वाले आँखों से आग उगालते हुये भयंकर रूप धारण कर उद्भूत हुआ ।। ४६ ।।

बाहर से दिखने वाले बड़े-बड़े दांत वाले, खुले मुंहवाल अपने जीभ से उस ओंठ को चाट रहा है। जलते हुये त्रिशुल को हिला रहा है। कांठ वृक्ष के प्रमाण के पांववाला, अपने पांवो से भूमी को हिला रहा है। अपने चारों ओर भुर्तो से घिरा हुआ वह अभिचाराग्नि दिशाओं को जलते हुए द्वारका की दिशा में दौड़ रहा है ।।४७,४८।।

इस प्रकार आने वाले अभिचाराग्नि को देखकर द्वारकावासी दावानल को देखे हुये मृग के समान डर गये ।। ४९ ।।

सभा में जगदीश भगवान श्रीकृष्ण अक्षत क्रीडा खेलते हुये बैठे है। उनके पास दौड़कर आये हुये प्रजाजन बोलते हैं - हे प्रभु ! हमको और हमारे नगर को जलाने के लिए आने वाले इस आग से हमारी रक्षा करिये ।। ५० ।।

शरण आये हुये उन लोगों को और उनके भय को देखकर भूरमण श्रीकृष्ण हंसकर बोलते हैं - डरो मत, मैं आपकी रक्षा करुँगा ।। ५१ ।।

सारे पदार्थों के अन्दर-बाहर रहने वाले प्रभु श्रीकृष्ण ने शिव के वर से प्राप्त हुए इस कृत्याग्नि को देखकर उसका नाश करने के लिये अपने पार्श्व में रहने वाले सुदर्शन चक्र को आज्ञा दिया ।। ५२ ।।

वह सुदर्शन चक्र करोड़ों सूर्यों के समान प्रलयाग्नि जैसे उज्जवल रूप वाली अपनी कांति से आकाश, दसों दिशाओं, भूमि और अंतरिक्ष में भर गया ।। ५३ ।।

हे राजा ! श्रीकृष्ण के तेज के आघात से मुख भंगित हुआ वह कृत्याग्नि वापस काशी को आया। अपने को निर्माण करने वाले और श्रीकृष्ण के ऊपर मार करने के लिये भेजने वाले सुदक्षिण को मारने के बाद उसे जलाकर राख कर दिया ।। ५४ ।।

उसका पीछा करते हुये आया हुआ भगवान विष्णु का सुदर्शन चक्र काशी में प्रवेश करते हुये वहाँ के सभागृह, गोपुर, महाद्वार, घर, तोरण, धनागार, हाथी, घोड़ा, रथ, मन्दिर सहित समग्र काशी नगर को जला दिया। श्रम के बिना ही काम करने वाले भगवान श्रीकृष्ण के पास आकर खड़ा हुआ ।। ५५-५६ ।।

उत्तम कीर्तिशाली श्रीकृष्ण के इस पराक्रम पूर्व कथा को एकचित्त से कहने वाले और सुनने वाले दोनों सारे पापों से मुक्त होते हैं ।। ५७ ।।

दक्षिणाग्नि प्रधान अग्नि के पुत्र है। मूल स्वभाव से वह एक देवता हैं। शिव के वर बल से वह और शक्तिशाली बना। किन्तु असुर सुदक्षिण के अभिचार होम करने के कारण दक्षिणाग्नि में असुरावेश आया। इसी कारण यह श्रीकृष्ण के द्वारका को जलाने आया। स्वभाव से वह देव होने के कारण सुदर्शन चक्र ने उसको नही मारा किन्तु भगा दिया। यही कृत्याग्नि का अंत्य है। नाश याने वह अदृश्य ही गया। अभिचार देवता जब अपने उद्देश्य को पूर्ण कर नही सकता तब वापस आकर जो अभिचार किया है उसी को आहुति लेता है। इस प्रकार दक्षिणाग्नि काशी को आकर सुदक्षिण को जला दिया। परम पापी सुदक्षिण पौंड्रक और काशी राजा के समान दुष्ट लोगों से अपवित्र हुआ काशी भाग को सुदर्शन चक्र जलाकर राख कर दिया । इसी सुदर्शन को एक दिन सूर्य की आड़ में रखते हुये भगवान अर्जुन के हाथ से सैन्धव को मारवाये थे। सुदर्शन प्रकाश की सृष्टि करता है, और आवश्यकतानुसार प्रकाश का काम भी करता है।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सत्तरहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - श्री रामकृष्ण द्वारका में थे। एक बार प्रलयकाल के समय में होने वाला बड़ा खग्रास सुर्यग्रहण हो गया ।। १ ।।

हे राजा ! उसको पहले जानने वाले लोग सत्कर्माचरण की इच्छा से स्यमंतपंचक क्षेत्र कुरुक्षेत्र को गये ।। २ ।।

परशुराम जी दुष्ट क्षत्रियों के निग्रह करने के लिये इक्कीस बार भू प्रदक्षणा (परिक्रमा) करते हुये दुष्ट राजाओं को मार कर कुरुक्षेत्र में पाँच रक्तों से भरे हुए तालाब का निर्माण किये। इनको स्यमन्तपंचक बोलते हैं।

वहाँ शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ परशुराम इस भूमि में रहने वाले सारे क्षत्रियों का नाश करते हुये उनके रक्तों से भरा हुआ पाँच भँवरा किये थे ।। ३ ।।

भगवान परशुराम को कर्म लेप नही होता। तो भी वे सामान्य मानव के समान पाप-परिहार के लिये जैसे यज्ञ करते हैं वैसे स्वयं यज्ञ किया। अन्य जनों को आदर्श दिखाने के लिये वे ऐसा किये थे ।। ४ ।।

ऐसे पवित्र क्षेत्र की यात्रा करते हुये भरतखंड से बहुत लोग वहाँ आए थे। भगवान श्रीकृष्ण अपने सोलह हजार पत्नियों के साथ मेणा में बैठते हुए वहाँ आए ।। ५ ।।

श्रीकृष्ण के पुत्र, पौत्र आदि बंधुजन हाथी के ऊपर चढे। नगर के स्त्री समूह, वेश्या, रूक्मिणी और अन्य पत्नियों के साथ श्रीकृष्ण वहाँ आये थे ।। ६ ।।

हे राजा ! उनके साथ अक्रूर, वसुदेव, गद इत्यादि वृष्णि वंश के बड़े बड़े लोग अपने पाप परिहार के लिये कुरुक्षेत्र आये थे। राम, प्रद्युम्न, सांब, सुबज्र, उद्धव, सारण देवता के समान प्रसिद्ध रथ में मणि के समान प्रकाश वाले घोड़े के ऊपर और बड़े बड़े सफेद हाथी के ऊपर बैठकर विद्याधरों के समान शोभा वाले जनों के साथ कुरुक्षेत्र आए। आहुक और कृतवर्मा को द्वारका की रक्षा के लिये पीछे छोड़े। रास्ते में आने वाले महाभाग्यशाली वे सोने के गहने पहनकर बहुत शोभायमान थे। ऋषिगण वेदघोष करते थे। शंख, दुंदुभी इत्यादि वाद्यघोष भी होता रहा। लोग

कृष्ण-कृष्ण गोविंद गोविंद इस प्रकार संकीर्तन करते थे। इस ध्वनि से दसों दिशायें भर गयीं। हे राजा इस प्रकार यादवों की घोष यात्रा चली ।। ७-८-९-१०-११ ।।

ये लोग तीनों लोकों में सुप्रसिद्ध समंत पंचक में आकर वहाँ घास, पत्ती, लकड़ी से कुटियाँ बनाये ।। १२ ।।

कंबल, चर्म और कपड़ों से निर्मित अनेक वर्णों के हजारों राज-शिविर वहाँ निर्माण हुये।। १३ ।।

अनेक राजा, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्रों के साथ हजारों संख्या में वहाँ आये। असंख्य वर्णबाह्य लोग भी वहाँ आये ।। १४ ।।

श्रेष्ठ, व्रतनिष्ठ, महात्मा और ऋषिगण, उपाध्याय, अग्निहोत्री लोग अभी अध्ययन पूर्ण किए हुए ब्रह्मचारीगण, गृहस्थ, अंधे, बहिरे, कूबड़ वाले, ठिगने, कापुरुष, अंग विकल, मूर्ख, काने ये सभी लोग भी अपने पाप परिहार के लिये वहाँ आये थे ।। १५-१६ ।।

ये सारे महाभाग्यशाली लोग कुरुक्षेत्र में ग्रहण स्नान करके उस दिन उपवास व्रत रहे। एकाग्रचित्त से श्रीकृष्ण का ध्यान किए। उनके चरणरज को अपने सिर पर रखे। हाथ के आभूषण फूल-माला से अलंकृत होकर दिव्य गंध और दिव्य वस्त्र को धारण करते हुये पत्नी के साथ गंधर्व के समान सुशोभित रहे ।। १७-१८ ।।

यादव लोग परशुराम जी द्वारा निर्माण किए हुए भंवरे में विधिपूर्वक अवगाहन (स्नान) करते हुये वस्त्र और सोने से अलंकृत गायों को ब्राह्मणों को दान दिया ।। १९ ।।

श्रीकृष्ण को भगवान मानने वाले यादव लोग ब्राह्मणों को उत्कृष्ट अन्न दान दिया। भगवान श्रीकृष्ण में भक्ति बढ़े यह प्रार्थना की। ब्राह्मण भोजन के बाद उनकी आज्ञा से वे भी भोजन किये। बड़ी छाया वाले वृक्षों के नीचे आनन्द से विश्राम किया। वहाँ आये हुये स्नेही सम्बन्धी लोगों से और राजाओं से मिले ।। २०-२१ ।।

वहाँ मत्स्य, उसीनर, कौसल, विदर्भ, कुरु, वशृजंय, काम्बोज, कैकय, मद्र, कुनिभोज, गांधार, केरल से राजा लोग आये थे ।। २२ ।।

इनके अलावा और भी राजा आये थे। अन्य पक्ष के राजा लोग भी आये थे। ये सारे राजाओं से भेट किये। बहुत दिनों से उनको देखने के लिये तरस रहे नंद-गोप इत्यादि गोप-गोपियों को भी देखे ।। २३ ।।

परस्पर भेटने के आनंद के आवेग से यादव और गोपालकों का हृदय भर गया। मुख कमल खिल गया। आँखों में आँसू भर गये। वे रोमांचित होकर परस्पर आलिंगन किये। मुहँ से बाते नही निकली। वे परमानन्द भरित हो गये ।। २४ ।।

स्त्री लोग भी बहुत प्यार करते हुये आशा की तिरछी नजर से परस्पर देखते हुये आँखों से

प्रेमाश्रु को बहाते हुये कुंकुम लेपित स्तनों से दूसरे के स्तन को दबाते हुये बाहों से परस्पर आलिंगन किया ।। २५ ।।

बाद में बड़ों को नमस्कार किया, छोटों को आशीर्वाद दिया, स्वागत किये और क्षेम का विचार किया। परस्पर मिलकर श्रीकृष्ण की गाथाएँ गाए ।। २६ ।।

कुंतीदेवी वसुदेव के साथ अपने भाई-बहनों को उनके पुत्रों को, अपने माता-पिता कुन्तिभोजादि को देवकी इत्यादि सोदर पत्नी को और श्रीकृष्ण को भेट कर परस्पर बाते करते हुये अपने दुःख को दूर किया ।। २७ ।।

कुन्ती बोलती है कि हे बड़े भाई वसुदेव ! मैंने कुछ भी पुण्य नही किया होगा क्योंकि आप सज्जन लोग हमारे आपत्ति के समय में भी हमारी याद नही करते ।। २८ ।।

अदृष्ट अच्छा नही रहा तो बंधु, बांधव, स्नेही, भाई क्या माता-पिता भी अपने लोगों की याद नही करते ।। २९ ।।

वसुदेव कहते है कि हम मानव भगवान के हाथ की गुड़िया हैं। तुम हमारे ऊपर क्रोध मत करो। यह सारा जगत श्रीहरि के अधीन में है। वे जो करवाते हैं हम उसी के अनुसार करते हैं। अपनी इच्छा के अनुसार करने के लिये कोई स्वतंत्र नही है ।। ३० ।।

कंस के कारण हम सब इधर-उधर भागकर दशों दिशाओं में छिपकर रहते थे। प्यारी बहन भगवान की कृपा से अभी हम अपने स्थान पर वापस आये हैं ।। ३१ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - वसुदेव, उग्रसेन इत्यादि यादवों से सत्कार पाकर राजा लोग ने श्रीकृष्ण के दर्शन से आनन्द विभोर हो गये ।। ३२ ।।

हे राजा, परीक्षित, भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, गांधारी उनके पुत्र, पाण्डव, उनकी पत्नी कुन्ती, संजय, विदुर, कृप, कुन्तीभोज, विराट, भीष्मक, नग्नजित, महापराक्रमी पुरुजित, द्रुपद, श्यैब्य, धृष्टकेतु, काशीराज, दमघोष, विशालाक्ष, मैथिल, मद्रराज, कैकेय राजा, युधामन्यु, सुशर्म, बाहलीक, उनके पुत्र और अन्य युधिष्ठिर तथा राजाओं ने अपनी पत्नियों के साथ लक्ष्मी-निवास श्रीकृष्ण को देखकर विस्मित होकर नमस्कार किया ।। ३३-३४-३५-३६ ।।

रामकृष्ण से सत्कार पाकर उन राजाओं ने तृप्त होकर श्रीकृष्ण की पत्नियों को और सेवकों को धन्य-धन्य कहते हुये स्तुति किये ।। ३७ ।।

मानव जन्म पाए हुये लोगों में आप ही धन्य हैं क्योंकि योगियों को भी न मिलने वाले भगवान श्रीकृष्ण को आप सदाकाल देखते रहते हैं ।। ३८ ।।

श्रीकृष्ण से हमें मिला हुआ, उनके पांवों को धोया हुआ गंगा जल और वेदशास्त्र ये दोनो सदाकाल के लिये इस लोक को पवित्र करते रहते हैं। कलिकाल के जलन से इस भूमि में रहने

वालों की शक्ति सामर्थ्य भुना हुआ अनाज के समान होते हुये भी भगवान श्रीकृष्ण के पद कमल स्पर्श की महिमा से वह पुनःश्चेतन पाकर हमें सकल संपदाओं को देते हैं।। ३९ ।।

श्रीकृष्ण के दर्शन, स्पर्शन उसके साथ आना-जाना, बैठना, बाते करना, खाना-सोना, करने वाले अर्जुन, बलराम यौवन भरित देह वाले हैं। उनका दृढ़ आलिंगन पाने वाले आप लोगों को और नरक का मार्ग रूप लौकिक जीवन चलाने वाले हमको भी स्वर्ग मोक्ष में भगवान श्रीकृष्ण ही विशिष्ट सुख देते हैं। ऐसे श्रीकृष्ण स्वयं आपके घर में रहते हैं। आपका जन्म ही सार्थक है।। ४० ।।

कुरुक्षेत्र को यादवों के साथ भगवान श्रीकृष्ण आये हैं यह समाचार सुनकर उनको देखने के लिये गोपालकों के साथ नंदगोप भी वहाँ जल्दी से आये। नंद-गोप को देखकर वहाँ पहले आये हुये यादव, एक बार प्राण चला गया शरीर में पुनः प्राण आए तो वह जैसे उठता है वैसे झट से उठकर उनका आलिंगन किए। उनको देखने के लिये वे बहुत दिन से चाहते थे।। ४१-४२ ।।

वसुदेव गोकुल में अपने पुत्र को न्यास रखने के बाद से अपने अंत तक कंस ने दिए हुये कष्टों को याद करते हुये प्रेम विभोर होकर नंद का आलिंगन किये, बहुत आनन्द पाये।। ४३ ।।

हे राजा ! राम-कृष्ण नंद-यशोदा के पास आकर उनका आलिंगन किये। नमस्कार करते हुये आँखों में आँसू भर के प्रेम विह्वल होकर कुछ भी बातें कर नही पाए।। ४४ ।।

दोनों पुत्रों को अपने जंघे के ऊपर बिठाकर हाथों से आलिंगन करते हुये राजा नंद और भाग्यशाली यशोदा अपने दुःखों को भूल गये।। ४५ ।।

रोहिणी और देवकी यशोदा का आलिंगन करते हुये उनसे किए हुए स्नेह को याद करते हुये गदगद होकर रूद्धकंठ से बोलीं।। ४६ ।।

यशोदा ! आप द्वारा हमारे साथ किये हुये प्यार को कौन भूल सकता है। उसके बदले में हम इन्द्र पदवी दिए तो भी, कम ही पड़ता है। आपसे किये हुये प्यार के बदले में हम कुछ नही कर सकते।। ४७ ।।

यशोदा ! ये दो बच्चे जन्म लेने से अपने माता-पिता को नही देखे। आप लोग ही माँ-बाप से बढ़कर प्यार किए। जात-कर्मादि धार्मिक कार्य करते हुये उनके अभ्युदय के कारण बने। आपने ही उनकी रक्षा की। आपकी रक्षा में ये दोनो सुख और आनन्द से रहे। आँख के पलक के समान उनकी रक्षा की। उनको किसी से भय नही रहा। केवल सज्जनों की रक्षा रही।। ४८ ।।

गोपिका स्त्रियाँ श्रीकृष्ण को बहुत दिनों से देखना चाहती थीं। वे अब श्रीकृष्ण को आँखो को फाड़-फाड़कर देखना चाहते थे। किन्तु आड़ में आने वाले आँखों के पलक को बनाने वाले ब्रह्माजी को शाप देने लगीं। नित्य योगाभ्यास करने वाले को भी लभ्य न होने वाले भगवान श्रीकृष्ण को प्रत्यक्ष में देखते हुये आँखों से खींचते हुये, हृदय में छिपाकर वहाँ उनसे आलिंगन करते हुये उनमें भक्ति पाये।। ४९ ।।

श्रीकृष्ण के पास एकान्त में आये हुये गोपियों को आलिंगन करते हुये कुशल प्रश्न के बाद भगवान हसन्मुख होकर बोले ।। ५० ।।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं - हे प्यारी सखियाँ मैं अपने बंधु और दीन दुखी लोगों को उपकार करने हेतु मथुरा को गया। अन्य बहुत कार्यों में मग्न होने के कारण आप लोगों को देखने के लिये नही आ पाया। बीच में आप मुझको याद करते थे क्या ? ।। ५१ ।।

बहुत विचार करने के बाद मेरा यह दृढ़ निर्धारण है कि भगवान प्राणियों को आपस में मिलाते और दूर भी करते हैं ।। ५२ ।।

वायु जैसे मेघ को तृण, कपास और धुलिकण के साथ जोड़ता है और दूर करता है वैसे ही इस जगत में प्राणियों को सृष्ट करके भगवान परस्पर उन्हे जोड़ते और दूर करते हैं। यह कार्य सदा के लिये चलता रहता है ।। ५३ ।।

जो जीव मुझमें भक्ति करता है उसको मुक्ति मिलती है। मेरे वियोग से आप लोगों को बिना कष्ट से मुझमें भक्ति उत्पन्न हुई है। यही भक्ति आपको स्वरूप सुख नाम की मुक्ति का कारण बनेगा ।। ५४ ।।

हे ललना मणि ! मैं प्रारम्भ काल से सभी प्राणियों में रहने वाला हूँ और अंत तक रहता हूँ। भौतिक पदार्थों में जैसे आकाश, जल, पृथ्वी, वायु और तेज रहते है वैसे मैं सारे प्राणियों के अन्दर और बाहर रहता हूँ ।। ५५ ।।

जैसे प्राणियों में पंचमहाभूत रहते है और यह जगत पंचमहाभूतों से व्याप्त है वैसे भगवान से भी यह जगत व्याप्त है। जीवात्म भी परमात्म से व्याप्त है। इस प्रकार भौतिक पदार्थ और जीवात्म ये दोनो सर्वोत्तम नाश रहित मेरे आश्रय में हैं और मैं इनमें पूर्ण रूप से व्याप्त हूँ। आप इसको ठीक तरह से समझिये ।। ५६ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण के इस अध्यात्म उपदेश से सही तत्वज्ञान को पाये हुये गोपिका स्त्रियों ने भगवान के निरंतर स्मरण से लिंग देह के अभिमान को त्यागकर श्रीकृष्ण के भगवान के रूप को समझ गयीं ।। ५७ ।।

गोपियाँ प्रार्थना करती हैं - हे नाथ ! जन्म-जन्मांतर में आपके पादारविंद को हम नमन करना चाहते हैं। योगी लोग अपने श्रेष्ठ ज्ञान से आपके पाद कमल को अपने हृदय में ध्यान करते रहते हैं। हम इस जीवात्म को घर के समान रहने वाले इस शरीर का पोषण करने में सदाकाल आसक्त होकर इस संसार कूप में पड़े रहते हैं। वहाँ से उठकर ऊपर आने के लिये आपका यह पाद कमल ही एकमेव सहारा है। वह हमारे हृदय में सदा रहते हुये, ध्यान गोचार हो ।। ५८ ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में सत्तरवाँ अध्याय समाप्त होता हैं ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - इकहत्तरवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - मोक्ष चाहने वाली के गुरु और मुक्तों को परमगतिरूप भगवान श्रीकृष्ण गोपियों को इस प्रकार अनुग्रह करते हुये वहाँ आये धर्मराज और उनके बंधुओं से कुशल प्रश्न किया ।। १ ।।

जगत्पति के इस प्रकार आदर पूर्वक कुशल प्रश्न करने के बाद उनके पाद दर्शन से अपने पापों को धोने वाले पांडव आनन्द भरे मन से उत्तर रूप में इस प्रकार बोले ।। २ ।।

प्रभु ! आपके पाद कमल के कथामृत को वेदव्यासादि महात्माओं ने अपने श्रीमुख से मनःपूर्वक उपदेश करते समय कभी-कभी कर्णपुट से पान करने वाले का पाप कट जाता है। उन लोगों को कभी अमंगल नही होगा। अपने पेट भरने में ही जिनका जीवन व्यतीत हो रहा है उनको देखकर ये लोग विश्वास करते हैं ।। ३ ।।

आप आत्मधाम हैं। आपको और किसी की आवश्यकता नही है। आप ब्रह्मादि देवताओं के स्वामी और गति हैं। आप देव, दानव, मानवों को तत्वज्ञान, मिथ्याज्ञान, संशयज्ञानरूपी, जागृति, सुषुप्ति और स्वप्नावस्था को देने वाले हैं। आप आनन्द पूर्ण हैं, निरंतर अप्रतिहत ज्ञान वाले हैं, आप वेदमार्ग जब जब कलुषित होता है तब उसका उद्धार करने हेतु स्वेच्छा से अवतार लेते हैं। आप केवल परमहंसों के ज्ञान के लिये गोचर होते हैं। ऐसे आपको हम नमस्कार करते हैं ।। १४ ।।

उत्तम श्लोक ब्रह्मादि देवताओं से अत्युन्त्तम रीति से स्तुति पात्र श्रीकृष्ण भगवान को पाण्डव इस प्रकार स्तुति करते रहे। इधर श्रीकृष्ण की पत्नियाँ और पाण्डवों की पत्नियाँ एकत्र होकर स्वर्गादि लोकों में संकीर्तन करने वाली कृष्ण कथा कहने लगे। उसके बारे में सुनो ।। ५ ।।

द्रौपद कहती है - हे रुक्मिणि, भद्रा, जांबवती, नीला, सत्यभामा, कालिंदी, मित्रविंदा, लक्षणा और सोलह हजार एक सौ श्रीकृष्ण की पत्नियाँ, स्वेच्छा से लोक विडम्बना करने वाले श्रीकृष्ण आपसे कब किस रीति से विवाह किए। इसके बारे में हमे विस्तार पूर्वक बताइये।। ६-७ ।

तब रूक्मिणि कहती हैं - जरासंधादि दुष्ट राजाओं ने मेरा विवाह शिशुपाल से करना चाहते थे। उसके लिये वे सारे अपने हाथ में धनुर्बाण लेकर खड़े थे। उस समय श्रीकृष्ण उन राजाओं के सिर पर अपने पादधूलि को डालते हुये बकरियों के बीच में से अपने आहर को उठाने वाले सिंह की तरह मुझको बांह से उठा के ले आये। इसको वे अपने लिये नही किये। लक्ष्मी के

के लिये वे यह काम किए ।। ८ ।।
आश्रयभूत अपने चरण कमल की सेवा को मुझसे करवाने के लिये वे यह काम किए ।। ८ ।।
सत्यभामा कहती हैं - अपने भाई प्रसेन के मर जाने से दु;खित मेरे पिताजी उसकी हत्या
का आरोप श्रीकृष्ण के ऊपर किए। उस अपवाद को परिमार्जन करने के लिये भगवान श्रीकृष्ण
जांबवान को हराकर स्यमंतक मणि को जीतकर मेरे पिता को लाकर दे दिए। तब मेरे पिताजी
श्रीकृष्ण के ऊपर वृथा आरोप करने के लिए हुए अपराध के परिमार्जन के लिये मुझको श्रीकृष्ण
की पत्नी बनाये। वे पहले मुझको औरो के लिये देने का वाक्दान किये थे ।। ९ ।।
जांबवती कहती है - मेरे पिताश्री श्रीकृष्ण के साथ सत्ताइस दिन तक युद्ध करने के बाद
श्रीकृष्ण श्रीराम का रूप धारण करके खड़े हो गये। तब मेरे पिताजी को ज्ञानोदय हो गया।
भगवान श्रीकृष्ण स्वयं सीतापति श्रीरामचन्द्र हैं इसकी जानकारी हो गयी। अपने अपराध को
जानने के बाद वे उनकी पादपूजा करते हुये मणि को और मुझको उनको समर्पण किया ।। १० ।।
यहाँ देह विकृति इस शब्द का प्रयोग है, इसका अर्थ श्रीकृष्ण का शरीर राम के शरीर
के रूप में बदल गया ऐसा नही। दोनो रूप अनादिनित्य, निर्विकार, परस्पर अभिन्न हैं। इस
कथा भाग की भागवत के (१०-६०-२५) में नही कहा गया था। यहाँ उसको कहे हैं। उसी
श्लोक में युद्ध अट्ठाइस दिन चला ऐसे कहा गया है। यहाँ सत्ताइस दिन कहा गया है।
यहाँ विरोध नही है। सत्ताइस दिन युद्ध करने के बाद अट्ठाइसवें दिन भगवान श्रीराम रूप
में दर्शन दिये। सत्यधर्मीय व्याख्या इस प्रकार है।
कालिंदी कहती है - मैं श्रीकृष्ण के चरणस्पर्श करने हेतु जमुना तट पर तप कर रही थी।
उस समय अपने मित्र अर्जुन से मेरे बारे में सुनकर स्वयं आकर मेरा पाणिग्रहण किये। उस दिन
से मैं उनके घर की झाडू लगाने वाली दासी बनी हूँ ।। ११ ।।
मित्रविंदा कहती है- श्रीकृष्ण मेरे स्वयंवर में आकर आये हुये सारे राजाओं को हराकर
मुझको जीत लिये। धनमद से विरोध करने वाले मेरे भाईयों को हरा दिये। कुत्ते को हराकर सिंह
अपने बलि को जैसे लेता है वैसे मुझको उठाकर यहाँ ले आये। मैं उनके पाद को धोये हुये जल से
तृप्त हूँ। मेरी चाह है अगले जन्मो में भी उनका पाद तीर्थ मिलते रहे ।। १२ ।।
नीला कहती है - राजाओं के सामर्थ्य को परीक्षण करने हेतु मेरे पिताजी बड़े सींगवाले
बहुत पराक्रमशाली सात सांड़ों को रखे थे। अनेक वीर उनसे मार खाकर चले गये थे। किन्तु
भगवान श्रीकृष्ण खेल खेलते बच्चे जैसे छोटी बकरी को बांध देते हैं वैसे ही उन सातों सांड़ों को
अनायास से ही बांध दिया ।। १३ ।।
इस प्रकार श्रीकृष्ण वीर्यशुल्क देकर बीच में विघ्न बने राजाओं को हराते हुये दास-
दासियों के साथ चतुरंग बल लेकर मुझको यहाँ ले आये। मै उनकी केवल दासी बनकर रहना
चाहती हूँ ।। १४ ।।
भद्रा बोलती हैं - द्रौपदी ! मैं श्रीकृष्ण से प्यार करती थी। इसको जानकर मेरे पिताजी

श्रीकृष्ण को अपने पास बुलाकर मेरे सखियों के साथ एक अक्षोहिणी सैन्य देते हुये मुझको उनको दान दिया ।। १५ ।।

कर्मानुसार चलने वाले इस संसार में उन्ही के पाद स्पर्श से मुझे श्रेयस मिला है। मैं यही चाहती हूँ कि जन्म-जन्म में वह पाद स्पर्श मिलते रहे ।। १६ ।।

लक्षणा बोलती है - हे पाण्डवों की रानी द्रौपदी ! मैं भी नारद जी के मुँह से श्रीकृष्ण के अवतार और लीला के बारे में बार-बार सुनी थी। मेरा मन उन्ही में लग गया था। हाथ में कमल धारण किये हुये लक्ष्मी देवी ने सारे लोक पालकों को छोड़कर भगवान का वरण किया। मेरा उनको चुनना क्या विशेष है ।। १७ ।।

मेरे मन की इच्छा को जानते हुये मेरे पिता जी मेरे ऊपर प्यार के कारण एक उपाय किए ।। १८ ।।

द्रौपदी ! आपके पिता आपको विवाह में वर रूप में अर्जुन ही मिलें इस दृष्टि से स्वयंवर में मत्स्ययंत्र को खड़ा किये थे। वैसे ही मेरे पिता जी मुझे श्रीकृष्ण ही मिलें इसके लिये स्वयंवर में मत्स्ययंत्र को खड़ा किये थे। किन्तु इस यंत्र को ऊपर से एक आवरण था। वह आवरण नीचे वाले पानी में दिखता था ।। १९ ।।

बाहर एक आवरक मत्स्य यंत्र के ऊपर था। उसका प्रतिबिंब जल में दिखता था। उस डिब्बा में रहने वाले छेद से बाण मारते हुये अंदर के मत्स्य यंत्र को मारना था।

स्वयंवर की वार्ता को सुनकर शस्त्रास्त्र में तज्ञ हजारों राजाओं ने अपने उपाध्यायों के साथ दशों दिशाओं से हमारे नगर को आये ।। २० ।।

मेरे पिता जी उनके सामर्थ्य और आयु के अनुसार उनका सत्कार किये। मुझको पाने की इछा से राजाओं ने वहाँ रखे हुये धनुर्वाण को उठाये ।। २१ ।।

कई राजाओं ने कमान पर तीर चला नही सके। और कई धनुष को शिंजिनी जोड़ते समय मार खाकर गिर गये ।। २२ ।।

अनेक वीर बाण चढ़ाते समय गिर गये। नरकासुर, जरासंध इस प्रकार गिरने वाले में हैं। दुर्योधन, कर्ण बाण चढ़ाये पर लक्ष देख नही पाये। भीमसेन धनुष को नही छुये। लक्ष को आँख उठाकर नही देखे ।। २३ ।।

यह लक्षभेद कार्य केवल भगवान श्रीकृष्ण का है। शुद्ध भागवत धर्मनिष्ठ भीमसेन जी सोचते है कि यहाँ लक्षभेदन का प्रयत्न करना भी अपराध होता है। इसी कारण वे अपनी नजर उठा कर उनको देखे नही। तात्पर्य निर्णय (२०-५६) में इस प्रकार है।

अर्जुन पानी में मत्स्य यंत्र के प्रतिबिंब को देखकर उसके स्वरूप को जानकर प्रयत्न पूर्वक बाण प्रयोग किया। बाण केवल लक्ष्य को छूकर गिरा, लक्ष्य को नही काटा ।। २४ ।।

अर्जुन भी ठीक तरह से जानता था कि लक्षणा श्रीकृष्ण की वस्तु है। किन्तु जरासंध, कर्ण इत्यादि से अपना सामर्थ्य दिखाने के लिये बाण प्रयोग किया। लक्षभेद नही करना चाहता

था। इसी कारण प्रयत्न किया लेकिन बाण छू जाय लक्ष्य की भेद न करे इसी का प्रयत्न किया।

दुराभिमानी राजाओं ने हार से अपमानित होकर चुप बैठे। उस समय श्रीकृष्ण उठकर विनायास धुनष में बाण चढ़ाये ।। २५ ।।

ठीक दिन के मध्य समय में धनुष पर बाण चढ़ाकर नीचे के जल में मत्स्य यंत्र को देखकर एक छोटे बाण से मत्स्य यंत्र का भेदन किया ।। २६ ।।

अंतरिक्ष मे दुंदुभी निनाद किया। भूमण्डल जयकार से गूंज उठा। देवता लोग आनन्द विभोर होकर श्रीकृष्ण के ऊपर पुष्पवृष्टि किए ।। २७ ।।

तब मैं अपने सुन्दर कुच और जघनों को रेशम की साड़ी से छिपाकर कबरी को फूल माला से सजाकर घुंघुरू के गुंजन करने वाले पदाघात से दसों दिशाओं में खड़े होकर देखने वाले राजाओं के दिल की धड़कन को और बढ़ाते हुये लज्जायुक्त मंद हास से रंगस्थल में आयी ।। २८ ।।

कर्णाभरण से प्रकाशित कान्ति से और लाल दिखने वाले गाल वाली मैं चारों ओर घेरे हुये राजाओं को आंख उठाकर देखी। मेरे हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति बहने वाला प्यार भभक उठी। साथ-साथ श्रीकृष्ण भी मुझसे अनुरक्त थे। इसको देखकर उनके कंधे के ऊपर अपने श्रेष्ठ फूल मालाओं को चढ़ाई ।। २९ ।।

अनुरक्त हृदया इस शब्द से यह दोनों अर्थ होते हैं।

फूलमाला चढ़ाते ही मृदंग, पटह, शंख, भेरी, आनक इत्यादि वाद्य बजने लगे। नर्तकियों ने नर्तन किया। गायकों ने गाना गाया। अन्य लोग उत्साह से जयघोष किए ।। ३० ।।

द्रौपदी इस प्रकार लक्ष्मीपति भगवान श्रीकृष्ण को मेरे वरण करते ही कामातुर राजाओं ने इसको सहन न करते हुये स्पर्धा से श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने आये ।। ३१ ।।

शंख, चक्र, गदाधारी कृष्ण चार घोड़े वाले रथ में मुझको बिठाते हुये धनुष को उठाकर युद्ध के लिये सिद्ध हो गये ।। ३२ ।।

हे द्रौपदी ! वृक् के समूह के मध्य से अपने आहार को उठाने वाले सिंह के समान श्रीकृष्ण उन राजाओं के सामने ही सोने से भरे हुए रथ को चलाने के लिये सारथी दारूक को कहे ।। ३३ ।।

कई राजाओं ने धुनष लेकर रथ को रोकना चाहा। यह कुत्तों से सिंह को रोकने जैसा हुआ ।। ३४ ।।

श्रीकृष्ण के शार्ंग धनुष से निकले बाणों के समूहों ने राजाओं के हाथ-पाव सिर को काट डाला। इसको देखकर बचे हुये अन्य भाग गये ।। ३५ ।।

जब हम द्वारका आ गये प्रभु श्रीकृष्ण के विजय वार्ता से वहाँ सारे जगहों में आनन्द भर गया था। सूर्य को छिपाने वाले ध्वजों से और रंगारंग वाले तोरणों से अलंकृत द्वारका, भूमि के ऊपर का स्वर्ग सा बन गयी थी। स्वर्ग से भी बढ़कर थी। सूर्य के अपने उदयाचल को जाने जैसे भगवान श्रीकृष्ण मेरे साथ द्वारका में प्रवेश किये ।। ३६ ।।

मेरे पिता जी राजा बृहतसेन अपने मित्र और बंधु-बांधवों के साथ आकर बहुमूल्य वस्त्राभरण शयन

आसन इत्यादि देकर हमारा सत्कार किए। पिता जी अनेक दासियाँ, पदाति, रथ, हाथी, घोड़े, बहूमूल्यवान आयुधों को सकल संपतपूर्ण भगवान श्रीकृष्ण को भक्ति से अर्पण किए ।। ३७-३८ ।।

इस प्रकार सर्वसंग परित्याग करके तप के बल से स्वरमण श्रीकृष्ण को हम सारे घर के काम करने वाली दासी बन गयी हैं ।। ३९ ।।

सोलह हजार एक सौ पत्नियाँ कहती हैं - नरकासुर इस भूमि में दिग्विजय करते समय हम राजकुमारियों को जबरन लाकर जेल में रखा। वहाँ हम श्रीकृष्ण के पाद कमल का स्मरण करते रहे। संसार बंधन से ही मोचन करने वाले भगवान श्रीकृष्ण इसको जानते हुये युद्ध में परिवार सहित नरकासुर को समूल नाश करते हुये हमको अपने पादमूल में बसाते हुये हमारे से विवाह किए ।। ४० ।।

द्रौपदी हम श्रीकृष्ण से साम्राज्य, स्वराज्य, भोज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य, अनंत अथवा हरिपद (मोक्ष) को भी नही चाहते। लक्ष्मीदेवी के कुच-कुंकुम गंध भरित श्रीकृष्ण के श्रीचरण रज को अपने सिर के ऊपर रखना चाहते हैं ।। ४१-४२ ।।

साम्राज्य का अर्थ सम्राट पदवी, स्वराज्य = **स्वतंत्र राज्य, भौज्य का अर्थ भोग** समृद्धि, वैराज्य यानी प्रतिपक्ष से भी बढ़कर राज्य, पारमेष्ठय चक्रवर्ती पदवी होता है। अथवा **ब्रहुच्य ब्राह्मण** के अनुसार क्रमश: उत्तर, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम राज्य होते हैं। अथवा स्वराज्य, भौज्य, साम्राज्य, वैराज्य क्रमश: स्वर्ग, अंतरिक्ष, भू, पाताल राज्य हैं। पारमेष्ठय ब्रह्म पदवी होता है, अनंत शेष पद होता है और हरिपद इंद्रप्रस्थ अथवा मोक्ष हो सकता है। सोलह हजार एक सौ ये पत्नियाँ पिछले जन्म में अग्निपुत्र थे। उस जन्म में किये हुये वेदाध्ययन के संस्कार बल से इस जन्म में वे इन सारे सम्पदा से भी श्रीचरण रज को ही श्रेष्ठ मानते हैं।

गोपलकों के साथ गाय चराते समय भगवान श्रीकृष्ण के चरण कमल को स्पर्श करने के लिये गोप स्त्रियाँ ही क्या, वहां के तृणलता भी चाहते थें। हमारा उसको चाहने में क्या आश्चर्य है ? ।। ४३ ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में इकत्तरवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बहत्तरवाँ

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ॥

श्री शुकदेव जी कहते हैं - इस प्रकार श्रीकृष्ण की पत्नियाँ अपने विवाह के बारे में बोलती रहीं। उसको सुनकर कुंती, गांधारी, द्रौपदी आदि महिलाएँ इन सुप्रसिद्ध श्रीकृष्ण की पत्नियों के सर्वेश्वर श्रीकृष्ण भगवान के ऊपर रहने वाले प्यार को देखकर बहुत विस्मित हुयीं। उनकी आँखों में आँसू भर आया ।। १ ।।

इस प्रकार महिलाओं ने महिलाओं के साथ और पुरूष पुरूषों के साथ सुख संकथा करते समय श्रीकृष्ण-राम के दर्शन की आकांक्षा से ऋषि-मुनिगण समंत पंचका को आए ।। २ ।।

महर्षि श्री वेदव्यास जी, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानंद, भरद्वाज, गौतम, श्री परशुराम, वशिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, माकन्डेय, बृहस्पति, द्वित, त्रित, एकश्त, बह्मपुत्र आंगिरस, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य, वामदेव इत्यादि अनेक पूज्य ऋषि-मुनियों ने अपने शिष्यो के साथ वहाँ आये ।। ४-५ ।।

इन मुनियों का नामोच्चारण करना भी पुण्यप्रद है। इसको दिखाने के लिये शुकदेव ने इन महात्माओं का नाम निर्देशन किये हैं। इनमें एकत, द्वित और त्रित ये भी बड़े महात्मा हैं। ये तीनों गौतम के पुत्र हैं। त्रित पौरोहित्य में ज्यादा समर्थ था। वह ज्यादा गोधन को पाता था। इसी कारण एकत और द्वितत दोनों त्रित से मत्सर रखते थे। एक बार तीनों भाई सरस्वती तट पर प्रयाण कर रहे थे। उस समय एक भेड़िया उनके पास आया। उस समय उसके भय से तीनों भाई दौड़ने लगे। रास्ते में त्रित एक पुराने कूप में गिर गया। अन्य दोनो भाई उसको न उठाते हुये चले गये। कूप में थोड़ा ही जल था। त्रित को कुछ मार नही पड़ा। लेकिन वह ऊपर नही चढ़ सका। त्रित वहाँ रहने वाले थोड़े से जल में अग्नियों को आवाहन करते हुये एक लता में सोमलता को आवाहन किया। उनकी सहायता से वहाँ सोमयाग को किया। वहाँ देवताओं ने आकर सोमाहुति को स्वीकार कर वर माँगने के लिये बोले। मुझे इस कूप से बाहर

आना चाहिए, यह कुआँ उत्तम तीर्थ बने, इसमें स्नान करने वाले को सोमयाग का फल मिले। दैवानुग्रह से वहाँ सरस्वती जल का आवेश आकर कुआँ भर गया। मुनि तैरकर बाहर आए। उस दिन से उस कुआँ का नाम उदपान तीर्थ हो गया। जब बलराम तीर्थ यात्रा पर थे तब यहाँ स्नान कर क्षेत्रविधि किया हैं। यह कथा महाभारत शल्य पर्व ६३९ वें अध्याय में आता है। वेद कहता है त्रित: कूपेड वहितो, देवान् हवत् ऊतये ।

श्रीकृष्ण के दर्शन किये हुये राजाओं ने और पाण्डवों ने कृष्ण-बलराम के साथ मुनियों को देखकर उठकर खड़े हो गए। लोक वंदित उनको प्रणाम किए ।। ६ ।।

पाण्डवों के साथ श्रीकृष्ण-बलराम भी मुनियों का स्वागत करते हुये आसन, पाद्य, माल्य, धूप, गंधों से सत्कार किया ।। ७ ।।

मुनि लोगों के सुखासन में बैठने के बाद धर्म रक्षण के लिये अवतार लिए श्रीकृष्ण बोलने लगे। बड़ी सभा निःशब्द होकर उनको सुनती थी ।। ८ ।।

श्री भगवान बोलते हैं - योगिगण ! आप लोगों का दर्शन देवताओं के लिये भी दुर्लभ है। आपके दर्शन से हम लोगों का जन्म पूर्ण रूप से सार्थक हुआ ।। ९ ।।

केवल प्रतिमाओं में भगवान को देखने वाले अल्प तप वाले लोगों को आपके समान ऋषि मुनियों का दर्शन, स्पर्शन, संभाषण मिलना दुर्लभ है। भक्ति से पाद पूजा करना और भी दुर्लभ है ।। १० ।।

केवल दर्शन मात्र से जल तीर्थ नही बनता। पत्थर भगवान नही होता। वे हमको उसी समय पवित्र नही करते। बहुत दिन तक उनकी सेवा करना पड़ता है। आपके समान गुरुओं के दर्शन मात्र से जीवन पावन हो जाता है ।। ११ ।।

कई लोग अग्नि, सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, भूमि, जल, आकाश, वाक् मन इनको भगवान मानकर उपासना करते हैं। वे अन्यथा ज्ञानियों के पाप परिहारक नही बनतें। किन्तु ज्ञानी गुरुवर्य के एक मुहूर्तकाल तक सेवा करने से, वे उपदेश देकर पाप परिहार करते हैं ।। १२ ।।

कई लोग वात, पित्त, कफ नाम के तीन धातु से भरे हुये इस शरीर को आत्मा मानते हैं, पत्नी, पुत्रों को अपना मानते हैं, मिट्टी की गुड़िया को भगवान मानते हैं और जल को तीर्थ मानते हैं। किन्तु ये लोग ज्ञानियों में पूज्यता और श्रद्धा नही रखते हैं। वे लोग इस भू-लोक में मनुष्य रूप में रहने वाले गधे हैं ।। १३ ।।

जड़ प्रतिमा को भगवान मानना इत्यादि अन्यथा ज्ञान है। यह अनर्थ कर है। इसको न समझने वाले गधे के समान हैं।

श्री शुकदेव कहते हैं - अप्रतिहत ज्ञानी भगवान श्रीकृष्ण के मुख से इस प्रकार असंगत लगने वाली अपनी स्तुति परक बातों को सुनकर मुनियों को दिग्भ्रमा हो गया। वे एक क्षण तक चुप बैठे ।। १४ ।।

वसुदेव इत्यादि देवता होते हुये भी अवतार के समय में उनकी ज्ञानादि गुण थोड़ा विस्मरण हो सकता है। वे असंगत बोले तो आश्चर्य नही। किन्तु अवतार रूप में भी श्रीकृष्ण के गुण मूलरूप के समान उज्जवल रहते हैं। ऐसे श्रीकृष्ण ये क्या कह रहे हैं। देवताओं से और स्वयं भगवान से भी ये मुनियों को श्रेष्ठ कह रहे हैं। इसके लिये मुनियों को दिग्भ्रमा हो गया।

मुनियों ने बहुत समय तक आपस में समालोचना किया। बाद में सर्वेश्वर श्रीकृष्ण का इस रीति से विनय दिखाना, लोक रीति का एक प्रदर्शन है यह समझते हुए, हसते हुए, जगद्गुरु के सामने बोलते हैं ।। १५ ।।

ऋषिगण बोलते हैं - आप सारे प्रजापतियों के स्वामी हैं। हम तत्वज्ञान को जानते हुये भी आपकी माया से मोहित हो जाते हैं। क्योंकि आप अपने व्यवहारों से अपने निज स्वरूप को ढककर रखते हैं। हमारे सामने आप विनय प्रदर्शन कर रहे हैं। भगवान की लीलाओं को हम कैसे समझें ।। १६ ।।

हे सर्वोत्तम ! आप फलापेक्षा को न चाहते हुये इस जगत् को स्वतंत्र होकर बहुरूप में निर्माण करते हैं, पालन करते हैं और लय भी करते हैं। पृथ्वी अपने निर्माण किए हुए पार्थिव पदार्थों से अनेक नाम रूप को धारण करती हुयी विकार पाती है। किन्तु आप किसी विकार के वश में नही आतें। आप सर्वशक्त हैं, लोक विडंबन करने वाले आपकी यह लीला आश्चर्य कारक है ।। १७ ।।

इतना होते हुये भी योग्य समय में दुष्ट शिक्षण और शिष्ट रक्षण के लिये आप अपनी लीलाओं से सनातन वेद मार्ग का उद्धार करते हैं। आप ही वर्ण और आश्रमों का कर्ता, धर्ता और पालनकर्ता हैं। आप ही परमपुरुष हैं ।। १८ ।।

निर्मल होकर तप, वेदाध्ययन और इंद्रियनिग्रह करने वाले ब्राह्मणों से आप बहुत प्यार करते हैं। सदाकाल अव्यक्त आप उनको व्यक्त हैं, यह विशेष है ।। १९ ।।

आप केवल वेदों से व्यक्त होते हैं। ब्रह्मज्ञानी लोग आपके वास के स्थान बने हैं। इसी कारण आप हमारा आदर कर रहे हैं। आप ब्राह्मण वत्सल हैं। आप ब्राह्मणों के शिखामणि हैं ।। २० ।।

आज हमारा जन्म, हमारी विद्या, हमारा तप और हमारा ज्ञान सार्थक हुआ क्योंकि हम आपके साथ मिलकर बैठे हैं। आपका यह सहवास हमें परम श्रेयस्कर बन गया है ।। २१ ।।

अप्रतिहत ज्ञान वाले आप अपनी स्वरूपभूत माया से अपनी माया को छिपाकर रखते हैं।

ऐसे भगवान श्रीकृष्ण परमात्मा को हमारा नमस्कार है ।। २२ ।।

यहाँ एकत्र हुये इन राजाओं ने अथवा केवल आपसे सुख पा रहे इन यादवों ने माया के पर्दे में अपने छिपे हुये काल नियामक सर्वेश्वर आपको ठीक तरह से समझ नही पाते ।। २३ ।।

पाप समूह को नाश करने वाले गंगादि तीर्थो को भी आश्रय देने वाले परिशुद्ध ज्ञान वाले के हृदय में रहने वाले आपके पाद का आज हम दर्शन किये। विषय की अभिलाषा को दूर भगाते हुये श्रेष्ठ सद्भक्त लोग, इस संसार में रहने वाले जीवों के साथ हम जल्दी ही आपके लोक को पाते हैं। आपके भक्त हमारा आप उद्धार करें ।। २४ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार कहते हुये वे सारे मुनिगण धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण और अन्य राजर्षियों से प्रत्येक रूप से बिदा करते हुये वहाँ से चलने लगे ।। २५ ।।

उनको देखकर महायशस्वी और वाक्संयमी वसुदेव उनका पीछा करते हुये नमस्कार करने के बाद उनकी अनुज्ञा से बोले ।। २६ ।।

वसुदेव कहते हैं - सर्वदेव मय, पूज्य ऋषिगण, आपको नमस्कार। आप कृपा करके कर्म से कर्मबंध को कैसे निवारण करना इस प्रश्न का उत्तर दीजिये ।। २७ ।।

वसुदेव के इस प्रश्न का अंतरार्थ यह होता है कि भगवान श्रीकृष्ण के अनुसार ऋषि मुनियों की सेवा करना तीर्थ यात्रादि कर्म से भी श्रेष्ठ है तो यागादि कर्म भी अनावश्यक है क्या ?

नारद जी कहते हैं - हे मुनिगण ! वसुदेव के इस प्रश्न से आश्चर्यकारक कुछ नही है। वह श्रीकृष्ण को केवल अपना पुत्र मानता है। अपने श्रेयस को चाहते हुये हमारे सामने यह प्रश्न रख रहा है ।। २८ ।।

मानव लोगों को देवतागण सदाकाल अपने पास रहें तो यह विषय अनादर का कारण बनता है। गंगातीर में वास करने वाले लोग गंगा जल को छोड़कर अन्य जल से स्नानादि करते हैं ।। २९ ।।

कालप्रभाव, जनन-मरण, और त्रिगुण के परिणाम से अपने से परे अथवा अन्य कारण से भगवान श्रीकृष्ण की स्वरूपभूत अनुभव शक्ति कुठित नही हो जाती ।। ३० ।।

भगवान श्रीकृष्ण क्लेश कर्म परिपाक, सृष्टि इत्यादियों से कम न होने वाले, अनुभव वाले सर्वशक्त और अद्वितीय हैं। राहुग्रहण किये हुये अथवा कोहरे से ढका हुआ सूर्य के समान अपने को कम दिखाते हैं। वसुदेव को भी उसके अनुभव के अनुसार इंद्रियादि युक्त सामान्य मानव के समान दिखते हैं ।। ३१ ।।

कुहरा सफेद होता है, मेघ लाल दिखता है, राहू काला होता है। इसी प्रकार सत्व, रज, तम ये तीनों गुण क्रमशः सफेद, लाल और काले रंग वाले हैं। इन्ही से मानव का शरीर और

अंत:करण बनते हैं। वसुदेव अब मानव जन्म में रह रहा है। वह केवल इन प्राकृतिक शरीरों को जानता है और श्रीकृष्ण भी इसी प्रकार त्रिगुणों से बन्धित हैं ऐसा समझता है।

सारे राजाओं और श्रीराम-कृष्ण भी सुने इतने उच्च स्वर में ऋषियों ने वसुदेव के उत्तर रूप में बोलते हैं ।। ३२ ।।

कर्म से कर्म के बंधन को छुड़ाना है तो श्रद्धा से सर्व यज्ञेश्वर भगवान विष्णु की आराधना यज्ञ नाम के कर्म से करना है ।। ३३ ।।

इस प्रकार निष्काम कर्म से ही मनोनिग्रह साध्य है। मनोनिग्रह का अर्थ यह है कि विषयों से मन को खींचते हुये भगवान में मन को स्थिर रूप में रखना है। ज्ञानियों से शास्त्ररूप के अपनी आँखों से दिखाया हुआ सरल मार्ग है। यह मार्ग साधक और भगवान दोनों को संतोष देने वाला है ।। ३४ ।।

गृहस्थ ब्राह्मण को अपने वर्ण धर्म के अनुसार पाया हुआ धर्म संपदा से कामना न करते हुये परम पुरुष की आराधना करनी चाहिए। यही उसको श्रेयस्कर और कर्म नाश करने वाला मार्ग है ।। ३५ ।।

इससे कर्म नाश कैसे होता है इसको जानने, यज्ञ और दान से धन का मोह छूट जाता है। सही गृहस्थधर्माचार से पत्नी पुत्रों का मोह दूर होता है। ज्ञान साधना की दृष्टि रखे तो पुण्य लोगों की आशा कट जाती है। इस प्रकार स्त्री और धन की आशा छोड़ दिए हुये वीर पुरुष को तपोबल में प्रवेश करना चाहिये ।। ३६ ।।

निष्कामना से भक्तिपूर्वक केवल यज्ञदान के लिये धन का विनियोग करे तो धनचाह चली जाती है। पत्नी पुत्रों का पालन करना गृहस्थ धर्म है यह मानते हुये निष्काम कर्म करने से उनके ऊपर का मोह चला जाता है। किन्तु अपने सुख के लिये यह संसार करने से वह मोह जाता नही। इसी प्रकार पुण्य लोक की आशा भी ज्ञान साधना दृष्टि वाले को बाधक नही बनता। यहाँ `कल ज्ञाने` इस धातु के अनुसार काल का अर्थ ज्ञान होता है। किन्तु भगवान के तत्वज्ञान को पाने के उद्देश्य से स्वर्गादि लोकों की चाह कर सकते हैं। उन लोकों में रहते हुये देवतागण और ऋषियों के संग से ज्ञानवृद्धि होती है। गोपिका स्त्रियों ने भूलोक में श्रीकृष्ण के संग से प्रारब्ध सुख को भोगकर शरीर को छोड़ने के बाद मिले हुये स्वर्ग में ज्यादा ज्ञान पाकर क्रमश: मुक्ति पाये यह बात तात्पर्यनिर्णय ग्रंथ में लिखा है। (१०-२७-९९)

इसके अनुसार गृहस्थ इस भूमि में यज्ञादि कर्म करते हुये निष्काम कर्म से अपने अंत;करण शुद्धि से स्वर्ग पाकर वहाँ विशेष ज्ञान पाना हैं। पूर्व जन्म की साधनाओं से वैराग्य

पाये हुये श्रेष्ठ लोग को यज्ञादि कर्म करने की आवश्यकता नही है। वह ब्रह्मचारी रहे या गृहस्थ, वैराग्य आते ही विशेष तत्वज्ञान ध्यान साधनाओं के लिये सन्यास ले सकता है। तब लौकिक लोक के संग से दूर रहकर साधना करने के लिये साध्य होता है। यह कर्म नाश का मार्ग है। श्रुति स्मृतियों में कहा गया है।

तीन वर्णों में जन्म लिया हुआ जीव, देव, ऋषि और पितृ ऋण से मुक्त होता है। यज्ञ, अध्ययन और पुत्र को पाने से इन ऋणों को चुकाना है। इसको न चुकाते हुये सन्यास स्वीकार किया तो पतित होता है ।। ३७ ।।

हमको पानी और सस्य से अन्न देने वाले देवताओं को यज्ञ करते हुये अन्नदान करने से देव तृप्त होते हैं। उससे देव ऋण परिहार होता है। वेद के अध्ययन से वेद के उपदेशक ऋषियों का ऋण परिहार होता है। अपने को शरीर देने वाले माता-पिता को नियमित रूप से पिण्डदान करने वाले पुत्र को पाने से माता-पिता का ऋण घटता है। ऋण परिहार नही किया तो ऋण बाधा से पतित होकर नरक में गिरता है। किन्तु अत्यन्त गाढ़ वैराग्य की महिमा से ऋण परिहार होता है। इसके कारण सीधे सन्यास ले सकते हैं। इन ऋणत्रयों का परिहार के उद्देश्य से यज्ञ, अध्ययन और पुत्र संपादन करने वाले को यह कर्म बंधक नही होते हैं। स्वार्थ के उद्देश्य से किए तो बंधक होते है।

ब्रह्मचर्य और उत्तम संतति से ऋषि और पितृऋण को चुकाते हुये देवऋण को चुकाने के लिये यज्ञ करने के बाद ऋण मुक्त होकर सन्यास स्वीकार करना चाहिये ।। ३८ ।।

`ब्रह्मचर्य सुताभ्याम्` इस शब्द को दो बार करते हुये द्वंद्व समास करे तो उसका अर्थ पुत्र या पुत्री को पाने से पितृऋण परिहार होता हैं। यह अर्थ होता है। योग्य वर को देने से वह पुत्री पितृ और पति यह दोनो कुल का उद्धार कर सकती है। उसका पुत्र अपने पितृवंश के साथ मातृवंश के पितरो को भी पिण्डदान तर्पण आदि करता है। इसी से पुत्र से सौ बार बढ़कर पुत्री होती है। इस बात के लिये यह आधार है। **`पुत्रात् शतगुणम् पुत्री यदि पात्रे प्रदीयते`** ।

हे वसुदेव ! तुम निश्चय रूप से भगवद्भक्त हो। तुमने अनेक जन्मों में परम भक्ति से जगदीश्वर भगवान की आराधना की है। इसी कारण तुमने भगवान श्रीकृष्ण को पुत्र रूप में पाया है।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - तिहत्तरवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - मुनि जी की इन बातों को सुनकर महाबुद्धिशाली वसुदेव उनके समीप आकर सिर झुकाकर नमस्कार करते हुये अपने यज्ञ का ऋत्विज बनाने के लिये ऋषियों से प्रार्थना की ।। १ ।।

हे राजा ! धार्मिक स्वभाव के वसुदेव द्वारा उन मुनियों को विधि पूर्वक यज्ञ में वरण करने के बाद उन मुनियों ने उस समंत पंचक क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ राजसूय याग के समान अनेक यज्ञों को उनसे करवाया ।। २ ।।

हे राजा ! वसुदेव के यज्ञ दीक्षा स्वीकार करने के बाद यादव लोग स्नान करके अच्छे वस्त्रों को पहनकर कमलों की मालाओं को धारण किये। उनके अनुसार अन्य राजाओं ने भी वस्त्राभरण धारण किये ।। ३ ।।

वसुदेव की पत्नियों ने रेशम के वस्त्रों को धारण करते हुये शरीर में कुंकुम और गंधक का लेप और गले में मालाओं को धारण किये। हाथ में सोना-चाँदी, सुपारी इत्यादि मंगल द्रव्यों को पकड़कर संतोष भरित होकर यज्ञ मण्डप में प्रवेश किये ।। ४ ।।

उस समय मृदंग, पटह, शंख, भेरी, आनक इत्यादि मंगल वाद्य का सुमंगल नाद हुआ, नट-नर्तकियों ने नाट्य किया। वंधीमागध ने स्तुति किया ।। ५ ।।

उत्तम कंठ स्वर वाले गंधर्व स्त्री अपने पतियों के साथ मिलकर सुस्वर से उत्तम गीत गाये। वसुदेव अपने शरीर को मक्खन लगाकर, आँख को काजल लगाकर बैठे थे। ऋत्विजों ने विधि पूर्वक उसका अभिषेक किया ।। ६ ।।

अपने अट्ठारह पत्नियों के साथ बैठे हुये वसुदेव नक्षत्रों के मध्य चन्द्रमा के समान दिखता था। उनकी पत्नियाँ रेशम साड़ी पहनकर हाथ में कंगन, गले में हार, पांवो में घुंघुरू और कानों में कुण्डल पहनकर सुन्दर रीति से अलंकृत हो गयी थीं। वे सारे वैभवों से युक्त थीं। दीक्षित वसुदेव मृगछाल के ऊपर बैठा था ।। ७ ।।

हे महाराज ! वसुदेव के सत्रह ऋत्विज नये रेशम के वस्त्र पहने थे। वे इन्द्र याग में बृहस्पति

के समान शोभायमान थे ।। ८ ।।

सोमयाग में सत्रह ऋत्विज रहते हैं, चार प्रधान उनमें से एक अध्वर्यु, दो होतृ, उदगातृ और ब्रह्मा ये चार होते हैं। अध्वर्यु के सहायक तीन, पहला प्रति प्रस्थाता, दूसरा नेष्टा तथा तीसरा उन्नेता। मैत्रावरुण, आच्छावाक् और ग्रावस्तुत ये तीन होता के सहायक, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता और सुब्रमण्य नाम के तीन सहायक उदगातृ के होते हैं। ब्राह्मणाच्छंसी, अग्निर्ध और पोता ये तीन ब्रह्मा के सहायक, सत्रहवाँ का नाम है ऋत्विज ।

उस यज्ञ में स्वविभूति राम-कृष्ण अपने आवेश युक्त पुत्र, पत्नी और बंधुओं से मिलकर यज्ञ मण्डप में बहुत शोभायमान हुये। वहाँ अणिमादि अष्ट विभूति पुरुष मूर्त रूप में आये थे। राम-कृष्ण उनसे बढ़कर शोभायमान थे ।। ९ ।।

प्रत्येक प्रधान याग के अंगभूत अग्निहोत्र इत्यादि प्राकृत, वैकृत यज्ञ करते हुये द्रव्य यज्ञ, ज्ञान यज्ञ, तपो यज्ञ के प्रभु श्रीहरि की आराधना वसुदेव करते रहा ।। १० ।।

वेदों में कई यज्ञों का विवरण पूर्ण रूप से आता है। अन्य यज्ञों के केवल विशेषता को बताते हुये उन यज्ञों को भी इसी के समान करना चाहिये ऐसे कहने की प्रथा है। पूर्ण वर्णित यज्ञों को प्रकृति याग कहते हैं। विशेषांश मात्र वर्णित यागों को विकृति याग कहते हैं। वसुदेव यहाँ इन दोनो तरह का याग करता है। चरु पुरोडाश, सोम इत्यादि द्रव्यों को आहुति देने वाले याग को द्रव्य यज्ञ माना जाता है। श्रवण, मनन, ध्यान, प्रवचन करने वाले ज्ञान कार्य को ज्ञान यज्ञ माना जाता है। कुछ चांद्रायण आदि व्रत तपोयज्ञ कहलाते हैं।

ऋत्विज पहले से ही अलंकृत होकर बैठे थे। वसुदेव उनको पुनः अलंकृत किये। शास्त्र में उत्तम काम मानने वाले गो, भू, कन्यादानादि महादान के साथ भरपूर दक्षिणा भी योग्य काल में वसुदेव देते रहा ।। ११ ।।

ऋत्विज लोग पत्नि संयाज और अवभृत इष्टियों को करने के बाद यजमान और अन्य लोगों के साथ परिश्रम से निर्मित सरोवर में स्नान किए ।। १२ ।।

स्नान करने के बाद वसुदेव ने अपनी पत्नियों को और स्तुति पाठकों को वस्त्राभरण दिया। अलंकृत ब्राह्मणों को श्रेष्ठ अन्न दान से तृप्त किया। सारे जन, प्राणी, पक्षी, कुत्ता, सुअर तक प्रत्येक जीव को अन्न देकर संतृप्त किया ।। १३ ।।

प्रधान हवनों को आवहनीय नाम के अग्नि कुण्ड में करते हैं, अभिचार होम को दक्षिणाग्नि कुण्ड में करते हैं। पत्नी संयाज नाम के होम को गार्हपत्य नाम के कुण्ड में करते हैं। इस अंतिम हवन में यजमान अपने पत्नी के साथ मंत्रोच्चार पूर्वक उद्देश्य त्याग को करना पड़ता है। अंत में पत्नी के कमर से बांधा हुआ कुश की रस्सी को छुड़वाना है। सारे यज्ञों के बाद अवभृत इष्टि होती है। जल में खड़े होकर वरुण का आवाहन करते हुये वहाँ जल से ही

वारुणेष्टि करने के बाद उसी जल में यजमान अपने पत्नी और ऋत्विजों के साथ स्नान करते हैं। यज्ञ के लिये आये हुये सारे लोगों को यह अवभृत स्नान करना चाहिये। यह स्नान अत्यन्त पुण्यकर होता है।

विदर्भ, कोसल, कुरु, काशी, कैकय आदि बंधु राजाओं को उनके पत्नी पुत्रों को बहुत बहुमान देकर सत्कार किया ।। १४ ।।

यज्ञ में आये हुए सदस्य ऋत्विज, देवतागण, मानव समूह, भूत पिशाच चारणादि सारे जन श्रीकृष्ण के पास आकर यज्ञ की प्रशंसा करते हुये आशीर्वाद पाकर चले गये ।। १५ ।।

धृतराष्ट्र, विदुर, द्रोण, भीष्म, अश्वत्थामा, कृप इत्यादि बंधुओं, नारद, भगवान वेदव्यास इत्यादि ज्येष्ठ लोग अन्य स्नेही, समधी, बंधू, बांधव लोग यादवों को प्यार से भरे हृदय से आलिंगन करते हुये विरह व्यथा के कष्ट को अनुभव करते हुये अपने स्थान को चले गये। अन्य लोग भी अपने गाँव को चले गये ।। १६-१७ ।।

किन्तु नंद-गोप अन्य गोपालकों के साथ बंधु-वात्सल्य से युक्त होकर वहीं रहे। श्रीकृष्ण-बलराम ने राजा उग्रसेन इत्यादि बड़े लोगों ने बहुत आदर से उनका आदर सत्कार किया ।। १८ ।।

वसुदेव को बहुत आनन्द हो गया है। बड़े सागर को सुखरूप से पार किया हुआ मानव के समान संतोष भरित हृदय से नंद-गोप के हाथ को पकड़कर बोलते हैं ।। १९ ।।

प्यारे छोटे भाई, भगवान ने स्नेह पाश से हमें बांधकर रखा है। इसको योगीजन अथवा देवतागण नही छुड़वा सकते ।। २० ।।

तुम लोग ज्ञान में हमारे से भी श्रेष्ठ है। हमसे किये हुये प्यार के बदले में हम तुमको कुछ नही दे सकते। किन्तु हम भी तुम से प्यार करते हैं। उस प्यार से आपको कुछ फल मिलने वाला नही है। किन्तु हमारा प्यार कभी नही बुझेगा ।। २१ ।।

कंस के दमन के कारण उस समय में हम आपके प्रति कुछ नही कर सके। अब हम धन-मद से अंधे बन गये हैं। हमारे आँखों के सामने रहते हुये भी तुम जैसे सज्जन लोगों के प्रति हम आँख उठाकर नही देख रहे हैं। ।। २२ ।।

हे भाई नंद-गोप ! श्रेयस चाहने वाले मानव को राज्यादि संपदा न मिले तो ही अच्छा है। वे मिलने से मानव का आँख अंधा हो जाता है। वह आदमी तुम्हारे समान भगवद् भक्त और सहयोगी बंधुओं को तथा भृत्यों को आंख उठाकर भी नही देखता हैं ।। २३ ।।

प्यार से वसुदेव का हृदय भरकर उभर आया है। नंद-गोप के प्यार को याद करते हुये उसका गला भर आया। आँखों में आंसू भरकर वह रोने लगा ।। २४ ।।

वसुदेव को संतुष्ट करने के लिये और राम-कृष्ण के ऊपर के प्यार के कारण नंद-गोप अपनी यात्रा को कल- परसों बोलते हुये यादवों के सत्कार से मन विभोर होकर तीन मास पर्यंत

उनके साथ वहीं रहे ।। २५ ।।

इसके बाद वसुदेव , उग्रसेन, कृष्ण, अर्जुन बलराम ये सभी मिलकर नंद-गोप और उनके बंधु गोपालक वे जो चाहते हैं वे सारे अमूल्य आभूषण, वस्त्र और अलभ्य परिकरों को देकर उनको संतुष्ट किए। इस प्रकार यादवों से उपहार को स्वीकार करते हुये संतुष्ट नंद गोप उनसे बिदाई पाकर मथुरा को वापस चले गये ।। २६-२७ ।।

यहाँ सत्कार करने वाले लोगों में अर्जुन का भी नाम है। अर्जुन अन्यों के समान अतिथि होते हुए भी श्रीकृष्ण के आत्यंतिक मित्र होने के कारण नंद-गोप का सत्कार क्रिया। कई पाठों में अर्जुन के बदले उद्धव का नाम है। तब उद्धव ने सत्कार किया यह बोध होता है। यह भी सही है।

गोप-गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण के पाद कमल में फंसे हुये अपने मन को वापस करने में कष्ट का अनुभव करते हुये बार-बार पीछे देखते हुये कष्ट से मथुरा चले गये ।। २८ ।।

द्रोण, भीष्म, कर्ण, बाल्हिक, विदुर इत्यादि लोग, धृतराष्ट्र और उसके पुत्रों के साथ वापस चले गये ।। २९ ।।

यात्रा के लिये आये हुये अन्य राजा लोग भी तीन महीने के बाद अपने घर गाँव को वापस चले गये ।। ३० ।।

हे राजा ! महात्मा पाण्डव कुन्ती के साथ श्रीकृष्ण के पास बिदाई लेने आये। आँखों में आंसू भर के अवरुद्ध कंठ से पुनः आयेंगे कहते हुये अपने परिवार के साथ इन्द्रप्रस्थ को चले गये। इस प्रकार सारे बंधुगण के चले जाने के बाद कृष्ण भक्त यादव लोग कृष्ण को घेरते हुये उनके साथ द्वारका चले गये ।। ३१ ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - चौहत्तरवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - जब वसुदेव को उनके पुत्र राम-कृष्ण ने पाद वंदन किया तब उनका अभिनंदन करते हुये वसुदेव कहते है ।। १ ।।

वसुदेव ऋषि-मुनियों ने अपने पुत्रों की महिमा की गाथा गाए थे। उसको सुनकर वसुदेव अपने पुत्रों के बारे में उनकी महिमा के बारे में ज्यादा विश्वास पाए थे। उनका आलिंगन करते हुये वह बोलता है ।। २ ।।

वसुदेव कहता है - हे कृष्ण ! आप बड़े योगी हैं। आप पुराण पुरुष संकर्षण हैं, आप दोनो इस जगत के प्रधान पुरुष हैं। आपकी इस विलक्षणता को मैने समझ लिया है ।। ३ ।।

जहाँ जिस साधन से, जिस वस्तु से, जिनके प्रयत्न से, जिनके लिये, जो जो वस्तु, जिस आकार से, जिस समय निर्माण होता है वह सारा प्रधान पुरुष, परमेश्वर साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण आपके अधीन है ।। ४ ।।

हे स्वामी श्रीकृष्ण ! आप जनन रहित हैं। भगवान आप हैं, स्वयं सृष्ट किये हुये इस जगत में स्वयं प्रवेश करते हैं। जीवों का जीव होते हुये इस जगत को धारण करते हैं ।। ५ ।।

इस जगत को सृष्टि करने वाले ब्रह्मादियों के, इंद्रियों में रहने वाली विशेष शक्ति भी उनसे श्रेष्ठ आपके अधीन है। वे परतंत्र होकर आपसे अलग हैं। ऐसे आप में जो सबसे श्रेष्ठ है उसके अधीन दूसरे की प्रवृत्ति होती है ।। ६ ।।

धनुष से छोड़ा हुआ बाण वेग से चल रहा है। उसका वेग बाण छोड़ने वाले के अधीन होता है। यहाँ बाण छोड़ने वाले धनुष, धनुर्वेत्ता के अधीन होता है। इन दोनो में धनुर्वेत्ता श्रेष्ठ है, बाण उसके अधीन होकर उससे विशेष (अलग) होता है, इसी प्रकार ब्रह्मादियों के इन्द्रिय और अंत:करण में विशेष शक्ति होते हुए भी वह शक्ति हरि के अधीन है। ब्रह्मादि जीव से श्री हरि श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मादि उनके अधीन होते हुये उनसे विलक्षण हैं।

चंद्र, अग्नि, सुर्य, नक्षत्र और आकाश के बिजली में जो कांति, तेज, प्रभा और सौन्दर्य है, पर्वतों में जो स्थिरता दिखती है, पृथ्वी में जो सर्व धारकत्व है और गंधगुण है ये सारे आपके अधीन हैं।। ७ ।।

स्वामी श्रीकृष्ण! जल आपके अधीन है। जल में रहने वाली मधुर रस, शरीर को तृप्ति और चैतन्य देने वाले गुण और बह जाने का स्वभाव ये सारे आपके अधीन हैं। वायु में रहने वाले ओज, सहन शक्ति, बल, चेष्टा और वहन करने का स्वभाव भी आपके अधीन है।। ८ ।।

दिशाओं में अवकाश देने का स्वभाव, भूताकाश में वर्ण को अभिव्यक्त करने वाली ध्वनि हवा से बांस में उत्पन्न होने वाले स्वर, पक्षी इत्यादि गगन संचारियों को आश्रय देने वाले आकाश का समार्थ्य आपके अधीन है। मंत्र शास्त्रों में बताया हुआ नाद नाम का वर्ण ॐकार और प्राणियों के शरीर में होने वाले अनेक रीतियों की क्रिया आपके अधीन है।। ९ ।।

मंत्र शास्त्र के अनुसार प्रणव में (ॐकार में) अ, उ, म, नाद, विंदु, घोष, शांतअतिशांत इस प्रकार आठ वर्ण हैं। इसमें नाद यह चौथा वर्ण माना जाता है।

आप इन्द्रियों को शक्ति देने वाले हैं। इंद्रियाभिमानी देवताएँ आपके अधीन हैं। बुद्धि में रहने वाला ज्ञान की शक्ति, जीव में रहने वाली यथार्थ स्मरण शक्ति भी आपके अधीन है।। १० ।।

पंचभूतों के मूलकारण तामस, अहंकार, कर्मवश (कर्म के अधीन) रहने वाले जीवों के लिये इस संसार में बंधन करने वाली प्रकृति ये सारे आपके अधीन है।। ११ ।।

द्रव्य से वस्तु बनती है। उदाहरण में घट मिट्टी से बनता है, पट (कपड़ा) सूत से बनता है, उनका नाश होने के बाद भी मूल द्रव्य वैसे ही रहता है। उसी प्रकार प्राकृत पदार्थ नाश होने के बाद भी आप अविनाशी होकर रहते हैं। सत्व, रज, तम ये गुण और उनका कार्य परब्रह्म आपके इच्छानुसार आपके आश्रय में रहते हैं। इसी को योगमाया बोलते हैं।। १३ ।।

यहीं ये पदार्थ यदि आपका आश्रय नही पाये होते तो उनका अस्तित्व ही नही रहता था। उनके अस्तित्व का कारण आप ही हैं। उनकी सृष्टि, उनके व्यवहार और उससे होने वाले लाभ हानि इसका निर्वाह भी आप है।। १४ ।।

इस संसार में डूबे हुये जीव सर्वस्वामी आपके इस सूक्ष्म स्वरूप को न जानते हुये उसी अज्ञान से कर्म वश होकर पुनः पुनः जनन मरण रूप इस संसार को पाते हैं।। १५ ।।

प्रभु पूर्व पुण्य के वश से मैंने मनुष्य शरीर को पाया है किन्तु पुरुषार्थ का साधन करना भूल गया। वह भी आपकी इच्छा के कारण ही है। अब पुरुषार्थ साधना के लिये समर्थ रहने वाली मेरी

आयु व्यर्थ नष्ट हो चुकी है ।। १६ ।।

इस देह को मैं ही मानते हुये उसमें प्यार करते रहा। देह सम्बन्धियों को हमारा समझते हुये उनके साथ प्रेम पाश से बद्ध रहा। आप इसी प्रकार इस सारे जगत को प्रेम पाश में बांधकर रखते हैं ।। १७ ।।

आप दोनो हमारे पुत्र नही हैं। आप साक्षात् इस प्रकृति में रहने वाले जीवों के नियामक हैं। इस भूमि के भार बने हुये दैत्यों को नाश करने के लिये हमको निमित्त करते हुये इस भूमि में अवतार लिए हैं ।। १८ ।।

हे दीनबन्धु ! आप शरणागतों के संसार भय का परिहार करने वाले हैं। आपके चरण कमल में मैं आज शरण आया हूँ। विषय लालसा से लिप्त हुये इस शरीर के ऊपर वही मैं हूँ इस रीति से मैं उसमें अभिमान रखता हूँ। इसी कारण सर्वोत्तम आपको भ्रांति से अपना पुत्र मानते आया हूँ। अब तक यही चलते आया है इसको अब यहीं नष्ट करो ।। १९ ।।

सूतिकागृह में उस जेल में ही आप बताये थे कि सर्व यज्ञ के फल को भोगने वाला विष्णु मैं ही हूँ। अपने नियमन किए हुए धर्म की रक्षा के लिये प्रत्येक युग में अवतार लेता हूँ। आप ही प्रत्येक युग में अनेक रूप से अवतार लेकर अंत में उसका उपसंहार करते हैं। आप आकाश के समान निर्लिप्त हैं। हे ब्रह्मादि वंद्य श्रीहरि सकल गुण परिपूर्ण आपके ऐश्वर्य और सामर्थ्य को कौन जानता है ।। २० ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - पिता के इन वचनों को सुनकर झुककर नमस्कार करते हुये भगवान श्रीकृष्ण उत्तररूप में मधुर वाक्यों से कहते हैं ।। २१ ।।

पिता जी आपकी बातें बहुत ही युक्ति युक्त हैं। अपने पुत्र हमको आपने अनेक रहस्य प्रमेयों का उपदेश दिया है ।। २२ ।।

हे यदुश्रेष्ठ आप, ये मेरा बड़ा भाई, ये सारे द्वारिका निवासी सहित सकल चराचर प्रपंच मेरे अधीन है आपने जो कहा है वह सत्य है ।। २३ ।।

स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशित होने वाले, नित्य सर्वस्वामी चेतनाचेतन विलक्षण, गुणत्रय रहित रहने वाले भगवान एक ही हैं। वे त्रिगुणों से सृष्ट किए हुये इन प्राणियों में प्रवेश करते हुये भगवान अनेक रूप में दिखते हैं ।। २४ ।।

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी नाम के पंच महाभूत भौतिक पदार्थों में उन स्थानों में वे जैसे रहते हैं उन्ही में उसी स्थान में महापरिणाम वाले भगवान अणु में अणु होकर, महत में बड़ा होकर, एक में एक होकर अनेक अनेक होकर रहते हैं ।। २५ ।।

हे राजा ! भगवान की इन बातों को सुनकर वसुदेव के मन में रहने वाली व्यथा पूर्णरूप से नष्ट हो गई। उसका नामनिशानभी नही रहा। वसुदेव मन से सम्पूर्ण संतुष्ट हुआ ।। २६ ।।

सारे देवताओं के संन्निधान पात्र सुन्दर मंदहास वाली देवकी अपने पुत्र राम-कृष्ण से गुरु पुत्रों को जीवित करते हुये वापस लाने की कथा को एक बार सुनी ।। २७ ।।

तब उसको कंस से मारे हुये अपने छः बच्चों की याद आई। वह दुःख से दीन हो गई। आँखों में आँसू भर गये। वह बलराम कृष्ण को अपने पास बुलाकर बोलती है ।। २८ ।।

देवकी कहती है - हे राम ! तुम अप्रमेय स्वरूप हो, हे कृष्ण तुम योगेश्वर हो । मैं जानती हूँ कि आप दोनो ब्रह्मादियों को भी नियमन करने वाले आदि पुरुष हैं ।। २९ ।।

आप काल-बल से हुये धर्मों के नियमों को पार करते हुये शास्त्रों के विधियों को टालते हुये भूमि के लिये भार बन गए हुये दुष्ट राजाओं को नाश करने हेतु मेरे उदर से अवतार लिये हुये हैं। ।।३० ।।

हे जगन्नाथ ! आप अंश अंश होकर अवतार लेते हैं। इससे इस प्रपंच की सृष्टि, स्थिति, लय होते हैं। ऐसे आपके शरण मे रहने वाली मैं आज शरण में आयी हूँ ।। ३१ ।।

आपके विद्या गुरु बहुत पहले मर चुके अपने पुत्र को वापस लाने के लिये आप से मांगे। मैंने सुना है कि आपने गुरुदक्षिणा रूप में उस मृत पुत्र को यमलोक से लाकर उन्हे वापस दे दिया ।। ३२ ।।

वैसे ही आप दोनो अब मेरी अभिलाषा को पूर्ण करिये। उनको देखने के लिये मेरा मन बहुत चाहता है ।। ३३ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा माता की इन बातों को सुनकर राम-कृष्ण योगमाया से सुतल लोक को प्रवेश किए ।। ३४ ।।

सुतल लोक में राम-कृष्ण के आगमन को सुनकर दैत्यराज बलि समस्त जीवों के दैव और विशेषकर अपने स्वामी भगवान श्रीकृष्ण को देखकर दर्शनानंद से द्रवित हुये मन से दौड़ते हुये सारे बंधुओं के साथ मिलकर आकर नमन किया ।। ३५ ।।

बलि चक्रवर्ती परमानंद से श्रीराम-कृष्ण को उन्नत आसन पर बिठाया। दोनों का पाद प्रक्षालन किया। जिस पादोदक से ब्रह्मादि सकल लोक पवित्र होता है उस पाद जल को बलि चक्रवर्ती अपने कुटुंब के सदस्यों के साथ सिर पर धारण किया। बहुमूल्य वस्त्राभरण देकर गंध, माल, धूप, दीप से अर्चन करने के बाद रसायन भोजन से तृप्त करते हुये अपने कुल, धन, देह इनको भी समर्पण करते हुये महावैभव से बलि ने श्रीराम-कृष्ण का सत्कार किया ।। ३७ ।।

हे राजा बलि ने बार बार परिक्रमा करते हुये भगवान के श्रीचरणों को नमस्कार किया। भक्ति से उसका हृदय भर आया। आँखों से आनन्दाश्रु बहने लगा। रोम खड़े हो गए। गदगद स्वर

से भगवान की स्तुति करता है ।। ३८ ।।

हे भगवन् ! आप देश, काल, गुण से अमित, अगणित हैं। हे सर्वोत्तम, ज्ञान स्वरूप, ज्ञान कर्मों को इस लोक में प्रसार करने वाले परब्रह्म पूर्ण गुणरुप भगवान श्रीकृष्ण आपको मेरा नमस्कार ।। ३९ ।।

आपका दर्शन लोगों के लिये कष्ट साध्य है। रजो गुण, तमोगुण, स्वभाव वाले हमको यह और भी दुर्लभ है। केवल श्रीहरि इच्छा से यह हमें मिला है। यह हमारा बड़ा भाग्य है ।। ४० ।।

हम दैत्य अन्य ऐसे दानव, गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत और अन्य प्रथम नायक सारे केवल ज्ञान स्वरूपी शास्त्र शरीर वाले आप में सदाकाल बैर करते रहते हैं ।। ४१ ।।

कई जन भक्त होते हुये भी भगवान में तीव्र बैर भाव रखते हैं। अन्य कई श्रीहरि में काम भावना रखते हैं। किन्तु उत्कृष्ट सत्वगुण से श्रीहरि के पास ही रहने वाले देव, ऋषि इत्यादि लोग वैसा नही करते हैं ।। ४३ ।।

हे योगेश्वरों के स्वामी श्रीकृष्ण ! आप योगेश्वरों से भी पूर्णतयः जाने नही जाते। ऐसे होते हुये आपकी योगमाया के सामने हम क्या कर सकते हैं ।। ४४ ।।

आपके पाद कमल में मन रखते हुये इस संसार नाम के अंधेरे से भरे हुये कूप से बाहर आने के लिये एक मात्र रक्षक आपके पाद कमल हैं। एकान्त भक्त सदाकाल में इनको ढूढ़ते रहते हैं। मैं उन्ही की सेवा में जीवन कर रहा हूँ। विषयासक्ति को खोकर एकाकी बनकर आपके भक्तों के संग में रहने का अनुग्रह आप हम पर करें ।। ४५ ।।

हे प्रभु जगदीश ! कामानाओं से आप मुझको दूर रखें। आप मुझको आज्ञा दें और उस आज्ञा को श्रद्धा से मैं चलाऊँ, ऐसी कृपा करें। उससे मै इस विधि निषेध बंधन वाले संसार से मुक्त हो जाऊँगा ।। ४६ ।।

श्री भगवान कहते हैं स्वायंभुव मन्वंतर में मरीचि नाम के मुनि से उनकी पूर्णा नाम की पत्नी में छः पुत्र जन्म लिये। एक बार देवल ऋषि वहाँ आए। वे बहुत कृश थे। उनको देखकर ये छः पुत्र अपहास्य करते हुये हँसने लगे। देवल मुनि ने उनको शाप दिया। इस पाप कर्म से वे कालनेमि नाम के असुर के पुत्र बनकर जन्म लिए। उस जन्म में हिरण्यकशियपु ने उनको शाप दिया कि वे अपने पिता कालनेमि से ही मरण पाये। आगे चलकर कालनेमि कंस बन गया। योगमाया इन छह पुत्रों को क्रमानुसार देवकी के पेट में रखती गयी ।। ४७-४८ ।।

कालनेमि रूप वाला कंस जैसे ये बच्चे जन्म लेते चले वैसे ही उनको मारता रहा। अब मेरी माँ

देवकी उन बच्चों की याद करते हुये दुःख तप्त है। हे बलि राजा ! वे पुत्र आपके पास हैं ।। ४९ ।।

माँ के दुःख को दूर करने के लिये हम उनको अपने साथ ले जाना चाहते हैं। बाद में वे बच्चे शाप मुक्त होकर दुःख रहित बनकर अपने लोक को पाते हैं ।। ५० ।।

स्मर, उद्गिथ, परिश्वंग, पतंग, क्षुद्रभृत् घृणी ये छह देवकी के वे पुत्र हैं। आगे जाकर वे मेरे अनुग्रह से मुक्ति को पाते हैं। इस प्रकार कहते हुये श्रीराम-कृष्ण बलि से सत्कार पाकर बच्चों के साथ द्वारका आकर उनको माता को सौंप दिए ।। ५१-५२ ।।

देवकी देवी उन बच्चों को लेकर पुत्र वात्सल्य से उनका आलिंगन करते हुये जंघे पर सुला कर प्यार से उनके सिर का आघ्राण किया ।। ५३ ।।

संतुष्ट होकर बच्चों के स्पर्श से भरे हुये छाती के दूध को उनको पिलाने लगी। सृष्टि करने वाले विष्णुमाया से वह मोहित हुई थी ।। ५४ ।।

पूर्व में श्रीकृष्ण से पीकर बचे हुये अमृत समान देवकी के छाती से बहने वाले दूध को इन बच्चों ने पी लिया। श्रीकृष्ण के केवल कर-स्पर्श से भगवत्तत्वज्ञान को वे पाये ।। ५५ ।।

वे सारे बच्चे सारे जनों के देखते-देखते श्रीकृष्ण, देवकी, वसुदेव और बलराम को नमस्कार करते हुये आकाश मार्ग से अपने लोक को चले गये ।। ५६ ।।

हे राजा ! मरे हुये अपने बच्चे वापस आये थे और चले गये। इसको देखकर देवकी को बहुत आश्चर्य हुआ। वह इसको श्रीकृष्ण की अद्भुत शक्ति को इस प्रकार मान लिया ।। ५७ ।।

हे राजा परीक्षित सर्वशक्त भगवान श्रीकृष्ण की ऐसी अद्भुत महिमाएँ अगणित हैं ।। ५८ ।।

सूत जी कहते हैं कि श्री व्यास पुत्र शुक मुनि ने जो उपदेश दिया अमृत के समान कीर्ति वाली यह श्रीकृष्ण का चरित्र इस जगत के सारे पापों को नाश करने वाली है। भक्तों के कर्णों का यह आभूषण है। इसको सुनने वाले और बोलने वाले भगवान में अपने मन को स्थिर रखते हुये उनके क्षेम, धाम, नाम वाले वैकुण्ठ को पाते हैं ।। ५९ ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - पचहत्तरवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - भगवान श्रीकृष्ण की रानियों का मन उन्ही में आसक्त रहता था। प्रत्येक को लगता था कि भगवान मुझसे ही ज्यादा प्यार करें। मुझे यह संशय आता है कि भगवान श्रीकृष्ण सबके साथ समान रूप से प्यार करते थे क्या ? अथवा किसी एक में उनको ज्यादा प्यार था। इस संशय को आप निवारण कर सकते हैं। मैं इसके बारे में जानना चाहता हूँ ।। १-२ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - उन सारी रानियों में भीष्मक राजा की कुमारी रुक्मिणी पहली रानी है। लोगों में यह प्रसिद्ध हैं कि भगवान रुक्मिणी से बहुत प्यार करते थे ।। ३ ।।

हे राजा ! सुनो - एक बार श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ प्रेम कलह किये। उसको पूर्ण रूप से कहता हूँ, सुनो ।। ४ ।।

एक बार भगवान श्रीकृष्ण अपने आसन पर आनन्द से बैठे थे। अपने पतिश्रेष्ठ जगद्गुरु को रुक्मिणी अपने सहेलियों के साथ मिलकर चामर से हवा चलाती थी ।। ५ ।।

इस जगत को अनायास सृजन करने वाले, पालन करने वाले और नाश करने वाले, जनन-मरण रहित भगवान अपने शरण मे आने वालों की रक्षा के लिये यदुवंश में अवतार लेकर आए हैं ।। ६ ।।

वे जहाँ विराजमान थे वह अंतःपुर मोतियों की माला से वस्त्रों की छावनी से मणिमय दीपों से शोभायमान थी ।। ७ ।।

दिव्य मणिका मालाए उस शोभा को बढ़ा रहे थे। भँवरों का गुंजार कानों को आनंद देता था। खिड़कियों से अन्दर आने वाला चंद्र का प्रकाश आँखों को मोहित करता था ।। ८ ।।

हे राजा ! उद्यान वन में शोभायमान पारिजात वन की सुगंधमय हवा कमरे के अंदर के धूप से मिलकर मन मोहित करता था ।। ९ ।।

दूध के फेन के समान सफेद सुख शैया में बैठे हुये अपने जगदीश पति की रुक्मिणी सेवा करती थी ।। १० ।।

प्यार से सखी के हाथ से रत्न खचित चामर को खींचकर अपने हाथ में लेकर भगवान को

हवा देने लगी ।। ११ ।।

रत्न से जढित घुंघुंरू की आवाज करते हुये कंगन और अंगूठियों से शोभायमान हाथ में चामर लेकर खड़ी थी। पल्लू से अपने स्तनों को आच्छादन करते हुये कुंकुम केसर से लाल बने हुये गले के हार से, कटि में धारण किए हुए अमूल्य करधनी से देवी शोभायमान थी ।। १२ ।।

भगवान श्रीहरि लीला से जब जब अवतार लेते हैं तब तब श्रीदेवी उनके अनुसार रूप लेकर अवतार लेती हैं, उनके लीला के अनुसार लीला करती हैं। श्रीहरि के आश्रय में रहती हैं। रूक्मिणि इसी श्रीदेवी का स्वरूप हैं। मुख के सामने घुंघराले वाले बाल वाली माला, पदक और कुण्डल से शोभायमान मुख वाली देवी को देखकर श्रीकृष्ण संतुष्ट होकर हँसते हुये कहते है ।। १३ ।।

श्री भगवान कहते हैं - हे राजकुमारी ! महासामर्थ्य वाले रूप औदार्य, बल में श्रेष्ठ श्रीमंत लोकपाल भी तुमको चाहते हैं ।। १४ ।।

देवों के समान वे राजा लोग कामांध होकर तुमको पाने के लिए आये थे। तुम्हारे भाई और पिता तुम्हे उनको देना चाहते थे। तुम उनको छोड़कर हमको क्यों चुनी ? ।। १५ ।

भगवान श्रीकृष्ण यहाँ जो बोलते हैं उसके लिये दो-दो अर्थ हैं - रुक्मिणि देवी बाद में इनका सही उत्तर देती है। इस श्लोक में **प्राप्तनर्थीन:** इस शब्द का अर्थ चाहने वाले ऐसे होता है। किन्तु इसी को **प्राप्त अर्थनि:** ऐसे पदच्छेद करे तो अनर्थ पाने के लिये आये हुये ऐसे होता है। यानी इस शब्द का सही अर्थ शिशुपाल आदि राजाओं ने अनर्थ पाने के लिये वहाँ आये थे ऐसा अर्थ होता है।

यहाँ श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के प्रणय कलह का वर्णन है। भगवान श्रीकृष्ण और रुक्मिणी दोनो दोष रहित हैं। दोनो में विरोध नही है। तो भी लोक मोहन के लिये गृहस्थाचार को दिखाते हुये विडम्बना करते हैं। तात्पर्य निर्णय में जगत् गुरु मध्वाचार्य जी लिखते हैं - श्रीकृष्ण रुक्मिणि को कहते हैं - रुक्मिणि ! तुमसे मुझको कुछ होने वाला नही है, तुम्हारे ऊपर के प्यार से मैं तुमको नही लाया हूँ। वहाँ इकट्ठा हुए शत्रु राजाओं का मान भंग करने के लिये लाया हूँ। भगवान के इस तरह के विडम्बना के अनुरूप रुक्मिणी भी विडम्बना करती हैं। रुक्मिणि को भी मोह नही है, किन्तु लोगों को दिखाने के लिये मोह दिखाती है।

हम जरासंध के समान बलिष्ठ लोगों के साथ विरोध करते आये हैं। लोग कहते हैं कि उनसे डरकर हम समुद्र के बीच में घर बनाकर रहते हैं। ययाति राजा के शाप से सिंहासन पर बैठने की आशा को छोड़ चुके हैं। ऐसे हमें तुमने क्या देखकर चुना है ? ।। १६ ।।

हम जिस मार्ग से चल रहे हैं वह मार्ग धर्म का है अथवा अधर्म का है लोग इसको जान नही पाते। इस तरह के लोकविलक्षण मार्ग में चलने वाले हमारे पीछे पड़े हुये स्त्री लोग कष्ट भागी बनती हैं ।। १७ ।।

हमारे पास ऐश्वर्य नही है, हम दरिद्र हैं, दरिद्रीजन प्रिय हैं। प्रायः धनिक लोग हमारे आश्रय में नही आते ।। १८ ।।

जिनके धन, कुल, अधिकार, शरीर की आकृति, परस्पर समान है, परस्पर जुड़ते हैं उनमे शादी, विवाह, मैत्री होती है। धन, कुल इत्यादि में बहुत ऊपर नीचे रहने वाले में यह कभी नही होता ।। १९ ।।

वैदर्भी रूक्मिणि तुमको इसके बारे में बहुत विचार करना था। किन्तु तुम जल्दबाजी में हमारे साथ आ गयी। भिखारी लोग व्यर्थ में हमारे गुणगान करते हैं। वे सारे गुण हमारे में नही हैं ।। २० ।।

ठीक तरह से सोचों अब भी क्या हो गया है। अब भी अपने अनुरुप एक श्रेष्ठ राजा से विवाह कर लो। इससे इह पर दोनो जगत में सारे अभीष्टों को पा सकती हो ।। २१ ।।

हे सुन्दरी ! शिशुपाल, साल्व, जरासंध, दंतवक्र इत्यादि राजा और तुम्हारे भाई भी हमारे साथ द्वेष करते हैं ।। २२ ।।

अपने शौर्य पराक्रम के अहंकार से अंधे बने हुये उनके अहम् को नाश करने के लिये मैं तुमको अपहरण करके ले आया। इसका अर्थ यह नही है कि मैं तुमको बहुत चाहता हूँ ।। २३ ।।

हम निश्चित रूप से इस संसार में उदासीन रहते हैं। पत्नी, पुत्र, धन, मकानों की अपेक्षा हमे बिल्कुल नही है। हम अपने स्वरूपानन्द अनुभव से ही तृप्त रहते हैं। हमारा कार्यकारित्व अन्य लोगों के समान नही है ।। २४ ।।

श्रीकृष्ण मुझको कभी छोड़ता नही मैं उनकी बहुत प्यारी पत्नी हूँ। यह भाव रूक्मिणि के मन में रहता था। उसको उतारने के लिये ही भगवान इस प्रकार बोलकर चुप हो गए ।। २५ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - तीनों लोकों के स्वामी अपने प्रियकर भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से कभी भी न सुना हुआ ऐसे अप्रिय बातों को सुनकर भयभीत होकर रूक्मिणि देवी गाढ़ चिन्ता में मग्न होकर रोने लगी ।। २६ ।।

नख के लाल रंग से शोभायमान अपने कोमल पाद से जमीन को खुरचने लगी। कुंकुंम केसर से लिप्त अपने स्तनों को आँखों के काजल से मिले हुये पानी से काला कर दिया। दुःख के उद्वेग से बातें न करते हुये नीचे मुहँ करते हुये खड़ी हो गई ।। २७ ।।

बहुत बड़े दुख से भय शोक से उनका होश उड़ गया। हाथों के कंगन नीचे गिरे, हाथ में पकड़ा हुआ चामर जमीन पर गिरा, बुद्धि मंद हो जाने के कारण शरीर कांपने लगा, बाल बिखर गये, चंड मारुत से आहत हुये केले के समान जमीन पर गिर गयी ।। २८ ।।

अपने प्रियतमा का यह हाल देखकर भगवान उनके बारे में अंतःकरण के अनुकम्पा के साथ उनके ऊपर कृपा किये। परिहास के लिये बोले हुये बातों को भी न समझने वाली उनकी मुग्धता को देखकर भगवान संतुष्ट हो गये ।। २९ ।।

जल्दी से भगवान अपने आसन से नीचे आकर अपने चारों हाथों से रुक्मिणि को उठाकर उनके बालों को सवाँर लिए। अपने कर कमलों को उनके मुहँ के ऊपर फेर लिया ।। ३० ।।

आँखों के पानी से भीगे हुये देवी के गाल, स्तन को पोंछकर अपने में अनुरक्त अपनी पत्नी को गाढ़ आलिंग दिया ।। ३१ ।।

हास्य और नटना को न जानते हुये चित्त भ्रम पाये हुये अपने मुग्ध पत्नी को देखकर इससे हास्य विडंबना करना योग्य नही है ऐसे समझते हुये भगवान श्रीकृष्ण दीन रूक्मिणि को दयापूर्ण होकर सांत्वना दिये। सारे जगत को सांत्वना देते हुये सज्जनों के आश्रय बने हुये श्रीकृष्ण सांत्वना देने लगें तो किसका दुःख रह जाता है ।। ३२ ।।

श्री भगवान कहते हैं - ये देखो देवी वैदर्भी, मुझमें दोष गणना मत करो, मैं जानता हूँ कि तुम मुझ पर ही भरोसा रखी हो। तुम्हारे प्रणयकोप से युक्त बातों को सुनने के लिये मैंने यह नटना की है ।। ३३ ।।

इसके साथ ही प्रणयकोप से हिलते हुये तुम्हारे होठ को, तुम्हारे लाल रंग से मिले हुये तिरछी नजर को और चढ़ाये हुये भृकुटि को देखने के लिये मैंने ऐसा बोला ।। ३४ ।।

क्योंकि घर में वो भी रात में थोड़े से समय के लिये ही क्यों न हो, पत्नी के साथ सरस बातें करने से बढ़कर गृहस्थ को और क्या है ? ।। ३५ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा ! श्रीकृष्ण ने इस प्रकार रूक्मिणि का समाधान किया। रुक्मिणी समझ गईं कि भगवान श्रीकृष्ण ये सारे चेष्टा में कर रहे हैं। वह समझ गई थी कि भगवान इन बातों को निमित्त करते हुये मुझको छोड़ देना चाहते हैं। अब वह भय चल गया ।। ३६ ।।

हे राजा ! लज्जा से मिले हुए हसन्मुख से प्यार स भरे हुये तिरछे नजर से भगवान को देखते हुये रूक्मिणि बोली ।। ३७ ।।

भगवान के बातों के उत्तर रूप में रूक्मिणि कहती हैं हे कमलाक्ष ! आपने कहा हम दोनों समान नही हैं। समानों में शादी होती है। यह बात सत्य है। आपके समान और कोई नही है। आप ही केवल आपके समान हैं। स्वानंदानुभव में डूबे हुये त्रिलोक के स्वामी त्रिगुण के यजमान भगवान आप कहाँ है और त्रिगुणात्मक प्रकृति के अभिमानी, आपके पाद में आश्रय लेने वाली मैं कहाँ। आप मेरे समान कभी नही होते। आप मुझसे बढ़कर कोसो ऊपर हैं ।। ३८ ।।

हें त्रिविक्रम ! आपका ज्ञान अप्राकृत है। ज्ञान स्वरूप आप इस जगत के स्वामी होते हुये समुद्र में घर बनाकर रहते है। यह सत्य है। किन्तु वह जरासंधादि राजाओं के डर के मारे नही। प्रकृति के सत्व, रज और तमोगुण ही राजायें हैं। वे अपने बंधक शक्ति को दिखाते हुये इस विश्व में विराजमान हैं। उनसे डरने वाले संसारिक जीव को समुद्र के बीच में रहकर तप करना पड़ता है।

इसको दिखाने के लिये आप समुद्र में वास करते हैं। आप और कहे कि आप बलवान लोगों के साथ विरोध किए हैं। वह बलवान शिशुपालादि नही हैं किन्तु प्राकृत अनित्य इंद्रियगण ही वे राजा हैं। वे बहुत प्रबल हैं। वे संसारी जीवों,से देवताओं से भी विषय में आसक्ति उत्पन्न करते हुए पाप कार्य कराते हैं। आप उनका विरोध करते हैं। नित्य मुक्त रहते हुये प्राकृतिक इंद्रियों के वश में न आते हुये आप उनके विरोधी बन गये हैं। इसके लिये आपका नाम 'कृतविग्रह' है। आपसे यह इंद्रिय रूप बलिष्ठ लोग बहुत दूर रहते हैं। आप बोले कि आप 'त्यक्तरूपासन' हैं। आप सिंहासन पर नही बैठने वाले हैं। इसके लिये राजा नही बने हैं। यह भी सत्य है। जरासंधादि राजा नृपासन हैं। ऐसे राजाओं को आपकी सेवा करने वाली मेरे हाथों से आप उन्हें अंधंतमस में डालने वाले हैं। वह अंधंतमस की अभिमानी मैं हूँ। आपकी सेवा रूप में यह कार्य करती रहती हूँ ।। ३९ ।।

यहाँ त्र्यधीश शब्द का प्रयोग है, इसका अर्थ यह भी होता है कि लोकपालक ऐश्वर्य वाले इन्द्रादि लोगों को छोड़कर वे आपको कभी समान नही होते इसके लिये मैंने आपको पति रूप में ग्रहण किया है। अन्यगृहीत पादा इस शब्द का अर्थ ब्रह्मादि देवताओं से पूजा करने योग्य पाद वाले आपको मैं सबसे श्रेष्ठ मानकर ही प्रेम की हूँ।

भगवान आप में नृप शब्द सन्निहित है, इसके लिये भगवान को और राजा बनने की आवश्यकता नही है। भगवान श्रीकृष्ण राजाओं के राजा हैं। इसके लिये सारे राजाओं को छोड़कर मैं आपको चुनी हूँ।

बलवद्भिः कृतः द्वेषः इसका अर्थ बलवान लोगों से मैं द्वेष किया हूँ, यह अर्थ होता है। इसके लिये रुक्मिणि बोलती हैं कि इन्द्रियाँ सबसे बलवान शत्रु होते हैं। उनको भी जीतने वाले इतना ही नही आपकी कृपा जिन पर होती है वे भी इन्द्रियों को जीतते हैं। ऐसे होते हुये आपको और शत्रु कौन होता है। इसके लिये आपसे बलिष्ठ और कोई नही है।

आपके पाद कमल के मकरंद का सेवन करने वाले मुनियों का मार्ग भी कभी-कभी धर्म है या अधर्म है। यह आज्ञा मानवों के लिये स्पष्ट नही होता तो मैं उस मार्ग के बारे में क्या बताऊँ। आपका मार्ग मुनियों के लिये स्पष्ट नही होता तो नर पशुओं को कैसे मालूम होगा। मुनियों के प्रारब्ध से वे अधर्म करें उनका आचरण श्रीहरि प्रीति होने के कारण अधर्म होते हुये भी धर्म बनता है। मुनि लोगों के लिये प्रारब्ध होने के कारण यह पाप परिहारक होता है। आपकी लीला भी लोक विलक्षण होने के कारण सबको अस्पष्ट ही लगता है। आपकी लीलाओं को साथ देना मेरा काम है। मैं भी आपके पादों के साथ पाँव रखती आती हूँ। आप पूर्णानंद हैं आपका काम यह है कि स्वप्रयोजन के बिना ही आप सृष्टि, स्थिति आदि काम करते रहते हैं। इसी के कारण आपके व्यवहार लोक विलक्षण लगते हैं। मैं भी आपके अनुसार फलापेक्षा के बिना ही किन्तु आपको संतोष हो इसके लिये कर्म करती रहती हूँ। मैं आपके मार्ग में चलने से स्त्री होकर भी कष्ट नही

पाती। इस जगत में धर्म जैसे लगने वाले वास्तव रूप में अधर्म जो होता है उसको अनुसरण करने वाले स्त्री-पुरुष सहज रूप से कष्ट के भागी होते हैं ।। ४० ।।

आप निष्किंचन हैं यह सही है, इसका अर्थ आप दरिद्र हैं यह अर्थ नही होता। किन्तु **किंचन** यानी नश्वर होने वाली अल्प सम्पत्ति आप में नही है। लक्ष्मीपति आपकी संपदा बहुत बड़ी है। आप भक्तों को जो देते हैं वह भी अल्प नहीं है। आप सत्य लोकादि पद को, महायज्ञ में हविर्भाग को और महानंदप्रद मोक्ष को आप उनको देते हैं। इस बल के आधार से ब्रह्मादि देवताओं ने सारे लोगों से यज्ञों में आहुति, आशीर्वाद होते हुये भी आप कृपा करके असमान मुझसे विवाह किये हैं यह मेरा भाग्य है ।। ४२ ।।

भिक्षु लोग आपकी ऐसे ही स्तुति करते हैं। आपने जो कहा यह सत्य है। ऐसे ही करते है इसका अर्थ असत्य नही होता। सन्यासी लोग आपकी स्तुति करते हैं वह असत्य नही होता। स्वार्थ के लिये त्रिकरणों से प्राणियों को दंड देते नही इसके लिये वे त्रिदंडी कहते हैं। आपकी स्तुति करने में उनका स्वार्थ नही है। कामना रहित होकर वे स्तुति करते हैं कि आप इस जगत के स्वामी हैं, आप सायुज्य देने वाले हैं यह सत्य ही है। आपने कहा 'गुणैर्हीनः' इसका अर्थ आप सद्गुणरहित हैं ऐसा नही होता। आप त्रिगुण रहित हैं। साथ में **'गुणै ही इनः'** ऐसा पदच्छेद करे तो सद्गुणयुक्त आप इस जगत के स्वामी हैं यह अर्थ होता है। इसी कारण मैं आपको स्वामी मानते हुये पतिरूप में चुनी। आपने कहा 'एतद अविज्ञाय' इसका ऊपरी अर्थ मेरे बात को न समझते हुये मैंने आपसे विवाह किया है यह भी सही है। ऊपरी अर्थ से दोष दिखाने वाले सारे शब्द दोष रहित आपमें गुणों को ही बताते हैं, यह ज्ञानियों का मत है। आप मुझको वैदर्भी कहे **'विद् अर्भ'** इसका अर्थ हमारे कुल में बच्चे भी ज्ञानी होते हैं। इसी कारण हमारे वंश का नाम विदर्भ पड़ा है। ऐसे कुल में आने वाली मैं बुद्धि हीन कभी नही होती यह आपका अभिप्राय है तो मैंने अज्ञान से आपको चुना है यह अर्थ कभी नही होता। आपने कहा **'त्वयादीर्घसमीक्षया'** इसमें दीर्घ और अदीर्घ इस प्रकार दोनो रीति से पद विभाग हो सकता है। ये दोनों सत्य है। ब्रह्मारूद्रादि देवता भी आपके समान दीर्घायुषी नही हो सकते हैं। उनके अदीर्घ आयुकाल को अल्प मानते हुये भी वे आपके समान अनन्त आयुष्य वाले हैं। इसका ठीक तरह से चिंतन करते हुये ही मैंने आपसे विवाह किया है। इसका अर्थ कभी भी मैं दीर्घ समीक्षा, सुदूर आलोचना वाली हूँ। आप भी दीर्घ समीक्षा शब्द से इसको माने हैं। मैं अमृत मंथन काल में उद्भव होने के कारण मुझकों मंगल देवता कहते हैं। मैंने शाश्वत मांगल्य के लिये अनंतायुषी आपका वरण किया। उस समय में भी ब्रह्मादि देवतागण आल्पायुषी मानकर निराकरण किया। अब सुदीर्घ आलोचना के बाद भी शिशुपालादि को छोड़कर आपसे ही विवाह किया है। इसको अलग बोलना पड़ता है क्या ? आपने कहा **'प्राप्तानर्थीनः'** यह भी सही है। उन दिनों ब्रह्मादि देवताएँ स्वयंवर को देखने आये थे, वे अनर्थीना ये, मुझको नही चाहते थे। इसके

लिये वे अनर्थभागी नही थे। अब आये हुये शिशुपालादि गणों मेरी कामना किये, इसके लिये वे अर्थभागी नही बने, अनर्थभागी हुये। इसके लिये मैंने उनको नही चुना ।। ४३ ।।

श्लोक २९ से यहाँ तक (४३ तक) वाग्विलास श्री वादिराज तीर्थ जी का है। वे अपने सरस भारती नाम के ग्रंथ के चतुर्थ विलास में यह सारे अर्थ लिखे हैं। यह उनका मनोविलास नही है। श्रीकृष्ण जी ने रुक्मिणि को छेड़ते हुये इसी अध्याय के १४ श्लोक से २४ तक जो कहते है उन सबके उत्तर रूप में श्लोक ३८ से ५२ तक उत्तर रूप में दिया है। विद्वान वादिराज स्वामी जी ने श्रीकृष्ण के शब्दों की ही संधि विग्रह या समास करते हुये रुक्मिणि के शब्दों में पूर्ण रूप से उत्तर दिया है। यह मूल संस्कृत में पढ़ना विशेष आनंददायक है। विस्तार भय से हमने उन श्लोकों को यहाँ उद्धृत नही किया है। आसक्त लोग उन श्लोकों को वहाँ ही पढ़ें।

प्रभु आपने कहा है **'राजभ्यो भिभ्यतः'** आपने कहा है इसका अर्थ यह नही होता कि, आपको जरासंधादियों से डर है। सिंह अन्य मृगों को भगाकर अपने आहार को सबके सामने जैसे उठाता है वैसे आपने अपने धनुष की टंकार मात्र से उन्हीं राजाओं के सामने ही मुझको अपहार करके लाये हैं। यह सत्य है ना ? ऐसे आप उन्हीं के भय से समुद्र में घर बनाए हैं यह कैसे सत्य हो सकता है ।। ४४ ।।

यहाँ गदाग्रज शब्द का प्रयोग है इसका अर्थ गज के भाई यह तो होता ही है, किन्तु गद यानी रोग और रोग से भी पहले जन्म लेने वाले अथवा रोग का भय न रहने वाले आप ऐसा अर्थ होता है। यहाँ शिशुपालादि राजाओं को सियार कहा गया है और भगवान श्रीकृष्ण सिंह के समान उनके सामने ही रुक्मिणि को उठाकर ले आये।

हे कमलाक्ष ! आपने कहा धर्म का नाटक करते हुये अधर्म का मार्ग करने वाली स्त्रियों को कष्ट होता है यह सही है। किन्तु आपके भक्तों का अनुसरण करने वाले को सुख ही मिलता है। आपको पाने की इच्छा से राज अंग, पृथु, भरत, ययाती, गद इत्यादि महाराजाओं ने अपने सार्वभौम साम्राज्य को छोड़कर वनवास स्वीकार किया, आपके दर्शन होते तक उनका मार्ग अस्पष्ट ही था। उनका अनुसरण करने वाली कौन स्त्री दुःख भागी बनी ।। ४५ ।।

आपने कहा 'अर्थविविक्त दृष्टिः' इसका अर्थ होता है आप अर्थ यानी 'परमपुरुषार्थ रूप' शाश्वत बिंब मूर्ति हैं। आपको छोड़कर अन्य सारे 'प्रत्यर्थ' हैंयानी आपके प्रतिबिंब मात्र हैं। इसको स्पष्ट रूप से समझने वाली कोई स्त्री सज्जनों से सर्वोत्तम पुरुषार्थ मानने वाले, सज्जन समूह को मोक्ष देने वाले, आपके पादकमल के सुगंध को सूघने के बाद सकल संपदा के स्वामी शौर्यादि सत्यगुण के आश्रय, श्रीमंत, अत्रच, परत्रच, कामरूपम् यानी यहाँ पर दोनो में कामितार्थ देने

वाले आपको तिरस्कार करते हुये नश्वर भौतिक संपदाओं से सदाकाल भयभीत रहने वाले को कौन स्त्री अपने पति रूप में पाना चाहती है ।। ४६ ।।

यहाँ अगले श्लोक के अत्रच, परत्रच, कामररुपम् इस शब्द का अन्वय करना उचित अर्थ देता है।

हे जगदीश ! आप इस जगत के स्वामी हैं। आप मेरे लिये अनुरुप योग्य वर हैं। इसको समझ कर ही मैंने आपको पति रूप में स्वीकार किया है। आपका भजन करने वाले, आपके शरण में आने वाले इस अस्थिर संसार से मुक्ति पाते हैं। आपके और मेरे बारे में गलत रीति से विचार करने वाले, अन्यथा चिंतन करने वाले, गाली देने वाले, शिशुपालादि असुरों का संहार करते हुए उनको अंधंतमस में डालती हूँ। इस प्रकार श्रुति स्मृति कहती हैं। आपके अधीन होने के कारण मुझमें यह शक्ति आ जाती है। मै सदाकाल के लिये आपके शरण में हूँ ।। ४७ ।।

यहाँ **कामरूपं** शब्द का प्रयोग है इसका अर्थ यह भी होता है कि अन्य लोगों की इच्छाओं को पूर्ण करने वाले और स्वयं किसी की इच्छा न रखने वाला। इसी प्रकार **अनृतापवर्ग** शब्द है इसका अर्थ भक्तजनों को संसार से मुक्ति देने वाला यह भी अर्थ होता है।

हे अच्युत ! आप शिशुपालादि को वर्णन करते हुये वे योग्य वर हैं ऐसे बोले। वे राजा होते हुये भी उनके घर में रहने वाली स्त्रियों को गधा, बैल, कुत्ते के और बिल्ली के समान गुलाम बन के रहना पड़ता है। हे शत्रुनाशक भगवान ! आपकी कीर्ति की गाथा ब्रह्मा रूद्रादि की सभाओं में सदाकाल होता रहता है। किन्तु यह कथा उन लोगों के कान तक भी नही जाती। ऐसे लोगों को कौन स्त्री अपने पति के रूप में ग्रहण करेगी ? ।। ४८ ।।

हे भगवान ! जो स्त्री आपके पदकमल मकरंद की सेवा नही करती है वह मूर्ख है। उनके मन काम से कलुषित रहते हैं। बाहर चर्म, मूछ, रोम, नाखून और बाल से ढका हुआ और अंदर मांस, रक्त, कृमि मल से भरकर, नस से बंधा हुआ जीवित रहते हुये भी मरे हुये जैसे व्यर्थ रहने वाले, केवल श्वासोच्छवास चलने वाले शरीर को अपने पति मानकर भ्रम से सेवा करती हैं। किन्तु मैं वैसा नही करना चाहती। आपके चर्म, मूछ, रोम इत्यादि सारे अप्राकृत और ज्ञानानंदमय हैं जरामरण वर्जित हैं ।। ४९ ।।

भगवान की पंचभौतिक शरीर नही है। इसके लिये उनकी मूछरोम इत्यादि पंचभौतिक वस्तु नही होते हैं। उनका शरीर आनन्दमय अप्राकृत है। मन्द जन को दिखाने के लिये प्राकृत रूप दिखाते है।

हे कमलाक्ष आप स्वरमण हैं, किन्तु उदासीन नही। अपने भक्तों को किंचित भी कमी न करते

हुये उन पर अनुग्रह करने वाले आप हैं। मुझे आपके पाँव में बहुत प्यार है। आप इस जगत के सृष्टि के लिये मेरे रजोगुण को, स्थिति के लिये सत्व गुण को, लय के लिये तमोगुण का प्रयोग करते हैं। उस समय उनको अधिक रूप से उद्रेक करते समय उनके अभिमानी मेरे ऊपर अपनी अमोघ कृपा कटाक्ष को मेरे ऊपर रखते हैं। वही आपका मेरे ऊपर करने वाला परमानुग्रह है ।। ५० ।।

भगवान के बारे में रुक्मिणी बोलती हैं - आप उपात्त रजोति मात्रः भगवान सत्व गुण को स्वीकार करते हैं यह अर्थ होता है। सत्वगुण स्वीकार करने का अर्थ भगवान सत्व गुण को अपने में रखते हैं ऐसा नही है। गुण त्रय की अभिमानी लक्ष्मी हैं। वे तीनों गुणों का नियमन करती हैं। भगवान इन तीनों गुणों से दूर हैं। लेकिन सृष्टि, स्थिति, लय करने में भगवान इन गुणों का वृद्धिक्षय करते हैं। ऐसा करते समय लक्ष्मी जी का सहयोग लेते हैं। भगवान लक्ष्मी जी के सहयोग से रजोगुण को अभिवृद्धि करते हुये प्राकृत को स्थूल रूप से प्रकट करते हैं। इसको सृष्टि कहते हैं। इसी प्रकार लक्ष्मी जी के सहयोग से सत्व गुण को अभिवृद्धि करने से स्थिति यानि सृष्टि का पालन होता है। इसी प्रकार तमो गुण अभिमानी दुर्गा के सहयोग से भगवान तमो गुण वृद्धि करते हुये लय करते हैं। इन तीनों कार्य को करने में भगवान लक्ष्मी जी की सहायता लेते हैं इसका अर्थ वे अकेले इसको कर नही सकते, ऐसा नही है। भगवान के ऊपर प्यार के कारण सदाकाल उनके पास रहने वाली लक्ष्मी देवी भगवान की इच्छानुसार स्वयं उत्साह से यहाँ कार्य करती हैं । प्रात:काल के चंक्रमण में हाथ में लाठी लेकर जाने वाला शोभा के लिये लाठी लेकर जाता है। उसकी आवश्यकता कुछ नही रहती है। वहीं एक बूढा को बाहर जाना है तो लाठी का सहारा लेने के बिना चल नही सकता।

भगवान विश्वंभर हैं, सत्वादि तीनों गुणों के आश्रय देने वाले हैं। किन्तु स्वयं उनका अनुभव करने की उन्हे जरुरत नही है। इसके लिये भगवान को अगुण अथवा निर्गुण कहते हैं। यहाँ गुण स्वीकार का अर्थ गुण ग्रहण करते हुये प्रकृति के सहारे उनकी अभिवृद्धि करना इतना ही अर्थ होता है। जड़, चेतन दोनो की अभिमानी लक्ष्मी देवी जड़वत रहने वाली सृष्टि को भगवान के उद्रेक के अनुसार चेतन करती हैं।

हे मधुसूदन ! विवाह के समय में अपने पुत्री के बारे में माँ जो प्यार से आसक्ति दिखाती है वे व्यर्थ की बाते नही होती। उसी प्रकार आप कभी असत्य नही बोलते ।। ५१ ।।

रुक्मिणी के स्वयंवर के पहले रुक्मिणि की माँ अपनी पुत्री को श्रीकृष्ण को ही देने का संकल्प की थी। माता का संकल्प कभी भी झूठ नही होता। इससे यहाँ यह अर्थ होता है कि रुक्मिणि को श्रीकृष्ण उठाकर नही ले आये हैं। उनकी माता की बातों को सत्य किये हैं। इन दोनो को जोड़कर रुक्मिणि कहती हैं। सज्जनों की बात व्यर्थ नही होती।

पर पुरुष में मोह करते हुये व्यभिचार करने वाले स्त्री को विवेकी मानव कभी नही अपनाते। जो उसका पोषण करता है वह इस लोक तथा परलोक दोनों में सुख से वंचित रहता है किन्तु ऐसी वेश्या पिंगला भी आपके शरण आकर सद्गति पाती है। ऐसे प्रभु आपकी सती नित्यावियोगिनी मेरा पत्नी बनकर रहना क्या आश्चर्य है ।। ५२ ।।

यहाँ रुक्मिणि पुंश्चली के बारे में बोलती हैं - पिंगला ही पुंश्चली है। ग्यारहवाँ स्कन्ध में पिंगला की कथा आती है। पिंगला वेश्या है किन्तु श्रीकृष्ण में मन रखते हुये नित्य अन्य पुरुषों की कामना करने वाली सबको छोड़कर नित्य नूतन आनन्द पाने के लिये आपको चाहती है। तो उत्तम स्त्री का आपको पाने की इच्छा करना स्वाभाविक है।

श्री भगवान कहते हैं - हे राजकुमारी ! तुम साध्वी हो, सुशील हो, तुम्हारे मुख से इसी तरह की बातों को सुनने की इच्छा से ही मैं परिहास रूप में ये बाते कही है। इसके लिये उत्तर रुप में तुमसे दी हुई बातें यथार्थ हैं, पूर्ण सत्य हैं ।। ५३ ।।

तुम मुझसे जो-जो चाहती हो, उन सबको मांगो। हे मंगलांगी, सुन्दरी, तुम मेरी एकान्त भक्त हो। अपेक्षित सारे सुख तुम्हारे लिये सदाकाल संन्निहित हैं। मेरे आलिंगन से वह अभिव्यक्त होता है ।। ५४ ।।

यह वेदमंत्र अंभ्रणी सूक्त का अनुवाद है। लक्ष्मीदेवी नित्य मुक्त होने के कारण उनको कोई कामना नही रहती है। तो भी भगवान बोलते हैं तुम जो चाहे वह वर माँगो इसका अर्थ ब्रह्मा रुद्र, इन्द्रादि से भी बढ़कर भगवान के बारे में जो श्रेष्ठ ज्ञान है उसको तुम माँगो क्योंकि भगवान के एकान्त भक्तों के सकल अभीष्ट मुक्ति के बाद पूर्ण होते हैं। नित्यमुक्त लक्ष्मी देवी उनके लिये और कोई इच्छा नही होती।

हे प्रिये तुम पाप रहित हो। तुम्हारे में क्रोध जगाने के लिये मैंने कितनी बार प्रयास किया किन्तु तुम्हारे प्यार में तिल मात्र कमी नही हुई। तुम्हारा पतिप्रेम और पातिव्रत्य इससे पूर्ण रूप से प्रकट हुआ ।। ५५ ।।

मैं मुक्ति का स्वामी हूँ। जो लोग केवल काम के लिये, दाम्पत्य सुख के लिये तप, व्रत, अनुष्ठान करते हैं वे मेरे बंधक माया से मोहित हो ज़ाते हैं ।। ५६ ।।

हे मानिनी ! मोक्ष को देने वाले सज्जनों के स्वामी मेरा आश्रय पाने के बाद भी जो लौकिक संपदा को चाहते हैं वे अदृष्टहीन होते हैं। ये ऐहिक भोग विषयों से होता है। उनके प्राप्ति से मानव हीन योनि को पाता है, सरलता से नरक को पाता है ।। ५७ ।।

यहाँ **निरये** शब्द का प्रयोग है यह रुक्मिणि के लिये सम्बोधन भी हो सकता है। निरये इसका अर्थ प्रलयकाल में भी लय जिसको नही हैं यह होता है। दूसरा अर्थ कभी भी

भगवान को छोड़कर नही रहने वाली और तीसरा अर्थ नित्य सौभागिनी यानी मंद भाग्या नही यह अर्थ होते हैं।

हे ग्रह ऐश्वर्ययुक्त रूक्मिणी ! तुम मुझमे निरंतर भक्ति कर रही हो। इससे मुझे बहुत संतोष हुआ है। विषय सुख की अभिलाषा करने वाले लोगों को इस तरह की भक्ति करना असाध्य है। केवल इंद्रिय पोषण करने वाले, दुराशा-भरित, केवल धन के लिये वंचना करने वाली स्त्री में ऐसी भक्ति होना असाध्य है ।। ५८ ।।

तुम्हारे समान पति में प्यार रखने वाली और दूसरी किसी को मैंने नही देखा। तुमने मुझको नही देखा था। केवल मेरी लीलाओं को सुनकर मुझसे प्यार करने लगी। स्वयंवर में आये हुये सारे राजाओं को तिरस्कार करते हुये एक ब्राह्मण के हाथ में प्रेम पत्र को रहस्य रूप में भेजी थी ।। ५९ ।।

युद्ध में तुम्हारे भाई को हराकर मैंने उसको विरूप किया। अनिरुद्ध के विवाह के समय में द्यूत खेलते समय मेरे बड़े भाई ने तुम्हारे भाई को मार डाला। इन सारे दुःखों को तुमने मेरे लिये मौन होकर सहन किया। मेरे वियोग के भय से कुछ भी नही बोली। हे भैष्मी ! हम तुम्हारे से हार गये ।। ६० ।।

मुझको पति रूप में पाने के लिये तुमने उस ब्राह्मण को संदेश वाहक बनाकर हमारे पास भेजा था। हमे आने में थोड़ा देर होते ही तुमने इस जगत को शून्य मानते हुये इस सुन्दर शरीर को त्यागने के लिये तैयार हो चुकी थी। हे रुक्मिणि ! तुम्हारे इस अगाध प्रेम के बदले में तुमको वापस मैं क्या दे सकता हूँ। मैं केवल तुम्हारा अभिनंदन करता हूँ ।। ६१ ।।

श्री शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण स्वरमण होते हुये भी लोक रूढ़ि में रूक्मिणी के साथ प्रेम संलाप करते हुए विहार किये ।। ६२ ।।

लोक गुरु भगवान श्रीकृष्ण इस प्रकार अपने हजारों पत्नियों के घर में सद्गृहस्थ के समान गृहस्थ धर्म का आचरण किये ।। ६३ ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - छिहत्तरवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - श्रीकृष्ण की प्रत्येक पत्नियों ने दस-दस पुत्रों को पाया। वे पुत्र शरीर सौष्ठव में पिता के समान थे ।। १ ।।

प्रत्येक पत्नी को लगता था कि श्रीकृष्ण अपना घर छोड़कर कभी भी बाहर नही जाते। इससे उनको लगता था कि श्रीकृष्ण उसी को ज्यादा प्यार करते हैं। किन्तु वे इस तत्व को जान नही पाये कि भगवान श्रीकृष्ण स्वरमण हैं, उनको स्त्री की कोई आवश्यकता नही।

कशेरु इत्यादि श्रीकृष्ण के सोलह हजार पत्नियों को इस दर्प के फल के कारण श्रीकृष्ण के परमधाम को जाने के बाद म्लेच्छों के वश में नाश होना पड़ा। अर्जुन भी उनका मोचन कर नही पाये। वे गोविन्दएकादशी व्रत करने के बाद सरस्वती जल में अपना शरीर त्याग किये। महाभारत तात्पर्य निर्णय में (३२-५०) यह बात आती है।

श्रीकृष्ण के सुन्दर मुख, सुन्दर लम्बी नाक, सुन्दर नेत्र, प्रेम पूरित मन्दहासयुक्त दृष्टि और मनोहर बातों से वे सम्मोहित थीं। वे पूर्ण रूप से भगवान को अपने लीला विनोद से अपने वश में रख नही पायीं ।। ३ ।।

हसन्मुख वाले उनकी तिरछी नजर, उससे दिखने वाला प्यार, भौं से बाहर आने वाला प्रणय सन्देश इनमें रहने वाले समर्थ काम बाणों को सोलह हजार पत्नियाँ बार-बार प्रयोग करती रहीं तो भी अपने इन्द्रियों से भगवान की इन्द्रियों को आकर्षित कर नही सकीं ।। ४ ।।

सौन्दर्य का मुख्य आश्रय प्रेम रस पूर्ण रो सयुक्त दृष्टि, उसको देखकर वे समझती थीं कि सज्जनों का पति श्रीकृष्ण केवल अपना प्यारा है। वे (भगवान श्रीकृष्ण) अपने भवनों में ऊँचे सिंहासन पर बैठें तो पत्नियाँ उनके सामने खड़े होने के लिये नववधू के समान लज्जा से भर जाती थीं। स्तम्भ के सहारे खड़े होकर तिरछी नजर से उनको देखती थीं ।। ५ ।।

राजगृह में दास-दासियों के सामने भगवान श्रीकृष्ण विहार करते हुये अपने हाथों से पत्नी की आँख बन्द करें तो वे आनन्द से हसती हैं। किन्तु तुरन्त साड़ी से अपने शरीर को ढ़क लेती हैं। अपना सुन्दर शरीर बाहर दिखते रहे तो उनके लिये भला ही है। किन्तु श्रीकृष्ण उनको लज्जाहीन समझेगा

और उसी कारण वहाँ से चला जायेगा। इस भय से वे अपनी लज्जा को दिखाती थी ।। ६ ।।

प्रत्येक पत्नी ने दस-दस पुत्रों को पाया। उनमें से अष्ट महिषियों के पुत्र प्रद्युम्नादि होते हैं ।। ७ ।।

रुक्मिणी से पिता के अनुरूप प्रद्युम्न इत्यादि दस पुत्र जन्म लिये। उनमें प्रद्युम्न पहला है। बाद में चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, अतिचारु और दसवाँ चारुमान ।। ८-९ ।।

चारुदेष्ण गणपति का अवतार है। वह बहुत बड़ा शूर था। वह युद्ध करने चले तो उसके पीछे-पीछे हजारों कौवा और गिद्ध चलते थे, क्योंकि वह जहाँ युद्ध करता है वहाँ हजारों लोगों को मारता है।

सत्यभामा के पुत्र होते हैं, भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमन्त, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अभिभानु, श्रीभानु और दसवाँ प्रतिभानु । जामवंती के पुत्र होते हैं, साम्ब, सुमित्र, पुरुजित, सतजित, सहस्रतजित, विजय, चितकेतु, वासुमान, द्रविण और दसवाँ क्रतु। ये सारे पिता के अनुरूप थे ।। १०-११-१२ ।।

जांबवती का रोहिणी भी एक नाम था। षण्मुख श्रीकृष्ण से सांब नाम से जन्म लिया।

नीलदेवी के पुत्र हैं- भानु, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगुप्त, वेगवान, वृष, आम, शंकु, वासु और दसवाँ कृति ।। १३ ।।

कालिन्दी के पुत्र हैं - श्रुत, कवि, वृष, सुबाहु, भद्र, एकल, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और दसवाँ सोमक ।। १४ ।।

लक्षणा देवी के पुत्र - प्रघोष, गात्रवान, सिद्ध, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महा, शक्त, सहओज और दसवाँ अपराजित ।। १५ ।।

मित्रविंदा के पुत्र - वृक, अर्हक, अनिल, नील, बृहन, अनाद, महाशाप, वन, वन्हि और दसवाँ कृति ।। १६ ।।

भद्रादेवी के दस पुत्र होते हैं, संग्राम को जीतने वाला बृहत्सेन, प्रहरण, अरिजित, जय, सुभद्र, भद्राश्व, वाम, आयु, सात्यक और दीप्तिमान। रोहिणी इत्यादियों में ताम्रपत्रा इत्यादि पुत्री का जन्म हुआ।

जाम्बवती का नाम रोहिणी था। जाम्बवन्त की पुत्री होने के कारण उसका नाम जाम्बवती प्रसिद्ध हो गया। रोहिणी इत्यादि सोलह हजार पत्नियों में दस पुत्र के साथ एक या दो कन्या भी जन्म लिये, यह हरिवंश की बात है। सत्यभामा के पुत्रियों का नाम भानु, ग्रामणिका, ताम्रपत्रा, जलन्ध्रर इस प्रकार थे। श्रीकृष्ण की पुत्रियों में ताम्रपत्रा बहुत मुख्य हैं। उसके लिये भागवत में श्रीकृष्ण की पुत्रियों को ताम्रपत्राद्या कहा गया है। हरिवंश में कई मुख्य पुत्र के

बारे में कहा गया है। हरिवंश और भागवत को मिलाकर श्रीकृष्ण के पुत्र पुत्रियों के बारे में हम समझ सकते हैं। यह सत्यधर्म तीर्थ की बात है।

हे राजा सुनो - भोजकूट नाम के नगर में रुक्मि रहता था। उसकी पुत्री रुक्मवती का विवाह प्रद्युम्न के साथ हुआ। उनसे महाबलशाली अनिरुद्ध नाम के पुत्र जन्म लिया ।। १८ ।।

प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भगवान के अंशावतार हैं, पूर्णावतार नही। उन्ही नाम के भगवान का आवेश उनमें होने के कारण उनको वही नाम आया।

हे राजा ! श्रीकृष्ण के पुत्रों को कुलमिलाकर सोलह हजार माताएँ हैं। श्रीकृष्ण के पुत्रों से करोड़ों पौत्र जन्म लिये ।। १९ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - श्रीकृष्ण से युद्ध में पराजित हुआ और अपमान पाया हुआ रुक्मि श्रीकृष्ण से वैर रखता था। वह अपने शत्रु के पुत्र प्रद्युम्न को अपनी पुत्री को कैसे दिया ।। २० ।।

हे मुनि जी, बद्ध शत्रुओं के बीच में यह शरीर सम्बन्ध पुनः कैसे बना। आप योगी हैं, भूत, भविष्यत्, और वर्तमान इतिहासों को आप अतीन्द्रिय ज्ञान से समझने वाले हैं। कृपया मेरे लिये इसको बताइये ।। २१ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - श्रीकृष्ण से अवमानित होकर रुक्मि सदाकाल श्रीकृष्ण के साथ वैर करता था। किन्तु अपनी बहन प्यारी रुक्मिणी को सन्तोष करने के लिये उनके पुत्र प्रद्युम्न को विवाह में दे दिया ।। २२ ।।

श्रीकृष्ण से अवमानित होकर रुक्मि उसी के बारे में चिन्ता करते हुये श्री शैल को जाकर तप करते हुये अपने तप से शिव को प्रसन्न किया ।। २३ ।।

रुक्मि के तप से सन्तुष्ट हुये श्रेष्ठ वर देने वाले भगवान शिव रुक्मि को वर माँगने के लिये कहे। रुक्मि एक अजेय धनुष को माँगा ।। २४ ।।

किसी शत्रु से जीतने में असाध्य, देवता भी तोड़ नही सके, ऐसे एक धनुष को मुझे दे दीजिये। रुक्मि के इन बातों को सुनकर शिव जी तथास्तु बोलकर उसको एक बड़े धनुष को दे दिये ।। २५ ।।

शिव जी कहते हैं - हे राजा ! तुम इस धनुष से सबको जीत सकते हो किन्तु विष्णु के साथ विरोध मत करना। तुम विरोध करे तो यह धनुष तुम्हे छोड़कर मेरे पास आ जायेगा। विरोध नही किया तो तुम्हारे साथ रहेगा ।। २६ ।।

इस प्रकार बोलते हुये शिव जी धनुष को देकर अन्तर्धान हो गये। वर पाकर रुक्मि अपने भोजकूट नगर को वापस आया ।। २७ ।।

हे राजा ! रुक्मि उस धनुष से श्रीकृष्ण को छोड़कर अनेक प्रख्यात पराक्रमियो को जीत लिया ।। २८ ।।

किन्तु धनुष के ऊपर के मोह से श्रीकृष्ण के साथ वैर बढ़ नही सका। निष्कल्मष प्यार भी कर नही पाया ।। २९ ।।

रुक्मि श्रीकृष्ण के बारे में वैरचिन्तन नही छोड़ा। किन्तु अनंग व मन्मथ अंगयुक्त होकर प्रद्युम्न रूप से जन्म लेकर रुक्मि की पुत्री रुक्मवती को स्वयंवर में जीता। रुक्मवती प्रद्युम्न को ही अपनी पत्नी के रूप में चुना ।। ३० ।।

एकरथि प्रद्युम्न स्वयंवर में सामने आये हुये राजाओं को हराकर रुक्मवती को चुराकर ले आया। उसी के गर्भ से अनिरुद्ध का जन्म हुआ ।। ३१ ।।

बाण पुत्री ऊषा की इच्छा के अनुसार उसकी सहेली चित्रलेखा अनिरुद्ध को अपहरण कर ले आयी। उसको हजार बाहुवाले बाणासुर ने बन्दी बनाकर रख लिया। श्रीकृष्ण बाणासुर के हजारों बाहुओं को काट कर अनिरुद्ध को छुड़ा कर ले आये। बाणासुर केवल दो भुजा वाला बन गया ।। ३२ ।।

हे राजा ! रुक्मिणी की पुत्री चारुमती को बलिष्ठ कृतवर्म के पुत्र विशालाक्ष ने विवाह में पाणिग्रहण किया ।। ३३ ।।

अपने नाती अनिरुद्ध को रुक्मि का पुत्र अपने पुत्री लोचना से विवाह कर दिया। श्रीकृष्ण का बद्ध शत्रु होते हुये भी अपने बहन के कारण रुक्म इसको सहता रहा ।। ३४ ।।

हे राजा ! रुक्मिणी के विवाह सम्बन्ध को अधर्म मानने वाला रुक्मि अपने बहन के प्यार के कारण अपनी पुत्री और पौत्री को उन्हीं के घर को दे दिया ।। ३५ ।।

शास्त्र कहता है - शत्रु के अन्न को नही खाना, उसको खिलाना भी नही। जो धर्म अपने को सुख नही देता, जो लोक सम्मत नही है उसको त्याग देना चाहिये। इस वाक्य के अनुसार शत्रु के संग विवाह सम्बन्ध करना निषिद्ध होता है। विवाह सम्बन्ध करने के बाद परस्पर घर में भोजन करना पड़ता है। वह सुख देने वाला नही है, लोक सम्मत भी नही है। रुक्मि यह निषिद्ध कर्म किया, उसके फल को उसको भोगना पड़ा, वह रणरंग में युद्ध करते नही मरा। द्यूत खेलते समय बलराम के हाथ से मर गया। वह इस प्रकार है।

विवाह के भोजनकूट में राम-कृष्ण, सांब प्रद्युम्न भोजकूट नगर को गये थे। वहाँ विवाह के समय में दुष्ट राजा कालिंग ने बलराम के साथ द्यूत खेलने के लिये प्रोत्साहित किया। बलराम द्यूत में कुशल नही थे, किन्तु खेलने की इच्छा उसमें ज्यादा थी।

उनकी बात को सुनकर रुक्मि बलराम को द्यूत के लिये आवाहन करता है। बलराम पहले तीन खेलों में सौ, हजार और दस हजार वराहों को पण में रखा ।। ३८ ।।

रुक्मि तीनों बार जीत गया। कालिंग राजा बलराम की हँसी उड़ाते हुये अपने दाँत दिखाते हुये जोर से हँसा। बलराम क्रोधित हुये किन्तु सहन किये ।। ३९ ।।

बाद में रुक्मि ने एक लाख का पण रखा। बलराम ने उसको जीत लिया। किन्तु रुक्मि वंचना करते हुये बोला कि मैं ही जीत लिया। रुक्मि के इस विवाद में कालिंग राजा भी रुक्मि के साथ साक्षी बना। रुक्मि जोर से हँसने लगा।। ४० ।।

बलराम का क्रोध पूर्णमासी के समुद्र के समान बढ़ गया। उनकी आँखें लाल-लाल हो गयीं। तो भी अपने क्रोध का नियमन करते हुये आगे खेले। रुक्मि अब सौ करोड़ वराह का पण रखा ।। ४१ ।।

इस पण को बलराम न्याय तरीके से खेलते हुये जीत लिये। इस बार भी पिछले की तरह रुक्मि वंचना करते हुये बोला, मैं ही जीत गया। इसके लिये साक्षी बनकर इन राजाओं को बोलने दो ।। ४२ ।।

तब कालिंग गलत साक्षी बनकर रुक्मि ही जीत गया है, बोला। उस समय भी बलराम को अपने दातों को दिखाते हुये जोर से हँसा। आग बबूला होकर बलराम दोनो को देखा। लेकिन सहन कर लिया ।। ४३ ।।

तब अशरीर वाणी हुआ। न्याय के रास्ते में चलते हुये बलराम जीत गया है। रुक्मि वंचना से झूठ बोल रहा है ।। ४४ ।।

रुक्मि इस अशरीर वाणी को भी नही माना। रुक्मि का अन्त समय आ गया है। दुष्ट राजा उनको गलत रास्ते में उत्साह दे रहे हैं। वह बलराम के सामने अपहास्य करते हुये बोला ।। ४५ ।।

अरे, आप लोग गायचराने वाले हैं। द्यूत के नियमों को आप क्या जानते हो ? द्यूत खेलना, युद्ध करना, यह राजाओं का अधिकार है। गाय चराने वाले आप लोग इसके बारे में क्या जानते हैं ।। ४६ ।।

बलराम को धिक्कारते हुये रुक्मि ने हसते हुये जो बात किया, उनको सुनकर बलराम का क्रोध बढ़ गया। द्यूत की पीठ को उठाकर उसी से रुक्मि को मारा। एक ही मार से रुक्मि मर गया। विवाह के मंगल समारंभ में यह अमंगल कार्य हो गया ।। ४७ ।।

घबराया हुआ कालिंगराज दौड़ने लगा। वह दस पग भी नही गया था, बलराम ने उसको पकड़ कर हँसते हुये जो दिखाया था उन्हीं दातों को निकाल दिया ।। ४८ ।।

अन्य दुष्ट राजाओं को अपने परिघायुध से मार कर उनके हाथ, पाँव व सिर काट कर विवाह मण्डप में रक्त बहाया। रुक्मि के समर्थक डर के मारे भाग गये ।। ४९ ।।

अपना बहनोई इस प्रकार मारा गया। इसको देखकर श्रीकृष्ण कुछ भी बता नही सके। सही कहें तो रुक्मिणि को दुःख होता है, गलत बोलें तो बलराम को क्रोध आता है। इसके लिये वे कुछ भी न बोलते हुये चुप रहे ।। ५० ।।

बाद में श्रीकृष्ण के आश्रय में अपनी सारी इच्छाओं को पूर्ण प्राप्त किये हुये, बलरामादि सकल यादव लोग नूतनवधू लोचना के साथ अनिरुद्ध को रथ में बैठाते हुये भोजकूट से द्वारका वापस आये ।। ५१ ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - सतहत्तरवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - राजा परीक्षित पूछते हैं - यादवों में श्रेष्ठ अनिरुद्ध ने बाणासुर की पुत्री ऊषा से विवाह किया। तब श्रीहरि और हर के बीच में महाघोर युद्ध हुआ। महामुनि! आप इसके बारे में थोड़े वाक्यों में कहे हैं। उसमें मेरा मन लग रहा है। उसके बारे में विस्तार रूप से कहिये ।। १ ।।

विजयध्वजी टीका में ऊषा परिणय की कथा नही आती, श्रीकृष्णचारितमंजरी में राघवेन्द्र स्वामी जी ने नही लिखा। किन्तु महाभारत तात्पर्य निर्णय में आता है। भागवत के अनुक्रमणिका में **बाणस्य भुजकृन्तनम्** श्रीकृष्ण के बाण के बाहों को काटने की कथा आती है। पिछले अध्याय के बत्तीसवाँ श्लोक में इस कथा का उल्लेख आता है। तृतीय स्कन्ध अध्याय तीन श्लोक ग्यारह में बाणासुर का निर्देश आता है। इसी कारण शुकमुनि के निरूपण में भागवत में यह कथा आना उचित होता है। दशम स्कन्ध में इस प्रकार दो अध्याय ज्यादा होते हैं। किन्तु श्रीधरीय पाठ में ये दोनों उपलब्ध हैं। श्री सत्यधर्म तीर्थ अपने व्याख्यान में इसका विवरण देते हैं।

श्री शुक देव जी कहते हैं - वामन रूपी श्रीहरि को भू-दान करने वाला महात्मा बलिचक्रवर्ती को सौ पुत्र थे। उनमें सबसे बड़ा बाणासुर है ।। २ ।।

बलि का पुत्र बाणासुर शिव भक्तों में बड़ामान्य माना जाता था। वह दानशूर, बुद्धिशाली, सत्यसंध और दृढ़व्रत था ।। ३ ।।

सुन्दर शोणित नाम की नगरी में वह राज्य करता था। उसको एक हजार बाहु थे। जब शिव ताण्डव नृत्य करते थे उस समय बाणासुर अपने हजारों बाहुओं से अनेक वाद्यों को बजाते हुये उनके प्यार को पा चुका था। शिव के अनुग्रह के कारण देवता उसके सेवक बने थे ।। ४ ।।

सबको आश्रय देने वाले भक्तवत्सल भगवान रूद्र बाण से प्रसन्न होकर जो चाहे वह वर माँगने के लिये कह दिये। तब इस नगर के रक्षक बनकर आप रहें। यह वर पाकर अपने सुन्दर नगर को रक्षा के बारे में उनके वश में दे दिया ।। ५ ।।

इतना होते हुये भी अपने बल से दुरहंकारी बाण एक बार अपने पार्श्व में बैठे हुये शिव के पाद कमल को सूर्य के समान प्रकाशमान अपने किरीट से स्पर्श करते हुये कहता है ।। ६ ।।

शिवपार्वती से वर पाते समय स्कन्द के समान अपने को भी पुत्र रूप से स्वीकार करने के वर को बाण ने पाया था। स्कन्द प्यार से बाण को मयूर वाहन और मयूर ध्वज को दिया था। इससे बाण का अहंकार और बढ़ा।

बाण कहता है - महादेव आप लोक गुरु हैं, आप नियामक हैं। जिनकी अभिलाषा पूर्ण नही हुई है उनके लिये आप कल्पवृक्ष के समान हैं। आप सबके अभीष्टों को पूर्ण करते हैं। मैं आपको नमन करता हूँ ।। ७ ।।

आप मुझको हजार बाहु दिये हैं। लेकिन वे मुझे भार हो गये हैं। उनके लिये योग्य काम कुछ नही है क्योंकि तीनों लोकों में मेरे समान होकर मेरे साथ युद्ध करने के लिये और कोई नही मिल रहा है। मुझे लगता है कि आपको छोड़कर मेरे साथ युद्ध करने वाला और कोई नही है ।। ८ ।।

युद्ध की इच्छा करते हुये मैंने अपने इन पुष्ट बाहुओं से पहाड़ों को चकनाचूर किया। युद्ध करने की इच्छा से दिग्गजों के ऊपर दौड़ गया। वे मुझसे डरकर भाग गये। आप ही बोलिये क्या आप मेरे साथ युद्ध कर सकते हैं ? ।। ९ ।।

बाण की इन बातों को सुनकर भगवान रूद्र क्रोधित हो गये। वे बोले - अरे मूर्ख, तुम्हारे रथ का ध्वज जिस दिन टूट कर गिर जाता है उस समय तुम्हारा शत्रु तुम्हारे दर्प को नाश करके तुम्हे योग्य उत्तर देता है ।। १० ।।

हे राजा! इन बातों को सुनकर बाण को सन्तोष ही हुआ। शिव के आदेश के अनुसार अपने पराक्रम को खंण्डित करने वाले युद्ध की प्रतीक्षा करता रहा ।। ११ ।।

बाण की पुत्री उषा नाम की कन्या। वह स्वप्न में पीछे कहीं भी न देखा, न सुना ऐसा, सुन्दरांग अनिरुद्ध को देखी, उससे प्यार किया और उससे सुरत सुख पाई ।। १२ ।

शिव पार्वती सदाकाल एक साथ जुड़े हुये बाण के पास रहते थे। उनको देखकर ऊषा अपने को भी एक सुन्दर पति मिले यह इच्छा करने लगी। इसको जानकर पार्वती उससे कहती हैं। वैशाख शुक्ल द्वादशी रात में तुम जिसके साथ रमण करती हो वही तुम्हारा पति बनेगा। पार्वती के इन बातों के अनुसार उसी रात उषा को अनिरुद्ध का समागम हुआ। स्वप्न से उठने के बाद उषा रोने लगी। उधर अनिरुद्ध को भी स्वप्न में उषा मिली। जागृत होकर वह भी उषा के दर्शन के लिये कातर रहा। उसको राज-वैभव भी पसन्द नही लगा। यह हरिवंश का विवरण है।

अनिरुद्ध को न देखते हुये स्वप्न में उषा हे प्रिय! आप कहाँ गये, ऐसा जोर से चिल्लाते हुये

उठ बैठी। बाजू में सोयी हुयी सहेलियाँ ने इन बातों को सुना। उसको देखकर उषा को बहुत लज्जा हुई ।। १३ ।।

बाण के कुंभाण्ड नाम का एक मंत्री था। उसकी पुत्री चित्रलेखा उषा की आप्त सखी थी। वह कुतूहल से उषा से पूछती है ।। १४ ।।

हे सुन्दरी ! तुम स्वप्न में किसको ढूढ़ रही थी। तुम्हारी इच्छा क्या है। हे राजकुमारी ! कोई पुरुष अभी तक तुम्हारा हाथ नही पकड़ा है। अब तुम किसके बारे में बोली ।। १५ ।।

उषा कहती है - प्रिय सखी ! कमल के समान आँख वाला, मेघ के समान रंग वाला, पीताम्बर धारी महाबाहू, अत्यन्त मनोहर एक सुन्दर पुरुष मेरे स्वप्न में दिखा ।। १६ ।।

उसको मैं तभी से ढूढ़ रही हूँ। वह मुझको एक बार अधरामृत पिला कर कहीं चल गया है। मुझको दुःख सागर में डुबा दिया है ।। १७ ।।

चित्रलेखा कहती है - सखी ! तेरे दुख को मैं अभी नाश करती हूँ। तीनों लोकों में कोई भी रहे उसका चित्र मैं लिखा सकती हूँ। तुम उसको पहचान सकती हो तो मैं उसको लाकर देती हूँ। सखी! कहो, तुम्हारे मन का चोर कौन है ? ।। १८ ।।

इस प्रकार कहते हुये चित्रलेखा ने देव, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, नाग, दैत्य, विद्याधर, यक्ष और मनुष्यों का चित्र यथावत् लिखकर दिखायी ।। १९ ।।

मनुष्यों में यादवों उनमें भी शूर, वसुदेव, राम-कृष्ण, प्रद्युम्नाओं का चित्र बनायी। प्रद्युम्न का चित्र देखकर उषा को लज्जा आई ।। २० ।।

चित्रलेखा चित्र बनाती रही। अनिरुद्ध का चित्र देख कर उषा लज्जा से अवनित मुखी होकर बोली, हाँ, यह वही है ।। २१ ।।

हे राजा, चित्रलेखा अनिरुद्ध को अपनी योग्य शक्ति से जानती थी। श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को पहचान कर वह श्रीकृष्ण के अधीन में रहने वाला द्वारका को आकाश मार्ग से गई ।। २२ ।।

चित्रलेखा नारद से सम्मोहिनी विद्या का उपदेश पाई थी। उनकी आज्ञा पाकर द्वारका को जाकर अनिरुद्ध को माया से उठाकर शोणितपुरी को ले आई। उसको विश्वास था कि यह कृति श्रीकृष्ण को भी अच्छा लगेगा।

द्वारका में सुन्दर शैय्या में सोए हुये अनिरुद्ध को योग बल से उठाकर चित्रलेखा ने उसको शोणितपुर को लायी। अपनी प्रिय सखी को दिखायी ।। २३ ।।

अत्यन्त सुन्दर अनिरुद्ध को देखकर उषा आनन्द विभोर हो गयी। कोई न देखे ऐसे गुप्त स्थान पर अपनी निजी कक्ष में रखी ।। २४ ।।

उषा प्रतिदिन अनिरुद्ध को अमूल्य वस्त्र, माला, सुगन्धद्रव्य, धूप, दीप, आसन इत्यादि देते हुये पान, भोजन,से उनको तृप्त करते हुये अपने लोभनीय वाक्यों से मन मुदित करते हुये उषा अनिरुद्ध की आराधना करने लगी ।। २५ ।।

मूलरूप में ये दोनों पति-पत्नी हैं। उषा अनिरुद्ध की नियत पत्नी है। इस अवतार में भी वे दोनों गन्धर्व विधि से पत्नी-पति बनकर विहार किये।

कन्या के अन्तःपुर में प्रतिदिन अत्यन्त गाढ़ प्रीति से रहस्यमय रहते हुये उषा अनिरुद्ध की सारी इन्द्रियों को अपनी तरफ छीन ली। अनिरुद्ध को दिन रात का भान भी नही रहा। ऐसे बहुत दिन चले गये ।। २६ ।।

यदुवीर अनिरुद्ध के साथ उषा रोज रमण कर रही है, वह द्वारपालकों के समझ में आ गया। वे समझ गये उसकी कन्या का व्रतभंग हो गया है। उसकी हसन्मुखता और प्रसन्नता उनके शरीर के लक्षण से देखकर वे समझ गये। उषा अपने आनन्द को किसी से छिपा नही सकी ।। २७ ।।

द्वारपाल राजा को बताते हैं - हे राजा, आपकी पुत्री अब कन्या नही रह गयी है, वह कुलदूषण करने का कार्य कर रही है। उसके लक्षणों से हमें यह ज्ञात होता है ।। २८ ।।

प्रभु ! हम राजगृह छोड़कर कहीं भी नही जाते हैं। यहाँ कोई भी पुरुष आ नही सकता। ऐसे स्थान में एक पुरुष आकर आपकी पुत्री का कन्यात्व हरण कैसे कर सकता है। हम यह समझ नही सकते ।। २९ ।।

अपनी पुत्री के कौमार्यहरण की बात सुनकर बाण को बहुत दुःख हुआ। वह अत्यन्त वेग से अपनी पुत्री के अन्तःपुर में गया। वहाँ वह अनिरुद्ध को स्वयं देखा ।। ३० ।।

प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध अलोकैक सुन्दर है। श्यामल वर्ण, पीताम्बरधारी, कमलनयन, महाबाहू, कुण्डल और घुघुराले बाल वाला उसका मुख दिव्य कान्ति से शोभायमान था ।। ३१ ।।

उषा और अनिरुद्ध दोनों आमने सामने बैठकर द्यूत खेल रहे हैं। उषा उसको प्रत्येक बार हरा रही है। उसने धारण किया हुआ वसन्त का चमेली की माला उषा के अंग संग के कारण उसके स्तन को लेपित कुमकुम से लाल बन गया है। बाण इसको देखकर अचम्भित रह गया ।। ३२ ।।

शस्त्र को धारण किये हुये अनेको साथियों के साथ बाण अन्तःपुर को प्रवेश किया है। इसको देखकर अनिरुद्ध उठकर खड़ा हो गया और आग को उगलने वाला अपने परिघ नाम के आयुध को हाथ में ले लिया। दिखाता था दण्ड को लेकर स्वयं यमधर्म ही खड़ा हो गया है ।। ३३ ।।

अपने को पकड़ने के लिये चारों ओर से आने वाले बाण के सैनिकों को अनिरुद्ध जंगल के सुअर, कुत्ते को जैसे मारता है वैसे मारा। उनके पीछे दौड़कर उनके सिर हाथ पाँव को काट डाला। वे सारे भाग गये ।। ३४ ।।

अनिरुद्ध अपने सैन्य का नाश कर रहा है। इसको देखकर बाण कुपित होकर उसको नाग पाश से बंधक बना दिया। उसको देखकर उषा दुःखित होकर रोने लगी। आंखों से आँसू बहने लगे ।। ३५ ।।

बाण अनिरुद्ध को मारने की इच्छा से आक्रमण किया। कुभाण्ड उसका मंत्री उसको रोकता है। यह वीरों में वीर है। आपकी पुत्री के लिये सुयोग्य वर है। गन्धर्व विधि से इनका विवाह हो चुका है। यदि आप इसको मार डालेगे तो तुम्हारी पुत्री को योग्य वर नही मिलेगा। इसको मारना भी इतना सरल नही है। हम इसको बहुत युद्ध में देखे हैं। आप भी देख रहे हैं, आपकी हजार बाहू हैं, तो भी आपके सामने यह दो बाहू वाला कितना शौर्य का प्रदर्शन कर रहा है। इसके लिये आप इसको मारने के बदले में बन्धक बनाओ। यह विष्णु पर्व में आता है।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अठहत्तरहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा ! इधर मथुरा में अनिरुद्ध को न देखते हुये उनके बन्धुगण शोक करने लगे। ऐसे लगा कि वर्षा काल के चातुर्मास चले गये ।। १ ।।

श्रीकृष्ण की आराधना करने वाले यादव नारद जी से सुने कि एक योगिनी आकर अनिरुद्ध को ले गयी है। अनिरुद्ध का बाण के सैनिकों से युद्ध करते हुये उनको हराना। अन्त में बाणासुर के नाग पाश में बंधित होना, इत्यादि विषयों के बारे में कह दिये ।। २ ।।

इसी कारण युद्ध होता है तो होने दो, उसको देखने में मुझे कुतूहल है। युद्ध प्रारम्भ होते ही मुझे बताओ। इस प्रकार नारद जी चित्रलेखा को कहे थे। उसके अनुसार युद्ध प्रारम्भ होते ही चित्रलेखा उनको बता दी। वे शोणितपुर आकर अनिरुद्ध को बंधित देखकर कुभाण्ड के उपदेश के अनुसार बाण ने अनिरुद्ध को बंधक बनाया है। इस विषय को यादव को बताये थे।

प्रद्युम्न, युयुधान, गद, सांब, सारण, नन्द, उपनन्द, भद्र इत्यादि लोग राम-कृष्ण के नेतृत्व में शोणितपुर को आ गये ।। ३ ।।

बारह अक्षोहिणी सैन्य के साथ आये हुये ये यादव सारी दिशाओं से बाण की नगरी शोणितपुर को घेर लिये ।। ४ ।।

अपने नगर के उद्यान, प्रकार, मंजिल और महाद्वार को यादव लोग नष्ट कर रहे हैं। इसको देखकर बाणासुर कोपावृष्टि होकर यादवों के समान वह भी बारह अक्षोहिणी सैन्य के साथ युद्ध करने आया ।। ५ ।।

बाण की भक्ति से प्यार करने वाले साक्षात् भगवान रुद्र नंदी नाम के बैल के ऊपर चढ़कर अपने पुत्रों और प्रथमगणों के साथ आकर राम-कृष्णों के साथ युद्ध करने लगे ।। ६ ।।

हे राजा ! श्री कृष्ण और भगवान शंकर, प्रद्युम्न और षण्मुख परस्पर विरुद्ध में रोमांचक अद्भुत और घनघोर युद्ध किये ।। ७ ।।

बलराम प्रद्युम्नों के साथ श्रीकृष्ण बारह अक्षोहिणी यादव सैन्य के साथ शोणितपुर के बाहरी आंचल को जब आये तब पुरपालक रूप में रहने वाला आवहनीय अग्नि उनको रोकी।

गरुड़ हजार मुख बनकर देव गंगा जल को मुख से लाकर उस अग्नि को बुझा दिया। बारह अग्नि पुत्रों के साथ आया हुआ अंगीरस भी युद्ध करके पराजित होकर भाग गया।

अंगीरस मुनि के बहुत पहले तप करते समय अग्नि अदृश्य हो गया। तब अग्नि के कार्य को स्वयं करते हुये वह दूसरा अग्नि माना गया। अंगीरस नाम के एक प्रथमगण में हैं। यह बात महाभारत के वनपर्व में दो सौ बीसवा अध्याय में कहा गया है।

श्रीकृष्ण इस प्रकार अग्नि दुर्ग को पार करके आये। तब पुरपालक शिव के प्रथमगण के साथ युद्ध हुआ। शैव्य ज्वाराभिमानी आकर इनका सामना किया। उनको तीन सिर, तीन पांव, नौ आँख और छः हाथ थे, वह भस्म को अपना आयुध बनाकर युद्ध करता था। बलराम के ऊपर जब यह भस्म गिर गया तो बलराम का शरीर बहुत गर्म हो गया। रोमांचन होने लगा, मुहँ सूख गया, आँखों के सामने अन्धेरा छा गया। बलराम हे श्रीकृष्ण ! मुझे बचाओ ऐसे जोर जोर से कहने लगा। श्रीकृष्ण का उसका आलिंगन करने से बलराम स्वस्थ हो गया। स्वयं श्रीकृष्ण शैव्य ज्वार के साथ युद्ध करके उसके हाथों को बांधकर निर्जीव करके फेक दिया। किन्तु वह दैत्य उठकर श्रीकृष्ण के शरीर में प्रवेश करके उनको भी कष्ट देने लगा। श्रीकृष्ण एक वैष्णव ज्वर का निर्माण किए। वह ज्वर श्रीकृष्ण के शरीर से शैव्य ज्वर को बाहर खींच कर श्रीकृष्ण के हाथों में दे दिया। श्रीकृष्ण उसको मारना चाहते थे, किन्तु वह श्रीकृष्ण की शरण में आया। शरणागत को न मारते हुये श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर शैव्यज्वर और वैष्णव ज्वर दोनों को अपने शरीर में रख लिये। इसको देखकर पुररक्षक होकर खड़े हुये स्वयं शिव ही श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने आये।

कुभाण्डक कूपकर्ण बलराम के साथ युद्ध किये। सांब बाण पुत्र के साथ और सात्यकी बाण के साथ युद्ध किये ।। ८ ।।

आकाश में ब्रह्मादि देवता, मुनिगण, सिद्ध, चरण, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष ये सारे युद्ध को देखने के लिये विमान में बैठ कर आये ।। ९ ।।

श्रीकृष्ण अपने शार्ंग धनुष से नुकीले बाणों को फेक कर शंकर के अनुचर रहे भूत, प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, बेताल, विनायक, प्रेत, मातृ, पिशाच, कूष्माण्ड और ब्रह्म राक्षसों को मार कर भगा दिये।। १०-११ ।।

शिव, श्रीकृष्ण के ऊपर अनेक तरह के अस्त्रों का प्रयोग किये। श्रीकृष्ण न डरते हुये उन सबको प्रत्यस्त्र से काट डाले ।। १२ ।।

ब्रह्मास्त्र को ब्रह्मास्त्र से, वायव्यास्त्र को पर्वतास्त्र से, अग्निअस्त्र को पर्जन्यास्त्र से, पाशुपतास्त्र को नारायणास्त्र से, अस्त्रों को प्रत्यस्त्र से प्रयोग करते हुये नष्ट किये ।। १३ ।।

श्रीकृष्ण जृंभणास्त्र से शिव को स्तम्भिभूत करते हुये बाण के सैन्य को खड्ग, बाण, शूल,

गदा से मारने लगे ।। १४ ।।

जृंभण यानि अंगड़ाई है। उस अस्त्र के प्रयोग से शिव को अंगड़ाई आने लगी। शिव के शरीर में शैथिल्य आ गया, शिव पत्थर के समान खड़े हुये। बाण कह रहा है श्रीकृष्ण को मारो, लेकिन प्रयत्न करने के बाद भी शिव हाथ उठा नही पाये।

स्कन्द प्रद्युम्न के बाणों से पीड़ित होकर रक्त से सिक्त होकर मोर के ऊपर बैठ कर युद्ध भूमि से भाग गया ।। १५ ।।

स्कन्द पुरपालक होकर शोणितपुर में रहता था। प्रद्युम्न और स्कन्द दोनो मन्मथ के अवतार हैं। किन्तु हरि के आवेश के बल से प्रद्युम्न स्कन्द को हराता है। इसी प्रकार अर्जुन ने श्रीकृष्ण के बल से इन्द्र को हराया था। जाते समय स्कन्द ने श्रीकृष्ण के ऊपर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। श्रीकृष्ण उसको अपने चक्र से पराभव किये। स्कन्द के सत्यायुध को केवल हुंकार मात्र से नीचे गिराये। श्रीकृष्ण उसको मारने के लिये चक्र को धारण किये। शिव के आज्ञानुसार पार्वती कोटरा नाम के रूप से आकर श्रीकृष्ण से प्रार्थना की। श्रीकृष्ण कृपा करके पार्वती के साथ स्कन्द को भेज दिये। यह विष्णुपुराण में (१२६-१२७) आता है।

कुभाण्ड कूपकर्ण बलराम के मुसल से मार खाकर भाग गये। सेनापति को खोकर सैनिक दशों दिशाओं में भाग गये ।। १६ ।।

अपना सैन्य इस प्रकार नाश हो रहा है। इसको देखकर क्रुद्ध होकर बाण सात्यकी को छोड़कर अपने रथ को श्रीकृष्ण की ओर मोड़ दिया ।। १७ ।।

बाणासुर अपने हजारों हाथों में हजारों धनुषों को उठा कर एक साथ हजारों बाणों को श्रीकृष्ण के ऊपर छोड़ दिया ।। १८ ।।

भगवान श्रीहरि अपने एक बाण से उन हजारों बाणों को काटते हुये बाणासुर के सारथी, रथ, घोड़ों को नाश करते हुये अपने पांचजन्य को बजाये ।। १९ ।।

बाणासुर की माँ कोटरा अपने पुत्र की रक्षा के लिये श्रीकृष्ण के सामने आकर अपने बालों को बिखेर कर हाथ जोड़ कर खड़ी हो गयी ।। २० ।।

उसके नग्न रूप को न देखते हुये श्रीकृष्ण नीचे मुहँ करके युद्ध छोड़कर खड़े रहे। अपने धनुष, रथ और सारथी को खोया हुया बाणासुर अपने नगर के अन्दर चला गया ।। २१ ।।

भगवान शिव के भूतगण श्रीकृष्ण का सामना न करते हुये भाग गये। तब तीन सिर, तीन पाँवो और छः आँखों वाला शैव्यज्वर पुरुष दसों दिशाओं को जलाते हुये श्रीकृष्ण के सामने आया ।। २२ ।।

श्रीकृष्ण शैव्यज्वर के सामने युद्ध करने के लिये वैष्णव ज्वर को सृष्ट किये। दोनों ज्वर में घनघोर युद्ध हुआ ।। २३ ।।

वैष्णव ज्वर से महेश्वर ज्वर बहुत मार खाये। वह भयभीत होकर दोनो हाथों को जोड़कर श्रीकृष्ण की शरण में आकर स्तुति करने लगा ।। २४ ।।

ज्वर कहता है - हे भगवान श्रीहरि ! आप अनन्त शक्ति वाले परमेश्वर हैं। आप सर्वेश्वर, आप्राकृतिक स्वरूप वाले हो। जगत के उत्पत्ति, स्थिति और लय के कारण आप हैं। आप वेदैकवेद्य हैं, प्रशान्त परब्रह्म हैं, मैं आपकी शरण में आता हूँ ।। २५ ।।

काल, अदृष्ट, कर्म, प्रकृति, लिंगशरीर, जीव स्वभाव, प्राण, अहंकार, इन्द्रिय, मन, इनके समुदाय रूप स्थूल शरीर एक से एक शरीर के निर्माण का कारण बनता है। बीज एक अंकुर से जैसे जन्म लेकर दूसरे अंकुर का कारण बनता है उसी प्रकार यह शरीर आपकी इच्छानुसार पुनः पुनः रूप धारण करता रहता है। मैं उससे बध्द हूँ। नेति-नेति इस श्रुति के अनुसार इन सबसे दूर रहने वाले सर्व विलक्षण आपके शरण में मैं आया हूँ ।। २६ ।।

आप लीला से अनेक अवतार लेते हुये लोगों में सज्जनों की और लोक धर्म के मर्यादा की रक्षा करते हैं। लोक कण्टक होकर दुर्मार्ग में जाने वाले दुष्टों को आप संहार करते हैं। इसी प्रकार आप अब भू-भार हरण के लिये श्रीकृष्ण का अवतार लेकर व्यक्त हुये हैं ।। २७ ।।

सहन करने में असाध्य, अत्यन्त उल्बण, आपका शीतज्वर पहले शान्त होता है, किन्तु अन्त में उग्र बनता है। आपके तेज से उद्भूत ज्वर से मैं संतप्त हूँ। देह धारण किये हुये सारे लोगों के संतापों को दूर करने वाले आप हैं। उनका यह संताप वे जब तक विषय की आशा से बन्धित हैं तब तक रहता है। आपकी पाद सेवा करने लगें तो सारे संताप चले जाते हैं ।। २८ ।।

श्री भगवान कहते हैं - हे ज्वर ! तुम्हारी प्रार्थना से मैं प्रसन्न हुआ हूँ। मैंने जो ज्वर को सृष्ट किया है, उससे तुम्हारा कष्ट शान्त हो। जो लोग हमारे इस संवाद को सुनते हैं, उनको ज्वर बाधा न हो ।। २९ ।।

हरिवंश में ज्वर इस बात को कह कर ज्वर नाश के लिये इन दो श्लोकों को बताता है। जो लोग इन दो श्लोकों को नित्य पाठ करते हैं उनके लिये ज्वर बाधा नही होती।

त्रिपाद् भस्म प्रहरण स्त्रिशिरा नवलोचनः ।
स मे प्रीतः सुखं ददायत् सर्वामय पति ज्वरः ।। १ ।।
आद्यंतवन्तः कवयः पुराणः सूक्ष्माः बृहन्तोऽप्य नु शासितारः।
सर्वान् ज्वरा घ्नंतु मम निरुद्ध प्रद्युम्न संकार्षण वासुदेवाः ।। २ ।।

ये दोनों श्लोक विष्णु पुराण (१२३-३६, ३७) में आते हैं।

श्रीकृष्ण इस प्रकार शैवज्वर को बोले। शैवज्वर उनको नमस्कार करते हुये चला गया। तब बाणासुर अलग रथ के ऊपर चढ़कर श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने आया ।। ३० ।।

उसके रथ को चार सिंह खीचते थे। नंदी शिव से वर मिला हुआ यह रथ को लाकर उसको दिया। हरिवंश १२६-८८

हे राजा ! हजारों बाहु वाले नाना तरह के आयुध धारण किया हुआ बाणासुर ने क्रोध से चक्रधारी श्रीकृष्ण के ऊपर बहुत बाणों से प्रहार किया ।। ३१ ।।

बाणासुर बाणों से मारने लगा। तब भगवान उसके बाहुओं को वृक्ष के शाखाओं को आरी से जैसे काटते हैं वैसे अपने सुदर्शन चक्र से काट डाले ।। ३२ ।।

शिव के आदेशानुसार बाणासुर की माँ कोटरा श्रीकृष्ण के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करती है। भगवान यह मेरा इकलौता पुत्र है। मैं उसकी माँ हूँ, हजारों हाथ होने से इसको अहंकार है। आपने उनके हाथों को काट दिया है, यह अच्छा है। लेकिन उसको जीव से मत मारिये। उसको दो हाथ बचे हैं, वही पर्याप्त है। विष्णुपुराण १२६-१३१।

बाणासुर के बाहु कट कर गिरते ही भक्तों के ऊपर अनुकम्पा रखने वाले भगवान शिव श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे ।। ३३ ।।

श्री रुद्र कहते हैं - श्रीहरि ! आप परमब्रह्म, परंज्योति हैं। आप वेद के गर्भ में छिपे हैं। आकाश के समान अद्वितीय आपको केवल निर्मल अन्तःकरण वाले देख सकते हैं।

रणरंग में जृंभणास्त्र से शिव जब स्तम्भित हो गये तब ब्रह्मा जी उनको लेकर श्रीकृष्ण के उदर में प्रवेश करते हुये वहाँ बिल्ववन में उग्र तप करने वाले शिव का उग्र रूप अब स्तम्भित हो गया है, इसको दिखाये। और कहे तप करने से ही आपको शिव पद प्राप्त है। यदि तप छोड़े तो शिव पद चला जाता है। विष्णु पुराण १२५-१८-१९

शिव स्तुति कर रहे हैं - हे भगवान ! आपकी नाभि से आकाश जन्म लिया। मुख से अग्नि, वीर्य से जल, सिर से द्यु-लोक, कानों से दिशायें, पाद से पृथ्वी, मन से चन्द्र, आँखों से सूर्य, मध्य देह से मैं (रुद्र), उदर से समुद्र, बाहुओं से इन्द्र आदि जन्म लिये ।। ३५ ।।

आपके रोमों से औषधियाँ, बाल से मेघ, बुद्धि से ब्रह्म, जननेन्द्रि से दक्ष, हृदय से यमधर्म जन्म लिये, आप ही लोककर्ता विराट पुरुष हैं ।। ३६ ।।

कभी भी कुंठित न होने के प्रकाश वाले भगवान श्रीकृष्ण आपका यह अवतार धर्म रक्षा के लिये लोक कल्याण के लिये है। हम सब आपकी रक्षा में रहते हुये सारे लोकों की रक्षा करते हैं ।। ३७ ।।

आप सर्वकर्ता, आदिपुरुष, अद्वितीय, मोक्ष देने वाले, तुर्यरूपी, स्व प्रकाश वाले, सबके मूल कारण होते हुये भी आपका मूल और कोई नही है। आप इस जगत के स्वामी हैं, लक्ष्मीरमण हैं। इतने होते हुये भी त्रिगुणों के कार्य सिद्धि के लिये विकार रूप वाले विविध आकार वाले शरीर के अनुसार विविध आकार लेते हैं। ये सारे आप स्वयं इच्छा से करते हैं ।। ३८ ।।

जैसे सूर्य स्वयं मेघ का निर्माण करके स्वयं उसी में छिप जाता है। वह मेघ छिपने वाला और छिपाने वाला दोनों को दिखाता है। किन्तु आपको उस मेघ का सम्बन्ध नही होता। वैसे ही आप त्रिगुणों से सम्बन्ध रहित हैं, स्वप्रकाशवान हैं। जगत की दृष्टि से आप त्रिगुणों से ढक गये हैं। आप त्रिगुणों को त्रिगुण बद्ध जीवों को दिखाते रहते हैं। हे भूमा नामक पूर्ण रूपवान स्वामी ! आपको इस त्रिगुणात्मक संसार का बंधन नही है ।। ३९ ।।

आप की इच्छानुसार बुद्धि, मोह पाये हुये जीव पत्नी-पुत्रों और घर-मन्दिरों में विशेष आसक्त होते हैं। पापी समुद्र में डूबते उठते रहते हैं ।। ४० ।।

ऐसे लोग भी दैव वश से मानव शरीर पाकर भी आपके पादों का भजन न करने से वे वंचक बन जाते हैं, शोचनीय परिस्थिति को पाते हैं ।। ४१ ।।

विपर्यय का अर्थ मृगमरीचिका के समान एक बार सुख के समान दिखने वाले इन्द्रिय गोचर विषय पदार्थ होते हैं। उनको पाने के लिये जीव सदा प्रियकर अन्तर्यामी होकर प्रेरणा देने वाले आपको छोड़कर अमृत को छोड़कर विष को पीने वाले के समान आत्म वंचक बनता है ।। ४२ ।।

मैं चतुर्मुख ब्रह्मा अन्य देवता और ऋषिगण निर्मल मन से अन्तर्यामि सर्वेश्वर अत्यन्त प्रिय आपके शरण में रहते हैं ।। ४३ ।।

आप हमारे लिये अनिमित्त बन्धु हैं, परदेव हैं, इस जगत के सृष्टि, स्थिति और लय करने वाले हैं। आप सर्वोत्तम, निर्दोष, सदाकाल सम, प्रशान्त और इस जगत को आश्रय देने वाले हैं। क्रीड़ादि गुण विशिष्ट आपको हम इस संसार निवृत्ति के लिये सेवा करते हैं ।। ४४ ।।

हे देव ! यह बाणासुर मेरा भक्त है, यह मुझे अत्यन्त प्रिय है, मैं इसको अभय वर दिया हूँ। आप उस वर के रक्षक बने, यह दैत्य चक्रवर्ती बलि के समान यशस्वी हो, इसमें भी आप अनुग्रह करें ।। ४५ ।।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं - हे भगवान शिव ! मैं आपके लिये जो इष्ट है, उसी को करता हूँ। आप जो जो करना चाहते हैं, उसमें मेरी सहमति हैं। आप जो कुछ करते हैं वह सज्जनों को सम्मत होता है ।। ४६ ।।

यह बाणासुर बलि का पुत्र है और प्रह्लाद का प्रपौत्र है। प्रह्लाद के वंश में जो जन्म लेता है। उसको न मारने का वर मैं दे चुका हूँ। इसके लिये इसको जीव से नही मारूंगा ।। ४७ ।।

बाणासुर को अपने सैन्य और हजारों बाहुओं का बड़ा अहंकार था। इस अहंकार का नाश करके भू-भार हरण रूप इसके बड़े सैन्य को नाश किया है ।। ४८ ।।

बाण में बाणासुर नाम का एक असुर प्रवेश किया था, वह चक्षुराभिमानी दैत्य है। उसका नाश किया हूँ।

बाण को अब चार बाहु रहे हैं। यह उसके जीवन पर्यन्त रहते हैं। यह आपका मुख्य सेवक है, इसके लिये उसको किसी का भय नही होना चाहिये ।। ४९ ।।

भागवत में बाणासुर की चार भुजा रह गये, यह बात आती है। किन्तु हरिवंश में दो बाहु वाला ऐसा लिखा है। दोनो का अभिप्राय एक ही है। दो बाहु एक एक तरफ ऐसा अर्थ करने से दोनो का अर्थ ठीक होता है।

इस प्रकार अभय पाकर बाणासुर श्रीकृष्ण को सिर झुका कर नमस्कार करते हुये अनिरुद्ध को उषा के साथ रथ में बिठा कर श्रीकृष्ण के पास ले आया ।। ५० ।।

शिव से विदाई पाकर श्रीकृष्ण सुन्दर वस्त्राभरण भूषित पत्नी समेत अनिरुद्ध को अपने अक्षोहिणी सैन्य को साथ लेकर द्वारका को चले ।। ५१ ।।

द्वारका नगरी ध्वज तोरणों से अलंकरित हुआ था, समस्त मार्ग, चौक और घर अलंकरित हो गये थे। नागरिक लोग ब्राह्मणों से मिलकर शंख, आनक, दुंदुभि इत्यादि वाद्यों को बजाते थे। उस समय भगवान श्रीकृष्ण उषा अनिरुद्ध के साथ उत्साह से द्वारका को प्रवेश किये ।। ५२ ।।

यह श्रीकृष्ण और भगवान शिव का युद्ध प्रसंग और उसमें श्रीकृष्ण की विजय को प्रातःकाल में उठकर जो स्मरण करता है, पाठ करता है, उसको शत्रुभय और पराजय कभी भी नही होता ।। ५३ ।।

हरिवंश में यह कथा थोड़ी सी अलग है। शिव बाणासुर को महाकाल नाम के प्रथमगण का प्रमुख बनाकर अपने लोक को ले चले। इधर शोणितपुर के साम्राज्य को भगवान श्रीकृष्ण कुभाण्डक को दे दिये। वहाँ ही उषा और अनिरुद्ध का विवाह महोत्सव वैभव से सम्पन्न हुआ। उसी समय कुभाण्डक की बेटी चित्रलेखा का विवाह सांब के साथ सम्पन्न होता है। वे सारे मिलकर द्वारका चलते हैं। रास्ते में वरुण बाणासुर के हजार गायों को चोरी करके ले जा रहा था। कुभाण्डक की प्रार्थना के अनुसार समुद्र तट पर चर रही गायों को पाकर श्रीकृष्ण वरुण के साथ युद्ध करते हुये उसको हराते हैं। तब वरुण प्रार्थना करता हैं - हे प्रभु ! आप यदि इन गायों को ले जाना चाहते हैं तो मुझको मार डालिये। वरुण को न मारते हुये गायों को वहीं छोड़ते हुये श्रीकृष्ण भगवान सबके साथ मिलकर द्वारका पहुंचते हैं।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - उन्यासिवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण शत्रुओं का निग्रह करने के बाद द्वारका में अपने सुन्दर सोलह हजार पत्नियों के साथ बहुत दिनों तक सुख से रहे ।। १ ।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - मानव शरीर पाये हुये भगवान श्रीकृष्ण अकेला सोलह हजार स्त्रियों के साथ कैसे क्रीड़ा किये। उन सबको कैसे तृप्ति देते थे ? ।। २ ।।

भागवत में अनेक राजा-महाराजाओं की हजार, दस हजार इतना ही नही, चित्रकेतु राजा की एक करोड़ पत्नियाँ थीं, ऐसी कथा आती है। उस समय परीक्षित को यह संशय क्यों नही आया। यह प्रश्न आता है। किन्तु वे राजा अपनी पत्नियों को एक समान तृप्ति नही देते थे। उनकी पत्नियों में अन्तः कलह रहती थी। दृष्टान्त के रूप में चित्रकेतु राजा के एक करोड़ पत्नियों में केवल एक ने पुत्र को पायी। बाकी पत्नियाँ मिलकर उस बच्चे को विष पिला कर मार डाले। इस प्रकार की कथा आती है। श्रीकृष्ण के बारे में ऐसा नही है। वे अपने सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों में प्रत्येक में दस दस पुत्र, और एक-एक पुत्री को जन्म दिये। सबको समान रूप से सन्तुष्ट रखे। इसके बारे में कुतूहल रखना, सन्देह आना, सहज है।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - भगवान श्रीकृष्ण अकेले अपनी हजारों पत्नियों को एक साथ तृप्ति देते थे। उसके बारे में कहता हूँ। यह सुनने वाले को बहुत आश्चर्य की बात होती है ।। ३ ।।

नरकासुर को मारने के बाद उसके बन्धन में रह रहे हजारों कन्याओं के साथ अकेले श्रीकृष्ण ने विवाह किया। इस बात को सुनकर कुतूहल से उनके वैवाहिक संसार को देखने की इच्छा से नारद जी श्रीकृष्ण के पास आये ।। ४ ।।

अकेला श्रीकृष्ण एक शरीर रखते हुये एक ही समय में एक साथ हजारों घरों में हजारों स्त्रियों के साथ कैसे रहते हैं। यह आश्चर्यकर है ।। ५ ।।

इसको देखने के लिये देवर्षि नारद जी उत्सुकता से द्वारका को आये। उस समय द्वारका के सारे वन-उपवन में फूल खिले थे। पक्षी गान गाते थे, मधुमक्खी गूँज रही थीं ।। ६ ।।

सरोवर में नील, चित्रवर्ण, सौंगन्धिका, सफेद, लाल नाम के पाँचों विध के कमल पुष्प खिले थे। हंस कारण्डव, नाम के पक्षी कूजन करते थे ।। ७ ।।

स्फटिक और चाँदी से निर्माण किया हुआ नौ लाख राजघरों में श्रीकृष्ण की रानियाँ रहती थीं।

उन घरों को महा मरकत से सीढ़ियाँ बनी थीं। वे सारे घर सोना, चाँदी रत्नों से अलंकृत थे ।। ८ ।।

अलग अलग वाहनों के संचार के लिये अलग अलग मार्ग थे, दुकान, घर, चौक, सभाभवन, सुन्दर मन्दिर नगर को बहुत शोभा देते थे। रास्ते पर पानी के छिड़काव से सूर्य के ताप को कम किया जाता है। ध्वज पताका नगर के सौन्दर्य को बढ़ाये हैं ।। ९ ।।

वहाँ ब्रह्मादि देवता से भी हाथ जोड़कर नमस्कार करने योग्य सम्पद भरित श्रीकृष्ण का अन्तःपुर था। उसको विश्वकर्मा ने अपने शिल्प कला की पूर्णता को प्रदर्शित करते हुये निर्माण किया था ।। १० ।।

ऐसे सोलह हजार राजमन्दिरों से द्वारका नगरी अलंकृत थी। नारद जी उनमें से प्रथम राजघर में प्रवेश किये ।। ११ ।।

उस घर में सितारों से स्तम्भ बनाये थे। वैदूर्य से जमीन और इन्द्र नीलमणि से दीवार और मरकत मणि से खिड़कियाँ बनी थीं ।। १२ ।।

विश्वकर्मा ने इन घरों को सुन्दर रूप से सजाया था। मोती की माला झूम रही थी। हाथी के दाँतों से आसन बनाये थे। उनको रत्नों से अलंकृत किया था ।। १३ ।।

वहाँ सुन्दर वस्त्र धारिणी, गले में माला पहने हुये, रत्न कुण्डल धारण किये हुये सेवक दासियाँ इधर उधर चलते थे ।। १४ ।।

रत्न दीपों की पंक्तियाँ, मन्दिर के अन्दर के अन्धःकार को दूर भगाये थे। सुगन्ध द्रव्य मन को आह्लादित करते थे। खिड़की से बाहर आने वाले सुगन्ध द्रव्य के धूप को मेघ समझ कर मयूर नृत्य करने लगते थे ।। १५ ।।

घर के अन्दर गुण रूप वय के अनुसार वेषभूषण धारण किये हुये दासियों के साथ श्रीकृष्ण की एक पत्नी सोने के हाथ वाले चामारों से श्रीकृष्ण को हवा करती थी। इसको नारद जी देखे ।। १६ ।।

श्रेष्ठ धर्म रक्षक भगवान श्रीकृष्ण ने नारद जी को देखकर सिंहासन से उठ कर मुनि के पाद द्वय को किरीट सहित शोभायमान अपने सिर को झुकाकर नमस्कार करते हुये अपने आसन पर ही उनको बिठाये ।। १७ ।।

इस जगत के महागुरु भगवान श्रीकृष्ण मुनि को पांवों को धोकर उस जल को अपने सिर के ऊपर धारण किये। वस्तुतः उनके चरणों को धोने वाला गंगा जल समस्त जगत के पापों को हटाकर पवित्र करती है। ऐसे भगवान लोक शिक्षण के लिये ब्राह्मण का पादप्रक्षालन करते हैं। इसी कारण उनका नाम ब्रह्मण्यदेव पड़ा है। वे ब्राह्मणों को अपने देव के समान मानते हैं ।। १८ ।।

भगवान नर ऋषि के मित्र होकर नारायण नाम के आदि ऋषि माने जाते हैं। सबके शरीरों के अन्दर रहने वाले भगवान श्रीकृष्ण ही हैं। इतना होते हुये भी देवऋषि नारद जी को विधिपूर्वक सत्कार करते हुये अमृत के समान बातों से उनको समाधान किये। भगवान कहते हैं कि हे ब्राह्मण देवता ! कहिये, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ।। १९ ।।

नारद जी कहते हैं, हे भगवान मेरे पिता ब्रह्मा जी भी आपकी स्तुति करते रहते हैं। इस जगत के स्वामी आप में इस प्रकार ब्राह्मण की आराधना करने की प्रवृत्ति जो है वह आश्चर्यकारक नही है। सज्जनों से प्यार करने वाले, दुर्जनों के नाश करने वाले अपने इस अवतार को आपने स्वयं अपनी इच्छा से स्वीकार किये हैं। यह कर्म के कारण नही है। आप इस लोकों को धारण करते हुये उनकी रक्षा करने के लिये और योग्य जीवों को मोक्ष देने के लिये हैं। हम इसको ठीक तरह से जानते हैं ।। २० ।।

मैंने आपके पादद्वय का दर्शन किया। यही लोगों को मोक्ष देने वाला है। अगाध ज्ञान वाले ब्रह्मादि देवों के हृदय में ध्यान करने योग्य है। संसारकूप में गिरे हुये लोगों को ऊपर उठाकर आने के लिये एक मात्र सहारा है। मैं सदा के लिये उनका ध्यान करते हुये संचार करते रहता हूँ। आप कृपा करें कि उसका ध्यान मेरे मन में सदा के लिये रहे ।। २१ ।।

नारद जी वहाँ से चलकर श्रीकृष्ण की दूसरी पत्नी के राजमन्दिर में चले गये। उनको भी योगेश्वर श्रीकृष्ण के योग माया को जानने की इच्छा थी ।। २२ ।।

वहाँ भी वे देखते हैं कि श्रीकृष्ण अपनी पत्नी के साथ उद्धव से मिलकर द्यूत खेल रहे हैं। वहाँ भी श्रीकृष्ण परम भक्ति से मुनि को देखकर आसनादि देकर सत्कार किये ।। २३ ।।

नारद जी को पहली बार देखने वाले जैसे श्रीकृष्ण उनसे पूछते हैं कि महामुनि ! आप कब आये। आप पूर्णकाम हैं। आप जैसे लोगों की सेवा हमारे जैसे लोग क्या कर सकते हैं ? ।। २४ ।।

तो भी मैं आपकी क्या सेवा करूँ बताइये ? आप मेरा जन्म सफल हो, इस प्रकार कृपा करें। श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर नारद मुनि आश्चर्यचकित होकर कुतूहल से जल्दी में श्रीकृष्ण के तीसरी रानी के घर को चले गये ।। २५ ।।

वहाँ भी नारद जी को श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त हुआ। वहाँ श्रीकृष्ण छोटे बच्चों के साथ खेल खेल रहे थे। उसको देखकर मन में गड़बड़ होने के बाद भी नारद जी और एक पत्नी के घर दौड़ते हुए चले। वहाँ देखते हैं कि श्रीकृष्ण एक हाथ में कपड़े लेकर स्नान के लिये जा रहे हैं ।। २६ ।।

और एक घर में नारद जी श्रीकृष्ण को यज्ञ करते हुये अग्नि के सामने बैठे हुये देखे। अन्य घरों में श्रीकृष्ण पंचयज्ञ कर रहे हैं, और एक घर में श्रीकृष्ण ब्राह्मणों को अन्न दान दे रहे हैं, और एक घर में ब्राह्मणों के उच्छिट का भोजन करा रहे हैं ।। २७ ।।

नारद जी अगले घर में देखे श्रीकृष्ण संध्या करते हुये मौन में गायत्री मंत्र का जप कर रहे हैं, और एक घर में शिष्यों को खड्ग और ढाल पकड़ कर युद्ध का शिक्षण दे रहे हैं ।। २८ ।।

दूसरे घर में श्रीकृष्ण अश्व, गज, रथ के युद्ध का शिक्षण दे रहे हैं, और एक घर में हंसतूलिका तल्प में सोए हुये हैं, वन्दीमगध स्तुति कर रहे हैं ।। २९ ।।

नारद जी और एक घर में प्रवेश करके देखे तो श्रीकृष्ण मंत्रियों के साथ मंत्रवचन कर रहे हैं, और एक स्थान में उत्तम स्त्रियों के साथ मिलकर जलक्रीड़ा कर रहे हैं ।। ३० ।।

पुनश्च एक घर में ब्राह्मणों को गोदान दे रहे हैं, दूसरे स्थान में और लोगों के साथ पुराण श्रवण कर रहे हैं ।। ३१ ।।

नारद जी भागते हुए औरएक घर में प्रवेश करने के बाद भी वह श्रीकृष्ण पत्नियों के साथ सल्लाप कर रहे हैं, और दूसरे स्थान में अर्थ, काम के सम्पादन में लगे हैं ।। ३२ ।।

नारद जी देखे अगले घर में पुराण पुरुष अपना ही ध्यान कर रहे हैं, अन्य घरों में बड़ों की सेवा करके उनको सन्तुष्ट कर रहे हैं ।। ३३ ।।

अनेकों घरों में युद्ध नीति, सन्धि, अन्य स्थानों में बलराम के साथ बैठकर लोक कल्याण के बारे में समालोचन कर रहे हैं ।। ३४ ।।

अपने पुत्रों का उपनयन करते हुये, पुत्रियों को वर जोड़ते हुये, बड़े पुत्रों की विवाह की व्यवस्था करते हुये भगवान श्रीकृष्ण गृहस्थी में पूर्ण रूप से लगे हैं, इसको देखकर नारद जी को बड़ा आश्चर्य हुआ ।। ३५ ।।

अन्य घरों में अपनी पुत्रियों को ससुराल भेज रहे हैं, बहुओं को घर बुला रहे हैं, योगेश्वर श्रीकृष्ण की इन लीलाओं को और चलने वाले समारोहों को देखकर नारद जी को बहुत आश्चर्य हुआ ।। ३६ ।।

देवोत्तम कई घरों में अन्य देवताओं के लिये यज्ञ कर रहे हैं, कई घरों में कुएँ, उद्यान, मन्दिर इत्यादि जनोपयोगी कार्य करवा रहे हैं ।। ३७ ।।

एक घर में से सिन्धु देश के बड़े घोड़े के ऊपर बैठ कर शिकार करने, और एक जगह पर यज्ञ के योग्य पशुओं को शिकार करके ला रहे हैं ।। ३८ ।।

कई घरों में अन्तःपुरों के सेवकों के साथ उनका अभिप्राय समझने के लिये गूढ़रूप से संचार कर रहे हैं ।। ३९ ।।

इस प्रकार श्रीकृष्ण को सोलह हजार राजघरों में प्रत्येक सोलह हजार रूप को धारण करते हुये सामान्य मानवों के समान पत्नी के साथ विहार करते हुये देखकर भगवान के योग माया से आश्चर्यचकित हुये नारद जी भगवान से कहते हैं ।। ४० ।।

नारद जी कहे - हे योगेश्वर स्वामी श्रीकृष्ण, हृदय में प्रकाश देने वाले आपके चरण कमलों की सेवा करने के बल से योगीलोग भी प्रयास करने के बाद भी देखने को न मिलने वाले वैभव को मैंने अपनी इन आँखों से देखा ।। ४१ ।।

हे देव ! मैं लोककल्याण करने वाले आपके इस गुणगान के अमृत को सज्जनों को पिलाने के लिये आपकी लोक पावन इस लीला के बारे में गान गाते हुये मैं संचार करता हूँ। मैं आनन्द से विभोर हो गया हूँ, मुझे आज्ञा दीजिये। मैं संचार के लिये जाता हूँ ।। ४२ ।।

श्री भगवान कहते हैं - हे मुनि जी, मैं धर्म का उपदेश करने वाला हूँ, धर्म का आचरण करने की प्रेरणा भी देने वाला हूँ। इसके लिये पहले मुझे पूर्णरूप से धर्माचरण करना पड़ता है।

इसी कारण मैंने इस जगत को गृहस्थ धर्म का शिक्षण देने के लिये इस प्रकार किया है। हे पुत्र, तुम इसके बारे में चिन्ता मत करों ।। ४३ ।।

सौभरी मुनि ने योग शक्ति से पचास शरीर धारण कर पचास पत्नियों के साथ संसार करते हुये अपने श्वसुर चक्रवर्ती मान्धाता को भी लज्जा देने वाले वैभव से विषय भोग किया। श्रीकृष्ण भी विषय लोभ से ऐसा कर रहे हैं क्या ? इस प्रकार विचार नारद के मन में न आये। इसके लिये भगवान नारद को कहते हैं, लोक शिक्षण के लिये यह गृहस्थ धर्म का आचरण है। किन्तु यह भोग वृत्ति नही है। इसके लिये नारद जी को पुत्र रूप से पुत्र कहकर संबोधन करते हैं। इसका अर्थ यही है कि तुम छोटे बच्चों के समान मुग्ध मत बनों। देव-देव को भी विषयाशक्ति होती है क्या ? भगवान को इसके लिये स्पष्ट करना पड़ा।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण हजारों रूपों को एक साथ ग्रहण करते हुये सारी पत्नियों के घर में एक ही काल में स्वयं उपदेश दे रहे गृहस्थ धर्म को आचरण में लाते हुये नारद जी को इसके बारे में दिखाये ।। ४४ ।।

अनन्त शक्ति वाले भगवान श्रीकृष्ण के योग माया वैभव को उनके अलग अलग घरों में अलग अलग रूप से कुतूहल भरित होकर देखने के बाद नारद जी विस्मित हो गये, दंग रहे गये ।। ४५।।

इस प्रकार अर्थ काम का व्यवहार करने वाले भगवान श्रीकृष्ण से पूर्ण रूप से सत्कार पाकर नारद जी उन्हीं का स्मरण करते हुये संचार में चले ।। ४६ ।।

यागादियों से धर्म शास्त्र का अनुसरण, संधि-विग्रहों से अर्थ शस्त्र का अनुकरण जल क्रीड़ादि से कामशस्त्र के प्रदर्शन को सोलह हजार पत्नियों को एक ही समय में समान रूप से तृप्त करने के तरीकों को भगवान श्रीकृष्ण नारद जी को दिखाये।

इस प्रकार श्रीहरि लोक कल्याण के लिये योग शक्ति को दिखाते हुये मनुष्यचर्या को अनुसरण करते हुये सोलह हजार स्त्रियों के लज्जा, प्रणय दृष्टि से सेवित होकर विहार किये ।। ४७।।

प्रंपच के उत्पत्ति, स्थिति और लय को एकैक कारणकर्ता श्रीहरि और कोई कर न सके ऐसे कार्य को कर के दिखाये। राजा जो लोग इस कथा को सुनते हैं, अनुमोदन करते हैं और पाठ करते हैं उनको मोक्ष देने वाली यह कथा भगवान में भक्ति दृढ़ होकर करती है।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में उन्यासिवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - अस्सीवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्रीकृष्ण की दिनचर्या

श्री शुकदेव जी कहते हैं - उषःकाल में मुर्गे की ध्वनि सुनकर श्रीकृष्ण की आँख खुलती थी। भले ही श्रीकृष्ण की पत्नियाँ उन मुर्गों को शाप देतीं थीं, लेकिन श्रीकृष्ण उनसे अलग होकर शैय्या को छोड़कर उठते थे। श्रीकृष्ण की पत्नियों का दुःख यही है कि श्रीकृष्ण के आलिंगन का सुख चला जाता है। इसके लिये वे विरहकातर होती थीं ।। १ ।।

मन्दार मालती आदियों से भौरें गुंजन करते थे। पक्षियासंकुल गीत गाने लगते थे। बन्दी मागध के समान वे श्रीकृष्ण की गाथा को गाते थे ।। २ ।।

प्रातःकाल का ब्राह्मी मुहूर्त सबको मंगलकर ही है। किन्तु प्रिय श्रीकृष्ण से अलग होकर रुक्मिणि को वह मंगल मुहूर्त अच्छा नही लगता था ।। ३ ।।

ऐसे ब्राह्मी मुहूर्त में श्रीकृष्ण उठकर कमल के समान मुख को धोकर निर्मल अन्तःकरण से प्रकृति विलक्षण अपने रूप का स्वयं ध्यान करते हैं ।। ४ ।।

श्रीकृष्ण सर्वोत्तम हैं। सूर्य, चन्द्र के ज्योति से विलक्षण ज्योति वाला उनका स्वरूप है। स्वतंत्र, अद्वितीय, स्वसामर्थ्य से सारे दोषों को दूर करने वाले भगवान ब्रह्म नाम से पुकारे जाते हैं। वे सृष्टि के कर्तृ होकर स्वरूपभूत लक्षण से ज्ञानानन्द स्वरूप वाले हैं।यही भगवान के ध्यान का विषय है ।। ५ ।।

बाद में **सर्वोत्तम** नाम वाले सर्वोत्तम श्रीकृष्ण निर्मल जल में विधि पूर्वक स्नान करते हुये दो कपड़ों को धारण करते हुये संध्या इत्यादि कार्य कलाप करते हैं। बाद में अग्निहोत्र करके अंत में मौन से गायत्री जप करते हैं ।। ६ ।।

सूर्योदय के समय में उपस्थान के रूप में आसन के ऊपर खड़े होकर अपने विशेष रूप सन्निधान पात्र देव ऋषि गणों को तर्पण देते हुये कुलवृद्ध और ब्राह्मणों की पूजा करते हैं ।। ७ ।।

एक बच्चे दिये हुये अच्छे दूध देने वाली श्रेष्ठ गायों के सींग को सोने से अलंकृत करते हुये पांवों को चाँदी के आभरण रखते हुये उत्तम पीताम्बर को पहनते हुये तेरह हजार चौरासी गायो को

बच्चों के साथ प्रतिदिन दान देते हैं। इसके साथ रेशम का वस्त्र, तिल और हिरण की छाल को भी दान में देते हैं ।। ८-९ ।।

श्लोक में **बद्धं बद्धं दिने दिने** ऐसी आता है। बद्ध का अर्थ तेरह हजार चौरासी। भगवान श्रीकृष्ण प्रतिदिन अपने सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों के घरों में प्रत्येक घर में एक बद्धं गाय दान देते थे। इसका अर्थ प्रतिदिन भगवान इक्कीस करोड़ सात लाख पचहत्तर हजार बहत्तर गोदान देते थे। यह भगवान की केवल अचिन्त्याध्द्भुत शक्ति है।

श्रीकृष्ण गो ब्राह्मण को नमस्कार करते थे, मन्दिर में प्रतिष्ठापित मूर्तियों को भी नमन करते थे। अपने अवतार काल में अपने से बड़े जो हैं उन सबको नमस्कार करते थे। अश्वत्थ इत्यादि वृक्षों को नमन करते थे ।। १० ।।

गुरु भूतानि भगवान श्रीकृष्ण अचल प्रतिमा रूप अश्वत्थादि वृक्षों को नमस्कार करते थे। उसके साथ-साथ ब्राह्मण, गाय, सूर्य आदि चल प्रतिमा को भी नमस्कार करते थे। ये सारे चल-अचल प्रतिमाएँ भगवान के अधिष्ठान हैं।

यह भूमण्डल के अलंकार रूप रहने वाले अपने को वस्त्राभरण और माला गन्ध इत्यादि तदनन्तर अलंकारों से अलंकृत करते थे ।। ११ ।।

घी में अपने मुख का दर्शन करते हुये वृषभ, ब्राह्मण, देवता प्रतिमाओं का दर्शन करने के बाद सारे वर्णों के लोगों को और अन्तःपुर में रहने वाले सेवकों को बहुमान देकर उनके सन्तोष में स्वयं सन्तोष पाते थे ।। १२ ।।

फूल माला, ताम्बूल, सुगन्ध द्रव्यादि वस्तुओं को ब्राह्मणों को, बन्धुओं को और रानियों को देकर स्वयं स्वीकार करते थे ।। १३ ।।

इतने में सारथी दारुक, सुग्रीव इत्यादि नाम वाले चार सुन्दर घोड़े से जुड़े हुये रथ को श्रीकृष्ण के सामने खड़ा करते हुये हाथ जोड़कर नमन करता है ।। १४ ।।

श्रीकृष्ण अपने हाथ से सारथि के हाथ को पकड़ कर उद्धव के साथ रथ के ऊपर सूर्य जैसे उदयाचल पर चढ़ते हैं वैसे रथ के ऊपर बैठते हैं। अन्तःपुर की स्त्रियाँ लज्जा युक्त प्रणयपूरित आंखों से देखते हुये कष्ट से विदाई करती हैं। श्रीकृष्ण हँसते-हँसते अपने मन को साथ लेते हुये राजघर से बाहर चलते हैं ।। १५-१६ ।।

श्रीकृष्ण सारे यादवों से मिलकर सुधर्मा नाम के सभा भवन में प्रवेश करते हैं। हे राजा ! इस भवन में बैठने वाले लोगों को भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा, मरण इत्यादि छः तरह के कष्ट नही होते। इनको शास्त्र में षड्रूर्मि कहते हैं ।। १७ ।।

श्रीकृष्ण वहाँ अपने शरीर की प्रभा से दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुये आसन में बैठे।

यादव वीर उनके चारों ओर घेर कर बैठते हैं। यदुश्रेष्ठ श्रीनिवास नक्षत्र से परिवृत चन्द्र के समान शोभायमान होते हैं ।। १८ ।।

हे राजा, नट, शिक्षक इत्यादि कलाकार लोग श्रीकृष्ण और मंत्रियों को अपनी कला से सन्तोष देते हैं। नर्तकी नृत्य करती हैं, वाद्य बजाने वाले वीणा, मृदंग, बंशी, ताल इत्यादि के साथ नर्तन करते हैं। सूत, मागध, बन्दी स्तुति करते हैं ।। १९-२० ।।

उस स्थान में रहने वाले मुनिगण वेद-पाठ करते हैं, पुण्य कीर्ति राजाओं की गाथा गाते हैं ।। २१ ।।

उस समय अभी तक न देखा हुआ एक नया आदमी वहाँ आता है। द्वारपालक भंगवान की आज्ञानुसार उसको अन्दर छोड़ते हैं ।। २२ ।।

वह परमेश्वर श्रीकृष्ण को नमन करते हुये जरासंध के बंधन में रहने वाले राजाओं के दुःख के बारे में निवेदन करता है ।। २३ ।।

जरासंध अपने दिग्विजय काल में अपने को शरणागत न होने वाले राजाओं को जबरदस्ती से पकड़ कर अपने जेल में रखा था। वे राजा बाईस हजार थे ।। २४ ।।

ये सारे राजा श्रीकृष्ण के सोलह हजार पत्नियों के भाई बन्धु थे।

दूत कहते हैं - भगवान ! उन राजाओं ने जो कहा है उसको आपके सामने निवेदन करता हूँ। हे भगवान ! आप अप्रमेय हैं, शरणागत रक्षक हैं। संसार भय से त्रस्त अल्पमति वाले हम लोग आपकी शरण में आये हैं ।। २५ ।।

हे भगवान ! इस लोक में जरासंध जैसे दुष्ट लोग निषिद्ध कर्म में लगे रहते हैं। आपके द्वारा उपदेश दिए हुए आपके मंगल रूप की आराधना को वे अपना कर्म न मानते हुये भूल जाते हैं। वे जीना चाहते रहते हैं लेकिन बीच में मृत्यु के वश में हो जाते है। आप काल के नियामक हैं। आपको हम नमस्कार करते हैं ।। २६ ।।

काल के रूप आपके अधीन में यह प्रकृति रहती है। आप सज्जनों की रक्षा के लिये दुर्जनों को शिक्षा देने के लिये अवतार लिये हैं। कई लोग इसको न समझते हुये आपके आदेशों को लांघ कर चलते हैं। प्रभु इससे वे पाप के भागी होते हैं। वे कैसे पुण्य पाते हैं हमारे समझ में नही आता ।। २७ ।।

जरासंध और उनके दुष्ट लोग पुरुषमेध नाम का एक यज्ञ करना चाहते थे। इस यज्ञ में मानव की बलि देना चाहते थे। इसके लिये जरासंध इतने राजाओं को लाकर बन्धक बनाकर रखा था।

राज्य सुख स्वप्न के समान क्षणिक और पराधीन है। सदाकाल भय से शव के समान होकर राज्य को चला रहे हैं। निष्काम कर्म से मिलने वाले आत्म स्वरूप आनन्द को छोड़कर आपके माया से बद्ध होकर विषय सुख के लोभ से कष्ट को भोग रहे हैं ।। २८ ।।

नमस्कार करने वाले लोगों के शोक को नाश करने वाले पाद आपके हैं। दस हजार हाथी के बल आप में है। सिंह जैसे बकरियों को अकेला ही मार डालता है, वैसे ही आपने जरासंध को युद्ध में अकेले सामना किया है। जरासंध से बन्धित हमको कर्म पाश से केवल आप ही उद्धार कर सकते हैं ।। २९ ।।

अट्ठारह बार सैन्य के साथ आकर जरासंध आपके साथ युद्ध करके हार गया है। आप दूसरों को दिखाने के लिये और विडम्बना करते हुये उसके सामने से भाग गये। इसके लिये अहंकारी जरासंध मानता है कि वह जीत गया है। इससे उसका अहंकार और बढ़ गया है। आपके भक्तों को वह कष्ट दे रहा है। आप कृपया उनका कष्ट निवारण करें ।। ३० ।।

इस प्रकार जरासंध के बन्धन में रहने वाले राजा लोग आपके दर्शन की आकांक्षा रखते हुये आपके पाँव में शरण आये हैं। उनका दुख दूर करते हुये उनको सुख देना आपके हाथ में है।। ३१ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - राजाओं से आये हुये दूतों के इस प्रकार बोलते समय लाल जटा रखने वाले महाकान्ति से युक्त देवर्षि नारद सूर्य के समान प्रकाश पसारते हुये वहाँ आये ।। ३२ ।।

वे अपनी मधुर वाणी से परम प्रिय श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान करते हुये सुनने वाले के पापों को दूर करते हुये सारे जगत को सन्तोष करते हुये वहाँ पधारे ।। ३३ ।।

समस्त जगत के स्वामी भगवान श्रीकृष्ण नारद जी को देखकर उठ कर खड़े हुये। अपने सेवकों के साथ सिर झुकाकर नमस्कार किये ।। ३४ ।।

दिए हुये आसन को स्वीकार करते हुये नारद मुनि वहाँ बैठे। श्रद्धा से उनका सत्कार करते हुये अपने प्रिय वचनों से श्रीकृष्ण उनको सन्तुष्ट किये ।। ३५ ।।

भगवान बोलते हैं - हे देवर्षि आप को तीनों लोकों में किसी का भय नही है न ? आप प्रंपच में पर्यटन करते रहते हैं, लोगों का योगक्षेम सुनते रहते हैं। आपको असाधारण कुछ नही है, इसमें संशय नही है ।। ३६ ।।

ब्रह्मा जी से सृष्ट इस जगत में आपके समझ में न आता हुआ विषय कुछ नही है। कहिये, पाण्डव आगे क्या करना चाहते हैं ।। ३७ ।।

नारद जी कहते हैं - हे प्रभु ! आप इस जगत का निर्माण करते हुये अपने स्वरूपभूत शक्ति से सारे जीवियों में अन्तर्यामी होकर सदाकाल रहते हैं। आपकी माया युक्त लीलाओं को मैंने बहुत बार देखा है। लकड़ी में रहने वाली आग के समान अन्यों को न दिखाई दे रही आग की शक्ति अत्यन्त अद्भुत है ।। ३८ ।।

अपनी इच्छा से इस प्रपंच को रचना, उसका संहार करना और उसकी रक्षा करने वाले आपके मन में क्या रहता है इसको कौन समझ सकता है। कर्म के अधीन अज्ञान से लोग आपको

इस सृष्टि का कर्ता इस रूप से देख नही पाते। आप स्वविलक्षण होते हुये स्वभाविकता सर्वविलक्षण स्वरूप वाले हैं, आपको मैं प्रणाम करता हूँ ।। ३९ ।।

इस संसार में जीवन चला रहे जीव को अनर्थकारी लिंग शरीर से मुक्ति नही मिलती, इसके लिये आप अपनी लीलावतार की कीर्ति को और ज्यादा बढ़ाइये। इसी के लिये मैं आपके शरण में आया हूँ ।। ४० ।।

आप पूर्ण काम हैं, आप सब कुछ जानते हैं, किन्तु नर लोक विडम्बना करते हुये न जानने वाले जैसे प्रश्न पूछते हैं। भक्त होते हुये आपकी आज्ञा को मानकर सब कुछ जानने वाले आपको मैं धर्म राजा के बारे में बताता हूँ ।। ४१ ।।

धर्मराजा ब्रह्म पदवी देने वाले राजसूय नाम के महायज्ञ को करना चाहते हैं। उस यज्ञ के मुखान्तर वे आपकी आराधना करना चाहते हैं। आप कृपा करके उनको आज्ञा दीजिये ।। ४२ ।।

ब्रह्म पदवी के लिये केवल वायु देव मात्र अर्ह होते हैं। उनकी राजसूय याग ब्रह्मपद दे सकता है। यहाँ वायु अंश वाले भीष्मसेन देव स्वयं यज्ञ में भाग लेने वाले हैं। इसके साथ धर्मराजा में वायु का अंश है।

भगवान उस यज्ञ में आपके दर्शन करने हेतु देवता और प्रख्यात राजा आने वाले हैं ।। ४३ ।।

प्रभु ! आप साक्षात् परब्रह्म स्वरूप हैं। आपकी लीलाओं का श्रवण, कीर्तन और ध्यान करने वाले पापी भी पवित्र हो जाते हैं। उस यज्ञ में आपका दर्शन, पाद स्पर्श करने वाले पवित्र होते हैं। इसको अलग से क्या बोलना है ।। ४४ ।।

हे निर्मल कीर्तिशाली स्वामी ! आपकी मंगल कीर्ति तीनों लोकों में प्रसिद्ध है, प्रसार हो चुका है। आपके पाद धूलि को धारण करते हुये आपके पाद के नख से उत्पन्न हुयी गंगा विश्व को पावन करती है ।। ४५ ।।

हे लोककल्याणकारी भगवान ! दसों दिशाओं में आपकी कीर्ति प्रसारित हो गई है। वह सारे विश्व को पवित्र कर रही है। स्वर्ग में मन्दाकिनी, पाताल में भोगवती और इस भूलोक में गंगा नाम से प्रसिद्ध आपका पाद जल विश्व को पवित्र कर रही है। यह एक वाक्य विजयध्वज टीका में ज्यादा है।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में अस्सीवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - इक्यासीवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - देवर्षि नारद जी की बातों को सुनकर सभ्य सज्जनों के अभिप्राय को दुहराते हुये उद्धव कहते हैं ।। १ ।।

हे भगवान ! नारद जी के कथनानुसार आपको यज्ञ करने के लिये धर्मराजा को सहायता देना है। उसके साथ आपकी रक्षा की कामना करने वाले राजाओं को जरासंध से संरक्षण देना चाहिये ।। २ ।।

प्रभु ! समस्त भूमण्डल में दिग्विजय करने वाला ही राजसूय यज्ञ करने के लिये समर्थ होता है। जरासंध के वध करने से यह दोनों उद्देश्य सफल होते हैं। यह मेरा अभिप्राय है ।। ३ ।।

हे गोविन्द, हम यादवों के लिये इससे बहुत प्रयोजन है। जरासंध के बन्धन से राजाओं को मुक्त करने से हमें कीर्ति मिलती है ।। ४ ।।

जरासंध जब तक जीवित रहता है तब तक यादवों के लिये कष्ट ही है। उसका वध करने से वह कष्ट निवारण होता है। उसके साथ पुरुषमेध में बलि होने वाले हमारे सम्बन्धि राजाओं की रक्षा भी होती है, कीर्ति भी आती है।

जरासंध बल में दस हजार हाथी के समान है। बलिष्ठों में बलिष्ठ भीम के बिना और कोई उसका सामना कर नही सकता ।। ५ ।।

उसका सैन्य बहुत बड़ा है, उसके साथ युद्ध करते रहे तो वर्षों तक युद्ध करना पड़ता है। इसके लिये आप ब्राह्मण वेष में जाकर उससे युद्ध भिक्षा माँगे तो ब्राह्मणों में निष्ठा रखने वाला वह उसको नकारता नही। इस प्रकार द्वंद्व युद्ध में उसको हरा सकते हैं ।। ६ ।।

इसी कारण भीमसेन ब्राह्मण वेष धारण करके उसके पास जाकर युद्ध भिक्षा माँगे। आपके सन्निधान में द्वंद्व युद्ध में भीमसेन उसको मार डालता है। इसमें संशय नही है ।। ७ ।।

यहाँ अक्रूर **तवसन्निधी** भगवान आपके अनुग्रह के कारण भीम जरासंध को मार डालते हैं। आपके अनुग्रह न होने के कारण जरासंध भीमसेन से मारा जाता है। इसमें संशय नही है। यहाँ **सन्दोहन** इस शब्द का प्रयोग है। जरासंध का देह पहले से एक नही है। दो भागों को जरा नाम की राक्षसी जोड़कर उसको जीवदान दी है। इसी कारण जरासंध का देह मारने योग्य है। उसका शरीर देव निर्मित नही है। यह भाव होता है।

काल नाम के आपको आख्या नाम का और एक रूप है। आप सर्वेश्वर हैं, इस प्रपंच की सृष्टि और प्रलय करने में ब्रह्मा और रूद्र निमित्त मात्र होते हैं। इस प्रकार यहाँ जरासंध के युद्ध में आपके सन्निधान में भीमसेन निमित्त बन जाता है ।। ८ ।।

यहाँ तक किये हुये अट्ठारह युद्धों में श्रीकृष्ण जरासंध को नही मारे हैं, इसका कारण भीमसेन से ही उसको मरवाना है। इस निमित्त से भीमसेन को यश, भक्ति, ज्ञान और आनन्द को ज्यादा देना है। भगवान जरासंध को नाश करने में अशक्त नही हैं। बलिष्ठ शत्रु को नाश करना उसके समान बलिष्ठ का सहयोग लेना राजनीति है। अपनी रक्षा करते हुये शत्रु को दूसरों से मरवाना योग्य नीति होती है।

आप ऐसा करें तो जरासंध का वध करने से राजाओं की मुक्ति और सम्बन्धियों की रक्षा और धर्मराज का यज्ञ सब एक साथ होते हैं। आपका गुणगान घर-घर में गाया जायेगा। आप तापस मन्वंतर में गजेन्द्र का मोक्ष किये, रामावतार में सीता देवी का विमोचन किये, अब श्रीकृष्णावतार में वसुदेव देवकी को बन्धन से मुक्त किये हैं। इसकी गाथा तो हम यादव गाते रहते हैं ।। ९ ।।

हे कृष्ण ! जरासंध को नाश करने से बहुत प्रयोजन होता है। शिशुपालादि राजाओं का मरण भी इसके साथ होगा। राजसूय याग से ये सारे आपके इष्ट कार्य पूर्ण होंगे ।। १० ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - हे राजा ! सारे लोग सभी दृष्टि से स्वीकार करें ऐसे उद्धव की बातों को सुनकर सकल यादव, बलराम, नारद जी के साथ श्रीकृष्ण भी स्तुति किये ।। ११ ।।

बाद में भगवान श्रीकृष्ण वसुदेव इत्यादि बड़े लोगों की आज्ञा पाकर दारुक, जैत्र इत्यादि सारथियों को रथ सिद्ध करने के लिये आज्ञा दिये ।। १२ ।।

यदुराजा उग्रसेन और बलराम से विदाई लेते हुये श्रीकृष्ण अपने पुत्र-पौत्र और रानियों के साथ उनको आवश्यक सामग्रियों को लेकर रथ में बैठकर इन्द्र प्रस्थ की ओर चले ।। १३ ।।

कई व्याख्यान्कार बलराम और अन्य यादव भी इन्द्रप्रस्थ गये, ऐसा व्याख्यान किये हैं।

उस समय मृदंग, भेरी, अनक, शंख, गोमुखों से आवाज जो निकला वह दसों दिशाओं में प्रतिध्वनित हुआ! रथ, गज, पदाति, अश्वारोही युक्त शत्रुओं को भय उत्पन्न करने वाले सैन्य के साथ श्रीकृष्ण द्वारका से प्रस्थान किये ।। १४ ।।

सदाकाल व्रतनिष्ठ रहने वाली अत्यन्त सुन्दरी श्रीकृष्ण की पत्नियों ने खड्ग और शस्त्रों से युक्त रक्षकों से घेरे हुये अपने पुत्रों के साथ पालकी में बैठकर श्रीकृष्ण के साथ प्रयाण किये ।। १५ ।।

सेवकजन और वेश्यास्त्रियों के साथ वस्त्र के घर कम्बल इत्यादि आवश्यक वस्तुओं को ऊँट, बैल, भैसा और गधे के ऊपर लादकरके हाथी के ऊपर बैठ कर श्रीकृष्ण के साथ चले ।। १६ ।।

हवा से प्रक्षुब्ध समुद्र के तरंग के समान, दिन के समय आकाश जैसे सूर्य किरणों से प्रकाशित होता है वैसे यादवों का यह महासैन्य ध्वज, पताका,धत्र, चामर, आयुध, आभूषण, किरीट और कवचों को धारण कर आगे बढ़ा ।। १७ ।।

श्रीकृष्ण के दर्शन मात्र से नारद मुनि के आँख कान उल्लसित हो चुके थे। श्रीकृष्ण उनका सत्कार किये हैं, इससे प्रसन्न मन वाले नारद श्रीकृष्ण की पूजा करने के बाद उनको दण्डवत् प्रणाम करते हुये हृदय में उनकी मूर्ति को धारण करते हुये आकाश मार्ग से चले गये ।। १८ ।।

श्रीकृष्ण राजाओं से आये हुये दूतों को सन्तोष करने के बाद बोलते हैं, आप लोगों को डरने की कोई जरूरत नही। मैं जरासंध को मरवा दूंगा। आप लोगों का कल्याण होगा ।। १९ ।।

श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर दूत उन राजाओं के पास वापस जाकर सारे विषयों को यथावत् कहे। बन्धन से छुटकारा पाने की इच्छा रखने वाले राजाओं ने श्रीकृष्ण का दर्शन करने की इच्छा करते हुये उसी समय का निरीक्षण करने लगे ।। २० ।।

यहाँ श्रीकृष्ण नदी, पर्वत, पुर, ग्राम, व्रज, आकारों को पार करते हुये आनर्त, सौवीर, मारुत, देशों को पार कर कुरुक्षेत्र से आगे चले ।। २१ ।।

दृषद्वती, सरस्वती नदियों को पार कर पांचाल और मत्स्य देशों को पार करते हुये इन्द्रप्रस्थ को पहुँचे ।। २२ ।।

मानवों को देखने को न मिलने वाले श्रीकृष्ण आये हैं, यह सुनकर धर्मराजा सन्तोष-विभोर होकर पुरोहित और बन्धुजनों के साथ मिलकर नगर से बाहर स्वागत करने आये ।। २३ ।।

इन्द्रियाँ जैसे मुख्य प्राण को स्वागत करती हैं वैसे ही युधिष्ठिर मंगलवाद्य,वेदघोष, वाद्य- घोषों के साथ श्रीकृष्ण का स्वागत किये ।। २४ ।।

बहुत दिनों के बाद दर्शन दिये हुये अपने परम प्रिय श्रीकृष्ण को देखकर धर्मराजा का हृदय और आँख दोनो भीग गये। बार बार उनसे आलिंगन किये ।। २५ ।।

रमा के आवास, श्रीवत्स लांछन से शोभायमान श्रीकृष्ण के शरीर को अपने दोनों बाहुओं से आलिंगन करते हुये अपने शरीर में रहने वाले सारे पापों का धर्मराजा ने परिमार्जन किया। आँखों से आनन्द भाष्प बह रहे थे। रोमांचित होकर परमानन्द से इस बाह्य प्रपंच के व्यवहार को भूल कर धर्मराजा खड़े हो गये ।। २६ ।।

बाद में भीमसेन ने आकर बहनोई को आलिंगन किया। दोनों की आँखों में आनन्द वाष्प भर गये। नकुल, सहदेव भी आकर भगवान का अलिंगन किये ।। २७ ।।

बाद में अर्जुन आकर श्रीकृष्ण का आलिंगन करते हुये नमस्कार किये। नकुल सहदेव भी दण्डवत् नमस्कार किये। बाद में श्रीकृष्ण ब्राह्मणों को और कुरुवंश के बड़े लोगों को उनकी योग्यतानुसार नमस्कार किये ।। २८ ।।

सत्कार योग्य कुरु, सृंजय, केकय इत्यादि राजाओं का श्रीकृष्ण ने सत्कार किया। सूत वन्दी मागध और ब्राह्मण स्तुति किये। विदूषक इत्यादि लोग मृदंग, शंख, पटह, वीणा, प्रणव, गोमुख इत्यादि वाद्यों को बजाते गाते हुये नृत्य किये ।। २९-३० ।।

पुण्य श्लोक शिखामणि भगवान श्रीकृष्ण के चारों ओर बन्धु मित्र घेर कर स्तुति करते हुये

सब मिलकर इन्द्रप्रस्थ नगर में प्रवेश किये ।। ३१ ।।

नगर के रास्ते मदभरित हाथियों के सुगन्ध भरित मद जल से भीगे थे। सुन्दर ध्वज सोने के तोरण और पूर्ण कलशों से पूरी नगरी शोभायमान थी। रेशम के वस्त्रालंकार, फूल माला गन्धों से इन्द्रप्रस्थ के युवक युवतियाँ श्रृंगार करके इधर उधर चलते थे ।। ३२ ।।

पूरे शहर में जहाँ देखे वहाँ दीप जलाये गये थे। हर एक घर के अन्दर से धूप की सुगन्ध बाहर आती थी। सुन्दर ध्वज फहराते थे। घर-घर में चाँदी का शिखर उनके ऊपर सोने का कलश विराजमान थे। उनको देखते हुये श्रीकृष्ण आगे बढ़े ।। ३३ ।।

इन्द्रप्रस्थ के नर-नारी श्रीकृष्ण को अपनी आँखों से पीना चाहते थे। वे श्रीकृष्ण इस रास्ते में चल रहे हैं ।यह सुनकर नगर की युवतियों ने घर का कामकाज पति-पुत्रों के ऊपर छोड़कर अपने कपड़े का भी ख्याल न रखते हुये दौड़ दौड़ कर उन्हे देखने आये ।। ३४ ।।

राज मार्ग हाथी, घोड़ा और पदातियों से भर गया था। नगर की स्त्रियाँ घर की छतों पर खड़ी होकर पत्नी समेत आने वाले श्रीकृष्ण को देखकर उनके ऊपर पुष्प वृष्टि की। मन से उनसे आलिंगन की। हंसनमुख होकर श्रीकृष्ण के स्वागत किये ।। ३५ ।।

रास्ते में नक्षत्रों के साथ चल रहे चन्द्र के समान दिख रहे श्रीकृष्ण और उनकी पत्नियों को देखकर वे आपस में कहती हैं। ये देखो ! श्रीकृष्ण अपनी सुन्दर तिरछी नजर से अपनी पत्नियों को देखते हुये उनको बहुत आनन्द दे रहे हैं। इसको पाने के लिये उनकी पत्नियों ने क्या पुण्य किये होंगे ।। ३६ ।।

पाप रहित उस नगर के गण्यमान्य व्यक्तियों ने बीच बीच में मंगल द्रव्यों को लेकर श्रीकृष्ण का सत्कार किये ।। ३७ ।।

इस प्रकार श्रीकृष्ण आगे बढ़कर धर्मराजा के राजगृह में प्रवेश किये। उस समय अन्तःपुर की स्त्रियों ने संभ्रम से बिखरे हुये अपनी आँखों से आरती किये ।। ३८ ।।

अपने भाई के पुत्र तीनों लोकों के स्वामी श्रीकृष्ण को देखकर कुन्ती अपने सिंहासन से उठकर बहुओं को साथ लेकर श्रीकृष्ण के पास आकर प्यार भरे हृदय से उनका आलिंगन किया ।। ३९ ।।

धर्मराजा देव-देव भगवान गोविन्द के हाथों को पकड़ कर अपने राजघर के अन्दर ले आये। सन्तोष में भाव विभोर होकर आगे क्या करना यह न समझते हुये खड़े हो गये ।। ४० ।।

अपनी बुआ कुन्ती, बड़े लोगों की पत्नियों को श्रीकृष्ण अभिवादन करते हैं। द्रौपदी और सुभ्रदा श्रीकृष्ण का स्वागत करती हैं ।। ४१ ।।

कुन्ती के आदेशानुसार द्रौपदी ने अत्यन्त कान्तिवाली रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जांबवती, कालिंदी, मित्रवृन्दा, लक्षणा, नीला इत्यादि वहाँ आयी हुयी श्रीकृष्ण की पत्नियों को फूल माला वस्त्र इत्यादि देकर सत्कार किया। धर्मराजा ने श्रीकृष्ण एवं उनकी पत्नी, उनके अनुचर, मंत्री, और सैनिकों को अनेक तरह के सुख साधन देकर सन्तोष से रखे ।। ४२-४३-४४ ।।

अर्जुन से मिलकर श्रीकृष्ण खाण्डव वन की अग्नि को आहुति देकर तृप्त किये। तब अग्नि

से मय को पार किये। इससे कृतज्ञ होकर मय ने धर्मराजा को एक सुन्दर सभाभवन को निर्माण करके अर्पण किया ।। ४५ ।।

श्रीकृष्णार्जुन एक बार सत्यभामा और सुभद्रा के साथ विहार करते हुये खाण्डव वन में संचार कर रहे थे। उस समय अग्नि ब्राह्मण रूप में आकर अर्जुन से खाण्डव वन को आहार रूप में दान देने के लिये याचना की। श्वेतकि नाम के राजा दुर्वासा ऋषि के पौरोहित्य में बारह वर्ष दीर्घ समय तक आज्यहोम किया। वह घी खाकर मुझे अजीर्ण हो गया है। इसके लिये खाण्डव वन को खाने के लिये ब्रह्मा जी का आदेश मिला है। यह वस्तुत: अग्नि को अजीर्ण होने के लिये देवता लोगों ने उसको शाप दिये थे। अग्नि को यज्ञ की आहुतियों को लेकर देवताओं को देने का काम करना था। इसके बदले में उसने प्रयाज और अनुयाज हवन की आहुतियों को देने के लिये आग्रह किया। देवताओं ने उसको आहुति देते हुये अजीर्ण रोग होने का शाप दिया। उस शाप के परिहार के लिये खाण्डव वन का भक्षण करना पड़ा।

खाण्डव वन इन्द्र की रक्षा में था। इन्द्र वहाँ तक्षक को रखे थे। इसी कारण अग्नि ने ब्राह्मण रूप में आकर अर्जुन की सहायता की याचना किया था। इन्द्र अर्जुन अलग अलग नही हैं। किन्तु अर्जुन को अन्न दान का फल मिलने के लिये इन्द्र और लोगों को दिखाने के लिये अपने प्रतिरूप अर्जुन के साथ विरोध किया। श्रीकृष्ण के अनुग्रह से जय अर्जुन को मिली। अग्नि बदरीनारायण से सुदर्शन चक्र को वरुण से गाण्डीव धनुष और सफेद घोड़े वाले कपि ध्वज युक्त रथ को देता है। अर्जुन ने खाण्डव वन के चारों ओर बारह योजन पर्यन्त बाणों से एक किला का निर्माण करते हुये अग्नि को खाण्डव वन को खाने के लिये अवकाश कर दिया। इन्द्र मूसला धारा वर्षा करते हुये अर्जुन के प्रयत्न को नष्ट करना चाहे। किन्तु अर्जुन और श्रीकृष्ण बाणों से वायव्यास्त्र से मेघों को दूर हटा दिये। मय नाम का राक्षस वहाँ से अर्जुन की कृपा से बाहर आता है। इस उपकार के बदले में वह एक सुन्दर और विचित्र मन्दिर को बना कर धर्मराजा को देता है। आगे राजसूय याग के बाद दुर्योधन इसी सभागार में हास्य और अपमान को पाकर पाण्डवों के साथ जन्म भर द्वेष करता है। इस प्रकार कृष्णार्जुन मिलकर खाण्डव वन जला करके अग्नि को तृप्त करते है।

खाण्डव वन से मय छुटकारा पाना चाहता था, इसी कारण वह अर्जुन के शरण में आया। इस उपकार के प्रतिरूप वह मय एक सुन्दर सभागृह को इन्द्रप्रस्थ में निर्माण करता है। वह सौ से भी अधिक मायाओं से भरा था। इसी कारण दुर्योधन को जहाँ पानी नहीं है वहाँ पानी लगा और जहाँ पानी है वहाँ भूमि लगी। इस तरह की सभा को और कोई रचना नही कर सकता, अनुसरण नही कर सकता।

इस प्रकार धर्मराजा को सन्तोष करने के लिये श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ में कई महीनों तक रहे। वहाँ वे अर्जुन के साथ रथ विहार करते रहे ।। ४६ ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंन्ध में इक्सीवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

दशम स्कन्धः

अध्याय - बयासिवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - एक बार राजसभा में मुनिगण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, आचार्य, कुलवृद्ध और देह सम्बन्धि बन्धु लोग के बीच में बैठकर धर्मराजा और लोग भी सुने इतने उच्च स्वर में श्रीकृष्ण को बताते हैं ।। १-२ ।।

युधिष्ठिर कहते हैं - हे गोविन्द ! मैं राजसूय याग करना चाहता हूँ, उससे आपके विभूति रूप, सन्निधान विशेष पात्र लोकपावन, इन्द्रादि देवताओं की आराधना करूँगा। प्रभु ! आप स्वयं खड़े होकर इस काम को मेरे हाथ से करवाना है ।। ३ ।।

आपके पादों की सेवा करने से सारे अमंगल नाश होते हैं। आपका ध्यान करने वाले स्तोत्र करने वाले अच्छे ज्ञान को पाते हैं, संसार भय से मुक्ति पाते हैं। हे पद्मनाभ ! आपके पादुका मात्र का सेवा करने वाले जो भी ऐहिक सुख चाहते हैं उसको पाते हैं। आपके पादुका का सेवा नही करने वाले लोग ऐहिक और पारत्रिक दोनों सुखों से वंचित होते हैं ।। ४ ।।

हे देव-देव ! आपके पाद कमल की सेवा के महिमा को सारा जगत इस याग में अपनी आँखों से देखे। अपनी लीला को आप, अपने भक्त और अपने द्वेषी इन सबको कुरु, सृंजय, मोक्ष योग्य सबको दिखाइये ।। ५ ।।

पाण्डव कुरु वंश के हैं। द्रौपदी सृंजय वंश की है। ये दोनो वंश वाले इस याग में श्रीकृष्ण की कृपा पाकर धन्य होते हैं। श्रीकृष्ण की सेवा न करने वाले शिशुपाल आदि राजा नाश को प्राप्त होते है। धर्मराजा इन दोनों तरह के लोगों को इस यज्ञ में अपने योग्य फल पाने का विचार व्यक्त करते हैं।

हे कृष्ण ! आप सबके स्वामी हैं। उनकी योग्यतानुसार सबको समान दृष्टि से देखते हैं। स्वरुपानन्द का सदाकाल अनुभव करने वाले गुण पूर्ण आप हैं। आप अपने और पराये ऐसे लोगों को भिन्न भिन्न नही मानते। आपके अनुग्रह से कल्प वृक्ष के समान सारे लोग सुख ही पाते हैं। इसमें कोई व्यत्यास नही होता ।। ६ ।।

श्री भगवान कहते हैं - हे शत्रुनाशक धर्मराजा, तुम्हारा संकल्प ठीक है, इस यज्ञ से तुम्हारी कीर्ति सारे लोकों में प्रकाशित होने वाली है ।। ७ ।।

हे राजा, ऋषि, पितृ, देवतागण और सारे बन्धुओं को तुम्हारा यह महायज्ञ इष्ट ही है ।। ८ ।।

सारे राजाओं को जीत कर इस जगत को अपने वश में लेते हुये सारी सिद्धता को करते हुये इस महायज्ञ को चलाओ ।। ९ ।।

हे राजा, आपके ये भाई लोकपालकों के अंश से जन्म लिये हैं। अनुग्रह न पाए हुए जीव के वश में न रहने वाला मैं तुम्हारे वश में सदाकाल रहता हूँ ।। १० ।।

चतुर्थ और पंचम मन्वन्तरों में अश्विनी देवता इन्द्रपद में थे। यमधर्म, वायु और इन्द्र तो लोकपालक हैं ही। इस प्रकार पाँचों लोकपालकों के अंश वाले हैं।

मेरे भक्त को तेज, यश, श्री, कीर्ति, विभूति अथवा ऐश्वर्य से इस लोकों में पराभव करने वाला कोई नही है। ऐसे रहे तो इन राजाओं की क्या बात है ? ।। ११ ।।

ब्रह्म पद को योग्य लोग राजसूय याग करें तो ब्रह्मपद मिलता है। किन्तु ब्रह्मपद को योग्य नही रहे तो भी मोक्ष योग्य जीवी राजसूय याग किये तो स्वर्गादि में उनकी विशेषता मिलती है और मोक्ष में उनको उन्नाह होता है। किन्तु पापी लोग राजसूय याग किये तो हंस डिंभक के समान उन्हे महादुःख होता है। हरिश्चन्द्र इत्यादि राजा राजसूय करते इन्द्रसभा में विशेष आसन पर बैठते थे।

श्री शुकदेव जी कहते हैं - भगवान की इन बातों को सुनकर धर्मराजा का मुख फूल के समान खिल गया। भगवान के आदेशानुसार अपने बलिष्ठ भाइयों को दिग्विजय करने के लिए उन्हे अलग-अलग स्थानों पर भेज देते हैं ।। १२ ।।

जरासंध के वध होने के बाद ये चारों भाई दिग्विजय के लिये जाते हैं। पुराण में काल में व्यत्यास करके बोलने की प्रथा है।

हे राजा ! भगवान की बातों के अनुसार धर्मराजा सहदेव को द्रौपदेयों के साथ दक्षिण दिशा में, नकुल को मत्स्यों के साथ पश्चिम दिशा में, अर्जुन को केकयों के साथ उत्तर दिशा में, भीम को मद्रराजाओं के साथ पूर्व दिशा में दिग्विजय करने भेजते हैं ।। १३ ।।

हे राजा ! वे चारों भाई वीर राजाओं को जीतकर उनकी अपार सम्पदाओं को यज्ञ के कार्य में विनियोग हेतु ले आकर धर्मराजा को समर्पित करते हैं ।। १४ ।।

इस प्रकार सहदेव दस योजन विस्तार, नकुल तीस योजन विस्तार, भीम सौ योजन विस्तार और अर्जुन चार सौ योजन विस्तार रत्न राशि को लाकर धर्मराजा को समर्पित करते हैं।

दक्षिण दिशा में रुक्मि ने सहदेव के साथ युद्ध नही किया। श्रीकृष्ण का विरोध करने से अपने को मिला हुआ धनुष वापस चला जाता है। शिव की इन बातों के अनुसार धनुष को रखने के लिये उसने सहदेव को नजराना दिया। सहदेव ने लंका के ऊपर आक्रमण करने घटोत्कच को

भेजा। वहाँ विभीषण ने सहदेव को नजराना देकर उनके साथ युद्ध नही किया। नकुल ने पश्चिम दिशा में सारे राजाओं को जीत लिया। राजा शल्य ने नकुल का मामा होने के कारण प्यार से नजराना समर्पित किया।

अर्जुन ने उत्तर दिशा में त्रिगर्त और वन्य राजाओं को जीत कर प्राग्ज्योतिष में भगदत्त को जीत कर सातों पताल लोकों से नजराना पाया। वामन के आदेशानुसार बलि चक्रवर्ती ने युद्ध के बिना नजराना दिया।

भीम ने पूर्व दिशा में कीचक, एकलव्य, पौंड्रक और कर्ण को जीता। हिमालय में शेर सिंह के रूप में आये हुये इन्द्र गरुड़ को जीत कर समुद्र को तैरते हुये पार कर बाण नगर में जाकर वहाँ हाथी के रूप में आये हुये सिंह को जीत उनको सन्तोष दिलाया। सिंह के बाण से बहुत नजराना इकट्ठा करके सबको लेकर धर्मराजा के सामने रखा। वहाँ विराजे हुये वेदव्यास और कृष्ण को नमस्कार किया। तब श्रीकृष्ण कहे - इसके पहले केवल चतुर्मुख ब्रह्मा जी सबको जीत कर नजराना लाये थे। अब उनको जीतने वाले तुम दूसरे हो।

धर्मराजा को श्रीकृष्ण ने बताया, ये लोग सारे जगत को जीत कर आये हैं। किन्तु जरासंध को जीतने के बिना यज्ञ नही हो सकता। वह जरासंध अभी तक किसी से नही हारा है। इसको सुनकर धर्मराजा चिन्तित हुये। तब श्रीकृष्ण धर्मराजा को एक उपाय बताते हैं, द्वारका में उद्धव ने उसी विचार को रखा था ।। १५ ।।

पहले धर्मराजा को लगता है कि ये तीनों जाकर जरासंध को जीत नही सकते। भीम और अर्जुन मेरी दोनों आँखों के समान हैं। इनको खोकर मैं अन्धा बन जाता हूँ। श्री भीमसेन के कहने से धर्मराजा उनको भेजने का मन करता है।

उसी प्रकार भीमार्जुन श्रीकृष्ण के साथ ब्राह्मण वेष धारण कर जरासंध के रहने वाले गिरि-व्रज को चले गये ।। १६ ।।

तेरहवाँ श्लोक में दिग्विजय करने भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को धर्मराजा ने भेजा, इस प्रकार बोलना था। बदले में सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीम को भेजे, इस प्रकार क्रमव्यत्यास करके बताये हैं। इसका अर्थ यह भी होता है कि जरासंध के हनन के बाद दिग्विजय को बोलना था। किन्तु वह भी क्रमव्यत्यास करके पहले दिग्विजय के बारे में बोल दिए हैं। इस वाक्य से वेदव्यास जी क्रमव्यत्यास को सूचित करते हैं, यह सत्यधर्म के व्याख्यान में मिलता है।

श्रीकृष्ण कहते हैं जरासंध अभी तक किसी से हार नही है। इसका अर्थ वह किसी के हाथ से मरा नही है यह होता है। कंस ने बलात्कार से उनकी पुत्रियों का अपहरण किया था। कर्ण

अंगराज्य को उससे छीन लिया था। रामकृष्ण से बार बार हारकर बेजार होकर जरासंध तप करने जंगल जा रहा था। किन्तु उनके शिष्यों ने प्रार्थना करके उनको वापस लाये थे।

गृहस्थ लोग सत्कार्य पाने के समय में, ब्राह्मणों को निष्ठा से जरासंध जब पूजा करता था उसी समय में भीम, अर्जुन और श्रीकृष्ण ब्राह्मण वेष से जाकर उससे दान माँगे ।। १७ ।।

हे राजा ! हम आपके यहाँ अतिथि बनकर दान माँगने आपके घर आये हैं। आपका भला हो, हम जो चाहते हैं, उसका दान दे दो ।। १८ ।।

सहनशील जो होते हैं, वे सबको सहन करते हैं, दुष्कर्मी लोग दुष्ट कर्म करते रहते हैं, उदार लोग जो चाहे वह दान देते हैं। श्रीहरि सबकी रक्षा करते हैं। इन सबको जानने वाला जो होता है उसका कोई शत्रु नही होता ।। १९ ।।

इसके पहले जब रामकृष्ण गोमान्तक पर्वत में जब अदृश्य हो गये थे उस समय जरासंध इन दोनों के नाश के लिये असंख्य वन सम्पद भरित पक्षी मृगसंकुल युक्त पहाड़ को जलाया था। बाइस हजार राजाओं को जेल में रखकर पुरुष मेधयज्ञ करने का विचार वाला है। इसी कारण श्रीकृष्ण बोलते हैं दुष्कर्मी दुष्ट कर्म करते रहते है।

स्वयं समर्थ होते हुये अपने अनित्य शरीर से सज्जन लोग स्तुति करें ऐसे शाश्वत कीर्ति को जो सम्पादन नही करता वह निन्दनीय है। उसकी अवस्था शोचनीय होता है ।। २० ।।

हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, उंछवृत्ति करने वाले मुद्गल, शिबि, बलिचक्रवर्ती, वह व्याध और कबूतर ये सारे अपने अनित्य शरीर से शाश्वत कीर्ति को पा लिये। राजा हरिश्चन्द्र पत्नी पुत्र, और स्वयं को भी बेच कर विश्वामित्र को धन दान देने से सत्यवादी हरिश्चन्द्र नाम से प्रसिद्ध हैं ।। २१ ।।

राजा रन्तिदेव अड़तालिस दिन अन्न और पानी न मिलने से त्रस्त था, अन्त में मिले हुये अन्न को और भूखे लोगों को दान दे कर सद्गति पाये। मुद्गल मुनि उंछवृत्ति से पाये हुये अन्न को अपने पुत्र-पत्नी के भूख से मरते समय अन्यों को दान देकर सद्गति पाये। शिबि चक्रवर्ती अपने शरण में आए हुए कबूतर की रक्षा करने के लिये गिद्ध को अपने शरीर से माँस दान करके जगत में दानवीर नाम की कीर्ति पाए। कबूतर घर में आया हुआ व्याध को अपने और अपनी पत्नी के शरीर के मांस को दान देकर स्वर्ग पाया। वहाँ व्याध भी कबूतर की दान निष्ठा को देखकर आग में अपनी प्राणाहुति देकर सद्गति पाया।

श्री शुकदेव जी कहते है - स्वर, आकृति और धनुष खींचने से बने हुये चिह्न वाले हाथों को देखकर जरासंध समझ लिया कि ये ब्राह्मण नही है। कोई दुष्ट क्षत्रिय हैं, मैंने इनको कहीं देखा है, ऐसे सोचने लगा ।। २२ ।।

ये निकृष्ट क्षत्रिय ब्राह्मण वेष धारण करके दान ले रहे हैं, इनको वे जो चाहते हैं, उसको मैं

दे दूँगा। ये क्या माँग सकते हैं, मैं अपने शरीर को भी दान देने के लिये तैयार हूँ ।। २३ ।।

पहले ब्राह्मण वेष में आये हुये वटु को विष्णु हैं, यह जानने के बाद भी, दैत्य गुरु शुक्राचार्य के मना करने के बाद भी दैत्य राजा बलि तीन पग भूमि को दान देने को सिद्ध हो गया। उसके पास रहने वाले इन्द्र के ऐश्वर्य को अपहरण करने को आये हुये ब्राह्मण वेष के श्रीविष्णु उसके ऐश्वर्य को छीन लिए थे। पर उसकी निर्मल कीर्ति आज भी सर्वत्र व्याप्त है ।। २४-२५ ।।

थोड़े ही समय के लिये मिले हुए इस शरीर को नष्ट होने के पहले ही इसे बड़ा कार्य करके कीर्तिशाली बनाना योग्य है। कीर्ति पाने के लिये ब्राह्मण जो चाहते हैं, उसको दान में देना चाहिये। यह न करने वाले निकृष्ट क्षत्रिय से क्या पुरुषार्थ साधन होता है ।। २६ ।।

इस प्रकार मन में आलोचना करते हुये जरासंध श्रीकृष्णार्जुन भीमसेन को कहता है, हे ब्राह्मण आपको जो चाहिये वह दान माँगे। मैं अपना सिर काट कर भी देने को सिद्ध हूँ ।। २७ ।।

श्रीकृष्ण कहते हैं - महाराज ! हमको युद्ध चाहिये, हम क्षत्रिय हैं, हम युद्ध को चाहते हुये आपके पास आये हैं। हम अन्न नही चाहते। हमारे साथ युद्ध करना है तो किसी एक के साथ द्वंद्व युद्ध करो ।। २८ ।।

यह कुन्ती पुत्र भीमसेन है, यह उनका भाई अर्जुन है। इन दोनों के मामा का पुत्र आपका शत्रु मैं श्रीकृष्ण हूँ ।। २९ ।।

श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर जरासंध जोर से हसा। क्रोध से द्वंद्व युद्ध देने को सिद्ध हो गया। वह स्वयं मूढ़ है ही ।। ३० ।।

जरासंध कहता है - श्रीकृष्ण ! तुम्हारे साथ मैं युद्ध नहीं कर सकता। युद्ध में तुम्हारा चित्त स्थैर्य नही रहता, तुम कायर हो। अपनी जन्मभूमि मथुरा को छोड़कर मेरे डर से समुद्र के बीच में रहते हो ।। ३१ ।।

यह अर्जुन छोटा लड़का है, महाबलशाली भी बड़ा नही है। वह मेरे साथ क्या युद्ध करता है ? भीम मुझसे छोटा है लेकिन मेरे समबल है, युद्ध करने के लिये योग्य है ।। ३२ ।।

जरासंध के साथ युद्ध करने आये हुये अर्जुन की उस समय पचपन वर्ष आयु थी। भीम की छप्पन वर्ष आयु और श्रीकृष्ण की पचपन वर्ष और छ: महीना हुये थे। लाक्षागृह में रहते समय अर्जुन को सत्ताईस वर्ष हुये थे। बाद में लाक्षागृह में वे छ: महीने रहे। तदनन्तर हिडम्बबन में छ: महीने, एक चक्र नगर में छ: महीने रहे। द्रौपदी के विवाह के समय में अर्जुन साढ़े अट्ठाइस वर्ष के हुये थे। बाद में एक वर्ष वे पाण्डव सारे पांचाल देश में रहे। हस्तिनावती से जब वे आये तब वे अर्जुन साढ़े उन्तीस वर्ष के थे। हस्तिनावती में पाँच वर्ष रहकर इन्द्रप्रस्थ को वे चले। इन्द्रप्रस्थ में वे बीस वर्ष रहे थे। राजसूय याग के समय में धर्मराजा को सत्तावन

वर्ष तथा भीमसेन की छप्पन वर्ष और श्रीकृष्ण साढ़े पचपन वर्ष एवं अर्जुन की पचपन वर्ष हुये थे।

श्रीकृष्ण के साथ बार बार हारने वाला जरासंध, श्रीकृष्ण के साथ युद्ध नही करना चाहा तथा गोपाल है, कहकर युद्ध टाला। यदि अर्जुन को चुना तो वह जीत सकता था, किन्तु अर्जुन को मारे तो भीम और श्रीकृष्ण दोनों मिलकर उसको मार सकते थे। इसके लिये अर्जुन को बालक बोलता है।

श्रीकृष्ण जरासंध से द्वंद्व युद्ध की माँग किये थे। किन्तु जरासंध भीमसेन को एक गदा देकर स्वयं भी एक गदा लेकर द्वंद्व युद्ध के बदले में गदा युद्ध करने लगा क्योंकि जरासंध ठीक तरह से जानता था कि द्वंद्व युद्ध में भीमसेन ही जीतता है। अन्त में वही हो गया।

भीम और जरासंध का युद्ध कार्तिक मास के प्रथम दिवस से प्रारम्भ होकर, कार्तिक कृष्ण पक्ष चतुर्दशी तक चला। श्रीकृष्णार्जुन युद्ध देखते रहे, जरासंध और भीम आहार और निद्रा के बिना युद्ध करते रहे। युद्ध में एक ही दिन में जरासंध को मारने की ताकत भीमसेन मे थी। किन्तु ब्रह्मादि पन्द्रह दिन तक निरन्तर युद्ध करने का वर उसको दिये थे। ब्रह्म वर को गौरव देते हुये भीमसेन युद्ध करते रहे।

इस प्रकार कहते हुये जरासंध भीम को एक गदा देकर तथा स्वयं एक गदा लेकर नगर के बाहर एक मैदान में इन तीनों को लेकर चला गया ।। ३३ ।।

भीमसेन से अर्जुन बल में कितना कम है। इसका अनुभव करने के लिये भगवान श्रीकृष्ण उसको भी साथ लाये थे।

मैदान में युद्धमद से मत्त, दोनों समान बल वाले वीर परस्पर सामना करते हुये वज्रायुध के समान गदाओं से परस्पर मारने लगे ।। ३४ ।।

रंगमंच के ऊपर दो नट युद्ध का अभिनय कर रहे हैं, ऐसे भीम और जरासंध दोनों दाहिने और बाँये तरफ चक्राकार में फिरते हुये परस्पर गदा से मारने लगे। वह युद्ध देखने वाले को बहुत आकर्षक लगता था ।। ३५ ।।

राजा ! दो हाथी परस्पर लड़ने लगें तो उनके दांतों से जैसे चिराग आता है वैंसे दोनो गदाओं से आकाश की बिजली की तरह आवाज और प्रकाश दोनो साथ में व्यक्त होता था ।। ३६ ।।

इन दोनों के अपने बाहुओं से परस्पर गदा से दूसरों के बाहुओं, कटि, पाँव, जंघा और गले के हड्डी के ऊपर मारने से आवाज आता था। उससे वे और क्रोधित होकर जोर से मारते थे। दो हाथियों के युद्ध करते समय बीच में मिलने वाले वृक्ष जैसे चकानचूर होते हैं, वैसे ही दोनों के गदा

भी चूर्ण हो गये। किन्तु उनके शरीर को कुछ नही हुआ ।। ३७ ।।

भीम ने जरासंध की जिस गदा से मारा वह गदा भीमसेन जी का नही था, जरासंध ने ही दिया था। इसके लिये जरासंध बच गया।

इस प्रकार दोनों की गदा नष्ट होने के बाद वे दोनों वीर और आक्रोश से लोहे के समान कठोर अपने हाथों से ही युद्ध करने लगे। उनके तलप्रहार से आकाश की बिजली की आवाज आने लगी ।। ३८ ।।

हे राजा ! युद्ध कौशल, बल, पराक्रम में दोनों समान लगते थे, किसी की शक्ति कम नही हो रही है। युद्ध का निर्णय हो नही पाया ।। ३९ ।।

भगवान श्रीकृष्ण हर एक जीव का जनन-मरण रहस्य को जानते हैं। जरा नाम की राक्षसी उसको जीव दान की थी, इसको श्रीकृष्ण पूर्ण रूप से जानते थे। भीमसेन में अपने तेज को भरते हुये उसको बल देते हुये भगवान चिन्तन करते हैं ।। ४० ।।

भीमसेन का तेज श्रीकृष्ण के अधीन होने के कारण वह श्रीकृष्ण का तेज ही है क्योंकि मुख्य प्राण की मूलरूप में अथवा अवतार में बल समान रहता है। वह कम नही होता, वह श्रीहरि के समान सदाकाल समान होता है। जब चाहे तब भीमसेन अपनी इच्छा से अपने बल को व्यक्त कर सकते हैं। भगवान इसी की प्रेरणा दिये हैं।

अमोघ और पूर्ण ज्ञान वाले भगवान श्रीकृष्ण ठीक तरह से विचार करते हुये एक वृक्ष की टहनियों को हाथ में पकड़कर उसको बीच से चीरकर शत्रु नाश करने का तरीका उसको दिखाते हैं ।। ४१ ।।

महाबलिष्ठ, योद्धाश्रेष्ठ, बलभीम इस संज्ञा को समझ कर जरासंध के दोनों पावों को पकड़कर उसको जमीन पर गिराये ।। ४२ ।।

पन्द्रह दिन का युद्ध पर्याप्त है अब उसको मार डालो। यह आज्ञा वासुदेव के संज्ञा से मिलने से भीम अपने देव बल को दिखाते हुये जरासंध को दो टुकड़े कर चीर डाले।

उसके एक पाँव के ऊपर अपना एक पाँव रखते हुये दूसरे पाँव को हाथ से उठाकर पृष्ठ से आरम्भ करते हुये सिर पर्यन्त हाथी वृक्ष को जैसे चीरकरके फेंकता है वैसे ही दो टुकड़े करके फेंक दिये ।। ४३ ।।

दोनों हिस्सा में जरासंध का एक पाँव, एक जंघा, एक पृष्ठ, एक स्तन, एक बाहू, एक आँख, एक भौं, एक कान इत्यादि अवयव अलग अलग हो गये ।। ४४ ।।

भारत के सभा पर्व में (२४-३३) भीम जरासंध का युद्ध कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा को प्रारम्भ होता है। चतुर्दशी के रात्रि को जरासंध की शक्ति कम होने लगती है। भीम अपने शक्ति को ज्यादा करते हुये अमावस्या के दिन उसको मारते हैं।

भीम मेरे सामने एक क्षण भी युद्ध नही कर सकेगा, बोलने वाले जरासंध के साथ

भीम पन्द्रह दिन-रात आहार और नींद न करते हुये युद्ध किये। यह अपनी ताकत को दिखाने के लिये है।

भीम को जरासंध के शरीर का मर्मस्थान नही मालूम था, श्रीकृष्ण के बोलने से मालूम हुआ ऐसा लगता है। किन्तु भारत के सभापर्व में (२५-१०) आता है कि भीम जरासंध के पीठ के ऊपर अपने जंघा को रखते हुये उसके कूल्हा को खण्डित किया, बाद में दोनों पाँवों को पकड़ कर शरीर को दो भाग में विभाजित किया। श्रीकृष्ण संज्ञा करके इसको नही बताये। किन्तु चीरने के लिये भीमसेन को आज्ञा दिये। उनकी आज्ञा के अनुसार भीमसेन जरासंध को चीर डाले।

मगध राजा जरासंध मर गया, प्रजाजन हाहाकार करने लगे। अर्जुन, श्रीकृष्ण भीम को आलिंगन करते हुये अभिनन्दन किये ।। ४५ ।।

सृष्टि कर्ता प्रभु, भगवान श्रीकृष्ण जरासंध के पुत्र सहदेव को मगध राज्य के सिंहासन के ऊपर बिठाकर राज्याभिषेक किये। जरासंध के बन्धन में रहने वाले हजारों राजाओं को बन्धन मुक्त किये ।। ४६ ।।

।। यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में दशम स्कंध में बयासीवाँ अध्याय समाप्त होता है ।।

श्रीकृष्ण द्वारा नरकासुर से बन्धित राजकुमारियों से विवाह

पता : मध्वमठ ६३, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद-२११ ००६
फोन नं० : ०५३२-२५०४५८७

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

उद्धव गीता

एकादश स्कन्धः भाषानुवादः

प्रथम भाग अध्याय 1 से 20 तक

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण
वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री विजयध्वज टीकानुसारी

श्रीमद्भागवत महापुराणम्

एकादश स्कन्धः
(भाषानुवादः)

(अध्याय 01 से 20 तक)

अनुवादक
श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

प्रकाशक
तत्व संशोधन संसत्
जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

श्रीमद्भागवत महापुराणम् एकादश स्कन्धः

लेखक-

श्री 1008 श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी

प्रकाशक

तत्व संशोधन संसत्

जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण 1000 प्रतियाँ

सहयोग राशि :

पुस्तकालय संस्करण	150/- रुपये
सामान्य संस्करण	100/- रुपये
दिनांक :	11-05-2014
स्थान :	पलिमारु, उडुपि, कर्नाटक
पता :	श्री मध्व मठ, 63/59 मीरागली, दारागंज, प्रयाग-211006 इलाहाबाद (यू0पी0)
दूर वाणी :	0532-2504587

अक्षर विन्यास

श्री सुनील कुमार (राजा)

मो. : 9451739636

मुद्रक -

श्री वैष्णव प्रेस

मोरी, दारागंज, इलाहाबाद

फोन नं0- 0532-2501463 मो0- 09415235637, 9451739636

श्री राम श्री

अनुग्रह संदेश

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी उडुपि

हमारे विशेष अभिमान पात्र **श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी** द्वारा किए हुए भागवत ग्रंथों का हिन्दी भाषानुवाद को देखकर हमें सन्तोष हुआ है। श्री स्वामी जी अपने पूर्वाश्रम में अनेक वर्षों से सामाजिक सेवा में रचनात्मक कार्यों को किये हैं। हमारे साथ अकाल, भूकम्प, बाढ़ इत्यादि कार्यों में सम्पूर्ण समर्पण भाव से काम किए हैं। अब अपने चौरासी वर्ष के समय में आठ शास्त्र ग्रन्थों का अनुवाद और प्रकाशन का स्तुत्य काम अपने हाथ में लिए हैं। मध्व तत्वज्ञान को अभ्यास करने के जिज्ञासुओं को अनुकूल होने वाली यह एक विशिष्ट सेवा किए हैं।

वे अपने सत्तर वर्ष की आयु में कन्नड़ भाषियों के अनुग्रह रूप में अनेक शास्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किए थे। अब प्रयाग में रहकर मध्व सिद्धान्त का प्रसार कार्य करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा मध्व तत्वज्ञान को हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचार करने का महान कार्य कर रहे हैं।

श्री कृष्ण, श्री वेद व्यास जी, अस्मदुपास्य श्री रामविट्ठल जी इनको विशेष अनुग्रह करते हुए इनकी सेवा विस्तार रूप से सारी जनता को मिले यही हमारा आशीर्वाद है।

इति नारायण स्मरण

श्री श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी महाराज
पेजावर मठ, उडुपि

अनुग्रह संदेश

श्री राम श्री

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महा संस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी महाराज, उडुपी

आठ सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरु मध्वाचार्य जी ने मध्व सिद्धान्त का प्रचार प्रसार बहुत बड़े पैमाने से आरम्भ किया। इस प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए उडुपी में आठ पीठ और उत्तर कर्नाटक में एक पीठ की स्थापना किए। श्री जयतीर्थ मुनि, श्री श्रीपादराज स्वामी, श्री व्यासराजमहामुनि, श्री वादिराजयोगी, श्री रघूत्तम स्वामी जी, श्री राघवेन्द्र तीर्थ जी इत्यादि महामहिमों ने उस सिद्धान्त को और विकसित किया।

हमारे दीक्षा शिक्षा गुरु युगपुरुष श्री श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी उत्तर भारत में श्री मध्व तत्वज्ञान को प्रसार करने हेतु **पच्चीस वर्ष** पहले श्री प्रयाग क्षेत्र में श्री मध्व पीठ की स्थापना की है। उन दिनों से प्रयाग का हमारा मठ मध्वसिद्धान्त का प्रसार करता आ रहा है।

श्री वेदव्यास जी की इस सुसंस्कृत भागवत को हमारे शिष्य **श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी** ने समर्थ सुन्दर और सबके मन को मिले ऐसी सुन्दर हिन्दी में अनुवाद कर साधक सज्जनों का परमोपकार किये हैं। कन्नड़, संस्कृत न समझने वाले हिन्दी भाषी साधकों को जगद्गुरु मध्वाचार्य जी के शास्त्र का परिचय कराने वाले इस कार्य को हम अपने हृदय भरकर अभिनन्दन करते हैं। अन्य सारे कार्यों को बगल में रखते हुए **तद्धितप - तद्धितप** के जैसे दिन-रात किया हुआ यह शास्त्र सेवा अनुपम है। हमारे **गुरु श्री श्री 1008 विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी** से स्थापित तत्व संशोधन संसत से मुद्रण किया गया है। यह हरि गुरु का अनुग्रह प्राप्त कराने वाला है। उत्तर भारत के हिन्दी भाषी लोग इस ग्रन्थ को पढ़ें और अपने बन्धु बान्धवों से पढ़ाएँ तो यह प्रयत्न सार्थक हो जाता है। भागवत का एकादश स्कन्ध समग्र भागवत में अत्यन्त क्लिष्ट भाग है। इसमें अनेक वेद-शास्त्रों के प्रमेयों की चर्चा उद्धव को निमित्त करते हुये भगवान स्वयं किये हैं। इसको हमारे शिष्य ने समर्थ रीति से अनुवाद किया है। इसी प्रकार इनसे भागवत के शेष भाग भी जल्दी से जल्दी अनुवादित होकर साधकों के हाथ में विराजमान हो, यही हमारी अपेक्षा है। श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य जी से प्रतिष्ठापित श्री कृष्ण, श्री राम जी के अनुग्रह से हम अपने शिष्य को शुभ कामना देते हैं।

श्री श्री 1008 श्री विद्याधीशतीर्थ

स्वामी जी महाराज

अनुग्रह संदेश

श्री दिग्विजय रामो विजयते

श्री मद्जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

उत्तरादि मठ

भगवान के गुणों का चिन्तन करना प्रत्येक आदमी का मुख्य कर्तव्य है। अनन्त गुणपरिपूर्ण भगवान की महिमा को जानने के लिए सबको भागवत के प्रकाश की आवश्यकता है। भागवत के पाठ प्रवचन श्रवण सारे बहुत पुण्य देने वाले हैं। ऐसे श्रेष्ठ महाभागवत पुराण को वैष्णव सिद्धान्त के अनुसार श्री श्री विद्यात्मतीर्थ जी ने हिन्दी में सब के मन मोहित करने वाले उत्कृष्ट व्याख्यान किए हैं। प्रयाग के त्रिवेणी तट पर रहते हुए अपनी स्वयं साधना करते हुए उत्तर भारत में वैष्णव सिद्धान्त का प्रचार प्रसार कार्य करते हुए अपने को समर्पित किए हैं। वे जो इस प्रयास में रत हैं उसको सहकार देते हुए श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी उन्हें बल दे रहे हैं यह संतोष का विषय है।

मध्व मत का प्रसार समग्र भारत में उज्वल रीति से होना चाहिए। उत्तर भारत के परिसर में यह प्रसार कार्य करने वाले **श्री श्री विद्याधीश तीर्थ** एवं **श्री श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी** का हम अभिनन्दन करते हैं।

इसी प्रकार श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी और अनेक कृति और व्याख्यान करते हुए तत्वप्रचार कार्य को इससे भी अधिक रूप से करें इस प्रकार हम अपने उपास्य मूर्ति श्री दिग्विजय राम और वेदव्यास जी से प्रार्थना करते हैं।

बैंगलूरु

श्री सत्यात्म तीर्थ स्वामिनः
उत्तरादि मठ

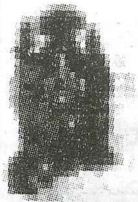

शुभ कामना

॥ श्री निम्बार्को जयति ॥

॥ श्रीमद् गोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अनन्त श्री जगद्गुरु निम्बार्काचार्य
गोस्वामी श्री विष्णुकान्त जी महाराज, पीठाधिपति

श्री निम्बार्काचार्य पीठ, 18/12, महाजनी टोला प्रयाग - 211 003 फोन : 2404298

श्री निम्बार्क प्रभास्थली व्यास ग-ी नैमिषारण्य (उ0 प्र0)

कर्नाटक के अन्तर्गत उडुपी माध्व पीठ प्रयाग के अधिपति श्री 1008 श्री स्वामी विद्यात्म तीर्थ जी महराज के लोक भाषा में अनुवादित भागवत के ग्रन्थ और अन्य भगवद्गीतादि ग्रन्थ देखने को मिले। तिरासी वर्ष की अवस्था में अदम्य स्फूर्ति, वैदुष्य एवं सार्थक जीवन के धनी महा पुरुष अभिनन्दनीय हैं। कई अवसर में हम लोग एक रहे हैं।

इस अवस्था में भी कई ग्रन्थों के लेखन, सामाजिक एवं पारमार्थिक कार्यों को एक युवक की भाँति करते हुए संलग्न हैं।

आपका जीवन अमृततत्व की ओर अग्रसित है आप सकल कुशल पात्र हैं।

आचार्य विष्णु कान्त गोस्वामी
तीर्थराज, प्रयाग

प्रस्तावना

हमारे गुरु जी पूर्व **प्रयाग पीठाधिपति श्री 1008 श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी** ने लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व भागवत के पहले तीन स्कन्धों का अनुवाद कर प्रकाशित किए थे। उनका महानिर्वाण आकस्मिक रीति से होने के कारण वह कार्य वहीं अवरुद्ध हो गया था।

हमारे दीक्षा गुरु उडुपि श्री पलिमारु मठ के **पीठाधिपति जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी महाराज** ने उस अवरुद्ध कार्य का पुनरारम्भ करने का आदेश दिया। मैं अल्प शक्ति और अल्प ज्ञान वाला हूँ। किन्तु अपने गुरुवर्य की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मैं यह कार्य कर रहा हूँ।

विद्यावतां भागवते परीक्षा यह पूर्णत: सत्य है। श्री गुरु जी का अनुग्रह ही मुझसे यह कार्य करवा रहा है। दक्षिण भारत में जन्म लेने के कारण मुझे अच्छी हिन्दी नही आती। पण्डित न होने के कारण शास्त्र का गहन और विस्तृत ज्ञान प्राप्त नही है। केवल गुरु का अनुग्रह ही मुझे प्रेरणा दे रहा है। पाठकों द्वारा निर्दिष्ट त्रुटियों को अगले अंक में सुधारने का प्रयास करेंगे।

एकादश स्कन्ध भागवत का मस्तिष्क है। वेद व्यास जी इसको ज्ञान रस से पूर्ण रूप से भिगो दिए हैं। वेद-उपनिषद और अन्य शास्त्रों का विस्तारित चर्चा श्री उद्धव और भगवान के सम्वाद रूप में यहाँ चर्चित किया गया है। संस्कृत के गाढ़ ज्ञान और वेद-उपनिषद आदि शास्त्रों के परिचय के बिना केवल भाषा ज्ञान से इसका अनुवाद हो नही सकता। इन सारे विषयों में अपने अज्ञान को मैं पहले से प्रकाशित करते आया हूँ। किन्तु गुरु जी के आग्रह से मैंने यह एक कार्य हाथ में उठा लिया है। कित्पर्यन्त इस कार्यं में सफल हुआ हूँ यह वाचक कह सकते हैं। किन्तु इस कार्य में कर्नाटक के सुप्रसिद्ध **पण्डित श्री हयवदन पुराणिक जी** बहुत प्रयास से जो सुललित भागवत लिखे हैं उसका प्रयोजन इस कार्य में मुझको बहुत हुआ। दूसरा एक भाग है। हमारे दीक्षा गुरु श्री 1008 श्री विद्याधीश जी महाराज इस स्कन्ध के शास्त्रार्थ को अनेक ग्रन्थों के सहायता से चर्चा करते हुये जिन लेखों को प्रकाशित किये हैं वे मुझे मार्गदर्शक बने इतना ही नहीं मेरे जैसे सामान्य पुरुष से असामान्य कार्य करवा दिये। श्री गुरु जी खासकर अवधूत गीता को विश्लेषण करते हुए जो लेख लिखे हैं वे अत्यन्त अपूर्व हैं। श्री गुरु जी के अनुग्रह को मैं किन शब्दों में, कैसे व्यक्त करूँ। मैं केवल उनका अनुवाद किया हूँ इसमें मेरा पाण्डित्य कुछ नहीं है।

विस्तृत रूप से जानकारी देने के उ-श्य से हमने क्रम में भी थोड़ा सा बदलाव किया है। पहले के समान श्लोकार्थ मोटा अक्षरों में दिया गया है, अर्थ थोड़ा सा छोटे अक्षरों में दिया गया है। इस भाग में विशेषार्थ के लिए और थोड़ा अवकाश किया है। प्रत्येक श्लोक का नही तो जहाँ आवश्यक है वहाँ विशेषार्थ, उससे भी छोटे अक्षरों में देने का प्रयास किया है। आशा है कि यह पाठकों को सुविधाजनक होगा।

महाप्रस्थान की पूर्व सन्ध्या में प्रभास क्षेत्र में एक वृक्ष के नीचे भगवान लेटे हैं, उद्धव दौड़कर वहाँ आते हैं, और निवेदन करते हैं- भगवान आप यहाँ निश्‍चिंत होकर सोये हैं, वहाँ गोमती समुद्र संगम तट पर आपके पुत्र-पौत्र आदि आपस में लड़ रहे हैं, मारते हैं, मरते हैं। आप कृपया थोड़ा उस स्थान तक चलें, केवल आपके दर्शन मात्र से वहाँ युद्ध समाप्त हो जाएगा, सारे यादव बच जायेंगे। तब श्री हरि हँसकर कहते हैं, उद्धव मेरे लिए कोई न अपना है और न पराया, मैं किसी से द्वेष नही करता, प्यार भी नही करता, मै केवल भक्तों के वश में रहता हूँ। भक्त मेरे प्रिय हैं।

हमारे परम गुरु **श्री विद्यामान्य जी** से संस्थापित और **हमारे गुरु जी श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महाराज** से पोषित श्री तत्व संशोधन संसत् ने इस ग्रन्थ प्रकाशन की जिम्मेदारी ले लिए हैं। तत्व संशोधन संसत् दक्षिण भारत में एक प्रसिद्ध संशोधन और प्रकाशन की बड़ी संस्था है। बहुत श्रेष्ठ विद्वान और पंडित संशोधकों के ग्रन्थ यहाँ से प्रकाशित हुए हैं। मेरे जैसे अल्प बुद्धि वाले की इस छोटी सी कृति को वे प्रकाशित कर रहे हैं, यह मेरा बड़ा भाग्य है। इसके लिए मैं अपने श्री गुरु जी को शत शत नमन करता हूँ।

इस दिन हमारे परम गुरु **श्री श्री 1008 श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी** का जन्मशतमानोत्सव मनाया जा रहा है। देश के समग्र पण्डितगण एकत्रित आ गये हैं। ऐसे सन्दर्भ में श्री विद्यामान्य गुरु जी के पुण्य स्मृति के साथ मेरे इस छोटे से ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है, यह भी मेरा विशेष भाग्य है। इसमें और भी एक भाग्य विशेष है कि हमारे दीक्षा गुरु स्वयं मुझे आशीर्वाद करते हुये अनुग्रह कर रहे हैं। **भूइष्टान्ते नमः उक्तिम् विधेम** इससे ज्यादा मैं क्या कह सकता हूँ ?

इस ग्रन्थ के लिए आवश्यक फोटो के लिए हमे बहुत प्रयास करना पड़ा। वैसे तो श्री कृष्ण के लाखों फोटों प्राप्त हैं, तो भी कथा में आए हुए संन्दर्भ को संगति देने वाला फोटो मिलने में कष्ट हुआ। इस समय हमें आवश्यक फोटो देकर श्री रामचन्द्र सिंह सहायता किए हैं। हम यहाँ उनकी प्रशंसा करते हैं।

इस ग्रन्थ के अक्षर विन्यास किए हुए श्री सुनील कुमार जी (राजा) और पवन कुमार अक्षर संशोधन किए हुए श्री गिरधारी लाल मिश्र और मुद्रण किए श्री वैष्णव प्रेस के श्री पुरुषोत्तम लाल जी और सारे कर्मचारियों के सहयोग का स्मरण हम करते हैं। सुधी सद्भक्त इस ग्रन्थ का सदुपयोग करें यही आकांक्षा है।

इति शम्

पलिमारु मठ, पलिमारु उडुपि,
कर्नाटक
11-05-2014

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज

एकादश स्कन्ध की विषय सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	पिण्डारकक्षेत्र में यदुकुमारों से ब्राह्मण अवहेलना यादवों को मुनि का शाप	1-3
2.	नारद से वासुदेव को उपदेश। जायन्तेय उपाख्यान	4-13
3.	जायन्तेय उपाख्यान। अंतरिक्ष महामुनि का उपदेश	14-24
4.	भगवान के अवतार लीला प्रशंसा। द्रुमिल मुनि का उपदेश	25-29
5.	श्री हरि भक्तों का निष्ठा प्रश्न। चमस मुनि का उपदेश	30-37
6.	ब्रह्मादियों से श्रीकृष्ण से स्वधामगमन प्रार्थना।	38-44
7.	उद्धव को भगवान का उपदेश। अवधूत गीता	45-69
8.	अवधूत के नौवाँ गुरु अजगर	70-89
9.	अवधूत के अट्ठारहवाँ गुरु गिद्ध पक्षी	90-102
10.	श्रीकृष्ण और उद्धव सम्वाद। मोक्ष साधन, वैराग्य निरूपण	103-109
11.	श्रीकृष्ण का उपदेश। जीव भेद समर्थन	110-118
12.	श्रीकृष्ण का उपदेश। भक्ति योग-वायु जीवोत्तमत्व प्रतिपादन	119-123

13.	श्रीकृष्ण का उपदेश। सत्व रजस्तमो गुण और उनका कार्य	124-131
14.	श्रीकृष्ण का उपदेश। वैराग्य की आवश्यकता, ध्यान प्रकरण	132-138
15.	सिद्धि प्राप्ति के बारे में उद्धव का प्रश्न। अष्ट सिद्धि का विवरण	139-145
16.	विभूति के बारे में उद्धव का प्रश्न। भगवान से विभूति रूप विवरण	146-151
17.	वर्णाश्रम के बारे में उद्धव का प्रश्न। ब्रह्मचर्य गृहस्थ के बारे में भगवान का उपदेश	152-158
18.	वानप्रस्थ और यति धर्म के बारे मे भगवान का निरूपण।	159-165
19.	श्रीकृष्ण का उपदेश। ज्ञान-विज्ञान, भक्तियोग का उपदेश	166-171
20.	विधि निषेध के बारे में उद्धव का प्रश्न। भगवान द्वारा कर्म ज्ञान भक्ति योग निरूपण।	172-176

श्री राम श्री

श्रीमध्वतत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

हमारे प्रकाशित ग्रन्थ

क्र.	ग्रन्थनाम	मूल्य
1.	श्रीमद्भगवद्गीता प्रतिश्लोक का हिन्दी भावानुवाद	70.00
2.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्कंधः भाषानुवादः	100.00
3.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् चतुर्थ स्कंधः भाषानुवादः	60.00
4.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् पंचम एवं षष्ठ स्कंधौ भाषानुवादः	60.00
5.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् सप्तम् स्कंधः भाषानुवादः	60.00
6.	श्रीमद्भागवत अष्टम् स्कन्धः भाषानुवादः	60.00
7.	श्रीमद्भागवत नवम्स्कंधः भाषानुवादः	60.00
8.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः पूर्वार्द्ध अध्याय एक से छब्बीस तक	100.00
9.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः पूर्वार्द्ध अध्याय सत्ताइस से उनसठ तक	100.00
10.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः उत्तरार्द्ध अध्याय साठ से बायसी तक	100.00
11.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः उत्तरार्द्ध अन्तिम भाग अध्याय तिरासी से एक सौ पाँच तक	100.00
12.	श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्धः प्रथम भाग अध्याय एक से बीस तक	100.00
13.	श्री रामायणपात्र चित्रणम् एवम् नीतिकथा	50.00
14.	श्री कृष्णामृतमहार्णव एवं सदाचारस्मृतिः	75.00

पुस्तक प्राप्ति स्थान

1. **श्री मध्वमठ**

   63 मीरागली, दारागंज इलाहाबाद

2. **तत्व संशोधन संसत् श्री हृषीकेशतीर्थ संस्थानम्,** श्री पलिमारुमठ, रथ बीदि उडुपि कर्नाटक

3. **श्री स्वामी सीता वल्लभ शरण**

   श्री मध्वमठ बड़ा अखाड़ा मैहर (म. प्र.)

4. **श्री स्वामी ललित मोहन ओझा**
   प्रेमपीठ मध्वमठ तिजारा, जिला अलवर, राजस्थान

5. **डॉ रवि,**

   1st फ्लोवर, नीयर लक्ष्मी भगवन, सेन्ट्रल

   बाजार रोड़, नागपुर,

6. श्री G. R. Kulakarni
   2041 B wing Mahesh Tower
   Charkop, Sector 2, Kambivali (W)
   Mumbai 67.
   Ph - 09867251783

भैष्मी करर्चित, श्री मध्व प्रतिष्ठित,
श्री विद्यामान्य श्री विद्याधीश समर्पित वज्र
किरीट कुंडल कवचधारी उडुपी श्रीकृष्ण

विज्ञानोदर्कतर्क प्रतिपद मधुरोदार संदर्भ गर्भः प्रौढानेक प्रबन्ध प्रकटित भगवत्पाद भाष्यादि भावः
मिथ्यावादापवाद प्रकुपित विमतध्वान्त सन्तान भानुः जीयादन्यैरजेयः त्रिभुवन विदिताश्चर्य चर्यो जयार्यः

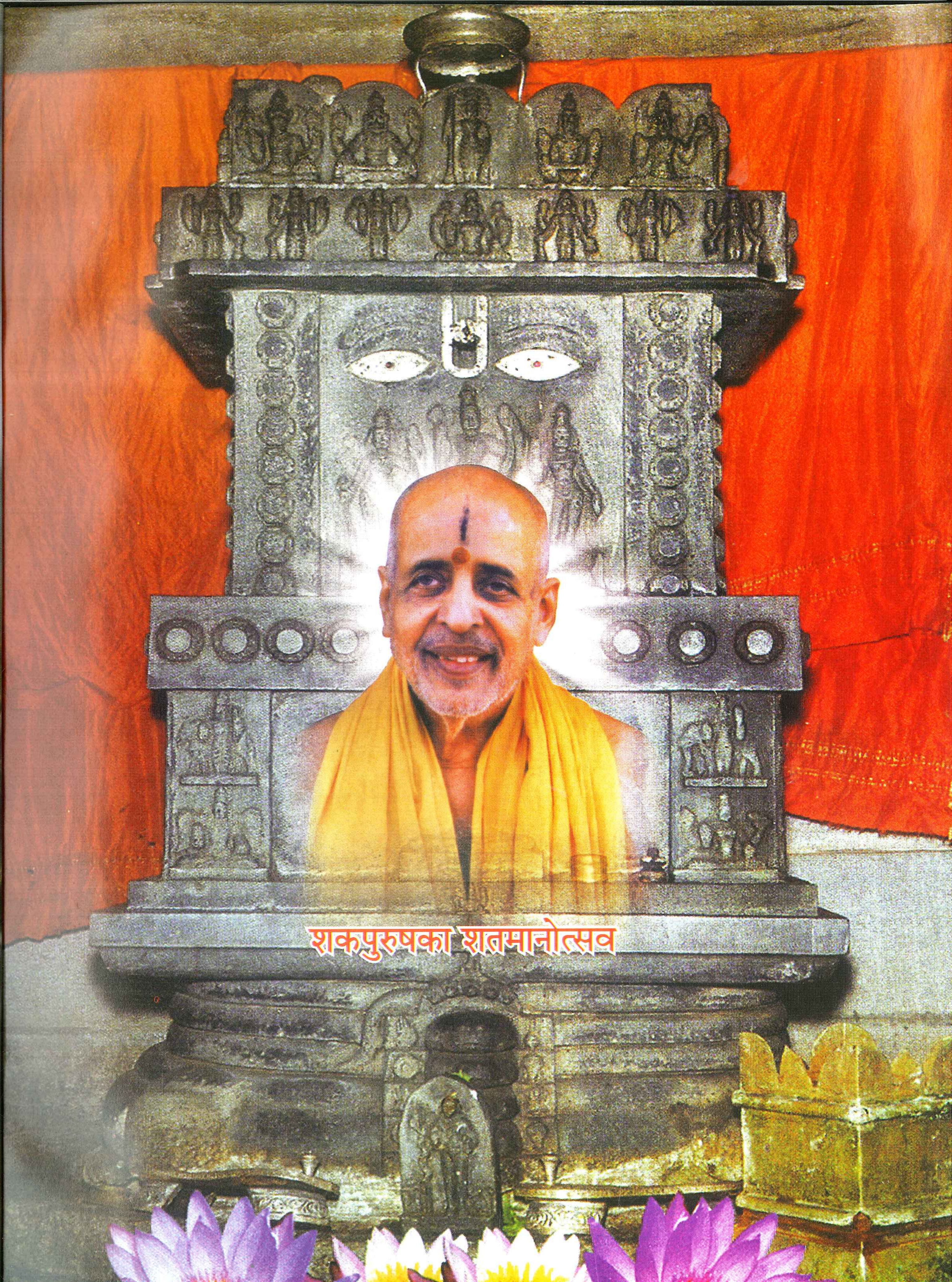
शकपुरुषका शतमानोत्सव

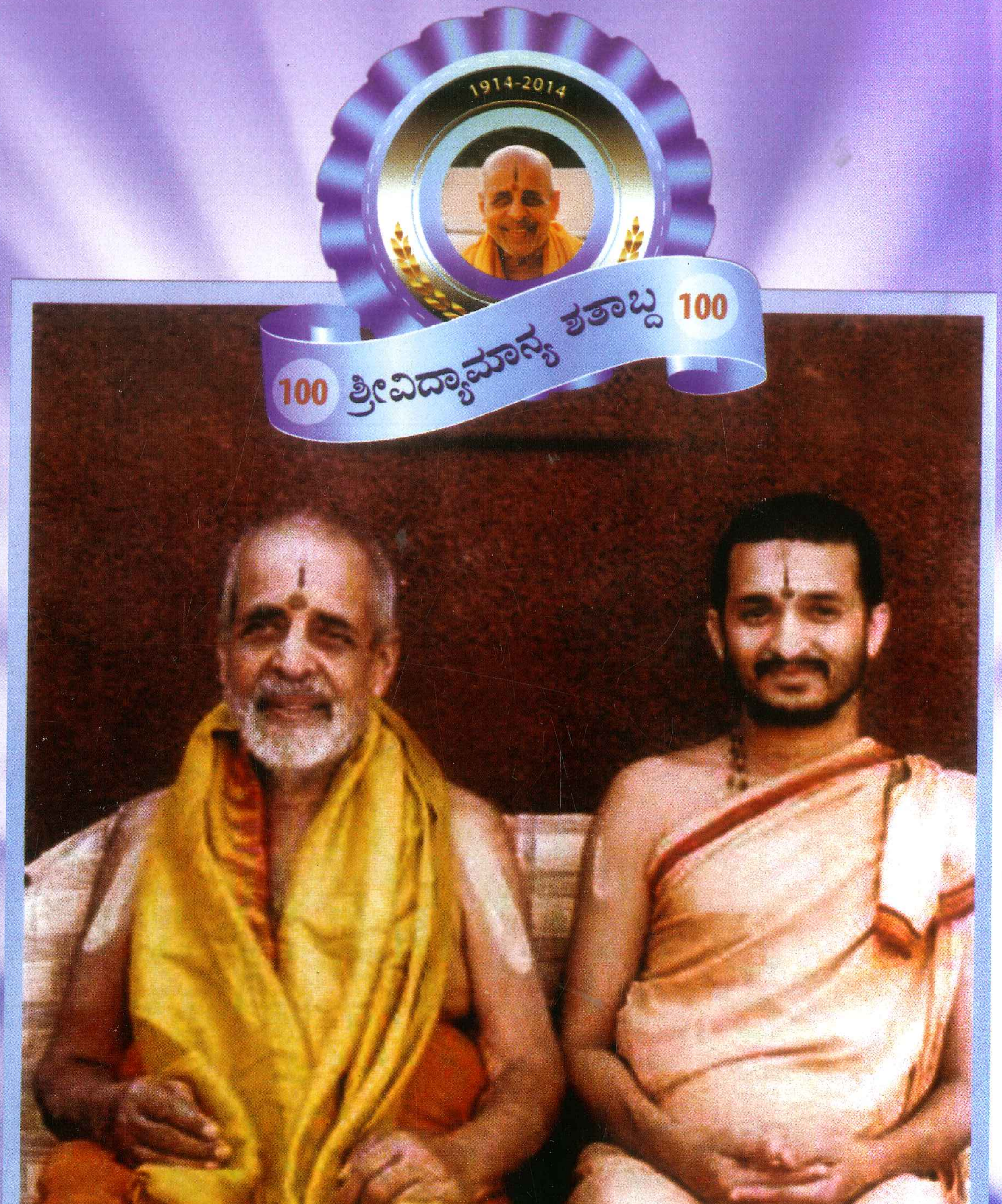
1914-2014
100 ಶ್ರೀವಿದ್ಯಾಮಾನ್ಯ ಶತಾಬ್ದ 100
शकपुरुषका शतमानोत्सव

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - एक

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

यादवों को मुनि का शाप

शुकदेव कहते हैं - बलराम के साथ श्री कृष्ण यादवों को लेकर दैत्य संहार करते हुए कौरवों पाण्डवों में भी अनिवार्य रूप में कलह को उत्पन्न करते हुये युद्ध करवाकर भू-भार का हरण किये।। 1 ।।

कौरव द्यूत में श्रीकृष्णा को प्रण में रखो, द्रौपदी अब हमारी दासी बन गई। उसको हमारे घर भेजो। इस प्रकार दुर्योधन आदि दुष्ट लोग दुष्ट बातें किए। द्रौपदी का वस्त्र हरण करने का उसके केशपास को पकड़ कर सभा में लाने का अपराध कार्य करते हुये कौरव पाण्डवों के कोप भाजन बने थे। उन पाण्डवों को निमित्त करते हुये भगवान श्री कृष्ण कुरूक्षेत्र में सामने खड़े हुये दैव द्रोहियों का हनन करते हुये भू-भार को कम किये।। 2।।

भूमि के भार बने हुये जरासंध और काल यवन आदि दैत्य राजाओं और उनके सैन्य सहित उन्हे नाश करते हुये भू-भार हरण किये। बाद में भी भगवान श्री कृष्ण चिन्तन करते हैं। अभी भी भू-भार है। अन्य किसी से नाश न होने वाले यदुकुल भूमि में हैं। उनके रहते हुये भू-देवी का भार कम नहीं होता।।3।।

चतुरंग सैन्य से समृद्ध हुआ सदाकाल मेरे आश्रय में रहने वाले इस यदुकुल को अन्य किसी से हार नहीं होती। उन्हे अन्य किसी के हाथ से नहीं मरना चाहिए। जंगल में पैदा हुआ बाँस अपने घर्षण से उत्पन्न हुयी आग से जैसे जल जाता है, वैसे ही यादव कुल भी अपने अन्तःकलह से ही शान्ति पायें। उसके बाद ही मैं यहाँ का काम समाप्त करते हुये परमधाम को जाऊँगा।।4।।

हे राजा परीक्षित, सत्य संकल्प प्रभु श्री कृष्ण इस प्रकार संकल्प करते हुये मुनि शाप को निमित्त में रखते हुये अपने कुल को स्वयं विनाश किये।।5।।

भूमि में जब भगवान स्वयं नही रहते हैं तो अन्य देवता भी यहाँ नहीं रहें यह भगवान का संकल्प है।

लौकिक सौन्दर्य से भी बढ़कर रहने वाले अपने शरीर सौन्दर्य से, अपने चाल-चलन से तथा सुन्दर बातों से भगवान देखने वाले लोगों के मन को हरण किये। याद करने वाले लोगों

और क्रियाओं को निष्क्रिय बनाये। जगत में प्रशंसनीय अपनी कीर्ति को फैलाये। सज्जन लोग अपनी कीर्ति को बताने वाली इस भागवत ग्रंथ से उसको सुनकर अपने अज्ञान अंधकार से बाहर आ जाये। इस प्रकार अनुग्रह करते हुये भगवान अपने शरीर से परमधाम को चले गये। एक अंश से इस भूमि में भी रहे।।6,7।।

राजा परीक्षित पूछते हैं- यादव लोग ब्राह्मणों में भक्ति रखते हैं, उदारी हैं। बड़ों का आदर करते हैं, श्री कृष्ण में निष्ठा रखते हैं। ऐसे यादवों को ब्राह्मण शाप क्यों आया।। 8 ।।

यदुकुल को कैसे शाप आया ? क्यों आया ? यादव सदाकाल एक जुट से रहने वाले, उनमें अन्तःकलह कैसे हुआ ? इसके बारे में आप मुझे बताइये ।। 9 ।।

बादरायण शुकदेव कहते हैं - भगवान सम्पूर्ण सौन्दर्य के निधि हैं। आप्तकाम हैं। इस भूलोक में सोलह हजार घर बनाकर उनमें रहते हुये परम मंगल कार्यों को करते हुये कीर्ति भाजन हुये। इतना करने के बाद भी एक छोटा सा काम और रह गया था। उसको भी जल्दी से करते हुये- यदुकुल का नाश करते हुये परमधाम जाने का विचार किये।। 10 ।।

पुण्य परम मंगलकर कलिमल को नाश करने वाले कर्म करते हुये भगवान श्री कृष्ण वसुदेव के घर में रहते थे। उस समय काल स्वरुप उन्हीं की प्रेरणा से मुनि और संतगण पिण्डारक क्षेत्र में आ बसे।। 11 ।।

पिण्डारक को पिण्डोद्धार भी कहते हैं। यह द्वारका के समीप में समुद्र के तट पर रहने वाला एक पुण्य क्षेत्र है।

विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वशिष्ठ, नारद आदि मुनिगण वहाँ आकर बसे।। 12 ।।

एक दिन वहाँ विहार करने वाले यादव कुमार चेष्टा में जाम्बवती कुमार साम्ब को स्त्री वेष धारण करवाकर मुनि लोगों के पास लेकर अविनीत होते हुये भी विनीत जैसे दिखाते हुये मुनियों से कहे- महाराज, यह सुन्दरी गर्भिणी है, आप के पास एक प्रश्न पूछना चाहती है ।।13,14 ।।

वह स्वयं आपसे प्रश्न पूछने में लज्जा करती है। आपके दर्शन का लाभ हमें मिले। यह पुत्र को चाहती है। आप कृपा करके पुत्र होता है क्या ? बताइये।। 15 ।।

हे राजा, यादव कुमारों के इस प्रकार वंचनो से क्रुद्ध होकर ऋषिगण शाप दिये। हे दुष्ट, मंद भाग्य, यह स्त्री यादव कुल को नाश होने वाला मूसल को जन्म देगीं।। 16 ।।

यादव सज्जन हैं, मुनि लोगों का अवमान करना देवताओं के अंश वाले उनको स्वाभाविक नहीं है। किन्तु भगवान श्री कृष्ण की मोहक शक्ति ने उनसे वह काम करवाया। बाद में सारे यादव मद्य व्यसनी बने। परस्पर संहार किये यह भी भगवान श्री कृष्ण के संकल्प के अनुसार ही हुआ, ऐसा ही समझना चाहिए।

मुनिजन के शाप को सुनकर भयभीत होकर यदुकुमारों ने साम्ब को पहनायी हुयी साड़ियों को उतारकर देखे तो उसके पेट में एक सही रूप का मूसल था। पेट को बढ़ाने के लिए वे कपड़ा रखे थे। ब्राह्मण शाप के कारण वह कपड़ा मूसल रुप में बदल गया था।।17 ।।

हम मंदभाग्य हैं। हमने ये क्या किया ? बड़े लोग हमको क्या कहेंगे ? इस प्रकार विचार करते हुये भय से डरकर मूसल को उठाकर राजा के पास चले गये हैं।।18 ।।

राजा के सामने मूसल को रखते हुये वे यादव कुमार दुःख से राजा के सामने विनती किए।।19।।

हे राजा, कभी भी झूठ न बोलने वाले ब्राह्मण के शाप से मिला हुआ मूसल को देखकर द्वारका निवासी यादवगण डर के मारे हतप्रभ हो गये।।20।।

यादवों का राजा उग्रसेन उनको कहता है- इस मूसल को चूर्ण करते हुये समुद्र में डालो। उस प्रकार यादव लोग मूसल को चूर्ण करते हुये समुद्र में डाले। मूसल में रहने वाले लोहे के अंश को समुद्र में फेंक दिये।। 21 ।।

महाभारत आगे कहता है- कि इसके बाद राजा उग्रसेन कृष्ण, बलराम, अक्रूर के सुझाव के अनुसार द्वारका में मद्यपान निषेध करते हैं। मद्यपान करने वाले को मरण दण्डन शिक्षा होगा इस प्रकार बलराम घोषणा करते हैं। इतना होते हुये भी छब्बीस वर्ष के बाद सारे यादव मद्यपान करके परस्पर युद्ध करके सभी मर गये।

उस लोहे के टुकड़े को एक मछली ने निगल लिया। मूसुल के चूर्ण समुद्र के लहरों के साथ तट पर आ गए। उसी में **एरका** नाम का घास उत्पन्न हुआ ।।22।।

मछली पकड़ने वाले समुद्र में अपने जाल बिछाये थे। उसमें उस लोहे को निगलने वाली मछली भी अन्य मछलियों के साथ फँस गई थी। उसके पेट में रहने वाले लोहे के टुकड़े को लेकर जरा नामक दैत्य ने उससे बाण बनाया।। 23 ।।

भगवान श्री कृष्ण इन सबको ठीक तरह से जानते थे। वे चाहते तो शाप को नष्ट कर सकते थे। किन्तु भगवान काल नियामक हैं, काल स्वरूपी हैं। इसके लिए वे मुनि के शाप को नष्ट करना नहीं चाहे। जो होना है वह उसी प्रकार हो इस प्रकार उसको अपना अनुमोदन किये।।24।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में पहला अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - दो

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

जायन्तेय उपाख्यान

शुकदेव कहते हैं - हे राजा, श्री कृष्ण अपने बाहुबल से सुरक्षित रीति से द्वारका में राज्य करते थे। उनके दर्शन के लिए नारद जी बार-बार द्वारका आते थे और कई दिन वहाँ रहते थे।।1।।

हे राजा, उत्तम देवता भी श्री कृष्ण के चरण कमल की उपासना करते थे। चहुँ दिशा में मृत्यु को देखने वाला उस चरण कमल को देखकर उस सुख को अनुभव करने वाला कौन उनकी उपासना न करते हुये रह सकता है।।2।।

इस क्रम में एक बार देवर्षि नारद आ गये। वसुदेव उनका सत्कार करते हुये अभिवादन देकर उन्हे सुखासन में बैठाया।।3।।

वसुदेव कहता है - हे पूज्य ऋषिदेव, श्रीहरि को पाने में पथप्रदर्शक बनने वाले आपका संचार शरीर धारण करने वाले सबको हितकारी होता है। माता-पिता के आगमन से बच्चों को जैसे संतोष होता है वैसे ही आपके आगमन से हमें संतोष होता है।।4।।

देवताओं के संचार से प्राणियों को सुख होता है। किन्तु दुर्जनों को दुःख होता है। आप जैसे विष्णु भक्त सज्जनों के संचार से सकल जातियों को सुख होता है।।5।।

व्यक्ति के अनुसार उसकी छाया चलती है। देवता लोग छाया के समान अपने पीछे आने वाले लोगों से कर्म कराते हुये उनके आराधना के अनुसार उनको फल देते हैं। किन्तु आप जैसे साधु लोग दीन लोगों पर भी कारण के बिना ही दया करते हैं।।6।।

अन्य साधु सज्जनों से ब्रह्मादि देवता उत्तम हैं इसमें संशय नही है। किन्तु वे मानवों को तात्कालिक विषय सुख न देते हुये उनको उनके हित के लिए उनको सन्मार्ग में जाने वाली बुद्धि देते हैं। उनके कर्मानुसार विषय सुख का फल देते हैं। साधु लोग, लोगों के कष्ट को सहन नहीं करते। इसके लिए वे पापी लोगों के लिए

भी अपने तप प्रभाव से पुण्य देना चाहते हैं। अब घर आये हुये नारद मुनि की प्रशंसा में वसुदेव देवताओं से भी भगवद्भक्त बढ़कर हैं, इस प्रकार स्तुति करते हैं। देवता लोग सामने आकर दु:खियों को सांत्वना नहीं देतें। नारद जी के समान साधु लोग प्रत्यक्ष होकर दु:खितों के पास खड़े होकर उनका दु:ख निवारण करना चाहते हैं। यह साधुओं की विशेषता है।

इसी कारण आप स्वयं हमें ज्ञानोपदेश देने वाले हैं। किन्तु हम आपके पास उपदेश के लिए प्रार्थना करते हैं। इससे सन्तुष्ट होकर आप महाफल देते हैं। इस प्रकार जिस भागवत धर्म के श्रवण मात्र से मानव सकल दुःखों से मुक्त होता है। ऐसे भागवत धर्म को मैं आपसे सुनना चाहता हूँ।।7।।

मैं श्री हरि की प्रेरणा से ही उन्हीं को अपना पुत्र बनने के लिए आराधना किया था। किन्तु मोक्ष की अपेक्षा नहीं किया था।।8।।

वसुदेव इस जन्म में मोक्ष के लिए आराधना नही किया था। किन्तु इसके पहले बहुत पूर्व काल में आराधना करके मोक्ष का आश्वासन पा चुका था। यह विवरण अध्याय पाँच के श्लोक (48-49) में स्पष्ट है।

इसी कारण उपदेश कर्म में अत्यन्त निष्ठ आप इस संसार में होने वाले अनेक दुःखों से हम ठीक तरह से छुटकारा कैसे पायें। इसके बारे में आप मुझे उपदेश दीजिये।।9।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा ज्ञानी वसुदेव लोकोपकार के उद्दश्य से नारद जी के समक्ष में इस प्रकार प्रश्न पूँछे। इससे नारद जी को सन्तोष हुआ। वसुदेव को उपदेश करने से नारद जी को हरि गुरुओं का पुनः स्मरण होता है। उसी से उनको आनन्द हुआ।।10।।

नारद जी कहते हैं - हे वसुदेव आपने ठीक प्रश्न पूछा। सारे जगत को उसके इच्छित को देने वाले भगवान के प्रीति को उत्पन्न करने वाले धर्म के बारे में आपने प्रश्न पूछा है।।11।।

सारे देवताओं से द्वेष करने वाला तथा प्रपंच के विरुद्ध चलने वाला भी इस भागवत धर्म को आदर से श्रवण, पठन, ध्यान करते हुये उसका अनुमोदन करे तो उसकी सकल पाप निवृत्ति होकर वह पवित्र हो जाता है।।12।।

हे परम मंगलकर वसुदेव, आप यह प्रश्न पूछकर मुझे परम मंगलकर भगवान नारायण का विशेष स्मरण करने का अवकाश निर्माण किये।।13।।

आपके समान ही प्राचीनकाल में महात्मा निमि राजा नौ ऋषभ पुत्रों से प्रश्न पूछे थे। उनके संवाद को हम आपको बतायेंगे।।14।।

स्वयंभूव के पुत्र राजा प्रियव्रत उसका पुत्र अग्नीध्र। अग्नीध्र के पुत्र नाभिराज। उसका पुत्र ऋषभदेव ।।15।।

भगवान वासुदेव ही मोक्ष साधन देने वाले धर्म का उपदेश करने के हेतु ऋषभ देव के रूप में अवतार लिये। इस ऋषभदेव को जयंती देवी से ब्रह्मज्ञानी एक सौ पुत्र जन्म लिये। उनमें नारायण पर भरत चक्रवर्ती सबसे ज्येष्ठ है। उन्हीं के नाम से इस देश का नाम भारत देश इस प्रकार प्रसिद्ध हुआ। यह प्रदेश स्वर्ग से बढ़कर सकल श्रेयस साधन के लिए अद्भुत क्षेत्र बन गया है।17।।

पिता से प्राप्त हुआ इस भूमण्डल में चक्रवर्ती राजा सकल सुखभोग भोगने के बाद राज्य को अपने भाइयों को देकर विरक्त होकर तप के लिए अरण्थ चले गये। तीन जन्म में श्री हरि की आराधन करते हुये मोक्ष पाये।।18।।

ऋषभ पुत्रों में पहले नौ पुत्र कुशावर्त इत्यादि नौ द्वीपों के अधिपति बने। बाकी के इक्यासी पुत्र यज्ञ विद्या प्रवर्तक ब्राह्मण बन गये।।19।।

राजा सगर के पुत्र अपने यज्ञाश्व को ढूँढ़ते हुये जम्बुद्वीप की परिक्रमा करते हुये तथा उनके द्वारा खोदे गए स्वर्णप्रस्थ, चंद्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मंदहार, पांचजन्य, सिंहल, और श्रीलंका नाम के आठ उपद्वीप बने। मुख्य जम्बुद्वीप मिलकर कुल नौ द्वीपों को क्रमशः कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त, मलयकेतु, भद्रसेन, इन्द्रसृक, विदर्भ और कीटक नाम के नौ ऋषभ पुत्र भरत के बाद अधिपति बने।

और नौ ऋषभ पुत्र महाभाग्यशाली मुनि बने। वे परमहंस, दिगम्बर, सन्यास व्रतधारी होकर वेदान्त शास्त्र में प्रवीण बन गये। उनका नाम इस प्रकार है - कवि, हरि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और कर्भाजन।।20,21।।

कवि इसका अर्थ ज्ञानी, हरि यानी अज्ञान परिहारक, अंतरिक्ष यानी अंतरंग में हरि को देखने वाला, प्रबुद्ध का अर्थ अज्ञान नाम के निद्रा से सदाकाल जागृत रहने वाला, पिप्पलायन यानी पुण्य कर्म फल रूप ज्ञानादि गुण वाला, आविर्होत्र यानी यज्ञ, हवन इत्यादि कर्म तत्व को जानने वाला, द्रुमिल यानी कर्मादि वेदार्थों को जल्दी ही हरि पर योजन करने वाला, चमस यानी वेदार्थ को आचमन किया हुआ यानी अनायास समझने वाला ज्ञानी, कर्भाजन का अर्थ वेदार्थ को अत्यन्त सरलता से करतलामलकवत् किया हुआ वेद ज्ञान को जानने वाला इस प्रकार होता है।

ये सारे ऋषभ पुत्र कार्य कारणात्मक इस प्रपंच को भगवान से अलग रूप में किन्तु उसके प्रतिमा रूप में अव्यतिरेकेण उनको छोड़कर न रहने वाले इस जगत में संचार किये।।22।।

जीवनमुक्त ये ज्ञानी स्वेच्छा से अव्याहत होकर सुर, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, नर, किन्नर, नाग, मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, पक्षी, गोलोकों में संचार किये।।23।।

इस प्रकार नीलमेघश्याम ऋषभ देव के ये ज्ञानी पुत्र एक बार भगवान की इच्छा से ऋषि लोग जहाँ यज्ञ करते थे उस महात्मा निमिराज के सत्र याग में आ गये।।24।।

हे राजा, सूर्य के समान प्रकाशमान ज्ञानी इन भागवतों को देखकर यज्ञ के यजमान निमिराजा और सारे ऋत्विज लोग खड़े होकर उनका स्वागत किये।।25।।

विदेह राजा निमि उनको देखते ही समझ लिए कि ये मुनिगण भगवान नारायण के एकान्त भक्त हैं। वह संतुष्ट होकर उनको आसन में बिठाकर परम हंसों के लिए उचित सत्कार्य किया।।26।।

ब्रह्मपुत्र सनकादि मुनि के समान ब्रह्मवर्चस्व से प्रकाशमान उन नौ ज्ञानियों को परम संतुष्ट राजा विनय से नमन करते हुये पूँछता है।।27।।

विदेह राजा कहता है - हे भगवान, मैं जानता हूँ कि आप श्री हरि के एकान्त भक्त हैं। आपके समान विष्णु भक्त इस लोक को पावन करने के लिए संचार करते रहते हैं।।28।।

यह मानव जन्म क्षणभंगुर है। यह मिलना बहुत दुर्लभ है। ऐसे मनुष्य जन्म में आपका दर्शन मिला है। इसी से हम धन्य हो गये हैं। अब हम आपके सामने मोक्ष साधन के बारे में पूँछते हैं। इस संसार में केवल आधा छण के लिए भी सज्जनों का सहवास मिला तो वह बड़ा निधि के समान है।।29,30।।

भगवान भागवत धर्म प्रिय हैं। अपने शरण में आये हुये भक्तों को वे स्वयं को ही उन्हे दे देते हैं। ऐसे भागवत धर्म के बारे में हम पूछना चाहते हैं। यदि हम उसके लिए योग्य हैं तो आप हमें उपदेश देने की कृपा करें।।31।।

नारद जी कहते हैं - हे वसुदेव, इस प्रकार विदेह राजा के प्रश्न करने के बाद वे ज्ञानी श्रेष्ठ राजा वहाँ के सदस्य और ऋत्विजों का अभिनन्दन करते हुये संतोष से उपदेश का प्रारम्भ करते हैं।।32।।

कवि महामुनि का उपदेश

इस संसार में लोग जो अपना नहीं है उसी को अपना मानकर उसे चाहते हैं। किन्तु लोग उसको पाते नही। इसी के कारण मन का उद्वेग बढ़ जाता है। ऐसे आदमी को अपने उद्वेग को नष्ट करने के लिए श्री हरि के पाद कमल का भजन करना चाहिए। इससे जीव का भय नाश होता है। यही भय निवारण के लिए श्रेष्ठ साधन है। सारे भय केवल हरि भजन से समूल पूर्ण रूप से निवारण हो जाते हैं।।33।।

अज्ञानियों को ज्ञान द्वारा भगवान को ठीक तरीके से पाने का मार्ग जो भगवान ऋषभ देव उपदेश किये हैं उन्हीं को भागवत धर्म समझो।।34।।

उन भागवत धर्मों को अनुष्ठान करने वाले को कभी हरि का विस्मरण नहीं होता है। वह अहंकार और ममकार का बलि पशु नहीं बनता है। यदि कभी एक क्षण के लिए उसको हरि का विस्मरण हुये तो भी अपराध नहीं होता। समतल रहने वाले बालू के मैदान में आँखें बन्द करके दौड़े तो भी वह गिर नहीं सकता। वैसे ही हरि के भक्त कभी पतन नहीं पाते।।35।।

अपने चाल-चलन से मन-इन्द्रिय और बुद्धियों से अन्तर्यामी के प्रेरणा के अनुसार अपने मूलभूत योग्यता के अनुसार जो-जो कर्म करते हैं उन सबको भगवान श्री हरि ही करता है, और यही श्री हरि की आराधना है यही मानकर किया हुआ कर्म को श्री हरि को अर्पित करना है।।36।।

श्री हरि की इच्छा के अनुसार उसी की बंधक शक्ति से बद्ध जो है वह भगवान की आराधना करने के बाद उसको समर्पण न करे, उसका अनुग्रह न पाये तो उसका विस्मरण होता है, अहंकार और भ्रम उत्पन्न होता है। अपना मानकर चलने वाला यह घर गृहस्थी में दुरभिमान से अज्ञान और भय बढ़ते हैं। इसी कारण गुरु में रहने वाले गुरु और भगवान दोनों के रूप में श्रीहरि वायु में मन लगाकर केवल भक्ति से संतुष्ट होने वाले उन्ही को सारी रीति से आराधना करना चाहिए।।37।।

दिन में स्वप्न देखने वाला उसको वास्तविक ही मानता है। वैसे ही मन से विषय सुख की अपेक्षा करने वाला अपना मानने वाला किन्तु अपना न रहने वाला देह घर इत्यादि विषयों के साथ विषय पदार्थों को अपने वश में पाने का प्रयास जीव करता रहता है। उसका मन सदाकाल विषय सुख की तरफ दौड़ता रहता है। उनको संकल्प विकल्पों के साथ श्री हरि के सामने लाकर स्थिर रहना चाहिए उसी से मोक्ष प्राप्ति होती है।।38।।

मैं इसको कर सकता हूँ, इसको करने में मेरा मन लगता है। इसको मन का संकल्प मानते हैं। मैं इसको छोड़ सकता हूँ, चाहे तो इसको मैं छोड़ दूँगा यह मन का विकल्प है। इन दोनों को हमें श्री हरि की आराधना का साधन बनाना चाहिए। मैं श्री हरि का भजन कर सकता हूँ, करूँगा। विषय की आशा छोड़ सकता हूँ, छोड़ता हूँ, छोड़ना चाहिए। इस प्रकार संकल्प विकल्प करना चाहिए। ऐसे नहीं करे तो ज्ञान नहीं मिलेगा, मोक्ष तो बहुत दूर होगा।

द्वय, अविद्यमान, स्वप्न इन शब्दों का अर्थ इस जगत में कुछ नहीं है, जो दिखता है वह भ्रम है, ऐसे अर्थ करना गलत होता है। जो अपना नहीं है उसको अपना मानना स्वप्न के समान भ्रम होता है। वस्तुतः स्वप्न भी भ्रम नहीं है। वह केवल हमारे मन के अन्दर का भावना लोक है। उसको बाहर का संबंध जोड़ना भ्रम है।

असंग = विषय की आशा को छोड़ना। वह नहीं होता हम छोड़ नहीं सकते ऐसे बोलने वाले को अ-संग भगवान का संग करना चाहिए। उनके अवतार कार्य और उनके बारे में नारदादि मुनि से देने वाले उपदेश रूप परम मंगल हरि नाम को सुनते हुये संकोच न करते हुये संकीर्तन करते हुये गाते नाचते हुये सज्जनों के संग में रहना चाहिए।।39।।

विषय में आदर न रखते हुये सदाकाल श्रवण मनन आदि व्रतनिष्ठ होकर रहने वाला, परम प्रिय श्री हरि का नाम संकीर्तन करते हुये उसमें प्यार करने वाला मन से श्री हरि के पास दौड़ जाता है। भगवान के सानिध्य के अनुभव से उसका मन द्रवित होता है। सब कुछ भूल कर जोर से हँसता है। आनन्द से आँखों में आँसू आते हैं। हरे-हरे इस प्रकार जोर से चिल्लाता है। आनन्द के उद्रेक से गाता है, नाचता है। लगता है उसका दिमाग खराब हो गया है।।40।।

हँसना, रोना, भक्ति का उद्रेक है। लेकिन इसी को भक्त का लक्षण ऐसे नहीं मानना चाहिए। कई भक्त अपने उद्रेक को लक्षणों से बाहर व्यक्त करते हैं और कई इन लक्षणों को अपने अन्दर छिपा लेते हैं। भक्ति का लक्षण दिखाये या न दिखाये पर भगवान के नामोच्चार सुनते ही जिनकी आँखें विशाल होती हैं और कितने भी कष्ट और आपत्ति रहे पर हरि भजन न छोड़ने की दृढ़ता रहे तो वह निश्चित रूप से श्रेष्ठ भक्त है।

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, ज्योति, सकल प्राणि संकुल, दसोदिश, वृक्ष, नदी, समुद्र, देव, मानव आदि सकल वस्तु विष्णु के अधीन हैं। उनको छोड़कर इस जगत का स्वामी और कोई नहीं है। इसी कारण इस विश्व में जो-जो हैं उन सब को भगवान का प्रतीक मानते हुये उनका अधिष्ठान मानते हुये उनको नमस्कार करना चाहिए।।41।।

आकाश इत्यादि भगवान के शरीर नहीं हैं। किन्तु भगवान को छोड़कर वे अलग भी नहीं हैं। उनके अधीन होने के कारण उन्ही के शरीर के समान हैं। अन्य किसी के अधीन होने के कारण हरि के अधीन रहने से अभिन्न के समान होते हुये भी भिन्न है।

इस प्रकार सभी स्थानों में सभी वस्तुओं में भगवान को देखने वाले को स्वतंत्र रूपी, उस भगवान में भक्ति और ज्ञान उत्पन्न होते हैं, अन्यत्र वैराग्य होता है। यह तीनों एक साथ होते हैं। भोजन करने वाले को कवल-कवल से तृप्ति, शरीर पुष्टि और भूख मिटाना यह तीनों एक ही समय में होते हैं।।42।।

इस प्रकार ज्ञान, भक्ति और वैराग्य को पाते हुये निरन्तर आदर से हरि पाद भजन करने वाले भगवद् भक्त को ज्यादा भक्ति और वैराग्य होते हुये भगवान के तत्वज्ञान रूपी ज्ञान बढ़ जाता है। बाद में उत्कट भक्ति के कारण परम शांति स्वरूप साक्षात् मोक्ष उसको मिलता है।।43।।

हरि महामुनि का उपदेश

राजा पूछता है - अब हमें उत्तम, मध्यम और अधम भक्तों के बारे में बता दें। उनका मनोभाव कैसा रहता है। उनकी प्रवृत्ति क्या होता है ? वे संचार क्यों करते हैं ? वे लोगों के बीच में आकर क्या कहते हैं। उनके किन लक्षणों से वे भगवान को प्रिय बनते हैं, इसको बताइये।।44।।

भक्त कई बार राजस प्रवृत्ति को दिखाते हैं। कभी-कभी विषय सुख की अभिलाषा दिखाते हैं। जीव निर्वाह के लिए भिक्षा माँगते हैं। इसी कारण भक्तों को हमें कैसे पहचानना चाहिए ? इनमें सात्विक राजस और तामस भक्तों को कैसे अलग-अलग पहचानना इसके बारे में विदेह राजा हरि महामुनि से प्रश्न करता है।

हरि महामुनि कहते हैं - भगवान के भक्त ज्ञानी, अज्ञानी और द्वेषी इस प्रकार तीन तरह के लोगों में होते रहते हैं। भगवान की प्रेरणा से ही तीनों तरह के भक्त होते हैं। हमें उन लोगों में प्रीति अनुकम्पा और अनादर जो होता है वह भी भगवान की प्रेरणा से। सारे जन सकल गुण परिपूर्ण भगवान के अधीन में रहते हैं इस प्रकार समझकर उसी के अनुसार जो अपना जीवन चलाता है, वह श्रेष्ठ भक्त है। तत्वाभिमानी देवता श्रेष्ठ भक्त बनते हैं।।45।।

ऋषि, गन्धर्व मध्यम भक्त होते हैं। ये भगवान में और उनके भक्तों में प्रीति और स्नेह करते हुये अन्य लोगों में अनुकम्पा रखते हैं, द्वेषियों में अनादर भाव रखते हैं। किन्तु अपरोक्ष के पूर्व में सारे लोग भगवान की प्रेरणा से ही काम करते हैं यह ज्ञान उनको नहीं रहता है। ऐसे भक्त मध्यम भक्त माने जाते हैं।।46।।

तत्वाभिमानी देवता अति उत्तम रीति से भक्ति योग युक्त होकर श्री हरि में भक्ति करते हैं। वे अनादि योगी कहलाते हैं। गुण पूर्ण श्री हरि सर्वान्तर्यामि हैं। रमा, ब्रह्मादि सकल देवता उनके अधीन भक्त हैं। वह भगवान ही अपने में भक्ति और अपने भक्तों में स्नेह अज्ञानियों में अनुकम्प और द्वेषियों में द्वेष को उत्पन्न करते हैं इस प्रकार समझते हुये वे भगवान की अराधना करते हैं। ऐसे करने वाले सायुज्य मोक्ष पाते हैं। ऋषि, गन्धर्व आदि मध्यम रीति के भक्त हैं। पहले ये लोग जब उनको ज्ञानी का उपदेश नहीं प्राप्त हुआ तब भगवान श्री हरि स्वर्ग सुख देता है इस प्रकार समझते हुये प्यार से आराधना करते हैं। वे देवताओं में तारतम्य को नहीं समझते। भगवान श्री हरि सबके राजा हैं। देवतागण उनके परिवार वाले है। मनुष्य उनकी प्रजा है, दैत्य उनके शत्रु होते हैं। इसके लिए वे देवताओं में स्नेह करते हैं। मनुष्यों में सहयोगी मानकर अनुकम्प करते हैं। दैत्यों में हरि शत्रु मानकर जो द्वेष है उसको स्वाभाविक मानते हैं। इस प्रकार करने वाले मध्यम भक्त होते हैं। ये लोग मोक्ष योग्य हैं, इसी कारण श्री हरि इनको ज्ञानी कुल में जन्म देते हैं। वहाँ ज्ञानियों से उपदेश दिलाकर मोक्ष साधना करवाते हैं। इसी कारण ये सादीयोगी कहलाते हैं। इनको सामीप्यादि मोक्ष मिलता है।

तामस स्वभाव के अधम भक्त प्रतिमा में ही श्रद्धा रखते हुये श्री हरि की पूजा करते हैं। भक्तों में वे भगवान को देखते नही, पूजा करते नही। भक्तों में भक्ति क्र, तारतम्य को जानते नही। भगवान के द्वेषियों द्वारा भगवान से करने वाले द्वेष के प्रकार को भी वे नहीं जानते। इसी के कारण वे भगवद् द्वेषियों से अनादर नहीं करते।। 47।।

मनुष्योत्तम जब उनको ज्ञानी का उपदेश नही मिला है तब अधम रीति का भक्त बने रहते हैं। जराप्रतिमा की पूजा करते हैं, चल प्रतिमा देवताओं का आदर नहीं करते। देवतायें तत्वाभिमानी होते हैं, बुद्धि प्रेरक, वे ही हमारे गुरु यह परिज्ञान उनको नहीं रहता। वे उन देवताओं का उपकार स्मरण नहीं करते। किन्तु मुक्ति योग्य होने के कारण श्री हरि इनको दूर न छोड़ते हुये ज्ञानियों के संग में रखते हैं। इसी से वे ज्ञान भक्ति का सम्पादन करते हुये कर्म योग से भगवान की आराधना करते हैं। वे भी सामीप्य आदि मुक्ति पाते हैं। ये अधम भक्तों में उत्तम हैं।

राजस जीव अधम भक्तों में मध्यम होते हैं। वे भगवान के बारे में थोड़ा सा ज्ञान युक्त भक्ती करते हैं किन्तु देवताओं को तिरस्कार करते हैं। मैं ही पण्डित हूँ मुझको और कोई उपदेश की आवश्यकता नहीं है। ऐसे समझते हैं इसके फल स्वरुप श्री हरि देवताओं से उनके भक्ति को नाश करते हुये उपेक्षा निर्माण करते हैं। उसके फल स्वरुप वे नित्य संसारी बनते हैं।

तामस जीव अधम भक्तों में अधम हैं। वे सज्जन संग से प्रारम्भ में श्री हरि में भक्ति करते हैं किन्तु देवताओं से द्वेष करते हैं। अपने को उनसे श्रेष्ठ मानते हैं। अन्यों का अवमान करते हैं। देवताओं से इनकी जो अल्प भक्ति है उसका श्रीहरि पूर्ण नाश करते हुये द्वेष को उत्पन्न कराते हुये उनको तमस में भेजते हैं।

यह सम्पूर्ण विश्व श्री हरि के अधीन है। इन्द्रियों से विषय का अनुभव करते समय विषयों में विहित, निषिद्ध, योग्य, अयोग्य इस प्रकार के विवेक को न भूलने वाला, भूलकर रागद्वेषों को न करने वाला, इन्द्रियों से जीवियों के सुख-दुख का अनुभव करते समय वे उनकी योग्यतानुसार श्री हरि के कारण ही बने हैं। इस प्रकार समझते हुये योग्यता के अनुसार छोटा-बड़ा न होते हुये रहने वाला भक्त उत्तम भक्त माना जाता है।।48।।

विष्णु माया का अर्थ लोगों को सम्भ्रांत करने वाला इन्द्रजाल विद्या नहीं है। भगवान की इच्छा ही विष्णु माया कहलाती है। हमारी योग्यतानुसार भगवान श्री हरि हमे सुख-दुख देते हैं। वह भगवान के अधीन उन्हीं के इच्छानुसार होता है। इस प्रकार समझते हुये समाधान रहने वाला सही भक्त है। इसी कारण वह उनके योग्यतानुसार हरि भक्तों में तारतम्य पूर्वक प्रीति करते हुये हरि के विरुद्ध जो हैं उनसे द्वेष करता है। भक्तों का उपकार, द्वेषियों का अपकार करना ही मूल धर्म है इसके जो अनुकूल होता है वही धर्माचरण है, इसी का

आचरण करना चाहिए। यह श्रुति स्मृति का आदेश है।

देह, इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि, मन, अभिमान और इससे होने वाला सम्बन्ध श्री हरि की इच्छा से ही होते हैं। उत्पत्ति आसक्ति, भूख, प्यास, भय, विषय लालसा, इत्यादि क्लेषों को हरि स्मरण पूर्वक सहन करना चाहिए और उसमें अभिमान का त्याग करना चाहिए। यह क्लेश केवल मुझको नहीं तत्वाभिमानी देवताओं को और दैत्यों को भी सम्बन्ध रखते हैं। इस प्रकार अनुसंधान करना चाहिए। इस प्रकार करने वाला हरि भक्तों में श्रेष्ठ माना जाता है।।49।।

जीवों के देह इन्द्रियों को उनमें रहने वाले जीव मध्यमाभिमानी होते हैं। ब्रह्मादि देवता उत्तमाभिमानी हैं। कलि आदि असुर अधमाभिमानी हैं। इनमें जीवाभिमानी भी तीन तरह के होते हैं। सारे जीवों को ब्रह्म शेष उत्तम अभिमानी होते हैं। मध्यम जीवों को ब्रह्म शेष पुरंजन उत्तमाभिमानी होते हैं। जीव मध्यमाभिमानी, अधम जीवों को कलि अभिमानी होता है। देह को आने वाले उत्पत्ति नाश इत्यादि दुःख देहाभिमानी असुर को ज्यादा होता है, जीव को कम होता है। वैसे ही इन्द्रियों को होने वाले स्वप्न, मूर्छा, दुःख इत्यादि इन्द्रियाभिमानी असुर को होते हैं। भूख प्यास से होने वाले दुःख प्राणाभिमानी असुर को होता है। भय आकांक्षा इत्यादि दुःख मनोभिमानी असुर को होता है। इष्ट वियोग आदि मनक्षोभ दुःख बुध्यभिमानी असुर को होता है। अभिमान को जब आघात होता है, तब होने वाला दुख अहंकाराभिमानी असुर को होता है। पीछे के दुःख का विषाक्त ज्ञान का अनुभव चित्ताभिमानी असुर को होता है। जीवाभिमानी असुर को देह इन्द्रिय, प्राण इत्यादि सारे वस्तुओं में अभिमान होने के कारण सारे दुःख उसको होते रहते हैं। देह के ऊपर के अभिमान के कारण असुरों को केवल दुःख होता है किन्तु सुख नहीं मिलता। सुख अभिमानी देवताओं के लिए मिलता है। उन जीवों को, उन असुरों को अधर्म कार्य करने से सुख होता है। किन्तु वह देव के आवेश के कारण आता है। इसके लिए वह सुख भी देवताओं के लिए ही होता है। इसी प्रकार अधर्म कार्य से होने वाला दुःख देवताओं को न मिलते हुये उनमें आविष्ट असुरों के लिए होता है। ऋजु योगियों को उनके पत्नियों को असुरावेश न होने के कारण उनको कभी भी दुःख नहीं होता। देहादि अभिमानी देवता से अधर्म कार्य की प्रेरणा करते समय वह हरि की आज्ञा पालन रुप होने के कारण उससे उनको हरि प्रीति होती है उनको दुःख नहीं होता, सुख ही आता है।

जो विषय की आशा को, उस प्रेरणा से करने वाले पाप-पुण्य कर्म को, उनके मूल कारण भूत अविद्या प्रकृति इत्यादि को प्रेरणा देने वाला केवल भगवान है इस प्रकार समझते हुये इसी को शरण जो होता है वह उत्तम भक्त है।।50।।

उत्तम कुल जन्म लेने से अथवा महायाग आदि कर्म करने से जिसको अहंकार नहीं आता है, ब्राह्मण आदि वर्ण में जन्म लिया हूँ, ब्रह्मचर्यादि आश्रम में हूँ। सुप्रसिद्ध घराने में जन्म लिया हूँ। इस प्रकार प्रसिद्ध मैं हूँ, इस रीति से जिसको देह मान के कारण अहंकार नहीं होता है वह श्री

हरि का प्रिय भक्त होता है।।51।।

चित्ते = वाह्य अन्तःकरण युक्त संसारावस्था में रहते हुये, **स्वात्मनि** आत्म भक्ति से मिलने वाले मोक्ष में जिसको मैं भगवान बनता हूँ इस प्रकार अभेद भावना नहीं होती है और सकल ब्रह्मादि देवताओं को उनके तारतम्य के अनुसार समान रूप से देखते हुये भगवान नारायण को सर्वोत्तम मानते हुये निष्ठा जो दिखाता है वही श्रेष्ठ उत्तम भक्त है।।52।।

अप्रतिहत शक्ति वाले भगवान के स्मरण करते हुये तीनों लोकों को ज्ञानादि सम्पत को देने वाले ब्रह्म रुद्रादि देवता भगवान के पदारविन्द को ढूँढ़ते रहते हैं। ऐसे भगवान के पदारविन्द को एक क्षण लव निमेषार्द्ध भी जो छोड़कर नही रह सकता वह ही विष्णु भक्तों में श्रेष्ठ है।।53।।

केवल दो पाँवों से तीनों लोकों को माँपने वाले श्री हरि के पाँव के एक नख चंद्र के अनुपम प्रकाश चाँदनी से भक्तों के हृदय के अन्दर रहने वाला सारा ताप नष्ट हो जाता है। फिर कभी उनको ताप नहीं होता। पूर्णमासी के चंद्र के उदय के बाद सूर्य के ताप से हुआ ताप कैसे बच सकता है।।54।।

भक्ति की उत्कंठा से नामोच्चार करें तो श्री हरि सारे पापों को विनष्ट कर डालते हैं। उनके पाद कमलों को भक्तिपाश से बाँधकर अपने हृदय में रख लिये तो श्री हरि वहाँ से कैसे जा सकते हैं? ऐसे किया हुआ भक्त ही भक्तों में उत्तम माना जाता है।।55।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - तीन

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

अंतरिक्ष महामुनि का उपदेश

विदेह राजा पूँछता है - ज्ञानी लोगो को भी मोहित करने वाली सर्वोत्तम श्री हरि की माया को यानी उनकी इच्छा शक्ति को और उनके अधीन जड़ प्रकृति के बारे में हम जानना चाहते हैं। पूज्य आप हमें बताने की कृपा करें।।1।।

मर्त्य होकर मैं संसार ताप से थक गया हूँ। उस ताप को निवारण करने वाला अमृत समान हरि कथा रूप आपकी बातों को कितना भी सुने तो भी मुझे तृप्ति नहीं होती।।2।।

अंतरिक्ष कहते हैं - हे शूर राजा, सारे चेतनों से भी बड़ा चेतन प्रभु श्री हरि सृष्टि के प्रारम्भ में पंच महाभूतों से बड़े छोटे शरीर वाले सारे प्राणियों की सिद्धि किये। उन शरीरों में उनको अपने ज्ञान को उत्पन्न करना उनके सृष्टि का उ-श्य है।।3।।

स्थूल रूपी पंचभूतों से जीवियों की सृष्टि करते हुये उन शरीरों में जीवों के साथ उनके नियामक होकर परमात्मा भी उनमें प्रवेश करते हैं। उनके मन के नियमन के लिए एक रूप और इन्द्रियों के नियमन के लिए दस रूपों को अपने से अलग करते हुये उनसे शब्दादि विषयों के सार को स्वयं ग्रहण करते हैं।।4।।

भगवान जीव के मन और इन्द्रियों को विषय के बारे में प्रेरणा करते हुये विषय सुख के केवल सार को ग्रहण करते हुये अन्य शुभ-अशुभ फल को जीव को, खिलाते हैं। इसी कारण शरीर और इन्द्रियों से जीव की सृष्टि करते हैं। इस प्रकार सृष्ट हुये जीव को सृष्टिकर्ता मानना अधःपतन का मार्ग है।।5।।

शरीर में रहने वाले भगवान, शरीर के कारण होने वाले दुःखों को छोड़कर केवल सुख का भोग करते हैं। जीव दोनों को भोगता है। इसी कारण जीव और भगवान अलग-अलग हैं। जो अलग नहीं समझता वह

पतित होता है।

शरीरधारी जीव पूर्व कर्म प्रयत्न और संस्कार के निमित्त से कर्मेन्द्रियों से कर्म करते हुये उसके फल को भोगते हुये अनेक योनियों में सदाकाल संचार करते रहता है।।6।।

ऐसे जीव से भगवान को अभेद समझने वाला जीव कर्मानुसार बहुत दुःख देने वाले अनेक शरीरों को इस जगत के प्रलय होते तक पाते हुये परवशता से जनन-मरण को पाता है। अंत में परवशता से अंधम्-तमस में गिरता है।।7।।

जीव ब्रह्म के ऐक्य को बताने वाले को ब्रह्म प्रलय के बाद तम प्राप्ति निश्चित है।

उत्पत्ति नाश रहित, प्रलय करने वाले काल नामक श्री हरि पंचभूतों का लयकाल जब प्राप्त होता है तब पंचभूत द्रव्य और शब्दादि गुण युक्त ब्रह्माण्ड को अव्यक्तावस्था में खींचने के लिए संकल्प करते हैं।।8।।

सारे कालों का आदि और अंत है। आदि-अंत न रहने वाला भगवान ही मुख्य काल है। वे ही प्रलय करते हैं।

सौ वर्ष काल पर्यन्त भू-ब्रह्माण्ड में आत्यंतिक अनावृष्टि होती है। प्रलय होने के कारण उस समय सूर्य का ताप बढ़ जाता है। तीनों लोक जल जाते हैं।।9।।

संकर्षण के मुख से निकलने वाली प्रलयकाल की अग्नि पाताल से आरम्भ होते हुये सारे लोकों को जलाते हुये वायु की प्रेरणा से ऊपर-ऊपर जलते हुये सर्वत्र व्याप्त होती है।।10।।

उसके बाद सौ वर्ष काल तक संवर्तक नामक प्रलय काल के मेघ हाथी के सूँड की मात्रा में धाराकार पानी बरसते हैं। तब यह ब्रह्माण्ड पानी में डूब जाता है।।11।।

हे राजा, ब्रह्माण्ड के अन्दर रहने वाले पुरुष नामक ब्रह्म, जल में डूबा हुआ ब्रह्माण्ड नाम के अपने शरीर को त्याग कर सूक्ष्म अव्यक्त नाम के परब्रह्म नारायण में प्रवेश करते हैं। लकड़ी जल जाने के बाद वहाँ रहने वाली आग सूक्ष्म और अव्यक्त प्रधानाग्नि में जैसे मिलती है।।12।।

एक बार संक्षेप रूप से प्रलय के बारे में बताकर बाद में उसको विस्तार रूप में बोलने का क्रम रहता है। इसका उ-ेश्य यह है कि भगवान की महिमा को बार-बार स्मरण करने से ज्यादा पुण्य मिले।

इसके पहले यह भू-मण्डल अपने गंध गुण को <u>जल</u> खींच लेने से पृथ्वी जल में लीन होती है। जल के रस गुण को तेज जब खींच लेता है तब जल तेज में लय होता है। तेज के रूप को

तमोगुण भरित वायु जब खींच लेता है तब तेज वायु में लीन होता है। वायु के स्पर्श गुण को आकाश जब छीन लेता है तब वायु आकाश में लीन होता है। आकाश के शब्द गुण को अहंकारादि तत्व के द्वारा जब प्रलय मूर्ति भगवान खींच लेते है तब आकाश तत्व बुद्धि तत्व में लीन होता है।।13,14,15।।

उसी काल में तैजस अहंकार के कार्य करने वाले इन्द्रिय बुद्धि तत्वों में बुद्धि तेजस अहंकार में, वैकारिक अहंकार, कार्यरुप इन्द्रियाभिमानी देवताओं ये दोनों वैकारिक अहंकार में लीन होते हैं। इस प्रकार यह तीनों अहंकार अपने कार्य के साथ महत्तत्वाभिमानि ब्रह्मा में और ब्रह्मा सर्वत्र व्याप्त श्री हरि में प्रवेश करते हैं।।16।।

प्रपंच की सृष्टि, स्थिति लय को करने वाले, त्रिगुणों के नियामक भगवान की इच्छा शक्ति को और त्रिगुणात्मक जड़ प्रकृति को हम इस प्रकार विवरण किये हैं। हे राजा, आप और क्या जानना चाहते हैं ?।।17।।

भगवान की इच्छा को माया कहते हैं। यह माया त्रिगुणों का नियामक होने के कारण त्रिवर्ण कही जाती है। जड़ प्रकृति को भी माया कहते हैं। यह त्रिगुण का स्वरुप होने के कारण त्रिवर्ण कहलाता है।

प्रबुद्ध मुनि का उपदेश

विदेह राजा पूछता है - जो शास्त्र ज्ञान को नहीं पाता है वह भगवान की इस माया को, बंधक प्रकृति को पार नहीं कर सकता। ऐसे होते हुये पामर और मंद मति इसको कैसे आसानी से पार कर सकते हैं। इसके बारे में आप प्रबोधन कीजिए।।18।।

पिछले श्लोक में माया और उसको तैरने की भगवान की इच्छा के बारे में बताया गया है। पार करने का प्रकृति के बारे में भी बताया गया है। अब प्रश्न यह है कि इस माया को कैसे पार करना। भगवान की इच्छा को लोक व्यवहार में माया शब्द से बोलने का क्रम है। इस प्रकार शब्द निर्णय नाम के ग्रंथ में लिखा हुआ है।

प्रबुद्ध मुनि कहते हैं - दुःख का परिहार करते हुये, सुख प्राप्ति के उ-श्य से कर्म करते हुये स्त्री पुरुष साथ-साथ जीवन करते हुये विषयलोलुप होकर जीवन बिताने वाले लोगों को कर्म के विपरीत फल प्राप्त होता है। दुःख परिहार के लिए किया हुआ कर्म को दुःख फल मिलता है। सुख प्राप्ति के लिए किया हुआ कर्म के लिए सुख नहीं मिलता है। यही इस संसार में रहने का दुःख है। इसको देखकर आदमी को पाठ सीखना है।।19।।

गृहस्थ आश्रम में विषयासक्ति बढ़ती है यह अनर्थकारक है। किन्तु यह नियम सबके लिए लागू नहीं

होता। देवतादि लोग पत्नी के साथ ही मोक्ष पाते हैं। सनकादि योगी सन्यासी होकर मोक्ष पाते हैं। मनुष्योत्तमों में दोनों तरह के लोग हैं। अपनी योग्यता के अनुसार ही साधना करना है। इसमें व्यत्यास करने से सही फल नहीं मिलता। इस प्रकार संदृश्य नाम के ग्रंथ में बताया गया है।

धनादि सम्पत्ति आते समय कष्ट देकर आता है, जाते समय कष्टदायक ही है। उसको पाने में कष्ट रक्षण करने में भी कष्ट, इतना ही नही यही सम्पत्ति उसके मरण का कारण भी बन सकता हैं। घर, पुत्र, सम्पत्ति, मित्र, पशु ये सारे स्थिर नहीं हैं। आदमी मरते के समय उनको लेकर क्या सुख पाता है।।20।।

पुण्य कर्म से पाया हुआ स्वर्ग फल भी शाश्वत सुखदायक नहीं है। युद्धक्षेत्र में, पराक्रम में, बलिष्ठ के समाने, योद्धा हार जाता है। इसी प्रकार अपने समान न रहने वाले अपने से श्रेष्ठ देवताएँ नीचे ढकेल दिये तो परलोक में सुख पाने वाला भी गिर जाता है।।21।।

इसी कारण विषय से विरक्त होकर अपने उत्तम श्रेय साधन को जानने चाहने वाला को योग्य गुरु के पास जाकर उत्तम ज्ञान को पाना चाहिए। वह गुरु वेद विद्या में निष्णात होना चाहिए और भगवान का श्रेष्ठ भक्त होना चाहिए।।22।।

गुरु में अपने इष्ट देवता भगवान को देखते हुये गुरु की सेवा निषकपट रीति से करते हुये उनसे भगवत धर्मों को सीखना चाहिए। उन धर्मों के कारण भक्त को अपने को ही देने वाले भगवान श्री हरि संतुष्ट होकर भक्त के वशवर्ती होते हैं।।23।।

ज्ञान साधना के लिए अनुपयुक्त सारे विषय सुखों को त्यागते हुये उनमें अनासक्ति से रहने के तरीके को सीखना चाहिए। इसके लिए पहले सज्जनों के संग में रहना चाहिए। अपने से छोटे, अपने समान और अपने से श्रेष्ठ इस प्रकार तीन तरह के लोगों में रहते हुये उनमें दया, मैत्री और नम्रता को ठीक तरह से रूढ़ि करना चाहिए।।24।।

मनुष्योत्तमों का सहवास अवश्य करना चाहिए। ऋषियों से सहवास इनसे उत्तम है। देवताओं का सहवास उससे भी उत्तम है। मनुष्योत्तम के सहवास से उत्तम लोगों का संग मिलने का अवकाश निर्माण होता है। यदि उससे सज्जन संग नहीं होता तो उनको छोड़ देना चाहिए। यदि उनको छोड़ नहीं सकते तो उनको सुधारना चाहिए। सुधारने का प्रयत्न फल नहीं मिला तो उनको त्याग देना चाहिए। इससे दोष नहीं होता। देवताओं का और ऋषियों का सहवास अवश्य करना चाहिए नहीं तो उद्धार नहीं होता। देवता और ऋषियों को भी मनुष्यों के साथ सहवास करना चाहिए। सहवास करते हुये उनको तत्वज्ञान देना चाहिए। इससे उनको मोक्ष में आनन्द की वृद्धि होती है। सतीसुतों का सहवास शरीर स्वास्थ्य दृष्टि से ज्ञान साधन के लिए उपर्युक्त

होता है। इसके लिए सती-सुतों का सहवास करना चाहिए। ज्ञान साधन होने के बाद उनको छोड़ सकते हैं। देवता और ऋषियों का सहवास ज्ञान साधना के बाद भी नहीं छोड़ना चाहिए, छोड़े तो मोक्ष मिलने वाला नहीं। इस प्रकार गुरुड़ पुराण के भविष्यत पर्व में कहा गया है।

सभी जगह भगवान की महिमा को जान लेना, भगवान में एकान्तिक भक्ति करना। अब भगवान के आश्रय में रहना। अपने आश्रय बने हुये घर बार में अभिमान नहीं रखना, दुर्जनों से दूर रहना। कृष्णाजिन गोपी चन्दन इत्यादि का प्रयोग करना। दैवी कृपा से मिलने वाले वस्तुओं से तृप्ति पाना इत्यादि विषयों की रूढ़ि करना।।26।।

वेद, पंचरात्र, भारत आदि शास्त्र ग्रंथों में श्रद्धा रखना चाहिए। **अनिन्दां** संगीत, ज्योतिष्य आदि शास्त्रों की निन्दा नहीं करना चाहिए। उनसे लौकिक प्रयोजन नहीं लेना चाहिए। **निन्दां** वेद विरूद्ध आगम जो हैं उनका पूर्ण रुप से निराकरण करना चाहिए। मनोवाक् तथा कार्य को दण्डन करते हुये उनको भगवत परक अर्थ करना चाहिए। सत्य, शम, दम इनका अभ्यास करना चाहिए।।27।।

ज्योतिष्य, संगीत, वैद्य शास्त्र आदि अध्ययन ज्ञान साधना के लिए पोषक बनना चाहिए। किन्तु उनका उपयोग धन, कीर्ति की कामना के लिए नहीं करना चाहिए। भक्ति और शास्त्र ज्ञान के जो विरुद्ध है उसकी साधना नहीं करनी चाहिए। भक्ति शास्त्र के विरोधी रहने वाले नास्तिक दर्शनों से दूर रहना चाहिए। उनका खण्डन करना चाहिए।

अद्भुत कर्म को करने वाले श्री हरि के अवतार कर्म और गुण के बारे में श्रवण, कीर्तन और ध्यान करते हुये करने वाले योग, दान, तप, जप लोक सेवा इत्यादि सारे सत्यकार्यों को भगवान को ही अर्पित करना चाहिए। पत्नी, पुत्र, घर, पंचप्राण, इन्द्रिय इत्यादि इस जगत में अपने को जो प्यार लगता है उन सबको भगवान को ही अर्पित करना चाहिए।।28,29।।

इस प्रकार श्री हरि को स्वामी मानकर विश्वास रखते हुये प्रत्येक मानव के साथ स्नेह के साथ रहना चाहिए। ऐसे होते हुये देव ऋषियों में भक्ति करना इसके बारे में अलग से बोलने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। महात्माओं में देवाधिदेवताओं में अपने से उत्तम मनुष्यों में बड़े लोगों की सेवा करना सीख लेना चाहिए।।30।।

भगवद्भक्त मानवों में भक्ति करना है तो उनसे श्रेष्ठ देवताओं में भी भक्ति करना है ऐसे कहने की आवश्यकता नहीं रहती।

भगवान की पवित्र कीर्ति के बारे में भक्त जनों को परस्पर बोलना चाहिए। अन्य भक्तों के

साथ ही रहने में सुख संतोष पाना चाहिए। उनको छोड़कर अन्य किसी स्थान पर नहीं जाना चाहिए। इसका अभ्यास करना चाहिए।।31।।

इस प्रकार करते रहे तो सद्भक्तों के साथ मिलकर श्री हरि के बारे में चर्चा और हरि स्मरण करते रहे तो भक्ति ज्यादा होती है। शरीर में रोंगटे खड़े हो जाते हैं।।32।।

भक्त एक-एक बार हरि ध्यान करते हुये आनन्दबाष्प बहाते हैं, हँसते हैं, जोर से उद्गारव्यक्ता करते हैं। इस जगत की परवाह न करते हुये भगवान में ही अपना मन लगाकर भगवान की ही सेवा करते हुये अपनी प्रवृत्तियों को दूर रखते हुये, गाते हैं, नाचते हैं, भगवान के प्रिय काम करने में व्यस्त होते हैं। कभी-कभी एक कोने में आनन्द से हरि ध्यान में बैठ जाते हैं।।33।।

इस प्रकार भागवत धर्म को सीखकर उससे बढ़ती हुई भक्ति से नारायण की आराधना करने से इस दुस्तर बंधक प्रकृति को मूढ़ भी ठीक तरह से पार करता है।।34।।

पिप्पलायन मुनि का उपदेश

विदेह राजा कहता है - आप महा ब्रह्मज्ञानी हैं। परब्रह्म परमात्मा नारायण की महिमा को तथा वे ब्रह्मादि जीव से कैसे श्रेष्ठ हैं इसके बारे में हमें उपदेश दीजिए।।35।।

पिप्पलायन मुनि कहते हैं - हे राजा, इस जगत की सृष्टि स्थिति और लय के कारण भगवान श्री नारायण हैं। उनके लिए और कोई सृष्टिकर्ता नहीं है। वे जीव के स्वप्न, जागृति, और सुषुप्ति और मुक्ति में भी नियामक हैं। उनकी प्रेरणा से देह, इन्द्रिय, प्राण और मन अपने कार्य को चलाते हैं। वे ही सर्वोत्तम नारायण उनको ही परब्रह्म परमात्मा इस प्रकार जानना चाहिए।।36।।

भगवान को कोई माता-पिता नहीं है। कोई उनकी सृष्टि नहीं करते। वे जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति में इतना ही नहीं प्रलय और मुक्ति में भी वे जीव के नियामक है।

मन, वाक् , चक्षु, आत्म, प्राण, इन्द्रिय इनके क्रमशः अभिमानी रुद्र, सरस्वती, सूर्य, ब्रह्म, पंचप्राण, इन्द्रिय देवता ये सारे भगवान नारायण को पूर्ण रूप से समझ नहीं सकते किन्तु उन्हीं के अनुग्रह से अपनी योग्यतानुसार थोड़ा-थोड़ा जानते हैं। अग्नि, ज्वाला को उनके अभिमानी अग्नि पुत्र पूर्ण रूप से नहीं जान सकते। इस प्रकार कोई भी वेद के अध्ययन के बाद भी भगवान के अलौकिक गुणों को पूर्णरूप से समझ नहीं सकते क्योंकि वेदाभिमानिनी रमा देवी वेद में अलौकिक ज्ञान आनन्दादि स्वरुप श्री हरि को नेति-नेति इस प्रकार लौकिक ज्ञानानन्दादि गुणों को निषेध करते हुये केवल अलौकिक ज्ञानानन्द गुण के बारे में कहती हैं। किन्तु उसको भी स्पष्ट रुप

से अलौकिक गुण इतने ही हैं ऐसे नहीं बोल सकती। क्योंकि श्री हरि में अनंत गुण हैं। लक्ष्मी को भी मूल कारण बनने वाले श्री हरि में लक्ष्मी केवल लौकिक गुण निषेध करते हुये अलौकिक अनंत गुणों के बारे में कहती हैं।।37।।

अग्नि पुत्र अग्नि के बारे में पूर्ण ज्ञान नहीं रखते हैं। इसी प्रकार इन्द्रियाभिमानी देवता भगवान को स्वत: समझ नहीं सकते। किन्तु भगवान के ही अनुग्रह से थोड़ा बहुत समझ सकते हैं। वेदाभिमानिनी लक्ष्मी देवी वेद में कहे गए भगवान के आनन्द स्वरूप को ऐसा नही-ऐसा नही कहते हुये लोक विलक्षण कहती हैं लेकिन आनन्द के स्वरुप को स्पष्ट रुप से वर्णन नहीं करती क्योंकि उस आनन्द के समान अन्य आनन्द इस जगत में नहीं है। अपरोक्ष पाने के बाद ही वह आनन्द क्या है ? यह मालूम होता है। यह ब्रह्मतर्क का वाक्य है।

भगवान नारायण सृष्टि के आदि में भी हैं, सर्वोत्तम हैं। उनको सत्व, रजस, तमस नाम के गुणत्रय रूप हैं, वे ही प्रकृति हैं, वायु अहंकार रूप जीव हैं, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय विषय पदार्थों के रुप में और उससे मिलने वाले सुख-दुख फल के रूप में दिखने वाला बहुत विचित्र शक्ति वाला ब्रह्म वहीं हैं, सारे कार्य कारण वस्तु रूप से अविद्या से वही हमको दिखता है। इस प्रकार अज्ञानी लोग उन श्रुतियों को गलत रीति से समझ कर गलत रीति से तर्क करते हैं। किन्तु ब्रह्म इस कार्य कारण रूप जड़ से अत्यन्त विलक्षण और अलग हैं। वे सर्व नियामक हैं, सर्व शक्ति वाले ब्रह्म अज्ञानियों को उनके स्वरुप और योग्यतानुसार सर्व वस्तु के स्वरूप में दिखते हैं। इसी कारण अनेक वाद-प्रतिवाद प्रचलित हैं।।38।।

प्रकृति महतत्व, अहंकार उनके अभिमानी, ज्ञान, कर्मेन्द्रिय, विषय पदार्थ, सुख-दु:ख यह सारा ब्रह्म है इस प्रकार अज्ञानी लोग बोलते हैं। वस्तुत: भगवान इन सबके नियामक हैं। उन-उन वस्तु में उन-उन रूप में वे अज्ञानियों को दिखते हैं। मूर्त-अमूर्त सारे वस्तु ब्रह्म का रूप है। इस प्रकार शास्त्र कहते हैं क्योंकि ब्रह्म ही उनको रूप देते हैं। उनका निर्माण करते हैं और रक्षण करते हैं। वे सारे उनके अधीन हैं, नही तो अल्पशक्ति वाले ये वस्तु भगवान का स्वरूप कैसे बनते हैं। यह बात तंत्र भागवत में आता है। जीव मेरे से जीवित रहते हैं। इसी कारण वेद मुझको जीव कहते हैं। इसको ठीक तरह से जान लेना चाहिए। व्यर्थ में मुझको जीव नहीं कहना चाहिए। यह मोक्ष धर्म का वचन है।

भगवान कार्य कारण वस्तुरूप नहीं हैं क्योंकि वह कभी जन्म लेते नहीं, मरते नहीं। वे बड़े नहीं होते उनको क्षय नहीं है। अवतार में, युद्ध करते समय भी उनके शरीर में शत्रुओं के आयुध से उनको मार नहीं पड़ता। भगवान सारे वस्तु में अन्तर्गत होते हुये भी अविकारी हैं। उनको नाश नहीं है क्योंकि उनको प्रकृति बंधन नहीं है। भगवान शुद्ध ज्ञानानन्द स्वरूप हैं। मुख्य प्राण जैसे उन इन्द्रियों में रहते हुये दर्शन-स्पर्शन इत्यादि से शक्ति प्रद होकर अनेक रूप से जैसे दिखते हैं वैसे

भगवान अग्नि, सूर्य आदि समस्त वस्तुओं में शक्ति प्रद होकर रहते हुये अनेक रूपों में दिखते हैं।।39।।

अण्डज, जरायुज, उद्भिज, स्वेदज शरीरों को जीव पहले प्रवेश करते समय और शरीर से बाहर आते समय मुख्यप्राण में प्रवेश करता है। मुख्यप्राण निर्विकार होकर हरि में प्रवेश करता है। इस प्रकार हरि के साथ प्राण के साथ जीव, अण्डज आदि उन शरीरों में प्रवेश करता है। ज्ञानेन्द्रिय, मन निष्क्रिय होकर देहाभिमान भी न रहने वाला सुषुप्ति अवस्था को जाते समय जीव प्राण में प्रवेश करते हुये उनके साथ हृदय में रहने वाले निर्विकार श्री हरि में प्रवेश करता है। हरि को छोड़कर जीव को सुषुप्ति अवस्था नहीं है। हरि की प्रेरणा के बिना जागृत हुआ जीव को इतना समय सुख से, आनन्द से सोया था यह स्मरण भी नहीं रहता।।40।।

पेशी शब्द को जरायु, गर्भकोश, सोना, मंगलकर इत्यादि अनेक अर्थ है। यहाँ पेशी का अर्थ गर्भकोश से जन्म लेने वाले जरायुज इस प्रकार अर्थ करना चाहिए। अवनिस्थित इसका अर्थ भूमि में जब जलांश ज्यादा होता है तब दिखने वाले चींटी इत्यादि-कूटस्थ आस इस शब्द का अर्थ सुप्त जीव में निर्विकार रूप से रहने वाला भगवान इस प्रकार अर्थ होता है। जीव-मरण के समय में, एक देह से दूसरे देह को जाते समय मुख्य प्राण के शरीर में प्रवेश करता है। मुख्यप्राण भगवान के शरीर में प्रवेश करता है। सुषुप्ति में भी इसी प्रकार चलता है। अन्य तत्वाभिमानी देवताएँ मुख्य प्राण के अधीन में रहते हुये थोड़ी सीं नींद करते रहते है। इन्द्रिय अपनी क्रियाओं को स्थगित करते है। इन्द्रियाभिमानी देवता मानव होकर जन्म लेते हुये भी उनको थोड़ा सा अज्ञान रहता है। इन सारी अवस्थाओं के नियमन करने वाले श्री हरि हैं। श्री हरि नहीं रहे तो मरण, निद्रा, स्वप्न और जागृति कुछ भी नहीं रहता। निद्रा, स्मरण ये सारे श्री हरि के कारण ही है। इस प्रकार हरिवंश में कहा गया है।

कमलनाभ के चरणोपासन से प्रतिदिन बढ़ने वाली परम भक्ति से अन्तःकरण में रहने वाली त्रिगुण कर्मजन्य कश्मल नाश होने के बाद शुद्ध अन्तःकरण में भगवत तत्व का साक्षात्कार होता है। मल रहित आँख से सूर्य प्रकाश जैसे देखा जाता है वैसे।।41।।

आविर्होत्र मुनि का उपदेश

राजा पूछता है - हे मुनि, हमें कर्मयोग के स्वरूप का प्रबोधन करे। कर्मानुष्ठान करने से मानव शुद्ध अन्तःकरण वाला होकर कर्म बन्धन से छुटकर परम मुक्ति को कैसे पाता है? इसके बारे में आप कहिए ।।42।।

मैं इस प्रश्न को पहले अपने पिताजी इक्ष्वाकु महाराज के समक्ष ब्रह्मा जी के मानस पुत्र

सनकादि ऋषि से पूछा था। वे इसका उत्तर नहीं दिये, वे क्यों नहीं दिये इसके बारे में भी बोले।।43।।

आविर्होत्र मुनि बोलते हैं - विहित कर्म करो, निषिद्ध कर्म को छोड़ो यह वेद पुरुष का आदेश है। यह लौकिक विषय नहीं है। लौकिक लोगों को इसका अर्थ होता नही। वेद भी मुख्य रूप से भगवान के बारे में कहते हैं। इसके लिए वेद विरोध न हो इस प्रकार भगवान के अनुग्रह के लिए उनके लिए इष्ट विहित कर्म करो। उनके लिए इष्ट नहीं ऐसे निषिद्ध कर्म को त्याग दो। इस प्रकार वेद आदेश करते रहता है। भगवान को किस तरह का कर्म इष्ट है और जो इष्ट नहीं है इन दोनों का ज्ञान भगवान के अनुग्रह के बिना ज्ञानियों के लिए भी नहीं होता है। कर्म के बारे में ज्ञानी भी मोह वश होते हैं। इसको समझाने के लिए सनकादि मुनि ठीक तरह से जानते हुये तुमको उत्तर नहीं दिये।।44।।

सनकादि मुनि कर्मयोग रहस्य को ठीक तरह से जानते थे। तो भी ज्ञानी को भी उसके बारे में समझना बहुत कष्ट है। कर्म का ज्ञान बहुत निगूढ़ है। इसको समझाने के लिए वे निमि राजा को उसके बारे में नही कहे। यह तंत्र भागवत का वाक्य है। वेद ईश्वरात्म यानी भगवत स्वरूप नहीं हैं भगवान के बारे में बताते हैं। इस प्रकार अर्थ करना चाहिए।

भगवान के प्यार को पाने के उ-श्य से कर्म करने को वेद विधि बनाता है। यह प्रथम दृष्ट्या दिखता नही, वह परोक्ष है। ऊपर देखने से यह कर्म स्वर्गादि फल को पाने के उ-श्य से विधि किया हुआ है ऐसा लगता है। वस्तुतः अज्ञानी लोग निष्काम कर्म से अन्तःकरण शुद्धि पाकर दुष्कर्म से छुटकारा पाने के लिए ही भगवान की प्रीति पाने के लिए वेद कर्म को विधि बनाता है। कर्म करने से कर्मबन्ध निवृत्ति कैसे होती है, ऐसे पूछे तो फल कामना से किया हुआ कर्म बन्धक होता है, वही कर्म को भगवान के प्यार के लिए किया तो मोचक होता है। पारद को ऐसे ही सेवन से वह मारक विष होता है किन्तु उसी से रसौषधि करने के बाद सेवन करे तो अमृत होता है।।45।।

वेदोक्त कर्म भगवान के प्रीति के लिए है। इसको न समझते हुये, ना = नर इन्द्रिय निग्रह के बिना विषयों की इच्छा करते हुये जो कर्म करता है उसको विकर्म कहते हैं, वह अधर्म होता है। निषिद्ध धर्म विरुद्ध होता है। इसी कारण निषिद्ध धर्माचरण करने वाला बहुत दुःख भागी होता है।।46।।

उसी कर्म को फल कामना के बिना करने के बाद उसको भगवान को समर्पित करे तो दुःख का कारण नहीं बनता है। कर्म से जो साध्य नहीं है, ऐसे मोक्ष फल को आदमी कर्म से ही पाता है।

स्वर्ग कामो यजेत इस वाक्य में स्वर्ग का फल मिलता है। ऐसे बोलने से वही कर्म मुक्ति योग्य भी बनता है। अज्ञान से कर्म विमुख हुए मानव को कारुण्य से निष्काम कर्म मार्ग में लाने के लिए कर्माचरण में रुचि उत्पन्न करने के उ-ेश्य से सकाम कर्म किया जाता है। इसका अर्थ केवल स्वर्ग फल पाने का नहीं है। वही कर्म को निष्काम रीति से करने से मोक्ष मिलता है।।47।।

नाचरेत इसको न आचरेत् इस प्रकार सन्धि-विग्रह करना है। अज्ञानी नर कर्म का अर्पण भगवान को करना है यह न जानते हुये कर्माचरण करे तो वह दुष्कर्म होने के कारण नरक भागी होता है। कर्मतंत्र नाम के ग्रंथ में ऐसा लिखा है कि कर्म जो करता है उस मानव को ये दस-दोष नहीं करना चाहिए। (1) बड़े लोगों में तारतम्य के अनुसार भक्ति नहीं करना। (2) दुर्जनों में भक्ति, स्नेह आदर करना। (3) बड़ों के हित साधना करते हुये अपने हित के लिए काम करना। (4) बड़ों में तारतम्य के विरुद्ध भक्ति करना। (5) बड़ों को ज्येष्ठ न मानते हुये अपने समान मानना। (6) स्वार्थ साधना के उ-ेश्य से कपट रीति से बड़ों में आदर दिखाना। (7) अपने को बड़ों के समान दिखाना (8) अपने को बड़ों से श्रेष्ठ मानना। (9) बड़ो के काम को करने की सामर्थ्य होते हुये भी अपने असामर्थ्य को दिखाना। (10) शक्ति होते हुये भी अशक्त के समान व्यवहार करना।

भगवान के अनुग्रह से अहंकार ममकार नाम के मन के मलिन को जल्दी धो लेने की चाह वाले के लिए भगवान केशव की वेद और पंचरात्र में बताये गये तरीके से आराधना करना है। यही सही अर्थ में कर्मयोग है।।48।।

प्रथमतः जल्दबाजी न करते हुये बाद में पश्चात्ताप करने के लिए अवकाश न हो ऐसे ठीक तरह से परीक्षा करते हुये गुरु शिष्य को तथा शिष्य गुरु को ग्रहण करना चाहिए। गुरूपदिष्ट मार्ग से शिष्य अपनी इच्छा के अनुसार पुरुषोत्तम के, रूप की आराधना करनी चाहिए।।49।।

गुरु शिष्य को परीक्षा कर योग्य को उपदेश देना चाहिए। अयोग्य को उपदेश दिये तो प्रायश्चित्त करना पड़ता है। शिष्य भी योग्य गुरु परीक्षा करते हुये विष्णु भक्त गुरू का ही शिष्यत्व वहन करना चाहिए। नही तो अभक्त से मिथ्याज्ञान का उपदेश पाकर नरक भागी होता है। इस प्रकार कर्मतंत्र नाम के ग्रंथ में कहा गया है।

स्नान करके शुद्ध होकर भगवान के सामने बैठकर प्राणायाम आदि विधि करते हुये शरीर को शुद्ध करना चाहिए। मंत्राक्षरों से शरीर में अंगन्यास करते हुये अपनी रक्षा करने के बाद श्री हरि की आराधना करनी चाहिए।।50।।

प्रतिमा, सालिग्राम इनमें अथवा हृदय में अपने जो पूजा साधन मिला उन्हीं से हरि की

आराधना कर सकते हैं। पत्थर, मिट्टी, सोना, चाँदी से बना हुआ विग्रह में अथवा जमीन पर खींचा हुआ चक्राब्ज मण्डल इत्यादि चित्रों में अथवा हृदय में रूपित किया हुआ वासनामय मूर्ति में भगवान की आराधना कर सकते हैं। आराधना करने के पहले आसन को प्रोक्षण करते हुये शुद्ध करना चाहिए।।51।।

द्रव्यलिंग का अर्थ पत्थर, लोहा, लकड़ी से बनाया हुआ विग्रह होते हैं। आत्म लिंग कहे तो मन में कल्पित मूर्ति होती है। क्षिति लिंग माने स्थण्डिल में लिखा हुआ चक्राब्जादि मण्डल होते हैं। इस प्रकार कर्मतंत्र नाम के ग्रंथ में लिखा है।

पाद्य, आचमन इत्यादि षोडश उपचार द्रव्यों को सिद्ध करते हुये प्रतिमा में श्री हरि का आवाहन करते हुये एकाग्रता से प्रतिमा में हृदयादि अंगन्यास, तत्वन्यास, मातृकान्यास, मूलमंत्र से अथवा इष्ट देवता मंत्र से और पुरुष सूक्त मंत्र से करते हुये षोडश उपचार से आराधना करनी चाहिए।।52।।

अंग मंत्राक्षरा वाच्य भगवान के मूर्ति को **उपांग** पीठ देवता आवरण इत्यादि को पार्षद, जय, विजयादि परिवार देवताओं से युक्त अपने इष्ट भगवन मूर्ति को उनके मंत्रों से पाद्य, अर्घ, आचमन, मधुपर्क, पुनराचमन, स्नान, वस्त्र, अलंकार, गंध, रत्नमाला, अक्षत से फूल, तुलसी, धूप-दीप, नैवेद्य, सांगता पूर्वक अंग वैकल्य न हो इस प्रकार ठीक तरह से विधि पूर्वक पूजा करते हुये स्तोत्रों से स्तुति करते हुये दण्डवत् नमस्कार करना चाहिए।।53,54।।

अपने को भगवान का दास मानते हुये भगवान की मूर्ति की पूजा करनी चाहिए। पूजा के बाद भगवान श्री हरि को स्वस्थान में अपने हृदय में उद्वासन करना चाहिए। निर्माल्य को सिर के ऊपर धारण करना चाहिए।।55।।

आत्मानं तन्मयं ध्यायेत् इसका अर्थ अपने को भगवान का रूप मानकर ध्यान करना ऐसा अर्थ नहीं करना। तन्मयता इसका अर्थ भगवान के अधीन, भगवान के दास इस प्रकार मानते हुये ध्यान करना चाहिए। यह कर्मतंत्र ग्रंथ का वाक्य है। स्वमात्मानं अर्चयेत् इसका अर्थ भी स्व आत्म = अपने को भक्त मानना है। यह बाक्य शब्दनिर्णय नाम के ग्रंथ में है।

स्वयं को अपना मानते हुये स्वतंत्र होकर अपने में व्याप्त होकर रहने वाले यज्ञेश्वर तथा उसी प्रकार अग्नि, सूर्य, जल में और अपने हृदय में रहने वाले भगवान की आराधना करने वाला जल्दी मुक्ति को पाता है।।56।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - चौथा

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

द्रुमिल मुनि का उपदेश

विदेह राजा कहता है - श्री हरि अपनी इच्छा से व्यक्त करने वाले जिन अवतारों में कार्य किये हैं, कर रहे हैं अथवा आगे करने वाले हैं इसके बारे में हमें उपदेश दीजिए।।1।।

द्रुमिल मुनि कहते हैं - भगवान के अनन्त गुण, कर्म, अवतार अनन्त होते हैं। उनको क्रमबद्ध होकर गिनते हुये इतना है, इस प्रकार है ऐसे बोल नहीं सकते। उस रीति से बोलने का प्रयास करने वाला बुद्धि न रहने वाला बालक बन जाता है। कोई इस जमीन पर रहने वाले धूलि कणों की गिनती कर सकता है क्या ? वे अनंत हैं- तपोबल से कोई गिनने लगा तो भी वह पूर्ण होने वाला नहीं है, यह तो प्रसिद्ध है। ऐसे अनन्त धूलि कणों से भी ज्यादा अनन्त हैं भगवान के अनन्त गुण, कर्म, अवतार। इस प्रकार सारे चेतनों के आश्रय श्री हरि के गुण कर्मादि को कोई सर्वथा गिन नहीं सकता।।2।।

आदिदेव नारायण प्रथमतः अपने विराजमान शरीर, रूप, महत्त, अहंकार इत्यादि भूतों की सृष्टि करते हुये पुरुष नामक रूप से अवतार लिये। उसके बाद उन्हीं महदादि तत्वों से विराजमान ब्रह्माण्ड नाम के पुर का निर्माण करते हुये उनमें प्रवेश करते समय और एक बार पुरुष नाम से ज्ञात हुये। ब्रह्माण्ड के अन्दर जीव शरीर नाम के पुर का निर्माण करते हुये उसमें प्रवेश करते समय पुनः एक बार पुरुष नाम धारण किये। इस प्रकार भगवान के प्रथम रूप को पुरुषत्रय मानते हैं।।3।।

विष्णु का पुरुष रूप तीन है। महत्तत्व को सृष्टि करते हुये उसमें प्रवेश किया हुआ प्रथम रूप। बाद में ब्रह्माण्ड को सृष्ट करते हुये उसमें प्रवेश किया हुआ द्वितीय रूप और ब्रह्माण्ड में रहने वाले जीवों की सृष्टि करते हुये उनमें प्रवेश किया हुआ तीसरा रूप इस प्रकार पुरुष का तीन रूप है। यह महात्म्य नाम के ग्रंथ में है।

श्री हरि के ब्रह्माण्ड के अन्दर वाले पुरुष रूप के अवयव तीनों लोक के आधार बन गये हैं। जीवों के हृदय में रहने वाला पुरुष रूप के ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रियों से जीव के ज्ञान कर्मेन्द्रियों को प्रेरणा मिलती है। पुरुष के ज्ञान रूप से जीव के इन्द्रियों में रहने के कारण उनमें श्रवणादि, ज्ञान

होता है। इतना ही नही बल, ओजस और प्रवृत्ति भी होती है। सत्वादि गुणों से स्थिति, उत्पत्ति लय को करने से उन्हीं को आदि कर्ता कहते हैं।।4।।

इस जगत के सृष्टि करने के लिए रजो गुण से ब्रह्म को लय करने के लिए तमोगुण से रुद्र को सृष्टि करने वाले श्री हरि ब्रह्म के अन्तर्यामि होते हुये ब्रह्म कहलाते हैं, रुद्र के अन्तर्यामि होकर रुद्र कहलाते हैं। इस विश्व के स्थिति के लिए यज्ञपति भगवान ब्रह्माण्ड और वर्णाश्रम धर्मों का रक्षक बनकर विष्णु नाम से कहलाते हैं। इस रीति से आदि पुरुष श्रीहरि तीन रूपों से तीन कार्यों को करते हुये पुरुष नामक भी हैं। एक ही भगवान काल-काल में तीनों कार्यों को अकेले ही करते रहते हैं।।5।।

ब्रह्मा में रहने वाला ब्रह्म रूप से सृष्टि करते हुये, रुद्र में रहने वाला रुद्र रूप से लय को करते हुये प्रत्येक रहने वाला अपने विष्णु रूप से पालन भी श्री हरि करते हैं। यह ब्रह्म पुराण का वाक्य है।

धर्म प्रजापति से दक्ष प्रजापति की पुत्री मूर्ति देवी से श्री हरि नर महर्षि के साथ स्वरूप से नारायण महर्षि होकर अवतार लिये। मोक्ष साधन रूप निष्काम कर्म को इस जगत के लिए प्रबोधन किये। लोक शिक्षण के लिए उसका अनुष्ठान करके दिखाये। स्व विषय ज्ञान स्वरूप, शक्ति स्वरूप यह भगवान प्रपंच के स्थिति कार्य के लिए अवतार कार्य पूर्ण होने के बाद भी लोकानुग्रह की इच्छा से आज भी बदरिकाश्रम में महा-महामुनियों से पाद सेवा ग्रहण करते हुये वास करते हैं।।6।।

स्वतपः श्री हरि **स्व** अपने बारे में **तपः** ज्ञान रूप हैं और प्रभाव यानि प्रभुत्व सम्पन्न हैं। इसका पूर्ण अर्थ भगवान श्री हरि प्रभुत्व सम्पन्न सामर्थ्यशाली स्वरूप हैं। इस प्रकार अर्थ होता है।

यह नारायण महर्षि तप करते हुये हमारे स्वर्ग साम्राज्य को छीनना चाहता है। इस प्रकार असुरावेश के समय में विचार करते हुये देवेन्द्र मन्मथ को आदेश दिये। इन्द्र के आदेश के अनुसार मन्मथ नारायण मुनि की महिमा को न जानते हुये तप को विघ्न करने बदरिकाश्रम को चलता है। अप्सराओं के साथ वसंत मास और मंद मारुत के साथ बदरिकाश्रम जाकर स्त्रियों को तिरछे नजर और फूलों के बाणों से नारायण मुनि को मारता है ।।7।।

मुख्य प्राण को छोड़कर अन्य देवताओं को कभी-कभी असुरावेश होता है। उस असुरा वेश से ज्ञान, स्वरूप उनको भी थोड़े समय के लिए अज्ञान आना सहज है। यह बात देव तत्व नाम के ग्रंथ में है। सारे देवताओं में असुर लोग प्रवेश करते हुये उनके मन को पाप से कलुषित किये। वे मुख्यप्राण में प्रवेश चाहे। किन्तु मिट्टी के ढेले से पत्थर को मारे तो जैसे ढेले ही मिट्टी बन जाता है वैसे ही असुर स्वयं नष्ट हो गये। इस प्रकार श्रुतियों में

कहा गया है।

देवेन्द्र के इस कार्य को समझ कर आदिदेव महामुनि नारायण को आश्चर्य नहीं हुआ, वे जोर से हँसे उस हँसी से मन्मथ और उसका परिवार डर के मारे काँप गये। मुनि कहते हैं - हे शक्तिशाली मन्मथ, हे मारुत, हे देवांगनाओं डरने की कोई बात नहीं है। तुम लोग हमारे अतिथि हो- अतिथि सत्कार को स्वीकार करते हुये हमारे आश्रम में रहो।।8।।

इस प्रकार देवाधिदेव नारायण मुनि कामदेव, नरदेव सबको अभय दिये। उसको सुनकर देवताओं ने लज्जा से अवनत मुख होकर भगवान की कारुण्य को चाहते हुये स्तुति किये। हे प्रभु, आपके पाद में जो शरण आते हैं वे स्वरूपानन्द भरित होकर धीर बन जाते हैं। भगवान, आप हमारे आक्रमण से किंचित भी विचलित नहीं हुये इसमें आश्चर्य कुछ नहीं है।।9।।

आपकी आराधना करने वाले को यदि विघ्न किये तो वे अपनी स्वशक्ति से उसको पार करते हुये आपके परम पद को कैसे पाते हैं ? किन्तु यज्ञ से आपकी पूजा करने वाले को जो विघ्न आता है आपसे वह विघ्न चला जाता है। किया हुआ पूजा ठीक तरह से आपको ही मिल जाता है। आप नहीं चाहे तो वह पूजा असुरों को जाता है। इसी के लिए केवल आप ही यज्ञ रक्षक हैं।।10।।

पूजा को भगवान को अर्पण करने का संकल्प करें तो उनको आने वाले विघ्नों को श्रीहरि स्वयं निवारण करते हैं। उससे संग रूप पूजा पूर्ण होकर भगवान उसको स्वीकार करते हैं। वह पूजा असुरों के लिए नहीं मिलती। इस प्रकार कामादि देवता ने बदरीनारायण मुनि की स्तुति करते है।

भगवान की आराधना करने वाले भक्त को देवताऐं परीक्षार्थ विघ्न करते हैं। वे पूर्ण रुप से विघ्न नहीं करते। कभी असुरावेश से विघ्न करें तो भी श्री हरि उनको दूर करते हैं। इससे सारे विघ्न शान्ति के लिए श्री हरि की प्रार्थना करनी चाहिए। वह प्रार्थना इस प्रकार है -

शुक्लांबरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशांतये ।।

भगवान, आपके अनुग्रह को न पाये हुये कई बुद्धिहीन लोग भूख और प्यास को जिह्वा और स्त्री चापल्य को बड़ा सागर के समान रहने वाले उनको पार करने में अशक्त होते हुये भी प्रयत्न पूर्वक पार करके अन्त में निष्फल रूप क्रोध वश होकर केवल गोपाद मात्र क्रोध नाम के जल में डूब जाते हैं। वे अपने कठिन तप के प्रभाव को व्यर्थ से क्रोध के कारण खो देते हैं। आप क्रोध को लीला से जीत चुके हैं।।11।।

इस प्रकार देवतागण स्तुति करने लगे। भगवान अपने पास अद्भुत रूप राशि वाली सुन्दर स्त्रियाँ सेवा में लगी है। वे उनकी आराधना कर रही हैं इसको उनको दिखाये।।12।।

भगवान श्री हरि के दासगण देवतायें लक्ष्मी के समान रूप लावण्य वाली स्त्रियों को देखकर उनकी प्रभा से हतप्रभ हो गये। उनके सौंदर्य से भाव विभोर हो गये।।13।।

प्रणाम करने वाले उन देवताओं को देव-देवेश भगवान हँसते हुये बोले - इन सुन्दरीगण से स्वर्ग को अलंकार प्राय बनने वाली एक सुन्दरी को आप लेकर चलिये।।14।।

भगवान की इस बात को आज्ञा मानते हुये सिर में धारण करते हुये दण्डवत् प्रणाम करने के बाद वह देवतागण उन अप्सराओं में श्रेष्ठ उर्वशी को साथ लेकर स्वर्ग को चले गये। अन्य स्त्रियाँ भी साक्षात् लक्ष्मी रूप वाली थीं।।15।।

वह देवतागण इन्द्र सभा में जाकर इन्द्र को नमन करते हुये इन्द्र के साथ सारे लोग सुनें इतने उच्च स्वर में नारायण महर्षि की शक्ति की स्तुति किये। इसको सुनकर इन्द्र को आश्चर्य हुआ। वह मन में घबड़ा गया।।16।।

अच्युत नाम के विष्णु जगत कल्याण के लिए अपने अंश से और अनेक अवतार लिये। हंस, दत्तात्रेय, सनतकुमार, हमारे पिता भगवान ऋषभ देव ये सारे भगवान के अवतार हैं। वे तत्वज्ञान को उपदेश दिये। हयग्रीव के अवतार में मधु नामक दैत्य को संहार करते हुये उससे अपहृत वेद को लाकर वापस ब्रह्मा जी को दे दिये।।17।।

सनकादि ऋषियों में एक सनतकुमार काम के अवतार हैं। वह सन्यासी हैं, सनतकुमार नाम के भगवान का अवतार अलग है। यह सनतकुमार ब्रह्मचारी है। यह ब्रह्मचारी सनत कुमार यति सनतकुमार को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिये। यह बात स्कन्द पुराण में आती है। प्रकाश संहिता में लिखा है कि विष्णु के सनतकुमार रूप से उपदेश पाया हुआ सनतकुमार इत्यादि योगेश्वर उत्तम ज्ञान को पायें।

चाक्षुष मन्वंतर के अन्तिम समय में प्रलयकाल में भगवान मत्स्य रूप से मछली के रूप में अवतार लेते हुये वैवस्वत मनवन्तर मे मनु का, पृथ्वी का और ऋषियो का रक्षण किये। वराह अवतार में समुद्र जल से भूमि को उठाकर लाते समय हिरण्याक्ष नाम के राक्षस संहार किये। अमृत के लिए क्षीर समुद्र का मंथन करते समय पीठ के ऊपर मंदर पर्वत को धारण किये। करिराज अपने कष्ट के समय में प्रार्थना किया तो तापस रूप का अवतार करते हुये मगरमच्छ के मुँह से उसका विमोचन किये।।18।।

संसार सागर में गिरे हुए संग रहित मुनियों ने जब प्रार्थना किया तब वेद व्यास के अवतार में उनको कर्म बन्धन से छुडवा दिये। वृत्र वध के कारण ब्रह्महत्या पाप में डूबे हुये देवेन्द्र को नरसिंह रूप के स्मरण मात्र से उनको पाप मुक्त किये। हिरण्यकश्यप के घर में बंधित अनाथ अप्सराओं को नरसिंह भगवान मुक्त किये। सज्जनों को अभय देने के लिए असुर श्रेष्ठ हिरण्यकश्यप का वध किये।।19।।

ऋषियो ने भगवान की प्रार्थना करते हुये कहा - **वयः सुपर्णा** यह श्रुतियों में भी आता है। श्री हरि व्यासावतार में उनको दुःख से पार किये। उसको श्रुति कहती है- **सुपर्णा ऋषयो व्यासम्।** यह बात व्यासतंत्र वचन में स्पष्ट लिखा गया है। इन्द्र को भगवान वृत्र हत्या पाप से विमोचन किये हैं और हिरण्यकश्यप के बंधन में रहने वाली अप्सराओं को मुक्त करने की कथा भयभंजन नामक ग्रंथ में उक्त है।

उपेन्द्र अवतार श्रीहरि प्रत्येक मनवंतर में देवासुरों का युद्ध जब होता है उसमें देवताओं के लिए देवतापक्ष में रहकर महादैत्यों को नाश करते हुये जगत्रयों का पालन किये। वामन होकर अवतार लेकर भूमि का दान लेने का बहाना करते हुये बलि के भू-भाग को देवताओं को दे दिये।।20।।

अन्य मन्वंतरों में भगवान सत्यसेन, उपेन्द्र इत्यादि अवतार करके असुरों को नष्ट करते हैं। वैवस्वत मनवंतर में वामन नाम के उपेन्द्र अवतार लेकर बलि का पराभव किये। यह वामन पुराण की बात है।

कार्तिवीर्य के वंश का नाश करने के लिए भृगु कुल में भगवान अग्नि के समान अवतार लिये। इक्कीस बार भू-प्रदक्षिण करते हुये दुष्ट क्षत्रियों का नाश किये। सीता पति श्री रामचन्द्र होकर समुद्र में सेतुनिर्माण करते हुये रावण का संहार करके लंका पर जीत हासिल किये, अपार कीर्ति पाये।।21।।

भू-भार का हरण करने के लिए जनन-रहित श्री हरि यदुकुल में कृष्ण होकर जन्म लिये। देवताओं के लिए भी अशक्य कार्यों को करते हैं। बुद्ध होकर अवतार करते हुये यज्ञ करने के लिए अयोग्य होते हुये भी यज्ञ करने वाले असुरों को बौद्ध वाद से मोहित करते हैं। कलियुग के अंत में कल्की होकर अवतार लेकर शूद्र राजा का संहार करते हैं।।22।।

अपार कीर्तिशाली जगन्नाथ श्री हरि इस प्रकार अनेक अवतार लेते हुये लीला किये। हे राजा, भगवान के अवतार अनंत हैं, ज्ञानी लोग इसका वर्णन करते हैं। हम इसके बारे में ज्यादा क्या कह सकते हैं ? ।।23।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में चौथा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - पाँच

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

चमस मुनि का उपदेश

विदेह राजा कहता है - हे भगवान के तत्व को अति श्रेष्ठ रीति से जानने वाले मुनि जी, इन्द्रिय निग्रह न करने वाले, विषय की आशाओं को पूर्ण भी न करने वाले प्रायः भगवान श्री हरि की पूजा अर्चन, वेदोक्त यज्ञ इत्यादि को न करने वाले, इन सबकी क्या गति होती है? इसके बारे में उपदेश दीजिए।।1।।

चमस मुनि कहते हैं -परम पुरुष भगवान नारायण के मुँह, बाहू, ऊरु और पाद से क्रमानुसार शम, दम आदि गुणों से भिन्न-भिन्न किन्तु ब्रह्मचार्यादि युक्त चार आश्रम और ब्राह्मण आदि चार वर्ण उत्पन्न हुये।।2।।

उत्पन्न हुये इन चार वर्ण-आश्रमों में जो अपने के लिए मुख्य रूप से जन्म देने वाले भगवान श्री हरि की उपासना नहीं करते है, तिरस्कार करते हैं, वे ब्रह्मादि देवताओं से भी श्रेष्ठ, सर्वोत्तम षड्गुण पूर्ण, अपने को जन्म दाता श्री हरि के वैकुण्ठ को न पाते हुये च्युत होकर अधःपतन पाते हैं।।3।।

हरि-कथा श्रवण करने से तथा हरि नामसंकीर्तन करने के केवल इसी की पात्र होने वाली स्त्री, शूद्र इत्यादि लोग श्रवण कीर्तन से भी कई दूर रहें तो आप लोग का उनको अनुकम्पा से देखना चाहिए।।4।।

किन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्णों में, वेद जानने के लिए योग्य जन्म पाने के बाद भी हरि पाद भजन के मुख्य अधिकारी होते हुये भी वेद को न पढ़ने वाले अथवा वेद के अर्थ को न समझने वाले यदि उसको समझने का प्रयास नहीं करते हैं तो वे अनुकम्पा के योग्य नहीं बनते।।5।।

उन्हे अपने कर्मों को भगवान की प्रीति पाने के लिए करना चाहिए। इस प्रकार बोलने वाला

वेद के रहस्य को समझते नहीं। जो समझते हैं उनसे पूछकर समझने का प्रयास करते नहीं। ऐसे मूर्ख लोग अपने को पण्डित मानते हैं। काम्य कर्म को ही करते रहते हैं। उससे क्या फल है इस प्रकार पूछने वाले को असंगत रुप से कुछ उत्तर देते हैं। **अक्षय्यं ह वै** इस प्रकार मंत्र बोलते हुये मधुर-मधुर बातों से स्वयं मोहित होकर हरि भक्ति रहित काम्य कर्म के आचरण में ही उत्सुक रहते हैं।।6।।

फलासक्ति के साथ पाप बनने वाले पशु हिंसा नाम के घोर संकल्प करते हैं। विषय लम्पट ये लोग विषय भोग के लिए बाधा करने वाले के ऊपर क्रोध करते हैं। दाम्भिक दुरभिमानी पापी यह लोग हरि प्रिय भक्तों की चेष्टा करते हैं।।7।।

श्री हरि को छोड़कर केवल लक्ष्मी की उपासना करते हैं। उनके घर में भगवान की पूजा नही होती। केवल स्त्री का भोग रहता है। ऐसे घरों में वे परस्पर केवल धन-सम्पादन करने वाली कौशल्य के बारे में स्तुति करते हैं, यज्ञ करते हैं किन्तु अन्न दान नहीं करते। ब्राह्मणों का योग्य सम्मान नहीं करते। पशु-वध करते हुये अपने पेट भरने के लिए यज्ञ करते हैं। इस प्रकार पशु हिंसा करने से जो पाप आता है, उसको वे नहीं जानते हैं।।8।।

विष्णु को तिरस्कार करते हुये अथवा अलक्ष्य करते हुये केवल धन को पाने के लिए प्रयत्न करने वाले जो काम करते है वह पूरा अधर्म होता है। ऐसे करने वाले अध:पतन पाते हैं। यह प्रवृत्तिसंहिता नाम के ग्रंथ में आता है।

सम्पत, अष्ट-ऐश्वर्य, कुल, विद्या, दान, रूप-सौंदर्य इन मदों से युक्त और समाज सेवा नाम से मिलने वाले अहंकार से इनकी बुद्धि मंद होती है। ऐसे लोग श्री हरि और उनके भक्त लोगों का अवमान करते हैं।।9।।

सारे शरीरों में आकाश के समान निर्लिप्त होकर रहने वाले नियामक सर्व स्वामी, सर्व शक्त, सर्वाभीष्ट प्रदायक श्री हरि हैं। इस प्रकार वेद श्री हरि का गुण गान करते रहते हैं। इतना होते हुये भी मूढ़ जन उनके बारे में सुनते नहीं। मद्य मांस, स्त्री संग इत्यादि विषय भोग करते हुये काम्य कर्मों में वेदों का उपदेश है, ऐसे कहते हैं। भगवान की आराधना के लिए ये विषय विहित हैं, ऐसे कहते हैं।।10।।

इस जगत में रहने वाले पुरुष को स्त्री, मांस, मद्य इत्यादि कार्यों में केवल उसकी इच्छा मात्र से अन्य किसी प्रेरणा के बिना आता है। इसके लिए वह भी भगवान की आराधना है ऐसी भावना यदि मन में है तो ऐसे कर्म को वेद विधि नहीं करता। इतना ही नहीं वह इसका निषेध

करता है। **व्यवस्थिति** क्या है इसको न समझते हुये स्वछंद रीति से रहना आसुरी स्वभाव वाले लोगों की रीति है। यह मद्यपानी, मांसाहारी लोगों के लिए इष्ट होता है।।11।।

धन से धर्म साधना, उससे प्रशांति, प्रशांति से वैराग्य, वैराग्य प्राप्ति के बाद विज्ञान सहित समग्र ज्ञान, विज्ञान से पुनः उत्तम प्रशांति अथवा सुखरुप मोक्ष यह धर्म साधना के लिए योग्य कर्म संचय है। किन्तु धर्म साधना के लिए प्रयोजन में आने वाला धन को यह लोग शरीर सुख के लिए पत्नी पुत्रों के लिए विनियोग करते हैं। आगे अपने शरीर को आने वाली अपार मृत्यु की शक्ति को ये ज्ञानी जानते नहीं।।12।।

देव यज्ञ में सौत्रामणि याग में मद्य विहित है। इसका अर्थ मद्य को पीना नहीं। केवल उसको सूँघ लेना है। पशु वध विहित है, वह तो हिंसा नहीं। **अलभन** यानी ऐसे पशु को स्वर्ग मिलने के लिए वध करते हैं। स्त्री संग भी संतान प्राप्ति के लिए विहित है। किन्तु इंद्रिय सुख के लिए वह विहित नहीं है। ऐसे शुद्ध सुधर्म को ये अज्ञानी लोग समझते नहीं।।13।।

स्त्री संग को संतति उत्पन्न करने के लिए हरि पूजा रूप में किये तो वह वामदेव यज्ञ होता है। प्राचीन काल में पितृ देवताओं के लिए श्राद्ध करने वाले उस श्राद्ध में मांस का अर्पण करते थे। वह पितृ यज्ञ माना जाता है। वे उन दिनों अग्नि में मांस को समर्पण करते थे। ऐसे यज्ञ को पशु यज्ञ कहते है। क्षत्रिय लोग वामदेव यज्ञ के अंग रूप में मद्यपान करते थे। इसको सोमाहुति के समान मानते हैं। अन्य सारे वर्ण के लोग सौत्रामणि यज्ञ में यज्ञ शेष मद्य को सूंघते थे। इस प्रकार विधि है। मद्यपान और मांसाहार निषिद्ध है। किन्तु क्षत्रियों के लिए युद्ध के समय में ग्राह्य है, दोषकारक नहीं है। यज्ञ में हरि पूजा रुप में पशु-वध करना दोष नहीं बनता। पशु को स्वर्ग मिलता है। इसके लिए उस यज्ञ को पशवालम्भ कहते हैं। यह यज्ञ समय में पशु हिंसा नहीं होती। इस प्रकार क्रिया विधान नाम के ग्रंथ में बताया गया है।

यज्ञादि विधियों में उसके मर्म को न समझते हुये निन्द्य कर्म को करने वाले अपने को सत्यकर्मी मानते हुये अभिमान करते हैं। अपने के विश्वास पात्र मूक पशुओं को मारते हैं। मृत्यु के बाद इन लोगों को नरक में वे ही प्राणी काटते हैं, काट-काटकर खाते हैं।।14।।

ये लोग अपने शरीरों में और अन्य शरीरों में भी व्याप्त होकर, नियामक होकर रहने वाले सर्वशक्त श्रीहरि को मैं ही वह हूँ। मेरे से अन्य और कोई नहीं है, ऐसे बोलते हुये भगवान से द्वेष करते हैं। एक दिन मृत्यु के वश में जाने वाले इस शरीर के ऊपर और शरीर से सम्बन्ध रहने वाले अन्य लोगों के विषय में मोह बन्धन के वश में रहते हुये अधःपतन पाते हैं।।15।।

श्री हरि सबके शरीर में रहते हैं। इस प्रकार मुझमें भी रहते हैं। इस ज्ञान को न समझते हुये मैं ही श्री हरि

हूँ इस प्रकार समझने वाले लोग असुर होते हैं। यह हरिवंश की बात है।

धर्मादि पुरुषार्थ साधना के लिए साध्य जन्म पाने के बाद भी ये लोग मोक्ष देने वाले योग्य ज्ञान को पाते नहीं। वे मूढ़ भी नहीं रहते, किन्तु अपने को स्वयं पण्डित मानते हैं। स्वयं ही पाप करते हुये अंधम-तमस में गिरते हैं। ये तामस लोग विष्णु द्वेषी होते हैं। राजस अति मूढ़ न होते हुये विष्णु उत्तम है किन्तु सर्वांतर्यामी नहीं हैं। केवल गाँव के मुखिया की तरह अपना अधिकार चलाते हैं ऐसा मानते हुये उनके मोक्ष देने में अद्वितीयत्व को नहीं समझते हैं। धर्म साधन योग्य शरीर मिलने का लाभ पाकर केवल स्वर्ग सुख को पाते हैं। उस सुख को भोगने के बाद पुनः इस भूमि मे जन्म लेते हैं।।16।।

विष्णु भक्त न रहने वाले राजस लोग वासुदेव के सर्वोत्तमत्व को न जानते हुये कष्ट से सम्पादन किए हुए, घर, पुत्र, दारादि सम्पद को न त्यागते हुये भूमि में नित्य संसारी होकर सुख-दुःख का संसार भाजन होते हैं। ये भगवान के भक्त होते हैं। किन्तु वासुदेव से द्वेष करने वाले तामस लोग अपने अन्यथा ज्ञान को तत्वज्ञान मानते हुये स्वयं भगवान बनना चाहते हैं। उनकी इच्छा को काल नियामक भगवान नष्ट करते हैं। ये लोग मरण पाने के बाद अंधम-तमस में गिर जाते हैं।।17,18।।

करभाजन मुनि का उपदेश

विदेह राजा पूछता है - किस युग में, किस वर्ण, आकार नाम से और किस विधि से मुमुक्षु लोगों को भगवान की आराधना कैसे करना इसके बारे में हमें उपदेश दीजिए।।19।।

करभाजन मुनि कहते हैं - कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग में नानाविध के लोग भगवान को अन्य नानाविध के वर्ण, नाम, आकारों में अलग-अलग विधानों से अर्चन करते हैं।।20।।

कृतयुग में केशव का वर्ण शुक्ल होता है। रूप में चार हस्त होते हैं। भगवान श्रीहरि जटाधारी हैं, वलकल वस्त्र पहने हैं, कृष्णाजन, यज्ञोपवीत, अक्षमाला, दण्ड, कमण्डल को धारण किये हैं। उनकी आराधना इस प्रकार करते हैं। इस युग में रहने वाले भगवद् भक्त परस्पर द्वेष नहीं करते। परस्पर हित की कामना करते हैं। सर्वत्र रहने वाले भगवान निर्दोष और सम हैं ऐसे मानते हुये केवल नारायण को ही ध्यान रूप भगवान मानते हुये तप, शम, दम इत्यादि से आराधना करते हैं। अन्य देवताओं को हरि भक्त और गुरु मानते हैं। उस समय भगवान का नाम हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष और अव्यक्त भगवान इस प्रकार होते हैं।।21,22,23।।

त्रेतायुग में केशव का वर्ण रक्त वर्ण होता है। आकार में चार हाथ, तीन धारा वाली मेखला धारण किये हैं। सोने के वर्ण के बाल हैं। स्रुक् स्रुव को धारण किये हैं। तीन रूप में विभाग हुये भगवान वेद प्रतिपाद्य यज्ञमूर्ति है। इस प्रकार आराधना करते हैं। सारे देवताओं के अंतर्गत रहने वाले सर्वदेवोत्तम श्री हरि को तीनों वेदों में बतायी गयी यज्ञ के अनुसार आराधना करते हैं। लोग धर्मिष्ठ और ब्रह्मवादी होते हैं। भगवान के नाम हैं - विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयंत, उरुगाय इत्यादि।।24,25,26।।

द्वापर युग में भगवान शामवर्ण के होते हैं। आकार के पीताम्बर धारण करते हुये हाथों में शंख, चक्र इत्यादि आयुध को धारण किये हैं। श्री वत्सलांछन धारण किये हुये भगवान द्वात्रिंशल्लक्षण भरित होते हैं। उनकी आराधना इस प्रकार होती है। हे राजा, द्वापर युग के लोग उन महापुरुष को वेद और पंचरात्रों से अर्चना करते हुये महाराजोपचार से आराधना करते हैं। उस सर्वोत्तम भगवान के बारे में वेद चर्चा करते रहते है।।27,28।।

द्वापर युग में भगवान के नाम इस प्रकार हैं - वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायणऋषि, पुरुष, महात्मा, विश्वेश्वर, राम, सर्वभूतात्मक स्वामी आपके लिए यह नमस्कार इस मंत्र का जप करते हैं।।29,30।।

इस प्रकार द्वापर युग में लोग जगदीश्वर भगवान की आराधना करते हैं। कलियुग में लोग अनेक आगमों में कहे गये विधानों से भगवान की आराधना कैसे करते हैं ? इसके बारे में बताता हूँ, हे राजा, सुनो।।31।।

कलियुग में भगवान का रूप कृष्ण वर्ण का होता है। आकार में हृदय में और अन्य अंगों में कौस्तुभ आदि उपांगों को धारण करते हुये गरुड़, विष्वक्सेन आदि पार्षदों के साथ रहते हैं। भगवान श्री कृष्ण के रूप में रहने वाले इनकी आराधना इस प्रकार होती है। नाम संकीर्तन से भरा हुआ अनेक तरह के यज्ञों से मेधावी लोग उनकी आराधना करते हैं। नाम संकीर्तन इस प्रकार करते हैं।।32।।

हे परम पुरुष, आपके चरणारविन्द को हम नमन करते है, स्तुति करते हैं। आपका चरणारविन्द हमें सदा ध्यानगोचर होकर हमारे सकल अनिष्टों का परिहार करता है, सकल अभीष्ट को देता है। वह गंगादि तीर्थों का आश्रय है। शिव और ब्रह्म को भी स्तुति योग्य होकर वह हमें रक्षा देती है। यह नाम संकीर्तन सेवकों का दुःख परिहार करता है। नमन करने वाले भक्तों को भवसागर तारन करने वाली बड़ी नौका है।।33।।

देवता लोग भी जिसको छोड़ नही सकते हैं। ऐसे चाहने वाले श्रेष्ठ साम्राज्य संपदा को पितृ वाक्य परिपालन के लिए त्याग कर जंगल जाने वाले आपके श्री चरण को हमारा नमन है। जंगल में आप अपने प्रियकरी सीता जी की इच्छा के अनुसार माया मृग के पीछे आपका यह पाद दौड़ते चला। अत्यन्त धर्माचरण में निष्ठ, निरत, आपके श्री चरणकमल को हे परम पुरुष हम वंदना करते हैं।।34।।

इस प्रकार के राजा, युग के अनुसार वर्ण और आकार धारण करने वाले भगवान को उन-उन युग के लोग आराधना करते हैं। भगवान उनके अभीष्ट मोक्षादि पुरुषार्थ देते हैं।।35।।

मोक्ष योग्य जीव को भगवान की उपासना के लिए योग्य भगवद् रूप को गुरु के उपदेश से जानते हुये उपासना करनी चाहिए। उससे मोक्ष मिलता है। उस उपासना में आने वाले विघ्नों के परिहार करने के लिए उन युगों में अथवा उसके पूर्व अथवा उसके बाद के युग में अवतार किये हुये भगवान की मूर्ति की भी उपासना करना चाहिए। नरसिंह मूर्ति की उपासना अथवा गुरु के उपदेशानुसार किसी एक इष्ट मूर्ति की उपासना करना है। यह वाक्य स्वाभाव्य नाम के ग्रंथ में आता है।

गुणों को ठीक तरह से जानने वाले, सार ग्रहण करने वाले बड़े लोग कलियुग की विशेष महिमा का गुणगान करते हैं क्योंकि इस युग में केवल हरि नाम संकीर्तन से सारे अभीष्ट प्राप्त होते हैं।।36।।

संसार चक्र में घिरने वाले को इससे श्रेष्ठ लाभ और कोई नहीं है। संकीर्तन से परम शांति मिलती है। संसार बंध दूर होता है।।37।।

हे राजा, कृत आदि युग में जन्म लिए हुये लोग भी कलियुग में जन्म लेना चाहते हैं क्योंकि कलियुग में केवल श्रीहरि का संकीर्तन करने से पुनर्जन्म न होते हुये मोक्ष को पाते हैं।।38।।

कलियुग में नारायण के भक्त इधर-उधर मिलते हैं। विशेषकर दक्षिण भाग के द्रविड़ देश में जन्म लेते हैं।।39।।

द्रविड़ देश में ताम्रपर्णि नदी बहती है। कृतमाला, पयस्वनी, कावेरी इत्यादि बहने वाली नदियों से युक्त वराह क्षेत्र से युक्त सह्य पर्वत से जन्म लेकर पश्चिम को बहने वाली नेत्रावती नदी ये सभी महापुण्यकर नदी हैं। हे राजा, इन नदियों में नहाने वाले, इनके जल को पीने वाले लोग, बहुशः निर्मल मन के भगवान वासुदेव के भक्त होते हैं। ये लोग देव, ऋषि, पितृ और अन्य सारे प्राणियों को तथा अपने बन्धु जनों को भी सत्कार करते हैं।।40,41।।

हे राजा, श्री हरि के सर्वात्मनना शरण में रहने वाले ब्रह्मादि तत्व देवताओं में मिला हुआ भक्त अन्य देवताओं के, ऋषि, भूत, आप्त और पितृ के किंकर नही बनते, ऋणी नहीं होते। अपने से उत्तमों के किंकर बनते हैं, उनके ऋणी होते हैं।।42।।

हरि पाद का मूल को ही आश्रय मानकर रहते हुये अन्य देवताओं का भजन न करते हुये रहने वाले प्रिय भक्त, विषयों में आसक्ति न रखते हुये, कभी प्रारब्ध कर्म वश निषिद्ध कर्म करे तो भगवान श्री हरि उसके हृदय में वास करते हुये निषिद्ध कर्म का लेप न हो इस प्रकार करते हैं।।43।।

चतुर्मुख से प्रारम्भ करते हुये अग्निदेव पर्यन्त सारे देवता **सर्वात्मना** भगवान के भक्त बनते हैं, अन्य देवताऐं **सर्वथा** भक्त होते है। ऋषि गन्धर्व भगवान के **भक्त** कहलाते है। इस प्रकार के तीन तरह के हरि भक्तों में सर्वात्मना भक्त अन्य देव, ऋषि इत्यादियों के अधीन नहीं होते हैं, ऋणी नहीं होते हैं।

ऋण दो प्रकार का होता है। देकर चुकाने वाला लौकिक ऋण एक है। कितना देने के बाद भी न चुकने वाला ज्ञान भक्ति आदि ऋण दूसरा प्रकार का है। उत्तम और तत्वाभिमानी बिम्ब होकर प्रेरणा देते हैं, ज्ञान मोक्ष के लिए कारण बनते हैं। उनका ऋण चुकाया नहीं जा सकता। यह मोक्ष में भी रहने वाला ऋण है, इस प्रकार जीव निर्णय नाम के ग्रंथ में कहा गया है।

अन्य देवता हमें बरसात करते हुये सस्य को देकर अन्न देने वाले होते हैं। इस ऋण के परिहार के लिए देव, ऋषि, पितृ यज्ञ करते हुये उनकी पूजा करनी चाहिए। यज्ञ का अधिकार न रहने वाले यतिको भी जल तर्पण, स्तोत्र, नमस्कार और ध्यान से देवताओं की पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार समयाचार ग्रंथ में कहा गया है। प्रधान हरि पूजा में अनुपयुक्त अन्य देवताओं की आराधना न करनी चाहिए। इस प्रकार हरिसंहिता में कहा गया है।

नारद जी कहते हैं - इस प्रकार ऋषभदेव से जयंती देवी में जन्म लिए कवि इत्यादि नौ जायंतेय ऋषियों से भागवत धर्म को विदेह राजा श्रवण करते हुये संतुष्ट हो गया। ऋत्विजों के साथ उन मुनियों का सत्कार किया।।44।।

वे सिद्ध मुनि सारे लोगों के सामने ही अन्तर्धान हो गये। राजा निमि उनसे सुना हुआ भागवत धर्मों का अनुष्ठान करते हुये परम गति को प्राप्त किया।।45।।

हे महाभाग्यशाली वसुदेव आप भी सुनकर समझे हुए इन भागवत धर्मो का अनुष्ठान श्रद्धायुक्त होकर करने से पाप रहित होकर भगवान को पाते हैं।।46।।

आप दम्पति अपनी कीर्ति से इस जगत को भर चुके हैं क्योंकि सर्वशक्तिमान भगवान श्री हरि आपके पुत्र होकर अवतार लिये हैं।।47।।

भगवान श्री कृष्ण में पुत्र वात्सल्य करते हुये उनके दर्शन, आलिंगन, सम्भाषण करते हुये साथ में, सोना, बैठना, भोजन आदि करते हुये रहने से आप का सारा पाप नष्ट हो चुका है।।48।।

शिशुपाल, पौंड्रक, साल्व इत्यादि राजाओं ने सोते, बैठते, चलते समय श्री कृष्ण का चाल चलन, विलास दृष्टि इत्यादि का वैर भाव से ध्यान करते रहे। चित्त में भगवान के आकार को ही भर के रखते हुये अंत में उनके सारूप्य मोक्ष को पाये। अपने में आविष्ट असुरों के प्रभाव से वैर से युक्त भक्ति को करने के बाद मोक्ष पाये हैं। आप तो निर्मल भक्ति वाले हैं। आपको मोक्ष मिलने वाला है इस बात को अलग से कहने की बात ही नहीं है।।49।।

शिशुपाल इत्यादियों में जीव द्रय का आवेश होने के कारण वैर युक्त भक्ति को वे किये। उससे उनमें रहने वाला दैव भक्त जीव को सद्गति और वैर करने वाला असुर जीव को तम हो गया यह बात अंश विवेक नाम के ग्रंथ में आता है।

श्री कृष्ण सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान, परमात्मा नारायण हैं। वे नाशरहित हैं। अपनी ही इच्छा से मानव रूप में अपने को दिखाते हुये अपनी अचिन्त्य अद्भुत शक्ति को छिपाकर रखें हैं। उनको अपना पुत्र मानने के भ्रम में मत रहिए।।50।।

भू-भार बनकर रहने वाले असुर राजाओं का वध करने के लिए सज्जनों की रक्षा करने के लिए, भगवान श्री कृष्ण अवतार ले चुके हैं। इस लोक को समाधान देने के लिए अपनी कीर्ति को बढ़ाते रहे। भगवान के बारे में आप पुत्र भावना को नहीं करें।।51।।

श्री शुकदेव कहते हैं - महाभाग्यशाली वसुदेव श्री नारद जी से इन बातों को सुनकर बहुत आश्चर्यचकित हो गये। महाभाग्यशाली देवकी भी आश्चर्य चकित हुई। दोनों अपनी बुद्धि का आकर्षण करने वाले मोह को त्याग दिये।।52।।

इस पुण्यकर, इतिहास रूप, जायंतेय उपाख्यान को एकाग्रता से सुनकर उसको मन में रखने वाला सारे पाप से मुक्त होकर मुक्ति में अपने योग्य पूर्णानन्द को पाता है।।53।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - छठा

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार नारद वसुदेव को उपदेश देकर चले गये। बाद में ब्रह्मा जी सनकादि मुनि और देवताओं के साथ प्रजापतियों को साथ लिए श्री कृष्ण के दर्शन के लिए द्वारका आये। उन देवताओं में मुख्य इस प्रकार थे। भूत, भविष्यत अधिपति रुद्रदेव अपने भूतगण के साथ पधारे। मरुद्गणों के साथ भगवान इन्द्र देव चले आये। आदित्य, वसु, अश्विनी देवतायें, ऋभु, अंगिरस कुल के बृहस्पति इत्यादियों के साथ विश्वे देवतायें साध्य, गन्धर्व अप्सरायें, नाग, सिद्ध चारण, गुह्यक, ऋषि, पितृगण, विद्याधर और किन्नर सारे एक साथ द्वारका को पधारे।।1,2,3।।

ये सारे देवतागण श्री कृष्ण के दर्शन के लिए द्वारका आये। क्योंकि द्वारका में भगवान श्री हरि अपने शरीर से नरलोक में अत्यन्त मनोहर रूप धारण करते हुये शोभायमान थे। समस्त जगत के पाप को नाश करते हुये अपने कीर्ति को सभी जगह विस्तार करते रहे थे।।4।।

महासम्पत्ति से समृद्ध हुये अत्यन्त कांति से शोभायमान द्वारका में भगवान श्री कृष्ण आये हुए देवताओं को अद्भुत दर्शन दिये। बहुत समय तक देखने के बाद भी तृप्ति न पाते हुये वे बार-बार अपनी आँखों से भगवान के सुन्दर रूप का निरीक्षण किये।।5।।

स्वर्ग के उद्यानों से चुनकर लाये हुये फूल मालाओं से जगदीश्वर यदुकुलोत्तम भगवान श्री कृष्ण को अलंकारों से सुन्दरीकरण करते हुये सुन्दर अर्थ वाले शब्दों से युक्त स्तोत्रों से उनकी स्तुति किये।।6।।

देवता स्तुति करते हैं - हे भगवन् कर्ममय महापाश से छुटकारा पाने चाहने वाले सारे, भक्ति भरित होकर अपने हृदय में आपके पादरविन्द का ध्यान करते हैं। उन पादरविन्द को हम देखने यहाँ आये है। हम बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण और मन को लगाकर शब्दों से गाते हुये उनका वन्दन करते हैं।।7।।

हे अजित, अन्य कोई सृष्टि न करने वाला ब्रह्माण्ड को आपने अपने में रहने वाले त्रिगुणात्मक

प्रकृति से सृष्ट किये हैं, उसकी रक्षा करते हुये प्रलय समय में उसका अन्त करते हैं। इसके लिए आप उन त्रिगुणों में नियामक होकर प्रवेश करते हैं। इन सृष्टि, स्थिति लय नाम के कर्मों से आप लेप नहीं पाते। इसी कारण आपको दुःख का अनुभव होना असम्भव है। क्योंकि आप ज्ञान प्रकाश रूप हैं। नित्य अभिव्यक्त होने वाले स्वरूपानन्द में आप डूबे रहते हैं, आप निर्दोष हैं।।8।।

स्तुति योग्य हे ऋषभदेव, सात्विक लोग आपकी कीर्ति के बारे में शास्त्र श्रवण करने से बढ़ने वाली सात्विक श्रद्धा से अन्तःकरण में कितनी शुद्धि पाते हैं, उतनी शुद्धि दुष्ट बुद्धि वाले लोगों को उपासना, शास्त्र श्रवण, वेदाध्ययन, दान, तप, प्रायश्चित्त कर्म इन सभी से भी नहीं मिलती है।।9।।

आपके पद को मुनि अपने अन्तःकरण की भक्तिरस से धोकर अपने हृदय में रख लेते हैं। आपके स्वरुप को देखने वाले भक्तगण उसको समान ऐश्वर्य, समान बल-पराक्रम रहने वाले वासुदेव आदि चतुर्व्युह रूप में तीनों कालों में पूजा करते है। ऐसे दिव्य प्रकाश रूप आपके पाद हमारी विषय वासना को जलाने वाले धूमकेतु के समान हमारे अन्तःकरण में उदय होकर हमारे पापों को नष्ट करते हुये हमें क्षेम करें।।10।।

इस श्लोक में तीन बार **यः** शब्द आया है। दो शब्द का अन्वय होता है। तीसरे शब्द को **यह नाम प्रकाश** इस अर्थ से भगवान के पाद का विशेषण रूप से अनुव्य करना है।

तीनों वेदों में कहे गये विधानों से यज्ञ करने वाले भक्त आपको यागाग्नि में अर्पण करने वाले हविष्य को प्रयत्न पूर्वक हाथ में पकड़कर यज्ञाग्नि में आपके पाद का ध्यान करते हैं। आपके बन्धन शक्ति को जानने वाले परम भागवत योगीगण भी ध्यानकाल में हृदय में व्यक्त होने वाले आपके पादों का ध्यान करते हैं, पूजा करते हैं।।11।।

भगवती श्रीदेवी आपके गले में सिर से लेकर पाद तक शोभायमान कभी भी न सूखने वाली फूल-माला से प्रतिस्पर्धी होकर स्पर्धा करते हुये पाद पूजा करने के लिए तुलसी को लाती हैं। उनको आपके पाद स्वयं उठा लेते है। पाद को हाथ नहीं है ऐसे संशय करने की बात नहीं। किन्तु लोक विलक्षण **यः** प्रकाश रूप आपका चरण हाथ का काम भी करता है। ऐसे आपके पाद हमारे निषिद्ध वासना को जलने में सदाकाल धूमकेतु के समान कार्य करें।।12।।

आपादलंबिनी माला, वनमाला श्लोक का इस शब्द का अर्थ गले में शोभायमान माला भगवान के पाद स्पर्श करती है, इस प्रकार अर्थ है। लक्ष्मी देवी पाद सेवा के लिए उस माला के साथ स्पर्धा करती हैं। यह अलंकार उत्प्रेक्षा भाव से है। लक्ष्मी देवी में स्पर्धा भाव इत्यादि दोष कभी भी नहीं रहता। यह

वाक्य वामन पुराण में है।

हे भगवान आप त्रिविक्रम रूप धारण करते हुये उस दिन आप द्वारा ऊपर उठाये हुये पाद, तीनों लोकों को मापते हुये तीन वेद नाम के तीन ध्वजाओं को तीनों लोकों में फहराया हुआ ध्वज स्तम्भ के समान दिखता था। असुर गण को भय देते हुये वह पाद देवसेना को अभय दिया। दुर्जनों को नरक देते हुये सज्जनों को स्वर्ग दिया। हे भगवान आप गुणपूर्ण हैं। आपका वह पाद हमारे और समस्त लोकों का पाप परिहार करते हुये पवित्रता प्रदान करें।।13।।

इन्द्रियों के देवता भी नथे वाले बैल के जैसे आपके अधीन होकर देह में रहने वाले जीवों को विषयजन्य सुख-दुःखों को देते रहते हैं। आप उन सारे जीवों के आयुमान के नियामक होकर **रज्जमान** उनके देह में रहते हुये **अ** उसका अभिमान रहित रहते हैं। आप प्रकृति और पुरुष से उत्तम रहने के कारण पुरुषोत्तम कहलाते हैं, काल नियामक हैं। ऐसे आपके पाद हमें सुख दें।।14।।

इस श्लोक में आने वाला **रज्जमानाः** यह एकवचनांत शब्द है। (बहुवचन जैसे लगता है।) इसका अर्थ शरीर में रहते हुये उस शरीर अभिमान आदि दोषों से रहित है, इस प्रकार होता है। महाभारत में इस प्रकार कहा गया है कि शरीर में श्री हरि जितने समय तक रहते हैं वही उस जीव का आयुष्य बनता है। श्री हरि के उस देह को छोड़ते ही वह शरीर मुर्दा बनता है।

केवल इस प्रपंच को ही नहीं उसका मूल अव्यक्त तत्व, जीव तत्व, महत्तत्व इत्यादियों की सृष्टि, स्थिति लय करने वाले, मूलकर्ता आप हैं। उनके कारणरूप काल को भी आप ही कर्ता हैं। उन सबको ठीक तरह से जानने वाले नित्य आप ही हैं। इसी कारण आपको काल भी कहते हैं। शीत, उष्ण और वर्षा काल नाम के तीन नाभियों से अचिन्त्य वेग से चलने वाला काल चक्र को आपने ही निर्माण किये हैं। अब वह कालचक्र इस यादव कुल का नाश करने के लिए सिद्ध हुआ है। इस प्रकार काल, अव्यक्तादि तत्व इनसे भी उत्तम पुरुष आप पुरुषोत्तम कहे जाते हैं।।15।।

सृष्टि, लय करने के लिए श्री हरि केवल सृष्टि काल में ही नही लयकाल में भी शुद्ध प्रकृति के अंश से काल प्रवाह को सृष्टि करते हैं। इसके लिए उनको काल-मात्र कहते हैं। कालाभिमानी लक्ष्मी का भी एक तरह से सृष्टि करते हैं तो भगवान को काल सृष्टिकार कहने से और क्या कहना है ? इसी कारण महाभारत में कहा गया है कि काल, जीव, अव्यक्त, महत्तत्व और उसके अभिमानी से भी श्री हरि उत्तम होने के कारण पुरुषोत्तम हैं।

आपने स्वयं पुरुष रूप से अवतार लेकर प्रकृति की अभिमानी रमा में पुरुष नामक चतुर्मुख ब्रह्मा जी को और प्रकृति नामक सरस्वती को सृष्ट किये हैं। आपका वीर्य अमोघ है। प्रकृति

नामक सरस्वती में महत्तत्व नामक अपने और एक रूप से श्रद्धा नामक सरस्वती रूप को सृष्टि करते है। वह महत्तत्व नामक चतुर्मुख भी अमोघ वीर्य होते हुये श्रद्धा नामक सरस्वती में अहंकाराभिमानी, अहंकार नामक शेषदेव को जन्म देते हैं। बाद में पुरुष नामक चतुर्मुख अपने में आविष्ट आपके अनुग्रह से बाहर के नौ आवरण सहित इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि करते हैं।

श्री हरि प्रलय काल में नारायण रूप से सोते हैं। पुरुष नामक वासुदेव रूप से माया नामक लक्ष्मी में पुरुष नामक ब्रह्मा जी को प्रद्युम्न रुप से कृति नामक लक्ष्मी में प्रधान नामक गायत्री को सृष्ट किये। ब्रह्माजी गायत्री में महान नाम से अपने को श्रद्धा नाम से गायत्री की सृष्टि किये। यह महत्तत्व और श्रद्धा नाम की दम्पतियों से शेषदेव जन्म लिये। यह सृष्टि विक्षेप ग्रंथ में कहा गया है।

आपके आदेश बल से ब्रह्मादि देवतागण ब्रह्माण्ड सृष्टि के कारण बनते हैं। इसी कारण आप यह सारे स्थावर जंगात्मक ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं। अपनी इच्छा शक्ति से त्रिगुणों से होने वाले विषय पदार्थों को इन्द्रियों में रहते हुये आप ही सेवन करते हैं। इसी कारण आप सर्वेश्वर हैं। आप इन्द्रिय प्रेरक होकर उन विषयों का भोग करने से आपको उनसे लेप नहीं है। आपसे अनुग्रह पाये हुये योगी भी उनसे लेप का निवारण कर लेते हैं किन्तु वे सदाकाल उस लेप से डरते रहते हैं।।17।।

ज्ञानी श्री हरि के अनुग्रह से विषय लालसा को स्वयं परिहार कर लेते हैं। किन्तु वह फिर पीड़ा कर सकता है। इस भय से वे रहते हैं। किन्तु श्री हरि जीवों के शरीर में रहते हुये विषय का उपभोग करते हुये भी भय ग्रस्त नहीं होते। क्योंकि उनको विषय का लेप नहीं है।

अपनी तिरछी नजर से, मनमोहक, मादक भौंहों के चलन से प्रणय मंत्रों का उपचार करते हुये काम के पुष्प बाणों के समान दिल को दहलाने वाले आलिंगन इत्यादि से सोलह हजार एक सौ पत्नियाँ भी श्री कृष्ण के इन्द्रियों को विचलित नहीं कर सकीं।।18।।

तीनों लोकों से अन्यों से न होने वाले कार्यभार को आप वहन करते हैं। ऐसे आपकी कथामृत से भरकर बहने वाली शास्त्र की नदी तथा आपके पाँव को धोने वाली गंगा नदी दोनों पवित्र, तीर्थ हैं। वेद, भारत इत्यादि ग्रंथ उनके गुणगान करते हैं। वायु के अन्तर्गत आपके पाद से चलने वाली इन दोनों नदियों से एक के श्रवण से तथा दूसरे के अवगाहन से अपने पाप को निवारण करने के लिए तीनों लोकों के जन सेवा करते हैं।।19।।

शुकदेव कहते हैं - इस प्रकार चतुर्मुख ब्रह्म, रुद्र और अन्य देवताओं के साथ मिलकर आकाश में खड़े होकर श्री कृष्ण का स्तोत्र करते हुये उनको वंदन पूर्वक विनती करते हैं।।20।।

ब्रह्मा जी कहते हैं - हे प्रभु, सर्वेश्वर, हम पहले आपमें भू-भार हरण के लिए विनती किये

थे। आप भू-भार हरण करके दिखाये हैं।।21।।

आप सत्यसंध सज्जनों में धर्म की स्थापना किये हैं। श्रवण मात्र से सकल लोक पाप को परिहार करने वाली कीर्ति को दसों दिशा में विस्तार किये हैं।।22।।

अगणित मनोहर रुप धारण करने वाले आप यदुवंश में अवतार लेकर लोक हित के लिए उत्कृष्ट लीलाओं को किये हैं।।23।।

प्रभु, इस कलियुग में आपकी इन लीलाओं को सज्जन लोग सुनते हुये, संकीर्तन करते हुये अपने अज्ञान से मुक्त हो जाते हैं।।24।।

हे प्रभु पुरुषोत्तम, यदुवंश में आप अवतार लेकर आज सौ वर्ष के ऊपर पच्चीस ऋतु यानि चार वर्ष और दो माह बीत गये।।25।।

श्री कृष्ण अवतार करके सौ के ऊपर पच्चीस वर्ष बीत गये इस प्रकार श्लोक में है। यहाँ पच्चीस का अर्थ पच्चीस वर्ष नहीं है, पच्चीस ऋतु है क्योंकि भविष्यत पुराण में इस प्रकार है कि परम धाम को वापस आने के लिए देवताओं ने प्रार्थना किये। उस समय भगवान को सौ वर्ष और पच्चीस ऋतु हुये थे। इसका अर्थ एक सौ के ऊपर चार वर्ष और दो महीना बीत गये थे। भगवान उसके बाद दो वर्ष और चार महीना यानि कुल एक सौ छः वर्ष और छः महीना इस भू-मण्डल में रहकर परम धाम को चले।

हे सर्वाधार, आपको अब देवताओं के लिए करने वाला काम यहाँ कुछ बाकी नहीं है। आपका यादव कुल भी विप्रशाप से सामान्यतः नष्ट हुआ में से है।।26।।

इसी कारण हे भगवान वैकुण्ठ, आपको यदि यह उचित लगा हो तो आप अपने परम धाम के लिए वापस आइये। वहाँ से आप अपने किंकर रूप लोकपालक हमारी अन्य लोकों के साथ रक्षा करें।।27।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा, इस प्रकार ब्रह्माजी आदि देवताओं की बात सुनकर अपनी इच्छा से मनुष्याकृति को धारण किये हुये सर्वेश्वर भगवान्न श्री कृष्ण उनका अभिनन्दन करते हुये कहते हैं।।28।।

श्री कृष्ण कहते हैं - हे देवतागण आप जो कहे उस प्रकार करने का निर्धारण मैं कर चुका हूँ क्योंकि आपकी इच्छानुसार मैं सारा कार्य कर चुका हूँ। भू-भार को नष्ट किया हूँ।।29।।

किन्तु मेरे परम धाम जाने के बाद यदि यह यादव कुल इस भूमि में रहे तो कलिकाल वश के कारण वीर्य, शौर्य, सम्पदाओं से भरे हुये ये लोग प्रलय समुद्र जैसे तट का आक्रमण करते हैं। ऐसे इस लोक का आक्रमण कर सकते हैं।।30।।

इसके लिए अहंकारी इन यादवों के इतने बड़े कुल को नाश न करते हुये यदि मैं परम धाम को चला गया तो वह कुल अन्याय से इस लोक का नाश कर सकता है।।31।।

इसके लिए हे पाप रहित ब्रह्मा जी, विप्रशाप बल से यादव कुल नाश होने वाला है। वह पूर्ण होने के बाद आप लोगों के संतोष के लिए मैं परम धाम को वापस आता हूँ।।32।।

यादव लोग को दुर्जन मानकर इनका नाश करते हुये भू-भार हरण भगवान का संकल्प नहीं है। वे देवांश सम्भूत हैं, सज्जन हैं। इस भू-मण्डल में स्वयं न रहने के कारण कलि काल के कारण उनका मन नष्ट हो सकता है। वे पाप कर पापी बन सकते हैं। इस प्रकार विचार करते हुये भगवान उनके ऊपर कारुण्य करते हुये विप्रशाप को निमित्त करते हुये उनका नाश करने का संकल्प किये। अपने अवतार समाप्ति के साथ ही वे भी शरीर त्याग किये गये तो उनको पुण्य आता है। यह भी श्री कृष्ण का अभिप्राय है। यह भविष्यत पुराण का वाक्य है।

श्री शुकदेव कहते हैं - जगन्नाथ की इन बातों को सुनकर ब्रह्मदेव देवतागण के साथ नमस्कार करते हुये अपने लोक को प्रस्थान किये।।33।।

बाद में द्वारका नगरी में महाउत्पात दिखने लगे। उनको देखकर अपने पास आये हुये यादवों के श्रेष्ठ यादव लोगों को इस प्रकार कहते हैं।।34।।

श्री कृष्ण कहे - द्वारका में बड़े-बड़े उत्पात दिख रहे हैं। इसका मुख्य कारण हमारे कुल के लिए आ पड़ा हुआ अपरिहार्य ब्राह्मण शाप है।।35।।

हम जीवित रहना चाहते हैं तो यहाँ रहना योग्य नहीं है। हमें आज ही अत्यन्त पुण्यकर प्रभास क्षेत्र को जाना है।।36।।

दक्ष प्रजापति के शाप से क्षय रोग से पीड़ित चंद्रदेव इस प्रभास क्षेत्र में स्नान करने के बाद पाप मुक्त हुआ। तब चंद्र में और ज्यादा कलाओं को उदय हुआ। शाप के कारण चंद्र कला हीन था।।37।।

हम भी उस क्षेत्र में स्नान करते हुये पितृओं को और देवताओं को तर्पण देकर, अग्नि और ब्राह्मणों को रुचिकर अन्न से तृप्त करेंगे।।38।।

सत्पात्र योग्य, ब्राह्मणों को श्रद्धा से बड़े दानों को देकर उन दान धर्म नाम की नौका से हम पाप समुद्र को पार करेंगे।।39।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा, भगवान श्री कृष्ण के इस आदेश को सुनकर उसी क्षण प्रभास तीर्थ को जाने के लिए निश्चय करते हुये रथ को तैयार किये।।40।।

हे राजा, उद्धव सदाकाल श्री कृष्ण के सेवक बने हैं। वह इन भयदायक उत्पातों को देखते हुये और भगवान की बातों को सुनते हुये, यादव प्रयाण सन्नद्ध हुये हैं इसको देखते हुये जगदीश्वर स्वामी भगवान को एकांत में आकर उनके पाद में दण्डवत् प्रणाम किए। हाथ जोड़कर कहते हैं।।41,42।।

उद्धव कहते हैं - हे देव-देवेश आप यदुकुल का नाश करते हुये इस भू-लोक को त्यागने वाले हैं। क्योंकि भगवान आप स्वयं शक्त होते हुये विप्रशाप का परिहार नहीं किये।।43।।

प्रभु केशव, मैं आपके पादद्वय को आधा क्षण के लिए भी छोड़कर रहना नहीं चाहता। आप मुझको अपने लोक को लेकर जाइये।।44।।

हे भगवान श्री कृष्ण, आपकी परम मंगलकर लीलायें लोगों के कान के लिए अमृत के समान हैं। उसको सुनने वाले सारे लोग अन्य विषयों की आशा को त्याग देते हैं।।45।।

आपके साथ हम सोना, बैठना, खाना, पीना, खेलना इन सभी समय में साथ ही रहने वाले हम भक्तगण प्रिय स्वामी आपको छोड़कर कैसे रह सकते हैं? मैं आपको छोड़कर रहने वाला नहीं हूँ। आप के पहने हुये कपड़े, छोड़े हुये गन्ध, माला और अलंकारों से हम अपना अलंकार कर लेते हैं। आप द्वारा खाकर बचा हुआ उच्छिष्ट को हम पाते हुये दास-दास, दासों के दास हम आपके अधीन इस बन्धन माया को जीत सकते हैं।।46,47।।

दिगम्बर रूप में रहने वाले ऊर्ध्व-रेतस्क, निर्मल, सन्यासी, यति, ऋषि-मुनि आप में ही अपने मन को रखते हुये परम धाम ब्रह्मलोक को पाते हैं।।48।।

हे महायोगी हम इस कर्मजन्य शरीर में रहते हुये संसार चक्र में फिरते हैं। आगे हमें आपके भक्तों के संग में आपकी लीला श्रवण करते हुये आप ही द्वारा किए हुए इस दुस्तर अज्ञान को पार करना है।।49।।

इसीलिए हमें आपके चाल-चलन का स्मरण करना चाहिए, कीर्ति का संकीर्तन करना चाहिए। इस प्रकार मनुष्यलोक में रहने वाले हम सज्जनों का अनुकरण करने के लिए आप द्वारा किये हुये चाल-चलन, लघु हास्य, खेल-कूद का सदाकाल याद करते हुये गुणगान करते हैं।।50।।

श्री शुकदेव कहते हैं - राजा इस प्रकार भगवान के एकांत भक्त प्रिय सेवक उद्धव देवकी सुत के सामने विज्ञापन किए। भगवान उसको उपदेश दिये ।।51।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में छठा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - सात

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

उद्धव को भगवान का उपदेश

श्री भगवान कहते हैं - हे महाभाग्यशाली उद्धव तुमने जो कहा है उसी प्रकार मेरा संकल्प है। ब्रह्म, रुद्र आदि लोकपालक इसी को चाहते हैं।।1।।

ब्रह्मा जी की प्रार्थना के अनुसार मैंने जो कार्य करने हेतु अवतार लिया था उस देवकार्य को मैंने पूरा किया है।।2।।

यादव कुल अभी शाप से जल चुका है। अपने परस्पर कलह से वह कुल नाश होने वाला है। मैं जब परमधाम जाता हूँ उसके ठीक सातवें दिन द्वारका समुद्र में डूब जाती है।।3।।

मैं इस भू-लोक को जिस दिन छोड़ता हूँ उसी दिन यह भू-लोक अपवित्र होता है। कलि पुरुष इसके ऊपर आक्रमण करके रहता है।।4।।

इसके लिए मेरे इस भू-तल को छोड़कर जाने के बाद तुम द्वारका में नहीं रहना। हे मंगलकर, कलियुग में लोग अधर्माचरण में आसक्त होते हैं।।5।।

तुम अपना घर, मन्दिर त्याग कर बन्धु-बान्धव और स्नेही लोगों को छोड़कर मुझमें मन रखते हुये अविहित प्यार अथवा किसी में द्वेष न करते हुये इस भूमि में संचार करते रहो।।6।।

मन से, वाक से, आँख, कान इत्यादि इन्द्रियों से जो अनुभव में आता है उसको अशाश्वत समझो किन्तु भगवान की इच्छा से प्रकृति से जो होता है उसको सत्य मानो।।7।।

यह जगत माया अवास्तविक है। तुम्हारे मन की कल्पना है श्री कृष्ण का उपदेश इस प्रकार नहीं है। माया इसका अर्थ जड़ प्रकृति होती है। उसकी अभिमानी लक्ष्मी देवी भगवान श्री कृष्ण के अधीन होती है और भगवान के मन संकल्प के अनुसार प्रकृति से इस जगत की सृष्टि करती हैं। इस प्रपंच के नियामक होने के कारण उसी को प्रपंच मानते हैं। यह विचार मोक्ष धर्म में आता है।

भगवान में मन न रखने वाला मानव अनेक कर्म को मैं ही किया हूँ इस भाव से करते हुये स्वातंत्र्य के भ्रम के अधीन होकर रहता है। यह भ्रम ही गुण दोषों के सुख-दुःखों के लिए कारण बनता है। भगवान ही सब कुछ करते हैं तो **कर्म, अकर्म, विकर्म,** मैं इसको करता हूँ। इसको कर नहीं सकता हूँ। इसको खराब करता हूँ। इस प्रकार भेद भ्रम के अधीन होता है।यह दोष बुद्धि है। रजस् और तामसी प्रवृत्ति से होती है।।8।।

महाभारत कहता है कि मैं स्वतंत्रकर्ता हूँ। इस भ्रम से ही जीव को यह संसार मिलता है। वही भगवान ही स्वतंत्रकर्ता हैं यह ज्ञान यदि हुआ तो इस संसार से निवृत्ति होती है। यह कर्म करना अथवा छोड़ना अथवा व्यत्यस्त रीति से करना यह मेरी इच्छा के अधीन है। यह भ्रम जीव को रहता है। यह रज, और तमो गुण का प्रभाव है। यह भी महाभारत में आता है।

इसी कारण सारे भ्रम को मूल कारण बना हुआ मन में रहने वाला रज और तमो गुणों की शक्ति प्रभाव को जानकर मन को भगवान में रखते हुये इन्द्रिय जय और मनो जय को पाना है। इसके लिए इस जगत का सृष्टिकर्ता चतुर्मुख ब्रह्म होते हुये भी वह सर्वशक्त ब्रह्म भी सर्वेश्वर मेरे अधीन है यह समझ लो।।9।।

आत्मा यह चतुर्मुख ब्रह्मा के लिए प्रयोग किया जाता है। परमात्मा यह श्री हरि के लिए है। इसी से इस श्लोक में आत्मनि **ईक्षस्व** इसका अर्थ इस जगत को चतुर्मुख में और चतुर्मुख को भगवान श्री कृष्ण में देखना है। यह काल संहिता नाम के ग्रंथ में आता है।

ज्ञान-विज्ञान-युक्त होकर अपनी तरह अन्यों के सुख-दुःखों को भी समान मानते हुये भगवान का अपरोक्ष पाकर संतुष्ट मन से रहो। ऐसे करने वाले को आगे आने वाले पाप अथवा विघ्नों से मोक्ष मार्ग में बाधा नहीं होती क्योंकि भगवान के अपरोक्ष के बाद पूर्व के पाप नष्ट होते हैं और अनन्तर के पाप बाधक नहीं बनते। अशेष पाप का विनाश होता है।।10।।

इस श्लोक में आने वाला **आत्मभूतः** इस शब्द का अर्थ अन्यों को अपने समान देखने वाला। भगवद् गीता (6-32) उसी को योगी कहती है।

फल की आशा न करते हुये बच्चा खेलता रहता है। उसी प्रकार योगी यहाँ पर दोनों में विरक्त होकर जो कर्म करता है वह फल की आशा से नहीं। निषिद्ध कर्म जो छोड़ता है वह पाप के भय के कारण नहीं। भगवान नारायण स्वयं अपने में रहते हुये विहित और निषिद्ध कर्मों को करने की और छोड़ने की प्रेरणा करते हैं। इस प्रकार समझना है।।11।।

ज्ञानी स्वतंत्रकर्तृत्व को अपने ऊपर आरोप करता नहीं। इसी कारण वह निषिद्ध कर्म से दूर रहता है वह

पाप भय से नही। विहित कर्म करता है वह पुण्य की आशा से नहीं। भगवान श्री हरि अन्दर रहते हुये विहित, निषिद्ध कर्मों को करने और छोड़ने की प्रेरणा दे रहे हैं। इस प्रकार समझते हुये मुझे स्वर्ग नरक का आकर्षण या भय नहीं है इस प्रकार समझकर ही ज्ञानी प्रवृत्ति और निवृत्ति कर्माचरण करता है। यह बौद्धव्य नाम के ग्रंथ में है।

भगवान अपना वास स्थान मानकर जीव से प्यार करते हैं। वे किसी से क्रोध नहीं करते। इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान से वैष्णव सिद्धान्त में पहाड़ के समान अचल रहते हुये ज्ञानी यह सारा जगत भगवान के अधीन है इस प्रकार जानता है। ऐसा ज्ञानी पुनः इस संसार में जन्म नहीं लेता।।12।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा परीक्षित, भगवान के इस आदेश को सुनकर महा भगवद्भक्त उद्धव तत्वज्ञान को जानने की इच्छा से अच्युत को वंदना करते हुये पूछता है।।13।।

उद्धव कहते हैं - योगाभ्यास के नियामक ज्ञान और ज्ञानोपाय को विशेषकर देवर्षियों में रखने वाले, ज्ञान स्वरुप, ज्ञान और ज्ञानोपाय का जनक हे भगवान आप दुस्संगों का त्याग करना मोक्ष का साधन हैं इस प्रकार उपदेश दिये हैं।।14।।

योग का विन्यास इसका अर्थ ज्ञान और ज्ञान साधनाओं को देवताओं में रखने वाले भगवान इस प्रकार होता है। क्योंकि योग शब्द को दत्तात्रेय योगशास्त्र में तीन अर्थ कहे गये हैं। उसमें ज्ञान को एक अर्थ माना जाता है क्योंकि वह सुख का साधन है। योग के लिए साधन यह दूसरा अर्थ है। चित्त निरोध यह तीसरा अर्थ है।

हे गुणपूर्ण सर्वेश्वर भगवान श्री कृष्ण आप में भक्ति न रहने वाली विषयासक्ति का त्याग करना बिल्कुल असाध्य है, ऐसे मुझे लगता है।।15।।

आपकी इच्छा से, प्रकृति से हमारी इस शरीर में, इस शरीर के सम्बन्धियों में **मैं और मेरा** यह मोह बुद्धि उत्पन्न होती है, मैं भी उसमें डूबा हुआ हूँ। इसी कारण आप जो त्याग के बारे में कहे उसकी साधना करने के लिए आप के दास मुझको आप ही उपदेश दीजिए।।16।।

आप सद्गुण पूर्ण स्वप्रकाश वाले सर्व स्वामी हैं। हे प्रभु, आपके स्वरुप के बारे में आपके बिना उपदेश देने वाला देवताओं में भी और कोई नहीं है। ब्रह्मादि देवताओं भी आपकी इच्छा से बुद्धि मोह पाते है। देहाभिमान से अन्य विषयों के बारे में भोगों में आशक्ति रखते हैं।।17।।

ब्रह्म और सरस्वती प्राकृत शरीर वाले होते हुये भी उनको शरीर का अभिमान नहीं है। इसके लिए उनको अशरीरी कहते हैं। हरि की आराधना के लिए निरुपयुक्त प्राकृत वस्तु में उनको मोह होता नही। प्राकृत

शरीर होने के कारण उनको मोह है ऐसे कहते हैं। किन्तु अन्य देवताओं में प्राकृत शरीर का अभिमान होता है। कभी-कभी अन्यथा ज्ञान भी आता है। रुद्र को शरीर का अभिमान न होते हुये भी असुरावेश से अन्यथा ज्ञान कभी-कभी आता है।

ऋजुयोगियों को ऋजु पद प्राप्त होने के पहले अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता है। इसके लिए वही मोह कहलाता है। वायु और भारती को अवतार और रूपों में सदाकाल के लिए अपरोक्ष न रहना मोह कहलाता है। ब्रह्म और सरस्वती को अवतार नहीं है। ब्रह्मपद के पीछे के एकसौवाँ कल्प में ब्रह्म सरस्वतियों को योग्य अपरोक्ष होता है। बाद में आगे के सौ कल्पों में क्रमेण विशेष अपरोक्ष होने लगतें हैं। सदा वे सर्वज्ञ हैं इस प्रकार जो कहना है। वह उनके परोक्ष ज्ञान सदा सर्व विषय के बारे में रहता है इस अभिप्राय से। भारती देवी को सौ कल्पों में अवतारों में कभी-कभी मूल रूप में भी कभी अपरोक्ष का विस्मरण हो सकता है। यह बात शक्ति विवेक नाम के ग्रंथ में आता है। वायु, लक्ष्मी, भारती, विष्णु ये चार शरीर अभिमान रहित हैं। इस प्रकार श्रुति कहती है। यह उक्ति उभयनिरुक्ति नाम के ग्रंथ में है।

इसी कारण आपके स्वरुप को मुझे जानने के लिए आप ही हमें उपदेश दीजिए। आपके बिना उसका उपदेश देने वाले अन्य कोई नहीं है। इसी कारण आप ही मुझे उपदेश दीजिए। इस प्रकार मैं आपकी शरण में आया हूँ। आपकी महिमा अपार है। आप सर्वज्ञ, सर्वशक्त और दोषरहित हैं। अच्युत, आप कभी भी च्युत नहीं होते, नाश नही होते। हे हरि, नारायण मुनि, आप श्री कृष्ण होकर अवतार ले चुके हैं। उनके समान आप भी उपदेश लीला का प्रदर्शन करें। आप नरांश युक्त अर्जुन के मित्र हैं। अर्जुन को आप जैसे उपदेश दिये उसी प्रकार मुझको भी उपदेश दीजिए।।18।।

विष्णु, वायु, शेष इन तीनों अंशों से मिला हुआ नरऋषि का अवतार है। शेष का अवतार विष्णु वायु के आवेश से युक्त है। अर्जुन इन्द्रावतार है, उसमें नरावेश है। यानी विष्णु वायु शेष आवेश होने के कारण उनमें कुल चार अंश से थे। उसके साथ मूल रूपी हरि का आवेश भी था। बलराम, लक्ष्मण शेष के अवतार हैं। विष्णु के आवेश युक्त होने के कारण उनमें दो अंश थे। इस प्रकार अंश विवेक नाम के ग्रंथ में है। अर्जुन के मित्र श्री कृष्ण को नरसख कहते हैं। अर्जुन के नरावेश युक्त होने के कारण ऐसा कहना योग्य है।

अवधूत उपाख्यान

श्री भगवान कहते हैं - बुद्धिमान लोग इस जगत में दूसरों के उपदेश के बिना ही अपनी बुद्धि शक्ति से ही जगत के बारे में और तात्विक विषयों के बारे में ठीक तरह से समझकर हरि गुरु भक्ति से अपरोक्ष को पाकर संसार कूप से उद्धार पाते हैं।।19।।

लोक तत्व में पाण्डित्य पाना ही पर्याप्त नहीं है। परतत्वों में भी विचक्षण होना चाहिए। लोक तत्व के

अनुभव के साथ परतत्व को भी अनुभव से ही पा सकते हैं। इसके लिए दृढ़ भक्ति और श्रद्धा होनी चाहिए। इसके विरुद्ध में नास्तिकत्व के बारे में द्वेष होना चाहिए। ऐसे न करते हुये लौकिक के समान वेदान्त को भी एक दर्शन समझे तो ईश्वास्योपनिषद् के अनुसार **ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः** तम प्राप्ति होती है। परापर दोनों तत्वों के बारे में गाढ़ पाण्डित्य होते हुये भी भक्ति वैराग्य नहीं रहे तो साक्षात्कार अथवा मोक्ष नहीं होता है। इस प्रकार षाड्गुण्य नाम के ग्रंथ में कहा गया है।

मानव को श्रेय सम्पादन करने के लिए उसका मन ही उसके लिए विशेष रूप से गुरु के समान रहता है क्योंकि कृषि से अथवा साधना से ध्यान याग से स्वर्ग और प्रत्यक्ष अनुमान से श्रेय सम्पादन कैसे होता है यह मन से ही समझ में आता है।।20।।

मानव जन्म में ज्ञानी लोग, ज्ञान कर्म में प्रवीण होते हुये सर्वशक्त मेरे विश्व रूप के पर्यन्त सारे रूपों को यथा योग्य रूप में समझते हैं।।21।।

इस जगत में एक, दो, तीन, चार पाँव वाले, अनेक पाँव वाले, पाँव ही न रहने वाले, अनेक प्राणी सृष्ट होते हैं। उनमें से मनुष्य शरीर वाली जीव मेरा प्रिय होता है।।22।।

युक्ताः = योगी, **हेतुभिः गृह्यमाणैः** भगवान का अनुग्रह पाते हुये भगवद् अपरोक्ष हेतु शम, दम आदि को अपने अधीन नही हैं यह मनुष्य शरीर में ही अनुभव से जानते हुये, **आत्मलिंगैः** भगवान के अस्तित्व के विषय में साक्षी होने वाले शम, दम आदि गुणों से मिलने वाले भगवान को गुण से समझ सकते हैं। इन्द्रियों से विषय ग्रहण करने में जीव को स्वातंत्र्य नही यह अनुभव सिद्ध होने के कारण **गृह्यमानैः** वह विषय ग्रहण होने से **आत्मलिंगैः** उसके कारण भगवान के अस्तित्व को कल्पना कर सकते हैं।।23।।

इस विषय के बारे में अत्यन्त तेजस्वी एक अवधूत मुनि और राजा यदु के बीच में जो सम्भाषण हुआ उसके एक पुरातन इतिहास को ज्ञानी लोग इस प्रकार कहते हैं।।24।।

अत्यन्त ज्ञान, निपुण एक अवधूत ब्राह्मण भय रहित होकर संचार करता था। उसको देखकर धर्मज्ञ यदुमहाराज पूछते हैं।।25।।

हे ब्राह्मण, आप अन्न सम्पादन अथवा अन्य कर्म अथवा निषिद्ध कर्म नही करते हैं। आपको यह विलक्षण ज्ञान कैसे मिला। किस गुरु से आप इसको पाये क्योंकि यह बुद्धि पाने वाले आप ज्ञानी होते हुये भी छोटे बालक के समान इस जगत में चिन्ता रहित होकर चल रहे है।।26।।

मानव ज्यादातर अर्थ काम में कभी मोक्ष के बारे में भी विचार करते हुये उनमें मन रखते

हुये उनकी साधना के लिए आयुष्य, कीर्ति धन सम्पदाओं को पाने के लिए प्रयत्न करता है। यह दृग्गोचर है।।27।।

किन्तु आप विचार निपुण हैं, विवेकी, शरीर से सुन्दर और बलशाली हैं। अच्छी बातें करते हैं। इतना होते हुये भी आप कुछ भी प्रयत्न न करते हुये मूर्ख के या पागल के समान अथवा पिशाच के समान संचार करते हैं।।28।।

लोग लोक नाम के दावानल में दहते रहते हैं। आप उससे मुक्त होकर गंगा में विहार करने वाले हाथी के समान उस ताप से दूर हैं।।29।।

हे ब्राह्मण, आप से हम यह पूछना चाहते हैं कि आपको यह शरीर के बिना कुछ भी अपना नहीं है। आप विषय भोग का अनुभव नही करते। इतना होते हुये भी सदाकाल अंतरंग में आनन्द से भरे हुये हैं। इसका कारण क्या है हमे बताइये।।30।।

अवधूत मुनि **केवलात्म** हैं इसका अर्थ पत्नी, पुत्र, घर दरबार सब छोड़ दिया है, यह अर्थ नही होता। स्पर्श विहीन वह यही अर्थ देता है। इसके लिए वही अर्थ इसको करें तो पुनरुक्ति होती है। इसके लिए केवलात्मा का अर्थ शरीर को मोक्ष का साधन है इस प्रकार मानते हुये उसकी रक्षा करते हैं। किन्तु शरीर से होने वाले सुखानुभव को त्याग दिये है। यह अर्थ करना चाहिए।

श्री भगवान कहते हैं - इस प्रकार महाभाग्यशाली अवधूत ब्राह्मण को, ज्ञानी यदुराज सत्कार पूर्वक विनय से नम्र होकर पूछने के बाद वह ब्राह्मण कहता है।।31।।

अवधूत के चौबीस गुरु

अवधूत ब्राह्मण कहता है - हे राजा, मुझे बहुत गुरु हैं। मैं अपनी बुद्धि से ही उनको चुना हूँ। उनके व्यवहार से मैं पाठ सीख शरीर के अभिमान से मुक्त होकर संचार करता रहता हूँ। उन गुरुओं के बारे में यदि आप सुनना चाहते हों तो मैं कहता हूँ।।32।।

वे चौबीस गुरु इस प्रकार हैं - भूमि, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चंद्र, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, मधुमक्खी, हाथी, शहद को निकालने वाला, हिरन, मछली, पिंगला नामक वेश्या, कुरर, शिशु, कुमारी, बाण तैयार करने वाला, सर्प, मकड़ी, और कणज।।33,34।।

इसमें प्रथम गुरु पृथ्वी है। अवधूत कहते है कि इस भूमि से उन्होने क्या सीखा। धीरसाधक को दैव प्रेरित प्राणियों से आक्रमण हुये तो भी उसे अपने रास्ते से नही हटना चाहिये।

अचल यहाँ भूमि का दूसरा अन्वर्थक नाम है। स्थिरा यहाँ एक और नाम है। साधना पथ में जाने वाले साधक को मुख्य रूप से स्थैर्य होना अत्यन्त आवश्यक है। स्थैर्य का दूसरा अर्थ सहन करना, जप-तप या श्रवण करने के लिये बैठे हुए आदमी थोड़ा भी न हिलना चाहिये। लेकिन कई लोग आगे पीछे हिलते रहते है। योग मार्ग में यह एक बुरी आदत है। इसके लिये भगवान ने कहा है :- "समं काय शिरोग्रीव)। जप की सिद्धि होने के लिये मूलाधार से लेकर सिर तक सारे शरीर सरल रेखा में रहना चाहिये। तब देह अचल बनता है। देह के चलन से जप में क्या होता है ऐसे अपहास करना नही। देह चंचल होने से साधन के लिये क्या प्रतिबंध होता है। यह प्रश्न हमारे मन में आता है।

इसके बारे में हमारे गुरुजी श्री विद्याधीश स्वामी जी लिखते हैं :-

देह चलने लगा तो अन्दर का मन भी हिलने लगता है, मनन के लिए मन की स्थिरता रखना जरुरी है। ब्रह्म सूत्र में ***अचलत्वं सापेक्ष*** *के सूत्र में व्यग्र मन के मानव कुछ भी कर नहीं सकते। इसके बारे में विवरण आ गया है। व्यग्र मन के बालक के हाथ में यदि अपने गाड़ी की जिम्मेदारी दिया जाये तो अन्दर बैठने वाले की हालत क्या होगी, वाहन गिर जायेगा तथा अन्दर बैठने वाले की मृत्यु हो जायेगी। व्यग्र मन के मानव का हाल क्या होगा। वह तो मूर्ख की बात बनेगा। दुर्बल मन के व्यक्ति से हुआ भोजन क्या सही हो सकता है ? जपध्यान व पूजा के समय में मन से चंचल रहे तो उसका साधन शून्य बन जाता है। अखिलांडकोटि ब्रह्मांड नायक: का दर्शन चाहने वाले को इसका ध्यान रखना चाहिये।*

साधना की प्रथम सीढ़ी अचलता को भूमि ने अपना व्रत माना है। देव देवताएँ हमारे मन को विचलित कर सकते हैं। देवों से प्रेरित अन्य घटनायें हमारे ऊपर आक्रमण कर सकती हैं, किन्तु हम यदि भूमि के समान अचल रहें तो भगवान श्रीहरि हमारे सम्मुख आ जाते हैं। प्रारंभ किए हुए किसी भी कार्य को अंत तक ले जाने की प्रेरणा को अवधूत ने इस भूमि से लिया है।

भगवान है कि नहीं? यह संदेह एक तरह की चंचलता है। भगवान के पास जाने के साधन के पथ को दिखाने वाले शास्त्र के बारे में संदेह करना चंचलता है। साधन पथ को दिखाने वाले गुरु के बारे में भी संशय चंचलता का ही एक रूप है। उपासना से मिलने वाली मुक्ति तथा अदृष्ट फल के बारे में संशय करना भी चंचलता के ही कारण है। संशय करना दोष नहीं है, किन्तु ठीक तरह का समाधान बताने के बाद भी उसके बारे में संशय करना अनर्थ ही बनता है। ***संशयात्मा विनश्यति*** *यानी संशय चांचल्य व चपलता इनसे पार होकर स्थिरचित होकर भगवान श्रीहरि में अपने मन को लगा देना ही अचलता है।*

हे राजा, यही मेरे चौबीस गुरु हैं। इनके आश्रय में इनके उद्बोधक व्यवहार को देखकर मैंने नीतिपाठ को सीख लिया।।35।।

हे पुरुष श्रेष्ठ यदुमहाराज मैं किससे, किस नीति को, कैसे सीखा इसके बारे में आपको बोलता हूँ, सुनो।।36।।

अवधूत का प्रथम गुरु भूमि

भूमि के ऊपर प्राणी चलते हैं। उनके कितने भी कष्ट देने के बाद भी भूमि विचलित नहीं होती। इसी प्रकार दैव वश के अनुसार लोग हमारा तिरस्कार करें तो वे भी दैव के अधीन हैं। ऐसा समझते हुये ज्ञानी सन्मार्ग से विचलित नहीं होता है। इस पाठ को मैंने भूमि से सीख लिया।।37।।

विद्याधीश गुरु जी लिखते हैं :-

अवधूत प्रथमत: पृथ्वी को अपना गुरु मानते हैं। पृथु का अर्थ बड़ी होती है। भू-माता तो सबसे बड़ी है और वह अन्य लोगों को भी बड़ा बनाती है। भू-माता अन्य लोगों को कैसे बड़ा बनाती है। भूमि में गिरा हुआ एक छोटा सा बीज सस्य होकर और बाद में बड़ा वृक्ष बन जाता है। छोटे बीज को बड़ा वृक्ष बनाने का सामर्थ्य भूमि में है गुब्बारा पहले छोटा होता है लेकिन हवा भरने के बाद एकदम बड़ा होता है किन्तु उसमें केवल हवा भरा रहता है और कुछ नही। वृक्ष वैसा नही है। गुब्बारा को एक सुई से फोड़े तो हवा बाहर आकर वह बिल्कुल छोटा हो जाता है किन्तु वृक्ष ऐसा नहीं है। उसमें पत्ती है, फूल है, फल है। इसमें मिट्टी का हिस्सा ही बहुत बड़ा है। गुब्बारा में मिट्टी का अंश कुछ भी नहीं है। इसी कारण गुब्बारा हवा निकालने के बाद कुछ भी नहीं रहता। किन्तु वृक्ष में मिट्टी का योगदान ज्यादा रहने के कारण हमें फल, फूल इत्यादि मिलते रहते हैं। हमारा जीवन ही मिट्टी के साथ मिला हुआ है। मिट्टी को छोड़े तो हमारा जीवन गुब्बारा के समान हो जायेगा।

स्नान करते वक्त मिट्टी को लगाकर स्नान करना बहुत शुद्ध व पवित्र माना जाता है। उस समय यह मंत्र बोलते हैं।

मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्

वेद ने इस पावन पारिहारक शक्ति को रखा है। मिट्टी लगाकर स्नान करना अंध:श्रद्धा मानी जाती थी। किन्तु आज बड़े-बड़े वैद्यों के कथन के अनुसार पूरे शरीर को मिट्टी के लेपन करते हुये सूर्य स्नान करने वाले प्राकृतिक चिकित्सकों को हम देखते हैं। इस तरह से हमारा जीवन ही इस मिट्टी से बनता है। इसमें रहने वाले सारे प्राणी इस मिट्टी की संतान हैं।

मिट्टी हमें इतने लाभ देते हुये भी हमारे से वह वापस कुछ भी नहीं चाहती है। प्रति उपकार की इच्छा

न करते हुये भूमि हमारे ऊपर अत्यन्त उपकार करती है। पृथ्वी जो करती है वह अन्यों के लिये, अन्यों में रहने वाले भगवान के लिये इसी कारण अवधूत बोलते हैं-

शस्वत परार्थ सर्वेषाम्

भूमि से अवधूत क्या सीखे-हमें जो कुछ करना है, वह दूसरे के लिये करना है, भगवान् के प्यार के लिये करना है। पृथ्वी हमें यह पाठ पढ़ाती व सिखाती है।

हमारा सारा जीवन भूमि से आधारित है। भूमि से हमें रहने योग्य स्थान मिलता है और सकल संपदा भूमि से ही आती है। हमारे खाने वाले आहार धान, गेहूँ इत्यादि सभी भूमि की उपज हैं। हम हजार बीज डालें तो भूमि उसको करोड़ों में वापस देती है। भूमि का और एक अन्वर्थक नाम है, वसुधा। भूमि अपने गर्भ से हमें पीने के लिये स्वच्छ जल देती है। हमारे भूख को निवारण करने वाली भूमि है। सोना-चाँदी, हीरा-लोहा सभी वसुन्धरा से मिलती है। इस माँ के पीठ को चीरकर सबकुछ अपने लिये रखना महा अपराध होता है। डीजल, पेट्रोल व मिट्टी का तेल भी भूमि से ही आते हैं। हम विमान में उड़ना चाहते हैं तो भूमि का ही आधार होना चाहिए। रास्ते में चलना चाहते हैं, कार व बस में सफर करना है तो भी भूमि का सहारा ही चाहिये। तेल आधारित सकल यंत्र का आधार भी यह पृथ्वी ही है। हमारे सुख व संतोष की मूल निधि यह पृथ्वी ही है। पृथ्वी की यह सर्वविध की समृद्धि व संपदा सभी लोगों के लिये, भगवान् के लिये है। इसी को अवधूत बोलते हैं।

परार्थ एकांत संभवम् पृथ्वी हमें क्या सिखाती है। हमें प्राप्त यह संपद समृद्धि केवल हमारे लिये नहीं है। हमें उनको अन्य लोगों की सुख सुविधा के लिये त्यागना है। अन्य लोग अर्थात् अन्य लोगों में रहने वाले भगवान। पृथ्वी गुरु होकर हमें यह शिक्षा देती है।

इस श्लोक को जगद्गुरु मध्वाचार्य जी ने अपने **भागवत् तात्पर्य निर्णय** में सारे प्रमाणों के साथ निर्णय लिखे हैं-

आत्मनो वृद्धिश्च फलार्थे इति

अपने को प्राप्त समृद्धि से भोग जीवन चलाना नहीं है। भगवान जो देते हैं उसका सदुपयोग करना है। अपनी सुविधाओं को अन्यों को भी देना है। अन्य के तीन अर्थ होते हैं। पहला सज्जन, दूसरा हमारे से बड़े और तीसरा अर्थ होता है अन्य लोगों में रहने वाले भगवान। हमारी यह ऐहिक संपदा जो है वह सज्जनों के लिये है। हम उस संपदा के मालिक नही हैं। हम उसके केवल संरक्षक हैं। ऐहिक और आमुष्मिक समृद्धि जो है वह सारा गुरु का है, भगवान का है--

देवतानां च सर्वेषां स्वोत्तमानां च सर्वतः

हमारे सारे सुख संपद भगवान के प्यार के लिये, सदाचार, सद् साधना के लिए तथा उत्तम लोगों की सेवा के लिये है। अन्यों की हम जो सेवा करते हैं वह भगवान को मिलता है।

हमारे बड़े लोगों के लिये, गुरुगरीयों के लिये, हमारे से साधना कराने वाले देवताओं के लिये, जीवोत्तम वायु देव के लिये, सर्वोत्तम श्रीहरि के लिये समर्पित हो, इस बात को हमें सिखाकर पृथ्वी वास्तव में हमारी पूर्ण रूप की गुरु बनी है।

जो कुछ करते है वह सज्जनों के लाभ के लिए करना। अपनी प्रवृत्ति, अपनी सारी सम्पत सज्जनों के उपयोग के लिए है। इस प्रकार सज्जन लोगों की भावना होनी चाहिए। इस पाठ को भी मैंने भूमि को देखकर सीख लिया।।38।।

इस श्लोक में आने वाला परार्थैकान्त सम्भव: का अर्थ सम्पत समृद्धि। अपने में रहने वाला ऐहिक पारत्रिक सुख सम्पदा केवल हरि गुरु सज्जनों के उपयोग के लिए है। यह मेरे लिए नहीं है, यह वैराग्य भाव होना चाहिए। यह बात षाड्गुण्य नाम के ग्रंथ में है।

अवधूत का दूसरा गुरु वायु

जीने के लिए जितना आवश्यक है उतना ही आहार ग्रहण कर मुनि को सदाकाल तृप्त रहना चाहिए। इन्द्रिय प्रीति के लिए ज्यादा नहीं खाना। अन्न ग्रहण न करने अथवा ज्यादा करने दो प्रसंगों में ज्ञान लोप हो सकता है क्योंकि उस समय मन में समाधान नहीं रहता। कितना भी खाओ तृप्ति नहीं मिलती। प्राणवायु को आहार के विषय में संयम है। इस बात को मैंने वायु से सीखा।।39।।

बाह्य वायु विषय पदार्थों के सम्पर्क में आने के बाद भी उनके गुण दोषों से सम्बन्ध नहीं पाता है। ऐसे ही योगी को भी मीठा-खट्टा किसी तरह के अन्न को, विषयों को दैव वश से पाने के बाद भी उनके गुण दोषों से सम्बन्ध न रखते हुये मन को बड़ा छोटा, न करते हुये निर्लिप्त रहना चाहिए।।40।।

बाह्य वायु पार्थिव देहों में प्रवेश करते हुये उनके गन्धादि गुणों को आश्रय होने के बाद भी उसको उनका लेप होता नहीं। वैसे ही योगी को पार्थिव शरीरों में प्रवेश करने के बाद उनके जनन-मरण को आश्रय होने के बाद भी उनसे मिलने वाला सुख-दुःख को ग्रहण न करते हुये निर्लिप्त होकर भगवान को जानना चाहिए।।41।।

श्री विद्याधीश गुरु महाराज जी लिखते हैं :-

बहते हुये वायु के समान योगी गुणदोषमय भिन्न-भिन्न धर्म वाले विषय के संबंधित पदार्थों में संचार

करते हुये भी उनसे लिपट नहीं जाता। वायु का स्वभाव भी सदा संचार शीलता है। इसी के लिये वायु का दूसरा नाम सदागति है। वायु केवल सदागति नही सर्वत्र जाता भी है। अर्थात् वायु सभी स्थानों में चलता रहता है। हर एक पदार्थ को छूने के बाद भी उनका दोष वायु को लिपटता नही है। यह वायु की विशेषता है। वायु सुन्दर उद्यान में मन चाहे विहार करने के बाद हर एक पुष्प को छुने के बाद भी पुष्प को कुछ भी नही करते हुये उनकी सुगन्ध मात्र लेता है। वैसे ही दुर्गन्ध भरा हुआ, मल-मूत्र भरा हुआ दुर्गन्ध वाले गलियों में जाकर वहाँ की दुर्गन्ध भी लेता है। किन्तु यह सुगन्ध और दुर्गन्ध वायु से लिपटती नही। वायु सुगन्ध और दुर्गन्ध को हमारे नाक तक तो ले आते हैं। किन्तु अपने में रख नहीं लेते। वह कहीं भी संचार करे किसी को भी छुये उसका परिणाम उसके ऊपर होता नहीं यह वायु की विशेषता है।

यह योगी वायु के शिष्य बन गये। वायु से पाठ सीखें। **गुरुस्तु मौनम् व्याख्यानम्।** वायु योगी को मौन का शिक्षण दिया। वायु जैसे योगी भी सर्वत्र संचार किये। **न विश्जेत निर्लिप्त रहे।** कीचड़ मे पाँव रखे तो कीचड़ में डूब जाता है। भोगी का हाल यही है। किन्तु योगी इस विषयो से भरे हुये प्रपंच में पाँव रखते हुये भी अपने पाँव कीचड़ में रखने के बावजूद कीचड़ में नहीं फसने दिया। कीचड़ आये तो वायु वहाँ फँसता नहीं है। वैसे ही योगी कहीं भी फँसते नहीं हैं। योगी सबको देखते हैं किन्तु उन्हें किसी का आकर्षण नही है। हम तो चाहिये चाहिये बोलते रहते है। लेकिन योगी कभी किसी को चाहते नही। साधक इस देव सृष्टि में किसी की अपेक्षा भी नहीं करते और उपेक्षा भी नहीं करते। वे इस संसार से द्वेष नही करते तथा इसमें आनन्द भी नही लेते। वह सदैव तटस्थ रहते हैं। वह अच्छे विषयों को ग्रहण करता है। दुष्ट वस्तु को देखते हैं स्वयं इन दोनों से दूर रहते हैं।

विषयेषु आविषन साधु समुद्र जैसे आये हुये विषय पदार्थों का सेवन करते हैं उसमे ज्यादा आदर नही दिखलाता विषय वस्तु दुर्बल को बाँधकर रखते हैं। विषय शब्द का अर्थ बंधक भी होता है। वि जोड़ने से विषय बहुत बड़े बंधक है यह अर्थ निकलता है। मछली पकड़ने वाला जाल को एक माँस का टुकड़ा जोड़कर जाल को पानी में छोड़ देता है। पक्षी को पकड़ने वाला जमीन पर धान को बिखरा देता है। सांप को पकड़ने वाला मधुर बीन बजाता है। ये सारे देखने के लिये बहुत उपकारित लगते हैं। किन्तु ये आमिष दिखलाकर उन प्राणियों को बंधक बना लेते हैं। पशु उसे बंधक न समझते हुये लालसा से लिप्त होकर उनमे फँस जाता हैं। इसी को बंधक का विधान बोलते हैं। ऐसे ही विषय वासनाओं ने हमें तत्काल सुख या तृप्ति देते हुये हमें जीवन पर्यन्त बंधक बना देती हैं। इससे जीव कभी भी बाहर आ नहीं सकता। इन विषयों की बंधक बनाने वाली रस्सी को हम देख नही पाते। यह बंधक भले ही सोने का हो या लोहे का हो बंधक तो बंधक ही है। हम इन विषयो के संग से बार-बार दुःख का अनुभव करते हुये भी इसको त्यागने की बुद्धि हमें आती नही। यही आश्चर्य की बात है। माँस की आशा से आई हुई मछली को जाल मे फंसते हुये देखने के बाद भी अन्य मछलियाँ उसी माँस की आशा में स्वयं बंधन में आ जाती है।

इस मछली की तरह ही भोग जीवी भी अन्य लोगों का दुःख देखते हुये भी इस सोने के पिजड़े के बंधन मे स्वयं आ जाते हैं। पक्षी को यह अहसास होता है कि वह पिजड़ा में बंद है। यह अवकाश मिला तो वह बाहर उड़ जाने के लिये तैयार रहता है। अवकाश के लिये सदाकाल वह समय देखता रहता है। किन्तु मानव के लिये यह मालूम ही नही है कि मै पिजड़ा में बंद हूँ। वह इस बंधक जीवन को ही अपना जीवन मानकर बैठ गया है। नौ द्वार वाले इस देह के सारे द्वार सदाकाल खुले हैं तो भी यह जीव इस शरीर को छोड़कर पक्षी जैसे विशाल गगन में उड़ने का विचार नही करता। सारे दुःखों को अनुभव करते हुये भी इसी जीवन को आंलिगन किया है।

योगी इन सबको जानते हैं। सकल सिद्धि को वे पा चुके हैं। वायु के समान योगी किसी को छुये तो भी उससे लिपटते नहीं। यही योगी की अवधूत चर्या है। यही वायु से दिया हुआ पाठ है। भोगी धूलीपद हो जाता है। किन्तु योगी उड़ने वाली पतंग जैसे आकाश भर में विहार करता है। योगी ने वायु से यह पाठ सीखा। हमें भी यही सिखना चाहिये कि किसी को छुओ मत। छुये तो उससे लिपटो मत।

अवधूत का तीसरा गुरु आकाश

आकाश स्थावर जंगम प्राणियों में अन्दर बाहर व्याप्त होकर बाहर होते हुये भी अन्दर, अन्दर होते हुये भी बाहर इस प्रकार उसकी व्याप्ति में भंग नहीं आता। उनके गुण-दोष से आकाश को लेप नहीं होता। इसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त भगवान सारे स्थावर जंगमों में अन्तर्यामी होकर बाहर भी व्याप्त रहते हैं। उनकी व्याप्ति को कहीं भंग नहीं होता। उनके गुण दोषों से लेप नहीं होता। इसका चिन्तन मुनि को करना चाहिए।।42।।

इस श्लोक में आने वाला ब्रह्मात्म शब्द का अर्थ ब्रह्म आत्म का एक्य भाव नही। यहाँ ब्रह्म का अर्थ बाहर सर्वत्र व्याप्त भगवान का रूप। आत्म का अर्थ अन्दर अन्तर्यामी होकर रहने वाले भगवद्रूप इन दोनों का ऐक्य चिन्तन करना चाहिए। अन्तर्यामी भगवान केवल शरीर के अन्दर से मिलने वाले विषयों का भोग करते हैं ऐसा नहीं समझना चाहिए। वे ही भगवान बाहर असंग होकर आकाश के समान व्याप्त हैं ऐसा समझना चाहिए। यह बात तंत्र भागवत में आती है।

आकाश हवा से आने वाले बादल इत्यादि अग्नि, जल, पृथ्वी इत्यादि भूतों से लेप नहीं पाता है। उसी प्रकार कालवश से होने वाले अग्नि, जल, पृथ्वी में भौतिक पदार्थों से भगवान किसी मनोविकार के वश नहीं होते। इस प्रकार समझकर ज्ञानी को भी मनोविकार नहीं पाना चाहिए। उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए।।43।।

आकाश आदि में रहने वाले निर्विकार तत्व आदि गुणों को जीव को अपने में बढ़ाना है। किन्तु उसमें रहने वाली व्याप्ति आदि गुणों को साधना कर नहीं सकता। वे गुण भगवान में स्वाभाविकतया सिद्ध हैं ऐसा

समझ लेना चाहिए। इस प्रकार इस जगत में दृश्यमान गुणों को अलग-अलग विवेचना करते हुये समझ लेना चाहिए। यह लोक-तंत्र नाम के ग्रंथ में आता है।

श्री विद्याधीश गुरु महाराज जी लिखते हैं :- जीव में दो विभाग होते है, एक स्थिर और दूसरा जंगम। एक ही स्थान पर रहते हुये जीवन चलने वाले जीव को स्थावर कहते हैं, चलते फिरते जीवन चलने वाले गमनशील जीव को जंगम बोलते हैं। पेड़, वृक्ष और लता ये सारे स्थावर जीव है, वृक्ष में भी जीव रहता है। श्वास और उच्छ्वास करने वाले सारे जीव माने जाते है। पेड़ और वृक्ष श्वास, उच्छ्वास करते हैं। उनको भी जीव है। वे सुख दुःख का अनुभव करते हैं। संगीत से वृक्ष सन्तोष पाकर अधिक मात्रा में फल-फूल देते है। जगद्गुरु मध्वाचार्य जी ने इस सत्य को पहली बार बताये हैं। वृक्ष भी स्थिर जीव है यह सहृदयता हमारे में होनी चाहिये। वैज्ञानिक भी इसको मानते हैं। जगदीश चन्द्र बसु पहली बार विश्व को बताये कि वृक्षों में जीव रहता है। लताएँ अल्प प्रमाण में जंगम भी हो सकता है। वह किसी वृक्ष के आश्रय से थोड़ा ऊपर नीचे अगल-बगल में विस्तार होता है। वृक्षों को छोड़कर अन्य सारे पशु पक्षी, कीट, नर, वानर सारे जंगम कहलाते हैं।

स्थावर वृक्षों में मिलने वाले सुगन्ध फल-फूल, जंगम जीव राशि में दिखाने वाले सृष्ट्यादि दैहिक क्रिया ज्ञान इच्छा मानसिक प्रयत्न ये सारे हम स्वतंत्र रूप से कर नही पाते। हमारा यह क्रियाकारित्व हमारे अन्तर्यामी होकर अन्दर रहने वाले भगवान की प्रेरणा से, उनकी शक्ति से होता है। हमारे अन्दर रहने वाले यह भगवान के रूप को आत्मा कहते हैं। आत्म भाव से ही हमारे प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप कर्म होते हैं।

हमारे देह से बाहर हमें जो जो वस्तु चाहिये उन सब वस्तुओं का निर्माण भगवान ने किया है। जैसे पिण्डाण्ड के बाहर भगवान सब कुछ किये हैं वैसे हमारे शरीर में भी भगवान अपने ब्रह्म रूप से रहते हुये अपने व्याप्त रूप से हमारी रक्षा करते हैं। इस प्रकार ब्रह्माण्ड और पिण्डाण्ड दोनों में व्याप्त रहकर सर्वत्र भरे हुये भगवान इस जगत के कार्य कारित्व को मुख्य मूल शक्ति है।

भगवान अन्दर अणु रूप से बाहर व्याप्त रूप से रहकर इस जगत का नियमन इत्यादि कार्य करते हैं। इससे हमें प्रश्न उठता है भगवान कितने हैं ? अणु रूप में रहने वाला भगवान व्याप्त कैसे होते हैं ? व्याप्त रूप में रहने वाला भगवान अणु रूप में कैसे बनते हैं? यह दोनो अत्यन्त विरुद्ध एक साथ न होने वाले रूप होते हैं। यह दोनो भगवान के रूप एक ही मानना बुद्धिगम्य नही हो सकता।

अवधूत इस प्रश्न के उत्तर को आकाश से पाये। एक ही आकाश (अवकाश) घर के अन्दर भर कर रहता है, बाहर भी भर कर है। इसी प्रकार हमारे भगवान अन्तर बाह्य भर कर रहते हैं। घर में रहने वाला आकाश, आकाश का ही एक अणु रूप है। वही आकाश अणुत्व से बृह्यत्व होकर हमें दिखाई देता है।

घर जल गया तो घर में रहने वाले सारे राख बन जाते हैं। इसी प्रकार शरीर जलने के बाद उसमें रहने वाले भगवान राख हो जाते है क्या ? इस प्रश्न का उत्तर भी अवधूत को आकाश से मिला। आकाश के समान भगवान है, घर नाश हुये तो छोटा आकाश नष्ट होकर बड़े आकाश में मिला जाता है। उसी प्रकार देह के नाश होने के बाद जीव

भगवान के शरीर में प्रवेश करता है। आकाश असंग है, उसको किसी का लेपन नही होता है। इसी प्रकार हमारे भगवान को किसी का लेप नही होता है। शरीर जल जाने से अन्दर रहने वाले भगवान जलने का प्रश्न उठता ही नही। अणु रूप में रहने वाले भगवान अपने बड़े रूप में विलीन हो जाते है। शरीर में रहने वाले भगवान को चिन्ता-संताप, पुण्य-पाप का लेप होता नही। उनको जनन-मरण, रोग-रुजिन का सम्बन्ध नही आता। इसका प्रमाण उनको दिखने वाला आकाश है। आकाश के समान व्याप्त रहने वाले भगवान असंग हैं इसी के लिये भगवान को अव्याकृत आकाश कहते है। सदा चिन्तनशील मुनि भगवान के असंग के बारे में चिन्तन करते रहता है। इस बात को जगद्गुरु मध्वाचार्य जी तंत्र भगवत के प्रमाण के अनुसार अपनी व्याख्यान किये हैं।

अवधूत का चौथा गुरु जल

जल स्वभावतः स्वच्छ रहता है। स्नेह और माधुर्य गुण वाला है। गंगादि तीर्थ जल, दर्शन, स्पर्शन, और कीर्तन करने से पाप परिहार करते हैं। भगवान भी सदाकाल स्वच्छ स्नेह परक और मधुर हैं। दर्शन, स्पर्शन और कीर्तन करने से पाप परिहार करते हैं। ज्ञानी को भी स्वभावतः स्वच्छ स्नेह परक मधुर और सुखकर स्वभाव वाले होना चाहिए। दर्शन, स्पर्शन, कीर्तन से सज्जनों का पाप परिहार करने वाला होना चाहिए।।44।।

श्री विद्याधीश गुरु महाराज जी लिखते हैं :- पानी का माधुर्य गुण ज्ञानी में होना चाहिए। अपने चाल चलन से वह सज्जन लोगों को सुखकर बनना चाहिए। इसके लिए उसे सुखकर भगवान की उपासना करनी चाहिए। यह विचार शब्द निर्णय में इस प्रकार कहा गया है। मधु-र इसका अर्थ सुखदायक, माधुर्य का अर्थ - सुखकर स्वभाव होता है। सुख स्वरुप भगवान में आसक्ति रखना भी माधुर्य कहा जाता है।

अवधूत यदुराज को उपदेश दे रहे हैं। अवधूत अपने लिए स्फूर्ति देने वाले 24 गुरुओं के बारे मे बोल रहे हैं। चौबीस में चौथा गुरु आपः यानी जल। मुनिवृत्ति का और जल का बहुत संबंध है। ऊपर के श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण उस संबंध के बारे में कहे हैं। संस्कृत में पानी को आपः कहते हैं। आप का अर्थ करते हुये मध्वाचार्य जी कहे हैं **आपालात आपः** यानी ठीक तरह से इस जगत की रक्षा करने वाला **आप** है। पानी को छोड़कर कोई भी प्राणी बहुत दिन तक जीवित नहीं रह सकता। हवा के बाद पानी ही जीने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। पानी जैसे जीव की रक्षा करती है वैसे ही संत भी जगत की रक्षा के लिए कटिबद्ध हैं। मानव जाति की रक्षा में मुनि का पात्र महत्वपूर्ण होता है।

प्रकृतितः स्वच्छः - पानी स्वभावतः स्वच्छ और पारदर्शक होता है। पात्र में रखे हुए जल में एक सिक्के को डाले तो वह सिक्का स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। जल इतना स्वच्छ रहता है। जल स्वच्छ रहते हुये अपने सम्पर्क में जो आते हैं उनको भी स्वच्छ करता है। मुनि का स्वभाव भी ऐसा ही है। वह भी स्वच्छ और पारदर्शक जीवन व्यतीत करता है। मुनि अपने को सदाकाल खुला रखता है। अपने

संग में आने वाले को स्वच्छ करता है।

पानी, गंदगी, धूल, कूड़ा, केश व कश्मल के संपर्क से मलीन हो जाता है। स्वच्छ पानी इनसे कैसे दूषित होता है। इसके उत्तर में अवधूत कहे- प्रकृतिः, स्वच्छ जल प्रकृति के संबंध से कश्मल होता है। पानी का सहज गुण है स्वच्छ रहना। स्वच्छता पानी की प्रकृति है। मालिन्य उसकी विकृति है। मुनि भी स्वभावतः स्वच्छ होता है। किंतु हमारे जैसे विकृतियों के साथ मिले तो विकृति आ सकती है। मिट्टी से मिला कर मटमैला हुआ पानी थोड़े ही क्षण में स्वच्छ होता है। वैसे ही मुनि का मन भी चंद क्षणों में ही शुद्ध और पारदर्शक हो जाता है।

स्निग्धः - जल का दूसरा गुण है स्निग्धता। यानि प्रेम से रहना। स्नेह का महत्व एक साथ मिलाने में है। जल में अलग-अलग चूर्ण डालने से वह एकत्र हो सकता है। आटा में चीनी मिलाकर लड्डू बनाने के लिए पानी के स्नेह की आवश्यकता है। स्नेह एक के साथ एक को मिला देता है। बिछुड़े हुये हृदयों को जोड़ देता है। मुनि इस गुण का अपवाद नही होता है। मुनि में असाधारण सन्निधानता होती है। मुनि में स्नेह, प्रीति, आदर और विश्वास पहले के ही जन्म से आये हुए गुण होते हैं। समाज में निर्माण हुये भेद को दूर भगाकर एक-एक करके सबको एकत्र मिलाने का अपूर्व गुण मुनि का स्वभाव सिद्ध गुण है।

माधुर्यः - जल का और एक गुण है माधुर्य। छप्पन भोग को खाने के बाद भी भोग को खाने से न मिलने वाली तृप्ति पानी पीने से मिल जाती है। जल में माधुर्य रहता है। यह माधुर्य मधुमेह के रोगियों को भी आवश्यक है। यानी जल पूर्ण रीति से आरोग्य कारक है। मुनि का गुण भी माधुर्यपूर्ण है। मुनि का जीवन मधुर है। मुनि का सत्संग और भी मधुर है। मुनि का चाल-चलन मधुर से भी मधुर है। मुनि के दर्शन, स्पर्शन व कीर्तन से हर एक का पाप चला जाता है। मुनि पापों से पार करने वाला अपरम्पार तीर्थराज है।

अवधूत ने तीर्थ रूप जल से इस पाठ को सीख लिये और दूसरो को सिखाये।

अवधूत का पाँचवा गुरु अग्नि

अग्नि जलता है, अपनी ज्वाला से प्रकाश देता है। हाथ से हम उसको छू नहीं सकते। दूर से ही अग्नि और प्रकाश का सेवन करना चाहिए। अग्नि पवित्र, अपवित्र भेद न करते हुये सबको जला देता है। स्वयं कभी भी अपवित्र नहीं होता। इसी प्रकार भगवद्भक्त ज्ञानी ब्रह्मवर्चस से प्रकाशमान होता है। तप से ज्ञान का प्रकाश देता है। उसको दैहिक रीति से राजा को भी दण्डन नहीं करना चाहिए। दूर से उसकी सेवा करनी चाहिए। आपतकाल में वह निषिद्धान्न भोजन किये

तो भी उसको दोष नहीं होता।।45।।

याग के लिए उपयोग में आने वाली अग्नि अरणी मथन के पहले अव्यक्त होकर रहता है। मथन से व्यक्त होता है। उसको श्रेय की इच्छा करने वाले सारे लोग उपासना करना चाहिए। ऐसे ही अव्यक्त भगवान शास्त्रार्थ विचार से व्यक्त होने के बाद उनकी उपासना करनी चाहिए। यागाग्नि यजमान से देने वाले आहुतियों को स्वीकार कर उसको अपरोक्षज्ञान देकर, पूर्वोत्तर पापों को परिहार करता है। वैसे ही ज्ञानी राख में छिपा हुआ आग के समान होते हुये श्रेयोभिलाषी जो पूजा करते हैं उसको स्वीकार करते हुये व्यक्त होकर अपरोक्ष ज्ञान को देते हुये पूर्वोत्तर पापों का परिहार करना चाहिए।।46।।

अग्नि छोटे बड़े लकड़ियों में छोटे-बड़े होकर रहते हैं। उसी प्रकार भगवान अपनी इच्छा से सृष्टि करने वाले स्थूल सूक्ष्म पदार्थों में प्रवेश करते हुये उनके रूप में व्यक्त होते हैं। ऐसा समझना चाहिए।।47।।

ज्ञानी राख में छिपा हुआ आग के समान रहना चाहिए। योग्य जिज्ञासु आये तो उनके लिए अपना ज्ञान का प्रकाश देना चाहिए। भगवान आग के समान वस्तुओं के अन्दर प्रवेश कर सकते हैं। ज्ञानी ऐसे कर नहीं सकता। इस प्रकार ज्ञानी को अग्नि के कई गुणों को अपने में साधना चाहिए। सारे गुण केवल भगवान में रहते हैं। यह समझ लेना चाहिए। आग छोटी लकड़ी में छोटे स्वरुप में, मोटे लकड़ी में मोटा स्वरुप में जैसे रहती हैं वैसे भगवान अणु में अणु से छोटा होकर महत् में महत् से बड़ा होकर प्रादुर्भाव होते हैं। यह विचार वैभव नाम के ग्रंथ में उक्त है।

श्री विद्याधीश स्वामी जी महाराज लिखते हैं :-

तेजस्वी : *अवधूत यदु महाराज को अपनी मुनिवृत्ति के कारण विद्या का उपदेश देने वाले गुरु की याद करते हुये अपने पंचमगुरु अग्नि के बारे में बोलते हैं। अग्नि मौन से उपदेश दिये। अवधूत उस उपदेश को मनन करते हुये उसमें सिद्धि पाये। मन जहाँ रहता है वहाँ मार्ग मिलता है। आजकल कई लोग बोलते हैं हमे योग्य गुरु नही मिल रहा है। किन्तु गुरु के मिलने पर भी उनका प्रयोजन लेने वाले बहुत कम होते हैं। अवधूत न बोलने वाले अग्नि से पाठ सीख लिये। मुनि को अपने तेज से शिष्य के अज्ञान को दूर करना चाहिये। अग्नि अपने तेज से आजू बाजू में रहने वाले अन्धकार को दूर करता है। अग्नि रहे तो अन्धकार दूर हो जाता है। अग्नि को अपना मुहँ खोलकर, हे अन्धकार, यहाँ से चले जाओ यह बोलने की जरुरत नही पड़ती। जहाँ अग्नि आती है वहाँ से अन्धकार चला जाता है। वैसे ही गुरु के सन्निधान से ही हमारे ह्रदय में रहने वाला अज्ञान का नाश होता है।*

तपसा दीप्तो: *- अग्नि अपनी जलती हुई ज्वाला से आजू बाजू में रहने वाली सारी वस्तुओं को प्रकाशित करता है। मुनि भी ऐसा ही करते हैं। मुनि में तप है, तप के अनुष्ठान से, पाठ-प्रवचन से, श्रवण मनन निधि ध्यास से, उनका ज्ञान बढ़ जाता है। व्रत नियमों के अनुष्ठान से वह भगवान का प्रिय बनता है।*

दुर्धर्षः :- अग्नि के ऊपर बलात्कार करने का सामर्थ्य किसी में नही है। अग्नि के स्पर्श होने से ही सारा भस्म हो जाता है। ऐसी अग्नि को पराभव करने वाला कौन हो सकता है। ऐसे ही भगवान का ज्ञान प्राप्त किए हुए गुरु का सामर्थ्य भी अग्नि के समान है। उसके सम्पर्क में आने वाले जन के सारे पाप भस्म हो जाते हैं। मुनि गुरु किसी से हार नही पाता। उसको भौतिक आशा अकांक्षा नही रहती है। उसे किसी से किसी वस्तु को मांगने की जरुरत नहीं पड़ती। वह दूसरों के बलात्कार के अधीन नहीं होता।

दूर भाजनः :- आग के पास कोई नही आ सकता। पास गया तो जल जाता है। दीप के प्रकाश के आकर्षण से पंतग दीप को टक्कर मार कर मर जाता है। इसी कारण आग से बच कर दूर रहना चाहिये। वैसे ज्ञानी भी दूर भाजन है। ज्ञानी को दूर से नमस्कार करना चाहिये। उनके साथ बैठना, सोना या चेष्टा करना आग के साथ सहवास करने के समान है। आग के बहुत नजदीक नही जाना है, वैसे बहुत दूर भी नहीं जाना है। दूर जाने से आग का लाभ नहीं मिलेगा। बहुत नजदीक जाने से जलने का भय रहता है। इसके लिये ज्ञानी के बारे में कहा है - ज्ञानी भाजन है यानी ज्ञानी को आग के समान पूजा करना है, उनकी आराधना से ज्ञान मिलेगा, इष्टार्थ मिलेगा। किन्तु ज्ञानी के समान अपने को मानकर उसके साथ समान आसन पर बैठना उसकी चेष्टा करना सही नहीं है। इसके लिये शास्त्र कहता है -

अत्यासन्नाः विनाशाय दूरस्थाः न फलप्रदाः
मध्यभागेन सेव्यंतां राजा वन्हिः गुरुः त्रयः ।

समीप गये तो विनाश होता है, दूर रहे तो फल प्राप्त नही होता। कारण राजा आग और गुरु इनको मध्यम रहकर सेवा करना चाहिये।

अवधूत योगी अग्नि से पढ़ा हुआ पाठ के बारे में यदुराजा को बता रहे हैं। अग्नि सबको खाती है, किन्तु वह ज्ञानी है। भगवान में जो मन रखता है वह कभी भी पाप नहीं करता। संस्कृत में आग को अग्नि कहते हैं। **अत्ति इति अग्निः।** जो खाता है वह अग्नि बनता है। जो जो मिलता है उसको अग्नि खा लेती है। पास में नही मिला तो अपनी ज्वाला से दूर दूर की वस्तु को भी खा लेती है। महाभारत के इतिहास में खाण्डव वन दहन की कथा प्रसिद्ध है। खाण्डव को खाने में अग्नि की शक्ति सामने आती है। अग्नि खाण्डव वन को क्यों खाया ? उसका पेट खराब हो गया था, उसको अजीर्ण हो गया था। अजीर्ण होने से उपवास करना पड़ता है। उपवास रहे तो अजीर्ण दूर हो जाता है किन्तु अग्नि ने अपने अजीर्ण को दूर करने के लिये औषधि रूप में पूर्ण खाण्डव वन को खा डाला। खाण्डव वन की क्या बात है, प्रलय काल में अग्नि सारे ब्रह्माण्ड को भस्मसा करता है।

अग्नि के लिये यह भक्ष्य और यह अभक्ष्य ऐसा भेद नही है। जो मिलता है उसको खा डालती है। पापी जो वस्तु देता है उसको अग्नि खा डालता है, वैसे ही पुण्यात्मा जो देते हैं उसको भी उसी रीति से खा डालता है। अग्नि में जो श्रद्धा भक्ति पूर्वक यज्ञ करता है उसके पाप को अग्नि भस्म करती है। सोने में रहने वाला दोष भी अग्नि में रखने

के बाद चला जाता है। सोने जैसे रहने वाले सन्त लोगों का पाप भी अग्नि से परिहार होता है।

ब्रह्मज्ञानी अग्नि के समान होते है। ब्रह्मज्ञानी को किसी पाप का लेप नही होता। ब्रह्मज्ञानी जैसे भी रहे उसके लिये हानि नही होती। ब्रह्मज्ञानी को मुक्ति पाने में हानि नही होती। ब्रह्मज्ञानी का आचार, आहार इत्यादि प्रश्नातीत रहते हैं। ब्रह्मज्ञानी को किसी नियंत्रण की आवश्यकता नही है। ब्रह्मज्ञानी अनुराग से खाता नहीं, भोग से जीता नही, रुचि को चाहता नही। उनका आहार केवल जीने के लिये। प्रारब्ध कर्म के कारण वह इस शरीर में भोग भोगता है। प्रारब्ध कर्म का फल तो भोग करने के बाद ही नाश होता है। उसी के लिये ब्रह्मज्ञानी केवल उदर निर्वाह के लिये खाता है, जो मिलता है उसी को खाता है। उसमें भक्ष्य और अभक्ष्य की विवेचना नही है, वह ज्यादा नही खाता, जितना चाहिये उतना ही खाता है। छान्दोग्य उपनिषद की यह कथा प्रसिद्ध है । एक किसान खेत में बैठे हुये चना खा रहा था। वहाँ से जा रहा ब्रह्मज्ञानी उससे मांगकर चना खाया। वह किसान पानी दिया। ब्रह्मज्ञानी उसको जूठा बोलकर तिरस्कार किया किसान को आश्चर्य हुआ, अरे चना इसको जूठा होता नही तो पानी क्यों जूठा हुआ। तब उस ब्रह्मज्ञानी ने बताया कि चना खाए बिना वह मर जाता था। किन्तु आगे पानी बहुत लभ्य है। इसके लिये जूठा पानी को पीने की आवश्यकता नही है। योगी अपने पेट के लिये कुछ करता नही, उसके बारे में कभी प्रयास नही करता । भगवान के अपरोक्ष ज्ञान होने के बाद ज्ञानी को इन भौतिक विषयों के बारे में कुछ भी चिन्ता नही रहती है। यह कथा आपातकाल में करने की कथा है।

सर्वान्नानुमति प्राणात्यये तद्दर्शनात् इस ब्रह्मसूत्र के अनुसार प्राण बचाने के लिये मानव जो कुछ भी करता है उससे पाप नही आता। भागवत सारे ब्रह्मसूत्रो का सार हैं। सारे श्रुतियों के अर्थ निर्णय के लिये श्री वेदव्यास जी ने ब्रह्मसूत्रों को रचाया है, वे ही श्रीमद्भागवत की भी रचना किए हैं। भागवत और ब्रह्मसूत्र परस्पर पूरक हैं, संवादी हैं। **अर्थोयम् ब्रह्मसूत्रणाम्** इसका यह एक निदर्शन है।

अवधूत यदु महाराजा को अपने चौबीस गुरुओं का परिचय कराते हुये पाँचवें गुरु अग्नि से सीखे हुए पाठ को बता रहे हैं।

अग्नि से भगवान को जानने का यह सुन्दर विवरण है। भगवान हमें दिखते नहीं। उसको हम कैसे देखे। अग्नि इसके लिये एक उत्कृष्ट दृष्टांत है। भगवान के अस्तित्व का चिन्तन करने के लिये अग्नि एक अच्छा उदाहरण है। अग्नि कैसे निर्माण होती है ? अग्नि को निर्माण करने के लिये हमें दो लकड़ी को लेना चाहिये। दोनो को परस्पर घिसना चाहिये, जोर से मंथन करना चाहिये। इस मंथन से पहले धुआँ आता है। धुआँ अग्नि का ध्वज है। जहाँ धुआँ है वह अग्नि होनी ही चाहिये। और ज्यादा घिसने से अग्नि का दर्शन होता है। यह अग्नि कहाँ से आयी, उत्तर सुलभ है। अग्नि लकड़ी से आयी। ये दो लकड़ी से अग्नि कैसे आयी। शून्य से किसी की सृष्टि नही होती। लकड़ी से आग आती है इसका अर्थ लकड़ी में आग भरी है। लकड़ी में रहती हुई आग मंथन से हमारे दृष्टि में आई। लकड़ी के मंथन से आग दिखाई दी । यदि लकड़ी में आग है तो पहले क्यों नहीं दिखा। आग की यह शक्ति है।

संघर्ष के बाद ही आग दृश्य होता है। अदृश्य रूप से लकड़ी में अग्नि सदाकाल के लिये रहती ही है। संघर्ष से वह दृश्य होती है। अग्नि से मिला हुआ पाठ यह है।

भगवान सर्वत्र व्याप्त हैं। सर्वत्र रहने वाला भगवान हमें क्यों दिखता नही। इस प्रश्न को अग्नि हमें उत्तर देती है। लकड़ी में अग्नि भरकर रहते हुये भी हमें जैसे दिखती नही वैसे ही भगवान सर्वत्र व्याप्त होकर भी हमें दिखते नही। अग्नि लकड़ी में रहते हुये भी हमें जैसे नही दिखती है वैसे भगवान सर्वत्र व्याप्त होते हुये हमें दिखते नही। भगवान से सृष्ट की हुयी अग्नि में इतनी शक्ति है तो भगवान में यह शक्ति रहना आश्चर्य कारक नहीं है।

लकड़ी में पहले हमें अग्नि न दिखते हुये भी संघर्ष के बाद दिखना सत्य है। ये संघर्ष क्या है ? दो वस्तुओं का घर्षण ही संघर्ष होता है। संघर्ष यानी परस्पर घिसना। दो वस्तु यहाँ गुरु और शिष्य है, दो लकड़ी को जैसे घिसना पड़ता है वैसे ही शिष्य को विनम्रता से प्रश्न पूछना चाहिये। गुरु को प्रसन्न चित्त से उत्तर देना चाहिये। गुरु से कहा हुआ विषय गहन होने के कारण अर्थ नही हुआ तो शिष्य को आक्षेप-प्रक्षेप से दांत होकर प्रश्न पूछते रहना चाहिये। गुरु को हसन्मुख होकर उत्तर देते रहना चाहिये।

गुरु से संग्रहीत प्रमेय के बारे में शिष्य को अपने मन में और पुनः पुनः चिन्तन-मन्थन करना यह एक दूसरा संघर्ष है। इस रीति से श्रवण-मनन-निधिध्यास से ब्रह्मजिज्ञासा करना ही सही संघर्ष है। जैसे जोर से संघर्ष करने के बाद ही अग्नि लकड़ी से बाहर आती है वैसे ही गुरु के साथ बहुत बड़ी जिज्ञासा करने के बाद ही भगवान हमें दर्शन देते हैं।

भगवान अपनी माया से, अपनी इच्छा से इस जगत को सृष्ट किये। यह जगत सत्य-असत्य नाम से दो प्रकार का है। सत्य का अर्थ है स्थूल रूप से हमारी आँख को दिखने वाली मिट्टी, पानी और आग। असत्य यानी सूक्ष्म प्रपंच को सृष्ट करने के लिये आकाश और वायु ये दो हैं। भगवान ने इन स्थूल और सूक्ष्म प्रपंच की रचना करते हुये उसको रूप देने के लिये स्थूल में स्थूल होकर और सूक्ष्म में सूक्ष्म रीति से प्रवेश किये। इसका दर्शन ही हमें लकड़ी से मिलता है। लकड़ी छोटी रहे तो आग भी छोटी होती है। लकड़ी बड़ी रहे तो हमें आग का भव्य दर्शन मिलता है। भगवान भी छोटे वस्तुओं में छोटे होते हुये, और बड़ी वस्तुओं में बड़े होकर रहते हैं। अवधूत अग्नि से यह पाठ सीख लिये।

अवधूत का छठा गुरु चंद्र

चंद्रबिम्ब के कालानुसार कलाओं में वृद्धि क्षय होते हुये भी चंद्र के स्वरुप में वे नहीं रहते। अव्यक्त स्वभाव वाले काल नाम के भगवान से जीव के शरीर में जनन से लेकर मरण पर्यन्त अनेक अवस्था होते हुये भी जीव को उनका ज्ञान नहीं रहता।।48।।

अग्नि की ज्वाला प्रतिक्षण उत्पन्न और नाश होती रहती है। कालनदी के प्रवाह की धारा से

यह उत्पत्ति नाश होते रहते हैं किन्तु आँख को दिखते नहीं। इसी प्रकार प्राणियों के शरीर में प्रतिक्षण उत्पत्ति नाश होते रहते हैं लेकिन गोचर नहीं होते।।49।।

श्री विद्याधीश गुरु महाराज जी लिखते हैं :-

अवयव-अवयवी, गुण-गुणी, शक्ति-शक्तिमान, क्रिया-क्रियावान, स्वरुपांश-अंशी, उसी प्रकार परमात्म, लक्ष्मी जीव इनके स्वरुप में अत्यन्त भेद है। इसी कारण परमात्म, लक्ष्मी, जीवों का स्वरुप निरवय निर्गुण और निरंश इत्यादि व्यवहार में कहते हैं। भिन्न गुण नहीं है किन्तु भेद प्रतिनिधि विशेष होने के कारण उनमें गुण है। इस प्रकार व्यवहार किया जाता है। सारे पदार्थों में रहने वाला यह विशेष पदार्थों से अभिन्न होते हुये भी पदार्थों का विशेष इस प्रकार व्यवहार के लिए और विशेष की आवश्यकता नहीं होती। वह स्वयं व्यवहार को कर सकता है। यह शक्ति भगवान के अचिन्त्य शक्ति से प्राप्त होती है।

जड़ पदार्थों में यह अवयव, गुण, क्रिया आदि कभी-कभी उत्पत्ति और नाश पाने के कारण और पदार्थ उसके बाहर रहने के कारण यहाँ अत्यन्ताभेद को नहीं बोलना चाहिए। यहाँ भेद स्पष्ट रुप से नहीं दिखता है। इस प्रकार यहाँ भेदाभेद को मानना चाहिए। यह ब्रह्मतर्क का वाक्य है। विष्णु में अचिन्त्य शक्ति है, **आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि** इस प्रकार ब्रह्मसूत्र में कहा गया है।

अवधूत का सातवाँ गुरु सूर्य

सूर्य गर्मी के दिनों में अपनी किरणों से पानी को ग्रहण करते हुये बरसात के दिनों में उसको वापस करता है। उसमें सूर्य को अभिमान नहीं रहता। इसी प्रकार योगी को इन्द्रियों से विषयों को पदार्थों को विहितकाल में स्वीकार करना चाहिए। अविहितकाल में त्यागना चाहिए। उनमें आसक्ति नहीं रखना चाहिए।।50।।

आकाश में संचार करते हुये दिव्य शरीर वाले सूर्यदेव स्थूल बुद्धि वाले को जल में दिखने वाले सूर्य के समान गोलाकार दिखते हैं। वैसे ही आनन्दमय भगवान जीव के शरीर में जीव के साथ रहने से स्थूल बुद्धि वालों को जीव के समान दिखते हैं। जीव के समान मिथ्याज्ञान से उनको दुःख होता है ऐसा लगता है वह सत्य नहीं है।।51।।

शरीर में जीव के साथ रहने वाले अन्तर्यामी भगवान को जीव के समान सुख-दुःख भोगने वाला इस प्रकार अज्ञानी लोग गलत रीति से समझते हैं। इसके लिए भागवत सूर्यदेव और जल में दिखने वाले सूर्य प्रतिबिम्ब का दृष्टान्त दिया है। यह बात प्रभासक नाम के ग्रंथ में आती है।

सूर्य अपनी किरणों से पानी का हरण करते हुये योग्य समय में बरसाते हैं। वैसे ही योगी अपनी इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण करता है। सन्दर्भ के अनुसार उनका त्याग भी करता है। वह विषयों के साथ चिपक कर नही रहता।

गुण का अर्थ इन्द्रिय होता है। गुण शब्द का अर्थ विषय भी होता है। गो शब्द का अर्थ सूर्य की किरण भी होती हैं, गो का अर्थ पानी भी है। इस रीति से गोपति बोलने से किरण का यजमान सूर्य यह अर्थ होता है।

श्री विद्याधीश गुरु महाराज लिखते हैं :-

अवधूतों के लिये यह प्रकृति ही पाठशाला बनती है। इस प्रकृति की प्रत्येक वस्तु उनके लिये गुरु बनती है। प्रकृति के घटक सूर्य देव अवधूत के लिये शिक्षा देने वाले गुरु बन गये। सूर्य से योगी के जीवन पाठ को अवधूत सीख लिये।

सूर्य अपनी किरणों से प्रकाश देते हैं। सूर्य के लिये उनकी किरण हाथ बनते हैं। हम हाथ से जैसे लेते देते रहते हैं वैसे ही सूर्य अपनी किरण से लेन-देन करते रहते हैं। वे अपनी किरणों से पानी का आहरण करते हैं, उसको अपने पास न रखते हुये स्थान कालानुसार वापस देते रहते हैं।

योगी सूर्य के इस आचरण को अपना आदर्श मानते हैं। योगी भी अपनी इन्द्रियों से इस प्रपंच के सुख-दुःख का ग्रहण करते रहते हैं। इस प्रपंच से प्राप्त हुआ ज्ञान को समय और प्रदेशानुसार अन्यों में बाँटते रहते हैं।

सूर्य भूमि से जल का हरण करते हुये अपने पास संग्रह करके रखते हैं। वे उसी क्षण उस पानी को नही बरसाते हैं। समय आने पर अपने में भरे हुये पानी को भूमि में जोर जोर से बरसाते हैं। इसके लिये बरसात का समय आना चाहिये। इसी के कारण यहाँ **यथा कालम्** कहा गया है।

योगी विषयों का संग्रह यहीं कहीं से करते रहते हैं। संग्रह किए हुए विषय को उसी दिन बताने की उत्सुकता उनमें नही रहती। प्रसंगानुसार वे मोती के समान एक दो बाते कहते हैं इसके लिये उनकी बात **अवसर पठिता वाणी** होती है। समय पर बोलने से उनकी बातों का गौरव बढ़ता है वह सबको हितकारी होती है, सन्दर्भ के अनुसार योग्य बातें उनके मुँह से निकलती हैं। उनकी बातों को इसी कारण सारे लोग मानते हैं। उनको और बाहर से रंग लगाने की कोई आवश्यकता नही पड़ती। योगियों की बातों में और जोड़ने की आवश्यकता नही रहती। कई लोगों का यह स्वभाव हो गया है कि वे जिसको जानते है, तुरन्त दूसरों के सामने उसको बोलने का आग्रह करते हैं। इसी से उनकी बातों में अर्थ नही रहता। योगी की बात **यथा कालम्** होती है।

सूर्य देव गंगा जी के पवित्र जल को आहरण करते हैं। वैसे ही गन्दा पानी को भी वे आहरण करते हैं। मधुर पानी के साथ नमकीन पानी भी उनके लिये ग्राह्य है। सूर्य के लिये शुद्धता का नियम नही है। किन्तु उनके द्वारा बरसाने वाला पानी तो अत्यन्त शुद्ध रहता हैं। नमकीन पानी को लेकर भी वे उत्कृष्ट सुमधुर पेयजल को देते हैं। यह भगवान सूर्य की बड़ी उदारता है। वे कश्मल जल को शुद्ध करते हैं, नमकीन को सुमधुर करते हैं।

योगी का जीवन भी सूर्य के समान है। सत्व, रज, तम नाम के त्रिगुणो से और इन्द्रियों से अच्छे और बुरे दोनों रीति के पदार्थों को वे ग्रहण करते हैं। किन्तु सत्पात्र को देते समय उसको अच्छी तरह से परिवर्तन कर देते है। प्रपंच के साथ उनकी सृष्टि करने वाला भगवान का भी मेरू समान व्यक्तित्व को योगी अन्य लोगों को दिखाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को वे भगवद्भक्त बनाते हैं। वे सबको स्वीकारते हैं, किन्तु किसी को चिपकाते नही। सूर्य योगी का आदर्श

बने, योगी हमें आदर्श है।

अवधूत का आठवाँ गुरु कबूतर

एक कबूतर अपने पत्नी, पुत्रों से अति प्यार और आसक्ति करने के कारण दुःख भागी बन गया। इसलिए योगी को कहीं भी किसी के भी साथ अति स्नेह और अति आसक्ति नहीं करनी चाहिए। करे तो बुद्धिहीन होकर कबूतर के समान दुःख भागी होता है।।52।।

एक कबूतर जंगल में एक बड़े वृक्ष के ऊपर घर बनाकर एक कबूतरी के साथ कई वर्ष वास किया।।53।।

वे दोनों परस्पर बहुत प्यार करते थे। वे हृदय से एक होकर संसार किये। आँखों से आँख, बुद्धि से बुद्धि और शरीर से शरीर जोड़कर एक साथ रहते थे।।54।।

सोना, बैठना, विहार करना, बातें करना, खेलना, खाना इत्यादि सारे कार्य दोनों एक साथ होकर सारे जंगल में चिन्ता रहित होकर संचार करते थे।।55।।

कबूतरी जो कुछ चाहती थी, इन्द्रिय निग्रह न रहने वाला कबूतर कितने भी कष्ट हो उसको लाकर देता था।।56।।

कई दिन के बाद कबूतरी गर्भिणी हो गई। प्रसवकाल आने पर अण्डा रखी।।57।।

श्री हरि की अचिन्त्य शक्ति से उन अण्डों से चोंच, पंख सहित सुन्दर पंख वाले कबूतर बच्चे बाहर आ गये।।58।।

वे दोनों कबूतर अपने बच्चों को बहुत प्यार से रक्षा करते थे। उनकी आवाज को सुनकर आनन्द से स्वयं भी आवाज करते हुये उनका पालन पोषण किये।।59।।

बच्चों के स्पर्श से वे दोनों कबूतर आनन्द पाते थे। उनके आवाज से, उनके चोंच के चलन से वे कूदते-कूदते आने वाले उनके चलन से माता पिता बहुत आनन्द पाते थे।।60।।

भगवान की इच्छा से परस्पर अति प्रेम से मिलकर दोनों पक्षी बुद्धिहीन होकर अपने छोटे बच्चों का पालन किये।।61।।

एक बार वे दोनों पक्षी जंगल में अपने बच्चों के लिए आहार लाने के लिए बहुत समय फिरते रहे।।62।।

उसी समय जंगल में संचार करने वाला व्याध वहाँ आया और अपना जाल बिछाया। उस

जाल में कबूतर के बच्चे पकड़े गये।।63।।

इतने में बच्चों को प्यार करने वाले वह जोड़ी कबूतर आहार को लेकर अपने घर को वापस आये।।64।।

कबूतरी अपने बच्चे जाल में बँध गये हैं और वहीं से चिल्ला रहे हैं यह देखकर अत्यन्त दुःख से चिल्लाते हुये उनके पास दौड़ गई।।65।।

भगवान की इच्छा से गाढ़, स्नेह पाश से बद्ध कबूतरी अपने बच्चे जाल में बँधे हैं यह देखते हुये भी बुद्धि शून्य होकर बच्चो के कारण स्वयं भी उस जाल के अन्दर जाकर बंधित हो गई।।66।।

कबूतर इसको देखता रहा, अपने से भी अत्यन्त प्यारे अपने बच्चे जाल में फँसे हैं। अपने प्राण के समान कबूतरी दुःख से स्वयं जाकर जाल में फँस गई है। इसको देखकर वह अतीव दुःख से रोने लगा।।67।।

कबूतर कहता है - ये देखो मेरा कष्ट। मैं पापी हूँ मंदभाग्य हूँ, संसार में तृप्ति नहीं पाया। अपनी आशाएँ पूर्ण नहीं हुयीं बीच में ही धर्म, अर्थ, काम के लिए साधनी भूत यह गृहस्थ आश्रम नष्ट हो गया।।68।।

अनुरुपा, अनुकूल और पति को सदा दैव मानकर विश्वास रखने वाली मेरी पत्नी बच्चों के प्यार से अब मुझको अकेले छोड़ते हुये बच्चों के साथ स्वर्ग जा रही है।।69।।

पत्नी के मर जाने के बाद बच्चों के बिना मैं अकेले इस शून्य घर में दुःख से कैसे जीवन व्यतीत करूँ? मैं क्यों जीवित रहूँ ?।।70।।

इस प्रकार विलाप करते हुये वह कबूतर अपने पत्नी, पुत्र जाल में फँसकर मरण के नजदीक हैं इसको देखकर स्वयं भी बुद्धि शून्य होकर उस जाल में गिर गया।।71।।

वह क्रूर व्याध उस कबूतर के पूरे परिवार को उठाकर खुशी से कृतार्थ मानते हुये अपने घर को चला गया।।72।।

इस प्रकार गृहस्थ विषय सुखों में तृप्ति न पाते हुये सुख-दुःख भोग में मग्न होते हुये दीन होकर अपने परिवार की रक्षा करते हुये एक दिन परिवार समेत कबूतर के समान नाश होता है।।73।।

मुक्ति को खुला हुआ द्वार के समान रहने वाला मानव शरीर को पाने के बाद भी जो लोग कबूतर के समान केवल अपने संसार में मग्न होती हैं। उन्हें वृक्ष के ऊपर चढ़कर नीचे कूदने वाला

अनर्थ भागी मानना पड़ता है।।74।।

श्री विद्याधीश गुरु महाराज जी लिखते हैं :-

अवधूत का आठवाँ गुरु कपोत है। कपोत का अर्थ कबूतर होता है। अवधूत कहते हैं कि कबूतर से सबक सीखकर वे अवधूत बने। अति स्नेह से, अतिशय चिपकन से कबूतर का पूरा वंश ही नष्ट हुआ। इसके लिए अवधूत कहते हैं कि इस संसार के नश्वर वस्तुओं में ज्यादा चिपकन नही रखना चाहिए।

एक जंगल में एक कबूतर का जोड़ा रहता था। कबूतर सामान्यत: पति-पत्नी जैसे जुड़े हुए रहते हैं। अकेले रहते नही। इसके लिए आपस में बहुत प्यार करने वाले दंपति को कबूतर के जोड़ी का उदाहरण देते हैं। वे दंपति एक विशाल वट वृक्ष में अपना एक सुन्दर घर बनाकर रहने लगे। वे आपस में बहुत प्यार करते थे। इस कबूतर के जोड़े के जीवन को अवधूत ने भागवत के ग्यारहवें अध्याय में चौबीस श्लोकों में बहुत सुन्दर रूप से वर्णन किये हैं। केवल मनुष्य ही प्यार करना नही जानता। कबूतर मानव से भी बढ़कर प्यार करते हैं। यह कबूतर दम्पति प्यार से रहने लगा। वे स्वयं रचाए हुए अपने प्रिय घोसले (Sweet Home) में अंडे रखे, पालन किये। योग्य समय में उनसे बच्चे निकल आये। कपोत युगल प्यार से उनका पालन पोषण करते थे, एवं उनका स्नेह था। वह कबूतर का जोड़ा अपने बच्चो के पालन में दिन रात लगा रहता था। उनको प्यार से खिलाते, अपना सर्वस्व वे बच्चों को समर्पित करते थे आवश्यकता से ज्यादा उनको प्यार करते थे।

एक दिन आहार ढूढ़ने के लिये दोनो जब बाहर गये थे तब एक व्याध आकर अपना जाल बिछाते हुए उन कबूतर के बच्चों को पकड़ लिया। वापस आयी हुयी स्त्री कबूतर अपने बच्चों को जाल में देखकर, दु:खित होकर स्वयं उनसे मिलने की चाह से उस जाल में फँस गयी। बाद में आया हुआ पुरुष कबूतर भी अपनी पत्नी-पुत्रों के प्यार से उनसे मिलने के मोह में उसी जाल मे बद्ध होकर व्याध का आहार बन गये।अतिस्नेह मारक होता है। **अति सर्वत्र वर्जयेत्।**

अति सर्वत्र वर्जयेत् कुछ भी ज्यादा होना ठीक नही हर एक के लिए एक मिति होती है। इस मिति से ज्यादा बढ़ गये तो वह मृत्यु का कारण भी बन सकती है। हमें आहार की जरूरत है, इसके लिए हमें खाना चाहिए। किन्तु सदा काल खाते रहने से अथवा आवश्यकता से अधिक खाने से रोग उत्पन्न होता है। हमें नीद की आवश्कता है, वह भी मिति से ज्यादा हो गयी तो निद्रा रोग हो जाता है। इसके लिए भी डाक्टर के पास जाना पड़ता है। इस संसार में अपने बन्धु - बान्धव, पति-पत्नी, इष्टमित्रों से प्यार होना चाहिए, चिपकन होना चाहिए किन्तु वह भी अधिक नही होना चाहिए। यह मिति अति हो गयी तो मति भ्रम हो सकता है। भगवान गीता में कहते हैं कि **मतिभ्रंशात बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति** यह संसार एक सागर है। हमे इसी में रहना चाहिए। इस सागर में हमें डूबना नही चाहिए। तैरते रहना है। इसको हम छोड़ भी नही सकते। हमें मछली की तरह तैरना नही आता। पानी का स्वभाव है डुबाना, जो आता है उसको वह अन्दर ले जाती है। हमें भी ठीक तरह से तैरना सीखना चाहिए।जीवन को जीना एक कला होता है। उसको ठीक तरह से सीखना पड़ता है और अभ्यास से सीखना है। वैराग्य से उसको

बढ़ाना है। भगवान कहते हैं :- **अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।** जल में तैरते रहने के कारण मछली पानी में नही डूबती।

अवधूत कहते हैं **अतिस्नेहः न कर्तव्यः** अपना प्यार किसी से हो उसे ज्यादा नही होने देना चाहिए। स्नेह के बिना, प्यार के बिना कोई जी नही सकता। लेकिन अति स्नेह, ज्यादा प्यार भगवान को छोड़कर और किसी से नही करना चाहिए। भीगा कपड़ा शरीर में चिपक जाता है किन्तु सूख जाने से छोड़ जाता है। किन्तु तेल या घी से भीगा हुआ वस्त्र सरलता से छोड़ता नही। उसके लिए साबुन व गर्म पानी का प्रयोग करना पड़ता है। डामर (अर) लगा हुआ कपड़ा बेकार हो जाता हैं। बुद्धिमान मनुष्य का यही लक्षण है वह अपने जीवन में ज्यादा चिपकन नही होने देता। भगवान को छोड़कर अन्य सारे वस्तु नश्वर हैं। इन नाशवान वस्तु में अति स्नेह करना आत्मघातक होता है। इसके लिए अवधूत कहते हैं **अतिस्नेहः न कर्तव्यः कुर्वन् विन्देत तापम्** अति स्नेह से क्या होता है। अवधूत बोलते हैं नश्वर वस्तुओं से प्यार करते हैं वह वस्तु नष्ट होने से हमारा प्यार भी व्यर्थ होता है। ताप और सन्ताप तो होता ही है। उसको तो हम सह नही सकते हैं। दुःख को टाल भी नही सकते। पहले होते ही होशियार रहे और आवश्कता से ज्यादा नही बढ़े होते तो यह दुःख कष्ट, ताप और संताप नही होता।जो अपने हाथ में नही है उसके बारे में ज्यादा दुःख करने से क्या होता है? प्रवास में धूल उड़ता है। कपड़े को झाड़ देने से धूल निकल जाता है। किन्तु यात्रा में लगे हुए रंग को निकालना इतना आसान नही है। यह कष्ट नही होने देना है तो पहले से ही होशियार रहना चाहिए। इसके लिए अवधूत कहते हैं ज्यादा स्नेह मत करना इसीलिए वे कबूतर का उदाहरण देते हैं। प्यार से मोहित होकर हमें क्षुद्र विषयों के लिए अपना जीवन नहीं गवाना है। भगवान में मन लगाते हुए इस संसार मोह से दूर रहने का संदेश अवधूत हमें देते हैं।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - आठ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

अवधूत का नौवाँ गुरु अजगर

अवधूत कहता है - हे राजा शरीरों को स्वर्ग में हो अथवा नरक, सदृशहीन जनों में इन्द्रिय सुख स्वयं ही दुःख के समान प्रयत्न के बिना आता है। इसी कारण ज्ञानी लोगों को इस सुख के लिए प्रयत्न करना उचित नहीं है।।1।।

अजगर अकस्मात् दैवदत्त अदृष्ट से मिला हुआ आहार को छोटा-बड़ा न मानते हुये प्रयत्न के बिना जो प्राप्त होता है उसी को निगलता है।।2।।

दैव वश से कभी आहार नहीं मिला तो भी अजगर बहुत दिन तक चुपके से सोया रहता है। उसी प्रकार अवधूत भी दैव वश से अपने को जो मिलता है उसी को खाता है।।3।।

ओजस, सहन शक्ति, बल स्वरूप हरिवायु के सन्निधान वाला यह शरीर को अपना मानते हुये मुनि पेट के लिए कुछ कर्म न करते हुये चुप रहना चाहिए। इन्द्रिय शक्ति होते हुये जागृति में प्रयत्न नहीं करना चाहिए।।4।।

श्री विद्याधीश गुरु महाराज जी लिखते हैं :-

भगवान उद्धव को उपदेश दे रहे हैं। यदु चक्रवर्ती को अवधूत ने अपने स्वानुभव के बारे में जो कहा है उसका विवरण दे रहे हैं। अवधूत अपने चौबिस गुरुओं में आठवें गुरु अजगर से सीखे हुए पाठ को बता रहे हैं। अजगर से वे क्या पाठ लिए?

अजगर की प्रवृत्ति विचित्र होती है। उसका शरीर बहुत बड़ा है किन्तु वह अपने शरीर के बारे में चिन्ता नही करता है। वह अपने आहार और शरीर पोषण के बारे में कुछ प्रयास नही करता। जो मिलता है उसी से वह तृप्त रहता है। वह दिन-रात सोता रहता है। आहार पाने के लिए कोई प्रयास नही करता। ***शईत अहानि भूरीणि।*** *वह आहार के लिए नही जीता है। जीने के लिए खाता है। हम खाने के लिए जीते हैं या जीने के लिए खाते हैं यह मालूम ही नही रहता। प्रायः हम सदा काल खाते रहते हैं। कई लोगों को खाना ही जीवन का उ-ेश्य बन जाता है। वे दिन रात खाते*

रहते हैं। किन्तु अजगर केवल जीने के लिए खाता है। जो आहार उसके मुह के सामने आता है उसी को खा कर अपना जीवन व्यतीत करता है। वह थोड़ा मिले या ज्यादा मिले उससे ही सन्तुष्ट रहता है। वह चिन्तारहित होकर आनन्द से और आराम से अपना जीवन व्यतीत करता है। आहार कम खाता है, इसका अर्थ वह दुर्बल नही है। बड़ा अजगर मनुष्य और प्राणी को पूर्ण रूप से लील लेता है। एक दिन आहार मिले तो वह बहुत दिन तक उपवास रहता है। हम चौदह दिन खाते रहते हुए भी एकादशी के दिन निर्जल व्रत रहने में संकोच करते हैं। अजगर तो चौदह दिन व्रत करते हुए एक दिन पारण करता है। एक रीति से अजगर हमारे से अच्छा लगता है और विचार करे तो अजगर हमारे से सौ गुना अच्छा लगता है।

यदृच्छया एव आपतितम् ग्रसेत्

अजगर जानता है कि आयु देने वाले भगवान आहार को भी देते हैं। अपने किए हुए पुण्य को निमित्त करते हुए भगवान हमें भोग भाग्य देते हैं। यह तो जगत प्रसिद्ध है। इतने होते हुए भी हम भगवान के ऊपर विश्वास न रखते हुए अपने जीवन के लिए जन्म भर धड़ - पड़ करते रहते हैं।

महान्तम् स्तोकमेव च

आज भोग के लिए जो थोड़ा सा मिला होगा उसी से तृप्त रहना चाहिए। अदृष्ट हुआ तो, काल पक्व हुआ तो भगवान दो - दो हाथ से देते हैं। उस समय उनके द्वारा दी गयी सम्पत्ति को रखने के लिए हमे पर्याप्त स्थान नहीं रहता। हमारे द्वारा न समझे हुए इस वेदान्त के सिद्धान्त को अजगर ने ठीक तरह से जान लिया है। इसी कारण अवधूत अजगर को अपना गुरु बनाये।

ओज सहो बल सहितम्

चुपके से सो जाना असामर्थ्य का लक्षण नहीं है। अजगर में ओज, साहस और बल भरा है, उसका शरीर दृढ़ता और शक्ति से भरा हुआ है। ओज का अर्थ होता है दूसरों को हराने की शक्ति, दूसरों को झुकाने की शक्ति। दूसरों के सामने न झुकते हुए, याचना न करते हुए, हाथ न पसारते हुए गौरव से जीने की शक्ति। बल का अर्थ होता है भार वहन करने की शक्ति। कितने भी बोझ रखने पर उसको वहन करने का आत्म बल। ए तीनो शक्तियाँ अजगर में समाविष्ट हैं।

अजगर के समान अवधूत में भी ये तीनो शक्तियाँ सन्निहित हैं। अजगर को जैसे आहार की समस्या नही है वैसे अवधूत को भी आहार की समस्या नही है। आहार के बिना रहने वाला अजगर दुर्बल नहीं है, वैसे योगी भी दुर्बल नही है। अजगर किसी को झुकता नहीं, औरों को झुकाता है वैसे योगी भी न झुकने वाला किन्तु झुकाने वाला है। इसको देखे तो अवधूत अजगर से भी श्रेष्ठ है। अवधूत आहार के लिए कष्ट नही करते। भगवत्कृपा से जो मिलता है उसी से तृप्ति पाते हैं। वें भगवान के अनुग्रह के लिए प्रयास करते हैं भोग के लिए नहीं। अवधूत आलसी नहीं हैं।

इधर उधर भटकते नहीं। देखने वालों की आँखों में ये निष्प्रयोजक हैं। किन्तु देखने वाला उनके लिए अमुख्य है। न दीखने वाला भगवान ही उनके लिए मुख्य है। भगवान के लिए वे अपने सर्वस्व को त्याग दिये हैं। उसके लिए अपने जीवन की भी परवाह नहीं है।

जगत गुरु मध्वाचार्य जी इस तरह के जीवन के बारे में अपने द्वादश स्तोत्र में लिखते हैं।

कुरु भुंक्ष्व च कर्म निजं नियतं हरि पाद विनम्र धिया सततम्

अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार अपना नियत कर्म करते रहो। कर्म न करते हुए व्यक्ति एक क्षण भी रह नही सकता। कर्म करने के बाद उसके फल को भोगना ही पड़ता है। सत्कर्म से पुण्य फल और दुष्ट कर्म से बुरा या पाप फल मिलना सहज है। इसके लिए सदाकाल अच्छा कर्म करते हुए अच्छा ही फल पाओ। हम अच्छा और बुरा कर्म को ठीक तरह से नही पहचानते इसके लिए जो जो करते हो उसको भगवान को समर्पित करो। अपने किये हुए कर्म को हरि पाद में समर्पित करने से कर्म में हमारा ममत्व नही रहता। जो जो करना है उसको निष्काम रीति से करो। भगवान का काम समझते हुए कर्म करना है। भगवान के लिए ही कर्म करना है और किए हुए कर्म को भगवान को समर्पित करना है। कर्म का यही तथ्य है। जगद्गुरु मध्वाचार्य की दृष्टि से अवधूत का यह जीवन अत्यन्त उत्कृष्ट है। यह सौ बार सत्य है। अजगर से अवधूत ने इसी पाठ को पढ़ लिया।

अवधूत मुनि का दसवाँ गुरु समुद्र

समुद्र, निर्मल बहुत गहरा होते हुये प्रवेश करने में अशक्य होता है। विशाल होने के कारण उसको पार कर नहीं सकते। समुद्र अपार और निश्चल होता है। उसी प्रकार मुनि को भी प्रसन्न और गम्भीर होना चाहिए। अन्य लोग उसको समझ न सके कोई उसके ऊपर अतिक्रमण न करे, अपार बुद्धि वाला निश्चल रहना चाहिए। नदियाँ आकर बहुत पानी लेकर मिले तो भी समुद्र ज्यादा नहीं होता। इसी प्रकार मुनि विषय भोग मिले तो उससे क्षोभ नहीं पाना चाहिए।।5।।

नदी आकर मिलने से समुद्र बड़ा नहीं होता। गर्मी के दिन में पानी की कमी के कारण समुद्र सूख नहीं जाता। नारायण के भक्त अवधूत को ऐसे ही रहना चाहिए। विषय भोग मिले न मिले धृति को छोड़ना नही चाहिए।।6।।

श्री विद्याधीश गुरु महाराज जी लिखते हैं :-

भगवान से निर्माण किए हुए अपूर्व रत्नों में समुद्र भी एक है। सागर एक रत्न नही है, किन्तु रत्नाकर है। महालक्ष्मी देवी इस विश्व की सकल सम्पदा की यजमानी हैं। सारे रत्नों की अभिमानी हैं। महालक्ष्मी सागर की पुत्री हैं। इसी कारण सागर रत्नाकर कहलाता है। श्री नारायण महालक्ष्मी के पति देव हैं। वे भी सागर में रहते हैं। भगवान के हजारों नामों में **महोदधिशयः** यह भी एक नाम है। भगवान श्री हरिनारायण के रहने के कारण सागर को बड़ा नाम मिला है, वह

रत्नाकर बना है। लक्ष्मी देवी को **नारा** कहते हैं। **न अरा,** दोष दूर होने के कारण उनको नारा कहते हैं। ऐसे दोष दूर लक्ष्मी जी के आश्रय या **अयन** होने के कारण श्री हरि को नारायण कहते हैं। इन नारायण के पर होने के कारण इस सागर को रत्नाकर बोलते हैं।

हमें सदा के लिए नारायण पर होना चाहिए। तो हमें सदा सर्वदा समृद्धि मिल जाती है। हमें किसी से मांगने की आवश्यकता नही होती। यह संदेश हमारे लिए सागर से मिलता है। **समृद्धकामः न उपसर्पेत** जिनको समृद्धि प्राप्त है उसको मांगने की जरूरत नही पड़ती।

नदियाँ वर्षा काल में पानी भर-भर के दौड़-दौड़ कर समुद्र में भर देती हैं। नदी को पानी कहाँ से आता है? **आकाशात् पतितं तोयम्** बादल से वर्षा हुआ बारिस से पानी घरों- घरों गाँवों-गाँवों में, नगर और काननों में पड़े तो भी अन्त में नदी से होकर समुद्र में मिल जाता है। नदी में पानी भरे तो गाँव डूब जाते हैं, खेत खराब होते हैं, जंगल जलावृत्त होता है। ऐसे नदी में भरा हुआ पानी ज्यादा हुआ तो हाहाकार मचाता है। ऐसे हजारों नदियों का पानी समुद्र में आकर गिर जाने के बाद भी समुद्र ऊपर उभर कर उठता नहीं। वह नदियों के पानी बढ़ने से बड़ा नही होता। गर्मी में नदियों के सूख जाने के बाद भी समुद्र घटता नही। वह किसी से अपेक्षा नही करता, वैसे वह किसी की उपेक्षा भी नही करता। वर्षा काल में जल की आवश्यकता न होते हुए भी समुद्र आए हुए सारे जल को अपने में रख लेता है। वैसे ही गर्मी के दिनों में पानी न मिले तो भी किसी से न मागते हुए स्वयं समृद्ध रहता है। समुद्र से अवधूत योगी ने यह पाठ सीखा। अधिकार और ऐश्वर्य के मद में किसी का तिरस्कार नही करना चाहिए, किसी का मन नही दुखाना चाहिए। आवश्यकता न होते हुए भी देने वाले की समस्या-परिहार या समाधान या संतुष्टि के लिए दी हुयी वस्तु को स्वीकार करो। वैसे ही उनके कष्ट सुखों में भी भाग लो। हमें भले कष्ट हो किन्तु हम दूसरों के लिए समस्या न बने।

हीनः न शुष्येत नदी का जल समुद्र में नही आ रहा है क्योंकि नदियों में ही जल नही है। पूरा जल को सूर्य ने पी लिया है। ग्रीष्म के ऊष्म से जल जलगया है। किन्तु समुद्र सूखता नहीं, वह जैसा का तैसा भरा हुआ है। योगी ने समुद्र से यह सबक सीखा। समुद्र को अभाव नही है, वैसे योगी के लिए अभाव नही है। समुद्र का यह पाठ याद रखना चाहिए। कोई कुछ नही दिये जो देते थे वे भी कुछ नही दिये क्योंकि देने के लिए उनके पास कुछ नही है। वे नही दिये हैं, इसके लिए उनका तिरस्कार नही करना, स्वयं चिन्तित नहीं रहना। समुद्र जैसे भगवान परिपूर्ण हैं। हम भी पूर्ण हैं। जीव भी अपनी पात्रता के अनुसार पूर्ण भरा है। भगवान पूर्णानन्द हैं। आनन्द गुण पूर्ण हैं। हम भी गुण पूर्ण हैं। एक घर में घर के ऊपर वाली पानी की टंकी पाँच सौ लीटर पानी से भरी हुयी है। घर के अन्दर के बर्तन में पाँच लीटर पानी भरा हुआ है। छोटा बर्तन एक लीटर पानी से भरा हुआ है। ये सारे अपने - अपने पात्रता के अनुसार पूरे भरे हैं। किन्तु एक लीटर वाला बर्तन पाँच सौ लीटर वाली टंकी के समान पानी अपने में भर नही सकता। वैसे हम भी आनन्द से भरे हैं। यह ज्ञान हमें नही है। इसी कारण हम दुःख को भोगते हैं। योगी ने इसको समुद्र को देखते हुए ठीक तरह से जान लिया। हमको भी अपने बारे में सही ज्ञान होना चाहिए। इसके लिए हमें हरि - गुरुओं का अनुग्रह चाहिए।

अवधूत मुनि का ग्यारहवाँ गुरु पतंग

पतंग आग के रूप को देखकर उसमें गिर कर मर जाता है। भगवान के मोहक शक्ति से आकर्षित होकर पुरुष परस्त्री को देखकर इन्द्रिय निग्रह छोड़कर उसके हाव-भाव से हारकर अंध तमस में गिर जाता है।।7।।

विवाह न किया हुआ स्त्री पुरुष पथ भ्रष्ट होकर भगवान के मोहक शक्ति से माया कहलाते है। पुरुष को स्त्री माया रूप है। स्त्री को पुरुष माया रूप में।

मानव यदि देव, ऋषियों की पत्नी को चाहे तो अंधं तमस होता है। अन्य पुरुष के पत्नी की कामना करने से नरक होता है। कभी-कभी देव,ऋषि अकस्मात व्यभिचार किये तो उनको अपकीर्ति और अनिष्ट होता है। किन्तु नरक नहीं होता। यह बात धर्मसंहिता में आयी है।

स्त्री, माया होती है, इसका अर्थ सुख और भ्रांति का कारण होती है। क्योंकि माया कहलाने वाली भगवान की इच्छा से सुख-भ्रांति का कारण बनने वाली कामिनी कांचन इत्यादि निर्माण होते हैं। यह बात तंत्र निरुक्त ग्रंथ में है। माया का अर्थ भगवान की बुद्धिशक्ति, उसके वश में अनादि काल से सारे जीव राशि है। किसी को उससे छुटकारा नहीं। इसी के लिए सब कुछ मायामय है। इस प्रकार माया वैभव नाम के ग्रंथ में है।

श्री विद्याधीश गुरु महाराज जी लिखते हैं :-

स्वतंत्र भगवान सही अर्थ से अस्तित्व में हैं। अस्वतंत्र जीव रहते हुये भी न रहता है। इसी कारण प्रपंच, अविद्यमान माना जाता है। इसी कारण वह नश्वर है, इसके लिए उपनिषद् **निवर्तेत** इस शब्द से निवृत्ति करो। ऐसा बोलता है।

भगवान एकमेव अद्वितीय हैं। इसका अर्थ भगवान के समान और कोई नहीं है। किन्तु इसका अर्थ प्रपंच मिथ्या है इस प्रकार नही होता। **प्रपंचो यदिविद्येत** उपनिषद् के इस वाक्य में यदि शब्द का प्रयोग प्रपंच सदाकाल अस्तित्व रहने में असक्त होता है इस अर्थ को बताने के लिए है।

भगवान की इच्छा से निर्मित हमारे बिस्तर, वस्त्र, आभरण, द्रव्य और परस्त्री ये सब अपने भोग के लिए हैं। ऐसी कल्पना करते हुये मोहित होकर बुद्धि को खोकर पतंग के समान भोगी का नाश होता है। योगी को इससे पाठ सीखना है।।8।।

अवधूत मुनि का बारहवाँ गुरु मधुमक्खी

मधुमक्खी अन्यान्य फूलों से थोड़ा-थोड़ा मकरन्द को लेती है। मुनि भी अलग-अलग घर को जाकर अपना शरीर जीवित रहने के लिए जितना चाहिए, जितना आवश्यक हैं उतना ही

अल्प, स्वल्प आहार को स्वीकार करना चाहिए। जीने के लिए मधुकर वृत्ति को अपनाना चाहिए।।9।।

मधुमक्खी छोटा-बड़ा न मानते हुये सारे पुष्पों से रस ग्रहण करता है। उसी प्रकार बुद्धिमान मनुष्य को छोटा-बड़ा का विचार न देखते हुये सारे शास्त्रों से सारभूत भगवान के ज्ञान को संग्रह करना चाहिए।।10।।

मधुमक्खी फूल के रस को संग्रह करती है। योगी को ऐसा नहीं करना। भिक्षा से जो मिलता है उसको शाम के लिए अथवा कल के लिए आता है इस प्रकार संग्रह करके नहीं रखना चाहिए। अनेक घरों में याचना करना है तो हाथ से अन्न ग्रहण करना है। एक ही घर में याचना करे तो पेट भरते तक खाना चाहिए। दूसरा पात्र अथवा दूसरे स्थान में संग्रह करके नहीं रखना चाहिए। अपने घर में संग्रह करके रखने से मधुमक्खी शहद के साथ मर जाती है। उसी प्रकार संग्रह किया हुआ मनुष्य धन के साथ नाश पाता है। ऐसा नहीं होना चाहिए।।11।।

श्री विद्याधीश गुरु महाराज जी लिखते हैं :-

साधु लोगों को मधुकर वृत्ति से जीवन यापन करना चाहिए। मधुकर वृत्ति ब्रह्मचर्य के लिए परम मुख्य वृत्ति है। इस वृत्ति का आचरण करना है तो पहले उसके बारे में समझ लेना चाहिए। भागवतकार वेद व्यास जी अवधूत गीता में इसके बारे में प्रकाश डाले हैं। वे मधुकर वृत्ति के बारे में कहते हैं,

मधुकृत् यानी मधुमक्खी। अवधूत के चौबीस गुरुओं मे दसवाँ गुरु है मधुमक्खी। यह भगवान की सृष्टि में एक अपूर्व जीव है। गात्र में यह बिल्कुल छोटी होती है, किन्तु सारे लोगों के लिए प्रिय है। वह कभी भी गन्दगी में नही रहती। जहाँ रस है वहीं अपनी जीभ डालती है। एक फूल से दूसरे फूल को उड़ते हुए उनमें रहने वाली सुगन्धित मकरन्द को ले आती है। फूल को धक्का न देते हुए केवल पुष्प रस को स्वीकार करने का इसका तरीका बहुत सुन्दर है, विशेष है और अन्य लोगों के सीखने योग्य है। डाक्टर हमारे रोग को निवारण करने के लिए हमारे शरीर में सूई चुभाते हैं। किन्तु कितने वर्षों से बहुत प्रयत्न करने के बाद भी उनको बिना दर्द की सूई प्रयोग साध्य नही हुई है। यह तो सत्य है, किन्तु मधुकर फूल से मधु को स्वीकारते समय फूल को थोड़ा सा भी कष्ट नही देती। डा0 सुई से हमारा रक्त तो लेते ही हैं। साथ साथ हमारे पैसे को भी चूसते हैं। किन्तु मधुमक्खी के फूल से रस ग्रहण करते समय फूल को नुकसान नहीं पहुँचाती, कष्ट नहीं देती, इतना ही नहीं, अपनी इस क्रिया से फूल को फलित बना देती है। इससे वृक्ष को लाभ ही होता है। डाक्टर रोगी को बचाने के अपने प्रयत्न में कभी-कभी हार सकता है। परिणाम स्वरूप रोगी मर जाता है। किन्तु मधुमक्खी से यह गलती कभी भी नही होती। इस विद्या को मधुमक्खी को किसने सिखाया है। यह उसकी अभिजातकला है। भगवान ने ही उसको यह विद्या दे दी है।

स्तोकं स्तोकं ग्रसेत

मधुमक्खी फूल के ऊपर पाँव रखती है। वह मनुष्य के समान नही करती। मानव पाँव रखा तो उसके पदघात से जो मार खाता है वह मर जाता है, नाश होता है किन्तु मधुकर प्रत्येक पुष्प से थोड़ा थोड़ा रस ग्रहण करती है। वह यदि सम्पूर्ण रस को ग्रहण करे तो पुष्प नीरस हो जाता है। मक्खी इसको ठीक तरह से जानती है कि दूसरों को कष्ट

नहीं देना। अवधूत मक्खी के इस स्वभाव को पहचान लिए हैं। यह उनके जीवन को स्फूर्ति दी है। स्वयं सदा काल भीख माँगते हुए जीवन चलाना है। दूसरों से कितना मांगना है, कितना ग्रहण करना है, इसका ख्याल रखना चाहिए। अपने कारण दूसरों को नष्ट नहीं होना चाहिए। मधुकर एक फूल से दूसरे फूल पर उड़ते हुए बूंद-बूंद से मधु संग्रह करती है।

मधु मक्खी की तरह अवधूत एक घर से दूसरे घर संचार करते हैं। एक ही घर में अपने पेट भरते तक भिक्षा नही माँगते। चार घर जाकर भिक्षा मागँतें हैं। इससे घर वाले को भिक्षा देने में कष्ट नही होता। यह मधुकर वृत्ति अवधूत के लिए सहज स्वभाव बन गया।

अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः।
सर्वतः सारं आदद्यात् पुष्पेभ्य इव षट्पदः।।

अवधूत मधुमक्खी को षट्पद कहे हैं। षट्पद को छः पाँव होते हैं। चार पाँव वाले जीव हैं। मानव दो पाँव वाला है, किन्तु जरूरत पड़े तो हाथ पाँव का काम करते हैं। पहाड़ पत्थर चढ़ते समय अपने शरीर को संभालने के लिए हम पाँव के साथ साथ हाथ को भी जमीन पर रखते हैं नहीं तो हम गिर जाते हैं। मधुमक्खी को ऐसे गिरने का प्रसंग कभी नही आता। वह अत्यन्त मृदुल पुष्पों के ऊपर चलती है। उसके पद घात से पुष्प को कष्ट न हो इसके लिए भगवान ने उसको छः पाँव दिये हैं। वह अपने शरीर के भार को छः पावों के ऊपर समान रूप से डाल कर पुष्प को भार न होते हुए अपना काम कर लेने का सौलभ्य और सौजन्य इसमें है।

पुष्प से रस ग्रहण करने से मधुमक्खी को जो आनन्द होता है, उससे भी बढ़िया आनन्द पुष्प को होता है। यदि मक्खी ने आकर रस ग्रहण नही किया तो फूल का जीवन ही व्यर्थ हो जाता है। वह फलित नही हो सकता। फूल के रंग को देखकर आनन्द पा सकते हैं। उसके सुगन्ध को सूंघ कर मन मुदित होता है, किन्तु उसके मकरन्द को लेने वाला कौन है। ऐसे ही अवधूत जैसे साधु लोग इस भूमि में न रहते, उनका भिक्षा ग्रहण न करते तो गृहस्थ का जीवन पुष्प के समान व्यर्थ हो जाता है। उसका सम्पादन फूल के मकरन्द के समान व्यर्थ होता था। इसी कारण साधु लोग अपने जीवन के लिए गृहस्थों के ऊपर निर्भर रहते हैं। यह चिन्तन ही एक आदर्श मननीय विचार है।

सर्वतः सारं आदद्यात्

मक्खी फूल के ऊपर बैठकर पुष्प रस को ग्रहण करती है। अन्य पशु पक्षी **सतृणं अभ्यत्ति,** केवल फल नही, पत्ती को भी खाने वाले हैं। वे जो देखते हैं उन सब को खाते हैं। वहाँ और किसी को कुछ भी नही बचता। किन्तु मक्खी के मकरन्द को ग्रहण करने से पुष्प का कुछ नष्ट नही होता, आघात नही होता वरन फूल का जीवन ही मक्खी के बिना व्यर्थ होता है। मानव फूल के रंग को देखकर आनन्द मना सकता है। परिमल को सूंघ कर सुख पा सकता है। वह अपने जीभ को कितना लम्बा करने के बाद भी फूल के रस का आस्वाद नही ले सकता।

मधु मधुकरराजो निष्पतन् पौष्पं आप्तुम्

वन में विहार करने वाला भ्रमर अपने जन्म में न देखे गए फूलों से भी रस ग्रहण करता है। इस विद्या को उसको किसने सिखाया है। पहले न दिखा हुआ फूल के ऊपर बैठते हुए वह मधु रस को चूसता है। वहाँ मधु रस है, इसका परिचय उसको किसने दिया हैं ? पुष्प में रहने वाले रस को वह कैसे जानता है ?

ननु परिचय हीनः काननेपि प्रभुस्यात्

पुष्प का परिचय न होते हुए भी मक्खी वहाँ भी राजा बनती है। ऐसे मधुकर वृत्ति को अपने पूर्ण जीवन में अनुष्ठान करने वाले हैं पूज्य श्री श्री विश्वेश तीर्थ स्वामी जी। मक्खी जैसे संग्रह किया हुआ शहद को स्वयं न खाते हुए अन्यों के लिए देती है, वैसे पूज्य पेजावर स्वामी जी संग्रह किए हुए सारी सम्पदाओं को समाज के लिए सद्विनियोग किये हैं। हिमालय से लेकर रामेश्वर तक उनके द्वारा स्थापित किए हुए धर्म छत्र भक्त लोगों की तीर्थ यात्रा को सुलभ किया है। नये स्थान को गये हुए यात्रियों के मन के घबडाहट को दूर किए हैं। राज्य में उनसे स्थापित **विद्यार्थि-निलय** विद्यार्थियों में उत्तम संस्कार को निर्माण किए हैं। बहुत लोगों के विषय में चिन्तन करते हुए उनके द्वारा स्थापना की गयी **पूर्ण प्रज्ञ विद्यापीठ** में दो पीढ़ियों के लिए पर्याप्त पण्डितों को दिया है। यहाँ विद्यार्जन किए हुये विद्वांनो ने समूचे देश मे उन्नत स्थानों में रहकर विद्यापीठ का गौरव बढ़ाया है। इधर-उधर बिखरे हुए माध्वों को एकत्र करने का श्रेय पूज्य स्वामी जी को है। उनके द्वारा साठ वर्ष पहले स्थापित हुआ **माध्व महा मण्डल** उनकी संघटना कौशल्य का साक्षी बन गया है। ***श्री कृष्ण सेवाश्रम*** की तरह के अस्पताल और वृद्धाश्रम इनका जन सामान्य के बारे में प्यार दिखाते हैं।

अजा स्पृष्टा न शाखा अस्ति बकरी न छुआ हुआ पत्तल है, पेजावर स्वामी जी द्वारा किया हुआ कोई सेवा कार्य नही बाकी है। वे हिन्दू के नाते हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान, भारतीय होकर भारतीयता का, ब्राह्मण होकर अपने समुदाय का, माध्व होकर सिद्धान्त रक्षा का समन्वय अपने जीवन में सुन्दर रीति से करके दिखाये हैं। वे सन्त होकर अपने निजी कर्मानुष्ठान में भंग न करते हुए सबको निभाना उनकी महानता है। दिन - रात सदा काल कार्यकारित्व में मग्न रहते हुए वे पूजा - पाठ और शास्त्र प्रवचन में भंग नही होने दिये। अपने विरोधी सहित समाज के सारे स्तरों के जनमानस को जीते हुए वे श्रेष्ठ सन्यासी हैं।

नाना जनस्य शुश्रूषा कर्माख्या करवन्मिते मध्वाचार्य जी के इस वाक्य को अपना ध्येय मानते हुए समाज के सभी स्तरों के लोगों के आँसू पोछने वाले वे बड़े सन्त हैं। अस्सी वर्ष की आयु में बीस वर्ष के युवा के समान कार्य करने वाले स्वामी जी का कर्तृत्व हमारा आदर्श बनना चाहिए। समाज से जो पाये हैं उसको वापस समाज को ही देने वाला उनका जीवन हमे मार्ग दर्शी बने। हम इस सन्दर्भ में उन्हे शत - शत नमन अर्पण करते हैं।

गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः। श्री विश्वेश यतेस्तुल्यः स्वयं विश्वेश एव हि।।

शास्त्रेभ्यः- जो शासन करते हैं, उनको शास्त्र कहते हैं। प्रवृत्ति और निवृत्ति का बोध कराना ही शास्त्र का

मूल उ-ेश्य होता है। जो विहित है, उसको करना प्रवृत्ति है। निषिद्ध को त्यागना ही निवृत्ति है। शास्त्र किसको करना नही ऐसे निर्देश देते हैं उसको कभी भी नही करना। शास्त्र जिनको करना यह विधि पूर्वक बताते हैं, उसको करना ही पड़ेगा। भगवान को जो प्रिय है। उसको करना और जो अप्रिय है उसको कभी भी नही करना। यही शास्त्र का विधि निषेध का अभिप्राय होता है। इन शास्त्रों के हृदय ही भगवान हैं। भगवान को अपने सिर पर रखते हुए शास्त्र उनकी आराधना करते हैं। सारे वेद, मूल रामायण, महाभारत, पंचरात्र और इनके पूरक और संवादि ग्रन्थ ये सारे शास्त्र बनते हैं। **यच्चानुकूलं एतस्य तच्च शास्त्रम् प्रकीर्तितम्।** श्री हरि के गुण गान करने वाले और उनमें दोष-लेश भी न रहने का संकीर्तन करने वाले सारे ग्रन्थ शास्त्र होते हैं। **वेदैश्च सर्वैः अहमेव वेद्यः, सर्वेवेदा यत्पदमामनन्ति।** वेद उपनिषद, भगवद्गीता में वर्ण - वर्ण और अक्षरों अक्षरों में भगवान भरे हैं, ये सारे भगवान के गुणों का प्रतिपादन करते हैं।

अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रों को अणु और महत् ऐसे दो विभाजन करते हैं। अणु और महत् ये दोनों विरुद्धार्थ देते हैं। शास्त्र अणु रूप में हैं, महत् शास्त्र भी हैं। एक ही शास्त्र में ये दोनों गुण नही रहते हैं। कई शास्त्र गात्र में अल्प हैं। उनको अणु कहते हैं। लेकिन छोटे होते हुए भी वे बड़े महत्व के होते हैं। छोटे ग्रन्थ में भी भगवान की बड़ी महिमा भरी हुई है। हमारे जीवन को सुधारने का अंश उनमें रहता ही है। ये छोटे हैं, इसके लिए त्याज्य नही हैं। बड़े ग्रन्थों को हम पढ़ नही सकते इसलिए उन्हे दूर नही रखना। दोनों से हमें सीखना बहुत है।

गात्र के अनुसार अणुमहत् का अर्थ करना यह तरीका है। भगवान के अणु महत् का विवरण देने वाले को अणु महत् शास्त्र कहते हैं। भगवान अणु से भी सूक्ष्म अत्यन्त अणु, **अणोः अणीयान्** हैं। अणु के अन्दर रहते हुए अन्तर्यामी होकर उससे अतिमहत्तर कार्य भगवान करवाते रहते हैं। इस अणोरणीय तत्व का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र को अणु शब्द से पहचानते हैं। प्रकृति, अव्याकृत आकाश ऐसे बड़े वस्तुओं में अन्तर्यामित्वेन रहते हुए इस जगत को नियमन करने वाले भगवान की महिमा को **महतो महीयान्** इस शब्द से उपनिषद भगवान का संकीर्तन करते हैं। इस तत्व को प्रतिपादन करने से शास्त्र को महत् कहते हैं।

सर्वतः सारम् अदद्यात्- केवल शास्त्र पढ़ना ही मुख्य नही है। उसका सार ग्रहण करना उनके हृदय को समझ लेना कष्ट है। शास्त्र के तात्पर्य को जानना बहुत मुख्य कार्य होता है। पुष्प को जानना कष्ट है, उसके रस को जान लेना और भी कष्ट है, उस रस को ग्रहण करना अत्यन्त कष्ट है। किन्तु यह सारा काम मधुमक्खी कर सकती है। वह किसी पुष्प को छोड़ती नही, किन्तु पुष्प की हिंसा न करते हुए उससे मधु को संग्रह करते हुए शहद बनाती है। हमारा भी शास्त्र नाम के पुष्प से, एक पुष्प से अनेक पुष्पों के पास जाते हुए शास्त्र संग्रह करना मधुकर वृत्ति होता है। इससे शास्त्र का अपचार नही होना चाहिए, किन्तु उपचार होना चाहिए।

भगवान वायु देव के अवतार आचार्य श्री मध्व जी ने सकल शास्त्रों का सार संग्रह करते हुए सब को मिला कर दिया हुआ उनका अपूर्व शास्त्र संग्रह है- **सर्वमूल ग्रन्थ**। यह संग्रह कर देना उनके मध्व नाम को पूरा-पूरा अन्वर्थक बनाया है।

अवधूत मुनि का तेरहवाँ गुरु हाथी

हाथी को खड्ढ़ा में गिराने के लिए पहले से ही सिखाए हुए हाथिन् को वहाँ रखा जाता है। उसके साथ रहने के मन से आकर पुरुष हाथी उस खड्डा में गिर जाता है। मुनि को इससे पाठ सीखना चाहिए। लकड़ी से बनी हुई स्त्री रूप की कठपुतली का भी स्पर्श पाँव से भी मुनि का नही करना चाहिए। हाथी के समान संसार बंधन में नहीं गिरना चाहिए।।12।।

जंगल में पुरुष हाथी, स्त्री हाथी का संग चाहते हुये बलिष्ठ हाथियों के साथ झगड़ा करके कई पुरुष हाथी मर जाते हैं। इसी प्रकार मानव को परस्त्री की कामना नहीं करना चाहिए। करे तो वही उसकी मृत्यु का कारण बनती है।।13।

श्री विद्याधीश गुरु महाराज जी लिखते हैं :-

जब गृहस्थों को भी ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है तो ब्रह्मचारी और सन्यासी को ब्रह्मचर्य की कितनी आवश्यकता है इसको कहने की बात ही नहीं है। ब्रह्मचर्य के बिना वे कैसे ब्रह्मचारी अथवा सन्यासी बनते है। ब्रह्मचारी से बढ़कर सन्यासी को ज्यादा ब्रह्मचर्य रखना पड़ता हैं। **काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्यासं कवयो विदुः** *सारे काम्य कर्मो का त्याग ही सन्यास होता है। यह गीता का वाक्य है। इच्छा और अपेक्षाओं को त्यागना इसमें स्त्री के मोह को भी त्यागना पड़ता है। इस मोह को न जीता हुआ काम्य कर्मी कभी भी त्यागी नही बनता। इस रीति से ब्रह्मचर्य का पालन चारों आश्रम वाले को अत्यावश्यक है।*

युवतीं भिक्षु पदापि न स्पृशेत् *सन्यासी को अपने पाँव को भी स्त्री से स्पर्श नही करने देना चाहिए। स्त्री मोह को जीतना बड़ी साधना है। आदमी को जर, जोरु, जमीन ये तीन मोह करने वाले वस्तु हैं इनमें स्त्री मोह सबसे ज्यादा मोहक होता है। अग्नि कुण्ड से ऊपर आयी हुई द्रौपदी को देखकर मुह में पानी आने वाले कितने लोग आग से जल गये? स्त्री जाति ही अग्नि के समान होती है। भागवत कहता है, स्त्री आग है, पुरुष घी का घड़ा है। उपनिषद् कहता है,* **योषितं अग्निं ध्यायीत।**

भगवान श्री कृष्ण भागवत में अवधूत के बारे में कहते समय स्त्री को युवती नाम से पुकारे हैं। स्त्री को माँ के रूप में देखना है, युवती के रूप मे नही। स्त्री पूज्य वस्तु है, भोग्य नही। **यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।** *यहाँ* **यु** *यह क्रिया पद का उपयोग* **मिश्रण** *इस अर्थ से किया गया है। इसका अर्थ* **पूजा** *और* **भोग** *का मिश्रण होता है। स्त्री को पति का छूना स्वाभाविक है दोष नही। किन्तु अब सारे पुरुषों को छूना नही। अन्य पुरुष उसको देवता के समान पूजा करना चाहिए। भगवान को दूर से देखते हुए हाथ जोड़ कर नमस्कार करना है, हमारा गौरव समर्पण करना है। किन्तु छूना नही इसी के लिए अवधूत आदेश देते हैं* **न स्पृशेत्।**

स्त्री को गौर से देखना भी गलत है। उसके बारे में बोलना अपराध होता है। पर स्त्री की बातों को ध्यान देकर

सुनना भी दोष होता है। हमारे पाँचों ज्ञानेन्द्रिय स्त्री स्पर्श से दूर रहना चाहिए। इसी को ब्रह्मचर्य मानते हैं। इसके विरुद्ध रहना ब्रह्मचर्य का उल्लंघन होता है।

न स्पृशेत् अवधूत स्त्री स्पर्श को महादोष मानते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियों में **त्वक (त्वचा)** इस इन्द्रिय का सबसे श्रेष्ठ स्थान है। यह शरीर में सभी जगह व्याप्त है। देह में सभी जगह व्याप्त रहने वाला इस त्वग इन्द्रिय को कहीं भी छुए तो स्पर्श ज्ञान होता है। किसी भाग का स्पर्श ज्ञान गया तो वैद्यों से परीक्षण कराना पड़ता है। सर्व देह व्यापी चर्मेन्द्रिय का प्रभाव सामान्य नही है। **पदापि न स्पृशेत्** छूना नही इसका अर्थ पाँव से भी छूना नही। स्त्री भक्ति से पाँव छुए तो भी वह सन्यासी के लिए भला नही। सामान्यतः पाँव निन्दा का संकेत। पाँव से किसी को छूना उसको अपमान जनक होता है। इसके लिए कभी किसी को पाँव से छूना गलत समझा जाता है। लेकिन गुरु के पाँव को छूना बड़ा पुण्य माना जाता है। किन्तु सन्यासी को पुण्य और पाप को देने वाले यह दोनों तरह के पाद स्पर्श से दूर रहना चाहिए। यह सन्यासी के पाप को बढ़ाता है, इसके लिए उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है। इसके लिए अवधूत कहते हैं, स्त्री स्पर्श से प्रत्येक व्यक्ति को दूर रहना चाहिए।

एक जो चाहता है उसी की कामना हमें नहीं करना चाहिए। हमारे से बलवान और कोई उसको चाहता है तो हमें उसके बारे में विचार भी नहीं करना चाहिए। कोई इसको चाहेगा ऐसे वस्तु को हम कदापि पाने की इच्छा नहीं करना चाहिए। हम ठीक तरह से जानते हैं कि और लोग धन कनक धरणी और वनिता को चाहते हैं। इसी को जर जोरू जमीन शब्द कहलाते हैं। अवधूत इन सारे शब्दों को स्त्री एक शब्द में सकल काम्य वस्तुओं का संग्रह करते हैं। **स्तृञ आच्छादने** इस मूल धातु से स्त्री शब्द की निष्पत्ति (उत्पन्न) होती है। **स्तृञ** का अर्थ आच्छादन अथवा ढककर रखना होता है। अन्य लोगों द्वारा अपेक्षा करने वाली वस्तु को हम उनकी आँखों से छिपाकर रखते हैं। चूहा, कुत्ता, बन्दर, बिल्ली से हम खाने की वस्तुओं को छिपाते हैं। वैसे ही चोरो से धन, कनक आदि वस्तुओं को छिपाकर रखना पड़ता है। इसी तरह दुष्ट और कामुक व्यक्ति से स्त्री को छिपा कर रखना पड़ता हैं।

और लोग जो चाहते हैं। उसको चाहना मृत्यु का कारण बनता है। चाहने वाला यदि हमसे ज्यादा ताकतवर रहा तो मरण शत-प्रतिशत सिद्ध है। वस्तु न मिले तो उसी की चिन्ता में मर जाता है। यदि एक बार मिला तो भी बलिष्ठ उसकी कामना करते हुए हमको मार कर अथवा हमारे से खींच कर ले जाता है। दोनों तरह से दुःख ही होता है, मृत्यु आती हैं।

यक्ष बोलते हैं **मद गजोयथा**। हाथी अत्यन्त बलशाली है। वह जंगल का राजा कहलाता है। किन्तु हाथी की हथिनी ही शत्रु हो जाती है। एक बलिष्ठ हाथी दूसरे हाथी से हथिनी के कारण युद्ध करते हुए उसको मार डालता है दोनों के बीच में हथिनी मारक बन जाती है। हथिनी का मारक बनना और एक तरीका है। हाथियों को पकड़ने के लिए गड्ढा बनाते हैं। घने जंगल में दो तीन हाथी खड़े रहे इतना बड़ा और गहरा गड्ढा बनाते हैं। उसके ऊपर बाँस रख कर मिट्टी डाल कर वहाँ धान बोया जाता है। पहले ही पालित हथिनी को छोड़कर मद भरित हाथी को वहाँ लेकर आते हैं। स्त्री व्यामोह से मोहित हाथी इधर उधर न देखते हुए आगे बढ़कर उस गढ्ढे में गिर जाता है। सप्ताह भर बिना अन्न के वहाँ रहने के बाद उसी हथिनी को छोड़ कर उसको शिक्षा देकर सभ्य बनाकर काम में लाया जाता है। इस रीति से स्वतंत्र रहने वाला हाथी

काम के वश होकर अपने स्वातंत्र को खो देता है और बन्दी बनकर दूसरों के लिए काम करने लगता है।

इसके लिए अवधूत कहते हैं कामुक को मरण भय निश्चित है अति आशा का नही करना । एक जो चाहता है उसी को चाहने वाला मत बनो। साधक लोगों को अवधूत यह हितकर वचन कहते हैं।

अवधूत मुनि का चौदहवाँ गुरु शहद निकालने वाला

मधुमक्खी द्वारा कष्ट करके संग्रह किए हुए शहद को, शहद निकालने वाला जबरदस्तीस से निकाल कर स्वयं खाता है अथवा बेचता है। इसी प्रकार लोभी लोग कष्ट करके जो संग्रह करते है वह दान के लिए नहीं और स्वयं के उपभोग के लिए भी नहीं होती है। व्यर्थ में अन्याय से तीसरा एक आदमी उसका भोग करता है। लोभी के धन का प्रयोजन यही है, ऐसे वह तीसरा आदमी जानता है।।14।।

शहद को निकालने वाला शहद के संग्रह के लिए कुछ प्रयत्न नहीं करता किन्तु मक्खी के शहद संग्रह करने के बाद उसके खाने के पहले स्वयं खा लेता है। वैसे ही गृहस्थ लोग कष्ट करके धन इकट्ठा करते हुये घर में उसको खाने के लिए रसोई करके सिद्ध होते समय यति वहाँ अन्न सम्पादन के लिए प्रयत्न न करते हुये गृहस्थों के घर को जाकर वे वैश्वदेवहोम करते समय उनके पहले भिक्षान्न स्वीकार करता है क्योंकि यति को भिक्षा न देते हुये स्वयं पहले भोजन करे तो उसके प्रायश्चित्त के रूप में गृहस्थ को चांद्रायण व्रत करना पड़ता है।।15।।

श्री विद्याधीश गुरु जी महाराज लिखते हैं :-

अवधूत मधुमक्खी से सीखे हुए पाठ को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं, ***न देयम्*** *अपने पास न रहने वाला भी दान देता है। अपने के लिए न रखते हुए अपना पेट भूखा रखते हुए किसी के बारे में न विचार करते हुए एक भूखे आदमी के थाली में हमारे पास जो है उसी को देने से उस गरीब भूखे आदमी को जो तृप्ति मिलती है उसको देखने से जो आनन्द मिलता है वह आनन्द वह तृप्ति और किसी से नही मिलती।*

इस जगत का जीवन ही विभिन्न है। देने में जो आनन्द है वह संग्रह में नही है। अवधूत की यह बात आज के जगत को विरुद्ध लगती है। स्वयं खाने से लोग आनन्द पाते हैं। यह भोग का आनन्द है। किन्तु त्याग में इससे भी बढ़कर आनन्द है। वह त्याग का आनन्द भोगने के लिए अवधूत का मन होना चाहिए। हमारे गाँव में एक महाशय थे। उनके बगीचे में बहुत आम होता था। वे स्वयं नही खाते थे। दूसरों को भी नही देते थे। किन्तु जब आम सड़ने लगते थे तब आधा सड़े हुए आम को बच्चों को देते थे। यह अत्यन्त लोभी का स्वभाव है। वह स्वयं खाता नही और दूसरों को देता भी नही, सड़ जाने के बाद फेक देता है। यह सही नही है। आदमी को चाहिए कि स्वयं भोगने से भी बढ़कर त्याग करते हुए दूसरों को दान देने में बहुत बड़ा आनन्द होता है। अवधूत ने देखा मधुमक्खी हजारों फूलो से बहुत कष्ट करते हुए एक एक बूंद मधु को इक्ट्ठा करती है। वह स्वयं नही खाती है। जब पर्याप्त मात्रा में मधु का संग्रह होता है तो कोई आदमी आकर मधु मखखी को भगाकर उस

मधु को ले जाता है। भागी हुयी मक्खी और दूसरे स्थान पर जाकर वहाँ और मधु संग्रह करने लगती हैं। वहाँ से भी वे संग्रहीत मधु को दूसरे को सौंपकर और दूसरे स्थान को उन्हे भागना पड़ता है।

अवधूत को यह पसन्द नही है। संग्रह प्रवृत्ति सदा के लिए कष्ट दायक होती है। आदमी अपने के लिए जितना चाहिए उतना ही पाना योग्य है। आगे के लिए अनावश्यक संग्रह करते हुए उसके लिए आदमी जो कष्ट सिर मोल लेता है, वह व्यर्थ है। साथ साथ संग्रहीत वस्तु की रक्षा करना, चोर, अग्नि, राज और जलादि से संरक्षण करना कष्टकर है। अत्यन्त कष्ट का तीसरा भाग यह होता है कि कष्ट से एक एक कण को संग्रह की हुई वस्तु को उसके सामने ही और लोगों द्वारा अपव्यय करते हुए दुःख अनुभव करना। इन सब दुःखों से दूर रहना है तो अवधूत कहते हैं संग्रह प्रवत्ति छोड़ देना चाहिए। भगवान जो देते हैं उसी से तृप्त होकर जीवन व्यतीत करना सबसे श्रेष्ठ है। ज्यादा मिले तो अन्यों के साथ उसका भोग लेना संग्रह नही करना यही सुख कारक है। भगवान श्री कृष्ण उद्धव को यही उपदेश देते हैं।

अवधूत मुनि का पन्द्रहवाँ गुरु हिरन

जंगल में शिकारी के वंशीवादन से मोहित होकर हिरन बन्धन के वश हो जाता है। उसी प्रकार वन में संचार करने वाले यति को कभी-भी इन्द्रियों को उ-ीपन करने वाले मादक संगीत को आसक्ति से नहीं सुनना चाहिए। इस बात को मैं हिरन से सीख लिया हूँ।।16।।

वेश्यास्त्री के अश्लील, नृत्य, वाद्य, गीत को सुने तो मुनि उनके कठपुतली बन जाता है, ऋष्यश्रृंग मुनि के समान कामांध होता है।।17।।

विभांडक मुनि के पुत्र स्त्री हिरन के पेट से ऋष्यश्रृंग मुनि जन्म लेता है। उनके पिता विभांडक मुनि पुत्र को स्त्री के दर्शन भी न कराते हुये जंगल में उसका पालन करते हैं। विभांडक मुनि जब आश्रम में नहीं रहते तब रोमपाद राजा से प्रेषित वेश्याओं के गान से मुग्ध होकर ऋष्यश्रृंग मुनि तपोवन को छोड़कर राजा के राजगृह को आकर उनके पुत्री से विवाह कर लेता है।

दशरथ महाराज से पुत्र कामेष्टि यज्ञ करते हुये उनको चार पुत्र होते हैं, यह वर देकर श्री रामावतार का कारण बने महातपस्वी ऋष्यश्रृंग मुनि हैं। अगले मनवंतर के सप्तर्षि में एक हैं। वे वेश्या के गायन से मुग्ध होकर जंगल छोड़कर बाहर आये। अवधूत मुनि उनको देखकर पाठ सीखे। इसके लिए वे ऐसे किये।

श्री विद्याधीश गुरु जी महाराज लिखते हैं :-

वन में रहने वाले सन्यासी को कभी भी ग्राम्य गीतों को सुनना नही चाहिए। हरिण शिकारी के बंशी से मोहित होकर बन्धित बन जाता है। उससे यह ग्राम्य गीत को नही सुनना यह शिक्षण मैंने पाया। अवधूत इस बात को कहते हैं। वे आगे बढ़ते हैं मादक और मान्नी, नृत्य वाद्य और संगीत में तन्मय होकर ऋष्यश्रृंग मुनि की तरह माननियों के वश में होकर उनके हाथ की गुड़िया मत बनो।

ग्राम्य गीतम् न श्रुणुयात्- संगीत को मत सुनो, गाना मत गाओ, अवधूत का यह संशय अच्छा नही लगता। वे सुनना मना किए हैं। गाना नही ऐसा कहने की कोई आवश्यकता नही। सुनना नही इसका अर्थ गाना भी नही यही होता है। हम सुनने के बिना गा नही सकते। जो सुनता नही वह गाता नही। गाने वाला मुँह है, सुनने वाला कान है। एक बार गाना को सुनने के बाद हम दूसरों के कान को न पड़े ऐसा नही गाते। किन्तु हमारे कान को अवश्य सुने इतनी आवाज में गुनगुनाते रहते हैं। सुना हुआ गीत को जो गुनगुनाता नही वह तो बधिर हो सकता है। इसके लिए **न श्रुणुयात्** इसका अर्थ **न गायेत्** यह भी होता है। किन्तु हमारा मूल प्रश्न यह है कि संगीत को गाना नही और सुनना नही यह कितना पर्यन्त योग्य है।

भगवान की पूजा करते हैं। उसमें सोलह उपचार होते हैं, अनुपचार भी होते हैं। नित्य पूजा समाप्ति के समय हम केवल शब्द में ही हो, **नृत्यं समर्पयामि, गीतं समर्पयामि, वादित्राणिं समर्पयामि** इस प्रकार विधि पूर्वक पूजा में नृत्य वाद्य गीतों का समावेश होता है। इनके बिना पूजा समाप्त नही होती। पूजा के मध्य में गीत गाने का सम्प्रदाय अनेको में है। सन्त लोग गाते हैं, नाचते हैं, भाव विभोर होकर वाद्यों को बजाते हैं। ये सारे क्या हैं?

हम अवधूत के मन्तव्य को ठीक तरह से नही समझे हैं। अवधूत संगीत संकीर्तन के वादित्र वादन के विरुद्ध नही हैं। वे कहते हैं कि ग्राम्य गीतों को गाना नही है और सुनना भी नही। ग्राम्य का अर्थ दो होते हैं। गवाँर का पहला अर्थ यही होता है, जो गाँव में रहता है। वह गवाँर और ग्राम्य शब्द का दूसरा अर्थ होता है कि असंस्कृत, अनागरिक और असभ्य। किन्तु अवधूत इन दोनों को छोड़कर एक तीसरा अर्थ बताते हैं, वह यह है **इन्द्रिय ग्राम। बलवान् इन्द्रिय ग्रामः विद्वांसं अपि कर्षति।** यहाँ ग्राम्य का अर्थ इन्द्रियों को गलत रास्ते पर ले जाने वाले कामोत्तेजक बुरे गलत रास्ता दिखाने वाले गीत। ग्राम्य गीतों को न गाओ, न सुनो बोलते हुए अवधूत यह संदेश देते हैं कि इन्द्रियों को मोहित करने वाले, कामोत्तेजन करने वाले असभ्य गीतों को सुनना गाना मना है। स्त्री के मधुर कंठ के वश होकर पतित नही होना चाहिए, उनके सौन्दर्य के मोह में पड़कर बन्धित नही होना चाहिए।

इस तथ्य को मनन करने के लिए अवधूत हमें एक प्राचीन कथा की याद दिलाते हैं। अत्यंन्त शुद्ध और पवित्र जीवन व्यतीत करने वाला मुनि ऋष्यश्रृंग को वेश्याओं के गान और हलचल से मोहित होकर अपनी साधना को छोड़ना पड़ा।

ऋष्यश्रृंग के पिता जंगल में तप करते रहते थे। वे अपने पुत्र को स्त्री का दर्शन स्पर्शन न हो, उसके परिणाम रूप विकार उसमें उत्पन्न नहीं हो इसके लिए माँ से भी उसको छुड़वाकर जंगल में अपने पास रखते हुए उनका पालन पोषण किए। ऋष्यश्रृंग बड़ा साधक बना, तपस्वी बना, अत्यन्त योग्य ब्रह्मचारी बना। उसकी महिमा इतनी बढ़ी कि वह जहाँ रहता है वहाँ ठीक वर्षा होने के कारण सम्पूर्ण समृद्धि रहती थी।

एक बार राजा दशरथ के राज्य में बारह वर्ष का घनघोर अकाल पड़ा। मंत्रियों ने ऋष्यश्रृंग को किसी उपाय से राज्य में लाने का सुझाव राजा के सामने रखे। किन्तु मुनि पुत्र को लाने का धैर्य किसी ने नही किया। अयोध्या में

रहने वाली चार अत्यन्त सुन्दरी वेश्याओं ने वीड़ा उठाया। वे ऋषि समान वेष धारण करके ऋष्यश्रृंग के पिता के न रहते समय को साधते हुए आश्रम में जाकर सोलह वर्ष के ऋष्यश्रृंग को खेलने के लिए आकर्षित किए। गेंद खेलते वक्त एक वेश्या ने गेंद को छुपा दिया। उसके उभरे हुए छाती को देखकर गेंद वहाँ छिपा है समझते हुए ऋष्यश्रृंग उनका स्पर्श करने लगा, आकर्षित होकर उनके पीछे पड़ा। उस समय वेश्याओं ने ग्राम्य गीत गाते हुए, वाद्य बजाते हुए नृत्य करते हुए उनको अयोध्या पुरी ले आयी। इन्द्रियों से मोहित हुआ तो आदमी भ्रष्ट होने लगता है।

ऋष्यश्रृंग के आने से राज्य में वर्षा हुआ, समृद्धि आयी, दशरथ राजा ने अपनी बेटी शान्ता से उनका विवाह किया। ऋष्यश्रृंग का मन्दिर श्रृंगवेरपुर में गंगा तट पर है।

अवधूत मुनि का सोलहवाँ गुरु मछली

मछली अपने जीभ के चापल्य दोष से काँटा में लगा हुआ मांस को खाने की आशा से अपने प्राण को खो देता है। उसी प्रकार मन को अत्यन्त क्षोभ करने वाले रसनेन्द्रिय के वश में मूढ़ मानव मछली के जैसे मूर्ख होकर न जानते हुये इस संसार के मृत्यु कूप में गिरता है।।18।।

बुद्धिमान लोग आहार त्याग से इन्द्रियों को अपने वश में जल्दी करते हैं। किन्तु रसनेन्द्रिय जल्दी वश में नहीं आती। उसको छोड़कर अन्य इन्द्रिय तो वश में होते हैं। रसनेन्द्रिय अन्य रुचिकर भोग्य वस्तुओं के बारे में मन मे क्षोभ उत्पन्न करती रहती है। रसनेन्द्रिय का यह सामर्थ्य बढ़ते ही रहता है।।19।।

मानव अन्य इन्द्रियों को जीतने के बाद भी वह इन्द्रियों को पूर्ण रूप से जीत नहीं सकता है।वह जितेन्द्रिय नही होता। रसनेन्द्रिय को जीता तो वह सारे इन्द्रियों पर जय पाया है।।20।।

गरुड़ पुराण में इसके बारे में श्लोक इस प्रकार है -

पतंग मातंग कुरंग भृंग मीना हता पंचभिरेव पंच

पतंग, हाथी, हिरण, मधुमक्खी और मछली ये पाँचो अनुक्रम से रूप, स्पर्श, शब्द, गंध और रस इस प्रकार पाँच विषयों के अधीन होकर नाश होते हैं। मानव इन पाँचों विषयों के लिए मोहित होता है। अवधूत के चौबीस गुरुओं में ये पाँचों गुरु मिले है।

अवधूत का सत्रहवाँ गुरु पिंगला

हे राजा, बहुत पुरातन काल में विदेह नगर में पिंगला नाम की एक वेश्या रहती थी। उससे मैने जो सीखा उसके बारे में बताता हूँ, सुनो।।21।।

वह वेश्या अपनी इच्छा के अनुसार जितना चाहे उतना पैसा देने वाले प्रियकर को आकर्ष

हो इसके लिए प्रतिदिन शाम को अलंकृत रूप धारण कर खड़े रहती थी। एक बार इस प्रकार वह श्रीमन्त पुरुष की राह देखते हुए खड़ी थी।।22।।

रास्ते में जाने वाले लोग जिनमें ज्यादा पैसे वाले लोग यदि अपने घर को आये तो वे ज्यादा पैसा दे सकते है। इस विचार से वह वहाँ खड़ी थी। उसको पैसे की बहुत लालच थी।।23।।

कामुक लोगों के पैसे देने के बाद भी उसको तृप्ति नहीं होती थी। उनके बाहर जाने के बाद और किसी के राह में वह नींद न करते हुये दरवाजे के सामने खड़ी रही थी। बार-बार बाहर झाकती थी, अन्दर देखती थी। ऐसे करते हुये मध्यरात्र बीत गयी कोई पैसे वाला नहीं आया।।24-25।।

पैसे के लालच में खड़ी उस वेश्या के मुँह सिकुड़ गया। मन में दुःख भर गया। अन्त में मन के दुःख को निवारण करके समाधान देने वाला शास्त्र रूप वाला वैराग्य उसके मन में उत्पन्न हुआ।।26।।

उस वैराग्य भरे मन से वह क्या कही उसको मैं बोलता हूँ, सुनो।।27।।

पुरुषों को मारने के लिए खड्ग जैसे है, वैसे आशा-पाश को काटने के लिए वैराग्य ही साधन है। हे राजा वैराग्य के बिना मानव अपने देह बन्धन से मुक्त नहीं होता।।28।।

पिंगला कहती है - ये देखिए मुझे मनोनिग्रह नहीं है, मोह भरा है, मैं मूर्ख हूँ। रास्ते से जाने वाले पुरुषों को मैं लूट रही हूँ।।29।।

मुझको सुख देने के साथ पैसे को भी देते हुये सदाकाल मेरे पास अन्तर्यामी होकर रहने वाले मेरे प्रियकर श्री हरि को छोड़कर मैं सुख न देने वाले दुःख, भय, चिन्ता, शोक और मोह को देने वाले तुच्छ मानवों की सेवा कर रही हूँ।।30।।

विषय लालसा से शोचनीय स्थिति में रहने वाले कामुक परपुरुषों को अपने इस शरीर को अर्पण करते हुये उनके धन को लूट करते हुये जीवन करने वाली परम नीच वृत्ति मेरी है। उसी से मैं सुख और धन को पाने की इच्छा से मैं व्यर्थ रूप से सन्ताप को पा रही हूँ। यह आश्चर्य की बात है।।31।।

यह शरीर एक कूड़ा दान के समान है। इसके अन्दर गन्दगी भरी है। हड्डी ही इस घर के खंभ और बेड़ा जैसे है। चर्म, बाल और नाखून इसका आच्छादन है। नवद्वार से सदाकाल मल बाहर आता है। अन्दर मलमूत्र भरा है। विवेकी ऐसे शरीर से रति सुख को कैसे चाहते हैं। मैं मूर्ख इससे रति सुख पाना चाहती हूँ।।32।।

इस विदेह नगर में मैं अकेली बुद्धिशून्या हूँ क्योंकि मैं अपने को देने वाले अपने ही भगवान अच्युत को छोड़कर मैं अन्य विट पुरुष की राह देख रही हूँ।।33।।

सारे शरीरों में अन्तर्यामी होकर रहने वाले अत्यन्त प्रियकर अच्युत श्री मेरे स्वामी है। मैं अपने इस शरीर को उनके लिए समर्पित करते हुये उसी को मैं खरीद कर लेती हूँ। रमा के समान मैं उसके साथ रमण करना चाहती हूँ।।34।।

अप्सराओं में कई अप्सराओं में रमावेश होने के कारण भगवान की पत्नी होने की योग्यता होती है। उनमें पिंगला एक है। अन्य स्त्री भगवान की पत्नी बनने की चाह रखे तो अनर्थ होता है। यह स्वभाव ग्रंथ में है।

प्रेयसी मुझको इष्ट देने वाला मानव खैर कितना दे सकता है। देवता भी कितना दे सकते है। वे भी काल से उत्पत्ति नाशवान होते हैं।।35।।

दुराशा से दुःखित मुझको अब सुखकर वैराग्य आया है। निश्चय रूप से यह मेरे किसी एक प्राचीन पुण्य कर्म के कारण है। श्री हरि ने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है।।36।।

नही तो मंदभाग्या मुझको ऐसे वैराग्य के कारण रूप बने कष्ट नहीं आते थे। कष्ट आने के बाद मानव संसार बंध को छोड़कर वैराग्य पाकर मोक्ष सुख को पा सकता है।।37।।

मैं श्री हरि के कारुण्य से दिए हुए इस वैराग्य को शिरसा वहन करते हुये विषय भोग की दुराशा को छोड़कर उन सर्वेश भगवान की शरण में जाती हूँ।।38।।

उन्हीं भगवान में अत्यन्त श्रद्धा रखते हुये दैववशात जो मिलता है उसी से तृप्ति के साथ जीते हुये प्रियकर परमात्मा के साथ विहार करती हूँ।।39।।

संसार कूप में गिरकर विषय भोगों से बुद्धि भ्रष्ट होकर काल नाम के साँप के मुँह में गिरा हुआ जीव को श्री हरि को छोड़कर और कौन रक्षा करता है।।40।।

जीवात्म को भगवान ही रक्षक हैं क्योंकि भगवान को छोड़कर अन्य सारे विषयों में वैराग्य पाने के बाद ही जीवात्म को यह जगत कालसर्प के मोह में फँसा है, यह दृश्य दिखता है।।41।।

अवधूत ब्राह्मण कहता है - इस प्रकार मन में निश्चय करते हुये परपुरुष की कामना से उत्पन्न हुयी सारी दुराशाओं के सम्बन्ध को काटकर वैराग्य को पाकर पिंगला बिस्तर के ऊपर सो गई।।42।।

विषय-लालसा अत्यन्त दुःखकर है। वैराग्य परम सुखकर है। इस प्रकार विचार करते हुये पर पुरुष की इच्छा छोड़ने के बाद ही पिंगला आराम से नींद की।।43।।

श्री विद्याधीश गुरु जी महाराज लिखते हैं :-

अवधूत का आध्यात्मिक गुरु एक वेश्या भी हो सकती है। गुरु पुरुष ही हो ऐसा कोई नियम नही है। महिला भी गुरु हो सकती है। गुरु होने के लिए अवधूत को साध्वी ही हो यह नियम भी नही है। अवधूत अपने चौबीस गुरुओं में वेश्या को भी एक गुरु बनाए हैं। वे सभी वेश्याओं को गुरु नही मानते। पिंगला नाम की एक वेश्या के बारे में कहते हुए वे उससे ज्ञान पाए, इसके लिए वे उसको गुरु मानते हैं।

इस दृष्टि में जगद्गुरु मध्वाचार्य जी का चिन्तन अपूर्व है। वे स्त्री कुल को अत्यन्त गौरव देते हैं। पौराणिक और सनातनी लोग स्त्री के बारे में अच्छा अभिप्राय नही रखते, यह एक आरोप उन पर है। दृष्टान्त रूप में इसके लिए भागवत का ऋषभ आख्यान दर्शाते हैं। ऋषभ देव उपदेश देते हुए कहते हैं कि **तमोद्वारं योषितां संगिसंगम** इसका अर्थ यह होता है कि स्त्री संग नरक का द्वार है, केवल इतना ही नही स्त्री संग करने वाले का संग जो करता है उसको तमस होता है। ऋषभ देव की इन बातों को कौन मान सकता है। इसका अर्थ होता है कि सारे गृहस्थ लोगों को नरक जाना है। केवल गृहस्थ ही नही ब्रह्मचारी, सन्यासी, गृहिणी, गृहस्थ के संग वाले यानी माता पिता के सम्बन्ध वाले सभी नरक जाते हैं यह अर्थ होता है। यह सही अर्थ नही होता। जगद्गुरु मध्वाचार्य जी इसका सही अर्थ लिखते हैं, योषित इस शब्द का अर्थ परस्त्री होता है। इस अर्थ को मानने से इसका सही अर्थ निकलता है। गृहस्थ को परस्त्री-संगी नही होना चाहिए। जो परस्त्री संगी नही है, उनके पुत्र-पुत्री पापी नही होते।

अब आगे यह विचार होता है कि परस्त्री संग से **अन्धंतमस** होता है क्या? पर नारी संग अन्धँतमस को भेजने वाला घोर पाप नही है। उससे बढ़ कर अन्य अपराध हैं। ऋषभ देव उसी के बारे में बोलते हैं। यहाँ योषित का अर्थ भगवान के बारे में विपरीत ज्ञान रखने वाला होता है। **केशवे त्वन्यथा बुद्धिः सा योषिदिति उच्यते।**

पुराण ही इस बात को दुहराते हैं। भगवान के विषय में विपरीत ज्ञान से अन्धँतमस होता है। ऋषभ जी इसी को कहना चाहते हैं। भगवान के बारे में विपरीत ज्ञान जो रखते हैं, उनके सहवास करने वाले भी अन्धंतमस को जाते हैं।

केवल स्त्री सहवास करने से जो पापी बनता है उसको सुधारने का आश्वासन पुराण देते हैं। अजामिल की कथा इसके बारे में उत्कृष्ट निदर्शन है। अस्सी वर्ष तक दुष्ट संग किया हुआ अजामिल पश्चात्ताप से दग्ध होकर गंगा जी में अपने पाप को धोकर भागवत का पाठ और भगवान का चिन्तन करने के बाद मोक्ष पाता है। यह कथा भागवत में ही आती है। योषित संग करने के बाद भी अजामिल को तमस नही हुआ, कारण एक मात्र है कि अजामिल भगवान के बारे में सही ज्ञान रखता था। उसको भगवान के बारे में विपरीत ज्ञान नही था। इसी कारण से वह पश्चात्ताप से प्रायश्चित्त करके मोक्ष के मार्ग को पा लिया।

पिंगला का यह उदाहरण दूसरा है। अवधूत कहते है, सारी स्त्रियाँ अथवा सारी वेश्यायें पापी नही होतीं वैसे ही सारे पुरुष योग्य नही होते इन सबको मोक्ष मिलने वाला नही है। जो भगवद्भक्त है केवल वह मोक्ष पाता है। इसके

लिए पिंगला नाम की वेश्या की कथा स्पष्ट दृष्टान्त है।

अवधूत की गुरु पिंगला। लोक के दृष्टि में वह स्वैरिणी है, वह अपनी इच्छा के अनुसार स्वच्छन्द बिहार करने वाली वेश्या है। किन्तु अवधूत उसमें एक साध्वी के रूप को देखते हैं। उनके दृष्टि में वह अत्यन्त पति परायणा है। देखने वाले सुन्दर पुरुष को अपने पति के रूप में चाहने वाली बहुत से निकालते है। पिंगला वेश्या होते हुए भी एक विलक्षण स्त्री है। वह अनाथ नाथ भगवान को ही अपने नाथ मानकर जीवन चलाने वाली महासाधकी है। भगवान को छोड़कर वह किसी से कुछ भी नही चाहती। नाथ शब्द का अर्थ याचना करना होता है। भगवान याचना करने वाले को देने वाले हैं। इसके लिए भगवान नाथ कहलाते हैं। पिंगला जो पुरुष आते थे उनके सामने हाँथ पसारती थी। उनके सामने अपने आंचल पसारती थी। उनसे अपनी कामनाओं की पूर्ति करना चाहती थी। लेकिन उसकी कामना अधूरी रह गई। काम के पति नारायण से ही कामना पूर्ण रूप से पाने की कामना करने लगी। यही उसके जीवन का सिद्धान्त बना। भगवान के नाम कामहा, कामकृत के पवित्र नाम भी विष्णु सहस्र नाम में आते हैं। भगवान को **कामकृत** कहते हैं। काम को बढ़ाने वाले भगवान ही हैं। कामहा काम को नाश करने वाले भगवान ही हैं। भोग का काम देने वाले भगवान ही काम का नाश करते हैं। भोगिशयन भगवान भोग का काम भी देते हैं काम का नाश भी करते हैं। यही भगवान श्रीहरि मेरे नाथ हैं। यह श्रेष्ठ उपासना करते हुए पिंगला भगवान को ही अपने पति मानकर संशय दूर रहते हुए केवल उन्ही की उपासना करती रही।

भगवान सुहृत है। **शोभम् आहरतीति सुहृत्** अच्छा जो है उसको देने वाला सुहृत होता है। भगवान से बढ़कर हमें अच्छा देने वाला और कौन हो सकता है ? किन्तु पिंगला के लिए भगवान ही सर्वस्व है वह अपने मन में भगवान को स्थान देकर उनको ही वहाँ बैठा कर दिखा दिया। अपने मन में पहले ही बैठे, घर बनाए हुए चोर उचक्के को दूर हटा दिया। मन को श्रीहरि को समपर्ण किया। मन देने वाले को भगवान उनके लिए आलिंगन देते हुए स्वात्म प्रदान किए। हनुमान जी को जीवोत्तम बनाए ब्रह्मा जी के पद को दिए। अपने को भी हनुमान जी को सौंप दिए।

प्रह्लाद जी राज्य, स्वर्ग और मोक्ष को भी नही मांगे। उनके लिए साम्राज्य, स्वर्ग, मोक्ष और अपने को भी दे दिए।

वायुदेव के अनुग्रह मात्र से भगवान का प्यार मिलता है। भगवान हमारे सुहृत बनते हैं। सुग्रीव और अर्जुन इसके साक्षी हैं। सुग्रीव भगवान का मित्र बना। बाली भगवत भक्त होने के बाद भी भगवान के अमित्र होने के कारण भगवान के हाँथ से मरना पड़ा। जो दुष्ट कार्य करते हैं, जो कामी हैं, जो धर्म भ्रष्ट होते हैं वे भक्त होकर भी सुहृत नहीं होते हैं। अर्जुन भगवान के सुहृत होने का बड़ा साक्षी है। भगवान अपने सुहृत अर्जुन के रथ चलाए, घोड़े धोए, राजसूय यज्ञ में जूठा उठाए। भगवान अपने सुहृत भक्त के लिए सब कुछ करते हैं। श्रीहरि का सुहृत बनने के लिए बहुत बड़ा भाग्य वाला चेतन ही होना चाहिए। पिंगला का भाग्य बहुत बड़ा है। श्रीहरि उसके सुहृत बने। इसीकारण अवधूत उसको अपना गुरु बनाए।

पिंगला वेश्या को अवधूत के गुरु स्थान मिला यह बहुत बड़ा भाग्य है। इसमें पिंगला की साधना का अन्दाजा कर नही सकते इसके लिए उसका विवेक और अनुष्ठान ही कारण है। वह अपनी वृत्ति में रहने वाली क्षुद्रता, छोटापन को पहचान ली। प्रेयक् और श्रेयक मिलाने वाले मार्ग को अपनायी। लौकिक में आने वाली अन्य पुरुषों से आने वाले

आपदाओं को पहचान ली। पुरुषोत्तम को अपना निजी पुरुष मान ली। इसी से उसकी **अथातो ब्रह्म जिज्ञासा** प्रारम्भ हुई। वह भगवान को ठीक तरह से जानने के लिए प्रयास करने लगी। इसके लिए पिंगला बोलती है। भगवान श्रेष्ठतम हैं। प्रिय से श्रेष्ठतम बनने के चार पहलू है। 1. प्रिय 2. श्रेष्ठ 3. श्रेष्ठतर 4. श्रेष्ठतम, इसमे प्रिय यानी हमें अच्छा लगने वाली चीजें होती हैं, अतिशय प्रिय जो होता है वह श्रेष्ठ कहलाता है। प्रिय से श्रेष्ठ उत्तम होता है। श्रेष्ठ से और भी श्रेष्ठ जो है उसको श्रेष्ठतर बोलते हैं। जिसके समान और कोई भी नही है और जिससे बढ़कर प्रियतम और कोई नही है वे उसको श्रेष्ठतम कहते हैं। वेश्या पिंगला को श्रीहरि से बढ़कर प्यारी वस्तु और कोई नही मिली। भगवान आनन्दमय हैं। पाद से लेकर सिर पर्यन्त भगवान आनन्दमय ही आनन्दमय है उनके सारे जो है सुखमय है। चीनी से बनायी हुयी गुड़िया कहीं से भी खाए तो मीठी ही रहेगी। दुःख का स्पर्श भी न रहने वाले भगवान अपरिमित शुद्ध आनन्द के सन्दोह वाले नन्द के कुन्द मुकुन्द के अपरिमित शुद्ध आनन्द भरा हुआ वस्तु इस जगत में और कोई नही हैं और नही होता।

कई लोगों को लौकिक वस्तु प्रिय होते हैं। किसी को धन से सन्तोष होता है, किसी को सुन्दर घर से सन्तोष होता है, स्त्री से सन्तोष पाने वाले और कई होते हैं, और कई लोग को पुत्र से संतोष होता है, ये सारे लौकिक वस्तुएँ प्रिय होती हैं। किन्तु और कई लोग हैं उनके लिए भगवान प्रिय होते हैं। भगवान को प्रिय कैसे माना जाये ? इन सारे लौकिक वस्तुओं को पाने के लिए भगवान की पूजा सबको चाहिए लेकिन भक्त को छोड़कर अन्य लोग भगवान की पूजा सबको चाहिए लेकिन भक्त के लिये केवल भगवान ही चाहिए, भगवान को छोड़कर वे और किसी को नही चाहते।

भगवान के एकान्त भक्त जो हैं उनके लिए भगवान के लिए ही भगवान चाहिए। ब्रह्म, वायु इत्यादि एकान्त भक्तों को भगवान को छोड़कर और किसकी आवश्यकता है वे भगवान को छोड़कर और किसी को नहीं चाहते हैं। यह भगवान वायु देवता के अनुग्रह से ही प्राप्त होते हैं। पिंगला को भगवान ही सर्वत्र बन गए। वह भगवान को छोड़कर और किसी को नही चाहती है। उसके लिए प्रिय, श्रेष्ठ और श्रेष्ठतर भगवान ही हैं क्योंकि भगवान श्रेष्ठतम हैं। जगतगुरु मध्वाचार्य जी की तारतम्य रूपी भक्ति को अपने अनुव्याख्यान नाम के ग्रन्थ में इस प्रकार लिखते हैं।

1. धन, वनिता इत्यादि लौकिक वस्तु हमें प्रिय होते हैं।
2. उनमें भरा हुआ अभिमानी देवताएँ श्रेष्ठ होते हैं।
3. उनको नियामन करने वाले भारती वायु श्रेष्ठतर होते हैं।
4. उनके लिए इष्ट लक्ष्मी सहित भगवान श्रेष्ठतम् होते हैं।

इस तारतम्य के अनुसार चिन्तन करना सुख लाने का साधन है। हम उक्त चारों को श्रेष्ठतम् भगवान के प्रिय होने से समस्त सुख पा सकते हैं। अनुष्ठान का अनुभव इस तरह के चिन्तन में है।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - नौ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

अवधूत उपाख्यान

अवधूत का अट्ठारहवाँ गुरु गिद्ध पक्षी

अवधूत ब्राह्मण कहता है - मनुष्य को जो प्रिय लगता है उसको मनुष्य संग्रह करता है। संग्रह करना मानव का स्वभाव बन गया है। वस्तु को संग्रह करने में सुख लगता है, किन्तु वही संग्रहीत वस्तु दुःख का कारण बन जाती है। इसको पहले ही समझते हुये कुछ भी संग्रह न करने से तत्काल में कुछ सुख नहीं होता। किन्तु अन्तिम में सुख कारक है। इसको मैं कुरव नाम के पक्षी से सीख लिया।।1।।

एक बार एक गिद्ध मांस का एक टुकड़ा मुख में रखकर उड़ रही थी। तब उसके पीछे-पीछे बहुत से पक्षी मांस की आशा से उस पक्षी को मारने लगे। अन्त में वह पक्षी मांस को छोड़ दिया। अन्य पक्षी कुरव पक्षी को छोड़कर मांस के पीक्षे दौड़े। कुरव पक्षी मांस को छोड़ने से सुख पाई।।2।।

श्री विद्याधीश गुरु जी महाराज लिखतें हैं :- भक्ति तृप्ति नही देती। भक्त को भगवत सुख से तृप्ति नही होनी चाहिये। विभक्ति भगवान से दूर होना तृप्ति देते हैं। किन्तु इससे तृप्ति नही होना। द्रव्य संग्रह करने वाला, देने वाला सबको आनन्द देता है।

अवधूत का अट्ठारहवाँ गुरु है गिद्ध। अवधूत प्रकृति में रहने वाली वस्तुओं को ही गुरु बनाये हैं। गिद्ध उड़ने वाला पक्षी है। जीव होने के कारण प्रत्येक को भूख लगती है। गिद्ध को भी भूख लगती है। गिद्ध आकाश में ऊपर उड़ते रहते हुये भी नीचे जमीन पर अपने आहार को देख लेता है। यह दृष्टि उसको भगवान ने दिया है। सस्याहारी हमको मांस ही सही नही लगता है। किन्तु मरे हुए, सड़े हुये प्राणी के दुर्गन्ध युक्त मांस को गिद्ध बहुत चाहता है। वह मांस को जमीन पर देख कर झट से उसके ऊपर उतरते हुये उसको बहुत आशा से खा लेता है। दुर्गन्ध वाला सड़ी हुयी वस्तु को खाकर गिद्ध आनन्द मानता है। यह विचित्र होते हुये भी सत्य है। ऐसे सड़े हुये मांस को खाने से उसको रोग, रूजिन नही होता। आहार विष (फूड पाईजन) नही होता। दूसरों को असह्य लगने वाला, दुर्गन्ध वाले मांस को यह गिद्ध प्यार से खाता है। यह देखकर हमें बहुत असह्य होता है। छोटे से पेट को भरने के लिये क्या क्या करना

पड़ता है ? इतना ही नही किसी सड़े हुये मांस को खाने के लिये गिद्धों में युद्ध भी होता है। कई गिद्ध मार भी खाते हैं। सड़े हुये मांस के लिये लड़ते हुये इन गिद्धों को देखकर अवधूत क्या कहते हैं ?

सम विषम् कुररं जध्नुः बलिनो ये निरामिषाः ।
तदामिषं परित्यज्य ससुखं समविन्दत ॥

अवधूत ने देखा - एक गिद्ध मांस को अपने चोच में लेकर उड़ रहा है। दूसरा गिद्ध उसके ऊपर आक्रमण करता है। लेकिन पहले वाला गिद्ध बहुत होशियार है। वह आक्रमणकारी गिद्ध को देखकर अपने मुख में रहने वाले मांस को छोड़ देता है। मांस भूमि पर गिर गया। उसको देखकर आक्रमण करने वाला गिद्ध पहले वाले गिद्ध को छोड़ कर मांस पाने के लिये जमीन पर उतर गया। मांस छोड़ने से पहले वाला गिद्ध बच गया। दूसरा गिद्ध मांस के पीछे जाने से उसको भी युद्ध करने की आवश्यकता नही पड़ी। इससे दोनों गिद्ध बच गये। यह झगड़ा अथवा प्राण हानि का प्रश्न नही है। इसके लिये प्राचीन काल के लोग बोलते हैं **त्यागे सर्वं विधीयते** - त्याग से सुख मिलता है।

अवधूत इन दोनों गिद्धों को देखने से द्वन्द्व से दूर रहने वाला जीव का अध्ययन करते हुये मांस को त्यागने वाला गिद्ध को वे अपना गुरु मानते हैं। त्याग से सुख है इसी तत्व को वे अपने जीवन में अपनाये। त्याग करने में जो सुख है वह सुख भोग में नही है। भोग का दुख त्याग के लिये नही है। खाली करने में जो आनन्द है वह आनन्द संग्रह करने में नही है। अपने में जो है वह अपने से ज्यादा है अथवा अपने को कष्टकर है। तो ऐसी वस्तु को हमें दूसरों को बांट ही देना अच्छा है। हम बांटना नही चाहते तो उसको लूटने वाले हमारे पीछे हैं। सोना, चाँदी, धनभोग, इनको थोड़ा थोड़ा करके इकट्ठा करना पड़ता है लेकिन लूटने वाले एक ही क्षण में लूट लेते हैं। अथवा पिता द्वारा बहुत कष्ट से सम्पादन किया हुआ सम्पत्ति को पुत्र ने एक दो दिन में खर्च करता है। इसी से त्यागने में, दूसरों को बांटने में जो सुख है वह सुख भोगने में नही है। भोग का सुख क्षणिक होता है। भोग वस्तु को खाने के पहले सुख नही है खाने के बाद भी दुःख होता है। नश्वर वस्तु खाली होने से दुःख होता है। वह नही है यह भाव ही दुःख का मूल है। इसके लिये वस्तु के मोह को त्याग कर चिन्ता नही करते हुये त्याग करना ही सुख का मूल है। इसके लिये अवधूत अपने चौबीसवाँ गुरुओं में त्याग करने वाले गिद्ध को एक गुरु बनाये हैं।

अवधूत का उन्नीसवाँ गुरु बच्चा

बच्चा को मान-अपमान नही। पैसे कमाने की चिन्ता नही। खेल-खेलते खेल में ही वह अपना सुख को पाता है। उसी प्रकार मुझको भी मान-अपमान की परवाह नहीं है। पत्नी-पुत्र वाले को धन-सम्पादन करने की जो चिन्ता है वह भी मुझे नही है। भगवान के साथ मैं क्रीड़ा करते हुये भगवान के दर्शन में ही सुख देखते हुये संचार करता हूँ।।3।।

परम आनन्द में मग्न होकर इस जगत में बिल्कुल चिन्ता रहित केवल दो होते हैं। कुछ भी न समझने वाला जड़ के समान रहने वाला बालक दूसरा त्रिगुणातीत श्री हरि को जो देखा है वह।।4।।

अवधूत के गुरुओं में बालक भी एक गुरु है। हित वचन योग्य वचन को बोलने में छोटा-बड़ा कौन है। बोलने वाले में जो अच्छा है उसका ग्रहण करने के लिये हमें सहृदयता होनी चाहिये। हमें अपने अभिमान को त्याग कर ज्ञान किसी से भी आये उसको ग्रहण करना चाहिये। जो जानना चाहिये उसको जानने के साथ जो जान लिया है उसको हजम करना चाहिये, ठीक तरह से समझ लेना चाहिये। बोलने वाला बालक हो, मालिक हो, या पालक हो, जो ज्ञानी है उससे ज्ञान लेना है। ज्ञानी बालक है तो भी वह गुरु हो सकता है। प्रह्लाद जी आठ वर्ष के वय में दैत्य बालकों के लिये गुरु बने। अवधूत बहुत होशियार हैं। वे दृश्य से ही पाठ पाते हैं। किसी वस्तु को देखने के बाद अवधूत उसमें से ज्ञान योग्य जो है उसको चुन लेते हैं। इस प्रकार ज्ञान को ग्रहण करने में उसके समान और कोई नही है। अवधूत ज्ञान पाने के समय में शिष्य बनते हैं। ज्ञान पाकर गुरु बनते हैं।

अवधूत के लिये अर्भक गुरु बन गया। बात भी न बोल पाने वाला बच्चा अवधूत को गुरु बनता है। अर्भक का अर्थ समृद्धि पाया हुआ ऐसा भी होता है। यहाँ अवधूत बालक में ज्ञान की समृद्धि को पाते हैं। बालक का अर्थ बहुत बलशाली ऐसा भी होता है। इन दोनो का अर्थ यहाँ अवधूत बालक में पाये।

द्वन्द्व शब्द सदाकाल जुड़वा होते हैं। हम एक को चाहे तो दूसरा उसके साथ आता है। हम एक का स्वागत करते हुये दूसरे को दूर नही कर सकते। जय-पराजय, सुख-दुख, यश-अपयश इत्यादि। हम जय को चाहते हैं, किन्तु अपजय को त्याग नही सकते। एक सिक्के के दो पहलू जैसे होते हैं वैसे ही ये जय-पराजय हैं। स्वार्थ को त्याग कर अवधूत जो बने हैं उन्हे इस जय पराजय, मान-सम्मान के बारे में प्रतीक्षा नही करना चाहिये। अवधूत इनको कभी नही चाहते थे। वे देने वाले लोगों का सम्मान नही करते थे, अवमान भी नही करते थे। सम्मान और अवमान पाने की चाह वाला व्यक्ति उनके प्रयत्नों में दिन-रात एक कर कष्ट करता है। नींद और सुख को खो देता है। जीवन में मान-अपमान अनिवार्य है। वे एक के बाद एक आते रहते हैं, हमारे खाने-पीने में आचार-विचार में रहन-सहन में, निन्दा स्तुति, सुख-दुख आदि आत्ते रहते हैं। इन सब में अवधूत समान रूप से रहते हैं। उनका स्वभाव ही अवधूत चर्या है। इसके लिये उनको जमीन-जायदाद, पत्नी-पुत्र इत्यादि की आवश्यकता नही है। वे किसी के लालन पालन के बारे में चिन्ता नही करते। सम्पूर्ण तृप्त भाव उनके मन में रहता है। न चाह की बात उनके मन में आती नही। यही अवधूत चर्या है।

ये सारे गुण अवधूत अर्भक में देखते हैं। एक-दो वर्ष का बच्चा किसी के बारे में चिन्ता नही करता। अपने शरीर के ऊपर वस्त्र रहे या न रहे, लोग स्तुति करें या निन्दा करें, बच्चे का मन बदलता नही। उससे उसको सुख-दुख होता नही। बच्चा को पत्नी, पुत्र की चिन्ता नही। घर-मन्दिर की आशा नही। राग-द्वेष उनके समीप आते नही, मदमत्सर का प्रवेश नही। बालक का मन निर्मल है यह अध्यात्म समृद्धि का संकेत है। **बाल्येन तिष्ठा सेत्** उपनिषद् के इस मंत्र का अर्थ यही है। यह बचपन ही अवधूत के लिये नयी स्फूर्ति है।

अर्भक अवधूत के बारे में विचार करने से हमारे गुरु जी विद्यामान्य जी का चित्र हमारे सामने आ जाता है। बच्चे के समान उनका स्निग्धमुग्ध मन सब को सन्तोष देता था। किसी के बारे में उनके मन में राग द्वेष नही था। मान-अपमान उनको कभी दुःख नही दिये। हमने अपनी आँखों से देखे हुए अवधूत हैं हमारे गुरु जी। वे

मान्य हैं, विद्यामान्य हैं, पर विद्यामान्य हैं, सर्वत्र मान्य हैं।

अवधूत का बीसवाँ गुरु कुमारी

एक बार शादी तय हुयी किन्तु शादी नहीं हुई ऐसी एक कुमारी अकेले घर में थी। घर के बड़े लोग उसको अकेले घर में छोड़कर किसी कार्य के निमित्त बाहर गये थे। उस समय कन्यार्थी कई लोग घर आये। उस कुमारी को ही उनका सत्कार करना पड़ा।।5।।

हे राजा, उनका भोजन सिद्ध करने के लिए घर में चावल नहीं था। वह कुमारी धान को ओखली में डालकर कूटने लगी। तब उसके हाथ के चूड़ियाँ आवाज करने लगे।।6।।

कन्यार्थी जब घर आ गये हैं उसी समय धान को कूटना दारिद्र सूचक होता है। यह वे समझ गए तो वे असह्य मानते हैं यह समझकर वह बुद्धिमान कुमारी लज्जित हो गई। हाथ में रहने वाले चूड़ियाँ को एक-एक करके निकालने लगी। अंत में प्रति हाथ में दो-दो चूड़ी रह गये।।7।।

कूटते समय वे दो चूड़ियाँ भी आवाज करने लगे। तब वह कुमारी उन दो कंगन में से और एक को उतार दी। एक कंगन कैसे आवाज करेगा।।8।।

लोक व्यवहार को समझने की दृष्टि से जब मैं लोक संचार करता था तब हे राजा, उस कुमारी से मैं इस शिक्षण को पाया।।9।।

बहुत दुर्जन एकत्र मिलें तो कलह होता है। दो एक साथ रहे तो उस वक्त व्यर्थ की बातें होती हैं। इसी कारण कुमारी के चूड़ी के समान अकेला रहना अच्छा है।।10।।

दुर्जनों के साथ एक दिन भी नहीं रहना। सज्जनों के साथ यथासाध्य ज्यादा रहना। वही मोक्ष का कारण बनता है। इस प्रकार षाड्गुण्य नाम के ग्रंथ में कहा गया है।

श्री विद्याधीश गुरु जी महाराज लिखतें हैं :-

प्रकृति में जो मिले उनको गुरु बनाने वाले अवधूत अपने नये गुरु के बारे में बोलते हैं। वह एक कुमारी है। जड़, जोरू, जेवर से वे बहुत दूर खड़े हैं। तो भी वे एक कुमारी को गुरु मानते हैं। इससे उनकी महानता, हृदय की विशालता, निस्पृहता और सीखाने का स्वभाव व्यक्त होता है। कुमारी से अवधूत दो पाठ सीखे हैं। इसका विवरण देते हुये जगद्गुरु मध्वाचार्य जी एक सन्देश देते हैं - ***असज्जनैस्तु संवादो न कर्तव्यः कदाचन*** *दुष्टजनों के साथ सहवास नही करना चाहिये। यह एक पाठ हो गया। दूसरा पाठ है -* ***यावद्यावच्च बहुभिः सज्जनैः सः मुक्तिदः*** *सज्जन का संग मत छोड़ो, वह मुक्ति देता है। सज्जन का संग हम जितना करते हैं उतना सुख हमको मिलता है यह श्री मध्वाचार्य जी का दूसरा पाठ है। अवधूत कुमारी से ये दोनो पाठ सीख लिये।*

कुमारी का अर्थ - विवाह न होने वाली युवती होता है। यह कुमारी गरीब के घर में जन्म ली है। घर में माता-पिता और साथी कोई नही थे, वे रोजी रोटी कमाने बाहर गये थे। उस समय कन्या देखने वर के साथ कई लोग आये। उनका स्वागत करते हुये घर के अन्दर बिठाई, माता-पिता के आने में देर थी। घर में अनाज नही था, वह बगल के घर में जाकर थोड़ा सा धान माँग कर ले आई। उनको कूटने लगी। लड़की जानती थी कूटने की आवाज बाहर के लोगों को नही सुनाना चाहिये। इसके लिये वह दरवाजा और खिड़कियों को बन्द करके कूटने लगी। किन्तु उसके हाथों में रहने वाली चूड़ियाँ एक के साथ एक टक्कर करते हुये ध्वनि करने लगी। उसकी ध्वनि को बन्द करने के लिये वह अपने चूड़ी को एक-एक करके निकालती रही। दो चूड़ी रहे तो भी ध्वनि उत्पन्न होती रहती थी। जब दोनो हाथों में एक एक चूड़ी रहा तो ध्वनि बन्द हो गयी। एक चूड़ी रहे तो ध्वनि नही आती। ज्यादा चूड़ी रहे तो ध्वनि उत्पन्न होती है। अवधूत इससे पाठ सीखे। बहुत लोग रहें तो झगड़ा करने के लिये अवकाश रहता है। अकेले रहे तो किसी से झगड़ा नही होता। बहुजनों के साथ रहना कलह का अवकाश निर्माण करता है।

चूड़ी हाथों का भूषण है। वे मंगल द्रव्य हैं। इसके लिये प्रत्येक स्त्री को चूड़ी धारण करना चाहिये। इसका अर्थ होता है कि सज्जनों का सहवास आवश्यक है। किन्तु चूड़ी जब ज्यादा हो गये तो शब्द आने लगा। ज्यादा चूड़ी यह अल्प लोगों का प्रतीक हो गया। उनको छोड़कर एक सज्जन के पास, एक गुरु के पास जाना आवश्यक है। इसके लिये पहले दुर्जनों का संग छोड़ना चाहिए। अधिक दुर्जनों के साथ रहने से हमें अधिक कष्ट होता है। उनको छोड़कर अकेले होकर सद्गुरु के पास जाने से हमें योग्य ज्ञान मिलता है। इसके लिये अवधूत कर और चूड़ी से इस पाठ को सीख लेते हैं।

अवधूत का इक्कीसवाँ गुरु बाण तैयार करने वाला

मुनि को आसन जय, श्वास जय करते हुये आलस्य रहित होकर वैराग्य भाग्य रूप भगवान में ही मन को स्थिर रखना चाहिए।।11।।

भगवान में मन स्थिर हो गया तो क्रमशः मन दुष्कर्म नाम की धूल से मुक्त होता है। सत्वगुण बढ़ने लगता है। उससे रजोगुण तमोगुण को दूर करने से लकड़ी न डाले हुये आग के समान अंत में स्वयं शान्त होता है।।12।।

मुक्ति में जीव को स्वरुप भूत चिन्मय अन्तःकरण मात्र रह जाता है। बाहर रहने वाला जड़ अन्तःकरण का नाश होता है। इसी कारण स्वरुप अन्तःकरण से ही जीव मुक्ति में सारा सुख का अनुभव करता है। यह बात मुक्ति तत्व नाम के ग्रंथ में आती है।

इसी कारण मैं भगवान में ही मन रखते हुये अन्दर बाहर से निश्चिन्त रहना इसको मैं बाण तैयार करने वाले से सीखा। वह बाण तैयार कर रहा था। उनके सामने ही एक राजा वैभव से जा रहा था। किन्तु बाण तैयार करने वाला अपने कार्य में इतना मग्न हो गया था कि वह राजा को

देखा ही नही।।13।।

अवधूत मुनि का बाईसवाँ गुरु सर्प

योगी अपने लिए घर बनाता नही है। भगवान के बारे में सदाकाल जागृत रहना चाहिए। हृदय गुहा में रहने वाले भगवान में ही मन स्थिर रूप से रखना चाहिए। अपने आचार से स्वयं कौन हूँ, कैसे हूँ इसको न दिखाते हुये हरि ध्यान करते हुये एक ही अकेले संचार करना चाहिए। मिला हुआ अल्प भोजन से ही तृप्ति पाना चाहिए।।14।।

घर निर्माण करना कष्ट है। यह शरीर ही अशाश्वत होते हुये इसकी रक्षा के लिए हमारे अल्पायुष को व्यर्थ करते हुये शरीर की रक्षा के लिए एक घर बनाना निष्फल होता है। दीमक घर बनाता है। सर्प उसमें जाकर सुख से रहता है।।15।।

श्री विद्याधीश गुरु जी महाराज लिखतें हैं :-

किराये के घर में प्रवेश करते हुये घर के मालिक को किराया न देते हुये आराम से जीवन चलाना अवधूत नही चाहते। इस प्रकार विचार भी नहीं करना चाहिए। किन्तु यहाँ इस प्रकार चींटी के घर में रहने वाला साँप उस घर को अपना करता है। इसको अवधूत अपना गुरु मानते है। इसका अर्थ क्या है?

सर्पः परकृतं वेश्म प्रविष्य सुख मेधते

*इसमें आने वाला परवेश्म का अर्थ क्या होता है? शब्द का अर्थ दूसरे का घर ऐसे होता है। इसके उत्तर रूप में अवधूत कहते हैं - **गृहेषु अतिथिवत् वसेत्** इसको जोड़कर बोले तो अर्थ सरल होता है। साँप जैसे दूसरों के घर में यानी चींटियों के घर में आनन्द से रहता है। उसी प्रकार अवधूत कहते हैं - अपने घर में अतिथि के समान रहो। इस जगत में कोई वस्तु मेरा हो नही सकती। ये सारे अशाश्वत वस्तु हैं। पराये घर में रहने के समान अपने घर में भी हमें अतिथि के समान रहना चाहिए। अपने घर में रहते हुये उसके बारे में मैं और मम इस प्रकार अभिमान नहीं रखना चाहिए। कुछ भी मेरा नही है यह अनुसंधान ही जीवन का सही साधन है। हम कुछ भी करें उसको मेरा मानने लगते हैं। मैं किया हुआ कोई वस्तु मेरे साथ नहीं रहता। अन्तकाल में मेरे साथ नहीं आता। यह घर मैं बाँधा हूँ इस प्रकार बोलना गलत है। हम अपने हाथ से एक ईंट भी नहीं उठाये हैं। बढ़ई और मिस्त्री मिल के इस घर को बनाये हैं। उसके आवश्यक वस्तु ईंट, लोहा, पत्थर, मिट्टी इत्यादि वस्तु दूसरों का है। पैसा देकर हम खरीदते हैं। वह पैसा भी हमारा नहीं है। पैसा कमाने के लिए आवश्यक बुद्धि, शरीर, जीभ, इन सबको हमने सृष्टि किया नही। भगवान यहाँ के सारे वस्तुओं का सृष्टि किये हैं। यह पूरा ब्रह्माण्ड भगवान का है। **ईश्वास्यमिदं सर्वं** यह पूरा जगत भगवान का है। हम उसके किरायेदार हैं। **परकृत** इसका अर्थ यही चिन्तन है।*

एक अतिथि दूसरे के घर में जाता है। वह वहाँ आराम से रहता है। खाना, पीना, सोना, आनन्द से करता है। घर का मालिक अतिथि से कहता है - यह घर आपका ही समझिये, संकोच मत करें, जो चाहे वो माँगिये। इतना कहने के बाद भी अतिथि ठीक तरह से समझता है कि यह घर मेरा नहीं है। मैं इस घर में अतिथि होकर रहता हूँ। इस प्रकार इस जगत में रहना चाहिए। यह अवधूत का अनुसन्धान है। हम इसको भूल चुके हैं। हम समझ चुके हैं यह घर मैंने ही बनाया है, मेरा ही है। मैं और यह घर चिरंतन काल के लिए रहेंगे। इस भ्रम में हम रहते हैं। अवधूत कहता है - यह गलत है। हमें इस जगत में अतिथि के समान रहना चाहिए। भागवत कार कहते हैं - **पुत्र दारात् बन्धुनां संगमः पान्थ संगमः** पत्नी पुत्र को भी मेरा समझना गलत है। रास्ते में जाते समय में कई लोग हमारे साथ होते है। उनके साथ हम प्यार से बोलते हैं। बहुत विषयों की चर्चा करते हैं। उनके साथ छिपाना, लेना देना, ऐसा व्यवहार कुछ नहीं है। मन खोलकर बाते करते है। न प्यार है, न झगड़ा है। ये सारे सम्बन्ध तात्कालिक हैं, अशाश्वत है। इस प्रकार अपने परिवार से भी सम्बन्ध रखने वाला अतिथि के समान अपने ही घर में सन्यासी के समान होकर रह सकता है। साँप को गुरु बनाने में अवधूत का अभिप्राय इस प्रकार है।

अवधूत का तेईसवाँ गुरु मकड़ी

सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान श्री नारायण अकेले रहते हैं। बाद में अपनी इच्छा से सृष्ट किए हुए इस जगत का अपने रूप से स्वयं ब्रह्म कल्प के अन्त में नाश करके अकेले स्वतंत्र रूप से रहते हैं।।16।।

अपने शक्ति से भरा हुआ लयकाल को निमित्त करते हुये सत्वादि गुणनामक शक्तियों की सामान्य व्यवस्था को स्वयं लाकर उस लय काल में सर्वाधार और स्वयं अपना आधार बने हुये असदृश रूप वाले नारायण अकेले स्वतंत्र रूप से रहते हैं।।17।।

प्रलयकाल में प्रकृति, जीव होते हैं किन्तु वे कुछ जीव सृष्टि नही कर सकते। वे रहते हुये भी न रहते हैं ऐसा उनका अस्तिव है इसी कारण उपनिषद् **एको नारायण आसीत्** केवल एक नारायण थे। इस प्रकार बोलती है। किन्तु लयकाल में विष्णु रहते हैं वे कुछ भी नही करते। इसके लिए विष्णु भी न रहते हुये रहते हैं ऐसा नहीं बोलना चाहिए। उस समय में भी भगवान काल इत्यादि का नियमन करते रहते हैं। इस प्रकार तत्व लय में रहता है। विष्णु की शक्ति प्रकृति और सत्वादिगुण हैं। ये विष्णु के नियंत्रण में रहने वाली शक्तियाँ है। प्रलय काल में उनको साम्यावस्था आती है। विष्णु की स्वरुप शक्ति सबका नियामन करती है। किन्तु उसका नियमन करने वाला और कोई नहीं है। उसको कभी साम्यावस्था नहीं आती है। यह बात शक्ति तत्व नाम के ग्रंथ में है।

सरस्वती ब्रह्माजी के नियामक मुक्त और अमुक्तों का नियामक, आदि पुरुष नारायण लयकाल में अकेले थे। उनसे ज्येष्ठ अथवा उनके समान और कोई नहीं है। उनका नाम कैवल्य था।।18।।

जड़ शरीर रहित होकर केवल ज्ञानानन्दादि समूह ही शरीर रहने वाले वह नारायण बाद में अपने सामर्थ्य से भरा हुआ सृष्टिकाल होने से उसको निमित्त करते हुये त्रिगुणात्मक अपनी जड़ प्रकृति को क्षोभित करते हुये उससे प्रथमतः प्राण और ब्रह्माजी की सृष्टि किये। इस प्रकार हे राजा माया कहलाने वाली वह प्रकृति अपने में रहने वाले त्रिगुणों को व्यक्त करते हुये अनेक तरह की सृष्टि की। इस विश्व के आधार बना हुआ, जीवात्म के संसार के कारण बना हुआ इसी को अव्यक्त तत्व कहते हैं।।19-20।।

मकड़ी अपने पेट से सूत को बाहर डालते हुये अपने मुँह से जाल बिछाता है। उसमें अपनी इच्छा के अनुसार विहार करता है। अंत में उसी जाल को खा डालता है। उसी प्रकार भगवान सृष्टि काल में अपने पेट से जगत को बाहर करते हुये विस्तार रूप से सृष्टि का सृजन करते हैं। अपने विहार के बाद लयकाल में इस जगत को निगल लेते हैं।।21।।

श्री विद्याधीश गुरु जी महाराज लिखतें हैं :-

मारने या भगाने योग्य मकड़ी अवधूत को आध्यात्म का उपदेश देते हुये कैसे गुरु बना, यह प्रश्न हमारे मन में आता है। चार दिन के लिए अथवा चार महीने के लिए हम सारे घर छोड़कर, घर को ताला बन्द करके किसी स्थान पर जाते हैं। वापस आने के बाद दरवाजा खोलकर घर के अन्दर प्रवेश करें तो अपना घर का मालिक मकड़ी बन गया है, जहाँ चाहे वहाँ अपना घर बनाया है। हम अन्दर भी प्रवेश न कर सकें, ऐसे अपने जाल से हमको ही हमारे घर से बाहर करती है यह मकड़ी।

इस प्रकार रहने वाली मकड़ी में अवधूत पद्मनाभ का दर्शन करते हैं। मकड़ी घर में अपना घर बनाता है। एक कोने से दूसरे कोने तक कोई स्तम्भ आधार न रखते हुये कील न ठोकते हुये, गम-टेप न लगाते हुये, कपास के बिना धागा निर्माण करते हुये मकड़ी जो घर बनाती है वह कल्पना न करने से भी दूर रहने वाली कला है। इस शक्ति को भगवान ने उसको दिया है। इसको देखकर हमें भगवान की महिमा के बारे में चिन्तन करना चाहिए।

मकड़ी को अपना घर बनाने के लिए धागा कहाँ से आता है। शून्य से सृष्टि नहीं हुआ। ***हृदयात ऊर्णा*** *अपने पेट से ही यह मकड़ी धागा निर्माण करती है। इसी के लिए उसको संस्कृत में* ***उर्णनाभ*** *कहते हैं। जिस समय में जितनी आवश्यकता है। उतना ही निर्माण करता है। भगवान भी आवश्यकता के अनुसार इस जगत की सृष्टि करते हैं। इस जगत के निर्माण के लिए उनको और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। अपने पेट से ही लयकाल में रहने वाले भगवान इस ब्रह्माण्ड को निकालते हुये जगत का निर्माण करते हैं। भगवान के लिए यह खेल है। आवश्यक पड़े तो भगवान ब्रह्माण्ड का नाश करते हैं, प्रलय करते हैं। जैसे मकड़ी किया हुआ अपने घर को स्वयं खाता है। सृष्टि करना, उसको पालना और नाश करना तीनों काम भगवान के लिए लीला मात्र है। उनको कष्ट नहीं होता जैसे अपने घर बनाने में मकड़ी को नही होता। भगवान के सृष्टि, स्थिति*

संहार के लिए यह एक सुन्दर निदर्शन है।

अवधूत का चौबीसवाँ गुरु कणज नाम का कीट

जीवात्म स्नेंह से, द्वेष से, भय से अपने मन को पूर्ण रूप से बुद्धि पुरस्सर जहाँ रखता है उसी रूप को वह पाता है।।22।।

हे राजा, वह कुड्य कीट को लाकर दीवार पर मिट्टी से घर बनाकर उसमें रखता है। उसकी रक्षा भी करता है। वह कीट पहले कुड्य के साथ द्वेष करता है। बाद में प्यार से वह कीट कुड्य का निरन्तर ध्यान करते हुये अपने रूप को त्याग कर कुड्य का रूप धारण करता है।।23।।

श्री विद्याधीश गुरु जी महाराज लिखतें हैं :-

भययुक्त भक्ति से हरि का चिन्तन करने वाला भक्ति से सारूप्य मोक्ष पाता है। भक्ति का अर्थ भगवान के महात्म्य को ज्ञान से पूर्ण रूप से जानकर उनमें प्यार करना है। यह जीव के स्वरूप भूत योग्यता के अनुसार होता है। वह मोक्ष प्राप्ति में व्यक्त होता है। यही भक्ति सारूप्य मोक्ष दिलवा देता है। द्वेष से भगवान का ध्यान करने वाला अंत में द्वेष सारूप्य को पाता है। द्वेष का अर्थ भगवान के गुणों को न मानते हुये उनमें द्वेष का चिन्तन करना। द्वेषी श्री हरि के सुख स्वरूपत्व को नंही मानता है। इसके विरुद्ध में दुःख रूप का चिन्तन करता है। जीव का दुःख उसका स्वरूपभूत होनें के कारण वह तमस में व्यक्त होता है। यही दुःख रूपत्व का चिन्तन करता है। दुःख उसका स्वरूपभूत होने के कारण तम में व्यक्त होता है। यही दुःख रूप तत्व चिन्तन रूप द्वेष सारूप्य है। हिरण्यकश्यप मरते समय नरसिंह भगवान को द्वेष से यह भगवान नहीं हैं। कोई भूत होगा अथवा राक्षस होगा इस प्रकार चिन्तन करने के कारण अगले जन्म में रावण नामक राक्षस बना। बाद में श्रीराम को राजकुमार एक मानव है इस प्रकार चिन्तन करने के कारण शिशुपाल नाम का राजकुमार होकर जन्म लिया। शिशुपाल श्री कृष्ण का सदाकाल के लिए द्वेष से चिन्तन करता था। किन्तु मरते समय उसका द्वेषी जीव तमस को गया। सज्जीव स्वाभाविक भक्ति से चिन्तन करते हुये सद्गति को पाया। यह विषय भागवत तंत्र नाम के ग्रंथ में आता है। भगवान गुणपूर्ण हैं इस प्रकार चिन्तन करते हुये देवतागण मुक्ति में स्वयोग्य गुणपूर्ण हो जाते हैं। असुर भगवान को दुःख पूर्ण इस प्रकार चिन्तन करते हुये तमस में गिरते हुये दुःख भागी बनते हैं। इस प्रकार उपनिषद् कहती है। कीट कुड्य पहले द्वेष करता है। किन्तु बाद में आहार देने के कारण उसके ऊपर प्यार बढ़ता है। उसी का चिन्तन करने से कीट अंत में कुड्य का रूप धारण करता है। यह विचार स्वातंत्र विवेक नाम के ग्रंथ में आता है।

अवधूत का पच्चीसवाँ गुरु अपना शरीर

अवधूत कहता है - हे राजा, इस प्रकार मैं चौबीस गुरुओं से सीख लिया है। अब मैं अपनी देह से जैसे बुद्धि पाया इसको बोलता हूँ, सुनो।।24।।

मेरा देह भी मेरे लिए गुरु है। वह मुझे नित्यानित्य वस्तुओं का ज्ञान देते हुये वैराग्य को लाकर दिया है। इतना ही नही सकल प्राणियों के आश्रय रहने वाला सदा के लिए अत्यन्त उत्कृष्ट रहने वाला केवल सुख-स्वरुप भगवान को अपने में धारण करता है। इस देह से ही मैं परापर तत्वों को शास्त्र की मार्ग से विमर्शा करते हुये ठीक तरह से सही रूप से समझता हूँ। तत्वों को शास्त्रों की सहायता से विमर्शा करते हुये ठीक तरह से जानता हूँ। ऐसे होते हुये भी यह कर्माधीन शरीर को भगवान ने ही दिया है। मेरा जीव आत्मा इसमें रहता है लेकिन उनका यह शरीर नहीं है। यह शरीर परकीय है। इस प्रकार निश्चय करते हुये उस शरीर में आसक्ति न रखते हुये संचार करता रहता हूँ।।25।।

यहाँ श्रीधर स्वामी और अन्य व्याख्याकार यहाँ का अवधूत दत्तात्रेय का रूप मानते हैं। किन्तु दत्तात्रेय स्वयं भगवान हैं, भगवान को परकीय शरीर नही होता है इसके लिए यह श्लोक दत्तात्रेय का नही होता।

इस श्लोक में आने वाला सत्य निधन का अर्थ बल ज्ञान स्वरूप सत्व को निधि अथवा आश्रय रूप श्री हरि ऐसा अर्थ होता है। **सततात्युदर्श** का अर्थ सदा उत्तम और सुख स्वरूप श्री हरि इस प्रकार होता है।

पत्नी, पुत्र, जमीन जायदाद, बन्धु-बांधव, पशु-भृत्य इन सबको उनके संतोष के लिए, उनके संरक्षण के लिए बहुत कष्ट से धन सम्पादन करने के लिए उनके पोषण करने वाला मानव मन में उनके बारे में ही आसक्ति रखते हुये न जानते हुये अपने पुनर्जन्म के बीज बनने वाला धनार्जन और पोषण कर्म करता रहता है। उसके लिए अपना शरीर का उपयोग करता है। इस प्रकार शरीर से कर्म करने से अपने अगले जन्म का शरीर को सिद्ध करता है। इस प्रकार जनन-मरण चक्र में फिरते हुये क्लेशभागी होता है। एक वृक्ष न जानते हुये और एक वृक्ष की उत्पत्ति का कारण बनने वाला पत्र, पुष्प, फल इत्यादि को सृष्टि और पोषण करते हुये अंत में एक बार मर कर सूख जाता है। यह मानव शरीर भी इस प्रकार व्यर्थ रूप से देहान्तर का कारण बनते हुये क्लेशदायक होता है।।26।।

स्वबीजं सृष्टवा इस श्लोक मे आने वाला इस शब्द का अर्थ अपने पुनर्जन्म के लिए आवश्यक होने वाला बीज रूप कर्म को करते हुये इस प्रकार अर्थ होता है।

पत्नी, पुत्र इनके लिए और स्वयं अपने इन्द्रियों के तृप्ति के लिए मानव इस शरीर से बन्धक बनने वाला अनेक कर्मों को करता रहता है। जीभ रस के प्रति प्यास पानी के प्रति, गुह्येन्द्रिय ग्राम्य सुख के प्रति, त्वगिन्द्रिय स्पर्श के प्रति, भूख अन्न के प्रति, कान सुन्दर गायन के प्रति, नाक सुगंध के प्रति, चंचल आँख आकर्षक रूप के प्रति, विषयासक्त मानव का आकर्षण करते रहते हैं। अनेक पत्नी वाले यजमान को एक-एक पत्नी भी अपनी इच्छानुसार जैसे खींचती रहती है। इसी प्रकार इन्द्रिय मानव को विषय के प्रति खींचते हुये बहुत दुःख देते हैं।।27।।

श्री हरि अनादिकाल से रहने वाली अपनी इच्छा से और अपने अधीन चेतना चेतन प्रकृति से

वृक्ष साँप, पशु-पक्षी, मक्खी, मछली इत्यादि अनेक तरह के शरीरों का निर्माण करने के बाद भी तृप्ति न पाते हुये ब्रह्मज्ञान साधना रूप मानव शरीर का निर्माण करने के बाद ही तृप्ति पाये।।28।।

बहुत जन्मों के बाद अत्यन्त दुर्लभ यह मानव शरीर को पाकर वह पुरुषार्थदायक होते हुये भी अशाश्वत होने के कारण किसी क्षण मृत्यु के वश हो सकने के कारण वह नष्ट होने के पहले ही विवेकी मानव जल्दी-जल्दी से इसी शरीर से मोक्ष का प्रयत्न करना चाहिए। विषय सुख भोग सारे शरीर में प्रयत्न के बिना भी लभ्य होता है। किन्तु दुर्लभ यह मानव शरीर का दुरूपयोग नहीं करना चाहिए।।29।।

इस प्रकार भगवान के बारे में ज्ञान का प्रकाश पाते हुये मिलने वाला वैराग्य को पाकर सकल संग को परित्याग करते हुये अहंकार को त्याग कर मैं इस भूमि में संचार कर रहा हूँ। अद्वितीय परब्रह्म नारायण के बारे में ज्ञानी अनेक प्रकार से उपदेश देते हैं। इसी कारण एक ही गुरु से समग्र सम्पूर्ण और स्थिर ज्ञान प्राप्त नहीं होता।।30,31।।

एक ही गुरु से विद्या पूर्ण रूप से मिलती नही। बहुत गुरुओं से विद्या को पाना चाहिए। बहुजनों से विद्या पाने के बाद भी चतुर्मुख ब्रह्मा जी के उपदेश के बिना मुक्ति नहीं मिलती। साक्षात् श्री हरि से उपदेश पाने के बाद भी चतुर्मुख ब्रह्मा जी से उपदेश पाना अवश्य है। क्योंकि भगवान श्री हरि मुक्ति देने के पहले चतुर्मुख ब्रह्मा जी से उपदेश दिलवा देते हैं। ऋजुओं को भगवान श्री हरि स्वयं उपदेश देते हैं। भगवान श्री हरि किसी से उपदेश नहीं पाते। इस प्रकार गुरु विवेक नाम के ग्रंथ में आता है।

भगवान कहते हैं - हे उद्धव, ज्ञानी वह अवधूत ब्राह्मण यदुमहराज को इस प्रकार उपदेश दिया। राजा ने उसको नमस्कार करते हुये उसका सत्कार किया। वह ब्राह्मण उससे संतुष्ट होकर उससे विदा लेकर जहाँ से आया था वहीं चला गया।।32।।

हमारे कुल के बड़े लोगों को भी बड़े यदुमहाराज इस प्रकार अवधूत ब्राह्मण के उपदेश को सुनकर सर्वत्र निर्दोष होकर समरूप में रहने वाले भगवान को मन में स्थिर रूप से रखें।।33।।

श्री विद्याधीश गुरु जी महाराज लिखते हैं :-

अवधूत पुस्तक खोलकर अथवा अपने गुरु से मस्तकाभिवेश करवाकर सन्यासी नही बना है। भगवान ने सृष्ट किया हुआ अणु, रेणु, तृण, काष्ट, इन सारे वस्तुओं में परिपूर्ण गोविन्द का साक्षात्कार करते हुये उत्तम साधक बने हैं। इस रीति से अवधूत को उनका शरीर भी उपदेश देने वाला गुरु बनता है।

देह गुरु बनने से विरक्ति पाने के लिए इस देह को छोड़ना पड़ता है क्या? अवधूत का अर्थ सबको त्याग किया हुआ सन्यासी इस प्रकार होता है। तो अपने गुरु रूपी शरीर को त्यागना है क्या? गुरु त्याग करने

से रौरव नरक होता है। ऐसे गुरु रूप देह में वैराग्य पाना गलत नहीं होता है क्या? यह प्रश्न हमें सहज आता है। अवधूत इसका उत्तर देते हैं - हम भोजन करने के लिए भोजनशाला जाते है। एक ही स्थान पर बहुत लोग एकत्रित होते है। भोजन होने के बाद उस भोजनशाला में कोई नहीं रहता। दूसरे दिन भोजन के समय तक कोई नहीं आता। इसी प्रकार विद्यार्थी पाठ सीखने के लिए परीक्षा देने के लिए स्कूल जाते है। परीक्षा होने के बाद वह विद्यार्थी कभी स्कूल को नही जाता। स्कूल, शिक्षक, आसन सबको छोड़कर विद्यार्थी उत्तीर्ण होकर जाता है। किन्तु अनुतीण हुआ विद्यार्थी को उसी स्कूल, उसी कक्षा में उसी शिक्षक के सामने बैठना पड़ता है। अवधूत ठीक तरह से उत्तीर्ण हुये विद्यार्थी हैं। वे ठीक तरह से जीवनशाला में पाठ पढ़े हैं। अवधूत इस देह से विद्या सीखते है। उसको अपने जीवन में उपयोग करते है। उनके लिए गुरु, कक्षा इनकी आवश्यकता नही रहती है।

यह शरीर हमें गुरु कैसे बनता है? इस जगत में जो कुछ है। वह जीव के लिए परकीय है। परकीय शब्द का और एक अर्थ है। पर यानि परमात्मा। हम बिम्ब रूपी भगवान के प्रतिबिम्ब हैं। यह शरीर भगवान का प्रतिबिम्ब है। भगवान इसको जितने समय तक नचाते हैं, तब तक इसे नाचना पड़ता है। भगवान उस जीव को खींच लिया तो शरीर मर जाता है। यह शरीर भगवान का है।

अवधूत कहता है - **असंगः विचरामि** संग रहित होकर इस देह में हमे रहना है। यह शरीर भी भगवान की देन है। असंग होकर यानी किसी से संग न करते हुये इस शरीर में रहना चाहिए।

इस देह के साथ स्नेह नही रहे तो अवधूत इसमें कैसे रहते हैं। असंग का अर्थ शरीर को छोड़ना होता है। अवधूत इसका उत्तर देता है - अ का अर्थ ब्रह्म अथवा भगवान है। इस देह में रहते हुये भगवान का संग करना, भगवान के साथ रहना, भगवान के साथ चलना असंग होता है। इस प्रकार अवधूत चलते-फिरते भगवान के साथ रहता है। हमारा शरीर भगवान की गाड़ी है। ऐसे समझते हुये हमें भी भगवान के साथ रहना चाहिए। अवधूत शरीर से यह शिक्षा प्राप्त किया है।.

भगवान उद्धव को अवधूत के बारे में बोलते हुए उद्धव गीता का उपसंहार के रूप में एक सुन्दर बात कहते हैं। भगवान जो कुछ करते हैं, कहते हैं वह उपनिषद् का चिन्तन होता है। श्रीमद्भागवत वेद का अर्थ करने वाला एक विशेष पुराण है। भगवान कहते है -

आचार्योऽरणिराद्यः स्यात् अन्तेवास्युत्तरारणिः ।

तत्सन्धानं प्रवचनं विद्या सन्धिः सुखावहः ।।

यह श्लोक हमें काठक उपनिषद् का **आचार्यः पूर्व रूपं अन्तेवास्युत्तररूपं विद्या सन्धिः प्रवचन सन्धानं** इन मंत्रों का याद आता है। इसका अर्थ इस प्रकार है। गुरु पूर्व अरणी यानि ऊपर की अरणी होता है। शिष्य उत्तर अथवा नीचे का अरणी बनता है। दोनों के मंथन से प्रवचन के मुखान्तर विद्या प्राप्त होती है।

भगवान के ये बात उपनिषद् का चिन्तन विषय है। भगवान के बात जादू बनकर आते है। हम शब्द को सुनते है। हम सुनते है वह शब्द है किन्तु उससे ज्ञान होता है। हम एक वस्तु को देखते है, वह ज्ञान रूप में परिणाम होता है। हम जीभ से रुचि देखते है वह मधुर इत्यादि रस का ज्ञान रूप में परिणाम होता है। इस प्रकार जो ज्ञान होता है वह ज्ञान हमारे इस शरीर के कारण होता है। प्राणियों को इतना ज्ञान नहीं होता है। जड़ में तो बिल्कुल ज्ञान ही होता नहीं। मानव शरीर में होने वाला ज्ञान का परिणाम क्या होता है वही एक चिन्तन का विषय बनता है। सुना हुआ शब्द ज्ञान में कैसे परिवर्तित हुआ। कोई परिवर्तन का अर्थ नहीं कह सकता ज्ञान के कारण होता है तो जड़ में यह ज्ञान होता नहीं। केवल चेतन में यह ज्ञान कैसे होता है?

अपने कठिन तप के साधन, अपने सामने खड़े हुये भगवान श्री हरि के प्रत्यक्ष दर्शन से उद्रिक्त होकर भक्त ध्रुव भक्ति की पराकाष्टा से बोलता है। **योन्तः प्रविश्य ममवाचमिमाम् प्रसुप्ताम् संजीवयति**। यह श्लोक उसके विचार में आ जाता है। किन्तु मुँह से बाहर नहीं आता। वह शक्ति को भगवान अपने शंख के स्पर्श से दे दिये। तब ध्रुव अपने अनुभव को भगवान के सामने कहता है। इसका मनन करे तो भगवान के अस्तित्व हमें सिद्ध होता है। यह ज्ञान विमर्शात्मिक होता है। यह सामान्य ज्ञान नहीं है। यह ज्ञान कैसे होता है? इसका कारण और कुछ नहीं है। केवल भगवान ही इसका कारण बनते हैं।

भगवान श्री कृष्ण इस ज्ञान कैसे आता है इसके बारे में भगवान श्रीकृष्ण एक सुन्दर दृष्टान्त देते है। इस ज्ञान के लिए प्रथमतः गुरु का सन्निधान मुख्य है। गुरु के अन्तेवासि होकर शिष्य को रहना है। वह शिष्य के ऊपर ज्ञान देने के लिए गुरु का पूर्ण अनुग्रह चाहिए। गुरु शिष्य केवल दैहिक रूप में एकत्र रहना नहीं है किन्तु मानसिक रूप में वे दोनों एक साथ रहना है। गुरु अनुग्रह करते हुए शिष्य को ज्ञान देना है। गुरु शिष्य दोनों लकड़ी के समान है। एक लकड़ी से आग उत्पन्न नहीं होता। उसके लिए और एक लकड़ी की आवश्यकता होती है। दोनों लकड़ी से घर्षण करे तो अग्नि दिखता है। लकड़ी के अन्दर अग्नि था। वह पहले नहीं दिखता था, किन्तु दोनों के घर्षण से आग दिखने लगा। उसी प्रकार गुरु शिष्य दोनों लकड़ी के समान है। उनमें विषय का मंथन होना चाहिए। उसमें प्रथम काष्ट गुरु होते है। उनके साथ सदाकाल रहने वाला शिष्य दूसरा लकड़ी होता है। **तत्सन्धानं प्रवचनं** गुरु का वाक्य केवल वचन नहीं है। वह प्रवचन बन जाता है। केवल व्यवहारिक बातें वचन होते है। जब उन्ही बाते प्रकृष्ट भगवान के बारे में बनते है तब वे बातें प्रवचन हो जाते हैं। केवल एक लकड़ी रहने से जैसे आग प्रत्यक्ष नहो होता वैसे केवल गुरु रहने से ज्ञान, विद्या नहीं आता। दोनों मिले तो **विद्या सन्धिः** गुरु शिष्य दोनों मिलने से विद्या रूप का ज्ञान उत्पन्न होता है। उसके प्रकाश से जगत कल्याण होता है। इसके लिए उद्धव, गुरु के पास जाना अत्यन्त मुख्य है। गुरु के पास केवल जाने से ज्ञान प्राप्त नहीं होता। गुरु के साथ सदाकाल रहना, उनके प्रत्येक बातों को सुनते रहना, **परिप्रश्नेन सेवया पुनः पुनः** प्रश्न पूछना और समस्या का उत्तर पाना ज्ञान का साधन बनता है।

उद्धव को भगवान उपदेश जो देते है। उसमें गुरु का अनुग्रह पाना मुख्य विषय है।

यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में नौवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - दस

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

भगवान कहते हैं - मन में फल की आकांक्षा न करते हुये मेरी शरण में आते हुये मैंने गीता और पंचरात्र इत्यादि में जो कहा है उन वैष्णव धर्मों को मन में रखते हुये तीनों वर्ण वालो को वर्ण आश्रम के उचित आचार और कुलाचारों का अनुष्ठान करना चाहिए।।1।।

विषय पदार्थों को पुरुषार्थ साधन मानते हुये विषयासक्त जन सुख के लिए प्रवृत्ति मार्ग में पड़ते हुये सारे कर्मों को करते हैं। इसके परिणाम स्वरुप दुःख फल को ही पाते हैं। निर्मल मन वाले भक्त को इसको ठीक तरह से जानना चाहिए।।2।।

नींद करते समय स्वप्न में विषय पदार्थों का अनुभव होता है। उसी प्रकार विषय ध्यान में रहने वाले को दिवा स्वप्न होते हैं। दोनों वस्तु स्थिति के विरुद्ध होते हैं। यह भ्रांति लगती है। इसी प्रकार बाह्य अन्तःकरण में उत्पन्न होने वाले काम क्रोधों में मेरा और मैं अभिमान भी भ्रांति ही है क्योंकि ये आत्मस्वरुपभूत नहीं हैं।।3।।

जीव को भक्ति ज्ञान इत्यादि की इच्छा स्वरुप भूत होकर रहता है। काम क्रोध इत्यादि बाह्य अन्तःकरण में उत्पन्न होने वाले विकार हैं। उनको सज्जीवों का स्वरुप भूत ऐसा मानना गलत है। यहाँ नानात्व कल्पना करना गलत है। यह विफल है। इसको सदा के लिए त्यागना यह बात विवेक नाम के ग्रंथ में है।

मुझको ही सर्वोत्तम मानते हुये मुझमें भक्ति करना, निष्काम कर्म करना, काम्य कर्म छोड़ना। ब्रह्मज्ञान की साधना के लिए प्रयत्न करने वाला को उसका विरोधी काम्य कर्म को करना नहीं।।4।।

ज्ञानयुक्त निष्काम कर्म निवृत्ति कर्म माना जाता है। निवृत्त कर्म से भगवान की आराधना करने वाले को भगवान की प्राप्ति होती है। यह बात महाभारत में आती है।

मेरे भक्त को सदाकाल के लिए यम नियमादिओं का अनुष्ठान करना चाहिए। मुझको ठीक

तरह से जानते हुये क्रोध आदि का त्याग करते हुये मन में सदाकाल ध्यान करने वाला गुरु की सेवा करना चाहिए।।5।।

(अध्याय उन्नीस श्लोक 33-34 में यम नियम के बारे में विवरण आने वाला है।)

मुझको सदाकाल ध्यान करने वाले को मदात्मा कहते हैं। यह श्री हरि का वाक्य महाभारत में है।

मेरा भक्त अहंकार और मात्सर्य से रहित होना चाहिए। गुरु जो उपदेश देते हैं उसका श्रवण ठीक तरह से करना चाहिए। शास्त्र में दृढ़ विश्वास चाहिए। मोक्ष पाने के लिए जल्द बाजी नही करना चाहिए। सदाकाल ज्ञानापेक्षी होना चाहिए। असूया रहित होकर व्यर्थ बातें नहीं करना चाहिए।।6।।

पत्नी पुत्र, घर, परिवार, बन्धु, धन इत्यादि में उदासीन रहना चाहिए। इन सबको अपने के लिए जितना आवश्यक है उतना ही ग्रहण करना चाहिए। उनका प्रयोजन भी थोड़ा ही करना चाहिए। समस्त वस्तुओं में भगवान को समरूप से देखना चाहिए।।7।।

लकड़ी और आग दाह्य दाहक हैं, प्रकाश प्राकाश्य हैं। इसी कारण लकड़ी में रहने वाली आग लकड़ी से अलग है, विलक्षण है। इसी प्रकार जड़रूप स्थूल, सूक्ष्म देहों में रहने वाले आत्म सर्वज्ञ भगवान और दूसरा आत्म जीवात्म भी विलक्षण है।।8।।

शरीर में प्रवेश किया हुआ जीवात्म मरण जनन, कृशत्व स्थूलत्व, इत्यादि से शूर नर आदि नाना जातियों में इस देह सम्बन्ध से होने वाले गुण धर्मों को अपना स्वाभाविक मानता है। उसके साथ नियामक होकर देह में प्रवेश किया हुआ भगवान भी अन्य लोगों को वैसे ही दिखता है।।9।।

देह सम्बन्ध से होने वाले जनन-मरण आदि दुःख जीव को मूलभूत नहीं हैं, देहाभिमान के निमित्त आता है। किन्तु यह भगवान के लिए होता नहीं किन्तु होता है, ऐसा दिखाते हैं। जीव को मोक्ष होते तक शरीर का अभिमान होता ही है। यह विष्णु संहिता की बात है।

सत्वादि गुणों से निर्माण हुआ देह में रहने वाला जीव अविद्या में डूबा रहता है। यह अविद्या संसार के कारण उसको आता है। उसी में जीव को अभिमान रहता है। देह सम्बन्ध के कारण होने वाले जनन-मरण आदि संसार दुःख केवल जीव को होता है, भगवान को नही।।10।।

इसी कारण देह में नियामक होकर रहने वाले भगवान को देह सम्बन्ध से होने वाले सुख-दुखादि रहित जीव विलक्षण हैं। इसको ठीक तरह से समझते हुये जीव में भी ऐसा सामर्थ्य हो सकता है। इस विचार को क्रमशः ठीक तरह से विचार करते हुये दूर करना चाहिए।।11।।

जीव में वस्तु बुद्धि को त्याग देना चाहिए। अवस्तु इसका अर्थ अशक्त और वस्तु का अर्थ शक्त इस प्रकार होता है। केवल भगवान शक्त होते हैं। इस प्रकार लक्षण नाम के ग्रंथ में कहा गया है। इसी से जीव को भगवान के समान सर्वशक्त है इस प्रकार नहीं समझना चाहिए।

तत्व विचार के मंथन में गुरु ऊपर के अरणी होते हैं, शिष्य नीचे का अरणी, प्रवचन मथनी। तत्वज्ञान ही सुख देने वाला अग्नि होता है क्योंकि मंथन से मिलने वाली यागाग्नि स्वर्ग साधन बनती है। वैसे ही गुरूपदेश से उत्पन्न होने वाले विचारों से तत्वज्ञान मोक्ष का साधन बनता है।।12।।

बाद में अत्यन्त निर्मल भगवान के अपरोक्ष ज्ञान का उदय होता है। कामक्रोधादि जनन का हेतु जीवाच्छादक बनी हुई अविद्या का नाश होता है। परमाच्छादक भी हट जाता है। कामक्रोधादि जल कर संसार का मूल बनी हुयी अविद्या का भी नाश होने के बाद जलने के लिए लकड़ी न रहने से जैसे आग बुझ जाती हैं वैसे समस्त पाप नाश होता है।।13।।

कामक्रोधादि बाह्य जड़ अन्तःकरण के परिणाम होते हैं। अपरोक्ष ज्ञान भी उसी जड़ अन्तःकरण का परिणाम है। अपरोक्ष ज्ञान कामक्रोधादि को जलते समय उसके साथ जड़ अन्तःकरण भी जल जाता है। उस समय अपरोक्ष के लिए आश्रय बना हुआ जड़ अन्तःकरण नहीं होने के कारण लकड़ी न रहते हुये आग के समान स्वयं बुझ जाता है। जीवात्मा को आगे मुक्ति में स्वरूपान्तःकरण से ही ज्ञान आनन्दादि का अनुभव होता है।

भगवान का अपरोक्ष ज्ञान माया का नाश करता है। इसका अर्थ वह प्रकृति अथवा भगवान की इच्छा का नाश करता है ऐसा नही होता। अनादिकाल से जीव के साथ आया हुआ जीवाच्छादिका और परमाच्छादिका नाम का दो आवरक माया के नाम से जीव को ढक कर रहते हैं। वे पिशाची के समान जीव को दुःख देते रहते हैं। अहंकार ममकारों को उत्पन्न करते हुये जीव से भगवान को दूर करते हैं। किन्तु भगवान के अपरोक्ष ज्ञान होने से ये दोनों आच्छादिका नष्ट होते हैं। यह वैभव नाम के ग्रंथ में आता है।

यदात्म्यमेतत् भागवत कहती है कि माया ही संसार का मूल है। यहाँ एतत् शब्द साक्षी प्रत्यक्ष से सिद्ध दुःख रूप संसार के बारे में कहता है। कभी-कभी प्रपंच के बारे में कई स्थानों में भगवान के बारे में और कई स्थानों में मिथ्या ज्ञानादि हेय वस्तु के बारे में कहता है। इस प्रकार तंत्र-निरुक्त ग्रंथ में आता है। इसी के अनुसार यहाँ भागवत एतत् शब्द को संसार के बारे में कहता है।

अपरोक्ष ज्ञान माया को नष्ट करने के बाद स्वयं नाश होता है। इस प्रकार कहा गया है। इसका अर्थ यह होता है। बाह्य अन्तःकरण से उत्पन्न हुआ ज्ञान मुक्ति में नष्ट होता है। स्वरुप भूत ज्ञान से ही मुक्ति में सुख भोग मिलते हैं। मुक्ति तत्व नाम का ग्रंथ इस विचार के बारे में बताता है।

जीव अनेक तरह के कर्म करता है। उसके फल स्वरुप अनेक तरह के सुख-दुःख को भोगता है। इस तरह जीव स्थूल स्वरुप से तीन तरह के तारतम्य वाले होते हैं। लोक,देश,काल और वेदों के समान सकल चेतन नित्य होते हैं। उसी प्रकार स्वरुप तारतम्य भी नित्य होता है।।14।।

सुख-दुःख, सुख मिश्र-दुःख और केवल दुःख इस प्रकार सुख-दुःख तीन तरह के होते है। सात्विक, राजस और तामस चेतन के स्वरुप हैं। इन्हीं से जीवत्रैविद्य होता है। जीव नित्यत्व लोक काल देश वेद के समान नित्यत्व है। यह श्रुतिसिद्ध है, इसके बारे में युक्ति समर्थन की आवश्यकता नही।

देव, असुर, मनुष्यादि सकल जीवों की स्वरुप योग्यता जैसे स्वाभाविक ही तीन तरह की होती है। वैसे ही देव असुरादि शरीर भी अलग-अलग तरह के होते है। ज्ञान भी उन शरीरों के अनुसार ही आता है। हे उद्धव, तुम इसको पहले से ही जानते हो इसको मैं अलग से कहने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे होते हुये ईश्वर जीव से अलग और विलक्षण है इस प्रकार प्रत्येक कहने की आवश्यकता नहीं है।।15।।

जीव स्वरुप से भगवान के समान नित्य है। किन्तु सारे जीवों के शरीरों को उन-उन कर्म की परिपक्वता आने का समय जब आता है तब देह मिलती है। इस प्रकार देह सम्बन्ध पुनःपुनः होते हुये जनन-मरण आदि अवस्थायें प्रवाह के समान आते रहते हैं। वे सारे सत्य हैं। उसी तरह जीव ईश्वर भेद भी सत्य है।।16।।

यह इस जनन मरण रूप संसार में कर्म करते समय उसके फल स्वरूप सुख-दुःखों को भोगते समय जीव को स्वातंत्र नही है यह अनुभव से मिलता है। इस प्रकार **विवश** यानी अस्वतंत्र रहने वाले जीवों को क्या सुख मिलने वाला है। उसी प्रकार **वि-वश** यानी श्रेष्ठ लोकों के अधीन रहने वाले उनमें भक्ति करने वाले को सुख ही मिलता है।।17।।

विवश जो हैं उनको क्या पुरुषार्थ मिलता है इस अभिप्राय के अर्थ को जीव-तत्व नाम का ग्रंथ इस प्रकार बोलता है - बड़े लोग और गुरु के वश में रहने में परम सुख है। दुष्ट लोगों के वश में रहे तो क्या सुख मिलेगा ? गुरु और बड़े लोगों के वश में रहते हुये उनमें भक्ति और प्रीति करने वाले को सुख है। नही तो उनको भी दुःख होता है। इसी कारण गुरु और श्रेष्ठ लोगों में भक्ति और प्रीति करना चाहिए।

ज्ञानियों को भी देहाभिमान जब तक रहता हैं तब तक उन्हें भी सुख नहीं है। दुःख से मोहित होकर केवल अहंकार से मत्त रहने वाले अन्य लोगों को क्या सुख है? ।।18।।

सुख को पाना और दुःख को परिहार करने के उपायों को वेदों से जानते हुये विद्वान ऐसे

प्रसिद्ध रहने वाले ज्ञानी भी देहाभिमान को नहीं छोड़े तो सही सुख के ज्ञान को मृत्यु के परिहार के उपाय को वे ठीक तरह से नहीं जानते हैं।।19।।

ज्ञानी को भी देहाभिमान रखना दु;खकर है तो अज्ञानी के बारे में क्या कहना। यह भागवत का वचन है। यहाँ भागवत **तथा** इसका प्रयोग **किम् पुनः** इस अर्थ में किया गया है। शाब्द नाम का ग्रंथ तथा शब्द के लिए **पुनः** और प्रस्तुत ये दोनों अर्थ कहता है।

दुःख मूढ़ इसका अर्थ दुःख से मनोधैर्य को खोया हुआ ऐसा अर्थ होता है। अहंकारी का अर्थ अपने दुर्गुणों को न छोड़ते हुये उसी को गुण मानना और उसके बारे में अभिमान करना।

मरण दण्डना को पाया हुआ अपराधी को वध स्थान को जाने के पहले मिष्ठान्न भोजन और गंध मालादि दिये तो भी उसको उससे सुख होने वाला नहीं है। इसी प्रकार जो मृत्यु वश है उसको अर्थ काम से क्या सुख होने वाला है।।20।।

वेद में कहा गया स्वर्ग साधन कर्म, लौकिक कर्म के समान नश्वर है। बड़े लोगों के साथ स्पर्धा असूया और अतिक्रमण करने से अथवा बीच में ही मरण आने इत्यादि अनेक विघ्नों से व्यर्थ होता है। इसका कारण जगत में व्यवहार में दिखता है।।21।।

देहाभिमानी एक बार यागादि कर्मों को निर्विघ्नरूप से ठीक तरह से किया तो भी उससे मिलने वाले स्वर्गादि स्थान भी नाश होते हैं। यह कैसे होता है इसके बारे में बोलता हूँ, सुनो।।22।।

सज्जनों के सहवास से यज्ञ करने वाला यज्ञ से देवताओं की आराधना करते हुये स्वर्ग को जाता है। वहाँ अपने पुण्य से पाया हुआ दिव्य भोगों को देवता के समान भोगता रहता है।।23।।

पुण्य से मिला हुआ शुद्ध विमान में बैठकर सुन्दर और सुभूषणधारी अप्सराओं के बीच में विहार करता है। गन्धर्व उसके गुणगान करते हैं।।24।।

पाँव में घूँघरू पहने हुये देवता स्त्रियों के साथ मिल के अपनी इच्छानुसार विमानों में विहार करता है। इस रीति से परमानन्द में मग्न हुआ वह आगे अपने होने वाले अधःपतन के बारे में विचार नहीं करता।।25।।

पुण्य समाप्त होते तक स्वर्ग में आनन्द विहार करते हुये पुण्य समाप्त होते ही मन के विरुद्ध काल नियामक श्री हरि की प्रेरणा से अधःपतन पाता है। ऐसे जीव को पूर्ण सुख कहाँ है।।26।।

दुर्जनों का संग करते हुये अधर्म में रत होने से इन्द्रिय निग्रह जो नहीं रख सकता ऐसे

विषयासक्त, लोभी, अतिकामी, अतिआशा वाला, स्त्री लम्पट, प्राणि हिंसा निरत विधि विरुद्ध जीवी पशुओं को मारते हुये प्रेतभूतगण की पूजा करता है। ऐसे जीव परवश होकर अन्त में घोर तम को पाता है। इस प्रकार पुण्य जीवीं और पाप जीवी दोनों को सुख कहाँ मिलता है?।।27,28।।

नित्य संसारी मानव इस देह से दुःख देने वाला काम्य कर्म करते हुये मरने के बाद उन कर्मों से अन्य देह को पाता है। उस देह में भी कर्म करते हुये अन्य देह पाने के लिए मरता है। इस प्रकार बार-बार देह पाने में कहाँ सुख है।।29।।

कल्प के अन्त तक जीवित रहने वाले लोकपालकों को भी उनके लोग मेरे से नाश होने का भय रहता है। दो परार्ध आयुष्य वाले चतुर्मुख ब्रह्मा भी वह आयुष्य नष्ट होने के बाद मेरे से उसको भी नाश का भय है।।30।।

तीन गुण शरीर, इन्द्रिय और मन से जीव में कर्मों का उत्पादन करते हैं। उन गुणों को प्रकृति से कालनामक भगवान उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार गुणबद्ध जीव शरीर में रहते हुये कर्म करते हुये फल भोगता है। भगवान स्वतंत्र हैं, शरीर में रहते हुये भी कर्म फल को भोगते नहीं। इस प्रकार संसार में भेद शाश्वत है।।31।।

कई लोग कहते हैं कि गुण वैषम्य रूप सृष्टि जब तक रहती है तत्पर्यन्त मात्र आत्मा में जीवईश भेद भ्रम रहता है। इस भेद भ्रम रहते तक पारतंत्र्य रहता है। तब तक ईश्वर से नाश भय रहता है। यह सारा अविद्या का परिणाम है। अविद्या नाश होने के बाद भेदभ्रम नहीं होता, जीवेश्वर भेद नहीं रहता। ईश्वर ही नहीं है तो और किसी का भय नहीं है। इस प्रकार विचार करने वाले भ्रांति में रहते हैं। उस भ्रांति से वे तम में गिरकर दुःख परवश होते हैं, मुछित होते हैं।।32,33।।

प्रपंच जब तक रहता है तब तक जीव और ईश्वर में भेद रहता है। भेद जब तक रहता है, तब तक जीव को पारतंत्र्य और भगवान से भय रहता है। अद्वैत ज्ञान से सबकुछ निवृत्ति होने के बाद भय नहीं रहता। इस प्रकार बत्तीसवाँ श्लोक में कहा गया है। किन्तु आगे तैतीसवें श्लोक में यह मत तम का कारण होता है। इस प्रकार अद्वैत मत की निन्दा की गयी है। यह स्पष्ट ही अद्वैत मत की निन्दा होती है क्योंकि इक्तीसवाँ श्लोक में जीव गुण बद्ध होने के कारण कर्म फल को भोगता है इस प्रकार द्वैत मत का समर्थन है।

गुण सम्बन्ध रूप इस संसार में **असति** जब नही रहता यानी मुक्ति मुक्त जन मुझको ही काल, आत्म, आगम, लोक, स्वभाव, धर्म का नियामक इस प्रकार अनेक रीति से मेरी स्तुति करते हैं, उपासना करते हैं। इस प्रकार मुक्ति में भी जीव, ईश्वर भेद होने के कारण वह भेद सत्य है, अविद्या के कारण नहीं हुआ है।।34।।

32,33,34 श्लोकों का अर्थ तंत्र भागवत में इस प्रकार व्याख्यान किया है - मुक्त लोग भगवान को काल अथवा सर्व गुणपूर्ण, आत्म अथवा व्याप्त, आगम अर्थात् सर्वज्ञ, लोक अर्थात् ज्ञानस्वरुप, स्वभाव अर्थात् स्वतंत्र, धर्म अर्थात् जगोद्धारक, इस प्रकार उपासना करते हैं। अन्य और दुर्मति वाले लोग प्रपंच जब तक रहता है तब तक जीवों में भेद पारतंत्र्य और भगवान का भय रहता है ऐसा कहते हैं। इस मत की उपासना करने वाले परम दुःखी होते हैं। भेद और पारतंत्र्य मोक्ष में भी रहते हैं इसके लिए इनको नित्य मानना है। तभी वे परम सुख को पाते हैं।

उद्धव पूछते हैं - भगवान जीव के देह में रहने के कारण उनको **अनपावृत** = आवरण रहित नही हैं ऐसे कहते हैं। भगवान को देह, रूप, आवरण है फिर भी भगवान स्वतः **अदेह** = देह रहित हैं ऐसे कहते हैं। इतने होने के बाद भगवान भी **देहज** = इस देह के सम्बन्ध से होने वाले काम, क्रोधादि से विषयभोगों से युक्त होते हैं ऐसे लगता है। प्रभु अब आप कहिए ऐसे भगवान, गुण से बद्ध होता है अथवा बद्ध नहीं होता है। बद्ध नहीं होता है ऐसे कहें तो कामादियों से युक्त हैं ऐसे क्यों लगता है? बद्ध हैं ऐसे कहें तो देह नहीं है यह कैसे हो सकता है?।।35।।

बद्ध है तो सृष्टि आदियों में कैसे प्रवृत्ति करता है? कैसे विहार करता है? भगवान को प्रवृत्ति और विहार नहीं है बोले तो, जन्मादि कर्तृत्व नहीं है तो अन्य किस लक्षण से उनको जानना चाहिए। बद्ध है तो कर्मफल भोगते हैं क्या? अथवा ईश्वर होने से नहीं भोगते हैं क्या? भगवान को शयंन, आसन, गमन आदि क्रिया उनमें है क्या अथवा नही है क्या ?।।36।।

शिष्य के प्रश्न को ठीक तरह से समझने वालों में श्रेष्ठ हे अच्युत मेरे इस प्रश्न का उत्तर दीजिए। नित्य मुक्त, नित्य बद्ध भगवान दोनों हैं, दोनों होते हुये एक है ऐसी मेरी भावना है। इसी कारण मैं आपसे इस प्रकार प्रश्न पूँछ रहा हूँ। बद्ध और मुक्त इस प्रकार अलग-अलग नहीं है ऐसे कहें तो बन्ध मुक्ति कैसे होते हैं यह भी मेरा प्रश्न है?।।37।।

भगवान बद्ध हैं ऐसे कहे तो अदेही देह न रहने वाला कैसे होता है। देह नहीं है तो देह बद्ध कैसे होता है यह उद्धव का प्रश्न है। जीव एक है वह नित्य बद्ध है। वही नित्य मुक्त है यह मेरा अभिप्राय है। इस प्रकार उद्धव अद्वैत के एक जीववादी मत के बारे में बोलता है।

गुरु के पास शिष्य पूर्व पक्ष के अपने वाद को बताते हुये उसको अपना मत इस प्रकार बोलने से झूठ बोलने का पाप नहीं आता। पूर्व पक्षी का वाद कैसे ठीक नही इसको दर्शाते हुये सिद्धान्त में दृढ़ता पाना इसका उ-श्य होता है। इस प्रकार विक्षेप नाम के ग्रंथ में कहा गया है।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - ग्यारह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री भगवान कहते हैं - मेरे अधीन रहने वाले त्रिगुणों के सम्बन्ध से यह बद्ध और यह मुक्त इसका निर्णय होता है। त्रिगुण है तो जीव बद्ध होता है। त्रिगुण से छुटकारा पाये तो मुक्त होता है। जीव स्वभाव से बद्ध नहीं है। त्रिगुण प्रकृति से जन्म लेते हैं। मैं प्रकृति रहित् हूँ इसके लिए मुझको त्रिगुण से बन्ध भी नही है मोक्ष भी नही है।।1।।

मुझको त्रिगुणों से बन्धमोक्ष होता है, इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण नहीं कहते हैं। मेरे अधीन रहने वाले त्रिगुण से जीव को बंध मोक्ष होता है। स्वभाव्य नाम के ग्रंथ में भगवान इस प्रकार कहते हैं - मैं गुण रहित हूँ। मुझको बंध अथवा मोक्ष नही है। मेरे अधीन रहने वाले जीव को बंध मोक्ष होता है।

जीव को स्वप्न में यह स्वप्न है ऐसा परिज्ञान नहीं रहता है। वह स्वप्न को भी जागृति मानता है। इसी कारण उसको स्वप्न में सुख-दुःख होते हैं। ऐसे ही जागृति में उसको अपने अस्वतंत्रता का परिज्ञान नहीं होता। इसी कारण अविद्या से शोक, मोह, सुख-दुःख, देहोत्पत्ति नामक संसार होता है। किन्तु वास्तव में जीव में स्वाभाविक रूप से संसार बाधा नहीं है। श्री हरि स्वतंत्र हैं। जीव को श्री हरि के स्वातंत्र के साथ मैं अस्वतंत्र हूँ यह ज्ञान जब आता है अस्वाभाविक किन्तु सत्य रूप में रहने वाला इस संसार का बंध नाश होता है।।2।।

संसार वास्तविक नही है इसका अर्थ स्वाभाविक नही है। दुष्ट स्वप्न को देखने वाला उसको स्वप्न न समझते हुये उस समय दुःख का अनुभव करता है। उसी प्रकार जागृति में अपना और भगवान का स्वरुप न समझने के कारण संसार का दुःख का अनुभव करता है। यह दुखानुभव अज्ञान के कारण है, स्वाभाविक नहीं है। इस प्रकार लोक संहिता नामक ग्रंथ में कहा गया है।

हे उद्धव, शरीर में रहने वाले जीव को ज्ञान,अज्ञान अनादि काल से हैं। मेरी इच्छा से ज्ञान मोक्ष का साधन बनता है, अज्ञान बंधक बनता है। मेरे प्रतिमारूप के समान रहने वाले यह ज्ञान-अज्ञान और उनके अभिमानी लक्ष्मी रूप मेरे शरीर माने जाते हैं।।3।।

ज्ञान, अज्ञान मेरी प्रतिमा रूप में रहते हैं। इस कारण वे मेरे शरीर माने जाते हैं। नित्य, ज्ञान आनन्द स्वरुप मैं उनसे भिन्न हूँ। वे मेरे अधीन हैं इसी कारण उनका परिणाम मुझको लगते नही। ज्ञान, अज्ञान, सत्वादि गुण, देह का उत्पत्ति, सुख-दुःख ये सारे मेरी इच्छा के अनुसार होने के कारण मैं बन्ध मोक्ष रहित हूँ। सदाकाल बन्ध रहित होने के कारण मैं सदाकाल मुक्त ही हूँ। बन्ध नाश होने के कारण नही। भगवान की यह बात काल संहिता नाम के ग्रंथ में आती है। ज्ञान के लिए श्री देवी अज्ञान के लिए दुर्गा देवी ये दोनों अभिमानी श्री हरि के प्रतिमा रूप में हैं। यह बात माया वैभव नाम के ग्रंथ में आती है।

हे महाबुद्धिशाली उद्धव, जीव मेरा भिन्न अंश है। उसको अज्ञान से अनादि बंध आता है। ज्ञान से उसको मुक्ति मिलती है।।4।।

मेरे भिन्नांश जीव को बंध मोक्ष होते हैं। मुझको एक भी नहीं होते अग्नि को प्रलयाग्नि के समान मुझको मत्स्य आदि रूप अभिन्नांश हैं। सूर्य को जुगुनू के समान जीव भिन्नांश है। यह बात वैलक्षण्य नाम के ग्रंथ में आती है।

मुझको कभी भी बंधन न होने के कारण बंध नाशक रूप मोक्ष भी नहीं होता है। मैं नित्य मुक्त हूँ मेरे अनुग्रह से बंध नाश होने के बाद जीव मुक्त होता है। प्रकाश आकर अन्धकार नाश होने के बाद वृक्ष दिखते हैं। किन्तु सूर्य वैसा नहीं है। सदाकाल वह प्रकाशमान होता है। यह बात तत्वोदय नाम के ग्रंथ में आती है।

हे मेरे प्यारे उद्धव, जीव और ईश्वर एक ही शरीर में रहते हैं। फिर भी दोनों परस्पर विलक्षण स्वभाव वाले होते हैं। जीव नित्य बद्ध है, ईश्वर नित्य मुक्त है। भगवान को जीव के समान देह से मिलने वाला सुख-दुःख नहीं है। नित्य बद्ध और नित्य मुक्त ऐसे जीवेश्वर में रहने वाले वैलक्षण्य को बताता हूँ, सुनो।।5।।

मुक्त यह श्री हरि का एक नाम है। दैव मीमांसा सूत्र इस प्रकार कहती है। नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य, सुख, अद्वय, प्रत्यक्, एक, पूर्ण ये सारे श्री हरि के नाम हैं क्योंकि उनका अर्थ मुख्य रूप से श्री हरि के बारे में कहते हैं। बद्ध यह जीव का नाम है क्योंकि मुक्त जीव भी पहले बद्ध होने के कारण उसका नाम बद्ध है। सूर्य सदाकाल जैसे प्रकाश देते हैं वैसे श्री हरि नित्यमुक्त हैं। उनको बंध और नाश नहीं है। इसी कारण वे सदाकाल मुक्त हैं, और मुक्त नाम से पुकारे जाते हैं। यह ब्रह्म संहिता का वाक्य है।

जीव ईश्वर दोनों आनन्द स्वरुप है। परस्पर सदृश है, स्नेही हैं। ईश्वर इच्छा से देह नाम के एक ही वृक्ष में वास करने वाले दो पक्षी के समान हैं। उनमें एक जीव कर्म के फल को खाता है। दूसरा भगवान न खाते हुये भी पुष्ट है।।6।।

अशुभ रस को न खाने के कारण भगवान न खाने वाला पक्षी माने जाते हैं। सदाकाल स्वरुपानन्द से तृप्त रहने के कारण तृप्ति के लिए न खाते है इसके लिए उनको न खाने वाला पक्षी ऐसे कहते हैं। स्वतंत्र रूप

से अशुभ फल को छोड़कर शुभ फल को खाने से खाने वाला पक्षी भी कहलाते हैं। उपनिषद् कहती है कि जीव स्वाद्वत्ति यानी स्वाद रस को खाता है। इस प्रकार कहने के बाद भी अस्वतंत्र होने के कारण अस्वाद को ही स्वादु मानकर भ्रम से खाता है इस प्रकार अर्थ होता है। यह बात भोग निर्णय नाम के ग्रंथ में आता है, और भोग नाम के ग्रंथ में भी यही कहा गया है।

शासनानशने अभि पुरुष सूक्त में इस प्रकार न खाने से पतला होने वाले मानव को खाने वाला और न खाने से बलिष्ठ रहने वाले देवताओं को न खाने वाले इस प्रकार कहा गया है। उसी प्रकार न खाने से पतला होने वाला जीव को खाने वाली पक्षी और सदा बलिष्ठ भगवान को न खाने वाला पक्षी इस प्रकार स्वभाव्य नाम के ग्रंथ में आता है। इसी अर्थ को बताने वाले ऋग्वेद मंत्र **द्वासुपर्णा, यत्रासुपर्णा, यस्मिन वृक्षे** ये मंत्र **स्वाद्वत्ति** इस मंत्र के अर्थ को खोल कर दिखाते हैं। कूर्म संहिता में भी इन मंत्रों का विवरण आया है। **सर्वं वा अत्ति, यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च** इस प्रकार उपनिषद् में **अत्ता चराचरग्रहणात्** ब्रह्मसूत्र में, **अहं हि सर्व यज्ञानामभोक्ता** इस प्रकार भगवद्गीता में विवरण आता है।

कर्म फल को न भोगते हुये सर्वज्ञ श्री हरि अपने को और जीव को पूर्णरूप से समझ गये हैं। किन्तु न खाने वाला जीव उनको जानता नहीं। अज्ञान से अंध बना हुआ जीव सदा के लिए भगवान के अधीन है, नित्यबद्ध है। सर्वज्ञ श्री हरि नित्य मुक्त हैं।।7।।

जीव अज्ञान से अंध हो गया है मुक्ति में भी वह अल्पज्ञ है। भगवान सदाकाल सर्वज्ञ हैं। यह बात विनिर्णय नाम के ग्रंथ और वैशेष्य नाम के ग्रंथ में है। **तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वम् वेत्थ** इस प्रकार गीता में भी कहा गया है। जीव योग्य होकर यत्न करे तो इस अनादि अंधत्व से मुक्ति पाता है। अयोग्य है तो अंधत्व शाश्वत बनता है। मुक्त भी हरि के अधीन होने के कारण बद्ध मानी जाती है। इस प्रकार वह नित्य बद्ध है। दुःख से छुटकारा पाता है इसके लिए मुक्त भी है। केवल श्री हरि स्वतंत्र होने के कारण नित्य मुक्त हैं। इस प्रकार मुक्ति विवेक नाम के ग्रंथ में आता है।

उत्तम जीवगण चौदह लाख होते हैं। एक-एक गण में असंख्य जीव होते हैं। वे स्वर्ग और मोक्ष को पाते रहते हैं। सायुज्य मोक्ष में श्रीहरि के शरीर में प्रवेश करना, बाहर आना यह सारा हरि के अधीन है। मुक्तों के लिए भी श्री हरि पूज्य हैं वे ही मुक्तों के आश्रय हैं। इत्यादि विषय महाभारत में कहा गया है। लिंग भंग होने के बाद श्वेतद्वीप आदि स्थलों में रहने वाले मुक्त जीव श्री हरि के अधीन हैं, अपने से उत्तम लोगों के अधीन भी हैं। उसी में वे ज्यादा सुख पाते हैं। नित्य मुक्त श्री हरि अकेले स्वतंत्र होते हैं। यह बात महात्म्य नाम के ग्रंथ में आती है।

सर्वज्ञ श्री हरि जीव के देह में रहते हैं अभिमान न होने के कारण देह में रहते हैं इसका ज्ञान नहीं होता।स्वप्न से जागृत होने वाला जैसे स्वप्न के दुःख से दूर रहता है वैसे इस देह से होने वाले

दुःख से दूर रहते है। अज्ञानी जीव स्वप्न के समान जीवन में भी देह के अभिमान के कारण दुःख भोगता रहता है।।8।।

श्री हरि के अधीन रहने वाला जीव हरि के अधीन वाले विषय पदार्थों को इन्द्रियों से ग्रहण करते समय अभिमान मानता है। किन्तु अविकारी श्री हरि उससे अभिमान नहीं पाते क्योंकि जीव अज्ञेय है और भगवान सर्वज्ञ हैं। सर्वज्ञ को विकार कहाँ से होता है?।।9।।

अन्य जीव अस्वतंत्र होकर इन्द्रिय से मिलने वाले सुख-दुःखों को अपना मानते हुये अभिमान करता है। श्री हरि स्वतंत्र होने के कारण वैसे समझते नही। वे सर्वज्ञ हैं यह बात स्वातंत्र्य नाम के ग्रंथ में आती है।

श्री हरि के अधीन इस शरीर में रहने वाला अन्य जीव, मैं त्रिगुण युक्त अस्वतंत्र हूँ इस भावना से जो कर्म करना है उसके विपरीत भाव यानी मैं स्वतंत्र हूँ इस भावना से करते हुये बद्ध होता है।।10।।

जीव द्वारा करने वाला कर्म गुणभाव्य होना चाहिए। इसका अर्थ मैं कर्म करने में पराधीन हूँ। स्वतंत्र नही हूँ यह भाव होना चाहिए। मैं ही स्वतंत्र हूँ यह भावना करना गलत होता है। सेवक यदि अपने को राजा मानने लगा तो राजा उसके ऊपर क्रुद्ध हो जाता है। उसी प्रकार जीव अपने को स्वतंत्र माने तो श्री हरि उसके ऊपर क्रुद्ध होते है। यह बात स्वातंत्र्य नाम के ग्रंथ में आती है।

स्वतंत्र जीव शयन, आसन, अटन, मज्जन, दर्शन, स्पर्शन, आघ्राणन, भोजन, श्रम इत्यादि क्रियाओं में श्री हरि स्वतंत्र हैं और मैं अस्वतंत्र हूँ। इसको समझकर कर्मफल में वैराग्य पाना चाहिए। तब वह विषयों का अनुभव करते हुये भी अज्ञानी के समान दुःख भागी नहीं होता है, बद्ध नही होता है। आकाश में सूर्य किरण के समान अथवा वायु के समान निर्लिप्त होकर रहता है।।11,12।।

बद्ध जीव नित्य मुक्त हरि के वश में रहता हूँ यह समझ लिया तो वह संसार में रहते हुये भी अन्य अज्ञ ा जीव के समान दुःखी नही होता तो फिर मुक्ति में रहने वाला दुःखी नहीं होता है। इसको अलग क्यों बताना यह बात प्राथम्य नाम के ग्रंथ में आती है।

निर्लिप्त जीव वैराग्य से युक्त होकर भगवान के अपरोक्ष को पाकर सारे संशयों से विच्छेदन पाकर स्वप्न से जागृत हुआ आदमी के समान मिथ्याज्ञान से निवृत्त होता है, बंधमुक्त होता है।।13।।

नानात्व से मिथ्याज्ञान होता है इस प्रकार कहा गया है। नानात्व का अर्थ अलग-अलग होकर रहना।

वस्तु जो रहती है उससे उसको अलग समझना नानात्व भाव होता है। अंधेरे में हम रस्सी को साँप मानना जैसे। यह बात वाल्लभेय नाम के ग्रंथ में है।

जिसको प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और कार्य कारित्व में फल की आशा नही रहती है। वह देह में रहते हुये भी देह संबंध से होने वाले सुख-दुःख से रहित होता है। वह जीवन्मुक्त कहा जाता है।।14।।

जीवनमुक्त के शरीर को पापी लोग अनादर कर सकते हैं। उसी प्रकार सज्जन लोग गौरव भी दे सकते हैं। किन्तु जीवनमुक्त इन दोनों को श्री हरि की इच्छा मानता है। हर्ष, शोक, रूप, मनोविकार के वश में नही होता।।15।।

सर्वत्र निर्दोष होकर समान रूप से रहने वाले श्री हरि को जानते हुये लौकिक गुण दोषों से दूर रहने वाला जीवनमुक्त अपने को कोई अच्छा करे या अच्छी बात बोले अथवा बुरा करे तो अथवा गाली दे तो भी वह उनकी स्तुति भी नहीं करेगा, निन्दा भी नहीं करेगा।।16।।

ज्ञानी अपने बारे में और लोग के निन्दा स्तुति करने से उनकी स्तुति और निन्दा नहीं करता। ये दोनों श्री हरि के अधीन है ऐसे वह मानता है। इसी कारण वह मोक्ष योग्य योगी महा गुणशाली होता है, दोष रहित होता है। इस प्रकार प्राथम्य ग्रंथ में आता है।

भगवान में ही सुख देखने वाला अपरोक्ष ज्ञानी अपने के लिए अच्छा बुरा कुछ भी नहीं कहता है, कुछ भी नहीं बोलता है, कुछ भी नहीं याद करता है, वह जो कुछ बोलता है, करता है, वह केवल परमात्मा के प्यार के लिए करता है। अन्य विषयों में वह जड़ के समान रहता है।।17।।

परोक्ष ज्ञान सम्पादन किया हुआ ज्ञानी वेदाध्ययन करते हुये परब्रह्म को आदर नहीं किया तो उसके श्रम के लिए अज्ञान और तमस ही फल होते हैं। दूध न देने वाली गाय को कितने भी खिलाये तो भी निष्फल होता है।।18।।

हे उद्धव, मेरी स्तुति न करनें वाले शास्त्र को मोह से अध्ययन करते रहना, दूध बेचने वाले की दूध न देने वाली गाय की रक्षा करने जैसे होता है। पतिव्रता न रहने वाली प़्त्नी की रक्षा के समान होता है। अपने को उपयोग के लिए न आने वाला अन्य लोगों की सेवा के लिए अपने शरीर का प्रयोग करने, दुष्ट पुत्रों के और सत्पात्र के लिए न दिया हुआ धन के समान व्यर्थ होकर दुःख भोगता है।।19।।

बारहवाँ स्कन्ध के तीसरा अध्याय की सत्ताइसवाँ श्लोक में कलियुग की वंदना करते हुये भागवत

कहती है कि दूध न देने वाली गाय की भी रक्षा करनी चाहिए। उसको ऐसे ही नही छोड़ना चाहिए। इस प्रकार कहा गया है।

हे प्रिय उद्धव जिस शास्त्र में मुझसे चलाने वाले इस जगत का जीवन, उत्पत्ति, स्थिति, लय, लीला अवतारों के बारे में, पावन लीलाओं के बारे में वर्णन विवरण नहीं हैं ऐसे निष्फल शास्त्र को बुद्धिमान रक्षा नहीं करना, घर में नही रखना।।20।।

इस प्रकार विचार करते हुए तुम अपने अन्यथा ज्ञान को मिटाकर निर्मल मन से सर्वत्र व्याप्त होकर रहने वाले मेरी शरण में आकर काम्य कर्मों से दूर रहना चाहिए।।21।।

जीव को स्वतंत्र भगवान मानना, सारे जीव एक ही ब्रह्म स्वरुप है, भगवान सर्वोत्तम नही है, यह जगत मिथ्या है। ये सारे नानात्व का भ्रम हैं। यह विवेक नाम के ग्रंथ में लिखा हुआ है।

मुझमें यदि तुम अपने मन को दृढ़ रूप से रख नहीं पाते तो फलापेक्षा को छोड़ते हुये मेरी आराधना रूप में सारे कर्मों को करते जाओ।।22।।

श्रद्धावान होकर परम मंगलकर लोकपावन मेरी कथाओं को सुनते हुये, नित्य-नूतन मेरी अवतार लीलाओं के बारे में पुनः पुनः संकीर्तन करते मेरे ही आश्रय में आये तो, मेरी प्रीति पाने के लिए धर्म, अर्थ, काम का सेवन करते रहे तो उद्धव, ऐसे ज्ञानी सनातन मुझमें निश्चल भक्ति को पाता है।।23,24।।

सज्जनों के संग से मुझमे भक्ति पाकर मेरी उपासना करने वाले सज्जन दिखने वाले वैकुण्ठ आदि लोकों की प्राप्ति ठीक तरह से कर लेते हैं।।25।।

उद्धव प्रश्न करता है - हे ब्रह्मादि वंद्य प्रभु, सदाचारियों का मन कैसे रहता है। सज्जन लोगों के आदर से किस तरह की भक्ति से आपका उत्तम अनुग्रह प्राप्त होता है। इसके बारे में कहिए।।26।।

हे पुरुषोत्तम! मैं आपकी शरण में हूँ। इस विषय के बारे में आप मुझे उपदेश दीजिए।।27।।

आप निरवधिक पूर्ण हैं, पूर्ण षड्गुण वाले हैं, आकाशस्थ हैं। आपके लिए प्रकृति का बंधन नही है। हे भगवान आप स्वेच्छा से वसुदेव आदियों के शरीर में प्रवेश करते हुये अपने स्वरुप भूत चिन्मय शरीर से ही अवतार लिए हैं।।28।।

श्री कृष्ण अवतार के लिए अलग प्राकृत शरीर स्वीकार किये है। इसका अर्थ प्राकृत शरीर से जन्म लिये ऐसा नहीं होता। वे पहले वसुदेव-देवकी के प्राकृत शरीर के अन्दर बसे। अवतार के पहले उनके शरीर

में सन्निहित होकर रहे। बाद में अपने चिन्मय स्वरुप शरीर से ही व्यक्त हुये। अन्य प्राकृत शरीरों में जीव के समान प्रवेश नही किये। बलराम आदि के प्राकृत शरीर में हरि का प्रवेश होता है। यह केवल आवेश अवतार में होता है। दूसरे जीव के अभिमानी होकर रहने वाले प्राकृत शरीर में हरि का आवेश हो सकता है। स्वरूप अवतार में वसुदेव-देवकी अपने को भगवान का माता-पिता समझे। लोकारूढ़ि में जगत भी ऐसे ही मानती है। यह केवल भ्रम है। यह बात प्रकाश संहिता में आती है।

भगवान श्री हरि कहते हैं - सारे प्राणियों में दया रखने वाले, द्रोह न करने वाले, द्वन्द्व सहन करने वाले, सत्यसन्ध, निर्मल मन वाले, शत्रु-मित्रों में उनके अनुसार वर्तन करने वाले, सारे सज्जनों को उपकार करने वाले सज्जन माने जाते हैं।।29।।

विषयाभिलाषा से मन को खराब न करने वाले, इन्द्रियों का निग्रह करने वाले, सौम्य स्वभाव वाले, शरीर में मन में शुचि रखने वाले, धन संग्रह न करने वाले, निषिद्ध कर्म को न करने वाले, मिताहारी, भगवद्भक्त, वैष्णव सिद्धान्त में अचल श्रद्धा रखने वाले, मुझमें शरण आने वाले सज्जन माने जाते हैं।।30।।

विहित कर्म को न भूलने वाले, गाढ़ ज्ञान वाले, आपत के समय में धैर्य न छोड़ने वाले, काम क्रोधादि को जीतने वाले, अहंकार न करने वाले बड़े-बडो को गौरव देने वाले, विहित कर्म करने में सामर्थ्य रखने वाले गायत्री मंत्र का नित्य जाप करने वाले, दयापर इस प्रकार कुल अट्ठाइस लक्षण वाले ज्ञानी सज्जन माने जाते हैं।।31।।

अपने गुण दोषों को ठीक तरह से समझते हुये दोषों का परिहार करते हुये मेरे उपदेश के अनुसार सारे स्वधर्मों को मुझे अर्पण करते हुये मुझे आराधना करने वाले सज्जनों में उत्तम हैं।।32।।

मेरा स्वरूप क्या है? मेरा परिमाण कितना है? मेरे गुण लक्षण क्या हैं? इत्यादियों का सामान्य ज्ञान और उसी में उत्साह रखते हुये विशेष ज्ञान रखते हुये पुनः पुनः अनन्य भक्ति से आराधना करने वाले मेरे अत्यन्त श्रेष्ठ भक्त होते हैं।।33।।

इस श्लोक ज्ञात्वा-ज्ञात्वा इसका अर्थ बार-बार भगवान का ज्ञान पाना ऐसा नही। एक बार भगवान के बारे में जो जानकारी मिली है। उसी को उत्सुकता से विशेष रूप से बार-बार याद करते रहना। इसी से भगवद् प्राप्ति होती है। यह बात विज्ञान नाम के ग्रंथ में आती है।

मेरे भक्त, मेरी प्रतिमाओं को, मेरे भक्तों का दर्शन करना, स्पर्शन करना, अर्चन करना, सेवा करना, स्तोत्र करना, नम्रता से नमस्कार करना, गुण कर्म का संकीर्तन करना, ये काम

नित्य करते रहना चाहिए।।34।।

उद्धव मेरा भक्त मेरी कथा श्रवण में श्रद्धा रखते हुये निरन्तर ध्यान करते हुये अपने को जो लभ्य होता है उसको मुझे अर्पण करना। दास्य, आत्म निवेदन इत्यादि उच्च कोटि की भक्ति करते रहना चाहिए।।35।।

मेरे अवतार लीलाओं का वर्णन करना, मेरे उत्सवों को देखते हुये हर्षित होना, गीत, नृत्य वाद्य गोष्ठियों को प्रबन्ध करते हुये मेरी मन्दिरों में उत्सव लगाना ये सारे काम भक्त को अवश्य करना है।।36।।

उसके साथ यात्रा करना, भेट चढ़ाना, वार्षिक उत्सवों में वेदोक्त पंचरात्र उक्त क्रम से दीक्षा लेना, व्रत रहना, मेरे प्रीति पाने के लिए ये सारे आवश्यक हैं।।37।।

मेरी प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करना, मेरे मंदिर का निर्माण करना, मंदिर के अगल-बगल में उद्यान, नजदीक में उपवन, सम्मुख में उत्सव मंडप, प्राकार, गर्भ ग्रहों का निर्माण करने में मेरे भक्त को श्रद्धा रखना चाहिए।।38।।

मेरे मन्दिरों में झाडू लगाना, गोबर से लेप करना, सुगंध जल छिड़कना, रंगोली बनाना, इस प्रकार कपट रहित सेवक के समान मेरी सेवा करना चाहिए।।39।।

अहंकार दम्भाचार को छोड़ना चाहिए। पुण्य कार्य को नही भूलना। भगवान के समर्पित दीप के प्रकाश में अपना काम नहीं करना चाहिए।।40।।

इस जगत में अपने को जो इष्ट लगता है, जिस वस्तु को अपना मानता है। उन सब को मुझे समर्पित करना। उससे अनंत फल मिलता है।।41।।

हे मंगलकर, सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गाय, क्षत्रिय, विष्णुभक्त, हृदयाकाश, प्राणवायु, जल, पृथ्वी, अपना शरीर और समस्त प्राणी ये सारे मेरी पूजा के लिए योग्य प्रतिमा होते है।।42।।

सूर्य में वेदमंत्र और गायत्री मंत्र से अग्नि में आहुति से, ब्राह्मण आदि विष्णु भक्तों को अतिथि सत्कार से गोष्ठ में गाय को घास और भूसा इत्यादि देने से मेरी आराधना करनी चाहिए।।43।।

विष्णु भक्त से मुझको दामाद के समान उपचार करना चाहिए। हृदयाकाश में ध्यान की निष्ठा से, मुख्यप्राण में वह जीवोत्तम है, इस भाव से जल में जल गन्ध पुष्पादियों से मेरी अर्चना करनी चाहिए।।44।।

वायु को जीवोत्तम मानकर सेवा करने से श्री हरि संतुष्ट होते हैं, और श्री हरि को सर्वोत्तम मानना वायु

को अत्यन्त प्रिय है। भारती, वायु, लक्ष्मी, श्री हरि इनको एक से एक श्रेष्ठ मानते हुये श्री हरि को सर्वोत्तम माने तो भगवान की पूर्ण कृपा होती है। इस प्रकार महात्म्य नाम के ग्रंथ में लिखा गया है। सारे प्राणियों को प्राण भूत रहने वाले मुख्य प्राण जीवोत्तम है इस प्रकार मोक्ष धर्म में कहा गया है।

ब्रह्माण्ड में रहने वाले सारे इन्द्रियाभिमानी देवताओं के लिए बाहर रहने वाले तत्वाभिमानी देवताओं के लिए मुख्य प्राण ही नियामक होते है। उनको इसी कारण व्यष्टि और समष्टि नाम से पुकारते है। इस प्रकार मोक्ष धर्म नाम के ग्रंथ में कहा गया है।

जमीन के ऊपर रंगोली बनाते हुये चक्राबद्धि मंडल का चित्र खींचते हुये इष्ट मंत्रों के साथ नमः शब्द जोड़ते हुये गंध आदि द्रव्यों से मेरी अर्चना करनी चाहिए। अपने शरीर में आत्मा नाम से रहने वाले मेरी आराधना अन्नादि भोग पदार्थों से करना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि हम जो खाते हैं, जो पीते हैं और जो पहनते हैं वह सारा हरि आराधना है यह मानकर करना चाहिए। मैं निर्दोष होकर सारे प्राणियों में एक प्रकार से रहता हूँ। इसके लिए मेरा नाम क्षेत्रज्ञ है। इस प्रकार मुझमें भक्ति करनी चाहिए।।45।।

भगवान की पूजा होने के बाद भोग में रखी हुई वस्तुओं से अपने पेट की पूजा करने में भी विधि है। आत्म संहिता नाम के ग्रंथ में उस विधि के बारे में इस प्रकार कहा गया है। आत्म में यानी अपने अन्दर भगवान हरि हैं। उनकी पूजा, भोजन पानी से करना है। आत्म नाम वाले भगवान के अन्दर रहने के कारण जीव को आत्मा कहते हैं।

सूर्य इत्यादि प्रतीकों में मेरे शंख, चक्र, गदा पद्मधारी चतुर्भुज वाले सौम्यरूप को एकाग्रचित्त से ध्यान करते हुये आराधना करनी चाहिए।।46।।

इस प्रकार मुझको यज्ञ कार्य और लोकोपकारी कार्यों से पूजा करने वाला श्रेष्ठ भक्त होता है। गुरु सेवा करते हुये मेरे ज्ञान को पाता है।।47।।

उद्धव यह भक्ति योग और ज्ञान योग इन दोनों को छोड़कर मुझको पाने के लिए और अच्छा उपाय प्रायेण बिल्कुल नहीं है। मैं योगी, सज्जन लोगों के लिए उत्तम आश्रय देने वाला हूँ।।48।।

हे उद्धव इसके बाद मैं तुमको अत्यन्त रहस्य विषय को बोलने वाला हूँ। वह अत्यन्त गौप्य है किन्तु तुम्हारे लिए मैं कहता हूँ। क्योंकि तुम उपदेश के योग्य हो। तुम अच्छे हृदय वाले हो आपत काल में सज्जनों का हित करने वाले हो।।49।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - बारह

।। ॐ नमो भगवंते वासुदेवाय ॐ ।।

भक्ति योग

श्री भगवान कहते हैं - जीवों के सकल दुःख को मेरी भक्ति निवारण करती है और भक्त लोग भक्ति से मुझको अपने वश में करते हैं। योग, ज्ञान, अहिंसादि धर्माचरण, वेदाध्ययन, तप, दानयज्ञ, सेवा, व्रत, यज्ञ, वेदपाठ, तीर्थ स्नान, शौचादि नियम, इन्द्रिय निग्रह, यम नियमादि ये सारे मुझको अपने वश में नहीं कर सकते।।1,2।।

सारे तप, दान यज्ञ से बढ़कर भक्ति ही भगवान को वश करने में मुख्य साधन है। भक्ति पक्व होने से अपरोक्ष होता है। अपरोक्ष से मुक्ति मिलती है। अपक्व भक्ति भी ऐहिक और पारत्रिक सुख का कारण बनती है। यह बात दर्शन नाम के ग्रंथ में कही गयी है।

हे पाप रहित उद्धव, युगों के अनुसार प्रह्लाद आदि दैत्य, विभीषण आदि राक्षस, मृग, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरायें, नाग, सिद्ध, गुह्यक, विद्याधर मानवों में वैश्य, शूद्र, स्त्री, अंत्यज सारे राजस, तामस शरीर वाले भी मुझमें भक्ति करते हुये मेरे लोक को पाते हैं।।3,4।।

वृत्रासुर, अवधूतमुनि, वृषपर्वदानव, बलिचक्रवर्ति, बाणासुर, मयदानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमंत, जाम्बवान, गजेन्द्र, जटायु, हजार पाँव वाला वेदव्यास जी का अनुग्रह पात्र कृमि, किरात, कुब्जा, गोकुल की गोपियाँ, यज्ञ-पत्नियाँ ये सारे वेद का अध्ययन नहीं किये है। उत्तम गुरु की सेवा नहीं किये हैं। व्रत, तप आदि नहीं किये हैं। किन्तु ये सारे मेरे भक्त हैं, केवल भक्ति से वे मुझको पाये हैं।।5,6,7।।

ये सारे वेदाध्ययन गुरुकुलवास, व्रत और तप को किये हैं। इस जन्म में नही किये तो पिछले जन्म में

कर चुके हैं। भगवान की प्राप्ति के लिए केवल वेदाध्ययन पर्याप्त नहीं है। भक्ति ही मुख्य साधना है। इस भाव को यहाँ विशेष रूप से प्रकट किया है। भक्ति के बिना अन्य सारा कर्म व्यर्थ होता है।

अध्ययन इत्यादि न करते हुये गोपियों ने केवल भक्ति से, गाय, वृक्ष, मृग, सर्प ऐसे अन्य जाति के अज्ञानी भक्त भक्ति करते हुये संसार से मुक्त होकर मुझको पाते हैं।।8।।

मोक्ष को ज्ञान मुख्य कारण है यह सत्य है। किन्तु भक्ति रहित ज्ञान से मोक्ष नहीं मिलता। ज्ञान होते हुये भी भक्ति न रहने वाले जरासंध इत्यादि लोग तमोभागी बने। गोपिकाओं को उस जन्म में शास्त्र ज्ञान नहीं होते हुये भी केवल भक्ति से योग्य अपरोक्ष पाकर मुक्ति पाये। कई लोग योग्य अपरोक्ष होते तक सामान्य अपरोक्ष से पुण्य लोकों में सुख का अनुभव किये। यह बात व्यक्त नाम के ग्रंथ में आती है।

केवल योग, ज्ञान, दान, तप, यज्ञ, प्रवचन, वेदाध्ययन और सन्यास से कितने भी प्रयत्न करने के बाद भी मुझको पा नहीं सकते।।9।।

वेद में बताये हुये भगवान के गुण के बारे में ज्ञान रहते हुये भी हरि में भक्ति नहीं रहे तो उन गुणों का अपलाप करते हुये द्वेष और असूया से वे लोग तम को ही पाते हैं। हरि के भक्तों में भक्ति प्रर्थमतः न होते हुये, एक बार हुये तो भी वह तारतम्य के लिए विरुद्ध रहे तो श्री हरि भक्ति के लिए विघ्न होता है। इससे उसको तम ही प्राप्त होता है। यह बात सत्संग नाम के ग्रंथ में आती है।

अक्रूर वृन्दावन को आया, बलराम के साथ मुझको मथुरा को ले चला। मुझमें अनुरक्त गोपियों ने मेरे ऊपर रखे हुये गाढ़ भक्ति से तीव्र तरह के वियोग दुःख को पाकर मुझको छोड़कर अन्य किसी विषय में सुख को नहीं पाये।।10।।

उन गोपियों के अत्यन्त प्रिय मेरे साथ वृन्दावन में जो रात कटे वे क्षण के समान थे। हे उद्धव, मेरे मथुरा को जाने के बाद उनको वही रात एक कल्प के समान दिखने लगी।।11।।

असम्प्रज्ञात समाधि में मुनि शरीर आदि बाह्य प्रपंच को जैसे भूल जाता है, समुद्र जल में प्रवेश करने के बाद नदी देवताएँ अपने-अपने जल नाम को जैसे नहीं समझते वैसे मुझसे भक्तिपरवश होकर मिली हुई गोपियाँ अपने शरीर को और इस परलोक को भूल गये थे।।12।।

मुझसे प्यार करने वाली गोपियाँ मुझको उपपति इस भावना से आराधना किये। हजारों गोपियाँ योग्यापरोक्ष से मेरे स्वरूप को न जानते हुये केवल भक्ति से परब्रह्म मुझको पा लिये।।13।।

गोपियाँ ने जन्मांतर में सामान्यापरोक्ष पा चुके थे। बाद में श्री कृष्ण में केवल भक्ति करते हुये स्वर्ग लोक में रहते हुये योग्यापरोक्ष को पाये। उसी से वे भगवान को पाये। यह बात सत्संग नाम के ग्रंथ में आता है।

इसी कारण हे उद्धव, तुम विधि-निषेधों के अनुसरण को, सकाम-निष्काम कर्म को, सुना हुआ आगे सुनने वाले सारे विषयों को, परित्याग न करते हुये भक्ति से मुझको समर्पण करो। सारे शरीरों का स्वामी मुझको सर्वेश मानते हुये भक्ति से शरण में आवो। मेरे आश्रय में रहने वाले को किसी से भय नहीं होता है।।14,15।।

जो हम सुने हैं और आगे सुनना है उन सबको श्री हरि को समर्पित करना है। इसका अर्थ इस प्रकार होता है। अभी तक हम जो सुने है, शास्त्र श्रवण किये हैं वह आपकी पूजा है। मानते हुये श्री हरि को समर्पण करना है। आगे करने वाले शास्त्र श्रवण को आपके प्यार को पाने के लिए करता हूँ। इस प्रकार संकल्प करना है। इस रीति से सारे कर्मों को श्री हरि में सम्-न्यास पूर्ण रीति से समर्पण जो करता है वही कर्म सन्यासी है। पत्थर के समान कर्म को छोड़कर बैठने वाला नहीं होता। यह कर्मविवेक नाम के ग्रंथ में आता है। यही बात निवृत्ति नामक ग्रंथ में और भगवद्गीता में उक्त है।

उद्धव पूछता है - योग नियामक ब्रह्मादि देवताओं के नियमन करने वाले भगवान श्री कृष्ण आप कहते हैं, भक्तों में वायु मुख्य हैं। अब आप विशेष रूप से गोपियों की भक्ति के बारे में कहें हैं। आपकी इन बातों को सुनकर मेरे मन में रहने वाले संशय की निवृत्ति पूर्ण नही होती। भक्तों में वायु श्रेष्ठ है या गोपिका श्रेष्ठ हैं ? इस संशय में मेरा मन मग्न है। आप इस संशय का परिहार कीजिए।।16।।

ग्यारहवाँ अध्याय के चौवालीसवाँ श्लोक में **वायौ मुख्य धिया** मुख्यप्राण भक्तों में श्रेष्ठ जीवोत्तम हैं। उसमें हरि की आराधना करना भगवान को अति प्रिय है। इस प्रकार श्री कृष्ण कहते हैं। बाद में **रामेण सार्धं** इस श्लोक में गोपियों की प्रशंसा आती है। इससे भक्ति में मुख्य प्राण श्रेष्ठ हैं अथवा गोपिका श्रेष्ठ हैं यह संशय उद्धव को आता है। उसका समाधान भगवान श्री कृष्ण इस प्रकार करते हैं। **गुहां प्रविष्टः** इस श्लोक के अनुसार गोपियों सहित सारे जीवों के हृदय गुहा में मुख्यप्राण रहते हुये ज्ञानभक्ति आदि की प्रेरणा करने से मुख्यप्राण ही श्रेष्ठ हैं। गोपियाँ जब मोक्ष पाती हैं तो मुख्यप्राण के बारे में अलग क्यों बताना है। इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण गोपियों की प्रशंसा यहाँ किये है।

भगवान कहते हैं - पिछले कल्प के वायु अब जीवोत्तम चतुर्मुख होकर जन्म लिये हैं। **वि**

विशेष रूप से **वर** श्रेष्ठ गरुड़, रुद्र, पार्वती, इनको **प्रसूति** जनक माने जाते हैं। **प्राण** सर्वप्रेरक श्री हरि और **घोष** वेदाभिमानी रमा देवीयों के साथ गरुड़ शेष इत्यादियों के हृदय गुहा को प्रवेश करते हुये उनके **मनोमय** मन प्रेरक सूक्ष्म रूप को पाता है। ह्रस्व आदि मात्रा उदात्त आदि स्वर अकार आदि वर्ण रूप वाले वेदों को अभिमानि होकर **स्थविष्ठ** स्थूल रूप को धारण किये हैं। गोपियाँ भी मुझको पायी हैं। इतनी महिमा वाला वायु मुझको पाते हैं। इसको विशेष क्यों बताना है ? इसके लिए मैं गोपियों की स्तुति किया हूँ।।17।।

आग अपने आश्रय देने वाले अरणी काष्ठ में रहता है। जोर से मंथन करने के बाद बहुत छोटे रूप में जन्म लेता है। जितना हविष डालते हैं, हवा के सहयोग से आकाश में और ज्यादा प्रकाशमान होता है, पाप दाहन करता है। उस रीति से उपक्रमादि को परशीलन करें तो वेद में मैं थोड़ा-थोड़ा अभिव्यक्त होता हूँ। गुरु उपदेश मिलने से ज्यादा अभिव्यक्त होता हूँ। पाप नाशक बनता हूँ। इस प्रकार वेदवाणी मेरी अभिव्यक्ति का स्थान है।।18।।

बोलना, चलना, हाथ से काम करना, स्त्री संग, मल विर्सजन करने वाले पायु, उपस्थ वाक् पाद हस्त, नाक, जीभ, आँख, चर्म, कान, इनसे होने वाले सूँघना, चबाना, देखना, स्पर्श करना, सुनना इत्यादि क्रियाएँ मन, बुद्धि, अहंकार और उनके कार्य, उनके अभिमानी देवताएँ महत् तत्व उसके अभिमानी वायु, सत्व, रज, तम नाम के त्रिगुण उनके अभिमानी श्री भू दुर्गा ये सब मिलकर होने वाला समस्त ब्रह्माण्ड मुझको वेद की तरह विशेष होकर अभिव्यक्ति का स्थान हैं।।19।।

सकल शब्दवाच्य **अब्जयोनि** नाम के चतुर्मुख ब्रह्म जीव रूप में हैं। रुद्र आदि सकल जीवों के प्राण के धारक बने हैं। ज्ञान, आनन्द, बल नाम के **त्रिवृत्** के मूल स्वरुप है। **अव्यक्त** सूक्ष्म रुप से सबके अन्दर रहता है। **एक एव** जीवोत्तम है। **जगताम् आद्यः** इस जगत के सृष्टिकर्ता है। **यद्वत् विश्लिष्ट शक्तिः** अपने से सृष्ट वस्तुओं में कही भी अपने सामर्थ्य की च्युति न हो इस प्रकार **बहूधेवभाति** विविध वस्तुओं में विविध रूप से देखते हैं। खेत में सोये हुए छोटे धान अंकुर आकर बड़े जैसे होता है वैसे सारे वस्तुओं में उनके अभिमानियों में नियामक होकर बहुरूपों से व्यक्त होता है।।20।।

डोरी से कपड़े के ऊपर किया हुआ कढ़ाई के समान यह सारा जगत चतुर्मुख ब्रह्मा में ओतप्रोत होकर फैल गया है। अनादि इस जगत वृक्ष के कर्म नाम के बीज से अंकुरित होकर

ऐहिक फल नाम के फूल और आमुष्मिक फल नाम के फल को उत्पन्न करता है।।21।।

इस जगत वृक्ष को ब्रह्मावाणी मिट्टी और पानी के समान मूल है। सैकड़ों कर्म वृक्ष के मूल हैं। अहंकार, बुद्धि, मन के अभिमानी रुद्र, इन्द्र, चंद्र इस वृक्ष के काण्ड बने हैं। पंचभूत इस वृक्ष की टहनियाँ हैं। वे भी शब्दादि पंच विषयों को उत्पन्न करती हैं। पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय और मन नाम के दस के ऊपर एक शाखाएँ हैं। प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग नाम के दो पक्षी यहाँ घोसला बना के रहते हैं। उन पक्षी को पुण्य पाप नाम के दो पंखें हैं। त्रिगुण नाम के तीन छिलका इस वृक्ष के हैं। स्वर्ग और मोक्ष इस वृक्ष के दो फल हैं। विष्णु नाम के खंम् = आकाश के आश्रय में यह वृक्ष रहता है।।22।।

इस वृक्ष से मिलने वाले स्वर्ग नाम के फल को गाँव वाले, गिद्ध के स्वरुप वाले, विषयलोलुप लोग खाते हैं। मोक्ष नाम के और एक फल को अरण्यवासी हंस के समान ज्ञानी भोगते हैं। इस प्रकार बहुरूप वाला इष्ट प्रद वाला यह जगत वृक्ष को भगवान की इच्छा से मूल प्रकृति से जन्म लिया हुआ है। इस प्रकार जो जानता है वही वेद के अर्थ को ठीक तरह से जानता है। इसी को वेद में कहा गया है। **यतः प्रसूता जगतः प्रसूतिः** ।।23।।

इस प्रकार विषयासक्ति को त्याग कर ज्ञान के अर्जन में जागरूक होकर गुरु की सेवा से मिलने वाला गाढ़ भक्ति से धारा वाले सात्विक अपरोक्ष नाम की कुल्हाड़ी को पाना है। उस कुल्हाड़ी से **जीवाशयम्** तामस जीव के बाह्य अन्तःकरण को काट कर अलग करने के बाद **अस्त्रं तेजः** उस कुल्हाड़ी को भी फेंक दो। उस अस्त्र से ही अभिव्यक्त होने वाले अपने स्वरूप ज्ञान से भगवान का दर्शन करते हुये सुख का भोग करो।।24।।

इस अध्याय के श्लोक सत्रह से चौबीस तक के इन श्लोको को तंत्र भागवत, शब्दनिर्णय, प्रातिस्विक, निवृत, सत्य संहिता, विश्व संहिता महात्म्य नाम के ग्रंथों में स्पष्ट विवरण मिलता है।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - तेरह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

सत्व रजस्तमो गुण और उनका कार्य

भगवान श्री कृष्ण कहते हैं - सत्व, रज, तम नाम के तीन गुण बाह्य जड़ अन्तःकरण से सम्बन्ध रखते है जीव के स्वरुप के साथ नही। इसी कारण सत्व गुण की वृद्धि करते हुये उसी से रज और तमो गुण का नाश करना चाहिए। सत्व से मिलने वाले ज्ञान से सात्विक अन्तःकरण का भी नाश करना चाहिए।।1।।

शुद्ध सत्व से मानव को मुझमें भक्ति उत्पन्न होती है। भक्ति से अपरोक्ष ज्ञान मिलता है। उस ज्ञान से सत्व का उद्रेक होता है। भक्ति से अपरोक्ष ज्ञान आता है। उससे पुनः और ज्यादा भक्ति उत्पन्न होती है।।2।।

ज्यादा भक्ति होने से रज, तम का नाश होता है। तब सत्व गुण की और वृद्धि होती है और रज तम नाश होने के कारण उनसे निर्माण होने वाला पाप भी जल्दी नाश होता है।।3।।

आगम, यज्ञ, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मंत्र, संस्कार, ये नौ सात्विक राजस, तामस इस प्रकार तीन-तीन भाग है। इनसे सत्व, रज, तम का वृद्धि होता है।

अन्तःकरण में त्रिगुण की वृद्धि के लिए इस प्रकार कारण होती है

क्र. विषय	सात्विक	राजस	तामस
1. आगम	वैष्णवागम	ब्रह्मागम	शैवागम
2. यज्ञ	निष्काम	काम्य	परहिंसक

3. देश	नदी तट	सरोवर तट	म्लेच्छदेश
4. काल	कर्मकाल	भोगकाल	निद्राकाल
5. कर्म	नित्य, नैमित्तिक	इतर देवता	परहिंसा
6. जन्म	ब्राह्मण	क्षत्रिय, वैश्य	शूद्र जन्म
7. ध्यान	हरि ध्यान	भोग ध्यान	पाप ध्यान
8. मंत्र	निष्काम	काम्य	परहिंसक
9. संस्कार	हरिगुरु सन्निधान	लौकिक सन्निधान	तामस सन्निधान

इस प्रकार विभाजन होकर वे ही रज, तम वृद्धि के कारण बनते हैं।।4।।

इन नौ मे से ज्ञानी जो उपदेश देते हैं वह सात्विक है, निन्दा जो करते हैं वह तामस है। उदासीन जो करते हैं वह राजस है। इस प्रकार समझना चाहिए।।5।।

मानव को सत्व गुण की वृद्धि के लिए सात्विक आगम इत्यादि का सेवन करना चाहिए। उससे भक्ति, भक्ति से ज्ञान, ज्ञान से भगवान के बारे में चिन्तन, उससे भगवान का स्मरण अहंकार ममकार और निषिद्ध का त्याग साध्य होते हैं।।6।।

बाँस के जंगल में परस्पर घर्षण होने से दावानल उत्पन्न होकर जंगल के जल जाने के बाद वह स्वयं बुझ जाती है। उसी प्रकार रजस तमो गुण के नाश करने वाला सत्व गुण से उत्पन्न होने वाला वेद, वेदज्ञान यानी सात्विक अन्तःकरण का वृत्ति ज्ञान अन्तःकरण को जलाकर स्वयं नष्ट होता है।।7।।

मुक्ति में मुक्त लोग अनंत काल तक वेद का अध्ययन करते ही रहते हैं। उनको जड़ अन्तःकरण नहीं रहता। किन्तु उनको अपने स्वरुपान्तःकरण से वेदज्ञान व्यक्त होता है। यह बात तात्विक नाम के ग्रंथ में आता है।। इससे यह अर्थ होता है कि **वेदः शाम्यति** इसका अर्थ **वेदज्ञान नाश होता है।** यानी जड़ अन्तःकरण नाश होने से उसमें रहने वाला वेदज्ञान नाश होता है, यह अर्थ होता है।

उद्धव पूछता है - भगवान श्री कृष्ण मानव लोग प्रायः विषय भोगों को अनर्थ कारक है ऐसे जानते हैं। फिर भी कुत्ता और गधा के समान उसी को भोगते रहते हैं। यह कैसे होता है ?।।8।।

श्री भगवान कहते हैं - विषयासक्त होकर श्री हरि को भूलकर रहने वाले मानव के हृदय में जब मैं स्वतंत्र कर्ता हूँ यह अन्यथा ज्ञान होता है तब इस भयकारक रजोगुण और तमोगुण की वृद्धि होती है। मन विकारवश होता है।।9।।

रजोगुण से भरा हुआ मन मे मैं ऐसा करूँगा, इस प्रकार करूँगा इस तरह के अनेक रीति की इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। शब्दादि विषयों के ध्यान से उस दुर्मति को दमन करने में असाध्य काम की उत्पत्ति होती है।।10।।

रजोगुण के आवेश से विशेष मोहित होकर मानव काम वश में इन्द्रियों का निग्रह न कर पाते हुये अन्त में दुःख देने वाला है यह समझते हुये भी पुनः पुनः कामित सुख को पाने के लिए विषय भोग का अनुभव करता रहता है।।11।।

ज्ञानी का रजोगुण, तमोगुण से मन विषय कामनाओं से विचलित होते हुये भी विषय भोग अन्त में दुःख का कारण बनता है इसको समझते हुये आलस्य न करते हुये मन से भोग लालसा को हटाते हुये अपने मन को मुझमें स्थापित करता है। वह विषयों को आसक्ति से सेवन नहीं करता। जीने के लिए जितना आवश्यक है उतना ही ग्रहण करता है।।12।।

इसी कारण मानव को जागृत होकर स्थिर आसन में बैठकर प्राणायाम करते हुये अपने मन को मुझमें स्थिर करना है। प्रारम्भ में मेरा पाद आदि एक-एक अवयव को मन में लाते हुये आलस्य न करते हुये निदान से मेरे समग्र रूप का ध्यान मन में करना चाहिए।।13।।

मन को अन्य विषयों से बाहर खींचते हुये मुझमें स्थिर रूप से कैसे रखना है इस विषय को मेरे शिष्य सनकादि मुनि को बोलते हुये इस मोक्षोपाय का उपदेश किये हैं।।14।।

हंस नामक भगवान का उपदेश

उद्धव पूछता है - हे केशव आप कब किस रूप से आपने शिष्य सनकादि मुनियों को मोक्ष का उपदेश बताये। मैं उस रूप को जानना चाहता हूँ।।15।।

भगवान श्री कृष्ण कहते हैं - चतुर्मुख ब्रह्मा के मानस पुत्र सनकादियों ने एक बार अपने पिता को अत्यन्त सूक्ष्म एवं न चूक जाने वाले योग साधना के बारे में पूछते हैं।।16।।

सनकादि मुनि, चतुर्मुख ब्रह्माजी से कहते हैं - हे प्रभु, मन विषयों में लगा रहता है। विषय

पदार्थ संस्कार रूप से मन में रहते हैं। ऐसे होते हुये इनको पार कर मोक्ष पाने की इच्छा करने वाले को विषय और मन को परस्पर दूर रखने के लिए क्या करना चाहिए।।17।।

श्री भगवान कहते हैं - सृष्टिकर्ता देवोत्तम चतुर्मुख ब्रह्माजी सनकादि के इन प्रश्नों को सुनकर परिहार के बारे में मन में विचार करते हुये कर्मधीः = कर्म नामक भगवान उसको कहने का संकल्प किए हैं। इसके लिए मुझे अब उसको नहीं कहना है। **नाभ्यपद्यत** नही समझा है इस प्रकार दिखाते हुये मौन रहे।।18।।

बाद में प्रश्न के परिहार के लिए सनकमुनि मेरा ध्यान किये। मैं हंस रूप धारण कर उनके पास गया।।।19।।

मन में विषयाकर्षण न हो इसका उपाय बताइए यह सनकादि का प्रश्न है। निष्काम कर्म करना उपाय है यह इसका उत्तर है। इसको भगवान श्री हरि स्वयं उपदेश देने का संकल्प किये हैं। इसको जानकर ब्रह्मा जी उत्तर नही दिये। दोपहर में सूर्य का प्रकाश रहता है। उसमें तमस नहीं रहता, उसी प्रकार सर्वज्ञ ब्रह्मा जी में अज्ञान कहाँ रहता है। यह बात भाव विवेक नाम के ग्रंथ में आती है।

वह मेरे पाद को नमस्कार किया तब सनकादि मुनि मेरे पास आये। ब्रह्मा जी के पास आए हुए आप कौन हैं ? इस प्रकार मुझको पूछे।।20।।

तत्वजिज्ञासु सनकादि के प्रश्न का मैंने क्या उत्तर दिया उसको बोलता हूँ, सुनो।।21।।

हे मुनि, ब्रह्मा जी से भी पूज्य, सर्वशक्त एक परमात्व तत्व है, इस प्रकार आप जानते हैं तो वह तत्व मैं ही हूँ। यह आपके समझ में आया होगा। यदि आप समझ गये हों तो और क्यों प्रश्न करते हैं। वह परमात्मा बहुत होते हैं, इस प्रकार कोई नहीं मानता। भगवान अद्वितीय हैं, इसी कारण आप कौन सा भगवान हैं इस प्रकार का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।।22।।

देव, मनुष्य, पितृ, गन्धर्व, असुर इन पाँच प्रकार के जीवों में मैं भी एक नहीं हो सकता। वे सारे ब्रह्म से नीचे हैं। वे ब्रह्मा जी की पूजा करते हैं। उनकी पूजा ब्रह्मा जी नहीं करते। इस विषय में वे सारे समान हैं। इस प्रकार ब्रह्मा जी से भी पूजा किये जाने वाले एक ही व्यक्ति हैं, वे अनेक नहीं। वह मैं हूँ इसके बाद आप कौन हैं, यह प्रश्न ही व्यर्थ होता है।।23।।

मन से, बातों से आँख से अथवा अन्य किसी इन्द्रियों से स्वभाविक रीति से मैं दृष्टि गोचर

नहीं होता। ऐसी वस्तु अलग है, इसको ठीक तरह से जान लो इसमें संशय होना नहीं चाहिए। आप जो समझते हैं, उन वस्तु में मैं नहीं हूँ। उसमें से मैं कौन हूँ, इस प्रकार प्रश्न नहीं करना चाहिए। अब मन के सम्बन्ध के बारे में आप जो पूछना चाहते हैं, उसके बारे में पूछिये।।24।।

हे मुनिगण, विषयों में मन, मन में विषय ये परस्पर मिल जाते हैं यह सत्य है। किन्तु जो मुझमें मन रखता है उसके यह विषय की अभिलाषा तत्वज्ञान से जल जाती है। इसको ठीक तरह से समझो। उसके बाद उनका मन और विषय एक साथ नहीं होते।।25।।

मदात्मा इसका अर्थ मेरा ही ध्यान करने वाला। उसका देह जल गया इस प्रकार अर्थ होता है।

निरन्तर मन से विषयों का सेवन करने से मन विषयों से मिल जाता है, विषयों में आसक्त हो जाता है। विषय भी मन में रम जाता है। संस्कार रूप से मन में स्थिर होकर रहने लगते हैं। इसके लिए ये दोनों मेरे अधीन हैं, मेरे स्वरुप में आश्रय करके रहते हैं। इस प्रकार समझते हुये उनका समर्पण मुझको करना है।।26।।

जागृति स्वप्न सुषुप्तियों को क्रम प्रकार सत्व, रज, तमो गुणों के द्वारा बुद्धि नाम की प्रकृति इनका निर्माण करती है। उनका अनुभव करने वाला जीव उनसे अलग है यह निश्चित है। यह सिद्ध होता है कि वे जीव के लिए स्वाभाविक नहीं हैं। जीव उनका त्याग कर सकता है।।27।।

इस प्रकार अवस्थात्रय रूप बंध, जीव के लिए स्वाभाविक नहीं है। मन में सत्वादि गुण से ये होते हैं। इसी कारण गुणत्रयातीत होकर गुणत्रयों के प्रेरक मुझको बंध मुक्ति के लिए जीव को मेरा आश्रय लेना चाहिए। मेरी उपासना करते रहना चाहिए। ऐसे करते रहने वाले जीव के मन में उत्पन्न होने वाली अवस्था त्रय रूप बंधक को मुझे समर्पित करना चाहिए। छब्बीसवाँ श्लोक में आया हुआ **मद्रूप उभयं त्यजेत्** इसके अनुसार विषय और मन दोनों को वे मेरे स्वरुप में आश्रय पाकर रहने से उनको मुझमें ही समर्पित करना चाहिए। इस प्रकार मैंने जो कहा है वह उभय त्याग ही बंध त्याग है और कुछ नहीं है।।28।।

जीव अहंकार से इस संसार बंधन को अपनाया है। यह दुःख रूप है, मोक्ष का विरोधी है, इस प्रकार जानते हुये उसमें वैराग्य पाना है। तुर्यरूपी मेरा आश्रय लेते हुये मेरी ही उपासना करते हुये बंधक बनने वाले पत्नी, पुत्र इत्यादि विषयों को मुझमें समर्पण करना चाहिए।।29।।

जब तक मानव को जीव भगवान के विषय में अन्यथा ज्ञान युक्ति आदि विचारों से दूर नहीं

होता है तब तक वह जागृति होते हुये भी नींद करने वाले अज्ञानी के समान है। स्वप्न और जागृत में रहने वाले वस्तु के ज्ञान के समान वह भ्रम दुःख कारक है।।30।।

नानार्थधीः इसका अर्थ अन्यथा ज्ञान वाले। यानि एक को दो और दो को एक मानने वाला। विषय जैसा रहता है उसके विरुद्ध ग्रहण करना अन्यथा ज्ञान होता है। यह ब्रह्मतर्क ग्रंथ का विषय है।

भगवान से अलग रहने वाले जीव जड़ सारे असत्य यानी नाशवान होने के कारण वह अशक्त होकर रहते हुये भी न रहता है, इस प्रकार है। उनसे और भगवान से अभेद किस प्रमाण से सिद्ध होता है? अभेद साधना के लिए आगम के युक्तियों को बतायें तो वह जीव का स्वप्न पदार्थों के लिए, जागृति का अभेद साधना को बताने जैसे असंगत होता है।।31।।

किंकृता अभिदा = जीव परमात्मा का भेद किस प्रमाण से सिद्ध होता है? इस श्लोक का अभिप्राय शाश्वत संहिता नाम के ग्रंथ में स्पष्ट कहा गया है।

जागृति में जीव के दाहिने आँख में रहने वाले विश्व नाम के भगवान सारे इन्द्रियों में रहने वाले अनित्य नाना पदार्थों को देखते रहते हैं, जीव को दिखाते रहते हैं। स्वप्न मे कण्ठ के स्थान में रहने वाले **तैजस** नामक भगवान मन में रहते हुये जागृति के समान स्वप्न के वासनामय पदार्थों को देखते रहते हैं और जीव को दिखाते रहते हैं, बाद में सुषुप्ति में हृदय में रहने वाले प्राज्ञ नामक भगवान इन्द्रियों को विषयों से अलग करते हुये जीव के स्वरूपानन्द को देखते रहते हैं। जीव के अनुभव को लाते रहते हैं। इस प्रकार एक ही हरि **विश्व, तैजस और प्राज्ञ** इस प्रकार तीन रूप धारण करते हुये त्रिगुणात्मक कार्य जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति इनको स्वतंत्र रुप से देखते हैं और जीव के अनुभव को दिखाते हैं। इस प्रकार श्रुति स्मृति कहते आये हैं।।32।।

दाहिने आँखों में रहते हुये जाग्रत समय के विषयों को, कण्ठ में रहते हुये स्वप्न के पदार्थों को, हृदय में रहते हुये जीव के स्वरुपानंद को भगवान स्वयं लीला से, स्वतंत्र रूप से भोगते हुये अस्वतंत्र जीव को भोग करने देते हैं। इस प्रकार भगवान स्वयं अकेले अवस्थात्रय रहित पुरुषोत्तम भगवान नारायण हैं। यह तत्व नाम के ग्रंथ में आता है।

हे सज्जन लोग, आप इस प्रकार जीव और ईश्वर अलग-अलग है, ईश्वर के सारे रूप समान हैं। इस प्रकार विचार करते हुये ठीक तरह से समझकर जीव को सत्वादि गुणों से होने वाला मनोविकार इत्यादि अवस्थात्रय मेरी इच्छा से मेरे आश्रय में मेरे द्वारा ही किया हुआ होता है,

ऐसे निश्चय कर लीजिए। युक्ति और सदागमों से मिलने वाली इस निश्चित ज्ञान नाम की तीक्ष्ण धार वाली खड्ग से अपने मन में रहने वाले सारे संशय जन्य मनोव्यथा को काट कर मेरी शरण में आयें।।33।।

मोक्ष चाहने वाले जागृति इत्यादि स्थान भेद से वहाँ नियामक होकर रहने वाले भगवान के रूपों में भेद जो दिखता है वह उसके मन में उत्पन्न होने वाली भ्रांति है इस प्रकार समझ लेना चाहिए। जलते हुये मशाल को चक्र के समान फिराते रहे तो देखने वाले को आग को चक्र की भ्रांति उत्पन्न होती है। यह भी वैसा ही है, अच्छे गुरु के उपदेश से ठीक तरह से निरीक्षण करे तो यह भ्रांति नष्ट होती है। भ्रांति कभी भी स्थिर नहीं होती। वह बहुत चंचल है। ज्ञान स्वरूपी केवल हरि ही अनेक अवतारों में अनेक तरह से दिखते हैं। स्वप्न में वासनामय वस्तु एक बार हाथी दूसरे बार वृक्ष और एक बार मानव होकर जैसे दिखती है। त्रिगुण से होने वाले पाप से यह भ्रम उत्पन्न होती है।।34।।

इस श्लोक में, इस जगत में दिखने वाला भेद स्वप्न के समान माया अथवा भ्रम के समान है ऐसे कहा गया है, ऐसा लगता है। किन्तु अवस्थात्रयों के नियामक भगवान के विश्वादि रूपों में भेद देखना भ्रम है। यह श्लोक का अभिप्राय है क्योंकि विश्वादि रूपों में एक्य चिन्तन करना मोक्ष साधन है। इस प्रकार प्रकाश संहिता में कहा गया है। सकल भेद और मिथ्यात्व चिन्तन ये मोक्ष का साधन बनते हैं। इस प्रकार कहीं भी नहीं बताया गया है। ब्रह्मतर्क में सम्यग्ज्ञान नाम के ग्रंथ में भी इस श्लोक का विवरण आता है।

भगवान के रूपों में भेद का भ्रम पाप के कारण उत्पन्न होता है। उसका निवारण करते हुये विषयासक्ति को त्याग कर निषिद्धाचरण को छोड़ते हुये सदाकाल हरिध्यान में रत होना चाहिए। ऐसा करने से स्वरूपानंद अनुभव रूप श्री हरि का साक्षात्कार को ज्ञानी पाता है। बाद में अपने स्वरूपानंद भगवान को भी पा लेता है। कई अज्ञ जनों को भगवान के रूपों में भेद भ्रम आता है। इससे ज्ञानी लोग वंचित नहीं होते। वह सही नही है यह समझकर उस विचार को त्याग देते हैं क्योंकि भगवान के रूपों में अभेद को ठीक तरह से जान लेना मोक्ष का साधन है। मिश्रज्ञान संसार का कारण बनता है। विपरीत ज्ञान से अंधतम होता है। श्लोक में रहने वाला **अनिपातात्** इस शब्द से यह अर्थ होता है। मोक्ष को पाने से आरम्भ करते हुये अंध तम में गिरने के फल का स्मरण ज्ञानी को रहता है।।35।।

मद्यपान करके मत्त हुआ आदमी अपने कपड़े गिर गये अथवा शरीर में रहे, अस्त-व्यस्त रहे

उसके बारे में लक्ष्य नहीं रहता है। इसी प्रकार स्वतंत्र भगवान के दर्शन किया हुआ जीवन मुक्त अपने स्वरूप देह को जान लेता है और इस नश्वर बाह्य, स्थूल शरीर के रहने, न रहने के बारे में उसका लक्ष्य नहीं रहता।।36।।

अपरोक्ष ज्ञानी का देह अदृष्ट के अधीन होकर प्रयत्न न करते हुये इन्द्रियों की क्रियाएँ होती रहती है। अपने जीवन के कारण प्रारब्ध पुण्य पाप रहते तक वह शरीर रहता है। प्रारब्ध खत्म होने के बाद वह शरीर गिर जाता है। असंप्रज्ञात समाधि अवस्था को पाया हुआ वह अपरोक्ष ज्ञानी अपने स्थूल देह के कार्य कारित्व के बारे में विशेष लक्ष्य नहीं देता है। स्वप्न के समय में देखा हुआ प्रसंग को जागृत होने के बाद कोई उसका आदर नहीं करता।।37।।

श्लोक में **पुनर्नभजते** इसका अर्थ ज्ञानी अपरोक्ष पाने के बाद पहले के जैसे अपने शरीर का आदर नहीं करता है इस प्रकार होता हैं। इसका अर्थ शरीर को नहीं पाता है ऐसा नहीं करना। शब्द निर्णय नाम के ग्रंथ में भजन शब्द का अर्थ आदर करना इस प्रकार किया गया है।

हे मुनि सांख्य और योग शास्त्र के रहस्य को आपको मैंने बताया है। मैं भगवान विष्णु हूँ, आपको धर्मोपदेश देने की इच्छा से हंस रूप का धारण कर आया हूँ यह समझ लीजिए।।38।।

हे ब्राह्मणोत्तम, योग, सांख्य, सत्य वचन, वेद, ब्रह्मवर्चस्व अणिमादि, ऐश्वर्य सिद्धि, कीर्ति, इन्द्रिय निग्रह इनको मैं ही मुख्य आश्रय हूँ।। 39।।

गुणत्रय रहित, किसी की अपेक्षा न करने वाले, अनिमित्त उपकार करने वाले, निरवधिक गुणपूर्ण रहने वाले मेरे गुणों को अस्वतंत्र ब्रह्मादि देवता भी भजन करते हैं। उनकी योग्यता के अनुसार फल देने का स्वभाव मेरा है। पदार्थों के सम्बन्ध के पाते रहते हुये भी वायु के समान निर्लिप्त रहना मेरा स्वभाव है।।40।।

इस प्रकार सनकादि मुनियों ने अपने संशयों का परिहार करते हुये परम भक्ति से हंस नामक भगवान की पूजा और स्तोत्र किये।।41।।

वे महामुनि स्तुति और पूजा कर रहे थे। इतने में चतुर्मुख आदि देवतागणों के देखते-देखते मैं वैकुण्ठ को चला गया।।42।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - चौदह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

उद्धव कहते हैं - हे भगवान श्री कृष्ण वेद के बारे में कहने वालो में से कई लोग यज्ञ, दान, तप इनको अलग-अलग श्रेय साधन बताते हुये अलग-अलग कहते हैं। उनमे किसी को करो ऐसे बोलने वाले हैं। कई लोग सबको करना है ऐसे बोलते हैं। कई एक को विकल्प माने तो और कई एक उसी को प्रधान कहते हुये अन्य विषय को सहकारी बोलते हैं।।1।।

प्रभु, आप अन्य साधन की अपेक्षा न करते हुये केवल भक्ति योग के बारे में उपदेश देते हैं। भक्ति से सर्वसंग परित्याग करे तो आप में मन स्थिर होता है इस प्रकार कहते हैं।।2।।

श्री भगवान कहते हैं - वेद नाम की मेरी वाणी काल के कारण प्रलयकाल में इस जगत में प्रवृत्ति शून्य हो गयी। बाद में आदि सृष्टि में वेद में कही गयी अपनी आराधना नाम के धर्म को मैंने चतुर्मुख ब्रह्मा को उपदेश दिया।।3।।

चतुर्मुख ब्रह्मा अपने ज्येष्ठ पुत्र स्वायंभुव मनु को उपदेश दिये। मनु से भृगु, मरीचि, अत्रि, अंगीरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु नाम के सात प्रजापतियों को और अनेक महर्षियों को उपदेश दिये।।4।।

आदि सृष्टि में स्वायंभुव मुनु प्रप्रथम जन्म लिये। स्कन्द पुराण में यह स्पष्ट किया गया है। रुद्र इन्द्र और सनत कुमार को छोड़कर सारे ब्रह्म पुत्रों से पहले मनु का जन्म होता है। बाद में दूसरे बार जन्म लेते समय यह क्रम व्यत्यस्त होता है। यह भी स्कन्द पुराण में आता है। आदि सृष्टि में पहले जो जन्म लेते हैं, वे बाद में जन्म लिए हुये जीवों से श्रेष्ठ होते है। अनादि अनंत काल में यह नियम रहता ही है। इसी प्रकार मुक्ति में भी यह तारतम्य रहता है। यह बात निबंध नाम के ग्रंथ में आती है।

उनके संतति देव, दानव, गुह्यक, मानव, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, अजानज, किन्नर, नाग, राक्षस, किमपुरुष इत्यादि ब्रह्मोपदेश पाये। किन्तु उनके स्वभाव के अनुसार सात्विक राजस तामस इस रीति से अनेक तरह के जीव व्यक्त हुये।।5,6।।

उनके स्वभाव के अनुसार उनकी बुद्धि भी अनेक तरह की होने के कारण वेदवाक्य उनके

ज्ञान के अनुसार अनेक तरह से अर्थ होने लगे।।7।।

लोगों के स्वभाव वैचित्र्य से बुद्धि अलग-अलग होने के कारण कई सात्विक देवताएँ परम्परा से आये हुए शुद्ध तत्व को समझ सके। अन्य राजस, तामस जीव आग्रह से अलग-अलग मतों का आदर करने लगे।।8।।

हे पुरुष श्रेष्ठ उद्धव, मेरी इच्छा के अनुसार मेरी पत्नी दुर्गा उनको बुद्धि भेद करते हुये उनमें मोह उत्पन्न करती हैं। इसी कारण वे अपने पूर्व कर्मानुसार अपने अभिरुचि के अनुसार श्रेय साधनों को भी अनेक तरह से बताते आये।।9।।

कई लोग धर्म, कीर्ति-कामना, सत्य, दम, क्षमा के बारे में कहे तो अन्य कई द्रव्य, ऐश्वर्य त्याग भोगों के बारे में, अन्य कई यज्ञ, तप, दान, व्रत, नियम, इनके बारे में बताते हुये वे ही मोक्ष का श्रेय साधन हैं। इस प्रकार प्रतिपादन करते हैं।।10।।

इन राजस, तामस लोगों को कर्म से मिलने वाले लोक, उत्पत्ति और नाश वाले होते हैं। वे विष्णु भक्ति नहीं किये तो प्रथमतः कर्म के फल स्वरूप आनन्द भोगने के बाद ज्यादा दुःख का अनुभव करते हुये अंत में महादुःख को अनुभव करने के लिए अंधं तमस में गिर जाते हैं।।11।।

शुद्ध भक्ति न रहने वाले यागादि कर्म करने से थोड़े समय के लिए स्वर्ग में रहते हुये क्षुद्र विषय सुख को भोगते हैं किन्तु पुण्य समाप्त होने के बाद भूमि में आकर दुष्ट राजा बन कर भगवान में और भगवद् भक्तों में द्वेष करते हुये तम में गिर जाते हैं। यह बात मान्य संहिता में है।

सद्गुण पूर्ण मुझमें मन रखते हुये सारी आशाओं को त्याग दिए हुए मेरे भक्त को मुझसे मिलने वाला मोक्ष सुख विषयासक्त को कैसे मिलेगा?।12।।

जीने के लिए जितना आवश्यक है उतना ही धन को रखने वाले इन्द्रिय निग्रह से भगवान में भक्ति करने वाले, लोगों में उनकी योग्यतानुसार रहने वाले ऐसे सात्विक भक्त को केवल मोक्ष में ही नही इस संसार में सारे देश में, सारी दिशाओं में सुख ही मिलता है।।13।।

ब्रह्म पद, महेन्द्र लोक अथवा सार्वभौम पद को अथवा पाताल के स्वामित्व को अथवा योग सिद्धि को भी न चाहने वाला मेरा भक्त मुझको छोड़कर और कुछ नहीं चाहता।।14।।

तुम्हारे समान प्रीति पात्र मुझे ब्रह्म, रुद्र, बलराम, लक्ष्मी भी नहीं हैं। मैं अपने से भी ज्यादा तुम्हारे से प्यार करता हूँ।।15।।

एक भिक्षुक भूख से आया तो उसको पत्नी पुत्रों से पहले अन्न देना स्वाभाविक है। किन्तु आंतरिक प्रीति

पत्नी, बच्चों के ऊपर होती ही है। ऐसे ही भगवान की प्रीति रमा, ब्रह्मादि एकांत भक्तों के ऊपर सदा के लिए स्वाभाविक रीति से रहती है। किन्तु कई प्रसंगों में अम्बरीश के समान भक्तों में भगवान ज्यादा कृपा करते हुये रमा, ब्रह्मादि से ज्यादा प्यार दिखाते हैं। इसी प्रकार श्री कृष्ण यहाँ उद्धव को सबसे प्रिय ऐसे कहते हैं। इसका अर्थ यह प्रीति झूठ नहीं है। किन्तु रमा, ब्रह्मादि के समान निरन्तर प्यार नहीं है। यह बात प्रिय विवेक नाम के ग्रंथ में आती है।

यादवों में प्रद्युम्न और बलराम श्री कृष्ण के ज्यादा प्रीति पात्र थे। अन्य यादवों से भगवान उद्धव से ज्यादा प्यार करते थे। प्रद्युम्न और बलराम से भी चतुर्मुख ब्रह्मा से भी बढ़कर रमा देवी में भगवान को ज्यादा प्यार है। यह बात यादव आध्यात्म नाम के ग्रंथ में आया है।

अन्य अपेक्षा न करते हुये मननशील, भक्ति सम्पन्न, प्राणियों में वैर न रखने वाला, सर्वत्र व्याप्त भगवान को निर्दोष मानने वाला, ऐसा मेरा भक्त आगे-आगे चले तो उसकी रक्षा करते हुये अपनी पाद धूलि से उनको पवित्र करने के लिए मैं पीछे-पीछे चलता हूँ।।16।।

भगवान भक्त के पीछे-पीछे चलते हैं इसका उ-श्य भगवान की पादधूलि भक्त के सिर पर गिरे उससे वह पवित्र हो जाये इसके लिए। भगवान ही आगे चलें तो उनकी पादधूलि के ऊपर भक्त को पाँव रखते आना पड़ता है। यह बात संख्यानन नाम के ग्रंथ में आती है। भगवान भक्त के पीछे आने से भक्त की रक्षा होती है।

मेरी प्रीति के लिए योग्य न हो ऐसा धन अपने पास न रखते हुये, मुझमें ही आसक्त मन वाले, विषय की अभिलाषा से मन में क्षोभ उत्पन्न न होने वाले, आसक्ति से विषयों का सेवन न करने वाले, मेरे भक्त को मुझसे उसके लिए विषय निरपेक्ष स्वरूपानंदाभिव्यक्ति मिलती है। इसका ज्ञान मेरे भक्त को होता है।।17।।

इन्द्रिय-जय न पाने वाला, विषय के आकर्षण से पीड़ित होकर मेरा भक्त प्रारब्ध वश किसी क्षण विषयों का भोग गलती से किया तो भी मेरा श्रेष्ठ भक्त होने से उसका अधःपतन नही होता है।।18।।

हे उद्धव, ठीक तरह से जलने वाली आग लकड़ी को पूरा जलाकर राख बना देती है। ऐसे ही मुझमें की गयी भक्ति पापों को जलाकर राख कर देती है।।19।।

हे उद्धव, मेरे प्यार को पाने के लिए अत्यन्त समर्थ साधन केवल भक्ति है। सांख्य, दान, धर्म, वेद का अध्ययन, कृच्छ्र चांद्रायण-व्रत, तप इन सबसे मेरा प्यार मिलने वाला नहीं है।।20।।

सज्जनों के प्रिय भगवान मैं केवल भक्ति से ही मिलने वाला हूँ, श्रद्धा से मिलने वाला हूँ। मुझमें निश्चल भक्ति करने वाला भक्त कभी विषय कामना करे तो भी जननादि रूप संसार से

मुक्त हो जाता है। वह केवल मेरी भक्ति के कारण है। भक्ति उत्पन्न होते ही, भक्त की इच्छाओं को पूर्ण करते हुये उसको पवित्र करती है।।21।।

मुझमें भक्ति न करने वाले को सत्य, दया, धर्म, तप और विद्या ये सारे उसको पूर्ण रूप से पवित्र नही कर सकते।।22।।

हरि कथा श्रवण करते समय यदि भक्ति से रोमांचन नहीं हुआ, मन द्रवित नहीं हुआ, आनन्द के अश्रु न आये तो भगवंत कैसे संतुष्ट होते हैं? ।।23।।

भगवान के स्मरण मात्र से जिसका गला भर जाता है, जिसका मन द्रवित होता है, ऐसा भक्त मेरा प्रिय भक्त है। जो जोर से गाता है, चिल्लाता है, रोता है, हँसता है, लज्जा छोड़कर नाचता है ऐसा भक्त स्वयं के साथ अन्यों को भी पावन करता है।।24।।

मन भगवान के प्रति भागने लगता है, भगवान में स्थिर रहता है, प्रसन्न होता है। ये भक्ति के मुख्य लक्षण हैं। इसमें स्थिरता मुख्य लक्षण है। किन्तु आनन्द वाष्प रोमांचन भक्ति के जैसे दम्भाचार में भी दिखते हैं। गुरु में भक्ति किये तो उसके बल से गुरु के अनुग्रह से धैर्य से भक्त अपनी उन्नति पाता है। रोगादियों के उपद्रवों से, नास्तिकवाद से अथवा राजाओं के पीड़न से विचलित न होकर भक्त को भगवान में स्थिर भक्ति पाना है। तब भक्त भगवान का प्रिय बनता है। यह बात भक्ति विवेक नाम के ग्रंथ में कही गयी है।

आग में तपा हुआ सोना अपने कश्मल को छोड़कर स्वाभाविक शुद्ध रूप को जैसे पाता है वैसे सज्जन भक्त अविद्या, काम और कर्म से कलुषित हुआ अपने अन्तःकरण को मेरी भक्ति नाम के साधन से स्वच्छ करते हुये मंगलमूर्ति मुझको पाता है।।25।।

मेरी पुण्य कथा का श्रवण करने वाले, संकीर्तन करने वाले, भक्त का अन्तःकरण जितना शुद्ध रहता है उतना सूक्ष्म तत्व जानते हुये वह भगवान का भक्त होता है। अंजन लगाने से आँख जैसे सूक्ष्म विषय को देख सकती है ऐसे भक्त भगवान को देखते हैं।।26।।

विषयों की आलोचना करने वाला मन विषयों में डूबा रहता है। किन्तु मेरा स्मरण करने वाले का मन मुझमें मग्न होता है।।27।।

इसी कारण दिवा स्वप्न के समान रहने वाले दुष्ट विषयों का विचार न करते हुये हे उद्धव, मुझमें अपने मन को स्थिर रखना चाहिए। तुम्हारा मन मेरी भक्ति से भर जाये।।28।।

उच्च मनोबल रहने वाले भक्त को मिथ्याज्ञानी, परस्त्री और परस्त्री सहवास करने वाले पुरुषों का सहवास त्यागते हुये मंगलकर एकान्त स्थान में बैठकर आलस्य को छोड़कर मेरा ध्यान करना चाहिए।।29।।

मिथ्याज्ञानी, स्त्रीलंपट और परस्त्री संग करने वाले के साथ सहवास करना अत्यन्त दुःख-दायक है, वह तमो दायक भी है। उनके साथ रहना अन्य पंचमहापात करने वाले के संग से भी बढ़कर महापाप है।।30।।

पाप आठ तरह के होते है - (1) क्षुद्र पाप (2) उपपातक (3) पातक (4) महापातक (5) कुमहापातक (6) कुमहतरपातक (7) कुमहत्तर महापातक (8) कुमहत्तर महत्तम महापातक, इस प्रकार आठ पाप होते हैं। चींटी इत्यादियों का मारना क्षुद्र पाप है। शरीर में अस्थि रहने वाले साँप नेवला इत्यादि को मारना फल और सब्जी का चोरीं करना, पर स्त्री का संग करना उपपातक है। शूद्रों की हत्या करना पातक है। ब्रह्म हत्या करना महापातक हैं। मंदिर मठ का पैसा चोरी करना कुमहापातक है। सज्जनों का तिरस्कार करना कुमहत्तरपातक है। देवताओं का तिरस्कार करना कुमहत्तर महापातक है। श्री हरि का तिरस्कार करना शुमहतर महत्त्म महापातक है। इन पापों को करने वाले उनके सम्बन्धी और उनके सम्पर्क में रहने वाले के सम्पर्क में रहने से नरक प्राप्त होता है।

स्त्री संग और उनका संग करने वालों के संग से तम प्राप्त होता है। हरि द्वेष और हरि द्वेषियों का सहवास तम का कारण है। इस प्रकार भागवत कहती है। भागवत में कहा हुआ स्त्रीसंग, परस्त्री संग माने तो धर्म तत्त्व ग्रंथ के अनुसार उसका विवरण इस प्रकार है।

परस्त्री की कामना करना क्षुद्र पातक है। उसके लिए एक हजार वर्ष नरक वास करना पड़ता है। बाद में भूमि में पशु होकर जन्म लेना पड़ता है। परस्त्री भोग उपपातक है, उसके लिए एक युग पर्यन्त नरक फल है। वर्ण बाह्य स्त्री संग पातक होता है। उसके लिए चार युग पर्यन्त नरक फल है। गुरु और बड़े लोगों के पत्नी का संग महापातक होता है। उसके लिए ब्रह्मा जी के एक दिन कल्प पर्यन्त नरक भोगना पड़ता है। उत्तम जीवों के पत्नियों का संग कुत्तहापातक है, उसके लिए ब्रह्मप्रलय पर्यन्त नरक फल है। ऋषि गन्धर्व पत्नी की कामना मात्र से कुमहत्तर महापातक होता है, उसके लिए तमस में ऊपरी भाग में रहना पड़ता है। देव पत्नियों की कामना मात्र से कुमहत्तर महत्तम महापातक होता है, उसके लिए तम के मध्य भाग में रहना पड़ता है। विष्णु पत्नी संग कामना मात्र से कुमहत्तम महापातक होता है, उसमें अंधं तमस के निचले हिस्से में पड़े रहना पड़ता है।

उद्धव पूछता है - हे अरविन्द नयन, आप ध्येय हैं। मुक्ति कामना करने वाले आपके भक्त को, आपका ध्यान कैसे करना चाहिए। किन गुण लक्षणों का उसे चिन्तन करना चाहिए। मेरे इन प्रश्नों को आपके बिना और कोई उत्तर नहीं दे सकते।।31।।

श्री भगवान कहते हैं - अति उन्नत न हो नीचे भी न हो ऐसे आसन में स्थिर होकर शरीर को सरल रेखा में लाते हुये ठीक तरह से में बैठना चाहिए। जंघे के ऊपर दोनों हाथों को रखते हुये नासिका के अग्र भाग को देखते हुये रहना चाहिए।।32।।

पूरक, रेचक, कुम्भक से अथवा विपर्यय में रेचक, पूरक, कुम्भक से प्राणवायु के मार्ग का शोधन करना चाहिए। क्रमानुसार इन्द्रियजय को पाते हुये प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।।33।।

बाँये नाक से प्राण वायु को अन्दर खींचते हुये, दाहिने नाक से छोड़ देना। बाद में दोनों को बन्द कर प्राणवायु को बाहर रखना बहिः कुम्भक माना जाता है। दाहिने नाक से प्राण वायु को बाहर छोड़ते हुये बायें से अन्दर लेते हुये दोनों को बन्द करते हुये प्राण वायु को अन्दर रखना अन्तःकुम्भक माना जाता है। तंत्र सार संग्रह में प्राणायाम के इस रूप को बताया गया है।

हृदय में मुख्य प्राण द्वारा सदाकाल उच्चारण करने वाले ॐकार को उच्चारण करते हुये घण्टा के समान मुख्य प्राण के साथ अपने स्वर को भी जोड़ना चाहिए। कमल के समान रहने वाले हृदय में उत्पन्न होने वाले ॐकार को अपने उदात्त स्वर से जोड़ना चाहिए। क्रमानुसार तार, मंद्र, उदात्त स्वरों से ॐकार का उच्चारण करना चाहिए। इसको बार-बार भगवान के नाम स्मरण के साथ पुनः पुनः चिन्तन करना चाहिए।।34।।

प्रणव के नाद बिन्दु घोष वर्णों का उच्चारण करते हुये शान्त-अतिशान्त वर्णों की अभिव्यक्ति अन्त में होनी चाहिए।

इस प्रकार ॐकार का उच्चारण करते हुये सभी प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार दिन में तीन समय दस-दस बार प्राणायाम करने से एक महीने में प्राण का अनुग्रह प्राप्त होता है।।35।।

हृदय में मुख्यप्राण का ध्यान करते हुये उनकी अनुज्ञा से प्रतिदिन तीन समय दस-दस बार प्राणायाम करे तो एक मास में मुख्य प्राण वश में होते हैं। हरि वायु को हम वश में ले नहीं सकते वे सबको अपने वश में रखते हैं। वे किसी के वश में नही जाते। यहाँ मुख्यप्राण वश होते हैं इसका अर्थ मुख्य प्राण संतुष्ट होते हैं। संतुष्ट होने से वे इष्टार्थ देते हैं। यह इष्टार्थ देना ही उनका वश में होने का लक्षण है। प्रभंजन नाम के ग्रंथ में यह बात आती है।

देह के अन्दर हृदय में नीचे मुँह किया हुआ अष्टदल की कर्णिका युक्त हृदय कमल झुका हुआ केले के फूल के समान है। फूला हुआ है किन्तु कली के समान दिखता है। वह फूला हुआ है और उर्ध्व मुख वाला है। इस प्रकार ध्यान करना चाहिए। ध्यान करते समय भी वह नीचे मुख किया है। ऐसे ध्यान करे तो वह अविद्यमान उपासना होती है इसको महादोष कहते हैं।।36।।

कर्णिका में सूर्यमण्डल, चंद्रमण्डल और वहिनमण्डल को एक के ऊपर एक को ध्यान करना चाहिए। अग्नि मण्डल के बीच में मंगलकर मेरे रूप का ध्यान करना चाहिए।।37।।

ध्यान करने योग्य यह मेरा रूप लक्ष्मी युक्त होता है, पूर्ण आनन्द से भरा हुआ है। सुन्दर

मुख, सुन्दर देखने वाले जंघा तक लम्बे वाले चार बाहू, अत्यन्त मनोहर गला कपोल निर्मल मंद हास से सुशोभित है।।38।।

कानों में प्रकाशमान मकर कुण्डल को धारण किए हैं। नील मेघ के समान रंग वाले शरीर में पीताम्बर धारण किया है। छाती में श्री वत्सचिन्ह, लक्ष्मी का स्थान शोभा दे रहा है।।39।।

शंख चक्र गदा पद्म तथा वनमाला से अलंकृत हैं। नूपुरों से पाद शोभायमान है। कौस्तुभ रत्न से प्रकाशमान हैं।।40।।

उज्जवल प्रकाश वाले किरीट कंकण और कटिसूत्र से मिलकर सारे अंगों में शोभा दे रहे हैं। मनोहर आँख अनुग्रह पूर्ण दृष्टिक्षेप करते हैं। कोमल मेरे इस रूप वाले शरीर में सारे अवयवों में मन रखते हुये ध्यान करना चाहिए।।41।।

इन्द्रिय नाम के घोड़े को मन नाम का लगाम लगाकर बुद्धि नाम के सारथी से दुष्ट विषयों से रथ को बाहर चलाना चाहिए। ध्येय रूप में एकाग्रता से भगवान के सारे अवयव में मन रखना चाहिए।।42।।

सर्वांग ध्यान अशक्य लगे तो सर्वांग में व्याप्त अपने मन को खींचकर मेरे एक-एक अवयव में ध्यान लगाना चाहिए। उस समय दूसरे अवयव के बारे में चिन्तन नहीं करना चाहिए। पुनः पुनः सुन्दर मंद हास को वितरण करने वाले मेरे मुख का ध्यान करना चाहिए।।43।।

मुख इत्यादि एक-एक अवयव का ध्यान सुलभ नहीं हुआ तो मन को खींचकर सर्वांग में रखना चाहिए। मन स्वयं वहीं रहता है तो और प्रयत्न करने की आवश्यकता नही। इसको छोड़कर और कुछ चिन्तन नही करना चाहिए।।44।।

जब सर्वांग ध्यान अशक्य होता है तब एक-एक अंग का ध्यान करना चाहिए। अन्य विषय का चिन्तन करे तो ध्यान रूक जाता है। इस प्रकार ध्यान योग नाम के ग्रंथ में कहा गया है।

इस तरह से ध्यान के परिपाक को पाया हुआ भक्त अपने स्वामी मेरे स्वरुपहृदय को बाह्य हृदय में प्रत्यक्ष रूप से देखता है। स्व प्रकाश वाला अपने रूप सर्वान्तर्यामि रूप ज्योति रूप वाला मेरे आश्रय में रहता है इसको देखता है।।45।।

योगी अपने शरीर में परमात्म को देखता है। स्वयं भी भगवान के समान ज्ञानानन्द स्वरूपी होकर भगवान के अधीन होकर रहने के दृश्य को प्रत्यक्ष देखता है। इस प्रकार तत्व प्रतिपत्ति नाम के ग्रंथ में कहा गया है।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - पन्द्रह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

योग सिद्धि कैसे प्राप्त होती है

श्री भगवान कहते हैं - इन्द्रिय निग्रह को पाकर मुख्य प्राण का अनुग्रह मिलने के बाद योगाभ्यास से मुझमें ही मन को धारण करने वाले, स्थिर करने वाले योगी को योग सिद्धि प्राप्त होती है।।1।।

उद्धव पूछता है - हे अच्युत! किस धारण से कौन सी सिद्धि प्राप्त होती है? सिद्धि कितनी होती हैं। योगियों को सिद्धि प्रदान करने वाले आप ही हैं। इसके लिए मेरे प्रश्न का उत्तर आप ही दे सकते है।।2।।

श्री भगवान कहते हैं - उन अधिष्ठानों में मेरा और वायु देव का उन रूपों का ध्यान करते हुये अपरोक्ष पाने के बाद उस तरह की सिद्धि मिल जाती है। इसमें पारंगत योगियों में अनूर्मित्व इत्यादि अट्ठारह सिद्धि ऐसे बोलते हैं। ये गौण सिद्धि हैं, इनसे भी बढ़कर देवताओं में अणिमादि अष्ट सिद्धि मुख्य होती हैं। ये भी अत्यन्त मुख्य रूप से मुझमें हैं। ये गौण सिद्धियों का हेतु बनती हैं। मुख्य सिद्धि प्राप्त हैं तो गौण सिद्धि स्वयं आ जाती हैं।।3।।

अणिमादि, अष्ट ऐश्वर्य, स्वाभाविक रूप से सबसे ज्यादा श्री हरि में रहते हैं। ब्रह्मा जी में श्री हरि के अनुग्रह से स्वाभाविकतया अन्यों से ज्यादा हैं। अन्य देवताओं में योगाभ्यास से और हरि वायु के अनुग्रह से आती हैं। यह बात स्वभाव नाम के ग्रंथ में आता है। अष्टादश सिद्धियाँ ऋषि गन्धर्व और मनुष्यों को योगाभ्यास से आती हैं। देवताओं में अष्टादश सिद्धि के मूलभूत, अष्ट ऐश्वर्य हैं। उनमें अष्टादश सिद्धि अन्तर्भाव होते हैं। यह बात प्राकाश्य नाम के ग्रंथ में आता है।

देह को (1) अणिमा = छोटे होने की शक्ति, (2) महिमा = बड़े होने की शक्ति, (3) लघिमा = व़जन कम होने की शक्ति, (4) प्राप्ति = अपने शरीर में रहते हुये अति दूर रहने वाले विषयों को अन्यों की इन्द्रियों से ग्रहण करने की शक्ति, (5) प्राकास्य = सुना हुआ, देखा हुआ, वेदों का और

अन्य विषयों का अध्ययन के बिना ही आने वाला ज्ञान, (6) ईशित्व = जो कहता है उसको बिना प्रश्न आज्ञा धारण करना। इस प्रकार लोगों में शक्ति प्रेरणा करने का सामर्थ्य, (7) वाशित्व = विषयों का भोग करते हुये भी उसमें आसक्ति नही रखना, (8) प्राकाम्य = उस विषय के सुख देने वाली वस्तु न होते हुये भी उस सुख को पाने की सामर्थ्य उद्भव। यह आठ महासिद्धि योग मुझमें स्वाभाविक रीति से है। मैंने इनको योगाभ्यास से नहीं पाया है।।4,5।।

प्राकाम्य सिद्धि एक अलग होती है। जिस विषय का आनन्द चाहिए वह विषय भोग के बिना ही मिलता है। यह अणिमादि सिद्धि से अलग है। इस प्रकार प्राकास्य नाम के ग्रंथ में है।

(1) **अनूर्मित्व** = अस्ति, जायते, वर्धते, परिणमते, अपक्षीयते, नस्यति ये छः षडूर्मि मानी जाती है। ये समुद्र के लहर के समान एक के साथ एक मनुष्य के जीवन में आती रहती हैं। जनन-मरण दुःख, भूख-प्यास, ऐसे मानव में होने वाले यह सहज दुःख हैं। उनको इस शरीर में न हो ऐसे योग शक्ति से करना।

(2) **दूरश्रवण** = हजार योजन दूर से भी शब्द ग्रहण करने की सामर्थ्य।

(3) **दूरदर्शन** = हजार योजन दूर रहने वाली वस्तु को आँख से देखने की सामर्थ्य।

(4) **मनोजग** = मनोवेग से मन के साथ शरीर से संचार करने की शक्ति।

(5) **कामरूप** = इच्छा के अनुसार पशु-पक्षी आदि रूप धारण करना।

(6) **परकाय प्रवेश** = अपने शरीर को एक स्थान पर सुरक्षित रखकर दूसरे के शरीर में प्रवेश करते हुये कार्य करना।

(7) **स्वच्छंद मृत्यु** = एक युग के मध्य में आयुष्य रहते हुये भी अपनी इच्छा के अनुसार मरण पाना। इसको इच्छा मरण भी कहते हैं।

(8) **देवानाम सह क्रीडानुदर्शन** = तत्व देवताओं से अलग अन्य देवताओं के साथ नन्दन वनों में विहार करना।

(9) **यथा संकल्प सिद्धि** = अपनी इच्छा के अनुसार अन्न इत्यादि को पाना।

(10) **आज्ञा प्रतिहता गतिः** = अपनी आज्ञा को सारे लोग माने इस प्रकार करने वाली शक्ति।

(11) **अद्भवद्ध त्रिकालज्ञत्व** = अनुपम युग पर्यन्त तीनों काल के ज्ञान रखने की शक्ति।

(12) **परचित्तादभिज्ञत्व** = तत्वाभिमानी देवताओं को छोड़कर अन्य शरीरों में प्रवेश न करते हुये

उनके मन में रहने वाले विषय को समझ लेने की शक्ति।

(13) **अग्नि स्तम्भ (14) अर्कस्तम्भ (15) जलस्तम्भ (16) विषस्तम्भ (17) शार्दूलादि** से ब्रह्मास्त्र को छोड़कर अन्य अस्त्र से कुछ न विकार होते हुये अग्न्यादि देवताओं को सहन करने की शक्ति।

(18) **अपराजय** = मानवों से पराजित न होना।।6,7,8,।।

अनूर्मित्व नाम की सिद्धि दुःख का अभाव रूप है। यह प्राकाम्य में मिलता है। दूरश्रवण, दूरदर्शन, त्रिकालज्ञत्व और परचित्ताभिज्ञता ये चार सर्वज्ञान रूप प्रकाश में मिल जाता है। मनोजव, कामरूप, परकायप्रवेश स्वच्छंद मृत्यु और देवताओं के साथ क्रीडन करने वाला यथा संकल्प सिद्धि ये छः कामित प्राप्ति सिद्धि में मिल जाती हैं। बाकी अन्य सात सिद्धि ईशित्व में मिलती हैं।

अष्ट सिद्धियों में गरिमा को छोड़कर प्रकाश को मिलाते हुये महिमा सिद्धि को साधन बनने वाला योग धारणा से गरिमा सिद्धि मिलती है। इस प्रकार प्राकाश्य नाम के ग्रंथ में है।

योग धारण से लभ्य होने वाला अष्टादश सिद्धियों के नाम को एक-एक करके बताया हूँ। अब जिस ध्यान से जो सिद्धि प्राप्त होती है। उसके बारे में बताता हूँ, सुनो।।9।।

भूत, सूक्ष्म, परमाणुओं में नियामक होकर रहने वाले तन्मात्राओं में व्याप्त रहने वाले, मुझमें समान सूक्ष्म परिमाण एक है इस प्रकार ध्यान करने वाला योगी मेरा अत्यन्त सूक्ष्मत्व का अपरोक्ष पाने के बाद अपने स्थूल देह को सरसों के समान सूक्ष्मता को पाने वाली शक्ति पाता है। यह अणिमा सिद्धि है।।10।।

व्याप्त भगवान सर्वोत्तम मुझमें रहने वाले वस्तुओं से भी बड़ा रहने वाला महत्त परिणाम को चिन्तन करते हुये अपरोक्ष पाये तो उन वस्तुओं से बड़ा परिमाण वाले अपने देह को पाता है। यह महिमा सिद्धि ।।11।।

परमाणु के समान अत्यन्त सूक्ष्म गात्र वाला बनना अणिमा सिद्धि कहलाती है। आकाश में व्याप्त होकर भी अन्य पदार्थों को बाधा न देने वाले सूक्ष्मता को पाने वाला और एक तरह की अणिमा सिद्धि है। इसके विरुद्ध महिमा सिद्धि होती है। भगवान में ये दोनों हैं। योग धारणा से इनका चिन्तन करे तो दोनों मिलेंगे यह बात कापिलेय नाम के ग्रंथ में कहा गया है। सूक्ष्म परमाणुओं से परम सूक्ष्म रूप कालपरमाणुओं में रहने वाला मेरे रूप का ध्यान करने वाला योगी अपने देह को एक चींटी भी उठाकर ले जाये इतना भार रहित करने की शक्ति यह लघिमा सिद्धि है।

भूत परमाणु से अत्यन्त सूक्ष्म रुप के कालपरमाणुओं में रहने वाला मुझको ध्यान करने वाले

योगी अपने देह को एक चींटी लेकर जाये इतना भार रहित कर लेता है। यह लघिमा सिद्धि हैं।।12।।

वैकारिक अहंकार तत्व में रहने वाले मेरा ध्यान करने वाला सारे इंद्रियों के ऊपर नियंत्रण पाता है। अपनी इच्छा के अनुसार अन्य लोगों की इन्द्रियों से कार्य करता है। अति दूर रहने वाले वस्तु का भी ज्ञान इसको होता है। यह प्राप्ति नाम की योग सिद्धि है।।13।।

महत्तत्व में रहने वाले सूत्र नामक चतुर्मुख ब्रह्मा में और प्राण में व्याप्त होकर रहने वाले मुझमें मन रखते हुये ध्यान करें तो अत्यन्त सूक्ष्म अव्यक्त तत्व को भी किंचित स्थूलत्व को देने वाले मुझसे चतुर्मुख भारती मुख्यप्राण के अनुग्रह द्वारा अध्ययन के बिना ही सकल वेदादि ज्ञान रुप प्रकाश सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। केवल प्राकाश्य सिद्धि के लिए ही नही सकल सिद्धि को विष्णु, प्राण और भारती का अनुग्रह अवश्य है।।14।।

प्राकाश्य सिद्धि की प्राप्ति के लिए चतुर्मुख का अनुग्रह आवश्यक है। भागवत की यह बात उपलक्षणतया कही गयी है। सकल सिद्धियों के लिए श्री हरि के अनुग्रह से प्राण को और प्राण के अनुग्रह से भारती को हरि प्राण भारती के अनुग्रह से शेषादि देवताओं को आता है। यह माहात्म्य नाम के ग्रंथ में आता है।

काल नाम के प्रतिमा में व्याप्त, अधीश्वर, सर्वप्रेरक मुझमें मन रखते हुये ध्यान करने वाला अपनी इच्छा के अनुसार अन्य शरीरों की आत्माओं को प्रेरणा देने वाला बनकर पहले से एक करोड़ अधिक बल से काम कर सकता है। इस सिद्धि का नाम ईशित्व सिद्धि है।।15।।

जिस सिद्धि की अपेक्षा करते हो उस सिद्धि की पूर्ति के लिए स्वाभाविक रीति से स्वतंत्र होकर श्री हरि में ही यह सारी शक्ति है। इस प्रकार योग धारण में उपासना करनी चाहिए। **तम् यथा उपासते तदेव भवति** जिस प्रकार उपासना किया जाता है, उसी को पाता है। विशेष नाम के ग्रंथ में यह बात कही गयी है। भगवान को सत्य संकल्प इस प्रकार करे तो सत्य संकल्प सिद्धि नियमन शक्ति की उपासना करे तो नियमन शक्ति अथवा ईशित्व सिद्धि प्राप्त होती है।

विश्वादि व्यूह में अन्तिम तुरीय नामक भगवान नारायण के षड्गुण पूर्णत्व में मन रखने वाला योगी विषय का भोग करते समय भी उसमें अनासक्ति से रहता है।(मैं भी वैसे ही हूँ।) वह योगी भी इस वासित्व योग सिद्धि को पाता है।।16।।

गुणत्रय रहित पूर्णानन्द मुझमें निर्मल मन को रखते हुये ध्यान करने वाला विषय पदार्थ के बिना ही उससे मिलने वाले परमानंद को पाता है। उस समय सारे विषय पदार्थ की सुख प्राप्ति इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। विषय मोह नष्ट होता है, यह प्राकाम्य नाम की सिद्धि हैं ।।17।।

श्वेतद्वीप के स्वामी धर्म फल देने वाला दोष रहित मुझमें मन रखकर ध्यान करने वाला षड्ऊर्मि रहित होकर अमरत्व का सुख पाता है। यह अनूर्मिमत्व सिद्धि हैं।।18।।

श्वेतद्वीप के स्वामी का चिन्तन करने वाला श्वेत बनता है। यह अनूर्मित्व सिद्धि। श्वेत इसका अर्थ निर्मल, सुखी और सफेद इस प्रकार होता है। यह शब्द निर्णय में आता है।

आकाश में मुख्यप्राण में रहने वाले मुझमें मन लगाकर ध्वनिप्रेरकत्व का ध्यान करे तो हजार योजन दूर में रहने वाला आकाश में जहाँ कहीं सुनने वाला शब्दों को सुनने की दूरश्रवण सिद्धि प्राप्त होती है।।19।।

आँख को सूर्य में, सूर्य को आँख में, आँख और सूर्य दोनों को मुख्य प्रेरक मेरा ध्यान करने वाला सूक्ष्मदर्शन सामर्थ्य को पाता है। हजार योजन दूर रहने वाली वस्तु को देख सकता है।।20।।

मन को मनतत्व का कार्य मानते हुये उसके नियामक मेरे ध्यान करने वाला मनोनियामक वायु है। अपना देह वायु के अधीन है। इस प्रकार चिन्तन करने वाला मन जितना दूर जाता है उतना दूर उसके ही वेग से उसके साथ उसका शरीर भी जाता है। मन तत्व में इस प्रकार ध्यान करके पाने की यह सिद्धि मनोजव सिद्धि कहलाती है।।21।।

पशु, पक्षी, इत्यादि जो चाहे उस प्राणी का रूप धारण करने को चाहने वाला उन प्राणियों में रहने वाले मेरे रूप में मन स्थिर रखा तो ध्यानबल से उसी रूप को पाता है। यह कामरूप सिद्धि है।।22।।

दूसरों के शरीर में प्रवेश करने वाले योगी को अपने शरीर में अन्तर्यामी होकर रहने वाले भगवान को दूसरों के शरीर में ध्यान करना चाहिए। तब प्राण नामक भगवान अन्य शरीर में प्रवेश करता है। उस भगवान में रहने वाला वायु को भी जीव आश्रय करता है। जैसे भौंरा एक फूल को छोड़कर दूसरे फूल को जाता है वैसे जीव भगवान के साथ वायु रथ में चढ़कर अपने शरीर को छोड़कर पर शरीर में प्रवेश करता है। यह परकाय प्रवेश सिद्धि है।।23।।

गुदाद्वार को एड़ी से दबाकर रखते हुये प्राण वायु को श्री हरि के साथ नाभि, हृदय, वक्षस्थल, कण्ठ, भ्रूमध्य और सिर इस प्रकार छः स्थानों में क्रमशः ध्यान करते हुये प्राणवायु के साथ अपने आत्म को वे छः स्थानों में क्रम प्रकार लाकर वहाँ रह रहे प्राण नामक श्री हरि का ध्यान करते हुये बाहर व्याप्त होकर रहने वाले हरि में उनका ऐक्य चिन्तन करते हुये ब्रह्मरस से प्राणरथारूढ़ होकर शरीर को छोड़कर बाहर जाना चाहिए। यह स्वाभाविक मरण नही है, इसे स्वच्छंद मृत्यु कहते हैं।।24।।

कामरूप सिद्धि पाने के लिए योगी जिस प्राणि का रूप धारण करना चाहता है उस प्राणी में रहने वाले श्री हरि के रूप का चिन्तन करना चाहिए। परकाय प्रवेश सिद्धि प्राप्ति के लिए परकाय में रहने वाले प्राणान्तगत हरि का ध्यान करना चाहिए। हरि में वायु, और वायु में जीव रहने से वायु के मुखांतर जीव परकाय प्रवेश करता है। आयुष्य रहते हुये शरीर त्याग करना चाहे तो गुदा को एड़ी से दबाते हुये सुषुम्ना नाड़ी से षट्चक्रों में रहने वाले वायु के अन्दर रहने वाला श्री हरि और बाहर व्याप्त श्री हरि अभिन्न हैं। इस प्रकार ध्यान करना चाहिए। तब ब्रह्मरन्ध्र से प्राणोत्क्रमण होता है। दक्ष यज्ञ में सती इस प्रकार स्वच्छंद मृत्यु को पाई।

मेरा भक्त योगी अपने मन से पशु, पुत्र, अन्नपान, जो-जो चाहता है उसको पाने के लिए सत्यसंकल्प मुझमें मन रखते हुये ध्यान करना चाहिए। उससे देव, गन्धर्व आदि को छोड़कर अन्य सारे संकल्पानुसार पाता है।।26।।

मैं सर्वेश, वशी मुझमें रहने वाला यह सर्वेशत्व और वशित्व को ध्यान करने वाला वशित्व सिद्धि को पाता है। इस भूमण्डल में कोई उसकी आज्ञा को उल्लंघन नहीं करते हैं। यह आज्ञा अप्रतिहत सिद्धि हैं।।27।।

मुझमें निर्मल अन्तःकरण से भक्ति करते हुये तीनों कालों का प्रेरक मेरा ध्यान करने वाले योगी सृष्टि संहार विषय के मेरा त्रिकाल ज्ञान के समान ज्ञान पाता है। अन्य किसी के सहयोग के बिना उसको तीनों काल का ज्ञान आ जाता है। इसको त्रिकालज्ञत्व सिद्धि कहते है।।28।।

त्रिकाल ज्ञान सिद्धि के लिए तीनों काल में रहने वाले श्री हरि का ध्यान, अग्नि-स्तम्भ, जल स्तम्भ सिद्धि के लिए अग्नि और जल में रहने वाले श्री हरि का ध्यान करना चाहिए। यह बात हरि संहिता नाम के ग्रंथ में है।

अग्नि, सूर्य, जल, विष, शस्त्र इत्यादि का शक्तिस्तम्भन करने में शक्त श्री हरि का ध्यान करने वाले योगी अग्न्यादि नियामक रूप में ध्यानतनमय होने से उन देवता शक्ति का निरोध करने की शक्ति आ जाती है। अग्नि जल इत्यादि से कोई कष्ट नहीं होता।।29।।

श्री वत्स, शंख चक्र आदि आयुध, ध्वज, छत्र, व्यजन युक्त मेरे विभूति रूप का ध्यान करने वाले योगी मानवों से पराजय नहीं पाता।।30।।

काम्योपासनाओं से भगवान के अपरोक्ष को पाए हुए योगी को अणिमादि सिद्धि की अपेक्षा हुयी तो अणिमदि सिद्धि के बारे में बताया गया ध्यान करने से वे सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।।31।।

पहले ही इन्द्रिय निग्रह किया हुआ, क्रोध रहित होकर **जितश्वासआत्मा** वायु हरि का

अनुग्रह पाया हुआ योगी कामना रहित होकर मेरे ध्यान में आसक्त रहे तो उनको दुर्लभ सिद्धि और क्या होती है। ज्ञान सामर्थ्य से केवल मेरे स्मरण मात्र से सिद्धि प्राप्त होती है।।32।।

मोक्ष को छोड़कर अणिमादि सिद्धि फल कामना से बताया गया उक्त रीति से ध्यान करते हुये श्री हरि का अनुग्रह चाहने वाला योगी को ये सिद्धियाँ मोक्ष प्राप्ति के लिए काल विलम्ब करने से विघ्न रूप होती हैं ऐसे योगी कहते हैं क्योंकि योगी इसी ध्यान को सिद्धि कामना के बिना करते रहे तो अपरोक्ष पाकर जल्दी ही मोक्ष पाता है।।33।।

सिद्धि की कामना करने वाला योगी प्रारम्भत: योगाभ्यास से मुख्यप्राण का साक्षात्कार करते हुये उनकी अनुज्ञा से श्री हरि की उपासना से श्री हरि का साक्षात्कार करना चाहिए। बाद में उन सिद्धियों के लिए अलग उपासना करना पड़ता है। किन्तु सिद्धि की कामना न करते हुये निष्कामना से योग धारणा करते हुये हरि वायु का साक्षात्कार करना चाहिए। इसके पहले का साक्षात्कार मोक्ष देने वाला नही है। इसके लिए इस झंझट में न पड़ते हुये पहले ही मोक्ष की उपासना करने से मोक्ष जल्दी मिलता है। यह सामान्य अधिकारी की बात है। उत्तमाधिकारी योग में अपरोक्ष पाकर सिद्धि के लिए अन्य अपरोक्ष पाने की आवश्यकता नही। अपरोक्ष प्रभाव से ही सारी सिद्धियाँ आती हैं। वे मोक्ष को विलम्ब नहीं करते। यह बात निवृत्ति नाम के ग्रंथ में आती है।

जन्म से, औषधियों से, तप से, मंत्र से जो- जो सिद्धियाँ मिलती हैं वे सारे मेरे ध्यान कर योगी पा सकता है। सारे लोग जन्म से सिद्धि पाकर जन्म लेते नहीं हैं। कई लोग केवल थोड़े सिद्धियों को पा सकते हैं।।34।।

जन्मत: पिशाची के समान परकाय प्रवेश, गिद्ध के समान दूरदर्शन शक्ति, मछली के समान जल स्तम्भन, मंत्र-जप, रसायन से अलग-अलग सिद्धि अलग-अलग लोगों को मिल सकती है। किन्तु सबको सारी सिद्धियाँ नही मिलती। किन्तु योगाभ्यास से इनको पा सकते हैं। यह निवृत्ति ग्रंथ की बात है।

सारे सिद्धियों का कारण और नियामक मैं हूँ। सिद्धि के कारण योग को उसके कारण बनने वाला तत्वज्ञान को, उसको भी कारण बनने वाला नित्यनैमित्तिक धर्माचरणों के लिए, वेदार्थ को समझाने वाला ज्ञान को भी सर्वशक्त मैं ही नियामक हूँ।।35।।

पंचमहाभूत प्राणियों के देह के अन्दर और बाहर भी व्याप्त होकर जैसे रहते हैं वैसे ही मैं भी सारे जीवों के देह में अन्दर-बाहर व्याप्त होकर रहता हूँ। मुझको एक निश्चित रूप का आवरण नहीं है।।36।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - सोलह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

भगवान के विभूति रूप

उद्धव कहता है - भगवान, आप साक्षात् परब्रह्म हैं। पाद्यंत शून्य आवरण रहित हैं। सारे प्राणियों को कार्य कारित्व प्रदान करने वाले हैं। आप ही सृष्टि स्थिति और संहार करने वाले हैं।।1।।

हे भगवान, अशुद्ध बुद्धिवाला आपको समझ नहीं सकता। ब्रह्मज्ञानी लोग आप को उच्च,नीच, न देखते हुये सारे प्राणियों में निर्दुःखानन्द रूपी होकर रहते हैं, इस प्रकार समझकरज्ञानी लोग आपकी उपासना करते हैं।।2।।

जिन वस्तुओं में आप जिस रूप में रहते हैं, महर्षियों ने आपकी जिस तरह की उपासना करते हुये ज्ञान और मोक्ष को पाते हैं इसको मुझे बताइये।।3।।

आप प्राणियों को जन्म देने वाले हैं, उनके अन्तर्यामी होकर रहते हैं। फिर भी वे आपको समझते नही, आपसे मोहित होकर वे आपको देख नहीं सकते। आप उन सबको देखते रहते हैं।।4।।

हे शास्त्र प्रतिपाद्य भगवान, मैं आपके पादकमल को नमन करता हूँ। महाऐश्वर्यशाली आपके विभूति रूप भूमि में, स्वर्ग में, पाताल में, दसोदिशा में जहाँ-जहाँ हैं और महात्मा लोग जैसे-जैसे आपकी उपासना करते हैं, इसके बारे में मुझको कहिए।।5।।

भगवान कहते हैं - क्या पूछना हैं, श्रेष्ठज्ञान को कैसे समझना हैं, इसको उद्धव तुम ठीक तरह से जानते हो। कुरुक्षेत्र में शत्रुओं के साथ युद्ध करने के लिए सिद्ध हुआ अर्जुन भी इसी रीति से मुझसे पूछा था।।6।।

राज्य के लाभ के लिए बन्धु हत्या करना महापाप होता है। वह निन्दनीय है। मैं इस युद्ध में बन्धु हत्या करना नहीं चाहता। मैं बन्धु को मारना अथवा मुझको बन्धु मारना योग्य नहीं है। ऐसे विचार करते हुये लौकिक के समान अर्जुन युद्ध विमुख हो गया।।7।।

उस समय पुरुष श्रेष्ठ अर्जुन को युद्धक्षेत्र में प्रत्यक्षागम से, युक्तियों से गीता का नौ अध्यायों का उपदेश दिया। अब तुम जैसे विभूति रूप के बारे में पूछे वैसे ही वह भी मेरे सामने विभूति रूप के बारे में पूछा।।8।।

हे उद्धव, मैं सारे प्राणियों के अन्तर्यामी होकर रहता हूँ। मैं अनिमित्त उपकारी हूँ। इस भू मण्डल को उत्पन्न करने वाला, रक्षण करने वाला और नाश करने वाला मैं ही हूँ। इसी कारण मैं सारे प्राणी, वस्तु में मैं ही रहता हूँ। इस प्रकार कहता रहता हूँ। किन्तु ये सारे प्राणी वस्तु मेरे समान नहीं होते, मैं उनका स्वामी हूँ।।9।।

भगवान सारे जीवियों में रहते हैं, इसके लिए सारे प्राणी मैं ही हूँ ऐसे कहते हैं। इसका अर्थ सारे जीवियों की उत्पत्ति और नियमन मेरे से होता है इस अभिप्राय से कहते हैं। यह बात वस्तु तत्व नाम के ग्रंथ में आता है। वस्तुओं को उनके जाति के अन्य वस्तु से ज्येष्ठता और श्रेष्ठता देने वाला, उत्पन्न करने वाला रूप विभूति रूप माना जाता है। भगवान अपने विशेष सन्निधान से कई वस्तुओं में ज्येष्ठता और श्रेष्ठता देते हैं। उनको विभूति कहते हैं। अपने जातियों के बीच में अवतार लेना भी विभूति रूप माना जाता है। सर्वान्तर्यामी रूप भी विभूति रूप है। भगवान अपने विशेष सन्निधान से कई वस्तुओं में श्रेष्ठता को उत्पन्न करते हैं। अन्य वस्तु को नहीं ऐसा विचार नहीं करना। सूर्यकांतमणि में प्रवेश करके वहाँ अग्नि को उत्पन्न करते हैं। जल में प्रवेश करे तो करते नही।

देवताओं में मैं इन्द्र हूँ, इसका अर्थ इन्द्र में मेरा विभूति रूप है। इस प्रकार होता है। यहाँ स्पष्ट रूप से न कहना इन्द्र के नाम में रहने वाला विभूति रूप को मुख्यतः मानता है। यह गीता कल्प का वाक्य है।

ज्ञानियों में रहने वाला ज्ञान मैं हूँ। संहार करने वाला श्रेष्ठ काल मैं हूँ। गुणों में आनन्दानुभव रूप सौम्यगुण मैं हूँ। गुणियों में सुख प्राप्ति योग्यता नामक गुण है।।10।।

गुणियों में रहने वाले सुख प्राप्ति गुण का अभिमानी सूत्र नामक प्राण मैं हूँ। स्थूल पदार्थों में श्रेष्ठ महत्व तत्व मैं हूँ। सूक्ष्म पदार्थों में श्रेष्ठ जीव मैं हूँ। जीतने के लिए अशक्यों में श्रेष्ठ मन मैं हूँ।।11।।

ज्ञानियों का ज्ञान मैं हूँ इसका अर्थ ज्ञानियों में श्रेष्ठ ज्ञानाभिमानी चतुर्मुख ब्रह्मा को श्रेष्ठत्व देते हुए उसमें विशेष रूप से रहने वाला ज्ञान नामक विभूति रूप मैं हूँ इस प्रकार होता है। इसी प्रकार संहार का कारण मैं काल हूँ। इसका भी अर्थ करना चाहिए। यह विभूति नाम के ग्रंथ में आता है। सौम्य गुण का अर्थ आनन्दानुभव वह भक्तों भक्तयादि गुण से श्रेष्ठ है। उसको ब्रह्मा जी अभिमानी देवता हैं। भक्ति और ज्ञान के लिए ब्रह्म और सरस्वती दोनों अभिमानी हैं। भक्ति के लिए सरस्वती अभिमानी हैं। अन्य गुणों के लिए सरस्वती के समान और देवता भी अभिमानी हैं। औत्पत्तिक गुण का अर्थ सुख प्राप्ति की योग्यता पाना उसका अभिमानी मुख्य प्राण हैं वही सर्व गुणों से श्रेष्ठ हैं। यह विभूति और प्रभंजन नाम के ग्रंथ में आता है।

देवताओं में श्रेष्ठ चतुर्मुख मैं हूँ। मंत्रों में ॐकार और अक्षरों में अकार मैं हूँ। वेदाभिमानियों से उत्तम वेदार्थ मैं हूँ।।12।।

केवल जातियों में ही श्रेष्ठता नही, समूह में भी श्रेष्ठता, ज्येष्ठता विभूति के सन्निधान से होता है। इस प्रकार प्राधान्य नाम के ग्रंथ में आता है। इससे वेदमंत्र और उनका अर्थ इस समूह में वेदाभिमानी से वेदार्थ अभिमानी को श्रेष्ठता है। **पदानी छंदसामहं** इसमें पद का अर्थ प्रतिपाद्य इस प्रकार होता है। पद शब्द को प्रतिपाद्य इस प्रकार अर्थ है। इस प्रकार वेद, वर्ण, पद, रुचा, वर्ग, अध्याय इनके अभिमानी स्त्री देवताओं से उस वर्ण में प्रतिपाद्य उनके पति श्रेष्ठ होते हैं। समस्त वेदाभिमानी रमा से समस्त वेद प्रतिपाद्य हरि श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार प्राधान्य नाम के ग्रंथ में आता है।

इन्द्रादि देवताओं में इन्द्र, वसुओं में अग्नि, आदित्यों में विष्णु, रूद्रों में शंकर मैं हूँ।।13।।

ब्रह्मर्षियों में भृगु, राजर्षियों में स्वायंभुव मनु, देवर्षियों में नारद, और गायों में कामधेनु मैं हूँ।।14।।

सिद्धेश्वरों में कपिल, पक्षियों में गरुड़, प्रजापतियों में दक्ष, पितृओं में अर्यम मैं हूँ। उद्धव दैत्यों में असुर चक्रवर्ती प्रह्लाद मैं हूँ। नक्षत्रों में औषधियों का अधिपति चंद्र मैं हूँ। यक्ष राक्षसों का अधिपति कुबेर मैं हूँ।।15,16।।

हाथियों में मैं ऐरावत हूँ, जलचरों में वरुण हूँ, प्रकाश देने वाले में सूर्य हूँ, मानवों में राजा हूँ।।17।।

घोड़े में उच्छैश्रवस मैं हूँ, धातुओं में सोना, संहारको में यम और सर्पों में मैं वासुकी हूँ।।18।।

महानागों में मैं शेष हूँ, हिंस्र पशुओं में सिंह हूँ, आश्रम में सन्यास, वर्णों में मैं ब्राह्मण हूँ।।19।।

आश्रमों में सन्यास बोले तो गृहस्थ आश्रमी ब्रह्मादि से सनकादि कभी श्रेष्ठ नहीं होते। क्योंकि देवता ने केवल गृहस्थ आश्रमी नही हैं वे एक ही काल में चारों आश्रम धर्म का पालन करते हैं। इसी कारण देवताओं के आश्रम में सन्यास श्रेष्ठ अन्य स्थानों मे गृहस्थ आश्रम श्रेष्ठ है। इस प्रकार आश्रम विवेक नाम के ग्रंथ में लिखा है।

पुण्य नदियों में मैं गंगा हूँ, जलाशयों में समुद्र, आयुधों में शार्ङधनु, रुद्रादियों में मैं रुद्र।।20।।

पहाड़ों में मेरु, घन अरण्यों में हिमालय, वृक्षों मे अश्वत्थ, औषधियों में जौ मैं हूँ।।21।।

मनुकुल के पुरोहितों में वशिष्ठ, ब्रह्मज्ञानियों में बृहस्पति, सेनानियों में स्कन्द, श्रेष्ठों में भगवान चतुर्मुख ब्रह्मा मैं हूँ।।22।।

मनुष्यों की पुरोहिती करने में वशिष्ठ श्रेष्ठ हैं। देवताओं की पौरोहित्य करने वाले में बृहस्पति श्रेष्ठ हैं। यह बात त्रैलोक्य नाम के ग्रंथ में आती है।

पंच महायज्ञों में ब्रह्मयज्ञ, व्रतों में अहिंसा, शुद्धि करने वाले में हवा, आग, सूर्य, जल वेद वचन नाम के शुद्धिकारक मैं हूँ।।23।।

वचन का अर्थ तुम पवित्र हो इस प्रकार वैष्णव लोग बोलने वाले अनुग्रह वचन। यह शुद्धिकारक है।

विष्णु वैष्णव वाक्येन हानिस्यात् पाप कर्मणः विष्णु वैष्णव इत्यादि शब्द वाले वाक्य से पापों का नाश होता है।

योगों में मनोनिग्रह, विजयेच्छु राजाओं के प्रवृत्ति में मंत्रालोचना, शुभप्रद विद्याओं में ब्रह्मतर्क, ज्ञान ही मोक्ष साधन है, ऐसे बोलने वाले भेदवादी मैं हूँ।।24।।

ख्यातिवादी का अर्थ ज्ञान को मोक्ष साधन मानने वाले, उनमें विकल्प का अर्थ जीव, ईश्वर, जड़ में विशेष कल्पना यानी भेद समर्थना करने वाले उत्तम होते हैं। यह विज्ञान नामक ग्रंथ में कहा गया है।

स्त्रियों में शतरूपा देवी, पुरुषों में स्वायंभुव मनु, मुनियों में धर्मपुत्र नारायण, ब्रह्मचारियों में सनतकुमार विष्णु रूप मैं हूँ।।25।।

पुण्य कर्मों में काम्य निषिद्ध वर्जन और सर्व कर्म समर्पण मैं हूँ। क्षेम करने वाले में अन्दर रहने वाले भगवान के प्रति ज्ञान, रहस्यों में सततमौन, स्त्री-पुरुष जोड़ी में मैं पुरुष हूँ।।26।।

स्त्रियों में शतरूपा, पुरुषों में स्वायंभुव मनु श्रेष्ठ कहने का अर्थ ये सारे शची और इन्द्र के नीचे रहने वालों में हैं। इस प्रकार वैशेष्य नाम के ग्रंथ में आता है।

क्षणादि कालों में मैं सवंत्सर, ऋतुओं में वसंत, मासों में मार्गशीर्ष, नक्षत्रों में अभिजित् मैं हूँ।।27।।

युगों में कृतयुग, ज्ञानियों में असित और देवल, वेद विभाग करने वाले में कृष्ण द्वैपायन, विद्वांसों में असुरों का सम्पर्क होते हुये भी विष्णु भक्ति को न छोड़ने वाले शुक्र मैं हूँ।।28।।

षड्गुण सम्पन्न देवताओं में वासुदेव नामक विष्णु मैं हूँ। भागवत में उद्धव तुम्हारे रूप में मेरा विभूति रूप है। किम पुरुष खंड वासियों में हनुमान, विद्याधरों में सुदर्शन मैं हूँ।।29।।

भगवद्भक्तों में अर्जुन, बलराम, भीम और द्रौपदी सबसे उत्तम होते हैं। इनको छोड़कर और जो हैं उनमें उद्धव श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार वैशेष्य नाम के ग्रंथ में लिखा गया है।

रत्नों में पद्मराग, कोमल पदार्थों में कमल की कली, दर्भों में कुश, यज्ञ योग्य हविष्यों में गाय का घी मैं हूँ।।30।।

उद्योगशालियों में धन,कनकादि सम्पत्ति मैं हूँ, जुआरियों में द्यूत मैं हूँ, द्वंद्व और सहिष्णुता

में सहन शक्ति, बलशालियों में बल मैं हूँ।।31।।

सहन बल रहने वालों में ओजस, पंचरात्रानुयायियों में कर्मानुष्ठान मैं हूँ। पंचरात्र में उक्त छः नवमूर्तियों में पहला नौ मूर्ति मैं हूँ।।32।।

नारायण परब्रह्म, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नरसिंह, वराह, परंज्योति नाम के विष्णु के नौ मूर्तियों की पूजा पंचरात्रों में कही गयी है। इसी प्रकार लक्ष्मी, ब्रह्म, वायु, शेष, गरुड़ों को भी अलग-अलग नौ मूर्ति है। इनमें आदि मूर्ति यानी प्रथम विष्णु नौ मूर्ति श्रेष्ठ हैं। यह बात सहस्त्रा वर्ण नाम के ग्रंथ में है।

गन्धर्वों में विश्वावसु, अप्सराओं में पूर्वचित्ति, पर्वतों में स्थिरता, भूमि में गंधगुण मैं हूँ।।33।।

पानी में उत्तम रस, तेजोमयों में सूर्य, सूर्य-चंद्र-नक्षत्रों में प्रभा, आकाश में उत्तम शब्द मैं हूँ।।34।।

अपने-अपने जातियों के समूह में श्रेष्ठत्व देने वाले विभूति रूप के समान अपने-अपने स्वभाव नियामक विभूति रूप अलग हैं। इस प्रकार सहस्त्रावर्ण नाम के ग्रंथ में है। इसके अनुसार पहाड़ों में स्थिरता, भूमियों में गंधगुण, जल में मधुररस इत्यादियों का विभूति रूप विभिन्न रूप से होते है।

ब्राह्मण भक्तों में बलि, वीरों में अर्जुन, प्राणियों में स्थिति, उत्पत्ति और नाश मैं हूँ।।35।।

पादों में चलनक्रिया, वागिन्द्रियों की बात, गुदा का विसर्जन, हस्त का उपादान, उपस्थ का रति, त्वगिन्द्रिय का स्पर्श, जीभ का रसास्वाद कानों से श्रवण, नाक से वासनानुभव इस प्रकार इन्द्रियों को आए कार्यों में शक्ति देने वाला मैं हूँ।।36।।

पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, अहंकार, महततत्व ब्रह्माण्ड, जीवाभिमानी, अचेतन प्रकृति, सत्व,रज, तम, मूलरज इत्यादियों में रहने वाला मैं हूँ। इन तत्वों की गणना करते हुये, मिलने वाला तत्व निश्चयात्मक, ज्ञान भी मैं हूँ।।37।।

सत्व, रज, तम, इत्यादि नाम सत्वादियों में रहने वाले विष्णु रूप को ही मुख्य रीति से बताते है। सत्वादियों में अमुख्य होता है। इसी प्रकार ग्यारहवाँ श्लोक में कही गयी सूक्ष्म वस्तु में मैं और आगे अड़तीसवाँ श्लोक में जीव मेरे बिना और कोई वस्तु नहीं है यह दोनों बातों का अर्थ भगवान का जीव नाम भी जीव के अन्तर्यामी होने के कारण ही मुख्य है। यह बात सहस्त्रावरण नाम के ग्रंथ में आता है।

मैं अचिन्त्य ऐश्वर्य वाला हूँ, जीव नामक गुण स्वरुप, गुणपूर्ण सर्वस्वामी, सर्वव्याप्त मैं हूँ, ऐसे मेरे बिना किसी भी प्रदेश, काल में कोई पदार्थ नहीं रह सकता।।38।।

सर्वगुण परिपूर्ण मैं भी अनंत परमाणुओं को इतना ही हैं, इस प्रकार गिन नहीं सकता। उसी

प्रकार करोड़ों संख्या में ब्रह्माण्डों को सृष्टि करने में सामर्थ्य रखने वाले मेरे विभूति रूपों को इतना ही हैं, ऐसे मैं गणना कर नहीं सकता।।39।।

परमाणु हों या अपने विभूति रूप हों भगवान कहते हैं, मैं उनकी गिनती कर नही सकता। इससे भगवान के सर्वज्ञत्व में बाधा आती है न? इस प्रश्न को सहस्त्रावरण नाम के ग्रंथ में इस प्रकार समाधान दिया गया है। परमाणु अनंत हैं, भगवान के विभूति रूप अनंतानंत हैं। अनंत को अनंत ही मानना पड़ता है, गिनती करने का नही। जो अनंत है उसको परिमिती है ऐसे समझकर उनकी गिनती करने लगे तो उसके सर्वज्ञत्व में बाधा आती है। परमाणु और विभूति रूप अनंत होते हुये भी प्रत्येक परमाणु को भगवान के प्रत्येक विभूति रूप है इससे ज्ञात होता है कि भगवान सर्वज्ञ हैं।

संक्षेप रूप से अपने विभूति रूपों के बारे में बताया हूँ। विभूति रूप यह नाम जीव का है, इस प्रकार कहना मानसिक भ्रम होता है। वस्तुतः सारे नाम मुख्यार्थ में मेरे ही होते हैं।।41।।

हे उद्धव, तुम अपनी बातों को मुझको समर्पित करो, मेरे बारे में बातें करते रहो। मन, इन्द्रिय और सारे शारीरिक क्रियाओं को मुझमें समर्पित करो। मन से अपने जीव को मुझमें रखो। ऐसा करे तो तुम पुनः इस संसार मार्ग में नही आओगे।।42।।

जो प्रयत्न पूर्वक, बुद्धि पूर्वक, बात और मन को मुझमें समर्पित नहीं करते उसका व्रत, तप, ज्ञान सारा छेद वाला बर्तन में भरा हुआ पानी के समान व्यर्थ होता है।।43।।

इसी कारण तुम मुझमें आसक्त होकर बात मन इन्द्रियों को भक्ति से भरे हुए मन से मुझमें समर्पित करो। इससे तुम्हारा संसार बंध समाप्त होता है।।44।।

सारे शब्द मुख्य रूप से भगवान के नाम हैं। इसको न समझते हुये अन्यों का नाम ऐसे समझे तो वो जो सम्पादन किया है वह ज्ञान नष्ट होता है। इसी कारण मन बात और इन्द्रिय सारे हरि पर कार्य में निरत होना चाहिए। इसी को धर्म, तप मानते हैं, इस प्रकार धर्म विवेक नाम के ग्रंथ में आता है। वागभिमानी पार्वती को मनोभिमानी रुद्र के वश में रुद्र को विद्याभिमानी सरस्वती के वश में, सरस्वती को महतत्वाभिमानी ब्रह्माजी के वश में, ब्रह्मा जी को लक्ष्मी द्वारा हरि में चिन्तन करना है। यह काठकोपनिषद् का वाक्य है।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - सत्रह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

वर्णाश्रम धर्म

उद्धव बोलता है - भगवन, आप पहले चौदह अध्याय में वर्णाश्रम आचार वाले सारे मानवों को और वर्णबाह्य को भी उनके योग्य धर्माचरण करने से आप में भक्ति होती है वह वर्णाश्रम का फल है। इस प्रकार कहे थे।।1।।

हे अरविन्दाक्ष, जिस तरह के धर्माचरण से मानवों को आप में भक्ति होती है। उसको मेरे लिए उपदेश दीजिए।।2।।

हे महाबाहुशाली माधव, प्रारम्भ में कल्प के आदि में आप अपने भक्त मुनियों के लिए परम धर्म का उपदेश किये हैं। इस प्रकार मैं सुना हूँ।।3।।

हे शत्रु नाशक, बहुत पूर्वकाल में आपने जो उपदेश दिये हैं वह धर्म कालवश से मनुष्य लोक में बहुशः नष्ट हो गया है।।4।।

हे अच्युत, ब्रह्म सभा में पुरुष के षोड़श कलाभिमानी देवताएँ मूर्तिमंत रूप में संचार करते हैं। किन्तु इस भूमि में धर्म के बारे में उपदेश देकर उसको करके दिखाने वाले समर्थ रक्षक आपको छोड़कर कोई ब्रह्मसभा में भी नही है।।5।।

हरि के अनुग्रह के बिना चतुर्मुख ब्रह्मा भी धर्म के बारे में कह नहीं सकते। हरि के अनुग्रह से केवल वे ही कह सकते हैं। यह बात प्राधान्य नाम के ग्रंथ में कही गयी है।

हे देव मधुसूदन, भूमि में धर्म का उपदेश देकर, करके दिखाके रक्षा करने वाले आप इस भूमि को छोड़कर गये तो बाद में वह धर्म जब छिप जाता है तो उसको कौन कह सकता है।।6।।

इसी कारण सर्वधर्मज्ञ अच्युत, आप में भक्ति उत्पन्न करने वाले धर्म जिसको जैसे विहित है उसको मेरे लिए बताइये।।7।।

शुकदेव कहते हैं - हरिदासोत्तम उद्धव के इस प्रकार पूछने से भगवान श्री कृष्ण संतुष्ट होकर मानव के अभ्युदय के लिए सनातन धर्म का उपदेश देते हैं।।8।।

भगवान कहते हैं - हे उद्धव, तुमने जो पूछा वह सनातन धर्म वर्णाश्रम के आचार वाले सारे मानवों को मोक्ष देने का साधन बन गया है। उसके बारे में कहता हूँ, सुनो।।9।।

कृतयुग के आरम्भ में सृष्टि के प्रथम दिन कल्प में मानवों में चारों जाति एक ही तरह शुद्ध होकर हंस नाम से बुलाये जाते थे। लोग उनके अनुसार धर्माचरण करते हुये कृतकृत्य होते थे। इसके लिए उस युग को कृतयुग नाम पड़ा।।10।।

वेद भी ॐकार प्रतिपाद्य श्री हरि के बारे में कहते हुये एक ही रूप में प्रचलित थे। ब्रह्मादि देवताओं को लोग गुरु के रूप में मानते थे। उनको वेदोक्त देवताएँ इस प्रकार नही। बैल के समान धर्म चारों पादों से पूर्ण रूप से खड़े होकर मेरी आराधना करना ही मुख्य था। तपोनिष्ठ, दोषमुक्त लोग हंस नामक मेरी आराधना करते हुये पाप मुक्त होते थे।।11।।

हे महाभाग्यशाली, त्रेतायुग के प्रारम्भ में मेरे हयग्रीव रूप के नाक से मेरे प्रिय ब्रह्मा जी से ऋग् यजु और साम नाम के तीन रूप में वेद विद्या प्रादुर्भूत हुआ। उस वेदविद्या से होतृ, अध्वर्यु उद्गातृ इस प्रकार तीन प्रकार के ऋत्विजों से होने वाला यज्ञ में भोक्ता मैं अभिव्यक्त हुआ।।12।।

ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत मेरा वैराज पुरुष रूप के मुख बाहु, ऊरू पादों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जन्म लिए उनके विहित आचार ही उनके लक्षण बने हैं।।13।।

गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम मेरे कटि, छाती के निचले हिस्से से, छाती से और सिर से व्यक्त होकर वहीं आश्रय पाये।।14।।

लोगों का यह वर्ण आश्रम और स्वभाव उनके उत्पत्ति स्थानों के अनुगुण में नीच, नीचोत्तम उत्तम और उत्तमोत्तम इस प्रकार हुये।।15।।

भगवान के अवयवों में भेद नही होने से उनमें उच्च, नीच तारतम्य नहीं है। किन्तु लोक रूढ़ि से तारतम्य है।

भगवन्निष्ठा, इन्द्रियनिग्रह, अध्ययन, शौच जो मिला है उसी से तृप्त, काय, वाक मन में समान रीति से रहना, क्षमागुण मुझमें भक्ति दया, सत्य वचन ये ब्राह्मण के स्वभाव धर्म है।।16।।

तेज, बल, धैर्य, द्वंद्वसहिष्णुता, औदार्य, शत्रुनिग्रह, स्थिरता, ब्राह्मणभक्ति, प्रजापालन शक्ति ये क्षत्रियों का स्वाभाविक धर्म है।।17।।

आस्तिकता, दान निष्ठा, दाम्भिक न होना, ब्राह्मणों की सेवा, धन सम्पादन में अतृप्ति ये वैश्य के स्वभावभूत धर्म है।।18।।

वंचना रहित होकर गो ब्राह्मणों की और देवताओं की सेवा करना, सेवा से प्राप्त द्रव्य से संतुष्ट होना शूद्रों का स्वाभाविक धर्म है।।19।।

बाह्यशौच नही रहना, झूठ बोलना, चोरी करना, पुण्य पाप में विश्वास नहीं रखना, कारण के बिना झूठ बोलना, निषिद्ध कामना करना, निष्कारण झगड़ा करना, उपदेश दिये तो सहन नही करना यह वर्णबाह्य वालों का स्वभाव है।।20।।

अहिंसा, सत्य वचन, दूसरों के वस्तु को नहीं चाहना, निषिद्ध कामक्रोध को छोड़ना, प्राणियों का हित कामना करना ये सारे वर्णो के लोगों में आवश्यक रहने वाला साधारण धर्म है।।21।।

ब्रह्मचर्य धर्म

वेदोक्त विधान से उपनयन संस्कार पाकर द्वितीय जन्म पाते हुये द्विज कहलाने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य लोगों गुरुकुल में वास करते हुये, इन्द्रिय निग्रह करते हुये, मौन से रहते हुये वेद का अध्ययन करना चाहिए।।22।।

ब्रह्मचारी, मौंजी, कृष्णाजिन, पलाशदण्ड, अक्षमाला, यज्ञोपवीत, कमण्डलु, वस्त्र, आसन, और कुश का धारण करना चाहिए। शिखा को रखना चाहिए, दातून से दंत धावन नही करना चाहिए।।23।।

स्नान भोजन, ॐ जप करते हुए मलमूत्र विसर्जन के समय में मौन से रहना चाहिए। कक्षा जंघे के बगल में रहने वाले बालों को और नाखून नहीं काटना चाहिए।।24।।

ब्रह्मचर्यव्रत में रहने वाले को बुद्धि पूर्वक कभी भी वीर्य का विसर्जन नही करना चाहिए। अकस्मात विसर्जन हुआ तो प्रायश्चित रूप में पानी में डुबकी मारकर स्नान करके प्राणायाम और

गायत्री का जप करना चाहिए।।25।।

अग्नि, सूर्य, आचार्य, गुरु, गो, ब्राह्मण और बड़े लोगों को, देवताओं को नमस्कार करना चाहिए। तीनों संध्याकालों में एकाग्रचित्त से उपासना, जप करना चाहिए।।26।।

गुरु में रहते हुए उपदेश देने वाला मैं ही हूँ यह समझते हुये उनकी सेवा करनी चाहिए। किसी की विषय में गुरु का अपमान नही करना चाहिए। मानव समान समझते हुए उनके साथ क्रोध नही करना। सारे देवतामंत्र के उपदेशक गुरु में सभी देवताओं के सन्निधान का चिन्तन करना चाहिए।।27।।

सुबह-शाम भिक्षा से अन्न पाकर गुरु को समर्पण करना चाहिए। कमण्डल वस्त्र आदि वस्तुओं को किसी ने दान दिया तो उसको भी गुरु को अर्पण करना चाहिए। गुरु की अनुमति के अनुसार संयम पूर्वक आहर स्वीकार करना चाहिए।।28।।

गुरु को प्रवास में, सोते वक्त आसन में बैठते समय सेवा करते हुये सदा विनीत होकर उनके पास हाथ जोड़कर खड़े होना चाहिए।।29।।

इस प्रकार सदाचार युक्त होकर गंध, मालादि भोग को त्यागकर, विद्याभ्यास समाप्त होते तक अविच्छिन्न ब्रह्मचर्य व्रत का आचरण करते हुये गुरुकुल में वास करना चाहिए।।30।।

विद्याभ्यास समाप्त होने के बाद सत्यलोक और वेदों को आश्रयभूत सर्वाश्रय परब्रह्म नारायण को पाने के लिए यावज्जीव पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार करते हुये पुनः वेदाध्ययन के लिए गुरु की सेवा के लिए अपने काय का उपयोग करना चाहिए। अथवा गृहस्थ आश्रम को स्वीकार कर सकता है।।31।।

ब्रह्मचारी अग्नि में गुरु में अपने शरीर में और सारे प्राणियों में पूर्ण रूप वाले भगवान को एक चित्त से भगवान की आराधना करनी चाहिए। इससे ब्रह्मवर्चस और निष्कल्मष और प्रभाव वाला बनता है।।32।।

ब्रह्मचारी मुख्य रूप से स्त्रियों को देखना, स्पर्श करना, बातें करना, परिहास करना इत्यादि नहीं करना चाहिए। गृहस्थ को छोड़कर अन्य तीनों आश्रम वाले प्राणियों में होने वाले पुरुष स्त्री के संग को देखना नहीं चाहिए।।33।।

ब्रह्मचारी, शौच, आचमन, स्नान, संध्योपासना, कपट रहित वर्तन, तीर्थ यात्रा और जप-तप को करते रहना। अस्पृश्य वस्तु का स्पर्श करना, अभक्ष वस्तु का भक्षण करना, जिनके साथ बातें नही करना उनके साथ बातें करना इसका त्याग करना चाहिए।।34।।

हे यदुकुल को आनन्द लाने वाले उद्धव, यह नियम सारे आश्रमियों के लिए अन्वय होने वाला नियम है। सारे पदार्थों में मेरी चिन्तना करनी चाहिए। मन वाक और कृतियों में संयम रखना चाहिए। इस प्रकार ब्रह्मचारी रहने वाला मेरा भक्त ब्राह्मण अग्नि के समान प्रकाशमान होकर तीव्रतप से कर्म बन्ध को और बाह्यअन्तःकरण को जलाकर संसार से मुक्त होता है।।36।।

ठीक तरह से वेद का विचार करते हुये अभ्यास पूर्ण होने के बाद गृहस्थ आश्रम धर्म को चाहने वाला विद्यार्थी गुरु को दक्षिणा देकर उनकी अनुज्ञा से स्नातक व्रत को ग्रहण करना चाहिए। बाद में तीर्थ यात्रा करना चाहिए।।37।।

मेरा भक्त ब्राह्मणोत्तम स्नातक होने के बाद गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा सन्यास आश्रम स्वीकार कर सकता है। एक आश्रम से दूसरा आश्रम ग्रहण करना है किन्तु आश्रम रहित होकर जीना नही।।38।।

गृहस्थ धर्म

गृहस्थ धर्म को स्वीकारने की इच्छा रखने वाले ब्रह्मचारी को अपने से वय में कम रहने वाली कुल, गोत्र, लक्षणों से दोष रहित होकर अपने के अनुकूल पत्नी से विवाह करना चाहिए। वह समान जाति वाली होनी चाहिए। समान जाति की कन्या के साथ विवाह करने के बाद ब्राह्मण क्षत्रिय, क्षत्रिय वैश्य, वैश्य शूद्र कन्याओं से विवाह कर सकता है।।39।।

यज्ञ और अध्ययन आदि को सारे द्विज को करना चाहिए। याजन, अध्यापन प्रतिग्रहों को अपने उपजीवन के लिए केवल ब्राह्मण को करना है।।40।।

प्रतिग्रह से तप, तेज, और यश का क्षय होता है। इसके लिए अध्यापन और याजन से जीवन करना अच्छा है। प्रतिग्रह को दोष मानने वाला शिलोंछ वृत्ति से जीवन कर सकता है। खेत से किसान के धान्य को ले जाने के बाद गिरा हुआ धान्यों को ब्राह्मण ले सकता है।।41।।

ब्राह्मण के इस शरीर को भगवान अल्प विषयसुख के भोग के लिए नही दिया है। यह ज्ञानियों का मत है। इस कर्म भूमि में कृच्छ्र इत्यादि व्रत करते हुये ज्ञानरूप तप को पाने के लिए वर्णान्तर मोक्ष

को पाने के लिए यह शरीर है। ऐसा समझना चाहिए।।42।।

शिलोंछ वृत्ति से तृप्ति नहीं मिलती है तो फल कामना न करते हुये निर्मल मन से श्रवणादि और अतिथि सत्कार आदि महाधर्मों का आचरण करते हुये शरीर और मन दोनों को मुझको अर्पण करते हुये विषय सुख में अति आसक्ति न दिखाये तो गृहस्थ आश्रम से ही मुक्ति पा सकता है।।43।।

रोगादियों से अथवा दुर्जनों की पीड़ा से कष्ट में पड़ा हुआ मेरा भक्त ब्राह्मण को जो पार करते हैं उनका उद्धार मैं करता हूँ। समुद्र में झंझावात से त्रस्त नौका को पार करने जैसे इस संसार से उनको पार करते हुये उनको मोक्ष देता हूँ।।44।।

पिता अपने पुत्रों को हाथी के यजमान हाथियों को, ज्ञानी अपने शरीर को जैसे रक्षा करता है वैसे राजा अपने प्रजाओं की रक्षा करते हुये उनके कर्तव्य निर्वहन में आने वाले दुःखों से दूर करते हुये उनकी रक्षा करनी चाहिए।।45।।

इस प्रकार करने वाला राजा इस जगत के सारे अनिष्टों को दूर करते हुये सूर्य के समान प्रकाश देने वाला विमान में इन्द्र के साथ विहार करता है।।46।।

दारिद्र से दुःखित ब्राह्मण वैश्य वृत्ति से व्यापार कर सकता है। अथवा पराक्रमशाली है तो खड्ग धारण कर क्षत्रिय वृत्ति से जीवित रह सकता है किन्तु नीच जनों की सेवा सर्वथा नहीं करना चाहिए।।47।।

आपतकाल में क्षत्रिय वैश्य वृत्ति से, शिंकार से, अथवा ब्राह्मण की तरह अध्यापन वृत्ति से जीव निर्वाह कर सकता है किन्तु नीच लोगों की सेवा सर्वथा नही करना है।।48।।

वैश्य आपत काल में ब्राह्मण सेवा रूप, शूद्रवृत्ति से, शूद्र आपत के समय में करकुशल वृत्ति से जीवन यापन कर सकता है। किन्तु आपत चले जाने के बाद भी वही कर्म से जीवित रहने की इच्छा नही करना चाहिए।।49।।

अपने सम्पदा के अनुसार वेदाध्ययन और ब्रह्मयज्ञ से ऋषियों का, स्वधाकार्य से पितृओं का, स्वाहाकार से देवताओं का, बलियों से भूतों का, अन्न दान से मनुष्यों का, इस प्रकार पंच महायज्ञों से मेरी प्रतिमा रूप देव ऋषि, पितृ, भूत और मानवों की आराधना प्रतिदिन करना चाहिए।।50।।

देव, ऋषि इनको भगवान के रूप मानना यह भागवत का कथन है। किन्तु रूप शब्द से प्रतिमा रूप विवक्षित है। साक्षात् रूप भगवान से अभिन्न होते हैं। इस प्रकार प्राधान्य ग्रंथ में लिखा गया है।

संसार के साथ रहते हुये भी पत्नी पुत्रों से मिलने वाले सुख को शाश्वत नहीं मानते हुये उनमें ज्यादा आसक्ति नहीं दिखाना चाहिए। उनमें मग्न होकर भगवान को नहीं भूलना चाहिए। ज्ञानी होकर परलोक सुख को भी ऐहिक के समान नश्वर है इस प्रकार मानना चाहिए।।52।।

स्त्री, सुत, बन्धु-बान्धवों का समागम यात्रिक के समान अल्प समय के लिए है, इस प्रकार समझना चाहिए। नींद में जब स्वप्न आता है उसके समान प्रतिजन्म में अलग-अलग पत्नी-पुत्र मिलते रहते हैं।।53।।

इस प्रकार विचार करते हुये अपने पत्नी-पुत्रों के साथ अपने घर में रहते हुये भी अतिथि के समान रहना चाहिए। घर परिवार के बन्धन में नहीं मिलना चाहिए। अहंकार, ममकार को छोड़कर जीवन यापन करना चाहिए।।54।।

गृहस्थों के लिए विहित कर्मों से मुझमें भक्ति से आराधना करते हुये गृहस्थ आश्रम में रह सकता है। अथवा वानप्रस्थ आश्रम को स्वीकार कर सकता है। अपने पुत्रों के साथ पत्नी को छोड़कर सन्यास आश्रम भी स्वीकार कर सकता है।।55।।

किन्तु घर परिवार में अति आसक्ति रखने वाला, पुत्र पत्नी, सम्पत्ति की आशा से, रोगिष्ट होकर अथवा स्त्री वश होकर दीन होने से वह मूर्ख मैं और मेरा इस अन्यथा ज्ञान से बंधित होकर रहता है।।56।।

अरे माता-पिता वृद्ध हो चुके हैं, पत्नी और बच्चों का भी ख्याल रखना है। मैं नही रहूँगा तो वे सारे अनाथ होकर दुःखी बनते हैं। इस संसार में वे दुःखी होकर कैसे जीवन यापन करते हैं।।57।।

इस प्रकार घर परिवार की आशा रखने वाला हृदय में दुःख से भरकर भगवान रक्षा करते है इसको न समझते हुये अतृप्त होकर माता-पिता, पत्नी-पुत्र के चिन्तन का बहाना करते हुये मरण पाकर अंधंतमस में गिर जाता है।।58।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - अट्ठारह

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

वानप्रस्थ धर्म

भगवान कहते हैं- वानप्रस्थ आश्रम को पाने की इच्छा करने वाला अपनी पत्नी को बच्चों के वश में देते हुये अथवा पत्नी के साथ ही आयुष के तीसरे भाग को पूर्ति काल वन में रहते हुये मन में शान्ति रखते हुये वास करना चाहिए।।1।।

सौ वर्ष का आयुष का चार भाग किये तो प्रथम भाग पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्य में, द्वितीय भाग पच्चीस वर्ष अथवा आयु के पचास वर्ष तक गृहस्थ आश्रम में अनंतर के पच्चीस वर्ष आयु के तीसरा भाग यानी पचहत्तर वर्ष तक वानप्रस्थ आश्रम में रहना चाहिए, शेष आयुष में सन्यास आश्रम में जाना चाहिए अथवा जीवन का तीन भाग करते हुये वानप्रस्थ आश्रम तैत्तीस वर्ष रहना चाहिए

जंगल में मिलने वाले कन्दमूल फल अथवा अनिषिद्ध आहार से जीवन चलाना चाहिए। चीर वस्त्र, वृक्ष की पत्ती अथवा मृगछाल को धारण करना चाहिए।।2।।

सिर में रहने वाला बाल, शरीर का रोम, मूँछ इनको नहीं काटना चाहिए। शरीर की स्वच्छता के बारे में विशेष लक्ष्य नहीं करना चाहिए। दिन में तीन बार अवगाहन स्नान करना चाहिए। जमीन पर सोना चाहिए।।3।।

गर्मी के दिनों में चारों ओर आग जलाते हुये सूर्य के धूप में इस प्रकार पंचाग्नि का ताप सहन करते हुये तप करना चाहिए। वर्षाकाल में पानी पड़ते वक्त बाहर उसी में बैठकर जप करना चाहिए। जाड़े के दिन में कण्ठ तक पानी में डूबकर तप करना चाहिए। इस व्रत को पंचाग्नि, अभ्रावास, उदवास इस प्रकार कहते हैं।।4।।

सूर्य से पका हुआ फल वृक्ष में पका हुआ फल अथवा उलूख, पत्थर अथवा दाँत से चूर्ण

करते हुये आहार को खाना चाहिए।।5।।

अपने जीवनोपाय के लिए स्वयं ही उसी देश में उसी प्रदेश की अनुकूलता को देखते हुये वानप्रस्थी संग्रह कर सकता है। किन्तु अन्य लोग जो देते हैं उसको स्वीकार नही करना चाहिए।।6।।

वानप्रस्थ वन में जो धान्य बनता है, उसी से विहित अन्न अपूप करके होम करना चाहिए। पशुयाग से मेरी आराधना नहीं करना चाहिए।।7।।

अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास के होम, गृहस्थ के समान वानप्रस्थ को भी काल-काल में करना पड़ता है। इस प्रकार कल्पसूत्र में विधि किया गया है।।8।।

इस प्रकार तप करने वाले वानप्रस्थ मुनि के शरीर में रक्त, मांस सूख जाते हैं। नर-नाड़ी उभर कर दिखते हैं। वह वानप्रस्थी ज्ञानमय मेरी आराधना करते हुये ऋषि लोक को पाकर अंत में मुझको पाता है।।9।।

इस प्रकार कष्ट से करने वाला और महामोक्ष के लिए साधन बनने वाला इस तप को क्षुद्र और विषय सुख की सम्पादना के लिए प्रयोग करे तो उससे मूर्ख और कोई नहीं रहता।।10।।

वानप्रस्थी वृद्धाप्य से काँपते हुये अपने आश्रमोचित कर्म करने में असमर्थ हुआ तो अग्नि को अपने में समारोप करते हुये मेरे ध्यान करते हुये उसी अग्नि में प्रवेश करना चाहिए।।11।।

सन्यास धर्म

काम्यकर्म फल, विषय भोग देखने के लिए आकर्षक होते हुये भी दुःख दायक हैं। इसको समझने वाला ठीक तरह से विरक्ति होने के बाद अग्नि को अपने में समारोप करते हुये सन्यास आश्रम को स्वीकारना चाहिए।।12।।

विधि पूर्वक विरजा होम करते हुये मेरी आराधना करते हुये ऋत्विजों को अपने सर्वस्व को दक्षिणा रूप देते हुये अग्नियों को अपने हृदय में रहने वाला प्राणाग्नि में प्रवेश करते हुये किसी विषय की अपेक्षा न करते हुये सन्यास धर्म को स्वीकार करना चाहिए।।13।।

ब्राह्मण सन्यास लेने के पहले गृहस्थ आश्रम में भगवान की पूजा करते रहना चाहिए। नहीं तो उनके पत्नी पुत्र सन्यास को विघ्न करते हैं। भगवान के अधिष्ठान रूप में हमारी पूजा न करते हुये अतिक्रमण करते हुये भगवान का अपचार करते हुये भगवान को मिलने जा रहे हैं इस प्रकार

वे क्रोध करते हैं।।14।।

सन्यास को स्वीकार करने के पहले पंचमहायज्ञ पूर्वक देव, पितृ इत्यादि का पूजन करना चाहिए। नही तो वे इसको आश्रम के लिए अयोग्य मानकर नीचे ढकेल देते हैं। जो पूजा करते हैं उनके ऊपर अनुग्रह करते हैं। पूजा करने वाले को भी वे विघ्न कर सकते हैं क्योंकि आये हुए विघ्नों को यह जीत गया है इस कीर्ति को देने के लिए वे विघ्न करते हैं। यह बात निवृत्त नाम के ग्रंथ में आया है।

प्रणवोच्चार करते हुये त्याग किये हुये वस्तु में दण्ड, कमण्डलु छोड़कर किसी पदार्थ को न लेते हुये आपतकाल को छोड़कर कपड़ा को भी नहीं धारण करते हुये रहना चाहिए। भिक्षाटन के समय में लोक मर्यादा के लिए कौपीन धारण करना चाहिए। आपतकाल में, जाड़े के दिन में रोग के समय में वस्त्र धारण कर सकता है।।15।।

चलते समय जमीन में कृमि कीट न हो इसको देखकर पाँव रखना चाहिए। जल को वस्त्र से शोधन करके पीना चाहिए। सत्य से पवित्र बातों को बोलना चाहिए। श्री हरि की इच्छा के अनुसार धर्म का आचरण करना चाहिए।।16।।

उद्धव मौन से वागिन्द्रिय का दण्डन निषिद्ध सेवन को त्यागने से शरीर का दण्डन, प्राणायाम से मन का दण्डन इस प्रकार तीनों दण्डन जिसको नहीं है वह तीन दण्ड को पकड़े तो भी सन्यासी नहीं बनता है।।17।।

चारों वर्णों में पतित के घर को छोड़कर, कलियुग में शूद्र को छोड़कर अन्य लोगों में यति को भीख माँगना चाहिए। भीख माँगने आ रहा हूँ इसको पहले न बताते हुये भिक्षा के लिए सात घर को जाते हुये वहाँ जो मिलता है उसी से तृप्ति पाना है।।18।।

गाँव के बाहर रहने वाला जलाशय को जाकर हाथ मुँह धोकर आचमन करते हुए लाया हुआ अन्न को प्रोक्षण करने से हरि को अर्पण करना है। (प्रोक्षण करने से अन्न शुद्धि होता है) गो ग्रास आदि के लिए थोड़ा अलग रखकर जो बचता है उसको पूर्ण रूप से मौन से खाना है।।19।।

विषयासक्ति को छोड़कर इन्द्रिय निग्रह को करते हुए हृदय में भगवान के स्वरूप को देखते हुए आनन्द करना चाहिए। भगवान को ही स्वामी मानकर वे ही निर्दोष होकर सब स्थानों में समान रूप से रहते है इस प्रकार समझना चाहिए।।20।।

निर्जन, निर्भय स्थल में वास करना चाहिए। मेरी भक्ति से मन को निर्मल करना चाहिए।

अपने बिम्ब मूर्ति को मुझसे अभिन्न और सर्वोत्तम है इस प्रकार समझ लेना चाहिए। ये दोनों श्री हरि के अधीन ही हैं। इसको समझना चाहिए।।21।।

इन्द्रिय विषयों की दिशा में चलते हैं यही बन्धन का मुख्य कारण है। इन्द्रिय निग्रह ही मोक्ष का कारण बनता है। ये दोनों हरि के अधीन हैं इस प्रकार समझना चाहिए।।23।।

केवल भिक्षा के लिए धन समृद्ध नगर गाँव और गोशालाओं के संदर्शन करना चाहिए। अन्य समय में पुण्यकर क्षेत्र, नदी, पर्वत, अरण्य आश्रमों से भरी हुयी भूमि में संचार करना चाहिए।।24।।

सामान्यतः वानप्रस्थी लोग जहाँ रहते हैं वहाँ ज्यादा समय भिक्षा माँगना चाहिए। क्योंकि वे शिलोंच्छ वृत्ति से सम्पादन किया हुआ अन्न से जीवन निर्वाह करते हैं जो अन्तःकरण शुद्धि और मिथ्याज्ञान निवृत्ति देता है ये अपरोक्ष के लिए-मोक्ष के लिए साधन है।।25।।

आँख को दिखने वाले इस प्रपंच को स्वतंत्र नहीं मानना चाहिए। ऐहिक, आमुष्मिक घर में आसक्ति को छोड़कर उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना छोड़ देना चाहिए।।26।।

मन, वाक, प्राण से भरा हुआ यह जगत त्रिगुणात्मक प्रकृति से बनता है। **माया** = मा-अय इसका अर्थ फल न मिलने वाला होता है। स्वतंत्र श्री हरि को फल देने से उसको अय नाम से पुकारते हैं। यह निवृत्त नाम के ग्रंथ में कहा गया है। यह हरि के अधीन रहता है। इस प्रकार तर्क से निश्चय करते हुये उसको त्याग देना चाहिए। मन में उसको किसी प्रसंग में याद नही करना चाहिए। स्वतंत्र श्री हरि में निष्ठा से रहना चाहिए।।27।।

ज्ञाननिष्ठ होकर, विरक्त जीवन चलाते हुये किसी फल की अपेक्षा न करते हुये मुझमें भक्ति करने वाले यति दण्ड कमण्डलु इत्यादि लक्षण वाले होते हैं। उनमें कुटीचक, बहूदक हंस नाम के तीन तरह के यति होते हैं। चौथा एक आश्रम है वह परमहंस सन्यास धर्म है। उसको भी स्वीकार कर सकते हैं। इसको वेद के विधि निषेध होते हुये वह है, इससे न डरते हुये पानी जैसे बिना अड़चन से स्वाभाविक रूप से बहता है ऐसे स्वविहित कर्म करते हुए संचार करना चाहिए।।28।।

ज्ञानी होते हुए भी देखने वाले लोगों को मुग्ध बालक के समान लगे ऐसा होना चाहिए। कुशल होते हुए भी मंद के समान रहना चाहिए। पण्डित होते हुये भी मूर्ख के समान बातें करना चाहिए। वेद विद् होते हुए भी पशु के समान रहना चाहिए। ज्ञान और पाण्डित्य का प्रदर्शन नहीं

करना चाहिए।।29।।

कुतर्क से वेद के विरुद्ध अर्थ करते हुये वाद नहीं करना चाहिए। ज्ञानी अपने मन के विरुद्ध और विधि विरुद्ध जाने की प्रवृत्ति वाला नहीं होता है। तो भी प्रारब्ध के कारण कभी-कभी वह दिखता है। वह मेरी कृपा दृष्टि से नष्ट होता है। प्रारब्ध नष्ट होने के बाद मेरे अनुग्रह से इसको मोक्ष मिलता है। पाषण्ड मत को स्वीकार नही करना चाहिए। दुष्टतर्क में उससे आदर नहीं रखना चाहिए। शुष्क वाद को करते हुये किसी पक्ष का आश्रय नहीं करना चाहिए।।30।।

लोगों को भयभीत नहीं करना चाहिए और स्वयं भयभीत नहीं होना चाहिए। झूठे अपवादों को सहन करना चाहिए। किसी का अपमान नहीं करना चाहिए।।31।।

अपने शरीर के कारण पशु के समान किसी के साथ वैर नहीं रखना चाहिए।।32।।

सारे जल पात्रों में आकाश जैसे रहता है वैसे ही सारे प्राणियों में और अपने में एक ही भगवान रहते हैं इसको समझना चाहिए। इससे सारे प्राणी एक ही परमात्मा के अधीन होते हैं। प्राणियों में परस्पर स्नेह करते हुये द्वेष इत्यादि को भी भगवान ही कारण हैं इस प्रकार समझकर द्वेष करने वाले से भी द्वेष नहीं करना चाहिए।।33।।

सारे जीवियों को परस्पर द्वेष निर्माण करते हुये अपकार करने वाला भी तथा स्नेह को उत्पन्न करते हुये उपकार करने वाले भी केवल भगवान ही है। यह भद्रमान नाम के ग्रंथ में है।

सारे बर्तनों में आकाश है, आकाश के अभिमानी विघ्नराज गणपति हैं। वह बर्तन के अन्दर बाहर व्याप्त हैं। अन्दर रहने वाले आकाश को विघ्न देवता ही गणपति पुत्र होते हैं वे अभिमानी है। यदि घट टूट गया तो भी वहाँ रहने वाला आकाश नष्ट नहीं होता। घट पांचभौतिक होने के कारण उसमें अंश रूप से रहने वाला आकाश भी मिला है। घट नाश होने से उसका आकार नष्ट होता है इसके अभिमानी क्षुद्र विघ्न देवताएँ, विघ्नेश्वर के भृत्य हैं। घट के अंशरूप में रहने वाले आकाश में भी तथा घट के अन्दर रहने वाले आकाश में भी एक ही बड़ा महा आकाश व्याप्त है। उसी प्रकार असुर जीवों में तथा देवताओं में भी परस्पर द्वेष और स्नेह को पैदा करते हुये उनमें रहने वाले केवल एक ही भगवान है। यह विनिर्णय नाम के ग्रंथ में है।

सकाल को अन्न न मिलने से मन छोटा नहीं करना चाहिए। मिलने से आनन्द नहीं पाना चाहिए। धैर्य से दोनों को सहन करना चाहिए। दोनों भगवान के अधीन है।।34।।

आहार के लिए यत्न करना चाहिए क्योंकि आहार से जीव रक्षण होता है। प्राणाधार के

अनन्तर ही परत्पर तत्व विचार, उससे ज्ञान फिर उससे मोक्ष, इस प्रकार मिलते हैं।।35।।

हरि इच्छा से जो अन्न मिलता है वह मिष्ठान्न रहे या कदन्न रहे, उसको स्वीकार करना चाहिए। उसी प्रकार लोगों द्वारा दिया हुआ कपड़ा, बिस्तर अच्छे रहे, बुरा रहे, हरि की इच्छा से जो मिला है उसको प्रयोग में लाना है।।36।।

शौच, आचमन, त्रिकाल स्नानादि विधि (करने की नियमन) विधि रहने से भय के कारण उनका आचरण नहीं करना चाहिए। भगवान श्री हरि की लीला से मैं उनका आचरण कर रहा हूँ। इस प्रकार ज्ञानी को स्वाभाविक रीति से, प्यार से सन्यास धर्म का आचरण करना चाहिए।।37।।

भय से धर्माचरण करे तो अल्प फल मिलता है, प्यार से करे तो महाफल मिलता है। यह विनिर्णय नाम के ग्रंथ में है।

ज्ञानी के मन में विधि विरुद्ध जाने की प्रवृत्ति नही रहती है। किन्तु प्रारब्ध के कारण कभी-कभी वह दिखती है। मेरी कृपा दृष्टि से वह नष्ट होती है प्रारब्ध नष्ट होने के बाद मेरे अनुग्रह से वह नष्ट होती है।।38।।

ऐसा करे तो अधर्म होता है इस प्रकार मन में विकल्प करते हुये योगी डर से निषिद्ध को त्यागता है। विहित कर्म करता है यह अज्ञानियों का तरीका है। ज्ञानी पहले से ही विहित कर्म में प्रवृत्ति करता है। अकस्मात प्रारब्ध से निषिद्धाचरण करे तो भी उसको वह अनर्थ कारक नहीं बनता। श्री हरि का अनुग्रह ही उसका रक्षक बनता है। मोक्ष में ऐसा प्रसंग नहीं होता है। यह बात धर्मतत्व नाम के ग्रंथ में आती है।

मेरे गुणधर्मों को विचार न करने वाले जिज्ञासु यति को दुःख फल देने वाले विषय भोगों में वैराग्य पाकर योग्य ज्ञानी गुरु की सेवा करनी चाहिए।।39।।

भगवान गुणपूर्ण है इस प्रकार जब तक ज्ञान नही होता, तब तक उस गुरु को भक्ति, श्रद्धा आदर से कभी-भी क्रोध न करते हुये सेवा करनीं चाहिए।।40।।

गुरु सेवा को ज्ञानोदय होते तक करना चाहिए। इसके अनन्तर भी करते रहना चाहिए। क्योंकि मोक्ष गुरु के अनुग्रह के बिना नही मिलता है। यह धर्मतत्व नाम के ग्रंथ में है।

भयकारक इन्द्रियों को सारथी करते हुये यति त्रिदण्ड सन्यास को जीवन का आधार बनाते हुये देवताओं को और अपने में अन्तर्यामी होकर रहने वाले मुझमें और अपने से कोई अन्य

नही है ऐसे बोलते हुए सन्यास धर्म को नष्ट कर देता है। अन्तःकरण के मल को शोधन न करते हुए इह और पर में पतित होता है।।41,42।।

सन्यासी को भगवद्भक्ति और अहिंसा की अत्यन्त आवश्यकता है। वानप्रस्थ को तप और ज्ञान साधन, गृहस्थ को प्राणी की रक्षा और पंचयज्ञ, ब्रह्मचारी को गुरुसेवा और गुरुकुलवास यही धर्म है।।43।।

वानप्रस्थ, सन्यास न स्वीकार करते हुए यति और ब्रह्माचारियों की रक्षा करते हुये गृहस्थ धर्म से ही मुक्ति चाहने वाला गृहस्थ ब्रह्मचर्य यानी अनिषिद्ध दिन में पत्नी गमन का नियम साधना चाहिए और कृच्छ चांद्रायण व्रत, तप, शौच तथा जो मिलता है उसी से तृप्ति, प्राणिदया ये सारे होना चाहिए। ये सारे आश्रम वाले को मेरी उपासना कर्ना आवश्यक मुख्य धर्म है।।44।।

इस प्रकार अपने के लिए जो विहित धर्म है उसका आचरण करते हुये प्रतिदिन मेरा संकीर्तन करते हुये अन्य देवताएँ भगवान नारायण के अधीन हैं, ऐसे भजन न करते हुये सर्व प्राणियों में मैं रहता हूँ इस प्रकार समझने वाला मुझमें जल्दी ही भक्ति पाता है।।45।।

हे उद्धव, अचल भक्ति करते हुए मेरे भक्त बनों इस जगत के स्वामी सकल विश्व का सृष्टिलय के कारण, चतुर्मुख ब्रह्मा जी पिता मेरे को पा सकते हो।।46।।

इस प्रकार स्वधर्म से अन्तःकरण शुद्धि पाते हुये मेरे स्वरुप के ज्ञान को समझते हुये विज्ञान सम्पन्न होकर जो विरक्त होता है वह मुझको पाता है।।47।।

वर्णाश्रम धर्म को आचरण करने वाले विहित ये आचरण रूप धर्म जो हैं वह भक्ति से मिले तो अज्ञानियों का अन्तःकरण भी इस प्रकार शुद्धिकारक होता है। उसी धर्म को ज्ञान के बाद करे तो वह उत्तम मोक्ष में आनन्द का अभिवृद्धि का कारण बनता है।।48।।

हे सज्जन उद्धव, तुम्हारे प्रश्न के अनुसार मैं उपदेश देते आया हूँ। एक ही वाक्य में कहना है तो स्वधर्म का आचरण करते हुये मेरी भक्ति करने वाला सर्वोत्तम मुझको पा सकता है।।49।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - उन्नीस

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

यम आदि नियम

श्री कृष्ण भगवान कहते हैं - जो सतशास्त्र श्रवण करते हुये इन्द्रिय निग्रह को पाकर वेद पुराणों का विचार करता है वह इस जगत को **माया मात्र** मेरी इच्छा से प्रकृति से बना है यह ज्ञान मेरे अनुग्रह से पाकर मेरे पूजा रूप वाले अपने कर्म को मुझको समर्पित करता है।।1।।

माया यानी त्रिगुणात्मक प्रकृति। उससे बना हुआ यह जगत माया मात्र कहा जाता है। इस जगत का निर्माण करने से प्रकृति का नाम माया पड़ा है। इस प्रकार प्रभव नाम के ग्रंथ में आया है। मुझमें यह ज्ञान हरि पूजा रूप में है। हरि के अनुग्रह से उत्पन्न हुआ है तथा हरि के अधीन है इस प्रकार चिन्तन करना हरि को ज्ञान समर्पण करना है। प्रभव नाम के ग्रंथ में इस प्रकार कहा गया है।

ज्ञानी को मैं चाहता हूँ। उसको मैं ही पुरुषार्थ हूँ, पुरुषार्थ देने वाला हूँ। जीव को स्वर्ग, मोक्ष अथवा ऐहिक सुख इन सभी में उसका मेरे से ज्यादा प्यार उसमें नहीं है।।2।।

मेरे बारे में सामान्य ज्ञान और विशेष ज्ञान रखने वाला मेरे स्वरूप को ही श्रेष्ठ पुरुषार्थ मानता है। इसी कारण वैसा ज्ञानी मुझको अत्यन्त प्यारा लगता है। वह ज्ञान से मेरे अनुग्रह को पाता है।।3।।

ज्ञान का एक अंश को देने वाला शुद्धि को तप को, तीर्थ यात्रा, जप दान और पवित्र ब्रह्मचर्य यम, नियमादि कोई नियम नहीं बनता। इस प्रकार ज्ञान सबसे श्रेष्ठ है।।4।।

उद्धव सारे विषय के सामान्य ज्ञान और विशेष ज्ञान वाला ज्ञानी मुझको स्वामी मानता है। मुझको जानकर भक्ति से शुद्ध होकर मेरी आराधना करो। इस रीति से तुम सामान्य और विशेष दोनों ज्ञानों का स्वामी बनो।।5।।

मुनि लोग अपने स्वामी सर्वयज्ञ नियामक मुझको सामान्य और विशेष ज्ञान नाम के यज्ञ से

मेरी आराधना करते हुये अपरोक्ष को उसके द्वारा मोक्ष को पाते हैं।।6।।

हे उद्धव, तुम्हारे आश्रय में रहने वाला उत्पत्ति, स्थिति नाश रुप तीन तरह का विकार जो है वे ही माया कहलाते हैं। यह माया को मैंने ही सृष्ट किया है। वह जीव के लिए स्वाभाविक नही है कर्म के अनुसार देह को ये तीनों विकार होते हैं और यह देह मेरा है। इस अभिमान से तुमको आया है। वह प्रलय और मुक्ति में यह माया नही रहती। इसी कारण शरीर को होने वाले जनन मरण आदि जीव को स्वाभाविक नही हैं। अस्वतंत्र चेतन को सृष्टि के प्रारम्भ में और मुक्ति में जो रहता है वह संसार अवस्था में रहता है। वही उसको स्वाभाविक आनन्द स्वरुप है।।7।।

माया का अर्थ निर्माण भी होता है, देह के उत्पत्ति, नाश, रूप, विकार ही कर्म के कारण अभिमान से जीव में निर्मित होता है। जीव में स्वाभाविक रूप से नहीं होता। यदि यह होता है तो प्रलय और मुक्ति में वह दिखता था। वह दिखता नही इसका अर्थ वह जीव का स्वभाविक नहीं है। इस प्रकार ब्रह्मतर्क में आता है। प्रकाशिक नाम के ग्रंथ में भी यह बात आती है।

ज्ञान-विज्ञान

उद्धव प्रश्न करता है - हे विश्वेश्वर विश्वमूर्ति, वैराग्य और विशेष ज्ञानयुक्त आपका ज्ञान उपदेश परम्परा से आता है। भक्ति का साधन बनता है। महात्मा लोग उसका अन्वेषण करते हैं यह ज्ञान अनेक विषयों के साथ मिथ्या ज्ञान से सम्पर्क न होते हुये शुद्ध होकर कैसे उत्पन्न होता है इसको बताइये।।8।।

हे प्रभु, घोर तापत्रय से पीड़ित होकर संसार मार्ग में तपने वाले जीव को अमृत समान वृष्टि देने वाले आपके पाद कमल नाम के छत्र के बिना और कोई आश्रय दिखता नही।।9।।

हे महानुभाव, इस संसार नाम के बिल में गिर गया हूँ। काल नाम का साँप काट रहा है। क्षुद्र विषय का सुख और दुराशा नाम के भूख-प्यास से दुःखित इस संसारी जीव के ऊपर कृपा करते हुये आप मोक्ष साधन रूप उस उपदेश वाणी का पवित्र जल छिड़काइये।।10।।

श्री भगवान कहते हैं - बहुत दिन पहले भारत युद्ध समाप्त होने के बाद बन्धु वध से दुःखित राजा युधिष्ठिर धर्मज्ञों में श्रेष्ठ भीष्म पितामह से अनेक धर्मों के बारे में पूछ कर अनेक उत्तरों को पाकर सारे लोग इसको सुनते-सुनते मोक्ष धर्मों के बारे में भी सुन लिए।।11,12।।

भीष्म से सुना हुआ उस मोक्ष धर्म को मैं तुम्हारे लिए कहता हूँ। वे ज्ञान-विज्ञान, वैराग्य और श्रद्धा भक्ति से मिले हुये हैं।।13।।

पंच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, महत्तत्व, जड़ प्रकृति ये सारे मिलकर नौ होते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और मन मिलकर ग्यारह होते हैं। शब्द स्पर्श, रूप, रस, गंध इस प्रकार पाँच होते हैं और सत्व, रज, तमो गुण इस प्रकार मिलकर अट्ठाईस तत्वों को समझ लेना चाहिए। उन तत्वों का नियामक होकर रहने वाले एक ही भगवान के बारे में जान लेना इसको सामान्य ज्ञान होता है। यह मेरा निर्णय है।।14।।

यह ज्ञान ही नही, विज्ञान भी होता है। सत्वादि गुणत्रयों का कार्य उसमें होता है। ऐसे त्रिगुणात्मक माने जाने वाले चेतनों का **नः** अपने में, **एकेन** स्वतंत्र रूप से रहने वाला, **यत** जिसमें स्थिति, उत्पत्ति नाश रहते है जिस भगवान में ये तीनों होते हैं वह भगवान स्वतंत्र है यह मानना विज्ञान अथवा विशेष ज्ञान होता है।।15।।

सृष्टि के प्रारम्भ में प्रलय के बाद रहने वाला बीच का काल स्थिति काल माना जाता है। इन तीनों कालों में सर्वज्ञ होकर सृष्टिकाल में लोगों की सृष्टि करते हुये उनमें प्रवेश करते हुये प्रेरणा देने वाले भगवान ही है। अंत में लय होने के बाद केवल एक वे ही रहते हैं, ऐसे भगवान को **सत** = स्वतंत्र इस प्रकार समझ लेना विशेष ज्ञान है, विज्ञान है।।16।।

स्वरुप, योग्य, भगवद् ज्ञान की उपासना ज्ञान युक्त हुआ तो विज्ञान बनता है। यह प्रभास नाम के ग्रंथ में है। सत्य इसका अर्थ स्वातंत्र्य होता है। वह श्री हरि में है, अन्य किसी में नही है। यह महाभारत में कहा गया है।

स इदं सर्वमसृजत यह श्रुति ब्रह्मादि लोगों को प्रत्यक्ष और इतिहास से समझ में आती है। वह भगवान सारे प्रपंच उनके अधीन होने के कारण वे सर्वोत्तम माने जाते हैं। ये सारे प्रमाण श्री हरि स्वतंत्र हैं इसके बारे में कहते हैं। उनमें परस्पर विरोध नहीं है। इसी कारण ज्ञानी इन प्रमाणों को समझ लेने के बाद विकल्प यानी विरुद्ध कल्पना नही करता है।।17।।

ब्रह्मलोक पर्यन्त सारे कर्म रूप ही फल होता है, स्वर्गादि, पारित्रिक, ऐहिक कार्य अमंगल है उसमें सार नही है, नश्वर है इस प्रकार ज्ञानी को समझ लेना चाहिए।।18।।

हे पाप रहित उद्धव, मैंने पहले ही तुमको भक्ति रूप उपाय को बताया हूँ। उपदेश सुनते-सुनते संतोष का अनुभव करने वाला तुमको भक्ति के मुख्य उपाय को अब पुनः कहता हूँ, सुन लो।।19।।

अमृत के समान रहने वाली मेरी कथा में श्रद्धा रखने वाले को कोई आपद और विपदा आये तो भी वह मेरे नाम संकीर्तन और पूजा को छोड़ता नही। इस दृढ़ निर्धार से मुझको सदाकाल स्तुति से कीर्तन करना ही भक्ति उत्पन्न करती है।।20।।

मेरी सेवा में आदर रखना सर्वांगों से नमस्कार करना, विशेषकर मेरे भक्त ब्रह्मादि देवताओं की पूजा करना सभी में प्रेरक होकर मैं रहता हूँ यह प्रज्ञा रखना ही भक्ति का कारण बनता है।।21।।

अपनी शारीरिक क्रियाओं को मेरी सेवा में जोड़ देना, बातों से मेरे गुणों का वर्णन करना, मन को भी मुझे अर्पित करते हुये मुझको छोड़कर अन्य किसी विषय की कामना न करना भक्ति का कारण बनता है।।22।।

मुझको पाने के लिए सारे भोग पदार्थ और सुख का परित्याग करना मेरी प्रीति पाने के लिए यज्ञ, दान, तप इत्यादि स्वीकारना भक्ति का कारण बनता है।।23।।

सारे धर्मों को भगवान को ही अर्पित करने वाला इस तरह के भक्त में धर्मानुष्ठान से मुझमें भक्ति उत्पन्न होती है। उद्धव एक बार भक्ति उत्पन्न होने के बाद सारे पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। इसमें संशय नहीं है।।24।।

सत्व गुणों से भरा हुआ विषय की आशा न रहने वाले मन को मुझमें रखने वाला भक्त, धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यों को पाता है।।25।।

श्री हरि के विरुद्ध विषयों में मन रखे तो वह इन्द्रियों को विषयों की ओर खींचता है। दुष्ट विषयों में स्थिर होने के कारण उनमे रजोगुण, तमोगुण भर जाते हैं, उससे धर्मज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य नष्ट होते हुये विपरीत में अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य के लिए कारण बनता है। यह समझ लो।।26।।

धर्म का अपरोक्ष ज्ञान होने के बाद जो भक्ति उत्पन्न होती है वह पुण्यकारक है। अपरोक्ष के बाद श्री हरि के सर्वोत्तमत्व को विशेषकर समझ लेना ज्ञान कहलाता है। दैव की इच्छा से मिलने वाले विषयों का अनुभव करते समय आसक्ति को न रखना वैराग्य कहा जाता है। अपरोक्ष होने के बाद ये जब चाहे तब मिलने वाले अणिमादि ऐश्वर्य हैं।।27।।

एक का अर्थ सर्वोत्तम होता है। सर्वोत्तम आत्मा ही एकात्म है, वही विष्णु हैं। उनके सर्वोत्तमत्व को जानना ही ऐकात्म्य दर्शन है। यह बात त्रैकाल्य नाम के ग्रंथ में आती है।

उद्धव पूछता है - शत्रुओं का नाश करने वाले प्रभु श्री कृष्ण यम कितने विध होता है। नियम कितने होते हैं। सम का अर्थ क्या है? दम, तितिक्षा और धृति इसके बारे में भी कहिए।।28।।

हे कमल के समान आँख वाले जनार्दन दान क्या है? तप किसको कहते हैं? शौर्य का अर्थ

क्या है? सत्य किसको मानना है, तृप्ति देने वाला अन्न कौन सा है? शौच का अर्थ क्या होता है?।।29।।

केशव त्याग क्या है? श्रेष्ठधन कौन सा है? यज्ञ से आराध्य कौन है? दक्षिणा क्या है? मानव को उत्तम बल क्या है? भग का अर्थ क्या है? लाभ किसको कहते हैं?।।30।।

विद्या क्या है? लज्जा क्या है? श्रेष्ठ सम्पत कौन-सा है, किसको सुख कहते है, दुःख क्या है? पण्डित कौन है, मूर्ख कौन है? मार्ग क्या है, मार्ग का अतिक्रमण क्या है?।।31।।

हे भगवान, स्वर्ग क्या है, नरक क्या है? बन्धु कौन होते हैं, घर कौन-सा है? धनिक कौन है, दरिद्र कौन है? कृपण कौन होता है, ईश्वर कौन है? विपर्यय कौन है? सज्जनों के स्वामी, इन सब विषयों के बारे में मुझे उपदेश दीजिए।।32।।

श्री भगवान कहते हैं - अहिंसा सत्य को ही बताना, चौर्य नही करना, दुर्जनो का सहवास न करना, शास्त्र विरुद्ध आचरण करने में लज्जा अनुभव करना, निषिद्ध तरह से द्रव्य संग्रह नहीं करना वेदशास्त्रों में श्रद्धा रखना, ब्रह्मचर्य और मौनव्रत में स्थिर रहना, क्षमा, भगवान है इसमें विश्वास रखते हुये किसी से न डरना, ये बारह यम होते हैं।।33।।

शौच, जप,तप, होम, धर्माचरण में श्रद्धा, अतिथि सत्कार, हरि नाम संकीर्तन, हरि पूजा, तीर्थ यात्रा और सज्जन हित के लिए कार्य करते रहना, जो मिलता है उसी से तृप्त रहना, गुरु की सेवा करना, वेद का अध्ययन करना ये बारह नियम हैं।।34।।

हे उद्धव, इस प्रकार इन बारह तरह के यम-नियमों का अनुष्ठान करे तो वे इच्छित फल को देते हैं।।35।।

मुझमें मन रखना शम है, इन्द्रिय निग्रह दम है। दुःख सहन करना तितिक्षा है। रसनेन्द्रिय, गुह्येन्द्रिय इनके वेग को निरोध करना धृति माना जाता है।।36।।

सबसे श्रेष्ठ दान शारीरिक दण्डना न करते हुये अपराधी को भी अभय देना श्रेष्ठ दान है। विषयभोग त्याग करना तप है। मनोनिग्रह ही शौर्य है, वस्तुओं को वास्तविक रूप में ग्रहण करना सत्य है।।37।।

प्रिय और हितकर बातों को ज्ञानी लोग तृप्तिकर अन्न मानते हैं। कर्म में फल की आशा और कर्तृत्व का अभिमान न रहना ही शौच माना जाता है। मिथ्याभिमान त्याग देना, सन्यास ही त्याग माना जाता है।।38।।

पुण्य ही सज्जनों को इष्ट होने वाली सम्पद है। पूर्ण षडगुण सम्पन्न मैं ही यज्ञ हूँ। ज्ञानोपदेश देना ही दक्षिणा है। प्राणायाम ही श्रेष्ठ बल है।।39।।

मुझको स्वामी मानना और उसका सदाकाल याद रखना भग अथवा सम्पत्ति होती है। मुझमें भक्ति करना उत्तम लाभ है। भगवान जगद विलक्षण मानना विद्या कहलाती है। निषिद्ध कर्म करने में हिचकिचाना लज्जा है।।40।।

धन की अपेक्षा नही करना इत्यादि गुण सम्पत हैं। दुःख नही रहना सुख है। विषय की आशा ही दुःख है। बन्ध मोक्ष को समझने वाला पण्डित है।।41।।

देहादियों में मैं स्वतंत्र हूँ, इस प्रकार मानने वाला मूर्ख है। मेरे ज्ञान को दिखाने वाले वेद ही मार्ग हैं। भगवान को छोड़कर और किसी में मन रखना दुर्मार्ग है। उसी को मार्गातिक्रमण बोलते है। सत्वगुण समृद्धि ही स्वर्ग है।।42।।

तमोगुण की वृद्धि ही नरक है। उद्धव सबका बन्धु मैं ही हूँ। ग्रह का अर्थ मानव शरीर है। गुणवान जो है वह अमीर है।।43।।

तमोगुण वृद्धि ही नरक माना जाता है। तृप्ति जिसको नहीं है वह दरिद्र है। विषय सुख को बुरा है मानते हुये भी इन्द्रिय निग्रह न करने वाला कृपण है। विषयासक्ति को जो छोड़ा है वह ईश्वर है, समर्थ है। विषय सुख को सुख मानते हुये आसक्ति रखना ही विपर्यय है।।44।।

हे उद्धव, तुम्हारे सारे प्रश्नों का उत्तर दे चुका हूँ। तुम्हारे प्रश्नों के अनुसार मैं उत्तर दिया हूँ। गुण दोषों का स्वरुप भी बता चुका हूँ। अब ज्यादा कहने से क्या प्रयोजन है। फिर भी गुण दोषों का लक्षण बताता हूँ। गुणों को दोष मानना, दोष को गुण मानना दोनों दोष हैं। इन दोनों को छोड़ना गुण है। यम, दमादि गुण हरि पूजा रूप बने तो गुण माने जाते हैं। नहीं तो दोष बनते हैं।।45।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - बीस

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

भक्ति योग का महत्व

उद्धव बोलता है - हे कमल के समान आँख वाले श्री कृष्ण, वेद विधि निषेधों से सर्वेश आपकी सदाकाल के लिए स्तुति करते रहते हैं। उसके साथ कर्मों के गुण दोष के बारे में चिन्तन करता है।।1।।

अधिकारी में वर्णाश्रम धर्म के बारे में गणना करना है। प्रतिलोम जाति वाला अधिकारी नही बनता, अनुलोम जाति वाला अधिकारी कहता है। उन द्रव्य, देश, वय, कालों को और पुण्य पाप के फल स्वरूप स्वर्ग, नरकों की भी गणना करना है।।2।।

किन्तु आपकी बात गुण दोष का विवेक ज्ञान को नहीं करना ऐसा कहता है। तो विधि निषेध रूप वेद मोक्ष साधक कैसे बनता है?।।3।।

आँखों को न दिखने वाला धर्म-अधर्म, स्वतंत्र-अस्वतंत्र, मोक्ष-ज्ञान, स्वर्ग कर्म इत्यादि साध्य साधन के बारे में जानने के लिए देव, पितृ, मनुष्य, ऋषि, चक्रवर्ती, ऐसे सारे योग्य लोगों के लिए आपके उपदेश रूप यह वेद ही **श्रेयश्चक्षु** यानी श्रेष्ठ आँख है। ऐसा वेद गुण दोषों का विचार न करते हुये विधि निषेधों का बोध करे तो वह ग्राह्य नही होता, अप्रमाण बनता है।।4।।

वेद प्रमाण बनने के लिए उसको गुणदोष में भेद दृष्टि स्वाभाविकतया आवश्यक है। किन्तु आप जो कहे हैं उसके लिए गुण दोष भेद विचार की आवश्यकता सर्वथा नही है ऐसा होता है। इस प्रकार का भ्रम मेरे मन में भ्रमण कर रहा है। इससे मन चंचल बना है।।5।।

श्री भगवान कहते हैं - योग्य जीव को श्रेय देने वाली इच्छा से मैं ज्ञान, कर्म और भक्ति नाम के तीन साधनों के बारे में कहा गया हूँ। इनको छोड़कर और साधन कहीं नही है।।6।।

भगवान स्वाभाविक ही गुण स्वरुप हैं। इसका अर्थ अत्यन्त पुण्यकर स्वरुप वाले हैं और कुछ भगवान के लिए प्रिय बने तो वह पुण्यकर होता है। अप्रिय बने तो पापकर होता है। ज्ञानी इसको जानता है। अज्ञानियों को समझने के लिए ऐसे काल, देश इत्यादि पुण्यकर बताते हैं। उनमें कर्म करने की व्यवस्था वेद किया है। भगवान श्री हरि को प्रिय है, अप्रिय है। इसके बारे में विचार न करते हुये गुण दोष पुण्यकर या पापकर है। ऐसे

अनुमान करना गलत है। श्री कृष्ण अपनी बातों से यही समझाते हैं। गुण दोषों का विवेचन करना दोष होता है। उसको छोड़ना गुण है। इस बात से कहा गया है। यह ब्रह्म नयन नाम के ग्रंथ में और परायण ग्रंथ में बताया गया है।

कर्मों में विरक्ति पाये हुये सनकादि के समान सन्यासियों को केवल ज्ञान ही हरि अनुग्रह के लिए विशेष साधन मानो इस प्रकार कहा हूँ। विरक्ति न पाये हुए कर्मी मनुष्योत्तम के लिए भक्ति सहित निष्काम कर्म नाम के साधन को विशेष रूप में विधि किया है।।7।।

देवताओं को श्री हरि की इच्छा से ही अदृष्ट वसात मेरी कथा रुप श्रवणदियों में स्वाभाविक श्रद्धा आती है। उनके लिए तात्कालिक विशेष वैराग्य अथवा अत्यन्त विषयासक्ति नहीं रहती है। इन लोगों के लिए मैं भक्ति योग ही मोक्ष साधन है। इस प्रकार कहा हूँ।।8।।

सनकादि मुनि ज्ञान योगी हैं। देवता भक्ति योगी हैं। मानव कर्म योगी है। इन तीनों योगों को सबको अनुष्ठान करना है। किन्तु विशेष होकर एक-एक में एक-एक मोक्षकारक बनते है। भक्ति बल से अपनी प्रतिभा से वेदार्थ निर्णय करने वाले भक्ति योगी होते हैं। षडंग इतिहास पुराणों के अध्ययन बल से निर्णय करने वाले ज्ञान योगी होते हैं। भगवान के कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि बल से सर्वशक्ति पूर्णानन्द इत्यादि गुण पर रूप में वेदार्थ करने वाले कर्म योगी बनते हैं। सनकादियों में देवताओं से ज्ञान कमी होते हुये मानवों से अधिक ज्ञान रहने के कारण वे ज्ञान योगी कहलाते हैं। देवता सनकादियों से ज्यादा भक्ति वाले होते है। इसके लिए वे भक्ति योगी बनते हैं। देवताओं में मानवों से बढ़कर कर्मानुष्ठान ज्यादा है। किन्तु कर्म न करने से मानवों को पाप आता है। देवताओं को आता नही। इससे मानवों को कर्म योगी मानते हैं। यह त्रियोग नाम के ग्रंथ में आता है।

जब तक वैराग्य नही आता है अथवा मेरी कथा श्रवणादियों में स्वाभाविक आसक्ति नहीं आती है तब तक मनुष्योत्तम और चक्रवर्ती को भक्ति से निष्काम कर्म करते रहना चाहिए।।9।।

हे उद्धव, विहित कर्मानुष्ठान करने वाला मानव स्वर्गादि फलों का आशा नहीं किया तो काम्य और निषिद्ध कर्मों का आचरण नहीं कर रहा है तो स्वर्ग और नरक दोनों को न पाकर केवल मोक्ष में मुझको पाता है।।10।।

क्योंकि इस कर्मभूमि में विहित और निष्काम कर्म करने वाला पाप रहित होता है, शुद्धान्तःकरणी बनता है। ज्ञान योगी भक्तियोगी के समान कर्मयोगी भी भगवद् इच्छा से शुद्ध ज्ञान और भक्ति को पाता है।।11।।

इस रीति से मानव शरीर को स्वर्ग में रहने वाले भी चाहते हैं, और नरक में रहने वाले भी चाहते हैं क्योंकि मानव जन्म ज्ञान भक्तियों का साधन बनता है। यह शरीर, स्वर्ग और नरक वैसा नहीं होता।।12।।

बुद्धिमान मानव को स्वर्ग पाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। उसी प्रकार नरक साधन का काम भी नहीं करना चाहिए, ऐहिक सुख साधन की इच्छा भी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि कोई भी देह आने के बाद उस शरीर में रहते हुये शरीर के ऊपर अभिमान करते हुये भगवान को भूल

जाने की साध्यता रहती है।।13।।

इस प्रकार जानने वाला मानव अपने शरीर नष्ट होने के बाद मोक्ष का साधन बनता है। और भगवान को न भूलते हुये मरने के पहले ही आगे बार-बार उसको जनन-मरण नहीं आये ऐसा प्रयत्न करना चाहिए।।14।।

ठीक तरह से उड़ने की शक्ति पाया हुआ पक्षी अपने वास के लिए वृक्ष में घोंसला बनाता है। कोई आदमी कुल्हाड़ी से उस घोंसला रहने वाले वृक्ष को काटने लगा तो अपने शरीर के समान रहने वाला घोंसला को आसक्ति के बिना घोंसला को छोड़कर दूसरे वृक्ष को उड़ जाता है और क्षेम से वहाँ रहता है।।15।।

इसी प्रकार बुद्धिमान मानव दिन-रात अपना आयुष्य घट रहा है इसको देखकर भय से काँपते हुए अपने देह के अभिमान को त्याग कर बन्धक कर्म करना छोड़कर भगवान के बारे में जानते हुए परम सुख को पाता है।।16।।

यह मानव शरीर अत्यन्त दुर्लभ है। भगवदाराधना रूप ज्ञान-साधना समर्थ है, इस संसार सागर को पार करने के लिए आवश्यक गुरु नाम के केवट रहने वाला नाव के समान है। इस नौका को चलाने के लिए अनुकूलकर हवा के समान मैं ऐसे शरीर को पाने के बाद भी संसार सागर को जो तैर नहीं सकता वह अपना शरीर गिर जाने के बाद नरक में पड़ता है। एक बार धनुष से छोड़ा हुआ बाण अपना वेग खोने के बाद किसी जगह पर गिर जाता है।।17।।

जब मानव लौकिक कार्यों में यश को न पाते हुये बेजार करता है। तब विरक्त होकर इन्द्रियजय को पाकर, ज्ञानयोगी बनकर भगवान में पुनः पुनः अपने मन को निश्चल रीति से रखना चाहिए।।18।।

मन को वश में लाने के लिए प्रयत्न करते समय वह चंचल होकर वेग से सभी जगह भागने लगे तो आलस्य न करते हुए प्राणायाम, प्रत्याहार मार्ग से मन को वश में रखना चाहिए।।19।।

मन अन्यान्य स्थानों में भाग रहा है तो उदासीन होकर ध्यान करना छोड़ना नहीं चाहिए। सत्वगुण भरा हुआ बुद्धि के बल से प्राणायाम इन्द्रिय निग्रह करते हुये मन को अपने वश में लाना चाहिए।।20।।

हृदय नामक भगवान का अपरोक्ष को पाने की इच्छा करने वाले को मनोनिग्रह अत्यन्त मुख्य साधन है। बार-बार इन्द्रिय निग्रह भी साधन बनता है।।21।।

मन भगवान में स्थिर होते तक भगवान से ही सारे तत्वों का क्रम से सृष्टि व्युत्क्रम से लय इसको शास्त्र के अनुसार ठीक तरह से ध्यान करना चाहिए।।22।।

भगवान को जानते हुए स्वर्गादि भोगों की भी इच्छा न करते हुए उनको त्याग कर विरक्त होने के बाद उसका मन योगियों से ध्यान करने योग्य हरि के निरन्तर ध्यान से दुष्ट काम,

क्रोधादि कश्मल को दूर करना चाहिए।।23।।

दौरात्म्य शब्द का अर्थ काम, क्रोधादि, कश्मल को दूर करना है।

यम-नियमादि योग मार्ग के सहयोग से काम-क्रोधादि निषिद्ध कर्म से जो कर्म करता है। वहीं बंधक बनते हैं। इस ब्रह्मतर्क के ज्ञान के बल से परापर विद्या को मेरी प्रतिमा के अर्चन से मन के दौरात्म्य को दूर करना चाहिए। अन्य विषय पदार्थों का सम्पर्क नहीं करना चाहिए।।24।।

योग का अभ्यास करने वाला प्रमाद से निषिद्ध कर्म करे तो भी अपने ध्यान योग से उस पाप को जला जाता है। उसके लिए अन्य प्रायश्चित करने की आवश्यकता नहीं।।25।।

गुण दोष विवेक

भगवान बोले - अब गुण दोष का निर्णय बताता हूँ। ज्ञानभक्ति अथवा कर्मरूप स्वविहित साधना में, वह साधना भगवान के लिए प्रीतिकर हैं। इस प्रकार मानते हुए निष्ठा दिखानी चाहिए। जो विहित नहीं है वे गुण हरि को प्रिय नहीं हैं ऐसे समझकर कर्माचरण करे तो वह दोष बनता है, यह गुण दोष का निर्णय है।।26।।

भगवान को यह प्रिय, यह अप्रिय इसका विवेचन न करते हुए, कर्म स्वाभाविकतया अशुद्ध पापकर है। उनसे अज्ञानियों के आने वाला पापों का परिहार करने के उ-श्य से विधि निषेधों को कहते हुए वेद यह गुण है, यह दोष है, इस प्रकार हरि को यह प्रिय है, यह अप्रिय है इस प्रकार व्यवस्था किया है।।27।।

भक्तियोगी पहले विषय पदार्थ दुःखकर हैं इसको समझता है। किन्तु मानसिक पक्वता नहीं आयी है इसी कारण से उनको त्याग नहीं सकता। किन्तु बाद में श्री हरि की इच्छा से ही मेरी कथादि श्रवण करने में प्यार उत्पन्न होने से विषय भोग सम्पादन करने वाले सारे काम्य कर्मों में उसको गाढ़ वैराग्य आता है।।28।।

वैराग्य पाने के बाद अन्यों को दुःख देने वाले काम्यकर्म को निन्दा करते हुये हरि प्रीति के लिए सन्तोष और श्रद्धा से ही उनका सेवन करते हुए भले मर सकता हूँ लेकिन उपासना नहीं छोड़ता इस दृढ़ निर्धार से श्रद्धा के साथ मेरी शरण में आना चाहिए।।29।।

मुझसे बताया गया इस भक्तियोग से पुनः पुनः मेरा भजन करने वाला ज्ञानी को मैं उसके हृदय में दर्शन देता हूँ। तब उसके बाह्यमन में रहने वाली सारी कामनायें दूर होती हैं।।30।।

ज्ञानी को सर्वांतर्यामी मैं जब दर्शन देता हूँ। तब उसका बाह्यमन के रूप में रहने वाला संसार बंध चला जाता है। सारे संशय विपरीत ज्ञान नष्ट होते हैं। पीछे का अप्रारब्ध कर्म नष्ट होता है आगे का लेप नहीं होता।।31।।

इसी कारण मुझमें भक्ति युक्त होकर मेरा स्मरण करने वाला भक्तियोगी को श्रेय प्राप्ति होती है। वह ज्ञान से अथवा वैराग्य से नहीं। ज्ञान वैराग्य युक्त भक्ति से होता है।।32।।

कर्म से तप, तप से ज्ञान, ज्ञान से वैराग्य, योगाभ्यास से, दान धर्मादि धार्मिक कर्मों से अथवा किसी अन्य साधना से जो प्रयोजन मिलता है उन सब को मेरा भक्त अपनी भक्ति नाम के एक ही साधन से उनको और ठीक तरह से पाता है। वह यदि स्वर्ग मोक्ष को चाहे तो भी पा सकता है।।33,34।।

ज्ञानी मेरे एकान्त भक्त सज्जन होते हैं। स्वयं करने की भक्ति के बारे में प्रतिफल रूप में मोक्ष अथवा अन्य किसी को नहीं चाहता। मैं यदि दिया तो उसको भगवान ने दिया है उसको मानते हैं। स्वर्ग पदवी हो और अन्य एक छोटा फल हो, उन सबको प्यार से स्वीकार करते हैं।।35।।

देवताओं के स्वर्गादि पदों में राजभोग विहित है। वे हरि प्रीति के कारण बनते है। विरोधी नहीं। सनकादि योगियों को वैराग्य आवश्यक है। इसके लिए विषयों के असारत्व को अनुभव करने वाला ज्ञान चाहिए। इस प्रकार त्रियोग नाम के ग्रंथ में आया है।

भक्ति से मिलने वाला फल मोक्ष को श्री हरि दिये तो भी वे उसको नही चाहते। भगवान श्री हरि की आज्ञा मानकर स्वीकार करते हैं। भगवान की प्राप्ति के बिना अन्य स्वर्गादि सुख के लिए भी भक्ति को साधन रूप से देवता उपयोग नहीं करते। इसी कारण वे ही महावैराग्यशाली हैं। यह बात त्रियोग नाम के ग्रंथ में आती हैं। प्रह्लाद इसके प्रत्यक्ष दृष्टान्त हैं।

किसी की अपेक्षा न करते हुए भगवान के अनुग्रह को पाना उत्तम भक्त को उत्तम श्रेय देता है। इसी कारण विषय सुख को न चाहने वाले मेरे से भी किसी भोग की अपेक्षा न करने वाले भक्त को मुझमें भक्ति करना ही सुख कारक होता है।।36।।

मेरे एकान्त भक्त को सात्विक, राजस और तामस विषयों से होने वाले हर्ष, शोक आदि नही होते हैं। वे प्राकृत अन्तःकरण के बाह्य स्वरूपान्तःकरण अभिव्यक्ति पा चुके हैं। प्राकृत विषय कैसे भी रहे वे विचलित न होते हुए समचित्त होकर रहते हैं।।37।।

यहाँ **गुण दोष उद्धवाः** शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका अर्थ गुण दोष के अधिष्ठान राजस, तामस विषय से होने वाले हर्ष शोकादि नहीं है। इस प्रकार अर्थ होता है।

मैंने जो उपदेश दिया है मोक्ष देने वाले इन मार्गों को जो अनुष्ठान करता है। वे ज्ञानी मुझको परब्रह्म मानते हैं, इस ज्ञान को समझ लेते हैं और क्षेमकर मुझको पाते हैं।।38।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में एकादश स्कन्ध में बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

।। श्री राम श्रीः ।।

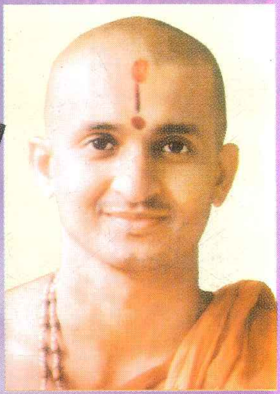

अजातरिपु सद्विजेष्टदायक
व्रजेशपद नीरजाराधकम् ।
भजे विद्यधीशं रजतपुर निवासम्
भजे विद्याधीशं भजे विद्याधीशम् ।। 1 ।।

श्री रामपादसरसीरुह भृंगराजः
श्री कृष्णपूजनरतः कृतसिद्धहस्तः
श्री मध्वशास्त्र पठने दृढ़ दत्तचित्तः
श्री विद्यधीशगुरुवर्यमहं नमामि ।।2।।

स्मयमानमुखांभोजं
सद्विद्याबोधकं सदा
विद्याधीश गुरुम् वन्दे
स्वरूपोद्धारकं मम ।। 3 ।।

सकलाभीष्ट दातारम्
सकल संशय सच्छिदम्
विद्याधीश गुरुंवन्दे
सदा सुस्मित भाषिणम् ।। 4 ।।

षट् शत्रु विजयी ज्ञानी
षड् वेदांगेषु कोविदः
विद्याधीशगुरुं वन्दे
सुधाशास्त्रार्थ बोधकः ।।5 ।।

वसुधतल विख्यातम्
वैराग्यादि गुणान्वितम्
वेदविद्याप्रवक्तारम्
विद्याधीशमहंभजे ।। 6 ।।

विद्यात्मतीर्थ यतिना भागवते ज्ञान सिद्धये।
कृतं स्तोत्रमिदं भक्त्या मध्वमाधव प्रीतये।। 7 ।।

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

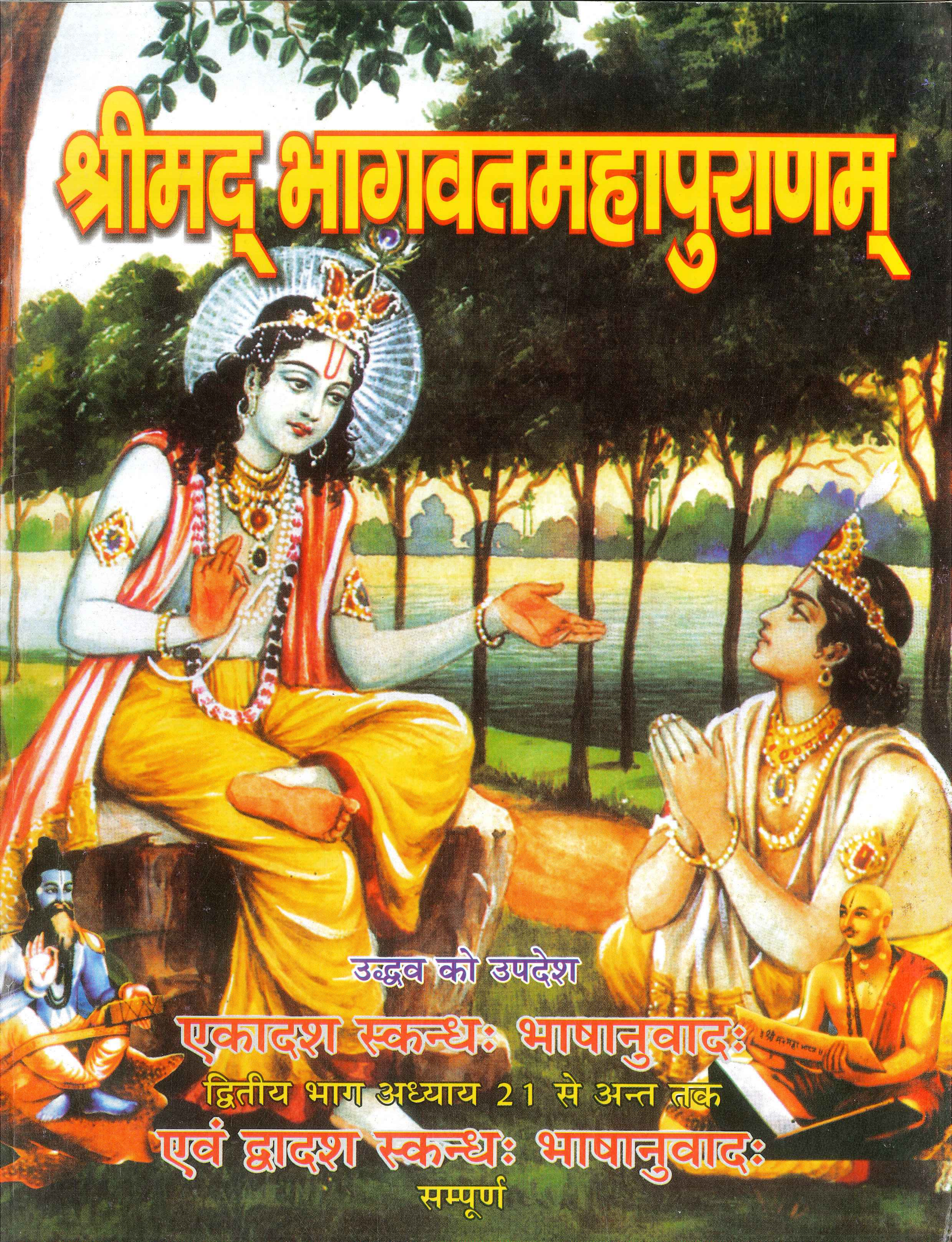

उद्धव को उपदेश

एकादश स्कन्धः भाषानुवादः

द्वितीय भाग अध्याय 21 से अन्त तक

एवं द्वादश स्कन्धः भाषानुवादः

सम्पूर्ण

श्री हनुमत् भीम मध्वांतर्गत रामकृष्ण
वेदव्यासात्मक लक्ष्मी हयग्रीवाय नमः

श्री विजयध्वज टीकानुसारी

श्रीमद्भागवत महापुराणम्

एकादशः स्कन्द अध्याय २१ से अन्त तक
तथा द्वादशः स्कन्द सम्पूर्ण

(भाषानुवादः)

अनुवादक
श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज प्रयाग

प्रकाशक
तत्व संशोधन संसत्
जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान
श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

श्रीमद्भागवत महापुराणम् एकादश स्कन्धः अध्याय 21 से अन्त तक तथा द्वादश स्कन्ध सम्पूर्ण

लेखक-

श्री 1008 श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी

प्रकाशक

तत्व संशोधन संसत्

जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

श्री हृषिकेश तीर्थ पीठम् श्री पलिमारुमठ उडुपि

@ सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण 1000 प्रतियाँ

सहयोग राशि :

पुस्तकालय संस्करण 150/- रुपये

सामान्य संस्करण 108/- रुपये

दिनांक : 28-11-2014

स्थान : श्री पार्थसारथी मन्दिर, दरूर, जिला-महबूबनगर, आन्ध्र प्रदेश

पता : श्री मध्व मठ , 63/59 मीरागली, दारागंज,
प्रयाग-211006 इलाहाबाद (यू0पी0) दूर वाणी : 0532-2504587

अक्षर विन्यास श्री सुनील कुमार (राजा) मो.: 9451739636

मुद्रक - श्री वैष्णव प्रेस
मोरी, दारागंज, इलाहाबाद
फोन नं0- 0532-2501463 मो0- 09415235637, 9335129328

श्री राम श्री

अनुग्रह संदेश

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान श्री पेजावर अधोक्षज पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी उडुपि

हमारे विशेष अभिमान पात्र **श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी** द्वारा किए हुए समस्त भागवत ग्रंथों का हिन्दी भाषानुवाद को देखकर हमें सन्तोष हुआ है। श्री स्वामी जी अपने पूर्वाश्रम में अनेक वर्षो से सामाजिक सेवा में रचनात्मक कार्यों को किये हैं। हमारे साथ अकाल, भूकम्प, बाढ़ इत्यादि कार्यों में सम्पूर्ण समर्पण भाव से काम किए हैं। अब अपने चौरासी वर्ष के समय में आठ शास्त्र ग्रन्थों का अनुवाद और प्रकाशन का स्तुत्य काम अपने हाथ में लिए हैं। मध्व तत्वज्ञान को अभ्यास करने के जिज्ञासुओं को अनुकूल होने वाली यह एक विशिष्ट सेवा किए हैं।

वे अपने सत्तर वर्ष की आयु में कन्नड़ भाषियों के अनुग्रह रूप में अनेक शास्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किए थे। अब प्रयाग में रहकर मध्व सिद्धान्त का प्रसार कार्य करते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा मध्व तत्वज्ञान को हिन्दी भाषी प्रदेश में प्रचार करने का महान कार्य कर रहे हैं।

श्री कृष्ण, श्री वेद व्यास जी, अस्मदुपास्य श्री रामविट्ठल जी इनको विशेष अनुग्रह करते हुए इनकी सेवा विस्तार रूप से सारी जनता को मिले यही हमारा आशीर्वाद है।

इति नारायण स्मरण

श्री श्री 1008 श्री विश्वेशतीर्थ स्वामी जी महाराज
पेजावर मठ, उडुपि

अनुग्रह संदेश
श्री राम श्री

श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महा संस्थान श्री पलिमारु हृषीकेश पीठाधिपति

श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी महाराज, उडुपी

आठ सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरु मध्वाचार्य जी ने मध्व सिद्धान्त का प्रचार प्रसार बहुत बड़े पैमाने से आरम्भ किया। इस प्रवाह को अक्षुण्ण रखने के लिए उडुपी में आठ पीठ और उत्तर कर्नाटक में एक पीठ की स्थापना किए। श्री जयतीर्थ मुनि, श्री श्रीपादराज स्वामी, श्री व्यासराजमहामुनि, श्री वादिराजयोगी, श्री रघूत्तम स्वामी जी, श्री राघवेन्द्र तीर्थ जी इत्यादि महामहिमों ने उस सिद्धान्त को और विकसित किया।

हमारे दीक्षा शिक्षा गुरु युगपुरुष श्री श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी उत्तर भारत में श्री मध्व तत्वज्ञान को प्रसार करने हेतु **पच्चीस वर्ष** पहले श्री प्रयाग क्षेत्र में श्री मध्व पीठ की स्थापना की है। उन दिनों से प्रयाग का हमारा मठ मध्वसिद्धान्त का प्रसार करता आ रहा है।

श्री वेदव्यास जी की इस सुसंस्कृत भागवत को हमारे शिष्य **श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी** ने समर्थ सुन्दर और सबके मन को मिले ऐसी सुन्दर हिन्दी में अनुवाद कर साधक सज्जनों का परमोपकार किये हैं। कन्नड़, संस्कृत न समझने वाले हिन्दी भाषी साधकों को **जगद्गुरु मध्वाचार्य जी** के शास्त्र का परिचय कराने वाले इस कार्य को हम अपने हृदय भरकर अभिनन्दन करते हैं। अन्य सारे कार्यों को बगल में रखते हुए **तद्धितप - तद्धितप** के जैसे दिन-रात किया हुआ यह शास्त्र सेवा अनुपम है। हमारे **गुरु श्री श्री 1008 विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी** से स्थापित तत्व संशोधन संसत से इस ग्रंथ का प्रकाशन किया गया है। यह हरि गुरु का अनुग्रह प्राप्त कराने वाला है। उत्तर भारत के हिन्दी भाषी लोग इस ग्रन्थ को पढ़ें और अपने बन्धु बान्धवों से पढ़ाएँ तो यह प्रयत्न सार्थक हो जाता है। शेष भागवत से एकादश स्कन्ध समग्र भागवत में अत्यन्त क्लिष्ट भाग है। इसमें अनेक वेद-शास्त्रों के प्रमेयों की चर्चा उद्धव को निमित्त करते हुये भगवान स्वयं किये हैं। इसको हमारे शिष्य ने समर्थ रीति से अनुवाद किया है। इसी प्रकार भागवत के शेष भाग द्वादश स्कन्द को भी अनुवाद किया हैं। **श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य जी** से प्रतिष्ठापित श्री कृष्ण, श्री राम जी के अनुग्रह से हम अपने शिष्य को शुभ कामना देते हैं।

श्री श्री 1008 श्री विद्याधीशतीर्थ
स्वामी जी महाराज

अनुग्रह संदेश

श्री दिग्विजय रामो विजयते

श्री मद्‌जगद्गुरु मध्वाचार्य मूल महासंस्थान

उत्तरादि मठ

भगवान के गुणों का चिन्तन करना प्रत्येक आदमी का मुख्य कर्तव्य है। अनन्त गुणपरिपूर्ण भगवान की महिमा को जानने के लिए सबको भागवत के प्रकाश की आवश्यकता है। भागवत के पाठ प्रवचन श्रवण सारे बहुत पुण्य देने वाले हैं। ऐसे श्रेष्ठ महाभागवत पुराण को वैष्णव सिद्धान्त के अनुसार श्री श्री विद्यात्मतीर्थ जी ने हिन्दी में सब के मन मोहित करने वाले उत्कृष्ट व्याख्यान किए हैं। प्रयाग के त्रिवेणी तट पर रहते हुए अपनी स्वयं साधना करते हुए उत्तर भारत में वैष्णव सिद्धान्त का प्रचार प्रसार कार्य करते हुए अपने को समर्पित किए हैं। वे जो इस प्रयास में रत हैं उसको सहकार देते हुए श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी उन्हें बल दे रहे हैं यह संतोष का विषय है।

मध्व मत का प्रसार समग्र भारत में उज्वल रीति से होना चाहिए। उत्तर भारत के परिसर में यह प्रसार कार्य करने वाले **श्री श्री विद्याधीश तीर्थ** एवं **श्री श्री विद्यात्म तीर्थ स्वामी जी** का हम अभिनन्दन करते हैं।

इसी प्रकार श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी और अनेक कृति और व्याख्यान करते हुए तत्वप्रचार कार्य को इससे भी अधिक रूप से करें इस प्रकार हम अपने उपास्य मूर्ति श्री दिग्विजय राम और वेदव्यास जी से प्रार्थना करते हैं।

बैंगलूरु

श्री सत्यात्म तीर्थ स्वामिनः
उत्तरादि मठ

श्रीमद् अच्युत प्रेक्षाचार्य संस्थानम्

श्रीम सेतु मुनिवोकमठ श्रीमनकाट्टे

अनुग्रह संदेश

[illegible]

शुभ कामना

॥ श्री निम्बार्को जयति ॥

॥ श्रीमद् गोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अनन्त श्री जगद्गुरु निम्बार्काचार्य

गोस्वामी श्री विष्णुकान्त जी महाराज, पीठाधिपति

श्री निम्बार्काचार्य पीठ, १८/१२, महाजनी टोला प्रयाग - २११ ००३ फोन : २४०४२९८

श्री निम्बार्क प्रभास्थली व्यास ग-ी नैमिषारण्य (उ० प्र०)

कर्नाटक के अन्तर्गत उडुपी माध्व पीठ प्रयाग के अधिपति **श्री 1008 श्री स्वामी विद्यात्म तीर्थ जी महराज** के लोक भाषा में अनुवादित समग्र भागवत के ग्रन्थ और अन्य भगवद्गीतादि ग्रन्थ देखने को मिले। पचासी वर्ष की अवस्था में अदम्य स्फूर्ति, वैदुष्य एवं सार्थक जीवन के धनी महा पुरुष अभिनन्दनीय हैं। कई अवसर में हम लोग एक रहे हैं।

इस अवस्था में भी कई ग्रन्थों के लेखन, सामाजिक एवं पारमार्थिक कार्यों को एक युवक की भाँति करते हुए संलग्न हैं।

आपका जीवन अमृततत्व की ओर अग्रसित है आप सकल कुशल पात्र हैं।

आचार्य विष्णु कान्त गोस्वामी
तीर्थराज, प्रयाग

प्रस्तावना

हमारे गुरु जी पूर्व **प्रयाग पीठाधिपति श्री 1008 श्री विद्यावल्लभ तीर्थ स्वामी जी** ने लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व भागवत के पहले तीन स्कन्धों का अनुवाद कर प्रकाशित किए थे। उनका महानिर्वाण आकस्मिक रीति से होने के कारण वह कार्य वहीं अवरुद्ध हो गया था।

हमारे दीक्षा गुरु उडुपि श्री पलिमारु मठ के **पीठाधिपति जगद्गुरु श्री मध्वाचार्य श्री 1008 श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी महाराज** ने उस अवरुद्ध कार्य का पुनरारम्भ करने का आदेश दिया। मैं अल्प शक्ति और अल्प ज्ञान वाला हूँ। किन्तु अपने गुरुवर्य की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मैं यह कार्य कर रहा हूँ।

विद्यावतां भागवते परीक्षा यह पूर्णत: सत्य है। श्री गुरु जी का अनुग्रह ही मुझसे यह कार्य करवा रहा है। दक्षिण भारत में जन्म लेने के कारण मुझे अच्छी हिन्दी नही आती। पण्डित न होने के कारण शास्त्र का गहन और विस्तृत ज्ञान प्राप्त नही है। केवल गुरु का अनुग्रह ही मुझे प्रेरणा दे रहा है। पाठकों द्वारा निर्दिष्ट त्रुटियों को अगले अंक में सुधारने का प्रयास करेंगे।

एकादश स्कन्ध भागवत का मस्तिष्क है। वेद व्यास जी इसको ज्ञान रस से पूर्ण रूप से भिगो दिए हैं। वेद-उपनिषद और अन्य शास्त्रों का विस्तारित चर्चा श्री उद्धव और भगवान के सम्वाद रूप में यहाँ चर्चित किया गया है। संस्कृत के गाढ़ ज्ञान और वेद-उपनिषद आदि शास्त्रों के परिचय के बिना केवल भाषा ज्ञान से इसका अनुवाद हो नही सकता। इन सारे विषयों में अपने अज्ञान को मैं पहले से प्रकाशित करते आया हूँ। किन्तु गुरु जी के आग्रह से मैंने यह एक कार्य हाथ में उठा लिया है। कित्पर्यन्त इस कार्यं में सफल हुआ हूँ यह वाचक ही कह सकते हैं। किन्तु इस कार्य में कर्नाटक के सुप्रसिद्ध **पण्डित श्री हयवदन पुराणिक जी** बहुत प्रयास से जो सुललित भागवत लिखे हैं उसका प्रयोजन इस कार्य में मुझको बहुत हुआ। दूसरा एक भाग है। हमारे दीक्षा **गुरु श्री 1008 श्री विद्याधीश जी महाराज** इस स्कन्ध के शास्त्रार्थ को अनेक ग्रन्थों के सहायता से चर्चा करते हुये जिन लेखों को प्रकाशित किये हैं वे मुझे मार्गदर्शक बने इतना ही नहीं मेरे जैसे सामान्य पुरुष से असामान्य कार्य करवा दिये। श्री गुरु जी खासकर अवधूत गीता को विश्लेषण करते हुए जो लेख लिखे हैं वे अत्यन्त अपूर्व हैं। श्री गुरु जी के अनुग्रह को मैं किन शब्दों में, कैसे व्यक्त करूँ। मैं केवल उनका अनुवाद किया हूँ इसमें मेरा पाण्डित्य कुछ नहीं है।

विस्तृत रूप से जानकारी देने के उ-श्य से हमने क्रम में भी थोड़ा सा बदलाव किया है। पहले के समान श्लोकार्थ मोटे अक्षरों में दिया गया है, अर्थ थोड़ा सा छोटे अक्षरों में दिया गया है। इस भाग में विशेषार्थ के लिए और थोड़ा अवकाश किया है। प्रत्येक श्लोक का नही तो जहाँ आवश्यक है वहाँ विशेषार्थ, उससे भी छोटे अक्षरों में देने का प्रयास किया है। आशा है कि यह पाठकों को सुविधाजनक होगा।

महाप्रस्थान की पूर्व सन्ध्या में प्रभास क्षेत्र में एक वृक्ष के नीचे भगवान लेटे हैं, उद्धव दौड़कर वहाँ आते

हैं, और निवेदन करते हैं- भगवान आप यहाँ निश्चिंत होकर सोये हैं, वहाँ गोमती समुद्र संगम तट पर आपके पुत्र-पौत्र आदि आपस में लड़ रहे हैं, मारते हैं, मरते हैं। आप कृपया थोड़ा उस स्थान तक चलें, केवल आपके दर्शन मात्र से वहाँ युद्ध समाप्त हो जाएगा, सारे यादव बच जायेंगे। तब श्री हरि हँसकर कहते हैं, उद्धव मेरे लिए कोई न अपना है और न पराया, मैं किसी से द्वेष नही करता, प्यार भी नही करता, मै केवल भक्तों के वश में रहता हूँ। भक्त मेरे प्रिय हैं।

हमारे परम गुरु **श्री विद्यामान्य जी** से संस्थापित और **हमारे गुरु जी श्री श्री विद्याधीश तीर्थ स्वामी महाराज** से पोषित श्री तत्व संशोधन संसत् ने इस ग्रन्थ प्रकाशन की जिम्मेदारी ले लिए हैं। तत्व संशोधन संसत् दक्षिण भारत में एक प्रसिद्ध संशोधन और प्रकाशन की बड़ी संस्था है। बहुत श्रेष्ठ विद्वान और पंडित संशोधकों के ग्रन्थ यहाँ से प्रकाशित हुए हैं। मेरे जैसे अल्प बुद्धि वाले की इस छोटी सी कृति को वे प्रकाशित कर रहे हैं, यह मेरा बड़ा भाग्य है। इसके लिए मैं अपने श्री गुरु जी को शत शत नमन करता हूँ।

इस बार प्रतिवर्ष के अनुसार हम आचरण करने वाले गीता जयन्ती के शुभ सन्दर्भ में इक्तीसवाँ गीता जयन्ती सप्ताह के उद्घाटन कर रहे हमारे पूज्य श्री गुरु जी विद्याधीश तीर्थ स्वामी जी महाराज जी के अमृत हस्त से हमारा यह भागवत का संस्करण लोकार्पित किया जा रहा है। यह सोने को सुगन्ध देने वाला काम के समान है। हमारे गुरु जी से लोकार्पित किया हुआ यह ग्रन्थ लोकप्रिय होने में संशय मात्र भी नहीं रहता।

अमेरिका में रहने वाले हमारे बड़े अभिमानी **श्री विवेक चन्द्र श्रीवास्तव** जी अपने माता-पिता का कीर्तिवर्धन करते हुये स्वयं अपने भक्ति कुसुम समर्पित करते हुये इस ग्रन्थ का प्रकाशन के सारा व्यय अपनाये हैं। इसके पहले श्री विवेक चन्द्र जी हमारे भागवत के दशम स्कन्ध के तीसरा भाग के प्रकाशन के लिये एक लाख रुपये दे दिये हैं। इस बार के भागवत सप्ताह में पूर्ण सात दिन रहते हुये उन्होंने बहुत बड़ी साधना की है। उनके श्रद्धा भक्ति को देखकर हम सन्तुष्ट हो गये है। उनके लिये ज्ञान भक्ति वैराग्य देकर उनको सदाकाल पोषण करें इस प्रकार हम अपने उपास्य श्री पंचमुखी हनुमत् समेत श्री सीतारामचन्द्र जी से प्रार्थना करते है।

इस ग्रन्थ के लिए आवश्यक फोटो के लिए हमे बहुत प्रयास करना पड़ा। वैसे तो श्री कृष्ण के लाखों फोटो प्राप्त हैं, तो भी कथा में आए हुए संन्दर्भ को संगति देने वाला फोटो मिलने में कष्ट हुआ। इस समय हमें आवश्यक फोटो देकर श्री रामचन्द्र सिंह सहायता किए हैं। हम यहाँ उनकी प्रशंसा करते है।

इस ग्रन्थ के अक्षर विन्यास किए हुए श्री सुनील कुमार जी (राजा) अक्षर संशोधन किए हुए श्री गिरधारी लाल मिश्र और मुद्रण किए श्री वैष्णव प्रेस के श्री पुरुषोत्तम लाल जी और सारे कर्मचारियों के सहयोग का स्मरण हम करते हैं। सुधी सद्भक्त इस ग्रन्थ का सदुपयोग करें यही आकांक्षा है।

श्री पारथसारथी मन्दिर, दरूर, आन्ध्र प्रदेश

28-11-2014

इति शम्

श्री श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी महाराज

एकादश स्कन्ध की विषय सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
21.	गुण दोष निरूपण, द्रव्य शुद्धि विचार, वेद स्वरूप कथन	1-11
22.	तत्व संख्या निरूपण, देहाभिमान त्याग, आदेश	12-24
23.	देहाभिमान त्याग के बारे में भिक्षु कथा। भिक्षु गीता	25-33
24.	सांख्य योग का उपदेश, सृष्टि और संहार का वर्णन	34-39
25.	गुणों का मिश्रण और मिश्रण का फल कथन	40-44
26.	तैर्य गीता (दुर्लभ मानव जन्म की सार्थकथा	45-49
27.	पंचरात्र में कही गयी विधिनुसार भागवत पूजा निरूपण	50-56
28.	अभिमान के कारण जीव का संसार, निवृत्ति हेतु योगचर्चा	57-66
29.	कृष्ण-उद्धव संवाद, उद्धव का बदारिगमन,	67-72
30.	बलराम का परम् धाम गमन, यदुकुल नाश,	73-78
31.	ब्रह्मादियों से स्वधाम गमन हेतु प्रार्थना। श्रीकृष्ण परमधाम गमन भागवत फलश्रुति	79-82

द्वादश स्कन्ध की विषय सूची

1.	कलियुग में होने वाले राजवंश का कथन,	83-85
2.	कलियुग में होने वाले धर्म नाश का विवरण	86-90
3.	भूमि गीता	91-95
4.	काल का परिमाण	96-104
5.	राजा परीक्षित मोक्षसाम्राज्य पाये	105-109
6.	वेद का प्रादुर्भाव	110-117
7.	मार्कण्डेय मुनि की तपोनिष्ठा	118-122
8.	महाप्रलय का दर्शन	123-126
9.	महादेव का वरदान	127-131
10.	आवरण पूजा	132-134
11.	द्वादश मासों में द्वादश सूर्य	135-137
12.	भागवत की विषयानुक्रमणिका	138-144
13.	स्वतंत्र सर्वोत्तम श्रीहरि और अष्टादश पुराणों की श्लोक संख्या	145-147

श्री राम श्री

श्रीमध्वतत्वज्ञान प्रसार प्रतिष्ठान प्रयाग

हमारे प्रकाशित ग्रन्थ

क्र.	ग्रन्थनाम	मूल्य
1.	श्रीमद्भगवद्गीता प्रतिश्लोक का हिन्दी भावानुवाद	70.00
2.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् प्रथम, द्वितीय, तृतीय स्कंधः भाषानुवादः	100.00
3.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् चतुर्थ स्कंधः भाषानुवादः	60.00
4.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् पंचम एवं षष्ठ स्कंधौ भाषानुवादः	60.00
5.	श्रीमद्भागवत महापुराणम् सप्तम् स्कंधः भाषानुवादः	60.00
6.	श्रीमद्भागवत अष्टम् स्कन्धः भाषानुवादः	60.00
7.	श्रीमद्भागवत नवम्स्कंधः भाषानुवादः	60.00
8.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः पूर्वार्द्ध अध्याय एक से छब्बीस तक	100.00
9.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः पूर्वार्द्ध अध्याय सत्ताइस से उनसठ तक	100.00
10.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः उत्तरार्द्ध अध्याय साठ से बयासी तक	100.00
11.	श्रीमद्भागवत दशम् स्कन्धः उत्तरार्द्ध अन्तिम भाग अध्याय तिरासी से एक सौ पाँच तक	100.00
12.	श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्धः प्रथम भाग अध्याय एक से बीस तक	100.00
13.	श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्धः इक्कीसवाँ अध्याय से अन्त तक तथा द्वादश स्कन्ध सम्पूर्ण	108.00
14.	श्री रामायणपात्र चित्रणम् एवम् नीतिकथा	50.00
15.	श्री कृष्णामृतमहार्णव एवं सदाचारस्मृतिः	75.00

पुस्तक प्राप्ति स्थान

1. **श्री मध्वमठ**
63 मीरागली, दारागंज इलाहाबाद

2. **तत्व संशोधन संसत् श्री हृषीकेशतीर्थ संस्थानम्,** श्री पलिमारुमठ, रथ बीदि उडुपि कर्नाटक

3. **श्री स्वामी सीता वल्लभ शरण**
श्री मध्वमठ बड़ा अखाड़ा मैहर (म. प्र.)

4. **श्री स्वामी ललित मोहन ओझा**
प्रेमपीठ मध्वमठ तिजारा, जिला अलवर, राजस्थान

5. **डॉ रवि,**
1st फ्लोवर, नीयर लक्ष्मी भगवन, सेन्ट्रल बाजार रोड़, नागपुर,

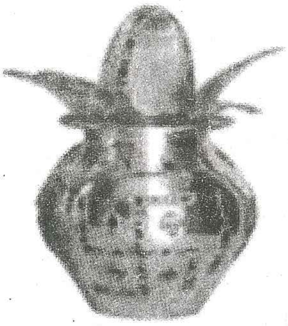

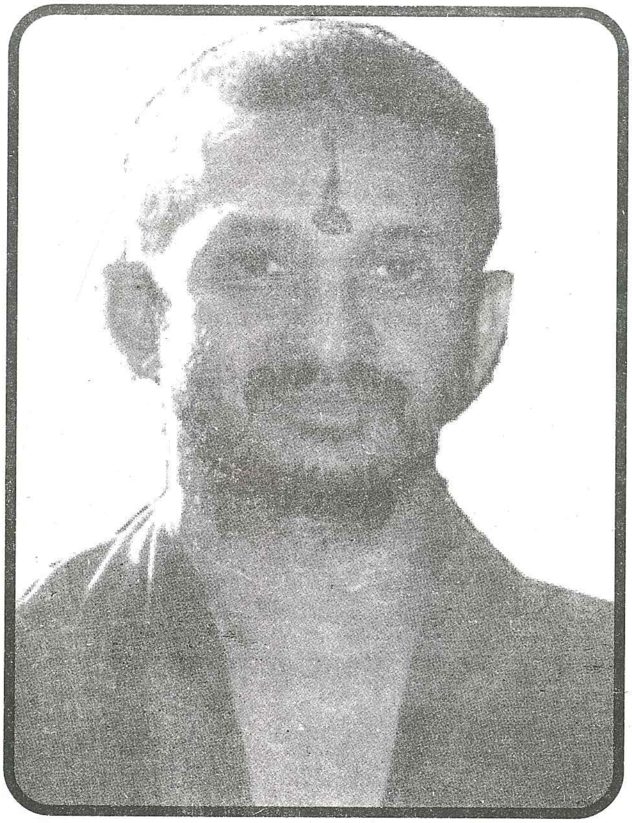

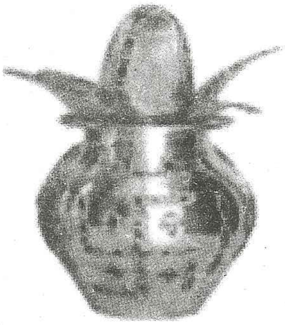

तीन वर्ष अविरत परिश्रम, सद्‌गुरु की कृपा और सज्जनों के सहयोग से अट्‌ठारह हजार श्लोक वाली पुराणराज श्री मन्महाभागवत पुराण की भाषानुवाद इस ग्रंथ के प्रकाशन से पूर्ण हो रहा है। इसको पूर्ण करने में सहायक बने ज्ञात-अज्ञात सबको हम कृतज्ञता अभिव्यक्त करते है। प्रथमतः हमे अनुवाद करने का आदेश देते हुए उसको क्रियान्वित करने का सामर्थ्य प्रदान करते हुए आवश्यक साहित्य सामग्रियों को प्रदान करने वाले हमारे गुरु **श्री श्री विद्याधीशतीर्थ स्वामी जी** को कृतज्ञ होकर अनंत नमस्कार करता हूँ।

तथैव इस ग्रंथ के मुद्रण हेतु आवश्यक साधन-संपत्ति को देने वाले श्री विवेक चन्द्र श्रीवास्तव जी का शुभाशंसन करते हैं। **श्री विवेक चन्द्र श्रीवास्तव** सद्भक्त है, सदाचारी और व्रतनिष्ठ हैं। उनको उनके समस्त परिवार को हम शुभकामना करते हैं।

श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी

मध्व मठ, दारागंज, प्रयाग

ऋषभदेव के नव पुत्रों को राजा निमि सहित
सारे लोग खड़े होकर सम्मान देते हुए।

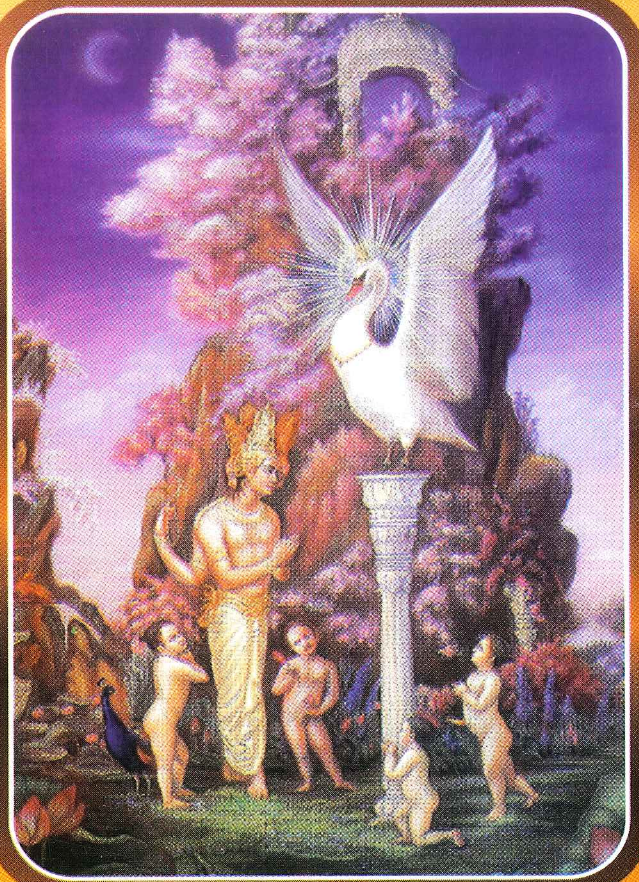

श्री ब्रह्मा जी के सनकादि चार पुत्रों को
श्री हरि हंस रूप धारण कर उपदेश देते हुए।

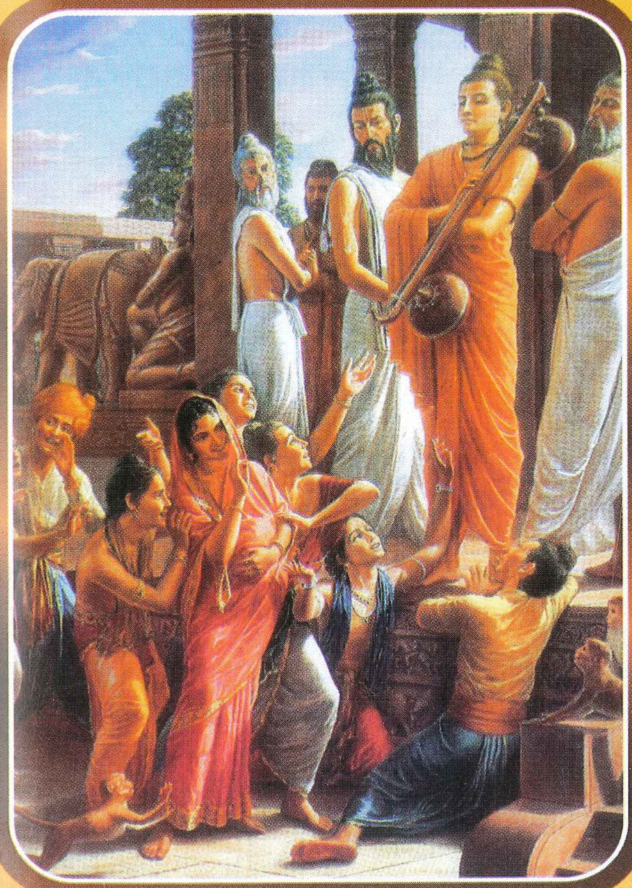

यादव कुल संहार करने वाला ब्राह्मण शाप

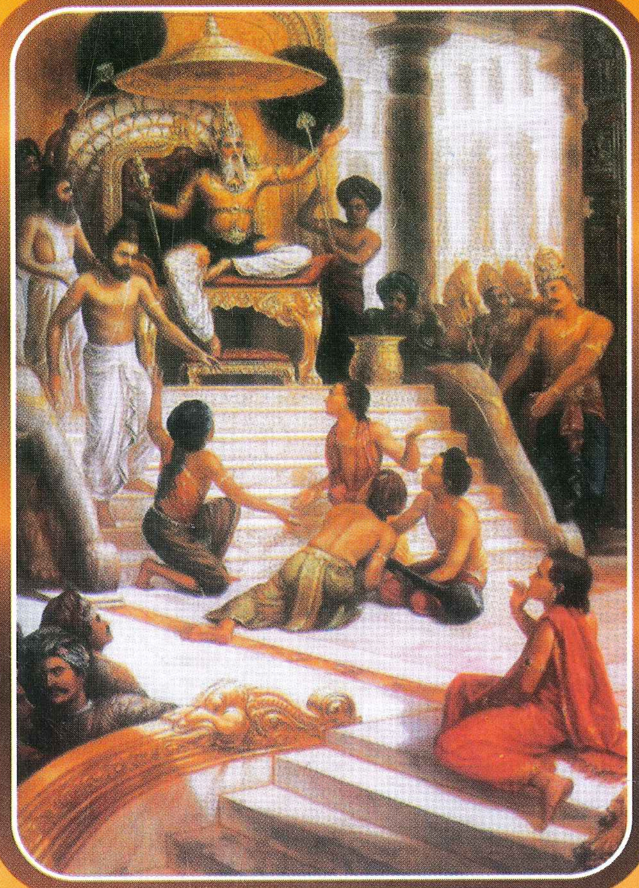

शापित यादव मूसल को राजा उग्रसेन को सपर्पित
करते हुए। राजा उसको समुद्र में चूर्ण करके मिला दिया।

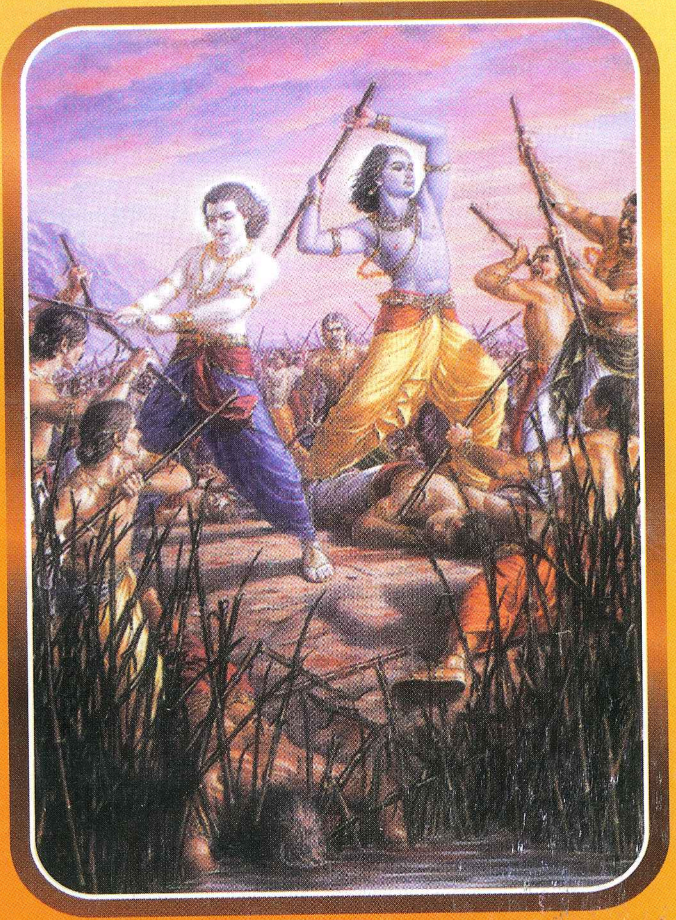

यादव का परस्पर कलह एवं युद्ध

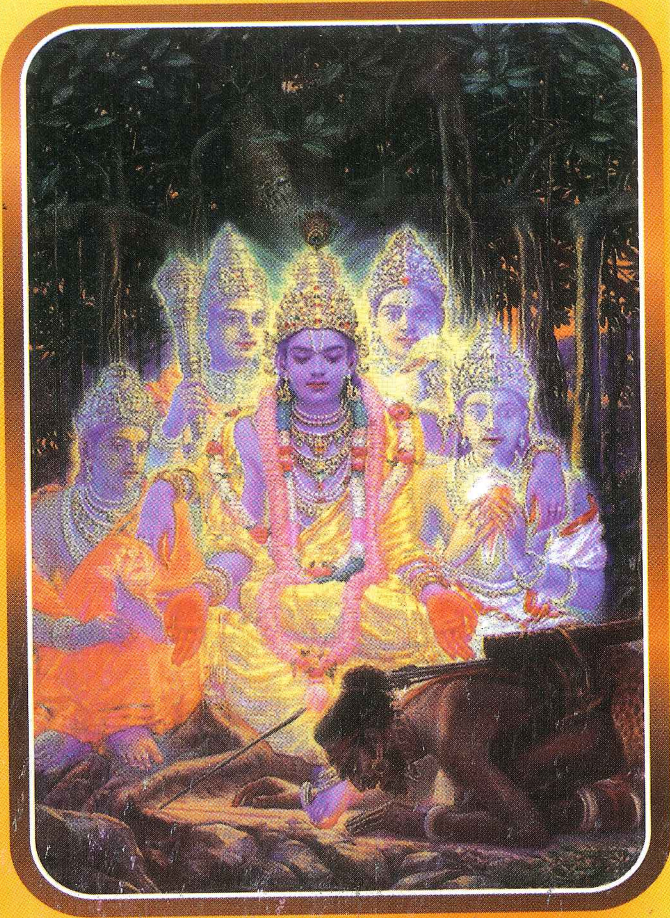

व्याध का पश्चात्ताप

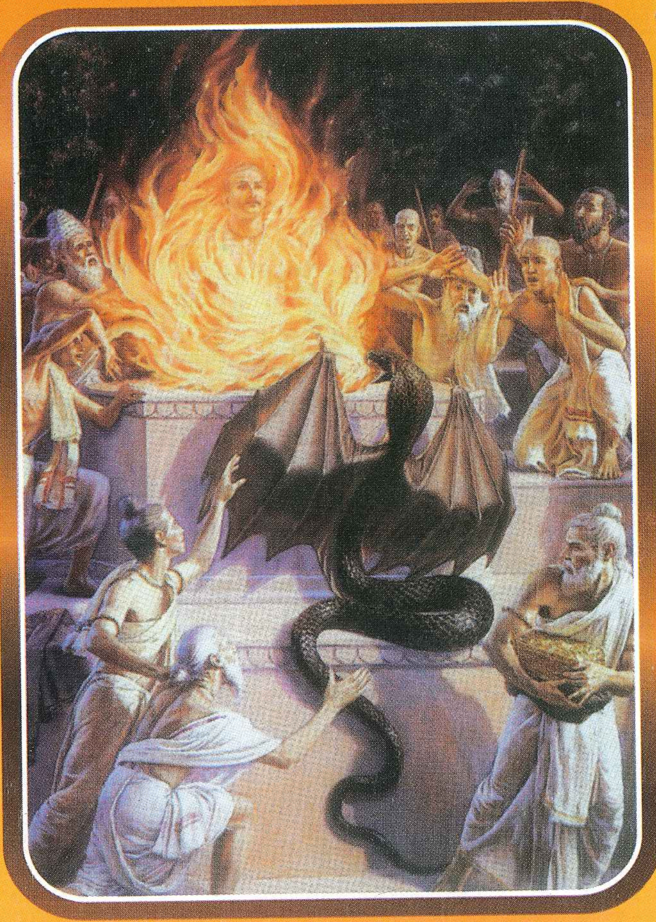

तक्षक नाग राजा परीक्षित को काटते हुए

राजा जनमेजय द्वारा सर्प मारण यज्ञ

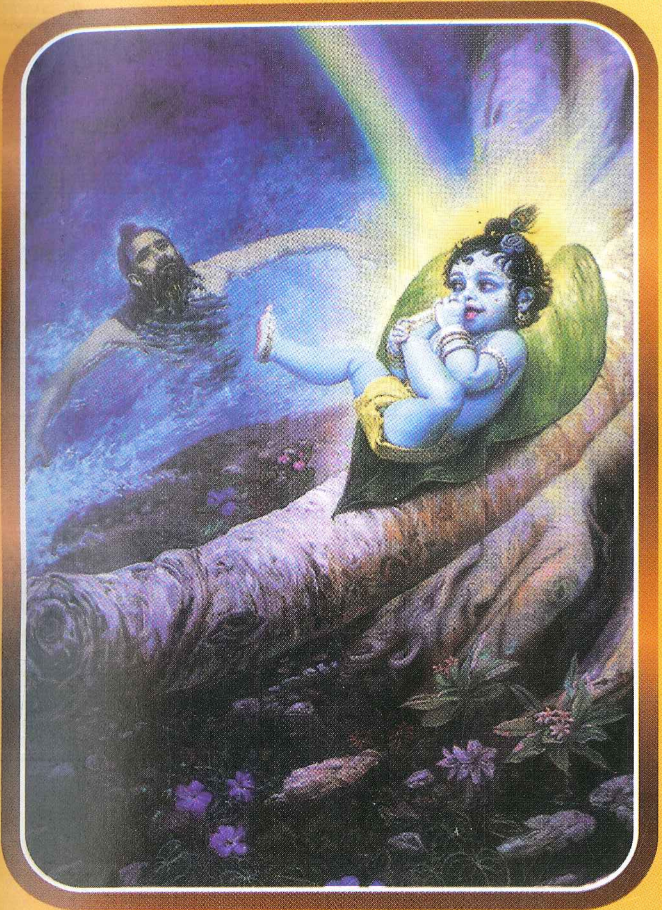

मार्कण्डेय ऋषि को प्रलय दर्शन

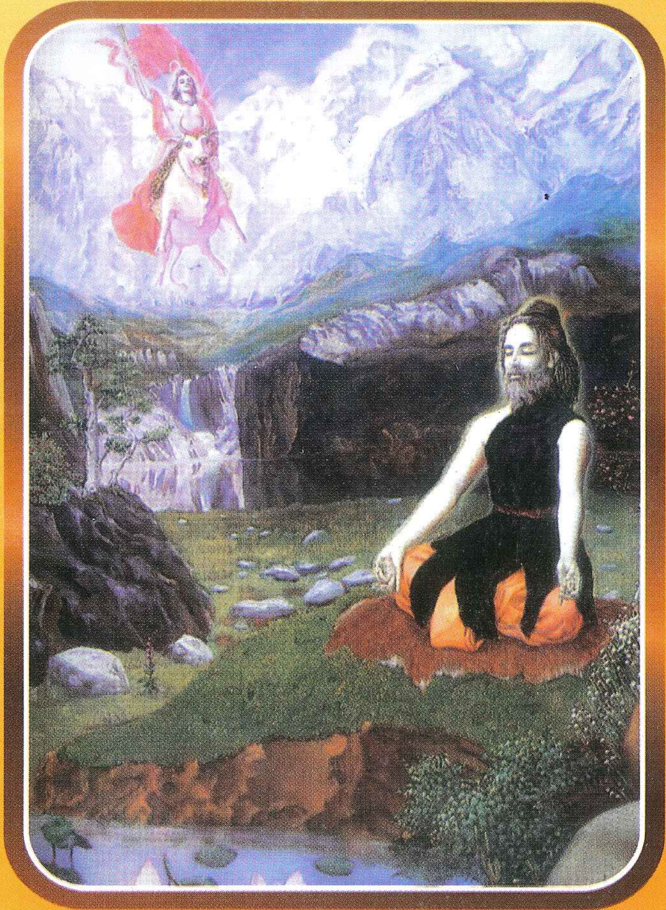

मार्कण्डेय के पास भगवान् शिव आते हुए।

भगवान श्रीकृष्ण का महाप्रस्थान

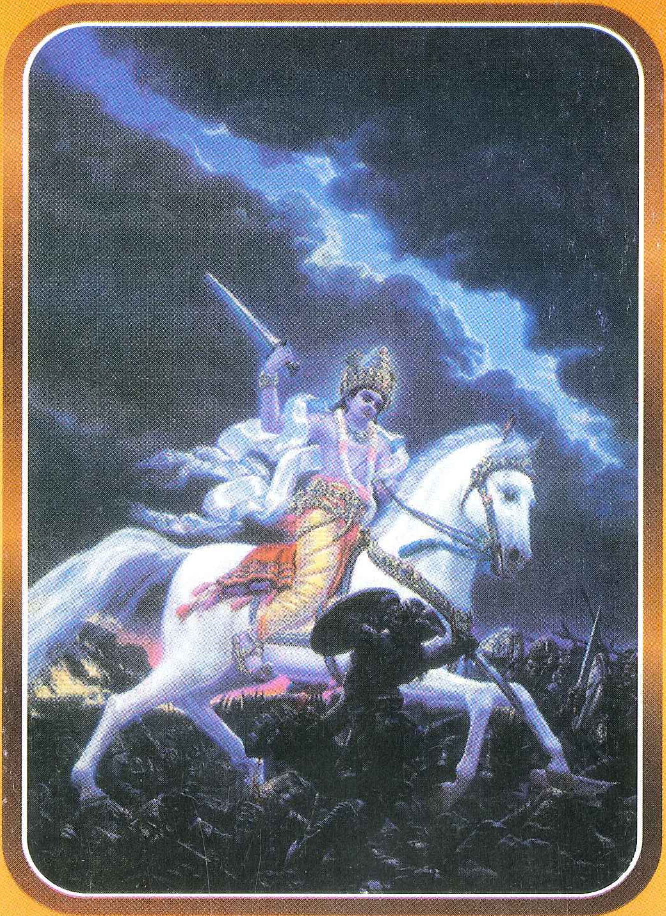

कल्कि अवतार

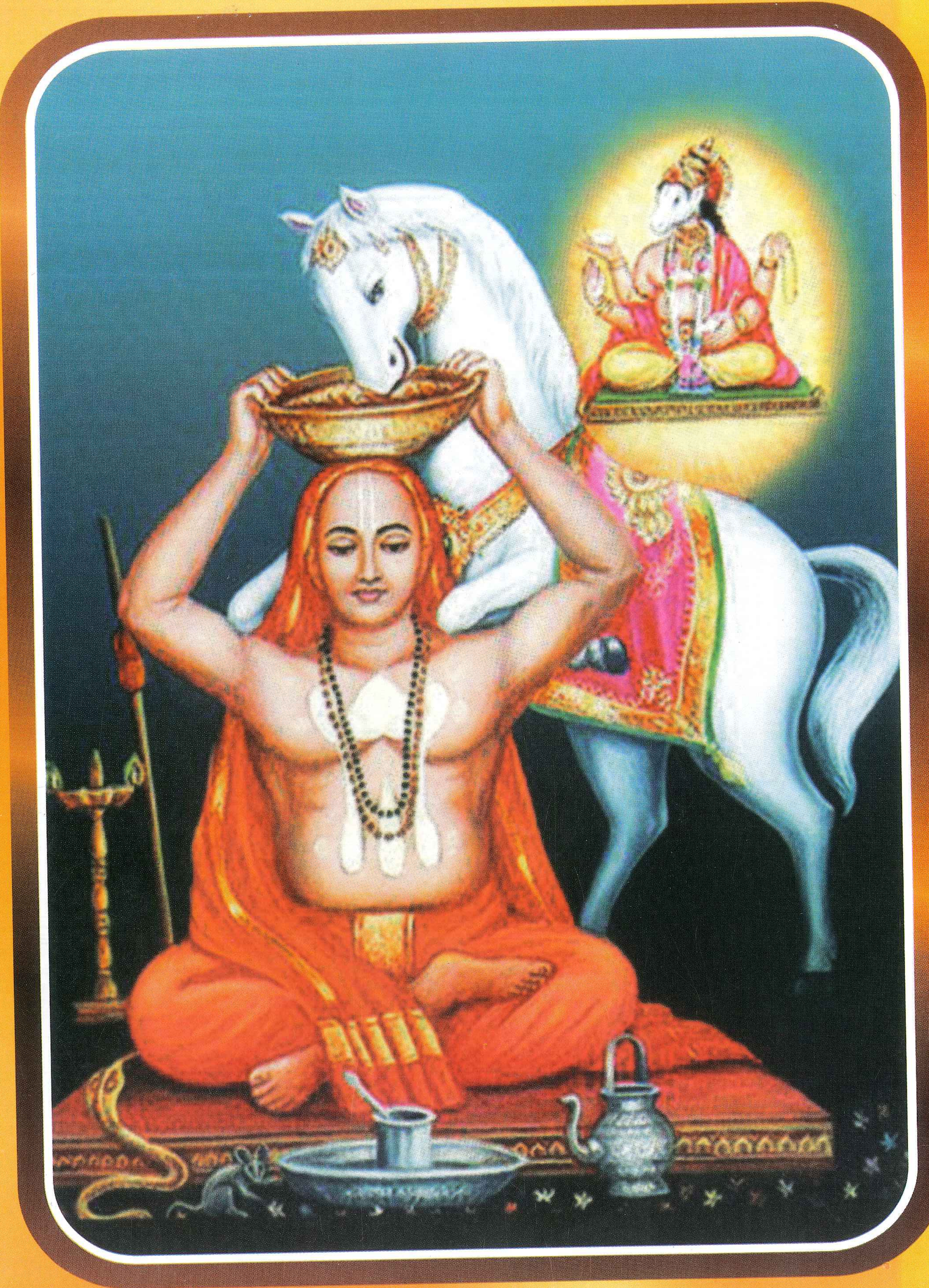

तपोविद्या विरक्त्यादि सद्गुणौघाकरानहम् । वादिराज गुरून् वन्दे हयग्रीव दयाश्रयान् ॥

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - इक्कीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं - शास्त्र में कहा गया भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग इन तीनों को छोड़कर दुष्ट इन्द्रियों से क्षुद्र विषय सुखों को सेवन करने वाले न मोक्ष पाते हैं, न स्वर्ग पाते हैं। वे इस संसार में ही रहते हैं।।१।।

भगवान जो आज्ञा दिये हैं, वह भक्तियोग हो, ज्ञानयोग हो अथवा कर्मयोग हो। वह भगवान की इच्छा के अधीन हैं यह समझते हुये उसमें निष्ठा दिखाना भगवान के लिये प्रियकर बनता है। तब वह गुण कहा जाता है। इसके विरुद्ध भगवान को इष्ट हो अथवा अनिष्ट हो वेद में जो बताया गया है वह गुण हैं। वेद में जो निषेध किया गया है वह दोष है। इस प्रकार समझ कर चलना दोष होता है। यह गुण दोष का स्वरूप निर्णय है।।२।।

गुण दोष की विवेचना से अनुष्ठान करने से ज्यादा पुण्य मिलता है। इस उ-श्य को बताने के लिये यह शुद्ध, गुण और सुख है। इसको समझने के लिये पांच भौतिक होकर समान रूप से देश, काल, वस्तुओं में भगवान का विशेष सन्निधान है अथवा नहीं है। इस प्रकार गुण, दोषों को बताते हुये शुद्धि-अशुद्धि, शुभ-अशुभ अथवा वैलक्षण्य है। इस प्रकार वेद में कहा जाता है।।३।।

शुद्धि और अशुद्धि का अर्थ पवित्र और अपवित्र होता है। गुण दोष, पुण्य और अपुण्य कारक होते हैं। शुभ-अशुभ पुरुषार्थ साधक अथवा असाधक होते हैं।

देश, काल, वस्तु कर्म मंत्र इनमें जो भगवान को प्रीतिकर है। उनके सन्निधान विशेष वाला है, वह शुद्ध है। कर्मानुष्ठान के लिये ग्राह्य है। शुद्ध देश काल में भगवान की पूजा करे तो पुण्य ज्यादा मिलता है। इसी कारण शुद्धि और अशुद्धि का विचार करना चाहिये। इस प्रकार वैशेष्य नाम के ग्रंथ में कहा गया है।

लोगों को पुण्य सम्पादन के लिये यह प्रशस्त है इसके लिये ग्राह्य है। यह अप्रशस्त हैं, इसके लिये अग्राह्य है। इस व्यवहार सिद्धि को पाते हुये परस्पर सामरस्य से समाधान कारक

जीवन के लिये धर्माचरण को बताने वाले में धर्म शास्त्रों में आचार संहिता को दिखाया है।।४।।

ब्रह्मा से लेकर सारे स्थावर, जंगम, सारे प्राणियों के शरीर, मन आदि इन्द्रियाँ पृथ्वी, आग, तेज, वायु, आकाश नाम के पंचभूत से निर्माण हुये हैं। इस अंश में वे सारे समान है। किन्तु उनमें रहने वाले भगवान का सन्निधान सब में समान रीति का नहीं है, वह तारतम्य युक्त है।।५।।

प्राणियों के शरीर पांच भौतिक होकर समान होते हुये भी योग्य लोगों को अपने योग्य ध्येय साधना के लिये भगवान के सानिध्य के अनुसार शुद्ध होना चाहिये। सानिध्य के वैलक्षण्य से विलक्षण दिखने वाले देव-ऋषियों का नाम, रूप भगवान से ही निर्माण होते हैं।।६।।

मुख्यतः स्वभावतः केवल विष्णु पूर्ण रूप से शुद्ध हैं। जहाँ-जहाँ उनका विशेष सन्निधान होता है वहाँ-वहाँ ज्यादा शुद्ध होता है। यह वैशेष्य नाम के ग्रंथ में कहा गया है।

उद्धव ! मेरी पसन्द के कर्मों में सज्जनों की प्रवृत्ति बने इस उ‌‌‍ेश्य से मैं ही अपने वेद इत्यादि शास्त्र स्वरूप विधि निषेद्य वचनों से देश काल इत्यादि वस्तुओं में अपने सन्निधान के अनुसार गुण दोषों को बताता हूँ।।७।।

जिन प्रदेशों में कृष्ण मृग रहते हैं, उस प्रदेश में ब्राह्मणों को कर्मानुष्ठान करने के लिये शुचि रहती है। किन्तु सौवीर, कीटक और अन्य असांस्कृतिक देश में कृष्णमृग होते हुये भी शुचि नहीं रहती।।८।।

पुण्य नदी, समुद्र, पर्वत, आश्रम, तपोवन, शालिग्राम और कृष्णमृग रहने वाला प्रदेश शुद्ध माने जाते हैं। दुर्जन जहाँ वास करते हैं वह प्रदेश अशुद्ध है। वहाँ यदि विष्णु भक्त रहने लगें, विष्णु प्रतिमा का प्रतिष्ठान हुआ तो वह भी शुद्ध होता है। इस प्रकार स्कन्द पुराण में कहा गया है। जड़ प्रतिमा में शास्त्र विहित क्रम से संस्कार किये तो विष्णु का सन्निधान आता है। लक्ष्मी, ब्रह्मादिक चेतन प्रतिमा में स्वाभाविक रूप से सदाकाल के लिये विष्णु सान्निधान रहता है। इस प्रकार भी स्कन्द पुराण में कहा गया है।

फल, पुष्प, द्रव्य की समृद्धि रहने वाला बसन्तादि काल और पूर्ण गुण भरित संन्ध्या काल कर्माचरण के लिये योग्य काल है। जिस काल में कर्माचरण कर नहीं सकते वह काल दोष पूर्ण होता है, कर्माचरण के लिये अयोग्य होता है।।९।।

द्रव्य की शुद्धि-अशुद्धि, द्रव्य से, महात्माओं के वचन से, संस्कार से अथवा महत्व या अल्पतत्व से निर्णय होता है।।१०।।

द्रव्य से द्रव्य को होने वाली शुद्धि के बारे में आगे बारहवें श्लोक में विवरण दिया गया है। अशुद्धि के उदाहरण के लिये गंगा जल को मद्य के सम्पर्क से अशुद्धि आती है। महात्मा के सम्पर्क से शुद्धि होती है। इसके लिये यति का भिक्षा-पात्र बना हुआ कटोरा साक्ष्य है। अन्न की शुद्धि, मंत्र प्रोक्षरण से भगवान को भोग लगाने से आती है। यह शुद्धि नहीं किया तो उस अन्न को खाने से **भुंजंते ते त्वघं पापाः** गीता के इस वचन के अनुसार अशुद्ध हो जाता है। श्राद्ध काल में उड़द और शहद शुद्ध होता है। कार्तिक मास में वही अशुद्ध होता है। अन्न की राशि को कुत्ता छुये तो जितना कुत्ता छुआ है उतना ही अशुद्ध है। उसको निकाल कर फेकने से बची हुई अन्न राशि शुद्ध होती है। किन्तु एक छोटे बर्तन में रहने वाले अन्न को यदि कुत्ता छूता है तो अल्पत्व होने के कारण वह अशुद्ध और त्याज्य है। बड़ा जलाशय अशुद्ध नहीं होता। छोटे बर्तन में रखा हुआ पानी स्पर्श से अशुद्ध होता है।।१०।।

शक्ति, अशक्ति से, विशेष वचनों से, तत्वज्ञान से, धन-सम्पत्ति से, देश अवस्था के अनुसार आचारों में शुद्धि-अशुद्धि मानी जाती है।।११।।

खाये हुये अन्न को पचन करने की ताकत रखने वाले को सात्विक अन्न आँवला के साथ शुद्ध माना जाता है। किन्तु रोगी को वह अशुद्ध होता है। आयुः सत्व, बल, आरोग्य, दुःख, शोकामय प्रदाः इस प्रकार गीता में विशेष वाक्य आहार के शुद्धि और अशुद्धि के बारे में कहा गया है। तत्वज्ञान से ज्ञानी का शरीर सदा के लिये शुद्ध रहता है पर अज्ञानी का शरीर अशुद्ध होता है। नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिहविद्यते गीता इस प्रकार कहती है। न्याय से अर्जित धन-सम्पति जो सज्जनों के उपयोग में आती हैं तो वह शुद्ध धन हैं। इसके विपरीत रहे तो वह अशुद्ध होता है। मामा की पुत्री से विवाह करना उत्तर देश में अशुद्ध है दक्षिण में शुद्ध है। सोमरस को यज्ञ में पीना शुद्ध हैं अन्य समय में पीना अशुद्ध होता है। बाल्यावस्था में अशुचिस्पर्श अशुद्ध नहीं होता है।

धान्य, लकड़ी के पीठोपकरण, अस्थि, धागा, ये पार्थिव वस्तु, दूध, दही, घी इत्यादि रस पदार्थ सोना-चाँदी इत्यादि तैजस पदार्थ, चर्म इत्यादि काल और आग, वायु, मिट्टी के साथ अथवा प्रत्येक होकर शुद्ध हो सकते हैं।।१२।।

घोड़ा, गधा आरा खाकर बचा हुआ धान्य उस समय अशुद्ध होता है। किन्तु दो-तीन माह के पश्चात शुद्ध होता है। यह काल से शुद्ध होने का दृष्टान्त है। लकड़ी के पीठोपकरण हवा से शुद्ध होते हैं। शंख और हाथी के दांत ये अस्थि होते हुये भी मिट्टी और पानी से शुद्ध होते हैं। दूध और घी को आग से तपाने से शुद्धि मिलती है। सोना-चाँदी आग से शुद्ध होते हैं। धागा से बनाया हुआ फूल-माला पानी से शुद्ध होता है। तांबे का बर्तन इमली से शुद्ध होता है।

मद्य, मांस आदि अशुद्ध पदार्थ का सम्पर्क हुआ तो उसको हटाने के बाद गोमय का लेप करे तो बदबू जाकर शुद्ध होती है।।१३।।

स्नान, दान, तप, ध्यान, तत्वज्ञान सामर्थ्य, संन्ध्यादि नित्यकर्म व्रत के आचरण तथा भगवान की आराधना करते समय ब्राह्मण को अपने मन को शुद्ध रखते हुये कर्माचरण करना चाहिये।१४।।

मंत्र को ऋषि, छन्द और देवता ज्ञान से, अर्थ ज्ञान से शुद्धि होती है। कर्म को भगवदर्पण भाव से करने से शुद्धि मिलती है। इस प्रकार शुद्धि-अशुद्धि को उचित प्रकार से समझ कर वेद विहित कर्मों से ज्ञान, भक्ति आदि धर्म सम्पादन करना चाहिये। इसको न समझने वाले दुष्ट जन वही वेद विहित कर्म करते हुये पाप सम्पादना करते हैं।।१५।।

गुण के समान दिखने वाले कई वेदोक्त कर्म दुर्जन लोग करें तो दोष होता है। दोष के समान लगने वाले हिंसादि कर्म भगवान की आज्ञा से सज्जन करें तो गुण होता है। ये गुण-दोष नियम उनके फलस्वरूप मिलने वाले स्वर्ग-नरक इनको समझने वाले मानवों को ये बाधक नहीं बनते। बुद्धि न रहने वाले पशु पक्षी और छोटे बच्चों को गुण दोष का बंधन नहीं है।।१६।।

चौदह वर्षों के बाद शुभ-अशुभ को समझने वाला मानव मूर्खता से नहीं समझा तो अशुभ कर्म को न जानते हुये करने से दोष ही होता है। समझ न रहने वाले पशु-पक्षी को इसका दोष नहीं है। इस प्रकार स्कन्द पुराण में कहा गया है।

एक पाप कर्म किसी एक को योग्य रहा तो उसके लिये पाप नहीं आता। पाप कर्म से जो पतित हो गया है वह प्रायश्चित करने के बाद फिर वही पाप कर्म करे तो उसको पाप नहीं आता। जाति स्वभाव से ब्राह्मण कर्माचरण को अनर्ह शुद्र ब्राह्मण को पाप लगने वाला अभक्ष्य-भक्ष्य आदि अशुद्ध काम किये तो भी उसको पाप नहीं है। क्योंकि वह उसके लिये योग्य होता है। भूमि पर सोया हुआ मानव को गिरने का भय नहीं रहता। किन्तु उनके लिये योग्य न होने

वाला ब्रह्म हत्यादि पाप करने से पाप आता है।।१७।।

मद्य-पान से पतित जो हैं वह प्रायश्चित्त रूप में उबलते मद्य को पीकर शरीर त्याग करें तो उनको मद्य पान करने का पाप नहीं है। प्याज, लहसुन इत्यादि अभोज्य वस्तु खाने से ब्राह्मण को पाप आता है। किन्तु शूद्र को पाप नहीं आता क्योंकि वह उसके लिये योग्य है। इस प्रकार समाचार नाम के ग्रंथ में है। किन्तु वही शूद्र विष्णुदीक्षा पाया हो तो उसको यह अभोज्य बनता है। यह विष्णुतंत्र नाम के ग्रंथ में है।

फल कामना के बिना जो-जो कर्म करता है, करने के बाद भगवान को समर्पित करता हैं तो वह कर्म बंधक नहीं बनता। वह कर्म करने वाला मुक्त होता है। यही मानव को शोक, मोह, भय को नाश करने वाला क्षेम करने वाला धर्म है।।१८।।

दुष्टजनों के संग में रहे तो वे विषय पदार्थों में रहने वाले अल्प गुणों के बारे में भी जोर देकर कहने में वहीं अच्छा है, इस प्रकार का भ्रम आ सकता है। इससे उनमें आसक्ति बढ़ती हैं। उससे उनमें इच्छा, इच्छा से अधर्म और अज्ञान रूप कलिका प्रवेश होता है।।१९।।

सज्जन लोग विषय वस्तु में रहने वाले दोषों को दर्शाते हुये धर्म का प्रबोधन करे तो उनके ऊपर क्रोध आता है। उस क्रोध के कारण उस जीव को अंधंतमस होता है। वहाँ ज्यादा दुःख को पाते हुये उसकी सारी इन्द्रियों में रहने वाली सुखानुभव करने की शक्ति नष्ट हो जाती है।।२०।।

सुखानुभव शक्ति को खोए हुए उस असुर जीव को लेश-मात्र भी सुख नहीं होता है। उसका दुख बढ़ता जाता है। मरने के बाद भी तमस में आने के कारण उसको मूर्च्छा अथवा मरण नहीं होता।।२१।।

इस प्रकार तमस में विष के समान दुख को भोगते हुये वह असुर जीव अपने को अथवा दूसरों को नहीं जान सकता। वृक्ष को जैसे काटते हैं वैसे वायुदूत कुल्हाड़ी से उसको काटते हैं। उससे वह मरता नहीं, जीवित रहता है। किन्तु जीवन पूर्ति दुख ही भोगता हैं।।२२।।

विष्णु द्वेषी मूढ़ लोग सदाकाल के लिये विषय पदार्थों की प्रशंसा करते रहते हैं। उनके संग से निषिद्ध पदार्थों में भ्रम, असक्ति और आकांक्षा उत्पन्न होती है। अधर्म, अज्ञान रूप के कलि का आवेश होता है। विष्णु भक्त उपदेश करने आये तो उनके ऊपर क्रोध आता है। उसके परिणाम स्वरूप मरने के बाद तम प्राप्त होता

है। वहाँ इन्द्रियों का सुखानुभव मिट जाने के कारण केवल दुख का अनुभव होता है। उसको छिपाने वाला मूर्छा अथवा मरण नहीं पाता। तम में केवल दुखानुभव रहता है इस प्रकार तंत्र भागवत में कहा गया है।

यज्ञ से स्वर्ग मिलता है, श्रुति में यह बात कही गई है। किन्तु यह स्वर्ग फल अन्तिम नहीं है। मोक्ष के लिये ही यज्ञ करना चाहिये। यह स्मृति का मुख्य वाक्य है। क्योंकि वेद में स्वर्ग का अर्थ मोक्ष ही है। इस प्रकार श्रुति एकान्त भक्तों को मोक्ष साधना के लिये प्रेरित करता है। सामान्य भक्तों को मोक्ष साधन रूपी यज्ञ से स्वर्ग भी मिलता है। आपको क्षुद्र सुख देने वाली स्वर्ग ही जब इतना आकर्षक है तो महापुरुषार्थ माना गया मोक्ष और कितना आकर्षक हो सकता है। इस प्रकार मोक्ष फल में आसक्ति निर्माण करने के लिये श्रुतियों में स्वर्ग फल को बताया गया है। माँ अपने बच्चों को कड़वी औषधि पिलाते समय गुड़ देती है। उसी प्रकार वेद हमें स्वर्ग फल और मोक्ष फल दोनों के बारे में यज्ञ करने के लिये कहता है।।२३।।

यज्ञ के फल को बोलने वाली श्रुति अनित्य स्वर्ग फल के बारे में नहीं कहती है। वह नित्य मोक्ष फल के बारे में ही कहती है। क्योंकि अज्ञानी लोग स्वर्ग फल को पाना चाहते हैं। किन्तु ज्ञानी मोक्ष फल को ही पाना चाहता है। इस प्रकार तंत्र भागवत में कहा गया है।

अज्ञानीजन नरक देने वाला विषय पदार्थों में, इन्द्रिय सुखों में, पत्नी-पुत्र इत्यादि बन्धुजनों में आसक्त होकर रहते हैं।।२४।।

यज्ञ करने वाले को मोक्ष रूप महाफल मिलता है। किन्तु उसके लिये बहुत समय तक दीर्घ और कठिन तप करना पड़ता है। इसीलिये अन्य लोगों को जल्दी में फल देने वाला स्वर्ग ही आकर्षक लगता है। वेद उनके ऊपर प्यार से यह बताती है कि तुमको स्वर्ग ही इतना आकर्षक है तो उससे ज्यादा सुख देने वाला मोक्ष कितना आकर्षक होगा। इसके लिये ही यज्ञ करो। इस आस्था को निर्माण करने के लिये जैसे माँ कड़वी औषधि देते समय गुड़ देती है वैसे अज्ञानियों को मोक्ष सुख के बारे में भी कहती है। यह विषय विचार नाम के ग्रन्थ में कहा गया है।

लोग विषय भोग में रहने वाले दोष को नहीं समझते। अपना हित कहाँ है ? इसको न समझते हुये पाप कर्म करते रहते हैं। किन्तु ज्ञानी वेद पुरुष उनको विषय सुख के बारे में कैसे प्रबोधन कर सकता है। न समझते हुये जो नरक जाना चाहता है उसको वेद पुरुष कैसे नरक के मार्ग को बताएगा।।२५।।

इस प्रकार वेद के अन्दर के अर्थ को न समझने वाले दुष्ट बुद्धि के कई लोग वेद को उचित तरह से न समझते हुये अनित्य स्वर्ग फल को बोलते हैं। प्रथम दृष्टया दिखने वाले श्रुतियों को दिखाते हुये शाश्वत रूप फल नाम के मोक्ष को छोड़कर केवल फूल के स्थान में रहने वाले स्वर्ग को वेद का फल मानकर प्रचार करते हैं।

वेद मुख्य रूप से जिसके बारे में उपदेश देता है वह अनित्य स्वर्ग सुख नहीं है। वह नित्य मोक्ष के बारे में ही कहता है। वहाँ कहा गया हुआ स्त्री-सुत धन, कनक आदि विषय मोक्ष में मिलने वाले हैं। वे इस संसार में मिलने वाले नश्वर वस्तु के समान नहीं है। वेद असुरों के लिये अनित्य फल के बारे में उपदेश देता है। देवताओं के लिये नित्य फल के बारे में कहता है। इस प्रकार विचार नाम के ग्रंथ में लिखा गया है।

ये लोग निषिद्ध विषय भोगों में आसक्त होते हैं। विषय सुख लोभ से उसके पीछे पड़कर अनर्थ भागी होते हैं। अल्प समय में मुर्झा जाने वाले पुष्प के समान रहने वाले स्वर्ग सुख को शाश्वत फल समझते हुये, यागादि को ही सर्वसक्त भगवान मानते हुये यज्ञशाला में व्यर्थ रूप में धुआँ को खाने वाले ये लोग अपने को आश्रय देने वाले भगवान के बारे में समझते नहीं।।२७।।

स्वर्ग लोक का अर्थ आश्रय देने वाला भगवान श्री नारायण इस प्रकार होता है।

उद्धव ! ये लोग तम में वायु देव से शिक्षा पाने योग्य हैं क्योंकि वे केवल इन्द्रियसुख में आसक्त होकर अपने हृदय में रहने वाले भगवान को देख नहीं पाते।।२८।।

विष्णुद्वेषियों को वायु देव तम में रखते हुये शिक्षा देते हैं। भक्तलोगों को मोक्ष देकर सुख देते हैं। यह विचार, विचार नाम के ग्रंथ में आया है। यह बात ऋग्वेद में भी (8-29-8) कहा गया है।

वे वेद पुरुष मेरे आन्तर्य को न समझते हुये वेदोक्त कर्म से तम की साधना करते हैं। प्राणि हिंसा को चाहते हुये कुतर्क से उस हिंसा को यज्ञ के नाम से समर्थन देते हैं। वेद में इसके लिये विधि नही किया गया है।।२९।।

परोक्ष का अर्थ अंधन तमस है। इस प्रकार सुव्यक्त नाम के ग्रंथ में कहा गया है। असुर स्वभाव के लोग अविहित कर्म हिंसा करने की इच्छा से उसी को विहित कर्म इस प्रकार बोलते हैं। यह विचार, विचार नाम के ग्रंथ में है।

प्राणी हिंसा उनको एक खेल है। अपने सुख की आशा से पशुओं को मारकर देवता, पितृ, बड़े भूतों को यज्ञ से आराधना करते हैं। वे मुझको भूल जाते हैं।।३०।।

विष्णु को छोड़कर अथवा उनके समान मानकर क्षुद्र देवताओं को, पितृ भूतों को पूजा करने वाले असुर होते हैं। यह आचार्य नामक ग्रंथ में है।

अनित्य और स्वप्न के सुख के समान स्वर्ग की बात सुनने के लिये आकर्षक रहती है। वह सुख भोग पाने की आशा से ये दुर्जन लाभ की आशा से व्यापारी मूल धन को जैसे खो देता है वैसे ही अपनी सारी सम्पदा को यज्ञ में विनियोग करते हुये खो देते हैं।।३१।।

तामस स्वभाव के इन यज्ञ करने वालों में तीन तरह के लोग होते हैं। तामस, राजस विषयासक्त तामसराजस स्वभाव वाले, तामससात्विक विषयासक्त तामससात्विक स्वभाव वाले और तामसतामस विषयों को चाहने वाले तामसतामस स्वभाव वाले इस प्रकार तीन तरह के लोग होते हैं। ये सारे न इन्द्र को, न मुझको सभी तरह से आराधना नहीं करते।।३२।।

विष्णु द्वेषी तामस लोग तीन प्रकार के होते हैं। मुनष्याधम तामससात्विक। ये सामान्यतः नरक को जाते हैं। कभी-कभी स्वर्ग को भी जाते हैं। अन्त में तम में गिरते हैं। असुर भृत्य तामस राजा बनते हैं। वे केवल नरक को जाते हैं। अन्त में तामस में गिरते हैं। प्रधान असुर तामसतामस होते हैं। केवल नरक को ही जाते हैं। अन्त में अन्धः तामस में गिरते हैं। इस प्रकार हरिवंश पुराण में कहा गया है।

हम इस लोक में यज्ञों से देवताओं को तृप्त करते हुये स्वर्ग में विहार करेंगे। बाद में यहाँ बड़े उच्च कुल में जन्म लेकर, बड़े यज्ञों को करेंगे।।३३।।

इस प्रकार एक क्षण में गिरने वाला फूल के समान रहने वाला स्वर्ग फल को वेद कहता है ऐसा लगता है। इसी से ये दुर्जन लोग चित्तक्षोभ पाकर स्वयं को वेदज्ञ मानते हुये अहंकार से रहते हैं। ज्यादा मद से अविनीत होकर सही वेद जानने वाले गुरुओं की सेवा नहीं करते हैं। उनको मेरे बारे में सुनने के लिये भी इष्ट नहीं होता।।३४।।

स्वतः पूर्ण गुण स्वरूप श्री वासुदेव को मुख्य रूप से वेद के, ब्रह्माण्ड के, देवताकाण्ड के, कर्मकाण्ड के, प्रधान इस प्रकार वेद कहते हैं। इसी कारण वेद में आने वाला स्वर्ग शब्द मोक्ष के बारे में ही बताता है। दृष्टिक्षेप यह समझ में नहीं आता। गूढ़ रूप से बताना देवताओं के लिये इष्ट होता है। मुझको भी यही इष्ट है।।३५।।

वेद ब्रह्म के बारे में कहता है। हरिवंश में ब्रह्मतत्व के बारे में इस प्रकार कहा गया है। गुरुपूर्णत्व जिसमें स्वयं है, वही ब्रह्मात्म है। इसके अनुसार स्वतः गुण परिपूर्ण भगवान विष्णु के बारे में ही मुख्य रूप से वेद प्रतिपादन करता है।

वेदज्ञ गुरु की उपदेश के बिना वेद का अर्थ किसी को होता नहीं। मुख्य प्राण, इन्द्रियों के अभिमानी मनोदेवताएँ उचित रूप में गुरु होते हैं। भगवान के अनुग्रह से केवल मुख्य प्राण ही वेदार्थ को अपनी स्वयं प्रतिभा से जानते हैं। इनको नित्य, अपरिमित समुद्र के समान गंभीर रहने वाले वेद का अर्थ मालूम होता है।।३६।।

वेद प्राणेन्द्रिय और मनोमय होने के लिये प्राण और इन्द्रियाँ मनोभिमानी देवताओं को स्वयं प्रतिभा से मालूम होता है। इस प्रकार वाराह पुराण में कहा गया है। वेद अनन्त हैं, अपार का अर्थ वेद में अन्तः पाठ हैं। वेदों से मुख्य रूप से नारायण प्रतिपाद्य है।

सर्वशक्त अत्यन्त परिपूर्ण स्वरूप में मैं ही वेदों में मुख्यतः प्रतिपाद्य हूँ। उसमें मैं कमल के नाल के समान निगूढ़ रहकर जब लोग वेदों का उच्चार करते हैं तब उसमें व्यक्त होता हूँ।।३७।।

मकड़ी अपना घर बनाने के लिये अपने हृदय से जाला को बनाकर मुहँ से बाहर करती हैं। उसी प्रकार देवता लोग वेद उच्चारण करते समय मुख्य प्राण और विष्णुध्यानासक्त मन से वेद को हृदयाकाश से उठाकर मुख से उच्चारण करते हैं।। ३८।।

मुख्य प्राण का मन **अस्पर्श** कहने वाले हरि को प्रकाशित करता है। उन सारे स्पर्श विषयभोग श्रीहरि को ही होता है। इसी कारण हरि को अस्पर्श कहते है। यह बात वायुप्रोक्त नाम के ग्रंथ में है।

भगवान को अनन्त मार्गों से संकीर्तन करने वाले सारे मंत्रों में आदि और अन्त में ओमकार जोड़ते हुये स्पर्श, स्वर, ऊष्म, अन्तस्थ वर्णों से गर्भित वेद के अर्थ को वेदज्ञ और मोक्ष देने वाले प्रभु मुख्य प्राण उच्चारण करते हैं।।३९।।

क से म तक वर्गीय व्यंजन स्पर्शाक्षर होते है। अकार से अः तक स्वर होते हैं। श, ष, स, ह ळ ये ऊष्म अक्षर होते हैं। य, र, ल, व ये अन्तस्थ वर्ण होते हैं।

वेदों को जानने वाले मुख्य प्राण छन्दोमय कहलाते हैं। इस प्रकार वायुप्रोक्त

नाम के ग्रंथ में कहा गया है। सारे अनंत वेद विष्णु वाचक ओमकार का व्याख्यान रूप हैं। ओम्कार सहित उनका उच्चरण करना है। इस प्रकार प्रणव माहात्म्य नाम के ग्रंथ में कहा गया है।

गुह्यभाषा, दर्शनभाषा और समाधिभाषा नाम के तीन विचित्र भाषा में रचित, उत्तरोत्तर चार चार अक्षर अधिक रहने वाले सात छन्दों में रहकर नित्य परिमित रहने वाले वेदों को सृष्टि के आदि में मुख्य प्राण उच्चारण करते हैं। लय काल में उनको अपने में रख लेते हैं।।४०।।

गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, वृहती, पंक्ति, तृष्टुप, जगती नाम के सात छन्दस हैं। वे उत्तरोत्तर क्रम में चार चार अक्षर ज्यादा होते हैं। इसका अर्थ गायत्री में चौबीस अक्षर, उष्णिक में अट्ठाइस अक्षर बढ़ते जाते हैं। अष्टि, अत्यष्टि नाम के अति छन्दों के लिये यह नियम नहीं हैं। आठ अक्षरों वाली नौ पाद वाली जगती छन्द अतिछन्द को विराट छन्द इस प्रकार नाम हैं। दो अक्षर कम रहे तो विराट गायत्री, विराट उष्णिक इस प्रकार कहे जाते हैं। अक्षर ज्यादा रहे तो स्वराट गायत्री होती है। एक अक्षर कम रहे तो निछृगायत्री होती है। एक अक्षर ज्यादा रहे तो भूरिकगायत्री होती है।।४१।

वेद-पुराणों में विषय प्रतिपादन करने का तरीका गुह्यभाषा, दर्शनभाषा और समाधिभाषा इस प्रकार तीन प्रकार का है। वे प्रत्येक और गुह्यगुह्य, गुह्यदर्शन, गुह्यसमाधि, दर्शनगुह्य, दर्शनदर्शन, दर्शनसमाधि, इस प्रकार तीन-तीन तरह के कुल नौ तरह के होते हैं। उनको पुनः तीन तरह से करते हुये कुल सत्ताइस होते हैं। ये सारे सत्ताइस पुनः गुह्य, दर्शन, समाधि इस प्रकार करते हुये सारे कुल मिलकर इक्यासी होते है। गुह्य भाषा शैली में वेद में इस प्रकार दृष्टान्त मिलता है। अन्धा रत्न को पहचानता है। हाथ न रहने वाला उनको धागा से गुहता है। कंठ न रहने वाला उसका धारण करता है, जीव न रहने वाला उसका कीर्तन करता है। अन्तर्ज्ञान न रहने वाला अज्ञानी गुरूपदेश के बिना श्रीहरि के गुण रत्नों को जानते हुये स्वतंत्र रूप से हाथ, गला और जीव न रहने वाला वह हरि के अनुग्रह से उन रत्नों को माला बनाते हुए गले में धारण करते हुये उसका कीर्तन करता हैं। देखने के लिये यह सारा असंगत होते हुये भी रहस्य प्रमेय को अपने अन्दर रखने वाली वेद की यह शैली गुह्यभाषा कहलाती है। वेद में कई भागों में शैव्य, पाशुपत, बौद्ध इत्यादि दर्शन प्रमेयों को बताना उनका निराकरण करना दोनों होते हैं। गोपी चन्दन के बिना केवल भस्म धारण शैव्यादि दर्शन के अनुसार दिखता हैं

किन्तु स्कन्द पुराण में इसका निराकरण है। यह दर्शन भाषा होती हैं। जो कहना है उसको सरल रूप से न कहते हुये हरिसर्वोत्तम इत्यादि विचारों को समाधि भाषा में कहता है। इस प्रकार भाषा विवेक नाम के ग्रंथ में आता है।

गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, तृष्टुप, जगृति नाम के सात छन्दों में गायत्री चौबीस अक्षर वाली हैं। उष्णिक अट्ठाइस अक्षर वाली होती है। इस क्रम में चार-चार अक्षर बढ़ते जाते हैं। किन्तु यह नियम आगे के अतिजगति, शक्वरी इत्यादि छन्दों को अन्वय नहीं होता। दृष्टान्त के लिये जगृति छन्द में आठ-आठ अक्षर वाले कुल नौ पाद हैं। इस प्रकार छन्दोविधान नाम के ग्रंथ में कहा गया है।

संन्ध्यामुपासीत इत्यादि विधि वाक्य बोलते समय वेद किस कर्म के बारे में कहते है ? सत्य ज्ञानादि वाक्य किस प्रमेय का वर्णन करते हैं ? चत्वारिवाक् इत्यादि वाक्य स एकदा भवति द्विधा यह वाक्य किसके बहुरूप का प्रतिपादन करता है ? न सुरां पिबेत् इत्यादि निषेध वाक्य किसको मना करता है ? वेद के इन सारे मंत्रों के अन्तर्यार्थ को मुझको छोड़कर और कोई इस जगत में स्वतः पूर्ण रूप से जान नहीं सकता। मुख्य प्राण अकेले मेरे अनुग्रह से इसको पूर्ण रूप से जानते हैं क्योंकि विधि वाक्य मेरे प्यार के उ‍ेश्य से कर्म का विधि करता है। सत्यज्ञानादि वाक्य मेरी महिमा का वर्णन करते हैं। बहुरूप प्रतिपादक वाक्य मेरे विषय को ही प्रस्ताप करते हुये मेरे बहुरूपों के बारे में कहते हैं। न सुरां पिबेत् यह निषेध वाक्य मैं मद्य पानी से दूर रहता हूँ। इसके बारे में कहते हैं। इन सबको केवल मैं ही ठीक तरह से जानता हूँ।।४२-४३।।

अवतार, रूप, गुण क्रियाओं में भेद रहित परब्रह्म मेरा वर्णन करने वाला वेद मेरी इच्छा से होने वाले शरीर इन्द्रियाँ, पत्नी-पुत्र, जमीन-जायदाद इत्यादि समस्त प्रपंच जीवों के लिये इस संसार में बंधक होता है। उससे छुड़ाने के लिये मेरी उपासना के बारे में कह दिया है। मोक्ष में विधि निषेध नहीं होते हैं। वहाँ केवल मेरी स्तुति ही रहती है। यही सकल वेदों का तात्पर्य है। वेद केवल जीव और ईश्वर के अभेद को बोलने के उ‍ेश्य से बोलते नहीं।।४४।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में ग्यारहवाँ स्कन्ध में इक्सीवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - बाइसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

उद्धव पूछता है - हे विश्व के प्रभु, इस जगत में तत्व कितने होते हैं। नौ होते हैं, इस प्रकार कई लोग कहते हैं। पाँच, तीन, कुल मिलाकर अट्ठाइस इस प्रकार विभाजन करते हुये आप कहे हैं। मैं उसको सुना हूँ। किन्तु मुनिजन अलग-अलग कहते हैं उसमें क्या विवक्षा है ? यह बताइये।।१।।

तत्व विभाग में मुनियों में एक मत नहीं दिखता। कई छब्बीस तत्व कहते हैं। और कई पच्चीस बोलते हैं। कई लोग सात और कई लोग नौ, छः, चार, ग्यारह, सत्तरह, सोलह और तेरह इस प्रकार अलग-अलग बोलते हैं।।२।।

तत्व को इतना ही ऐसे इन मुनियों ने किस विवक्षा से अलग-अलग कहते हैं ? आप सदाकाल एक प्रकार रहते हैं। आप ही इसके बारे में हमें बताइये।।३।।

श्री भगवान कहते हैं - मुनिजन जो कहते हैं, वह सही है प्रमाण सम्मत है। वे मेरे अनुग्रह बल से हमसे सृष्ट किए हुए तत्वों के आधार पर ही बोलने के कारण उनमें असंगति क्या होती है ?।।४।।

ज्ञानी मुनियों के विरोध में यह प्रकृति आपके कथनानुसार नहीं है। मैं जो कहता हूँ वही सत्य है। ऐसे अज्ञ लोग विवाद करते हैं तो इसका मूल कारण भी मेरी इच्छा शक्ति ही है।।५।।

विवाद करने वाले को उनके विवाद के कारण मुनियों के मत में विरोध है, ऐसा मिथ्या ज्ञान है। मेरी इच्छा शक्ति से होने वाले अव्यक्तादि तत्वों के प्रभाव से उनके मन में मिथ्या ज्ञान रूप विकार होता है। मुझमें भक्ति करते हुये अहंकार को त्याग कर विचार करे तो विवक्षा भेद ये सारे भेद लगते हैं। यह मिथ्या ज्ञान नाश होता है। तब विवाद भी शान्त होता है।।६।।

विष्णु की माया से यानी उनके सामर्थ्य से तत्व की सृष्टि होती है। भगवान के सामर्थ्य से मुनिजन उनको समझ लेते हैं। अपनी समझ के अनुसार वे विभाग करते हैं। उसको न समझते हुये अल्प बुद्धि वाले विवाद की सृष्टि करते हैं। यह भी

विष्णु के सामर्थ्य के कारण ही होता है। उनके सामर्थ्य से निर्माण हुये तत्वों से मन में अहंकार, अलग विवाद और उनके बारे में झगड़ा होते हैं। भगवान में मन रखे हुये अहंकार को हटाये तो ये सारे झगड़े नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार तंत्र भगवद् ग्रन्थ में आता है।

उद्धव सारे तत्व कार्य कारण रूप से परस्पर सम्बद्ध हैं। अन्तर्भाव होने के कारण कहने वाले के विवक्षा के अनुसार तत्वों की संख्या में ज्यादा कम रहना युक्त होता है।।७।।

कार्य-कारण में और कारण-कार्य में परस्पर विवक्षा के अनुसार अन्तर्भाव पाना अथवा प्रत्येक रहना अलग-अलग होता है।।८।।

बुद्धि को मन के अन्तर्भाव की विवक्षा रहे तो इन्द्रियों की संख्या ग्यारह होती है। विवक्षा नहीं तो बारह होते है। विज्ञान तत्व अपने मूल कारण रूप महत्तत्व में तत्वादि गुण अपने कारण भूत अव्यक्त तत्व में अन्तर्भाव होते है। इस विवक्षा से पंचभूत, पंचतन्मात्रायें, एकादश इन्द्रिय, अहंकार, महत्तत्व, अव्यक्ततत्व इस प्रकार चौबीस तत्व होते हैं। अन्तर्भाव न होते हुये प्रत्येक रहते हैं तो इस विवक्षा से तत्व अट्ठाइस होते हैं।

अव्यक्त, महत्तत्व, अहंकार, पंचतन्त्रमात्रा ये सारे अपने कार्य होने के बाद पंचमहाभूत में अन्तर्भाव होते हैं। ऐसी विवक्षा हो तो लिंग शरीर, पंचभूत और एकादश इन्द्रिय इस प्रकार कुल मिलाकर सोलह अंश के षोडश कलात्मक भाग होते हैं।

इस प्रकार तत्व विभाग करने वाले मुनियों के मत से तत्वों में संख्या ज्यादा, कम होती है। कार्य कारण दोनों को प्रत्येक दिखाये तो विवक्षा प्रत्येक होने से अन्तर्भाव हुये तो विवक्षा में अन्तर्भाव लगने से दोनों प्रमाण सम्मत हैं। हम दोनों को स्वीकार करते हैं।।९।।

जीव अनादि काल से अविद्या से बद्ध होने के कारण उसको अपने के बारे में, भगवान के बारे में, स्वतः ज्ञान प्राप्त नही होता। उसको देने के लिये उसके अन्दर होकर रहने वाले और एक स्वतंत्र भगवान से युक्त तत्व विभाग आवश्यक है।।१०।।

अन्तर्यामी पुरुष रूप से भगवान जीव को ज्ञान देते हैं। बाहर रहने वाले भगवान के रूप से उसका वह ज्ञान फलित होकर भगवान की कृपा से मोक्ष पाता है। भगवान के इन अन्दर और बाहर रहने वाले रूपों में कुछ भी बदल नहीं है, दोनों समान हैं। अन्दर और बाहर इस प्रकार

रहने से उनमें भेद की कल्पना करना अनर्थ कारक हैं। जीव ज्ञानस्वरूप है किन्तु उसको बाह्यमनोजन्य वृत्ति ज्ञान स्वतः उसको होता नही। भगवान ही उसको देते हैं।।११।।

प्रकृति के गुणसाम्य रूप प्रलयकाल में सत्व, रज, तमो नाम के गुण जीव में नहीं रहते हैं। तब वे अव्यक्त रहते हैं, कुछ काम नहीं करते इससे वे रहे तो भी न रहें इस प्रकार है। इस प्रकार वैषम्य अवस्था को पाकर सृष्टि, स्थिति, लय कार्य करते समय सृष्टिकाल में जीव को सत्व गुण ज्ञान को, रजो गुण कर्म को, तमो गुण अज्ञान को करते हैं। इसी कारण सत्व, रज, तम को ज्ञान, कर्म, अज्ञान इस प्रकार व्यवहार में कहते हैं।।१२।।

वस्तुतः जीव में रहने वाला जन्मजात ज्ञान उसके बाह्य मन के परिणाम रूप है। वह सत्वादि गुण का परिणाम रूप नहीं है। फिर भी प्रलयकाल में बाह्य मन ज्ञान रूप में परिणाम नही हो पाता। सृष्टिकाल आये तो जीव में ज्ञान रूप परिणाम होता है। तब मन को सत्व गुण का उपचय होना चाहिये। तब मन ज्ञान रूप से परिणाम होता है। इस प्रकार मन का परिणाम रूप वृत्ति ज्ञान सत्व गुण होता है।

जीव को स्वरूपभूतज्ञान हरि के नियम के अधीन होकर सदाकाल रहता है। प्रकृति ज्ञान उनकी भक्ति के अनुसार श्रीहरि देते हैं। इस प्रकार तंत्र भागवत में कहा गया है। जीव में अन्तर्यामी होकर रहने वाले पुरुष नामक श्रीहरि प्राकृत ज्ञान देते हैं। बाहर नियामक ईश्वर नामक श्रीहरि उसको फल देते हैं। इस प्रकार मत्स्य पुराण में कहा गया है। पुरुष नामक श्रीहरि और ईश्वर नामक श्रीहरि इन दोनों में भेद कल्पना नहीं करना। जो करता हैं उसका अनर्थ होता है। उस प्रकार ब्रह्म पुराण में कहा गया है।

भगवान गुणवैषम्यरूप इस सृष्टि के स्वतंत्रकर्ता हैं। भक्तों के कामधेनु हैं। उनके सारी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। जगत नाम के इस माला में भगवान सूत्र रूप में रहते हुये सबका आधार बने हैं।।१३।।

भगवान के अधीन नौ तत्व हैं वे इस प्रकार हैं। पुरुष, प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, और पंचमहाभूत उनके अभिमानीगण ।।१४।।

श्रोत्र, त्वक, चक्षु, घ्राण, जिह्वा इस प्रकार पंच ज्ञानेन्द्रिय, वाक्, पाणि, उपस्थ, पायु, पाद नाम के पंच कर्मेन्द्रिय और मन ये सारे मिलकर ग्यारह तत्व हैं।।१५।।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं। उसी प्रकार चलना,

बोलना, मल-मूत्र रेत विसर्जन करना, हाथ से काम करना ये पंचेन्द्रियों का काम है।।१६।।

सत्व, रजो, तमो गुण तीन तत्व होते हैं। प्रपंच सृष्टि के लिये प्रकृति अभिमानी लक्ष्मी होती है। प्रकृति के कार्य त्रिगुण महदादि कारण रूप तत्वों में और ब्रह्माण्ड में अन्तर्यामी होकर महालक्ष्मी प्रवेश करती है। वह त्रिगुणाभिमानी होकर श्री,भू, दुर्गा रूप से त्रिगुणों के सहयोग से इस जगत को धारण करती है। इसी प्रकार सरस्वती त्रिगुणाभिमानी होकर गायत्री, सावित्री और सरस्वती रूपों से त्रिगुणों की सहायता से जगत को धारण करती है। श्रीहरि का कटाक्ष लक्ष्मी जी के ऊपर है, ब्रह्मा जी के कटाक्ष सरस्वती जी के ऊपर है। उनसे वे शक्ति पाती हैं।।१७।।

महालक्ष्मी और महासरस्वती दोनों की शक्ति से सृष्ट हुए इस प्रपंच के आधार भूत महत्तत्वादि तत्व और उनके अभिमानियों में श्रीहरि और ब्रह्मा जी की शक्ति भरने से ये सारे मिलकर ब्रह्माण्ड की सृष्टि होती हैं। इस प्रकार सत्व, रज, तम ये तीन तत्व होते हैं।।१८।।

यहाँ सृष्टि के बारे में कहते हुये तत्व विभाग में कार्य कारण सम्बंध से परस्पर अन्तर्भाव होने वाली विवक्षा से सारी संख्या सही होती है। यह बात विसर्ग नाम के ग्रंथ में कहीं गयी है। तत्वों में परस्पर कार्य कारण भाव होने के कारण अभिमानी ज्ञानादि विशेष गुण प्राप्ति के लिये परस्पर प्रवेश करते हैं। इन सारे तत्वों में नियामक होकर केवल श्रीहरि प्रवेश करते हैं। इस प्रकार श्रीहरि नाम के तत्व को प्रत्येक कहने के कारण नौ तत्वों में पुरुष शब्द से चतुर्मुख ब्रह्मा होता है श्री हरि नही। यदि श्रीहरि को माने तो अपने में नियामक होकर स्वयं प्रवेश करना सही नहीं होता। यह बात विवेक नाम के ग्रंथ में कही गयी है। हरि को प्रत्येक बताने के कारण यह पुरुष शब्द से चतुर्मुख का अर्थ होता है। पुरुष शब्द को चतुर्मुख ऐसा अर्थ करने के बाद व्यक्त का अर्थ शंकर होता है। उस समय में अहंकार कहे तो स्कन्द समझना चाहिये।

श्लोक चौदह से सत्तारह तक बताये गये तैंतीस तत्वों में गुणत्रय और पंच कर्मेन्द्रियों के बारे में छोड़कर भगवान को मिलाये तो तत्व छब्बीस होते हैं। महत्तत्व के अभिमानी चतुर्मुख को अहंकाराभिमानी रूद्र को रखते हुये स्कन्द को छोड़े तो और भगवान को मिलाये तो तत्व पच्चीस होते हैं। विषय, पंचभूत, पंचशब्द, एकादश इन्द्रिय, चित्त प्रकृति, ब्रह्म, रुद्र और भगवान इस प्रकार तत्व पच्चीस होते हैं। यह बात विवेक नामक ग्रंथ में आतीं है।

मूल तत्व सात माने तो आकाश इत्यादि पंचमहाभूत पाँच तत्व होते है। उनके अभिमानी और ज्ञान देने वाले ब्रह्म इन दोनों के बीच विष्णु इस प्रकार ये दो तत्व मिलते हुये तत्व सात होते हैं। देह, इन्द्रिय, प्राण, ज्ञान और आत्मा और पंचमहाभूत इनको मिलाकर इन दस में ज्ञान को छोड़कर बाकी के नौ तत्व होते हैं। इस प्रकार भी कहने वाले हैं।।१९।।

तत्व केवल छः हैं, ऐसा कहने वाले के पक्ष में पंचमहाभूत के साथ छठा तत्व पुरुष नामक नारायण, नारायण अपने से उत्पन्न हुआ पंचमहाभूतों से इस जगत को सृष्ट करते हुये नियामक होकर उसके अन्दर प्रवेश करते हैं।।२०।।

तत्वों को चार कहे तो भगवान से सृष्ट हुआ अग्नि, जल और पृथ्वी इन तीनों में भगवान को मिलाकर कुल तत्व चार होते हैं। भगवान से उसके अव्यय रूप में अग्नि, जल, पृथ्वी सृष्ट हुये हैं।।२१।।

तत्वों को यदि सत्ररह बोलने का है तो विवक्षा में पंचमहाभूत, पंचतन्मात्रा और पंचेन्द्रियाँ ये कुल मिलाकर पन्द्रह, मन सोलह, इनमें भगवान को मिलाये तो कुल तत्व सत्रह होते हैं।।२२।।

पंचभूत, पंच शब्द और परमात्म इस प्रकार तत्वों को ग्यारह कहते हैं। यह बात वेद नामक ग्रंथ में आया है। भागवत में यह नहीं आता क्योंकि बाइसवाँ श्लोक में भूत मिलाकर मात्रायें दस बताई गई हैं। इसमें भगवान को मिलाये तो तत्व ग्यारह होते हैं, यह विवेक नाम ग्रंथ में आता है। देहेन्द्रियासवः सारे देहों में रहने वाला अभिमानी एक है। सूर्य, इन्द्र और सर्वप्राणियों के अभिमानी मुख्य प्राण हैं। इस प्रकार विवेक नामक ग्रंथ में आता है।

उसी प्रकार तत्वों को सोलह कहने वाला पक्ष भी सही है। भगवान के समान मन को भी आत्मा कहने से आत्म रूप में रहने वाले भगवान उनके सन्निधि में रहने वाला आत्म शब्द से मन का अन्तर्भाव करे तो आत्म को एक तत्व माने तो भूत, इन्द्रिय, पंचको से एक आत्म तत्व को मिलाये तो तत्व सोलह होते हैं। तत्वों को तेरह कहते हैं, वह भी सही होता है। पंचभूत, पंचेन्द्रिय, मन एक, आत्म शब्द से चतुर्मुख एक उसके साथ भगवान एक, इस प्रकार तत्व तेरह होते हैं।२३।।

तत्व सोलह हैं इस प्रकार कहने वाले मन को और मन में रहने वाले भगवान की गणना करते है। इनको अलग से दो माने तो तत्व सत्रह होते है। इस प्रकार

विवेक नाम ग्रंथ में आता है।

तत्व तेरह समझे तो पंचमहाभूत इन्द्रियों के साथ मन, ब्रह्मा और विष्णु इनकी गणना करना चाहिये। यह भी विवेक ग्रंथ की बात है। भागवत में मन, आत्मा, ऐसा कहने पर आत्म शब्द से ब्रह्मा और विष्णु की गणना करनी चाहिये। आत्म शब्द को भगवान और चतुर्मुख ब्रह्मा वायु, मन, देह और जीव इस प्रकार छः अर्थ होते हैं। यह प्रत्यय नाम के ग्रंथ में कहा गया है।

इस प्रकार अनेक रीति से तत्वों का विभाजन मुनिगण करते आये हैं। ये सारे प्रमाण सम्मत होने के कारण योग्य ही हैं। ज्ञानियों में मतभेद होता है किन्तु गलती नहीं होती।।२४।।

उद्धव पूछते हैं - हे भगवान, प्रकृति और भगवान ये दोनो स्वभाव से विलक्षण हैं। प्रकृति भगवान के अधीन रहती है। उसका वैलक्षण्य स्पष्ट नहीं दिखता। प्रकृति से भगवान सम्बद्ध है, भगवान में प्रकृति आश्रय लेती हैं। इस प्रकार एक से एक सम्बद्ध रहने से अन्योन्याश्रय होता है। यह सही है क्या ? ।।२५।।

हे पुण्डरीकाक्ष, लक्ष्मीरमण, मेरे हृदय में यह बड़ा संशय घेर कर बैठा है। इस संशय का परिहार करें। आपकी बातें तत्व के विषय में आने वाली सारे संशयों का परिहार करने में समर्थ हैं।।२६।।

लगता है प्रकृति को विष्णु आधार बने हैं। किन्तु विष्णु के लिये कोई आधार नहीं है। फिर भी लगता है कि विष्णु प्रकृति के आश्रय में है। यह केवल मन्द मति को लगता है। इस प्रकार पद्मपुराण में आता है।

जीवों को आप से ही ज्ञान आता है। आपसे ही जीव भूल जाता है। वे अल्पज्ञ हैं। आपके अधीन रहने वाली प्रकृति के प्रभाव को केवल आप ही जान सकते हैं। दूसरा और कोई जान नही सकता।।२७।।

श्री भगवान कहते है - उद्धव प्रकृति और पुरूष दोनों तुम्हारे कहने के अनुसार विलक्षण होते हैं। भ्रम के कारण यह वैलक्षण्य दिखता नही। गुण, वैषम्य यह सृष्टि का स्वभाव है। प्रकृति के विकार से गुण के कारण यह सब होता है।।२८।।

जीव के शरीर में भगवान रहते हैं। भगवान के अन्दर जीव का शरीर रहता है। किन्तु भगवान स्वतंत्र आधार हैं। मन्द बुद्धि वाले इसको जान नहीं सकते

क्योंकि उनके शरीर, मन प्राकृत होते हैं। प्रकृति के तमो गुण के प्रभाव से अज्ञान और मिथ्याज्ञान आना सहज है।

गुण वैषम्य सत्व प्रधान, रजः प्रधान और तमःप्रधान इस प्रकार ये तीन तरह के होते हैं। तमः प्रधान सृष्टि प्रकृति विकार से उत्पन्न तम से होती है और भ्रम से भरित रहता है। प्राकृत प्रकृति रूप जीव शरीर का धारण जीव के समान भगवान भी करते हैं। किन्तु जीव के अनुसार नहीं। भगवान स्वतंत्र हैं। मन्द लोगों को उनके मन्द बुद्धि के कारण भगवान स्वतंत्र नहीं लगते। भगवान शरीर को धारण करते हैं उसी प्रकार शरीर भी भगवान का धारण करता है। इसमें वैलक्षण्य कहा है। ऐसे मन्द लोग भ्रम में रहते हैं। वस्तुतः वैलक्षण्य होते हुये भी दिखाई नहीं पड़ता।

उद्धव भ्रम के लिये ज्ञानादि गुण से युक्त माया अथवा मेरी इच्छा शक्ति ज्ञानादि गुणों से युक्त मेरी पत्नी रूप चित् प्रकृति और सत्वादि गुण से युक्त मेरे अधीन जड़ प्रकृति दोनों कारण बनते हैं। गुणों से अनेक तरह के भ्रमों को यह माया निर्माण करती है। अहंकार भी तीन तरह के होते हैं। अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत इस प्रकार तीन है।।२९।।

महत्तत्व अहंकार तत्व, सात्विक अहंकार ये तीनों वैकारिक अहंकार कहलाते हैं। यह शब्द निर्णय का वाक्य है।

अभी मैंने कहा - अहंकार तीन तरह के होते हैं। उसका दृष्टान्त इस प्रकार हैं। आँख के कोने में चक्षु इन्द्रिय में अध्यात्म रहता है। बाहर दिखाने वाले रूप इत्यादि अधिभूत होते है। सूर्य प्रकाश आदि अधिदैव हैं। ये तीनों मिलकर मन के सहयोग से भ्रम को उत्पन्न करते हैं। जीव जब मुक्त नहीं रहता उस समय अपने स्वरूप इन्द्रियों के अनुभव से ही अपने स्वरूप का ज्ञान और भगवान का ज्ञान पा सकता है। इनसे अज्ञान जो होता है उसका मुख्य कारण भगवान ही हैं। इस प्रकार त्वचा, श्रोत्रु, चक्षु, जिह्वा और नाक ये सारे विषयों के सहकारी कारण बनते हैं। मन से मिलकर क्रियाकारित्व के सहायक बनते है।।३०।।

संसार के जड़, मन के सम्पर्क से, जड़ इन्द्रियों को भ्रम होता है। मुक्ति में केवल स्वरूप मन से युक्त स्वरूप इन्द्रियों से सही ज्ञान आता है। जड़, मन इन्द्रियों के अभिमानी देवताओं मुक्त जीव को बिम्ब होने के कारण उनके अनुग्रह मुक्ति में भी उसको आवश्यक है। यह ब्रह्मतर्क की बात है। मुक्त इस जगत को

देखता है। उसको केवल अपने स्वरूप इन्द्रियों से देखता है। मुक्ति पाकर चिन्मय बन गये उसको जड़ मन से क्या होना है। यह भी ब्रह्म तर्क की बात है।

अज्ञान और भ्रम के लिये कारण बनने वाला यह अहंकार रूप विकार सत्वादि गुणों से रहित महत्तत्व से बना है। उसका मूल कारण ही प्रकृति है। यह वैकारिक, तामस, तैजस नाम से तीन प्रकार के अहंकार से इस जगत की उत्पत्ति होती है।।३१।।

इस अहंकार गुण का क्षोभ करता है। किन्तु भगवान परिपूर्ण ज्ञानमय हैं। गुणक्षोभ से उनसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। जीव भी ज्ञानरूप होने के कारण गुणक्षोभ से वह भी नहीं बना है। किन्तु भगवान अविद्या से जीव में अज्ञान और भ्रम का निर्माण करते हैं। इस प्रकार जीवेश्वर भेद वास्तव में नहीं ऐसा बोलना अवास्तव हैं अभेद है यह कहना वस्तुस्थिति के विपरीत है। **स्वलोकात्** यानी अपने को मूल आश्रय रहने वाली मेरी ही महिमा को अपहास करने के उद्देश्य से दुर्बुद्धि करने वाले लोग प्रयोजन के बिना ही इस व्यर्थ चर्चा को करते रहते हैं।।३२।।

विकार जड़ अहंकार तत्व महत्तत्व से निर्माण होता हैं। ज्ञानस्वरूप जीव महत्तत्व से निर्माण नहीं हुआ है। जीव ईश्वर अभेद बोलना जगत मिथ्या है समझना, असत्य पदार्थ को सत्य बोलना, भेद सत् को असत्य मानना इनके बारे में भ्रामित वाद रखना विष्णु द्वेषियों में सदा के लिये रहता है। इस प्रकार ब्रह्मतर्क में कहा गया है।

उद्धव कहता है - प्रभु आपसे विमुख जीव अपने कर्म से अच्छा अथवा बुरा शरीर पाते हैं। और कर्म के अनुसार ही उनको त्यागते हैं।।३३।।

किन्तु गोवि! शरीर स्वीकार करना अथवा त्यागना शरीर को जनन-मरण मिलना सहज है। किन्तु शरीर से अत्यन्त भिन्न अनादि, नित्य जीव को जनन-मरण कैसे होते हैं। यह मन्द बुद्धि वाले के समझ में नही आता। लोक में प्रायः बुद्धिमान लोग भी आपके माया के वश में होकर वंचित होते हैं। उनके समझ में भी यह नहीं आता।।३४।।

भगवान कहते हैं - मानवों के पूर्व कर्म के अधीन रहने वाला मन पंचेन्द्रियों से युक्त होकर मरण के समय में पहले के शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर के बारे में चिन्तन करता है। मन से अनादि काल से बद्धजीव मन के अनुसार वह दूसरे शरीर को पाता है। यही जीव का जनन है।।३५।।

दृष्ट, सुना हुआ पदार्थ को संस्कार से उनको याद करना, मन का स्वभाव है। वह मन

जीव आगे कर्म के अनुसार पाने वाला एक योनि से शरीर को भी पीछे अनादि काल में कभी एक बार अनुभव करने का संस्कार होने के कारण कर्मानुसार उसी को अन्त काल में स्मरण करते रहता है। इस प्रकार बाद में मिलने वाले शरीर के स्मरण मात्र से पहले शरीर का स्मरण चल जाता है। यही जीव के लिये शरीर त्याग रूप मरण है।।३६।।

जीव को किसी एक कर्म के अधीन होकर मन बाद में मिलने वाली देह में अभिमान करने से पहले देह के अभिमान को छोड़ देता है। इस प्रकार शरीर त्याग करने के समय में पूर्व देह का विस्मरण होता है। पूर्व देह के अभिमान के कारण पहले आत्मा में उत्पन्न हुआ एक तरह का सूक्ष्म विकार नाश होता है। यही आत्मा का मरण है।।३७।।

हे उद्धव! जीव को वस्तुतः अपना न रहने वाला नया शरीर वह अपना सर्वस्व इस प्रकार मिथ्याभिमान उसमें होने के कारण उसको जन्म कहते हैं। जिनमें स्वप्न देखने वाला बाहर न दिखने वाली वस्तु बाहर है ऐसे समझने के जैसे यह है।।३८।।

बाहरी मन के सुख-दुख से जीव स्वरूप में सन्तोष और दुख होना जैसे विकार हैं वैसे जनन-मरण से भी विकार होता है।

भगवान की माया से मरा हुआ जीव को आगे कर्म के अधीन में मिलने वाली शरीर में अभिमान उत्पन्न होने के कारण पिछले शरीर का स्मरण पूर्ण रूप से नाश होता है। वही मरण माना जाता है।

स्वप्न से अथवा दिवा स्वप्न से जाग्रति होने वाला पहले देखे हुये वस्तु को अभिमान से पुनः स्मरण नहीं करता है। इसी प्रकार नया शरीर पाया हुआ जीव अपने पहले शरीर को अभिमान से याद नहीं करता। किन्तु पहले शरीर के समान इस नए शरीर को भी अभिमान से देखता है।।३९।।

विचार करें तो आत्मा तीनों काल में रहती है। देह अनित्य है। यह वैलक्षण्य ही देह से अलग आत्मा है इसका साक्ष्य है। बहुशः बुरे पिता से बुरा पुत्र ही जन्म लेता है। इस नियम के अनुसार पिता बुरा रहे तो पुत्र भी बुरा होता है। इसी प्रकार अनित्य पिता के शरीर से अनित्य पुत्र का शरीर उत्पन्न होने से शरीर अनित्य है यह समझ में आता है। इसी कारण वह शरीर आत्मा से भिन्न है।।४०।।

आत्मा, भूत, भविष्य, वर्तमान इस प्रकार तीनों काल में रहता है, वह नित्य है। देह अनित्य है।

हे उद्धव अचिन्त्य वेग वाले काल के बल से जीव का शरीर प्रतिक्षण वृद्धि क्षय पाते रहता है। यह अत्यन्त सूक्ष्म होता है इसके लिये आँख को दिखता नही। इसी कारण शरीर को अनित्य कहते हैं।।४१।।

काल बल से दीप की ज्वाला में, पानी के प्रवाह में, वृक्ष के फलों में, गात्र और संख्या में बदल होते रहते हैं। बनना और नष्ट होना सारे प्राणियों में समान है। वय के अनुसार बाल्य,युवा, वृद्ध और मृत्यु अवस्थायें अलग-अलग होती है।।४२।।

दीप की ज्वाला के विषय में जल की धारा के विषय में वह यही है ऐसे समझ लेना गलत होता है। वे बहते हुये निरन्तर रहते हैं। उसी प्रकार अल्पायु वाले लोगों के शरीरों की अवस्था के बारे में वह व्यक्ति वैसे ही है इस प्रकार समझ कर व्यवहार करना गलत होता है।

छोटा दीप बड़ा होता है, बड़ा दीप छोटा होता है, किन्तु दीप रहता ही है। उनमें बदल नहीं है। केवल भेद नहीं है। अभेद भी नहीं है। यहाँ भेदाभेद रहता है। शरीर में भी बाल्य, यौवन इत्यादि अवस्था भेद होते हैं। किन्तु जीव के स्वरूप में ऐसा बदलाव नहीं रहता। इस प्रकार जहाँ वस्तु नाश न होते हुये उसके गुण, क्रिया अवस्था में बदलाव नहीं होता है। वह वस्तु नाश न होते हुये उसमें गुण क्रिया इत्यादि अवस्था में बदलाव होता है। वहाँ भेदाभेद रहता है। जहाँ व्यत्यास नहीं वहाँ अभेद है। इस प्रकार ब्रह्मतर्क में कहा गया है।

दीप की ज्वाला के अनुसार, जल के प्रवाह के अनुसार एक ही शरीर में बाल्यादि अवस्था अलग-अलग आते हैं। किन्तु इस अलग-अलग स्वरूप को धारण करने वाला इस शरीर को एक नहीं कह सकते। क्षणक्षण को बदलने वाला यह शरीर अनित्य है, आत्मा नित्य है। बाल्यादि अवस्था शरीर को होते हैं आत्मा को नही।

जीव स्वरूप से आदि काल से रहने के कारण वह अनादि है, मरण रहित है और वृद्धि रहित है किन्तु उसको अपने पूर्व कर्म जनन मरण के लिये बीज रूप होता है। पूर्व कर्म से जीव को देह संयोग-वियोग होने से जीव के लिये उत्पत्ति नाश होता है ऐसे भ्रान्ति होता है॥ भ्रान्ति के अनुसार जनन-मरण होता है, आग और लकड़ी के सम्बन्ध से अग्नि जलती है। बाद में लकड़ी जल जाने से अग्नि नष्ट होता है। इस सम्बन्ध में हमे लगता है कि अग्नि का जन्म और नाश हुआ। यह भ्रान्ति है वस्तुतः हमें दिखी हुई अग्नि नहीं दिखती है।।४४।।

देह में अति अभिमान रहने के कारण देह उत्पत्ति नाश को जीव अपनी उत्पत्ति नाश समझता है। उसके चैतन्य में विकार होते है। इसी को जनन-मरण कहते हैं। वास्तव में ये सत्य हैं, विषय के बारे में सुख-दुख मन में उत्पन्न होने से उनके ऊपर का अभिमान से भ्रान्ति से चैतन्य में उच्चत्व-नीचत्व विकार होते हैं। इन विकारों को चैतन्य में भिन्न-भिन्न रूपों में दिखते हैं। ब्रह्म, रुद्रादि को छोड़कर अन्य इन्द्रादि सारे जीवों को यह विकार होते है।

उत्पत्ति और नाश यह शरीर को होते हैं। गर्भाधान, गर्भवृद्धि, बच्चे का जन्म, बाल्य, कौमार, यौवन, मध्यवय, वृद्धाप्य और मरण ये नौ अवस्थायें देह को होती हैं।।४५।।

देह की ये अवस्थाएँ जीव से भिन्न रहने वाले श्रीहरि के अधीन रहते हैं। जीव के शरीर त्यागने के समय उसके मन की इच्छा के अनुसार होती है। सत्वादि गुण उनके सम्बन्ध के अनुसार भगवान के अधीन होकर अच्छा अथवा बुरा शरीर को जीव अपनाते हुये उनमें अभिमान रखता है वही जन्म है। अभिमान त्यागना मरण है।।४६।।

जीव के जनन-मरण को पुत्र के पिता के जनन-मरण से ऊहा कर सकते हैं। वे दोनों केवल अभिमान मात्र से होते हैं।।४७।।

शिशु गर्भ में ही मरकर जन्मे तो वह पुत्र जनन नहीं है। पुत्र शरीर की उत्पत्ति मात्र से ही पुत्र जनन नहीं होता। वैसे ही पिता के मरण के समय में उसका शरीर नाश न होते हुये आँखों में रहते हुये पिता का मरण ही माना जाता है। पिता का शरीर नष्ट ही पिता का मरण नहीं है। यह स्पष्ट है। इस प्रकार शरीर का उत्पत्ति नाश ही जीव का जनन-मरण नहीं होते।

बीज को बोने से उससे वृक्ष बनता है। वही वृक्ष सूखने से मर जाता है। उसको देखकर बुद्धिमान व्यक्ति उस वृक्ष से अलग, वृक्ष से विलक्षण एक जीव चैतन्य को, भगवान को ऊहा से भी जान लेता है। उसी प्रकार वह अपने शरीर में भी पुत्र जन्म, पितृ मरण इत्यादि को शरीर से अलग स्पष्ट रूप से विलक्षण रहने वाला भगवान और अपने के बारे में समझ सकता है।।४८।।

बीज, अंकुरादि अवस्था पाकर वृक्ष में रहने वाले, वृक्ष से अलग जीव परमात्मा हैं। इसको स्पष्ट रूप से जानने के अनुसार जननादि अवस्था पाने वाले शरीर में भी जीव और भगवान अलग-अलग होकर रहते हैं। इसको स्पष्ट रूप से जानना है। यह ब्रह्मतर्क का वाक्य है।

इस प्रकार शरीर में, शरीर से अलग विलक्षण रूप से रहने वाले जीव और भगवान के बारे में सही तरह से नहीं समझे तो अतिशय विषयासक्ति और देहाभिमान के बलि बनाकर पुनः पुनः स्थूल शरीर पाते हुये इस संसार में रहना पड़ता है।।४९।।

सज्जनों के संग से जीव सत्कर्म करते हुये ऋषि-देव आदि जन्म को पाता है। राजस लोगों के संग से मिश्रकर्म करते हुये असुर मानव जन्म को पाता है। तामस लोगों के सम्पर्क से दुष्कर्म करते हुये भूत-पिशाच अथवा प्राणी जन्म पाता है। दुष्कर्म उसको इस संसार चक्र में फिराता रहता है।।५०।।

नृत्य गान करने वाले को आसक्ति से देखने वाला लड़का उनमें तादात्म्य को पाकर उन्ही का अनुकरण करता है। उसी प्रकार जीव अन्तःकरण में उत्पन्न होने वाले दुखादियों के साथ तादात्म्य होकर स्वयं भी नीचत्वादि विकार को पाता है। भगवान उसमें उसी प्रकार विकार उत्पन्न करते हैं।।५१।।

तालाब में रहने वाला पानी हिले तो तट में रहने वाले वृक्ष भी हिलते हैं ऐसा लगता है। आँख परिभ्रमण करे तो भूमि हिलती है ऐसा लगता है।।५२।।

उद्धव इसी प्रकार दिवास्वप्न में अथवा स्वप्न में मिलने वाले विषयों का भोग व्यर्थ है। संसार में भी विषय भोग करना व्यर्थ होता है। आत्मा को मूल स्वरूप में कोई दुख नहीं रहता है। जो दुख दिखता है वह भ्रान्ति है। जीव के मूल स्वरूप में उसके अन्तःकरण में सुख है। ऐसे अन्तःकरण में होने वाला सुख अत्यल्प है और दुख मिश्रित है। उसके अनुभव से आत्मा में होने वाला उच्चत्व नाम का विकार भी अल्प और क्षणिक होता है।।५३।।

सात्विक जीवों में दुख वाह्य अन्तःकरण के विकार होते है। किन्तु ज्ञानानन्द स्वरूपभूत होता है। तामस जीव में यह विरूद्ध होता है। उसको ज्ञानानन्द वाह्य अन्तःकरण का विकार है। दुखादि स्वरूप भूत है। यह वाक्य ब्रह्मतर्क का है। जीव में सुख इत्यादि को भगवान ही करता है, किन्तु वे जीव में होते हैं इसके लिये जीव के ही गुण बनते हैं इसी प्रकार जीव कर्म से अन्तःकरण में दुख को निर्माण करे तो वे अन्तःकरण में उत्पन्न होने वाले दुख माने जाते हैं। यह बात त्रैकाल्य नाम के ग्रंथ में आती है।

विषयजन्य सुख-दुख का अनुभव ही संसार है। यह आत्मा के अन्दर स्वाभाविक नहीं है। किन्तु अन्तःकरण के वाह्य सम्बन्ध से आता है, और क्षणिक होता है। किन्तु बार-बार आता रहता है। क्योंकि जीव इनको सदाकाल याद करता रहता है। सोने के पहले एक विषय को

बहुत गाढ़ रीति से अलोचना करते रहे तो वही स्वप्न में आता है। उसी प्रकार यह भी होता है।।५४।।

इसी कारण उद्धव! आत्मा शरीर से अलग है, भगवान स्वतंत्र हैं इसको ठीक तरह से न जानते हुये विषय का भोग करने से विपरीत कल्पना होते हुये यह भ्रम उत्पन्न होता है। इसको ठीक तरह से समझ कर दुष्ट इन्द्रियों से विषयभोग करना छोड़ देना चाहिये।।५५।।

दुर्जन लोग तुमको अपने घर से बाहर फेंके, अवमान करें, वंचन करे, गाली दें, मारें, बंधक बनाकर तुम्हारे जीवन वृत्ति को छीन ले,।।५६।।

तुम्हारे ऊपर मल फेंके, मूत्र विसर्जन करे, अज्ञ लोग इस प्रकार अनेक तरह से तुमको भय उत्पन्न करें, कष्ट उत्पन्न करें तुम श्रेय की इच्छा करने वाले, भगवान के अनुग्रह से क्रोध न करते हुये दोषों से तुम्हारा उद्धार करना चाहिये।।५७।।

उद्धव कहता है हे भगवान! आप इसको मुझे ठीक तरह से समझाइये। विस्तार रूप से कहिये। तत्व को बोलने वालो में आप अगण्य हैं। आप ने कहा कि दुर्जन लोग अपना अपचार करें तो भी उसको सहन करना चाहिये। किन्तु यह कैसे हो सकता है किसी से भी यह हो नही सकता ऐसा मेरा विचार है।।५८।।

हे विश्व के स्वामी! मैं आपके श्रीचरणों की शरण में आया हूँ। आपकी सेवा में रहता हूँ। अहंकारादि सारे दोषों को छोड़े हुये योगियों को आपकी यह बात सही लगती होगी। किन्तु अन्य लोग कितने भी ज्ञानी हों, काम, क्रोधादि को व्यक्त करना देहाभिमान स्वभाव का द्योतक है। वह स्वाभाविक होते हुये भी अत्यंत प्रबल है।।५९।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में ग्यारहवाँ स्कन्ध में बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - तेइसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

भिक्षु गीत

शुकदेव कहते हैं - भगवद् भक्तों में श्रेष्ठ उद्धव के इस प्रकार विनती करने से, श्रवण मात्र से, सकल अभीष्ट देने वाले लीलाओं को करने वाले यदुकुल तिलक, मुकुन्द भक्त की प्रार्थना को मानते हुये भगवान कहते हैं ।।१।।

श्री भगवान कहे - अन्त-र्वाह्य शत्रु को नाश करने वाला सज्जन, दुर्जनों की दुष्ट बातों से उसके मन को जो दुख होता है उसको वह स्वयं समाधान कर लेता है।।२।।

कठोर, नुकीले बाण के समान दुर्जनों की बातें मर्माघात करती है। उतना दुख तो मर्मभेद करने वाले सही बाणों से भी होने वाला नही है।।३।।

इस विषय में महापुण्य कारक एक कथा प्रसिद्ध है। उद्धव उसको तुम्हारे लिये कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो।।४।।

दुर्जनों से हिंसा पाते हुये भी धैर्य को न छोड़ते हुये अपने पाप का फल यह है ऐसे समझते हुये एक यति स्वयं अपने को समाधान कर लिया।।५।।

अवन्ती देश में बहुत धनवान एक ब्राह्मण था। वह वैश्य के समान कर्ज देता था और उससे मिलने वाले पैसे से दरिद्र के समान कष्ट का जीवन चलाता था। वह बहुत क्रोधी था।।६।।

अतिथि या बन्धु घर आये तो कंजूसी से उनका उपचार नहीं करता था। ज्यादा बोले तो वे बहुत दिन रह सकते हैं। इसके लिये उनके साथ ज्यादा बात भी नहीं करता था। इसी कारण उसके घर मेंकोई अतिथि अथवा अभ्यागत नहीं आता था। कंजूसी के कारण वह खुद पेट भर नहीं खाता था।।७।।

दुराचारी और दुर्जनों की सेवा करने वाला, अपने सन्तान और बान्धवों से द्रोह करने वाला वह ब्राह्मण था। इसी कारण उसकी पत्नी, पुत्र और सेवक सारे उससे बेजार होने लगे। उसकी इच्छानुसार कोई काम नहीं करता था।।८।।

अपने पेट, कपड़े के लिये भी पैसा न खर्च करते हुये वह पिशाच के समान अपने पैसे की रखवाली करता था। पुण्य कार्यों में विनियोग न करते हुये, स्वयं न खाते हुये, किसी को न खिलाते हुये, इह लोक- परलोक दोनों से वंचित रहा। इस प्रकार पंचयज्ञ के भागी देव-ऋषि, पितृभूत, बन्धुजन उससे कुपित हो गये।।९।।

हे उद्धव, उनको अवमान करने के कारण उसका पुण्य पूरा नष्ट हो गया। उसके द्वारा बहुत कष्ट करते हुये इकट्ठा की हुयी धनराशि नष्ट हो गयी।।१०।।

उद्धव, उसके धनराशि को कई बन्धु अपना मानते हुये छीन लिये। एक अंश को चोर, उचक्के लूट लिये। अन्य शेष भाग प्रकृति प्रकोप से अथवा कालबल से और दुष्ट राजा के कारण सम्पूर्ण नष्ट हो गया।।११।।

पुण्य कार्य न करते हुये, स्वयं न खाते हुये अपनी सम्पदाओं को खोने के बाद उसके बन्धु, उसकी उपेक्षा करने लगे। उससे उस ब्राह्मण को अन्तरहित विपरीत चिन्ता होने लगी।।१२।।

दीर्घ समय तक चिन्ता करते हुये दुख भागी उस ब्राह्मण के आयुष्य समाप्त होने का समय समीप आ रहा था। उसकी आँखों से आँसू बहने लगा, कण्ठ अवरुद्ध हुआ। उसमें वैराग्य उत्पन्न हुआ।।१३।।

वह स्वयं अपने से कहने लगा - ये क्या हुआ ? बहुत कष्ट है। मैं व्यर्थ रूप से दुखभागी बन गया। पैसे कमाने के लिये बहुत श्रम किया किन्तु उस पैसे से पुण्य कार्य नहीं किया, स्वयं सुखभोग के लिये भी उसका प्रयोजन नहीं लिया।।१४।।

लोभी का धन प्रायः कभी सुख नहीं देता है। इस संसार में उसको रखकर मैं दुख ही भोगा और परलोक में मुझे नरक ही मिलेगा।।१५।।

लोभ स्वल्प भी रहे तो भी सफेद रोग जैसे रूप सौन्दर्य का नाश करता है वैसे ही लोभ भी कीर्तिमान और गुणवान आदमी के गुणों का नाश करता है।।१६।।

धन सम्पादन करने में मनुष्य को बहुत श्रम होता है। पैसा कमाने के बाद उसकी रक्षा करने में, वृद्धि करने में श्रम करना पड़ता है। उपयोग करते समय नाश होने का भय, भोजन करते समय भी नाश की चिन्ता होती है। इससे बुद्धि भ्रमित होती है।।१७।।

पैसे के लिये आदमी चोरी करता है, हिंसा करता है, झूठ बोलना, दंभाचार करना, दुष्ट कामना करना, अन्यों के ऊपर क्रोध करना, अहंकार, पैसे के मद, भेद नीति, शत्रुत्व रखना,

सबके ऊपर अविश्वास करना, पैसे के लिये अन्यों के साथ स्पर्धा करना, दुष्ट आदतों के वश में हो जाना ये तेरह तरह के अनर्थ मनुष्य को धन के कारण होते हैं। इसके लिये इन अनर्थों को न चाहने वाले व्यक्ति को धन से दूर रहना चाहिये।।१८-१९।।

धन रहे तो भाइयों में झगड़ा होता है। धन की आशा से पत्नी, माता-पिता, मित्र सारे क्षण भर में शत्रु हो जाते हैं।।२०।।

धन मानव को छोटा बनाता है। विवेचना रहित होकर प्यार को दूर रखते हुये उद्वेग और क्रोध से जलते हुये व्यर्थ में अपने प्राण को खो देते हैं अथवा दूसरे का प्राण लेते हैं।।२१।।

अनेक जन्म में साधना करते हुये पाया हुआ मानव शरीर उसमें भी श्रेष्ठ ब्राह्मण शरीर पाने के बाद भी उसको अनादर से देखते हुये जो आदमी इस संसार में मिलने वाले सुख से भी वंचित रहता है। उसके लिये परलोक में नरक निश्चित होता है।।२२।।

स्वर्ग मोक्ष के लिये खुला हुआ द्वार के समान मिला हुआ मानव शरीर पैसे के कारण व्यर्थ हो जाता है। इसमें कौन आसक्ति रखता है।।२३।।

देव, ऋषि, पितृ, भूत, बान्धवो ये पंच वर्ग, पंच यज्ञ भागी होते हैं। इनके लिये अथवा स्वयं के लिये धन का विनियोग न करने वाला धनपिशाच अधोगति को पाता है।।२४।।

व्यर्थ धन की आशा करते हुये उसी में अपने को भूल गया हुआ आदमी अपने धन, शरीर बल और आयु को मोक्ष साधना में उपयोग न करते हुये व्यर्थ में व्यय करता है। यह तीनों खो जाने के बाद वह दरिद्र, वृद्ध और अशक्त जीव क्या साधना कर सकता है ?।।२५।।

इसी कारण अज्ञानी अपने व्यर्थ धन मोह से पुनः पुनः स्वयं दुख भागी होता है। परमानन्द रूपी भगवान श्रीहरि के माया से ही इस प्रकार मानव मोक्ष मार्ग से वंचित होता है। यह मेरा विचार है।।२६।।

जब प्रतिक्षण मृत्यु की ओर जाना है तब इस धन से क्या मतलब है ? धन से क्या सुख मिलने वाला है ? विषय से, विषय-पदार्थों से काम्य कर्मों से उसे क्या होना है ? भक्ति के बिना ब्राह्मण जन्म से क्या है ?।।२७।।

निश्चय रूप से सर्वदेवोत्तम भगवान श्रीहरि अब मेरे बारे में सन्तुष्ट हो गये हैं। वे मुझको इतनी दुर्गति देकर कष्ट देते हुये इस संसार सागर को पार करने के नौका के रूप में वैराग्य को दे चुके हैं।।२८।।

मैं उन परमात्मा का भक्त हूँ तो अन्य विषय पदार्थों में अपने को न भूलते हुये, जागृत रहकर अपनी बची हुयी छोटी सी आयु में अपने इस शरीर को सन्यास धर्म से शुद्ध करते हुये मोक्ष को पाने का प्रयास करता हूँ।।२९।।

इस विषय में तीनों लोकों के स्वामी तथा देवतागण मुझे शक्ति देकर प्रोत्साहित करें। एक मूहुर्त आयु रहने वाला खट्वांग एक मुहूर्त में साधना करते हुये मोक्ष पाया।।३०।।

श्री भगवान कहते हैं - अवन्तिदेश का वह ब्राह्मण मन में इस प्रकार निश्चय करते हुये मन में रहने वाले धन-मोह की गाँठ को तोड़वाते हुये भगवान का भक्त बना, ज्ञानी बना और सन्यास ले लिया।।३१।।

मन, इन्द्रिय और प्राण का निग्रह करते हुये दुर्जनों का संग छोड़ते हुये, लोग उसको ज्ञानी न समझें, ऐसे रहते हुए भिक्षा के लिये भू प्रदेश में संचार करने लगा। नगर और ग्रामों में प्रवेश किया।।३२।।

हे उद्धव! उसको देखकर दुष्टजन इस बूढ़े अवधूत सन्यासी का बहुत तिरस्कार किये, अपमान किये।।३३।।

उसके हाथ के दण्ड को किसी ने छीन लिया और किसी ने भिक्षा पात्र और कमण्डल को हड़प लिया। और अन्य कई लोग उसके मृगछाल और जपमाला का अपहरण किये।।३४।।

वह अवधूत अपने सामान को वापस करने के लिये उनसे प्रार्थना किया। किन्तु वे लोग नहीं दिये इतना ही नहीं उसको दिखाते हुये छुपा कर रखते थे। वह सन्यासी भिक्षा मांगकर जो लाया था उस अन्न को नदी के तीर में खाने का प्रयास कर रहा था। उस समय वे पापी लोग उस अन्न के ऊपर मूत्र विसर्जन किये। सन्यासी के सिर पर थूके। वह मुनि कुछ भी नहीं बोला तो उसके ऊपर बोलने के लिये जुर्म किये। बात न करने से उसको मारे।।३५-३६।।

यह चोर है, इसको मारो, इसकी हत्या करो ये बोलते हुये कई लोग उसको डराये, रस्सी लाकर उसको बन्धक बनाये।।३७।।

यह दंभिक है, वंचक है। यह तो बहुत अमीर श्रीमान् व्यक्ति था। अब दरिद्र का नाटक रचा है। बन्धु इसको त्याग दिये हैं। परित्यक्त होकर भीख मांग रहा है। ऐसे अपमान करते हुये उसकी निन्दा की।।३८।।

और आगे कहते हैं - आश्चर्य हैं यह बहुत बड़ा मनोधर्म वाला है। पहाड़ के समान ढेर

रखता है। बकपक्षी के समान दृढ़ निश्चय करते हुये मौन से अपनी कार्य साधना कर रहा है।।३९।।

इसको देखकर और कई लोग हास्य करते हुये खूब हँसे, दुष्ट बातें किए, पशु के जैसे रस्सी से बांधकर बन्धन में रखे।।४०।।

लोगों से मिलने वाला यह भौतिक ताप, कपड़े को छीनने से शीत से होने वाला दैविक ताप, अन्न को छीनने से भूख से होने वाला दैहिक ताप इस प्रकार आये हुये तापत्रयों को अपने पाप कर्म का फल मानते हुये उसको अवश्य भोगना है इसको मानते हुये मुनि मौन रूप से उसको स्वीकार किया।।४१।।

अपने को यति धर्म से पतित करने के लिये ये दुष्ट लोग कितनी भी हिंसा करें वह मुनि सात्विक धैर्य का अवलंबन करते हुये अपने धर्म में स्थिर होकर रहते हुये इस प्रकार विचार किया।।४२।।

भिक्षु कहता है - ये लोग मेरे सुख और दुख का कारण नहीं हो सकते। देवता लोग मेरा यह जड़ शरीर, मन, कर्म, काल, ये सारे मेरे दुख का कारण नहीं होते। मन का अभिमान ही मुख्य कारण है। ये शास्त्रों का अभिप्राय है। मन का अभिमान जीव को स्वर्ग, भूमि और नरक नाम के संसार चक्र में फिराता रहता है। उसी कारण लोग सुख-दुख पाते हैं।।४३।।

बलिष्ठ मन अपने ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न नाम के गुणों का उत्पादन करता हैं। उनमें सफेद वर्ण सात्विक कर्म का गुण है, लाल रंग राजस कर्म का और काला रंग तामस कर्म के गुण होते है। परस्पर विलक्षण इन कर्मों से अपने लिये समान वर्ण सात्विक, राजस, तामस, प्रकृति, देव, मानव, और नरक योग्य शरीर संसारी जीव को मिलते हैं।४४।।

मन को जीव के मित्र भगवान ही मुख्य नियामक हैं। लोक विलक्षण आनन्द स्वरूप भगवान हमारे मन में रहते हुये कुछ भी कष्ट के बिना सारे कर्मों को करते हैं, करवाते हैं। मन को अधिष्ठान में रखते हुये वहाँ होने वाले विषय सुख के सार को लीला से ग्रहण करते हैं। मनोभिमानी देवता के सहयोग से मन की सारी वृत्तियों का नियमन करते हैं। उनके साथ ही रहने वाला मैं जीव मात्र हूँ। मन में अभिमान करते हुये त्रिगुणों के सम्बन्ध में कर्मबद्ध फल को भोग रहा हूँ।।४५।।

दान, वर्णाश्रम-नियम, शास्त्र श्रवण, निष्काम कर्म, अच्छे व्रत ये सारे मनोनिग्रह के लिये होते हैं। उ-श्य साधना के लिये मनोनिग्रह अवश्य हैं। मोक्ष के लिये भी मनोनिग्रह ही मुख्य साधना है।।४६।।

जिनका मन अपने वश में होकर भगवान में स्थिर रूप से खड़ा रहता है उसको दानादि अन्य साधनों से क्या करना है ? जिसका मन वश में नहीं रहता है, खराब होता है उसको दान इत्यादि से कुछ नहीं मिलता। यह दोनो कार्य मन से ही होता है।४७।।

मन का निग्रह करने के लिये सात्विक मन के अभिमानी महारुद्रदेव का अनुग्रह होना चाहिये। उनके वश में अन्य देवता होते हैं। किन्तु रुद्र अन्य देवताओं के वश में नहीं आते। वे दुर्जनों को भयंकार होते हैं, बलिष्ठ होते हुये बलिष्ठों में अति बलिष्ठ है, देवताओं के देव हैं, उनको कोई अतिक्रम नहीं करते।।४८।।

मन सात्विक गुणाभिमानी रुद्रदेव के वश में रहता है। मन शत्रु भी होता है। तामस मनोभिमानी सज्जनों का शत्रु कालनेमि दुष्ट मन का अभिमानी है। उसके साथ रहने वाले अथवा उसके समान रहने वालो दुष्ट होते हैं। यह प्रयोग नाम के ग्रंथ में कहा गया है। हरि वायु और लक्ष्मी भारती को छोड़कर अन्य कोई देव मनोभिमानी रुद्र को जीत नहीं सकते। यह बात पद्मपुराण में आती है।

मनोभिमानी कालनेमि को जीतना अशक्य है। वह ज्ञान साधना करने वाले का शत्रु है। उसका वेग सहन नहीं हो सकता। वह मरमाघात करता है। विषय में आसक्ति रखते हुये वह भगवान में तल्लीन रहने वाले लोगों का शत्रु होते हुये उन्हें कष्ट देता है। जिसको न समझते हुये मूर्ख लोग उसको न जीतते हुये मित्र रूप में रहने वाले अन्य गरीब लोगों के साथ दुष्ट व्यवहार करते हुये झगड़ा करते हैं।।४९।।

विषय में आसक्ति रखने के कारण भगवान की आराधना में तल्लीन रहने वाले को मनोभिमानी असुर शत्रु होता है। वह ज्ञान भक्ति आदि मिलने वाले सुख को नाश करता है। ठीक तरह से भगवान की आराधना करने वाले लोगों से शत्रुत्व नहीं कर सकता। वे ज्ञानादि से सुख को पाते हैं।

मन के अभिमानी के साथ देह आत्मा से लगा हुआ है। बुद्धि से अन्धे लोग इस शरीर को ही मैं और मेरा समझते हुये यह शरीर मेरे लिये हैं इसमें और कोई नहीं रहना चाहिये इस प्रकार भ्रम से नित्य अन्धकार में रहने वाले अन्धंतम में गिर जाते हैं।।५०।।

जीव को लोग सुख-दुख के कारण बताते है। उनमें प्यार या क्रोध करना स्वाभाविक हैं ऐसा समझना सही नहीं है। सुख स्वरूप जीव को अन्य लोग देने के कष्ट से क्या परिणाम होता है उनको क्रोध नहीं आता, मारने वालों को भी वे सहन करते हैं। मन में अभिमान रहे तो

मार खाने वाले को दर्द होता है, और मारने वाले को तृप्ति होती है। प्रमादवश जीभ दाँत से कटे तो किसके ऊपर क्रोध करना है? जड़ दाँत मन की प्रेरणा से जीभ को काटा इस प्रकार उसको सहन करने वाला, मारने वाला भी मन को प्रेरणा देने वाले के कारण मारता है इस प्रकार सहन करना चाहिये।।५१।।

अपने देह को ही स्वयं मानते हुये दूसरे के देह को दूसरा मानने वाला अन्धं तम में गिरता है। फिर नहीं उठता, यह बात पद्मपुराण में आती है।

देवता और नवग्रह दुख के कारण बनते है, यह सत्य है। किन्तु उस दुख से आत्मा को क्या परिणाम होने वाला है? दोनों के मन में अभिमान रूप विकार रहे तो वह दोनों का शरीर परस्पर सुख-दुख देने से उनकी आत्मा सन्तोष और दुख को भोगती है। शरीर की जलन को मिटाने के लिये हमारा हाथ ही काम करता है। उससे बढ़ने वाली जलन के लिये किसके ऊपर क्रोध करना चाहिये। यहाँ मन और शरीर दोनों प्रेरणा से काम करते हैं। वैसे ही देवता और मनुष्य अभिमान के कारण दुख पाते हैं। इसके लिये यह दुख ही मुख्य विषय नहीं है। देवतागण पूज्य होने से प्रेरणा के लिये उनसे क्रोध करना युक्त नहीं है।।५२।।

आत्मा के लिये जड़-मन सुख-दुख का कारण बनता है यह सत्य है। किन्तु मन के अन्दर होने वाले दुख से आत्मा को क्या परिणाम होने वाला है ? सुख-दुख केवल अभिमान के कारण होता है। अभिमान नहीं रहा तो आत्मा दुख के बिना सुख स्वभाव वाला रहता है। उनको बाह्य दुखों से क्या परिणाम होने वाला है। उसके सुख स्वभाव के विरुद्ध यदि उसमें दुख रहता है तो वह दुख उसका स्वरूपभूत नही है। दुख है इसका अनुभव आ रहा है तो वाह्य मन में उत्पन्न होने वाली भ्रान्ति ही इसका कारण है। यथार्थ साक्षी का अनुभव नहीं होता क्योंकि आत्मा का सुख स्वरूप कभी भी दुख का परिणाम नहीं होता। दुख स्वरूप सुख का कारण नहीं बनता। इस प्रकार विषय वस्तु में अभिमान नहीं रहे तो जड़ मन स्वतः दुख का कारण नहीं बनता। इसी के लिये हमें अभिमान से क्रोध करना है मन से नहीं।।५३।।

मन के ऊपर अभिमान नाम का विकार मानव को है। देवताओं के लिये नहीं है। फिर भी मानव में रहने वाले विकार को देवताएँ अभिमानी होने के कारण और विकार भी भगवान की प्रेरणा से चलता है। इसी के लिये वह विकार माना जाता है।

जीव सुख स्वरूप है उसको दुख स्वभाविक रूप से नहीं होता। किन्तु मन के ऊपर के अभिमान से मन में जन्म लेने वाले दुख को जीव अपनाता है। यह

महाभारत में आता है।

कर्म के अनुसार जीव शरीरों को ग्रहण करता है। वे शरीर विषय भोग से सुख, जनन मरण से दुख इत्यादि निमित्त का कारण हैं, ऐसा समझे तो जनन-मरण रहित जीव को क्या कष्ट है, क्या अनिष्ट है? जनन-मरण रहने वाला देह को अनिष्ट होना चाहिये। मेरा देह इस अभिमान को मन ग्रहण करता है, इसी कारण जीव को उन देहों से जीव को सुख दुख का अनुभव आता है। सुषुप्ति में भी अभिमान न रहने से देह का सुख-दुख मालूम नहीं होता। ऐसा होते हुये भी विलक्षण जीव को किसके ऊपर क्रोध करना है?।।५४।।

पुण्य, पाप ही सुख-दुख के हेतु बनते है, ऐसा समझे तो उन सुख-दुख से जीव को क्या क्या अनिष्ट है ? जीव में रहने वाला मन जड़ है। उसमें अभिमान रहने के कारण कर्म सुख-दुख का कारण बनता है। जड़ मन अभिमान के रहित रहे तो लय काल में जीव परम आनन्द मय होकर रहता है। उस समय उसको दुख का अनुभव नहीं होता। लय काल में देह न रहने से दुख नहीं हैं। ऐसा कहे तो सुषुप्ति में भी देह रहते हुये दुख नही है। तब ज्ञान न रहने से दुख नहीं होता। ऐसा कहना योग्य नहीं। जीव अपने को मैं सुख से सोया हूँ। इस प्रकार समझने से उस समय उसको ज्ञान होता है इसी कारण सुख-दुख के लिये अभिमान कारक है कर्म नहीं। इसके लिये कर्म मूल न रहने से किसके ऊपर क्रोध करना है?।।५५।।

काल सुख दुख का कारण बने ऐसा कहे तो उससे आत्मा के लिये क्या होता है। उत्पत्ति और नाश होने वाला यह शरीर काल के अधीन हैं। जिसके लिये शरीर को यह अनिष्ट हो जाये। ऐसे सन्दर्भ में उत्पत्ति और नाश रहित देह विलक्षण चेतन शरीर को क्या अनिष्ट होने वाला है। मैं दुःखी हूँ यह समझने वाला जीव काल के अधीन रहने वाला मन रहने के कारण होता है। सुषुप्ति में मन नहीं रहता। उस समय काल रहता है, तो भी दुख का अनुभव नहीं होता। देह को भी काल से कष्ट नहीं होता क्योंकि देह जड़ हैं। आग को ताप से दुख नहीं, हिम को ठण्डक नहीं होती उसी प्रकार जड़ देह को सुख-दुख नहीं होता। ऐसा होते हुये काल के ऊपर क्यों क्रोध करना चाहिये। तो किसके ऊपर क्रोध करना है। अभिमान के ऊपर, मन के वश में न आने देने वाले अभिमान के ऊपर क्रोध करना चाहिये। ५६।।

मन के सुख-दुखादि द्वन्द्व से आत्मा में होने वाले उच्च और नीचत्व रूप विकार संसारी जीव को रहता है। जड़, मन जिसको नहीं हैं ऐसा मुक्त से भी विलक्षण भगवान को कभी भी जड़ मन न होने के कारण कहाँ भी, किसी कारण से, किसी वजह से नही होता। उसको ठीक तरह से समझने वाला मन, इन्द्रियादियों से और दुर्जनों से भय नहीं करता। मन का अभिमान

ही द्वन्द्व और उपद्रव का कारण है। इसीलिये उससे दूर रहना अच्छा है।।५७।।

कालबल से भी जड़ देह को दुख नहीं होता। आत्मा सुखद स्वरूप होने से उसको भी दुख नहीं आता। किन्तु मन में जो दुख उत्पन्न होता है उसको आत्मा अपना मानता है। मन का नियामक रुद्रदेव हैं। उनके अधीन देवताएँ उन्हीं से सुख दुख के भागी बनते हैं। रुद्र के नियामक मुख्य प्राण हैं। उनका भी नियामक श्रीहरि हैं इसी तरह तात्पर्य नामक ग्रंथ में आता है।

अति प्राचीन काल के महर्षियों से आश्रय लिया हुआ इस श्रेष्ठ सिद्धान्त मनोनिग्रह को मैं भी अवलम्बन करते हुये हरिपाद सेवा से अन्तर्निहित इस अपार संसार को पार करना चाहता हूँ।।५८।।

श्री भगवान कहते हैं - अपनी सारी सम्पदायें नष्ट होने के बाद वैराग्य पाकर सन्यास को ग्रहण करते हुये निर्विकार होकर भूमि में टहलने वाला वह यति दुर्जनों से अपमानित होने के बाद भी यति धर्म को न छोड़ते हुये अपने में स्वयं इस प्रकार चिन्तन करता है।।५९।।

जीव के सुख-दुख का कारण उसके मन में रहने वाला मिथ्या अभिमान है, और कुछ नहीं। इससे अपने को अनुकूल होते हुये उदासीन रहना उसमें शत्रु होकर मन इस संसार में काम करता है।।६०।।

इसी कारण हे उद्धव! मोक्ष साधना को एक ही वाक्य में संग्रह रूप में बताता हूँ। ध्यान योग से मुझमें निष्ठ होकर बुद्धि को अपने वश में रखते हुये मन को पूर्ण रूप से नियंत्रण करना है।।६१।।

जो लोग भगवान में भक्ति करते हुये मनोनिग्रह करना चाहते हैं वे इस भिक्षुगीता को ध्यान से सुनते हुये, दूसरों को सुनाते हुये इसे मनन करें और जो इसे धारण करता है, वंह सुख-दुखादि द्वन्द्वों से पीड़ित नही होता।।६२।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में ग्यारहवाँ स्कन्ध में तेइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - चौबीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

यथार्थ ज्ञानोपाय

श्री भगवान कहते हैं - इसके बाद मिथ्या ज्ञान को हटाने वाला पूर्व लोगों से निश्चित किया हुआ यथार्थ ज्ञान के स्वरूप को बताता हूँ। इसको समझने वाला मानव विरुद्ध, कल्पना रूप अयथार्थ ज्ञान को दूर करता है।।१।।

सृष्टि के आदिकाल में कृतयुग में लोग वस्तुओं की सत्यता और असत्यता का विवेचन करने में निपुण थे। वे ज्ञान और उसको ग्रहण करने का तरीका दोनों में तादाम्त्य रखते थे। दोनों में अविरोध होता था। वस्तु जिस रीति से रहती है उसी तरह से उसका ज्ञान होता था। उसमें कभी भी विरोध नहीं आता था। इस प्रकार ज्ञान में यथार्थ और अयथार्थ विकल्प नहीं था।।२।।

वाक् और मन को दिखने वाले विषयों में आने वाला बड़ा सत्य और उसका एक विधत ज्ञान आने वाले युग में दो तरह का बन गया। वैषम्यादि दोषों से रहित होकर ज्ञान के अनुसार फल देने वाला मैं लोगों की योग्यतानुसार उनमें रहने वाले ज्ञान में संशय और विपर्यय नाम के दो विकल्पों की सृष्टि किया।।३।।

कृतयुग में लोगों में ज्ञान और विषय एक ही थे। यह ब्रह्मतर्क की बात है। विषय जैसा रहता है उसको ठीक तरह से समझ लेने से विषय और ज्ञान एक ही होते हैं। यह अन्य युगों में बदल गया।

ज्ञान को और उसको ग्रहण करने वाले विषय को विरोध न आये इस दृष्टि से ज्ञान और विषय एक ही होकर उसका यथार्थ ज्ञान आना है तो ज्ञान और विषय दोनों के अभिमानी देवताओं का अनुग्रह होना आवश्यक है। एक बनने वाले ज्ञान और विषयों में एक भाग विषय के लिये गायत्री नामक चित् प्रकृति अभिमानी है। उनको लक्ष्मीनारायण दोनों नियामक होते हैं। दूसरा भाग बने हुये ज्ञान को पुरुष नामक चतुर्मुख अभिमानी होते हैं। उनको भी लक्ष्मीनारायण दोनों नियामक होते हैं।।४।।

सृष्टि के प्रारम्भ में मुझसे लक्ष्मी देवी के गर्भ से पुरुष प्रकृति नामक ब्रह्म और गायत्री

जन्म लिये। हम दोनों से पुरुष नामक ब्रह्मा जी प्रेरणा पाते हुये सत्व, रज, तम अभिमानी गायत्री, सावित्री और सरस्वती जन्म लिये।।५।।

उन तीनों देवताओं में मेरे सूत्रनामक रूपयुक्त, सूत्र नामक ब्रह्म वायु, महत्तत्व के अभिमानी बनकर प्रत्येक तीनों रूपों से जन्म लेकर एक रूपी बना गये। बाद में सृष्टि करने वाले सूत्र नामक ब्रह्मा से अहंकाराभिमानी शेषदेव जन्म लिये। उन्हीं से वैकारिक अहंकाराभिमानी रूद्र देव जन्म लिये। सृष्टि करने जा रहे सूत्र नामक वायु से तैजस रूद्र जन्म लिये। सृष्टि करने चले। अहंकाराभिमानी शेष से तामस रुद्र जन्म लिये।।६।।

चेतन, अचेतन युक्त प्रपंच के स्वामी वैकारिक, तेजस और तामस नाम के तीन तरह के अहंकाराभिमानी रुद्र ही तन्मात्रा, इन्द्रिय, मन और एकादश इन्द्रिय देवताओं का मुख्य कारण हैं। इसी कारण वह चित्-चिन्मय हैं।।७।।

ज्ञानाभिमानी पुरुष नामक ब्रह्म, अर्थाभिमानी गायत्री नामक प्रकृति दोनों के नियामक लक्ष्मीनारायण हैं। वायु, प्रकृति में ब्रह्मपुत्र होकर जन्म लिये। ब्रह्म पत्नी अकेले प्रकृति गायत्री, सावित्री, सरस्वती नाम के तीन रूप से गुणत्रय की अभिमानी बनी। इन तीनों रूपों में वायु जन्म लेकर एक बनकर सूत्र नामक ब्रह्मा जी बन गये। इसी प्रकार सूत्र नामक ब्रह्मा जन्म लेते है। सूत्र नामक वायु, अहंकाराभिमानी रुद्र का जन्म हुआ। अहंकाराभिमानी शेष सूत्र नामक ब्रह्म से जन्म लेकर अहंकाराभिमानी रुद्र को जन्म दिये। इस प्रकार ब्रह्मपुत्र होकर वैकारिक अहंकार का, वायु पुत्र होकर तेजस अहंकार का, शेष पुत्र होकर तामस अहंकार का अभिमानी होकर एक ही रुद्र के तीन रूपों में जन्म लिये। यह प्राथाम्य नाम के ग्रन्थ में कहा गया है।

रुद्र चिद्‌चिन्मय हुआ इसका अर्थ चेतन-अचेतन, रूपक प्रपंच का स्वरूप ऐसा अर्थ नहीं करना। सकल चेतन-अचेतन प्रपंच के स्वामी होने के कारण उनको चिद् चिन्मय कहते हैं। यह बात भी प्राथाम्य नाम के ग्रन्थ में है।

तामस अहंकार से तन्मात्रा और पंचमहाभूत की उत्पत्ति हुई। तेजस अहंकार से इन्द्रिय, वैकारिक अहंकार से मन और एकादश इन्द्रियों से उनके अभिमानी देवतायें जन्म लिये।।८।।

इन महत्तत्वादि तत्वाभिमानी देवताएँ मुझसे प्रेरणा लेते हुये साथ मिलकर मुझको उत्तम प्रतिमा रूप में इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि की।।९।।

जल के आवरण में खड़ा हुआ इस ब्रह्माण्ड के अन्दर मैं प्रवेश किया। वहाँ मेरे नाभि में इस लोक स्वरूप पद्म का उदय हुआ। उसमें चतुर्मुख ब्रह्मा जन्म लिये।।१०।।

श्रीहरि ब्रह्माण्ड में व्यक्त होने के बाद उनके नाभि से कमल का फूल उत्पन्न हुआ। उस कमल से भौतिक देह वाले चतुर्मुख ब्रह्मा जी का जनन हुआ। उनका शरीर समस्त ब्रह्माण्ड को व्याप्त किया। श्रीहरि भी इस ब्रह्माण्ड व्याप्त शरीर वाले हैं। किन्तु उनका शरीर भौतिक नहीं होता। अवतारों में भी श्रीहरि को प्राकृत शरीर नहीं है। यह निवृत्त नाम के ग्रंथ में आता है।

इस जगत के अन्तर्यामी चतुर्मुख ब्रह्म जी मेरे अनुग्रह से ज्ञान युक्त होकर रजो गुण से भूः, भुवः, स्वहः इस प्रकार तीन भाग होकर चतुर्दश लोकों के लिये लोकपालकों का सृजन किये।। ११।।

देवताओं को स्वर्ग लोक, भूतों को भुवर्लोक, मानवों के लिये भूलोक, सिद्धों के लिये इन तीनों से ऊपर रहने वाला महरादि लोक वासस्थान बनाये हैं।।१२।।

भूमि के नीचे रहने वाले सात पाताल लोकों को असुरों के वास के लिये ब्रह्मा जी सृष्टि किये। त्रिगुणात्मक कर्मों से मिलने वाले सारे लोक इनमें हैं।।१३।।

पादयोग, योग, तप, ज्ञान इनके फलस्वरूप क्रम प्रकार से मिलने वाले निर्मल लोक महा, जन, तपो और सत्य लोक हैं। भक्ति योग से मेरा लोक मिल जाता है।।१४।।

महर्लोक से वैकुण्ठ तक इन सारे लोकों को पाने के लिये भक्ति की नितान्त आवश्यकता है। भक्ति जितनी ज्यादा होती है उतने ऊपर-ऊपर के लोक की प्राप्ति होती है। अपरोक्ष ज्ञान भी यहाँ आवश्यक है। प्रतिदिन दो मुहूर्त पर्यन्त जो अपरोक्ष ज्ञान से श्रीहरि को देखता हैं वह ज्ञान महाज्ञान कहलाता है। उससे वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति होती है। प्रतिदिन एक मुहूर्त काल मिलने वाली अपरोक्ष ज्ञान से सत्यलोक की प्राप्ति होती है। प्रतिदिन छः मात्रा पर्यन्त काल में अपरोक्ष ज्ञान जो मिलता है उससे तपो लोक मिलता है। प्रतिदिन एक मात्रा काल तक अपरोक्ष जिसको लगता है, वह ध्यानयोग है। उससे जनो लोक मिलता है। एक मात्रा के चतुर्थ भाग अपरोक्ष जिससे मिलता है उस ध्यान को पादयोग कहते हैं। उससे महर्लोक प्राप्त होता है। इस प्रकार ध्यान योग नाम के ग्रंथ में कहा गया है।

ज्ञानादि सारे गुणस्वरूप मुझसे सबका पोषण होता है। मुझसे पुण्य, पाप और मिश्र कर्मों से युक्त इस चेतन प्रपंच में सत्वादि गुण प्रवाह बार-बार उत्पन्न होते हैं, और नष्ट होते हैं।

ब्रह्मादि इसके लिये केवल निमित्त कारण हैं।।१५।।

भगवान कालस्वरूप हैं, किन्तु वे जड़ काल नहीं हैं। कालधातु ज्ञान के बारे में बोलता है। कल कारण भगवान ज्ञानादि गुण पूर्ण हैं।

अणु, वृहत, कृश और स्थूल इस प्रकार इस सृष्टि में जो जो पदार्थ उत्पन्न होता है वह सारे प्रकृति पुरुष दोनों से मिलकर बनता है। प्रकृति पुरूष का अर्थ लक्ष्मी, सरस्वती नाम की प्रकृति और विष्णु, ब्रह्मा नाम के पुरुष इस प्रकार होता है।।१६।।

प्रकृति परिणाम, विपरिणाम, महादादि तत्वों का परिणाम, इनमें परिणामी और परिणाम का भेद और अभेद दोनों हैं। परिणाम की अवस्था के बारे में विवक्षा करने में किसका उपादान कौन बनता हैं, नाश स्थान कौन है और मध्य कहाँ है इन तीनों से अत्यन्त अभेद को बोलना पड़ता है। यह विवक्षा नहीं रहे तो यह विकार रूप तेजस, पार्थिव परिणाम व्यवहार के लिये गोचर होता है। तेजस सोने के जैसा है। पार्थिव मिट्टी के समान है, दोनों में अभेद वस्तु होने के कारण हैं इसके साथ सोने में न रहने वाला व्यवहार आभूषण में है। मिट्टी में न रहने वाला व्यवहार मिट्टी के बर्तन में है। इस प्रकार भेद युक्त भेद अथवा भेदाभेद, परिणामी परिणामों में होता है।।१७।।

महत्तत्व इत्यादि के कारण प्रकृति और उनसे सारे अंशों में भेद हैं, एक अंश से भी भेद है। किन्तु अभेद भी है, इसको भेदाभेद कहते हैं। कार्य की उत्पत्ति होते समय सारे अंशों में परस्पर मिलने के कारण सारे अंशों को कार्य से अभेद होता है। उस समय भेदाभेद नहीं है। यह बात विवेक नाम के ग्रंथ में आता है।

कारण बनी हुई यह प्रकृति परब्रह्म के आश्रय में कार्य प्रपंच होकर परिणाम होता है। सबको परब्रह्म से ही उत्पत्ति और नाश होते हैं। सब कुछ परब्रह्म में ही स्थापित है। इसके लिये **तत् सत्यम्** वह परब्रह्म ही मुख्य और सर्वत्र स्वतंत्र है।।१८।।

भगवान सत्य हैं, वह पूर्ण स्वतंत्र हैं। जगत जो सत्य है उसका अस्तित्व रहते मात्र तक है। यह बात विवेक नामक ग्रंथ में आती है। इस प्रपंच अस्तित्व तक रहता है। इस प्रकार विवेक नाम के ग्रंथ में आता है।

इस प्रपंच के उपादान रूप प्रकृति की अभिमानी सरस्वती माँ हैं। इसके आधार रूप पोषक जीवाभिमानी ब्रह्मा जी है। जड़ सत्य है उसके उत्पादक चेतन को प्रचोदन देने वाला कालाभिमानी ब्रह्मा ही है। यह जननी, जनक और उसके आधार रहने वाले तीनों मेरे अधीन हैं।।१९।।

कालाभिमानी होने के कारण चतुर्मुख ब्रह्मा काल नाम से प्रख्यात हैं। इस

जगत के पिता हैं। सर्व जीवों के अभिमानी होने के कारण वे पुरुष नामक हैं, सबके आधार हैं। उनकी पत्नी प्रकृति की अभिमानी, प्रकृति नाम वाली सबकी माँ कहलाती हैं। किन्तु इस जगत के इतना ही नहीं काल, प्रकृति और पुरुष को भी जनक, जननी आधार बनने वाले भगवान केशव ही हैं। यह बात विवेक नामक ग्रंथ में आती है।

स्थिति की अवस्था रहते तक अवान्तर सृष्टि और प्रलय एक के बाद एक होते रहते हैं। जब भगवान प्रलय का संकल्प करते हैं तब तक त्रिगुणजन्य महदादि तत्व अवान्तर सृष्टि के बिना ही रहते हैं।।२०।।

ईक्षण का अर्थ उस समय में भगवान का व्यक्त होना और कार्योन्मुख होने की विवक्षा में होता है।

चौदह लोकों का कल्प सृष्टि और लोकों में सुरासुरादि जीवों का विकल्प विविध सृष्टि वाले इस ब्रह्माण्ड को अन्य लोकों के साथ मैं नाश करता हूँ। उस समय पंचीकरण से एक रुप बने हुये पंचभूत अलग-अलग होते हैं। उससे पृथ्वी का आवरण नष्ट हो जाता है।।२१।।

आकाशादि पंचमहाभूत क्रमानुसार उत्पन्न होते समय पहले वाला दूसरें का कारण बनता है। उसका कार्य भी उसमें मिला रहता है। इससे अन्त में सृष्ट होने वाले पृथ्वी तत्व में अपने तत्व गन्ध के अलावा आकाशादि तत्वों का गुण शब्दादि विषय भी आते हैं। इसके लिये भू तत्व को पृथ्वी कहते हैं। यह बात प्रवर्त नाम के ग्रन्थ में आता है।

प्राणियों का शरीर अन्न से होता है। अन्न सस्य से बनता है। सस्य पृथ्वी में बनते हैं। पृथ्वी का तत्व गन्ध तन्मात्रा से हैं। गन्ध तन्मात्रा जल में मिलता है। जल रस में, रस तेज में, तेज रूप में, रूप वायु में, वायु स्पर्श में, स्पर्श आकाश में, आकाश शब्द तन्मात्रा में, शब्द तामस अहंकार में, दशेन्द्रिय तेजस अहंकार में, मन और एकादशइन्द्रिय वैकारिक अहंकार में, यह तीनों अहंकार तत्व महत्तत्व में लय होते हैं। तब उन तत्वों के अभिमानी देवताएँ कारण बनने वाले देवताओं में प्रवेश करते हैं।।२२-२३-२४-२५।।

महत्तत्व के अभिमानी चतुर्मुख प्रकृति के विकार रूप गुणत्रय से जन्म लेने के कारण वैकारिक नाम से पुकारे जाते हैं। जगत के नियामक होने के कारण ईश्वर कहलाते हैं। रुद्रादियों से ज्यादा गुणपूर्ण होने के कारण ब्रह्म कहलाते

हैं यह बात प्रवर्त नाम के ग्रंथ में आती है।

महत्तत्व अपना कारण बने हुए त्रिगुणों में लय पाता है। तब महत्तत्वाभिमानी ब्रह्मदेव अपनी पत्नी त्रिगुणाभिमानी गायत्री, सावित्री, सरस्वती से ज्यादा गुण पूर्ण होते हुये भी अपने जन्म के कारण उनमें प्रवेश पाते हैं। त्रिगुण प्रकृति में लय पाते हैं। त्रिगुणाभिमानी गायत्री, सावित्री, सरस्वती अपने को जन्म दिये हुये प्रकृति के अवान्तर अभिमानी प्रकृति नामक गायत्री देवी में प्रवेश करती हैं। प्रकृति अभिमानी गायत्री देवी पुरुषाभिमानी ब्रह्मा जी के स्वामित्व को पाती है, प्रवेश नहीं करती। उन दोनों को दूर रखने वाले उनके लिंग शरीर नष्ट हो चुके हैं। इसके लिये वे समीप आते हैं। पुरुषाभिमानी ब्रह्म अव्यय कालाभिमानी अपने और एक रूप में प्रवेश करता है।।२६।।

कालाभिमानी ब्रह्म जीव बन्धक रूपी माया कहने वाली लक्ष्मी में प्रवेश करते हैं। सत्वादि गुणत्रयाभिमानी श्री भू दुर्गा रूप जीव माया अपने मूल रूप प्रकृत्यभिमानी लक्ष्मी के साथ मिलकर जननादि रहित गुण पूर्ण मुझमें लय पाती हैं। यहाँ लय का अर्थ नाश नहीं, मेरे दोनों बाहों के बीच आकर आलिंगित होकर रहती हैं। मैं गुणपूर्ण हूँ, सर्वोत्तम हूँ, स्वाधार हूँ। अज्ञान रहित पूर्ण ज्ञानस्वरूप हूँ।।२७।।

महत्तत्व गुणत्रय से जब उत्पन्न होता है तब महत्तत्व के अभिमानी ब्रह्मा जी गुणत्रयाभिमानी गायत्री, सावित्री और सरस्वती से जन्म लेने के कारण वे उनमें लय पाते हैं। गुणत्रयाभिमानी रूप आगे प्रकृत्याभिमानी रूप में लय पाते हैं। मूल रूप वह प्रकृति पुरुष नामक ब्रह्मा में लय पाती है। विरंचि अपने कालाभिमानी रूप में लय पाते हैं। कालाभिमानी ब्रह्म जीव माया रूप महालक्ष्मी में लय पाते हैं। महालक्ष्मी विष्णु में लय पाती हैं। महालक्ष्मी को विष्णु में प्रकृति को पुरुष में लय का अर्थ पति को अत्यन्त समीप यह समझना चाहिये। उनको देह लय नहीं है। प्रकृति पुरुष दोनों श्रीहरि में लय पाते हैं। इस प्रकार प्रवृत्त नामक ग्रंथ में उक्त है।

इस प्रकार मुझको जो जानता हैं उसको अन्यथा ज्ञान रूप भ्रम मन में कैसे उत्पन्न होता है ? कैसे बुद्धिस्थ होता है ? सूर्योदय होने के बाद आकाश में कभी अन्धेरा रह सकता हैं क्या?।।२८।।

इस परावर जगत को जानने वाला मैं तुमको इस सांख्य शास्त्र के बारे में कहा है। क्रमिक सृष्टि और उत्क्रम सृष्टि अथवा सृष्टि लय इनके स्वरूप के बारे में बता चुका हूँ। यह इ ान संशयों की गाठ मानी जाने वाली लिंग शरीर को जला देने वाली अग्नि के स्वरूप है।।२९।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में ग्यारहवाँ स्कन्ध में चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - पच्चीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

त्रिगुण प्रभाव

श्री भगवान कहते हैं - हे उद्धव! सत्, रज, तमो गुण जब मिलते हैं और जब अलग-अलग रहते हैं उस समय मानव जिस गुण से, जिस प्रकार वर्तन करता हैं इसके बारे में कहता हूँ, सुनो।।१।।

शम = मुझमें निष्ठा, दम = इन्द्रिय निग्रह, तितिक्षा = द्वन्द्व सहिष्णुता, इच्छा = शास्त्र का विमर्श करना, तप, सत्य, दया, स्मृति = शास्त्रार्थ का स्मरण करना, तुष्टि = जो मिलता है उसी से तृप्त होना, त्याग = निषिद्ध पदार्थ का त्याग करना, अस्पृहा = निषिद्ध वस्तु की अपेक्षा नहीं करना, श्रद्धा = विश्वास रखना, ह्री =निषिद्ध कर्म करने में लज्जा का भाव रखना, क्षमा, निस्तुति = आत्म श्लाघन नहीं करना, धृति = आपतकाल में भी हरि भजन धैर्य से करना, धैर्य ये सारे सात्विक प्रवृत्ति होते हैं।।२।।

काम = विषय शक्ति, ईहा = निषिद्ध वस्तु में इच्छा, मद = अहंकार, तृष्णा = तृप्त न होना, स्तम्भ = अविनय, आशीः = धन का मोह, भिदा = साथ रहने वाले को अलग करना, असुख = दुःख, मदोत्साह = विषय भोग में ज्यादा उत्साह दिखाना, यश = किसी प्रकार प्रसिद्धि पाने का प्रयत्न करना, प्रीति = विषय सुख को सुख मानना, धार्ष्ट्य = अशक्य विषयों में प्रवृत्ति करना, वीर = दुष्ट साहस करना, बल = दुर्बलों के ऊपर बल प्रयोग करना, उद्यम = व्यर्थ महाप्रयत्न करना, ये सारे राजस प्रवृत्तियाँ होती हैं।।३।।

क्रोध, लोभ, झूठ बोलना, हिंसा करना, कपट करना, दंभाचार, छोटी गलती को भी क्षमा न करना, झगड़ा करते रहना, कभी खोया हुआ वस्तु के बारे में शोक करना, मोह = अज्ञान, विषाद, आर्ति = रोग पीड़ा, अतिनिद्रा, दुष्ट विषय में अकांक्षा रखना, भीः = सबके साथ अविश्वास करना उनके साथ भय रखना, अनुद्यम = आलस्य से निष्क्रिय बनना, ये सारे तामस प्रवृत्तियाँ होती हैं।।४।।

इस प्रकार सत्व, रज, तम गुण अलग-अलग होकर जो प्रभाव करते हैं उसके बारे में बोल दिया। अब वे मिलकर क्या करते हैं इसके बारे में बोलता हूँ, सुनो ।।५।।

उद्धव मैं और मेरा इसका अभिमान रखना यह तीनों गुणों के मिलने का परिणाम होता है, केवल तीनों गुण मिलने से मन, इन्द्रिय, विषय पदार्थ और प्राण इनसे जो काम होना हैं, वह सारा इनसे होता है।।६।।

धर्म, अर्थ, काम में मानव आसक्त होता है तब यह तीनों गुण मिलकर धर्म में श्रद्धा, धन का संग्रह करना, विषयभोग करना, इत्यादि कार्यों को कराता है।।७।।

मानव गृहस्थाश्रम में रहते हुये स्वधर्म करते समय काम्य कर्म में जब निष्ठा दिखाता हैं तब तीनों गुण मिले रहते हैं।।८।।

फिर भी मानव शमादि गुणों से सात्विक, कामादि से राजस, क्रोधादि से तामस होता है, इस प्रकार हम ऊहा कर सकते हैं।।९।।

पुरुष हो, स्त्री हो, फल की अपेक्षा न करते हुये विहित कर्म से भक्ति युक्त होकर मेरी आराधना करते है तो उनको सत्व गुण स्वभाव वाला समझना चाहिये।।१०।।

सम्पदाओं को चाहते हुये विहित कर्मों से मेरा भजन करने वाला राजस स्वभाव का, दूसरों को कष्ट देने के लिये मेरी आराधना करने वाला तामस स्वभाव वाला होता है।।११।।

मुझमें सत्व, रज, तम ये तीनों गुण नहीं हैं। ये गुण जीव को उसके पांचभौतिक बाह्य मन में व्यक्त होते हैं। उनके सम्बन्ध से जीव संसार में बन्धित होता है।।१२।।

चमकने वाले सफेद और निर्मल, मंगलकारक सत्वगुण, रज, तमो गुणों को दबाकर जब प्रभावशाली होता है तब मानव धर्मज्ञान से सुख पाता है।।१३।।

विषयों में आसक्ति, चित्त का क्षोभ और चंचलता के लिये कारण होने वाला रजो गुण जब तामस सत्व से ज्यादा प्रबल होता है तब मानव काम्य कर्म में, कीर्ति, धन सम्पादन में निरत होकर दुःख पाता है। तमो गुण प्रबल हुआ तो दुःख और ज्यादा होता है।।१४।।

तमो गुण रज, सत्वो को दबाकर ऊपर उठे तो मानव मूढ़ होता है। शोक, मोह, अतिनिद्रा, परपीड़ा अतिआशाओं से युक्त होता है।।१५।।

जब मन स्वच्छ होता है, इन्द्रियों को आह्लाद होता है, देह को विषयों से भय नहीं होता, जब मन में विषयासक्ति नहीं होती तो उस समय मेरे सन्निधान से मन में सत्व गुण प्रबल हो गया है, ऐसा समझना चाहिये।।१६।।

कर्मेन्द्रियों से शास्त्र विरुद्ध कर्म करना, चित्त में स्थैर्य नहीं रहना, अज्ञान और विषय पदार्थों को छोड़कर ऊपर नहीं उठने की स्थिति, शरीर में स्वस्थता नहीं रहना, मन निरन्तर भ्रमण करना ये सारे रजो गुण के प्राबल्य को दिखाते हैं।।१७।।

स्मरण को स्थिर रखने वाले चेतना नाम के अन्तःकरण को अपने वश में रखने में असमर्थ होने से मन अन्तःकरण विचार शून्य होता है, केवल अज्ञान और विषय वासना भर जाते हैं। इस स्थिति को तमो गुण के प्राबल्य का कारण समझो।।१८।।

उद्धव! सत्व गुण जब लोक में अभिबद्ध होता है उस समय देवताओं का बल ज्यादा होता है। रजो गुण की अभिवृद्धि से असुरों का हाथ ऊपर होता है, तमो गुण ज्यादा हुआ तो राक्षस बलिष्ठ होते हैं।।१९।।

जीव को सत् से जागृति, रज से स्वप्न, तम से निद्रा प्राप्त होता है, इस प्रकार समझना चाहिये। इन अवस्थाओं का नियमन करने वाले मुझको ये तीनों गुण बन्धक नहीं बनते।।२०।।

सत्व गुण के प्रभाव से लोग ऊपर-ऊपर चलते हुये ब्रह्म लोक तक जाते हैं। तमस से नीचे-नीचे रौरवादि नरक में जाते हुये अन्त में मुख्य नरक अन्धतामिस्र को पाते हैं। रजो गुण से बीच में स्थित स्वर्ग, भूमि और नरक में संचार करते रहते हैं।।२१।।

जीव जब सत्व गुण के उद्रेक होते समय मरण पाता है तब वह स्वर्ग को जाता है। रजो गुण के प्रबल होते समय मरने वाला मनुष्य लोक को पाता है। तमों गुण वृद्धि समय में मरने वाले नरक को जाता है। इन स्थूल गुणत्रयों से रहित ज्ञानी मुझको पाता है।।२२।।

फल कामना न करते हुये स्वविहित कर्माचरण करने वाले उस कर्म को मुझे अर्पित करे तो वह कर्म सात्विक माना जाता है। फलापेक्षा से किया गया कर्म राजस, परहिंसा की अपेक्षा से किया गया कर्म तामस होता है।।२३।।

केवल शास्त्र में जो कहा है उसको ग्रहण करने वाला, भगवान के बारे में बताने वाला तत्वज्ञान सात्विक है। शास्त्र में से कर्म को ही ग्रहण करना राजस ज्ञान है। लौकिक विषय के बारे में ही विचार करना तामस ज्ञान है। स्वयं शास्त्र को पढ़कर, उसको अपनी प्रतिभा से विशेष प्रयोजनकारी करते हुये अन्य प्रमेयों को भी समझ लेना भगवान का तत्वज्ञान प्राकृत गुण रहित, मोक्ष साधना का मार्ग होता है।।२४।।

मोक्ष साधन ज्ञान, निर्गुण माना जाता है। क्योंकि वह गुणत्रयरहित मोक्ष का साधन बनता है। शास्त्र जन्य ज्ञान माना जाता है। शास्त्र में जो कहा गया है

उसके साथ भक्ति को मिलाते हुये अपनी प्रतिभा से श्रीहरि में और ज्यादा गुणों के बारे में समझ लिया तो वह मोक्ष साधन होता है। यह प्रद्योत नाम के ग्रंथ में लिखा गया है।

तपोवन में रहना सात्विक है, ग्राम में रहना राजस है, जुआ के अड्डे पर रहना तामस है। मेरा विशेष सन्निधान पुण्य क्षेत्र है। वह गुणत्रयरहित मोक्ष को जल्दी साधन करने का स्थान है।।२५।।

विषयासक्ति न रखने वाला सात्विक ज्ञान रहने वाला सात्विक जीव है। विषयासक्ति से अन्धा बना हुआ कर्ता राजस है, श्रुति, स्मृति विहित, आचार से भ्रष्ट कर्ता तामस है। निष्ठा से मेरी आराधना करते हुये निष्काम कर्म करने वाला निर्गुण मोक्ष साधन नाम का अपरोक्ष ज्ञान वाला कर्ता निर्गुण मोक्ष का भागी होता है।।२६।।

पढ़े हुये शास्त्रानुसार अध्यात्म में जो श्रद्धा उत्पन्न होती है वह सात्विक श्रद्धा है। विहित कर्म करने में श्रद्धा है वह राजस है, अधर्म करने में जो श्रद्धा है वह तामस है। प्रतिमा से मेरी महिमा को समझ कर मेरी सेवा करने में जो श्रद्धा है वह निर्गुण मोक्ष साधन है।।२७।।

शास्त्र पढ़कर उसके अनुसार उत्पन्न होने वाली श्रद्धा सात्विक है। उसके पूरक होकर शास्त्र न पढ़ते हुये भी स्वभाविक रूप से आने वाली श्रद्धा निर्गुण होती है। इस प्रकार शास्त्र न पढ़ते हुये मोक्ष का साधन करने वाला भक्त योगी निर्गुण साधक होता है। यह बात प्रद्योत नाम के ग्रंथ में है।

शास्त्र ज्ञान भगवान के अनुग्रह से जीव के मन में सुख को उत्पन्न करता है। अपरोक्ष ज्ञान भी भगवान के अनुग्रह से मन में सुख उत्पन्न करता है। दोनों भगवान के बारे में ही हैं, किन्तु शास्त्रज्ञानजन्य सुख मानसिक सुख है क्योंकि मन में जो रहता है तथा वह भगवान से मिला हुआ है। अपरोक्षज्ञानजन्य सुख सामने खड़े हुये भगवान के बारे में मन में मिलने वाला सुख है। भगवान के स्वरूप में रहने वाला सुख और किसी को कभी भी नहीं मिलता। यह भी प्रद्योत नाम के ग्रंथ में है।

आरोग्यकर, योग्य आयस न उत्पन्न करने वाला आहार सात्विक होता है, केवल जीव को रुचिकर लगने वाला अन्न राजस होता है। बाद में दुख देने वाला दर्द करने वाला और अशुचि आहार तामस होता है।।२८।।

भगवान के बारे में सुनते समय मन में जो सुख होता है वह सात्विक है। विषय पदार्थों के सेवन से होने वाला सुख राजस है। मोह से शराब की वजह से पत्नी, पुत्रों के सामने दैन्य से मिलने वाला सुख तामस होता है। भगवान को प्रत्यक्ष देखने से मन में होने वाला निर्गुण मोक्ष सुख होता है।।२९।।

हे उद्धव! ज्यादा कहने से क्या मतलब है ? द्रव्य, देश, फल, काल, ज्ञान, अदृष्ट, इन्द्रिय, श्रद्धा, अवस्था, क्रिया, व्रत ये सारे त्रिगुण सम्बन्ध से प्रत्येक तीन विध होते हैं।।३०।।

गुणमय ये सारे पदार्थ हरिवायु से, लक्ष्मी सरस्वतियों से, सुरक्षित रखी गई है। उनमें शास्त्र से सुनकर समझे गए और स्वप्रतिभा से पाए गए ज्ञान से भगवान की अपनी योग्यतानुसार सारे गुणों का ध्यान करना चाहिये।३१।।

निर्गुण ज्ञान भी सत्व गुण से पैदा होता है किन्तु निर्गुण ज्ञानादि गुणत्रय रहित मोक्ष के लिये नजदीकी साधन होने के कारण निर्गुण कहा गया है। सात्विक ज्ञान थोड़ा दूर का साधन होने से सात्विक कहे गये हैं। इस प्रकार ब्रह्म पुराण में कहा गया है।

यह जनन-मरण रूप संसार जीवों के लिये त्रिगुणजन्य कर्म के निमित्त होते हैं। हे उद्धव! जो जीव अपने अन्तःकरण में रहने वाले इन त्रिगुणों को भक्ति योग से पराभव करता है वह इस संसार से पार होता है। मुझमें आसक्ति रखते हुये मेरे स्वरूपानन्द आविर्भाव को पाता है।।३२।।

इसी कारण सामान्य ज्ञान, सुयोग्य विशेषज्ञान, इनके साधन बने हुये यह मानव शरीर को पाया हुआ पुरुष गुणपूर्ण मेरे अनुग्रह से अपनी कामनाओं को पूर्ण करता है। विषय के सुख के लिये बाहर न संचार करते हुये अन्तरंग में ही अपने में रहने वाले सुख का अनुभव करता हैं।।३३।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में ग्यारहवाँ स्कन्ध में पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - छब्बीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री भगवान कहते हैं - मेरे ज्ञान के साधन रूप बने इस शरीर को पाकर मेरी आराधना रूप धर्म का आचरण करने से जीव अपने हृदय में रहने वाले आनन्द रूपी भगवान का दर्शन करता है।।१।।

ज्ञानी, ज्ञान निष्ठा से अस्वतंत्र विषय पदार्थों में आसक्ति को खोता है और अनासक्ति को बढ़ाता है। उसी प्रकार अस्वतंत्र समझे हुये भगवद् इच्छा से निर्माण हुये शरीरों में रहते हुये गुणमय जीव संसार के कारण बनने वाली अविद्या से छुटकारा पाता है।।२।।

स्वतंत्र तत्व को वस्तु कहते हैं। अस्वतंत्र तत्व को अवस्तु कहते हैं। यह बात महात्म्य नाम के ग्रंथ में आई है।

जननेन्द्रिय, पेट की तृप्ति के लिये जीवन करने वाले दुष्ट लोगों का संग कभी नहीं करना चाहिये। उनके पीछे चलने वाला अन्धे के पीछे जाने वाले के जैसे आगे चलकर अन्धःतमस में गिर जाता है।।३।।

महाकीर्तिशाली सम्राट पुरूरव ने यह बात बतायी है, वह पहले एक समय में भू-लोक में उर्वशी के विरह से शोक संतप्त होकर बहुत दुख भोगे।।४।।

जब उर्वशी उनको छोड़कर चली गई तब यह राजा मूर्ख के समान दुःख से रोते हुये - हे कठिन चित्त वाली प्रिये, ठहरो, जाओ मत, ऐसे चिल्लाते हुये विवस्त्र होते हुये उसके पीछे दौड़ते रहे। उसी समय उनको **हये जाये**, इस वेद मंत्र का दर्शन हुआ।।५।।

उसी मंत्र के बल से राजा यज्ञ करते हुये उर्वशी लोक को प्राप्त किया, वहाँ उसके साथ मिलकर क्षुद्र विषयों का अनुभव किया। अनेक रात, अनेक दिन और अनेक वर्ष गये, किन्तु उसके आकर्षण से कितना भी विहार करने के बाद भी उसको तृप्ति नहीं मिली। एक दिन पुरूरव को ध्यान आ गया।।६।।

वह अपने मन में कहता है - देखो मेरा मोह कितना बढ़ गया है। यह देवी मेरे गले में पड़ी

हैं। मैंने कामातुर होकर समय का ख्याल नहीं रखा। कामातुर हुआ मेरा आयुष्य नष्ट हो रहा है, इसकी कल्पना भी नहीं रही।।७।।

उससे वंचित रहने वाला मैं मेरे आयुष्य का सुनहरा भाग व्यर्थ जा रहा है इसको नहीं समझा। भोग के लिये, सूर्य रहने वाला दिन और सूर्य न रहने वाली रात इसका अन्तर भी मुझे नहीं रहा।।८।।

मैंने बड़ी भूल की। मैं चक्रवर्ती राजा और राजाओं का शिरोमणि होते हुये भी एक औरत ने मेरे मन को चोरी करके अपनाया। वह मुझको अपने खेल का खिलौना बना ली।।९।।

सारे राज भोग वैभव से युक्त मुझको वह एक तृण के समान फेकते हुये चली गई। उस समय मैं मूर्ख के समान विवस्त्र होकर उसके पीछे पड़ा।।१०।।

एक स्त्री मुझको तिरस्कार करते हुये जा रही है। उस समय मैं काम बाण से पीड़ित होकर उसके पीछे-पीछे चल रहा हूँ, कहा है मेरा प्रभुत्व, कहाँ है मेरा गौरव और **घनता**?।।११।।

जिसके मन को स्त्री अपहरण करती है, उसको कितना भी विद्या रहे, तप रहे, वह दान-धर्म करे, शास्त्र श्रवण करे, एकान्त वास करे, मौन रहे पर इन सबसे क्या लाभ होता है ?।।१२।।

मैंने अपने ध्येय साधना को छोड़ दिया। मूर्ख के समान होकर एक स्त्री के पीछे पड़ गया। ऐसा मैं पण्डित के समान अहंकार किया। मुझको धिक्कार हो। समस्त भूमण्डल का स्वामित्व पाकर सम्राट होते हुये भी गधा तथा सांड के समान स्त्री के वशवर्ती हो गया।।१३।।

बहुत वर्षों तक मैं उर्वशी के अधरामृत का पान करते रहा, किन्तु मेरे मन में हुए काम का क्षोभ फिर भी नष्ट नहीं हुआ। वह आग में घी डालने के समान बना।।१४।।

वेश्या से अपहृत मेरे मन को बन्धन से छुड़ाना अब आत्माराम सर्वशक्त, भगवान अधोक्षज को छोड़कर और किसी में नहीं होता।।१५।।

यहाँ क्रोध में राजा उर्वशी को वेश्या बताया है, किन्तु उर्वशी अप्सरा स्त्री हैं, वह वेद–मंत्र की द्रष्टार है, उत्तम स्त्री है।

पुनः उसी का पीछा करने वाले मुझको देवी उर्वशी ने बुद्धिमान रूप में वेद-मंत्र, **किमेता वाचा** इस वेद मंत्र को बताई थी। किन्तु मेरी बुद्धि ही काम से खराब हो गई थी, मेरा मन मेरे वश में नहीं था। इसके लिये मुझे आवृत महामोह मन से नहीं गया।।१६।।

उर्वशी **किमेता वाचा कृणवाव** (ऋग्वेद 8-5-2) इस मंत्र से कहती है कि हे राजा! काम के न बनने वाली व्यर्थ बातों से क्या लाभ है ? मैं अपनी बात के अनुसार तुमको छोड़कर आयी हूँ। बहुत समय व्यतीत हो गया है, वह वापस नहीं आता। गया हुआ अतिथि वापस नहीं आता है। मैं भी वापस आने वाली नहीं हूँ। तुम अपने राजघर को चले जाओ, मैं तेरे हाथ को लगने वाली नहीं हूँ। कोई हवा को अपने हाथ में पकड़ सकता है क्या ? इतना बोलने के बाद भी प्रारब्ध के कारण पुरूरव का मोह नहीं छूटा। वह यज्ञ करके उर्वशी लोक को प्राप्त किया, भोग किया। अब प्रारब्ध समाप्त हो गया है। जागृत होकर राजा कहता है-

इस ऊर्वशी से मुझको क्या लाभ है ? रस्सी को सांप मानकर जो भ्रम होता है उसके समान है यह मेरा मोह। इसके लिये एक ही कारण हैं कि मैंने भगवान को ठीक तरह से जानने का प्रयास नहीं किया। मैंने अपने स्वरूप को नहीं पहचाना, यह भी एक कारण है, मैं अपनी इन्द्रियों को अपने वश में नही रखा।।१७।।

दोषों से भरा हुआ, दुर्गन्ध देने वाला, शुचि रहित यह पार्थिव शरीर क्या है ? उसमे सौन्दर्य आदि गुण कहाँ है ? तो भी मैं इन्द्रिय वश होकर समर्थ, स्वतंत्र भगवान को न जानते हुये अज्ञान से इसी पार्थिव शरीर में सौन्दर्यादि गुणों की कल्पना की। उसी में सुख पाया, यह मेरा भ्रम है।।१८।।

इस पार्थिव शरीर के ऊपर स्वामित्व किसका है ? मुझे जन्म दिये हुये मेरे माता-पिता का है क्या ? नहीं तो पत्नी का है क्या ? वह भी नहीं है, तो अन्न देने वाले स्वामी का है क्या ? अन्त में इस शरीर को जलाने वाली अग्नि को है क्या ? न जलते हुये ऐसे ही छोड़े तो कुत्ता या गिद्ध का है क्या ? अथवा तब तक उस शरीर में रहने वाले जीवात्मा का है क्या ? अथवा आपदाओं में रक्षा करने वाले मित्रों का है क्या ? इनमें से किसका है? यह कोई निश्चित रूप से कह नहीं सकता।।१९।।

वस्तुतः यह शरीर किसी के स्वामित्व का नहीं है। अपवित्र और हीन स्थिति में रहने वाले इस पार्थिव शरीर में कितना मोह है ? ये देखो, स्त्री का सुन्दर मुह देखने से कितना मोह उत्पन्न होता है। उसकी नाक, उसके ओठ, कितना अच्छा लगता हैं, ऐसे बोलते हुये उससे प्यार करते हुये, चमड़ी, मांस, रक्त, मज्जा, अस्थि का ढेर रहने वाले स्त्री शरीर के साथ सुख लेने वाला मनुष्य, मल-मूत्र में रहने वाले कृमि से क्या अलग होता है ?।।२०-२१।।

इसी कारण अपनी साधना के बारे में ज्ञान रहने वाले मनुष्य को स्त्री के साथ अथवा स्त्री का मोह रहने वाले व्यक्ति के साथ स्नेह नहीं करना चाहिये। विषयों से सम्पर्क होने के कारण ही मन विक्षेप होता हैं। सम्पर्क नहीं रहे तो क्षोभ कहाँ होगा ?।।२२।।

न देखा हुआ, न सुना हुआ विषयों से मनक्षोभ नहीं होता। इन्द्रियों को विषयों के साथ जो नहीं जोड़ता है उसका मन चंचल नहीं होता। वह मन भगवान में स्थिर होता है।।२३।।

इसी कारण स्त्रियों से, स्त्रीलम्पटों से संग नहीं करना चाहिये। इन्द्रियों से इन्द्रियों की चाह के वश में नहीं होना चाहिये। पंच ज्ञानेन्द्रिय और मन इन षड्वर्गों के ऊपर ज्ञानी को भी विश्वास नहीं करना चाहिये। ऐसे प्रसंग में मुझ जैसा सामान्य व्यक्ति क्या करेगा ? ।।२४।।

श्री भगवान कहते हैं - इस प्रकार कहते हुये राजाधिराज पुरूरव, उर्वशी लोक को छोड़कर अपने में अन्तर्यामी होकर रहने वाले मुझ भगवान की उपासना करने लगा। अपरोक्ष ज्ञान पाकर विषयों से मोह रहित होकर अन्त में बन्धमुक्त हुआ।।२५।।

बुद्धिमान व्यक्ति को दुर्जनों का संग छोड़कर सज्जनों का सहवास करना चाहिये। केवल सज्जन लोग ही अपने हित वचन से मन की व्याकुलता को दूर कर सकते हैं।।२६।।

लौकिक कामनाओं को न करने वाले लोगों को सज्जन मानना चाहिये। वे मुझमें ही अपने मन को रखते हुये मन के दुख को शमन कर चुके हैं। समस्त प्रदेश में समान रीति से रहने वाले मुझको देखते हुये अहंकार और ममकार को त्याग कर मान-अपमानादि द्वंद्व को सहन करते हैं। मेरी आराधना को जो नहीं लगती है, उसको वे स्वीकार नहीं करते।।२७।।

उद्धव! ये सज्जन लोग महाभाग्यशाली होते हैं। वे आपस में बातचीत करें तो भी मेरे बारे में ही करते हैं। उसके बाद सुनने वाले के सारे पाप को धो डालते हैं।।२८।।

सज्जन लोग भगवान के बारे में जो उपदेश देते हैं, उनको सुनने वाले, सुनाने वाले सिर हिलाते हुये उनमें श्रद्धा रखते हैं, मुझमें भक्ति पाते हैं।।२९।।

हे उद्धव! आनन्दानुभव स्वरूप मुझ परब्रह्म में भक्ति पाने के बाद और क्या बचता है।।३०।।

जैसे अग्नि को पाया हुआ भक्त को ठण्डक, अंधेरा और भय नहीं रहता हैं वैसे ही सज्जनों की सेवा करने वाले को जड़ता, अज्ञान और संसार का भय तिनका भर भी नहीं होता।।३१।।

भयंकर संसार सागर में डूब रहे जीव को बचाने के लिए ब्रह्मज्ञानी, शान्त, सन्तजन पानी में डूबने वाले को बड़े जहाज के समान होते हैं।।३२।।

सारे प्राणियों को प्राण देने वाला अन्न, दुःखियों को आश्रय देने वाला मैं हूँ। मैं जीव को मरने के बाद उसे सुख देने वाला धर्म हूँ। संसार में डरने वाले लोगों को आश्रय देने वाला मैं हूँ।।३३।।

बाहर उदय होने वाला सूर्य, बाहर की आँखों को प्रकाश देता है। उसी प्रकार सन्त अन्दर की आँखों को ज्ञान देते हैं। सन्त लोग ही देवता हैं, बन्धु, माता-पिता सब कुछ हैं। मैं भी सार सर्वस्व हूँ।।३४।।

इस प्रकार राजा पुरूरव अपने सुख प्रारब्ध को भोग कर समाप्त करने के बाद अपने पूर्व स्मरण के कारण जागृत होकर उर्वशी लोक की आसक्ति छोड़कर विषय संग से मुक्त हो गया। भगवान में आसक्ति रखते हुये उन्हीं में सन्तोष पाकर लोक संचार किया।।३५।।

सज्जन जो हैं, वह मेरे हैं अथवा मैं ही हूँ। भगवान ऐसा कह रहे है। इसका अर्थ सज्जन भगवान के स्वरूप नहीं हैं। भगवान उन सज्जनो के मुख्य हैं। यह माहात्म्य नाम के ग्रंथ में कहा गया है।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में ग्यारहवाँ स्कन्ध में छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - सत्ताईसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

क्रिया योग

देव पूजा विधान

उद्धव कहते हैं - हे भगवान श्रीकृष्ण, भगवान के आराधना रूप कर्म योग के बारे में उपदेश दीजिये, पंचरात्र को जानने वाले किस साधन से कैसे आराधना करते हैं उसके बारे में बताइये।।१।।

श्रेष्ठ, पूज्य, नारद जी पूज्य वेदव्यास जी, आचार्य बृहस्पति जी, मानवों को बार-बार कहते आये हैं कि आपकी पूजा ही मोक्ष का साधन है।।२।।

आप स्वयं अपने श्रीमुख से अपनी आराधना के क्रम को बताये हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा जी, भृगु आदि ऋषियों ने उसको सुनकर शिव पार्वती को उसका उपदेश दिये।।३।।

यह सारे वर्ण, आश्रम वाले और स्त्री शुद्रों के लिये भी योग्य है। श्रेय देने वाले सारे साधनों में उत्तम साधना है, इस प्रकार मैं समझता हूँ।।४।।

हे पुण्डरीकाक्ष, विश्व के स्वामी, कर्म बन्ध को मोचन करने वाले इस कर्म योग के बारे में भक्त और आप में अनुरक्त मुझको उपदेश दीजिये।।५।।

श्री भगवान कहते हैं - हे उद्धव! पंचरात्र कर्म के बारे में बहुत कहते हैं। उनके उपदेश में आने वाले कर्माचरण के लिये नीति नहीं हैं। इनको कोई पूर्ण रूप से नहीं बता सकता। संक्षेप रूप में मैं इसको कहता हूँ।।६।।

वेद में बताया हुआ यज्ञादि कर्म, पंचरात्र में उक्त आवाहन आदि पुष्पांजलि तक के देव पूजा आदि कर्म और नाम **संकीर्तन** आदि कर्म इस प्रकार इनमें मेरी आराधना तीन प्रकार की होती है। इन तीनों में अपने वर्णाश्रम को जो विहित होता है उसी विधान से मेरी अर्चना कर सकते हैं।।७।।

अपनी शाखा में बतायी गयी विधि के अनुसार उपनयन आदि संस्कार से द्विज होना

चाहिये। बाद में भक्ति और श्रद्धा से मेरी आराधना करनी चाहिये। उसके बारे में बताता हूँ, सुनो।।८।।

प्रतिष्ठित अचल प्रतिमा में, चक्राब्दि मण्डल इत्यादि से अलंकृत शुद्ध स्थल में, अग्नि में, सूर्य में, जल में, हृदय में अथवा ब्राह्मण, गो इत्यादि चल प्रतिमाओं में पूजा द्रव्यों से कपट न करते हुये भक्ति से युक्त होकर गुरु और देव रूप में मेरी आराधना करनी चाहिये।।९।।

यहाँ बतायी गयी प्रतिमाओं में एक के बाद एक आने वाली प्रतिमा में सन्निधान ज्यादा रहता हैं।

पूजा प्रारम्भ करने से पहले दंत धवन करने के बाद देह शुद्धि के लिये मिट्टी, गोमय आदि से स्नान करते हुये वेद और पंचरात्र में बताये गये दोनों मंत्रों से स्नान करना चाहिये।।१०।।

बाद में वेद और पंचरात्रों में मैंने जो विधि किया है वह संन्ध्या वंदन आदि कर्मों से विधि पूर्वक मेरी पूजा का संकल्प करना चाहिये। इस प्रकार संकल्प करने से करने वाला कर्म पवित्र होता है और महाफलदायक होता है।।११।।

पत्थर से, लकडी से, लोहे से किया हुआ प्रतिमाओं में दीवार के ऊपर लिखा हुआ प्रतिमाओं में, बालू से किया हुआ मूर्तियों में, मन में चिन्तन किया हुआ रूपों में, अथवा स्फटिक, पञ्चरत्न इत्यादियों से निर्माण किया हुआ आठ तरह की प्रतिमाओं में से किसी में भी मेरी पूजा करना अत्यन्त प्रशस्त है।।१२।।

प्रतिमाओं में चल-अचल इस प्रकार दो तरह के होते हैं। उत्सव में उठाकर पालकी में रखकर लेने वाले अथवा पेटी में रखकर लेकर जाने वाले प्रतिमा को चल प्रतिमा बोलते हैं। इस शरीर नाम के मन्दिर में रहने वाला भगवान भी चल प्रतिमा है। जीव मन्दिर अथवा गर्भगृह में स्थापित किया हुआ प्रतिमा अचल प्रतिमा है। अचल प्रतिमा में पूजा करते समय **उद्गासन** करते समय उस प्रतिमा में आवाहन कर चुकने के कारण पुनः उस बिम्ब मूर्ति का आवाहन इत्यादि करने का नहीं है। उसी प्रकार चल प्रतिमाओं में स्वयं व्यक्त शालिग्रामों में आवाहन विसर्जन नहीं है। अन्य प्रतिमाओं में आवाहन विसर्जन करना है।।१३।।

चल प्रतिमाओं में आवाहन विसर्जन को विकल्प से कर सकते हैं। इसका अर्थ आवाहन-विसर्जन कर भी सकते हैं और नहीं भी कर सकते हैं। पूजा को प्रारम्भ करने के पहले स्थान शुद्धि करनी चाहिये। बालू से किया हुआ अथवा चित्र रूप में रहने वाली प्रतिमा को केवल प्रोक्षण करे, शिला लौह आदि प्रतिमा को अभिषेक करना चाहिये।।१४।।

प्रतिमाओं में शास्त्र में कहे गए द्रव्यों से भक्ति युक्त होकर हृदय में ध्यान पूर्वक पूजा करे तो फल मिलता है। जो द्रव्य मिलते हैं, उसी से पूजा कर सकते हैं। कोई द्रव्य नहीं मिले तो केवल जल से भी कर सकते है। किन्तु भक्ति और ध्यान आवश्यक है।।१५।।

हे उद्धव! अभिषेक करना, वस्त्र अलंकार को समर्पित करना, प्रतिमा पूजा में मुझे बहुत इष्ट होता है। शुद्ध स्थल में तत्वन्यास पूर्वक पूजा आरम्भ करनी चाहिये। अग्नि में आज्य से मिला हुआ हविष्य को समर्पित करना चाहिये।।१६।।

सूर्य को अर्घ्य, पुष्पांजलि और नमस्कार करते हुये पूजा कर सकते हैं। जल में, जल से ही पूजा करना मुझे बहुत अच्छा लगता है। भक्त श्रद्धा से केवल जल से पूजा किया तो भी मुझे सन्तोष होता है और तो गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य इत्यादि से पूजा करे तो मेरी अधिक सम्प्रीति होती है।।१७।।

शुचित्व रखते हुये, पूजा द्रव्यों को सिद्ध रखते हुये, पूर्व की तरफ मुख करते हुये कुश के आसन पर पूर्व अथवा उत्तर दिशा में मुख करते हुये प्रतिमा के सामने बैठ कर पूजा करनी चाहिये।।१८।।

अपने में तत्वन्यास, ज्ञान और मातृकान्यास करने के बाद प्रतिमा में भी न्यासों को करते हुये मूल मंत्र से प्रतिमा का स्पर्श करते हुये अभिमंत्रण करना चाहिये। कलश का, प्रोक्षणी पात्रों को शुद्ध जल से भरकर तुलसी गन्ध से पूजा करना चाहिये।।२०।।

इस प्रकार पाद्य, अर्घ्य आचमनीय इत्यादि के लिये तीन पात्र रखते हुये उसमें कृध्योल्क, महोल्क वीरोल्क मंत्रों से अथवा गायत्री मंत्र से अभिमंत्रण करना चाहिये।।२१।।

ॐ, यम्, रम्, वम्, इत्यादि वायु, अग्नि, वरुण, बीज मंत्रों से, प्राणायाम से अपने देह की शुद्धि करने के बाद हृदय कमल में रहने वाले अत्यन्त सूक्ष्म केवल ज्ञानियों से उपास्य वेद शब्दों को न मिलने वाले सर्वोत्तम मेरी बिम्ब मूर्ति का ध्यान करना चाहिये।।२२।।

हृदय में रहने वाली बिम्ब मूर्ति को जीव कला कहते हैं। इसको शब्दों से पूर्ण रूप से वर्णन कर नहीं सकते, इसके लिये इसको शब्दों से परे माना जाता है। यह प्रसिद्ध है। यह बात विवेक नाम के ग्रंथ में है।

सदा सर्वत्र व्याप्त होकर रहने वाली मेरी बिम्ब मूर्ति जीव के शरीर में सदाकाल व्याप्त होकर रहती है। जीव को उसका प्रतिबिम्ब मानते हुये, बिम्ब रूपी भगवान को प्रतिमा में आवाहन करते हुये स्थापन करते हुये पूजा समाप्त होते तक वही रहने के लिये प्रार्थना करते

हुये उस मूर्ति में मातृकादि न्यास करते हुये पूजा करनी चाहिये।।२३।।

धर्मों से विमलादि शक्ति युक्त पीठ को मुझे अर्पण करना चाहिये। उस पीठ में कर्णिक केसरों से उज्ज्वल प्रकाशमान अष्टदल कमल का चिन्तन करना चाहिये। इसके बीच में मुझको चिन्तन करते हुये वेद और पंचरात्र में बताया गया फल सिद्धि के लिये दोनों से मुझको पाद्य, आचमन, अर्घ्य इत्यादि उपचार समर्पण करना चाहिये।।२४-२५।।

धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैऐश्वर्य इत्यादि के अभिमानी देवताओं को श्रीहरि के पीठ रूप में चिन्तन करना चाहिये। उस पीठ में अष्टदल कमल में विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वो सत्या, ईशाना, अनुग्रहा नाम के नव शक्ति देवताओं ने श्रीहरि को छत्र चामरादि सेवा कर रहे हैं। इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये।

सुदर्शन, पांचजन्य, गदा, खड्ग, बाण, धनु, हल, मुसल नाम के आयुध उनके अभिमानी देवताएँ कौस्तुभ, वनमाला, श्रीवत्स इनके अभिमानी देवताओं को आवरण रूप में पूजा करते हुये श्रीहरि को समर्पण करना चाहिये।।२६।।

नन्द, सुनन्द, गरुड़, प्रचण्ड, चण्ड, महाबल, बल, कुमुद, कुमुदेक्षण नाम के द्वारपालकों की पूजा करनी चाहिये।।२७।।

दुर्गा, विनायक, व्यास, विष्वक्सेन और समस्त गुरुओं को, सर्व देवताओं को उनके स्थान में श्रीहरि के अभिमुख में चिन्तन करना चाहिये। अर्घ्य इत्यादि समर्पण करते हुये यथा साध्य वैभव से प्रतिनित्य गन्ध, लावंच, भीमसेनी कपूर, केसर, अगरू इत्यादि सुगन्ध द्रव्यों से सुवासित जल से मंत्र सहित मुझको अभिषेक करना चाहिये।।२८-२९।।

स्वस्य अनुवाक्, विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं इन मंत्रों से, **जितंते पुण्डरीकाक्ष** इत्यादि पंचरात्र मंत्रों से और विश्वकर्म सूक्तों से **धामसूत्र - समुद्रादूर्मि** यहाँ से आरम्भ करते हुये धामन्ते विश्वं तक मंत्र कहते हुए अभिषेक करना चाहिये। नीराजन, पवमानसूक्त से भी अभिषेक करना है।।३०।।

वस्त्र, उपवीत, आभरण, पत्र, पुष्प, माला, गन्ध लेपन से यथोचित उपचार भक्तियुक्त होकर करना चाहिये। भक्ति से श्रृंगार करना चाहिये।।३१।।

पाद्य, आचमन, गन्ध, पुष्प, अंजन, धूप-दीप और नैवेद्य को भक्त श्रद्धा से मुझे समर्पित करे।।३२।।

अपने शक्ति के अनुसार षट्रसोपेत, भक्ष्य भोज्य लेह्य पेय युक्त नैवेद्य को मुझको समर्पण करना चाहिये।।३३।।

अभ्यंग, पैर दबाना, आइना दिखाना, दंत धावन करना, अभिषेक करना, भोग लगाना, नृत्य गीत करना इनको प्रतिदिन नहीं कर सके तो पर्व के दिन अर्पण करना चाहिये।।३४।।

उसके बाद अनुयाग करना चाहिये। इसके लिये स्वगृह्योक्त विधि के अनुसार निर्माण किया हुआ मेखला, गर्त, वेद्यादि से मिला हुआ यज्ञ कुण्डल में अग्न्याधान करते हुये चारों ओर पसारा हुआ अग्नि को एकत्रित करना चाहिये।।३५।।

होम कुण्ड के चारों ओर कुश से परिस्तरण रखते हुये प्रोक्षणीय पात्र से सर्वत्र जल का प्रोक्षण करना चाहिये। बाद में सामने वाली अग्नि में मेरा ध्यान करना चाहिये।।३६।।

मेरे इस तरह के रूप को चिन्तन करना चाहिये। मैं शुद्ध किया हुआ सोने के समान प्रकाशमान हूँ। चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म को धारण किया हूँ। सौम्य रूप वाला हूँ, कमल के समान शोभायमान उज्ज्वल प्रकाश देने वाला पीताम्बर को धारण किया हूँ।।३७।।

उज्ज्वल प्रकाशमान किरीट, कड़ा, कटिसूत्र, बाजूबंध आदि को धारण किया हूँ। छाती में श्रीवत्स लांछन है। कौस्तुभ और वनमाला को धारण किया हूँ।।३८।।

इस प्रकार मेरे रूप को धारण करते हुये सोलह तरह के उपचारों से मेरी पूजा करते हुये घी में भिगोए हुए समिधा की आहुति देना है। आज्यभाग और आघार नाम की दो आहुति देकर पुनः घी से भीगी हुयी आहुति देना है।।३९।।

ॐ नमो नारायणाय इस मूल मंत्र से सोलह बार और पुरुष सूक्त मंत्र से विधि पूर्वक हवन करना चाहिये। धर्मादि पीठ देवताओं को विधि पूर्वक उनके मंत्र से आहुति देकर अन्त में स्विष्टकृत् हवन करना चाहिये।।४०।।

अन्त में अग्नि की पुनः पूजा करनी चाहिये। इसको अनुयाग कहते है। बाद में वैश्वदेव बलिहरण करना चाहिये। नारायण नाम के परब्रह्म का ध्यान करते हुये मूलमंत्र का जाप करना चाहिये।।४१।।

इसके बाद भगवान को आचमन देते हुये बचे हुये अन्न को विष्वक्सेन को देना है। भगवान को मुख वस्त्र देकर सुगन्ध युक्त ताम्बूल को देकर छत्र चमारादि उपचार से पूजा करनी चाहिये।।४२।।

गाते हुये, संकीर्तन करते हुये, नाचते हुये, नचाते हुये सारे भक्तों को मेरी अपार महिमा के कथाओं को कहना चाहिये, सुनना चाहिये। एक मुहूर्त को, एक क्षण समान व्यतीत करना चाहिये।।४३।।

बड़े-छोटे, वैदिक, पौराणिक, प्राकृत स्तोत्रों से स्तुति करते हुये भगवान को दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये।।४४।।

मेरे पॉओ में सिर रखते हुये वन्दन करते हुये हाथ जोड़कर "**हे प्रभु!** पिशाच के समान मुझे सताने वाला, सागर के समान मुझे डुबाने वाला, इस संसार के डर से आपकी शरण में आया हूँ, मेरी रक्षा करें।" इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये।।४५।।

बाद में भगवान से अर्पित निर्माल्य को आदर से सिर में रखते हुये आवाहित भगवान का विसर्जन करना चाहिये। ज्योतिस्वरूप प्रतिमा के अन्तर्गत बिम्ब मूर्ति को पुनः हृदय में रहने वाली ज्योति से मिलाना चाहिये।।४६।।

इस प्रकार प्रतिमाओं में जहाँ जैसी श्रद्धा हैं उसी के अनुसार मेरी आराधना करनी चाहिये। सर्वान्तर्यामी मुझको सारी वस्तुओं में और अपने में पूज्य मानते हुये आराधना करनी चाहिये।।४७।।

इस प्रकार वेद, पंचरात्र के अनुसार करने वाले कर्म योग के मार्ग से साधक प्रतिमा की शक्ति के अनुसार मुझसे अभीष्ट सिद्धि पाता है।।४८।।

जो समर्थ है वह मेरा मन्दिर निर्माण कर सकता है। उसके परिसर में सुन्दर बगीचा का निर्माण करना चाहिये। विग्रहों की प्रतिष्ठा करते हुये वहाँ उत्सव, वाहनोत्सव इत्यादि वैभव युक्त पूजा व्यवस्था करनी चाहिये।।४९।।

प्रतिदिन और पर्वकालों में पूजा और उत्सव व्यवस्थित तरीके से चलाने के लिये मन्दिर को जमीन, दुकान इत्यादि दान देने से मेरे निर्दुःखानन्द साम्य को पा सकता है।।५०।।

मूर्ति प्रतिष्ठा से सार्वभौम्य पाद को, मन्दिर निर्माण से तीनों लोकों का स्वामित्व और निरन्तर पूजादि व्यवस्था से ब्रह्मलोक, इन तीनों को करने से मोक्ष को पाता है।।५१।।

जो कामना रहित होकर निष्ठा से मेरी पूजा करता है, वह भक्तियोग को पाता है। भक्ति योग से मुझको पाता है।।५२।।

भक्तियोग भगवान का साम्य पाना है इसका अर्थ भगवान के समान

आनन्दमय होना नहीं है। किन्तु दुःख का लेश न रहते हुये अपनी योग्यतानुसार आनन्द पाना है। भगवान सदा सर्वोत्तम, आनन्दमय हैं। उनका साम्य और किसी को नहीं मिलता। भक्ति से भगवान का मन्दिर बनाये तो त्रिलोक का आधिपत्य मिलता है, ऐसा कहा गया है। यहाँ योग्यतानुसार मिलता है। योग्य जो हैं वे इन्द्र बनते हैं। अन्यों को उनकी योग्यता के अनुसार पूज्यत्व मिलता है। इससे भी ज्यादा भक्ति से उपासना करने वाले को ब्रह्मलोक मिलता है। उससे भी ज्यादा भक्ति करने वाले को मोक्ष मिलता है। यह बात प्रवृत्त नाम के ग्रंथ में है।

देव ब्राह्मणों को दान में स्वयं दिया हुआ अथवा दूसरों को दिया हुआ **दत्तियों** का अपहार करने वाला कोटि-कोटि वर्ष नरक में, मल में, कृमि कीट के रूप में रहता है।।५३।।

देवालय निर्माण कार्य में कर्ता को उसका साथ देने वाले को, धन सहाय करने वाले को, इन कार्यों में प्रोत्साहन देने वाले को उनके अनुसार फल मिलता है। सत्कर्म करने वाले सबको उत्तम फल मिलता ही है। किन्तु इसमें तारतम्य रहता है। ज्यादा कर्म करने वाला ज्यादा फल पाता है।।५४।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में ग्यारहवाँ स्कन्ध में सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - अट्ठाइसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

श्री भगवान कहते हैं - प्रकृति और पुरुष से मिलकर बना हुआ यह विश्व स्वतंत्र श्रीहरि से व्याप्त होकर रहता हैं। इसको जानने वाला ज्ञानी अन्य हरि द्वेषी जनों के स्वभाव कर्म की स्तुति नहीं करता हैं, उनको आशीर्वाद नहीं देता। उसी प्रकार लोक विलक्षण ज्ञानी श्रीहरि भक्तजन के स्वभाव कर्म की निन्दा भी नहीं करता।।१।।

जो निंद्य हैं, उनकी स्तुति नहीं करनी चाहिये और जो स्तुति योग्य हैं उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। ये दोनों करने वाला असत्य बोलने के पाप से तमस में गिरता है। उसी प्रकार जिनकी स्तुति करना है उनकी स्तुति नहीं करना, चुप रहना भी शत्रु के समान परित्याग योग्य होता है। यह बात सत्कार नाम के ग्रंथ में आती है।

जो द्वेष करने वाले के स्वभाव, कर्म की स्तुति करते हुये भगवद् भक्त के स्वभाव कर्म की निन्दा करता है। असत्य विषय में आग्रह करता है तो वह इस पाप के फलस्वरूप जल्दी ही स्थानभ्रष्ट होता है, तम में गिरता है।।२।।

शरीर में रहने वाला अस्वतंत्र जीव तेजस अहंकार से जन्म लिया, इन्द्रियों से, विश्राम पाते हुये नींद को पाता है। उस समय इन्द्रियाभिमानी देवताएँ निष्क्रिय होने से जीव वाह्य के ज्ञान न होते हुये माया में मग्न होकर स्वप्नावस्था को पाता है। तब मन वासना युक्त अनेक पदार्थों का अनुभव उस स्वप्न में करता है। इन्द्रिय देवताएँ अंश से मूल रूप जब पाते हैं, तब नींद खुलती है। किन्तु मरणावस्था में इन्द्रिय पूर्ण रूप से निष्क्रिय होने से मरण पाता है। इस प्रकार स्वप्न और मरण में भेद है। किन्तु ये दोनों सर्वत्र स्वतंत्र भगवान के अधीन हैं।।३।।

स्वतंत्र भगवान को न मानते हुये द्वैत कहलाने वाले मिथ्या ज्ञानी को वह पहले ही पूरा दुष्ट हो गया है, उसका किसी कर्म वश से स्तुति करना योग्य नहीं है। बुरे कर्म के लिये निन्दा करना भी योग्य नहीं है। उसके स्वरूप योग्यता को दोनों अल्प ही हैं। इसी कारण बातों से, मन से, आशीर्वाद करे अथवा शाप दे उससे उसको कुछ लाभ होता नहीं। क्योंकि वह असत्य को ही मानता हैं, असत्य में आग्रह रखने वाले को स्थानभ्रष्ट होना निश्चित है।।४।।

एक को शुभ मानते हैं। **द्वैत** अथवा दो को अशुभ मानते हैं। द्वैत मानने वाले

दुर्जन को स्तुति आशीर्वाद से कुछ लाभ नहीं होता। गाली और शाप से पहले ही जो खराब हो चुका है उसको और क्या होने वाला है। यह महाभारत का वाक्य है। दुष्ट को उसके स्वभाव के अनुसार दुष्टस्थल ही मिलता है। स्तुति अथवा शुभ कामाना से परिणाम कुछ नहीं होता। उसको कष्ट ही होगा, यह बात **प्रद्योत** नाम के ग्रंथ में आया है।

छाया, कोहरा और प्रतिबिम्ब ये सारे असत्य होते हैं। किसी काम के लिये नहीं होते। कभी थोड़ा सा फलकारी होते हुये ज्यादा फल देने वाले नहीं है। इसी प्रकार देह इत्यादि पदार्थ उनसे दुष्कर्म करते हुये शापग्रस्त होने वाले को जनन-मरण रोगादि उपद्रव थोड़ा ही क्लेशकारी होते है। उसको इससे भी बड़ा कष्ट होने वाला है।।५।।

तमोयोग्य जीवी को देह और उनसे होने वाले कर्म, उनसे मिलने वाले शाप इत्यादि जो दुख देते हैं, उससे उनको अयोग्य स्तुति से मिलने वाला सुख अत्यल्प है, असत्य के समान है। किन्तु वेद में सारे कर्मों का फल बताया गया है। विषवृक्ष छाया मरण–कारक बनता है, कुहरा शीतकारक होता है। जल में प्रतिबिम्ब को देखना पुण्य नाश का कारण बनता है। इस प्रकार छाया, कुहरा और प्रतिबिम्ब तमो जीवी के पुण्य नाश का कारण बनते हैं। किन्तु इनसे मिलने वाला दुःख तमो दुःख से अत्यल्प होता है। तमो योग्य जीवी को संसार में और संसार के बाद के जीवन में बड़ा दुःख ही मिलता है। स्वरूप दुःख के समान दुःख यह नहीं होता। इसी कारण दुर्जनों की निन्दा करनी चाहिये, स्तुति नही करना।

सर्वशक्त, सर्वान्तिर्यामी, सर्वेश्वर श्रीहरि स्वयं इस प्रपंच की सृष्टि करते हैं, रक्षा करते हैं और नाश करते हैं। स्वयं अपनी सृष्टि को स्वेच्छा से स्वयं करते हैं। रक्षण और उपसंहार भी स्वयं करते हैं। उनकी स्तुति करनी चाहिये।।६।।

सर्वशक्त भगवान इस जगत की सृष्टि, स्थिति, लय करते हैं, इतना ही नहीं स्वयं ही सृष्टि, स्थिति और उपसंहार करते रहते हैं। दीप से और एक दीप जलता है, पहले के दीप का प्रकाश कम नहीं होता उसी प्रकार भगवान के मूल रूप से भगवान का अवतार रूप आता है। भगवान अपने रूप से इष्टकाल में अन्यों को दिखाते हैं यही स्थिति और अपने अवतार रूप को छोड़कर मूल रूप में मिल जाना यह उपसंहार इस प्रकार समझ लेना चाहिये। भगवान का मूल रूप भी पूर्ण है। अवतार रूप भी पूर्ण है। एक पूर्ण से दूसरा पूर्ण बाहर आना पूर्ण रूप ही रहता है।

यह वाक्य श्रुतियों से प्रसिद्ध है।

इसी कारण भगवान के लिये उनकी सृष्टि करने के लिये उनसे बड़ा अथवा उनके समान और कोई नहीं है। उनकी सृष्टि, स्थिति और संहार होता है इस प्रकार कोई ज्ञानी कह नहीं सकता।।७।।

यह जीव प्रपंच गुणबद्ध है। उसके लिये सृष्ट्यादि त्रिविध कर्म सत्वादि गुणों के अधीन होते हैं। ये अन्य जीवों के लिये हैं ,भगवान गुणातीत हैं उनके लिये यह अनुमेय नहीं होता।।८।।

जीवों की सृष्टि त्रिगुण के अधीन है। इसी कारण गुण सम्बन्ध योग्य जीवों के लिये यह होता है। सदाकाल के लिये गुण सम्बन्ध रहित भगवान की सृष्टि, स्थिति आदि कैसे होती है ? यह बात ब्रह्मतर्क में आती है।

विश्वव्यापित्व, स्वप्नादि अवस्था प्रदत्व, सर्व सृष्टि कर्तृत्व, अपने को अन्य सृष्टिकर्ता न होना ये सारी मेरी महिमा को जो जानता है वह सामान्य और विशेष ज्ञान वाला होता है। वह विष्णु और वैष्णवों की निन्दा नहीं करता, स्तुति करता है। वह द्वेषियों की स्तुति नहीं करता है किन्तु निन्दा करता है। सूर्य के समान असंग होकर सारी जगहों में संचार करता है।।९।।

प्रत्यक्ष अनुमान आगमों से स्वप्रतिभा से ब्रह्मादि देवताएँ जनन-मरण वाले होने से सकल विधि के पुरुषार्थ देने में असमर्थ होते हैं, केवल श्रीहरि इन सबके लिए समर्थ हैं। इसको समझते हुये दूसरों से मोह वश न होते हुये लोक में जीव निर्वाह करना है।।१०।।

उद्धव कहता हैं - प्रभु, यह संसार किसके लिये है ? जीव के लिये (आत्मा) नहीं है तो देह के लिये भी नही है। देह, दृश्य, जड़ और अनात्मा है। आत्मा द्रष्टा, स्वयं प्रकाश और ज्ञान रूपवान है। स्वप्रकाश ज्ञान स्वरूप को अज्ञान कहाँ से आता है ? जड़ को सुख-दुःख का अनुभव कहाँ से होता है ? तो अज्ञान के कारण विषय से होने वाला सुख-दुःख अनुभव रूप का संसार का अनुभव किसको है।।११।।

भगवान नाश रहित, गुणातीत, पापादि दोष रहित, स्वप्रकाश, ज्ञानरूप रहित, आवरण रहित, आग के समान प्रकाश देने वाले हैं। देह लकड़ी के समान जड़ है। आग के लिये लकड़ी बन्धक नहीं बन सकती है तो भगवान को देह बन्धक नहीं बनता फिर यह तो इस संसार किसके लिये है ?।।१२।।

श्री भगवान कहते हैं - जीवात्म को देह, इन्द्रिय और प्राणों से जितने समय तक सम्बन्ध रहता है, उतने समय तक संसार बंधक रहता है। देह से मैं अलग हूँ, यह स्पष्ट भेद ज्ञान जिनको नहीं हैं, उसको यह देह स्वरूपानन्द सुख के अनुभव के लिये बन्धक बन जाता है। इसी कारण देह का सम्बन्ध प्रयोजन रहित है। किन्तु स्पष्ट भेदज्ञान रहने वाले विवेकी को

यही शरीर ज्ञान साधन होने के कारण सफल भी होता है।।१३।।

स्पष्ट रूप से देहात्म का विवेक जिसको नहीं है उसके लिये यह संसार फलदायक नही है। किन्तु विवेक ज्ञान वाले को यही शरीर नित्य आनन्द पाने के लिये साधन बनता है। इसके लिये उसको शरीर सफल है। संसार स्वप्न के समान है। इसका अर्थ मिथ्या नही है, अस्थिर है, यह अभिप्राय तत्वविवेक नाम के ग्रंथ में आता है।

यह संसार अल्प विषयसुख का प्रयोजन लगता है। किन्तु बड़ा स्वरूप सुख का बन्धक बनने के कारण यह संसार प्रयोजन हीन होता है। किन्तु जीव को दुःख प्राप्ति होता ही है। विषय पदार्थ का चिन्तन करने वाले को स्वप्न में भी दुःखादि अनर्थ होते रहते हैं। इसी प्रकार विषय पदार्थो में आसक्त जो होता है उसको संसार से दुख प्राप्ति होना क्या विशेष है ?।।१४।।

जीव को संसार से निवृत्ति होना ही महाफल होने के कारण संसार में विषय सुख रूप अल्प फल होते हुये भी वह नहीं सा होता है। इसी कारण वह निष्फल है। यह बात तत्वविवेक नाम के ग्रंथ में है।

वाह्य प्रपंच के बारे में जिनको जागृति नहीं है उसको स्वप्न में बहुत भय और दुख होता है। किन्तु जागृति होने के बाद वह भ्रम लगता है। उसी प्रकार भगवान के स्वातंत्र्यादि महामहिमा के बारे में जिनको जागृति नहीं है उसको संसार जनन-मरण रूप अनर्थकारी होता है। किन्तु जो जागृत रहता है, उसको अपने के बारे में स्वातंत्र्य के भ्रम का कारण नही बनता।।१५।।

शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, स्पृहा इत्यादि संसार में होते हैं। प्राकृत देह में अभिमान रखने वाले जीव को ये लगते हैं। ये स्वभावतः नही। किन्तु अप्राकृत शरीरी भगवान को प्राकृत शरीर में अभिमान न होने के कारण बिल्कुल ये नहीं लगते।।१६।।

जड़ शरीर में अभिमान रहने के कारण जीव को जनन-मरणादि संसार के दुख होते हैं। किन्तु वे स्वयं ही जीव को लगते नही। कभी भी जड़ शरीर न रहने वाले आनन्दमय भगवान को यह संसार की बाधा कहाँ से होती है ? यह बात तंत्रभागवत नाम के ग्रंथ में आती है।

सकल जीवों के देह, इन्द्रिय, प्राण मन के लिये अभिमानी, जीव का अभिमानी, जीव के अन्तर्यामी, ज्ञान गुण, शुभकर्म स्वरूप, सर्वाधारक होने के कारण सूत्र नामक, महत्तत्वाभिमानी

होने के कारण महान नाम वाले इत्यादि अनेक नामों से श्रुति, पुराणों में प्रसिद्ध चतुर्मुख ब्रह्मा जी हैं। वे इतने होते हुये भी काल नामक लक्ष्मी नारायण के अधीन होकर उनकी इच्छा के कारण मोक्ष के बारे में परमोत्साह को छोड़कर इस संसार में रहते है क्योंकि ब्रह्मा जी को इस जगत के सृष्ट्यादि करने के कर्तव्य को भगवान ने दिया है। उसका वे अनुसरण करते हैं। इस प्रकार सबसे जीवोंत्तम ही इस संसार में रहते हैं तो अल्प जीव के बारे में क्या कहना चाहिये।।१७।।

सूत्र महान् इत्यादि अनेक नामों से प्रसिद्ध सर्वज्ञ, विष्णु भक्त, जीवोत्तम, चतुर्मुख ब्रह्मा जी को ही जब इस संसार में रहना पड़ता है तो अल्प जीव संसार छोड़कर कैसे जाते हैं ? यह सत्तत्व नाम के ग्रंथ में है।

मिथ्याज्ञान रूप इस संसार में भगवान के द्वारा, भगवान ही स्वयं बहुरूप से मन शरीरादियों में रहते हुये संसार को **कुरूपित** करते हैं। मन और कर्म इनको मैं स्वतंत्र रूप से जानता हूँ इस प्रकार के भ्रम में जीव रहता है। इसी प्रकार वंचक कर्म मैं करता हूँ। यह अभिमान तथा मेरा प्राण, मेरा शरीर इत्यादि अभिमानों को भी भगवान ही **कुरूपित** करते हैं। इस मिथ्या ज्ञान को भगवान की योग्य उपासना नाम के तीक्ष्णधारा वाली तलवार से काटते हुये विषय तृष्णा को त्याग कर ज्ञानी इस भूमि में संचार करता है।।१८।।

श्रीहरि ज्ञानस्वरूप हैं। इस प्रपंच से विलक्षण हैं, सबके इष्टार्थ को देने वाले हैं, मानने योग्य हैं, सर्व इन्द्रियों के नियामक हैं। सम्प्रदायों के उपदेश से समझने योग्य हैं, युक्ति से भी जाने जाते हैं,सर्व गुण पूर्ण हैं, काल नामक है। इस जगत के मूल कारण होने के कारण जगत के हेतु है। जगत के आदि, अन्त में वे ही एक मात्र स्वतंत्र हैं। जीव अस्वतंत्र है, यह तो सिद्ध है। इससे सृष्टि के मध्यकाल में भी वे ही स्वतंत्र हैं। जीवों में स्वतंत्र का भ्रम है इसको जानना ही ज्ञान नाम का खड्ग है।।१९।।

ज्ञान, विवेक, निगम, तपस्, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य, अनुमान और काल ये सारे शब्द भगवान के नाम हैं।

सोने से आभूषण बनाया जाता है, उसको गर्म करने से पुनः सोना मिल जाता है। यानी प्रारम्भ में सोना, बीच काल में सोना और अन्त में भी सोना ही होता है। सोने से बनाया हुआ आभूषण को भी सोना ही कहते हैं। वह सोने से ही बना है न। इसी प्रकार भगवान देव-दानवादि सकल चेतनों में उन्हीं के आकार से प्रवेश करने के पहले, लय काल में और मध्य काल में भगवान ही एकमेव मुख्य कारण होकर उन्हीं के नामों से पुकारे जाते हैं। देव-दानवादि अपने रूप में रहने वाले भगवान के ही रूप, नाम वाले होने के कारण मुख्यतः देवतादि नामों से पुकारे जाते हैं।।२०।।

सोने का रथ, सोने का शंख इत्यादि सोने के आवरण से बनते हैं। आवरण बनते समय और उससे सोना हटने के समय में भी तथा आवरण रहते समय भी वहाँ सोना ही मुख्य है। रथ, लकड़ी का होते हुये भी ऊपर सोने का आवरण रहने के कारण उसे सुवर्ण रथ कहते हैं। यहाँ सुवर्ण ही मुख्य है। इस प्रकार भगवान इस संसार में प्रवेश करने के पहले, करने के बाद, बीच में और प्रलय में चेतन देव दानवों में मुख्य रूप से भगवान ही रहते हैं, अन्य देवादिगण नही।

सोने का रथ निर्माण होने के पहले, निर्माण होने के बाद और सोना निकलते समय इन तीनों समय में स्वर्ण ही मुख्य है। उसी प्रकार सृष्टि, स्थिति और प्रलय में भगवान ही मुख्य हैं। वे ही अन्य देवताओं के नाम से पुकारे जाते हैं। सोना अनेक रूप धारण करने के बाद पुनः अन्त में सोने का ही रूप धारण करने के कारण सोना ही रहता है। यह ब्रह्मतर्क का वाक्य है।

हे उद्धव, मोक्ष, संसार, तम, इन तीनों स्थानों में जीवों को बैठने वाला तत्व ज्ञान, मिश्र ज्ञान, मिथ्याज्ञान नाम के विविध ज्ञान, सत्वादि गुणत्रय कारण बनने वाले महादितत्व के कार्य बना हुआ इस ब्रह्माण्ड और वहाँ कर्म करने वाले जीव ये सारे त्रिगुणातीत भगवान की इच्छा के अनुसार होते हैं, नहीं तो नहीं रहता है। इसमें केवल भगवान श्रीहरि अकेले स्वतंत्र हैं।।२१।।

तीनों विध के जीवों को तीन तरह की गति देने वाला स्वतंत्र रूप के भगवान हैं। भगवान की इच्छानुसार यह जगत रहता है। इसी कारण भगवान सत्य और स्वतंत्र हैं क्योकि भगवान में स्वातंत्र्य ही मुख्य कारण है। प्रपंच प्रवाहतः सत्य है। चेतन भी प्रवाहतः सत्य है। नित्य जड़ भी स्वरूपतः सदाकाल रहने से सत्य ही माना जाता है। यह बात वस्तुतत्व नाम के ग्रंथ में है।

जो पहले स्वतंत्र नही था, और आगे स्वतंत्र नहीं होता वह बीच में कैसे स्वतंत्र होता है? इस जगत में जीवित रहने वाला जीव मध्यकाल में कैसे स्वतंत्रकर्ता होता है? इसी कारण भगवान से जो यह जगत सृष्टि पाती है, वही प्रमित भी होती है। इसके लिये भगवान श्रीहरि ही एक मात्र स्वतंत्र हैं।।२२।।

इस जगत को उत्पत्ति और नाश होने के कारण इसका स्वतंत्र अस्तित्व नही है। जगत को सत्ता और ज्ञान देने वाले भगवान को स्वतंत्र अस्तित्व है। यह वैभव नाम के ग्रंथ में है। जगत को अस्तित्व नही है इसका अर्थ वह पराधीन है, इस प्रकार होता है क्योंकि जगत सदाकाल के लिये रहता है। यह प्राकाश्य नाम के ग्रंथ में है।

विकार योग्य रजोगुण जन्य यह प्रपंच अस्वतंत्र होते हुये भी अज्ञानियों के लिये स्वतंत्र लगता है। ज्ञानियों को केवल स्वयं ज्योति बृहद रूपी श्रीहरि ही स्वतंत्र लगते हैं। यह स्वतंत्र श्रीहरि चेतन प्रकृति, इन्द्रिय, विषय, जीव, इन्द्रियाभिमानी देवताएँ इत्यादि इस जगत में विचित्र रूप से दिखते हैं। यह जगत अस्वतंत्र है, हरि स्वयं पूर्ण स्वतंत्र हैं।।२३।।

जगत नही है, इसका अर्थ वह पराधीन है, अल्प शक्ति वाला है। इस प्रकार अर्थ होता है। पुत्र होते हुये भी वे अल्प शक्ति वाले पराधीन रहे तो वे नहीं हैं ऐसा ही व्यवहार में लगता है। यह बात विवेक नाम के ग्रंथ में है।

इस प्रकार यह स्वतंत्र यह अस्वतंत्र इस प्रकार विवेक बुद्धि से युक्त युक्तियों से जगत स्वतंत्र नहीं है। इसको समझते हुये भगवान को पूर्ण रूप से स्वतंत्र इस प्रकार जानना चाहिये। मन में जो संशय आते हैं उनको निकाल कर भगवान के ध्यान से तृप्त होकर अन्य लौकिक विषय पदार्थ को न चाहते हुये उनसे दूर रहना चाहिये।।२४।।

पार्थिव शरीर, इन्द्रियाभिमानी देवताएँ, वायु, जल, अग्नि नाम के तीन भूतों के शरीर रूपी मुख्य प्राण, मन, पृथ्वी, तन्मात्रा, बुद्धि, बुद्धितत्व, अहंकारतत्व, आकाश, क्रिया और मैं करता हूँ, मैं सुनता हूँ, इत्यादि समान रूप से अनुभव में दिखते आने वाला अहं नामक अभिमान ये सारे भगवान नहीं हैं। इस तत्व को **स आत्मा नेति-नेति** इस प्रकार श्रुति कहती है।।२५।।

प्राण मुख्यतः 'वायु शरीरि' उसके शरीर में जल तेज रहते हैं पृथ्वी और आकाश तत्व नहीं रहता हैं। इसी कारण प्राण का शरीर तीन भूतों से बना है। इस प्रकार प्रकाशिक नाम के ग्रंथ में आया है।

श्रीहरि का देह इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, अहंकार इत्यादि कोई वस्तु नही, वे जीव भी नहीं, जीवों के स्वामी हैं, वे ज्ञानानन्द शरीर वाले है। इस प्रकार सात्वत नाम के ग्रंथ में आया है।

विषयों में आसक्त इन्द्रियों का निग्रह करने से विषय में पहले ही अत्यन्त अनासक्त रहने वाले भगवान को क्या होने वाला है। इन्द्रिय विक्षिप्त रहे तो क्या नष्ट होता है ? बादल से आच्छादित होने से सूर्य को क्या होने वाला है ? बादल हट जाने से सूर्य को क्या होता है ?।।२६।।

आकाश में बहने वाली हवा, बिजली, बारिस, उड़ने वाली धूल, कड़क धूप, आच्छादित कोहरा, ऋतु के अनुसार आकाश में रहते हुये भी उसका परिणाम आकाश पर होने वाला नही है, उसी प्रकार सत्व, रजो, तमो से राग-द्वेषादि मल जीव के लिये संसार का कारण बनते हुये

भी उसके साथ रहने वाले भगवान असंग होने के कारण उनको कुछ भी लेप नहीं होता।।२७।।

जीव भगवान की इच्छा के अनुसार प्रकृति से होने वाले विषय पदार्थों में आसक्ति नहीं रखना चाहिये। उस आसक्ति से मुझे कुछ भी नहीं होगा। मैं केवल अनासक्त को अनुग्रह करता हूँ। मुझमें दृढ़ भक्ति योग करने से वह मुक्ति पाता है। रजो गुण, तमो गुण जन्य पाप, निराश होने तक यानी मुक्ति मिलते तक विषयों में वैराग्य करना है। इसका अभ्यास करते रहना है। मुक्ति में इसकी आवश्यकता नहीं है।।२८।।

जीव भगवान का ध्यान करे उनमें मन रखे या न रखे उससे भगवान को लाभ हानि दोनों होने वाला नही है। तो भी जीव को धर्माचार करते रहना है, और विषयासक्ति को छोड़कर भगवान में मन रखता है। ऐसा करने से जीव पर भगवान सन्तुष्ट होते हैं। नहीं तो भगवान सन्तुष्ट नहीं होंगे। यह पद्मपुराण में आता है।

रोग की योग्य चिकित्सा नहीं करे तो वह उपशमन न होते हुये बढ़ते हुये बार-बार दर्द पैदा करने लगता है। इसी प्रकार मन में रहने वाले रागादि दोष और दुष्कर्मों से निवृत्त न हुआ जाय तो मन अनेक दुर्विषयों में आसक्त होकर साधक को दुख उत्पन्न करते है।।२९।।

ऐसे अपक्व योगी को (साधक को) देवताओं से प्रेरित होकर पत्नी, पुत्र इत्यादि जन और पंचभूत योग साधन के लिये विघ्न बनते हैं। तो भी पूर्व जन्म के संस्कार के बल से उन विघ्नों की परवाह न करते हुये वे भक्ति योग में लगे रहते हैं, बन्धक कर्मों में आसक्त नहीं होते।।३०।।

लोग शरीर के वियोग पर्यन्त शुभ-अशुभ कर्म करते ही रहते हैं। इसके लिये भगवान श्रीहरि ही प्रेरक हैं। वे ही कर्म करवाते रहते हैं। किन्तु प्राकृत शरीर में रहते हुये भी ज्ञानी भगवान के अनुग्रह से ध्यान में स्वरूपानन्द भोग कर तृप्त होते हुये विषय वासना को त्याग देता है, बंधक कर्म में लगा नहीं रहता।।३१।।

ज्ञानी को उसका शरीर, खड़े रहना, बैठना, संचार करना, सोना, कर्म करना, खाना, स्वभाव के अनुसार मल-मूत्र विसर्जन करना, अन्यान्य कर्म करते रहना यह सारे काम करते रहे तो भी भगवान में मन रखने वाले भक्त को उसकी परवाह नहीं रहती। परतंत्र रहने वाला शरीर स्वतंत्र रहने वाले भगवान से अलग है इस प्रकार इसको शरीर में अनास्था लगती है।।३२।।

अपरोक्ष ज्ञानी प्रारब्ध कर्म के अनुसार अमंगल करने वाले इन्द्रिय विषयों को भोग करते रहे तो भी भगवान से अन्य किसी को स्वतंत्र नहीं मानता क्योंकि इस जगत में स्वतंत्रता प्रत्यक्षादि प्रमाणों के विरुद्ध है। इसको वह ठीक तरह से जानता है। स्वप्न से जागृत होने

वाला स्वप्न को बाह्य पदार्थ के समान नहीं मानता। वह सकल प्रमाण विरुद्ध है इसको वह ठीक तरह से जानता है।।३३।।

स्वप्न में जो दिखता है वह सत्य है। किन्तु जागृति में जो है, वही स्वप्न में हैं इस प्रकार समझना गलत है। इसी प्रकार इस जगत को सत्य मानना गलत नही है स्वतंत्र मानना गलत है। यह पद्मपुराण की बात है। जागृत होने वाले स्वप्न को जागृति के समान नहीं मानता। यह बात विवेक नाम के ग्रंथ में कहा गया है।

हे उद्धव, भगवान के बारे में यह गुण, वह गुण इत्यादि भेद न करते हुये सामान्यतः मैं भगवान के गुण को नहीं जानता इस प्रकार भाव रूप ज्ञान साक्षी अनुभव से प्रत्यक्ष होता है। वस्तुतः यह गुण, यह कर्म इत्यादि नानाविध विषयों के बारे में अज्ञान रहता ही है। बार बार श्रवणादि करते हुये मिलने वाले अपरोक्ष से इस अज्ञान का नाश होता है। जीव को ज्ञान से लाभ होता है। किन्तु भगवान के लिये जीव का अज्ञान अथवा ज्ञान प्राप्ति के लिये कुछ लाभ-हानि नहीं है।।३४।।

मानव के आँखों को बाधक बनने वाले अन्धेरे को सूर्योदय नाश करता है। इससे लोग को प्रयोजन होता है। किन्तु सूर्य के लिये कुछ भी प्रयोजन नहीं है। इसी प्रकार भक्ति और वैराग्य से शक्तिशाली बनने वाले ज्ञानी को अपरोक्ष ज्ञान उसके बुद्धि को आवृत किए हुए अज्ञान का नाश करती है। किन्तु मेरे लिये इसका कुछ भी प्रयोजन नहीं है।।३५।।

मैं स्वयं प्रकाशित ज्योति हूँ। जनन रहित, अप्रमेय, सर्वज्ञ, सकल सुख अनुभव वाला हूँ। मेरे गुण मुझसे अथवा परस्पर भिन्न नहीं हैं। इसी के कारण मैं सर्वोत्तम और अद्वितीय हूँ। वर्णन को न मिलने वाला हूँ। मेरी प्रेरणा से ही सारे व्यवहार चलते हैं इस प्रकार मैं स्वतंत्र हूँ।।३६।।

जीव, स्वतंत्र और नित्य मुक्त श्री हरि के आश्रय से ही जीवित रहता है। इसका ज्ञान उसको सदाकाल नहीं रहता। इसी कारण वह मैं स्वतंत्र हुआ इस प्रकार विचार करता है। यह सकल प्रमाण विरुद्ध कल्पना है, यही जीवात्मा के लिये उसके मन में रहने वाला अज्ञान है।।३७।।

भगवान के आश्रय में जीव रहता है। यह ठीक तरह से न जानने के कारण जीव को होने वाली स्वतंत्रता की कल्पना सारे प्रमाण के विरुद्ध हैं, यह केवल जीव का मानसिक भ्रम है। यह बात तंत्रभागवत में आती है।

चतुर्मुखादि अनेक नाम रूप से युक्त होकर समझ में आने वाला पंचभूतात्मक यह प्रपंच

अबाधित है। इसी कारण इसको तत्वज्ञानी स्वतंत्र और अस्वतंत्र इन दोनों रूपों में देखते हैं। इसी कारण प्रपंच अबाधित है यह वाद व्यर्थ नहीं होता। यह अर्थ गर्भित है और अबाधित है।।३८।।

यह जगत और भगवान दोनों सत्य हैं। ज्ञानी इसको मानते हैं। अज्ञानी लोग इस पंचभेद युक्त प्रपंच को मिथ्या मानते हैं। इस प्रकार तंत्र भागवत में कहा गया है।

अपक्व योगी को उसके योगानुष्ठान के समय में उसके योग में विघ्न होता हैं तो उसके परिहार के बारे में बताता हूँ, सुनो।।३९।।

कई रोगादि विघ्नों को यमनियमादि योगाभ्यास से और आसन और भगवद् ध्यान से निवारण कर सकते हैं। अन्य कई विघ्नों को तप, मंत्र और औषधियों से निवारण कर सकते हैं।।४०।।

कई ग्रह पीड़ादि विघ्नों को निरन्तर श्रीहरि स्मरण से, नाम संकीर्तन से, योगेश्वर की सेवा करने से निवारण कर सकते हैं। ये सारे पुण्यकर होने से पाप से उत्पन्न होने वाले विघ्नों का परिहार कर सकते हैं।।४१।।

कई अज्ञानी इस देह को अनेक रसायनादि से, विषयभोग रूप उपायों से अपने आयुष्य और इन्द्रियों के सामर्थ्य को यौवन बनाकर बाद में योगाभ्यास करने लगते हैं।।४२।।

किन्तु शरीर, अस्सी अथवा ज्यादा से ज्यादा सौ वर्ष होने के बाद मर जाने वाला है। वृक्ष में रहने वाला फल एक बार गिर जाता है। इसी कारण इस शरीर की रक्षा के लिये बहुत प्रयास करना व्यर्थ है इतना ही नहीं। विषयासक्ति बढ़ने के कारण आगे नरक होने का उपाय है।।४३।।

प्रतिदिन योगाभ्यास करने से शरीर सशक्त बनता है। इसी कारण बुद्धिशाली मानव को योगाभ्यास को छोड़कर अन्य उपायों में श्रद्धा नहीं रखना।।४४।।

योगी इस प्रकार योग साधना करते हुये मेरे चरणों में शरण आये तो स्वरूपसुख को भोगते हुये विषयापेक्षा को खो देता है। विघ्नों से उसके योग को किंचित भी रूकावट नहीं होती।।४५।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में ग्यारहवाँ स्कन्ध में अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - उन्नीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

वैष्णव धर्म शास्त्र

उद्धव कहता है- हे अच्युत, मनोनिग्रह न रहने वाले सामान्य मानव को इस योग मार्ग में प्रवेश कष्टसाध्य है, ऐसा मेरा अभिप्राय है। ऐसा सामान्य मानव भी किस साधन से उत्तम सिद्धि पा सकता है, इसके बारे में कहिये।।१।।

हे पुण्डरीकाक्ष, बहुशः योगाभ्यासी को आँख में मन रखने का प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। मन, मौन संयम से वह कष्ट भोग कर केवल दुःख को पाता है।।२।।

इसी कारण हे अरविन्दाक्ष, हे जगदीश्वर, आनन्द देने वाले आपके पादकमलों को रागादि दोष रहित श्रेष्ठ ज्ञानी पा सकते है। केवल वे ही योगानुष्ठान से सुख पाते हैं। उन ज्ञानियों को आपकी बंधक माया रोक नही सकती। देह में अभिमान रखने वाले को आपकी योगमाया रोक देती है।।३।।

हे अच्युत, सारे सज्जनों के लिये बन्धु आपके बारे में यह क्या आश्चर्य की बात है ? अन्यों को छोड़कर केवल आपके शरण में आये हुये सेवकों को आप स्वयं अपने को ही दे देते हैं। इसी कारण स्वयं ब्रह्मादि लोकपालक अपने प्रकाशमान किरीट को आपके पाद को लगते समय में भी आप गोपालकों के साथ खेलते रहते थे।।४।।

आप सबके प्यारे लाल हैं। आप अपने आश्रय में आने वाले को सारे अभीष्ट दे देते हैं। आपके इस उपकार को न भूलने वाला आप को छोड़कर कैसे रह सकता है ? आप में अपने समस्त चित्तवृत्ति को समर्पित करते हुये भक्ति करने को छोड़कर अन्य क्षुद्र विषय, सेवन कैसे करता है ? वह आपके पादरज मिश्रित अमृत जल को पीने के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता। यदि इसके विरुद्ध जो रहता है वह पशु ही है।।५।।

ज्ञानी ब्रह्मादि देवता भी सदाकाल सिर झुकाकर आपको नमस्कार करते हुये ध्यान करते हैं। किन्तु वे भी आप जो उपकार करते हैं, उसके लिये प्रतिउपकार अथवा उसके समान सेवा नहीं कर पाते। आप देहियों के अन्दर और बाहर रहते हुये उनके पापों का नाश करते हैं,

इतना ही नहीं श्री जगद्गुरु मध्वाचार्य जी के मन में अभिव्यक्त होने वाले व्यासादि रूप से उनके द्वारा सबको स्वयोग्य ज्ञान को प्रकाशित करते हैं। आप चित्ताभिमानी जगद्गुरु ब्रह्मा जी के भी चित्त के नियामक है, आप ही ज्ञान देने वाले है।।६।।

श्री शुकदेव कहते है - अपने में अत्यन्त अनुरक्त उद्धव की इन बातों को सुनकर इस जगत को अपने खेलने की गुड़िया बनाये हुये अपनी शक्ति से आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, इस प्रकार तीनों रूपों को धारण करते हुये ईश्वरो के भी ईश्वर भगवान श्रीकृष्ण, प्यार से हसन्मुख होकर उद्धव से कहते हैं।।७।।

आत्मा, अन्तरात्मा, और परमात्मा इस प्रकार भगवान के तीन रूप अवस्था त्रय के लिये और सृष्ट्यादित्रय के लिये नियामक हैं। यह बात त्रैकाल्य नाम के ग्रंथ में कही गयी है।

श्री भगवान कहते है - मुझको अत्यन्त प्रियकर और अत्यन्त मंगलकर शुद्ध वैष्णव धर्म को तुम्हारे लिये वर्णन करता हूँ! इनको आचार में लाने वाला मानव इस अजय संसार से जय को पाता है।।८।।

मन और चित्त को मुझमें रखना चाहिये। वैष्णवधर्मनिष्ठा को मन में प्यार से रख लेना चाहिये। मेरा स्मरण करते हुये मेरे प्यार को पाने के लिये अपने सारे कर्म भगवान को अर्पित करते हुये करना चाहिये।।९।।

सज्जन मेरे भक्त, ब्रह्मादि इत्यादि देवताएँ, प्रह्लादि असुर, प्रियव्रतादि मानव ऐसे सज्जन जहाँ जप-तप अनुष्ठान किए हैं, ऐसे मेरे सन्निधान युक्त पुण्यक्षेत्रों में वास करना चाहिये। वे मेरे भक्त जिन कर्मों का आचरण करते हैं, उन्ही कर्मों को करना चाहिये।।१०।।

अकेले हो अथवा अन्यों के साथ मिलकर हो, मेरी प्रीति पाने के लिये मेरी रथयात्रा निकालना चाहिये। अत्यन्त राजोचित नृत्य गीत, इत्यादि वैभव विधियों को मुझे अर्पित करना चाहिये।।११।।

अन्तःकरण से निर्मल रहते हुये सारे प्राणियों के अन्दर और बाहर आकाश के समान निर्लिप्त होकर रहने वाले परमात्म रूपी मुझको अपने में दर्शन करना चाहिये।।१२।।

सारे प्राणियों में मैं वास करता हूँ। इस प्रकार समझते हुये उत्तम ज्ञान पूर्वक सबका आदर करना चाहिये।।१३।।

ब्राह्मण, चाण्डाल, चोर, चतुर्मुख ब्रह्म, सूर्य, चिराग, अक्रूर, क्रूर इस प्रकार भेद न करते हुये इन सारे स्थानों में भगवान एक प्रकार रहते हैं, वे निर्मल और गुण पूर्ण है, इस प्रकार देखने वाला पण्डित होता है, यही उत्तम ज्ञान है।।१४।।

इस प्रकार नरों में पुनः पुनः नारायण को देखने वाले मानव को जल्दी में मुझमें भक्ति होती है, बन्धक माया दूर होती है। मुक्ति नजदीक होती है।।१५।।

भक्त अपने शरीर के बारे में मन में उत्पन्न होने वाली लज्जा को छोड़ते हुये कुत्ता, चाण्डाल, पशु, गधा इत्यादि सर्वत्र रहने वाले श्रीहरि को दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये।।१६।।

सारे प्राणियों में मैं रहता हूँ, यह दृढ़ ज्ञान होते तक वाक्य, मन, काया और प्रवृत्ति से मेरी आराधना करते रहना।।१७।।

सारे प्राणियों में भगवान की उपासना करते हुये अपना आत्म स्वरूप ज्ञान व्यक्त होने के बाद सारा जगत भगवान के अधीन है, यह ज्ञान हो जाता है। उस सर्वविलक्षण भगवान अच्युत का दर्शन होता है।।१८।।

यह चराचर सृष्टि, परब्रह्म से नियंत्रित है, इस प्रकार जो समझता है, वह सर्व ब्रह्मात्मक तत्वज्ञानी होता है। यह ब्रह्मपुराण की बात है।

सारे प्राणियों में मैं रहता हूँ। इसके बारे में मन से स्मरण बातों से कीर्तन, शरीर से पाद सेवन इत्यादि कर्म करते हुये मुझमें भक्ति करना ही सबसे श्रेष्ठ मोक्ष साधना है। यह मेरा निश्चित अभिप्राय है।।१९।।

हे उद्धव, कामना रहित होकर मेरी आराधना करना ही गुणत्रय रहित मोक्ष का साधन होने के कारण इस वैष्णव धर्म के अनुष्ठान को केवल प्रारम्भ करने से फल मिलता है। थोड़ा भी इस अनुष्ठान से कष्ट नहीं होता, यह मेरा दृढ़ निश्चय है।।२०।।

हे उद्धव, तुम्हारे जैसे मुक्ति योग्य जीव को अन्य देवताओं की आराधना और अलग मनोधर्म सारा निष्फल है, उसमें कष्ट भी है। वह आयास निरर्थक और अनर्थक है।।२१।।

बुद्धिमान लोगों का यह विवेक माना जाता है। प्रज्ञावान् लोगों के लिये यह कर्तव्य प्रज्ञा है। यह शरीर अशाश्वत है। विनाश होने वाले इस शरीर से ही शाश्वत मुक्त मुझको पाने वाली भक्ति ही श्रेष्ठ है। इसके लिये वह भक्ति करनी चाहिये।।२२।।

एक बार समझ में जो आता है, उसी प्रकार सदा के लिये न रहने वाली वस्तु अनित्य कही जाती है। सदा के लिये एक ही तरह से रहने वाले भगवान सत्य कहलाते हैं। यह बात शब्दतत्व नाम के ग्रंथ में आती है।

अल्प शब्दों में बहुत से अर्थों को बताने वाले विधान से मैं तुमको इस ब्रह्मवाद के सार

संग्रह को पूर्णरीति से कहा हूँ। मेरा अनुग्रह नहीं रहे तो देवता भी इसको जान नहीं पाते।।२३।।

स्पष्ट युक्तियुक्त, बहुत अर्थ गर्भित इस वैष्णव धर्म शास्त्र को मैं तुम्हारे लिये कहा हूँ। इसको सुनने वाले अपने संशयों को हटाकर इस संसार से मुक्त होते हैं।।२४।।

ठीक तरह से विवेचना पूर्वक तुमने प्रश्न किया था। मैंने उसका ठीक तरह से उत्तर दिया है। इसको सुनकर सनातन वेद रहस्य रूप इस उपदेश को मन में रखते हुये मेरा ध्यान करने वाला परब्रह्म को प्रत्यक्ष देखता है, पाता है।।२५।।

यह शास्त्र मोक्ष देने में बहुत समर्थ है। मेरे भक्तों को इसे जो मन पूर्वक उपदेश देता है, उसको मै सायुज्य मोक्ष देता हूँ।।२६।।

परम पवित्र और अत्यन्त शुचि रहने वाले इस शास्त्र को जो अध्ययन करता है, वह इस ज्ञान दीप प्रकाश में मुझको प्रतिदिन दर्शन करता हैं, लिंग भंग होने के बाद पवित्र होकर मेरे पास आता है।।२७।।

जो लोग इस शास्त्र को प्रतिदिन श्रद्धा रखते हुये सुनते हैं, वे मुझमें परमभक्ति करते हुये कर्म बन्धन से निर्लिप्त हो जाते है।।२८।।

हे मित्र उद्धव, अब तुम परब्रह्म के बारे में ठीक तरह से जान चुके हो तुम्हारे मन में रहने वाला सारा संशय और शोक दूर हो गया है न ? ।।२९।।

इस शास्त्र को दांभिक, नास्तिक, वंचक और सुनने की इच्छा न रखने वाले, भक्ति और विनय न रहने वाले व्यक्ति को उपदेश नही देना चाहिए।।३०।।

ये सारे दोष रहित ब्राह्मण भक्त, प्रीति पात्र सज्जन, जो शुचित्व रखते हैं, केवल उन्ही को उपदेश देना चाहिए। मुझमें भक्ति रखने वाले शूद्र और स्त्री को भी यह उपदेश देना है।।३१।।

इस तत्वज्ञान को जानने के बाद जिज्ञासु को और समझने का कुछ रह नही जाता। मरण को हटाने वाला अमृत को पीने के बाद और पीने के लिये कुछ नही रहता।।३२।।

जब तक लौकिक शास्त्र में ज्ञान शास्त्र, कर्म शास्त्र, योग शास्त्र और वाणिज्य राजनीति इत्यादि ग्रन्थों से समझने वाले प्रमेय हैं, तब तक भगवान, लक्ष्मी, जीव और जड़ नाम के इन चारों अलौकिक तत्वों के बारे में चार तरह का मोह रहता है। वह इस शास्त्र श्रवण के लिये बाधक बनता है।।३३।।

इस मर्त्य से मोक्ष साधना करवाता हूँ। इस प्रकार मेरे संकल्प करने के बाद मेरे अनुग्रह से ही

मानव श्रवण मननादि ज्ञान सम्पादन करते हुये सारे कर्मों को मुझको अर्पित करते हुये मुझमें ही मन रखता है। तब मोक्ष पाने के लिये योग्य होता हैं। आत्म के अभिव्यक्ति रूप मोक्ष को पाता है।।३४।।

श्री शुकदेव कहते हैं - भगवान श्रीकृष्ण द्वारा उद्धव के लिये इस मोक्ष साधन बनने वाले मार्ग का समग्र उपदेश करने के बाद, भगवान के इस उपदेश को सुनकर हर्ष से उद्धव का गला भर आया। आनन्द से आँखों में अश्रु भर आए। वह कुछ बोल नही पाया। हाथ जोड़कर खड़ा हो गए। हे राजा परीक्षित! भक्ति भाव से अधीर हुआ चित्त को धैर्य से स्थिर करते हुये उद्धव श्रीकृष्ण को गौरवार्पित करते हुये, उसके चरण कमलों में सिर रखते हुये, हाथ जोड़कर कहता है।।३६।।

हे जनन रहित, आदिकर्ता, आपके श्रीचरणों में बैठकर मैं, अपने मन में अनादि काल से घर बनाकर रहा हुआ मोहमय अन्धःकार से दूर हो गया। आग के पास बैठे हुए मनुष्य को ठण्डक अथवा अन्धेरा की बाधा नहीं होती।।३७।।

मुझमें रहने वाली अनुकम्पा को आप और बढ़ा दिये हैं। मुझे विशेष ज्ञान वाले प्रकाश को दे दिये है। आप के द्वारा किये हुये उपकार को भूलकर कौन अज्ञ मानव आपके पाद मूल को छोड़कर दूसरे की शरण में जाता है ?।।३८।।

इस सृष्टि की वृद्धि हो, इस सदुपदेश से आप मुझको दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक और सात्वतों के साथ बहुत दृढ़ स्नेहपाश से जुड़े थे। अब आप ही अपनी इच्छा से अपने अध्यात्म तत्वज्ञान नाम के खड्ग से उस बन्धन को काट डाले हैं।।३९।।

हे महायोगी! आपके लिये यह नमस्कार। आपकी शरण में आये हुये मुझको, आपके चरण कमल में अत्यन्त अविरल, कभी न बुझने वाली भक्ति देते हुये आगे क्या करना है, इसके लिये आज्ञा दीजिये।।४०।।

श्री भगवान कहते हैं - हे उद्धव! मेरी आज्ञानुसार तुम बद्री नामक क्षेत्र, जो मेरा आश्रम है वहाँ चलो। वहाँ मेरे पाद से तीर्थ बनाया हुआ अलकनन्दा में स्नान, आचमन करके शुद्ध हो जाओ। हे उद्धव अलकनन्दा इत्यादि नदियों में स्नान करके समस्त पापों से मुक्त हो जाओ। चीर वस्त्रों को धारण करो। जंगल में मिलने वाले वन्य कन्दमूल फल को खाते हुये विषय-सुख से विरक्त होकर रहो।।४२।।

शीत, उष्ण इत्यादि द्वंद्व रूप, विषय पदार्थों को सहन करते हुये सद्गुण शील सम्पन्न बनो। इन्द्रिय निग्रह करो, मन को अपने वश में रखते हुये उसे मेरे चरण में रखो। ज्ञान और विज्ञान की साधना करो।।४३।।

मुझसे सुनाया हुआ इस धर्म शास्त्र को अपने अनुभव से एक साथ करो। वाक्, मन इत्यादि मुझमें रखते हुये मेरी आराधना निरन्तर करो।।४४।।

इस प्रकार किए तो तुम स्वर्ग, भूमि, नरकादि तीनों गतियों को पार करते हुये इनके पार रहने वाले मुझको प्राप्त करोगे।।४५।।

श्री शुकदेव कहते हैं - श्रीकृष्ण की इस आज्ञा को सुनते हुये उद्धव उनकी परिक्रमा करते हुये, पाँव में सिर को रखकर, प्यार भरे अन्तःकरण से, आँखों में भरे हुये अश्रु से भगवान के दोनों पादों को भिगोते हुये अभिषेक किये। वहाँ से हटे नही।।४६।।

न छोड़ने वाले स्नेह अनुबन्ध से, वियोग से, उद्धव कातर है। वह भगवान की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। इस दुविधा में उद्धव बहुत दुःखित हुआ, कष्ट का अनुभव किया। बाद में बार-बार नमस्कार करते हुये भगवान की चरण पादुकाओं को सिर के ऊपर रखते हुये चला गया।।४७।।

भगवान श्रीकृष्ण को अपने अंतरंग में रखते हुये भागवतोत्तम उद्धव बद्री को चले। इस जगत के मुख्य बन्धु श्रीकृष्ण के आदेशानुसार तप करते हुये विष्णुलोक को पाया।।४८।।

ब्राह्मण से शाप मिलते ही उद्धव श्रीकृष्ण से उपदेश पाकर बद्री को जाकर सज्जनों को उपदेश देने के बाद द्वारका को वापस आया था। छब्बीस वर्षों के बाद उत्पातों को देखकर श्रीकृष्ण भगवान से पुनः उपदेश पाकर बद्री को गया, वह तीन वर्ष तप करने के बाद स्वर्ग सिधार गया। यह गरुड पुराण का वाक्य है।

यह मोक्ष का आनन्द देने वाला शास्त्र समुद्र से उठा कर पाया हुआ ज्ञान का अमृत है। योगेश्वरों से पाद सेवा पाने वाले श्रीकृष्ण का अपने भक्त उद्धव को दिया हुआ उपदेश यह है। उसको श्रद्धा से सेवन करने से सारा जगत मोक्ष पा सकता है।।४९।।

इसमें ज्ञान विज्ञान का साथ भर गया है। प्रमेयसार छिप कर रहा है। अर्थ दृष्टि से देखे तो समुद्र के समान रहने वाला ज्ञानामृत यह है। शब्द दृष्टि से एक छोटा सा शास्त्र कमल है, कमल रस को पुरुषभृंग भृंगी को प्यार से जैसे खिलाता है, उसी प्रकार इस वेदशास्त्र कमल के अमृत रस को भगवान श्रीकृष्ण भक्त समूहों को उनके संसार भय के परिहार के लिये खिला रहे हैं। ऐसे आदिकारण विष्णु नाम वाले पुरुषोत्तम को नमन करता हूँ।।५०।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में ग्यारहवाँ स्कन्ध में उनतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - तीसवाँ

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ॥

यदुकुल का संहार

राजा परीक्षित कहते हैं - महाभागवद् भक्त उद्धव के बदरिकाश्रम वन को जाने के बाद द्वारिका में श्रीकृष्ण भगवान ने क्या लीला किया ?।।१।।

अपने कुल के मुनि के शाप से नष्ट होने के बाद सबके आँखों को अच्छा लगने वाले अपने सुन्दर शरीर को परंधाम के लिये कैसे लेकर गये ?।।२।।

श्रीकृष्ण अपने शरीर को इस जमीन पर छोड़ कर गये ऐसा अर्थ नहीं होता। स्वर्ग को लेकर गये। इस प्रकार अर्थ होता है।

भगवान के दिव्य सुन्दर शरीर में लगी हुयी अपनी दृष्टि को गोपिका-स्त्रियाँ ने खींच कर बाहर लाने में समर्थ नहीं होती थी। उस शरीर का गुणगान सज्जनों के कानों से अन्दर जाकर चित्त में बैठ जाने के बाद बाहर आता ही नही था। भगवान के सुन्दर रूचिकर शब्द श्रवण-मनन का आनन्द देते थे। आनन्दमय भगवान का वह शरीर ज्ञानियों को शास्त्रार्थ दर्शन देता था। युद्ध में अर्जुन के रथ में बैठे हुए पार्थसारथी के उस रूप को देखकर योग्य वीरयोद्धा स्वरूप मोक्ष को पाये।।३।।

श्री शुकदेव कहते हैं - स्वर्ग, भूमि और अन्तरिक्ष में महाउत्पात होने लगे। उसको देखकर सुधर्मसभा में बैठे हुये भगवान श्रीकृष्ण यादवों को कहते है।।४।।

भगवान कहते है - हे यादवगण! द्वारिका में यह भयानक महाउत्पात देख रहे हैं। यम के ध्वज के समान यह दिख रहा है। हमारा यहाँ एक मुहूर्त भी रहना अच्छा नहीं है।।५।।

स्त्री, बाल, वृद्ध सारे यहाँ से शंखोद्धार क्षेत्र को चले जायें। हम सब प्रभासक्षेत्र को चलेंगे। वहाँ सरस्वती नदी पश्चिमवाहिनी बनकर बहती है।।६।।

उस नदी में स्नान करते हुये शुचिर्भूत होकर उपवास व्रत करते हुये एकाग्रचित्त से देवताओं की पूजा, अभिषेक, गंध लेपन, पुष्पार्चन इत्यादि करेंगे।।७।।

स्वस्ति वाचन करते हुये महात्मा मुनियों को, गो, भूमि, हिरण्य, वस्त्र, गज, रथ, घोड़ा, गृहादि दान देते हुये उनका सत्कार करेंगे।।८।।

देव, ब्राह्मण और गाय की पूजा करना, प्राणियों में दया रखना यह सारे अरिष्टों को दूर करते हुये मंगल को पाने का उत्तम विधान है।।९।।

द्वारिका ही महापुण्य क्षेत्र है। फिर भी इसको छोड़कर भगवान यादवों को प्रभास को क्यों लेकर गये ? इससे यह व्यक्त होता है कि पुण्य क्षेत्र होते हुये भी अपने घर में मरण पाना योग्य नहीं है। अन्य क्षेत्र में मरण पाने से महाफल मिलता है। यह बात महाभारत तात्पर्य निर्णय का है।

श्रीकृष्ण के इन बातों को सुनकर बुजर्ग यादवों के साथ सारे लोग उसको मानते हुये नौका से समुद्र को पार करते हुये रथ में बैठ कर प्रभास क्षेत्र को चले।।१०।।

उस क्षेत्र में यादवगण भगवान श्रीकृष्ण के कथनानुसार सारे मंगल कार्यों को परमभक्ति से अनुष्ठान किये।।११।।

बाद में वहाँ रहने वाले यादव दैववश के कारण अपनी बुद्धि स्वास्थ्य को खो दिये। कदम्ब के पुष्प से किया हुआ मधुरमद्य को बहुत पिए। मदमत्त होकर मंगल कार्य से वंचित हुये।।१२।।

श्रीकृष्ण के संकल्पवश से ही यादव वीर अति मद्यपान से मत्त होकर मूढ़ता से अपने चित्त स्वास्थ्य को खो दिये। वे परस्पर छोटी छोटी बातों के लिये संघर्ष करने लगे।।१३।।

संघर्ष से क्रोध बढ़ने लगा। क्रोध में वे अपने को भी भूल गये। परस्पर युद्ध करते हुये समुद्र के तट पर धनुष, खड्ग, शूल, गदा, तोमर और यष्टियों से परस्पर मरने लगे।।१४।।

फहराती ध्वजों वाले, रथ, हाथी, घोड़ा, गधा, ऊँट और भैंसा के ऊपर बैठते हुये महामदभरित यादव जंगल में जैसे हाथी परस्पर मारते हैं वैसे बाणों से परस्पर मारने लगे।।१५।।

बहुत क्रोध से रणरंग में युद्ध करते हुये प्रद्युम्न, सांब, अक्रूर, कृतवर्म, अनिरूद्ध, सात्यकि, सुभद्रा, संग्रामजित, सुमित्र, सुरथ आदि महावीर गदा को पकड़ते हुये परस्पर मारने लगे।।१६।।

इनके अलावा निशठ, उल्मुख, सहस्रजित, भानू इत्यादि अनेक वीर श्रीकृष्ण के मोहवश होकर सुरापान से, अन्धा बनकर परस्पर आमने सामने युद्ध किये।।१७।।

दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक, भोज, सात्विक, अध्वर्युद, माथुर, शूरसेन, विसर्जन, कुकर, कुन्ती इत्यादि वंश वाले स्नेह को भूलकर परस्पर मारने लगे।।१८।।

मूढ़ होकर पिता-पुत्र आमने सामने होकर परस्पर मारने लगे। सहोदरों के साथ, भांजे के साथ, पौत्रों के साथ, बड़े पिता के साथ, मामा के साथ युद्ध किये। मित्र, मित्रों से, हितैषी हितैषियों से, बन्धु बांधवों से युद्ध किये।।१९।।

बहुत लोग मरे। बाण खत्म हो गये, आयुध नष्ट हो गये। वहाँ रहने वाले घात तब मुष्टि से परस्पर मारने लगे।।२०।।

मुट्ठी भर घास को पकड़ते हुये उसी से परस्पर मारने लगे। ऋषि के शाप से जन्म लिये हुये मुसल को यादवों ने पानी में पत्थर के ऊपर घिसाते हुये चन्दन जैसे बनाये थे। वह चन्दन समुद्र में मिलकर सरस्वती तट पर आकर उसी से घास बन गया था। उस घास से यादव परस्पर मारे इससे समग्र यादव कुल नष्ट हो गया। बीच में उनको रोकने के लिये भगवान श्रीकृष्ण आये तो शत्रु के समान उनको भी मारने को वे लोग आये।।२१।।

हे राजा! अपने को भूले हुये यादव सामने आये हुये बलराम को मारने के लिये दौड़े उनसे युद्ध करने लगे।।२२।।

इससे प्रभावित होकर बलराम और श्रीकृष्ण क्रुद्ध होकर उसी घास को हाथ में लेकर युद्ध करते हुये सामने जो आये उनको मार डाले।।२३।।

मुनि-शाप से ग्रस्त यादव श्रीकृष्ण की माया से निस्तेज हो गये। उनकी स्पर्धा और क्रोध यादव कुल के नाश का कारण बना। बाँस के घर्षण से जंगल जल जाता है न।।२४।।

अपने वंश के सारे लोगों को इस प्रकार नष्ट होते देखकर भगवान श्रीकृष्ण अपने मन में कहते हैं बचा हुआ भूभारहरण अब पूरा हो गया।।२५।।

बलराम समुद्र तट पर बैठ कर परम पुरुष का ध्यान करने लगे। फलस्वरूप योग नामक भगवान श्रीहरि में प्रवेश किये। अन्तर्यामी रूप का चिन्तन करने के बाद उस रूप के चिन्तन में ही अपना शरीर त्याग किये। हजार फण वाले सफेद नाग के रूप में समुद्र में प्रवेश किये।।२६।।

बलराम इस प्रकार निर्वाण पा चुके हैं। इसको देखकर भगवान श्रीकृष्ण अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठ गये।।२७।।

प्रकाशमान चतुर्भुज शरीर वाले अपने अंग कान्ति से दसों दिशाओं के अन्धकार को दूर

करते हुये धुआँ रहित आग के समान दिख रहे थे।।२८।।

भगवान के छाती पर श्रीवत्स का चिन्ह है। मेघश्यामरंग की सुमंगल मूर्ति दो पीताम्बर को धारण किये हैं, सोने के जैसे उज्ज्वल प्रकाश से शोभायमान हैं।।२९।।

उनके मुख कमल में सुन्दर मन्दहास है। काले-काले घुघराले बाल मुख की शोभा को और बढ़ा दिए है। कमल सदृश सुन्दर आँखे, प्रकाशमान मकर कुण्डल - ।।३०।।

कमरबन्ध, उपवीत, सोने की किरीट, हाथ में बाजूबंध, गले में हार, पाँवों में नुपूर, अंगुलियों में अगूंठी और गले में कौस्तुभ रत्न से शोभायमान थे।।३१।।

गले में वनमाला बहुत शोभा देती थी। सुदर्शन पांचजन्य आदि आयुध मूर्त रूप में खड़े होकर उनकी सेवा करते थे। बांये जंघे पर लाल-लाल कमल फूल के समान वाले अपने दायें पाँव पर रखकर लेटे थे।।३२।।

शाप से पैदा हुआ मुसल के मुँह में रहने वाले लोहे से बाण किया हुआ, जरा नाम का व्याध भगवान के उस पाद को हिरण का मुहँ समझते हुये बाण से मारा।।३३।।

भगवान के समीप में आकर चतुर्भुज रूपी उस परम पुरुष को देखकर किया हुआ गलती को समझ लिया, भय से अपराध को क्षमा करने के लिये श्रीकृष्ण के पादारविन्द में सिर रखकर क्षमा प्रार्थना किया।।३४।।

व्याध बोलता है - मैं पापी हूँ, न समझ में यह दुष्ट कार्य किया हूँ। हे पापविदूरक! आप उत्तम स्तुति के योग्य हैं। हे मधुसूदन! मुझ पापी से किए हुये इस अपराध को क्षमा करें।।३५।।

प्रभु श्रीहरि जिसके स्मरण मात्र से मानव का अज्ञान नामक अन्धकार नाश होता है। इस प्रकार शास्त्रों में कहा गया है। ऐसे आप में मैं अपराध किया हूँ।।३६।।

हे वैकुण्ठनाथ, शिकार करने वाले इस व्याध को आप मार डाले। मैं फिर एक बार सज्जनों के साथ ऐसा अपचार न कर सकूँ।।३७।।

भगवान आप अपने स्वरूप सामर्थ्य से इस सृष्टि का निर्माण किये हैं। आपके अनुग्रह के बिना ब्रह्म-रुद्र हों, अथवा ब्रह्मपुत्र बृहस्पति इत्यादि महान लोग भी इस सृष्टि के बारे में ठीक तरह से नहीं समझ सकते। आपकी इच्छा से उनकी बुद्धि कम होती है। ऐसे आपके स्वरूप को यह दुष्ट जन्म वाला व्याध मैं कैसे आपकी स्तुति कर सकता हूँ।।३८।।

यह जराव्याध बहुत ज्ञानी था, वह भृगुमुनि का अवतार था। भगवान की

छाती को मार देने के कारण व्याध होकर जन्म लिया था। अब भगवान के पाद को बाण से मारा है। उसी के लिये अब पश्चात्ताप किया है, स्त्रोत कर रहा है।

असमय परीक्षा के लिये भगवान को पाँव से मरा था। तो भी वह पाप है। तब मुनि का मन निर्मल होने के कारण वह विष्णु सर्वोत्तमत्व की स्थापना किया। उसी पुण्य से किरात जन्म में भी उसको विष्णु भक्ति में लोप नहीं आया। अब न जानते हुये किए हुए अपराध के बारे में पश्चात्ताप कर रहा है।

वसुदेव से शूद्र स्त्री में इस जराव्याध का जन्म हुआ है। वह बहुत बड़ा तीरंनदाज था। महाबलिष्ठ निषादों का राजा था।

गान्धारी भगवान श्रीकृष्ण को एक शाप दी थी। दुर्वासा ऋषि भगवान को अपने तालु में आपकी मृत्यु हो इस प्रकार शाप दिये थे। इन दोनों में करुणा करने वाले भगवान श्रीकृष्ण दुर्वासा ऋषि के मुसल से पाँव में मार पा कर अपने अवतार की समाप्ति कर रहे हैं।

श्री भगवान कहते हैं- हे व्याध, डरो मत। हे जरा! सुनो, मैं अपनी इच्छा से ही जा रहा हूँ। तुमने मेरी इच्छानुसार यह काम किया है। इसी कारण पुण्यवान को मिलने वाला स्वर्ग तुमको मिलेगा।।३९।।

श्रीकृष्ण का पाद चिन्मय है। वह अच्छेद्य, अभेद्य है, उसके लिये व्याध जो बाण मारा है वह सोने के पुष्प के समान है। यह भी एक तरह का सुवर्ण पुष्पार्चन है। इस प्रकार भगवान उसको स्वीकार किये। इसी कारण व्याध को पाप नही आया। अपने शरीर से ही वह स्वर्ग को सिधार गया। भगवान के अनुग्रह से व्याध भी स्वर्ग जाता है भगवान को अपने शरीर से जाने में क्या कष्ट है।

श्री शुकदेव कहते हैं - इच्छामय शरीर वाले भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर वह व्याध भगवान को तीन बार परिक्रमा करते हुये नमस्कार करने के बाद आए हुये विमान में बैठ कर सशरीर स्वर्ग को चला गया।।४०।।

श्रीकृष्ण का सारथी दारुक, भगवान को ढूढ़ते हुये, कहीं नहीं देखते हुये इधर-उधर ढूढ़ते हुये भगवान से धारण की हुयी तुलसी-माला की गन्ध के हवा का आच्छुश्वि करने वाला दारुक भगवान के पास आता है।।४१।।

अश्वत्थ वृक्ष के नीचे आयुध से घिरे हुये प्रखर तेज वाले अपने स्वामी को देखा। रथ से छलांग मारते हुये, आँखो में अश्रु भरकर, भगवान के पाद के ऊपर गिर गया।।४२।।

दारुक बोलता है- हे प्रभु आपके पाद कमल को मैं देख नहीं पाया। रात में चन्द्र न दिखा तो जैसे अन्धेरा छा जाता है वैसे आपके दर्शन के बिना मेरी आँखें अंधी बन गई हैं। शोक के अन्धकार में मैं डूब गया। मैं कुछ भी देख नही पाया। मन की शान्ति नष्ट हो गई।।४३।।

श्री शुकदेव कहते हैं - हे राजा, सारथी के इस प्रकार कहते समय श्रीकृष्ण की आँखों के इशारे से भगवान के गरुड चिन्ह से युक्त रथ, ध्वज घोड़े के साथ, अन्तरिक्ष में उड़ गया।।४४।।

उसके पीछे भगवान के दिव्य सारे आयुध, चले गये। आश्चर्यचकित हुआ सारथी को भगवान कहते हैं।।४५।।

श्री भगवान कहते हैं - हे सारथी, तुम द्वारिका को चले जाओ। यह सारे बन्धु लोग परस्पर वध कर चुके हैं। बलराम का निर्याण हो चुका है। मैं भी परमधाम को जा रहा हूँ। इन बातों को वहाँ के बन्धुओं को बताओ।।४६।।

इसके बाद तुम सभी अपने परिवार के साथ द्वारका में नही रहना। मेरे जाने के बाद वह नगर समुद्र में डूब जाता है।।४७।।

सारे लोग अपने-अपने परिवार के साथ मेरे माता-पिता को भी साथ लेकर अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ को चले जाइये। यह मेरे आदेश को बताओ।।४८।।

तुम मुझे अत्यन्त प्रिय धर्म कार्य करते हुये ज्ञाननिष्ठा से, लौकिक सुख में आस्था न रखते हुए, यह संसार मेरी इच्छा के अधीन है यह समझते हुये सुख से रहो।।४९।।

श्रीशुकदेव कहते हैं- श्री कृष्ण की इन बातों को सुनकर दारुक उनकी परिक्रमा करते हुये पुनः पुनः उनके पादों में सिर रखते हुये दुःखित मन से द्वारका को चला गया ।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में ग्यारहवाँ स्कन्ध में तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

एकादश स्कन्धः

अध्याय - इक्तीसवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

परंधाम प्रवेश

शुकदेव कहते हैं - बाद में उस अश्वत्थ वृक्ष के मूल को ब्रह्मा, शिव, पार्वती, इन्द्रादि देवतागण, मुनिगण, प्रजापति, पितृ, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, नाग, चारण, यक्ष, किन्नर, अप्सरायें, गरुडादि पक्षी भगवान परंधाम जा रहे हैं उनको देखने के लिये उत्सुक होकर आये। भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का संकीर्तन करने लगे।।१-२-३।।

हे राजा, सारे परमभक्ति से श्रीकृष्ण के ऊपर पुष्प वृष्टि किए। विमानों से अन्तरिक्ष भर गया था।।४।।

भगवान, प्रभु अपने विभूति रूप ब्रह्मा, रुद्र, इत्यादियों को देखते हुये अपने ही प्रतिरूप कमल सदृश आखों को बन्द किए हुए, एक जड़ शरीर को निर्माण करते हुये उसको भूमि में रखते हुये स्वयं वैकुण्ठ में रहने वाले मूल रूप में एक हो गये।।५।।

धारणा, ध्यान करते समय मंगलकर, जगत के लोगों की आँखों के लिये अत्यन्त दर्शनीय अपने स्वरूप शरीर को आग्नेय योग धारणा से न जलाते हुये उसी शरीर से अपने वैकुण्ठ धाम को प्रवेश किये।६।।

प्रलयकाल में देवतागण मूलरूप में शरीर में रहने वाली योगाग्नि के बल से शरीर को जलाकर अपने से उत्तमों में लय पाते हैं। नृसिंहरूपी श्रीहरि उनके अन्य शरीरों को चीर कर उनसे अलंकृत होकर नर्तन करते हैं। स्वयं कृष्णादि अवतारों में शरीर को योगअग्नि से न जलाते हुये परम्धाम को जाते हैं। यह बात तंत्रभागवत में उक्त है।

अन्तरिक्ष में दुंदुभि बजने लगे। आकाश से पुष्प वृष्टि हो गई। सत्य, धर्म, धृति, भूति, कीर्ति और श्री इनके अभिमानी देवताएँ अब कलियुग में इस भूमि में रहना नहीं, यह तय करते हुये भगवान के पीछे चले गये।।७।।

श्रीकृष्ण वैकुण्ठ धाम में प्रवेश करने के बाद अदृश्य हो गये। इन्द्रादि देवताएँ इससे बहुत आश्चर्यचकित हुये।।८।।

भगवान श्रीकृष्ण अपने भक्तों की आराधना को स्वीकार करने हेतु भू-लोक में, सूर्य लोक में, शिव लोक में और ब्रह्मलोक में इस प्रकार अपने चारों रूपों को चार स्थानों पर रखते हुये पाँचवें रूप से वैकुण्ठ को प्रवेश किये। इन्द्रादि देवगण भगवान के उस रूप के उज्ज्वल प्रकाश के कारण उनको देख नही पाये। किन्तु ब्रह्म, रुद्र इसको देख सके। यह भावग्रन्थ में भी उक्त है।

आकाश में बादलों के बीच में विद्युत जैसे एक बार दिखकर अदृश्य होता है। वह कहाँ जाता है इसे मनुष्य कह नहीं सकते। इसी प्रकार ब्रह्मलोक से ऊपर वैकुण्ठ को भगवान जा रहे हैं, इसको इन्द्रादि देवताएँ देखने में अशक्त रहे।।९।।

इस प्रकार ब्रह्म, रुद्रादि देवतागण भगवान के योग सामर्थ्य को देखकर विस्मित होकर स्तुति करते हुये अपने लोक को वापस चले गये।।१०।।

हे राजा, जड़ शरीर वाले जीव के समान श्रीहरि उन्हीं की तरह जन्म लिये और मरे ऐसे दिखा रहे हैं। यह नाटक में नट जैसे अपनी इच्छा से नटना करता है, उसी प्रकार भगवान यह सारी लीला किए है। अपने स्वरूप शरीर से ही इस प्रपंच की सृष्टि करते हुये उसमें प्रवेश कर, विहार करने के बाद अन्त में उसका लय करके रहते हैं। भगवान ये सारे कार्य अपनी महिमा से ही करते हैं।।११।।

श्रीहरि अवतारों में माँ के गर्भ में प्रवेश करते हैं। जनन न रहने वाले भगवान अनेक रूपों से जन्म लेते हैं। इस प्रकार वेद में कहा गया है। भगवान जन्म न लेने वाला, किन्तु जन्म लेते हैं, उसी प्रकार न मरने वाले पर मृत जैसे अज्ञों को मोहित करने के लिये स्वेच्छा से लीला करते हैं। यह ब्रह्मपुराण का वाक्य है।

पूर्व काल में यम द्वारा अपने लोक को शरीर सहित ले गए हुए गुरुपुत्रों को श्रीकृष्ण वापस लेकर गुरु को सौंप दिये। महाब्रह्मास्त्र से माँ के गर्भ में ही जलने वाले तुमको रक्षा देकर जीवित किये। शोणितपुर में बाणासुर के साथ युद्ध करते समय लयमूर्ति रुद्र को जीत लिये। किसी के वश में न रहने वाले भगवान श्रीकृष्ण स्वभावतः सर्वशक्त स्वरूप अपने शरीर को एक किरात से रक्षा करने में असमर्थ थे क्या ? ।।१२।।

श्रीकृष्ण अपने बलरामादि लोगों को उनके देह सहित स्वर्ग को भेजने में समर्थ हैं।

सकल जगत की सृष्टि, पालन और लय को किसी के सहाय के बिना अकेले कर सकते हैं क्योंकि उनमें सारी शक्ति एकत्रित है। फिर मनुष्य शरीर से देवताओं के लिये क्या प्रयोजन है ? ऐसा विचार करते हुये उनके लिये जड़, शरीर न रहने वाले अपने लोक को निदर्शन रूप में दिखाते हुये जड़ शरीर को यहीं छोड़ दिये। स्वर्ग को नहीं ले गये।।१३।।

जो प्रातःकाल में उठकर श्रीकृष्ण के इस परम्धाम प्रवेश की कथा को एकाग्र चित्त से, भक्ति से पाठ करता है, वह उस श्रेष्ठ परंधाम को पाता है।।१४।।

यहाँ श्रीकृष्ण से भेजा हुआ दारुक द्वारका को आकर वसुदेव, उग्रसेन के पाँव पड़कर आँखों से अश्रू बहाने लगा।।१५।।

हे राजा! सारे यादवों के मर जाने के वृतान्त को यादवों को बता दिया। उसको सुनकर वे उद्वेग से भरते हुये दुःख में मग्न हो गये।।१६।।

सभी श्रीकृष्ण के वियोग से दुःखित होकर जहाँ यादव आपस में युद्ध करते हुये मरकर गिरे थे उस स्थल को दौड़ कर आये।।१७।।

देवकी, रोहिणी, वसुदेव अपने पुत्र कृष्ण राम को न देखते हुये शोकार्त होकर बेहोश होकर गिर गये। उनके प्राण पखेरु उड़ गये। भगवान के विरह से व्याकुल हुयी उनकी पत्नियाँ अपने पति के साथ सहगमन किये।।१८-१९।।

बलराम की पत्नियाँ उनके शरीर के साथ, वसुदेव की पत्नी, वसुदेव के शरीर के साथ, श्रीकृष्ण की बहुओं ने कृष्ण पुत्रों के शरीर के साथ अग्नि-प्रवेश किये। श्रीकृष्ण की पत्नियों में रूक्मिणी और सत्यभामा कृष्ण के समान चिन्मय शरीर वाली हैं, वे अन्तर्धान हो गयीं। अन्य जांबवती इत्यादि षण्महिषियों ने सहगमन किया।।२०।।

श्रीकृष्ण के जाते समय उनके द्वारा सृष्ट करके छोड़ गये हुये शरीर को अर्जुन ने मुखाग्नि दिया। उस समय जांबवती इत्यादि सहगमन किये। रूक्मिणी अग्नि में अन्तर्धान हुई। सत्यभामा जंगल में अदृश्य हुई। उन दोनों का शरीर चिन्मय होता है। उनके लिये देह वियोग नहीं है। यह ब्रह्माण्ड पुराण में आता है।

अर्जुन अपने अत्यन्त प्रिय मित्र श्रीकृष्ण के विरह से व्याकुल होकर भी गीता में कृष्ण जो कहे थे, उन हित वचनों से स्वयं को समाधान किया।।२१।।

मृत बन्धुओं में जिनके गोत्रज नही बचे हैं, उनके उत्तर क्रिया को विधि पूर्वक अर्जुन ने

ही किया।।२२।।

हे महाराजा, श्रीकृष्ण समुद्र के वश में अपने द्वारिका को छोड़ दिये। समुद्रराज उसको एक क्षण में डुबा दिया। उसमें भगवान श्रीकृष्ण के वासस्थान बना हुआ द्वारिकाधीश मन्दिर को छोड़कर अन्य सबको डुबा दिया, क्योंकि वहाँ आज भी भगवान श्रीकृष्ण एक रूप से सदा के लिये सन्निहित हैं। इसके स्मरण मात्र से सकल अनिष्ट नष्ट होकर मंगल हो जाता है।।२३-२४।।

ब्रह्माजी के प्रतिदिन के अट्ठाईसवाँ द्वापर युग में समुद्रराज इस कृष्णावतार होने के बाद द्वारका को श्रीकृष्ण को समर्पित करता है। अवतार समाप्ति के समय में डुबाकर अपने में रख लेता है। ब्रह्मप्रलय पर्यन्त द्वारका को लय नहीं हैं।

बचे-खुचे स्त्री, बाल-वृद्धों को साथ लेकर अर्जुन इन्द्रप्रस्थ में रखते हैं। व्रज को वह पट्टाभिषेक करते हैं।।२५।।

श्रीकृष्ण की इच्छा से उद्धव की तरह अनिरुद्ध का पुत्र वज्र भी मुनि शाप से नहीं मरा था। ये दोनो यादवों में सद् गुणी हैं, श्रीकृष्ण के परम प्रीति पात्र हैं।

हे राजा! आपके बाबा युधिष्ठिर इत्यादि जन इस बन्धु मरण की वार्ता को अर्जुन से सुनकर वंशद्धारक तुमको सिंहासन के ऊपर बिठाकर सभी महाप्रस्थान किये।।२६।।

जो देव-देव भगवान विष्णु की यह अवतार लीला को श्रद्धा से युक्त होकर संकीर्तन करता है, वह सारे पापों से मुक्त होता है।।२७।।

इस प्रकार भागवत में, भारत, विष्णु पुराणों में प्रसिद्ध भगवान श्रीहरि के मनोहर अवतार कार्यों की लीला को विशेषकर भगवान के अति मंगलकर बाल्य लीलाओं का संकीर्तन करने वाला मानव परमहंस यति को लब्ध होने वाले नारायण को परमभक्ति करते हुये पाता है।।२८।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में ग्यारहवाँ स्कन्ध में इक्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

।। एकादश स्कन्ध समाप्त हुआ ।।

।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्
द्वादश स्कन्धः

अध्याय - एक

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

कलियुग के राजवंश

शुकदेव कहते हैं - हे राजा, कुरुवंश में बृहद राजा के बाद के सन्तति में अन्तिम राजा रिपुंजय राजा होता है। इस प्रकार नौवें स्कन्द में कहा गया है। (९-१९-५०) उसका मुनिक नाम का मंत्री राजा के मर जाने पर प्रद्योत नाम के अपने पुत्र को राजा बनाया। प्रद्योत का पुत्र पालक, उसका पुत्र विशाखयूप, उसका पुत्र अजक, अजक का पुत्र नन्दिवर्धन, ये सारे राजा कुल १३८ वर्षकाल तक इस भूमि के राजा बनते हैं।।१-२-३।।

इसके बाद शिशुनाग राजा बनता है। उसका पुत्र काकवर्ण, उसका पुत्र क्षेमधर्म, क्षेमधर्म का पुत्र क्षेत्रज्ञ, उसका पुत्र विधिसार। विधिसार के पुत्र अजातशत्रु, उसके पुत्र दर्भक, दर्भक का पुत्र अजय, उसका पुत्र नन्दिवर्धन, उसका पुत्र महानंदी। शिशुनाग से लेकर ये दस राजा ३६० वर्षकाल तक राज्य करते हैं।।४-५-६।।

महानन्दी के शूद्र पत्नी के गर्भ से जन्म लिया हुआ नन्द नाम का राजा महाबलिष्ठ था। महापद्म संख्या वाले उनका सैन्य था। इसी के लिये उसको महापद्मनन्द कहते हैं। वह सारे क्षत्रियों का नाश करता है। इसके बाद आने वाले राजा साधारणतः शूद्र ही होते हैं, और अधार्मिक होते हैं। यह नन्द एक चक्राधिपति होकर निरंकुश राज्य चलाते हुये दूसरे परशुराम के समान क्षत्रियों का नाश करते हुये भूमि का राजा बनता है।।७-८-९।।

नन्द को सुमाली इत्यादि आठ पुत्र होते हैं। पिता से मिलकर ये नौ नन्द सौ वर्षकाल तक इस राज्य में राज्य चलाते हैं।।१०।।

नौनन्द के हार खाकर शरणागत होने के बाद भी चाणक्य नाम का ब्राह्मण नन्दो का निर्मूलन करता है। नन्द के बाद कलियुग में मौर्य लोग राज्य करते हैं।।११।।

वह चाणक्य मुनि चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर बैठाता है। उसका पुत्र वारिराज। उसका पुत्र अशोकवर्धन।।१२।।

अशोकवर्धन का पुत्र सुयश, उसका पुत्र संगत, संगत का पुत्र शालिशूक, उसका पुत्र सोमशर्म।।१३।।

सोमशर्म के पुत्र शतधन्व, उसके पुत्र बृहद्रथ इस प्रकार मौर्य वंश के नौ राजा १३७ वर्षकाल तक कलियुग में इस भूमि में राज्यभार करते हैं। मौर्य वंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ को उसका सेनाधिपति शुंगवंश का पुष्यमित्र मारकर स्वयं राजा बनता है। उसका पुत्र अग्निमित्र, उसका पुत्र सुधेष्ठ राजा बनते हैं।।१४-१५-१६।।

बाद में वसुमित्र, भद्रक, पुलिंद, घोष, वज्रमित्र, भागवत, देवभूति इस प्रकार शुंगवंश के दस राजाओं ने सौ वर्ष से अधिक काल तक राज्य चलाते हैं।।१७-१८।।

बाद में भूमि के गुण क्रमशः कम होते जाते हैं। तब भूमि कण्ववंश के राजा के वश में जाती है। देवभूति नाम का शुंग राजा स्त्री लोलुप होता है। उसको मारकर वसुदेव नाम का मंत्री स्वयं राजा बनता है। यह कण्ववंश का है। महाबुद्धिशाली इसका पुत्र भूमित्र, उसका पुत्र नारायण।।१९-२०।।

नारायण का पुत्र सुशर्म, कण्ववंश के राजा बनते हैं। ये चार राजा ३४५ वर्षकाल भूमि में राज्य करते हैं। सुशर्म नाम के कण्वराजा को उसके बालि नाम का सेवक मारकर राजा बनता है।।२१-२२।।

यह आन्ध्र जाति का महादुष्ट राजा था, थोड़े समय में इसके मरने के बाद इसका भाई कृष्ण नाम वाला राजा बनता है।।२३।।

उसके बाद श्रीशान्तकर्ण, पूर्णमास, लम्बोदर, शिबिलक, मेघस्वन, अटमाना, अनिष्टकर्म, हालेय, तलक, पुरीषसेरू, सुनन्दन, चकोर, दृढ़क, शिवख्यति, अरिन्दम, गोमति, पुरीमान्, शिवसिर, शिवस्कन्ध, यज्ञश्री, विजय, चन्द्रबीज, सुलोमधी इस प्रकार आन्ध्र जाति के तैंतीस राजा ४५६ वर्षकाल भूमि में राज्य करते हैं। उसके बाद आन्ध्रों के भृत्य आभीरकुल के सात राजाओं, गर्दभि कुल के दस, कंकरु कुल के सोलह राजा राज्य करते है। ये सारे सुखलोलुप होतेहै। २४-२५-२६-२७-२८-२९।।

इसके बाद आठ यवन राजाओं, चौदह तुरुष्क, दस पुरुण्ड, ग्यारह मौन राजा होते है।।३०।।

इनमें मौन को छोड़कर बाकी के ६५ राजाओं ने १०९९ वर्षकाल तक राज्य करते हैं। मौन राजायें तीन सौ वर्ष राज्य करते हैं। इस वंश का जब नाश होता हैं तब किलकिला नगर में भूतवंश और उनके पुत्र उपवंग राजा बनते हैं।।३१-३२।।

उसके बाद शिशुनन्दि, उसके भाई यशोनन्दि और प्रवीर ये १०६ वर्ष काल तक राजा बनते हैं।।३३।।

इनके पुत्र तेरह लोग राजा बनते हैं। उसके बाद बाल्हिक, उसके बाद पुष्यमित्र नाम का क्षत्रिय राजा, उनका पुत्र दुर्मित्र, राजा बनते हैं।।३४।।

एक ही समय में सात आन्ध्र, सात कोसल, वैदूर, निषेध ये राजा बनते हैं।।३५।।

निषेध देश को विश्वस्फूर्जी राजा बनता है। इनके शत्रु नगरों को लूट करते है। पुलिंद, यदु मुद्रक के साथ सारी प्रजाओं को कुलभ्रष्ट करता है। दुर्बुद्धि वाला यह राजा वेद को पढ़े हुये ब्राह्मणों को भी हीन वर्ण करने के बाद उनके ऊपर भी अपना शस्त्र चलाता है। बहुत शूर होने के कारण क्षत्रियों का नाश करते हुये पद्मावतीनगर में वास करते हुये गंगा तट पर रहने वाला, प्रयाग तक अपना राज्य विस्तार करता है।।३७।।

सौराष्ट्र, अवन्ति, आभीर, अर्बुद, मालव के राजा शूद्र होते हैं। संस्कार विहीन होकर शूद्र के समान रहते हैं।।३८।।

सिन्धु नदी का तट चन्दभागा, कांची, कश्मीर मण्डल इन सारे क्षेत्रों में शूद्र, म्लेच्छ अथवा संस्कार रहित ब्रह्मवर्चस से विहीन द्विज राज्य चलाते हैं।।३९।।

हे राजा, सारे म्लेच्छ बने ये राजा अधर्म और असत्य का राज्य चलाते हैं। अल्प बुद्धि वाले तीव्र क्रोधी होकर सारे राज्यों के ऊपर अपना अधिकार चलाते हैं।।४०।।

स्त्री बाल, गो, द्विजों की हत्या करते हैं। परस्त्री, परधन में आँख रखे रहते हैं। उन्नति पाते हुये अधःपतित होते हैं। अल्प शक्ति, अल्प आयु वाले होते हैं।।४१।।

संस्कार विहीन, आचार रहित, रजो गुण, तमों गुण से आवृत्त म्लेच्छ लोग क्षत्रिय का वेष धारण करते हुये प्रजाओं के रक्त को चूसते हैं।।४२।।

ऐसे दुष्ट राजाओं के राज्य में प्रजा भी दुष्ट शील, दुष्ट रीति वाले होते हैं। प्रजा परस्पर पीड़ा से और राज्य पीड़ा से त्रस्त होकर नाश को हैं।।४३।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में बारहवाँ स्कन्ध में प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

द्वादश स्कन्धः

अध्याय - दो

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ॥

कलियुग के लोग

शुकदेव कहते हैं - हे राजा, कलियुग में प्रजाओं का धर्म, सत्य, शौच, क्षमा, दया, आयुबल और स्मरण शक्ति ये सारे काल बल से प्रतिदिन घटते हुये नाश होते हैं।।१।।

कलियुग में केवल धन रहे तो सब कुछ चलता है। कुल, आचार का कुछ भी मूल्य नहीं है। धन ही सर्वसम्मत, न्याय सम्मत, धर्म सम्मत, न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म इसके निर्णय के लिये भी कारण बनता है।।२।।

सति-पति केवल परस्पर आकर्षण से साथ रहते हैं। वंचना से ही व्यापार में लाभ करना चाहते हैं। रति-कौशल से ही स्त्री-पुरुष माने जाते हैं। केवल जनेऊ से ब्राह्मण पहचाना जाता है।।३।।

सन्यासी होने के लिये गेरुआ वस्त्र पर्याप्त है। बाहर के वस्त्र को ही बहुत गौरव मिलता है। धन, बल जिसको नहीं हैं, वह अन्याय कर नहीं सकता। धन, बल वाले कुछ भी कर सकते हैं। पण्डित होने के लिये जोर से बोलना पड़ता है।।४।।

दौर्जन्य के लिये बस गरीबीपन का बहाना पर्याप्त है। सौजन्य दिखाने के लिये दंभाचार कारण बनता है। विवाह करने के लिये स्त्री-पुरुष एक-दूसरे को स्वीकार किये तो होता है। स्नान का उ-श्य केवल श्रृंगार है।।५।।

दूर का पुण्य क्षेत्र को जाना केवल विहार के लिये, केश रखना केवल सौन्दर्य के लिये है, पेट भरना अपने सुख के लिये, सत्य बोलना उद्घटन के लिये।।६।।

कुटुम्ब का रक्षण करना अपने सामर्थ्य के प्रदर्शन के लिये, धर्माचरण करना कीर्ति के लिये, इस प्रकार दुष्ट प्रजा भूमण्डल में भरकर रहने के कारण चारों वर्णों में जो बलशाली बनता

है वही राजा बनता है। ये राजायें क्रूर होते हैं, प्रजाओं को लूट करते हैं, उनकी पत्नी, धन को अपने वश में लेते हैं। प्रजाजन राज्य में न रह सकते है तथा जंगल में जाकर कन्द, मूल, फल से जीवन करते है।।७-८-९।।

गाँव में रहने वाली प्रजा को बरसात के दिन अकाल होता है। राजा ज्यादा कर को वसूल करता है। जाड़ा, गर्मी, आँधी, तूफान इन सब से पीड़ित लोग भूख-प्यास और रोगों से पीड़ित होकर रोग, चिन्ता संताप से युक्त होकर दुःख से जीवन करते हैं। केवल बीस-तीस वर्ष जीवित रहते हैं।।१०-११।।

कलिदोष के परिणाम से लोगों का शरीर दुर्बल होता है। वर्णाश्रम धर्म का आचरण करने वालों को भी वेद और धर्म का मार्ग अदृश्य होता है।।१२।।

वेद बाहरी आचरण ज्यादा होते हुये वे ही धर्म बनजाते हैं। ज्यादा से ज्यादा राजा प्रजा की लूट करते हैं। लोग चोरी, झूठ बोलना, हिंसा करना, इसी को अपनी वृत्ति बनाते हैं।।३।।

सारे वर्ण वाले शूद्र के समान होते हैं। गाय छोटी बनती हुयी बकरी के समान होती है। सारे आश्रम वाली गृहस्थाश्रमी बन जाते हैं। केवल पत्नी के सम्बन्धी ही सम्बन्धी बनते है।।१४।।

वृक्ष ठिगने बनते है। काँटे वाले वृक्ष लोगों के कष्ट का कारण बनते हैं। मेघ, पतले होते हैं, पानी नहीं बरसाते। घर में अतिथि संस्कार नहीं होता हैं, घर शून्य सा बनता है।।१५।।

कल्कि अवतार

इस प्रकार चलते हुये कलियुग के अन्त के समय में सारे लोगों पर धर्म का अनुकरण करने लगते हैं। इस समय सत्व गुण से धर्म की रक्षा करने के उ-श्य से भगवान कल्किरूप में अवतार लेते हैं।।१६।।

चराचर दोनों के स्वामी भगवान विष्णु सर्वसमर्थ हैं, सर्वेश्वर हैं। उनके अवतार से सज्जनों के दुष्कर्म का नाश होता है। धर्म की पुनस्थापना होती हैं।।१७।।

संबलग्राम के मुखिया महात्मा विष्णुयश नाम के ब्राह्मण के घर में भगवान विष्णु कल्कि के रुप में अवतार लेते हैं।।१८।।

जगन्नाथ अष्ट ऐश्वर्य गुणों से युक्त होकर कल्कि रूप में देवव्रत नाम के बहुत तेज दौड़ने

वाले घोड़े के ऊपर बैठकर खड्ग से दुर्जनों का नाश करते हैं।।१९।।

अप्रमित तेज वाले भगवान कल्किदेव घोड़े के ऊपर बैठ कर भूमण्डल में संचार करते हुये राजा के वेषधारी करोड़ों दगाखोरों को अपने खड्ग से संहार करते हैं।।२०।।

वासुदेव कल्किदेव के शरीर से निकलने वाली अत्यन्त पुण्यकर सुगन्ध को लेकर आने वाली वायु से शहर और ग्रामवासी सारे लोगों का अन्तःकरण निर्मल हो जाते हैं। लूट करने वाले लोगों का हनन होने के बाद सज्जन लोगों के हृदय में सत्व गुण की प्रेरणा करने वाले भगवान वासुदेव एक स्थान पर स्थिर होने के बाद प्रजाओं को पुष्ट और बलिष्ठ सन्तति की प्राप्ति होती है।।२१-२२।।

धर्म की रक्षा करने वाले भगवान श्रीहरि के कल्कि का अवतार लेने के बाद फिर से एक बार कृतयुग का निर्माण होता है। सात्विक प्रजा सन्तति भी उत्पन्न होती है।।२३।।

सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति पुष्य नक्षत्र के प्रथम पाद में एक ही राशि में, एक ही काल में प्रवेश करने के बाद कृतयुग आरम्भ होता है।।२४।।

चन्द्र, सूर्य वंश के राजा इस प्रकार राज्य चलाये, उसके बाद अब रहने वाले राजा, उसके बाद आगे होने वाले राजा के बारे में भी मैंने संक्षेप रूप से तुमसे कह चुका हूँ।।२५।।

हे राजा परीक्षित, तुम्हारे जन्मकाल से आरम्भ करते हुये नन्दराजा का सिंहासन आरोहण पर्यन्त एक हजार एक सौ पन्द्रह वर्ष होते है।।२६।।

आकाश में सप्तर्षिमण्डल के उदय होते समय पहले पुलह और क्रतु नाम के दो नक्षत्र दिखते है। उनके मध्य में दक्षिण, उत्तर दिशा में एक रेखा खीचें तो उस समभाग में अश्विनी आदि नक्षत्रों में से एक नक्षत्र दृश्य होता है।।२७।।

उस नक्षत्र के साथ सप्तर्षिगण मानव मान के एक सौ वर्ष काल तक रहते है। तुम्हारे जन्म के समय में वे मघा नक्षत्र में थे। अब भी वे वही हैं।।२८।।

भगवान विष्णु, श्रीकृष्ण के रूप में एक अंश को भूमि में छोड़कर परमधाम को जाने के बाद कलि इस लोक में प्रवेश किया है। उसी कारण लोग पाप कर्म में निरत होते हैं।।२९।।

रमापति श्रीहरि के पादकमल जब तक यह पृथ्वी का स्पर्श करते थे तब तक कलि लोगों

के ऊपर अपने पराक्रम को दिखाने में असमर्थ था।।३०।।

सप्तर्षि जब मघा नक्षत्र में थे, तब से आरम्भ करते हुये देवमान के १२०० वर्ष तक कलि संचार करता रहता है।।३१।।

मघा नक्षत्र ने पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र को सप्तर्षि जब जाते हैं तब कलि वृद्धि पाता है। राजा नन्द के काल के बाद ज्यादा वृद्धि पाता है।।३२।।

श्रीकृष्ण जिस दिन परम्धाम चले गए उसी दिन से कलियुग का प्रभाव प्रारम्भ होता है। इस प्रकार ज्ञानी लोग कहते हैं।

भीमसेन की गदा के आघात से दुर्योधन जब गिर गया उसी समय से कलियुग का आरम्भ हुआ। किन्तु कलि का प्रभाव कृष्णावतार के समय में नहीं हुआ, श्रीकृष्ण के परम्धाम जाने के बाद बढ़ने लगा।

देवमानवों के और एक बार १२०० वर्ष बीतने के बाद पुनः जनमानस और हृदय में भगवान के प्रकाश मिलने के बाद कृतयुग का आरम्भ होता है। तब भगवान का प्रकाश उज्ज्वल होता है।।३४।।

देवमानव के 1200 वर्ष मानवमान के चार लाख बत्तीस हजार वर्ष होते हैं क्योंकि मनुष्यमान के एक वर्ष, देवमान के एक दिन के समान हैं।

इस प्रकार इस भूमण्डल में क्षत्रिय राजाओं की वंश गणना कलियुग में होती है। इस रीति से प्रतियुग में रहने वाले वैश्य, शूद्र और ब्राह्मण वंशों के बारे में भी समझ लेना।।३५।।

जो महात्मा अपने नाम से ही प्रसिद्ध हैं, उसकी कथा बच गई है। उनकी कृति इस भूमण्डल में सुनी जाती है।।३६।।

राजा शान्तनु के बड़े भाई देवापि तथा इक्ष्वाकुवंश के मरुत राजा भी कलापग्राम में वास करते हैं। वे श्रेष्ठ योग्य सिद्धि बल को पाये हैं।।३७।।

कलियुग के अन्त में वे यहाँ आकर भगवान ने उन्हें जो शिक्षण दिया है, उसी के बल से वर्णाश्रम युक्त धर्म का प्रसार करते हैं।।३८।।

कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापर और कलियुग इस प्रकार चारों युग मिलकर एक चतुर्युग चक्र

माना जाता है। इस चतुर्युग चक्र में, युग के अनुसार इस भूमण्डल में जीवित रहने वाले जीवों के ऊपर प्रभाव होता है।।३९।।

हे राजा, मैंने जो कहा हैं, वे क्षत्रिय राजा और अन्य कई लोग इस भूमि में अत्यन्त ममता रखते हैं, किन्तु मरते समय इस भूमि का त्याग कर ही उनको जाना पड़ा।।४०।।

अब राजा कहलाने वाला यह शरीर भी अन्त में कृमि, मल अथवा भस्म नाम से बुलाया जाता है। ऐसे शरीर को पाये हुये दुष्ट राजा केवल अपने स्वार्थ के बारे में चिन्तन करता है, जीवियो का द्रोह करता है। इसके फलस्वरुप उसको नरक होता है। किन्तु कोई इसके बारे में चिन्ता नहीं करता।।४१।।

मेरे वंश के पूर्व पुरुष जहाँ राज्य किये हैं, वह कैसे मेरा बनेगा। मेरे बाद मेरा पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र ऐसे हमारे वंश के अधीन ही यह कैसे रहेगा। इस प्रकार केवल अपने स्वार्थ की चिन्ता करते हैं।।४२।।

आग, जल और मिट्टी से बने हुये इस शरीर को मैं और मेरा मानते हुये, इस जमीन को भी अपना मानते हुये गलत तरीके से जीवन करने वाला अन्त में दोनों को त्याग कर मरण पाता है। यह विचित्र है।।४३।।

हे राजा! जिन-जिन राजा-महाराजाओं ने अपने पौरुष से इस भूमण्डल पर राज्य किया वे सारे काल बल से अब कथावशेष बन गये। यही इन राजाओं के कथा से स्पष्ट होता है।।४४।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में बारहवाँ स्कन्ध में दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्
द्वादश स्कन्धः
अध्याय - तीसरा

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

भूमि गीता

शुकदेव कहते हैं - भू-देवी अपने को जीतने के लिये प्रयास कर रहे राजाओं को देखकर हंसते हुये कहती हैं। क्या आश्चर्य है देखो ? स्वतः मृत्यु के हाथ में कठपुतली बने ये राजा मुझको जीतना चाहते हैं।।१।।

राजाओं की यह इच्छा व्यर्थ हो जाती है। क्योंकि वे ठीक तरह से जानते हैं कि एक न एक दिन उनको मरना है। यह मालूम होते हुये भी वे मुझको जीतना चाहते हैं। पानी के ऊपर के बुलबुला के समान नश्वर शरीर में वे बहुत विश्वास रखते हैं।।२।।

ये राजा अपने अन्दर रहने वाले कामादि अरिषड्वर्गों को न जीतते हुये, हम अन्य राजाओं को जीतेगे, मंत्रियों को बाद में सारे सहायक पौरों को, आप्तों को, हाथी, सेना इत्यादि अपने वंश में लेकर कण्ठकाभिप्राय बाह्य शत्रु को नाश करते समुद्र से घिरा हुआ इस भूमण्डल को जीतेगें। इस आशा को मन में रखते हुये युद्ध करने लगते हैं। ये अपने पास ही मृत्यु है, इसको भूल जाते हैं।।३-४।।

समुद्र से घिरा हुआ मुझको जीतने के बाद वे समुद्र में प्रवेश करना चाहते हैं। कामादि जय रूप मनोनिग्रह के सामने यह जीत क्या विशेष है ? मनोनिग्रह करे तो मुक्ति मिलती है।।५।।

हे राजा! मनु और उनके पुत्र मुझको छोड़कर जन्म पाये थे। इसी प्रकार मुझको छोड़कर चले गये। ऐसे होते हुए मूढ़ लोग क्या युद्ध करके मुझको जीत सकते हैं ?।।६।।

मेरे लिये मन में प्यार के बन्धन में फसे हुये ये दुष्ट राजा लोग राज्य के बारे में पिता-पुत्र, भाई-भाई, युद्ध करते हैं।।७।।

हे मूर्ख, यह भूमि मेरी हैं, तुम्हारी कभी नही होगी। इस प्रकार मुझको वश में रखने की इच्छा से परस्पर स्पर्धा करते हुये मारते हैं, मर जाते हैं।।८।।

पृथु, पुरूरव, गाधि, भरत, नहुष, कार्तवीर्यार्जुन, मांधाता, सगर, राम, खट्वांग, दुंधुमार, रघु, तृणबिन्दु, ययाति, शर्याति, शन्तनु, गय, भगीरथ, कुवलायाश्व, काकुस्थ, नैषधराज,

हिरण्यकश्यप, वृत्र, रावण, नमुचि, शंबर, नरक, हिरण्याक्ष, तारक इत्यादि और हजारों राजा दैत्य ये सारे राज्य किये। ये सर्वज्ञ थे, महाशूर थे और किसी से न हारते हुये सबको जीतेथे।।९-१०-११-१२।।

मृत्यु के वश में रहने वाले ये राजा मरण न रहने वाले मुझमे बहुत प्यार रखते हुये, किसी भी पुरूषार्थ को न पाते हुये मरण पाये, कथावशेष बने।।१३।।

यह भूमिगीता है। यहाँ पृथु आदि श्रेष्ठ राजा लोग कुछ भी पुरुषार्थ साधना नहीं करते हुये मर गये इस प्रकार बोलना वास्तव में सत्य नहीं है। श्रीराम जी के साथ पुण्य श्लोक राजाओं को यहाँ भूदेवी निन्दा नहीं करती है। राज्य पाना, राज्य का विस्तार करना, क्षत्रियों के लिये मोक्ष साधना है। प्रियव्रत राजा सन्यास लेने जा रहा था। उस समय ब्रह्मा जी उसको सन्यास नहीं लेने देते हुये राज्य चलाने का आदेश देते हैं। भू-देवी उनकी निन्दा नहीं करती। भू-देवी राज्य चलाने की योग्यता न होते हुये भी राज्य दाह के बलिपशु होने वाले राजाओं के लिये यह सन्देश देती हैं। इसको आगे के श्लोक में शुकदेव स्पष्ट करते हैं।

हे राजा, इन राजाओं में ज्यादा लोग महात्मा है। इस लोक में यश पाते हुये परलोक में श्रेय पाये। उनके बारे में भू-देवी जो कही हैं, वह बातों की शैली में कही हैं। हमें सही मुख्य अर्थ जानना है। ऊपर से ही शब्दों का अर्थ नहीं करना। भू-देवी का मुख्य उ-श्य यही है कि इस नश्वर लौकिक सम्पदाओं के बारे में मोह को त्याग कर ज्ञान वैराग्य पाना ही योग्य नीति है। भू-देवी यहाँ इसको बोलना चाहती हैं। यही भूमि गीता का सार है।।१४।।

भगवान श्रीकृष्ण में निर्मल भक्ति चाहने वाले इन राजाओं के राज्य वैभव को श्रीहरि का अनुग्रह मानते हुये अमंगल परिहार कारक भागवत गुणों से भरी हुयी इन बातों को बार-बार श्रवण करना चाहिये।।१५।।

राजा परीक्षित पूछते हैं - हे पूज्य मुनिवर्य, कलियुग में, कलिदोष बढ़ते जाते हैं, साधना करने वाला इन दोषों का परिहार कैसे कर सकता है। इसके बारे में उपदेश दीजिए।।१६।।

युग, युगपरिमाण, प्रलयकाल सृष्टिकाल इनके परिमाण, इसके साथ सर्वचेष्टक काल स्वरूपी महाविष्णु के प्रभाव के बारे में कहिये।।१७।।

श्रीशुकदेव कहते हैं - हे राजा, प्रभु स्वरूप धर्म को सत्य, दया, तप और दान नाम के चार पाँव हैं। कृतयुग में रहने वाले उस युग के लोग, धर्म के चारों पादों का अनुसरण करते हैं। इससे कृतयुग में धर्म चार पादों से क्रमण करता है।।१८।।

कृतयुग के लोग तृप्त रहते है। दयाशाली, स्नेहजीवी, शान्त, इन्द्रिय निग्रह वाले, द्वंद्व को सहन करने वाले, आत्माराम यथार्थ ज्ञान वाले सामान्यतः पत्नी पुत्रों का वियोग न पाते हुये गृहस्थ धर्म में रहते हैं।।१९।।

त्रेतायुग में अधर्म पाद बने हुये असत्य हिंसा, अतृप्ति और कलहों से धर्म के पादो में एक पाद क्रमशः नाश होता है।।२०।।

हे राजा, त्रेतायुग में लोग यागादि क्रियाओं में तप में निष्ठ रखते हैं। अनावश्यक हिंसा नहीं करते हैं। विषय लोलुप न बनते हुये धर्म, अर्थ, काम नाम के त्रिवर्ग का साधक बनते हैं। तीनों वेदों का ज्ञान रखते हैं। वर्णों में ब्राह्मण ज्यादा होते हैं।।२१।।

द्वापर युग में अधर्म स्वरूप हिंसा, अतृप्ति, असत्य, कलह इत्यादि से युक्त होकर धर्म के पाद बने, तप, सत्य, दया, दान में आधा अंश नाश हो जाता है।।२२।।

द्वापर के लोग यशस्वी, याज्ञिक और वेदाध्ययन निरत होते हैं। श्रीमन्त रहते हुये हृष्ट-पुष्ट रहते हैं। वर्णों में ब्राह्मण से क्षत्रिय ज्यादा होते हैं।।२३।।

कलियुग में बढ़ने वाले अधर्म हेतु के कारण धर्म हेतु बने हुये धर्म के चार पाँव में और एक हिस्सा क्रमशः क्षीण होते हुये युग के अन्त में पूर्ण नाश होते हैं।।२४।।

कलियुग में लोग लोभी होते हैं। दुराचारी, निर्दयी, निष्कारण द्वेष करने वाले, दुष्ट भाग्य वाले, अत्यन्त दर्पिष्ट होते हैं। वर्णों में ज्यादातर शूद्र होते हैं। सारे उनके दास बनते है।।२५।।

सत्व, रज, तम नाम के तीनों गुण मानवों में रहते हैं, इनके प्रभाव से कालानुसार प्रजा के मन में परिवर्तन होता रहता है।।२६।।

सत्व गुण सुस्थिति में रहे तो मन, बुद्धि, इन्द्रिय, सुस्थिति में रहते हैं। उस समय कृतयुग मानना चाहिये। तब ज्ञान और तप में अभिरूचि उत्पन्न होती है। २७।।

काम्य कर्मों में, कीर्ति सम्पादन में, लोगों की आसक्ति जब बढ़ती है तब रजो गुण प्रबल रहने वाला इसको त्रेतायुग मानना चाहिये।।२८।।

मन में लोभ, अतृप्ति, अहंकार, दंभाचार, मत्सर और काम्य कर्मों में आसक्ति होती है। उस समय को रजो गुण से तमो गुण प्रबल होता है। उसको द्वापरयुग मानना चाहिये।।२९।।

वंचना, असत्य, आलस्य, निद्रा, हिंसा, विषाद, शोक, मोह, भय और दैन्य होता है, तब तमो गुण प्राबल्य वाला कलियुग मानना चाहिये।।३०।।

कलि दोष से लोग क्षुब्द्र बुद्धि वाले, मन्द भाग्य, सदा खाने वाले, कामी और दरिद्र होते हैं। स्त्री समुदाय नीति को छोड़कर दुष्ट होता है।।३१।।

लोग लुटेरों से पीड़ित होते हैं, वेद पाषण्डियों के हाथ में दूषित होते हैं। प्रजा को राजा ही पीड़ा देते हैं। ब्राह्मण केवल शिश्न और उदर परायण होते हैं।।३२।।

ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य व्रत और शौच को त्यागते है। गृहस्थ सन्यासी जैसे गेरूआ पहनते है। वानप्रस्थ गाँव में रहते हैं। सन्यासी धन लोलुप बनते हैं।।३३।।

स्त्री छोटी कद की होती हैं। सदाकाल खाते हुये बहुत बच्चों को जन्म देती हैं। लज्जा विहीन होकर कटु शब्दों को बोलती हैं, चोरी, वंचना और दुष्ट साहस करने लगती है।।३४।।

दरिद्र लोग न बेचने योग्य वस्तुओं को वंचना से बेचते हैं, आपत्काल न होते हुये सज्जन लोग निन्दा करने लगते है।।३५।।

सेवक अपने उत्तम स्वामी को भी पैसा न रहे तो छोड़ देते हैं। सेवक वंश परम्परा से सेवा करता रहे तो भी बुढ़पे के कारण प्रभु उनको त्याग देते हैं। दूध न देने वाली गायों को कटने को बेचते हैं।।३६।।

कलियुग में लोग स्त्री वश होकर अपने माता-पिता, भाई बन्धु को छोड़कर कामासक्त होकर दैन्य से अपने श्वसुर और पत्नी के बन्धुओं के साथ व्यवहार करने लगते हैं।।३७।।

शूद्र तपस्वी वेष धारण करते हुये पेट भरने के लिये दान-दक्षिणा स्वीकारते हैं। धर्म को न समझने वाले, धर्म पीठ के ऊपर बैठ कर धर्मोपदेश देने लगते हैं।।३८।।

हे राजा, प्रजा सदाकाल उद्दिग्न होकर रहती है। दुर्भिक्ष और टैक्सों के भार से पीड़ित रहती है। अनावृष्टि से भूमि में उपज नही होती। इससे कृषक तरसते रहते हैं।।३९।।

कलियुग में सामान्य लोग कपड़ा, अन्न, पानी, शयन, स्त्रीसुख, स्नान, अलंकार न पाते हुये पिशाच के समान रहते हैं।।४०।।

कलियुग में एक-एक पैसे के लिये झगड़ा करते हुये स्नेह को छोड़ कर प्राण देने के लिये भी सिद्ध होते है और लोगों का प्राण भी लेते हैं।।४१।।

शूद्र मानव शिश्नोदर परायण होकर अपने वृद्ध माता-पिता की भी सुरक्षा नहीं करते हैं। पुत्री का तथा अपनी पत्नी का भी पालन नहीं कर सकते।।४२।।

हे राजा, कलियुग में पाखण्ड मत से मति भ्रमित हुये लोग तीनों लोकों के लोगों से

नमस्कार करने योग्य पाँव वाले भगवान अच्युत की भी आराधना करना छोड़ देते हैं।।४३।।

मरण समय में रोग से तड़पने वाले लोग, परवशता से भी भगवान का नामस्मरण नहीं करते। नामस्मरण करने वाले मुक्त होकर उत्तम गति पाते हैं यह मालूम होते हुये भी कलियुग में लोग भगवान की आराधना नहीं करते।।४४।।

द्रव्य,देश अन्तःकरण में दिखने वाले कलिकृत मानवों के इन दोषों के कारण भगवान इनके अन्तःकरण में नहीं रहते हैं। जिनके मन में रहते हैं उनके पूरे पाप का हरण भगवान करते हैं।।४५।।

इसके लिये मानव लोग अपने हृदय में रहने वाले भगवान का श्रवण, कीर्तन, ध्यान और अर्चनादियों से उचित तरह से पूजा करते हुये अपने मन में भगवान का रूप रहे ऐसा करें तो भगवान उनके हजारों जन्मों के पाप को भी नाश करते है।।४६।।

सोना को आग में रखे तो उसमें मिला हुआ अन्य तत्व नष्ट होकर जैसे सोना शुद्ध होता है उसी प्रकार योगियों के हृदय में भगवान प्रवेश करे तो जीव के सारे पाप कर्मों को नाश करते हैं।।४७।।

भगवान भक्तों के हृदय में आकर बसें तो भक्तों का हृदय पूर्ण रूप से शुद्ध हो जाता है। इतनी शुद्धि को विद्या, तप, प्राणायाम, मैत्री, तीर्थ-स्नान, व्रत, दान, जप इत्यादि से पा नहीं सकते।।४८।।

इसी कारण हे राजा, मरण के समय में एकाग्रचित होकर सर्व प्रयत्न से भगवान केशव को हृदय में स्थिर रूप से बिठा कर ध्यान करने से भक्त परमगति को पाता है।

हे राजा! सर्वकर्ता, सर्वेश्वर भगवान परमेश्वर को अन्त्यकाल में विशेष रूप से ध्यान करना चाहिये। फलस्वरूप भगवान अपने भक्त को विशेष भक्ति देते हैं।।५०।।

कलियुग में सकल दोषों के लिये आश्रय बन जाता है। किन्तु इसी कलियुग में एक बड़ा गुण भी है, कलिकाल में भगवान श्रीकृष्ण के नाम का संकीर्तन करने से विषयासक्ति से मुक्त होकर हम भगवान को पा सकते हैं।।५१।।

कृतयुग में विष्णु के ध्यान से, त्रेतायुग में यज्ञों से भगवान की आराधना करने से, द्वापर में अर्चन, पूजन से, जो फल मिलता है वह फल कलियुग में केवल संकीर्तन करने से मिलता है।।५२।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में बारहवाँ स्कन्ध में तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्
द्वादश स्कन्धः
अध्याय - चौथा

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

काल का परिमाण

शुकदेव कहते हैं - हे राजा, परमाणु से आरम्भ होकर द्विपरार्ध पर्यन्त सारे कालों का स्वरूप और चतुर्युग के प्रमाण को मैं तुमको बता चुका हूँ। इस काल के प्रभाव से आगे होने वाले सृष्टि लय के बारे में बताता हूँ, सुनो।।१।।

पृथ्वी आदि पंचभूत द्रव्यों को अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु रहते हैं। उसी प्रकार काल भी प्रकृति से बनने वाला द्रव्य होता है। उसको भी अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु द्विणुक, त्रिणुक इत्यादि होते हैं। एक परमाणु समय का अर्थ, एक सेकेण्ड में हजार भाग करने के बाद मिलने वाला एक अंश से भी कम समय होता है। एक क्षण भी, क्षण काल में सारे प्रपंच को व्याप्त होकर प्रपंच का आधार बनता है। अब इस क्षण में प्रपंच है। इसका अनुभव हमें आता है। प्रत्येक काल अपने में स्वयं रहता है। एक दिन को दिन मात्र का काल रहता है। दूसरे दिन वह नही होता, वह दूसरा दिन का काल आता है। जिस समय जिसका काल होता है उस समय केवल वही रहता है। सबसे बड़ा काल जो युग से भी बड़ा माना जाता है वह द्विपरार्ध काल है। वही ब्रह्मा जी का आयुमान है। मानव मान के चार सौ करोड़ वर्ष ब्रह्मा जी का एक दिन अथवा एक रात होती है। तीस हजार ऐसे दिवा-रात्र हुये तो द्विपरार्ध होता है। ब्रह्माण्ड का आयुष्य भी ब्रह्मा जी के आयुष्य के समान है। परमाणु काल से आरम्भ करते हुये द्विपरार्ध पर्यन्त कालों के प्रभाव से उन कालों में सृष्टि, प्रलय होते रहते हैं। इस प्रकार काल चिन्तकों के अभिप्राय से प्रपंच में सृष्टि, स्थिति और लय ये तीनों काल के कारण ही होते हैं। किन्तु वस्तुतः इस काल को नियामन करने वाला भगवान नारायण है। यह माण्डुकोपनिषद का वाक्य है।

द्विपरार्ध रूप में रहने वाले काल को ब्रह्मकल्प अथवा महाकल्प कहते हैं। यही ब्रह्मा जी का एक दिन होता है। दिन कल्प के अन्त में दिन प्रलय होता है। महाकल्प के अन्त में, महाप्रलय होता है। इनका विवरण तीसरे स्कन्ध के बारहवाँ अध्याय में आता है।

हे राजा, एक हजार बार चतुर्युग चक्र चलने के बाद ब्रह्ममान में एक दिन होता है। यह दिन कल्प है। इसमें चौदह मनवन्तर होते हैं।।२।।

दिन कल्प के अन्त मे दैनंदिन प्रलय होता है। यह प्रलय दिन कल्प के समान दीर्घकालिक समय वाला होता है। इसको ब्रह्मा जी की रात्रि कहते हैं। इस प्रलय में तीनों लोक नाश पाते है।।३।।

यह दैनंदिन प्रलय नैमित्तिक लय होता है, इस लय काल में तीनों लोकों को अपने पेट में रखते हुये सृष्टिकर्ता शेषशायी नारायण सोते हैं। उनके नाभि कमल में ब्रह्माजी भी सोते हैं।।४।।

यहाँ सोते हैं का अर्थ, ब्रह्मा जी सृष्टि नहीं करते इतना ही है। ब्रह्मा और श्रीहरि नींद करते नही, उनके सोने के निमित्त से यह लय होता है, इसके लिये इसको नैमित्तिक लय कहते हैं।

परमेष्ठि ब्रह्म का द्विपरार्ध रूप आयुष्य समाप्त होने के बाद महत्तत्व, अहंकार तत्व, पंचभूत ये सारे प्रकृति अंश नाश होते है।।५।।

इसी कारण हे राजा, इस लय को प्रकृति लय बोलते हैं। इस लय के विनाश होने का समय जब आता है तब चौबीस तत्वों से मिलकर बना हुआ यह ब्रह्माण्ड नाश पाता है।।६।।

हे राजा, महाप्रलय जब समीप आता है, उसके सौ वर्ष पहले मेघ, भूमि में पानी नहीं बरसाते है। तब जीव भूख को न सहन करते हुये एक को एक खा डालते हैं। इस प्रकार काल बल से क्रमेण सारे नाश होते हैं।।७।।

प्रलयकाल के सांवर्तक नाम के सूर्य समुद्र जल को, प्राणी शरीर के वीर्य रस को, भूमि के षड्रस को अपने भयंकर किरणों से पूर्ण रूप से सुखाता है। थोड़ा भी बचने नहीं देता।।८।।

बाद में सांवर्तक नाम की अग्नि संकर्षण के मुख से चलते हुये जोर से बहने वाली वायु के सहयोग से भभक होते हुये जन से शून्य पाताल लोक को भी जलाती है।।९।।

ऊपर प्रलय का सूर्य तथा नीचे प्रलय की अग्नि से जलता हुआ ब्रह्माण्ड जलते हुये कण्डी के समान दिखता है।।१०।।

बाद में सौ वर्ष के समय तक सांवर्तक नाम का चण्ड मरुत बहने लगता है। आकाश धूल से भर जाता है।।११।।

बाद में हे राजा! अनेक वर्ण के अनेक मेघ समूह में आकर सौ वर्ष तक अत्यन्त जोर से पानी बरसाते हैं। मेघ गर्जना निरन्तर होती रहती है।।१२।।

समस्त ब्रह्माण्ड जल से भर जाता है तब उस लय में पृथ्वी के आवरण के गन्ध गुण को बाहर का जल वर्ण अपने में खींच लेता है (पृथ्वी तत्व, जल तत्व में लीन होता है)।।१३।।

गन्ध गुण रहित शून्य पृथ्वी जलावरण में लय होती है। जल के रस गुण को अग्नि का आवरण खींच लेता है। रसहीन जल अग्नि में नाश होता है।।१४।।

अग्नि के रूप नाम के गुण को वायु का आवरण खींच लेता है। रूपहीन अग्नि वायु के आवरण में लय होता है। वायु के स्पर्श गुण को आकाश का आवरण खीच लेता है।।१५।।

हे राजा! स्पर्श रहित वायु आकाश के आवरण में लय होती है। बाद में आकाश के शब्द गुण को तामस अहंकार का आवरण खींच लेता है। वह शब्द रहित आकाश तामस अहंकार में लय पाता है।।१६।।

हे राजा, तेजस इन्द्रियाँ तेजस अहंकार में, वैकारिक देवतागण वैकारिक अहंकार में अपने गुणों के साथ लय होते हैं।।१७।।

त्रिविध अहंकार के आवरण को महत्तत्व आवरण, महत्तत्व आवरण को सत्वादि गुणत्रयावरण उसको काल नामक श्रीहरि के प्रेरणा से इस जगत का मूल कारण बनने वाली, मूल प्रकृति अपने में खींच लेती है। उसके बाद समस्त गुण सामान्य अवस्था को पा लेते हैं।।१८।।

इस मूल प्रकृति को क्षण, लव इत्यादि किसी काल से परिणाम आदि धर्म नहीं होते हैं। वह अनादि, अनन्त और अव्यक्त, अव्यय है। इस प्रकृति का मूल कारण भी है।।१९।।

काल नामक श्रीहरि में वाक्, मन, सत्व, रज, तम, महदादि तत्व, प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय इत्यादि अभिमानी देवताएँ, लोक सृष्टि के लिये आश्रय बनने वाला ब्रह्माण्ड ये सारे कुछ परिणाम नहीं करते।।२०।।

भगवान के बारे में उपनिषद नेति-नेति इस प्रकार कहते हैं। इसी प्रकार स्वप्न, जागृति, सुषुप्ति भी भगवान को नहीं है। आकाश, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, सूर्य ये भी नहीं हैं। किन्तु भगवान सुषुप्ति के समान सुख वाले हैं। आकाश के समान अति सूक्ष्म हैं, ऊहा को न मिलने वाले प्रपंच के आदिकर्ता मुक्ति में मिलने वाले हैं। इस प्रकार ज्ञानी कहते हैं।।२१।।

यह महाप्रलय ही प्राकृतिक लय है। इस लय में ब्रह्मा, सरस्वती की आयु भी काल नियामक भगवान की आज्ञानुसार समाप्त होती है। वे सारे भगवान के अधीन हैं, उनके अधीन रहने वाले सारे तत्व उनके साथ, सारे नाश होते हैं।।२२।।

वह काल नियामक भगवान ही स्वतंत्र वस्तु है। अस्वतंत्र वस्तु इस प्रपंच में उनके अनुग्रह से रहती है। जब अनुग्रह नहीं रहता तब वे नहीं रहते। इसके लिये उनका आश्रय ही मुख्य कारण है। भगवान केवल ज्ञान ज्योति का स्वरूप है। उनके समान ज्ञान स्वरूपी लक्ष्मी जी है। उनका नाम बुद्धि भी है। बुद्धि यानी वेद को बोधन शक्ति देने वाली इन्द्रियों को गोचर होने वाले दिव्य सौन्दर्यादि गुणों से शोभायमान वाली लक्ष्मी होती हैं। इस लक्ष्मी के गुणों से भगवान सदाकाल प्रकाशमान रहते हैं।।२३।।

दीप हो, आँख हो या प्रकाश हो, ये सारे अग्नि देव के अनुग्रह के बिना स्वतंत्र रूप से नहीं रहते। उसी प्रकार बुद्धि इन्द्रिय और विषय ये तीनों मुख्य प्राण के अनुग्रह के बिना नहीं रहते हैं। वे उनके अधीन होते हैं। मुख्य प्राण के जन के भगवान के अधीन में ये रहते हैं इसको अलग कहने की बात नहीं होती।।२४।।

हे राजा! जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति जीव के लिये होते हैं, भगवान के लिये नही। ये तीनों सत्य हैं। उनमें भेद है, यह भी सत्य है। श्रुति इसके बारे में बहुत बार कह चुकी है। किन्तु उन अवस्थाओं के नियामक प्रत्यगात्म कहलाने वाले भगवान के विश्वादि रूप में कोई भेद नहीं है। यदि भेद दिखता हैं वह तो माया मात्र है, भ्रान्ति मूलक है।।२५।।

भगवान के रूपों में भेद भ्रान्ति मूलक होता है। किन्तु जीव और ईश्वर में भेद सत्य है। स्थिर आकाश में बादल प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। किन्तु आकाश कभी नहीं बदलता, उसी प्रकार आकाश और मेघ में जिस प्रकार भेद हैं, उसी प्रकार जीव और ईश्वर में भेद है। उसी प्रकार जीव और ईश्वर काल काल में जन्म लेते हैं, मरते हैं। इस प्रकार जीव ईश्वर में भेद सत्य है।।२६।।

जीव जन्म लेने से जन्म लिया ऐसा बोलते हैं किन्तु भगवान के जन्म को अवतार मानते हैं। भगवान के अवतारों में कोई भेद नहीं है।

जीव ईश्वर में भेद सत्य होते हुये भी, **जड़ में अंश, अंशि में अभेद** होता है। पंचभूत ये महदादि अवयवी के अवयव हैं, इस प्रकार कहा गया है। किन्तु अवयव अवयवियों के साथ कपड़े के धागे के समान एक में एक मिले हुये भेद व्यवहार नहीं है, ऐसा गोचर होता है। बनाया

हुआ कपड़ा और धागा में भेद नहीं है।।२७।।

चेतनो में और नित्य जड़ पदार्थों में अंश-अंशी के रूप में अभेद है, भेद नहीं है। अंश में परस्पर भेद नहीं है। हनुमान और भीम में सामान्य शक्ति और विशेष शक्ति इस प्रकार व्यत्यास दिखे तो वह अभेद है, परस्पर अभिन्न हैं, आसुरी मोहन के लिये दिखता है। इस प्रकार वह भेद अवस्तु है, सत्य नहीं है।।२८।।

वि-कार इसका अर्थ अनेक विध का भेद हमें लोक में दिखता है। अपने अन्तर्यामी भगवान के अनुग्रह से उसको हमें समझ लेना चाहिए। उनके अनुग्रह के बिना हम समझ सकते हैं, यह भ्रम के कारण होता है।।२९।।

सत्य रूपी भगवान के रूप में भेद दिखने मात्र से वह सत्य नहीं हो जाता। घट निर्माण होने के बाद उसके अन्दर का आकाश बाहर के आकाश से अलग नहीं होता। शरीर उत्पन्न होने के बाद उसके अन्दर रहने वाले अग्निदेव बाहर की अग्नि से अलग नहीं होते।।३०।।

व्यवहार के क्षेत्र में लोग अलग अलग प्रयोजन दृष्टि से सोने से किरीट, माला, अंगूठी, चैन इत्यादि एक ही सोने से अनेक रूप में बनाते हैं। इनमें सोना एक ही तरह का रहता है। लौकिक वैदिक लोग भगवान में नारसिंह, वराह इत्यादि अलग अलग रूपों को, अलग अलग नामों से पुकारते हैं। किन्तु उन रूप, आकार में कोई भेद नहीं है।।३१।।

बादल आकाश में सूर्य से जन्म लेकर, सूर्य के प्रकाश में दिखते हुये भी एक अंश में सूर्य को ढकते हुये अन्धेरा करते हैं। सूर्य को ढक लेते हैं। उसी प्रकार जीव में रहने वाला भगवान के अधीन में रहने वाला यह लिंग शरीर उन्हीं से प्रकट होते हुये, उनसे भिन्न रहने वाले जीव की बुद्धि को मोहक बनते हुये जीव के बन्धक बनते हैं।।३२।।

काला मेघ सूर्य के तप्त, सूर्यांश आँख को अपने बिम्ब स्वरूप सूर्य को दिखा सकता है, उसी प्रकार जीव को भगवान के दर्शन साधन भूत जीव का उपाधि बना हुआ लिंग शरीर भगवान के उपासना से शिथिल होने के बाद जीव भगवान को असंप्रज्ञात समाधि में निरन्तर भक्ति से ध्यान कर सकता है।।३३।।

हे राजा! इस प्रकार जीव विवेक ज्ञान नाम के शास्त्र से भगवान की इच्छाधीन लिंग शरीर के अभिमान के बन्धन को काटकर असंप्रज्ञात समाधि में अच्युत के स्वरूप को अपरोक्ष ज्ञान के अनुभव से देखते रहता है। इस अवस्थां को आत्यंतिक प्रलय कहते हैं।।३४।।

हे राजा, इस प्रकार ब्रह्मादि सकल चेतन, अचेतनों को प्रतिदिन जन्म होते हैं। इस प्रकार सूक्ष्म ज्ञान वाले कहते हैं।।३५।।

काल प्रवाह के वेग से जड़ शरीर को प्रतिदिन तीव्रता से खींचने के कारण परिणाम इत्यादि अवस्था आते जाते रहते है। जन्म-लय का कारण बनते हैं। यह नित्य प्रलय है।।३६।।

आद्यंत रहित ईश्वर रूपी काल के वेग से जड़ शरीर में अवस्थायें होती हैं। जैसे आकाश में ग्रह नक्षत्रों का चलन होते हैं। तो भी वह दिखता नहीं उसी प्रकार चेतनों में बदलाव दिखता नही।।३७।।

नित्य लय, नैमित्तिक लय, प्राकृतिक लय और आत्यंतिक लय इस प्रकार चार तरह के लय के बारे में कह चुका हूँ। काल के अन्तर्यामी रहने वाले श्रीहरि की लीलाएँ ऐसी अचिन्त्य होती हैं।।३८।।

हे राजा! इस प्रपंच के आदि कर्ता सकल चेतन, अचेतन को आश्रय देने वाले भगवान श्रीनारायण की ये कथाएँ लीला से युक्त हैं। द्वितीय स्कन्ध से लेकर यहाँ तक संक्षेप रूप से सबको मैं बताया हूँ। इसको विस्तार रूप से कोई भी बोल नहीं सकता। ब्रह्मा जी भी बोल नहीं सकते।।३९।।

अत्यन्त दुष्कर संसार सागर को पार करने की इच्छा रखने वाले अनेक विध के दुःख के अरण्यों से पीड़ित मानवों को, भगवान पुरुषोत्तम की लीला-कथा का रसपान करने के अलावा इस संसार को पार करने के लिये और कोई नौका नहीं है।।४०।।

इस भागवत पुराण संहिता को व्यय रहित भगवान श्रीनारायण नारद जी को उपदेश दिये। नारद जी इसको बादरायण जी को कहे।।४१।।

भगवान वेदव्यास जी मुझ पर कृपा करते हुये वेद तुल्य इस भागवत पुराण संहिता को मुझे उपदेश दिये।।४२।।

हे राजा! आगे नैमिषारण्य में चलने वाले दीर्घ सत्र में शौनकादि मुनियों से प्रार्थित होकर क्षुद्र पुराणिक इस भागवत कथामृत को मुनि के लिये उपदेश देते हैं।।४३।।

जिनके प्रसन्नता नाम के गुण से ब्रह्मा जी का जन्म हुआ, जिनके क्रोध नाम के गुण से रुद्र का जन्म हुआ ऐसे जगन्नाथ भगवान श्रीहरि इस भागवत पुराण में बार बार कीर्तित हैं, वर्णित हैं।।४४।।

हे राजा! तुम मरने के लिये डरो मत। केवल पशु ही मरने के लिये डरता है। तुम उसको छोड़ों तुम्हारा जीव पहले नहीं रहा, ऐसा कुछ नहीं। बाद में नया जन्म लेता न ही ऐसा भी नही। तुम अपने देह के समान जन्म लेने वाले नहीं हो, देह के साथ मरने वाले भी नहीं हो।।४५।।

बीज से अंकुर, अंकुर से बीज जैसे पुनः पुनः होता है वैसे ही पुत्र-पौत्र आदि रूप से शरीर जन्म लेता है, वैसे तुम जन्म नहीं लेते। तुम देह, इन्द्रियों से विलक्षण हो, लकड़ी में रहने वाले आग के समान देह में आत्मा अलग रहती है।।४६।।

स्वप्न में अपने सिर को स्वयं कटने से होने वाला मरण इस शरीर को होता है। इस सत्य को माँ के गर्भ में रहते हुये तुमने स्वयं देखा है। यह ठीक तरह से समझ लो कि आत्मा जनन मरण रहित होता है।।४७।।

मिट्टी से बना हुआ बर्तन टूटने के बाद उसके अन्दर रहने वाला भूताकाश पहले के समान बाहर रहने वाला अव्याकृत आकाश में पहले तरह से उसके अधीन होकर मिल जाता है। उसी प्रकार यह देह नाश होने के बाद जीव पहले के समान भगवान के अधीन होकर उसमें समाहित होता है।।४८।।

अव्याकृत आकाश घट के अन्दर और बाहर इस प्रकार दो तरह का होता है।, दोनों में परस्पर भेद नहीं है। इसी प्रकार भगवान के रूपों में अन्दर बाहर इसी प्रकार होते हुये भी परस्पर भेद नहीं है। घट फूट जाने के बाद इन दोनों में ऐक्य दिखता है। घट में भूताकाश है, वह अव्याकृत आकाश से भिन्न है और अव्याकृत आकाश के आश्रय में रहता है। घट टूट जाने से भूताकाश पिछले के समान अव्याकृताकाश में रहता है। उसी क्रम में जीव के शरीर में नियामक होकर रहने वाले तत्वादि देवताएँ भगवान के आश्रय में रहते हैं। घट के अव्ययरूपी मिट्टी में पंचीकरण से मिला हुआ आकाश घट नाश होने के बाद भूताकाश में मिल जाता है। माध्यम अथवा जीव को देह नाश जब होता है तब उसके योग्य स्वर्ग–नरकादि स्थानों में मिल जाते हैं। इस प्रकार तत्व संहिता में कहा गया है।

जीव को अन्तःकरण, देह, सत्वादि गुण, जनन-मरण, इनके कारण बनने वाले पुण्य पापों को उत्पन्न करता है। इस मन को प्रकृति उत्पन्न करती है। इसी कारण जीव को यह संसार मिलता है।।४९।।

तेल से भरे हुए दीप में बत्ती जितना समय तक अग्नि का सहयोग पाती है, उतने समय

तक दीप जलता रहता है। पुण्य-पाप नाम के तेल से भरा हुआ अन्तःकरण नाम के भरे हुये प्याले में जीव नाम की बत्ती को देहाभिमान नाम की अग्नि से सहयोग रहते तक संसार का सम्बन्ध रहता है।।५०।।

देह रजोगुण से जन्म लेता है। सत्व गुण से बढ़ता है, तमों गुण से नाश होता है। किन्तु उस काल में जीव देह में रहते हुये भी जन्म नहीं लेता, नहीं बढ़ता और नष्ट भी नहीं होता। वह स्वप्रकाश चैतन्य स्वरूपी होकर व्यक्त हुआ देहादियों से भी अव्यक्त प्रकृति से भी विलक्षण रहता है।।५१।।

इसी कारण हे राजा, आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त बिम्ब रूपी भगवान नित्याधार और नित्य हैं। नाना पदार्थों में उनके परिमाण के अनुसार रहते है। इस प्रकार तुम्हारे अन्दर रहने वाले भगवान को तुम्हे अपनी बुद्धि से समझना चाहिये।।५२।।

युक्ति से युक्त बुद्धि से भगवान श्री वासुदेव को निरन्तर ध्यान करना चाहिये। तब ब्राह्मण शाप से प्रेरित होकर तक्षक सर्प आकर तुमको काटे तो भी अपमृत्यु दोष से तुम्हारा ध्यानासक्त बुद्धि, तुम्हारी रक्षा करती है।।५३।।

यहाँ राजा परीक्षित का चिन्तन यह है कि मैं आपकी कथा के अनुसार ध्यान करते रहने के समय तक्षक सर्प आकर मुझको काटता है और उससे मैं यदि मर गया तो मुझको अपमृत्यु दोष आ जाता है। राजा परीक्षित के इस आशंका का निवारण करते हुये शुकदेव कहते हैं – तुम हरि का ध्यान करते रहो। उस समय यदि अपमृत्यु आती है तो वह दोष नही होता। ध्यान ही उस दोष का परिहार करता है। इस युक्ति गर्भित बातों को इस प्रकार दो युक्ति से हरिध्यान करने का तरीका बोलते है। (1) आत्मा स्वस्वेतर वृत्तित्वानाक्रान्त नित्य निष्ठादिकरणं मेयत्वात् आत्मवत। (2) देहः स्वस्वेतर वृत्तित्वानाक्रान्त नित्य निष्ठादिकरणं मेयत्वात् घटवत्।

यह पहला अनुमान कि जीवात्मा परमात्मा का दास है। दूसरे अनुमान से जीव शरीर भगवान के अधीन है। इस प्रकार दोनो युक्ति समर्थन देते हैं। इसमें प्रथम अनुमान में आत्मा जब शब्द से जीवात्म स्वशब्द से जीवात्म इस प्रकार स्वतर शब्द से अचेतन पदार्थ इस प्रकार अर्थ करना चाहिये। इनके आश्रय से भगवान नही रहते। जीव इनके आश्रय से रहता है। यह नित्य निष्ठा, नित्य सम्बन्ध है। दास्य भाव रहने वाला नित्य निष्ठा वाला क्योंकि मेयत्वात् परिमेयः

यानी परिमिति वाला है। इस प्रकार जीव यानी यहाँ परीक्षित अल्प शक्ति वाला है। इस अनुमान में व्यतिरेक दृष्टान्त से आत्मा का अर्थ परमात्मा है। वह दास नहीं है। स्वयं भगवान है, सर्वशक्त है।

दूसरे अनुमान से हमारा शरीर चेतन-अचेतन पदार्थों में किसी का आश्रय न चाहने वाले नित्य रूपी भगवान वासुदेव से शाश्वत सम्बन्ध वाला है। इसका अर्थ भगवान ही इस रथ को चलाने वाले, रथ भी उनका ही है, मैं उनके साथ इस शरीर नाम के रथ में रहता हूँ। यह रथ **मेय** परिमित गुण वाला है। इसी कारण यह शरीर नाम का रथ उनके अधीन है। इस अनुमान में अन्वय दृष्टान्त घट होता है। घट परिमित गुण वाला है। वासुदेव के अधीन है।

ये अनुमान, तर्क सुनने में, मनन करने में इतना ही नहीं निधिध्यास के समय में भी आवश्यक हैं। तर्क बद्ध होकर भगवान का ध्यान करना पड़ता है। इसी कारण शुकदेव इस प्रकार उपदेश करते हैं।

मृत्यु को भी मृत्यु बनाने वाले भगवान के पास उनके ध्यान में मग्न रहने वाले को मरण कभी कष्ट नहीं देता। परमात्मा, अहं = नाश रहित है, ब्रह्मगुण पूर्ण है, परमधाम मुक्ति देने वाले हैं। परमात्मा नाश रहित गुण पूर्ण मुक्तप्राप्य इस प्रकार बार बार वासुदेव का ध्यान तुम करते रहो। तुम्हारे पाद को अपने विष पूरित फणों से काटे तो भी तुमको उसका ज्ञान होने वाला नहीं है। तुम अपने शरीर को, इस प्रपंच को भगवान से अलग और स्वतंत्र नहीं देखते हो। ये सारा प्रपंच तुम्हारे शरीर के साथ भगवान के अधीन है।।५४-५५-५६।।

हे राजा परीक्षित! तुम्हारे प्रश्न के अनुसार जगन्नायक श्रीहरि की लीलाओं को यथा नीति तुमको उपदेश दिया है। इसके बाद में तुम और क्या सुनना चाहते हो।।५७।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में बारहवाँ स्कन्ध में चौथा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

द्वादश स्कन्धः

अध्याय - पाँचवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

राजा परीक्षित मोक्ष साम्राज्य पाये

सूत कहते है - परिपूर्ण भगवान को देखकर उसको पूरे ब्रह्माण्ड में सर्वत्र समान रूप से सदाकाल देखने वाले व्यास पुत्र शुकमुनि तथा उनके द्वारा इस प्रकार कही गयी श्रीहरि की कथा को सुनने के बाद राजा परीक्षित सिर झुकाकर शुकदेव के पाद कमल के पास जाकर दण्डवत् प्रणाम करते हुये, हाथ जोड़कर कहे।।१।।

राजा परीक्षित बोलते हैं - हे शुकदेव, आप करुणालु हैं, आप मुझे आद्यंतरहित साक्षात् भगवान की महिमा को मेरे लिये कहे। उसको सुनकर मैं कृतार्थ हो गया, अनुगृहीत हो गया।।२।।

सार्वभौम चक्रवर्ती एक निरपराधी दरिद्र तपस्वी ब्राह्मण के गले में मरे हुये सांप को डालने से शाप पाया, यही संसार का ताप है। यह ताप शुकदेव से परिहार हुआ। शाप वर में परिवर्तित हुआ। राजा परीक्षित का जन्म सफल हुआ। वह धन्यता को पाये।

संसार ताप से त्रस्त हुए दीनजनों में अनुग्रह करना आप जैसे महात्मा को शोभा देने वाला है। आपके समान भगवद्भक्त को यह बड़ा काम नहीं है। इसमें आश्चर्य कुछ नहीं है।।३।।

आपसे मैं भागवत पुराण संहिता को पूर्ण रूप से सुना और समझा। उसमें उत्तम कीर्तिशाली भगवान का संकीर्त्तन किया गया है।।४।।

हे पूज्य मैं तक्षक इत्यादि किसी भी मारने वाले से भय नहीं करता। क्योंकि प्राकृत देह रहित गुण पूर्ण भगवान नाम के सुरक्षित स्थल को आप मुझे दिखाये हैं। मैं वहाँ रहकर सुरक्षित हो चुका हूँ।।५।।

हे महामुने, मैं इसके बाद मौन धारण करूंगा। कामना मुक्त मन को भगवान अधोक्षज में प्रवेश करवाऊँगा। तब प्राण का त्याग करूंगा। आप अनुज्ञा दीजिए।।६।।

ज्ञान-विज्ञान के उपदेश से आप मेरे अज्ञान को नष्ट कर चुके हैं। क्षेमकारक उत्कृष्ट भगवद् प्राप्ति के साधन को दिखा चुके हैं।।७।।

सूत बोलते हैं - राजा परीक्षित की बातों को सुनकर पूज्य शुकदेव इसकी इच्छानुसार

उसको आज्ञा देते हुये उनसे बिदाई पाकर वहाँ इकट्ठे हुये यतियों के साथ चले गये।।८।।

भगवान के अनुग्रह बल से राजर्षि परीक्षित अपने इन्द्रियों को विषयों से विमुख करते हुये निश्चल वृक्ष के समान चंचल रहित मन को अपने स्वरूप शरीर में रहने वाले भगवान में रखते हुये ध्यान करने लगे।।९।।

मन के सारे संशयों का निवारण करते हुये संग रहित महायोगी राजा परीक्षित गंगा तीर में पूर्व की दिशा में अग्रभाग वाले कुश के ऊपर उत्तर दिशा में मुख करते हुये बैठ कर ब्रह्मध्यान में लीन हो गये।।१०।।

हे शौनकादि ऋषिगण, ऋषिकुमार शृंगी द्वारा क्रोध से दिए हुए शाप से प्रेरित तक्षक राजा को मारने के लिये रास्ते में आ रहा था। उस समय उसने कश्यप नाम के विष वैद्य को देखा।।११।।

वह विष वैद्य राजा के विष बाधा को निवारण करने के लिये और राजा से विपुल धन पाने की इच्छा करते हुये आ रहा था। तक्षक ने वह ब्राह्मण जितना चाहता था, उससे भी बढ़कर उसे दक्षिणा देकर तृप्त करते हुये उसको वापस भेजा। स्वयं इच्छा रूप धारण करने वाला तक्षक ब्राह्मण रूप से आकर एक फल में कृमि रूप से रहते हुये राजा के हाथ में जाकर राजा को काट लिया।।१२।।

ब्रह्मध्यान में मग्न रहने वाला राजा परीक्षित ध्यान में अपने मूल शरीर को देखते हुये, वाह्य शरीर का अभिमान छोड़े हुए थे। राजर्षि का शरीर सारे लोगों के देखते हुये सर्पविषज्वाला से जलकर भस्म हो गया।।१३।।

आदिपर्व (43–35) के कथनानुसार राजा परीक्षित फल में, कृमि रूप में आये हुये तक्षक को देखकर हंसते हुये, यह तक्षक मुझको काटे, कहता है। जड़भरत रहूगण राजा को हंसते हुये इसी प्रकार बोलते हैं। देहाभिमान छोड़े हुये ज्ञानी को यह सहज है। हंस नामक परमात्मा भी (11–13–36) इसी प्रकार कहते हैं। राजा परीक्षित शुकदेव के उपदेश के अनुसार मुक्ति में नियामन करने वाले वासुदेव के ध्यान में मग्न होने के बाद यह वाह्य शरीर मेरा नहीं है, मैं स्वतंत्र नहीं हूँ। इस प्रकार ध्यान करते समय तक्षक राजा को काटा। शुकदेव शरीर के बारे में जो दूसरा अनुमान कहे थे वह यही था।

भूमि, अन्तरिक्ष, दसों दिशा में हाहाकार मचा। देव-असुर, मानवादि सारे आश्चर्यचकित होकर देखते रहे।।१४।।

देव दुंदुंभि बजाने लगे, गन्धर्व अप्सरायें गान करने लगी, देवता स्तुति करने लगे, पुष्प वृष्टि हुई।।१५।।

राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय महाराज ने तक्षक आकर अपने पिता को काट कर मार डाला। इस समाचार को सुनकर अत्यन्त क्रोधित होकर ऋत्विजों के साथ मिलकर सर्पमेधयाग प्रारम्भ किया। मंत्र से आवाहन करते हुये यज्ञ प्रारम्भ किया। मंत्र के साथ सारे सर्प यज्ञ कुण्ड में आकर गिरने लगे।।१६।।

महासर्प, छोटे सांप सारे सर्पसत्र में आकर आग में गिर कर भस्म हो रहे थे। इसको देखकर तक्षक भय के मारे कापते हुये इन्द्र के शरण में गया।।१७।।

सारे सर्प आने के बाद भी तक्षक यज्ञ कुण्ड में नहीं गिरा इसको देखकर आतंकित राजा जनमेजय ने ऋत्विजों से इसका कारण पूछा। बताइये, सर्पाधम तक्षक अभी तक क्यों नहीं आया ? कुण्ड में क्यों नही गिरा।।१८।।

ऋत्विज बोलते हैं- महाराज तक्षक इन्द्र के शरण में है। इन्द्र उसको रक्षा देते हुये अपने पास रखे हैं। इसी कारण वह तक्षक आग में आकर नहीं गिर रहा है।।१९।।

इसको सुनकर उदार बुद्धि वाला राजा ऋत्विजों से पूछता है, वैसे रहे तो तक्षक के साथ इन्द्र भी अग्नि कुण्ड में आ गिरें। इस प्रकार आप मंत्र बोलें।।२०।।

यहाँ भागवत राजा को उदार कहती है। राजा उदार होते हुये यहाँ अपना औदार्य दिखाता नही। इसकारण वह बहुत क्रुद्ध है अथवा उदार बुद्धि का अर्थ न्याय सम्मत बुद्धि वाला, इस प्रकार होता है। तक्षक इन्द्र के शरण में गया तो उससे किया हुआ महापराध क्षमा करना न्याय सम्मत नही होता। काटने के साथ तक्षक और एक पाप किया है। विषहरण करने वाले वैद्य को वह वापस भेजा है। इस अपराध के कारण तक्षक शिक्षा पाने योग्य है। यह जनमेजय का विचार है।

राजा की बातों को सुनकर, ऋत्विजों ने इन्द्र सहित तक्षक को मंत्र से यज्ञकुण्ड में आह्वान किये। तक्षक तुम और मरुद्गण देवता के साथ इन्द्र सहित यज्ञ कुण्ड में आकर गिर जाओ।।२१।।

इस प्रकार ऋत्विजों द्वारा उच्चार किए हुए होम मंत्र से विमान में तक्षक के साथ बैठे हुये इन्द्र चंचल होकर विमान के साथ स्थानभ्रष्ट होकर गिरने लगे।।२२।।

अपने अवतार अर्जुन के सन्तति रूप रहने वाले जनमेजय को कीर्ति

प्रदान करने के लिये भगवान के प्रिय ऋत्विजों को उनको मंत्रों को गौरव दिखाने के लिये इन्द्र अपने में शक्ति होते हुये भी अशक्त के समान तक्षक के साथ आग में गिरने के लिये सिद्ध हो गये। उस समय देवेन्द्र की रक्षा सदाकाल करने के लिये सिद्ध उपेन्द्र भी उनकी रक्षा नहीं किये। देवगुरू बृहस्पत्याचार्य जनमेजय को उपदेश देते हैं।

अन्तरिक्ष से तक्षक के साथ स्वतः इन्द्र भी विमान से आकर गिर रहा है। इसको देखकर अंगीरस मुनि के पुत्र बृहस्पत्यचार्य जनमेजय राजा को उपदेश देते हैं। हे राजा, नागराजा तक्षक का वध करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। वह अमृतपान कर चुका हैं, इससे वह अजर अमर है।।२४।।

जीव का जीना, मरना, परलोक प्राप्ति ये सारे श्रीहरि के अधीन होता है। उनके अधीन होकर जीव अपना कर्म करता है। हे राजा, श्रीहरि के बिना और कोई सुख-दुख देने वाला नही हैं।।२५।।

हे राजा, सर्प, चोर, आग, जल, भूख, प्यास, रोग इत्यादि उपद्रवों से जीव मरण पाता है। किन्तु ये सारे उसके मरण के लिये निमित्त मात्र होते हैं। मुख्य रूप से प्रारब्ध कर्म फल को ही जीव भोगता है।।२६।।

उसी कारण हे राजा, इस मारण होम को समाप्त कर दो। अनेक निरपराधी सर्प हवन में मर गये। तक्षक भी तुम्हारे पिता के मरण के लिये मुख्य कारण नही है। तुम्हारे पिता के कर्म से ही उसका मरण सर्प से इस प्रकार निश्चित था। लोग अपने कर्म के अनुसार फल भोगते हैं।।२७।।

विष वैद्य कश्यप ब्राह्मण भी ज्ञानी है। वह राजा का आयुष्य समाप्त हो गया है इसको समझते हुये व्यर्थ चिकित्सा क्यों करना ? ऐसा समझते हुये वापस चला गया। यह आदिपर्व (43–19) में बताया गया है।

इसको सुनकर जनमेजय राजा महर्षि की बातों को गौरव देते हुये सर्पसत्र को रुकवा कर बृहस्पत्याचार्य का सम्मान किया।।२८।।

महाभारत में कहा गया है कि आस्तिकमुनि सर्पयाग को रूकवाता है। यह कल्प भेद से सही है, इस प्रकार विरोध परिहार करना चाहिये।

एक मरण का निमित्त बनने वाला और दूसरे को कारण बनने वाला यह विष्णु की महाशक्ति है। जीवों में एक मारता है, और दूसरा मरता है, ये दोनों मोह के कारण हमें लगता है।।२९।।

भगवान के बारे में विचार करने वाले बहुत बार विचार करके निष्कर्ष में बताते हैं कि भगवान की यह मोहकशक्ति भगवान में मोह उत्पन्न नहीं करती है। दूसरों को यह समझता नही, अनेक तरह के वाद-विवादों से अभिमान से इसका निष्कर्ष नहीं कर सकते। संकल्प विकल्पों से अस्थिर रहने वाला मनोभिमानी को भगवान नहीं मिलते। इनके बारे में वेद के अनुसार पूर्वोत्तर रूप से विचार करके समझना चाहिये।।३०।।

सृष्टि किया हुआ करने वाले किसी से भी यह परमेय जीव को सुख दुख होते हैं वह श्रीहरि स्वयं त्रिगुणों से बाध्य नहीं होते। किन्तु जीव बाध्य होता है। बाध्य बाधक दोनों को अपने वश में रखने वाले भगवान को जानने वाला षडूर्मि को परिहार करते हुये कृतकृत्य होता है।।३१।।

अन्य लक्ष्मी, ब्रह्म इत्यादि, चेतन-अचेतन ये सारे भगवान नहीं बनते। भगवान को केवल नेति-नेति इस प्रकार निषेध रूप से बताने वाले ज्ञानी सारे निषेध करने से जो बचता है वह विष्णु स्वरूप भगवान हैं इस प्रकार कहते हैं। वे मैं और मेरा इस प्रकार के दुरभिमान को त्याग कर अनन्य भक्ति से हृदय में भगवान का आलिंगन करते हुये उसको लाकर रखे हुये अपने इन्द्रियों से उसको ठीक तरह से वश में रखते हैं।।३२।।

शरीर, मन, मन्दिर इत्यादि मेरा, मैंने किया इस अभिमान को न रखने वाले भक्त विष्णु के सर्वोत्तम स्वरूप को **तदेतदिति मन्यंते** इस उपनिषद के वचन के अनुसार मानते हैं।।३३।।

काठकोपनिषद के मंत्र (2-6) में इस प्रकार कहा गया है। **हंत त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनं** इस बात से आरम्भ करते हुये आगे (2-12) में **एकंरूपं बहुदा यः करोति** यहाँ तक के मंत्रों में यमदेव शरीर को त्याग कर आए हुये नचिकेत को भगवान के स्वरूप का उपदेश दिये। वह उपदेश का मंत्र (2-14) **तदेतदिति मन्यंते** यह मंत्र विष्णु का स्वरूप मानता है।

अपने शरीर को कोई कुछ करे दुष्ट बात बोले, तो उसको सहन करना चाहिये। किसी का अपमान नहीं करना, किसी का द्वेष नही करना।।३४।।

कभी भी कम न होने वाले संपूर्ण ज्ञान शक्ति वाले भगवान श्रीकृष्ण को नमस्कार। उनके पाद कमल के ध्यान के बल से मैं इस भागवत पुराण संहिता का अध्ययन किया हूँ।।३५।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में बारहवाँ स्कन्ध में पाँचवा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

द्वादश स्कन्धः

अध्याय - छठवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

वेद का प्रादुर्भाव

शौनकमुनि पूछते हैं - वेदव्यास जी के शिष्य पैल इत्यादि तप से वेद को देखने वाले महात्मा हैं। वे वेद के प्रवर्तक भी हैं। वे वेदों को कितने भाग में विभाजित किये ? हे सूतमुने, आप हमें बताइये।।१।।

सूतमुनि कहते हैं - हे मुनिगण देखिए, बहुत पहले चतुर्मुख ब्रह्माजी अपने मन में ध्यान कर रहे थे। उनके हृदयाकाश से एक ध्वनि निकली। इन्द्रियव्यापारनिरोधरूप प्रत्याहार से प्राण की क्रियाओं को निरोध करते हुये प्राणायाम करने वाले योगी लोग इसध्वनि को सुनते है।।२।।

उस ध्वनि की उपासना से योगी द्रव्य, देह, क्रिया, कर्म इत्यादि से और इसको करने वाली ज्ञानेन्द्रियों से मन के मैल को धोकर मोक्ष पाते हैं।।३।।

ब्रह्मा जी मैं पैदा की गयी यह ध्वनि स्त्री, पुरुष नपुंसक इस प्रकार तीन रूप की थी। वह घण्टा के समान ध्वनित होती थी। उपासकों को स्वर्ग और मोक्ष इत्यादि सकल पुरूषार्थ देने वाली थी।

उस ध्वनि से अकार, उकार, मकार इस प्रकार तीन अक्षरों से मिला हुआ ओमकार प्रत्यक्ष हुआ। उसमें ॐकार नामक भगवान व्यक्त हुये। भगवान व्यक्त होकर महदादियों की सृष्टि किये। ॐकार अव्यक्त भगवान से प्रगट हुआ है। **स्वराट्** भगवान स्वप्रकाश वाले हैं। ॐकार स्वतंत्र रूपी परमात्मा को प्रकाशित करता है। प्रकाश करते हुये उनकी अगाध महिमा और गुणपूर्णत्व का वर्णन करता हैं।।४।।

इस स्फोट रूपी ओंकार को (प्रणव को) श्रोता नामक भगवान समझते हैं। उनके समान दैत्यों को सुख न मिले ऐसा करने वाले शून्य नामक हरि को देखने वाला ज्ञानी आनन्द रूपी हरि को पाकर मुक्त होता है। इस प्रणव शब्द से समस्त वेद वाङ्मय व्यक्त होता है। **आत्मनः आकाशः संभूतः** इसके अनुसार भगवान से उत्पन्न हुआ भूताकाश ओंकार की अभिव्यक्ति का स्थान बना।।५।।

ओंकार भगवान के गुणपूर्णत्व को बताता है। इतना ही नहीं स्वप्रकाश गुणपूर्ण साक्षात् भगवान का वाचक भी है। सारे मंत्र उपनिषद् और वेद पारायण इत्यादि पाठ करने से मिलने वाले फल का बीज रूप है।।६।।

पहले कहे गये के अनुसार स्त्री, घण्टा नाद के अनुसार अविच्छिन्न उच्चार किया हुआ ओंकार स्वयं सारे वेदों के पाठ का फल दे सकता है। स्वत्यनोंकृतं ब्रह्मा इस बात के अनुसार मंत्रों के आद्यन्त में प्रणवोच्चार करे तो वेद पारायण का फल पूर्ण रूप से मिलता है।

हे मुनि सुनो, इस प्रकार व्यक्त हुये ओंकार में अकार, उकार, मकार इस प्रकार तीन अक्षर हैं इस प्रकार कहा गया है। उनसे **भूः भुवः स्वः** इस प्रकार को तीनो व्याहृति व्यक्त हो गईं। वे व्याहृति गुणार्थ रूपी ज्ञानादि गुण के विषय रूप भगवान के बारे में कहते हैं।।७।।

सारे वेदों में कहे गये ज्ञानादि गुणों के लिये आश्रय भूत भगवान की लीलाओं को व्याहरण करने से इनको व्याहृति कहते हैं।

इन तीनों व्याहृतियों से भगवान ब्रह्मदेव उनके अन्दर रहने वाले ऊष्म, स्पर्श, ह्रस्व, दीर्घ इत्यादि अक्षरों के उच्चारण करने के क्रम को बता दिये।।८।।

य, र, ल, व ये अक्षर अन्तस्थ कहलाते हैं। श, ष, स, ह ये अक्षर ऊष्म हैं। अकार से अः पर्यन्त तक के स्वराक्षर, ककार से मकार पर्यन्त स्पर्शाक्षर हैं। एक मात्रा के काल में उच्चार करने वाला स्वर ह्रस्व कहलाता है। दो मात्रा के स्वर दीर्घ, तीन मात्रा के स्वर प्लुत कहलाते हैं। स्वर को छोड़कर अन्य सारे अक्षर व्यंजन कहलाते हैं। उनको अर्धमात्रा का उच्चारण काल लगता है। इस प्रकार से बने हुये वर्णमाला व्याहृतियों से व्यक्त हुआ।

इन अक्षरों के समान्माय से होतृ, अध्वर्यु, उद्गातृ, ब्रह्म इस प्रकार चार प्रधान ऋत्विजों द्वारा चलने वाले यज्ञ प्रक्रिया को समझने के लिये ओंकार युक्त व्याहृतियों से ऋक्, यजु, साम और अथर्व नाम के चारों वेदों को ब्रह्मा जी अपने चारों मुखो से प्रकट किये।।९।।

वेदों को जानने वाले परब्रह्म ज्ञानी ब्रह्मर्षि मरीचि इत्यादि ब्रह्म मानस पुत्रों को ब्रह्मा जी वेदों का उपदेश दिये। धर्मोपदेशक उन ब्रह्मर्षियों ने ब्रह्मा से प्राप्त ज्ञान को अपने पुत्रों के लिये उपदेश दिये।।१०।।

व्रत निष्ठ शिष्यों से वेद परम्परा इस प्रकार चारों युगों में चलकर आयी है। किन्तु द्वापर

युग के प्रारम्भ में महर्षियों ने इन वेदों का विभाजन किया।।११।।

उस विभाजन के बारे में बोलता हूँ सुनो। द्वापर युग के आदिकाल में लोग अल्पायु, क्षीण शक्ति वाले और मन्दमति हो गये। उसको देखकर हृदयस्थ भगवान की प्रेरणा से ब्रह्मर्षियों ने अनन्त वेद राशियों से थोड़ा मात्रा निकाल कर, चुन कर शाखाओं के रूप में विभाजन किये।।१२।।

हे मुनि सुनो, इस वैवस्वत मनवन्तर में धर्म की रक्षा के लिये ब्रह्म, रुद्रादि लोकपालको की प्रार्थना के अनुसार लोक सृष्टि करने वाले भगवान स्वयं स्वरूपांश से पराशर ऋषि से सत्यवती के पुत्र रूप में अवतार लिये। चारों वेद राशि से एक-एक से, एक-एक भाग चुनकर उठाकर ऋक्, यजु, साम, अथर्व नाम के चार वेदों का उपदेश दिये।।१३-१४।।

मणियों की राशि से चुनकर कई रत्नों को अलग करते हुये सूत में जैसे जोड़कर माला बनाते हैं, वैसे ही वेदराशि से चुने हुये चारों वेदो की संहिताओं को भगवान प्रकाशित किये।।१५।।

सर्वज्ञ वेदव्यास जी अपने चार शिष्यों को बुलाकर एक-एक को, एक-एक संहिता को देकर उनको उसका प्रवर्तक बनाए ।।१६।।

पैल ऋषि को प्रथम वेद ऋग्वेद संहिता का उपदेश दिये। वैशंपायन नाम के शिष्य को निगद नाम के यजुर्वेद मंत्र समूह का उपदेश दिये।।१७।।

जैमिनि को छन्दों में गान करने योग्य सामवेद संहिता का उपदेश दिये। सुमन्तु नाम के अपने चतुर्थ शिष्य को अथर्वांगिरस वेद संहिता का उपदेश दिये।।१८।।

पैल मुनि अपने को उपदिष्ट रूप में मिला हुआ ऋग्वेद संहिता को इन्द्रप्रमिति और भाष्कल को उपदेश दिये। भाष्कल अपने को उपदिष्ट संहिता को चार भाग करते हुये बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्र इन शिष्यों को उपदेश दिये। परम आत्मतत्वज्ञानी इन्द्रप्रमिति अपने संहिता को परमज्ञानी माण्डूकेय ऋषि को उपदेश दिये। उनके शिष्य वेदमित्र, सौभरी इत्यादि को उपदेश दिये।।१९-२०-२१।।

वेदमित्र के पुत्र शाकल्य अपने को मिला हुआ संहिता को पाँच भाग करते हुये विभागशः वात्स्य, मौद्गल्य, शाली, गोसत्य, शिशिर इत्यादि मुनियों को उपदेश दिये।।२२।।

शाकल्य के और एक शिष्य जातूकर्ण्य अपनी संहिता को निरुक्त के साथ व्लीक, पैंगी, पैलाल, विराज को उपदेश दिए।।२३।।

भाष्कल का पुत्र भाष्कली इन सारी शाखाओं से मंत्रों को संग्रह करते हुये वालखिल्य

नाम की शाखा का निर्माण किये। उसको बालायनी, गार्ग्य, कासार नाम के मुनि अध्ययन किये।।२४।।

इन ब्रह्मर्षियों द्वारा अध्ययन की हुयी ये सारी संहिताएँ ऋग्वेद के सम्बन्ध में हैं। इन वेद विभाग के बारे में सुने तो सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।।२५।।

वैशंपायन को चरकाध्वर्यु नाम के शिष्य थे। वे गुरु की ब्रह्म हत्या पाप को नाश करने के लिये व्रतानुष्ठान कर रहे थे।।२६।।

तीर्थ क्षेत्र संचार करने से उनका चरक नाम पड़ा। यज्ञों में अध्वर्यु के स्थान में यज्ञ करने के कारण उनका नाम चरकाध्वर्यु पड़ा।

वैशंपायन को याज्ञवल्क्य नाम का एक शिष्य था। वह गुरु जी के पास आकर कहता है, हे पूज्य अल्प शक्ति वाले, ये चरकाध्वार्यु आपके पाप को निवारण करने के लिये व्रत करने से क्या लाभ होगा ? मैं अति कठिन व्रत को कर सकता हूँ। इस प्रकार कहा।।२७।।

याज्ञवल्क्य की बातों से क्रुद्ध हुये गुरु कहते हैं - चले जाओ, ब्राह्मण का अपमान करने वाला तुम्हारे जैसा शिष्य हमारे पास नहीं रहना चाहिये। मेरे से सीखे हुए वेद को तुम यही वमन करके चले जाओ।।२८।।

देवरात के पुत्र याज्ञवल्क्य यजुर्वेद मंत्र समूह को वमन कर चले गये। कई मुनियों ने उसको देखा।।२९।।

दूसरे लोग जो बोलते हैं, उसको उसी प्रकार बोलने को छर्दि कहते हैं। छर्दि का अर्थ वमन। याज्ञवल्क्य गुरु जैसे बोले थे वैसे ही उच्चार करते हुये चले गये। आगे उसको अपने शिष्यों को उपदेश देते हुये प्रवर्तन नहीं किया। उस समय वहाँ के तित्तिरि नाम के ऋषि शिष्य वृत्ति न करते हुये केवल एक बार मात्र सुनने से उसको याद किये। उनसे कृष्णयजुर्वेद की तैत्तरीय शाखा बन गयी।

उन मंत्रों के ऊपर की आशा से वे तित्तिरि पक्षी होकर उनको सुनकर सीख लिये। उनसे सुन्दर यजुः शाखायें तैत्तरीय बन गयी।।३०।।

हे मुनि सुनो, याज्ञवल्क्य इसके बाद गुरु से न मिले हुये नये मंत्रों को ढूढ़ते हुये सूर्यनारायण की स्तुति करने लगे।।३१।।

याज्ञवल्क्य कहते हैं - ओम् नाम से पुकारे जाने वाले षड्गुण पूर्ण सूर्य मण्डल के अन्तर्गत

रहने वाले नारायण को नमस्कार। चतुर्मुख ब्रह्मा जी से आरम्भ होकर तृणपर्यन्त रहने वाले जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज नाम के चार विध के प्राणियों के हृदय में नियामक होकर अन्दर बाहर रहने वाले, क्षण, लव, निमेष इत्यादि अव्ययों से वर्धमान वर्ष समूह के उपाधि से आकाश के समान बहुरूप वाले लोगों को दिखाने वाले पूज्य आप अकेले पानी को मेघ रूप से आकर्षण करते हुये वर्षा रूप से उसको वापस लोगों को देते हुये इस जगत का जीवन आप निर्माण कर रहे हैं।।३२।।

हे देवोत्तम प्रकाशमान सवितृ नामक नारायण आपका मण्डल प्रकाशमान है। प्रतिदिन वेदोक्त विधियों से सेवा करने वाले साधकों के समस्त पाप और दुख के मूल रूप में रहने वाले दुष्कर्मों को जलाकर शुद्ध करने वाले आपको हम याद करते है।।३३।।

इस स्तुति में गायत्री के तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहिः इस मंत्र का अर्थ भरा हुआ है।

इस भूमि में अपना आवास किए हुए स्थावर जंगम समूह के मन इन्द्रिय प्राण समूहों के आप स्वतंत्र तत्व वाले स्वामी हैं। आप ही अन्तर्यामी होकर सबको प्रेरणा देते है, नहीं तो उन सबको अचेतन होकर रहना पड़ता है।।३४।।

इस मंत्र में गायत्री के धियो यो नः प्रचोदयात् और सूर्य आत्मा जगतस्त स्थुषश्च इन दोनों मंत्रों का अर्थ गर्भित है।

अत्यन्त कराल अपने मुख को खोलकर समस्त को निगलने के लिये आने वाले अजगर के मुख में शव के समान गिरने वाले इस लोक को परम करुणालु आप प्रतिदिन, प्रति संध्या, अनुकम्पा से अपनी दृष्टिमात्र से उठा कर स्वधर्माचरण रुप श्रेयकार कर्म को करने की प्रेरणा देते हैं। हे देवाधिपति, आप दुर्जनों को भय उत्पन्न करते हुये चारों ओर संचार करते हैं। इन्द्रादि लोकपालक आपको हाथ जोड़कर नमन करते हुये पूजा करते हैं।।३५।।

यहाँ चित्रं देवाना मुदगादनीकं मित्रः कृर्ष्णीनिमषाऽभिचष्टे, यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन इत्यादि वेदमंत्रों का अर्थ निहित है।

हे भगवान! मैं नए वीर्ययुक्त यजुर्वेद मंत्रों को आप से सीखने के लिये आया हूँ। आप तीनों लोकों के गुरु हैं। आपको सारे लोग वंदना करते हैं। कमल के समान रहने वाले आपके चरण कमल के शरण में हूँ।।३६।।

सूत मुनि कहते हैं - इस प्रकार स्तुति करने से कृपा किये हुए भगवान सूर्यनारायण

हयग्रीव रूप से आकर नए वीर्ययुक्त शुक्लयजुर्वेद मंत्रों को याज्ञवल्क्य मुनि को उपदेश दिये।।३७।।

याज्ञवल्क्य उन यजुर्वेद मंत्रों को पन्द्रह शाखाओं में विभाजित किये। वाजसन नाम के सूर्य से आने के कारण इन वेद शाखाओं को वाजसनेय मंत्र कहते हैं। कण्व, माध्यंदिन इत्यादि मुनियों ने उनको ग्रहण किया।।३८।।

सामगान करने वाले जैमिनि के सुमन्तु नाम का पुत्र, उनके पुत्र सुमन्वमुनि। इन दोनों को जैमिनि मुनि एक-एक संहिता का उपदेश दिये।।३९।।

जैमिनि के शिष्य सुकर्म नाम के मुनि महाज्ञानी थे। वे सामवेद नाम के वृक्ष को एक हजार शाखाओं में विभाग किये।।४०।।

कोसल के पुत्र हिरण्यनाभ, पौष्यंजि, सुकर्म मुनि के शिष्य सामवेद शाखा को ग्रहण किये। महाब्रह्मज्ञानी अवन्तय मुनि इनके और एक शिष्य हैं। उनके साथी उदीच्यमुनि दोनो बड़े ज्ञानी थे। वे सामवेद के शाखा को ग्रहण किये। उदीच्य, पौष्यंजि और अवन्त्यर इनके पाँच सौ शिष्य साम गान करते थे। उनको उदीच्य नाम से कहते थे।।४१-४२।।

लौगाक्षि, लांगलि, कुल्य, कुसीद, कुक्षि ये पौष्यंजि के शिष्य हैं। वे भी सैकड़ों संहिता को ग्रहण किये।।४३।।

हिरण्यनाभ के शिष्य कृत नाम के मुनि चौबीस साम संहिता को अपने शिष्यों के लिये उपदेश दिया। अन्य शाखाओं को ब्रह्मज्ञानी अवन्त्य अपने शिष्यों को उपदेश दिये।।४४।।

अथर्ववेद को जानने वाले सुमन्तु मुनि अपने संहिता को शिष्य को उपदेश दिये। वह शिष्य कबन्ध मुनि, अपने शिष्य पथ्य और वेददर्शन को सिखाया।।४५।।

शौक्लायनि ब्रह्मवालि, मोदोष, पिप्लायिनी ये सारे वेद दर्शन के शिष्य हैं। पथ्य के शिष्यों के बारे में कहता हूँ। कुमुद, शुनक, जाबालि ये सारे अथर्ववेद पण्डित हैं।।४६।।

अंगीरस गोत्र के पथ्य के शिष्य शुनक मुनि को बमृरू और सैंधवानय शिष्य होकर दो संहिता का अध्ययन किये। सैंधवानय को सावर्ण्य नाम के अलग शिष्य थे।।४७।।

नक्षत्रकल्प, शान्ति, काश्यप, आंगीरस इत्यादि मुनि अथर्वण वेद संहिता का प्रवर्तक बने। हे मुनि अब पौराणिकों के बारे में कहता हूँ सुनो।।४८।।

त्रय्यरुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, शिंशपायन, हारीष ये छः लोग पुराण के प्रवर्तक हैं। ये वेदव्यास के शिष्य मेरे पिता रोमहर्षण के मुख से एक-एक पुराण संहिता का अध्ययन

किये। उग्रश्रव नाम का मैं उनका शिष्य हूँ। मैं सारी संहिताओं का अध्ययन किया हूँ।।४९-५०।।

काश्यप, मैं और सावर्णि हमारे साथ परशुराम के शिष्य अकृतव्रण इस प्रकार चारों लोग व्यास पुत्र शुकमुनि से चार अन्य मूल पुराण संहिता का अध्ययन किये।।५१।।

वेदव्यास जी के रोमांचन से जन्म लेकर श्रोतृओं को रोमांचन हो इस प्रकार पुराण बोलने वाले सूत को रोमहर्षण नाम पड़ा। इनको बलराम मार कर उसके पुत्र उग्रश्रव को पुराण प्रवर्तक बनाए।

हे मुनि, ब्रह्मर्षियों द्वारा वेद शास्त्रानुसार विचार करते हुये बताये गये पुराणों का लक्षण बताता हूँ सुनो।।५२।।

सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु, अपाश्रय ये दस पुराण के लक्षण है।।५३।।

इन दसों लक्षणों से युक्त कथा को पुराण कहते हैं। हे मुनि, कभी कभी पुराण पाँच लक्षणों से भी युक्त होते हैं। उसको उपपुराण कहते हैं। इस प्रकार पुराण में महापुराण और उपपुराण इस प्रकार भाग हो सकते हैं।।५४।।

मूल प्रकृति के गुणवैषम्य के कारण महत्तत्व उससे त्रिविध अहंकार उससे भूतसूक्ष्म इन्द्रिय विषयों की उत्पति इसको सर्ग कहते हैं।।५५।।

परम पुरुष के अनुग्रह से ये सारे तत्व मिलाकर आयी हुयी कर्मानुसार चराचर इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति जो होती है उनको विसर्ग कहते हैं।।५६।।

प्राणियों को प्राणी आहार होता है। जंगमों को स्थावर आहार बनते हैं। मानवों को कन्द फल और उनकी इच्छानुसार चरु पुरोडाश इत्यादि याग में कर्मानुसार भगवान ने निर्माण किया हुआ अन्न हैं। यह वृत्ति कहलाती है।।५७।।

युगानुसार श्रीहरि प्राणी, मनुष्य, ऋषि और देवताओं के रूप में अवतार लेकर वेद विरोधियों का संहार करते हुये इस प्रपंच की रक्षा करते हैं, इसी को रक्षा कहते हैं।।५८।।

मनु देवताएँ, मनु पुत्र, इन्द्र, ऋषि और भगवान के अंशावतार इन छः का वर्णन करना मन्वन्तर कहा जाता है।।५९।।

मनु से जन्म लिये राजाओं, उनके सन्तान, भूत भविष्य वर्तमान में चलाया हुआ राज्य संचालन वृत्तान्त को वंश कहते हैं। वंश के जब रुकने का सन्दर्भ आता है उस समय उसको

बढ़ाने वाले का चरित्र वंशानुचरित्र कहा जाता है।।६०।।

नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक इस प्रकार चार तरह की प्रपंच संस्था कही जाती है।।६१।।

अविद्या से कर्म करने वाला जीव इस प्रपंच सृष्टि के लिये निमित्त बन गया है। लय काल में भगवान के उदर में वह नींद करता है इस प्रकार कई लोग कहते हैं। अन्य कई लोग अव्याकृताकाश के समान जीव निर्विकार है ऐसा कहते है। और कई लोग जीव की विलक्षणता के बारे में बताते हैं। ऐसे जीव को निमित्त करते हुये भगवान इस प्रपंच की सृष्टि करते हैं। इसी कारण जीव हेतु कहलाता है।।६२।।

जीव के जीवन के लिये आवश्यक जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति नाम के श्रीहरि की इच्छा से निमित्त अवस्थाओं में, वे रहते हुये अथवा न रहते हुये समय में भी श्रीहरि ही आश्रय बन जाते है।।६३।।

अथवा रूप, नाम युक्त पदार्थों में उनके उत्पत्ति से प्रारम्भ होकर नाश पर्यन्त वे रहते हुये अथवा न रहते हुये स्थिति को श्रीहरि ही आश्रय है।।६४।।

ध्यान योग से अथवा शास्त्राभ्यास से भगवान का साक्षात्कार किया हुआ अवस्थात्रययुक्त जीव अपनी अवस्थाओं को दूर करते हुये मुक्त होता है। वह वापस इस संसार को नहीं आता।।६५।।

इन लक्षणों से युक्त पुराण आकृति में छोटे होते हुये भी और कई आकृति में और अर्थों में फल में भी बड़े होते हैं। वे कुल मिलाकर १८ हैं।।६६।।

ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, लिंग, गरुड़, नारद, भागवत, अग्नि, स्कन्द, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, वामन, वाराह, मत्स्य, कूर्म, ब्रह्माण्ड इस प्रकार पुराण अट्ठारह होते हैं।।६७-६८।।

हे मुने, ब्रह्मवर्चस्स् को बढ़ाने वाले और भगवान के प्रभाव को उज्ज्वल रूप से प्रकाशित करने वाले यह पुराण शाखा विभाग ब्रह्मा जी के आदेशानुसार शिष्य, प्रशिष्य, प्रशिष्य परम्परा में चलते आ रहा है।।६९।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में बारहवाँ स्कन्ध में छठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

द्वादश स्कन्धः

अध्याय - सातवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

मार्कण्डेय मुनि की तपोनिष्ठा

शौनक मुनि कहते हैं - वाग्मियों में श्रेष्ठ सज्जन माने जाने वाले हे सूत मुने! आप बहुकाल जीवित रहे। इस घोर अज्ञान के अन्धकार में फिरने वाले मानवों को आप ज्ञान दीप बने हैं। आप ही इस संसार सागर से हमें पार कर सकते हैं।।१।।

मृकण्डु मुनि के पुत्र मार्कण्डेय मुनि चिंरजीव हैं, इस प्रकार लोग स्तुति करते हैं। कल्पलय में सारे जगत को भगवान के निगलने के बाद भी वे जीवित रहते हैं।।२।।

वे भृगुवंश में श्रेष्ठ हैं। हमारे कुल में इस कल्प में ही जन्म लिये हैं। इस कल्प में अभी महत्, अहंकार, पंचमहाभूतों का प्रलय अभी नहीं हुआ है।।३।।

जब यह सारा जगत समुद्र में बदल जाता है तब उसमें अकेले संचार करते थे। उस समय वे वटपत्र के ऊपर सोया हुआ एक पुरुष शिशु का दर्शन किये।।४।।

यह हमारे लिये बहुत संशयों का कारण बना है। आपसे पूछने का कुतूहल उत्पन्न हुआ है। हे महायोगी, आप पुराणों में निष्णात हैं। आप हमारे इस सन्देह का परिहार कीजिये।।५।।

सूत कहते हैं, हे महर्षि! आपका प्रश्न सही है। इस लोक में रहने वाले भ्रम को निवारण करने वाला है। इसमें कलिमल को नाश करने वाले नारायण की कथा आती है।।६।।

मार्कण्डेय मुनि अपने पिता मृकण्डु से ब्राह्मणों के लिए उचित उपनयन संस्कार पाकर धर्म से वेदों का पाठ करते हुये तप और स्वाध्याय में निरत हो गये।।७।।

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते हुये भगवद्भक्त बनकर जटा वल्कलर धारण करते हुये दण्ड कमण्डलू को ग्रहण करते हुये उपवीत और मेखला से सुशोभित हुये।।८।।

कृष्णाजिन, अष्टमाला कुश को धारण कर नियम निष्ठा से अग्नि, सूर्य, गुरु और ब्राह्मणों की सेवा करते हुये संध्या समय में हरिध्यान करते थे।।९।।

शाम को और सुबह भिक्षा स्वीकार करते हुये गुरु को उसका समर्पण करने के बाद बचे

हुये अन्न को दिन में एक बार मौन से ग्रहण करते थे। गुरु की अनुज्ञा के बिना भोजन नहीं करते थे।।१०।।

इस प्रकार लाखों वर्ष तप और स्वाध्याय में निरत होकर हृषीकेश की आराधना किये। न जीतने वाली मृत्यु को जीत लिये।।११।।

इससे ब्रह्मा, भृगु, रुद्र, दक्ष अन्य ब्रह्मपुत्र, मानव, देवताएँ, पितृगण इस प्रकार सारे लोग इसको देखकर बहुत आश्चर्यचकित हो गये।।१२।।

इस प्रकार नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते हुये तप, स्वाध्याय और संयमों से मनोयोग से अन्तर्यामी के अनुग्रह से अपने दुःखों को दूर करते हुये अधोक्षज का ध्यान किये।।१३।।

योगी मार्कण्डेय मुनि इस प्रकार मन को महायोग से भगवान में स्थिर करते हुये तप करते रहे। इस प्रकार छः मन्वन्तर का दीर्घकाल कट गया।।१४।।

हे मुने, मार्कण्डेय के इस तप को सुनते हुये देवेन्द्र डर कर सातवाँ मन्वन्तर में ऋषि के तप को विघ्न करने का प्रयास करने लगे।।१५।।

गन्धर्व अप्सराओं के साथ मन्मथ को वसन्त, मलय मारुत, रजोगुण, व्यर्थकर्म, मद का अभिमानी देवताओं के साथ मार्कण्डेय मुनि के पास भेज दिये।।१६।।

हे मुनि! ये सारे मिलकर ऋषि के आश्रम को चले गये। वह आश्रम हिमालय पहाड़ के उत्तर की दिशा में था। वहाँ पुष्पभद्र नदी बहती है। चित्रा नाम के एक पत्थर के ऊपर बैठकर मुनि जप करते थे।।१७।।

पुण्यकर आश्रमप्रदेश पुण्यकर वृक्ष लताओं से भरा था। पुण्यकर पक्षी वहाँ समूह में रहते थे। वहाँ पुण्यकर जलाशय भरे हुये थे।।१८।।

मदमत्त भृगों का संगीत, मद से गायन करने वाले कोयलों की मधुर ध्वनि मयूरों का नृत्य विलास, गूंजने वाले पक्षिसमूह वहाँ भरे हुए थे।।१९।।

अण्डे, झील, पानी को सींचते हुये पुष्प से भरे हुये वृक्षों के बीच में बहने वाला मन्द मारुत काम का उ‌द्दीपन करते हुये आश्रम में प्रवेश किया।।२०।।

शाम के समय आकाश में चन्द्रमा प्रज्ज्वलित हो रहा है। वृक्षों की कलियाँ में, फूलों में, मधुकर गूंज रहे हैं। वृक्ष समूह में गान करते हुये वसन्त भी अपना दर्शन दिया।।२१।।

संगीत वाद्य बजते हुये गन्धर्व लोग उनके पीछे-पीछे आ रहे थे। अप्सराओं के झुण्डों को

नायक बना हुआ मन्मथ भी अपने धनुर्बाण को लेकर प्रकटित हुआ।।२२।।

उस समय मार्कण्डेय मुनि अग्नि में शाम के समय में याग को पूर्ण कर खड़े हुये थे। अधखुले आँखों से किसी से विचलित न होने वाले साक्षात अग्नि के समान खड़े हुये थे। ऐसे मुनि को देवेन्द्र के शिष्य समूह देखे।।२३।।

उनके सामने अप्सरायें नृत्य किए, गायक गाये, मृदंग वीणा, प्रणव इत्यादि वाद्यों के साथ मनोहर गान गये।।२४।।

मन्मथ समय साधते हुये अपने धनुष में पाँच नुकीले बाणों को जोड़ दिया। वसन्त मद, रज, स्तोभ इत्यादि इन्द्र के सेनानी मुनि को विचलित करने के लिये सिद्ध होकर खड़े हो गये।।२५।।

पुंजकिस्थली नाम की अप्सरा गेंदों से खेलने लगी। अपने स्तन के भारों से उसकी कटि हिल रही थी, कबरी से फूल गिर रहे थे।।२६।।

इधर उधर देखते हुये चंचलकटाक्ष करते हुये गेंद के पीछे दौड़ते समय उसका कमरबन्ध छूट गया। हवा से उसकी साड़ी उड़ गई।।२७।।

इस समय को साधते हुये मन्मथ अपने पाँचों पुष्प बाणों को मार दिया। अपने जीत का अहंकार करते हुये खड़ा हुआ। किन्तु यह सारा प्रयत्न दरिद्र के प्रयत्न के समान व्यर्थ हुआ।।२८।।

हे मुनि! वे लोग इस प्रकार अपचार करते हुये मुनि के तेज से अपने शरीर दहने के कारण साँप को देखे हुये बच्चों के समान भाग निकले।।२९।।

इस प्रकार इन्द्र के सैनिक महामुनि के दौर्जन्य से भाग गये। तो भी मुनि अपनी जीत से अहंकार नहीं किये। महात्माओं में ऐसा होना कोई आश्चर्य नहीं है।।३०।।

मन्मथ का परिवार सारे हारकर निःस्तेज हो गये। इस ब्रह्मर्षि के सामर्थ्य को सुनकर भगवान इन्द्र बहुत विस्मित हो गये।।३१।।

इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि तप, स्वाध्याय, संयमों से मन को अपने वश में रखकर अपने तप को बढ़ाये। तब उनका अनुग्रह करने के लिये नर सहित नारायण रूपी भगवान श्रीहरि दृश्यमान हो गये।।३२।।

सफेद और काले रंग वाले नया कमल के फूल के समान आँखों वाले, चार बाहु वाले कृष्णाजिन और वल्कल धारण करते हुये हाथ में कुश की पवित्र धारण किये हैं। जनेऊ सुशोभित छाती, कमण्डलू और दण्ड को धारण किया हुआ हाथ वाले नर-नारायण मुनि दर्शन दिये।।३३।।

गले में पद्माक्षमाला, मक्खी को भगाने के लिये चामर, हाथ में कुश को धारण किये हुये तपोमूर्ति सामने खड़े हैं। विद्युत के समान शोभायमान प्रभाव वाले, देवोत्तम से पूजित उन्नत शरीर वाले नारायण मुनि दृश्यमान हुये।।३४।।

वे नर-नारायण रूपी दोनों भगवान के अवतार रूप हैं। उनको देखकर मार्कण्डेय मुनि खड़े होकर आदर से दण्डवत् साष्टांग नमस्कार किये।।३५।।

भगवान के दर्शन से आनन्द पाये हुये मुनि की आत्मा इन्द्रिय, मन भर गये। शरीर रोमांचित हो गया, आँखों में आँसू बहने लगने के कारण मुनि भगवान को देख नही पाये।।३६।।

दोनों हाथो को जोड़कर, सिर को झुकाकर उत्सुकता से आलिंगन करने वाले के समान खड़े होकर मन्द स्वर में नमो नमः इस प्रकार बोले।।३७।।

आये हुये नर-नारायण मुनि को आसन देकर, पाद धोकर, अर्घ्य को अर्पित करते हुये गन्ध को लेपित करते हुये धूप, पुष्पों से अर्चना किये।।३८।।

उनके सुख रूप में आसन में बैठने के बाद अनुग्रह करने वाले उनके पादों के ऊपर सिर रखते हुये जगद्गुरु के गुरु बनने वाले उन दोनों के सामने मार्कण्डेय मुनि इस प्रकार बोले।।३९।।

मार्कण्डेय कहते हैं, हे प्रभु आपकी अनन्त महिमा को मैं कैसे वर्णन कर सकता हूँ, आपकी प्रेरणा से मुख्य प्राण काम करते है। उनकी प्रेरणा से हमारे मन, इन्द्रियों का चलन होता है। इतना ही नहीं ब्रह्मा, रुद्र इनके भी मन इन्द्रिय आपकी प्रेरणा से ही काम करते हैं। स्वतः आपके बाद मन, इन्द्रिय केवल आपकी प्रेरणा से ही स्पन्दित होते हैं। इस प्रकार पूर्ण रूप से स्वतंत्र रूप से रहने वाले आप भक्तों के भक्तिपाश से बद्ध हैं।।४०।।

हे भगवान! आपके ये दोनों नर-नारायण रूपों को तीनों लोकों के क्षेम के लिये, तप परिहार के लिये, मृत्यु को जीतने के लिये आप व्यक्त करते हैं। प्राकृत शरीर रहित आप इस प्रकार अनुपम अनेक रूपों में व्यक्त होते हैं। इस सारे जगत को पहले के जैसे पुनः सृष्टि करते हैं। फिर मकड़ी की तरह आप ही उसको निगल लेते हैं।।४१।।

जिनके पादों में शरण आये हुये भक्त को दुष्कर्म, गुणत्रय, जनन-मरण आदि काल शुक्रशोणित रूप वाले रज इत्यादि स्पर्श भी कर नहीं सकते है। वेद के तात्पर्य को समझने वाले मुनि आपकी प्राप्ति के लिये जिस पाद के शरण में आते और सदाकाल उन्हीं की स्तुति करते हुये नमस्कार करते हैं, आराधना करते हैं और ध्यान करते हैं वह पाद स्थावर जंगमों के स्वामी आप का है।।४२।।

हे मुक्ति स्वरूप प्रभु! आप सबके भय का निवारण करने वाले हैं। आपके पाँवों में शरण आने वाले को आपको छोड़कर अन्य कोई स्थान नहीं है। द्विपरार्ध काल रहने वाले सत्यलोक के अधिपति ब्रह्मा जी भी काल स्वरूपी आपसे बहुत डरते हैं। तो ब्रह्मा जी से निर्मित शरीर वाले अन्य लोग आप से डरते हैं ऐसा अलग क्या कहना है ?।।४३।।

यह देह इन्द्रिय निष्प्रयोजक हैं। अमंगलकारी अज्ञानी आत्म नाश के कारण इस प्रकार समझते हुये मैं उनको त्याग कर सारे जीवों के गुरु रूप निश्चल बुद्धि वाले भगवान आपके पाद मूल में शरण आया हूँ और जानता हूँ कि आप ही हमारे इष्टार्थों को पूर्ण करने वाले है।।४४।।

सत्व, रज, तम ये तीनों गुण आपकी इच्छा के अधीन हैं। सृष्टि, स्थिति और लय के साधन बने हैं। आप जगत निर्माण की लीला करने के लिये उनका ग्रहण करते हैं फिर भी उनमें सात्विक रहने वाले जीवों को मुक्ति मिलती है। अन्य रज, तम वाले साधन नहीं बनते। उनसे मोह, भय ही उत्पन्न होते हैं। इसी कारण हे भगवान ज्ञानियों को, आपको, आपके भक्तों को भी प्रिय आपके सत्व गुण प्रवर्तक मूर्ति को ही लोग भजन करते हैं। सात्विक सज्जन तत्व प्रवर्तक आपके पुरुष नाम के रूप की उपासना करते हैं क्योंकि तत्व गुण से यहाँ लोक अभय और आत्म सुख को पाते हैं। अन्य रज, तम सुख के साधन नहीं बनते।।४६।।

विश्व नामक, विश्व गुरु, सबसे श्रेष्ठ देव, नारायण ऋषिरूप, नर होकर अवतार लिये, सर्वोत्तम दोषरहित, मितभाषी, वेदाधिपति, पूर्ण, पुरुषरूप भगवान आपको दण्डवत् नमस्कार।।४७।।

हे **वितत**, व्याप्त भगवान **अक्षपथैः** शब्दादि विषयों से बुद्धि जिसकी भ्रमित हो गयी है वह आपको समझ नही सकता। आप उसके इन्द्रिय, प्राण, हृदय में इतना ही नहीं उसके दृग्गोचर पथ में सर्व पदार्थों में वास करते हैं। किन्तु वह आपको पहचानता नही। विषय भोग के लिये ही योग्य वह जगत के गुरु आपके बारे में प्रमाण पाने के बाद भी आपकी माया से मोहित होकर आपको समझने में शक्त नहीं होता।।४८।।

भगवान के तत्व रहस्य को प्रकाश करने वाला ज्ञान तत्वनिर्णय करने वाले केवल वेदों में लभ्य है। विष्णु पारायण होकर उपासना प्रयत्न करते हुये भी ब्रह्मादि ज्ञानी लोग आपके विषय में मोह के वश में होते हैं। सारे वाद-विवाद विषयों के विरुद्ध विलक्षण स्वभाव वाले आप हैं। आप जीवात्मा को अज्ञात स्वरूप हैं। ऐसे परम पुरुष आपको हम नमस्कार करते हैं।।४९।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में बारहवाँ स्कन्ध में सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

द्वादश स्कन्धः

अध्याय - आठवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

महाप्रलय का दर्शन

सूत मुनि कहते हैं - ज्ञानी मार्कण्डेय मुनि इस प्रकार नर-नारायण की स्तुति किये। उससे सम्प्रीत हुये नर-सखा नारायण इस प्रकार कहे।।१।।

श्री भगवान कहते हैं - हे मुनि, तुम श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि हो। मुझमे स्थिर भक्ति, तप, स्वाध्याय और संयम से उपासना करते हुये मेरा ज्ञान पाकर कृतकृत्य हुये हो।।२।।

तुम्हारे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रताचरण से मैं सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारा मंगल हो। मैं तुम जो चाहते हो वह वर देता हूँ। तुम वर माँगो।।३।।

मार्कण्डेय ऋषि कहते है - हे देवदेव, भगवान, स्वामी, भक्तों का दुःख नाश करने वाले हे अच्युत, आपकी जय हो। आप मुझे दर्शन दिये हैं। यही मेरे लिये बड़ा वर है। मैं इससे सन्तुष्ट हूँ। मुझे यही बस है।।४।।

ब्रह्मादि भी भक्ति योग से परिपक्व मन से आपके श्रीपादकमल का दर्शन चाहते हैं। ऐसे आप मुझे मेरी आँखों के सामने आकर दर्शन दिये हैं।।५।।

ऐसा होते हुये भी हे कमलाक्ष, पुण्यश्लोक शिखामणि मैं आपकी अचिन्त्याद्भुत शक्ति का दर्शन करना चाहता हूँ। आप उसी शक्ति से इस लोक और लोकपालकों का भी नियमन करते हैं। आप मे वे इस सकल प्रपंच के वैलक्षण्य को जान सकते हैं।।६।।

सूत कहते हैं, हे मुनि! मार्कण्डेय मुनि इस प्रकार बोलकर उनकी पूजा किये। तब भगवान हंसते हुये वैसा ही हो, इस प्रकार बोलकर बदरिकाश्रम चले गये।।७।।

ऋषि अपने आश्रम में बैठे हुये भगवान के अचिन्त्य अद्भुत शक्ति के दर्शन के बारे में चिन्तन करते हुये अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश इत्यादियों के साथ अपने में भी रहने वाले श्रीहरि का ध्यान करते हुये अपने मन की वासना से निर्मित द्रव्यों से भगवान की अर्चना करने लगे। कभी-कभी भक्ति के सुख प्रवाह में डूबे हुये मुनि अपने को भूलकर पूजा-

अर्चना को भी भूल बैठते थे।।८-९।।

हे शौनक मुनि, इस प्रकार समय बीतता रहा। एक दिन संध्या के समय में मार्कण्डेय मुनि पुष्पभद्रा नदी के तट पर बैठे हुये संध्या कर रहे थे। उस समय एकदम चण्डमरुत बहने लगा।।१०।।

उस चण्ड मरुत के भीकर शब्द के पीछे उससे भी भयावह मेघ दिखने लगे। जोर से विद्युत बहने लगी। मुसल से भी मोटी धारा वाली बरसात होने लगी।।११।।

हवा की तीव्रता से उठे हुये बड़े-बड़े तंरगों से क्रूर मगरमच्छों से भरे हुए चारों समुद्र भयंकर भँवरों से आवाज करते हुये भूमि के ऊपर आक्रमण करने लगे।।१२।।

स्वेदज, अण्डज, उद्भिज और जरायुज इस तरह के चार रीति वाला जगत काले बादलों से बरसे हुये पानी में डूब गया। आकाश की बिजली से बचा हुआ जगत जल गया। समुद्र उसके ऊपर आकर उसको भी अपने पेट में रख लिया। इसको देखकर सर्वज्ञ मुनि भी व्याकुल होकर भय से कांपने लगे।।१३।।

इस प्रकार मुनि के देखते-देखते चण्डमरुत से उत्पन्न हुए जल से भरा हुआ, तरंगों से भयंकर दिखने वाला समुद्र और घोर पानी बरसाने वाले मेघ दोनों मिलकर सारे भूमण्डल, पहाड़ पर्वतों के साथ समस्त भूमि को जलावृत किये।।१४।।

भूमि, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, नक्षत्रों के साथ तीनों लोक एक साथ जलावृत हुये हैं। उस समय केवल मार्कण्डेय एक बचे रहे और वह भी अन्धे के समान इधर-उधर दौड़ते रहे।।१५।।

भूख और प्यास से पीड़ित होकर तिमि-तिमिंगिल से हिंसा पाकर लहरों से और चण्डमरुत से इधर-उधर हिलते हुये अन्धकार में गिरकर दुख सागर में गिरे हुये मुनि दिग् दिशा को न जानते हुये घबरा गये।।१६।।

कभी-कभी पानी के भंवरों में डूबते हुये कभी समुद्र की तरंगों से तैरते हुये परस्पर हिंसा करने वाले जल-जन्तु से पीड़ित होकर दुःख भाजन बने।।१७।।

व्याधि इत्यादि बाधाओं से, कभी शोक, कभी मोह, कभी दुःख, कभी भय, कभी सुख, कभी मरण के संकट को पाते रहे।।१८।।

इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि विष्णु माया से आवृत हुआ। मन वाला उस प्रलय समुद्र में भटकते रहे। ऐसे लक्षोलक्ष्य वर्ष बीतते चले गये।।१९।।

विष्णु माया का अर्थ भगवान की अचिन्त्याऽद्भुत शक्ति। इससे मुनि का अन्तःकरण भर गया था। इसके लिये उसने विष्णु की इस अचिन्त्याऽद्भुत शक्ति से निर्मित हुये प्रलय को लाख-लाख वर्षों के समय तक देखने की सामर्थ्य पाये थे। वह मुनि वास्तविक सत्य को ही देखे। यह कोई उनका भ्रम नहीं है।

इस प्रकार प्रलय सागर में भटकते हुए मुनि एक द्वीप को देखे। वहाँ फलों से, कलियों से भरा हुआ एक वट वृक्ष को देखे।।२०।।

उस वृक्ष के ईशान्य दिशा में एक टहनी के ऊपर एक पत्ती के ऊपर अपने शरीर कान्ति से अन्धेरे को हटाते हुये सोये हुये एक शिशु को देखे।।२१।।

महा मरकत मणि के समान श्यामल वर्ण वाले कान्ति से भरे हुए मुख कमल वाले, शंख के समान गला, विशाल छाती, सुन्दर नासिका और सुन्दर भौंह वाले शिशु को उन्होंने देखा।।२२।।

कर्णाभरण के कान्ति के श्वास से हिलने वाले घुघराले बाल मुख की शोभा को बढ़ाते थे। अमृत के समान शुभ्र हंसी, लाल ओठ की कान्ति से लाल रंग प्रसरित होता था।।२३।।

कमल के अन्दर रहने वाले लाल रंग के समान रहने वाले आँखों के आंचल, मोहक हंसी भरी हुयी आँख, पेट के ऊपर की तीन रेखा जो श्वास के साथ चलते थे। उनसे चलने वाला नाभि, उससे शोभायमान अश्वत्थ के पत्र के समान पेट वाला वह शिशु शोभायमान था।।२४।।

वह शिशु अपनी छोटी-छोटी अंगुलियों से अपने कमल के समान पाँव को हाथ में पकड़ते हुये मुख में रखकर चूस रहे थे। उसको देखकर मुनि विस्मित हो गये।।२५।।

शिशु को देखकर मुनि की थकान चली गई। आनन्द से हृदय कमल खिला। कमल के समान आँख खिली। शरीर में रोमांचन हुये, अद्भुत शिशु की इस लीला को देखते हुये पहले थोड़ा सा भय हुआ। फिर भी मार्कण्डेय मुनि, उस शिशु को देखने और समझने के लिये उसके पास गये।।२६।।

उतने में उस शिशु के श्वास से आकृष्ट होकर मार्कण्डेय मुनि एक मच्छर के समान नाक के द्वार से उस शिशु के शरीर में प्रवेश किये। उनको आश्चर्य हुआ कि यह सारा जगत उस शिशु के पेट में है। उसको देखकर वे आश्चर्यचकित होकर कुछ भी समझ नही सके।।२७।।

आकाश, भूमि, अन्तरिक्ष, नक्षत्र, राशि, पर्वत, समुद्र, द्वीप, खण्ड, दिशायें, सुर-असुर, अरण्य, देश, नदी, नगर, किसान, कुटीर, व्रज, वर्णाश्रमवृत्ति इन सबको वे शिशु के

पेट में देखे।।२८।।

महाभूतों को भौतिक शरीर में अन्य पदार्थों को, अन्य युगों के कल्पभेद से मिले हुये काल को और अन्य व्यवहार योग्य सारी वस्तुओं को इस प्रकार समस्त प्रपंच को यथार्थ रूप में वे अनुभव से वहाँ देखे।।२९।।

वहाँ वे हिमालय को, वहाँ बहने वाली पुष्पभद्रा नदी को, उसके तट में रहने वाले अपने आश्रम को ऋषि इस पूरे प्रपंच को देखे। उसको देखते देखते वे उस शिशु के निःश्वास से बाहर आकर प्रलय समुद्र में गिर गये। उस प्रलय समुद्र में द्वीप में रहने वाला वट वृक्ष को, उसकी टहनी, उसमें रहने वाला पत्र के ऊपर सोये हुये शिशु को देखे। वह शिशु प्रेमामृत से भरे हुये मन्दस्मित से मुनि को तिरछी नजर से देखता था।।३१।।

उस शिशु रूपी अधोक्षज को अपनी आँखों से देखकर उसे अपने हृदय में भरकर मुनि अत्यन्त हर्ष से उस शिशु का आलिंगन करने के लिए आगे बढ़े।।३२।।

उतने में साक्षात् योगेश्वर श्रीकृष्ण सबके हृदय-गुहा में वास करने वाले वह भगवान मुनि की आँखों से अदृश्य हो गये। सत्य प्रपंच को निर्माण करने में अशक्त रहने वाला माया प्रपंच को निर्माण करे तो वह जैसे अदृश्य होता है उसी प्रकार यह सत्य प्रपंच भी भगवान की लीला से अदृश्य हो गया।।३३।।

इस प्रकार अधोक्षज रूपी उस शिशु के अदृश्य होते ही उसी क्षण में वह अश्वत्थ वृक्ष लोक को डुबोने वाला प्रलय जल सारा अदृश्य हो गया। मुनि यथा प्रकार अपने आश्रम में बैठे थे।।३४।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में बारहवाँ स्कन्ध में आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

द्वादश स्कन्धः

अध्याय - नौ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

महादेव का वरदान

सूत कहते हैं - मार्कण्डेय मुनि इस प्रकार नारायण से निर्माण किए हुए, योग माया से सृष्ट किए हुए प्रलय सृष्टि को अनुभव से देखते हुये उन्हीं नारायण की शरण में आये।।१।।

मार्कण्डेय मुनि कहते हैं - श्री हरि, शरणागतों को अभय देने वाले आपके पाद मूल की शरण में आया हूँ। आपकी माया से ज्ञानी भी अपने अज्ञान से डरते हैं, मोह के वश होते हैं।।२।।

सूत कहते हैं - इस प्रकार श्रीहरि में अपने मन को रखा हुआ मार्कण्डेय मुनि पार्वती के साथ नन्दीवाहन के ऊपर चढ़े, अपने गणों के साथ अन्तरिक्ष में चलने वाले भगवान रुद्र जी को देखे।।३।।

तब पार्वती उस मुनि को देखकर शिव जी से कहती हैं, हे नाथ! आप इस मुनि को देखे। इसकी आत्मा, इन्द्रिय, मन सभी भगवान से भर गये हैं।।४।।

ऋषियों का समूह इस प्रकार रहता है। जैसे वर्षाकाल में समुद्र भर कर रहता है। आप इस तपस्वी को उसके तप के लिये उत्कृष्ट फल दीजिये। आप उत्कृष्ट फल देने में प्रसिद्ध हैं न ।।५।।

श्री महादेव कहते हैं - यह ब्रह्मर्षि किसी फल को नहीं चाहता है। स्वयं अल्पायु होते हुये भी अपने आयुष्य को बढ़ाने के लिये नही चाहा। वह मोक्ष को भी मांगने वाला नहीं है। वह अव्यय भगवान पुरुषोत्तम नारायण में परम भक्ति को पा चुका है।।६।।

तो भी पार्वती मैं इस सत्पुरुष के साथ बाते करता हूँ। सत्पुरुषों के साथ बात करने से सबसे बड़ा लाभ होता है।।७।।

इस प्रकार कहते हुये सज्जनों को आश्रय देने वाले सारे शरीरों के स्वामी सर्वविद्या प्रवर्तक भगवान शिव मुनि के पास आये।।८।।

अहंकार तत्व के अभिमानी सकल जगत के नियामक साक्षात् पार्वती परमेश्वर पास आये है। तो भी मुनि इसको समझ नही सका। वह अपने मनोवृत्ति को खींच कर भगवान में रखने के कारण वह स्वयं अपने को अथवा सामने वाले प्रपंच को नहीं देख रहा था।।९।।

भगवान रुद्र इसको समझ कर छिद्रों से वायु जैसे प्रवेश करती है,वैसे ही अपनी योग-सामर्थ्य से मुनि के हृदयाकाश में प्रवेश किये।।१०।।

बिजली के समान आँख वाले, भूरे रंग वाले, जटा धारण किये हुये, तीन नेत्रों वाले, आठ हाथ वाले, उदय काल के सूर्य के समान प्रकाश वाले, उन्नत शरीर वाले, रुद्र अपने में प्रवेश किये हैं, इसको मुनि ने देखा।।१।।

भगवान शिव शेर का चर्म पहने हुये हैं, शूल, धनुर्बाण, खड्ग चर्म के साथ परशु कपाल, डमरु और अष्टमाला को धारण किये हैं।।१२।।

इस प्रकार हृदय में दर्शन दिये हुये शिव को देखकर विस्मित हुए मुनि आश्चर्यचकित होकर यहाँ महादेव कहाँ से आये ? इस प्रकार चिंतन करते हुये समाधि से बाहर आये।।१३।।

बड़े लोग के आते समय पूजा करते हों तो भी उसको छोड़कर उनका स्वागत करते हुये, उनकी आज्ञा से पूजा करना है। यहाँ जगद्गुरु भगवान शिव जी आये हैं इसके लिये मुनि समाधि से बाहर आ गये।

मुनि आँखों को खोलकर देखते हैं, तीनों लोक के मुख्य गुरु रुद्रदेव, पार्वती और अपने गणों के साथ आये हैं। मुनि सिर को झुकाकर उनको नमस्कार किये।।१४।।

पार्वती और गणों के साथ आये हुये रुद्रदेव को मुनि स्वागत, आसन, पाद्य, अर्घ, गन्ध, माला, धूप, दीप से आराधना किये।।१५।।

मुनि कहते हैं- हे सर्वशक्त प्रभु! आप अपने सामर्थ्य से पूर्ण काम हैं। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ। जगत भी आपसे सुख का अनुभव करता है।।१६।।

भगवान में निष्ठा वाले उत्तम रक्षक अघोर स्वरूप वाले सृष्टि, स्थिति और लय के लिये सत्व, रज, तमों गुणों का उपयोग करने वाले साक्षात् शिव को नमस्कार।।१७।।

सूत कहते हैं - इस प्रकार मुनि की स्तुति को सुनकर सज्जनों को आश्रय देने वाले भगवान महादेव सन्तुष्ट होकर प्रसन्न मन से हंसते हुये कहते हैं।।१८।।

महादेव कहते हैं - हे मुनि! जो चाहे वह वर हमसे मांगो। ब्रह्मा, विष्णु और मैं हम तीनों

श्रेष्ठ वर देने वाले हैं। हमारा दर्शन व्यर्थ होने वाला नहीं है। हमारे से मर्त्य जीव अमृत को पा सकता है।।१९।।

ब्राह्मण, सत्पुरुष, भगवद्भक्त, विषयासक्ति न रहने वाले प्राणियों में दया करने वाले, किसी से द्वेष न करने वाले सर्वत्र भगवान नारायण को समान रीति से देखने वाले हममें एकान्त भक्ति करते हैं।।२०।।

ब्राह्मण श्रीहरि के विशेष सन्निधान पात्र हैं। इसके लिये लोक में रहने वाले समस्त लोगों के साथ लोकपालक भी उनकी वन्दना, अर्चना और उपासना करते हैं। भगवान श्रीहरि सर्वशक्त और स्वतंत्र हैं। उनसे अलग होकर मै या ब्रह्मा जी स्वतंत्र नहीं रहते।।२१।।

मुझमें और ब्रह्मा जी में रहने वाले और अलग भी रहने वाले अच्युत के रूपों में ब्राह्मण थोड़े भी भेद को नहीं देखते हैं। इसी कारण अपने में और लोगों में रहने वाले अच्युत के रूप में भेद नहीं देखते। इसी के लिये हम ब्राह्मणों से प्रेम करते हैं।।२२।।

जल से भरे हुए तीर्थस्थान अथवा पत्थर से बने हुए देव सिर्फ दर्शन मात्र से पवित्र नहीं करते हैं अपितु उनकी सेवा बहुत समय तक करनी पड़ती है। किन्तु आप ब्राह्मण दर्शन मात्र से पावित्र्य को देते हैं।।२३।।

हम ब्राह्मणों को नमन करते हैं। वे तप, स्वाध्याय संयम से वेदों से मुख्य प्रतिपाद्य जीवान्तर्गत भगवान के रूप को अपने में नित्य सन्निहित करते हुये धारण करते हैं।।२४।।

महापापी, अन्त्यज भी आपके बारे में सुनने से, आपके दर्शन से शुद्ध होते है। आपसे बातें करने से नाम स्मरण से शुद्धि होती है। इसके बारे में अलग से क्या कहना है ?।।२५।।

सूत कहते हैं - इस प्रकार चन्द्रशेखर के धर्म रहस्य गर्भ युक्त अमृत के समान बातों को मुनि अपने दोनों कानों से भरपूर पिये तो भी उनको तृप्ति नही हुई।।२६।।

पीछे के समाधि की अवस्था में सुख भोग रहे मुनि बाद में विष्णु माया से दीर्घ समय तक बहिर्मुख होकर बहुत थके हुये थे। भगवान के रुद्र के दर्शन से उनकी थकान चली गई। वे बोले।।२७।।

ऋषि बोलते हैं - हे परमेश्वर! आप जो बोले यह बात हमारे सरीखे छोटे लोगों को मिलने वाली बात नही है। आप आश्चर्य की बात बोल रहे हैं। आप जगत के स्वामी हैं, हम आप लोगों के दास हैं। तो भी आप हमारी स्तुति किये और नमस्कार के बारे में कहे।।२८।।

वस्तुतः शरीर धारण करने वाले हमको ज्ञान देने के लिये बड़े लोग हमें धर्म का उपदेश करते हैं। जैसे कहते हैं वैसे करके दिखाते हैं, करने वाले को प्रोत्साहन देते हैं। काम किये तो स्तुति करते हैं।।२९।।

ऐसा करने से भगवान को अपनी इच्छानुसार किये हुये इन प्रवृत्तियों से उनके सामर्थ्य में कभी कमी नही आती। माया को जानने वाले अपनी माया सामर्थ्य दिखाते हैं। ऐसे सन्दर्भ में उनके सामर्थ्य में क्या कमी होने वाली है ?।।३०।।

भगवान अपनी इच्छा से इस सत्य प्रपंच की सृष्टि करते हुये उसमें अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करते हुये जीवों की इन्द्रियों से उनसे अनेक तरह के कर्मों को करवाते हुये, स्वयं भी करते हुये जीव के समान देखते हैं, दिखाते है। किन्तु जीव के समान थकते नही। स्वप्न में देखने वाला जीव स्वयं थके तो भी स्वप्न दिखाने वाले भगवान क्यों थकते हैं ?।।३१।।

त्रिगुण के स्वामी, ज्ञानादि गुण स्वरूप निर्दोष, अद्वितीय, जगद्गुरु और पूर्ण गुण शरीरी भगवान नारायण को नमस्कार।।३२।।

पूर्ण सद्गुण वाले परमेश्वर आपके दर्शन से बढ़कर मैं और क्या वर आपसे माँगू ? आपके दर्शन मात्र से भक्त पूर्ण काम और सत्यकाम हो जाता है।।३३।।

फिर भी सारे अभीष्ट वरों को देने वाले आपसे और एक वर की याचना करता हूँ। वह यही है कि भगवान अच्युत में, उनके भक्तों में और आप में भक्ति हो यही प्रार्थना करता हूँ।।३४।।

इस प्रकार वह मुनि पार्वती समेत शिव को अपने मनोज्ञ बातों से स्तुति करते हुये वर प्रार्थना को सुनकर भगवान शिव इस प्रकार कहते हैं।।३५।।

हे महर्षि तुम्हारी इच्छा पूर्ति होगी। अधोक्षज भगवान में तुम दृढ़ भक्ति वाले बनोगे। इतना ही नहीं इस कल्प के अन्त तक रहते हुये पुण्य, कीर्ति और अजर अमरत्व तुमको मिले।।३६।।

हे मुनि! त्रिकाल ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य और ब्रह्मवर्चस्व तुमको मिले। मार्कण्डेय महापुराण का प्रवर्तक तुम्ही बनो।।२७।।

सूत कहते हैं - इस प्रकार तीन नेत्र वाले ईश्वर मार्कण्डेय मुनि को वर देते हुये पार्वती को मुनि के तप, स्वाध्याय इत्यादि कर्मों के बारे में और ब्रह्मप्रलय को अनुभव से देखने के

विषय के बारे में बोलते हुये वहाँ से चले।।३८।।

मार्कण्डेय मुनि इस प्रकार महायोग महिमा को पाते हुये श्रीहरि में एकान्त भक्ति करते हुये चिरंजीव होकर आज भी इस संसार में संचार करते हैं।।३९।।

ज्ञानी भगवान मार्कण्डेय मुनि, भगवान के अचिन्त्याद्भुत सामर्थ्य को और वैभव को अनुभव से देखा हुआ इस कथा भाग को तुम्हारे लिये क्रम प्रकार से वर्णन किया है।।४०।।

कई अज्ञ लोग भगवान के इस अचिन्त्याद्भुत वैभव को तात्कालिक भ्रम मानते हैं। किन्तु भगवान की यह महिमा सत्य है, अनादिकाल से प्रति कल्प में इस प्रपंच की सृष्टि होती है। इसकी पुनरावृति देखी गई है। वास्तव में यह भ्रम नहीं है।।४१।।

हे शौनक मुनि! श्रीहरि के माहात्म्य से भरे हुए इस मार्कण्डेय चरित्र को जो कहता है, जो सुनता है, दोनों को बंधक कर्म स्थान बने हुए इस शरीर के कारण संसार में दुःख नहीं होने वाला है।।४२।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में बारहवाँ स्कन्ध में नौवा अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

द्वादश स्कन्धः

अध्याय - दस

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

आवरण पूजा

शौनक मुनि कहते हैं - हे सूत! आप सब वस्तु, क्रिया-विधान को ठीक तरह से जानते हैं। इसी कारण आपसे और एक प्रश्न हम पूछना चाहते है। पंचरात्र सिद्धान्तों में बताया गया भगवद्तप को आप उचित तरह से समझा चुके हैं।।१।।

विष्णु पूजा विधान को बताने वाले शास्त्रों में जो पारंगत हो गये हैं, श्रीपति केशव की आराधना में अंग-उपांग, आयुध, आभरण इनको किन तत्वों से चिन्तन करते हैं ?।।२।।

इनको हमारे लिये कहिये। आपका कल्याण हो। हम विष्णु पूजा विधान के बारे में समझना चाहते हैं। उस पूजा कौशल्य से मर्त्यजीव मुक्ति पाता है।।३।।

सूत कहते हैं - गुरु को नमस्कार करते हुये वेद आगम और पंचरात्रों से ब्रह्मादि गुरुगण विष्णु विभूति के बारे में जो प्रतिपादन किए हैं, उसको कहता हूँ ।।४।।

प्रकृति तत्व, महत्तत्व, अहंकार तत्व, मन, पंचभूत इन नौ तत्व और इन्द्रिय इत्यादियों से यह ब्रह्माण्ड निर्मित हुआ है। इसमें चेतन बसते हैं। तीनों लोक उसमें आविष्ट है।।५।।

यह ब्रह्माण्ड परमपुरुष के प्रतिमा रूप में है। उसमें भूमि उनका पाँव है। स्वर्ग सिर है, अन्तरिक्ष नाभि, सूर्य आँख, वायु नाक, दिशायें कान हैं।।६।।

दक्ष प्रजापति गुह्य है, मृत्यु गुद, लोक पाल बाहु, चन्द्र मन, यम भौं।।७।।

लज्जा ऊपर का ओष्ठ है, लोभ नीचे का ओष्ठ है। चाँदनी उनकी कान्ति है। भ्रम दर्प है। वृक्ष उनके रोम हैं। मेघ सिर के बाल हैं।।८।।

इस ब्रह्माण्ड की प्रतिमा में लोक परिमाण के अनुसार जिसका परिमाण है उसके अन्दर परमपुरुष को भी उसके अनुसार अव्यय परिणाम होते हैं।।९।।

कौस्तुभमणि के समान अपने अधीन ब्रह्म नाम की ज्योति को भगवान धारण किये हैं। साक्षात् श्रीदेवी, श्रीवत्स की प्रभा को व्याप्त किये हैं। श्रीदेवी प्रभा से व्याप्त रहने वाला श्रीवत्स

चिन्ह को भगवान छाती में धारण किये हैं।।१०।।

अपनी माया के रूप श्रीदेवी का अनेक गुणों वाले वनमाला के रूप को धारण किया है। वेद रूप पीताम्बर को धारण किये हैं। अ, उ, म इन तीनों वर्ण युक्त ॐ नाम के अक्षर को यज्ञोपवीत के रूप में धारण किये हैं।।११।।

ज्ञान और कर्म को मकर कुण्डल रूप में धारण किये हैं। सर्वलोक नमस्कृत सत्य लोक को किरीट रूप में धारण किये हैं।।१२।।

विकार रहित शेष को अपने आसन बनाये है। धर्मज्ञानादि युक्त सत्व गुणाभिमानी श्रीदेवी को पद्म रूप में धारण किये है।।१३।।

ओज, सहन, बल से युक्त मुख्य प्राण तत्व को गदा के रूप में धारण किये हैं। जड़ तत्व को शंख के रूप में, तेज तत्व को सुदर्शन रूप में धारण किये हैं।।१४।।

आकाश के समान नीले रंग वाले आकाश तत्व को खड्ग के रूप में, तमो गुण से आच्छावदक तमो गुण को ढाल बनाकर धारण किये हैं। काल रूप शार्ङ्गधनु को और पुण्य रूप दो तूणीर धारण किये हैं।।१५।।

इस परम पुरुष को इन्द्रिय ही बाण हैं, पृथ्वी रथ, शब्दादि तन्मात्रा रथ के बाह्य अभिव्यक्रितरूप रथिक की क्रिया ही कर्मेन्द्रिय विषय बने हैं।।१६।।

चक्राब्ज मण्डल ही देव का पूजा स्थान, भगवान के निर्माण होने वाले शरीर शुद्धि ही दीक्षा, भगवान की पूजा ही पाप का परिहार।।१७।।

पूर्ण ऐश्वर्यादि गुण स्वरूप लीला कमलधारी केशव ही पूज्य दैव, धर्म और यश दोनों पूजा का चामर व्यजन।।१८।।

जिससे भय न रहने वाला अपना स्वर्ग वैकुण्ठ की अभिमानी श्रीदेवी श्वेत छत्र बनी हैं। गरुड नाम के तीनों वेद इस यज्ञपुरुष को धारण करते हैं।।१९।।

नित्यावियोगिनी श्रीदेवी श्रीहरि की अर्धांगिनी। पार्षदों में विष्वक्सेन तन्त्रग्रन्थ के अभिमानी।।२०।।

नन्द सुनन्द इत्यादि आठ द्वारपालक हैं। अणिमादि सिद्धियाँ श्रीहरि के आश्रित हैं। हे मुने, इस आवरण रूप में मूर्ति के स्थान में परमपुरुष वासुदेव स्वयं संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध के रूप में हैं।।२१।।

वाह्य विषय के पदार्थ का ज्ञान देने वाले भगवान विश्व कहलाते हैं। स्वप्न में मन, इन्द्रियों में रहने वाले वासना मय पदार्थ को दिखलाते हुये तेजस नाम से हैं। आश्रय के सुषुप्ति के बारे में मैं नींद किया यह अनुभव देने वाले प्राज्ञ नामक भगवान है। ज्ञान को स्वरूप सुख ज्ञान बनते हुये तुरीय रूप में हैं।।२२।।

इस प्रकार अंग, उपांग, आयुध, आभरण इन चारों के, चार रूप में रहने वाले भगवान जगदीश्वर श्रीहरि धारण करते हैं।।२३।।

हे ब्राह्मणोत्तम! वह परमपुरुष वेदवेद्य, स्वयं प्रकाश, अपनी महिमाओं से पूर्ण, आदिकर्ता अपनी इच्छा से इस जगत का सृजन करते हैं, लय करते है, पालन भी करते हैं। इस प्रकार उपासना करने वाले को उसी प्रकार दर्शन देते हैं। उनकी दृष्टि से बचकर रहने वाला आवरण और कोई नहीं है। वह अपने भक्तों को स्वयं लभ्य होते हैं।।२४।।

हे कृष्ण, अर्जुन सखा, यादव श्रेष्ठ, लोक कंटक दुष्ट क्षत्रियों का नाशक, देवताओं की प्रशंसा का पात्र, पराक्रमी, वेदवेद्य, गो-ब्राह्मण, क्लेश परिहार के लिये अवतार लिये हे भगवान आप पवित्र कीर्ति वाले, आपकी कथा श्रवण से मंगल देने वाले आप हमारी रक्षा करें।।२५।।

परमपुरुष के अंग-उपांग, आयुध, आभरण नाम के इन चारों लक्षणों को जो प्रातःकाल में उठकर स्नान-संध्यादि करने के बाद शुद्ध होकर एकाग्रचित्त होकर जप करता है, वह अपने हृदय गुहा में रहने वाले गुणपूर्ण विष्णु की ज्ञान भक्ति को पाता है।।२६।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में बारहवाँ स्कन्ध में दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

द्वादश स्कन्धः

अध्याय - ग्यारहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

द्वादश मासों में द्वादश सूर्य

शौनक मुनि कहते हैं - हे सूत, पहले राजा परीक्षित ने सूर्यांतर्गत नारायण की उपासना करने के उ॰श्य से शुकदेव से पूछा था। पूज्य शुकदेव उसके उत्तर रूप में सूर्यरथ में प्रति मास में सात-सात के अलग-अलग गण रहते हैं। इस प्रकार उत्तर दिये थे (भागवत ५-२१-१७)।।१।।

ब्रह्मादि लोक पालकों से युक्त रहे, उन गणों के नाम, कर्मों को सूर्य के अन्तर्यामी होकर रहने वाले नारायण की स्थिति को उनके चारों ओर रहने वाले गणों की स्थिति को हम सुनना चाहते हैं, आप बताइये।।२।।

सूत कहते हैं- अनादि अविद्या से यानी भगवान की इच्छा से ही सारे शरीरों के अन्तर्यामी भगवान नारायण से ही निर्माण किये हुये लोक प्रवृत्ति के कारण यह सूर्यादि ग्रह मण्डल लोक परिभ्रमण करता रहता है।।३।।

अनादि अविद्या का अर्थ अप्रमाणिक अनिर्वचनीय अविद्या नहीं है। प्रामाणिक अविद्या भगवान की इच्छा के अनुसार रहती है। इस प्रकार स्कन्द पुराण में कहा गया है। स्कन्द पुराण आगे कहता है – हे अनन्त महामाया, अविद्या, नियति, मोहनी, प्रकृति वासना, इस प्रकार अनेक तरह की आपकी इच्छा शक्ति अन्यान्य नामों से प्रसिद्ध है।

द्वादश सूर्यों में भी केवल सूर्यनारायण अकेले व्याप्त होकर रहते हैं। वे समस्त लोकों के स्वामी हैं। सूर्योदय और सूर्यास्त करने वाले हैं। सर्ववेदोक्त कर्माचार के मूल कर्ता हैं। ऋषि उनको बहुरूप नामों से पुकारते हैं।।४।।

प्रातरुत्थाय संन्ध्यामुपासीत इस प्रकार वेद की विधि रहने से बारह मासों में धात्रादि बारह नाम रूपों से एक ही विष्णु उदय अस्त को करते हुये लोगों से वेदोक्त सन्ध्यादि कर्मों को करवाते हैं। बारह आदित्यों के अन्त में विष्णु स्वयं हैं। अन्य ग्यारह धातृ इत्यादि आदित्य में रहने वाले विष्णु के रूप हैं। समस्त रूप में विष्णु एक ही है।

प्रातरादि काल, सम इत्यादि देश, संन्ध्या इत्यादि क्रियानुष्ठान, कर्म कर्ता, कारण इन्द्रिय कार्यवाह देह, वेदादि आगम, चरु इत्यदि द्रव्य, स्वर्गादि फल इस प्रकार अनादि श्रीहरि

अपनी इच्छानुसार नौ स्थानों में नौ रूपों में, नौ नामों से पहचाने जाते हैं।।५।।

इसी प्रकार मधु इत्यादि द्वादश मासों में कालरूपी भगवान लोक प्रवृत्ति के लिये द्वादश गणों के साथ अलग-अलग रूप में संचार करते हैं।।६।।

मधु-माधव, शुक्र-शुचि, नभस्-नभस्य, इष-ऊर्ज, सहस्-सहस्य, तपस्-तपस्या ये चैत्र, वैशाखादि बारह मासों के अन्य नाम हैं।

हे मुनि, धातृ नाम का सूर्य, कृतस्थली नाम की अप्सरा, हेति नाम का राक्षस, वासुकी नाम का नाग, रथकृत नाम का बढ़ई, पुलस्त्य ऋषि, तुंबुरु नाम का गन्धर्व ये सात चैत्र मास नियामक विष्णु की आराधना करते हुये उस मास को चलाते हैं।।७।।

अर्यम नाम के सूर्य, पुलह नाम के ऋषि, ओज नाम के बढ़ई, प्रहेति नाम के राक्षस, पुन्जिक स्थलि नाम की अप्सरा, नारद नाम का गन्धर्व और कच्छनीर नाम का नाग ये वैशाख मास में मधुसूदन की आराधना करते हुये मास चलाते हैं।।८।।

मित्र नाम का सूर्य, अत्रि नाम के ऋषि, पौरुषेय नाम का राक्षस, तक्षक नाम का नाग, मेनका नाम की अप्सरा, हहा नाम का गन्धर्व, रथस्वन नाम का बढ़ई ये ज्येष्ठ मास में त्रिविक्रम नाम की आराधना करते हुये मास चलाते हैं।।९।।

वशिष्ठ नाम के ऋषि, वरुण नाम का सूर्य, रम्भा नाम की अप्सरा, सहजन्य नाम का राक्षस, हूहू नाम का गन्धर्व, शुक्र नाम का नाग, चित्रस्वन नाम का बढ़ई ये आषाढ़ मास में वामन की आराधना करते हुये मास चलाते हैं।।१०।।

इन्द्र नाम का सूर्य, विश्वावसु नाम का गन्धर्व, स्रोत नाम का बढ़ई, एलापत्र नाम का नाग, अंगिरा नाम के ऋषि, प्रम्लोचा नाम की अप्सरा, स्वर नाम का राक्षस, ये श्रावण मास में श्रीधर की उपासना करते हुये मास चलाते हैं।।११।।

विवस्वान नाम का सूर्य, उग्रसेन नामक गन्धर्व, व्याघ्र राक्षस, असारण नाम का बढ़ई, भृगु ऋषि, अनुम्लोचा नाम की अप्सरा, शंखपाल नाग, ये भाद्रपद मास में हृषीकेश की आराधना करते हुये मास चलाते हैं।।१२।।

पूषण् नाम का सूर्य, धनंजय नाग, वात नाम का राक्षस, सुषेण नाम का बढ़ई, शुचि नाम का गन्धर्व, घृताचि नाम अप्सरा, गौतम नाम के ऋषि ये माघ मास में माधव की आराधना करते हुये मास चलाते हैं।।१३।।

ऋतु नाम की अप्सरा, वर्च नाम का गन्धर्व, भारद्वाज नाम का ऋषि, पर्जन्य नाम का सूर्य, सेनजित् नाम का बढ़ई, विष नाम का राक्षस, ऐरावत नाम का नाग, ये फाल्गुन मास में

गोविन्द की आराधना करते हुये मास चलाते हैं।।१४।।

अंशु नाम का सूर्य, कश्यप नाम का ऋषि, तार्क्ष्य नाम का बढ़ई, धृतसेन् नाम का गन्धर्व, उर्वशी नाम की अप्सरा, विद्युच्छंकु नाम राक्षस, महाशंख नाम का नाग ये मार्गशिरा मास में केशव की आराधना करते हुये मास चलाते हैं।।१५।।

भग नाम का सूर्य, स्फूर्ज नाम का राक्षस, अरिष्टनेमी नाम का ऋषि, ऊर्ण नाम का गन्धर्व, आयु नाम का बढ़ई, कर्कोटक नाम का नाग, पूर्वचित्ति नाम की अप्सरा ये नारायण की आराधना करते हुये पुष्य मास को चलाते हैं।।१६।।

त्वष्ट्रा नाम का सूर्य, ऋचीकपुत्र भार्गव नाम ऋषि, कम्बल नाम का नाग, तिलोत्तमा नाम की अप्सरा, ब्रह्मरात नाम का राक्षस, शतजित नाम का बढ़ई, धृतराष्ट्र नाम का गन्धर्व ये पद्मनाभ की आराधना करते हुये आश्विन मास को चलाते है।।१७।।

विष्णु नाम का सूर्य, अश्वतर नाम का नाग, रम्भा नाम की अप्सरा, सूर्यवर्च नाम का गन्धर्व, अश्व नाम का राक्षस, सत्यक नाम का बढ़ई, विश्वामित्र नाम का ऋषि ये दामोदर की आराधना करते हुये कार्तिक मास को चलाते हैं।।१८।।

ये सारे सूर्यांतर्गत नारायण के विभूति रूप हैं। प्रतिदिन तीनों संध्या के समय में इनका स्मरण करे तो सकल पाप परिहार करते हैं।।१९।।

बारह मासों में सूर्य नारायण ऋषि, गन्धर्व आदि छः अनुचरों के साथ सर्वत्र संचार करते हुये अनुचरों को भी इहपर में निर्दुःख आनन्द का अनुभव देते हैं।।२०।।

इन अनुचरों में ऋषि प्रभु के स्तुति करने वाले सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद के मंत्रों से स्तुति करते हैं। गन्धर्व भगवान के गुणों का कीर्तन करते है। अप्सराएँ नाचती हैं।।२१।।

नाग रस्सी बनकर सूर्य रथ को बांधते हैं। बढ़ई रथ को जोड़ते हैं। बलशाली राक्षस पीछे से रथ को ढकेलेते हैं।।२२।।

वालखिल्य नाम की साठ हजार निर्मल ब्रह्मर्षिगण प्रभु के अभिमुख होकर स्तुति करते हुये आगे-आगे चलते हैं।।२३।।

इस प्रकार आद्यन्त रहित जन्म रहित सर्वशाक्त भगवान श्रीहरि प्रतिकल्प में अपने को स्वयं बहुरूपी करते हुये सारे लोकों को चलाते हैं।।२४।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में बारहवाँ स्कन्ध में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

द्वादश स्कन्धः

अध्याय - बारहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

भागवत की विषयानुक्रमणिका

सूत कहते हैं - हे लोक धारण करने वाले महात्मा! सृष्टिकर्ता भगवान श्रीकृष्ण को नमस्कार करते हुये ब्रह्मज्ञानियों की वंदना करते हुये सनातन धर्मों के बारे में कहता हूँ।।१।।

हे मुने, आप अब तक सुने। विष्णु की अद्भुत चरित्र वाली भागवत को मैं कहा हूँ। वह सत्पुरुषों के लिये सुनने योग्य है।।२।।

इस भागवत में सर्वपाप परिहारक भगवान श्रीहरि मुख्य रूप से वर्णित हैं। वे ही साक्षात् नारायण हैं। वे सज्जनों के स्वामी हृषीकेश भगवान हैं।।३।।

इस जगत की सृष्टि, लय करने वाले रहस्य परब्रह्म तत्व के बारे में भागवत में कहा गया हैं। इस विषय के बारे में ज्ञान-विज्ञान तथा सज्जनों की कथाएँ कही गई हैं।।४।।

यहाँ भक्तियोग का विवरण दिया गया है। भक्ति के साथ वैराग्य को दिखाने वाले राजा परीक्षित की कथा तथा नारद का उपाख्यान कहे गये हैं।।५।।

राजर्षि परीक्षित को विप्रशाप मिलने के कारण वे प्रयोपेश किये। ब्रह्मर्षियों में श्रेष्ठ शुकदेव और राजा का संवाद चला। यह प्रथम स्कन्द में वर्णित है।।६।।

द्वितीय स्कन्ध में योगधारण से देह को छोड़ने का विधान, ब्रह्म-नारद का संवाद, भगवान के अवतार की कथा, प्रकृति से सृष्टि की उत्पत्ति कही गई है।।७।।

तृतीय स्कन्ध में विदुर उद्धव का संवाद, विदुर मैत्रेय का समागम, पुराण संहिता का विषय कहा गया है। प्रलयकाल में भगवान आदिशेष के ऊपर सोये थे यह भी कहा गया है।।८।।

प्रकृति से महत्तत्व अहंकार तत्व, पंचभूत नाम के सात विकारों की सृष्टि उसके बाद ब्रह्माण्ड सृष्टि उसमें ब्रह्मा की उत्पत्ति बताई गई है।।९।।

स्थूल सूक्ष्म कालस्वरूप, पद्म की उत्पत्ति, समुद्र से भूमि का उद्धरण किया हुआ वराह अवतार हिरण्याक्ष वध कहे गये हैं।।१०।।

देव, तिर्यक् और असुरों की सृष्टि, रुद्र सृष्टि, अर्ध नारी-नर रूप ब्रह्मा से स्वायंभुव मनु और उनकी पत्नी प्रथम स्त्री शतरूपा की सृष्टि कर्दम प्रजापति की धर्मपत्नी देवहूति में नव कन्याओं की उत्पत्ति बताई गई है।।११-१२।।

कर्दम से ही देवहूति में भगवान कपिल नाम का अवतार होता है। सर्वज्ञ कपिलदेव का अपनी माँ देवहूति के साथ किया हुआ संवाद कहा गया है।।१३।।

चतुर्थ स्कन्ध में मरीचि इत्यादि नवप्रजापतियों की सृष्टि, उनसे की हुयी सन्तान उत्पत्ति के बारे में कहा गया है। उसके बाद दक्षयज्ञ का नाश, ध्रुव, पृथु, प्राचीनबर्हि का चरित्र उक्त है।।१४।।

हे मुनिगण! यहाँ प्राचीनबर्हि और नारद का संवाद भी कहा गया है। बाद में पंचम स्कन्ध मे प्रियव्रत, नाभि, ऋषभ, भरत इत्यादि चक्रवर्तियों का चरित्र वर्णित है। सप्तद्वीप, सप्त समुद्र, गिरि, वर्ष, नदी इनका वर्णन भी आता है।।१५।।

ज्योतिर्मण्डल का विस्तार पाताल और नरक की स्थिति वर्णित हैं। आगे षष्ठ स्कन्ध में सकल पाप परिहारक अजामिल की कथा आती है। प्रचेतस से दक्ष प्रजापति का जन्म, दक्ष पुत्रियों की सन्तान, देव, असुर, मानव, पशु, वृक्ष, पक्षी इनकी उत्पत्ति कही गई है। वृत्रासुर की उत्पत्ति और नाश, दिति के पुत्र हिरण्यकश्यप की उत्पत्ति कही गई है।।१६-१७।।

साँतवें स्कन्ध में हिरण्यकश्यपु और महात्मा प्रह्लाद की कथा आती है। आठवें स्कन्ध में मन्वंतरों की कथा तथा गजेन्द्र मोक्ष की कथा कहा गया है।।१८।।

मन्वंतरों में राजाओं के चरित्र, जगतपति भगवान विष्णु का हयग्रीव, कूर्म, मत्स्य, नरसिंह, वामन आदि अवतारों की कथा विस्तृत रूप में कही गई है।।१९।।

क्षीर-समुद्र का मंथन अमृत के लिये देव-दानव करते है। उसके बाद देव और असुरों में महायुद्ध होता है। इसका विवरण भी आठवें स्कन्ध में आता है। बाद में नौवें स्कन्ध में राजाओं का चरित्र आता है।।२०।।

इक्ष्वाकु राजा का जन्म उनके वंश, महात्मा सुद्युम्न, इला, उपाख्यान, तारादेवी की कथा आती है।।२१।।

सूर्यवंश का चरित्र, शशाद इत्यादि राजा का चरित्र, सुकन्या शर्याति का चरित्र, ज्ञानी ककुत्स्थ राजा का चरित्र कहा गया है।।२२।।

खट्वांग, मांधाता, सौभरि, सगर और श्रीराम जी की कथा पाप परिहारक बने हैं।।२३।।

निमिराजा का शरीर त्याग, जनक वंश के राजाओं की उत्पत्ति, परशुरामावतार में भूमण्डल के क्षत्रियों का नाश की कथा कही गई है।।२४।।

चन्द्रवंश के राजा पुरूरव, ययाति नहुष, दुष्यन्त पुत्र भरत, शन्तनु उनके पुत्र भीष्मादियों का चरित्र आता है।।२५।।

ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु का वंश का विस्तार रूप से वर्णन है। इस वंश में ही जगदीश्वर भगवान श्रीकृष्ण का अवतार हुआ।।२६।।

दसवाँ स्कन्द में श्रीकृष्ण वसुदेव की पत्नी के गर्भ से अवतार लेकर नन्द गोकुल में बड़े होते हैं। असुरान्तक मुरारी के अपार लीलाओं की कथा दशम स्कन्ध में वर्णित है।।२७।।

पूतना के प्राण के साथ उसके छाती का दूध पीना, शकटासुर भंजन, तृणावर्त का संहार, बकासुर, वत्सासुर संहार की कथा आती है।।२८।।

बलराम के साथ मिलकर धेनुकासुर, प्रलंबासुर इत्यादि असुरों का वध, अरण्य में चारों ओर जलाने वाली भयंकर आग को पी लेना उससे गोपालकों की रक्षा करना ये कथा दसवाँ स्कन्ध में कही गई है।।२९।।

कालिया नाग का दमन, अजगर से नन्दगोप की रक्षा, गोप कन्याओं की कात्यानी व्रत, प्रभु का अनुग्रह बताया गया है।।३०।।

यज्ञ पत्नियों के ऊपर अनुग्रह, ब्राह्मणों का पश्चात्ताप, गोवर्धनोद्धार, देवेन्द्र से सुरभि की पूजा और क्षीराभिषेक, श्रीकृष्ण की गोप स्त्रियों के साथ रासलीला वर्णित है। बाद में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा दुर्बुद्धि, शंखचूड़, अरिष्टासुर, केशी दानवों के वध की कथा बताई गई है।।३१-३२।।

बाद में नन्द गोकुल को अक्रूर आते हैं, रामकृष्ण मथुरा को जाते हैं। गोकुल स्त्रियों का विलाप, रामकृष्ण मथुरा नगर का दर्शन करते हैं।।३३।।

कुवयलापीड का और चाणूर, मुष्टिक, कंस आदियों का वध, गुरु सांदीपनि के मृत पुत्र

को पुनः लाकर देना, यह कथा दशम स्कन्ध में आती है।।३४।।

हे मुनि! बाद में भगवान श्रीकृष्ण, उद्धव और बलराम के साथ मथुरा में वास करते हैं, यादव कुल के लिये कल्याण करते हैं।।३५।।

जरासंध अपने कई अक्षोहिणी सैन्य से बार बार आक्रमण करता है। उसका निवारण करते हुये जरासंध का और कालयवन को नाश करते हुये समुद्र मध्य में द्वारका का निर्माण करते हैं।।३६।।

युद्ध में शत्रुओं का निग्रह करते हुये रूक्मिणी को जीत कर लाये, शिव के साथ युद्ध में शिव स्तम्भित हो गये। बाणासुर के बाहुओं को काट डाले।।३७।।

नरकासुर को मार कर वहाँ के सोलह हजार कन्याओं को बंधन से मुक्त करते हुये द्वारका लाये। स्वर्ग से पारिजात को अपहरण करके लाये, सुधर्म सभा का निर्माण करवाये।।३८।।

शिशुपाल, पौण्ड्रक, साल्व और दुर्मति, दन्तवक्र के साथ शंबर, विविद, पीठ, मुर, पंचजन इत्यादियों का वध करते हुये श्रीकृष्ण अपने महात्म्य को दिखाते हुये वाराणसी को दहन करते हैं। पाण्डवों को निमित्त करते हुये कुरुक्षेत्र युद्ध में पचपन लाख योद्धाओं को नाश करते हुये भू-भार हरण किये।।३९-४०।।

एकादश स्कन्ध के प्रारम्भ में विप्रशाप और उस शाप के कारण से यदु कुल का संहार करवाते हैं। इन दोनों के बीच में देवर्षि नारद के साथ वसुदेव का संवाद होता है।४१।।

उद्धव के लिये भगवान श्रीकृष्ण का अद्भूत उपदेश, उसमे सारे अध्यात्म विद्या, वर्णाश्रम धर्म इत्यादि निर्णय गर्भित हुये हैं। बाद में भगवान श्रीकृष्ण अपने योग सामर्थ्य से भूमि का त्याग करते हैं।।४२।।

द्वादश स्कन्ध में युग का लक्षण, लोगों की प्रवृत्ति, कलियुग में पापियों का नाश, नित्य आदि चार तरह का प्रलय, राजसादी तीन तरह की सृष्टि के बारे में कहा गया है।४३।।

ज्ञानी, राजर्षि, परीक्षित देह त्याग करते हैं। वेद शाखा का निर्माण, मार्कण्डेय ऋषि की सत्य कथा आती है।।४४।।

इसके बाद भगवान के अंग-उपांग इत्यादियों का वर्णन आता है। जगत स्वामी सूर्य के अन्तर्गत नारायण की महिमा ये भी वर्णित है। हे मुनिगण, इस प्रकार भागवत के बारे में आप जो जो पूछे उसके बारे में मैं पूर्ण रीति से कह चुका हूँ।।४५।।

अध्याय - 12

हरि कथा श्रवण करना चाहिये

समग्र भागवत में भगवान की लीलाएँ सारे स्थानों में वर्णित किये गये है। गिरते, चलते, दुःखी अथवा छींकते समय में भी भक्ति परवशता से **हरयेनमः** इस प्रकार जोर से कहने से आदमी के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।।४६।।

भगवान के अन्त न होने वाले सामर्थ्य के बारे में सुने, उसके बारे में कहे तो उसके चित्त में भगवान प्रवेश करते हुये सूर्य जैसे अन्धेरा को, बादल जैसे मेघ को हटाते हैं वैसे सत्पुरुषों के सारे बंधनों को भगवान दूर करते हैं।।४७।।

भगवान अधोक्षज का संकीर्तन न करने वाली बातें व्यर्थ होती हैं। भगवान का संकीर्तन ही रम्य, सुन्दर, नूतन और मन को महाआनन्दकर होता है।।४९।।

लोक पावन श्रीहरि का यशोगान न करने वाले ग्रंथ कितने भी सुन्दर पदों से रचित होकर अत्यन्त अर्थ गर्भित रहे तो भी वह लोक पावन नहीं बनता। वह कौवा नहाने वाला गन्दा पानी ही होता है। हंस पक्षी नहाने वाला मानस सरोवर जल नहीं बनता। अच्युत का गुणगान जहाँ रहता है वहाँ निर्मल सत्पुरुष आदर से रहते हैं।।५०।।

अनन्त के कीर्तिगर्भित नामों को सज्जन लोग सदा सुनते रहते हैं, गाते हैं, कीर्तन करते हैं। प्रति श्लोक में शब्द सौन्दर्य न रहते हुये केवल अनन्त का नाम रहे, तो वे शब्द राशि सकल लोगों के सारे पापों का नाश करती है।।५१।।

कर्ममोचन करने वाला निर्मल शास्त्र ज्ञान भी अच्युत में भक्ति के बिना शोभा नहीं देता, मोक्ष का कारण नहीं बनता, कर्म सदाकाल के लिये दोष कारण होता है। फल कामना रहित कर्म करे तो भी उसको भगवान को समर्पण नहीं किये तो उससे शोभा नहीं होती।।५२।।

अच्युत में भक्ति न करते हुये किया हुआ वर्णाश्रम आचार, तप, अध्ययन, इनमें परिश्रम करने के बाद भी वह कीर्ति और सम्पदा को ला सकती है, किन्तु श्रीहरि की महिमा का कीर्तन करना चाहिये, सुनना चाहिये, उससे भक्ति उत्पन्न होनी चाहिये। तभी भगवान के चरण कमल का निरन्तर स्मरण लभ्य हो सकता है।।५३।।

भगवान श्रीकृष्ण के पदारविन्दों का सदा संस्मरण ही अमंगल का नाश करते हुये मंगल कर सकता है। अन्तःकरण की शुद्धि को, परम भक्ति को, विज्ञान युक्त वैराग्य को उत्पन्न करती है।।५४।।

हे ब्राह्मणोत्तम! आप महाभाग्यशाली हैं, क्योंकि आप सारे देवताओं से विलक्षण देव, सर्वेश्वर प्रभु नारायण को अपने मन में रखते हुये सदाकाल अनन्य भक्ति से भजन करते रहते हैं।।५५।।

आपके साथ मैं भी भाग्यशाली हूँ। राजा परीक्षित जब प्रायोपवेश किये तो उस समय वहाँ अनेक महान-महान ऋषि आकर सभा में बैठे हुये थे। शुकदेव के श्रीमुख से बहती हुयी वाक् गंगा को मैं भी सुनता था। आपकी कृपा से अब मुझे उसका याद करना पड़ा।।५६।।

हे ब्राह्मण वृन्द! मैंने आपको अब तक जो प्रशंसनीय महाकार्यों को करने वाले वासुदेव के माहात्म्य के बारे में कहा है वह कथा सकल अशुभों का निवारण करती है।।५७।।

जो लोग इस भागवत को एक याम (ढ़ाई घण्टा) अथवा एक क्षण के लिये अनन्य श्रद्धा भक्ति से सुनता है अथवा सुनाता है वह अन्तःकरण शुद्धि को पाता है।।५८।।

इस कथा को एकादशी अथवा द्वादशी के दिन श्रवण करने वाला दीर्घ आयुष्मान् बनता है। उपवास रहते हुये इन्द्रिय निग्रह पूर्वक पारायण करने से पापी भी पाप से मुक्त होता है।।५९।।

पुष्कर, मथुरा, द्वारका में उपवास व्रत करते हुये इन्द्रिय निग्रह के साथ इस भागवत पुराण संहिता का जो पाठ करता है वह भय से मुक्त होता है।।६०।।

इस पुराण में वर्णित देवताएँ, मुनिगण, सिद्ध पितृ, मनु और राजाओं के वंश के बारे में पठन, श्रवण, करने वाले के अभीष्ट सिद्ध होते हैं।।६१।।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद का अध्ययन करने वाला द्विज शहद, दूध और घी की नदी को पा सकता है। यह सारा फल भागवत के अध्ययन से भी मिलता है।।६२।।

ब्राह्मण इन्द्रिय निग्रह पूर्वक भगवान वेदव्यास जी द्वारा कहे हुए इस भागवत पुराण संहिता को अध्ययन करे तो विष्णु के परमपद वैकुण्ठ को पाता है।।६३।।

इसका अध्ययन करने वाला ब्राह्मण उत्तम ज्ञान को, क्षत्रिय समुद्र पर्यन्त भूमि को, वैश्य निधियों के स्वामित्व को, शूद्र पाप शुद्धि को पाता है।।६४।।

कलिमल को संहार करने वाले सर्वेश भगवान श्रीहरि इस पुराण में बार-बार वर्णित हैं। अन्य राजस, तामस पुराणों में ऐसा वर्णन नहीं मिलता, यहाँ बार-बार अनेक कथा प्रसंगों से पूर्ण स्वरूप भगवान के बारे में ही कहा गया है।।६५।।

सज्जनों को स्वतंत्र भगवान सुख देते हैं। वे लोग अपने अन्तःकरण में भगवान को सदाकाल भरे रखते हैं। वहाँ और किसी आशा का अंकुर भी उत्पन्न नहीं होता। फिर भी मन का आकर्षण करने वाली भगवान की मनोहर लीला उनके चित्त स्थैर्य को हिलाती है। इसी कारण कृतकृत्य शुकमुनि अपने के लिये आवश्यकता कुछ भी नहीं होते हुये सज्जनों के ऊपर की कृपा से तप बोधक भागवत पुराण का प्रचार किये। सारे पापों का नाश करने वाले उन शुक महामुनि को नमस्कार करता हूँ।।६६।।

जनन-मरण रहित स्वतंत्र इस जगत की सृष्टि, स्थिति और लय में अपने स्वतंत्र स्वरूप शक्ति वाले, ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र इत्यादि लोक पालकों के स्तुति से भी न मिलने वाले, अच्युत को नमन करता हूँ।।६७।।

मूल प्रकृति, महत् अहंकार, मन, पंचमहाभूत इत्यादि नौ शक्तियों से अपने द्वारा सृष्ट स्थावर जंगम सबको पालन करने वाले, ज्ञान स्वरूप, देवोत्तम, वेदैकवेद्य भगवान नारायण को नमस्कार करता हूँ।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में बारहवाँ स्कन्ध में बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

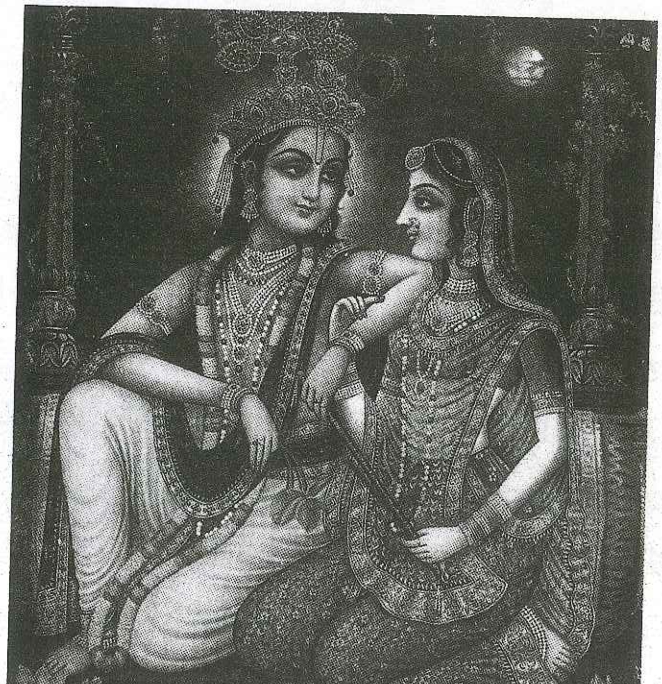

श्री राम श्री

श्रीमद् भागवतमहापुराणम्

द्वादश स्कन्धः

अध्याय - तेरहवाँ

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ ।।

स्वतंत्र सर्वोत्तम श्रीहरि और अष्टादश पुराणों की श्लोक संख्या

सूत कहते है - ब्रह्म, वरुण, इन्द्र, रुद्र, वायु इत्यादि देवता षडंग पदपाठ, क्रमपाठ, उपनिषदों के साथ वेदों के दिव्य स्तोत्र से जिनकी स्तुति करते हैं, साम गान करने वाले जिसके बारे में गाते हैं,योगी ध्यान में तन्मय होकर मन में जिसको देखते है, सुर और असुर जिनकी महिमा को पार नहीं पा सकते उन देव-देव नारायण को नमस्कार।।१।।

उस दिन पूर्वरूपी भगवान अपने पीठ के ऊपर जोर से चलने वाले बड़े मन्दर पर्वत के पत्थर से पीठ पर होने वाले स्पर्श से खुजली निवारण का अनुभव होने से भगवान नींद करने लगे। तब उनके उच्छ्वास से निर्माण हुई वायु से समुद्र में तरंग उत्पन्न हुये। समुद्र के मंथन के कारण हुये ऐसा कारण बताते हैं। वह केवल दिखाने का है। तब जो तरंग उत्पन्न हुये उनके संचालन के संस्कार से अभी चल रहे हैं। वे रूकने वाले नहीं हैं। निरन्तर चलते रहते हैं। ऐसे प्रभु के श्वास की हवा हमारी रक्षा करे।।२।।

पुराणों की श्लोक संख्या -

अब मैं प्रत्येक पुराण के श्लोक संख्या और कुल मिलाकर सारे पुराणों की श्लोक संख्या के साथ भागवद पुराण के विषय प्रयोजन, ग्रन्थ दान का माहात्म्य और पठन माहात्म्य के बारे में कहता हूँ, उसे सुनिए।।३।।

ब्रह्म पुराण की श्लोक संख्या दस हजार है। पद्मपुराण में पचपन हजार, विष्णु पुराण में तेइस हजार, शिव पुराण में चौबीस हजार श्लोक हैं।।४।।

श्रीमद्भागवत में अट्ठारह हजार, नारद पुराण में पच्चीस हजार, मार्कण्डेय पुराण में नौ हजार, अग्नि पुराण में पन्द्रह हजार चार सौ श्लोक हैं।।५।।

भविष्यत् पुराण में चौदह हजार पाँच सौ श्लोक, ब्रह्मवैवर्त में अट्ठारह हजार, लिंग पुराण में ग्यारह हजार, वराह पुराण में चौबीस हजार, स्कन्द पुराण में इक्यासी हजार, वामन पुराण में दस हजार श्लोक होते हैं।।६-७।।

कूर्म पुराण में सत्रह हजार, मत्स्य पुराण में चौदह हजार, गरुड़ पुराण में उन्नीस हजार, ब्रह्माण्ड पुराण में बारह हजार श्लोक हैं।।८।।

इस प्रकार सारे पुराणों की श्लोक संख्या कुल मिलाकर चार लाख होते हैं। उनमें श्रीमद्भागवत की संख्या अट्ठारह हजार श्लोक है।।९।।

भागवत पुराण का गुणगान

इस भागवत को प्रथमतः नाभि कमल में जीवन पाए भवभय से भीत ब्रह्मा जी को भगवान नारायण कारुण्य से कहे हैं। यह पुराण आदि, मध्य, अन्त में सारे स्थानों में वैराग्य के उपदेशों से भरा हुआ है।।१०।।

श्रीहरि की लीलाओं की कथा समूह रूप यह पुराण अमृत के सामान होने वाले आनन्द को सज्जन और देवताओं के लिये उत्पन्न करता है। ब्रह्मचैतन्य के सर्वोत्तमत्व का प्रतिपादन करता है। उपमा रहित अन्य परवस्तु से बढ़कर जो वेदान्तसार हैं, उसको यह पुराण बताता है। मोक्ष ही इसका मुख्य प्रयोजन है।।११।।

भाद्रपद मास के पूर्णिमासी के दिन भागवत ग्रंथ को सोने के सिंहासन पर रखते हुये दान दिये तो उत्तम गति मिलता है।।१२।।

सज्जन समूहों में सर्वोत्तम पुराण साक्षात् श्रीमद्भागवत जिनको गोचर होता है उनको अन्य पुराण बताने की योग्यता मिलती है।।१३।।

यह भागवत सकल वेदान्तों का सार है। भागवत नाम अमृत रस को पिए हुए आदमी को अन्य रस तृप्ति नहीं देता।।१४।।

नदियों में गंगा, देवताओं में विष्णु, विष्णु भक्तों में शिव जैसे श्रेष्ठ हैं वैसे ही पुराणों में भागवत श्रेष्ठ है।।१५।।

सारे क्षेत्रों में काशी जिस प्रकार श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार पुराणों में श्रीमद्भागवत श्रेष्ठ हैं, यह पुराणराज है।।१६।।

श्रीमद्भागवत निर्मल, वैष्णवों के लिये प्रिय है। इसमें परमहंस को लभ्य होने वाले उत्तम ज्ञान का उपदेश है। उसमें ज्ञान भक्ति, वैराग्य सहित मोक्ष साधन प्रतिपादित किया गया है। भक्ति से इसको सुनने वाला कहने वाला, चिंतन करने वाला मोक्ष को पाता है।।१७।।

इस अनुपम ज्ञान दीप, पहले ब्रह्मा जी को साक्षात् श्रीहरि उपदेश दिये। फिर श्रीहरि के चल प्रतिमा रूप ब्रह्मा जी से नारद को मिला। ब्रह्मा जी के चल प्रतिमा रूप नारद से श्री वेदव्यास मुनि को, हरि स्वरूप व्यास जी से योगिराज शुकमुनि को, अत्यन्त कारुण्य पूर्ण शुकमुनि से राजा परीक्षित को यह ज्ञान दीप प्रकाशित हुआ। अविद्या दोष रहित, रागादि अन्तःकरण मल रहित, शोकादि दोष दूर, नित्य मुक्त स्वतंत्र, सर्वोतम, श्रीहरि का ध्यान हम करते हैं।।१८।।

इस भागवत पुराण को मोक्ष चाहने वाले ब्रह्मादियों को करुणा से उपदेश दिया हुआ सर्वसाक्षी भगवान वासुदेव को नमस्कार।।१९।।

संसार नाम के सर्प से डसे हुए राजा परीक्षित को विमुक्त किए हुए परब्रह्म के विशेष सन्निधान पात्र योगी श्रेष्ठ शुकमुनि को नमस्कार।।२०।।

हे योगेश्वर, हे प्रभु श्रीकृष्ण! आप ही मेरे मालिक हैं, हमें आपके श्रीचरणों में जन्म-जन्म में भक्ति हो, यही कृपा करें।।२१।।

इस प्रकार जिसका नाम संकीर्तन सकल पाप का नाश करता है, जिनको नमन करने से सकल दुख का परिहार होता है, ऐसे सर्वोत्तम श्रीहरि को हम नमन करते हैं।।२२।।

।।यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण में बारहवाँ स्कन्ध में तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

।। द्वादश स्कन्ध समाप्त हुआ ।।

यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण समाप्त होता है।

।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

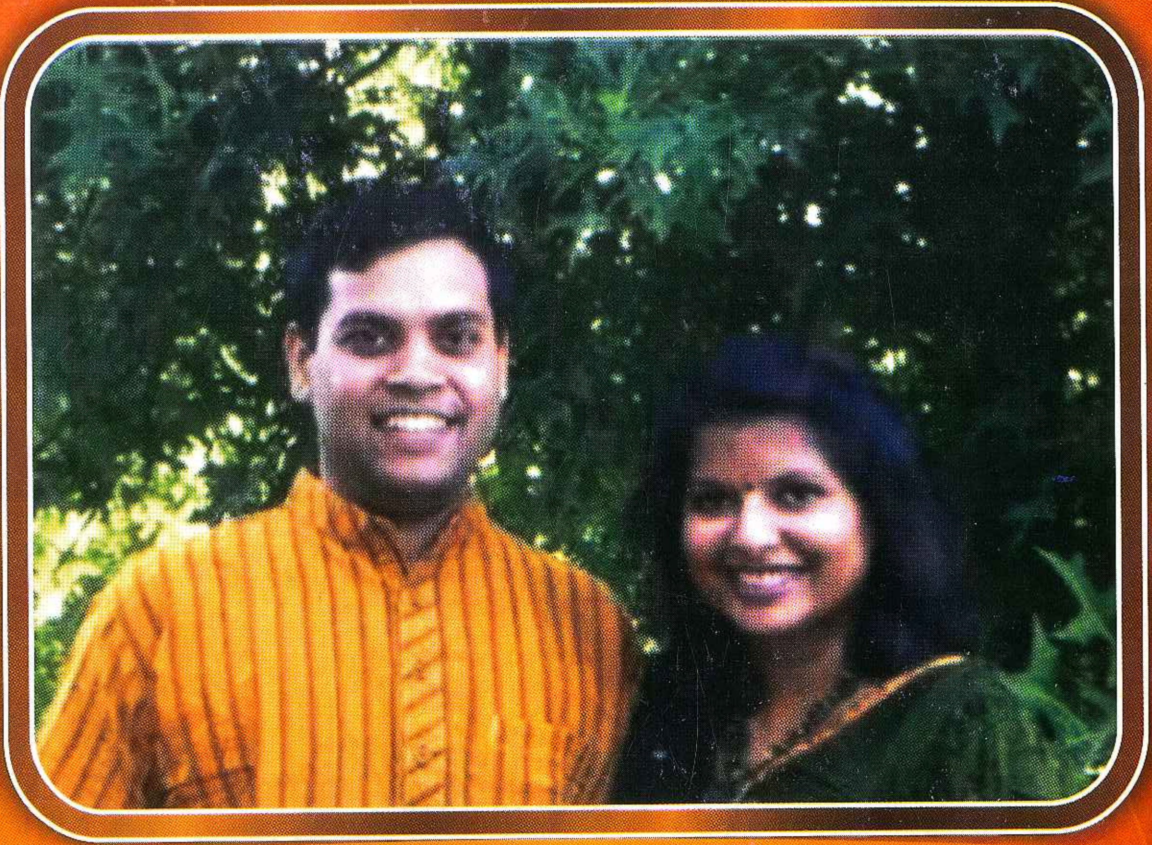

अमेरिका में रहने वाले श्री विवेक चन्द्र श्रीवास्तव जी और उनकी श्रीमती जी हमारे इस भागवत ग्रंथ के मुद्रण का सम्पूर्ण भार निर्वहन किये हैं। श्री विवेक चन्द्र धार्मिक परिवार में जन्म लिये हैं, स्वयं आचरणशील और दैव भक्त हैं।

वे इससे पहले हमारे प्रकाशन के लिये एक लाख रुपये दान देकर पुण्य के भागी बने हैं। इनको ज्ञान भक्ति वैराग्य के साथ श्रेय और प्रेय देकर अनुग्रह करें इस प्रकार हमारे उपास्य श्रीमुख्य प्राण समेत श्री सीताराम चन्द्र जी से प्रार्थना करते हैं।

– श्री विद्यात्मतीर्थ स्वामी जी

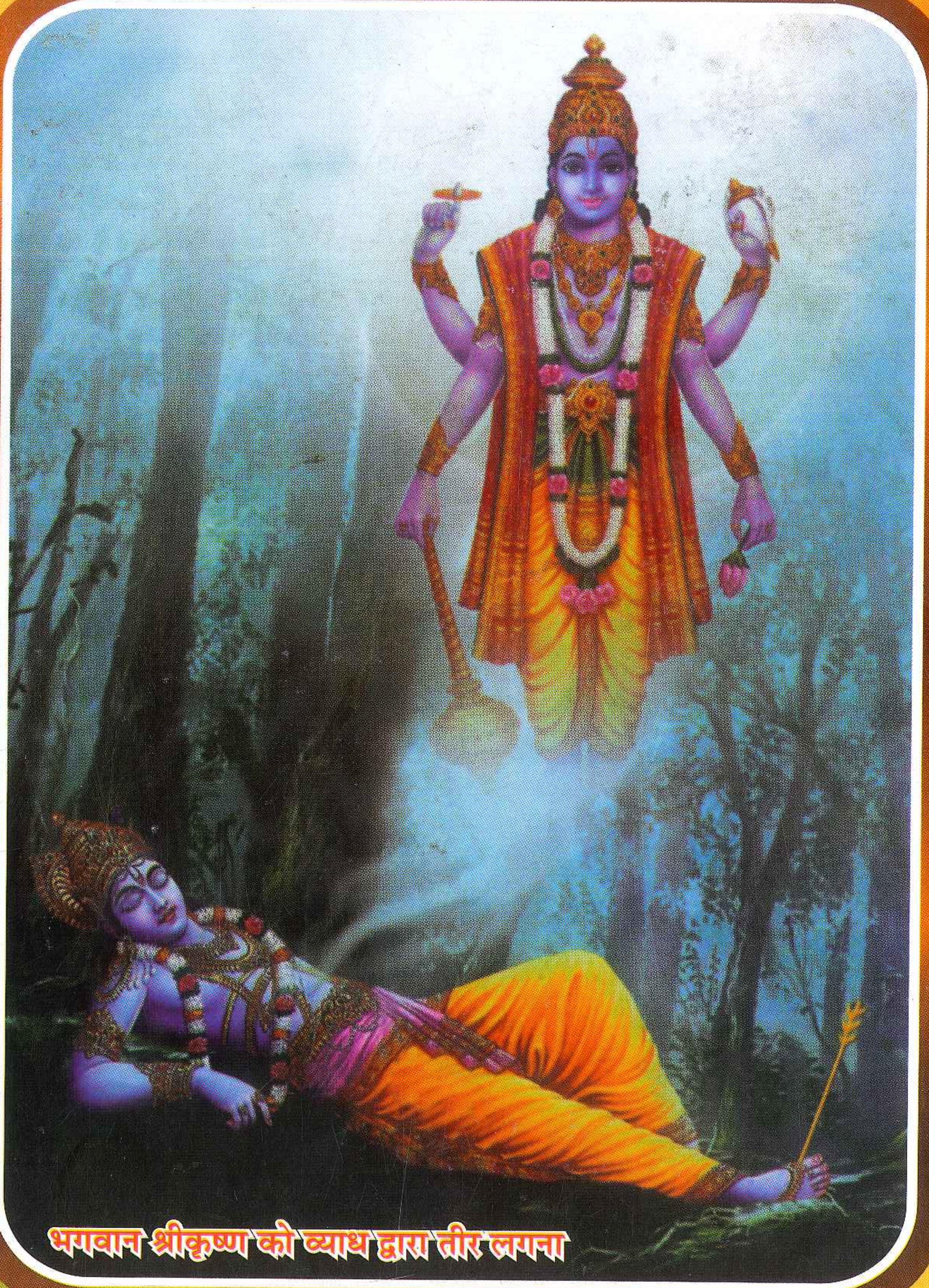

पता : मध्वमठ, 63, मीरागली, दारागंज, इलाहाबाद-211006
फोन : 0532-2504587
Email : prayagswamiji@gmail.com